दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

संपादक
डॉ. अश्विनी महाजन
रीडर, डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

दृष्टिकोण प्रकाशन
WZ-724, पालम गांव, नई दिल्ली-110045

वर्ष : 11 अंक : 6 ❑ नवम्बर-दिसम्बर, 2019

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

प्रो. लॉरेंस ओएडिजी
वेगेनिंग्न विश्वविद्यालय, नीदरलैंड
डॉ. मार्टिन ग्रिन्डले
नॉटिंग्म विश्वविद्यालय, लंदन
डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरवोरोग, ओन्टारियो
डॉ. दया शंकर तिवारी
राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ. सुरज नन्दन प्रसाद
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डॉ. सी.पी. शर्मा
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग
डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची
डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका
डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना
डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा
डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

संपादकीय सम्पर्कः

448, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091
फोन : 011-22753916, 40564514
e-mail : editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

मूल्यः ₹ 1500.00

मुद्रक एवं प्रकाशक निर्मल कुमार सिंह द्वारा WZ-724, पालम गांव, नई दिल्ली-110045 से प्रकाशित तथा ट्राइडेंट इन्टरप्राइजेज, डी-204, सेक्टर-10, नोएडा, जी.बी. नगर, उत्तर प्रदेश से मुद्रित

नोटः पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

लघु उद्योग के लिए अनुकूल परिवेश को प्रोत्साहन

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्यमों का सदैव एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। चाहे वह उत्पादन, रोजगार या निर्यात, किसी भी रूप में जुड़ा क्यों न हो। इसके अतिरिक्त लघु उद्योग समानता और विकेंद्रीकरण के साथ विकास के भी वाहक हैं। इसलिए आर्थिक नीति को लघु उद्योगों के संवर्धन और संरक्षण पर उचित रूप से लक्ष्य किया जाना चाहिए। हालांकि दो दशकों से अधिक समय से यह क्षेत्र एक गंभीर संकट से गुजर रहा है। बड़ी संख्या में लघु उद्योगों की समाप्ति न केवल नौकरियों के सृजन, बल्कि उनके एवं अर्थव्यवस्था के विकास में अवरोध उत्पन्न कर रही है।

उदारीकरण और भूमंडलीकरण का प्रभाव: स्वतंत्रता के बाद देश की औद्योगिक नीति ने बड़े पैमाने पर निजी उद्योगों के विकास पर रोक लगाई। उस दौर की औद्योगिक नीति लाइसेंस और कोटा राज पर्याय बन गयी थी। मौजूदा उद्योगों ने तो इस आर्थिक नीति के दौर में अपना अस्तित्व बरकरार रखने के कला सीख ली, लेकिन नए उद्यमियों के लिए पनपना कठिन रहा।

जहां तक लघु उद्योगों का संबंध है, तत्कालीन नीति ने एसएसआई को उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्र में काम करने की अनुमति दी और कई वस्तुओं को एसएसआई के लिए आरक्षित कर दिया गया। 1991 में नई आर्थिक नीतियों के पदार्पण से पूर्व 812 वस्तुओं के उत्पादन की जिम्मेदारी केवल लघु उद्योगों की थी। नई आर्थिक नीति (एनईपी) ने आरक्षण की इस नीति को कुचल दिया। इसी प्रकार लघु उद्योगों को सरकारी खरीद में वरीयता दी जाती थी, कीमतों और खरीद, दोनों के मामले में। धीरे-धीरे प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के नाम पर एसएसआई के लिए रियायतें समाप्त कर दी गयीं। यह कहा गया कि एसएसआई को आरक्षण देने से प्रौद्योगिकी का विकास बाधित होता है और प्रतियोगिता की भावना दम तोड़ देती है। यह भी कहा गया कि संरक्षण देने से अक्षमताएं उत्पन्न होती हैं और देश अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर पाता है। यह तर्क दिया गया कि अगर हम लघु उद्योगों सहित घरेलू उद्योग को संरक्षण देना जारी रखेंगे तो विदेशी निवेशकों को निराश करेंगे। साथ ही उपभोक्ताओं को अधिक विकल्प प्राप्त करने का मौका नहीं मिलेगा। एनईपी के तर्कों ने रोजगार, विकेन्द्रीकरण और ऐसी समानता की वकालत करने वाले पक्ष पर विजय हासिल कर ली, जो एसएसआई को रियायत देने की बात करती थी। भूमंडलीकरण के युग में मुक्त आयात नीति ने हमें बड़ी संख्या में उत्पाद और कदाचित प्रौद्योगिकी हासिल करने में तो मदद की, लेकिन लाखों छोटे उद्यमों की तालाबंदी की कीमत पर, जो विश्व के दूसरे देशों से भयंकर प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर सके। हालांकि ऑटोमोबाइल जैसे कुछ क्षेत्रों में सहायक लघु स्तरीय इकाइयों में कुछ वृद्धि देखी गयी लेकिन सामान्य रूप से लघु उद्योगों पर बहुत बुरा असर हुआ, खासतौर से चीन से होने वाले आयात के कारण। खिलौने, बिजली के उपकरण, मोबाइल, कंप्यूटर और अन्य इलेक्ट्रॉनिक्स उपसाधनों, प्रोजेक्ट माल, बिजली संयंत्रों आदि के भारी आयात के कारण देश पर विदेशी मुद्रा भुगतान का भारी बोझ आया, साथ ही हमारे उद्योग और व्यापार नष्ट हो गए जिससे बड़े पैमाने पर बेरोजगारी हुई।

मेक इन इंडिया को कैसे बढ़ावा दें: यद्यपि, चीन द्वारा डंपिंग और भारत के लघु उद्योगों पर उसके असर के विषय में कोई संदेह नहीं है, फिर भी यह समझना महत्वपूर्ण है कि चीनी सरकार अपने देश में उद्योग और उद्यमिता के विकास के लिए अनुकूल माहौल प्रदान करती है। इसी कारण चीन विश्व का विनिर्माण केंद्र बन गया है। भारत में ऐसी कई समस्याएं हैं जिनके कारण लघु उद्योगों का विकास प्रभावित होता है। इनमें महंगी बिजली, पुराना श्रम कानून, जटिल कर प्रणाली, करों की उच्चदर, वित्त पोषण की समस्याएं, बुनियादी ढांचे की कमियां, उद्यम लगाने को हतोत्साहित करने वाले कानून, इंस्पेक्टर राज और विकृत पर्यावरण कानून शामिल हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि लघु उद्योगों को न केवल आयात संबंधी प्रतिस्पर्धा झेलनी पड़ती है, बल्कि उद्योग शुरू करने से लेकर अंतिम उत्पाद को मार्किट तक पहुंचाने में भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

अलग श्रम कानूनों की जरूरत: श्रम की सुरक्षा और कल्याण के महत्व से कोई इंकार नहीं करता। हालांकि अनुचित तरीके से काम पर रखने और निकालने की नीति अच्छी नहीं है और हमें श्रमिकों के हितों की रक्षा करनी चाहिए लेकिन बड़े और लघु उद्यमों के लिए एक ही कानून का औचित्य नहीं है। परिदृश्य अब बदल गया है और जटिल श्रम कानूनों के कारण लघु उद्यमों ने नियमित श्रमिकों की भर्ती के बजाय अनुबंध पर कामगारों को रखना शुरू कर दिया है। बिचौलियों द्वारा ठेके पर काम करने वालों का शोषण किया जाता है जिससे उद्यमियों एवं श्रमिकों के बीच का संबंध समाप्त होता है और दोनों, उद्यमियों और श्रमिकों का नुकसान होता है। इस समस्या को देखते हुए, दूसरे श्रम आयोग ने लघु उद्यमों के लिए अलग कानून बनाने की सिफारिश की थी। श्रमिक संगठनों ने भी ऐसी पहल का समर्थन किया था। कुछ समय पहले अति लघु, लघु एवं मध्यम उद्योग विधेयक तैयार किया गया था। हालांकि लघु उद्यमों के लिए अलग श्रम कानूनों की अब भी आवश्यकता है। वित्त बैंक और अन्य वित्तीय संस्थानों का मानना है कि लघु उद्यमों को उधार देना जोखिम भरा काम है। इस

सोच में कोई सच्चाई नहीं है। खासकर यह देखते हुए बड़े कर्ज के बदले बैंक एनपीए जैसे जबरदस्त संकट का सामना कर रहे हैं। इस पूर्वव्यापी धारणाओं के कारण बैंक लघु उद्यमों को ऋण देने से बचते हैं, इसके बावजूद यह उनके लिए कानूनी बाध्यता है कि वे लघु उद्यमों को ऋण में वरीयता दिखाएं। इसके अतिरिक्त लघु उद्यमों को उच्च ब्याज दरों पर ऋण लेना पड़ता है, जबकि बड़े उद्यमों को बिना परेशानी के, बहुत सस्ती दरों पर ऋण मिलता है और वह भी आसान शर्तों पर। वर्तमान सरकार ने माइक्रो यूनिट्स डेवलपमेंट एंड रीफाइनांस एजेंसी (मुद्रा) स्टार्ट अप स्कीम इत्यादि के माध्यम से लघु और अति लघु उद्यमों का मार्ग सुगम बनाने का प्रयास किया है। अब केवल मुद्रा योजना के अंतर्गत 3.9 लाख करोड़ रुपये का कुल ऋण संवितरित किया गया है। इसके बाद मुद्रा ऋण के 9.3 करोड़ लाभार्थियों ने न केवल खुद स्वरोजगार चालू किया है बल्कि रोजगार सृजन भी किया है।

भारी आयात और डंपिंग पर प्रतिबंध: हालांकि, विदेशी व्यापार आधुनिक काल में एक सामान्य घटना है लेकिन यह लघु उद्योगों के लिए संकट का बायस है। इसका कारण कुछ विदेशी देशों, विशेष रूप से चीन द्वारा की जाने वाली डंपिंग है। केंद्र सरकार ने अब बड़े पैमाने पर एंटी डंपिंग शुल्क लगाया है। राज्यसभा में एक लिखित उत्तर में, तत्कालीन वाणिज्य और उद्योग मंत्री ने कहा था कि चीन से आयात किए गए 93 उत्पादों पर एंटी डंपिंग शुल्क लागू है। इसके अतिरिक्त एंटी डंपिंग एंड एलीइड ड्यूटी के महानिदेशालय ने चीन से आयात के 40 मामलों में पहल की है। वर्ष 2016-17 में कुछ वस्तुओं पर एंटी डंपिंग शुल्क लगाने के वांछनीय परिणाम मिले। चूंकि चीन की अनेक वस्तुओं पर एंटी डंपिंग शुल्क लगाया जा रहा है इसलिए यह उम्मीद की जा रही है कि चालू वर्ष में चीन से आयात में गिरावट होगी। इससे न केवल घरेलू उद्योग को राहत मिलेगी, बल्कि चीन के साथ व्यापार घाटा भी कम होने की संभावना है।

सरकारी खरीद में वरीयता: लघु उद्यमों को संरक्षण और बढ़ावा देने के लिए ऐसी व्यापक और स्पष्ट सरकारी नीति थी कि एसएसआई से खरीद को वरीयता दी जाएगी। लेकिन बदलते दौर में यह वरीयता समाप्त या कम कर दी गई। हाल ही में सरकार ने जनरल फाइनांशियल नियम (जीएफआर) बनाकर एक नई खरीद नीति लागू की है। जीएफआर के नियम 153 में कहा गया है: ''50 लाख रुपये और उससे कम मूल्य के माल की खरीद में, और जहां नोडल मंत्रालय यह निर्धारित करता है कि पर्याप्त स्थानीय क्षमता और स्थानीय प्रतियोगिता है, केवल स्थानीय आपूर्तिकर्ता ही पात्र होंगे। 50 लाख रुपये और उससे अधिक मूल्य की खरीद के लिए (या जहां अपर्याप्त स्थानीय क्षमता/प्रतियोगिता है)। यदि न्यूनतम बोली गैर-स्थानीय आपूर्तिकर्ता की नहीं है, तो निम्नतम लागत वाले स्थानीय आपूर्तिकर्ता, जो न्यूनतम बोली के 20 प्रतिशत के अंतर के भीतर है, को निम्नतम बोली से मेल खाने का अवसर दिया जाएगा।'' उम्मीद की जाती है कि घरेलू माल की खरीद को वरीयता देने से घरेलू उद्योग को सामान्य रूप से और लघु स्तरीय उद्योगों को प्रोत्साहन मिलेगा।

इंस्पेक्टर राज की समाप्ति: एसएसआई पर 40 से अधिक कानून लागू हैं और 50 से ज्यादा निरीक्षक उनके कारखानों का दौरा करते हैं। उनमें से कई में एसएसआई को दंडित करने के लिए व्यापक शक्तियां हैं। इन खतरों के साथ एसएसआई के लिए उत्पादन, विपणन और प्रौद्योगिकी के उन्नयन जैसे मुख्य क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करना मुश्किल होता है। कई ऐसे कानून हैं जो आधुनिक समय में उपयोगिता खो चुके हैं और कई सामान्य रूप से अर्थव्यवस्था और विशेषरूप से उद्योग के स्वस्थ कामकाज में बाधक हैं। इस त्रासदी को समाप्त करने की सख्त आवश्यकता है। हालांकि अर्थव्यवस्था के सुचारू रूप से कार्य करने के लिए वर्ततमान सरकार ने कुछ बेमानी कानूनों को निरस्त करने का काम शुरू कर दिया है। अब तक 1200 अधिनियम रद्द किए गए हैं और 1824 अधिनियमों को निरस्त करने के लिए चिन्हित कर लिया गया है। नए उद्यमियों की सुविधा हेतु सभी प्रकार की मंजूरी के लिए एकल खिडकी की आवश्यकता है। कुछ राज्यों ने इस प्रक्रिया को शुरू किया है। जैसे ही अधिक से अधिक राज्य सरकारें ऑनलाइन होंगी, इस प्रक्रिया में तेजी आएगी। स्टार्टअप्स के लिए नई पहल के तहत, ऑनलाइन अनुमतियां पहले ही दी जा चुकी हैं।

बुनियादी ढांचे का निर्माण: एक दुर्गम क्षेत्र में लघु उद्यमों को शुरू करना और चलाना लगभग असंभव है। वे न तो रेल या सडक से जुड़े हैं, न ही वहां ऊर्जा का विश्वसनीय स्रोत है। बड़े और विकसित स्थानों में भी बिजली की आपूर्ति एक बड़ा मुद्दा है। कई स्थानों पर बड़े पैमाने पर जनरेटर का उपयोग किया जाता है। इससे लागत बढ़ती है और प्रदूषण भी होता है। जनरेटर वाली इकाईयों का संबंधित विभागों के निरीक्षकों द्वारा शोषण भी किया जाता है। हमें रेल, सडक, बिजली, कौशल विकास, बाजार (ई-पोर्टल्स सहित) सहित विभिन्न प्रकार के बुनियादी ढांचे को विकसित करने की जरूरत है। गांवों का सार्वभौमिक विद्युतीकरण, सौर ऊर्जा को बढ़ावा, वर्तमान सरकार द्वारा सडकों का तेजी से निर्माण, यह सब लघु और अति लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए ही किया जा रहा है, खासतौर से ग्रामीण इलाकों में। सरकार द्वारा ई-प्रोक्योरमेंट को भी शुरू किया गया है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि स्वभाव से भारतीय लोग उद्यमी, मेहनती और उत्साही हैं। उन्हें उद्यमिता विकास के लिए अनुकूल वातावरण की आवश्यकता है। यह प्रमुख रूप से सरकार का काम है। सरकार को अच्छे कानून बनाने पड़ते हैं, वातावरण को अनुकूल बनाना पड़ता है। भौतिक अवसंरचना को छोड़कर इसके लिए बहुत ज्यादा बजट की आवश्यकता नहीं होती है। बुनियादी ढांचे को भी सार्वजनिक निजी साझेदारी से विकसित किया जा सकता है। हाल के वर्षों में सुधार के बावजूद व्यापार में सहजता के मामले में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारी रैंकिंग अब भी 130 है। सरकार द्वारा बहुत कुछ किया जा चुका है और अभी बहुत अधिक की उम्मीद है।

संपादक

इस अंक में

सामाजिक न्याय की परिधि में निम्न पिछड़ी जातियों की स्थिति–आले नवी 1

हड़प्पा कालीन प्रमुख नगर: एक ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० मो० मंजर अली 7

राजनीतिक यथार्थवाद और व्यवहारवाद–डॉ० आलोक कुमार 13

भारत-नेपाल सम्बन्ध तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति व कूटनीति: एक अध्ययन–डॉ० अमिताभ त्रिवेदी 17

नारी सशक्तिकरण और महात्मा गाँधी–अनिल शर्मा 22

भारत में लोक सभा: पृष्ठभूमि, संरचना और कार्य–आशुतोष सिंह जेलियाँग 27

संसद तथा राज्य विधानमंडल के द्वितीय सदनों का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० अशोक कुमार 33

प्रेमचंद की रचनाओं में राष्ट्रीय भावना–डॉ० शैल कुमारी वर्मा 40

भारतीय दर्शन में प्राकृतिक और दार्शनिक शिक्षा के आधार–डॉ० उदय कुमार शर्मा 44

जैन दर्शन में आचार मीमांसीय अनुशीलन–डॉ० राकेश कुमार 49

विश्व स्वास्थ्य संगठन की संरचना एवं कार्य: एक सामान्य अवलोकन–डॉ० कुमारी सुनीता 55

दिनकर की कविता: मार्क्सवाद तथा गांधीवाद का द्वंद–डॉ० संजय कुमार सिंह 59

बिहार के कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक समस्याएँ: शिक्षण सेवा के सदर्भ में–डॉ० स्नेह लता 67

दक्षिण और उत्तर बिहार की प्रादेशिक विषमताएँ: तुलनात्मक और भौगोलिक विश्लेषण–डॉ० राघवेन्द्र प्रसाद सिन्हा 72

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण एवं उनकी कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन–अजय कुमार यादव; डॉ० आशाराम 76

चिड़ावा तहसील में सिंचित क्षेत्र के स्थानिक वितरण का अध्ययन–डॉ० संजीव कुमार; डॉ० अश्वनी आर्य 82

समकालीन कहानियों में राजनीतिक चेतना–डॉ० विनय कुमार 89

सामाजिक नियंत्रण: अर्थ, प्रकार और प्रतिकूल प्रभाव–डॉ० राम बिनोद 92

भारत में अंतर्राष्ट्रीय चेतना का विकास–डॉ० राज भूषण उपाध्याय 97

शहरी जीवन की गुणवत्ता विशेषत: पटना के सन्दर्भ में–डॉ० विजय मिस्त्री 101

बौद्ध साहित्य में बुद्ध कालीन समाज–डॉ० शिवजी सिंह 106

पंचायत: भारतीय शिक्षा संस्कृति की संवाहक और सभ्यता का अंग–डॉ० सुमन्त कुमार 110

इतिहास का पारस स्पर्श: चंपारण का गांधी–डॉ० गुड्डी कुमारी 117

18वीं और 19वीं शताब्दी में भारत में नारी जागरण के प्रयास–डॉ० पूर्णिमा कुमारी 121
नवादा जिला में पर्यटन की संभावनाएँ: एक भौगोलिक विश्लेषण–अमर कुमार 127
बिहार के हाईस्कूल के छात्रों के व्यक्तित्व की उनके लिंग के संबंध में गतिशीलता: एक तुलना–अदनान अहमद 135
आधुनिक समय में एकल परिवार की बढ़ती प्रवृति के कारण का अध्ययन–डॉ० अरूणा कुमारी 138
स्त्री आंदोलन और प्रेमचंद–डॉ० बिंधी कुमारी 141
स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार की महिलाएँ–डॉ० बिपिन कुमार 145
भीष्म साहनी के साहित्य में नारी-चेतना : राष्ट्रीय पक्ष–मनकी रानी; डॉ० निरुपमा हर्षवर्धन 148
स्वतंत्रता आंदोलन में सूरज नारायण सिंह का योगदान–डॉ० मनोरंजन कुमार 153
बिहार में नील उद्योग एवं चम्पारण सत्याग्रह–डॉ० अमरजी कुमार 157
वैश्वीकरण के युग में मजदूर और किसान–डॉ० राकेश कुमार पासवान 162
मुगलकालीन प्रशासनिक व्यवस्था–डॉ० संजय कुमार आजाद 166
हिन्दू पुनरूत्थानवाद की पृष्टभूमि में राष्ट्रीय जागरण (उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी)–डॉ० चन्दन कुमार 171
मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में कार्ल मार्क्स का विचार–डॉ० महेन्द्र पासवान 177
लैंगिक असमानता: समस्या एवं समाधान (संवैधानिक, वैधानिक एवं अन्य प्रयास)–राखी प्रजापत 183
भारतीय राजनीति में दलीय व्यवस्था का विकास–डॉ० मो० जोहा सिद्दीकी 196
रामकृष्ण मिशन के सामाजिक एवं धार्मिक संदर्भ–डॉ० रिंकु कुमारी 201
जननायक कर्पूरी ठाकुर: एक परिचय–डॉ० सुनीत कुमार 207
औद्योगिक नगरीय संरचना एवं बिहार के जनजातीय समुदाय: एक अध्ययन–डॉ० प्रियंका कुमारी 211
भारतीय राजनीति में मतदान व्यवहार: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–अवधेश कुमार सिंह 215
बिहार प्रांत का निर्माण एवं नवीन सामाजिक-राजनीतिक शक्ति-संतुलन–डॉ० बिजेन्द्र कुमार सिंह 219
भारत और नेपाल का सम्बन्ध एवं मधेशी समस्या का अवलोकन–संध्या कुमारी 225
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और राष्ट्रवाद: एक अध्ययन–डॉ० पंकज कुमार राय; प्रीति रानी 228
भारत में सांप्रदायिक राजनीति बनाम सेकुलरवाद का विमर्श: एक अवलोकन–अमृता कुमारी 233
गरीब महिलाएँ: लघु आवश्यकता, लघु ऋण एवं कुटीर उद्योग–डॉ० मणि भूषण कुमार 236
आरक्षण नीति की उपलब्धियाँ और परिणाम–विकास कुमार 241
पंडित दीन दयाल का एकात्ममानवतावाद: एक दार्शनिक विवेचन–डॉ० शैलेन्द्र कुमार 245
बिहार में क्षेत्रीय विकास: (स्थानिक एवं कालिक विश्लेषण)–अल्पना कुमारी 248
भारतीय राजनीति में दबाव समूह की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–वीभेष आनंद 255

बिहार में प्रथम कांग्रेसी मंत्रिमंडल (1937-38) का ऐतिहासिक विश्लेषण—डॉ० अमित कुमार 258
राजा राममोहन राय के धार्मिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन—डॉ० अरुण कुमार पंडित 263
डॉ० राम मनोहर लोहिया के आर्थिक चिंतन का विवेचन—डॉ० रणधीर कुमार राणा 267
सोशल मीडिया, शिक्षा, रोजगार एंव राजनीति—वर्षा रानी 271
लोहिया स्वच्छ बिहार अभियान, कल्याणकारी योजना—डॉ० रिंकी कुमारी 275
भारतीय संविधान में स्वतंत्रता के अधिकार: वाद एवं विवाद—सुमित कुमार सिंह 280
ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जैव- विविधता एवं पशुधन क्षेत्र की भूमिका एवं रोजगार के अवसर—मुकेश कुमार 287
भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में दरभंगा के किसानों का योगदान—डॉ० पुष्पा कुमारी 291
राष्ट्रीय आंदोलन में बिहार के दरभंगा जिला में महात्मा गाँधी की यात्राएँ: एक अध्ययन—मो० जमील हसन अंसारी 295
दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल और बिहार—सुमित कुमार 301
भारतीय संस्कृत साहित्य में मानवाधिकार का इतिहास—डॉ० विकास कुमार 305
भारतीय राजनीति एवं कश्मीर मुद्दा: अनुच्छेद 370 के सन्दर्भ में—अमोद कुमार दास 309
बिहार में चम्पारण आन्दोलन: एक समीक्षात्मक अध्ययन—नीरज कुमार 316
भारतीय लोकतंत्र एवं दबाब समूह: एक समीक्षात्मक अध्ययन—डॉ० प्रमोद कुमार राम 321
संचार और सूचना प्रौद्योगिकी में कम्प्यूटर का आर्थिक सन्दर्भ—प्रोफेसर (डॉ.) संजय कुमार झा 326
गृह विज्ञान को लेकर लोगों के भ्रम की स्थिति—श्रीमती संगीतापुरी 330
नई कहानी: संवेदना और शिल्प—डॉ० विनय कुमार 334
ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध: संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे के लिए प्रयास—डॉ० दीपक कुमार 337
आधुनिक समय में अस्थानिक गर्भावस्था - बढ़ती समस्या: एक अध्ययन—अर्पणा सिन्हा 342
भारत में ई - कामर्स की वर्तमान स्थिति—स्वाति शर्मा; डॉ० एस. आर. ठाकुर 346
आधुनिक भारत में शिक्षा का विकास (1757-1964)—डॉ० रवि शंकर 350
प्राचीन भारत के शिल्पी एवं व्यावसायिक जीवन में पशुओं का महत्त्व—डॉ० केशव कुमार रंजन 353
लघुवित्त के माध्यम से निर्धनतम् तक पहुँच एवं प्रभाव—डॉ० श्वेता 358
परिवार कल्याण कार्यक्रम: पद्धति और मूल्यांकन—डॉ० शंकर पंडित 363
उत्तर बिहार में मखाना खेती की समस्याएं और संभावनाएँ—डॉ० राजेश कुमार सुमन 367
डॉ० राधाकृष्ण सहाय का नाट्य चिंतन और समाज—डॉ० चंदन कुमार 374
कविता विधामे वैधनाथ मिश्र' यात्रीक योगदान—प्रीति कुमारी 380
सार्क और भारत—शिप्रा भारती 383

भारत-रूस संबध: सामरिक संबंधो का 21वीं शताब्दी के संदर्भ में एक अध्ययन–डॉ० रणबीर गुलिया; अमित कुमार 388

छत्तीसगढ़ में लघुवनोपज संग्रहण एवम् सरगुजा जिले के वनोपज संग्राहक श्रमिकों का ऐतिहासिक विश्लेषण–डॉ० घनश्याम दुबे; अभिषेक अग्रवाल 393

गुप्तोत्तर काल के पश्चात् शूद्रों की स्थिति : एक अध्ययन–मुकेश कुमार पासवान 399

मुजफ्फरपुर जनपद की बस्ती के स्थानिक वितरण में स्त्री/पुरुष साक्षरता का विवेचनात्मक अध्ययन–सुनील कुमार 403

रोहतास जिला में पत्थर उद्योग का पर्यावरण पर प्रभाव: एक भौगोलिक अध्ययन–डॉ० शैलेन्द्र कुमार सिंह 407

प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक साधन–डॉ० रिंकु कुमारी 411

वैदिक कालीन महिलाओं की स्थिति एवं वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता–प्रज्ञा शिखा 417

महिलाओं के विरुद्ध अपराध एवं मानव अधिकार: एक समाजशास्त्रीय समीक्षा–डॉ० मोनी कुमारी 422

आधुनिक भारत एवं महिला राजनीति–डॉ० निखिल कुमार 427

वर्त्तमान समय में लोहिया दर्शन की प्रासंगिकता–डॉ० चन्दा कुमारी 429

आधुनिक युवाओं एवं बच्चों पर मीडिया का प्रभाव–ईश्वर प्रसाद यदु; तेजराम नायक; डॉ० राकेश कुमार डेविड 434

बिहार की महिलाओं का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान–डॉ० अर्चना कुमारी 439

परिवार के लिए उचित व पौष्टिक पोषण–डॉ० मंजू श्री 443

मध्यकालीन भारत के संदर्भ में जनसम्पर्क की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: एक अध्ययन–डॉ० उपेन्द्र कुमार 446

प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-शिक्षिकाओं के कृत्य संतोष एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन–योगेश कुमार पाल; डॉ० राजेश पालीवाल 454

जैनेन्द्र कुमार और भबेन्द्र नाथ शइकीया की बाल मनोविज्ञान की कहानियाँ: एक अवलोकन –डॉ० रीतामणि वैश्य; जयश्री काकति 460

नागार्जुन की कविता में जनपक्षधरता–डॉ० उमा देवी 467

भवभूति की नाटयकला तथा शैलीगत वैशिष्टय: एक अनुशीलन–प्रो. प्रसून दत्त सिंह 472

भारत में महिला सशक्तिकरण की स्थिति–डॉ० कुमारी पूजा 477

'यात्री'क चित्रामे प्रगतिवादी स्वर–गोपाल कुमार 482

राजभाषा के रूप में हिन्दी: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० प्रीति बैश्य 486

भारत में लैंगिक असमानता और कुपोषण–सुकन्या; डॉ० अंजु सिंह 491

आधुनिक लोकतंत्र में असहमति का महत्त्व–प्रतिमा सिंह 495

अरुण कमल की कविताओं में शिल्प-विधान–सत्यनारायण कुमार 499

डिजिटल कला का मनोवैज्ञानिक प्रभाव–डॉ० संगीता कुमारी 507

हिंदी साहित्य पर महात्मा गांधी का प्रभाव–डॉ० अनीता 513
राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019 का प्रारूप: समग्र विश्लेषण–अनुराग तिवारी 515
पेरिस शांति सम्मेलन का भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन पर प्रभाव–डॉ० सुरेन्द्र कुमार सिंह 522
भारत में आर्थिक नियोजन एवं संघवाद पर उसका प्रभाव–डॉ० अनामिका ब्रजवंशी 526
भारत में वामपंथी आंदोलन एवं उनसे संबंधित प्रमुख घटनाएं–डॉ० अनंता कुमारी 532
चंपारण सत्याग्रह: भारत छोड़ो आंदोलन की पूर्वपीठिका द्वारा–डॉ० अरुण कुमार निराला 536
बिहार में सामाजिक आंदोलन: पृष्ठभूमि एवं परिप्रेक्ष्य द्वारा–डॉ० बिजेन्द्र कुमार सिंह 540
आधुनिक भारतीय इतिहास के संभावित स्रोत के रूप में वैज्ञानिक उपादान: एक अवलोकन–दिलीप कुमार 544
आधुनिक भारत में जातिवाद की पृष्ठभूमि: एक अध्ययन–डॉ० प्रज्ञा कुमारी 547
प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं शैक्षिक प्रकल्प–डॉ० संतोष कुमार 552
भारत में वैज्ञानिक विकास की ऐतिहासिक परम्परा: एक अध्ययन–डॉ० वेदवती 556
दलित एवं पिछड़ी जाति के किशोरों की व्यक्तित्व आवश्यकताओं का अध्ययन–डॉ० धनवीर प्रसाद 561
बिहार के निर्माण में महेश नारायण का योगदान–डॉ० हरिशंकार राय 565
भारतीय संस्कृति पर भूमंडलीकरण का प्रभाव–डॉ० पूर्णिमा आर 569
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का युवाओं पर प्रभाव: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण–प्रीती मौर्या 573
आर्थिक विकास में शिक्षा का योगदान: अमरपुर प्रखण्ड (बांका जिला) के विशेष संदर्भ में–अनुज कुमार 578
बौद्ध धर्म में नारी की स्थिति–कल्याणी कुमारी 583
कालिदास कृत मेघदूतम् में मेघ-यात्रा–विपुल कुमार 588
इतिहास एक विज्ञान है अथवा कला–चंचला कुमारी 592
माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन–देवेन्द्र प्रताप सिंह 598
भारतीय समाज में मुस्लिम महिलाओ की शिक्षा–डॉ० बबीता कुमारी 604
आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता को प्रभावित करने वाले तत्वों का ऐतिहासिक विश्लेषण–मो० इंतखाब हसन 609
गाँधी जी का ग्राम-स्वराज: एक अध्ययन–डॉ० रंजीत पासवान 613
गुप्तकालीन सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन–डॉ० सरिता कुमारी 618
आधुनिक बिहार के जनजातीय विद्रोह की स्वतंत्रता संग्राम में भूमिका–श्याम मूर्ति भारती 624
बागवानी कृषि का विकास: बून्दी जिले का एक अध्ययन–डॉ० नंदकिशोर जेतवाल 629
माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० रतन कुमार भारद्वाज; प्रभुदयाल 634

सारण जिले में जनसंख्या वृद्धि एवं जनसंख्या वितरण का प्रतिरूप : एक भौगोलिक अध्ययन–डॉ० पिंकी कुमारी 639

चम्पारण क्षेत्र में अनुसूचित जाति/जनजाति का आर्थिक क्रियाकलाप : एक भौगोलिक विश्लेषण–अम्बरीष कुमार 650

भीष्म साहनी का व्यक्तित्व और उनका जीवन-दर्शन–डॉ० आमोद कुमार 656

क्रांतिकारी आंतकवादी आन्दोलन: एक सर्वेक्षण–अरविन्द कुमार सिंह 658

आचार्य नरेन्द्र देव का सामाजिक, आर्थिक एवं दार्शनिक चिंतन–डॉ० रवीन्द्र कुमार राय 663

भारत में नक्सवादी आन्दोलन: एक विश्लेषण–डॉ० कलानंद मंडल 667

ऑनलाइन स्टडी और आज का परिवेश–जनमेजय मिश्र; कृष्ण कुमार पाण्डेय 671

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का आध्यात्मिक बुद्धि पर प्रभाव का अध्ययन
–दीपक कुमार चौबे; डॉ० पार्वती यादव 676

मनोभाषाविज्ञान: अवधारणा एवं स्वरूप–डॉ० वंदना शर्मा; डॉ० गोविंद सिंह 680

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में वैवाहिक जीवन की अभिव्यक्ति–डॉ० उमेश कुमार शर्मा 683

भारत में राज्यपालों की भूमिका (1967 ई. के बाद)–डॉ० गुंजन कुमार 688

20वीं शताब्दी में बिहार के किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति: एक अध्ययन–मो० शाहनवाज आलम 692

स्वतंत्र भारत में महिला आंदोलन का स्वरूप: एक अध्ययन–मृदुला कुमारी 696

काशी नगरी का गौरव देववाणी संस्कृत की आधुनिक परिप्रेक्ष्य एवं उच्च शिक्षा में उपयोगिता–कृष्ण कुमार पाण्डेय 701

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की ई-शासन सेवाओं का अध्ययन–प्रदीप 705

समकालीन कविता में स्त्री-संवेदना का संदर्भ–जैनेन्द्र चौहान 716

धर्म एवं विज्ञान का समन्वय–डॉ० रुचि कुमारी 719

न्याय भाषा-दर्शन में वाक्यार्थ विचार–डॉ० नागेन्द्र तिवारी 723

भारतीय भाषा दर्शन में शब्दार्थ स्वरुप विचार–डॉ० विकास कुमार 727

समकालीन कथा साहित्य में दलित विमर्ष–डॉ० चंदन कुमार 731

सम्पूर्ण क्रांति की अवधारणा : एक अध्ययन–डॉ० अजय कुमार सिंह 733

योगवासिष्ठ में अद्वैतवाद–डॉ० अमृत कौशल 738

बिहार की कृषि का वित्तीय क्षेत्र के लिए चुनौतियाँ: वरीयता क्षेत्र और बैकिंग क्षेत्र का विशेष अध्ययन
–मृत्युंजय कुमार मिश्र 745

गाँधी के सर्वोदय की अवधारणा में नारी–डॉ० अविनाश कुमार 755

मध्यकालीन मिथिला का सामाजिक जीवन–चंदन कुमारी 761

दिल्ली सल्तनत की स्थापना: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० मो० इन्तेखाब आलम 766

इच्छामृत्यु वरदान या श्राप: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–सिकन्दर अन्सारी 770

नेपाली के गीतों में उनका व्यक्तित्व–डॉ० आर्य सिन्धु 774

1900 ई. से 1976 ई.के बीच उत्तर बिहार में उद्योगों की स्थिति–डॉ० मनोज कुमार 778

मनरेगा एवं ग्रामीण महिलाएं (उत्तराखण्ड के कुमाऊं मंडल के विशेष सन्दर्भ में)–डॉ० निधि राणा 782

नई शिक्षा नीति की आवश्यकताएं–अजीत कुमार सिंह 787

समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात का बदलता स्वरुप–नीरज कुमार; डॉ० डी०के० चौधरी 790

सती प्रथा: मुगलकालीन इतिहासकारों का दृष्टिकोण–अनुभा सिंह; डॉ० राजीव नयन 799

मानवेन्द्र नाथ राय के दर्शन में मानव प्रकृति की विवेचना–पूनम कुमारी 801

अलवर रियासत की महिलाओ की भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान–राहुल कुमार मीणा 804

कर्णाटकालीन मिथिला का समाज–डॉ० राकेश कुमार 808

गरीबी उन्मूलन के लिए कार्य-योजना: एक अध्ययन–राकेश कुमार 816

आधुनिक भारत की राजनीति में धर्म का महत्त्व–डॉ० राम विनोद कामत 820

मानवाधिकार और हमारा समाज–डॉ० राम जानकी राय 827

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संदर्भ में प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन करना–डॉ० लोकपति त्रिपाठी 830

किन्नरों की संस्कृति व् सामाजिक स्थिति का अध्ययन (बिलासपुर जिले के चांटीडीह के विशेष सन्दर्भ में) –पूनम तिवारी; डॉ० ऋचा यादव 838

भाषा शिक्षण के क्षेत्र में शिक्षक की अपेक्षाएँ–डॉ० राकेश कटारा; सुनिता जांगिड़ 851

कृषि के क्षेत्रीय विकास में आधुनिक तकनीकों का प्रयोग एवं वैज्ञानिकता–राम रतन मीना 857

नैषधीयचरितम् महाकाव्य में प्रयुक्त कुछ दुर्घट क्रियापदों का विवेचन–धारा 864

भारतीय पत्रकारिता में नैतिकता: एक मूल्यात्मक अध्ययन–डॉ० शशी भुषण कुमार 872

विद्यार्थी जीवन में नैतिक शिक्षा का महत्व–शालू तिवारी 877

न्याय-वैशेषिक के परमाणुवाद से अन्य परमाणुवादी सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० ओम प्रकाश प्रभाकर 880

राष्ट्रीय निर्माण में महिलाओं की भूमिका–सोनी त्रिपाठी 884

संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में मनरेगा की दशा एवं दिशा–डॉ० रेणु कुमारी 888

लघु वनोपज संग्रहण से आदिवासियों के आर्थिक विकास पर प्रभाव (कोरबा वन क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में) –प्रिंस कुमार मिश्रा; प्रो० प्रभाकर पाण्डेय 892

बौद्धकालीन समाज में स्त्री प्रश्न: एक नारीवादी अध्ययन–डॉ० अनामिका कुमारी 899

दृष्टिकोण

भ्रूण हत्या-एक समाजिक अभिशाप–अरूण कुमार 903

कृषि फ़सलों में विभिन्न पोषक तत्वों एवं रासायनिक उर्वरकों के प्रभाव–सत्यदेव 910

रतनपुर के प्राचीन धरोहर एवं धार्मिक अंचल का अध्ययन–डॉ० रामरतन साहू; अंजली 916

छत्तीसगढ़ के आदिवासियों के आर्थिक विकास पर मनरेगा योजना का प्रभाव-एक अध्ययन (दक्षिण बस्तर दंतेवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में)–धरम दास टण्डन; प्रो० प्रभाकर पाण्डेय 921

मीडिया की दुनिया और नागरिक पत्रकारिता–डॉ० मुकेश कुमार मिरोठा 926

हरविजय महाकाव्य में चित्रित सामाजिक मान्यताएँ : एक अध्ययन–डॉ० रेनू शुक्ला 930

शालेय वातावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन–राहुल कुमार तिवारी 944

राजस्थान में अनुसूचित जाति में सामाजिक गतिशीलता: जालोर जिले के मेघवाल समुदाय का अध्ययन –मोहनलाल गेहलोत 949

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के परिवारिक वातावरण का उनके नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन–शालू तिवारी 952

बौद्ध धर्म के इतिहास में "धर्म-चक्र प्रवर्तन"–डॉ० संजय कुमार 957

पर्यावरण एवं संपोषणीय विकास–लक्ष्मी कुमारी 963

अमेरिकी राष्ट्रपति और ब्रिटिश सम्राट तथा प्रधानमंत्री : एक तुलनात्मक अध्ययन–डॉ० प्रभाकर 967

हिन्दी साहित्य और सिनेमा–डॉ० संतोष कुमार 971

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में पुस्तकालय की भूमिका–डॉ० दिनेश कुमार 976

बिहार में राष्ट्रीय चेतना का विकास और सांप्रदायिक सद्भाव–डॉ० रूमा कुमारी 981

राजनीतिक लामबंदी का दौर एवं सामाजिक परिवर्तन : संदर्भ एवं मुद्दे–अशोक कुमार शर्मा 986

मौर्यकालीन साम्राज्य के सांस्कृतिक आयाम–डॉ० मनीष कुमार 991

नशे की लत: चिकित्सा और थेरेपी के लाभ–डॉ० मनोज कुमार सिंह 995

पर्यावरणीय मनोविज्ञान : पर्यावरण और मानव व्यवहार में अंतर्संबंध–डॉ० सैयद फरहत 999

भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता और धर्म–डॉ० राजेश कुमार पांडेय 1002

भारतीय राजनीति: आधुनिकता और परम्परा–प्रियरंजन 1007

संन्यासी विद्रोह–डॉ० विपेंद्र विक्रम 1012

विनोबा भावे की जीवनी व उपलब्धियां–डॉ० सुधीर कुमार सिंह 1014

बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन के जनक राजा नारायण सिंह–डॉ० सुनीता कुमारी 1017

आधुनिक मैथिली साहित्यमे हंसराजक अवदान–कुमकुम कुमारी 1020

ब्रिटिश राज में भारतीय समाचार पत्रों का विकास और भूमिका–कुमारी रीना 1023
साहित्य के प्रसार में अनुवाद की भूमिका–डॉ० स्वाती ठाकुर 1029
शोध-ललित कुमार सिंह नटवर : जीवनी और उनकी कविताओं में होली वर्णन–डॉ० कुमारी मीना सिंह 1032
शोध-ललित कुमार सिंह नटवर: व्यक्तित्व और कविताओं में व्यक्त विचार–डॉ० मनोज कुमार सिंह 1036
स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान मुजफ्फरपुर जिला में सुनीति देवी की गतिविधियां एवं उनका योगदान–डॉ० अंगुरी बेगम 1042
झारखण्ड में जनजातीय साक्षरता एक भौगोलिक अध्ययन–निरुपमा सुरभि लकड़ा 1049
राष्ट्रभाषा की अवधारणा एवं इस रूप में हिन्दी का प्रश्न : एक अध्ययन–डॉ० सुधीर कुमार 1056
हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृष्य–डॉ० कविता राजन 1060
दलित आंदोलन और उसकी चुनौतियाँ–चन्द्रमौली कुमार 1064
पंचायतीराज एवं 73वें संविधान संशोधन : बदलाव की क्रांति का आगाज–डॉ० विकास कुमार 1068
दूसरा सप्तक: एक सामान्य अध्ययन–ध्रुव कुमार शुक्ल 1072
इतिहास की अवधारणा, स्वरूप, विषय क्षेत्र, अध्ययन का महत्व–डॉ० मंजुली कुमारी 1080
भारत में जमींदारी प्रथा का इतिहास–बासुदेव शाह 1082
संस्कृत नाट्य परम्परा में ऐतिहासिक और राजनीतिक नाटक–डॉ० इंदु कुमारी 1086
दिनकर की संस्मरणधर्मी कविताओं का अध्ययन–डॉ० महेश कुमार 1090
महाकवि जयशंकर प्रसाद की कविताओं में प्रतीक योजना–डॉ० उपेन्द्र प्रसाद 1093
स्वतंत्रता काल मे बिहार के राजनितिक विकास में अनुग्रह नारायण सिंह की भूमिका–बिपिन कुमार सिंह 1097
भारत में जनवितरण प्रणाली में कार्यान्वयन तंत्र–मनीष कुमार 1099
भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की सफलता का प्रमुख आधार : एक राजनीतिक विश्लेशण –डॉ० रुपक कुमार 1102
आर्थिक विकास: एक आलोचनात्मक विश्लेषण–डॉ० राकेश कुमार 1105
वृद्धावस्था में जरुरी पोषक तत्व और आहार आयोजन–डॉ० प्रज्ञा कुमारी 1110
भवभूति के नाटकों में चित्रित नारी जीवन–डॉ० शोभा रानी सहाय 1115
बिहार में नगर पालिका-कर्मिकी पद्धति : रिविलगंज नगर पालिका का दृष्टातत्मक अध्ययन –डॉ० विद्या भूषण श्रीवास्तव 1118
महावीर चरित : एक काव्य शास्त्रीय समीक्षा–डॉ० अंजलि सहाय 1120
भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन पर समाजवादी विचारों का प्रभाव : "गाँधी, नेहरु, जे.पी., कृपलानी एवं लोहिया के विशेष सन्दर्भ में (1921-1947)–डॉ० अलका सहाय 1123

बिहार के रोहतास जिले का आर्थिक और भौगोलिक अध्ययन–डॉ० मुकेश कुमार 1127

कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व–डॉ० बिमलेश कुमार पाण्डेय 1130

इतिहास के अध्ययन में सहायक विज्ञान का उपयोग–डॉ० पंकज कुमार पांडेय 1133

नालंदा महाविहार से संबद्ध प्राचीन गाँवों की खोज–डॉ० रवि शंकर गुप्ता 1136

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा इतिहास–गिरीश कुमार राय 1143

मौर्यकालीन बिहार में कृषि और कृषि प्रबन्धन का विश्लेषणात्मक अध्ययन
–डॉ० नीता कुमारी; डॉ० रंजीत कुमार राय 1147

नक्सल आन्दोलन: कारण और समाधान–डॉ० गीतांजलि 1153

भारत में शिक्षा का इतिहास–डॉ० मनोज कुमार 1156

मुजफ्फरपुर जिला में महिलाओं की सामाजिक परिस्थिति एवं कामकाजी महिलाओं का उत्पीड़न
–डॉ० रीना कुमारी 1160

गुप्तकाल में नारियों की स्थिति: आर्थिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में–डॉ० रेखा चौधरी 1163

स्वामी विवेकानंद: जाति-पुरोहितवाद से लड़ने वाले क्रांतिकारी–डॉ० संतोष कुमार राय 1168

नादयोग–डॉ० कामेश्वर कुमार 1173

भारतीय संगीत का ऐतिहासिक स्वरूप–डॉ० चन्देश्वर प्रसाद कुशवाहा 1176

शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत में आंतरिक संबंध–डॉ० सुरेन्द्र कुमार राम 1178

संस्कृत साहित्य में तन्त्र साधना–तरूण कुमार 1181

हिंदी साहित्य में लोक जीवन का चित्रण–राकेश कुमार तिवारी 1185

औपनिवेशिक भारत में उभरते राज्य और औद्योगिकरण: एक अध्ययन–डॉ० कल्पना कुमारी 1187

आजादी बाद दलितोद्धार के लिए किये कार्यों का विश्लेषण–डॉ० शैलेन्द्र कुमार सिंह 1191

कोसी-क्षेत्र का बदलता यथार्थ और रेणु की कहानियाँ–डॉ० बेबी कुमारी 1197

भारतीय संघवाद का ऐतिहासिक विश्लेषण–डॉ० सुनील कुमार 1202

प्रेमचंद की गद्य विधाओं में दलित विमर्श–डॉ० अखिलेश कुमार सिंह 1210

बौद्ध-जैन धर्म में पर्यावरण चिंतन–डॉ० कुमारी स्मृति चन्द्र 1215

आरसी प्रसाद सिंह का काव्य सौंदर्य–विवेक चंद्र 1221

दलित समस्या पर गाँधी और अम्बेडकर के बीच मतभेद के बिन्दु–डॉ० नरेन्द्र राज 1225

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में हिन्दी रंगचेतना का विकास–डॉ० राजगीर साहु 1230

बेनीपुरी के नाटकों की अभिनेयता–डॉ० पूनम कुमारी 1234

भारत छोड़ो आंदोलन एवं बिहार की भूमिका: एक संक्षिप्त अध्ययन–डॉ० संजीव कुमार 1239

बच्चों के शैशवाकालीन सामान्य बीमारियां एवं उसके उपचार–डॉ० अस्मिता सिंह 1243

बिहार में किसान आंदोलन के चरण एवं उसका सांगठनिक प्रतिरूप: एक अध्ययन–रजनीश कुमार 1248

भारत में दक्षिणपंथी राजनीति का उद्‌भव की पृष्ठभूमि एवं प्रभाव: एक अध्ययन–राकेश कुमार रंजन 1252

समकालीन कहानीकारों में भीष्म साहनी–सुशील कुमार मंडल 1257

उदय प्रकाश की कहानियों में नगरीय जीवन–सरस्वती पाण्डेय 1260

विद्यापति-पदावली में चित्रात्मकता–डॉ० शोभा कुमारी 1264

मैत्रेयी के उपन्यासों में सामाजिक चेतना–डॉ० कुमारी निश्चय 1268

बिहार की राजनीती में पिछड़ा वर्ग–मिन्टु कुमारी 1272

भारत की विदेश नीति और सैन्य संघर्ष–डॉ० सुनील कुमार 1275

पश्चात्य संदर्भ में समाजवाद एवं साम्यवाद की व्याख्या–अंकिता कुमारी 1278

भारत में मानवाधिकार के संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन–दीपक कुमार दास 1282

किसान क्रेडिट कार्ड की कृषि विकास में भूमिका: कमालपुर (गया) के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन–डॉ० मनोज कुमार निराला 1287

ग्रामीण उद्योग: ग्रामीण विकास की एक आवश्यकता–डॉ० कृष्ण कुमार सिंह 1294

जीवन और लेखन : राजेन्द्र यादव–भोला प्रसाद यादव 1298

उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) का तुलनात्मक अध्ययन–अजय सिंह यादव; डॉ० आशाराम 1304

कौटिल्यकालीन न्याय प्रणाली: एक अध्ययन–शिव कुमार सिंह 1311

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास : "आपका बंटी" (एक संक्षिप्त विवेचन)–डॉ० मनीषा मिश्रा 1316

भारत की स्वतंत्रता संग्राम में चंपारण सत्याग्रह का महत्व–उषा कुमारी 1318

उत्तरवैदिक काल (1000-600 ई० पू०) की भौगौलिक व राजनीतिक व्यवस्था–नूतन कुमारी 1320

प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी : वर्तमान में भी प्रासंगिक–डॉ० कंचन गुप्ता 1326

बिहार में कृषि सांख्यिकी की उभरती प्रवृतियाँ: बिहार के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन–अमिता चन्दन 1329

नूर मोहम्मद के काव्य पर भारतीय सूफी चिंतन का प्रभाव–डॉ० प्रदीप कुमार सिंह 1334

खादी विकास और ग्रामोद्योग आयोग : ग्रामीण विकास में साझीदार–डॉ० नवीन कुमार 1339

दत्तवती महाकाव्यमे प्रकृति-चित्रण–दीपक कुमार पटेल 1343

जनसंख्या वृद्धि और मानव संसाधन विकास–अर्चना शंकर 1347

गंगा के मैदानों में जनसँख्या के कारकों की आर्थिक संरचना : एक अध्ययन–वंदना शंकर 1349

दृष्टिकोण

हिंदी नवजागरण के आर्थिक सवाल–अशोक कुमार यादव 1351
बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ: समीक्षात्मक अध्ययन–कुमारी रीमा 1355
जग लाल चौधरी : एक संक्षिप्त परिचय–डॉ० नमिता कुमारी 1358
बौद्ध धर्म और प्राचीन भारतीय महिलाएं–डॉ० उमा पिथौरा 1360
राष्ट्रवाद और सामान्य जातीय या रक्त संबंध: एक विवेचन–डॉ० कुमार रंजीत 1363
श्रमिक आंदोलन के विभिन्न आयाम–डॉ० सत्येन्द्र कुमार श्रीवास्तव 1368
सातवाहनों का काल एवं प्रायद्वीप में राज्य निर्माण–श्रीमती अंजू कुमारी 1373
भारत में क्षेत्रवाद की राजनीति: एक मूल्यांकन–डॉ० सीता कुमारी 1377
समायोजन–सोनल कुमारी 1384
पर्यावरण को बचाने की कवायद–नरेन्द्र कुमार शर्मा 1389
जैन दर्शन–डॉ० सुमित्रा कुमारी 1394
भारत में किसान आन्दोलन का इतिहास–बिन्नी कुमारी 1398
भगवद्गीता में निहित दर्शन–डॉ० प्रमोद कुमार सिंह 1402
दलीय व्यवस्था के सिद्धांत–चंद्र विजय प्रकाश यादव 1406
अधीतकालीन अर्थ संयोजन (ई.पू. 600–ई.पू. 200 तक)–संतोष कुमार शर्मा 1411
फ्रायड और टैगोर की कामदृष्टि: एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण–डॉ० रूमा कुमारी सिन्हा 1419
मुगल साम्राज्य का पतन और मुहम्मदशाह–डॉ० मनोज सिंह यादव 1423
ऋणग्रस्तता की समस्या का आदिवासी जीवन पर प्रभाव और हिन्दी उपन्यास–डॉ० उमेश कुमार पाण्डेय 1429
द्वितीय नगरीकरण के व्यवहारिक पक्ष (6ठीं शताब्दी ई0पू0)–कुलभूषण श्रीवास्तव 1435
व्यवसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन–प्रज्ञा सिंह 1439
कथाकार अमरकांत के उपन्यासों में मध्यवर्ग का जीवन संघर्ष–संतोष कुमार 1443
भारत में महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा–सुबोध कुमार 1447
भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने में दंड की भूमिका–त्रिकालज्ञ तिवारी 1451
मूल्यांकन-गुणवत्ता उन्नयन का सबल साधन–डॉ० अनिल कुमार पाण्डेय 1454
भारतीय इतिहास में नन्द राजवंश: एक व्यावहारिक पक्ष–विजय कुमार; विजय कुमार 1458
सत्याग्रह: एक अध्ययन–दीक्षा 1461
संस्कृत रूपकों में प्रहसन की विवेचना (प्रासंगिकता)–डॉ० श्रीमती अर्चना 1465
ग्रामीण समाज में जातियों के सामाजिक सांस्कृतिक सम्बन्धों का समाजशास्त्रीय अध्ययन
–प्रियंका दीक्षित; डॉ. राकेश प्रताप सिंह 1468
प्राचीन भारतीय मुद्रा परम्परा में स्कन्द-कार्त्तिकेय–डॉ० अर्चना मिश्रा 1473

प्रशासकीय संगठन एवं कार्य संस्कृति–डॉ० दीपशिखा चतुर्वेदी 1478

सतत व्यापक मूल्यांकन पर एक झलक–शेर सिंह; डॉ० संजय कुमार 1481

बाल मुकुन्द गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय-भावना–डॉ० आर०पी० वर्मा 1486

भारतीय इतिहास में सबाल्टर्नवादी विचारधारा–डॉ० आशा रानी 1491

छत्तीस वर्ष और स्वयं प्रकाश: एक विवेचन–डॉ० रश्मि कुमारी 1498

हिन्दी उपन्यासों में भूमंडलीकरण का युवाओं पर प्रभाव एवं परिणाम–सरिता भारती 1504

मध्यकालीन उर्दू-साहित्य–डॉ० रियाजुल हसन 1508

प्रयोजनमूलक हिन्दी : अवधारणा एवं वर्गीकरण–डॉ० सुधा 1511

सूफी मत का निर्गुणियाँ संतों पर प्रभाव–डॉ० विश्वनाथ द्विवेदी 1515

भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद: एक विश्लेषण–डॉ० अरविन्द कुमार वर्मा 1519

भारतीय संविधान सभा: समीक्षात्मक अध्ययन–चन्द्रभान 1524

बालिका कुपोषण: परिवार कुपोषण का काल चक्र–डॉ० दीप्ति खरे 1532

डॉ० रामकुमार वर्मा के काव्य में भारतीय संस्कृति एवं भारतीयता–डॉ० प्रभुसेन 1537

रामायण में ऋतुचर्या वर्णन–डॉ० प्रेरणा माथुर 1542

कबीर की वाणी में राष्ट्रीय-सामाजिक भावैक्य का दिग्दर्शन–डॉ० मनोज कुमार पाण्डेय 1550

महजर की घोषणा एवं महत्व–डॉ. सुशील कुमार सिंह; शक्ति सिंह 1554

प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर छात्राओं के ड्रॉपआउट में परिवार की भूमिका–रश्मि सिंह 1558

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के उपन्यास 'नदी के द्वीप' में नारी पात्र 'रेखा' का चरित्र चित्रण –डॉ० नीलम तिवारी 1566

भारत में लैंगिक भेदभाव एवं महिला उत्पीड़न–डॉ० अंजू सिंह 1569

कृषि आय: आयकर अधिनियम-1961 के संदर्भ में–जितेन्द्र कुमार 1572

प्रगतिवादी कविता में नये बिम्ब–डॉ० (श्रीमती) प्रभा सिंह 1577

नेहरूवादी आर्थिक विचाराधारा और वर्तमान भारत–डॉ० किरन सिंह 1584

अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों का शिल्प सौन्दर्य–अनुपम यादव 1588

मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में यथार्थ बोध और स्त्री की स्थिति–डॉ० नम्रता जैन 1593

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन एवं वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता –रत्नेश कुमार जैन 1598

ग्रामीण विकास में कृषि की भूमिका एवं चुनौतियाँ–डॉ० रमाकान्त ठाकुर–डॉ० वीरेन्द्र सिंह 1604

कानपुर में चर्म उद्योग का विकास–डॉ० प्रीती त्रिवेदी 1609

भारत में संस्कृतिकरण व ग्रामीण परिवर्तन: एक दृष्टि–डॉ० राजेश कुमार 1613

रमेश रंजक के गीतो का कलापक्ष–डॉ० राम सेवक 1617

दूधनाथ सिंह कृत 'निष्कासन' उपन्यास में दलित स्त्री चेतना–डॉ० निकेता; दीक्षित कुमार 1620
उत्तर-आधुनिकता: साहित्य, समाज और संस्कृति–डॉ० विश्वम्भर पाण्डेय; निर्भय कुमार सिंह 1624
भक्तिकालीन कवियों के जीवन से सम्बन्धित जीवनीपरक उपन्यास: एक परिचय–रीनू यादव 1629
भूमंडलीकरण के युग में राष्ट्र-राज्य का बदलता स्वरूप एवं सामाजिक न्याय: भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० तेलानी मीना होरो 1635
समकालीन कला में गणेश अंकन–डॉ० मंजू सिंह 1640
भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि एवं अपरिहार्यता: एक अवलोकन–रश्मि; डॉ० ईशा शर्मा 1642
महिला सशक्तिकरण में उद्यमिता की भूमिका–डॉ० विजय ग्रेवाल; नीलम कुशवाह 1648
पर्यावरण प्रदूषण एवं रोग निवारण में यज्ञ की महत्वपूर्ण भूमिका–सुभाष चन्द्र; नीलम 1653
कबीरदास का मानवतावाद–डॉ० वाचस्पति यादव 1658
सर्वोदय का गाँधीवादी एवम मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य–डॉ० विन्नी जैन 1661
शासन के तीन अंग–विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका के बीच शक्ति संतुलन का एक अध्ययन : भारतीय संविधान के संदर्भ में–डॉ० गालिब ईमाम 1666
अर्थशास्त्री के रूप में डॉ० अंबेडकर–स्वदेश सिंह 1670
सामुदायिक रेडियो की विधाओं का अंतर्वस्तु विश्लेषण (विशेष अध्ययन कुमाऊँ वाणी सामुदायिक रेडियो) –हर्षवर्धन पाण्डे 1675
महाकवि भवभूति के साहित्य में दार्शनिक चिन्तन की पृष्ठभूमि–डॉ० शालिनी अग्रवाल 1682
ग्रामीण भारत में कौशल विकास के द्वारा रोजगार में वृद्धि की सम्भावना: एक दृष्टि–डॉ० दीपा अग्रवाल 1687
हिंदी भाषा में बाल साहित्य और लेखन: महत्व, परंपरा और आधुनिक संदर्भ–क्रमांक शुक्ला 1691
भारतीय संघ में देशी रियासतों के विलय में सरदार पटेल का योगदान–डॉ० हर्षेन्द्र प्रताप सिंह 1694
माओ त्से-तुंग और चे ग्वेरा के स्त्रातेजिक विचारों का समालोचनात्मक अध्ययन–डॉ० राहुल कुमार 1700
दिनकर के काव्य में युग-चेतना–डॉ० जरीना सईद 1710
स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का अध्ययन–जितेश कुमार शर्मा; डॉ० कविता गुप्ता 1715
''उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम पर प्रभाव व अध्ययन'' –डॉ० पार्वती यादव; सीमा कुमारी 1723
पाणिनीय धातुपाठ में धातुओं की समानार्थकता–डॉ० योगेन्द्र कुमार धामा 1728
कम या अनियमित नींद से टाइप -2 मधुमेह का खतरा–वन्दना सिंह यादव 1732
पंचायती राज में महिला सहभागिता: राजनीतिक सक्रियता का अनुभवमूलक अध्ययन–डॉ० बालूदान बारहठ 1735
अनिल प्रभा कुमार कृत 'मैं रमा नहीं' में चित्रित नारी–प्रो० प्रदीप श्रीधर 1738
अलवर जिले में शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धता व स्वरूप का भौगोलिक अध्ययन–नीतू चौधरी; डॉ० वेद प्रकाश यादव 1741
प्रेमचन्द की पत्रकारिता के आधारस्तंभ–सरिता 1750
अमृता प्रीतम और पिंजर में पीड़ा–डॉ० संगीता 1753
प्राचीन भारतीय कराधान व्यवस्था: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० आलोक कुमार 1758

वेदों में दार्शनिक तत्व–डॉ० सुगन्धा जैन 1762

महात्मा गांधी की वर्तमान प्रासंगिकता–डॉ० वीरेंद्र सिंह वर्मा 1770

भारत में उच्च शिक्षा की दिशा एवं दशा–सुनील कुमार 1773

वर्तमान में महात्मा गांधी के अहिंसा सिद्धांत की प्रासंगिकता–दीपिका शर्मा 1776

भारतीय समाज से समाप्त होते संयुक्त परिवार (वैशाली जिला के हाजीपुर के संदर्भ में)–ताहिरा परवीन 1781

महिला स्वास्थ्य में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की भूमिका–डॉ० मोनिका यादव 1786

भारत संचार निगम लिमिटेड में नौकरी की सन्तुष्टि के स्तर की विवेचना–नीलम यादव 1790

बाढ़ और सूखा: स्थायी रोकथाम और प्रबंधन–प्रीति अग्रवाल 1796

योग शिक्षा का वैश्विक स्तर पर प्रभाव–अर्चना सिंह; डॉ० सुनीता गुप्ता 1801

उत्तर प्रदेश में दलित चेतना: दशा एवं दिशा–डॉ० कीर्ति पटेल 1807

प्राचीन भारतीय समाज में गुरूकुल का महत्व–डॉ० सविता नागर 1810

प्राथमिक ग्रामीण महिला कार्यकर्ता एवं उनका ग्रामीण अर्थव्यवस्था विकास में योगदान: सहारनपुर जनपद पर एक अध्ययन–रंजीता देवी; डॉ. वीरेन्द्र सिंह 1814

भारत में जाति व्यवस्था: सामाजिक आँकलन–डॉ० चन्द्रकांता के माथुर 1819

अरविन्द घोष का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद–डॉ० अजित 1826

मिजौ जन-जीवन: स्वरुप और परम्परा–कामना सिंह 1830

आश्रम पद्धति विद्यालय, राजकीय विद्यालय और अनुदानित विद्यालयों के छात्राओं में आत्म प्रत्यय: एक तुलनात्मक अध्ययन–अभिलाषा त्रिपाठी 1837

भरतमुनि का रससूत्र और उसके व्याख्याता–डॉ० कविता वर्मा 1841

सामाजिक-धार्मिक और पर शेख मुहम्मद अब्दुह के विचार तथा राजनीतिक सुधार–अमजद हुसैन 1845

ई-प्रशासन: प्रशासन का तकनीकी रूपान्तरण–डॉ० शीतल मीना 1850

भारत के साझा बाजार में वस्तु एवम् सेवा कर: अर्थ, उपादेयता एवं चुनौतियां–शिव शर्मा 1856

नागौद रियासत का विन्ध्य प्रदेश में विलय एवं विन्ध्य के विकास में नागौद राज्य का योगदान–पंकज कुमार गुप्ता 1863

मनोहर श्याम जोशी जी के उपन्यासों में आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकता: एक दृष्टि–उमेश कुमार यादव 1866

कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में अर्थ व्यवस्था–डॉ० गौरव कुमार 1870

शैक्षणिक संस्थाओं का विद्रूप चेहरा: हिन्दी दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में–तनुजा गोस्वामी 1877

प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी-जीवन की समस्याएँ–प्रीति सिंह 1882

दक्षेस एवं भारत–संजय सिंह 1886

महिलाओं की संरचनात्मक प्रस्थिति एवं भूमिका का समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ० अमृता श्रीवास्तव 1892

जैन धर्म का विकास एवं प्रमुख राजवंशों का योगदान: एक दृष्टि–राजू यादव 1897

हिन्दी के आदिवासी उपन्यासों में स्त्री-शोषण की चित्रित समस्याएँ: एक दृष्टि–डॉ० समर जीत सुमन 1903

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की राजनीति का अध्ययन–अनिल कुमार; डॉ० पॉचू राम मीना 1907

हिन्दी गद्य साहित्य में जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति–डॉ० सुधा रानी 1915

भारत की अर्थव्यवस्था में खाद्यान्न उत्पादकता में वृद्धि की वर्तमान परिस्थितियाँ, (उ0प्र0 राज्य के विशेष संदर्भ में) –उज्ज्वल चतुर्वेदी; डॉ० मंजू अवस्थी 1918

हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि: जायसी का वियोग वर्णन–डॉ० वेदवती सिंह 1923

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक व आर्थिक परिवेश के सन्दर्भ में व्यक्तित्व का अध्ययन–डॉ० शिखा सक्सेना 1928

एड्स ग्रस्त व्यक्तियों की मनोदशा का अन्वेषणात्मक अध्ययन- पश्चिमी उत्तरप्रदेश के विशेष संदर्भ में –डॉ० रागिनी कुमारी 1932

आतंकवाद एक विश्वव्यापी चुनौती–सुबोध मणि त्रिपाठी 1937

स्वामी विवेकानंद के जीवन दर्शन की समसामयिक प्रासंगिकता–डॉ० गुलाब बाई मीना 1942

लोक लुभावनवाद राजनीति के दौर में भारतीय प्रशासन के समक्ष चुनौतियां–डॉ० ज्ञानचंद भारती 1946

भारत में न्यायिक सक्रियतावाद की प्रासंगिकता–महेन्द्र प्रताप बॉयला 1952

भारत में मानवाधिकार: स्वरुप एवं इन्हें प्रभावी बनाने हेतु सुझाव–नन्दराम खटीक 1956

भारत का श्रीलंका से संबंधों का पुनर्नवीनीकरण: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–राजेश गुप्ता 1961

जनसंचार माध्यम: एक परिचय–प्रो० डॉ० सविता तायडे 1967

ध्वनियांकन तकनीक का परिवर्तित स्वरुप व संगीत में उसकी उपयोगिता–डॉ० मुकेश 1970

रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं उनके शैक्षिक विचार: एक अध्ययन–डॉ० दुर्गेश पाल 1974

महात्मा गाँधी की बुनियादी शिक्षा एवं उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता–डॉ० राजेश कुमार सिंह 1978

'कोपल-कथा': स्त्री-मुक्ति की अभिव्यक्ति–कोमल कुमारी 1983

प्राचीन भारत में बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र–परीक्षित लायेक 1987

ग्रामीण महिलाओं का स्तर, सहभागिता तथा भेदभाव - हरियाणा के संदर्भ में एक अध्ययन–डॉ० जोगेन्द्र सिंह खोखर 1992

प्राकृत भाषा और परवर्ती अपभ्रंश: एक समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० दुधनाथ चौधरी 2000

जैनधर्म सम्मत सिद्धान्तों की वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता–डॉ० सन्तोष देवी 2005

स्वामी विवेकानन्द का सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन–यतीन्द्र कुमार यादव; डॉ० अनिल कुमार सोनकर 2009

लड़कियों की शिक्षा और सशक्तिकरण–सुहास डफल 2014

द्वीपों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव–डॉ० रत्न प्रकाश द्विवेदी 2019

सतत विकास की अवधारणा: पर्यावरण के संदर्भ में–डॉ० सन्तोष कुमार गुप्ता 2022

महादेवी वर्मा की साहित्यिक यात्रा–डॉ० शालिनी 2026

दलित उत्थान: ज्योतिबा फुले और डॉ० भीमराव अम्बेडकर–निखिल कुमार 2030

युवा पीढ़ी के सर्वांगीण विकास में योग की भूमिका–डॉ0 विजय लक्ष्मी मिश्रा 2034

ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में महिला स्वास्थ्य: दशा और दिशा–डॉ० एकता श्रीवास्तव 2038

वैश्वीकरण का भारतीय उद्योगो पर पड़ने वाले प्रभावों का एक अध्ययन–डॉ० रवि सनवाल 2043

भारत में महिला सशक्तिकरण- एक अध्ययन–अमरनाथ वर्मा 2048

कॉलेज के विद्यार्थियों की बुद्धि पर उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति का प्रभाव: एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन –डॉ० चंचला कुमारी 2052

21वीं शताब्दी में पर्यावरण अध्ययन की आवश्यकता–डॉ० राजीव कुमार 2056

नागा आदिवासी एवं उनकी समस्याएं–डॉ० सुखबीर सिंह 2064

जन्म-कुण्डली में मारक भावों का ज्योतिषीय विवेचन–डॉ० सुधीर कुमार शर्मा; उर्मिला मीणा 2067

भारत की चुनाव प्रक्रिया: एक सुधारात्मक राजनीतिक विश्लेषण–डॉ० मुखलाल राय 2072

बस्तर रियासत के लोकनायक - लाल कालेन्द्र सिंह–डॉ० सीमा पाल 2078

मैथिली मे साहित्यानुसन्धान ओ आलोचना–डॉ० सुरेश पासवान 2083

तांत्रिक विद्या का प्राचीन विश्वविद्यालय विक्रमशिला–डॉ० लाल बहादुर स्वर्णकार 2086

आधुनिक बिहार का सृजन: एक ऐतिहासिक विश्लेषण–अभिमन्यु कुमार 2089

प्राचीन भारतीय इतिहास में शूद्रों की स्थिति एवं शिक्षा संबंधी अधिकार: एक ऐतिहासिक अध्ययन–राज कुमार 2094

"आलोचना की आलोचना"–डॉ० ललित कुमार 2098

गुप्तकाल की राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का मूल्यांकन–विवेक कुमार यादव 2102

प्राचीनकाल में प्रमुख महाजनपदो की शासन व्यवस्था का अध्ययन–संदीप कुमार 2107

जीवनीपरक उपन्यासो की विकास यात्रा–डॉ० दीपाली चिंचोलकर 2111

भारत- नेपाल संबंधों के बदलते प्रतिमान: समस्याएं और संभावनाएं–सिम्पी कुमारी गुप्ता 2116

अलीगढ़ जनपद में भूमि उपयोग का परिपवर्तनशील अध्ययन, 2000-2001 से 2015-16 –डॉ० नवनीत शर्मा; डॉ० रामदास सिंह 2121

कुर्किहार की काँस्य बौद्ध कला–नीता लखैया 2129

प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा तथा इसके उद्देश्य एवं आदर्श–कविता लखैयार 2132

प्रयोजनमूलक हिन्दी का स्वरूप–डॉ० पुष्पा कुमारी 2135

हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यास और उनकी विषय वस्तु: एक विमर्श–डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय 2140

भारत के पुस्तकालयों मे उपयोग होने वाले प्रमुख डिजिटल लाइब्रेरी कंसोर्टियम–डॉ० कन्हैया लाल शर्मा 2145

'भारतरत्न' डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की राष्ट्रपति के रूप में कार्यशैली–डॉ० किरण मदान 2150

महिला कहानीकारों की कहानियों में व्याप्त सामाजिक संदर्भ: एक दृष्टि–प्रो० (डॉ०) शिव शंकर मण्डल 2154

समाजशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास–डॉ० शशि गुप्ता 2158

स्वराज आश्रम बारडोली–चौधरी विपुलभाई सगरामभाई 2161

महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता का अध्ययन–माया सोनकर 2163

राजस्थान में पर्यटन विकास का भौगोलिक अध्ययन–डॉ० अशोक कुमार खटीक 2167

प्रेमचंद युगीन सामाजिक परिस्थितियाँ–डॉ० सुमित्रा कुमारी 2175

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं डॉ० भीमराव अम्बेडकर–डॉ० प्रभात कुमार; डॉ० अरविन्द कुमार 2178

उत्तर भारत में मराठी साम्राज्य का विस्तार और प्रभुत्व (१७६१-७२)—मोतीभाई हरिभाई वलागांठ 2182
'मध्यवर्ग का उद्भव और विकास'—डॉ० अनूप श्री विजयिनी 2185
कबीर के साहित्य का समाज पर प्रभाव—मुन्नी देवी 2190
इक्कीसवीं सदी की कविता: बदलते जीवन मूल्य—डॉ० विश्वप्रभा 2194
नागार्जुन के गद्य साहित्य में सामाजिक जनतांत्रिक पृष्ठभूमि: एक वैचारिक परिप्रेक्ष्य—डॉ० हेमन्त पाल घृतलहरे 2198
स्नातक स्तर पर अध्ययनरत कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की जीविका वरीयता का अध्ययन
—सचिन मौर्य; डॉ० बृजेश कुमार मिश्रा 2202
शैक्षणिक संस्थानों की अधुनातन प्रकृति में भूमण्डलीकरण की भूमिका का सारांशिक अनुशीलन—जितेन्द्र कुमार गिरि 2211
उत्तर प्रदेश में किसानों के वित्तीय सुधार में 'किसान क्रेडिट कार्ड' के योगदान का मूल्यांकन
—प्रमोद कुमार; डॉ० संजीव गुप्ता 2215
कार्य जीवन संतुलन: लखनऊ के बैंकों में कार्यरत् महिलाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन—सची निगम 2219
वाल्मीकि रामायण में धर्मशास्त्र—डॉ० बिपन शर्मा 2228
गुरु जंभेश्वर जी महाराज के आध्यात्मिक संवाद एवं अभिव्यक्ति शैली—डॉ० मनबीर 2235
पश्चिमी विश्व में महिला आंदोलन—डॉ० कमला; सुनिल कुमार 2242
हिन्दी सिनेमा और लोकगीत—डॉ० सीमा राठौर 2246
मानवीय मूल्यों का विकास एवं शिक्षा—डॉ० दयाशंकर तिवारी 2249
नरेंद्र कोहली की दृष्टि में स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्व—अभिशेक कुमार सिन्हा; प्रो० विजय कुमार 2252
मनुस्मृति में वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं, कर्म से मान्य है—डॉ० अजित कुमार 2256
अध्यात्म द्वारा मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना—डॉ० आकाँक्षा दुबे 2261
परमाणु ऊर्जा संयन्त्र दुर्घटना से निकटवर्ती स्थानीय निवासियों को विकिरण जनित स्वास्थ्य समस्याएं
—डॉ० शिखा श्रीवास्तव; शिखर कान्त श्रीवास्तव 2266
भारतीय संस्कृति में न्याय दर्शन—अशोक कुमार 2273
सांस्कृतिक एकीकरण में पाञ्चरात्र संप्रदाय की भूमिका—नवीन 2277
पंचगव्य का औषधीय विवेचन एवं उपादेयता—डॉ० लता शर्मा 2283
कृष्णा सोबती का लेखन: चारित्रिक अमरता का प्रतीक—डॉ० रामाशंकर कुशवाहा 2286
सार्वजनिक परिवहन प्रणाली: दशा एवं दिशा—विनय कुमार सिंह पटेल 2291
प्राचीन भारत में राजस्व व्यवस्था (600 ई०पू० से 300 ई० तक)—सुमन 2294
आधुनिकता और हिंदी उपन्यास—डॉ० नीतू रानी 2298
काठमे समाजिक मूल्यक चित्रण—गौतम कुमार; डॉ० नरेन्द्रनाथ झा 2303
एकैसम सदीक महाकाव्य: शकुन्तला—रमण जी 2306
18 वीं शताब्दी: भारत का अंधकार का युग या आर्थिक समृद्धि का काल—रवि लाल सिंह यादव 2310
अलवर जिले का अपवाह तंत्र-एक भौगोलिक अध्ययन—मनोज कुमार शर्मा; हिमांशी शर्मा 2313
'अनुच्छेद 370 का समापन भारत के लिए कितना औचित्यपूर्ण: एक समीक्षा'—डॉ० देवेन्द्र कुमार गोयल 2316

कबीर एवम् समन्वयवाद–डॉ० वंदना त्रिपाठी 2320

वैशेषिक दर्शन में वर्णित गुण पदार्थ का परिशीलन–मुकेश कुमार; वितेश कुमार 2326

हिंदी उपन्यासों में चित्रित कश्मीर का इतिहास, वर्तमान और भविष्य–कृष्णा अनुराग; प्रो. राजेंद्र साह 2332

मोहन राकेश के उपन्यासों में आधुनिक नर-नारी सम्बन्ध–डॉ० सुषमा 2336

ब्रिटिश शिक्षा का भारतीय समाज पर प्रभाव का अध्ययन–प्रीति सुमन 2340

राजनीति में महिलाओं की सक्रियता: एक समीक्षात्मक अध्ययन–राजेश कुमार 2344

भारतीय सभ्यता पर इस्लाम का प्रभाव: एक ऐतिहासिक अवलोकन–प्रेमजीत कुमार सिंह 2348

विशिष्टाद्वैतवाद में मोक्ष की अवधारणा–अतुल खजूरिया 2354

भू-अर्थशास्त्र, प्रवासन तथा पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (WANA) में प्रवासी भारतीयों की भागीदारी –अखिलेश कुमार सिंह; रत्नेश कुमार यादव; धर्मेंद्र कुमार 2359

मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता: छात्र विशेषताओं, डिजाइन विशेषताओं और परिणामों के बीच संबंध–नीरज कुमार 2364

भारत में न्यायिक सक्रियता: एक विवेचन–रेणु बाला गुप्ता 2373

पर्यावरण प्रदूषण एवं नैतिकता का भौगोलिक अध्ययन–डॉ० आदित्य कुमार 2377

कालिदास की रचना मेघदूतम् में प्रेम-वर्णन एक अध्ययन–डॉ० उपेन्द्र पंडित 2380

राहुल सांस्कृत्यायन की भाषा शैली: एक विवेचन–डॉ० आरती प्रसाद 2384

ब्रिटिश भारत में रियासतें: एक अध्ययन–प्रो० (डॉ०) मीरा कुमारी 2387

मानवाधिकार एवं वृद्ध जनों का भरण पोषण–कमल किशोर 2392

रामकृष्ण मिशन की सेवाएं: एक विश्लेषण–गीता कुमारी 2397

बिहार की राजनीति संस्कृति पर धर्म एवं जाति की भूमिका–बिजेन्द्र कुमार 2401

'विदित'क उपन्यास-'विधिकरी'–गुड़िया कुमारी 2406

समाज परिवर्तन में ग्रंथालयों की भूमिका का एक समीक्षापूर्ण अध्ययन–ओमप्रकाश राठौर; डॉ० आर० जी० यादव 2409

भारतीय इतिहास पर ब्रिटिश प्रभाव (1700-1900): एक विश्लेषण–डॉ० मनोज कुमार शुक्ला 2414

संस्कृत के छात्रों के बीच ई-संसाधनों का उपयोग और जागरूकता: एक अध्ययन–डॉ० कादम्बरी शर्मा 2421

आधुनिक शिक्षा के विकास में गाँधीजी के विचारों की प्रासंगिकता–रमेश कुमार गुप्ता 2429

छत्तीसगढ़ से श्रमिकों का पलायन: समस्यायें एवं निदान–डॉ० आभा तिवारी 2433

सनातन संस्कृति और धर्म के संरक्षक: वाल्मीकि के राम–डॉ० आशा सिंह रावत 2437

'श्रीविवेकानन्दविजयम्' में देशप्रेम और राष्ट्रभक्ति की भावना–डॉ० बाबूलाल मीना 2441

भाषायी साहित्य बाजार में राहुल सांस्कृत्यायन की भाषा शैली: एक विमर्श–डॉ० देवेंद्र शुक्ल 2445

गांधीजी का 'ग्राम स्वराज' और उसकी वर्तमान प्रासंगिकता: एक विमर्श–ईश्वरी बृजवासी सूर्यवंशी 2449

उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले के रेनुकूट वन प्रभाग में पाए जाने वाले पेड़ों का जातीय औषधीय अध्ययन–डॉ० सर्वजीत सिंह 2455

अमीर खुसरो के साहित्य में लोकगीतों की बानगी और खड़ी बोली के विविध प्रयोग–डॉ० बिभा कुमारी 2459

मिथिलांचल में गाँधी का स्वदेशी आंदोलन–प्रतिभा झा 2464

भारतीय भाषाओं की संपर्क लिपि- देवनागरी–डॉ० मोती लाल शाकार 2471

1857 के विद्रोह में बेगम हजरत महल की भूमिका–अर्चना यादव 2475

दृष्टिकोण

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की समस्या एवं भूमिका–डॉ० राम नरेश ठण्डन 2480

दुर्ग जिले के विकास में जन कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन और जिला प्रशासन–डॉ० अरुणा ठाकुर 2484

स्थानीय शासन का विकास–डॉ० आयशा अहमद 2489

महिलाओं के बारे में महात्मा गांधी के विचार–आशीष नाथ सिंह 2493

महाभारते क्रियाकर्मयोगयो: वैशिष्ट्यम्: गीताया: सन्दर्भे–नूपुर 2497

प्राचीन भारतीय सामाजिक स्तरीकरण और वर्ण व्यवस्था: एक विश्लेषण–प्रो० (डॉ०) अरविन्द कुमार सिंह 2503

अधिवास पुरातत्व/पुराबस्ती प्रारूप की संकल्पना एवं भारतीय उपमहाद्वीप में पुराबस्ती प्रारूप अध्ययन का विकास –डॉ० ईश्वर दान 2506

प्रवासी साहित्य में भारतीय संस्कृति का चित्रण–डॉ० सविता वर्मा 2514

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य–डॉ० राजकुमार एस. नाईक 2517

आजादी के बाद की हिन्दी कविता–डॉ० पूर्णिमा रजक 2521

प्रभुसत्ता का तात्पर्य विश्लेषण–डॉ० पंकज कुमार सिंह 2532

उच्च शिक्षा का आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका–श्रीमती मेघा डड़सेना 2538

संस्कृत काव्यशास्त्र में भाव का स्वरूप: अकबरशाहि श्रृङ्गारदर्पण के विशेष परिप्रेक्ष्य में –डॉ० कृपा भाष्कर सचदेव; डॉ० घनश्याम यादव 2541

भारतीय अध्यात्मवाद और बाबा फरीद: एक समीक्षा–अनीता कुमारी 2546

'मृच्छकटिकम्' एक आदर्श प्रधान प्रकरण–किरण चौधरी 2552

मानसून का भारतीय शेयर बाजार पर प्रभाव–डॉ० वसीमुद्दीन 2557

पातंजल योग दर्शन एवं अष्टांग योग का स्वरूप तथा उनके परंपरागत ज्ञान की वर्तमान जीवन-शैली में महत्ता –ईश्वर सिंह शेखावत 2559

ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर वाले बच्चों के लिए योग के लाभ–डॉ० नीलिमा सिंह; डॉ० पूनम सिंह 2564

छत्तीसगढ़ राज्य के प्रमुख पर्यटन स्थल: एक अध्ययन–डॉ० दिव्या शुक्ला 2571

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक चिंतन का अध्ययन–डॉ० प्रेम सिंह 2574

आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना एवं भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रबंधन–डॉ० अल्का लल्हाल 2583

संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार दण्डी और उनकी रचना शैली–डॉ० सुषमा भारद्वाज 2588

दलित महिला आत्मकथा में अंतर्व्यथा–कंचन आर्या 2592

भारतीय राजनीति में जवाहरलाल नेहरू का योगदान–रमेश राम 2597

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा: 'जूठन' दलित जीवन का दस्तावेज–डॉ० रूपा आर्या 2600

भारत-चीन संबंध: डोकलाम विवाद के विशेष संदर्भ मे–डॉ० रंजीत कुमार 2605

संस्कृत वाङ्मय: भारतीय अध्यात्म का मूल–डॉ० सोनिया चौहान 2607

शिक्षा और मूल्यों की तैयारी–विक्रांत भास्कर 2611

वर्तमान समय में कार्ल मार्क्स के विचारों की प्रासंगिकता: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन–छाया 2615

बौद्धदर्शन में चित्त परिशोधन की अवधारणा (ब्रह्मविहार के परिप्रेक्ष्य में)–दीपिका कुमारी 2620

ग्रीन कमेस्ट्री उत्पत्ति वर्तमान स्थिति और भविष्य की चुनौतियाँ–डॉ० नरेन्द्र कुमार 2624

छायावाद के बाद की कविता का परिवेश–डॉ० शुभा तिवारी 2628
आधुनिक भारतीय वास्तुकला पर औपनिवेशिक यूरोपियन प्रभाव–डॉ० दिवाकर त्रिपाठी 2633
वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण–रेखा मीना 2637
लाल शकरकंद: अन्न का विकल्प 'एक विश्लेषण'–डॉ० नीलम कुमारी 2641
'छिन्नमूल' उपन्यास सूरीनाम के जन - जीवन की गाथा–गायत्री 2645
सामाजिक समरसता (Social Harmony) की अवधारणा और हम भारतवासी–डॉ० गिरीश चंद्र जोशी 2649
'आपका बंटी': पारिवारिक विघटन का दस्तावेज–डॉ० ज्योतीश्री बालकृष्णन 2653
वैश्वीकरण एवं भारतीय राजनीति–डॉ० श्याम लाल निराला 2657
भारतीय राजनीति की उभरती प्रवृत्तियाँ और सोशल मीडिया के दौर में लोकतंत्र: एक अध्ययन–डॉ० संजय कुमार झा 2663
जयशंकर प्रसाद का नारी चिंतन–डॉ० जगमोहन शर्मा 2670
ब्रिटिशकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था का अध्ययन–डॉ० आशुतोष कुमार उपाध्याय 2676

सामाजिक न्याय की परिधि में निम्न पिछड़ी जातियों की स्थिति

आले नवी

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

बिहार में दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति आजादी के बाद के दौर में बहुत ज्यादा नहीं बदली। इनके साथ सामाजिक छुआछूत का व्यवहार पहले से थोड़ा कम हुआ है, लेकिन यह अब भी व्यापक रूप से कायम है। दलितों में दुसाध और चमार जाति के एक हिस्से को छोड़ दें, तो तकरीबन पूरा दलित समुदाय अब भी गरीबी और साधनहीनता से जूझ रहा है। इनके पास खेती के लिए कोई जमीन नहीं है। आमतौर पर दलित खेतिहर मजदूर हैं। खेतिहर मजदूर के रूप में बेगारी और कम मजदूरी जैसी समस्याओं से जूझते हुए यह किसी तरह अपनी जिंदगी गुजारते हैं। बिहार में जो भूमि-सुधार लागू हुआ, उसका फायदा मुख्य रूप से ऊँची पिछड़ी जातियों को ही हुआ। दलितों तक उसका कोई फायदा नहीं पहुँचा। इस कारण, दलितों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय बनी रही। आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण इनके बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पाती और ये राज्य द्वारा दी जाने वाली आरक्षण जैसी सुविधाओं का फायदा उठाने में नाकाम रहते हैं। बिहार की अन्यायपूर्ण भूमि-व्यवस्था और सामंतवादी ऊँची जातियों के शोषण के खिलाफ 1960 के दशक के अंतिम वर्षों में नक्सलियों द्वारा शुरू किए गए हिंसक आंदोलन को दलितों का समर्थन मिला। इस लिहाज से नक्सलवादी आंदोलन दलितों की राजनीतिक चेतना और संघर्ष का प्रतीक बन गया।

मुख्य शब्द : दलित, गरीबी, भूमि-सुधार, भूमि-व्यवस्था, आरक्षण, नक्सलवादी आंदोलन

संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली की समावेशी प्रकृति के कारण बिहार में हाशिए पर पड़े समूहों की राजनीतिक चेतना में बढ़ोतरी हुई। परिणामत: बिहार में सत्ता पर ऊँची जातियों का वर्चस्व खत्म हुआ। यह प्रक्रिया इस मायने में युगान्तकारी रही कि इसमें पिछड़े तबकों ने वोट की ताकत की बदौलत ऊँची जातियों को सत्ता से बेदखल करने में कामयाबी पाई। बिहार की राजनीति पिछड़ों की पहचान और राजनीतिक चेतना मजबूत होते जाने का परिचायक। सामाजिक न्याय का मतलब है, समाज में सबको गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार। इसमें सबके लिए जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए समान मौका देने की बात शामिल है। 'सामाजिक न्याय' से तात्पर्य ऐसी नीतियों और कार्यक्रमों को अपनाना है, जिससे समानतावादी समाज की स्थापना में मदद मिले। स्पष्टत: सामाजिक न्याय में समाज के हाशिए पर पड़े समूहों अर्थात् समाज की श्रृंखला की सबसे कमजोर कड़ियों को मजबूती देना शामिल है।

प्रस्तुत आलेख में सामाजिक न्याय के वृत्त में निम्न पिछड़ों, दलितों, महिलाओं और पिछड़े मुस्लिमों तब रोशनी पहुँचने की प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है। बढ़ते अपराधीकरण के कारण राज्य के प्राधिकार नष्ट होने की स्थिति को दर्शाया गया है और उसके परिणामों की समीक्षा की गई है। अंत में, इस तथ्य का भी विश्लेषण किया गया है कि बिहार में विकास क्यों अवरुद्ध हो गया?

परन्तु नब्बे के दशक में पूरे वेग से बिहार की छवि एक अविकसित और जड़ प्रदेश की बन गई। आमतौर पर यह माना जाने लगा कि बिहार में 'जंगल-राज' है, यहाँ जातिवाद का बोलबाला है, अपराधियों का वर्चस्व है, विकास के संसाधनों की लूटमार मची है और बिहार के निवासी इसके उदासीन मूकदर्शक हैं। अक्टूबर-नवम्बर 2005 के चुनावों के नतीजों ने यह दिखाया कि बिहार में विकास न होने, अपराधियों के वर्चस्व और विकास के संसाधनों की लूट जैसी परिघटनाओं से बिहार के मतदाता उदासीन नहीं थे।

ऐसा भी नहीं है कि निम्न पिछड़ी जातियों से कोई बड़ा नेता बिहार की राजनीति के फलक पर नहीं उभरा। नब्बे के दशक के पहले बिहार की राजनीति में पिछड़ी जातियों की भूमिका निर्धारित करने के लिए अथक प्रयास करने वाले नेताओं में से एक कर्पूरी ठाकुर जाति से नाई थे। नाई जाति के लोग बिहार में आर्थिक और संख्यात्मक दोनों ही दृष्टिकोणों से बहुत कमजोर हैं। कर्पूरी ठाकुर के पिछड़ी जातियों के नेता के रूप में उभरकर आने में उनकी व्यक्तिगत लगन, निष्ठा और समर्पण तथा लोहियावादी राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका थी। ऊँची पिछड़ी जातियों के नेताओं को अपने नेतृत्व में सक्रिय करने में ठाकुर नाकाम रहे।1 अपने तमाम व्यक्तिगत गुणों और उपलब्धियों के साथ ठाकुर एक अपवाद थे।

आमतौर पर बिहार से चुने जाने वाले लोकसभा सदस्यों में पिछड़ी जातियों के प्रतिनिधित्व में बढ़ोतरी की प्रवृत्ति रही है। लेकिन पिछड़ी जातियों में ऊँची पिछड़ी जातियों में ऊँची पिछड़ी जातियों और निम्न पिछड़ी जातियों के प्रतिनिधित्व के संदर्भ में विचार करने पर तस्वीर का रुख पूरी तरह बदल जाता है। राजनीतिक प्रतिनिधित्व में आगे रहने वाली ऊँची पिछड़ी जातियाँ आर्थिक रूप से भी मजबूत हैं। आजादी के बाद यादव, कुर्मी, कोइरी जैसी जातियों ने ग्रामीण स्तर पर खुद को बड़े किसानों के रूप में स्थापित किया है।2 इसी तरह बनिया जाति आर्थिक रूप से बहुत ही मजबूत है। ये बिहार के मुख्य व्यवसायी वर्ग हैं। वैश्य समूह की दूसरी जातियों (इसमें निम्न पिछड़ी जाति तेली भी शामिल हैं) के समर्थन के कारण ये अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराने में सफल रही हैं। स्पष्ट रूप से, जनसंख्यात्मक रूप से कमजोर होने और दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण निम्न पिछड़ी जातियाँ पिछड़ों के उभार का वैसा फायदा नहीं उठा पाई, जैसा कि ऊँची पिछड़ी जातियों ने उठाया। निम्न पिछड़ी जातियों में अधिकांश लोग बहुत गरीब हैं। इन जातियों के बहुसंख्यक लोग खेतिहर मजदूर के रूप में काम करते हैं या अपनी जाति से जुड़े पेशों में लगे हुए हैं। शिक्षा के मामले में भी ये राज्य के सबसे पिछड़े समूहों में हैं। शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े होने के कारण राज्य द्वारा सकारात्मक कार्रवाई के माध्यम से दी गई आरक्षण जैसी सुविधाओं का फायदा उठा पाने में ये नाकाम रहे हैं। अन्य पिछड़े वर्गों को दिए जाने वाले आरक्षण का बहत ही कम हिस्सा निम्न पिछड़ी जातियों तक पहुँच पाया है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन्हें भी दलितों की तरह ही भूमिपतियों और बड़े किसानों का शोषण सहना पड़ता है।

निम्न पिछड़ी जातियों में भी सामाजिक न्याय की राजनीति ने पैठ जमाई और इन जातियों ने ऊँची जातियों के वर्चस्व वाली कांग्रेस की जगह गैर-कांग्रेसी सोशलिस्ट पार्टियों को अधिक महत्त्व दिया। यदि हम नब्बे के दशक की राजनीति पर विचार करें तो यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि लालू का करिश्मा सिर्फ मुस्लिम-यादव सामाजिक आधार के बूते नहीं था। इसमें निम्न पिछड़ी जातियों और दलितों का समर्थन भी था। नब्बे के दशक में निम्न पिछड़ी जातियों ने जागरूक रूप से लालू की पिछड़ों की पहचान की राजनीति पर अपनी मुहर लगाई। लेकिन लालू निम्न पिछड़ी जातियों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने या उनकी आर्थिक भलाई के लिए कोई कारगर कदम उठाने में नाकाम रहे। अक्टूबर-नवम्बर 2005 के चुनावों में नीतीश की जीत के पीछे मुख्य कारण यह था कि निम्न पिछड़ी जातियों ने लालू की जगह नीतीश को प्राथमिकता दी। नीतीश ने निम्न पिछड़ी जातियों में यह राजनीतिक चेतना भरने की कोशिश की कि लालू का शासन यथास्थितिवाद का प्रतीक है और इससे केवल एक ऊँची पिछड़ी जाति के समृद्ध तबके का फायदा हुआ है।3 स्पष्टत: निम्न पिछड़ी जातियों ने राजनीतिक जागरूकता और समझदारी का परिचय दिया। अत: निम्न पिछड़ी जातियों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने और उनकी आर्थिक दशा को सुधारने का सवाल बहुत ही संजीदा है। जनसंख्यात्मक रूप से छोटी-छोटी जातियों को राजनीति में प्रतिनिधित्व देना चुनौतीपूर्ण काम है।

वर्त्तमान में, बिहार की जनसंख्या में दलितों की हिस्सेदारी 15.2 फीसद की है। यह बिहार में यादवों की जनसंख्या में हिस्सेदारी से थोड़ी ही कम है। यादव बिहार में 16.6 फीसद हैं। लेकिन बिहार की राजनीति में जिस रूप में यादवों का उभार दिखता है, वैसा दलितों का नहीं दिखता। संविधान में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए लोकसभा और विधानसभा में सीटें आरक्षित करने का प्रावधान है।4 इस कारण से, लोकसभा और विधानसभा में एक निश्चित संख्या में अनुसूचित जातियों के विधायक और सांसद पहुँचते रहे हैं। लेकिन आमतौर पर बिहार में दलितों के लिए आरक्षित सीटों पर दुसाध या चमार जाति का अधिक वर्चस्व है। लोकसभा और विधानसभा में पहुँचने वाले विधायक और सांसद विभिन्न दलों में बँटे होते हैं। इसीलिए, ये दलित पहचान को मजबूत अभिव्यक्ति देने में नाकाम रहे हैं।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले और उसके बाद के कई दशकों की राजनीति में बिहार में दलित कांग्रेस से जुड़े रहे। 1977 में कांग्रेस छोड़ने से पहले बाबू जगजीवन राम कांग्रेस में सबसे ऊँचे कद के दलित नेता थे। वे बिहार के ही थे। कांग्रेस में दलित नेताओं को उचित स्थान देने की कोशिश की गई। फिर भी, इस प्रक्रिया में उन्हें दूसरे दर्जे तक ही सीमित रखा गया। जगजीवन राम इसके अपवाद थे। बिहार की कांग्रेसी राजनीति में इसके दूसरे अपवाद भोला पासवान शास्त्री थे। 1967 के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को हार का सामना करना पड़ा। गैर-कांग्रेसी दल भी स्थायी सरकार देने में नाकाम रहे। ऐसे में, 1968 में कांग्रेस नेतृत्व ने ऊँची जाति के किसी नेता की जगह दलित नेता भोला पासवान शास्त्री का नाम आगे बढ़ाया। शास्त्री का नाम आगे बढ़ाने के पीछे कांग्रेस के रणनीतिकारों की सोच यह थी कि इससे दूसरे गैर-कांग्रेसी दलों का समर्थन आसानी से मिल जाएगा। ऐसा हुआ भी। लेकिन शास्त्री के मंत्रिमंडल में पचास फीसद से अधिक सदस्य ऊँची जातियों के थे।5

साफ तौर पर, शास्त्री एक मुखौटा थे, जिनका इस्तेमाल कांग्रेस के ऊँची जाति के नेताओं ने सत्ता पर कब्जा जमाने के लिए किया। समाजवादी दलों या जनता पार्टी में भी दलितों को महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं मिला। इनकी राजनीति में पिछड़ी जातियों, खासतौर पर ऊँची पिछड़ी जातियों का वर्चस्व था। 1979 में रामसुन्दर दास दूसरे ऐसे दलित नेता हुए, जिन्हें राज्य का मुख्यमंत्री बनने का सौभाग्य मिला। लेकिन दास के साथ भी यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य जुड़ा था कि जनता पार्टी के ऊँची जाति के नेताओं ने उनका इस्तेमाल पिछड़ावाद की राजनीति कर रहे कर्पूरी ठाकुर को पटखनी देने के लिए किया। दास के मंत्रिमंडल में भी ऊँची जातियों का प्रतिनिधित्व 500 फीसद था।6 दास भी बहुत कम समय तक मुख्यमंत्री रहे।

बिहार में दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति आजादी के बाद के दौर में बहुत ज्यादा नहीं बदली। इनके साथ सामाजिक छुआछूत का व्यवहार पहले से थोड़ा कम हुआ है, लेकिन यह अब भी व्यापक रूप से कायम है। दलितों में दुसाध और चमार जाति के एक हिस्से को छोड़ दें, तो तकरीबन पूरा दलित समुदाय अब भी गरीबी और साधनहीनता से जूझ रहा है। इनके पास खेती के लिए कोई जमीन नहीं है। आमतौर पर दलित खेतिहर मजदूर हैं।7 खेतिहर मजदूर के रूप में बेगारी और कम मजदूरी जैसी समस्याओं से जूझते हुए यह किसी तरह अपनी जिंदगी गुजारते हैं। बिहार में जो भूमि- सुधार लागू हुआ, उसका फायदा मुख्य रूप से ऊँची पिछड़ी जातियों को ही हुआ। दलितों तक उसका कोई फायदा नहीं पहुँचा। इस कारण, दलितों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय बनी रही। आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण इनके बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पाती और ये राज्य द्वारा दी जाने वाली आरक्षण जैसी सुविधाओं का फायदा उठाने में नाकाम रहते हैं। बिहार की अन्यायपूर्ण भूमि-व्यवस्था और सामंतवादी ऊँची जातियों के शोषण के खिलाफ 1960 के दशक के अंतिम वर्षों में नक्सलियों द्वारा शुरू किए गए हिंसक आंदोलन को दलितों का समर्थन मिला।8 इस लिहाज से नक्सलवादी आंदोलन दलितों की राजनीतिक चेतना और संघर्ष का प्रतीक बन गया।

नब्बे के दशक में संसदीय राजनीति में दलित किसी एक राजनीतिक दल के पीछे उस तरह लामबंद नहीं रहे, जैसे कि 1980 के दशक तक वे कांग्रेस के पीछे लामबंद थे। नब्बे के दशक में लालू के उभार ने दलितों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। लालू द्वारा सामंतवादी ऊँची जातियों की तीखी आलोचना, पिछड़ावादी प्रतीकों की राजनीति और ऊँची जातियों के बीच लालू की

नापसंदगी ने दलितों में लालू को लोकप्रिय बना दिया। बिहार में दलितों के मजबूती से उभरते नेता रामविलास पासवान के साथ ने भी लालू की स्थिति को मजबूत किया। 1995 के विधानसभा चुनावों में दलितों का 49 फीसद वोट लालू के जनता दल को मिला।9 लेकिन 1998 में राष्ट्रीय जनता दल के निर्माण के बाद लालू और रामविलास पासवान के रास्ते अलग-अलग हो गए। पासवान को दलितों की मजबूत जाति दुसाध का उसी तरह समर्थन प्राप्त रहा है, जिस तरह लालू को यादवों का समर्थन प्राप्त रहा है। वर्त्तमान बिहार में दुसाध 6.1 फीसद हैं। इस कारण, पासवान 1998 के चुनावों के बाद एक मजबूत संतुलक शक्ति के रूप में उभरे। 1999 में ये भाजपा-समता गठबंधन में शामिल हुए और उसे भारी जीत मिली। इन चुनावों में इस गठबंधन को दलितों का 47 फीसद वोट मिला।10 2000 के विधानसभा चुनावों में आपसी समझ के अभाव और कई विद्रोही उम्मीदवारों की उपस्थिति के कारण यह गठबंधन चुनाव नहीं जीत पाया। लेकिन इस चुनाव में भी इस गठबंधन को दलितों का 39 फीसद वोट मिला।11

2002 में पासवान ने अपनी नई पार्टी लोक जनशक्ति पार्टी की स्थापना की। 2004 के चुनावों में लालू ने पासवान की लोजपा, कांग्रेस, राष्ट्रवादी कांग्रेस और माकपा का व्यापक गठजोड़ कायम किया। इन चुनावों में इस गठजोड़ को ऐतिहासिक कामयाबी मिली। इस गठजोड़ को बिहार की 40 लोकसभा सीटों में से 29 सीटों पर जीत मिली और 45.2 फीसद वोट मिला। पासवान के दल को 8.2 फीसद वोटों के साथ 4 सीटों पर कामयाबी मिली।12 फरवरी 2005 के चुनावों में पासवान ने लालू से गठजोड़ तोड़ लिया और कांग्रेस से गठजोड़ कर चुनाव लड़ा। इन चुनावों में पासवान ने दलित-मुस्लिम सामाजिक आधार तैयार करने की कोशिश की। उन्होंने 'मुस्लिम मुख्यमंत्री' का नारा दिया। इसे अलावा उन्होंने कई क्षेत्रों से विभिन्न जातियों के दबंग उम्मीदवारों को मैदान में उतारा।13 इन चुनावों में पासवान के दल को 29 सीटों पर जीत मिली और इसे 12.96 फीसद वोट मिले। फरवरी 2005 के चुनावों में किसी दल को बहुमत नहीं मिला था। इसलिए, पासवान के दल की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गई थी। लेकिन पासवान ने भाजपा या लालू-राबड़ी को अपना समर्थन नहीं दिया। वे 'मुस्लिम मुख्यमंत्री' की अपनी माँग पर अड़े रहे। शायद उन्हें यह उम्मीद थी कि मुस्लिम मुख्यमंत्री की माँग करने के कारण उनका दलित-मुस्लिम सामाजिक आधार मजबूत होगा। लेकिन पासवान के दल के अधिकांश विधायकों को यह रवैया रास नहीं आया और वे टूटकर जद (यू) में शामिल हो गए। फरवरी 2005 में चुनी गई विधानसभा बिना किसी बैठक के ही भंग कर दी गई। अक्टूबर-नवम्बर 2005 का चुनाव पासवान ने भाकपा से गठबंधन करके लड़ा। लेकिन उनके दल को ज्यादा कामयाबी नहीं मिली। उसे केवल 10 सीटों पर जीत मिली। लेकिन फिर भी इसे 10.57 फीसद वोट मिले।

बिहार के सामाजिक-राजनीतिक जीवन में दलितों की स्थिति को प्रभावित करनेवाला सबसे बड़ा सवाल जमीन का सवाल है। अधिकांश दलित भूमिहीन हैं। ये खेतिहर मजदूर के रूप में कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर हैं। भाकपा (माले) ने जमीनी स्तर पर दलितों की समस्याओं को मुद्दा बनाया है। अक्टूबर-नवम्बर 2005 के विधानसभा चुनावों तक इसका राजनीतिक आधार बहुत व्यापक नहीं हुआ। फिर भी, इसने मध्य और दक्षिणी बिहार में दलितों और निम्न पिछड़ों में अच्छी पकड़ बनाई है।

शोषण के खिलाफ जगे दलितों का दमन करने के लिए भूमिपतियों की कई जाति-आधारित निजी सेनाएँ भी सामने आ गईं।14 इन्होंने बंदूक और हिंसा के बल पर भूमिहीनों का दमन करने की कोशिश की। इस तरह के संघर्ष के बढ़ने का ही यह नतीजा हुआ कि बिहार में नब्बे के दशक के बाद कई वीभत्स नरसंहार हुए। लोकतांत्रिक राजनीति में हिंसा का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। लेकिन राज्य में नक्सलवादियों की हिंसात्मक कार्रवाइयों को भूमिपतियों और राज्यतंत्र के शोषण, दमन और हिंसा के संदर्भ में देखने की जरूरत है। जिन क्षेत्रों में नक्सलवादी आंदोलनों का प्रभाव है, वहाँ खेतिहर मजदूरों की मजदूरी की दर में वृद्धि हुई है। इन्होंने भूमि-सुधार के एजेंडे को भी जगाए रखा है। इस तरह के आंदोलनों ने भूमिपतियों द्वारा कराए जाने वाले बेगार को नियंत्रित किया है। साथ ही, इन्होंने निम्न पिछड़ी जातियों और दलित-महिलाओं पर अत्याचार को भी रोका है। इन आंदोलनों ने ग्रामीण समाज की अर्द्धसामंती संरचना को कमजोर किया है।15 फिर भी, नक्सलवादी आंदोलन के बहुत-से सार्थक योगदानों के बावजूद लोकतांत्रिक राजनीति की परिधि से बाहर रहने के कारण इससे किसी आमूलचूल बदलाव की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

स्पष्टतः राजनीति में सक्रिय भागीदारी, समाज में इज्जत भरा स्थान और जिंदगी में समान रूप से आगे बढ़ने के अवसर के संदर्भ में दलित सामाजिक न्याय से बहुत दूर हैं। दलितों के संदर्भ में सामाजिक न्याय की राजनीति का सबसे प्राथमिक मतलब है- उत्पादन संबंधों में आमूलचूल बदलाव संसदीय राजनीति में दलितों का उभार हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि एक ऐसा नेतृत्व उभरे, जो कुनबापरस्ती, मौकापरस्ती और तात्कालिक मुद्दों में ही उलझे रहने की जगह दूरदृष्टि और उत्पादन संबंधों में बुनियादी बदलाव लाने के प्रति वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध हो। दलितों को सामाजिक न्याय के लिए लामबंद करने के लिए यह जरूरी है कि सभी दलित जातियों को एक राजनीतिक छतरी के नीचे लाने की कोशिश हो। साथ ही, इनकी राजनीति को हाशिए पर पड़े दूसरे समूहों (उदाहरणार्थ- निम्न पिछड़ी जातियों, मुस्लिमों, महिलाओं आदिद्ध से भी जोड़ने की जरूरत है। इसके अलावा, इस तरह की राजनीति में फौरी राजनीतिक जरूरतों और रणनीतियों की जगह व्यापक सामाजिक बदलाव को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए।निस्संदेह लालू-राबड़ी के दौर में विकास-कार्यों की उपेक्षा हुई। सत्ता में रहते हुए हाशिए पर पड़े और जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष करते लोगों की भलाई के लिए वे कई बुनियादी बदलाव ला सकते थे-पहला, वे भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को अजीविका और जीवन में आगे बढ़ने का साधन उपलब्ध करा सकते थे। दूसरा, केन्द्र सरकार द्वारा स्वीकृत योजना- राशि का सदुपयोग कर वे इसका अधिकतम फायदा गरीबों तक पहुँचा सकते थे। राशि को खर्च करने के बाद ये केन्द्र से अतिरिक्त पैकेज के लिए भी दावा कर सकते थे। तीसरा, राज्य में पूँजी निवेश को बढ़ावा देकर ऐसे उद्योगों को स्थापित करा सकते थे, जिसमें गरीब और पिछड़े लोगों को रोजगार मिलता या इसकी जगह लघु उद्योगों को बढ़ावा देने का विकल्प भी अपनाया जा सकता था। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। यह सामाजिक न्याय की उनकी राजनीति और वंचितों के हितैषी होने के दावे पर सवालिया निशान लगाता है। यह एक तथ्य है कि विकास का अभाव राज्य की सारी समस्याओं के मूल में है। समाज में बढ़ते तनाव, अपराधीकरण और पलायन के पीछे विकास के अभाव ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः नब्बे के दशक में सामाजिक न्याय की राजनीति के उफान पर होने के बावजूद राज्य में निम्न पिछड़ी जातियाँ, दलित, मुस्लिम और महिलाएँ हाशिए पर ही रहीं। न तो इन्हें न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व मिला, न ही इन्हें विकास-संसाधनों का उचित हिस्सा ही मिला। इस कारण ये तबके जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में पिछड़ते गए। दलितों को विधानमंडलों और नौकरियों में आरक्षण का कुछ फायदा मिला, लेकिन यह फायदा कुछ जातियों (दुसाध और चमार जाति) तक ही सिमटा रहा। इसी तरह, पिछड़े वर्गों को नौकरियों में मिले आरक्षण का फायदा निम्न पिछड़ी जातियाँ नहीं उठा पाईं। इसका मुख्य कारण इनकी आर्थिक स्थिति का दयनीय होना रहा है। विकास-संसाधनों की लूट और विकास के संदर्भ में राज्य सरकार की उदासीनता ने स्थिति को और अधिक जटिल बना दिया।

संदर्भ सूची

1. फ्रैंसीन आर0, फ्रैंकेल, 'कास्ट, लैंड एंड डॉमिनेन्स इन बिहार', पूर्वउद्धृत, पृ. 113-15.
2. अलख, एन0शर्मा, 'एग्रेरियन रिलेशन्स एंड सोशियो-इकोनोमिक चेंज इन बिहार' इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 5 मार्च, 2005, पृ. 965
3. फ्टलाइन, 16 दिसम्बर, 2005, पृ. 9-10; वी0 कृष्ण अनंत, बिहार : 'डॉन ऑफ न्यू कास्ट बैट्ल्स?', इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 3 दिसम्बर, 2005, पृ. 5142-5244.
4. द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया (पी0एम0 बक्शी की चुनिंदा टिप्पणियों के साथ), यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, 2000, (चौथा संस्करण), पृ. - 285
5. एस0के0जैन, कास्ट एंड पॉलिटिक्स इन बिहार, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1988, पृ. 66

6. हैरी डब्ल्यू0 ब्लेयर, 'राइजिंग कुलक्स एंड बैकवर्ड क्लासेज इन बिहार', इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 12 जनवरी, 1980, पृ. 69
7. अलख एन शर्मा, 'एग्रेरियन रिलेशंस एंड सोशियो-इकोनोमिक चेंज इन बिहार', पूर्व उद्धृत, पृ. 965-66
8. दलितों ने सिर्फ नक्सलवादी आंदोलन को सक्रिय समर्थन ही नहीं दिया, बल्कि इसके सक्रिय 'कैडर' के रूप में भी सक्रिय हुए। देखें, बेला भाटिया, 'नक्सलवादी बनते दलित', संकलित, अभय कुमार दुबे (सं0), आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, सी0एस0डी0एस0- दिल्ली, 2002, पृ. 317-341
9. संजय कुमार, 'न्यू फेज इन बैकवर्ड कास्ट पॉलिटिक्स इन बिहार, 1990-2000', संकलित घनश्याम शाह (सं0), कास्ट एंड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इंडिया, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2002, पृ. 349
10. मुनेश्वर यादव, 'पॉलिटिक्स फ्रॉम बिलो', इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 18 दिसम्बर, 2004, पृ. 5511
11. उपरोक्त
12. उपरोक्त
13. अलख एन0 शर्मा, 'एग्रेरियन रिलेशंस एंड सोशियो-इकोनोमिक चेंज इन बिहार', पूर्वउद्धृत, पृ. 965-66.
14. फ्रैंसीन आर0 फैंकेल, 'कास्ट, लैण्ड एण्ड डॉमिनेन्स इन बिहार', पूर्वउद्धृत, पृ. 104.
15. श्रीकांत, 'सामाजिक परिवर्त्तन का इतिहास-चक्र', पूर्वउद्धृत, पृ. 12.

हड़प्पा कालीन प्रमुख नगरः एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० मो० मंजर अली

व्याख्याता, इतिहास विभाग, अल-हफीज़ कॉलेज, आरा (बिहार)

शोध-सारांश

इस सभ्यता का सबसे उपयुक्त नाम हड़प्पा सभ्यता है, क्योंकि सबसे पहले हड़प्पा स्थल ही खोजा गया था। हड़प्पा सभ्यता के स्थल सिंधु नदी के आसपास अधिक थे, इसलिए इसे 'सिंधु' भी कहा गया। हड़प्पा सभ्यता का भारतीय इतिहास में अत्यधिक महत्त्व है, क्योंकि इस सभ्यता की खोज के पूर्व मौर्यकाल से पहले ही पुरातात्विक सामग्री के विषय में अत्यन्त अल्प जानकारी उपलब्ध थी। इसके अतिरिक्त मिस्र, मेसोपोटामिया, सुमेर एवं क्रीट आदि की अत्यन्त प्राचीन सभ्यताओं की तुलना में भारतीय सभ्यता का विशेष महत्त्व न था, किन्तु सिंधु सभ्यता की खोज ने भारतीय इतिहास में एक सुनहरा अध्याय जोड़ दिया। 1921 ई० में दयाराम साहनी ने हड़प्पा नामक स्थान पर सर्वप्रथम इस महत्त्वपूर्ण सभ्यता के अवशेषों का पता लगाया और 1922 ई० में राखलदास बनर्जी ने मोहनजोदड़ो में एक भव्य नगर अवशेष प्राप्त किया। जॉन मार्शल ने सर्वप्रथम इस सभ्यता को सिंधु सभ्यता का नाम दिया। हड़प्पा सभ्यता की तिथि 2500 ई०पू० से 1750 ई०पू० माना गया है, जो सर्वाधिक मान्य है। अब इस सभ्यता के अवशेष पाकिस्तान और भारत में पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पश्चिमी उ०प्र०, जम्मू-कश्मीर एवं पश्चिमी महाराष्ट्र के भागों में पाए जा चुके हैं।

Keywords: हड़प्पा, संस्कृति, नगर, नदी, स्नानागार, टीले।

वैसे तो हड़प्पा संस्कृति में लगभग 1500 स्थलों का पता लग चुका है, किन्तु उनमें केवल सात को ही नगर की संज्ञा दी जा सकती है। ये निम्न हैं -

हड़प्पा

हड़प्पा का पुरास्थल पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में माण्टगोमरी जिले में (आधुनिक शाहीवाल) रावी नदी के बाएं तट पर स्थित है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख 1826 ई० में चार्ल्स भेसन ने किया। हड़प्पा का दूसरा उल्लेख तब आया, जब 1856 ई० में करांची से लाहौर रेलवे लाइन बिछाते जाते समय जॉन ब्रंटन और विलियम ब्रंटन ने यहाँ से प्राप्त ईंटों का उपयोग रोड़ो के रूप में किया। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक जॉन मार्शल के निर्देश पर 1921 ई० में दयाराम साहनी ने इसकी खोज की।

हड़प्पा क्षेत्रफल की दृष्टि से सिंधु सभ्यता का दूसरा सबसे बड़ा स्थल है। यह लगभग 150 हेक्टेयर के घेरे में बसा हुआ था। इसके दुर्ग के टीले को AB नाम दिया गया। दुर्ग के बाहर उत्तर दिशा में स्थित लगभग 6 मीटर ऊँचे टीले को F नाम दिया गया। इसी टीले पर अन्नागार, अनाज के कूटने के वृत्ताकार चबूतरे और श्रमिक आवास के साक्ष्य मिले हैं। अन्नागार रावी नदी के तट पर स्थित था। हड़प्पा के F टीले में पकी हुई ईटों से निर्मित 18 वृत्ताकार चबूतरे मिले हैं, जिनका उपयोग अनाज पीसने के लिए होता था। इसी टीले पर श्रमिक आवास भी मिला है। इस टीले में 15 मकान दो पंक्तियों में बनाए गए थे। इस बस्ती के समीप 16 भट्टियाँ और धातु बनाने की एक मूषा (Crucible) मिली है। संभवतः इसी बस्ती में ताम्रकार रहते थे।

हड़प्पा नगर क्षेत्र के दक्षिण दिशा में एक कब्रिस्तान मिला है, जिसे समाधि R-37 (Cemetry R-37) नाम दिया गया है। हड़प्पा में 1934 ई० में अन्य समाधि मिली थी, जिसे समाधि H (Cemetry H) नाम दिया गया। इसका संबंध सिंधु सभ्यता के बाद के काल से था।[1]

मोहनजोदड़ो

यह पाकिस्तान के सिंध प्रांत के लरकाना जिले में सिंधु नदी के दाहिने तट पर स्थित था। यह क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा नगर था, जो 250 हेक्टेयर में बसा था। इसकी जनसंख्या सर्वाधिक थी। मोहनजोदड़ो का अर्थ है - प्रेतों का टीला। इसे 'सिंधु का बाग' भी कहा जाता है। मोहनजोदड़ो की खोज 1922 ई० में राखलदास बनर्जी ने की।

मोहनजोदड़ो के दुर्ग टीले को 'स्तूप टीला' भी कहते हैं, क्योंकि इस टीले पर कुषाण काल का एक स्तूप बना है। दुर्ग के टीले पर ही स्नानागार, अन्नागार, सभा भवन एवं पुरोहित आवास बने हुए थे।

स्नानागार - मोहनजोदड़ो का सबसे महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक स्थल विशाल स्नानागार है। इसका जलाशय दुर्ग के टीले में है। यह 11.88 मीटर लंबा, 7.01 मीटर चौड़ा और 2.43 मीटर गहरा है। दोनों सिरों पर तल तक सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। स्नानागार का फर्श पकी ईंटों का बना है। पास के कमरे में बड़ा-सा कुआँ है। इससे पानी निकालकर हौज में डाला जाता था। स्नानागार के दक्षिण-पश्चिम से गंदा पानी निकालने के लिए नाली बनाई गई थी।

अन्नागार - व्हीलर के अनुसार, मोहनजोदड़ो की सबसे बड़ी इमारत अन्नागार या अन्नकोठार है। यह 45.71 मीटर लंबा और 15.23 मीटर चौड़ा है।

सभा भवन - दुर्ग के दक्षिण में 27×27 मीटर के आकार का वर्गाकार भवन प्राप्त हुआ है। इसे सभा भवन की संज्ञा दी गई है।

पुरोहित आवास - स्नानागार के उत्तर-पूर्व में 70.1×23.77 मीटर के आकार का विशाल भवन मिला है। इसे पुरोहित आवास कहा गया है।

HR क्षेत्र से कांसे की नर्तकी की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। मोहनजोदड़ो में कुल 21 मानव कंकाल प्राप्त हुए हैं, परन्तु यहाँ किसी कब्रिस्तान का उल्लेख नहीं है।

हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो एक-दूसरे से 482 किलोमीटर दूर सिंधु नदी द्वारा जुड़े थे। पिग्गट महोदय ने इन नगरों को सिंधु सभ्यता के जुड़वा राजधानियाँ कहा है।[2]

चन्हूदड़ो

यह सिंधु नदी के बाएं तट पर स्थित था। इसकी खोज 1931 ई० में एन जी० मजूमदार ने की। चन्हूदड़ो में सिंधु संस्कृति के बाद झूकर संस्कृति तथा झांगर संस्कृति विकसित हुई। मैके ने यहाँ से मनके बनाने का कारखाना खोजा है। यहाँ से एक ऐसी मुद्रा मिली है, जिस पर तीन घड़ियाल और दो मछलियों का अंकन है। यहीं से ईंटों पर एक बिल्ली का पीछा करते हुए कुत्ते के पंजों का निशान है। यह एकमात्र ऐसा स्थल है, जहाँ से वक्राकार ईंटें मिली हैं। यहाँ से लिपस्टिक, काजल, कंघा, उस्तरा आदि के प्रमाण मिले हैं। चन्हूदड़ो एकमात्र ऐसा स्थल है, जहाँ पर मिट्टी की पकी हुई पाइपनुमा नालियों का प्रयोग किया गया।[3]

लोथल

इसे 'लघु हड़प्पा' या 'लघु मोहनजोदड़ो' भी कहा जाता है। इसकी खोज 1954 ई० में एस० आर० राव ने की। यह गुजरात के अहमदाबाद जिले में भोगवा नदी के किनारे स्थित है। लोथल के पूर्वी भाग में एक गोदीवाड़ा का साक्ष्य मिला है। इसकी लंबाई 223 मीटर, चौड़ाई 35 मीटर तथा गहराई 38 मीटर थी। गोदीवाड़ा के उत्तरी दीवार में 12 मीटर चौड़ा एक प्रवेशद्वार था, जिससे जहाज

आते-जाते थे और दक्षिणी दीवार में अतिरिक्त जल का निकास द्वार था। इस प्रकार इस नगर में जल-प्रबंधन की सबसे उत्तम व्यवस्था थी।

लोथल में नगर क्षेत्र के बाहर उत्तर-पश्चिमी किनारे पर समाधि क्षेत्र था, जहाँ से 20 समाधियाँ मिली हैं। लोथल से तीन युग्मित समाधियों के उदाहरण भी मिले हैं, जिससे यहाँ सती प्रथा का अनुमान लगाया जाता है। लोथल से एक अग्निकुंड का अवशेष भी मिला है। लोथल के दुर्ग क्षेत्र से 126 मीटर लंबा एवं 30 मीटर चौड़ा एक भवन मिला है, जिसे प्रशासनिक भवन की संज्ञा दी गई। लोथल से भी चन्हूदड़ो की भांति मनके बनाने का कारखाना प्राप्त हुआ है। यहाँ से एक रंगाई कुंड मिला है, जो निचले नगर में स्थित था।[4] लोथल की सबसे प्रमुख उपलब्धि जहाजों की गोदी ॖडार्क-यार्डॗ है। यह लोथल के पूर्वी खंड में पक्की ईटों का एक तालाब जैसा घेरा है।[5]

कालीबंगा

कालीबंगा का अर्थ है - काले रंग की चूड़ियाँ। 100 हेक्टेयर में बसे, राजस्थान के गंगानगर जिले में स्थित इस नगर की खोज सन् 1951 ईॖ में अमलानंद घोष ने की। यह प्राचीन सरस्वती एवं दृष्द्वती नदियों के बीच स्थित था। सरस्वती का आधुनिक नाम घग्घर एवं दृष्द्वती का चौतंग है। सरस्वती नदी के किनारे घग्गर-हाकरा पाट पर सर्वाधिक स्थलों का संकेंद्रण था। कालीबंगा के पश्चिमी टीले पर सैन्धव सभ्यता के नीचे प्राक्-सैन्धव संस्कृति के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। इन प्रमाणों में हल से जुते हुए खेत का साक्ष्य सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसकी जुताई आड़ी-तिरछी की गई थी, जिससे दो ॅसलों के एक साथ बोए जाने का अनुमान लगाया जाता है।

कालीबंगा के दुर्ग टीले के दक्षिणी भाग में मिटी और कच्ची ईटों के बने हुए पाँच-छः चबूतरे मिले हैं, जिनके ऊपर कई अग्निकुंड या वेदिकाएँ बनी हुई मिली हैं, जो कि आयताकार हैं।

कालीबंगा में दुर्ग वाले टीले के दक्षिण-पश्चिम में लगभग 300 मीटर की दूरी पर कब्रिस्तान स्थित था। यहाँ से शव विसर्जन के 37 उदाहरण मिले हैं। यहाँ अंत्येष्टि संस्कार की तीनों विधियों - पूर्ण समाधीकरण, आंशिक समाधीकरण एवं दाह-संस्कार के साक्ष्य मिले हैं। यहाँ से एक युगल शवाधान भी प्राप्त हुआ है। यहाँ से अंडाकार कब्रें भी प्राप्त हुई हैं, जिससे एक बच्चे की खोपड़ी में 6 छिद्र किए जाने का प्रमाण है। इसे शल्यक्रिया का प्राचीनतम उदाहरण माना जा सकता है।

कालीबंगा के मकान कच्ची ईटों के बने हैं। नगर टीले से अलंकृत ईटों के प्रयोग के प्रमाण मिले हैं। कालीबंगा में कोई स्पष्ट घरेलू या शहरी जल निकास प्रणाली नहीं थी। यहाँ पर भूकंप के सबसे प्राचीनतम साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।[6]

बनवाली

यह स्थल हरियाणा के हिसार जिले में सरस्वती नदी के किनारे स्थित था। इसकी खोज 1974 ई० में आर० एस० विष्ट ने की। यहाँ से मिट्टी का बना हल तथा बढ़िया किस्म का जौ प्राप्त हुआ है। बनवाली में सिंधु सभ्यता की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता जल निकास प्रणाली का अभाव था। यहाँ से प्राक् हड़प्पा, हड़प्पा एवं हड़प्पोत्तर काल के प्रमाण प्राप्त हुए हैं। यहाँ के मकानों के साज-सामान से पता चलता है कि यह समृद्ध लोगों का नगर था। बनवाली के कई मकानों से अग्निवेदियाँ मिली हैं। इनके साथ अर्द्ध वृत्ताकार ढांचे हैं, जिसके आधार पर कुछ विद्वान यहाँ मंदिर होने की संभावना व्यक्त करते हैं।[7] यहाँ से प्राप्त कुछ अवशेष प्रमुख हैं - हल की आकृति (खिलौने के रूप में), तिल, सरसो का ढेर, अच्छे किस्म के जौ, सड़के-नालियों के अवशेष, मनके, मातृदेवी की लघु मृण्मूर्तियाँ, तांबे का बाणाग, मनुश्यों एवं पशुओं की मूर्तियाँ।[8]

धौलावीरा

यह नगर गुजरात के कच्छ जिले के भचाऊ तालुका में खादिर नाम के एक द्वीप, जिसे स्थानीय भाषा में बैठ कहते हैं, के उत्तरी-पश्चिमी कोने पर बसा हुआ एक छोटा-सा गाँव है। 100 हेक्टेयर में बसे धौलावीरा के टीलों की खोज सन् 1967-68 ई० में श्री जे० पी० जोशी ने की। 1990 ई० से भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के आर० एस० विष्ट के निर्देशन में उत्खनन कार्य अभी चल रहा है।

धौला का अर्थ सफेद तथा वीरा का अर्थ कुआँ है। यहाँ के टीले पर एक पुराना कुआँ है, जिसके कारण इसका नाम धौलावीरा पड़ गया। धौलावीरा का नगर आयताकार बना था। इस नगर को तीन भागों - किला, मध्य नगर एवं निचला नगर में विभाजित किया गया था। यह भारत में स्थित सिंधु सभ्यता का दूसरा सबसे बड़ा नगर है। यहाँ के उत्खनन से हड़प्पा संस्कृति के तीन चरणों का पता चला है। यहाँ से प्राप्त कुछ महत्त्वपूर्ण पुरावशेष हैं - घोड़े के अवशेष एवं पशु की छोटी कांस्य आकृति। यहाँ से एक ऐसा अभिलेख प्राप्त हुआ है, जिसके 9 वर्ण हैं और प्रत्येक 37 सेंटीमीटर लंबे और 27 सेंटीमीटर चौड़े हैं और जो दूधिया सफेद पदार्थ के कटे टुकड़ों से अभिलिखित हैं। हड़प्पा सभ्यता का एकमात्र स्टेडियम (क्रीड़ागार) यहीं से प्राप्त हुआ है। इसके अलावा एक नेवले की पत्थर की मूर्ति (37 सेमी०) भी पाई गई है। धौलावीरा के नगर के पश्चिम की ओर स्थित कब्रिस्तान के उत्खनन से कई तरह के शवाधन मिले हैं, जो धौलावीरा की विशिष्ट विशेषता है। यहाँ पॉलिषदार श्वेत पाषाणखंड बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं।[9]

अन्य प्रमुख स्थल

नीसारो

पाकिस्तान के बलूचिस्तान क्षेत्र में स्थित इस स्थान से स्त्रियों की मिट्टी की कुछ ऐसी मूर्तियाँ पाई गई हैं, जिनकी मांग में अब भी सिंदूर भरा हुआ है। आज भी सिंदूर को हिन्दू ही स्त्रियों के सुहाग का प्रतीक माना जाता है।

सुत्कागेण्डोर

दक्षिण बलूचिस्तान में दाष्क नदी के तट पर स्थित इस नगर की खोज 1927 ई० में ऑरेल स्टाइन ने की थी। यह एक बंदरगाह नगर था।

सोत्काकोह

दक्षिणी बलूचिस्तान में शादीकौर नदी के तट पर स्थित है। इस स्थल की खोज 1962 ईद्व में जॉर्ज डेल्स ने की थी।

डाबरकोट

दक्षिणी बलूचिस्तान में स्थित इस स्थल की खोज ऑरेल स्टाइन ने 1928 ईद्व में की।

बालाकोट

बलूचिस्तान के दक्षिण में स्थित इस स्थल का उत्खनन जार्ज एफ० डेल्स ने 1963-76 ई० के दौरान किया था। यह बंदरगाह नगर था। यहाँ का सीप उद्योग प्रसिद्ध था।[10]

कोटिदीजी

सिंधु नदी के बाएं तट पर स्थित इस स्थल की खोज पुराविद् धुर्वे ने 1935 ई० में की। यहाँ से प्राक्-हड़प्पा के प्रमाण मिले हैं।

आमरी

सिंधु नदी के दाएं तट पर स्थित इस स्थल की खोज 1929 ई० में एन० जी० मजूमदार ने की थी। यह पहला ऐसा स्थल था, जहाँ से सबसे पहले प्राक्-हड़प्पा कालीन अवशेष मिले हैं। यहाँ से बारहसिंघा के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

रोपड़

भारत के पंजाब प्रांत में सतलज नदी के बाएं तट पर स्थित इस स्थल का उत्खनन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम 1953-56 ई० के बीच यज्ञदत्त शर्मा ने कराया। इसका आधुनिक नाम रुपनगर है। यहाँ के एक कब्रिस्तान से मनुष्य के साथ पालतू कुत्ते के दफनाने का प्रमाण मिला है।

बाड़ा

रोपड़ जिले में स्थित इस स्थल की खोज 1956 ई० में यज्ञदत्त शर्मा द्वारा की गई।

संघोल

लुधियाना जिले में स्थित इस स्थल की खोज 1968 ई० में एस० एस० तलवार तथा आर० एस० विष्ट द्वारा की गई।

मिताथल

हरियाणा के भिवानी जिले में स्थित इस स्थल की खोज 1968 ई० में सूरजभान ने की।

राखीगढ़ी

हरियाणा के जींद जिले में घग्घर नदी पर स्थित इस स्थल की खोज 1969 ई० में सूरजभान ने की।

कुणाल

हिसार जिले में सरस्वती नदी के किनारे स्थित इस स्थल की खोज 1974 ई० में जे० पी० जोशी और आर० एस० विष्ट ने की।

रंगपुर

अहमदाबाद जिले में भादर नदी पर स्थित इस स्थल की खोज 1954 ई० में एस० आर० राव ने की।

सुरकोटडा

गुजरात के कच्छ जिले में स्थित इस स्थल की खोज 1964 ई० में जे० पी० जोशी ने की। यहाँ दुर्ग और नगर क्षेत्र एक ही रक्षा प्राचीर से घिरे थे। यहाँ से घोड़े के अस्थि पंजर प्राप्त हुए हैं। यहाँ कब्र बनाने के लिए अंडाकार गड्ढ़ा खोदकर उसमें मानव की चुनी हुई हड्यिों से भरे हुए कलश रखे जाते थे। इन अस्थिकलशों को प्राय: मिटी-कंकड़ से ढक दिया जाता था। एक कब्र बड़े आकार की शिला से ढकी हुई मिली है। यह कब्र अभी तक ज्ञात सैन्धव शव विसर्जन परम्परा में सर्वथा नवीन प्रकार की है।

मालवण

सूरत जिले में ताप्ती नदी के मुहाने पर स्थित इस स्थल की खोज 1967 ई० में जे० पी० जोशी तथा आल्विन दम्पत्ति ने की।

भगतराव

यह गुजरात की मुख्य भूमि पर धुर दक्षिण का स्थल है, जो किम सागर संगम पर स्थित है।

रोजदी

यह गुजरात के सौराष्ट्र जिले में स्थित है।

आलमगीरपुर

मेरठ जिले में हिण्डन नदी के तट पर स्थित इस स्थल की खोज 1958 ईद्द में भारत सेवक समाज द्वारा की गई। इसका उत्खनन कार्य 1958 ई. में यज्ञदत्त शर्मा ने कराया।

अम्बाखेड़ा एवं बड़गांव

सहारनपुर जिले में मस्करा नदी के तट पर ये दोनों स्थल स्थित हैं।

गाण्डा

जम्मू में अखनूर तहसील में चिनाब नदी के दाएं तट पर स्थित है। यह सिंधु सभ्यता का सबसे उत्तरी स्थल है। 1982 ई. में जे. पी. जोशी ने इसकी खोज की। यहाँ से प्राक्-हड़प्पा, हड़प्पा एवं हड़प्पोत्तर काल के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

भगवानपुरा

हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले में सरस्वती नदी के दक्षिणी तट पर स्थित इस स्थल से सैन्धव सभ्यता के पतनोन्मुख काल के अवशेष मिले हैं। इसका उत्खनन जे. पी. जोशी द्वारा करवाया गया।

कुन्तासी

गुजरात के राजकोट जिले में स्थित इस स्थल की खुदाई से विकसित तथा उत्तरकालीन सैन्धव संस्कृति प्रकाश में आई है। यह एक बंदरगाह नगर था।

अल्लाहदीनों

सिंधु तथा अरब सागर के संगम से करीब 16 किलोमीटर उत्तर-पूर्व तथा करांची से 40 किलोमीटर पूर्व में स्थित यह एक बंदरगाह नगर था।[11]

सन्दर्भ

1. एस. के. पाण्डेय, प्राचीन भारत, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद, 2014, पृ. 61-62
2. वही, पृ. 62-63
3. वही, पृ. 63
4. वही, पृ. 63
5. किरण भारतीय इतिहास, किरण कम्पटीशन टाइम्स, इलाहाबाद, नागेन्द्र प्रताप सिंह, 2018, पृ. 9
6. एस. के. पाण्डेय, प्राचीन भारत, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद, 2014, पृ. 64
7. वही, पृ. 64
8. किरण भारतीय इतिहास, किरण कम्पटीशन टाइम्स, इलाहाबाद, नागेन्द्र प्रताप सिंह, 2018, पृ. 9
9. एस. के. पाण्डेय, प्राचीन भारत, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद, 2014, पृ. 64-65
10. वही, पृ. 65
11. वही, पृ. 66-67

राजनीतिक यथार्थवाद और व्यवहारवाद

डॉ० आलोक कुमार

एम०ए० (राजनीति विज्ञान), पी०एच०-डी०, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध पत्र का सार

राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत राजनीतिक यथार्थवाद को वैज्ञानिक रूप में स्थापित करने का प्रयास व्यवहारवादी क्रांति के माध्यम से हुआ है। ऐसे राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में राजनीतिक यथार्थवाद का इतिहास बहुत ही पुराना है। भारतीय राजनीतिक चिन्तन में कौटिल्य के राजनीतिक विचारो में राजनीतिक यथार्थवाद को देखा जा सकता है अथवा पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन में मैकियावेली से ही राजनीतिक यथार्थवाद की वास्तविक शुरूआत हो जाती है। परम्परागत राजनीति विज्ञान के विरुद्ध एक लम्बे समय से पनप रहे असंतोष के कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राजनीति विज्ञान का जो नया स्वरूप उभर कर सामने आया, उसे ही आधुनिक राजनीति विज्ञान की संज्ञा दी जाती है। परम्परागत राजनीतिक-वैज्ञानिकों की यह धारणा की मानव जीवन के राजनीतिक पक्ष की समझदारी के लिए राज्य एवं सरकार का औपचारिक अध्ययन ही पर्याप्त है और इसीलिए सामाजिक पर्यावरण के प्रति उनके द्वारा बरती जाने वाली उपेक्षा की भावना, साथ ही जनतंत्र के प्रति अत्यधिक अशक्ति तथा उसकी स्थापना को ही सर्वप्रमुख राजनीतिक आदर्श मान बैठने के कारण राजनीतिक विकास के प्रति उनमें पायी जाने वाली अति आशावादी प्रवृत्ति दो विश्वयुद्धों के बीच वास्तविकता के दुर्ग से टकराकर चूर-चूर हो गई। इसी अवधि में वूड्रो विल्सन, जॉन डेवी, चार्ल्स बियर्ड, चार्ल्स मेरियन एवं आर्थर बेंटले जैसे परा-अनुभववादियों (Trans-Empiricist) द्वारा परम्परागत राजनीतिक-वैज्ञानिकों के विरुद्ध व्यक्त की जाने वाली प्रतिक्रिया, उनपर आत्मपरकता का दोशारोपण तथा राजनीतिक अध्ययनों में सत्यापन एवं प्रमाणिकता पर बल दिए जाने की अपील को गम्भीरता से लिया जाने लगा। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् राजनीतिक अध्ययन के क्षेत्र में आधुनिक राजनीति विज्ञान के रूप में एक सर्वथा नवीन दृष्टिकोण की नींव पड़ी। इसे व्यवहारवादी क्रांति के नाम से भी जाना जाता है, जिसने राजनीति विज्ञान में राजीनतिक यथार्थवाद को मौलिक रूप में स्थापित कर दिया है।

मूल शब्द

उपागम, अनुभववाद, व्यवहारवाद, परमाणीकरण, आगमनात्मक पद्धति, अनुभवात्मक पद्धति, सत्यापन, तकनीक, मूल्य-निरपेक्षता तथा तथ्यपकरता आदि।

प्रस्तावना

आनुभाविक उपागम आधुनिक राजनीतिक यथार्थ पर आधारित एवं वैज्ञानिक है। व्यवहारवादियों के द्वारा राजनीतिक यथार्थवाद के परिप्रेक्ष्य में इस उपागम का नामकरण किया गया अर्थात् व्यवहारवादी इसे आधुनिक यथार्थवादी उपागम भी कहते हैं। इसमें राजनीतिक समस्याओं का अध्ययन दिखने वाले व्यवहार के माध्यम से किया जाता है। यह 'क्या होना चाहिए' से सम्बन्धित न होकर 'क्या से है?' से तथा 'क्यों से है?' सम्बन्धित है। यह उपागम इस मान्यता पर आधारित है कि अनुभव से परे ज्ञान का आधार नहीं होता है। ऐसे इसके प्रयोगकर्त्ता अरस्तू, बेन्थम और जे. एस. मिल को माना जाता है। इस पद्धति के समर्थकों में रॉबर्ट ए. डाल, ट्रूमैन, ईस्टन, लॉसवेल प्रमुख है, रसेल, बर्क और प्राइस ने भी इस अध्ययन पद्धति का कुछ अधिक ही प्रयोग किया है।[1]

अनुभववाद का समानार्थक व्यवहारवाद प्रमुख रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद परम्परागत राजनीति विज्ञान के प्रभाववादी अध्ययन एवं शोध-प्रणालियों के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ और कालान्तर में आधुनिक राजनीति विज्ञान का पर्याय-सा

बन गया है। इसकी आधारभूत मान्यता यह है कि मनुष्य भावनाओं का पुंज होता है; उसकी अपनी मनोवृत्तियाँ, अभिलाषाएँ एवं सम्पति होती है और उसका राजनीतिक व्यवहार उसकी मानसिक प्रवृत्तियों से नियंत्रित होता है। उन प्रवृत्तियों के सामने वैधानिक प्रावधान एवं मूल्य व्यवस्थाएँ बहुत हद तक निष्प्रभावी रहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि व्यवहारवाद व्यक्ति और समूहों के राजनीतिक व्यवहार को अधिक महत्वपूर्ण मानता है और ऐतिहासिक महत्त्व की घटनाओं, संस्थाओं, विधानों आदि के महत्त्व को गौण मानता है।

रॉबर्ट ए. डाल ने अपने निबन्ध "The Behavioural Approach in Political Science" में व्यवहारवादी उपागम को एक ऐसा उपागम माना है "जिसकी सहायता से राजनीति विज्ञान में आनुभविक प्रस्थापनाओं और कुछ सीमा तक व्यवस्थित सिद्धान्तों का विकास किया जा सके, जिनका परीक्षण राजनीतिक घटनाओं के सन्दर्भ में अधिक निकट से, अधिक प्रत्यक्ष और अधिक कठोरता से नियंत्रित प्रेक्षणों के द्वारा किया जा सके।"[2] उसके अनुसार व्यवहारवाद एक ऐसा आन्दोलन है जिसका उद्देश्य "राजनीतिक अध्ययन को आधुनिक मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र में विकसित सिद्धान्तों, पद्धतियों, खोजों और दृष्टिकोणों के निकट सम्पर्क में लाना है" और एक ऐसा प्रयत्न है जो "राजनीति विज्ञान के आनुभाविक तत्वों को अधिक वैज्ञानिकता प्रदान करता है।" इस हेतु व्यवहारवाद शासन सम्बन्धी सभी घटनाओं को मनुष्यों के एक ऐसे व्यवहार के रूप में प्रस्तुत करता है जिसका पर्यवेक्षण कर लिया गया हो अथवा जिसका पर्यवेक्षण किया जा सकता हो।

डेविड ईस्टन (Political System) ने भी इसे एक सुधारात्मक आन्दोलन के रूप में स्वीकार किया है, साथ ही साथ इसे एक विशेष मन:स्थिति मात्र ही नहीं, बल्कि उससे कुछ अधिक माना है।[3] उसके अनुसार व्यवहारवादी अध्ययन राजनीतिक मानव पर अपना समस्त ध्यान केन्द्रित करता है। परम्परावादी राजनीतिशास्त्री संस्थाओं को ही सब कुछ मानते रहे और उन्हें उस दृष्टि से देखते रहे मानो वे उनका निर्माण करनेवाले व्यक्तियों से भिन्न और स्वतंत्र इकाईयाँ हो। परन्तु व्यवहारवादी संस्थाओं को मानवीय व्यवहार की प्रतिकृत्तियाँ मात्र मानते हैं। अत: राजनीतिक व्यवहार, अर्थात् शासन-प्रक्रिया से सम्बन्धित मनुष्यों एवं समूहों की वे सभी क्रियाओं और अन्त:क्रियाओं का यथार्थवादी विश्लेषण ही राजनीतिक अध्ययनों का साध्य होना चाहिए। हेंज यूलाओ के अनुसार, "राजनीतिक व्यवहारवाद वस्तुत: अनुभववाद है जिसका मूल उद्देश्य मनुष्य के राजनीतिक व्यवहारों की परिस्थितियों, शर्त्तों तथा परिणामों का पता लगाना है।"[4]

व्यवहारवाद का यह भी आग्रह है कि राजनीतिक अध्ययनों की विषय-सामग्री सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध हों, इनके विश्लेषण के लिए अधिकाधिक वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग किया जाए तथा इसके आधार पर कुछ ऐसी सामान्य प्रतिस्थापनाएँ विकसित की जाएँ जिन्हें अन्तत: मानव व्यवहार से सम्बन्धित सिद्धान्तों का रूप दिया जा सके। इनके आधार पर न केवल मानवीय व्यवहार को आसानी से समझा जा सकता है, बल्कि उस सम्बन्ध में अर्थपूर्ण भविष्यवाणियाँ भी की जा सकती है। इस प्रकार व्यवहारवादी दृष्टिकोण निश्चित रूप से राजनीति विज्ञान को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने अर्थात् राजनीतिक यथार्थवाद का एक अभिनव प्रयास है।

डेविड ईस्टन ने, जो व्यवहारवादी आन्दोलन के अग्रदूत रहे हैं, व्यवहारवाद की बौद्धिक आधारशिला (Intellectual Foundation Stones) के रूप में इसकी आठ विशेषताओं का उल्लेख किया है। वे निम्नलिखित है:-

1. नियमितता[5] (Regularities): व्यवहारवाद के अनुसार मानव व्यवहार में सामान्य तत्व ढूँढे जा सकते हैं। कुछ निश्चित परिस्थितियों में मनुष्य निश्चित ढंग का व्यवहार करता है। किसी व्यवहार को बार-बार दोहराया जाना उसकी नियमितता का द्योतक है। व्यवहार की ऐसी नियमितताओं के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों के प्रकाश में राजनीतिक घटनाओं को आसानी से समझा जा सकता है एवं भविष्यवाणी की जा सकती है।

2. सत्यान (Verification): व्यवहारवादियों का यह मानना है कि केवल वैसे ही तथ्यों को राजनीतिक अध्ययनों में शामिल किया जाना चाहिए जो पर्यवेक्षणीय हों और जिनके सम्बन्ध में प्राप्त निष्कर्ष की बारम्बार जाँच की प्रक्रिया द्वारा सत्यापित किया जा सके।

3. तकनीक[6] (Techniques): व्यवहारवादी अध्ययन-सामग्री का संग्रह करने और उसकी व्याख्या करने में सही तकनीकों के प्रयोग को काफी महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार सही तकनीक एवं उपकरणों का प्रयोग कर ही सुसंगत, विश्वसनीय एवं तुलनात्मक अध्ययन-सामग्री जुटाई जा सकती है। इस हेतु वे बहुचर विश्लेषण, प्रतिदर्श सर्वेक्षण, गणितीय प्रतिरूप आदि जैसे परिष्कृत उपकरणों के प्रयोग का सुझाव देते हैं।

4. परिमाणीकरण (Quantification): व्यवहारवादियों के अनुसार अध्ययन-सामग्री की छानबीन के लिए जबतक अस्पष्ट गुणात्मक निर्णयों की जगह परिमापन एवं परिमाणात्मक निर्णयों का सहारा नहीं लिया जाता, तब तक राजनीतिक जीवन के बारे में सुनिश्चित और सही ज्ञान प्राप्त करना असम्भव होगा।[7]

5. मूल्य (Values): व्यवहारवादी मूल्य एवं तथ्य में स्पष्ट अन्तर किए जाने पर जोर देते हैं। दोनों भिन्न वस्तु हैं और राजनीतिक विश्लेषण की दृष्टि से भी उन्हें भिन्न ही माना जाना चाहिए। मूल्य आत्मपरक होते हैं, इसीलिए उनकी सत्यता अथवा असत्यता को वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस कारण वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल का मूल्य-निरपेक्ष (Value-free) होना अत्यावश्यक है। पुन: मूल्यों का सम्बन्ध नैतिक प्रश्नों से होता है, जिनका आनुभविक विश्लेषण में कोई स्थान नहीं होता है।[8]

6. व्यवस्थापन (Systematization): इससे व्यवहारवादियों का अभिप्राय है कि राजनीतिक अध्ययनों को व्यवस्थित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, राजनीतिक अध्ययनों को सिद्धान्त-अभिमुख एवं सिद्धान्त-निर्देशित होना चाहिए, क्योंकि शोध यदि सिद्धान्त से अनुप्रमाणित नहीं है, तो वह महत्त्वहीन है और सिद्धान्त यदि आधार-सामग्री से समर्थित नहीं है तो वह निरर्थक है। अत: किसी भी सार्थक राजनीतिक अध्ययन का अन्तिम ध्येय आधार-सामग्री सुव्यवस्थित एवं सामान्यीकृत कर सिद्धान्त-निर्माण का प्रयास करना होता है। ये सिद्धान्त निम्नस्तरीय, मध्यस्तरीय अथवा विस्तृत हो सकते हैं।

7. शुद्ध विज्ञान (Pure Science): इससे अभिप्राय है सैद्धान्तिक ज्ञान को जीवन की समस्याओं से निपटने के लिए उपयोग में लाया जाना। व्यवहारवाद की मान्यता है कि सर्वप्रथम राजनीतिक व्यवहार का तार्किक विश्लेषण किया जाना चाहिए, तत्पश्चात् उससे अर्जित ज्ञान को समाज की व्यावहारिक समस्याओं के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। ज्ञान का प्रयोग वैज्ञानिक उद्यम का उतना ही महत्वपूर्ण भाग है, जितना कि सिद्धान्त-बोध। इस प्रकार व्यवहारवाद राजनीति को विशुद्ध विज्ञान का रूप देना चाहता है।

8. समायोजन (Integration): व्यवहारवाद अन्तर अनुशासनात्मक दृष्टिकोण अपनाये जाने पर बल देता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य की विभिन्न गतिविधियों के बीच सीमा-रेखा खींची जा सकती है, किन्तु कोई भी गतिविधि ऐसी नहीं होती जिसे सम्पूर्ण जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखे बिना ठीक से समझा जा सके। यदि राजनीतिक मनुष्य को आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक मनुष्य से अलग करके समझने का प्रयास किया जाता है, तो वैसी स्थिति में राजनीतिक व्यवहार को यथार्थ रूप में समझना सम्भव नहीं होगी।[9]

इस प्रकार नि:संदेह व्यवहारवाद राजनीति विज्ञान को उसकी तंद्रा से जगाने, उसकी परिधि को और अधिक विस्तृत करने तथा उसे वास्तविकता के धरातल पर लाने की दिशा में एक सराहनीय प्रयास है। व्यावहारवाद के पूर्व में भी राजनीतिक यथार्थवाद की उपस्थिति राजनीतिक चिन्तन में देखी जा सकती है। भारतीय राजनीतिक चिन्तन में कौटिल्य के विचारों में राजनीतिक यथार्थवाद प्रबल रूप में दृष्टिगोचर होता है। कौटिल्य के द्वारा राजतंत्रात्मक व्यवस्था में प्रजापालन तथा प्रजारक्षण, दोनों यथार्थवादी मान्यताओं को प्रतिस्थापित करता है। इतना ही नहीं, कौटिल्य ने तो सप्तांग सिद्धान्त तथा शड्गुण सिद्धान्त में राजनीतिक यथार्थवाद का प्रबल परिचय दिया है। कौटिल्य का मंडल सिद्धान्त वैदेशिक नीति तथा कूटनीति के यथार्थवादी मान्यताओं पर आधारित है। दूसरी ओ, पाश्चात्य राजनीति चिन्तन में मैकियावली को राजनीतिक यथार्थवाद का प्रवक्ता कहा जा सकता है। मैकियावली की रचनाओं में यथार्थवाद को आधार बनाया गया है। मैकियावली का राजनय सिद्धान्त राजनीतिक यथार्थवाद का वास्तविक परिचय प्रस्तुत करता है। राष्ट्र-राज्य की अवधारणा तथा राजतंत्र के समर्थन के पीछे मैकियावली राजनीतिक यथार्थवाद से प्रबल रूप में प्रभावित दिखता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य राजनीति विज्ञान के अन्तर्गत राजनीतिक यथार्थवाद के आगमन, स्वरूप एवं प्रयोग को स्पष्ट करना है। इतना ही नहीं, राजनीतिक यथार्थवाद में व्यवहारवाद के योगदान को भी स्पष्ट करना प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध पत्र का शीर्षक "राजनीतिक यथार्थवाद और व्यवहारवाद" है। वस्तुत: द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद व्यवहारवाद ने स्पष्ट रूप में राजनीतिक यथार्थवाद और विज्ञानवाद को स्थापित करने का प्रयास किया। राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में भी राजनीतिक यथार्थवाद का परिचय मिलता है। भारतीय राजनीतिक चिन्तन तथा पश्चात्य राजनीतिक चिन्तन, दोनों में भी

राजनीतिक यथार्थवाद की शुरूआत हुई, जो टॉम्स हॉब्स के द्वारा आगे बढ़ाया गया। इसके बाद भी व्यवहारवाद को ही राजनीतिक यथार्थवाद, अनुभववाद, विज्ञानवाद सदृश अवधारणाओं की शुरूआत मानना उचित होगा।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन में कई द्वितीयक स्त्रोतों का सहयोग लिया गया है तथा कई साहित्य सर्वेक्षण भी सम्पन्न हुए है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों का उल्लेख अनिवार्य प्रतीत होता है, जिसमें राजनीतिक यथार्थवाद और व्यवहारवाद का विशद् अध्ययन किया गया है:

1. राजनीतिक सिद्धान्त, डॉ० अशोक कुमार, नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, पटना वर्ष 2007
2. राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त, डॉ० इकबाल नारायण, रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा, 1991
3. A Study in the History of Political thought, K.K. Kulshrestha, Ratan Publication, Agra-1998
4. The Behavioural Approach in Political Science, Robert A Dahl, Doubvry Press Belmont, 1971
5. राजनीति विज्ञान, एम०डी० अरोड़ा, द मिग्रो हिल, नई दिल्ली-2011

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल के लेखन में ऐतिहासिक पद्धति तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्राथमिक रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजनीति विज्ञान में राजनीतिक यथार्थवाद मैकियावली से प्रारम्भ होकर व्यवहारवादियों के द्वारा मजबूत रूप में स्थापित हुआ है। राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में विशेषत: राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में राजनीतिक यथार्थवाद का इतिहास अरस्तू से भी जोड़ दिया जाता है। कहना नहीं होगा कि राजनीति विज्ञान के जनक के रूप में अरस्तू को स्वीकार करने के पीछे उनकी राजनीतिक यथार्थवादी विचारों का होना भी है। भारतीय राजनीतिक चिन्तन में कौटिल्य राजनीतिक यथार्थवाद का प्रथम प्रवक्ता था, जो अरस्तू का ही समकालीन माना जाता है। राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद व्यवहारवाद एक क्रान्ति के रूप में आया और राजनीति विज्ञान की प्रकृति, विषय-क्षेत्र एवं अध्ययन के दृष्टिकोण को व्यापक रूप से प्रभावित किया। व्यवहारवाद राजनीति विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञानों के समीप लाकर खड़ा करना चाहता था, यह बात सही भी है कि व्यवहारवाद ने राजनीति विज्ञान को कुछ हद तक प्रासंगिक भी बनाया; लेकिन व्यवहारवाद ने कुछ अलाभकारी एवं अनुपयोगी भूमिका भी निभाई, जो राजनीति विज्ञान के विकास के लिए अनुपयुक्त थी। व्यवहारवाद की इन सीमाओं को दूर करने तथा राजनीति विज्ञान को उपयोगी एवं प्रासंगिक बनाने के लिए ही उत्तर-व्यवहारवाद, 1960 के दशक में आया।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. डॉ० अशोक कुमार, राजनीतिक सिद्धान्त, आलोक प्रकाशन, पटना, पृष्ठ-37, 2007
2. डॉ० मदोदर रावत, राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त, रावत प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ-79
3. तथैव, पृष्ठ-80
4. तथैव, पृष्ठ-81
5. डॉ० अशोक कुमार, राजनीतिक सिद्धान्त, आलोक प्रकाशन, पटना, पृष्ठ-63, 2007
6. तथैव, पृष्ठ-64
7. तथैव, पृष्ठ-64
8. तथैव, पृष्ठ-66
9. तथैव, पृष्ठ-67

भारत-नेपाल सम्बन्ध तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति व कूटनीतिः एक अध्ययन

डॉ० अमिताभ त्रिवेदी

एम०ए० (राजनीति विज्ञान), पी०यू०, पटना, पी०एच०-डी, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

सार तत्त्व

समसामयिक लोकतांत्रिक देशों में भारत एक महान लोकतांत्रिक गणराज्य है, जो धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी तथा लोककल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त को समन्वित रूप में स्वीकार करता है। भारत विश्व राजनीति के साथ-साथ दक्षिण एशियाई राजनीति को सकारात्मक रूप में प्रभावित करता रहा है। भारत की वैदेशिक नीति प्राचीन समय से ही बसुधैव कुटूम्बकम पर आधारित रहा है, जिसका समर्थक गुजराल सिद्धान्त (1997), पड़ोसी नीति (2005) तथा नेवरहूड फस्ट (2014) द्वारा किया जाता रहा है। दूसरी ओर भारत का एक पड़ोसी देश नेपाल है, जो उत्तर-पूर्व में स्थित है। नेपाल दुनिया का भू-आवृत्ति तथा हिमालय की गोद में बसा हुआ एक छोटा सा देश है। यह देश भारत और चीन के बीच अवस्थित होने के कारण एक बफर स्टेट का कार्य करता है।

मूल शब्दः लोकतंत्र, गणतंत्र, कूटनीति, विदेश नीति, राजतंत्र, बफर स्टेट, माओवाद, नक्सलवाद, वामपंथ, बसुधैव कुटूम्बकम।

प्रस्तावना

भारत तथा नेपाल के बीच का सम्बन्ध ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक तथा कूटनीतिक दृष्टिकोण से महत्वूपर्ण है। वर्ष 1962 के चीन आक्रमण के बाद भारत के लिए नेपाल के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखना और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। वस्तुतः भारत के उत्तर-पूर्व में स्थित नेपाल सामरिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आज भारत की एक बहुत बड़ी सीमा नेपाल की सुरक्षा पर निर्भर करती है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने 17 मार्च, 1950 को कहा था, “जहाँ तक कुछ एशियाई गतिविधियों का सम्बन्ध है, भारत तथा नेपाल के बीच किसी प्रकार का सैन्य समझौता नहीं है, लेकिन नेपाल पर किए जाने वाले किसी भी आक्रमण को भारत सहन नहीं करत सकता।” अक्टूबर, 1956 में भारतीय राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी नेपाल यात्रा के दौरान भी लगभग नेहरू के समान ही कहा था कि नेपाल की शांति और सुरक्षा के लिए कोई खतरा, भारतीय शांति और सुरक्षा के लिए खतरा है। नेपाल के मित्र हमारे मित्र हैं, नेपाल के शत्रु हमारे शत्रु हैं। स्पष्ट स्वतंत्र भारत शुरू से ही नेपाल में शांति और सुव्यवस्था का पक्षधर रहा है।

नेपाल वर्ष 1947 में संविधान निर्माण की बात सोंची तथा भारत से एक वरिष्ठ राजनीतिज्ञ सुझावकर्त्ता की माँग किया। भारत के एक वरिष्ठ राजनीति श्री प्रकाश को नेपाल भेजा गया, जिनके सुझाव पर नेपाल में एक लोकतांत्रिक संविधान बना। हालांकि उसे राजशाही ने स्वीकार नहीं किया। भारत के द्वारा 1949 में नेपाल के पास महत्वपूर्ण सन्धि का प्रस्ताव रखा गया, परन्तु नेपाल सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया। तिब्बत में चीन की गतिविधियाँ बढ़ने से नेपाल की सुरक्षा के बारे में भारत की चिंता बढ़ गई और 17 मार्च, 1950 को भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने संसद में कहा कि हम नेपाल पर किसी प्रकार के संभावित आक्रमण का जबाव देंगे। 30 जुलाई, 1950 को भारत और नेपाल के बीच एक सन्धि हुई। सन्धि का मुख्य उद्देश्य आपसी विश्वास को बढ़ाना था। इसी समय राणाशाही से मुक्ति के लिए नेपाल में विरोध शुरू हो गया। 16 नवम्बर, 1950 को नेपाल के राजा त्रिभूवन ने राजपरिवार के अपने 14 सदस्यों के साथ राजमहल को परित्याग कर भारत में शरण लिया। भारत के सहयोग से राणाशाही का अन्त हुआ। राणाशाही की समाप्ति के बाद महाराणा नेपाल के वास्तविक शासक बने तथा वहाँ लोकतंत्र की स्थापना हुई।

भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में नेपाल की सदस्यता की वकालत किया, जिसके प्रयास से 1955 में नेपाल, संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना।[1] 1955-56 के बीच भारत एवं नेपाल के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम करने के लिए दोनों देशों के राष्ट्राध्यक्षों के द्वारा एक-दूसरे के देश में यात्रा की गई तथा मित्रता को बढ़ाने की दिशा में प्रयास करने की बात कही गई। दूसरी ओर 1955 से ही चीन ने नेपाल में अपनी सक्रियता का परिचय देना शुरू किया। 1956 के वर्ष में नेपाली प्रधानमंत्री ने चीन की यात्रा किया, तो जनवरी, 1957 में चीनी प्रधानमंत्री ने नेपाल की यात्रा किया। चीन ने नेपाल को आर्थिक सहयोग प्रदान करने की बात कही। 1959 में नेपाली प्रधानमंत्री ने पुनः चीन की यात्रा किया तथा चीनी प्रधानमंत्री को नेपाल की यात्रा हेतु आमंत्रित किया। स्पष्टतः भारत के साथ कायम दोस्ती को अनदेखा करते हुए नेपाल, चीन की ओर आकर्षित होने लगा। नेपाल की विदेश नीति के इस बदलाव को देखते हुए, भारत का चिन्तित होना आवश्यक था। नेपाली महाराजा महेन्द्र ने काठमाण्डु ल्हासा मार्ग बनाने के लिए चीन के साथ समझौता कर लिया, जिसका भारत ने विरोध किया। 1962 में चीन के द्वारा भारत पर आक्रमण कर दिया गया, जिसमें नेपाल तटस्थ रहा। स्पष्टतः 1956 से 1962 तक भारतीय दृष्टिकोण नेपाल के प्रति लचीला था, तब भी नेपाल भारत की ओर कम आकर्षित हुआ। 1962 से 1977 तक नेपाल तथा भारत के बीच के सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाने की दिशा में कई प्रयास किए गए।

भारत तथा नेपाल के बीच का सम्बन्ध 1977 के बाद व्यापक राजनीतिक, कूटनीतिक एवं सामरिक महत्त्व रखता है। मार्च, 1978 में दोनों देशों के बीच दा महत्वपूर्ण सन्धियाँ हुई, जिसके माध्यम से विनिर्मित लगभग 60 वस्तुओं पर से तटकर हटा लिया गया। इतना ही नहीं, भारत ने नेपाल को 16 आवश्यक वस्तुएँ देते रहने का दायित्त्व लिया। भारत के द्वारा नेपाल को अनेक परियोजनाओं में मदद प्रदान की गई, जिसमें देवीघाट, त्रिशुल, कर्नाली, पंचेश्वर जल-विद्युत योजनाएँ, चक्र नहर परियोजना, कोशी और गंडक परियोजना आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल में संचालित हो रहे त्रिभुवन गणपथ, त्रिभूवन हवाई अड्डा, काठमाण्डू-रक्सौल टेलीफोन संयंत्र वीरगंज, हतौदा रेल निर्माण जैसी परियोजनाओं में भी भारत ने नेपाल को सहायता दिया। स्पष्टतः 1977-80 के बीच भारत, नेपाल से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के दिशा में कार्य करता रहा।

भारत-नेपाल सम्बन्ध वर्ष 1980 से वर्तमान समय तक उतार-चढ़ाव का रहा है। 1985 में नेपाल नरेश ने भारत की यात्रा किया तथा दोनों देशों के बीच पारगमन सन्धि को 1989 तक बढ़ा दिया गया। 1980-1988 तक भारत तथा नेपाल के बीच लगभग सामान्य सम्बन्ध रहा। 1989 में जब भारत-नेपाल के बीच व्यापार तथा पारगमन सन्धि पुनः आगे नहीं बढ़ाया गया, तो दोनों देशों के बीच का मधुर सम्बन्ध नकारात्मक रूप में प्रभावी होने लगा। अप्रैल-मई, 1991 में नेपाल की राजनीतिक व्यवस्था में हो रहे व्यापक लोकतांत्रिकरण का भारत ने समर्थन किया तथा उसे सहयोग करने की बात भी कहा।[2] 5-10 दिसम्बर, 1991 तक नेपाली प्रधानमंत्री गिरिजा प्रसाद कोईराला ने भारत की यात्रा किया। कोईराला को भारत यात्रा से दोनों देशों के सम्बन्धों को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण आधार मिला। अप्रैल, 1993 में नई व्यापार व्यवस्था के अन्तर्गत नेपाली वस्तुओं को बिना सीमा शुल्क के भारत में प्रवेश कराने की बात की गई तथा द्विपक्षीय व्यापार समझौता को आगे बढ़ाने पर भी विश्वास जताया गया। भारतीय उपराष्ट्रपति के.आर. नारायणन के निमंत्रण पर नेपाल के युवराज दीपेन्द्र वीर विक्रम साहदेव ने 1994 में अपनी पहली सरकारी यात्रा भारत के लिए किया। 7 फरवरी, 1995 को नेपाली प्रधानमंत्री श्री माधव कुमार ने भारत की पाँच दिवसीय यात्रा की।[3] इस यात्रा के दौरान 1950 में की गई भारत-नेपाल सन्धि में संशोधन करने की माँग की गई। 12 फरवरी, 1996 से 17 फरवरी, 1996 तक नेपाली प्रधानमंत्री शेर बहादुर देउबा ने भारत की यात्रा किया, जिस दौरान महाकाली बेसिन परियोजना टनकपुर बाँध से नेपाल को बिजली और पानी देने सम्बन्धी प्रस्ताव पर भारत ने सहमति प्रदान कर दिया। भारतीय प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल उच्चस्तरीय प्रतिनधिमण्डल के साथ 5-7 फरवरी, 1997 को नेपाल की यात्रा पर रहे। इस दौरान दोनों देशों के बीच व्यापार समझौता हुआ तथा नागरिक उड्डयन के क्षेत्र में भी एक सहमति पर हस्ताक्षर हुआ। गुजराल की नेपाल यात्रा ने नेपाल की एक बड़ी उपलब्धि यह रही कि उसने बांग्लादेश से अपने देश में जाने के लिए 61 कि.मी. के पारगमन मार्ग की अनुमति भारत से प्राप्त कर लिया। मई, 1998 में के.आर. नारायणन ने राष्ट्रपति के रूप में तीन दिवसीय यात्रा पर नेपाल गए।[4] दूसरी ओर 26 जनवरी, 1999 को नेपाली महाराजाधिराज ने भारतीय गणतंत्र दिवस के अवसर पर मुख्य अतिथि की कुर्सी पर बिराजमान हुए।[5] स्पष्टतः 1980 से लेकर 2000 तक का भारत नेपाल सम्बन्ध सामान्य और मधुर ही रहा। भारतीय विदेश मंत्री यशवंत सिंह ने अगस्त, 2001 में नेपाल की सद्भावना यात्रा किया तथा द्विपक्षीय व्यापार सम्बन्धी समझौते पर अधिकाधिक जोर दिया। मार्च, 2010 में नेपाल के प्रधानमंत्री शेरबहादुर देउबा ने भारत की यात्रा की, जिसमें व्यापार में पारगमन सन्धि पर हस्ताक्षर करके उसे 7 मार्च, 2007 के लिए प्रभावी बनाया गया अर्थात् नवीनीकरण की गई।[6] 1 फरवरी, 2005 को नेपाल में राजशाही के द्वारा शेरबहादुर देउबा की सरकार को बर्खास्त कर दिया गया, जिससे वहाँ राजनीतिक संकट उत्पन्न

हो गया। नेपाल में इस आपातकाल के माध्यम से संचार माध्यमों पर कठोर नियंत्रण लगा दिया गया, हालाँकि अन्तर्राष्ट्रीय दबाव में 7 फरवरी, 2005 तक देश का विदेश से संचार आंशिक रूप में बहाल कर दी गई। नेपाल में आपातकाल की समाप्ति तथा लोकतंत्र की बहाली के लिए बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय दबाव को देखकर नेपाली महाराजा ज्ञानेन्द्र ने 21 अप्रैल, 2006 को राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में जनता को सत्ता सौंपने की घोषणा किया तथा आम चुनाव कराने की बात कही।[7] यह उल्लेखनीय है कि लोकतंत्र की बहाली के लिए भारतीय प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने अप्रैल, 2006 में कर्ण सिंह को विशेष शांति दूत बनाकर नेपाल भेजा था। 25 अप्रैल, 2006 को नेपाल में संसद की बहाली की गई तथा 30 अप्रैल, 2006 को गिरिजा प्रसाद कोईराला ने प्रधानमंत्री पथ की शपथ लिया।[8] इसके साथ ही नेपाल में लोकतंत्र स्थापित हुआ। जून, 2006 में माओवादी गुट भी नेपाल की राजनीतिक व्यवस्था का अंग बन गया तथा नेपाली विधायिका ने एक संविधान बनाने की बात कही, जिसमें लोकतांत्रिक मान्यताओं को अधिकाधिक महत्त्व प्रदान किया गया। माओवादियों ने तो राजा के पद को समाप्त करने की बात कही है। नेपाली सत्ता पर माओवाद का बढ़ते हुए बर्चस्व को देखकर भारत का चिन्तित होना स्वाभाविक है, क्योंकि भारतीय राज्य बिहार में नक्सलवादी और माओवादी गतिविधियाँ इससे अत्यधिक उत्साहित हो सकती है। नेपाली राजनीतिक व्यवस्था में मधेशियों (वैसे नेपाली लोग, जो भारतीय मूल के हैं) की अल्प भूमिका को लेकर फरवरी, 2007 के शुरू में टकराव उपस्थित हो गई। 7 फरवरी, 2007 को तो पुलिस फायरिंग में लगभग दर्जन भर मधेशी मारे गए।[9] नेपाल सरकार के द्वारा मधेशी समाज के खिलाफ की जा रही कार्यवाही के कारण लगभग दस हजार मधेशी भारत में प्रवेश कर गए। इससे भारत सरकार का नाखुश होना स्वाभाविक था। भारत सरकार ने नेपाल सरकार को शांतिपूर्ण ढंग से मधेशी समस्या का समाधान की बात कहीं, तो संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी नेपाल से मधेशी समस्या का समाधान की बात कही। नेपाली प्रधानमंत्री गिरिजा कोईराला राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में संविधान में संशोधन करने का फैसला किया तथा मधेशियों को समान अधिकार देने की बात कही। इसके बाद भी इन देशों के बीच सामानय स्थिति रही। स्पष्टत: 2000 से लेकर वर्ष 2014 तक भारत-नेपाल का सम्बन्ध लगभग सामान्य और मधुर ही कहा जाएगा।

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भारत में वर्ष 2014 में सरकार गठित हुई। मोदी ने भी गुजराल डॉक्टरीन, 1997 तथा पड़ोसी नीति, 2005 को महत्वपूर्ण मानते हुए अपने पड़ोसी देशों को महत्व प्रदान किया है। मोदी के लिए भारत की पड़ोसी नीति में नेपाल और भूटान का सबसे अधिक महत्व रहा है। नरेन्द्र मोदी ने तो 'नेबरहुड फर्स्ट' की नीति को महत्व दिया है। प्रधानमंत्री बनने के बाद नरेन्द्र मोदी की पहली नेपाल यात्रा 3-4 अगस्त, 2014 को सम्पन्न हुई,[10] जिसमें दोनों देशों के बीच अधिक मधूर सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया गया। जब वर्ष 2015 में नेपाल में भूकम्प आया तो भारत की NDRF ने वहाँ सराहनीय कार्य एवं सहयोग किया। यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 2015 में मधेशियों के लेकर नेपाल सरकार का रूख नकारात्मक भले ही था, लेकिन भारत सरकार ने नेपाल को सहयोग किया। फरवरी, 2018 में विदेश मंत्री सुषमा स्वराज की नेपाल यात्रा से दोनों देशों के सम्बन्ध को बेहतर बढ़ाने पर बल दिया गया तथा रक्सौल-कठमांडु रेल परियोजना को जमीन पर उतारने हेतु सर्वे की बात की गई। नेपाली प्रधानमंत्री की अप्रैल, 2018 में भारत यात्रा सम्पन्न हुई। उनकी यात्रा से दोनों देशों के बीच बेहतर सम्बन्ध पर बल दिया गया।[11] 11 से 12 मई, 2018 का नरेन्द्र मोदी की नेपाल की दूसरी यात्रा हुई तथा 30-31 अगस्त, 2018 को चतुर्थ BIMSTEC समिति को लेकर तीसरी यात्रा हुई।[12] इस दौरान नरेन्द्र मोदी ने नेपाल को खुश करने का जोरदार प्रयास किया तथा के०पी० ओली को 'वाम-नास्तिकता' से अलग रखने का प्रयास भी किया। प्रधानमंत्री मोदी की रामायण सर्किट कूटनीति को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। मोदी ने कहा कि नेपाल के बिना उनकी यात्रा अधूरी है; इतिहास अधूरी है तथा राम भी अधूरे है। स्पष्टत: प्रधानमंत्री मोदी ने भारत-नेपाल के सांस्कृतिक सम्बन्ध को अधिक मजबूत बनाना चाहा। मोदी ने इस बात पर बल दिया कि भारत और नेपाल वर्तमान और भविष्य में अत्यधिक घनिष्ठ रूप में जुड़े रहें। अपनी नेपाल यात्रा में मोदी ने नेपाल में रोजगार, हाइड्रोपावर, ऊर्जा, रोड, आयल पाइप लाइन, पर्यटन तथा कनेक्टीविटी बढ़ाने पर बल दिया। मोदी ने नेपाल के साथ भारत की द्विपक्षीय रक्षा और सुरक्षा सहयोग को अधिक मजबूत बनाने की बात कही।

नेपाल को भारत के द्वारा लगातार मदद किया जाता रहा है, परन्तु वह चीनी कूटनीति का कभी-कभी शिकार भी होता रहा है। इधर वामपंथी नेपाली प्रधानमंत्री के०पी० ओली के कारण तो नेपाल का लगातार चीन की ओर झुकाव हो रहा है तथा भारत से वह अपने-आपको अलग करता जा रहा है। वर्ष 2019 में चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने नेपाल की यात्रा किया, तबसे नेपाल तथा भारत में लगातार अनावश्यक विवाद को बढ़ावा दिया जा रहा है। फिर भी भारत ने नेपाल को हमेशा की तरह मदद करता रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारत-नेपाल सम्बन्ध को वर्ष 1950 से लेकर वर्तमान तक का सामान्य अध्ययन तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति एवं कूटनीति का अवलोकन है। इस आलेख का उद्देश्य भारत और नेपाल के सम्बन्ध में किसी दूसरी शक्ति यानी चीन की राजनीति व कूटनीति को भी स्पष्ट करना है। इस आलेख के माध्यम से नेपाल की 'बफर स्टेट' के रूप में भूमिका की सार्थकता का अवलोकन भी अपेक्षित है। भारत-नेपाल विषय पर शोध आलेख का लेखन शैक्षणिक दृष्टिकोण से तो महत्वपूर्ण है ही, राजनीतिक, सामरिक एवं कूटनीतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। इस विषय पर शोध आलेख के लेखन से भारत-नेपाल सम्बन्धों में मतभेद के वास्तविक बिन्दू को ढूँढ़ा जा सकता है; इनके सन्दर्भ में दोनों देशों के बीच बेहतर सम्बन्ध कायम करने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिया गया है। स्पष्टत: प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य व औचित्य स्पष्ट है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "भारत-नेपाल सम्बन्ध तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति व कूटनीति: एक अध्ययन" है। इस शोध आलेख की परिकल्पना निम्नलिखित रूप में अपेक्षित है:

1. भारत की विदेश नीति में पड़ोसी राष्ट्रों का हमेशा ही महत्व रहा है तथा नरेन्द्र मोदी सरकार भी पूर्व की भाँति भविष्य में भी नेपाल को महत्व प्रदान करती रहेंगी।
2. नेपाल की विदेश नीति चीन के प्रभाव में भी प्रभावित होती रही है, वर्तमान में भी चीन की सरकार और विचारधारा के प्रभाव में नेपाल का दृष्टिकोण भारत से विपरीत दिखता है, परन्तु अन्तत: नेपाल का झुकाव भारत की ओर ही होगा।

शोध आलेख के माध्यम से भारत-नेपाल सम्बन्धों के मतभेद के वास्तविक बिन्दू को रेखांकित करना अपेक्षित है।

साहित्य सर्वेक्षण

भारत-नेपाल सम्बन्ध तथा नरेन्द्र मोदी सरकार की वैदेशिक नीति एवं कूटनीति पर अबतक कई महत्वपूर्ण अध्ययन हुए हैं। इस विषय पर प्राथमिक एवं द्वितीय स्रोत उपलब्ध है। साहित्य सर्वेक्षण के अन्तर्गत हमने द्वितीय एवं सहायक स्रोतों को अध्ययन का प्रमुख आधार बनाया है। साहित्य सर्वेक्षण की अनिवार्यता को देखते हुए हमने अपने प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी के निम्नलिखित प्रमुख पुस्तकों का अध्ययन किया है:

1. वी०एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा, भारत की विदेश नीति, तृतीय संशोधित संस्करण, निकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2004
2. प्रो० बी०एम० जैन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003
3. डॉ० एस०पी० सिंहल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2019
4. डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा एवं शशी के० जैन, राजनय के सिद्धान्त, कॉलेज बुक्र डिपो, जयपुर, 2006
5. भोला चटर्जी, ए स्टडी ऑफ रिसेन्ट नेपालीज पॉलिटिक्स, द वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता, 1967
6. लियो ई० रोज, नेपाल स्ट्रैटजी फॉर सरवाइवल, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई, 1991

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है, जिसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

अबतक के विवेचन से स्पष्ट है कि भारत-नेपाल सम्बन्ध वर्ष 1950 से वर्तमान तक परिवर्तित होता रहा है, परन्तु भारत की वैदेशिक नीति व कूटनीति हमेशा ही नेपाल के प्रति सकारात्मक रही है। नरेन्द्र मोदी की वैदेशिक नीति व कूटनीति भी नेपाल के

प्रति पूर्ववत् ही दृष्टिगोचर हो रही है। चीन के हस्तक्षेप के कारण कभी-कभी भारत-नेपाल सम्बन्ध विपरीत रूप में प्रभावित हुआ है। अभी हाल में भारत-नेपाल के बीच तनाव की स्थिति कायम है। इसके पीछे चीन की कूटनीति तथा वाम नास्तिकतावाद की भूमिका है। भारत ही नहीं, नेपाल के हित में है कि दोनों एक-दूसरे से बेहतर सम्बन्ध रखें। प्रस्तुत शोध आलेख की वांछनीयता, उपादेयता एवं सार्थकता बिल्कुल स्पष्ट है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. डॉ० के०के० शर्मा, भारत-नेपाल सम्बन्ध: एक राजनीतिक अध्ययन, 1988
2. बी० एल० फड़िया, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्यभवन पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ-302
3. तथैव, पृष्ठ-303
4. तथैव, पृष्ठ-303
5. 27 जनवरी, 1999, हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र, पटना
6. 8 मार्च, 2007, हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र, पटना
7. द हिन्दू, 22 अप्रैल, 2006, नई दिल्ली
8. द हिन्दू, 2 मई, 2006
9. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, पटना, 8 फरवरी, 2007
10. दैनिक समाचार, हिन्दुस्तान, 5 अगस्त, 2014, पटना।
11. इंडियन वायर, 9 अप्रैल, 2018
12. हिन्दुस्तान, दैनिक समाचार पत्र, पटना सितम्बर, 2018

नारी सशक्तिकरण और महात्मा गाँधी

अनिल शर्मा

एम०ए०, पीएच०डी० (राजनीति विज्ञान), पटना विश्वविद्यालय, पटना

सार-तत्त्व: नारी सृष्टि की अद्‌भुत व अद्वितीय रचना है; सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण-विकास में भी इसकी अद्वितीय भूमिका रही है। यह जगत जननी है, परन्तु इतिहास इसका साक्षी है कि भारतीय समाज में उत्तर वैदिक काल से नारी जाति शोषण, दमन एवं उत्पीड़न का शिकार होती रही है; इसे नि:शक्त 'अबला' बनाया गया है। यदि संक्षिप्त रूप में भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति पर एक नजर डालें तो नारी के प्रति व्यवहार में प्रशंसा व श्रद्धा से तिरस्कार व दुर्व्यवहार तक की अस्थिरता दर्ज है। वैदिकयुगीन भारतीय समाज में नारी की स्थिति अच्छी थी, क्योंकि उन्हें पुरुष के समान शिक्षा, धर्म, राजनीति, सम्पत्ति व उत्तराधिकार के साथ अन्य अधिकार प्राप्त थे। अदिति, लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी, घोशा और अपाला जैसी असाधारण प्रतिभाशाली नारी वैदिक युग के शिक्षित पुरुषों के समकक्ष एवं समान थी। मनीषी याज्ञवल्क्य ने वयस्क महिलाओं को अपना जीवन साथी चुनने की स्वतन्त्रता प्रदान किया था। उत्तरवैदिक काल से नारी जाति की स्थिति उतरोत्तर रूप में दयनीय होती गई तथा ऐसी धारणा विकसित व सशक्त हुई कि शारीरिक, मानसिक, आर्थिक तथा सभी प्रकार की प्रस्थिति में पुरुष की तुलना में नारी दुर्बल है; वह पुरुष की सहचारी है तथा उसका कार्यक्षेत्र घर की चहारदीवारी तक ही सीमित है। समाज में नारी जाति का अस्तित्व व प्रस्थिति स्वतंत्र व स्वायत्त न होकर पति की प्रस्थिति पर अवलम्बित है। मध्यकालीन भारत में विविध कारकों के प्रभाव में नारियों की स्थिति अति दुर्बल हो गई तथा वह पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों का शिकार रहीं। स्पष्टत: उत्तर वैदिक काल से लेकर लगभग ब्रिटिश साम्राज्यवाद की औपचारिक स्थापना से पूर्व तक भारतीय समाज में नारी समाज अत्यधिक शोषित व उत्पीड़ित रही हैं।

मूल शब्द: गाँधीवाद, सत्याग्रह, नैतिकता, सशक्तिकरण, प्रस्थिति।

प्रस्तावना

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल से भारत में नारी सशक्तिकरण की शुरुआत मानी जा सकती है, क्योंकि इसी काल में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का जन्म हुआ। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज तथा अन्य कई आन्दोलनों ने नारी की स्थिति में सुधार हेतु आवाज बुलन्द किया। सरकार ने सती प्रथा उन्मूलन अधिनियम, 1829; विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 और कानूनी विवाह अधिनियम, 1872 पारित किया। सामाजिक सुधार आन्दोलनों एवं कानूनों के क्रियान्वयन से नारियों की दुर्दशा में कुछ सुधार हुई तथा नारी जागृति को थोड़ा बल जरूर मिला, परन्तु पुरुषीय समाज के आचरण में अधिक परिवर्तन नहीं दिखाई दिया।

आधुनिक भारत में महिला सशक्तिकरण में महात्मा गाँधी का योगदान महत्वपूर्ण हैं। इसके विवेचन से पूर्व नारी सशक्तिकरण की अवधारण को स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। नारी सशक्तिकरण का तात्पर्य हैं-महिला द्वारा अपने अस्तित्व को स्थापित करके अपने व्यक्तित्व का विकास करना; मानव होने के नाते समस्त मानवाधिकार को अविभेद रूप में प्राप्त करना; अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए तमाम सुविधाओं को समान रूप में प्राप्त करना; व्यवस्था के सभी स्तर पर समान भागीदारी का निर्वहन करना। नारी सशक्तिकरण के लिए पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर समानता की स्थापना आवश्यक हैं। सार रूप में, स्त्री जाति को 'अबला' से 'सबला' तथा पुरुष जाति के समान बनाना ही नारी सशक्तिकरण हैं।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के तीसरे चरण में महात्मा गाँधी की भूमिका महत्वपूर्ण ही नहीं, केन्द्रीय रही है। महात्मा गाँधी की भूमिका राष्ट्रीय आन्दोलन के सत्य व अहिंसा के प्रयोग को लेकर ही विशिष्ट नहीं है, बल्कि उन्होंने स्वतन्त्रता के राजनीतिक तथा सामाजिक लड़ाई को एक साथ जोड़ कर उसे मजबूत बनाया है।

महात्मा गाँधी के सामाजिक लड़ाई में नारी सशक्तिकरण के प्रयास को महत्वपूर्ण माना गया है। उनके 'विचार दर्शन' में भी लिंग समानता पर बल दिया गया है। गाँधी जिस रामराज्य 'खुशहाल समाज' की परिकल्पना करते हैं वह सत्य अहिंसा, परोपकार, परमार्थ, सादगी, सदाचार, सहिष्णुता जैसे अनेकानेक मानवीय आध्यात्मिक मान्यताओं पर आधारित है। इन मान्यताओं का सम्बन्ध समतामूलक समाज, जिसमें स्त्री-पुरुष सभी समान हों, को साकार करना है। गाँधी ने नारी सशक्तिकरण हेतु उसकी शिक्षा व स्वास्थ्य पर बहुत अधिक ध्यान दिलाना चाहा। उनका कहना था कि "एक बाप का शिक्षित होना हमें आश्वस्त नहीं करता है कि उसका अपना परिवार शिक्षित हो जायेगा, परन्तु एक शिक्षित माँ का परिवार निश्चित ही शिक्षित हो जायेगा, इसकी गारंटी दी जा सकती है।" उन्होंने नारी के व्यक्तित्व के संतुलित विकास हेतु बाल विवाह पर रोक लगाने की बात कही तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। उनके द्वारा विधवाओं के लिए शिक्षण और धंधे का सुन्दर प्रबन्ध व्यवस्था स्थापित करने की बात कही गयी, जिससे भी नारी सशक्तिकरण को बल मिलता है।

गाँधी के विचार में स्त्रियों की दुर्दशा के लिए पुरुषों की स्वार्थी भावना जिम्मेदार रही हैं। बाल विवाह, पर्दा प्रथा तथा स्त्रियों को पिता की सम्पत्ति में हक नहीं देना, यह सब पुरुषों के लोभ के कारण हैं। गाँधीजी ने लिखा था, "मैं नारी जाति के अधिकारों के विषय में कोई समझौता नहीं करना चाहता। मेरे विचार में लड़का और लड़की दोनों को समान अधिकार मिलना चाहिए। स्त्रियों में जैसे-जैसे शिक्षा को विकास होगा, वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो जायेंगी तथा वे समाज में असमानता दूर करने का प्रयत्न करेंगी, लेकिन वास्तव में नारी जाति की दुर्दशा का कारण पुरुषों का अधिक शक्ति और यश पाने का लोभ हैं। पुरुष ने बराबर स्त्री को अपनी सम्पत्ति समझा है और समाज में चूँकि सम्पत्ति का अधिकार पुरुषों के हाथ में है, जिसने उन्हें समाज ने नारी जाति पर अधिकार प्रदान कर दिया है।"

महात्मा गाँधी ने स्वराज्य की कल्पना में राजनीतिक स्वाधीनता के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और शैक्षणिक उत्थान को आवश्यक समझा। गाँधीजी के प्रभाव में बड़ी संख्या में स्त्रियों ने राजनीतिक जीवन में भाग लेना शुरू किया, उनके नेतृत्व में स्त्रियों की अपार आस्था थी। उन्होंने 1971 के चम्पारण सत्याग्रह के दौरान देखा कि चम्पारण के गाँवों में स्त्रियों में अशिक्षा तथा पर्दा प्रथा बड़े पैमाने पर विद्यमान है। इसलिए गाँधी ने चम्पारण के कई गाँवों में शिक्षा के प्रसार के लिए स्थानीय लोगों के सहयोग से अनेक स्कूल भी खोले। बम्बई से बबन गोखले, उनकी पत्नी श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले तथा अपने पुत्र देवदास गाँधी को बुलवा कर पाठशाला का संचालन करवाया। 1927 में गाँधीजी ने बिहार का दौरा किया तो उस वक्त उन्होंने दरभंगा में बड़ी संख्या में महिलाओं को पर्दे में देखा। इससे इन्हें बहुत दुःख हुआ और उन्होंने 3 फरवरी, 1927 की यंग इण्डिया में पर्दा प्रथा के विरुद्ध एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने देश के शिक्षित लोगों से शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर "पर्दा-प्रथा" उठाने की अपील की।

1929 में बाल-विवाह को समाप्त करने के लिए हरविलास शारदा के प्रयासों से "शारदा ऐक्ट" केन्द्रीय विधान सभा दिल्ली से पास किया गया। इसके अनुसार शादी के लिए लड़कों की उम्र 18 वर्ष तथा लड़कियों की उम्र 14 वर्ष निश्चित की गई। बाद में लोगों के विरोध के कारण लड़कियों की उम्र 15 वर्ष कर दी गई। गाँधीजी इन कानूनों के अलावा अपने प्रयासों से महिलाओं को समान अधिकार दिलाना चाहते थे। उनकी दृष्टि में स्त्री पुरुषों की अपेक्षा नम्र, श्रद्धालु, त्यागी और कष्ट सहने में अधिक सक्षम होती है। इसलिए गाँधीजी ने 20 फरवरी, 1918 को बम्बई के भगिनी समाज में भाषण देते हुए कहा था स्त्री पुरुष की सहचरी है और उसे प्रकृति की ओर से समान मानसिक योग्यता प्राप्त है। अतः उसे पुरुष के बराबर समाज में अधिकार मिलना चाहिए। मार्च-अप्रैल, 1930 में गाँधी ने जब नमक सत्याग्रह के दौरान अपनी दाण्डी यात्र शुरू की तब भारत की महिलाएँ गाँधी के आह्वान पर पर्दा से बाहर आयी तथा सक्रिय राजनीति के सत्याग्रह आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। कांग्रेस के कार्यक्रम के अनुसार महिलाओं ने विदेशी कपड़ों की दुकानों, विदेशी वस्तुओं की दुकानों तथा शराब की दुकानों पर धरना प्रदर्शन किया जिससे इन दुकानों को लगभग बन्द करना पड़ा। इस कार्यक्रम में महिलाओं को लाठी चार्ज और जेल की सजा सहनी पड़ी। इस कार्यक्रम में जिन प्रमुख महिलाओं ने भाग लिया उनमें श्रीमती सरोजनी नायडू, कस्तूरबा गाँधी, श्रीमती कमला नेहरू, श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित तथा श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय प्रमुख थी।

गाँधी जब द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने 1931 में लंदन गये, तब इटली में उन्होंने भारतीय महिलाओं की एक भाषण में बड़ी प्रशंसा की थी, उन्होंने कहा था, "संग्राम में महिलाएँ पुरुषों की तरह सक्रिय भाग ले सकती हैं। भारत की स्त्रियों ने यह कर दिखाया है; उनलोगों ने पर्दा को फेक कर नमक बनाया, विदेशी कपड़ों और विदेशी शराब की दुकानों पर धरना दिया तथा लाठीचार्ज तथा जेल का भी मुकाबला किया।"

महिलाएँ सन् 1939 तक भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सम्मानित होने लगी थी। 1939 तक भारत के विभिन्न प्रान्तों के विधान सभाओं एवं देशी राज्यों में 80 महिला सदस्य निर्वाचित हुई थी। महिलाओं के प्रभाव और पद को देखते हुए भारत का स्थान दुनिया में तीसरा हो गया था। संयुक्त राज्य अमरीका में महिलाएँ सबसे अधिक उच्च पदों पर थी। दूसरा स्थान सोवियत यूनियन का था और तीसरा स्थान भारत का ही था। यह सब गाँधी के चमत्कारिक नेतृत्व का प्रभाव था। उन्होंने अपने भाषणों में इस बात पर जोर दिया कि महिलाओं की दशा सुधारने से हिन्दू धर्म का उत्थान होगा। 1931 से कांग्रेस द्वारा "सेवा दल कैम्प" का आयोजन किया जाने लगा, इसमें महिलाओं को देश सेवा करने की ट्रेनिंग दी जाने लगी।

1931 के कांग्रेस के कराँची अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास करके भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों की घोषणा की गई। इस प्रस्ताव में 14 धाराएँ थी और उसमें चौथी धारा के अनुसार स्वाधीन भारत में जाति, धर्म और लिंग के आधार पर पक्षपात नहीं किया जायेगा। सभी स्त्री पुरुष तथा सभी धर्मों तथा जातियों को मानने वाले कानून की निगाह में समान होंगे तथा उनके साथ नौकरी और व्यवसाय के मामले में कोई भेद-भाव नहीं किया जायेगा। भारत के आजाद होने पर 1950 में नया संविधान लागू किया गया जिसमें महिलाओं सहित सभी नागरिकों को मताधिकार का अधिकार दिया गया।

1920 से 1947 के बीच देश में अनेक महिला संस्थाओं ने स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर काम करना शुरू किया। देश के विभिन्न भागों में आर्य महिला समाज, सेवा सदन तथा विधवा आश्रम पहले से ही काम कर रहे थे। 1947 तक इनकी संख्या लगभग 200 पहुँच चुकी थी। कुछ अखिल भारतीय महिला संस्थाएँ भी काम करने लगी थी जैसे नेशनल काऊन्सिल ऑफ वीमेन इन इण्डिया, दि ऑल इण्डिया वीमेन कान्फरेन्स, द यंग वीमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन तथा फेडरेशन ऑफ यूनिवर्सिटी वीमेन प्रमुख थे। नेशनल काऊन्सिल ऑफ वीमेन इन इण्डिया तथा ऑल इण्डिया वीमेन कान्फरेन्स के नेतृत्व में महिला जागरण आन्दोलन तेजी से आगे बढ़ा तथा महिलाओं के अधिकारों की माँग होने लगी। 1944 में कस्तूरबा के निधान के पचात् कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय स्मारक कोष की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य गाँवों में रहनेवाले बच्चों तथा स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए विशेष प्रयास करना था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्राम सेविकाओं को गाँवों में सेवा करने के उद्देश्य से भेजा गया।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "नारी सशक्तिकरण और महात्मा गाँधी" है। इस शीर्षक के अनुरूप ही इसके अध्ययन का उद्देश्य है। इस शोध आलेख का उद्देश्य न केवल नारी सशक्तिकरण के संक्षिप्त तात्पर्य को स्पष्ट करना है, बल्कि इसमें महात्मा गाँधी के योगदान को स्पष्ट करना है। प्रस्तुत आलेख में इस बाद का उद्देश्य अभिनिर्धारित है कि महात्मा गाँधी के विचार में नारी सशक्तिकरण का स्वरूप कैसा होगा?

परिकल्पना

शोध आलेख में परिकल्पना का बहुत ही महत्व होता है। वस्तुत: इसी परिप्रेक्ष्य में शोध कार्य को सम्पन्न किया जाता है। इस शोध आलेख में निम्नलिखित रूप में परिकल्पना अपेक्षित है:

1. नारी सशक्तिकरण का वास्तविक तात्पर्य क्या है?
2. नारी सशक्तिकरण के आयाम-सकारात्मक और निषेधात्मक भी हो सकता है।
3. महात्मा गाँधी के आन्दोलन में नारी सशक्तिकरण की उपस्थिति है।
4. नारी सशक्तिकरण के भारतीय परिप्रेक्ष्य में महात्मा गाँधी का योगदान प्रासंगिक है।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत आलेख लेखन में साहित्य सर्वेक्षण के अन्तर्गत निम्नलिखित का अवलोकन किया गया है:

एम०एल० झिंगन की पुस्तक आर्थिक विचारों का इतिहास है जो वृन्दा पब्लिकेशन्स प्रा० लि०, नई दिल्ली से प्रकाशित है। इस पुस्तक में नारी सशक्तिकरण के सन्दर्भ में आर्थिक पक्षों को महत्वपूर्ण बताया गया है।

नारी सशक्तिकरण के सन्दर्भ में महात्मा गाँधी ने अपना विचार पुरुष एवं महिला में समानता पर दिया। गाँधी ने पुरुष एवं महिलाओं में भेद एवं उनके बीच व्याप्त असमानता को देखते हुए उनकी समानता पर जोर दिया। पुरुष ने महिलाओं को सच्चा सहचरी और मित्र मानने के बजाय अपने आप को उसका स्वामी मान रखा है। महिलाओं को स्व-इच्छा एवं स्वतंत्रता का ख्याल नहीं रखा जाना गाँधीजी की दृष्टि में अनुचित है और भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक है। 50 प्रतिशत महिलाओं की श्रम शक्ति से भारतीय अर्थव्यवस्था इसलिए वंचित रही है कि हमने उनको अपनी रूढ़िवादिता में बाँध रखा है। गाँधीजी महिलाओं को स्व-इच्छा एवं स्वतंत्रता का ख्याल नहीं रखा जाना गाँधीजी की दृष्टि में अनुचित है और भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक है। 50 प्रतिशत महिलाओं की श्रम शक्ति से भारतीय अर्थव्यवस्था इसलिए वंचित रही है कि हमने उनको अपनी रूढ़िवादिता में बाँध रखा है। इसलिए गाँधीजी महिलाओं को सशक्त करने की बात करते थे। नारी सशक्त होगी तो हमारा घर-परिवार राज्य, देश भी सशक्त होगा।

जे०एस० माथुर की एक पुस्तक इकोनॉमिक थॉट ऑफ महात्मा गाँधी है, जो रावत पब्लिकेशन, हरियाणा से प्रकाशित है तथा इसका प्रकाशन वर्ष 2002 है। इस पुस्तक में वर्तमान में गाँधी के आर्थिक विचारों का अवलोकन किया गया है। माथुर ने अपनी पुस्तक में इस बात पर बल दिया है कि नारीवाद के उत्थान व विकास में आर्थिक असमानता बहुत बड़ी बाधा है। इसके अतिरिक्त माथुर की पुस्तक में महिला सशक्तिकरण के अन्य पक्षों का वैधानिक, संवैधानिक तथा ऐतिहासिक सन्दर्भ में अवलोकन किया गया है।

प्रसिद्ध इतिहासकार विपिन चन्द्र की पुस्तक 'आधुनिक भारत का इतिहास है जो ओरियंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन है। इस पुस्तक में विपिन चन्द्र ने महात्मा गाँधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान महिला की अग्रणी भूमिका का अवलोकन किया है।

डॉ० अशोक कुमार की पुस्तक राजनीतिक सिद्धान्त है, जो साहित्य भवन पी० एण्ड डी०, आगरा से प्रकाशित है। प्रस्तुत पुस्तक में महात्मा गाँधी के तमाम विचारों के संक्षिप्त विवेचन के साथ नारी जीवन व उनके सशक्तिकरण के सन्दर्भ में विचार दिया गया है।

कृष्ण कृपलानी की पुस्तक का नाम गाँधीजी का जीवन उन्हीं के शब्दों में है। यह पुस्तक नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात) से प्रकाशित है तथा प्रकाशन वर्ष 1983 है। प्रस्तुत पुस्तक में महिला के जीवन में सुधार के सम्बन्ध में गाँधीजी के विचारों और रचनात्मक कार्यों का सुन्दर प्रस्तुतीकरण है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख की प्रविधि ऐतिहासिक है तथा वस्तु विश्लेषणात्मक पद्धति का भी इसमें सहयोग लिया गया है। वस्तुत: शोध प्रविधि का महत्व इस आलेख में स्वीकार किया गया है।

निष्कर्ष

इस शोध पत्र के माध्यम से आधुनिक भारत में नारी समाज की स्थिति को प्रस्तुत करते हुए उन्हें सशक्त बनाने की दिशा में सहयोग प्रदान किया जा सकता है। वर्तमान समाज में नारी सशक्तिकरण की आवश्यकता न केवल नारी समाज के हित में है, बल्कि संतुलित समाज हेतु आवश्यक है। वर्तमान समाज में लिंग विभेद के कारण असंतुलित समाज की रूपरेखा खतरनाक भविष्य की ओर इशारा करती है, जिससे बचने हेतु नारी सशक्तिकरण आवश्यक प्रतीत होता है। नारी सशक्तिकरण जैसे महत्वपूर्ण विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत व प्रकाशित करना एक शैक्षणिक प्रयास एवं समय की माँग है; इस विषय पर शोधपत्र संतुलित समाज हेतु आवश्यक है; इस शीर्षक पर शोध पत्र प्रस्तुत करके समाज व राज- व्यवस्था को महत्वपूर्ण सुझाव दिये जा सकते हैं; सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर महिला उत्थान के मार्ग में कहाँ रोड़ा उत्पन्न होता है तथा क्यों रोड़ा उत्पन्न होता है, को रेखांकित किया जा सकता है; इस शोध पत्र के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण, समाज-निर्माण एवं राज्य-निर्माण के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं। संक्षेप में, प्रस्तुत शोध पत्र की सार्थकता, उपादेयता एवं वांछनीयता स्पष्ट है।

सन्दर्भ

1. अल्तेकर, अनंत सदाशिव, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, लीडर प्रेस प्रयाग, 1946
2. आहूजा, राम, राइट्स ऑफ वोमेन, रावत पब्लिकेशन, 3-एन-20 जवाहर नगर, जयपुर, 1992
3. चंद्र, विपिन, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1994.
4. चटर्जी, ए० शोभा, द इंडियन वोमेन, सर्च फॉर एन आइडेनटिटी, विकास पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली
5. कुमार, अशोक, वोमेन इन कान्टेम्पोररी इंडियन सोसाइटी, अनमोल, प्रकाशक, नई दिल्ली
6. कौशिक सुशीला, वोमेन पार्टिसिपेशन इन पॉलिटिक्स, विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1993
7. शर्मा, बालाराम, वोमेन एण्ड सोशल चेन्ज, अनमोल पब्लिकेशन, दिल्ली
8. शर्मा, लालता प्रसाद, भारत की विदुषी स्त्रियाँ पुस्तक मंदिर, मथुरा, 1967
9. कृष्ण कृपलानी: गाँधीजी का जीवन-उन्हीं के शब्दों में, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1983
10. कृपलानी, जे०बी०, दि गाँधीयन वे, वोरा एण्ड के० बम्बई, 1938
11. गाँधी की निजी रचनाएँ, भाषण-संग्रह आदि।
12. विभिन्न प्रकाशनों से प्रकाशित रचनाएँ एवं पत्र-पत्रिकाएँ।

भारत में लोक सभाः पृष्ठभूमि, संरचना और कार्य

आशुतोष सिंह जेलियाँग

शोध प्रज्ञ, एम०ए० (राजनीति विज्ञान), राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

रिसर्च आर्टिकल का सार तत्त्व

सरकार के तीन अंगों में एक अंग को विधायिका कहा जाता है, जो विधि निर्माण का कार्य करती है। भारत में संघवाद के कारण दोहरी सरकार अर्थात् संघ तथा राज्यों की सरकारे हैं। संघीय तथा राज्य-स्तर दोनों ही स्तर पर विधायिका है। संघीय विधायिका को 'संसद' कहा जाता है, जिसके तीन निकाय हैं- राज्य सभा, लोक सभा और राष्ट्रपति। चूँकि भारत में संसदीय प्रजातंत्र भी है, इसलिए विधायिका और कार्यपालिका का समन्वय है। संघीय स्तर पर विधायिका द्विसदनात्मक है- राज्य सभा तथा लोक सभा। संसद का द्वितीय एवं उच्च सदन 'राज्य सभा' है, जबकि प्रथम, निम्न और लोकप्रिय सदन को लोक सभा कहा जाता है। राज्य विधायिका को राज्य विधान मंडल कहते हैं जो सभी राज्यों में द्विसदनात्मक नहीं है। राज्य विधायिका में भी संसदीय प्रजातंत्र के अनुरूप राज्यपाल को शामिल किया गया है। शोध आलेख का विषय लोक सभा की संरचना और कार्य है। वस्तुतः लोक सभा ही विधायी नियन्त्रण की सशक्त माध्यम है।

मूल शब्दः संसदीय प्रजातंत्र, द्वि-सदनात्मक प्रणाली, धन विधेयक, वित्त विधेयक, संसदीय समितियाँ, गणपूर्ति।

प्रस्तावना

भारत की संघात्मक शासन व्यवस्था में विधि निर्माण (कानून बनाने) का कार्य दो स्तरों पर दो भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा किया जाता है। सम्पूर्ण देश के लिए संघीय व्यवस्थापिका संसद तथा संघ के प्रत्येक राज्य के लिए सम्बन्धित राज्य को व्यवस्थापिका विधानमंडल कानून बनाते हैं। भारतीय संघ के लिए विधि निर्माण करने वाली संस्था ही संसद कहलाती है। सन् 1919 तथा 1935 के भारतीय शासन अधिनियमों के अन्तर्गत संसद प्रभुत्वरहित एक व्यवस्थापिका सभा थी परन्तु भारत के गणतन्त्रात्मक संविधान के अन्तर्गत यह एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न संघीय व्यवस्थापिका है। यह भारतीय जनता के प्रभुत्वसम्पन्न होने का प्रतीक है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि इसके सदस्य होते हैं, जिनके माध्यम से जनता देश के शासन में भाग लेती है, सार्वजनिक हित के लिए विधि निर्माण करना तथा कार्यपालिका को नियन्त्रित करके जनता की सेवा में लगाये रखना संसद का ही उत्तरदायित्व है। इस प्रकार संसद लोकतंत्र की अभिव्यक्ति के साथ ही साथ सरकार को जनता की तथा जनता के लिए बनाये रखती है। भारत में ब्रिटेन की भाँति संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया है।

भारतीय संविधान में कहा गया है[1] कि संघ के लिए एक संसद होगी, जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी, जिनके नाम क्रमशः राज्य सभा और लोक सभा होंगे। इस प्रकार विश्व के अन्य संघीय शासन व्यवस्था वाले राष्ट्रों की भाँति भारत में भी द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना की गयी है। भारतीय संविधान द्वारा राष्ट्रपति को संसद का अभिन्न अंग माना गया है। इस प्रकार अग्रलिखित तीन अंगों से मिलकर संसद का संगठन होता है- (1) राष्ट्रपति, (2) लोक सभा और (3) राज्य सभा।

लोक सभा संसद का प्रथम और निम्न सदन है। इसे लोकप्रिय सदन भी कहा जाता है। यह राज्य सभा से अधिक शक्तिशाली है। लोक सभा के गठन को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है:

सदस्य संख्या : मूल संविधान में लोक सभा को सदस्य संख्या 500 निश्चित की गयी थी, परन्तु समय-समय पर इस संरचना में परिवर्तन किया जाता रहा है। वर्तमान में लोक सभा की अधिकतम सदस्य संख्या 552 हो सकती है।[2] इनमें से अधिकतम 530 सदस्य भारतीय संघ के राज्यों से 20 सदस्य संघीय क्षेत्रों से निर्वाचित किये जायेंगे। 2 सदस्य आँग्ल भारतीय वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायेंगे।[3]

भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गयी थी कि प्रति दस वर्ष पश्चात् होने वाली जनगणना के आधार पर परिसीमन आयोग लोक सभा में राज्य व केन्द्र (संघ) शासित क्षेत्रों के प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित करेगा। संविधान की इस व्यवस्था के अन्तर्गत 1971 की जनगणना के आधार पर भविष्य के लिए लोक सभा के सदस्यों की संख्या 543 निश्चित की गयी। 42वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा प्रति दस वर्ष पर होने वाली जनगणना के पश्चात् लोक सभा और विधान सभाओं के निर्वाचन क्षेत्र के पुनर्निर्धारण के लिए परिसीमन आयोग के गठन की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है और यह निश्चित किया गया है कि सन् 2001 तक निर्वाचन क्षेत्र वही रहेंगे, जो 1971 की जनगणना के आधार पर निर्धारित किये गये हैं। मूल संविधान में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए 10 वर्ष की अवधि के लिए लोक सभा में स्थान आरक्षित रखे जाने की व्यवस्था की गयी थी परन्तु बाद में विभिन्न संविधान संशोधनों द्वारा इस व्यवस्था को बढ़ाया जाता रहा है।[4]

वर्तमान लोक सभा में कुल 545 सदस्य हैं, जिनमें 530 सदस्य भारतीय संघ के 28 राज्य तथा 13 सदस्य संघ-शासित क्षेत्रों से निर्वाचित हैं और 2 सदस्य आंग्ल भारतीय वर्ग के भागीदारी के रूप में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत हैं। 543 निर्वाचित सदस्यों में से 79 सदस्य अनुसूचित जाति एवं 40 सदस्य अनुसूचित जनजाति के लिए है जो उनके आरक्षित स्थानों से निर्वाचित होते हैं।

लोक सभा में भारतीय संघ के प्रत्येक राज्य और संघ (केन्द्र) शासित क्षेत्र के प्रतिनधित्व के लिए स्थानों की संख्या इस प्रकार निश्चित की गयी है कि स्थानों की संख्या और उस राज्य के संघ-शासित क्षेत्र की जनसंख्या के बीच अनुपात, जहाँ तक व्यवहार्य हो, समान हो। इस प्रकार लोक सभा में भारतीय संघ के समस्त राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों के प्रतिनधित्व का अनुपात कुछ अपवादों को छोड़कर यथासम्भव समान रखने का प्रयास किया गया है।

निर्वाचन

लोक सभा के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। 18 वर्ष की आयु पूरी कर लेने वाला भारतीय नागरिक मतदान करता है। जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर मताधिकार में कोई भेद नहीं किया जाता है। लोक सभा के सभी निर्वाचन क्षेत्र एक-सदस्यीय रखे गये हैं और निर्वाचन-व्यवस्था हेतु निर्वाचन आयोग है। इसका अध्यक्ष मुख्य निर्वाचन आयुक्त होता है, जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। संसद, राज्यों के विधान-मण्डलों, राष्ट्रपति तथा उप-राष्ट्रपति के पदों के निर्वाचन के देखरेख या व्यवस्था करना, निर्वाचन आयोग का कार्य है।

मतदाताओं की योग्यताएँ

लोक सभा के निर्वाचन में उन समस्त व्यक्तियों को मतदान का अधिकार है; (i) जिन्होंने कम से कम 18 वर्ष की आयु पूरी कर ली हो; (ii) जो भारतीय नागरिक हो; (iii) जिनके नाम उनके निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में अंकित हो; (iv) जो पागल दिवालिया न हों; (v) जिन्हें संसद के किसी कानून द्वारा किसी अपराध के कारण मताधिकार से वंचित न किया गया हो।

सदस्यों की योग्यताएँ

लोक सभा की सदस्यता के उम्मीदवार के लिए संविधान के अनुच्छेद-102 के द्वारा निर्धारित योग्यताएँ (अर्हताएँ) निम्नलिखित प्रकार हैं:

(i) भारत का नागरिक हो; (ii) कम से कम 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका है; (iii) किसी न्यायालय द्वारा पागल घोषित न कर दिया गया हो तथा दिवालिया न हो; (iv) संसद के किसी कानून द्वारा आयोग्य न ठहरा दिया गया हो; (v) भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अन्तर्गत कोई लाभ का पद धारण न किये हुए हो।[5]

उपर्युक्त योग्यताओं के अतिरिक्त अन्य योग्यताएँ निर्धारित करने का अधिकार संविधान द्वारा संसद को दिया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत संसद ने सन् 1951 में 'जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम' (People's Representation Act) पारित कर संसद सदस्यों के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ निर्धारित की हैं:

1. अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित सुरक्षित स्थान के उम्मीदवारों के लिए आवश्यक है कि वे अनुसूचित जाति के सदस्य हों। इसी प्रकार जनजाति से सम्बन्धित सुरक्षित स्थान के उम्मीदवारों के लिए आवश्यक है कि वे जनजाति के सदस्य हों। वे व्यक्ति समस्त भारतीय क्षेत्र में किसी भी स्थान से अनुसूचित जाति या जनजाति के सदस्य हो सकते हैं किन्तु, यह बात असम के स्वतंत्र जिलों तथा जनजाति क्षेत्रों पर लागू नहीं है।
2. असम जनजातियों से सुरक्षित स्थान के उम्मीदवार बनने के लिए उस जनजाति का होना और उस संसदीय निर्वाचन क्षेत्र का या उस स्वतंत्र जिले के किसी अन्य निर्वाचन क्षेत्र का निर्वाचक होना आवश्यक है।
3. अन्य किसी स्थान से उम्मीदवार होने के लिए भारत में किसी भी संसदीय निर्वाचन क्षेत्र का निर्वाचक होना आवश्यक है अर्थात् किसी भी निर्वाचन क्षेत्र से उसका नाम मतदाता सूची में होना चाहिए।
4. निर्वाचन सम्बन्धी अपराध के लिए दोषी पाये गये व्यक्ति को निर्वाचन आयोग द्वारा संसद का चुनाव लड़ने के अयोग्य घोषित किया जा सकता है।
5. उसने किसी अपराध के लिए दो वर्ष से अधिक सजा न पायी हो तथा उसे जेल से छूटे पाँच वर्ष से अधिक हो गये हों।
6. उसे सरकार से सम्बन्धित किसी ठेके में हिस्सेदार न होना चाहिए और न सरकार से सम्बन्धित किसी कारखाने में उसका कोई हित होना चाहिए।
7. उसे बेईमानी या राजद्रोह के कारण सरकारी नौकरी से न निकाला गया हो। इस प्रकार के अपराध के पाँच वर्ष बाद ही वह संसद की सदस्यता प्राप्त कर सकता है।

'जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951' में संशोधन कर आतंकवादी गतिविधि, तस्करी, जमाखोरी, मुनाफाखोरी, खाद्य पदर्थों एवं दवाओं में मिलावट करने वाले, विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम (FERA) का उल्लंघन करने वाले तथा महिलाओं के खिलाफ अपराध करने वाले व्यक्तियों को संसद या राज्य विधानमण्डल का चुनाव लड़ने के अयोग्य घोषित कर दिया गया है।[6]

कार्यकाल

भारतीय संविधान के अनुसार लोक सभा का कार्यकाल प्रथम बैठक की तिथि से 5 वर्ष निर्धारित है।[7] 5 वर्ष की अवधि पूर्ण होते ही लोक सभा भंग हो जाती है, परन्तु इस अवधि के पूर्व भी प्रधानमंत्री के परामर्श पर राष्ट्रपति द्वारा लोक सभा को भंग किया जा सकता है। प्रधानमंत्री के परामर्श पर अबतक 6 बार सन् 1970, 1979, 1984, 1991, 1997 एवं 1999 में लोक सभा को भंग किया जा चुका है। आपातकालीन स्थिति में संसदीय कानून के द्वारा राष्ट्रपति लोक सभा के कार्यकाल में वृद्धि भी कर सकता है। एक बार में यह अवधि 1 वर्ष से अधिक के लिए नहीं बढ़ायी जा सकती और तीन बार में 3 वर्ष से अधिक इस अवधि को नहीं बढ़ाया जा सकता। सन् 1976 में लोक सभा का कार्यकाल एक-एक वर्ष के लिए दो बार बढ़ाया गया था।[8]

पदाधिकारी

भारतीय संविधान के अनुसार लोक सभा के सदस्यों में से भी एक अध्यक्ष (Speaker) और एक उपाध्यक्ष (Deputy-Speaker) निर्वाचित किये जाने की व्यवस्था है।[9] इन दोनों पदाधिकारियों का कार्यकाल 5 वर्ष या लोक सभा के कार्यकाल तक होता है। लोक सभा भंग होने की स्थिति में भी अध्यक्ष, नयी लोक सभा की पहली बैठक के पहले दिन तक अपने पद पर बना रहेगा। इससे पूर्व भी वे स्वेच्छा से अपने पद से त्याग-पत्र प्रस्तुत किये जाने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त उन्हें 14 दिन की पूर्व सूचना पर लोक सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वार पद से हटाया जा सकता है। अध्यक्ष को मासिक वेतन, अन्य मासिक भत्ता व सुविधाएँ मिलती हैं। अन्य सुविधाओं में नि:शुल्क आवास और कैबिनेट मंत्रियों को प्राप्त होने वाली समस्त सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसके कार्यों को करता है।

जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित भारतीय संसद का निम्न सदन 'लोक सभा' जनता का वास्तविक प्रतिनिधित्व करने वाला लोकप्रिय सदन है। संसदात्मक शासन के सिद्धान्त के अनुसार संविधान द्वारा कानून निर्माण, प्रशासन और नियंत्रण की अन्तिम शक्तियाँ इस निम्न सदन को ह प्रदान की गयी है। इस प्रकार भारतीय संसद के निम्न सदन 'लोक सभा' को संविधान द्वारा संसद के उच्च सदन 'राज्य सभा' की तुलना में उच्च स्थिति प्रदान की गयी है। दूसरे शब्दों में, लोक सभा राज्य सभा की तुलना में अधिक शक्तिशाली है। लोक सभा के कार्यों एवं शक्तियों को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन किया जा सकता है:

1. व्यवस्थापिका सम्बन्धी कार्य और शक्तियाँ: भारतीय संसद संघीय सूची, समवर्ती सूची, अवशिष्ट विषयों तथा कुछ विषयों में राज्य-सूची के विषयों पर भी कानून का निर्माण कर सकती है। साधारण (अवित्तीय) विधेयकों और संविधान संशोधन विधेयकों के सम्बन्ध में संविधान द्वारा लोक सभा और राज्य सभा, दोनों को समान शक्ति प्रदान की गयी है परन्तु साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में संसद के इन दोनों सदनों में गतिरोध (मतभेद) होने की स्थिति में इस गतिरोध को समाप्त करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुलाये जाने की व्यवस्था है, जिसमें साधारण बहुमत द्वारा विधेयक को पारित किया जता है। चूँकि लोक सभा के सदस्यों की कुल संख्या राज्य सभा के सदस्यों की कुल संख्या से लगभग दोगुनी से भी अधिक होती है। अत: निर्णय लोक सभा के पक्ष में ही होता है। दूसरे शब्दों में, विधेयक पर अन्तिम निर्णय लोक सभा के द्वारा ही होता है। इस प्रकार कानून निर्माण के क्षेत्र में अन्तिम निर्णय की शक्ति लोक सभा को ही प्राप्त है। राज्य सभा साधारण विधेयक को 6 माह तक रोके रखने के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं कर सकती। व्यवहारत: समस्त महत्वपूर्ण विधेयक लोक सभा में ही प्रस्तावित किये जाते हैं।

2. कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य और शक्तियाँ: संविधान के अनुसार संघीय कार्यपालिका अर्थात् केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् संसद (व्यवहारत: लोक सभा) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है, अत: उसे लोक सभा के नियंत्रण में रहते हुए ही कार्य करना पड़ता है। लोक सभा के सदस्य मंत्रिपरिषद् के सदस्यों से सरकारी नीति व कार्यों के सम्बन्ध में प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं और उनकी आलोचना कर सकते हैं। 'काम रोको प्रस्ताव' व 'निन्दा का प्रस्ताव' पारित करके सरकारी नीतियों की गलतियों को प्रकाश में ला सकते हैं और सरकार की निन्दा कर सकते हैं। सरकारी विधेयक या बजट को अस्वीकार करके, मंत्रियों के वेतन में कटौती का प्रस्ताव स्वीकार करके या किसी विधेयक में संशोधन करके अपना विरोध प्रदर्शित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त लोक सभा अन्तिम अस्त्र के रूप में कार्यपालिका के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके मंत्रिपरिषद् को उसके पद से हटा सकती है। दूसरे शब्दों में, मंत्रिपरिषद् लोक सभा के विश्वासपर्यन्त ही अपने पद पर रह सकती है। इस प्रकार लोक सभा अनेक प्रकार से कार्यपालिका पर अपना नियंत्रण रखती है। कार्यपालिका पर नियंत्रण की शक्ति के अन्तर्गत ही लोक सभा संघीय लोकसभा आयोग, वित्त आयोग, भाषा आयोग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग तथा भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदनों पर भी विचार करती है:

3. वित्त सम्बन्धी कार्य और शक्तियाँ: संविधान द्वारा लोक सभा को निर्विवादित रूप में वित्तीय शक्ति प्रदान की गयी है। वित्तीय क्षेत्र में वित्त विधेयकों, बजट और अनुदानों आदि की स्वीकृति के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय की शक्ति लोक सभा को ही प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद 109 के अनुसार वित्त विधेयक केवल लोक सभा में ही प्रस्तावित किये जा सकते हैं, राज्य सभा में नहीं। लोक सभा में पारित हो जाने के पश्चात् वित्त विधेयक राज्य सभा में भेजा जाता है। राज्यसभा विधेयक की प्राप्ति की तिथि से 14 दिन की अवधि के भीतर विधेयक को अपने सुझावों के साथ लोक सभा को लौटा देती है परन्तु राज्यसभा की सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार करना लोक सभा की इच्छा पर निर्भर करता है। यदि लोक सभा द्वारा पारित होकर राज्यसभा को उसके सुझावों के लिए भेजा गया वित्त विधेयक 14 दिन की अवधि के भीतर राज्यसभा द्वारा लोक सभा को नहीं लौटाया जाता तो निश्चित तिथि के पश्चात् उस विधेयक को दोनों सदनों द्वारा उसी रूप में पारित मान लिया जाता है, जिस रूप में उसे लोक सभा ने पारित किया था। इसके अतिरिक्त वार्षिक बजट और अनुदान सम्बन्धी माँगें भी लोक सभा के समक्ष ही प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार के समस्त व्ययों की स्वीकृति देने का एकाधिकार लोक सभा को ही प्राप्त है।

4. संविधान संशोधन कार्य और शक्तियाँ: लोक सभा की राज्यसभा के साथ मिलकर संविधान में संशोधन की शक्ति भी प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद-368 की व्यवस्था के अनुसार संशोधन का प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है, जिसे राज्यसभा की भाँति लोक सभा भी अपने कुल बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पारित करती है। संविधान संशोधन प्रस्ताव पर संसद के दोनों सदस्यों में मतभेद होने की स्थिति में प्रस्ताव अस्वीकार समझा जाता है; क्योंकि इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने का संविधान में कोई प्रस्ताव नहीं है।

5. निर्वाचन सम्बन्धी कार्य और शक्तियाँ: संविधान के अनुच्छेद-54 के अनुसार लोक सभा के निर्वाचित सदस्य, राज्यसभा व राज्य-विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के साथ मिलकर राष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं। इसके अतिरिक्त लोक सभा के सदस्य राज्यसभा के सदस्यों के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं।

6. पदच्युति सम्बन्धी कार्य और शक्तियाँ: लोक सभा और राज्यसभा दोनों मिलकर राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाकर उसे उसके पद से हटा सकती हैं। महाभियोग दोनों सदनों में से किसी एक सदन में लगाया जाता है और जब वह सदन अपने दो-तिहाई बहुमत से उस पर अपना अन्तिम निर्णय देता है। उप-राष्ट्रपति को उसके पद से हटाने के लिए यदि राज्यसभा अपने सदस्यों के बहुमत से प्रस्ताव पारित कर दें तो लोक सभा भी अपने सदस्यों द्वारा उसी प्रकार पारित प्रस्ताव द्वारा राज्यसभा के साथ मिलकर उप-राष्ट्रपति को भी उसके पद से हटा सकती है। लोक सभा और राज्यसभा अलग-अलग अपने-अपने पूर्ण बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक तथा मुख्य निर्वाचन आयुक्त के विरुद्ध प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रपति से उन्हें पदच्युत करने के लिए का सकती है।

7. अन्य कार्य और शक्तियाँ: लोक सभा को अन्य शक्तियों में, राष्ट्रपति द्वारा जारी की गयी आपातकालीन घोषणा की एक माह के भीतर स्वीकृति प्राप्त होना आवश्यक है अन्यथा इस प्रकार की घोषणा एक माह के पश्चात् स्वयं ही समाप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति द्वारा दी जाने वाली सर्वक्षमा (Ammesty) की भी संसद से स्वीकृति लेना आवश्यक होता है।

लोक सभा की उपर्युक्त शक्तियों के आधार पर डॉ० एम०पी० शर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है "यदि संसद राज्य की सर्वोच्च अंग है, तो लोक सभा संसद का सर्वोच्च अंग है। व्यवहारत: लोक सभा ही संसद है।"।

अध्ययन का उद्देश्य

शोध आलेख का उद्देश्य लोक सभा की पृष्ठभूमि, संरचना, और कार्य इत्यादि का अध्ययन करना है। इस शोध आलेख का उद्देश्य संघीय विधायिका में लोक सभा की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना भी है। स्पष्टत: शोध आलेख का उद्देश्य स्पष्ट एवं सर्वविदित है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "भारत में लोक सभा: पृष्ठभूमि, संरचना और कार्य" है। इस विषय पर अबतक कई महत्वपूर्ण अध्ययन हुए हैं तथा कई महत्वपूर्ण परिकल्पनाओं पर कार्य की गई है। मैं अपने इस अध्ययन में प्रमुखत: भारतीय राजनीति में महिलाओं की वास्तविक भूमिका के अवलोकन हेतु लोक सभा की संरचना व कार्य का विशद् अध्ययन आवश्यक समझा है। वस्तुत: भारत की विधायिका में सर्वाधिक महत्वपूर्ण निकाय लोक सभा है। इसलिए इसमें महिलाओं की भागीदारी से भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका का वास्तविक अवलोकन आसान होगा तथा शोध निष्कर्ष पर पहुँचना भी आसान होगा।

साहित्य सर्वेक्षण

भारत में लोक सभा: पृष्ठभूमि, संरचना व कार्य विषय पर अबतक अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन सम्पन्न हुए हैं। इस विषय पर अबतक के महत्वपूर्ण अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध आलेख लेखन कार्य को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुत: शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण को अनिवार्य माना जाता है। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए हमने अपने प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. भारत का संविधान - एक परिचय, ब्रज किशोर शर्मा, पी०एच०आई० लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, ग्यारहवां संस्करण, 2015, नई दिल्ली।
2. भारतीय शासन और राजनीति, डॉ० जे०सी० जौहरी और डॉ० आर० के० पुरवार, विशाल पब्लिकेशन्स जालन्धर, द्वितीय संस्करण, वर्ष 1988, नई दिल्ली।
3. भारत का संविधान, डॉ० बसन्ती लाल बाबेल, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, तेरहवाँ संस्करण, 2014, इलाहाबाद।
4. पोलिटिकल इम्पावरमेन्ट ऑफ विमेन इन इंडिया, पुला राव, ए०बी०डी० पब्लिसर, वर्ष 2012
5. राजनीतिक सिद्धान्त, डॉ० अशोक कुमार, नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, पटना, 2010
6. वूमन, जेंडर एण्ड पोलिटिक्स-एक रीडर, मोना लीना क्रुक, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है, जिसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

भारत की संघीय विधायिका में लोक सभा एक सशक्त निकाय है। लोक सभा विधि निर्माण, कार्यपालिका पर नियंत्रण, वित्तीय कार्य सम्पादन, संविधान संशोधन तथा अन्य विधायी कार्यों के निष्पादन में सशक्त भूमिका का निर्वहण किया है। संविधान संशोधन में भले ही लोक सभा की स्थिति राज्य सभा के समान है, परन्तु लोक प्रशासन पर नियंत्रण के सन्दर्भ में तो लोक सभा ही सर्वेसर्वा है। धन विधेयक तथा वित्त विधेयक में लोक सभा एकसदनात्मक स्थिति सदृश्य दिखता है। यहाँ राज्य सभा की भूमिका मात्र एक विलम्बकारी निकाय की है। निष्कर्षत: भारत में लोक सभा संरचना व कार्य से सशक्त व प्रभावी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-79
2. भारतीय संविधान में 31वाँ संशोधन, 1974
3. भारतीय संविधान अनुच्छेद-331
4. भारतीय संविधान अनुच्छेद-330
5. संघ और राज्य सरकारों में मंत्री पद 'लाभ के पद' नहीं माने जाते हैं।
6. जनप्रतिनिधत्व अधिनियम, 1951 में वर्ष 1988 में संशोधन किया गया।
7. भारतीय संविधान अनुच्छेद-83(2)
8. डॉ० मदोदार रावत, भारतीय राज व्यवस्था, पृष्ठ-213
9. भारतीय संविधान अनुच्छेद-93

संसद तथा राज्य विधानमंडल के द्वितीय सदनों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० अशोक कुमार

एम०ए० (राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन), पी०एच-डी०, पी०यू०

शोध आलेख का सार

भारत में संसदीय शासन प्रणाली और संघात्मक शासन प्रणाली के बीच समन्वय किया गया है तथा इसी समन्वय के आधार पर शासन के तीन अंगों यथा विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की संरचना, प्रक्रिया व कार्यकरण को संविधान के अन्तर्गत उपबंधित व्यवस्थित किया गया है। सरकार के तीनों अंगों का महत्व है, परन्तु विधायिका को लोकतांत्रिक सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। संघवाद के अनुरूप भारत में दोहरी सरकार है अर्थात् संघ की सरकार तथा राज्यों की सरकारें। संघ की विधायिका को 'संसद' तथा राज्य विधायिका को 'राज्य विधानमंडल' कहा जाता है। संसदीय प्रजातंत्र के अनुरूप यहाँ विधायिका और कार्यपालिका एक-दूसरे से जुड़ी हुई है, परन्तु न्यायपालिका पृथक् स्वतंत्र, स्वायत्त तथा एकीकृत है। संघीय विधायिका 'संसद' द्विसदनात्मक है। संसद के प्रथम, निम्न व लोकप्रिय सदन को लोकसभा तथा द्वितीय एवं उच्च सदन को 'राज्य सभा' कहा जाता है। संसद का द्वितीय सदन 'राज्य सभा' स्थायी सदन है।

राज्य विधायिका को विधानमंडल कहा जाता है जो सभी राज्यों में समान रूप में द्विसदनात्मक नहीं है। कुछ राज्यों में द्विसदनात्मक तथा कुछ राज्यों में एक सदनात्मक विधानमंडल है। विधानमंडल के द्विसदनात्मक व्यवस्था में प्रथम, निम्न और लोकप्रिय सदन को विधान सभा कहा जाता है। द्वितीय व उच्च सदन को विधान परिषद् कहा जाता है। संघ में राज्य सभा के समान राज्यों में विधान परिषद् को स्थायी बनाया गया है। स्पष्टत: संघीय विधायिका में राज्य सभा तथा राज्य विधायिका में विधान परिषद् को द्वितीय, उच्च एवं स्थायी सदन बनाया गया है। इन दोनों द्वितीय व उच्च सदनों में कुछ समानताएँ तथा कुछ असमानताएँ है। प्रस्तुत शोध आलेख में इन्हीं दोनों सदनों का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

मूल शब्द: संसदीय प्रजातंत्र, संघवाद, द्विसदनात्मक एवं एक-सदनात्मक राजनीति, विधायी प्रक्रिया, संसदीय प्रक्रियाएँ।

प्रस्तावना

भारत में संघवाद और संसदीय प्रजातंत्र को समन्वित रूप में स्वीकार किया गया है। भारत की संघात्मक शासन में विधि-निर्माण का कार्य विधायिका दो स्तरों पर दो भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा सम्पन्न करती है। सम्पूर्ण देश के लिए संघीय विधायिका 'संसद' तथा संघ के प्रत्येक राज्य के लिए सम्बन्धित राज्य की व्यवस्थापिका 'विधानमंडल' के द्वारा विधि-निर्माण के दायित्व को निष्पादित किया जाता है।[1] शासन के तीनों अंगों का महत्व है, लेकिन विधायिका (संसद तथा विधानमंडल) का केन्द्रीय महत्व है। विधायिका तो लोकतंत्र की उपस्थिति एवं औचित्य को प्रमाणित करती है। वस्तुत: भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में विधायिका के महत्व को रेखांकित करते हुए संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष तथा स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा कि "हमारी लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु विधायिका है।" भारत में संघ की विधायिका को संसद तथा राज्य की विधायिका को 'राज्य विधानमंडल' कहा गया है। संघ में राज्यपाल को संसदीय प्रजातंत्र के अनुरूप विधायिका का निकाय बना दिया गया है। प्रस्तुत शोध आलेख में संसद के द्वितीय एवं उच्च सदन 'राज्य सभा' तथा विधानमंडल के द्वितीय एवं उच्च सदन 'विधान परिषद्' का तुलनात्मक अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अपेक्षित है।

1. संविधान में सदन: भारतीय संविधान में संघ के लिए एक संसद का उपबंध है, जो राष्ट्रपति तथा दो सदनों (राज्य सभा और लोक सभा) से मिलकर बनेगी।[2] संसदीय प्रजातंत्र के अनुरूप भारत में विधायिका और कार्यपालिका को जोड़ा गया है। इसलिए संसद तीन निकायों में राष्ट्रपति को शामिल किया गया है। राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रधान होता है[3] तथा सम्पूर्ण राष्ट्र की कार्यपालिका शक्ति उसी में निहित होती है।[4] स्पष्टत: राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रधान और कार्यपालिका है तथा विधायिका का भी अंग बनाया गया है। संसद के तीन निकायों में राष्ट्रपति के अतिरिक्त द्विसदनात्मक व्यवस्था अर्थात् राज्य सभा तथा लोक सभा है। लोक सभा संसद का निम्न, प्रथम और लोकप्रिय सदन है। दूसरी ओर राज्य सभा को संसद का द्वितीय, उच्च एवं स्थायी सदन बनाया गया है। संविधान के अन्तर्गत राज्य सभा[5] तथा लोक सभा[6] का व्यवस्थित उपबंध है। स्पष्टत: राष्ट्रपति, राज्य सभा तथा लोक सभा का संयुक्त नाम ही संसद है।

राज्यों की विधायिका को विधानमंडल कहा जाता है। संविधान में राज्यपाल को भी विधानमंडल का अभिन्न अंग बनाया गया है।[7] राज्य विधायिका अर्थात् विधानमंडल कुछ राज्यों में द्विसदनात्मक (बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, जम्मू-कश्मीर, आन्ध्र प्रदेश और तलांगना) है। विधानमंडल के प्रथम, निम्न और लोकप्रिय सदन को 'विधान सभा' कहा जाता है, जबकि द्वितीय एवं उच्च सदन को 'विधान परिषद्' कहा जाता है। जिस राज्य में विधानमंडल एक-सदनात्मक है, उसे सामान्यत: विधान सभा ही कहा जाता है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत विधान परिषद् के अन्तर्गत विधान परिषद् तथा विधान सभा का उपबंध किया गया है।[8]

2. प्रथम सदन से सम्बन्ध: संसद की द्विसदनात्मक व्यवस्था में 'लोक सभा' प्रथम, निम्न और लोकप्रिय सदन है। विधानमंडल की द्विसदनात्मक व्यवस्था में 'विधान सभा' प्रथम, निम्न और लोकप्रिय सदन है। संसद के प्रथम एवं निम्न सदन 'लोक सभा' तथा राज्य विधानमंडल के प्रथम एवं निम्न सदन 'विधान सभा' को सशक्त सदन बनाया गया है। इन दोनों सदनों के सदस्यगण जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप में वयस्क मताधिकार के आधार पर 5 वर्षों के लिए निर्वाचित किये जाते हैं। लोक सभा तथा विधान सभाओं को क्रमश: राष्ट्रपति तथा राज्यपालों के द्वारा विघटित किया जा सकता है। लोक सभा की अधिकतम सदस्य संख्या 550/552 निर्धारित है, हालांकि व्यवहार में यह 543/545 ही होती है। विधान सभा की सदस्य संख्या अधिाकतम 500 और न्यूनतम 60 (सिक्किम, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश और गोवा में क्रमश: 32, 40, 40, 40 सदस्य संख्या) है। संसद तथा विधानमंडल, दोनों में ही द्वितीय सदन की तुलना में प्रथम सदन सर्वोच्च एवं सशक्त सदन है। संरचना के ही आधार पर नहीं, शक्ति एवं कार्य के सम्बन्ध में भी संघ तथा राज्य दोनों ही स्तर पर द्वितीय सदन की तुलना में प्रथम सदन को मजबूत बनाया गया है। वस्तुत: लोकप्रिय सदनों को सर्वोच्च बनाना जरूरी भी होता है, क्योंकि उनके सदस्य जनता द्वारा प्रत्यक्ष में निर्वाचित भी तो होते हैं। लोक सभा में निर्वाचन के अतिरिक्त विशेष परिस्थिति में राष्ट्रपति द्वारा दो आंगल भारतीय सदस्यों का मनोनयन हो सकता है।[9] विधान सभा में भी राज्यपाल द्वारा विशेष परिस्थिति में एक आंग्ल भारतीय सदस्य के मनोनयन का प्रावधान है।[10] वस्तुत: संघ तथा राज्यों में द्वितीय सदन की तुलना में प्रथम सदन की वास्तविक स्थिति का आकलन सम्पूर्ण शक्ति विषयक विवेचन से ही संभव है, फिर भी इतना तो पूर्व में भी निष्कर्ष दिया जा सकता है कि प्रथम सदन को द्वितीय सदन की तुलना में सशक्त बनाया गया है तथा यह लोकतंत्र की मौलिक माँग भी है।

3. सदस्य संख्या: भारत के संविधान में राज्य सभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 निश्चित की गई है, जिसमें 238 सदस्यों की भारतीय संघ की इकाई राज्यों एवं संघ-शासित क्षेत्रों से निर्वाचित होने तथा शेष 12 सदस्यों की राष्ट्रपति द्वारा मनोनित किये जाने की व्यवस्था है। मनोनीत व्यक्ति कला, विज्ञान, साहित्य सेवा, समाज सेवा या सहकारिता के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त होंगे। संविधान द्वारा राज्य सभा की सदस्य संख्या अधिकतम 250 बताई गई है, जबकि प्रारम्भ से अबतक 245 ही है। राष्ट्रपति द्वारा 12 नाम निर्देशित (मनोनयन) के अतिरिक्त संविधान की चतुर्थ अनुसूची में अभी तक 233 ही स्थान को आवंटित किया गया है, जबकि 238 के आवंटन का संविधान में उपबंध है।[12]

विधानमंडल का द्वितीय एवं उच्च सदन 'विधान परिषद्' है, जिसका अस्तित्व एवं सदस्य संख्या राज्य विशेष की संवैधानिक एवं राजनीतिक स्थिति पर निर्भर करता है। संविधान में किसी राज्य की विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या उस राज्य की विधान सभा के सदस्यों की संख्या की एक तिहाई से अधिक तथा 40 से कम नहीं होगी।[13] यह उल्लेखनीय है कि जम्मू-कश्मीर विधान परिषद् की सदस्य संख्या संवैधानिक उपबंध का अपवाद है। भारतीय संविधान द्वारा भारतीय संसद को प्राधिकृत किया गया है कि

वह विधान परिषद् के गठन के संबंध में विधि का निर्माण कर सकती है, लेकिन जब तक भारतीय संसद विधि बना कर ऐसा न करे, विधान परिषद् का गठन निम्नलिखित प्रकार से किये जाने का प्रावधान किया गया है। भारतीय संविधान द्वारा यह उपबंधित किया गया है कि किसी राज्य का विधान परिषद् का कुल संख्या के

(i) 1/3 सदस्य राज्य के नगरपालिकाओं, जिला परिषदों तथा स्थानीय निकायों के सदस्यों के निर्वाचन मंडलों द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे या जैसे कि भारतीय संसद द्वारा निश्चित किया जाये।

(ii) 1/12 सदस्य कम-से-कम 3 साल पूर्व के स्नातकों के निर्वाचन मंडल द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे।

(iii) 1/12 सदस्य मध्यमिक शिक्षा-संस्थाओं में कम-से-कम 3 वर्ष से सेवारत शिक्षकों के निर्वाचन मंडल द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे।

(iv) 1/3 सदस्य उस राज्य के विधान सभा के सदस्यों द्वारा उन लोगों में से चुने जायेंगे जो इस विधान सभा के सदस्य नहीं है और

(v) 1/6 सदस्य राज्यपाल द्वारा कला, विज्ञान, साहित्य, समाज सेवा, सहकारिता आन्दोलन क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त का मनोनयन होता है।

4. सदस्यों की योग्यताएँ: राज्य सभा की सदस्यता के उम्मीदवार के लिए संविधान के द्वारा लोक सभा की सदस्यता के उम्मीदवार के समान ही योग्यता को निर्धारित किया गया है।[14] अन्तर केवल यह है कि लोक सभा की सदस्यता के उम्मीदवार की आयु कम से कम 25 वर्ष परन्तु राज्य सभा की सदस्यता की आयु कम से कम 30 वर्ष अपेक्षित है। संविधान के अन्तर्गत विधान परिषद् की सदस्यता की योग्यता विषयक उपबंध है।[15] संवैधानिक उपबंध के अनुरूप विधान परिषद् के उम्मीदवार के लिए आवश्यक है कि वह (i) भारतीय नागरिक हो; (ii) कम से कम 30 वर्ष न्युनतम आयु हो; (iii) संघ या राज्य सरकार के अधीन मंत्रीपद को छोड़कर किसी लाभ के पद पर कार्यरत न हो; (iv) सम्बन्धित राज्य का निवासी हो और (v) संसद द्वारा निर्धारित अन्य सभी योग्यताएँ रखता हो।

5. निर्वाचन एवं मनोनयन: संसद के द्वितीय सदन 'राज्य सभा' में राष्ट्रपति द्वारा 12 मनोनीत सदस्यों को छोड़कर 238 (अभी मात्र 233) जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं। राज्य सभा के निर्धारित 233 सदस्यों का निर्वाचन राज्य विधान सभा के सदस्यों के द्वारा एक संक्रमणीय मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर किया जाता है। विधान परिषद् में भी अप्रत्यक्ष निर्वाचन तथा राज्यपाल द्वारा मनोनयन का प्रावधान है। विधान परिषद् की कुल सदस्य संख्या का 1/6 सदस्यों का मनोनयन राज्यपाल द्वारा किया जाता है तथा शेष सदस्यों का निर्वाचन एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर किया जाता है। स्पष्टत: राज्य सभा तथा विधान परिषद् दोनों ही सदनों में अप्रत्यक्ष निर्वाचन तथा मनोनयन की पद्धति कायम है।

6. कार्यकाल: राज्य सभा तथा विधान परिषद्, दोनों ही स्थायी सदन है। स्पष्ट है कि राष्ट्रपति तथा राज्यपाल के द्वारा इन सदनों को विघटित नहीं किया जा सकता है। भारतीय संविधान में राज्य सभा को स्थायी सदन बताया गया है तथा इस बात का उपबंध भी किया गया है कि इसका कभी विघटन नहीं होगा।[16] राज्य सभा स्थायी सदन जरूर है, परन्तु इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष निर्धारित है। प्रत्येक 2 वर्ष बाद राज्य सभा के एक-तिहाई ऐसे सदस्य, जिनका 6 वर्ष का कार्यकाल पूरा हो चुका है, अपनी सदस्यता से अवकाश ग्रहण करते जाते हैं और उनको स्थान पर पुन: एक-तिहाई नये सदस्य निर्वाचित होकर आते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य 6 वर्ष तक राज्य सभा का सदस्य रहता है।

विधान परिषद् को भी राज्य सभा के समान एक स्थायी सदन बनाया गया है तथा इसके लिए संविधान के अन्तर्गत उपबंधा किया गया है।[17] विधान परिषद् कभी भंग नहीं होती; इसके द्वारा एक-तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष के उपरान्त अवकाश ग्रहण करते रहते हैं तथा उनके स्थान पर नवीन सदस्य निर्वाचित होते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल 6 वर्ष रहता है, परन्तु त्यागपत्र देकर कोई भी सदस्य समय से पूर्व भी अपना पद छोड़ सकता है।

7. सदन के पदाधिकारी: सदन को संचालित करने के लिए पदाधिकारी होते हैं। संविधान के द्वारा राज्य सभा के दो प्रमुख पदाधिकारी- सभापति तथा उपसभापति होते हैं।[18] भारत का उप राष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होता है, जिसका कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। उप सभापति 6 वर्ष के लिए राज्य सभा द्वारा अपने सदस्यों में से ही निर्वाचित किया जाता है। सभापति की अनुपस्थिति में उपसभापति, सभापति के स्थान पर कार्य करता है। उप सभापति के विरुद्ध अविश्वास या अयोग्यता का प्रस्ताव पारित

कर राज्य सभा उसे उसके पद से हटा सकती है, परन्तु सभापति को पद से हटाने के राज्य सभा को लोक सभा से सहमति लेना आवश्यक होता है। उप राष्ट्रपति को राज्य सभा के सभापति के रूप में मासिक वेतन व भत्ता प्राप्त होता है।

संविधान के अनुच्छेद-182 की व्यवस्था के अनुसार विधान परिषद् के दो प्रमुख पदाधिकारी होते हैं- (i) **सभापति और** (ii) **उपसभापति**। इन दोनों पदाधिकारियों को विधान परिषद् अपने सदस्यों में से ही निर्वाचित करती है। ये दोनों पदाधिकारी अपनी सदन की सदस्यता पर्यन्त अपने पद पर बने रहते हैं और एक-दूसरे को अपना त्यागपत्र देकर अपना पद छोड़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त 14 दिन की पूर्व सूचना पद पर प्रस्तुत और विधान परिषद् के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा उन्हें पद से हटाया जा सकता है। विधान परिषद् के सभापति और उपसभापति की शक्तियाँ एवं कर्तव्य वही हैं, जो विधान सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के हैं।

सभापति सदन की कार्यवाही का संचालन करने के साथ-साथ सदन की कार्य-सूची का निर्धारण भी करता है। इसके अतिरिक्त सदस्यों को भाषण देने, प्रश्न पूछने एवं प्रस्तावों और विधेयकों को प्रस्तुत करने की अनुमति देता है तथा प्रस्तावों और विधेयकों पर मतदान कराता है। किसी विधेयक या प्रस्ताव के पक्ष व विपक्ष में समान मतदान होने की स्थिति में अपना निर्णायक मत (Casting Vote) देता है। सदन में अनुशासन बनाये रखना सभापति का ही कार्य होता है। सभापति की अनुपस्थिति में उपसभापति उसका कार्य करता है। यदि उपसभापति भी अनुपस्थित हो या उपसभापति का पद रिक्त हो, तो राज्यपाल द्वारा नियुक्त विधान परिषद् का सदस्य सभापति के दायित्वों का निर्वाह करता है। सभापति और उपसभापति के वेतन भत्ते राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्धारित किये जाते हैं।

8. साधारण विधेयक विषयक शक्ति: संसद के दोनों सदनों- राज्य सभा तथा लोक सभा को साधारण विधेयक के सम्बन्ध में समान शक्ति प्राप्त है। संसद के दोनों सदनों में साधारण विधेयक को प्रस्तुत किया जा सकता है तथा दोनों सदनों के द्वारा पारित होने के बाद ही राष्ट्रपति के पास अधिनियम बनने के लिए वह प्रस्तुत हो सकता है। यदि साधारण विधेयक को लेकर संसद के दोनों सदनों में मतभेद होता है तो वैसी स्थिति में राष्ट्रपति की स्वीकृति से लोक सभा अध्यक्ष की अध्यक्षता में 'संयुक्त सत्र' को आयोजित किया जा सकता है।

राज्य विधायिका अर्थात् विधानमंडल के भी दोनों सदनों में साधारण विधेयक को प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि विधान परिषद् के द्वारा साधारण विधेयक को पारित करके विधान सभा को भेजा जाता है तथा उसके द्वारा उस विधेयक को पारित नहीं किया जाता है तो विधेयक समाप्त हो जाता है। दूसरी ओर यदि विधान सभा के द्वारा साधारण विधेयक को पारित करके विधान परिषद् के पास भेजा जाता है तो उसे तीन महीने/90 दिन के अन्तर्गत विधेयक को संशोधित करके अथवा उसी रूप में स्वीकृत करना होता है। यदि 90 दिन तक विधान परिषद् कोई निर्णय विधान सभा द्वारा प्रेषित साधारण विधेयक पर निर्णय नहीं लेती है तो पुन: उक्त विधेयक को विधान सभा के द्वारा विधान परिषद को भेजा जाता है। इस बार परिषद् को अधिकतम 30 दिन विलम्ब करने का अधिकार है। स्पष्टत: विधान परिषद् को साधारण विधेयक के सम्बन्ध में अधिकतम चार माह/120 दिन की देरी लगाने का अधिकार है। यह उल्लेखनीय है कि साधारण विधेयक को लेकर विधानमंडल के दोनों सदनों में मतभेद होता है तो संघ के समान कोई संयुक्त सत्र का उपबन्ध नहीं है।

संसद तथा विधानमंडल के अन्तर्गत दोनों सदनों में साधारण विधेयक प्रस्तावित किये जा सकते हैं, परन्तु जहाँ संसद में दोनों सदनों की स्वीकृति के बिना साधारण विधेयक अंतिम रूप में पारित नहीं हो सकता है, वहाँ विधानमंडल में विधान सभा के बराबर की स्थिति विधान परिषद् की नहीं है। साधारण विधेयक के सन्दर्भ में विधान परिषद् के द्वारा मात्र 120 दिन/चार महीना की देरी कर सकता है। दूसरी बात यह है कि संसद के दोनों सदनों के बीच साधारण विधेयक को लेकर विवाद की स्थिति में संयुक्त सत्र का प्रावधान है।[19] परन्तु विधानमंडल के दोनों सदनों के बीच साधारण विधेयक को लेकर विवाद की स्थिति में भी किसी संयुक्त सत्र के आयोजन का संविधान में प्रावधान नहीं है।

9. धन और वित्त विधेयक विषयक शक्तियाँ: संसद तथा विधानमंडल दोनों में ही लोकप्रिय सदनों अर्थात् लोक सभा तथा विधान सभा में ही धन तथा वित्त विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। इन विधेयकों को द्वितीय सदनों अर्थात् राज्य सभा तथा विधान परिषद् में प्रस्तुत नहीं किया जाता है। लोक सभा से पारित होने के बाद वित्त व धन विधेयक को द्वितीय सदन अर्थात् राज्य सभा में भेजा जाता है। इन विधेयकों को 14 दिन के अन्दर राज्य सभा के द्वारा लोक सभा को वापस करना आवश्यक होता है। यदि राज्य सभा धन और वित्त विधेयक को 14 दिनों के अन्तर्गत लोक सभा को पारित करके अथवा सुझाव के साथ वापस नहीं करती है

तो विधेयक स्वत: पारित समझा जायेगा। स्पष्टत: धन तथा वित्त विधेयक के सम्बन्ध में राज्य सभा मात्र एक विलम्बकारी सदन की भूमिका में दिखता है।

राज्य विधायिका में विधान परिषद् की स्थिति बिल्कुल राज्य सभा के समान है। विधान परिषद् में धान तथा वित्त विधेयक प्रस्तावित नहीं किया जाता है। विधान सभा द्वारा जब धन तथा वित्त विधेयक को पारित करके विधान परिषद् को भेजा जाता है तो मात्र उसके द्वारा 14 दिन तक विलम्ब किया जा सकता है अथवा इसके पूर्व सुझाव के साथ उक्त विधेयक को वापस लौटा देना होता है। विधान सभा की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह विधान परिषद् की सुझाव स्वीकार करें अथवा न करें।

10. संविधान संशोधन विषयक शक्ति: संविधान संशोधन को लेकर संसद के दोनों सदनों की स्थिति बिल्कुल बराबर की है। संविधान संशोधन विधेयक दोनों सदनों में प्रस्तावित किया जा सकता है। संविधान संशोधन विधेयक तभी अंतिम रूप में पारित समझा जायेगा जब दोनों सदनों के द्वारा अपने 2/3 बहुमत से पृथक्-पृथक रूप में पारित कर दें। स्पष्टत: है कि संसद में संविधान संशोधन विधेयक को लेकर राज्य सभा की स्थिति लोक सभा के समान है।

विधानमंडल के किसी भी सदन को संविधान संशोधन के प्रस्तावित करने का अधिकार नहीं है। संविधान संशोधन विधेयक का जब राज्यों द्वारा पुष्टि की बात होती है, तो भी विधान सभा को यह अधिकार प्राप्त है। स्पष्टत: है कि संविधान संशोधन को लेकर विधान परिषद् को किसी प्रकार को अधिकार प्राप्त नहीं है।

11. राष्ट्रपति का निर्वाचन तथा पदच्युति प्रक्रिया: भारतीय संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति के निर्वाचन हेतु निर्वाचक मंडल के गठन का प्रावधान है।[20] निर्वाचक मंडल में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सांसदों तथा विधान सभाओं के निर्वाचित विधायकों को शामिल किया जाता है। स्पष्टत: राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य तो राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं, परन्तु विधान परिषद् के सदस्यों को ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं है। संविधान में राष्ट्रपति पर महाभियोग का प्रावधान किया गया है। राष्ट्रपति के विरुद्ध जब महाभियोग की प्रक्रिया चलती है तो संसद के दोनों सदनों के सभी सांसदों को उसमें भाग लेने का अधिकार है। राज्य विधायिका अर्थात् विधान मंडल के किसी भी सदन के सदस्यों को इसमें भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

12. विशेष प्रकार की शक्तियाँ: संसद का द्वितीय एवं उच्च सदन 'राज्य सभा' को कुछ विशेष प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त है। राज्य सभा अपने उपस्थित तथा मतदान में भाग लेनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके राज्य सूची के किसी भी विषय को राष्ट्रीय महत्व का विषय घोषित कर सकती है और राष्ट्रीय हित में उस पर कानून बनाने का अधिकार संसद को दे सकती है। ऐसा प्रस्ताव प्रारम्भ में एक वर्ष के लिए पारित किया जा सकता है, परन्तु यदि राज्य सभा चाहे तो हर बार उसे एक वर्ष के लिए आगे और बढ़ाया जा सकता है।[22] संविधान के अनुसार राज्य सभा अपने उपस्थित तथा मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके नई अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना करने का अधिकार संघीय सरकार को दे सकती है। राज्य सभा के इस प्रकार के प्रस्ताव के बिना संसद या संघीय सरकार द्वारा किसी नई अखिल भारतीय सेवा की स्थापना नहीं की जा सकती है।[23] विशेष परिस्थिति में आपातकाल के अनुमोदन का अधिकार राज्य सभा को प्राप्त है। राज्य सभा को इन विशेष प्रकार की शक्ति प्राप्ति से मजबूती प्राप्त होती है। ऐसी शक्तियाँ विधान परिषद् को प्राप्त नहीं है। जहाँ तक कार्यपालिका प्रशासन पर नियन्त्रण हेतु संसदीय प्रक्रियाओं तथा संसदीय समिति का सवाल है तो राज्य सभा को ऐसी भी शक्ति प्राप्त है। विधान परिषद् मात्र औपचारिक रूप में विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से कार्यपालिका प्रशासन को नियंत्रित करती है।

अध्ययन का उद्देश्य

शोध आलेख का उद्देश्य राज्य सभा तथा विधान परिषद् की संरचना, कार्य, प्रक्रिया आदि पहलुओं के सम्बन्ध में तुलनात्मक जानकारी प्राप्त करना है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इस बात को भी स्पष्ट करना है कि क्या संघीय विधायिका के समान राज्य विधायिका में द्वितीय सदन की समान स्थिति है? इस अध्ययन का उद्देश्य द्वितीय सदन तथा द्विसदनात्मक राजनीति के औचित्य को प्रमाणित करना भी है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक "संसद तथा विधानमंडल के द्वितीय सदन का तुलनात्मक अध्ययन" है। इस अध्ययन की परिकल्पना राज्य सभा की तुलना में विधान परिषद् की वास्तविक स्थिति का अवलोकन है। संघीय द्विसदनात्मक राजनीति में द्वितीय

एवं उच्च सदन 'राज्य सभा' की स्थिति से दुर्बल स्थिति में विधानमंडल में विधान परिषद् की है। विधान परिषद् राज्य की द्विसदनात्मक राजनीति में द्वितीय सदन है तथा इसे गौण सदन भी कहा जाता है, जो उचित नहीं है। लोकतांत्रिक सन्दर्भ में ही नहीं, स्थानीय प्रशासन को सशक्त विधायी स्थिति प्रदान करने के लिए विधान परिषद् का महत्त्व बढ़ गया है। इस शोध आलेख में इस बात की परिकल्पना की जा सकती है कि संघ के समान राज्य विधायिका का द्विसदनात्मक राजनीति भविष्य में अनिवार्य बन सकती है।

साहित्य सर्वेक्षण

विधान परिषद् की संरचना और कार्य पर अबतक अनेक महत्वपूर्ण अध्ययन सम्पन्न हुए हैं तथा किसी राज्य के विधान परिषद् पर भी कई महत्वपूर्ण अध्ययन कार्य महत्वपूर्ण रूप में पूर्ण किये गये हैं। इस विषय पर अबतक के महत्वपूर्ण अध्ययन में कुछ साहित्य का सामान्य अवलोकन अनिवार्य प्रतीत होता है। ऐसा करना शोध कार्य को सार्थकता प्रदान करता है। वस्तुत: शोध आलेख को प्रभावी बनाने के लिए साहित्य सर्वेक्षण का अनिवार्य माना जाता है। इसी अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए हमने अपने प्रस्तुत शोध आलेख की तैयारी में निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है।

'भारत का संविधान : एक परिचय' नाम की पुस्तक का लेख ब्रजकिशोर शर्मा के द्वारा किया गया है, जिसका प्रकाशक- पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड तथा प्रकाशन वर्ष 2015 (ग्यारहवां संस्करण) है। प्रस्तुत पुस्तक में संविधान की रचना के पूर्व की घटनाएँ जैसे संवैधानिक सुधार व विकास आदि से लेखन प्रारम्भ हुआ है तथा सम्पूर्ण संविधान के पक्षों को व्यवस्थित रूप में लेखन किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में संसद तथा राज्य विधानमंडल विषयक तमाम बातों को बहुत ही व्यवस्थित रूप में विशेषत: संविधान के अनुच्छेदों को दर्शाते हुए प्रस्तुत किया है। बी०के० शर्मा ने 'भारत का संविधान-एक परिचय' से शासन के तीनों अंगों के सम्बन्ध में व्यापक जानकारी प्रस्तुत कर दिया है।

डॉ० अमरजीत सिंह नारंग की पुस्तक 'भारतीय शासन एवं राजनीति', गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली से प्रकाशित है, जिसका प्रथम संस्करण वर्ष 1998 है। ए०एस० नारंग ने अपनी पुस्तक में राज्यों में शासन तथा राजनीति पर बहुत ही व्यवस्थित विचार प्रस्तुत किया है। उन्होंने संघीय विधायिका की द्विसदनात्मक राजनीति के साथ-साथ राज्यों की राजनीति के परिवर्तित आयाम को स्पष्ट करने का सार्थक प्रयास किया है। इतना ही नहीं, डॉ० नारंग ने पुस्तक के अन्तर्गत राजनीति को प्रभावित करने वाले कारकों को भी स्पष्ट किया है। इस पुस्तक से राज्य सभा तथा विधान परिषद् के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी प्राप्त होती है।

डॉ० जे०सी० जौहरी और डॉ० आर० के० पुरवार ने 'भारतीय शासन और राजनीति' नाम की पुस्तक लिखा है, जिसका प्रकाशन- विशाल पब्लिकेशन्स जालन्धर-नई दिल्ली तथा द्वितीय संस्करण वर्ष 1988 है। इन विद्वानों के द्वारा अपनी प्रस्तुत पुस्तक में "राज्यों में विधानमंडल" शीर्षक के अन्तर्गत विधान परिषद् विषयक जानकारी प्रदान की गई है। उस पुस्तक में कहा गया है कि यदि विधान परिषद् का कार्य ठीक है तो उसका अस्तित्व रहना चाहिए, अन्यथा उसे विघटित कर देना उचित है। स्पष्टत: कार्यकरण के परिप्रेक्ष्य में सदन के अस्तित्व के औचित्य को स्पष्ट किया गया है।

डॉ० जय प्रकाश शर्मा की पुस्तक 'भारतीय राजनीतिक व्यवस्था' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर से प्रकाशित है तथा उसका प्रथम प्रकाशन वर्ष 2000 है। शर्मा ने अपनी पुस्तक के अन्तर्गत "राज्य विधायिका" शीर्षक के अन्तर्गत विधान परिषद् की संरचना व कार्यकरण पर सुन्दर आलेख लिखा है। इस पुस्तक में विधानमंडल के दोनों सदनों के सन्दर्भ में विस्तृत चर्चा की गई है।

डॉ० बसन्ती लाल बाबेल की पुस्तक 'भारत का संविधान' है, जो सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद से प्रकाशित (तेरहवाँ संस्करण, 2014) है तथा मोतीलाल नेहरू पुरस्कार से पुरस्कृत भी है। प्रस्तुत पुस्तक में डॉ० बाबेल ने राज्य विधानमंडल का अनुच्छेदगत विश्लेषण किया है। इस पुस्तक में विधान परिषद् के सभी पक्षों का संवैधानिक उपबंध के अनुरूप विवेचन है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक एवं वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्य सर्वेक्षण का अवलोकन किया गया है, जिसके सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि इसमें तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

संघीय विधायिका अर्थात् संसद की द्विसदनात्मक व्यवस्था में राज्य सभा द्वितीय, उच्च एवं स्थायी सदन है। राज्य विधायिका अर्थात् विधानमंडल में विधान परिषद द्वितीय, उच्च एवं स्थायी सदन है। वस्तुत: राज्य सभा और विधान परिषद्, दोनों को ही स्थायी बनाया गया है अर्थात् इनका विघटन नहीं हो सकता है। इन दोनों सदनों की समानता तथा असमानता के पक्ष को शोध आलेख में स्पष्ट करने का सार्थक प्रयास किया गया है। संघीय राजनीति के राज्य सभा को लोक सभा की तुलना में कमजोर एवं द्वितीय भले ही बताया जा सकता है, परन्तु द्वितीयक (गौण) नहीं कहा जा सकता है। जबकि राज्यों की राजनीति में विधान परिषद् को विधान सभा की तुलना में बहुत ही कमजोर बनाया गया है। वस्तुत: विधान परिषद् शक्ति व महत्व के सन्दर्भ में द्वितीय ही नहीं द्वितीयक (गौण) प्रतीत होता है, हालांकि द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के सातवें प्रतिवेदन (वर्ष 2007) के बाद विधान परिषद् को महत्वपूर्ण माना जा रहा है। स्थानीय प्रशासन को राज्य के विधायी प्रशासन के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण बनाने के लिए भी अब विधान परिषद् को महत्वपूर्ण बनाया जा रहा है। अब राज्य शासन विधान परिषद् के गठन में सकारात्मक दृष्टिकोण का परिचय दे रहा है तथा संघीय राजनीति के समान राज्यों की द्विसदनात्मक राजनीति में इसे महत्वपूर्ण माना जा रहा है। अब विधान परिषद् को द्वितीयक कहना उचित प्रतीत नहीं होता है।

सन्दर्भ

1. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-245
2. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-79
3. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-52
4. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-53
5. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-80
6. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-81
7. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-168
8. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-169 एवं 170
9. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-331
10. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-333
11. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-80
12. संविधान की चतुर्थ अनुसची का अवलोकन अपेक्षित
13. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-171(1)
14. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-102
15. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-173
16. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-83(1)
17. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-172(2)
18. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-89(1) और (2)
19. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-108
20. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-54
21. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-61
22. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-249
23. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-312

प्रेमचंद की रचनाओं में राष्ट्रीय भावना

डॉ० शैल कुमारी वर्मा

विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, महारानी जानकी कुंवर महाविद्यालय, बेतिया (प० चम्पारण)
बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

प्रेमचंद, हिन्दी के एक सजग साहित्यकार हैं। इनकी रचनाओं में व्यक्ति विशेष की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन, पारिवारिक-सामाजिक परिवेश के चित्र और राष्ट्रीय गतिविधियों की झांकी सभी मर्मस्पर्शी रूप में हैं। प्रेमचंद के समय भारत, अंग्रेजों के अधीन था। समस्त भारतीय जनता अंग्रेजों के अत्याचार, दमन एवं शोषण से त्रस्त थी। भारतवासियों का जीवन दिन-प्रतिदिन त्रासदियों एवं कष्टों से घिरता जा रहा था। देश की अधिकांश जनता अशिक्षित थी। शिक्षित लोगों के पास भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं थी। अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध कुछ भी बोलने एवं लिखने का मतलब था, जेल जाना। प्रेमचंद के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध कुछ लिखना और भी मुश्किल था, क्योंकि वे सरकारी सेवा में थे। आरंभ में वे सरकारी विद्यालय में शिक्षक थे, फिर स्कूल-सब-इन्स्पेक्टर हुए। फलस्वरूप प्रेमचंद ने नाम बदलकर लिखने का निश्चय किया। प्रेमचंद का सर्टिफिकेट नाम धनपत राय था। यही धनपत राय उर्दू में नवाब राय और हिन्दी में प्रेमचंद हुए। धनपत राय ने पहले उर्दू में नवाब राय नाम से लिखना शुरु किया। इनका पहला कहानी-संग्रह 'सोजे-वतन' सन् 1908 में प्रकाशित हुआ। इसकी पहली कहानी थी- 'संसार का अनमोल रत्न'। इस कहानी में देशभक्ति की भावना अत्यन्त मार्मिक रूप में थी। इसमें लेखक प्रश्न उठाता है कि संसार का अनमोल रत्न क्या है? कथा के माध्यम से विभिन्न पात्रों की स्थितियों को चित्रित करते हुए यह दर्शाया जाता है कि संसार का अनमोल रत्न उस पिता का अश्रु-बून्द नहीं है, जिसके पुत्र को मृत्यु-दंड मिला है और न ही सती के शरीर की भस्म है, बल्कि खून का वह आखिरी बूंद है जो देश की आजादी के लिए गिरे। देशभक्ति की क्रांतिकारी भावना के कारण 'सोजे वतन' की सारी प्रतियाँ जब्त कर जला दी गयी। अंग्रेजों के खुफिया पुलिस ने यह सूचना दी कि सरकार के ही एक सेवक धनपत राय का साहित्यिक उपनाम नवाब राय है। फलस्वरूप धनपत राय कलक्टर के यहाँ तलब किये गये। इस घटना का उल्लेख प्रेमचंद इस प्रकार करते हैं-

'एक दिन मैं रात को अपनी रावटी में बैठा हुआ था कि मेरे नाम जिलाधीश का परवाना पहुंचा कि मुझसे तुरन्त मिलो। जाड़ों के दिन थे। साहब दौरे पर थे। मैंने बैलगाड़ी जुतवाई और रातों-रात तीस-चालीस मील तय करके दूसरे दिन साहब से मिला। साहब के सामने 'सोजे वतन' की एक प्रति रखी हुई थी। मेरा माथा ठनका। उस वक्त नवाब राय नाम से लिखा करता था। मुझे इसका कुछ-कुछ पता मिल चुका था कि खुफिया पुलिस इस किताब के लेखक की खोज में है।

साहब ने मुझसे पूछा- यह पुस्तक तुमने लिखी है?

मैंने स्वीकार किया।

साहब ने मुझसे एक-एक कहानी का आशय पूछा और अन्त में बिगड़कर बोले- 'तुम्हारी कहानियों में सिटीजन भरा हुआ है। अपने भाग्य को सराहो कि अंग्रेजी अमलदारी में हो। मुगलों का राज होता तो तुम्हारे दोनों हाथ काट लिये जाते। तुम्हारी कहानियां एकांकी है, तुमने अंग्रेजी सरकार की तौहीन की है।'[1]

'सोजे वतन' के प्रकाशन के बाद प्रेमचंद एक देशभक्त कहानीकार के रूप में आ गये। इस संदर्भ में डॉ० मदनलाल मधु कहते हैं- 'राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप प्रेमचंद सामाजिक उत्थान से संबंधित विषय-वस्तुओं के घेरे से बाहर निकलकर स्वतंत्रता सेनानियों की पांत में आ खड़े हुए और अपनी कलम से आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने लगे। राष्ट्र की राजनीतिक चेतना ने उन्हें लेखक के रूप में अपने कर्तव्य की चेतना करवाई और अपनी लेखनी से वह इस चेतना को जनसाधारण तक पहुंचाने लगे।'[2]

सरकारी सेवा में रहते हुए भी प्रेमचंद ने कभी अंग्रेजों की चापलूसी नहीं की। ये अंग्रेजों के दर्प एवं दुरभिमान के विरुद्ध सदा आत्मसम्मान के साथ रहे। एक बार की घटना का उल्लेख साहित्य अकादमी की पुस्तक 'प्रेमचंद' में इस प्रकार की गयी है- 'कलक्टर साहब के बंगले और नार्मल स्कूल के अहाते के दरमियान एक पुख्ता सड़क है। कलक्टर साहब रोजाना शाम को चार बजे के बाद नार्मल स्कूल की इसी सड़क पर चहलकदमी करते हुए गुजरते थे। सड़क के दक्षिण तरफ सेकेण्ड मास्टर मुंशी प्रेमचंद का क्वाटर था। एक रोज कलक्टर साहब ने मास्टर साहब को आवाज देकर हाथ के इशारे से बुलाया। जब वह आ गये तो साहब ने कहा- मैं रोजाना इस वक्त टहने आया करता हूँ, आप मुझे सलाम करने के लिए कभी नहीं आते।'[3]

प्रेमचंद कई पत्र-पत्रिकाओं से सम्बद्ध रहे और इन सबों में राष्ट्रीय भावना उजागर हुई है। ये एक ओर उर्दू के 'आवाजे-खल्क' और 'जमाना' से जुड़े तो दूसरी ओर हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'मर्यादा', 'माधुरी', 'जागरण' और 'हंस' से। 'जमाना' में राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करते हुए इन्होंने लिखा- 'उन्नीसवीं सदी में एक बार आजादी की हवा चली तो इटली फ्रांस, स्विटजरलैंड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आदि देशों को आजाद कर दिया। इस हवा का असर यूरोप तक ही सीमित रहा, किन्तु बींसवीं सदी के आरंभ में जो हवा चली है, वह अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा स्वास्थ्यप्रद और शक्तिशाली है। इस थोड़ी सी अवधि में उसने फारस को आजाद कर दिया है और अब खबरें आ रही हैं कि तुर्की की बूढ़ी-पुरानी हड्डियों में भी उसने रूह फूँक दी।'[4]

सन् 1930 में 'मर्यादा' पत्रिका के सम्पादक सम्पूर्णानन्द को जेल की सजा हो गयी। सम्पूर्णानन्द के जेल जाने के बाद प्रेमचंद इसके सम्पादक बने। इस पत्रिका के माध्यम से प्रेमचंद ने आजादी के संदेश एवं अंग्रेजों के अत्याचार की कथा को जन-जन तक पहुंचाया। उन्होंने गांधीजी के विचारों को प्रचारित-प्रसारित किया। सत्य, अहिंसा आदि पर लेख लिखे। अंग्रेजों के अत्याचार का विरोध करते हुए उन्होंने 'मर्यादा' में लिखा- 'जहाँ-कहीं पुलिस के अत्याचार या नौकरशाही के निरंकुशतापूर्ण हस्तक्षेप से कोई दंगा हो जाता है तो तुरन्त इसका इल्जाम असहयोगियों के सिर थोप देते हैं और दंगे को प्रमाणस्वरूप पेश कर देते हैं। वह असहयोगी नेताओं की शांति-प्रतिज्ञाओं पर जरा भा ध्यान नहीं देते।'[5] इसी पत्र में इन्होंने देशवासियों को प्रोत्साहित करते हुए कहा- 'हमने संसार के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य से लड़ाई ठानी है। इस संग्राम में हमें न जाने कितनी कुर्बारियाँ करनी पड़ेंगी, न जाने कितनी बार परास्त होना पड़ेगा, लेकिन हमें आशा है कि भारत-संतान अविरल उद्योग और कर्मपरायणता से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती जायेगी। काम कठिन है, पर असाध्य नहीं। याद रखिये, हमें अंग्रेज जाति से स्वराज लेना नहीं है, हमें अपने ही भाईयों से, अपने ही देश-बन्धुओं से स्वराज लेना है, हमें अपनी शक्तियाँ नौकरशाही से सत्याग्रह करने में नहीं, अपने भाईयों से सत्याग्रह कराने में लगानी चाहिए। जन-सम्मति को अपनी ओर फेर लेना स्वराज प्राप्ति का प्रमुख साधन है।'[6]

प्रेमचंद 'जागरण' पत्रिका से भी जुड़े। 'जागरण' में ही इनकी कहानी 'ठाकुर का कुआँ' छपी। इसके माध्यम से प्रेमचंद ने अंग्रेजों के शोषण, अत्याचार, फूट डालो और शासन करो की नीति का विरोध किया। इसके बाद प्रेमचंद ने 'हंस' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्रिका के माध्यम से इन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की विविध घटनाओं एवं प्रसंगों को जनता तक पहुंचाया। इसमें उन्होंने साइमन कमीशन, गांधी-इरविन समझौता, सविनय अवज्ञा आन्दोलन आदि पर कई लेख लिखे। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लहर एवं साहित्यकारों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा- 'साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है।'[7]

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव प्रेमचंद के उपन्यासों पर भी दिखलाई देता है। उस समय गांधीजी के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी। गांधीजी ने 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा दिया। साथ ही, देशवासियों के लिए अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। उन्होंने सत्य, अहिंसा, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार, स्त्री की स्थिति में सुधार, बुनियादी शिक्षा, चरखा, तकली, खादी, स्वदेशी आन्दोलन, समाज के प्रति सेवा भाव आदि पर बल दिया। प्रेमचंद के प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, वरदान, सेवासदन, गबन, गोदान सबों में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष रूप से हुई है। इस दृष्टि से 'कर्मभूमि' उपन्यास सर्वश्रेष्ठ है। इसमें गांधीजी के कार्यक्रम तकली, चरखा, खादी आदि का स्पष्ट उल्लेख है। उपन्यास का प्रमुख पात्र अमरकान्त चरखा चलाता है और खादी बेचता है। अमरकान्त और सलीम की मित्रता हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश देती है। अस्पृश्यता-निवारण के लिए प्रो० शांति कुमार और सुखदा आगे आते हैं। अमरकान्त, प्रो० शांति कुमार और सुखदा मिलकर हरिजन बस्ती में कार्य करते हैं। वे अछूतों को मंदिर में प्रवेश दिलाने में सफल होते हैं। अछूतों के उद्धार के लिए वे मद्य-निषेध कार्यक्रम बनाते हैं। वे उन्हें शिक्षा देते हैं कि शराब पीना, जुआ खेलना, मांस खाना ये सब बुरी बातें हैं और पैसे का दुरुपयोग है। इससे स्वास्थ्य और धन दोनों की बर्बादी होती है।

गांधीजी ने स्त्रियों की स्थिति पर बल दिया तो प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' उपन्यास के माध्यम से इसमें स्फूर्ति प्रदान की। 'कर्मभूमि' की नारी सजग और कर्तव्यनिष्ठ है। सुखदा नौकरी करती है, और राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेती है। वह शिक्षित और आत्मनिर्भर है। अमरकान्त से उपेक्षित होने पर सुखदा कहती है- 'एक मैं कुल मर्यादा के नाम को रोया करूँ, लेकिन यह अत्याचार बहुत दिनों तक न चलेगा। अब कोई इस भ्रम में न रहे कि पति चाहे जो करे, उसकी स्त्री उसके पाँव धो-धोकर पीयेगी, उसे अपना देवता समझेगी, उसके पाँव दबायेगी और वह उससे हँसकर बोलेगा तो अपने भाग्य को धन्य मानेगी। वह दिन बदल गये।' 'नैना' ऐसे पुरुष को अपना स्वामी नहीं कहना चाहती जो स्त्री में केवल रूप देखना चाहता है। सुखदा के जेल जाने के बाद नैना आन्दोलन का नेतृत्व संभालती है। अंग्रेजों के बलात्कार की शिकार 'मुन्नी' भरे बाजार में छुरी से दो गोरों की हत्या कर देती है। मुल्क की हिफाजत के संदर्भ में प्रेमचंद डॉक्टर शांति कुमार के मुख से कहलवाते हैं- 'मुल्क की हिफाजत करेंगे हम और तुम और मुल्क के दस करोड़ जवान, जो अब बहादुरी और हिम्मत में दुनिया की किसी कौम से पीछे नहीं हैं उसी तरह, जैसे हम और तुम रात को चोरों के आ जाने पर पुलिस को नहीं पुकारते, बल्कि अपनी-अपनी लकड़ियाँ लेकर घरों से निकल पड़ते हैं।'[8]

'कर्मभूमि' उपन्यास में जज साहब भी राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित नजर आते हैं- 'जज साहब सांवले रंग के नाटे, चकले, बृहदाकार मनुष्य थे। ...पहले यह महाशय राष्ट्र के उत्साही सेवक थे और कांग्रेस के किसी प्रान्तीय जलसे के सभापति हो चुके थे। पर इधर तीन साल से जज हो गये थे। अब वह राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक् रहते थे, पर जानने वाले जानते थे कि वह अब भी पत्रों में नाम बदलकर अपने राष्ट्रीय विचारों का प्रतिपादन करते रहते हैं।'[9] 'रंगभूमि' उपन्यास का प्रमुख पात्र सूरदास है। उसे अपनी जन्मभूमि से अपार लगाव है। वह इसे बचाने के लिए संघर्ष करता है। वह कहता है- 'हम जो सत्तर पीढ़ियों से यहाँ आबाद हैं, निकाल दिये जाएँ और दूसरे यहाँ आकर बस जाएँ, यह हमारा घर है, किसी के कहने से छोड़ नहीं सकते। जबरदस्ती जो चाहे, निकाल दे, न्याय से नहीं निकाल सकता। तुम्हारे हाथ में बल है, तुम हमें मार सकते हो, हमारे हाथ में बल होता तो हम तुम्हें मारते। यह तो कोई इंसाफ नहीं है।'[10]

कुँअर भरत सिंह जमींदार हैं। यद्यपि वे राष्ट्रभक्त हैं, परन्तु परिस्थिति से विवश होकर निराश हो चुके हैं। वे कहते हैं- 'जिस राष्ट्र ने एक बार अपनी स्वाधीनता खो दी, वह फिर उस पद को नहीं पा सकता। दासता ही उसकी तकदीर हो जाती है।'[11] डॉ० गांगुली अंग्रेजी शिक्षा से लैश शिक्षित भारतीय समाज के प्रतिनिधि हैं। वे गवर्नर की काउंसिल के सदस्य हैं। शुरु में उन्हें भरोसा था कि वे भारत का उद्धार करेंगे। जिंदगी के अंतिम पड़ाव पर पहुंचकर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अंग्रेजी राज की मंशा हमारे ऊपर अनन्त काल तक शासन करने की है। डॉ० गांगुली के इस मोहभंग की कथा, उस समय के शिक्षित अंग्रेजी मानसिकता वाले लोगों पर बिल्कुल सटीक लगती है। राष्ट्रीय भावना के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद का यह चुटीला व्यंग्य अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

अंग्रेजों के अत्याचार एवं शोषण नीति का विरोध प्रेमचंद 'सेवासदन' उपन्यास में भी करते हैं। इस उपन्यास में उत्तर प्रदेश के मुगलसराय स्टेशन के एक दृश्य का वर्णन 'शांता' इस प्रकार करती है- 'उसके देशवासी सिर पर बड़े-बड़े गठ्ठर लादे संकरे द्वार पर खड़े हैं और बाहर निकलने के लिए एक-दूसरे पर गिर पड़ते हैं। एक दूसरे तंग दरवाजे पर हजारों आदमी खड़े अन्दर जाने के लिए धक्का-मुक्की कर रहे हैं। लेकिन दूसरी ओर एक चौड़े दरवाजे से अंग्रेज लोग छड़ी घुमाते कुत्तों को लिए आते-जाते हैं।'[12] 'प्रेमाश्रम' किसानों के संघर्ष की कथा है, पर इसमें भी गांधीवादी प्रभाव है। 'प्रेमाश्रम' का बलराज न्याय के लिए संघर्ष पर उतारु है और जेल जाने से नहीं डरता है। वह कहता है- 'यही न होगा कैद होकर जेल चला जाऊँगा। इससे कौन डरता है? महात्मा गांध ी भी तो कैद हो आये हैं।'[13]

प्रेमचंद के 'वरदान' उपन्यास का प्रमुख स्वर राष्ट्रीय भावना ही है। देवी और सुवामा के संवाद में राष्ट्रीय भावना देखते ही बनती है। देवी के प्रश्न सपूत किसे कहते हैं, का उत्तर देते हुए सुवामा कहती है- 'जो अपने देश का उपकार करे'। उपन्यास में देशप्रेमी बालाजी के आगमन के समय के दृश्य में भी राष्ट्रीय भावना है- 'सड़क के दोनों पार्श्व में झण्डे और झाड़ियाँ लहरा रही थीं, गृहद्वार फूलों की माला पहने स्वागत के लिए तैयार थे, क्योंकि आज उस स्वदेश-प्रेम का शुभागमन है, जिसने अपना सर्वस्व देश के हित में बलिदान कर दिया है।'[14]

'गोदान' प्रेमचंद का सर्वश्रेष्ठ और अंतिम पूर्ण उपन्यास है। यह कृषक जीवन की त्रासदी है। यहाँ भारतीय नेताओं एवं जमींदारों को लगने लगता है कि अब अंग्रेजों का राज समाप्त हो जायेगा। फलत: कुछ जमींदार एवं नेता, ढोंगी भी होने लगे। प्रेमचंद ने इनके ढ़ोंग एवं झूठी राष्ट्रीयता को बेनकाव कर दिया है। 'गोदान' के राय साहब ऐसे ही जमींदार हैं- 'पिछले सत्याग्रह संग्राम में राय साहब

ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये थे। तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गयी थी। यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रिआयत की जाती हो या डाँड़ और बेगार की कड़ाई कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। .....राय साहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाए रखते थे।'[15]

इस प्रकार प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को गति दी, जनता के मनोबल को ऊँचा उठाया और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ें हिला कर रख दी।

संदर्भ सूचीः

1. प्रेमचंद, प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ. 21 से उद्धृत
2. गोर्की और प्रेमचंदः दो अमर प्रतिभाएं, डॉ० मदनलाल मधु, पृ० 115
3. प्रेमचंद, प्रकाशचन्द्र गुपत, पृ. 30
4. विविध प्रसंग, खण्ड-1, अमृत राय, पृ० 23
5. विविध प्रसंग, खण्ड-2, अमृत राय, पृ० 41
6. विविध प्रसंग, खण्ड-2, अमृत राय, पृ० 36
7. हंस, अप्रैल 1932, पृ० 40
8. कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ. 62
9. कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ. 51
10. कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ. 385
11. कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ. 139
12. कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ. 194
13. कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ. 22
14. कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ. 120
15. कर्मभूमि, प्रेमचंद, पृ. 02

भारतीय दर्शन में प्राकृतिक और दार्शनिक शिक्षा के आधार

डॉ० उदय कुमार शर्मा

एम. ए., पी.एच.-डी., दर्शन शास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सार तत्व

दर्शन की समस्या के रुप में तत्व की खोज तो अनादि काल से हो रही है और इसी आधार पर दार्शनिकों को समूहों में बाँट दिया गया है। जो एक तत्व मानते हैं वे एकतत्ववादी अथवा अद्वैतवादी, जो दो तत्वों में विश्वास करते हैं वे द्वितत्ववादी अथवा द्वैतवादी और बहुतत्व मानने वाले बहुतत्ववादी कहलाते हैं। साधारणतया एकतत्ववादी विचारधारा ही प्रबल है। ब्रह्माण्ड का मूल कारण चेतन है अथवा अचेतन? उसका रुप पौद्रलिक है अथवा मानसिक? इन प्रश्नों का उत्तर यह प्रकट कर देगा कि विचारक विचारवादी है एवं प्रकशतिवादी, विचारवादी प्रत्ययों को शाश्वत मानता है और उन सब प्रत्ययों का भी मूल किसी एक प्रत्यय को ही मानता है। यह मूल तत्व उसके अनुसार मानसिक है। यह तत्व चेतन है। इस पर आधारित शिक्षा-प्रणाली उस शिक्षा प्रणाली से भिन्न होगी जो पुद्रल को ही प्रथम कारण मानते हैं और साथ-साथ उसे स्वयं प्रेरक परिवर्तनशील प्रयोजनहीन मानते हैं। यह मूल तत्व पुद्रल है और प्रयोजनहीन है तो शिक्षा का उद्देश्य प्रयोजनशील नहीं हो सकता। केवल जीवित रहने के योग्य बनाना ही शिक्षा का लक्ष्य होगा।

एक प्रकृतिवादी विचारधारा यांत्रिक भौतिकवाद से मिलती है। भौतिकवादी के लिए पुद्रल मूल तत्व है, मनस् है मस्तिष्क उसकी क्रिया। पुद्‌गल ही मनस् का उद्‌गम है न कि मनस् पुद्‌गल का प्रेरक। चेतना इस मस्तिष्क का उफल है। भौतिकवादी संसार को एक यंत्र मानते हैं और उनके लिए जीवित प्राणी तो केवल अणु-परमाणु इत्यादि का जोड़ है। प्राकृतिक चुनाव के द्वारा उच्च प्रकार की चेतन-मशीनों की उत्पति संभव है। अत: भौतिकवादियों के लिए मनुष्य एक यंत्र है। प्रयोजनहीन, लक्ष्यहीन और निर्माण की शक्ति से च्युत मनुष्य केवल एक यंत्र है और मनोविज्ञान के लिए व्यवहारवादी शाखा इस दर्शन की देन है। व्यवहारवादी मनोविज्ञान के अनुसार मनोविज्ञान मनुष्य के केवल बाह्य व्यवहार का अध्ययन करता है और जिन्हें हम मानसिक क्रियायें कहते हैं, वे केवल बाह्य उत्तेजन की प्रतिक्रिया मात्र है। आत्मा और परमात्मा की मान्यता इस विचारधारा के अनुसार नहीं के बराबर है। चार्वाक का मत भी इस विचारधारा से मिलता-जुलता सा ही है।

मूल शब्द:- दर्शन में प्रकृती शिक्षा के आधार

प्रस्तावना

दार्शनिक प्रकृति की व्याख्या सामान्यता इस रुप में करते हैं कि प्रकृति सामान्य व स्वाभाविक रुप से विकसित होने वाली एक प्रक्रिया है। इस ब्रह्माण्ड की वह सभी वस्तुएँ जिनकी रचना या निर्माण में मनुष्य का शुन्य योगदान है, वही प्रकृति है। इसके साथ ही कुछ दार्शनिक विचारधारा मानती है कि प्रकृति वह है जो सर्वत्र तथा सर्वदा विद्यमान है और इसकी गतिविधियाँ निश्चित व प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित व नियंत्रित होती हैं। साथ ही इनका यह भी विचार है कि प्रकृति में अनेक पदार्थ होते हैं जिनके परस्पर सहयोग से विभिन्न प्रकार की रचनाएँ जन्म लेती हैं। यह पदार्थ गतिशील व क्रियाशील होते हैं। इसी कारण प्रकृतिवाद भौतिकवाद भी कहा जाता है। दर्शनशास्त्र में प्रकृति को ही सर्वोपरि सत्ता के रुप में स्वीकार किया जाता है, परन्तु प्राकृतिक दार्शनिक

विचारधारा बहुत ही व्यापक रुप में प्रकृति को स्वीकार करती है। एक ओर तो वह प्रकृति को भौतिक जगत के रुप में देखती है, जिसका हम प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं तो दूसरी ओर प्रकृति की व्याख्या जीव-जगत के रुप में भी की जाती है। साथ ही तीसरे अर्थ में देश-काल की सभी बातें भी प्रकृति में निहित होती है।

प्रकृतिवादी दर्शन

प्रो० सोर्ले के अनुसार प्रकृतिवाद को नकारात्मक रुप से भली-भाँति समझाया जा सकता है। यह वह विचारधारा है जिसके अनुसार स्वाभाविक या निर्माण की शक्ति मनुष्य के शरीर को नहीं दी जा सकती। प्रकृतिवादी विचारक बुद्धि का स्थान मानते हैं, पर कहते हैं कि उसका अर्थ केवल बाह्य परिस्थितियों तथा विचारों को काबू में लाना है जो उसकी शक्ति से बाहर जन्म लेते हैं। एक प्रकार से प्रकृतिवादी भी भौतिकवादियों की भाँति आत्मा-परमात्मा स्पष्ट प्रयोजन इत्यादि की सत्ता में विश्वास नहीं करते। प्रकृतिवाद सभ्यता की जटिलता की प्रतिक्रिया के रुप में हमारे सम्मुख आया है। इसके मुख्य नारे ''प्रकृति की ओर लौटो,'' समाज के बंधनों को तोड़ो'' इत्यादि हैं। सभ्यता का लचीलापन समाप्त होने पर यह वाद जन्म लेता है। पर प्रकृति का अर्थ क्या है? सर जान एडमस ने कहा है कि यह शब्द बड़ा ही जटिल है। इसकी अस्पष्टता के कारण बहुत सी भूलें और अन्धकार का फैलाव होता है। इसका अर्थ तीन प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य है निहित गुण और विशेषकर वे गुण जो जीवन के विकास और क्रमश: उन्नति की ओर ले जाने के लिए सहायक हों। यदि हम बालक को पढा़ना चाहते हैं तो उसके विकास के नियम हमें ज्ञात होने चाहिए। पकृति का इस प्रकार अर्थ करने का गौरव रुसो को प्राप्त है। डॉ० हॉल जिसे बाल-केन्द्रित शिक्षा कहते हैं, उसे रुसो ने प्रेरणा दी थी, यद्यपि उससे पूर्व क्विन्टिलियन भी इसे जानता था। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि प्रथम अर्थ में प्रकृति का तात्पर्य बहुत कुछ स्वभाव से लगाया जाता है।

पकृति का द्वितीय अर्थ है बनावट के ठीक विपरीत, जिस कार्य में मनुष्य ने सहयोग न दिया वही प्राकृतिक है। यह सत्य है कि मनुष्य प्रकृति में अपनी क्रियात्मकता से परिवर्तन लाया करता है। पर इसका अर्थ बनावट तो नहीं है। क्योंकि उक्त परिवर्तन अप्राकृतिक कैसे हो सकता है, जबकि मनुष्य स्वयं प्रकृति के कारण जीवित है और वह प्राकृतिक प्राणी है।

प्रकृति का तृतीय अर्थ है समस्त विश्व तथा उसकी क्रिया और इस अर्थ में मनुष्य जो कुछ भी करता है वह प्राकृतिक है। शिक्षा में इसका अर्थ होगा विश्व की क्रिया का अध्ययन और उसे जीवन में उतार देना।

कुछ विद्वानों का मत है कि मनुष्य को प्रकृति की विकासवादी श्रृंखला में बाधक नही बनना चाहिए, वरन उसे उस क्रिया से अलग ही रहना ठीक है। विकास किसी व्यक्तित्व के बिना नही हो सकता, व्यक्तित्व बिना प्रयोजन काम नहीं कर सकता।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का संकुचित अर्थ न लेकर व्यापक एवं व्यावहारिक अर्थ लिया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि शिक्षा शब्द से मैं यथार्थ कार्यकारी ज्ञानार्जन समझता हूँ। केवल पुस्तक तक की शिक्षा से काम नहीं चलेगा। हमारा प्रयोजन उस शिक्षा से है जिसके द्वारा चरित्र गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो, मनुष्य स्वावलंबी हो सके। अर्थात शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, भावात्मक एवं आर्थिक विकास में योगदान करे।

शिक्षा व्यक्ति में निहित पूर्णता का ज्ञान और अनुभूति है। अर्थात शिक्षा मनुष्य में पहले से ही उपस्थित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। किन्तु अज्ञानतावश मनुष्य अपने वास्तविक स्वरुप के प्रति पूर्णरुपेण सचेत नहीं रहता। वह अपना आध्यात्मिक परिचय अपनी आत्मा जो चित और आनन्द है नहीं कर पाता। शिक्षा का तात्पर्य है व्यक्ति को अपनी सत, चित आनन्द स्वरुप आत्मा को पहचानना।

श्री अरविन्द का मानना था कि मनुष्य मानस की स्थिति में आने के लिये 'द्रव्य एवं प्राण' दो सोपानों को पार करता है। जन्म के पश्चात उसको अतिमानस के चरण में पहुँचना होता है। फिर वहाँ से आनन्द से चित और चित से सत।

यदि हम उसे इस विकास की ओर ले जाना चाहते हैं तो हमें ऐसी शिक्षा देनी होगी जिससे कि वह इन सोपानों को जान सके तथा इन चरणों को प्राप्त करने की विधियाँ जान सके। श्री अरविन्द के अनुसार, यह कार्य केवल शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है, वह शिक्षा जो मनुष्य में शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक विकास ला सके। श्री अरविन्द ने इसे एकीकृत शिक्षा कहा।

(i) श्री अरविन्द के अनुसार ''शिक्षा मानव के मस्तिष्क और आत्मा की शक्तियों का निर्माण करती है। ज्ञान चरित्र और संस्कृति का उत्कर्ष करती है।'' इस ब्रह्माण्ड व मनुष्य के विकास का पहला पद द्रव्य (matter) है, श्री अरविन्द मनुष्य को इस द्रव्य जगत, पदार्थ जगत से परिचित कराना चाहते हैं तथा उसे अपनी शरीर की रक्षा तथा विकास से जुड़ी क्रियाओं

में प्रशिक्षित करना चाहते हैं। इसको उन्होने दूसरे शब्दों में शारीरिक विकास का उद्देश्य कहा है। उनके अनुसार, सत, चित, आनन्द की प्राप्ति एक स्वस्थ शरीर द्वारा ही सम्भव है। अत: शिक्षा का सर्वोपरि उद्देश्य, मानव का शारीरिक विकास है। उनका विश्वास था ''शरीरम् खलू धर्म साधनम्'', अर्थात शरीर के माध्यम से ही धर्म की साधना होती है। अत: उन्होंनं बालक के शारीरिक विकास पर ही बल नही दिया, अपितु इसके अन्तर्गत शारीरिक शुद्धि को भी सम्मिलित किया और बताया कि शरीर के उचित विकास के बिना मानव का आध्यात्मिक विकास नही हो सकता।

(ii) प्राण का विकास - मनुष्य के विकास का दूसरा चरण, प्राण है। प्राण से तात्पर्य उस उर्जा से है जिसके कारण ब्रह्माण्ड में परिवर्तन होते हैं। श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य इस प्राण का विकास करना है। उनके अनुसार, मनुष्य के प्राण को सही दिशा निर्देशित करने के लिए, उसका नैतिक व चारित्रिक विकास आवश्यक है तथा उसके आत्मबल को दृढ़ करना भी आवश्यक है।

(iii) मानसिक विकास - मानव विकास का तीसरा चरण, मानस अत: मन है। मानस हमारे अस्तित्व का सबसे सक्रिय भाग है। अत: शिक्षा को मनुष्य के मानसिक विकास को प्रभावित करना चाहिये। उनका मत है कि मानसिक शक्तियों के विकास के क्षेत्र में सर्वप्रथम आवश्यकता ध्यान एकाग्र करने की है। मानसिक विकास से उनका तात्पर्य स्मृति, चिन्तन, तर्क, कल्पना तथा निर्णय शक्ति आदि से है।

(iv) अन्त:करण का विकास - अतिमानस व अन्त:करण मानव विकास का चौथा चरण है। श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य अन्त:करण का विकास करना है। उनके अनुसार अन्त:करण के चार स्तर हैं - चित (हृदय), मानस, बुद्धि एवं आत्मज्ञान। आध्यात्म का विकास तभी सम्भव है जबकि व्यक्ति का अन्त:करण शुद्ध हो और उसकी आत्मा का पूर्ण विकास हुआ हो, इसके लिये व्यक्ति के शारीरिक विकास को अत्यन्त महत्व प्रदान किया है, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही पवित्र आत्मा का निवास हो सकता है।

उपनिषदों के अनुसार शिक्षा- उपनिषद में शिक्षा का अर्थ विद्या के रुप में लिया गया है, विद्या को आत्मानुभूति का साधन माना गया है। (विद्या अमृतमप्नुते) आत्मानुभूति के साधन- ज्ञान, कर्म व योग हैं। अत: वास्तविक शिक्षा हमें ज्ञान प्राप्त करने, कर्म करने व ईष योग के लिए प्रशिक्षित करती है व आनन्दानुभूति प्राप्त करने के योग्य बनाती है।

विभिन्न उपनिषदों में शिक्षा के उद्देश्यों का अलग-अलग ढंग से वर्णन किया गया है।

(i) शिक्षा का पहला उद्देश्य भौतिक जीवन की प्राप्ति है। माना गया है कि शिक्षा से असत्य का नाश होता है और आनन्द की प्राप्ति होती है। आनन्द ब्रह्म या आत्मा का शाश्वत रुप है। आनन्द का प्रथम और निम्नतम लक्ष्य अन्नमय है, अर्थात जीवन के भौतिक पक्ष की प्राप्ति आनन्द का प्रारम्भिक लक्षण है।

(ii) शिक्षा की प्राप्ति स्वस्थ शरीर के निर्माण से संबंधित है। स्वस्थ शरीर में प्राण ही वह शक्ति है, जिसके द्वारा वनस्पति तथा प्राणी जगत श्वास लेता है। यह प्राणमय स्वरुप है।

(iii) शिक्षा का उद्देश्य बालक का मानसिक विकास करना है। मानव जाति अन्य जीवों से उच्च मानी गई है, क्योंकि उसमें 'मनस' है। वह चिन्तन/विचार कर सकती है। यह शिक्षा का मनोमय रुप है।

(iv) चौथा उद्देश्य बालक में अच्छाई-बुराई में अन्तर करने की समझ पैदा करना है, अर्थात् बुद्धि का सही प्रयोग कर सकना है। यह विज्ञानमय रुप कहा गया है।

(v) शिक्षा का पाँचवा उद्देश्य आत्मानुभूति है, अर्थात आत्मा या आनन्द का सर्वोच्च स्थान है। यह वह स्तर है, जहाँ व्यक्ति को ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान में समस्त भेदों का अन्तर समाप्त हो जाता है। यह छात्र की आत्मा का अन्तिम स्वरुप आनन्दमय है।

योग शिक्षा

योग स्वयं में शिक्षा की एक विशिष्ट विधि है, जिसे आत्मशिक्षा कहा जा सकता है। एक बालक के लिए सच्ची शिक्षा जिन आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, योग भी उन सभी आवश्यकताओं की परिपूर्ति में हर संभव सहायक होता है। इतना ही नही योग हमेशा पूर्णता एवं सर्वांग पक्ष पर जोर देता है। विद्यार्थी में मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की परिपूर्ति करने में योग पूरी तरह सक्षम है। वस्तुत: विद्यार्थी में मस्तिष्क तथा क्षमता का विकास एक आधारभूत आवश्यकता है। कहते हैं, अनेक शिक्षार्जन,

पढ़ाई-लिखाई करने के बाद भी मस्तिष्क का केवल 7-8 प्रतिशत हिस्सा हीं जागृत होता है, शेष प्रसुप्त ही रह जाता है। किन्तु योग कहता है ऐसा नही है, विभिन्न यौगिक प्रक्रियाओं के माध्यम से बचपन से ही प्रयास करने पर मस्तिष्क का अधिकतम भाग जागृत किया जा सकता है।

शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकता

आज पूरा संसार मानवाधिकार के प्रति सचेत है। संसार के सभी देशों में शिक्षा को मानव का मूल अधिकार माना है। किसी भी देश में सभी को शिक्षा प्राप्त करने की समान सुविधाएँ होनी चाहिए। लोकतंत्रय देशों में तो यह और भी अधिक आवश्यक है। बिना इसके लोकतंत्र अर्थहीन है। हमारे लोकतंत्रीय देश में तो इसकी और अधिक आवश्यकता है, कारण स्पष्ट है -

लोकतंत्र की रक्षा के लिए-लोकतंत्र की सफलता उसके नागरिकों पर निर्भर करती है, उसके नागरिकों की योग्यता और क्षमता पर निर्भर करती है और नागरिकों की योग्यता और क्षमता निर्भर करती है शिक्षा पर। अत: देश के प्रत्येक नागरिक को शिक्षित करना आवश्यक है। इस क्षेत्र में हमारे देश की स्थिति बड़ी चुनौतीपूर्ण है। पहली बात तो यह है कि इसकी जनसंख्या बहुत अधिक है और साधन अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। दूसरी बात यह है कि देश की आधे से अधिक जनता निर्धन है, अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करने में असमर्थ है। तीसरी बात यह है कि इसकी बहुसंख्यक जनता गाँवों में रहती है, दूर-दराजों में रहती है। रेगिस्तान पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में रहने वालों की बहुत बड़ी संख्या है। परिणाम यह है कि शिक्षा सर्वसुलभ नहीं है। अत: आवश्यक है कि हम उपेक्षित निर्धन और दूर-दराज में रहने वालों को शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करें।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक प्रकृति और दार्शनी शिक्षा है। इस शीर्षक के अनुरुप ही इसके अध्ययन का उद्देश्य है। इस शोध आलेख का उद्देश्य न केवल शिक्षा के संक्षिप्त तात्पर्य को स्पष्ट करना है बल्कि इसमें प्रकृति और दर्शन के योगदान को स्पष्ट करना है। प्रस्तुत आलेख में इस वाद का उद्देश्य अभिनिर्धारित है कि दर्शन के विचार में प्रकृति शिक्षा का स्वरुप कैसा होगा?

परिकल्पना

शोध आलेख में परिकल्पना का बहुत ही महत्व होता है। वस्तुत: इसी परिप्रेक्ष्य में शोध कार्य को सम्पन्न किया जाता है। इस शोध आलेख में निम्नलिखित रुप में परिकल्पना अपेक्षित है:-

(i) शिक्षा का वास्तविक तात्पर्य क्या है?

(ii) शिक्षा के आयाम-सकारात्मक और निषेधात्मक भी हो सकता है।

(iii) भारतीय दर्शन में प्रकृति और दार्शनी शिक्षा की उपस्थिति है।

(iv) शिक्षा के भारतीय परिप्रेक्ष्य में दर्शन का योगदान प्रासंगिक है।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत आलेख लेखन में साहित्य सर्वेक्षण के अन्तर्गत निम्नलिखित का अवलोकन किया गया है:

डॉ० श०श० पाण्डे - उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा, अग्रवाल प्रकाशन।

इस पुस्तक में शिक्षा को प्रकृतिवाद की देन बतलाया है,

डॉ० सलैक्स-शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली, रजत प्रकाशन।

इस पुस्तक में शिक्षा-दर्शन सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक उपलब्धियों आदि के क्षेत्र में भी गहन अध्ययन और विचार करता है।

भगवद्गीता-शिक्षा मनुष्य जीवन के लिए जीवन जीने की कला दर्शाता है। सम्पूर्ण जीवन के हर पक्ष में गीता का भक्ति-योग, ज्ञान-योग व कर्म-योग मानव जीवन का पथ-प्रदर्शन करता है। आत्मा की अमरता मानव को साहस, निर्भीकता, निर्लिप्तता व नैतिकतापूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

श्री अरविन्द-योग समन्वय, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी। इस पुस्तक में शिक्षा से मानव की आत्मा को आगे बढ़ाना चाहिये अर्थात उसका विकास करना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द ने स्त्री-पुरुष, धनी-निर्धन सभी में शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया है। उनकी शिक्षा-प्रणाली भारत की दार्शनिक और आध्यात्मिक परम्परा के अनुरुप थी। वे स्वदेशी के जबर्दस्त हिमायती थे और पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण के विरुद्ध थे। जहाँ उन्होंने एक ओर भारत को पाश्चात्य विज्ञान और प्रवृतिवाद अपनाने के लिए कहा, वहां उन्होने दूसरी ओर ब्रह्मचर्य और आध्यात्म के प्राचीन आदर्शों को शिक्षा में सबसे प्रमुख स्थान दिया। युवक-युवतियों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय उन्होंने साहस, आत्म-विश्वास, एकाग्रता, अनाशक्ति तथा उच्च नैतिक चरित्र के गुण निर्माण करने पर विशेष रुप से ध्यान दिया।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख की प्रविधि शैक्षणिक एवं दार्शनिक है तथा वस्तु विश्लेषणात्मक पद्धति का भी इसमें सहयोग लिया गया है। वस्तुत: शोध प्रविधि का महत्व इस आलेख में स्वीकार किया गया है।

निष्कर्ष

इस शोध पत्र के माध्यम से आधुनिक भारत में दार्शनिक शिक्षा समाज की स्थिति को प्रस्तुत करते हुए उन्हें सशक्त बनाने की दिशा में सहयोग प्रदान किया जा सकता है। वर्तमान समाज में शिक्षा की आवश्यकता न केवल पुरुष समाज के हित में है, बल्कि संतुलित समाज हेतु आवश्यक है। वर्तमान समाज में लिंग विभेद के कारण असंतुलित समाज की रुपरेखा खतरनाक भविष्य की ओर इशारा करती है, जिससे बचने हेतु शिक्षा आवश्यक प्रतीत होती है। शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय पर शोध-पत्र प्रस्तुत व प्रकाशित करना एक शैक्षणिक प्रयास एवं समय की माँग है। इस विषय पर शोध-पत्र संतुलित समाज हेतु आवश्यक है। इस शीर्षक पर शोध-पत्र प्रस्तुत करके समाज व राजव्यवस्था को महत्वपूर्ण सुझाव दिये जा सकते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पुरुष-महिला उत्थान के मार्ग में कहाँ रोड़ा उत्पन्न होता है तथा क्यों रोड़ा उत्पन्न होता है, को रेखांकित किया जा सकता है? इस शोध पत्र के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण, समाज-निर्माण एवं राज्य-निर्माण के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं। संक्षेप में, प्रस्तुत शोध-पत्र की सार्थकता, उपादेयता एवं वांछनीयता स्पष्ट है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. पाण्डे (डॉ०) श०श० - उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा, अग्रवाल प्रकाशन पृ० 3-9
2. सक्सेना (डॉ०) सरोज - शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक आधार, आगरा, साहित्य प्रकाशन, पृ० 6-11-17
3. लाल एण्ड पलोड़ - एजुकेशनल यॉट एण्ड प्रैक्टिस, मेरठ, आर0 लाल प्रकाशन, पृ० 9-23
4. पाण्डा, अ० कु० (2011) - शिक्षा दर्शन कानपुर, साहित्य रत्नालय, पृ० 30-32
5. सक्सेना, एन० आर० स्वरुप शिखा च (2010) - उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, मेरठ, आर० लाल प्रकाशन, पृ० 18-20
6. ओड० एल० के शिक्षा की दार्शनिक पृष्टभूमि, राजस्थान, ग्रंथ अकादमी पृ० 25-27

जैन दर्शन में आचार मीमांसीय अनुशीलन

डॉ० राकेश कुमार

एम.ए., पी.एच.-डी., दर्शन शास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सार तत्व

भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों का प्रवर्तन जो सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, जैन, बौद्ध, प्रभृति नामों से अभिहित हुआ, विभिन्न वैचारिक क्रान्ति की परिणति है। उनमें से प्रत्येक की मौलिक विचारधारा है। यही विचारधारा इन्हें पारस्परिक चिन्तन से पृथक करता है। जैन दर्शन इसका अपवाद नही है। वस्तुत: जैन दर्शन चिन्तन अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण न केवल अशेष भारत प्रत्युत समग्र विश्व में प्रसार को प्राप्त हुआ।

भारतीय दर्शन के इतिहास में जैन दर्शन का विशेष महत्व है। चार्वाक और बौद्ध दर्शन के साथ ही भारतीय विचारधारा की नास्तिक परम्परा में परिगणित यह तीसरा दार्शनिक सम्प्रदाय है जिन्होंने वैदिक कर्मकाण्ड का प्रबल विरोध किया। जैन दर्शन ऐतिहासिक दृष्टि से बौद्ध दर्शन की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। ई० पू० छठी शताब्दी में वैदिक धर्म और यज्ञ, यागादि के प्रतिक्रियास्वरुप दो धार्मिक क्रान्तियों का सूत्रपात हुआ जिनका नेतृत्व गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी ने किया। बौद्ध दार्शनिक चिन्तन की ही भाँति जैन दार्शनिक प्रणाली भी मूलत: एक धार्मिक विश्वास से सम्बद्ध है। जैन मत का मुख्य उद्देश्य 'अनेकान्त' सिद्धान्त के आधार पर विभिन्न मतों का समन्वय करना है। दर्शन के चिन्तन में यह अनेकान्त सापेक्षवादी बहुत्ववाद के रुप में प्रसिद्ध हुआ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल से ही अध्ययन की गम्भीरता तथा चिन्तन की सूक्ष्मता की दृष्टि से जैन दार्शनिक किसी भी अन्य दार्शनिकों से पीछे नहीं रहे हैं, इनके प्रौढ़ तर्क और अटूट युक्तियाँ, उनके दार्शनिक सिद्धान्तों को आज तक सुरक्षित रख रही हैं। जैन दर्शन से सम्बद्ध विषयों को आधार बनाकर आज भी होने वाले कार्य इस बात का प्रमाण है कि इस दर्शन में चिन्तन की जड़ें कितनी मजबूत हैं। भले ही यथास्थितिवादी इसे नास्तिक कहें किन्तु इस विचारधारा के चिन्तकों ने भारतीयता को अक्षुण्ण बनाये रखा।

जैन दर्शन की परम्परा वैदिककाल से आजतक बिना किसी व्यवधान के चली आ रही है। यथाकाल प्रबुद्ध चिन्तकों व दार्शनिकों ने अपनी प्रतिभा से इसे परिष्कृत व परिवर्धित किया। विभिन्न कालों व विचारधाराओं से गुजरते हुए इस दर्शन ने साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त विकास किया। अनेकान्तवाद, स्याद्वाद, सप्तभंगीनय तथा नय सिद्धान्त रुप वैचारिक देन ने दर्शन जगत को चिन्तन की नयी व प्रामाणिक दिशा दी।

मूल शब्द:- आचार मीमांसीय अनुशीलन

प्रस्तावना

जैन दर्शन अथवा धर्म में प्राप्त होने वाले जैन शब्द का उव्व 'जिन' शब्द से हुआ हैं जो अपने को अर्थात अपनी इन्द्रियों को जीतता है, अपने वश में कर लेता है, अथ व संयमित कर लेता है, वह 'जिन' है। 'जिन' कोई ईश्वरीय अवतार नहीं है प्रत्युत जिसने काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभ, मोह, माया आदि को सम्पूर्ण रुप में जीत लिया हो वही 'जिन' कहलाता है। इसी 'जिन' के अनुयायी 'जैन' कहलाते हैं।

आचारमीमांसा

यह आचार मीमांसा इनके मोक्ष ज्ञान की परिधि में स्थिर है। ऐसे में इस दर्शन में मोक्ष साधना के क्रम में आचार की शुद्धता का विशेष महत्व है। बन्धन से छुटकारा मोक्ष है-यह जानते हुए मोक्ष की अवधारणा से पूर्व बन्धन को जानना आवश्यक है।

बन्धन का स्वरुप - जैन दर्शन में बन्धन एवं मोक्ष का प्रश्न जीव या आत्मा के विषय में उठता है। जैन दर्शन के अनुसार जीव एक द्रव्य है और चेतना उसका लक्ष्य है। जीव स्वभावतः पूर्ण एवं मुक्त है। उसमें अनन्तचतुष्टय अर्थात चार प्रकार की पूर्णताएँ पायी जाती हैं। ये हैं-अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य एवं अनन्त आनन्द। जीव के ये स्वाभाविक धर्म केवल मुक्त जीवों में अभिव्यक्त होते हैं। किन्तु कर्मफल से संयुक्त होने के कारण सांसारिक जीवों में जो बन्धनग्रस्त हैं, अनन्तचतुष्टय की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। बन्धनग्रस्त अवस्था में भी जीव के ये लक्षण केवल तिरोहित होते हैं, नष्ट नहीं होते। कर्मजन्य बाधाओं के दूर हो जाने पर ये स्वाभाविक धर्म जीव में पुनः प्रकट हो जाते हैं। जैसे सूर्य सम्पूर्ण जगत को आलोकित करता है, किन्तु मेघ और तुषार आदि के आवरण के कारण वह संसार को प्रकाशित नही कर पाता। जब इनसे उत्पन्न आवरण दूर हो जाता है तब वह संसार को पुनः प्रकाशित करता है। वैसे ही जीव भी स्वभावतः पूर्ण है और अनन्तचतुष्टय ये युक्त है, किन्तु बन्धनग्रस्त होने के कारण उसके स्वाभाविक स्वरुप की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती, जब वह मुक्त हो जाता है तब वह अपनी स्वाभाविक पूर्णता को पुनः प्राप्त कर लेता है।

जैन दर्शन के अनुसार कर्म ही बन्धन का कारण है। जैन दर्शन में कर्म की अवधारणा अत्यन्त विलक्षण है। भारतीय दर्शन की अन्य प्रणालियों में कर्म का तात्पर्य अच्छे बुरे कार्यो और करनेवाले के लिये उनके अच्छे या बुरे परिणामों से होता है। किन्तु जैन दर्शन में कर्म मूलतः भौतिक एवं पौद्गलिक है, जो जीव से उसी प्रकार संलग्न हो सकता है जिस प्रकार किसी चिपचिपे पदार्थ से मैल चिपक जाती है। कर्म का तात्पर्य पदार्थ के उन सूक्ष्म कणों से है जो जीव को बाँधते हैं। कर्म जीव से संयुक्त होकर उसके स्वरुप को दूषित कर देता है जिसके कारण जीव अपनी शुद्धता से च्युत होकर बन्धन की अवस्था में आ जाता है।

जैन दर्शन में कर्म की महती भूमिका है। जीव की सम्पूर्ण शारीरिक विशेषताएँ कर्मजन्य मानी जाती है। ये कर्म आठ प्रकार के हैं:-

(i) ज्ञानावरणीय कर्म - ज्ञान का नष्ट करने वाले कर्म।
(ii) दर्शनावरणीय कर्म - विश्वास का नष्ट करने वाले कर्म।
(iii) मोहनीय कर्म - अज्ञान या मोह पैदा करने वाले कर्म।
(iv) वेदनीय कर्म - सुख या दुःख की अनुभूमि पैदा करने वाले कर्म।
(v) गोत्र कर्म - गोत्र को निर्धारित करने वाले कर्म।
(vi) आयुष्कर्म - जीव की आयु का निर्धारण करने वाले कर्म।
(vii) नाम कर्म - वह कर्म जिससे व्यक्ति के नाम का निश्चय होता है।
(viii) अन्तराय कर्म - बाधाएँ पैदा करने वाले कर्म।

कर्म जीव के अन्दर प्रविष्ट होकर उसे जन्म लेने के लिए बाध्य करता है। जीव के अतीत कर्मो से जीव में वासनाएँ पैदा होती हैं। वासनाएँ तृप्त होना चाहती है, परिणामस्वरुप ये पुद्रलों को अपनी और आकृष्ट करने जीव को शरीर से सम्बद्ध कर देती हैं।

जैन दर्शन भी अन्य भारतीय विचारधाराओं के समान अविद्या को बन्धन का कारण मानता है। अविद्या के कारण उसका वास्तविक स्वरुप तो अवरुद्ध होता ही हैं, उसमें मिथ्या दर्शन भी उत्पन्न होता है, परिणामस्वरुप उसमें अविरति एवं प्रमाद आता है। अपने स्वाभाविक स्वरुप के ज्ञान एवं शुभ-अशुभ के विषय में उदासीनता ही क्रमशः अविरति एवं प्रमाद है। जीव में अविरति एवं प्रमाद से क्रोध, मान, माया लोभ, कुप्रवृतियाँ पैदा होती हैं। इन्हें कषाय कहते हैं। ये कषाय योग द्वारा कर्मपुद्रल को जीव से संयुक्त करते हैं। जैन दर्शन में योग का प्रयोग कायिक, वाचिक एवं मानसिक स्पन्दनों के लिए होता है। इनके द्वारा जीव की ओर कर्मपुद्रल आकर्षित होते हैं। इस प्रकार जैन दर्शन में मिथ्या दर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योग बन्धन के कारण हैं।

जीव की ओर कर्म पुद्रलों का प्रवाह आस्रव कहलाता है। आस्रव बन्धन का कारण है, क्योंकि आस्रव के अभाव में कर्मपुद्रल जीव में प्रवेश नही कर सकते। आस्रव के दो भेद हैं - भावास्रव और द्रव्यास्रव। जीव में कर्म पुद्गलों के प्रवेश के पूर्व जीव के

भावों में परिवर्तन होता है जिसे भावास्रव कहते हैं। इसके बाद जीव में कर्म पुद्‌गलों का प्रवेश हो जाना द्रव्यास्रव है। जिस प्रकार तेल से लिप्त शरीर पर धूलराशि चिपक कर जमा हो जाती है उसी प्रकार कर्म पुद्‌गल जीव पर चिपक जाते हैं। तेल से लिप्त होना भावास्रव और उस पर धूलराशि का चिपक जाना द्रव्यास्रव है।

इस प्रकार जैन दर्शन के अनुसार कषायों के कारण कर्मानुसार जीव का पुद्‌गल से आक्रान्त हो जाना ही बन्धन है। बन्धन के भी दो भेद प्राप्त होते हैं – भावबन्धन और द्रव्यबन्धन। जीव में कर्म पुद्गलों के प्रवेश से पूर्व उसमें भावास्रव उत्पन्न होता है। उसके पश्चात जीव का जो बन्धन होता है, वह भावबन्ध है। इसके बाद कर्मपुद्गलों का प्रवेश होने पर जीव में द्रव्यास्रव उत्पन्न होता है। उसके बाद जीव का जो बन्धन होता है उसे द्रव्यबन्ध कहते हैं।

जीव का कर्म पुद्‌गलों से वियोग मोक्ष है। कर्मपुद्गलों से जीव का वियोग होने के लिए दो चीजें आवश्यक हैं – नये कर्मपुद्‌गलों का जीव की ओर आस्रव बन्द हो जाय और जीव में प्रविष्ट हुए पुराने कर्मपुद्गलों का विनाश हो जाय। इनमें से प्रथम अवस्था संवर है और द्वितीय अवस्था निर्जरा है। संवर से नये कर्मपुद्‌गलों का जीवात्मा में प्रवेश करना निरुद्ध हो जाता है। संवर के दो भेद प्राप्त होते हैं– भावसंवर और द्रव्यसंवर। भावसंवर द्रव्यसंवर की पूर्ववर्ती अवस्था है जिसमें जीव के राग–द्वेष मोहरुप विकारों का निरोध होता है। द्रव्यसंवर में जीवात्मा में नये कर्मपुद्गलों का प्रवेश निरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार संवर में जीव राग, द्वेष, मोह आदि विकारों से रहित हो जाता है जिससे उसमें नये कर्मपुद्‌गलों का प्रवेश तथा उससे होने वाला बन्धन रुक जाता है।

संवर की अवस्था में जीवात्मा में नये कर्मपुद्‌गलों का प्रवेश तो बन्द हो जाता है, किन्तु आत्मा में पहले से ही प्रविष्ट हुए कर्मपुद्‌गलों का निरोध संवर से नही होता। अतः केवल संवर से ही जीवात्मा कर्मपुद्‌गलों से छुटकारा नही प्राप्त कर पाता। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि जीवात्मा में पहले से प्रविष्ट हुए कर्मपुद्‌गल भी नष्ट हो जाय। जीवात्मा में पहले से ही प्रविष्ट हुए कर्मपुद्‌गलों का विनाश निर्जरा है। निर्जरा के भी दो भेद हैं– भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जरा। साधक में भाव–निर्जरा में कर्मो का नाश करने की भावना उत्पन्न होती है। द्रव्य–निर्जरा में आत्मा में प्रविष्ट हुए कर्मपुद्‌गलों का वास्तविक नाश होता है। इसमें दर्शन ज्ञान एवं चरित्र के अभ्यास से जीवात्मा में प्रविष्ट हुए कर्मपुद्गलों का विनाश किया जाता है। जब कर्मपुद्गल का अन्तिम कण भी जीवात्मा से पृथक हो जाता है तब वह अपनी स्वाभाविक पूर्णता को प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। यही मोक्ष की अवस्था है। इस प्रकार जीव के सभी कर्मो का क्षय मोक्ष है – कृत्स्नकर्मक्षयों मोक्षः। मोक्ष अभावात्मक अवस्था नही है। वह एक भावात्मक अवस्था है। इसमें केवल दुःखनिवृति ही नही होती, अपितु वह इसमें अपनी स्वाभाविक पूर्णत अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त आनन्द को भी प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार मोक्ष अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की भी अवस्था है।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र मोक्ष क मार्ग माने जाते है। जैन दर्शन की मोक्षमीमांसा में इन तीनों का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि तीनों सम्मिलित रुप से मोक्ष के साधन हैं। इसलिए जैन दार्शनिक इन्हें त्रिरत्न कहते हैं। इन तीनों साधनों का पृथक्–पृथक् वर्णन अग्रांकित है –

सम्यक् दर्शन–जैन दर्शन के धर्म एवं इसके तीर्थंकरों के उपदेशों में दृढ़ विश्वास सम्यक दर्शन है। इसकी आवश्यकता संशय के निवारण के लिए होती है। सम्यक् दर्शन का उदय दर्शनावरणीय कर्मो के विनाश से होता है।

सम्यक् ज्ञान–जैन धर्मा एवं दर्शन के सिद्धान्तों का ज्ञान सम्यक् दर्शन है। इसमें जीव और अजीव के मूल तत्वों का पूर्ण ज्ञान होता है। यह तत्वों का असन्दिग्ध एवं दोषरहित ज्ञान है। ज्ञानावरणीय कर्मो के विनाश से सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति होती है।

सम्यक् चरित्र–सम्यक् ज्ञान को कर्म में परिणत करना सम्यक चरित्र है। अहितकारी कर्मो का परित्याग और हितकारी कर्मो का आचरण ही सम्यक् चरित्र है। यह जैन साधना का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि मनुष्य सम्यक् कर्म से ही कर्ममुक्त होकर जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह, इन पाँच व्रतों के पालन का उपयोग है। जैन दर्शन में इन व्रतों के दो रुप हैं – महाव्रत और अणुव्रत। महाव्रत का विधान जैन सन्यासियों के लिए है और अुणव्रत का विधान गृहस्थों के लिए।

अहिंसा– जैन साधाना के पंचव्रतों में अहिंसा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ऐसा माना जाता है कि भारत में अहिंसा के सिद्धान्त का प्रथम उद्‌घोष जैन दर्शन ने ही किया था। अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है मन, वाणी और कर्म, तीनों से होने वाली हिंसा का परित्याग। जैन दर्शन में अहिंसा का अर्थ केवल दूसरों को हानि पहुँचाने से बचना ही नही है, अपितु उनके उपकार में सचेष्ट रहना भी है।

सत्य-इसका अर्थ है, असत्य वचन का परित्याग। इस व्रत का पालन करने के लिए मनुष्यों को भय, लोभ एवं परनिन्दा की प्रवृति से दूर रहना चाहिए।

अस्तेय-चौरवृति का वर्जन अस्तेय है। जैन दर्शन के अनुसार बिना दिये परद्रव्य का ग्रहण नही करना चाहिए। जैन दर्शन जीवन की भाँति उसकी सम्पति को भी अत्यन्त पवित्र मानता है। वे इसे व्यक्ति का बाह्य जीवन कहते हैं। इस प्रकार वे परद्रव्य ग्रहण को भी जीव-हिंसा ही मानते हैं।

ब्रह्मचर्य-जैन दर्शन वासनाओं के परित्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह केवल इन्द्रिय-सुख का परित्याग नहीं है, अपितु सभी कामनाओं का परित्याग है।

अपरिग्रह-विषयासक्ति का परित्याग अपरिग्रह है। जैन दर्शन के अनुसार मुमुक्षु को शब्द, स्पर्श, रुप, रस और गन्ध इन विषयों का परित्याग करना चाहिए। जैन सन्यासी से पूर्ण अपरिग्रह की अपेक्षा की गयी है। वह किसी भी वस्तु को, भिक्षापात्र को भी अपना नही कह सकता।

जैन दर्शन के अनुसार जीव सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र का अनुसरण करते हुए समस्त कर्मबाधाओं को दूर करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।

जैन दर्शन की विशेषता उसका व्यावहारिक उपदेश है। किन्तु इसके द्वारा बतायी गयी साधना अत्यन्त कठोर है। अपनी कठोरता के कारण ही यह सामान्य जन का धर्म नही बन सका। इसके द्वारा साधुओं के लिए बतायी गयी साधना तो कठोर है हीं, गृहस्थों के लिए निर्धारित की गयी साधना भी अपेक्षाकृत कठोर है। यह अपनी कठोरता के कारण मुनियों को हीं धर्म बन कर रह गया। जैन दर्शन द्वारा महाव्रत एवं अणुव्रत के रुप में आचार-पद्धति का विभाजन कृत्रिम है। इससे जैन धर्म और अधिक अव्यवहारिक हो गया।

जैन दर्शन की तत्वमीमांसा में द्रव्य की विशिष्ट अवधारणा है। जीव एवं अजीव इन दो भागों में विभाजित द्रव्य विश्व के अणु से अणुतम एवं महान से महत्तम तत्वों की व्याख्या में पूर्णतया सक्षम है।

इसी प्रकार इनकी आचारमीमांसा जिस प्रकार कर्मबन्धन एवं मोक्ष की तार्किक व्याख्या प्रस्तुत करती है, वह विश्व दर्शन चिन्तन परम्परा में सर्वथा अनूठा है। इसी क्रम में सन्यासी एवं गृहस्थों की आचार पद्धति का भी यहाँ चिन्तन प्राप्त होता है। जैन दार्शनिक स्पष्ट रुप से साधु एवं गृहस्थ की आचार पद्धति की व्याख्या करते हैं, किन्तु दोनों के लिये यह पद्धति अत्यन्त कठोर है।

इस अध्ययन से आप आचारमीमांसा के अनुशीलन से इस वस्तुवादी एवं बहुत्ववादी दर्शन के सार्वभौमिक चिन्तन को अत्यन्त सहजता से समझ कर अपने ज्ञान को अभिव्यक्त कर पाऐंगे।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक आचारमीमांसिय अनुशीलन और जैन दर्शन है। इस शीर्षक के अनुरुप ही इसके अध्ययन का उद्देश्य है। इस शोध आलेख का उद्देश्य न केवल आचारमीमांसीय अनुशीलन के संक्षिप्त तात्पर्य को स्पष्ट करना है, बल्कि इसमें जैन दर्शन के योगदान को स्पष्ट करना है। प्रस्तुत आलेख में इस वाद का उद्देश्य अभिनिर्धारित है कि जैन दर्शन के विचार में आचार मीमांसीय अनुशीलन का स्वरुप कैसा होगा?

परिकल्पना

शोध आलेख में परिकल्पना का बहुत ही महत्व होता है। वस्तुतः इसी परिप्रेक्ष्य में शोध कार्य को सम्पन्न किया जाता है। इस शोध आलेख में निम्नलिखित रुप में परिकल्पना अपेक्षित है।

(i) आचार मीमांसीय अनुशीलन का वास्तविक तात्पर्य क्या है?
(ii) आचार मीमांसीय अनुशीलन के आयाम-सकारात्मक और निषेधात्मक भी हो सकता है।
(iii) जैन दर्शन में आचार मीमांसीय अनुशीलन की उपस्थिति है।
(iv) आचार मीमांसीय अनुशीलन के भारतीय परिप्रेक्ष्य में जैन दर्शन का योगदान प्रासंगिक है।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत आलेख लेखन में साहित्य सर्वेक्षण के अन्तर्गत निम्नलिखित का अवलोकन किया गया है:-

डॉ० चक्रधर बिजल्वान - भारतीय न्यायशास्त्र, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान लखनऊ।

हम समग्रता को एकसाथ नहीं जान सकते। सापेक्षता का सिद्धान्त हमें खण्डों की पृष्ठभूमि में विद्यमान अखण्डता या समग्रता के प्रति जागरुप रखता है।

चन्द्रधर शर्मा - भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, आचारशास्त्र वह विज्ञान है, जिसमें मानव-आचरण के आदर्श की मीमांसा होती है, जिससे मनुष्य का कर्त्त्व्याकर्त्तव्य और उसके कर्मों के औचित्य-अनौचित्य का ठीक-ठीक निर्णय किया जा सके। चूँकि आचरण का आधार चरित्र है इसलिए इसे चरित्र विज्ञान भी कहा जाता है।

डॉ० अशोक कुमार वर्मा प्रा० आचारशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, पटना- मनुष्य की नैतिक प्रकृति- मनुष्य एक नैतिक प्राणी है। उसमें केवल आत्मचेतना ही नही, नैतिक चेतना भी स्वभावत: रहती है। उचित-अनुचित दायित्व आदि की चेतना उसमें स्वाभाविक है। मानव जीवन के अन्य आवश्यक तत्वों (जैसे-बुद्धि) की भाँति इसका भी किसी व्यक्ति में धीरे-धीरे विकास होता है। जिस प्रकार बचपन में विवेक या बुद्धि का सर्वथा अभाव नही रहता, बल्कि वे बीज-रुप में वर्त्तमान रहते हैं और धीरे-धीरे उनका विकास होता है, इसलिए अनैतिक शक्तियों से नैतिक चेतना की उत्पति नही होती। यदि मनुष्य के स्वभाव में नैतिक चेतना नही होती तो फिर वह उत्पन्न कैसे हो जाती है? इसलिए मनुष्य स्वभाव से ही नैतिक है।

नैतिक चेतना के तत्व- नैतिक चेतना एक जटिल मानसिक स्थिति है। इसमें किसी विषय का ज्ञान, भावना और क्रिया वर्त्तमान रहती है। इसलिए इसमें तीन तत्व हैं-ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक।

(i) ज्ञानात्मक तत्व- नैतिक चेतना में नैतिक भेदों का ज्ञान रहता है।

(क) नैतिक गुणों अर्थात उचित और अनुचित के भेद का ज्ञान।

(ख) इस बात का ज्ञान कि नैतिक निर्णय का विषय ऐच्छिक कर्म है। ऐच्छिक कर्म में लक्ष्य और साधन का पूर्व-ज्ञान रहता है और वे आत्मचेतन प्राणी की स्वयं संचालित क्रियाएँ है।

(ग) नैतिक नियम की चेतना- नैतिक निर्णय किसी नियम के आधार पर हो होता है। अत: इसमें नैतिक नियम की भी चेतना रहती है।

(घ) नैतिक नियम किसी आदर्श की पूर्ति के साधन होते हैं। अत: नैतिक चेतना में नैतिक आदर्श का भी ज्ञान रहता है।

(ङ) नैतिक निर्णय निर्णयात्मक शक्ति द्वारा होता है। अत: नैतिक चेतना का सम्बन्ध नैतिक शक्ति से भी है।

डॉ० रामाशंकर शर्मा, भारतीय दार्शनिक निबंध, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी- सभी के लिए मैत्री, दु:खी के लिए करुणा, अच्छे व्यक्ति को देखकर प्रमाद और बुरे लोगों के प्रति माध्यस्था नैतिक व्यक्ति के लक्षण है।

गीता तथा बौद्धमत के समान वे भी शरीर और संसार की नश्वरता पर जोर देते हैं और उसका ध्यान आवश्यक विचारते हैं।

जैनिनियों ने तीन प्रकार का संयम माना है- शरीर का संयम-कायगुप्ति, वाणी का संयम-वागगुप्ति और मन का संयम-मनोगुप्ति। संयम (गुप्ति) से आत्मा शुद्ध होती है।

तत्वार्थाधिगमसूत्र:- जैन दर्शन की सभी परवर्ती व्याख्याएँ इसी पर आधारित है। यद्यपि यह मूलत: दर्शन का ग्रन्थ है तथापि प्राचीन भारतीय चिन्तन के इतिहास के सामान्य अध्ययन के लिये भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें मनोविज्ञान, धर्ममीमांसा, खगोलशास्त्र, भौतिकी, रसायन एवं अन्य विषयों पर भी जैन दृष्टिकोण से विचार किया गया है। ('तत्वार्थाधिगमसूत्र' नामक ग्रन्थ जैनियों का अत्यन्त पवित्र व धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है।)

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख की प्रविधि दार्शनिक आचार मीमांसीय है तथा वस्तु विश्लेषणात्मक

पद्धति का भी इसमें सहयोग लिया गया है। वस्तुत: शोध प्रविधि का महत्व इस आलेख में स्वीकार किया गया है।

निष्कर्ष

इस शोध-पत्र के माध्यम से दर्शनशास्त्र आचारमीमांसीय समाज की स्थिति को प्रस्तुत करते हुए उसे सशक्त बनाने की दिशा में सहयोग प्रदान किया जा सकता है। वर्तमान समाज में आचारमीमांसा की आवश्यकता न केवल पुरुष समाज के हित में है, बल्कि संतुलित समाज हेतु आवश्यक है। वर्तमान समाज में लिंग विभेद के कारण असंतुलित समाज की रुपरेखा खतरनाक भविष्य की ओर ईशारा करती है जिससे बचने हेतु पुरुष-नारी आवश्यक प्रतीत होता है। आचारमीमांसीय अनुशीलन जैसे महत्वपूर्ण विषय पर शोध-पत्र प्रस्तुत व प्रकाशित करना एक शैक्षणिक प्रयास एवं समय की माँग है, इस विषय पर शोधपत्र संतुलित समाज हेतु आवश्यक है, इस शीर्षक पर शोध पत्र प्रस्तुत करके समाज व राजव्यवस्था को महत्वपूर्ण सुझाव दिये जा सकते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर पुरुष-महिला उत्थान के र्मा में कहाँ रोड़ा उत्पन्न होता है तथा क्यों रोड़ा उत्पन्न होता है, को रेखांकित किया जा सकता है। इस शोध-पत्र के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण, समाज-निर्माण एवं राज्य-निर्माण के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं। संक्षेप में प्रस्तुत शोध पत्र की सार्थकता उपादेयता एवं वांछनीयता स्पष्ट है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. झा, आचार्य आनन्द (1969) चार्वक दर्शन: हिन्दी समिति, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनउ।
2. ऋषि, प्रो० उमाशंकर शर्मा (1964) सर्वदर्शनसंग्रह: चौखम्बा विद्याभक्त, वाराणसी। पृ० 21-25
3. शर्मा चन्द्रधर (1991) भारतीय दर्शन-आलोचन और अनुशीलन: मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली पृ० 42-44
4. देवराज, डॉ० नन्दकिशोर (1992) भारतीय दर्शन: उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ पृ० 26-28
5. पं० सुखलाल, प्रमाणमीमांसा (हेमचन्द्र) (1939) पृ० 16-18
6. मेहता, मोहनलाल, जैन दर्शन: श्री सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा पृ० 36-39
7. उमा स्वामी, तत्वार्थाधिगम सूत्र (सुखलाल संघवी कृत विवेचन) पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी-5 पृ० 103-105
8. मिश्र, पंकज कुमार (1998) वैशेषिक एवं जैन तत्वमीमांसा में द्रव्य का स्वरुप, परिमल पब्लिकेशनस, शक्ति नगर दिल्ली। पृ० 52-61
9. डॉ० अशोक कुमार वर्मा, प्रा० आचारशास्त्र, पटना। पृ० 57-276
10. डॉ० चक्रधर बिजल्वान, भारतीय न्यायशास्त्र: उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ। पृ० 8-9
11. डॉ० रामाशंकर शर्मा- डॉ० डी०डी० बंदिष्ठे, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पृ० 258-259

विश्व स्वास्थ्य संगठन की संरचना एवं कार्यः एक सामान्य अवलोकन

डॉ० कुमारी सुनीता

एम०ए० (गृह विज्ञान), पी०एच०-डी, गेस्ट शिक्षिका, जयप्रकाश महिला महाविद्यालय, छपरा, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

रिसर्च आर्टिकल्स का सार तत्त्व

द्वितीय विश्व युद्ध (वर्ष 1939-1945 ई० तक) की समाप्ति के बाद विभिन्न औपचारिकताओं को पूरा करते हुए 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ का औपचारिक रूप में गठन हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ का एक संविधन है, जिसे चार्टर कहा जाता है। चार्टर में कुल अनुच्छेदों की संख्या 111 है। इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का उद्देश्य विश्व शांति तथा सौहार्द की स्थापना करना अर्थात् सामूहिक सुरक्षा को प्राप्त करना रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है, जिसके उद्देश्यों को पूरा करने के लिए इसके छः अंग निर्धरित व उपबंधित किये गये हैं। इन छः अंगों के अतिरिक्त विश्व शांति, सुरक्षा, स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, कलयाण, विकास, यातायात, सामाजिक सशक्तिकरण के लिए कई विशिष्ट अभिकरणों को गठित किया गया है, जो वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक संगठन के रूप में कार्य कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के इन्हीं विशिष्ट एजेन्सियों में एक विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation, WHO) है। विश्व स्वास्थ्य संगठन संयुक्त राष्ट्र संगठन की एक विशेष एजेन्सी है, जो अपने विधान के अन्तर्गत मुख्यतः अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य और जन-स्वास्थ्य की उन्नति के लिए प्रभावशाली योगदान देती है। यों तो इस संगठन का जन्म अप्रैल, 1945 में ही हो गया था जब सेन फ्रांसिसको में संयुक्त राष्ट्र के निर्माण सम्बन्धी सम्मेलन हो रहा था। ब्राजील एवं चीन ने यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया था कि ऐ ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन की स्थापना की जाए जो विश्वभर के लोगों के उत्तम स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी हो, क्योंकि सम्पूर्ण विश्व में शांति एवं सुरक्षा प्राप्त करने का एक ही महत्वपूर्ण साधन, माध्यम अथवा तरीका है और वह है कि सम्पूर्ण विश्व के लोग स्वस्थ व सजग रहें। मातृ रक्षा, बाल संरक्षण और विकास में इस संगठन की महत्वपूर्ण भूमिका अपेक्षित है, जो गृह विज्ञान के अंतर्गत भी महत्वपूर्ण है।

मूल शब्दः अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, सामूहिक सुरक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक संगठन, अधिकार, जैविक व पर्यावरणीय कारक तथा पर्यावरणवाद आदि।

प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य, मातृ रक्षा एवं बाल स्वास्थ्य कल्याण में विश्व स्वास्थ्य संगठन की स्थापना 7 अप्रैल, 1948 को हुई थी। इसका प्रधन कार्यालय जिनेवा (Geneva), स्विट्जरलैण्ड में है। चूँकि इस संस्था की स्थापना 7 अप्रैल को हुई थी, अतः इसी कारण 7 अप्रैल को विश्वभर में विश्व स्वास्थ्य दिवस (World Health Day) के रूप में मनाया जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का मुख्य उद्देश्य उच्चतम स्वास्थ्य की प्राप्ति है। स्वस्थ रहना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी अधिकार की प्राप्ति के लिए यह संस्था निरन्तर अथक प्रयास कर रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य की परिभाषा इस प्रकार से दी है- "केवल बीमारियों का नहीं होना या बीमारियों की अनुपस्थिति मात्र ही स्वास्थ्य नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक व सामाजिक कुशलता भी है।"

संयुक्त राष्ट्र संगठन का कोई भी देश विश्व स्वास्थ्य संगठन का सदस्य बन सकता है। वे देश जो संयुक्त राष्ट्र संगठन के सदस्य नहीं है, वे भी विश्व स्वास्थ्य संगठन के सदस्य हो सकते हैं। वे क्षेत्र (Territory), जिनका अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध नहीं है, वे भी इसके सहयोगी सदस्य (Associate member) बनकर इस संगठन का लाभ एवं सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। सन् 1948 में विश्व स्वास्थ्य संगठन के 56 सदस्य थे, जो कि 2019 तक बढ़कर 194 देश इसके सदस्य बन चुके हैं तथा एक सहयोगी सदस्य भी है। भारत भी इसका सदस्य है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र WHO को वार्षिक अनुदान की राशि जमा कराता है व अपनी स्वास्थ्य समस्या व आवश्यकतानुसार WHO से सहायता और साध्न प्राप्त करता है। वस्तुत: इसका आर्थिक खर्च सदस्य देशों की ऐच्छिक सहयोग पर निर्भर करता है। चूँकि कोरोना महामारी को लेकर इस संगठन पर चीन के पक्षपात का आरोप लग रहा है। इसलिए इसकी साख कम हो रहा है। यह अलग बात है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) काफी तत्परता एवं लगन से रोगों के निदान हेतु कार्य करता है। सम्पूर्ण विश्व से चेचक (Small-pox) का उन्मूलन इसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का ही देन है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) का मुख्य उद्देश्य सन् 2000 A.D. तक विश्व के सभी लोगो के स्वास्थ्य का उच्चतम स्तर प्राप्त करना है, जिससे सभी व्यक्ति सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से उत्पादक जीवन व्यतीत कर सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निम्नलिखित कार्यों को प्रोत्साहित किया जाता है तथा इन गतिविध्यिों पर पूर्णत: अमल किया जाता है:

(1) विशिष्ट रोगों का निवारण एवं नियन्त्रण: उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए संक्रामक तथा असंक्रामक रोगों का निवारण एवं नियन्त्रण आवश्यक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने संक्रामक रोगों के निवारण हेतु जमकर संघर्ष किया है तथा चेचक जैसी खतरनाक जानलेवा बीमारी को सम्पूर्ण विश्व से उखाड़ फेंका है। वर्तमान में यह एड्स पर नियन्त्रण पाने के लिए भरपूर प्रयास कर रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन संक्रामक रोगों से सम्बन्धी सर्वेक्षण करता है। आँकड़े एकत्रित करता है तथा इन आँकड़ों से प्राप्त सूचनाओं का प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण विश्व में करता है। सन् 1972 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वचालित टेलेक्स रिप्लाई सेवा (Automatic Telex Reply Service) चलाई है। इस टेलेक्स रिप्लाई सेवा चलाई है। इस टेलेक्स रिप्लाई सेवा की सहायता से कोई भी सदस्य देश अपनी समस्या (रोगों का निवारण, चिकित्सा सुविधा) को बिना समय नष्ट किये WHO तक पहुँचाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन उन समस्याओं की गम्भीरता के अनुरूप इसके समाधान हेतु हर सम्भव प्रयास करता रहा है।

सम्पूर्ण विश्व से पीत ज्वर (Yellow fever), हैजा (Cholera), इन्फ्लूएन्जा (Influenza), पोलियो (Polio), मलेरिया (Malaria), खसरा (Measles) आदि रोगों को जड़ से मिटाने के लिए यह संगठन भरपूर प्रयास कर रहा है। पोलियो के उन्मूलन के लिए WHO, यूनिसेफ के साथ मिलकर कार्य कर रहा है। इस संगठन के सहयोग से सम्पूर्ण भारत में पल्स पोलियो अभियान चलाया जा रहा है ताकि देश में कोई भी बच्चा अपंग, विकलांग न रह पाए।

विश्व स्वास्थ्य संगठन असंक्रामक रोगों (जैसे- हृदय रोग, कैन्सर, आनुवंशिक बीमारियों, दंत रोग आदि) के उन्मूलन के लिए भी सक्रिय कार्य कर रहा है, क्योंकि जितनी मृत्यु संक्रामक रोगों को फैलने से होती है, लगभग उतनी ही मृत्यु इन असंक्रामक रोगों के कारण भी होती है। नशीली वस्तुओं के सवेन के प्रति भी यह संगठन प्रयत्नशील है और उनके निवारण के लिए भी कई कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। यह उल्लेखनीय है कि कैंसर से बचाव के लिए सन् 1965 से ही फ्रांस के लिओन्स शहर में कैंसर अन्वेषण की अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सी के सहयोग से प्रयास किए जा रहे हैं। इसके बचाव के लिए अनुसन्धन कार्य किए जा रहे हैं तथा चिकित्सा विधियों का मानकीकरण किया जा रहा है। 7 अप्रैल, 1987 के संगठन के सभी कार्यालयों में धूम्रपान निषेध का कानून लागू कर दिया गया है।

सम्पूर्ण विश्व में 200 मिलियन से भी अधिक व्यक्ति मानसिक रोग (Mental Disease) से पीड़ित है, जिनमें से 40 मिलियन रोगों तो साइजोफ्रेनिया (Shizophrenia) जैसे गम्भीर रोगों के शिकार हैं। 80 मिलियन व्यक्ति मानसिक रूप से कमजोर (Mentally Weak) है। अत: इन रोगों के निवारण के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कई महत्वपूर्ण अन्वेषण किए जा रहे हैं। इन रोगों पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रभावी उपाय एवं रणनीति तैयार की जा रही है। बच्चों को छ: जानलेवा बीमारियों (टिटनस, डीपथीरिया, कुकर खाँसी, पोलियो, खसरा व क्षयरोग से छुटकारा दिलाने हेतु तथा उन्हें स्वस्थ जीवन-यापन करने हेतु इस संगठन द्वारा विस्तृत प्रतिरक्षण कार्यक्रम (Expanded Programme on Immunization) भी चलाया गया है। कुछ राष्ट्रों ने खसरा, इन्फ्लूएन्जा आदि रोगों से 90 प्रतिशत प्रतिरक्षण कर लक्ष्य की प्राप्ति करने की ओर अग्रसर है।

(2) पयावरणीय स्वास्थ्य: व्यक्ति के उत्तम स्वास्थ्य के लिए पर्यावरण का स्वच्छ एवं स्वस्थ रहना आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य का स्वास्थ्य पर्यावरण के स्वास्थ्य से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। अगर पर्यावरण दूषित, कलूषित एवं गन्दगी से पूर्ण होगा तो उस पर्यावरण में जाने वाले, साँस लेने वाले, निवास करने वाले व्यक्ति कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकेंगे। विश्व स्वास्थ्य संगठन

(WHO) पर्यावरण को स्वच्छ एवं स्वच्छ एवं स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न राष्ट्रों को स्वयं के कार्यक्रम निर्मित करने के लिए उत्साहित करता है। जल, वायु, भोजन, आवास, कार्य करने का वातावरण एवं परिस्थिति, विकिरण से रक्षा आदि के प्रति विश्व स्वास्थ्य संगठन विभिन्न कार्यक्रम बनाता है तथा सहयोग प्रदान करता है। WHO ने यह संकल्प लिया है कि वह 1990 तक विश्व में सबके लिए शुद्ध जल की व्यवस्था (Pure Water for All) एवं पूर्ति कर सकेगा। मगर अफसोस है कि वह संकल्प आज तक (नवम्बर, 2019) पूरा नहीं हो पाया है।

(3) व्यापक स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं का विकास: विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा व्यापक स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं का विकास किया जा रहा है। यह संगठन सदस्य राष्ट्रों को स्वास्थ्य सेवाओं से सम्बन्धित परामर्श, सहयोग एवं वित्तीय सहायता प्रदान करता है। वैसे विकासशील देश जो कि मातृ एवं बाल स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को सफल बनाने में एकजूट होकर लगे हुए हैं, उन्हें यह संगठन यूनिसेफ के साथ मिलकर परामर्श एवं सहयोग देता है। इस संगठन के द्वारा Appropriate Technology for Health-ATH भी चलाया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य है- "प्रत्येक देश स्वयं स्वावलम्बी बनकर स्वास्थ्य समस्याओं का हल स्वयं कर सके।"

(4) मानव-शक्ति का विकास: उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति तथा जीवन स्तर को उन्नत बनाने के लिए मानव शक्ति का विकास करना आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति के पास रोजगार होना चाहिए, जिससे उसकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति सुदृढ़ एवं मजबूत बने। जब तक आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं होती, तब तक व्यक्ति को अच्छे आवास, आहार, पोषण, वस्त्र, औषधियाँ आदि सुलभ नहीं हो पाती हैं। भोजन, वस्त्र, आवास आदि की व्यवस्था के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। आर्थिक उन्नति तभी सम्भव है जब मानव-शक्ति का उचित विकास किया जा सके। इसके लिए यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के साथ मिलकर कार्य कर रहा है।

(5) जैव चिकित्सीय एवं स्वास्थ्य सेवाओं का अन्वेषण: जैव चिकित्सीय उन्नति के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वयं तो अन्वेषण कर ही रहा है, साथ ही सदस्य राष्ट्रों, क्षेत्रों को भी इस अनुसंधान करने के लिए यह उन राष्ट्रों को वित्तीय सहायता भी पहुँचाता है तथा शोधकर्त्ताओं के लिए सहायता पहुँचाने का कार्य भी करता है। अनुसंधन क्षेत्रों, मेडिकल कॉलेजों को भी विश्व स्वास्थ्य संगठन आर्थिक सहायता प्रदान करता है। मेडिकल कॉलेजों में नए विभाग खोलने में मदद करता है तथा विजिटिंग प्रोफेसर को भेजकर कई नए विभाग जैसे- औषधि विज्ञान, शिशु रोग विज्ञान आदि खोलने के लिए आर्थिक मदद तथा अन्य प्रकार का सहयोग भी करता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा छ: ट्रॉपिकल रोगों (सिस्टोमिएसिस, मलेरिया, फाइलेरिया, लीसमेनिएसिस, ट्राइवैनोमिएसिस तथा कुष्ठ रोग) से बचाव के लिए इन पर लगातार अनुसंधन को बढ़ावा दे रहा है।

(6) स्वास्थ्य सूचनाएँ एवं ज्ञानवर्द्धन पत्रिकाएँ प्रकाशित करना: विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनाएँ एवं ज्ञानवर्द्धन पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है तथा इनके माध्यम से सदस्य राष्ट्रों एवं जन सामान्य के बीच सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करता है। वर्ल्ड हेल्थ, वर्ल्ड हेल्थ फोरम, पुस्तकें, बुलेटिन, जर्नल, मैनुअल तथा अन्य शिक्षण सामग्री का प्रकाशन इस संगठन द्वारा किया जाता है। कई भाषाओं में प्रकाशन कार्य निष्पादित होता है, जैसे अरेबियन, चीनी, फ्रेन्च, स्पेनिश, अंग्रेजी, रूसी आदि।

(7) स्वास्थ्य कार्यक्रमों का नियोजन एवं क्रियान्वयन: विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वास्थ्य कार्यक्रमों के नियोजन एवं क्रियान्वयन में सहयोग एवं सहायता प्रदान करता है। स्वास्थ्य की उन्नति के लिए प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र खोलने के लिए प्रोत्साहित करता है। अन्य संगठनों, जैसे 'आहार एवं कृषि संगठन' के साथ मिलकर आहार की सुरक्षा के लिए मानक निर्धारित करता है ताकि दूषित एवं सड़े-गले भोज्य पदार्थों के सेवन से बचा जा सके। अत: जब भोज्य पदार्थ तैयार कर लिए जाते हैं तब बिक्री हेतु बाजार में लाने से पूर्व ही इनके निर्धारित मानक तैयार कर लिए जाते हैं तथा वे ही निर्धारित मानक वाले भोज्य पदार्थ बाजार में बिक्री योग्य होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन यूनिसेफ से सहयोग कर मातृ एवं शिशु के पोषण हेतु कार्यक्रम चलाता है। माता को शिशु को स्तनपान कराने के लिए प्रोत्साहित भी करता है। स्पष्टत: मातृ रक्षा और बाल कल्याण सहित सभी के स्वास्थ्य के प्रति यह संगठन प्रतिबद्ध है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य गृह विज्ञान के अंतर्गत स्वास्थ्य, मातृ रक्षा तथा बाल कल्याण के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के विशिष्ट अभिकरण 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' की संरचना, कार्य तथा भूमिका का अवलोकन करना है। इस शोध आलेख का उद्देश्य विश्व स्वास्थ्य संगठन की वर्तमान भूमिका का निष्पक्ष अवलोकन भी है।

परिकल्पना

प्रस्तुत शोध आलेख में विश्व स्वास्थ्य संगठन की पृष्ठभूमि, संरचना, कार्य, उद्देश्य तथा भूमिका का सामान्य अवलोकन किया गया है। कभी-कभी विश्व स्वास्थ्य संगठन की भूमिका को लेकर प्रश्न चिन्ह खड़ा किया गया है, जो निश्चित रूप में भविष्य में विश्व स्वास्थ्य संगठन के भविष्य को नकारात्मक रूप में प्रभावित करेगा। इस संगठन की साख और अर्थव्यवस्था भी भविष्य में विपरीत रूप में प्रभावित होना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

साहित्य अवलोकन

मैंने अपने इस रिसर्च आर्टिकल को तैयार करने के लिए संवैधनिक-वैधनिक प्रावधनों का अध्ययन किया है। तथ्यगत सामग्री के कारण फूटनोट देना मुझे अध्कि उचित नहीं लगा है। प्रस्तुत आलेख की तैयारी के पूर्व कुछ प्रमुख साहित्य का अवलोकन किया गया है:

1. परिवार एवं सामुदायिक विज्ञान, डॉ० बृन्दा सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, द्वितीय सस्करण, 2019
2. मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, डॉ० बृन्दा सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, द्वितीय सस्करण, 2019
3. गृह प्रबंधन, माधुरी देशमुख, गौरव बुक्स कानपुर, यू०पी०, 2016
4. होम मैनेजमेंट, रामा यादव, अलफा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, फर्स्ट पब्लिश, 2009

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत रिसर्च आर्टिकल के लेखन में ऐतिहासिक पद्धति तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक पद्धति का प्राथमिक रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्कर्ष

अबतक के विवेचन से स्पष्ट है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट एजेन्सियों में विश्व स्वास्थ्य संगठन एक महत्वपूर्ण एजेन्सी है। वास्तव में, शांति व सौहार्द को वैश्विक रूप से प्राप्त करने के लिए शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य को अनिवार्य माना जाता है। इसलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन की संयुक्त राष्ट्र संघ के अभिकरणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इसकी संरचना एवं कार्य महत्वपूर्ण है तथा इसे अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है, हालांकि अबतक इस संगठन की भूमिका को लेकर कई देशों ने पक्षपात का आरोप लगाया है तथा स्वयं को इस संगठन से अलग कर लेने की चेतावनी भी दिया है। इससे निश्चित रूप में इस संगठन की साख, कार्य एवं भूमिका विपरीत रूप में प्रभावित होंगी तथा प्रभुत्व वाले देशों का दृष्टिकोण भी इस संगठन के प्रति नकारात्मक ही दिख रही है। स्पष्ट है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन का भविष्य चुनौतिपूर्ण है। अब इस संगठन को किसी देश विशेष के प्रभाव से निकलकर निष्पक्ष भूमिका में आने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. डॉ० बृन्दा सिंह, परिवार एवं सामुदायिक विकास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
2. आहूजा, राम, "भारतीय सामाजिक व्यवस्था", रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1995
3. लवानिया, एम०एम०, "भारतीय समाज", रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर, 1987
4. गुप्ता, मोती लाल, "भारतीय सामाजिक संस्थायें", राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1962
5. मुखर्जी, रविन्द्रनाथ, "भारतीय सामाजिक संस्थायें", विवेक प्रकाशन, दिल्ली।
6. शर्मा के०एल०, "भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन", रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2010
7. राजोरा, एस०सी०, "समकालीन भारत की सामाजिक समस्याएँ", राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण, 2010
8. World Health Organisation, 2006, Constitution of the WHO, Basic documents, Forty-Fifth Edition, Supplement, October, 2006

दिनकर की कविताः मार्क्सवाद तथा गांधीवाद का द्वंद

डॉ० संजय कुमार सिंह

पी०एच०-डी० (JNU)

रिसर्च आलेख का सार

हिंदी के आधुनिक काव्य-साहित्य के प्रांगण में दिनकर ऐसे कवि हैं, जिनका वैचारिक-पक्ष अत्यंत प्रबल है। दिनकर के कवि व्यक्तित्व की बनावट में जिन तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उनमें प्रमुख हैं- भारतीय स्वाधीनता आंदोलन, साम्राज्यवादी-पूंजीवादी शोषण से कराहता ग्रामीण कृषक वर्ग और छायावाद-युगीन पृष्ठभूमि। किसी भी व्यक्तित्व तथा कृतित्व की द्वंद चेतना के विवेचन से पहले द्वंद चेतना का तात्विक विवेचन जरूरी है, "द्वंदात्मक चेतना कम से कम दो दृष्टियों से जो एक-दूसरे की एकदम विरोधी हैं- ठीक वैसे ही जैसे पूर्वपक्ष और विपक्ष एक दूसरे के विरोधी होते हैं-उत्पन्न है। यह विरोध पूर्ण होता है, रचनात्मक धरातल पर सभी पहलुओं को खंगालता है और सभी पहलुओं को प्रभावित करता है।"[1] अर्थात् किसी कवि की द्वंद-चेतना कवि की रचना के कारण और प्रभाव, उसके स्वरूप, पर्यवेक्षण के आधार पर अनुमान लगाने की सार्थकता, भौतिक जगत और मन के बीच संबंधों तथा अन्य ऐसी ही समस्याओं को सुलझाने का भी प्रयत्न करता है। दिनकर की कविता में मार्क्सवाद और गांधीवाद के द्वंद को देखने-समझने के लिए हमें दिनकर की रचना के कारण और प्रभाव, उसके स्वरूप, पर्यवेक्षण के आधार पर अनुमान लगाने की सार्थकता आदि का विवेचन करना होगा।

मूल शब्दः मार्क्सवाद, गाँधीवाद, फासीवाद, तानाशाही, पदार्थ, मूल व तथ्य, साधन और साध्य, सामाजिक सशक्तिकरण।

प्रस्तावना

शोध आलेख के सार में जैसा कि पहले कहा गया है- हिंदी के आधुनिक काव्य-साहित्य के प्रांगण में दिनकर ऐसे कवि हैं, जिनका विचारक-पक्ष अत्यंत प्रबल है। दिनकर के चिंतन में इतिहास-बोध का व्यापक विस्तार है। उन्होंने इतिहास का अध्ययन गंभीर चिंतन के साथ किया। इतिहास के साथ-साथ संस्कृति, साहित्य एवं विज्ञान का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया। इस व्यापक ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने आधुनिक समाज को देखा तो उसमें अधिक कमियाँ दिखाई पड़ने लगीं। उनके भावुक कवि ने चिंतन का सहारा लिया, जिसका सहज परिणाम है उनकी क्रांतिकारी कविता-

"असि की नोकों से मुकुट जीत अपने सिर उसे सजाती हूँ,
ईश्वर का आसन छीन, कूद मैं आप खड़ी हो जाती हूँ,
थर-थर करते कानून, न्याय, इंगित पर जिन्हें नचाती हूँ,
भयभीत पातकी धर्मों से अपने पग मैं धुलवाती हूँ,
सिरझुका घमंडी सरकारें करतीं मेरा अर्चन-पूजन।
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन।"[2]

दिनकर ने आठवें ज्ञानपीठ पुरस्कार को ग्रहण करते हुए अपने वक्तव्य में कहा- "अपने निर्माण के दिनों में प्रत्येक नए कवि को अपने महाकवि का पता लगाना पड़ता है, जिसके समान वह बनना चाहता है। मेरा दुर्भाग्य या सौभाग्य यह रहा है कि मैंने एक के बदले ऐसे दो महाकवियों का पता लगा लिया, जिनके समान बनने की मुझमें उमंग थी। इनमें से एक थे श्री रविंद्रनाथ ठाकुर, जिनके नाम की सारे संसार में धूम थी और जिनके प्रभाव में आकर भारत की कई भाषाओं में छोटे-छोटे रविंद्रनाथ पैदा हो गए थे; और दूसरे थे सर मोहम्मद इकबाल, जिन्हें नोबेल पुरस्कार तो नहीं मिला था मगर जिनकी कविताएं पाठकों के रुधिर में आग की तरंगे उठाती थीं, मन के भीतर चिंतन का द्वार खोल देती थी।

.......भगवान के प्रति रविंद्रनाथ का भाव संपूर्ण आत्म का भाव था-

प्रभु, तोमा लागि आंखी जागे
देखा नाइ पाइ, शुहू पथ चार,
सेओ मोने भालो लागे।

किंतु इकबाल भगवान के उस प्रकार के भक्त थे जो चाहता है कि मैं भगवान में लीन नहीं होऊँगा, भगवान को ही मुझमें विलीन होना पड़ेगा-

खुद को कर बुलंद इतना
कि हर तकदीर से पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे
बता तेरी रजा क्या है।

....शुरू में ही मुझ पर रविंद्र और इकबाल का जो विरोधी प्रभाव पड़ गया, उसके कारण मैं काफी वर्षों तक बेचैन रहा।"[3]

दिनकर के इस बेचैनी का परिणाम 'द्वंद गीत' कविता शीर्षक की निम्न पंक्तियों में दिखता है-

"जीवन की कल मृत्यु बनेगा और मृत्यु की नव-जीवन
जीवन-मृत्यु-बीच तब क्यों द्वन्द्वों का यह उत्थान-पतन?
ज्योति बिंदु चिर नित्य अरे, तो धूल बनूं या फूल बनूं,
जीवन दे मुस्कान जिसे, क्यों उसे कहो दे अश्रु मरण?"[(4)]

दिनकर के ऊपर परस्पर विरोधी प्रभाव निरंतर पड़ता रहा लेकिन कविता में दिनकर ने अनुभूति पक्ष को पर्याप्त महत्व दिया है। कविता की भूमि कवि हृदय होती है और कभी हृदय की अनुभूति ही काव्य को कवि के अनुकूल दिशा देती है (चाहे यथार्थवादी स्वरूप को आदर्श के साथ बिठाना हो या फिर आदर्श को यथार्थ से मिलाना हो। संभवत: तभी दिनकर की कविता में कवि की अनुभूतियों की ही आंच लपटों में दिखती हैं।

स्वयं दिनकर ने 'मिट्‌टी की ओर' शीर्षकलेख में लिखा है- "साहित्य की स्वाभाविक प्रक्रिया अनुभूतियों का ग्रहण और उनकी कलात्मक अभिव्यक्ति है।"[(5)]

दिनकर की कविता में मार्क्सवाद और गांधीवाद का द्वंद वैचारिकी का नया आयाम खोलता है। दिनकर की रचना का स्वरूप बकौल दिनकर के शब्दों में ही- "जिस तरह मैं जवानी भर इकबाल और रविन्द्र के बीच झटके खाता रहा, उसी प्रकार मैं जीवन-भर गांधी और मार्क्स के बीच झटके खाता रहा हूँ। इसलिए उजले को लाल से गुणा करने पर जो रंग बनता है, वही रंग मेरी कविता का रंग है। मेरा विश्वास है कि अन्ततोगत्वा यही रंग भारतवर्ष के व्यक्तित्व का भी होगा।"[(6)]

स्पष्ट है कि दिनकर की कविता का स्वरूप गांधी की शांति और मार्क्स की क्रांति के बीच दोलायमान रहा। एक और उनकी कविता गांधी के विराट चरणों में वामन का दिया हुआ क्षुद्र उपहार है-

"भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है,
भारत एक जलज, जिस पर जल का न दाग लगता है।
भारत एक संज्ञा विराग की, उज्जवल आत्मा उदय की,
भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की।
जहां त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहां भोग निष्काम,
समस्त हो कामना, वही भारत को करो प्रणाम।"(7)

उपर्युक्त 'हिमालय का संदेश' कविता में जिस भारत की कल्पना की गई है, वह गांधी जी की ही कल्पना का देश है। "विदेशी आक्रमणों का प्रतिरोध करने के लिए सेना की आवश्यकता गांधीजी भी महसूस करते थे। किंतु, जिस भारत की उन्होंने कल्पना की थी, वह सैन्य बल नहीं, पुण्य बल को लेकर बढने वाला देश है।"(8)

दूसरी ओर, दिनकर की कविता में राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी भावनाओं का प्रवाह है। दिनकर की कविता में राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी भावनाओं का प्रवाह देखकर आमतौर पर सभी लोगों ने उन्हें प्रगतिवादी धारा का कवि कहा है। इसका कारण यह है कि प्रगतिवाद की सभी स्वीकृत विशेषताएँ दिनकर के काव्य में विद्यमान हैं-

"मही प्रदीप्त है, दिशा-दिगन्त लाल-लाल है,
व 'देख लो, जवानियों की जल रही मशाल है,
व 'गिर रहे हैं आग में पहाड़ टूट-टूट के,
व 'आसमां से आ रहे हैं रत्न छूट-छूट के,
उठो, उठो कुरीतियों की राह तुम भी रोक दो,
बढ़ो, बढ़ो की आग में अनीतियो को झोंक दो।
परम्परा की होलिका जला रही जवानियां"(9)

दरअसल, दिनकर की प्रगतिवादी चेतना संपूर्ण जीवन के मंगलमय भविष्य की कामना करती है। उनके भाव जनजीवन से लिए गए हैं जिसमें अनुभूति की बेधकता दिखती है। कवि के इसी अनुभूति की बेधकता ने व्यंग रूप में स्वयं के बारे में कहलवाया-

"हो गया एक नेता मैं भी? तो बंधु, सुनो,
मैं भारत के रेशमी नगर में रहता हूं,
जनता तो चटानों का बोझ सहा करती,
मैं चांदनियों का बोझ किसी विहा सहता हूं।"(10)

दिनकर अपनी रचना में प्रगतिवादी स्वरूप को केवल वैचारिक आंदोलन भर समझते हैं। साहित्य में ठोस रूप से प्रगतिवाद का प्रभाव नहीं पड़ सकता; दिनकर का ऐसा मानना था। वे प्रगतिवाद को एक वैचारिक आंदोलन मानते हैं जो साहित्येत्तर आंदोलन है और अपने को प्रगतिवादी कवि कहलाने की अपेक्षा छायावादोत्तर कवि कहलाना पसंद करते थे-

"हिंदी-कविता छायावाद की कुहेलिका से निकलकर स्वयं सुस्पष्ट होती जा रही थी तथा उसके अग्रणी आचार्य भी स्वयं ही जनजीवन के समीप चले आ रहे थे। किंतु, ठीक इसी समय, देश में और कांग्रेस के भीतर भी, मार्क्सवादी पक्षों का संगठन होने लगा और राजनीति की इस प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि बहुत से लेखक मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने लगे। ठीक है कि साहित्य-कला और दूसरी कलाओं में भेद है। यदि कोई बढ़ई फासिस्ट हो जाए तो उसकी रचना यानी कुर्सी और मेज में फासिज्म कही से प्रवेश नहीं करेगा। किंतु, कोई कवि यदि फासिस्ट हो जाए तो उसकी रचनाओं पर उसके विश्वासों का प्रभाव

अवश्य पड़ेगा। किंतु, केवल वैचारिक आंदोलन, वैचारिक आंदोलन होते हैं, साहित्य आंदोलन उन्हें हम तभी कहेंगे जबकि उनसे साहित्य की शैली परिवर्तित होती हो। प्रगतिवाद ने साहित्य पर ऐसा कोई भी प्रभाव नहीं डाला जिसे हम किसी भी दृष्टि से साहित्यिक प्रभाव कह सकें। यह मुख्यत: साहित्येत्तर आंदोलन था जो साहित्य के भीतर केवल राजनीतिक उपयोग के लिए साहित्यिकों का शोषण करने को आया था।"(11)

यानि स्पष्ट है कि दिनकर ने कभी भी प्रगतिवादी आंदोलन को साहित्यिक आंदोलन के रूप में नहीं स्वीकारा। वे इसे उस काल की परिस्थितियों के समक्ष-रख मात्र राजनैतिक आंदोलन मानते रहें।

पर्यवेक्षण के आधार पर अनुमान लगाने की सार्थकता

"...कॉलेज में वर्ड्सवर्थ की येपत्तियां कदाचित मैंने भी पढ़ी होंगी:

The gods approve the depth,
and not the tumult, of soul.

लेकिन जवानी भर मुझे इसकी परवाह नहीं रही कि देवताओं की पसंद क्या है। मुख्य बात यह थी कि गर्म लोहे पर हथौड़े की चोट जोर से पड़ती है या नहीं। मैं रन्दा लेकर काठ को चिकनाने नहीं आया था। मेरे हाथ में कुल्हाड़ी थी। मैं जड़ता की लकड़ियों को काट रहा था।"(12)

दिनकर का यह वक्तव्य उनके के युग के सामाजिक आयाम को प्रकट करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति और शोषित आम जनों के दु:ख को दिनकर हृदय में मथकर ऐसी तान सुनाते हैं, जिससे उथल-पुथल मच जाता है। स्वतंत्रता की कल्पना वे प्राय: एक बड़ी क्रांति के रूप में ही करते हैं जो अन्याय और असमानता पर आधारित राज्य और समाज का ध्वंस कर देगी। 1938 ई. में लिखी 'विपथगा' कविता में इस अवधारणा का भावनात्मक विस्फोट हुआ-

"पायल की पहली झमक, सृष्टि में कोलाहल छा जाता है।
पड़ते जिस ओर चरण मेरे, भूगोल उधार दब जाता है।
लहराती लपट दिशाओं में, खलभल खगोल अकुलाता है।
परकटे विहाग-सा निरवलम्ब गिर स्वर्ग-नरक जल जाता है।
गिरते दहाड़कर शैल-श्रृंग मैं जिधार फेरती हूं चितवन।"(13)

परंतु इस क्रांति का सामाजिक चरित्र स्वतंत्रता बाद आशा के विपरीत था। विपरीत स्थितियों अथवा मन के प्रतिकूल अवस्था का आक्रोश 'भारत का यह रेशमी नगर' शीर्षक कविता में यू मिलता है-

"रेशमी कलम से भाग्य लेख लिखने वालो,
तुम भी अभाव से कभी ग्रस्त हो रोये हो?
बीमार किसी बच्चे की दवा जुटाने में
तुम भी क्या घर भरपेट बांधकर सोए हो?"(14)

गांधी और मार्क्स का चिंतन दोनों ही समाज में दलितों और शोषितों के प्रति अत्यधिक सदृश्य है, दोनों ही एक ऐसी समाज-व्यवस्था को स्थापित करना चाहते हैं, जिसमें मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण ना हो सके और सबको बिना किसी भेद-भाव के अपने विकास की समान सुविधाएं उपलब्ध हो सके। गांधी और मार्क्स का केवल यही आदर्श समान है। लेकिन इस आदर्श को पाने की साधन प्रणाली नितांत परस्पर विरोधी है। दिनकर ने दोनों विचारधाराओं का पर्यवेक्षण कर यथार्थपरक मानवीय संवेदना से अपनी कलात्मक सृष्टि की।

दिनकर की कविता में गांधीवाद और मार्क्सवाद के द्वंद्व को और स्पष्ट करने से पहले यह आवश्यक है कि गांधीवाद और मार्क्सवाद की दृष्टिओं का दार्शनिक आधार, वर्गों की भूमिका, साधन-प्रणाली आदि स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन किया जाए:-

दार्शनिक आधार- मार्क्सवाद का दार्शनिक आधार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद है। वह 'थीसिस', 'एंटीथीसिस' और 'सिन्थीसिस' की पद्धति पर आश्रित है। मार्क्स का भौतिकवाद, ऐतिहासिक प्रगति के परिणामस्वरुप सामाजिक संबंधों की जटिल व्यवस्था के अध्ययन के रूप में प्रस्तुत है। इसके मूल में न्यूटन का सिद्धांत काम कर रहा है। जो वस्तु है, वह अपने विरोधी तत्व को जन्म देता है और बाद में दोनों में समन्वय की प्रक्रिया चलती रहती है। तुरंत तीसरी शक्ति उनके विरोध में निकलती है और समन्वय की प्रक्रिया चलती रहती है। वस्तुओं के संघर्ष में कार्ल मार्क्स ने आर्थिक शक्ति को प्रधानता दी। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार जगत का जो कुछ कार्य-व्यापार हमें दिखता है, वह आत्मा-परमात्मा जैसी किसी चेतन सत्ता की लीला नहीं है। उसका विश्वास है कि भौतिक पदार्थ ही वह मूल सत्ता है जिसका रूपांतर यह दृश्यमान जगत है।

गांधीवादी इसके बिल्कुल उल्टा है। वह सृष्टि के निर्माता परमेश्वर में और आत्मा के अंदर की सच्चाई में आस्था रखता है। मार्क्सवाद जहां चेतना को पदार्थ की छाया मानता है, वहां गांधीवाद पदार्थ को चेतना की छाया मानता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जहां मार्क्सवाद प्रधानतः भौतिकवादी है, वहीं गांधीवाद प्रधानतः अध्यात्मवादी है।

वर्गों की भूमिका- मार्क्स के अनुसार प्रत्येक समाज में दो वर्ग हैं- एक प्रबल दूसरा निर्बल। प्रबल आर्थिक शक्ति राजनीतिक सत्ता ग्रहण कर लेती है और अपने सिद्धांतों के अनुरूप समाज का संगठन और शासन करती है। समय पाकर निर्बल शक्ति प्रबल हो जाती है, तब वह राजनीतिक अधिकार को अपनाती है। मार्क्सवाद उन समस्त साधनों के उपयोग का कट्टर समर्थक है जिनके द्वारा वर्ग-संघर्ष को उत्तेजना मिलती है। जो विचार अथवा काम वर्ग संघर्ष के आग पर पानी डालते हैं, मार्क्सवाद उन्हें प्रतिक्रियावादी ठहराता है।

गांधीवाद वर्ग-संघर्ष के बजाय वर्ग-सामंजस्य का पुजारी है। वह समाज को स्थाई रूप से दो परस्पर विरोधी वर्गों में विभाजित नहीं मानता। गांधी के सर्वोदय समाज में पूंजीपतियों और श्रमिकों दोनों के हितों के संरक्षण और विकास की समान व्यवस्था है। महात्मा गांधी पूंजीपतियों का नहीं, पूंजी का विध्वंस चाहते थे। उनका पूंजीपतियों के लिए परामर्श था कि आपको श्रमिकों का ट्रस्टी बन जाना चाहिए।

साधन प्रणाली- गांधीवाद और मार्क्सवाद में एक प्रधान अंतर साधन-प्रणाली के भेद को लेकर है। मार्क्सवादी विचारकों के अनुसार यदि हमारे साध्य श्रेष्ठ हैं तो हम उनको प्राप्त करने के लिए कैसे भी साधनों का प्रयोग कर सकते हैं। मार्क्सवादी यह विश्वास करते हैं कि सत्ता पर आरूढ़ पूंजीपति वर्ग की क्रांति विरोधी प्रतिक्रियावादी हलचलों को नष्ट करने के लिए किसी न किसी स्तर पर रक्तपात और हिंसा का उपयोग होता है।

गांधीवादी श्रेष्ठ साध्य की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ साधनों का पक्षपाती है। वह अहिंसा तथा सत्य का एकनिष्ठ पूजारी है और अपने कट्टर-से-कट्टर शत्रु के प्रति भी स्नेहपूर्ण व्यवहार का समर्थन करता है।

दिनकर की कविता किसी का पक्ष नहीं लेती है। दिनकर की कविता सभी चीजों में हलचल पैदा करती है परंतु किसी एक चीज को मुख्य प्रश्रय नहीं देती। दिनकर अपने कविता में प्रश्रय देते हैं तो राष्ट्रीय हित को। 1945 ई० में लिखी और 'दिल्ली और मास्को' कविता में लिखते हैं:-

"जय विधायिके अगर क्रांति की। अरुण देश की रानी।
रक्त-कुसुम-धारिणी! जगतारिणी! जय नवशिवे भवानी।
अरुण विश्व की काली, जय हो
लाल सितारों वाली, जय हो
दलित, बुभुक्षु, विषण्ण मनुज की,
शिखा रूद्र मतवाली जय हो।"

....

"एक देश है जहां विषमता
से अच्छी हो रही गुलामी
जहां मनुज पहले स्वतंत्रता
से हो रहा साम्य का कामी
भ्रमित ज्ञान से जहां जांच हो-
रही दीप्त स्वतंत्र्य-समर की
जहां मनुज है पूज रहा जग को
विसार सुधि अपने हार की।"[15]

उपयुक्त कविता की पत्तियों से स्पष्ट है कि साम्यवाद भले ही कितना अच्छा क्यूं ना हो, परंतु राष्ट्रीय हितों के लिए अंतरराष्ट्रीय हितों को ज्यादातर तबज्जो देना उन्हें खलता है।

दिनकर राजनीतिक विचारधाराओं में कार्ल मार्क्स की प्रगतिशील क्रांतिकारी धारा से प्रभावित हैं। लेकिन साम्यवाद भारतीय परिस्थित और राष्ट्र-हित का रहे तो दिनकर उसे पूर्णतया स्वीकार करते हैं। गांधीवादी अहिंसा को उनका कवि हृदय स्वीकार नहीं करता। दिनकर के अनुसार, "अहिंसा को सिद्धांत के रूप में अटल मानकर उस पर कठोरता से आचरण करने वाले व्यक्ति एक मात्र गांधीजी थे।"[16]

"गांधी जी जब समस्त देश को जीवन, जागरण, प्रेरणा और संघर्ष से आलोड़ित कर रहे थे, वह मेरे निर्माण का समय था।"[17]

गांधी जी पर दिनकर की गहरी आस्था थी। परंतु हिंसा-अहिंसा विषयक द्वन्द्व दिनकर के हृदय में डेरा जमाने लगा था-

"गांधी जी पर मेरी भक्ति गहरी, अत्यंत गहरी थी, किंतु गांधी युग में जो हिंसात्मक आंदोलन चल रहे थें, मैं उन्हें भी आशा व प्रशंसा से देखता था। हिंसात्मक क्रांति आस्था को आगे बढ़ाते हुए जब भी कोई वीर शहीद हो जाता था, मैं उस वीर के नाम पर रात-रात भर रोता रहता था और जब आंसू थम जाते थे, तब कोई ज्वलंत कविता लिखकर उससे श्रद्धांजलि अर्पित करता था।"[18]

'कुरुक्षेत्र' की मूल प्रेरणा द्वितीय विश्व युद्ध से नहीं, उस देशभक्त युवा मानस के द्वन्द्व से आई थी जो गांधीजी के अहिंसा को मात्र नीति मानता था और एक दिन समाजवादी या साम्यवादी हो उठा। दिनकर का अपना निष्कर्ष यही है कि संसार में जब तक समता स्थापित नहीं होती, युद्धों का होना रुकेगा नहीं।

'कुरुक्षेत्र' में भीष्म द्वारा हिंसा और युद्ध का प्रतिपादन कराने के कारण दिनकर पर हिंसावादी होने का आरोप लगाया जाता है, लेकिन उन्होंने हिंसा अथवा युद्ध को जीवन के साध्य या अंतिम लक्ष्य के रूप में कभी नहीं स्वीकार किया। कोई भी कार्य चाहे वह वैयक्तिक हो अथवा समष्टिगत अपने-आप में पुण्य या पाप नहीं होता, पुण्य या पाप की कसौटी उस कार्य का लक्ष्य या उद्देश्य होता है:-

"सेना साज हीन है परस्व हरने की वृत्ति
लोभ की लड़ाई छात्र धर्म के विरुद्ध है।
वासना-विषय से ही नहीं पुण्य अद्भूत होता,
वाणिज के हाथ की कृपाणही अशुद्ध है।
चोट खा परंतु, जब सिंह उठता है जाग,
उठता कराल प्रतिशोधा हो प्रबुद्ध है;
पूण्य खिलता है चंद्रहास की विभा में तब,
पौरुष की जागृति कहाती धर्म-युद्ध है।"[19]

दिनकर युद्ध आपदूर्म मानते हैं। परंतु युद्ध की विभिषिका देख मानवतावादी विचार से पोषित होते हैं:-

"युद्ध की इति हो गयी : रणभू श्रमित, सुनसान;
गिरी-शिखर पर थम गया है डूबता दिनमान-
देखते राम का भयावह कृत्य
अन्हा मानव की नियति का नृत्य;
सोचते, इस बंधु-वध का क्या हुआ परिणाम!
विश्व को दे गया, इतना बड़ा संग्राम!
युद्ध का परिणाम!
युद्ध का परिणाम छासत्रस!
युद्ध का परिणाम सत्यानाश!"[20]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में दिनकर की कविता की पृष्ठभूमि तथा उनके वैचारिक आधार को समझना प्रमुख उद्देश्य है। इस आलेख में दिनकर की कविता में मार्क्सवादी तथा गाँधीवादी तत्त्वों की उपस्थिति का अवलोकन अपेक्षित है। दिनकर की कविता में मार्क्सवाद तथा गाँधीवाद के द्वन्द्व को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। वस्तुत: हमने अपने प्रस्तुत आलेख में दिनकर की कविता में मार्क्सवाद तथा गाँधीवाद के द्वन्द्व को समझने प्रयास किया है।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत आलेख के लेखन से पूर्व साहित्य सर्वेक्षण के अंतर्गत निम्नलिखित प्रमुख पुस्तकों का अवलोकन किया गया है:-

1. भारतीय दर्शन की चिंतनधारा, डॉ. राममूर्ति शर्मा, मणिद्वीप प्रकाशन।
2. प्रशासनिक चिन्तक, डॉ० अशोक कुमार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, वर्ष 2004
3. गाँधी दर्शन पर कई मौलिक रचनाएँ विशेषत: श्री मन्ना नारायण एवं भवानी प्रसाद मिश्र की रचनाएँ।

शोध-पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का सहारा लिया गया है। शोध आलेख की तैयारी में पूर्व का साहित्यिक सर्वेक्षण से तुलनात्मक पद्धति का भी आंशिक प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष

दिनकर की सम्पूर्ण काव्य रचना को देखने से ज्ञात होता है कि दिनकर राष्ट्रीयता, विद्रोह और क्रांति के कवि थे। दिनकर की कविता प्रगतिवाद, जनवाद, गांधीवाद और मानववाद से पोषित होती है परंतु आबद्ध नहीं रह पाती। इसका कारण यह है कि 'उनकी कविता का विकास आदि से अंत तक द्वन्द्वों से जूझने की कथा है-द्वन्द्व जो प्रबुद्ध-चेता कवि को चिंतन और भावना के क्षेत्रों में, प्रत्येक स्तर पर घेरते हैं, भरमाते हैं, विकल करते और चुनौती देकर उसे साधना एवं समाधान के प्रगति-पथ पर ले जाते हैं।' दिनकर की कविता में प्रवृत्ति और निवृत्ति का द्वन्द्व दृष्टि-गोचर होता है। दरअसल, दिनकर की गांधी पर आस्था रही, गांधी की करुणा को विश्व की अनमोल धाती मानते हैं। लेकिन हिंसा पर भी उनका तर्क युक्त सम्मति है। इस द्वन्द्व का स्पष्ट उत्तर यह है कि साहित्यकार दार्शनिक की भांति संसार, जीव, ब्रह्म और जीवन के संबंध में अंतिम सत्य का निर्णय नहीं दे सकता। उसके दो ही रूप हो सकते हैं- या तो वह दर्शन की अधीत अनुभूति को अपने काव्य में उतारे अथवा जीवन को भोगकर, झेलकर अपने अनुभवों के आधार पर शास्त्र सम्मत दार्शनिक मान्यताओं के सत्यासत्य का निर्णय करें। इस दृष्टि से दिनकर दूसरे वर्ग में आते हैं। दिनकर की दार्शनिक

प्रतिक्रियाएं बौद्धिक ना होकर भावात्मक हैं, उनके दर्शन में विरोधी तत्वों के सह-अस्तित्व का मूल कारण यही है। यह दोष नहीं उनकी शक्ति है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय दर्शन की चिंतनधारा, डॉ. राममूर्ति शर्मा, मणिद्वीप प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1991, पृ. 497
2. संचियता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र. सं. 1973, पृ. 34
3. ज्ञानपीठ पुरस्कार, संपादक-प्रभाकर क्षेत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशक, दूसरा सवंर्धित संस्करण 1985, पृष्ठ क्रमशः 183, 184
4. चक्रवाल, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन, प्र. सं. 1956, पृ. 137
5. मिट्टी की ओर, रामधारी सिंह दिनकर, पृ. सं. 105
6. वक्तव्य, ज्ञानपीठ पुरस्कार, सं. प्रभाकर क्षेत्रिय, पृ. 188
7. हिमालय का संदेश, रामधारी सिंह दिनकर पृ. 5
8. महात्माजी और मेरा सृजन (शीर्षक लेख), महात्मा गांधी की जय, सं. श्रीमन्नारायण/भवानी प्र. मिश्र, सस्ता साहित्य मंडल, 1970, पृ. 51
9. परशुराम की प्रतीक्षा, दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, पुनर्मुद्रण 1997, पृ. 35
10. चक्रवाल, दिनकर, पृ. 315
11. चक्रवाल, दिनकर, पृ. 41
12. ज्ञानपीठ पुरस्कार, पृ. 184-185
13. संचियता, पृ. 32
14. संचिता, पृ. 91
15. चक्रवाल, पृ. 173, 174
16. महात्मा गांधी की जय, सं. श्री मन्नारायण/भवानी प्र. मिश्र, पृ. 44
17. महात्मा गांधी की जय, सं. श्री मन्नारायण/भवानी प्र. मिश्र, पृ. 184
18. महात्मा गांधी की जय, सं. श्री मन्नारायण/भवानी प्र. मिश्र, पृ. 46
19. कुरुक्षेत्र, तृतीय सर्ग, राज्यपाल एंड संस, 2004, पृ. 27
20. चक्रवाल (कलिंग विजय, कविता), पृ. 16

बिहार के कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक समस्याएँ: शिक्षण सेवा के सदर्भ में

डॉ० स्नेह लता

पीएच.डी. एवं यूजीसी नेट, गृह विज्ञान विभाग, बी०आर०ए०बी०यू०, मुजफ्फरपुर

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन शिक्षण सेवा क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की पारिवारिक समस्याओं से संबंधित है। वर्त्तमान समय में शिक्षण सेवा क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में काफी वृद्धि हुई है, शिक्षण सेवा क्षेत्र ने महिलाओं को अत्यधिक आकर्षित किया है। निश्चित अवधि तक कार्य, निश्चित नियम, राजनीतिक हस्तक्षेप का अभाव, सापेक्ष सुरक्षा आदि अनेक ऐसे कारक है जिससे महिलाओं का आर्कषण शिक्षण सेवा क्षेत्र की तरफ बढ़ा है लेकिन कार्य की अनुकुलता और आर्कषक वेतन के साथ-साथ महिलाओं से जुड़ी शिक्षा का स्तर और परिवारिक पृष्ठभूमि आदि कारक महिलाओं के समक्ष कार्य और परिवार का दोहरा दबाव उपस्थित करते है। प्रस्तुत अध्ययन में दोहरी जिम्मेदारियों के निभाने में कौन सी समास्याएँ आती है, इसी प्रश्न के उत्तर खोजने की प्रयास की गई है। इसके लिए बिहार के पटना जिले के विभिन्न शिक्षण संस्थानों में कार्यरत 50 महिला शिक्षिकाओं का उद्देश्पूर्ण चयन किया गया है। निष्कर्ष में पाया गया कि महिलाओं में तनाव, पारिवारिक सामंजस्य स्थापित करने में समस्याएँ, आर्थिक स्वतंत्रता की कमी, घरेलू हिंसा, परिवार का गृह कार्यो में असहयोगात्मकव्यवहार उनकी कार्यक्षमता पर नकारत्मक प्रभाव डालती है।

सार संकेत:- आर्थिक स्वतंत्रता, जिम्मेदारी, आत्मनिर्भर, कामकाजी, सामंजस्य

परिचय

हमारे देश की आधी आबादी महिला है। सविधान में इन्हें पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त है। भारतीय सविधान में वर्णित अनुच्छेद-15 महिलाओं को जहाँ समानता का अधिकार प्रदान करता है, वही अनुच्छेद-16 रोजगार का समान अवसर भी प्रदान करता है। संविधान का अनुच्छेद-39 सुरक्षा एवं समान काम के लिए समान वेतन की वकालत करता है।

विश्व बैंक की एक रिर्पोट के अनुसार एशियाई देशों की तुलना में हमारे देश में कामकाजी महिलाएँ कम है। पिछले वर्षो में समग्र प्रयासों से महिलाओं की साक्षरता दर बढ़ी है, महिलाओं ने रोजगार के लिए जोखिम वाले क्षेत्रों में भी प्रवेश किया है। आज जोखिम वाले काम भी महिलाएँ बड़ी सहजता और सफलता से करने लगी है। फिर भी विश्व बैंक की रिर्पोट के अनुसार देश में 27 प्रतिशत महिला ही कामकाजी है। बिहार की स्थिति और भी खराब है, बिहार में महिलाओं को सभी सरकारी नौकरी में 35 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था से महिलाओं में कामकाजी होने की प्रतिशत में बढ़ोत्तरी देखी जा रही है। आजादी के बाद महिला शिक्षा की स्थिति में सुधार के कारण उच्चवर्गीय के साथ-साथ आम शहरी मध्यवर्गीय परिवारों में महिलाएँ शिक्षित हुई है अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश कर सफलता भी प्राप्त की है लेकिन पितृवादी सोच हमेशा उनके आड़े आती है, जो उनकी समस्याओं को बढ़ाती रही है।

पारंपारिक रूप से घर का काम महिलाओं के हिस्से आता है, लेकिन तब की स्थिति अलग थी क्योंकि तब महिलाएँ घर में ही काम करती थी लेकिन अब जबकि वे बाहर निकलकर काम करने लगी है, तब भी उनसे घर के सारे काम करने की उम्मीद की जाती है। एक कामकाजी महिला को कामकाजी पुरूषों से दुगुना नहीं तिगुना कार्य करना पड़ता है, अपने बच्चे, पति, परिवार के अन्य सदस्य जैसे-सास-ससुर इत्यादि का ध्यान की पूर्ववत रखना पड़ता है। अब चूंकि संयुक्त परिवार टूट रहे है, इसलिए उनका

हाथ बटाने वाला कोई नहीं है। इसलिए उनकी समस्याएँ और भी बढ़ जाती है। कामकाजी महिलाओं को दोहरी चुनौती का सामना करना पड़ता है। घरेलू एवं बाहर अर्थात उन्हें अपने घर-परिवार रिश्ते नाते के साथ-साथ (कार्यालय स्कूल कॉलेज ऑफिस) सबको ठीक से चलाना पड़ता है। और इनमें प्रमुख है दोनों के बीच संतुलन क्योंकि किसी एक पक्ष की गलती से भी उपेक्षा करने पर जीवन की नाव डगमगाने लगती है।

महिलाएँ कामकाजी तो सदा से रही है, घरेलू जिंदगी में कोल्हू के बैल की तरह जुटी रही है। बाहरी कार्यक्षेत्र में आने से उनके कार्य को महत्व मिला है, जो उन्हे घरेलू कार्यो में कतई नहीं मिलता, बल्कि घरेलू कार्यो को उनका जन्मसिद्ध कर्तव्य समझा जाता रहा है। जिन कार्यो की न तो कभी प्रशंसा हुई और ना ही उसका कोई मूल्य समझा जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में जागृति आने से महिलाओं के कदम विभिन्न रोजगारों की ओर अग्रसर हुए है। एक रिर्पोट के अनुसार वर्ष 1981 से 1991 के दशक में रोजगार में पुरूषों की संख्या 21.4 प्रतिशत बढ़ी है, जबकि महिलाओं के आकड़ों में 42.66 की वृद्धि हुई है। इस तरह के आकड़े महिलाओं में अंकुरित हुए आत्मविश्वास को दर्शाते है, जो अपनी योग्यता कार्यक्षमता से राष्ट्र की उन्नति में सक्रिय भागीदारी दर्ज करा रही है। लगता तो यही है कि रोजगार के क्षेत्र में कदम रखने से महिलाओं को कुछ कुछ लाभ तो हुए है किंतु वास्तव में उन्हे परंपरगत समस्याओं से मुक्ति नहीं मिली है।

कामकाजी महिला के ऊपर घर और कार्यालय की दोहरी जिम्मेदारी होती है। दोनो ही जिम्मेदारियाँ अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है। किसी को भी नजर अंदाज किये बिना सुचारू रूप से निभाने में अनेक समस्याएँ आती है। इन समस्याओं को दूर करने में यदि परिवार का सहयोग मिल जाता है तो वह अपने उत्तरदायित्वों को भली प्रकार निभा सकती है नही तो कामकाजी महिला को दोहरे दायित्व को निभाने में संघर्श करना पड़ता है। उसमें तनाव पैदा हो जाता है। और उसका प्रभाव उसकी कार्यक्षमता और पारिवारिक रिश्तों पर पड़ता है। कामकाजी महिलाएँ आज भी आर्थिक रूप से पुरूषों से मुक्त नहीं है क्योंकि जो महिलाएँ अपने परिवार की अर्थव्यवस्था में सहयोग करती है वे अपनी आय को अपनी इच्छानुसार व्यय करने के लिए स्वतंत्र नही है। महिला स्वयं अपनी कमाई पर भी कोई अधिकार नहीं रख पाती है, उसे अपने वेतन का पूरा हिसाब घर में देना पड़ता है। सामाजिक, नैतिक व मनौवैज्ञानिक आयामों में भी उसकी स्थिति पुरूषों के समान नहीं है। अपने कार्यो को प्रगति देने से पूर्व उसे परिवार से विचार करना आवश्यक हो जाता है। कार्यालय (कॉलेज, स्कूल या ऑफिस) के सामूहिक आयोजनों में वह बिना पति की अनुमति से शामिल नहीं होती। यदि कोई महिला शामिल हो जाए तो शक की नजर से देखा जाता है। कहने का तो हमारा समाज स्वतंत्रता की राह पर है किंतु विचारें का पिछड़ापन जहाँ का तहाँ बना हुआ है। विषेशकर महिला के संदर्भ में। कामकाजी महिलाएँ आर्थिक सहारा बनकर इस महँगाई के युग में परिवार को सबल बना रही है। अपने कार्ये के साथ-साथ घर और परिवार की भी देख-भाल करती है, फिर भी संघर्ष उत्पन्न होता है।

साहित्यिक समीक्षा

सिन्हा रनोड (1978) सिन्ध एवं साडे ने दिल्ली व बिहार की कामकाजी महिलाओं के सरकारी के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने पाया कि महिला कार्मचारियों के स्वास्थ्य, उनकी काम की स्थिति आर्थिक स्थिति के बारे में कोई अच्छा ध्यान नहीं दिया जाता है। उनके अनुसार महिला कर्मचारियों की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिणिक स्थिति अच्छी नहीं थी।

शोभा उपाध्यय, सौम्या पण्डित का अध्ययन मध्यमवर्ग की कामकाजी महिलाऐ की दोहरी भूमिका व्यवसायिक व सामाजिक भूमिका के अन्तसम्बंध पर केन्द्रित है। अध्ययन में पाया कि मध्य वर्ग की महिलाएँ अपने पारिवरिक जीवन को उँचा उठाने के लिए कार्य करती है तथा महिलाओं द्वारा विभिन्न प्रकार की भूमिकाओ के निर्वाह के फलस्वरूप उनके पारिवारिक जीवन में दबाव एवं तनाव में वृद्धि हुई है।

अध्ययन के उद्देश्य

- कामकाजी महिलाओं के पारिवारिक समस्याओं का पता लगाना
- कामकाजी महिलाओं के कार्यालय और घर की बीच सामंजस्य का पता लगाना
- कामकाजी महिलाओं में आर्थिक स्वतंत्रता का पता लगाना
- कामकाजी महिलाओं में घरेलू हिंसा का पता लगाना

उपकल्पना

- कामकाजी महिलाओं को घरेलू कार्यो में पुरूष सदस्यो का पारिवारिक सहयोग मिलता होगा
- कामकाजी महिलाओं में घरेलू हिंसा कम होती होगी
- कामकाजी महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता होती होगी
- कामकाजी महिलाओं कार्यलय और घर के बीच सामंजस्य करने में सक्षम होती होगी

अध्ययन विधि

प्रस्तुत अध्ययन में 50 महिला शिक्षकों का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन विधि के आधार पर किया गया है। इस अध्ययन में पटना जिला (बिहार) के विभिन्न शिक्षण संस्थानों में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं को लिया गया है। साक्षात्कार अनुसूची के आधार पर शिक्षिकाओं से शोध आधारित विभिन्न प्रश्नों का उत्तरों के आधार पर आकड़ों का सांख्यिकीय विषलेशण भी किया गया है।

परिणाम

प्राथमिक श्रोतों से प्राप्त किये गये आकड़ां को तालिकाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-1: *घरेलू कार्यो में पुरूष सदस्यों का सहयोग*

उत्तर	*उत्तरदाता*	*प्रतिशत*
हाँ	22	44
नहीं	13	26
कभी कभी	15	30
योग	50	100

तालिका संख्या (1) से ज्ञात होता है कि 44 प्रतिशत महिलाओं को घरेलू कार्यो में परिवार के पुरूष सदस्यों का सहयोग मिलता है। यह भी देखा गया है 26 प्रतिशत महिलाओं को बिल्कुल भी सहयोग नहीं मिलता जबकि 30 प्रतिशत ने कहा की कभी सहयोग करते है कभी नहीं करते है।

तालिका संख्या-2: *कामकाजी महिलाओं में घरेलू हिंसा*

उत्तर	*उत्तरदाता*	*प्रतिशत*
हाँ	30	60
नहीं	05	10
कभी कभी	15	30
योग	50	100

तालिका संख्या (2) के अनुसार 60 प्रतिषत महिलाओं शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक आदि विभन्न रूपों में प्रतिदिन घरेलू हिंसा का शिकार होती है। जबकि 10 प्रतिशत महिला ने कहा कि वे कभी घरेलू हिंसा की षिकार नहीं हुई। 30 प्रतिशत ने कहा कभी-कभी उन्हे घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

तालिका संख्या-3: *कामकाजी महिलाओं में आर्थिक स्वतंत्रता*

उत्तर	*उत्तरदाता*	*प्रतिशत*
हाँ	05	10
नहीं	35	70
कभी कभी	10	20
योग	50	100

तालिका संख्या (3) के अनुसार 10 प्रतिषत ही महिलाएँ है जिन्हे अपने द्वारा अर्जीत धन को खर्च करने, लेखा-जोखा करने की पूर्ण स्वंतत्रता होती है। 70 प्रतिशत महिलाएँ अपने द्वारा अर्जित धन को परिवार या पति के अनुमति के वगैर खर्च नहीं करती है। 20 प्रतिशत महिलाएँ कभी-कभी अपनी मर्जी से खर्च या निवेश करती है।

तालिका संख्या-4: *कामकाजी महिलाओं द्वारा परिवार के साथ सामंजस्य*

उत्तर	*उत्तरदाता*	*प्रतिशत*
हाँ	37	72
नहीं	08	16
कभी कभी	05	10
योग	50	100

तालिका संख्या (4) के अनुसार 72 प्रतिशत महिलाएँ परिवार के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम है लेकिन इन महिलाओं को घरेलू कार्यो में पुरूष सदस्यों का सहयोग भी मिला है। अतः कहा जा सकता है, कि पुरूषों द्वारा घरेलू कार्यों में सहयोग से महिला को परिवार के साथ सामंजस्य करने में आसानी होती है। 16 प्रतिशत महिलाएँ परिवारिक सामंजस्य में कठिनाई होती है। 10 प्रतिशत महिलाएँ कभी सामंजस्य करती है कभी नहीं करती है, और तनाव एवं संघर्ष में जीवन चलता है।

परिचर्चा

वर्त्तमान समय में महिलाएँ शिक्षा के बल पर घर की चार दीवारी से मुक्त होकर, स्वतंत्र हो चुकी है। आज महिलाएँ उचित कदम उठाकर अपनी रक्षा करने में समर्थ है, वह पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में समर्थ है। आज महिलाएँ सिर्फ शिक्षा सेवा क्षेत्र में ही नहीं बल्कि डॉक्टर, अभियन्ता, अधिवक्ता, समाजसेविका, सेना, विमान चालक, संगीतज्ञ विभन्न सेवा क्षेत्रों में कार्यरत है। महिलाएँ इन सभी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य करते हुए घर की जिम्मेदारियाँ भी संभाल रही है। फिर भी समाज और परिवार का पूर्ण सहयोग नहीं मिलने से कामकाजी महिलाओं का जीवन संर्घषमय बन जाता है। स्वयं अर्जित धन पर भी निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं होती है। उनका अपना खुद का निवेश नहीं होता है, यदि उनके नाम निवेश है तो उनको पता नहीं होता या पुरूष सदस्य निवेश के बाद सतही तैर पर सूचना मात्र दे देते है। यानि उनके सलाह की आवश्यकता नहीं समझी जाती है। कामकाजी महिला की स्थिति दो पाटों के बीच की हो जाती है, जो उसे कार्यालय एवं घर की जिम्मेवारियों में पीसती रहती है।

अध्ययन में पाया गया कि जिन कामकाजी महिलाओं को परिवार के पुरूष सदस्यों का घरेलू कार्यो में सहयोग मिलता है, वे अधिक कुशलता से कार्य कर पाती है, परिवार के साथ बेहतर सामंजस्य स्थापित कर पाती है, तनाव भी कम होता है।

अध्ययन में महिला घरेलू हिंसा में कोई खास कभी नहीं पाई गई 60 प्रतिशत महिला प्रतिदिन किसी न किसी रूप में शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक हिंसा के शिकार होती है। आज भी पुरूष रूढ़िवादी सोच से निकल नहीं पाए है। भारत में 46 प्रतिशत महिला सिर्फ दहेज प्रथा के कारण घरेलू हिंसा का शिकार होती है। पारिवारिक प्रतिष्ठा को देखते हुए अधिकांश मामले दर्ज नहीं हो पाते। महिलाओं को अपने अधिकार के प्रति सचेत रहने की आवश्कता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में पाया गया कि कामकाजी महिलाओं के कार्य के उत्तरदायित्वों और उनमें सामंजस्य स्थापित करने में बड़ी समस्या होती है। महिलाओं को घर और कार्यालय की दोहरी जिम्मेदारियों का निर्वहन करना पड़ता है। भारतीय समाज पुरूष प्रधान है। लेकिन वर्त्तमान समय में घर की महिलाओं के नौकरी करने पर गर्व महसूस करते है। प्रत्येक परिवार चाहता है महिला नौकरी करे, परिवार की आय एवं प्रतिष्ठा बढ़ाये लेकिन उसके साथ की गृहणी की भूमिका भी शत-प्रतिशत निभाये। साथ ही अध्ययन में यह तथ्य सामने आये। कि वर्त्तमान समय में घरेलू कार्यो में पुरूष भी महिलाओं के साथ बराबरी में हाँथ बटाँ रहे है। वर्त्तमान समय में महिलाएँ भी अपने द्वारा स्वअर्जित धन संबंधी निर्णय ले रही है। उनका निवेश कहाँ करना है, बैंक संबंधी कार्य भी खुद

कर रही है। घरेलू हिंसा पर खुद अपना बचाव कर रही है। संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि समाज और परिवार में महिलाओं के स्थान पुरूषों के समान ही महत्वपूर्ण है। अतः प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं उपस्थिति को नकारा नहीं जा सकता।

सुझाव

कामकाजी महिलाएँ अर्थोपार्जन कर परिवार में सहयोग करती है, आर्थिक स्थिति मजबूत करती है, अपने परिवार को समाज में प्रतिष्ठा प्रदान करती है। अतः महिला के कार्य के महत्व को समझना चाहिए। पुरूष सदस्य को घरेलू कार्यो में सहयोग करना चाहिए। परिवार का सहयोग मिलने से वह सामंजस्य सही ढंग से कर पाती है। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रख पाती है तथा कई बीमारीयों से बच जाती है। वह अपने कार्यक्षेत्र में भी एकाग्रचित होकर सेवा दे पाती है। कामकाजी महिला को भी घर के कार्यो को बोझ नहीं समझना चाहिए। घरेलू कार्यो में पुरूश सदस्य तथा परिवार का सहयोग लेना चाहिए। महिलाओं को अपने कर्तव्यों के साथ-साथ अधिकारों के प्रति जागरूक होना चाहिए। कामकाजी महिलाओं को अपने अर्जित धन संबंधी जानकारी रखनी चाहिए, बैंक खाते, एटीएम, नेट बैंकिंग आदि सेवा उपयोग स्वयं करना चाहिए, अपना निवेश एवं टैक्स खुद भरना चाहिए।

संदर्भ सूची

- योजनाः 7 जून, 2019 आर्थिक आजादी पाने में मदद करना
- सिंह वी एन 2010 ''आधुनिकता एवं महिला सशक्तिकरण'' रावत पब्लिकेशन जयपुर
- डॉ प्रमिला कपूर, कामकाजी भरतीय नारी, राजपाल एडं संस दिल्ली
- वर्मा अंजली '2009' भारत में कार्यशील महिलाएँ, ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली
- डॉ० रिना कुमारी '2014' भारत में कामकाजी महिलाएँ एवं घरेलू हिंसा मानविकी एवं समाज विज्ञान की शोध पत्रिका
- डॉ० मोधा पाठक '2012' स्त्री शिक्षा, पृष्ठ संख्या 140, अगवाल पब्लिकेशन, आगरा

दक्षिण और उत्तर बिहार की प्रादेशिक विषमताएँ: तुलनात्मक और भौगोलिक विश्लेषण

डॉ० राघवेन्द्र प्रसाद सिन्हा

एम०ए०, पी-एच०डी० (भूगोल), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

शोध आलेख का सार तत्व

भारत में व्यापक भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विविधताएँ हैं। वस्तुतः भारत की विशेषता ही है कि यहाँ पर भाषा, संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान तथा भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में भी विविधता दिखती है। भारत के राज्य प्रादेशिक विविधता के लिए जाने जाते हैं। बड़े राज्यों की भौगोलिक एवं प्रादेशिक स्वरूप में भी एकरूपता का आभाव दिखता है। अविभाजित बिहार, जिसमें कभी झारखंड भी होता था, वह न केवल भौगोलिक बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में भी अलग स्वरूप का था। वर्तमान बिहार नवम्बर 2000 में सामने आया है तथा झारखंड, जो दक्षिण बिहार था, अब पृथक् एवं स्वायत्त राज्य के रूप में अपना विशेष अस्तित्व रखता है। वर्तमान बिहार को भी दक्षिण तथा उत्तर बिहार के रूप में विभाजित करके पारदेशिक विविधताओं और विशमताओं को समझा जा सकता है। वास्तविकता तो यह है कि दक्षिण तथा उत्तर बिहार के बीच न केवल प्रादेशिक विविधताएँ हैं, बल्कि भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विविधताएँ और विशमताएँ मौजूद है। उत्तर बिहार को लोग गंगा पार कहते है, जहाँ मैथिल संस्कृति का विशेष महत्व है। उत्तर बिहार में भोजपुरी संस्कृति का भी प्रभाव दिखता है। एक तरफ मैथिल और भोजपुरी संस्कृति में समन्वय भी दिखता है। सीतामढ़ी, समस्तीपुर तथा मुजफ्फरपुर तक मैथिल संस्कृति का आंशिक प्रभाव दिखता है। वहीं दूसरी ओर, भोजपुरी संस्कृति का भी प्रभाव दिखता है। दक्षिण बिहार में मगह संस्कृति का प्रभाव दिखता है। भाषा, रहन-सहन, कृषि तथा अन्य जीवन की पद्धतियों में भी दक्षिण बिहार तथा उत्तर बिहार के बीच प्रादेशिक विशमताएँ स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होती है। बिहार की राजधानी पटना में उत्तर बिहार तथा दक्षिण बिहार के लोग एक साथ रह रहे हैं। इसलिए यहाँ मिश्रित संस्कृति दृष्टिगोचर हो रही है, वहीं दूसरी ओर, दक्षिण बिहार तथा उत्तर बिहार की प्रादेशिक विषमताएँ भी उत्तरोतर रूप में कम हो रही है।

मूल शब्द

समचतुर्भुजाकार, सांस्कृतिक क्रियाकलाप, स्थलाकृतियाँ, लिंगानुपात, नगरीकरण, अधिवास, ग्रामीण संस्कृति, भौतिक सुविधाएँ, जलवायु परिवर्तन।

प्रस्तावना

आदिकाल से ही मैदानी प्रदेश मानव सभ्यता के विकास का केन्द्र स्थल रहा है। ज्यामितीय आकार की दृष्टि से लगभग समचतुर्भुजाकार का बिहार राज्य की भौगोलिक स्थिति उत्तर भारत में मध्यवर्त्ती गंगा के मैदानी क्षेत्र का उत्तर-पूर्वी भाग है जो "भारत का हृदयस्थल" कहलाता है। यह अपनी भौतिक विशेषताओं, सांस्कृतिक विरासत, जन-संकुलन तथा विभिन्न प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक विशिष्टता के कारण अपनी अलग पहचान रखता है। यह ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का प्रमुख क्षेत्र है जहाँ पूर्व ऐतिहासिक काल से लेकर वर्त्तमान काल तक निरंतर मानव बसाव के केंद्र होने के प्रमाण मिलते हैं। उल्लेखनीय है कि

नील नदी के बाद गंगा का मध्यवर्ती मैदानी प्रदेश विश्व का दूसरा सर्वाधिक उपजाऊ मिट्टी वाला प्रदेश है क्योंकि गंगा एवं इसकी सहायक नदियाँ यहाँ 'खादर' जैसी उपजाऊ मिटी का निर्माण कर इसे कृषि प्रधान प्रदेश बनाती है। यही कारण है कि यह प्रदेश जीवन-निर्वाह कृषि एवं सघन अधिवास के लिए आदर्श होने के कारण कालांतर में जनाधिक्य प्रदेश के रूप में विकसित हो गया। बिहार राज्य के मध्य से हो कर उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर झुकाव युक्त प्रवाहित होने वाली गंगा नदी इस राज्य को स्पष्टत: दो भागों में विभाजित करती है - उत्तर बिहार एवं दक्षिण बिहार।

दक्षिण और उत्तर बिहार में अनेक प्रादेशिक विषमताएँ देखने को मिलती हैं क्योंकि उत्तर बिहार नदियों के विशिष्ट लक्षणों से प्रभावित है जबकि दक्षिण बिहार छोटा नागपुर के पठार का प्रक्षेपित पहाड़ी भागों द्वारा उच्चावचयुक्त स्थलाकृतियों से प्रभावित एवं नियंत्रित है। इस प्रकार यहाँ जनसंख्या आकार, जनसंख्या वृद्धि दर, जनसंख्या घनत्व, लिंगानुपात, साक्षरता दर, प्रति व्यक्ति आय, गरीबी अनुपात, नगरीकरण स्तर एवं स्वास्थ्य संबंधी संकेतकों में काफी अधिक प्रादेशिक विषमताएँ पाई जाती हैं जैसा कि निम्न तालिकाओं से स्पष्ट होता है:-

तालिका - 1

क्रम सं॰	*भौगोलिक इकाई*	*जिलों की संख्या*	*जिलों के नाम*
1	उत्तर बिहार	21	सारण, सीवान, गोपालगंज, प॰ चंपारण, पू॰ चंपारण, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, शिवहर, वैशाली, दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, बेगूसराय, खगड़िया, सहरसा, सुपौल, मधेपुरा, पूर्णिया, किशनगंज, अररिया, कटिहार।
2	दक्षिण बिहार	17	पटना, नालंदा, भोजपुर, बक्सर, रोहतास, कैमूर, गया, जहानाबाद, अरवल, नवादा, औरंगाबाद, मूँगेर, शेखपुरा, लखीसराय, जमुई, भागलपुर, बाँका।

तालिका - 2

क्रम सं॰	*प्रादेशिक विषमताओं के संकेतक*	*उत्तर बिहार*	*दक्षिण बिहार*	*समग्र बिहार*
1	भौगोलिक क्षेत्रफल (वर्ग कि॰मी॰)	52925.44	41234.68	94160.12
2	जनसंख्या, 2011 (लाख में)	654.0	384.0	1038.0
3	जनसंख्या वृद्धि दर, 2001-2011 (प्रतिशत)	26.1	23.1	25.1
4	जनसंख्या घनत्व, 2011 (प्रति वर्ग कि॰मी॰)	1235	931	1102
5	लिंगानुपात, 2011 (प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियाँ)	919	910	916
6	स्त्री साक्षरता दर, 2011 (प्रतिशत)	49.80	57.40	53.33
7	पुरूष साक्षरता दर, 2011 (प्रतिशत)	69.68	78.09	73.39
8	कुल साक्षरता दर, 2011 (प्रतिशत)	60.16	68.23	63.82
9	शुद्ध जिला घरेलू उत्पाद, 2007-08 (करोड़ रू॰)	40630.1	48870.0	89500.1
10	गरीबी का प्रतिशत, 2011	60.1	52.75	56.76
11	नगरीकरण का प्रतिशत, 2011	7.5	14.3	11.3
12	शिशु मृत्यु दर, 2010 (प्रति हजार सजीव जन्म पर)	58	52	55
13	प्रति स्वास्थ्य केन्द्र पर जनसंख्या भार, 2011	10280	9246	9628

स्रोत: *आर्थिक सर्वेक्षण 2011-12, बिहार सरकार; जनगणना प्रतिवेदन, 2011*

उत्तर बिहार का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 52925.44 वर्ग कि॰मी॰ है जो राज्य का लगभग 56.20 प्रतिशत भू-भाग है जबकि दक्षिण बिहार का भौगोलिक क्षेत्रफल लगभग 41234.68 वर्ग कि॰मी॰ है जो राज्य का लगभग 43.80 प्रतिशत भू-भाग है। जनगणना 2011 के अनुसार उत्तर बिहार की जनसंख्या लगभग 654.0 लाख है जो राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग 63 प्रतिशत भाग है

तो वहीं दूसरी ओर दक्षिण बिहार में लगभग 384.0 लाख जनसंख्या निवास करती है जो राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग 37 प्रतिशत भाग है। 2001-2011 के दौरान उत्तर बिहार की जनसंख्या वृद्धि दर 26.1 प्रतिशत है जबकि दक्षिण बिहार की जनसंख्या वृद्धि दर 23.1 प्रतिशत है।

जनसंख्या घनत्व किसी प्रदेश में मानव अधिवास के संकेन्द्रन को प्रदर्शित करता है जहाँ उत्तर बिहार के 21 जिलों में से 12 जिलों में 1000 से अधिक तथा 5 जिलों में 1500 से अधिक व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० निवास करते हैं तो वहीं दूसरी ओर दक्षिण बिहार के 17 जिलों में से मात्र 6 जिलों में जनसंख्या घनत्व 1000 से अधिक व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० है तथा एकमात्र पटना जिला में 1800 से अधिक व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० निवास करते हैं। इस प्रकार राज्य के औसत 1102 व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० की तुलना में उत्तर बिहार में यह घनत्व 1235 व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० जबकि दक्षिण बिहार में 931 व्यक्ति प्रति वर्ग कि०मी० निवास करते हैं।

लिंगानुपात के संदर्भ में एकमात्र गोपालगंज जिला 1015 स्त्रियाँ प्रति हजार पुरूषों पर दर्ज है। 950-1000 तक लिंगानुपात वाला जिला उत्तर बिहार में एक तथा दक्षिण बिहार में कोई नहीं है। 900-950 तक लिंगानुपात वाले जिलों की संख्या उत्तर बिहार में 13 तथा दक्षिण बिहार में 14 है। 900 से कम लिंगानुपात वाले जिलों की संख्या उत्तर बिहार में 6 तथा दक्षिण बिहार में 3 है। इस प्रकार से उत्तर बिहार में लिंगानुपात 919 तथा दक्षिण बिहार में 910 जबकि समग्र बिहार में 916 स्त्रियाँ प्रति हजार पुरुष हैं।

स्त्री साक्षरता दर में उत्तर बिहार के 21 जिलों में से मात्र 7 जिले राज्य औसत 53.33 प्रतिशत से अधिक है जबकि दक्षिण बिहार के 17 जिलों में से मात्र 3 जिलों में यह आँकड़ा राज्य औसत से कम है। इस तरह से उत्तर बिहार में स्त्री साक्षरता दर 49.80 प्रतिशत तथा दक्षिण बिहार में यह दर 57.40 प्रतिशत है। वहीं दूसरी ओर पुरुष साक्षरता दर में भी उत्तर बिहार के 21 जिलों में से मात्र 6 जिले राज्य औसत 73.39 प्रतिशत से अधिक है जबकि दक्षिण बिहार के 17 जिलों में से मात्र 3 जिलों मे यह आँकड़ा राज्य औसत से कम है। इस तरह से उत्तर बिहार में पुरूष साक्षरता दर 69.68 तथा दक्षिण बिहार में यह दर 78.09 प्रतिशत है। संभवत: यही कारण है कि कुल साक्षरता दर में उत्तर बिहार के 21 जिलों में से मात्र 7 जिले राज्य औसत 63.82 तक पहुँच सके हैं जबकि दक्षिण बिहार के 17 जिलों में से 3 जिले राज्य औसत से पीछे हैं क्योंकि कुल साक्षरता दर उत्तर बिहार में 60.16 प्रतिशत तथा दक्षिण बिहार में 68.23 प्रतिशत है।

प्रादेशिक आर्थिक विकास की गणना के लिए कुल जिला घरेलू उत्पाद की तुलना में शुद्ध जिला घरेलू उत्पाद को अधिक उत्तम आधार माना जाता है क्योंकि कुल जिला घरेलू उत्पाद में से पूँजीगत वस्तुओं की घिसावट अथवा मूल्य ह्रास को घटा कर शुद्ध जिला घरेलू उत्पाद निकाला जाता है। इस संदर्भ में राज्य की अर्थव्यवस्था में उत्तर बिहार का शुद्ध जिला घरेलू उत्पाद में योगदान लगभग 40630.1 करोड़ रु० है जबकि दक्षिण बिहार का योगदान लगभग 48870.0 करोड़ रु० है। दूसरी ओर वर्ष 2004-2005 में गठित सुरेश तेंदुलकर कमिटी जिन्होंने लोगों द्वारा भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, विद्युत, वस्त्र तथा पैर के पहनावे पर किए जाने वाले खर्च को आधार मानकर उपभोग आधारित मूल्य सूचकांक के द्वारा निर्धनता की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या का आँकलन किया है, के अनुसार उत्तर बिहार में इसकी संख्या 60.01 प्रतिशत तथा दक्षिण बिहार में 52.75 प्रतिशत है जबकि समग्र बिहार में यह आँकड़ा 56.76 प्रतिशत अनुमानित है।

किसी भी प्रदेश में किए जाने वाले आर्थिक क्रिया कलापों की पहचान उस प्रदेश के नगरीकरण के स्तर से लगाया जाता है और यही कारण है कि बिहार एक कृषि प्रधान प्रदेश होने के कारण यहाँ मात्र 11.3 प्रतिशत नगरीकरण पाया जाता है तथापि उत्तर बिहार में यह केवल 7.5 प्रतिशत जबकि दक्षिण बिहार में यह 14.3 प्रतिशत तक है जो यहाँ के प्रादेशिक विषमता को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त राज्य औसत से अधिक नगरीकरण का प्रतिशत उत्तर बिहार के 21 जिलों में से एकमात्र बेगूसराय में देखने को मिलता है जबकि दक्षिण बिहार के 17 जिलों में से 10 जिलों में इसका प्रतिशत राज्य औसत से अधिक है।

स्वास्थ्य संबंधित संकेतकों में शिशु मृत्यु दर को प्रमुख आधार माना जाता है जिसमें किसी एक वर्ष के दौरान सजीव जन्मों की कुल संख्या के प्रति हजार पर उसी वर्ष के दौरान एक वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं की मृत्युओं की संख्या ज्ञात की जाती है। इस संदर्भ में उत्तर बिहार का औसत 58 प्रति हजार तथा दक्षिण बिहार का औसत 52 प्रति हजार है जबकि समग्र बिहार का औसत 55 प्रति हजार है। स्वास्थ्य सेवाओं के अंतर्गत प्रति स्वास्थ्य केन्द्रों पर जनसंख्या भार की दृष्टि से उत्तर बिहार में प्रति स्वास्थ्य केन्द्र पर 10280 व्यक्ति निर्भर हैं जबकि दक्षिण बिहार में इसकी संख्या 9246 व्यक्ति ही है इस प्रकार लगभग 1034 व्यक्तियों की विषमता प्रति स्वास्थ्य केन्द्रों पर देखा जा सकता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य दक्षिण बिहार तथा उत्तर बिहार के बीच के प्रादेशिक विषमताओं को स्पष्ट करना है। इस आलेख में बिहार की राजनीतिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक एवं अन्य पक्षों को भी संक्षिप्त रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, जिसे भी उद्देश्य के रूप में देखा जा सकता है।

परिकल्पना

दक्षिण तथा उत्तर बिहार की प्रादेशिक विषमताएँ स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर हो रही है। हालांकि यातायात साधनों के विकास तथा गंगा नदी पर कई पुलों के निर्माण के कारण प्रादेशिक विषमताएँ उत्तरोतर रूप में कम हो रही है। दक्षिण बिहार तथा उत्तर बिहार के लोग विज्ञान तथा तकनीक के विकास से भी परस्पर एक-दूसरे से जुड़ रहे हैं। अब इन दोनों क्षेत्रों के लोगों के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध भी स्थापित हो रहा है। आने वाले दिनों में यातायात के साधनों के विकास से दोनों क्षेत्रों के लोग एक-दूसरे के समीप आएंगे तथा प्रादेशिक विषमताएँ लगभग विलुप्त हो जाएंगी। इसी बात की प्रमुख रूप में परिकल्पना की जा सकती है।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत आलेख की तैयारी में कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का अवलोकन व सर्वेक्षण किया गया है। यहाँ साहित्य सर्वेक्षण में निम्नलिखित ग्रंथ का नाम दिया जा सकता है:

1. ए.जे.एम. हूसन : द डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ पोपुलेशन एज द एसेन्सियल ज्योग्रफीकल एक्सप्रेशन, कानाडियन ज्योग्रफर-17, वर्ष 1960
2. जी.एस. गोल : इन्टरनल माइग्रेशन इन इंडिया- एक रीजनल एनालिसीस, इण्डियन ज्योग्रफीकल जर्नल, 36, वर्ष 1961
3. जे.बी. गार्नियर : ज्योग्रफी ऑफ पोपुलेशन, लौंगमैन, लन्दन, 45(2), वर्ष 1978
4. डब्ल्यू.ई. हंटर : ए स्टैटिकल एकाउन्ट ऑफ बंगाल, वॉल्यूम-CIV, नम्बर एंड कम्पनी, लंदन, 1877
5. डॉ. चतुर्भुज मामोरिया एण्ड एच.एस. गर्ग, भूगोल, राजीव बंशल, साहित्य भवन, पी. एण्ड डी., आगरा।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख के लेखन में ऐतिहासिक, वस्तु-विश्लेषणात्मक तथा भौगोलिक विश्लेषण की पद्धति को अपनाया गया है। शोध प्रविधि के रूप में तुलनात्मक पद्धति की भी चर्चा आंशिक रूप में की गई है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त दोनों भौगोलिक ईकाइयों उत्तर बिहार एवं दक्षिण बिहार में काफी अधिक प्रादेशिक विषमताएँ देखने को मिलती है। लिंगानुपात को छोड़कर शेष सभी संकेतकों में दक्षिण बिहार अग्रिम पंक्ति में खड़ा दिखाई देता है क्योंकि यहाँ अपेक्षाकृत कम जनसंख्या, आर्थिक विकास तथा भौगोलिक स्थिति इसके विकास में सहायक हैं तो वहीं दूसरी ओर उत्तर बिहार अत्यधिक जनसंख्या, प्राकृतिक आपदा (बाढ़ एवं सूखा) तथा आधारभूत संरचनाओं का अभाव इसके विकास को अवरूद्ध करते हैं। अत: बिहार के सर्वांगिक विकास हेतु नीति-निर्माताओं से उत्तर बिहार के लिए विशेष योजनाएँ अपेक्षित हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बिहार का भौगोलिक स्वरूप - बी॰ पी॰ राव एवं आर॰ बी॰ पी॰ सिंह
2. मोनोग्राफ ऑफ बिहार: ए ज्योग्राफिकल स्टडी - आर॰ पी॰ सिंह एवं अनिल कुमार
3. बिहार का भूगोल - अनिल कुमार
4. जनसंख्या भूगोल - आर॰ सी॰ चान्दना
5. जनगणना, 2011, भारत सरकार
6. आर्थिक सर्वेक्षण, 2011-12, बिहार सरकार

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण एवं उनकी कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन

अजय कुमार यादव

शोधार्थी, शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी०जी० कॉलेज, जौनपुर (उ०प्र०)

डॉ० आशाराम

एसो० प्रोफेसर, सेवानिवृत्त, शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी०जी० कॉलेज, जौनपुर (उ०प्र०)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया एवं शोधार्थी द्वारा शून्य परिकल्पना "स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जायेगा।" का निर्माण किया गया है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध 10 वित्तपोषित महाविद्यालयों से कुल 100 शिक्षकों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा मुद्गील, मुबार व भाटिया, 2012 द्वारा निर्मित शिक्षक कार्य संतुष्टि मापनी एवं सामाजिक पृथक्करण के मापन के लिए स्वनिर्मित मापनी का प्रयोग किया गया है। सामाजिक पृथक्करण के अन्तर्गत शिक्षकों में अलगाव की भावना, सामर्थ्यहीनता की भावना, अर्थहीनता की भावना, अस्तित्वहीनता की भावना, संवेगात्मक विचलन व सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना का मापन किया गया आँकड़ों का विश्लेषण के लिए पियरसन सहसम्बन्ध गुणांक (आघूर्ण विधि) की गणना की गई। प्रस्तुत अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया गया है स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि निम्न स्तरीय पायी गई है जबकि सामाजिक पृथक्करण उच्च स्तरीय पाया गया है अत: कहा जा सकता है कि जिन शिक्षकों की सामाजिक पृथक्करण अथवा अलगाव की भावना उच्च स्तरीय पायी जाती है उन शिक्षकों में निम्न स्तरीय कार्य संतुष्टि पाया जाता है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में कार्य संतुष्टि एवं सामाजिक पृथक्करण के मध्य नकारात्मक व सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया।

1.1 प्रस्तावना

शिक्षक शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है। एक आदर्श शिक्षक अपने अपूर्व उत्साह एवं ऊर्जा द्वारा शैक्षिक संस्थाओं को गति प्रदान करता है जिसमें उसका अपना निजी स्वार्थ नहीं होता बल्कि वह राष्ट्र के लिये अच्छे नागरिक तैयार करने में प्रयत्नशील रहता है शिक्षक के बिना आधुनिक युग की सुविधाओं से सुसज्जित संस्थायें उस शरीर के समान हैं जिसमें से आत्मा निकल जाती है और मृत शरीर पड़ा रहता है जिससे कुछ कार्य नहीं किया जा सकता। अध्यापक समाज की रीढ़ के समान है जिसके बिना बालक सीधा तो खड़ा रह सकता है परन्तु समाज में पूर्ण प्रतिष्ठित नहीं हो सकता है क्योंकि कोरी प्लेट रूपी बालक के ऊपर स्वच्छ अक्षरों में सुस्पष्ट लेखन कार्य एक योग्य अध्यापक ही कर सकता है।

डॉ० राधाकृष्णन (1948) ने लिखा है कि "समाज में अध्यापक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्परायें और तकनीकी कौशल पहुँचाने का केन्द्र है और सभ्यता के प्रकाश को प्रज्जवलित रखने में सहायता देता है।"

कोठारी आयोग (1964) ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि "हम चाहे कितनी भी अच्छी योजनाएँ नीतियाँ क्यों न बना लें, उसकी सफलता व असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि शिक्षक उसे कितने उत्साह से शिक्षा में क्रियान्वित करते हैं।" अच्छी एवम् गुणवत्ता युक्त उच्च स्तरीय माध्यमिक शिक्षा का आयोजन करने हेतु हमें कुशल, समायोजित, सक्षम, ज्ञानवान तथा प्रसिद्ध माध्यमिक विद्यालयी शिक्षकों की आवश्यकता है जो छात्रों को अपने विषय में पारंगत होने तथा उच्च स्तरीय ज्ञान प्राप्त करने हेतु प्रेरित कर सकें। स्पष्ट कहा जा सकता है कि माध्यमिक योजना की सफलता ऐसे माध्यमिक विद्यालयी शिक्षकों पर निर्भर है जिनकी शिक्षण में अभिरूचि हो, शिक्षण प्रभावी हो तथा छात्रों के साथ उचित अन्त:क्रिया स्थापित करने में सक्षम हों।

शिक्षक की प्रभावशीलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह (शिक्षक) अपने शिक्षण व्यवसाय में किस सीमा तक संतुष्ट है क्योंकि एक संतुष्ट शिक्षक ही अपने विद्यार्थियों व समाज के प्रति न्याय कर सकता है कोई भी शिक्षा संस्था अपने उद्देष्यों को तभी प्राप्त कर सकती है जब वहाँ पर चरित्रवान, निष्ठावान, समर्पित और संतुष्ट शिक्षक कार्यरत हों, संतुष्ट शिक्षक से अभिप्राय ऐसे शिक्षकों से है जो अपनी योग्यताओं के आधाार पर शिक्षण व्यवसाय से सम्बन्धित परिस्थितियों व सुविधाओं को प्राप्त करने के कारण शिक्षण कार्य में संतुष्टि/आनन्द का अनुभव करते हैं। यह सामान्यत: विश्वास किया जाता है कि कार्य से संतुष्ट व्यक्ति अधिक उन्नतिशील होता है और अपने कार्य में निरन्तर प्रगति करता है। मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को माना व इसकी खोज की है कि जो व्यक्ति अपने कार्य से प्रसन्न एवं संतुष्ट होता है। वह एक बड़ा उत्पादनकर्ता होता है। शिक्षक के कृत्य संतोष से अनेक कारक सम्बन्धित होते हैं।

सामाजिक पृथक्करण की भावना शिक्षकों में एक मानसिक तनाव के रूप में प्रदर्शित होती है जिसमें वह स्वयं को एक पृथक नागरिक की तरह देखता है एवं सामाजिक पृथक्करण में संवेगात्मकता अस्थिरिता, सम्प्रेषण अलगाव की भावना एवं स्वयं को सामर्थ्यहीन समझना आदि नकारात्मक प्रवृत्ति पर परिलक्षित होती है। यदि अध्यापक में उपरोक्त नकारात्मक प्रवृत्ति जन्म ले लेती है तब कहीं न कहीं शिक्षण की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। अत: शिक्षकों स्वस्थ्य मन एवं कार्य संतुष्टि के साथ शिक्षण कार्य करना चाहिए। जिससे शिक्षकों के मध्य अलगाव की भावना विकसित न हो सके एवं शैक्षिक उद्देष्यों समयवद् प्राप्त किया जा सके। सामाजिक पृथक्करण व कार्य संतुष्टि पर पूर्व में कई शोध अध्ययन पाये गये जिनमें से मुख्य शोध अध्ययन को कोटिवद् किया गया है।

सेन (2015) ने शिक्षकों में अक्रियाशील व्यवहार व विद्यार्थियों में अभिप्रेरण के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन किया। अध्ययन में निष्कर्ष रूप में दर्शाया गया है कि शिक्षकों में अक्रियाशील व्यवहार व विद्यार्थियों में अभिप्रेरण के मध्य नकारात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है। साथ ही साथ यह भी देखा गया कि शिक्षकों की संवेगात्मक अक्रियाशीलता उनके व्यवसायिकों कार्यों पर नकारात्मक प्रभाव डालती है।

कौर (2017) ने छात्राध्यापकों की मूल्यों व अलगाव की भावना का अध्ययन किया। अध्ययन के निष्कर्ष में दर्शाया गया है कि आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक सौन्दर्यात्मक व धार्मिक मूल्यों का छात्राध्यापकों के अलगाव की भावना के साथ सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। जबकि अलगाव के संदर्भ में महिला-पुरुष छात्राध्यापकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

सूर्यान्तो (2018) ने अंग्रेजी विषय के शिक्षण व अधिगम प्रक्रिया में अलगाव (अलग-थलग) की भावना का अध्ययन किया। अध्ययन में निष्कर्ष रूप में दर्शाया गया है कि जिन विद्यार्थियों में अलगाव की भावना प्रबल पायी गयी। उन विद्यार्थियों में शान्त रहना, पीछे बैठना, अक्रियाशील, अकेले रहना व किसी भी विद्यार्थी से बात न करना जैसे गुण देखे गये। इन विद्यार्थियों के मध्य अंग्रेजी विषय में अधिगम निम्नस्तरीय पाया गया। जबकि अध्यापकों द्वारा शिक्षण के अतिरिक्त इन विद्यार्थियों को अतिरिक्त पुर्नबलन दिया गया।

चहल (2019) ने व्यावसायिक संतुष्टि व आत्म-सम्प्रत्यय के संदर्भ में विद्यालयी शिक्षकों में अलगाव की भावना का अध्ययन किया। निष्कर्ष के रूप में दर्शाया गया है कि निम्न व्यावसायिक संतुष्टि वाले अध्यापकों में अधिक अलगाव व्यवहार जबकि उच्च व्यावसायिक संतुष्टि वाले अध्यापकों में निम्न अलगाव व्यवहार पाया गया इसी प्रकार उच्च आत्म-सम्प्रत्यय का अलगावों की अभावनाओं के साथ नकारात्मक सम्बन्ध पाया गया।

शोधार्थी द्वारा शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण एवं कार्य संतुष्टि पर आधारित पूर्व में हुए शोध अध्ययनों का गहन विश्लेषण किया गया जिसमें विश्लेषण से यह विदित होता है कि पूर्व में हुए शोध अध्ययन अधिकांशः विद्यालयी स्तर के शिक्षकों पर आधारित पाये गये जबकि महाविद्यालय स्तर के शिक्षकों में सामाजिक पृथक्करण एवं कार्य संतुष्टि पर बहुत कम शोध अध्ययन पाये गये है जबकि उच्च शिक्षा में शिक्षकों की कार्य संतुष्टि शैक्षिक तंत्र के लिए एक प्रकाश भाँति है एवं सामाजिक पृथक्करण शिक्षकों में एक नकारात्मक मनोवृत्ति उत्पन्न करता है। जिससे शिक्षण प्रभावशीलता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः शोध की महत्ता को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन को शोध विषय के रूप में चयनित किया गया है।

1.2 अध्ययन के उद्‌देश्य

1. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सामर्थ्यहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।
3. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अस्तित्वहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।
4. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (संवेगात्मक विचलन) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।
5. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।

1.3 अध्ययन की परिकल्पना

1. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जायेगा।
2. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सामर्थ्यहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जायेगा।
3. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अस्तित्वहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जायेगा।
4. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (संवेगात्मक विचलन) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जायेगा।
5. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया जायेगा।

1.4 न्यादर्श प्रारूप

प्रस्तुत शोध अध्ययन में वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध 10 स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों से कुल 100 शिक्षकों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि की सहायता से किया गया है। प्रत्येक महाविद्यालय से 10-10 शिक्षकों का चयन किया गया है।

1.5 अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण के मापन हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली एवं शिक्षकों की कार्य संतुष्टि के मापन हेतु शिक्षक कार्य संतुष्टि मापनी (यदुवीरेन्द्र मुद्‌गील, आई.एस. मुबार व प्रभा भाटिया, 2012 द्वारा निर्मित) का प्रयोग किया गया।

1.6 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा अध्ययन चरों के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करने के लिए पीयरसन सहसम्बन्ध (आघूर्ण विधि) का अनुसरण किया गया है।

1.7 अध्ययन की उपलब्धियाँ

1. ***स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।***

प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण की विमा अलगाव की भावना एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करने के लिए पीयरसन सहसम्बन्ध गुणांक (आघूर्ण विधि) का अनुसरण किया गया है एवं प्राप्त सांख्यिकीय मानों को निम्नलिखित तालिका सं. 01 में दर्शाया गया है।

तालिका सं. 01: स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक की गणना

अध्ययन चर	*शिक्षकों की संख्या*	*सहसम्बन्ध गुणांक*	*सार्थक स्तर*	*मुक्तांश*
सामाजिक पृथक्करण (अलगाव की भावना) कार्य संतुष्टि	100	–0.217	0.05 स्तर पर सार्थक	98

उपरोक्त तालिका सं. 01 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान –0.217 पाया गया है। जोकि 0.05 विश्वसनीय स्तर एवं 98 मुक्तांश सार्थक मान है। शिक्षकों में सामाजिक पृथक्करण (अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य प्रबल नकारात्मक सहसम्बन्ध यह दर्शाता है कि जिन शिक्षकों में अलगाव की भावना प्रबल पायी जाती है उनमें कार्य संतुष्टि निम्नस्तरीय होती है। अत: उपरोक्त उद्देश्य से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना को निरस्त किया जाता है।

2. ***स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सामर्थ्यहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।***

प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण की विमा सामर्थ्यहीनता की भावना एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करने के लिए पीयरसन सहसम्बन्ध गुणांक (आघूर्ण विधि) का अनुसरण किया गया है एवं प्राप्त सांख्यिकीय मानों को निम्नलिखित तालिका सं. 02 में दर्शाया गया है।

तालिका सं. 02: स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सामर्थ्यहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक की गणना

अध्ययन चर	*शिक्षकों की संख्या*	*सहसम्बन्ध गुणांक*	*सार्थक स्तर*	*मुक्तांश*
सामाजिक पृथक्करण (सामर्थ्यहीनता की भावना) कार्य संतुष्टि	100	–0.211	0.05 स्तर पर सार्थक	98

उपरोक्त तालिका सं. 02 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सामर्थ्यहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान –0.211 पाया गया है। जोकि 0.05 विश्वसनीय स्तर एवं 98 मुक्तांश सार्थक मान है। शिक्षकों में सामाजिक पृथक्करण (सामर्थ्यहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि

के मध्य प्रबल नकारात्मक सहसम्बन्ध यह दर्शाता है कि जिन शिक्षकों में सामर्थ्यहीनता की भावना प्रबल पायी जाती है उनमें कार्य संतुष्टि निम्नस्तरीय होती है। अतः उपरोक्त उद्देश्य से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना को निरस्त किया जाता है।

3. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अस्तित्वहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।

प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण की विमा अस्तित्वहीनता की भावना एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करने के लिए पीयरसन सहसम्बन्ध गुणांक (आघूर्ण विधि) का अनुसरण किया गया है एवं प्राप्त सांख्यिकीय मानों को निम्नलिखित तालिका सं. 03 में दर्शाया गया है।

तालिका सं. 03: स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अस्तित्वहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक की गणना

अध्ययन चर	*शिक्षकों की संख्या*	*सहसम्बन्ध गुणांक*	*सार्थक स्तर*	*मुक्तांश*
सामाजिक पृथक्करण (अस्तित्वहीनता की भावना) कार्य संतुष्टि	100	-0.198	0.05 स्तर पर सार्थक	98

उपरोक्त तालिका सं. 03 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (अस्तित्वहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान -0.198 पाया गया है। जोकि 0.05 विश्वसनीय स्तर एवं 98 मुक्तांश सार्थक मान है। शिक्षकों में सामाजिक पृथक्करण (अस्तित्वहीनता की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य प्रबल नकारात्मक सहसम्बन्ध यह दर्शाता है कि जिन शिक्षकों में अस्तित्वहीनता की भावना प्रबल पायी जाती है उनमें कार्य संतुष्टि निम्नस्तरीय होती है। अतः उपरोक्त उद्देश्य से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना को निरस्त किया जाता है।

4. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (संवेगात्मक विचलन) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।

प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण की विमा संवेगात्मक विचलन एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करने के लिए पीयरसन सहसम्बन्ध गुणांक (आघूर्ण विधि) का अनुसरण किया गया है एवं प्राप्त सांख्यिकीय मानों को निम्नलिखित तालिका सं. 04 में दर्शाया गया है।

तालिका सं. 04: स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (संवेगात्मक विचलन) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक की गणना

अध्ययन चर	*शिक्षकों की संख्या*	*सहसम्बन्ध गुणांक*	*सार्थक स्तर*	*मुक्तांश*
सामाजिक पृथक्करण (संवेगात्मक विचलन) कार्य संतुष्टि	100	-0.263	0.01 स्तर पर सार्थक	98

उपरोक्त तालिका सं. 04 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (संवेगात्मक विचलन) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान -0.263 पाया गया है। जोकि 0.01 विश्वसनीय स्तर एवं 98 मुक्तांश सार्थक मान है। शिक्षकों में सामाजिक पृथक्करण (संवेगात्मक विचलन) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य प्रबल नकारात्मक सहसम्बन्ध यह दर्शाता है कि जिन शिक्षकों में संवेगात्मक विचलन प्रबल पाया जाता है उनमें कार्य संतुष्टि निम्नस्तरीय होती है। अतः उपरोक्त उद्देश्य से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना को निरस्त किया जाता है।

5. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत् शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करना।

प्रस्तुत उद्देश्य के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण की विमा सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन करने के लिए पीयरसन सहसम्बन्ध गुणांक (आघूर्ण विधि) का अनुसरण किया गया है एवं प्राप्त सांख्यिकीय मानों को निम्नलिखित तालिका सं. 05 में दर्शाया गया है।

तालिका सं. 05: स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक की गणना

अध्ययन चर	*शिक्षकों की संख्या*	*सहसम्बन्ध गुणांक*	*सार्थक स्तर*	*मुक्तांश*
सामाजिक पृथक्करण (सम्प्रेषणात्मक अलगाव) कार्य संतुष्टि	100	-0.201	0.05 स्तर पर सार्थक	98

उपरोक्त तालिका सं. 05 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण (सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान -0.201 पाया गया है। जोकि 0.05 विश्वसनीय स्तर एवं 98 मुक्तांश सार्थक मान है। शिक्षकों में सामाजिक पृथक्करण (सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना) एवं कार्य संतुष्टि के मध्य प्रबल नकारात्मक सहसम्बन्ध यह दर्शाता है कि जिन शिक्षकों में सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना प्रबल पायी जाती है उनमें कार्य संतुष्टि निम्नस्तरीय होती है। अत: उपरोक्त उद्देश्य से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना को निरस्त किया जाता है।

1.8 निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में उपलब्धियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के सामाजिक पृथक्करण एवं उनकी कार्य संतुष्टि नकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया है। जोकि यह इंगित करता है कि शिक्षकों में अलगाव की भावना, अस्तित्वहीनता की भावना, सामर्थ्यहीनता की भावना, संवेगात्मक विचलन एवं सम्प्रेषणात्मक अलगाव की भावना पायी गयी है उन शिक्षकों को कार्य संतुष्टि निम्न स्तरीय पायी गयी है। जबकि संवेगात्मक विचलन शिक्षकों की कार्य संतुष्टि को नकारात्मक रूप में अधिक प्रबलता के साथ प्रभावित करता है क्योंकि संवेगात्मक विचलन व शिक्षकों की कार्य संतुष्टि के मध्य तुलनात्मक रूप में अधिक प्रबल एवं नकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया है।

संदर्भ सूची

कौर, अमरदीप (2017) स्टडी ऑफ एलीयानेशन एण्ड वैल्यूज ऑफ स्टूडेंट टीचरर्स, इंटरनेशनल जनरल फोर इंटरडीसिप्लेनरी स्टडीज, वोल्यूम-4(31) पृष्ठ सं. 5754-5765

सेन (2015) द रिलेशनशिप बिटवीन टीचर वर्नआउट एण्ड स्टूडेंस मोटीवेशन, ब्रिटिश जनरल ऑफ एजूकेशनल साइकोलॉजी, वोल्यूम-85(4) पृष्ठ सं. 519-532

सूर्यान्तो (2018) एलीयानेशन इन द प्रोसेस ऑफ टीचिंग एण्ड लर्निंग इगलिस इन इंडोनेशिया एशियन ई.एफ.एल. जनरल वोल्यूम-20(7) पृष्ठ सं. 234-261

चहल (2019) व्यावसायिक संतुष्टि व आत्म-सम्प्रत्यय के संदर्भ में विद्यालयी शिक्षकों में अलगाव की भावना का अध्ययन। इंटरनेशनल जनरल ऑफ एपलाइड रिसर्च, वोल्यूम-7(9) पृष्ठ सं. 93-104

websites

www.psychometriclab.com
http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/22797/16/16 _bibliography.pdf
www.edutractksneklamalpub.com
psychologicalsecurity.com
en.wikipedia.org/wiki/governmentschool

चिड़ावा तहसील में सिंचित क्षेत्र के स्थानिक वितरण का अध्ययन

डॉ० संजीव कुमार

सहायक आचार्य, भूगोल, श्री आर.आर. मोरारका राजकीय महाविद्यालय, झुन्झुनूं

डॉ० अश्वनी आर्य

सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधापुर

सारांश

जल एवं भूमि किसी भी राष्ट्र के कृषि एवं आर्थिक विकास के लिए आधारभूत आवश्यकता है। भारत में प्रति व्यक्ति जल एवं भूमि की उपलब्धता अन्य देशाों से कम होने के कारण इन दोनों संसाधनों पर प्रतिदिन दबाव बढ़ता जा रहा है। भारत 4 प्रतिशत जल संसाधनों के साथ विश्व की 17.5 प्रतिशत आबादी को खाद्य व पोषण की सुरक्षा उपलब्ध कराता है तथा देश की 68.85 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है, जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। अतः भारत में कृषि हमेशा मुख्य उद्यम रही है एवं देश में वर्षा की सीमित अवधि, अनियमितता, अनिश्चितता आदि के कारण सिंचाई भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार है। अध्ययन क्षेत्र अर्द्धशुष्क जलवायु में स्थित है जहाँ कृषि के सफल उत्पादन हेतु सिंचाई व्यवस्था अनिवार्य है। अतः वर्षा की कम मात्र एवं सतही जल ससाधनों के अभाव के कारण सिंचाई मुख्य तौर पर भूमिगत जल के कुओं/नलकूपों पर आधारित है। अध्ययन क्षेत्र में कुआँ का घनत्व 11.11 प्रति वर्ग किमी है, शुद्ध सिंचित क्षेत्र 88257.5 हैक्टेयर है, जो कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 67. 83 प्रतिशत है एवं सिंचाई गहनता 107.78 प्रतिशत है।

मूल शब्द: जल सम्भाव्यता, सकल बोया गया क्षेत्र, अतिदोहित क्षेत्र, सूक्ष्म सिंचाई विधि

प्रस्तावना

भारत में प्रतिव्यक्ति कृषि भूमि की उपलब्धता 1951 में 0.48 हैक्टेयर थी जो अब घटकर 0.12 हैक्टेयर हो गई है और भविष्य में कृषि भूमि क्षेत्र बढ़ने की संभावना न के बराबर हैं। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण, बढ़ती हुई खाद्यान्न की मांग की पूर्ति के लिए प्रति इकाई क्षेत्र व प्रति इकाई समय में उत्पादकता में वृद्धि आवश्यक है। इस हेतु सिंचाई जल की उपलब्धता सबसे महत्वपूर्ण है।

अध्ययन क्षेत्र अर्द्धशुष्क जलवायु में स्थित है। वर्षा केवल मानसून काल में सीमित मात्र में होती है तथा कई बार मानसून की असफलता के कारण सूखे जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो कृषि के लिए हानिकारक होती है। इसके अतिरिक्त कुछ फसलों को अधिक जल की आवश्यकता होती है, वहाँ वर्षा जल की कमी रक्षित सिंचाई को आवश्यक बनाती है। शुष्क ऋतु में फसलों को बोने के लिए एवं बहुफसलीकरण के लिए सिंचाई अनिवार्य है।

अध्ययन क्षेत्र

मानचित्र 1.1

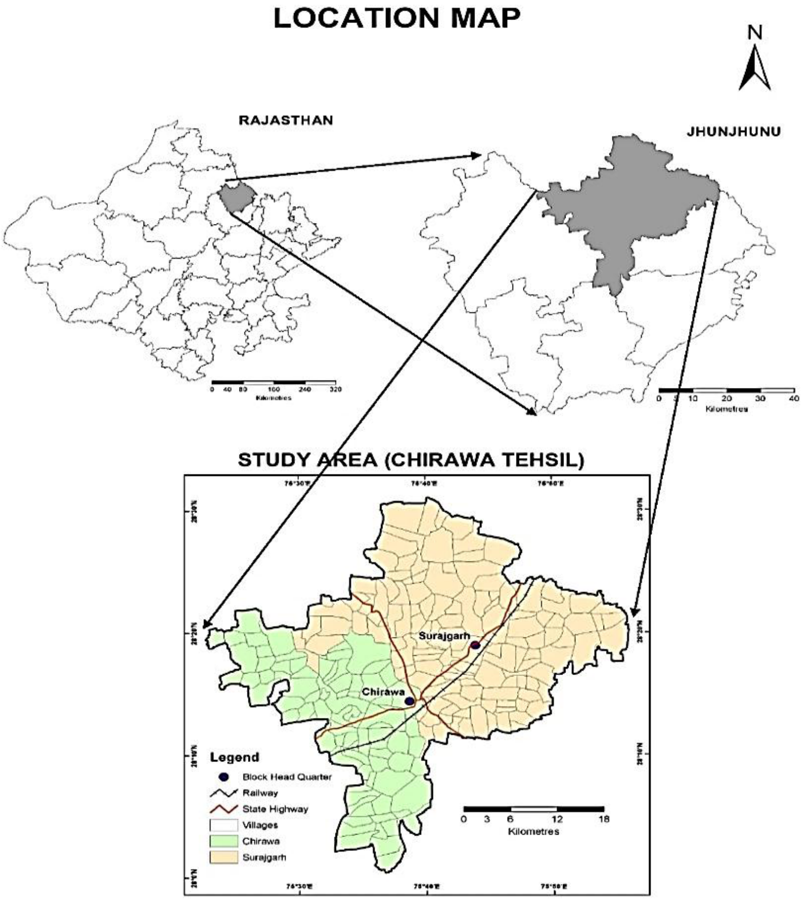

अध्ययन क्षेत्र राजस्थान राज्य के उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित झुन्झुनूं जिले के उत्तरी भाग में 28' से 28' 31 उत्तरी अक्षांश तथा 75. 22' से 75. 56' पूर्वी देशान्तर के मध्य अवस्थित एक तहसील है, जिसके 130115 हैक्टेयर क्षेत्रफल पर कुल 204 गाँव एवं 9 कस्बे बसे हुऐ है। औसत वार्षिक वर्षा 45.23 सेन्टीमीटर, वर्षा के दिनों की संख्या 39.5, औसत वार्षिक अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान क्रमश: $32^{0}7'$ एवं 17' सेल्सियस, मिट्टी बलुई या बलुई दोमट, कुल जनसंख्या 420582, जनसंख्या घनत्व 323, साक्षरता दर 73.7 प्रतिशत एंव ग्रामीण जनसंख्या 77.0 प्रतिशत है। समुद्र तल से औसत ऊँचाई 300 से 380 मीटर के बीच एवं ढाल दक्षिण से उत्तर की और क्रमश: है। यहाँ एक मात्र कान्तली नदी (मौसमी) दक्षिण से उत्तर पश्चिम की ओर प्रवाहित होती हैं परन्तु पिछले 10-15 वर्षो से इसका प्रवाह अवरोधित हैं

उद्देश्य

- सिंचाई के साधनों एंव कुओं के निर्माण की भौगोलिक स्थितियों का अध्ययन करना,
- शुद्ध सिंचित क्षेत्र के स्थानिक वितरण कागाँववार अध्ययन करना,
- सिंचाई गहनता के स्थानिक वितरण का गाँववार अध्ययन करना।

आकड़ों के स्रोत एवं विधि तंत्र

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक आंकडों की सहायता ली गई है। द्वितीयक आकड़ें तहसील राजस्व कार्यालय चिड़ावा, जिला आर्थिक एवं सांख्यिकी रूपरेखा झुन्झुनूं, सरकारी प्रकाशनों, वार्षिक प्रतिवेदनों आदि से एकत्रित किये गये है तथा तालिकाओं, मानचित्रों व सांख्यिकीय विधियों द्वारा विश्लेषण किया गया है। आंकडों के विश्लेषण के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया गया है-

सिंचाई गहनता = सकल सिंचित क्षेत्र/शद्ध सिंचित क्षेत्र × 100

कुओं का घनत्व = कुओं की कुल संख्या/शुद्ध बोया गया क्षेत्र × 100

सिंचाई के साधन

सिंचाई वास्तव में वर्षा जल का विकल्प या पूरक है। इसकी आवश्यकता शुष्क क्षेत्रों में और अपर्याप्त वर्षा के समय पड़ती है। अध्ययन क्षेत्र में सतही जल संसाधनों के अभाव के कारण जलपुर्ति के लिए भू-जल ही महत्वपूर्ण स्त्रोत है। यहाँ सिंचाई के प्रमुख साधन कुऐं एवं नलकूप है, इनके द्वारा सकल सिंचित क्षेत्र के 100 प्रतिशत भाग पर सिंचाई होती है। अन्य साधन जैसे नहर, तालाब आदि का यहाँ अभाव पाया जाता है।

कुऐं/नलकूप

भूमि से भू-जल प्राप्त करने हेतु भूमि में किया गया उर्ध्वाधर छेद कुआँ कहलाता है। कुऐं को विभिन्न उपयोग हेतु भूजल दोहन का सरलतम परम्परागत तरीका माना जाता है। कुऐं/नलकूप का निर्माण करते समय भू-जल स्तर की गहराई, भू-वैज्ञानिक स्थिति, आर्थिक कारक आदि को ध्यान में रखते हैं। कुओं के प्रकार (1) कच्चे कुऐं (2) पक्के कुऐं (3) नलकूप। हरित क्रान्ति के उपरान्त से कृषि में अधिक उत्पादन देने वाले उन्नत बीजों, रासायनिक खादें, कीटनाशक आदि का उपयोग किया जाने लगा, जिन्हें अपेक्षाकृत अधिक जल की आवश्यकता होती है। अत: अध्ययन क्षेत्र में वर्तमान समय में कुआँ निर्माण करके भू-जल दोहन की प्रवृत्ति बढ़ रही है जिसके कारण कई भागों में भू-जल की स्थिति, सम्भावना विहीन क्षेत्रों में परिवर्तित हो गई है जिसको नियन्त्रित कर सन्तुलित अवस्था में लाना आज की आवश्यकता बन गई है।

कुआँ निर्माण करते समय कुओं के बीच की दूरी का महत्त्व अधिक होता है, क्योंकि जलभरे अपनी निश्चित दूरी तथा आकार में स्थित होते हैं।कुओं का प्रभाव क्षेत्र, भू-जल दोहन की अवधि एवं दर, जलभरे की पारगम्यता गुणांक, संतृप्त क्षेत्र की मोटाई आदि से प्रभावित होता है। कुआँ निर्माण के लिए अग्र भौगोलिक स्थितियां आवश्यक हैं-

1. भूसतह कठोर एवं पथरीली नहीं होनी चाहिए। कठोर-पथरीली चट्टानों में पारगम्यता कम होती है तथा ऐसी चट्टानों में कुआँ का निर्माण खर्चीला भी होता है।
2. जलभरे जल से संतृप्त होने के साथ ही वहाँ धरातलीय भाग में पानी का अंत:स्पंदन भी होता रहना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि चट्टानों में पर्याप्त संरंध्रता, पारगम्यता एवं सतही अपवाह हो।
3. भूजल कम गहराई पर स्थित हो तथाभूजल दोहन के अनुपात में वर्षा जल द्वारा पुनर्भरण भी होना चाहिए।

अध्ययन क्षेत्र में पक्के कुऐं एवं नलकूप सिंचाई का प्रमुख साधन हैं। अत: कुओं का घनत्व, उनका वितरण इत्यादि का अध्ययन करना प्रासंगिक हो जाता है।

कुऐं एवं नलकूप घनत्व

अध्ययन क्षेत्र में कुओं की कुल संख्या 12136 (12042 पक्के कुऐं एवं 94 नलकूप) हैं। वास्तविक बोया गया क्षेत्र के सम्बन्ध में कुओं का घनत्व 11.11 कुऐं प्रति वर्ग कि.मी. है। अध्ययन क्षेत्र में भूजल संभाव्यता में असमानता, चट्टानों की कठोरता में अन्तर, ऊपरी मृदा के नीचे मौरेठा (मौरिण्डा) की परत के वितरण एवं गहराई में अन्तर इत्यादि कारणों से सम्पूर्ण क्षेत्र में कुओं का घनत्व समरूप नहीं मिलता है। अध्ययन क्षेत्र में कुओं के घनत्व का गाँववार वितरण इस प्रकार है।

तालिका-1.1: चिड़ावा तहसील में गाँववार प्रति वर्ग कि.मी. कुओं का घनत्व (2008-10)

कुआँ/नलकूप घनत्व (प्रति वर्ग कि.मी.)	*श्रेणी*	*सम्मिलित गाँवों की संख्या*	*गाँवों का प्रतिशत*
5 से कम	अति निम्न	5	2.45
5-9	निम्न	44	21.57
9-13	मध्यम	81	39.71
13-17	उच्च	44	21.57
17 से अधिक	अति उच्च	30	14.70

स्त्रेत - शोधार्थी द्वारा संकलित एवं परिकलित।

उपरोक्त तालिका 1.1 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में कुआँ का घनत्व 2.45 प्रतिशत गाँवों में 5 से कम है तथा 21.57 प्रतिशत गाँवों में 5 से 9 के मध्य है। इन गाँवों की अवस्थिति अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी, पश्चिमी एवं पूर्वी भाग में है। इसका मुख्य कारण उत्तरी एवं पूर्वी भाग में कठोर अपारगम्य-अपेक्षाकृत कम संरन्ध्रतायुक्त चट्टानों का पाया जाना है, जिससे यहाँ जल भराव क्षेत्रों एवं प्राकृतिक अवरोध की कमी के कारण यहाँ का वर्षा जल बिना रूके बह जाता है। 21.57 प्रतिशत गाँवों में 13 से 17 के मध्य तथा 14.70 प्रतिशत गाँवों में 17 से अधिक है। इन उच्च घनत्व वाले गाँवों की अवस्थिति मुख्यत: अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी एवं मध्य दक्षिणी भाग में है। यहाँ उच्च संरंध्रता तथा पारगम्यता युक्त पुराने जलोढ़ युक्त संरचना का विस्तार पाया जाना है। इसके अतिरिक्त दक्षिणी भाग में कुछ वर्षों पूर्व तक कान्तली नदी के प्रवाह के कारण भू-जल स्तर की गहराई भी कम है। अध्ययन क्षेत्र के 39.71 प्रतिशत गाँवों में घनत्व 9 से 13 के मध्य है। ये गाँव अध्ययन क्षेत्र के मुख्यत: मध्य-उत्तरी भाग में अवस्थित हैं।

शुद्ध सिंचित क्षेत्र

मानचित्र 1.2

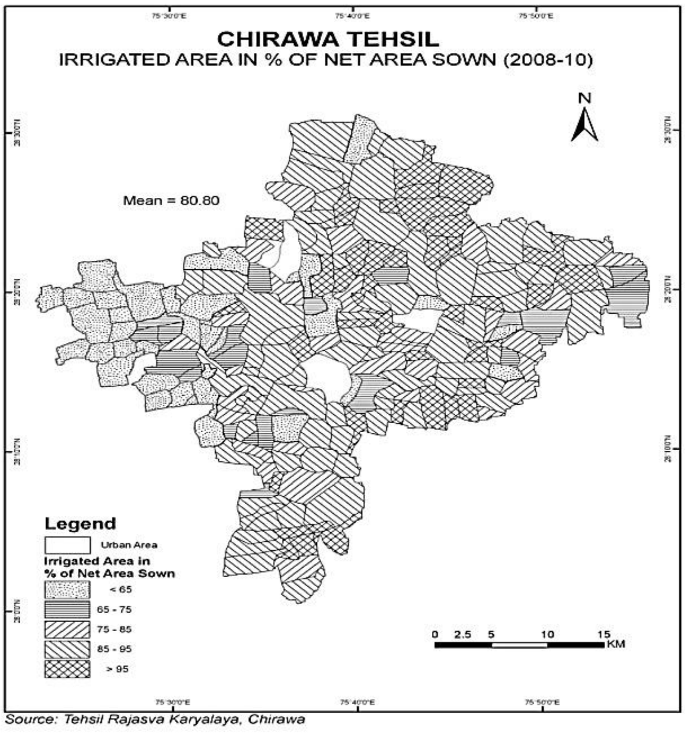

Source: Tehsil Rajasva Karyalaya, Chirawa

शुष्क तथा अर्द्धशुष्क प्रदेशों में कृषि का विकास सिंचाई के द्वारा ही सम्भव है। चिड़ावा तहसील में सन् 1993-1995 में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 43341.22 हैक्टेयर था जो बढ़कर सन् 2008-10 में 88257.5 हैक्टेयर क्षेत्र हो गया है। इस प्रकार विगत 15 वर्षो में 44916.28 हेक्टेयर क्षेत्र की वृद्धि हुई है। दूसरी और सन् 2008-10 में शुद्ध सिंचित क्षेत्र, शुद्ध बोया गया क्षेत्र (109232.5 हैक्टेयर) का 80.8 प्रतिशत है तथा कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 67.83 प्रतिशत है परन्तु शुद्ध सिंचित क्षेत्र का वितरण असमान है। अध्ययन क्षेत्र में शुद्ध सिंचित क्षेत्र का गाँववार वितरण इस प्रकार है।

तालिका-1.2: चिड़ावा तहसील में शुद्ध सिंचित क्षेत्र के प्रतिशतानुसार गाँवों की संख्या (2008-10)

शुद्ध बोया गया क्षेत्र का प्रतिशत	*श्रेणी*	*गाँवों की संख्या*	*गाँवों का प्रतिशत*
65 से कम	अति निम्न	36	17.65
65-75	निम्न	21	10.29
75-85	मध्यम	31	15.20
85-95	उच्च	73	35.78
95 से अधिक	अति उच्च	43	21.08

स्त्रेत:- शोधार्थी द्वारा संकलित एवं परिकलित।

तालिका 1.2 के अध्ययन से स्पष्ट है कि शुद्ध सिंचित क्षेत्र 17.65 प्रतिशत गाँवों में 65 प्रतिशत से कम है तथा 10.29 प्रतिशत गाँवों में 65 से 75 प्रतिशत के बीच है। ऐसे गाँवों का संकेन्द्रण अध्ययन क्षेत्र के मुख्यत: पश्चिमी भाग में और गौण रूप से मध्य भाग में पाया जाता है (मानचित्र 1.2)। इस भाग में सामान्यत: कुओं का घनत्व मध्यम से कम है, जल में लवणता की मात्र अधिक, बलुई मिट्टी की प्रधानता एवं भूजल सम्भाव्यता बहुत कम है, फलस्वरूप इस भाग में सिंचाई सुविधा का अभाव है। लाम्बा, (20.73 प्रतिशत) ढढ़ारिया, (30.46 प्रतिशत) रघुवीरपुरा मालीगाँव आदि प्रमुख गाँव है जिनमें 75 प्रतिशत से कम भाग पर सिंचाई होती है। अध्ययन क्षेत्र के 15.20 प्रतिशत गाँवों में शुद्ध सिंचित क्षेत्र 75 से 85 प्रतिशत के मध्य है। इन गाँवों में पटेल-नगर, ढ़क्करवाल, निजामपुर आदि मुख्य है। दूसरी ओर 35.78 प्रतिशत गाँव (73 गाँव) में 85 से 95 प्रतिशत के मध्य तथा 21.08 प्रतिशत गाँव (43 गाँव) में 95 प्रतिशत से अधिक शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल है। इन अधिक सिंचित क्षेत्रफल वाले गाँवों का संकेन्द्रण अध्ययन क्षेत्र के मुख्यत: उत्तरी-पूर्वी एवं दक्षिणी-पूर्वी भाग में पाया जाता है। इसका मुख्य कारण इस भाग में सामान्यत: कुओं का घनत्व मध्य से अधिक, सिंचाई जल की गुणवत्ता उपयुक्त, भूमि अधिक उपजाऊ और फव्वारा सिंचाई विधि से कम पानी से अधिक क्षेत्र में सिंचाई आदि मुख्य है। इसके फलस्वरूप शुद्ध सिंचित क्षेत्र का प्रतिशत अधिक है।

सिंचाई गहनता

सिंचाई गहनता से तात्पर्य एक कृषि वर्ष में एक खेत में एक से अधिक फसल ऋतु में सिंचाई करने से है, इससे दो फसली सिंचित क्षेत्र ज्ञात हो जाता है। किसी क्षेत्र में शुद्ध सिंचित क्षेत्र की अपेक्षा सकल सिंचित क्षेत्र का अधिक होना सिंचाई गहनता की मात्र को प्रदर्शित करता है। सिंचाई गहनता कृषि प्रारूप एवं विकास के स्तर को मापने का प्रमुख मापक है क्योंकि सिंचाई के माध्यम से कृषि उत्पादकता एवं फसल क्षेत्र प्रभावित होता है।

चिड़ावा तहसील में सन् 2008-10 में कल सिंचित क्षेत्र 95124 हैक्टेयर, शुद्ध सिंचित क्षेत्र 88257.5 हैक्टेयर, तथा सिंचाई गहनता 107.78 प्रतिशत है जो बहुत कम है। इससे स्पष्ट है कि क्षेत्र में एक से अधिक बार सिंचित क्षेत्र मात्र 7.78 प्रतिशत है जो इस क्षेत्र में सिंचाई सुविधाओं की कमी को प्रदर्शित करता है। चिड़ावा तहसील में सिंचाई गहनता का विवरण इस प्रकार है।

मानचित्र 1.3

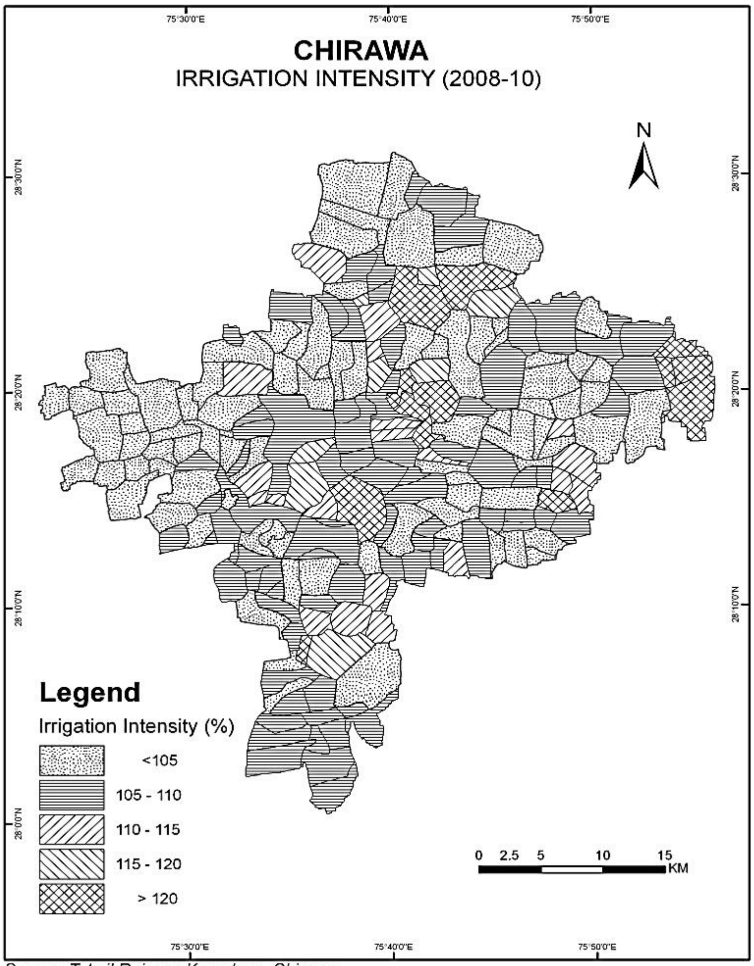

Source: Tehsil Rajasva Karyalaya, Chirawa

तालिका-1.3: चिड़ावा तहसील में सिंचाई गहनता का गाँववार विवरण (2008-10)

सिंचाई गहनता (प्रतिशत में)	*सम्मिलित गाँवों की संख्या*	*गाँवों का प्रतिशत*
102 से कम	31	15.20
102-106	75	36.76
106-110	58	28.43
110-114	16	7.84
114 से अधिक	24	11.76

स्त्रेत - शोधार्थी द्वारा संकलित एंव परिकलित

तालिका 1.3 के अध्ययन से स्पष्ट हैं किचिड़ावा तहसील में सिंचाई गहनता 11.76 प्रतिशत गाँवों में 114 प्रतिशत से अधिक एंव 7.84 प्रतिशत गाँवों में 110 से 114 के मध्य है, जिसका प्रमुख कारण कुओं का अधिक घनत्व एवं किसानों के पास सामान्यत:

एक से अधिक फव्वारा संयन्त्र जिससे फव्वारा संयंत्र को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण करने में लगने वाले समय की बचत होती है। बलोदा (सर्वाधिक सिंचाई गहनता, 131.87 प्रतिशत), सरदारपुरा ,जीणी, घरडू, काजी, सारी आदि प्रमुख गाँव हैं जिनमें उच्च सिंचाई गहनता पाई जाती है। अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी, मध्य एवं उत्तरी-पूर्वी भाग में अवस्थित 28.43 प्रतिशत गाँवों में सिंचाई गहनता 106 से 110 प्रतिशत के मध्यम पाई जाती है (मानचित्र 1.3)। इन गाँवों में निजामपुर, खुडाना, गोवला, श्री विजयपुरा, सोलाना, अलीपुर, भुकाना, आदि मुख्यत: सम्मिलित है। दूसरी ओर 36.76 प्रतिशत गाँवों में 102 से 106 प्रतिशत के मध्य तथा 15.2 प्रतिशत गाँवों में 102 प्रतिशत से कम सिंचाई गहनता पाई जाती है, इन गाँवों की अवस्थिति मुख्यत: पश्चिमी, उत्तरी, एवं मध्य पूर्वी भाग में है। इन गाँवों में सामान्यत: भूजल में लवणता की अधिक मात्र भूजल सम्भाव्यता कम, कम उपजाउ मिट्‌टी एवं बालू की अधिकता है। फलस्वरूप सिंचाई गहनता कम पायी जाती है। इन गाँवों में महतियों की ढ़ाणी, बोला की ढ़ाणी, बजावा, मण्ड्रेला, जखोड़ा, खेडला, बेरी, जाखोद, खुडानिया, बुड़ानिया, गोठड़ी, कुल्हरियों का बास आदि मुख्य है।

सुझाव

- कुओं एवं नलकूपों के बीच दूरी सुनिश्चित की जानी चाहिए इससे भू-जल के अंधाधुध दोहन एंव प्रतिस्पर्धा को नियन्त्रित किया जा सकेगा।
- छोटे छोटे फार्म पोण्ड बनाने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जिसमें प्रत्येक फार्म (खेत) लाभान्वित हो। इसके अतिरिक्त सामुदायिक स्तर पर जल सरंक्षण के उपाय किये जाने चाहिए एंव जलसंभरण हेतु उपयोगी योजनाएं बनानी चाहिए।
- बूंद-बूंद एवं सूक्ष्म फव्वारा सिंचाई विधि के उपयोग को बढ़ाना चाहिए। अध्ययन क्षेत्रों में प्रति कुंए 1.62 फव्वारा सैट है इसे बढ़ाकर 2 या अधिक किया जाना चाहिए, जिससे संयत्र के स्थानान्तरण में लगाने वाले समय की बचत की जा सके। इस हेतु सरकार को सूक्ष्म सिंचाई विधियों के लिए अनुदान में वृद्धि की जानी चाहिए साथ ही अनुदान प्राप्त करने की प्रकिया में आवश्यक सुधार लाने चाहिए।
- जल की कम आवश्यकता एवं कम समय में फसल तैयार होने वाले उन्नत परिष्कृत बीजों के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए एवं परम्परागत फसलों के साथ साथ बागानी कृषि को बढ़ावा देने चाहिए। क्षेत्र में बेर, निम्बू, किन्नू, आवंला आदि फलदार फसले के लिए बूँद-बूँद सिंचाई विधि का उपयोग किया जाना चाहिए जिससे न केवल जल की बचत होगी बल्कि किसानों की आर्थिक दशा में भी सुधार लाया जा सकता है।

निष्कर्ष

चिड़ावा तहसील में सतही जल संसाधनों का अभाव है। पेयजल एवं विशेषकर सिंचाई के लिए भू-जल का प्रयोग अनिवार्य है। भू जल के उपयोग हेतु कुओं का निर्माण व्यक्तिगत प्रयासों का प्रतिफल है तथाइस पर व्यक्तिगत नियंत्रण होता है ग्रामीण विधुतीकरण एवं राजकीय सहायता द्वारा इसे प्रोत्साहन मिला है। अत: क्षेत्र में सिंचाई का मुख्य साधन कुआँ (12042 पक्के कुऐं तथा 94 नलकूप) है तथा फव्वारा सिंचाई विधि के माध्यम से सिंचाई की जाती है। शुद्ध सिंचित क्षेत्र 88257.5 हैक्टेयर एवं सिंचाई गहनता 107.78 प्रतिशत है। वर्षा की कम मात्र के कारण भूजल का अवशोषण उसकी पूनर्भरण क्षमता से अधिक होता है। फलत: सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्रा एक अतिदोहित क्षेत्रों में वर्गीकृत है, जहाँ भू-जल विकास का स्तर 276.69 प्रतिशत होने के कारण जल की मात्र एंव गुणवत्ता दोनों के संकट सामने आ रहे है।

सन्दर्भ

1. कलवार एस.सी, राजस्थान का भूगोल-1, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, 2007 पृ. 86-88, 99-101.
2. कुमार, संजीव ''चिड़ावा तहसील में फव्वारा सिंचाई का भूमि उपयोग एवं फसल प्रतिरूप पर प्रभाव'' अप्रकाशित शोध प्रबंध, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, (2012) पृ. 48-71.
3. कुमार एस. -पाल, एस.-कुमार पी.- अवैस, एम-तंवर ए. ''भारतीय कृषि में सूक्ष्म सिंचाई-प्रगति, प्रभावशीलता एवं सम्भावित क्षेत्रफल के आच्छादन हेतु सांकेतिक लागत का आंकलन'' भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका, अंक -27 (2019) पृ. 70-78.
4. शर्मा एच.एस. शर्मा एम.एल राजस्थान का भूगोल पंचशील प्रकाशन, जयपुर (2017) पृ. 193-94.
5. लाभदायक फसल प्रणालियों समस्याऐं एवं समाधान भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली (2013) पृ, 1-8.
6. जिला सांख्यकीय रूपरेखा (2008, 2009 एवं 2010), आर्थिक एवं साख्यिकीय विभाग, झुन्झुनूं।

समकालीन कहानियों में राजनीतिक चेतना

डॉ० विनय कुमार

टीजीटी इंग्लिश, जीबीएसएसएस नं. 3, नजफगढ, नई दिल्ली-110043

राजनीति सामाजिक विकास से जुड़ा हुआ विषय है। यह सीधे-सीधे मनुष्य जीवन की बुनियादी चिंताओं से जुड़ा है और सामाजिक संरचना में होने वाले क्षरण से इसका महत्व कभी कम नहीं होता। इसी प्रकार साहित्य भी मनुष्य-जीवन के सरोकारों से जुड़ा हुआ है और यह कहना कि साहित्य को राजनीति से बचकर चलना चाहिए इस बात की बकालत करना है कि साहित्य का काम सिर्फ मनोरंजन करना है जो लोग ऐसा मानते हैं उनके लिए भांडों की रचनाओं में गंभीर साहित्य में कोई फर्क नहीं होता। प्रेमचंद ने यह बहुत पहले स्पष्ट कर दिया था कि साहित्य राजनीति के पीछे चलनेवाली सच्चाई नहीं है, बल्कि उसके आगे-आगे मशाल दिखाते हुए चलनेवाली सच्चाई है।[1]

यहाँ समकालीन हिन्दी कहानी को विषय बनाया गया है और यह प्रश्न उठना सहज है कि समकालीनता की सीमा रेखा क्या होगा? सैद्धांतिक बहस में न जाते हुए हम इतना ही निवेदन करना चाहोंगे कि कहानी कहने के और यथार्थ तथा कला को बरतने के तरीके में जहाँ से फर्क दिखलाई देने लगा, वहीं से समकालीन की शुरूआत होती है और इसका पीढ़ियों के विभाजन से कोई मतलब नहीं है। फिर भी यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि इस दौर में जो कहानी के क्षेत्र में नई पीढ़ी आई उसमें राजनीतिक बोध को लेकर अरुचि का भाव दिखलाई देता है। मगर देखने की बात यह है कि अराजनीतिक होना भी एक बारीक किस्म की राजनीति का ही हिस्सा होता है। बहरहाल इस बहस में पड़ना यहाँ असंगत होगा। काल के जिस हिस्से पर यह लेख केन्द्रित किया गया है, उसमें एकाधिक पीढ़ियों के कहानीकार लेखनरत हैं और उनकी राजनीतिक दृष्टि बहुत साफ है, चाहे वह भारतीय लोकतांत्रिक राजनीति के ऐतिहासिक विकास को लेकर हो या विश्व बाजार के दौर की नव उपनिवेशवादी राजनीति को लेकर, इसमें कोई अंतर्विरोध नहीं है। इस पर बात करने के लिए सबसे पहले उदयप्रकाश की कहानी 'मैं गोसिल' की चर्चा करने की आवश्यकता है। यह कहानी जिस समय छपी थी, वह वैश्विक पूँजी के प्रसार का दूसरा दौर था और इस समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि अमेरिकी पूँजीवाद के रथ के घोड़े पूरी तरह बेलगाय होकर तीसरी दुनिया नहीं रह गई है। दुनिया भर में सारा फौजी चितन अमेरिका करता है और शांति से लेकर आतंक के खिलाफ युद्ध की परिभाषा भी वही तय करता है। युगोरूलाविया में होली बॉम्ब का नारा हो या अफगानिस्तान में आतंक के खिलाफ युद्ध अथवा इराक में विनाश इन सारी कार्रबाइयों को उसने शांति की स्थापना के नाम पर ही अंजाम दिया। वास्तव में ये कार्रवाइयाँ अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रसार के लिए थीं और इस पाांड की कलई 'मैंगोसिल' का सूरी यह कहकर उतार देता है कि चूँकि वह दुनिया भर में हो रहे अमेरिका दमन के बारे में बहुत कुछ जान गया है, इसलिए उसका सिर बड़ा हो गया है। उदय प्रकाश कहते हैं कि पेंटागन की रिपोर्ट के मुताबिक इस समय सभी देशों की सराकारों को इस बड़े सिर वाले बच्चों पर निगाह रखनी पड़ेगी। सूरी ऐसा ही बच्चा है, जिससे अमेरिकी साम्राज्यवाद के वैश्विक अभियान को खतरा है। साथ ही यह भी इस कहानी में कहा गया है कि दुनिया तेजी से बदल रही और दिल्ली भी बदल रही है।[2] यानी उदयप्रकाश यह स्पष्ट कर देते हैं दुनिया अमेरिकी संकेतों के अनुसार बदल रही है और भारत भी वैश्विक पूँजी के इस खेल में शामिल हो चुका है तथा देश की सरकारों का काम अमेरिकी पूँजीवाद के अभियान की निष्कंटक बनाने में अपना येगादान देना भर रह गया है।

यह उल्लेखनीय है कि उदयप्रकाश के राजनीतिक सरोकार उनकी कहानियों में साफ दिख जाते हैं और उनके टोन में आवेग अधिक होता है जो थीन के प्रति अत्यधिकम संलग्लता के कारण उत्पन्न होता है। इसका कारण है कि वे वर्णन में चमत्कार उतपन्न करने की प्रवृति के शिकार हैं। इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि इनकी संवदेना का स्तर सघन है, इसलिए वर्णन छिछला

नहीं मालूम पड़ता है। अपने अतिरिक्त आवेग को ये तराशी हुई भाषा और फंतसी के प्रयोग से यथार्थ की समझ पर हावी नहीं होने देते।[3]

राजनीति की निर्ममता और अमानवीयता को अनिल यादव 'लोक कवि का बिरहा' में बड़ी सूक्ष्मतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं। कहानी विवरण के शिल्प में लिखी गई है, मगर एक-एक स्थिति का चित्रण कथाकार ने इनी बारीकी और इत्मीनान से किया है कि न तो कथा के विकास में उत्सुकता का अभाव दिखलायी देता है न रोचकता में कभी आती है। जनम नाम का लोक कवि पिछड़ी जाति का है, मगर दलितों के साथ उठता-बैठता है, लिहाजा उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है। कथाकार यहाँ हमारा परिचय भारतीय राजनीतिक के एक बड़े अंतविरोध से कराता है जो जाति-व्यवस्था पर आधाारित है। हर जाति अपने से नीचे पद क्रम की जगति को हीन समझती है। मगर कहानी का मूल उद्देश्य जाति-व्यवस्था के पद्क्रम को दिखलाना नहीं है। बल्कि जतिगत विभाजन के राजनीतिक प्रयोग को सामने लगाना है। जनम दलित पार्टी से विधान परिषद के लिए चुना जाता है, कलाकार कोटे से। मगर वहाँ उसका उपयोग दलितों के काम करने के लिए नहीं बिया जाता है। जनता के गंभीर मुद्दे चुनावों में गौण हो जाते है, और गीत, नारे, खोखले वादे मुख्य हो जाते हैं। लेखक कहता है–"लोक कवि और गायक नेताओं की चुनावी सभाओं में गाते थे। इनमें से हर एक अपने फेफड़ों मं जोर और आवाज की लचक से भी चुनाव क्षेत्रों को हांगकांग और सिंगापुर बनाने का सपना दिखाने की जी तोड़ कोशिश करता हो।"[4]

दरअसल जनम राजनीतिक अवसरवाद और भ्रष्टाचार का शिकार बनता है और एक बार पद का सुख भोग लेने के बाद खुद उसके दाँव-पेंच में रम जाता है। अगली बार जब उसे पता लगता है कि उसे उम्मीदवार बनाने के बजाय एक मोटी रकम घूस में देनेवाले को उम्मीदवार बनाया जा रहा है तो वह दल बदल कर अपनी जाति की पार्टी में शामिल हो जाता है और दुबारा विध ान-परिषद में पहुँच जाता है। वह सदन में विरहा गाकर अपनी हैसियत बनाता है, मगर इसके बाद कथावस्तु में एक मोड़ आता है। एक नेता ने जन्म दिन पर उसे गाने के लिए बुलाया और सुर में न गा पाने के कारण उसे अपमानित कर मंच से उतार देता है। कहानी के इस अंत से समकालीन राजनीति की क्रूरता प्रकट होती है।

समकालीन महिला कथाकारों में जयश्री राय एक महत्वपूर्ण नाम है, जिन्होंने अपनी कहानी 'सुख के दिन' में जाति-गति राजनीति के खोखलेपन को दिखलाया है। इस कहानी की विशेषता यह है कि उन्होंने नेताओं पर केन्द्रित करने के बजाय आम लोगों पर केन्द्रित किया है। कथावस्तु में नेताजी प्रत्यक्ष नहीं दिखते, रैली में गए गांव के निम्न तबके के लोगों की बातचीत के बारे में मालूम पड़ता है। प्रतीकों की राजनीति करके नेताजी किस प्रकार अपनी जाति के लोगों का भावनात्मक दोहन करते हैं, प्रतीकों में आम लोगों को उलझाकर खुद उच्च जीवन जीते हैं, इसी पर यह कहानी केन्द्रित है। कहानी का मुख्य चरित्र रघुनाथ नेताजी का भक्त है, उनके धनी होने को इस रूप में दूखता है कि जब दूसरी जाति के नताओं ने इतना कमाया तो हमारी जाति के नेता क्यों नहीं। प्रतीकों की राजनीति की यह सबसे चिंताजनक परिणति है। सुख के दिन का उसका मोह तब भंग होता है, जब रैं पुलिस की लाठियाँ खाता है और घर आने पर देखता है कि उसका बीमार बच्चा मर गया है।

भारतीय राजनीति में पिछले बीस-बच्चीस सालों के दौरान जो उल्लेखनीय परिवर्तन घटित हुए हैं, उनमें सिविल सोसायटी का चर्चा में आना एक महत्वपूर्ण घटना है। खास तौर से इधर अन्ना हजारे के राजनीति और नौकरशाही में फैले भ्रष्टाचार के विरुद्ध आंदोलन के समय से यह भारतीय विवेचन में सिविल सोसायटी की क्या परिभाषा दी गई यहाँ उस पर चर्चा की कोई जरूरत नहीं है, मैं यहाँ भारतीय समाज में इसकी कथित क्रांतिकारी भूमिका की वास्तविकाताओं के बारे में कुछ बातें करना चाहूँगा। यह वास्तव में उस मध्य वर्ग का आंदोलन है जो हमेशा अपने सुख-सुविधाओं के खोल में रहना चाहता है और भयानक रूप से यथास्थितिवादी होता हैक। जब इसके सुखवादी जीवन-शैली में खलल पड़ता है तो यह सरकार से लेकर अपने इर्द-गिर्द पूरे वातावरण को गालियाँ देता है, जिसे आज सिविल सोसायटी कहा जा रहा, वही मध्य वर्ग है, जो भारत की आजादी के आंदोलन के दौरान एक ओर कांग्रेस के रचनात्मक कामों में हिस्सा लेता था जो व्यवस्था को बदलने के बजाय सत्ता परिवर्तन चाहते थे, क्योंकि सता भ्रष्ट हो गई थी। ये वही खाऊ और भकोसू लोग हैं जो भ्रष्टाचार के खिलाफ धरने से उठकर रामदेव बाबा के योग शिविर में चर्बी घटाने जाते थे। यह पूरी तरह आत्मनिष्ठ और आत्ममुग्ध वर्ग है, जिसे इससे कोई मतलब नहीं है कि जिस विकास के लिए यह लालायित है, इसके

कारण कितनी बड़ी आबादी अपनी जर, जमीन से विस्थापित होकर महानगरों की भीड़ में गुम हो गई है। कैलाश बानखेड़े की कहानी 'कंटीले तार' इस सिविल सोसायटी की कथित क्रांतिकारिता को सामने लाती है।[5]

इस शोधलेख में जिन कहानियें को शामिल किया गया है, उनके अलावा भी बहुत-सी कहानियाँ ऐसी हो सकती है, जिन पर तदयुगीन राजनीति का प्रभाव है, लेकिन बनानगी के तौर पर उल्लेख्य कहानियों के आधार पर समकालीन कहानी में निहित राजनीतिक चेतना का आकलन बखूबी किया जा सकता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. वागर्थ, जुलाई, 2015, संपा. एकांत श्रीवास्तव, भारतीय भाषा परिषद, कलकता, पृ. 52
2. हिन्दी गद्य-साहित्य–डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2015, पृ.-339
3. वही. पृ. 341
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास-संपा. डॉ. रामसजन पांडेय, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ.-442
5. आजकल, अप्रैल, 2013, संपा. फाहत परवीन, पृ.-19-20

सामाजिक नियंत्रण:
अर्थ, प्रकार और प्रतिकूल प्रभाव

डॉ० राम बिनोद

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, के.एस.आर. कॉलेज, सरायगंज, समस्तीपुर (बिहार)

परिचय

जैसे नियम कानून के बिना कोई राज्य व्यवस्था नहीं चल सकती, उसी तरह नियम कानून के अभाव में कोई समाज भी नहीं चल सकता। सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रियाओं द्वारा ही समाज संतुलित ढंग से संचालित होता है। नियंत्रण के स्तर पर समाज और राज्य के बीच यही फर्क है कि, राज्य लिखित नियमों (संविधान) से चलता है और समाज अलिखित नियमों से संचालित होता है। राज्य के नियम योजनाबद्ध तरीके से बनते हैं, तो समाज के नियम एंव आदर्श समय के साथ स्वत: विकसित होते रहते हैं।

इसीलिए सामाजिक नियंत्रण, भौतिक बल या प्रतीकों के उपयोग का सहारा लेता है, ताकि एक निर्धारित समूह को किसी के नियंत्रण में लाया जा सके। सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक संगठन और व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार भिन्न हो सकते हैं। एक प्रौढ़ व्यक्ति पर लागू होने वाले सामाजिक नियंत्रण के नियम बच्चे पर लागू नहीं हो सकते हैं।

सामाजिक नियंत्रण का प्रकार सामाजिक संगठन और व्यक्तित्व के प्रकार की प्रकृति पर निर्भर करता है। जिस समाज में दासता को एक सामाजिक संगठन माना जाता है वहां दासों को नियंत्रित करने के लिए सामाजिक नियंत्रण के अलग साधन का उपयोग किया जाता है।

सामाजिक नियंत्रण का उद्देश्य

सामाजिक नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य समाज को अव्यवस्था से बचाना और भविष्य में उसके अस्तित्व को बनाये रखना है। जिस प्रकार राज्य अपने नियमों को तोडने वालों को सजा देता है, समाज भी सामाजिक नियम कानूनों को तोडने वालों को दंडित करता है। इसके कारण लोगों के व्यवहार में निश्चितता एवं एकरूपता बनी रहती है।

सामाजिक नियंत्रण के साधन

सामाजिक नियंत्रण के साधनों को इसमें विभाजित किया जा सकता है:

(i) सामाजिक नियंत्रण के सकारात्मक साधन।

(ii) सामाजिक नियंत्रण के नकारात्मक साधन।

सामाजिक नियंत्रण के सकारात्मक साधन

मौद्रिक प्रोत्साहन, वित्तीय प्रोत्साहन जैसे इनाम, बोनस, पुरस्कार सकारात्मक सामाजिक नियंत्रण के महत्वपूर्ण साधन हैं।

सामाजिक नियंत्रण के नकारात्मक साधन

इसमें सजा, यातना, अभिव्यक्ति की पाबन्दी, दबाव आदि शामिल हैं। सामाजिक नियंत्रण के नकारात्मक प्रतीकात्मक साधन (एकमत पत्र, व्यंग्य, धमकी, नाम कॉलिंग और मौखिक पत्र आदि लिखना) लोगों की आलोचना करते हैं ।

सामाजिक नियंत्रण प्राथमिक और माध्यमिक भी हो सकता है। परिवार एक प्राथमिक समूह है और परिवार का मुखिया हर मामले में अन्य सदस्यों को नियंत्रित करता है और साथ ही प्रमुख भूमिका निभाता है। संयुक्त परिवार में आमतौर पर परिवार का सबसे बड़ा सदस्य पूरे परिवार को आर्थिक और सामाजिक रूप से नियंत्रित करता है। कुछ परिवारों / संयुक्त परिवारों में, हालाँकि, कमाने वाला सदस्य परिवार को नियंत्रित करता है।

संयुक्त परिवार में यदि एक या दो सदस्य बेरोजगार रहते हैं या अपनी आजीविका के लिए कुछ कमाने में सक्षम नहीं होते हैं, तो अन्य सदस्य उन्हें भोजन कराते हैं और उनकी देखभाल करते हैं। लेकिन, धीरे-धीरे, आधुनिक सभ्यता के कारण, संयुक्त परिवार प्रणाली विघटित हो रही है। जब परिवार का पूरा बोझ एक व्यक्ति पर पड़ता है, तो वह इतना अधिक चिंतित हो जाता है कि कभी-कभी यह परिवार की शांति को प्रभावित करता है।

पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार में, पिता माता सहित परिवार के अन्य सदस्यों को नियंत्रित करता है। लेकिन मैत्री संयुक्त परिवार में, माँ परिवार के सदस्यों को नियंत्रित करती है। भारत में, ज्यादातर पितृसत्तात्मक संयक्त परिवार और पितृसत्तात्मक परिवार देखे जाते हैं। लेकिन कुछ क्षेत्रों में, मातृसत्तात्मक संयुक्त परिवार भी देखे जाते हैं। एक संयुक्त परिवार संचालित करने के लिए किन परिस्थितियों में एक मातृसत्तात्मक संयुक्त परिवार लगता है?

जब माँ शिक्षित होती है और एक कमाऊ सदस्य भी, जब पिता कमाते नहीं हैं, जब महिलाओं को कानून द्वारा पैतृक संपत्ति का बड़ा हिस्सा पाने की अनुमति दी जाती है, जब महिलाओं को उनके अधिकारों की संपत्ति होती है, व्यक्तित्व पर हावी होती है और जब महिलाओं को उचित सम्मान दिया जाता है और समाज द्वारा जिम्मेदारी, एक संयुक्त परिवार संचालित होता है।

जब कोई विशेष सदस्य पूरे परिवार को नियंत्रित करता है, तो उसे नियंत्रित सदस्य के रूप में जाना जाता है। नियंत्रण करने वाले सदस्य को कौन नियंत्रित करता है? नियंत्रण करने वाला सदस्य पड़ोस और राज्य के समाज और कानूनों के नियंत्रण द्वारा नियंत्रित होता है।

भारत में, विशेष रूप से गांवों में, पड़ोस एक परिवार द्वारा पालन किए जाने वाले सामाजिक रीति-रिवाजों और परंपराओं को नियंत्रित करता है। विवाह समारोहों और सामाजिक समारोहों में, समाज के रीति-रिवाजों का पालन किया जाता है।

इस प्रकार, ऐसे मामलों में, समाज मानव व्यवहार और कार्यों को नियंत्रित करता है। एक संयुक्त परिवार का मुखिया अपने बच्चे को आस-पड़ोस और परिवार के सदस्यों द्वारा आलोचना किए जाने के डर से नहीं पीट सकता है, इसी तरह, जोड़े एक-दूसरे के साथ झगड़ा नहीं कर सकते क्योंकि पड़ोस पसंद नहीं कर सकता है और उनकी आलोचना कर सकता है।

एक पति अपनी पत्नी को पड़ोस और परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा अस्वीकार किए जाने के डर से और साथ ही कानून द्वारा दंडित होने के भय के लिए डांट और पीट नहीं सकता है। इस प्रकार, सामाजिक नियंत्रण एक पदानुक्रमित क्रम में काम करता है।

सामाजिक नियंत्रण के प्रकार

(i) माध्यमिक सामाजिक नियंत्रण

पड़ोस का नियंत्रण: नियंत्रक का व्यक्तित्व पड़ोस नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण है। सामाजिक संगठन भी यहाँ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गांवों में पड़ोस नियंत्रण अधिक बार पाया जाता है। लेकिन शहरों और कस्बों में एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी के लिए अजनबी है।

माध्यमिक नियंत्रण परंपरा, सांस्कृतिक पैटर्न और सामाजिक कार्यों द्वारा किया जाता है। ऐसे अवसरों में, जैसे विवाह, धागा समारोह, श्राद्ध समारोह, पड़ोस नियंत्रण।

(ii) प्राथमिक सामाजिक नियंत्रण

प्राथमिक सामाजिक नियंत्रण फिर से दो प्रकार के हो सकते हैं:

(1) तानाशाही

(2) लोकतांत्रिक।

1. तानाशाही सामाजिक नियंत्रण: परिवार में माता-पिता तानाशाही तरीकों से बच्चे को नियंत्रित करने की कोशिश कर सकते हैं, परिवार और पड़ोस के अन्य सदस्यों की भावना को ध्यान में रखे बिना। ऐसे परिवार सामाजिक विरोधी हो जाते हैं क्योंकि परिवार के मुखिया के प्रति अत्यधिक घृणा होती है। परिवार के सदस्यों के बीच अच्छा सहयोग नहीं है और समन्वित तरीके से काम करने पर काम कभी सफल नहीं होता।

2. लोकतांत्रिक सामाजिक नियंत्रण: यह पाया गया है कि एक परिवार में एक लोकतांत्रिक माहौल का कुल परिणाम हमेशा फायदेमंद होता है। वे सहकारी हैं और पारस्परिक संबंध एक तानाशाही परिवार में पाए जाने की तुलना में बहुत बेहतर है, जहां विभिन्न परिवार के सदस्यों के बीच संचार में अंतर एक सामान्य घटना है।

(iii) अन्य प्रकार के सामाजिक नियंत्रण

इस प्रकार के सामाजिक नियंत्रण के ऊपर और ऊपर तीन अन्य प्रकार के सामाजिक नियंत्रण हैं। वो हैं:

(१) धार्मिक

(२) आर्थिक

(३) राजनीतिक।

1. धार्मिक सामाजिक नियंत्रण: जब व्यक्ति को धार्मिक संगठनों द्वारा नियंत्रित किया जाता है, तो उसे धार्मिक दंड द्वारा नियंत्रित किया जाता है कि उसके बच्चों को जीवित रहते हुए या मृत्यु के बाद या तो मिलेगा। इस प्रकार, लोग स्वीकार्य तरीकों से व्यवहार करने और दैवीय सजा से बचने के लिए धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण और अच्छे मानवीय मूल्यों का विकास करते हैं। धार्मिक दंड से डरकर, वे किसी के साथ अन्याय या अवैध और अस्वीकार्य व्यवहार करने से बचते हैं।

उनका संपूर्ण व्यवहार पैटर्न धार्मिक और नैतिक मूल्यों द्वारा निर्धारित और नियंत्रित किया जाता है। जो व्यक्ति अपनी सारी संपत्ति पाने के लिए अपने रिश्तेदार की हत्या करना चाहता है, वह ईश्वरीय दंड के भय से ऐसा नहीं कर सकता। समाज के पुजारी और धार्मिक प्रमुख, बाइबल, कुरान, भगवद-गीता, रामायण और वेद आदि धार्मिक पुस्तकें कई तरह से लोगों को नियंत्रित करती हैं।

2. आर्थिक सामाजिक नियंत्रण: समकालीन समाज में, अन्य नियंत्रणों की तुलना में आर्थिक नियंत्रण का अधिक महत्व है।

आर्थिक नियंत्रण निम्नलिखित साधनों द्वारा संचालित किया जाता है:

(1) उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करके।

(2) आर्थिक साधनों द्वारा पूरे समाज या समुदाय को नियंत्रित करना।

एक उद्योगपति लाखों कर्मचारियों और अधिकारियों को नियंत्रित करता है। अगर कई ऐसे उद्योगपति एक साथ हाथ मिलाते हैं, तो वे पूरी दुनिया को नियंत्रित कर सकते हैं जैसा कि पूंजीवादी देशों में पाया जाता है। लेकिन भारत जैसे कृषि प्रधान देश में यह संभव नहीं है। भारत में, लोगों के पास उद्योग के अलावा अपनी आजीविका का नेतृत्व करने के विभिन्न साधन हैं।

इस प्रकार, आर्थिक अर्थ से उच्च वर्ग निम्न वर्ग को नियंत्रित करता है। अमीर लोगों और उद्योगपतियों के पास एक सामाजिक स्थिति है जिसके द्वारा वे अपने श्रमिकों और द्रव्यमान को नियंत्रित करते हैं। लेकिन, फिर भी, कोई भी इस बात से इनकार नहीं कर सकता है कि श्रमिक ट्रेड यूनियनों की मदद से फैक्ट्री मालिकों और उद्योगपतियों को नियंत्रित करने की कोशिश करते हैं। यह औद्योगिक और संगठनात्मक क्षेत्रों में एक रोजमर्रा की घटना बन गई है।

दो समूहों, नियोक्ताओं और कर्मचारियों, शासक और शासक वर्ग के बीच बहुत संघर्ष है। ये आर्थिक नियंत्रण के प्रत्यक्ष साध न हैं। अप्रत्यक्ष साधनों के माध्यम से आर्थिक नियंत्रण भी संभव है, जैसे कि एक राजनीतिक नेता, एक अखबार के मालिक या संपादक सचिव या एक संगठन के अध्यक्ष, या एक क्लब।

कभी-कभी, धार्मिक समाजों और संगठनों में शामिल लोगों को देश के अंदर और बाहर से आर्थिक मदद मिलती है। इससे उन्हें आर्थिक साधनों के माध्यम से समाज के सदस्यों को नियंत्रित करने में मदद मिलती है।

3. राजनीतिक सामाजिक नियंत्रण: राजनीतिक नियंत्रण धार्मिक और आर्थिक नियंत्रण के अलावा जनता पर जबरदस्त दबाव डालता है। अक्सर यह देखा जाता है कि राज्य या सरकार का नियंत्रण धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

अंतिम दो युद्धों के दौरान राज्य सामाजिक नियंत्रण का एक बहुत शक्तिशाली साधन बन गया और यहां तक कि राज्य द्वारा उद्योगपतियों की कई शाखाओं को नियंत्रित किया जाता है। राज्य बाहरी आक्रमण से अपने जीवन, घरेलू शांति और संपत्ति की रक्षा करके समाज के सदस्यों को नियंत्रित करता है। इसलिए, सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में हाल के दिनों में राजनीतिक नियंत्रण ने अधिक महत्व और प्रमुखता अर्जित की है।

व्यक्तित्व विकास पर कठोर सामाजिक नियंत्रण का प्रतिकूल प्रभाव

कठोर और अस्वास्थ्यकर सामाजिक नियंत्रण व्यक्तित्व और सामाजिक कुप्रथाओं को जन्म दे सकता है। मजबूत सामाजिक नियंत्रण के कारण, लोग अपनी सहज भावनाओं को दबा देते हैं और बाद में, गंभीर निराशा के कारण वे काफी आक्रामक हो जाते हैं। कठोर सामाजिक नियंत्रण के कारण सभ्य और शहरी समाजों में असामान्यता और कुप्रबंधन का प्रतिशत काफी अधिक है। भारत की तरह कठोर वर्ग और जाति व्यवस्था के कारण, निचले तबके के लोगों को अपनी राय, इच्छाओं और आकांक्षाओं की मुफ्त अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त सुविधा नहीं मिलती है। नतीजतन, वे भयानक निराशा और हताशा से पीड़ित होते हैं जो शत्रुता और आक्रामकता का कारण बनता है।

जब तक कठोर सामाजिक नियंत्रण है, तब तक एक सामाजिक और व्यक्तिगत कुप्रबंधन है। इसलिए, सामाजिक नियंत्रण कठोर नहीं बल्कि गतिशील और लचीला होना चाहिए और सामाजिक नियंत्रण के किसी भी नकारात्मक साधन पर आधारित नहीं होना चाहिए।

निष्कर्ष

सामाजिक नियंत्रण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से समाज, व्यक्ति व समूह के संबंधों, व्यवहारों एवं आचरणों को नियंत्रित, निर्देशित व व्यवस्थित करता है और उन्हें स्थापित मूल्यों, नियमों एवं कार्यप्रणालियों के अनुरूप अपने को ढालने के लिए प्रेरित या बाध्य करता है। वस्तुतः सामाजिक नियन्त्रण सामाजिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण भाग है। समाज की विभिन्न इकाइयों जैसे--- व्यक्ति, समूह, संस्था, आदि को यदि अपनी स्वेच्छा के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता दे दी जाये तो, समाज का संगठन समाप्त हो जायेगा और अव्यवस्था फैल जाएगी। इस स्थिति को टालने के लिए ही प्रत्येक समाज अपने सदस्यों, समितियों और संस्थाओं के व्यवहारों पर प्रतिबंध लगाता है।

सन्दर्भ

- भारतीय मनोविज्ञान (गूगल पुस्तक; लेखकद्वय - रामनाथ शर्मा एवं अर्चना शर्मा)
- मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास (The History And Systems Of Psychology) (गूगल पुस्तक; लेखक - अरुण कुमार सिंह)
- आधुनिक मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास (आनलाइन गूगल पुस्तक; लेखक - अरुण कुमार सिंह)
- उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान (Advanced Clinical Psychology) (आनलाइन गूगल पुस्तक; लेखक - अरुण कुमार सिंह)
- समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा (An Outline of social Psychology) (आनलाइन गूगल पुस्तक; लेखक - अरुण कुमार सिंह)
- मनोविज्ञान के जाँच एवं परीक्षण (गूगल पुस्तक; लेखक - राणाप्रताप सिन्हा)
- मनोविज्ञान - मन का विज्ञान या आत्मा का?
- मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियाँ (गूगल पुस्तक; लेखक - रामजी श्रीवास्तव)
- मनोविज्ञान के सिद्धान्त व प्रतिपादक/जनक
- समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा (गूगल पुस्तक; लेखक - अरुण कुमार)
- सामाजिक मनोविज्ञान (गूगल पुस्तक)
- कोर्नेलियस, आर. (1996). द साइंस ऑफ इमोशन . न्यू जर्सी: प्रेंटिस हॉल.
- फ्रेइटास-मैगल्हाएस, ए. (एड.). (2009). भावनात्मक अभिव्यक्ति: मस्तिष्क और चेहरा. पोर्टो: यूनिवर्सिटी फर्नान्डो पेसोआ प्रेस. ISBN 978-989-643-034-4.

- फ्रेइटास-मैगल्हाएस, ए. (2007).द साइकोलॉजी ऑफ इमोशंस: द एल्यूर ऑफ ह्युमन फेस . ओपोर्टो: यूनिवर्सिटी फर्नान्डो पेसोआ प्रेस।
- एकमैन, पी. (1999), "बेसिक इमोशंस Archived 26 जुलाई 2007 at WebCite", में: टी. डाल्गलीश और एम. पॉवर (एड्स.), हैन्डबुक ऑफ कॉग्निशन एण्ड इमोशन। जॉन विले एण्ड संस लिमिटेड, ससेक्स, UK।
- फ्रिज्डा, एन.एच. (1986): द इमोशंस, मैसन डेस साइंसेस डे आईश्होम और कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, Archived 16 मार्च 2005 at the वेबैक मशीन।
- होच्सचाइल्ड, ए.आर. (1983), प्रबंधित हृदय: मानव भावनाओं का व्यावसायीकरण. बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
- लेडौक्स, जे.ई. (1986), भावनाओं का तंत्रिकाजीवविज्ञान. जे. ई. लेडौक्स और डब्ल्यू. हर्स्ट (एड्स.) में अध्याय 15 माइंड एण्ड ब्रेन: डायलॉग्स इन कॉग्निटिव न्यूरोसाइंस, न्यूयॉर्क: कैम्ब्रिज।
- प्लुट्चिक, आर. (1980), भावनाओं का एक सामान्य मनोविकासमूलक सिद्धांत. आर. प्लुट्चिक एवं एच. केलरमैन (एड्स.) में, इमोशन: थ्योरी, रिसर्च, एण्ड इक्सपीरियंस: वॉल्यूम 1, थ्योरीज ऑफ इमोशन (पीपी. 3-33). न्यूयॉर्क: अकादमिक।
- स्चेरर, के. (2005), Archived 16 दिसम्बर 2008 at the वेबैक मशीन, भावनाएं क्या हैं और उन्हें कैसे मापा जा सकता है? Archived 16 दिसम्बर 2008 at the वेबैक मशीन, सोशल साइंस इनफॉर्मेशन खण्ड 44, संख्या 4: 695-729।
- सोलोमन, आर. (1993), द पैशन्स: इमोशंस एण्ड द मीनिंग ऑफ लाइफ, इंडियानापोलिस: हैकेट पब्लिशिंग।
- विकिबुक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान और संज्ञानात्मक तंत्रिका विज्ञान Archived 8 नवम्बर 2018 at the वेबैक मशीन।

भारत में अंतर्राष्ट्रीय चेतना का विकास

डॉ० राज भूषण उपाध्याय

नेट (यू0जी0सी0), पोस्ट डॉक्टरल फेलो (आई0सी0एच0आर0)

शोध आलेख का सार-तत्व

भारत में अन्तर्राष्ट्रीय चेतना के विकास की प्रकृति काफी जटिल रही है। भारत में इस चेतना के विकास की शुरूआत अंतराष्ट्रीय स्तर पर शुरू हुई संचेतना से ही मानी जाती है। भारत में इसके विकास की स्पष्ट झलक 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध से मानी जा सकती है। 1789 ई० की फ्रांसीसी क्रांति के परिणामस्वरूप विश्व को समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व का संदेश दिया। इस अन्तर्राष्ट्रीय संदेश का प्रभाव भारत के कई देशी रियासतों पर पड़ा। इसमें सर्वप्रमुख नाम आता है मैसूर का सुल्लान टीपु का।[1] टीपु सुल्तान में पूर्वी उदासीनता अथवा रूढ़िवाद का कण-मात्र भी प्रभाव नहीं था। यह सदैव नवीन प्रयोग एवं पश्चिमी ज्ञान के प्रति उद्यत रहता था। भारत में जब फ्रांसीसी क्रांति के फलस्वरूप कुछ फ्रांसीसी सैनिकों ने श्रीरंगपट्टम में जैकोबिन क्लब (Jacobin Club) बनाने का प्रस्ताव किया तो इसने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया और इस अवसर को मनाने के लिए 2,300 तोप के गोले तथा 500 हवाई राकेट चलाए। इतना ही नहीं इसने श्रीरंगपट्टम में ''स्वतंत्रता का वृक्ष'' भी लगाए, स्वयं जैकोबिन क्लब का सदस्य बना और अपने आपको ''नागरिक टीपु (Citizen Tipu) कहलाना पसंद किया। टीपु की इन सभी गतिविधियों में अंतर्राष्ट्रीय संचेतना का विकास स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

मूल शब्द: अंतर्राष्ट्रीय, जैकोबिन क्लब, संचेतना, पुनर्जागरण, सविभौम, बोल्शेविक, तानाशाही बंधुत्व, स्वतंत्रता।

प्रस्तावना

19वीं शताब्दी में भारत में जो सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन की शुरूआत हुई उसमें भी अंतर्राष्ट्रीय चेतना ही मुख्य प्रेरक का काम कर रही थी। इस समय राजा रामहोहन राय का ब्रह्म समाज, स्वामी दयानंद सरस्वती का आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द का रामकृष्ण मिशन, महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज और परमहंस मंडली, उत्तर प्रदेश में कायस्थ सभा, पंजाब में सरीन सभा, केरल में श्रीनारायण धर्म परिपालन सभा, मुसलमानों का अहमदिया और अलीगढ़ आंदोलन, सिखों का सिंह सभा, पारसियों का रहनुमाई मजदेयासन सभी ने प्रमुख रूप से इन सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों को नेतृत्व प्रदान किया।[2] इन सभी आन्दोलनों में एक समानता यही थी कि इन सबकी अंत: प्रेरणा मानवतावादी थी। यह मानवतावादी अवधारणा यूरोप में हुए पुनर्जागरण आंदोलन से प्रेरित थी। पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप ही यूरोप में धर्म-सुधार आंदोलन आया जिसनें धर्म में व्याप्त कई कुरीतियों को दूर किया। अब यूरोपीय समाज धर्म आधारित एवं धर्मनिर्देशित नहीं रहा। लोग पारलौकिक सुख को छोड़कर भौतिक सुख पर बल देने लगे। इसी विचारधारा का प्रभाव भारतीय सामाजिक, धार्मिक सुधार आंदोलन पर भी पड़ा। भारतीयों में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के प्रति रूझान बढ़ने लगा। समाज में फैली कई कुरीतियों जैसे जाति प्रथा, छुआछूत, नारी उत्पीड़न, धार्मिक बाह्याडम्बरों इत्यादि के खिलाफ लोग आवाज उठाने लगे।[3] धीरे-धीरे भारतीयों में इस प्रकार की संचेतना के विकास को बल मिलने लगा। यह संचेतना अंतर्राष्ट्रीय चेतना के विकास की भारतीय परिणति थी।

भारत में अंतर्राष्ट्रीय संचेतना के विकास के फलस्वरूप बौद्धिक मापदंड में तर्कबुद्धिवाद और धार्मिक सार्वभौमवाद का विकास हुआ। आंदोलन के प्रणेताओं ने युक्तियुक्त मीमांसा के आधार पर ही किसी परंपरा या व्यवस्था की सामाजिक सार्थक का मूल्यांकन किया। राजा राममोहन राय और अक्षय कुमार दत्त ने जिस तरह तर्को के आधार पर पुरानी मान्यताओं की काट पेश की, उसकी मिसाल कम ही मिलती है।[4] राममोहन राय के लिए 'सच' की एकमात्र कसौटी यह थी कि सच वह है जो दिखाई दे। अक्षय कुमार

दत्त का कहना था कि सारे प्राकृतिक और सामाजिक घटनाक्रम को केवल क्षुद्र भौतिक प्रक्रिया के द्वारा ही समझा और विश्लेषित किया जा सकता है। इस नजरिये के कारण सुधारवादियों ने न केवल परंपराओं का मूल्यांकन तार्किक दृष्टि से किया बल्कि तत्कालीन सामाजिक-धार्मिक मान्यताओं को भी इसी कसौटी पर परखा कि उनकी सामाजिक उपयोगिता क्या है। इस तरह उन्होंने आस्था के स्थान पर तर्क को स्थापित किया। इसी के फलस्वरूप ब्रह्म समाज ने वेदों के 'निर्दोष होने' की मान्यता का खंडन किया और अलीगढ़ आंदोलन ने इस बात का मद्दा बनाया कि आज जमाने की जरूरतों के मुताबिक इस्लाम की शिक्षाओं और व्यवस्थाओं में परिवर्तन किया जाना चाहिए।

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवी भारतीयों ने भारत में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति को लागू करने का प्रयास किया। इससे भारत में धार्मिक ग्रंथों के स्थान पर विज्ञान, तकनीक, गणित आदि से संबंधित विषयों के प्रति अभिरूचि बढ़ी। अंग्रेजी सरकार की ओर से भी 1813 ई० के चार्टर एक्ट द्वारा शिक्षा पर एक लाख रूपया सलाना खर्च की योजना बनाई गई। 1835 ई० में ब्रिटिश सरकार द्वारा अंग्रेजी भाषा को राजभाषा का स्थान दिया गया।[5] इससे शिक्षित भारतीय वर्ग की भाषा अंग्रेजी हो गई। इससे विभिन्न पश्चिमी साहित्य के अध्ययन की शुरूआत हुई। स्वतंत्रता, समानता, जनतंत्र और राष्ट्रीय चेतना जैसे पश्चिमी विचारों का भारत में तेजी से प्रसार होने लगा। बर्क, मिल, स्पेंसर, जोसफ, मेजिनी आदि विद्वानों के स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीयता के विचार भारतीयों को प्रोत्साहन प्रदान करने लगे। इस समय अनेक भारतीय विद्यार्थी अध्ययन हेतु यूरोप के विभिन्न देशों में गए और वहाँ स्वतंत्र वातावरण से प्रभावित हुए तथा भारत के लिए भी इसी प्रकार भी कल्पना की।

भारत में अंतर्राष्ट्रीय चेतना के विकास में 1904 ई० के रूस-जापान युद्ध का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस युद्ध में एक एशियाई राष्ट्र जापान ने एक विशाल यूरोपीय राष्ट्र रूस को बुरी तरह पराजित किया। इससे पहले यूरोपीय राष्ट्र अपराजेय समझे जाते थे। इसी कारण एशियाई लोगों में नैतिक साहस की कमी थी। रूस-जापान युद्ध में जापान की विजय संपूर्ण एशिया में नैतिक साहस की वृद्धि की। भारत भी इस प्रभाव से मुक्त न रह सका।[6] इसी समय 1905 ई० में अंग्रेजों ने बंगाल विभाजन किया। इस विभाजन के खिलाफ भारतीयों ने स्वदेशी आंदोलन चलाया। इस स्वदेशी आंदोलन में आंदोलनकारियों ने उन सभी उपायों का इस्तेमाल किया जो आगे चलकर असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन आदि में देखने को मिलता है। जैसे, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, शराब की दूकानों पर धरना देना, नारियों का आंदोलन में भाग लेना आदि। इस सभी गतिविधियों में अंतर्राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव प्रमुख रूप से पड़ा।

गदर आंदोलन एवं प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भी भारत में अंतर्राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। गदर आंदोलनकारी देश से बाहर गदर पार्टी का गठन कर भारत में बड़े पैमाने पर आंदोलन चलाने का प्रयास किये परंतु मुखबीरी के कारण यह आंदोलन असफल हो गया। फिर भी यह आंदोलन विदेशों में रह रहे विदेशी भारतीयों को भारत के प्रति संचेतना को व्यक्त करता है।[7] प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय सैनिकों को विश्व के विभिन्न देशों में भेजा गया। युद्ध के दौरान भारतीय सैनिकों ने यूरोपीयन सैनिकों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर युद्ध किया। इससे भारतीय सैनिकों में आत्मनिर्भरता की भावना का विकास हुआ। इन्हें आधुनिक यूरोपीयन युद्ध प्रणाली का ज्ञान प्राप्त हुआ।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भारत में वामपंथी विचारधारा की शुरूआत अंतर्राष्ट्रीय चेतना के परिणामस्वरूप ही हुई। 1917 ई० में रूस की साम्यवादी राज्यक्रांति की सफलता ने भारतीय उग्र राष्ट्रवादियों की भावना को समाजवाद की ओर मोड़ दिया। लेलिन के मार्गदर्शन और बोल्शेविको के नेतृत्व में रूसी मजदूर वर्ग, किसानों और मेहनतकशों की इस विजय ने तमाम दूसरे मल्कों की तरह भारत में जुझारू युवकों को भी प्रेरणा दी।[8] भारत के नवयुवक भी रूसी क्रांति से संबंधित किताबें पढ़ने लगे ताकि वे भी भारतीय जनता को राष्ट्रीय और सामाजिक मुक्ति के लिए क्रांतिकारी संघर्ष के मार्ग पर आगे ले जा सकें। इसी अंतर्राष्ट्रीय वामपंथी संचेतना से कई अन्य क्रांतिकारी तैयार हुए। आगे चलकर इस समाजवादी विचारधारा को पं० जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस, जयप्रकाश नारायण आदि नेताओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यक्रमों एवं उद्देश्यों में शामिल किया। इस प्रकार भारतीय वामपंथी विचारधारा एवं उसका आंदोलन मुख्यत: अंतराष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ जुड़ गया।

1915 ई० के पश्चात् गाँधीजी द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर संभालने एवं ब्रिटिश सरकार को पाश्चात्य तर्कों के आधार पर ही हराने का काम किया गया। चंपारण आंदोलन, अहमदाबाद मिल मालिकों एवं मजदूरों का प्रकरण, खेड़ा आंदोलन, रौलेट एक्ट आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन आदि में गाँधीजी ने नैतिकता एवं तर्क के आधार पर अपने आंदोलन की अनिवार्यता को सही ठहरया।[9] द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारत पूरी तरह से अंतर्राष्ट्रीय चेतना से परिचित हो चुका था। इस युद्ध

के दौरान विभिन्न देशों की सेनाएँ भारत में विद्यमान थी। इस समय भारत को इस युद्ध में तानाशाही शक्तियों के खिलाफ अंग्रेजों ने शामिल किया था। परंतु, भारतीय राजनीतिज्ञों का यह मानना था कि जब तक हमारी स्वतंत्रता सुनिश्चित नहीं हो जाती तब तक हम दूसरे की स्वतंत्रता की रक्षा या तानाशाही शक्तियों के खिलाफ कैसे लड़ सकते हैं? द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अमेरिका एवं चीन के दबाव के कारण इंगलैंड को अंततः भारत की स्वतंत्रता के बारे में सोचना पड़ा। इस प्रकार 15 अगस्त 1947 ई॰ को अंग्रेजों ने भारत को स्वतंत्र कर दिया।[10] भारत अंतर्राष्ट्रीय संगठन संयुक्त राष्ट्रसंघ का संस्थापक सदस्य बना।

अध्ययन उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक ''भारत में अंतराष्ट्रीय चेतना का विकास'' है। इस शीर्षक के आलोक में ही इसके अध्ययन का उद्देश्य है। इस शोध आलेख का उद्देश्य है भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान यहाँ अंतर्राष्ट्रीय चेतना का विकास कैसे हो रहा था। भारत में अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का कितना सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा था? फ्रांसीसी क्रांति से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध तक की घटना का भारतीय राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ रहा था? इस दौरान भारत के लोगों में अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं से कौन-सा सबक लिया उसको जानने का प्रयास किया गया है। भारत के सामाजिक धार्मिक बदलाओं में अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभाव था या नहीं, उसे रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

परिकल्पना

किसी भी शोध आलेख में परिकल्पना बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसी के आलोक में शोध कार्य सम्पन्न किया जाता है। इस शोध आलेख में निम्नलिखित परिकल्पना अपेक्षित है:-

1. अंतर्राष्ट्रीय चेतना का क्या अर्थ है?
2. भारत के प्ररिप्रेस्य में अंतर्राष्ट्रीय चेतना के कौन-कौन सकारात्मक आयाम हो सकते हैं?
3. आधुनिक भारतीय राजनीति में अंतर्राष्ट्रीय चेतना का क्या प्रभाव पड़ा?
4. आधुनिक भारतीय राजनीतिक में अंतर्राष्ट्रीय चेतना का विकास कितना प्रासांगिक है?
5. आज के परिप्रेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय चेतना कितना महत्व रखता है?

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत शोध आलेख में कई पुस्तकों का अवलोकन किया गया है। बी॰ एल॰ ग्रोवर एवं यशपाल की पुस्तक ''आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन 1970 ई॰ से वर्त्तमान समय तक'' जो एस॰ चंद एण्ड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2003, बीसवाँ संस्करण से प्रकाशित है। इस पुस्तक में मुगल सत्ता के पतन से लेकर भारत के स्वतंत्रता तक की विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। इसमें यूरोपीय कंपनियों का भारत आगमन एवं धीरे-धीरे भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने को सूक्ष्मता से दर्शाया गया है। अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का भारतीय राजनीति में कितना सकारात्मक प्रभाव पड़ा इसका बारीकी से विश्लेषण किया गया है। वस्तुतः यह पुस्तक आधुनिक भारत के इतिहास को समझने का एक महत्वपूर्ण श्रोत है।

बिपिन चंद की पुस्तक ''भारत का स्वतंत्रता संघर्ष'' जो हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1995 से प्रकाशित है। इस पुस्तक में 1857 के विद्रोह से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में मुख्य रूप से किसी भी घटना का वर्णन विश्लेषणात्मक रूप में शोधपरक ढंग से किया गया है। प्रथम विश्वयुद्ध तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारत में अंतर्राष्ट्रीय चेतना कैसे विकसित हुई का काफी सूक्ष्मता से अवलोकन किया गया है। जापान द्वारा रूस को पराजित करने पर भारतीय जनमानस पर इसका क्या प्रभाव पड़ा इसका शोधपरक ढंग से विवरण दिया गया है। फ्रांसीसी क्रांति के पश्चात् टीपू सुलतान द्वारा स्वतंत्रता का वृक्ष लगाना, उसका जैकोबिन क्लब का सदस्य बनना, राजा राम मोहन राय के द्वारा प्रिती भोज देना अंतर्राष्ट्रीय चेतना की ओर ही इंगित करता है।

रजनी माप दत्त की पुस्तक ''आज का भारत'' अनुवादक रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी दिल्ली 2004 से काफी तथ्यपरक जानकारी प्राप्त होती है। इस पुस्तक में हिंदुस्तान क्या है और क्या बन सकता है पर विस्तृत चर्चा की गई है। प्राचीन और मध्यकाल में भारत सोने की चिड़िया कहा जाता था परंतु अंग्रेजो के आगमन के बाद भारत में अकाल, भूखमरी, बेरोजगारी, गरीबी का

सिलसिला शुरू हुआ। भारत के इस दूर्दशा में अंग्रेजो की क्या भूमिका रही उसका तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं से भारत कितना प्रभावित हुआ उसका सूक्ष्मता से अवलोकन किया गया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आंदोलन के शुरूआती चरण से ही भारत अंतर्राष्ट्रीय चेतना से रूबरू होते रहा। भौगोलिक खोज, पुर्नजागरण, धर्मसुधार आंदोलन, फ्रांसीसी क्रांति जैसे अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का भारतीय राजनीति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। मैसुर के सुल्तान द्वारा फ्रांसीसी क्रांति के बाद श्रीरंगपट्म में 'स्वतंत्रता का वृक्ष' लगाना तथा ' जैकोबिन क्लब' का सदस्य बनना इसी का संकेत देते है। इसी तरह 19वीं॰ सदी के भारतीय सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन की प्रेरणा भी अंतराष्ट्रीय चेतना का ही परिचायक है। जापान द्वारा रूस को हराने से भारतीयों में भी यह भावना आई कि यूरोपीय देश अपराजेय नहीं है। इसी प्रकार प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय उद्योगों का पनपना यह इंगित करता है कि भारत में अंतर्राष्ट्रीय चेतना का विकास हो चुका था। भारतीय अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं से सकारात्मक रूप से प्रभावित हो रहे थे। स्वतंत्रता के बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत की अहम भूमिका रही है। यह इस बात का प्रमाण है कि भारत हमेशा से वसुधैव कुटुंबकम् की नीति पर चलता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन (1707 ई॰ से वर्तमान समय तक), एस॰ चंद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, 2003, पृ॰ 102
2. चंद्र, बिपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1995, पृ॰ 47
3. चंद्र, बिपिन, वही, पृ॰ 47-48
4. चंद्र, बिपिन, वही, पृ॰ 49
5. शर्मा, एल॰ पी॰, आधुनिक भारत, आगरा 1999, पृ॰ 432
6. शर्मा, एल॰ पी॰, वही, पृ॰ 434
7. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल, वही, पृ॰ 313
8. बर्धन, ए॰ बी॰, 80वाँ वर्षगाँठ, सी॰ पी॰ आई॰, नई दिल्ली 2005, पृ॰ 58
9. चंद्र बिपिन, वही, पृ॰ 123
10. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल, वही, पृ॰ 417

शहरी जीवन की गुणवत्ता विशेषतः पटना के सन्दर्भ में

डॉ० विजय मिस्त्री

एम०ए०, पीएच०डी० (भूगोल), मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

शोध आलेख का सार

समसामयिक विश्व में रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ, यातायात की सुविधा तथा भौतिक सुविधाओं की अधिक उपलब्धता आदि के कारण नगरीकरण व शहरीकरण को अप्रत्याशित रूप में बढ़ावा मिला है। लोगों का गाँवों की ओर से शहरों की ओर प्रवर्जन में भी बढ़ोतरी हुई है, परन्तु शहरी जीवन की गुणवत्ता को लेकर आज प्रश्नचिन्ह खड़ा किया जा रहा है। आज दुनिया के लगभग सभी देशों में शहरी जीवन के सामने पर्यावरण विषयक समस्याएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। आज शहरी जीवन प्रदूषण की समस्या से बुरी तरह जुझ रहा है। सम्पूर्ण विश्व में मानवीय परिस्थिति में पर्यावरणीय समस्याएँ दृष्टिगोचर हो रही है तथा यह बात बिहार की राजधानी पटना के सन्दर्भ में भी लागू होती है। पटना बिहार राज्य की राजधानी है, जो गंगा के दक्षिणी छोर पर बसा हुआ है। दूसरी ओर पटना के उत्तरी ओर पुनपुन नदी है तथा सोन नदी से भी घिरा हुआ है। बिहार राज्य के सभी जिले से लोगों का आगमन पटना में होता है तथा राज्य की राजधानी होने के कारण भी लोगों का झुकाव इनकी ओर रहा है। पटना में अधिवास के मूल में राज्य की राजधानी तथा लोगों की बेहतर जीवन की अपेक्षा है। यहाँ रोजगार की कोई विशेष संभावना नहीं रही है तथा इसे औद्योगिक एवं परिवहन नगर भी नहीं कहा जा सकता है। चुँकि शैक्षणिक सुविधाएँ तुलनात्मक रूप में बिहार के जिलों से बेहतर रही है, इसलिए इस शहर में लोगों का लगातार आव्रजन होता रहा है। इस शहर का नियोजित विकास नहीं हुआ है, इसलिए यातायात की समस्या, जल समस्या तथा अन्य प्रकार की समस्याएँ भी देखने को मिलती है। इस शहर में जीवन की गुणवत्ता को लेकर लगातार प्रश्न उठाये जाते रहे हैं। इतना ही नहीं, शहरी जीवन की अनिवार्य सुविधाएँ भी बहुत परेशानी से पटना में उपस्थित हो रही है। मेरे शोध आलेख में शहरी जीवन की अपेक्षाएँ तथा पटना की भौगोलिक व सामाजिक स्थिति का सविस्तार अवलोकन अपेक्षित है।

मूल शब्दः पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन, शहरीकरण, आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति, यातायात की सुगमता, नियोजित विकास सम्पोषण, उच्च जीवन की प्रत्याशा आदि।

प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व में शहरी आवास और मानव जीवन के सन्दर्भ में एवं सामान्य सी बात दृष्टिगोचर हो रही है कि लोगों के जीवन में एक तरफ अनेक समस्याएँ आ रही है, वही दूसरी ओर प्रदूषण की समस्याएँ भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि पूर्व की तुलना में आज शहरी नगर की ओर लोगों की झुकाव में जबर्दस्त कमी आ रही है। अब लोग अपनी स्वास्थ्य व पर्यावरण की आवश्यकताओं को परित्याग कर शहर की ओर जा रहे हैं तथा नगरीय अधिवास में वृद्धि के मूल में भी रोजगार की आवश्यकता ही महत्वपूर्ण है। शहरी आवास में उच्च गुणवत्तायुक्त सुविधाओं की सरल आपूर्ति की जाती है, हालांकि जनसंख्या घनत्व अधिक होने के कारण विश्व के विकसित देशों के शहरों में भी लोगों को मानक गुणवत्तायुक्त सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पा रही है।[1] मनुष्य के आवास के रूप में शहरी वातावरण विषय घटक का एक जटिल रूप बन गया है। अब वनस्पति बायोटेक्नोलॉजिस्ट की तरह बायोटिक प्रक्रिया से शहरी परिवहन नेटवर्क जैसी सामाजिक प्रक्रियाओं द्वारा आबादी और वस्तुओं-सेवाओं के वितरण जैसी सामाजिक प्रक्रियाएँ भौतिक प्रक्रिया द्वारा पसंद किये गए घटक बन गये हैं। इस प्रकार शहरी आवास की गुणवत्ता के लिए दो प्रकार

की सामान्य जानकारी है: प्राकृतिक और सामाजिक।[2] शहरी पर्यावरण की प्राकृतिक वातावरण की कमी के पीछे अथवा पर्यावरण के प्रदूषण के पीछे लोगों के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अथवा दुरूपयोग को बताया जा सकता है। समाज में यह भी देखने को मिलता है कि लोगों विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों तथा प्राकृतिक वातावरण का दुरूपयोग करते हैं। यह सामाजिक और प्राकृतिक आचरण के पीछे किसी न किसी रूप में पर्यावरण का क्षय ही दिखता है, जिससे बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के नाम पर शहरी जीवन गुणवत्तापूर्ण जीवन से लगातार दूर होता जा रहा है।[3] पर्यावरण के विनाश के पीछे का मूल कारण यह है कि शहरी जीवन में अपनी आवश्यकताओं को प्रमुखता प्रदान की जा रही है तथा पर्यावरण की गुणवत्ता के प्रति ध्यान नहीं दिया जा रहा है। सामान्य लोग ही नहीं, शहरी लोग प्राकृतिक संसाधनों तथा ऊर्जा का मनमाना दोहन कर रहे हैं, लोग अपनी वर्तमान भौतिक सुख-सुविधाओं को महत्व दे रहे है, उनको समाज के व्यापक हित हेतु पर्यावरण के गिरते स्तर की कोई चिन्ता नहीं है। ऊर्जा के अनावश्यक प्रयोग से भी शहरी आवास और जीवन गुणवत्तापूर्ण सुविधाओं से लगातार दूर होता चला जा रहा है।[4]

डेविस के अनुसार, तत्वों के अन्तर्गत इन भौतिक तत्वों को सम्मिलित किया जा सकता है-भूमि का धरातल, पर्वत, पठार व मैदान, भूमि के प्राकृतिक संसाधन (खनिज एवं ऊर्जा संसाधन), मिट्टी की प्राकृतिक-उपजाऊ शुष्क आदि, भूमि की स्थिति, द्वितीय, तटीय, भीतरी, महाद्वीपीय आदि, अन्य स्थानों से सम्बन्ध अथवा तुलनात्मक अवस्थिति भूमि की जलवायु (सम्पूर्ण तत्वों का बहुरूपी प्रभाव), जल-स्थल का वितरण, वनस्पति एवं प्राणी जगत आदि उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार तत्वों के अन्तर्गत ऐसे तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है जो कि शक्तियों और प्रक्रियाओं के फलस्वरूप धरातल पर उत्पन्न होते हैं। इन तत्वों में (i) भाववाचक तत्व: जैसे-क्षेत्रीय विस्तार और आकार, प्रादेशिक स्वरूप और आकार, प्राकृतिक स्थिति, भौगोलिक स्थिति और ज्यामितीय स्थिति; (ii) भौतिक तत्व जल, अधोभौमिक जल, महासागर और तटीय क्षेत्रा और (iii) जैविक तत्व: जैसे-प्राकृतिक वनस्पति, जीव-जन्तु और अणु-जीव।[5]

उपर्युक्त सभी तत्व मिलकर मनुष्य के भौतिक वातावरण का निर्माण करते हैं। ये सभी मनुष्य के जीवन पर अनेक प्रकार से प्रभाव डालते रहते हैं। इन्हें प्राथमिक, प्राकृतिक या भौतिक वातावरण भी कहा जाता है। इन सबका अस्तित्व मनुष्यों के कार्यो से स्वतन्त्र है, क्योंकि इनको मनुष्य ने नहीं बनाया है। यह तो प्रकृति की मानव को अमूल्य देन है। प्राथमिक या भौतिक वातावरण में मनुष्य प्रविधि या तकनीकी की सहायता से संशोधन करता है और उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बना लेता है। जिस प्रविधि या तकनीक का वह उपयोग करता है, उसकी खोज या आविष्कार भी मानव ने ही किया है। उदाहरण के लिए, वह भूमि को जोतकर खेती करता है, जंगलों को साफ करता है, सड़के, नहरें, रेलमार्ग आदि बनाता है, पर्वतों को काटकर सुरंगे आदि निकालता है, नयी बस्तियाँ बसाता है। इस प्रकार वह प्राकृतिक शक्तियों एवं संसाधनों का विभिन्न प्रकार से शोषण (दोहन) कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन सबके फलस्वरूप वह एक नये वातावरण को जन्म देता है। इसे ही मानव-निर्मित अथवा प्राविधिक या सांस्कृतिक वातावरण कहते हैं। इन्हें मानव की पार्थिव संस्कृति भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत औजार, गहने, अधिवास, परिवहन और संचार के साधन (वायुयान, रेल, मोटर, रेडियो, तार आदि), मशीन आदि सम्मिलित किये जाते हैं। यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि इन पार्थिव पदार्थो का उपयोग एवं महत्व सिर्फ मानव की इन्हें उपयोग करने की क्षमता से ही जुड़ा है अन्यथा ऐसी भौतिक संस्कृति का कोई महत्व ही नहीं है। इसी कारण शारीरिक एवं मानसिक योग्यता का विकास एवं दर्शन का विज्ञान-ये भी मानव संस्कृति के ही भाग हैं। ये मानव की संस्कृति विरासत हैं। संस्कृति के इस भाग को अपार्थिव संस्कृति कहते हैं। इस मानव-निर्मित वातावरण में भी शक्तियाँ, प्रक्रियाएँ एवं तत्व कार्य करते हैं। सांस्कृतिक वातावरण मानव का नियामक माना जाता है तथा सामाजिक प्रक्रियाओं का निदेशक है। इसमें शक्तियों के अन्तर्गत मानव स्वयं एक भौगोलिक घटक के रूप में, क्षेत्र की जनसंख्या, उसका वितरण एवं घनत्व, स्त्री-पुरुषों का अनुपात, आयु, वर्ग, प्रजातीय रचना, शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानव क्षमता और जनसंख्या में वृद्धि और उसके कारण सम्मिलित किये जाते हैं। सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में वे कार्य सम्मिलित किये जाते हैं जिनके द्वारा मानव और मानव समूह वातावरण से सामंजस्य स्थापित करते है; जैसे-पोषण, समूहीकरण, पुन: उत्पादन, प्रभुत्व स्थापना, प्रवास, पृथक्करण, अनुकूलन, विशिष्टीकरण और अनुक्रमण।

भूमि और उसका विभाजन, भूमि के विभिन्न दृश्य, नहरें, फसलें, पशुपालन, ग्रामीण बस्तियाँ एवं कृषि सम्बन्धी व्यवस्थाएँ, नगरीय एवं अर्द्ध-नगरीय संस्थाएँ, खदानें, कारखाने, डॉक्स, जैटी और बन्दरगाहों पर लगायी जाने वाली अन्य सुविधाएँ, सड़के एवं रेल मार्गों के प्रतिरूप, संरक्षित स्थान (वन, उद्यान, शमशान, कब्रिस्तान, मनोरंजन के स्थल) आवासीय एवं अव्यहत बेकार भूमि-क्षेत्र, सीमाएँ, चुंगी, सैन्य किले आदि।[6]

मानव-निर्मित वातावरण के दो विशेष अंग हैं-(1) पार्थिव संस्कृति में उन सभ औजारों का समावेश किया जाता है जिन्हें मनुष्य अपने जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं; जैसे-भोजन, वस्त्र और मकान की पूर्ति के लिए करता है। (2) अपार्थिव संस्कृति में सांस्कृतिक वातावरण के विभिन्न रूप सम्मिलित किये जाते हैं। इनके मानव समूह या समाज की आदतों (जनरूढ़ियों, जनरीतियों), आस्थाओं और अभ्यासों का समावेश होता है जिनका विकास मनुष्यों के सामूहिक रूप और कार्य करने से होता है। इस प्रकार भाषा, कलाएँ, पुराण और वैज्ञानिक ज्ञान, धार्मिक ज्ञान, धार्मिक अभ्यास, धर्म, परिवार और सामाजिक अवस्था, सम्पत्ति, सरकारें, आर्थिक रचनाएँ और संस्थाएँ, क्रीड़ा, विशिष्ट संस्कार, पर्व, प्रथाएँ और इसी प्रकार के प्रतिष्ठित व्यवहारों के उपकरण, जो मानव समाज में विकसित होते हैं, अपार्थिव संस्कृति के भाग है।

पार्थिव और अपार्थिव संस्कृति का उपयोग प्राय: साथ-साथ होता है। दोनों ही मनुष्य की अनेक आवश्यकताओं और समस्याओं का समाधान करने के प्रयास की उपज है। इस भौतिक वातावरण के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रकृति के साम्राज्य की वे सभी शक्तियाँ, क्रियाएँ तथा तत्व सम्मिलित होते हैं जिनका प्रभाव मानव, उसकी क्रियाओं, भोजन, वस्त्र तथा आदतों पर पड़ता है। दूसरी ओर, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक वातावरण के अन्तर्गत मानव को संचालित करने वाली सामाजिक क्रियाओं को निर्देशित करने वाले तत्व सम्मिलित किये जाते हैं जो उसके रहन-सहन को सुचारू बना देते हैं।

वातावरण के साधारणत: दो स्वरूप होते हैं-अनुकूल और प्रतिकूल। भिन्न-भिन्न वातावरण भिन्न-भिन्न प्राणियों के लिए अनुकूल और प्रतिकूल हुआ करते है। कभी-कभी एक ही वातावरण किसी प्राणी या समूह विशेष के लिए एक परिस्थिति में अनुकूल हो सकता है, वही दूसरी स्थिति में प्रतिकूल हो जाता है। अनुकूल वातावरण उसे कहते हैं जो किसी जीवधारी के अस्तित्व की रक्षा और विकास में बाधक होता है, उसे प्रतिकूल वातावरण कहा जाता है। जहाँ अनुकूल वातावरण मिलता है, वहाँ जीवधारी को अपने विकास एवं वृद्धि में कोई कठिनाई नहीं पड़ती किन्तु जब किसी प्रतिकूल वातावरण में उसे रहना पड़ता है तो वह उसे अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करता है।

पर्यावरण के सभी तत्वों में जलवायु का प्रभाव सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जो मानव को सीधा प्रभावित करता है। जलवायु का प्रभाव प्राकृतिक वनस्पति और मिट्टियों द्वारा मनुष्य पर पड़ता है। जलवायु का प्रभाव मनुष्य के कद, शरीर की बनावट, रंग आदि पर पड़ता है। इसी प्रकार वातावरण मनुष्य की शारीरिक शक्ति को भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है जिससे उसके शरीर का एक भाग दूसरे की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ और बलिष्ठ बन जाता है। कुमारी सैम्पल ने उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया है कि पर्वतीय भागों में मनुष्य के पैर बलिष्ठ और हाथ कम बलिष्ठ होते हैं, जबकि नदियों वाले मैदानी भागों में जहाँ उसे हाथ से नाव चलानी पड़ती है, हाथ बलिष्ठ और पैर कम बलिष्ठ होते हैं। प्रतिकूल वातावरण में रहने पर आँखों और त्वचा पर भी प्रभाव पड़ता है। तुर्कमान लोगों की आँखे छोटी और पलकें भारी होती हैं क्योंकि वे हमेशा मरूस्थलीय भागों में रहते हैं। इसी प्रकार कुमारी सैम्पल ने बताया कि मानव के क्रिया-कलापों पर भौतिक वातावरण के सभी तत्वों (कारकों) का प्रभाव बहुरूपी एवं निर्णायक रहता है। इस प्रकार के प्रभाव मनुष्यों के धर्म, उनके साहित्य, भाषा, आचार-विचार में दिखाई देते हैं। मनुष्य के धार्मिक विचार उसके वातावरण की ही उपजें हैं। भाषा पर भी वातावरण का अमिट प्रभाव पड़ता है। किसी स्थान की भौगोलिक अवस्थाएँ ही इस बात का निर्धाण करती हैं कि वहाँ आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति सरलता से होगी अथवा कठिनाई से, वहाँ किस प्रकार के उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रभाव ही मानव समाज में आकार को निर्धारित करते हैं। जिन क्षेत्रों, द्वीपों या पर्वतीय भागों में आर्थिक संसाधन कम मात्रा में पाये जाते हैं, वहाँ मनुष्य भी छोटे समुदायों में पाये जाते हैं क्योंकि उन क्षेत्रों में उनके लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिलता।

मानव समूह को प्रभावित करने वाले ये तत्व वास्तव में अधिक प्रभावी होते हैं। पहाड़ों, मरूस्थलों, दलदलों, समुद्रों आदि का प्रभाव मानव के प्रवास पर पड़ता है। यह सभी उनके मार्ग का निर्धारिण करते हैं, सहयोग अथवा असहयोग देते हैं। नदियों द्वारा मार्गो को सुलभ करना तथा यातायात के साधनों के रूप में सहयोग प्रदान करना जिससे अनेक मानव जातियों ने दूर-दूर जाकर अपनी बस्तियाँ स्थापित कीं। पर्वत अवरोध उत्पन्न करते हैं। भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वत ने मध्य एशिया से सम्पर्क को हमेशा से ही रोकने का प्रयास किया है।

कुमारी सैम्पल, प्रो. रेटजल एवं अन्य नियतिवादी विद्वानों ने जो कुछ कहा, उसका सार यह है कि अल्प-विकसित एवं जनजाति समाज में भौतिक वातावरण अपनाते हैं जो पूरी तरह शासक बना रहता है। ऐसे मानव समूह वही क्रिया-कलाप, उद्यम एवं व्यवसाय अपनाते हैं जो कि वहाँ की प्राकृतिक दशा की विशेष व्यवस्था में सम्भव है। ध्रुवीय प्रदेश का मानव समाज मात्र शिकार करके अपना

पेट पालता है। चारागाह प्रदेशों में घुमन्तू पशुपालन ही महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा है। इसी भाँति उष्ण मरुस्थलीय जैसे सीमित संसाधनों वाले प्रदेशों में मनुष्य या समाज को ऐसे सीमित साधनों में ही संघर्षपूर्ण जीवन जीना पड़ता है। इस प्रकार मानव भौतिक वातावरण की प्रतिकूलता में सीमित समूहों में ही रहकर विशेष प्रकार से सामंजस्य स्थापित करने का निरन्तर प्रयास करता रहा है।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अनेक प्रकार से मानवीय तकनीकी, उद्यम एवं सामंजस्य स्थापित करने के सबल तौर-तरीके विकसित होते जाने से अब प्रतिकूल प्रदेशों में भी स्थिति पहले से अनुकूल बनने लगी है किन्तु बाढ़, सूखा व अकाल मौत की छाया यह सभी प्रतिकूल प्रदेशों में आज भी अभिशाप हैं। इसके साथ-साथ मानव ने वनों को निर्दयतापूर्वक काटकर प्राकृतिक सन्तुलन को बिना सोचे-समझे नष्ट करके अपनी कठिनाइयों को बढ़ाया है। प्रकृति मानव पर अब बाढ़, सूखा, रोग, प्रदूषण, नये-नये प्रतिकूल कीटाणु व उनके जहरीले प्रभाव से (अब विकसित समाज पर भी) अपना स्पष्ट प्रभाव दिखा रही है। इनसे छुटकारा पाने के लिए मानव को भी वातावरण का मित्र बनना व उससे सार्थक रूप से सामंजस्य करना आवश्यक है।

मानव समाज अपने भौतिक वातावरण से नागरिक तथा राजनीतिक सामंजस्य भी स्थापित करता है। इस क्रिया के अन्तर्गत स्थानीय, प्रान्तीय या राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, विदेशी व सैन्य नीतियाँ तथा अन्र्राष्ट्रीय कानून मानने आदि की व्यवस्था सम्मिलित होती है।

इस प्रकार मानव समूह या समाज विश्व के विभिन्न प्रदेशों व देशों में प्रकृति के साथ सामंजस्य एवं सहयोग द्वारा प्रकृति के सहवास से अनेक प्रकार की क्रिया एवं प्रतिक्रियाएँ करता रहा है। विश्व के सभी भागों में न तो प्रकृति ही समान रूप से अनुकूल या प्रतिकूल है और न ही मानव समाज भी समान रूप से विकसित या आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग की क्षमता रखता है। इसी कारण विश्व के जिन भागों में मानव समाज पूर्णत: भौतिक वातावरण पर आज भी निर्भर रहा है। इसी कारण विश्व के जिन भागों में मानव समाज पूर्णत: भौतिक वातावरण पर आज भी निर्भर रहा है या रहता रहा है, ऐसे समाज को आदिम या प्रारम्भिक अथवा अल्प-विकसित समाज कहा जाता है किन्तु जिन मानव समुदायों ने प्रकृति या भौतिक वातावरण की प्रतिकूलताओं से भी संघर्ष करके अथवा उपलब्ध अनुकूल संसाधनों का तेजी से उपयोग किया, उसे आज विकसित समाज कहा जाता है किन्तु दुर्भाग्य से विकास एवं अभिनव प्रौद्योगिकी के नाम से पिछले 6-7 दशकों से मानव ने जिस प्रकार से प्रकृति के साथ क्रूर बनकर व्यवहार किया है, उसी के परिणामस्वरूप प्रकृति ने भी अपना ताण्डव रूप दिखाना शुरू कर दिया है। अत: मानव के लिए यह आवश्यक है कि वह प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तो करे पर उनमें स्थायित्व एवं प्रकृति से सहयोग का विचार सदैव रखकर वातावरण को मित्र माने।

पटना बिहार राज्य की राजधानी एवं भारत के गौरवयुक्त शहरों में से एक है, जो प्राचीन काल से आज तक आबाद है। इस शहर को ऐतिहासिक इमारतों के लिए भी जाना जाता है। चूँकि पटना से वैशाली, राजगीर, नालंदा, बोधगया और पावापुरी के लिए मार्ग जाता है, इसलिए यह शहर बौद्ध और जैन धर्मालम्बियों के लिए गेटवे के रूप में भी जाना जाता है।[9] पटना गंगा के दक्षिणी तथा पुनपुन के उत्तरी तट पर स्थित है। गंगा नदी नगर के साथ लम्बी तट रेखा बनाती है। पटना का विस्तार उत्तर-दक्षिण की अपेक्षा पूर्व-पश्चिम में अधिक हुआ है। नगर तीन ओर से गंगा, सोन तथा पुनपुन नदी, नदियों से घिरा हुआ है। बिहार की राजधानी पटना है तथा यह 38 वर्गमील में विस्तृत है। नगरीय स्थिति 100 वर्गमील है। वर्ष 2011 की जनसंख्या राजधानी में 1648222 तथा महानगर में 2046652 है।[10] बिहार के अन्य भागों की तरह पटना में भी गर्मी का तापमान उच्च रहता है। गृष्म ऋतु में सीधा सूर्यातप तथा उष्ण तरंगों के कारण असहय स्थिति हो जाती है। गृष्म ऋतु अप्रैल से शुरू होकर जून-जुलाई के महीने में चरम पर होती है। तापमान 46^0 तक पहुँच जाता है। जुलाई के मध्य में मानसून आ जाता है। यहाँ कई संस्कृति के लोग रहते हैं।[11] बिहार की राजधानी पटना है तथा पटना बिहार राज्य का प्रमुख शहर भी है। पटना में पूरे राज्य से लोग अधिवास करते है, इसलिए यहाँ की संस्कृति मिश्रित है तथा जनसंख्या बहुत अधिक है। पटना शहर का नियोजित विकास नहीं हुआ है। इसलिए बरसात के दिनों में जलजमाव की समस्या दृष्टिगोचर होती है। पटना में यातायात की समस्या भी है। यहाँ का रोड संकीर्ण है तथा लोगों के द्वारा रोड पर अतिक्रमण भी किया जाता है। पटना में गुणवत्तापूर्ण शहरी जीवन के सामने कई समस्याएँ जैसे-जल-जमाव, संकीर्ण रास्ते, यातायात नियमों का अनुपालन नहीं होना, लोगों में वाहन पार्किंग के नियमों का अनदेखी, नगर निगम के कार्यो में शिथिलता, प्रशासनिक सक्रियता की कमी तथा रोजगार का अभाव इत्यादि। शहरी जीवन के लिए गुणवतापूर्ण प्रबन्धन की आवश्यकताएँ पटना के सन्दर्भ में भी लागू होती है। शहरी जीवन में गुणवता हेतु स्वास्थ्य, पर्यावरण, यातायात, प्रशासन, जल-आपूर्ति, जल-निकासी आदि की सही व्यवस्था एवं प्रबन्धन होनी चाहिए। पटना में भी नियोजित नगर-व्यवस्था को स्थापित करने की आवश्यकता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य शहरी जीवन की गुणवता हेतु मानक अनिवार्यताओं की जानकारी प्राप्त करना है। इतना ही नहीं, इस आलेख का उद्देश्य पटना शहर के लोगों के जीवन की समस्याओं की चर्चा करते हुए गुणवतापूर्ण शहरी जीवन के संबंध में मानक आवश्यकताओं की जानकारी भी उपलब्ध कराना है।

परिकल्पना

शोध आलेख का महत्वपूर्ण इसकी परिकल्पना से भी स्पष्ट होती है। प्रस्तुत आलेख में इस बात की परिकल्पना की जाती है कि बिहार की राजधानी पटना को कैसे उच्च शहर तथा मानक गुणवतापूर्ण भौतिक सुविधाओं से युक्त किया जा सकता है। पटना भविष्य में एक आदर्श शहर के रूप में स्थापित होगा।

साहित्य सर्वेक्षण

शोध अध्ययन के अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मुख्यत: प्राथमिक आँकड़ों का सहारा लिया गया है तथा कुछ द्वितीयक आँकड़ों का भी उपयोग किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण स्वावलोकन किया गया है। साहित्य सर्वेक्षण के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों का नाम प्रमुख है:

1. भारत का भूगोल, डॉ० चतुर्भज मामोरिया व जे० पी० मिश्रा, साहित्य भवन, आगरा।
2. मानवी व आर्थिक भूगोल, सिद्धार्थ सोनवर्ण, अथर्व पब्लिकेशन, महाराष्ट्र।
3. भारत लोग और अर्थव्यवस्था, NCERT
4. पर्यावरण भूगोल, डॉ० रतन जोशी, साहित्य भवन, आगरा
5. इंडिया, ए० कम्प्रीहैन्सीव ज्योग्राफी, डी० आर० खल्लर, इंडियामार्ट

अध्ययन की पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख की पद्धति ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा वस्तु-विश्लेषणात्मक है।

निष्कर्ष

सम्पूर्ण विश्व में आज शहरीकरण का तेजी से विस्तार हो रहा है। भारत में लोगों का लगातार शहर की ओर प्रवर्जन हो रहा है, ऐसी स्थिति में आदर्श शहर की नियोजित मानक को स्वीकार करने की आवश्यकता हैं बिहार की राजधानी पटना की कई समस्याएँ है, परन्तु उनका समाधान किया जा सकता है तथा गुणवतापूर्ण जीवन को प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए सरकारी, गैर-सरकारी तथा स्वैच्छिक योगदान और सक्रियता की आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

1. आर.एम. नोर्थम (1979), अर्बन ज्योग्राफी, द्वितीय संस्करण, न्यूयॉक, पृष्ठ-93
2. पूर्वोक्त, पृष्ठ-94
3. फखरूदीन, क्वालिटी ऑफ अरबन लाइफ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 1991, पृष्ठ-96
4. ए. खोसला, पोपुलेशन एण्ड एनवाररूमेंट, 1974 पृष्ठ 46-47
5. व्हाइट एण्ड रनर, हयूमन ज्योग्राफी, पृष्ठ 649
6. पूर्वोक्त, 669
7. पूर्वोक्त, 669
8. पूर्वोक्त, 701
9. भारतकोश, पटना, पृष्ठ-01
10. लिस्ट ऑफ मोस्ट पोपुलेटेड सिटीज ऑफ इंडिया, डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू सेनसस 2011. को. इन
11. बिहार का इतिहास, पटना विकिपीडिया से प्राप्त जानकारी।

बौद्ध साहित्य में बुद्ध कालीन समाज

डॉ० शिवजी सिंह

इतिहास विभाग, बी0आर0ए0बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

बौद्ध कालीन समाज की ताना-बाना चर्तुवर्ण व्यवस्था पर ही आधारित था फिर भी उसमें अनेक परिवर्तन महात्मा बुद्ध के आने के बाद देखने को मिलता है। समाज जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था का पोषक था। बुद्ध ने उसका विरोध किया और कहाँ जिस प्रकार आग जलाने में लकड़ियों में विभेद नी करती है उसी कर मनुष्यों में भी निर्वाण प्राप्ति हेतु भेद-भाव नहीं होनी चाहिए। इसकाल में बौद्ध साहित्यों में क्षत्रिय एवं ब्राह्मण के आपसी द्वन्द्व देखनो को मिलता है खास कर सर्वोच्चता को लेकर। बौद्ध साहित्यो इस संबंध में क्षत्रियों को ही ब्राह्मणों से वरीय वर्ण माना गया। स्त्रियों के संबंध में इसकाल में स्थिति सामान्य से नीचे थे स्त्रियों को संघ में प्रवेश वर्जित था। आनंद में कहने पर महात्मा बुद्ध ने माँ गौतमी को संध में प्रवेश दिया। बाद में भगवान बुद्ध की भावना स्त्रीयों के प्रति सकारात्मक हुई। उसका सामाजिक विशेषता एवं प्रतिष्ठा को माना गया। इस काल की उल्लेखनीय विशेषता समाज में अन्य जातियो का उद्‌भव था। जैसे चण्डाल, रथकार, तिषद, हिलसिपिन आदि। इन वर्णो को पंचम वर्ग रूप में मान्यता दि गई थी समाज में संयुक्त परिवार का प्रचलन था। मकान कच्चे ईटों की जगह पक्की ईटों से बहुमंजिली बनी थी। मकान में शौचालय, स्नानगृह आदि बने हुई थे। समाज में अनेक व्यापरिक संगठनों (श्रेणी) का भी उदय हुआ।

Key Word:

- कर्मकाण्डीय विधान
- वर्ण व्यवस्था
- समाजिक परिवर्तन
- विभिन्न जातियाँ

विषय-विस्तार

प्राचीन भारत में सामाजिक स्वरूप संबंध का प्रचलन नवपाषाण काल के बाद निरंतन प्रावहमान एवं विकासशील था। सिन्धु सभ्यता में समाजिक व्यवस्था पूर्णत: विकसित हो चुकी थी। समाज कर्म आधारित विभिन्न वर्गो में विभक्त था। जहाँ तक वर्ण व्यवस्था की बात है वह भारतीय समाज में वैदिक काल से ही प्रावहमान है ऋग्वेद के दशम मण्डल के एक सुक्त में, जिसे पुरूष सुक्त कहाँ गया है चारो वर्णो की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। इस सुक्त के अनुसार ब्राह्मण विराट पुरूष के मुख से क्षत्रिय, बाहु से वैश्य जांघ से तथा शुद्र पैर से उत्पन्न बताये गये है।[1] उत्तर वैदिक काल में कुछ कर्मकांडीय विधानों के साथ वर्ण व्यवस्था जटिल हो गई। तथा सभी वर्णो में ब्राहम्णों को श्रेष्ठ बताया गया है। लेकिन वैदिक काल के अंत में समाजिक परिवर्तन देखने को मिलता है।

बौद्ध कालीन सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता वर्ण व्यवस्था की जटिलता का बोध होता है जो व्यवसाय पर आधारित न होकर जन्म आधारित प्रतित होती है इस प्राचीन वर्ण व्यवस्था का विरोध बौद्ध धर्म में किया गया है। महात्मा बुद्ध ने कर्म को ही मनुष्य के मूल्यांकन का वास्तविक मापदण्ड माना है। उन्होंने स्वयं कहा है कि आग जलाने के लिए लकड़ी का भेद नही देखा जाता उसी प्रकार निर्वाण के लिए भी मनुष्य में कोई भेद-भाव नही हो सकता है। कर्म से ही व्यक्ति छोटा एवं बड़ा होता है बौद्ध

ग्रंथो में वर्ण-विभाजन का उल्लेख मिलता है किन्तु पालि साहित्यों में ब्राह्मणों के सर्वाच्चता के स्थान पर क्षत्रियों को उच्च स्थान दिया गया है उससे प्रतीत होता है कि सामाजिक सर्वोच्चता के लिए ब्राह्मण एवं क्षत्रिय एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी हो गये। एक जगह बुद्ध भी अपने को ब्राह्मण भी कहा है यहाँ ब्राह्मण की व्याख्या कर्म के आधार पर की गई है अर्थात कोई भी व्यक्ति ज्ञानी, सदाचारी आदि है तो वह ब्राह्मण है हांलांकि वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए भी बुद्ध उसको हटा नहीं सके अपितु उन्होंने इसे स्वीकार किया। पालि साहित्य का वर्ण व्यवस्था उतना कठोर नही था जितना कि ब्राह्मण ग्रंथो का।। बौद्ध काल में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों को अपने निर्धारित कर्म से अलग भी कार्य करने उल्लेख प्राप्त होता है जातक कथाओं में ब्राह्मण की दो श्रेणियों का उल्लेख हुआ है वास्तविक ब्राह्मण और सांसारिक ब्राह्मण। पहली श्रेणी का ब्राह्मण धर्मानुसार जीवन यापन करते थे किन्तु सांसारिक ब्राह्मण कृषि-कर्म एवं पशुपालन में संलग्न थे। दस ब्राह्मण जातक में ब्राह्मणों के 10 कर्मो का उल्लेख मिलता है जो शास्त्र विरोधी है उसी प्रकार क्षत्रियों का भी वर्ण-विरूद्ध कर्म का उल्लेख बौद्ध साहित्यों में मिलता है। बौद्ध साहित्य में शाक्य क्षत्रिय कृषि-कर्म करते हुए दिखाए गए है व्यापार-वाणिज्य में संलग्न रहने से वैश्यों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। ऐसे वर्णो का बौद्ध साहित्य में गृपति, वणिक, श्रेष्ठी, कौटुम्बिक आदि संज्ञायों का प्रयोग किया गया है। यह वर्ग भी निर्धारित कर्म से अलग जातक कथा के अनुसार दर्जी, कुम्हार आदि का कार्य करने लगा था। इस समय शुद्रों की स्थिति अच्छी नही थी वे अधिकार विहीन समुदाय के रूप में समाज में विद्यमान थे शुद्र दो प्रकार के होते थे एक पवित्र दूसरा अपवित्र। द्वितीय श्रेणी के शुद्र समाज से पूर्णतः पृथक समझे जाते थे जिन्हें बाद में अछुत शब्द से ही उल्लेख किया गया है शुद्र का कर्तव्य तीनों वर्णो की सेवा करना मात्र था उसके बदले में स्वामी के जुठे भोजन, उतरे वस्त्र, और पुरानी वस्तुओं का प्रयोग करता था उन्हें सम्पन्न होने का अवसर प्राप्त नही था क्योंकि शुद्र के धनोपार्जन से ब्राह्मणों को दुख होता था शुद्र को वध करने में ब्राह्मणों की उतना ही प्रायश्चित करना होता था जितना की एक बिल्ली एवं कुत्ता के वध करने पर। ऐसे ना जाने कितने वर्णन बौध साहित्य में मिलता है। कुछ बौद्ध साहित्य में वर्णो की सर्वोच्चता के संबंध में उल्लेख मिलते है।

ऐतरेय ब्राहम्ण में चातुर्थ वर्णव्यवस्था में क्षत्रियों को प्रथम स्थान पर रूपायित किया गया है।

बौद्ध धर्मग्रंथों से तत्कालीक समाज के स्थिति एवं स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। बौद्ध ग्रंथ सामाजिक वर्णव्यवस्था को नकारा तो नहीं लेकिन कर्म आधारित बताकर क्षत्रियों को सभी वर्णो में श्रेष्ठ बताया है। दीर्घ निकाय से प्रमाणित होता है, जहाँ बुद्ध अम्बष्ठ माणक से कहते है। स्त्री की ओर से पुरूष की ओर से क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है ब्राहम्ण हीन है तथा जब वह (क्षत्रिय) क्षत्रियों से परमचीनता को प्राप्त है तब भी क्षत्रीय ही श्रेष्ठ है ब्राह्मण हीन है। समाजिक व्यवस्था में वर्णो की श्रेष्ठता पर बौद्ध धर्म अपनी विचार देता रहा है। बौद्धकालीन समाज में यह भी बताया गया है कि 'वासेट्ट सुत्त' में कहा गया है कि विभिन्न वर्णो में कोई भेद नहीं है केवल चांडाल को भोजन का उच्छिष्ट खाना महापाप है।' साथ ही 'भद्रसाल जातक' से स्पष्ट होता है कि कौसल नरेश के एक दासी से विवाह करने एवं उससे उत्पन्न पुत्र के संबंध में गौतम बुद्ध से विचार मांगा गया तो बुद्ध कहते है कि माता की जाति का महत्व नहीं है। पिता के जाति का महत्व है। अर्थात प्रारम्भ में वर्णो का आधार व्यक्ति की निजी विशेषताएँ थी। जन्म को कोई महत्व न था किन्तु धीरे-धीरे जन्म वर्णो का आधार बन गया और वर्ण जाति में बदलने लगे। 6ठीं शताब्दी इ0पू0 से पहले के भारतीय समाज में अधिकत्तर जनजातीय विशेषताएँ थी किन्तु उसके पश्चात् जब जनों के नाम पर जनपद स्थापित हो गये तो जातियों का महत्व बढ़ गया। कलांतर में विभिन्न जातियों का उद्य हुआ जो जन्म पर आधारित थी।

जब जाति व्यवस्था जन्म आधारित हो गई तब शुद्रों की स्थिति में गिरावट आयी तथा शुद्रो के विरूद्ध कठोर नियम बनाये गये। यज्ञ के लिए अभिषिक्त व्यक्ति का शुद्र से बात करना भी अनुचित ठहराया गया। यह विचार अपने विकसित रूप में धर्मसूत्रों में मिलती है। जबकि इसके पूर्व में ब्राह्मणों की शुद्रों से भोजन आदि परहेज था लेकिन क्षत्रिय एवं वैश्य को नहीं[3]। गौत धर्म सूत्र से ज्ञात होता है कि इस काल के प्रारंभ में ब्राह्मणों और शूद्रो के भी वैवाहिक संबंध होते थे किन्तु इस काल के अंत में यह कार्य अत्यंत निंदनीय समझा जाने लगा।[4] प्रारम्भ में शुद्रों को वैदिक साहित्य पढ़ने का अधिकार था किंतु बाद में उन्हें उससे वंचित कर दिया गया।[5] ज्ञात हो कि छठी ई0पू0 समस्त प्राचीन संसार में व्यापक धर्मसुधार का युग था, चीन, युनान, भारत में बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रतिमा का आश्चर्यजनक प्रस्फुरण हुआ जिसमें प्रमुख योगदान समाजिक व्यवस्था था तत्कालीन समय के महापुरूषों और मनीषियों के चिंतन और उपदेश से महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हुए। बौद्ध ग्रंथों ने जन्मजात सामाजिक श्रेष्ठता का विचार का खण्डन किया। बुद्ध मानव जाति के समानता के पोषक थे वे कहते थे कि शील और प्रज्ञायुक्त मनुष्य ही ब्राह्मण है इसी आधार पर वे अपने को ब्राह्मण कहते थे जातक ग्रंथो से स्पष्ट होता है कि उस समय के समाज में अस्पृश्यता की भावना ने जड़ जमा लिया था सामाजिक व्यवस्था में उस समय क्षत्रिय सभी वर्णो में श्रेष्ठ माना गया है।

जातक ग्रंथों से स्पष्ट होता है कि इस समय के समाज में अस्पृश्यता काफी जटील थी। अस्पृश्चता के लिए चण्डाल, निषाद, हीनसिपिन आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।[6] सेतकेतु ब्राह्मण में एक ब्राह्मण को चण्डाल के डर से भागते हुए पाते है ताकि उसके शरीर वायु के स्पर्श से वह अपवित्र न हो जाय।[7] ऐसे अनेक उद्धरण जातक ग्रंथो में मिलते है जो तात्कालीन समाज के जाति-पाँति में ग्रस्त होने का प्रमाण प्रस्तुत करते है किन्तु ये ग्रंथ सदा इस प्रथा की आलोचना करते हुए ब्राह्मणों की सामाजिक श्रेष्ठता के दावे को चुनौती देते है ये ग्रंथ क्षत्रिय वर्ण को ही ब्राह्मणों की अपेक्षा समाजिक व्यवस्था के उच्चतर स्थान प्रदान करते है। ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों को भी अपनी रक्त शुद्धता पर गर्व था।

बौद्ध काल में अन्य वर्ग जो शुद्रों से उत्पन्न हुए थे जिनका उल्लेख उपरोक्त वर्णन में किया गया है। बौद्ध साहित्यों में अछुतो/अपवित्र शुद्र के संदर्भ में यह भी उल्लेख मिलता है कि आर्यो की सेवा गंदी कार्यो के कर के करते थे फिर भी उनको आर्य जाति संपूर्णतः अलग माना गया है। कभी-कभी ये पंचम या पंचमा नाम से पुकारे जाते थे इस दल में मुख्यतः चण्डाल थे जो नगरों या ग्रामों में नहीं रहते थे बल्कि ग्रामों के बाहर दक्षिण दिशा में निवास करते थे चर्मकार, निषाद, पुक्कस रथकार आदि जातियाँ अछुत वर्ग में थी। अछुत का भाग्य पूर्णतः आशा रहित नही था यद्यपि इन्हें मन्दिर प्रवेश और रूढ़िवादी धर्म की सुविधाओं से वर्णित कर दिये गये थे फिर भी बौद्ध भिक्षु उनहें प्रवचन देते थे और प्रतिभा सम्पन्न भ्रमणशील सन्यासी उन्हें धर्मोदेश देते थे।

बौद्धकालीन समाज में साहित्यक स्त्रोतों से स्पष्ट होता है कि इस काल में स्त्रियों की स्थिति वैदिक काल की अपेक्षा खराब हो गई थी उनके सामाजिक एवं शैक्षणिक अधिकारों में कमी आ गयी। चुल्लवग्ग जातक से पता चलता है कि महात्मा बुद्ध स्त्री को संघ में प्रवेश का विरोधी थे वे प्रथमवार अपने पालनकर्त्ता माँ गौतमी को संघ में प्रवेश से मना कर दिया था।[8] अन्य ग्रंथों में भी इस संबंध में जानकारी मिलती है बुद्ध जैसे महान क्रांतिकारी, समाजिक शिक्षक भी स्त्रियों को संघ में अनुप्रवेश ससंकोच ही स्वीकार किये। वैशाली में महान कूटागारथाला में संकोच करते हुए बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति दी जो एक कथा रूप में प्रचलित है भिक्षुणी संघ के स्थापना का श्रेय बुद्ध के अतिप्रिय शिष्य आनंद के योगदान के परिणाम माना जाता है। गौतम बुद्ध के शिष्य आनंद के अथक प्रयासोपरांत स्त्रियों के संघ प्रवेश अनुमति दी और बुद्ध के वाराणसी आगमन पर यश की माता ने प्रथम उपासिका बनने का गौरव अर्जित किया।[9] अंगुतर निकाय में अष्टशील उपसिकाओं की सूची प्राप्त होती है यथा-पदुमा, सुतना, तिस्सा, सुप्पवास खेमा आदि।[10]

महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित निर्वाण प्राप्त के विवरण से स्पष्ट होता है कि बुद्ध की यह मान्यता थी कि स्त्रियाँ पुरूषों से अधिक योग्य थी।[11] बौद्ध साहित्य अंगुत्तर निकाय में वर्णित है कि स्त्रियों के प्रति बुद्ध द्वारा दुर्भाव रखने के क्रम में आनंद ने बुद्ध से जानना चाहा कि 'क्या कारण है स्त्रियाँ सभा में बैठना नहीं चाहती, न कोई (कृषि कार्यद्ध कार्य करती है, उत्तर में बुद्ध ने स्पष्ट कहाँ कि आनंद स्त्रियाँ, क्रोधी स्वभाव की होती है ईर्ष्यालु होती है मुर्ख होती है। यही कारण है कि स्त्रियाँ न सभा में बैठती है न कार्य करती है न व्यापार में जाति है।[12] इससे स्पष्ट होता है कि छठवीं शताब्दी इ0पू0 में स्त्रियों का सामाजिक स्तर में गिरावट हो रही थी। लेकिन कुछ समय पश्चात बौद्ध धर्म में स्त्रियों का सामाजिक स्तर में विकास देखने को मिलता है। बौद्ध धर्म में भिक्षुणियों को अत्याधिक महत्वपूर्ण पद प्राप्त था। स्वयं बुद्ध ने स्वीकार किया है कि कतिपय स्त्रियाँ पुरूषों से अधिक योग्य थी।[13] अन्य ग्रंथों में स्त्रियों की श्रेष्ठता का उल्लेख मिलता है। संयुक्त निकाय नन्दा और अशोका नायक भिक्षुणियों के निर्वाण ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है।[14] महावंश 14000 भिक्षुणियों के अर्हत पद प्राप्ति का सूचना देता है ग्रंथ में यह भी वर्णित है कि तृतीय बौद्ध संगिति (अशोक कालीन) जिनका आयोजन पाटलीपुत्र में हुआ, 1000 आस्रवमुक्त भिक्षुणियाँ भाग ली थी।[15] समय काल परिस्थिति के अनुसार बौद्ध कालीन स्त्रियों की स्थिति में परिर्वतन होते रहे।

बौद्ध काल में शिक्षा के महान केन्द्र स्थान-स्थान पर वने बिहार थे इन्ही में धर्म का अध्ययन-अध्यापन, मनन, पाठ आदि हुआ करता था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली के तहत शिष्यों को 'सिद्दि विहारिका' और आचार्य को 'उपाध्याय' कहते थे। उपाध्याय होने के लिए यह आवश्यक था कि वह कम से कम 10 वर्ष तक भिक्षु जीवन व्यतीत कर चुका हो। शिष्यत्व ग्रहण करने पर 'प्रवज्या' संस्कार होता था और बाल मुंडवाकर पिले वस्त्र पहन कर भिक्षु के चरणों में शरण-त्रयी लेता था प्रवज्या के बाद बालक शामनेर कहलाता था और मठ में रहता था बारह वर्ष के शिक्षा समाप्ति के बाद 'उपसम्पदा संस्कार होता था। उससम्पादा के बाद भिक्षु अब पक्का भिक्षु बन जाता था और उसका ग्रहस्थ जीवन में कोई सम्बन्ध नही होता था बौद्ध कालीन शिक्षा आध्यात्मिक विकास पर बल न देकर नैतिकता पर बल देता था बौद्ध शिक्षा दो भागों में विभक्त था- प्रारम्भिक शिक्षा और उच्च शिक्षा'।

बौद्ध साहित्यों समृद्धशाली गाँवों की चर्चा मिलती है। संयुक्त परिवार का प्रचलन था। सामान्यता भूमि व्यक्तिगत सम्पात्ति थी किंतु ग्राम पंचायत के अनुमति के बगैर इसका विक्रय संभव नही था गाँव का जीवन सटल और संतोषमय था तथा प्रत्येक ग्राम आत्मनिर्भर थे वाद-विवाद के निपटारे हेतु ग्राम पंचायते थी। चारागाह सम्पूर्ण ग्राम की समझी जाति थी। समान व्यवसाय या शिल्य से संबंधित लोग प्राय: एक ही गाँव में रहते थे।

इस समय द्वितीय नगरीकरण प्रारम्भ हो चुका था कच्चे मकान का स्थान पक्के मकान ले रहे थे सात मंजिले बाले मकान का उल्लेख सप्तभभूक प्रसाद के रूप में किया गया है मकानों में स्तम्भ, हवादार, तालिए, कुँए पाकशाल, स्नानघर और शौचालय की व्यवस्था होती थी।

बौद्ध काल कपड़े का व्यवसाय जैसे- सूती, उनी और रेशमी, काफी उन्नत था स्त्रियां सूत काटने का कार्य करती थी। कपड़ा बुनने वाले को तन्तुवाय कहते थे लोहे का बर्तन 'हल' कुदाल, फावड़ा हथौड़ा, हसिया, छुरा आदि बनाने का कार्य कुम्हार करते थे। आभूषण उद्योग चरम पर था। सुगंधित तेलो एवं इत्रो का उद्योग-घन्धे भी थे। प्रत्येक व्यवसायियों का अपना अपना संगठन था जिसे श्रेणी कहते थे इनके अपने नियम थे और राज्य इसे मानता था श्रेणी का मुखिया जेटठक होता था। जातक में कुल अठारह श्रेणियों का उल्लेख मिलता है व्यापार देशीय एवं अन्तर्देशीय दोनो होता था। बौद्ध साहित्य में स्थलीय और जलीय व्यापार का उल्लेख किया गया है पश्चिमी भारत में मारूकच्छ (भडौच) और शूपरिक (सोपारा) दो प्रमुख बंदरगाह थे। जातक में अनेक स्थानों पर 500 गाड़ियों में सामान लादकर भ्रमण करने वाले व्यापारी समूहों का उल्लेख प्राप्त होता है। जातक से ज्ञात होता है कि भारतीय व्यपारी लंका वर्मा, बेबीलोन, स्वर्णभूमि आदि देशो से व्यापार करते थे।

अत: कहा जा सकता है कि बौद्ध कालीन समाजिककाल में काफी परिवर्तन हो चुके थे समाज का वर्ण व्यवस्था, बौद्धो के अनुसार कर्म आधारित थी फिर भी समाज में पुरातन व्यवस्था का उल्लेख मिलता है खास कर शुद्रों के संबंध में। वैश्य वर्ग आर्थिक सम्पन्न वर्ग के रूप में परिवर्तित हो चुका था और बड़े-बड़े व्यवसायों में लगे थे। यह द्वितीय नगरीकरण का काल था। घर पक्के एवं गाँवों के घर शौचालय, स्नानागृह आदि कक्षों से परिपूर्ण थे। समाज के सर्वोच्च वर्णो, ब्राह्मण एवं क्षत्रिय में सर्वोच्चता के संबंध में द्वन्द देखने को मिलता है। भगवान बुद्ध भी कर्म को ही सर्वोच्च माने है। बुद्ध काल में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते है जिससे राजन्य वर्ग की श्रेष्ठता शाबित होता है। फिर भी ब्राह्मण वर्ग अध्ययन-अध्यापन में अपनी प्रमुखता बनाए रखा।

संदर्भ ग्रंथ

1. ऋग्वेद के दशम मण्डल
2. दीर्घ निकाय, 1, 3 अम्बठ्ठसूत
3. आपस्तंब. धर्मसूत्र 2, 2, 3, 4
4. गौतम धर्मसूत्र 4, 22
5. आपस्तंब धर्मसूत्र 4.28
6. जातक 1.2.6
7. सेत केतु जातक 2,6,8
8. चुल्लवग्ग जातक पृष्ट-373, (पाली त्रिपिटक से सभी संदर्भ नालंदा देवनागरी संस्करण)
9. महावग्गा, पृ0-19
10. अंगुत्तर निकाय, जिल्द-3, पृष्ठ-428
11. संयुक्त निकाय, जिल्द 1, पृष्ठ-218
12. वही, जिल्द, 2 पृष्ठ-218
13. संयुक्त निकाय जिल्द-1, पृष्ठ-74
14. संयुक्त निकाय जिल्द-4, पृष्ठ-304, 305
15. महावंश, 5.188

पंचायतः भारतीय शिक्षा संस्कृति की संवाहक और सभ्यता का अंग

डॉ० सुमन्त कुमार

(राजनीति विज्ञान विभाग, पटना यूनिवर्सिटी, पटना)
प्रवक्ता, एडवोकेट ऑफ जेएसडी, बिहार

शोध सार

भारत गाँवों का देश है। अधिकांश जनता गाँवों में ही निवास करती है। भारत में गाँव सदा से शासन संगठन की इकाई रहा है। पंचायती राज व्यवस्था भारतीय संस्कृति और सभ्यता का अंग माना जाता है। शिक्षित व्यक्ति ही किसी देश की संस्कृति और सभ्यता है। हमारी संस्कृति तथा सभ्यता के सदृश्य ही पंचायत तथा पंचायती राज की एक गौरवशाली परम्परा का निरूपण सदियों से होता चला आ रहा है। वास्तव में ग्राम पंचायतों का अपना इतिहास है। अपनी रेखा तथा आकृति है। ग्राम पंचायतों का जन्म सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्रारम्भ हुआ। प्राचीनकाल से ही पंचायत स्वायत्त शासन पद्धति के रूप में कार्य कर रही है। राजनैतिक या धार्मिक नाटनाचक्र से होनेवाले परिवर्तनों के होते हुए भी यह ग्रामीण समाज रचना अविचलितयप से चलती आ रही है। मानव इतिहास के असाधारण प्रयोग के दस्तावेज की अर्थ और पहचान को शिक्षा व संस्कृति के संजीदगी से समाज के लिए प्रेरणादायी बनाया जाता है। शिक्षा एक आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग कार्य और विचार की नई पद्धतियाँ सीखते रहते हैं। उससे व्यवहार में ऐसे बदलाव लाने को बढ़ावा मिलता है, जिनसे मनुष्य की स्थिति में सुधार आए। संस्कृति शिक्षा का अभिन्न भाग है और उसका स्कूल के प्रशासन से गहरा सम्बन्ध है। भारतीय संस्कृति ने हमेशा शैक्षिक और उससे सम्बंधित संस्थानों को विद्या-मंदिर का सम्माननीय स्थान दिया है। इस देश में ज्ञान का सम्मान कितना है कि वेदव्यास, वाल्मीकि, पाणिनी, पतंजलि जैसे मनीषियों को भगवान मान लिया। क्योंकि ज्ञान व्यक्ति को मिथ्या दृष्टि से मुक्त कराता है। जीवन तथा ईश्वर में आस्था पैदा करता है। समाज विरोधी तत्त्वों को ज्ञान के प्रभाव से दबा देने की शक्ति प्राप्त करता है। व्यक्ति स्वयं से परिचय करके ही स्वतन्त्र हो सकता है।

की-वर्ड्स: पंचायती राज व्यवस्था, शिक्षा, जनतंत्र, संस्कृति, पढ़ना।

शोध प्रविधि

इस शोध पत्र में पंचायत भारतीय शिक्षा संस्कृति की संवाहक और सभ्यता का अंग के साथ-साथ शोधकर्ता ने अपने राजनीतिक सामाजिक व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है। शिक्षा संस्कृति में गांवो का योगदान, गुरुकुल/मदरसे हमारी भारतीय संस्कृति एवम संस्कारो का कैसे संवाहक रहे है जैसे विषयों पर इस शोध पत्र में प्रकाश डालेंगे।

शोध सामग्री

शोध सामग्री को द्वितीय स्त्रोंतों से ग्रहण किया गया है। जैसे-इस विषय पर लिखी पुस्तक, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, वेबसाइटें इत्यादि का प्रयोग किया गया।

शोध-आलेख परिचय

वेदों में ग्राम तथा ग्राम संगठनों की झलक अनेक स्थानों पर देखने को मिलती है। वैदिककाल में ग्रामस्वराज्य था, गाँव हर बातों के लिए आत्म-निर्भर था, गाँव अपनी जरूरत की चीजें स्वयं पैदा कर लेता था। वैदिककालीन ग्राम शासन 'सभा' या 'समिति' के

नाम से अभिहित किया जाता था ग्रामाध्यक्ष को वैदिक काल में 'ग्रामीण' कहते थे, उनकी आज्ञा दैवाज्ञातुल्य थी। महाभारत में पंच और पंचायतों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। 'सभापर्व' मेंनारद, युधिष्ठिर से पूछते हैं- क्या तुम्हारे राष्ट्र में बुद्धिमान और वीर पंचकरों को वसूलने और पंचायत के अन्य सहायक कार्यों को करने में संलग्न है। मनुस्मृति, याज्ञवल्मनु स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारदस्मृति, क्य स्मृति, नारदस्मृति, श्रुतिपुराण सभी में ग्रामीण सामुदायिक संगठन के सम्बश्रुति पुराणन्ध में स्पष्टत था विस्तृत नियम मिलते हैं। इन ग्रन्थों में इस बात का वर्धान भी मिलता है कि सब परस्पर भ्रातृ समान है और साथ-साथ गण के कल्याण के लिये कार्य कर रहे हैं। न कोई ज्येष्ठ है न कनिष्ठ सब जल की लहरों के सदृश्य है, सारी जनता राष्ट्रहित की भावना से उत्प्रेरित होकर प्रेम और सद्भावना के साथ सहयोग पूर्वक रहती थी।

प्राचीन पंचायतों के विषय में लिखा है कि वैदिक काल में लोग प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का आदर करते थे और अनेक प्रकार से उसका उपभोग करते थे। राज्याभिषेक के अवसर पर ग्रामीण अथवा ग्राम का मुखिया प्रतिनिधि के रूप में उपस्थिति होता था तथा राजा, सरपंच और मुखिया जनता के आदेशों का पालन करते थे प्रजा चाहती तो वेबड़ी कुर्बानी करने को तैयार रहते थे। राजाओं और गाँव के हाकिम की कोई निजी राजनीति नहीं होती थी। सरपंच अपने आप ऐसा हाकिम बन जाता था जो प्रजा की सेवा करता था। उसे काँटों का यह ताज पहनने और जिम्मेदारी का बोझ उठाने के लिए समझा बुझा कर राजी किया जाता था।

कौटिल्य के अनुसार ग्राम के ऊपर पाँच ग्रामों का प्राय: समूह हुआ करता था, जिसके शासन का भार "पंच ग्रामी" नामक राज्य कर्मचारी पर होता था। इसी प्रकार दस ग्रामों के संगठन के ऊपर बीस-बीस गाँव के सं गठन होते थे और सौ-सौत था एक हजार ग्रामों के संगठित समूह होते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चार प्रकार के ग्रामों का वर्णन मिलता है जो कि मौर्यकाल में विद्यमान थे।

ग्रामाग्र: यह साधारण गांव था, इन गांवों में राज्य ग्रामाग्र के सभी साधारण नियम थे।

परिहारक ग्राम: मौर्यकाल में ब्राह्मण, विद्वान, आचार्य, पुरोहित को राजा की ओर से जमीनें प्राप्त होती थीं। ऐसी जमीनें कर मुक्त हुआ करती थीं।

योद्धा ग्राम: इन ग्रामों में राजा कर नहीं लेता था, किन्तु उन्हें युद्ध काल में प्रत्येक परिवार से योग्य सैनिकों की आशा रहती थी।

करदेया ग्राम: इन ग्रामों में धन के रूप में कर नहीं लिया जाता था। धन के बदले में गाँव वाले अनाज देते थे।

इन चारों प्रकार के गाँवों में पंचायती व्यवस्था थी। दसवीं शताब्दी के शुक्रनीति-सार में ग्राम पंचायतों का विस्तृत संगठन देखने को मिलता है। उक्त वर्णन से यह पता चलता है कि उस समय ग्रामपंचायतें निर्मित होती थी। ये गाँव पंचायतों का सं गठन आधुनिक गणतन्त्र जैसा होता था। यह संगठन पाँच निर्वाचित व्यक्तियों को मिलकर हुआ करता था। इसी कारण इसे पंचायत नाम से विभूषित किया गया। ये निर्वाचित व्यक्ति वयोवृद्धि, अनुभवी तथा प्रभावशाली होते थे। यही कारण है इनके मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द कानून से भी अधिक प्रभावशाली होता था। वास्तव में 'पंच परमेश्वर' की धारणा उस प्राचीनयुग की अद्भुत कल्पना है जो कि सदियों से चलती आ रही है।

साहित्य की समीक्षा

पंचायतों के उद्भव के प्रारम्भिक काल और स्वरूप के विषय में कुछ कहना अत्यन्त ही कठिन है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इतिहास सभ्यता के आरम्भिक काल के सम्बन्ध में पर्याप्त सूचना देने में असमर्थ है। विद्वानों का विचार है किस बसे पहले मनुष्य ने कृषि युग में ग्रामीण सामाजिक जीवन को जन्म दिया। मानव ने पेड़ों की छाया में रहने से आ गे बढ़कर कृषि करने के अभिप्राय से जब गृहों का निर्माण किया तो फलस्वरूप समूहों का भी उद्भव हुआ। इसके साथ ही साथ संगठन तथा व्यवस्था का भी प्रश्न उठा। मानव सभ्यता का सूर्य उदय हुआ है तभी से भारत अपनी शिक्षा तथा दर्शन के लिए प्रसिद्ध रहा है। यह सब भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों का ही चमत्कार है कि भारतीय संस्कृति ने संसार का सदैव पथ-प्रदर्शन किया और आज भी जीवित है। वर्तमान युग में भी महान दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्रियों इसी बात का प्रयास कर रहे हैं की शिक्षा भारत में प्रत्येक युग की शिक्षा के उद्देश्य अलग-अलग रहें हैं इसलिए वर्तमान भारत जैसे जनतंत्रीय देश के लिए उचित उद्देश्यों के निर्माण के सम्बन्ध में प्रकाश डालने से पूर्व हमें अतीत की ओर जाना होगा। निम्नलिखित पंक्तियों में हम प्राचीन, मध्य तथा वर्तमान तीनो युगों की भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डाल रहे हैं—

1. **पवित्रता तथा जीवन की सद्‌भावना:** प्राचीन भारत में प्रत्येक बालक के मस्तिष्क में पवित्रता तथा धार्मिक जीवन की भावनाओं को विकसित करना शिक्षा का प्रथम उद्देश्य था। शिक्षा आरम्भ होने से पूर्व प्रत्येक बालक के उपनयन संस्कार की पूर्ति करना शिक्षा प्राप्त करते समय अनके प्रकार के व्रत धारण करना, प्रात: तथा सायंकाल ईश्वर की महिमा के गुणगान करना तथा गुरु के कुल में रहते हुए धार्मिक त्योहारों का मानना आदि सभी बातें बालक के मस्तिष्क में पवित्रता तथा धार्मिक भावनाओं को विकसित करते उसे आध्यात्मिक दृष्टि से बलवान बनाती है। इस प्रकार साहित्यिक तथा व्यवसायिक सभी प्रकार की शिक्षा का प्रत्यक्ष उद्देश्य बालक को समाज का एक पवित्र तथा लाभप्रद सदस्य बनाना था।
2. **चरित्र निर्माण:** भारत की प्राचीन शिक्षा का दूसरा उद्देश्य था। बालक के नैतिक चरित्र का निर्माण करना। उस युग में भारतीय दार्शनिकों का अटल विश्वास था कि केवल लिखना-पढना ही शिक्षा नहीं है वरन नैतिक भावनाओं को विकसित करके चरित्र का निर्माण करना परम आवश्यक है। मनुस्मृति में लिखा है कि ऐसा व्यक्ति जो सद्‌चरित्र हो चाहे उसे वेदों का ज्ञान भले ही कम हो, उस व्यक्ति से कहीं अच्छा है जो वेदों का पंडित होते हुए भी शुद्ध जीवन व्यतीत न करता हो। अत: प्रत्येक बालक के चरित्र का निर्माण करना उस युग में आचार्य का मुख्य कर्त्तव्य समझा जाता था। इस सम्बन्ध में प्रत्येक पुस्तक के पन्नों पर सूत्र रूप में चरित्र संबंधी आदेश लिखे रहते थे तथा समय ख़समय पर आचार्य के द्वारा नैतिकता के आदेश भी दिये जाते थे एवं बालकों के समक्ष राम, लक्ष्मण, सीता तथा हनुमान आदि महापुरुषों के उदहारण प्रस्तुत किये जाते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन भारत की शिक्षा का वातावरण चरित्र-निर्माण में सहयोग प्रदान करता था।
3. **व्यक्तित्व का विकास:** बालक के व्यक्तित्व को पूर्णरूपेण विकसित करना प्राचीन शिक्षा का तीसरे उद्देश्य था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बालक को आत्म-सम्मान की भावना को विकसित करना परम आवश्यक समझा जाता था। अत: प्रत्येक बालक में इस माहान गुण को विकसित करने के लिए आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता, आत्म-नियंत्रण तथा विवेक एवं निर्णय आदि अनके गुणों एवं शक्तियों को पूर्णत: विकसित करने का अथक प्रयास किया जाता था।
4. **नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का विकास:** भारत की प्राचीन शिक्षा का चौथा उद्देश्य था। नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का विकास करना। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए इस बात पर बल दिया जाता था कि मनुष्य समाजोपयोगी बने, स्वार्थी नहीं। अत: बालक को माता-पिता, पुत्र तथा पत्नी के अतिरिक्त देश अथवा समाज के प्रति भी अपने कर्तव्यों का पालन करना सिखाया जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि तत्कालीन शिक्षा ऐसे नागरिकों का निर्माण करती थी जो अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए समाज की उन्नति में भी यथाशक्ति योगदान दें सकें।
5. **सामाजिक कुशलता तथा सुख की उन्नति:** सामाजिक कुशलता तथा सुख की उन्नति करना प्राचीन शिक्षा का पांचवां उद्देश्य था- इस उद्देश्य की प्राप्ति भावी पीढ़ी को ज्ञान की विभिन्न शाखाओं व्यवसायों तथा उधोगों में प्रशिक्षण देकर की जाती थी। तत्कालीन समाज में कार्य-विभाजन का सिधान्त प्रचलित था। इसी कारण ब्राह्मण तथा क्षत्रिय राजा भी हुए और लड़का भी एवं शुद्र दर्शानिक भी। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी सामान्य व्यक्ति के लिए यही उचित था कि वह अपने परिवार के व्यवसाय को ही अपनाये। इससे प्रत्येक व्यवसाय की कुशलता में वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप सामाजिक कुशलता एवं सुख की निरन्तर उन्नति होती रही।
6. **संस्कृति का संरक्षण तथा विस्तार:** राष्ट्रीय सम्पति तथा संस्कृति का संरक्षण एवं विस्तार भारत की प्राचीन शिक्षा का छठा महत्वपूर्ण उद्देश्य था। प्राचीन काल में हिन्दुओं ने अपने विचार तथा संस्कृति के प्रचार हेतु शिक्षा को उत्तम साध्न माना। अत: प्रत्येक हिन्दू अपने बालकों को वही शिक्षा देता था, जो उसने स्वयं प्राप्त की थी। यह प्राचीन आचार्यों के घोर परिश्रम का ही तो फल है की हमारा वैदिक कालीन सम्पूर्ण साहित्य हमारे सामने आज भी ज्यों का त्यों सुरक्षति है। डॉ ए० ऐसी० अल्तेकर ने ठीक ही लिखा है – "हमारे पूर्वजों ने प्राचीन युग के साहित्य की विभिन्न शाखाओं के ज्ञान को सुरक्षित ही नहीं रखा अपितु अपने यथाशक्ति योगदान द्वारा उसमें निरन्तर वृद्धि करके उसे मध्य युग तक भावी पीढ़ी को हस्तांतरित किया।"

प्राचीन युग की शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्यों पर प्रकाश डालने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर आते हैं की हमारी तत्कालीन शिक्षा-पद्धति ऐसी थी जिसमें भारतीय जीवन तथा बालक के शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक आदि सभी प्रकार के विकास का व्यापक दृष्टिकोण निहित था।

मध्य युग में भारतीय शिक्षा के उद्देश्य

भारत के मध्य युग की शिक्षा का अर्थ इस्लामी अथवा मुस्लिम शिक्षा से है। मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. **इस्लाम का प्रसार:** इस्लामी शिक्षा का पहला उद्देश्य मुस्लमान धर्म का प्रसार करना था। अत: जगह-जगह मकतब और मदरसे खोले गये। प्रत्येक मस्जिद के साथ एक मकतब खोला जाता था जिसमें मुस्लिम बालकों को कुरान पढाया जाता था। साथ ही मदरसों में इस्लाम का इतिहास, दर्शन, तथा उच्च प्रकार की धर्म संबंधी शिक्षा प्रदान की जाती थी।
2. **मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार:** मुस्लिम शिक्षाशास्त्रियों का विश्वास था कि शिक्षा के ही द्वारा मुसलमानों को धार्मिक तथा अधार्मिक बातों का अन्तर समझाया जा सकता है। अत: मुसलमानों को शिक्षा प्रदान करना इस्लामी शिक्षा का दूसरा उद्देश्य था।
3. **इस्लामी राज्यों में वृद्धिकरण:** इस्लामी शिक्षा का तीसरा इस्लामी राज्यों में वृद्धि करना था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मुसलमानों को लड़ने की कला सिखाई जाती थी जिससे वे इस्लामी राज्यों में वृद्धि कर सकें।
4. **नैतिकता का विकास:** इस्लामी शिक्षा का चौथा उद्देश्य नैतिकता का विकास करना था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लये मुस्लिम बालकों को नैतिक पुस्तकों का अध्ययन कराया जाता था।
5. **भौतिक सुखों को प्राप्त करना:** इस्लामी शिक्षा का पांचवां उद्देश्य भौतिक सुखों को प्राप्त करना था। इसके लिए बालकों को उपाधियाँ तथा मौलवियों को ऊँचे-ऊँचे पड़ दिये जाते थे जिससे वे भौतिक सुखों का आनन्द ले सकें।
6. **शरियत का प्रसार:** इस्लामी शिक्षा का छठा उदेहयशरियत के कानूनों को लागू करना था। अत: शिक्षा द्वारा इस्लाम के कानून, राजनीतिक सिद्धान्त तथा इस्लाम की सामाजिक परम्पराओं का प्रसार किया गया।
7. **चरित्र निर्माण:** मोहम्मद साहब का विश्वास था कि केवल चरित्रवान व्यक्ति ही उन्नति कर सकता है। अत: इस्लामी शिक्षा का सातवाँ उद्देश्य मुस्लमान बालकों के चरित्र का निर्माण करना था।

तरीका

वर्तमान भारत में शिक्षा के उचित उद्देश्यों का निर्माण: भारत हजारों वर्षो तक दासता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। इसलिए न हमारी शिक्षा भारतीय संस्कृति पर ही आधारित रही और न ही हमारी शिक्षा का कोई राष्ट्रीय उद्देश्य रह सका। 15 अगस्त सन 1947 को हमारे यहाँ विदेशी नियंत्रण समाप्त हुआ। उसी दिन से भारत एक सर्वसत्ता लोक तंत्रात्मक गणराज्य है। ध्यान देने की बात है कि जनतंत्र की बागडोर उन नागरिकों के हाथ में होती है जो आज के स्कूलों में पढ़ रहे हैं। दुसरे शब्दों में, जनतंत्र की आत्मा शिक्षा होती है। अत: हमारी जनतंत्रीय सरकार, शिक्षा शास्त्रियों, दार्शनिकों तथा समाज सुधारकों ने शिक्षा को भारतीय संस्कृति पर आधारित करने तथा नये जनतांत्रिक समाज को सफल बनाने के लिए, शिक्षा के उचित उद्देश्यों के निर्माण की आवश्यकता अनुभव की। अत: भारत सरकार ने – (1) विश्वविधलय शिक्षा आयोग (2) माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा (3) कोठारी आयोग की नियुक्ति की।

शिक्षा देना (विद्या दान और ग्रहण करना दोनों ही हमारे यहां तो धर्म की श्रेणी में आते हैं। अत: पात्रता एवं परम्परा का निर्वाह अनिवार्य है। आधुनिक शिक्षा में कुछ खामियां है जिसे हम सब को मिलकर दूर करना चाहिए। सरकारी स्कूलों कॉलेजों में शिक्षकों और छात्रों के बीच नैतिक और नेतृत्व का सर्वांगीण विकास के द्वारा ही वर्त्तमान समय मे समाज से विलुप्त हो रहे नैतिक पतन को रोका जा सकता है। वर्त्तमान समय मे समाज में छोटे-बड़े का आदर सत्कार लिहाज सब भूले जा रहे है हम सभी को नैतिक उत्थान हेतु कार्य करने की जरूरत है।

विचार-विमर्श

वर्तमान में शिक्षा-व्यवस्था संस्कृति की अपेक्षा सभ्यता-निष्ठ अधिक है। समय परिवर्तन लाता है समय के साथ आवश्यकताएं भी बदलती हैं। त्रेता और द्वापर में राम और कृष्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए वाल्मीकि एवं संदीपनी के आश्रम में जाते थे। गुरुकुल

समाज से मिली भिक्षा पर आश्रित रहते थे। द्वापर के अन्त में ही शिक्षक घर आकर पारिश्रमिक के बदले में शिक्षित करने लग गए थे। आचार्य द्रोण इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं। द्रोण अब सबको शिक्षा नहीं दे सकते थे। न एकलव्य को न ही कर्ण को। शिक्षा के विषय छात्रों के अनुरूप होते चले गए। कृष्ण-सुदामा का साथ छूट गया। दुर्योध्न भी पैदा होने लग गए। आश्रम में यह संभव नहीं था। वहां पात्रता के अनुरूप शिक्षा दी जाती थी यहां संरक्षण का आधार था। महाभारत के साथ ही द्वापर बीत गया। शिक्षा में कुछ काल तक धर्म की भूमिका भी बढ़ी। अंग्रेजों ने नई व्यवस्था बनाई। न शिष्य गुरु के घर जाएगा न ही गुरु शिष्य के घर। स्कूल खड़े कर दिए। समय पढ़ाई का भी तय हो गया विषय तय हो गए। वेद के गुरु और अन्तेवासी; शिष्य शब्द भी विदा हो गए।

हमारी शिक्षा में सांस्कृतिक मूल्यों के स्थान पर पश्चिमी सभ्यता-मूलक तत्वों को उपादान के रूप में ग्रहण कर लिया गया है। तभी तो शिक्षा व समृद्धि के पाश्चात्य मानदण्डों को आधार मान लिया है जो संस्कृति-विरोधी हैं। जिनमें नैतिक व मानवीय मूल्यों का विशेष स्थान नहीं है। इसी का परिणाम है कि बुद्धिमान व गरीब नैतिक व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से भी हांसिये पर ही रहता है और नैतिकता-विहीन, संवेदनहीन, भ्रष्टाचारी व अपराधी भी सम्पन्न, सभ्य, सम्मान्य व प्रतिष्ठित होता है। जबकि राधाकृष्णन व कोठारी आयोग की मान्यता थी कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिवर्तन का प्रभावी माध्यम बन सके। इस दृष्टि से भारतीय प्रकृति और संस्कृति के अनुरूप शिक्षा से ही मूल्यपरक उदात्त-गुणों का संप्रेषण और समग्र व्यक्तित्व का निर्माण सम्भव है। इसमें पुराने व नये का बिना विचार किये जो देश की अस्मिता व समाज के हितकर है, उसी को प्रमुखता देनी चाहिए। जैसा कि कालिदास ने काव्य के माध्यम से कहा है-

पुराणमित्येव न साधु सर्वंन चापिकाव्यंनवमित्यवद्यम्।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्‌भजन्तेमूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।

अर्थात् पुरानी ही सभी चीजें श्रेष्ठ नहीं होती और न नया सब निन्दनीय होता है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति परीक्षा करके जो हितकर होता है उसी को ग्रहण करते हैं जबकि मूर्ख दूसरों का ही अन्धानुकरण करते हैं।

आज शिक्षा जीवन को जीने योग्य नहीं बना सकती। वह ब्रह्म का पर्याय नहीं है। उसमें रस माधुर्य संस्कार देने की क्षमता अथवा अच्छा इंसान बनाने की ताकत नहीं है। डिग्री या नौकरी के आगे कुछ नहीं है। आज तो खुले-विश्वविद्यालय उपलब्ध हैं। न गुरु को जानने की जरूरत है, न ही शिष्य के परिचय की। डिग्री घर बैठे ही आ जाती है। इसी में आगे डिग्रियां खरीदने की व्यवस्था हो गई। कई बार तो फीस भेजते ही कोर्स और डिग्री साथ ही आ जाते हैं। वसुधैवकुटुम्बकम् निजी स्वार्थ में बदल गया। शिक्षित अधिक दुःखी दिखाई जान पड़ते हैं, भले ही प्रोफेसर प्रोपर्टी डीलर बन गए हों। जीवन की रसमयता ही विद्या का योग है। यही संस्कृति का मूल तथा व्यक्तित्व एवं देश की पहचान बनती है। किसी भी फसल में खाद-पानी का तो उपयोग होता है किन्तु हवा और धूप का योग ही होता है। समाज के बुजुर्गों की मदद ले सकते हैं क्योंकि वो शिक्षा के संस्कृतिकरण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनके पास अक्सर ऐसी कहानियाँ और कौशल होते हैं, जिनके बारे में आज की पीढ़ी अनजान होती है। जिसके जरिए आज के छात्र कल अपनी विरासत से गौरवान्वित होने वाले शिक्षित नागरिक बनें।

आज की अधिकांश शिक्षण संस्थाएं अनुदान-आश्रित हैं। अनेक सीमाओं और राजनीतिक समीकरणों में बंधी हैं। यहां तक कि पाठ्यक्रम में पुस्तकों का चयन भी अधिकारी नेता ही तय करवा देते हैं। वे ही नीतियां बनाते हैं। शिक्षाविद् मौन रहने को विवश हो गए हैं। इसमें शिक्षकों, साहित्यकारों मनीषियों का आदर कम होता गया है। शिक्षण संस्थाओं में स्वायत्तता भी स्वच्छन्दता बन गई। शिक्षकों के सरकारी सम्मान भी राजनीति की मार खा रहे हैं। अब शिक्षक सर्वपल्लीराधाकृष्णन् की तरह से राष्ट्रपति नहीं बन सकते।

निष्कर्ष

जन के दर्शन का इतिहास एक मधुर कविता की तरह होती है जिसे समय के कलम से लिखा जाता है उस घटना और फैसला का शृंखलाबद्ध संकलन से ही आधुनिक समाज की कल्पना होती है। हमारी संस्कृति, जरुरतों, आकांक्षाओं तथा हमारी कमियों को ध्यान में रखते हुए सर्वाधिक अनुकूल राज व्यवस्था का गठन हो जिसमे किसी प्रकार का धर्म का कोई भेदभाव नही हो, नागरिकों के लिए शिक्षा की ऐसी व्यवस्था करता है कि वह समाज के आदर्शों को प्राप्त करते हुए समाज के लिए उपयोगी नागरिक के रूप में अपने आपको प्रस्तुत कर सके।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय शिक्षा पद्धति में सुधार हेतु शिक्षा आयोगों की स्थापना कीजिनके द्वारा पस्तुत सुझावों के अनुसार शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए हम आज भी प्रयासरत हैं। देश में पिछले वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त भौतिक उन्नति एवं मानवीय साधनों में वृद्धि की गई है। लेकिन वास्तविकता यह है कि हमारी प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा की आम स्थिति उसकी किस्मउसकी आदर्श प्रक्रिया तथा स्तर में काफी गिरावट आई है। वर्तमान शिक्षा पद्धति अनेक कसौटियों पर विफल हो रही है। शिक्षित व्यक्तियों के आदर्श एवं मूल्यों में गिरावट आई है,जिसका दुष्पभाव राष्ट्र के भविष्य पर पड़ना भी स्वाभाविक है। शिक्षण संस्थाएं प्रभावहीन विद्यार्थी की बुद्धि को प्रेरित करने तथा आत्मा को झकझोरने में पूर्णतया असमर्थ है। अत: आज शिक्षा में चालू बैंकिंग मॉडल को बदलकर अंत:करण को झकझोरने वाला मॉडल अपनाकर वार्तालाप के माध्यम से अध्ययनरत् बालक-बालिकाओं में ज्ञान और चेतना के स्तर को उच्चा उठाया जाना अति आवश्यक है। शिक्षा द्वारा भारतीय समाज के संरचनात्मक पुनरुत्थान हेतु आलोचनात्मक, विचारात्मक एवं समस्या समाधान करने की चेतना को बढ़ावा देना वांछित है।

वर्तमान भारतीय समाज को व्यवहारिक शिक्षा की आवश्यकता है, जो मुक्तिदायिनी, सुधारवादी तथा सामाजिक परिवर्तन की सशक्त अभिकर्ता के रूप में भूमिका अदा कर सके। भारतीय संविधान में निहित आधार एवं शैक्षिक निहित मूल्यों के प्रति निष्ठावान बनाने के लिए राष्ट्र के सम्मुख उभरने वाली समस्याओं का उत्तरदायित्वपूर्ण दृढ़ता से निदान व समाधान करने हेतु पत्येक भावी नागरिक को सावधानी से प्रशिक्षित करना वांछित है। इसके लिए प्राथमिकसे विश्वविद्यालय स्तर तक की अध्ययन संस्थाओं में जनतंत्र आधारित समाजवादी समाजसमान सामाजिक व्यवस्था सामाजिक न्याय, धर्म निरपेक्षता एवं लोक कल्याणकारी राज्य के प्रतिमानों को दृष्टि में रखना परम आवश्यक है ताकि बालक-बालिकाओं में जनतंत्र के मूलाधार स्वतंत्रता, समानता एवं मातृत्व की अभिवृत्ति का विकास किया जा सके। कालांतर में ऐसी अभिवृत्ति वाले नागरिक लोकतांत्रिक व्यवस्था के निर्माण में तथा शैक्षिक अवसरों की समानता में अपना योगदान करने में कोई कोताही नहीं बरतेंगे। जनतांत्रिक भारत में शिक्षा के माध्यम से देशवासियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना ही प्रमुख लक्ष्य है। लोकतांत्रिक भारत की जड़ें इसीलिए कमजोर परिलक्षित हो रही हैं,क्योंकि यहां के नागरिक शत्-पतिशत शिक्षित नहीं हैं। अत: अशिक्षा के अंधकार से छुटकारा पाकर ही हम अपने कलंक को मिटा सकते हैं। प्रत्येक भारतीय के शिक्षित होने से ही त्यागपूर्ण सक्षम नेतृत्व देश भक्ति एवं भावात्मक रूप से एकता के प्रति अभिरुचि का विकास सम्भव हो सकता है। देशवासियों में जब तक आत्म नियंत्रण सहनशीलता पारस्परिक सद्भाव एवं दूसरों के प्रति आदर की भावना विकसित नहीं होगी तब तक हमारे प्रज्ञातांत्रिक व्यवस्था रूपी पेड़ के पत्ते तो हरे परिलक्षित जरूर हो सकते हैं परंतु उसकी जड़ें कमजोर ही बनी रहेंगी। जनतांत्रिक भारत में शिक्षा प्रत्येक वर्ग के क्षेत्र के भावी नागरिक को उसकी रुचियों आवश्यकताओं योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुरूप विकसित होने हेतु समस्त अवसर उपलब्ध करवाए जाने चाहिए। शिक्षण संस्थाओं व शिक्षा-नियोजकों से आशा की जाती है कि वे केवल तथ्यों को रटने एवं उगलवाने की बजाय ठोस वास्तविकताओं की शिक्षा-व्यवस्था को प्राथमिकता दें। दूसरों द्वारा कही-सुनीलिखी हुई बातों या अवनतिपूर्ण और अपूर्ण सत्य प्रेक्षणों के आधार पर बालक-बालिकाओं को शिक्षा देना जनतंत्र व्यवस्था में उपयुक्त नहीं सिद्ध हो सकता है। भावी पीढ़ी को कालांतर में व्यवहारिक जीवन के क्षेत्र में पविष्ट होना होता है, जहां वास्तविक परिस्थितियों से सरोकार होता है। अत: उन्हें वास्तविक मौलिक तथ्यों को खोजने की प्रेरणादायक शिक्षा अध्यापन अवधि में प्रदान करना आवश्यक है। विश्व स्तर पर शिक्षा क्षेत्र में आ रहे नये-नये दार्शनिक विचारोंजो समाज के लिए उपादेय सिद्ध हो सकते हैं। उन्हें भी स्वीकार करने में किसी प्रकार का परहेज हमें नहीं होना चाहिए। जनतंत्र में व्यवहारिक शिक्षा को प्राथमिकता देना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. कुमार, आशुतोष (1961) "पंचायतों का प्राचीनस्वरूप", कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, अक्टूबर, पृ. 21-29
2. गुप्ता, रघुराज (1978), "ग्रामीण समाज शास्त्र–भारतीय परिवेश में", विवेक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 69
3. गाँधी, एम.के. (1946), "हरिजन", जुलाई
4. अग्रवाल, जी.के. एवं पाण्डेय, एस.एस. (1985), "ग्रामीण समाजशास्त्र", आगरा बुक डिपो, आ०रा, पृ. 539
5. बघेल, डी., स. (2004), "समाजशास्त्र", कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृ. 137
6. नारायण, जयप्रकाश (1978), "कम्यूनिटेरियन सोसायटी एण्ड पंचायती राज", इन्द्रप्रस्थ प्रैस, वाराणसी, पृ. 73

7. डॉ. राजेंद्र प्रसाद – साहित्य शिक्षा और संस्कृति।
8. शंकर विजयवर्गीय – भारतीय शिक्षा का इतिहास।
9. डॉ.दौलत सिंह कोठारी – कोठारी आयोग।
10. आनंद सुब्रमण्यम शास्त्री – भारतीय शिक्षा पद्धति।
11. डॉक्टर रामनाथवेदालंकर – वेद मंजरी।
12. बाबू गुलाब राय – भारतीय संस्कृति की रूपरेखा।
13. राजा राम शास्त्री – समाज और संस्कृति।
14. पंडित श्रीराम शर्मा – आचार्य नैतिक शिक्षा।
15. भारत में पंचायती राज व्यवस्था एक परिचय।
16. Advocate of Jan Save The Democracy, Bihar.
    - https://hi-wikipedia.org
    - https://M.dailyhunt.in
    - https://khabar-ndtv.com
    - Bihar Tak News.
    - Team Jsd.

इतिहास का पारस स्पर्शः चंपारण का गांधी

डॉ० गुड्डी कुमारी

(पीएच. डी., नेट) अतिथि सहायक लेक्चरर, एल.एन.एम. यूनिवर्सिटी, दरभंगा

भारत की जंगे-आजादी के इतिहास में चंपारण सत्याग्रह को मील का पत्थर माना जाता है। गांधी ने यहीं से अहिंसा को एक कामयाब विचार के रूप में रोपा। वैसे तो इतिहास की हर घटना की शताब्दी आती है और उसे सौ साल पुराना बना कर चली जाती है। हम भी इतिहास को बीते समय और गुजरे लोगों का दस्तावेज भर मानते हैं। लेकिन इतिहास बीतता नहीं है, नए रूप और संदर्भ में बार-बार लौटता है और हमें मजबूर करता है कि हम अपनी आंखें खोलें और अपने परिवेश को पहचानें, इतिहास के कुछ पन्ने ऐसे होते हैं कि वे जब भी हमें या हम उनको छूते-खोलते हैं तो हमें कुछ नया बना कर जाते हैं। इसे पारस-स्पर्श कहते हैं। चम्पारण का गाँधी अध्याय ऐसा ही इतिहास का पारस हैं। इस पारस के स्पर्श से ही गांधी वह बने जिसके लिए इतिहास ने उन्हें गढ़ा था।

15 अप्रैल,1917 को राजकुमार शुक्ल जैसे एक साधारण किसान के साथ मोहनदास करमचंद गांधी जैसे सफल सत्याग्रही चंपारण आये। मोहनदास वर्षों बाद स्वदेश लौटे थे, चंपारण का नाम भी नहीं सुना था और नील की खेती के बारे में न के बराबर जानते थे। कानूनी पढ़ाई के लिए इंग्लैंड से जो विदेश-यात्रा शुरू हुई थी वही उन्हें दक्षिण अफ्रीका ले गई और फिर वहीं सपरिवार बस गये। सब कुछ ठीकठाक ही चल रहा था। वकालत भी जम गई थी कि मॉरित्सबर्ग स्टेशन पर उस मूढ़मति टिकटचेकर ने उन्हें डिब्बे से उतार फेंकने का कारनामा कर डाला। अगर उस टिकटचेकर को जरा भी इल्म होता कि इस काले को डब्बे से उठा फेंकने से गोरों के साम्राज्य की नींव ही उखड़ जाएगी तो वह ऐसा कभी न करता। लेकिन उसने बैरिस्टर एमके गांधी को भीतर से मोहनदास करमचंद गांधी कर दिया जो धीरे-धीरे चोला उतारता-उतारता कब महात्मा गांधी और फिर बापू बन गया, अतः यह याद रखने जैसा तथ्य है कि गांधीजी जब चंपारण गए तब तक वे एकदम परिपक्व सत्याग्रही बन चुके थे। दक्षिण अफ्रीका का अपना संघर्ष जीत कर भारत आए। वचनबद्ध गांधी पूरे साल भर तक 'आंख खुली, मुंह बंद' कर सारा भारत घूमते रहे। देश देखा, लोग देखे, प्रकृति देखी और देखा हर मान-अपमान को सह कर जीने का भारतीय स्वभाव। इसी भारत-दर्शन के क्रम में वे यह पहचान सके कि सैकड़ों साल की गुलामी अब अवस्था नहीं, मन:स्थिति में बदल चुकी है।

अतः वे यहाँ आकर अंग्रेजों से कोई लड़ाई ही नही लड़ते, वे लड़ाई शुरू करते हैं गुलामी की मानसिकता से।[1]

गांधी के चंपारण पहुंचने से पहले ही उनकी कीर्ति वहां पहुंच चुकी थी। दक्षिण अफ्रीका में गांधी ने क्या किया, इसे न जानने वाले भी यह जान गए कि यह चमत्कारी आदमी है। रास्ते भर किसान ही नहीं, सरकारी अधिकारी भी गांधी को देखने आते रहते रहे। जितने लोग आते जाते, बातें उतने ही रंग की फैलती जातीं। अंग्रेज अधिकारी और प्रशासन हैरान था कि यह आदमी करना क्या चाहता है और यह जो करना चाहता है वह इसे करने दिया जाए तो पता नहीं यह क्या-क्या करने लग जाएगा! दक्षिण अफ्रीका में इनके आका इस आदमी के जाल में इसी तरह जा फंसे थे, वह कहानी गांधी के लोगों से ज्यादा अच्छी तरह सरकारी लोगों को पता थी।

15 अप्रैल को गांधी मोतिहारी पहुंचे और बाबू गोरख प्रसाद के घर पर उन्हें ठहराया गया। अंग्रेजों के बात-व्यवहार का गांधी को दक्षिण अफ्रीका से अनुभव था। इसलिए वे तुरंत गिरफ्तारी की संभावना मान कर तैयार थे। उसी आधर पर सामान की गठरी बनी थी। सब जानना चाहते थे कि गांधी कल से सत्याग्रह कैसे शुरू करेंगे। गांधी एकदम ठंडे स्वर में बोले, 'कल मैं जसवलपट्टी गांव जाऊंगा!' सब एक-दूसरे से पूछते हैं-क्यों, वहां क्यों? पता चलता है कि वहां के एक प्रतिष्ठित गृहस्थ पर अत्याचार की ताजा

खबर आई है। सब बड़े लोग कुछ परेशान हो जाते हैं। अत्याचार कहां नहीं है कि आप जसवलपट्टी जा रहे हैं। मोतिहारी मुख्य शहर है। यहां से आपको प्रचार मिलेगा न कि जसवलपट्टी से।

रात बीती। सुबह गांधी जसवलपट्टी जाने के लिए तैयार। धरणीधर बाबू और रामनवमी बाबू साथ निकले। सवारी मंगाई गई हाथी। जलता हुआ सूरज सिर पर है और गर्म हवा झुलसा रही थी। गांधी ने कभी हाथी की सवारी की नहीं थी और वह भी तीन आदमी एक साथ। लगभग टंगी हुई हालत में सफर शुरू और गांधी की बात भी शुरू हुई। वे जब से मोतिहारी आए थे, यहां की महिलाओं की दशा उन्हें मथ रही थी। इसलिए इसकी ही चर्चा उन्होंने निकाली और कहा यह कि यह तो हमारी महिलाओं को मार ही देगा। अंग्रेज अधिकारी भी यही समझ रहे थे कि यह आदमी पता नहीं कब, कहां और कैसे हमें मार ही देगा और इसलिए बगैर कोई वक्त खोए वे ही आगे बढ़ कर गांधी से लड़ाई मोल लेते। रास्ते में हाथी से उतर कर बैलगाड़ी, बैलगाड़ी से उतर कर इक्का और इक्का से उतर कर टमटम की यात्रा करवाता है प्रशासन और फिर जिला छोड़ कर चले जाने का फरमान थमा देता है। 'मुझे इसका अंदेशा तो था ही।' कह कर गांधी चंपारण के जिलाध्किारी का आदेशपत्र लेते हैं। लिखा है, 'आपसे अशांति का खतरा है!' गांधी यह आदेश मानने से सीधे ही इनकार कर देते हैं। वे अपने साथियों में पहले से बना कर लाया वह हिदायतनामा बांट देते हैं जिसमें लिखा है कि अगर उनकी गिरफ्तारी होती है तो किसे क्या करना है। यह सब तो अभूतपूर्व था।

अगले दिन, अगला नजारा कचहरी में खुला। बेतार से बात सारे चंपारण में फैल गई थी कि अब गांधीजी का चमत्कार होगा। कचहरी में किसानों का रेला उमड़ा पड़ा था। सरकारी वकील पूरी तैयारी से आया था कि इस विदेशपलट वकील को धूल चटा देगा। जज ने पूछा कि गांधी साहब आपका वकील कौन है, तो गांधीजी ने जवाब दिया कोई भी नहीं। फिर? गांधी बोले, 'मैंने जिलाधिकारी के नोटिस का जवाब भेज दिया है। अदालत में सन्नाटा खिंच गया। जज बोला, 'वह जवाब अदालत में पहुंचा नहीं है।' गांधीजी ने अपने जवाब का कागज निकाला और पढ़ना शुरू कर दिया। कचहरी में इतना सन्नाटा था कि गांधीजी के हाथ की सरसरहाट तक सुनाई दे रही थी। उन्होंने कहा कि अपने देश में कहीं भी आने-जाने और काम करने की आजादी पर वे किसी की, कैसी भी बंदिश कबूल नहीं करेंगे। हां, जिलाधिकारी के ऐसे आदेश को न मानने का अपराध मैं स्वीकार करता हूं और उसके लिए सजा की मांग भी करता हूं। गांधीजी का लिखा जवाब पूरा हुआ और इस खेमे में और उस खेमे में सारा कुछ उलट-पुलट गया। न्यायालय ने ऐसा अपराधी नहीं देखा था जो बचने की कोशिश ही नहीं कर रहा था। देशी-विदेशी सारे वकीलों के लिए यह हैरतअंगेज था कि यह आदमी अपने लिए सजा की मांग कर रहा है जबकि कानूनी आधार पर सजा का कोई मामला बनता ही नहीं है। सरकार, प्रशासन सभी अपने ही बुनेजाल में उलझते जा रहे थे। जज ने कहा कि जमानत ले लो तो जवाब मिला, 'मेरे पास जमानत भरने के पैसे नहीं हैं!' जज ने फिर कहा कि बस इतना कह दो कि तुम जिला छोड़ दोगे और फिर यहां नहीं आओगे तो हम मुकदमा बंद कर देंगे। गांधीजी ने कहा, 'यह कैसे हो सकता है! आपने जेल दी तो उससे छूटने के बाद मैं स्थाई रूप से यही चंपारण में अपना घर बना लूंगा।' यह सब चला और फिर कहीं दिल्ली से निर्देश आया कि इस आदमी से उलझो मत, मामले को आगे मत बढ़ाओ और गांधी को अपना काम करने दो। बस, यही सरकारी आदेश वह कुंजी बन गई, जिससे सत्याग्रह का ताला खुलता है। ताला क्या खुलता है सारे वकील, प्रोफेसर, युवा, किसान-मजदूर सब खिंचते चले आए और जितने करीब आए, उतने ही बदले।

गांधी सबसे वादा भी ले लेते हैं कि जेल जाने की घड़ी आएगी तो कोई पीछे नहीं हटेगा। इन नामी वकीलों ने अब तक दूसरों को जेल भिजवाने का या जेल जाने से बचाने का ही काम किया था, खुद जेल जाने की तो कल्पना भी नहीं की थी। जेल जाना बदनामी की बात भी थी। गांधी सबको समझा रहे थे कि सच की लड़ाई में जेल जाना सम्मान की ही बात नहीं है बल्कि जरूरी बात भी है। और जब वे यह कह रहे थो तो सभी जानते थे वे खुद दक्षिण अफ्रीका की जेलों में रह कर और जीत कर आए हैं।

मोहनदास करमचंद गांधी के द्वारा 1917 में संचालित चंपारण सत्याग्रह न सिर्फ भारतीय इतिहास बल्कि विश्व इतिहास की एक ऐसी घटना है, जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को खुली चुनौती दी थी। वे दस अप्रैल, 1917 को जब बिहार आए तो उनका एक मात्र मकसद चंपारण के किसानों की समस्याओं को समझना, उसका निदान और नील के धब्बों को मिटाना था। एक स्थानीय पीड़ित किसान राजकुमार शुक्ल कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन (1916) में अंग्रेजों द्वारा जबरन नील की खेती कराई जाने के संदर्भ में शिकायत की थी। शुक्ल का आग्रह था कि गांधीजी इस आंदोलन का नेतृत्व करें। गांधीजी ने इस समस्या को न सिर्फ गंभीरतापूर्वक समझा, बल्कि इस दिशा में आगे बढ़े।

गांधी ने 15 अप्रैल, 1917 को मोतिहारी पहुंचकर 2900 गांवों के तेरह हजार किसानों की स्थिति का जायजा लिया। 1916 में लगभग 21,900 एकड़ जमीन पर आसामीवार, जिरात, तीनकठिया आदि प्रथा लागू थी। चंपारण के किसानों से मड़वन, फगुआही, दषहरी, सट्टा, सिंगराहट, धेड़ावन, लटियावन, शरहवेशी, दस्तूरी, तवान, खुश्की समेत करीब छियालीस प्रकार के 'अवैध कर' वसूले जाते थे। कर वसूली की विधि भी बर्बर और अमानवीय थी। नील की खेती से भूमि बंजर होने का एक अलग भय था।

निलहों के विरुद्ध राजकुमार शुक्ल 1914 से ही आंदोलन चला रहे थे। लेकिन 1917 में गांधीजी के सशक्त हस्तक्षेप ने इसे व्यापक जन आंदोलन बनाया। आंदोलन की अनूठी प्रवृत्ति के कारण इसे राष्ट्रीय बनाने में गांधीजी सफल रहे। 1867 में पंडौल का नील आंदोलन क्षेत्रीय था, जबकि 1908 का आंदोलन राज्य स्तरीय। गांधी के संगठित नेतृत्व ने चंपारण के किसानों के भीतर जबर्दस्त आत्मविश्वास और सफलता का संचार किया। ब्रिटिश सरकार ने गांधी के इस पहल को विफल बनाने के लिए धारा-144 के तहत सार्वजनिक शांति भंग करने का नोटिस भी भेजा। लेकिन गांधीजी इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। गांधीजी के शांतिपूर्ण प्रयास का अनुचित ढंग से दमन करना ब्रिटिश सरकार के लिए भी कठिन सिद्ध हो रहा था। उधर, गांधीजी की लोकप्रियता निरंतर बढ़ती चली जा रही थी। तत्कालीन समाचार पत्रों ने चंपारण में गांधीजी की सफलता को काफी प्रमुखता से प्रकाशित किया। निलहे बौखला उठे। गांधीजी को फंसाने के लिए तुरकौलिया के ओल्हा फैक्टरी में आग लगा दी गई। लेकिन गांधीजी इससे प्रभावित नहीं हुए।

बाध्यता के कारण बिहार के तत्कालीन डिप्टी गर्वनर एडवर्ड गेट ने गांधीजी को वार्ता के लिए बुलाया। किसानों की समस्याओं की जांच के लिए 'चंपारण एग्रेरियन कमेटी' बनाई गई। सरकार ने गांधीजी को भी इस समिति का सदस्य बनाया। इस समिति की अनुशंसाओं के आधर पर तीनकठिया व्यवस्था की समाप्ति कर दी गई। किसानों के लगान में कमी लाई गई और उन्हें क्षतिपूर्ति का धन भी मिला। हालांकि, किसानों की समस्याओं के निवारण के लिए ये उपाय काफी न थे। फिर भी पहली बार शांतिपूर्ण जनविरोध के माध्यम से सरकार को सीमित मांगों को स्वीकार करने पर सहमत कर लेना एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। सत्याग्रह का भारत के राष्ट्रीय स्तर पर यह पहला प्रयोग इस लिहाज से काफी सफल रहा। इसके बाद नील की खेती जमींदारों के लिए लाभदायक नहीं रही और शीघ्र ही चंपारण से नील कोठियों के मालिकों का पलायन प्रारंभ हो गया।

इस आंदोलन का दूरगामी लाभ यह हुआ कि इस क्षेत्र में विकास की प्रारंभिक पहल हुई, जिसके तहत कई पाठशाला, चिकित्सालय, खादी संस्था और आश्रम स्थापित किए गए। इस आंदोलन का एक अन्य लाभ यह भी हुआ कि चंपारण से ही मोहनदास करमचंद गांधी का 'महात्मा' बनने का मार्ग प्रशस्त हुआ आमजनों को अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए सहज हथियार (सत्याग्रह) मिला। इसलिए हमें चंपारण सत्याग्रह को आज के संदर्भ में देखना चाहिए।

सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान गाँधी जी के द्वारा विभिन्न रचनात्मक कार्य किये गये, जो आज भी प्रासांगिक हैं। ऐसे तो गांधीजी चंपारण में किसानों की समस्या को लेकर आये थे और जब आकर देखा तो समस्या सिर्फ कृषि का ही नहीं बल्कि शिक्षा एवं स्वास्थ्य का भी विकट था। अतः बच्चों, नौजवानों को रोजगारपरक शिक्षा देने हेतु बुनियादी विद्यालय खोला गया। पहला बुनियादी विद्यालय बरहरवा लखनसेन में खुला और उसके बाद मधुबन, तुरकौलिया, भितिहरवा में खुला। भितिहरवा में जहा गांधीजी स्वयं संचालन कर रहे थे। वही कस्तूरबा गाँधी बरहरवा में संचालन कर रही थी। इसके अलावे गाँधी जी विभिन्न समाजिक एवं नैतिक कार्यो के संचालन में संलगन रहे, जैसे - गाँव में स्वच्छता हेतु जागृति पैदा करना, सहयोग से रास्ता बनाना, सफाई करना, खुले में शौच न करने हेतु लोगों को जागरूक करना। स्वास्थ्य सम्बन्धी जागरूकता हेतु मुंबई से चिकित्सकों के दल को गांवों में व्यव्स्था करवाना, गांधी ने अपने चंपारण प्रवास के दौरान कुष्ठ रोगियों की बहुत सेवा की। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि- 'चम्पारण का यह दिन मेरी जिन्दगी में ऐसा था जो कभी भुलाया नहीं जा सकता, जहां मैंने ईश्वर का, अहिंसा का और सत्य का सक्षात दर्शन किया'।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि आज हमारी खेती-किसानी जब लाचारी और आत्महत्या का दूसरा नाम बन गई है, हमें चंपारण सत्याग्रह की इस दिशा का ध्यान करना चाहिए। गांधी और चंपारण दोनों ही आज के हिंदुस्तान की दशा सुधारने और दिशा दिखाने का काम एक साथ कर सकते हैं। शर्त इतनी ही है कि हम दशा सुधारने और दिशा खोजने के बारे में ईमानदार हों।

संदर्भ सूची

1. श्री नागेन्द्र मोहन प्रसाद श्रीवास्तव - बिहार में राष्ट्रीयता का विकास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. मदन लाल वर्मा - स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी साहित्य का इतिहस, नई दिल्ली, 2006
3. राजेन्द्र प्रसाद- सत्याग्रह इन चम्पारण
4. के. के. दता - बिहार का स्वतंत्रता संग्राम, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
5. गाँधी, एम. के - सत्य के साथ मेरा प्रयोग, नवजीवन प्रेस
6. Http://www.gandhism-net
7. http://sites.goole.com/site/champagne movement.

18वीं और 19वीं शताब्दी में भारत में नारी जागरण के प्रयास

डॉ० पूर्णिमा कुमारी

(एम.ए., पीएच.डी), बी.आर.ए.बी. यूनिवर्सिटी, मुजफ्फरपुर

18वीं एवं 19वीं शताब्दी में भारत में नारी जागरण के प्रयत्न हुए। सती प्रथा, विधवा -विवाह, बहुपत्नी प्रथा, बाल - विवाह, संपत्ति - अधिकारों का निषेध, स्त्री - शिक्षा आदि मुद्दों को लेकर राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, महादेव गोविंद रानाडे महात्मा फुले, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, श्रीमती एनी बेसेंट आदि समाज सुधरकों ने महिलाओं की स्थिति में सुधर के प्रयत्न किए ।[1]

1756 ई.: 1756 ई0 में ढाका के राजा राजबल्लभ अपनी पुत्री का पुनर्विवाह करना चाहते थे, वह बहुत ही छोटी आयु में विधवा हो गई थी। राजा ने यह जानने के लिए कि क्या हिन्दू शास्त्रों में विधवा विवाह वास्तव में वर्जित है, बनारस मिथला और दक्षिण के प्रकांड पंडितों के मत लिए। इन पंडितो ने सर्वसम्मति से यह मत दिया कि यदि किसी के पति का कुछ पता न चले, या उसकी मृत्यु हो जाए या वह संसार त्याग कर संयासी हो जाए या नपुंसक हो अथवा जात से बाहर कर दिया जाए तो स्त्रियां फिर से विवाह कर सकती हैं।[2]

1783 ई.: रूढ़िवादी युग में एक प्रमुख ब्राह्मण परिवार में जन्म (1744 ई.) लेकर राममोहन राय सामाजिक बुराइयों और धर्मिक पूर्वाग्रहों के वातावरण में बड़े हुए। नौ वर्ष की आयु में उन्हें दो बार विवाह करना पड़ा। बाद में एक बार और उनका विवाह हुआ क्योंकि उनके लिए कुलिनवाद के विशिष्ट अधिकारों से बचना असंभव था।[3]

1815 ई.-1856 ई0: राममोहन राय की तरह विद्यासागर भी यह भली भांति जानते थे कि चीजों और मनुष्यों के संबंध में बिना नई दृष्टि अपनाए नए सामाजिक और व्यक्तिगत व्यवहार की आशा नहीं कर सकती। उस समय हिन्दू समाज की अनेक बुराइयों में से एक थी हिन्दू विधवा को विवाह की अनुमति न होना। इसके विरुद्ध उन्हाने संघर्ष किया। विद्यासागर ने एक नाबालिग विधवा को जीवनपर्यंत वैध्व का जीवन बिताने वाले हिन्दू रिवाज के विरुद्ध आंदोलन का इतिहास 1819 ई० से माना क्योंकि राममोहन राय द्वारा 1815 ई० में गई ''आत्मीय सभा'' नाम की एक संस्था की 1819 ई. में हुई बैठक के रिपोर्ट में लिखा है: 'बैठक में पति की मृत्यु के बाद नाबालिग शुरु की विधवा के आजीवन अविवाहित बने रहने की अनिवार्यता, बहु-विवाह प्रथा तथा सतीप्रथा की भर्त्सना की गई।' शीघ्र ही पति की पति की चिता में विधवाओं के जलने पर रोक लगा दी गई लेकिन विधवा-विवाह के लिए कानून बनवाने के लिए विद्यासागर को कठिन संघर्ष करना पड़ा। उन्होने बहु-विवाह प्रथा को समाप्त करने के लिए भी संघर्ष किया।

राममोहन और उनके मित्रों द्वारा शुरु किए गए सामाजिक आंदोलन के प्रति ईस्ट इंडिया कंपनी आंख बंद किए हुए नहीं थी। 30 जून 1837 ई. को लिखे पत्र में कानून आयोग के सचिव जे. पी. ग्रांट ने विधवा-विवाह की वांछनीयता पर कुछ न्यायाधीशों की राय जाहिर की थी। लेकिन सामाजिक उथल-पुथल और विरोध के डर से सरकार यह कानून नहीं बना पाई। जिसका साहस सरकार को नहीं हुआ उसे युवा 'बंगाल गुट' के नाम से जाने वाले दिरोजियो ने अपने हाँथ में लिया। उनकी पत्रिका 'बंगाल स्पैक्टेर' ने इस सामाजिक क्रूरता का विरोध करते हुए कई लेख छापे। लेकिन लोग उन्हें युवा विद्रोही और नौसिखिए मानते थे और समाज ने इनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया श्रद्धा के आचरण और बचकाने पूर्वाग्रह के नीचे दबा अधजगा, व सोया हिन्दू समाज दुनिया, समाज और व्यक्ति को अजीब रुप में रहा। विद्यासागर ने उसे अच्छी तरह से देखा और स्वयं को बड़ी लड़ाई के लिए तैयार किया।

विधवा-विवाह आंदोलन में उतरने का कारण विद्यासागर की बुद्धि धरा ही नहीं थी बल्कि स्त्री जाति के प्रति उनकी आदर की भावना भी थी। समाज में स्त्रियों, विशेषकर विधवाओं की दुर्दशा देखकर उनको बहुत दु:ख हुआ विधवा-विवाह पर उनका पहला लेख 'तत्वबोधिनी पत्रिका' में निकला जो शीघ्र ही जनवरी 1855 ई. में पुस्तक रुप में प्रकाशित हुआ। उन्होंने अपने धर्मशास्त्रों संबंधी व्यापक अध्ययन को इसकी सिद्धि में लगा दिया और प्रमाणित किया कि उनमें विधवा-विवाह का समर्थन मिला। युवा बंगाल गुट के विपरीत उन्होंने रूढ़िवादियों को उन्हीं की जमीन से ललकारा। रुढिवादियों समेत समस्त शिक्षित जन उनके लेखन में रुचि लेने लगे जिनमें अपने धरणाओं के समर्थन में वे शास्त्रों से प्रमाण दे रहे थे। उन्होंने उन्हें प्रथमत: ही अविश्वासी नहीं समझा। विद्यासागर और वृद्ध राधकृष्ण देव तथा उनके समर्थकों के बीच एक प्रचंड बहस छिड़ गई लेकिन विद्यासागर केवल बहस करने तक ही सीमित न रहे।

उन्होंने 4 अक्टूबर 1855 ई. को 987 लोगों द्वारा हस्ताक्षरित याचिका सरकार के पास भेजी जिसमें विधवा-विवाह को कानूनी बनाने की मांग की गई थी। सामाजिक बुराई को समाप्त करने वाला यह संभवत: पहला आंदोलन था जिसने सम्पूर्ण देश को यहां से वहां तक हिला दिया । बंबई, पूना, सिकंदराबाद, उत्तर प्रदेश, सतारा, मारवाड़ी, अहमदाबाद और सूरत तथा अन्य अनेक स्थानो से कितने ही पत्र आए। राधकान्त देव के नेतृत्व मे 19 जनवरी 1856 ई. को 36,763 लोगों द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रतिकार याचिका सरकार के पास भेजी गई। अंतत: 26 जुलाई 1856 ई. को सरकार ने हिन्दू विधवा-विवाह को कानुनी रूप दे दिया। विद्यासागर लड़ाई को नए स्तर पर गए । जीवंत उदाहरण कायम करने के लिए उन्होंने अपने पुत्र समेत बहुत लोगों को विधवाओं से विवाह करने के लिए प्रेरित किया।

विद्यासागर का सचेत मस्तिष्क किसी भी सामाजिक क्रुरता और संगीत के प्रति विवेकशून्य न था। सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने वाले सभी आंदोलनों में वे आगे थे। हिन्दू विधवाओं के लिए अनेक साहसपूर्ण संघर्ष को विश्वव्यापी आदर मिला। बहु-विवाह और बाल-विवाह पर रोक लगाने के लिए उनके द्वारा किए गए कार्य आज इतिहास के तथ्य हैं। इसके बावजूद वे न तो मूर्तिभंजक थे और न ही क्रान्तिकारी। यही कारण है कि बाल-विवाह का कट्टर विरोधी होते हुए भी वह लिख सके:

'मैं चाहूंगा कि बाल-विवाह स्त्रियों को धर्मिक लोकाचारों का किसी भी रूप में प्रतिरोध किए बिना उचित कानूनि सुरक्षा के नियम बनें। मैं यह भी सुझाव दूंगा कि विवाह के बावजूद पत्नी के प्रथम मासिक धर्म से पहले संभोग करने को जूर्म माना जाए. .. इस प्रकार का कानून न केवल मानवता के हित में होगा बल्कि धर्मिक लोकाचारों में दखल दिए बिना शास्त्रों में निर्दिष्ट नियम को भी लागू करेगा'।

1860 ई.:- 1860 ई0 में एक एक्ट पारित कर विवाह की उम्र 10 वर्ष स्वीकृत की गई एवं 10 वर्ष से कम आयु की लड़की के साथ संभोग को बलात्कार घोषित किया गया था।

1872 ई.:- केशवचन्द्र सेन के ब्रह्म-समाज ने समाजसुधर का कार्यक्रम अपनाया। 1872 ई. में सरकार से नया कानून 'नैटिव मैरिज एक्ट' पारित करवाकर बाल-विवाह एवं बहु-विवाह पर रोक लगवा दी तथा हिंदू और इस्लाम धर्म को न मानने वाले के लिए विधवा-विवाह और अंतरजातीय विवाह कानूनी करवा दिया।

1875 ई. (दयानंद सरस्वति-आर्य समाज):- जब तक इसी प्रकार सब ऋषि-मुनी राजा महाराजा आर्य लोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी, जब से यह ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात माता-पिता के अधीन विवाह होने लगा तब से कमश: आर्यात्रत देशकी हानि होती चली आई है।

1878 ई.:- तेलुगू भाषा इलाके में वीरेशलिंगम में 1878 ई० में राजमुंदरी सोशल रिफार्म एसोसिएशन की स्थपना की जिसका मुख्य लक्ष्य था विधवा विवाह को बढ़ावा देना।

1883 ई.:- गांधी जी की 13 वर्ष की उम्र में 1883 ई० में पोरबंदर में हुआ। उस समय गांधी जी के लिए विवाह का अर्थ था अच्छे-अच्छे कपड़े पहनेंगे, बाजे बजेंगे, अच्छा भोजन मिलेगा और एक नई लड़की के साथ विनोद करने को मिलेगा। कस्तुरबा पति से छ: महीने बड़ी थी। कस्तूरबा पढ़ी लिखी नहीं थी। गांधी जी ने उन्हें पढ़ाने लिखाने की कोशिश की। वे अपनी पत्नी को आदर्श स्त्री बनाना चाहते थे।

1888:- वाल्टर ने 18 मार्च 1888 ई. को अजमेर में राज्यों के सभी सरदारों सामंतो एवं चारणों के प्रतिनिधियों की सभा बुलाई और उसमे सुधार कार्यो के लिए सुझाव आमंत्रित किए गए। वाल्टर सभा के नियम-लड़की की विवाह आयु 14 और लड़के की

18 वर्ष रखी गई परंतु 20 वर्ष की उम्र तक लड़की कुंवारी न रखे। नियमों के क्रियान्वयन से पूर्व तय रिश्तों पर यह नियम नहीं होगा। यह नियम आर्य समाज का था।

1890-91:- तिलक ने 1890 ई० में रानाडे के साथ मिलकर एक गश्ती पत्र भी निकाला था जिसमें स्त्रियों की शिक्षा एवं विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने की हिमायत की गई थी।

बाल-विवाह और जबरन वैधव्य के संबंध में बहरामजी मलाबारी के नोट्स ने बुद्धिजीवियों के बीच एक देशव्यापी बहस छेड़ दी। यह सच है कि उनके निरंतर आंदोलन का लक्ष्य भारतीयों को प्रभावित करना उतना नहीं था जितना कि इंगलैंड के जनमत एवं ब्रिटिश अधिकारियों को, मगर उसके दबाव के परिणामस्वरूप सरकार ने 1891 ई. का एज ऑफ कंसेंट एक्ट पारित किया। अब विवाह की आयु को 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दिया गया था। मालाबारी के बाल-विवाह विरोधी विस्तृत प्रस्तावों में से अंततः इसे ही सरकार ने स्वीकार किया था, मगर इसका विशेष रूप से बंगाल और महाराष्ट्र में भारी विरोध हुआ। इस मुद्दे पर स्पष्ट रूप से रूढ़िवादी एवं सुधार-विरोधी भावनाएं राष्ट्रवादी तकों के साथ मिल गई थीं जिन्हें सबसे बढ़कर तिलक ने प्रस्तुत किया। उनका कहना था कि विदेशी शासकों को धर्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।

एज ऑफ कंसेंट को लेकर जो बावेला मचा था उसके संबंध में उनकी (स्वामी विवेकानंद) निजी टिप्पणी थी। 'गोया कि धर्म बारह-तेरह वर्ष की लड़की को मां बना देने में ही निहित हो।' 1890-91 ई. में जोधपुर राज्य में ही लगभग 36 जातीय संगठनों ने न केवल सुधार जागरूकता उत्पन्न की अपितु सनातन सभाओं एवं जातीय पंचायतों के विरोध के बावजूद बाल-वृद्ध विवाह निषेध कानून पारित कराये।

1893 ई.- 1893 ई. में भारतवर्ष दिगम्बर जैन महासभा की जैन मित्र एवं नारी पात्र, जैन नारी हितकारी पत्रिकाओं के माध्यम से सुधार कार्यों की चेतना उत्पन्न की जान लगी । स्त्री शिक्षा के लिये पाठशालायें खोलने में विशेष सक्रीयता दिखाई तथा बाल-विवाह के विरुद्ध जाति के सदस्यों में जागरूकता उत्पन्न की जाने लगी।

1894 ई.:- 1894 ई. में वैश्य कांफ्रेंस, सहारनपुर के अध्विेशन में किशनगढ़ राज्य के मंत्री सुंदरलाल और जैसलमेर राज्य के दीवान नथमल मेहता ने भाग लिया जिसमें लड़की की विवाह आयु 11 और लड़के की 15 वर्ष रखने का प्रस्ताव पारित किया गया।

19वीं शताब्दी के प्रथम स्तर पर सुधार जागरूकता उत्पन्न की गई। 19वीं शताब्दी के अंत में महिला शिक्षा पर जोड़ दिया गया तथा लड़की की विवाह आयु की न्यूनतम सीमा 11 वर्ष रखने के लिए जागरूकता पैदा की।

20वीं शताब्दी (1900 ई.) के आरंभ में, विशेष कर प्रथम विश्व युद्ध के बाद बाल-वृद्ध विवाह को रोकने और लडकी के विवाह की न्यूनतम आयु 11-14 वर्ष रखने के लिए संगठित रुप से प्रयास आरम्भ हुए। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महकमा खास जोधपुर की सामाजिक फाईलों के 230 पृष्ठों में विभिन्न जाति समूहों द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर की गई अपीलों से यह स्पष्ट होता है कि सम्पन्न लेकिन वृद्ध पुरुष वर्ग में विवाह हेतु निर्धन कन्या पक्ष को धन देने की प्रगति बढ़ी। फलतः सामान्य नवयुवकों के लिये लड़की मिलना मुश्किल होता गया। ऐसी घटनाएँ भी अब अधिक उपलब्ध होने लगी जिनमे सगाई के बाद अन्य पक्ष से अधिक पैसा लेकर पहले हुए संबंध को छोड़कर दुसरे से विवाह किये गये । उदाहरणार्थ : नागौर के खींवसर ब्राह्मण ने चोटासर के ब्राह्मण से अपनी पुत्र की सगाई करने के चार साल बाद अधिक रुपये मिलने पर दूसरी जगह सगाई कर दी। राम गांव के एक ब्राह्मण ने अपनी 11 साल की पुत्री का फौलादी के 40 वर्षीय ब्राह्मण से विवाह कर दिया। जैसलमेर के पाबुदान ने अपनी बहन की सगाई शेरगढ़ के जयसिंह राजपूत से करने के बाद अधिक धन मिलने पर दुसरी जगह शादी कर दी। शिवगंज में 16 साल की लड़की का उसके पिता ने 45,000 रुपये लेकर विवाह कर दिया।

अतः संगठन स्थापित होने लगे वे जाति पंचायतो के सदस्यों के रवैये और बेमेल विवाह करने वालों का विरोध करने लगे। इसी वर्ग ने विवाह सम्बंधी कानून बनाये जाने का समर्थन किया। राज्यों में अखिल भारतीय स्तर पर सुधार संगठनों की शाखायें स्थापित की जाने लगी। नवयुवक सुधार संगठनों के बढ़ते हुए प्रभाव को क्षीण करने के लिये सभा संगठन भी स्थापित हुए। इन संगठनों का उद्देश्य यह रहा कि जातिय पंचायत के क्षीण होते प्रभाव को बनाये रखा जाये तथा समाज सुधार के क्षेत्र में विवाह कानूनों का विरोध किया जाये। अतः नवयुवक संगठनों द्वारा यह अपील की जाने लगी कि नवयुवकों के लिये एक विवाह ही मुश्किल हो जाता है क्योंकि सम्पन्न वृद्धों काजोर रहने से पंचायतों का रवैया पक्षपातपूर्ण रहता था। एवं अखिल भरतीय स्तर के संगठनों ने राज्यों के नवयुवक संगठनों का समर्थन किया जैसे: अखिल भारतीय अग्रवाल सभा; श्री पुष्टिकर ब्राह्मण स्वयं सेवक मंडल मुंबई आदि।

राज्य सरकार ने उभरती जन भावना को संतुष्ट करने के लिये सामाजिक सुधरों के नाम से अनेक बाल-वृद्ध निषेध कानून पारित किये। विभिन्न राज्यों में पारित किये गये इन कानूनों के अंतर्गत निर्धारित आयु सीमा के पूर्व विवाह करना बाल-विवाह और 45 वर्ष की आयु के पश्चात पुरुष द्वारा कम आयु की लड़की से विवाह करना वृद्ध-विवाह माना गया तथा किसी राज्य के नागरिक द्वारा राज्य सीमा के बाहर जाकर विवाह करने पर भी लागू किये जाने की व्यवस्था थी। किन्तु राज्य सरकार सामाजिक तनाव की जिम्मेदार नहीं बनना चाहती थीं। यहीं कारण था कि राज्यों में कानून पारित होने के पश्चात् भी बाल-वृद्ध विवाह होते रहे और कानूनी रुप से न तो कोई कार्यवाही की गई और न ही कानूनों का सख्ती से पालन करने पर जोर दिया गया। जोधपुर में एक 11 वर्षीय लड़की को सती होने के लिये विवश किया गया।

इस काल में क्षत्रिय और कायस्थ बाल-विवाह में विश्वास करते थे। ब्राह्मण भी अपनी बेटियों का विवाह चार-पाँच वर्ष की उम्र में कर देते थे। अग्रवाल अपनी बेटियों का विवाह नौ वर्ष की उम्र में कर देते थे। निम्न शुद्रों में बेलदार भी बाल-विवाह करते हैं। बिहार के धोबी पाँच या बारह वर्ष की उम्र में अपनी बेटियों का ब्याह कर देते हैं। किन्तु यहाँ पर स्मरण रखना चाहिए कि यह सब सगाई मात्र था, दांपत्य जीवन व्यस्क होने पर ही शुरु होता था। ऐसा प्रतित होता है कि निम्न जातियों में लड़कियों का विवाह पाँच वर्ष की उम्र में हीं कर दिया जाता था।

बुकानन कहता है कि पूर्णिया में एक धनी शुद्र को इसलिए जाति से निकाल दिया गया चूँकि उसने अठारह वर्ष की उम्र तक अपनी बेटी का ब्याह नहीं किया था। दहेज के कारण भी विवाह में विलम्ब हो जाता था। किन्तु आजकल शिक्षित परिवार में बाल-विवाह लगभग बंद कर हो गया है। समाज के अन्य वर्ग में भी बंद हो रहा है फिर भी गति धीमी है।

1914 ई.:- भारतीय नारियों की जागृति की दिशा में 1914 ई में डॉ. एनी बेसेंट ने मद्रास में 'भारत जागो' के शिर्षक से एक भाषण दिया था जिसमें भारतीय नारियों से अपनी दासता समाप्त करने, अपनी अशिक्षा समाप्त करने, बाल-विवाह न करने, और निम्न जातियों को सम्मानित स्थान प्रदान करने, अपील की थी इससे समस्त देश में उत्सव की नयी लहर दौड़ गयी। मई 1917 ई. में प्रथम महिला संघ की स्थापना हुई।

1919 ई.:- मंडवा के जयसिंह का 1919 ई. में 16 साल की आयु में देश पाटन के ठाकुर की पुत्री से विवाह हुआ।

1921 ई.:- 1921 ई. की संख्या के आधार पर 5 वर्ष तक की विवाहिता एवं विधवा लड़कियों की संख्या कुल स्त्री जनसंख्या का एक प्रतिशत से भी कम था। दस वर्ष तक की आयु की विवाहिता एवं विधवा लड़कियों का प्रतिशत 5 से कम था। इससे यह स्पष्ट होता है कि बाल-विवाह की परम्परा राजस्थान में किस सीमा तक प्रचलित थी।

1925-30 ई.:- (शारदा एक्ट, 1930):- 1925-28 ई. में बाल-विवाह का प्रश्न एक बार फिर उठा। जांच के लिए एक समिति बैठाई गई। समिति की रिपार्ट प्रकाशित होने के बाद हरविलास शारदा ने 1926 ई. में एक एक्ट प्रस्तुत किया, जो 1930 ई. में शारदा एक्ट या बाल-विवाह निरोध अधिनियम के नाम से प्रसिद्ध है। इस एक्ट में विवाह आयु लड़को के लिए 18 वर्ष और लड़कियों के लिए 14 वर्ष निर्धरित की गई थी।[23]

1928 ई.:- नवम्बर 1928 ई. में दी राजपुताना प्राविनशियल हिन्दू कांफ्रेंस के पुष्कर अधिवेशन, जैन वूमेन कांफ्रेंस की अध्यक्षा किरन देवी ने बाल-विवाह पर रोक लगाने की अपील की। 'मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी' के प्रधान तुलसीराम सरावगी ने जोधपुर, बीकानेर और नगरों में बाल-विवाहों की स्थिति का सर्वेक्षण किया तथा धन देकर होने वाले वृद्ध-विवाहों की बढ़ति प्रवृति की जानकारी देते हुए जयनारायण व्यास को लिखा कि इस ओर ध्यान दिया जाये।

1929 ई.:-1929 ई. में अखिल भारतीय अग्रवाल समाज ने जोधपुर महाराजा से बाल-विवाह कानून के आधार पर राज्य में कानून पारित करने का अनुरोध किया। 1929 ई. में ही माहेश्वरी महिला परिषद, बम्बई की मंत्राणी सत्यवती देवी ने बड़ौदा, भावनगर, मैसूर, इंदौर आदि राज्यों के पारित नियमों के आधार पर राज्यों में बाल-विवाह निषेध कानून लागू करने की अपील की । परिषद के अधिवेशन में राजस्थान का दुर्भागय बताया गया कि वहां के नरेश बाल-बेमेल वृद्ध विवाह का निषेध करने एवं सुधार कार्यो की ओर ध्यान ही नहीं दे रहे हैं।

1930 ई.- जोधपुर राज्य में 1930 में बाल-विवाह निषेध कानून का जाति पंचायतों ने विरोध किया तो नवयुवकों ने मांग की कि जाति पंचायत के व्यक्ति एक ओर तो विवाह को धार्मिक संस्कार मान कर सुधार कानून का विरोध करते हैं और बाल-वृद्ध विवाह न होने देने का आश्वासन देते हैं, दुसरी ओर पैसा लेकर ऐसे ही विवाहों को प्रोत्साहन देते हैं। अत: इन जाति पंचायतों पर नियंत्रण कायम किया जाये और नवयुवक ग्राम पंचायत स्थापित की जायें।

1933-34 ई.:- 1933ई. में अखिल भारतीय कायस्थ युवक संघ अजमेर के वार्षिक अधिवेशन में और 1934 ई. में मारवाड़ी यंगमैन, पूना ने 160 व्यक्तियों के हस्ताक्षर सहित जोधपुर महाराजा से अपिल की कि राज्य के बाल विवाह की रोकथाम की जाये तथा लड़की की आयु 14 वर्ष और लड़के की आयु 18 वर्ष निर्धारित की जाये तथा विवाह रजिस्टर रखे जायें।

1939ई:- 1939 ई. में ग्वालियर राज्य की रानी लक्ष्मीबाई की अध्यक्षता में आयोजित नेशनल प्लानिंग कमेटी के लिये सचिव ने राज्यों में कार्यकर्ताओं की उदासीनता पर खेद प्रकट करते हुए जोधपुर राज्य के प्रधनमंत्री डोनाल्ड फील्ड को पत्र लिखा कि वह इस संबंध में कार्यकर्ता भेजकर सहयोग दे। आल इंडिया पीपुल्स कांफ्रेंस बम्बई द्वारा भी जोधपुर महाराजा को अपिल की गई बम्बई-कलकता में बसें व्यापारी वर्ग ने व्यक्तिगत स्तर पर भी बाल-वृद्ध विवाह की रोकथाम के लिये अपिल की। उदाहरणार्थ, कलकता के नागनाथ बम्बई के खेमजी पोरवाल ने जोध्पुर महाराजा और आई.जी. पुलिस को वृद्ध विवाह रोकने की अपील की। रतनगिरी से शाह सेरमल गोवाणी ने जोधपुर राज्य के 48 गांवों के सम्पन्न महाजनों में वृद्ध-विवाह के प्रचलन के बारे में लिखा तथा नव-युवक मंडल के सुधार प्रयासों की प्रशंसा की तथा राज्यअधिकारियों को इस ओर ध्यान देने की अपील की।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. विश्व प्रकाश गुप्त एवं मोहनी गुप्त, महात्मा गांधी व्यक्ति और विचार, राध पब्लिकेशन, दिल्ली, 2001, पृ०-184।
2. डॉ. राजकुमार, भारतीय महिला सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2008. पृ०-39-41
3. वहीं, पृ०-89-94।
4. पी०एन० चोपडा, बी०एन० पुरी, एम०एन० दास, का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, 3 आधुनिक भारत, मैकमिलन, दिल्ली, 1975, पुन: मुद्रण 1994, पृ०-85, 89
5. वही, पृ०-1001
6. मोहित कुमार हालदार, अनुवाद कर्ण सिंह चोहान, भारतीय नवजागरण और पुनरुत्थानवादी चेतना, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 2000, पूव:-29-31
7. डॉ० राजकुमार, भारतीय महिला: सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2008, पृ०:-139-141
8. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ०:-89
9. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1982, पुन: मुद्रण 2005, पृ०:-43-44
10. त्यागी-रस्तोगी, बिहार का इतिहास, संजीव प्रकाशन, मेरठ, पृ०: 396
11. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1982, पुन: मुद्रण 2005, पृ०:-43-44
12. स्वमी दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, श्री घुडामल प्रहलाद कुमार आर्य, दिल्ली, 2012 पृ०-72-75।
13. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2012, पृ०- 89
14. विश्व प्रकाश गुप्त एवं मोहनी गुप्त, महात्मा गांधी व्यक्ति और विचार, राधा अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पब्लिकेशन, दिल्ली, 2001. पृ०:- 185
15. संतोष यादव, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति प्रिंटवेल पब्लिशर्स, जयपुर, 1987, पृ०:- 140-141
16. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, रजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ०:-92
17. वहीं, पृ०:-89
18. वहीं, पृ०:- 9
19. संतोष यदव, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति।
    प्रिंटवैल पब्लिशर्स, जयपुर, 1987. पृ०:- 148
20. वहीं, पृ०:- 148

21. वहीं, पृ०- 149
22. वहीं, पृ०- 150
23. यहीं, पृ०- 149
24. वहीं, पृ०- 79-80
25. वही, पृ०- 148-153
26. वहीं, पृ०- 172
27. कमलेश्वर राय, बिहार का इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, 2007, वहीं, पृ०-258
28. डॉ० राजकुमार, भारतीय महिला सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2008, वहीं, पृ०- 5-7
29. संतोष यादव, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति, प्रिंटवैल पब्लिशर्स, जयपुर, 1987, पृ0:- 71
30. वहीं, पृ०:- 156
31. डॉ० राजकुमार, भारतीय महिला सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2008, पृ०:- 139-141
32. संतोष यादव, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति, प्रिंटवैल पब्लिशर्स, जयपुर, 1987, पृ०:- 149-150

नवादा जिला में पर्यटन की संभावनाएँ: एक भौगोलिक विश्लेषण

अमर कुमार

सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), भूगोल विभाग, सी० एम० जे० कॉलेज, दोनवारीहाट खुटौना, मधुबनी

शोध सारांश

पर्यटन एक ऐसी यात्रा है जो फुरसत के समय का भरपुर मनोरंजन उठाने के उद्देश्यों से की जाती है। विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार पर्यटक वे लोग है जो यात्रा करके अपने सामान्य वातावरण से बाहर के स्थानों में रहने जाते हैं, यह दौरा ज्यादा से ज्यादा एक साल के लिए मनोरंजन, व्यापार, अन्य उद्देश्यों से किया जाता है, यह उस स्थान पर किसी खास क्रिया से संबंधित नहीं होता है। बिहार के नवादा जिला में पर्यटन की असीम संभावनाएँ है। नवादा अपने विविधताओं के कारण हमेशा से ही पर्यटकों का पसंदीदा स्थल रहा है। यहाँ अनेक प्रकार के पारंपरिक भौगोलिक एवं ऐतिहासिक स्थल है। पर्यटन के क्षेत्र में नवादा जिले का अपना गौरव है और इसे पर्यटन केंद्र के रूप में विकसित करने की क्षमता है। शहर के आसपास कई रमणीय स्थल स्थित है, जिसमें पर्यटक काफी रूचि लेते है। इनमें ककोलत झरना (शहर से 24 किमी.), शेखोदेवरा आश्रम (यहाँ स्थित सर्वोदय आश्रम जो की कौवाकोल प्रखण्ड में है, का निर्माण श्री जय प्रकाश नारायण द्वारा करवाया गया था तथा इसका उद्घाटन भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी के द्वारा किया गया था।), हड़िया का सूर्यनारायण मंदिर एवं कई रूचिकर स्थल हैं, जहाँ पर्यटक मनोरंजन का लाभ उठा सकते हैं।

मुख्य शब्द: इंटरनेट, पर्यटन मंत्रालय, मनोरंजन, गाइड, पर्यटन स्थल, होटल

उद्देश्य

- अधिक से अधिक संख्या में पर्यटकों को नवादा जिले के पर्यटन स्थलों की ओर ध्यान आकर्षित करना ताकि प्रतिवर्ष आनेवाले पर्यटकों की संख्या में बढ़ोतरी हो सके।
- पर्यटन स्थलों के आस-पास के लोगों को रोजगार के अवसर में बढ़ोतरी हो सके।
- कुछ स्थानीय युवकों को गाइड के रूप में कार्य करने के अवसर मिल सकते है। जो आने वाले पर्यटकों को स्थानीय वनस्पतियों और जीव-जंतुओं तथा ऐतिहासिक एवं पौराणिक स्थलों की महत्ता अपने समुदाय और लोक-जीवन का परिचय करा सकते है।
- स्थानीय पर्यावरण में सुधार लाने तथा परिवहन, होटल, खान-पान और हस्तशिल्प जैसे क्षेत्रों में सेवाओं और माल की गुणवत्ता बेहतर करने की शक्ति में बढ़ोत्तरी हो सके।
- बिहार सरकार को नवादा के पर्यटन के वास्तविक स्थिति से अवगत कराना।

विधितंत्र

किसी भी शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए विधितंत्र की आवश्यकता होती है। विधितंत्र के द्वारा शोधकार्य को संयमित, क्रमबद्ध, विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक स्वरूप दिया जा सकता है। इस शोधकार्य को पूर्ण करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों का

उपयोग किया गया है। इस कार्य को पूरा करने के लिए स्वयं शोधर्थी ने नवादा जिले के प्रमुख ककोलत जलप्रपात, प्रजातंत्र द्वार, सूर्य नारायण धाम मंदिर, बाबा का मजार व हनुमान मंदिर, सीतामढ़ी, सेखोदेवरा, नारद संग्राहलय, गुनियाजी तीर्थ पर्यटन स्थलों से जानकारी प्राप्त की। द्वितीयक आँकड़ों के लिए मुख्यत: बिहार सरकार के वार्षिक रिपोर्ट का सहारा लिया गया है। तथा उन आँकड़ों का अपने स्तर पर सारणीकरण किया गया है। साथ ही साथ विभिन्न प्रकार की जानकारियों के लिए इंटरनेट की भी मदद् ली गई है।

अध्ययन क्षेत्र

नवादा जिला बिहार के विशाल गंगा के मैदान के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसका फैलाव 2494 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर है। इसकी भौगोलिक स्थिति $24^{0}88'$ उत्तरी अक्षांश तथा $88^{0}53'$ पूर्वी देशांतर पर है। इसकी समुद्र तल से औसत ऊँचाई 80 मीटर है। जिले का अधिकांश भाग मैदानी है। जबकि दक्षिणी भाग (मेसकौर और नरहट) पठारी है। प्रमुख नदियाँ सकरी, पंचाने, खुशी तथा तिलैया है। यह उत्तर में नालंदा एवं शेखपुरा जिला, पूरब में जमुई जिला पश्चिम में गया जिला तथा दक्षिण में झारखंड द्वारा घिरा हुआ है। इसके अधिकांश भाग पर दोमट मिट्टी पायी जाती है। यह बिहार राज्य का एक उपजाऊ कृषि क्षेत्र है। जिले के 63 प्रतिशत भू-भाग पर कृषि कार्य किया जाता है। यहाँ की आबादी अत्यंत सघन है। अत: खाद्यान्न की आपूर्ति के लिए सघन कृषि कार्य किया जाता है। यह जिला मुख्य रूप से कृषि प्रधान है यहाँ की जलवायु मानसूनी है। प्रमुख मिट्टियाँ-बांगर (केवाल मिट्टी) और बल्थर (लाल-पीली मिट्टी) है।

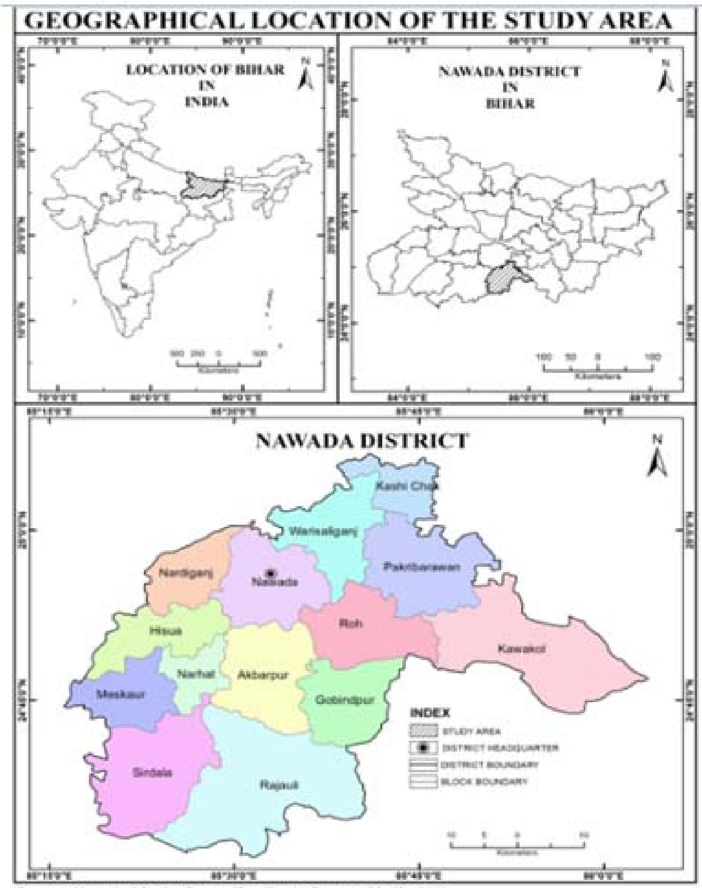

Source : Nawada District Census Handbook, Census of India, 2011

नवादा में पर्यटन की वर्तमान स्थितिः-

नवादा ऐतिहासिक, भौगोलिक और धार्मिक पर्यटन स्थल के मामले में सामान्यतः समृद्ध जिला है। इसकी पुरातात्विक महत्व, भौगोलिक महत्व धर्मिक स्थलों की महत्ता के कारण लोग हर वर्ष नवादा आते हैं। नवादा को हजारो घरेलू स्तर पर आकर्षण बनाने के लिए बिहार सरकार विभिन्न योजनाओं पर कार्य कर रही है। हालांकि बिहार सरकार नवादा के पर्यटन में विकास के लिए बहुत प्रयास कर रही है। परन्तु अबतक पर्यटन के नक्शे पर नवादा जिला नहीं आ सका है। जबकि यहाँ रामायण व महाभारत सर्किट के साथ सीख पंथ से जुड़े कई महत्वपूर्ण स्थान है। जिसे पर्यटन के नक्शे पर लाकर जिले का विकास किया जा सकता है।

नवादा में पर्यटकों का आगमन

तालिका-प्रू वर्ष पर्यटकों की संख्या (हजार में)

वर्ष	देशी	विदेशी	योग
2011	36-9	1-9	38-8
2012	42-8	2-2	45-0
2013	43-1	1-5	44-6
2014	45-8	1-7	47-5
2015	56-6	1-8	58-4
2016	57-0	2-0	59-0
2017	64-8	2-2	67-0
2018	74-4	2-5	76-9

स्त्रोत- पर्यटन विभाग, बिहार सरकार

नवादा जिला के प्रमुख पर्यटन स्थल

यहाँ प्रमुख पर्यटन स्थल निम्नलिखित है-

* ककोलत जलप्रपात
* प्रजातंत्र द्वार
* सूर्यनारायण धाम मंदिर (नारदीगंज प्रखंड के हड़ीया गाँव में)
* बाबा का मजार व हनुमान मंदिर
* सीतामढ़ी
* सेखोदेवरा (कौवाकोल प्रखंड)
* नारद संग्रहालय
* गुनियाजी तीर्थ

ककोलत जलप्रपात

फतेहपुर-गोविन्दपुर मार्ग पर थाली से पांच किलोमीटर दक्षिण वन में और नवादा जिला मुख्यालय से दक्षिण-पूर्व में 33 किलोमीटर की दूरी पर ककोलत स्थित है। प्रकृति के गोद में बसा ककोलत जलप्रपात प्राकृतिक उपहार के अतिरिक्त पुरातत्विक एवं धार्मिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। यह झरना समुद्र तल से लगभग 150 से 160 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। माना जाता है कि इस जगह परपांडवों ने अपने अज्ञातवास के दौरान एक राजा को सर्पयोनि से मुक्त कराया था प्रत्येक वर्ष चैत संक्रांति के अवसर पर यहाँ एक सप्ताह तक मेले का आयोजन होता है। चैत संक्रांति को विशुआ संक्रांति भी कहा जाता है। महाभारत में जिस काम्यक वन का वर्णन किया गया था वर्तमान समय में वह आज का ककोलत है। इसके अलावा, ककोलत पर्वत बहुत ही खूबसूरत पिकनिक स्थल है।

प्रजातंत्र द्वार

नवादा जिला मुख्यालय के प्रजातंत्र चौक पर स्थित प्रजातंत्र द्वार को देश की स्वतंत्रता का प्रतीक चिन्ह माना जाता है। स्वतंत्रता पश्चात् प्रजातंत्र द्वार का निर्माण कन्हाई लाल साहू ने करवाया था। 26 जनवरी 1950 को पूर्ण रूप से निर्मित यह द्वार आज भी लोगों में भारतीय स्वतंत्रता के प्रति जज्बा पैदा करता है।

सूर्यनारायण धम मंदिर (नारदीगंज प्रखंड के हड़ीया गाँव में) प्रजातंत्र द्वार

नवादा जिले के नारदीगंज प्रखंड के हड़िया गाँव स्थित सूर्य नारायण धाम मंदिर काफी प्राचीन है। यह उन ऐतिहासिक सूर्य मंदिरों में से है जो लोगों की आस्था का प्रतीक बना है। मंदिर के आस-पास की गई खुदाई के समय प्रतीक चिन्ह और पत्थर के बने रथ मार्ग की लिंक के अवशेष प्राप्त हुये थे। माना जाता है कि इस मंदिर का संबंध द्वापर युग से रहा होगा। मंदिर के समीप एक तालाब स्थित है। ऐसा मान्यता है कि इस पानी में स्नान करने पर कुष्ठ रोग दूर हो जाते हैं। प्रत्येक रविवार को काफी संख्या में लोग यहाँ तालाब में स्नान एवं सूर्य मंदिर में पूजा अर्चना करते हैं।

बाबा की मजार व हनुमान मंदिर

पटना-रांची मुख्य मार्ग पर नवादा में एक साथ स्थित हजरत सैयत शाह जलालुद्दीन बुखारी की मजार और रामभक्त हनुमान मंदिर साम्प्रदायिक सौहार्द का प्रतीक माना जाता है। शुक्रवार के दिन बाबा के मजार पर यहाँ के हिन्दू व मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग चादर चढ़ाकर मन्नते मांगते हैं। वहीं प्रत्येक मंगलवार को हनुमान मंदिर में भक्तों की अपार भीड़ देखी जा सकती है। वैशाख शुक्ल पक्ष के अक्षय तृतीया को प्रत्येक वर्ष मंदिर का स्थापना दिवस मनाया जाता है।

सीतामढ़ी

नवादा जिला मुख्यालय के दक्षिण-पश्चिम में लगभग 30 किलोमीटर की दूरी पर सीतामढ़ी स्थित है। प्राचीन काल से ही यह जगह एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध रहा है। यहाँ 16 फीट लम्बी और 11 फीट चौड़ी प्राचीन गुफा है। एक गोलनुमा चट्टान को काटकर कंदरा बनाया गया है जिसके भीतर पत्थरों पर पॉलिश की गयी है। पॉलिश के आधार पर इस गुफा को मौर्य कालीन माना जाता है। प्रचलित मान्यता है कि गुफा का निर्माण मानिक सम्प्रदाय के साधुओं को आश्रय देने के लिए किया गया था। किन्तु स्थानीय लोग इस निर्वासिन काल में सीता का निवास स्थल मानते हैं। गुफा के भीतर देवी लक्ष्मी की मूर्ति स्थापित है। गुफा के बाहर की ओर एक चट्टान दो भागों में विभाजित है। इसे भी सीताजी के धरती में समाने की घटना से जोड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय लोगों का मानना है कि यह लव-कुश की जन्मभूमि है।

नवादापर्यटन का मानचित्र

सेखोदेवरा

जिला मुख्यालय से लगभग 55 किलोमीटर की दूरी पर स्थित सेखोदेवरा गांव है। प्राकृतिक दृष्टि से अत्यंत मनोहर एवं दर्शनीय है। सेखो और देवरा नामक दो टोलों को मिलाकर सेखोदेवरा गॉव बना है। गांव में सर्वोदय आश्रम है। जिसकी स्थापना 1952 ई० में जयप्रकाश नारायण ने की थी। आश्रम से लगभग 500 मीटर की दूरी पर स्थित जंगल के बीच एक चट्टान को जे.पी. चट्टान के नाम से जाना जाता है। 1942 के स्वाधीनता आंदोलन के समय हजारीबाग जेल से भागकर प्रसिद्ध नेता एवं क्रांतिकारी स्वर्गीय जयप्रकाश नारायण इन्हीं चट्टों के पास आकर छिपे थे।

नारद संग्रहालय

नारद संग्रहालय भारत के प्रमुख संग्रहालयों में से है। वर्ष 1973 ई० में नवादा के प्रथम जिला अधिकारी नरेन्द्र पाल सिंह के प्रयासों से यह संग्रहालय अस्तित्व में आया। संग्रहालय की इमारत दो मंजिला है। इसके प्रथम तल में भारत में प्राचीन सिक्कों के विकास को प्रदर्शित किया गया है। प्रारंभिक पंच-मार्क सिक्कों से लेकर मुगल-कालीन सिक्कों के भारत में क्रमिक विकास को संग्राहलय में देखा जा सकता है। सोनसागढ़ से प्राप्त मौर्य-कालीन हड्डी कलाकृति, शुंगकालीन, मृण मूर्तियां, मनके, मुहर एवं धातु निर्मित कलाकृतियों को संग्राहलय के विभिन्न दीर्घाओं में प्रदर्शित किया गया है। सोनसागढ़ की खोज नारद संग्रहालय की एक उपलब्धि के रूप में माना जाता है। इसके अतिरिक्त संग्रहालय में देवनगढ़ से प्राप्त मंजूश्री की प्रतिमा और धतु मूर्तियां में बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म से संबंधित मूर्तियाँ प्रदर्शित की गई है। स्व० हीरालाल बबनजी द्वारा मुगलकालीन तलवार, कटार, ढाल के साथ ही प्रसिद्ध शायर हाफिज के शेर को चित्रों में उतारा गया है।

गुनियाजी तीर्थे

गुनियाजी तीर्थ नवादा जिले के गुनियाजी गाँव में स्थित है। यह मंदिर जैन मुनि गंधार गौतम स्वामी को समर्पित है। माना जाता है कि गौतम स्वामी, महावीर जी के शिष्य थे। इसके स्थापना जैनियों द्वारा की गई थी। यह प्राचीन मंदिर भगवान महावीर के समय का है। वर्तमान समय में इस मंदिर की देखरेख श्री जैन श्वेताम्बर भंडार ट्रस्ट कर रहा है।

सुझाव

नवादा जिला में पर्यटन उद्योग के विकास की असीम संभावनाएँ है, बिहार औद्योगिक आयोग 2000 ने पर्यटन उद्योग को बिहार के लिए वरदान की संज्ञा दी है। नवादा अपने समृद्ध अतीत, भौगोलिक और प्राकृतिक विविधता के कारण पर्यटन का केन्द्र बन सकता है। नवादा को सर्वश्रेष्ठ पर्यटन स्थलों में शामिल करने के लिए निम्न कार्यो की आवश्यकता है।

- पर्यटक स्थलों को लेकर राज्य और केन्द्र सरकार के द्वारा सम्मिलित रूप से प्रयास करके एक नीति बनानी चाहिए।
- नवादा के पर्यटक स्थल को चिन्हित करके उसका संरचनात्मक विकास पर ध्यान देना चाहिए जिसके अंतर्गत अंतर्गत पर्यटन स्थल का समुचित रख-रखाव है और उसे आकर्षक बनाया जाए।
- पर्यटन स्थल पर खाने-पीने, सुरक्षित ठहरने की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए अच्छे होटल खोले जाने चाहिए।
- पर्यटन स्थल तक पहुँचने के लिए यातायात की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, साथ ही साथ संचार व्यवस्था भी अच्छी होनी चाहिए।
- राज्य में पर्यटन विभाग को नौकरशाही से मुक्त किया जाना चाहिए, और पेशेवर लोगों को आगे लाना चाहिए।
- राज्य ने जिन 8 परिपथों की पहचान की हैं, उसका एक नियोजित ढंग से विकास होना चाहिए और उस परिपथ के निर्माण में पर्यटकों के सभी जरूरतों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
- पर्यटन स्थल पर विद्युत, संचार, प्रकाश आदि की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, पर्यटन स्थल पर 24 घंटे बिजली, इंटरनेंट, आदि की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए।
- पर्यटन स्थल पर साफ-सफाई का पुरा ध्यान देना चाहिए।
- राज्य को कानून व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना चाहिए पर्यटकों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान किया जाना चाहिए, जिससे कि भय मुक्त होकर पर्यटन स्थल का आनंद ले सकें।
- राज्य को पर्यटन के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर निवेश करना चाहिए और अपने प्रोत्साहन नीतियों के द्वारा इसे बढ़ाना चाहिए।
- पर्यटन में निजी क्षेत्र को निवेश के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। जिससे रोजगार का भी सृजन होगा।
- वन अभ्यारण्य को पर्यटकों के लिए और आकर्षक बनाने की आवश्यकता है।
- सरकार को एक कमेटी बनानी चाहिए, जो समय-समय पर पर्यटक स्थल का निरीक्षण करें और वहाँ पर कर्मियों को ढूँढे और उनका निराकरण करें।

संदर्भ-सूची

1. www. Census of India.gov.in
2. बिहार राज्य पर्यटन विभाग
3. www. Bihartourism.gov.in
4. Bihar Economic Survey 2018-2019
5. https:\\nawada.nic.inehie-E0-A4-AA-E0-A4-B0-E
   0-A5-8D-E0-A4-AF-E0-A4-9F-E0-A4-A8è

बिहार के हाईस्कूल के छात्रों के व्यक्तित्व की उनके लिंग के संबंध में गतिशीलताः एक तुलना

अदनान अहमद

एम. ए. (साइकोलॉजी), सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ बिहार, गया, बिहार

ऑलपोर्ट (1937) के अनुसार, "व्यक्तित्व स्वयं एक सार्वभौमिक घटना है, हालांकि यह केवल व्यक्ति गतरूप में पाया जाता है "। एक व्यक्ति के पास कई विशेषताएं होती हैं जो मानव प्रजातियों की विशेषता होती हैं, और कई जो उस के सांस्कृतिक साथियों से मिलती जुलती होती हैं, लेकिन वह उन सभी को एक अनोखी विशेषता प्रणाली में बदल देती है। विभिन्न शोधें ने स्थापित किया है कि व्यक्तित्व प्रत्येक व्यक्ति के लिए विशिष्ट एक गतिशील इकाई है।

सीनियर सेकेंडरी छात्रों के जीवन का वह चरण है जिसमें उनके करियर के संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय लिए जाते हैं। हॉलैंड के (1997) सिद्धांत के अनुसार, व्यक्ति सक्रिय रूप से ऐसे वातावरण की तलाश करते हैं जो उनके व्यक्तित्व के प्रकारों के साथ मेल खाते हों और उन की क्षमताओं का उपयोग करने वाली गतिविधियों में संलग्न हों। कम व्यावसायिक पहचान वाले व्यक्ति असंगत कैरियर विकल्प बनाने की संभावना रखते हैं और उच्च व्यावसायिक पहचान वाले लोगों की तुलना में लगातार कैरियर परिवर्तन का अनुभव करते हैं।

हॉलैंड ने प्रस्ताव रखा कि व्यक्ति आमतौर पर छह व्यक्तित्व प्रकारों के संयोजन से मिलता हैः यथार्थवादी, खोजी, कलात्मक, सामाजिक, उद्यमी और पारंपरिक जिसे अन्यथा RIASEC के रूप में जाना जाता है। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रकार उन गतिविधियों के अनुसार भिन्न होता है जो उस व्यक्ति की क्षमताओं और दक्षताओं से संबंधित होते हैं। यथार्थवादी व्यक्तित्व प्रकारों में दिन-प्रतिदिन की घटना के प्रति व्यावहारिक, उत्पादक और ठोस दृष्टिकोण होता है। खोजी व्यक्तित्व प्रकार आमतौर पर विश्लेषणात्मक या बौद्धिक गतिविधियों से जुड़े होते हैं, जिनका उद्देश्य दिन की समस्याओं के नए ज्ञान और समझ समाधन के प्रलेखन के उद्देश्य से होता है। कलात्मक व्यक्तित्व प्रकार आमतौर पर अभिनव और रचनात्मक दक्षताओं के अधिग्रहण से संबंध्ति है।

व्यक्तित्व के प्रकार के साथ शैक्षिक आवश्यकताओं के मिलान की प्रक्रिया इस तथ्य के कारण बहुत अधिक जटिल हो गई है कि दुनिया लगातार डिजिटल रूप से सिकुड़ रही है और काम के जीवन संतुलन के आसपास की समस्याएं, निर्णय लेने से पहले की तुलना में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है (फेलर, 2003)। बच्चे के जन्म के ठीक बाद, माता-पिता अपने वार्ड में भर्ती होने के लिए शहर के कुलीन स्कूलों की ओर भागते हैं। हालाँकि, यह ध्यान देने योग्य बात है कि एक बच्चे का व्यक्तित्व किस आकार में विकसित होता है, जीवन में उसकी आगे बढ़ने की रीढ़ बनती है।

पद्धति

उद्देश्यः

कक्षा 12 में पुरुष और महिला छात्रों के व्यक्तित्व में अंतर और संबंध की जांच के लिए वर्तमान शोध किया गया था।

प्रतिभागी:

वर्तमान अध्ययन का कुल नमूना 73 प्रतिभागियों (34 = लड़कियों, 39 = लड़कों) का था। अध्ययन के प्रतिभागियों को उद्देश्यपूर्ण नमूना विधि का उपयोग करके चुना गया था। वे 16 वर्ष से 18 वर्ष (औसत आयु = 17) की आयु सीमा में थे। उन्हें कक्षा 12 से लिया गया था बिहार के दो स्कूलों की।

टूल्सः

आइजेंक पर्सनैलिटी प्रश्नावली (सिंह, 1981) : ईसेनक व्यक्तित्व प्रश्नावली (ईपीक्यू) एक आत्म जींज रिपोर्ट साधन है जो कि ईसेनक के व्यक्तित्व के सिद्धांत पर आधरित है। EPQ को हंसजे। ईसेनक द्वारा विकसित किया गया था। चूंकि अनुसंधन स्वदेशी विषय पर आयोजित किया गया था, इसलिए इस परीक्षण के संशोधित संस्करण का उपयोग सिंह द्वारा 1981 में NIVH में करना अधिक उचित लगा।

प्रक्रियाः

प्रिंसिपल से उचित अनुमति मिलने के बाद शोध किया गया, उसके बाद एक प्रश्नावली तैयार की गई जिसमें उपर्युक्त उपकरण से आइटम शामिल थे। फिर छात्रों के बीच प्रश्नावली वितरित की गई।

सांख्यिकीय विश्लेषणः

अध्ययन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण टीवैल्यू और मीन स्कोर के लिए किया गया था।

परिणाम और चर्चाः

वर्तमान अध्ययन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए डेटा कोटी वैल्यू और मीन स्कोर के अधीन किया गया था। विश्लेषण के माध्यम से डाले गए चरों में आइजेक व्यक्तित्व व्यक्तित्व के तीन कारक शामिल थे।

जमान

उनके व्यक्तित्व पर आकांक्षाओं और गैर-आकांक्षाओं की तुलना करने के लिए, आइजेंक व्यक्तित्व प्रश्नावली पर उनके स्कोर टी परीक्षण से गुजरने के लिए बनाए गए थे। परीक्षण के निष्कर्ष नीचे तालिका -1 में प्रस्तुत किए गए हैं:

तालिका 1

Variable	N	df	Category	Mean	SD	t Value
Extraversion	73	71	Girls	14.03	9.20	0.20
			Boys	15.00	11.71	
Psychoticism			Girls	5.48	3.05	0.48
			Boys	6.02	3.58	
Neuroticism			Girls	11.30	4.23	0.82
			Boys	11.10	3.43	

तालिका 1 इंगित करती है कि लड़कियों और लड़कों को व्यक्तित्व के असाधरण पहलू पर उनके अंतर स्कोर क्रमशः 14.03 और 15.00 के साथ महत्वपूर्ण अंतर नहीं दिखा।

व्यक्तित्व के मनोविज्ञानवाद के पहलू पर आगे बढ़ते हुए, यह काफी स्पष्ट था कि दोनों लिंग लड़कियों और लड़कों के औसत स्कोर क्रमशः 5.48 और 6.02 होने के साथ अलग नहीं थे। और अंत में, व्यक्तित्व के विक्षिप्तता के पहलू पर, औसत स्कोर दोनों लिंगों के साथ-साथ लड़कियों और लड़कों के क्रमशः 11.30 और 11.10 होने के साथ ज्यादा अंतर नहीं दिखाते थे।

लड़कियों और लड़कों द्वारा अपने व्यक्तित्व के असाधरण पहलू पर प्राप्तटी वैल्यू की बात करते हुए, फिर से महत्वपूर्ण अंतर की कमी देखी गई, जिसका टी मान सिर्फ 0.20 था।

व्यक्तित्व के मनोविज्ञान के पहलू पर अगला, लड़कियों और लड़कों ने फिर से अपने टी मूल्य को 0.50 के आसपास और विशेषरूप से 0.48 के आसपास मंडराने के साथ बहुत अलग नहीं किया।

और अंत में, व्यक्तित्व के विक्षिप्तता के पहलू पर, लड़कियों और लड़कों के बीच उनके टी मूल्य 0.80 होने के बीच एक बहुत ही मामूली अंतर दिखाई दिया, लेकिन फिर से महत्व पूर्ण नहीं है।

शोध के परिणाम अंतर को ज्ञात करने के लिए कार्य को पूरा करते हैं। जैसा कि समय में बदलाव के साथ स्पष्ट था, युवा लड़कियों और लड़कों में बहुत कम अंतर रहा है। जैविक रूप से, वे भिन्न हो सकते हैं, लेकिन स्कूल के संदर्भ में, यह पाया गया कि वे अपने समकक्षों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रहे हैं। इसके अलावा, अध्ययन के निष्कर्षों की व्याख्या और खोज करते हुए चर्चा साहित्य समीक्षा पर भी आधरित है। अध्ययन के मुख्य चर - लिंग, आवासीय क्षेत्र और सामाजिक-आर्थिक स्थिति जैसे जनसांख्यिकीय चर के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व पर चर्चा की जाती है।

अध्ययन का फोकस छात्रों के दोनों लिंगों के व्यक्तित्व आयामों में अंतर देखना था। पहले के अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि छात्रों द्वारा व्यक्तित्व के परीक्षणों पर प्राप्त अंक में महत्वपूर्ण अंतर है। हालांकि, उन अध्ययनों को पहले के समय में आयोजित किया गया था। वर्तमान अध्ययन में, निष्कर्ष पहले के निष्कर्षों के विपरीत थे। व्यक्तित्व आयामों के संबंध में दो अध्ययन समूहों के प्राप्त अंकों में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं था, अर्थात अपव्यय, मनोविज्ञानवाद, विक्षिप्तता।

संदर्भ

- ऑलपोर्ट, जीडब्ल्यू (1937), व्यक्तित्व: एक मनोवैज्ञानिक व्याख्या, न्यूयॉर्क, एनवाई: होल्ट एंड कंपनी
- फेलर, डब्ल्यूआर (2003), स्कूल परामर्श, बदलते कार्य स्थल और कैरियर को संरेखित करना विकास धरणा विशेष मुद्दा, कैरियर विकास और बदलते कार्य स्थल पेशेवर स्कूल परामर्श, 20/4-2009 को पुनः प्राप्त किया गया: E: schoolcourcingingalignment-htm।
- हॉलैंड, जेएल (1997), वोकेशनल चॉइस बनाना: व्यक्तित्व और कार्य पर्यावरण का सिद्धांत (तीसरा संस्करण।) ओडेसा FL: मनो वैज्ञानिक मूल्यांकन संसाधन।
- मैकफर्सन, बीऔरमेन्च, एस (2007), छात्र व्यक्तित्व और मेजर की पसंद, सूचना और प्रबंधन विज्ञान जर्नल अकादमी।
- मोमबर्ग, सी। (2004), व्यक्तित्व लक्षण और व्यावसायिक हित के बीच संबंध दक्षिण अफ्रीकी संदर्भ, प्रिटोरिया: प्रिटोरिया विश्वविद्यालय।
- मुईगई, पी के (2007), कैरियर की आकांक्षाओं पर डिग्री के प्रभाव की छात्रों की धरणा: मोई विश्वविद्यालय का एक मामला, केन्या, अप्रकाशित एम.फिल, थीसिस, एल्डोरेट: मोई यूनिवर्सिटी, स्कूल ऑफ एजुकेशन।
- ओनोयेज, डी। और ओनोयेज, ए। (2009), व्यक्तित्व और कैरियर के बीच संबंध नाइजीरिया में संघीय सरकारी कॉलेजों में माध्यमिक छात्रों की पसंद, Nabraska: डेल्टा स्टेट यूनिवर्सिटी नाइजीरिया।
- ऑरंडॉफ, आरएम और हेर, ईएल (1996), घोषित और अघोषित का तुलनात्मक अध्ययन कैरियर पर कॉलेज के छात्र अनिश्चितता और कैरियर और विकास गतिविधियों में भागीदारी,परामर्श और विकास की पत्रिका, 74, 63-638।

आधुनिक समय में एकल परिवार की बढ़ती प्रवृति के कारण का अध्ययन

डॉ० अरूणा कुमारी

गृह विज्ञान विभाग, के० आर० जी० (पी०जी०) कॉलेज, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

शोध सारांश

बदलते आर्थिक सामाजिक परिदृश्य मे संयुक्त परिवार बीते जमाने की बात होते जा रहे हैं। एक समय था जब एक ही छत के नीचे दादा-दादी, ताउ चाचा-चाची और भाई बहनों से भरा पूरा परिवार रहता था, आज उसकी जगह एकल परिवार ने ली है। एकल परिवारों का आशय एक विवाहित दम्पति या अकेले अथवा अविवाहित बच्चों के साथ रहने वाले एक पुरूष अथवा एक महिला से है। वहीं सयुक्त परिवार एक विस्तृत बहु-पीढ़ी वाली इकाई है जिसमें माता-पिता, बच्चे, बच्चों के पति/पत्नी तथा उनकी संतानें भी शामिल होती हैं।

मुख्य शब्दः-

एकल परिवार से क्या आशय है तथा जनगणना (2011) में एकल परिवार की संख्या और रूझान के कारण।

प्रस्तावना

परिवार को संजोये रखना आज सारी दूनियाँ की समस्या हो गई है। हांलाकि सारी दूनियाँ में वसुदेव कुंटुबकम का उद्घोष करने बाले हमारे देश में ही परिवार नामक संस्था को बनाए रखना मुश्किल हो गया है। परिवारों के बिखराव से सारी दूनयाँ चिंतित है और यही कारण है कि 1993 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मई की 15 तारीख को अन्तर्राष्ट्रीय परिवार दिवस मनाने की घोषणा की। हलांकि परिवार दिवस को अन्तराष्ट्रीय स्तर पर मनाते 27 साल हो गये हैं पर परिवार की अहमियत दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है।

वर्ष 2001 और 2011 की जनगणना के आंकड़ों की तुलना में परिवारों के विभाजन के प्रतिशत के संदर्भ में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शहरी क्षेत्रों में एकल परिवारों के प्रतिशत में गिरावट आई है, जबकि ग्रामिण क्षेत्रों के अंतर्गत इसमें वृद्धि दर्ज की गई है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रो में संयुक्त परिवारों के प्रतिशत में तीव्रता से गिरावट दर्जकी गई है। यह तीव्र शहरीकरण के साथ एकल परिवारों में वृद्धि की सामान्य अवधारणा के साथ असंगत है।

परिवार के प्रकार	ग्रामीण क्षेत्र		शहरी क्षेत्र	
	जनगणना 2001	जनगणना 2011	जनगणना 2001	जनगणना 2011
एकल परिवार	50+7%	52.17 (+1.4%)	54.3%	52.37 (-2%)
संयुक्त परिवार	20.1%	16.87 (-3.3%)	16.5%	14.67 (-1.9%)

जनगणना के पिछले आँकड़े को देखा जाए तो देश में 70 फीसदी एकल परिवार हैं। हालांकि अब स्थिति में तेजी से बदलाव आया है और एकल परिवारों की संख्या में और अधिक तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही है। जनगणना के आँकड़ों के अनुसार ही केवल

14 फसदी परिवार ऐसे हैं जिनमें दो विवाहित जोड़े एक साथ रहते हैं। चार विवाहित जोड़े एक घर में रहने वाले परिवारों की संख्या तो एक फीसदी भी नहीं है।

आज के समय में एकल परिवार की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, चाहे दूसरे राज्य में नौकरी मिलने की वजह से हो या पारिवारिक कलह की वजह से। दम्पत्ति स्वतंत्र रहने लगे हैं। नवीनतम आँकड़ों (कसेंसन 2011) के अनुसार उत्तर प्रदेश में 27 प्रतिशत, राजस्थान में 25 प्रतिशत, हरियाणा में 24.6 प्रतिशत, पंजाब में 23.9 प्रतिशत, गुजरात में 22.9 प्रतिशत, बिहार और झारखण्ड में 20.9 प्रतिशत और हिमालच प्रदेश में 20 प्रतिशत संयुक्त परिवार की संख्या इससे भी कम दिखाई देती है। आंध्रप्रदेश में 10. 7 प्रतिशत, तमिलनाडु में 11.2 प्रतिशत, पांडिचेरी में 11.4 प्रतिशत, कर्नाटक में 16.2 प्रतिशत और केरल में 16.6 प्रतिशत। वहीं पश्चिम बंगाल में 15.5 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 17.6 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 17.7 प्रतिशत, उड़ीसा में 12.32 प्रतिशत और गोवा में 12.6 प्रतिशत संयुक्त परिवार हैं। इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि एकल परिवार की संख्या बढ़ रही है और लोग इसे ज्यादा फ्रेर कर रहे हैं।

भारत में एकल परिवार का प्रचलन संयुक्त परिवार से अधिक होता जा रहा है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि भारतीय समाज समूह की अपेक्षा अब व्यक्तिगत की ओर अधिक आकर्षित हो रहा है। भारत की परम्परागत परिवार व्यवस्था में संरचनात्मक तथा कार्यात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन हुए हैं। भारत की संयुक्त परिवार व्यवस्था कई कारणों से बाधित हुई है। अंग्रेजों के आगमन से उनके साथ लाए गए नए आर्थिक संगठनों, विचारधाराओं तथा प्रशासनिक प्रणालियों के कारण सांस्कृतिक स्वरूप में परिवर्तन अवश्यसंभावी था।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उदय तथा उदारवाद के प्रसार ने संयुक्त परिवार की भावनाओं के समक्ष चुनौती पेश की। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में संचार के तीव्र साधनों के चलते देश के दूरस्थ हिस्से भी एक-दूसरे के निकट आए। ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर रहने के बजाय अधिक बाजारोन्मुख होती जा रही थी तथा नगरों का उदय हो रहा था। पाश्चात्य शिक्षा नौकरशाही संगठन का परिचालन करती थी। इन परिवर्तनों ने परम्परागत संयुक्त व्यवस्था को प्रभावित किया।

एकल परिवार के बढ़ते प्रवृत्ति के कारणः-

एकल परिवार के प्रति बढ़ती दिलचस्पी के पीछे सबसे बड़ा कारण है पति-पत्नी दोनों अब आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहना चाहते हैं, खुद से संबंधित किसी भी मसले में दूसरे व्यक्ति का हस्तक्षेप सहन नहीं, उनके इस अति महत्वाकांक्षी निर्णय का सबसे बड़ा नुकसान यही है कि परिवार की अखंडता और एकता पर बहुत गहरा प्रहार कर रहे हैं। इसके और बहुत-से पहलू हैं, जो इस प्रकार हैं-

- **नगरीकरणः**-विगत कुछ दशकों में नगरीय जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई है, जिसकी परिणति एकल परिवार की स्थापना के रूप में हुई है, क्योंकि शहर के निवासियों ने एकल परिवार को चुना है। नगरीकरण ने वैयक्तिकता तथा निजता के उपर बल दिया है। ऐसे शिक्षित व्यक्ति जो अच्छे रोजगार प्राप्त करने में सफ़ल रहते हैं, उनमें देखा गया है कि वे अधिक स्वतंत्रता पसंद करते हैं।
- **शिक्षाः**-शिक्षा ने लोगों की अभिवृत्ति, धारणाओं तथा विचारधाराओं आदि को प्रभावित किया है। यह व्यक्तिवाद को बल देती है तथा लोगों को ऐसे रोजगार के लिए तैयार करती है जो उन्हें अपने पैतृक स्थान पर नहीं मिल सकता है। परिणामस्वरूप लोग अपने पूर्वजों से अलग हो जाते हैं तथा नए रहन-सहन को आत्मसात कर लेते हैं।
- **औद्योगीकरणः**-औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण जनसंख्या का पलायन रोजगार तथा बेहतर जीवन स्तर के लिए शहरी क्षेत्रों की ओर हुआ। उद्योगों में रोजगार के कारण युवाओं की अपने परिवार के उपर निर्भरता घटी, वे अपने परिवार के मुखिया के नियंत्रण से मुक्त होकर एकल परिवार में परिवर्तित हो गए।
- **पाश्चात्य संस्कृति का प्रभावः**-यह स्वतंत्रता तथा समानता की शिक्षा देती है जो कि व्यक्तिवाद को बढ़ावा देती है, साथ ही भौतिकवाद को भी बढ़ावा देती है।
- **महिलाओं का सशत्तीकरणः**-शिक्षित भारतीय महिलाएँ आधुनिक पारिवारिक जीवन से प्रभावित हैं, अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं तथा पुरूषों के साथ बराबरी का दर्जा चाहती हैं, वे अपना खर्च स्वयं उठा सकती हैं, जो कि उनमें स्वतंत्रता की भावना का संचार करता है और अंततः व्यक्तिवाद के रूप में परिणत होता है।

- **सामाजिक दायित्वः**-हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1929, हिंदू महिला संपत्ति का अधिकार अधिनियम, 1937, विशेष विवाह अधिनियम, 1954, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 इत्यादि अधिनियमों ने पारस्परिक संबंधों, परिवार के संयोजन तथा संयुक्त परिवार की स्थिरता को प्रभावित किया है।
- **विवाह-व्यवस्था में परिवर्तनः**-विवाह की आयु में परिवर्तन जीवनसाथी चुनने की आजादी तथा विवाह के प्रति अभिवृत्ति में परिवर्तन ने संयुक्त परिवार को प्रभावित किया है तथा परिवार के उपर पितृसत्तात्मक पकड़ ढ़ीली हुई है।
- **आवास की समस्याः**-शहरों में यह विकट समस्या है, जो लोगों को एकल परिवार के निर्माण की ओर प्रेरित करती है।
- **कृषि तथा ग्रोमोद्योग का पतनः**-संयुक्त परिवार का उदय कृषि समाज के उत्पाद के रूप में हुआ था तथा इसके विघटन की जिम्मेदारी औद्योगीकरण तथा नगरीकरण को दी जा सकती है।
- **जनाधिकारः**-बढ़ती जनसंख्या ने कृषि तथा आवासीय भूमि के उपर अत्यधिक दबाव का निर्माण किया है। निर्धन तथा बेरोजगार लोग जब दूरस्थ स्थानों पर रोजगार पाते हैं तो स्वतः ही वे पृथक् परिवार बनते हैं तथा धीरे-धीरे उनका संयुक्त परिवार कमजोर हो जाता है।
- **पारिवारिक झगड़ेः**-पारिवारिक झगडों के कारण संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है। सम्पत्ति, पारिवारिक आय तथा व्यय, कार्यों का असमान वितरण इत्यादि झगड़े की वजह है।
- **संचार तथा परिवहन प्रसारः**-यह भी एकल परिवार का एक मुख्य कारण है।

उपरोक्त प्रमाणों तथा तर्कों से स्पष्ट है कि समाज के व्यक्तिवादी घटनाओं तथा एकल परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति के लिए कई कारण जिम्मेदार हैं। भारतीय समाज व्यक्तिवाद की ओर विवशता से बढ़ रहा है न कि विकल्प के तौर पर।

निष्कर्षः-बदलते सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में परिवार को बोझ नहीं आवश्यकता समझनी होगी। नहीं तो वह दिन दूर नहीं जब बुजुर्गों के वृद्धाश्रम ही दिखाई देंगे और परिवार कहीं खो जाएगा। यह आज की पीढ़ी को समझना होगा, नहीं तो कल के बुजुर्ग आज के युवा ही होंगे। परिवार सदस्यों को एकजुटता में बाँधे रखने का प्रमुख केन्द्र है और जब परिवार संस्था का ही अस्तित्व नहीं रहेगा तो फिर स्थितियाँ अराजकता की ओर ही कदम बढ़ाएंगी।

संदर्भ-सूचीः-

1. परिवार निर्माण की विधि-व्यवस्था - श्री राम शर्मा आचार्य
2. भारत में परिवार विवाह और नातेदारी - शोभिता जैन
3. गृह प्रबन्ध- डॉ. मंजु पाटनी एवं डॉ. ललिता शर्मा
4. Census of India – 2011.
5. www.drishtiias.com, April 26, 2018.
6. scotbuzz.org, Oct 24, 2018.
7. hindi.speakingtree.in, Jul 27, 2018.
8. prabhasakshi.com, May 23, 2017.
9. iasbook.com. Feb 11, 2020.
10. pravakta.com
11. bhartiyadharohar.com

स्त्री आंदोलन और प्रेमचंद

डॉ० बिंधी कुमारी

एम० ए०, पी०-एच० डी०, इतिहास विभाग, ल० ना० मि० विश्वविद्यायल दरभंगा

प्रेमचंद का लेखन समाज के उस प्रत्येक तबके के साथ प्रतिबद्धता से जुड़ा है, जो उपेक्षित और शोषित रहा है। यही कारण है कि उनके लेखन में स्त्रियों की समस्याएं और उनका दमित जीवन बहुत सहानुभूति के साथ चित्रित है। भारत जैसे देशों के विषय में कार्ल मार्क्स ने भी कहा था, 'वहां स्त्रियां दोहरे शोषण का शिकार है'। प्रेमचंद के समय और संदर्भ में इस कथन की व्याख्या सिद्ध है। उन दिनों भारतीय स्त्रियों का शोषण विदेशी निजाम और देसी सामंतवाद, दोनों के द्वारा हो रही थी। प्रेमचंद ने बहुत बारीकी से इस तथ्य को समझा था। 'सेवासदन' की सुमन और 'कर्मभूमि' की मुन्नी जैसे चरित्रों के माध्यम से उन्होंने स्त्री: शोषण के रूपों को प्रकाशित किया था।

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में अभी विध्वा जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। उनका चित्र देखकर पढ़ कर कोई भी संवेदनशील व्यक्ति अपने समाज की हृदय से घृणा करने लगेगा। अपने आरंभिक उपन्यास 'वरदान' में उन्होंने बृजरानी के माध्यम से विध्वा जीवन की कहानी को प्रस्तुत किया है। बृज रानी का पति मर जाता है, ससुर मर जाता है। उसके सामने पहाड़ सा जीवन खरा है। लेकिन सास को कुछ और ही लगता है। वह उसे ताना देती है, कि तुम्हारे चिकने रूप ने मुझे ठग लिया। मैं क्या जानती थी कि तुम्हारे चरण ऐसे अशुभ है।[39] यहां भी मुंशी प्रेमचंद ने स्त्री के दयनीय स्थिति का अपने लेखन में वर्णन किया है। निर्मला में मुंशी तोताराम की बहन विध्वा है। वह अपने बहन पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं 'मैंने तो सोचा था कि विध्वा है अनाथ है, पाव भर आटा खाएगी परी रहेगी'।[40] यह सब से पता चलता है कि स्त्रियों की सामाजिक दशा इतनी दयनीय थी। मुंशी जी बहन को नौकरानी का स्थान समझते थे। कहना न होगा कि जब सगे भाई की यह दृष्टि थी तो अन्यों की क्या हो सकती है? 'गबन' में सरला रतन नाम नामक चरित्र के साथ भी वैध्व्य के बाद समाज का रवैया नकारात्मक ही है। उसका भतीजा मणिभूषण उसकी सारी संपत्ति पर कब्जा कर लेता है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि कितना अमानवीय है यह समाज, जो पति के मरते ही पत्नी को दो कौड़ी का बना देता है। सरला रतन से प्रश्न करती है, कि ऐसा कानून किसने बनाया इतनी नीच है इतनी नगण्य है जो पति के जिंदा रहते मे उसका मुंह ताकते थे, अब वे उसके भाग्य विधता हो गए।[41] देखने की बात है कि प्रेमचंद हिंदी के लेखकों में संभवत अकेले ऐसे लेखक थे जो ऐसे प्रश्न उठा रहे थे।

प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'बेटोंवाली' विध्वा में पुत्रों के द्वारा प्रताड़ित एक विध्वा का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है उसके पति की मृत्यु के बाद उसके बेटे उसे कहते हैं, 'कानून यह है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों के बेटों की हो जाती है, मां का हक केवल रोटी कपड़े का है।[42] 'प्रेमचंद भारतीय समाज की मानसिकता को ठीक से समझते थे। यह अकारण नहीं है कि उन्होंने विध्वाओं का चित्रण करते हुए यह सच्चाई को भी पकड़ने की कोशिश की है कि तथाकथित सवर्ण जातियों की अपेक्षा दलित पिछड़ों में विध्वाओं की स्थिति ठीक है।

प्रेमचंद विध्वाओं की सामाजिक स्थिति का चित्रण भर कर के नहीं रह जाते, बल्कि विध्वाओं के पुनर्विवाह की भी बात सामने रखते हैं। 'प्रतिज्ञा' में पूरना प्रसंग उनकी दृष्टि का परिचय देता है। उन्होंने अपनी कहानी 'नागपूजा' में समाज के घनघोर विरोध के बावजूद तिलोत्तमा के पिता द्वारा उसका पुनर्विवाह कराते दिखाया है। यहां हम देख सकते हैं कि 'प्रेमचंद की सुधारवादी चेतना में वह सामाजिक आलोचना निहित है जो खोखली मर्यादाओं पर टिके समाज की असलियत जानने के लिए प्रतिबद्ध हैं'।[43]

यहां विधवा विवाह के संबंध में महात्मा गांधी के विचारों को देखना उचित होगा गांधीजी के अनुसार 'विधवा स्त्री को पुनर्विवाह का उतना ही अधिकार है' जितना पुरुष को। स्वेच्छा से वैधव्य हिंदू समाज का अमूल्य वरदान है, परंतु ऊपर से लादा हुआ वैधव्य अभिशाप है और मुझे विश्वास है कि हिंदू विधवा जनमत के भय से मुक्त हों तो वे बिना हिचक के पुनर्विवाह कर लेंगी। यह किसी संस्था का काम नहीं, बल्कि व्यक्तिगत सुधारकों तथा उनकी विधवाओं के संबंधियों द्वारा किया जाने वाला कार्य है । जब भी विधवाए बड़ी हो जाए और विवाह नहीं करना चाहे, तो उनको केवल यही कहना चाहिए कि वह कुमारी कन्याओं की ही तरह से विवाह करने को स्वतंत्र है'। कहना न होगा कि प्रेमचंद गांधी जी के इन विचारों से सहमत थे।

प्रेमचंद के समय में हुए स्त्री आंदोलनों में एक आंदोलन वेश्याओं के सुधार से संबंधित था। यह आंदोलन वेश्याओं को पुनः सामाजिक जीवन में वापस लाने की कोशिश में लगा था। प्रेमचंद ने खुलकर इस आंदोलन का समर्थन किया। उनका मानना था कि कोई भी स्त्री बिना किसी मजबूरी के इस चक्र में नहीं फंसती। 'वेश्या' शीर्षक कहानी की नायिका माधुरी कहती है, 'नारी अपना वक्त रहते हुए कभी पैसों के लिए अपने को समर्पित नहीं करती यदि वह ऐसा रही हो तो समझ लो कि उसके लिए कोई आश्रय और आधार नहीं है।[44] माधुरी सामंती समाज में वेश्या होने के कारणों की ओर संकेत करती है। प्रेमचंद तक आते-आते भारतीय समाज में बदलाव आने लगा था विवाद ने पैर पसारना शुरू कर दिया था। शायद इसलिए प्रेमचंद वेश्या समस्या का मूल कारण पुरुष की वासना के साथ अर्थ की लालसा भी बताते हैं।

प्रेमचंद का लेखन समाज के उस प्रत्येक तबके के साथ प्रतिबद्धता से जुड़ा है, जो उपेक्षित और शोषित रहा है। यही कारण है कि उनके लेखन में स्त्रियों की समस्याएं और उनका दमित जीवन बहुत सहानुभूति के साथ चित्रित है। भारत जैसे देशों के विषय में कार्ल मार्क्स ने भी कहा था, 'वहां स्त्रियां दोहरे शोषण का शिकार है'। प्रेमचंद के समय और संदर्भ में इस कथन की व्याख्या सहित सिद्ध है। 'सेवासदन' में प्रेमचंद ने वेश्या समस्या को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में हुए कुंवर अनिरुद्ध सिंह के माध्यम से अपनी बात कहते हुए लिखा है कि ...'हमें वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं है'। हम रात दिन जो रिश्वत लेते हैं सुद खाते हैं, दिनों का रक्त चूसते हैं, और गरीबो का गला काटते हैं, कदापि इस योग्य नहीं है कि समाज के किसी अंग को नीच या तुचछ समझे। सबसे नीच हम हैं; सबसे पापी, दुराचारी, अन्यायी हम हैं, जो अपने को शिक्षित, सभ्य, उदार और सच्चा समझते हैं। हमारे शिक्षक भाइयों की ही बदौलत दालमंडी आवाद है, चौक में चहल-पहल है चकलो में रौनक है। यह मीना बाजार हम लोगों ने ही सजाया है, यह चिड़िया हम लोगों ने ही फासी है। 'जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती राज्य कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बंधु, आदर और सम्मान के पात्र हो, वहां दालमंडी क्यों ना आबाद हो'। यह थी प्रेमचंद की दृष्टि। परमानंद श्रीवास्तव ने ठीक ही लिखा है, 'प्रेमचंद के लिए नारी मुक्ति की समस्या आर्थिक; सामाजिक मुक्ति की समस्या है'।

'सेवासदन में प्रेमचंद ने सुधरवादी रुख का समर्थन किया है। उन दिनों इसका आंदोलन भी चल रहा था। प्रेमचंद ने इस आंदोलन के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि रखते हुए ही इसका समर्थन किया है। उन्होंने 'सेवासदन' में चित्रित किया है कि विठ्ठलदास जैसे लोग सुमन जैसी वेश्याओं का इसलिए उद्धार करना चाहते हैं, क्योंकि वह हिंदू ब्राह्मणी है । इस चित्र के माध्यम से प्रेमचंद ने समाज की विडंबना को रेखांकित किया है, जिससे कुछ लोगों के लिए धर्म और जाति सबसे ऊपर होती है। उन्होंने दिखाया है कि विठ्ठलदास का दृष्टिकोण कितना एकांगी है, क्योंकि उसी काशी में मुसलमान वेश्याएं भी है। ऐसे ही प्रद्सिंह द्वारा प्रस्तुत समाधन भी आदर्शवादी एवं रूमानी है। फिर भी उपन्यास में प्रस्तुत समाधन एक अच्छे भविष्य की उम्मीद में दिए गए हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार प्रेमचंद समस्या का समाधन देना चाहते थे ,लेकिन उचित समाधन देने में ऐतिहासिक सीमाएं बाध्क थी। नारी का स्वाधीनता और सम्मान रक्षा का प्रश्न देश की आम सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का ही अंग है। नारी की स्वाधीनता देश में एक स्वाधीन जनतंत्र कायम किए हुए बिना संभव नहीं है।45 कहना न होगा कि प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के द्वारा स्त्री समाज को इस कलंक की दुनिया से बाहर लाना चाहते थे।

प्रेमचंद के समय तक भारतीय समाज में किसी स्त्री का पति से अलग होकर रहना ठीक नहीं माना जाता था। कहा जाता था कि तलाक की अवधारणा भारतीय समाज के लिए उपयुक्त नहीं है। कहने का आशय यह है कि समाज स्त्री के शोषण पर मौन रहता है, लेकिन ज्यों ही वह मुक्त होना चाहती है, शोर मच जाता है। क्योंकि प्रेमचंद अपने समय में स्त्रियों की समस्या पर गंभीरता से विचार करने वाले लेखक थे, इसलिए उन्होंने लोक मान्यताओं का जमकर खंडन किया। प्रेमचंद ने फरवरी 1931 में अपनी एक

टिप्पणी 'नारी जाति के अधिकार' में स्त्री पुरुष में और समानता का भाव रखने वाली मानसिकता पर दुख प्रकट करते हुए 'तलाक' को स्त्री–पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू करने की बात की थी। अपनी इसी टिप्पणी में उन्होंने यह भी लिखा था कि तलाक के समय स्त्री, पुरुष की आधी जायदाद पाए और यदि मौरूसी जायदाद हो तो उसका एक अंश।

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में बेमेल विवाह को लेकर चल रहे आंदोलन को भी पूरा महत्व दिया है निर्मला सेवा सदन और अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति गोदान में भी उन्होंने इस समस्या को गंभीरता से उठाया है उन्हें बराबर लगता था कि पुरुषों ने स्त्रियों से उनका अधिकार छीन लिया है अपनी एक टिप्पणी में उन्होंने साफ–साफ लिखा था पुरुषों ने नारी जाति के स्वत्व का अपहरण करना शुरू किया लेकिन राष्ट्रीयता और सद्बुद्धि की जो लहर इस समय आई हुई है वहीं तमाम भेद दो को मिटा देगी और एक बार फिर हमारी माताएं ऊंचे पद पर आरूढ़ होंगी जो उनका हक है।[46]

प्रेमचंद के समय तक भारतीय समाज में किसी स्त्री का पति से अलग होकर रहना ठीक नहीं माना जाता था। कहा जाता था कि तलाक की अवधरणा भारतीय समाज के लिए उपयुक्त नहीं है। कहने का आशय यह है कि समाज स्त्री के शोषण पर मौन रहता है, लेकिन ज्यों ही वह मुक्त होना चाहती है, शोर मच जाता है। क्योंकि प्रेमचंद अपने समय में स्त्रियों की समस्या पर गंभीरता से विचार करने वाले लेखक थे, इसलिए उन्होंने लोक मान्यताओं का जमकर खंडन किया। प्रेमचंद ने फरवरी 1931 में अपनी एक टिप्पणी 'नारी जाति के अधिकार' में स्त्री पुरुष में और समानता का भाव रखने वाली मानसिकता पर दुख प्रकट करते हुए 'तलाक' को स्त्री–पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू करने की बात की थी। अपनी इसी टिप्पणी में उन्होंने यह भी लिखा था कि तलाक के समय स्त्री, पुरुष की आधी जायदाद पाए और यदि मौरूसी जायदाद हो तो उसका एक अंश।

वेश्या कहानी में माधुरी वेश्याओं की व्यथा को व्यक्त करते हुए सामाजिक पाखण्ड को भी उजागर करती है। वह कहती है, 'पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरावस्था से अपनी वासना पूरा करता है और इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलंक लगाकर उसे उसी दुरावस्था में मरते देखना चाहता है। क्या वह नारी नहीं है? क्या नारीत्व के पवित्र मंदिर में उसका पवित्र स्थान नहीं है? लेकिन तुम उसे उस मंदिर में घुसने नहीं देते। उसके स्पर्श से मंदिर की प्रतिमा भ्रष्ट हो जाएगी।[48] समाज के तथाकथित इज्जतदारो पर टिप्पणी करते हुए 'सेवासदन' की नायिका सुमन कहती है, 'अंधेरे में जूठन खाने को तैयार हैं, पर उजाले में निमंत्रण भी स्वीकार नहीं करते'।[49]

प्रेमचंद अपने समय के स्त्री आंदोलनों से कितने प्रभावित थे, इसका उदाहरण उनका यह कथन है, 'जैसे–जैसे स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार हो रहा है, उनमें अपनी वर्तमान अधेगति से विद्रोह उत्पन्न हो रहा है और तलाक की मांग उसी विद्रोह का सूचक है। पुरुषों को अब उनसे समझौता करना होगा। उनकी शिकायतों की अवहेलना करके अब वे अपने पुरुषत्व को कलंक से नहीं बचा सकते। 50 यहां इसी प्रसंग पर श्कर्मभूमिश में नैना और सुखदा के संवाद को याद किया जा सकता है। इस संवाद में श्तलाकश विषय में सुखदा करती है, ष्तो इसमें बुराई क्या है? यह तो नहीं होता कि पुरुष गुलछर्रे उड़ाए और स्त्री उसके नाम को रोती रहे? 51 कहने का आशय यह कि प्रेमचंद तलाक को लेकर चल रहे विवाद में एक आलोचनात्मक दृष्टि के साथ हस्तक्षेप करते हैं।

प्रेमचंद के स्त्री विषयक लेखन से यह बिल्कुल साफ है कि उन्हें अपने समय में चल रहे श्री आंदोलनों का पूरा ज्ञान था और वे इन आंदोलनों की सफलता भी चाहते थे। यहां याद किया जा सकता है कि सन 1980 में इलाहाबाद से रामेश्वरी नेहरू ने स्त्री –दर्पण पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया था। उन्हीं दिनों 'गृहलक्ष्मी' नामक महत्वपूर्ण पत्रिका निकल रही थी। अन्य पत्रिकाओं 'सरस्वती' और 'माधुरी' में भी स्त्री चेतना से संबंधित रचनाएं छप रही थी। स्त्री दर्पण और लक्ष्मी जैसी पत्रिकाएं स्त्री समस्याओं पर सिर्फ एक कहानी या कविता छाप कर चेतना जगाने और प्रचार करने तक सीमित ना थी। यह स्त्री आंदोलन और संगठन खड़ा करने में भी भूमिका अदा कर रही थी।

प्रेमचंद विधवाओं की सामाजिक स्थिति का चित्रण भर कर के नहीं रह जाते, बल्कि विधवाओं के पुनर्विवाह की भी बात सामने रखते हैं। 'प्रतिज्ञा' में पूरना प्रसंग उनकी दृष्टि का परिचय देता है। उन्होंने अपनी कहानी 'नागपूजा' में समाज के घनघोर विरोध के बावजूद तिलोत्तमा के पिता द्वारा उसका पुनर्विवाह कराते दिखाया है। यहां हम देख सकते हैं कि 'प्रेमचंद की सुधरवादी चेतना में वह सामाजिक आलोचना निहित है जो खोखली मर्यादाओं पर टिके समाज की असलियत जानने के लिए प्रतिबद्ध हैं'[5]

अक्टूबर 1933 में अपनी एक टिप्पणी में प्रेमचंद ने लिखा था, 'हिंदू समाज के पतन का मुख्य कारण अगर जाति – भेद है तो विधवाओं की दुर्दशा भी उसका खास सबब है'। अपनी इसी टिप्पणी में वे आगे लिखते हैं, 'विधवाओं के साथ समाज में बड़ा

अन्याय किया और अन्याय को पालकर कोई समाज सरसबा नहीं हो सकता'। अपनी इस टिप्पणी में उन्होंने विधवाओं के जीवन स्तर में सुधार के लिए लाए गए 'शारदा बिल' का समर्थन किया है।

प्रेमचंद के समय तक भारतीय समाज में किसी स्त्री का पति से अलग होकर रहना ठीक नहीं माना जाता था। कहा जाता था कि तलाक की अवधारणा भारतीय समाज के लिए उपयुक्त नहीं है। कहने का आशय यह है कि समाज स्त्री के शोषण पर मौन रहता है, लेकिन ज्यों ही वह मुक्त होना चाहती है, शोर मच जाता है। क्योंकि प्रेमचंद अपने समय में स्त्रियों की समस्या पर गंभीरता से विचार करने वाले लेखक थे, इसलिए उन्होंने लोक मान्यताओं का जमकर खंडन किया। प्रेमचंद ने फरवरी 1931 में अपनी एक टिप्पणी 'नारी जाति के अधिकार' में स्त्री पुरुष में और समानता का भाव रखने वाली मानसिकता पर दुख प्रकट करते हुए 'तलाक' को स्त्री-पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू करने की बात की थी। अपनी इसी टिप्पणी में उन्होंने यह भी लिखा था कि तलाक के समय स्त्री, पुरुष की आधी जायदाद पाए और यदि मौरूसी जायदाद हो तो उसका एक अंश।

'सरस्वती' और 'माधुरी' में भी स्त्री चेतना से संबंधित रचनाएं छप रही थी। स्त्री दर्पण और लक्ष्मी जैसी पत्रिकाएं स्त्री समस्याओं पर सिर्फ एक कहानी या कविता छाप कर चेतना जगाने और प्रचार करने तक सीमित ना थी। यह स्त्री आंदोलन और संगठन खड़ा करने में भी भूमिका अदा कर रही थी।

संदर्भ सूचीः-

1. वरदान, पृ०- 475 (प्रेमचंद रचनावली, भाग-1)
2. निर्मला, पृ०- 38
3. गबन, पृ०- 303-304
4. मानसरोवर, भा०- 4 पृ०- 84
5. परमानंद श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्राशित, सेवासदन की भूमिका, पृ०- 6
6. महात्मा गाधी-स्रोतः प्रेमचंदयुगीन भारतीय समाज (इंद्र मोहन कुमार सिन्हा), पृ०- 284
7. मानसरोवर, भाग- 2 पृ०- 55
8. मानसरोवर, भाग- 7 पृ०- 55
9. सेवासदन पृ०- 295

स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार की महिलाएँ

डॉ० बिपिन कुमार

अतिथि व्याख्याता, इतिहास विभाग, महन्त दर्शन दास महिला महाविद्यालय,
बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

शोध सारांश

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन महत्वपूर्ण है जबकि महिलाओं को जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे हमारे समाज ने पुरुषों के अधीन रखा है। मगर गुलामी की जंजीर ने घर की कोठरी से महिलाओं को बाहर निकलने पर मजबूर कर दिया तथा पुरूषों के साथ कंधा में कंधा मिलाकर आजादी के लिए संघर्ष किया।

मुख्य शब्दः सत्याग्रह, स्वतंत्रता आंदोलन, बलिदान, वीरांगना, कांटो का ताज

प्रस्तावना

अवला हो या भारती, रामगढ़ की रानी हो या बद्री की ठकुराइन। प्रभावती जी हो या जनकदुलारी जी बिहार में ऐसे अनगिणत नाम हैं जिन्होने स्वतंत्रता आंदोलन के दरम्यान अपनी जान हथेली पर रखकर सम्पूर्ण महिला समाज को सक्रिय भागीदारी के लिए उत्प्रेरित किया। इनके बलिदान और संधर्ष की गथा इतिहास के पन्नों को आज भी जीवंतता प्रदान कर रहें है।

विषय-वस्तु

1917 में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के बिहार आगमन के पश्चात् इसमे तेजी आयी और 1919 आते आते कस्तुरवा गांधी और श्रीमती सरला देवी, प्रभावती जी, राजवंशी देवी, सुनीति देवी राधिका देवी आदि वीरांगना महिलाओं की प्रेरणा से सम्पूर्ण बिहारी महिला समाज में आजादी की लहर पैदा हो गयी और बिना रूके ये कांटो का ताज धारण कर आजादी के संघर्ष में कुद पड़ी।

सन् 1921 के अक्टुबर में सरला देवी ने बिहार के विद्यार्थियों को सरकारी स्कूल कॉलेज छोड़ने का आह्वान किया। प्रिस ऑफ बेल्स, के भारत आगमन के दौरान होने वाले समारोह का बहिष्कार की अगुआई श्रीमाती सावित्री देवी नामक महिला ने की। इसी निर्भीक महिला की अध्यक्षता में अंग्रेज सरकार का दमनकारी नीतियों के विरूद्ध कई आम सभाएँ हुई तथा आंदोलन मे इनकी गतिविधियाँ तीव्र हो गई।

यहाँ महिलाओं ने इन दिनों चरखा संभाल लिया और जब-जब सत्याग्रह आंदोलन की गति में तेजी आयी वे तिरंगा झंडा लेकर मैदान में आगे बढ़ती रही। इस वीरता एवं निर्भीकतापूर्ण कार्य के लिए पटना के श्रीमती सी.सी दास और श्रीमती उर्मिला देवी का नाम प्रमुख है।

1921 ई के सत्याग्रह समाप्ति के बाद भी बिहार की महिलाएँ काफी बढ़ चढ़ कर भाग लिया। इसी बीच महात्मा गाँधी बिहार पधारे और उन्होने देशबन्धु स्मारक कोष, के लिए धन संग्रह करने का कार्य आंरभ किया। इस दौरान उन्होने बिहार के अनेक नगरों का भ्रमण किया, जिसमें बिहार की महिलाओं ने अपनी कीमती आभूषणों को शरीर से उतार कर दान दे दिया। महात्मागाँधी के साथ यात्रा करने वाली महिलाओं में श्रीमती प्रभावती देवी (जे.पी.की पत्नी) अग्रणी थी।

सन् 1930 में गाँधी जी ने जबनमक आंदोलन का श्री गणेश किया तो इस आंदोलन का बिहार की महिलाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा और सभ्रांत महिलाओं ने भी नमक कानून भंग करने के कार्यक्रम में बड़ी जोश खरोश के साथ भाग लिया। महिलाओं की कई

आम सभाएँ भी हुई। शाहाबाद जिले के श्री रामबहादुर, बार एट लॉ की पत्नी ने सासाराम थाने के समक्ष नमक बनाकर नमक कानून भंग किया।

पटना में विदेशी वस्तुओं की दुकानों के आगे सत्याग्रह करने में जो सफलता मिली, इसका मुख्य श्रेय महिला संगठन को जाता है। इसकी बागडोर श्रीमती हसन इमाम के हाथो मे थी। इसके अलावा एक नाम और प्रमुख है श्रीमती विंध्यवासिनी देवी का आंदोलन को तीव्र गति से बदलते हुए देख गोरी सरकार काफी संकट में आ गयी। इसके फलस्वरूप पटना के तत्कालीन जिलाधीश को उन महिलाओं से मुकाबला करने के लिए भारी संख्या में महिला पुलिस बल की बहाली करनी पड़ी।

पटना के श्रीमती हसन इमाम एवं उनकी सुपुत्री श्रीमती शमी, श्रीमती सी-सी दास और उनकी सुपुत्री कुमारी गौरी दास गोरी सरकार के लिए एक पहेली बनी हुई थी। विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार के लिए महिलाओं ने तीन बड़े-बड़े प्रदर्शन किए जिसमें 3000 से अधिक महिलाओं ने शिरकत की। मुंगेर नगर के एक बडे घराने की एक मुस्लिम महिला श्रीमती शाह मुहम्मद जुबैर इनसे प्रभावित होकर बुर्का के परदे से बाहर निकल कर आंदोलन में कुद पड़ी। इस सिलसिले में बहुरिया रामस्वरूप देवी का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। उन्होने गाँव-गँव घुमकर जनता को सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित करना शुरू कर दिया। बहुरिया जी सिंहनाद से अंग्रेजी सरकार विचलित होने लगी और उन्हे 1931 में जेल भेजने का फैसला लिया तथा उन्हे भागलपुर के केन्द्रीय कारा मे भेज दिया गया।

23 मार्च 1931 को जब महात्मा गाँधी एवं देश के अन्य नेताओ के विरोध के बावजूद सरदार भगत सिंह, राजगुरू और सुखदेव को सरकार नें फाँसी पर लटका दिया तब इस अमानुषित कारवाई का जबाव भारतीय जनता ने हड़तालों और प्रदर्शनों से दिया। इस सिलसिले में 30 मार्च को आरा में एक विराट आम सभा हुई जिसकी अध्यक्षता श्रीमती कुसुम कुमारी देवी ने की। सभा मंच से युवको को ललकरते हुए उन्होने लोगों को कहा नौजवानों तुम पीछे क्यों हो विस्मिल, भगत सिंह, खुदीराम वोस की तरह अपने को कुर्वान करने लिए तुम आगे क्यों नहीं बढ़ते। भगत सिंह की चिता की आग ठंडी नहीं हुई है आओ और उनकी चिंगारी को प्रज्वलित करने के लिए आगे बढ़े। गांधी गिरफ्तारी पर (4 जनवरी 1932) पर पटना के सड़को पर महिलाओं ने प्रर्दशन किया।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन के बाद गांधी जी गिरफ्तार हुए उसके बाद देश में आंदलनो का सिलसिला चला। 26 जनवरी 1933 को दूसरे देश में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। इस अवसर पर पटना में सात महिलाएँ गिरफ्तार की गयी। इसमे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की पत्नी श्रीमती राजवंशी देवी तथा डिक्टेटर चंद्रावती देवी भी थी। इन्हे 15 महीने का कारावास दंड मिला।

1941 में अंग्रेजो के विरूद्ध गाँधी जी ने पुनः सत्याग्रह प्रांरभ किया इस दौरान कई महिलाओं को गिरफ्तार किया गया गया में श्रीमती प्रियंवदा देवी, जगत राजनी देवी एवं जानकी देवी को गिरफ्तार किया गया। तथा इन सत्याग्रहियो को चार-2 महीने का करावास की सजा सुनायी गयी। अगस्त क्रान्ति के दौरान महिलाओं खासकर चर्खा समिति के सदस्यों ने क्रान्ति को व्यापक बनाने की भरपुर कोशिश की 19 अगस्त को पटना मे महिलाओं का विराट जुलूस निकला जिसका नेतृत्व डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की बहन भगवती देवी कर रही थी उन्हे गिरफ्तार कर भागलपुर जेल भेज दिया गया। इसी प्रकार हजारी बाग से भागलपुर लाई जा रही महिला स्वतंत्रता कै दी को छात्रों ने छुरा लिया।

भागलपुर के बिहपुर में माया देवी को गिरफ्तार कर लिया गया गोविन्दपुर के जीजिया देवी ने पुलिस पर गोली चलाई 15 अगस्त को छपड़ा टाउन हॉल में सभा की अध्यक्षता शान्ति देवी ने की जिन्होने अगस्त क्रान्ति की ज्वाला न बुझाने की अपील की। दिधवारा प्रखण्ड में दो बहनों शारदा और सरस्वती को तिरंगा ऱहराने के अपराध मे 14 वा 11 वर्ष की सजा दी गयी। गया के मुहम्मदपुर गाँव के प्यारी देवी को गिरफ्तार कर कैम्प भेज दिया गया जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी। इसके अलावा अगस्त क्रान्ति के दौरान कुछ महिलाओं एवं संक्रिय रूप से भूमिका निभाई जैसे-शारदा देवी एवं उषा रानी मुखर्जी वैशाली की सुनीति देवी एवं राधिक देवी जिन्होंने साइकिल चलाकर जन जागरण पैदा किया। वैशाली की ही बिन्दा देवी, मुजफरपुर की तारा देवी तथा भवानी मेहरोत्र कहलगाँव की रामस्वरूप देवी, धतुरी देवी, प्यारी देवी (गया) फुई कुमारी (शाहाबाद) सुधा कुमारी (पटना) जीरिया देवी (गया) संपतिया देवी (मुंगेर) आदि महिलाओं का स्वतंत्रता संग्राम में अद्वितीय योगदान रहा। घोड़मारा गाँव की विराजी मछियाइन पुलीस की गोली से शहीद हुई मुंगेर की छातुरी देवी भी पुलिस की गोली से शहीद हुई मुंगेर की महिलाओं ने अगस्त क्रान्ति में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। 2 सितम्बर को चौथम थाने के अन्तर्गत रूहियार गाँव के महिलाओं पर पुलिस ने गोली चलाई जिससे अनेक महिलाएँ शहीद हुई।

इस तरह बिहार की वीरागनाओं ने सदैव आंदोलन के साथ कदम मिलाती हुई आगे बढ़ी और अपने मकसद में कामयाव रही। देश के स्वाधीनता आंदोलन में ऐसी अनेक क्रांतिकारी संघर्षशील वीर महिलाओं के नाम अतीत के वातावरण में घूत-घूसरित है, जिन्हें आज ढूँढ़ निकालने की आवश्यकता है ताकी आजादी के लड़ाई में हम उनके द्वारा किये गये योगदान से परिचित हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (बि.हि.ग्रंथ अकादमी, पटना)
2. शीला रेबोथम- वीमेंन्स कंशसनेंस, मेंनस वर्ल्ड
3. वीमेन हिस्ट्री एंड थ्योरी-गेल मिल्नाट
4. भारती राय- बंगाली वीमेंन इन देयर ट्रांजिशन टू मोडर्निटी
5. भारती राय- बंगाल में स्वदेशी आंदोलन और महिलाओं की जागृति-1911-29

भीष्म साहनी के साहित्य में नारी-चेतना : राष्ट्रीय पक्ष

मनकी रानी

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग, प्रबंधन एवं मानविकी संकाय, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० निरुपमा हर्षवर्धन

शोध निर्देशिका, मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग, प्रबंधन एवं मानविकी संकाय, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

'राष्ट्र' शब्द का अर्थ है, 'रासन्ते चारू शब्द कुर्वते जनः यस्मिन् प्रदेश विशेष तद् राष्ट्रम्' अर्थात् जिस प्रदेश के लोग विशिष्ट भाषा द्वारा विचार-विनिमय करतें है वह स्थान विशेष राष्ट्र है।

मानक हिन्दी कोशकार ने राष्ट्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''किसी निश्चित और एक शासन में रहने वाले लोगों का समूह।''[1]

राष्ट्र निर्माण में नारी की भूमिका

राष्ट्र-निर्माण में महिलाओं के योगदान की बहुत आवश्यकता है। उनकी उपेक्षा से समाज समुन्नत नहीं हो सकता, सम्मान नहीं पा सकता। स्वामी विवेकानंद जी ने भी उचित ही कहा था कि ''औरतों की स्थिति में सुधार लाए बिना दुनियां का कल्याण सम्भव नहीं है।''

अटल बिहारी वाजपेयी जी का नारी के प्रति विचार है कि, ''महिलाएँ केवल बेटियाँ, पत्नियाँ या माताएँ ही नहीं बल्कि वे इस लोकतंत्र की जिम्मेदार नागरिक भी है। राष्ट्र की महानता में उनके योगदान को कभी सही तरीके से स्वीकार नहीं किया गया। महिलाओं के लिए एक संवैधानिक आयोग बनाने की जरूरत है जो इस उपेक्षित वर्ग की समस्याओं पर ध्यान दे और उन्हें बराबरी का दर्जा देने के सुझाव दे ताकि वे देश की प्रगति में प्रभावी योगदान दे सके।''[2]

साहनी जी के साहित्य में वर्णन मिलता है कि नारी का राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान है। वह किसी न किसी रूप में राष्ट्र से जुड़ी रहती है। 'वा्चू' की पंक्तियां हैं, ''सुनो, वा्चू, भारत और चीन के बीच बंद दरवाजे अब खुल रहे हैं। अब दोनों देशों के बीच सम्पर्क स्थापित हो रहे हैं और इसका बड़ा महत्त्व है। अध्ययन का यही काम जो तुम अभी तक अलग-अलग करते रहे हों, वही अब तुम अपने देश के मान्य प्रतिनिधि के रूप में कर सकते हो।''[3] 'ओ हरामजादे' कहानी में भी हेलन विदेशी होने पर भी भारत के प्रति अपनी भावनाओं को प्रकट करती है। वह स्वयं को भारतीय नारी बनाना चाहती है। ''शादी के कुछ समय बाद ही वह मेरे मुंह से सुने गीत-टप्पे भी गुनगुनाने लगी थी। कभी-कभी सलवार-कमीज पहनकर मेरे साथ घूमने निकल पड़ती। रसोईघर की दीवार पर उसने भारत का एक मानचित्र टांग दिया था, जिस पर अनेक स्थानों पर लाल पैंसिल से निशान लगा रखे थे कि जालंधर

कहाँ पर है और दिल्ली कहाँ है और अमृतसर कहाँ है।''4 नारी भी इस प्रकार राष्ट्र-निर्माण में अपनी भूमिका को दर्शाती है। 'घर की इज्जत' में भी राष्ट्र में नारी के योगदान को महत्वपूर्ण माना गया है-''हमारे नाटक हमारे देश के इतिहास और संस्कृति का एक गौरवमय अंग है। मुझे खुशी है कि इस कार्य में हमारी बालिकाओं और स्त्रियों ने भाग लिया है। देश की कला देश की स्त्री जाति पर अवलम्बित है। उनका भाग लेना कला के लिए मंगलकारी है।

''मैंने सोच लिया है। शायद पहले मैं न भी खेलती। पर अब भारतीय नारी और भारतीय संस्कृति की प्रशंसा के बाद तो जरूर खेलूंगी।''[5]

राष्ट्र निर्माण में नारियों का महत्वपूर्ण योगदान है। 'मेड इन इटली' में मीरा से दुकानदार कहता है, ''सच पूछे मदाम, तो दुनिया की खूबसूरती में आधा भाग स्त्रियों की खूबसूरती का होता है और इसमें भी 90 फीसदी हिन्दुस्तानी औरतों की खूबसूरती का।''[6] 'तमस' उपन्यास की लीजा भी देश में शांति चाहती है। वह चाहती है कि सभी प्रेम प्यार से रहें। पंक्तियाँ इस प्रकार है-

''धर्म के नाम पर आपस में लड़ते हैं, देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं।'' रिचर्ड ने मुस्कराकर कहा- ''बहुत चालाक नहीं बनो, रिचर्ड। मैं सब जानती हूँ। देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो। क्यों, ठीक है ना?''

''हम नहीं लड़ाते, लीजा, ये लोग खुद लड़ते हैं।''

''तुम इन्हें लड़ने से रोक भी तो सकते हो। आखिर है तो ये एक ही जाति के लोग।''[7]

'मफ्यादास की माड़ी' में लेखराज को मोरां देश की सेवा के लिए भेजती है। वह भावुक होती है परन्तु हौंसला रखती है। ''लेखराज को इस बात की अपेक्षा नहीं थी कि मौरां यो हंसती हुई मिलेगी। वह स्वयं भावुक हो रहा था। फिर मौंरा सहसा चुप हो गयी थी और उसकी आंखें लेखराज के चेहरे पर लग गई थी। फिर थोड़ी देर चुप रहने के बाद धीमी आवाज में बोली थी, 'कब जाएगा? यहाँ से लाहौर जाएगा? तू क्या सचमुच चला जाएगा?''

''हाँ लाहौर जाऊँगा। हम सब लाहौर जाएंगे। वहाँ पर छावनी में, हमारी सिखलाई होगी, वे हमें बंदूकें देंगे और वहाँ से आगे भेजेंगे।''

तू क्यों जाता है लेखराजा, तुझे क्या पड़ी है? कहते हुए, सहसा ही मोरां का स्वर बदल गया था, ''मैं तेरे लिए मन्नत मानूँगी।''[8] नारी देश के सर्वस्व कुर्बान करने के लिए भी तैयार रहती है। राष्ट्र के निर्माण में योगदान के लिए नारी का शिक्षित होना भी अति आवश्यक माना गया है। 'मफ्यादास की माड़ी' में इस विषय को लेकर झगड़ा भी होता है। ''पर स्कूल बंद नहीं हुआ। वानप्रस्थी के स्थान पर लेखराज बच्चियों को अक्षर-बोध कराने लगे। अपने फूस के झोंपड़ें में वानप्रस्थी पड़ा था, पर इधर नियमित रूप से भागसुद्धी भी पहुँच जाती और लेखराज भी और बच्चों की पढ़ाई नियमित चलती रही।''[9]

इस प्रकार नारी का राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

विश्वबंधुत्व एवं नारी

जब व्यक्ति 'स्व' से 'पर' की ओर उन्मुख हो जाता है, तब वह मात्र अपने बारे में ही नहीं सोचता बल्कि परिवार, देश और समाज के बंधन को छोड़कर सम्पूर्ण विश्व की भलाई की सोचता है और आज के समय में जहाँ मानव आण्विक शक्ति और भौतिकवाद के युग में जी रहा है, वहाँ तो इस विश्व बंधुत्व की भावना का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। क्योंकि इसी भावना के बल पर हम एक-दूसरे का भला कर सकते हैं और अपनी ताकत को मानव कल्याण के लिए लगा सकते हैं। वरना द्वेष भावना के अंतर्गत मनुष्य कभी भी इस संसार को राख का ढेर बना सकता है। भीष्म साहनी जी साहित्य के माध्यम से विश्व को एक बंधन में बांधना चाहते हैं। ''एम मंच पर मिल बैठने पर भी मात्र एक-दूसरे के नाम से ही परिचित हो पाते हैं। इससे अधिक नहीं, इस दूरी को पाटना अत्यन्त आवश्यक है। हमें सच्चे अर्थों में एक-दूसरे के निकट आना चाहिए, सांस्कृतिक एकबद्धता, राष्ट्रीय एकबद्धता के नाते भी और जागरूक साहित्य कर्म के नाते भी। अनुवाद कार्य की भूमिका प्रमुख है, एक-दूसरे से मिल बैठने, एक-दूसरे के प्रदेश की यात्रा करके, सेमिनारों, गोष्ठियों में विचारों के आदान-प्रदान आदि सभी इस दिशा में सहायक होंगे।''

नारी में विश्वबंधुत्व की भावना होती है। 'ओ हरामजादे' में नारी विदेशी होती है परन्तु वह भारत का रहन-सहन सीख लेती है। उसकी भावना स्पष्ट नजर आती है-''सलवार कमीज पहने, बालों का जूड़ा बनाए, चूड़ियाँ खनकाती एक कमरे से दूसरे कमरे में जाती हुई तिलकराज की पत्नी मेरे लिए मेरे वतन का मुजस्समा बन गयी थी। मेरे देश की समूची संस्कृति सिमट आयी थी। मेरे दिल में, कही गहरे में, एक टीस-सी उठी।''

''भारत सम्बन्धी जो किताब मिलती, उठा लाती, जब कभी कोई हिन्दुस्तानी मिल जाता उसे आग्रह-अनुरोध करके घर ले आती।''[10]

विदेशी महिलाओं के लिए भारतीय रीति-रिवाज काफी आकर्षक है। वे इसमें विशेष रूचि लेती हैं। इससे भी विश्वबन्धुत्व को बढ़ावा मिलता है, ''मिसेज स्मिथ जो इस बीच पास खड़ी एक लड़की की छम-छम करती साड़ी और बिन्दियां निहार रही थी, चहककर बोली, ''क्या तुम सच? हाऊ वण्डरफुल! हाऊ एक्जोटिक! मैनें तुमसे कहा था न, हिन्दुस्तानियों के रिवाज बड़े अनूठे होते हैं। फिर सिर हिला-हिलाकर कहने लगी, ''क्या तुम सचमुच उस पर बैठोगे? घोड़ी पर बैठकर तुम कहां जाओगे? क्या रजिस्ट्रेशन के दफ्तर जाओगे? इस वक्त तो दफ्तर बंद होगा।''

''नहीं, मैं घोड़ी पर बैठकर लड़की वालों के घर जाऊँगा, मेरे सम्बन्धी-साथी मेरे साथ जाएंगे, और लड़की के घर में शादी की रस्म होगी।''

''हाय, हम तुम्हारे ब्याह की रस्म देखना चाहती है। क्या हम तुम्हारे साथ चल सकती हैं?''[11]

यात्रा के साथ-साथ विदेशों से खरीददारी करके नारी विश्वबंधुत्व का परिचय देती है। 'मेड इन इटली' की पक्तियाँ हैं :-

''मीरा की शापिंग लिस्ट पूरी हो चली थी। लन्दन से मीरा ने उफनी समान खरीदा था, पेरिस से इत्र और नाइटिज, बर्लिन से ट्रांजिसटर और टेप रिकार्डर। रोम पहुँचते-पहुँचते उसकी सारी खरीददारी लगभग पूरी हो चली थी।''[12] 'कुंतो' उपन्यास में भी विश्वबन्धुत्व का सन्देश दिया जाता है। जब कुंतो ट्रेन में जा रही होती है तो गीत गुनगुनाया जाता है :-

''सुनो, सुनो!
ये किन बच्चों की चीखें हैं,
किस दुखिया मां की फरियाद लिए खामोश निगाहें हैं?
हम हिन्दु है, हम मुस्लिम हैं,
हम सब गरीब, सब दुखियारे सब एक ही बिपता के मारे,
बन्द करो, बन्द करो यह खून की होली।''[13]

इससे प्रतीत होता है कि हम सब एक हैं। आपसी ईर्ष्या भावना को समाप्त करके प्यार-प्रेम से रहना चाहिए। 'तमस' उपन्यास में लीजा की भावना भी विश्वबन्धुत्व में समाहित हैं। ''जब लीजा भारत आयी थी तो बहुत सी योजनाएं बनाकर कि वह भारत की दस्तकारी के नमूने इक्ट्ठे करेगी, खूब घूमेगी, तस्वीरें उतारेगी, शेर की पीठ पर बैठकर तस्वीरें खिंचवाएगी, साड़ी पहनकर घूमा करेगी और जाने क्या-क्या।''[14]

'आज के अतीत' की रफसी महिला को देखकर भी ऐसा लगता है कि सम्पूर्ण विश्व एक है। उसका व्यवहार अत्याधिक प्रेरणादायक होता है, ''हम लोग कीव्स्की मेट्रो स्टेशन पर उतरे थे और वहां से पैदल चलते हुए उक्रइना होटल की ओर जा रहे थे जब दूसरी ओर से बड़ी उम्र की एक रूसी महिला को आते देखा। जब वह नजदीक पहुँची तो हमें देखकर रूक गई। ''क्या आप लोग भारत के रहने वाले हैं? उसने रूसी भाषा में पूछा।

मेरे साथियों में से केवल जोए अंसारी ही रूसी भाषा जानता था। उसने जवाब में कहा, ''जी, हम भारत के रहने वाले हैं।'' तो उस महिला ने सहसा ही झुककर जमीन को छुआ और बोली, ''आप टैगोर के देश के निवासी हो। आपका स्वागत है।'' और मुस्कराती हुई, मानो हमें आशीष देती हुई आगे बढ़ गई।''[15]

इस प्रकार भीष्म साहनी जी के साहित्य में विश्वबंधुत्व के स्पष्ट उदाहारण मिलते हैं। सम्पूर्ण विश्व के प्रति आत्मीयता के भाव के भी उदाहारण मिलते हैं। नारी सम्पूर्ण विश्व को एक बन्धन में बांधना चाहती है और उसके लिए प्रयास भी करती है।

देशभक्ति और नारी

नारी में विश्वबन्धुत्व की भावना से पहले देशभक्ति की भावना होती है। वह देश के लिए सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर रहती है। कहा भी है-जब मानव में अपना सब कुछ बिना किसी स्वार्थ भावना के अपने देश के लिए बलिदान करने का भाव पैदा होता है तो वह देशभक्ति है। देशभक्ति में मानव अपने-अपने का भेदभाव भूल जाता है तथा उस देश के सभी नागरिक उसके अपने सगे-सम्बन्धी हो जाते हैं।

'ओ हरामजादे' की कुछ पंक्तियों से देशभक्ति की भावना स्पष्ट उजागर होती है। ''उसकी आंखों में वही रूमानी किस्म का देशप्रेम झलकने लगा था जो देश के बाहर रहने वाले हिन्दुस्तानी की आंखों में, अपने किसी देशवासी से मिलने पर चमकने लगता है। हिन्दुस्तानी पहले तो अपने देश से भागता है, और बाद में उसी हिन्दुस्तानी के लिए तरसने लगता है।''[16]

इटली में जब मीरा को दुकानदार धोखा देता है तो तब उसे अपने देश की याद आती है- ''मुझे बलदेव ने कहा भी था कि इटली के दुकानदारों की बातों में न आना और इधर मेरी मत मारी गयी। अन्धों की तरह इस फटीचर बैग के लिए पैसे देकर चली आयी।''[17] देशभक्ति में देशभक्त अपनी जान तक कुर्बान कर देता है। मरने के बाद भी उसकी आत्मा देश की शान्ति चाहती है। 'भटकती राख' में दादी मां वर्णन करती है-''आज का दिन बड़ा शुभ दिन है। देश में जब सुख-चैन होता है तो राजा की राख के जर्रे चमकने लगते हैं। तब लोग कहते हैं कि राजा की राख मुसकरा रही है, वह खुश है, राजा चैन से है।''

''पर राजा देश में सुख-चैन न हो तो?''

''तो राजा की राख भटकने लगती है। जब देश पर संकट आता है, झोंपड़ी से रोने की आवाजें आती हैं और देश में आंधियाँ और तूफान उठते हैं, तो राजा की राख बैचेन हो उठती है और लोगों को लगता है जैसे वह सायं-सायं करती गलियों, सड़कों और राहों पर भटक रही है, झोंपड़ों से लिपट रही है।''[18] देशभक्ति की भावना को दादी जी अच्छी तरह से समझती हैं। देशभक्ति की भावना ही ऐसी होती है कि जिन्दगी के चलते अगर मन की इच्छा पूरी न हो तो मरने के बाद भी उसकी आत्मा देश की खुशी चाहती है।

'हानूश' में कात्या में भी देशभक्ति की भावना होती है। वह अपने वतन को, अपने देश को सब कुछ मानती है।

कात्या : नहीं ऐमिल नहीं। मैं कहीं नहीं जाऊंगी। उसे भी कहीं नहीं जाने दूंगी।

एमिल : भले ही यहाँ वह तड़प-तड़प कर मर जाये।

कात्या : मैं उसे मरने नहीं दूंगी। यहां पर हमारा घर है, यह हमारा वतन है। सुख-दुःख में दसियों लोग यहां हमारी मदद करने वाले हैं। अब जो हो गया, सो हो गया।

कात्या : एक दिन तो मरना ही है, आगे क्या और पीछे क्या! परदेश में मरने से अपने घर में मरना अच्छा है।''[19]

जब हानूश को विदेश में भेजने की बात की जाती है तो कात्या को गुस्सा आ जाता है और उत्तेजित होकर कहती है-''यह बहुत बड़ी तबदीली है, ऐमिल, बुढ़ापे में घर से बेघर होने वाली बात है। अपना देश छोड़कर पर देश में कभी कोई सुखी नहीं हुआ।''[20]

कात्या के शब्दों से उसकी देशभक्ति प्रकट होती है। उसके लिए सब कुछ वतन में ही है। वह उसको छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहती। अन्तिम क्षण तक अपने वतन में ही रहना चाहती है। इसी प्रकार की भावना 'आज के अतीत' आत्मकथा में दिखायी गयी है। ''ऐसी भावुक वृत्ति हर देश और जाति के लोगों में होती है पर हम हिन्दुस्तानियों में कुछ जरूरत से ज्यादा है। मुझे एक बार यह बरसों बाद की बात है- अफ्रीका में ब्राजील कागो जाने का अवसर मिला। वहाँ पर कुछ भारतीय परिवार रहते थे। एक परिवार ने मुझे और मेरे एक साथी लेखक को खाने पर बुलाया। वहाँ भी मुझे ऐसा ही कुछ देखने को मिला। उस घर की गृहिणी ने खाने से पहले, ग्रामोफोन पर एक रिकार्ड लगा दिया, 'चिट्ठी आई है।' गीत सुनते हुए वह स्वयं इतनी भावुक हो उठी कि बेकाबू होकर रोने लगी। फिर बीच में से उठकर अन्दर चली गई।

हम हिन्दुस्तानी अपना देश छोड़कर विदेश जाने के लिए भी उतावले होते हैं और बाद में लौटने के लिए भी बैचेन होने लगते है।''[21]

इस प्रकार भीष्म साहनी के साहित्य में देशभक्ति की भावना उजागर होती है। नारी देशभक्त है। वह अपने देश में, अपने वतन में रहकर ही अत्यन्त खुश है।

इस प्रकार भीष्म साहनी के साहित्य में राजनीतिक चेतना में नारी का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अपितु नारी अंग्रेजी शासन और राजनीति के अपराधीकरण से पीड़ित होती है। परन्तु फिर भी विश्वबंधुत्व और देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। राजनीति में भ्रष्ट लोग नारी का भी शोषण करते हैं, उसको प्रताड़ित करते हैं। उसकी बेबसी एवं लाचारी का फायदा उठाया जाता है। प्रशासनिक चेतना में भी नारी को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हैं।

भीष्म साहनी के अपने साहित्य में वर्तमान शासक वर्गीय राजनीति के चरित्र को उघाड़ते हुए जन सामान्य की राजनीति को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। प्रशासन व्यवस्था का चरित्र, चरित्र के माध्यम से राज्य का वर्गीय चरित्र है। मानव-मूल्यों की रक्षा करता हुआ कोई व्यक्ति प्रशासन व्यवस्था में नहीं रह सकता। पूंजीवादी लोकतंत्र में चुनाव-व्यवस्था इतनी मंहगी है कि आम आदमी इस प्रक्रिया में हिस्सा नहीं ले सकता। चुनाव हथकण्डों ने मानवीय संवेदनाओं को नगण्य बना दिया है।

संदर्भ सूची

1. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ. 505
2. अटल बिहारी वाजपेयी (सं॰ डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा), बिन्दु बिन्दु विचार, पृ. 16
3. भीष्म साहनी, वा्चू (वा्चू), पृ. 103
4. वही, वा्चू (ओ हरामजादे), पृ. 24
5. वही, भाग्य रेखा (घर की इज्जत), पृ. 123
6. भीष्म साहनी, शोभायात्रा (मेड इन इटली), पृ. 37
7. भीष्म साहनी, मफ्यादास की माड़ी, पृ. 124
8. वही, मफ्यादास की माड़ी, पृ. 282
9. राजेश्वर ठाकुर, प्रताप ठाकुर, भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, पृ. 47
10. भीष्म साहनी, वा्चू (ओ हरामजादे), पृ. 24
11. वही, पटरियाँ (ढोलक), पृ. 191
12. वही, शोभायात्रा (मेड इन इटली), पृ. 35
13. भीष्म साहनी, कुंतो, पृ. 80
14. वही, तमस, पृ. 306
15. भीष्म साहनी, आज के अतीत, पृ. 187
16. भीष्म साहनी, वा्चू (ओ हरामजादे), पृ. 13
17. वही, शोभायात्रा (मेड इन इटली), पृ. 39
18. वही, भटकती राख (भटकती राख), पृ. 13-14
19. भीष्म साहनी, हानूश, पृ. 77
20. वही, पृ. 85
21. भीष्म साहनी, आज के अतीत, पृ. 123-124

स्वतंत्रता आंदोलन में सूरज नारायण सिंह का योगदान

डॉ० मनोरंजन कुमार

एम० ए०, पी० एच०-डी०, इतिहास विभाग, ल० न० मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा

बिहार के मधुबनी जिले के नरपत नगर ग्राम में 1906 ई0 में सूरज नारायण सिंह बाबू का जन्म हुआ था। उनके पिता गंगा प्रसाद सिंह तथा माता तनुकी देवी थे। इसके पिता बड़े जमींदार थे। सूरज बाबू अत्यंत ही जोशीले एवं दृढ़ इच्छा शक्ति वाले इंसान थे। उनके अंदर राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी थी। प्रारंभिक शिक्षा गांव में ही पूरी हुई। उच्च विद्यालय में नामांकन पाते ही वे राजनीति में रूचि लेने लगे तथा राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। उनके कार्य शैली से प्रभावित होकर शिक्षकों ने उनके पिताजी को आग्रह करके दरभंगा के उत्तरी जिला स्कूल में स्थानांतरित करवा दिया। लेकिन उनका मन यहां भी नहीं लगा वे स्कूल छोड़ दिये और अधिकतम समय राजनीति में देने लगे। उन्हें राजनीति से अलग-थलग करने के लिए उनके पिताजी ने उन्हें अध्ययन के लिए कलकत्ता भेज दिया। यहां उन्होंने क्रांतिकारीयों से संपर्क साधना शुरू कर दिया।

सूरज बाबू को असहयोग आंदोलन में शामिल होने का जैसे ही अवसर मिला वे फौरन इस जंग में शामिल हो गये। उसी बीच उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए काशी विद्यापीठ में प्रवेश लिये। वहां उनकी मुलाकात काशी विद्यापीठ के तत्कालीन आचार्य नरेन्द्र देव से हुई जो उच्च कोटि के विद्वान तथा पूरे देश में उस वक्त मार्क्सवादी विचारक के रूप में प्रसिद्ध थे। इनसे जुड़ कर स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करने लगे।

1928 ई० में देश में क्रांतिकारियों का 8वाँ एवं 9वाँ अधिवेशन फिरोजपुर में मनाया गया। जिसका नाम हिन्दुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन आर्मी था। इस अधिवेशन में विभिन्न प्रांतो से प्रतिनिधि आए थे। इस अधिवेशन में बिहार से फणीन्द्र नाथ घोश तथा मनोहर वर्मा प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने आए थे। उसी वर्ष 1928 ई० में हिन्दुस्तान समाजवादी रिपब्लिकन आर्मी की शाखा मिथिला के तिरहुत प्रमंडल में स्थापित किया गया, इससे रामविनोद सिंह, योगेन्द्र शुक्ला, चंद्रमा सिंह, कादम्बरी शुक्ला, फणीन्द्र नाथ घोश और बसावन सिन्हा जैसे नेता मौजूद थे।

इस संदर्भ में हिन्दी के एक कवि ने लिखा है- हिन्दुस्तान में 20वीं सदी सम्राज्यवादियों के प्रतिभूति कालिख पोतती और गुलामी की छाती पर गोली चलाती हुई पधारी - हाँ, पूना में विक्टोरिया की प्रतिमा में जिन्होंने स्याही लगायी या कलक्टर रैंड की छाती को जिन्होंने पिस्तौल से मारा वे नौजवान इन्हीं भावनाओं से प्रेरित थे।[1]

1933 के बिहार और उड़ीसा लोक सुरक्षा अधिनियम के अनुसार क्रांतिकारियों को नजरबंद कर देश के बाहर भेज दिया गया। एक महान क्रातिकारी राम विनोद सिंह 1934 ई0 में अपने घर में ही 6 महीने तक नजरबंद रहे। सजा के भय से सूरज बाबू भी अपने गांव के बाहर न जा सके। रात में सायकिल से गांव के बाहर का हाल चाल अवश्य लेने जाया करते थे। सूरज बाबू ने महसूस किया कि सरकारी तंत्र द्वारा फणीन्द्र नाथ घोश को फंसाया जा सकता है। अपने काफी नजदीकी साथी योगेन्द्र शुक्ल जो उस समय भागलपुर केन्द्रीय कारा मे बंद थे। उन्हें भी गुप्त रूप से काफी सहयोग दिया। अपने गांव नरपत नगर में 1934 में बम बनाते समय विस्फोट हो जाने से उनकी छाती, हाथ तथा गाल भी जल गया। जो जख्म जीवन भर बना रहा।[2]

दरभंगा जिले से सूरज बाबू ने नमक सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया। कांग्रेस की सूचना के अनुसार सूरज बाबू को जेल भेज दिया गया। 1938 में स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में किसान वकाश्त आंदोलन में भी सूरज बाबू सक्रिय रहे। इस बार भी 27 माह के लिए उन्हे जेल भेजा गया।

1940 में जेल से बाहर आए तब चीनी मिल के कामगारों को संगठित करने की शुरूआत की। भारत सुरक्षा अधिनियम के तहत दण्डित कर इस जूर्म में उन्हें पुनः राजस्थान के देकुली कैम्प जेल में डाल दिया गया। जहां पहले से ही योगेन्द्र शुक्ल, जय प्रकाश के साथ 13 दिन से अनशन पर बैठे थे। बाद में इन तीनों को हजारीबाग के केन्द्रीय कारा में भेज दिया गया। वहां भी पूर्व से कादम्बरी शुक्ल, गुलाबी, शालिग्राम सिंह तथा राम नंदन मिश्र थे। इन लोगों ने 8 अक्टूबर 1942 की रात जेल में दीवार फाँदकर भारतीय आंदोलन में भाग लेने का कार्यक्रम बना रहे थे।

सूरज बाबू ने आंदोलन को और सक्रिय बनाने के लिए नेपाल में आजाद दस्ता का गठन किया। डॉ० लोहिया एवं जय प्रकाश नारायण को गिरफ्तार कर हनुमान नगर कारा में डाल दिया गया। सूरज बाबू को जब जानकारी मिली तो वे पैदल चलकर जेल की मुख्य द्वार पर पहुंचे और रात किसी तरह जेल गेट को तोड़कर इन दोनो को मुक्त कराया। सूरज बाबू ने जय प्रकाश नारायण जी को काफी सहयोग दिया।

एक विचारक के अनुसार उस समय बिहार में दो महत्वपूर्ण सक्रिय क्रांतिकारी थे। एक सूरज नारायण सिंह एवं दूसरा सीताराम सिंह थे। जिन्हें जनआंदोलन की प्रविधियों एवं सिद्धांतों का महत्वपूर्ण ज्ञान था।

वाराणसी में गिरफ्तारी के बाद सूरज बाबू को दरभंगा जेल भेज दिया गया, जहां विभिन्न तरह से अमानवीय यातनाएं दी गई। दर्जनों डकैती के केस, लूट, अनाधिकृत हथियार रखने, सरकारी पदाधिकारियों की हत्या करने आदि के मामले उन पर आरोपित किये गये। सूरज बाबू लंबे समय तक जेल में रहे। इनके ऊपर लगे सभी आरोपों की जांच में बिहार सरकार के लगभग तीन लाख रूपये खर्च हुए थे। न्यायालय में सूरज बाबू का दिया गया बयान ऐतिहासिक एवं काफी महत्वपूर्ण था।

सूरज बाबू के इस बयान को अखबार वालो ने बड़ी बुद्धिमानी से अपने-अपने समाचार पत्रों एवं अन्य मीडिया द्वारा प्रचारित किया गया। उस समय के तत्कालीन अस्थायी मुख्यमंत्री श्री कृष्ण सिंह, राज्यपाल की आज्ञा से सूरज बाबू से मिलने जेल गये। उनके आग्रह पर सूरज बाबू से ने अखिल भारतीय कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की। 12 अप्रैल 1946 ई0 को समाजवादी पार्टी के दवाब के बावजूद श्री जय प्रकाश नारायण तथा डॉ0 राम मनोहर लोहिया को भी जेल से रिहा कर दिया गया। समाजवादी पार्टी के दवाब में आकर 1948 ई0 में कांग्रेस से अलग हो गयी। इसी वर्ष पटना में चल रहे अधिवेशन मे समाजवादी पार्टी ने एक ''संगठित पार्टी'' कैडर पार्टी के रूप में अपने चरित्र को स्थापित किया।[3]

वर्ष 1948 से 52 तक समाजवादी पार्टी के सदस्य एवं कार्यकर्त्ताओं ने सामान्य चुनाव के लिए काफी जोश एवं मजबूती के साथ काम किया। इन लोगों को पूर्ण आशा और विश्वास था कि बिहार में अपनी पकड़ भी मजबूत होगी। लेकिन उनकी पार्टी असफल रही। 1952 में सूरज बाबू मधुबनी लोकसभा चुनाव हार गये। चुनाव हारने के पश्चात सूरज बाबू ने पण्डौल में दरभंगा महाराज के हजारों बीघे जमीन को विकलांगों एवं गरीब वर्गो के बीच वितरित कर दिया। 1950 में सूरज बाबू बिहार समाजवादी पार्टी के जनरल सेक्रेटरी के रूप में चुने गये। उसी वर्ष नेपाल में वी0 पी0 कोइराला के नेतृत्व में ''नेपाली क्रांति'' की शुरूआत हुई। बिहार के समाजवादी नेता जय प्रकाश नारायण एवं डॉ0 लोहिया से प्रभावित होकर वी0 पी0 कोइराला ने नेपाली कांग्रेस पार्टी की स्थापना की और उनकी कार्यशैली से अपने को जोड़ा। अपने मित्र, देवेन्द्र प्र0 सिंह के मकान के पूर्वी कमान से क्रांति का नेतृत्व किया, जिसका मुख्यालय पटना के ऐतिहासिक गांधी मैदान के बगल बैंक रोड में था। सूरज बाबू ने चंदा जमाकर इस क्रांति के लिए गोला बारूद एवं हथियार इकट्ठा किया। इस प्रकार उन्होंने अपनी पार्टी के लिए सब कुछ किया।[4]

1962 के चुनाव में उन्होंने मधुबनी विधान सभा से जीत दर्ज की। 1955 में आपसी मतभेद के कारण अलग से सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया।

1967 के चुनाव में सूरज बाबू, बसावन बाबू के कारण प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से बच गये। सूरज बाबू तथा पूर्व के प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के दिगम्बर ठाकुर थे, जो बाद में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में आए। दोनो आमने सामने लड़े, जिनमें ये दोनो हार गये और सफीकुल अंसारी की भारी जीत हुई।

एक अस्थायी सरकार का गठन बिहार में संभवतः संपूर्ण देश को मिलाकर महामाया प्रसाद के मुख्यमंत्री काल में हुआ। सूरज बाबू और बसावन बाबू दोनो अपने-अपने क्षेत्र से चुनाव हार गये। सरकार गठन के बाद सरकार की तरफ से मनोनीत सदस्य के रूप में बसावन बाबू इस मंत्रीमंडल में मंत्री पद प्राप्त करने को तैयार हो गये, लेकिन सूरज बाबू ने मंत्री के पद को स्वीकार नहीं किया। जबकि वे निचले सदन से चुनाव हार गये थे। लेकिन इस मंत्रीमंडल में अन्तर्कलह की वजह से सरकार अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। जब यह सरकार असफल हो गयी तब श्री बिन्देश्वरी प्रसाद मण्डल एक मुख्य नेता के रूप में उस समय उभर चुके थे।

1969 में मध्यावधि चुनाव में सूरज बाबू ने पूर्ण बहुमत प्राप्त कर चुनाव जीता, जब वे प्रजा सोशिलष्ट पार्टी तथा सोशिलष्ट इन दोनों के साझा उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ा था। 1970 में सूरज बाबू प्रजा सोशिलष्ट पार्टी के तौर पर नेता के रूप में विधान सभा में थे। उस समय बिहार में राष्ट्रपति शासन लागू था। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमति इन्दिरा गाँधी ने सूरज बाबू को स्वर्गीय ललित नारायण मिश्रा के साथ समझौता कर कांग्रेस को मिलाकर सरकार बनाने की सलाह दी। श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने सूरज बाबू को नयी दिल्ली वार्ता के लिए बुलायी, लेकिन सूरज बाबू न तो कांगेस के साथ समझौता कर सरकार गठन को राजी हुए, और न श्रीमती इन्दिरा गाँधी से मिलने दिल्ली गये।[5]

1969 में सूरज बाबू मई दिवस के शुभ अवसर पर हिन्द मजदूर सभा में भाग लेने सोवियत रूस गए। इस कार्य में भाग लेकर सूरज बाबू काफी आनन्द का अनुभव कर रहे थे। उनके निकटतम सहयोगी योगेन्द्र सिंह ने सूरज बाबू के बारे में कहा था कि अब सिर्फ सूरज बाबू ही इन सफेद बालों में बूढ़े बच गये हैं, जो इस दिशा में सक्रियतापूर्वक कार्य कर रहे हैं सूरज बाबू ने भी उन्हें हँसते हुए करारा जवाब दिया था। एक पुराने विचारक के अनुसार- सूरज बाबू जैसे क्रान्तिवीर एवं कर्मयोगी कभी बूढ़े नहीं होते। सूरज बाबू सदा जवान रहेंगे। क्या राजा संग्राम सिंह कभी बूढ़े हुए? बादशाह बहादुर शाह जफर कभी बूढ़े हो सकते थे? बाबू कुँवर सिंह कभी बूढ़े हुए? विनोवा भावे यदि बूढ़े हो जाते, तो कश्मीर को कन्याकुमारी से और असम को द्वारिका से जोड़नेवाले इतिहास पुरूष के पाँव टूट गए होते। घृतराष्ट्र बूढ़ा ही पैदा होता है और अभिमन्यु जवान ही मरता है। वह कभी बूढ़ा नहीं होता। सूरज बाबू भी कभी बूढ़े नहीं होगें।[6]

1971 में सूरज बाबू अपने पुराने समाजवादी पार्टी, जो विभिन्न नामों से जाने जाते थे, उन सबों को मिलाकर एक 'समाजवादी पार्टी' का गठन किया। उन्होंने विभिन्न वामपंथियों तथा समाजवादियों को मिलाकर एक राजनीतिक पार्टी के गठन का प्रयास किया। पूरे देश में घूम-घूम कर सबों के बारे में जानकारी दी। उन्होंने केरल से लेकर पंजाब तक का दौरा किया। पी0 सुन्दरैया, प्रमोद दास गुप्ता, नम्बूदरीपाद और ज्योति बसु आदि सी0 पी0 एम0 के कुछ महत्त्वपूर्ण नेताओं से भी मिले। अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक वे इन सभी नेताओं के सम्पर्क में रहकर इसके लिए अनुरोध करते रहे।

वर्ष 1972 में उन्होंने मधुबनी विधान सभा क्षेत्र से विधान सभा का चुनाव जीत गयें। उस समय समाजवादियों में सिर्फ वही एक नेता थे। यह उनका अन्तिम चुनाव था। अपने विचार को उन नेताओं के बीच साझा करने में जब सफल वे नहीं हुए तो उन्होंने 1957 और 1967 के चुनाव में जीत हासिल की तथा क्रमशः मृत्युकाल पर्यन्त विधान परिषद् के सदस्य के रूप में बने रहे। वर्ष 1973 के अप्रैल में सूरज बाबू दक्षिण बिहार में भ्रमण के लिए निकले।

11 अप्रैल 1973 को वे 'टारी सिल्वा' पहुँचे। वे 'उषा मार्टिन' के कामगारों के एक मात्र नेता थे। तत्कालीन बिहार के मुख्यमंत्री केदार पाण्डेय के एक पालतू रमणिका गुप्ता भी अलग झूठ संघ की नेता बनी हुई थी। सूरज बाबू इन कामगारों की दशा देखकर मुख्य द्वार पर अनशन पर बैठ गये। 21 अप्रैल 1973 को उस फैक्ट्री के मालिक अपने गुण्डों के साथ लाठी तथा अन्य हथियारों से सूरज बाबू पर प्रहार करना शरू कर दिया।[7] जिसमें रमणिका गुप्ता भी शामिल थी। जय प्रकाश नारायण उस समय बहुत दिनों से पटना में ही मौजूद थे। वे अपनी पत्नी को बहुत मानते थे। उसी समय उनकी पत्नी प्रभावती की मृत्यु कैंसर से हो चुकी थी, जिस कारण जय प्रकाश नारायण की आँखें आँसुओं से सराबोर थे। इसी आफत काल में सूरज बाबू के मृत्यु का समाचार उन्हें मिला। इस दुखद समाचार को सुनकर वे बिल्कुल टूट गए। विभिन्न प्रकार के प्रश्न उनके दिमाग में उभड़ने लगे। वे कदमकुआँ स्थित अपने मकान में निसहाय अवस्था में थे। सूरज बाबू के मृत शरीर को व्यावहारिक तौर पर एक बक्से में बन्द कर रखा गया। उनके सहयोगियों तथा तरिवार के सदस्यों को भी वह मृत शरीर नहीं दिया गया। जब तक कि जय प्रकाश जी ने उसमें दखल नहीं दिया।[8]

21 अप्रैल 1973 को शनिवार के उस मनहूस दिन के करीब 2:45 बजे में सूरज बाबू शहीद हो गये, जो आजीवन उच्च विचार के रूप में ख्याति प्राप्त करनेवाले व्यक्ति थे।[9] दूसरे दिन 22 अप्रैल को सूरज बाबू के मृत शरीर को पटना के बाँस घाट पर लाया गया। ऐसा कहा जाता है कि सूरज बाबू के मृत शरीर को जय प्रकाश जी नहीं देख लेगें, तब तक उनका जीवन फल नहीं हो सकता था। क्योंकि उन्होंने 72 वर्ष की उम्र में श्रीमति इन्दिरा गाँधी के विरूद्ध क्रान्ति की थी। जय प्रकाश जी ने अपने आँखों से आँसू टपकाते हुए कहा- मैं उन कठोर अपराधियों को प्रति अत्यंत ही दुखी हूँ, जिन्होंने प्रभावती की मृत्यु के साथ ही सूरज बाबू की भी हत्या कर दी। अब यह देश 1942 के क्रान्ति की तरह धधक उठेगी। इतना कहकर चिन्तित मन से उस मृत शरीर के कुछ दूरी पर बैठ गये।[10]

'टाटी सिल्वा' के उन कामगारों ने सूरज बाबू को अन्तिम बार अपनी नम आँखों से देखा। प्रत्येक के आँखों से आँसू गिर रहे थे। श्री सीता राम सिंह ने इस दृश्य को देखकर व्यथित होते हुए लिखा- सूरज बाबू यदि अमेरिका में होते तो वाशिंगटन और इब्राहम लिंकन से उनकी किसी तरह कम पूजा नहीं की जाती इंग्लैण्ड में होते तो विलिंगटन और नेल्सन मण्डेला को उनके सामने सिर झुकाना पड़ता। स्कॉटलैंड में बालेअ और रॉवर्ट ब्रूस उनके साथी होते। फ्राँस में जॉन ऑफ आर्क उनके टक्कर की गिनी जाती और उन्हें मेजिनी के मुकाबले में रखा जाता।[11]

मैं पूर्ण रूप से दावे के साथ कहता हूँ कि सूरज बाबू के जीवन और कार्यशैली के बारे में ये चार पंक्तियाँ हिन्दी के जाननेवालों के लिए हमेशा याद रहेगी-

हर रोज सुबह उगता, हर शाम डूब जाता,
ऐसा सूरज तो आसमान का होता है,
धरती का सूरज उग जाता जब एक बार,
उसका प्रकाश सदियों तक कभी न खोता है।[12]

इस प्रकार बिहार के मिथिलांचल का चह सपूत आजीवन स्वतंत्रता के आंदोलन में लगे रहे। ब्रिटिश सरकार हो या भारतीय कोई भी बड़े से बड़े नेता ही क्यों न हो, तो उन सबों के साथ हाँ में हाँ नहीं मिलाकर चले। वे अपने उसूल के पक्के थे, जिस कारण अपने मन के अनुरूप देश की आजादी के लिए संघर्शरत रहे। आज के युवक-युवतियों तथा नयी पीढ़ी के नेताओं से सबक लेने की आवश्यकता होगी, जिससे इस समाज, राज्य या देश का विकास हो सके।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ0 सुरेश्वर झा- जेम्स ऑफ मिथिला, शिवालिक प्रकाशन, नई दिल्ली - पृ0 सं0- 2014, पृ0- 447
2. हिन्दी के प्रतिभावान लेखक रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा रचित 'जय प्रकाश' के अनुसार पृ0- 449
3. हिन्दी के प्रतिभावान लेखक रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा रचित 'जय प्रकाश' के अनुसार पृ0- 450
4. हिन्दी के प्रतिभावान लेखक रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा रचित 'जय प्रकाश' के अनुसार पृ0- 451
5. हिन्दी के प्रतिभावान लेखक रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा रचित 'जय प्रकाश' के अनुसार पृ0- 452
6. समाजवादी नेता और ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ0 रामाकान्त पाठक के अनुसार
7. जेम्स ऑफ मिथिला - उपर्युक्त - पृ0- 453
8. जेम्स ऑफ मिथिला - उपर्युक्त - पृ0- 453
9. जेम्स ऑफ मिथिला - उपर्युक्त - पृ0- 453
10. जेम्स ऑफ मिथिला - उपर्युक्त - पृ0- 453
11. जेम्स ऑफ मिथिला - उपर्युक्त - पृ0- 454
12. जेम्स ऑफ मिथिला - उपर्युक्त - पृ0- 454

बिहार में नील उद्योग एवं चम्पारण सत्याग्रह

डॉ० अमरजी कुमार

एम० ए०, पी-एच०डी०, इतिहास विभाग, ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा

चम्पारण का भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में अद्वितीय महत्व का स्थान है। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गांधीजी ने भारत के नवोदित राष्ट्रवाद का पहला सफल प्रयोग किया था। गांधी जी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रवाद का यह पहला प्रयोग अहिंसा, सत्य एवं शोषित, दलित, जन समूह के जागरण तथा उन्मुक्ति पर बल देने के कारण सर्वथा अद्वितीय था। गांधी जी का सत्याग्रह उत्तर बिहार में किसानों को निलहे जमीदारों के अत्याचार से बचाने के लिए था।[1]

इस तरह उत्तर बिहार में नील उद्योग एक ऐसे ऐतिहासिक एवं क्रांतिकारी प्रसंग से जुड़ा है जिस ओर 20वीं शताब्दी में पूरे विश्व का ध्यान आकर्शित हुआ था। बीसवी सदी के प्रथम दो दशकों में उत्तर बिहार में नील की खेती के साथ निलहे कोटी वालों का अत्याचार और इस अत्याचार से किसानों को छुटकारा दिलाने के लिए महात्मा गांधी द्वारा चंपारण में चलाया गया सत्याग्रह भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास का एक रोमांचक प्रसंग है।[2]

दरअसल बिहार में जहाँ कहीं भी नील की खेती होती थी वहीं अंग्रेजों द्वारा अन्याय अत्याचार और शोषण का सबसे विकृत रूप दिखाई पड़ता है। निलहे साहबों की दीन-हीन रैयतों के साथ क्रूर व्यवहार लोमहर्शक अत्याचारों की लंबी कहानी है।[3]

चम्पारण में सत्याग्रह का महात्मा गांधी ने किसानों को निलहे जमीदारों से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया। अत: राजेन्द्र बाबू ने 1949 ई0 में कहा था- चम्पारण में जो कुछ हुआ, मेरी आशा के अनुरूप सारे देश में विराट पैमाने पर उसकी पुनरावृति की गई। चम्पारण निलहे साहबो (गोरे भूमिपतियों) के अत्याचार से मुक्त हुआ। भारत आज विदेशी राज्य से मुक्त है।[4]

18वीं सदी तक दलसिंहसराय, जितवारपुर, तिवारा और कमतौल में नील उद्योग स्थापित हुआ। 1788 ई0 में पाँच यूरोपियनों के अधिकार में तिरहुत का नील उद्योग था। 1793 ई0 में यहाँ फैक्ट्रियों की संख्या बढ़कर 25 हो गई। प्रारंभिक दिनों में यह उद्योग सीधे ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा संचालित था और यूरोपियनों को इस काम के लिए विशेष अनुमति लेनी पड़ती थी।[5]

मिथिला में यूरोपियन पद्धति से नील की खेती प्रारंभ करने का श्रेय फ्रैकोईस ग्रैन्ड को था। जो 1782 ई0 में तिरहुत का प्रथम कलक्टर था। तभी से नील उत्तर बिहार में एक बड़े उद्योग के रूप में विकसित हुआ।[6]

1802 ई0 के एक विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय जिले में 13 प्लानटर्स थे। जिसमें चार अंग्रेज, एक स्काट, चार आयरलैण्ड के, एक जर्मनी के, दो इटली के और एक भारतीय थे तथा 16 नील फैक्ट्रियाँ थी। जिनके अधीन 598 बीघा जमीन पर नील की खेती होती थी। चम्पारण और दूसरे जगहों को छोड़कर मिथिला में नील फैक्ट्रियों की संख्या 1810 ई0 में 25 हो गई।[7]

तिरहुत का कलक्टर मिस्टर एफ0 गैन्ड उत्तर बिहार में आधुनिक पद्धति से नील उत्पादन का प्रणेता था। उसने स्वयं अपनी तीन नीज फैक्ट्रियाँ स्थापित की थी।

19वीं सदी में नील उद्योग का उत्तर बिहार में तेजी से विकास हुआ। तिरहुत के कलक्टर द्वारा 1810 ई0 में भेजे गये रिपोर्ट के अनुसार तिरहुत क्षेत्र से 10 हजार मन से कम नील शायद ही एक वर्ष में कलकत्ता से यूरोप के देशों को निर्यात के लिए भेजा जाता था। 1850 ई0 तक तिरहुत में 80 से कम नील फैक्ट्रियाँ नहीं थी। इनमें से बहुत तो चीनी की फैक्ट्रियाँ थी। लेकिन नील ने यूरोपीय उद्योग में चीनी उद्योगों को काफी पीछे छोड़ दिया और बहुत से चीनी फैक्ट्री नील उद्योग में बदल दिये गये।

चम्पारण में यूरोपियनों ने बेतिया और रामनगर राज से अस्थायी या स्थायी पट्टे पर जमीन लेकर नील की खेती शुरू की एवंकोठियाँ स्थापित की। कर्नल हिक्की नक बारा में 1813 ई0 में नील की कोठी खोली। बाद में अन्य कोठियाँ तुरकौलिया, पीपरा,

मोतीहारी तथा रामपुर में खुली। 1875 ई0 के लगभग जिला के उत्तर पश्चिमी भाग में भी यूरोपियन बसने लगे थे। इस प्रकार सारे जिला में अनेक कोठियाँ स्थापित हो गई। कुछेक वर्षो के भीतर बेतिया राज कर्ज के बोझ से लद गया। उससे राज को मुक्त करने हेतु उसके मैनेजर टी0 जिवन ने इंगलैण्ड में लगभग 8500000 पौन्ड स्अर्लिग ऋण प्राप्त किया। बेतिया राज ने कुछ यूरोपिय निलहें साहबों के हाथ मुकरी तौर पर अपनी जमीन्दारी के कुछ भाग बन्दोबस्त कर दिये। ऐसे निलहों को राज का ऋण चुका देने के हेतु संरक्षित मालगुजारी देनी हाती थी। रामनगर इस्टेट ने भी इस तरह के मुकररी बन्दोवस्त किए और बाद में यूरोपीय निलहो ने कई वस्तियों के जमीन्दारी अधिकार खरीदे।[8]

उत्तर बिहार में नील की खेती की तीन पद्वतियाँ प्रचलित थी। 1. जीरात 2. आसामीवार 3. खुस्की। जीरात पद्वति में नील फैक्ट्री के अधीन समस्त जमीन होती थी। इस पद्वति में फैक्ट्री या कोठीवालों द्वारा स्वयं खेती मजदूरों से कराई जाती थी। लगभग एक चौथाई क्षेत्र इसी वर्ग में आते थे। इस पद्वति में अधिकतम लाभ प्राप्त होता था। रैयतों का इससे केवल इतना संबंध रहता था कि जब कोठी वाले चाहे उनसे मजदूरी कर लें या उनके हल इत्यादि लेलें। बदले में उन्हें बहुत कम मजदूरी मिलती थी। अत: वे दुखी एवं असंतुष्ट रहते थे।

आसामीवार पद्वति में फैक्ट्री या काठी वाले रैयतों के द्वारा प्रति बीघा निश्चित दर पर नील पैदा कराया करते थे। इसमें रैयत प्लान्टर के साथ एक अनुबंध करता था कि वह जमीन के कुछ भाग में नील की खेती करेगा। रियायती और तीनकठिया प्रथा भी इसके लिए प्रचलित थी। रैयतों को 13 या 14 रूपये प्रति बीघा मुजफरपुर में दिया जाता था। रैयतों को खेत तैयार करना, नील बोना तथा उसको तैयार करना पड़ता था। लेकिन फसल तैयार होने पर कोठी वालों द्वारा काट लिया जाता था।[9]

तीन कठिया प्रथा चम्पारण में सबसे अधिक प्रचलित थी। इसमें कोठी वाले रैयतों से उसकी जोत के एक हिस्से में नील पैदा कराते थे और एक निश्चित रकम पीछे से देने की शर्त भी रहती थी। 1860 ई0 में लगभग बीघा पीछे पाँच कट्ठा में नील बोया जाता था। कुछ वर्षो के बाद 1867 ई0 में यह कम होकर बीघे में तीन कट्ठा हो गया। अत: इसका नाम तीन कठिया पड़ा। 1909 ई0 में नीलवरों ने अपनी सभा में नियम बनाया कि बीघा पीछे केवल दो ही कट्ठा में नील पैदा कराया जाए। हलांकि इसपर कोठी वाले ने कार्रवाई की, यह स्पष्ट नहीं है।

इस प्रकार तीन कठिया प्रथा के अंतर्गत रैयत को अपने प्रति बीघा खेत में से तीन कट्ठे में अथवा कोठी के खेत में लम्बी अवधि तक (20, 25 या 30 वर्ष) नील उपजाना पड़ता था। इसके लिए औपचारिक रूप से सट्टा के अनुसार उसे मूल्य प्राप्त करने का अधिकार होता था। इस प्रथा में निलहों को सर्वाधिक लाभ होता था। दूसरी ओर अनेक तरीकों से रैयतों का शोषण होता था। अपने खेत में नील उपजाने के लिए अनेक तरह की धमकी देना, जर्बदस्ती बहुत कम मजदूरी और कभी-कभी बिना मजदूरी पर काम करना, किसी करण से अगर नील नहीं उपजा सके तो इसके लिए भारी जुर्माना करना इस अत्याचारी और कठोर प्रथा की कुछ विशेषतायें थी। जब कभी बेचारा रैयत इसके विरूद्ध आवाज उठाता था या सुविधा की मांग करता तो निलहे साहब बड़ी कठोरता से इसे दबा देते।[10]

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है- किसी भी रैयत की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वह नील बोने से इन्कार करे। अगर कोई हिम्मत करता तो उसपर हजार तरह के जुल्म करके उसको मजबूर कर दिया जाता। घर और खेत लूट लिये जाते, पीटा भी जाता। डर के मारे प्राय: सभी रैयत तीन कठिया प्रथा मानकर बीघा पीछे तीन कट्ठा नील बो दिया करते। उसके खेतों में जो सबसे बेहतर खेत होते नीलवर उन्हीं को चुनकर बीज बोने के लिये कहते थे। जब नील तैयार हो जाता तो उसे काटकर पहुँचा देना होता था।

नीलवरों का अत्याचार चरम सीमा पर था। कोई भी रैयत नीलवरों की कोठी के एक मील के अंदर छाता खोलकर नहीं जा सकता था। प्रत्येक नीलवर पर्व-त्योहार के समय, कार खरीदने के समय, बंगले को मरम्मत कराते समय तथा अपने भैंस या घोड़े के बूढ़े हो जाने पर प्रत्येक रैयत से एक रूपया वसूल किया करता था। अगर कोई रैयत अपनी पिता की मृत्यु के बाद जमीन का मालिक बनता तो नीलहें उससे भी पाँच रूपया वसूल किया करते थे।

ऐसा नहीं कि नीलवरों के अत्याचार के विरूद्ध निरीह किसान चुप बैठे रहे। उन्होंने कई बार बगावत की कोशिश भी की। जो निर्दयतापूर्वक दबा दिये गये। 1907-1908 ई0 में निलहों के अत्याचारों के खिलाफ किसानों ने गुप्त संगठन कायम किये। सारी कोठी तथा कुछ आसपास के अन्य कोठियों जैसे परसा, मलहीमा, वेरिया और कुन्दिया के रैयतों ने शेख गुलाब और शीतल राय के नेतृत्व

में नील उपजाना बंद कर दिया। शेख गुलाब, ग्राम मढ़िया के निवासी शीतल राय, एक धनी मारवाड़ी राघूमल और उसके गुमाश्ता रामस्वारथ को 26 अक्टूबर 1980 को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाबजूद रैयतों का आन्दोलन चलता रहा।[11]

चम्पारण की इस अशांत स्थिति पर स्टेटसमैन के विशेष संवाददाता ने 27 नवम्बर 1908 ई0 को निम्नलिखित सूचना भेजी- पिछले बुधवार को यहाँ 19 व्यक्तियों को 143 आई. पी. सी. के अंतर्गत सजा दी गई है। उन पर गैर कानूनी जमात के सदस्य होने के अभियोग में छः महीने की कैद और जुर्माने की सजा दी गई है। इस समय मोतीहारी में 200 से कम लोग बंदी नहीं है। जिनपर विभिन्न प्रकार के अभियोग लगाये गये हैं। इसमें मुख्य है सूरोपियनों के साथ मारपीट करना, लूटपाट तथा धारा 505 के अंतर्गत वर्ग द्वेश फेलाना। इन लोगों में सबसे मुख्य अभियुक्त शीतल राय है। उसके पास बेतिया अनुमंडल के साठी कोठी के एस. ई. कैफिन के अंतर्गत रैयती जमीन है। एक मारवाड़ी महाजन राघोमल को अपने गुमाशता रामस्वार्थ सहित हाल ही में गिरफ्तार किया गया है।

10 अप्रैल 1914 ई0 को बांकीपुर में बिहार प्रान्तीय सम्मेलन के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए ब्रज किशोर प्रसाद ने कहा- मेरे विचार में सरकार के लिए उचित होगा कि वह इतनी गम्भीर समस्या की ओर से आँखे नहीं मूंद कर एक छोटी सी संयुक्त समिति की नियुक्ति करें। समिति में सरकारी अधिकारी और गैर सरकारी सदस्य हों। समिति खुली जांच कर पूरी तरह समस्या का अध्ययन करे। उसपर अनुशंसाएं प्राप्त करें और सरकार उनका अनुपालन करावे। अन्यथा मैं सरकार को चेतावनी देना चाहूँगा कि आगे खतरा है और समय रहते उसकी ओर सतर्क होना सरकार के हित में होगा।

कलकत्ता की ''अमृत बाजार पत्रिका'' ''भारत मित्र'' और 'हितवार्ता,' कानपुर के ''प्रताप'' इलाहाबाद ''अभ्युदय'' और नागपुर के ''हिन्द केसरी'' में चम्पारण के मामलों पर कई बार निबंध प्रकाशित हुए। अमृत बाजार पत्रिका में प्रांतीय सरकार के 18 जनवरी 1915 ई0 के एक ओदेश पर जबर्दस्त विरोध प्रकट किया गया था। इसके अंतर्गत चम्पारण के धनहा थाना के कुछ गाँवों में अतिरक्ति पुलिस पदस्थापित किये जाने की व्यवस्था थी। ''मिथिला मिहिर'' ने स्थिति को गंभीर बताते हुए 30 जनवरी 1915 ई0 के अपने अंक में कड़ा विरोध प्रकट किया एवं अविलम्ब स्वतंत्र जाँच की मांग की जिससे रैयतों का दुख दूर हो सके।[12]

निलहे साहबों के दु:सहय अत्याचारों से पीड़ित चम्पारण के रैयत जहाँ कही से संभव हो अपने उद्धार का मार्ग तलाश रहे थे। शीध्र ही उन्हें सही रास्ता मिला तथा भगवान ने उनके पास मुक्ति हेतु सही व्यक्तियों को भेज दिया। पीड़ित लोगों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच पर 21 सवाल प्रस्तुत किया। इस क्रम में एक महान व्यक्तित्व का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। इसके पूर्व दक्षिण अफ्रिका में पीड़ित भारतीयों के उद्धार के लिए उसके निर्भीकता पूर्वक संघर्ष की कहानी सुन चुके थे। यह व्यक्ति मोहन दास करमचंद गाँधी था।

चम्पारण में गाँधी जी की यात्रा बिहार के कुछ लोगों के अनुरोध पर हुई। उन लोगों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 31 वें अधिवेशन (दिसम्बर 1916) के दरम्यान लखनऊ में उनसे भेंट की। इस अधिवेशन में भारत के सभी भागों से 2300 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। बिहार के भी कई प्रतिनिधि जिसमें दरभंगा के बाबू ब्रज किशोर प्रसाद, लक्ष्मण प्रसाद, भुवनेश्वर मिश्र, अमोश्वरी चरण सिन्हा और राय बहादुर प्रसाद, भुवनेश्वर मिश्र, अमोश्वरी चरण सिन्हा और राय बहादुर प्रसाद गुप्ता थे, ने भाग लिया था। इसका खास कारण यह था कि इस प्रांत से संबद्ध दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव इस अधिवेशन में प्रस्तुत किये जाने वाले थे। इनमें से एक था पटना विश्वविद्यालय विद्येयक और दूसरा चम्पारण के निलहे साहबों एवं उनके रैयतों के संबंध पर। श्री राजकुमार शुक्ल जी थे। निलहे साहबों की ज्यादतियों का व्यक्तिगत कटु अनुभव था। चम्पारण के किसानों के प्रतिनिधि के रूप में लखनऊ कांग्रेस में भाग लेने गये थे। इनके विषय में गाँधी जी के शब्द हैं कि- श्री शुक्ल बिहार के हजारों लोगों पर से नील के कलंक को धो देने को कृत संकल्पित थे।[13]

लखलऊ अधिवेशन में राजकुमार शुक्ल भी गाँधी जी से मिले और चम्पारण में अत्यचारों का पूरा विवरण उन्हें कह सुनाया। गांधी जी को उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ क्योंकि गांधी जी की धारणा थी कि इस तरह के अत्याचार अंग्रेजी राज में संभव नहीं है।

गांधी जी को विश्वास दिलाने के लिए राजकुमार शुक्ल ने बाबू ब्रज किशोर प्रसाद को उनसे मिलाया परन्तु ब्रज किशोर बाबू भी उस समय गाँधी जी को प्रभावित नहीं कर सके। इस विषय पर कांग्रेस में एक प्रस्ताव पेश करने के लिए गांधी जी से कहा गया परन्तु गांधी जी ने इससे इन्कार कर दिया। गाँधी जी ने ब्रज किशोर प्रसाद से कहा कि चम्पारण की जनता पर हो रहे अत्याचारों को बिना अपनी आँखों से देखे इस विषय पर वे अपना विचार व्यक्त नहीं कर सकते। वे इस विषय पर प्रस्ताव पेश करें। परन्तु उन्हें छोड़ दें।[14]

03 अप्रैल 1917 ई0 को उन्होंने राजकुमार शुक्ला को तार भेजा कि वे कलकत्ता में उनसे भूपेन्द्र नाथ बसु के घर आकर मिले। राजकुमार शुक्ल कलकत्ता के लिए रवाना हो गये और वहाँ गांधी जी से भेंट की। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की कलकत्ता बैठक में बिहार के दो प्रतिनिधि गये थे। उनमें से किसी को भी राजकुमार शुक्ल की गतिविधि तथा गांधी जी से मिलने की खबर नहीं थी।

महात्मा गांधी राजकुमार शुक्ला के साथ 09 अप्रैल 1917 को कलकत्ता से प्रस्थान किये और 10 अप्रैल सबेरे पटना पहुँच गये। राजकुमार शुक्ला उन्हें लेकर सीधे राजेन्द्र प्रसाद के आवास पर ले गये। उन दिनों राजेन्द्र बाबू कलकत्ता में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक में भाग लेने के बाद पुरी चले गये थे। उनके पटना के आवास पर एक दो नौकर रह गये थे। पटना से गांधी जी शुक्ल के साथ बेतिया रवाना हुए।[15]

जब वे मुजफ्फरपुर स्टेशन पर पहुचे तो गांधी जी का भव्य स्वागत जे. बी. कृपलानी ने किया। जो उस समय जी. बी. बी. कॉलेज में प्राध्यापक थे। उनके साथ बहुत से छात्र और आम जनता थी। गाँधी जी की आरती उतारी गई और उन्हें बग्गी गाड़ी में बैठाकर छात्र उन्हें स्वयं खींचते हुए ले गये। वह बग्गी श्याम चन्द्र सहाय की थी जो जी. बी. बी. कॉलेज के छात्र थे। प्रो0 कृपलानी का अपना आवास नहीं था। वे प्रो0 मलकानी के साथ रहते थे। वस्तुत: मलकानी के यहाँ ही मुजफ्फरपुर में गांधी जी आते थे और ठहरा करते थे।

बिहार आने का गांधी जी का उद्देश्य चम्पारण के कृशकों की स्थिति की जांच तथा निलहे साहबों से उनकी क्या शिकायते थी, इन बातों का अध्ययन करना था। गांधी जी ने आत्मा कथा में लिखा है पहले उन्होंने सोचा था कि इस काम में ज्यादा से ज्यादा दो दिन लगेंगे। लेकिन मुजफ्फरपुर में अपने वकील दोस्तों से बातचीत करने के बाद वे समझ गये कि इस काम में दो वर्ष भी लग सकते थे।

15 अप्रैल 1917 ई0 को दोपहर की गाड़ी से गांधी जी ने बाबू धरनीधर प्रसाद और रामनौवमी प्रसाद के साथ मोतीहारी के लिए प्रस्थान किया। यह सोचकर कि सरकार किसी भी समय इनकी गिरफ्तारी या वारन्ट जारी कर सकती थी। गांधी जी एक ट्रंक में अपनी आवश्यकता की कुछ वस्तुऐं रख लिए थे। वस्तुत: गांधी जी भोजन, वस्त्र एवं अन्य जरूरतों के संदर्भ में सर्वाधिक सरल जीवन बिताने के आदि हो चुके थे। गाड़ी तीसरे पहर तीन बजे मोतीहारी पहुँची। स्टेशन से गांधी जी को सीधे बाबू गोरख प्रसाद नाम के एक स्थानीय वकील के घर पर ले जाया गया। गोरखबाबू का मकान उस समय एक धर्मशाला सा बन गया था।[16]

वहाँ पहुँचने पर गांधी जी को मालूम हुआ कि जैसोली पट्टी नामक एक गांव के एक धनी किसान को लोगों ने निलहे साहबों के बहकावे में आकर लूट लिया है। गांधी जी ने दूसरे दिन उस गांव में जाने का निश्चिय किया। निश्चित समय पर गांधी जी रामनौवमी प्रसाद तथा धरनीधर के साथ पैदल ही चल पड़े। क्योंकि निलहो कि भय से अपनी सवारी देना शहर में किसी ने स्वीकार नहीं किया। परन्तु नगर की सीमा के बाहर एक हाथी उन लोगों की प्रतीक्षा में खड़ा था। हाथी का प्रबंध उसी गांव के लोगों ने किया था। मोतीहारी से छ: मील की दूरी पर स्थित चन्द्रहिया नामक गांव में पहुँच कर वे लोग वहाँ के लोगों से अभी बात ही कर रहे थे कि सादे लिवास में एक दरोगा साइकिल पर आया और बोला कि जिलाधीश गांधी जी मिलना चाहते हैं। गांधी जी ने उस दरोगा के साथ बैलगाड़ी में सवार होकर नगर के लिए प्रस्थान किया तथा रामनौवमी प्रसाद को उस गांव में जाकर जाँच का काम पूरा करने का आदेश दिया। परन्तु जब रामनौवमी बाबू आदि इस गांव में पहुँचे तो वहाँ एक दूसरा दारोगा उनलोगों की प्रतीक्षा में बैठा था। उसने सलाह दिया कि वे लोग वह स्थान तुरंत छोड़ दें। अत: वे लोग शीघ्रता से अपनी जाँच समाप्त कर मोतीहारी लौट आये।[17]

गांधी जी पर नोटिस और सम्मन जारी किये जाने की खबर आग की लपटों की तरह फैल गई। 17 अप्रैल को मोतिहारी में एक सर्वाधिक अप्रत्याशित अभूतपूर्व दृश्य था। किसानों की भारी भीड़ लग गई थी और बयान का प्रलेखन शुरू हुआ। गांधी जी के साथी एकत्र लोगों को व्यवस्थित रखने के लिए हर संभव उपाय कर रहे थे। सरकारी अधिकारियों भी व्यवस्था बनाये रखने के लिए हर संभव उपाय कर रहे थे। गांधी जी के शब्दों में – उनकी सत्ता का आसन डोल चुका था। इसका प्रत्यक्ष दृश्य उनके समक्ष उपस्थित था। एक क्षण के लिए लोग दंड के भय से मुक्त हो गये थे एवं अपने नव प्राप्त सुहृद के प्रेम की सत्ता के सम्मुख प्रणत हो रहे थे।[18]

गांधी जी के प्रेम ने हजारों किसानों को दीक्षित किया। यह एक विसमयकारी दृश्य था। नैतिक शक्ति की महान जीत की। गांधी जी ने इस संदर्भ में स्वयं ही लिखा है – इसमें किंचित भी अतिशियोक्ति नहीं, यह कहना बिल्कुल सही होगा कि किसानों के साथ इस भेंट में मैं भगवान, अहिंसा एवंसत्य का साक्षात्कार कर रहा था।[19]

गांधी जी को 18 अप्रैल को 12 बजे दिन में मोतीहारी के अनुमंडलाधिकारी के समक्ष उपस्थित होने का सम्मान मिला। गांधी जी ने भविष्य के कार्यक्रम के संबंध में अपने साथियों से विचार-विमर्श किया। वे रातभर अगले दिन अदालत के समक्ष अपना बयान देने हेतु तैयारी करते रहे। उन्होंने प्लान्टरर्स एशोसियेशन के सचिव और तिरहुत प्रमंडल के आयुक्त के पास भी पत्र लिखे। इनमें किसानों की शिकायतें तथा उन्हें दूर करने के उपायों का उल्लेख किया गया था। उन्होंने अपने सचिव को अपनी गिरफ्तारी के बाद ही तथा कुछ अन्य पत्रों को डाक में गिराने का आदेश दिया।[20]

गांधी जी ने गांव-गांव घूमकर 7000 रैयतों से बयान लिये जिसके आधार पर एक छोटा सा रिपोर्ट तैयार कर बिहार सरकार के पास भेज दी। इस घटना ने निलहे गोरों में काफी खलबली मचा दी।[21]

चम्पारण आन्दोलन के फलस्वरूप जितने सुधार हुए वे रैयतों के लिए सुखदायक तथा उत्साहवर्द्धक थे। निलहे साहबों के आर्थिक लाभ का मूलाधार रैयतों और खेतिहर मजदूरों का शोषण जाँच कमिटी की रिपोर्ट के बाद पूर्णत: समाप्त हो गया और अंतत: चार वर्षो के अन्दर वे अपनी कोठी और जमीन बेचकर चम्पारण से विदा हो गये।[22]

संदर्भ सूची :-

1. बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, के. के. दत्ता, भाग-1, पृष्ठ- 180, 1971
2. उत्तर बिहार के आर्थिक इतिहास के अध्ययन के कुछ पहलू प्रभात कुमार सिन्हा
3. बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, के. के. दत्ता, भाग-1, पृष्ठ- 182
4. सत्याग्रह इन चम्पारण, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ- 10 सितम्बर- 1949
5. डिस्ट्रिक्ट गजेटियार ऑफ दरभंगा- एल. एस. एस. ओ. मेली, पृष्ठ- 97, 1970 ई0
6. सेटलमेन्ट रिपोर्ट ऑफ मुजफरपुर डिस्ट्रिक्ट, स्अीवेन्सन मूर
7. आस्पेक्टस ऑफ सोसाईटी एन्ड इकॉनोमी ऑफ बिहार, उपेन्द्र ठाकुर, पृष्ठ- 118
8. इन साइड बिहार, पी. सी. राय चौधरी, पृष्ठ- 112
9. बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, के. के. दत्ता, पृष्ठ- 183
10. चम्पारण में महात्मा गाँधी, राजेन्द्र प्रसाद, पृष्ठ- 8
11. फाइनल रिपोर्ट ऑन द सर्वे एंड सेटलमेन्ट ऑपरेशन, इन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ मुजफरपुर, पृष्ठ- 346
12. चम्पारण में महात्मा गाँधी, राजेन्द्र प्रसाद
13. बिहार में स्वातंत्र्य संग्राम का इतिहास, के. के. दत्ता, पृष्ठ- 184
14. आत्मकथा, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, पृष्ठ- 90
15. सर्चलाईट, पटना, 2 अक्टूबर 1972 को प्रकाशित
16. दी बिहारी, अगस्त 27, 1909 को प्रकाशित
17. सत्याग्रह इन चम्पारण, पृष्ठ- 35 से उद्धृत, राजेन्द्र प्रसाद
18. बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, के. के. दत्ता, पृष्ठ- 208
19. गांधीजी इन बिहार, के. के. दत्ता, पृष्ठ- 3
20. बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, के. के. दत्ता, पृष्ठ- 47
21. आत्मकथा, महात्मा गांधी, पृष्ठ- 494
22. मेरे संस्करण, अनुग्रह नारायण सिंह, पृष्ठ- 8, पटना

वैश्वीकरण के युग में मजदूर और किसान

डॉ० राकेश कुमार पासवान

एम० ए०, पी०-एच० डी०, इतिहास विभाग, ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा

वैश्वीकरण की संकल्पना, सामाजिक विज्ञानों में सर्वव्याप्त होने के बावजूद विद्वानों के बीच एक बहस का विषय रहा हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने समस्त विश्व के देशों के लोगों के जीवन को चहुंमुखी प्रभावित किया है। एक वक्त था जब वैश्वीकरण की संकल्पना को आर्थिक विश्लेषण के बढ़ते हुए वैश्विक महत्त्व, विश्व स्तर पर बढ़ते हुए आर्थिक गतिविधियों के क्षेत्र के रूप में परिभाषित किया जाता था। बाद में इसमें और भी कई पहलू शामिल हो गए जैसे- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार, दूर संचार, वित्तीय सहयोग व समन्वय, बहुराष्ट्रीय निगम, तकनीक एवं वैज्ञानिक सहयोग, सांस्कृतिक व्यापार का विस्तार, स्थानांतरण एवं शरणार्थी समस्या तथा अमीर एवं गरीब देशों के संबंध आदि।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैश्वीकरण का मुख्य बल आर्थिक पहलुओं पर है, किंतु इसमें सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पहलू भी विशेष रूप से शामिल हो जाते हैं। अत: स्थूल रूप में, वैश्वीकरण की संकल्पना की परिभाषा विश्व के विभिन्न राज्यों के ऐसे अन्र्तसंबंधों एवं अंत: निर्भरताओं के संदर्भ में की जा सकती है जिसमें मानवीय जीवन के प्राय: हर पहलू शामिल हो जाते है। अत: एक लेखक ने ठीक लिखा है कि वैचारिक दृष्टि में वैश्वीकरण का आशय आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के सहमिलन से है जिसके माध्यम से समान विश्व अधिकाधिक अन्तर्सबंधित एवं अन्त: निर्भर होता जा रहा है और तो एक विश्व व्यवस्था की ओर प्रवृत्त है।[2]

वैश्वीकरण की धारणा को विभिन्न विद्वानों ने विभन्न रूप में अपने सैद्धांतिक ढांचे के अंतर्गत परिभाषित करने का प्रयत्न किया है तकि वैश्वीकरण की यथार्थता का समझा जा सके।[3] संशयवादी दृष्टिकोण के समर्थक वैश्वीकरण की धारणा के सार्वभौमीकरण तथा उसे जरूरत से ज्यादा महत्त्व दिए जाने का विरोध करते है। उनका तर्क है कि लोग, क्षेत्र और संस्कृतियों के बीच संबंध पुरानी है। इसमें नयी बात यह है कि कम्प्यूटर एवं सूचना तकनीक का व्यापक विस्तार हुआ है जिससे विश्व के पारस्परिक गतिविधियों का बढ़ा दिया है और विश्व का मानचित्र छोटा हुआ है।

इसके विपरीत, वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अतिवादी दृष्टिकोण के समर्थकों का तर्क है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया वास्तविक एवं जरूरी है और यह द्रुत विकास एवं परिवर्तन के लिए आवश्यक हैं। इसका मानवीय जीवन के हर पहलू पर गहरा प्रभाव है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से विश्व के देशों को एकजुट किया जा सकता है। वैश्वीकरण के महान समर्थक सीमाहीन विश्व की कल्पना करते हैं। उनकी मान्यता है कि बढ़ती हुई आर्थिक गतिविधियों, पारस्परिक विनियम, कम्प्यूटर, सूचना क्रांति, वैश्विक पूंजी का बहाव इत्यादि के कारण बड़े पैमाने पर विश्व राजनीतिक, आर्थिक एवं समाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से एकीकृत होता जा राहा है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने एक नये वैश्विक युग की धारणा का प्रतिपादन किया है। इसके फलस्वरूप राज्य की स्वायत्तता कम हुई है और बाजारू शक्तियाँ अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है।

वैश्वीकरण के परिवर्तनवादी दृष्टिकोण के समर्थक उपयुक्त दोनों दृष्टिकोणों के बीच का मार्ग अपनाते हैं। इनकी मान्यता है वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जो मौलिक परिवर्तन हो रहे हैं उनकी जड़े प्राचीन काल में है। अत: वे विभिन्न देशों के विभिन्न सामाजिक परंपराओं एवं संस्कृतियों के महत्त्व को स्वीकार करते हैं तथा उन्हें बनाए रखने पर भी बल देते हैं। उनका यह भी तर्क है कि यह सच है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप विभिन्न देशों में नये-नये परिवर्तन हो रहे हैं। और नये-नये विकास के क्षेत्र विकसित हुए हैं, किंतु इन परिवर्तन की भी सीमा होनी चाहिए। उनका कहना है कि एक मुक्त और गत्यात्मक प्रक्रिया के रूप में वैश्वीकरण किसी देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था में परिवर्तन की बात करता है तो इन व्यवस्थाओं

के मूल्यों, परंपराओं एवं रीति-रिवाजों के प्रति वह सम्मान का भाव भी रखें। संक्षेप में, उपयुक्त तीनों दृष्टिकोणों के विश्लेषण को देखें तो परिवर्तनवादी दृष्टिकोण ज्यादा संतुलित दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि विश्व के तमाम देश आज वैश्वीकरण की प्रक्रिया में संलग्न है और इसका लाभ भी उठा रहे है। किंतु इसके प्रति आम लोगों में आशंकाए भी हैं और अपेक्षाएँ भी, विशेषकर शोषित, दलित व वंचति लोगों में।

श्रमिकों पर वैश्वीकरण का प्रभाव :-

विभिन्न सामाजिक समूहों एवं वर्गों पर वैश्वीकरण का प्रभाव पड़ा है, विशेषकर श्रमिक वर्ग को इस प्रक्रिया ने बहुत दयनीय स्थिति में ला दिया है। विश्व के देशों का बड़े पैमाने पर आर्थिक एकीकरण के फलस्वरूप मजदूरों की सुरक्षा, संरक्षण एवं उनके कल्याण में व्यापक विधिक ढांचे में बदलाव आया और वे उद्योगपतियों एवं पूंजीपतियों की शर्तों के अधीन हो गये हैं। श्रमिक कानून का भी महत्त्व नहीं रह गया और वैश्वीकरणकी प्रक्रिया को असहाय स्थिति में ला दिया है।

वस्तुत: श्रमिक कानून का विस्तृत ढांचा इसलिए खड़ा किया गया था कि श्रमिकों के हितों, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की गारंटी दी जा सके। अन्तर्राष्ट्रिय श्रम संगठन ने इस संदर्भ में श्रमिकों के लिए 'सुगम्य कार्य की धारणा परबल दिया था किंतु वैश्वीकरण की संरचना एवं प्रक्रिया ऐसी रही है कि उसका श्रमिकों एवं श्रमिक युग पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। कार्य एवं उत्पादन की ढीली-ढाली बाजारू प्रवृत्तियों ने वैश्विक स्तर पर असमानता, बेरोजगारी, असुरक्षा आदि में बड़े पैमाने पर वृद्धि की। राज्य पर असमानता, बेरोजगारी, असुरक्षा आदि में बड़े पैमाने पर वृद्धि की। राज्य को कमजोर करने की प्रवृति ने समुचित कार्य की धारणा को कमजोर कर दिया।[4]

श्रमिकों पर वैश्वीकरण के प्रभाव के संदर्भ में, इसमें प्रति आशंकाएँ भी हैं और अपेक्षाएँ भी। उल्लेखनीय है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जहाँ बड़े पैमाने पर विस्थापन व बेरोजगारी बढ़ी है, सामाजिक सुरक्षा में कमी हुई है, वहाँ अर्थव्यवस्था के विविधिकरण से रोजगार के अवसर, आय में वृद्धि, कार्य के मानवोचित दशाओं की व्यवस्था को इसके दूरगामी लक्ष्य के रूप में देख सकते हैं। फिर भी विद्वानों के बीच इस बात को लेकर एकमतता है कि वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप आरंभिक तौर पर श्रमिक वर्ग को सबसे ज्यादा क्षति पहुँचती है।[5]

वैश्वीकरण के फलस्वरूप श्रमिकों के नुकसान के तथ्य पर विकसित एवं विकासशील देशों के मजदूर एवं मजदूर संघों ने ध्यान आकृष्ट किया है। विकसित देशों में इसका संबंध आउटसोर्सिंग एवं पूंजी के स्थानान्तरण से है। बेरोजगारी में वृद्धि के अतिरिक्त, खतरा सामाजिक कूड़ेदान के सृजन का भी है जो विकासशील देशों में निम्न कार्य परिस्थितियों के अन्तर्गत निर्मित वस्तुओं का विकसित देशों के साथ निर्यात की स्थिति में उत्पन्न हो सकता है। इतना ही नहीं, विकसित एवं विकासशील देशों की व्यापारिक प्रतिस्पर्धा तथा निम्न स्तरीय श्रमिक स्तर के कारण उत्पाद वस्तुओं में गिरावट का भी भय है। भारत जैसे विकासशील देशों में वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप मौजूदा उद्योगों में रोजगारों में कमी हुई। वैश्वीकरण की मांग बाजारू शक्तियों के सुदृढ़ किए जाने की है। विकासशील समाजों की अर्थव्यवस्थाओं ने व्यापक पूंजी निवेश, विशेषकर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्शित करने के लिए श्रमिक कानूनों के महत्त्व को कम कर दिया है, श्रम को कोई महत्त्व नहीं रहा गया वे मनमानी शर्तो के अधीन हो गया। रोजगार सुरक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा के तथ्य की अनदेखी की गई है। समग्रत: इसने रोजगार की गुणवत्ता का ह्रास कर दिया है।[6]

रोजगार पर वैश्वीकरण के प्रत्यक्ष प्रभाव के रोजगार सृजन एवं रोजगार के अवसर के विस्तार के वायदों की कलई खोल दी है। राजगार में वृद्धि सिर्फ गैर कृषिगत क्षेत्र एवं असंगठित क्षेत्रों में हुई है जिसका कोई भविष्य नहीं है। ऐसे क्षेत्रों में न तो श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था है, और न ही उनके लिए मानवोचित वातावरण तैयार किए जाने पर बल दिया जाता है। भारत के असंगठित एवं अनौपचारिक संगठन को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है। औद्योगिक विवाद अधिनियम से बचाव के लिए औद्योगिक जगत में संविदात्मक रोजगार दिए जाने पर भारत में ज्यादा बल दिया जा रहा है।[7]

उपर्युक्त परिस्थितियों में कार्य दशा एवं रोजगार सुरक्षा की विधिक व्यवस्था के कारण नियोक्ता श्रमिकों को रोजगार दिए जाने से कतराते हैं, क्योंकि ये प्रावधान श्रमिकों को नियमित रोजगार दिए जाने से कतराते हैं, क्योंकि ये प्रावधान श्रमिकों को नियमित रोजगर भी प्रदान करते हैं एवं उचित काम तथा उचित पारिश्रमिक पर भी बल देते हैं। अत: यह तर्क दिया जाता है कि ऐसे प्रावधान

को खत्म कर दिया जाना चाहिए। इस तर्क में दो बातों की अनदेखी हो जाती हैं। प्रथम, पारिश्रमिक के न्यूनतम स्तर पर निर्धारण और दूसरा, अतीत का अनुभव जो श्रमिकों को रहा है। औद्योगिक विवाद अधिनियम जैसे विधिक व नियामक व्यवस्था की प्रभावकारिता नगण्य है क्योंकि यह नियोक्ताओं को ना तो छंटनी करने से रोकती है न ही श्रमिक शक्ति को बढाने से, न ही घटाने से। नियोक्ता को इस बात की भी छूट है कि वे कम लाभ वाले उद्योगों को बंद कर दें। ऐसे में इन कानूनों की प्रासंगिता क्या है? औद्योगिक विवाद अधिनियन के अन्तर्गत बहुत से ऐसे मामले आए जो लंबी सुनवाई के बाद भी श्रमिकों को कुछ लाभ नहीं दिलवा पाए, और उनकी रोजगारहीनता बनी रही। अत: आवश्यकता इस जाए ताकि श्रमिकों को रोजगार से हटाने की प्रक्रिया सरल भी हो और खर्चीली भी और यह श्रमिकों के लिए अधिक लाभकारी हो।[8]

वैश्वीकरण के युग में किसान :-

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं में जो परिवर्तन हुए, उनका किसानों के जीवन पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। भारत जैसे विकासशील देशों में इसके फलस्वरूप किसानों की जीवनशैली एवं खेती के तरीके बदल गए हैं। ϝलत: वैश्वीकरण के प्रक्रिया एवं उत्पादों तथा किसानों की इच्छाओं एवं आकांक्षाओं के बीच तारतम्य की भी चुनौती खड़ी हुई है। भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ खेत या जमीन किसानों के लिए सिर्फ जीवन यापन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक संवृद्धि एवं स्वामित्व का भाव भी उत्पन्न करता है। भारत में किसानों का जमीन से लगाव उसी प्रकार होता है जिस प्रकार माँ का अपने बच्चों से। खेती के तरीके का चुनाव वे खुद करते हैं, कौन सा ϝसल कब उगाया जाए ये भी वे खुद तय करते है। उनका एवं उनके परिवार का पूरा जीवन खेत एवं खेती से संलग्न होता है। चूँकि वैश्वीकरण की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य विश्व के सभी देशों के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक, सांस्कृतिक एकीकरण से है, ऐसे में किसानों को भूमि से अलगाव की बात गले से नीचे नहीं उतर रही है और वे वैश्विक ग्राम का खुद को हिस्सेदार भी नहीं मानते हैं।[9]

वैश्वीकरण का कृषिगत क्षेत्र में सामान्य सा प्रभाव कृषिगत प्रक्रियाओं एवं उत्पादों के वाणिज्यीकरण की अनिवार्यता के संदर्भ में देख सकते हैं। चूँकि आज बाजारू शक्तियों का महत्तव बढ़ गया है, अत: कृषि क्षेत्र को ऐसे उत्पादन के लिए विवश होना पड़ता है जिसकी मांग बाजार करता है। बेहतर सेवा, बेहतर वस्तुएँ, सस्ती चीजें उपलब्ध करने के वैश्वीकरण अथवा बाजार की मुहिम का प्रभाव अप्रत्यक्षत: कृषिगत क्षेत्रों पर पड़ता है। इस तरह कृषि के वाणिज्यीकरण के माध्यम से वैश्वीकरण के दो प्रभाव दिखते है। प्रथम, इसे फलस्वरूप व्यावसायिक वस्तुओं, नगदी फसलों के पैदावार पर बल दिया जाने कगा है, जिससे खाद्य संकट एवं वैज्ञानिक उपकरण के विकास से किसानों के बीच विषमताएँ बढ़ती है क्योंकि सभी किसान विकसित उन्नत वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपकरण को खरीदने में सक्षम नहीं होते। इससे धनी किसान एवं गरीब किसानों के बीच की खाई बढ़ जाती है।[10]

भारत में सिंगुर एवं नंदीग्राम की घटनाओं को वैश्वीकरण के परिणाम के तौर देखा जा सकता है। अर्थव्यवस्था के कृषिगत क्षेत्र एवं औद्योगिक क्षेत्र के तनाव का नकारात्मक प्रभाव स्पष्ट रूप से किसानों पर पड़ता है। वैश्वीकरण की घारा की गतिशीलता को बनाए रखने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र की आवश्यकता है। किंतु इससे किसानों के समक्ष भूमिहीन हो जाने का संकट उत्पन्न होता है जैसा कि सिंगूर एवं नंदीग्राम में हुआ। वैश्वीकरण के युग में विशेष आर्थिक क्षेत्र के सृजन के लिए बड़े पैमाने पर भूमि की आवश्यकता होती है। फलत: सरकार को भूमि अधिग्रहण की नीति अपनानी पड़ती है। किंतु जहाँ किसानों में इसको लेकर असंतुष्टि होती है वहाँ यह एक विवाद का मुद्दा हो जाता है। ऐसी स्थिति में न तो किसानों की और नही उद्योगपतियों के हितों की साधना हो पाती है। पश्चिम बंगाल के सिंगूर जिले से टाटा को अपनी नेनो कार परियोजना इसलिए हटानी पड़ी, क्योंकि वहाँ के किसानों उसके विरूद्ध खड़े हो गए थे। अंत में, वैश्वीकरण की प्रक्रिया को सशक्त आधार प्रदान करने क प्रयास में कृषिगत भूमि के अधिग्रहण का प्रयत्न किया जाता है बदले में उन्हें मामूली सी क्षतिपूर्ति राशि दी जाती है। अधिकतर किसान उसका घोर विरोध करते है। आज अधिकतर राज्यों में त्वरित आर्थिक विकास की चाहत में बड़े-बड़े उद्योगपतियों एवं पूंजिपतियों को अपने राज्यों में आमंत्रित किया है। इससे किसानों में एक प्रकार का भय भी उत्पन्न हो गया है। हालांकि राज्य सरकारें किसानों को भूमि छोड़ने के बदले ज्यादा धन देने का लोभ दे रहे है ऐसे स्थिति में थोड़े से पैसे लेकर किसान अपनी भूमि छोड़कर विस्थापितों की तरह दूसरी जगह शरण एवं जीविका के साधन ढूढ़ रहे हैं। एक बार यदि किसान अपनी जड़ को छोड़ देते हैं। तो उनका जीवन सदैव अस्थायी बना रहता है और वे एक अभिशप्त जीवन जीने लगते है। यह वैश्वीकरण की प्रक्रिया का नकारात्मक प्रभाव है।

संदर्भ सूची :-

1. जेशुआ, गोल्डस्टीन, ईटरनेशनल, रिलेशंस, परसन एजुकेशन, ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004, पृ0- 306-7
2. वैरी, ऑक्सफोर्ड ब्रोनिंग, एन इंट्रोडक्शन, राउटलेज पब्लिकेशन, लंदन, 2002, पृ0- 361
3. डेविड हेल्ड एट अल, ग्लोवल ट्रांसफॉरमेशन, पॉलिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1999, पृ0- 78
4. डी0 नरसिम्हा रेस्त्री, चैलेंजेज ऑफ डिसेन्ट वर्क इन द ग्लोबलाइजिंग वर्ल्ड, द इंडियन जर्नल ऑफ लेवर इंकोनॉमिक्स, वॉ, 48 नं0-1, 2005
5. डी0 नरसिम्हा रेस्त्री, चैलेंजेज ऑफ डिसेन्ट वर्क इन द ग्लोबलाइजिंग वर्ल्ड, द इंडियन जर्नल ऑफ लेवर इंकोनॉमिक्स, वॉ, 48 नं0-1, 2005
6. टी0 एस0 पपोला, ग्लोबलाइजेशन, एम्लॉयमेंट एण्ड सोशल प्रोटेक्शन इयरजिंग पर्सपेक्टिस फॉर द इंडियन वर्कर्स, द इंडियन जर्नल ऑफ लेवर इकोनॉमिक्स, वॉ0-47, नं0-3, 2004
7. टी0 एस0 पपोला, ग्लोबलाइजेशन, एम्लॉयमेंट एण्ड सोशल प्रोटेक्शन इयरजिंग पर्सपेक्टिस फॉर द इंडियन वर्कर्स, द इंडियन जर्नल ऑफ लेवर इकोनॉमिक्स, वॉ0-47, नं0-3, 2004
8. जेशुआ, गोल्डस्टीन, ईटरनेशनल, रिलेशंस, परसन एजुकेशन, ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004, पृ0- 546
9. जेशुआ, गोल्डस्टीन, ईटरनेशनल, रिलेशंस, परसन एजुकेशन, ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004, पृ0- 547
10. डेविड हेल्ड एट अल, ग्लोवल ट्रांसफॉरमेशन, पॉलिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1999, पृ0- 79

मुगलकालीन प्रशासनिक व्यवस्था

डॉ० संजय कुमार आजाद

एम० ए०, पीएच०-डी०, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, ल० ना० मि० विश्वविद्यालय, दरभंगा

मुगल काल में प्रशासन का केन्द्र में राजा होता था, जिसकी उपाधि पादशाह थी। मुगल वंश का संस्थापक बाबर राजत्व के दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त में विश्वास करता था। उसने अपने पुत्र हुमायूँ को सलाह दी थी कि वह राजनीति में धर्म का प्रयोग न करें। मुगल प्रशासन की वास्तविक शुरुआत अकबर के काल में हुई। आइने अकबरी में कहा गया है कि पादशाह खुदा का नूर और पुर्र-ए-इज्दी अर्थात् दैवीय पुंज (किरण) है। सम्राट की सहायता के लिए अनेक अधिकारी होते थे। आइने अकबरी में सम्राट के कर्मचारियों की तुलना में चार तत्वों आग, हवा, पानी व भूमि से की गयी है। अकबर के समय में प्रारम्भ में वकील का पद सबसे महत्वपूर्ण था। परन्तु बैरम खाँ ने इस पद का दुरूपयोग किया। अत: अकबर ने इस पद की महत्ता को कम करने के लिए एक नये विभाग दीवाने-वजीर-ए-कुल की स्थापना की। बाद में वकील के अधिकारों को उसने चार अधिकारियों वजीर, मीरबक्शी, सद्र-उस-सूदुर और मीरसामा/खानसजा में विभाजित कर दिया। आगे चलकर शाहजहाँ ने वकील के पद को समाप्त कर दिया। वकील व वजीर के अलावा कुछ अन्य प्रमुख केन्द्रीय अधिकारी निम्नलिखित थे-

मीर बक्शी :- सेना का प्रमुख अधिकारी जो सेना के रख रखाव से सम्बन्धित था। इसके द्वारा सरखत नामक पत्र पर हस्ताक्षर के बाद ही सैनिकों को वेतन मिलता था। इसलिए इसे वेतन का अधिकारी भी कहा जाता था।

सद्र-उस-सूदुर :- धार्मिक मामलों का प्रमुख अधिकारी

मीरसामा/खानसामा :- शाही भोजनालय व कारखाना का अधिकारी बाद में कारखाना अलग हो गया और उसका प्रमुख वजिर-ए-बयूतात कहलाया।

मीरनार :-जंगल का अधिकारी।

मीरउदाल :- न्याय का अधिकारी।

गल-ए-जागीर :- जागीर प्रदान करने वाला।

दीवान-ए-वतन :- वेतन से सम्बन्धित अधिकारी।

बीर बहरी :- जल शुल्क अधिकारी।

दीवान-ए-तजबीह :- सैन्य लेखा-जोखा रखने वाला अधिकारी।

दीवान-ए-बयूतात :- आय-व्यय से सम्बन्धित अधिकारी।

दीवान-ए-सादात :- धार्मिक मामलों को लेखा-जोखा रखने वाला अधिकारी।

मीर-ए-अर्ज :- याचिका प्रभारी

मुह्तसिब :- औरंगजेब द्वारा नियुक्त लोगों के आचरण पर नजर रखने वाला अधिकारी।

मीर-ए-आतिश :- तोपखाने का प्रमुख अधिकारी।

किमानवीस :- समाचार लेखक व गुप्तचर विभाग का प्रमुख अधिकारी।

सानिध निगार :- समाचार लेखक व वाकमानवीस का सहायक।

दरोगा-ए-डाकचौकी :- गुप्तचर एवं संदेशवाहक।

हरकारा :- मासूम व स देशवाहक।

मुत्सबदी :- बन्दरगाह का प्रमुख अधिकारी।

एल्ची/साफिर :- राजदूत।

प्रान्तीय प्रशासन :- केन्द्र प्रान्तों में विभाजित थे जिसे सूबा कहा गया एवं इसका प्रमुख सूबेदार या नाजिम या सिपहसालार कहलाता था। अकबर ने सर्वप्रथम 1580 ई0 में अपने राज्य को 12 सूबों में विभाजित किया। दक्षिण विजय के बाद इसमें तीन सूबे खानदेश, बरार, अहमदनगर शामिल हो गये। इस प्रकार सूबों की कुल संख्या 12 + 3 = 15 हो गयी।

जहाँगीर :- जहाँगीर ने सिन्ध व उड़ीसा को नया सूबा बनाया अतः उसके समय में सूबों की संख्या 15 + 2 = 17 हो गयी।

शाहजहाँ :- शाहजहाँ ने उत्तर में तीन नये सूबे कश्मीर, कान्धार व भट्टा तथा दक्षिण में दो नये सूबे तेलंगाना व दौलताबाद का निर्माण किया। इस प्रकार उसके समय में सूबों की संख्या सर्वाधिक 17 + 3 + 2 = 22 हो गयी।

औरंगजेब :- औरंगजेब ने दक्षिण में कुल चार सूबे औरंगाबाद, हैदराबाद, बीजापुर व बीदर का निर्माण करवाया। इस प्रकार उसके समय में सूबों की संख्या 21 हो गयी। कान्धार के पहले ही निकल जाने के कारण यह संख्या 20 हो गयी।

जिला प्रशासन :- जिले को सरकार कहा गया। यहाँ का प्रमुख अधिकारी फौजदार था जबकि जिले का राजस्व अधिकारी आमिल था।

तहसील-प्रशासन :- तहसील को परगना कहा गया। यहाँ पर शिकदार आमिल होते थे।

ग्राम-प्रशासन :- यह प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम को मावदा व डीह भी कहा गया। जबकि इसके अन्दर छोटी-छोटी बस्तियों को नागला कहते थे। गाँव में तीन अधिकारी खूत (जमीदार) व मुकद्दम (मुखिया) व चौधरी (भूराजस्व वसूलने वाला अधिकारी) होते थे।

शाहजहाँ के काल में जिले व तहसील के बीच एक अन्य इकाई चकला का उल्लेख मिलता है।

केन्द्र-राज्य :-

केन्द्र-राज्य्र

⇓

सूबा-सेबेदार/नाजिम/सिपहसालार

सरकार :- शिकदार-ए-शिकदारान-प्रशासनिक

मुंसिफ-ए-मुंसिफान-राजस्व

⇓

परगना :- शिकदार

मुंसिफ

⇓

ग्राम :- खूत

मुकद्दम

चौधरी

⇓

(मावदा, डीह)

⇓

नगला

सैन्य प्रशासन :- मुगल सैन्य प्रशासन में पैदल सेना, घुड़सवार सेना, हस्ति सेना व तोपखानों की महत्ता थी। परन्तु उनके पास नौ सेना नहीं थी। यद्यपि औरंगजेब के पास गंज-ए-सवाई नामक जहाजी बेड़ा था जिसमें 80 तोपे लगी हुई थी।

1. पैदल सेना :- इनके मुख्यतया 2 प्रकार थे-

(क) अहसाम- युद्ध करने वाले सैनिक

(ख) मालगुजारी वसूलने में सहायता करने वाला अधिकारी

2. घुड़सवार सेना :- इनके भी मुख्यतया 2 प्रकार थे-

(क) बरगीर- इन्हें राज्य की ओर से घोड़े व अस्त्र-शस्त्र मिलते थे।

(ख) सिलेदार- इन्हें इसकी व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती थी।

घुड़सवारों के 2 अन्य प्रकार निम्नलिखित थे-

(क) दाखिली- उनकी नियुक्ति राजा करता था और इन्हें मनसबदारों की सेवा में भेज देता था।

(ख) अहरी- ये राजा के निधि सैनिक थे जिन्हें सर्वाधिक वेतन मिलता था।

3. हस्ति सेना :- अकबर को हाथियों का विशेष शौक था वह इसे खाग कहता था।

4. तोपखाना :- तोपो के मुख्यता 2 प्रकार थे।

(क) जिंशी-भारी तोपें

(ख) हलकी तोपे

जिन हलकी तोपों को मानव अपने कंधे पर लेकर चलता था उसे नरनाल कहा जाता था जबकि उन भारी तोपों को जिन्हें वह ऊँटो पर लेकर चलता था उन्हें शुतुरनाल कहा गया।

जागीरदारी व्यवस्था :- मनसबदारों का आमतौर पर नगर वेतन न देकर भूमि प्रदान की जाती थी जिसे जागीर कहा जाता था तथा इससे जुड़ी व्यवस्था को जागीरदारी व्यवस्था कहते थे। यह व्यवस्था भी सामान्यत: स्थानान्तरणीय थी, आनुवंशिक नहीं। यद्यपि कुछ आनुवांशिक जागीरों का भी उल्लेख है। कुछ प्रमुख जागीरों के नाम निम्नलिखित थे।

राजवाह जागीर- जो जागीर वेतन के बदले में दी जाती थी।

राजपूत जागीर- किसी शर्त पर दी गई जागीर।

पैबाकी जागीर- अप्रदत्त जागीर। वह विवादास्वद जागीर जो किसी को प्रदान न की गयी हो।

पूतन जागीर- अकबर द्वारा प्रारम्भ की गयी आनुवंशिक जागीर। मदद-ए-माश/समूरगल- विद्वानों एवं धार्मिक व्यक्तियों को प्रदान की गयी करमुक्त भूमि।

अलतमा जागीर- जहाँगीर द्वारा प्रारम्भ की गयी आनुवंशिक जागीर यह कर मुक्त भूमि थी जो धार्मिक व्यक्तियों को दी जाती थी।

गेम्मा जागीर- जहाँगीर द्वारा प्रारम्भ की गयी मुस्लिम धर्मविदो एवं विद्वानों को दी गयी करमुक्त भूमि।

भूराजस्व :- मुगल काल में तीन प्रकार के कृशकों का उल्लेख मिलता है-

खुदकाश्त :- जिनकी जमीन अपने गांवों में हो।

पाहीकाश्त :- ऐसे किसान जिनकी जमीन दूसरे गाँव में हो।

गुजरियान :- जिसके पास अपनी जमीन नहीं बल्कि वे खुदकाश्त के यहाँ खेती करते थे।

मुगलकाल में आय का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत भूराजस्व था जिसे मालगुजारी कहा जाता था। इसकी मात्रा सामान्यत: 1/3 थी। अकबर जब गद्दी पर बैठा तब उसने पुरानी भूराजस्व व्यवस्था गल्लाबक्शी या बटाई या मावली व्यवस्था को अपनाया जिसमें गल्ले का राज्य व सरकार के बीच बंटवारा कर दिया जाता था। आगे चलकर शियाबुद्दीन अहमद ने नस्क/कनकूट/दानाबन्दी व्यवस्था को अपनाया जिसमें पैदावार का अन्दाजा लगाकर भूराजस्व का निर्धारण कियाा जाता था। अपनी गुजरात विजय के बाद अकबर ने 1573 ई0 में कड़ोर नामक अधिकारी की नियुक्ति की जिसका कार्य प्रत्येक जिले में एक कठोर दाम वसूल करना था। 1580 ई0 में अकबर ने दीवाने असरु के पद पर टोडरमल की नियुक्ति की और उसका सहायक ख्वाजा शाह मंसूर को बनाया।

टोडरमल की भूराजस्व व्यवस्था :-

अन्य नाम :- जब्ती एवं दहसाला पद्धति। क्षेत्र- मुल्तान, लौहार, दिल्ली, आगरा, अवध, इलाहाबाद, मालवा और बिहार।

टोडरमल ने राजस्व के प्रमुख का पदभार ग्रहण करने के बाद समस्त भूमि की माप करवायी इसके लिए निम्नलिखित पैमाने अपनाये।

1. इलाही गज- इसमें 41 खाने थे।
2. तनब- तब्बू की रस्सी।
3. जरीब- लोहे की कड़ियों से युक्त बाँस।

टोडरमल ने समस्त भूमि की माप कर उसे 4 भागों में विभाजित किया-

1. पोलज- वह भूमि जहाँ प्रतिवर्ष खेती होती हो।
2. परती- वह भूमि जो 1-2 वर्ष के लिए छोड़ दी गयी हो।
3. चाचक- वह भूमि जो 3-4 वर्ष के लिए छोड़ दी गयी हो।
4. बंजर- वह भूमि जो 5 या अधिक वर्षों के लिए छोड़ दी गयी हो।

इन सब के औसत उपज का 1/3 भाग भूराजस्व के रुप में लिया गया। अजमेर में इसकी मात्रा सबसे कम 1/8 भाग जबकि गुजरात में इसकी मात्रा सबसे अधिक 1/2 भाग लिया गया। भूराजस्व के निर्धारण में पिछले 10 वर्षों की फसलों को भी अनुमान में शामिल किया गया इसलिए इसे दहसाला पद्धति कहा गया। भूराजस्व नगद लेने पर जोर दिया जाता था इसलिए इसे जब्ती व्यवस्था कहा गया। अकबर ने इसे अपने राज्य के सबसे बड़े क्षेत्र मुल्तान व लौहार से लेकर बिहार तक लागू किया जबकि जहाँगीर के काल में इसे बंगाल व गुजरात में भी लागू कर दिया।

सिक्के :- मुगलकाल में सिक्के टकसाल द्वारा जारी किये जाते थे। टकसाल का प्रमुख दरोगा-ए-टकसाल कहलाता था। इन सिक्कों पर राजा का नाम टकसाल का नाम, जारी किया गया वर्ष और कुरान की आयते भी उत्कीर्ण होती थी। ये सिक्के अधिकतर गोल होते थे। परन्तु कुछ चौकोर सिक्कों के भी प्रमाण मिलते हैं।

अकबर :- अकबर ने सोने, चाँदी व ताँबे धातुओं के सिक्के चलवाये। इसके कुछ स्वर्ण सिक्कों पर राम व सीता की आकृति मिलती है। अकबर के काल के कुछ प्रमुख सिक्के निम्नलिखित थे।

इलाही :- अकबर के काल में सर्वाधिक प्रचलित स्वर्ण सिक्का।

शंसब :- अकबर के काल का सबसे बड़ा स्वर्ण जो 101 तौला के बराबर था।

रुपया :- चाँदी का सबसे प्रचलित सिक्का जिसकी शुरुआत शेरशाह ने की थी। अकबर के काल में 1 रुपया 40 दाम के बराबर था।

दमड़ी :- ताँबे का सिक्का।

जहाँगीर :- जहाँगीर के कुछ सिक्कों पर इसकी अपनी आकृति शराब का प्याला लिये हुए दर्शाया गया है। इसके कुछ सिक्कों पर निसार, नूर अफ़सान, खैरकाबुस आदि चलाये।

शाहजहाँ :- शाहजहाँ ने अपना नामक चाँदी का नया सिक्का चलाया।

औरंगजेब :- औरंगजेब ने यद्यपि सबसे ज्यादा सिक्के चलवाये परन्तु उसने सिक्कों पर कलमा खुदवाना बन्द कर दिया।

उद्योग-धन्धे :- मुगल काल में निम्नलिखित उद्योग प्रचलित थे-

1. **वस्त्र उद्योग :-**यह मुगल काल का सबसे महत्वपूर्ण उद्योग था। सूती वस्त्र के केन्द्र आगरा, गुजरात, मालवाँ, बंगाल आदि थे जबकि ऊनी वस्त्र का केन्द्र कश्मीर व लाहौर, रेशमी वस्त्र का केन्द्र, कश्मीर व बंगाल थे।
2. **नील उद्योग :-**नील के प्रमुख केन्द्र आगरा, भरतपुर का बयाना व गुजरात का सरखेठा था।
3. **पीतल उद्योग :-**बनारस।
4. **शोरा उद्योग :-** यह पोटेशियम नाइट्रेट है जो विस्फोटक है इसका केन्द्र बिहार व कोरोमण्डल तट था।
5. **अफीम :-** गंगा घाटी, मालवाँ व बिहार।
6. **काष्ठ उद्योग :-** गोवा, मछलीपट्टम, चटगाँव।
7. **जहाज उद्योग :-** आगरा व लाहौर।
8. **नमक :-** पंजाब की पहाड़ी से।
9. **सफेद संगमरमर :-** जोधपुर की मकराना।
10. **लाल पत्थर :-** फतेहपुर सीकरी।
11. **पीला पत्थर :-** भट्टा (सिन्ध)।

व्यापार व वाणिज्य :- मुगल काल में यूरोपीय कम्पनियां व्यापार के लिए भारत आयी। मुगल शासकों ने उन्हें यहाँ फैक्ट्री अर्थात् कोठी खोलने की अनुमति देकर उन्हें चुंगी वसूल करते थे। इसी समय शाहजहाँ के काल में कुछ भारतीय व्यापारियों ने भी प्रतिष्ठा प्राप्त की इसमें सूरत का व्यापारी बीरजी बोहरा व बंगाल का अब्दुल गफूर प्रमुख थे।

सन्दर्भ सूची :-

1. एस.खान - हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक आर्किटेक्चर, दिल्ली सल्तनत मुगलत एण्ड प्रॉविन्सियल पिरीयड, सी.बी.एस प्रकाशन, 2005
2. सतीश चन्द्रा - मेडिकल इण्डिया 3 फाम सल्तनत टू द मुगल, हर आनन्द प्रकाशन, 2007
3. डिर्क केलियर - द ग्रेट मुगल एण्ड दीयर इण्डिया, हे हाउस प्रकाशन, 2017
4. विलियम डार्किम्पल - द लास्ट मुगल
5. आर्थर अली - मुगन इण्डिया स्टडीज इन पॉलिसी, आडियॉज, सोसाइटी एण्ड कल्चर, ओ0 यू0 वी0 इण्डिया प्रकाशन, 2008
6. आन्द्रे ट्रस्की - औरंगजेब द मैन एण्ड द मिथ, पेग्विंन रैडंम हाउस इण्डिया प्रकाशन, 2017
7. एस0आर0 शर्मा - मुगल इम्पायर इन इण्डिया, रीड बुक्स प्रकाशन, 2007
8. शिरीज मुस्वी - पीपुल, टैक्सेशन एण्ड ट्रेड इन मुगल इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस प्रकाशन, 2007
9. वसुधा डालमिया - रिलिजियस इन्ट्रक्शन इन मुगल इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस प्रकाशन, 2014
10. थामस एण्ड हडसन - मुगल इण्डिया स्पेन्डर्स ऑफ द पीकॉक थ्रोन, वेलिरी बेरिस्टीन प्रकाशन, 1998

हिन्दू पुनरूत्थानवाद की पृष्टभूमि में राष्ट्रीय जागरण (उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी)

डॉ० चन्दन कुमार

पी.एच.डी (इतिहास), नेट (यू.जी.सी.), पूर्व शोध-छात्र, सी.एम.जे. यूनिवर्सिटी, जोराबाट (मेघालय)

सारांश :- उन्नीवीं-बीसवीं शताब्दी के हिन्दू पुनरूत्थान का राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में विशेष स्थान है। मध्ययुगीन व्यवस्थाओं के समरूप ही तत्कालीन व्यवस्थाएँ रूढ़ीवादी तथा संकीर्ण थी। अंग्रेजी शासन के दिनों में भारतीय समाज पर औपनिवेशिक आधुनिकरण का प्रभाव पड़ा तथा पाश्चात्य विचारधारा एवं विदेशी शासन ने भारतीय चिन्तन तथा संस्कृति की उपादेयता के संबंध में जो चुनौती प्रस्तुत की उसका भी भारतीय जनता पर प्रभाव पड़ा। आरंभिक उपनिवेशवाद के दौर में हिन्दू पुनरूत्थानवाद का विकास आरम्भ हुआ, वही दूसरी तरफ उदारवादी सिद्वांतों से प्रेरित धारा ने ब्रिटिश शासन के सकारात्मक पक्षों पर भी ध्यान केन्द्रित किया। इस समय कंपनी की पश्चात्य शिक्षा से आधुनिक तत्कालिन युवा मन चिन्तनशील हो उठा, तरूण व वृद्ध सभी इस विषय में सोचने को मजबूर हुए। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित लोगों ने हिन्दू सामाजिक रचना, धर्म, रीति-रिवाज व परम्पराओं को तर्क की कसौटी पर कसना प्रारम्भ कर दिया। भारत में ब्रिटिश सत्ता के पैर जमाने के बाद जहाँ एक तरफ भारतीय जनमानस पाश्चात्य संस्कृतियों के सम्पर्क में आया, वहीं दूसरी तरफ हिन्दू पुनरूत्थानवाद की पृष्टभूमि में राष्ट्रीय जागरण की शुरूआत हुई। इस पृष्टभूमि का मुख्य उद्देश्य हिन्दू धर्म और समाज के यश-गौरव की अभित्यक्त करना और हिन्दू धर्म और समाज पर लगाये हुए आरोपों और दोशों का निराकरण कर, उनकी समीक्षा कर राष्ट्रीय जागरण पैदा करना था। इससे सामाजिक व धार्मिक आंदोलन का जन्म हुआ, जो मुख्य रूप से व्यैक्तिक स्वतंत्रता, सामाजिक एकता और राष्ट्रवाद के सिद्वांत से जुड़े हुए थे। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के हिन्दू पुनरूत्थनवाद का मुख्य उद्देश्य वर्तमान के उद्देश्यों के लिए अतीत को पुनर्गठित करना था जो राष्ट्रीय जागरण के लिए मार्ग प्रशस्त कर सके।

मुख्य शब्द :- हिन्दू पुनरूत्थानवाद, राष्ट्रीय जागरण, सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन, राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानन्द, तिलक व मालवीय जी।

प्रस्तावना :- उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में हिन्दू पुनरूत्थावनाद उथल-पुथल भारत की प्रमुख विशेषता थी। हिन्दू पुनरूत्थानवाद जहाँ एक और धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों का आहवान किया वहीं दूसरी ओर इसने भारत के अतीत को उजागर कर भारतवासियों के मन में आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव की भावना जगाने की कोशिश की। हिन्दू पुनरूत्थानवाद प्रमुखतः एक राष्ट्रीय जागरण का विषय रहा, जिसने राष्ट्र के विकास की मांग के साथ-साथ धर्म समाज और संस्कृति में विलक्षण परिवर्तन कर दिया। पुनरूत्थान के प्रथम प्रवेश से हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराईयों का अन्त उन धार्मिक आंदोलनों ने कर दिया, जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय जागरण के क्षेत्र में प्रगति करना था। बंगाल का ब्रहासमाज, बम्बई का प्रार्थना समाज, स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्यसमाज, विवेकानन्द का रामकृष्ण मिशन, मद्रास की थियोसोफीकल सोसाइटी, तिलक व मालवीय जी के सुधारवादी व धार्मिक प्रवृतियाँ इन आंदोलनों में प्रमुख थी।

इन धार्मिक आन्दोलन के परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म की स्वाभाविक प्राण- शक्ति अपने महान और दिव्य अतीत के साथ प्रकट होने लगी। प्रथम तो पुनरूज्जीवित हिन्दू धर्म अपनी प्रतिरक्षा में लगा रहा उसके पश्चात् मानवों को एक सभ्य बनाने वाले प्रभावशाली धर्म के रूप में अन्य धर्मो के साथ जीवित रहने का दावा दृढ़तापूर्वक डंके की चोट पर करने लगा। तत्पश्चात् इस युग में अनेक

सुधारक, संत और विद्वानों का उत्कर्ष हुआ। उन्होनें हिन्दू धर्म और उसके धार्मिक दर्शन को भारतीय जाति प्रथा, पौराणिक गथाएँ, धार्मिक क्रिया-विधियों और कर्मकाण्डों से स्वतंत्र रखकर उसकी व्याख्या की। हिन्दू पुरूत्थानवाद की प्रक्रिया ने भारतीयों में एक बुद्विवादी दृष्टिकोण पैदा किया, जिससे विभिन्न धर्मिक सम्प्रदायों के बीच गलत धारणाओं पर संदेह और तर्क-वितर्क संभव हो पाया। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में इस हिन्दू पुरूत्थानवाद ने राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण शक्ति प्रदान की। प्रारंभिक धार्मिक सुधारकों ने वैयक्तिक स्वतंत्रता के सिद्वांत को धर्म के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिया। पुनरूत्थान ने ऐहिक जीवन और समाज के सुख-वैभव की ओर अधिक ध्यान देने के लिए भारत को बाध्य किया। इसने उस अकर्मण्यता और उदासीनता से भारितयों का पीछा छुड़ाया जिसने पतन के युग में उनकों अपने शिकंजे में जकड़ लिया था।

अध्ययन की आवश्यकता :- पाश्चात्य प्रभाव से उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में हिन्दू पुनरूत्थानवाद प्रक्रिया की शुरूआत हो चुकी थी। यह मुख्य रूप से उदीयमान राष्ट्रीय जागरण को मजबूती प्रदान कर रही थी। इस कारण धार्मिक आंदोलनों ने अंधविश्वास और मूर्तिपूजा, बहुदेवतावाद आदि का विरोध किया तथा सामाजिक क्षेत्र में विभिन्न कुरीतियों को आइना दिखाया। प्रस्तुत शिर्षक हिन्दू 'पुनरूत्थानवाद की पृष्टिभूमि में राष्ट्रीय जागरण (उन्नीसवी-बीसवीं शताब्दी)' के अध्ययन करने का तात्पर्य है- ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों के प्रभाव से धार्मिक, साामाजिक आंदोलनों के माध्यम से हिन्दू पुनरूत्थान के तत्वों को विकसित करना जो न केवल अतीत का सुत्रपात करे, अपितु समकालीन मूल्यांकन के आधार पर वर्तमान का निरूपण भी करे।

अध्ययन की उद्देश्य :- प्रस्तुत शोध पत्र 'हिन्दू पुनरूत्थान की पृष्टभूमि में राष्ट्रीय जागरण (उन्नीसवीं-बीसवी शताब्दी)' आधुनिक भारतीय इतिहास में सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जागरण पर आधारित है तथा इसके निम्न उद्देश्य है :-

1. हिन्दू पुनरूत्थानवाद की प्रकृति को समझते हुए भारत के गौरवशाली अतीत का अध्ययन करना।
2. उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में हिन्दू पुनरूत्थान की पृष्टभूमि में राष्ट्रीय जागरण को रेखांकित करना।

शोध पद्वति :- शोध शीर्षक के सुक्ष्म अध्ययन और उद्देश्य से स्पष्ट है कि शोध विषय की प्रकृति वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक है जो मुख्यत: ऐतिहासिक शोध पद्वति के अंतर्गत आते है।

संबंधित साहित्य की समीक्षा- अनुसंधान के क्षेत्र में साहित्यिक सर्वेक्षण से क्षेत्र की सीमा निर्धारण करने में सहायता मिलती है तथा प्रस्तुत अध्ययन के मौलिक तथा अद्वितीय बनाने में महत्वपूर्ण रूप-रेखा तैयार करती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर 'हिन्दू पुनरात्थानवाद की पृष्टभूमि में राष्ट्रीय जागरण (उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी)' के संदर्भ में संबंधित साहित्य की समीक्षा किया गया है। यथा :-

लुणिया, बी.एन., आधुनिक भारत जन-जीवन और संस्कृति, कमल प्रकाशन, इन्दौर 2015.

हमारे इतिहास की उन्नीसवीं सदी की विशेषता नवजागरण का है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने ब्रिटिश औपनिवेशवादी नीतियों का आकलन करते हुए इसके प्रभाव से भारतीय समाज और धर्म के उद्वेलन, सामाजिक और सांस्कृति नवचेतना और जागरण तथा पुनर्जागरण की प्रवृति और लक्षण, धार्मिक तथा सामाजिक आंदोलनों और सुधारों का समीक्षात्मक विवेचन किया है साथ ही साथ आधुनिक भारतीय इतिहास के जन-जीवन और संस्कृति को लेखक ने बड़े ही रोचक ढंग से रेखाकिंत किया है।

नागर, डॉ0 पुरूषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दीग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2011.

आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन मूलत: भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम एवं तज्जनित नवचेतना का सुफल है। तर्क की दृष्टि से आधुनिक भारतीय चिन्तन की मौलिकता का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए लेखक ने हिन्दू पुनरूत्थानवादी चिन्तकों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। लेखक के मतानुसार इस पाठ्य पुस्तक में अध्ययन सुविधा की दृष्टि से आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनितिक विचारकों पर इतिहास क्रम की दृष्टि से विचार किया है। स्वाराज्य, राष्ट्रवाद, न्यासकारिता, सत्याग्रह आदि ऐसी अवधारणाएं है जिनके माध्यम से आधुनिक भारतीय चिंतन को विशेष अर्थ प्राप्त हुए है।

द्विवेदी, डॉ0 कृष्णदत, भारतीय पुनर्जागरण तथा मदन मोहन मालवीय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणासी, 2005.

भारतीय समाज सुधारकों एवं राष्ट्रीय नेताओं में समाज को प्रभावित करने वालों में अग्रणी थे- पं0 मदनमोहन मालवीय। प्रस्तुत पाठ्य पुस्तक के लेखक ने मालवीय जी के व्यक्ति और विचारों पर गहन अध्ययन किया है। मालवीय जी के दृष्टिकोण से भारतीय राष्ट्र के सामाजिक विचारों को समझने के लिए देश के सांस्कृतिक परिवर्तन के संदर्भ में सामाजिक व्यवस्था के आधार के रूप में अधिकतर आत्मवचना तथा नैतिक ही दृष्टिगत होता है।

चंद्र, विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान, दिल्ली, 2012.

यह पुस्तक ब्रिटिश भारत का वर्णन करता है, जो मुख्यत: राष्ट्रवाद और उपनिवेशवाद पर आधारित है। लेखक ने अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों से अपनी लेखनी प्रारम्भ कर उन्नीसवीं सदी के पूर्वाध में सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण, धार्मिक और सामाजिक सुधार का वर्णन किया है। पाठ्य पुस्तक में राष्ट्रवादी आंदोलनों पर भी विशद विवरण प्रस्तुत किया गया है।

सिंह, अभय प्रसाद (सं.), राष्ट्रवाद का भारतनामा, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, दिल्ली, 2017.

इस पुस्तक में उपनिवेशवाद से पहले, उपनिवेशवाद के दौरान और उपनिवेशवाद के बाद भारत में राष्ट्र निर्माण से संबंधित समग्र अवलोकन निहित है। राष्ट्रवाद को समग्र सार के रूप में दर्शाया गया है तथा औपनिवेशिक भारत, सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन, राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न अध्याय का विवेचन-विश्लेषण किया गया है।

विश्लेषण :- जब अठारहवीं सदी के मध्य में भारत में अंग्रेज सता ने अपने पैर जमा लिये थे, तब भारत राजनीतिक निर्बलता और नैतिक पतन निम्न स्तर पर था।[1] अंग्रेजों की राजनीतिक गतिविधियों, प्रशासनिक व्यवस्थाओं तथा आर्थिक शोषण के साथ-साथ भारत के जन-जीवन में तमाम आधुनिक विचारों एवं ज्ञान का भी प्रवेश हुआ।[2] परिणामस्वरूप धार्मिक संस्कृति तथा पश्चिम की नयी आक्रमक, वैज्ञानिक तथा वाणिज्यवादी सभ्यता के बीच संघर्ष तथा भारत के बौद्धिक पुनर्जागरण में हिन्दू पुनरूत्थान की जिज्ञासा उत्पन्न हुआ। हिन्दू पुनरूत्थानवाद ने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में भारतीयों को प्रभावित किया। हिन्दू पुनरूत्थानवाद की प्रकृति भारत के गौरवपूर्ण अतीत का अध्ययन करना भी था। वेद, उपनिषद, भागवतगीता आदि प्राचीन धर्मग्रंथों को अपने जीवन में आत्मसात करने की पहल की गई तथा यह भी विश्वास दिलाया गया कि विश्व को भौतिकवाद और निराशावाद से बचने का यही एक मार्ग है।

हिन्द पुनरूत्थानवाद की पृष्टभूमि यह थी कि देश में अनेक व्यक्तियों (जैसे-राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, मदनमोहन मालवीय, स्वामी विवेकानन्द आदि) तथा संस्थाओं, संगठनों (जैसे- ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन) का प्रादुर्भव हुआ। इन संगठनों ने हिन्दू पुनरूत्थानवाद के लिए मजबूत आधार प्रदान किया। हिन्दुओं में एकता, गतिशीलता और राष्ट्रीय चेतना की भावना भरने का प्रयास किया। इन महापुरूषों ने अपने कर्मो से हिन्दू जनता के बौद्धिक आत्मविश्वास को भी प्रभावित किया। उपरोक्त नेताओं की पहचान सिर्फ धर्म सुधार तक ही सीमित नहीं थी बल्कि वे भारत निर्माण का भी कार्य करते थे। वे प्राचीन भारत की संस्कृतियों को पुनर्जीवित करना चाहते थे। वस्तुत: भारतीय जनता का प्रथम राष्ट्रीय जागरण धर्म प्रधान ही था, पर समयान्तर के साथ धर्मनिरपेक्ष हो गया। हिन्दू पुनरूत्थानवाद के प्रमुख बात यह है कि आधुनिक पाश्चात्य संस्कृतियों के विपरीत हिन्दूओं के परंपरागत तत्वों में विश्वास करते हैं। वे प्रगति के विरूद्व नहीं है, किन्तु उनका विचार है कि वास्तविक प्रगति धार्मिक शिक्षाओं का विरोध करके नहीं, अपितु उन शिक्षाओं का अधिक दृढ़ता से पालन करके उपलब्ध की जा सकती है।[3]

हिन्दू पुनरूत्थान का समय मुख्य रूप से राजा राममोहन राय के समय से शुरू होता है। इसकी पुरी विस्तार क्षेत्र प्रकृति तथा प्रभाव हिन्दूवादी था। तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों में हिन्दू पुनरूत्थनवाद की बात करने पर स्वत: राष्ट्रवाद की झलक मिलने लगती है। साथ ही साथ स्वंतत्रता के स्वर्णिम स्वप्न भी इसमें निहित है। राजाराममोहन राय के मतानुसार, ''..... मैं भारत में ब्रिटिश सता की स्थापना के प्रति कटुभाव लेकर अपनी यात्रा पर आगे बढ़ा और विभिन्न देशों से होकर गुजरा। ये देश, मुख्यत: हिन्दुस्तान के अंदर थे, लेकिन कुछ बाहर थे। जब मैं बीस साल का हो गया, मेरे पिता ने मेरे साथ समझौता कर लिया और फिर मुझे अपना कृपा पात्र बना लिया। इसके बाद जल्दी ही मैंने कानून और शासन के रूप में परिचय प्राप्त कर दिया। उन्हें आमतौर पर ज्यादा बुद्धिमान अपने आचरण में स्थिर और नरम पाकर उनके विरूद्व अपना विदेश छेड़ दिया। उनकी तरफ मेरा झुकाव हो गया। मुझे लगने लगा कि उनका राज्य यद्यपि विदेशी है तथापि उससे देशवासी अवश्य ही ज्यादा तेजी से खुशहाल होगें।''[4]

राजा राममोहन राय अपने धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक दृष्टिकोण में वे ईस्लाम के एकेश्वरवाद और मूर्तिपूजा विरोध, सुफीमत के रहस्यवाद, इसाई धर्म की आचारशास्त्रीय नीतिपरक शिक्षा और पश्चिम के आधुनिक देशों के उदारवादी बुनियादी सिद्धांतों से काफी प्रभावित थे।[5] वे पहले थे जिन्होने उस सदी में भारतीय धर्म में व्याप्त आंडम्बर को दूर करने का प्रयास किए। उन्होनें एक तरफ हिन्दू धर्म की कुरीतियों और दूसरी तरफ ईसाई धर्म प्रचारकों की धर्मांधता के खिलाफ लड़ने के लिए 1928 में ब्रहमसमाज की स्थापना की।[6] ब्रम्ह समाज में कार्यो से हिन्दू धर्म में हिन्दूओं का विश्वास बढ़ा, एक बार पुन: उन्हें धर्म और दर्शन का ज्ञान हुआ। पाश्चात्य

दर्शन एवं साहित्य के प्रभाव में हिन्दू धर्म के अंधविश्वासों से मुक्ति दिलाने का कार्य किया। राजा राममोहन राय ने हिन्दू समाज में अमानवीय एवं क्रुर प्रथाओं के खिलाफ संघर्ष किया। अपने धार्मिक क्रियाकालापों में वे एक सार्वभौमिक धर्म का स्वपन भी देखते थे।[7]

राजा राममोहन राय को दृढ़ विश्वास था कि पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के संपर्क के बिना हिन्दू धर्म के अंधकार और अन्याय से नहीं लड़ा जा सकता। वे स्वतंत्र प्रेस को स्वतंत्रता का सर्वश्रेष्ट संरक्षक मानते थे। उनका विचार था कि प्रेस के माध्यम से जनता अपनी समस्या को सरकार के समक्ष आसानी से प्रस्तुत कर सकती है।[8] वे हिन्दू समाज में प्रचालित धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के विरूद्व प्रबल संघर्ष किये, लेकिन इन सुधारों से वे संतुष्ट न हो सके। उन्होनें समाज सुधार के कार्यो को राजनीतिक जागृति के साथ जोड़ा।[9] उनका मत था कि हिन्दुओं का धार्मिक व्यवहार उन्हें अपने राजनीतिक हितों से विमुख कर रहा है। जाति प्रथा तथा अनेक धार्मिक विधियों और संस्कारों की संकीर्णता ने राजनीतिक एकता को कमजोर कर दिया है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दू समाज में सुधार इस प्रकार किया जाए कि वे अपने राजनीतिक महत्व को समक्ष सके।[10]

आधुनिक भारतीय इतिहास में हिन्दू पुनरूत्थानवादी विचार की अभिव्यक्ति को राष्ट्रीय जागरण की ओर अग्रसर करने में दयानंद सरस्वती का नाम अन्यतम है। वे हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराईयों जैसे बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, जाति प्रथा, छुआछुत, दहेज-प्रथा, पर्दा-प्रथा की निंदा करते थे। जिस समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत में अपना पैर दृढ़ता से जमा चुका था, उस समय दयानंद सरस्वती ने 'स्वराज्य' का गौरव गान किया। उन्होनें कहा था कि ''कोई कितना ही कहे, परन्तु स्वदेशी राज्य सर्वोपरी होता है'' ।[11] ए.आर. देसाई लिखते हैं कि ''आर्य समाज भारतीय राष्ट्रवाद के पहले ऊान का परिचायक था लेकिन यह भिन्न तरह का आंदोलन था। इससे पुरानी प्रवृतियों को पुनरूज्जीवित करने के बात पर विशेष जोर दिया गया। इसके अनुसार वेद भ्रमातीत और अमोध है और भूत वर्तमान और अतीत के सारे ज्ञान के अविरल स्त्रोत है।''[12] आर्य समाज ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न घटकों पर महत्वपूर्ण नेतृत्व प्रदान किया। चाहे व स्वामी श्रद्वानंद हो या लाया लाजपत राय। उन्होनें अपने आप को देश की बलिदेवी पर समर्पित किया है। इसलिए दयानंद सरस्वती और आर्य समाज का हिन्दू पुनरूत्थानवाद के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।[13]

दयानंद सरस्वती ने हिन्दू पुनरूत्थानवाद के माध्यम से हिन्दुओं की नैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक पुनरूत्थान पर ध्यान दिया। जब स्वामी दयानंद अपने विचारों एवं चिंतन को भारतीयों के सामने सूत्रबद्ध कर रहे थे। उस समय हिन्दू धर्म पतनशीलता का शिकार बन चुका था। उनके विचार में हिन्दू पुनरूत्थान के माध्यम से भारतीय जनमानस में आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास की चेतना भरना आवश्यक था।[14] उन्होनें उस समय देशी रियासतों के राजाओं को भी राष्ट्रीय चेतना का अनुभूति कराने का प्रयास किये। नैतिकता और धार्मिकता के आधार पर सभी स्त्री-पुरूष के लिए अभियोजित शिक्षा देना ही दयानंद के शैक्षणिक आधार थे। उन्होनें शुद्रों की शिक्षा पर भी ध्यान देने को कहा।[15]

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी का इतिहास हिन्दू पुनरूत्थानवादी के लिए साक्षी रहा है। उस समय भारत की धरती पर एक ऐसे महापुरूष का जन्म हुआ, जो भारतीय संस्कृति के प्रेणेता बन गए। वो थे- स्वामी विवेकानन्द। शिकागो सर्व-धर्म सम्मेलन के पहले तक पश्चिमी राष्ट्र हिन्दू धर्म को अंधविश्वास, अनैतिक रूढ़िवादिता तथा सामाजिक कुरूतियों का प्रयोगशाला मानते थे। विवेकानंद व्याख्यानों के द्वारा उन्हें हिन्दू धर्म के उदात्त सिद्वांतों का परिचय प्राप्त हुआ, जिससे उनका हृदय परिवर्तन हुआ। शिकागों सर्व-धर्म सम्मेलन पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए 'दि न्यूर्याक हेराल्ड' ने लिखा था कि ''इनसे प्रवचन सुनने के बाद हमें अनुभव होता है कि उन सरीखे विद्वान देश में ईसाई प्रचारक भेजना कितनी बड़ी मुर्खता है''।[16] स्वामी विवेकान्द ने राष्ट्रवाद के निर्भिक, संगठित और स्वावलम्बी मूल्यों को स्थापित किया। उन्होंने हिन्दू सभ्यता और संस्कृति को सबसे प्राचीन, श्रेष्ठ और सुन्दर प्रमाणिक कर ईस्लाम और ईसाई धर्म के प्रहार से रक्षा की। वे संपूर्ण संसार ने हिन्दू धर्म और आध्यात्मवाद की श्रेष्ठता को स्थापित किया।[17]

स्वामी विवेकानन्द हिन्दू पुनरूत्थान के माध्यम से राष्ट्र जागरण के लिए अद्वितीय कार्य किए। वे एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहते थे जो भौतिक और अध्यत्मिक दोनों दृष्टियों से समृद्ध हो। इसी समृद्वि से एक ऐसा संतुलित समाज विकसित होगा, जिसमें भूख, गरीबी, गुलामी, शोषण और वर्चस्व का कोई संजाल नहीं बन पाएगा।[18] वे हिन्दू धर्म को सब धर्मो का प्रमुख स्त्रोत मानते थे। हिन्दू धर्म की महता ने ही उन्हें राष्ट्रवाद के समीप ला खड़ा किया। उन्होंने देश के सब निवासियों के लिए 'समान अवसर के सिद्वांत' का समर्थन कर आगे बढ़ने को प्रेरित किया।[19]

तिलक का राष्ट्रवाद हिन्दू पुनरूत्थानवाद के रूप में प्रतिबिम्बित व विकसित किया। इनका राष्ट्रवाद ने पश्चिमी सभ्यता को ललकारा तथा भारतवर्ष के वास्तविक संस्कृति को नवजारण करने की कोशिश की। वे राष्ट्र में आध्यात्मिक शक्ति और नैतिक उत्साह

उत्पन्न करने के लिए वेदों तथा गीता के संदेशों को जनता के समक्ष रखना चाहते थे। उनका राष्ट्रधर्म था- पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति से मुक्ति पाना। तिलक ने 'गणपति पूजा' व 'शिवाजी उत्सव' सार्वजनिक हिन्दू कार्यक्रम शुरू किये, ताकि राष्ट्रीय आन्दोलन को ऐतिहासिक परम्पराओं के साथ जोड़ा जा सके।[20] तिलक ने राष्ट्रीय आंदोलन में लोगों को एकताबद्ध करने के लिए स्वराज्य के लक्ष्य की विवेचना धार्मिक अर्थो में की और आवहान की स्वराज हमारी धार्मिक आवश्यकता है।

तिलक का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय जीवन में एक नया उभार उत्पन्न करना था। वे सामाजिक सुधारों को उचित सामाजिक शिक्षण के माध्यम से क्रियान्वित करना चाहते थे। उनका मानना था पुराने शास्त्री तथा पंडित नवीन परिस्थितियों से उसी प्रकार अपरिचित है जिस प्रकार से नवीन शिक्षा प्राप्त सुधारक हिन्दू धर्म की परम्पराओं एवं दर्शन से।[21] उनके अनुसार, ''सच्चा राष्ट्रवादी पुरानी नीव पर ही आधारित होना चाहिए। जो सुधार पुरानत के प्रति घोर असम्मान की भावना पर आधारित है, उसे सच्चा राष्ट्रवादी रचनात्मक कार्य नहीं समझता हम अपनी संस्थाओं को अंग्रेजियत के ढांचे में नही ढालना चाहते। सामाजिक तथा राजनीतिक सुधार के नाम पर अराष्ट्रीय नहीं करना चाहते।[22]

आधुनिक भारतीय इतिहास में हिन्दू पुनरूत्थानवाद का मूल अस्तित्व धार्मिक व सामाजिक परम्पराओं के आधार पर आंका गया है। उपरोक्त विचार मदन मोहन मालवीय के पुनरूत्थानवादी विचारों में दिखाई पड़ती है। ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप औपनिवेशिक संस्कृति और विचार-धारा का भी प्रचार-प्रसार हो रहा था। इस समय मदन मोहन मालवीय हिन्दू समाज की सुदृढ़ता तथा पुर्नस्थापना के सकारात्मक प्रयास किये तथा ईसाई मिशनरियों के क्रियाकलापों का विरोध किया।[23] उनके अनुसार राष्ट्रीय जागरण का वास्तविक अर्थ सभी भारतीयों के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक हितों की रक्षा करना था। वे कहते थे सब साम्प्रदाय के लोगों को एक महान राष्ट्र के रूप में संयुक्त करने के लिए आवश्यक है कि देशभक्ति तथा भाईचारे की भावनाओं का परिवर्द्धन किया जाय।[24] उनके विचार में राष्ट्रीयता धर्म से उपर है। वह एक ऐसी संस्था की नींव रखना चाहते थे, जिससे हिन्दू धर्म विश्व पटल पर गौरवन्वित हो दूसरो को यह बता सके कि हिन्दू धर्म ही सभी धर्मों का मार्ग-दर्शक है।[25] मालवीय जी ने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया तथा कहा कि स्वालंबन एवं आत्मनिर्भरता के लिए स्वदेशी जरूरी है। वे हिन्दू पुनरूत्थानवाद की पृष्ठभूमि में हिन्दुत्व को जीवन का अभिन्न अंग मानते थे।

निष्कर्षः-

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में हिन्दू पुनरूत्थानवादी प्रक्रिया का जो विकास हुआ उससे राष्ट्रीय जागरण को मजबूती प्रदान हुआ। हिन्दू पुनरूत्थानवादी विचार ने हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और राष्ट्रीय जागरण को परिभाषित करने का असाधारण प्रयास किया। इस समय आधुनिक संस्कृति का प्रभाव और विदेशी शक्तियों द्वारा पराजित होने की चेतना के चलते लोगों में नई जागृति पैदा हुई। इसका प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के राष्ट्रीय जागरण के प्रत्येक क्षेत्र में पड़ा। साथ ही साथ मध्ययुगीन सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण के सिद्धांतों का परिशोधन भी किया तथा राष्ट्रीय जागरण के प्रत्येक पहलु में विद्यमान स्वतंत्रता, समानता और आत्मनिर्णय के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। हिन्दू पुनरूत्थान के पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय जागरण को दर्शाने वाले पुरोधाओं में देवेन्द्र नाथ ठाकुर ईश्वरचंद्र विद्यासागर, थियोसोफिकल सोसायटी तथा महात्मा गांधी के सराहनीय कार्य अतुलनीय है। अतः हम कह सकते है कि तत्कालीन भारतीय राजनीति का मुख्य केन्द्र बिन्दु हिन्दू पुनरूत्थानवादी वैचारिक प्रवृतियों से प्रभावित रही और पूरे भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रीय परम्पराओं, मूल्यों और भावनाओं को अग्रसित करता रहा।

संदर्भ सूची-

1. लुणिया, बी.एन., आधुनिक भारत -जन-जीवन और संस्कृति, कमल प्रकाशन, इन्दौर, 2015, पृ0 17
2. शुक्ल, रामलखन (सं0), आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 1987, पृ0 343
3. मिश्र, शशिकान्त, भारत में बीसवीं शताब्दी में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास, मारवाह प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ0 40
4. नेटसन, जी.ए. (सं.), राजा राममोहन राय,- हिज लाइफ, राइटिंग्स एंड स्पीचेज, जी.ए. नेटसन एंड कं., मद्रास, 1925, पृ0 44
5. देसाई, ए.आर. भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, ट्रिनीटी प्रेस, नई दिल्ली, 2014, पृ0 229

6. सिंह, अयोध्या, भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रंथ थिल्पी, दिल्ली, 1977, पृ0 38
7. मजुमदार, बी.बी., हिस्ट्री ऑफ इण्डियन सोशल एण्ड पोलिटिकल आइडियाज- फोम राममोहन टू दयानंद, बुकलैंड, कोलकता, 1967, पृ0 24
8. दत्त, के., डान ऑफ टेनेसां इंडिया, एलाइड पब्लिशर्स, बम्बई, 1964, पृ0 55
9. कॉलेट, मिस सोफिया डॉबसन, लाइ्र एंड लेटर ऑफ द राजा राममोहन राय, एच.सी सरकार एंडकंपनी, कलकता, 1967, पृ0 15
10. बंधोपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक, ओरियंट ब्लैकस्वान, दिल्ली, 2011, पृ0 166
11. सिंह, अयोध्या, पूर्वोल्लिखित, पृ0 44
12. दयानंद, स्वामी, सत्यार्थ प्रकाश, अध्याय -IV , वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, 1966, पृ0 112
13. जकारिया, एच.सी.ई., टेनसेन्ट इंडिया फ्रॉम राममोहन राय टू मोहनदास गांधी, जार्ज एलन एण्डअनविन लिमिटेड, लंदन, 1940, पृ0 38
14. दयानंद, स्वामी, पूर्वोल्लिखित, पृ.0 233
15. विद्यावाचस्पति, इ., आर्य समाज का इतिहास, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, 1957, पृ0 178
16. यादव, वी.एस. (सं.), वैश्विक परिदृश्य में स्वामी विवेकानन्द के विचारों की प्रासंगिता, विस्ताइंटरनेशलन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2013, पृ0 313
17. मिश्र, शशिकान्त, पूर्वोल्लिखित, पृ0 61
18. यादव, वी.एस. (सं0) पूर्वोल्लिखित, पृ0 279
19. दी कम्पलीट वकर्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, अद्वैत आश्रम, अल्मोड़ा, खण्ड-3, पृ0 190
20. केलकर, एन.सी., लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ लोकमान्य तिलक, मद्रास, 1928, पृ0 76
21. नेहरू, जवाहरलाल, टुवर्ड फ्रीडम, दी जॉन डे कम्पनी, न्यूयार्क, 1942, पृ0 35
22. चंद्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वरण निदेशालय, दिल्ली, 1990, पृ0 82
23. मालवीय, पी.के., मालवीय जी- जीवन झलकियॉं, दिल्ली, 1962, पृ0 2
24. स्पीचेज एण्ड टाइटिंग्स ऑफ मदन मोहन मालवीय, जी.ए. नटेसन एण्ड कम्पनी, मद्रास, 1919, पृ0 119
25. देसाई, ए.आर. पूर्वोल्लिखित, पृ0 265

मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में कार्ल मार्क्स का विचार

डॉ० महेन्द्र पासवान

ग्राम-केवलचक, पोस्ट-फुलवरिया बहेरी, थाना-गुरूआ, जिला-गया (बिहार)

मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में कार्ल मार्क्स का विचार

मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में कार्ल मार्क्स ने जिस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है वही सिद्धान्त मार्क्सवादी सिद्धान्त है। मार्क्सवाद एक परिचलनात्मक विचारधारा है। यह बहुत ही उदात्त एवं आकर्षक है। मार्क्सवाद एक दर्शन है, एक विशिष्ट जीवन-शैली है और वैज्ञानिक समाजवाद का रूपान्तरित स्वरूप है। मार्क्सवाद एक नये समाज की संरचना करता है, जो क्रांतिकारी और वैज्ञानिक है। नये समाज की संरचना के परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवाद एक नया मार्ग-दर्शन है, जो पुरानी विचारधाराओं के कब्र पर एक नये सुन्दर संसार की परिकल्पना करता है। मार्क्सवाद 19वीं शताब्दी के उदम्यान उपजी विचारधाराओं की अपेक्षा अधिक हलचल तो पैदा नहीं किया, फिर भी 20वीं शताब्दी की चिंतन धारा में एक नया अध्याय जोड़ दिया। इसने एक ऐसे आन्दोलन का शंखनाद फूंका जो इसाई-धर्म के आविर्भाव के बाद अबतक न हुआ था। समाजवाद जो संदिग्धता के बादलों से ढका हुआ था, विवादों की कटघरे में खड़ा था, जिसकी धुंधली तस्वीर थी, सर्वप्रथम मार्क्स ने ही वैज्ञानिक समाजवाद को परिभाषित किया एवं व्याख्यायित किया। यही कारण है कि इस समाजवाद की गहरी छाप संसार के करोड़ों व्यक्तियों के ऊपर है और यह धर्म-सा बन गया है। सारी दुनिया एक समाजवादी सिद्धान्तों में रंग गयी है और ऐसी आस्था के बीच अंकुरित हो गये है कि प्रत्येक राज्य को कल्याणकारी राज्य होने के अलावे कोई विकल्प नहीं।

मार्क्सवादी के पल्लवन और पुष्पन में उसके अन्यतम साथी ऐंगेल्स से काफी सहायता मिली थी। दोनों के सहयोग से ही वैज्ञानिक समाजवाद का बीज बोया गया। मार्क्स के पहले भी यूरोप में समाजवाद के अनेक स्थानी परिभाषाएँ दी गयी थी, और अनेक समाजवाद प्रचलन में थे, लेकिन वास्तव में मार्क्स ही आधुनिक समाजवाद का प्रतिपादक था, जिसने पूर्ववर्ती समाजवादियों की कल्पनावादी एवं स्वप्नलोकिय समाजवादी के विपरीत पहले पहल इतिहास का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया और उसके कुछ नतीजे निकाले। वे नतीजे वैज्ञानिक और अकाट्य थे। इसलिए उन नतीजों पर जो सिद्धान्त बनाये गये, वे भी अकाट्य वैज्ञानिक और तथ्यपूर्ण हुए। मार्क्स के जमाने से ही उसके सिद्धान्तों के आधार पर अनेक तरह की आन्दोलन की आग भड़कती रही है और संसार के कोने-कोने में मार्क्स की ही दुन्दुभी भी सुनाई पड़ रही है। समाज का वैज्ञानिक विश्लेषणात्मक अध्ययन उसकी इतिहास की रूप-रेखा के अध्ययन करते समय कुछ उसे ऐसी चीजें मिली जिसे उन्होंने परिभाषित, परिवर्द्धित, नये ढ़ंग से व्याख्यायित, विकसित एवं रूपांतिरत किया और मानव-जीवन के प्रति एक अंग पर उनका प्रयोग करने के लिए एक नया मार्ग को निर्देशित किया और कुछ सिद्धान्त बनाये। उन्हीं सिद्धान्तों को हम मार्क्सवाद कहते हैं।

मार्क्सवाद नयी क्रान्ति का नया पैगाम है। पूंजीवादी व्यवस्था जो मानवता के लिए अभिशाप है, पर बहुत बड़ा कुठाराघात है। वर्ग-संघर्ष और पूंजीवाद के विरुद्ध एक ललकार है, मार्क्सवाद को औद्योगिक समाज के विश्लेषण से भले ही शत-प्रतिशत् सहमत न हो लेकिन यह कहना उपयुक्त होगा कि शायद रिकार्डो को छोड़कर अर्थ विज्ञान के समुचे इतिहास में मार्क्स से बढ़कर भौतिक शक्तिमान और तीक्ष्ण-बुद्धि का मनुष्य पैदा नहीं हुआ। मार्क्सवाद के अध्ययन में थोड़ी कठिनाईयाँ अवश्य ही उपस्थित होती है जैसा

कि मैक्सी ने कहा है-''मार्क्स जैसे व्यक्ति के बार में ठंढे दिल से विचार करना कठिन है जिसे एक ओर करोड़ों व्यक्ति देवता की तरह पूजते हैं और दूसरी ओर उसे करोड़ों व्यक्ति दानव कहकर भर्त्सना करते हैं।''

जैसे-जैसे समय बदलता गया यांत्रित भौतिकवाद ने मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के लिए स्थान खाली कर दिया। कार्ल मार्क्स का कथन है कि इतिहास एक भौतिकवाद प्रक्रिया है। मानव भौतिक आवश्यकताओं और वर्गस्वार्थो सम्पत्ति अधिकारों का प्रतिफल है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वह बल है जो मानवता को परिवर्तित करता जा रहा है। धरती पर समाजवादी स्वर्ग के मार्क्सवादी संदेश ने करोड़ों कामगारों के जीवन को नया अर्थ दिया। मार्क्सवाद इसी अर्थ में सामाजिक विश्लेषण के वैज्ञानिक विधि और राजनीतिक तथा सामाजिक आन्दोलन के नीति का पोषक है।

मार्क्स के पूर्ववर्ती समाजवादी दार्शनिक के रूप में चार्ल्स गेरियर, रोबर्ट ओवेन, चार्ल्स हॉल, टामस हास्कींग, विलियम ठाम्पसन का नाम उल्लेखनीय है। इनलोगों ने अपनी कल्पना के आधार पर संसार के समक्ष समाजवाद के विकासवादी अंहिसात्मक तथा आदर्शवादी पक्ष पर बल दिया था। लेकिन मार्क्स ने इन विचारधाराओं पर बहुत बड़ा कुठारघात किया और घृणात्मक स्वर में स्वप्नलोकिय बतलाकर उसके स्थान पर एक क्रांतिकारी व्यवहारिक तथा वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन किया।

मार्क्स और ऐंगेल्स की दोस्ती बहुत ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। मार्क्सवाद के मार्ग प्रशस्त करने एवं सुदृढ़ता प्रदान करने में ऐंगेल्स का बहुत बड़ा हाथ था। अगर मार्क्स सिद्धान्त का निर्माता हुआ तो ऐंगेल्स उसका प्रचारक तथा संगठनकर्त्ता। ऐंगेल्स के साथ मिल कर उसने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'Communist Manifesto' की रचना की और वर्ग-संघर्ष की सूत्र से इतिहास की व्याख्या कर यूरोप में साम्यवादी दलों की हिंसात्मक क्रांति करने के लिए प्रोत्साहित किया। मार्क्स के ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ 'Das capital' एवं 'Communist Manifesto' है।' **कैपिटल**' में मार्क्स ने पूंजीवादी अर्थप्रणाली तथा उत्पादन व्यवस्था का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया और अनिवार्य परिणति की ओर संकेत किया। इस पुस्तक को समाजवादी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ और समाजवादी सिद्धान्तों की अधारशीला माना जाता है। इसे **श्रमिकों का धर्मग्रन्थ** (Bible of the working class) कहा गया है। 'Communist Manifesto' साम्यवादी दर्शन और क्रान्ति-प्रक्रिया का मूलाधार है, जिसमें सर्वहारा क्रांति (Ploretarian Revolution) की भविष्यवाणी की गयी है। इस घोषणा-पत्र में श्रमिक वर्ग में चेतना जाग्रत करने, सुदृढ़ एवं संगठन बनाने और अन्याय का प्रतिकार करने हेतु तैयार रहने के लिए आह्वान किया गया था। इसमें कहा गया है कि- 'दुनिया के मजदूरों संगठित हो जाओ। अपनी बेड़ियों और दासता के सिवाय तुम कुछ नहीं खोओगे। एक नयी दुनिया प्राप्त करोगे।'

मार्क्सवाद एक ऐसी विश्वव्यापी अक्षुण्ण विचारधारा बन गयी है जो अबोध गति से आगे की ओर प्रवाहित हो रही है, जैसा कि प्रसिद्ध अमेरिकी समाजवादी 'मोरिस हिल क्विट' ने कहा है कि मार्क्सवाद आज भी समस्त विरोधी समाजवादी दलों का मान्य सिद्धान्त है और प्रत्येक दल आधुनिक समाजवादी आन्दोलन के संस्थापक के सैद्धान्तिक तत्वों को वास्तविक रूप में सच्चाई ग्रहण करने का दावा करता है और अपने विरोधी समाजवादी दलों पर आक्षेप करता है कि उन्होंने उनके मूल सिद्धान्तों का त्याग कर दिया है। मार्क्स के विचारों पर हीगेल और फ्यबरेक के दर्शन और फ्रांसीसी क्रांति तथा इंगलिश समाजवाद की अमिट छाप है।

मार्क्सवाद का दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। वह भौतिकवादी इसलिए है कि दर्शन के मौलिक प्रश्न का समाधान करते हुए वह इस पूर्वमान्यता को आधार बनाकर चलता है कि पदार्थ और प्रकृति अथवा सत्ता प्राथमिक है और चेतना गौण है। मार्क्सवादी दर्शन द्वन्द्वात्मक इसलिए है कि वह भौतिक जगत का निरन्तर गतिशील, विकासमान और पुनर्जीवित रूप में अनुसंधान करता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ज्ञान की प्रक्रिया को अविशासित करनेवाले नियमों का भी अध्ययन करता है। ये नियम संसार के नियमों के प्रतिबिंब होते हैं। मनुष्य को प्रकृति, समाज और चिंतन के इन नियमों से लेस करके द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद लोगों को केवल संसार का सज्ञान प्राप्त करके ही नहीं, बल्कि उसका क्रांतिकारी कायापलट करने की भी तरीके बतलाता है।

इस प्रकार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एक ऐसा विज्ञान है जो दर्शन के मौलिक प्रश्न के सही उत्तर के आधार पर भौतिक जगत के विकास को अविशासित करने वाले सामान्यतम द्वन्द्वात्मक नियमों का उद्घाटनकर्त्ता है तथा जगत का संज्ञान प्राप्त करने और उसका क्रांतिकारी कायापलट करने के उपाय बताता है।

मार्क्स और ऐगेंल्स मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी संघर्ष में अपने सक्रिय योगदान जनता की निस्वार्थ सेवा और विज्ञान तथा दर्शन की उपलब्धियों के अपने अगाध ज्ञान की बदौलत इन सामान्य नियमों का उद्घाटन कर सके, यथार्थ के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी तत्व का पता लगा सके।

सामाजिक विकास के वैज्ञानिक सिद्धान्त, समान का संज्ञान प्राप्त करने तथा उसका क्रांतिकारी कायापलट की विधि, ऐतिहासिक, भौतिकवाद मार्क्सवादी दर्शन का अभिन्न अंग है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नियम सामान्य और सार्वजनिक स्वरूप के हैं। वे सर्वत्र कार्यरत हैं- अजीव प्रकृति में, सजीव शरीरों में, मनुष्य और उसके चिंतन में। मार्क्सवाद दर्शन के नियमों का सार्वजनिकता बड़ें ही महत्व की है। इन नियमों का उपयोग दुनिया के नाना प्रकार के व्यापारों को समझने में किया जा सकता है। इसलिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अन्य विज्ञानों के विकास के लिए ही महत्वपूर्ण है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का उदय और विकास विज्ञान एवं व्यवहार में मानव की उपलब्धियों के आधार पर हुआ और इन उपलब्धियों के ज्ञान के बिना उसके नियमों का समुचित उपयोग नहीं किया जा सकता।

कुछ समकालीन पूँजीवादी दार्शनिक कहते हैं कि विज्ञान के विकास के लिए दर्शन का किसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण का, कोई महत्व नहीं है। वे विज्ञान और दर्शन के आपसी संबंध में स्वरूप को विकृत करते हैं। ये प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक ज्ञान की हिमायत करते हैं, दर्शन को विज्ञान से अलग कर देते हैं। वे कहते हैं कि- 'विज्ञान तो अपना दर्शन आप है।'

दर्शन और विज्ञान का इतिहास यह प्रमाणित करते हैं कि ये दोनों अभिन्न है, प्रत्यक्षवादी विचारों का खण्डन करता है। रूसी लेखक और दार्शनिक अलेक्सान्द्र हजेंन ने दर्शन की उपमा एक विशाल वृक्ष के तने से दी थी और विज्ञान को उसका क्षेत्र अथवा उसकी शाखाएँ कहा था। जिस प्रकार तने और शाखाओं के बिना वृक्ष नहीं होता, उसी तरह विज्ञान और दर्शन की भी एक दूसरे के बिना कल्पना नहीं की जा सकती। हजेंन ने कहा था- 'शाखाओं को काट दीजिए तो शाखाएँ मुरक्षा जायेगी।

आज जबकि वैज्ञानिक पदार्थ के मौलिक कणों के स्वरूप, जीवन की उत्पत्ति, ब्रहमाण्डीय पिण्डों का विकास जैसी प्राकृतिक विज्ञान की सूक्ष्म और जटिल समस्याओं को हल कर रहे हैं, तो विज्ञान और दर्शन के ये संबंधी खास तौर से ज्यादा घनिष्ठ बन गये हैं।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का उदय और विकास पूंजीवाद के विरूद्ध और समाजवाद तथा कम्यूनिज्म के हेतु मजदूर एक वर्ग के संघर्ष में उसके सैद्धान्तिक विचारधरात्मक हथियार के रूप में हुआ। मार्क्सवादी दर्शन स्वाभाविक रूप से ही क्रांतिकारी है। वह सामाजिक व्यवस्थाओं की अपरिवर्तनीयता और नीजि सम्पत्ति की शाश्वता को स्वीकार नहीं करता। वह बताता है कि पूँजीवादी का अंत नयी सामाजिक व्यवस्था की विजय अनिवार्य है। यह समाजवाद एवं कम्यूनिज्म के निर्माण का मार्ग और साधनों को भी इंगित करता है। आमूल सामाजिक परिवर्तन और पूँजीवाद के कम्यूनिज्म में रूपान्तरण के हमारे युग में मार्क्सवादी दर्शन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना खास तौर से महत्वपूर्ण है।

मार्क्सवादी दर्शन संसार को समझने तथा उसका कायापलट करने का एक साधन है, परन्तु उसका सृजनात्मक ढ़ंग से प्रयोग किया जाना चाहिए और उन ठोस ऐतिहासिक अवस्थाओं का अवश्य लेखन लेना चाहिए, जिसमें उसके नियम और सिद्धान्तक कार्य करते हैं। मार्क्सवादी दर्शन द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद-सैद्धान्तिक बुनियाद बना। मार्क्सवादी दर्शन इसलिए ताकतवर है, क्योंकि वह स्वयं जीवन के साथ आंशिक रूप से जुड़ा हुआ है, वह पूँजीवाद के विरूद्ध और समाजवाद एवं कम्यूनिज्म के लिए होने वाले मजदूर वर्ग के हित में कार्य करता है। मार्क्सवाद एक सृजनात्मक और विकासमान विज्ञान है। वह स्थिर नहीं, बल्कि गतिशील है। वह जीवन के निरंतर परिवर्तन के साथ कदम मिलाकर आगे बढ़ता है। साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांतियों के युग का, पूंजीवाद से समाजवाद में सन्तरण एवं कम्युनिस्ट समाज के निर्माण के युग का मार्क्सवाद है। बदलती हुई ऐतिहासिक अवस्थाओं का लेखा होते हुए लेनिन ने समाजवादी क्रांति के मार्क्सवादी सिद्धान्त को और आगे बढ़ाया और सामाजिक विकास की धारा पर जबर्दस्त असर डाला। लेनिन ने वर्गो तथा वर्ग संघर्ष, सर्वहारा अधिनायकत्व और उसके रूप, इतिहास में जनगण की भूमिका, मजदूर वर्ग की पार्टी और प्रगतिशील विचारों की भूमिका आदि के विषय में भी मार्क्सवादी शिक्षा को समृद्ध किया।

उन्होंने डायलैक्टिक्स की समस्या के विदशदीकरण में भारी योगदान किया। हर प्रकार के अधिभौतिक विचारों के विरूद्ध संघर्ष में उन्होंने भौतिकवादी डायलैक्टिक्स के नियमों और प्रवगों संबंधी मार्क्सवादी मत का फरहरा बुलन्द किया एवं उसे आगे बढ़ाया। डायलैक्टिक्स के मूल बिन्दु विपरीतों की एकता और संघर्ष के नियम पर उन्होंने खास तौर पर ध्यान दिया। आज की परिस्थितियों में सर्वहारा अधिनायकत्व, समाजवाद के कम्युनिज्म में विकास को अधिशासित करने वाले नियम, कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकि आधार निर्मित करने के उपाय, कम्युनिस्ट सामाजिक संबंधों की स्थापना तथा नये मानव की शिक्षा, पूँजीवाद के समाजवाद में सत्मरण की रूपों की अनेकता, समाजवादी देशों की कम्युनिज्म में न्यूनाधिक एक साथ प्रवेश, हमारे युग में विश्वयुद्ध न होने

देने की संभावना वर्तमान युग का स्वरूप, आदि मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धान्त के विकास में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 20वीं, 21वीं और 22वीं कांग्रेसों ने असाधारण योगदान किया है।

मार्क्सवादी लेनिनवादी दर्शन प्रगतिगामी पूँजीवादी विचारधारा भवनावाद और पादरीवाद- के विरूद्ध घमासान संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है। क्रांतिकारी सर्वहारा और सभी मेहनतकशों का विश्व दृष्टिकोण होने के नाते मार्क्सवादी लेनिनवादी दर्शन साम्राज्यवादी प्रतिक्रिया के विरूद्ध तथा समाजवाद और प्रगति के हेतु होने वाले संघर्ष का एक प्रचण्ड अस्त्र है।

मार्क्सवादी दर्शन आज समाजवादी देशों का प्रचलित विश्व दृष्टिकोण है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद धीरे-धीरे पूँजीवादी देशों के लोगों के हृदय और मस्तिष्क में भी घर करता जा रहा है। पूरी दुनिया में सच्चे और ईमानदार लोग अधिक से अधिक संख्या में मार्क्सवाद का ग्रहण कर रहे हैं।

(1) इतिहास की भौतिकवादी का आर्थिक व्याख्या (Materealistic or Economic Interpretation of history) का प्रयोग किया,

(2) वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त (Theory of Class struggle) जो मानव इतिहास का एकमात्र शाश्वत नियम तथा अनिवार्य परिणाम है एवं

(3) अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Class struggle) जो पूँजीवाद की कटुतम आलोचना करते हुए श्रमिकों को उनके वास्तविक अधिकारों से परिचय कराता है। मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व तथा पूँजी नियंत्रण के लक्ष्य को सम्मुख रखते हुए राज्य के लोक कल्याणकारी आदर्शों को प्रस्तुत किया है। मार्क्स के सामाजिक सिद्धान्तों में दो प्रयोजन स्पष्ट है -

  (1) मार्क्स का दर्शन हीगेल के दर्शन की तरह इतिहास का दर्शन है। हीगेल का यह मानना था कि यूरोपीय इतिहास जर्मन राष्ट्र के उदय द्वारा पराकाष्ठा तक पहुँचेगा, मार्क्स का विश्वास था कि सामाजिक इतिहास सर्वहारा वर्ग के उदय में सहयोग करते हुए पराकाष्ठा पर पहुँचेगा।

  (2) हीगेल के अनुसार उन्नति का साधन राष्ट्रों के बीच युद्ध था, किन्तु मार्क्स के अनुसार यह मार्क्स के अनुरूप एक वर्ग-संघर्ष था। सेवाइन ने लिखा है- ''मार्क्स का दर्शन दो दृष्टियों से हीगेल के दर्शन से मिलता था। मार्क्स ने हीगेल की द्वन्द्वात्मक पद्धति को कायम रखा तथा उसकी आर्थिक नियतिवाद के रूप में व्याख्या की। विचार सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर होते हैं। हीगेल के चिंतन में यह धारणा कुछ बिखरे हुए रूप में मिलती है। मार्क्स ने इस धारणा को क्रमबद्ध किया और उसे आधुनिक चिन्तन में प्रतिष्ठित स्थान दिया। हीगेल के दर्शन के उदारतावाद विरोधी तत्व मार्क्स के उग्रवाद में समाविष्ट हो गए।

मार्क्स ने अपने ग्रन्थ 'दास कैपिटल' के प्रथम भाग की भूमिका में स्वीकार किया है कि उसका अपना द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त हीगेल से न केवल भिन्न है, बल्कि उसका ठीक उलटा है। मार्क्स ने नि:सन्देह हीगेल से लाभ उठाया, किन्तु हीगेल की बातों को उसने ज्यों-का-त्यों ग्रहण नहीं किया। उसने हीगेल के चिन्तन का कायाकल्प कर उसके सिद्धान्त से इस धारणा को निकाल दिया कि राष्ट्र के सामाजिक इतिहास की कारगर इकाईयाँ होती है, उसने राष्ट्रों के संघर्ष के स्थान पर वर्ग संघर्ष की धारणा को प्रस्तुत किया। मार्क्सवाद 19वीं शताब्दी के दलगत समाजवाद का और फिर कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों सहित आधुनिक साम्यवाद का प्रवर्त्तक बन गया।

मार्क्सवादी समाजवाद को प्राय: सर्वहारा समाजवाद तथा वैज्ञानिक समाजवाद कहा जाता है। मार्क्स अपने समाजवाद को इसलिए वैज्ञानिक कहता है कि वह इतिहास के अध्ययन पर आधारित है। उसके पहले साइमन, ोरियर तथा ओवन का समाजवाद वैज्ञानिक इसलिए नहीं था क्योंकि वह इतिहास पर आधारित न होकर केवल कल्पना पर आधारित था। वेवर के शब्दों में- ''उन्होंने केवल गुलाब के नजारे लिए थे, गुलाब के वृक्षों के लिए जमीन तैयार नहीं की थी।'' केटलिन के अनुसार उसका क्रांतिकारी कदम वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर स्थित है, वर्ग संघर्ष अतिरिक्त मूल्य के आर्थिक सिद्धान्त पर, आर्थिक सिद्धान्त इतिहास की आर्थिक व्याख्या पर, व्याख्या मार्क्स हीगेल के द्वन्द्वात्मक पर और द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी आध्यात्मिक विद्या पर स्थित है। कार्ल मार्क्स का सम्पूर्ण राजनीतिक दर्शन द्वन्द्वात्मक के सिद्धान्त पर आधारित है। इसी सिद्धान्त में उसने इतिहास के परिवर्तन और अध्ययन का भौतिवादी दर्शन, वर्ग संघर्ष और साम्यवाद की स्थापना आदि के विचार निर्धारित किये है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मार्क्स के दर्शन की वह आधारशीला है जिसका आश्रय समस्त साम्यवादी लेते हैं।

आजकल के सम्पूर्ण समाज का इतिहास वर्ग संघर्षो का इतिहास है। हमारा समाज दो विशाल विरोधी वर्गो में विभक्त होता जा रहा है- पूँजीवादी वर्ग और सर्वहारा वर्ग। दोनों वर्ग विकास की विविध अवस्थाओं से गुजरते हैं। अंत में पूँजीपति वर्ग विनाश को प्राप्त होगा तथा सर्वहारा वर्ग का आस्था भी अधिनायकत्व में स्थापित होगा, जिसका प्रमुख कार्य शेष पूँजीपतियों को उत्पादन के साधनों से वंचित कर उन्हें बलपूर्वक सम्पत्ति विहीन कर देना होगा। तब उत्पादन के सम्पूर्ण साधन राज्य के नियंत्रण में आ जायेंगे और राज्य के ऊपर नियंत्रण केवल एक वर्ग अर्थात श्रमिक वर्ग का होगा और उसके बाद वर्गरहित समाज की स्थापना होगी। उस समय समस्त वर्गो के संघर्ष का अंत हो जायेगा और उसके हाथ ही दमनकारी राज्य की भी समाप्ति हो जायेगी। उसमें वस्तुओं का उत्पादन उपभोग के लिए किया जायेगा, मुनाफे के लिए नहीं। पुराने पूँजीवादी समाज के स्थान पर हम एक ऐसी संस्था स्थापित कर लेते हैं, जिसमें सबसे स्वतंत्र विकास का आधार प्रत्येक का स्वतंत्र विकास होता है।

निश्कर्षत: मार्क्सवाद, हीगेल, "युअरवेल आदमस्मिथ, रिकार्डो, साइमन आदि के विभिन्न विचारों का संग्रहित रूप है। मार्क्स की देन यह है कि उसने इन बिखरे हुए विचारों को एकत्रित करके उनमें तर्कबद्धता उत्पन्न की अथवा फ्रेंच और इंगलिश पूर्ववर्ती विचारकों ने जो बहुत से उपयोगी ईट और यंत्र प्रदान किये उनकी अच्छी तरह व्यवस्थित करके मार्क्स ने विचारों का सुगठित कारखाना बना लिया। 'थोड़े में' मार्क्स के विचारों के निर्माण करनेवाले तत्वों का मूल बहुत से स्त्रोतों में खोजा जा सकता है, उसने अपनी ईटों को बहुत से स्थानो से एकत्र किया था। अत: मार्क्स का महत्व उसकी मौलिकता में नहीं बल्कि उसकी संश्लेषणात्मकता में है।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में कार्ल मार्क्स का विचार सर्वोपरि है। क्योंकि उन्होंने शोषणविहीन, वर्गविहीन, राज्यविहीन और पूँजीपतिविहीन समाज की स्थापना पर बल दिया। वे विश्व के एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें दरिद्रता का उन्मूलन हो। समाज के बीच बदन पर चिथड़ा लपेटकर और हाथ में भीख की कटोरा लेकर घूमने वाला व्यक्ति नजर नहीं आवे। समाज की धरातल ऐसा बने जिसमें न कोई शोषक हो, न कोई शोषित। सबों को समान अधिकार मिले और सभी स्वतंत्र रूप से विचरण करें। लोगों को उपयुक्त भोजन, वस्त्र और निवास की सुविधाएँ उपलब्ध हो और वे तन-मन से स्वस्थ मानव के रूप में दुनिया को आबाद करें। कोई वर्ग किसी दूसरे वर्गो की स्वतंत्रता पर आघात नहीं पहुँचावें। स्वतंत्रता की देवी सदैव मुस्कुराती रहें एवं मर्यादित स्वतंत्रता सबका चरण चुमती रहे। कार्लमार्क्स शांति, श्रम, स्वाधीनता, समता, अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और बन्धुत्व की भावना का उद्घोषक था। वह संसार में सिर्फ एक ही वर्ग का परिकल्पना किया था- वह श्रमजीवी वर्गो का। उनका कहना था कि संसार में न कोई मालिक रहेगा और न कोई दास, न कोई पूँजीपति वर्ग रहेंगे और न कोई मजदूर, न कोई शोषक रहेगा और न कोई शोषित, सिर्फ एक ही वर्ग रहेगा, वह रहेगा श्रमजीवी वर्ग। कार्लमार्क्स अराजकता, आलस्य और निष्क्रियतायुक्त समाज के विरोधी थे। श्रम करना मार्क्सवादी समाज में भौतिक और आत्मिक सम्पदा का मुख्य स्त्रोत था। मार्क्स के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार स्वेच्छा से काम करेगा और समाज के धन सम्पदा की शक्ति को बढ़ायेगा। काम की प्रवृति बदल जायेगी। श्रम केवल आजीविका का साधन नहीं रह जायेगा, बल्कि वह जीवन की प्राथमिक आवश्यकता, सच्चा रचनात्मक प्रयास, सुख और आनन्द का स्त्रोत बन जायेगा। शोषणविहीन समाज की स्थापना होगी, जिसमें न कोई गरीब होगा और न कोई अमीर। शारीरिक श्रम करने वालों की सांस्कृतिक और प्राविधिक स्तर बुद्धिजीवियों के समान उच्चा हो जायेगा। मार्क्सवादी विचार के अन्तर्गत किसी भी बुद्धिजीवी वर्ग का एक विशिष्ट सामाजिक श्रेणी नहीं रहेगी। समाज के प्रत्येक सदस्य शारीरिक और मानसिक श्रम करेगा और कार्य-कलाप में मानसिक और शारीरिक प्रयास आंगिक रूप से घुलमिल जायेगी।

मार्क्स के अनुसार समाज के सभी सदस्यों का उत्पादन के साधनों के मामले में एक जैसी स्थिति होगी। समाज में सभी वर्गो को समान दर्जा मिलेगा। काम, वितरण और सामाजिक मामलों के प्रबन्ध में सक्रिय रूप से लाभ लेने के मामले में वे एक जैसी परिस्थितियों का उपयोग करेंगे। व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्यपूर्ण संबंध एक आम नियम बन जायेगी क्योंकि सामाजिक और व्यक्तिगत हित पूरी तरह से एकाकार हो जायेंगे। मानव संस्कृति अद्‌भूत शिखर पर पहुँच जायेगी। इस संस्कृति में समाज के आतित्मक विकास एवं समृद्धि के साथ-साथ मानवतावाद का समागम होगा। यह समस्त मनुष्य जाति की वर्गविहीन अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति होगी। सभी मनुष्य परिश्रमी, अनुशासित और सामाजिक हितों के प्रति निष्ठावान होगा। सभी मनुष्य का सर्वांग और सामंजस्यपूर्ण विकास होगा। मनुष्यों के योग्यताओं और प्रतिभाओं का परिलक्षित होने का पूर्ण अवसर मिलेगा, उसके आत्मिक एवं शारीरिक गुण स्पष्ट रूप से प्रस्फुटित होंगे। कहीं दद्रिता, निरक्षरता और पिछड़ापन देखने को नहीं मिलेगा। यही मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में मार्क्सकीय सिद्धान्त का लक्ष्य है। अत: हम कह सकते हैं कि कार्लमार्क्स सामाजिक स्वतंत्रता और आर्थिक समानता के आधार पर सम्पूर्ण मानवता का कल्याण चाहता था। वह मानवीय दुख, शोषण एवं उत्पीड़न का अंत चाहता था। वह विश्व नागरिकता, बन्धुता और

अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री का समर्थक था। इसलिए वे विश्वकल्याण हेतु मानवीय हितों की वकालत करते थे।

संदर्भ सूची

1. अ० हजेन, संकलित दार्शनिक कृतियाँ, खण्ड-1, मास्को, सन्, 1956, पृ०-106,
2. सेवाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ०-703,
3. Alexander gray, the socialist tradition, P-299
4. मार्क्स, ऐंगेल्स, संकलित रचनाएँ, खण्ड-2, मास्को, 1968, पृ०-167
5. करेटेड वाइ केर, पालिटिकल थाउट, पृ०-207
6. Wayper, Political thought, P-195
7. Quoted in carew Hunt-Theory and practice of communism, P-28
8. लेनिन संग्रहित रचनाएँ, खण्ड-14, पृ०-130
9. राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ०-709
10. Sewain, Political Philosophy, P-709
11. Anjels Duharing Matkhand, 1954, P-86
12. Lenin, Collected edition, Khand, 14, P-17
13. ऐंगेल्स, प्रकृति का द्वन्द्व, मास्को, 1964, पृ०-306
14. लेनिन संग्रहित रचनाएँ, भाग-38, पृ०-212
15. ऐंगेल्स ड्यूहरिंग, नै खण्ड, माक्को, 1959, पृ०-194
16. Marks, Anjels, Collected edition, Khand 2, Masco, P-226
17. लेनिन संग्रहित रचनाएँ, खण्ड-24, पृ०-84
18. मार्क्स, ऐंगेल्स, संकलित रचनाएँ, खण्ड-2, मास्को, 1958, पृ०-40
19. वेपर पालिटिकल थाउट- पृ०-201
20. लेनिन संग्रहित रचनाएँ, खण्ड-3, पृ०-248
21. मार्क्स, ऐंगेल्स, संकलित रचनाएँ, खण्ड-1, मास्को, 1958, पृ०-34
22. लेनिन, मजदूर वर्ग और किसानों का सहयोग, 1959, पृ०-302
23. सेवाइन, राजनीतिक दर्शन का इतिहास, पृ०-719
24. मार्क्स दास कैपिटल, अध्याय-8, पृ०-03

लैंगिक असमानताः समस्या एवं समाधान (संवैधानिक, वैधानिक एवं अन्य प्रयास)

राखी प्रजापत

शोधार्थी (सीनियर रिसर्च फैलो), अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनू, राजस्थान

सारांश

भारत संस्कृति मुख्यतः ग्रामीण संस्कृति रही हैं। भारत में निवास करने वाली आबादी में से आधी आबादी से ज्यादा ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती हैं। अतः शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वालों के रहन-सहन, व्यवसाय, खान-पान आदि में बहुत अंतर पाया जाता हैं। दोनों क्षेत्रों में पुरूष एवं स्त्री की सामाजिक स्थिति भी भिन्न-भिन्न हैं। यहां जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक क्षेत्र में लैंगिक भेदभाव स्पष्ट रूप से नजर आता हैं। प्राचीन समय से ही समाज में महिलाओं को अबला एवं कमजोर वर्ग के तौर पर देखा गया है। आज भी लैंगिक असमानता से संबधित कुरीतियों हमें ग्रामीण क्षेत्रों में देखने को अधिक मिल रही हैं। संविधान में महिला एवं पुरूष को समान माना गया हैं, परंतु आज भी निर्धारित किये लक्ष्यों और भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का वास्तविक पृष्ठभूमि में भारी अंतर हैं, जिसके प्रभावस्वरूप महिलायें विशेष रूप से अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं उत्पादक संसाधनों तक पर्याप्त पहुंच नहीं हैं। इस तरह वर्तमान परिदृश्य में लिंग संबंधी भेदभाव हर क्षेत्र में देखने को मिल रहा हैं चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो; या सामाजिक; या भले ही राजनैतिक या शैक्षिक हर क्षेत्र में महिला को इन भेदभावों से गुजरना पड़ रहा हैं। अतः प्रस्तुत शोध-पत्र में लिंग आधारित भेदभाव, एवं उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न समस्या एवं समाधान पर अध्ययन किया गया हैं।

मुख्य शब्दः महिला सशक्तिकरण, लैंगिक भेदभाव, संवैधानिक सुझाव, नीतियां एवं कार्यान्वयन, ।

प्रस्तावना

भारत संस्कृति मुख्यतः ग्रामीण संस्कृति रही हैं। भारत में निवास करने वाली आबादी में से आधी आबादी से ज्यादा ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती हैं। अतः शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वालों के रहन-सहन, व्यवसाय, खान-पान आदि ने बहुत अतंर पाया जाता हैं। दोनों क्षेत्रों में पुरूष एवं स्त्री की सामाजिक स्थिति भी भिन्न-भिन्न हैं। आज भी लैंगिक असमानता जैसी कुरीतियों हमें ग्रामीण क्षेत्रों में देखने को अधिक मिल रही हैं। हम अक्सर सुनते आये हैं कि ''एक लड़का कुल का दीपक होता हैं, लड़के कठोर एवं लड़कियां कोमल होती हैं, कुछ भी कहो लड़कियों लड़कों की बराबरी नहीं कर सकती। वंश लड़कों से चलता हैं, बेटी तो पराया धन होती हैं, लडकी हंसमुख हो पर लड़की को खिल-खिलाकर हंसना शोभा नहीं देता। लड़की को घर से बाहर घूमना ठीक नहीं जमाना खराब हैं, लड़की चाहे कितनी भी पढ़ी-लिखी क्यों न हो, उसे घर के कामकाज तो आने ही चाहिये, लाज-शर्म औरत का गहना है, अच्छी नारी वह है जो पतिव्रता है, असली मर्द वह है जो पत्नी पर नियंत्रण कर सके।'' विभिन्न उक्तियों के माध्यम से समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव स्पष्ट नजर आ जाता हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सफ़र में महिला को चाहें वह कन्या के रूप में हो, चाहे किशोरी हों, या पत्नी या मां बनकर या विभिन्न किरदार में महिला अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, लेकिन यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य हैं कि वह जितनी अच्छी अपनी भुमिका अदा करती है, उसको उतना ही कोसा भी जाता हैं, तिरस्कृत भी किया जाता है, यदि वह गलती करे तो उसे कुल्टा कहा जाता हैं, अगर मां न बन सकें तो उसे बांझ की संज्ञा दे दी

जाती हैं: पति की मृत्यु हो जाती तब उसे विधवा कहकर तिरस्कृत किया जाता हैं। वेदों का अध्ययन करने से ज्ञात होता हैं कि उस समय समाज में लैंगिक समानता विद्यमान थी। यजुर्वेद में एक जगह उल्लेख आता हैं कि ''सब अध्यापक स्त्री और पुरूषों को चाहिये कि सब श्रेष्ठ क्रियाओं से कन्या (और) पुत्रों को विद्या और शिक्षा से युक्त शीघ्र करें। जिससे ये पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहाश्रम आदि का यथोक्त काल में आचरण करें।[1] उस समय पुत्री को भी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था लेकिन आज लैंगिक असमानता प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त हैं चाहे वह शैक्षिक हो; या आर्थिक; या राजनैतिक; या सांस्कृतिक यहां तक की मंदिर-मस्जिद में भी लिंग पर आधारित भेदभाव विद्यमान हैं समाज का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं हैं, जहां पर लिंगाधारित भेदभाव विद्यमान ना हो। एक लड़की मां की कोख से लेकर मृत्युपर्यन्त लिंगाधारित भेदभाव का सामना करती हैं। जब कोख में भ्रूण होता हैं तब अत्याधुनिक तकनीकों के माध्यम से लिंग का पता करके कन्या भ्रूण को गर्भ में ही समाप्त कर दिया जाता हैं; गर्भवती महिला की यथोचित देखरेख नहीं की जाती, अगर कन्या पैदा होती हैं तो नवजात बालिका को फेंकने अथवा हत्या कारित करने के प्रकरण सामने आते हैं, पुत्री के जन्म पर थाली नहीं बजाई जाती एवं बड़ा समारोह नहीं करवाया जाता। लड़कों की शिक्षा के मुकाबले उनको अपेक्षित शिक्षा से वंचित किया जाता, उन्हें घर के बाहर जाने पर पांबदियों लगाना एवं शारीरिक परिपक्व होने से पहले शादी के बंधन में बांध देना और यहां तक की उनके माहवारी से संबधित होने वाल बीमारियों को अनदेखा कर देना ऐसे अनेक असमानता से मुद्दे हैं जिससे पता लगता हैं कि समाज में आज भी लिंग पर आधारित भेदभाव विद्यमान हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार और कर्तव्य, नीति-निर्देशक तत्वों में लैंगिक समानता के सिंद्वांत को प्रतिपादित किया गया है। संविधान में न केवल स्त्रियों को समानता का अधिकार दिया गया हैं, अपितु राज्यों को भी महिलाओं के हित के लिये उचित कदम उठाने की शक्ति प्रदान की गई है। लोकतांत्रिक नीति, कानून, योजनायें, कार्यक्रमों के तहत विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों आदि के माध्यम से महिलाओं के उत्थान के लिये लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं। स्वाधीन भारत के समाज के बदलने के साथ ही महिलाओं की स्थिति में भी कफी बदलाव आया है। उनकी साक्षरता दर में बढ़ोतरी हुई वे आत्मनिर्भर एवं सशक्त हुई और सभी कार्यक्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाकर उसने यह सिद्ध कर दिया की यदि समान अवसर मिले तो वे आसमान की बुलन्दियों को भी छू सकती हैं। लेकिन यह समाज की विडबंना ही हैं कि इन बदलावों के बावजूद स्त्रियों को लेकर हमारी सांस्कृतिक एवं सामाजिक मान्यताओं, परंपरराओं, मानक व्यवहारों में अपेक्षित बदलाव नहीं आया। विभेदीकरण की यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक की जड़े शायद इतनी मजबूत हैं कि आज तक इसके जड़े समाप्त नहीं हो पा रही है, सामाजिकरण की प्रक्रिया आज भी निरंतर इन जड़ो को पोषण दे रही है।

साहित्य समीक्षा

संबधित साहित्य के सर्वेक्षण से तात्पर्य उस अध्ययन से है जों शोध समस्या के चयन के पहले अथवा बाद में उस समस्या पर पूर्व में किये गये शोध कार्यों, विचारों, सिद्धांतों कार्यविधियों, तकनीक शोध के दौरान होने वाली समस्याओं आदि कें बारे में जानने के लिये किया जाता है। अत: अनुसंधान की समस्या का अंतिम रूप में चयन एवं अनुसंधान प्रक्रिया की पहली सीढ़ी हैं, संबधित साहित्य का अवलोकन एवं समीक्षा। संबधित साहित्य के सर्वेक्षण में मैनें पाठ्यपुस्तक, शोध प्रबंध, शोध-पत्रों का प्रयोग किया है। लैंगिक असमानता पर किया गया अध्ययन -

- राजोरिया शोभा ने अपनी पुस्तक के प्रथम संस्करण ''महिला और कानून'' (2011) में महिला के लिए बने कानून, महिलाओं मानवाधिकार, महिला के वैवाहिक अधिकार, धार्मिक अधिकार, पारिवारिक अधिकार, सामाजिक अधिकार, एवं उनके भावनात्मक अधिकार पर विस्तृत अध्ययन किया है।
- श्रीमती शर्मा पूजा द्वारा किये गये अपने अध्ययन ''महिलायें एवं मानवाधिकार'' (2012) में महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने वाले मानवाधिकारों पर विस्तृत अध्ययन किया है।
- सिंह अमिता ने अपनी पुस्तक ''लिंग एवं समाज'' (2015) में बताया हैं कि सदियां बीत जाने के बाद भी, बेटियों को लेकर हमारी सोच में परिवर्तन नहीं हुआ। महिला को सशक्त करने के लिये अनगिनत कानून बनाये गये हैं, लेकिन शिक्षा के अभाव में उन्हें अपने अधिकारों की भी जानकारी नहीं हैं। पुस्तक के माध्यम से लेखिका ने पुरूषों की पाशविक बर्बरता की शिकार महिलाओं की स्थिति को उद्घाटित किया हैं।

- प्रताप अमरेन्द्र ने अपने लेख ''लैंगिक असमानता''(2016) के माध्यम से भारत में लिंगाधारित भेदभाव पर अध्ययन किया हैं। अपने लेख में समाज में महिलाओं के साथ हो रहे तरह-तरह के शोषणों पर अध्ययन करते हुये महिलाओं की स्थिति का वर्णन किया हैं।
- सिंह के.एन., विश्नोई एस एवं पाण्डेय के.के. ने अपनी पुस्तक ''लिंग, विद्यालय एवं समाज'' (2017) में भारत में व्याप्त महिला को लेकर पूर्वाग्रह, सामाजिक व्यवस्था, लैंगिक भेदभाव, लिंग संबंधी भारतीय परंपरायें एवं मान्यतायें आदि पर पर प्रकाश डाला हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्न प्रकार से हैं-

- भारत में व्याप्त लैंगिक असमानता का अध्ययन करना।
- लैंगिक समानता के लिये प्रकाश में आये आयोग, योजनायें, एवं नीतियां का अध्ययन करना।
- लैंगिक असामानता के कारकों का अध्ययन करना।
- भारत में लिंग विषयक अधिकारों और समानता के लिये बने संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानों का अध्ययन करना।
- लिंग विषयक समानता के लिये कार्यरत संस्थाओं का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र के लिये शोध सामग्री अधिकांश रूप से प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से ग्रहण की गई हैं। इस अध्ययन में ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक दृष्टिकोण के साथ-साथ शोधकर्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है। शोध सामग्री प्रसिद्ध पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं समाचार पत्रों एवं वेबसाइट से प्राप्त की गई हैं।

परिकल्पना

भारत के आजाद होने के बाद बड़ी तेजी से महिला सशक्तिकरण के लिये योजना, नीतियां, आयोग आदि का क्रियान्वयन किया गया, जिसके चलते काफी सकारात्मक परिवर्तन हमें देखने को मिला हैं। आज हर दिशा में महिलायें अपना परचम लहरा रही हैं। कोई भी ऐसा क्षेत्र नही जहां आज महिला ने अपनी उपस्थिति दर्ज ना करवायी हो, वह एक कुशल गृहिणी होने के साथ साथ अपने कार्यक्षेत्र में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। लेकिन अभी भी समाज में परंपराये, मान्यतायें आदि के नाम पर लिंग आधारित भेदभाव विद्यमान हैं। जैसे आज महिला प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं वैसे ही उम्मीद की जा सकती हैं आने वाले दिनो में समाज में व्याप्त लिंग आधारित भेदभाव को समाप्त करके महिला अपने अधिकारों के प्रति जागृत होकर प्रगति के पथ पर अग्रसर होगी।

लैंगिक असमानता के क्षेत्र

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक विकास में महिला की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। महिला का आदर एवं उसके हितों की रक्षा करना भारतीय संस्कृति की पुरानी परंपरा रही है। वर्तमान परिदृश्य में लिंगाधारित भेदभाव हर क्षेत्र में देखने को मिल रहा हैं चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो; या सामाजिक; या राजनैतिक या शैक्षिक प्रत्येक क्षेत्र में महिला को भेदभाव से गुजरना पड़ रहा हैं। लैंगिक भेदभाव के विभिन्न क्षेत्र अग्रलिखित है :-

शैक्षिक क्षेत्र एवं लैंगिक भेदभाव

शिक्षा ही एक ऐसा हथियार हैं जिससे महिलाओं के साथ हो रही लैंगिक असमानता जैसी गंभीर समस्या को दूर करके महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया जा सकता हैं। परंतु यह घोर विडंबना है कि शैक्षिक क्षेत्र में सदियों से महिलाओं को

उपेक्षित होना पड़ रहा हैं, उसकी शिक्षा को ज्यादा महत्व न देकर घर के बेटे की शिक्षा को ज्यादा ध्यान दिया जाता आ रहा हैं। अगर हम साक्षरता दर का अध्ययन करे तो पाते हैं कि महिला साक्षरता दर पुरूषों की साक्षरता दर के मुकाबले बहुत गिरावट है। देश में 6-11 साल के उम्र के करीबन 12 करोड़ 50 लाख बच्चे हैं उनमें स्कुल न जाने वाले लड़कों का अनुपात जहां 14 फीसदी हैं वहीं लड़कियों का अनुपात 18 फीसदी है। भारत में 2.5 करोड़ ऐसे बच्चे हैं जो कभी स्कुल नहीं जा पाये। इसमें 1.5 करोड़ लड़कियां हैं।[2] लोगों की परंपरागंत संकीर्ण मानसिकता, महिला शिक्षा को गैर जरूरी मानता हैं। इसके साथ ही लड़कियों कि पर घरेलू कामकाज का बोझ, बाल-विवाह, अत्यधिक शिक्षित होने पर अधिक दहेज, शिक्षा के लिये घर से बाहर भेजने पर सुरक्षा का प्रश्न आदि कई ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से अभिभावक हतोत्साहित होकर उन्हें शिक्षा से वंचित कर देते हैं। भारत में लैंगिक आधार पर साक्षरता को हम निम्न सारणी द्वारा समझ सकते हैं-

भारत में साक्षरता की दर (प्रतिशत में)

वर्ष	*कुल*	*पुरूष*	*महिला*
1901	5.3	9.8	0.7
1911	5.9	10.6	1.1
1921	7.2	12.2	1.8
1931	9.5	15.6	2.9
1941	16.1	24.9	7.3
1951	16.7	24.9	7.3
1961	24.0	34.4	13.0
1971	29.5	39.5	18.7
1981	36.2	46.9	24.8
1991	52.1	63.9	39.2
2001	65.38	76.0	54.0
2011	74.04	82.14	65.46

(स्त्रोत: भारत की जनगणना 2011)

उक्त सारणी का अध्ययन करने से ज्ञात होता हैं कि महिला साक्षरता दर पुरूष साक्षरता दर से कम हैं। शिक्षा को लेकर व्याप्त लैंगिक असमानता का मुख्य कारण यह हैं कि लड़की के माता-पिता का शिक्षा के प्रति नकारात्मक नजरिया। ज्यादातर परिवारों में खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में घर के लड़कों को शिक्षा की प्राथमिकता दी जाती है। प्रारभ से ही लड़कीयों को कमाई करने वाला सदस्य न समझकर लड़कों को ही समझा जाता हैं क्योंकि परिवार वालों की दृष्टि में लड़की पराया धन हैं वह उनका घर छोड़ देगी इसलिये उसकी शिक्षा पर समय व पैसों की बर्बादी समझा जाता हैं। वर्तमान समय में 82 प्रतिशत पुरूषों की अपेक्षा केवल 65 प्रतिशत महिलायें ही साक्षर हैं। इन आंकड़ों पर अवलोकन करने से यह सोचने को मजबुर हो जाते हैं कि आज भारत में शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में शामिल किये कई वर्षो बीत चुके है, नीति-निर्देशक तत्वों के माध्यम से राज्यों का शिक्षा संवर्द्धन के लिये निर्देश दिये उसके बावजूद भी महिला साक्षरता दर की ये हालात है। साक्षरता दर की गिरते अनुपात यह प्रदर्शित कर रहा हैं कि हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश में आज भी स्त्रियों की शिक्षा को प्रोत्साहित नहीं किया जा रहा। आज भी समाज में स्त्रियों की वास्तविक शिक्षा चुल्हा-चौकी, सिलाई, कढ़ाई-बुनाई, पति की सेवा करना आदि को माना जाता है। लड़की के परिवार वालों का मानना हैं कि उसको घर के काम-काज, सिलाई-बुनाई आदि की शिक्षा में पारंगत किया जाये अन्यथा वह अपने ससुराल वालें से उलाहना लेकर आयेगी। जहां महिला को पुरूष की अर्द्धागनी से संबोधित किया गया हैं, वहीं उसे पुरूष की अनुचारिका समझा जाता हैं। भारतीय समाज पितृसतात्मक समाज रहा हैं अत: कहीं-कहीं यह देखने में आया हैं कि यही पुरूष प्रधान समाज

घर की बहू-बेटियों को शिक्षित करने में हिचकिचा रहा हैं। आज भी जब लड़की की शादी की बात आती हैं तब यह देखा जाता हैं कि लड़की घर के कामकाज करने वाली होनी चाहिये। ससुराल वाले पक्ष की यही शर्त होती हैं कि हम लड़की को आगे पढ़ने की अनुमति नहीं देगें। कुछ संकीर्ण मानसिकता वाले व्यक्ति नहीं चाहते कि महिला पढ़-लिखकर अपने अधिकारों को जाने एवं अपने अधिकारों के लिये आवाज उठाये इसलिये कभी धन के नाम पर, तो कभी सामाजिक सुरक्षा तो कभी सामाजिक रूढ़ियों के नाम पर उसे आगे बढ़ने से रोका जाता है। और कभी-कभी तो यह भी देखने में आता हैं कि जब कभी पढ़ी-लिखी औरतें अधिकारों के लिये आवाज भी उठाती हैं तो महिला वर्ग भी उसके विरूद्ध जाकर उसे बदचलन, बैहय्या, आदि की उपमा देकर उसको चुप करवाने का प्रयास करता हैं।

राजनीति के क्षेत्र में

संपूर्ण विश्व में विशेष तौर पर निम्न व मध्यम आय वाले देशों में महिलाओं की राजनीतिक क्षेत्रों में भागीदारी पुरूषों के मुकाबले बहुत कम हैं। यह माना जाता हैं कि भारत में राजनीतिक प्रतिनिधित्व को लेकर लैंगिक समानता हैं पर जमीनी हकीकत कुछ ओर हैं। स्वतंत्रता पूर्व महिलाओं की राजनीति में सहभागिकता की कल्पना भी कोसों दूर थी। 1919 में गांधीजी के नेतृत्व में कि कुछ महिलाओं द्वारा राजनीति में पर्दापण अवश्य किया लेकिन कुलीन परिवार इसके विरोधी ही रहें। भारत के संविधान में नागरिकों के लिये वयस्क मताधिकार का प्रावधान दिया गया। वहां किसी भी प्रकार के लिंगाधारित भेदभाव को स्थान नहीं दिया गया लेकिन विभिन्न नीतियों, संवैधानिक प्रयासों एवं अन्य प्रयासों के बाद भी वर्तमान परिदृश्य में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में कोई ज्यादा परिवर्तन देखने को नहीं मिल रहा हैं। संसद में महिलाओं की संख्या में भारत का स्थान विश्व में 65वां है। वर्तमान में महिला के लिये आरक्षण एवं सुरक्षित सीट का प्रावधान होने के बावजूद उसकी राजनीतिक क्षेत्र में भागीदारी नगण्य हैं। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी मात्र कठपुतली या पंचपति के रूप में प्रतीत होती हैं क्योंकि वहां पर उसके निर्णय, विचार खुद के ना हो के कसी अन्य के इशारे से क्रियान्वित होते हैं। उसके नाम पर सारे कार्य या तो उसके पति परमेश्वर अथवा घर के किसी अन्य सदस्यों के इशारों से होता हैं। वहीं राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की सहभागिता स्वतंत्र रूप से क्रियान्वित हैं चाहे उसका प्रतिशत कम ही क्यों ना हों। इंदिरा गांधी, सुषमा स्वराज, जयललिता, शीला दीक्षित, निर्मला सीतारमण, सुमित्रा महाजन आदि महिलाओं ने यह सिद्ध करके दिखा दिया की अगर महिला को राजनैतिक क्षेत्र में पैर ैलाने के लिये पृष्ठभूमि मिले तो वह अपनी अभूतपूर्व क्षमता का प्रदर्शन कर सकती हैं। आधुनिक लोकतंत्र की सफलता का मूलवाहक है स्त्री शिक्षा रूपी शस्त्र, शिक्षित नारी, शिक्षित परिवार, समाज एवं राज्य को बनाती हैं। अतः आवश्यकता है स्त्री शिक्षा को बढ़ावा मिले जिससे राजनीतिक पर्यावरण स्वस्थ्य व स्वच्छ होगा साथ ही सभी को सोचने-समझने और विचार मंथन का प्लेटफार्म अच्छा मिलेगा। विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने के बावजूद भी, इसी लोकतंत्र में महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व अल्प है। इस तरह भारत में राजनैतिक क्षेत्र में भी लैंगिक असमानता का शिकार है। मात्र आरक्षण मिल जाने से यह नहीं कह सकते की महिला का राजनीति में प्रतिनिधित्व है। आरक्षण द्वारा इन निकायों में महिलाओं की भागीदारी तो हुई है, लेकिन वह मात्र शारीरिक रूप से ही है। भारत के सामाजिक परिवेश में संकीर्ण मानसिकता एवं रूढ़िवाढ़ी परंपराये महिला का राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय भागीदारी का बाधक तत्व है। ज्यादातर लोगों की सोच की महिलायें घर की शोभा हैं उनका कार्यक्षेत्र मात्र गृहस्थी संभालना हैं, ना कि राजनैतिक क्षेत्र में।

आर्थिक क्षेत्र में

आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त लैंगिक असमानता एक ज्वंलत मुद्दा है। महिला की समाज में महत्वपूर्ण भागीदारी होने के बाद भी आर्थिक क्षेत्र में उसका पिछड़ा होना विडंबना की बात हैं। भारतीय समाज की महिलायें प्रत्येक क्षेत्र में एवं छोटी से लेकर बड़ी तक हर आर्थिक जरूरत के लिये पुरूष पर निर्भर है। जिसका मूल कारण हैं रूढ़ीवादी पारपंरिक एवं संकीर्ण मानसिकता। भारतीय समाज में लिंग के आधार पर कार्य का वर्गीकरण किया गया जिसके तहत महिला का दायरा केवल घर में बच्चों की देखरेख एवं चुल्हा-चौकी तक सीमित करके रख दिया है। इसी कारण ज्यादातर भारतीय समाज के परिवारों मे इनकी शिक्षा एवं बाहर काम करने को ज्यादा प्राथमिकता नहीं दी गई है। आर्थिक क्षेत्र में काम कर रहे महिला एवं पुरूष के पारिश्रमिक में भी भारी अंतर है। जब बात आती हैं औद्योगिक क्षेत्र की तो वहां पर भी महिला को पुरूष के मुकाबले कम वेतन दिया जाता हैं। ओर तो ओर रोजगार के

अवसरों में भी पुरूषों को ही प्राथमिकता दी जाती हैं। ''भारत में श्रमशक्ति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 29 प्रतिशत है, जबकि 2004 में यह आंकड़ा 35 प्रतिशत था। भारत में महिलाओं द्वारा किया जाने वाला आधे से अधिक श्रम अवैतनिक है और लगभग पूरा श्रम अनौपचारिक और असुरक्षित है। अधिकतर क्षेत्रों में महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता, जिसमें व्यापार जगत के शीर्ष पद भी शामिल हैं। हालांकि महिलायें खेतों से जुड़े 40 प्रतिशत कार्य करती हैं, भारत में केवल 9 प्रतिशत भूमि पर उनका नियंत्रण हैं और 60 प्रतिशत महिलाओं की हिस्सेदारी केवल 17 प्रतिशत है जबकि उनका विश्व औसत 37 प्रतिशत हैं।''[3]

आर्थिक क्षेत्र में शहरी महिलायें पिछड़ी हैं तथापि इनकी शिक्षा की दर ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं से अधिक हैं। मणिपुर, मिजोरम को छोड़कर पूरे शरत में शहरी महिलाओं में सहभागिता दर 17 प्रतिशत से भी कम हैं। महाराष्ट्र, हिमाचल एवं सिक्किम के अलावा अन्य सभी प्रदेशों की सहभागिता दर औसत राष्ट्रीय महिला दर से नीचे हैं। दिल्ली, केरल, उतर प्रदेश की स्थिति बहुत चिंताजनक हैं।[4] ''विश्व की 188 अर्थव्यवस्था में महिला श्रम शक्ति के मामले में भारत का 170वां स्थान हैं। भारत में कुल 27 प्रतिशत महिलायें कामकाजी हैं।[5]

भारत की लगभग आधी जनसंख्या महिलाओं की हैं। विश्व बैंक अनुसार आधी आबादी की महिला जनसंख्या में से मात्र 15 वर्ष से ऊपर का केवल 25 प्रतिशत कामकाजी हैं। 1991 में यह 34 प्रतिशत था जिसमें लगातार गिरावट दर्ज की जा रही हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की महिला श्रम सूची के 131 देशों में से भारत का 121 वां स्थान हैं।[6]

आर्थिक रूप से पराधीनता महिलाओं में निर्णय लेने की क्षमता का ह्रास करती हैं और यह उन्हें अधिकारविहीन बनाती हैं। जिसकी परिणति होती हैं कि उन्हें विभिन्न अत्याचारों का सामना करना पड़ता हैं। अत: आज आवश्यकता हैं महिलाओं को शिक्षित कर उनके खिलाफ परंपरागत, रूढ़िवादी मानसिकता में परिवर्तन लाकर असंगठित क्षेत्र में व्याप्त अनियमतताओं को खत्म करके एवं कानून को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करके, आज महिला को आर्थिक रूप से सशक्त बना सकते हैं जो कि महिला सशक्तिकरण के लिये बहुत आवश्यक हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में

सामाजिक एवं सांस्कुतिक क्षेत्र में हर दिन महिला को लैंगिग असमानता का सामना करना पड़ता हैं। जब घर में पुत्र का जन्म होता है तब थाली बजाई जाती हैं, वहीं पुत्री के जन्म पर खुशियां नहीं मनाई जाती हालांकि बदलते परिवेश के साथ आजकल कहीं कहीं पर पुत्री जन्म पर खुशियां मनाने देखने को मिलती हैं पर अभी भी पुत्री जन्म को शोक समझा जाता है। अगर कोख मे कन्या का भ्रूण है तो इस भ्रूण को गर्भ में ही समाप्त कर दिया जाता है। भारत के पुत्री के लिये सदियों से यही धारणा है कि वे परिवार के लिये बोझ हैं, क्योंकि बेटी को पराया धन समझा जाता है, विवाह पश्चात् वो दूसरे घर की हो जायेगी साथ ही उसे बहुत दान-दहेज देना होगा, वहीं यह धारणा विद्यमान हैं कि घर का वंश पुत्र ही चलायेगा, वो बहु लेकर आयेगा और बहुत सारा दान दहेज साथ मे ले के आयेगा। इन सबके के साथ ही पितृसतात्मक समाज में स्वंय महिला को अपने लिये जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता, यौन संबंध, संतानोत्पति आदि के लिये स्वंतत्रता नहीं है। आज भी पितृसतात्मक समाज का प्रभाव हमें हर क्षेत्र में देखने को मिल सकता हैं, चाहे वह संपति का क्षेत्र हो, चाहे वंश चलाने को या दहेज का या बुढ़ापे में माता-पिता का सहारा, हर सामाजिक परंपराये पुरूषों की तरु खड़ी नजर आती है। आज भी महिला की पवित्रता की परीक्षा जी जाती है शादी की पहली रात में बैड पर स्फेद चादर लगाकर उसकी पवित्रता पर संदेह किया जाता हैं। आज भी 21वीं सदी में भारतीय समाज में महिलाओं का दायरा सिर्फ घर की चुल्हा-चौकी तक, बच्चों के लालन-पोषण तक ही है। आम तौर पर देखा गया हैं कि किसी भी निर्णय में महिलाओं की भुमिका नहीं होती। लाखों लड़कियां अपने ससुराल में उत्पीड़न, शोषण सहती है लेकिन विवाह-विच्छेद का विचार भी अपने दिमाग में ला भी नहीं पाती क्योंकि उसके मायके वाले इसे सहन करने की लिये बाध्य करते और यह तक कह देते की यही तेरे नसीब में लिखा था, अशिक्षा, रोजगार का अभाव, संपति में सहभागिता का अभाव, माता-पिता का असहयोग इन कारणों से वह कष्ट सहती जो लैंगिक असमानता की पराकाष्ठा हैं।

धार्मिक आस्था के क्षेत्र में

मानव-सभ्यताओं के क्रमिक विकास के साथ-साथ समूह, संप्रदाय, जाति आदि का उद्‌भव होता गया। इन्हीं विकास के साथ सभी संप्रदायों की अपनी-अपनी धार्मिक मान्यतायें स्थापित होती गई। उसी के साथ पुरूष-महिला के लिये कार्य एवं उतरदायित्व का निर्धारण किया गया। इस तरह परंपरा के नाम पर लिंग आधारित भेदभाव भी प्रारंभ हो गया। शायद ही ऐसा कोई धर्म या संप्रदाय हो जिसमें महिलाओं के साथ धर्म के नाम पर लैंगिग भेदभाव ना हुआ हो। यह भेदभाव आज हमें देखने को मिल ही जाता है, जैसे जैन धर्म में श्वेताम्बर में स्त्री का मोक्ष स्वीकार्य हैं, वही दिगंबर परंपरा में स्त्री मोक्ष स्वीकार्य नहीं, वही इस्लाम धर्म में मस्जिदों में नारियों का प्रवेश वर्जित हैं हाजी अली की दरगाह में महिलायें के प्रवेश पर पाबंदी के संघर्ष इसका उदाहरण है, सिक्ख धर्म में नारियों को सबसे अधिक महत्व दिया गया है, परंतु न तो वह पंच प्यारों में शामिल हो सकती हैं और न ही उन्हें अमृत संचार का अधिकार प्राप्त हैं। ईसाई धर्म में भी नारी को अनेक धार्मिक कार्यों से आज तक वंचित रखा गया है। इस धर्म में स्त्रियों को पुरूषों से हीन बताया जाता है। ईसाई धर्म के रूढ़िवादियों के अनुसार चूंकि ईसा मसीह पुरूष थे अत: धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाले पोप, पादरी, बिशप आदि सब पुरूष ही होने चाहिये। हिंदू परंपरा सबरीमाला मंदिर में भी महिला प्रवेश पाबंदी का मामला भी महत्वपूर्ण है। हिंदू परंपरा में दाह-संस्कार में महिलाओं के लिये पाबंदिया, वही माहवारी में स्त्रियों को धार्मिक क्रियाकलाप से वंचित किया जाना, देवदासी प्रथा आदि महत्वपूर्ण हैं। इस तरह प्रत्येक धर्म में आज भी किसी ना किसी प्रकार में लिंगाधारित असमानता व्याप्त है, जिसके चलते धर्म की आड़ में स्त्रियों को विभिन्न अत्याचारों का सामना करना पड़ रहा हैं।

स्वास्थ्य एवं पोषण के क्षेत्र में

स्वास्थ्य की दृष्टि से भारतीय महिलायें पुरूषों से पिछड़ी हुई हैं। उनमें कुपोषण, एनीमिया एवं गिरते हुये स्वास्थ्य का मुख्य कारण हैं लैंगिक असामनता। सामान्यत: देखने में आता हैं कि, खानपान में पुत्री की अपेक्षा पुत्र पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। भारतीय समाज के ग्रामीण तबके एवं पिछड़े हुये शहरों में यह आम धारणा विद्यमान हैं कि घर के पुरूषों के बाद लड़कियों और महिलाओं को भोजन करना चाहिये, जो भोजन बचा हैं इसे ही खाकर संतोष कर लेना चाहिये। ऐसी धारणा के चलते उनके शरीर में पोषक तत्वों की कमी पूरी नहीं हो पाती जिससे उनके शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं। जब महिला गर्भ से होती हैं तब भी उसके पौष्टिक आहार से वंचित रखा जाता हैं जिसके चलते उसके शरीर में खून की भी कमी हो जाती। कभी-कभी बच्चे के जन्म के समय गर्भवती महिला की मृत्यु तक हो जाती हैं। सामान्यत: महिला के स्वास्थ्य पर जब तक ध्यान नहीं दिया जाता तब तक की वे इतनी कमजोर ना हो जाये कि स्वंय का एवं परिवार का कार्य करने में असमर्थ ना हो। महिलाओं की स्वास्थ्य पर ध्यान न देने का ही परिणाम है मातृ-मृत्यु दर। कम उम्र में कन्या का विवाह कर दिया जाता है। कम उम्र में मां बनना, अपरिपक्व शरीर एवं कमजोर स्वास्थ्य के कारण मातृ मृत्यु दर वृद्धि का प्रमुख कारण है। अत: स्वास्थ्य को लेकर हो रहे भेदभाव के चलते महिलाओं को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

अन्य क्षेत्र

उपर्युक्त क्षेत्रों के अलावा महिला को विज्ञान, मंनोरंजन, खेल आदि प्रकार के विभिन्न क्षेत्रों में भी लैंगिक असमानता का सामना कर पड़ रहा हैं। हम प्राय: देखते हैं कि मंनोरजंन के लिये लड़के कहीं भी आ जा सकते है जैसे-सिनेमा, घूमने आदि पर जब बात आती है लड़कियों कि तो उसे सुरक्षा के नाम पर, तो कभी लोग क्या कहेगें के बहाने से उस पर पाबंदी लगा देते हैं। वही खेल के क्षेत्र में मिलने वाली पुरूस्कार राशि पुरूष खिलाड़ियों की बजाय महिला खिलाड़ियों को कम मिलती है। चाहे कुश्ती हो या क्रिकेट हर जगह लैंगिग असमानता देखने को मिल रही हैं।

लैंगिग असमानता के कारण

भारतीय संविधान में लैंगिक समानता के सिद्धांत को प्रतिष्ठापित किया गया हैं, संविधान में महिला एवं पुरूष को समान माना गया हैं, परंतु आज भी निर्धारित किये लक्ष्यों और भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का वास्तविक पृष्ठभूमि में भारी अंतर हैं, जिसके प्रभावस्वरूप महिलायें विशेष रूप से अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं उत्पादक संसाधनों तक

र्प्याप्त पहुंच नहीं हैं। इस तरह निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से हम समाज में व्याप्त लैंगिक असामनता के कारणों को जान सकते हैं :-

- मान्यतायें एवं परंपरायें- लैंगिग असमानता का मुख्य कारण हैं प्राचीन भारतीय मान्यतायें एवं परंपराये। भारतीय संस्कृति में पुत्र की महती आवश्यकता पर विशेष बल दिया गया हैं। हिंदू धर्मशास्त्रों के अनुसार पुत्रहीन व्यक्ति परलोक में भूखा-प्यासा रहता हैं।[7] यहां कि मान्यता हैं कि जीवित पुत्र का मुख देखने से नरक से मुक्ति मिल जाती, श्राद्ध एवं पिंड देने आदि कार्य के लिये पुत्र के द्वारा संपन्न करवाये जाने की मान्यता। संवर्त स्मृति में सोम, गंधर्व तथा अग्नि देवताओं द्वारा कन्या के उपभोग की चर्चा करते हुये कन्या के अंगों में किसी प्रकार का परिवर्तन प्रकट होने से पूर्व ही उसके विवाह को श्रेयस्कर माना हैं।[8] पराशर के अनुसार रजस्वला कन्या को घर में रखने वाले माता-पिता तथा बंधु तीनों नरकगामी होते हैं और जो ब्राह्मण ऐसी लड़की से विवाह करता है वह भाषण तथा सहभोज से वंचित होता हैं तथा वृषली होता हैं।[9] इस तरह की मान्यताओं एवं परंपराओं के चलते चाहे शिक्षित वर्ग हो या अशिक्षित वर्ग पूरी तरह से इन परंपराओं पर आस्था रखता हैं। जिसके चलते पुत्री की जगह पुत्र को महत्व दिया जाता आ रहा हैं। इस प्रकार भारतीय समाज में व्याप्त मान्यतायें एवं परंपरा लैंगिग असमानता के लिये प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं।
- संकीर्ण मानसिकता- भारतीय समाज में पुत्र एवं पुत्री को लेकर व्याप्त संकीर्ण मानसिकता भी लैंगिक असमानता को बढ़ावा दे रही है। लड़का कुल का दीपक होता हैं, लड़के कठोर एवं लड़कियां कोमल होती हैं, कुछ भी कहो लड़कियों लड़कों की बराबरी नहीं कर सकती। वंश लड़कों से चलता हैं, बेटी तो पराया धन होती हैं, लडकी हंसमुख हो पर लड़की को खिलखिलाकर हंसना शोभा नहीं देता। लड़की को घर से बाहर घूमना ठीक नहीं जमाना खराब हैं, लड़की चाहे कितनी भी पढ़ी-लिखी क्यों न हो, उसे घर के कामकाज तो आने ही चाहिये, लाज-शर्म औरत का गहना है, अच्छी नारी वह है जो पतिव्रता है, असली मर्द वह है जो पत्नी पर नियंत्रण कर सके। इसी तरह लड़के के लिये कहा जाता हैं कि वही मां-बाप के बूढ़ापे का सहारा बनेगा और वही पुत्री के लिये धारणा हैं कि वह पराया धन हैं शादी के वक्त उसको दहेज प्रदान करना होगा, उसके लिये योग्य वर खोजना होगा, उसकी पुरी तरह से सुरक्षा करना होगा आदि प्रकार की संकीर्ण मानसिकता के कारण समाज में पुरूष एवं महिला में असमानता की खाई बढ़ती जा रही हैं।
- सांस्कृतिक कुप्रथायें- प्राचीन समय में भारतीय समाज पितृ-प्रधान समाज रहा हैं, जहां कन्या के जन्म को अशुभ माना जाता हैं वैदिक काल में पुत्री का जन्म होना कोई समस्या नही थी। वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता हैं कि उस समय नियोग एवं पुनर्विवाह को सामाजिक मान्यता प्रदान थी। लेकिन जैसे-जैसे कर्मकाण्डों का बाहुल्य होता गया वैसे-वैसे स्त्रियों की स्थिति समाज में निम्न होती गई। धीरे-धीरे आने वाली सदियों में स्त्रियों को अनेक प्रतिबंधों से जकड़ दिया गया। बालविवाह, सती प्रथा, नियोग एवं विधवा पुनर्विवाह प्रतिषेध आदि सांस्कृतिक कुप्रथाओं से उसको जकड़ दिया गया। जिसके चलते पुत्र का महत्व बढ़ गया तथा कन्या का महत्व कम होता चला गया। जहां वैदिक काल में पत्नी को घर की रानी कहा गया वही उतरवैदिक काल तक आते आते स्त्रियों का स्थान पुरोहितों द्वारा ले लिया गया, कर्मकाण्ड एवं यज्ञ व्यवस्थाओं में उनका प्रभुत्व हो गया जिसके चलते समाज, परिवार एवं धार्मिक कर्मकाण्डों में स्त्री का महत्व व उपयोगिता को इतना नजरअंदाज कर दिया कि वे शुद्र की श्रेणी में आ गयी। शिक्षा व ज्ञान के अभाव में वह पुरूषों के हाथों का खिलौना सी बन गयी। स्त्री समाज में निंदा का पात्र घोषित कर दी गयी तथा व्यभिचारिणी, कलंक तथा बदचलन व दुष्ट तक का लेबल उनके नारीत्व के दामन पर लग गया।[10] महाभारत में एक पुत्री द्वारा अपने ब्राह्मण पिता को कहे गये वचन हैं कि ''पुत्र अपनी आत्मा का स्वरूप, स्त्री मित्र का स्वरूप और कन्या कष्ट का स्वरूप हैं । अत: कष्ट के स्वरूप कन्या के द्वारा स्वंय को विपति से छुड़ावे और मुझको धर्म में नियुक्त करें।''[11] इस तरह सांस्कृतिक कुप्रथाओं के नाम पर पत्नी को पति के लिये जीवन तक उत्सर्ग करने के लिये बाध्य कर दिया गया। ये ही परंपरायें अनवरत रूप से आज तक चली आ रही हैं। इसी के चलते समाज में देवदासी प्रथा, सतीप्रथा जैसी कुप्रथाओं का उद्भव हुआ।

सामाजिक कुप्रथायें- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं। हमारे समाज एक पितृसतात्मक समाज हैं। हमारे समाज में रूढ़ियों का प्रभाव महिलाओं पर अधिक देखने को मिलता हैं क्योंकि पुरूष स्वयं को इन प्रभावों से दूर रखता हैं किंतु महिलायें अशिक्षा, अज्ञानता एवं भावना में बहकर इनका बोझ सर पर उठाती है। लड़कियों को बचपन से ही लाज-शर्म, सहिष्णुता, नमनीयता आदि गुणों को आत्मसात् करने की शिक्षा दी जाती हैं। इस प्रकार बचपन से ही ऐसे सांचे में ढ़ालने का प्रयत्न किया जाता है। समाज में महिलाओं पर तरह तरह के प्रतिबंध लगाये जाते है। जिसके चलते महिलाओं के ऊपर बहुत रूढ़ियों का चोला पहना दिया गया है जैसे- पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बालविवाह, दासी प्रथा आदि। इसी तरह हिंदू संस्कृति में उपवास का बहुत महत्व हैं पर यहां यह बिंदु ध्यातव्य है कि ये सारे उपवास स्त्रियों द्वारा कभी अपने पति, कभी पिता तो कभी बेटे या कभी भाई की रक्षा के लिये किये जाते हैं उपवास की परंपरा का निर्वहन सदैव स्त्रियों द्वारा की करने को देखने के लिये मिलता। पुरूषों द्वारा कभी ऐसा व्रत इनका निर्वहन देखने को नहीं मिलता जिसमें कि वह अपनी पत्नी, मां, बहन या पुत्री के लिये भी रक्षा के लिये किया हो।

- सरकारी तंत्र की उदासीनता- लैंगिक असमानता के बढ़ने में सरकारी तंत्र की उदासीनता भी एक महत्वपूर्ण कारण हैं आज भी चोरी-छिपे चिकित्सालयों और नीजी क्लीनिकों में भ्रूण की जांच व भ्रूण की हत्या करने का कार्य अबाध रूप से चल रहा है। सार्वजनिक स्थलों एवं सरकारी द"तरों में भी महिला को पुरूषों की अपेक्षा हेय दृष्टि से देखा जाता हैं जिसके चलते लैंगिक असमानता में वृद्धि बढ़ती जा रही हैं।
- आर्थिक रूप से कमजोर- आर्थिक रूप से कमजोर पक्ष भी लैंगिक असमानता का मुख्य कारण हैं। मनीषियों ने यह व्यवस्था दी थी कि महिला घर में रहकर घर के कामकाज एवं बच्चों का लालन-पालन करेगी और पुरूष घर से बाहर आमदनी करेगा। लेकिन धीरे-धीरे महिला को आर्थिक रूप से पुरूष के ऊपर निर्भर रहने को बाध्य हो गई उसका कार्यक्षेत्र मात्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित होकर रह गया। और उसे आर्थिक रूप से पुरूष पर निर्भर रहना पड़ गया। महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति इतनी गंभीर हैं कि उन्हें लैंगिक असमानता का सामना करना पड़ रहा हैं। इन्हीं विभिन्न कारणों के चलते महिला को समाज में लैंगिक असमानता का सामना करना पड़ रहा। जिसके चलते उसे विभिन्न चुनौतियों को सामना करना पड़ रहा हैं।

लैंगिक असमानता का दुष्प्रभाव

समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता के प्रभावस्वरूप महिलाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा हैं जिसका वर्णन निम्नवत् हैं-

- स्वास्थ्य स्तर में गिरावट- लैंगिक असमानता के प्रभावस्वरूप बालक-बालिकाओं के खानपान में भेदभाव किया जाता हैं जिसके चलते महिलाओं के शरीर में पोषक तत्वों की कमी बन रही हैं। जिसके कारण उसे विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से गुजरना पड़ रहा हैं।
- अशिक्षा- बढ़ते लिंगाधारित भेदभाव के कारण समाज में लड़कों की शिक्षा को महत्व दिया जाता हैं एवं लड़की की शिक्षा को गौण समझा जाने लगा। जिसके चलते लड़कियों की शिक्षा के मार्ग अवरूद्ध हो गये है।
- नैतिक मूल्यों का पतन- वर्तमान परिदृश्य में लैंगिक असमानता इस तरह बढ़ गई हैं कि व्यक्ति अपने नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों को भी धूमिल कर दे रहा हैं। लिंगाधारित भेदभाव के चलते समाज में महिलाओं के विरूद्ध विभिन्न अपराधों का जन्म दे रहा हैं। जिसमें मुख्य हैं- कन्या भ्रूण हत्या, वधू-दहन, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, मानसिक उत्पीड़न आदि। लिंग असमानता को लेकर व्यक्ति अपने नैतिक मूल्यों को भी भूलता जा रहा हैं।
- मातृ-शिशु मृत्युदर- बढ़ते लैंगिक असमानता के कारण लड़कियों की छोटी उम्र में विवाह के बंधन में बांध दिया जाता हैं। छोटी उम्र में शादी के बाद कम उम्र में गर्भधारण से उसे विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता हैं जिसके चलते कभी-कभी कम उम्र में मां बनने के कारण गर्भवती महिला की मृत्यु तक हो जाती है।
- लड़कियों को आर्थिक बोझ समझा जाना- लैंगिक असमानता के कारण दहेज प्रथा, जैसी कुप्रथाओं का उद्भव हुआ। रामायण में भी दहेज जैसी प्रथा का वर्णन मिलता हैं कि उस समय विदेहराज जनक ने अपनी कन्याओं के निमित दहेज में बहुत धन दिया। उन मिथिला-नरेश ने कई लाख गौएं कितनी ही अच्छी-अच्छी कालीनें तथा करोडो़ की संख्या में

रेशमी और सूती वस्त्र दिये; भांति-भांति के गहनों से सजे हुये बहुत से दिव्य हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक भेंट किये।[12] जिसके चलते लड़कियों को आर्थिक बोझ समझा जाने लगा। उसे शिक्षा से वंचित किया जाने लगा। इसी तरह उसके ऊपर तरह-तरह के आर्थिक प्रतिबंध लगाये जाने लगे।

लैंगिक असमानता को समाप्त करने के प्रयास

लिंगाधारित असमानता के परिष्कार के लिये सर्वोपरि स्थान भारतीय संविधान का हैं। भारतीय संविधान का समानता का सिद्धांत (संविधान की प्रस्तावना एवं भाग III में समानता का सिद्धांत) बिना किसी लिंग आधारित भेदभाव के समानता की बात करता है। इस तरह संविधान मे उल्लेखित सभी अधिकार एवं स्वतंत्रतायें बिना किसी लैंगिक भेदभाव के सभी पर समान रूप से लागू होती हैं।

- संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत समानता की बात कही गई। जिसमें वर्णित हैं कि ''राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता व कानून के तहत समान संरक्षण से वंचित नहीं कर सकता।''
- अनुच्छेद 15(1) के अनुसार ''राज्य, किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।''
- अनुच्छेद 15(3) के अनुसार ''कोई बात से राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिये कोई विशेष उपबंध बनाने में बाधा नहीं होगी।'' इसी प्रावधान को मद्देनजर रखते हुये भारत के सुप्रीम कोर्ट में कुछ पदों को स्त्रियों के लिये आरक्षित रखने को वैध माना। इसी के मद्देनजर अनुच्छेद 243D और 243T को 73वां एवं 74वां संविधान संशोधन में जोड़कर पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत सीटों को आरक्षित करने की बात कहीं गई हैं।
- अनुच्छेद 16(1) व (2) सामान्य तौर पर होने वाले भेदभाव को रोकता हैं एवं व्यवसाय एवं राज्याधीन काम करने वाले व्यक्तियों में होने वाले भेदभाव को रोकता है। 16(2) के अनुसार ''केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास अथवा इनमें से किसी के आधार पर ना ही कोई नागरिक अपात्र होगा एव ना ही उससे विभेद किया जायेगा।''
- अनुच्छेद 19(1) सभी नागरिकों को समान रूप से शोषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गांरटी देता हैं।
- अनुच्छेद 21 के अनुसार ''प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार एवं किसी व्यक्ति की विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त उसके जीवन या उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जायेगा।''
- अनुच्छेद 21(।) के अनुसार ''6 से 14 वर्ष के सभी बालकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का मूलभुत अधिकार हैं।'' (संविधान के 86वें संशोधन एक्ट 2002)
- अनुच्छेद 23 व 24 मानव का दुव्यार्पार, बेगार एवं अन्य बलात् श्रम, कारखानों पर खान में 14 वर्ष के कम आयु के बच्चों को कार्य करने आदि शोषण के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करता हैं।
- अनुच्छेद 39(क) व (ख) के अनुसार ''पुरूष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हैं। पुरूषों और स्त्रियों का समान कार्य के लिये समान वेतन प्राप्त करने का अधिकर रखते हैं।''
- अनुच्छेद 39(ई) के अनुसार ''स्त्री व पुरूष कर्मकारों के स्वास्थ्य एवं शक्ति का दुरूपयोग न हो, की व्यवस्था करता है। व स्त्रियों के लिये प्रसूतिकाल में अवकाश की व्यवस्था की गई हैं।''
- अनुच्छेद 42 में वर्णित हैं कि ''राज्य काम करने की न्यायसंगत एवं मानवीय परिस्थितियां पैदा करेगा और मातृत्व प्रसूति सहायता के लिये उपबंध करेगा।''
- अनुव्छेद 51(ड़) के अनुसार ''भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों को सम्मान के विरूद्ध हो।''

- अनुच्छेद 325, 326 महिला एवं पुरूषों को निर्वाचक नातावनी में समान रूप से मत देने ओर चुने जाने का अधिकार प्रदान करता हैं।

अत: लैंगिक असमानता को दूर करने के लिये भारतीय संविधान में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अधिकार प्रदान किये हैं। इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न अधिनियम पारित किये गये।

लैंगिक असमानता के परिष्कार के लिये वैधानिक प्रयास

भारतीय संविधान के अतिरिक्त लैंगिक समानता के लिये विभिन्न कानून बनाये गये जिससे महिलाओं के हितो की रक्षा की जा सके। महिलओं से संबधित प्रमुख अधिनियम निम्नलिखित है:-

- विशेष विवाह अधिनियम, 1854 - इस अधिनियम के तहत बालिग लड़के एवं लड़कियां को अपनी मर्जी से अंतधर्मी एवं अंतर्जातीय विवाह करने की कानूनी स्वीकृति प्रदान की गई है।
- हिंदू उतराधिकारी अधिनियम, 1956 - इस अधिनियम के अंतर्गत स्त्री-पुरूष को संपति के संबंध में समान अधिकर दिया गया। इसके तहत पिता की संपति में पुत्र के बराबर ही पुत्री को समान अधिकार प्रदत किया गया हैं।
- दहेज निरोधक अधिनियम, 1961 - दहेज जैसी कुप्रथा को समाप्त करने के लिये भारतीय संसद द्वारा मई, 1961 में दहेज निरोधक अधिनियम को पारित किया। जिसके तहत दहेज लेने या देने व इस कार्य में मदद करने वाले के खिलाफ छ: माह का कारावास व पांच हजार रूपये जुर्माने से दंडित करने का प्रावधान हैं।
- समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1946 - यह अधिनियम स्त्री एवं पुरूष के लिये समान कार्य के लिये समान वेतन का प्रावधान करता हैं। इस अधिनियम की धारा 5 एक ही कार्य या समान प्रकृति के कार्य के निष्पादन के लिये भर्ती करते समय या भर्ती के बाद पदोन्नति, प्रशिक्षण या स्थानांतरण आदि से संबधित सेवा की किसी भी शर्ते महिलाओं के विरूद्ध कोई भेदभाव नहीं करने का प्रावधान करती हैं।
- सती प्रथा निषेध कानून, 1829 - इस अधिनियम के तहत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सती होने के लिये विवश करने वालों के लिये मृत्युदंड अथवा आजीवन कारावास की व्यवस्था की गयी।
- बाल-विवाह अधिनियम, 1929 - 1929 में पारित इस अधिनियम में 1978 के संशोधन के तहत लड़के एवं लड़कियों के विवाह योग्य न्यूनतम आयु क्रमश: 21 एवं 18 वर्ष निर्धारित की गई।
- हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 - इस अधिनियम के तहत विधवा पुनर्विवाह को वैध बनाकर विधवा महिलओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया गया।
- प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 1994 - कन्या भ्रूण हत्या व भारत में घटते लिंगानुपात को रोकने के लिये इस अधिनियम को पारित किया गया। अत: इस अधिनियम के अंतर्गत गर्भधारण पश्चात् भ्रूण के लिंग निर्धारण करने वाली तकनीकों के दुरूपयोग को रोकना हैं। इसके अंतर्गत प्रसव पूर्व लिंग चयन आधारित एवं जन्म से पूर्व कन्या भ्रूण हत्या के लिये जांच से संबधित तकनीक द्वारा जांच करवाना अपराध की श्रेणी में माना गया।
- घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 - अक्टुबर 2006 से प्रभाव में आये इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य है कि घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं को सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करना हैं। इसके तहत महिलाओं/बालिकाओं को सभी प्रकार की होने वाली घरेलू हिंसा से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न किया गया है।
- कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (संरक्षण, निषेध व प्रतिकार) कानून 2013 - इसके तहत कार्यस्थल पर कार्यशील महिलाओं के साथ होने वाले यौन-उत्पीड़न के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान हैं।

संवैधानिक एवं वैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता को देखते हुये महिलाओं एवं बालिकाओं के सर्वांगीण विकास एवं उन्हें समानता का अवसर देने के लिये कई नीतियां, आयोग एवं समितियां आई। जिनमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986), प्रोग्राम ऑफ एक्शन (1992) और राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति (2001) महत्वपूर्ण हैं जो कि लड़कियों की शिक्षा

एवं लिंगाधारित भेदभाव के संबंध में बात करने वाले अत्यधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज कहे जा सकते हैं। वहीं बालिका के शिक्षा की आवश्यकता को लेकर कई आयोगों और समितियों आई जो कि लड़कियों की शिक्षा में आने वाले बाधक तत्वों को पहचानकर इनके निवारण के कई सुझाव प्रस्तुत किये जिनमें मुख्य आयोग हैं: विश्वद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-1953), श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख कमेटी (1958-59), श्रीमती हंसा मेहता कमेटी (1962), भक्तवत्सल कमेटी (1963), कोठारी कमीशन/शिक्षा आयोग (1964-66) एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) आदि ने अपने महत्वपूर्ण सुझाव दिये। विभिन्न आयोगों, समितियों के अतिरिक्त विभिन्न योजना के माध्यम से लैंगिक असमानता को समाप्त करने के लिये भी प्रयास किये जा रहे हैं। जिनमें प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956), द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-1961), तृतीय, चतुर्थ, पंचम एवं अंतरिम योजनायें (1961-1974) आदि पंचवर्षीय योजना में लैंगिक समानता लाने का प्रयास कर महिलाओं को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया गया। इन सबके अतिरिक्त सरकार द्वारा समय-समय पर महत्वपूर्ण योजना को प्रारंभ करके लैंगिक समानता लाने का प्रयास किया जा रहा हैं कुछ महत्वपूर्ण योजनायें उल्लेखनीय हैं 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', 'वूमेन हेल्पपाइन स्कीम', 'महिला ई-हाट', 'सुकन्या समृद्धि योजना', 'राष्ट्रीय महिला कोष' आदि महत्वपूर्ण हैं। इनके साथ ही महिला एवं बाल विकास विभाग, राष्ट्रीय महिला आयोग महिला सशक्तिकरण के लिये सक्रिय कार्यरत हैं।

निष्कर्ष

प्राचीन काल से भारतीय समाज में लंबे अरसे से लैंगिक भेदभाव होता आ रहा है जिसके चलते महिलाओं की स्थिति निम्न हो गई। इसी का ही परिणाम हैं कि भारतीय संविधान में समानता के सिद्धांत को लाया गया एवं राज्य सरकार एवं केन्द्र द्वारा लैंगिक समानता लाने के लिये कई प्रकार के कार्यक्रम, योजनाओं को क्रियान्वित किया गया। समय-समय पर बनी समितियों एवं आयोगों द्वारा भी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में हो रहे लैंगिक भेदभाव की ओर ध्यान आकर्षित करवाकर उनके उन्मूलन के लिये महत्वपूर्ण सुझाव रखे। यहां यह बात ध्यातव्य हैं कि भारतीय संविधान द्वारा सभी को बिना किसी धर्म, जाति, वर्ग और लिंग आदि आधारों के सभी को समानता का अधिकार प्रदत करता हैं। स्वतंत्र भारत में समय की गतिशीलता के चलते महिलाओं की स्थिति में भी बदलाव आया हैं। उनकी साक्षरता में वृद्धि हुयी है। वे स्वंय के पैरो पर खड़ी हुई है, प्रत्येक कार्यक्षेत्र चाहे वह खेल से संबधित हो; या शैक्षिक; या राजनैतिक; या फिर चाहे अंतरिक्ष से संबधित क्षेत्र हो आज महिला प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाकर उसने यह सिद्ध कर दिया की अगर समान अवसर ना मिल तो वे आसमान की ऊंचाई तक को छू सकती हैं लेकिन आज भी यह विडबंना हैं कि इतने बदलाावों के बावजूद भी महिला वर्ग को लेकर हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यतायें, परंपराओं, पूर्वाग्रहों एवं सोच में अपेक्षित बदलाव नहीं आया हैं। संविधान लागू होने के इतने दशकों के बाद भी लिंगाधारित भेदभाव समाज में व्याप्त हैं, कुछ हद तक लिंगाधारित भेदभाव ढ़ीले तो हुये हैं लेकिन समूल नष्ट नहीं हो पाये, क्योंकि इसका मूल कारण हैं आज भी हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में यह विद्यमान हैं। आज वैज्ञानिक युग में प्रवेश करने के बाद भी पुरातन सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं, पूर्वाग्रह के चलते स्त्री को वह दर्जा प्राप्त नहीं हुआ जिसकी वह अधिकारिणी थी। ये एक विडंबना की बात हैं कि, आजादी के इतने वर्षो के बाद भी महिला कभी परंपरा व मान्यता, तो कभी धर्म के नाम पर, तो कभी रीति रिवाजों के नाम पर खुद के घर में ही उसे दोयम दर्जे की स्थितियों से होकर गुजरना पड़ रहा हैं।

लैंगिक समानता से संबधित अधिकारों को तभी सफल माना जायेगा जब स्वंय महिला अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर अपने विरूद्ध हो रहे शोषण के विरूद्ध आवाज उठाये क्योंकि कानून सिर्फ रास्ता दिखला सकता हैं क्या सही हैं, क्या गलत है लेकिन स्वंय महिला को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना होगा। छोटी-छोटी कोशिशों के द्वारा लैंगिक समानता को लाया जाने का प्रयास किया जा सकता हैं। यह कहने से कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रत्येक क्षेत्र में महिला द्वारा उपस्थिति दर्ज कराने के उपरांत भी आज भी महिला को हजारों वर्षो से चली आ रही मान्यताओं से जकड़ा जा रहा हैं। उसकी स्वतंत्रता को बाधित किया जा रहा हैं, आज भी उसको अपने अधिकारों के लिये लड़ना पड़ता हैं। अत: आज जरूरत हैं भेदभाव को लेकर हो रहे पूर्वाग्रह को समाप्त करने की, बेटो को भी सभ्यता से शांत रहकर बात करने की। छोटे-मोटे घरेलू कार्य बेटो एवं बेटी दोनों से कराये जाये ताकि समाज की ये मानसिकता खत्म हो कि ये काम सिर्फ लड़कियों का होता हैं। डिजिटल माध्यमों से बालिकाओं एवं महिलाओं से जुड़े मुद्दे पर चर्चा करके उनके निराकरण करने का प्रयास किया जाये। नकारात्मक एवं पारंपरिक रूढ़िवादी मानसिकता, पूर्वाग्रहों को समूल नष्ट

करने के लिये युवा पीढ़ी को सचेत किया जाये। पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं एवं पुरूषों दोनों की महता को समझा जाये। लिंग समानता के लिये मीडिया के माध्यम से जागरूकता लाया जाने के प्रयास किये जाये एवं बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाये। इन सबके साथ समाज में व्याप्त रूढ़ियों के उन्मूलन के प्रयास किये जाये। इस तरह लैंगिक भेदभाव को समाप्त करने के लिये छोट-छोटे प्रयासों से समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता का परिष्कार किया जा सकता हैं।

संदर्भ-सूची

1. यजुर्वेद 11.60
2. देखे समाचार पत्र, दैनिक भास्कर ग्वालियर पृष्ठ संख्या 7, 23 फरवरी 2015 (ऑउट ऑफ स्कूल चिल्ड्रन नामक शीर्षक में प्रकाशित)
3. लैंगिग असमानता: महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण, https://in.one.un.org./unibf-hindi/gender-equlity/
4. प्रो. ए.आर.एन श्रीवास्तव, (2017), महिला सशक्तिकरण : उज्जवल भविष्य, काले धब्बे, राधाकमल मुकर्जी : चिंतन परंपरा, वर्ष 19, अंक 1, जनवरी-जून 2017, पृ.सं. 6
5. आर्थिक प्रगति के लिये महिलाओं की भागीदारी आवश्यक हैं, 25 जनवरी, 2018, https://https://afeias.com/knowledge-centre/current-content, Accessed on 20 July 2019
6. महिलाओं की आर्थिक भागीदारी का अभाव, 21 मार्च 2018, https://afeias.com/knowledge-centre/current-content/महिलाओं-की-आर्थिक-भागीदारी, Accessed on 20 July 2019
7. रामनाथ शर्मा, राजेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज संस्थायें एवं संस्कृति पृ.सं. 173
8. भारतीय संस्कृति में नारी (स्मृति ग्रंथों के विशेष संदर्भ में), डक्क. लता सिंहल पृ.सं. 272
9. हिदुं सामाजिक संस्थायें एवं आर्थिक जीवन, डक्क शिव स्वरूप सहाय, पृ.सं. 132
10. सरोज कुमार गुप्ता, भारतीय नारी, कल आज और कल, पृ.सं. 20
11. महाभारत, आदिपर्व 147/11
12. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड 74/3-4

भारतीय राजनीति में दलीय व्यवस्था का विकास

डॉ० मो० जोहा सिद्दीकी

अतिथि शिक्षक, राजनीति विज्ञान विभाग, मिल्लत कॉलेज, दरभंगा

आधुनिक लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो गई है। यदि यह कहा जाये कि राजनीतिक दल आज लोकतंत्रीय व्यवस्था का संचालन करने वाले महत्वपूर्ण तंत्र बन गये है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। विशेष रूप से जहां संसदीय शासन हो वहां राजनीतिक दल राजनीतिक व्यवस्था के जीवन सूत्र के रूप में ही कार्य करते है। आज राजनीतिक दल राजनीतिक संस्था और प्रशासन के महत्वपूर्ण अंग का रूप धारण कर चुके है।[1] यही कारण है कि किसी भी देश में शासन प्रणली का रूप चाहे जो भी हो राजनीतिक दल अनिवार्य रूप से विकसित होते है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान निर्माताओं ने राजनीतिक दलों को कभी भी पसन्द नहीं किया।[2] वहां भी राजनीतिक दलों का विकास हुआ। सर्वाधिकारवादी व अधिनायकवादी राज्यों में भी राजनीतिक दलों का अस्तित्व देखेने को मिलता है।

भारत में भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के जननायक भारत के राष्ट्रपिता कहे जाने वाले महात्मा गांधी व प्रख्यात समाजवादी चिन्तक व राजनेता लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने भारत के लिए ''दलविहीन लोकतंत्र'' की परिकल्पना की थी। गांधी जी की हार्दिक इच्छा थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस अपने दलीय स्वरूप को विघटित कर लोक सेवक संघ के रूप में कार्य करें। भारतीय संविधान में भी कहीं पर राजनीतिक दल शब्द का उल्लेख नहीं आया है फिर भी अमेरिकी राजनीति की तरह भारत राजनीति में भी राजनीतिक दलों का विकास हुआ और भारत की संसदीय राजनीति ने बहुदलीय राजनीतिक व्यवस्था का आकार ग्रहण किया। भारत में राजनीतिक दलों के विकास को हम दो भागों में बांट सकते हैं-

1. स्वतन्त्रता पूर्व राजनीतिक दलों का विकास
2. स्वतन्त्रता के पश्चात् राजनीतिक दलों का विकास

1. स्वतन्त्रता पूर्व राजनीतिक दलों का विकास

भारत में राजनीतिक दलों के विकास की बुनियाद ब्रिटिश शासन काल में देखने को मिलती है। भारत में पहली राजनीतिक संस्था 1838 में कलकत्ता में ''लैण्ड होल्डर्स सोसायटी'' के नाम से स्थापित की गई। किन्तु इसका उद्देश्य मात्र जमींदारों के हितों की रक्षा करना था। 1843 में ''बंगाल ब्रिटिष इण्डियन एसोसिएशन'' का गठन व्यापक राजनीतिक उद्देश्यों से किया गया। पूरे देश में शहरों और कस्बों में ऐसी संस्थायें स्थापित की गई। इनकी मांगें मुख्य रूप से प्रशासनिक सुधारों से जुड़ी हुई थीं। 1866 में दादाभाई नौरोजी ने भारतीय समस्याओं पर विचार करने के लिये तथा ब्रिटिश जनमत को प्रभावित करने के लिये लन्दन में 'ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन' की स्थापना की। भारत में इसकी कई शाखायें खोली गई। 1876 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के नेतृत्व में ''इण्डियन एसोसिएशन'' की स्थापना की गई। उन्होने पूरे देश में भारतीय सिविल सेवा की परीक्षा प्रणाली में सुधार की मांग की। व्यापक राजनीतिक आन्दोलन में आम जनता को खीचने के लिये इण्डियन एसोसिएशन ने काश्तकारों के अधिकारों के लिये जमींदारों के विरूद्ध और चाय बागानों के मजदूरों के अधिकारों के लिये विदेशी बाग मालिकों के विरूद्ध आवाज उठाई। 1884 में ''मद्रास महाजन सभा'' बनाई गई। 1885 में फिरोजशाह मेहता के नेतृत्व में ''बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन'' की स्थापना की गई।

राजनीतिक दलों का विकास वस्तुत: 1885 ई0 में कांग्रेस की स्थापना से प्रारम्भ होता है। इसकी स्थापना एक राजनीतिक दल के रूप में नहीं बल्कि एक एसे संगठन के रूप में हुई थी जिसका उद्देश्य मूलत: भारतीयों के गैर सरकारी संसद के रूप में कार्य करना था। प्रारम्भ में इसे ब्रिटिश शासकों का समर्थन प्राप्त था, किन्तु कुछ दिनों बाद ही कांग्रेस द्वारा साम्राज्यवाद की आलोचना तथा स्वराज्य की मांग ने ब्रिटिश शासकों के कांग्रेस के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन ला दिया। उन्होंने यह अनुभव किया कि यह संस्था ब्रिटिश नौकरशाही तथा साम्राज्य के विरूद्ध है। अत: उन्होंने इस संस्था के विरूद्ध भारतीय जनता की दूसरी संस्था की स्थापना को प्रोत्साहन देना उचित समझा। इस कड़ी में सर सैयद अहमद खां के नेतृत्व में मुस्लिम समुदाय की एक राजनीतिक संस्था ''अखिल भारतीय मुस्लिम लीग'' 1906 ई0 में स्थापित की गई। इसे विशुद्ध रूप में एक राजनीतिक दल कहना गलत होगा क्योंकि यह एक साम्प्रदायिक संस्था थी जिसकी सदस्यता केवल मुस्लिम समुदाय तक ही समित थी। प्रारम्भ में इसका उद्देश्य भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति राजभक्ति पैदा करना तथा उनके राजनीतिक अधिकारों एवं हितों की रक्षा करना था। बाद में कांग्रेस की ही भांति इस संगठन ने भी भारत की स्वतंत्रता का नारा बुलन्द किया। लेकिन साथ ही साथ मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के लिए एक अलग राष्ट्र की मांग भी उठाना प्रारम्भ कर दिया। 1937 में लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना ने कहा कि मुस्लिम लीग का उद्देश्य पूर्ण प्रजातांत्रिक स्वायत सरकार की प्राप्ति है। किन्तु ''द्विराष्ट्रसिद्धान्त'' और कांग्रेस के प्रति लगातार विरोध के दृष्टिकोण के कारण इसे 1941 मे अपने संविधान मे परिवर्तन करना पड़ा उसी वर्ष का विख्यात पाकिस्तान प्रस्ताव अन्तत: पाकिस्तान निर्माण के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुआ।

मुस्लिम लीग की स्थापना की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप 1916 में हिन्दुओं की एक साम्प्रदायिक संस्था का जन्म ''हिन्दू महासभा'' के रूप में हुआ। इस दल के उद्देश्य ''पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति तथा हिन्दू राज की स्थापना करना था। यह कांग्रेस की अहिंसा की नीति के विरूद्ध था। इसके अध्यक्ष सावरकर का कहना था कि हिन्दू महासभा का उद्देश्य हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू सभ्यता की देखभाल, रक्षा, विकास और हिन्दू राष्ट्र के गौरव में वृद्धि और पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति है।

1920 में एक नये दल-उदार दल की स्थापना हुई। इस दल का उद्देश्य संवैधानिक पद्धति के माध्यम से लक्ष्य की प्राप्ति करना था। इसने 1919 के अधिनियम के आधार पर हुए निर्वाचन में भाग लिया। किन्तु यह दल प्राय: महत्वहीन ही बना रहा।

इन दलों के अतिरिक्त स्वतंत्रता पुर्व भारत में अनेक वामपंथी दलों की भी स्थापना हुई। 1917 में रूस में साम्यवादी क्रान्ति ने भारत के क्रान्तिकारियों को प्रभावित किया। वे सोवियत रूस के नेताओं से सम्पर्क का प्रयास करते रहे। 1919 में महेन्द्र प्रताप के नेतृत्व में भारतीयों के पहले प्रतिनिधिमंडल ने लेनिन के साथ मास्कों में मुलाकात की।[3] लेनिन ने इस भेट को बहुत महत्व दिया। 17 अक्टूबर 1920 को कानपुर में भारतीय साम्यवादी दल के स्थापना की घोषणा की गई।[4]

कांग्रेस नेतृत्व की दक्षिण पंथी कार्यवाही और गांधी के नेतृत्व के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप कांग्रेस के प्रगतिशील समाजवादी विचारधारा से जुड़े लोगों ने 1934 में पटना में कांग्रेस महासमिति की बैठक के समय ही अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की। इस संगठन में सक्रिय रूप से जुडे लोग थे- जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्धन और डॉ0 राम मनोहर लोहिया आदि।

इसी प्रकार जिन अन्य वामपंथी दलों की स्थापना हुई उनमें प्रमुख थे- भारतीय क्रान्तिकारी साम्यवादी दल 1942, क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी 1940, भारतीय बोलशेविक पार्टी 1939, बोल्शेविक लेनिनिस्ट पार्टी 1941, फारवर्ड ब्लाक 1937, सोशलिस्ट पार्टी 1934 आदि।

इन दलों के अतिरिक्त राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान ही कुछ साम्प्रदायिक वर्गीय तथा स्थानीय दलों का भी उदय हुआ। इनमें मुस्लिम कान्फ्रेस, मद्रास की जास्टिस पार्टी, बंगाल की कृषक प्रजा पार्टी, यू0 पी0 की राष्ट्रीय कृषक पार्टी, पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी, बम्बई की डेमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी तथा दलित वर्गीय पार्टी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रकार सवनंत्रता से पूर्व भारत में अनेक राजनीतिक दलों का उदय हुआ किन्तु सिर्फ वे ही दल अपना अस्तित्व बचा पाये जो स्पष्ट सिद्धान्तों एवं नीतियों पर आधारित थे।

2. स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक दलों का विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में दलीय व्यवस्था ने ठोस संस्थात्मक आकार लेना प्रारम्भ किया। इस समय देश में राष्ट्रीय स्तर पर दो दल थे- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा साम्यवादी दल। कांग्रेस ने राष्ट्रीय पुनर्जागरण और स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका

निभायी थी। यथार्थ में स्वतंत्रता से पूर्व कांग्रेस का स्वरूप इनता विशाल था कि यह दल नहीं अपितु राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में एक मंच था। साम्यवादी दल का प्रभाव सीमित था। इसके अतिरिक्त दक्षिण में द्रविड़ कड़गन तथा उत्तर में हिन्दू महासभा जैसे दल विद्यमान थे। स्वतंत्रता के बाद अन्य राजनीतिक दलों का भी उदय हुआ। 1948 में राम राज्य परिषद की स्थापना हुई। 1949 में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम का उदय हुआ जो द्रविड़ कड़गम से अलग हुए कुछ व्यक्तियों द्वारा गठित किया गया था। 1950 में जय प्रकाश नारायण ने भारतीय समाजवादी दल की और आचार्य कृपलानी ने किसान मजदूर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की । 1951 में डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई।[5]

इस प्रकार 1957 के निर्वाचन के समय निर्वाचन आयोग ने चार दलों को राष्ट्रीय दलों के रूप में मान्यता दी। ये दल थे- कांग्रेस, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, साम्यवादी दल तथा भारतीय जन संघ। भारतीय राजनीति में राजनीतिक दलों के बनने, बिखरने, टूटने और संवरने का सिलसिला निरन्तर चलता रहा। इस प्रक्रिया ने न केवल दलीय व्यवस्था के स्वरूप को प्रभावित किया बल्कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप और इसके संचालन पर भी दूरगामी प्रभाव अंकित किये। 1959 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की प्रेरणा से स्वतंत्र पार्टी अस्तित्व में आयी जिसे 1962 के आम चुनावों में राष्ट्रीय दल की मान्यता मिल गई।

चौथे आम चुनाव 1967 में दो अन्य दलों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुए। ये दल थे। संयुक्त समाजवादी पार्टी तथा भारतीय साम्यवादी दल, मार्क्सवादी। यह वह समय था जब कांग्रेस का विरोध मुख्य हो चला था और भारतीय राजनीति में उसे चुनौती देने वाले तत्व प्रभावी होने लगे थे। यहीं से क्षेत्रिय दलों का उभार प्रारम्भ होता है।[6]

1969 में स्वतंत्रता पश्चात कांग्रेस का पहला विभाजन हुआ। कांग्रेस नई कांग्रेस (श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में) व संगठन कांग्रेस में विभक्त हो गई। 1971 में लोकसभा चुनावों में श्रीमती गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस को परास्त करने के लिए स्वतंत्र पार्टी, जनसंघ, सोशलिस्ट पार्टी और संगठन कांग्रेस ने महागठबंधन का निर्माण किया। किन्तु यह महागठबंधन चुनावों में परास्त हुआ और नई कांग्रेस को लोकसभा में दो तिहाई बहुमत प्राप्त हुआ। 1972 में सोशलिस्ट पार्टी व प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का पुनः विलय हो गया जिसके परिणामस्वरूप एक नया दल अस्तित्व में आया- सोशलिस्ट पार्टी ऑफ इन्डिया। किन्तु कुछ समय बाद इसमें पुनः फूट पड़ गई और उनके समर्थकों ने दिसम्बर 1972 को लखनऊ में पुरानी संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी को पुनर्जीवित किया। जनसंघ भी विघटित होने से नहीं बच सका। जनसंघ से निष्कासित होने के बाद इसके वरिष्ठ नेता बलराज मधोक ने अप्रैल 1973 में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चा नामक एक नये दल का गठन किया।

1974 मे भारतीय क्रान्ति दल, स्वतंत्र पार्टी, उत्कल कांग्रेस, किसान मजदूर पार्टी, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और पंजाब खेतीबाड़ी जमींदार यूनियन जैसे दलों ने अपने अस्तित्व को एक में विलीन करते हुए भारतीय लोकदल का गठन किया। चौधरी चरण सिंह इस दल के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

15 जून 1975 को इन्दिरा सरकार ने आपात काल की घोषणा कर दी। अधिकांश विपक्षी नेता बन्दी बना लिये गये। कांग्रेस के तानाशाही नेतृत्व के विरूद्ध, 1977 में जब चुनाव घोषित हुए, चार गैर साम्यवादी दलों-संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल और समाजवादी दल ने मिलकर जनता पार्टी के नाम से एक नई पार्टी, का गठन किया। इस पार्टी के निर्माण में जय प्रकाश नारायण की प्रेरणा प्रमुख रही। इस नये दल के गठन ने कांग्रेस के असन्तुष्टों को आकृष्ट किया। 2 फरवरी 1977 को जनजीवन राम और श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा ने कांग्रेस से अलग होकर लोकतांत्रिक कांग्रेस नामक नये दल का गठन किया और जनता पार्टी के साथ मिलकर चुनाव लड़ने का निश्चय किया। मार्च 1977 में हुए चुनावों में कांग्रेस को पराजय का मुंह देखना पड़ा और मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी। 1 मई 1977 में चुनाव आयोग ने जनता पार्टी को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्रदान कर दी।[7]

जुलाई 1979 में जनता पार्टी विभाजित हो गई। राजनारायण ने जनता (सेक्युलर) के नाम से एक नये दलका गठन किया। 15 जुलाई 1979 को मोरारजी सरकार का पतन हो गया। चौ0 चरण सिंह प्रधानमंत्री बने किन्तु लोकसभा में शक्ति परीक्षण से पूर्व ही उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। 26 सितम्बर 1979 को जनता सोशलिस्ट पार्टी तथा उड़ीसा की जनता पार्टी ने मिलकर एक नये दल लोकदल का गठन किया। चौधरी चरण सिंह इसके अध्यक्ष और राज नारायण इसके कार्यकारी अध्यक्ष बने। इस बीच कांग्रेस भी अविभाजित न रह सकी। इन्दिरा समर्थकों और विरोधियों के मध्य अनवरत रूप से चलने वाले सत्ता संघर्ष के कारण 2 जनवरी 1978 को कांग्रेस का पुनः विभाजन हो गया और दो कांग्रेस पार्टी अस्तित्व में आई। इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस (ई) और ब्रह्मानन्द

रेड्डी की अध्यक्षता वाली कांग्रेस। इन्दिरा कांग्रेस का प्रभाव बढ़ता रहा और 1980 के चुनावों में उसे दो तिहाई बहुमत से विजय मिली

1980 के चुनावों के बाद जनता पार्टी की हार के बाद से इसके विधटन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही। इसके विभिन्न घटक अलग होते गये और अपना पृथक अस्तित्व कायम कर लिया। 6 अप्रैल 1980 को जनसंघ घटक ने भारतीय जनता पार्टी के नाम से एक नये दल का गठन किया। जगजीवन राम ने कांग्रेस नाम से एक नये दल का गठन किया।

1987 के बाद कांग्रेस (ई) का सशक्त विकल्प तैयार करने के प्रयत्न पुनः प्रारम्भ हुए। इस बार सूत्रधार की भूमिका में थे हरियाणा के चौधरी देवीलाल इस दिशा में पहला कार्य यह किया गया कि जनता पार्टी लोकदल (अ) और संजय विचार मंच का एक में विलय कर दिया गया। इसी बीच विश्वनाथ प्रताप सिंह ने अपने समर्थकों के साथ कांग्रेस (ई) छोड़कर ''जनमोर्चा'' की स्थापना की। बाद मे देवीलाल के प्रयासों से उनके पूर्वास्त संगठन में जनमोर्चा और कांग्रेस (एस) का भी विलय हो गया और एक नया दल ''जनता दल'' के नाम से अस्तित्व में आया। विश्वनाथ प्रताप सिंह को जनता दल का प्रथम अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। यह प्रयास यही नहीं समाप्त होता है। यह वह समय है जब क्षेत्रीय दलों को भी साथ लेकर चलने की आवश्यकता महसूस की गई। 17 सितम्बर 1988 को जनता दल, द्रमुक, असमगण परिषद् तेलगूदेशम आदि ने मिलकर राष्ट्रीय मोर्चे का गठन किया। आन्ध्र प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री एन0 टी0 रामाराव को इस मोर्चे की अध्यक्ष और वी0 पी0 सिंह को इसका संयोजक बनाया गया। 1989 के चुनावों में कांग्रेस को बहुमत नहीं मिला और न ही इस राष्ट्रीय मोर्चे को ही बहुमत मिला। फिर भी भाजपा और बामपंथी दलों के समर्थन से वी0 पी0 सिंह के नेतृत्व में गठबंधन सरकार बनी 1990 में भाजपा द्वारा समर्थन वापस ले लेने पर इस सरकार का पतन हो गया।

1979 में जनता पार्टी के पतन के बाद जिस तरह उसका विधटन प्रारम्भ हुआ उसी प्रकार जनता दल में भी विखंडन प्रारम्भ हो गया। जनता दल ही नहीं बल्कि 1990 में बाद से अधिकांश राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों में छोटे बड़े विभाजन हुए और नये दल अस्तित्व में आये। सत्तागत स्वार्थ, निजी महात्वाकांक्षा, व्यक्तित्व के टकराव अथवा नेतृत्व की निरंकुशता के कारण बनने वाले इन गुटीय दलों के कारण भारतीय राजनीति में दलों का दलदल सा बन गया।

इन दलों के अतिरिक्त समय समय पर क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय मांगों आवश्यकताओं समस्याओं एवं आकांक्षाओं के अनुरूप अनेक क्षेत्रीय दलों का भी गठन हुआ जिनका प्रभाव राज्य विशेष तक सीमित रहा। किन्तु इस सीमित क्षेत्रीय प्रभाव ने भारतीय राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था के क्रियान्वयन को असीमित रूप से प्रभावित किया। इन दलों में बिहार में लालू प्रसाद के नेतृत्व वाला, राष्ट्रीय जनता दल और समता पार्टी, उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी, असम गण परिषद, पंजाब में अकाली दल, हरियाणा में हरियाणा विकास पार्टी और लोकदल, महाराष्ट्र में शिवसेना, आन्ध्रप्रदेश में तेलगू देशम, तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम और ऑल इन्डिया द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, जम्मू कश्मीर में नेशनल कान्फ्रेन्स आदि महत्वपूर्ण भूमिका धारक रहे है।[8]

इन महत्वपूर्ण क्षेत्रीय दलों के अतिरिक्त अन्य अनेक छोटे दल भी भारत के राजनीतिक परिदृश्य पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराते रहते है। इनमें से कुछ प्रमुख है, लोकजनशक्ति, राष्ट्रीय लोकदल, लोकतांत्रिककांग्रेस, अपना दल (उ0 प्र0), तमिल मनीला कांग्रेस, पट्टालिमक्कल कांखी (तमिलनाडू) पीपुल डेमोक्रेटिक पार्टी, पैन्थर्स पार्टी (कश्मीर), झारखण्ड मुक्ती मार्चा (झारखण्ड), मणिपुर पीपुल्स पार्टी (मणिपुर) मिजो नेशनल फ्रन्ट (मिजोरम), नाग नेशनल फ्रन्ट (नागालैण्ड) सिक्किम संग्राम परिषद (सिक्किम), त्रिपुरा उपजाति सभा (त्रिपुरा), पीजेन्ट एण्ड वर्क्स पार्टी (महाराष्ट्र), महाराष्ट्रवादी, गोमान्तक पार्टी (गोवा), ऑल पार्टी हिल लीडर्स कान्फ्रेस, हिल स्टेट यूनियन, हिलस्टेट पीपुल्स डेमोक्रेटिक दल ऐसे भी है जिनका प्रभाव विस्तार एक व्यक्ति अथवा एक लोकसभा या विधानसभा क्षेत्र तक ही सीमित है जैसे पूर्व प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर की जनता पार्टी (राष्ट्रीय), सुब्रमण्यम स्वामी की जनता पार्टी आदि।

संदर्भ सूची :-

1. नील0 ए0 मैकडानल्ड ''पार्टी पर्सपेक्टिव : कम्पेरेटिव पोलिटिक्स'' (सम्पा0) 1963, पृ0- 335
2. थामस मैरी, ''पोलिटकल पार्टीज इन इण्डिया'' लिबरल टाइम्स, वाल्यू, IX नं0 1, 2001, पृ0- 17
3. अयोध्या सिंह, इन्डिया स्ट्गल, मैकमिलेन, 1977, पृ0- 475

4. अयोध्या सिंह, इन्डिया स्ट्गल, मैकमिलेन, 1977, पृ0- 476
5. निखिल चक्रवर्ती, ''गइबंधन की राजनीति से बचना मुश्किल'', दैनिक जागरण 8-12-1997
6. अजिन रे, ''इज इण्डिया पोलिटिकली पोल्यूटेड (जियो-सोशल प्रोटेस्टस एण्ड चैलेन्जेज) होरिजन पब्लिशर्स, इलाहाबाद 1998, अयोध्या सिंह, इन्डिया स्ट्गल, मैकमिलेन, 1977, पृ0- 344
7. जनता पार्टी के गठन में चार प्रमुख दलों संगठन कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल व समाजवादी दल ने भूमिका निभायी थी। आज इनमें से जनसंघ ही भारतीय जनता पार्टी के नाम से अस्तित्व में है। संगठन कांग्रेस अस्तित्व में नहीं है। भारतीय पार्टी के नाम से अस्तित्व में है। संगठन कांग्रेस अस्तित्व में नहीं है। भारतीय लोकदल व समाजवादी दल का या तो जनाधार घट गया है या इनके रूप बदल चुके हैं।
8. थामस मैरी, ''पोलिटकल पार्टीज इन इण्डिया'' लिबरल टाइम्स, वाल्यू, IX नं0 1, 2001, पृ0- 22

रामकृष्ण मिशन के सामाजिक एवं धार्मिक संदर्भ

डॉ० रिंकु कुमारी

एम.ए., पीएच.डी., इतिहास विभाग, एल.एन.एम.यू., दरभंगा

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार स्वयं व्यक्ति जबतक विकास के पथ पर अग्रसर नहीं होगा तब तक राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व का कल्याण सम्भव नहीं है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को अपने आंतरिक विकास की ओर उन्मुख और सचेष्ट होने की आवश्यकता है। व्यक्ति के विकास से राष्ट्र का विकास होगा तथा राष्ट्रों के उन्नयन से विश्व का कल्याण होगा। विकास तात्पर्य क्रमश: ही मानव का अतिमानव की ओर अग्रसर होना है। आन्तरिक विकास हेतु समुचित शिक्षा आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के आंतरिक शक्तियों का विकास है। अपनी आंतरिक शक्तियों का वर्द्धन कर हमलोग पूर्ण मानव की संज्ञा प्राप्त कर सकते हैं।

यजुर्वेद का मंत्रा है-

इषमूर्ज मादव। तथा त्वचा वयं संधनं जेष्य।

अर्थात् छात्रवर्ग को ऐसा उपदेश देना चाहिए की वे अपने जीवन के लिए इस उन्नादि योगों की पुवकल सामग्री प्राप्त कर सके और प्रत्येक प्रकार से बलवान एवं ओजस्वी बन कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ रख सके। जिस विद्या को प्राप्त करके विद्यार्थीजन जीवन निर्वाह तक न कर सके तथा निर्बल और शक्तिशून्य होकर रोगग्रस्त और अभाव पीड़ित रहे- वह शिक्षा व्यर्थ है। विद्या के लिए अर्थकारी होना परमावश्यक है। साहित्य शिक्षा के साथ यदि कला-कौशल का भी संमिश्रण रखा जाए और स्नातकों को किसी शिल्प का ज्ञान करा दिया जाए तो आर्थिक समस्याओं का सहज की समाधन हो सकता है। पुनश्च ऋग्वेद में निर्देश किया गया है-

रामस्खामुपसृजा। तथा

आ ना प्रयच्छतं रयि विश्वायुपोसस्मम।

उरू गायर्माध धोहि अवो न:।

द्रविणं च द्युत्तम। अश्टिर्न: पथिभि पारयंत।

अर्थात् धन के अभाव में कोई योजना पूरी नहीं हो सकती। नदी के धारा के समान धन हमारे समक्ष सदा बहता रहे। धन प्राप्ति के लिए परिश्रम तथा कर्मठता अनिवार्य है।

विवेकानन्द के जीवन-काल में भारत दासता के बन्धन में जकड़ा हुआ था और जनता में दु:ख एवं दरिद्रता का राज्य फैला हुआ था। वे यह समझते थे कि इस दु:ख एवं दरिद्रता का कारण जनता का शक्ति एवं आत्म-विश्वास खो देना है। अत: जीवन-पर्यन्त उनका यह प्रयास रहा कि जनता शक्ति अर्जित करे और यह शक्ति उनके मतानुसार धर्म और चरित्र का निर्माण करने वाली शिक्षा के मिलने पर ही सम्भव थी।

स्वामी विवेकानन्द का मत है कि भौतिकता और आध्यात्मिकता एक दूसरे के लिए आवश्यक है। वे एक दूसरे के पूरक हैं और पूर्ण सुख के लिए उनका आपसी सहयोग आवश्यक है। उनके अनुसार पश्चिमी भौतिकवाद को अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने तथा अपने भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए पूर्वी अध्यात्मवाद के संदेशों की ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार पूर्व के अध्यात्मवाद

को अपना जीवन स्तर ऊँचा उठाने हेतु पश्चिमी भौतिकवाद की सहायता लेनी चाहिए। इन समन्वीकरण के लिए आवश्यक है कि दोनों वादों की मान्यताओं का आदान-प्रदान हो। अपने कोलम्बो में दिये गये एक भाषण में स्वामी विवेकानन्द ने मान्यताओं के इस आदान-प्रदान की जोरदार वकालत की और अध्यात्मवाद के सन्देशों को पश्चिम में पहुँचाने का उत्तरदायित्व भारत पर रखा। उन्होंने कहा था कि भारत को आध्यात्मिकता के क्षेत्र में समस्त संसार पर विजय पानी है और आध्यात्मिकता की पताका समस्त पश्चिमी देशों में फहरानी है। उन्होंने कहा था कि पश्चिम के राष्ट्र अब यह महसूस करने लगे हैं कि केवल भौतिक सुखों से जीवन नहीं इन्तजार में हैं कि अध्यात्मवाद की लहर, उसके सन्देश और उसकी मान्यातायें वहाँ पहुँचे। की विजय पर विश्वास रखता है और जो नि:स्वार्थी, निर्मोही और त्यागी व्यक्तियों को उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। अत: भारतीयों को इस विजय-प्राप्ति के लिए आगे आना चाहिए और वेदान्त की पताका लेकर देश-विदेश जाने चाहिए। भारतीयों को आलस्य का त्याग कर इस कार्य में लग जाना चाहिए जिससे वे अपना और दूसरों को भला कर सकें।[2]

स्वामी विवेकानन्द के सन्देश को हम निम्नलिखित सात भागों में बाँट सकते हैं:-

1. सब धर्म समान है और उनका एक ही लक्ष्य है। अत: अपने ही धर्म में आस्था रखकर लक्ष्य की पूर्ति की जाय
2. ईश्वर सर्वव्यापी और निष्पक्ष है। उसका अस्तित्व प्रत्येक जीव में है
3. हिन्दुत्व का प्रत्येक अंग अपने में महत्वपर्ण और ठोस आधार पर है और उसमें से किसी अंग का निष्कासन अनुचित है।
4. अन्य धर्मावसम्बियों द्वारा हिन्दू धर्म की की गई आलोचना जो हिन्दुत्व की गलत व्याख्या पर आधारित है सारहीन है। हिन्दू संस्कृति और सभ्यता अध्यात्म की सही मान्यताओं पर आधारित और विवेकपूर्ण है।
5. अध्यात्म के क्षेत्र में हिन्दू धर्म हमेशा अग्रणी रहा है और रहेगा।
6. पश्चिमी भौतिकवादी सभ्यता की अन्धधुन्ध नकल भारतीयों के लिए हानिप्रद है।
7. भारतीयों की दशा तभी सँभलेगी जब वे हीनभावना का त्याग कर स्वयं में आत्म-विश्वास उत्पन्न करें और आत्म निर्भर बने।

स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना पहली मई, सन् 1897 में की थी जब वे विदेश यात्राओं से लौटे थे। रामकृष्ण मिशन मूल रूप से अध्यात्मवाद और मानवतावाद पर आधारित है। इसके तीन प्रमुख कार्य है: प्रथम है गरीबों की हर प्रकार से सहायताद्वितीयवेदान्त और स्वामी रामकृष्ण की शिक्षाओं का प्रभावशाली ढंग से प्रचार तथा अन्तिम है जन-कल्याण के लिए शिक्षा की स्वामी विवेकानन्द कट्टर वेदान्ती थे। वे वेदान्त को शाश्वत मानते थे और उसे किसी व्यक्ति की देन नहीं समझते थे। अत: वे उन्हें व्यक्तिगत प्रभाव ऊपर से मानते थे। वे वेदान्तों को भारत में वर्तमान सारे सम्प्रदायों को अपने में समेटने वाला समझते थे और वेदान्तों की समस्त व्याख्याओं को प्रगतिशील मानते थे। यद्यपि वे वेदान्त को किसी व्यक्ति की देन नहीं मानते थे, फिर भी वे किसी व्यक्ति द्वारा परिभाषित दर्शनों की आलोचना नहीं करते थे। द्वैत, अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत आदि को वे परस्पर-विरोधी नहीं मानते, वरन भिन्न-भिन्न व्याख्यायें मानते हैं। जो किसी व्यक्ति को सर्वोच्च आदर्श को पाने में सहायता देती हैं। यह सर्वोच्च से उस सर्वोच्च से एक होने का जिसे अद्वैतवाद में सर्वोपरि स्थान प्राप्त है।[3]

स्वामी विवेकानन्द के जीवन-दर्शन की अति महत्वपूर्ण विशेषता है विज्ञान के प्रति द्वेष का अभाव। वे वेदान्त को वैज्ञानिक और विज्ञान को वेदान्तिक समझते हैं तथा विश्वास करते हैं कि दोनों की आस्था समान सिद्धान्तों पर है। उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा है कि जब विज्ञान का शिक्षक कहता है कि सब चीजों में एक ही शक्ति है तो यह सोचना क्या अस्वाभाविक होगा कि सब वस्तुएँ ईश्वर की शक्ति का द्योतक है। दूसरा उदाहरण अग्नि का है जिसके अनेक रूप हैं, पर मूल रूप में अग्नि एक ही है। उसी प्रकार तीसरा उदाहरण आत्मा का है जो मूल रूप में एक होते हुए भी अनेक रूपों में सामने आती है।

स्वामी विवेकानन्द वैज्ञानिक अनुसंधन की प्रणाली का समर्थन करते हैं और चाहते हैं कि धर्मिक क्षेत्र में भी वैज्ञानिक अनुसंधन-प्रणाली का प्रयोग किया जाय उनका मत है कि धार्मिक निष्कर्षो को वैज्ञानिक अनुसंधान प्रणाली की कसौटी पर परखने से उन लोगें के हृदयों में भी धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न होगी जो इस भौतिकवादी युग में केवल वैज्ञानिक निष्कर्षों को सत्य मानते है।

स्वामी विवेकानन्द विश्व-बन्धुत्व और समस्त जीवों के अध्यात्मिक बन्धुत्व को मानते थे उनका कहना था कि संसार के समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा है; अगर अन्तर है तो केवल रूप का उन्होंने उदाहरणस्वरूप कहा कि एक प्रौढ का शरीर बड़ा होगा

जबकि बालक का छोटा। परन्तु आत्मा एक ही होगी, उसमें अन्तर नहीं होगी। इसी प्रकार वे समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा की उपस्थिति स्वीकार करते है; चाहे वह कोई छोटे से छोटा परिन्दा हो अथवा विशालकाय जानवर। इसी आधर पर वे संसार के समस्त प्राणियों में भाई-चारे बन्धुत्व का सम्बन्ध मानते हैं और वेदान्त के व्यावहारिक रूप पर बल देते हैं। उनका कहना था कि जो भी व्यक्ति मनुष्य में ईश्वर को नहीं देख पातावह उसे उसके अदृश्य रूप में कहाँ देख पायेगा। जो मनुष्य में ईश्वर नहीं पाताऔर उसका सही पथ-प्रदर्शन करे। उसे अपने को बालक का सहायक समझना चाहिएन कि शिक्षक। स्वामी जी ने कहा है कि कोई भी व्यक्ति दूसरे को शिक्षा नहीं दे सकताक्योंकि समय और अवसर आने पर मनुष्य बड़े से बड़े सत्य को जान लेता है और अन्त में स्वयं को शिक्षित करता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार बालक को उसके स्वाभाविक विकास में सहायता देनी चाहिए। यह सहायता प्रोत्साहन के रूप में होनी चाहिए और दबाव के रूप में नहीं। बालक को हर समय डाटने फटकारने मारते या उपदेश देने से उसका स्वाभाविक विकास रूक जाता है। उसके साथ सहानुभूति और प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए। उसे उचित-अनुचित बातें प्यार से बतलानी चाहिएँ और उसे सही दिशा में अधिक से अधिक प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। उसकी केवल गलतियाँ ही हर समय नहीं निकालनी चाहिये, वरन् उसकी उपलब्धियों पर उसे प्रोत्साहित भी करना चाहिए। केवल गलतियाँ ही इंगित करने से बालक में हीन भावना उत्पन्न होती है। उपलब्धियों को प्रोत्साहित करने से बालक का मनोबल बढ़ता है।[4]

मनुष्य अन्य प्राणियों से ऊँचा प्राणी कहा जाता है क्योंकि उसमें बुद्धित्व अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक है। बुद्धि की शक्ति की कोई थाह नही और बुद्धि-शक्ति का विकास एकग्रता द्वारा होता है। जितना ही एकाग्र अथवा दत्तचित्त होकर कार्य किया जाता है, उतनी ही सफलता प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में गम्भीर मनन और अटूट एकाग्रता द्वारा मनुष्य असम्भव को सम्भव बना देता है। यह शक्ति अथवा सफलता का मूल मंत्र है और शिक्षा का भी। वास्तविक शिक्षा गुजरी हुई घटनाओं अथवा अनुभवों का संकलन करना नहीं, वरन् मस्तिष्क को केन्द्रित करने की शक्ति का विकास है। यही मस्तिष्क की एकाग्रता शिक्षा का निचोड़ है।

स्वामी विवेकानन्द महर्षि दयानन्द की भाँति ब्रह्मचर्य पर बड़ा जोर देते हैं। उनके अनुसार ब्रह्मचारी वह है जो मनवचन और कर्म से पवित्रा होजितेन्द्रिय और संयमी हो तथा काम-शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति में परिणत कर सके। ऐसा व्यक्ति अल्पकाल में ज्ञानार्जन करने में सफल होता है, क्योंकि संयम और इन्द्रिय-नियंत्रण एकाग्रता के विकास में अत्यन्त सहायक होते हैं।[5]

विवेकानन्द यह विश्वास करते हैं कि अन्य लोगों की अपेक्षा ब्रह्मचारी की स्मरण-शक्ति अधिक तेज होती है और वह एक बार की देखी या सुनी वस्तु को अधिक समय तक स्मरण रख सकता है। अत: वह बालकों को ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने का जोरदार समर्थन करते हैंजिससे उनकी एकाग्रता शक्ति का शीघ्र विकास हो।

जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द चाहते हैं कि छात्रा ब्रह्मचारी हों, उसी प्रकार कुछ गुण वे शिक्षक में भी चाहते हैं। चाहते हैं कि शिक्षक शुद्ध आचरण का व्यक्ति हो, उसका व्यक्तिगत जीवन निष्कलंक, निष्पाप और त्यागमय हो। केवल त्यागी व्यक्ति जिसे सांसारिक वस्तुओं का मोह नहीं हो, वही नि:स्वार्थ भाव से शिक्षा प्रदान कर सकता है। विवेकानन्द चाहते हैं कि शिक्षक का व्यक्तिगत जीवन आदर्शमय हो, तभी वह अपने व्यक्तित्व से बालक को प्रभावित कर सकेगा ओर उसके निर्देशों का वे गलन से पालन करेंगे। बालक के स्वाभाविक विकास में आने वाली बाधओं को दूर करने तथा मार्ग-दर्शन के अतिरिक्त शिक्षक के बालक के प्रति कुछ और भी दायित्व हैं। उसे बालक को कुछ देना भी होता है और सबसे उत्तम वस्तु जो वह प्रदान कर सकता है वह है उत्तम चरित्र और निष्पाप जीवन-यापन की प्रेरणा। ये मूल्यवान् वस्तुएँ शिक्षक तभी प्रदान कर सकता हो जब उसके पास स्वयं ये वस्तुएँ हों।

अत: शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वह दबाब के स्थान पर प्रेम का मार्ग अपनाये। उसे नि:स्वार्थ भाव से बालकों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। तभी वह बालक को कुछ दे सकेगा और बालक उसे स्वेच्छा से स्वीकार करेंगे। आध्यात्मिक ज्ञानार्जन के लिए प्रेमपूर्ण व्यवहार आवश्यक है और नि:स्वार्थ प्रेम ही सर्वोत्तम माध्यम है। अगर शिक्षक किसी स्वार्थवश बालक के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है तो वह स्वयं अपने उत्तरदायित्व से गिर जाता है तथा छात्र के विकास का मार्ग अवरूद्ध करता है।

प्रेमपूर्ण व्यवहार आदर्श व्यक्तिगत चरित्र के अतिरिक्त शिक्षक में सहानुभूति का भी गुण होना चाहिए। सहानुभूति के अभाव में शिक्षक बालक के प्रति न्याय नहीं कर सकता। इस गुण के अभाव में वह अपनी सारी शक्ति का उपयोग छात्र के विकास के मार्ग को प्रशस्त करने में नहीं कर सकता और न अपने कार्य में रूचि ही ले सकता है। स्वामी विवेकानन्द ने इस गुण को और स्पष्ट करते हुए कहा है कि केवल ऐसा शिक्षक ही वास्तविक शिक्षा दे सकता है जो अपने स्तर को छात्र के आँख कान और मस्तिष्क

से देखेसुने और समझे।

छात्रों के गुण-वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए छात्रों में भी कुछ महत्वपूर्ण गुणों को होना आवश्यक है उन्हें संयमी और जितेन्द्रिय होने के साथ-साथ मन, वचन और कर्म से पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए। उनमें परिश्रम और अनुशासन की भावना तथा ज्ञान को अर्जित करने की तीव्र इच्छा होनी चाहिए। उनके मन में बराबर ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा-रूपी आग हमेशा जलती रहनी चाहिए। तभी वे अल्प-काल में अधिक से अधिक ज्ञानार्जन कर सकेंगे।

हम स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा-संबंधी उद्देश्यों को अधेलिखित प्रकार विभाजन कर सकते हैं बालकों में आत्म-विश्वास को भावना को जागृत करनाश्रद्धा की भावना उत्पन्न करना जीवन के व्यावहारिक पक्ष के प्रति जागरूकता आत्म-निर्भरता तथा भाइचारे को प्रोत्साहन पुस्तकीय ज्ञान का सीमित महत्वपूर्णता की चेतना तथा त्याग की भावना भरना। अब हम इन शीर्षकों की विवेचना एक करके नीचे करेंगे।

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक में आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न करना है और उसे यह समझाना है कि संसार में कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जो उसके लिए असम्भव हो। प्रत्येक व्यक्ति में छिपी हुई शक्तियाँ होती हैं जिनका अनुभव और उप योग बालक आत्म-विश्वास के सहारे कर सकता है। आत्म-विश्वास ही वह माध्यम है जिसके सहारे ये छिपी हुई शक्तियाँ निखरती हैं, उनमें चेतना आती है और वे सक्रिय हो उठती हैं। जब ये शक्तियाँ जागृत होती हैं, उनमें चेतना आती है और वे सक्रिय हो उठती हैं। जब ये शक्तियाँ जागृत होती हैं, व्यक्ति के जीवन में क्रान्ति होती है और उसके जीमन में पवित्रता, साहस तथा अध्यात्मिकता आती है। समस्त जीवन की शिक्षा का अथवा मूल मंत्र आत्म-विश्वास को जागृत करना है।

स्वामी विवेकानन्द मर्हिष दयानन्द के समान व्यक्ति में श्रद्धा की उपस्थिति को आवश्यक मानते हैं। उनका कथन है श्रद्धा व्यक्ति को सक्रिय बनाती है और उसे उन्नति के सही पथ पर ले जाती है। इसकी कमी से व्यक्ति का पतन होता है। श्रद्धा क्या हैइसकी उत्पत्ति व्यक्ति में किस प्रकार होती है, इस सम्बन्ध में विवेकानन्द का मत है कि श्रद्धा आत्मज्ञान से उत्पन्न होती है और आत्मज्ञान पाखंड से नहीं प्राप्त होता। पाखंड का तात्पर्य साधुवेष धारण करने अथवा अन्य कर्मकांडों के करने से है। आत्मज्ञान से तात्पर्य है अपनी छिपी हुई शक्तियों का ज्ञान, स्वयं में विश्वास तथा आत्मनिर्भरता। आत्मज्ञान ही सुख और समृद्धि प्राप्त करने तथा सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने का एकमात्र साधन है। अत: शिक्षा का लक्ष्य ऐसे ज्ञान को पाना है जिससे व्यक्ति में श्रद्धा का आविर्भाव हो।

स्वामी विवेकानन्द शिक्षा के भौतिक उद्देश्य के प्रति भी जागरूक थे। देश में निर्धनता और भुखमरी से वे दु:खी थे। वे चाहते थे कि शिक्षा का एक उद्देश्य यह भी हो कि करोड़ो देशवासियों की भोजन आदि प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। भौतिक आवश्यकता में विवेकानन्द संग्रह को सम्मिलित नहीं करते, वरन् उनका तात्पर्य जीवन-यापन की प्राथमिक आवश्यकताओं से है। वे चाहते थे कि शिक्षा द्वारा विश्व-बन्धुत्व की भावना बढ और मनुष्य का और देश द्वारा शोषण न हो। व्यक्ति अथवा राष्ट्र द्वारा दूसरों का शाषण कर धनी बनने के वे विरोधी थे।[6]

प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति-हेतु वे प्रत्येक राज्य की राजधानी में ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे जिससे लोगों को भरपेट और जीविका मिले। कृषि और उद्योग की शिक्षा पर इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने बल दिया है। वे लोगों को जीविका देने के उद्देश्य से कारखाने खोलने के पक्ष में भी थे।

शिक्षा द्वारा स्वामी विवेकानन्द व्यक्ति में आत्म-निर्भरता और भाइ-चारे की भावना को उत्पन्न करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि इस भावना के उत्पन्न होने से पृथ्वी पर से दु:ख एवं गरीबी का विनाश होगा। उनका कथन था कि संसार के समस्त धर्मो और सम्प्रदायों के मानने वालों, और समस्त दर्शनों में विश्वास करने वालों में एक ही शक्ति है। केवल उसका बाह्य रूप ही भिन्न-भिन्न है। यही नहीं वरन् संसार के संसार के समस्त प्राणियों में भी वही अनन्त शक्ति का वास है। अत: व्यक्ति में विश्वास बन्धुत्व की भावना शिक्षा द्वारा जागृत करनी चाहिए। आत्म-निर्भरता के विषय में स्वामी विवेकानन्द का मत है कि सांसारिक सुखों के मायामोह का त्यागने और बंधनों से छुटने का यह प्रमुख साधन है। अत: इसकी शिक्षा भी परमावश्यक है।

स्वामी विवेकानन्द पुस्तकीय ज्ञान को वास्तविक ज्ञान नहीं मानते थे। उनका मत था कि पुरानी घटनाओं अनुभवों सूचनाओं आदि के ज्ञान का सीमित महत्त्व है। वास्तविक शिक्षा अथवा ज्ञान वह है जो व्यक्ति के स्वाभाविक विकास का मार्ग प्रशस्त करें। ऐसी ही शिक्षा को वास्तविक अथवा सफल शिक्षा मानना चाहिए। उनका ऐसा भी विचार प्रतित होता है। कि पुस्तकीय ज्ञान व्यक्ति को मशीन बना देता है और मनुष्य की आत्मा की आवाज को दबा देता है। वे चाहते है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के स्वाभाविक

गुणों जैसे साहस शक्ति उत्साह धैर्य मनोबल आदि का विकास करना उसकी संकल्प-शक्ति को दृढश् करना तथा ईश्वरत्व का ज्ञान कराना होना चाहिए।7

आज संसार एक समान केन्द्र की ओर बढ़ता जा रहा है। विज्ञान और तकनीकी ज्ञान, परिवहन और संसार के साधनों ने संसार को साथ लाकर खड़ा कर दिया है। भौतिक समन्वय स्थापित किया जा चुका है। बौद्धिक रूप में भी समान विचार, समान वैज्ञानिक वस्तुएँ सारे संसार में फैल गयी है। विज्ञान के आविष्कारों और तकनीकी ज्ञान की खोज में आज संसार के सभी लोग बहुत नजदीक आ गये हैं। यातायात और संसार साधनों से संस्कृतियाँ जातियों और धर्मो का संगम हो गया है। आज के संदर्भ में सिर्फ एक ही दृष्टि अपनायी जा सकती है ओर वह दृष्टि अलगाव की न होकर व्यापकता असहिष्णुता की न होकर सामंजस्य की ओर घृणा तथा संकीर्णता की न होकर सभी मूल्यवान बातों को ग्रहण करने और उन्हें अपनाने की होनी चाहिए। अतः गाँधी तथा स्वामी विवेकानन्द के विचारों को मात्र भारतवर्ष को ध्यान में रखकर परखा नहीं जा सकता। विश्व के अनेक विचारक भारतीय विचाराधरा से प्रभावित हुइ है। इनमें उल्लेखनीय है जर्मनी के शोपान हावर, विंटननिट्स और प्रोफेसर लेस्नीअमेरिका के इमर्सनथॉर द्विरियरयफ्रांस के सिल्वायन लेवीसोवियत संघ के शवोत्सकीब्रिटेन के कोलबुक फ्रॉवेलहाफसन मैकडोनल और थामस और आयरलैंड के चीट्स और ए. ई. हाउसमैन सदृष प्रतिभाशाली साहित्यकार शिक्षा के मूल उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ. स्वामी विवेकानन्द अपनी पुस्तकष्टन्त भक्तपजहंसमष में लिखते हैं- कला साहित्य और संसार की विविध संस्कृतियों के विचारों के अन्वेषकराजनीतिक नेताओं की अपेक्षा लोगों के मस्तिष्कों और हृदयों में परिवर्तन करने मेंराष्ट्रीय सीमाओं का ज्ञान न रखते हुए भी अपनी विद्वता के प्रभाव सेयदि वह वास्तविक ही नये संसार के निर्माण के कार्य के लिए आवश्यक विनम्रता और सहिष्णुता का भाव जगाने में, हर तरह की घृणा असहिष्णुता और हठधर्मिता के प्रत्येक अवशिष्ट अंश को अपने अन्दर से बाहर निकाल फेकने में एक ऐसे महान लक्ष्य की और अग्र्रसर होने मेंजहाँ प्रत्येक जातिप्रत्येक संसकृति, प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रति हमारे मन में सम्मान की भावना रहेनिर्णयात्मक भूमिका अदा करते हैं।

धर्मिक शिक्षा को आवश्यक मानते हुए स्वामी विवेकानन्द विचार व्यक्त करते हैं कि कलासाहित्य और संसार की विविध संस्कृतियों के विचारो के अन्वेषक राजनीतिक नेताओं की अपेक्षा लोगों के मस्तिष्कों और हृदयों के परिवर्तन करने में राष्ट्रीय सीमाओं का ज्ञान न रखते हुए भी अपनी विद्वता के प्रभाव सेयदि वह वास्तविक ही नये संसार के निर्माण के कार्य के लिए आवश्यक विनम्रता और सहिष्णुता का भाव जगाने में हर तरह की घृणाअसहिष्णुता और हठधर्मिता के प्रत्येक अवशिष्ट अंश को अपने अदा से बाहर निकाल फेकने में एक ऐसे महान लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में जहाँ प्रत्येक मनुष्य मनुष्य प्रत्येक जाति प्रत्येक संस्कृति प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रति हमारे मन में सम्मान की भावना रहे। निर्णयात्मक भूमिका अदा करते हैं। दुनिया साहचर्य की भूखी है। स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं- ऋग्वेद से लेकर आजतक इस देश की संस्कृति हमें मिल-जुलकर समान आदर्शो और उद्देश्यों को प्राप्त करने का उपदेश देती रही है।[8]

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनासि जहानतम्।

समाना मंत्रः समितिः समानो समानं मनः सहचित्मेषाम्।

समानि वः आकृति समाना वा।

समानमस्तु वे मनो यथाः वःस सुसहासति।

समान ही तुम्हारा कार्य और तुम्हारी उपलब्धियाँ हो। समान ही तुम्हारे विचार और संकल्प हो। समान ही तुम्हारे हृदय की इच्छायें हो। इस प्रकार तुम सब में समानता हो।

प्रज्ञा मनुष्य के ज्ञान की गहराई हैजो उसे आध्यात्मिक अस्तित्व का बोध कराती है। स्वामी विवेकानन्द प्रज्ञा और प्रेम इन्हीं दो तत्वों को शिक्षा के मूल तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं। यहाँ यह धयान देने योग्य तथ्य है कि कि स्वामी विवेकानन्द प्रेम का प्रयोग धर्म के सार तत्व के रूप में स्वीकार करते हैं। धर्म का तात्पर्य पूजा करना ही नहीं है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए स्वामी विवेकानन्द के एक प्रसिद्ध श्लोक का उद्धरण देते हैं-

उत्तमां जसहजावस्था द्वितीया ध्यानधरण।

तृतीय प्रतिमा पूजा होम यात्रा चतुर्थि

वस्तुतः स्वामी विवेकानन्द शिक्षा के उद्देश्य को सीमित नहीं करना चाहते हैं। शिक्षा एक उन्नतिशील एवं समाजस्यपूर्ण जागृति की प्रक्रिया है। सत्य की एकता का भाव ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का एक में मिलाने का काम करना है। इस प्रकारी विज्ञान दर्शन यांत्रिकी एवं अन्य कलाओं में समरसता या ऐक्य प्रतिस्थापित होना है। इसी प्रकार विभिन्न विषयों को पढ़ाने समय शिक्षक विद्यार्थियों को स्वयं इस ऐक्य का प्रत्यक्ष अनुभव कराना है।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा विकसित शिक्षा पद्धति में व्यावसायिक शिक्षा की अनिवार्यता पर बल नहीं दी गई है। स्वामी विवेकानन्द समन्वयवादी है। वे प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति तथा नवीन वैज्ञानिक उद्‌भावनाओं में सामंजस्य स्थापित कर एक आदर्श शिक्षा पद्धति को प्रस्थापित करना चाहते हैं दोनों की महान विचारक गाँधी तथा स्वामी विवेकानन्द भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में विज्ञान और प्रज्ञान के अधार पर व्यक्तित्व का सर्वतोन्मुखी शारीरिक नैतिक बौद्धि तथा आध्यात्मिक विकास करने वाली ऐसी स्र्वागपूर्ण शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते हैं जिसके परिणामस्वरूप गतिशील जीवन के अनुरूप सुसंस्कृतसुयोग और कार्यकुशलता नागरिक का निर्माण किया जा सके। दोनो को ही यह प्रयास है कि पूर्व के प्रचीन भारतीय संस्कृतिक एवं आध्यात्मिक संस्कारों तथा पाश्चात्य भौतिक सफलताओं के मध्य समन्वय किया जायें।[9]

संदर्भ श्रोतः-

2. स्वामी निर्वेदानन्दजी 1995 चतुर्थ संस्करणविवेकानन्द साहित्य दस खंडरामकृष्ण मठअद्वैत आश्रमकलकत्ता पृ0-220
3. रोमा रोलांकि लाइफ ऑफ विवेकानन्द पृ0-191
4. स्वामी विवेकानन्द साहित्यचौथा खण्ड पृ0-301
5. स्वामी विवेकानन्द साहित्यखण्ड-1पृ0-87
6. सिंहरामगोपाल 2014 अ : विवेकानंद की भारतीय समाज की परिकल्पना भारतीय समाजशास्त्र समीक्षा 1, 1 पृ. 10-19
7. सिंहरामगोपाल 2015 भारतीय समाज में महिला-पुरुष सम्बन्ध के बदलते प्रतिमान नेशनल पब्लिशिंग हाउसजयपुर
8. विवेकानंद 2011 अ : जाति संस्कृति और समाजवाद द्वारिकानाथ तिवारी (अनूदित) रामकृष्ण मठनागपुर

जननायक कर्पूरी ठाकुर: एक परिचय

डॉ० सुनीत कुमार

पी0 एच0-डी0 (इतिहास), शिक्षक, राजकीयकृत मध्य विद्यालय, खुटौना, मधुबनी

भारतीय राजनीति में विशेष रूप से बिहार की राजनीति में जननायक कर्पूरी ठाकुर के योगदान को स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जा सकता है। लोकनायक के जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं से पूरे देश ही नहीं, खासकर मिथिलांचल क्षेत्र ज्यादा वाकिफ रहा है। कर्पूरी ठाकुर के व्यक्तित्त्व एवं इनके विभिन्न क्षेत्रों में देश या खासकर मिथिला में इस तरह की परम्परा पूर्व, मध्य तथा आधुनिक युग में नहीं रही है ताकि उनके विषय में कुछ लिखा जा सके। उनके व्यक्तित्तव से युवा खासकर आनेवाली पीढ़ी को उनकी कार्यशैली से निश्चित रूपेण प्रेरणा मिलती रहेगी। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक हो जाता है कि उनके समकालीन व्यक्ति ही उनकी जीवनी के बारे में कुछ लिख सकें अगर बॉसवेल नहीं होते तो 'सेमुअल जॉनसन' के बारे में जानकारी नहीं मिलती जननायक कर्पूरी जी को बॉसवेल जैसा कोई साथी नहीं मिल सका था। जर्मन कवि गोएथ को जॉन एकरमेन जैसा वास्तविक जानकारी देने वाला व्यक्ति नहीं मिल सका।[1]

20वीं शताब्दी में मिथिलांचल के एक महान योगी याज्ञवल्क्य सदृश विद्वान डॉ0 अमर नाथ झा थे, कोई भी महान व्यक्ति अपनी आत्मकथा यादगारी के लिए स्वयं नहीं लिखा। विश्व प्रसिद्ध फ्रेन्च 'रोमन रोनाल्ड और दुसरे अमेरिकन लेखक ऑस्वर्न श्रीराम कृष्ण परमहंस तथा महर्षि के बारे में न लिखे होते तो 20वीं शताबदी के इन दो चकित करनेवाले की जीवनगाथा की जानकारी पूरे विश्व को नहीं मिल पाती।

डॉ0 राम मनोहर लोहिया तथा लोकनायक जय प्रकाश जी ने भी अपनी जीवन कार्यशैली तथा रहन-सहन के विषय में कुछ नहीं लिखा। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और प्रजातांत्रिक समाजवादी संघर्ष में भाग लेने वाले के बारे में भी ज्यादा कुछ जानकारी नहीं मिल सकी, जो वर्तमान युवा एवं आनेवाली युवा पीढ़ियों के लिए मार्ग दर्शन हो सकती थी।

कर्पूरी ठाकुर का जन्म आधुनिक समस्तीपुर के पितौंझिया, (वर्तमान में कर्पूरी ग्राम) में मई 1921 में हुआ था। यद्यपि कर्पूरी जी के जन्म के बारे में सही तारीख पर विवाद रहा है। इनका जन्म नाई जाति के एक गरीब परिवार में हुआ था इनके जन्म के बारे में जियालाल आर्य तथा डॉ0 कुणाल के संयुक्त सम्पादन में प्रकाशित 'कर्पूरी अभिनन्दन ग्रन्थ' को आधार माना गया है।[2] इनके राजनीतिज्ञ पुत्र रामनाथ ठाकुर से उनके बारे में पूर्ण जानकारी मिल सकी। लेकिन एक बात अभी तक साफ नहीं हो सका है कि किस आधार पर बिहार सरकार द्वारा इनका जन्म दिन 24 जनवरी 1924 मानकर प्रत्येक वर्ष 24 जनवरी को जन्म तिथि को दिवस के रूप मे मनाया जा रहा है। ऐसा भी संभव है कि इनके मैट्रिक प्रमाण-पत्र में वर्णित तिथि को जन्म दिवस के रूप में मान लिया गया है।

कर्पूरी ठाकुर ने अपनी प्राथमिक शिक्षा ताजपुर के प्राथमिक विद्यालय में प्राप्त किया। उसके बाद मैट्रिक की परीक्षा तिरहुत एकेडमी समस्तीपुर से पास की। अन्तरस्नातक की परीक्षा उन्होंने सी0 एम0 साइन्स कॉलेज दरभंगा से पास की। स्नातक में उसी महाविद्यालस से अध्ययन के क्रम में देश के अन्य छात्रों के साथ अपने-आपको स्वतंत्रता आंदोलन में सहयोग की शुरूआत की। उनके पिता गोकुल ठाकुर बहुत ही कमजोर परिवार से आते थे, जिन्होंने अपनी पुस्तैनी कार्य (दाढ़ी बाल बनाना) आजीवन करते रहे। स्वाभाविक रूप से कर्पूरी जी का बचपन गरीबी तथा अत्यंत ही कष्ट में बीता।[3] विद्यालय के छात्रों का भोजन तथा उनके वस्त्रों का उपयोग वे अभाव में करते थे। वे पैदल ही, बिना जूते-चप्पल के विद्यालय आते-जाते थे। एक मजबूत इरादे से व्यक्ति किसी बात को ठान ले तो निश्चित तौर पर उस जोशीले व्यक्ति को सफलता मिलती है, बशर्ते कि उसकी इच्छा शक्ति दृढ़ हो। श्रीमद्भागवद्गीता के अनुसार-

अस्यानु ग्रहमिच्छामितस्य सर्व हराभ्यहम्।[4]

जो व्यक्ति स्वयं को महान बनने का उपाय सोचता है, सुख-सुविधा को प्राप्त करना चाहता है, उसे ही ईश्वर भी मदद करता है।

सिर्फ वंचित वर्ग अपने व्यक्तित्त्व के विकास के लिए आत्म शक्ति लगाकर कठिन मेहनत करता है वही परिश्रमी व्यक्ति महान बनकर सभी सुख-सुविधा को प्राप्त करता है। बाद में कर्पूरी जी को अहसास हुआ कि उन्होंने बी0 ए0 की उपाधि प्राप्त नहीं की। लेकिन विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए अँग्रेजी लिखना बोलना तथा हिन्दी में किसी बात की प्रस्तुति के लिए कॉलेज के दिनों में आवश्यक था।

कर्पूरी जी अपने पुस्तकालय में अँग्रेजी तथा हिन्दी की बहुत सी पुस्तकों एकत्रित किये थे। उनके अध्ययन के मेज पर हमेशा साहित्य की पुस्तकें रहती थी, जिनमें रामधारी सिंह दिनकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवपूजन सहाय, जानकी बल्लभ शास्त्री, यात्री नागार्जुन और फणीश्वर नाथ रेणु की पुस्तकें प्रमुख रूप से रहती थी। उर्दू की रचनाओं में इकबाल तथा गालिब उनके प्रमुख रचनाकारों में से थे।[5] एक अजीब संयोग था कि उनके पास अध्ययन करने का समय नहीं मिलता था। वे सुबह से लेकर देर रात तक अपने पार्टी कार्यकर्ताओं तथा विधान सभा क्षेत्र के लोगों के बीच व्यस्त रहते थे। उनका आवास गार्डेनर रोड पर फ्लैट संख्या 41 पर था। उन्होंने अपने परिवार को कभी पटना में नहीं रखा। 1967 में जब उप मुख्यमंत्री के पद आसीन हुए, उस समय कुछ महीनों के लिए ही परिवार को रखा। वे जब पटना में रहते तो उनके आवास के पास अवस्थित विधान परिषद् के केंटीन में ही भोजन किया करते थे। एक महज संयोग था कि जब वे भोजन के लिए केंटीन में जाते तो वे अपने कार्यकर्त्ता तथा अन्य सहयोगियों को भी आमंत्रित कर दिया करते थे।

समाजवादी नेता कर्पूरी ठाकुर ने अपने व्यक्तित्त्व, सादगी एवं ईमानदारी से बिहार ही नहीं, देश की राजनीति में ऐसे प्रतिमान स्थापित किए, जिनके करीब भी पहुँच पाना बाद की पीढ़ी के नेताओं के लिए दुरूह है। जन्म से लेकर प्रदेश के उच्च पदों पर रहते हुए भी अभाव में जीने की कला कोई उनके जीवन से सीखे सुख-समृद्धि का आकर्षण उनके व्यक्तित्त्व पर कभी हावी नहीं हो सका। निजी पूँजी के नाम पर उनके पास मात्र उनका अपना नाम 'कर्पूरी ठाकुर' ही बचा था।[6]

संपूर्ण देश के नेता, जनसामान्य विना भय-डर के द्वितीय विश्व युद्ध में लगे थे। यह युद्ध दो बड़ी शक्तियाँ जर्मनी तथा ग्रेट ब्रिटेन क बीच था। उसी समय क्रिप्स मिशन भारत आया लेकिन इस स्वाधीनता के बादे में कुछ न कहकर पुनः वापस लौट गया। गाँधी जी ने स्वतंत्रता के लक्ष्य को पाने का कोई भी मार्ग नहीं देखा। कांग्रेस कार्यकारिणी की एक सभा 14 जुलाई 1942 को रखी गयी, जिसके ऐतिहासिक फैसलों की प्रतीक्षा थी। इस फैसले पर सहमति के लिए कांग्रेस के उच्च नीति निर्धारक 7 अगस्त 1942 को बंबई में पं0 जवाहर लाल नेहरू से मिलकर उन्हे इससे बेहिचक पास करने का दवाव बनाया। यह बैठक लगातार तीन रात 8 अगस्त तक चलता रहा। गाँधी जी इस पर लगभग ढ़ाई घंटे तक हिन्दी तथा अँग्रेजी में अपना बक्तव्य देते रहे। उन्होंने करो या मरो का नारा दिया तथा वहीं उन्होंने कहा कि जब तक इस देश को स्वतंत्र नहीं किया जाता है, तब तक हमलोग चुप नहीं बैठेंगे ।

9 अगस्त की बैठक बम्बई तथा देश के कई अन्य भागों में हुई, जहाँ से सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। गाँधी जी को 'बा' मीरा बहन तथा महादेव देशाई के साथ पूना के आगा खाँ महल में भेज दिया गया। पूरे भारतीय अपने नजर के सामने इस तरह से हो रहे संघर्ष को देखा। सी0 एम0 कॉलेज दरभंगा के छात्रों का प्रदर्शन दिन-रात क्रमशः चलता रहा। उस समय कर्पूरी जी ललित नारायण मिश्र के साथ उसी कॉलेज में थे। उनके साथ एल0 एन0 झा तथा अन्य साथी भी थे, जो स्वतंत्रता आंदोलन तथा भारतीय आजादी के बाद में प्रसिद्धि प्राप्त की। उन लोगों को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। कर्पूरी जी तथा कुलानन्द वैदिक के अनुसार सिंघबाड़ा के क्षेत्र से संघर्ष की शुरूआत हुई। कर्पूरी जी ने भारतीय संग्राम में भाग लेने का निर्णय लिया। इसमें गुप्त वास तथा पुलिस द्वारा गिरफ्तारी का विरोध भी शामिल था। वे घूमते हुए उस गाँव में पहुँचे, जहाँ से आंदोलन की शुरूआत करनी थी। ये आंदोलन मुख्य रूप से युवाओं एवं छात्र-छात्राओं की शैली, पर निर्भर था।[7]

1943-44 में गुप्त रूप से रह रहे इन नेताओं का आंदोलन काफी महत्त्वपूर्ण था। इनमें कर्पूरी जी, रामोतार शर्मा, राजेन्द्र नारायण शर्मा, रामाकान्त झा, शारदानन्द झा चौधरी, राम किशोर राय, डॉ0 विद्यानन्द झा तथा देवनारायण गुरमैता इन सभी समाजवादियों का देश की आजादी में अच्छा योगदान था। गुप्त रूप से छुपे रहने के क्रम में कर्पूरी जी को मध्य विद्यालय के प्रधानाध्यापक के रूप में नियुक्त की गई, वह विद्यालय जिला बोर्ड के अधीन था। कर्पूरी जी काएक सिद्धान्त था- समाज और सरकार चलाने के लिए

नैतिकता और चरित्र इन दोनों की आवश्यकता होती है। सिर्फ कानून बना लेने से भ्रष्टाचार पर अंकुश नहीं लगाया जा सकता। उनका मानना था कि सामाजिक अराजकता दूर करने क लिए कथनी और करनी में ?र्क नहीं होना चाहिए।[8]

कर्पूरी ठाकुर को बिहार की जनता ईमानदारी का पर्याय मानती थी लोग इस बात को महसूस करते थे कि उनके बीच का ही कोई अपना आदमी हमेशा उनके हित चिन्तन में लीन बिहार की गद्दी पर बैठा है। आज के नेता अपने व्यक्तित्त्व को भव्य पोशाक तथा गाड़ियों के काफिले से सँवारने का प्रयास करते हैं। लेकिन कर्पूरी जी का व्यक्तित्त्व तथा चरित्र ही ऐसे प्रयासों को बौना बना देता था। उनके चरित्र पर डॉ0 राम मनोहर लोहिया की अमिट छाप थी। जे0 पी0 के गुणों को भी उन्होंने आत्मसात किया था। 1952 से लगातार विधान सभा में सदस्य बने रहे। उनका संसदीय जीवन भी उतना ही संजीदा, गरिमामय और अनुशासित था, जितना कि उनका निजी जीवन, विषय चाहे जो कोई भी हो, वे जब विधानसभा में बोलने लगते थे, तो उस विषय पर उनकी पकड़ देखते ही बनती थी। विधान सभा में बोलने से पूर्व वे काफी पढ़कर तैयार होकर जाते थे। दर्शक दीर्घा से लेकर सदन में पक्ष-विपक्ष के सभी सदस्य उनके भाषण को तल्लीनता से सुनते थे। कर्पूरी जी छात्र जीवन से ही काफी मेधावी थे।[9] राजनैतिक जीवन में भी उन्हें पढ़ने-लिखने का काफी शौक था। वे प्रदेश के मुख्यमंत्री तथा जिस किसी भी पद पर रहे, जब उनके सामने कोई भी संचिका आती थी, तो प्रशासनिक पदाधिकारियों के टिप्पणियों की अशुद्धि को वे अपने कलम से ठीक कर देते थे। लोग उनकी प्रशासकीय हिन्दी और राष्ट्रभाषा प्रेम को 'कर्पूरीडिबीजन' कहकर मजाक उड़ाया करते थे। कर्पूरी जी के बारे में कम ही लोगों के नजर में थी कि वे अँग्रेजी के बहुत अच्छे वक्ता तथा जानकार भी थे।

कर्पूरी जी का उस समय पुस्तैनी घर पितौंझिया में झोपड़ीनुमा था। पटना में उन्हें एक ईंच भी जमीन नहीं थी। समाजवादी पार्टी के ही एक विधायक ने उनसे कह दिया कि पटना में एक अपना मकान रहना जरूरी है। इस बात पर वे काफी गुस्से में आकर कहा कि आप पटना में मकान बनाइये। हम लोगों को जनता ने अपनी सेवा के लिए पटना भेजा है न कि मकान बनाने के लिए। जब हम विधायक नहीं रहेंगे तो पटना में न रहकर गाँव में रहेंगे। 1967 में गैर कांग्रेसी संविदा सरकार मे कर्पूरी जी उपमुख्यमंत्री तथा महामाया प्रसाद मुख्यमंत्री थे। उस समय कर्पूरी जी की एक मिशाल दी जाती थी। तत्कालीन सभी मंत्री, अत्यंत ही ईमानदार तथा प्रशासनिक सूझ-बूझ वाले थे। जबतक वह सरकार चली, तब तक बिहार के प्रशासन में प्रखंड से लेकर सचिवालय स्तर तक किसी की भी हिम्मत नहीं थी कि वह घुस का एक पैसा भी छू ले। इस प्रकार यह तत्कालीन हुकूमत तथा दबदबा वाली सरकार थी।[10] आज के सरकार में जितना घुस पर अंकुश लगाने का प्रयास किया जा रहा है, उतना ही घुस तथा भ्रष्टाचार बढ़ता ही जा रहा है।

कर्पूरी जी के एक सहकर्मी समस्तीपुर जिले के ही विख्यात स्वतंत्रता सेनानी रामोतार शर्मा एक कार्यालय गुप्तरूप से खोल रखा था। पुलिस ने एक दिन उस पर अकस्मात छापा मार दिया। इसके बाद उस कार्यालय को चुपचाप उसी मध्यविद्यालय में रखा गया। वशिष्ठ नारायण सिंह, राजेन्द्र नारायण शर्मा और रामाकान्त झा आदि भी उसमें शामिल थे। वे लोग वहाँ गिरफ्तार कर लिया गया। उनलोगो को दरभंगा जेल में रखा गया। 10 महीने बाद कर्पूरी जी सहित उन सभी क्रान्तिकारियों को भी भागलपुर के जेल में भेज दिया गया। इनमें शर्मा जी को केन्द्रीय कारा तथा कर्पूरी जी को केम्प जेल में भेज दिया गया। भागलपुर जेल में ब्रह्मदेव नारायण सिंह और शिवाकान्त झा भी उसी जेल में थे। इन दोनों को अण्डमान जेल से लौटाकर एक बम ब्लास्ट केस में भागलपुर जेल लाया गया था। कर्पूरी जी उस जेल में विभिन्न माँगों को लेकर 20 दिनों तक उपवास तोड़ दिया। कर्पूरी जी जब जेल में थे तो उन्हें कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का सदस्य बनाया गया। जब उन्हें जेल से रिहा किया गया तो वे पार्टी सदस्य के रूप में सक्रिय होकर कार्य करने लग गये। 1946 मे जमींदारी प्रथा के विरूद्ध कांग्रेस सोशिलस्ट पार्टी द्वारा किसान सभा गठित की गयी थी, उसमें भी वे सक्रिय रहे।[11] 1949 में इस पार्टी का प्रान्तीय सम्मेलन झरिया मे आयोजित की गयी, उस प्रान्तीय सम्मेलन में पण्डित रामनन्दन मिश्र को प्रेसिडेन्ट तथा कर्पूरी ठाकुर को इस किसान सभा के सचिव के रूप में चयन किया गया। इस क्रम में कर्पूरी जी को पटना से दरभंगा लाया गया। 1949 और 1953 में सोशिलस्ट पार्टी ने बिहार के विभिन्न भागों में एक ऐतिहासिक किसान मार्च का आयोजन किया जिसमे पटना के गाँधी मैदान तक सभी कार्यकर्त्ता पैदल ही आये। इस पार्टी के सभी नेताओ ने इस मार्च में भाग लिया, जिनके साथ किसान और कार्यकर्त्ता भी थे। पंडित रामनन्दन मिश्र भी किसान के वेश में इसमें भाग लेने दरभंगा से पटना तक आये। इस क्रम में कर्पूरी जी भी बहुत सारे किसानों एवं कार्यकर्त्ताओं के साथ ताजपुर पटना के उस सारी भीड़ में पहुँचकर अपना वक्तव्य दिया जो काफी प्रभावशाली और लाभप्रद रहा।

जननायक कर्पूरी ठाकुर 17 फरवरी 1988 को इस दुनिया से अपने कर्मो विचारों को आने वाली पीढ़ी के लिए छोड़ कर चल बसे, उनकी मृत्यु पर यह कहा गया की वे मरे नहीं, अभी जीवित है इस धरती पर इस तरह के व्यक्ति आते रहेंगे। कहा भी गया है की- ''**कीर्तिर्यस्य स जीवति**''

संदर्भ सूची :-

1. डॉ0 सुरेश्वर झा-जेम्स ऑफ मिथिला, शिवालिक प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम सं0 - 2014, पृ0- 465
2. डॉ0 सुरेश्वर झा-जेम्स ऑफ मिथिला, शिवालिक प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम सं0 - 2014, पृ0- 466
3. डॉ0 सुरेश्वर झा-जेम्स ऑफ मिथिला, शिवालिक प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम सं0 - 2014, पृ0- 467
4. श्रीभद्गवद्गीता - पृ0- 218
5. डॉ0 हरिश्चन्द्र सहनी भारत के रत्न बिहार के मोती - राजायदु अयोध्या गंगदेव नारायण संस्थान गंगौली, समस्तीपुर (बिहार) प्रथम सं0 - 2013, पृ0- 203
6. जेम्स ऑफ मिथिला - उपर्युक्त - पृ0- 467
7. जेम्स ऑफ मिथिला - उपर्युक्त - पृ0- 467
8. भारत के रत्न बिहार के मोती, पृ0- 204
9. भारत के रत्न बिहार के मोती, पृ0- 203
10. भारत के रत्न बिहार के मोती, पृ0- 204
11. भारत के रत्न बिहार के मोती, पृ0- 205

औद्योगिक नगरीय संरचना एवं बिहार के जनजातीय समुदायः एक अध्ययन

डॉ० प्रियंका कुमारी

एम०ए०, पीएच०डी० (इतिहास), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारतीय जनजाति वे है, जो अपने रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज तथा धार्मिक एवं सामाजिक भावनाओं मे आदिम है अथवा जिन्होंने आदिम मानव की कई विशेषताओं को आज की सभ्यता से बचाकर सुरक्षित रखा है। यही कारण है कि जनजाति जो किसी समय भारत के आदि निवासी थे, धीरे-धीरे अपने को बाहरी आक्रमणकारियों के प्रभाव से बचाने के लिए यहॉ की समतल भूमि से दूर चले गये। इनमें कुछ पर कम और कुछ पर सभ्यता का अधिक प्रभाव अवश्य पड़ा, फिर भी आदिम जातियों के मूल तत्वों को आज भी बचाए हुए हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ० घुरियें ने इन्हें तथाकथित आदिवासी (सो काल्ड एवरिजिंस) या पिछड़े हिन्दू कहा हैं। भारत में इन्हें आरण्यक, जंगली लोग, रानीपुरज, जनजाति एवं आदिवासी आदि नामों से पुकारा जाता है।[1] अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई०एल०ओ०) ने इन्हें आदिवासी माना है। हालाँकि जनजाति की स्पष्ट व्याख्या करना कठिन है।

सामान्य जनता की दृष्टि में जनजाति का अर्थ वे भोले-भाले लोग जो जंगलों ओर पहाड़ों में रहते है, शिक्षित वर्ग इन्हें नाचने-गाने में मस्त और रंगीली रूप में पहचानता है, जिसकी देखभाल की विशेष जरूरत है। मानवशास्त्री ऐंसे लोगों को जनजाति के रूप में पहचानते हैं, जिसकी देखभाल की विशेष जरूरत है। मानवशास्त्री ऐंसे लोगों को जनजाति के रूप में पहचानते है जिन्होंने अपना सदियों पुराना रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा समाजिक संगठन उसी रूप में सुरक्षित रखा है, और जो समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए उपयोगी जानकारी प्रस्तुत करता है। अर्थशास्त्री की दृष्टि मे जनजाति वे व्यक्ति है, जिनकी आर्थिक व्यवस्था अन्य समुदायों की अपेक्षा काफी पिछड़ी होती है। जनजातियों के संबंध में विभिन्न अध्ययनों के अतिरिक्त डॉ० रिवर्स ने अपनी परिभाशा इस प्रकार दी है- ''यह एक साधारण प्रकार का सामाजिक समूह है जिसके सदस्य एक सामान्य बोली बोलते है, तथा युद्ध आदि जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते है।'' रिवर्स ने अपनी परिभाशा में सामान्य निवास का उल्लेख नहीं किया है, क्योकि अनेक जनजातियाँ खानबदोशी जीवन व्यतीत करती है। यह एक सर्वसम्मत तथ्य है कि जनजाति समुदाय की अपनी एक विशिश्ट भाशा, संस्कृति, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था, पुराकथा व प्रजाति होती है। आम तौर पर यह देखा जाता है कि जनजाति एक निशचित भू-भाग पर बसे हुए होते हैं। उन्हें देश का प्राचीनतम निवासी माना जाता हैं, और ऐसी भी मान्यता है कि बाहरी आक्रमण से बचने के लिए ये दुर्गम क्षेत्रों में शरण लेने के लिए बाध्य हुए होंगे।[2]

स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजों ने जनजातियों एवं गैर जनजातीय लोगों को एक दूसरे से पृथक रखकर आपसी आर्थिक प्रतिस्पर्धा को न्यूनतम बनाए रखा। जिसके कारण यह जनजाति अपने विशिष्ट जीवन शैली को बिना किसी व्यावधान के बनाए रखा। भारतीय जीवन की मुख्य धारा से उन्हें अलग रखना, जनजातीय परम्पराओं को सुरक्षित रखने में सहायक तो सिद्ध हुआ, किन्तु इसके साथ ही उनमें समाज में बढ़ती हुई स्पर्धा का सामना करने की क्षमता की वृद्धि नहीं हुई। स्वतंत्र भारत के संविधान में नेहरू ने जनजातीय लोगों के विकास एवं कल्याण हेतु अपनी प्रतिबद्धता सुनिश्चित की। अब तक उनमें होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप जनजातीय लोग अपनी पुरानी निद्रा से जागते हुई दिखाई पड़ते है। स्वतंत्र भारत का संविधान एक विशेष प्रकार से जनजातीय लोगों के कल्याण तथा विकास के लिए प्रतिबद्ध है। जनजातीय लोग अपनी शताब्दियों पुरानी निद्रा से जाग चुके हैं। वेरियर बलविन के शब्दों में ''सड़के प्रत्येक स्थान पर उनका मार्ग बना रही है, जो अब तक वास्तव में अधिगम्य थी। जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार हुआ, तथा हो रहा है, वैसे-वैसे वह जनजातीय ग्रामों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में क्रान्ति उत्पन्न कर रही है, तथा नई कुशलताओं को जन्म देने

के साथ ही नयी मार्गों का सृजन कर रही हैं। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य जिसका हमें सामाना करना है, वह प्रत्येक प्रकार के परिवर्तनों का प्रभाव है जो भारत के पहाड़ी क्षेत्रों तथा वनों में एक छोर से दूसरे छोर तक फैल रहा है जिसमें लोगों तथा सरकार द्वारा और स्वयं जनजातियों द्वारा प्रारम्भ किये गये परिवर्तन प्रमुख है। आज जनजातीय लोगों को अपने इतिहास में विकासात्मक संकट का सामाना करना पड़ रहा है।''[3]

भारत में वर्तमान जनजातीय स्थिति की सर्वाधिक घनात्मक विशेषता यह है कि जनजातीय जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अपनी समस्याओं का समाधान खोजने की आवश्यकता के प्रति जागरूकता की स्थिति में पहुँच चुका है उसके प्रति अत्यन्त क्रियाशील है, किन्तु उनकी यह माँग उचित है कि प्रगति और उन्नति उनके जीवन की विशिष्ट जीवन शैली व सामंजस्य को उपद्रवित न करें। वे अधिकतर अपनी निजी संस्थाओं द्वारा ही सहायता प्राप्त करना चाहते हैं। एक जनजातीय गृह अथवा परिवार वह मूल आधार है जिस पर उसके कल्याण का भावी भवन निर्मित हो सकता है। एक स्वतंत्रता, जो इन्हें उस बात का निर्णय करने की आजादी नहीं देती है कि वह अपने भाग्य को किस प्रकार मोड़ेगें, सरकारी कार्यक्रम जो उन्हें यह विकल्प नहीं देते कि वह अपने विकास को कैसे संगठित करेंगे तथा किस-किस उद्देश्य के लिए, वे प्रयत्नशील है। भारतीय समकालीन जनजातीय स्थिति का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न जिसका हम सामना कर रहे हैं वह राष्ट्रीय तथा जनजातीय हितों में सामंजस्य स्थापित करना है। एस.सी. दुबे ने यह कहते हुए एक यर्थाथवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है कि जनजातियों को भारतीय समाज में अपने सम्मान के अनुरूप अपने लिए एक स्थान की खोज करनी होगी, किन्तु यह एक राष्ट्र के रूप में भारत की एकता अथवा शक्ति को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाए बिना करना होगा। एक विकासशील समाज की बढ़ती की बढ़ती हुई स्पर्धा का सामना करने योग्य बनाते हुए अनिश्चित भविष्य की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए जनजातीय सामर्थ्य को और विकसित करना होगा। आज हम एक नये युग की दहलीज पर खड़े है। भारतीय समाज के अन्य सदस्यों के साथ जनजातीय लोगों ने भी इस युग में प्रवेश किया है किन्तु वे किसी को अपने जीवन की समन्वयता भंग करने की अनुमति देने के लिए तैयार नहीं है। वे नियोजकों, प्रशासकों तथा सामान्य जनमानस की ओर से अपने जीवन, लोकरीतियों समस्याओं के प्रति श्रेष्ठतर संवेदनशीलता व सराहना के अधिकारी है।

नगरीय समुदाय में व्यक्ति नितान्त एकांकी जीवन व्यतीत नहीं करता बल्कि वह अपनी विभिन्न आवश्यकताओं का पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क एवं संबंध स्थापित करता है। उसकी आवश्यकताएँ उसे नगरीय समुदाय के विभिन्न नगरीय औपचारिक संस्थाओं एवं संगठनों से संबंधित कर देती है और समाजिक सहभागिता एवं आत्मनिर्भरता नगरीय सामुदायिक जीवन की एक केन्द्रीभूत विशेषता बन जाती है। सामाजिक सहभागिता का तात्पर्य नगरीय व्यक्ति के ऐसे क्रियाकलापों एवं अन्त:क्रियाओं से है, जिसे वह नगरीय समुदाय के विभिन्न औपचारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं के सम्पर्क द्वारा सम्पादित करता है। साथ ही उन औपचारिक समाजिक अन्त:क्रियाओं एवं संबंधों से भी है, जिससे व्यक्ति अपने पड़ोसी, रिश्तेदार, मित्र, सहकर्मी एवं अपनें वर्गीय स्तर के व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। सहभागिता का यह स्वरूप स्वभावत: नगर समुदाय में निहित प्रवृति एवं उपसंस्कृति समूहों के साथ जुड़ती है।[4]

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से वर्तमान नगर समुदायों की संस्कृति विभिन्न उपसंस्कृति समूहों के समुच्चय से निर्मित एक संश्लिष्ट-संस्कृति के रूप में दृष्टिगत है। नगरों में सामाजिक सहभागिता का मोटे तौर पर दो स्वरूप हैं, औपचारिक और अनौपचारिक। औपचारिक सहभागिता का तात्पर्य नगर के विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं की सदस्यता एवं उसकी सहभागिता से है। औपचारिक सामाजिक सहभागिता नगरीय जीवन-शैली का मूल स्तम्भ है। नगरीय जनसंख्या के विस्तृत आकार, धनत्व एवं विभिन्नता के कारण नगरीय व्यक्ति की आवश्यकतायें अनेक होती है तथा वह इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न संस्थागत एवं संगठनात्मक माध्यमों का प्रयोंग करता है। आवश्यकता के अनुरूप विशिष्ट संस्था की सदस्यता एवं उसके क्रियाकलापों में भाग लेकर वह अपना हित सम्बर्द्धन करता है। अत: औपचारिक सामाजिक सहभागिता नगरीय सामुदायिक जीवन के उस आदर्श प्रारूप को प्रतिबिम्बित करती हैं, जिसके अनुसार नगरीय समुदाय में व्यक्ति के संबंध अस्थायी, स्वार्थी द्वैतीयक क्षणिक एवं खण्डात्मक होते है।

नगरीय समुदाय में सहभागिता का द्वितीय प्रमुख स्वरूप अनौपचारिक सामाजिक सहभागिता है। व्यक्ति, मित्र, पड़ोसी, सहकर्मी तथा अपने वर्ग के सदस्यों से अन्त:क्रिया करते हुए अपने व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सामुदायिक जीवन को व्यतीत करता है। इस प्रकार की सहभागिता यद्यपि नगरीय अन्त:क्रिया के औपचारिक प्रारूप का विरोधाभास है तथापि नगरीय जीवन का यह एक वास्तविक सत्य भी है। नगरीय समुदाय में सहभागिता का एक अन्य स्वरूप सूचना-सम्प्रेषण के साधनों में सहभागिता है। नगर में

साक्षरता के उच्च स्तर एवं सामाजिक विगोपन की अधिकता के कारण व्यक्ति सूचना सम्प्रेषण वृहद् साधनों जैसे रेडियो, टेलीवजन, समाचार-पत्र, पत्रिका इत्यादि से भी प्रभावित होता है। अत: सामाजिक सहभागिता के अध्ययन में सूचना-सम्प्रेषण के साधनों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। आधुनिक समाज में बड़ें नगरों की भूमिका निरन्तर बढ़ती जा रही है, और साथ ही विभिन्न प्रकार के आबादी केन्द्रों-नगर और गाँव, नगर, केन्द्र और नगर उपांत के बीच भेद और वैशम्य प्रगाढ़ होते जा रहें हैं। बड़े नगर विकास की रफ्तार के मामले में मझौले नगरों से भी और छोटे नगरों से भी कहीं भागे है, साथ ही महानगर अथवा ''आक्टोपस नगर'' का रूप धारण करते जा रहे है। छोटे नगरों की अन्योन्यक्रिया केवल अपने आस-पास के इलाके से ही होती है। इसके विपरीत बड़े नगर का प्रभाव क्षेत्र कही विशाल है। सुदूर संबंधों के बिना उसका अस्तित्व संभव नहीं हैं। बड़े नगर में सबसे विकसित सामाजिक कार्यकलामों का परिश्कृत रूप में सर्वाधिक संकेन्द्रण होता है। बड़ा नगर समाज की भौतिक और आत्मिक संपदा के पुररूत्पादन और संचय का सबसे कारगर साधन है, तथा संस्कृति के उत्तरोत्तर अभ्युदय, प्रसार, विकास एवं बहु सांस्कृतिक संश्लेषण का समन्वित रूप प्रस्तुत करने में महानगरों की भूमिका विशेष प्रकार्यात्मक दीख पड़ती है।[5]

औद्योगिक युग में उत्पन्न नगर निर्माणकारी नये कारक ''उद्योग'' ने सभी सामाजिक, आर्थिक और नगरीकरण संबंधी प्रक्रियाओं को तीव्र बना दिया है। सदियों तक उत्पादन रीति, सामाजिक संरचना और परविहन तथा संचार साधन अपरिवर्तित रहे थे। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में पश्चिमी देशों में और उन्नीसवीं सदी के मध्य से भारत में जो औद्योगिक क्रान्ति शुरू हुई, उसने काल के इस मंथार प्रवाह को तीव्र धारा में बदल डाला। मानव जाति ने इस महान समाजिक आर्थिक रूपान्तरणों और वैज्ञानिक अविश्कारों के युग में पदापर्ण किया। वह विश्व को एक नयी दुष्टि से देखने लगा। इस प्रकार आधुनिक नगर की संवृद्धि उद्योगों के विकास पर भी निर्भर होती गयी क्योंकि उद्योगों की बदौलत ही नगर में पूंजी, मजदूर, कच्चामाल और आवास संकेन्द्रित होते है।

भारत में नगरीकरण का विकास औद्यागिकीकरण संचार साधनों के विकास के साथ शुरू हुआ, जो स्वयं पाश्चात्य सम्पर्क के परिणाम थे। सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ में पुर्तगालियों द्वारा ईसाई मिशनरियों के प्रेरणा से भारत में छपाई का कार्य शुरू किया गया और अंग्रेजों की प्रेरणा से प्रथम प्रेस बम्बई में स्थापित हुआ। लिखित समाचार पत्र यद्यपि मुगल साम्राज्य के समय में प्रारम्भ हो चुके थें, किन्तु छपें हुए समाचार पत्र पश्चिमी सम्पर्क के बाद ही आया। नगरीय समाजों मे विराट औद्योगिक संस्थाओं, परिवहन और संचार के साधनों जैसे रेल, वायुयान और समूद्री पोत, मोटर, प्रेस, रेडियों, डाक-तार व्यवस्था, मुद्रा और सेनाओं के लैस करने के आधुनिक शस्त्र आदि आधुनिक सभ्यता की वस्तुए है। नगरों के विद्युत प्रकाश में जगमगाते विशाल प्रसाद, सिनेमा, होटल, व्यवसायिक संगठन और तड़क-भड़क तथा प्रचुरता से भरे जीवन को देखकर मनुष्य चकाचौंध हो जाता है। जीवन के अधिकांश क्रियाओं में नगरीयता स्पष्ट दिखने लगती है। प्रकृति पर मनुष्य का उत्तरोत्तर नियंत्रण बढ़ रहा हैं। नगरीय समाज की इस अवस्था को नगरीय सभ्यता के नाम से इंगित किया जा रहा है। नगरीय वृद्धि के क्षेत्र में भारत में स्वाधीन्ता प्राप्ति के पहले दशक में ही आभूतपूर्व परिमाणात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन आ गया। इन वर्षो में ही देश में इतनी नयी बस्तियॉं और कस्बे बस गये, जितने पूर्ववर्ती इतिहास के पाँच हजार वर्षो मूं भी नही बसे थें, वह एक सर्वथा नये आधार पर अभूतपूर्ण आवासन-प्रवासन हुआ जो इसके पूर्व नहीं हुआ था। औद्योगिकरण और समाज की उत्पादक शक्तियों के अत्यन्त तीव्र विकास का एक नजीजा यह निकला है कि अभूतपूर्व पैमाने पर नगरों की संवृद्धि तथा नगरीकरण तो हुए ही है साथ ही तथाकथित जनसंख्या विस्फोट भी हुआ है भारत तथा अन्य कृषि प्रधान देशों के लिए जनसंख्या की तेज वृद्धि विशेषत: लाक्षणिक है।[6]

यदि नगरीकरण के विकास की रफ्तार आज जैसी ही रही तो इसमें से एक तिहाई जनसंख्या नगरों में रह रही होगी। आर्थिक विकास के इतिहास में नगरीकरण को तकनीकी और सामाजिक विकास का प्रमुख घटक माना जाता है। विभिन्न अर्थ व्यवस्थाओं में विकास और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आधारिक रूप से नगरीकरण से उत्प्रेरित होती रही है अत: यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास नगरी करण के विकास से जुड़ा है। यह भी स्वीकृत किया जाने लगा है कि ग्रामीण क्षेत्र का नगरीय क्षेत्रों में आगमन आर्थिक विकास का सूचक है। ग्रामीण विकास में नगरीकरण का विभिन्न रूपों में प्रभाव पड़ता है। नगरीकरण का प्रसार स्वत: नवीन संस्थाओं के अभ्युदय को प्रश्रय देता है, जिससे ग्रामीण समज में आधारित परिवर्तन होने लगता है।

दरअसल नगरीकरण तीन तथ्यों को इंगित करता है :- (क) नगरीय जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि (ख) नगरों के संख्या या उसके क्षेत्रफल में वृद्धि और (ग) अन्त में नगरीय आदर्शो एवं मूल्यों का विस्तार। यह साधारण तौर पर माना जाता है कि नगरीकरण औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है। नगरीकरण औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के रूप में दों तत्वों को सम्मिलित करता है-(क) संकेन्द्रण के आकार में वृद्धि, जो सभी को एक साथ नगरीय परिवेश में रहने के बढ़ोतरी हेतु पहले से तैयारी करता है। मिचेल

नगरीकरण को नगर होम की प्रक्रिया, नगर को जाना, कृषि के दूसरे व्यवसाय या उद्यम जो नगर में सामान्य है, उसकें तरफ परिवर्तित होना एवं उससे संबंधित व्यवहार प्रतिमान के परिवर्तन को मानतें है।[7] दूसरे शब्दों में वह नगरीकरण शब्द के प्रयोग को बढ़ाते हुए नगरीय क्षेत्र को उसके विकास के प्रकारों एवं मानदण्डों के विशिष्ट व्यवहार के माध्यम से वर्णन करता है। उसी प्रकार पी०के० भौमिक (1976) नगरीकरण को मुख्यतया कृषि पर निर्भरशील समुदाय को दूसरे समुदाय सामान्यतया बड़ा, जो प्राथमिक रूप से सरकार, वाणिज्य उत्पादन कार्य या तत्संलग्न कार्य से केन्द्रित है, को व्यक्तियों के स्थानान्तरण के रूप में परिभाषित करता हैं। उसने दो समुदाय कृषि एवं गैरकृषि को पेशा और कार्य विशेषीकरण के आधार पर अन्तर स्पष्ट किया है। दूसरी तरफ नगर तुल्य क्षेत्रों में नगर के अनुकूल क्रियाकलापों ओर गतिविधि में लोगों की संलग्नता, जहाँ वें अंकित किये जा सके, इस विशेष दृष्टि बिन्दु से नगरीकरण डेविस की राय कृषि से औद्योगिक व्यवसाय तथा नगरीय जीवनवृत्ति में उन्मुख करने वाली प्रक्रिया एवं अभियान है।[8] उसी प्रकार राजेन्द्र अवस्थी (1962) के दृष्टिकोण के अनुसार, नगरीकरण एक भौगोलिक क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि, जिसकों मापा जा सके के अर्थ में समझते है। इस प्रकार सांचयकीय उददेश्य के लिए नगरीकरण की मात्रा को नागरीय क्षेत्र में रहने वाले जनसंख्या के अनुपात के आधार पर परिभाषित किया। नगरीकरण भी एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में माना जाता है, जो कि मनुष्यों में जीवन के ढ़ंग में महान रूपान्तरण लाता है।[9]

निष्कर्ष

समकालीन नगरीय आर्थिक संरचना में उद्योग-धन्धों, नौकरी, व्यवसाय आदि के केन्द्रीयकरण के कारण प्रत्येक उपसंस्कृति के व्यक्तियों का यहाॅ आव्रजन होजा है, जिनका स्थाई या अस्थाई तौर पर नगर में निवास और जीवन-यापन होता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् औद्योगिकरण, नगरीकरण, नवीनीकरण, पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण के साथ-साथ आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा, संविधान, धर्मनिरपेक्षता, समाजवादी व्यवस्था आदि के कारण भारतीय जनजातियों के भी परम्परावादी सामाजिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन आये हैं। फलस्वरूप इन परिवर्तनों ने समाज वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया है। हिन्दू, समाज अनेक जातियाँ एवं जनजातियाँ के सम्मिश्रण से बना है। इनमें सबसे नीचें अनुसूचित जनजातियाँ आती है। इन्हें अनेक प्रकार की निशेधों व निर्योग्यताओं द्वारा नियंत्रित किया गया है। इनकी जनसंख्या तो तेजी से बढ़ रही है, साथ ही इनकी मृत्यु दर में भी काफी कमी आयी है। इनकी दशाएं भारतीय सामाजिक सरचना के अनेक मौलिक विशेषताओं से काफी गहराई से जुड़ी हुई है। अतः परिवर्तन की प्रक्रिया से इनका अछुता रहना असम्भव है।

सन्दर्भ

1. अवस्थी, राजेन्द्र (1962), ''हमारे आदिवासी'', बम्बई प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, पृ0 13.
2. अटल, योगेश और सिसोदिया, यतीन्द्र सिंह (2011), ''अदिवासी भारत'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0 33
3. उपरोक्त.
4. उपरोक्त.
5. जेसेन, शीजा (2011), ''भारतीय जनजातियाँ, मौलिक प्रकाशन, जयपुर, पृ. 38.
6. दास, शिवतोष (1964), ''विश्व की आदिवासी जन-जातियाँ'', रामप्रसाद एण्ड संस, आगरा, पृ0 83.
7. चौधरी, एस.एन. और मिश्रा, मनीश (2012), ''आदिवासी विकास उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ, भाग-1, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी पर्यवेट लि., नई दिल्ली, पृ0 92.
8. भौमिक, पी०के० (1976), ''एप्रोच टू ट्राइबल डेवलपमेंट'', इंटर इण्डिया पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ0 23-24.
9. अवस्थी, राजेन्द्र (1962), पूर्वोक्त.

भारतीय राजनीति में मतदान व्यवहारः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

अवधेश कुमार सिंह

सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, देशबंधु कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांशः

मतदान व्यवहार से आशय मतदाता अपने मताधिकार के प्रयोग करते समय किन-किन तत्वों से प्रभावित होता है, अर्थात् कौन-कौन से तत्व हैं, जो व्यक्ति को मतदान करने के लिए प्रेरित और निरूत्साहित करते हैं। इस दृष्टि से चुनाव पूर्व और चुनाव बाद भी मतदान व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

मुख्य शब्द :- मतदान व्यवहार, मतदाता, चुनाव, लोकसभा, लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष आदि।

उद्देश्यः

प्रस्तुत शोध के अध्ययन का उद्देश्य भारतीय राजनीति में कौन-कौन से तथ्य हैं जिनसे भारतीय मतदाता प्रभावित होते हैं और अपना मत देते हैं अर्थात् उनका मतदान व्यवहार प्रभावित होता है, को स्पष्ट करना है तथा 17वीं लोकसभा के मतदान व्यवहार के निर्धरक तत्व का विश्लेषण करना।

विधितंत्रः

प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषणात्मक विध्तिंत्र को अपनाकर तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

भारत में मतदान व्यवहार के निर्धरक तत्वः

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। देश में वयस्क मताधिकार लागू है अर्थात् 18 वर्ष की आयु के प्रत्येक पुरूष-महिला को मत देने का अध्किार है। अब तक 17 लोकसभा चुनाव हो चुके हैं और प्रत्येक चुनाव में जनता द्वारा बढ़-चढ़कर भागीदारी की गई है।

भारत में मतदान व्यवहार से संबंध्ति किए गए अध्ययन में निम्नलिखित मुख्य राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक तथ्य उभरकर सामने आए हैं जिनसे भारत में मतदान व्यवहार प्रभावित होता है।

जातिः

भारत में जाति के राजनीतिकरण और राजनीति में जातिवाद भारतीय राजनीति की प्रत्यक्ष रूप से स्वीकृत की गई सच्चाई रही है। लगभग सभी राजनीतिक दल अपनी नीतियाँ, कार्यक्रम और चुनावी नीति का निर्माण सदैव जाति के तथ्य को ध्यान में रखकर ऐसा करते हैं। जैसे-राष्ट्रीय जनता दल बिहार में मुस्लिम-यादव यानि डल समीकरण पर आधरित राजनीति, ऑल इंडिया मजलिस-ए-इतेहादुल मुस्लिमीन (AIMIM) द्वारा मुस्लिम दलित आधरित राजनीति करना, बहुजन समाज पार्टी द्वारा बहुजन समाज आधरित राजनीति करना। इसी तरह अन्य सभी पार्टियाँ भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जाति आधरित राजनीति करती हैं, तभी तो

विद्वान मॉरिस जोन्स लिखते हैं कि, ''राजनीति जाति के लिए अध्कि महत्वपूर्ण है ओर जाति राजनीति के लिए पहले से कहीं अध्कि महत्वपूर्ण है।

धर्म:

यद्यपि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है, यहाँ राज्य द्वारा किसी भी धर्म को स्वीकार नहीं किया गया है। यहाँ राज्य द्वारा सभी धर्मों को एक समान रखने ओर समझने का प्रयास किया गया है। सभी लोगों को कोई भी धर्म माने या न मानने की स्वतंत्रता है लेकिन फिर भी भारत में धर्म आधरित राजनैतिक दलों की विध्मता है, जैसे-मुस्लिम लीग, अकालीदल, शिव सेना आदि। भारत में प्रत्येक राजनीतिक दल अलग-अलग चुनाव क्षेत्रों के लिए उम्मीदवार खड़े करते समय प्रत्येक क्षेत्र की धार्मिक स्वरूप के तत्व से भी प्रभावित होता है। वास्तव में आज भी धर्म भारतीय राजनीति का निर्धारक बना हुआ है।

भाषा:

भारत एक बहुभाषी देश है, यहाँ सैंकड़ों भाषाएँ बोली जाती है। भारतीय मतदान व्यवहार के निर्धारण में भाषा एवं भाषावाद भी एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व रहा है, भाषायी आधर पर प्रांत बनने से यह पूर्ण सिद्ध हो जाता है कि भारतीय राजनीति में भाषा का क्या महत्व है?

व्यक्तित्व:

व्यक्तित्व भी अन्य तत्व है जो देश के मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है। इसका उदाहरण 17वीं लोकसभा चुनाव में देख सकते हैं। भारतीय जनता पार्टी द्वारा नरेन्द्र मोदी के कुशल नेतृत्व में प्रचंड बहुमत मिलाअकेले का भाजपा (303) सीटें मिली । इसी तरह जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी, अटल विहारी वाजपेई, सोनिया गांधे जैसे नेताओं के व्यक्तित्व मतदाताओं के व्यवहार को निर्धरित करने में भूमिका निभाते रहे हैं।

उपराष्ट्रवाद:

पिछले कुछ दशकों से उपराष्ट्रवाद भी भारत के लोगों के मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाला तत्व बन गया है। कई बार अनेक अलगाववादी समूह चुनावों बहिस्कार का अहवान करते है और मतदाताओं को या तो मत नहीं डालने या किसी विशेष पक्ष में मत डालने के दबाव को दाव-पेंच के रूप में प्रयोग करते हैं। कुछ क्षेत्रीय दलों जैसे कि अकालीदल के कुछ गुट, नागा राष्ट्रीय संगठन, गोरखा लीग, झारखंड समिति, असम में आसु आदि समय-समय पर अलगाववादी नारा देते रहे हैं।

सत्ताधरी दल का व्यवहार:

प्रत्येक राजनीतिक दल चुनाव पूर्व अपना चुनावी घोषणा पत्र जारी करते हैं और सत्ता में आने के पश्चात उनसे यह आशा की जाती है कि वे अपने चुनावी वादों को पूर्ण करेंगे। चुनावों में किए गए वायदों और वास्तव में पूर्ण किए गए वायदों के आधर पर सताधरी दल का अच्छा या बुरा प्रदर्शन मतदान व्यवहार पर प्रभाव डालता है।

व्यापक स्तर पर अनपढ़ता तथा अज्ञानता:

अभी भी देश की लगभग 26: जनसंख्या अशिक्षीत है, इसलिए ही राजनीतिक दल, सांप्रदायिक समूह और उग्रवादी संगठन इस ताक में होते हैं कि लोगों को जाति, धर्म, भाषा तथा अन्य तत्वों के नाम पर भ्रमित कर मतदान को प्रभावित करते हैं, जिससे चुनाव परिणाम प्रभावित होता है।

गुटबन्दी:

भारत का राजनीतिक जीवनस्तर गाँव से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक चरित्र गुटबन्दी वाला है, जिससे भी मतदान व्यवहार प्रभावित होता है।

दल प्रतिबद्धताएँ :

भारत में राजनैतिक दलों के पास प्रतिबद्ध और जाने-पहचाने कार्यकर्त्ता होते हैं, जो सदैव ही अपने दलों और विचारों की नीतियाँ को स्वीकार करते हैं और प्रचार-प्रसार करते हैं और लोगों के मतदान व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

स्थानीय मुद्दे:

स्थानीय मुद्दे सदैव ही मतदाताओं को प्रभावित करते रहे हैं, जैसे क्षेत्रीय स्थानीय दल अकालीदल, ज्क्ण्च्ण, बिहार में राष्ट्रीय जनता दल आदि स्थानीय मुद्दों को आधार बनाकर चुनाव को नियोजित करते हैं ओर स्थानीय सुरक्षा का नारा लगाकर मत प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। जैसे बिहार में 2020 के विधनसभा चुनाव के पहले राज्य में सरकारी नौकरियों में डोमिसाइल नीति को लागू करने के लिए व्यापक स्तर पर प्रयास किया जा रहा है।

सामयिक मुद्दे:

सामयिक समस्याओं और लोगों के सामने विद्यमान कठिनाइयों के साथ-साथ वर्तमान राजनीतिक चुनावों के अवसर की घटनाएँ भी मतदान व्यवहार को प्रभावित करने का कार्य करती है, जैसे 17वीं लोकसभा चुनाव में बालाकोट एयर स्ट्राइक, सर्जिकल स्ट्राइक (2016) आदि मुद्दों का प्रचार-प्रसार कर सत्ताधरी दल द्वारा मतदान व्यवहार को प्रभावित करने का प्रयास किया गया।

17वीं लोकसभा और मतदान व्यवहार:

राजनीति में व्यवहारवादी आंदोलन के साथ-साथ मतदान व्यवहार जैसी राजनीतिक प्रक्रियाओं का अध्ययन प्रारंभ हुआ। भारत में मतदान व्यवहार का अध्ययन द्वितीय लोकसभा से किया जा रहा है। 17वीं लोकसभा में भाजपा के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय जनतांत्रित गठबंधन को 353 सीटें अकेले भाजपा 303 सीट मिली। कांग्रेस के नेतृत्व वाले गठबंधन को 92 सीटें मिली। कांग्रेस पार्टी को मात्र 52 सीटें मिली।

17वीं लोकसभा का मतदान व्यवहार जनता ने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के पक्ष में क्यों

किया, इसके पक्ष में विद्वान निम्नलिखित तर्क देते हैं-

- इस चूनाव में राष्ट्रवाद का मुद्दा छाये रहा।
- विपक्ष के बेरोजगारी, महंगाई, राफेल के सवाल आदि मुद्दे धरे के धरे रह गए।
- विपक्ष के पास एक सशक्त चेहरा नहीं था प्रधनमंत्री के उम्मीदवार के रूप में, जो नरेन्द्र मोदी का विकल्प बन सके।
- नरेन्द्र मोदी, अमित शाह की कुशल जोड़ी, जिसने प्रत्येक चरण के चुनाव के लिए अलग-अलग रणनीति बनाई और सफलता मिली।
- प्रधनमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा नारा देना ''मैं भी चौकीदार हूँ'' ने लाया रंग, ओर जीत मिली, विपक्षी उम्मीदवार राहुल गांधी का नारा ''चौकीदार चोर है'' हवा में उड़ गया।
- इस चुनाव में NDA के सभी घटक एकजुट नजर आए तो विपक्षी खेमा बिखरी नजर आई, जैसे उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी का तो गठबंधन हुआ, लेकिन कांग्रेस को अलग रखा गया, जिसका लाभ NDA को मिला।
- उसी समय अजहर मसूद पर प्रतिबंध लगा, चुनाव के कुछ महीने पहले बालाकोट एयर स्ट्राइक हुआ था। जनता को लगा कि देश को नरेन्द्र मोदी के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का एक मजबूत नेता मिल गया है, जिससे मतदान व्यवहार प्रभावित हुआ।
- विपक्ष की पूरी कोशिश के बावजूद कि नोटबंदी और G.S.T. के कारण देश की अर्थव्यवस्था डांवाडोल हो गई है, को जनता ने नकार दिया और नरेन्द्र मोदी के फैसलों का समर्थन किया।
- अमित शाह की चुनावी रणनीति एक बार फिर कारगर साबित हुई, जैसे छोटे-से-छोटे कार्यकर्त्ताओं से सीध संपर्क, विपक्ष को उसी के मुद्दे में जाकर घेरना, बेहतर मैनेजमेन्ट, बेहतर उम्मीदवार का चयन आदि मुद्दों ने मतदान व्यवहार को प्रभावित किया।

निष्कर्ष:

इस प्रकार भारत में मतदान को प्रभावित करने वाले ये महत्वपूर्ण निर्धरक रहे हैं। भारतीय राजनीतिक प्रणाली एक विकासशील लोकतंत्रीय व्यवस्था है जो कि 1947 के बाद निरंतर विकसित हो रही है। लोगों के मतदान व्यवहार को स्वभाविक रूप में कई सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तत्वों ने प्रभावित किया है। इन सभी को ही हम मतदान व्यवहार के निर्धरक कह सकते हैं, लेकिन विशेषकर इस तथ्य को आज हम सभी और हमारे साथ सभी लोकतांत्रिक देशों के लोग स्वीकार करते हैं कि भारतीय मतदाताओं ने सदैव अपने हितों, समय की आवश्यकता तथा लोकतंत्रीय राजनीतिक व्यवस्था की दृढ़ता ओर निरंतरता को सम्मुख रखकर मतदान किया है।

संदर्भ:

- N.C.E.R.T.
- डी. डी. वसु
- लक्ष्मीकांत (भारत की राजव्यवस्था)
- वी. के. त्रिपाठी
- ओस्टरणार्ड, गेफरे, ''डेमोक्रेटी इन इंडिया'', 1996
- सी॰ बी॰ गेना, ''तुलनात्मक राजनीतिक एवं संस्थाएँ''
- प्रो॰ श्रीप्रकाश मणि त्रिपाठी, ''राजनीति अवधरणाएँ एवं प्रवृत्तियाँ'', शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली।
- अहमद, ''इम्तियाज क्वाटेड फ्रांम गोविन्दराम वर्मा'', भारतीय राजनीति, दिल्ली।
- योजना, मार्च-2004
- कुरूक्षेत्र, मार्च-2004

बिहार प्रांत का निर्माण एवं नवीन सामाजिक-राजनीतिक शक्ति-संतुलन

डॉ० बिजेन्द्र कुमार सिंह

पी-एच0 डी0 (इतिहास विभाग), बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

1903 ई. में बिहार प्रादेशिक सम्मेलन के पहले अधिवेशन में बिहार को बंगाल से अलग करने का प्रस्ताव पारित किया गया। 1906 ई. में सच्चिदानंद सिन्हा बिहार को बंगाल से पृथक् करने का अभियान चलाया था। 1911 ई. में दिल्ली में आयोजित शाही दरबार में बिहार को नए प्रांत के रूप में पृथक करने की घोषणा सम्राट द्वारा की गई जिसमें उड़ीसा भी शामिल था। अप्रैल 1912 ई. को बिहार एक प्रांत के रूप में स्थापित हुआ जिसकी राजधानी पटना हुई।

1936 ई. में बिहार को उड़ीसा से अलग कर एक पृथक् स्वतंत्र प्रशासनिक इकाई का रूप प्रदान किया गया। 1956 ई. में राज्यों के पुर्नगठन के फलस्वरूप बिहार राज्य की सीमाएं परिवर्तित हुई।

वर्ष 2000 ई. में बिहार का एक बार पुनः विभाजन हुआ और 15 नवम्बर 2000 ई. को बिहार के दक्षिण भाग को काटकर एक अलग झारखण्ड राज्य बनाया गया जिसकी राजधानी रांची है। वस्तुतः बंगाल से अलग एक पृथक प्रांत के रूप में बिहार के गठन की मांग का सबसे बड़ा कारण सामाजिक-आर्थिक कारण था। यह एक प्रकार से बंगाली चेतना से अलग स्वतंत्र बिहारी चेतना एवं स्वाभीमान का जागरण भी था।

प्रस्तुत अध्ययन में उपरोक्त चेतना के आलोक में बिहार प्रांत के नवनिर्माण एवं उसके बाद बिहारी समाज में नवीन शक्ति संतुलन की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है।

शब्द कुंजी- यथास्थितिवाद, पिछड़ी जातियों, बिचवई जातियों, सामाजिक आंदोलन, स्वायत्तशासी इकाइयों,

परिचर्चा

बिहार के रूप में पृथक प्रांत के निर्माण ने रोजगार के नये अवसरों के मार्ग खोल दिये। अगड़ी जातियों के अलावा पिछड़ी जातियों के लोगों के भी शैक्षणिक विकास को आगे बढ़ाने का अवसर उपलब्ध हुआ। सम्पति के विभाजन और विखंडन के परिणामस्वरूप जमींदारों और धानी किसानों की समृद्धि में ह्रास ने बहुत दूर तक अंग्रेजी शिक्षा को उनके भाग्य को सुधारने के रूप में प्रेरित किया। 1920 के दौर में गिरती हुई कीमतों को सामना करने के साथ, खेती करना, घाटाप्रद रोजगार साबित हुआ एवं समुचित सिंचाई सुविधाओं के अभाव ने इसे एक अनिश्चित कार्यकलाप बना दिया। इसके अतिरिक्त लगान देने, दवा-दारू कराने, शिक्षा आदि के भुगतान के लिए तैयार नगद राशि की आवश्यकता ने कृषि से बाहर के रोजगार को बहुत आकर्षक बना दिया। 1901 के बाद जनसंख्या में द्रुतगति से विकास, परंपरागत शिल्पों के ह्रास, रोजगार की बहुत ही न्यून संभावनाओं के साथ औद्योगिकरण की धीमि रफ्तार, मध्यम और लघु उद्योगों की करीब नगण्य संख्या, भूमि के ऊपर दबाव को कम करने में उत्प्रवासन की असफलता ने धीरे-धीरे बेकारी की समस्य को गंभीर बना दिया।

कायस्थों के बाद शिक्षित बेरोजगार की समस्या का सामना करने वालों में प्रथम स्थान भूमिहारों का था। परिणामत: वे कायस्थों के साथ संघर्ष में आगे आये। कुछ दिनों के अंदर बिहार में दो गुट का उदय हुआ जिसमें एक गुट का नेतृत्व भूमिहारों ने किया तो दूसरे का कायस्थों और राजपूतों ने संयुक्त रूप से।

बिहार के जन-जीवन में कास्थयों और भूमिहारों के प्रमुख बन जाने के बाद, उन्होंने अपने को सामाजिक व्यवस्था में जातिय सोपान की क्रम परंपरा में उन्नत करने का आंदोलन शुरू किया। दोनों यह साबित करने के लिए कि समाज में वे श्रेष्ठ जातियां है- बौद्धिक प्रयास किये। सामान्यतया उनकी जातीय सभाएं यथास्थितिवाद की पोषक थी।

इसी प्रकार की रूझान कुछ पिछड़ी जातियों में भी देखी गई। किन्तु उनके आंदोलन उनकी दयनीय सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के विरूद्ध उनकी नाराजगी की अभिव्यक्ति का सारांश था। यद्यपि उन्होंने मौजूदा जाति व्यवस्था के ढ़ांचे में उर्धागामी सामाजिक स्थिति की आकांक्षा की थी और साथ ही उन्होंने ब्राह्मणों या क्षत्रियों की छापों का दावा भी किया था। उनकी प्रमुख मांगों में उच्चतर मजदूरी, काश्तकारी अधिकार, गैर-कानूनी जबर्दस्ती वसूली की रोक आदि मांगे शामिल थी। जातीय बंधनों को तोड़कर आगे आने वाला एवं सामाजिक आर्थिक मांगों के आधार निर्धन किसानों तथा खेतिहर मजदूरों को संगठित करने वाला सबल किसान आंदोलन का अभाव था। ये मांगे जातीय सभाओं द्वारा रखी जा रही थी। अत: इन सभाओं का संगठन सबल हुआ और वे बिहार के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने के लिए आगे आई।

1927 में स्वामी सहजानंद सरस्वती का भूमिहार महासभा की राजनीतति से मोहभंग हुआ और उन्होंने जमींदार भूमिहारों की राजनीति का विरोध करना शुरू किया। बाद में 1929 में सोनपुर मेले के अवसर पर बिहार किसान सभा की स्थापना हुई किसान सभा के प्रमुख नेताओं में अधिकांश भूमिहार थे। नेतृत्व में बहुत ही कम लोग दूसरी जातियों के थे। दूसरी जातियों से आने वाले प्रमुख नेताओं में पं0 यदुनंदन शर्मा, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, गुरू सहायलाल प्रमुख थे। नेतृत्व के अधिकांश लोग धानी किसान थे। इस संगठन में कोइरी, कुर्मी, यादव और धानुक समुदाय के लोगों का शायद ही कोई स्थान था। परिणामत: पिछड़ी जातियों को अपनी सामाजिक-आर्थिक गतिमुक्ति का मार्ग अपनी-अपनी जाति सभाओं में दिखाई पड़ा।

यद्यपि किसान सभा कृषि संबंधि सवालों पर जमींदारों की खिलाफत कर रही थी लेकिन राजनीति में जातीय गुटबंदी और सामाजिक संबंध ज्यों का त्यों बरकरार था। उसमें किसी प्रकार कमी टूट परिलक्षित नहीं होती थी। इस स्थिति में दूसरी जातियों विशेषकर पिछड़ी जातियों के किसानों के मन में किसान सभा के प्रति गहरा अविश्वास पैदा हुआ जो आज भी बिहार के राजनीतिक जीवन को गहरे रूप से प्रभावित करता है।

भूमिहार किसान नेताओं के व्यवहार का परिणाम था कि बिहार किसान सभा में विभाजन हो गया। किसान सभा के प्रभावशाली नेताओं के साथ गुरु सहाय लाल और उनके सहयोगियों की कटुता इस सीमा तक पहुंच गई कि उन्होंने अपनी को इस संगठन से अलग कर लिया और त्रिवेणी संघ की स्थापना में योगदान किया। परिणामत: किसानों की सर्वाधिक आबादी वाली प्रभावशील तीन जातियों अहीर, कुर्मी और कोइरी त्रिवेणी संघ के पीछे गोलबंदी हो गई। दूसरी ओर किसान सभा की नजर में त्रिवेणी संघ एक जातिवादी संगठन था। किसान सभा के नेता अपनी सभाओं में त्रिवेणी संघ की आलोचना करते और यहां तक कहते- आरा और सासाराम के खुदगर्ज वकीलों ने एक बोगस संस्था बनाई है जिसका नाम रखा है 'त्रिवेणी संघ'। काँग्रेस के पक्षधार समाचार पत्र संघ को जमींदारों द्वारा संचालित संगठन बताने की कोशिश में लगे थे।

जो भी हो किसान सभा एक शक्तिशाली वर्ग संगठन के रूप में बिहारी जीवन को प्रभावित करने में सफलता हासिल नहीं कर सकी। वह बटाईदारों, खेतों मजदूरों यहां तक कि छोटै और सीमांत किसानों को अपने संगठन के भीतर लाने की कोई पहल नहीं कर सकी। इसे अधिकांश बड़े नेता बड़े काश्तकार और कुछ तो सूद की कमाई करने वाले थे वे शायद ही कभी खेती में शारीरिक परिश्रम करते थे। ये सभी दैनिक मजदूरों को रखकर खेती करवाते थे। यहां तक गुरू सहाय लाल जिन्होंने किसान सभा से अपने को अलग कर लिया था-स्वयं प्रमुख किसान नेता थे, विधान परिषद् के सदस्य थे और पेशे से वकील थे। इनके पास 120 एकड़ जमीन थी और सालों भर 15 मजदूरों को रखकर खेती करवाते थे।

किसान सभा की प्रमुख मांग जमींदारी उन्मूलन की थी। जैसे ही जमींदारी उन्मूलन हुआ यह संगठन अपनी धार फिर से प्राप्त नहीं कर सका। खेत मजदूरों को अपने पक्ष में लाने के लिए जमींदारों ने कई फर्जी संगठन खड़ा करने के प्रयास किये थे। उनका उद्देश्य किसान सभा का विरोध करना था। दूसरा प्रयास जगजीवन राम ने 1937 में किसान मजदूर सभा की स्थापना कर किया था।

इस तरह न तो किसान सभा और न काँग्रेस पार्टी ने ही जनता की स्थायी एकता का प्रयास किया। किसानसभा खेत मजदूरों और बिचवई जातियों के किसानों को अपने संगठन में न ला सकी तथा काँग्रेस पार्टी व्यक्तिगत और जातिय झगड़े के कारण विभाजित घर बनकर रह गई थी। वह जनता की व्यापक एकता कायम करने में किल रही। एक तरह से काँग्रेस पार्टी बिहार में जातियों का संघ बनकर रह गई थी।

असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन जैसे व्यापक आंदोलनों का जब-जब ज्वार उमड़ा तब-तब जातिवादी राजनीति की गतिविधियां राजनीतिक परिदृश्य से ओझल हो जाती थी किन्तु जैसे ही यह ज्वार थम्हता था फिर जातीय राजनीति की शतरंज की मोहरें बिछनी शुरू हो जाती थी।

चूंकि काँग्रेस जमींदारों, धानी किसानों, सूदखोरों और व्यापारियों की मजबूत आर्थिक पकड़ को तोड़ने की कोई पहल नहीं कर सकी। न तो प्रांत के विकास के लिए कोई रूपरेखा ही प्रस्तुत कर सकी। फलत: सामाजिक जीवन का आर्थिक आधार ज्यों का त्यों बना रहा। अधिरचना में कोई फर्क नहीं आया। इस प्रकार बिहारवासियों के मुख्य दृष्टिकोण और स्वभाव में कोई प्रशंसनीय परिवर्तन नहीं हो सका। जातियों का संगठन ही एक मात्र वह महत्वपूर्ण आधार था जो लोगों को समर्थन और आश्रय प्रदान करता था।

1920 तक बिहार में कोई शक्तिशाली और स्थाई सभी बिहारियों का सामाजिक आंदोलन नहीं था जो जाति के बंधनों को काटकर सभी हिन्दू समाज के सभी लोगों को एकजुट करता जिसका उच्चलक्ष्य अथवा आदर्श होता जिस पर सबकी सहमति होती।

आर्य समाज, कबीर पंथ, नानक पंथ, दरिया पंथ जैसे विरोधी आंदोलनों का बिहार में अभाव ने भी जनता को अपनी जाति सभाओं से चिपके रहने एवं ऊधर्वगामी सामाजिक आंदोलन के माध्यम से अपनी सामाजिक आर्थिक समस्याओं का हल निकालने के लिए छोड़ दिया।

इस प्रकार बिहारी हिन्दुओं की चेतना को बदला नहीं जा सका। पिछड़ी जातियों के लोगों की सोच बनी थी कि उनकी दयनीय सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दु:खद स्थिति का कारण सामाजिक सोपान में निम्न जाति में पैदा होना है। उनकी यह समझ थी कि यदि एक बार वे सामाजिक सोपान में ऊपर आ जायेंगे तो उनको अपने भाग्य को ढ़ंग से संवारने का अवसर प्राप्त होगा तथा उनके विरूद्ध जो सामाजिक-आर्थिक भेदभाव बरता जाता है। उसका अंत हो जायेगा। वे यह समझने में असफल थे कि उनकी इस दयनीय स्थिति का कारण सम्पति संबंध है और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का देशी भूपतियों के साथ साठ-गांठ है। इन गठबंधनों को दोषी ठहराने की पहल करने में वे चूक गये।

किसान सभा और उसकी अभिमुखता तथा उसकी संरचना ने उनके इस विश्वास को सुदृढ़ किया था कि अगड़ी जाति के लोगों के वर्चस्व वाले संगठन से किसी प्रकार की आशा करना व्यर्थ है। संगठित वामपक्ष की सम्पूर्ण बिहार की शक्तिशाली राजनीतिक शक्ति बनने की असफलता तथा उसाक अस्तित्व जिस किसी भी रूप में था उसके नेतृत्व का बहुलांश ऐसी जाति के लोगों का था जो खास तरह की भूस्वामित्व वाली जाति थी जो अपने शोषण और उत्पीड़न करने वाली जाति के रूप में बदनाम थी। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन सबों ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरूआत स्वामी सहजानंद सरस्वती के प्रभाव के अंतर्गत किया था जिन्होंने पूर्णरूपेण अपना भावात्मक संबंध अखिल भारतीय भूमिहार ब्राह्मण महासभा से विच्छेद नहीं किया था। बल्कि उनका उसके साथ औपचारिक संबंध कायम था।

1920-30 के दौरान जब स्थानीय स्वायत्तशासी इकाइयों तथा जिला बोर्डो, लोकल बोर्डो, नगरपालिकाओं तथा असेम्बलियों के चुनाव होने को हुए तो जातीय कादारियों सामने आयी। 1952 के पूर्व तक मत देने का अधिकर शैक्षिणक और सम्पति की योग्यताओं पर आधारित था। सत्ता का संघर्ष मुख्यत: भूमिहार और राजपूत-जमीन रखने वाली दो प्रमुख जातियों के बीच था। कायस्थ मुख्यत: राजपूतों के साथ थे। राज्य में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का नेतृत्व इन्हीं दोनों गुटों के हाथ में था। पहला गुट सामान्यता धानी किसानों के हितों की हिमायत करता था और इसलिए वह कुछ दूर तक कृषि ढ़ांचे में तब्दीलियां चाहता था। स्थानीय स्वायत्ताशासी इकाइयों पर काँग्रेस का कब्जा हो गया था। काँग्रेस के नेता इन इकाइयों के माध्यम से अपनी जाति वालों का हितवर्धान करते थे। उन्होंने कभी भी सैद्धांतिक या वैचारिक अथवा पार्टी नीतियों और निर्देशों का इस्तेमाल पार्टी समर्थक बनाने के लिए नहीं किया। इस प्रकार महत्वपूर्ण सैद्धांतिक आंदोलन अथवा सामाजिक- आर्थिक कार्यक्रम की अनुपस्थिति में काँग्रेस के नेताओं ने शक्ति संघर्ष में अपनी जातिवालों का अपने पक्ष में रैली कराने में ही अपनी मुक्ति का मार्ग देखा। ध्यान रहे उस जमाने में स्थानीय शासन की इकाइयों के पास प्रश्रय देने का पर्याप्त साधन होता था।

पिछड़ी जातियों में धीरे-धीरे इस दौर में जिस तरह की चेतना जाग्रत हो रही थी-उसकी परिणति थी कि वे ऊंची जाति के दर्जा का दावा करने लगे, बेगारी करने से इंकार करने लगे, अपनी उत्पादित वस्तुओं को जमींदारों और सूदखोंरो को विशेष कीमत पर बेचने की बात करने लगे, काश्त की जानेवाली जमीन पर स्वामित्व की मांग तथा अबाव देने से इंकार इत्यादि से अगड़ी जाति के जमींदारों और सूदखोरों में उग्र प्रतिक्रिया हुई। फल यह हुआ कि जातीय दंगे होने शुरू हो गये। 1920-30 के बीच के दौर में बिहार के कई जिलों में अगड़ी और पिछड़ी जाति के लोगों ने न केवल उन्हें मारने-पीटने या धामकाने का काम किया बल्कि उनका सामाजिक बहिष्कार तक कराया। इस कालखंड में ये झगड़े और विवाद मूलतः राजपूत अथवा भूमिहार जमींदारों एवंउ बिचवई जातियों खासकर अहीर, कोई और कुर्मीयों के बीच था। निःसंदेह जमींदारी उन्मूलन के बाद इन संघर्षो के स्वरूप में बुनियादी तब्दीलियां आई है। यद्यपि पुराना संघर्ष अर्थात् बिचवई जातियों के साथ धानुक, मुसहर, चमार, दुसाधा, मल्लाह, नोनिया आदि के साथ संघर्ष नये सिरे से शुरू हुआ है।

1920-30 के दौर में कृषिजन्य उत्पादों में अभूतपूर्व गिरावट आ गई। लाह की कीमतों में आई गिरावट के कारण छोटानागपुर के किसानों की स्थिति दयनीय हो गई। मिर्च और तम्बाकू के बाजार में आई मंदी के कारण पूर्णिया के किसानों की हालत खास्ता हो गई। मुजफ्फरपुर के मवेशी विक्रेताओं की हालत और भी खराब थी क्योंकि पूर्णिया और बंगाल जूट उत्पादकों के पास पैसा ही नहीं था कि वे अपने मवेशियों को बदलते। ऐसी स्थिति में किसानों के लिए जमींदारों के किराये और दूसरी देनदारियां तथा सूदखोरों का कर्ज अदा करना कठिन हो गया। गांवों में बेकारों की संख्या में बेतहासा वृद्धि हो गई। परंपरागत पेशे के लोगों और दस्ताकारों को बाध्य होकर भूमिहीन मजदूरों की सेना में शामिल होना पड़ा। इस अवधि में किसानों, भूमिहीन मजदूरों की सेना में शामिल होना पड़ा। इस अवधि में किसानों, भूमिहीन मजदूरों और जमींदारों के बीच भूस्वामित्व, बटाइदारी और बकास्त जमीन के सवाल को लेकर जोरदार संघर्ष होना शुरू हो गया। जाति सभाएं इनकी लड़ाई की अगुआयी करने लगी। सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में जो कुछ लाभ मिलता उसका श्रेय जाति सभाओं को मिल जाता। अगड़ी और पिछड़ी जातियों के बीच हो रहे संघर्ष को यथास्थितिवादी और बदलाव के बीच संघर्ष माना जाता था। यद्यापि पिछड़ी जातियों की सभाएं यह समझने में अक्षम थी कि इसकी इससे सामाजिक-आर्थिक संरचना में स्थायी बदलाव कैसे लाया जा सकता था। न तो उन्हें इस बात की ही स्पष्ट समझ थी कि उनके सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक उत्पीड़न एवं पिछड़ेपन का मौलिक कारण क्या था। तथापि, धर्मनिरपेक्ष वैचारिक आंदोलन के अभाव में और जाति संगठनों द्वारा रचाये जा रहे कल्याणकारी कार्यो के प्रभाव का परिणाम था कि लोग अपनी जाति के लोगों के साथ रागात्मक संबंश स्थापित करने लगे तथा अपनी जाति सभाओं की सदस्यता ग्रहण करने में अपनत्व के भाव और गौरव महसूस करने लगे।

पिछड़ी जातियों के नेताओं ने इसी दौर में अपनी जातिवालों के लिए विशेष सुविधाओं, सुरक्षा और नौकरियों की मांग करनी शुरू की थी। उदाहरणार्थ, बाबू स्वयंबर दास जो एक यादव थे प्रांतीय विधान परिषद् में कटौती प्रस्ताव के माध्यम से यह बताने की कोशिश की थी कि रजिस्ट्रेशन विभाग में पिछड़ी जातियों खासकर अहीर, कुर्मी और कोइरी जैसी जातियों को नौकरी में प्रवेश का दरवाजा पूर्णरूपेण बंद है। उन्होंने संकेत किया कि बिहार में सर्वाधिक अबादी अहीरों की है लेकिन प्रतिनिधित्व शून्य है। 1931 में इस विभाग में 134 सब-रजिस्टार बहाल हुए जिसमें मात्र दो ही अहीर थे। उन्होंने मांग कि की पिछड़े समुदाय के सदस्यों के लिए सरकारी नौकरियों में एक खास प्रतिशत आरक्षित होनी चाहिए। 'इंडियन नेशन' ने स्वयंबरदास की इस मांग पर कठोर प्रतिक्रिया व्यक्त की और क्षोभ व्यक्त करते हुए लिखा कि आगे इस तरह की मांग बंद होनी चाहिए। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि यह अखबार दरभंगा महाराज का था और ऐसा माना जाता था कि यह अगड़ी जातियों के हितों का पोषक था। स्वभाविक रूप से शिक्षित समुदाय के लोगों में ऐसे वक्तव्यों से शत्रुता का भाव उत्पन्न हुआ। उनमें इस भावना का उदय हुआ कि शताब्दियों से सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े होने के बावजूद अगड़ी जातियां सरकारी नौकरियों में किसी प्रकार की रियायत पिछड़ी जातियों को देना नहीं चाहती।

स्वयंबरदास ने परिषद् में भाषण करते हुए मांग की कि सरकार तीन सरकारी और चार गैर-सरकारी सदस्यों की एक समिति गठित करे जो सभी जातियों और समुदायों को सरकारी नौकरियों में समुचित प्रतिनिधित्व देने का तरीका सुझाए। उन्होंने प्रतियोगिता परीक्षा से नौकरियों में नियुक्ति पद्धति का विरोध किया। उन्होंने इस तथ्य का भी पर्दाफाश किया कि बिहार और उड़ीसा प्रांतीय सिविल सेवा में अहीर, कुर्मी और कोइरियों का प्रतिनिधित्व न के बराबर है। इसमें अगड़ी जातियों और विशेषकर कायस्थों का वर्चस्व है। उन्होंने कायस्थों को विशेषाधिकार सम्पन्न जाति की संज्ञा दी। जब बाबू स्वयंबर दास अहीरों के अधिकार को चैम्पियन कर रहे थे, राय बहादुर विमल चरण सिंह जो स्वयं कुर्मी थे, सरकारी नौकरियों में अपनी जाति के लोगों की भर्ती की मांग कर रहे थे।

यहां यह नोट करना चाहिए कि ये दोनों नेता जहां अपनी-अपनी जातिवालों के लिए विशेष सुविधा और रियायतों की वकालत तो कर रहे थे-वहीं वे अहीर, कोइरी और कुर्मियों से ज्यादा पिछड़ी और आर्थिक रूप से ज्यादा विपन्न और पिछड़ी जातियों के लिए उनके पास कोई तर्क और वकालत नहीं थी। ऐसा वे नासमझी में नहीं कर रहे थे बल्कि यह विशेष प्रकार के दृष्टिकोण और स्वार्थपरता का परिचायक था।

ब्रिटिश संसद ने 1935 में एक अधिनियम पारित किया जिसमें प्रांतीय स्वायत्तता और संघीय शासन का प्रावधान किया गया था। इस अधिनियम के अनुसार 1937 में केन्द्रीय धारा सभा और प्रांतीय असेम्बलियों के लिए चुनाव हुए। यह चुनाव सीमित मताधिकार के आधार पर हुआ था। इसमें मतदाता की योग्यता, सम्पति, आमदनी और शैक्षिक योग्यता के आधार पर निर्धारित थी जैसा कि अधिनियम में प्राधावान किया गया था। पहली बार कांग्रेवस अपनी बैनर के तले चुनाव लड़ रही थी। कॉँग्रेस में टिकट बटवारें को लेकर घनघोर मतभेद था। दोनों गुट अपनी-अपनी जाति के उम्मीदवारों की वकालत कर रहे थे। बिहार असेम्बली के लिए कुल 152 सीटें निर्धारित की गई थी, जिसमें 93 सीटें प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरी जानी थी जिसमें केवल गैर मुसलमान चुनाव लड़ सकते थे। 38 सीटें मुसलमानों के लिए सुरक्षित थी। जबकि 23 सीटों में से 18 सीटें अनुसूचित जन जातियों, बंगालियों, उड़िया और अन्य दूसरों के लिए थी। इस प्रकार 60 सीटें बिहारी हिन्दू जातियों के लिए आवंटित थी। कॉँग्रेस ने टिकट बटवारे में बंदरबांट का धंधा किया। 47 सीटें अगड़ी जातियों को दे दिये। मात्र तेरह सीटें पिछड़ी जातियों को मिली। यहां तक कि अनुसूचित जाति से भी कम। याद रहे 152 सीटों के लिए होनेवाले चुनाव 1931 की जनगणना के अनुसार हो रहा था जिसमें अगड़ी चार जातियों की आबादी 13.25 प्रतिशत थी जबकि विचवई तीन बड़ी जनसंख्या वाली जातियों की आबादी 19.50 प्रतिशत थी। कुल आबादी का पांचवां हिस्सा। इससे यह जाहिर होता है कि कॉँग्रेस ने बिचवई जातियों को अपर्याप्त सीटें देकर उनकी उपेक्षा की। जबकि अगड़ी दो दबंग जातियों-भूमिहारों और राजपूतों ने अकेले 15-15 सीटें हथिया ली थी। सीटों का यह बंटवारा सम्पति, आमदनी और शिक्षा के विस्तार के असमान बंटवारे को प्रतिबिम्बित करता था। चुनाव में कॉँग्रेस को बहुमत मिला। डॉ. श्रीकृष्ण सिंह के प्रधानमंत्रित्व में मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ लेकिन इस मंत्रिमंडल में पिछड़ी जाति का कोई व्यक्ति नहीं लिया गया। श्रीकृष्ण सिंह मंत्रिमंडल के एक साल के कार्यकलापों पर मौलाना आजाद ने एक रिपोर्ट तैयार की थी जिसमें उन्होंने लिखा था कि मंत्रिमंडल जातिवाद में आकंठ डूबा था।

1946 में विधानसभा चुनाव में 1937 की कहानी ही दुहरायी गई। इस चुनाव में भी कॉँग्रेस ने उम्मीदवारों का चुनाव विशुध जातीय आधार पर ही किया। 179 स्थानों में 18 राजपूत, 15 भूमिहार, 13 कायस्थ, 8 पिछड़ी जाति के लोग, 8 बंगाली, 4 बनिया तथा एक ईसाई उम्मीदवार चुने गये। कॉँग्रेस विजयी हुई। मंत्रिमंडल बना लेकिन इस बार भी पिछड़ी जाति का कोई मंत्री नहीं बनाया गया।

बिहार की राजनीति के तीन दशकों के इस सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार इस राज्य में जाति की राजनीति चल रही थी। अगड़ी जातियों का नेतृवर्ग पिछड़ी जातियों के प्रति किस प्रकार का अभिमुखीकरण रखता था। उनके मन में इनके प्रति कैसा हिकारत का भाग था। इसकी प्रतिक्रिया सर्वाधिक पिछड़ी जातियों पर पड़ा। पिछड़ी जातियों में बिचवई जातियों की तीन जातियां ज्यादा संख्या वाली साधन सम्पन्न थी। इसलिए इसी समूह ने बिहार की राजनीति में तीसरी शक्ति को जन्म दिया, पाला और उसे आज की ऊंचाइयां प्रदान की।

निष्कर्ष

गुलाम भारत में बिहार की धारती पर त्रिवेणी संघ ने जिस धारा व विचार को जन्म दिया था वह अलग-अलग जाति आधारित मिथकों से पिछड़ों खासकर बिचवई जाति के पिछड़ों की एक सम्मिलित विचारधारा विकसित करने का प्रयास था चुंकि त्रिवेणी संघ आजादी आने के पहले ही सांगठनिक रूप से बिखर गया लेकिन उसका विचार मरा नहीं बल्कि धीरे-धीरे उसका और ज्यादा फैलाव हुआ।

आजादी आने के बाद बिचवई जातियों का नवधानाढ्यवर्ग कांग्रेस में शामिल हुआ जरूर लेकिन उनका मानस उसके अनुरूप अपने को नहीं ढ़ाल सका। विधानसभा में वे गैर-सरकारी विधेयकों के माध्यम से पिछड़ी जातियों को नौकरियों में आरक्षण दिये जाने की मांग दोहराते रहे। काँग्रेस पार्टी अर्थिक अथवा शैक्षणिक मोर्चे पर कोई ठोस कदम नहीं उठा सकी। न तो वह अगड़ी जातियों के नौकरशाहों के वर्चस्व को ही तोड़ सकी। जब के0 बी0 सहाय बिहार के मुख्यमंत्री बने तो उनको अपनी जाति की जनसंख्या के गणित की ओर ध्यान गया और इस गणित के पुष्ट करने लिए उन्होंने पिछड़ों का समर्थन और मदद करना शुरू किया। अखिल भारतीय यादव महासभा औद दुसाधों की सभाओं में उन्होंने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। उनकी मदद से त्रिवेणी संघ को जो मृत घोषित हो चुका था फिर से जीवित करने की कोशिशें हुई।

बिहार लोहिया के जाति संबंधी विचारों के लिए लम्बी अवधि से उपजाऊ क्षेत्र बना हुआ था। बिहार के सामाजिक परिदृश्य को यदि नजदीक से अवलोकन करें तो देखते है कि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से स्वतंत्रता प्राप्ति के दिन तक शोषित जनता के वर्गीय हितों की आर्थिक स्पष्टता और संधान का पूर्णत: अभाव था और राजनीतिक तत्व धार्मिकता के साथ अंतर्गथित थे। शोषित पीड़ित जनता की एकता की संभावना क्षीण थी। इस दौर में शायद ही काई जाति व्यवस्था के आधार अथवा उसकी उत्पत्ति पर सवाल उठाता था।

डॉ. लोहिया को ही यह श्रेय जाता है जिन्होंने पिछड़ी जातियों को बड़े पैमाने पर राजनीति में प्रवेश कराया और उन्हें स्पष्ट दिशा प्रदान की। उन्हीं के प्रयास का परिणाम था कि वे अपनी जाति सभाओं के पिंजड़े से बाहर आये। लोहिया की ही देन है कि पिछड़ी जातियों ने ब्राह्मणवादी प्रतीकों और कर्मकाडी लबादा धारण कर जाति सोपानद में ऊपर चढ़ने के विचारों से मुक्ति पायी। वयस्क मताधिकार की प्राप्ति और जमींदारी उन्मूलन के बाद लोहिया ने ही उनकी शक्ति का अहसास कराया। 1952 के पहले संख्यात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के बावजूद वे राजनीतिक दृष्टि से आनुषंगिक नहीं हुए थे क्योंकि उनमें से अधिकांश को मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं था। 1952 के बाद राजनीति पर उनकी इजारेदारी नही रह सकती थी जो मात्र सम्पत्ति और शैक्षिक योग्यता रखते थे।

60 के बाद बिहार की पिछड़ी जातियों के बीच से तीन जातियां अहीर, कोइरी और कुर्मी बहुत ही महत्वपूर्ण हो गई क्योंकि उनके बीच धानी किसानों और शहरी वणिक और व्यापारिक बुर्जुआ वर्ग की एक श्रेणी का उदय हुआ। जमींदारी के उन्मूलन और योजनाबद्ध विकास के कारण पिछड़ी जातियों का कृषक बड़ी तेजी से समृद्ध हुआ और अगड़ी जाति के जमींदार बुर्जुआवर्ग के साथ प्रतिस्पर्धा करने लगा। आर्थिक क्षेत्र की यह प्रतिस्पर्धा राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रकटित हुई। पिछड़ी जातियों का यही नया वर्ग बिहार की राजनीति में तीसरी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

संदर्भ

1. शर्मा, डॉ. राधाकृष्ण एवं मिश्रा, गुलाब; बिहार का इतिहास, जेनरल बुक एजेन्सी, पटना, पृ. सं. 249-252
2. चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत; बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 95
3. वही, पृ. सं. 96
4. राउत, सुरेन्द्र; बिहार समग्र : नैनो पब्लिकेशन,दिल्ली, पृ. 26
5. वही, पृ. सं. 26
6. वही, पृ. सं. 27
7. चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत; बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 98-99
8. पाण्डेय, बी0 एन0; विचार की संस्कृति; अभिधा प्रकाशन मुजफ्फरपुर, पृ. सं. 295

भारत और नेपाल का सम्बन्ध एवं मधेशी समस्या का अवलोकन

संध्या कुमारी

शोधार्थी, एम० ए० राजनीति विज्ञान, (समाजिक विज्ञान संकाय), वि०वि०-जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

भारत और नेपाल के बीच सम्बन्ध अनादि काल से है। दोनो पड़ोसी देश है इसके साथ ही दोनो राष्ट्रों की राजनैतिक, धर्मिक, सांस्कृतिक, भाषायी एवं ऐतिहासिक स्थिति में बहुत अधिक समानता है। स्वतंत्र भारत और नेपाल ने अपने विशेष सम्बनधों को 1950 के भारत - नेपाल शांति एवं मैत्री संधि के द्वारा नयी ऊर्जा दी। यह भार और नेपाल के मध्य द्वीपक्षीय संधि है । जिसका उद्देश्य दोनो एशियाई पड़ोशी देशों के बीच घनिष्ठ राजनीतिक संबंध स्थापित करना है। इस संधि के द्वारा नेपाल को एक भू- आवद्ध देश होने के कारण कई विशेषाधिकारों को प्राप्त करने से सक्षम बनाया है। अन्तरराष्ट्रीय अस्तर पे भार और नेपाल का राजनीति स्तर बहुत ही अच्छा कहा जा सकता है ।

नवंबर 2005 में, दिल्ली में सात दलों के गठबंधन और माओवादियों के बीच 12 बिन्दु की सहमति में भार सरकार ने शांतिपूर्ण समाधन र समावेशी लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा नेपाल में राजनीतिक स्थिरता के लिए 2006 के ऐतिहासिक व्यापक शांति समझौते द्वारा निर्धरित रोडमैप का स्वागत किया है। शांति प्रक्रिया की सफलता सुनिश्चित करने तथा विधिवत निर्वाचित संविधन सभा द्वारा एक नया संविधान बनाने के माध्यम से तथा बहुदलीय लोकतंत्र के समस्याकरण के रूप में भारत ने नेपाल के लोगों और सरकार की जरूतों के प्रति लगातार संमर्थन किया है। भारत ने सदैव यह माना है कि सभी पक्षधरकों पर वोर्ड दवारा व्यापक सहमति से केवल एक समावेशी संविधन ही नेपाल में स्थायी शांति और स्थिरता पैदा करेगा ।

नेपाल की दूसरी संविधान सभा ने 20 सितंबर 2015 को मधेशियों तथा अन्य दलों के विरोध प्रदर्शनों के दौरान एक संविधान का प्रख्यात किया था। भारत सरकार ने चल रहे विरोधियों के बारे में गंभीरता व्यक्ति की है और नेपाल सरकार से अनुरोध किया है कि वह एक विश्वसनीय राजनीतिक वार्ता के माध्यम से सभी मुद्दों को सफलझाने के प्रायस करे ।

भारत और नेपाल का अंतरिक राजनीतिक सम्बन्ध -

नेपाल के हाल ही घटनाक्रमों से स्पष्ट है कि राजनीति सद्वद्धि और द्वर्वद्धी दोनों से ही रोचक, आकर्षक और अर्थपूर्ण बनती है। एक तरफ जहाँ कल माओवादी नेता प्रचंड ने बनती है। महामारी और प्राकृतिक आपदा से घिरे नेपाली में वो नेपाली कम्यूनिस्ट पार्टी में कोई फूट नहीं होने देंगे, वही नेपाली प्रधनमंत्री ओली ने एक नया विवाद छेड़ते हुए कहा है कि मर्यादा पुरूषोत्तम राम नेपाली अयोध्या का निर्माण किया है। इससे ओली की एक ही समझ का पता चलता है कि जहाँ विवाद है, वहीं राजनीति है और इससे सांस्कृतिक अतिक्रमण समेत कई अनैतिक कार्यो को औधित्यपूर्ण ठहराने की कवायद की जा सकती है ।

भारत और नेपाल के संबंधों में तनाव, नेपाल की आंतरिक राजनिति में गुटीय प्रतिस्पर्ध और चीन की बढ़ती दखलंदाजी भी पिछले कई दिनों से सुर्खियों में रही है नेपाल सतता परिवर्तन और माओवादी टूट-फुट की आश्काएं लगातार व्यक्त की गई है, लेकिन सबसे अहम सवाल यह रहा है कि नेपाल में उभरने वाले किसी भी राजनीतिक या दलीय संकट का भारत के हितों पर क्या असड़ पड़ेगा। नेपाल में हाल के दिनों की राजनीतिक गतिविधियों पर एक निगाह डाले तो पता चलता है कि वहां लीडरशिप क्राइसिस जैसी स्थिति उत्पन्न हुई है जिससे पिछे कई कारण है।

भारतीय भूक्षेत्रों को अपना बताने वाली औली सरकार ने एक गलती कर एक कदम औडर आगे जाकर यहां तक कह दिया कि भारत औली सरकार को गिराने का षड्यंत्र कर रहा है। जिसका सीधा सा आशय था की नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी में बैठ नेता खसाकर प्रचंड जो भारत से संतुलित संबंध की बात करते हैं। उनको नेपाल में अपनी राजनीतिक को महत्वकांक्षा को पूरा करने में भारत सहायक की भूमिका निभा रहा है। ऐसे में भारत के लिए अपने पड़ोसी देशों के साथ संबधों को मजबुत बनाना बहुत जरूरी हो गया है। यह तभी संभव है जब भारत अपनी राष्ट्रीय राजनीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था के मध्य सामंजस्य बैठाते हुए अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधो के बारे में गंभीरता से विचार - विमर्श करे। वस्तुत: भारत नहीं चाहेगा कि चीन के समक्ष किसी भी मुद्दे पर वह अकेला पड़े इसलिए उसे उसके पड़ोसी देशों का प्रर्याप्त समर्थन प्राप्त करने की आवश्यकता है।

नेपाल के राजनीतिक संक्रमण काल के दौरान भारत ने वृहद स्तर पर इसकी सहायता की। दरअसल नेपाल की सबसे बड़ी समस्या यह रही है कि इसने एक गणराज्य को स्थापना के विकल्प के विषय में विचार करने के बजाय सदैव राजतंत्र के अधीन रह कर ही शासन व्यवस्था को नियंत्रित करने का प्रयास किया है। फिर चाहे वह मधेशियों का मुद्दा हो अथा न्यायाधीशों, राजपूतों एवं सरकारी व्यक्तियों की नियुक्ति। नेपाल के हर अहम फैसले में उनकी राजनीतिक इच्छाशक्ति की अहम भुमिका बहुत कम रही है, जिससे न केवल नेपाल के अन्य देशों के साथ संबंध प्रभावित किये है बल्कि इसकी राष्ट्रीय राजनीति को भी प्रभावित किया है। हालांकि नेपाल प्रधनमंत्री की भारत यात्रा के दौरान इस संबंध में बेहतर प्रयास किये जाने की संभावना है ताकि दोनों देशों के मध्य राजनीतिक संबंधों को नए मुकाम पर पहुँचाया जा सके कोशिश कर रहे है। इन सभी लक्ष्यों को पूरा करने के प्रयासो में मदेनजर भारत ने नेपाल की राजनीति में गहरी बनाई ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह जैसे चाहे इसका इस्तेमाल कर सके। उदाहरण के तौर पर मध्सवादी पार्टी। जैसा की ज्ञात है कि सर्वप्रथम भारत का रूख मधेशियों के नेपाल में नागरिकता का अधिकार दिलाना था, परन्तु बदलते समय के साथ - साथ इसने अपनी राजनीति में परिवर्तन करते हुए अपने कदम वापस खिंच लिए। लेकिन भारत और नेपाल राजनितिक सम्बन्ध बहुत ही पहले से है। नेपाल के साथ भारत का पुराणा सम्बन्ध है। यदि नेपाल के लोग भारत को अपना पूण्यभू समझते है तो भारत के लोग बी नेपाल को अपनू पूण्यभु मानते है ।

साथ ही 1947 से स्वतंत्र भारत ने नेपाल के भविष्य में रूचि लेना प्रारंभ किया। 1947 में नेपाल के प्रधनमंत्री ने एक ऐसी व्यक्ति की मांग भारत सरकार से की जो नेपाल के लिए एक संविधान बनाने में नेपाल सरकार को सलाह मशविरा दे सके। भारत सरकार ने इस कार्य में नेपाल सरकार को सलाह मशविरा दे सकें। भारत सरकार ने इस कार्य में नेपाल की मदद के लिए एक विशिष्ट भारतिय राजनीतिज्ञ श्री प्रकाश को नेपाल भेजा। उनकी सहायता से नेपाल के लिए एक संविधन का प्रारूप तैयार हुआ। लेकिन चूँकि इस संविधान से राजशाही की निरंकुशता का अंत हो रहा था इसलिए राणाओं ने इसे कार्यान्वित नहीं होने दिया। राजनैतिक दृष्टि से नेपाल में दृढता लाने के लिए यह आवश्यक था कि नेपाल में पुरानी सामंतशाही का अंत कर लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित हो। इसके लिए नेपाल कांग्रेस नेता बहुत दिनों से सक्रिय थे और भारत सरकार उसके साथ सहानुभूति रखती थी।

नेपाल - भारत के द्विपक्षीय संबंध दक्षिण एशिया के पड़ोस में आपसी सहयोग की बहुत बड़ी मिशाल साबित हो सकती है और इनकी सहायता से भारत विश्व की महाशक्ति का दर्जा भी पा सकता है क्योंकि उपमहाद्वीप में बहुलता के बिना एक स्थिर क्षेत्र बनना संभव नहीं है।

भारत और नेपाल का वर्तमान राजनैतिक संबंध -

भारत - नेपाल संबंधों की पूनर्स्थापना के कई प्रयासों के बावजूद यह चिंता का कारण बना हुआ है। दोनों देशों की सरकारों के बीच का मनमुटाव हाल ही में सम्पन्न विम्सटेक की समयोगात्मक बैठक की अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट दिखाई दे रहा है गौरतलब है कि इसी दौरान नेपाल द्वारा जून में भारत एवं नेपाल के बीच होने वाले संयुक्त सैन्याभ्यास में नेपाल की सेना की भागीदारी की मनाही थी दोनों देशों के वर्तमान मनमुटाव को प्रदर्शित करती है। उल्लेखनीय है कि नेपाल पिछले 13 वर्षो से भारतीय सेना के साथ सूर्य किरण नामक सैन्याभ्यास आयोजित कर रहा है और इसमें दोनों पक्षों से लगभग 300 सेन्यकर्मी हिस्सा लेते हैं। लेकिन हाल के वर्षो में नेपाल और चीन के रक्षा बलों ने अपने सहयोग को बढाया है। इसके अलावा नेपाल ने भारत को वर्ष 2015 की आर्थिक नाकाबंदी के लिए बी दोषी ठहराया है। हालांकि उपर्युक्त कदमों के कारण नेपाल के प्रधनमंत्री की अति महत्त्वकांक्षा को माना जा सकता है। भारत ने कहा है कि उसने हमेशा से नेपाल के साथ अपने राजनीतिक संबंधो को अहमियत दी है जिसकी पुष्टि भारतीय

प्रधनमंत्री की हाल की नेपाल यात्रा और उनके द्वारा नेपाल को समर्पित की गई विभिन्न परियोजनाओं से होती है। भारत ने आगे बढ़ते हुए हमेशा अपनी प्रतिवद्धताओं को पूर्ण करने का हरसंभव प्रयास किया है। साथ ही दोनों देशों की बीच सैन्य अभ्यास को लेकर जन्मे विवाद में महत्त्वपूर्ण भू-राजनीति के संदर्भ को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि सर्विदत है कि चीन इस परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए अपने सभी कुटनीतिक प्रयासों को अंजाम जरूर देगा।

भारत - नेपाल के बीच मधेसी समस्या का निदान -

प्रधनमंत्री नरेन्द्र मोदी ने सत्ता संभालते ही नेपाल की भारत का सबसे करीबी बताया, नेपाल की यात्रा की मुश्किल की घड़ी आई तो भारत नेपाल को फिर से सजाने - संवारने में भी जुट गया, लेकिन इसमें कोई दोराय नहीं है कि नई सरकार आते ही और मधेशी आंदोलन के कारण दोनों देशों के रिश्तों में अब पहले सी बात नहीं रही।

नेपाल 1800 किलोमीटर लंबे तराई क्षेत्र में गूँज रहा जय मधेश का नारा देश के नवनिर्वाधित प्रदानमंत्री के पी शर्मा ओली के लिए एक चेतावनी है कि अधूरी मांगों और जातीय भेदभाव के जहरीला मिश्रण से ऊपजी यह स्थिति उनके लिए खतरा बन सकती है, एक दशक भी नहीं बीता है कि भारत और नेपाल फिर उलझ गए हैं नेपाल की सरकार के भीतर र बाहर काठमांडो का अभिजात्य तवका हाल में पारित संविधन का समर्थन कर रहा है तो मधेशियों के खिलाफ भेदभाव करता है।

अलवत्ता इन शुरूआती डगम गाहटो के बाद भारत की नीति में ठहराव आया लगता है । हाल ही में जब नेपाल के शाह - समर्थक उप - प्रधानमंत्री कमल थापा भारत की यात्रा पर आए तो उन्होंने नई दिल्ली को नसीहत दी कि वह मधेशी आंदोलनकारियों को आंदोलन वापस लेने के लिए मनाएं लेकिन विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने उन्हें याद दिलाया कि मधेशियों से ठास बातचीत ही एक मात्र जबाब है। मदेशी नेताओं से बातचीत शुरू हुई लेकिन वो बात मानने को तैयार नही था नेपाल के प्रधनमंत्री का तब भारत ने नेपाल को सहयोग किया मधेशी आंदोलन को खत्म करने में ।

संदर्भ सूची -

1. डॉ० वेद प्रकाश वैदिक - महाशक्ति, राजकल प्रकाशन, नई दिल्ली-2005, पृष्ठ क्रमांक-337
2. डॉ० दीनानाथ वर्मा - अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, जानता प्रकाशन, नई दिल्ली 2008, पृ०सं०-425
3. निर्मला अग्रवाल - भारत- नेपाल संबंध ए० बी० सी० पब्लिशर्स जयपुर वर्ष 2003 पृ०सं०-43,44
4. डॉ० वी० सिंह गेहलोत- भारतीय विदेश- नीति अर्जून पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली सन् 2004, पृ०क्रमांक - 133
5. आर० एस० - भारत की विदेश - नि वी किताब महल इलाहाबाद वर्ष 2004 , पृ०क्रमांक- 3111
6. संग्रहीत प्रति मुल से 12 सितम्बर 2019 को पुरालेखित अभिगमन तिथी 28 अप्रैल 2020

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और राष्ट्रवादः एक अध्ययन

डॉ० पंकज कुमार राय

एसोसिएट प्रोफेसर, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रीति रानी

शोध-छात्रा, इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

27 सितम्बर 1925 को केशव बलिराम हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की। प्रयोजन 'हिन्दू राष्ट्रवाद' का गठन और समर्थन था। आरंभ में वे क्रान्तिकारी संगठनों से जुड़े थे, जिसे त्यागकर उन्होंने हिन्दूवादी संगठन की नींव रखी। माधव सदाशिव गोलवलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दूसरे संघ चालक थे। उनकी पुस्तक *'बंच ऑफ थॉट्स'* सावरकर की पुस्तक *'हिन्दुत्व'* से प्रभावित है और *'वी आर ऑवर नेशनहुड डिफाइंड'* सावरकर की विचारधारा का व्यापक रूप है। 15 मई 1963 को बम्बई में अपने एक भाषण में गोलवलकर ने यह कहा था कि उन्होंने 'राष्ट्रवाद' का सिद्धान्त सावरकर की 'महान पुस्तक' 'हिन्दुत्व' से प्राप्त किया। उन्होंने अपने बड़े भाई बाबाराव जी.डी. सावरकर की पुस्तक *'राष्ट्र मीमांसा'* का अपने ऊपर ऋण स्वीकारा। गोलवलकर ने 'हिन्दुस्तान' को 'हिन्दुओं' का देश माना और इसे हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू भाषा से जोड़ा।[48] बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान गोलवलकर, मदन मोहन मालवीय के प्रभाव में आए थे। वाराणसी में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा हेडगेवार के नजदीकी भैयाजी दानी ने, जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र थे, स्थापित की थी। *'बंच ऑफ थॉट्स'* के एक अध्याय 'इंटरनेल थ्रेट' में गोलवलकर ने मुसलमान, ईसाई और कम्युनिस्ट को शत्रु-रूप में चिन्हित किया। गोलवलकर ने लिखा कि अपनी माँ की कोख से आने से पहले से हम हिन्दू हैं, हिन्दू के रूप में ही हमारा जन्म (पैदाइशी हिन्दू) होता है। मुसलमानों को उन्होंने शत्रु और आक्रमणकारी कहा। विदेशी ईसाई मिशनरी को भी इसी कोटि में रखा।[1] उनकी राष्ट्र संबंधी धारणा विभाजनकारी है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ हिन्दू राष्ट्रवाद का पोषक है। उन्नायक भी। हिन्दू राष्ट्रवाद कभी ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विराधी नहीं रहा है। राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में उसकी कोई भूमिका नहीं रही है। हिन्दू राष्ट्रवाद भारतीय राष्ट्रवाद है, धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद का अपने जन्म से ही विरोधी रहा है। भारतीय राष्ट्रवाद समावेशी राष्ट्रवाद है, जबकि हिन्दू राष्ट्रवाद खंडित, एकांगी और भारत विरोधी राष्ट्रवाद है। हिन्दू राष्ट्रवाद आक्रामक, असहिष्णु, धार्मिक राष्ट्रवाद है। *'बंच ऑफ थॉट्स'* के आरंभ में एक अध्याय 'क्षेत्रीय/प्रादेशिक राष्ट्रवाद' था, जिसे बाद में हटाया गया। गोलवलकर 20 जून 1943 को सरसंघ चालक बने थे। इनके कार्यकाल में ही संघ का अधिक विस्तार हुआ। संघ के जन्म के पहले हिन्दू महासभा और रामराज्य परिषद् जैसी संस्थाएँ हिन्दू हित और हिन्दू राष्ट्र की बातें करती रही थीं। 'हिन्दुत्व' की संकल्पना का यह आधारभूत मौलिक ग्रंथ है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए सदैव स्वतंत्रता से कहीं बड़ा प्रश्न 'हिन्दुत्व' का रहा है। जिन पाँच व्यक्तियों- डॉ. केशवराम बलिराम हेडगेवार, डॉ. बी.एस. मुंजे, डॉ. एल.वी. परांजपे, डॉ. भालेकर और बाबाराव सावरकर ने मिलकर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का गठन किया था, उनमें से चार का संबंध हिन्दू महासभा से था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने 'भारतीय राष्ट्रवाद' के स्थान पर सदैव 'हिन्दू राष्ट्रवाद' पर बल दिया है।[2] गोलवलकर इसके सबसे बड़े सिद्धान्तकार हैं। 'बंच ऑफ थॉट्स' को संघ की 'गीता' माना जाता

रह है और 'वी आर अवर नेशनहुड डिफाइंड' में हिन्दू राष्ट्रवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित है। जिन्ना के पहले सावरकर ने द्विराष्ट्र सिद्धान्त की बात कही थी। 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' को सर्वप्रथम उन्होंने ही प्रस्तुत किया।

राष्ट्र संबंधी धारणा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सर्वथा अलग और भिन्न है। बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक से हिन्दू महासभा और संघ द्वारा समर्थित 'हिन्दू राष्ट्रवाद' ने भारतीय राष्ट्रवाद की उभरती शक्तियों के प्रति चुनौतियाँ प्रस्तुत की थीं, पर वह 'भारतीय राष्ट्रवाद' के समक्ष प्रमुख नहीं हो सकी थीं। द्विराष्ट्र सिद्धान्त की एक प्रियोक्ति है 'हिंदुत्व'। हिन्दुस्तान को गोलवलकर ने 'हिन्दू धर्म', 'हिन्दू संस्कृति' और 'हिन्दू भाषा' से जोड़ा। चेतन भट्ट ने अपनी पुस्तक *'हिन्दू नेशनलिज्म, ओरिजिंस, आइडियोलॉजीज एण्ड मॉडर्न मिथ्स'* (2001) में विस्तार से 'हिन्दू राष्ट्रवाद' पर विचार किया है। डॉ. डी.आर. पुरोहित ने *'हिन्दू रिवाइवलिज्म एण्ड इंडियन नेशनलिज्म'* (1990) में दो राष्ट्रवाद- हिन्दू और भारतीय का उल्लेख किया है। भारतीय राष्ट्रवाद और हिन्दू राष्ट्रवाद दोनों मूलतः एक दूसरे के विरोधी हैं। दोनों के अपने आदर्श, सिद्धान्त और विचार हैं।

हिन्दू राष्ट्रवाद जहाँ एकान्तिक/व्यावर्तक (इक्सक्लूसिव), धर्म-मिश्रित, संकीर्णाधारित और पक्षपाती है, वहाँ भारतीय राष्ट्रवाद कहीं अधिक व्यापक, शांतिवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और उदार है। हिन्दू राष्ट्रवाद में केन्द्रीय नेतृत्व पर अगाध विश्वास के साथ आक्रामकता है, जबकि भारतीय राष्ट्रवाद उदार और लोकतांत्रिक परम्पराओं के प्रति समर्पित है। हिन्दू राष्ट्रवाद हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू समुदाय से जुड़ा है। एल.के. आडवाणी ने 5 अगस्त 1989 को स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि भाजपा को 'हिन्दू पार्टी' कहना गलत नहीं है। लेकिन आडवाणी के इस वक्तव्य को पचा पाना कठिन है क्योंकि भारत को हिन्दू राष्ट्र कहना और हिन्दू राष्ट्रवाद का समर्थन करना भारतीय संविधान का अपमान है।[3]

हिन्दू राष्ट्रवाद पर अम्बेडकर की समालोचना

डॉ. अम्बेडकर ने यह साफ कहा था कि हिन्दू राज को किसी भी कीमत पर रोकना चाहिए। अम्बेडकर ने सावरकर और जिन्ना दोनों को 'दो राष्ट्र' के सिद्धान्त पर एकमत माना है। अपने लेख *'थॉट्स ऑन पाकिस्तान'* में अम्बेडकर ने लिखा- ''वह चाहे जितना विचित्र लगे मिस्टर सावरकर और मिस्टर जिन्ना 'दो राष्ट्र' के सवाल पर एक-दूसरे का विरोध करने की जगह एक-दूसरे से पूर्ण सहमति में हैं। मिस्टर सावरकर चाहते हैं कि हिन्दू राष्ट्र वर्चस्वशाली राष्ट्र हो और मुस्लिम राष्ट्र इसके मताहत राष्ट्र हो।'' सावरकर दो राष्ट्र के सिद्धान्त के पैरोकार थे। उन्होंने 1939 के हिन्दू महासभा के सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में हिन्दुओं को 'स्वयं में राष्ट्र' कहा था- ''हम हिन्दू स्वयं ही स्थायी राष्ट्र के रूप में पहचाने जाते हैं।''[4]

अम्बेडकर ने हिन्दू राज बनने को, 'हिन्दू राष्ट्रवाद' की अवधारणा को देश के लिए 'सबसे बड़ी विपत्ति' कहा है। *'पाकिस्तान या भारत विभाजन'* (1945) पुस्तक में उन्होंने इसे 'स्वतंत्रता, समता और भाईचारे के लिए खतरा' कहा था और हिन्दू राज को किसी भी कीमत पर रोकने की बात कही थी। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अम्बेडकर के हिन्दू कोड बिल के मसौदे का विरोध किया था। अम्बेडकर केवल 'हिन्दू राष्ट्रवाद' के ही नहीं, भारतीय राष्ट्रवाद के भी विरोधी थे। उनके लिए 'राष्ट्रवाद' से कहीं बड़ा एक 'वाद' - 'मानववाद' था, जो समानता एवं स्वतंत्रता के मूल्यों को महत्व देता था। 25 नवम्बर 1949 को उन्होंने संविधान सभा में दिये अपने भाषण में साफ शब्दों में यह कहा था कि हम एक राष्ट्र नहीं हैं। ''हजारों जातियों में बँटे लोग एक राष्ट्र कैसे हो सकते हैं?'' वे जातियों को 'राष्ट्र विरोधी' कहते थे क्योंकि ''ये सामाजिक जीवन में अलगाव पैदा करती हैं। वे इसलिए भी राष्ट्र-विरोधी हैं, क्योंकि ये एक जाति से दूसरी जाति में ईर्ष्या और विद्वेष पैदा करती हैं- अगर हमें असल में एक राष्ट्र बनना है तो इन सारी मुश्किलों से पार पाना होगा।''[5] अम्बेडकर 'हिन्दू समाज जैसी कोई चीज' नहीं मानते थे। वे इसे 'सिर्फ जातियों का समूह' कहते थे।

अम्बेडकर के लिए जाति उन्मूलन के बिना 'स्वराज' अर्थहीन है। 'हिन्दू राष्ट्रवाद' और 'भारतीय राष्ट्रवाद' से सर्वथा अलग है 'दलित-बहुजन राष्ट्रवाद' जो ज्योतिबा फूले, पेरियार, ई.बी. रामास्वामी नायकर के विचारों से जुड़ा है। अम्बेडकर ने *'बहिष्कृत भारत'* के 29 जुलाई 1927 के अंक में लिखा कि अगर तिलक अस्पृश्य जाति में पैदा हुए होते, तो उन्होंने 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' नारा न देकर 'अस्पृश्यता का सत्यानाश' को अपना 'जन्मसिद्ध अधिकार' कहा होता। हिन्दू राष्ट्रवाद और भारतीय राष्ट्रवाद की तरह 'दलित-बहुजन राष्ट्रवाद' की चर्चा अपेक्षया कम होती है। अम्बेडकर ने, *'कांग्रेस और गाँधी ने अछूतों के लिए क्या किया?'* में लिखा- ''निम्न वर्गों को रास्ते से भटकाने और उन्हें मूर्ख बनाने का सबसे बढ़िया तरीका है राष्ट्रवाद की भावना और राष्ट्रीय एकता का खेल।''[6] क्रिस्टोफ जैफ्रीला ने अपने लेख 'अम्बेडकर अगेंस्ट नेशनलिज्म' (इंडियन एक्सप्रेस, 14 अप्रैल

2016) और के. एम. विनय ने अपनी पुस्तक *'क्रिटिक ऑफ कास्ट एण्ड नेशनलिज्म : डॉ. बी.आर. अम्बेडकर्स आइडियोलॉजी'* में विस्तार से राष्ट्रवाद संबंधी अम्बेडकर के विचार प्रस्तुत किए हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनसंघ की विचारधारा को, उनके 'हिन्दू राष्ट्रवाद' को स्वतंत्र भारत में आरंभ में बहुत कम आँका गया। संघ परिवार के सभी घटकों का एक ही लक्ष्य रहा है। सबका उद्देश्य भारत में हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू संस्कृति को स्थापित करना है। सबका एजेंडा हिन्दू एजेंडा है। पाँचवें सरसंघ चालक कुपहल्ली सीतारमैया सुदर्शन ने एक साक्षात्कार में यह कहा था कि वैचारिक स्तर पर हमारे सभी संगठन एक हैं, लेकिन व्यवहार के स्तर पर सभी संबद्ध संगठनों की सोच अलग-अलग है। कानपुर में 21 अक्टूबर 1951 (प्रथम लोकसभा चुनाव के पूर्व) को भारतीय जनसंघ की स्थापना के तुरंत बाद कश्मीर आन्दोलन को लेकर भारतीय जनसंघ ने यह घोषणा की कि एक देश में 'दो प्रधान, दो निशान और दो विधान' नहीं चलने चाहिए। 1936 में 'राष्ट्र सेविका समिति' से लेकर आज तक जितने भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आनुशंगिक संगठन बने, वे काफी सोच-समझकर बनाये गये। छात्र, वकील, महिला, शिक्षा, साहित्य इतिहास, किसान, मजदूर, युवा, उपभोक्ता आदि के सगठन बने। शिक्षा के क्षेत्र में कई संस्थाएँ खुलीं-सरस्वती विद्या मन्दिर, सरस्वती शिक्षा मन्दिर, गीता विद्यालय, ज्ञान भारती, विद्या भारती, विद्या मन्दिर आदि। इसी प्रकार महिलाओं के कई संगठन बने-महिला कल्याण समिति, महिला मोर्चा, सामाजिक दर्पण, जन दर्पण, दुर्गावाहिनी, वीरांगना वाहिनी आदि।[7]

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को आरंभ में गैर राष्ट्रप्रेम और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में न रहने से लोकप्रियता नहीं मिली। उसके जन्म से लेकर आज तक उसके विकास के कई चरण हैं। 'हिन्दू राष्ट्रवाद' उसके एजेंडे में आरंभ से ही था, पर भारतीय राष्ट्रवाद के कारण वह गौण रहा। आपातकाल के समय तक वह प्रभावशाली नहीं था। ओलीवर हीथ ने अपने एक लेख 'एनाटॉमी ऑफ बीजेपी'ज राइज टू पावर : सोशल, रीजनल एण्ड पॉलिटिकल एक्सपैन्सेज इन 1990' (ई.पी.डब्ल्यू, अगस्त 21-28-1999) में भाजपा के फैलाव और विकास पर विस्तार से विचार किया है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने सदैव अपने को सांस्कृतिक संगठन के रूप में प्रस्तुत किया। गणतंत्र दिवस की परेड में संघ के स्वयंसेवकों को एक समय भाग लेने को आमंत्रित किया गया था। 1974 में संघ अधिक सक्रिय और जीवन्त हुआ। जयप्रकाश नारायण ने जिन युवाओं को लेकर अपना आन्दोलन आरंभ किया था, उनमें अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के युवा भी शामिल थे। संघ को पुनरुज्जीवित करने, उसे अधिक गतिशील और सक्रिय बनाने में समाजवादियों की कम भूमिका नहीं रही है। लोहिया और जयप्रकाश नारायण ने अपने-अपने ढंग से भारतीय जनसंघ को नया जीवनदान दिया। जयप्रकाश नारायण ने अपने एक भाषण में इस पर आपत्ति प्रकट की थी कि भारतीय जनसंघ फॉसिस्ट है। उनका कथन था कि अगर जनसंघ फॉसिस्ट है, तो उन्हें भी फॉसिस्ट कहा जाना चाहिए।

संघ की विचारधारा को समझने में कांग्रेसियों और समाजवादियों-दोनों ने ऐतिहासिक भूलें कीं। नेहरू के समय कांग्रेस ने 1963 में गणतंत्र दिवस की परेड में संघ के स्वयंसवकों को भाग लेने को आमंत्रित किया था। 1965 के भारत-पाक युद्ध के समय तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने सरसंघ चालक माधवराव सदाशिव गोलवलकर को एक सर्वदलीय बैठक में आमंत्रित किया था। कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने जनसंघ, मुस्लिम लीग और अकाली दल के साथ संयुक्त मोर्चा बनाया था। कांग्रेस, समाजवादी, कम्युनिस्ट सबने संघ के प्रति अपना उदार रुख अपनाया, जबकि संघ सदैव अनुदार रहा है।

1967 तक भारतीय जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कोई आनुषंगिक संगठन प्रभावशाली भूमिका में नहीं था। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् की स्थापना 1948 में हो चुकी थी, पर वह कोने में था। चौथी लोकसभा में तीसरा स्थान पाने के बाद संघ के आनुशंगिक संगठन बढ गए। इसके बाद आनुशंगिक संगठनों का जन्म कभी नहीं रूका। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा और उसकी गतिविधियों पर विस्तारपूर्वक विचार बीसवीं सदी के अन्तिम दशक से आरंभ हुआ। संघ की कट्टरवादिता पर अस्सी के दशक तक कम ध्यान दिया गया था। 'हिन्दू राष्ट्रवाद' की चर्चा उस समय गौण थी, जबकि संघ का विचार और दर्शन हिन्दू राष्ट्र की स्थापना है। यह उसका स्थायी विचार है, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। हिन्दू राष्ट्रवाद यूरोपीय फासीवाद से जुड़ा है। हिटलर और मुसोलिनी से प्रेरणा ग्रहण करने के तथ्य अब कहीं अधिक मौजूद हैं। मार्जिया केसोलैरी ने अपने लेख *'हिन्दुत्वाज फॉरेन टाई अप न द नाइंटीन थर्टीज-आर्काइलवल इंविडेंस'*[8] में संदर्भ सहित फासीवाद से हिन्दुत्ववादी शक्तियों के संबंध-संपर्क पर विचार किया है। हेडगेवार के राजनीतिक गुरु बी.एस. मुंजे (बालकृष्ण शिवराम मुंजे, 1872- 1948) तिलक के निधन कके बाद 1920 में काँग्रेस से अलग हुए थे। वे गाँधी की अहिंसा और धर्मनिरपेक्षता से असहमत थे। भोंसला मिलिट्री स्कूल के संस्थापक मुंजे

को भारत में सैनिक शिक्षा के आरंभकर्ता के रूप में जाना जाता है। हिन्दू राष्ट्रवादियों का बीस के दशक में ही फासीवाद और मुसोलिनी के प्रति झुकाव हो चुका था। मुसोलिनी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ दोनों की अवधारणाएँ बहुत अंशों में समान हैं। दोनों की लोकतांत्रिक संस्थाओं में रुचि नहीं थी। मुंजे ने फरवरी-मार्च 1931 में इटली के महत्वपूर्ण सैन्य स्कूलों और शिक्षण-संस्थाओं की कार्यपद्धति देखी थी। मुसोलिनी से उसने भेंट की थी। माना जाता है कि मुसोलिनी ने संघ को इटली जाकर फासिस्ट संगठन की विचारधारा से प्रभावित हुए थे। मुसोलिनी ने इटली के फासीवाद से जोड़ा। मुंजे की डायरी के अध्ययनकर्ताओं ने यह बताया है कि वे इटली की एकता का नारा देकर सैन्यीकरण करने की दिशा में अपना अभियान चलाया था। उसने युवाओं के लिए बलिल्ला जैसे संगठन की स्थापना 1926 में की थी। यह इटालियन फासिस्ट यूथ आर्गेनाइजेशन था। मुंजे को मुसोलिनी और उसके बलिल्ला जैसे युवा-संगठन से प्रेरणा प्राप्त हुई। मुंजे ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को इसी प्रकार का संगठन माना और महाराष्ट्र सहित अन्य राज्यों में इसे सुदृढ़ और विस्तृत करने की घोषणा की।[9]

आपातकाल तक न राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रभावशाली था, न भारतीय जनसंघ। हिन्दू राष्ट्र और राष्ट्रवाद भी नेपथ्य में था। भारतीय जनसंघ ने जनता पार्टी में अपने को विलीन किया। दोहरी सदस्यता को लेकर जनता पार्टी टूटी और 1980 में भारतीय जनता पार्टी का जन्म हुआ। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर ब्रिटिश शासन में एक बार और स्वतंत्र भारत में तीन बार प्रतिबंध लगा। गाँधी की हत्या, आपातकाल और बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद। हिन्दू राष्ट्रवाद की संकल्पना और अवधारणा ही अलगाववादी है। हेडगेवार पर 1921 में ब्रिटिश शासन ने राजद्रोह का आरोप लगाया और वे एक वर्ष जेल में रहे। संघ ब्रिटिश शासन के विरुद्ध कभी नहीं रहा। संघ केवल 26 जनवरी 1930 के स्वतंत्रता दिवस के उत्सव में शामिल रहा था। बाद में कभी नहीं। हेडगेवार ने अप्रैल 1930 में गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया था, पर सब जगह यह निर्देश भेजा था कि उस आन्दोलन में कोई शामिल न हो। 1934 में कांग्रेस ने अपने एक पारित प्रस्ताव में अपने सदस्यों को संघ, हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग से न जुड़ने को कहा। गोलवलकर कभी अंग्रेजों से लड़ाई के पक्ष में नहीं रहे थे। ब्रिटिश विरोधी राष्ट्रवाद को उन्होंने 'एक प्रतिक्रियावादी विचार' कहा।[10]

निष्कर्ष

आरंभ से अब तक संघ कभी भारतीय राष्ट्रवाद के पक्ष में नहीं रहा है। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में संघ शामिल नहीं था। 11 जुलाई 1949 को संघ से प्रतिबंध हटा। गाँधी की हत्या के बाद संघ पर लगा प्रतिबन्ध इसलिए हटाया गया क्योंकि गोलवलकर ने यह वचन दिया था कि भारतीय संविधान के प्रति उनकी निष्ठा रहेगी और राष्ट्रीय ध्वज के प्रति उनमें सम्मान-भाव बना रहेगा। लेकिन 14 अगस्त 1947 के *'आर्गेनाइजर'* के एक लेख *'मिस्ट्री बिहाइंड द भगवा ध्वज'* में यह कहा गया कि हिन्दू तिरंगे का आदर नहीं करेंगे और तीन की संख्या अशुभ है, जिसका एक बुरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा जो देश के लिए हानिकारक होगा। गोलवलकर ने अपने लेख *'डिफ्टिंग ए ड्राफ्टिंग'* (*बंच ऑफ थॉट्स* में संकलित) में तिरंगे के चयन की आलोचना की। 14 अगस्त 1947 और 26 जनवरी 1950 को संघ ने नागपुर मुख्यालय में तिरंगा फहराने के बाद इसे फहराना बंद कर दिया। 26 जनवरी 2001 को 'राष्ट्र प्रेमी युवा दल' के तीन सक्रियतावादियों ने देशभक्ति के नारों के साथ जबरन नागपुर के मुख्यालय पर तिरंगा फहराया। इन युवाओं को गिरफ्तार किया गया। 11 वर्ष जेल में रहने के बाद वे 2013 में जेल से छूटे।

संघ ने आरंभ में भारतीय संविधान को मान्यता नहीं दी क्योंकि उसमें 'मनुस्मृति' का मनु-नियम नहीं था। 30 नवम्बर 1949 के *'आर्गेनाइजर'* के सम्पादकीय में भारतीय संविधान की आलोचना की गयी। एक सेवानिवृत्त उच्च न्यायालय के न्यायाधीश शंकर सुब्बा अय्यर का एक लेख 6 फरवरी 1950 के *'आर्गेनाइजर'* में प्रकाशित हुआ- *'मनु रूल्स आवर हर्ट्स'*। अम्बेडकर के निधन के बाद भी संविधान की आलोचना संघसेवियों-नेताओं द्वारा की जाती रही। गोलवलकर ने *'बंच ऑफ थॉट्स'* में लिखा कि इस संविधान में हमारा अपना कुछ भी नहीं है। संघ को फासिज्म का 'भारतीय संस्करण' कहा जाता है।

सन्दर्भ सूची:-

1. गोलवलकर, *बंच ऑफ थॉट्स*, साहित्य संघ प्रकाशन, बंगलौर, 2000.
2. एस.सी. वाजपेयी, *आर.एस.एस. ऐट ए ग्लांस*, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
3. जे. जैवॉस, द *इमर्जेंस ऑफ हिंदू नेशनलिज्म इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड, 2000.

4. डॉ. अम्बेडकर, *पाकिस्तान या भारत विभाजन,* 1945
5. *संविधान सभा वाद-विवाद,* 25 नवम्बर 1949.
6. *बहिष्कृत भारत,* 29 जुलाई 1927 के अंक में डॉ. अम्बेडकर का आलेख.
7. डॉ. अम्बेडकर, *कांग्रेस और गाँधी ने अछूतों के लिए क्या किया?*
8. मार्जिया केसोलैरी, ''हिन्दुस्तान फॉरेन टाई अप इन द नाइंटीन थर्टीज-आर्काइव्स'', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 22 जनवरी 2000.
9. गोलवलकर, बंच ऑफ थॉट्स, *पूर्वोक्त.*
10. एम.डी. चितकारा, *राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ : नेशनल अपसर्ग,* एपीएच पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2004.

भारत में सांप्रदायिक राजनीति बनाम सेकुलरवाद का विमर्श: एक अवलोकन

अमृता कुमारी

शोध-छात्र, राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सत्तर, अस्सी और नब्बे के दशक में राजनीतिक संस्थानीकरण और राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर विचार करने से लगता है कि राज्य-व्यवस्था ने नेता बदलने के मामले में हासिल आत्मविश्वास को और सुदृढ़ करना जारी रखा। राज्यों के भू-क्षेत्रीय पुनर्गठन की प्रक्रिया आंदोलनों द्वारा की जाने वाली दावेदारी के रूप में आगे बढ़ती रही। इसी के परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश में से काट कर एक पहाड़ी राज्य उत्तरांचल बना दिया गया। मध्य प्रदेश में से आदिवासी राज्य छत्तीसगढ़ बन गया और बिहार के कुछ इलाकों को लेकर एक अन्य आदिवासी राज्य छत्तीसगढ़ बन गया और बिहार के कुछ इलाकों को लेकर एक अन्य आदिवासी राज्य झारखंड गठित हो गया। कुल मिलाकर भाषाई और क्षेत्रीय विविधताएँ आमतौर पर राष्ट्रीय एकता के लिए कोई समस्या नहीं रह गयीं। दरअसल, इस पूरे दौर में राष्ट्रीय एकता और राजनीतिक संस्थानीकरण के प्रश्न को दोबारा जाँचने की परिस्थितियाँ पैदा करने में अभिजनों के बदले हुए चिंतन ने प्रमुख भूमिका निभाई। राजीव गाँधी के शासन काल में हुई घटनाओं और विश्वनाथ प्रताप सिंह और पी.वी. नरसिंह राव के प्रधानमंत्रित्व में हुई उन्हीं घटनाओं के तार्किक विकास के कारण धीरे-धीरे सांप्रदायिक राजनीति और सेकुलरवाद पर बहस इसके केंद्र में आ गयी।[1]

सांप्रदायिकता की उपज किसी सामाजिक शून्य से नहीं होती। जब देश अपनी 'सेकुलर' और प्रगतिशील सामाजिक-आर्थिक प्रतिबद्धताओं से पल्ला झाड़ लेता है, तो उसके सीधे नतीजे के रूप में सांप्रदायिकता का जन्म होता है। नयी सदी में गुजरात के साथ-साथ भारत के अधिकांश हिस्सों में हुई घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया है कि भारतीय सेकुलरवाद इस समय चार तरह की बाधाओं से ग्रस्त है। दरअसल सेकुलरवाद के बहाने राष्ट्रीय एकता और राजनीतिक संस्थानीकरण का प्रश्न ही दाँव पर लगा हुआ है।

ये चार बाधाएँ हैं : तकनीकशाही और प्रबंधकीय राज्य का उदय, चुनाव आधारित लोकतंत्र की विकृत समझ के कारण आया बहुसंख्यवाद, कठोर राज्य की अवधारणा से हुए नुकसान और राज्य की संस्था का खुला सांप्रदायिकीकरण। इन चारों बाधाओं को सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक ध्रुवीकरण के माहौल ने अनुकूल हालात प्रदान कर दिये हैं। मैं समझता हूँ कि इस ध्रुवीकरण ने बीच के रास्ते को असरदार नहीं रहने दिया है। किसी भी लोकतंत्र में मध्यवर्ग दो ध्रुवों के बीच के दायरे की रचना करता है और अपनी पूरी सृजनशीलता के साथ उसमें सक्रिय रहता है। भारत में तकनीकशाही और प्रबंधकीय राज्य के प्रभाव ने मध्यवर्ग को इस महत्वपूर्ण भूमिका से वंचित कर दिया है। सेकुलरवाद इन बाधाओं से तब तक पार नहीं पा सकता जब तक राजनीति पर एक बार फिर बीच का दायरा प्रभावी नहीं हो जाता। और, ऐसा करने के लिए केवल सेकुलर-राजनीतिक दायरे की तरफ ध्यान देना ही काफी नहीं होगा। इसके लिए भारतीय बहुलवाद की नैसर्गिकता को पकड़ना होगा। समझना होगा कि भारतीय आधुनिकता का इतिहास पश्चिमी आधुनिकता से भिन्न है। भारतीय बहुलवाद सेकुलर विकास-क्रम की उपज नहीं है, बल्कि भारतीय सेकुलरवाद हमारे बहुलवाद के आधार की देन है।[2]

भारतीय सेकुलरवाद की राज में पहली बाधा वह तकनीकशाही- प्रबंधकीय राज्य है जिसकी स्थापना की शुरुआत अपने राजनीतिक खेल के स्वार्थ में इंदिरा गाँधी ने की थी।

तकनीकशाही-प्रबंधकीय राज्य राजनीतिक प्रक्रिया पर आधारित व्यवस्था की जगह एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करने की कोशिश करता है जो राजनीति को बदनाम करती है। यह नया मॉडल सांप्रदायिक संगठनों के लिए दरवाजा खोलता है। इस प्रकार सामुदायिक संबंधों, जातीय समूहों के आपसी संबंधों और जातियों के बीच के संबंधों के नियमन में और विभिन्न प्रकार के चुनावी

गठबंधनों के निर्माण में एक मध्यस्थ के रूप में राज्य या पार्टी की भूमिका समाप्त हो जाती है। उनकी जगह निजी संगठनों की भूमिका बढ़ने लगती है। ऐसे कई उदाहरण हमारे सामने हैं जब हिंसा की किसी बड़ी घटना, या दो संप्रदायों के बीच झड़प या दंगे के बाद संबंधित राज्य सरकार ने राजनीतिक पार्टियों या यूनियनों या व्यापार संघों जैसे सेकुलर संगठनों के बजाय हिंदू रक्षा समिति, बाबरी मस्जिद कमेटी या जामा मस्जिद के इमाम जैसी सांप्रदायिक संस्थाओं से समझौता किया। राज्य धीरे-धीरे ऐसी प्रक्रिया में फँसाता जा रहा है जिसमें सेकुलर संगठनों के बदले सांप्रदायिक संगठन मान्यताप्राप्त पक्ष बन जाते हैं।[3]

एकरूपीकरण के विचार के जोर पकड़ने के साथ-साथ जातीयतावाद और धार्मिक किस्म की विविधताएँ भी समस्या लगने लगती हैं। इस दौरान न सिर्फ गरीबों और शोषित-उत्पीड़ित लोगों ने, बल्कि धार्मिक और जातीय अल्पसंख्यकों ने भी, अपने अधिकारों का दावा पेश किया है। यह अवधि राज्य और निचले स्तरों पर ज्यादा स्वायत्तता और स्वतंत्रता की माँग और अल्पसंख्यकों, क्षेत्रीय स्तर की राष्ट्रीयताओं और आदिवासियों के आंदोलनों की है।[4]

दूसरे शब्दों में, एक सच्चे संघीय ढाँचे की माँग बढ़ती जा रही है। इसे नयी एकीकृत विश्व समस्या के अंग के रूप में राष्ट्र-निर्माण के एकरूप प्रौद्योगिकीय प्रयासों के मार्ग में रुकावट समझा जाता है। परिणामस्वरूप, विश्व का संचालन करने के प्रौद्योगिकीय-प्रबंधकीय सोच और सांप्रदायिक सोच के बीच एक सेकुलर मेल दिखाई देता है। सैद्धांतिक रूप से इन दोनों का मेल संभव नहीं है, यानी एक तकनीक सह सांप्रदायिक नहीं हो सकता, बल्कि उसे ज्यादा सेकुलर होना चाहिए। लेकिन असलियत यह नहीं है। चूँकि नये किस्म के (गैर-राजनीतिक और गैर-नौकरशाह) प्रबंधक एकरूप प्रौद्योगिकीय-आर्थिक रुझान की उपज हैं, उनके लिए अल्पसंख्यकों को स्वीकार करना, विविधताओं को सहन करना, एक बेहद बहुरंगी दुनिया के साथ तालमेल बिठाना काफी मुश्किल है। फलस्वरूप आगे बढ़ने और ज्यादा एकीकृत भारत के निर्माण की अवधारणा अंधराष्ट्रवादी सोच को जन्म देती है। इस सोच के तहत हिंदू समाज के ऊपरी हिस्से को राज्य पर नियंत्रण कायम करने के उद्देश्य से ज्यादा-से-ज्यादा उग्र बहुसंख्यकवाद की ओर धकेला जा रहा है। यह भावना जोर पकड़ती जा रही है कि चूँकि हिंदू 'बहुसंख्यक' हैं, इसलिए राज्य के संचालन में उनका प्रभुत्व होना चाहिए और अल्पसंख्यकों को उनका मातहत बनकर रहना होगा। यह अपने आप में एकदम नया विचार है, क्योंकि हिंदू भी अपने बारे में इस ढंग से नहीं सोचते रहे हैं।

क्या चुनाव आधारित लोकतंत्र उग्रराष्ट्रवादी भावनाओं को भड़काता है? क्या वह सेकुलरवाद की स्थापना में दूसरी सबसे बड़ी बाधा है? हम बुद्धिजीवी अक्सर इस मुद्दे से कतराने की कोशिश करते रहे हैं। जब चुनावी मजबूरियाँ लोकतंत्र पर हावी हो जाती है तो नेताओं और पार्टियों की निगाह में लोगों की हैसियत सिर्फ वोटर की रह जाती है। ऐसे वोटरों की गिनती-भर की जाती है या उन्हें एक खास पक्ष में झुकने के लिए मजबूर कर दिया जाता है। यानी उनकी भूमिका बहुत ही सीमित हो जाती है। चुनाव के इस खेल का उद्देश्य है उसके बहुमत को येन-केन प्रकारेण अपने पक्ष में कर लेना। यानी लोकतंत्र बहुसंख्यकवादी बन जाता है और समाज में बढ़ते ध्रुवीकरण के माहौल में यह बहुसंख्यकवाद बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के बीच झड़प का रूप ले लेता है। सेकुलरवाद विरोधी राजनीति इसी बहुसंख्यकवाद की ऊपज प्रतीत होती है।

लोकतंत्र की ऐसी विकृत समझ का जब तक जोरदार विरोध नहीं किया जाता, भारतीय सेकुलरवाद को नहीं बचाया जा सकता। इस बात पर जोर देने की जरुरत है कि चुनावी लोकतंत्र आंशिक लोकतंत्र है। चुनावी लोकतंत्र के भीतर घोर प्रतिक्रियावादी तत्व भी जिंदा रह सकते हैं। इसके उलट, सच्चा लोकतंत्र जनसंगठनों की व्यापक बुनियाद पर टिका होता है। ये जनसंगठन अमेरिकी तर्ज पर सत्ता के गलियारों तक सीमित 'दबाव गुट' भर नहीं, बल्कि हर स्तर पर, खासकर जमीनी स्तर पर काम करनेवाले संगठन होते हैं। अगर हमने इस सच्चाई को नहीं समझा तो हम आसन्न सर्वनाश की चपेट से बच नहीं पायेंगे। चुनावी और संसदीय मजबूरियों ने पार्टियों की जन-भूमिका को भी इस कदर सीमित बना दिया है कि चुनावी राजनीति का इस्तेमाल जनाधार के विस्तार के लिए नहीं होता, बल्कि जनाधार का इस्तेमाल चुनावी राजनीति के संकुचित उद्देश्य के लिए किया जाता है।[5]

भारतीय सेकुलरवाद के रास्ते की तीसरी बाधा है कठोर राज्य की अवधारणा। एक सुस्पष्ट और संगठित केंद्र की अनिवार्यता मौलिक हिंदू ढाँचे से पूरी तरह भिन्न है, हालाँकि हिंदूवाद को आधुनिक बनाने के चक्कर में लगे लोग हिन्दूवाद को भी पश्चिमी ईसायत या इस्लाम की तर्ज पर संगठित करना चाहते हैं। यानी वे चाहते हैं कि उसके पास भी एकीकृत आदर्श हो, एक शक्तिशाली चर्च हो और एक प्रामाणिक धर्मग्रंथ हो। यहाँ जाबूझकर पश्चिमी ईसायत शब्द का इस्तेमाल किया गया है, क्योंकि पूर्वी ईसाइयत उस तरह की नहीं है। भारतीय इस्लाम भी अंदर से काफी विभाजित है। उसका स्वरूप भी उतना एकीकृत नहीं है, जितना कि दुनिया

के दूसरे हिस्सों में। हिंदूवादी आज इन समुदायों की एक खास छवि प्रचारित कर रहे हैं और हिंदुओं से उन्हीं की तरह का बन जाने का आह्वान कर रहे हैं। अर्थात् वे उनसे मौजूदा विभाजित, कमजेर और 'नपुंसक' नजरिया छोड़कर केंद्रीकृत, एकताबद्ध, मजबूत और कठोर नजरिया अपनाने की अपील कर रहे हैं। आधुनिकता के पुजारी यह मानते हैं कि हिन्दुओं की संस्कृति बेहद पौरुषहीन है। वे उसे आक्रामक स्वरूप प्रदान करना चाहते हैं।[6]

आज इस विशाल, संवेदनशील और उदार सोच का स्थान एक पूरी तरह गैर-हिन्दू और अंधराष्ट्रवादी प्रतिक्रिया ले रही है और यह हिंदू प्रतिक्रिया का रूप लेती जा रही है। इसके पीछे दो प्रमुख धारणाएँ काम करती हैं और इसे मजबूती प्रदान करती हैं। ये धारणाएँ आज हिंदुओं के मन में घर करती जा रही हैं। पहली धारणा यह है कि राष्ट्र और राष्ट्रीय एकता खतरे में है। शासक समूह लोगों में यह भावना भरने में कामयाब रहा है। परिणामस्वरूप, लगभग हर तबके के लोगों में इस बात को लेकर बेचैनी है कि हमारे देश की हालत काफी बुरी है, हम बिखराव की ओर बढ़ रहे हैं और इसके लिए मूलत: अल्पसंख्यकों की राजनीति और विदेशी प्रभाव, यानी बहुचर्चित 'विदेशी हाथ' जिम्मेदार है।

यह महज संयोग नहीं है कि 'विदेशी हाथ' को कुछ भीतरी समूहों के साथ जोड़ दिया जाता है- मसलन, मुसलमानों को पाकिस्तान के साथ, पश्चिमी देशों को ईसाइयों के साथ और सिखों के बारे में यह कहा जाता है कि उनकी मदद पाकिस्तान और पश्चिम वाले दोनों ही करते हैं ताकि देश को 'अस्थिर' बनाया जा सके। अत: एक ताकतवर राज्य के निर्माण की जरुरत है। हमें एक ऐसे राज्य का निर्माण करना होगा जो पड़ोसियों पर दबदबा कायम कर सके और हमें दुनिया के सर्वाधिक उद्योगीकृत और ताकतवर राष्ट्रों की कतार में खड़ा कर सके। अगर ऐसा करना है तो हमें अल्पसंख्यकों, आदिवासियों और अन्य समूहों के प्रति इस नरमी भरे बर्ताव को त्यागना होगा। एक सुसंगठित केंद्र का निर्माण करना होगा। धीरे-धीरे यह अघोषित रूप से एक मजबूत हिंदू राज्य की अवधारणा में बदलता जा रहा है। संभव है कि यह हिंदू राज्य पूरी तरह कट्टरपंथी इस्लामी राज्यों की तरह का न हो, फिर भी इसमें एक प्रभुत्ववादी संस्कृति और धर्म के रूप में हिंदुओं का वर्चस्व होगा और राज्य के बारे में बहुलवादी सोच का स्थान एक कहीं ज्यादा एकरूपतावादी सोच ले लेगी। यकीनन, यह राष्ट्रवाद की काफी विकृत अवधारणा है। यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में संचालित राष्ट्रीय आंदोलन के सृजनात्मक राष्ट्रवाद से पूरी तरह अलग है[7], बल्कि यह तो उसी प्रकार का राष्ट्रवाद है जो तीसरी दुनिया के उन देशों में प्रचलित है, जहाँ निरंकुशतावादी, सैन्यवादी या कट्टरपंथी विचारधारा हावी है। लेकिन यह काफी शक्तिशाली विचारधारा भी है। यह धीरे-धीरे मध्यवर्ग, खासकर उच्च-मध्यवर्ग पर हावी होती जा रही है। यह अल्पसंख्यकों के प्रति सांप्रदायिक दृष्टिकोण को हवा देती है और उसे और तीखा बनाती है।

भारतीय सेकुलरवाद के रास्ते की चौथी बाधा है राज्य का सांप्रदायिकीकरण। नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में सरकार के तथाकथित सांप्रदायिकीकरण से आज बहुत से लोग चिंतित हैं, पर समग्र भारतीय राज्य के सांप्रदायिकीकरण का इतिहास तो पुराना है।

इस प्रकार हम काफी खतरनाक दौर में प्रवेश कर रहे हैं। अगर हिंदुओं में आक्रामकता की भावना घर कर जाती है और वे अल्पसंख्यकों को झुकाने या नियंत्रित करने के लिए बड़े पैमाने पर हिंसा के इस्तेमाल को स्वीकार कर लेते हैं तो एक स्थिर राजव्यवस्था का स्थायित्व खतरे में पड़ जायेगा। यह भावना धीरे-धीरे जोर पकड़ती जा रही है कि सिख काफी प्रभावशाली और सुविधासम्पन्न हैं, उन्होंने हमेशा अपने हिंदू भाइयों को नीची नजर से देखा है, इसलिए उनका सर कुचलने के लिए उनके साथ भी ऐसा ही बर्ताव करना होगा। अगर ऐसी भावना हावी हो रही है तो यह समाज उस स्थिति का मुकाबला नहीं कर पायेगा।

सन्दभ सूची:-

1. नीरा चंडोक, वियोण्ड सेकुलरिज्म, ऑक्सफोर्ड, दिल्ली, 2004, पृ0 19.
2. उपरोक्त, पृ0 23.
3. राजीव भार्गव, सेकुलरिज्म एंड इट्स क्रिटीक, ऑक्सफोर्ड, न्यू दिल्ली, 1997, पृ0 39.
4. नीरा चंडोक, पूर्वोक्त, पृ0 33.
5. उपरोक्त, पृ0 36.
6. आदित्य निगम, द इनसरेक्शन ऑफ लिट्ल सेल्फ, ऑक्सफोर्ड, न्यू दिल्ली, 2006.
7. उपरोक्त.

गरीब महिलाएँ: लघु आवश्यकता, लघु ऋण एवं कुटीर उद्योग

डॉ० मणि भूषण कुमार

एम०ए०, पीएच०डी०, अर्थशास्त्र, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सारांश

आज की महिला एक सफल नारी बन कर खड़ी है जो आपसी सामंजस्य, सूझबूझ मेहनत और लगन से अपना उद्यम स्थापित करने में सफल है ही, घर को आर्थिक रूप से मजबूती प्रदान करने के साथ ही अन्य कई महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने का कीर्तिमान भी स्थापित कर रही है। देश के संतुलित आर्थिक विकास में तथा आय सृजन में महिलाओं की सहभागिता परम्परागत, घरेलू लघु एवं कुटीर उद्योगों के माध्यम से स्पष्ट रूप से झलक रही है।

भारत में गरीबी की समस्या प्रबल है और गरीबी की मार महिलाओं पर अधिक तीखी होती है। क्योंकि महिलाएँ परिवार के भरण-पोषण के लिए जिम्मेदार ठहरायी जाती है। गरीबी को दूर करने के लिए केंद्रीय तथा प्रदेश सरकार स्वायत्त संस्थाएँ तथा अन्य कई एजेंसियाँ प्रयासरत हैं परंतु समस्या वहीं की वहीं है। गरीबी उन्मूलन के लिए उद्यमिता विकास ने सर्वोत्तम मार्ग प्रशस्त किया है। इसमें कुछ इस तरह का वातावरण बनाया जाता है कि उद्योगों तथा सूक्ष्म उद्योगों, छोटे-मोटे काम धंधों आदि को बढ़ावा मिल सके तथा योग्यता में वृद्धि के साथ पूँजी भी प्राप्त हो सके।

प्रस्तुत आलेख का मुख्य बिंदु लघुऋण एवं बचतों के माध्यम से गरीब महिलाओं में उद्यमिता की भावना विकसित कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना है। गरीबों, साधनहीनों, विशेषत: महिलाओं को वित्तीय सेवाएँ सफलभ करना ही वह मूलमंत्र है जिससे देश का विकास संभव है। दरअसल गरीब महिलाएँ अभावग्रस्त महिलाएँ हैं जिनसे जुड़े हैं बड़े परिवार, साक्षरता का अभाव, प्राकृतिक दशा संपत्ति व अन्य साधनों का अभाव। इन अभावों से बाहर आने का एकमात्र उद्यम है जो उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता व स्वरोजगार दिलवाता है। उद्यम वह क्षेत्र है जिसमें व्यक्ति कुछ व्यक्तियों के साथ मिलकर निर्माण कार्य को दिशा देता है। इसमें एक साथ एक से अधिक लोगों को रोजगार की प्राप्ति होती है।[1]

भारतीय अर्थव्यवस्था के बदलते हुए आर्थिक और औद्योगिक स्वरूप में लघु एवं कुटीर उद्योगों की अधिकाधिक स्थापना करना एक आवश्यकता बन गयी है। वैसे भी भारत के आर्थिक विकास में लघु एवं कुटीर उद्योगों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

कुटीर एवं लघु उद्योगों के बढ़ते विकास का महत्व इस दृष्टि से भी अधिक होता है कि इनके विकास से समाज में आर्थिक एवं सामाजिक समानता का वातावरण तैयार होता है जो आर्थिक सत्ता के विकेंद्रीकरण में सहायक होता है। इसी आर्थिक-सामाजिक स्वतंत्रता के कारण इस क्षेत्र में महिला उद्यमियों को इस दिशा में प्रवृत्त होने का एक सुअवसर प्राप्त हुआ। वैसे भी राष्ट्र की संरचनात्मक क्रांति में महि का स्थान सर्वोपरि है, यह न केवल अपने पारिवारिक व सामाजिक विकास के लिए उत्तरदायी है, अपितु राष्ट्र के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास में उसकी रचनात्मक भूमिका अत्यंत ही महत्वपूर्ण होती है। हमारे देश में महिलाएँ निस्संदेह उत्पादक शक्ति की पर्याय है।[2]

लघु एवं कुटीर उद्योग के क्षेत्र में महिला उद्यमिता की भागीदारी एवं उनकी भूमिका तीन विभिन्न रूपों में परिलक्षित होती है एवं पायी जाती है- 1. स्वामित्व प्रधान महिला उद्यमी, 2. संस्थानों में प्रबंधकों की भूमिका और 3. जो संस्थाओं/ईकाइयों में कर्मचारियों/श्रमिकों के रूप में कार्यरत हैं। जहाँ स्वामित्व/प्रबंधकीय प्रधान महिला उद्यमियों का संबंध है, उनमें अधिकांश इकाइयों में स्वयं या एक से अधिक महिला उद्यमी अथवा संयुक्त रूप से अंश-पूंजी 51 प्रतिशत से अधिक की भागीदारी के आधार पर

संचालित की जाती है और प्रबंधकीय भूमिका में एक या एक से अधिक महिला प्रबंधकों द्वारा प्राइवेट लिमिटेड कंपनियों/सहकारिता के आधार पर संचालित समितियों में जिन्हें 'महिला संस्थाएँ' के नाम से जाना जाता है, अपनी सक्रिय भागीदारी करती है।[3]

21वीं सदी की शुरुआत में भारत ने सन् 2001 वर्ष को महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया था। इस वर्ष का मूल प्रश्न था कि महिलाओं के लिए ऐसे कौन से कदम उठाये जायें जिससे कि देश में महिलाओं पर हो रहे अत्याचारों में कमी लाई जा सके और वे सशक्त बन सकें ताकि उनमें स्वाभिमान का विकास हो। भारत की संसद में आज तक केन्द्रीय सरकार महिलाओं की आरक्षित भागीदारी का बिल पास नहीं करवा सकी है, फिर ऐसी सरकारों से महिलाओं के सशक्तीकरण की क्या उम्मीद की जा सकती है। परन्तु यदि महिलाएँ आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी हों तो वे हर अच्छी-बुरी स्थितियों का मुकाबला करने में अधिक सक्षम हो सकती हैं। 21वीं शताब्दी में आवश्यकता है कि महिला शक्ति को नई सदी की नारी के रूप में पहचान मिले।

नारी पुरुष में शारीरिक भेदभाव के अलावा और कोई भेद नहीं है। नारी किसी भी दृष्टि से हेय नहीं है बल्कि बराबर की दावेदार हैं, किन्तु नारी में आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय की कमी ही नारी प्रगति में बाधक है। महिलाएँ अभी भी पुरुषवादी सोच और धार्मिक अंधविश्वासों में जकड़ी हुई हैं। सशक्तीकरण की सबसे बड़ी शर्त है चेतना, स्वावलंबन और निज की पहचान। इसके बिना महिला सशक्तीकरण संभव नहीं है। समाज को सशक्त व प्रगति पथगामी बनाने की पहली आवश्यकता महिला सशक्तीकरण ही है।[4]

आत्मविश्वास में कमी महिलाओं को आगे बढ़ने से रोकती है। नारी अपनी शक्ति पहचाने तो हर क्षेत्र में आगे बढ़ सकती है। स्वयं को दीन-हीन, अबला समझने की जगह नारी को अपनी आत्मशक्ति को जागृत करना जरुरी है, सहारे की तलाश की जगह स्वयं में सक्षम बनें। नारी में सारी शक्तियाँ विद्यमान हैं केवल उन्हें जागृत करने की जरुरत है। महिलाएँ अपनी शक्ति को पहचानें तथा शिक्षा और प्रशिक्षण द्वारा सक्षम बनकर स्वावलंबी बनें और अपने पैरों खड़ी होने के साथ ही राष्ट्र के विकास में समान रूप से भागीदारी कर सकें। इसके लिए उन्हें शासन, विभिन्न निगमों तथा संस्थाओं की सहायता भी मिल सकती है।

आर्थिक स्वावलंबन या आत्मनिर्भरता के बिना नारी पूर्णत: परवश है, प्रेरणा शून्य है, स्फूर्तिमयी कल्पना एवं स्वतंत्रता से वंचित है। अपने सामाजिक व्यक्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ है। अत: उसका व्यक्तित्व अवरुद्ध एवं जीवन अभावग्रस्त है। आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में नारी लज्जित रहती है। लज्जा से उसका पराक्रम नष्ट हो जाता है। आज के भौतिकतावादी युग में 'अर्थ' ही जीवन आधार है। 'अर्थ के बिना जीवन सूना है, यहाँ तक कि अर्थ के बिना उदरपूर्ति भी सम्भव नहीं है।

महिला आत्मविश्वास का विकास कर यदि प्रगति पथ पर आगे बढ़े तो परिवार, समाज ही नहीं वरन् समग्र देश का आर्थिक विकास होगा। आर्थिक तौर पर पुरुष आश्रित-व्यवस्था महिलाओं को और अधिक कमजोर बनाती है। औरत यदि स्वावलंबी हों तो उस पर जुल्म नहीं होंगे, यदि होंगे तो कम होंगे। स्वावलंबी होने से महिला का स्वाभिमान भी बढ़ता है और आत्मसम्मान भी, साथ ही वह प्रतिकूल निशेधों और प्रतिबंधों को अस्वीकार करने की क्षमता हासिल कर लेती है। वे समाज की संकीर्ण परम्पराओं से मुक्ति की राह पर चल सकती हैं। वास्तव में महिला को कमजोर बनाने में उसके परजीवी होने के साथ-साथ समाज की आचार-संहिताएँ भी जिम्मेदार हैं। स्वावलंबन उसे उन बेड़ियों से मुक्त करने का एक मजबूत आधार देता है। स्त्रियों में चेतना की दरकार है ताकि उनकी अपनी मानसिकता भी बदले। यह स्वावलंबी होने पर आसानी से बदली जा सकती है, ऐसी चेतना, शिक्षा और संघर्ष से ही आ सकती है, जिसका अभी नितांत अभाव है। इसीलिए स्त्री सशक्तीकरण की तरफ अगर कोई ठोस कदम उठाया जा सकता है तो वह होगा शिक्षित अथवा अशिक्षित महिलाओं के लिए योग्यतानुसार रोजगार मुहैया कराना, रोजगार के योग्य बनाने के लिए उनके प्रशिक्षण एवं शिक्षण की व्यवस्था करना ताकि वे हर क्षेत्र में काम कर सकें। रोजगार के साथ शिक्षा, पढ़ाई के कार्यक्रम को लागू करने से सशक्तीकरण को बल मिलता है। यदि महिलाएँ आत्मनिर्भर हैं या स्वावलम्बी होती हैं तो यही स्वावलंबन उन्हें सशक्त बनाता है।[5]

सृष्टि पर अवतरित हुई हर धर्म व सत्य की क्रांति का अवतरण नारी की दिव्य आत्मिक शक्ति से हुआ है जो वर्तमान में ऐसे समय जब परमात्मा शिव स्वयं धरा को स्वर्ग बनाने में हम समस्त आत्माओं का नेतृत्व कर रहे हैं, तो आज नारी क्यों नहीं शिव-शक्ति बनकर दैवीय सृष्टि की स्थापना में स्वावलंबन एवं आत्मनिर्भरता की क्रांति का बिगुल बजा सकती है?

महिला को सशक्त बनाने में शिक्षा, व्यक्तित्व विकास, आर्थिक आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन का महत्वपूर्ण स्थान है। अत: क्षेत्र विशेष के लिए अधिक उपयोगी महिलाओं के कल्याण की योजनाओं का चयन कर पूरी तत्परता से क्रियान्वयन सुनिश्चित कराया जाए। विभिन्न शासकीय विभाग परस्पर समन्वय कर महिला सशक्तीकरण का प्रयास करें।

नारी सामर्थ्य बढ़ाने के लिए रोजगार मूलक शिक्षा सबसे जरुरी है। महिलाएँ अपनी रूचि और बाजार की मांग के अनुरूप उत्पादक कार्य करें तथा पैसों की आवश्यकता पूरी करने के लिए स्व-सहायता समूह एवं सहकारी साख समितियाँ बनायें और सरकारी योजनाओं का लाभ उठायें।[6]

सुरक्षा व ईमानदारी- महिलाओं में सुरक्षा व ईमानदारी की भावना प्रबल होती है इसलिए वे ज्यादा जोखिम उठाने से हिचकिचाती हैं। अत: रोजगार के लिए छोटे साधन भी उन्हें सफलता दिलाते हैं।

चूंकि गरीब महिलाएँ वैसे भी किस्मत की मारी हैं। अत: उनके ये गुण दब जाते हैं साथ ही पूंजी का अभाव उन्हें कुछ भी करने से रोकता है। गरीब महिलाओं को अधिक मात्र में पूंजी की आवश्यकता नहीं होती हैं उन्हें तो थोड़ी-सी पूंजी चाहिए होती है जिसे प्राप्त करने के लिए भी उनके पास स्थायी पूंजी नहीं होती है।[7]

अत: गरीब महिलाओं को सूक्ष्म ऋण प्रदान करने की सरकार की कुछ अनूठी योजनाएँ हैं। साथ ही महिलाओं के विश्वास से भरे अपने संगठन हैं जो अन्य महिलाओं को लगातार उद्यम करने के लिये अभिप्रेरित कर रहे हैं।

- स्वर्ण जयंती ग्रामीण स्वरोजगार योजना।
- महिला ग्रामीण और बाल विकास योजना।
- इंदिरा महिला योजना।
- इंटरनेशनल फंड फॉर एग्रीकल्चर डवेलपमेंट।
- डी.आर.आई. (डिफरेंशियल रेट ऑफ इन्ट्रेस्ट) (द्वारा बैंक)।
- स्मॉल इंडस्ट्रीज डेवलपमेंट बैंक ऑफ इंडिया।
- सहकारी बैंक।
- क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक।
- बिशी।

इन संस्थाओं के द्वारा उन गरीबी प्रतिवेदक को ऋण दिया जाता है जो 250 रुपया प्रतिमाह प्रति सदस्य व्यय न कर सके। ऋण की राशि 500 रुपये से लेकर 25000/- रुपया की दी जाती है जिनमें कुछ योजनाओं में सरकारी अनुदान भी प्राप्त होता है। इन योजनाओं से ऋण प्राप्त करने का सबसे अच्छा माध्यम अपनी सहायता आप करे। अर्थात् स्व-सहायता समूहों का निर्माण, बिशी का निर्माण, सहकारी समिति का निर्माण कर अपने लिए आवश्यक ऋणों की व्यवस्था अपनी ही बचतों से करो।

महिलाओं के अनूठे स्वैच्छिक संगठन

रास, तिरुपति	बाल रश्मि सोसायटी, जयपुर
अन्नपूर्णा महिला मंडल, मुम्बई	सेवा सहकारी बैंक, अहमदाबाद
अदिति, पटना	एसिस्ट, आंध्रप्रदेश (गुटूंर जिला चिलाकालुरीपेर क्षेत्र)
असेफा (एसोसिएशन ऑफ सूर्ख सेवा फॉर्म्स)	मदुरई

इन संगठनों के माध्यम से करीब महिलाएँ स्वरोजगार को अपनाकर आत्मविश्वासपूर्वक अपना जीवनयापन कर रही है।

1. बाल रश्मि सोसायटी, जयपुर- इस संस्था की स्थापना 1972 में की गई थी जो कुटीर उद्योगों के विकास, महिला चेतना और महिलाओं के आर्थिक सशस्त्रीकरण के लिए सक्रिय है इस संस्था ने ग्रामवासियों की मदद से एक समुह द्वारा उपयोग करने के पश्चात् यह निधि दूसरे फिर तीसरे समूह को सौंप दी गई इस तरह से ब्याज मुक्त ऋण का अच्छा माध्यम है जिसे कुटीर व लघु उद्योगों में उपयोग किया गया।

2. रास, तिरुपति- गरीबों की सहायतार्थ यह संगठन 3540 गाँव में सक्रिय है यह महिलाओं को तार के थैले बनाना, मोतियों की मालाएँ, रेडियो, टीवी, बेकरी, टंकण, सिलाई-बुनाई, मशरूम उत्पादन नर्सरी, व नर्सिक का प्रशिक्षण दिलवाती है।

3. अन्नपूर्णा महिला मंडल मुम्बई- संस्था का गठन 1975 में हुआ जब मुम्बई के मिल मालिकों ने महिलाओं को देने वाली सुविधाओं को अनावश्यक खर्च माना व इस खर्च को कम करने के लिए उन्हें ही रोजगार से बाहर कर दिया रोजगार की तलाश में इन महिलाओं ने खाना बाकर बेचना शुरू किया परंतु इन महिलाओं को प्रारंभिक पूंजी की समस्या थी तब श्रीमती प्रेमा पुराव ने उनकी मदद समूह बनाने व रियायती दर पर ऋण उपलब्ध करवाने में की व उन्हें अन्नपूर्णा महिला मंडल के नाम से पंजीकृत करवाया। यह मंडल महिलाओं को गैस कनेक्शन, बर्तन, कुकर, राशन आदि की व्यवस्था ऋण के रूप में करती है। खाद्य सामग्री की बेचने की व्यवस्था के अतिरिक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाती हैं। आज इस संस्था से 1,50,000/- गरीब महिलाएँ लाभान्वित हो रही है।

4. सेवा सहकारी बैंक, अहमदाबाद- 1972 में अहमदाबाद में 4000 गरीब, स्वरोजगार में लगी महिलाओं ने सेल्फ इम्प्लायड वीमेंस एसोसिएशन नाम से संस्था शुरु की और स्वयं की मदद के लिए एक बैंक की स्थापना की। इन महिलाओं ने हस्ताक्षर करना तक रातों-रात सीखा, ताकि वे अगले दिन बैंक में हस्ताक्षर कर सकें आज इस बैंक में लगभग 15000 महिलाएँ हिस्सेदार है व 30,000 के लगभग खातेदार, पूंजी लगभग 4.5 करोड़ रुपये की है। यहाँ पर महिलाओं का साक्षर न होना अड़े नहीं आया।

5. अदिति, पटना- इस संस्था का गठन 1983 में हुआ और इसका उद्देश्य था गरीब और साधनहीन ग्रामीण महिलाओं को पशु संबर्धन, कृषि व वन दुग्ध उत्पाद, रेशम उत्पादन, मत्स्य पालन, खादी एवं ग्रामीण उद्योग, हैण्डलूम उत्पादन में मदद पहुँचाना। अदिति को दिशा-निर्देश श्रीमती विजी श्रीनिवास द्वारा दिया जाता है, जो अन्नपूर्णा महिला मंडल के प्रभावित हो महिलाओं की मदद के लिए अपना उच्च वेतन का पद छोड़कर बिहार आ गई। संस्था ने नेतृत्व प्रशिक्षण जागरूकता के कार्यक्रम और आर्थिक कार्यक्रम तथा समूह निर्माण के क्षेत्र में अनुकरणीय कार्य किया किया जिससे गरीब आदिवासी महिलाओं तक को रुपया 1,000/- के ऋण प्राप्त होने लगे व वे अपने छोटे-छोटे कार्य करने लगी, इनकी वस्तुएँ भारत के बाहर निर्यात होने लगी तथा महिलाओं की आय में पर्याप्त वृद्धि हो रही है।

6. एसिस्ट, आंध्रपदेश- यह संस्था लगभग 1980 से कार्य कर रही है। चिटाला क्षेत्र में बुनकरों द्वारा गरीब महिलाओं व पुरुषों दोनों का शोषण राशि भुगतान के संबंध में किया जाता था जिससे उन्हें राशन उधार लेना होता था वह भी घटिया किस्म का था। इन महिलाओं ने एसिस्ट की मदद से 3,000/- व स्वयं की छोटी-छोटी बचतों से रुपये 2,000/- लेकर सहकारी भंडार की स्थापना की जिसमें एसिस्ट ने उनका पूरा सहयोग किया प्रत्येक सदस्य की दुकान में बैठने की बारी 40 दिन में एक बार आयी। इससे इन परिवारों को 120/- प्रतिमाह की बचत होने लगी। इस तरह अनेक उदाहरण इन संस्थाओं के योगदान से भरे पड़े हैं।

7. असेफा, मदुरई- यह अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त संस्था है। यह मुख्यत: बंजर भूमि को उर्वरा बनने के लिये की गयी। अब ये शिक्षा, स्वरोजगार, महिला उत्थान के कार्य में लगी हुई है इसका क्षेत्र भी तमिलनाडु से बाहर बिहार, राजस्थान व म०प्र० तक फैला हुआ है। व इनका बजट 4 करोड़ रुपये का है।

''दूसरों की सेवा करने में हम वस्तुत: अपने अंदर के भगवान की ही सेवा करते हैं।''[8]

लघु ऋण, लघु उद्यम के महत्व के कुछ अनूठे उदाहरण

200/- के ऋण से उत्पादन कार्य यह सुनकर सभी को आश्चर्य होता है पर यह सच है कि बिहार की मुन्नी देवी को रस्सी बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में घास खरीदनी होती है, जो निश्चित महीनों में ही मिलती है और मुन्नी देवी के झोपड़े में केवल 200/- की खास रखने की व्यवस्था है और उसे इससे ज्यादा की जरुरत भी नहीं।

38 वर्षीय हनीफा का पति ट्रक ड्राईवर दुर्घटना का शिकार था। घर चलाने की जिम्मेदारी हनीफा पर थी, जिसने जरुरत का उधार पड़ोसियों से लिया और परचून की दुकान खोली, साइकिलें भी किराये पर देने का काम शुरु किया। इस अनौपचारिक ऋण से आय में वृद्धि हुई व उसका कच्चा घर भी पक्का हो गया।

इन संगठनों के समान अनेक और भी अनौपचारिक संगठन गरीब महिलाओं की मदद कर रहे हैं। जरुरत है महिलाओं के शोषण को रोकने की उनमें जागरूकता लाने की है। जरुरत है गरीब महिला के उद्यम को आगे बढ़ाने की। मध्यम व उच्च वर्ग के लिए उद्यम करना एक आसान सी बात है, शक्ति है, जबकि गरीबों के लिए उद्यम एक आवश्यकता है, गरीबी, भुखमरी से मुक्ति है।

निष्कर्ष

लघु उद्योग के क्षेत्र में महिला उद्यमिता की भागीदारी जिन क्षेत्रें में अधिकाधिक हो सकती है, उनमें (क). रसायन उद्योग के क्षेत्र, (ख) खाद्य उद्योग के क्षेत्र, (ग) कागज परिवर्तन उद्योग के क्षेत्र, (घ) होजियरी/कपड़ा उद्योग के क्षेत्र (ड) मृत्तिका एवं कांच उद्योग के क्षेत्र, (च) चमड़ा उद्योग के क्षेत्र एवं (छ) इंजीनियरिंग उद्योगों के क्षेत्र में बनने वाली वस्तुएँ एवं सामग्रियाँ सम्मिलित हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि लघु एवं कुटीर उद्योग के क्षेत्र में महिला उद्यमिता की भागीदारी में और अधिक वृद्धि की पूर्ण संभावना एवं पर्याप्त प्रोत्साहन की महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूचीः-

1. शर्मा पूजा, महिला विकास और सशक्तीकरण आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2008, पृ. 52.
2. आर.के., मित्तल, इन्टरप्रिनियरशिप मैनेजमेंट, रजत पब्लिकेशन, दिल्ली, 2007, पृ0 29-30.
3. रघुवीर सहाय, औद्योगिक अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा, 2009, पृ0 61.
4. उपरोक्त, पृ0 58.
5. मित्र इंदिरा, गरीब महिलाएँ उधार एवं रोजगार किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ0 63.
6. डी.एन. मिश्रा, इन्टरप्रिनियरशिप, डेवलपमेंट एंड प्लानिंग इन इंडिया, युग पब्लिकेशन, दिल्ली, 2003, पृ0 63-65.
7. उपरोक्त, पृ0 68.
8. उपरोक्त, पृ0 71-72.

आरक्षण नीति की उपलब्ध्यिाँ और परिणाम

विकास कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान बी.आर.ए.बी.यू. मुजफ्फरपुर।

पिछले सत्तर साल में आरक्षण नीति पर धीमी गति से अमल हुआ है। इसमें कई बार बेईमानियाँ भी बरती गई हैं। पर, इसके बावजूद इसकी उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं। न केवल दलितों, आदिवासियों और पिछड़ों को बल्कि पूरे राष्ट्र को फायदा हुआ है।

पहली बात तो यह है कि आरक्षण ने भारतीय मध्यवर्ग की प्रकृति ओर संरचना बदल डाली है। अब वह अधिक समावेशी हो गया है। आजादी के समय भारतीय मध्यवर्ग एक जाति सरीखी छोटी सी सामाजिक संरचना थी। इसके तकरीबन सभी सदस्य अंग्रेजी शिक्षित, शहरी और द्विज होते थे। आरक्षण के कारण अब निचली जातियों के काफी सदस्यों ने मध्यवर्ग में प्रवेश पा लिया है। विकासशील अध्ययन पीठ, नई दिल्ली का हाल का अध्ययन दिखाता है कि भारतीय मध्यवर्ग में आरक्षण से लाभान्वित दूसरी और तीसरी पीढ़ी के लोग शामिल हैं।

दूसरे, आजादी के समय दलितों, आदिवासियों और पिछड़े वर्गों के लिए प्रगति की संभावनाएँ सीमित ही थीं। वे अपनी जाति की संरचना के भीतर ही सामूहिक तौर पर प्रगति कर सकते थे। आरक्षण के जरिए मध्यवर्ग के दरवाजे खुल जाने के कारण न केवल प्रगति की संभावनाएँ बढ़ी हैं, बल्कि प्रगति करने के लिए उन्हें जाति प्रगति द्वारा स्वीकृत कर्मकांडीय संस्तुति, जैसे कि संस्कृतिकरण, का सहारा भी नहीं लेना पड़ रहा है। इस परिघटना ने सामाजिक गतिशीलता का पैटर्न बदल दिया है। अब निचली जातियों के सदस्य व्यक्ति के तौर पर मध्यवर्गीय बन सकते हैं। इसी कारण से जातिप्रथा की आर्थिक और सांस्कृतिक जड़ें काफी हिल गई हैं। आज किसी का मध्यवर्गीय होना असके कर्मकांडीय दर्जे से नहीं तय होता। मध्यवर्ग की शिनाख्त उपभोग के पैटर्न के आधार पर होती है, न कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के तहत ब्राह्मणों की नकल के आधार पर।[1]

तीसरे, पचास साल से चल रहे आरक्षण ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर गहरा और स्थायी असर डाला है। शैक्षिक और व्यवसायगत अवसरों की उपलब्धि ने उत्पीड़ित समुदायों में एक नये राजनीतिक नेतृत्व को जन्म दिया है। उत्तर भारत में दलितों की ताकतवर पार्टी बहुजन समाजह पार्टी दलित और पिछड़े सरकारी कर्मचारियों को ट्रेड यूनियन की तरह संघबद्ध करने के प्रयासों का परिणाम है। आरक्षण के पचास सालों में तकरीबन सभी राज्यों में और हाल ही में केंद्र में राजनीतिक सत्ता की संरचना बदल गई है। अंग्रेजी शिक्षित द्विजों की राजनीतिक हुकूमत तेजी से खत्म हो रही है। सभी स्तरों पर आरक्षण से लाभन्वित जातियों और समुदायों के सदस्य सत्तासीन हो रहे हैं, हालाँकि नौकरशाही में उनकी नियुक्तियाँ कुछ कम अमह पदों पर हैं। नतीजे के तौर पर निचले समुदायों द्वारा समर्थित कई पार्टियाँ राजनीतिक मंच पर दिखाई दे रही हैं। ये दल किसी भी पारंपरिक और जजमानी किस्म के राजनीतिक संबंध की कड़ी मुखाल्फत करते हैं। इस नए परिवर्तन से पहले भारतीय राजनीति में निचले तबकों और ग्रामीण समुदायों के नेतृत्व का संबंध अंग्रेजी शिक्षित द्विज अभिजनों से स्तंभीय या ऊँच-नीच वाला होता था। अब ऐसी बात नहीं रही।[2] इन तबकों के नेता चुनावी अखाड़े में अपने हितों और अस्मिताओं की आक्रामक दावेदारी करते हैं। इसका एक मतलब यह भी निकाला जा सकता है कि आरक्षण से हुए इस सशक्तीकरण के जरिए इस नये राजनीतिक वर्ग ने सत्ता पर कांग्रेस इजारेदारी तोड़ने में भारी योगदान किया हैं। आखिरकार कांग्रेसी इजारेदारी अपनी प्रकृति में द्विज और अभिजनोन्मुखी थी। आज यही राजनीतिक वर्ग विभिन्न जातीयता आधारित पार्टियों का नेतृत्व करते हुए एक साथ जातीयता और सामाजिक न्याय की राजीति कर रही है। परिणाम यह निकला है कि इस किस्म की राजनीति जतीय- बहुसंख्यकवादी हिंदुत्व आंदोलन के खिलाफ मुख्य ताकत के रूप में उभरी है। कुल मिला कर आरक्षण ने समाज के पुराने शक्ति संतुलन को बदल दिया है, हिंसा का स्तर न्यूनतम रह गया है और नागरिक टकराव भी कम से कम दिखाई पड़ता है।[3]

दीर्घकालीन नजरिए से देखने पर साफ हो जाता है कि अभी तक अलग-थलग पड़े रहे समूहों के राजनीतिक समावेशन की पहल सामाजिक नीति के जरिए हुई है, और इस उपलब्ध करने में स्पर्द्धामूलक लोकतांत्रिक राजनीति की भूमिका रही है। इस समावेशन का नतीजा जाति के पुनरूत्पादन की प्रक्रिया भंग करने में निकला है, वरना जाति बीच-बीच में विचारधारात्मक रूप से पुष्ट सत्ता की जन्म आधारित संरचनाओं के रूप में अवतार लेती रहती। इसी जगह यह स्पष्ट करना जरूरी है कि इस नीति के ऐसे परिणाम नहीं भी निकल सकते थे, अगर उसका आधार स्पर्द्धामूलक लोकतांत्रिक राजनीति में न होता।

दरअसल, आरक्षण ने एक श्रेणी के रूप में व्यक्तियों को और उस प्रक्रिया में उनके परिवारों को विशेष रूप से लाभन्वित किया है। इसका सबसे ज्यादा निर्णायक असर यह पड़ा है कि सभी लाभन्वित श्रेंणियों के लिए शिक्षा एक सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्य बन गई है। उनकी निगाह में अब शिक्षा एक ऐसा जरिया बन गई है जिससे वे आधुनिकता बन कर सामाजिक रूप से प्रगति कर सकते हैं। मध्यवर्ग में हाल में ही प्रवेश कर चुके लोग अपने माता-पिता के विपरीत अपने बच्चों को शिक्षित करने का भगीरथ प्रयास कर रहे हैं ताकि उनकी संतानें पढ़-लिख कर आरक्षण का फायदा उठा सकें और इस प्रकार बढ़ती हुई मध्यवर्गीय स्पर्द्धा में उनका भी स्थान बन सके। न केवल ऐसे लोगों की जीवन-शैली बदल गई है, बल्कि उन्होंने मध्यवर्ग की जाति सरीखी पारंपरिक संस्कृति को भी पुन:परिभाषित कर दिया है। अब इस वर्ग को गैर-कर्मकांडीय दर्जे के मुताबिक नापा जाता है और बचत करने पर ध्यान दे रही है। अवसरों के विस्तार से इन समुदायों को पहले से कीं ज्यादा संख्या में ऊँची पेशागत हैसियत और पद प्राप्त हो रहे हैं, यधपि व्यापार और उधोग क्षेत्रें में अभी तक इन समुदायों की पहँच शुरू नहीं हो पाई है।[4]

प्रत्येक ऊर्ध्वगामी समुदाय की ही तरह इन समुदायों में भी इस प्रक्रिया ने एक 'मलाईदार परत' को जन्म दिया है जिससे उम्मीद की जाती है कि वह न केवल समाज के अन्य सदस्यों के लिए उदाहरण बनेगी, बल्कि उन्हें व्यवस्था के भीतर प्रवेश करने के मौके भी मुहैया कराएगी। आरक्षण के लाभार्थियों का सत्ता के भीतर एक ऐसा ताकतवर नेटवर्क बनता जा रहा है जो द्विज अभिजनों के दावों को भी पराजित करने में सक्षम है। चूँकि नौकरशाही और राजनीतिक दायरे में बहुत बड़ी संख्या में आरक्षण से लाभान्वित लोग आ गए हैं, इसलिए अब उनके लिए अपने बिरादरानों का सत्ता के ढाँवे में प्रवेश कराना आसान हो गया है। इस मामले में गुजरात के सूरत जिले का उदाहरण द्रष्टव्य है। साठ के दशक में वहाँ चालीस फीसदी प्राइमरी अध्यापक आदिवासी समाज से आए थे। इस परिघटना ने दीर्घकालीन स्तर पर दक्षिण गुजरात के आदिवासियों के लिए सत्ता के द्वार खोल दिए। बीस साल में ऐसे कई आदिवासी आरक्षण का सहारा ले कर अध्यापक न केवल विधायक और सांसद बने, बल्कि राज्य के मंत्री और मुख्यमंत्री भी बन गए। जब सत्ता में उनकी खासी संख्या हो गई, तो उनके लिए सत्ता के अन्य सूत्रों के साथ जुड़ना संभव हो गया। वे निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने लगे। भरती की प्रक्रिया भी इसमें से एक थी। इसका ताजा उदाहरण उत्तर प्रदेश की राजनीति में मायावती और बहुजन समाज पार्टी की राजनीतिक सफलताओं के सामाजिक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।[5]

इन लाभों के बावजूद आरक्षण की नीति अपने कुछ महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों को वेधने में पूरी तरह सफल नहीं मानी जा सकती। ऊँची स्तर की सरकारी नौकरियों में आरक्षण का कोटा पूरा नहीं भरा जा सका है। बहुत से समुदाय आरक्षण के फायदे इसलिए नहीं उठा पाते हैं कि उनके पास शिक्षा का न्यूनतम स्तर है ही नहीं। आरक्षण के साथ-साथ उठाए जाने वाले पूरक कदम अभी तक कमोबेश नाकाफी ही हैं। जाहिर है कि इन खामियों के बावजूद आरक्षण की नीति ने उत्पीड़ित समुदायों की प्रगतिकांक्षाओं को ठोस आधार प्रदान किया हे। आरक्षण की वजह से इन समुदायों को बेहतर साक्षरता और जीवन-शैली हासिल करने की प्रेरणा मिली है। पश्चिमी और दक्षिणी राज्यों में तो इस नीति के बेहतर कार्यान्वयन ने अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों का जीवन पहले के मुकाबले कहीं स्तरीय बना दिया है। यहाँ तक कि कई जगहों पर उनकी हैसियत द्विजों से तुलनीय हो गई है।

वैसे तो पिछड़े वर्गो का आरक्षण एक स्थापित नीति है, सभी पार्टियाँ उसे स्वीकार कर चुकी हैं, संसद उसका नवीकरण कर चुकी है एवं कानूनी व राजनीतिक रूप से उसके लिए कोई खतरा नहीं है, पर आरक्षित श्रेणियों में कुछ समुदायों ने नाजायज घुसपैठ कर ली है। अगर यह चलता रहा तो आरक्षण बेतुका और अर्थहीन हो कर रह जाएगा। यह दुष्प्रभाव चुनावी राजनीति और वोटबैंक की राजनीति का है। अपने संख्याबल के आधार पर कोई भी समुदाय अपने पारंपरिक रूप से शूद्र दर्जे का लाभ उठा कर आरक्षण की दावेदारी करने लगता है, जबकि आज के हालात में वह वास्तव में पिछड़ा नहीं होता। यहाँ तक कि उसकी हैसियत आर्थिक और सामाजिक रूप से आगे बढ़े हुए द्विजों जैसी होती है। दिल्ली और राजस्थान के जाट इसका उदाहरण हैं। इन दोनों जगहों पर जाटों को पिछड़ा वर्ग श्रेणी में शामिल कर लिया गया है। राजस्थान के जाटों में सभी पिछड़ें नहीं हैं। वहाँ तो जाटों के राजपरिवार और राजवंश तक हैं। दिल्ली के जाट तो कतई पिछड़े नहीं हैं। शहरी इलाकों में रहने के कारण उन्हें बेहतर अवसर मिले हैं,

शहरीकरण के प्रसार के कारण उन्हें अपनी जमीनों की बेहतर कीमत मिली है। साथ ही हरियाणा और उत्तरी दिल्ली के जाट आर्यसमाज आंदोलन से प्रभावित रहे हैं जिसके कारण भी उन्हें अपने पिछड़ेपन से मुक्ति पाने में मदद मिली है। दिल्ली जाट राजनीतिक रूप से ताकतवर और संख्याबल के धनी हैं। कुल मिला कर यह पिछड़ा बनने की स्पर्धा आरक्षण की नीति को भारी नुकसान पहुँचा सकती है।[6]

हो सकता है कि कुछ जातियों में बीस या तीस फीसदी परिवार अभी भी पिछड़ी जीवन-स्थितियों में गुजर-बसर करने पर मजबूर हों। पर सवाल यह है कि ऐसी जातियों के बीच से सामाजिक और शैक्षिक पिछड़े कैसे छाँटे जाएँ, इसका आधार क्या हो? शैक्षिक पिछड़ों की शिनाख्त किसी जाति में स्नातकों की संख्या या स्कूल जाने वाले या बीच में स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों की संख्या के आधार पर एक हद तक ही जा सकती है, पर सामाजिक रूप से पिछड़ों की शिनाख्त करना बहुत मुश्किल है। मंडल आयोग ने इस तरह के पिछड़ेपन को बाल विवाह के प्रचलन या विधवा विवाह के विरोध से जोड़ कर देखा था, लेकिन इसके बावजूद यह शिनाख्त अभी भी समस्याग्रस्त बनी हुई है।

उल्लेखनीय है कि सुप्रीम कोर्ट के एक आदेश के बाद केंद्र और राज्यों में पिछड़ा वर्ग आयोगों के बनने से तकनीकी रूप से सभी जातियों को, चाहे वे ब्राह्मण हों या शूद्र, सुविधा हो गई है कि वे खुद के पिछड़ें होने का दावा पेश कर सकती हैं। कानून के मुताबिक किसी समुदाय के पिछड़े होने या न होने का आयोग द्वारा किया गया निर्णय सरकार के लिए बाध्यकारी होता है। चूँकि राजनेता ही आयोग के सदस्यों को तीन साल के लिए नियुक्त करते हैं, इसलिए राजनीतिक मकसदों से आयोग को अपनी बात मनवाने के लिए मजबुर करते हैं। यह समस्या पिछड़ा वर्ग आयोगों को स्थायी संस्था के तौर पर कायम रखने पर भी प्रश्न चिह्न लगाती है। एक निश्चित अवधि के लिए आयोग बना कर उसका एजेंडा तय किया जाना चाहिए ताकि नीति को अधिक तर्कसंगत बनाया जा सके।

जहाँ तक पिछड़ेपन की सीमा से ऊपर उठ चुके समुदायों का सवाल है, वास्तव में पिछड़ेपन से जूझ रहे समुदाय आयोग के पास जा कर अपील कर सकते हैं कि अमुक समुदाय अब पिछड़ा नहीं रह गया है। वे तथ्य पेश कर सकते हैं कि उस समुदाय में इतने डॉक्टर, वकील, इंजीनियर और स्नातक हैं, इसलिए अब उसे पिछड़ा नहीं समझा जाना चाहिए। मसलन, आयोग के सामने अगर कोई दावा करे कि सैनी समुदाय अब पिछड़ा नहीं रह गया है, तो कोई ताज्जुब की बात नहीं होनी चाहिए। आयोग को ऐसे सभी प्रतिवेदनों पर ठीक से गौर करना होगा। यहाँ तक कि व्यक्ति के तौर पर या कोई भी गैर-सरकारी संगठन भी इस तरह का प्रतिवेदन दे सकता है।[7]

यह ताज्जुब की बात है कि राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने आज तक अत्यधिक पिछड़े वर्गों की अलग से शिनाख्त नहीं की है। अति पिछड़ों की शिनाख्त करके आयोग पिछड़े नहीं रह गए समुदायों को निकालने की प्रक्रिया को अधिक सकारात्मक रूप से चला सकता है। अति-पिछड़ों की शिनाख्त करने में एक बात का ध्यान रखना होगा। दक्षिण और उत्तर की स्थिति में इस प्रश्न पर फर्क है। दक्षिण में आरक्षण नीतियों के दीर्घकालीन और बेहतर कार्यान्वयन के कारण बहुत से अति-पिछड़े समुदाय अब पिछड़े नहीं रह गए हैं, जैसे केरल के कुछ समुदाय लोग। वे किसी जमाने में बहुत पिछड़े थे, पर विशेष अवसरों की प्राप्ति, आधुनिकीकरण और श्रीनारायण गुरू के धार्मिक सुधार आंदोलन के कारण आज यह समुदाय डॉक्टरों और वकीलों से भरा हुआ है। इसी तरह कर्नाटक के लिगायतों का मामला है।

निष्कर्ष

बहरहाल, इन तमाम खामियों के बावजूद विशेष अवसरों की नीति को जारी रखने और मजबूत करने की जरूरत आज पहले के मुकाबले अधिक है। अर्थव्यवस्था राज्य के नियंत्रणों से मुक्त होती जा रही है। ऐसे में सरकार के लिए लाजमी हो जाता है कि वह कमजोर वर्गों को बाजार की सर्वभक्षी प्रक्रियाओं से रक्षा करे ताकि वे उत्तरोत्तर फैलाती हुई अर्थव्यवस्था में पूरी भागीदारी कर सकें। कोई भी आर्थिक सुधार तब तक कामयाब नहीं हो सकते जब तक दलितों, आदिवासियों और पिछड़े वर्गों की उनमें साझेदारी न हो। उदारीकरण का मतलब यह हरगिज नहीं हो सकता कि सरकार शासन करना बंद करके देश के गरीबों और कमजोरों को 'बाजार की शक्तियों' के रहमो-करम पर छोड़ दे। दुनिया की सबसे ज्यादा उदारीकृत अर्थव्यवस्थाओं में भी ऐसा नहीं है।

बाजार के जरिए अगर समरूपता हासिल करनी है तो सरकार को हर उस जगह पूरी होशियारी से बराबर के अवसर उपलब्ध कराने होंगे जहाँ वे उपलब्ध नहीं हैं। विशेष अवसरों का सिद्धांत और उस अमल की नीतियाँ इसका सबसे सक्षम औजार हैं। सरकार

को पहलकदमी लेकर उनलोगों के लिए सामाजिक न्याय उपलब्ध कराना होगा जो बाजार अर्थव्यवस्था और नागरिक समाज के हाशिये पर पड़े हैं। न्यूनतम हस्तक्षेप में विश्वास करने वाला राज्य भी इस जिम्मेदारी से मुँह नहीं चुरा सकता। अगर वह ऐसा करेगा, तो न केवल आर्थिक सुधारों का कबाड़ा हो जाएगा, बल्कि राज्य का जातीय रूप से तटस्थ और लोकतांत्रिक चरित्र भी खतरे में पड़ जाएगा।

सन्दर्भ सूचीः-

1. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति कल और आज, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ0 78-79.
2. उपरोक्त, पृ0 86-88.
3. एम.एन. श्रीनिवास, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल, नई दिल्ली, 2005, पृ0 19.
4. उपरोक्त, पृ0 18.
5. अतुल कोहली, द सक्सेस ऑफ इंडियाज डेमोक्रेसी, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001, पृ0 73.
6. रजनी कोठारी, पूर्वोक्त, पृ0 92.
7. ज्योतिंद्र दास गुप्ता, इंडियन डेमोक्रेसी, सेज पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2009, पृ0 123.

पंडित दीन दयाल का एकात्ममानवतावादः एक दार्शनिक विवेचन

डॉ० शैलेन्द्र कुमार

(गोल्ड मेडलिस्ट), यूजीसी नेट, पी० एच० डी०, दर्शनशास्त्र

आधुनिक भारतीय दर्शन में मानवतावादी दर्शन का विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित किया गया है, जिसके मूल में मानवता का सम्पूर्ण कल्याण करना रहा है। यद्यपि विवेकशील एवं विचारवान प्राणी होने के नाते सभी दार्शनिकों का केन्द्र बिन्दु या चरम लक्ष्य मानवता का कल्याण करना ही रहा है। तथापि मानवीय दृष्टिकोण के वास्तविक स्वरुप का निर्धारण करना इतना सहज प्रतीत नहीं होता है। आधुनिक भारतीय दर्शन के भिन्न-भिन्न दार्शनिकों ने भले ही भिन्न-भिन्न मार्ग चुना हो, लेकिन सब के केन्द्र में मानव कल्याण ही रहा है। हम कह सकते हैं कि भिन्न-भिन्न विचारकों में भले ही मानवतावदी विचारधाराओं को लेकर मतैक्य नहीं हो लेकिन इसके बावजूद भी इन सबों का लक्ष्य मानवता का अधिकतम भलाई करना ही रहा है। 1 विभिन्न मानवतावादी विचारकों में एकात्मक मानवतावादी दार्शनिकों में अग्रगण्य पंडित दीनदयाल उपाध्याय की दार्शनिक विवेचन आज के संदर्भ में समीचीन प्रतीत होता है।

एकात्मवादी मानवतावाद के प्रबल एवं कट्टर समर्थक पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार भारत के गौरवशाली एवं समृद्ध सभ्यता एवं संस्कृति को केवल हिन्दुत्ववाद से ही बचाया जा सकता है। सच्चे अर्थो में इन्हें ही पालक, पोषक एवं सृजनकर्ता माना जा सकता है। वे एक ऐसे चिंतक, दार्शनिक एवं विचारक थे जिसका भारत की सभ्यता, संस्कृति एवं हिन्दुत्ववादी विचारधारा में गहरी आस्था थी। वे एक ऐसे भारतीय थे जो भारतीय संस्कृति को ही राष्ट्र की आत्मा समझते थे। यदि राष्ट्र का गौरव बढ़ाना हो इसकी रक्षा करनी हो तो हिन्दुत्व को अपनाना ही होगा। हमारे देश के राजनीतिज्ञों ने स्वार्थवश पदलोलुपता के कारण प्रत्येक वर्ग को अलग-अलग कर दिया जो कि हिन्दुत्व पर कुठाराघात है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा कामरुप से कच्छ तक समस्त भारत एक ही है। उदाहरणार्थ- जिस तरह मानव शरीर के निर्माण में प्रत्येक अंग का योगदान होता है। कोई भी अंग अपने स्वतंत्र कार्य के लिए स्वतंत्र नहीं है। जिस प्रकार सम्पूर्ण शरीर के संचालन के लिए सभी छोटे- बड़े अंग अवयवों का पूर्ण क्षमतानुसार कार्य करना आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार इस हिन्द की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक उत्थान के लिए हिन्दुत्व को अपनाना आवश्यक है।

पंडित जी का स्पष्ट मानना है कि केवल हिन्दुत्व ही एकमात्र ऐसा अस्त्र है जो भारतीय संस्कृति को खण्ड-खण्ड होने से बचा सकती है। हिन्दुत्व को अपनाकर ही हम अपनी राष्ट्र की रक्षा एवं राष्ट्र गौरव को बढ़ा सकते हैं। यदि हम 'आदर्श भारत' एवं 'एक भारत -श्रेष्ठ भारत' की कल्पना करते हैं तो हमारा ध्येय पथ (हिन्दुत्व) भी एक ही होना चाहिए।[2] आज जब विश्व कई समस्याओं से जूझ रहा है तो ऐसी परिस्थिति में बचाव सिर्फ हिन्दुत्ववाद ही हो सकता है, कोई और दर्शन या सम्प्रदाय नहीं। हिन्दुत्ववाद ही वह दर्शन है जो जीवन को एक इकाई के रुप में समझता है। इस प्रकार पंडित जी मानवता के उत्थान के लिए एकात्मकता का पुरजोर हिमायती और हितैषी रहे हैं।

पंडित जी का मानना है कि भ्रमवश समाज और लोकतंत्र ने यांत्रिक प्रगति को ही सच्चा विकास का प्रतीक समझ लिया है, जिससे केवल हमारी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। यांत्रिक विकास के इस विद्रुपतापूर्ण स्थिति से मनुष्यत्व की गरिमा, शुचिता एवं पवित्रा को अक्षुण्ण बनाए रखना है तो हिन्दुत्व को समग्र रुप से अंगीकार एवं आत्मसात करना पड़ेगा। कतिपय महनीय

दार्शनिकों का विचार इससे पृथक है लेकिन पंडित जी के अनुसार - यदि हम यूं हीं पाश्चात्य संस्कृति को प्रश्रय देते रहे तो न तो हमारा समाज बचेगा और न ही समाज की आत्मा 'संस्कृति।'

हम लोगों (भारतीय) का लक्ष्य धर्मराज्य की प्रतिस्थापना, लोकतंत्र की स्थापना, सामाजिक समानता एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। इन सब तत्वों का सम्मिश्रण ही हमें जीवन के उस दर्शन का साक्षात्कार करा सकेगा जो आज के छद्म-युग (भ्रमपूर्ण वातावरण) और जीवन के झंझावतों से सुरक्षा प्रदान कर सकेगा। एकमात्र हिन्दुत्व ही वह मार्ग है जो भारतीय मानव जीवन को बदलाव की एक नई दिशा दिखला सकता है

तथा विकास की ओर अग्रसर करा सकता है। पंडित जी के अनुसार राष्ट्र-धर्म में प्रयुक्त शब्द के मायने प्रादेशिक राष्ट्रवाद नहीं है। कुछ लोग भारत में रहनेवाले को ही इस राष्ट्र का अंग कह देते हैं, जबकि भारत का होने के लिए यही पर्याप्त नही है, बल्कि यहाँ की सभ्यता, संस्कृति को आत्मसात करना भी आवश्यक है। स्वामी विवेकानन्द ने भी मानव के संबंध में कहा है कि 'मौलिक रुप से सभी आत्मा (मानव) दिव्य लेकिन इस आंतरिक दिव्यता को अन्तर्वाह्य प्रकृति के अनुशासन द्वारा व्यक्त करना ही मानव जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।' [3] यदि समाज और व्यक्ति नैतिक नियमों को गम्भीरता से नहीं लेते एवं अपने क्रिया-कलापों को इन्द्रियों के अधिनस्थ कर देते हैं तो मानवता महाविनाश के गर्त में जानेवाली है। 4 मानवतावाद कट्टरता का विरोधी और उदारता, सहिष्णुता, संतुलन तथा संयम का प्रेरक है।

वर्त्तमान युग की समस्याएँ विकट से विकटतम होती जा रही है, इनके समाधान के छिटपुट प्रयास भर चलते रहते हैं। इन्हें ही उत्साही लोग 'क्रांति' के नाम से संबोधित करते रहते हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्रांतियों की चर्चा आए दिन सुनी जाती है, पर तथ्यत: यह सभी पैबन्द मात्र है। इस समय का वास्तविक कार्य तो यह है कि समूची मनुष्यता को नया वस्त्र दिया जाय। नया वस्त्र अर्थात् वर्त्तमान स्थिति का समग्र रुपांतरण अर्थात् जीवनत्व के साथ जुड़े हुए दृष्टिकोण एवं क्रिया-कलाप में उत्कृष्टता एवं सर्वतोमुखी समावेश। 5 इसकी पृष्ठभूमी अन्त:करण में अध्यात्मवादी आस्थाओं (सनातन धर्म) को जमाने वाली प्रक्रिया अपनाने से ही संभव हो सकेगी राष्ट्रधर्म का पालन करने हेतु कृत संकल्पित होकर ही सभी राजनीतिक दल राष्ट्र की एकता, अखण्डता एवं सम्प्रभुता को अक्षुण्ण बनाए रख सकते हैं। लेकिन वर्त्तमान परिस्थिति राष्ट्रहित के लिए अत्यन्त ही भयावह है। 6 हमारे राजनीतिक दल एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते हुए अपने-अपने जिम्मेदारियों से भागते नजर आते हैं।

मानव मात्र का सिर्फ एक ही उद्देश्य होना चाहिए सपूर्ण मानवता की सेवा। मानव का मानव के प्रति सच्चा प्रेम, त्याग, करुणा आदि मानव के आवश्यक गुण हैं। यदि इन गुणों का त्याग मनुष्य अगर कर दे तो संपूर्ण मानवता का विनाश निश्चित है। कम्युनिस्टों एवं पूँजीपतियों का एक नारा है जो अत्यन्त ही विद्रुप तो है ही, मनुष्य के जन्मजात अधिकारों पर भी करारा प्रहार है। यह दोनों ही वर्ग एक स्वर में स्वीकार करता है कि 'कमानेवाला खाएगा' हालांकि दोनों ही वर्ग इस नारे के समर्थक हैं, फिर भी प्रतिद्वन्द्वी हैं। 7 दोनों में प्रतिद्वन्द्वता रहती है कि कमाई में बड़ा हिस्सा किसका होगा? चूंकि पूँजीवाद में पूँजी और औद्योगिक क्षमता का महत्व है इसलिए वे चाहते हैं कि कमाई का बड़ा हिस्सा उनका हो। जबकि कम्युनिस्ट इसके बिपरीत कामगार अर्थात् मजदूर को जो निर्माण के मुख्य स्तम्भ हैं, का कमाई के बड़े हिस्से का सच्चा अधिकारी मानते हैं।

परन्तु वास्तव में देखा जाय तो ये दोनों ही विचार पूर्णत: एकांगी है। अरस्तु के अनुसार- 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।' यदि इस उक्ति की यथार्थता को स्वीकार किया जाय तो हमारा नारा होना चाहिए- 'कमानेवाला खिलाएगा और जो जन्मा सो खाएगा' क्योंकि खाने का अधिकार सबों को जन्मजात प्राप्त होता है। समाज में एक बहुत बड़ा भाग असक्त, असहाय, बीमार, वृद्ध बच्चे का होता है जो कमा पाने से असमर्थ होते हैं, तो क्या हमारा मानवीय-मूल्य यह नहीं कहता कि उन्हें भी खाने का अधिकार है? पाश्चात्य दर्शन में इन मानवीय मूल्यों के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है। जीवन दर्शन उनके लिए नीरस, अधुरा एवं व्यर्थ है।

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि परिवर्तन संसार का नियम है। प्रकृति भी परिवर्तनवादी है और प्राकृतिक परिवर्तनों की एक बानगी रही है कि इसमें शाश्वत नष्ट नहीं होता। हमें भी इसी पद्धति का अनुकरण करना चाहिए। हमारा जीवन ध्येयरहित नहीं होना चाहिए। ज्ञान-विज्ञान के द्वारा संस्कृति के क्षेत्र में भी यदि उन्नतिपूर्ण एवं उत्साहजनक परिवर्तन होता हो तो हमें स्वीकार होगा। 7 नवीनता का विरोध नहीं करना है, किन्तु नवीनता की चाह में पाश्चात्य संस्कृति को अंधाधुन्ध ग्रहण करना भी उचित नहीं है। भारतीय राष्ट्रवाद के अंतर्मन से एक ही उद्घोष निकलता है कि सृष्टि की हर घटना संघर्ष की नहीं बल्कि परस्पर पूरकता की भूखी है। सिर्फ और सिर्फ सनातन (हिन्दू) धर्म में ही सामर्थ्य है कि अनेक विविधताओं के बावजूद भी सबको एक ही आत्मत्व के रुप

में स्वीकार कर सके। यही कारण है कि हिन्दू धर्म को मानवता का पोषक एवं सवंश्रेष्ठ मानवतावादी कहा जा सकता है। हिन्दू धर्म में व्यक्तिगत स्वार्थ के बजाय परस्पर समर्पण की भावना को महत्व दिया गया है। हिन्दू धर्म का पंच-सूत्र- क्षमा, दया, अहिंसा, अस्तेय एवं ब्रहमचर्य की महिमा यहाँ के कण-कण में विद्यमान

है। प्रत्येक धर्म के प्रति सम्मान हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ एवं मानवतावादी बनाता है। इस उदाहरण से यह प्रतीत होता है कि पंडित जी का हिन्दू धर्म के प्रति एकात्मकता उन्हें एकात्मवादी मानवतावादी दार्शनिक के रुप में प्रतिस्थापित करता है।

1. सी0 लेमाण्ट :- ह्यूमनिज्म एज ए फिलासफी पृष्ठ- 41, 42, द फिलासिफिकल लाइब्रेरी न्यूयार्क- 1957
2. पंडित दीन दयाल उपाध्याय :- राष्ट्र जीवन की समस्याएँ सम्भाषण से उद्धष्त प्रकाशन विभाग, भारत सरकार दिल्ली 1967
3. स्वामी विवेकानन्द :- ज्ञान, योग पृष्ठ- 115 अद्वैत आश्रम, अल्मोड़ा- 1930
4. बी0 एस0 नरवणे :- समकालीन भारतीय दर्शन, इलाहाबाद, सेन्ट्रल बुक डिपो-1949
5. पंडित श्री राम शर्मा आचार्य :- नर से नारायण बनने का प्रगति पथ पृष्ठ - 05, युग निर्माण योजना प्रेस, गायत्री तपोभूमि मथुरा 2015
6. पंडित दीन दयाल उपाध्याय :- भारतीय राजनीति की एक भूल से उद्धष्त प्रकाशन विभाग भारत सरकार दिल्ली 1965
7. पंडित दीन दयाल उपाध्याय :- राष्ट्रचिंतन पुस्तक से उद्धष्त, प्रकाशन विभाग भारत सरकार दिल्ली।

बिहार में क्षेत्रीय विकासः (स्थानिक एवं कालिक विश्लेषण)

अल्पना कुमारी

यूजीसी नेट, पूर्व-छात्र भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

यह पत्र बिहार में जिला-स्तर पर अंतर-जिला विकास के मुद्दे को संबोधित करता है। जनसांख्यिकीय, सेवाओं, शिक्षा और घरेलू परिसंपत्तियों के आधार पर राज्य के विकसित जिलों की पहचान करने का प्रयास किया गया है तथा कालिक विश्लेषण के सेन्सस ऑफ इंडिया का वर्ष 2001 तथा 2011 के आंकड़ा का उपयोग किया गया है। अध्ययन में 11 संकेतकों का उपयोग किया गया है, राज्य में विकास और अंतर-जिला विविध्ताओं को मापने तथा व्याख्या करने केभौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) का उपयोग किया गया है। विकास के स्तर की विश्लेषण से पता चलता है कि विकास केवल राज्य की राजधानी होने के कारण पटना में केंद्रित है और राज्य में संसाधानों और सभी लाभार्थियों को खींचने में सक्षम है। उप-राज्य स्तर या असमान स्तर पर संसाधनों को आवंटित करने के लिए हमारी जरूरत है जिससे कि क्षेत्रीय विकास को संतुलित किया जा सके। बिहार में उत्तर और दक्षिण के जिलों की तुलना में दक्षिणी जिलों का विकास अधिक है।

मुख्य शब्दः क्षेत्रीय विकास, समग्र सूचकांक, बिहार और जीआईएस।

परिचय

बिहार में विकास की चुनौतियां लगातार गरीबी, जटिल सामाजिक स्तरीकरण, असंतोषजनक बुनियादी ढाँचे और कमजोर प्रशासन, समस्याओं के कारण हैं जो अच्छी तरह से ज्ञात हैं लेकिन (विश्व बैंकः 2005) समझ में नहीं आती हैं।

बिहार भारत के सबसे कम शहरी राज्यों में से एक है, जिसकी शहरी आबादी लगभग 10 प्रतिशत है। राज्य में शहरी विकास का दायरा देश में अपने क्षेत्रीय पिछड़ेपन के बहुत बड़ा कारण है। ग्रामीण क्षेत्रों से बड़े पैमाने पर पलायन और राज्य में गैर-कृषि गतिविधियों की ओर वृद्धि तथा सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन शहरीकरण समाज का प्रतिबिंब है। ऐसा लगता है कि राज्य 'सबाल्टर्न 'चरित्र का प्रतिनिधित्व कर रहा है, जहाँ यह सांस्कृतिक गाँव, सामाजिक विषमताएँ और उभरते हुए गाँवों में मिश्रित अर्थव्यवस्था को दर्शाता है। सबाल्टर्न 'शहरीकरण की अवधरणा से तात्पर्य बस्तियों की वृद्धि से है, चाहे वह भारत की जनगणना द्वारा निरूपित शहरी हो या नहीं, जो महानगर से स्वतंत्र हैं और अन्य बस्तियों, स्थानीय और वैश्विक के साथ उनकी बातचीत में स्वायत्त हैंः शहरी दुनिया जीवन की बेहतर गुणवत्ता, बुनियादी सुविधाओं और बुनियादी सुविधाओं के लिए जानी जाती है जिसमें प्रवासियों को अपने निवास से खींचने की क्षमता है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में, नीति निर्माताओं के लिए शहरी क्षेत्र की सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत परिभाषा तक पहुंचना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

राज्य में लगभग 73 प्रतिशत कार्यबल वाले कृषि क्षेत्र कम उत्पादकता के साथ बहुत पिछड़े हुए हैं। बिहार की प्रति व्यक्ति कृषि आय भारत के लगभग आधे हिस्से के रूप में और पंजाब की लगभग एक-पाँचवीं है। गैर-कृषि क्षेत्र में उत्पादक रोजगार उतने नहीं बढ़े हैं जितने अन्य राज्यों में हैं। राज्य में चीनी, जूट आदि जैसे कुछ ग्रामीण उद्योग थे, हाल के वर्षों में सभी ध्वस्त हो गए हैं। राज्य के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक संस्थानों ने भी काफी गिरावट देखी है। शैक्षणिक संस्थान कम या ज्यादा ध्वस्त हो गए हैं और प्रशासनिक मशीनरी, जिसे 1950 के दशक के दौरान देश में सर्वश्रेष्ठ में से एक माना जाता था, पूरी तरह से अव्यवस्थित है।

हालांकि चीजें धीरे धीरे से बदल रही हैं। पिछले चार-पांच वर्षों के दौरान बिहार ने विकास के मोर्चे पर उल्लेखनीय प्रदर्शन के लिए पूरे देश और यहां तक कि विदेशों में भी काफी ध्यान आकर्षित किया है। एक ऐसे राज्य के लिए जिसे लंबे समय से ठहराव का सामना करना पड़ा था और जिसने अपने सदा पिछड़ेपन के लिए इस्तीफा दे दिया था, यह एक नया मोड़ है, जिससे नई आशाएं और आकांक्षाएं पैदा हुई हैं। राज्य सरकार की विकास के एजेंडे के प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता के कारण यह बदलाव संभव हुआ है, जो शीघ्र और समावेशी दोनों है। इस एजेंडे को पूरा करने के लिए, राज्य सरकार ने न केवल अपने सीमित संसाधनों का सबसे विवेकपूर्ण उपयोग किया है, बल्कि अपनी प्रशासनिक मशीनरी को भी मजबूत किया है और कई संस्थागत सुधार पेश किए हैं।

उद्देश्य

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य विकास के स्तर को विभिन्न जिलों में तुलना करना है।

अध्ययन क्षेत्र

बिहार वह स्थान है जिसने बौद्ध और जैन धर्म को जन्म दिया और सिख धर्म और हिंदू धर्म के विकास में मदद की, एक ऐसा अतीत है जो दुनिया में कहीं भी नहीं है। वैशाली में दुनिया में पहले गणराज्य का केंद्र था और पाटलिपुत्र शहर अपनी महिमा की ऊंचाई पर दुनिया में सबसे बड़ा और भव्य था। राज्य में विविध हितों के पर्यटन स्थलों की एक सरणी है, हालांकि उनकी क्षमता का अब तक पूरी तरह से शोषण नहीं किया गया है। विश्व प्रसिद्ध बौद्ध सर्किट से पटना के पटना साहिब और मधुबनी के मिथिला पेंटिंग से शुरू होकर भागलपुर के रेशम उत्पादन केंद्र तक, राज्य में पर्यटकों के लिए बहुत कुछ है। किसी भी चीज से अधिक, यह राज्य की वर्तमान छवि है जो राज्य को एक अग्रगामी नहीं बनने दे रही है।

बिहार का भूगोल

चित्रः 1 अध्ययन क्षेत्र का मानचित्र।

बिहार राज्य द्वारा कवर किया गया कुल क्षेत्रफल 94,163 किमी 2 (36,357 वर्ग मील) है। राज्य 24° -20 '-10' "N से 27 -31'-15'' N अक्षांश और 83° -19 '-50 "E से 88° -17 '-40" E देशांतर के बीच स्थित है। समुद्र तल से इसकी औसत ऊँचाई 173 फीट (53 मीटर) है। गंगा बिहार को दो असमान हिस्सों में विभाजित करती है जो कि पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है। अन्य गंगा सहायक नदियाँ सोन, बूढ़ी गंडक, चंदन, ओरहानी और फल्गु हैं। हालांकि हिमालय तलहटी में शुरू होता है, नेपाल के अंदर और बिहार के उत्तर में थोड़ी दूरी पर, पहाड़ बिहार की भूमि, जलवायु, जल विज्ञान और संस्कृति को प्रभावित करते हैं।

बिहार के मध्य भागों में कुछ छोटी पहाड़ियाँ हैं, उदाहरण के लिए राजगीर पहाड़ियाँ। दक्षिण में छोटा नागपुर का पठार है, जो 2000 तक बिहार का हिस्सा था, लेकिन अब झारखंड नामक एक अलग राज्य का हिस्सा है। भारत का पूर्वी क्षेत्र भारत में स्थित है, जो उत्तर में नेपाल, पूर्व में पश्चिम बंगाल, उत्तर में स्थित है। पश्चिम में राज्य और दक्षिण में झारखंड। उत्तर गंगा का मैदान नेपाल के तराई क्षेत्र का विस्तार है, जिसमें गंगा की कई सहायक नदियाँ जैसे कोशी, गंडक, बाघमती और कमला बलान बहती हैं। यह बाढ़ प्रवण क्षेत्र है और देश के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में से एक है। मध्य बिहार, गंगा के दक्षिण, समृद्ध कृषि संसाधनों वाला एक क्षेत्र है। उत्तर और मध्य बिहार का अधिकांश भाग बिना किसी महत्वपूर्ण ऊँचाई के है।

क्रियाविधि

बिहार में अंतर-जिला विकास को मापने के लिए, 11 संकेतकों का चयन किया है। ये संकेतक राज्य के विकास के स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं जो जिला-स्तर पर बिहार के शहरीकरण को भी समझाता है। हमारा अध्ययन पूरी तरह से माध्यमिक डेटा स्रोत गुणात्मक दृष्टिकोण पर आधरित है।

डेटासेट: अध्ययन भारत की जनगणना (2001 और 2011) द्वारा प्रकाशित आंकड़ों के पूरी तरह से द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।

डेटा: विभिन्न विकास संकेतकों से संबंधित माध्यमिक डेटा भारत की जनगणना से एकत्र और संकलित किए गए थे। सूचकांक का निर्माण सूचकांक तैयार करने की पद्धति निम्नानुसार बताई गई है। सबसे पहले, बिहार के सभी 37 जिलों के लिए चयनित संकेतकों के मूल्यों को एकत्र और सारणीबद्ध किया गया है। तब सारणीबद्ध डेटा को श्रेणी के साथ न्यूनतम से Xidकी दूरी के अनुपात का उपयोग करके मानकीकृत Yid में बदल दिया गया, जहां Xidका अर्थ जिला घ के लिए ithचर का वास्तविक मूल्य है। यदि, हालांकि, Xidनकारात्मक रूप से विकास के साथ जुड़ा हुआ है, उदाहरण के लिए, शिशु मृत्यु दर या बेरोजगारी दर, जो जिले के विकास के रूप में घटनी चाहिए और फिर Yid अधिकतम Xidसे दूरी को प्रतिबिंबित करने के लिए उलटा है। अध्यन के लिए निम्न सूत्र का उपयोग करके किए गए संकेतकों का सामान्यीकरण इस प्रकार हैं जहां:

Xijisjthघटक पर पजीप्रतिवादी द्वारा निर्दिष्ट मूल्य।

न्यूनतम xjis वें घटक पर न्यूनतम स्कोर।

अधिकतम ith अधिकतम घटक j वें घटक पर है।

Uijis यूनिट मान पजीप्रतिवादी की j वें घटक पर।

यह स्पष्ट है कि ये सभी अंक 0 और 1. के बीच स्थित होंगे। मूल्य 1 उस क्षेत्र के अधिकतम तथा 0 मूल्य न्यूनतम वाले क्षेत्र के अनुरूप होगा।

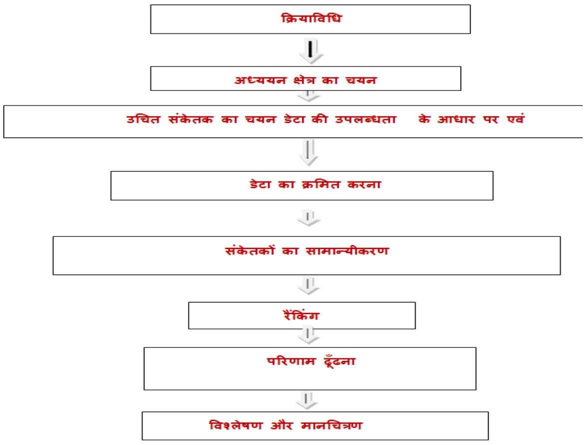

चित्र 2: वर्तमान अध्ययन की विश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं को दर्शाने वाले फ्लो चार्ट।

S.No	Indicators
A	**Demographic**
1	Sex Ratio
2	working %
B	**Educational**
1	Literacy rate
2	Female literacy rate
3	Higher secondary/Intermediate Pre-University/Senior secondary
4	Graduate & above
C	**Services**
1	Total number of households availing banking services
D	**House Hold Assets**
1	Pakka roof
2	Pakka_floor_2011
3	Electricity Available
4	Toilet Available

तालिकाः 1 संकेतक की सूची

परिणाम और चर्चा

इस अध्ययन में उच्चतम भिन्नता अनुपात के आधार पर विकास के तीन स्तरों में विभिन्न क्षेत्रों की प्राप्ति होती है। अध्ययन में यह माना गया कि 2001 और 2011 की दो समयावधि के लिए डेटा की कुछ सीमाओं के कारण राज्य के विभिन्न क्षेत्रों और जिलों के विकास के बारे में सामान्य अपेक्षाएं बनाने में त्रुटियां हैं। हालांकि, समग्र प्रदर्शन पर जोर देने का प्रयास किया गया है और इन विकास क्षेत्रों और अवधि में उनके परिवर्तनों के संदर्भ में राज्य के 37 जिलों की प्रवृत्ति। तालिका 2 2001 में विकास में विभिन्न जिलों के विकास के स्तर को प्रस्तुत करती है। विकास में उच्च विकास श्रेणी (0.56 और अध्कि से अधिक) में आने वाले जिले 37 में से केवल 4 थे। इस श्रेणी में आने वाला जिला पटना था, मुंगेर, रोहतास और सीवान चार जिले थे जो उच्च विकसित श्रेणी में आते हैं।

मध्यम विकसित श्रेणी के संदर्भ में उनतीस जिले थे जिनका स्कोर 0.28-0.56 के बीच है जो एक मध्यम श्रेणी है। मध्यम श्रेणी में 37 में से 29 जिले थे। मध्यम श्रेणी वाले इस श्रेणी में जिले शामिल हैं; जहानाबाद, सीवान, भोजपुर, बक्सर, भागलपुर, नालंदा, सारण, मुजफ्फरपुर, पी। चंपारण, औरंगाबाद, वैशाली, लखीसराय, बेगूसराय, काठुर, गोपालगंज, मधुबनी, गया, नवादा, शेखपुरा, समस्तीपुर, बांका, बैंक, जाम, जाम सीतामढ़ी, सहरसा, पूर्वा चंपारण, मधेपुरा, कटिहार। विकास में 0.28 अंक से कम विकसित श्रेणी में आने वाले जिले 37 में से केवल 4 शिवहर, किशनगंज और सुपौल अररिया थे। यह 2001 का परिदृश्य है:

श्रेणी	सूचकांक मूल्य	जिले
ऊँच (High)	0.56 से अधिक	(4) पटना, मुंगेर, रोहतास, सीवान
मध्यम (Moderate)	0.28 - 0.56	(29) जहानाबाद, सीवान, भोजपुर, बक्सर, भागलपुर, नालंदा, सारण, मुजफ्फरपुर, पी। चंपारण, औरंगाबाद, वैशाली, लखीसराय, बेगूसराय, कैमूर, गोपालगंजमधुबानी, गया, नवादा, शेखपुरा, समस्तीपुर, बांकीपुर, बांका, सीतामढ़ी, सहरसा, पुरवा चंपारण, मधेपुरा, कटिहार।
निचा (Low)	0.28 से नीचे	(4) शिवहर , किशनगंज, सुपौल अररिया

तालिकाः 2 जिलों का विकास के आधार पर वर्गीकरण - 2001

तालिका 3 2011 में विकास सूचकांक स्कोर के संदर्भ में विभिन्न जिलों के विकास का स्तर प्रस्तुत करती है। विकास में उच्च विकास श्रेणी (0.65 और अधिक से अधिक) में आने वाले जिले 37 में से केवल 4 थे। जिले का विस्तार यह श्रेणी थी पटना, मुंगेर, रोहतास, बक्सर, चार जिले थे जो उच्च विकसित श्रेणी में आते हैं। मध्यम विकसित श्रेणी के संदर्भ में उनतीस जिले थे जिनके अंक सूचकांक स्कोर के मध्यम श्रेणी में 0.31-0.65 के बीच आते हैं। इस मध्यम विकसित श्रेणी में 37 में से 24 जिले थे। इस श्रेणी में जहानाबाद, सीवान, भोजपुर, बक्सर, भागलपुर, नालंदा, सारण, मुजफ्फरपुर, पश्चमी चंपारण, औरंगाबाद, वैशाली, लखीसराय, बेगूसराय, कैमूर, गोपालगंज, मधुबनी शामिल हैं। गया, नवादा, शेखपुरा, समस्तीपुर, बांका, जमुई, पूर्णिया, खगड़िया, सीतामढ़ी, सहरसा, पूर्वी चंपारण, मधेपुरा, वे जिले जो 0.31 के विकास सूचकांक से कम विकसित श्रेणी में आते हैं, 37 में से केवल 9 थे। इस श्रेणी में किशनगंज, कटिहार, खगड़िया, सहरसा, मधेपुरा, पूर्णिया, सीतामढ़ी, शिवहर, अररिया। यह 2011 का परिदृश्य है।

2011 के आंकड़ों के अनुसार कुछ जिला विकास परिदृश्य पूरी तरह से बदल गया था उदाहरण के लिए 2001 में बक्सर को मध्यम विकसित किया गया था लेकिन 2011 में इसे अत्यधिक विकसित किया गया है, 2001 में जहानाबाद 6 वें स्थान पर है लेकिन 2011 में जहानाबाद 15 वें स्थान पर है।

तालिका: 3 जिलों का विकास के आधार पर वर्गीकरण - 2011

जिले	सूचकांक मूल्य (2001)	विकास रैंक (2001)	जिले	सूचकांक मूल्य (2011)	विकास रैंक (2011)
पटना	0.86	1	पटना	0.69	1
मुंगेर	0.81	2	मुंगेर	0.56	2
रोहतास	0.73	3	रोहतास	0.54	3
सिवान	0.65	4	बक्सर	0.52	4
भोजपुर	0.64	5	नालंदा	0.50	5
जहानाबाद	0.64	6	भोजपुर	0.48	6
बक्सर	0.63	7	औरंगाबाद	0.48	7
नालंदा	0.61	8	शेखपुरा	0.47	8
भागलपुर	0.60	9	कैमूर	0.47	9
सारण	0.58	10	जमुई	0.46	10
मुजफ्फरपुर	0.57	11	सारण	0.45	11
पशिचम चंपारण	0.56	12	सिवान	0.45	12
वैशाली	0.56	13	गया	0.45	13
बेगूसराय	0.56	14	भागलपुर	0.44	14
लखीसराय	0.56	15	जहानाबाद	0.43	15
औरंगाबाद	0.55	16	गोपालगंज	0.43	16
गोपालगंज	0.53	17	बेगुसराय	0.41	17
मधुबनी	0.50	18	नवादा	0.41	18
कैमूर	0.49	19	मुजफ्फरपुर	0.41	19
शेखपुरा	0.49	20	वैशाली	0.37	20
नवादा	0.47	21	लखीसराय	0.35	21
गया	0.47	22	मधुबनी	0.33	22
समस्तीपुर	0.43	23	बांका	0.33	23
दरभंगा	0.40	24	दरभंगा	0.31	24
बांका	0.39	25	सुपौल	0.31	25
जमुई	0.37	26	समस्तीपुर	0.30	26
सीतामढ़ी	0.32	27	पशिचम चंपारण	0.29	27
खगरिया	0.32	28	पूर्वी चंपारण	0.25	28
पूर्वी चंपारण	0.32	29	किशनगंज	0.24	29
पूर्णिया	0.32	30	कटिहार	0.24	30

तालिका 4 : बिहार के जिलों में विकास के स्तर की तुलना वर्ष (2001 और 2011)

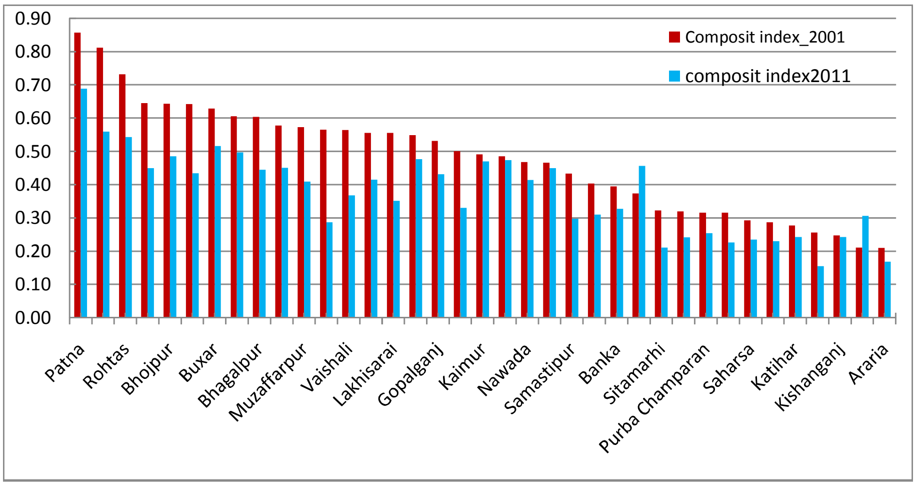

चित्र: 3 बिहार के जिलों में विकास के स्तरों का चित्रमय प्रदर्शन (2001 और 2011)

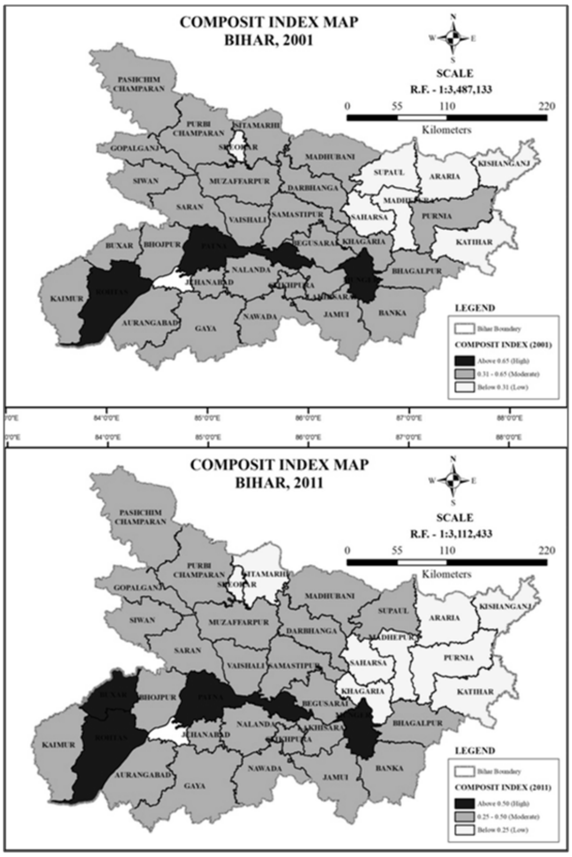

चित्र: 4 बिहार के जिलों में विकास के स्तरों का स्थानिक वितरण वर्ष (2001 और 2011)

निष्कर्ष

इस अध्ययन में बिहार के जिलों में विकास के स्तर को समझने का प्रयास किया गया है। मध्य बिहार के जिलों के रूप में क्षेत्रीय देवलोपम मौजूद हैं, जो कि चारों क्षेत्रों यानी जनसांख्यिकी, सेवाओं, शिक्षा और बुनियादी ढांचे में उत्तर क्षेत्र की तुलना में अधिक विकसित हैं। दूसरी ओर, अंतर जिला अवमूल्यन कम है और 2001 से 2011 तक सभी क्षेत्रों में गिरावट आई है क्षेत्रवार परिणाम से पता चला है कि केंद्रीय क्षेत्र ने दोनों वर्षों में उत्तर क्षेत्र की तुलना में अच्छा किया है और इसकी रैंक भी राज्य औसत से अधिक है। यह दर्शाता है कि राज्य के 37 जिलों में से केवल तिन जिलों ने सभी क्षेत्रों में बहुत अच्छा किया है और 2001 से 2011 की अवधि में उच्च विकसित श्रेणी में शामिल हैं ये जिला है पटना, मुगेर तथा रोहतास। जैसा कि विश्लेषण से पता चल रहा हैं कि जमुई, शिवहर पूर्वी चंपारण, पश्चमी चंपारण, सीतामढ़ी, मधेपुरा, सुपौल, अररिया, कटिहार, किशनगंज, सहरसा और पूर्णिया जिलों ने उन दोनों वर्षो में सभी क्षेत्रो में के विकास नहीं के बराबर किया है। 2001 के बाद से शिवहर, किशनगंज, सुपौल अररिया कम विकास वाला जिला है, लेकिन 2011 में किशनगंज, कटिहार, खगड़िया, सहरसा, मधेपुरा, पूर्णिया, सीतामढ़ी, शिवहर, अररिया कम विकसित जिले हैं। अंतिम 10 जिले जिनका विकास दोनों वर्षो में सबसे कम है लगभग सभी जिले उत्तरी बिहार में अवस्थित है।दोनों वर्षो में पटना सबसे विकसित जिला है।

संदर्भसूची

- Kumari R. (2014*)"* Development and Disparity in Bihar"Journal of Regional Development and Planning, Vol. 3, No.2,
- Rao H".Regional disparity and development of India "Book
- Rao H" Identification of backward region and the trends in regional disparities in india'
- World Bank, 2005. Bihar towards a development strategy
- Kumar R.(2014)"urbanization in Bihar"Journal of Asian Network for GIS-based Historical Studies Vol.2 32-42
- Chattopadhyay D.and Raza M.and"Regional development: analytical framework and indicators "
- SundaramK.V."Inter regional disparities: country experiences polices and strategies "
- Hoselitz, Bert F. (1962): "The Role of Urbanization in Economic Development; Some International Comparisons",in Turner, Roy (ed), *India's Urban Future,* Oxford University Press, Bombay, p. 168.
- Ramachandran, R. (1992): *"Urbanization and Urban System in India"*, Oxford University Press, New Delhi.
- Sivaramakrishnan, K.C., Kundu, Amitabh and Singh, B.N. (2005*): "Handbook of Urbanization in India: An Analysis of Trends and Process",* New Delhi: Oxford University Press.
- Datta, Pranati (2006): "Urbanization in India", European Population Conference, Indian Statistical Institute.
- Dwivedi Rishi Muni (2007): *"Urban Development and Housing in India - 1947 to 2007"*, New Century Publication, New Delhi.
- Bhagat, R.B. and Mohanty, Soumya (2009): "Emerging Pattern of Urbanization and the Contribution of Migration in Urban Growth in India", *Asian Population Studies*, 5: 1, 5 — 20.
- http://www.censusindia.net or *censusindia.gov.in/2011*
- http://www.census2011.co.in/facts/urban.php

भारतीय राजनीति में दबाव समूह की भूमिकाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

वीभेष आनंद

एम.ए. राजनीति विज्ञान, एम.ए. ग्रामीण विकास एवं प्रबंधन, यू0 जी0 सी0 नेट-जून 2012

सारांशः

दबाव समूह शब्द का उदभव संयुक्त राज्य अमेरिका से हुआ है, दबाव समूह उन लोगों का समूह होता है जो सक्रिय रूप से संगठित रहते हैं अपने हितों को बढ़ावा देते हैं ओर उनकी प्रतिरक्षा करते हैं, इन्हें हित समूह भी कहा जाता है। दबाव समूह या हित समूह अपनी प्रकृति में मूलतः राजनीतिक होते हैं और उनके निर्माण का उद्देश्य अपने उद्देश्य के लिए सार्वजनिक नीति को प्रभावित करना है।

मुख्य शब्द :- दबाव समूह, लोकतंत्र, छळव्सेसंगठन, राजनीतिक प्रणाली।

उद्देश्यः

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भारतीय राजनीति में विभिन्न प्रकार के दबाव समूह की भूमिका तथा उनके कार्य को स्पष्ट करती है।

विधितंत्रः-

प्रस्तुत अध्ययन में पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा प्रस्तुत अध्ययन की समीक्षात्मक व्याख्या करते हुए एक विश्लेषणात्मक विधितंत्र का प्रयोग किया गया है।

दबाव समूह की विशेषताः

प्रत्येक दबाव समूह का संगठन एक से अधिक साझे हितों की प्राप्ति के लिए किया गया होता है। समान हित रखने वाले लोग दबाव समूह बनाने के लिए एक हो जाते हैं, क्योंकि वे यह मानकर चलते हैं कि साझे हितों को केवल सामूहिक प्रयत्नों के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। मायरन वीनर के अनुसार ''दबाव समूह सरकार ढांचे के बाहर एच्छिक रूप में संगठित समूह है।

ये एक निवपक्ष समूह के रूप में होते हैं, वे शक्ति के लिए संघर्ष में प्रत्यक्ष रूप में भाग नहीं लेते तभी तो विद्वान ई फाइनर कहते हैं कि, दबाव समूह ''गैर राजनीतिक निवपक्ष और स्वायत्त संगठन होते हैं।

भारत में दबाव समूहः

प्रत्येक लोकतंत्रीय राजनीतिक प्रणाली के समान भारतीय राजनीतिक प्रणाली में भी कई दबाव समूह सक्रिय रूप में विद्यमान् है। ये राजनीतिक प्रक्रिया, विशेष कर सरकारी नीतियों ओर कार्यवाहियों, पर गहरा प्रभाव डालते हैं। कई हित-समूह अच्छी तरह संगठित और औसतन कम संगठित दोनों अपनी मांगों की प्राप्ति के लिए भारतीय राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित करने के लिए दबाव प्रणाली का प्रयोग करते हैं। पिछले तीन दशकों में गैर-सरकारी संगठनों (NGO's), हित समूहों और दबाव समूहों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है परन्तु इनमें से कुछ समूह ही अच्छी तरह संगठित समूह हैं जबकि शेष अपने-आप को अच्छी तरह संगठित करने का सक्रिय प्रयास कर रहे हैं। यद्यपि भारत में बहुत बड़े दबाव समूह विद्यमान हैं लेकिन ये उस तरह से विकसित नहीं हो पाये हैं जिस तरह संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिमी देशों में हुए हैं। कुछ व्यवसायिक संगठन दबाव समूहों के रूप में अवश्य

सक्रिय हैं किन्तु अन्य समुदायों के दबाव समूह मध्यम वर्गीय नेतृत्व के कारण सक्रिय रूप में राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णयों को आधुनिक ढ़ंग से प्रभावित नहीं कर पा रहे हैं। आर्थिक विपन्नता के कारण भी दबाव समूहों की मांग तथा शासकीय सामर्थ्य के मध्य एक बड़ा अन्तर देखने को मिलता है। सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के चलन, राजनीतिक अधिकारों की वृद्धि, जनता को प्राप्त विशेषाधिकारों एवं आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में नियोजित कार्यक्रमों के विस्तार के कारण भारत की राजनीतिक संरचना में संगठित दबाव व हित समूहों का विस्तार होता जा रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद सार्वजनिक नीति के निर्माण में दबाव समूहों की सीमि भूमिका द्रष्टव्य है। इसके दो प्रकार हैं-प्रथम, केन्द्र और राज्यों में शक्तिशाली राजनीतिक नेतृत्व था और द्वितीय, सरकार पर कांग्रेस दल का एकाधिकार था। जैसे-जैसे सशक्त नेतृत्व का ह्रास होता गया और कांग्रेस का एकाधिकार टूटता गया वैसे-वैसे राजनीति में दबाव समूह गुटों का प्रभाव भी बढ़ता गया। प्रारंभ में दबाव गुटों की भूमिका नकारात्मक रही। किन्तु वर्तमान में अनेक दबाव गुट सकारात्मक रूप से अपने हितों को प्रभावित करने वाली नीतियों के निर्माण में सरकार के साथ सहयोग कर रहे हैं। भारत में आम धारणा दबाव समूहों की कार्य पद्धति के प्रतिकूल हैं यहाँ यह अच्छा नहीं माना जाता कि हित समूह नीति निर्माताओं का मार्गदर्शन करे। ऐसा माना जाता है कि यदि एक बार सरकार दबाव गुटों के आगे झुक जाती है तो कोई भी निर्णय सार्वजनिक हित में नहीं लिया जा सकता।

भारत के प्रमुख दबाव समूहः

देश के दबाव समूह के कार्यो के अध्ययन के लिए दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-(1) संस्थागत हित समूह (2) गैर संस्थागत हित समूह।

संस्थागत हित समूह के अंतर्गत व्यापारिक समूह चैम्बर्स ऑफ कामर्स, ट्रेड एसोसिएशन, कर्मचारी एसोसिएशन, कृशक एसोसिएशनें आदी आते हैं।

दूसरी श्रेणी में धर्म, जाति, कबीला, भाषा और अन्य परम्परागत समाजिक ढ़ांचे पर आधरित हित-समूह आते हैं।

इन दो प्रमुख श्रेणियों के अतिरिक्त कुछ अन्य दबाव समूह भी आते हैं जो विशेष मामलों के लिए बनाए जाते हैं, और जो एकमात्र उद्देश्य प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हैं और ये केवल तब तक हीसंगठित होकर रहते हैं जब तक उस उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो जाती।

(1) बड़े व्यापारिक समूहः

इसके अंतर्गत व्यापारिक, औद्योगिक और वित्तीय हित-समूह आते हैं। इस प्रकार के समूह का विस्तार, गठन, औद्योगिक, वित्तीय, व्यापारिक हितों के प्रसार पर निर्भर करती है। जैसे-आल इंडिया मैनूफैक्चर्स आर्गेनाइजेशन, फिक्की, द एसोसिएटिड चैम्बर्स आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री, आदि।

(2) व्यापार संघः

देश में लगभग 36000 से अधिक व्यापार संघ हैं, इनमें से कुछ तो राजनीतिक दलों द्वारा प्रायोजित हैं तो कुछ श्रमिकों बनाम पूंजीपतियों के हितों की सुरक्षा हेतू आवश्यकता को समझते हुए अपने आप अस्तित्व में है। जैसे-आल इंडिया ट्रेड यूनियन क्राग्रेस (AITUC), द इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन क्राग्रेस (INTUC), हिन्द मजदूर संघ (HMS), द हिन्द मजदूर श्रमिक परिषद (HMP) आदि।

(3) कृशक संगठनः

जनगनना 2011 के अनुसार भारत में अभी भी लगभग 50: से अधिक लोग कृषि कार्य में लगे हुए हैं। भारतीय राजनीतिक प्रणाली में कुछ सक्रिय किसान संगठनों में आल इंडिया कृशक सभा, हिन्द किसान पंचायत, यूनाइटेड किसान सभा, उत्पादन संगठन, भारतीय किसान यूनियन आदि हैं, जो देश के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय हैं जो केन्द्र और राज्य सरकार पर किसानों के हित में कार्य करने के लिए दबाव डालने के प्रयास में लगे रहते हैं।

(4) जातीय समूहः

जाति भारतीय राजनीति में विशेष रूप से चुनावी व्यवहार और वोट व्यवहार की प्रमुख निर्धरक है। जाति भारतीय राजनीति में राजनीतिक शक्ति का महत्वपूर्ण आधार है। प्रमुख जातीय समूह में अनुसूचित जाति संघ, जाट सभा, क्षत्रिय सभा आदि।

(5) धार्मिक समूहः

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है, यहाँ कई धर्मों के लोग निवास करते हैं। ये विभिन्न धर्म के लोग कई धर्मिक समूह का निर्माण कर अपने धार्मिक समूह के हित की पूर्ति के लिए सरकार पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दबाव डालते हैं, जैसे आर्य समाज, ब्राह्मण सभा, विश्व हिन्दू परिषद, द चीफ खालसा दीवान, एंग्लो-इंडियन क्रिश्चियन, जमात-ए-इस्लामी आदि।

(6) विद्यार्थी संस्थाएँ:

देश के कई विद्यार्थी संघ तथा संस्थाएँ सक्रिय हैं जो छात्रों के हितों में काम करते हैं। कई विद्यार्थी संघ तो राजनीतिक पार्टियों से भी प्रतयक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहते हैं। जैसे अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का भारतीय जनता पार्टी से जुड़ाव, नेशनल स्टुडेन्ट यूनियन आफ इंडिया का भारतीय राष्ट्रीय क्राग्रेस से जुड़ाव आदि।

(7) भाषायी दबाव समूहः

इस प्रकार के संगठन का विकास किसी विशेष भाषा समूह के विकास के लिए किया जाता है। जैसे-तमिल संघ, द हिन्दी प्रोटेक्शन परिषद, द पंजाबी साहित्य सभा आदि।

(8) महिला संगठनः

महिलाओं के हितों की सुरक्षा, स्वतंत्रता, तथा समाज के इस महत्वपूर्ण वर्ग को शक्तिशाली बनाने के उद्देश्य से कई महिला संगठनों, संस्थाओं आदि की स्थापना हुई है, जैसे महिला कल्याण सभा, दहेज-विरोधी परिषद, नारी सुधार सभा आदि, जो राजनीतिक पार्टियों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़कर अपने समूहों के हितों की पूर्ति करते हैं।

(9) कबीलाई/जनजातीय/क्षेत्रीय समूहः

अपने क्षेत्रीय हितों की पूर्ति, संतुष्टि के लिए कई हित समूह या दबाव समूह सक्रिय हैं राजनीतिक प्रणाली में, जैसे-ट्राइवल संघ आफ असम, नागा नेशनल, झारखंड सुरक्षा संगठन आदि।

इस प्रकार भारत में बहुतेरे दबाव समूह हैं जो सरकारी नीतियों को प्रभावित कर अपने हितों की पूर्ति करते हैं। वीनर का विचार है कि, ''संगठित हित-समूहों का भारतीय सार्वजनिक नीति-निर्माण पर गहरा प्रभाव रहा है'', भारतीय राजनीतिक प्रणाली में हित समूहों की वास्तविक भूमिका उनके आकार, संगठित ढ़ांचे के स्वरूप, सदस्यों की एकता और अनुशासन के स्तर, नेतृत्व, गुणों और वित्तीय साधनों पर निर्भर करती है। अमीर व्यवस्थित ढ़ंग से संगठित और सक्रिय दबाव-समूह, उदाहरणस्वरूप व्यापारिक समूह, सरकारी नीति पर उच्चस्तरीय प्रभाव डाल रहे हैं। श्रमिक संघ, व्यापार संघ और किसान संगठन अपने अधिक प्रतिनिधित्व के आधार पर अधिक-से-अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो रहे हैं। राजनीतिक दलों के कार्य में बढ़ती असंतुष्टि के कारण भारतीय राजनीति में हित समूह की भूमिका अब आगे बढ़ती जा रही है। भारत में राजनीतिक दल इस संभावना के प्रति सचेत हैं इसलिए वे अलग-अलग सुसंगठित दबाव-समूहों से संबंध स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

संदर्भः

- N.C.E.R.T., भारत में लोकतंत्र (कक्षा-12)
- एम. लक्ष्मीकांत- (भारत की राजव्यवस्था)
- विकीपीडिया
- drishtias.com
- jagranjosh.com, 7-Sep-2018
- कुरूक्षेत्र, सितम्बर-2017
- www.scotbuzz.org
- वी. के. त्रिपाठी-भारतीय राजव्यवस्था एवं शासन

बिहार में प्रथम कांग्रेसी मंत्रिमंडल (1937-38) का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ० अमित कुमार

पूर्व शोध-छात्र, इतिहास विभाग, बी० एन० मंडल विश्वविद्यालय, मधेपूरा

सारांश

जुलाई 1937 में कांग्रेस ने 6 प्रांतों- मुंबई, मद्रास, मध्य भारत, उड़ीसा, बिहार एवं संयुक्त प्रांत में मंत्रिमंडल का गठन किया। बाद में असम और पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत ने भी उसने सरकार बनाई। इनकी गतिविधियों के दिशा निर्देश और इनमें आपस में तालमेल कायम रखने के लिए, साथ ही इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि कांग्रेस का प्रांतीय ग्रहण करने की अंग्रेजों की मंशा पूरी ना हो सके एक केंद्रीय नियंत्रण परिषद गठित की गई। इस परिषद को संसदीय उप समिति नाम दिया गया। इसके सदस्य थे- सरदार पटेल मौलाना अबुल कलाम आजाद और राजेंद्र प्रसाद। 1935 के विधान से भारत में संवैधानिक परिवर्तन की एक नई कड़ी प्रस्तुत की यद्यपि राष्ट्र की आशा से बहुत ही कम था। फिर भी कांग्रेस नया संविधान के अंतर्गत शासन सुधारों को कार्यान्वित करने का निर्णय कर चुकी थी। अतः केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान मंडलों के हेतु निर्वाचन में भाग लेने का निर्णय किया था। प्रस्तुत शोध पत्र में बिहार में प्रथम कांग्रेसी मंत्री मंडल 1937- 38 का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द- कांग्रेसी मंत्रिमंडल, बिहार, राजनीतिक सम्मेलन, बिहार विधानसभा का चुनाव।

प्रस्तावना-

बिहार के विभिन्न जिलों में पूरी तैयारी के साथ जिला राजनीतिक सम्मेलन आयोजित किए गए। पटना जिला राजनीतिक सम्मेलन नवंबर, 1935 में तथा पूर्णिया जिला राजनीतिक सम्मेलन 9 नवंबर 1935 को संपन्न हुआ। पूर्णिया सम्मेलन की अध्यक्षता श्री अनुग्रह नारायण सिंह ने की थी। मुंगेर में बेगूसराय में पूरी तैयारी के साथ राजनीतिक सम्मेलन 23 नवंबर को संपन्न हुआ। इसके स्वागतकारिणी के सदस्य श्री राम चरित्र तथा अध्यक्ष श्री राम नारायण सिंह थे। लगभग 3000 लोग सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाए गए पंडाल में बैठे सम्मेलन में प्रांत तथा जिला के प्रमुख नेता सम्मिलित हुए। सम्मेलन समाप्त होने के तुरंत बाद उस पंडाल में गन्ना उत्पादन सम्मेलन हुआ, इसकी अध्यक्षता अनुग्रह नारायण सिंह ने की। इसमें एक प्रस्ताव स्वीकृत करके सरकार से गन्ना का दाम 5 आना से बढ़ाकर 8 आना करने का अनुरोध किया गया।

6 वर्षो तक सरकारी प्रतिबंध के पश्चात बिहार राजनैतिक सम्मेलन का 19 वां अधिवेशन पटना में 15-16 जनवरी 1936 को पूर्ण उत्साह के वातावरण में संपन्न हुआ। कांग्रेस अध्यक्ष राजेंद्र प्रसाद ने इस सम्मेलन में सम्मिलित होकर लोगों का उत्साह बढ़ाया। प्रांत भर के लगभग 5000 प्रतिनिधि इस में सम्मिलित हुए इनमें अनेक किसान और संथाल भी थे। सम्मेलन के अध्यक्ष श्री राम दयालु सिंह ने गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 की विभिन्न खामियों का उल्लेख किया। श्री सिंह ने कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम ग्राम कल्याण तथा किसानों की दशा में सुधार करने की अपील की। राजेंद्र बाबू ने भी अपने भाषण में रचनात्मक कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने हिंदू मुस्लिम एकता के लिए अपील की। बाबू श्रीकृष्ण सिंह ने पब्लिक सेफ्टी बिल के संबंध में सरकारी नीति की कड़ी आलोचना की। आर्थिक मंदी को देखते हुए मालगुजारी घटाने तथा किसानों पर जमींदारों के जुर्म खत्म करने के प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

बिहार चुनाव जनवरी, 1936

सरकारी अधिकारी यह आशा करते हैं कि जमींदारों के प्रभाव एवं उसके सक्रिय होने से कांग्रेस तथा कांग्रेस सभा के प्रभाव कम हो जाएंगे। शाहाबाद का जिला अधिकारी अपने इलाके के जमींदारों को अपने धारणा के अनुसार सक्रिय नहीं देख कर खुश नहीं था। नवंबर, 1936 के अंत में उसने पटना के आयुक्त को पत्र में लिखा 'मुझे यह भय है कि जमींदारों की निष्क्रियता के कारण संभवत बक्सर और भभुआ को छोड़कर सर्वत्र कांग्रेस की विजय होगी। जमींदार सुनियोजित अभियान या कार्यक्रम नहीं चला रहे हैं, आज तक उन्होंने प्रचार कार्य करने का कोई प्रयास नहीं किया है। इस प्रकार पहल कांग्रेसी लोगों के हाथों में विशेष करके किसान कार्यकर्ताओं के हाथ में है।'

सन 1936 के पहले सप्ताह में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अभियानों के सिलसिले में बिहार की यात्र पर आए। 5 और 6 जनवरी को श्री नेहरू ने पटना प्रमंडल के तीनों जिलों की यात्र की, जहां भी जाते बहुत बड़ी संख्या में लोग उनकी सभाओं में आते और उनके भाषणों से अनुप्रेरित होते हैं। पंडित नेहरू कांग्रेस के आदर्शों तथा दलित पीड़ित लोगों को विदेशी शोषण तथा अन्य देसी प्रतिगामी शक्तियों से मुक्त कराने के उसके कार्यक्रम पर विशेष रूप से प्रकाश डालते। 5 जनवरी को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने आरा, बक्सर, बरहमपुर और बिक्रमगंज में भाषण दिए। शाहाबाद के जिलाधिकारी ने 9 जनवरी को पटना के आयुक्त को लिखा कि, ''इसमें संदेह नहीं है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू के भाषणों से कांग्रेस अभियान को पर्याप्त बल मिलेगा। पूर्व केंद्रीय शाहाबाद और आरा निर्वाचन मंडलों में अनेक उम्मीदवारों की विजय होना निश्चित है। 6 जनवरी को पंडित जवाहरलाल नेहरू गया जिला से गुजरे और कुछ स्थानों पर सभाओं में भाषण किए। तत्कालीन अखिल भारतीय कमेटी के सचिव प्रोफेसर कृपलानी भी बिहार आए और वे ब्रह्मचारी के साथ 15 जून 1937 को बक्सर में एक सभा में भाषण किए। इसके अतिरिक्त कई अन्य जगहों पर भी चुनाव सभाओं में सम्मिलित हुए।

बिहार विधान सभा के हेतु 22 से 27 जनवरी के मध्य विभिन्न स्थानों पर मतदान संपन्न हुए। प्रांत में 129 निर्वाचन मंडल चित्र बनाए गए थे। इसमें 70 नागरिक एवं 65 ग्रामीण आम निर्वाचन मंडल थे, 39 मुसलमानों के लिए सुरक्षित 4 महिलाओं के लिए (मुसलमान एक) एक एंग्लो इंडियन, दो यूरोपीय इसके अतिरिक्त 13 विशेष निर्वाचन मंडल के थे। इनमें एक भारतीय स्त्रियों के लिए चार वाणिज्य तथा उद्योग- धंधों, खनिज और प्लांट समुदाय के लिए चार जमींदारों के लिए 3 गैर यूनियन मजदूरों के लिए एक विधान परिषद के लिए आम निर्वाचन मंडल के अतिरिक्त 4 मुसलमानों और एक यूरोपीय के लिए सुरक्षित निर्वाचन मंडल थे। दोनों सदनों के लिए चुनाव कराए गए विधानसभा के कुल मतदाताओं की संख्या 2412229 थी। इनमें 225000 अनुसूचित जातियों के और 183335 महिलाएं थी–324393 मुसलमान जिनमें 31854 महिलाएं, 2963 एंगलो इंडियन और यूरोपीय मतदाता थे। परिषद के क्षेत्रीय निर्वाचन मंडलों में मतदाताओं की कुल संख्या 7673 थी इसमें 5455 सामान्य मतदाता थे, जिनमें 655 महिलाएं थी। 1723 मुस्लिम जिनमें 3023 महिलाएं थी, यूरोपीय जिनमें 78 महिलाएं थी। 1935 में प्रांत में पिछड़ा वर्ग संघ नामक एक संगठन की स्थापना की गई थी। चुनाव में कांग्रेस के साथ थी मुस्लिम मतदाता कांग्रेसी उम्मीदवारों को छोड़कर तीनों गुटों में गए थे इंडिपेंडेंट, यूनाइटेड पार्टी और अहरार पाटी। आम और विशेष स्थानों के लिए गैर कांग्रेसी प्रत्याशी, विभिन्न दलों तथा स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में खड़े हुए थे या विभिन्न पार्टियों का बिल्ला लगाकर जैसे इंडिपेंडेंट, मॉडरेट, प्रोग्रेसिव, कॉन्स्टिटयूशन आदि। त्रिवेणी सिंह नामक पार्टी इसी समय प्रकट हुई। कुर्मी और मातदाताओं के समर्थन पर निर्भर करती थी, जिन इलाकों में इन जातियों के लोगों की संख्या अच्छी थी इसने अपने प्रत्याशी खड़े किए थे। चुनाव परिणाम कांग्रेस पार्टी का भारी विजय थी कांग्रेस पार्टी की एकमात्र अनुशासित पार्टी थी और उसके कार्यक्रम से जनता वास्तव में प्रभावित थे।

152 जगहों में कांग्रेस के 107 प्रत्याशी खड़े किए गए थे इनमें 68 प्रत्याशी विजई हुए अर्थात कुल जगहों का 65 प्रतिशत और जिन जगहों के लिए प्रत्याशी खड़े किए गए उनका 92 प्रतिशत आम नागरिक निर्वाचन मंडलों में कांग्रेस ने सभी पांच जगह जीत ली। और ग्रामीण निर्वाचन मंडलों में 73 में 68 अनुसूचित जातियों के 15 निर्वाचन मंडलों में 14 प्रत्याशी जीते तथा साथ मुस्लिम निर्वाचन मंडलों के लिए उसने प्रत्याशी खड़े किए थे इनमें पांच जगह हैं, उन्हें मिली 4 महिला निर्वाचन मंडलों में से तीन और तीन श्रमिक निर्वाचन मंडलों में से दो कांग्रेस के हाथ लगे आदिवासी निर्वाचन मंडल में एक को छोड़कर सर्वत्र कांग्रेस विजई रही। पटना विश्वविद्यालय निर्वाचन मंडल से कांग्रेसी प्रत्याशी को पराजित करके डॉ० आनंद सिन्हा निर्वाचित हुए। विधान परिषद के लिए 8 कांग्रेसी प्रत्याशी विधानसभा द्वारा अप्रत्यक्ष चुनाव में विजई हुए, इस प्रकार कांग्रेस का जो दोनों सदनों को मिलाकर सम्मिलित रूप

से पूर्ण बहुमत हो गया। चुनाव में मतदान कार्य सहानुभूति एवं निष्पक्ष ढंग से संपन्न हुआ पटना प्रमंडल के निर्वाचन तथा उसके नाम पर उसके आयुक्त ने 13 फरवरी 1939 को मुख्य सचिव को लिखा, ''मेरी दृष्टि में इस चुनाव की सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि मतदाता बहुत भारी संख्या में मतदान करने आए कुल मतदाताओं के औसतन लगभग 70 प्रतिशत ने मतदान किया दूसरी महत्व की बात थी कहीं किसी तरह की गड़बड़ी नहीं फैली'।

बिहार में पहला कांग्रेसी मंत्रिमंडल

नए संविधान के अंतर्गत पद ग्रहण के जटिल प्रश्न पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 17-18 मार्च 1939 की दिल्ली की अपनी बैठक में इस आशय का निर्णय किया, 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी उन प्रांतों में जहां कांग्रेस को बहुमत मिला है, पद ग्रहण करने की अनुमति देती है। पर यदि कांग्रेस विधानमंडल पार्टी का नेता इस बात से संतुष्ट नहीं होता कि गवर्नर अपने विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं करेगा या संवैधानिक कार्यवाहियों के संदर्भ में मंत्रियों की सलाह की अवमानना नहीं करेगा तब तक मंत्रिमंडल का अनुमोदन नहीं किया जाएगा।'' 1920 मार्च को अखिल भारतीय नेशनल कन्वेंशन कि दिल्ली में बैठक हुई बैठक के पहले कन्वेंशन के सदस्यों ने हिंदुस्तानी में निम्नलिखित प्रतिज्ञा ली, 'मैं अखिल भारतीय कन्वेंशन के सदस्य के रूप में भारत की सेवा में तथा विधान मंडलों में एवं उसके द्वारा भारत की आजादी के हेतु काम करने एवं भारतीय जनता के शोषण एवं गरीबी को दूर करने हेतु काम करते रहने का संकल्प करता हूं। मैं संकल्प करता हूं कि कांग्रेस के आदर्श एवं उद्देश्यों को हासिल करने हेतु अनुशासन में काम करूंगा जिसमें भारत स्वतंत्र हो और उसकी करोड़ों करोड़ जनता जो का वाहन कर रही है उन से मुक्त हो'।

मार्च अंत में सरकार ने कांग्रेस बहुमत वाले प्रांतों में वहां की कांग्रेसी विधानमंडल पार्टियों के नेताओं को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्ति स्वीकार करने तथा अपना मंत्रिमंडल बनाने को आमंत्रित किया। बिहार में 24-25 मार्च को बाबू श्री कृष्ण सिंह को आमंत्रण मिला श्री सिंह के गवर्नर से कांग्रेश के उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार मंत्रिमंडल बनाने के पूर्व आश्वासन देने को कहा गवर्नर के इंकार पर श्री सिंह ने मंत्रिमंडल बनाने में अपना समर्थन जाहिर की। इससे इससे उत्पन्न संवैधानिक श्री सिंह ने एक वक्तव्य दिया उसमें प्रांतीय स्वराज के अंतर्गत वास्तविक एवं दायित्व पूर्ण स्वशासन की आवश्यकता पर बल दिया गया था और कहा गया था कि गवर्नर के विशेषाधिकार से उसका खंडन होता है।

प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल का शीघ्र ही गठन हुआ बिहार में 24 जुलाई को मंत्रिमंडल ने श्री कृष्ण जी के नेतृत्व में पद ग्रहण किया अन्य मंत्री श्री अनुग्रह नारायण सिंह डॉ. सैयद और जगलाल चौधरी थे श्री राम देवासी और प्रोफ़ेसर अब्दुल बारी विधानसभा के क्रमशः अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए सर सफलतान अहमद को एडवोकेट जनरल नियुक्त किया गया श्री अहमद ने शिमला से अपना त्यागपत्र भेज दिया उनके स्थान पर मंत्रिमंडल ने श्री बलदेव सहाय को एडवोकेट जनरल नियुक्त किया।

कांग्रेस मंत्रिमंडल का स्रोत से स्वागत किया गया कांग्रेसी मंत्रियों की नियुक्ति का स्वागत किया गया। 24 जुलाई 1937 को राज्य बंदी दिवस के संदर्भ में पटना में 2 सभाएं हुई। मंगल तलाव वाली सभा की वित्त मंत्री ने तथा बांकीपुर वाली सभा में प्रधानमंत्री ने अध्यक्षता की। 1 अगस्त 1937 को प्रांत भर में मंत्रिमंडल दिवस मनाया गया। इस अवसर पर राष्ट्रीय झंडा फहराया गया, जुलूस निकाला गया और सभाएं हुई। जिला स्कूल तथा अनेक भवनों पर राष्ट्रीय झंडा फहराया गए कुछ स्थानों पर सरकारी भवनों पर झंडा फहराया जाना जिलाधिकारियों ने रुकना चाहता था, इस आधार पर सरकार ने इस संबंध में कोई आदेश नहीं दिए थे। उनके स्थान पर 14 अगस्त को अंडमान बंदी दिवस मनाया गया। बिहार प्रांतीय कार्यकारिणी की सभा 24 अगस्त को हुई इसमें जेलों में बंद राजनीतिक बंदियों की सजा खत्म करने की मांग की गई इसके लिए प्रधानमंत्री के सम्मुख के विचार प्रस्तुत करने को अध्यक्ष को प्राधिकृत किया गया।

ब्रेड परिपत्र का प्रबल विरोध

कांग्रेस मंत्रिमंडल के समक्ष कठिन काम था अनेक तरह की कठिनाइयां एवं दशकों से संचित समस्याएं उसके सामने थी। जनता की स्थिति में सुधार करने के उन समस्याओं पर अभिलंब एवं पूरा ध्यान देना था किंतु सरकारी अधिकारियों का रवैया हमेशा सौहार्दपूर्ण नहीं रहता था और अभी भी मंत्रियों के प्राधिकार का क्षरण करता हुआ प्रतीत होता था। इस संबंध में तथाकथित ब्रेड

परिपत्र का उल्लेख किया जा सकता है। 9 दिसंबर 1937 को बिहार के मुख्य सचिव श्री ब्रेड ने प्रमंडलीय आयुक्तों को अपने जिलाधिकारियों के पास भेजने के हेतु एक गोपनीय परिपत्र प्रेषित किया इस परिपत्र में अन्य बातों के अतिरिक्त जिलाधिकारियों को आदेश देने के संदर्भ में मंत्रियों की संवैधानिक स्थिति पर स्पष्टीकरण दिए गए थे। इस परिपत्र का विधानसभा में भारी विरोध हुआ श्रीकृष्ण सिंह ने 23 सितंबर 1937 को एक वक्तव्य देकर स्थिति को शांत किया अपने वेतन पर में उन्होंने कहा कि, ''श्री ब्रेड ने उसके बाद यह कहा था कि उसने निजी तौर पर परिपत्र जारी किया था और यदि उससे मंत्रिमंडल को कोई उलझन हुई हो तो उसके लिए गहरे खेद व्यक्त किया था।'' मंत्रिमंडल ने ब्रेड का उत्तर स्वीकार कर लिया और जिलाधिकारियों को यह सूचित कर दिया कि श्री ब्रेड के परिपत्र में उनकी निजी सलाह थी यह प्रांतीय सरकार का आदेश नहीं था इसलिए इस परिपत्र को वापस ले लिया गया।

बिहार मंत्रिमंडल का इस्तीफा

कांग्रेस के चुनाव घोषणा पत्र में राजनीतिक बंदियों की रिहाई का वादा किया गया था कांग्रेस मंत्रिमंडल का गठन होने पर स्वभावत: उसकी मांग की जा रही थी। बिहार में अंडमान से वापस लाए हुए राजनीतिक बंदी जेल में ही थे, ऐसे 8 बंदी हजारीबाग जेल में 17 जनवरी से और चार 26 जनवरी 1938 से भूख हड़ताल पर थे। 30 जनवरी 1938 को प्रांत भर में राजनीतिक बंदी दिवस मनाया गया। राजनैतिक बंदियों की भूख हड़ताल प्रधानमंत्री श्री कृष्ण सिंह, मौलाना अबुल कलाम आजाद और श्री अच्युत पटवर्धन के प्रयत्न से फरवरी में समाप्त हुई। यह लोग इस काम के लिए हजारीबाग जाकर जेल में बंदियों से मिले किंतु शीघ्र ही राजनीतिक बंदियों की रिहाई पर एक गंभीर राजनीतिक संकट खड़ा हुआ बिहार और युक्त प्रांत के प्रधानमंत्रियों ने सभी राजनीतिक बंदियों की रिहाई के आदेश देने के अधिकार पर बल दिया। दूसरी ओर दोनों प्रांत के गवर्नर ने वायसराय के समर्थन से इस पर आपत्ति प्रकट की दोनों प्रांत के प्रधानमंत्रियों ने त्यागपत्र दे दिया। बिहार मंत्रिमंडल ने 15 फरवरी 1938 को अपना त्यागपत्र देते हुए लिखा हम महसूस करते हैं कि ''शांति और व्यवस्था के संदर्भ में गवर्नर के विशेष अधिकारों का व्यवहार करने के लिए आवश्यक स्थिति इस प्रांत में उत्पन्न नहीं हुई है। 23 राजनैतिक बंदियों की रिहाई के जिसके लिए हमने नीति एवं सिद्धांत के आधार पर अनुशंसा की है, बाद भी वैसी स्थिति पैदा होने की कोई संभावना नहीं है। हम यह मानने को तैयार नहीं है कि बंदियों की रिहाई से बिहार के बाहर भी कहीं शांति और सुव्यवस्था पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इस स्थिति में महामहिम गवर्नर जनरल की एक ऐसे मामले में करवाई जो प्रांतीय सरकार के क्षेत्र का ही विषय है। संविधान के शब्द एवं तथ्य का गंभीर उल्लंघन है।'' भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 51 वां अधिवेशन 1921 फरवरी 1938 को हरिपुरा में हुआ इसके अध्यक्ष श्री सुभाष चंद्र बोस ने बिहार और युक्त प्रांत के मंत्री मंडलों के त्यागपत्र देने का अनुमोदन किया।

निष्कर्ष

अनेक बाधाओं के बावजूद बिहार कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने कई सुधारात्मक कदम उठाए और विभिन्न कार्य भाइयों से रचनात्मक कार्य शुरू किया बिहार सेफ्टी एक्ट के अंतर्गत नजरबंद या निष्कासित व्यक्तियों को पद ग्रहण करने के 1 महीने भीतर रिहा कर दिया गया। सभी संघों पर से प्रतिबंध हटा दिया गया और अखबारों से जमानत मांगने की प्रथा समाप्त कर दी गई मंत्रिमंडल ने स्वायत्त शासन संस्थाओं द्वारा अपने भवनों पर राष्ट्रीय झंडा फहराने पर से प्रतिबंध समाप्त कर लिया। हरिजनों की शिक्षा तथा उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार करने के हेतु कुछ कदम उठाए गए हरिजन छात्रों की आम शिक्षा तथा तकनीकी प्रशिक्षण के लिए विशेष छात्रवृत्ति एवं निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई। नहर-कर भुगतान करने में पुरानी व्यवस्था की बहुत सी बुराइयों को दूर करने के हेतु किसानों को अधिक सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से सोना और चंपारण के इलाकों में केंद्रीय भुगतान व्यवस्था जारी की गई।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कूपलैंड, रिपोर्ट ऑन कॉन्स्टिटयूशन प्रॉब्लम इन इंडिया, भाग 2.
2. द एनुअल रजिस्टर, 1937, खंड 1.
3. द एनुअल रजिस्टर, 1939, खंड 1.

4. प्रोफेसर बिपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, 2010.
5. राम लखन शुक्ला (संपादक), आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, 2008.
6. डॉ. के के दत्त, बिहार में स्वतंत्र आंदोलन का इतिहास, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पटना, 2004, भाग-2.
7. कमलेश्वर राय, बिहार का इतिहास, किताब महल, नई दिल्ली, 2013.
8. डॉक्टर निपेंद्र कुमार श्रीवास्तव, बिहार का इतिहास, सुधा प्रकाशन, पटना, 2014.
9. पटना के जिलाधिकारी को आयुक्त का पत्र, 26 दिसंबर 1939
10. पटना आयुक्त के पाक्षिक रिपोर्ट, 26 मार्च 1937

राजा राममोहन राय के धार्मिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन

डॉ० अरुण कुमार पंडित

पूर्व शोध-छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, भू. ना. मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

सारांश- राजा राममोहन राय 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरण के प्रणेता थे। उन्होंने ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भारतीय समाज के उत्थान के लिए आजीवन अथक प्रयास किए और सदियों से चली आ रही भीषण सामाजिक बुराईयों पर प्रबल प्रहार कर भारतीय समाज में नव चेतना का संचार किया जिससे आधुनिक भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ। राजा राममोहन राय के धार्मिक विचारों की आधारशिला उनके द्वारा इस्लाम धर्म, हिंदू धर्म तथा ईसाई धर्म से संबंधित ग्रंथों का अनुशीलन है। वेदांत इस्लाम तथा ईसाई धर्म के अलावा राजा राममोहन राय ने तांत्रिक, बौद्ध, जैन तथा वैष्णव मार्ग का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज में आधुनिकता, उदारवाद एवं विवेकवाद की नई धारा भारत में प्रवाहित की ब्रह्म समाज की स्थापना द्वारा भारतीय पुनर्जागरण आंदोलन को नया सवाल मिला सबल मिला। धार्मिक उदारता से प्रेरित होकर उन्होंने समस्त धर्मो की सूक्ष्म समानता को स्वीकार करते हुए धर्मों के पारस्परिक है, विभाजन कारी सिद्धांतों को अमान्य कर दिया था। हेमचंद्र सरकार ने ठीक ही लिखा है, ''राजा राममोहन राय न तो पूर्णतया हिंदू थे और ना ही अनन्य रूप से एक ईसाई थे वरन वे दोनों से ही कुछ अधिक बड़े तथा उदात थे। वे अतीत के हिंदू धर्म के मार्ग को स्थाई धर्म की ओर वर्णन उनके बीच में से निकाल कर सार्वभौमिक अधिभौतिकी ईश्वर बाद में तो गया जिसमें हिंदू धर्म और ईसाई धर्म दोनों के मूल्यांकन और प्रेरक तत्व समावेश है थे''।

मुख्य शब्द- राजा राममोहन राय, धार्मिक ख्रष्टिकोण, आधुनिक भारत, ब्रह्म समाज।

परिचय

बंगाल के राजा राममोहन राय भारतीय नवजागरण और पुनरुत्थान के अग्रदूत तथा सुधारवादी आंदोलन के प्रवर्तक थे। राजा राममोहन राय का जन्म सन 1774 में ब्राह्मण परिवार में राधा नगर में हुआ था। इनके पिता रमाकांत राय जमींदार थे। राममोहन राय ने बंगला, अरबी, फारसी, हिंदी व संस्कृत भाषा का अध्ययन तो किया ही पर अंग्रेजी, ग्रीक, लैटिन आदि यूरोपीय भाषाओं का भी उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। प्रमुख धर्मो के आधार ग्रंथों का भी उन्होंने अध्ययन किया। वे अपने युग के बड़े पंडित माने जाते थे। सन 1805 में वह ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन रंगपुर की कलेक्ट्री में नौकरी लग गए और शीघ्र ही अपनी प्रतिभा के बल पर क्लर्क की स्थिति से उठकर जिले की दीवान के ऊंचे पद पर पहुंच गए। सन 1814 तक कार्यरत थे इसी बीच उन्होंने ईसाई धर्म का गहरा अध्ययन किया। हिंदू धर्म, शास्त्र, वेद, उपनिषद तथा वेदांत के आदि का मनोयोग पूर्वक अनुशीलन वे पहले ही कर चुके थे। इस अवधि में ईसाई धर्म के प्रचार को और पादरियों के संपर्क में आए और इनका प्रभाव राजा राममोहन राय पर पड़ा। अपना सारा समय लोकगीत और जीवन आदर्श की सीढ्ढी में लगाने के उद्देश्य से उन्होंने 40 वर्ष की आयु में अपने उच्च सरकारी पद से त्यागपत्र दे दिया और 1814 के बाद कोलकाता में रहने लगे। और अब उन्होंने अपना जीवन जनसेवा और सुधारवादी आंदोलनों के लिए समर्पित कर दिया। यहीं से उनके जीवन का महत्वपूर्ण अध्याय शुरू होता है। सन 1815 में उन्होंने आत्मीय सभा नामक एक सुधारक संस्था की स्थापना की। इसके अंतर्गत प्रति सप्ताह बैठक होती थी और हिंदू धर्म शास्त्रों के आधार पर एकेश्वरवाद पर विचार विनिमय और वाद-विवाद होते थे। अपने विशेष ज्ञान और वैज्ञानिक तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि में राजा

राममोहन राय ने हिंदू धर्म में उत्पन्न कुरीतियों एवं आडंबरों पर गंभीर प्रहार किए। उन्होंने मूर्ति पूजा की कटी कटु आलोचना की और सब प्रमाण यह विचार अभिव्यक्त किया कि हिंदुओं के समस्त प्राचीन धर्म ग्रंथों में एक ब्रह्मा का उपदेश दिया गया है। अपने इस मत के समर्थन में उन्होंने पांच प्रमुख उपनिषदों का अनुवाद कर प्रकाशित किया। सन 1819 में उन्होंने मद्रास के एक प्रसिद्ध विद्वान शुभम शास्त्री को मूर्ति पूजा पर हुए शास्त्रर्थ में पराजीत कर दिया था। सन 1825 में उन्होंने वेदांत के सिद्धांतों और एकेश्वरवाद के अध्यापन और प्रचार के लिए वेदांत कॉलेज की स्थापना की।

यद्यपि राजा राममोहन राय प्राचीन धार्मिक ग्रंथों और धर्म शास्त्रों पर विश्वास करते थे परंतु अंतिम रूप से वे मानव के विवेक और तर्कशक्ति पर ही निर्भर रहते थे। मानव विवेक को उन्होंने हिंदू धर्म और धर्म शास्त्रों के संदर्भ में ही लागू नहीं किया बल्कि उसके सहारे उन्होंने विश्व के अन्य धर्मों की भी परीक्षा और समीक्षा की। 1820 ईसवी में उन्होंने 'प्रीसेट्स जीसस' नामक पुस्तक प्रकाशित की इसमें उन्होंने 'न्यू टेस्टामेंट' के नजदीक एवं दार्शनिक संदेश को उसकी चमत्कारिक कहानियों से पृथक करने का प्रयास किया। वह चाहते थे कि ईसाई धर्म और इस्लाम के अच्छे तत्वों को हिंदू धर्म में सम्मिलित कर तथा पश्चिम व पूर्व की संस्कृतियों के श्रेष्ठ लक्षणों का समझ कर एक उत्तम एवं महान संश्लेषण बनाया जाए परंतु उस समय के रूढ़िवादी और पिछड़े हुए समाज और उसके नेताओं ने राम मोहन राय के प्रगतिशील उदार विचारों का डटकर मुकाबला किया।

राजा राममोहन राय ने महान सुधार की शक्ति और अदम्य उत्साह से 20 अगस्त 1828 को ब्रह्म समाज की स्थापना की। प्रति शनिवार को इसके सदस्यों की बैठक होती थी। इसमें संस्कृत में उपनिषद पढ़े जाते थे और बंगाली में उनका अनुवाद किया जाता था तथा धार्मिक उपदेश भी होते थे। राजा राममोहन राय ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य किए। उन्होंने अनेक आधुनिक प्रगतिशील विचारधारा का प्रचार और प्रयास किया तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार का प्रयास किया। इसलिए उनको भारत का प्रथम आधुनिक व्यक्ति कहते हैं। धर्म, राजनीति, दर्शन, समाज, शिक्षा, साहित्य, कानून आदि विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने प्रगतिशील सुधारवादी धाराएं प्रारंभ की।

धार्मिक विचार

राजा राममोहन राय के अनुसार धर्म वह है, 'जो ज्ञान को प्रेरित करें, ईश्वर के प्रति अनुराग पैदा करें, व्यक्तियों में एक दूसरे के प्रति हमदर्दी पैदा करें, उनमें मानवीय भावनाओं को मजबूत करें तथा उसके सामान्य दृष्टिकोण में सौम्यता लाए'। वे धर्म को मानव कल्याण की वस्तु मानते हैं। उनका कहना है कि जो धर्म मानव कल्याण और मानव सेवा में लीन नहीं हुआ धर्म नहीं। राय की धारणा है कि विभिन्न धर्मों में विद्यमान तत्व ही समाज में अंधविश्वास और धर्मांधता एवं विघटन के लिए उत्तरदायी है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि हमारा धार्मिक जीवन शास्त्रें के अतिरिक्त युक्ति एवं सामान्य बुद्धि पर आधारित होना चाहिए राजाराम परंपरा या बहुमत को किसी सत्य की कसौटी नहीं मानते थे। उनका कहना था कि सत्य की एकमात्र कसौटी उसकी प्रमाणिकता है राय का कहना था कि जीवन के साधारण कार्य व्यवहार में भी जब हम सोच समझकर नापतोल कर कार्य करते हैं तो परम और चरण महत्व की बात में हम सोच विचार नापतोल का मार्ग छोड़कर केवल श्रद्धा के आश्रय कैसे बैठे रहे। राय हिंदू धर्म में विश्वास करते थे वह हिंदू धर्म पर गर्व भी करते थे तथा उसकी रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहते थे। भारत में ईसाई मिशनरियों हिंदू धर्म के विरुद्ध जो झूठा प्रचार कर रही थी राय उनका खंडन करते और हिंदू धर्म की दृष्टि एवं श्रेष्ठा को बताने का प्रयास करके उसके मानव आदि स्वरूप को उजागर करते। राय ईशा को एक महान मानवतावादी नैतिक उत्थान के प्रवर्तक व मार्गदर्शक मानते थे वह भारत में ईसाई मिशनरियों के कार्य की सराहना भी करते थे परंतु वह उनके द्वारा किए जाने वाले धर्म परिवर्तन का विरोध करते थे। उनका मत है कि ईश्वर सत्य है और उसी सत्य की खोज में उन्हें सर्वत्र ब्रह्मा की उपस्थिति की अनुभूति हुई है। वह सत्य के आधार पर ही धर्म लोगों तक पहुंचा- उन्होंने धार्मिक संस्थाओं एवं संघों को सामाजिक सुधार तथा राजनीतिक परिवर्तन के एक यंत्र के रूप में देखा।

राजा राममोहन राय के धार्मिक विचारों पर इस्लाम का प्रभाव सर्वप्रथम स्पष्ट हुआ। उन्होंने एकेश्वरवाद को इस्लाम के प्रभाव में ही अपनाया। ईसाई धर्म से उनका संपर्क के बाद हुआ। अत: उन पर ईसाई धर्म का प्रभाव अधिक दृष्टिगोचर नहीं होता। ब्रह्म समाज पर ईसाई मत का प्रभाव राजा के पश्चात केशव चंद्र सेन के समय में अधिक देखा गया जबकि ब्रह्म समाज के क्रियाकलाप बिल्कुल ईसाई धर्मावलंबियों के समान होने लगे थे। राजा राममोहन राय वेदांत के महत्व से परिचित हुए उससे पहले ही उन पर इस्लाम का प्रभाव पड़ चुका था फिर भी वेदांत में सत्य का साक्षात्कार कर उन्होंने ब्रह्मवाद तथा एकेश्वरवाद को मिलाना है श्रेयस्कर

समझा। इस प्रकार हिंदू धर्म तथा इस्लाम का समन्वय राजा राममोहन राय के धार्मिक विचारों का मूल बना। प्रकृति को वह एक सहायक तत्व मानते हुए ब्रह्म को ही संसार का नियम तत्व मानते रहे। इस दार्शनिक आधार को ग्रहण कर राजा राममोहन राय ने अपने धार्मिक विचारों का प्रचार प्रारंभ किया। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि इस प्रकार के साधारण धार्मिक सिद्धांत द्वारा समाज में व्याप्त आडंबर तथा धार्मिक आडंबर से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

उन्होंने वेदांत का किसी कारण वरण किया तथा उपनिषदों को साक्षी बनाकर धार्मिक कर्मकांड तथा अंधविश्वास से संघर्ष करने का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने मूर्ति-पूजा, जात-पात, खानपान की रूढ़िवादिता तथा अन्य अंधविश्वासों का इसी आधार पर खंडन भी किया। वह आत्मा को विश्वास तथा निष्ठा का प्रमुख तत्व मानते थे। आत्म साधन तथा आंतरिक जागृति पर उनका ध्यान विशेष रूप से केंद्रित रहा। राजा राममोहन राय धार्मिक स्वतंत्रता को प्रमुख नागरिक अधिकार मानते थे। व्यक्ति के लिए धार्मिक समानता और स्वतंत्रता के अधिकार का पुरजोर समर्थन करते थे। धर्म के क्षेत्र में उनकी स्वतंत्रता की अवधारणा ने मूर्ति पूजा के विरुद्ध आंदोलन का स्वरूप धारण किया। तथा सामाजिक क्षेत्र में इसने सती प्रथा और बहू पत्नी विवाह की प्रथाओं के विरुद्ध संघर्ष प्रारंभ किया। राजा राममोहन राय एक उच्च कोटि के विचारक तथा विद्वान थे। उन्होंने विभिन्न धर्मों का गंभीर अध्ययन किया था। विभिन्न धर्मों के ज्ञान कोष तथा तुलनात्मक धर्म के प्रकांड पंडित थे। अपने धार्मिक क्रियाकलापों में राजा राममोहन राय ने एक सार्वभौमिक धर्म का स्वप्न भी देखा था। यद्यपि राजा राममोहन राय का यह स्वप्न पूरा नहीं हुआ किंतु उनके इस प्रयास में धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का नवीन मार्ग अवश्य प्रस्तुत किया। वह परम सत्य की एकता तथा माननीय मूल्यों की स्वीकृति को सब धर्मों का आधार मानते थे। धर्मों की मौलिक एकता का आदर्श भारतीय चिंतन का रत्न है। राजा राममोहन राय मानव की सेवा को ही ईश्वर उपासना मानते थे। धार्मिक उदारवाद से प्रेरित हो राजा राममोहन राय ने स्वीकार किया कि वे समस्त धर्मों की सूक्ष्म समानता को स्वीकार करते हुए धर्मों के पारस्परिक विभाजन कारी सिद्धांतों को अमान्य समझते हैं।

राजा राम मोहन राय को अपने धार्मिक विचारों के लिए ना केवल अपने परिवार का ही कोप भाजन बनना पड़ा अपितु मित्रों की अपेक्षा का शिकार भी होना पड़ा। यदि राजा राममोहन राय चाहते तो अपने पिता के धार्मिक विचारों का अनुगमन कर चैन से जीवन बिता सकते थे किंतु उन्होंने जो मार्ग चुना वह दंड पितृप्रेम विहीनता और सामाजिक बहिष्कार का मार्ग था। उन्हें दो बार पिता ने घर से निकाल दिया, मित्रों ने उन्हें अपमानित किया यहां तक कि वह कोलकाता शहर की सड़कों पर भी सशस्त्र हुए बिना नहीं निकलते थे। जीवन के बाद के दिनों में उनकी माता ने उन्हें अपनी संपत्ति से वंचित करने का प्रयत्न किया। फिर भी वे अपने धार्मिक विचारों से विचलित नहीं हुए यदि वह धर्म परिवर्तन करना चाहते तो कोई भी अन्य धर्म उन्हें बाहें फैलाकर आलिंगन करने को आगे बढ़ता। अपने जीवन के अंतिम क्षण तक वेदों में विश्वास रखने वाले ब्राह्मण ही बने रहे। वह अपने धर्म को त्यागने के स्थान पर उसको सुधारना चाहते थे। उनके विचार में लोगों की मुक्ति के लिए पवित्र धर्म ग्रंथों पर रूढ़िवादी ब्राह्मणों का एकाधिकार समाप्त करना जरूरी है। उन्होंने ब्राह्मणों के पवित्र ग्रंथों को पढ़ने तथा उसकी व्याख्या के एकाधिकार को चुनौती देते हुए। उन्होंने कहा कि इस पवित्र ग्रंथों का सच्चा अर्थ समझना जरूरी है अत: उन्होंने खुद वेदांतिक साहित्य की व्याख्या करने का निश्चय किया और उनका मातृभाषा में अनुवाद करने का निर्णय लिया। राय का मानना था कि रूढ़ियां और धार्मिक ग्रंथों का समावेश दोनों ही कानून के स्त्रोत हैं। इस पर भी राय ने दोनों में से किसी एक को भी कानून के समान नहीं माना। उन्होंने इन दोनों को कानून निर्माण की क्रिया में आवश्यक घटकों के रूप में स्वीकार किया परंतु कानून नहीं माना उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र धार्मिक, सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक आदि क्षेत्र में अपने व्यक्तित्व की छाप अंकित की। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने तत्कालीन हिंदू धर्म और समाज में विद्यमान रूढ़ियों एवं कुरीतियों को पहचाना उनके कारणों को खोजा और उन्हें दूर करने के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष किया। उन्होंने विशुद्ध ईश्वरवाद और बुद्धिवादी, मानववाद पर बल देकर वास्तविक हिंदूवाद को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया।

निष्कर्ष

राजा राममोहन राय को आधुनिक युग का जनक माना जाता है। उनको देश का पथ प्रदर्शक माना जाता है क्योंकि वह अन्वेषण की भावना के ज्ञान-विज्ञान की परिभाषा के और मानववाद के प्रतीक थे। जिनको वे भारतीय परिस्थितियों में ही प्राप्त करना चाहते थे। वास्तव में राजा राममोहन राय के समय में भारत ने प्रतिक्रियावादी युग से निकलकर आधुनिक प्रगतिवादी युग में प्रवेश किया। वह प्रगति और विकास के आधार बिंदु थे। उनके प्रगतिशील उदार विचारों राष्ट्रीयता की भावनाओं और सुधारों के कारण उन्हें नए युग का अग्रदूत कहा जाता है। उन्होंने मानवीय कार्यकलाप में तर्कबुद्धि या विवेक की प्रधानता पर बल दिया। उन्होंने मध्ययुगीन

अंधविश्वासों और उनसे जुड़ी हुई कुरीतियों पर प्रहार करके भारत को आधुनिक बनाने की राह दिखाएं। राय की कृतियों में मुख्यता भारतीय दर्शन की तर्क संगत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। और भारतीय समाज की समस्याओं पर विचार किया गया है इसके अलावा उन्हें स्त्रियों के उधार में रुचि थी उद्धार में रुचि थी, उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया भारतीय सभ्यता के रजवाड़ी कृषि प्रधान तथा देहाती आधार को रखने के पक्ष में थे साथ ही साथ वे यह भी चाहते थे कि भारत की भूमि पर आधुनिक वैज्ञानिक उद्योग खड़े किए जाएं। संस्कृत के स्थान पर पश्चात्य शिक्षा व्यवस्था का उन्होंने समर्थन किया किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि राजा राममोहन राय पाश्चात्य रंग में रंगे भारतीय थे जिन्हें हर वस्तु पाश्चात्य रंग के अनुरूप हैं स्वीकार्य थी। उन्होंने भारतीयता का त्याग नहीं किया था उनका विरोध भारतीय कृतियों में से ही था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आदि, एच., (1997), पॉलीटिकल थिंकर ऑफ मॉडर्न इंडिया, मित्तल, नई दिल्ली।
2. बाली, डी.आर., (1988), मॉडर्न इंडियन थॉट्स, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. गोयल, एस., (2009), राजा राममोहन राय, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. शर्मा, एस. के., (2005), राजा राममोहन राय- एन एपोस्टल ऑफ इंडियन अवेकिंग, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. वर्मा, वी. पी., (2004), मॉडर्न इंडियन पॉलीटिकल थॉट, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
6. मजूमदार, बी. बी., (1967), हिस्ट्री ऑफ इंडियन सोशल एंड पॉलीटिकल आईडियाज- फ्रॉम राममोहन टू दयानंद, बुक लैंड, कोलकाता।
7. आयंगर, आर. एस. एन., (1973), इंडियन राइटिंग इन इंग्लिश, एशिया पब्लिकेशन, मुंबई।
8. राय, राजा राममोहन, (1999), एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ राजा राममोहन राय, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. राघवन, जी. एन. एस., (1994), द प्रेस इन इंडिया- ए न्यू हिस्ट्री, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
10. राम, एस. जी., (2006), राजा राममोहन राय, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, दिल्ली।

डॉ० राम मनोहर लोहिया के आर्थिक चिंतन का विवेचन

डॉ० रणधीर कुमार राणा

पी-एच.डी. (इतिहास), पूर्व शोध-छात्र, विश्वविद्यालय, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग,
भू. ना. मं. वि. वि. लालू नगर, मधेपूरा

सारांश

डॉ. राम मनोहर लोहिया ने भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में समाजवादी अर्थव्यवस्था की व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने समाजवाद की यूरोपीय सीमाओं और आध्यात्मिकता की राष्ट्रीय सीमाओं के विपरीत एक दृष्टिकोण विकसित किया। उन्होंने स्वयं इतिहास की पुर्नव्याख्या करके समाजवादी विचारों को तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया परंतु अपने विद्रोही स्वरूप के कारण कई जगह लोहिया के विचारों में अस्पष्टता भी दिखाई देती है जैसे कि उन्होंने गांधीवादी सत्याग्रह सिद्धांत को तथा मार्क्सवादी सर्वहारा की तानाशाही सिद्धांत में परिशोधन करके दोनों विचारधाराओं को अस्पष्ट तरीके से मिश्रित करने का प्रयास किया है। डॉ. राम मनोहर लोहिया संपत्ति की प्रचुरता और उसका न्यायपूर्ण वितरण दोनों आवश्यक मानते थे ऐसे न्यायपूर्ण वितरण को उन्होंने व्यर्थ बदला या जिससे निर्धन की स्थिति पर प्रभाव कारी अंतर ही ना पड़े। अत: अन्याय से भी पहले संपत्ति बढ़ाना और संपत्ति बढ़ाने के लिए धनिक वर्ग के विषयों पर अंकुश लगाना, बचत की संचित पूंजी का विनियोग उत्पादन तथा आजीविका के अवसर बढ़ाने वाले औद्योगिकरण में करना चाहते थे। भौतिकवादी होने के कारण उनके लिए धन संपत्ति की वृद्धि का ही विशेष महत्व था। गांधीजी के समान औद्योगिकरण के विरुद्ध कोई आध्यात्मिक कारण उनके समक्ष नहीं थे। आजीविका की अधिकाधिक व्यवस्था के लिए लघु और ग्रामीण उद्योग का महत्व वह भी स्वीकार करते थे। प्रस्तुत शोध पत्र में राम मनोहर लोहिया के आर्थिक चिंतन का विशद विवरण प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द- राम मनोहर लोहिया, समाजवादी अर्थव्यवस्था, औद्योगिकरण, राष्ट्रीयकरण।

प्रस्तावना

मुक्त अर्थव्यवस्था के समर्थकों का प्राय: तर्क हुआ करता है कि बिखरा धन पराया निष्प्रभाव हो जाता है जबकि उद्यमियों के हाथों में केंद्रित होकर पूंजी के रूप में भी नियोजित होने से व उत्पादन बढ़ाने और श्रमिकों के आजीविका जुटाने में प्रयुक्त होता है। डॉ. लोहिया का कथन था कि यदि ऐसा होता तो संपत्ति प्राचुर्य के लिए वही सिद्धांत को मान लेते हैं परंतु व्यक्तिगत धन में केंद्रित हुआ धन या खपत के आधुनिकीकरण पर व्यय कर दिया जाता है जिससे उत्पादन या आजीविका के अवसर नहीं बढ़ते। अत: व्यय की सीमा पर अंकुश लगाना और प्रबुद्ध उत्पादन के साधनभूत उद्योगों का सामाजिक नियंत्रण में अर्थात राज्य के धन में होना आवश्यक है। साधन जुटाने के लिए नियंत्रण, उत्पादन बढ़ाने के लिए औद्योगिकरण तथा वितरण के लिए राष्ट्रीयकरण ये डॉ. लोहिया का अर्थनीति के प्रमुख आयाम हैं।

डॉ. लोहिया विकेंद्रीकरण के समर्थक थे उन्होंने विकेंद्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि साम्यवादियों की तरह बड़े-बड़े कारखाने न लगाकर लघु मशीनों को महत्व दिया जाए, ताकि छोटी लागत लगाकर भी अधिका के

मनुष्यों को कार्य मिल सके वे आर्थिक, सामाजिक न्याय के लिए आर्थिक शक्ति राज्य के हाथों में देने के पक्षधर थे परंतु निरंकुश शासन उन्हें भी स्वीकार नहीं था और वह राजनीतिक-आर्थिक सत्ता को देश, प्रांतों, जिला तथा ग्राम स्तर पर बैठकर चौखंभा समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे।

समाजवादी अर्थव्यवस्था- डॉ लोहिया मूलत अर्थशास्त्री थे और उनका दृष्टिकोण समाजवादी था। समाजवाद का आधार प्रधानत: अर्थ है वह अर्थ के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकास का प्रयत्न करते हैं। लोहिया समाजवादियों में से थे जिन्होंने समाज का राष्ट्रीयकरण कर उसे अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार ढालने की कोशिश की थी। मार्क्स के विपरीत लोहिया का मानना था कि आर्थिक तत्व की सामाजिक परिवर्तन में प्रधान भूमिका होते हुए भी अन्य तत्वों का भी स्थान है जैसे आर्थिक विषमता कई स्तर पर चलती है। लोहिया की मान्यता है कि आर्थिक विषमता मिटाने के लिए धार्मिक, सामाजिक तथा भौतिक विशेषताएं एवं विसंगतियां को मिटाना भी आवश्यक है।

डॉ. लोहिया मानते थे कि भारत में व्याप्त सामाजिक विषमताओं भारतीय समाज के पतन के लिए जिम्मेदार है, जिनमें वर्ण व्यवस्था अथवा जाति-प्रथा, रंगभेद नीति, भाषाई विषमता, सांप्रदायिकता और नर-नारी असमानता प्रमुख है। भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक विषमताओं ने डॉ. लोहिया के चिंतन को बहुत ही प्रभावित किया। उनका समाजवादी चिंतन देश प्रेम तथा जन कल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत है। भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में जन्मे डॉक्टर लोहिया एक निजी स्वरवादी चिंतक थे वह हिंदू होते हुए भी हिंदू धर्म एवं समाज की मूल मान्यताओं के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने धर्म को ईश्वर तथा आत्मा के साथ ना जोड़कर मानव प्राणियों के कल्याण तथा अलौकिक समृद्धि के साथ जोड़ा। वह वर्ण व्यवस्था को भारतीय समाज का कोढ़ मानते थे। इस व्यवस्था ने न केवल शूद्रों के जीवन को नरक बनाया अपितु नारी जगत की दुर्दशा भी की। वर्ण व्यवस्था ने जातिवाद को जन्म दिया और छुआछूत तथा उच्च-नीच की भावनाओं को फैलाया। डॉ. लोहिया ने यह महसूस किया कि, ''भारत इतने समय तक वर्ण व्यवस्था के फलस्वरुप निम्न की स्थिति में रहा है और तब आंतरिक और समानता को समाप्त करने का संघर्ष प्रारंभ हो गया है''। डॉक्टर लोहिया ने वर्ण तथा जाति में कोई भेद नहीं किया। उन्होंने यह नहीं माना कि वर्ण या जाति का आधार स्वभाव तथा कर्तव्य विभाजन है। वह मानते थे कि वर्ण व्यवस्था बल द्वारा निर्मित की गई एक व्यवस्था है जिसमें कर्म का कोई मूल्य नहीं है। जाति व्यवस्था की व्यापकता के बारे में डॉ. लोहिया ने स्पष्ट कहा, ''भारतीय जीवन में जाति सर्वाधिक प्रभावशाली तत्व है। वे लोग जो इसे सिद्धांत में नहीं मानते उसे व्यवहार में सुधार करते हैं। जीवन जाति की सीमाओं में ही बना हुआ रहता है और सुसंस्कृत लोग मुलायम आवाजों में जाति व्यवस्था के विरुद्ध बोलते हैं पर अपनी क्रिया में हुए उसे अस्वीकार नहीं कर पातेह।

लोहिया ने मार्क्स के पूंजीवादी विश्लेषण एवं द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को स्वीकार किया, किंतु वह केवल भौतिक तत्वों के अस्तित्व में रहने की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते थे। इस दृष्टि से उनकी धारणाएं सामाजिक विकास में भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों तत्वों का सम्मिश्रण दर्शाती है। लोहिया ने मार्क्स के सिद्धांत को अपूर्ण माना उनके मतानुसार मानव इतिहास में केवल संघर्ष केवल वर्गों के मध्य ही नहीं अपितु जातियों के मध्य भी संघर्ष होते हैं। जातिगत वर्गों के समूह का स्वरूप निश्चित तथा परंपरागत होता है जबकि वर्गों का रूप स्थिर होता है। भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक विषमताओं को देखकर डॉ. लोहिया बड़े ही व्याकुल थे वह क्षमता पर आधारित समाज व्यवस्था के पक्षधर थे। अन्य संस्थाओं की अपेक्षा उन्होंने सामाजिक समता का प्रतिपादन अधिक सशक्त रूप में किया। सामाजिक विषमताओं में जाति प्रथा, नारी दुर्दशा, अस्पृश्यता रंग दे दी थी और सांप्रदायिकता को वह सभी तरह से समाप्त करना चाहते थे। इन सामाजिक कृतियों में जाति प्रथा सर्वाधिक विनाशकारी मानी गई। जाति प्रथा ने समाज के कमजोर वर्गों को न केवल आर्थिक असमानता का शिकार बनाया है अपितु उन्हें सामाजिक एवं राजनीतिक क्षमता से भी वंचित रखा है। जाति प्रथा के कुप्रभाव के विषय में यह कहा, ''जाति अवसर को सीमित करती है, सीमित अवसर योग्यता को संकुचित कर देता है, संकुचित योग्यता अवसर को और आगे रूकती है। जहां जाति का प्रभुत्व है वहां अवसर और योग्यता लोगों के संकुचित दायरों में और अधिक सीमित होती चली जाती है''।

आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए डॉक्टर लोहिया ने निम्न सुझाव दिए थे

1. उत्पादन मूल्य और विक्रय मूल में एक आनुपातिक संबंध होना चाहिए। वह डेढ़ गुना से अधिक ना हो।
2. औसत आय में निरंतर वृद्धि होती रहनी चाहिए।
3. कृषि के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन किए जाने चाहिए। लोहिया ने सुझाव दिया कि अधिकाधिक भूमि को कृषि योग्य

बनाया जाए। सिंचाई की सुविधाएं बढ़ाई जाए कृषि में नवीन वैज्ञानिक स्वर व्यवस्था को अपनाकर लाभ उठाया जाए। लोहिया ने भू अन्न सेना की योजना रखी थी यह सेना बेकार पड़ी भूमि को कृषि योग्य बनाएगी और वहां खेती कर आएगी।

4. डॉ. लोहिया ने उत्पादन के साथ-साथ वितरण की व्यवस्था को संतुलित करने पर बल दिया उनका मानना था कि वितरण की अव्यवस्था के कारण ही उत्पादित वस्तुओं का सभी प्रयोग नहीं कर पाते।
5. अकाल और भुखमरी को दूर करने के लिए लोहिया ने अन्न बांटो आंदोलन जैसे तरीकों को अपनाने पर जोर दिया।
6. डॉ लोहिया ने अनाज के व्यापार का समाजीकरण करने का सुझाव दिया इससे अनाज के मूल्य स्थिर रहेंगे और दूसरे अनाज पर व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं रहेगा इससे किसानों को अनाज का उचित मूल्य मिलेगा।

आर्थिक विचार

डॉ. लोहिया के आर्थिक विचार समाजवादी चिन्तन पर आधारित है। जो उनके मानववादी दृष्टिकोण की एक सशक्त अभिव्यक्ति है। उसके माध्यम से वे चाहते थे कि जाति, वर्ण, वंश, धर्म, लिंग, संस्कृति, सम्पत्ति आदि के भेद-भाव से मुक्त एक ऐसी न्यायनिष्ठ सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की जाय जो कर्म उद्भूत और व्यवहार से पुष्ट रहे। ऐसी समाज व्यवस्था की स्थापना के लिए डॉ0 लोहिया क्रान्तिकारी दृष्टिकोण को अपनाने जाने को आवश्यक मानते थे। उनका मत था कि क्रान्तिवाद के बिना समाज का सही विकास सम्भव नहीं होगा। अत: उनके विचार आम जनता में क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। सामाजिक बदलाव के प्रति उनके हृदय में एक तड़प उत्पन्न होना जरूरी है तभी जाकर उन सामाजिक परिवर्तनों हेतु आवश्यक पृष्ठ भूमि तैयार की जा सकती है, जिसका परिणाम एक समता आधारित शोषण रहित समाजवादी समाज व्यवस्था की स्थापना के रूप में प्रकट होगा। आर्थिक दृष्टि से डॉ0 लोहिया का समाजवादी चिन्तन स्पष्ट ही नहीं पूर्णत: क्रान्तिकारी एवं मौलिक भी था। उनके इस मौलिक समाजवादी चिन्तन का प्रमुख लक्ष्य जहां तक एक ओर जाति प्रथा को विनष्ट कर एक समाजवादी समाज की रचना करना था। वहीं दूसरी ओर आर्थिक दरिद्रता को नष्ट कर समाज में व्यवस्था अमीर-गरीब के मध्य स्थापित आर्थिक असमानता की खाई को पाटना भी था। अत: उनके अनुसार यदि आर्थिक अन्याय समाप्त होता है। तो अनिवार्य रूप से सामाजिक समानता के द्वार खुलते हैं इसलिए डॉ0 लोहिया के सामाजिक चिन्तन में सिर्फ जाति एवं वर्ण व्यवस्था का उन्मूलन ही सामाजिक समानता की स्थापना के लिए आवश्यक नहीं था बल्कि आर्थिक दृष्टि से आय-व्यय की असमानता को समाप्त करना था।

डॉ0 लोहिया के आर्थिक समानता कायम करने की निम्नलिखित दृष्टिकोण प्रस्तुत किए। डॉ0 लोहिया ने सम्पत्ति आधारित वर्गों के विशेषाधिकारों की समाप्ति पर बल दिया। उन्होंने छोटे-बड़े नौकरशाहों तथा धनाड्ड सेठों के खर्चीले जीवन यापन के तौर-तरीके पर अंकुश लगाने का समर्थन किया तथा आय-व्यय की सीमा का अनुपात 1:10 के अनुसार निर्धारित करने का जोर दिया। इस सीमा के सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लगाने के समर्थक थे। तथा चाहते थे कि अपनी जीविका का उपार्जन करने हेतु सभी व्यक्ति बिना किसी भेद भाव के श्रम करें। अधिकतम तथा न्यूनतम आय निर्धारण को डॉ0 लोहिया ने समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए एक बुनियादी प्रश्न घोषित किया। तथा यह चाहा कि इसे निश्चित किया जाना उसकी स्थापना के लिए एक अनिवार्य शर्त है। इसकी अनुपस्थिति में हम समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की कल्पना नहीं कर सकते। इसके साथ-साथ ही डॉ0 लोहिया ने मूल्य या दामबंन्दी का भी समर्थन किया। जिसमें कि उत्पादन के माध्यम से उत्पाद के साधनों के मालिकों द्वारा जनता का शोषण न किया जा सके और उचित मूल्य पर जनता को जीवन निर्वाह हेतु साधन, सेवक और सामग्री उपलब्ध हो सके। डॉ0 लोहिया ने कहा कि मैं यह मानता हूँ कि इस मूल्य दाम बॉधों नीति को हकीकत में बदलने के लिए हमें हमारे आर्थिक और सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने पड़ेगें। सरकारी लूट पूँजीपतियों के मुनाफे और बड़े किसानों के हितों पर जमकर प्रहार करने होंगे। इस हेतु उन्होंने सुझाव दिया कि बन्दूक धारी सेना की तरह से ही अन्न एवं भू सेना का संगठन किया जाय। जो कृषि एवं आर्थिक विकास में सहयोगी ही नहीं होगी। बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में समाजवादी परिवर्तन प्रक्रिया अपनी भागीदारी निभायेगी। भारत के सभी नागरिकों को रोजी-रोटी एवं जीवन निर्वाह के अन्य बुनियादी साधन उपलब्ध हों और सभी समाजवादी व्यवस्था की स्थापना में सक्रिय सहयोगी हों। डॉ0 लोहिया का समाजवाद इस मूलभूत विचारधारा पर आधारित है। इस प्रकार डॉ0 लोहिया की राजनीति अनिवार्य रूप से उनकी अर्थनीति से जुड़ी हुई थी। जो आम लोगों की रोजी-रोटी की समस्या से जुड़ी हुई थी। इस लिये उन्होंने कहा कि जो लोग यह कहते हैं कि राजनीति को रोजी-रोटी की समस्या से अलग रखो तो यह

कहना उनका अज्ञान है, या स्वत: वह बेईमान हैं। राजनीति का अर्थ एवं प्रमुख उद्देश्य लोगों का पेट भरना है। जिस राजनीति से लोगों को रोटी नहीं मिलती उनका पेट नहीं भरता वह राजनीति भ्रष्ट, पापी और नीच राजनीति है। डॉ0 लोहिया ने अपने आर्थिक चिन्तन को व्यवहारिक बनाने के लिए खेतिहर भूमि के पुर्नवितरण पर भी बल दिया तथा उनके द्वारा प्रतिपादित भूमि पुर्नवितरण नीति का आधार था। अधिक से अधिक और कम से कम भूमि के स्वामी में एक और तीन का अनुपात हो। उद्योगों की दृष्टि से उन्होंने आर्थिक विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। तथा बड़े उद्योग के मुकाबले में छोटे उद्योग को प्राथमिकता देते हुए उन्होने प्रतिपादित किया कि उत्पाद का अधिकांश कार्य छोटे-छोटे उद्योग में कार्य विद्युत संचालित मशीनों के माध्यम से सम्पन्न किया जाना चाहिए। जिससे कि प्रत्येक कार्य में सक्षम व्यक्ति को रोजगार मिल सके और बेकारी की समस्या का समाधान सम्भव हो सके। उन्होंने विचार व्यक्त किया कि छोटे-छोटे मशीनीकृत उद्योगों की पद्धति देश के सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से भी आवश्यक ही नहीं उपयुक्त भी है।

निष्कर्ष

लोहिया का आर्थिक चिंतन हमारे देश की परिस्थितियों के अनुकूल है। लोहिया ने समाजवाद की कल्पना को आर्थिक विषमता को दूर करके मूल्य वृद्धि पर रोक लगाकर लोगों के नैतिक आचरण को ऊंचा उठाकर, भूमि का वितरण करके, भूमिहीनों को अतिरिक्त भूमि देकर, देश में छोटी मशीनों द्वारा उद्योगों को स्थापित करके तथा खर्च की सीमा को बांधकर सकार करने का तरीका सुझाया है। लोहिया चाहते थे की मशीनों का हमारे देश के वैज्ञानिक अविष्कार करें तथा देश को अपनी आवश्यकता को पूरा करने में सहभागी बने। उनके अनुसार वैज्ञानिक विकास को एक योजनाबद्ध तरीके से देश में लागू करना होगा ताकि देश के साधन व संपत्ति का दुरुपयोग ना हो सके ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दीक्षित, ताराचंद, 1972, लोहिया का समाजवादी दर्शन, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।
2. भगवान, डॉ. विष्णु, 2000, भारतीय राजनीतिक विचारक, आत्माराम एंड संस, दिल्ली।
3. केलकर, इंदुमती, 1963, लोहिया सिद्धांत और कर्म, नवहिंद, हैदराबाद।
4. भटनागर, राजेंद्र मोहन, 1982, समग्र लोहिया, किताब घर, दिल्ली।
5. लोहिया, राम मनोहर, 1963, मार्कस, गांधी एंड सोशलिज्म, नवहिंद, हैदराबाद।
6. लोहिया, राम मनोहर, 1965, समाजवाद का अर्थ नीति, नवहिंद, हैदराबाद।
7. शरद, ओंकार (संपादित), 1985, लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
8. लोहिया, राम मनोहर, 1966, निराशा के कर्तव्य, नवहिंद प्रकाशन, हैदराबाद।
9. लोहिया, राम मनोहर, 1990, इतिहास चक्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
10. लोहिया, राम मनोहर, 1962, मर्यादित, उन्मुक्त, और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला, नवहिंद, हैदराबाद।

सोशल मीडिया, शिक्षा, रोजगार एंव राजनीति

वर्षा रानी

शोध-प्रज्ञा, समाजशास्त्र विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभ्भंगा।

सार संक्षेप

सोशल मीडिया एक अपरंपरागत मीडिया है। यह एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है जिसे इंटरनेट के माध्यम से पहुँच बना सकते है। सोशल मीडिया एक विशाल नेटवर्क है, जो कि सारे संसार को जोड़े रखता है। यह संसार का एक बहुत अच्छा माध्यम है। यह द्रुत गति से सूचनाओं के आदान-प्रदान करने, जिसमें हर क्षेत्र की खबरें होती है, को समाहित किए होता है। सोशल मीडिया सकारात्मक भूमिका अदा करता है जिससे किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह और देश आदि को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है। आधुनिक युग में सोशल मीडिया जनमानस की वैचारिक अभिव्यक्ति के सशक्त उपकरण के रूप में उभरकर सामने लाया है। यह लोकतंत्र को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। सोशल मीडिया ने सभी को खुलकर बोलने का और हर मुद्दे पर अपनी राय रखने का मौका दिया है। लोकतंत्र की अवधारणा जनता का शासन, जनता के लिए और जनता के द्वारा पर आधारित है। इस दृष्टिकोण सेजनता की आवाज को शासन तक पहुँचाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सोशल मीडिया यह कार्य बखूबी कर रहा है। इसलिए लोकतंत्र और सोशल मीडिया का अंर्तसंबंध इत्यंत गहरा और व्यापक है। यही कारण है कि सोशल मीडिया का प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। पिछले कुछ वर्षो में युवा पीढ़ी इसकी तरफ जबरदस्त तरीके से आकर्षित हुई है।

मुख्य शब्द - सोशल मीडिया का सामाजिक, आर्थिक एंव शिक्षा व्यवस्था पर प्रभाव।

परिचय

सोशल मीडिया एंव शिक्षा

वर्तमान समय में शिक्षा में सोशल मीडिया की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आज सोशल मीडिया शिक्षा की गुणवता को विकसित करने और दुनिया भर में मौजदूगी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, सोशल मीडिया एक प्रेरक उपकरण के रूप में कार्य करता है, जो शिक्षा में छात्र की सक्रिय भागीदारी को बढ़ावा देता है। सोशल मीडिया छात्रों को वैश्विक मुदों के समाधान की खेज में सहयोग और योगदान करने में भी मदद करता है। यह प्रत्येक राष्ट की शिक्षा की गुणवता को गहराई से प्रभावित करता है। जिसके छात्र सोशल मीडिया इंटरेक्शन में सक्रिय रूप से भाग लेते है। सोशल मीडिया छात्रों को विश्व स्तर पर सोचने की क्षमता विकसित करता है, जो छात्र के कैरियर प्रोफाइल के लिए असाधारण रूप से फायदेमंद साबित होता है। सोशल मीडिया के माध्यम से छात्र चैट के रूप में समूह चर्चा कर अपने ज्ञान का विकास करते है। शिक्षकों द्वारा प्रयुक्त शिक्षण तकनीकों को विकसित करने में सोशल मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज अधिकांश शिक्षक अपने व्याख्यान को विडियो के रूप में रिकॉर्ड करके सोशल मीडिया साइट्स जैसे फैसबुक या यूटयूब पर लाइव स्टमिंग के लिए अपलोड करते है। जिसका इस्तेमाल छात्र अपने अध्ययन हेतु कहते है।

सोशल मीडिया छात्रों को दुनिया भर में अपने साथियों के साथ बातचीत करने के लिए असीम एवेन्यू प्रदान करता है। यह दुनिया भर में सभी छात्रों के मनोवैज्ञनिक दृष्टिकोण के संतुलन की भावना को बढ़ावा है। वर्तमान समय में शिक्षा को विकसित करने में

सोशल मीडिया एक बुनियादी सत्य के रूप में साबित हो रहा है। सोशल मीडिया वेबसाइट अनुप्रयोगोऔर अन्य शैक्षणिक प्लेटफार्मो का संग्रह है जो छात्रें को अध्ययन से संबंधित सामग्री साझा करने या बनाने में सक्षम बनाता है। इतना ही नही सोशल मीडिया के उपयोग से छात्रों को कौशल और ज्ञान का विस्तार और अन्वेषण करने में भी मदद करता है। सोशल मीडिया पर प्रसारित टीचिंग एड्स के माध्यम से छात्रों को ऑनलाइन ज्ञान को पोषित करने में मदद करता है। सोशल मीडिया की मदद से छात्र अध्ययन से संबंधित विडियों तथा चित्र देख सकते है, समीक्षा देख सकते है और लाइव प्रक्रिया को देखते हुए तुरंत अपना सदेह दूर कर सकते है। केवल छात्र ही नही, शिक्षक भी इन उपकरणों और शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग करके अपने व्याख्यान को अधिक रोचक बना सकते है। टीचिंग ब्लॉग और राइट की छात्र प्रसिद्ध शिक्षकों, प्रोफेसरों और विचारकों द्वारा ब्लॉग, लेख और राइट पढ़कर अपने ज्ञान को बढ़ा सकते है स्पष्ट है कि सोशल मीडिया शिक्षा को बेहतर बनाता है और स्मार्ट छात्रों का निर्माण करता है।

सोशल मीडिया और रोजगार

वर्तमान में भर्तियों के चलते सोशल मीडिया भर्ती फर्मो का एक अनोखा जरिया बन बया है। सोशल मीडिया के माध्यम से कंपनियाँ नए कर्मचारियों और उनकी कुशलता को खोजने के लिए लिंक्डइन फेसबुक और ट्विटर का उपयोग कर रही है। वास्तव में, कभी ऐसा भी समय था, जब रोजगार से संबंधित सुचनाएँ समाचार पत्रों में विज्ञापन द्वारा वर्गीकृत की जाती थी और रोजगार नियोक्ताओं के साथ - साथ कर्मचारियों को भी रोजगार के आदान-प्रदान पर भरोसा था। पारंपरिक तरीको के माध्यम से जो भर्तिया होती थी और उनसे जो पसा मिलता था वह मात्र पेट भरने तक ही सीमित था, जबकि सोशल मीडिया के माध्यम से की जाने वाली भर्तिया बातचीत, संचार और प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया पर आधारित है। अधिकांश संगठन योजनाओं और रणनीतियों के द्वारा सोशल मीडिया के माध्यम से लोग अपनी प्रतिभा के अनुसार लाभ कमा सकते है।

राजनीति और सोशल मीडिया

सोशल मीडिया न केवल आप और मुझ तक ही सीमित है बल्कि इसके दायरे में राजनेताओं को भी शामिल किया गया है। भारत में राजनीति और राजनेताओं की विभिन्न गतिविधियों को सोशल मीडिया ने 2014 एंव 2019 के लोकसभा चुनाव को काफी हद तक प्रभावित किया। ट्वीटर और फेसबुक के साथ-साथ गुगल पर लाखों समर्थको वाले राजनीतिक नेताओं के लिए सोशल मीडिया अत्यंत महत्वपूर्ण (असली गेम चेंजर) साबित हो रहा है। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के सभी हालिया व्याख्यानों में सोशल मीडिया का अत्यधिक आकर्षण देखने को मिला है। उन्होंने गुगल हैंग आट्स पर भी एक राजनीतिक सम्मेलन की मेजबानी की जिससे वह अंर्तराष्ट्रीय स्तर के राजनेता बन गये। भारतीय राजनीति बदल रही है आर परिवर्तन के इस दौर में लोगों के साथ जुड़ने के लिये सोशल मीडिया सबसे बेहतर साधन है। भारत विविधताओं वाला देश है और जिसमें हमारे देश की कुछ आबादी में से लगभग 34 प्रतिशत युवा वर्ग की भागीदारी है। इस तरह सोशल मीडिया एक विशाल समुदाय तक संदेश पहुँचाने का सबसे अच्छा साधन है जो लोगो के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 2014 के लोकसभा चुनाव तथा 2015 में सोशल मीडिया ने दिल्ली के विधान सभा चुनाव के दौरान राजनीतिक पार्टियों के प्रचार में भरपूर सहयोग किया और जनता को चुनावों के प्रति जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। विभिन्न राजनीतिक पार्टी चुनाव प्रचार में आधुनिक तरीके का इस्तेमाल करके जनता तक पहुँचने में सफल रहे थे और जिस तरह चुनावों के दौरान सोशल मीडिया का उपयोग किया था उसके बारे में किसी ने सोचा भी नही था तथा पार्टी के अनेक नेता ेसबुक और ट्विटर के माध्यम से उनके बीच उपस्थित रहे थे।

कुछ समय से सोशल मीडिया का राजनीति में अधिक प्रयोग होने लगा है। इनके माध्यम से लोग कमेंट (टिप्पणी) करने, मेम्स बनाने और यहाँ तक कि ट्रोलिंग भी करने लगे है। वह न्यूज फीड के माध्यम से कार्यो को अत्यधिक सरलता पूर्वक करा लेते है।इस तरह उन्हें कई राजनीतिक व्यक्तियों के लिए भी अधिक भ्रमण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। आज के वक्त में प्रिंट मीडिया का उपयोग कम होने लगा है। अब लोग समाचार का हिस्सा बनकर, इस मंच पर अन्य लोगों के साथ जुड़कर अपने विचारों को व्यक्त कर सकते है। स्टिंग ऑपरेशन के विडियों और पिक्चर्स फेसबुक, यूटयूब और अन्य प्लेटफार्मो के माध्यम से प्रदर्शित किये जाते है। जो बिना किसी मिताचार के साथ सच्चाई से दिखाये जाते है और इस तरह राजनीति में आम आदमी की अधिक भागीदारी बढ़ गई है। सोशल मीडिया ने राजनीति को विशेष रूप से प्रभावित किया है और इसलिये राजनीति के प्रति लोगों की अधिक रूचि बढ़ गई है, राजनीतिक पार्टियों ने सोशल तीडिया को जनसम्पर्क कार्यप्रणाी के प्रचार में प्रयोग करके अधिक लोकप्रिय बना दिया

है। लगभग हर पार्टी फेसबुक, और ट्विटर पर आधिकारिक तौर पर शामिल है, जिसके माध्यम से वे लोग राजनीतिक अपडेट्स, प्रेस विज्ञप्तियाँ और अपने अभियानों के बारे में संदेश भेजा करते है। आधुनिक समय में, सोशल मीडिया राजनीति का एक अभिन्न हिस्सा रहा है और इस सोशल मीडिया का समाज में निरंतर विकास भी हो रहा है।

स्पष्ट है कि वर्तमान दौर में सोशल मीडिया आम आदमी के जीवन का एक अभिन्न हिस्सा बन गया है। सोशल मीडिया ने खास से लेकर आम लोगों की जिंदगी पर गंभीर प्रभाव डाला है। शिक्षा रोजगार एंव राजनीति क्षेत्रों में व्यापक बदलाव लाने में सोशल मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू इसकी पहूँच है जो कि बहुत व्यापक है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के जरिये छात्र - शिक्षक एक दूसरे से जुड़ सकते है, दुनिया के किसी भी कोने में बैठ छात्र वैसे शिक्षक जो सोशल मीडिया से जुड़े हुए है बातचीत कर सकते है, सवाल पूछ सकते है वह भी बिना जान पहचान के। सोशल मीडिया का उपयोग आज सरकार अपनी योजनाओं को लोगो तक पहुँचाने, जनता से सीधा संवाद स्थापित करने, जनमत का पता लगाने में करने लगी है। लोग विभिन्न ग्रुप के माध्यम से सरकार के नीतियों, निर्णयों पर बहस करने लगे है जो कि लोकतंत्र का आवश्यक तत्व है। सोशल मीडिया आज ऐसा मंच है जहाँ आम नागरिक बिना किसी रोकटोक के अपने विचार रखता है और करोड़ो लोग उन विचारो को पढ़ते, सुनते है तथा उनसे प्रभावित होते है। वाकई में आज सोशल मीडिया व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग सा बन गया है।

विचारो की अभिव्यक्ति का दुरूपयोग, निजता का हनन, सामाजिक जीवन से कटाव, लोगों में आपसी द्वेष को बढ़ावा देना आदि कुछ ऐसे नकारात्मक पक्ष है जिन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता है सोशल मीडिया के लिए कहा जाता रहता है। की यहाँ लोग सभी के साथ होते हुए भी अकेले रहते है। सोशल मीडिया के संभव दुष्परिणामों के कारण ही सरकारों को हस्तक्षेप करना पड़ा है, विभिन्न नियामक कानूनों का निर्माण किया गया है। आतंकवादी समूहों द्वारा भी सोशल मीडिया का दुरूपयोग युवाओं को प्रभावित करने के लिये किया जाने लगा है जो विश्व के लिए बड़ा खतरा है अत: अब इन मंचो पर भी चौकन्न रहने की जरूरत है। सोशल मीडिया का इस्तेमाल जिस तेजी से बढ़ा है, उसी तेजी से इसके विशेषज्ञों की मांग भी बढ़ रही है। कई ऐसे नए कैरियर विकसित हो गये है, जिनसे बड़े स्तर पर लोग अभी भी अनजान है। सोशल मीडिया में विशेषज्ञता रखने वाले कर्मियों के लिए गूगल, फेसबुक, लिंक्डइन व ट्विटर के आलावा विभिन्न मोबाइल व इलेक्ट्रॉनिक्स कंपनियों और आई टी क्षेत्र में काम करने के अच्छे मौके है। टेक्नोलॉजी के बढ़ते दायरे ने न सिर्फ लोगों के जीवन शैली में भारी बदलाव किया है, बल्कि इसी से जुड़े ऐसे करियर ऑप्शन्स भी सामने रखे है, जिनके बारे में आज से कुछ साल पहले शायद ही किसी ने सोचा होगा। युवाओं की पहुँच में हर वक्त रहने वाला सोशल मीडिया के माध्यम से युवा अब आपने कैरियर के नए विकल्प भी चुन रहे है।

निष्कर्ष

सोशल मीडिया ने पूरी दुनियाँ को जोड़ दिया है। सोशल मीडिया ने शिक्षा, रोजगार एंव राजनीति को गहरे रूप से प्रभावित किया है। सोशल मीडिया से छात्र वैश्विक स्तर पर ज्ञानार्जन करते है। दुनियाँ के किसी भी विषय पर मिनटों में ज्ञानों का आदान-प्रदान करते हैं। शिक्षकों के व्याख्यानों से भी सोशल मीडिया के माध्यम से छात्र लाभान्वित होते हैं। अधिकांश छात्र सोशल मीडिया से ज्ञानप्रद बातें सीखने के साथ ही अपने अध्ययन से सोशल मीडिया के कारण रोजगारों में वृद्धि हुई है। एक तो इन (मोबाईल, इंटरनेट आदि) क्षेत्रों से जुड़कर लोग अपनी जीविका चला रहे हैं दूसरी ओर सोशल मीडिया के माध्यम से विभिन्न पदो की रिक्तीयों की जानकारी प्राप्त होती है जहाँ लोग आवेदन देकर रोजगार प्राप्त करते है। सोशल मीडिया के माध्यम से घर बैठे भी लोग रोजगार प्राप्त करते है। सोशल मीडिया विशाल जनसमुदाय तक संदेश पहुँचाने का सबसे अच्छा साधन है। अत: राजनेता, राजनीतिक दल एवं सरकार इसका भरपूर उपयोग करती है। इसके माध्यम से वे अपनी बाते जनता तक पहुँचाती है। इसके माध्यम से वे अपनी बाते जनता तक पहुँचाती है। इसका असर भी देखने को मिलता है। 2014 एंव 2019 के लोकसभा चुनाव को सोशल मीडिया ने काफी प्रभावित किया है। सोशल मीडिया ने राजनीतिक चेतना एंव सहभागित बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाइ है। वैसे सोशल मीडिया के कुछ दुष्परिणाम भी दिखाई पड़ रहे है जैसे साम्प्रदायिक हिंसा, दंगा व अफवाह फैलाने में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अत: इस पर सरकार को खास ध्यान रखने की जरूरत है। अत: हम कह सकते है कि सोशल मीडिया ने सामज के हर क्षेत्र एंव हर वर्ग को प्रभावित किया है।

संदर्भ सूची

1. गुप्ता, विनीता (2018) : '' संचार और मीडिया शोध'' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 130
2. प्रताप, रवीन्द्र (2014) : '' आम आदमी की नई ताकत बना सोशल मीडिया'',जनसंदेश टाइम्स, अंक -5, जनवरी, वाराणसी, पृ0 74
3. शंकर, राम (2013) : '' अभिव्यक्ति का वैकल्पिक मंच सोशल मीडिया'', शोधअनुसंधान समाचार, दिसम्बर, पृ0 41
4. राय, नीरज कुमार (2011) : '' सूचना प्रौद्योगिकी और सामाजिक संरचना,'' ज्ञान पबिलिशिंग हाउस, इलाहाबाद, पृ0 188
5. कोठारी, गुलाब (2018) : '' सोशल मीडिया का बढ़ता प्रभाव'', पत्रिका समूह, राजस्थान पृ0 23

लोहिया स्वच्छ बिहार अभियान, कल्याणकारी योजना

डॉ० रिंकी कुमारी

गाँव - डरहार, पोस्ट - लहेरियासराय, थाना - बहादुरपुर, जिला - दरभंगा।

सार संक्षेपः

लोहिया स्वच्छ बिहार अभियान स्वच्छता अभियान से संबंधित है। 02 अक्टूबर, 2014 को भारत सकार ने स्वच्छ भारत अभियान की शुरूआत की थी। बिहार सरकार ने स्वच्छ भारत अभियान को ही लोहिया स्वच्छ बिहार अभियान के नाम से प्रारंभ किया था इस अभियान का लक्ष्य 2 अक्टूबर 2019 महात्मा गाँधी की 150 वीं जयंती तक बिहार प्रान्त सहित समूचे भारत की खुले में शौच की प्रवृति से मुक्त बनाना है।

यह उदेश्य व्यक्तिगत सामूहिक और सामुदायिक शौचालय के निर्माण के माध्यम से हासिल किया जाना है। ग्राम पंचायत के जरिये ठोस और तरल अपशिष्ट प्रबंधन के साथ गाँवों को सफ़ रखें जाने की योजना है। माँग के आधार पर सभी घरों को नलों के साथ जोड़कर सभी गाँवों में पानी पाइपलाइन 2019 तक बिछाये जाने है।

इस लक्ष्य को सभी मंत्रालयों तथा केन्द्रीय एंव द्विपक्षीय/बहुपक्षीय सहायता के साथ सभी तरह के नवीन एंव अभिनव उपायों के वितपोषण के माध्य से हासिल किया जाना है। जनसंख्या के बड़े हिस्से की मानसिकता खुले में शौच करने की है और इसे बदलने आवश्यकता है। उनमें से कई पहले से ही शौचालय होने पर भी खुलें में शौच करना पंसद करते है। इसलिये सबसे बड़ी चुनौती आबादी के इस बड़े हिस्से में शौचालय के इस्तेमाल को लेकर उनके व्यवहार में बदलाव लाने की है। मनरेगा और निर्मल भारत अभियान के बीच तालमेल की समस्या जैसे शौचालय के उपयोग के लिये पानी की उपलब्धता, निष्क्रिय/बेकार हो चुके शौचालय पहले से निर्मित शौचालय का क्या किया जाय जैसे ग्रामीण स्वच्छता के कार्यान्वय के लिए क्षेत्रीय स्तरीय कर्मचारियों की अपर्याप्त संख्या के बारें में भी गंभीरता से सोचा जाना है।

बदल रही मानसिकता बहुत महत्वपूर्ण है। चुंकि अधिकतर आई ई सी (सूचना, शिक्षा एंव संचार) कोष राज्यों के पास है, इसलिये राज्य सरकारी को छात्रों, आशा कार्यकताओं, आंगनवाड़ी कार्यकताओं, चिकित्सकों, शिक्षकों, प्रखंड संयोजकों आदि के माध्यम से अंत व्यक्ति संचार (आई पी सी) पर अपना ध्यान केंद्रित करना होगा। लघु फिल्मों की सीडी, टेलीविजन, रेडियो, डिजिटल सिनेमा, पंपलेट के भी उपयोग करने होंगे। सुरक्षित स्वच्छता व्यवहार के प्रति अपनी मानसिकता में बदलाव लाने के लिए स्थानीय एंव राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ियों, सिनेमा की हस्तियों की भी इस अभियान में भागीदारी जरूरी है। पाइप जल आपूर्ति एंव घरों में शौचालय के लिए जिला स्तरीय समेकित डी पी आर (डिजिटल प्रोजेक्ट रिपोर्टस) के जरिए एकदम निचले स्तर की योजना में पानी और स्वच्छता दोनों को एक साथ शामिल करना होगा। इसके लिए राज्य स्तरीय योजना स्वीकृति समिति की मंजूरी लेने होती है। माइक्रोफाईनेन्स एंव बैंको के माध्यम से ए पी एल परिवारों के लिए इस तरह के शौचालय का पुर्न निर्माण भी कराया जा सकता है।

वर्तमान में अनावश्यक दोहराव और भ्रम से बचने के लिए राज्य स्तर पर पेयजल की आपूति और स्वच्छता विभागों के विलय के माध्यम से प्रशासनिक आधारभूत ढ़ांचे के सशक्तिकरण की योजना है। प्रखंड संयोजक एंव स्वच्छता दूत अब बनुबंध के आधार पर भर्ती किए जा रहे हैं एंव लोगों के प्रोत्साहन सूचना के प्रसार के लिए एन जी ओ एंव सहायता समूह, स्कूली छात्र, स्थानीय महिला समूह आदि के जीए अंर्तवैयक्तिक संचार के नए तरीकों का पता लगया जा सकता है मिशन के भीतर कंपनी अधिनियम

के अंतर्गत एक कंपनी के रूप में एस पी वी (विशिष्ट उदेश्य वाहन) स्थापित किये जाने की योजना है। सी एस आर कोष, सरकारी एंव गैर सहकारी कोषों के अलावे एक बाहरी स्त्रोत होगा एंव सी एस आर परियोजना को लागू करेगा। यह केन्द्र एंव राज्य सरकारों द्वारा दिये गए जल एंव स्वच्छता के लिए विशिष्टता प्राप्त पी एम सी के रूप में भी काम करेगा। यह राजस्व स्त्रोंतों, सामुदायिक शौचालयों, सामुदायिक जल उपचार संयंत्रों जिलों में काम करने वाली बहु ग्रामीण पाइपलाइन परियोजनाओं के लिए राज्यों द्वारा जिला डी पी आर की तैयारी के लिए पी एम सी (प्रोजेक्ट मैनेजमेंट कंसल्टेंट) की जरूरत पड़ने पर नौकरियों पर भी रख सकेगा। केन्द्र /राज्यों द्वारा भुगतान के आधार पर एक पी एम सी के रूप में आई ई सी/ आई पी सी गतिविधियों को भी अपने हाथ में ले सकता है।

प्रावधानः

- व्यक्तिगत पारिवारिक शौचालय (आई एच एच एल) : उस योजना के अन्तर्गत व्यक्तिगत पारिवारिक शौचालय इकाइयों के निर्माण एंव उपयोग करने पर प्रोत्साहन राशि के रूप में रूपये 12000 रु (केन्द्र का अंश 60 प्रतिशत यानि रु 7200 एंव राज्यका अंश 40 प्रतिशत यानि रु 4800 इस प्रकार कुल 12000 रूपये दिये जाने का प्रावधान है।
- पात्रता - सभी बी0 पी0 एल परिवार तथा गरीबी रेखा से ऊपर वाले अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन जाति, लधु एंव सीमान्त किसानों, वास भूमिवासे, भूमिहीन, श्रमिक, शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों और महिला मुखिया परिवार इसके पात्र है।
- आवेदन की प्रक्रिया : पात्रा परिवारों के द्वारा शौचालय के निर्माण हेतु ग्राम पंचायत में आवेदन किया जाता है, जिसकी स्वीकृति संबंधित विकास अधिकारी द्वारा दी जायेगी। लाभार्थी द्वारा स्वंय की राशि से अपने घर में निश्चित डिजाईन के आधार पर शौचालय का निर्माण किया जाता है। निर्मित शौचालय में जल की उपलब्धता हेतु पानी टंकी एंव हाथ धोने की सुविधा होनी चाहिए। लाभार्थी एंव उसके परिवार के सदस्यों द्वारा शौचालय का उपयोग किया जाना चाहिए। पंचायत द्वारा निर्मित शौचालय के सत्यापन के बाद लाभार्थी के खाते में या चेक के द्वारा भुगतान किये जाने का प्रावधान है।
- सामुदायिक स्वच्छता परिसर : इन परिसरों का निर्माण उन ग्राम पंचायतों में किया जाएगा, जहाँ पारिवारिक शौचालयों के निर्माण के लिए गाँव में जगह की कमी हो और समुदाय/ ग्राम पंचायत उनके परिचालन एंव रख-रखाव की जिम्मेदारी लें। सामुदायिक शौचालय निर्माण हेतु अधिकतम रूपये 2 लाख (केन्द्र का अंश - 60 प्रतिशत, राज्य का अंश - 30 प्रतिशत एंव समुदाय का अंश - 10 प्रतिशत) का प्रावधान है।
- ठोस एंव तरल कचरा प्रबंधन : निर्मल ग्राम पुरस्कार से पुरस्कृत ग्राम पंचायते या 70 प्रतिशत तक खुलें में शौच से मुक्त हो चुकी ग्राम पंचायतों में ठोस एंव तरह कचरा-प्रबंधन हेतु पंचायत में निवास करने वाले परिवारों की संख्या :- 150/300/500/500 से अधिक होने पर, ग्राम पंचायतों को क्रमशः 7 लाख/12 लाख/15 लाख/ 20 लाख की राशि उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान है। इसके अंनतगत घरेलु कचरे का संकलन, पृथक्करण और सुरक्षित निपटान, घरेलु कम्पोस्ट/वर्मी कपोस्ट बनाना, बायोगैस संयंत्र बनाना, विद्यालयों महिला सामुदायिक स्वच्छता परिसरों, प्राथमिक स्वास्थय केन्द्रों अथवा गाँव में किसी उपयुक्त स्थल पर मासिक धर्म के दौरान हुए अपशिष्ट (उपयोग किए गए सेनेटरी क्लॉथ एवं पैड) के सुरक्षित निपटान हेतु भष्मक (इनसिनरेटर) का निर्माण किया जा सकता है। घरों से निकलने वाले बेकार पानी के अंतर्गत नालियों, अपशिष्ट स्थिरीकरण तालाब, विकेन्द्रीकृत जल शोधन प्रणाली आदि निर्मित की जा सकती है।

ग्राम पंचायते ठोस एंव तरल कचरा प्रबंधन की विस्तृत परियोजना तैयार कर, जिले के माध्यम से विभाग को प्रेषित करेंगी। विभाग द्वारा स्वीकृति जारी होने के पश्चात, योजना का क्रियान्वयन ग्राम पंचायतों में सामुदायिक सहभागिता से किया जाएगा।

योजना का क्रियान्वयन प्रणाली :

ग्रामीण क्षेत्रों मे स्वच्छता के क्षेत्र में क्रियान्वयन प्रणाली को मजबूत करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जायेंगे -

1. जल एंव स्वच्छता पर राज्यों के सरथ एक सहमति ज्ञापन होगा। जिसमें राज्य 2019 तक स्वच्छ भारत के लिए प्रतिबद्ध होंगे। राज्य 2015 तक जल एंव स्वच्छता के बीच अंर्तविनियम कोष के साथ जल एंव स्वच्छता दोनों के कार्यान्वयन के लिए राज्य स्तरीय एक एकीकृत संरचना का निर्माण करेंगे।

2. केन्द्रीय कोष से अतिरिक्त खर्च से बचने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा अपनायी गई नीति 'समय पर काम, की अवधारणा को राज्यों के साथ मिलकर अंजाम दिया जाएगा।
3. जल एंव स्वच्छता दोनों के पूर्ण रूप में जिलों के एफ आर (फिल्ड रिपोर्ट) परियोजना आधार पर निर्गत किया जाएगा।
4. केन्द्रीय स्तर पर एक एस पी वी (स्थापित किया जा सकता है) एक पी एम सी के रूप में कार्य करेगा और यह सी एस आर का वितपोषण करेगा और पी पी पी परियोजनाओं के अन्तर्गत सामुदायिक शौचालयों जल शुद्धिकरण की प्रक्रियाओं को अंजाम दिया जा सकेगा।
5. एस पी वी भी प्रभावी ढ़ंग से आई ई सी/ आई पी सी गतिविधियों को लागू करेगा। नवार्ड सिडवी जैसी एजेंसियों के जरिये उन घरों के शौचालय के लिए लघु ऋण तंत्र को प्रभावी बनायेगा, जिन्हें या तो प्रोत्साहन की जरूरत नहीं है या शायद स्नान करने की जगह के साथ जिन्हें बेहतर शौचालय के निर्माण की आवश्यकता है।
6. प्रखंड स्तरीय स्वच्छता संयोजक कार्यकताओं की प्रणाली को विकसित किये जाने की जरूरत है, जो ग्राम पंचायतों के मुख्य सहयोगी होंगे और जो सूचनाओं एंव स्वच्छता बतिविधियों के सशक्तिकरण में मददगार साबित होंगे।
7. देशभर की प्रत्येक ग्राम पंचायतों के लिए स्वच्छता दूत की पहचान करनी होगी, जिन्हें स्वच्छता के कौशल से लैस करना होगा और उन्हें उनके प्रदर्शन पर प्रोत्साहित राशि दी जायेगी।
8. घर के स्तर पर मंत्रालय की एम आई एस के माध्यम से गहन निगरानी रखी जायेगी। प्रतिपृष्टि के लिए केन्द्र एंव राज्यों के वरिष्ठ अधिकारियों के अलावें सरपंचो से भी संवाद करने की जरूरत है।
9. निर्मित शौचालयों के वास्तविक उपयोग के आधार पर जुटराये गए आकड़ों पर केंद्रित करते हुए वार्षिक स्वच्छता सर्वेक्षण किया जाएगा।

निर्मल भारत पुरस्कार स्थगित कर दिया जाएगा और पंचायतों राज्य संस्थाओं ग्राम पंचायत प्रखंड पंचायत एंव जिला पंचायत एंव व्यक्तियों, अधिकारियों संस्थाओं एंव एन जी ओ के सर्वोतम प्रयासों को पुरस्कृत करने के लिए व्यापक आधार पर स्वच्छ भारत पुरस्कार योजना शुरू की जायेगी।

1. घरों में शौचालय निर्माण के लिए मनरेगा, आई ए वाई, सी एस सी निर्माण के लिए बी आर जी एफ और विद्यालय एंव आंगनवाड़ी शौचालय के निर्माण तथा सामुदायिक स्वच्छता परिसर के विकास के लिए जिम्मेदार एमडब्लुसीडी के साथ मिलकर एक सम्मिलन बिन्दु का पता लगाया जा सकता है। घरों में शौचालयों के लिए पानी की आपूर्ति की ने वाली परियोजना एन आर डी डब्लू पी के जरिये विद्यालय एंव आँगनवाड़ी शौचालयों के निर्माण तथा सामुदायिक स्वच्छता परिसर के लिए जल आपूर्ति को भी सुनिश्चित किया जाएगा। (अगर आवश्यकता हुई तो दो क्षेत्रों में धन एंव कार्यकताओं की अदल -बदल लागू की जाएगी)
2. राजीव गाँधी पंचायत सशक्तिकरण योजना के माध्यम से पंचायती राज मंत्रालय के साथ अपनी स्वच्छता परियोजना गतिविधि, जो ग्राम पंचायतों के लिए सबसे उच्च प्राथमिकता वाली होगी।
3. जल आपूर्ती योजनाओं के साथ सी एस सी एंव एस एल डब्लू एम (ठोस एंव तरल अपशिष्ट प्रबंधन) और खासकर विद्यालयों, आंगनवाड़ियों में स्वच्छता सुविधा के निर्माण के लिए सांसद विधायक विकास कोष का दोहन और सार्वजनिक कोष के सम्मिलन को बागे बढ़ाना।
4. इसके अलावा, राज्य स्तरीय राज्य जल एंव स्वच्छता मिशन (एस डब्लू एस एम) एंव जिला स्तरीय डी डब्लू उस उम को सी एस आर फंड के दोहने केलिए प्रोत्साहित किया जाएगा।
5. एकीकृत महिला स्वच्छता परिसर के निर्माण के लिए एम/ओ डब्लू सी डी का सम्मिलन तथा शौचालयों एंव पीने के लिए पानी उपलब्ध कराना।

सामुदायिक नेतृत्व में संपूर्ण स्वच्छता (सी एल टी एस) सामुदायिक नेतृत्व में संपूर्ण स्वच्छता (सी एल टी एस) को पुरी तरह से खुले में शौच (ओडी) को खत्म करने के लिए समुदायों के बीच एकजुटता कायम करने की एक अभिनव पद्धति है। समुदायों को अपने स्वंय के मूल्यांकन का संचालन करने के लिए मदद किया जाता है एंव खुले में शौच मुक्त (ओ डी एफ) करने के लिए उनके स्वयं का कर्रवाई में भी मदद की जाती है।

पूर्ण स्वच्छता व्यावाहिरक बदलाव पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है, जिसमें वास्तविक और स्थायी सुधार की जरूरत है हार्डवेयर के बजाय समुदाय को एकजुट करने में निवेश एंव व्यक्तियों के लिए शौचालय निर्माण की बजाय खुले में शौच मुक्त गाँव के निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करना। यहाँ तक कि एक अल्पसंक्ष्यक के रूप में उनके बीच जारूकता बढ़ाकर उन्हें इस बात के लिए अगाह करना कि खुलें में शौच करना किसी रोग के खतरे की आहट है, सामुदायिक नेतृत्व में संपूर्ण स्वच्छता समुदाय को अपनी इच्छा में बदलाव के लिए उन्हें आग्रही बनाती है कार्रवाई के लिए प्रेरति करती है और अभिनव प्रयोग, परस्पर सहयोग एंव उचित स्थानीय समाधान के लिए उन्हें प्रोत्साहन देती है, इस प्रकार अधिक से अधिक स्वामित्व और स्थिरता के लिए अग्रणी भूमिका निभाती है। इस दृष्टिकोण से व्यक्तिगत प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं है और राज्य के साथ अधिक से अधिक चर्चा किये जाने की जरूरत है।

क्षेत्रीय अध्ययन के आधार पर रिपोर्ट :

25 वषीर्य अखिलेश मांझी भूमिहीन मजदूर है, चह समूह किसानों के खेत में मजदूरी करते है। उनका परिवार बलहा गाँव (कुशेश्वरस्थान प्रखंड) में पिछले 40 वर्षो से रह रहा है। वह बताते है कि उनका परिवार इन 40 वर्षो से खुलु में ही शौच जाता रहा है। अक्टूबर 2016 में पहली बार जीविका (बिहार में गरीबी उन्मूलन के लिए बनाए गए स्वयंसेवी समूह) कार्यकताओं ने अखिलेश के गांव में शौचालय बनवाने की बात कही। उन्हें बोला गया कि घर में शौचालय होना चाहिए। सरकार उन्हें आथिक सहायता देगी। लेकिन बाद में सरकार पैसा देगी, ''अखिलेश मांझी आगे कहते है, महीने का बमुश्किल 4000 से 5000 रूपया कमाते हैं। इस पैसे में घर की मूल जरूरते ही पूरी नहीं होती, शौचालय कहाँ से बनवाएंगे?''

आज पुरे विश्व जलवायु परिवर्तन के कारण नदियों के स्तर में अमूल चूल परिवर्तन आ गए है। भूजल का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। यही कारण है कि दक्षिण बिहार का एक बड़ा भू-भाग सुखे की चपेट में है। दिक्कत यह है कि सरकार '' देशी शौचालय''/ ''इंडियन लैट्रिन'' की ही हर जगह मॉडल शौचालय की तरह पेश कर रही है। दिन भर में एक व्यक्ति के एक बार इंडियन लैट्रिन उपयोग करने पर औसतन 8-10 लीटर पानी की जरूरत पड़ती है। अर्थात चार लोगों का परिवार दिनभर में एक बार भी लैट्रिन का उपयोग करता है तो उसे 32-40 लीटर पानी की जरूरत होगी। सूखाग्रस्त क्षेत्रों में जहाँ पीने का पानी का भी अकाल है, वहाँ यह मात्र शौचालय के लिए इकट्ठा करना नामुमकिन जैसा है।

सरकार के विज्ञापनों में खुले में शौच जाने के लिए प्रेरणादायी स्लोगन दिए गये है। उनमें से कुछ स्लोगन जिस पर ज्यादा जोर दिया गया है, ''वह है घर में शौचालय बनवाए, माँ-बहनों की लाज बचाए'', ''बेटी ब्याहो उस घर में, शौचालय हो जिस घर में'' आदि। इन अपीलों का समैला में असर यह हुआ है कि जिन परिवारों ने शौचालय बनवा लिया, उसका उपयोग सिर्फ महिलाएँ करती हैं। सरकार की बात से हमलोग भी सहमत है, बहु-बेटी को खुले में शौच नहीं जाना चाहिए। हमलोग उनके लिए किसी तरह शौचालय में पानी का व्यवस्था कर लेते हैं। बाकी मर्द लोटा लेकर सुबह-सुबह खुले में शौच कर लेते है।''

जौहरी बॉलीवुड फिल्म टॉयलेट एक प्रेम कथा से प्रभावित है। यह भी एक कारण है कि वह महिलाओं के लिए शौचालय की अनिवार्यता को प्राथमिकता देते है। जौहरी के घर के करीब एक चापाकल है लेकिन उनमें नियमित पानी नहीं आता। कई बार गाँव में पीनें का पानी भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाता, मजबूरन महिलाएं कपड़े धोने के बाद बचा गंदा पानी शौचालय में धाने के उपयोग में लाती है। वहीं बाढ़ प्रभावित इलाकों में इंडियन लैट्रिन कारगर नहीं है। क्योंकि उसकी सोख्ता टंकी जमीन के नीचे बनती है। बाढ़ आने पर यह व्यवस्था ध्वस्त होने के साथ साथ बिमारी का कारण भी बनती है।

सामुदायिक शौचालयों का दयनिय हाल :

भारत में प्रभावशील तरीके से भूमि सुधार नहीं हुए है। आजादी के बाद बिनोवा भावे ने भूदान आंदोलन की शुरूआत की लेकिन वह वालेंन्ट्री स्तर परथा। जिसमें जमींदारों के नकी जमीन एक हिस्सा दाना में मांगा गया। केन्द्र और राज्य सरकारों ने जरूर विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत भूमिहीनों को आर्थिक सहायता या आवास बनवाकर दिया है। इसके बावजूद 2011 जनगणना के आंकड़ों के अनुसार 14.43 करोड़ भुमिहीन मजदूर भारत में मौजूद है। भूमि और भूमि पर स्वामित्व का आभाव भी स्वच्छ भारत अभियान के आड़े आ रहा है।

हालांकि योजना के अन्तर्गत भूमिहीनों के लिए सामुदायिक शौचालय बनवाने का प्रावधान है।

निष्कर्ष :-

ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अभी भी खुले में शौच जाने के लिए मजबूर है क्योंकि अधिकांश लोगों के घर में शौचालय हे लेकिन पानी की पर्याप्त कमी है अधिकांश लोगों ने घर में शौचालय बनवाये है जिसमें अर्द्ध प्रतिशत से कम लोग स्वंय शौचालय बनबायें बांके लोगों ने सरकार द्वारा प्रोत्साहन राशि से शौचालय बनवाये है। और अधिकांश सार्वजनिक स्थलों पर सरकार द्वारा सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण कार्य पूरा नही हुआ है। ग्रामीण क्षेत्र में सार्वजनिक स्थलों पर कूड़ा पात्र गंदे पानी के निकास के लिए सभी जगहो नालियों का व्यवस्था नहीं है। ग्रामीण क्षेत्र के लोग अभी भी खुले में शौच जाते है। खुले में शौच मुक्त के लिउ सरकार द्वारा प्रचार-प्रसार अधिक नहीं हो रहा है। सरकार साफ-सफाई का संदेश अधिकांश गाँवों तक नहीं पहुँच रहा है। ग्रामीण क्षेत्र में वृक्षारोपण का कार्य तेजी से नही हो रहा है।

संदर्भ :

1. लहरी, डा0 विमल कुमार : स्वच्छ भारत अभियान, भारती प्रकाशन, नई दिल्ली 2017, पृ0 18
2. मही पाल : भारत में स्वच्छता अभियाना कार्य नीति और क्रियान्वयन, नेशनल बुकटेस्ट, नई ल्लिी 2016 पृ0 26
3. शर्मा, गोविन्द : योजना, नवम्बर 2007
4. प्रज्ञा (सम्पादक) : शौचालय (प्रतीकात्मक तस्वीर) आज तक, इन, नई दिल्ली, 14 सितम्बर 2018
5. सेन गुप्ता, सुश्मिता और वर्मा, रश्मि (संवाददाता), डाउन टू अर्थ 17 अगस्त 2017

भारतीय संविधान में स्वतंत्रता के अधिकार: वाद एवं विवाद

सुमित कुमार सिंह

एम. ए. (राजनीति विज्ञान), यू.जी.सी. नेट (राजनीति विज्ञान), बी. एच. यू., वाराणसी- 221005

सारांश

मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए जिन अनेक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है उनमें स्वतंत्रता थी एक है। निश्चित रूप से संपूर्ण मानव जाति स्वतंत्रता चाहती है। भारतीय संदर्भ इसी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए सुभाष बोस ने भारतवासियों को ललकारते हुए कहा था ''तुम मुझे खून दो मैं तम्हें आजादी दूंगा'' इस नारे को सुनकर भारतवर्ष के नौजवान उन्मत्त हो उठे थे। इसका कारण बताते हुए बंट्रेण्ड रसैल ने कहा स्वतंत्रता की इच्छा शक्ति ही स्वाभाविक प्रवृति और इसी आधार पर सामाजिक जीवन का निर्माण संभव है। स्वतंत्रता मानव समाज के सर्वश्रेष्ठ मूल्यों में से एक है और मनुष्य के होने की पहचान इसकी अनुपस्थिति में मनुष्य और पशु में कोई अंतर नहीं। स्वतंत्रता मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए एक आवश्यक है। भारतीय संविधान ने अनुच्छेद 19-20 द्वारा भारत के सभी नागरिकों को कुछ स्वतंत्रतायें प्रदान की हैं। जिनहें सामूहिक रूप से स्वतंत्रा अधिकारों की संज्ञा दी गई है। अनुच्छेद-19 में नागरिकों का ऐसी वैयक्तिक स्वतंत्रतायें प्रदान की गई है जो भारतीय लोकतंत्र के लिए आवश्यक हैं- जैस वाक्स्वतंत्रय और अभिव्यक्ति स्वतंत्रय, शांतिपूर्ण और निरायुध सम्मेलन की स्वतंत्रता, भारत,राज्यक्षेत्र में अबाध सचरण करने और निवास की स्वतंत्रता, आदि।

मुख्य शब्द : विधानमण्डल, राज्यक्षेत्र, आवास की स्वतंत्रता, सामाजिक दर्शन, प्रजातान्त्रिक शासन

विषय-वस्तु

वैयक्तिक स्वतंत्रता के अधिकार का स्थान मूल अधिकारों में सर्वोच्य माना जाता है। इस अधिकार के अभाव में मनुष्य के लिए अपने व्यक्तित्व का विकास करना सम्भव नहीं है। भारतीय संविधान के अनु.-19 से 22 तक में भारत के नागरिकों को स्वतंत्रता सम्बन्धी विभिन्न अधिकार प्रदान किये गये है। ये चारों अनुच्छेद दैनिक स्वतंत्रता के अधिकार पत्र स्वरूप है। उपर्युक्त स्वतंत्रताएँ मूल अधिकारों के आधार-स्तम्भ है। इनमें से सात मूलभूत स्वतंत्रताओं का स्थान सर्वप्रमुख है। अनु:-19 भारत के सभी ''नागरिकों को निम्नलिखित सात स्वतंत्रताएँ प्रदान करता है-

1. वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता,
2. सभा करने की स्वतंत्रता,
3. संघ बनाने की स्वतंत्रता,
4. भ्रमण की स्वतंत्रता,
5. आवास की स्वतंत्रता,
6. पेशा, व्यवसाय, वाणिज्य एवं व्यापार की स्वतंत्रता।

अनु:-19 द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल ''नागरिकों को प्राप्त है। अनुच्छेद 19 में नागरिक शब्द का प्रयोग करके यह स्पष्ट कर दिया गया है कि इसमें प्रदत्त स्वतंत्रताएँ केवल भारत के नागरिकों को ही उपलब्ध है, किसी विदेशी को नहीं । इसी प्रकार एक कम्पनी भी नागरिक नहीं है अतएव वह अनु:-19 में अधिकारों का दावा नहीं कर सकती है। नागरिक शब्द से केवल मनुष्य मात्र का बोध होता है, कृत्रिम व्यक्ति का नहीं, जैसे कि कम्पनी।

उपर्युक्त स्वतंत्रताएँ आत्यन्तिक नहीं है। किसी भी देश में नागरिकों के अधिकार असीमित नहीं हो सकते है। एक व्यवस्थित समाज में ही अधिकारों का अस्तित्व हो सकता है। नागरिकों को ऐसे अधिकार नहीं प्रदान किये जा सकते जो समाप्त समुदाय के लिए अहितकार हो। यदि व्यक्तियों के अधिकारों पर समाज अंकुश न लगाये तो उसका परिणाम विनाशकारी होगा। स्वतंत्रता का अस्तित्व तभी सम्भव है जबवह विधि द्वारा संयमित हो। अपने अधिकारों के प्रयोग में हम दूसरों के अधिकरो पर आघात नहीं पहुंचा सकते है। ए.के. गोपालन के मामले में न्यायाधिपति श्री पंतजलि शास्त्री ने यह अवलोकन किया है कि ''मनुष्य एक विचारशील प्राणी होने के नाते बहुत-सी चीजों के करने की इच्छा करता है, लेकिन एक नागरिक समाज में उसे अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित करना पड़ता है। और दूसरों का आदर करना पड़ता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए संविधान के अनु:-19 के खण्ड 2 से 6 के अधीन राज्य को ''लोकहित में आवश्यक निर्बन्धन लगाने की शक्ति प्रदान की गई है, किन्तु शर्त यह है कि निर्बन्धन युक्तियुक्त हो। युक्तियुक्त निर्बन्धन के लिए दो शर्ते आवश्यक है-

1. निर्बन्धन केवल अनु:-19 के खंड 2 से 6 के अधीन दिये गये आधारों पर ही लगाये जा सकते है,
2. निर्बन्धन युक्तियुक्त होना चाहिये।

युक्तियुक्त ''निर्बन्धन क्या है, यह एक कठिन प्रश्न है। निर्बन्धनों की युक्तियुक्तता का निर्धारण करना न्यायालयों का कार्य है। इस प्रकार युक्तियुक्त शब्दावली न्यायालयों का कार्य है। इस प्रकार युक्तियुक्त शब्दावली न्यालयों के पुनर्विलोकन की शक्ति को अत्यन्त विस्तृत कर देता इस प्रश्न पर विद्यानमण्डल का निर्णय अन्तिम नहीं है। वह न्यायिक निरीक्षण के अधीन है। किन्तु निर्बन्धनों की युक्तियुक्तता को जाँचने के लिए कोई निश्चित कसौटी नहीं है। इस बात का निर्णय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर ही किया जा सकता है। उच्तम न्यायालय ने कुछ सामान्य नियम स्थापित किये हैं जिनके आधार पर निर्बन्धनों की युक्तियुक्ता की जाँच की किये है जिनके आधार पर निर्बन्धनों की युक्तियुक्ता की जॉच की जाती है। कोई निर्बन्धन युक्तियुक्त है या नहीं इस प्रश्न पर अन्तिम निर्णय देने की शक्ति न्यापालयों को है, विधानमण्डल को नहीं नागरिकों के अधिकारों पर लगाये गये निर्बन्धन अन्यायपूर्ण या सामान्य जनता के हितों में अथेक्षित है, उससे अधिक नहीं होना चाहिए व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास होना चाहिए। आवश्यक है कि लगाये गये निर्बन्धनों और उस उद्‌देश्य में तर्क संगत सम्बन्ध हो जिसे कानून बनाकर विधानमण्डल प्रापत करना चाहता है। यह कानून को स्वेच्छाचारी और आवश्यकता से अधिक निर्बनधन लगाने की अनुमति देता है, अवैध धोषित किया जा सकता है। युक्ति-युक्तता का कोई निश्चित या सामान्य मानडल निर्धारित नहीं किया जा सकता जो सभी मामलों में सामान्य रूप से लागू हो सके। इसका निर्धारण प्रत्येक वाद के तथ्यों के आधार पर ही किया जाता है। यह मानदण्ड उस अधिकार की प्रकृति, जिसका उल्लंधन किया गया है, लगाये गये निर्बन्धनों के अन्तर्निहित प्रयोजन, बुराई की मात्र और उसके दूर करने की अनिवार्यता, निर्बन्धन लगाने के अनुपात में भिन्नता, समकालीन परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। न्यायिक निर्णय के लिए इन सभी बातों पर विचार करना आवश्यक है।

निर्बन्धनों को मालिक विधि और प्रक्रियात्मक विधि दोनों दृष्टिकोण से युक्तिसंगत होना चाहिये। इसलिए न्यायालय को प्रतिबन्धों की केवल अवधि और मात्र ही नहीं वरन् उनकी परिस्थितियों और उनको लागू करने के लिए प्राधिकृत किये गये ढंग पर भी विचार करना चाहिये। राज्य की नीति के निर्देशक-तत्वों में निहित उद्‌देश्यों को प्राप्ति के लिए लगाये गये निर्बन्धन युक्तियुक्त निर्बन्धन माने जा सकते है। निर्बन्धनों की युक्तियुक्तता के निर्धारण में न्यायालयों का दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ होना चाहिए व्यक्तिनिष्ठ नहीं। युक्तियुक्तता का मानदण्ड एक औसत विवेकशील व्यक्ति का मानदण्ड है न कि जिसे न्यायालय युक्तियुक्त मानता हैं। उच्चतम न्यायालय ने इसी दृष्टि से न्यायाधीशों की युक्तियुक्तता के निर्धारण में अपनी सामाजिक और आर्थिक विचारधारा प्रेरित न होने की चेतावनी दी है। न्यायालय ने कहा है कि यद्यपि इस बात के निर्धारण करने में कि क्या युक्तियुक्त है, न्यायाधीशों के व्यक्तिगत, सामाजिक दर्शन और मान्यताओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। इन मामलों में वें अपनी दायित्व की भावना और आत्म-नियंत्रण द्वारा वैधानिक निर्णय में हस्तक्षेप को सीमित कर सकते है। उन्हें यह भलीभाँति समझना चाहिये कि संविधान केवल उनकी विचारधारा

वाले लोगों के लिए नहीं बनाया गया है वरन् सभी के लिये, और जनता के प्रतिनिधियों ने प्रतिबन्धों को युक्तियुक्त समझकर ही लगाया होगा। निर्बन्धनों को युक्तिसंगत बनाने के लिए, उनमें और उस उद्देश्य में जिसे विधायिका कानून बनाकर प्राप्त करना चाहती है, एक विवेकपूर्ण सम्बन्ध होना चाहिए। अनुच्छेद 19 में दिये गये अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबंध केवल अनुच्छेद 19 के खंड के अन्तर्गत उल्लिखित आधारों पर ही लगाये जा सकते है। इससे अन्य किसी आधार पर लगाये गये प्रतिबन्ध अतंवैधानिक होंगें । न्यायालयों का कार्य केवल निर्बन्धनों की युक्तियुक्तता का निर्माण करना है, कानून की युक्ति-युक्तता का निर्धारण करना नहीं। न्यायलय को केवल यही देखना है कि नागरिकों के अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबंध युक्तियुक्त है या नहीं।

उनका कार्य यह देखना नहीं है कि अधिनियम में कार्यपालिका अधिकारियों को दिये गये अधिकारों के दुरूपयोग के विरूद्ध समुचित संरक्षण की व्यवस्था है या नहीं। कार्यपालिका अधिकारियों द्वारा अपनी शक्ति के दुरूपयोग की सम्भावना मात्र ही प्रतिबन्धों की युक्तियुक्तता के निर्धारण की कसौटी नहीं है।

युक्तियुक्त निर्बन्धन निशेधात्मक भी हो सकते है। कुछ विशेष परिस्थितियों में नागरिकों के अधिकार पर पूर्ण रोक केवल युक्तियुक्त निर्बन्धन माना जाता है। इस प्रकार खतरनाक व्यापारों के मामले में, जैसे-शराब, नशीले पौधे उगाना, औरत का व्यापार करना, उसे पूरे व्यापार को देना युक्तियुक्त प्रतिबंध होगा। प्रत्येक नागरिक को किसी भी विधिपूर्ण वाणिज्य या व्यापार करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। किन्तु इन अधिकारों का प्रयोग उसे युक्तियुक्त प्रतिबंधों के अधीन करना होता है और उन पर ऐसे प्रतिबंध लगाये जा सकते है, जिसे सरकार समाज की सुरक्षा, शान्ति -व्यवस्था एवं नैतिकता इत्यादि के लिए आवश्यक समझती है। लेकिन जहॉ प्रतिबंध निशेध की सीमा तक पहुँच जाता है वहाँ न्यायालयों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि युक्तियुक्त निर्बन्धन के मानदण्ड को पूरा किया गया है या नहीं।

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रा : संवैधानिक परिपेक्ष्य (अनु.-19 क)

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रजातान्त्रिक शासन -व्यवस्था की आधारशीला है। प्रत्येक प्रजातांत्रिक सरकार इस स्वतंत्रता को बड़ा महत्व देती है। इसके बिना जनता की तार्किक एवं आलोचनात्मक शक्ति, जो प्रजातांत्रिक सरकार के समुचित संचालन के लिए आकाषक है, को विकसित करना सम्भव नहीं है। वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है-शव्दों, मुद्रषों, लेखों, चिन्हों या किसी अन्य प्रकार से अपने विचारों को व्यक्त करना। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में किसी व्यक्ति के विचारों को किसी ऐसे माध्यम से अभिव्यक्त करना सम्मिलित है जिससे वह दूसरों तक उन्हें संप्रेषित कर सके। इस प्रकार इनमें संकेतों, अंकों, चिन्हों तथा ऐसी ही अन्य क्रियाओं द्वारा किसी व्यक्ति के विचारों की अभिव्यक्ति सम्मिलित है। अनु. 19 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति शब्द इसके क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर देता है। विचारों के व्यक्त करने के जितने भी माध्यम है वे अभिव्यक्ति पदावली के अंतर्गत अआ जाते है। इस प्रकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है। विचारों का स्वतंत्र प्रसारण ही इस स्वतंत्रता का मुख्य उद्देश्य है।

यह भाषण द्वारा या समाचारपत्रों द्वारा किया जा सकता है। अनु:-19 में जानने का अधिकार भी शामिल है। इसमें सरकार के संचालन से संबंधित सूचनाएॅ जानने का अधिकार भी शामिल है। इसमें सरकार के संचालन से संबंधित सूचनाएँ जानने का अधिकार भी आता है। केवल आपराधिक मामले में जब देश की सुरक्षा अथवा लोकहित भी आवयक हो तभी उनका प्रकटीकरण नहीं किया जा सकता है। लोकतान्त्रिक सरकार एक खुली सरकार ही है, जिसके विशय में जनता को जानने का अधिकार होता है। रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में विचारों के प्रसार की स्वतंत्रता सम्मिलित है और वह स्वतंत्रता विचारों के प्रसारण की स्वतंत्रता द्वारा सुनिश्चित है। उस स्वतंत्रता के लिए परिचालन की स्वतंत्रता की स्वतंत्रता उतनी ही आवश्यक है जितनी कि प्राकशन की स्वतंत्रता। निस्संदेह परिचालन के बिना प्रकाशन का कोई माहत्व ही नहीं होगा। वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता केवल अपने ही विचारों के प्रसार की स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है। इसमें दूसरों के विचारों के प्रसार एवॅं प्रकाशन की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है जो प्रेस की स्वतंत्रता द्वारा ही सम्भव है।

प्रेस की स्वतन्त्रता - समाचार पत्र विचारों के अभिव्यक्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। राजनीतिक स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्र की सफलता के लिए प्रेस की स्वतंत्रता अपरिहार्य है। अमेंरिका के प्रेस कमीषन ने प्रेस की स्वतंत्रता के महत्व के बारे में विचार व्यक्त किये हैं- ''प्रेस की स्वतंत्रता राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए आवष्यक है। जिस समाज में मनुष्य को अपने विचारों को एक दूसरे तक पहुँचाने की स्वतंत्रता नहीं है। वहाँ अन्य स्वतंत्रताएँ भी सुरक्षित नहीं रह सकती है। वस्तुत: जहाँ वाक् स्वातन्त्र्य है वहीं

स्वतंत्र समाज का प्रारंभ होता है। और स्वतंत्रता को बनाये रखने के सभी साधन मौजूद रहते है। इसीलिए वाक् -स्वतंत्रताओं में एक अनोखा स्थान प्राप्त है। भारतीय प्रेस -कमीशन ने भी इसी तरह के विचार व्यक्त किये हैं- ''प्रजातंत्र केवल विधानमण्डल के सचेत देख-माल में ही नहीं वरन् लोकमत में की देख-माल और मार्ार्गदर्शन के अन्तर्गत भी फलता-फूलता है। प्रेस की यही सबसे बड़ी विशिष्टता है कि उसके ही माध्यम से लोकमत स्पष्ट होता है ।

अमेरिका संविधान की भाँति भारतीय संविधान में प्रेस की स्वतंत्रता के लिए कोई स्पश्ट उपबन्ध नहीं हैं डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान सभा में इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि प्रेस को कोई ऐसे विशिष्ट अधिकार नहीं प्राप्त हैं जो एक साधारण नागरिक को नहीं प्रदान किये जा सकते है। उनके संपादक या मैनेजर समाचारपत्रों द्वारा ही अपने अभिव्यक्ति के अधिकार का ही प्रयोग करते है। इसलिए इसके लिए संविधान में विशेष्य उपबन्ध की कोई आवश्यकता नहीं है। न्यायिक निर्णयों में भी इस मत की पुष्टि हो चुकी है। उच्चतम न्यायालय ने साकल पेपर्स लिमिटेड बनाम भारत संघ के मामले में यह अभि-निर्धारित किया है कि वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता भी शामिल है। क्यों कि समाचार पत्र विचारों के अभिव्यक्त करने के माध्यम मात्र ही है। प्रेस की स्वतंत्रता एक साधारण नागरिक की स्वतंत्रता से बढ़ कर नहीं है और यह उन प्रतिबंधों के अधीन है जों अनुच्छेद 19 द्वारा नागरिकों के वार्क् और अभिव्यक्ति स्वतंत्रता पर लगाये गये है। लार्ड मेन्सफील्ड के अनुसार प्रेस की स्वतंत्रता का अर्थ है बिना सरकारी अनज्ञा के विचारों को प्रकाशित करना, बशर्ते कि देश की साधारण विधि का उल्लंधन न किया गया हो। प्रेस की स्वतंत्रता केवल दैनिक समाचारपत्रों और साप्ताहिक पत्रों तक ही सीमित नहीं है। इसके अन्तर्गत इसी प्रकार के प्रशासन सम्मिलित है। जिनके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचा सकता है, जैसे-पत्रिका, परिपत्र आदि।

प्रभूदत्त बनाम भारत संघ के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रेस की स्वतंत्रता में सूचनाओं तथासमाचारों को जानने का अधिकार शामिल है। प्रेस को व्यक्तियों से साक्षात्कार के माध्यम से सूचनाएँ जानने की स्वतंत्रता है। किन्तु जानने की स्वतंत्रता आत्यन्तिक नहीं है और उसके उपर युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिकरोपित किये जा सकते है। प्रेस की जानने की स्वतंत्रता किसी व्यक्ति पर प्रेस को सूचना अथवा समाचार देने का कोई विधिक कर्त्तव्य अधिरोपित नहीं करती है। प्रेस नागरिकों से तभी सुचनाएँ बना सकता है यदि वे प्रेत को अपनी इच्छा से बताना चाहते हों। उक्त मामले में यह निर्णय दिया गया है कि यदि मृत्यु - दण्ड के अभियुक्त अपनी इच्छा से कोई बात बताना चाहते हैं तो प्रेस को उनसे पूछने की अनुमति दी जानी चाहिए। यदि किसी मामले में उन्हें साक्षात्कार करने की अनुमति नहीं दी जाती है तो उसके कारणों का लिखित उल्लेख किया जाना चाहिए। प्रस्तुत मामले में हिनदुस्तान टाइम्स के चीफ रिपोर्टर द्वारा रंगा -बिल्ला को जेल -अधिकारियों द्वारा साक्षात्कार करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया गया था। जबकि दोनों सिद्ध दोश अभियुक्त स्वेच्छ से साक्षात्कार देना चाहते थे।

अनु. 19 द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रताओं को किसी भौगोलिक परिसीमा में बांधा नहीं जा सकता है। इन अधिकारों का प्रयोग नागरिक के द्वारा भारत की सीमा के भीतर ही नहीं वरन् विश्व के किसी देश की भूमि पर किया जा सकता है। यदि राज्य किसी व्यक्ति द्वारा इन अधिकारों के प्रयोग पर देश की सीमा के आधार पर रोक लगाता है तो उससे अनु. 19 का अतिक्रमण होगा। आधुनिक काल मे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को देश की सीमा में बांधा नहीं जा सकता है। अभिव्यक्ति से तात्पर्य है किसी व्यक्ति से विचारों का आदान-प्रदान करना, चाहे वह विश्व के किसी भाग में क्यों न निवास करता हो। उपर्युक्त सिद्धांत मेनका गांधी बनाम भारत संध, के मामले में उच्चतम ने विहित किये है। इसमें वादी को विदेश जाने के लिए दिये गये पासपोर्ट को वापस करने का आदेश दिया गया था। वादी ने इस आदेश की विधि-मान्यता को चुनौती दिया और यह तर्क दिया कि यदि उसका पासपोर्ट ले लिया जाता है तो वह एक पत्रकार के रूप में विदेश जाकर अपने भाशण और अभिव्यक्ति के अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकती है। संदिप में उसका तर्क यह था कि विदेश-भ्रमण का अधिकार अनु. 19 अधीन एक मूल अधिकार है। उच्चतम न्यायालय ने उसके इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि विदेश-भ्रमण का अधिकार अनु. 19 के अधीन एक मूल अधिकार है, किन्तु यह अभिनिर्धारित किया कि अनु. 19 के अधिकारों का प्रयोग नागरिक केवल भारत में ही नहीं वरन् विदेश में भी कर सकता है। विदेशों मे उसके अधिकार पर वे सब निर्बन्धन लगाये जा सकते है जो अनु. 19 में उल्लिखित है। न्यायालय ने यह भी कहा कि यद्यपि विदेश-भ्रमण का अधिकार अनु. 19 के अधीन एक मूल अधिकार नहीं है, किन्तु यदि उसके ले लेने पर नागरिक के अनु. 19 के अधिकारों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है तो उससे अनु. 19 का अतिक्रमण हो सकता है। यह तथ्य और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

प्रेस की स्वतंत्रता का अर्थ है सरकार की बिना पूर्व -अनुमति के अपने विचारों को प्रकाषित करना। अत: कोई भी कानून को विचारों के प्रकाशन पर पूर्व -अवरोध का प्रावधान करता है वह अनु. 19 दी हुई स्वतंत्रता का अतिक्रमण करता है। ब्रजभूशण बनाम

दिल्ली राज्य के मामले में सर्वप्रथम प्रेस की स्वतंत्रता पर पूर्व -अवरोध की संवैधानिकता का प्रशन उच्चतम न्यायालय के विचारार्थ आया। इस मामले में ईस्ट पंजाब पब्लिक सेफ्टी ऐक्ट, 1949 की धारा 7 के अन्तर्गत दिल्ली के चीफ कमिश्नर ने दिल्ली के एक सापताहिक समाचारपत्र के विरूद्ध एक आदेश जारी यिा, जिसके द्वारा उस पत्र के मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक को यह निदेश दिया गया था कि वे उन सभ प्रकार के साम्प्रदायिक मामलों या पाकिस्तान से संबंधित समाचारों, चित्रों और व्यंग्य-चित्रों, मामलों या पाकिस्तान से संबंधित समाचारों, चित्रों और व्यंग्य -चित्रों जो सरकारी न्यूज-एजेन्सियों द्वारा नहीं प्राप्त किये गये हैं, प्रकाशित करने के पहले सरकारी परीक्षण के लिए भजेंगे और उनकी पूर्व-अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् ही उसे प्रकाशिच करेगे।

उच्चतम न्यायालय ने उक्त आदेश को असंवैधानिक वौक्ति कर दिया। न्यायालय ने कहा कि किसी समाचारपत्र पर पूर्व-अवरोध लगाना प्रेस की स्वतंत्रता पर अनुचित प्रतिबंध है। वीरेन्द्र बनाम पंजाब राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभि-निर्धारित किया है कि किसी समाचारपत्र को तत्कालीन महत्व क विशय पर अपने विचार प्रकाशित करने से रोकना वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर एक गम्भीर अतिक्मण है। एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बनाम भारत संध, के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि ऐसा कोई कानून, जो समाचारपत्रें पर पूर्व -अवरोध की व्यवस्था करता है या उनके परिचालन को कम करता है या उनके प्रारंभ किये जाने को रोकता है या उनके चालू रहने के लिए सरकारी सहायता को आवश्यक बना देता है, वह अनुच्छेद 19 में प्रदान की गयी स्वतंत्रता का अतिक्रमण करता है, अत: अवैध है। परिचालन की स्वतंत्रता प्रेस की स्वतंत्रता के लिए उतनी ही आवश्यक है जितनी कि प्रकाश की स्वतंत्रता निस्संदेह बिना परिचालन की स्वतंत्रता के प्रकाशन की स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं है। इसी आधार पर उच्चतम न्यायालय ने अपने एक विनिश्चय में उस कानून को अवैध घोशित कर दिया है जिसके द्वारा राज्य में एक दैनिक समाचार पत्र के परिचालन पर रोक लगा दी गयी। साकल पेपर्स लि. बनाम भारत संघ के मामले में दैनिक समाचारपत्र कीमत एवं पृष्ठ आदेश 1960, जिसके द्वारा अखबारों के पृष्ठ की आधिकतम संख्या और उनका मूल्य निर्धारित किया गया था, को इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि इससे प्रेस की स्वतंत्रता पर आधात पहुंचता है।

उक्त व्यवस्था के अन्तर्गत पिटीशनर अपने समाचारपत्रें मूल्य तो बढ़ा सकते थे, लेकिन उनकी पृष्ठ-संख्या को नहीं बढ़ा सकते थे। पिटीशनरों के अनुसार बिना पृष्ठ-संख्या के बढ़े दार्मो में वृद्धि हो जाने से उनका परिचालन कम हो जाता है। क्योंकि उनको कम लोग खरीदते है तथा पृष्ठ-संख्या घटा देने से उनमें समाचारों के प्रकाशन के लिए कम स्थान मिल पाता है। इस प्रकार सरकारी आदेश एक दुधारी छुरी का काम करता है। एक तरफ दाम बढ़ जाने से अखबारों का परिचालन कम होता है और दूसरी ओर पृष्ठों के कम होने से उनमें समाचारों, विचारों आदि के प्रकाशन के लिए स्थान की कमी हो जाती है। सरकार ने आदेश के पक्ष में तर्क दिया कि इसका उद्देश्य समाचारपत्रों में व्यापारिक विज्ञापन के स्थानों को विनियमित करना है तथा इस क्षेत्र में अनुचित प्रतियोगिता को रोकना और छोटे तथा नवचालित समाचारत्रों को संरक्षण प्रदान करना है। न्यायालय ने सरकार के इस तर्क को अस्वीकार करते हुए उक्त आदेश को अवैध घीषित कर दिया। उसने कहा कि वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को किसी नागरिक के व्यापारिक कि्याकलाप पर प्रतिबंध लगाने के उद्धेदश्य से छीना नहीं जा सकता है। इन स्वतंत्रताओं पर केवल अनुच्छेद में दिये गये आधारों पर ही प्रतिबंध लगाये जा सकते है। व्यापार करने की स्वतंत्रता की भांतित इस पर ''लोकहित के आधार पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाा सकता, क्योकि अनुच्छेद 19 में इस आधार का कोई उल्लेख नहीं है। सरकार छोटे तथा नवचालित समाचार पत्रों को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य को पूरा करने कही दृष्टि से दूसरे समाचार- पत्रों की स्वतंत्रता का अतिक्रमण नहीं कर सकती है। न्यायालय के अनुसार आदेश के परिणामस्वरूप् अखबारों का परिचालन निश्चय ही कम हो जायेगा, क्योकि उसे कम लोग खरीदेंगे और इस प्रकार उनकी स्वतंत्रता का हनन होगा। यदि विज्ञापनों में कटौती करने से उनके से विचार -प्रसारण की स्वतंत्रता पर सीधा आघात पहुंचता है तो वह असंवैधानिक होगा। ऐसा काई भी कानून जो समाचारपत्रों के माध्यम से विचार - प्रसारण को किसी भी ढ़ग से : प्रत्यक्षत, अथवा अप्रत्यक्षत: कम करता है, अनुच्छेद 19 का अतिक्रमण करता है और अवैध है। बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड बनाम भारत संध, के मामले में सन् 1972-73 की अखबारी कागज-नीति और अखबारी कागज नियंत्रण आदेश, 1962 की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गयी थी किवह संविधान के अनुच्छेद 19 क और अनुच्छेद 14 का अति-क्रमण करता है, अत: असंवैधानिक है। अखवारी कागज-नीति के अधीन पृष्ठों की अधिकतम संख्या 10 तक सीमित कर दी गयी थी और समान स्वाभित्व यूनिट को अपने प्राधिकृत कोटे के आपसी अदला -बदली की इजाजत नहीं थी। पिटिशनरों ने अखबारी कागज-नीति को निम्न आधारों ापर चुनौती दी। पहली, यह कि अखबारी कागज के प्राधिकृत कोटे के भीतर रहते हुए भी किसी समान स्वामित्व यूनिट द्वारा कोई नया अखबार या नया संस्करण नहीं आरमभ् किया जा सकता है। दूसरी यह कि पृष्ठों की अधिकतम संख्या 10 तक

परिसीमित है, जिसके कारर्ण परचिालन कम हो. जायगा। तीसरी, यह कि समान स्वामित्व यूनिट के विभिन्न अखबारों या एक ही अखबार के विभिन्न संस्करणी, के बीच आपसी अदला- बदली की स्वीकृति नहीं दी गयी है। चौथी, यह कि 10 से कम पृष्ठ अखबारों की पृष्ठ-संख्या बढ़ाने की सवीकृत दी गयी है।

उक्त प्रतिबंध बेतुके, मनमाने और अयुक्तियुक्त है। सरकार की ओर से अखबारी कागज- नीति के समर्थन में यह कहा गया है कि वह छोटे-छोटे अखबारों का विकास करने और बड़े-बड़े अखबारों के एकाधिकार के संगठन को रोकने में सहायता करने के लिए है। विधायन का मुख्य उद्देश्य अखबारी कागज के आयात एवं देश में उसके आवंटन को विनियमित करना है, भले ही उसके परिणाम स्वरूप परिचालन के कम करने का आनुशंगिक प्रभाव होता है। आनुशंगिक प्रभाव से प्रेस कामूल अधिकार कम नहीं होगा।

उच्चतम न्यायालय ने पिटीशनरों की दलील को स्वीकार करते हुए अखबारी कागज-नीति को असंवैधानिक घोषित कर दिया। न्यायालय ने कहा कि प्रेस की स्वतंत्रता अनुच्छेद 19 में प्रदत्त वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का एक आवश्यक अंग है। प्रेस को प्रशासन पर पूर्व -अवरोध के बिना निर्बाध प्रसार औरपरिचालन का चयन में स्वातन्त्रय को कुण्ठित करे अखबारों के आरम्भ किये जाने को रोकेगा और प्रेस को सरकारी सहायता प्राप्त करने के लिए विवश करेगा। इससे अनुच्छेद 19 का अतिक्रमण और वह अनुच्ठछेद 19 में विहित संरक्षण की परिधि के बाहर हो जायेगा। अखबारी कागज-नीति अखबारों को परिचालन के अधिकार की अनुज्ञा नहीं दी गयी। उन्हें पृष्ठों में वृद्धि करने का अधिकार नहीं दिया गया है। अखबारों के समान स्वामित्व यूनिट नये अखबार या नये संस्करएा नहीं निकाल सकता । दत पृष्ठ के स्तर से अधिक पर निकलने वाले और दस पृष्ठ के स्तर से कम पर निकलने वाले अखबारों को, अखबारों की जरूरतों और आवश्यकताओं को निर्धारित करते समय उन अखबारों के बराबर माना गया है जो उनकेबराबर नहीं है। जब एक बार कोटा नियत कर दिया जाता है और अखबारी कागज-नीति के अनुसार कोटे के उपयोग के लिये निर्देश दे दिया जाता हैं तब बड़े-बड़े अखबारों को पृष्ठ-संख्या में वृद्धि करने से रोका जाता है। वृद्धियों के लिए मूल कोटा और भत्ते की संगणना के लिए पृष्ठ-संख्या और परिचालन दोनों सुसंगत है। अखबारी कागल के वितरए के आवरण में सरकार ने अखबारों के विकास और परिचालन को नियंत्रित करने का प्रयास किया है। प्रेस स्वातन्त्रय गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार का है। स्वतंत्रता परिचालन और अन्तर्वस्तु अर्थात् दोनो में ही निहित है। जो अखबारी कागज-नीति अखबारों की पृष्ठ संख्या, पृष्ठ-क्षेत्र और अवधि घटाकर परिचालन को बनाने की अनुमति देता है, वह उन्हें परिचालन घटाकर परिचालन को बनाने की अनुमति देता है, वह उन्हें परिचालन घटाकर परिचालन को बनाने की अनुमति देता है, वह उन्हें परिचालन घटाकर परिचालन को बनाने की अनुमति देता है, वह उन्हें परिचालन घटाकर परिचालन को बनाने की अनुमति देता है, वह उन्हें परिचालन घटाकर पृष्ठ-संख्या, पृष्ठ-क्षेत्र और अवधि बढ़ाने से रोकता है। ये प्रतिबंध अखबारों को अपनी पृष्ठ-संख्या और परिचालन के बीच समायोजन करने के लिए विवश करते है। अखबारों पर सरकारी नीति का प्रभाव और परिणाम अखबारों के विकास और परिचालन को प्रत्यक्षत: नियंत्रि करना है। प्रत्यक्ष प्रभाव अखबारों के विकास और परिचालन पर प्रतिबंध लगाना है। प्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि अखबार विज्ञापन के अपने क्षेत्र से वंचित हो जाते है। प्रत्यक्ष प्रभाव यह है उन्हें आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। तथा वाक् और अभिव्यक्ति स्वातन्त्रय का अतिलंघन होता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार भारतीय संविधान ने अनुच्छेद 19-20 द्वारा भारत के सभी नागरिकों को कुछ स्वतंत्रतायें प्रदान की हैं। जिंहें सामूहिक रूप से स्वतत्रता अधिकारों की संज्ञा दी गई है। अनुच्छेद-19 में नागरिकों का ऐसी वैयक्तिक स्वतंत्रतायें प्रदान की गई है जो भारतीय लोकतंत्र के लिए आवश्यक हैं- जैस वाक्स्वतंत्रय और अभिव्यक्ति स्वतंत्रय, शांतिपूर्ण और निरायुध सम्मेलन की स्वतंत्रता, भारत, राज्यक्षेत्र में अबाध सचरण करने और निवास की स्वतंत्रता, आदि। भारतीय संविधान में इन स्वतंत्रताओं को निरपेक्ष नहीं माना गया। प्रत्युत सार्वजनिक हित और राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से उनके ऊपर कुछ अंकुश आरोपित कर दिये है। अनु. 19 के अधिकारों का प्रयोग नागरिक केवल भारत में ही नहीं वरन् विदेश में भी कर सकता है। विदेशों में उसके अधिकार पर वे सब निर्बन्धन लगाये जा सकते है जो अनु.-19 में उल्लिखित है। न्यायालय ने यह भी कहा कि यद्यपि विदेश-भ्रमण का अधिकार अनु. 19 के अधीन एक मूल अधिकार नहीं है, किन्तु यदि उसके ले लेने पर नागरिक के अनु. 19 के अधिकारों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है तो उससे अनु. 19 का अतिक्रमण हो सकता है। यह तथ्य और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

संदर्भ-सूची

1. भारत शासन, नई दिल्ली।
2. अनवर बनाम जम्मू ऐण्ड कश्मीर राज्य, ए.आई. आर. 1971 सु.को. 337.
3. मद्रास राज्य बनाम बी. जी. राव, ए.आई. आर. 1952, सु. को. 196.
4. मद्रास राज्य बनाम बी.जी. राव, ए. आई. आर. 1952, सु.को. 196.
5. रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य, ए.आई. आर, 1952, सु.को. 124
6. रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य, ए.आई. आर. 1950, सु. को. 124.
7. ए. आई. आर. 1982, सु.को. 6.
8. ए. आई. आर. 1978, सु. को. 597
9. ए.आई आर. 1957, सु. को. 896.
10. ए आई. आर. 1962, सु. को. 305.
11. प्रेस कमीशन रिपोर्ट, खण्ड-1, पृ0358

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जैव- विविधता एवं पशुधन क्षेत्र की भूमिका एवं रोजगार के अवसर

मुकेश कुमार

सहायक प्राध्यापक (जीटी), वाणिज्य विशग, जी.डी. कॉलेज बेगूसराय, एल.एन.एम.यू. दरभंगा, बिहार

शोध सारांश

ग्रामीण क्षेत्रों में पशुधन सालभर रोजगार सृजन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिकाअदा करता है। सामाजिक क्षेत्र का उत्थान आर्थिक प्रगति का स्रोत माना जाता है। सामाजिक क्षेत्र का अर्थ है लोगों के आर्थिक उपार्जन की अवस्था, सामाजिक सुरक्षाएवं सुविधाएं, बाल-कल्याण, महिलाओं का उत्थान, साक्षरता एवं स्वास्थ्य की व्यवस्था से संबंधित है। पशुपालन मनुष्य के जीविकोपार्जन का प्राचीनतम साधन है चाहे उसका आरंभ जल-जन्तुओं को पकड़ कर खाने से ही क्यों नहीं हुआ हो अतःइस विषय के उद्भव एवं विकास का अध्ययन आवश्यक है। पशुओं के अस्तित्व केलिए समुचित जलवायु, चारा और पीने के लिए पानी की सहज उपलब्धि आवश्यकशर्ते हैं। ये तत्व भी वहीं विद्यमान रहते है जहाँ की भूमि नम एवं उपजाऊ होती हैताकि वहाँ वृक्ष-वनस्पतियाँ विकसित हो सके जिनमें आरण्य पशु अपनी रक्षा करते हुए, स्वस्थ रहने के साथ-साथ अपनी वंश-वृद्धि भी कर सकें। किसी भी देश की पशु-सम्पदा क्षेत्र की जैव-विविधता एवं भूमि के प्रकार पर निर्भर करती है जो स्वयंजलवायु के तत्वों से प्रभावित होती है। भारत की विशाल भूमि, जिसमें अनेक प्रकारकी जलवायु पाई जाती है, जो विभिन्न पशुओं के लिए उपयोगी रही है।

शब्दावलीः उत्तम चारागाह, जैव-विविधता,जीव-जन्तु, जीविकोपार्जन, वैश्विक हॉटस्पॉटस, औद्योगीकरण

विषय-वस्तु

जलवायु के परिवर्तनों के साथ-साथ भूमि और उस पर उगने वाली अनेक वनस्पतियों का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहता है और इस प्रकार पशुओं के अस्तित्व और उनके विकास पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। भारत में विभिन्न प्रकार की भूमि एवं जैव-विविधता से संपन है जोभिन्न-भिन्न प्रकार के वनस्पतियाँ उत्पन्न होती है जिससे सभी पशुओं के उद्भव एवं विकास का प्रभाव पड़ता है। निश्चित भौगोलिक क्षेत्रों एवं जलवायु की दशाओंमें विशेष प्रकार के पशुओं एवं पक्षियों का आविभवि हुआ। जहाँ नदियाँ थी, झील एवं अन्य प्रकार के जल भरे क्षेत्र थे वहाँ उसी के उपयुक्त जीव-जन्तु उत्पन्न एवं विकासित हुए। जहाँ कीचड़ भरे क्षेत्र थे वहॉ सूअर जैसे पशुओं के लिए उपर्युक्त वातावरण था क्योंकि वे थूथून से जमीन खोद कर खा सामग्री प्राप्त करते थे। खुरदार पशुओं यथा अश्व, अश्वतर, गाय, बैल, अज एवं मेष के लिए अपेक्षाकृतकड़ी भूमि पर कोमल चारा उपयुक्त थे। उसी प्रकार हाथी घने जंगलो में होते थे जहाँ विशाल वृक्ष थे। उनसे उनका पूरी मात्रा में चारा मिल सकता था।

एडविनपास्को ने अपने अनुसंधान से यह सिद्ध किया है कि पहले भारत में भी ऐसे पशुहोते थे जो अभी भी अफ्रीका में पाए जाते है। यहाँ वे अब विलुप्त हो चुके है। ऐसा जलवायु, जैव-विविधता में परिवर्तन एवं जंगलो के समाप्त हो जाने के कारण हुआ है। ऋग्वदे के मन्त्रों में सभी पशुओं में अश्व को महत्वपूर्ण माना गया है और देवों से प्रार्थना के क्रम में दुधारू गायों को मांगने के साथ ही साथ तीव्र गामी अश्वों कीभी याचना की गई है। वेदों में कई प्रकार के अरबों का उल्लेख हुआ है जिसका उपयोग भार ढोने, अश्वारोहण करने, रथ जोतने, युद्ध-भूमि में उपयोग करने, घुड़दौड़ में भाग लेने एवं भूमि को जोतने के लिए हल खींचने में

होता था। तदुपरान्त हम भारतीय सेना में रथों के प्रयोग और अश्वारोही सैनिकी के सबंध मेंसूचना जातक आख्यानों और कौटिल्य के अर्थशास्त्र से प्राप्त करते है। आधुनिक काल में भी भारत में पशुधन का महत्त्व बरकरार है। तमाम प्रगतियोंके बावजूद भारत ग्राम प्रधान देश है एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आज भी पशुधन कीभूमिका महत्वपूर्ण है।

भारत पशुओं और पौधों की कई प्रजातियों से समृद्ध जैव विधिता से सम्पन्न है और जैव-विविधता से युक्त 35 वैश्विक हॉटस्पॉटस में से 4 भारत में है, जिसमें अनेक स्थानिक प्रजातियाँ मौजूद है। हालाकि बढ़ती जनसंख्या, वनों की कटाई, शहरीकरण और औद्योगीकरण ने हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाब डालदिया है, जिससे जैव-विविधता की हानि हो रही है। जैव-विविधता की हानि से सभी जीवन रूपों के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है और विभिन्न पारिस्थितिकीय सेवाएं प्रदान करने की कुंजी है। पारंपारिक रूप से जैव-विविधता संरक्षण कोदूरस्थ वन क्षेत्रों तक ही सीमित माना जाता रहा है, लेकिन बढ़ते शहरीकरण केसाथ शहरी क्षेत्रों में भी जैव-विविधता को सुरक्षित रखने और बचाने के लिए आवश्यकता हो गई है।

कृषि-पशुपालन संबद्ध क्षेत्र में समग्र प्रगति सुनिश्चित करने, किसानों कीमाली हालत सुधारने और ग्रामीण भारत के चतुर्दिक विकास का उददेश्य लघु, मध्यम और दीर्घवधि उपायों के जरिए भारतीय अर्थव्यवस्था को गति देने के साथ अधिक मजबूत बनाना है। समाज के सभी वर्गो के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा तक पहुँच कायम करने और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने पर बल दिया जाना चाहिए ताकि सभी नागरिकों का जीवन-स्तर बेहतर बनाया जा सके। सभी के लिए आर्थिक विकास के तहत ''सबका साथ सबका विकास और सबका विश्वास'' को आधार बनाया जाने की आवश्यकता है। कृषि उद्योग भारत की कुल जीडीपी में 17 प्रतिशत जिसमें से 27 प्रतिशत पशुपालन का योगदान होता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि और इसके संबद्ध क्षेत्रें जैसे-डेयरी, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन उद्योग देशो को जीडीपी में 4.4 प्रतिशत कायोगदान करता है। यह ग्रामीण आधारित उद्योग ग्रामीण क्षेत्रें में बड़ी पैमाने परयुवाओं को मुर्गी पालन, मत्स्य पालन रेशम उत्पादन और ग्राम आधारित उद्योग सवोओं में रोजगार और आर्थिक विकास में लाभकारी योगदान करने की बहुतक्षमता है।

स्वदेशी नस्लों के संरक्षण और उनकी संख्या में बढोतरी करने कीआवश्यकता पर बल दिया जाय ताकि भारत में सतत और समावेशी विकाससुनिश्चित करने के लिए स्वस्थ और ठोस कृषि क्षेत्र एक महत्वपूर्ण आधार हो साथही कृषि को आर्थिक रूप से व्यवहारिक और वित्तीय दृष्टि से लाभकारी बना कर विशेषकर युवाओं को खेती की ओर आकर्षक कैरियर के लिए अवसर के रूप में बदलने के उपाए करना चाहिए। ग्रामीण अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर बने इस संबंध में भारत के उपराष्ट्रपति श्री एम. बेंकैया नायडु ने दिनांक 24 अप्रैल 2019 को श्री वेंकटेश्वर पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय के 8वें दीक्षांत समारोह में कहा कि ''पशुधन-राष्ट्रधन है'' पशुधन के उत्पादन में बढोतरी करने और किसानो की आयके साथ रोजगार हेतु समेकित कृषि पद्धतियों को बढावा देने की आवश्यकता पर बल दिया जाय। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि पशुपालन एवं संबद्ध क्षेत्रों के निष्पादन पर निर्भर करता है। यह क्षेत्र ग्रामीण आजीविका, रोजगार के क्षेत्र में अवसर प्रदान करता है। यह आजीविका का सबसे बड़ा साधन है। रोजगार अवसरों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि- पशुपालन एवं संबद्ध क्षेत्रों पर निर्भर करने वाली भारत केकुल जनसंख्या का अनुपात अन्य क्षेत्रें की तुलना में सबसे ज्यादा है। लगभग 70 प्रतिशत ग्रामीण अपनी आजीविका के लिए मुख्यत: कृषि पर निर्भर करती है, इसमें विकास पर बल देते हुए प्राप्त करना होगा, जहाँ कृषि इसे बेहतर रूप से करसकती है।

छोटे व सीमांत किसानो के पास कुल कृषि भूमि की 30 प्रतिशत जोत है, जिसमें 70 प्रतिशत कृशक पशुपालन व्यवसाय से जुड़े है जिसके पास कुलपशुधन का 80 प्रतिशत भाग मौजूद है। स्पष्ट है कि देश का अधिकांश पशुधन, आर्थिक रूप से निर्बल वर्ग के पास है। भारत में लगभग 19.91 करोड़ गाय, 10.53 करोड़ भैंस, 1.111 करोड़ सूअर तथा 68.88 करोड़ मुर्गी का पालन किया जा रहा है। भारत 121.8 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन के साथ विश्व में प्रथम, अण्डाउत्पादन में 53200 करोड़ के साथ विश्व में तृतीय मांस उत्पादन में सातवां स्थान है। यही कारण है कि कृषि क्षेत्र में जहाँ हम मात्र 1-2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त कर रहे हैं, वहीं पशुपालन से 4-5 प्रतिशत को वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त कर रहे है। इस तरह पशुपालन व्यवस्था में ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करने तथा उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने की अपार संभावनाएं है। यद्यपि बिहार में पशुपालन एक प्राचीन पेशा रहा है, तथापित अच्छी नस्ल केपशुओं का धनत्व यहाँ काफी कम है। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ बेहतरीन चारागाहों की कमी है। वहीं सालभर पशुओं का स्वास्थ्य मौसम के बदलते तेवर से कुप्रभावित होते रहता है।

आद्र जलवायु में पशुओं की अनेक प्रकार का रोग होजाता है। पशुपालकों में पशुओं का वैज्ञानिक प्रक्रिया से देखभाल करने की सोच आवश्यकता है। यहाँ स्थायी चारागाह और गौचर भूमि मात्र 17.86 हजार हेक्टेयर है। अर्थात् राज्य के कुल क्षेत्रफल का मात्र

0.19 प्रतिशत में स्थायी चारागाह और गोचर भूमि है। यही कारण है कि यहाँ जानवरो को भरपूर और पौष्टिक चारा नही मिल पाता है। जानवरों को बथान (पशु रखने वाले स्थान) पर बाँध कर खिलाने की परम्पराहमेशा से रही है। धान का डंठल (पुआल), मकई कांडठल, गेहूँ, अरहर, मटर, खेसारी का भूसा कुछ हरी घास पशुओं का मुख्य आहार है।

बिहार में पशुगणना वर्ष 2018-19 के अनुसार यहाँ पशुधन की संख्या इस प्रकार है-

गौवंश	महिषवंश	भेड़	बकरी	मुर्गी	घोड़ा	सूअर
1.53 करोड़	77 लाख	2 लाख	128 करोड़ से 20 हजार	0.1 करोड़	32 हजार	3.40 लाख

बिहार में 10.67 प्रतिशत पशुधन की वृद्धि है। वर्ष 2010-2011 के आंकड़ों के अनुसार यहाँ 853 मवेशी अस्पताल और दवाखाना तथा 1401 गर्भाधान केन्द्र है। यहाँ लगभग 44 मवेशी हाट है। यहाँ वर्ष में कई छोटे-बड़े मवेशी मेले भी लगते है। जिनमें बिहार का सोनपूर मवेशी मेला विश्व प्रसिद्ध है। बरौनी, पटना, भागलपूर, मुंगेर, गया, दरभंगा, पूर्णियाँ इत्यादि जगहों पर दुग्धउद्योग विकसित है। कृषि से संबद्ध मत्स्य पालन किसी भी क्षेत्र की भू-आकृति, जलवायु, जलसंसाधन इत्यादि पर निर्भर करता है। योजनाबद्ध प्रक्रिया में मछली पालन कोउद्योग का दर्जा दिया गया है जो काफी उपयोगी एवं सराहनीय है। राज्य केग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन क्षेत्र एक महत्वपूर्ण गतिविधि है जो कृषि पर आश्रितपरिवारों को अनुपूरक आय तो प्राप्त होती है साथ ही पशु उत्पाद प्रोटीन का प्रमुख्यस्रोते भी है। सुखा एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं जैसे आकस्मिता के समय पशुधनही आय का एक मात्र स्रोत के रूप में उपलब्ध होता है। हम कह सकते है किपशुधन ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था एवं रोजगार के अवसर प्रदान करने में प्रमुख स्थानरखता है।राज्य में पशुपालन रोजगार का प्रमुख्य स्रोत है। इस व्यवसाय से राज्य की अर्थव्यवस्था अनके प्रकार के प्रत्येक और अप्रत्यक्ष घटकों से लाभान्वित होती है।

राज्य में पशुओं की उत्पादकता बढाने के लिए जहाँ एक ओर पशुपालको कोशिक्षित करते हुए उन्हें आधुनिक पद्धतियों का प्रशिक्षण देना जरूरी है वही दूसरीओर सभी क्षेत्रों में पशुओं की नस्ल सुधार योजनाओं को और प्रभावी ढंग से लागूकरना आवश्यक है। ग्रामवासियों के लिये पशुपालन न केवल जीविकोपार्जन काआधार है, बल्कि यह उनके लिये रोजगार और आय प्राप्त का सुदृढ तथा सहजस्रोत भी है। राज्य के भौगोलिक और प्राकृतिक परिस्थितियों का सामना करने केलिए एक मात्र विकल्प पशुपालन को ही जीवन शैली के रूप में अपना रखा है। पशुपालन व्यवसाय से राज्य की अर्थव्यवस्था अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षघटकों से लाभान्वित होती है। परन्तु बिहार में प्रत्येक साल बाढ़ के विभिषिका एवं अन्य प्राकृतिक दंस झेलने का शिकार सबसे अधिक कृषि पशुपालन संबद्ध क्षेत्रों परही पड़ता है। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि बेचारी बिलखती कृषि अपनी आश्रितों के समक्ष पूर्व ही घुटना टेक चुकी है। स्वभाविक है भुखमरी के जाल में फसे खेतीहरमजदूर एवं सीमान्त कृषक का प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में अपनी रोजी-रोटी केलिए प्रत्येक गाँव से अन्तर प्रांत पलायन करते जा रहे है। इसका दोतरफा बुरापरिणाम यह होता है कि एक ओर खेतीहर मजदूरों की अभाव में शेष कृषि कार्य बाधित होते है और दूसरी और पशुओं के चरवाहे तथा रखवाले के अभाव में अधिकांश गौशाले शुन्य होते जा रहे है। विडम्बना तो यह है कि उत्तम चारागाह के अभाव में उपलब्ध पशुओं की दशा दयनीय होती जा रही है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार कहा जा सकता है किपलायन को रोकने एवं स्थानीय स्तर पर रोजगार मुहैया करने हेतु सरकार पशुपालन से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों को लागू करने के प्रयास जरूर हुए है और इससे गरीबों को लाभ भी पहुँचा है किन्तु अभी कुछ किया जाना शेष है। आवश्यकता है एक रोड मैप की जिसमें आधारभूत संरचना, पूंजी निवेश, कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र में विशेष ध्यान ईमानदार प्रयास विशेष पैमाना हो सकते है। ग्रामीण क्षेत्र में पशुधन सालभर रोजगार सृजन की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिकाअदा करता है। यह गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोग जिनके पासभूमि नहीं है खास कर सुखा प्रभावित क्षेत्रों, पहाड़ी, जनजातिय एवं अन्य दूर दराजके इलाकों जहाँ कृषि उत्पादन और जनसंख्या के बीच असंतुलन की स्थिति है, वही जीवन यापन के पूरक स्रोत की भूमिका प्रदान करता है। श्रद्धा भारतीय लोकाचार की पहचान रही है विविध वनस्पतियों और जीवों को एक ही ईश्वरीय सिद्धांत की अभिव्यक्ति माना जाता है। जैव-विविधता के संरक्षण के लिए भारत की प्रतिबद्धता का इसके प्राचीन भारतीय महाकालों और समृद्ध मूर्तिकला से अधिक प्रमाण नही हो सकता है। हमारा यह विश्व दृष्टिकोण मानवता और प्रकृति के बीच एक सहजीवी संबंध पर

आधारित है। इस परिप्रेक्ष्य में जिससे हम उन सतत विकास के लक्ष्यों को पूरा कर सकते है जो हमने अपने लिए एक विश्वसमुदाय के रूप में निर्धारित किया है।

संदर्भ ग्रंथ की सूची

1. डॉ0 उग्र मोहन झा, भारतीय ग्रामीण अर्थशास्त्र
2. न्यूज डेली हंट-12.08.2020
3. कुरूक्षेत्र-मार्च 2020
4. योजना-जुलाई 2020
5. राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी -18 केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन भारत सरकार।
6. BIO- DIVERSITY - NURTURE NATURE FOR BETTER FUTURE 2006-2007 (NCSTC- Govt. of India)
7. भारतीय अर्थशास्त्र- डॉ0 सुमन, स्टूडेन्ट्स फ्रेन्डेस, गोविन्द मित्र रोड, पटना।
8. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार स्कीम, बिहार लोक प्रशासन एवं ग्रामीण विभाग संस्थान।
9. पर्यावरण एवं विकास, प्रो0 (डॉ0) वी0 सी0 सिन्हा एवं पुष्पा सिन्हा।
10. ग्रामीण अर्थशास्त्र एवं सहकारिता, प्रो0 बी0 एस0 माथुर
11. भारत में कृषि मजदूर- बी0 बी0 गिरी

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में दरभंगा के किसानों का योगदान

डॉ० पुष्पा कुमारी

पूर्व शोध-छात्रा, इतिहास विभाग, ल. ना. मिथिलाए विश्वविद्यालय, दरभंगा-846008 (बिहार)

दरभंगा का किसान आंदोलन को जागृति, उनकी एकता, कुशल नेतृत्व, जमींदारों के सामूहिक बहिष्कार, जमींदारी प्रथा के खिलफ सांस्कृतिक कार्यक्रम के माध्यम से प्रचार किये जो, काँग्रेस के दक्षिणापंथियों तथा वामपंथियों के परस्पर आरोप-प्रत्यारोप, काँग्रेस मंत्रिमंडल के जमींदारपक्षों खूब जमींदारों और ब्रिटिश प्रशासन के आपसी सांठ-गांठ किसानों के घोर-दमन, आंदोलन के उतार-चढ़ाव, दाँव, पेंच आदि कारणों से किसान आंदोलन के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

दरभंगा के किसानों के समक्ष कृषि से संबंधित अनेक प्रकार की समस्याएँ थी और वे देशी जमींदारों और विदेशी नोलहे-कोठी बालों दोनों शोषण के शिकार थे। यहाँ सिंचाई को सुविधा काफी कम थी और कृशक मुख्य रूप से अगहनी फसल पर ही निर्भर थे, जनसंख्या में वृद्धि के कारण कृषि पर लगातार दबाव बढ़ता जा रहा था। जमींदारों के अपने किसानों से मालगुजारी के अतिरिक्त खर्चा, सलामी आदि के रूप में अनेक प्रकार के गैर कानूनी अबवाली धन वसूलते थे। उन्हें बेगार खटाया जाता था जो बिना मूल्य के हल बैल आदि जमींदारों के खेती हेतु-देने के लिए बहाय किया जाता था, लगान की वसूली काफी कठोरता से की जाती थी और लगान नहीं देने पर उनके साथ अमानविक व्यवहार भी किया जाता था। देशी जमींदारों के साथ-साथ यहाँ के किसान उत्तरी बिहार के अन्य जिलों के समान निलहे कोठी वालों के अत्याचार से भी पीड़ित थे। फलत: उनमें असंतोष व्याप्त था। महात्मा गाँधी के ऐतिहासिक चम्पारण सत्याग्रह से दरभंगा के किसानों में भी जागृति आयी थी। इस सत्याग्रह के पश्चात अनेक नेता किसानों को समस्याओं के प्रति आकर्षित हुए और उन्होंने किसानों के असंतोषों को स्वर प्रदान कर उन्हें शोषण से मुक्ति दिलाने का प्रयास आरंभ किया। इन नेताओं में से एक स्वामी विद्यानंद थे। जिन्होंने चम्पारण सत्याग्रह के पश्चात-1919 ई0 के जून माह में दरभंगा जिले के मधुबनी सब्डिविजन में किसानों के असंतोषों को स्वर प्रदान कर एक सशक्त किसान आंदोलन का सूत्रपात किया और जमींदारों के समक्ष घोर संकट पैदा कर दी। यद्यपि उनका आंदोलन कालांतर में अन्य हिस्सों में भी फेला, किंतु उनका मुख्य केन्द्र दरभंगा जिला ही था। स्वामी विद्यानंद का आंदोलन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण था, उनके आंदोलन के प्रति यहाँ छोटे काश्तकारों ने अपना पूर्ण समर्थन दिया था। वहाँ अपेक्षाकृत बड़े काश्तकारों में भी अनेक आंदोलन के प्रति समर्थन का भाव था। उन्होंने ही एक किसान संगठन कायम का प्रयास किया था। हालांकि इसमें सफलता नहीं मिली। इस समय तक संयुक्त प्रांत में किसान सभा की स्थापना और संभवत: इसी से प्रेरित होकर उन्होंने बिहार में भी इसी तरह के संगठन कायम करने का प्रयास किया था। यद्यपि कुछ दिनों के बाद यह आंदोलन धीमा पड़ गया किंतु इस आंदोलन के फलस्वरूप किसानों को कुछ राहत अवश्य मिली साथ ही इस आंदोलन ने किसानों के खेत के स्तर को काफी उठा दिया जो आने वाले वर्षों में इस जिले में चले किसान आंदोलन के लिए काफी लाभकारी साबित हुआ। किसान सभा की स्थापना के लिए किये गये आरंभिक प्रयासों का कोई महत्वपूर्ण परिणाम नहीं निकला था किंतु 1929 ई0 में सोनपुर मेले में विधिवत रूप से इसकी स्थापना कर ली गई। आरंभ में इसका उद्देश्य समझौतावादी था। इसका जुझारू रूप बाद में उभरा। इसकी स्थापना में काँग्रेस के नेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका थी और काँग्रेस के प्राय: सभी बड़े नेताओं इसमें सम्मिलित थे। स्वामी सहजानंद सरस्वती इसका अध्यक्ष बनाए गए। वस्तुत: वे किसान आंदोलन की आत्मा थे और किसानों के हित में काम करना जीवन समेत उनका मॅलय लक्ष्य रहा।

1930-31 दौरान दरभंगा के किसानों ने काँग्रेस द्वारा चलाए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया था। खासतौर से चौकीदारी टैक्स बंदी आंदोलन में किसानों ने विशेष रूची ली थी। पुन: 1929-33 के विश्व-व्यापी आर्थिक मंद से यहा के किसान भी प्रभावित हो गये थे। खाद्य-पदार्थों के मूल्य में गिरावट तथा आयाम के असंतोषजनक उपाय ने किसानों को तबाह कर दिया था। फलत: उनका असंतोष उभरने लगा था। इन्हीं परिस्थितियों में लोकहा थाना के 32 गाँवों के किसान इकट्टा हुए और सभा आयोजित कर लगान में कमी के लिए माँग की। दरभंगा महाशय के पहल की गई United Political Party की स्थापना दरभंगा सहित संपूर्ण बिहार के किसान आंदोलन के लिए उत्प्रेरक साबित हुआ था। दरअसल United Political Party तथा Bihar land woldrs association में कोई फर्क नहीं था। और इस पार्टी का वास्तविक उद्देश्य काँग्रेस को नीचा दिखाना तथा किसान आंदोलन को कमजोर करना था। इस पार्टी ने एक नकली किसान सभा खड़ा करवाकर तथा उनके साथ समझौता कर जमींदारों के हक में काश्यतकारी कानून पारित करवाने का प्रयास किया था। वास्तव में जमींदारों की इस प्रतिक्रियावादी कारवाई के पश्चात ही संगठित किसान आंदोलन की शुरूआत हुई थी। इस घटना के पश्चात् दरभंगा के किसान आंदोलन में भी तेजी आई और 1933-35 ई0 के बीच इस जिले में कुल 38 किसान सभाएँ आयोजित की गई जिसमें फुलपरास की सभा सबसे महत्वपूर्ण थी। जमींदारों के समर्थक बन चूके शिवशंकर झा ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर यहाँ की सभा पर कब्जा करने तथा प्रस्तावित काश्तकारी संशोधन विधेयक के पक्ष में वातावरण तैयार करने का प्रयास किया था किंतु किसान उनके बहकावे में नहीं आये और उन्होंने स्वामी सहजानंद सरस्वती द्वारा कही गई बातों पर ही अपना विश्वास किया। फुलपरास की इस घटना का स्वामी जी के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा था। इस घटना ने उनके इस विश्वास को बल प्रदान किया कि अब अनपढ़ और सीधे-सादे किसान ज्यादा दिनों तक नहीं ठगे जा सकते थे। यहाँ के किसानों की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा था। यहाँ मैं पहली बार गया और जहाँ किसान सभा की चर्चा तक नहीं थी। यहाँ तक कि यहाँ के लोगों से हमारा परिचय तक नहीं था। वही बाघ अपने मांद में पछाड़ा गया। किसानों की जागरूकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और काँग्रेस मंत्रिमंडल द्वारा उठाये गये कदम भी किसानों के असंतुष्ट करने में असफल रहा। इधर किसानों की बढ़ती हुई जागरूकता से जमींदारों की चिंता बढ़ रही थी अत: उन्होंने किसानों के बकास्त भूमि से तेजी में बेदखल करना आरंभ कर दिया ताकि रैमत अपने कब्जे की भूमि पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकें। अत: जमींदारों के इस अत्याचार का विरोध करने एवं किसानों को बेदखल किये गये भूमि पर पुन: कब्जा दिलाने के लिए 1938 ई0 के दिसम्बर माह में दरभंगा जिलान्तर्गत ओरनी में आयोजित छठे प्रांतीय किसान सम्मेलन में सत्याग्रह चलाने का निर्णय लिया गया। यद्यपि जिले भर में कई स्थानों पर वकास्त भूमि विवाद ओरनी सम्मेलन के पूर्व से ही आरंभ हो चुका था। किंतु इस सम्मेलन के पश्चात ही जोरदार ढ़ंग से बकास्त आंदोलन चलाया गया। 1939 ई0 में दरभंगा जिला में सकरी-पंडौल, पड़री, देकुलीधाम, रोघोपुर, नेहरा, जगदीशपुर, रामनगर, महिषवाड़ा, धनौली, पोहद्दी आदि कई स्थानों पर जमींदारों के खिलाफ आंदोलन किया गया। पं0 रामानंद मिश्र, श्री युमना गामी, श्री सूरज नारायण सिंह सरीखे नेताओं ने इस आंदोलन के नेतृत्व किया था और इस आंदोलन के क्रम में इन नेताओं सहित सैकड़ों किसान कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर जेल में डाल दिये गये थे। इस आंदोलन के विरूद्ध दमनात्मक कारवाई करने में जमींदारों को ब्रिटिश शासन से भी प्रच्छम सहयोग प्राप्त हुआ था। बकास्त आंदोलन के दौरान सैकड़ों बच्चे, बूढ़े तथा नौजावानों को मारा-पीटा गया था। यहाँ तक की स्त्रियों पर भी अत्याचार किये गये थे। इस संघर्ष के दौरान दरभंगा के किसानों पर ढ़ाये गये जुल्म की कारवाई की, जाँच-पड़ताल करने के लिए यमुना गामी द्वारा भी कृष्ण सिंह को बार-बार पत्र लिखा गया था किंतु उन्होंने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ होने के साथ ही राष्ट्रीय प्रश्नों का महत्व बढ़ गया और किसान आंदोलन की अवनति होने लगी।

1942 ई0 के आंदोलन में किसानों की महत्वपूर्ण भागीदारी रही थी। किसानों तथा मजदूरों के सहयोग के बल पर ही जिले भर के लगभग सभी थानों पर एवं अन्य कई सरकारी प्रतीकों पर कब्जा किया जा सका था। इस आंदोलन के दौरान गाँवों में किसान, मजदूर आदि हजारों की संख्या में पास के कस्बों में इकट्टा हो जाते थे और इनके सहयोग से थाना आदि पर कब्जा कर लिया जाता था। इतना ही नहीं बल्कि बिरौल, सिंगिया तथा लदनिया थाना क्षेत्र के कई गाँवों में किसानों तथा मजदूरों के सहयोग से जनता राज भी कायम कर लिया गया था।

लार्ड कार्नवालिस द्वारा आरंभ किये गये की भूमि की स्थायी व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य भारत में जमींदारी के रूप में ब्रिटिश साम्राज्य के लिए एक समर्थक वर्ग तैयार करना था। जमींदारी प्रथा किसानों के लिए कितनी भी शोषण कारी क्यों न हो, कार्नवालिस

अपने ज्ञान उद्देश्य की पूर्ति में अवश्य ही सफल रहा था। यह सच है स्थायी व्यवस्था के अंतर्गत रेयतों को सुरक्षा करने हेतु भी कुछ प्रावधान किये गये थे, किंतु जमीदारों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु भी कुछ प्रावधान किये गये थे, किंतु जमीदारों ने अपने प्रभावों का इस्तेमाल कर उन प्रावधानों को निष्प्रभावी बना दिया था। स्थायी व्यवस्था के अंतर्गत दरभंगा में अनेक छोटी-बड़ी जमींदारारियों को विलास हुआ था और जब कभी भी इन जमींदारों के दमन शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ किसानों ने आंदोलन किया तो उनके खिलाफ जमींदारों ने घोर दमनात्मक कारवाई की। महराज दरभंगा ने किसान आंदोलन को कमजोर करने के लिए अपने प्रभाव का पूर्ण उपयोग किया था उन्होंने न केवल United Political Party की स्थापना में अहम भूमिका निभाई थी। अपितु अनेक अवसरों पर किसान सभा विरोधी प्रचार भी करवाया था। जमींदारी प्रथा उन्मूलन संबंधी प्रस्ताव पारित किये जाने के बावजूद द्वितीय विश्वयुद्ध तथा किसान आंदोलन के दौरान जमींदारी प्रथा उन्मूलन के मुद्दे पर बल नहीं दिया गया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ही जमींदारी प्रथा उन्मूलन की मांग जोर पकड़ सकी।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भी घटनाओं ने किसानों को काँग्रेस ने किसानों को संगठित कर उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में शटीक करने के उद्देश्य से किसान सभा की स्थापना में योगदान दिया था। किंतु आगे चलकर दोनों के बीच मतभेद उभरकर सामने आये। इसका कारण यह था कि किसान सभा प्रांतीय काँग्रेसी मंत्रिमंडल द्वारा उठाये गये कदमों से संतुष्ट नहीं थी और काश्तकारी कानून में मौलिक परिवर्तन चाहती थी। दूसरी ओर काँग्रेस में जमींदारों का अच्छा खासा प्रभाव था। अत: वह किसानों की मांगों की पूर्ति एक सीमा तक ही कर सकती थी। दरअसल काँग्रेस किसानों तथा जमींदारों के बीच संघर्ष नहीं चाहती थी। अपितु दोनों के बीच सामंजस्य कायम करना चाहती थी। यहाँ तक किसान आंदोलन तथा राष्ट्रीय आंदोलन के वीरता का सवाल है। यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि यह दोनों आंदोलन एक दूसरे के साथ अविधित रूप से जुड़ा हुआ था। किसान आंदोलन का विचारधारा राष्ट्रीयता पर आधारित थी और ध्यये राजनीतिक स्वतंत्रता में भाग लेते हुए किसानों को आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाना था। किसानों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में इस आंदोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। स0अ0 आंदोलन के बाद जब राष्ट्रीय आंदोलन शिथिल पड़ गया था तो किसानों के आंदोलन ने ही राष्ट्रीय आंदोलन की ज्वाला को कायम रखा था। किसान आंदोलन को इस बात का मित्र प्राप्त है कि इसमें विदेशी सत्ता के देशी समर्थक वर्ग (जमींदार वर्ग) को कमजोर कर दिया था। Socialist Party की स्थापना किसान आंदोलन के लिए अत्याधिक लाभदायक साबित हुआ था। वस्तुत Socialist Party का उद्देश्य किसानों तथा मजदूरों के हाथों में सारी शक्तियों को केंद्रित करना एवं राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ करोड़ों भूखे लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष काल था। यह Socialist के प्रभाव का ही परिणाम था कि किसान सभा द्वारा जमींदारी प्रथा उन्मूलन का प्रस्ताव स्वीकार किया गया और वर्ग के आधार पर सघर्ष तेजी से चलाया जाने लगा। बिहार सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों के किसान सभा में सम्मिलित हो जाने से ही दोनों ही लाभांवित हुए थे। इस पार्टी के किसान सभा में सम्मिलित हो जाने से जहाँ किसान सभा की सैद्धांतिक आधार मिल गया था। वहीं सोशलिस्टों को किसान सभा के माध्यम से अपने सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक सिद्धांतों को लाने का अवसर प्राप्त हुआ था। बकास्त आंदोलनों को लेकर दरभंगा जिला काँग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष भी सत्यनारायण सिंह एवं श्री जय प्रकाश नारायण के बीच परस्पर आरोप प्रत्यारोप का एक दौर आरंभ हो गया था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात दरभंगा के किसान आंदोलन में गुणात्मक स्तर पर एक नया दौड़ आया। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन प्रमुख मुद्दा बन गया। कम्यूनिस्टों पर से प्रतिबंध हट जाने के कारण वे अब किसान आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे और किसान आंदोलन पर उनका प्रभाव बढ़ने लगा था। इसका परिणाम हुआ कि जमींदारी उन्मूलन तथा खेतीहर मजदूरों के मजदूरी में वृद्धि एवं एकरूपता लाई गई। 15 अगस्त 1947 को उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल हुई तथा अब वे आर्थिक स्वतंत्रता की मांग करने लगे। 1947 को बिहार विधानसभा में एक बिल पारित हुआ किंतु दरभंगा महाराज द्वारा कार्यालय जाने से वह अवैध घोषित कर दिया गया। बिहार भूमि सुधार कानून 1950 के अधिनियम के द्वारा जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई। फिर भी किसानों की समस्या का अन्त नहीं हुआ था और उन्हें अभी भी एक लम्बी लड़ाई लड़नी थी। उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता भी प्राप्त हो गई। दरभंगा के किसान भी इस पिशायी प्रथा से मुक्त हुई।

संदर्भ :-

1. K.K. Dutta, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास
2. J.H.Ker, सर्वे एण्ड सेटलमैंट आपरेशन्स ऑफ दरभरंगा डिस्ट्रिक
3. स्वामी सहजानंद सरस्वती, मेरा जीवन संघर्ष, किसान सभा के संस्मरण
4. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा
5. गंगा प्रसाद ठाकुर, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और दरभंगा
6. डी0एन0सिंह, मिथिला में स्वतंत्रता आंदोलन का उद्भव और विकास
7. डा0 राम प्रकाश शर्मा, मिथिला का इतिहास
8. राकेश गुप्ता, बिहार पीजोट्री एण्ड द किसान सभा

राष्ट्रीय आंदोलन में बिहार के दरभंगा जिला में महात्मा गाँधी की यात्राएँ: एक अध्ययन

मो० जमील हसन अंसारी

इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा-846008 (बिहार)

सारांश

सन् 1857 ई. का प्रथम स्वातंत्रय युद्ध आधुनिक भारत के उपनिवेशवाद विरोघी संघर्ष में एक अविस्मरणीय मील का पत्थर हैं। इसने हमारे समाज के विभिन्न वर्गो और समुदायों का उद्देलित कर दिया था। सन् 1917 के चम्पारण सत्याग्रह से बिहार में गाँधी का आविर्भाव हुआ। जैसे 1857 की घटनाओं के लिए यदि एक नामकरण करना होता हैं तो हम उसे ''भारतीय स्वंतत्रता का प्रथम संग्राम'' की संज्ञा देते है। ठीक उसी प्रकार भारत वर्ष की स्वतंत्रता के लिए यदि एक व्यक्ति को श्रेय देना होता है तो हम महात्मा गाँधी का नाम पुकारते है। भारतीय संविधान निर्मात्ताओं ने महात्मा गाँधी को ''राष्ट्रपति'' का सर्वोच्च स्थान प्रदान किया। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के पवित्र चरण कई बार दरभंगा में पड़े। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का दरभंगा से गहरा लगाव था। देश की आजादी के दौरान वे तीन बार यहाँ आए थे। कांग्रेस का इतिहास व चरखा संघ के इतिहास नामक पुस्तकों में वर्णित तथ्यों के मुताबिक बापू पहली बार वर्ष 1920 में असहयोग आंदोलन के दौरान दरभंगा आए थे। उस समय दरभंगा राज के राजा रमेश्वर सिंह थे। प्रस्तुत आलेख में दरभंगा में रची बसी बापू की यादें, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गाँधी की दरभंगा जिला की यात्रओं के दौरान आम सभा द्वारा लोगों को संबोधित करना, सन् 1934 ई. में आए भयंकर भूकंप के बाद पीड़ितों का हाल जानने बापू दरंभगा आए और दो दिनों तक यहाँ रूके। 30 और 31 मार्च 1934 को महात्मा गाँधी के वर्तमान ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा यूरोपियन गेस्ट हाउस (गाँधी सदन) में ठहरने का प्रमाण हमें मिलता है।

इस आलेख में बिहार के दरभंगा जिले में देश की आजादी से पहले महात्मा गाँधी कई बार आ चुके थे। हम यह कह सकते हैं कि महात्मा गाँधी की दरभंगा जिला की यात्राएँ पूर्णत: रचनात्मक एवं सफल रही। इस पुरी यात्र के दौरान राजनीतिक लामबंदी, समाजीकरण, सहभागिता, विस्तार, सांस्कृतिक रूपान्तरण एवं राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति जनमानस में निष्ठा निर्माण में गाँधी जी के योगदानों को कम करके नहीं आँका जा सकता है। महात्मा गाँधी दरभंगा जिला की यात्रा किए, जो अत्यंत उत्साहवर्द्धक रही और मिथिला के इस हृदय प्रदेश में राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि उतरोत्तर चौड़ी होती गई थी को इंगित करता है।

मुख्य शब्द:-

बिहार, मिथिलांचल, दरभंगा, जिला, आजादी, जनमानस, स्वतंत्रता, महात्मा, गाँधीजी, बाबू ब्रज किशोर प्रसाद, सत्याग्रह, स्वदेशी, शिक्षा, कांग्रेस, हरिजन, यात्रएँ, आम सभा, पार्टी, ब्राह्मण, भूकंप, गेस्ट हाउस (गाँधी सदन)

शीर्षक विश्लेषण

बिहार को ''भारतीय सभ्यता की श्रेण्य भूमि'' कहा गया हैं, किन्तु 18वीं शताब्दी आते आते अपनी विज्ञात ऐतिहासिक उपलब्धियों के बावजूद वह बंगाल का परिशिष्ट राज्य बनकर रह गया।[1] सन् 1917 के चम्पारण सत्याग्रह से बिहार में गाँधी का आविर्भाव हुआ।[2] जैसे 1857 की घटनाओं के लिए यदि एक नामकरण करना होता है तो हम उसे ''भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम

संग्राम'' की संज्ञा देते हैं। ठीक इसी प्रकार भारत वर्ष की स्वतंत्रता के लिए एक व्यक्ति को श्रेय देना होता है तो हम महात्मा गाँधी की ओर इशारा करते हैं। यही कारण है कि भारतीय संविधान निर्मात्ताओं ने महात्मा गाँधी को ''राष्ट्रपिता'' का सर्वोच्च स्थान प्रदान किया। महात्मा गाँधी ने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का श्री गणेश मिथिलांचल के पश्चिमी छोर पर स्थित चम्पारण से किया। उत्तर बिहार का चंपारण जिला तब बंटा नहीं था। 15 अप्रैल, 1917 को महात्मा गाँधी ने मोतिहारी में कदम रखा।[3] उस दौर का चम्पारण सत्याग्रह गाँधी जी का चम्पारण मिशन 1917 भारतीय जनमानस के इतिहास में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसने यूरोप के निल्हे प्लान्टरों के दशकों से जारी निलहों के अत्याचार से चम्पारण की रैयतों की जान-माल की रक्षा की और आर्थिक एवं सामाजिक शोषण एवं आतंक से चम्पारण के निरीह रैयतों का उद्धार किया।[4] यह गौरतलब हैं कि 1917 में बिहार के चंपारण से शुरू महात्मा गाँधी के सत्याग्रह ने उस समय के भारत में काबिज ब्रिटिश हुकूमत की रातों की नीदें उड़ा दी एवं चंपारण से ही उन्होंने अपने आंदोलन की शुरूआत कर दी थी। गाँधी के जानकारों की मानें तो उसके ठीक दो साल बाद 1919 में गाँधी पहली बार दरभंगा पहुँचे थे।[5] महात्मा गाँधी के चंपारण सत्याग्रह में दरभंगा के प्रमुख वकील ब्रज किशोर प्रसाद[6] एवं धरणीधर प्रसाद की अग्रणी भूमिका थी।[7] ब्रज किशोर बाबू के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के लिए महात्मा गाँधी का सत्य एवं अहिंसा का प्रकट संदेश मिथिलांचल में व्याप्त होने लगा था। इसका अब यह असर हुआ कि मिथिलांचल के हृदय स्थल प्रदेश दरभंगा में स्वतंत्रता आंदोलन की चारों ओर ध्वनि गूँजने लगी।

चम्पारण सत्याग्रह की सफलता तथा ब्रज किशोर प्रसाद के नेतृत्व में बिहार सत्याग्रहियों एंव सहकर्मियों के उत्साह से महात्मा गाँधी ने सन् 1919 ई. में रौलेट एक्ट और जलियावाला बाग हत्याकांड के विरूद्ध सर्वप्रथम राष्ट्रव्यापी स्तर पर उन्होंने सत्याग्रह का शुभारंभ किया। गाँधी जी ने 01 अगस्त 1920 ई. (रविवार) को असहयोग आंदोलन का शंखनाद किया।[8] राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के पवित्र चरण इसी सिलसिले में पहली बार दरभंगा आए थे। हालांकि महात्मा गाँधी अकेले नहीं आये उनके साथ श्रीमती कस्तुरबा गाँधी, मौलाना मजहरूल हक और मौलाना शौकत अली भी इस मौके पर साथ में आये थे। इस अवसर पर गाँधी जी की पार्टी बेतिया से कार द्वारा चलकर 09 दिसंबर 1920 को दरभंगा पहुँची। बहरहाल, महात्मा गाँधी जब दरभंगा पहुँचे तो उन्होंने चम्पारण सत्याग्रह के अपने पुराने सहकर्मी बाबू ब्रज किशोर प्रसाद के घर अतिथि बनकर रूके थे और दोपहर 02 बजकर 45 मिनट पर गाँधी जी ने एक आम सभा को संबोधित किया। गाँधी जी चूँकि दरभंगा में प्रथम आम सभा को संबोधित करना था अत: इसके हेतू ब्रज किशोर बाबू ने अपने कुशल कार्यक्षमता व नेतृत्व में इसके आयोजन हेतू उन्होंन समस्तीपुर अनुमंडल के सत्यनारायण सिंह और धरणीधर बाबू जैसे प्रभृति नेताओं के साथ मिलकर बहुत सुंदर सफल सभा का इंतजाम किया। अगले ही दिन गाँधी जी अपने सभी लोगों के साथ 10 दिसबंर 1920 को समस्तीपुर गये। वहाँ के उपर्युक्त नेताओं ने गाँधी जी के आगमन से पूर्व ही आम सभा गाँधी जी द्वारा संबोधित करने हेतू वहाँ के जनमानस को एकत्रित कर रखा था। और उनका संपर्क भंग न हो या कोई व्यवधान उत्पन्न न हो इसके हेतू सुचारू व्यवस्था कर रखे थे। महात्मा गाँधी ने 10 दिसंबर 1920 ई. को समस्तीपुर में आम सभा को संबोधित किया और उसी दिन अपनी पार्टी के साथ गाँधी जी दरभंगा जिला से मुंगेर के लिए प्रस्थान किए थे।[9]

बिहार में महात्मा गाँधी द्वारा प्रारंभ असहयोग आंदोलन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रें में इस आंदोलन के अलग-अलग रूप रहे। सभी क्षेत्रों में आंदोलन आरंभ में शहरों और कस्बों तक सीमित रहा और वहाँ यह मुख्यत: मध्यवर्ग की भागीदारी पर निर्भर था, जो धीरे-धीरे कम हो गई।[10] इस आंदोलन के प्रमुख कार्यक्रम निम्न है:-

सरकारी शिक्षण संस्थानों एवं कोर्ट-कचहरियों का बहिष्कार, विधान परिषद एवं इसी प्रकार के अन्य प्रतिनिधि संस्थानों का परित्याग तथा राष्ट्रीय पाठशालाओं एवं स्वदेशी पंचायतों की स्थापना आदि कार्यक्रमों का दरभंगा जिला में ब्रज किशोर बाबू एवं धरणीधर प्रसाद के नेतृत्व में सफल अभियान चल। गाँधी जी के आह्वान पर दरभंगा से ब्रज किशोर प्रसाद तथा धरणीधर बाबू ने अपने वकालत का त्याग कर दिया।[11] दरभंगा, मधुबनी तथा समस्तीपुर में नेशनल स्कूल का स्थापनाकिया गया। गाँधी जी ने नेशनल स्कूल की दरभंगा में जो बुनियाद रखा। उसका सरस्वती अकादमी नाम से राष्ट्रीयकरण हो गया। अब उसका नियंत्रण विशुद्ध रूप से राष्ट्रीय लाईन पर हो गया था। बिहार में राष्ट्रीय संस्थानों में शिक्षा के सर्वोच्च सफलता प्राप्त करने एवं उस पर नियंत्रण करने हेतू ''शिक्षा का राष्ट्रीय परिषद'' बनी, जिसमें मुख्य रूप से ब्रज किशोर बाबू एवं धरणीधर, बाबू दरभंगा के प्रमुख कर्णधार थे। हालाकि महात्मा गाँधी की दरभंगा यात्रा से कई अवसर व अनेक अच्छे परिणाम भी निकले। महात्मा गाँधी की दरभंगा जिला की यात्राओं के बाद बड़ी संख्या में पंचायते स्थापित की गई।[12] मद्यपान का निशेध, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्त्रों एवं

खादी पहनने तथा चरखा चलाने का प्रचार हुआ तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित रखने का संदेश दिया इससे परस्पर एक-दूसरे की भागीदारी अधिक प्रभावशाली हुई।

बिहार के हृदयस्थल मिथिलांचल दरभंगा में महात्मा गाँधी की यात्राओं का एक अच्छा परिणाम यह हुआ कि उनकी यात्रा के परिणाम स्वरूप ही बलदेव शर्मा उर्फ गरीब दास, त्रिभुवन लाल झा, शकरूल्ला मियां, नारायण मंडल, रामेश्वर प्रसाद सिंह, दरभंगा राज के ज्येष्ठ रैयत, मधुबनी के चेथरू खाटवे, अनुप खाटवे, बेनी मंडल, अब्दुल रज्जाक, अब्दुल मिंया, वैधनाथ झा, मदन झा, विंध्यानाथ झा, गिरिन्द्र किशोर झा, करूण किशोर झा, साहिब सिंह, जालिम सिंह मधुबनी के ही वहीद, ब्रह्मपुर के जगदेव ठाकुर, रामनंदन ठाकुर, चन्देश्वर ठाकुर, रामायण ठाकुर। दरभंगा नगर पालिका के उपाध्यक्ष अब्दुल जलील, मौलवी कमर, मौलवी वहाब, मुहम्मद अली, सत्यव्रत, जगन्नाथ मिश्र, शिव प्रसाद, धर्मलाल सिंह, कृष्णा कुमारी देवी, हरनंदन दास वकील, बद्रीनारायण झा, राजनारायण शर्मा, बद्री झा। समस्तीपुर अनुमंडल के राम बहादुर, राम सकल राय, मु. जैन, राम बल्लभ राम एंव दीप नारायण सिंह प्रभृति आदि बहुत सारे राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता दरभंगा जिला से निकले। इस प्रकार से इतिहास यह बतलाता हैं कि महात्मा गाँधी की दरभंगा जिला की पहली यात्र अत्यंत सफल सिद्ध हुई।

उत्तर प्रदेश (तत्कालीन यूनाइटेड प्राविन्सेज) के गोरखरपुर जिला में 5 फरवरी 1922 ई. को घटित चौरी चौरा कांड हुआ और इसके बहाने ब्रिटिश सरकार ने 10 मार्च 1922 ई. को गाँधी जी को गिफ्तार कर लिया और उन्हें साबरमती आश्रम में 6 वर्ष के कैद में जेल में डाल दिया।[13] हालाकि अंग्रेज सरकार गाँधी जी को जेल में ज्यादा दिन नहीं रख पाये दरअसल 2 वर्ष के पहले ही चौरी-चौरा कांड के द्वितीय वर्षगाँठ के पावन अवसर पर 05 फरवरी 1924 ई. को ही गाँधी जी को कारागार से मुक्त कर दिया गया।[14] जेल से निकलने के पश्चात ही देश की सर्वोच्च राष्ट्रीय संस्था इंडियन नेशनल कांग्रेस ने गाँधी जी को अपना अध्यक्ष चुना और उनके सभापतित्व में ही कांग्रेस का 39वाँ वार्षिक अधिवेशन बेलगाँव में सन् 1924 ई. में दिसंबर माह के अंत में हुआ।[15]

कांग्रेस अध्यक्ष बनने के पश्चात् महात्मा गाँधी संपूर्ण भारत देश की यात्र पर निकल पड़े। हिन्दु-मुस्लिम एकता, खादी का प्रचार एवं दलितोंद्धार प्रभृति आदि अपने रचनात्मक कार्यक्रमों के सिलसिले में गाँधी जी दरभंगा जिला में दूसरी बार सन् 1927 में आये। उत्तर बिहार की रचनात्मक यात्रा के क्रम में कस्तुरबा गाँधी, राजेन्द्र प्रसाद एवं मथुरा प्रसाद के साथ 18 जनवरी 1927 को महात्मा गाँधी का पुराने दरभंगा जिला में फिर से आगमन हुआ। हालांकि इस बार के आगमन में गाँधी जी को दरभंगा जिला के दलसिंहसराय, समस्तीपुर एवं दरभंगा के उदार प्रवृत्ति के पुरूष-महिलाओं ने 6500 रूपये सहयोग राशि प्रदान किया। दरभंगा में प्राप्त यह राशि गाँधी जी की इस यात्र के दौरान बिहार में प्राप्त यह सर्वाधिक संग्रह राशि था।[16]

बिहार में दरभंगा के लिए सबसे विशिष्ट यह था कि गाँधी जी अपने साथ खद्दर की कुछ मात्रा लेकर चलने की उत्कृष्ट परंपरा को प्रारंभ किए और उसे प्रत्येक स्टेशन एवं हर सभा व मिटिंग में बेंचते थे। उल्लेखनीय हैं कि अपने उत्कृष्ट खादी भंडार के कारण महात्मा गाँधी की पार्टी के द्वारा ''आधुनिक तीर्थ भूमि'' (*The Land of Modern Tirthas*), के रूप में दरभंगा जिला पर मान्यता की मुहर मुद्रित की गई है। दरभंगा जिला में गाँधी जी के परिभ्रमण के विषय में ''यंग इण्डिया'' में महादेव देसाई लिखते हैं कि ''उनके लिए यह यात्रा न केवल एक अध्ययन था, प्रत्युत एक दैवी प्रेरणा अथवा आलोक, आँखों के लिए एक उत्सव और आत्मा के लिए एक सान्त्वना थी। पंडौल और मधुबनी तथा सकरी और कपसी आपके सामने ऊँची कल्पना का मिलन (*Conjure of Visions*) है। एक आँगन में साफ-सुथरी सुंदर युवतियां बैठी थी जो सब मुसलमान थी। मौलाना शौकत अली को अधिक प्रसन्नता हुई कि काम चालू करने से इन युवतियों द्वारा जब करघा चलाया जाएगा उससे उत्पन्न सुगम संगीत कानों को सुनने को मिलेगा। दरअसल दस या पचास नहीं अपितु तीन सौ करघे संगीत एवं हस्त कला का विचित्र प्रदर्शन करते थे।'' बेलवर नामक स्थान में ब्राह्मण बुनकर स्त्रियों की एक अच्छी बस्ती थी। लड़कियाँ अपनी सुंदर तकली पर सूत कातती थी और प्रौढ़ महिलाएँ करधा चलाती थी। वहाँ हिन्दु युवकों द्वारा संगठित एक मुस्लिम गाँव था, जहाँ प्राय: सभी बुनकर हस्तकर्धा वस्त्र उत्पादित करते हुए पाये गये थे। यह उपर्युक्त बातें जनवरी 1927 ई. में महात्मा गाँधी द्वारा दरभंगा जिला के परिभ्रमण के दौरान की बातें है। दरअसल, गाँधी जी उसी दिन दरभंगा से प्रस्थान भी किये थे।[17]

महात्मा गाँधी द्वारा दरभंगा के रचनात्मक परिभ्रमण का ही यह परिणाम निकला कि हिन्दु-मुस्लिम एकता का वातावरण पल्लवित और पुष्पित हुआ। खादी तथा अब स्वदेशी वस्त्रें के उपयोग को प्रोत्साहन मिला। कई गाँवों में तो अब नवजागरण की पृष्ठभूमि चौड़ी हुई थी। कई राष्ट्र प्रेमी हुए जिनमें राम नन्दन मिश्र सदृश अनेक छात्र तथा युवा कार्यकर्त्ता शामिल थे जो सेवा के भावना की ओर

उन्मुख हुए थे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की पूर्व पीठिका भी प्रौढ़ हुई थी। बिहार में चल रहे पर्दा प्रथा आंदोलन को सन् 1927-28 ई. के दौरान गाँधी जी की यात्रा से अत्यंत प्रोत्साहन मिला। रामनन्दन मिश्र ने दरभंगा में इस कार्यक्रम की सफल शुरूआत के लिए साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) में जाकर गाँधी जी आर्शीवाद प्राप्त किया। जिसका प्रतिफल यह हुआ कि गाँधी जी ने सामाजिक सुधार को बढ़ावा देने की भावना से मगन लाल गाँधी, मगल लाल गाँधी की पुत्री राधाबहन, दल बहादुर गिरि की पुत्री दुर्गाबाई इत्यादि को बिहार भेजा। दुर्गा बाई जिस गाँव में कार्य करती थी, वहाँ संयोगवश मगन लाल गाँधी बीमार पड़ गये और पटना में 23 अप्रैल 1928 ई. को उनका देहांत हो गया था।[18]

महात्मा गाँधी हरिजनोद्धार एवं भूकंप पीड़ितों की मदद हेतु बिहार आए और तीसरी तथा अंतिम दफा दरभंगा जिला की यात्रा पर 1934 में पधारें थे। 15 जनवरी 1934 को उत्तर बिहार में भंयकर भूकंप आया।[19] पीड़ित मानवता की मदद एंव सेवा में मार्गदर्शन एवं सहायता के लिए बिहार के सर्वोच्च नेता राजेन्द्र प्रसाद ने 21 जनवरी 1934 को महात्मा गाँधी को सूचना दी।[20] गांधीजी ने अचिरात् 24 जनवरी 1934 को तिनेवेली में सर्वप्रथम बैठक कर भूकंप पीड़ित बिहार की मदद के लिए तत्काल अपील की।[21] बिहारी सहकर्मियों की पुकार पर गांधीजी नंगे पांव बिहार आए। हरिजनोद्धार एवं भूकंप पीड़ितों की सहायतार्थ महात्मा गाँधी पूरे भारत के साथ बिहार के विभिन्न स्थानों का दौरा किया। इसी क्रम में गाँधीजी 30 मार्च 1934 को तीसरी बार दरभंगा जिला पधारें। गांधीजी की पार्टी में कस्तुरबा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद,जमनालाल बजाज, प्रो. कृपालानी, मुरली मनोहर प्रसा, अंबिका कान्त सिन्हा, के.बी. सहाय, लालजी भाई देसाई, हिम्मत खेरा, मीरा बहन, प्रेमा बहन कंटक, प्रभावती देवी, काका कालोलकर, ठक्कर बापा, पृथ्वी दास लक्ष्मी दास, कुमारी उमा देवी, कुमारी किशन धमारकर देव राजन आदि सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त गाँधीजी के साथ के. बट्टन, मिस अगाथा हैरिसन, मिस मुरिएल लिस्टर, मिस होग्ग प्रभृति अंग्रेज एवं अमेरिकन लेडी भी दरभंगा जिला आई थी। गांधीजी एवं उनकी पार्टी 30 मार्च 1934 को 7 बजे पूर्वाह्न में कमतौल के लिए सीमामढ़ी से प्रस्थान की और सुरसण्ड पुपरी, जोगिरा और दरभंगा जिला के कमतौल का परिभ्रमण गांधीजी एवं उनकी पार्टी ने किया और इन स्थानों पर ही गांधीजी ठहरे थे। तत्पश्चात् गांधीजी और उनके सहयोगी लोग दोपहर के बाद 30 मार्च 1934 को ही दरभंगा पहुंचे। दरभंगा गेस्ट हाउस (गाँधी सदन) में पहुचने पर स्वंय महराजाधिराज कामेश्वर सिंह और राजेश्वर प्रसाद नारायण सिन्हा, नारायण प्रसाद वर्मा, अनिरूद्ध सिंह, आनन्द प्रसाद मिश्र, विन्देश्वरी प्रसाद सिंह, डॉ. डी. एन झा, गुलाब झा, मौलवी अली, सत्य नारायाण तिवारी, श्री नारायण दास, चन्द्र माघव पाण्डे उर्फ लाल बाबू, जानकी नन्दन सिंह, राम किशुन साहू, पितांबर झा, गुनानन्द झा, सूरज नारायण दास, महेश कान्त शर्मा, बीरेन्द्र नारायण दास, जुगल कुमार, लछुमन सिंह, विश्वनाथ सिंह, शिव नन्दन सिंह, मुंशी राउत, सूरज देव, तलपति सिंह, लक्ष्मी नारायण शर्मा, देवकी नन्दन झा, सियाराम ठाकुर, वशिष्ठ नारायण सिंह, नगदेव राज, परमेश्वर नारायण महता, सिवेश्वर महता, संत लाल झा, नबू नारायण झा, राम दयाल शर्मा, शत्रुधन राय, अच्छे लाल साहू, बाबू लाल दास, शिव गुलाम दास, गणेश चन्द्र दास, रूद्रानन्द मिश्र, जनार्दन प्रसाद, युगेश पूर्वे, लक्ष्मी नारायण राय, नागेश्वर प्रसाद, सूरजन सिंह, टेक नारायण सिंह, जानकी लाल राय, राम नारायण कुवर, राम स्वरूप चौधरी, सत्य नारायण चौधरी, मेवा लाल राय, रामाश्रय सिंह, हरखित सिंह, यदुनाथ झा, केशो राज, मथुरा प्रसाद सिंह, अर्जुन सिंह, पूरन कुमार, धर्मेश्वर प्रसाद मेहता, चुलहाई झा, रामदेव पूर्वे चेतू सिंह, गया प्रसाद सिंह, हृदय नारायण चौधरी, निर्भय नारायण झा, नन्दलाल शर्मा, मो. सीस, बांके बिहारी राय, मथुरा प्रसाद शर्मा, हरिबल्लभ नारायण सिंह, युदनन्दन सहाय, दामोदर नारायण शर्मा, राम बहादुर सिंह, सूकेश्वर मिश्र, उपेन्द्र ठाकुर, जयनन्दन झा, जगदीश झा, राधेश्याम झा, उमेश ठाकुर, आनन्द चन्द्र मिश्र, नगेन्द्र नाथ दास एवं जयनन्दन झा प्रभृति प्रमुख स्वंतत्रता सेनानियों एवं स्थानीय प्रमुख नागरिकों ने गांधीजी की पार्टी का स्वागत किया। भूकंप पीड़ितों की सहायता कार्य के विभिन्न पहलुओं पर परिचर्चोपरान्त महात्मा गाँधी अपने अभिभाषण में विचार प्रकट किए कि ''प्राकृतिक गर्जना की आवाजों में हमारे समक्ष अपनी चेतावनी को प्रकट करती है। यह ज्वाला की भाषा में हमारी आंखों के समक्ष कौंधती है। इसे देखकर भी हम न तो इसे देखते है, न सुनते है और न समझते है।''[22]

अगले दिन 31 मार्च 1934 की सुबह में महात्मा गाँधीजी और उनकी पार्टी मधुबनी जाने के लिए दरभंगा से प्रस्थान किया। 11:30 बजे पूर्वाह्न में मधुबनी में गांधीजी दल-बल के साथ पहुंचे। मधुबनी स्थित चरखा संघ की कुटी में महात्मा गांधी की पार्टी विश्राम की और दोपहर में राजनगर का वे लोग परिभ्रमण किए। यह शहर 15 जनवरी 1934 को 2 बजकर 15 मिनट पर आये बिहार के भूकंप से भयानक रूप से प्रभावित था। मधुबनी में गांधीजी अपने भाषण में कहे कि ''जैसा कि राजनगर में अपने समक्ष विनाश के बिखराव का दृश्य देखता हूँ। मैं मानव कष्ट की बोझ से स्वंय को रौंदा हुआ और व्याकुल रूप में अनुभव करता हूँ। परंतु तब मुझे कुन्ती की प्रार्थना याद आती है। कि ''ओ भागवान मुझे सदैव कष्ट तथा दुर्भाग्य ही भेजते है, नहीं तो मैं तूझे भूल जाऊगी।''

अपनी प्रार्थना में हिमाचल की तरह कुन्ती के अटल विश्वास को हमसब व्यक्त नहीं कर सकते है। परंतु भगवान की ओर अपने मन को मोड़े और स्वंय अत: करण की शुद्धि के रूप में हम प्राकृतिक आपदाओं से क्या कम-से-कम शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते?''

यह गौरतलब है कि जिस घड़ी गांधीजी बोल रहे थे, उसी वक्त उस विशाल जनसूमह में छ: काला झण्डा और तीन काला छाता बहुत दूरी पर दृष्टिगोचर हुआ। गांधीजी हंसे और उन्हें झण्डा वाले कह कर अभिवादन किए, ''देखिए, काला झण्डा वाले आ रहें है और काला छाते भी दिखा रहे हैं। अच्छा हैं, उन्हें आने दीजिए, यदि वे पसन्द करते है। मैं उनकी उपस्थिति में अस्पृश्यता के निवारण के विषय में बोलने के लिए खड़ा हूँ। छूआछूत का भूत की जड़ को उखाड़ फेंकना है।'' महात्मा गांधी अस्पृश्यता पर भाषण दिए और हरिजनोद्धार के काम में योगदान के द्वारा इस दिशा में अपनी सहानुभूति दिखाने हेतु श्रोतागण से निवेदन किए। काला झण्डा वाले प्रदर्शनकारी लोग शीध्र ही अदृश्य हो गये। तत्पश्चात् 1 अप्रैल 1934 को महात्मा गांधी भागलपुर जिला के निर्मली में प्रवेश किए।[23]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महात्मा गांधी की दरभंगा जिला की यात्राएँ पूर्णत: रचनात्मक एवं सफल रही। सन् 1934 ई. में गाँधी जी के दरभंगा हरिजन दौरा के पश्चात् इस वृहत दरभंगा जिला में अनेक नये कार्यक्रमों का शुभांरभ हुआ। हरिजनों की शिक्षा-दीक्षा उन्हें शिक्षित करने हेतु हरिजन स्कूल खोले गये एवं हरिजन रात्रि पाठशाला भी प्रारंभ किया गया। समाज के दलित वर्ग को मंदिरों में भी प्रवेश दिलाया गया। यह गौरतलब हैं कि गाँधी जी के हरिजनोंद्धार के विविध कार्यक्रमों के फलस्वरूप दलित वर्ग में जागृति हुई और अनके सद्‌गुणों का उनमें भावना जगा। उन्हीं में से कई अच्छे नेता भी निकले और उन्होंने दलित वर्ग के उत्थान हेतू अपने अनुभव व समाज सेवा से लोगों में पथ-प्रशस्थ हुआ। हालाकि दिलचस्प बात यह हैं कि बक्सर, पुरी एवं देवधर प्रभृति के विपरित महात्मा गाँधी की सन् 1934 ई. में दरभंगा यात्रा में कोई अशोभनीय घटना नहीं हुई और उनका दरभंगा हरिजनोद्धार यात्रा पूर्णत: रचनात्मक, शान्तिपूर्ण एंव सफल कार्यक्रम हुआ। गाँधी और कांग्रेस लोगों के आकर्षण के केन्द्र थे ही इसलिए कि वे समाज के सभी वर्गो के लिए परिचित शब्दावली में बोल सकते थे। दरअसल, महात्मा गाँधी में कौन सी विशेषता थी, जिसने सारे विश्व को अपने चुम्बकीय व्यक्तित्व के प्रति आकृष्ट किया। क्या खासियत थी जिससे गाँधी जी ने सारी मानवजाति को मन्त्रमुग्ध कर दिया। समस्त मानवजाति पर इतने जबरदस्त प्रभाव का रहस्य क्या था। यदि इन बातों का हम समुचित अध्ययन करेंगे। तो इसका केवल एक ही उत्तर है और वह है ''सत्य'' महात्मा गाँधी कहा करते थे कि मैं हाड-माँस का एक दुर्बल प्राणी हूँ। मैं व्यक्ति हूँ, परन्तु जब मैं सत्य के रथ पर आरूढ़ हो जाता हूँ, तो मुझमें सारे संसार को चुनौती देने की शक्ति आ जाती है। गाँधी जी की दृष्टि में सत्य ही ईश्वर हैं और ईश्वर ही सत्य हैं। इस प्रकार 9-10 दिसंबर 1920 को, 18 जनवरी 1927 को और 30-31 मार्च 1934 तक कुल तीन बार महात्मा गाँधी देश की आजादी से पहले दरभंगा आ चुके थे और इस तरह उन्होंने दरभंगा जिला की यात्रएँ की, जो अत्यंत उत्साहवर्द्धक रही और मिथिलांचल मिथिला के हृदय स्थल प्रदेश दरभंगा में राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि उतरोत्तर चौड़ी होती गई थी।

संदर्भ

1. के. के. दत्त, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, वोल्यूम-2 पटना, पृ0 11
2. रत्नेश्वर मिश्र., हुसेपुर का फतहशाही : राज्य विरोधी अथवा स्वतंत्रता सेनानी, एस. एन. आर. रिजवी (सं.) इतिहास दृष्टि, दिसंबर, 2009 पृ0 155
3. ब्रज किशोर सिंह., नील-संधर्ष और गाँधी, प्रात्य प्रकाशन, पटना 2009, पृ0 89
4. के. के. दत्त (संपादक), ''द कम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ बिहार'', खण्ड-III, भाग-I, काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीच्यूट पटना, 1976, पृष्ठ-262
5. *https:èèm.jagran.comèbiharèdarbhanga-mahtma-gandhi-had-come-todarbhnaga-Four-times-before-the-countrys-independence-18887596.html*, 24 jan 2019,11:32pm (IST)
6. मोहनदास करमचंद गाँधी., सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1957, पृ0380.

7. मोहन दास करमचन्द्र गांधी ''सत्य के प्रयोग'' अथवा ''आत्मकथा'', नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद पुनर्मुद्रण 1993, पृ0 358.
8. पट्टाभि सीतारमैय्या., 'हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस', खण्ड-I (1885-1935), बाम्बे, पुनर्मुद्रण 1946, पृ0 199
9. के. के. दत्त, 'गांधीजी इन बिहार' पटना, 1969, पृ0 74.
10. ए. एन. सिन्हा., मेरे संस्मरण, पटना, 1961, पृ0 61-63
11. नागेन्द्र मोहन प्रसाद श्रीवास्तव, 'बिहार में राष्ट्रीयता का विकास (1912-1947)', पटना 1974 पृ0 73.
12. के. के. दत्त, 'बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास', खण्ड-I (1857-1928), (अंग्रेजी में), पटना, 1957, पृ0 324, 328 एवं 338.
13. बी. एन. पाण्डे (महासंपादक), 'ए सेन्टेनरी हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस' खण्ड-II (1919-1935), बाम्बे, 1985, पृ0 96-97.
14. डी. जी. तेन्दुल्कर., 'महात्मा', खण्ड-2 (1920-1929), नई दिल्ली द्वितीय पुनर्मुद्रण, दिसंबर 1990, पृ0 122
15. पी. एन. ओझा., (महासंपादक), 'हिस्ट्री ऑफ द इण्इिन नेशनल कांग्रेस इन बिहार' (1885-1985), पटना 1985, पृ0 279.
16. के. के. दत्त., 'महात्मा गांधी इन बिहार' पृ0 128
17. उपर्युक्त
18. के. के. दत्ता., पूर्वोक्त, पृ0 133.
19. पी. एन. ओझा., (महासंपादक), पूर्ववोक्त, पृ0 422.
20. राजेन्द्र प्रसाद., 'आत्मकथा', सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, चौथा संस्करण 1965, पृ0 527, उद्धृत जवाहरलाल वर्मा, 'सम आस्पेक्ट्स ऑफ फ्रीड्म स्ट्रगल इन इण्डिया वीथ स्पेशल रिफरेन्स टू बक्सर डिस्ट्रिक्ट', पटना, 2009, पृ0 174.
21. डी. जी. तेन्दुल्कर., 'महात्मा', खण्ड-3 (1930-1934), नई दिल्ली, द्वितीय पुनर्मुद्रण, फरवरी 1992, पृ0 246-247.
22. के. के. दत्त., 'गांधीजी इन बिहार', पृ0 153 एवं 154.
23. उपर्यूक्त, पृ0 154

दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल और बिहार

सुमित कुमार

इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा-846008 (बिहार)

प्रस्तावना

आधुनिक काल में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के प्रसार में आर्य समाज का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक योगदान है। खासकर आर्य समाज की दयानन्द-एंग्लो वैदिक स्कूल श्रृंखला भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से समन्वित आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के विकास के समर्पित शैक्षिक आन्दोलन है, जिसकी बिहार समेत अखिल भारतीय स्तर पर एक निश्चित पहचान बन चुकी है। प्रस्तुत आलेख में बिहार और बिहार के बाहर एंग्लो-वैदिक स्कूल के इतिहास का विवेचन किया गया है।

महर्षि के महा निर्वाण के पश्चात् सबसे पहले लाहौर के आर्य जनों ने अपने आचार्य का समूचित स्मारक बनाने का निश्चय किया। वे सब यद्यपि पाश्चात्य शिक्षा से दीक्षित थे पर उनके हृदय में, अपने गुरू के चरण चिन्हों पर चलते हुए प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति को, वर्त्तमान काल के ढांचे में, पुनः जीर्वित करने की प्रबल आकांक्षा थी। इसी दृष्टि से महर्षि दयानन्द की स्मृति में ''दयानन्द एंग्लो वैदिक'' (डी. ए. वी. कॉलेज) स्थापित करने का निश्चय किया गया।01

6 नवम्बर, 1883 को आर्यसमाज लाहौर की अन्तरंग सभा की बैठक हुई जिसमें दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल की स्थापना करने का निश्चय किया गया। धन संग्रहार्थ लालाचन्द एम. ए. भाई जवाहरसिंह, जीवनदास, गरूदत्त व चार अन्य सदस्यों पर आधरित एक उपसमिति बना दी गई। लालाचन्द इस उपसमिति के प्रधान तथा भाई जवाहरसिंह मंत्री नियुक्त किए गए।[02]

महान कृषि का स्मारक स्थापित करने के लिए 8 नवम्बर वीरवार सायं को आर्यसमाज मंदिर में एक सार्वजनिक सभा की गई।[03]

गुरूदत्त ने ही डी. ए. वी. स्कूल व कॉलेज के रूप में ऋषि का स्मारक बनाने का प्रस्ताव रखा, उसे जनता ने बहुत पसंद किया तथा सर्वसम्मति से स्वीकार किया।[04]

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलेज की स्थापना का जो प्रस्ताव लाहौर में आयोजित सार्वजनिक सभा द्वारा स्वीकृत किया गया था, उससे आर्य जनता में अत्यधिक उत्साह का संचार हुआ। सभा में महर्षि के इस स्मारक के लिए चन्दे की भी अपील की गई, जिस पर तत्काल 6000 से भी ऊपर रूपये एकत्र हो गये। उस समय यह राशि वर्तमान समय के दो ढाई लाख रूपयों से कम मूल्य की नहीं थी।[05]

स्मारक स्थापित करने की योजनाएँ अजमेर, प्रयाग, मेरठ, फिरोजपुर, लाहौर, मुल्तान आदि कई स्थानों पर बन रही थी। पर लाहौर वालों के उत्साह ने उन्हें सबसे आगे निकाल दिया। गुरूदत्त ने भी अन्य लोगों के साथ कॉलेज के लिए गले में झोली डाल ली। उन्होंने धन संग्रहार्थ आर्यसमाजों के उत्सवों पर जाकर भाषण दिए। लेख लिखे। यद्यपि 1884 ई. में उनका स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहा, तो भी वे पूरी श्रद्धा से इस कार्य में जुटे रहे।[06]

आर्यसमाज लाहौर के निमन्त्रण पर 31 जनवरी, 1886 को लाहौर में एकत्रित हुए लाहौर, अमृतसर, मुलतान, गुजरांवाला, लुधियाना तथा रोहतक की छह प्रमुख आर्यसमाजों के नौ प्रतिनिधियों द्वारा ये नियम पारित कर दिए गए। साथ ही दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज ट्रस्ट एन्ड मैनेजिंग सोसाइटी का औपचारिक रूप से गठन कर दिया गया। गुरूदत्त ने इस पारस्परिक विवाद को मिटाकर शान्ति स्थापनार्थ विशेष परिश्रम किया।[07] इसके कारण भारत में शिक्षित लोगों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया है, जो सर्वसाधारण जनता से भिन्न है। देश में दो वर्ग हो गए हैं, शिक्षित वर्ग और सर्वसाधारण जनता। इनमें सम्बन्ध निरंतर कम होता जा रहा है, और ये

एक-दूसरे को किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं कर पा रहे हैं। इन्हें मिलाने और इनमें परस्पर सम्पर्क स्थापित करने का यही उपाय है, कि भारत की देशी भाषाओं और विशेषतया आर्य भाषा (हिन्दी) के अध्ययन पर बना दिया जाए।[08]

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलेज की मैनेजिंग कमेटी की पहली बैठक 27 फरवरी, सन् 1886 को हुई। पर इस बैठक में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हो सका। 20 मार्च, 1886 को हुई कमेटी की दूसरी बैठक महत्व की थी, क्योंकि, उसमें पदाधिकारियों का चुनाव किया गया था, जो इस प्रकार थे-लाला लालाचन्द प्रधान और कोषाध्यक्ष: लाला ईश्वरदास, लाला साईदास, लाला ज्वालासहाय और लाला नरसिंह दास उपप्रधान, और लाला मदनसिंह मंत्री। इसी बैठक में यह निश्चय किया गया, कि जितनी जल्दी हो सके, सोसायटी की ओर से एक हाईस्कुल खोल दिया जाये और जब तक स्थान का अन्तिम रूप से निर्णय न हो जाये, यह स्कूल लाहौर में रहे। अब दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलेज की योजना ने क्रियान्वित होना आरंभ कर दिया था, और आर्य जनता उस दिन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लग गई थी, जबकि यह योजना मूर्त रूप धारण कर लेगी । 24 अप्रैल, 1886 को मैनेजिंग कमेटी की जो बैठक हुई, उसमें स्कूल खोलने की तिथि 1 जून, 1886 निर्धारित कर दी गई।[09]

1 जून, 1886 मंगलवार को आर्यसमाज मंदिर गली बिच्छोवाली में एक सार्वजनिक सभा करके डी. ए. वी. स्कूल की स्थापना कर दी गई।[10]

सब तैयारी हो जाने पर 1 जून, सन् 1886 को दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल का कार्य प्रारंभ कर दिया गया प्रथम सप्ताह का अन्त होते-होते 300 विद्यार्थी स्कूल में भरती हो गये। जनता में इस स्कूल के लिए अत्यधिक उत्साह था, और बालकों की उसमें प्रविष्ट कराने की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। योग्यता की दृष्टि से विद्यार्थी विविध स्तर के थे। योग्यता के अनुसार उन्हें प्राइमरी, मिडल और अपर (हाई) वर्गो में दाखिल किया गया, और जून मास के समाप्त होने तक दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या 550 तक पहुँच गई थी। इसमें सन्देह नहीं, कि महर्षि के स्मारक के रूप में स्थापित यह स्कूल उस समय के लाहौर के अन्य स्कूलों से बहुत भिन्न था।[11]

17 अगस्त, 1886 को दयानन्द एंग्लो-वैदिक कॉलेज ट्रस्ट एण्ड मैनेजिंग सोसाइटी की रजिस्ट्री करवा दी गई। उस समय लालाचन्द एम. ए., ईश्वरदास एम. ए., मलिक ज्वालासहाय ठेकेदार, पण्डित गुरूदत्त एम. ए., साईदास, मदनसिंह द्वारकादास एम. ए., गंगाराम सिविल इंजीनियरिंग, जीवनदास, लाजपतराय तथा मूलराज एम. ए. आदि सोसाइटी के उन्नीस सदस्य थे।[12]

डी. ए. वी. स्कूल का दसवीं कक्षा का परीक्षाफल 1888 ई0 में प्रान्त में सर्वोत्तम रहा। इस आश्चर्यजनक सफलता से प्रभावित होकर जनता ने इसे कॉलेज बनाने की माँग की गुरूदत्त व साईदास ने इसका समर्थन किया। इस प्रकार कुछ लोग अविलम्बर कॉलेज खोलने के पक्ष में हो गए।[13]

पंजाब विश्वविद्यालय की सिंडीकेट ने 18 मई, 1889 को एक प्रस्ताव द्वारा कॉलेज को मान्यता प्रदान कर दी।14

दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूल तथा कॉलेज 1887 के लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर पण्डित गुरूदत्त ने अपने व्याख्यान में कहा था- ''ब्रह्मचर्य के बिना जीवन दु:खमय हो रहे है'' ''ब्रह्मचर्य का पालन कर सकना तब तक सम्भव नही है जब तक कि हम वेद तथा शास्त्रों का अध्ययन न करें। डी. ए. वी. कॉलेज से देश को एक बड़ा लाभ यह होगा, कि उसमें धर्मशास्त्रों तथा धर्म का ज्ञान कराया जाएगा।[15]

लालाा मूलराज और पण्डित गुरूदत्त के पत्रों को पढ़कर यह भली-भांती स्पष्ट हो जाता है कि डी. ए. वी. कॉलेज के संचालकों में संस्कृत की पढ़ाई के प्रश्न पर मतभेद था। लाला मूलराज और उनके साथी संस्कृत की शिक्षा के विरोधी नहीं थे, पर वे यह समझते थे कि पाठविधि में संस्कृत को अत्यधिक स्थान देने का यह परिणाम होगा कि विद्यार्थी संस्कृत के स्थान पर फारसी ले लेंगे (क्योंकि फारसी भी संस्कृत के विकल्प के रूप में पाठविधि में नियत थी) और यदि फारसी के शिक्षा की डी. ए. वी. स्कूल में व्यवस्था नहीं की गयी, तो उसमें विद्यार्थी प्रवेश प्राप्त करने में हिचकिचाने लग जाएँगे। इसलिए वे संस्कृत के पाठ्यक्रम को सरल व सुबोध रखना चाहते थे, और इसी कारण स्कूल विभाग में संस्कृत व्याकरण की पढ़ाई के लिए लघु-कौमुदी को नियत किया गया था।[16]

पण्डित गुरूदत्त, लाला राम, राय ठाकुरदत्त और लाला मुंशीराम सदृश आर्यसमाजी नेताओं के आर्यसमाज द्वारा स्थापित किये जाने वाली शिक्षण संस्थाओं के संबंध में जो विचार थे, डी. ए. वी. कॉलेज सोसायटी के बहुसंख्यक सदस्य उनसे सहमत नही थे। डी. ए. वी. कॉलेज में संस्कृत और वेदशास्त्रों तथा अंग्रेजी व आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों की पढ़ाई के सम्बन्ध में उनके विचारों को लालाा लाजपतराय के कुछ उद्धरणों से स्पष्ट किया जा सकता है-''अब यहाँ पर यह सवाल पैदा होता है कि स्वामीजी की यादगार में एंग्लो-वैदिक कॉलेज खोलने की तजबीज क्यों मंजूर हुई।17

बिहार में डी. ए. वी. आन्दोलन

डी. ए. वी. आन्दोलन का प्रकाश सुदूर बिहार प्रदेश तक भी फैला। बिहार में भी डी. ए. वी. शिक्षण संस्थाओं का प्रारंभ हुआ। परंतु ये शिक्षण संस्थायें डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्ध समिति के अधीन संचालित नहीं थी अपितु उत्तर प्रदेश की भाँति इनकी स्थापना स्वतंत्र रूप में आर्य समाजों द्वारा की गई। इन संस्थाओं के संस्थापकों ने भी महर्षि दयानन्द की स्मृति में ही इन संस्थाओं की प्रारंभ किया तथा इन शिक्षण संस्थाओं का स्वरूप डी.ए.वी. स्कूल लाहौर जैसा ही रखा गया। सम्भवत: दूरी के कारण साधनाभाव के कारण न तो डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्ध समिति इन स्थानों पर प्रबन्ध कर सकती थी और न ही बिहार के आर्य समाजी सुविधा पूर्वक लाहौर आ जा सकते थे, परंतु प्रेरणा की दौड़ की कोई दूरी नहीं होती इसलिए डी.ए.वी. का प्रकाश अगाधगति से बिहार में भी जा पहुंचा। बिहार में खोली गई डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

डी. ए. वी. माध्यमिक विद्यालय, गोपालगंज (बिहार)

यह विद्यालय सन् 1931 ई0 में आर्य समाज गोपालगंज द्वारा स्थापित किया गया। इसके संस्थापक स्वर्गीय दीनानाथ जी आर्य थे। स्थानीय आर्य समाज द्वारा नियुक्त प्रबन्ध समिति द्वारा इसकी प्रबन्ध व्यवस्था होती है।

यह विद्यालय सन् 1926 ई0 में प्राथमिक तथा 1931 ई0 में माध्यमिक विद्यालय के रूप में आरंभ हुआ। वर्तमान में जिले के अच्छे विद्यालयों में इसकी गणना है। इसका स्तर माध्यमिक विद्यालय का है तथा हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, संस्कृत की शिक्षा व्यवस्था है।

डी. ए. वी. उच्च विद्यालय, गोपालगंज (बिहार)

यह संस्था महर्षि दयानन्द के स्वप्नों को साकार करने हेतु वरिष्ठ आर्य नेताओं द्वारा सन् 1935 में स्थापित की गई। आर्य समाज गोपालगंज एवं प्रतिनिधि सभा बिहार द्वारा इस संस्था का संचालन होता है।

यह संस्था श्री दीनानाथ जी आर्य, श्री ब्रह्मचारी रामरक्ष जी, श्री रामवृक्ष प्रसाद जी, श्रीचन्द गोकुल प्रसाद जी एवं श्री हरिनन्दन पांडेय जी जैसे महान् व्यक्तियों की देन है। सन् 1937 ई0 में इस संस्था को उच्च विद्यालय के रूप में पूर्ण मान्यता प्राप्त हुई।

डी. ए. वी. माध्यमिक विद्यालय, सोनारी, जिला सिंहभूमि, जमशेदपुर

सन् 1935 में जिला सिंहभूमि जमशेदपुर में स्थित सोनारी नामक स्थान पर डी. ए. वी. माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की गई। इसकी स्थापना महर्षि दयानन्द ब्रजभाषी समाज द्वारा की गई थी। इसकी प्रबन्ध व्यवस्था आर्य समाज सोनारी द्वारा की गई थी। यहाँ मिडिल स्तर तक की शिक्षा दी जाती है।[18]

वैद्यनाथ प्रसाद ने सीवान में डी.ए.वी. कॉलेज खोला। डा. दुखन राम की जन्मशमी पर 1973 ई. में बाँकीपुर और भीषण पुर में दो महाविद्यालय खोले गये। धनवाद जिला के कनरासगढ़ में डी.ए.वी. कॉलेज खोला गया।

सीवान, धनवाद, झरिया, गोपालगंज, मीठापुर (पटना), पायडीह (धनवाद) गढ़वा, हारपुर, जमालपुर, जमशेदपुर, आदि स्थानों में डी.ए.वी. हाई स्कूल है। यहाँ सह-शिक्षा की व्यवस्था है।

गोपालगंज, खूसरूपुर, प्रतापदण्ड (वैशाली), मुंगेर, छपरा, मोकामा, मधुपुर (संस्थाल परगना), चिंतामनचक (पटना) रकसौल (पूर्वी चम्पारण) कनरासगढ़ और हजारीबाग में डी.ए.वी. मध्य विद्यालय है। खुसरूपुर में आर्यसमाज के अनेक विद्यालय है इसमें दयानन्द आर्य कन्या उच्च विद्यालय है।[19]

निष्कर्ष

इस प्रकार दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूलों का बिहार समेत पूरे भारत में एक संजाल फैला हुआ है। निस्संदेह दयानन्द एंग्लो-वैदिक स्कूलों ने आधुनिक शिक्षा को भारतीय सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों से आधुनिक शिक्षा को सम्पृक्त कर आधुनिक शिक्षा की एक ऐसी धारा का निर्माण किया है, जिसका आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में प्राय: अभाव पाया जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. दीनानाथ सिद्धान्तालंकार, आर्यसमाज की उपलब्धियाँ, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, 1975, पृ0 236
2. रामप्रकाश, 'पंडित गुरूदत्त विद्यार्थी, डी. ए. वी. प्रकाशन विभाग, दिल्ली-2010, पृ0 35
3. LAJPAT RAI, "THE ARYASAMAJ" DAV COLLEGE, MANAGING COMMITTEE, New Delhi-2001, i`0 125
4. रामप्रकाश, पूर्वोक्त, पृ0 36
5. सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्यसमाज का इतिहास, भाग-3, आर्य स्वाध्याय केन्द्र नई दिल्ली, पृ0 126
6. रामप्रकाश, पूर्वोक्त पृ0 37
7. उपर्युक्त, पृ0 39
8. सत्यकेतु विद्यालंकार, पूर्वोक्त, पृ0 127
9. उपर्युक्त पृ0 133
10. रामप्रकाश, पूर्वोक्त पृ0 41
11. सत्येकेतु विद्यालंकार, पूर्वोक्त पृ0 135
12. रामप्रकाश, पूर्वोक्त पृ0 41
13. उपर्युक्त, पृ0 43
14. उपर्युक्त, पृ0 43
15. सत्यकेतु विद्यालंकार, पूर्वोक्त, पृ0 139
16. उपर्युक्त, पृ0 143
17. उपर्युक्त, पृ0 149
18. दीनानाथ सिद्धान्तालंकार, पर्वोक्त, पृ0 238
19. अनुराग मिश्र, ''बिहार में आर्यसमाज आन्दोलन'', कोर्स वर्क, इतिहास विभाग, ल. ना.. मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, 2017-2018, पृ0 12-13

भारतीय संस्कृत साहित्य में मानवाधिकार का इतिहास

डॉ० विकास कुमार

(सहायक प्राध्यापक), राजनीति विज्ञान, विभाग, आदर्श महाविद्यालय, राजधनवार, गिरिडीह, झारखण्ड

मानवीय अधिकारों की अवधारणा भारत में वैदिककाल से ही पल्लवित एवं पुस्पित होती रही है, विश्व के देश जब वैचारिक एवं भौतिक धरातल पर मानवीय अधिकारों का विविध पक्षों को समझने की कोशिश कर रहे थे तब भारत समानता व समरसता एवं ''वसुदैव कुटुम्बकम'' का संदेश देकर मानवीय अधिकारों की प्रतिष्ठा एवं सम्मान को प्रतिष्ठापित कर रहा था। भारतीय दर्शन में मानवीय अधिकारों को गगनचुम्बी ऊचाइयाँ प्रदान की है। सब प्राणियों में स्वयं को देखना और सबके साथ समान व्यवहार करना, भारतीय मानवतावादी चिन्तन का मूल तत्व है। भारत में प्राचीनकाल में सबसे पुराने ग्रंथ 'ऋग्वेद' और उसके बाद 'अथर्ववेद' तथा कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में विभिन्न मानवाधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रच्छन्न रूप मिलते हैं।

उदाहरणार्थ, ऋग्वेद (मंडल 5, सूक्त 60, मंत्र 5) में कहा गया है :

अज्ये ठासेअकनि ठास एते।

सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।।

इसका आशय है कि कोई श्रेष्ठ या निम्न नहीं है। सभी बंधु है : सभी लोग सभी के हितों के लिए प्रयत्न करें तथा सभी सामूहिक रूप से प्रगति करें। इस प्रकार सभी मनुष्यों को समान एवं भाई माना गया है। ऋग्वेद का दूसरा मंत्र है - 'संगच्छधवं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। इसका अर्थ है-ऐ मानव प्राणी! आप सभी परस्पर सहयोग से साथ-साथ रहें, मित्रतापूर्वक एक दूसरे से वार्ता करें, एवं जीवन के साझे आदर्शों वाला ज्ञान प्राप्त करें। इसी प्रकार ऋग्वेद के दूसरे मंत्र (मंडल 10, सूक्त 191, मंत्र 4) में ऐसा ही भाव व्यक्त किया गया है :

समानों व आकृतिः समानों हृदयानि व।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

इसका अर्थ है- अपने संकल्पों, हृदयों एवं मनों में एकरूपता होने दो। सभी में परस्पर सहयोग के साथ जीने की शक्ति पुष्ट होने दो। इसके अलावा अथर्ववेद (समाज्ञान सूक्त) में समानता का अधिकार वर्णित है :

समानो प्रप सह वोत्रभागः

समानोयाक्त्रे सह वो युनज्मि

आराः नाभिमिवाभितः।।

अर्थात भोजन एवं जल में सभी को समान अधिकार है। जीवन रथ का जुआ सभी के कंधो पर समान रूप से टिका है। जिस प्रकार रथ के पहिए के आरे रिम और धुरी से जुड़कर एक दूसरे की मदद करते हैं, उसी प्रकार सभी मनुष्यों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से एक दूसरे की मदद करनी चाहिए।

जहां तक शिक्षा का सवाल है, 'महाभारत' में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति के चार प्रकार के कर्तव्य है : ईश्वर के प्रति, मां-बाप के प्रति, शिक्षकों के प्रति तथा मानवता के प्रति। इसी प्रकार 'हितोपदेश' में स्पष्ट किया गया है :

माता बैरी पिता शत्रु: येन बालों न पाठित:

अर्थात जिनके मां-बाप ने अपने बच्चों को नहीं पढ़ाया, से उनके दुश्मन है। इसके अलावा 'धर्मकोश' में धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लेख है :

पाषं अनैगम श्रेणी पूगव्रात गणादिषु।

संरक्षेत् समयं राजा दुर्गे जनपदे तथा।

अर्थात राजा वेद को मानने वालों तथा न मानने वाले दोनों तथा अन्यों का संरक्षण करें। इस प्रकार वैदिक धर्म को मानने वालों, अवैदिक धर्मो को मानने वालों तथा नास्तिकों को संरक्षण देना राजधर्म कहा गया है। इसमें पंथ- निरपेक्षता या सर्वधर्मसमभाव का बीज निहित है। इसी प्रकार 'मनुस्मृति' में भी कहा गया है :

क्षत्रियस्य परो धर्म: प्रजानामेव पालनम्।

निर्दिष्ट फल भोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते।।

अर्थात राजा का सर्वोच्च कर्तव्य अपनी प्रजा का संरक्षण है। जो राजा अपनी प्रजा से कर प्राप्त करता है तथा उसका संरक्षण करता है, वह धर्म के अनुसार कार्य करता है। इसके अलावा निम्न प्रकार से न्याय करना राजा का कर्तव्य माना गया है (अत्रि संहिता)

दुष्टस्य दंड: सुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य च संप्रवशद्धि:।

अपक्षपातोअर्थिषु राष्ट्र रक्षा पंचैव यज्ञा: कथिता नश्पणाम्।।

अर्थात दुष्टों को दंड देना, भले लोगों का सम्मान करना, न्यायप्रद तरीकों से राजकोष को समृद्ध करना, मुकदमे का निर्णय करने में निष्पक्ष होना, तथा राज्य की सुरक्षा करना, ये पांच कर्तव्य राजा के हैं। इसके अलावा कात्यायन ने यहां तक कहा है कि चोरी की गई संपति उसके मालिक को वापस की जाए और यदि वापस करना संभव न हो तो उसकी क्षतिपूर्ति की जाए। यदि चोर पकडा जाए मगर संपति बरामद न हो, तो चोर उसकी कीमत चुकाए अथवा राजा उसको चुकाए। 'राजतरंगिणी' में कल्हण ने कहा है कि किसी व्यक्ति की जमीन उसकी सहमति के बिना, मंदिर निर्माण तक के लिए भी नहीं ली जाए। यदि सही और गलत का निर्णय करने वाला ही अवैध कार्य करें, तो कानून का पालन कौन करेगा? इस प्रकार स्पष्ट है कि शासन का कर्तव्य है कि वह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करें। किसी स्त्री, राज्य या मंदिर की संपति को हड़पने वाले को कात्यायन ने अस्वीकार करने को कहा। इसी प्रकार कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में किसी महिला के साथ बलात्कार करने वाले को मृत्युदंड देने का प्रावधान किया गया था। इसके अलावा 'महाभारत' के शांतिपर्व में सभी वर्णो के लिए नौ धर्म-नियम बताए गए हैं :

अक्रोध: सत्यवचन संविभाग क्षमा तथा।

प्रजन: स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एवं च।

आर्जव भश्त्यभरणं नवैते सार्वर्णिका।।

अर्थात, क्रोध न करना, सही बात कहना, दूसरों के साथ संपति का साझा करना, क्षमा करना, मात्र अपनी पत्नी से बच्चे पैदा करना (यौन नैतिकता), पवित्रता, शत्रुता का अभाव, स्पष्टवादिता और अपने पर निर्भर लोगों का भरण-पोषण करना सभी वर्णो के सभी व्यक्तियों का कर्तव्य है। अन्यत्र कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति अपनी मां, पत्नी, पिता और बच्चों का परित्याग नहीं करे। यदि कोई व्यक्ति परित्याग करता है, तो वह दंड का भागी होगा। कात्यायन ने कहा है कि यदि कोई राजा धर्म के अनुसार (जिसका अर्थ राजधर्म है) लोगों के मामलों की समीक्षा करता है तो, लोग स्वत: अच्छा आचरण करते हैं तथा खुश रहते हैं। 'नारद स्मृति' में भी कहा गया है राज्य मुकदमे का अध्ययन करके विचारण करें तथा अपने प्रधान न्यायाधीश के परामर्श पर कानून के अनुसार निर्णय दे। 'मनुस्मृति' के अपराधी को निश्चित रूप से दंड देने को कहा गया है :

पिताअचार्य सुहन्माता भार्या पुत्र: पुरोहित:।

नादंअयो नाम राज्ञोअस्ति य: स्वधर्म न तिष्ठति।।

अर्थात अपराधी से संबंध रखने पर भी उसे बिना दंड दिये राजा के द्वारा नहीं छोडा जाना चाहिए। पिता, आचार्य, मित्र, मां, पत्नी, पुत्र या परोहित को भी अपराध करने पर बिना दंड के नहीं छोडना चाहिए। इसके अलावा शुक्रनीति में कहा गया है कि उचित मजदूरी वह है जिससे जीवन की आश्यकताएं पूरी हो जाएं क्योंकि कम मजदूरी, दूर्व्यवहार, अपमान, अशब्द, ज्यादा र्जुमाना थोपना कठिन दंड देने से कर्मचारियों में रोष व्याप्त होता है। इसके अलावा कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में कैदियों को भी अधिकार दिये गये हैं: यदि कोई अधिकारी कैदियों की नित्यक्रिया जैसे सोना, बैठना, भोजन करना, आदि में बाधा डालता है, तो उसे तीन पण और उससे अधिक के जुर्माने से दंडित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त मनु के अनुसार राजा छिपे हथियारों से वार न करे, न कंटीले, जहरीले या आग उगलने वाले हथियारों से वार करे। वह रथ पर बैठकर जीमन पर खडे व्यक्तियों पर वार ना करे। वह नंपुसक, समर्पण करने वाले या युद्धस्थल से भागने वाले योद्धा या बैठे हुए योद्धा या हार मानने वाले योद्धा पर वार न करे। वह सोने वाले, कवच खो गए व्यक्ति, नंगे व्यक्ति, मूकदर्शी और दूसरे से युद्ध संलग्न व्यक्ति पर वार न करें। वह उस पर वार न करे जिसका हथियार टूट गया हो, या जो विपत्ति में हो या जो बुरी तरह जख्मी हो और जो भय में हो।

अर्थर्ववेद में राजा के लिए कहा गया है -'प्रयं सर्वस्य पश्यत उत शुद्र उताये। अर्थात राजा सभी के प्रिय रहें, आर्यो तथा शुद्रों में समान रूप से प्रिय रहें। ऋग्वेद में और ज्यादा भार राजा पर डाला गया है : 'असि दभ्रस्य चिद् बृध:' अर्थात प्रजा में प्रत्येक को भोजन मिलें, ऐसी व्यवस्था राजा करें। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी कहा गया है : 'यत्र शुल्को न क्रियते अबलेन बलीयसी' अर्थात सबल दुर्बल को न सता सके। निर्बल से कोई सबल कोई शुल्क (जिसमें नाना प्रकार के लाभों से लेकर आज की रंगदारी शामिल की जा सकती है) न लें। अथर्ववेद में ही राजा और प्रजा दोनों पर नियंत्रण की बात कही गई है : 'ब्रह्मचर्येणा तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति'। अर्थात राजा और प्रजा दोनों अति न करें। अथर्ववेद में राजा के पांच गुण बताए गए हैं–

भद्रमिच्छन्त ऋषय: स्वविर्ददस्तपो दीक्षामुप निषेदुरगे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मे देवा उपसंनमन्तु।।

इसका अर्थ निम्नलिखित है :

क. यह दूरदर्शी हो।
ख. यह प्रजाजनों का भला चाहने वाला हो।
ग. उसमें स्वार्थ नहीं हो, बल्कि परोपकार की भावना से वह कार्य करें।
घ. प्रजा की तरह वह भी तपवान हो।
ऋ. प्रजा की तरह वह भी दृढ़ संकल्प वाला हो।

महाभारत में कहा गया है : न हि मनुषात्परतरं किंचिदस्ति (मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नही है) इसके अलावा निम्न श्लोक में सबके सुखी, निरोगी, शुभ और दुखरहित होने की कामना की गई है :

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे भवन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद् दु:ख भाग्भवेत्।।

इतना ही नहीं, कौटिल्य के अनुसार राजधर्म की स्थापना तभी हो सकती है जब प्रजा को सुख हो, तथा राजा, प्रजा के ही सुख में अपना सुख समझे:

प्रजा सुखे सुखं राज्ञ: प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञ: प्रजानां तु प्रियं हितम्।।

अर्थात प्रजा के सुख में राजा का सुख होता है और प्रजा के हित में राजा का हित। जो अपने को प्रिय हो, वह राजा का हित नहीं है, प्रजा को जो प्रिय हो, वही उसका हित है। इसी प्रकार 'गीता' में 'परित्रणाय साधूना विनाशाय व दुष्कृताम्' (सज्जनों के संरक्षण तथा दुष्टों के विनाश के लिए) ठीक ही कहा गया है।

मगर प्रचीनकाल में विभिन्न ग्रंथों में एक ही अपराध के लिए विभिन्न वर्णो के लोगों के लिए अलग-अलग दंड की भी व्यवस्था की गई जो भेदभाव का सूचक है। वैसे भारतीय संस्कृति तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (सारी धरती एक परिवार है) को मानती रही है जिसका निहितार्थ है कि राष्ट्र की सीमा से परे लोगों की समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व की भावना की हिमायती हमारी संस्कृति है।

मगर वैदिक काल के बाद भारतीय समाज में नाना प्रकार की समस्याएं आई तथा शासन-व्यवस्था नागरिकों के अधिकारों की सीमित करने लगी। मध्यकाल में विदेशी आक्रमणकारियों ने नागरिकों के जान-माल की काफी नुकसान पहंचाया। देशी राजागण अपने स्वार्थो में लगे होने के कारण एकजुटता से न तो आक्रमणकारियों का सामना किए और न अपने नागरिकों के हितों की रक्षा में आगे बढ़े। नाना कारणों से अपने राज्य का विस्तार करने के लिए युद्ध पर युद्ध लड़े जाते रहे जिसके परिणामस्वरूप मानवाधिकारों का हनन बार-बार अमानुषिक तरीके से होता रहा। अकबर जैसे उदार राजा अपवाद थे और औरंगजेब जैसे अनुदार शासक अधिक थे। वास्तव में, मानवाधिकार आधुनिक अवधारणा है। ब्रिटिश उपनिवेशकाल में मानवाधिकारों का बहुत हनन हुआ। सन् 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया मगर अंग्रेजी शासन की विपुल सैन्य शक्ति, कूटनीति तथा रणनीति के कारण उसे कुचल दिया गया और 1860 में भारतीय दंड संहिता (इंडियन पैनल कोड) बनाया गया जिसमें विभिन्न अपराधों के लिए दंड का स्वरूप निर्धारित किया गया। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद 1895 में कांग्रेस ने भारत का संविधान बिल तैयार किया जिसे 'होमरूल' के नाम से हम जानते हैं। इसमें तात्कालिक उद्देश्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा न्याय में समानता शामिल थे जबकि दीर्घकालिक उद्देश्य आजादी प्राप्त करना था। इसके अलावा कांग्रेस ने यह भी मांग की थी कि भारत के लोगों को वे सारे अधिकार मिलें जो ब्रिटिश नागरिकों को उस समय प्राप्त थे। 1925 के कामनवेल्य कम्युनिटी बिल में अधिकारों की घोषणा में सात मौलिक अधिकार शामिल थे। इन मांगों पर सुनवाई के लिए साइमन कमीशन भारत आया था मगर उसने एक भी मांग नहीं मानी।

निष्कर्षत: मानव अधिकार यद्दपि अध्ययन हेतू अपेक्षाकृत नवीन विषय है। तथापि यह मानव के जन्म से ही प्रारंभ होते हैं। संस्कृत साहित्य में इस विषय के अध्ययन की दिशा में अधिक प्रयास नहीं हुए हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि संस्कृत साहित्य मानवाधिकारों का उदघोष करने में अग्रणीय है। प्राचीन संस्कृत साहित्य वेद, ''रामायण'', ''महाभारत'', ''श्रीमद्भागवत गीता'' तथा जैन, बौद्ध एवं सिक्ख धर्म ग्रन्थों में मानवाधिकारों की अवधारणा विद्यमान है। संस्कृत साहित्य में विपरीत आचरण करने वाले मनुष्यों के प्रति भी अनुकूल आचरण करने के लिए प्रेरित किया गया है। सभी को समान दृष्टि से देखना, सब से प्रेम करना आदि मानवाधिकारों के मूल तत्वों का यत्र-तत्र वर्णन है।

संदर्भ सूची :-

1. संतोष कुमार, संपादकीय, मानवाधिकार: नई दिशाएं, अंक 1, 2004
2. विंदेश्वर पाठक, सिर पर मैला ढोने की प्रथा : एक सामाजिक अभिशाप, मानवाधिकार : नई दिशाएं अंक 1,2004
3. युनिसेफ, दुनिया के बच्चों की स्थिति 2005, नई दिल्ली
4. एम. रामा जॉइस, भारतीय कल्चर वैल्यूज फॉर द प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स, ओरिएंटल एंथ्रोपोलॉजिस्ट, 4 (1) जनवरी 2004
5. प्रभाकर सिन्हा, ह्यूमन राइटस, पी.यू.सी.एल., पटना
6. चमन लाल, बाल श्रम, मानवाधिकार : नई दिशाएं अंक 1, 2004
7. अर्जुन देव एवं अन्य (सं) (1998) मानव अधिकार, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली।

भारतीय राजनीति एवं कश्मीर मुद्दा: अनुच्छेद 370 के सन्दर्भ में

अमोद कुमार दास

सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), राजनीतिक विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध-सारांश

5 अगस्त 2019 को भारत सरकार द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य का भौगोलिक विभाजन करके जम्मू-कश्मीर और लद्दाख दो केन्द्र शासित प्रदेश बना दिया गया तथा कश्मीरियों की अस्मिता कहे जाने वाले अनुच्छेद 370 के खण्ड 2 और 3 को निष्प्रभावी कर दिया गया जिससे उत्पन्न हो रहे विभिन्न जन विरोधों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। कश्मीर और उसकी परिस्थिति को समझने के लिए हमें मुख्य रूप से जून 1947 से नवम्बर 1948 तक के विभिन्न घटनाक्रमों को समझना पड़गो। कुछ विद्वानों का मानना है कि अनुच्छेद 370 समाप्त करने की प्रक्रिया लोकतांत्रिक नहीं थी क्योंकि जम्मू-कश्मीर में निर्वाचित सरकार अस्तित्व में नही थी और वहां पर राज्यपाल शासन लागू था। जम्मू-कश्मीर की जनता ने अनुभव किया कि राज्य को विभाजित करके एवं विशेष राज्य का दर्जा समाप्त करके केन्द्र सरकार ने उनके साथ धोखा किया है। प्रस्तुत लेख में भारतीय राजनीति में कश्मीर मुद्दे के महत्व एवं प्रभाव के साथ-साथ धारा 370 के समाप्त होने से भारतीय राजनीति पर पड़ने वाले दीर्घकालिक प्रभाव का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद, कश्मीरी अवाम, गवर्नेंस एजेण्डा, मानवाधिकारों का उलघंन, रिप्रजेन्टेटिव आफ दी पीपुल्स संशोधन बिल

विषय-वस्तु

भारत एक लोकतान्त्रिक देश है जिसमें बहुदलीय व्यवस्था अपनाई गई है। भारत की स्वतत्रंता के बाद लगभग तीन महीनों तक कश्मीर एक स्वतंत्र रियासत था, कश्मीर के महाराजा हरिसिंह की इच्छा स्वतंत्र रहने की थी लेकिन पाकिस्तानी कबायलियों के आक्रमण के फलस्वरूप कश्मीर को भारत के साथ मिलना पड़ा। महाराजा द्वारा 26 अक्टूबर 1947 को अधिमिलन पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये जाने के बाद कश्मीर का विलय भारत में हो गया। महाराजा का यह निर्णय निकट पड़ोसी पाकिस्तान को पसन्द नहीं आया और उसने कश्मीर पर विभिन्न प्रकार से दबाव बनाना शुरू किया। जब इससे बात नहीं बनी तो सीधे सैन्य आक्रमण द्वारा कश्मीर को अपने पक्ष में करने का हथकण्डा अपनाया लेकिन फिर भी सफल नही हुआ। इस प्रकार जम्मू-कश्मीर को लिए दो परमाणु सम्पन्न देशों के बीच 1947 से लेकर आज तक परस्पर टकराव होता रहा है। पाकिस्तान यह मानता है कि मुसलमानों को हिन्दू शासन के तहत दमन किया जाता है और इसलिए उन्हें अलग राज्य की जरूरत है। इसके अलावा पाकिस्तान के राष्ट्रवाद के धार्मिक नैतिक महत्व को जीता जाना जरूरी है, इसके विपरित भारत की पहचान धर्मनिरपेक्षता में मजबूत विश्वास पर निर्भर करती हैं। कश्मीर का संघर्ष, भौगोलिक स्थिति, धर्म, भाषा और संस्कृति पर आधारित पहचान में निहित रहा है।

हिन्दू और मुसलमान, सूफ़ी इस्लाम और कट्टरपंथी इस्लाम तथा धर्मनिरपेक्षतावाद एवं सरकार के विरूद्ध केन्द्र सरकार के नियंत्रण के बीच टकराव होता रहा है। राजनीतिक स्वायत्तता जिसकी शुरूआत कश्मीर पर हुई थी वह केन्द्र सरकार ने कम कर दिया, इसके बावजूद जम्म-ूकश्मीर पर आधिकारिक नियंत्रण लगता रहा है। कश्मीर में भारतीय सैनिकों की बड़ी संख्या में मौजूदगी के कारण

स्थानीय लोगों को निजी एवं सार्वजनिक जीवन में भारी नियंत्रण का सामना करना पड़ता रहा है जिससे वे अपने दैनिक जीवन को चलाने में अक्षम और स्वतंत्रताहीन अनुभव करते रहे है। चुनावों में धोखाधड़ी, धमकियां तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं द्वारा गड़बड़ी जैसी प्रक्रिया बार-बार दुहराई जाती रही है, इसके अलावा आम कश्मीरी अपने बुनियादी जरूरतों जैसे कि स्वास्थ्य, सेवा, पानी और शिक्षा को पूरा करने के लिए संघर्ष करते रहे है जिसके अभाव में कश्मीरी अवाम में अधिक नाराजगी और निराशा होती रही है। कश्मीर में विद्रोहियों और भारतीय सेना द्वारा मानवाधिकारों का उलघंन व्यापक रूप से होता रहा है जिससे युद्ध अपराध और मानवता के खिलाफ हिंसा आम हो गये। भारतीय स्वाधीनता अधिनियम के अनुच्छेद 7 के अनुसार-'भारत के विभिन्न रियासतों पर ब्रिटने के सम्राट का आधिपत्यसमाप्त हुआ' अब वे बिना दोनों अधिराज्यों में सम्मिलित हुए स्वाधीन रह सकती थी। कैबिनटे मिशन ने भी 16 मई 1946 में सत्ता हस्तांतरण के पश्चात रियासतों की स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा था कि सत्ता अब न ब्रिटिश सरकार रख सकती है और न ही नई सरकार को दे सकती है। अब चुनाव रियासत के महाराजा के हाथ में था कि दोनों डोमिनियन में से किसी एक में मिलें या फिर स्वतत्रं रहें। पाकिस्तान का विचार था कि चूकिंकश्मीर की अधिकांश जनसंख्या मुसलमान थी इसलिए विभाजन के तर्क के अनुसार उसे पाकिस्तान में सम्मिलित होना चाहिए लेकिन महाराजा का झुकाव स्वाधीनता की ओर अधिक था।

पाकिस्तान प्रतिक्षा नहीं कर सकता था, उसने राज्य पर प्रत्येक प्रकार से दबाव डालना शुरू किया, गतिरोध के बावजूद आर्थिक प्रतिबन्ध लगाया जिससे वहांके लोगों को दैनिक सुविधायें भी पाना कठिन हो गया। अन्ततः पाकिस्तानी सेना द्वारा प्रशिक्षित हजारों कबायलियों ने कश्मीर राज्य पर आक्रमण कर दिया। महाराजा ने राज्य की रक्षा के लिए भारत से अनुरोधकिया जबकि भारत सेना भेजने से पहले अधिमिलन चाहता था और महाराजा द्वारा 26 अक्टूबर 1947 को अधिमिलन पत्रपर हस्ताक्षर कर दिये जाने के बाद 27 अक्टूबर को भारतीय सेना श्रीनगर पहुंची। कश्मीरपर अधिकार करने का दूसरा प्रयत्न पाकिस्तान ने 1965 में किया। पाकिस्तान मानता था कि 1962 में चीन से लड़ने के बादभारत दुर्बल हो गया है इसलिए पाकिस्तानी आक्रमण का सामना नही कर सकता, जल्द ही पाकिस्तान अपनी भूल को हार केरूप में स्वीकार कर लिया। भारत ने पाकिस्तान को अपनी विनम्रता और शक्ति दोनों का परिचय दिया, महत्वपूर्ण लड़ाईयां जीतकर तथा हाजीपीर दर्रेपर अधिकार करके युद्ध का क्षेत्र बढ़ाकर उसे पश्चिमी पंजाब में अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के भीतर पहुंचा दिया। ताशकन्द समझौते के बाद पंजाब, सिंध एवं जम्मू-कश्मीर में अपने क्षेत्र पाते ही पाकिस्तान ने कश्मीर विवाद को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर लाना चाहाऔर कई प्रकार से भारत पर दबाव डाला लेकिन सफल नही हुआ। 2 जुलाई 1972 को भारत और पाकिस्तान ने शिमला समझौते पर हस्ताक्षर करके यह माना था कि दोनों अपने झगड़े शान्तिपूर्ण ढंग से द्विपक्षीय वार्तालाप के माध्यम से सफल झायेगें लेकिन पाकिस्तान अपने वादे से मुकर गया। भारत ने कश्मीर से वादा किया था कि यदि स्थिति अनुकूल रही तो उसे औरअधिक स्वायत्तता दी जाएगी लेकिन यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि कश्मीर में पाकिस्तान का किसी भी प्रकार काहस्तक्षेप सहन नही किया जाएगा।

1974 में भारत सरकार ने शेख अब्दुल्ला तथा मिर्जा अफजल वेग के साथ बातचीत शुरू किया, शेख पुनः सत्ता प्राप्त करना चाहते थे लेकिन यह भी चाहते थे कि भारत वे सारे अधिकार छोड़ दे जो उनको पद सेहटाने का उसे मिल गये थे ताकि वह कश्मीर में काम कर सके। कई स्तरों पर बातचीत करने के बाद श्रीमती गांधी ने 24 फरवरी 1975 को कश्मीर समझौते की घोषणा कर दी। मीर वाईज मुहम्मद फारूक तथा अन्य कई लोग इस समझौते से अप्रसन्न थे और वे इसे भारत के पक्ष में किया गया विश्वासघात मानते थे। समझौते की मुख्य धारा थी कि जम्मू-कश्मीर राज्य जो भारत की एक इकाई है भारतीय संविधान की धारा 370 के अर्न्तगत शासित होगा, अवशिष्ट शक्तियाँ राज्य के पास रहेगें। फिर भी भारतीय संसद को यह अधिकार होगा कि भारत की क्षेत्रीय एकता और अखण्डता अक्षुण्य बनी रहे। शेख अब्दुल्ला को राज्य कांग्रेस पार्टी का अध्यक्ष सर्वसम्मति से चुनकर मुख्यमंत्री पद ग्रहण कराया गया क्योंकि मीर कासिम नेकश्मीर समझौते की घोषणा से एक दिन पहले ही पद त्याग दिया था। कश्मीर समझौता इस बात को लेकर स्पष्ट था किजम्मू-कश्मीर का भारत के साथ अधिमिलन सुनिश्चित था और शेख ने सार्वजनिक स्तर पर इसका समर्थन किया। पाकिस्तानने अपने स्वभाव के अनुसार विरोध किया तथा भुट्टो ने 28 फरवरी 1975 को अपने देश में इसके विरूद्ध हड़ताल का आह्मानभी किया। 1 मार्च को उन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ में शिकायत की कि यह समझौता शिमला समझौते तथा संयुक्त राष्ट्र कीजनमत संग्रह की मांग दोनों का उल्लंघन करता है, चीन भी इस विरोध का समर्थन करके पाकिस्तान को भारत के विरूद्ध अप्रैल 1975 में शेख अपने राज्य के आजाद कश्मीर से विलय की बात करने लगे। जून 1975 में आपातकाल लग जाने केबाद कई राजनीतिक विरोधियों को बन्दी बना लिया गया परन्तु कश्मीर पर इसका कोई प्रभाव नही पड़ा। मार्च 1977 के चुनाव में कांग्रेस को करारी हार मिली और जनता पार्टी सत्ता में आई। श्री मोरार जी देसाई देश के नयेप्रधानमंत्री बने, जम्मू-कश्मीर में कांग्रेसी विधायकों के समर्थन

वापस ले लेने से शेख सरकार गिर गयी, परिणाम स्वरूप तत्कालिन राज्यपाल एल0के0झा0 ने विधान सभा भंग कर दी और पुनः चुनाव कराने का आदेश दे दिया। सभी राजनीतिकदलों ने इस चुनाव में भाग लिया तथा चुनाव जीतकर केवल अपने हितों के लिए सरकार बनाना इनका उद्देश्य था। शेख अब्दुल्ला भारी बहुमत से विजयी हुए विधान सभा के 76 स्थानों में से नेशनल कांफ्रेंस को 47 सीटें प्राप्त हुई थी, जनता पार्टी को 13, कांग्रेस को 11, जनसंघ को 3, जमायते इस्लामी को एक तथा शेष दो स्थान निर्दलीय उम्मीदवारों को मिले। 1977 आते आते सरकार में छोटे कर्मचारियों से लेकर बडे बड़े नेताओं तक भ्रष्टाचार फैल चुका था, दूसरी ओर अधिकतर लोगगरीबी और अभावग्रस्त जीवन जी रहे थे, चारों ओर बेरोजगारी थी। नवम्बर 1977 में एक अध्यादेश द्वारा राज्य सरकार ने किसी भी व्यक्ति को बिना कानून का सहारा लिए दो वर्ष तक बन्दी बनाए रखने का अधिकार प्राप्त कर लिया। शेखजम्मू-कश्मीर की स्थिति पर संदेह प्रकट करने लगे इसके पश्चात अपने मंत्रिमण्डल के सभी सदस्यों को वफादारी की शपथ लेने का आदेश पारित करवाया। उपमुख्यमंत्री मिर्जा अफजल बेग ने ऐसा करने से इनकार कर दिया परिणाम स्वरूप उन्हेंनेशनल कांफ्रेंस से बाहर निकाल दिया गया। मीर वाइज मुहम्मद फारूक ने भी शेख की बढ़ती तानाशाही का विरोध किया।

कश्मीर में चुनाव के 6 दिन बाद 6 जुलाई को पाकिस्तानी सेना ने भुट्टो का तख्ता पलटते हुए उन्हें पद से हटा दिया औरजनरल जिया-उल-हक ने राष्ट्रपति के रूप में शासन संभाला उन्होंने लोकतंत्र का खात्मा कर 11 वर्ष तक सैनिक शासनकायम रखा। मर्थन दिया। शेख अब्दुल्ला कुछ दिन के बाद ही इस समझौते से अलग हटकर यह सिद्ध कर दिए कि वे बदले नही है, सन् 1971 में भारत पाक युद्ध के समय जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री जी0एम0 सादिक की मृत्यु हो गई और राज्य कांग्रेस अध्यक्ष सैयद मीर कासिम ने सरकार संभाली। भारत सरकार ने 1972 में मिर्जा अफजल वेग तथा जी0एम0 शाह को मुक्त करदिया, प्लेबिसाइट फ्रंट एक बार फिर राज्य की राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए स्वतंत्र था क्योंकि उस पर लगाप्रतिबन्ध 12 फरवरी 1972 को समाप्त हो गया था। जम्मू-कश्मीर में शिक्षा निःशुल्क थी और वहाँ की शैक्षिक संस्थाओं से बड़ी संख्या में स्नातक पढ़कर निकलते थे परन्तु उनके लिए पर्याप्त नौकरियाँ नहीं थी। इस पर शेख अब्दुल्ला की सरकार ने जम्मूऔर पूंछ में सरकारी नौकरियाँ विशेषकर शिक्षकों के पदों पर स्थानीय नागरिकों के बजाय घाटी के पढ़े स्नातकों को नियुक्तकरना शुरू किया इसके परिणाम स्वरूप 1978-79 में इन क्षेत्रों में कई आन्दोलन हुए। लोगों ने क्षेत्रीय असंतुलन के प्रतिविरोध प्रकट कर लद्दाख सहित कई क्षेत्रों के लिए स्वायत्तता की मांग की। सत्ता में तथा नेशनल कांफ्रेंस के अध्यक्ष बने रहने के लिए शेख अब्दुल्ला ने रिप्रजेन्टेटिव आफ दी पीपुल्स संशोधन बिल पारित करवा लिया जिसके अनुसार जो सदस्य अपने दल के अनुसार मत नही देगा वह अपने आप विधानसभा से अपना स्थान खो देगा। आन्तरिक झगड़ों के कारण जनतादल की सरकार अधिक दिन तक नहीं चल सकी। जनवरी 1980 में चुनाव हुआ परिणामस्वरूप पुनः श्रीमती गांधी प्रधानमंत्री बनी। 8 सितम्बर 1982 को शेख साहब का स्वर्गवास हो गया।

शेख की मृत्यु के बाद डॉ0 फारूक अब्दुल्ला को राज्य दलका नेता चुनकर मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलाई गई। फारूक के बहनोई जी0एम0 शाह भी सत्ता के लिए उम्मीदवार थे लेकिन उनकी अवहेलना कर दी गई। 1983 में विधानसभा चुनाव में डॉ0 फारूक ने कांग्रेस के प्रस्तावों की अवहेलना करकेचुनाव में उनका सामना करने का निर्णय लिया। इस प्रकार केन्द्र सरकार से उनके सम्बन्ध बिगड़ने लगे। 26 अप्रैल 1984 को एक योग्य एवं अनुभवी प्रशासक श्री जगमोहन को राज्य का राज्यपाल बनाया गया। उन्हें विशेष रूप सेबिगड़ती हुई कानून व्यवस्था सभालने में डॉ0 फारूक अब्दुल्ला की सहायता के लिए लाया गया था। इसी बीच जी0एम0 शाहने नोडल कोंफ्रेंस को विभाजित करवा दिया और जुलाई 1984 में डॉ0 फारूक अब्दलुला को सत्ता से हटाकर कांग्रेस के समर्थन से अपनी सरकार बनाकर स्वयं मुख्यमंत्री बने। जब कांग्रेस ने अनुभव किया कि कानून व व्यवस्था बिगड़ती चली जा रही है और जी0एम0 शाह उसे संभालने में असमर्थ है तो उसने अपना समर्थन वापस ले लिया तत्पश्चात शाह ने त्यागपत्र देदिया और वहॉ राष्ट्रपति शासन लागू हो गया। अक्टूबर 1984 में इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद उनके पुत्र राजीव ने सत्तासंभाली और राजीव-फारूक समझौते के बाद डॉ0 फारूक ने कांग्रेस की सहायता से मिली जुली सरकार बनाकर नवंबर 1986 को मुख्यमंत्री का पद संभाला। 1987 के चुनावों के लिए जमायते इस्लामी, अवामी एक्शन कमेटी तथा अन्य छोटे दलों ने मिलकर एक दल बनाया-मुसलिम यूनाइटडे फ्रंट। उन्हांने एक संयुक्त चुनाव घोषणा पत्र एवं एक संयुक्त चुनाव चिन्ह के साथ नेशनल कांफ्रेंस व कांग्रेस कामुकाबला करने को ठानी। परिणाम नोनल कान्फ्रेंस तथा कांग्रेस के पक्ष मे रहा। डॉ0 फारूक फिर मुख्यमंत्री बने। मुस्लिम यूनाइटटे फ्रन्ट ने इसका पूरा लाभ उठाया और अपने सिद्धान्तों के प्रचार में जनता की सहानुभूति पाई। मुस्लिम यूनाइटेट फ्रन्ट की सफलता यह थी कि लोग समझने लगे कि राजीव गांधी व फारूक अब्दुल्ला ने उनके मतदान का अधिकार छिन लिया था उनके साथ धोखा हुआ। मुस्लिम यूनाइटेट फ्रन्ट कश्मीरी मुसलमानों को यह समझाने में सफल होगया कि खराब प्रशासन, चुनावों में बेइमानी तथा अन्य

कई समस्याए कश्मीर के भारत में शामिल हो जाने के कारण थी, उन्हें यह विश्वास दिलाया गया कि यदि वे स्वाधीन या पाकिस्तान जैसे मुस्लिम देश का भाग होते तो ये समस्याएँ न होती, सबके पास नौकरी होती और बिना किसी कठिनाई के अपनी तथा अपने परिवार की आवश्कताओं को पूर्ण करते। इस प्रकार राजीव-फारूक समझौता काफी हानिकारक सिद्ध हुआ। 1986-87 के दौरान उग्रवादियों ने एक प्रकार से युद्ध शुरू कर दिया जिसका उद्‌दश्‍य समस्त मुसलमान जनता को राज्यतथा केन्द्रीय सरकारों और स्थानीय प्रशासन से काट दिया जाना था। जनवरी 1990 तक उग्रवादी घाटी में सामान्य जीवनको तहस-नहस करके राज्य प्रशासन को अपंग कर चुके थे कश्मीर समस्या का सैनिक हल निकालने के विकल्प को त्यागने के बाद पाकिस्तान आई0एस0आई की सहायता से वहां के नागरिकों को भारत के विरूद्ध भड़काना शुरू किया। श्री जगमोहन कई प्रकार की नवीन तथा सख्त कार्यवाही द्वारा थोड़े समय में ही स्थिति संभालने में सफल हुए। उन्होंनें 9 मील लम्बी सीमा पर सुबह से शाम तक कर्फ्यू लगा दिया, सीमा सुरक्षा बल को तलाशी व बन्दी बनाने के विशेषाधिकार दे दिए। उन्होंने समस्त विद्रोही संगठनों का बहिष्कार कर प्रशासन को भी सुदृढ़ किया। अप्रैल 1990 में घर-घर तलाशी आरम्भकी और कई अपहरणकर्ताओं और आतंकवादियों को बन्दी बनाकर हत्या के कई मामलों को सफलझाया। जगमोहन की सफलता फारूक अब्दुल्ला को नही भा रही थी उन्होंने राजीव गांधी पर उन्हें वापस बुलाने के लिए जोर डालना शुरू किया। कांग्रेस ने जगमोहन पर मुसलिम विरोधी होने का आरोप लगाया और उन्हें सख्त कदम उठाने का दोषी ठहराया। अवामीएक्शन कमेटी के अध्यक्ष मौलवी फारूक की हत्या के बाद जगमोहन को राज्यपाल पद से त्यागपत्र देना पड़ा।

जगमोहन के स्थान पर श्री गिरीश चन्द्र सक्सेना को कश्मीर का राज्यपाल नियुक्त किया गया। नये राज्यपाल को दिल्ली से विशेष आदेश था कि वे सख्ती को दरू ही रखे इसका नतीजा यह हुआ कि जेकेएलएफ का महत्वपूर्ण स्थान पाकिस्तान के पक्षधर संगठनोंने ले लिया विशेषकर जमायते इसलामी ने। राज्यपाल के बदलने और नये राज्यपाल के अपने पद पर जमने के दौरान उग्रवादियों ने स्वयं को हर तरह से सुदृढ़ करलिया था। अक्टूबर 1991 तक कश्मीर का पूरा नक्शा ही बदल गया था। उग्रवादी अपने को मुजाहिद कहने लगे और उनका संघर्ष जेहाद ''धर्मयुद्ध'' कहलाने लगा था। सक्सेना के काल की आंतकी घटनाए प्रशासन पर हावी होने लगी और प्रशासनको अक्षम, अनिश्चित एवं दुलमलु समझा जाने लगा। कश्मीरी पंडितों को घाटी से बाहर निकाल दिया गया और जो थोड़े बहुत बचे थे उनकी निर्मम हत्या कर दी गई। गिरिश चन्द्र सक्सेना ने स्वयं को स्थिति संभालने के असमर्थ पाकर 10 मार्च1993 को त्यागपत्र दे दिया। परिणाम स्वरूप सोपारे, अनंत नाग एवं श्रीनगर विश्वविद्यालय जैसे स्थानों पर उग्रवादी संगठनों के केन्द्र बन गये। इन क्षेत्रों में उग्रवादियों का राज चलता था प्रशासन के लिए ये क्षेत्र वर्जित हो गये थे, उग्रवादी एक प्रकार से समानान्तर सरकार चला रहे थे। 11 मार्च 1993 को भारत के प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव ने भी संसद में कश्मीर की स्थितिपर असंतोष व्यक्त किया था और कहा था कि समस्या के समाधान के लिए एक नई कार्य प्रणाली की आवश्यकता है। सेवानिवृत जनरल कृष्ण राव को नया राज्यपाल नियुक्त किया गया जिन्होनें 12 मार्च 1995 को शपथ ली।1995 में बदर, लाधी, राही, तथा मोहियुद्‌दीन नामक कट्‌टरपंथी आतंकी जेल में थे घाटी के 4 मुख्य उग्रवादी संगठनों के मुखिया होने के नाते उन्हें हथियार बांटने सुरक्षा बलों पर आक्रमण करने की योजना बनाने तथा हथियारों और आर्थिक सहायता के लिए आई एस आई से सम्बन्ध स्थापित करने के अभियोग में बदी बना लिया गया था तभी अचानक हिंसात्यागकर कश्मीर संकट को सफलझाने के लिए बातचीत करने की इन लोगों ने घोषणा कर दी। घाटी में 7 वर्षो से चल रहे उग्रवाद के इतिहास में पहली बार किसी पृथकतावादी संगठनो ने वार्तालाप में दिलचस्पी दिखायी। हुर्रियत कांफ्रेंस में घबराहटफैल गई वह इसलिए कि उसके चारों नेताओं को घाटी के विभिन्न क्षेत्रों में काफी सम्मान मिलता था। बाबर बदर एक कट्‌टरउग्रवादी के रूप में मुस्लिम जांबाज फोर्स का अध्यक्ष था, और कुपवाड़ा में कार्यवाही के लिए श्रीनगर जेल से भागा था। बिलाल लोधी वरिष्ठ हुर्रियत नेता गनी लोन का सहायक था। मोहियुद्दीन मुसलिम मुजाहिदिन का उपाध्यक्ष था, धर उससमय जम्मू की जेल मे था लेकिन शान्ति के पक्ष में था। इन चारों ने शान्ति प्रस्ताव के पहल से न केवल हुर्रियत के पॉव तले जमीन खिसका दी बल्कि कड़ी निन्दा भी की। लेकिनहुर्रियत नेता शब्बीर शाह ने इन सबको सरकारी प्रचार कहकर इसका खंडन कर दिया और चारो नेताओं ने हुर्रियत की आलोचना करके एक आम कश्मीरी की भावनाओं को ही आवाज दी। उस समय आम कश्मीरी का हुर्रियत नेताओं के वैभवपूर्ण जीवन शैली और नेतृत्व की कठोरता के कारण पूरी तरह मोहभंग हो गया था। कश्मीर की बदलती हुई राजनीतिक परिदृश्य और पाकिस्तान से मोहभंग होने के कारण उग्रवादी संगठनों ने आत्मसमर्पण करना शुरू किया। मई 1996 में लोकसभा चुनावों के साथ खामोशी थी, घाटी में न कोई विरोध हुआ ना ही गोली चली प्रशासन ने समझा कि यह समय बदलने का संकेत है फिर अचानक 24 मार्च की प्रात: 11:30 पर हजरतबल समाधि पर एकभीषण मुठभेड़ का समाचार मिला। तत्कालिन प्रधानमंत्री श्री पी0 वी0 नरसिहं राव जिस समय दिल्ली के ऐतिहासिक लाल किले से चुनावी भाषण में कह रहे थे कि वे कश्मीर

में भी पंजाब की भांति शान्ति स्थापना कराने के उद्‌देश्य से चुनाव करवाना चाहते है ठीक उसी समय वरिष्ठ अधिकारी हजरतबल समाधि की ओर भाग रहे थे जहाँ दो पुलिसकर्मी और 8 उग्रवादी मारे गये थे पकिस्तान के पक्षधरसंगठन हिजबुल मुजाहिदिन ने चुनाव बहिष्कार की धमकी दी लेकिन प्रशासन चुनाव करवाकर विद्रोहियों को मुहतोड़ जवाबदेना चाहता था।

1996 के विधानसभा चुनावों में राज्य सरकार की ओर से कोई सहायता नही मिली बारामूला एवं कुपवाड़ा में सफलता पूर्वक निश्पक्ष चुनाव करवाने के बाद राज्य सरकार ने शेश चुनावों काफी गड़बड़ी की, चुनावो मे बेइमानी तथा छल की शिकायते भी मिली। इन चुनावो में फारूख अब्दुल्ला को जना देश मिला और 8 अक्टूबर को मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। 6 अक्टूबर 1997 को अपने कार्यकाल का एक वर्ष पूरा करने के बाद फारूक अब्दुल्ला ने घोषणा की कि सेना और अर्द्धसैनिकबलों को श्रीनगर, अनन्तनाग तथा बारामूला क्षेत्रों से हटा लेने तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने का काम पुलिस को सौप देंगे। राज्य की सामान्य स्थिति करने का उन्होंनें दावा किया किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ फिर भी 1997 के अन्त तक जन जीवन सामान्य होने लगा। पर्यटकों का आना जाना बढ़ गया और व्यापार में वृद्धि होने लगी। इतना होने के बावजूद भी फारूक सरकार द्वारा कश्मीर के वास्तविक और मूल समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया गया। भारतीय जनसंघ अपनी स्थापना के समय से ही कश्मीर समस्या से जुड़ा रहा है। डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने कश्मीर समस्या का विश्लेषण राष्ट्र की एकता और अखण्डता के रूप में किया। वे कश्मीर के भारत के साथ पूर्ण एकीकरण पर बलदेकर जम्मू-कश्मीर राष्ट्र तथा भारत के ऐसे संवैधानिक सम्बन्धों का विरोध किया जो एकीकरण के मार्ग में बाधक थे। एकीकरण के मुद्‌दे पर प्रजापरिषद द्वारा किये गये आन्दोलन को डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। श्रीमुकर्जी का व्यक्तित्व बहुआयामी था, वे शिक्षा, राजनीति, और सेवा क्षेत्र के साथ-साथ आजीवन राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए संघर्ष करते रहे। उनके प्रखर राष्ट्रवाद के कारण जम्मू-कश्मीर राज्य को भारत से अलग करने औरस्वतंत्र राजनीतिक इकाई बनाने की शेख अब्दुल्ला की सभी चालें किल हो गई।

भारतीय जनसंघ की स्थापना, कांग्रेस के विकल्प के रूप में प्रमुख विरोधी दल के रूप में हुई थी। डॉ0 मुकर्जी के शब्दों में-''कांग्रेस शासन में तानाशाही की अभिव्यक्ति का मुख्य कारण द्वेष में सुसंगठित विरोधी दलों का अभाव ही है। ''उन्होंने घोषणा की कि भारतीय जनसंघ प्रमुख विरोधी दलों का कार्य करेगा किन्तु विरोध का अर्थ यह कदामि नही है कि किसी भी उत्तरदायी सरकार के सम्मुख आने वाली समस्याओं के प्रति अविवेकपूर्ण और विनाशात्मक दृष्टि रखी जाए। कश्मीर के प्रश्न पर डॉ0 श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने कहा कि-''कश्मीर के सम्बन्ध में जनसंघ का मत है कि यह प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ से वापस ले लेना चाहिए। कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, जनमत संग्रह स्वीकार नहीं। दिसम्बर 1452 में कानपुर में भारतीय जनसंघ के प्रथम अधिवेशन में डॉ0 मुकर्जी ने कश्मीर समस्या और प्रजा परिषद आन्दोलन के सम्बन्ध में कहा कि ''कश्मीर का पूरा राज्य भारत का अविभाज्य अंग है, सुरक्षा परिषद में इस समस्या को ले जाने का कारण कुछ भी रहा हो लेकिन हम सुरक्षा परिषद से किसी भी प्रकार की न्याय की आशा नहीं करते। ''इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ0 श्यामाप्रसाद मुकर्जी का कश्मीर प्रश्न से लगाव केवल भाषणों और मौखिक अभिव्यक्तियोंतक सीमित नहीं रहा बल्कि कश्मीर के प्रश्न पर जन दबाव बनाने के लिए डॉ0 मुकर्जी ने जन आन्दोलनों का नेतृत्व भीकिया और जेल गये तथा अपने जीवन की आहुति दे दी। 1977 में आपातकाल की समाप्ति के बाद जनसंघ अन्य छोटे दलों के साथ मिलकर जनता पार्टी बनाई, जनता पार्टी 1977 मेंकेन्द्र में सत्तारूढ़ रही। तीन वर्षो तक सत्ता में रहने के बाद 1980 में जनता पार्टी विघटित हो गई और भारतीय जनता पार्टीका निर्माण किया गया। 1996 में भाजपा संसद में सबसे बड़े दल के रूप में उभरा। जम्मू-कश्मीर के सन्दर्भ में भाजपा की नीति विशेष संवैधानिक दर्जे को खत्म करना रहा है। भाजपा अनुच्छेद 370 को कश्मीर में व्याप्त अलगाववाद के लिएजिम्मेदार मानती रही है।भारतीय जनता पार्टी जम्मू-कश्मीर के सन्दर्भ में अपने चुनाव घोषणा पत्र में कहती है कि भाजपा परामर्श प्रक्रिया के माध्यम से केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को सामान्य बनाकर कश्मीरी लोगों के प्रति जवाब देह बनाने का प्रयास करेगी तथा अलगाववादी एवं विद्रोही समूहों के साथ कोई रियायत नही बरता जाएगा। ''जम्मू-कश्मीर भारत का अभिन्न भाग था, है और रहेगा, इसकी स्थिति पर कोई बातचीत नही हो सकती। ''जम्मू-कश्मीर के लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने तथा इस राज्य के त्वरितविकास को सुनिश्चित करने के लिए भाजपा इसके तीनों क्षेत्रों - जम्मू, कश्मीर तथा लद्‌दाख के समान विकास के एजेडें कोमजबूती प्रदान करने का संकल्प दुहराती रही है। कश्मीरी पंडित जो अलगाववादी व आतंकवादी हिंसा के शिकार होकर विस्थापित हुए उनको अपने पूर्वजों की भूमि पर वापस करके पुनर्वास कार्यक्रम को पूर्ण सुरक्षा के साथ सफल बनाने कासंकल्प भाजपा के घोषणापत्र का मुख्य बिन्दु रहा है। इसके अलावा भाजपा अपने एजेण्डें में शरणर्थियों की समस्या एवं अनुच्छेद 370 को पूर्ण रूप से समाप्त करने के लक्ष्य के रूप में देखता रहा है। भाजपा द्वारा 2014 का चुनाव भ्रष्टाचार से लड़ने

और विकास एवं सुशासन के मुद्दे पर लड़ा गया। बीजेपी ने कहा कि हमसभी सरकारी अधिकारियो को राजनीतिक प्रभाव से बाहर रखेगें जिससे राज्य का समग्र विकास सुनिश्चित हो सके। कश्मीर पर भाजपा का नजरिया सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की विचारधारा जिसका प्रभावशाली प्रतिनिधित्व आडवाणी की 1990 की रथयात्रा के द्वारा हुआ। मुरली मनोहर जोशी की एकता यात्रा 26 जनवरी 1992 को भारी सुरक्षा के बीच श्रीनगर में राष्ट्रीयध्वज फहराने के बाद सम्पन्न हुआ। अनुच्छेद 370 को समाप्त कर भारत के साथ कश्मीर का पूर्ण विलय भाजपा की हिन्दूराष्ट्रीयता का एक प्रमुख आधार स्तम्भ रहा है।

1989 के बाद भाजपा की चुनाव प्रेरित यात्राओं में कश्मीर केन्द्र में रहा है। पाकिस्तान से जुड़े हुए मुद्दे, अनुच्छेद 370 की समाप्ति, पाकिस्तान और बांग्लादेश में हिन्दुओं की स्थिति आदि मुद्दे भाजपा की राजनीतिक कार्यनीति की रचना करते है। इन्ही मुद्दों से हिन्दुत्व के दर्शन और सास्कृतिक विचारधारा का निर्माण होता है। भाजपा के कश्मीर अभियान ने देश के शहरी हिन्दुओं को बेहद प्रभावित किया है। कश्मीर के मामले में भाजपा की राष्ट्रवादी मुद्रा ने उन सामाजिक और राजनीतिक समूहों को विरक्त भी किया है जो क्षेत्रीय आकाक्षांओ को मान्यता देने की जरूरत अनुभव करते रहे है। भाजपा की इस नीति ने अल्पसंख्यको को जिनमें मुसलमानों का स्थान महत्वपूर्ण है नाराज किया, जिन्हें लगता है कि पार्टी की कश्मीर नीति अल्पसंख्यकों के प्रति अविश्वास और अल्पसंख्यकों के अधिकारों के प्रति उसकी निशेधवादी दृष्टि से उपजी है। अनुच्छेद 370 को समाप्त करने तथा कश्मीर में उग्रवाद तथा आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए कठोर कदम उठाने की भाजपा की मांग ने उसके कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ाकर भारतीय जनमानस के बहुत बड़े हिस्से को प्रभावित किया। भाजपा ने जम्मू के अधिकारों के लिए शक्तिशाली ढगं से संघर्ष किया है और विकास संसाधनो का आवंटन, नौकरियों का आरक्षण आदि मामलों में जम्मू के साथ भेदभाव तथा कश्मीर वर्चस्व के विरूद्ध आवाज उठायी है किन्तु उसने कश्मीरियों कीलोकतांत्रिक आकाक्षांओ का पक्ष कभी नही लिया। भाजपा ने राज्य के तीनों प्रमुख हिस्सों कश्मीर घाटी, जम्मू एवं लद्दाखकी भावनात्मक एकात्मकता को बढ़ावा नहीं दिया। इसके विपरित उसने कश्मीर के भीतरी पुनर्गठन के लिए स्वायत्तता के आन्दोलनों का विरोध किया। भाजपा जम्मू-कश्मीर की स्वायत्तता के विरूद्ध अभियान चलाकर जम्मू के अंसतोष को क्षेत्रीय तनाव में बदलने का काम किया।

कश्मीर में मौजूदा अलगाववादी चुनौतियों और खतरों का भाजपाई समाधान विशुद्ध प्रशासनिक है। उनका विचार है कि सिर्फ प्रशासनिक सख्ती से ही कश्मीर की राजनीतिक समस्या का समाधान किया जा सकता है। जब भाजपा 2019 के लोकसभा चुनाव में प्रचण्ड बहुमत द्वारा सत्ता में आई तो उसने अपने चुनाव घोषणा पत्र में किए गये वादों में से एक धारा 370 को समाप्त करने का कार्य पूरा करना शुरू किया और इसी के अर्न्तगत 5 अगस्त 2019 को भारतीय संसद में सरकार द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य पुर्नगठन बिल पास कराकर जम्मू-कश्मीर राज्य को दो केन्द्र शासित प्रदेशों लद्दाख एवं जम्मू-कश्मीर में बांट दिया गया और अनुच्छेद 370 को निरस्त करने की घोषणा कर दी गयी, जिससे कश्मीर के साथ-साथ देश के सभी हिस्सों से प्रतिक्रिया आने लगी। जहां घाटी के लोग बेहद आहत है वहीं शेष भारत में खुशी स्वरूप मिठाईयां बाटी जा रही है, यह एक विशेष अन्तर को दर्शाता है। इस पर प्रतिक्रिया करते हुए पूर्व विदेश मंत्रीयशवंत सिन्हा कहते है कि अगर यह कदम स्वागत योग्य और जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख के लोगों में है तो वहां मार्शल लॉ जैसा क्यों लगाया गया है? कश्मीर समस्या से निपटने के लिए दिल्ली की सरकारों ने अनके गलतियां की है। इनमें अटलबिहारी वाजपेयी जी का दृष्टिकोंण जो इंसानियत पर आधारित था कश्मीर के लिए बहुत सराहनीय था। वे कश्मीर घाटी के लोगों को भरोसे में लके रही कुछ करते थे क्योंकि उनका भरोसा कश्मीरियों के लिए बल के इस्तेमाल में नही था। जन की इच्छा को गवर्नर की इच्छा में बदलकर सरकार ने धारा 370 को हटाया। अनुच्छेद 370 और 35 ए के साथ कश्मीरियों की भावनाएं जुड़ी हुई थी, कश्मीर का विलय सशर्त था और तात्कालिन सरकार ने उसे स्वीकार किया था, जिससे सरदार पटेलभी सहमत थे। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने तो यहां तक भी कह दिया था कि अगर जूनागढ़ और हैदराबाद भारत के साथ रहते है तो उन्हें जम्मू-कश्मीर के पाकिस्तान के साथ जाने पर कोई ऐतराज नही होगा। मोदी सरकार ने अपने पहले कार्यकाल के दौरान महबूबा मुफ्ती की पी0डी0पी0 के साथ मिलकर सरकार बनाई थी जिसमें उन्होंने गवर्नेंस एजेण्डा के जरिए राज्य के लोगों के साथ वादा किया था कि राज्य के संवैधानिक प्रावधानों में छेड़छाड़ नहींकिया जाएगा लेकिन सरकार ने बिना कश्मीर के लोगों का भरोसा जीते ही एक महत्वपूर्ण बदलाव करके राज्य को दो केन्द्रशासित प्रदेशों में बांट दिया। इसमें सन्देह नहीं है कि इस फैसले के बाद राज्य में अलगाववाद के साथ-साथ आतंकवादी ताकतें भी अपना सिर उठाएंगी जिसमें स्थानीय लोग भी हमसे दूर होकर आतकवादियों के करीब जा सकते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Noorani, A.G. *Artical 370: A Constitutional history of Jammu & Kashmir.* Oxford University Press. NewDelhi; 2011.
2. Chaudhary, Rekha. Electioneering in Kashmir: Overlap between Separatist and mainstream Political Space.*Economic and Political Weekly*, vol.43 No.28 (July 12-18,2008).pp 22-25.
3. Guha, Ramchandra. Opening a Window in Kashmir. *Economic and Political Weekly*, Vol.39 No. 35 pp125-135.
4. Kumar, Radha. *Paradise at War: a Political History of Kashmir*. Aleph Book Co. & Rupa publication.New Delhi; 2018.
5. Jha, Prem Shankar. *The Origins of a dispute: Kashmir 1947*. Oxford University Press. New Delhi; 2003.
6. Zutsi, Chitralekha. *Kashmir: History, Politics, Representation*. Cambridge University Press. New Dehi; 2018.
7. Puri, Balaraj. *Kashmir: Insurgency and after*. Orient Blackswan Pvt. New Delhi; 2012.
8. Chaudhary, Shabir. *Kashmir Dispute,A Kashmiri Perspective- Kashmiri struggle transformed in to Jihad terrorism and a proxy war*. Athours house. Bloomington,Indiana USA; 2013.
9. Pandey, Ashok Kumar. *Kashmirnama: History and Contemporary*. Rajpal & Sons. New Delhi; 2018.
10. Snedden, Christophor. *Kashmir: The unwritten history*. HarperCollins. New Delhi; 2013.

बिहार में चम्पारण आन्दोलनः एक समीक्षात्मक अध्ययन

नीरज कुमार

उच्चत्तर माध्यमिक शिक्षक (इतिहास विभाग), +2 उच्च विद्यालय, चकहबीव, समस्तीपुर।

शोध सारांशः-

बिहार के चम्पारण जिले में महात्मा गाँधी की अगुवाई में 1917 का चम्पारण आंदोलन भारत का पहला नागरिक अवज्ञा आंदोलन था। इस आंदोलन के जरिए महात्मा गाँधी ने लोगों के विरोध को सत्याग्रह के माध्यम से लागम करने का पहला प्रयास किया जो ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आम जनता के अहिंसक प्रतिरोध पर आधरित था। महात्मा गाँधी के लिए चम्पारण आंदोलन का मुख्य केन्द्र चम्पारण के किसानों की दुर्दशाता को दूर करना था। अंग्रेजों ने चम्पारण के पट्टेदार किसानों को जबरन बड़े पैमाने पर नील की खेती करने का फरमान सुनाया था। महात्मा गाँधी ने सक्षम वकीलों के साथ चम्पारण जिले के लोगों को संगठित किया, उन्होंने जनता को शिक्षित करने में सक्रिय भूमिका निभाई और साथ ही उन्हें आत्म-निर्भर आजीविका के विभिन्न तरीकों को अपनाकर आर्थिक रूप से मजबूत बनना सिखाया। यह आंदोलन न केवल ब्रिटिश हुकूमत द्वारा नील की खेती के फरमान को रद्द करने में सफल साबित हुआ बल्कि महात्मा गाँधी के सत्याग्रह वाले असरदार तरीके के साथ भारत के पहले ऐतिहासिक नागरिक अवज्ञा आंदोलन के तौर पर भी सफल हुआ।

प्रस्तावनाः-

अप्रैल 1917 ई॰ की दोपहर में बिहार के पूर्वी चम्पारण जिले के मोतिहारी रेलवे स्टेशन पर इकट्ठा हुए लोगों ने गाँधीजी की एक झलक देखी। उनके आगमन ने न केवल उस इलाके के लोगों के लिए अहम बदलाव को रेखांकित किया, बल्कि भातत के स्वतंत्रता संग्राम को भी नयी धर दी। यह ऐतिहासिक मौका महात्मा गाँधी के सत्याग्रह को मूर्त रूप देने का पहला प्रयास था। अहिंसक नागरिक प्रतिरोध के जरिए उन्होंने क्रूर ब्रिटिश हुकूमत और उसके शोषण को खुली चुनौती दी। चम्पारण जिले के किसानों ने खुद को ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के लिए जबरन नील की खेती करने पर मजबूर पाया। अंग्रेजों के लिए नील बेहद फायदेमंद नकदी फसल बन चुकी थी, जिसका उपयोग डाई करने के लिए किया जाता था। प्रथम विश्व युद्ध में भारी हार के कारण जर्मनी द्वारा आविष्कारित सिंथैटिक डाई में मंदी आने से इस डाई की माँग तेजी से बढ़ी। इसीलिए नील की खेती के पीछे आकर्षण मुनाफे ने नये भूमि कानूनों के निर्माण को मजबूर कर दिया जो नील की खेती को अध्कितम करने पर केन्द्रित था, लेकिन इसमें किसानों के कल्याण पर कोई विचार नहीं दिया गया था। किसानों को काफी परेशानियों और पीड़ा से गुजरना पड़ा। महात्मा गाँधी का मकसद बिहार के चम्पारण जिले के किसानों की परेशानियों का समाधन कर उन्हें इस दुर्दशा से छुटकारा दिलाना था।

पृष्ठभूमिः-

गाँधीजी दिसम्बर 1916 ई॰ में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में लिये। इसी आयोजन में उनकी मुलाकात एक ऐसे शख्स से हुई जिसने उनकी राजनीति की दिशा बदल कर रख दी। इस सीधे-साधे लेकिन जिद्दी शख्स ने उन्हें अपने इलाके के किसानों की पीड़ा और अंग्रेजों द्वारा उनके शोषण की दास्तान बताई और उनसे इसे दूर करने का आग्रह किया।

गाँधीजी पहली मुलाकात में इस शख्स से प्रभावित नहीं हुए और यही वजह थी कि उन्होंने उसे टाल दिया। लेकिन इस कम पढ़े-लिखे और जिद्दी किसान ने उनसे बार-बार मिलकर उन्हें अपना आग्रह मानने को बाध्य कर दिया। परिणाम यह हुआ कि चार महीने बाद ही चम्पारण के किसानों को जबरदस्ती नील की खेती करने से हमेशा के लिए मुक्ति मिल गई। गाँधीजी को इतनी जल्दी सफलता का भरोसा न था। इस तरह गाँधीजी का बिहार और चम्पारण से नाता हमेशा-हमेशा के लिए जुड़ गया। उन्हें चम्पारण लाने वाले इस शख्य का नाम था राज कुमार शुक्ल।

चंपारण का किसान आंदोलन अप्रैल 1917 में हुआ था। गाँधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह और अहिंसा के अपने आजमाये हुए अस्त्र का भारत में पहला प्रयोग चम्पारण की धरती पर ही किया। यहीं उन्होंने यह भी तय किया कि वे आगे से केवल एक कपड़े पर ही गुजर-बसर करेंगे। इसी आंदोलन के बाद उन्हें रविन्द्र नाथ टैगोर के द्वारा 'महात्मा' की उपाधि से विभूषित किया गया।

देश को राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी, मो. इमलहरूल हक, ब्रजकिशोर प्रसाद जैसी महान विभूतियाँ भी इसी आंदोलन से मिलीं। इन तथ्यों से समझा जा सकता है कि चम्पारण आंदोलन देश के राजनीतिक इतिहास में कितना महत्वपूर्ण है। इस आंदोलन से ही देश का नया नेता और नयी राह की राजनीति मिलने का भरोसा पैदा हुआ।

लेकिन राजकुमार शुक्ल और उनकी जिद्द ना होती तो चम्पारण आंदोलन से गाँधीजी का जुड़ाव चम्पारण आंदोलन से शायद ही हो पाता। अपनी आत्म-कथा ''सत्य के साथ प्रयोग'' के पाँचवे भाग के 12वें अध्याय ''नील का दाग'' में गाँधीजी लिखते हैं, 'लखनऊ कांग्रेस में जाने से पहले तक मैं चम्पारण का नाम तक नहीं जानता था। नील की खेती होती है, इसका तो ख्याल भी न के बराबर था। इसके कारण हजारों किसानों को कष्ट भोगना पड़ता है, इसकी भी मुझे कोई जानकारी न थी।'' उन्होंने आगे लिखा है, ''राजकुमार शुक्ल नाम के चम्पारण का एक किसान ने वहाँ मेरा पीछा पकड़ा! वकील बाबू (ब्रज किशोर प्रसाद, बिहार के उस समय नामी वकील और जय प्रकाश नारायण के ससुर) आपको सब हाल बताऐंगे, कहकर वे मेरा पीछा करते जाते और मुझे अपने यहाँ आने का निमंत्रण देते जाते।''

लेकिन महात्मा गाँधी ने राजकुमार शुक्ल से कहा कि फिलहाल वे उनका पीछा करना छोड़ दें। इस अधिवेशन में ब्रज किशोर प्रसाद ने चम्पारण की दुर्दशा पर अपनी बात रखी, जिसके बाद काँग्रेस ने एक प्रस्ताव पारत कर दिया। इसके बाद भी राजकुमार शुक्ल संतुष्ट नहीं हुए। वे गाँधीजी को चम्पारण ले जाने की जिद्द ठाने रहे। इस पर गाँधीजी ने अनमने भाव से कह दिया, ''अपने भ्रमण में चम्पारण को भी शामिल कर लूँगा और एक-दो दिन वहाँ ठहरकर अपनी नजरों से वहाँ का हाल भी देख लूँगा। बिना देखे इस विषय पर मैं कोई राय नहीं दे सकता।''

इसके बाद गाँधीजी कानपुर चले गये, लेकिन शुक्लजी ने वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। वहाँ उन्होंने कहा, ''यहाँ से चम्पारण बहुत नजदीक है, एक दिन दे दीजिए।'' इस पर गाँधीजी ने कहा ''अभी मुझे माफ कीजिए, लेकिन मैं वहाँ आने का वचन देता हूँ।'' गाँधीजी लिखते हैं कि ऐसा कह कर उन्होंने बँध हुआ महसूस किया।

इसके बाद भी इस जिद्दी किसान ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। वे अहमदाबाद में उनके आश्रम तक पहुँच गये ओर जाने की तारीख तय करने की जिद्द की। ऐसे में गाँधीजी से रहा नहीं गय, उन्होंने कहा कि व 7 अप्रैल को कलकत्ता जा रहे हैं। उन्होंने शुक्ल से कहा कि वहाँ आकर उन्हें ले जाएं। राजकुमार शुक्ल ने 7 अप्रैल, 1917 ई० को गाँधीजी के कलकत्ता पहुँचने से पहले ही वहाँ डेरा डाल दिया। इस पर गाँधीजी ने लिखा, ''इस अनपढ़, अनपढ़ लेकिन निश्चयी किसान ने मुझे जीत लिया।

गाँधीजी का चम्पारण आगमनः-

अप्रैल 1917 ई० में गाँधीजी पटना और मुजफ्फरपुर होते हुए चम्पारण पहुँचे। सर्वप्रथम उन्होंने वहाँ के किसानों की वास्तविक स्थिति का जायजा लिया, और पाया कि तीनकठिया पद्धति (जिसमें किसानों को अपने जमीन की 3/20वें भाग में नील की खेती करना अनिवार्य था) की वजह से वहाँ के किसानों से लगभग 46 प्रकार के अवैध कर वसूले किये जाते थे। उनके कर वसूलने की विधि भी बहुत अमानवीय थी। गाँधीजी गाँव में घूम-घूम कर किसानों में आत्मविश्वास का संचार किया। गाँधीजी के सशक्त हस्तक्षेप का ही परिणाम था कि जल्दी ही यह व्यापक जन-आंदोलन बन गया। तत्कालीन समाचार पत्रों ने भी गाँधीजी की सफलता की खबर को इतनी प्रमुखता से छापा कि गाँधीजी की लोकप्रियता निरन्तर बढ़ने लगी। चम्पारण में गाँधीजी द्वारा किये जा रहे शांतिपूर्ण सत्याग्रह का दमन अब अंग्रेजों द्वारा मुश्किल होता जा रहा था। गाँधीजी के प्रयासों का परिणाम था कि जून 1917 में चम्पारण जाँच

समिति का गठन हुआ। गाँधीजी को भी समिति का सदस्य बनाया गया और इसी समिति के अनुशंसा के आधर पर चम्पारण में एक सदी से चल रहे तीनकठिया व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया जिससे किसानों के लगान में कमी आई तथा उन्हें क्षतिपूर्ति के रूप में ध्न भी प्राप्त हुआ। यद्यपि किसानों की सभी समस्याओं का समाधन नहीं हो सका। परन्तु गाँधीजी द्वारा जिस प्रकार शांतिपूर्ण जन-आंदोलन के माध्यम से सरकार को समझौता रद्द करने पर मजबूर किया (जो अंग्रेजों के द्वारा किसानों के साथ किया गया था) यह अपने-आप में एक बड़ी उपलब्धि थी। गाँधीजी द्वारा भारत में किया गया यह सत्याग्रह का पहला प्रयोग सफल रहा। गाँधीजी को यह विश्वास हो गया कि वह भारतीय जनता के दिल और दिमाग को जीत सकने की क्षमता रखते हैं।

चम्पारण सत्याग्रह का वर्त्तमान में प्रासंगिकता:-

आज चम्पारण सत्याग्रह के 100 वर्ष से अधिक हो चुके हैं, परन्तु आज भी न तो गाँव की स्थिति में न तो कोई परिवर्तन आया है और न ही वहाँ के किसानों की स्थिति में, उनकी स्थिति आज भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। फर्क सिर्फ इतना है कि उस समय अंग्रेजों की सरकार थी और आज हमारी अपनी सरकार है। आज भी देश के अन्दर किसान त्रस्त हैं, किसानों की स्थिति इतनी दयनीय है कि वह आत्म-हत्या करने को मजबूर है। गाँवों के आर्थिक स्वावलम्बन के आधर के जितना आघात ब्रिटिश सरकार ने पहुँचाया है, उससे कई गुणा नुकसान हमारी सरकार ने पहुँचाया है। आज भी गाँवों में गरीबी, अशिक्षा एवं अस्वच्छता देखी जा सकती है। आज गाँव के उद्योग-धंधे बंद हो रहे हैं, गाँव के लोग शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। गाँधीजी चाहते थे कि जब हमारा देश स्वतंत्र हो, तब उनकी ग्राम-स्वराज एवं हिन्द स्वराज जैसी परिकल्पना का मूर्त रूप दिया जाय ताकि गाँवों में खुशहाली आये। गाँव में रहने वाले किसान समृद्ध बनें, परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा हो नहीं सका। स्वतंत्र भारत में मशीनीकरण एवं औद्योगिकीकरण का इतनी तेजी से विकास हुआ, जिसने गाँधीजी के गाँवों के विकास की परिकल्पना को तहस-नहस कर दिया। यद्यपि आज के तकनीकी विकास ने खेती को सुविधजनक अवश्यक बनाया है, परन्तु यंत्रों ने सुविध के साथ-साथ अनेक समस्याएँ भी उत्पन्न की है। विकास के नाम पर नवीनीकरण, मशीनीकरण एवं डिजीटलीकरण गाँव की समस्या का समाधन नहीं कर सकते। यदि हमें सही मायने में गाँवों की स्थिति में सुधर लाना है तो हमें गाँधीजी द्वारा स्थापित शारीरिक श्रम एवं गरिमा को पुनः प्रतिस्थापित करना होगा। गाँवों की स्थिति में सुधर लाने के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर भी प्रयास करना होगा। हमारे गाँव बचेंगे तभी हमारा देश बचेगा।

चम्पारण सत्याग्रह का महत्व और समीक्षा:-

1917 का चम्पारण सत्याग्रह न केवल किसान आंदोलनों की दृष्टि से बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विकास के दृष्टिकोण से भी परिवर्तनकारी बिन्दु माना जा सकता है। इस बात को हम निम्नलिखित संदर्भों में स्पष्ट कर सकते हैं -

1. चम्पारण सत्याग्रह में कई बातें पहली बार हुई जैसे-गाँधीजी द्वारा भारतीय संदर्भ में सत्याग्रह का पहला प्रयोग।
    - किसान मुद्दों को राष्ट्रीय स्तर पर उठाया जाना।
    - किसान समस्या को लेकर किए गए आंदोलन में गाँधीजी जैसे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के नेतृत्व की भागीदारी।
2. अगर चम्पारण सत्याग्रह को किसी आंदोलन के विभिन्न तत्वों जैसे- उद्देश्य, नेतृत्व, संगठन, विचारधरा, जनसहभागिता ओर उपलब्धियाँ आदि के संदर्भ में देखा जाए तो उसकी कई महत्वपूर्ण बिन्दु उभरकर सामने आते हैं।

उद्देश्य के स्तर पर: किसानों के शोषण-मुक्ति का स्वर इस सत्याग्रह का स्पष्ट मुद्दा था। इससे प्रेरित होकर आगे के विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलन में भी उद्देश्य के स्तर पर स्पष्टता दिखी।

उदाहरण के लिए असहयोग आंदोलन में स्वराज की प्राप्ति का उद्देश्य। साथ ही किसानों की जागरूकता अब सिर्फ जमींदारों से ही नहीं बल्कि ब्रिटिश शासन से मुक्ति में दिखाई पड़ने लगी।

नेतृत्व के स्तर पर: गाँधीजी एक प्रकार से इसी सत्याग्रह को व्यापक परिप्रेक्ष्य में स्थापित होते ही न सिर्फ जनता के एक बड़े भाग, किसानों के बीच पैठ बनाकर बल्कि नेतृत्व के स्तर पर लम्बे समय से चले आ रहे नरमपंथी और गरमपंथी संघर्ष में अपना सम्मिलित दृष्टिकोण स्थापित किया। वहीं शांतिवादी तरीकों में गाँधीजी जहाँ नरमपंथी हैं वहीं कानून तोड़ने की निर्भीकता में गरमपंथी भी।

संगठन के स्तर पर: एक प्रकार से कांग्रेस पहली बार किसान मुद्दे के प्रति सपाट रूख अपनाती है क्योंकि इससे पहले जमींदार एवं मध्यवर्गीय परिवार के कारण किसान मुद्दे कांग्रेस के मंच पर सक्रियता के स्थान नहीं पाते लेकिन 1916 के लखनऊ अधिवेशन में किसान मुद्दों से संबंधित ब्रजकिशोर प्रसाद के प्रस्ताव पर सहमति बनती है।

विचारधरा के स्तर पर: इस सत्याग्रह के दौरान अहिंसा को आधार बनाया गया तथा उसकी सफलता से आगे के आंदोलन हेतु भी वैचारिक आधार मिला।

कार्यक्रमों के स्तर पर: गाँधीजी एवं उनके सहयोगियों द्वारा विभिन्न रचनात्मक तत्वों का प्रचार-प्रसार किया गया जिसमें न केवल किसान बल्कि अन्य मुद्दे शामिल थे।

जनसहभागिता के स्तर पर: इस सत्याग्रह से कई नेता जुड़े जो आगे चलकर विभिन्न आंदोलनों में अपनी उल्लेखनीय भूमिका निभाते थे जैसे- राजेन्द्र प्रसाद, जे.बी. कृपलानी आदि बिहारी जैसे समाचार पत्र, पत्रकारिता के माध्यम से इस सत्याग्रह का प्रसार करते थे।

उपलब्धि:-

जहाँ तक उपलब्धि की बात है यद्यपि 25 फीसदी लगान को ही कम किया गया फिर भी तत्कालीन संदर्भों में बड़ी बात थी। इससे आगे के किसान आंदोलनों- खेड़ा, बारदौली आदि के लिए उत्साह एवं प्रेरणा का संचार हुआ। एक और ध्यान देने वाली बात यह भी है कि जिस प्रकार 1776 के अमेरिकी क्रांति की प्रतिक्रिया में स्टाम्प एक्ट के विरोध के पश्चात् उसे वापस लिए जाने के बाद उपनिवेश विरोधी प्रतिक्रिया तेज हो गई। वैसे ही सीमित स्तर से ही चम्पारण सत्याग्रह के दरों में कमी करना एवं वसूले गए कर को 25 प्रतिशत को वापस करना आगे के आंदोलनों के लिए नि:संदेह प्रेरक रहा।

निष्कर्ष एव समीक्षा:-

चम्पारण सत्याग्रह ने गाँधीजी को जनता के मध्य पहुँचा दिया तथा उन्होंने जनता की माँगों व तकलीफों को जानकर ब्रिटिश सरकार के समक्ष मजबूती से जनता के पक्ष को रखने का कार्य किया। इसके अलावा गाँधीजी की सत्याग्रह व शांतिपूर्ण विरोध की रणनीति ने गाँधीजी को जनमानस के निकट पहुँचा दिया। चम्पारण सत्याग्रह के माध्यम से देश के स्वतंत्रता संग्राम से अहिंसा के रूप में आजादी की लड़ाई को नया हथियार मिला।

इतिहासकारों ने चम्पारण आंदोलन को काल, परिवेश एवं इतिहास लेखन की बदलती प्रवृत्तियों के आलोक में अलग-अलग रूपों में देखा है तथा समीक्षा की है। भारत में गाँधी के सत्याग्रह की पहली प्रयोगशाला, पहचान की तलाश, गाँधी का पहला जनआंदोलन तथा मध्यम वर्गीय किसानों के द्वारा आंदोलन के रंगमंच की तैयारी आदि विचारों तथा मिथकों के बीच चम्पारण आंदोलन पर आज तक जितने भी स्तम्भ, लेख, निबंध अथवा पुस्तकें लिखी गयी। संपूर्ण आंदोलन के परिदृश्य से अगर गाँधीजी को अपना मानकर हटा दिया जाए तो आज चम्पारण आंदोलन एक ऐसे आंदोलन के रूप में सामने आएगा, जहाँ वर्गीय संघर्ष का आधर दो समानान्तर शोषक वर्गों के बीच चलने वाला वर्चस्व की होड़ थी।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि चम्पारण सत्याग्रह भारत में गाँधीवादी आंदोलन का प्रथम सोपान था साथ ही कई दृष्टियों में किसान एवं भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का परिवर्त्तनकारी बिन्दु था।

संदर्भ सूची:-

1. कालिकिंकर दत्त, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (खण्ड-1) बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974
2. कालिकिंकर दत्त, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (खण्ड-2) बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974
3. कालिकिंकर दत्त, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (खण्ड-3) बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974
4. डा॰ सुभाष कश्यप, स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1996
5. सौमित्र मोहन, बिहार एक परिचय, एम. सी. ग्रे हिल एजुकेशन, चेन्नई।
6. डा॰ प्रशांत गौरव, बिहार का राजनैतिक इतिहास, आलोक भारती प्रकाशन, पटना, 2006

7. विजय कुमार राय, बिहार एक अवलोकन, विवास पेनोरमा प्रकाशन, दिल्ली।
8. एन॰ एन॰ ओझा, बिहार दिग्दर्शिका, क्रानिकल प्रकाशन, दिल्ली।, 2007
9. विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्लीए वर्ष-2001
10. एम॰ के॰ पाण्डे, आधुनिक भारत, प्रयोग एकेडमी पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद, वर्ष-2002
11. डा॰ मनीष रंजन, बिहार सामान्य ज्ञान, प्रभात पेपर ब्रैक्स, नई दिल्ली।
12. महात्मा गाँधी : हिन्द-स्वराज, 1909 ई॰
13. महात्मा गाँधी : सत्य के साथ मेरा प्रयोग (आत्मकथा)।
14. अरविन्द मोहन : चम्पारण सत्याग्रह के सहयोगी, 2017

भारतीय लोकतंत्र एवं दबाब समूहः एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० प्रमोद कुमार राम

अतिथि शिक्षक (राजनीतिशास्त्र), बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

शोध-सारांशः-

दबाब-समूह ऐसे हित समूह है जो सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करके कुछ विशेष हितों को सुरक्षित करने के लिए करते हैं। वे किसी भी राजनीतिक दल के साथ गठबंधन नहीं करते हैं तथा अप्रतत्यक्ष रूप से काम करते हैं, परन्तु ये शक्तिशाली समूह होते हैं तथा अप्रतत्यक्ष रूप में काम करते हैं, परन्तु ये शक्तिशाली समूह होते हैं। दबाब-समूह विभिन्न समुदायों की मांगों और हितों का प्रतिनिधित्व करने हैं। दबाब-समूह इसी कारण भारत जैसे एक बहुलवादी राष्ट्र के महत्वपूर्ण अंग हैं। ये लोगों को राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। ये मतदाताओं को शिक्षित और सूचित भी करते हैं ओर इस प्रकार वे सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देते हैं। लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए सामाजिक परिवर्त्तन` उद्देश्य को प्राप्त करने में दबाब-समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके माध्यम से नीति-निर्माताओं को यह पता चलता है कि कैसे कुछ विशेष मुद्दों पर जनता क्या अनुभव करती है। कई आदवासी समूहों ने जनजातीय आबादी के शोषण के खिलाफ आंदोलन की अगुआई की है, और सरकार को विवश किया है कि वो इनके अधिकारों की सुरक्षा हेतु प्रावधन करे, उदाहरण के लिए विभिन्न प्रादेशिक वन नीतियाँ और 'वन-अधिकार अधिनियम, 2006' इसके अतिरिक्त इन समूहों ने अपने प्रभाव का दुरूपयोग कर कभी-कभी देश के समक्ष प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं। भारत में कई दबाब समूह मुख्य रूप से विभिन्न असंवैधनिक पद्धतियों के माध्यम से सरकार को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं, जैसे हमले, आंदोलन, प्रदर्शन, तालाबंदी आदि के द्वारा। सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं को सड़क पर हल करने के प्रवृत्ति के कारण दबाब-समूहों को लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए एक गंभीर खतरा माना जा सकता है। इन सभी आलोचनाओं के बावजूद दबाब-समूहों का अस्तित्व लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अनिवार्य है। दबाब-समूह राष्ट्रीयता और विशेष हितों को बढ़ावा देते हैं तथा नागरिकों एवं सरकार के बीच संवाद का एक जरिया बनते हैं।

दबाब-समूह की अवधरणाः-

आज के लोकतंत्रीय देशों में विभिन्न राजनीतिक दलों के विकास के साथ-साथ दबाब-समूह या हित-समूहों का भी विकास हुआ है। प्रायः विश्व के सभी विकसित तथा अविकसित देशों में दबाब-समूह राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अमेरिका, इंग्लैंड तथा भारत जैसे देशों में इनकी भूमिका पहले की अपेक्षा काफी बढ़ गई हैं 19वीं सद तक अमेरिका को छोड़कर अन्य यूरोपीय देशों में ऐसे कार्य-कलाप पर राजनीतिशास्त्र के विद्वानों का या तो ध्यान ही नहीं था, या उन्हें अपहास की दृष्टि से देखा जाता था। फ्रेडरीक का विचार था कि, ''इन्हें ऐसी शैतानी शक्ति माना जाता था, जो आधुनिक लोकतंत्र और प्रतिनिधि शासन की जड़ज़ें को धीरे-धीरे काट रही हो।'' 'लॉबी' शब्द का अर्थ दोष, भ्रष्टाचार, धेखाधड़ी आदि के समूहों से समझा जाता था। इसके साथ ऐसे कार्य-कलाप संगठित भी हो रहे थे।

लेकिन इस काल में भी व्यक्ति सरकार एवं राजनैतिक पद्धतियों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया समूहों के माध्यम से ही व्यक्त करता था, क्योंकि मनुष्य की यह एक स्वभाविक प्रक्रिया है। यह भी सही है कि मानव की संग्रहित प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने में राजनीतिक दलों का उदय पहले हुआ, लेकिन दबाब-समूह, गुटों के अस्तित्व को हम नजरअंदाज नहीं कर सकते। इस संबंध में डी॰ वी॰ ट्रूमेन ने ठीक कहा है, ''कोई भी समाज चाहे वह कितना भी पुरातनवादी क्यों न हो, विभिन्न विशिष्ट एवं परस्पर व्याप्त समूहों की पच्चीकारी है।'' लेकिन आज प्राय: हर अमेरिकी विधायक किसी-न-किसी हित विशेष का अधिकृत प्रवक्ता तथा उसका प्रतिनिधित्व करता है।

भारत में इनका विकास स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से हुआ। आज के राजनीतिक क्षेत्र तथा नीति-निर्धारण प्रक्रिया में इनका प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

स्पष्टत: यह ऐच्छिक और गैर-राजनीतिक समूह होते हैं। इनकी सदस्यता का आधार इनके सदस्यों के मध्य समान हित की चेतना होती है। गैर-राजनीतिक स्वरूप के बावजूद अपे हितों को देखते हुए ये किसी-न-किसी राजनीतिक दल से अपना संबंध स्थापित कर लेते हैं।

दबाब-समूहों के संगठन का मौलिक कारण सामाजिक, आर्थिक तथा व्यवसायिक होता है। अतएव, इनके संगठन का आधार राजनीतिक न हुए भी अंततोगत्वा राजनीति को प्रभावित करने लगते हैं। ये राजनीतिक दल नहीं हो हैं, लेकिन राजनीतिक दलों की तरह संगठित अवश्य होते हैं, जिनकी निजी सदस्यता, उद्देश्य, संगठन, एकता, प्रतिष्ठा और साधन होते हैं। जे॰ सी॰ चौधरी का कहना है कि, ''दबाब-समूह का अध्ययन स्वहित क मनोवैज्ञानिक आधारशिला पर आधारित है। वास्तव में स्वहित ही वह मुख्य कारक है जो समान विचारों और हितों वाले व्यक्तियों को संगठित होने के लिए बाध्य करता है, ताकि वे व्यक्ति अपने विशिष्ट हित की पूर्ति और संरक्षण की दिशा में अपनी स्थिति सुदृढ़ बना सके।

दबाब-समूहों की विशेषताएँ:-

राजनीतिक दलों की ही भाँति भारतीय लोकतंत्र में दबाब-समूहों का महत्वपूर्ण स्थान है। दबाब-समूह भारतीय लोकतंत्र में अनेक स्वरूपों में विद्यमान है, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उन्हीं आधर पर भारतीय दबाब-समूहों की विशेषताएँ एवं उपयोगिताओं को रेखांकित किया जा सकता है। वैसे प्रो॰ मामरन, वीनर व स्टनेलीक कोचनिक ने अपनी कृति क्रमश: पॉलिटिक्स ऑफ स्टैक सिटी'' तथा ''विजनेस एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया'' में भारतीय दबाब-समूहों की विशेषताओं पर विस्तृत प्रकाश डाला है। जिनके निष्कर्षो के आधार पर दबाब-समूहों की अग्रांकित विशेषताएँ रेखांकित की जा सकती हैं-

(1) भारतीय राजनीति में जाति, समुदाय, धर्म तथा क्षेत्रीय गुट प्रमुख दबाब-समूह के रूप में कार्य कर रहे हैं।

(2) मायरन वीनर के अनुसार अधिकांश दबाब-समूहों का नेतृत्व राजनीतिक दलों के हाथ में है, लेकिन व्यवसायिक दबाब-समूह स्वायत्त हैं।

(3) सार्वजनिक नीति के निर्माण के लिए दबाब-समूहों की भूमिका सीमित रहती है।

(4) अधिकांश राजनीतिक दलों ने अनेक गुप्त संगठनों का निर्माण कर रखी है जो प्रयत्क्ष रूप से तो हित-समूह की तरह कार्य करता है, लेकिन उसके पीछे राजनैतिक उद्देश्य छिपा रहता है।

(5) राज्य (भारतीय संघ) केन्द्रीय सरकार की नीतियों को अपने हित में प्रभावित करने के लिए केन्द्र सरकार पर दबाव बनाये रखने का प्रयास करते हैं।

(6) विदेशी लॉबी भी सरकार की नीतियों पर दबाव बनाए रखती है।

(7) नौकरशाही के वर्चस्व के कारण दबाब-समूह प्रशासनिक अधिकारियों पर दबाव बनाये रखने का प्रयास करते हें, इससे नीति-निर्माण को प्रभावित करने की ओर कम हो पाता है।

दबाब-समूहों की उपयोगिताः-

भारत में दबाब-समूहों की गतिविधियों को देखकर कुछ लोग कहते हैं कि उनसे भारतीय लोकतंत्र को खतरा है। चूँकि ये दबाब-समूह अपनी माँगों को पूरा करने के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही का सहारा लेते हैं। इसीलिये आये दिन यहाँ अनशन, बंद, हड़ताल या घेराव होते रहते हैं। ये कार्यवाहियाँ बहुध हिंसात्मक रूप भी ले लेती है। अतः यह विचार करने की आवश्यकता है कि ऐसी गतिविधियाँ क्यों होती हैं? उन्हें कैसे नियंत्रित किया जा सकता है?

दबाब-समूहों की उपर्युक्त कार्यवाहियों के मूल में बात यह है कि भारत में विभिन्न समूहों की माँग को संतुष्ट करने के लिए साधनों की कमी है। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद देश का आर्थिक विकास पिछले विकास की तुलना में बहुत अधिक हुआ है, तथापित जनसंख्या की वृद्धि के कारण उसका पूरा लाभ लोगों को नहीं मिल सका। दूसरी बात यह है कि लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप लोगों में जागरूकता का विकास हुआ और उनकी आकांक्षाएँ बढ़ी हैं। अतः अब वे अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं। फलस्वरूप अपने हितों के लिए समूहों के माध्यम से वे अपनी स्थिति सुधारने के लिए राजनीति प्रणाली पर दबाव डालते हैं। चूँकि की कमी है इसलिए कोई भी सरकार पर उनकी माँगों को पूरा नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में संभवतः दबाब-समूहों का असंतोष प्रत्यक्ष कार्यवाहियों के रूप में प्रकट होता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय लोकतंत्र में दबाब-समूहों की भूमिका केवल नकारात्मक है। ये दबाब-समूह सरकार पर अंकुश रखते हैं और उसे अत्याचारी होने से बचाते हैं। इनके दबाव से सरकार को यह मालूम होता है कि कोई नीति का कार्यक्रम किस सीमा तक कार्यान्वित हो सकता है? इससे सरकार की नीतियाँ और कार्यक्रम अधिक व्यवहारिकता होते हैं।

दबाब-समूहों की माँग हमेशा राष्ट्रीय हित में नहीं होती किन्तु इन माँगों को नियंत्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि हित समूहों की संख्या घटे न बल्कि बढ़े, जिससे केन्द्र या राज्य सरकारों के नेता केवल एक या दो प्रभावशाली आर्थिक या जातीय समूहों पर निर्भर न रहें। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि राजनीतिक दलों के बीच इस बात पर सहमति लाई जाये कि किसी माँग को पूरा कराने के लिए ऐसे तरीके न अपनाये जाय, जिनसे कानून-व्यवस्था भंग हो और हिंसात्मक घटनाएँ हों।

भारत में दबाब-समूहः-

भारतीय लोकतंत्र में अमेरिकी लोकतंत्र की भाँति दबाब-समूह विकसित नहीं हो पाये हैं। इसका कारण ब्रिटिश विरासत है। ब्रिटिश काल में जन-संगठन राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधियों के कारण विकसित हुए और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हित-समूह राजनीतिक दलों तथा मुट्ठीभर नेताओं के नियंत्रण में है। हित स्पष्टीकरण में उनकी भूमिका नगण्य रही है। विरोधी एवं सत्तारूढ़ दल दोनों ने हित-समूहों का उपयोग अपने अभिकरणों के रूप में किया है जो उनके पक्ष में जनता का समर्थन जीते और दलीय शक्ति को बढ़ाये। कांग्रेस दल स्वयं ही स्थानीय समूहों और राज्य सरकारों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी रहा है। उसने एक ऐसे विचौलिये की भूमिका निभाई है जो राज्य प्रशासन पर दबाव डाले। विकास और आधुनिकीकरण के साथ-साथ देश में अब दबाव अथवा हित समूहों का महत्व भी बढ़ रहा है। कुछ दबाब-समूह स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरने लगे हैं। भारतीय समाज परम्परावाद और आधुनिकता का सम्मिश्रण है, अतः एक ओर जहाँ पश्चिम जैसे दबाब-समूह देखने को मिलते हैं वहीं दूसरी ओर समूहों की बहुलता है जिनका मुख्य उद्देश्य परंपरावादी है और साम्प्रदायिक संगठनों तथा जातिवाद पर आधरित समुदायों के रूप हैं।

भारतीय समूहों का वर्गीकरण विभिन्न तरीके से किया है, लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से आमंड एवं पावेल के द्वारा किया वर्गीकरण ही युक्तियुक्त एवं सर्वव्यापी माना गया है। उन्होंने भारतीय दबाब-समूहों को चार वर्गों में विभाजित किया है।

(1) संस्थानात्मक दबाब-समूह

(2) समुदायात्मक दबाब-समूह

(3) असमुदायात्मक दबाब-समूह

(4) प्रदर्शनकारी दबाब-समूह

भारतीय लोकतंत्र में संगठित दबाब-समूहों को रेखांकित करता एक चार्ट-

भारत में दबाब-समूह

क्र. सं.	संस्थानात्मक	समुदायात्मक	असमुदायात्मक	प्रदर्शनात्मक
1.	कांग्रेस कार्य समिति	श्रमिक संघ	साम्प्रदायिक तथा धार्मिक समुदाय	जम्मू एंड कश्मीर
2.	कांग्रेस संसदीय बोर्ड	व्यावसायिक संघ	जातिगत समुदाय	लिवरेशन फ्रंट
3.	मुख्यमंत्री क्लब	कृषक समुदाय	भाषागत समुदाय	दल खालसा
4.	केन्द्रीय चुनाव समिति	छात्र समुदाय	गाँधीवादी संघ	खालिस्तान
5.	नौकरशाही	कर्मचारी संघ	युवा तर्क	कमांडो फोर्स
6.	....	साम्प्रदायिक संघ	सिण्डीकेंट	उल्फा

दबाब-समूह : कार्य एवं शक्तियाँ:-

राजीनतिक दल जहाँ अपने हितों का न्यूनतम बल्कि राष्ट्रीय हितों एवं सार्वजनिक कल्याण का संवर्द्धन करते देखे जाते हैं, वहीं दूसरी तरफ भारतीय दबाब-समूहों का प्रधन उद्देश्य अपने हितों का संवर्द्धन करना होता है। इसके लिए वह समय-समय पर सरकार पर दबाव डालते देखे जाते हैं। भारत में दबाब-समूहों का विकास राजनीतिक दलों की ही तरह अस्पष्ट रहा है। इन्हें किसी-न-किसी राजनीतिक दल ने प्रेरित किया, परिणामस्वरूप दबाब-समूह अपने उद्देश्यों को गौण कर राजनीतिक हित प्राप्त करना अपना उद्देश्य समझने लगे हैं। इस कारण से इनके तरीकों का शुद्धिकरण नहीं है, बल्कि संवैधनिक साधनों का प्रयोग कर अपने राजनैतिक हितों को प्राप्त करते पाये जाते हैं। अर्थात् यह एक नकारात्मक भूमिका भी निभाते पाये जाते हैं लेकिन कुछ सकारात्मक लड़ाई भी लड़ते देखे जाते हैं, जैसे-इंडियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स आदि।

छात्र-संगठन जहाँ शैक्षणिक गतिविधियों पर नियंत्रण एवं नवीन योजनाओं को क्रियान्वयन के प्रति सरकार पर दबाव डालने का प्रयास करते हैं, वहीं ट्रेड यूनियन महिला संगठन, कृषक संघ, वकील प्रकोष्ठ इत्यादि समूह भी अपने हित संवर्द्धन हेतु राजनीतिक दलों के संरक्षण में सरकार पर दबाव डालने का कार्य करते हैं। संक्षिप्त में, भारतीय दबाब-समूह निम्नांकित कार्य करते हैं-

(1) अपने हितों की पूर्ति के लिए दबाब-समूह बहुत सारे प्रचार विभिन्न तरीकों से करते हैं और सरकार पर दबाव डालते हैं, ताकि उनकी इच्छानुसार कानून बन जाय।

(2) वे सरकार के अधिकारियों से अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लए संपर्क स्थापित करते हैं।

(3) वे राजनीतिक दलों से अपना संपर्क स्थापित करते हैं।

(4) वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति तथा हित साधनों के लिए आवश्यकतानुसार अहिंसात्मक अथवा हिंसात्मक आंदोलन तथा हड़ताल भी करवाते हैं।

(5) लोकमत को प्रभावित करते हैं, इस हेतु दबाब-समूह समाचार पत्रों तथा अन्य साधनों का प्रयोग करते हैं।

(6) दबाब-समूह अपने विधायकों से विभिन्न तरीका से अच्छे संबंध स्थापित करते हैं और उनसे अपने हित में कानून बनाने तथा काम निकलवाने का प्रयत्न करते हैं।

दबाब-समूह की आलेचनाएँः-

यद्यपि दबाब-समूह प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था को गतिशील बनाने, सरकार की निरंकुशता को रोकने, जनता और सरकार में कड़ी का काम करने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करते हैं और प्रतयेक राजनीतिक समाज इन्हें आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार भी करने लगा है, लेकिन फिर भी इनकी भूमिका की आलोचना की जाती है। आलोचकों का मत है कि दबाब-समूह विशिष्ट हित को लेकर ही सरकार के पास जाते हैं। उनका सामान्य हित से कोई लेना-देना नहीं होता। कई बार दबाब-समूह अहिंसक साधनों का प्रयोग करके राष्ट्रीय सम्पत्ति को हानि पहुँचाते हैं और समाज की एकता व शांति को भंग करने से भी नहीं चूकते। विधयकों को अनैतिक साधनों से प्रभावित करके वे राजनीतिक भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वे न्यायपालिका जैसे पवित्र संगठन को भी नहीं छोड़ते। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए वे साम-दाम-दण्ड-भेद सभी नीतियों का प्रयोग निर्बाध रूप से करते हैं। अपने अनैतिक कारनामों द्वारा वे समाज में अनैतिकता का प्रसार कर देते हैं। उनकी बढ़ती भूमिका ने राजनीतिक दलों तक की भूमिका व महत्व को भी सीमित कर दिया है। इसलिए समय की यह माँग है कि दबाब-समूहों की निरंकुशता की प्रवृत्ति पर रोक लगाई जाए अन्यथा ये समाज और सरकार दोनों के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न कर देंगे।

निष्कर्षः-

उपरोक्त विवेचन के बाद यह कहा जा सकता है कि दबाब-समूह सार्वजनिक नीति को प्रभावित करने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। आधुनिक समाज में उनके बढ़ते प्रभाव को देखकर कहा जा सकता है कि दबाब-समूह ही वास्तविक राजनीतिक दल है, जो सरकार और जनता को जोड़ने का कार्य करते हैं। लोगों को राजनीतिक शिक्षा देना, जनमत को तैयार करना, सार्वजनिक नीति को प्रभावित करना, सरकार को जनता की माँगें समूहीकरण के रूप में पेश करना आज राजनीतिक दलों के बजाय दबाब-समूहों के ही कार्य हो गए हैं। इसी कारण आज कहा जाने लगा है कि दबाब-समूह शासकों को बनाने वाले हो गए हैं। इस तरह से स्पष्ट है कि लोकतंत्र की सफलता में दबाब-समूह का महत्वपूर्ण योगदान है, लेकिन नैतिकता के दायरे में रह कर दबाब-समूह को कार्य करना चाहिए।

संदर्भ सूचीः-

(1) हंस राज- भारतीय राजनीति व्यवस्था, 1986 ई॰, पृ॰सं॰-80

(2) डा॰ पुखराज जैन और डा॰ बाबू लाल फाड़िया- भारतीय शासन एवं राजनीति, 1985 ई॰

(3) जे॰ सी॰ जौहरी- तुलनात्मक राजनीतिक, 1977 ई॰

(4) दैनिक जागरण- 25 जून, 1992 ई॰, पृ॰सं॰-5

(5) जी॰ ए॰ आमोन्ड व जी॰ वी॰ पावेल- कम्परेटिव पॉलिटिक्स, 1972 ई॰, पृ॰सं॰- 75-76

(6) रजनी कोठारी- पॉलिटिक्स इन इंडिया, 1970 ई॰, पृ॰सं॰-216

(7) के॰ के॰ सिन्हा- प्राब्लम्स आफ पब्लिक प्रोटेक्ट इन इंडिया, पृ॰सं॰- 542-56

(8) अमर उजाला- 18 मई, 1991 ई॰, पृ॰सं॰-5

(9) एस॰ पी॰ कश्यप- द पॉलिटिक्स ऑफ डिफ्रेक्शन (दिल्ली:नेशनल), 1963 ई॰, पृ॰सं॰-344

(10) जी॰ ए॰ आलमंड एंड जी॰ वी॰ कोलमन- द पॉलिटिक्स ऑफ द डेवलपिंग एरियाज, प्रिंसटोन (1970 ई॰), पृ॰सं॰-185

संचार और सूचना प्रौद्योगिकी में कम्प्यूटर का आर्थिक सन्दर्भ

प्रोफेसर (डॉ.) संजय कुमार झा

विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, टी0एन0बी0 महाविद्यालय, भागलपुर,
तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

भूमिका

प्रस्तुत आलेख के अन्तर्गत कम्प्यूटर के विविध वैज्ञानिक आयाम को संदर्भित किया गया है। आज का युग कम्प्यूटर का युग है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कम्प्यूटर का समावेश है। वृहत् पैमाने पर गणना करने वाले इलेक्ट्रॉनिक संयंत्र को संगणक अथवा कम्प्यूटर कहते हैं, अर्थात् कम्प्यूटर वह युक्ति है, जिसके द्वारा स्वचालित रूप से विविध प्रकार के आंकड़ों को संशोधित एवं संचयित किया जाता है। वर्त्तमान स्वरूप का पहला कम्प्यूटर मार्क-1 था, जो 1937 ई0 में बना था।

संचार और सूचना प्रौद्योगिकी का संचालन इलेक्ट्रॉनिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय एवं संचार मंत्रालय करता है। इलेक्ट्रॉनिक एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय का मिशन है, ई-गवर्नेंस एवं इलेक्ट्रॉनिकी के सतत विकास को बढ़ावा देना। साथ ही, यह सूचना प्रौद्योगिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी उद्योगों का विस्तार और देश में इंटरनेट गवर्नेंस को प्रोत्साहन देता है।

सूचना प्रौद्योगिकी

इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (एमईआईटीवाई) सूचना प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रॉनिक्स, इंटरनेट (आईएसपी लासेंसिंग को छोड़कर) तथा साइबर सुरक्षा संबंधी नीतिगत विषयों को देख्ता है। इसका उद्देश्य नागरिकों को सशक्त बनाने के लिए ई-गवर्नेंस, इलेक्ट्रॉनिक्स, आईटी एवं आईटीईएस उद्योगों के समावेशी और टिकाऊ विकास को बढ़ावा देना, इंटरनेट गवर्नेस में भारत की भूमिका को बढ़ाना, बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाना, जिसमें मानव संसाधनों का विकास, अनुसंधान एवं विकास और नवाचार को लगातार बढ़ावा देना, डिजिटल सेवाओं द्वारा दक्षता बढ़ाना और सुरक्षित साईबर स्पेश सुनिश्चित करना है।

दूरसंचार

ज्ञान की तेजी से बढ़ती दुनिया में दूरसंचार सामाजिक- आर्थिक विकास के लिए आवश्यक अवसंरचना बन गया है। देश के सभी हिस्सों में दूरसंचार सेवाओं की पहुंच नए परिवर्तनकारी और प्रौद्योगिकी संपन्न समाज के विकास का अभिन्न हिस्सा है। अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट हुआ है कि देश के सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर पर इंटरनेट तथा मोबाइल सेवाओं के बीच सकारात्मक संबंध है। सरकार द्वारा उठाए गए उपायों के परिणामस्वरूप भारतीय दूरसंचार क्षेत्र तेजी से आगे बढ़ा है और चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा नेटवर्क बन गया है।

दूरसंचार विभाग

दूरसंचार विभाग तेजी समावेशी सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए सुरक्षित, विश्वसनीय, किफायती तथा उच्च गुणवत्ता संपन्न कनवर्ज्ड दूरसंचार सेवाएं, कहीं भी, कभी भी देने के लिए संकल्पबद्ध है। विभाग पूरे देश में सुरक्षित किफायती दर पर, विश्वसनीय तथा सुरक्षित वॉयस तथा डाटा सेवाएं प्रदान कर जनहित के लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में काम कर रहा है।

विगत वर्षों से देश में दूरसंचार ने अभूतपूर्व विस्तार किया है। उपभोक्ताओं की मांग के अलावा, भारत सरकार की मुक्त और सुधारवादी नीतियों के चलते भी इस क्षेत्र में तेजी से विकास देखा गया है। सरकार ने सेवा प्रदाताओं के बीच खुली प्रतिस्पर्धा, और स्पष्ट एवं सक्रिय नियामक ढांचा सुनिश्चित किया है जिसके आधार पर दूरसंचार सेवाएं उपभोक्ताओं तक कम कीमत पर पहुंच सकी हैं। साथ ही, सरकार ने टेलिकॉम उपकरण निर्माण को बढ़ावा देने के लिए भी अनुकूल प्रयास किए हैं। क्षेत्र में विक्रेंद्रित प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के कारण भी एफडीआई में वृद्धि हुई है। मौजूदा दौर में भारत दूरसंचार का दूसरा सबसे बड़ा बाजार है और यहाँ इस क्षेत्र के 1.18 बिलियन ग्राहक हैं। भारत की मोबाइल अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ रही है और मौजूदा दौर में समूचे टेलिफोन उपभोक्ताओं का 98 प्रतिशत इससे संबद्ध है। 2020 तक मोबाइल उद्योग का कुल आर्थिक ढांचा 14 खरब (217.37 बिलियन डॉलर्स) रूपये तक पहुंचने की उम्मीद है।

कम्प्यूटर के बहुआयामी पहलू

मोटे तौर पर कम्प्यूटर के दो महत्त्वपूर्ण पहलू होते हैं, जो इस प्रकार हैं-

(क) हार्डवेयर (ख) साफ्टवेयर

(क) **हार्डवेयर :** कम्प्यूटर के भौतिक तत्त्वों को हार्डवेयर कहा जाता है। भौतिक तत्त्व वैद्युत्तीय, इलेक्ट्रॉनिक, चुम्बकीय, यांत्रिकी या प्रकाशिक हो सकता है।

(ख) **साफ्टवेयर :** किसी खास कार्य को करने के लिए कम्प्यूटर को दिये जाने वाले निर्देशों के क्रम को प्रोग्राम कहा जाता है। कम्प्यूटर के लिए लिखे गये प्रोग्राम के सोट को ही साफ्टवेयर कहा जाता है। जिस साफ्टवेयर के माध्यम से उपयोगकर्त्ता को कार्यरूप दिया जाता है, उसे सिस्टम साफ्टवेयर कहा जाता है। साफ्टवेयर में सिस्टम साफ्टवेयर तथा उपयोगकर्त्ता का कार्यक्रम दोनों ही सम्मिलित होते हैं।

कम्प्यूटर की विशेषताएँ :

दिनोंदिन कम्प्यूटर की बढ़ती लोकप्रियता यह साबित कर दिया है कि यह एक शक्तिशाली एवं काफी लोकप्रिय साधन है। इसकी लोकप्रियता का राज इसकी कुछ विशेषताएँ हैं जो निम्नांकित हैं :

(i) **स्वचालित :** कम्प्यूटर एक तरह का स्वचालित मशीन होता है, क्योंकि एक बार जब वह कार्य करने लगता है, तो वह जब-तक कार्य समाप्त नहीं हो जाता है, उस कार्य को करते जाता है। फिर भी कम्प्यूटर चूँकि मशीन होता है, अत: वह अपने आप कार्य करना प्रारम्भ नहीं कर सकता है। इसे विशेष तकनीकी ढंग से निर्देशित करना पड़ता है।

(ii) **गति :** कम्प्यूटर एक बहुत ही तीव्र गति से कार्य करने वाला यंत्र होता है। कहा जाता है कि मनुष्य जिस कार्य को कई महीनों में करता है, उसे कम्प्यूटर मात्र चंद सेकेण्ड में सम्पन्न कर लेता है। इससे स्पष्ट रूप से यह साबित होता है कि कम्प्यूटर एक बहुत ही तीव्र गति से कार्य करने वाला यंत्र होता है।

(iii) **यथार्थता :** कम्प्यूटर न केवल तीव्र गति से कार्य करता है, बल्कि इसमें यथार्थता भी काफी अधिक होती है। कम्प्यूटर की यथार्थता यद्यपि कि उसके डिजाइन पर आधृत होती है, फिर भी कम्प्यूटर द्वारा किया गया गणना काफी यथार्थ होता है। कम्प्यूटर से त्रुटी भी होती है, परन्तु इसका कारण सामान्यत: तकनीकी न होकर मानवीय होता है। जब प्रोग्रामर कोई गलत आँकड़े का निवेश कम्प्यूटर में कर देता है या वह प्रोगाम लिखने में कोई त्रुटी कर देता है, तब स्वभावत: ऐसी परिस्थिति में कम्प्यूटर द्वारा किया गया संचालन तथा गणना दोनों में ही कुछ त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी त्रुटीयों को तकनीकी भाषा में गारवेज-इन-गारवेज-आउट कहा जाता है।

(iv) **बहुविज्ञता :** कम्प्यूटर में बहुविज्ञता का गुण होता है। एक क्षण में कम्प्यूटर परीक्षा का परिणाम तैयार कर रहा होता है, तो दूसरे क्षण में वह बिजली का बिल तैयार करने लगता है और इन दोनों के बीच वह किरानी को किसी महत्त्वपूर्ण पत्र को ढूँढने में भी मदद कर सकता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कम्प्यूटर कोई भी कार्य करने की क्षमता रखता है, अगर कार्य को तार्किक चरणों के क्रम में बाँटना सम्भव हो।

(v) **कर्मिष्ठता :** मानव से भिन्न कम्प्यूटर का विभिन्न तरह का कार्य करने में न कोई थकान होती है और न कोई मानसिक ऊब उत्पन्न होती है। साथ-ही-साथ इसमें एकाग्रता की भी कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती है। यह बिना कोई त्रुटी के ही घंटों कार्यरत रह पाता है।

(vi) **स्मरण शक्ति :** मानव मस्तिष्क से भिन्न एक कम्प्यूटर में चूँकि गौण स्मृति होती है, अत: इसमें बहुत सारे सूचनाएँ संचित होतीं हैं और आवश्यकतानुसार उनका प्रत्यह्वान किया जाता है। प्रत्येक सूचना को कम्प्यूटर में प्रोग्रामर जितना समय के लिए चाहे, उसे संचित कर सकता है और जब चाहे तो उसका प्रत्याह्वान कर सकता है। कम्प्यूटर से काई सूचना समाप्त

तभी होती है जब उसे ऐसा करने का निर्देश दिया जाता है। अत: कम्प्यूटर की स्मरण शाक्ति निश्चित रूप से अधिक होती है।

(vii) **द्विआधारी अंक :** कम्प्यूटर में सिर्फ द्विआधारी संख्या तंत्र जिसमें सभी संख्याओं को 1 या 0 से बतलाया जाता है, का प्रयोग होता है। इसका मात्र कारण यह है कि कम्प्यूटर एक वैद्युतीय यंत्र है जो 'आन' (वद) अर्थात् 1 तथा 'ऑफ' (वृद्धि) अर्थात् 0 को ही समझ पाता है।

(viii) **बुद्धि लब्धि का न होना :** यद्यपि कम्प्यूटर जटिल-से-जटिल गणनाओं एवं समस्याओं का समाधान आसानी से कर लेता है, फिर भी इसका अपना कोई बुद्धि लब्धि नहीं होता हैं यह अपने से कोई निर्णय नहीं ले सकता है। कम्प्यूटर को हमेशा यह बतलाना पड़ता है कि उसे क्या करना आसान है और किस क्रम से करना है।

(ix) **भाव का न होना :** कम्प्यूटर को न तो कोई संवेग होता है और न ही कोई भाव। एक मानव अपने भाव संवेग, ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में कोई-कोई निर्णय लेता है परन्तु कम्प्यूटर अपनी ओर से कोई ऐसा निर्णय नहीं लेता है और न ही कम्प्यूटर को कोई ऐसा भाव या संवेग ही होता है।

स्पष्ट है कि कम्प्यूटर की कई विशेषताएँ हैं, जिनसे इनकी लोकप्रियता काफी बढ़ी है।

विभिन्न क्षेत्रों में कम्प्यूटर का अनुप्रयोग

आजकल कम्प्यूटर का उपयोग करीब-करीब सभी क्षेत्रों में सार्थक ढंग से किया जा रहा है। ऐसे तो इसे कई क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उपयोग किया जाता है, परन्तु निम्नांकित कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें इसका उपयोग काफी अधिक प्रशंसनीय रहा है -

1. शिक्षा एवं प्रशिक्षण के क्षेत्र में -शिक्षा के क्षेत्र में कम्प्यूटर की अहम भूमिका देखी जा रही है। शौक्षिक संस्थानों में कम्प्यूटर का उपयोग पढ़ाने में, नयी-नयी सूचनाओं के स्रोत माध्यम तथा जीवनवृत्ति निर्देशन में काफी किया जा रहा है। जब कम्प्यूटर का उपयोग शिक्षण सहायता के रूप में किया जाता है, तो इसे कम्प्यूटर-सहायता प्राप्त निर्देश कहा जाता है। ब्प् प्रोग्राम को विभिन्न पद्धति, जैसे ट्यूटोरियल पद्धति में कम्प्यूटर नये-नये विचारों को उपस्थित कर कुछ जाँच प्रश्न पूछता है। खोज पद्धति में कम्प्यूटर कुछ सूचनाएँ प्रदान कर छात्रों को निष्कर्ष निकालने का निर्देश देता है। समस्या समाधान पद्धति में कम्प्यूटर छात्रों को अपने विशेष संप्रत्यय का उपयोग करके किसी समस्या का समाधान करने की प्रेरणा देता है।

2. मेडिकल शिक्षा क्षेत्र में-कम्प्यूटर का उपयोग अस्पताल में डॉक्टरों को बीमारी की पहचान करने में, किसी विशेष तरह के उपचार प्रारम्भ करने में, औषध का उपयोग करने में काफी अधिक किया जा रहा है। इतना ही नहीं, कम्प्यूटर का उपयोग अस्पताल में रोगियों के रिकार्ड तैयार करने तथा उनका विश्लेषण करने में भी किया जाता है। मेडिकल क्षेत्र में बहुत सारे ऐसे यंत्र विकसित किये गए हैं जो प्रतिभा के आधार पर किसी रोग की पहचान करते हैं। ऐसे यंत्रों में भी कम्प्यूटर का उपयोग किया जाता है। कम्प्यूटर इन यंत्रों में लगे स्कैनर से प्राप्त तस्वीरों से मिले सूचनाओं का विश्लेषण करता है। कम्प्यूटराइज्ड् एक्सीयल टोमोग्राफी तथा पीजीट्रान इमीसन टोमोग्राफी इसके प्रमुख उदाहरण हैं। कम्प्यूटर का उपयोग रोगात्मक जाँच में भी किया जाता है। रक्त के एक ही प्रतिदर्श या नमुना से कम्प्यूटर हेमोग्लोबिन ग्लूकोज, शवेत एवं लाल रक्तकण, प्रोटीन तथा अलवुमिन आदि के स्तर की जाँच आसानी से कर लेता है।

3. रक्षा के क्षेत्र में—कम्प्यूटर का उपयोग रक्षा के क्षेत्र में भी काफी अधिक हो रहा है। आजकल सभी आधुनिक हथियार या अस्त्र में कम्प्यूटर का उपयोग किया जाता है। आधुनिक टैंक, टोरपिडोज, मिसाइल आदि में कम्प्यूराईज्ड नियंत्रण तंत्र लगे होते हैं। एक निदेशित मिसाइल में आंतरिक कम्प्यूटर का उपयोग नियंत्रण के लिए किया जाता है। कम्प्यूटर की स्मृति में लक्ष्य क्षेत्र का विस्तृत तस्वीर आसानी से संचित किया जाता है। कम्प्यूटर निदेशित मिसाइल का अन्य लाभ यह है कि मानव नियंत्रित मिसाइल की तुलना में वे न केवल तेजी से उड़ सकते हैं बल्कि जल्दी से मुड़ भी सकते हैं। वे खतरनाक क्षेत्रों में भी उड़ सकते हैं। सैनिक संचार में भी कम्प्यूटर की भूमिका काफी अधिक बतलायी गयी है। रडार यंत्र में कम्प्यूटर का उपयोग करके आँकड़ों को संसाधित करने तथा प्रतिमाओं को प्रदर्शित करने का कार्य आसान हो जाता है। कम्प्यूट्रीकृत नियंत्रित तंत्र लक्ष्य वस्तुओं की ऊँचाई एवं परास के बारे में अधिक यथार्थ सूचना प्रदान करते हैं। आजकल लड़ाकू हवाई जहाज में तेजी से कार्य करने के लिए कम्प्यूटर लगे होते हैं। जैसे X-29। एक ऐसा लड़ाकू हवाई जहाज है जिसमें तीन कम्प्यूटर लगे होते हैं जो प्रति सेकेण्ड 40 तरह का समायोजन परिस्थिति की माँग के अनुरूप कर सकता है।

4. बैंक में—कम्प्यूटर का उपयोग बैंक में भी काफी अधिक होता है। बैंक में कम्प्यूटर का उपयोग सामान्य उद्देश्यीय कम्प्यूटर, लेजर को सम्पोषित करने, लेन-देन की प्रक्रिया सम्पन्न करने, पासबुक में लेन-देन का उल्लेख करने, निश्चित जमा सर्टिफिकेट देने आदि में काफी किया जाता है। बैंक काउंटर पर कम्प्यूटर अपने उपभोक्ताओं को नकद जमा करने तथा निकालने की भी सुविधा प्रदान करता है। आजकल चेकों का संसाधन भी कम्प्यूटर के माध्यम से होता है।

5. शौक्षणिक शाोध-कार्यो एवं डिजाइन में–वैज्ञानिक एवं अभियांत्रिकी डिजाइन एवं शाोध कार्यो में, जैसा कि हम जानते हैं, जटिल कम्प्यूटर की आवश्यकता पड़ती है जो कम्प्यूटर के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है। पुल का डिजाइन, बड़े-बड़े भवनों का डिजाइन, वैद्युतीय अंतरण नेटवर्क आदि में जटिल कम्प्यूटर की आवश्यकता होती है, जो आसानी से कम्प्यूटर के उपयोग से कर लिया जाता है। विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के शाोध कार्यो में जटिल कम्प्यूटर की आवश्यकता होती है जिसे कम्प्यूटर आसानी से करता है।

6. आँकड़ों के विश्लेषण में–कम्प्यूटर का उपयोग आँकड़ों के विश्लेषण में अधिक किया जाता है। इसके लिए एक विशेष तरह का सॉफ्टवेयर जिसे स्प्रेडशीट प्रोग्राम कहा जाता है, विकसित किया गया है। इस प्रोग्राम के सहारे प्रोग्रामर परिणाम का अंकन कर सकते हैं, उसका श्रेणीबद्ध विश्लेषण कर सकते हैं तथा अन्य जरूरत सम्बन्धी कार्य कर सकते हैं। कम्प्यूटर का उपयोग सांख्यिकीय आँकड़ें विश्लेषण के लिए भी किया जाता है। इसके लिए सांख्यिकीय पैकेज उपलब्ध है। स्प्रेडशीट प्रोग्राम द्वारा लेखा विश्लेषण, बिक्री विश्लेषण, व्यवसाय का वित्तीय पहलुओं का विश्लेषण आदि का भी कार्य आसानी से हो पाता है।

7. ऑफिस में–कम्प्यूटर का उपयोग ऑफिस कार्यो में भी काफी किया जाता है। सामान्यत: इसका उपयोग चिट्ठी तैयार करने में, मेमोरैण्डम लिखने, विज्ञापन तैयार करने, विशेष तरह का फार्म तैयार करने, नोट्स लिखने आदि में सफलतापूर्वक किया जाता है। इसके लिए माइक्रोकम्प्यूटर उचित कीमत पर उपलब्ध है। ऑफिस कार्य को करने के लिए वर्ड प्रोसिसिंग प्रोग्राम तैयार किया गया है जिसमें बहुत सारे विशेष सुविधाएँ जैसे खोज करना, हिज्जे की जाँच करना, लेखन के दो पंक्तियों के बीच उचित स्थान आदि देना कार्य, आसानी से होते हैं। ऐसे प्रोग्राम के माध्यम से ऑफिस के बहुत सारे कार्यो को करना आसान हो गया है।

8. ग्राफिक्स में–कम्प्यूटर का उपयोग आलेख बनाने में भी काफी होता है। कम्प्यूटर के माध्यम से तस्वीर, आरेखन तथा आलेख आदि का निर्माण काफी आसान हो गया है। कम्प्यूटर द्वारा तैयार किया गया आलेख तथा अरेखण काफी सुस्पष्ट एवं आकर्षक होता है। इसके लिए ग्राफिक पैकेज उपलब्ध हो गया है। ग्राफिक पैकेज में स्प्रेडशीट, सांख्यिकीय विश्लेषण तथा आवरण विश्लेषण आदि भी सम्मिलित होते हैं। इसमें आरेखण तथा तस्वीर को आवश्यकतानुसार परिवर्तित भी किया जा सकता है तथा खास कोण पर घुमाया भी जा सकता है। कम्प्यूटर की मदद से आरेखण या तस्वीर को खास ढंग से रंगा भी जा सकता है तथा द्विविमीय तथा त्रिविमीय आरेखण जिसकी जरूरत अभियांत्रिकी में अधिक होती है, भी तैयार किया जाता है।

9. समाज विज्ञान के अन्तर्गत–अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, शिक्षा जगत के शाोधों में कम्प्यूटर की उपयोगिता आर्थिक शाोधों के विभिन्न पहलुओं में अधिक होता है। स्पष्ट है कि कम्प्यूटर की कई उपयोगिताएँ हैं, जिनके कारण उसकी लोकप्रियता विभिन्न क्षेत्रों में काफी अधिक बढ़ रही है।

सारांश

आज के आधुनिक युग में सूचना प्रौद्योगिकी का आर्थिक विकास के सन्दर्भ में अलग ही महत्त्व है। जब हम अपने सांस्कृतिक और साहित्यिक धरोहरों को लगभग भूल चुके हैं। कम्प्यूटर की कार्यप्रणाली का अपना एक पूर्व निर्धारित व्यवस्था अर्न्तनिहित है। कम्प्यूटर संचालन से सम्बन्धित तकनीकी जानकारी रखनेवाले व्यक्ति द्वारा इसका संचालन किया जाता है। आज का युग कम्प्यूटर के माध्यम से ही प्राचीन, वर्तमान एवं भविष्य की संकल्पनाओं पर निर्भर हो निरन्तर विकास एवं प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है। हम सारी दुनिया से गर्व से कह सकें कि हमारा अतीत गौरवशाली था और हमेशा रहेगा और ऐसे ही समय में युग आया सूचना प्रौद्योगिकी का जिसके जरिए हम अपने अतित को सुरक्षित एवं भविष्य के सपनों को साकार कर सकें। 'सूचना प्रौद्योगिकी' हमारे लिए ही नहीं पूरे विश्व के लिए जीवन का अभिन्न अंग हो गया है। सूचना प्रौद्योगिकी आज हमारे विकास का माध्यम बन गया है।

सन्दर्भ

1. मार्शल मैक्लूहन : रेपिडेक्स कम्प्यूटर कोर्स, प्रकाशक, पुस्तक महल, क्वालिटी ऑफसेट प्रिटिंग प्रेस, बेंगलोर, प्रकाशन वर्ष-2001, पृष्ठ संख्या-115
2. डॉ. अशोक गुप्ता : विनडोज 95/98, बृज भवन, हैदराबाद,त्र वर्ष-2003, पृष्ठ संख्या-20
3. आर्थर सी0 क्लार्क : लर्निंग वीथ कम्प्यूटर, टाटा मैंगरील हील, पब्लिशिंग कंपनी, लिमिटेड, नई दिल्ली, वर्ष-2002, पृष्ठ- 25
4. रोहित गुप्ता : न्यू रेपिडेक्स कप्यूटर सिस्टम, अंसारी रोड, दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या-22
5. डॉ. ए0 के0 शार्मा : साइंस एण्ड कम्प्यूटर, प्रकाशक, नीट, कम्प्यूटर ट्रेनिंग, पब्लिशर्स, नेहरू मार्ग, दिल्ली, 2006, पृष्ठ 84
6. डॉ. ग्रियर्सन : मीडिया का बढ़ता दायरा, दैनिक जागरण प्रेस, महात्मा गाँधी पथ, कचहरी चौक, भागलपुर, पृष्ठ 12
7. हिलेरी प्यूटने : आइडेन्टी थ्योरी, एपटेक पब्लिकेशन्स, दिल्ली, वर्ष-1992, पृष्ठ सं0-16

गृह विज्ञान को लेकर लोगों के भ्रम की स्थिति

श्रीमती संगीतापुरी

असिस्टैंट प्रोफेसर, होमसाइंस विभाग, शांतिदेवी आर्य महिला कॉलेज, दीनानगर

सारांश

गृह विज्ञान का नाम आते ही एक ऐसे विषय का भान होता है, जिससे घर को बनाने-संवारने में मदद मिलती है। यह विज्ञान भी है और कला भी। इसमें कई विधाओं का समागम है, जैसे रसायन विज्ञान, भौतिकी, जीव विज्ञान, स्वच्छता, अर्थशास्त्र, बाल विकास, समाजशास्त्र, पारिवारिक संबंध, सामुदायिक जीवन, कला, भोजन, पोषण, पहनावा, वस्त्र, गृह प्रबंधन इत्यादि। आधुनिक गृह विज्ञान हाउसकीपिंग के तमाम खास पहलुओं का मिला-जुला रूप है। गृह विज्ञान का करियर आज की प्रगतिशील व आधुनिक खयालों वाली महिला के लिए आदर्श करियर है। उनके लिए बेहतर विकल्प है, जिनके पास सौंदर्य-बोध है, समकालीन कला की समझ है और आधुनिक हाउसकीपिंग को लेकर जिज्ञासा है। कोई भी गृह विज्ञान के पांच अंगों खाद्य एवं पोषण, संसाधन प्रबंधन, मानव विकास, वस्त्र विज्ञान और संचार में से किसी में भी विशेषज्ञता हासिल कर सकता है या सबकी सामान्य समझ हासिल कर सकता है। खाद्य एवं पोषण में विशेषज्ञता हासिल करने वाले को खाद्य पदार्थों के पोषक तत्त्वों, खाद्य अपमिश्रण, आहार परामर्श, खाद्य संरक्षण, खाद्य प्रसंस्करण, स्वास्थ्य के प्रति सामुदायिक जागरुकता इत्यादि की विस्तृत जानकारी मिलती है। संसाधन प्रबंधन में प्रबंधन सिद्धांत व व्यवहार, ऊर्जा संसाधन प्रबंधन, उपभोक्ता जागरूकता, आवासीय व वाणिज्यिक भवनों की योजना व परिकल्पना इत्यादि की बारीकियों का पता चलता है। वहीं मानव विकास के बारे में पढ़ाई करने से मानव विकास के क्रमिक चरणों का पता चलता है। वस्त्र विज्ञान कपड़ों के बारे में समझ पैदा करता है, जिसमें टेक्सटाइल डिजाइनिंग से लेकर मर्केन्डाइजिंग तक की समझ विकसित होती है।

विशिष्ट शब्दः गृह विज्ञान, औपनिवेशिक काल, विज्ञानशिक्षा, स्वरोजगार, पर्यटनव सेवा क्षेत्र

भारत में गृह विज्ञान की शिक्षा का इतिहास

भारतीय स्त्रियों को कुशल आधुनिक गृहिणी बनाने के लिए तैयार किये गये पाठ्यक्रम को गृह-विज्ञान की संज्ञा दी जाती है। इसे अमेरिका में प्रचलित घरेलू अर्थशास्त्र (होम इकॉनॉमिक्स) और ब्रिटेन में प्रचलित घरेलू विज्ञान (डोमेस्टिक साइंस) की शिक्षण सामग्री के मेल-जोल से तैयार किया गया है। इस पाठ्यक्रम में घरेलू अर्थशास्त्र, कढ़ायी-बिनायी-सिलायी, शिशुओं का लालन-पालन, नैतिक शिक्षा तथा गृह कार्यों में व्यवस्था एवं स्वच्छता जैसे विषय शामिल किये जाते हैं। गृह-विज्ञान के आलोचक इसे स्त्रियों को परिचित और सीमित घरेलू भूमिका में बाँधे रखने, पितृसत्ता कायम रखने और स्त्रियों को राजनीतिक रूप से निष्क्रिय बनाये रखने का षड्यंत्र मानते हैं। दूसरी तरफ गृह-विज्ञान को भारतीय घर के दायरे में एक शुरुआती सीमा तक आधुनिकता और राष्ट्रवाद का वाहक भी माना जाता है। अपने समय में अनेक नारीवादी संगठनों ने भारत में गृह-विज्ञान को स्त्री-अधिकारों के साथ जोड़ कर देखा है। इस विमर्श में घर को विशिष्ट रूप से एक नारीवादी इकाई माना गया है। यह विमर्श मानता है कि गृह-विज्ञान द्वारा स्त्रियों को नवीनतम वैज्ञानिक तकनीकों और आधुनिकतम जानकारी द्वारा परिवार-निर्माण का अधिकार मिलता है। इस तरह गृह-विज्ञान आधुनिकता के घरेलू पक्ष की परिभाषा के एक घटक के तौर पर उभरता है जिसके केंद्र में वह प्रशिक्षित स्त्री है जिसके हाथ में पूरे परिवार के शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास का दायित्व सौंपा गया है।

औपनिवेशिक काल में स्त्री-समानता और अधिकारों के लिए संघर्ष भी चल रहा था और उसके साथ ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था बनाये रखने के लिए धर्म, परम्परा और स्थापित सामाजिक व्यवस्था का हवाला देकर स्त्रिओं को हाशिये पर बनाये रखने की मुहिम भी जारी थी। इसी जद्दोजहद के बीच स्त्रियों को आधुनिक शिक्षा से जोड़ने के प्रयास किये गये, लेकिन उन्हें पुरुषों के समान शिक्षित

करने में भारी अड़चनें थीं। इसी दौरान भारतीय स्त्रियों को उनके परिवेश के अनुरूप ही शिक्षित करने के लिए गृह-विज्ञान का पृथक अध्ययन क्षेत्र बनाया गया। गृह-विज्ञान में स्त्रियों को बेहतर गृहिणी बनाने के साथ एक शिक्षित नागरिक के रूप में विकसित करने का आदर्श भी शामिल था। ब्रिटिश प्रशासन ने भी इस क्षेत्र में पहल ली। गृह-विज्ञान के अध्यापन के लिए स्त्री-अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का कार्यक्रम शुरू किया गया। प्रशासन ने भारतीय समाज-सुधारकों के साथ मिल कर सबसे पहले विधवा स्त्रियों को इस प्रशिक्षण के लिए चुना। प्रशिक्षण के उपरांत ये स्त्रियाँ आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन सकती थीं। प्रशासन विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिए आवश्यक समाज-सुधार (जैसे विधवा-पुनर्विवाह, बाल-विवाह का निषेध) जैसे कार्यक्रमों को पुरातनपंथी समाज के भारी विरोध के कारण स्थगित करने का इच्छुक भी था। स्त्री-अध्यापकों के प्रशिक्षण के आरम्भिक दौर में अधिकतर औरतें ईसाई समुदाय या गैर-ब्राह्मण समाज से थीं। लेकिन उच्च वर्ण के कुछ प्रमुख भारतीय समाज सुधारकों ने अपने परिवार की स्त्रियों को भी इस प्रशिक्षण में भाग लेने के लिए उत्साहित किया। यूरोपियन माध्यमिक स्कूलों में गृह-विज्ञान के अध्यापन को लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक नये शिक्षण व प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किये गये। गृह-विज्ञान को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए इसके प्रशिक्षण को प्रायोगिक एवं व्यावहारिक बनाते हुए शिक्षण-सामग्री में विज्ञान के बुनियादी सिद्धांतों का समावेश किया गया।

भारत में स्त्री-अधिकारों के लिए सार्वजनिक तौर पर अभियान चलाने का श्रेय ब्रह्म समाज के अग्रणी नेता देवेन्द्र नाथ ठाकुर की पुत्री और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बहन स्वर्ण कुमारी देवी को जाता है। उन्होंने 1882 में कलकत्ता में विधवाओं और गरीब स्त्रियों को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने के लिए प्रशिक्षण देने की शुरुआत की थी। इसी प्रकार पण्डिता रमाबाई सरस्वती ने पुणे में आर्य स्त्री समाज और शारदा सदन के माध्यम से स्त्रियों को रोजगार दिलाने के लिए प्रशिक्षित करने का कार्यक्रम चलाया था। 1910 में स्वर्ण कुमारी देवी की पुत्री सरला देवी चौधरानी ने केवल स्त्रियों के लिए भारत स्त्री मण्डल की स्थापना करके स्त्रियों को उनके घर पर ही शिक्षित करने का अभियान चलाया था। बीसवीं सदी के आरम्भ में स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करने में युरोपियन मिशनरी एवं भारतीय समाज-सुधारक सबसे आगे थे। लेकिन अधिकतर स्त्रियों की शिक्षा अनौपचारिक तौर पर उनके घर पर निजी शिक्षकों के द्वारा दी जाती थी। दरअसल ज्यादातर सुधारक स्त्रियों की शिक्षा को उनके घरेलू दायित्वों से जोड़ना चाहते थे ताकि वे अपने परिवार-कुटुम्ब के लालन-पालन व जीवन शैली में गुणात्मक सुधार ला सकें। इस प्रकार की शिक्षा के लिए गृह-विज्ञान को सर्वोत्तम विषय माना गया। गृह-विज्ञान को भारतीय समाज में श्घरश की परिकल्पना के आदर्श स्वरूप को स्थापित करने और गृह-विज्ञान में प्रशिक्षित स्त्रियों को आदर्श पत्नी-माँ-गृह लक्ष्मी की भूमिका के वाहक की तरह पेश किया गया। गृह-विज्ञान ने भारतीय 'घर' को एक ऐसी प्रयोगशाला बना दिया जिसके दायरे में परिवार एवं समाज में व्यापक सुधारों के अभियान का आरम्भ हो सकता था। इसके साथ ही गृह-विज्ञान को प्रबुद्ध-सम्भ्रांत भारतीयों में स्वीकार्य बनाने के लिए इसे एक ऐसे माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया गया जो भारतीय स्त्रियों को उनके अपने घर में सम्माननीय स्थान दिलाने और व्यापक समाज-सुधार में स्त्रियों को केंद्रस्थ करने में कारगर भूमिका निभा सकता था।

गृह-विज्ञान का विचार उपनिवेशवाद-विरोधी आन्दोलन में प्रचारित की जा रही आदर्श स्त्री-छवि के अनुकूल भी बैठता था। गाँध ी द्वारा आंदोलन का नेतृत्व सँभालने के बाद आम भारतीय स्त्रियों ने भी बड़ी संख्या में इसमें हिस्सा लेना शुरू किया। गाँधी ने स्त्रियों को जोड़ने के लिए माँ-पत्नी-बहन की आदर्श निःस्वार्थ छवि का दोहन किया। इसी तरह हिंदू राष्ट्रवादी व्याख्या में भी भारत भूमि को भारत माता के रूप में निरूपित किया गया। तमिलनाडु में भी तमिल भाषा के आंदोलन में तमिल भाषा व तमिल राष्ट्रीयता को माँ के रूप में दर्शाया गया। तमिल अस्मिता के पुनरुद्धार और तमिल गौरव के मातृ रूप में प्रदर्शन के प्रचारकों ने स्त्रियों को गृह स्वामिनी और मातृ शक्ति के रूप में बढ़ावा दिया। परिणामस्वरूप न केवल आत्मसम्मान आंदोलन में स्त्रियों ने बड़ी संख्या में हिस्सा लिया, बल्कि तमिलनाडु के सामान्य लोगों में भी स्त्री-शिक्षा के प्रति जागरूकता विकसित हुई। तमिल आंदोलन के शीर्ष नेतृत्व ने भी स्त्रियों के लिए ऐसे सुधारों की हिमायत की जिनके द्वारा पत्नी व माँ की भूमिका को प्रभावकारी बनाया जा सके।

गृह-विज्ञान के भारतीयकरण और इसके प्रसार में कुछ भारतीय स्त्रियों ने प्रमुख भूमिका निभायी। धोंडो केशव कर्वे के विधवा आश्रम से संबंधित पार्वती बाई आठवले 1918 में अमेरिका यात्रा पर गयीं जहाँ उन्होंने देखा कि घरेलू कार्य में वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग किस तरह भारत के लिए भी बेहद लाभप्रद हो सकता है। इसी प्रकार बड़ौदा के प्रधानमंत्री की पुत्री हंसा मेहता ने भी 1920-21 के दौरान अमेरिका में घरेलू अर्थशास्त्र के प्रशिक्षण का अध्ययन किया और वापस लौटकर महाराज सयाजी राव विश्वविद्यालय में एक स्त्री महाविद्यालय की स्थापना की जिसमें गृह-विज्ञान पाठ्यक्रम का प्रारूप अमेरिकन विशेषज्ञ ऐन गिलक्रिस्ट स्ट्रांग ने तैयार किया। स्ट्रांग की 1931 में प्रकाशित पुस्तक श्डोमेस्टिक साइंस फॉर हाई स्कूल इन इण्डियाश लम्बे समय तक भारतीय गृह-विज्ञान की सबसे मानक पाठ्य पुस्तक मानी जाती रही। भारतीय स्त्री संगठन ने भी गृह-विज्ञान के अनौपचारिक प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलाया और इससे संबंधित जानकारी के प्रसार के लिए एक पत्रिका स्त्रीधर्म का प्रकाशन किया। इसमें अमेरिका से

प्रकाशित जर्नल ऑफ होम इकॉनॉमिक्स के लेख प्रकशित किये जाते थे। तमिलनाडु के मद्रास शहर में अनेक देवदासियों को समाज में पुनर्वासित करने के उद्देश्य से गृह-विज्ञान का प्रशिक्षण दिया गया ताकि वे घरेलू कर्मचारी की तरह काम में लगाई जा सकें। 1926 में भारतीय स्त्री संगठन की कुछ सदस्यों ने राजनीतिक स्वतंत्रता के स्थान पर स्त्रियों की शिक्षा को अपना प्राथमिक उद्देश्य माना और भारतीय स्त्री संगठन छोड़ कर अखिल भारतीय स्त्री सम्मलेन स्थापित किया। इस नये समूह ने स्त्रियों को गृह-विज्ञान में प्रशिक्षित करने के लिए 1932 में दिल्ली में लेडी इरविन कॉलेज की स्थापना की।

स्वरोजगार के अवसर

1. घरेलू हस्तकला, सजावटी सामग्री व रचनात्मक चीजों के उत्पादक के रूप में।
2. नर्सरी स्कूल, डे केयर सेन्टर, बालवाड़ी व क्रैच के मालिक के रूप में।
3. किसी अतिथि आवास गृह और पेइंग गेस्ट हाउस के मालिक के रूप में।
4. कपड़ों की सिलाई और सिले-सिलाए कपड़ों की फिनिशिंग करने वाले जैसे बटन, तुरपन व साड़ी पर फॉल लगाने वाले के रूप में।
5. बुटीक, बुने हुये कपड़ों की इकाई, वस्त्र बुनाई इकाई व वस्त्र सजावट इकाई के मालिक के रूप में।
6. ड्राइक्लीनिंग की दुकान के मालिक के रूप में।
7. कैंटीन मालिक के रूप में।
8. घर से पैक की गयी भोजन सामग्री व आहार सेवाओं के आपूर्तिकर्ता के रूप में।
9. बेकरी, परिरक्षित व प्रसंस्करित (च्तवबमेमक) भोजन इकाई के मालिक के रूप में
10. पार्टियों की केटरिंग सेवा के प्रबंधक के रूप में।
11. कुकिंग, वस्त्र विज्ञान, वस्त्र सजावट, सॉफ्ट टॉय बनाने की व बुनाई इत्यादि की कक्षाएँ चलाने वाले के रूप में।
12. उपहारों की पैकिंग, ताजे व सूखे गुलदस्ते विक्रयकर्ता के रूप में व पार्टियों की सजावट के लिये सेवाएं देने वाले के रूप में।
13. बच्चों व महिलाओं की पत्रिकाओं के लेखक के रूप में।

गृह विज्ञान से सम्बन्धित भ्रान्तियाँ

एक आम व्यक्ति के लिये गृह विज्ञान का अर्थ खाना पकाना, सिलाई करना व सज्जा मात्र है। जबकि गृह विज्ञान गृह कार्यों को पूर्ण करने में वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। इससे संबंधित भ्रान्तियाँ है।

1. गृह विज्ञान मात्र भोजन पकाना सिलाई कढ़ाई एवं शिशु की देखभाल सिखाता है- यह सत्य है कि इस विषय में उपर्युक्त सभी का समावेश रहता है। किन्तु इनके क्रियान्वयन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण गृह विज्ञान प्रस्तुत करता है। उदा- भोजन हर महिला अपने परिवार के लिये पकाती है, किन्तु भोजन में कौन से पोषक तत्व होने चाहिए जिससे उत्तम स्वास्थ बनाया जा सके यह केवल गृह विज्ञान विषय से ज्ञात होता है।
2. गृह विज्ञान केवल लड़धिकियों के लिये है- वर्तमान को बदलती परिस्थितियों में परिवार में पति और पत्नी दोनों कार्यरत है। ऐसे समय में पुरूषों को भी दैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं से परिचित होना आवश्यक हो जाता है। इसलिए यह विषय लड़कों के लिये भी महत्वपूर्ण है। यह भ्रान्ति धीरे-धीरे दूर भी हो रही है वर्तमान में रायपुर मुक्त बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षा में लड़के और लड़कियों का प्रतिशत गृह विज्ञान विषय में बराबर-बराबर ही पाया गया।
3. लड़कियाँ गृहविज्ञान माँ से सीख सकती है फिर यह विषय क्यों- यह सत्य है कि गृह कार्य सम्बन्धी सारी जानकारी लड़कियाँ माँ से प्राप्त कर सकती है किन्तु क्या, क्यों, कैसे यह उत्तर गृह विज्ञान विषय पढ़ने के बाद ही दे सकती है। जैसे पका भोजन अधिक समय तक रखने पर खराब हो जाता है? गृह विज्ञान विषय पढ़ने के बाद लड़कियाँ इस प्रश्न का उत्तर दे सकती है कि भोजन किन-किन कारणों से खराब होता है। खराब होने पर इसमें क्या परिवर्तन आता है और इसे खराब होने से कैसे बचा सकते है।

4. गृह विज्ञान रोजगार मूलक नही है- गृह विज्ञान विषय की पूर्ण जानकारी न होने से यह भ्रान्ति बढ़ रही है कि बडेघ् शहरों में यह विषय 10वीं से ही रोजगारमूलक बन जाता है। यह विषय रोजगार के साथ-साथ स्वरोजगार मूलक अधिक है। आँगन बाड़ी कार्यकर्ताओं के लिये यह विषय अत्यधिक उपयोगी है।

गृह विज्ञान में रोजगार के अवसर

स्कूल स्तर पर गृह विज्ञान विषय का अध्ययन करने के बाद आप वेतनभोगी कर्मी स्वरोजगार या उद्यमी बनने के कई अवसर प्राप्त कर सकते है।

1. आहार विशेषज्ञ के रूप में।
2. उपभोक्ता संगठन के कर्मचारी के रूप में।
3. उपभोक्ता सामग्री व सेवाओं के विक्रय प्रतिनिधियों के रूप में।
4. बचत व निवेश योजनाओं के प्रतिनिधियों के रूप में।
5. हस्तकला केन्द्र, घरेलू उद्योगों से निर्मित वस्तुओं के शोरूम में कर्मचारी के रूप में।
6. नर्सरी स्कूल के केयर सेन्टर, क्रेच व बालवाड़ी के कर्मचारी के रूप में।
7. गृह विज्ञान महाविद्यालयों व गृह विज्ञान विषय पढ़ाने वाले विद्यालयों के प्रयोगशाला सहायक के रूप में।
8. ड्राइक्लीनिंग की दुकान के कर्मचारी के रूप में।
9. खानपान केन्द्र, अस्पताल के पथ्य विभाग, जल पान गृह, केन्टीन से सम्बन्धित स्टोर के कर्मचारी के रूप में।

गृह-विज्ञान के भारतीयकरण और इसके प्रसार में कुछ भारतीय स्त्रियों ने प्रमुख भूमिका निभायी। धोंडो केशव कर्वे के विधवा आश्रम से संबंधित पार्वती बाई आठवले 1918 में अमेरिका यात्रा पर गयीं जहाँ उन्होंने देखा कि घरेलू कार्य में वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग किस तरह भारत के लिए भी बेहद लाभप्रद हो सकता है। इसी प्रकार बड़ौदा के प्रधानमंत्री की पुत्री हंसा मेहता ने भी 1920-21 के दौरान अमेरिका में घरेलू अर्थशास्त्र के प्रशिक्षण का अध्ययन किया और वापस लौटकर महाराज सयाजी राव विश्वविद्यालय में एक स्त्री महाविद्यालय की स्थापना की जिसमें गृह-विज्ञान पाठ्यक्रम का प्रारूप अमेरिकन विशेषज्ञ ऐन गिलक्रिस्ट स्ट्रांग ने तैयार किया। स्ट्रांग की 1931 में प्रकाशित पुस्तक 'डोमेस्टिक साइंस फॉर हाई स्कूल इन इण्डिया' लम्बे समय तक भारतीय गृह-विज्ञान की सबसे मानक पाठ्य पुस्तक मानी जाती रही। भारतीय स्त्री संगठन ने भी गृह-विज्ञान के अनौपचारिक प्रशिक्षण का कार्यक्रम चलाया और इससे संबंधित जानकारी के प्रसार के लिए एक पत्रिका स्त्रीधर्म का प्रकाशन किया। इसमें अमेरिका से प्रकाशित जर्नल ऑफ होम इकॉनॉमिक्स के लेख प्रकशित किये जाते थे। तमिलनाडु के मद्रास शहर में अनेक देवदासियों को समाज में पुनर्वासित करने के उद्देश्य से गृह-विज्ञान का प्रशिक्षण दिया गया ताकि वे घरेलू कर्मचारी की तरह काम में लगाई जा सकें। 1926 में भारतीय स्त्री संगठन की कुछ सदस्यों ने राजनीतिक स्वतंत्रता के स्थान पर स्त्रियों की शिक्षा को अपना प्राथमिक उद्देश्य माना और भारतीय स्त्री संगठन छोड़ कर अखिल भारतीय स्त्री सम्मलेन स्थापित किया। इस नये समूह ने स्त्रियों को गृह-विज्ञान में प्रशिक्षित करने के लिए 1932 में दिल्ली में लेडी इरविन कॉलेज की स्थापना की।भारतीय स्त्री संगठन की एक संस्थापक सदस्य मालती पटवर्धन ने स्त्रीधर्म पत्रिका में गृह-विज्ञान के प्रचार के साथ ही स्त्रियों की सामाजिक समस्याओं, जैसे रोजगार, स्त्री-अधिकारों से संबंधित कानूनी-संवैधानिक परिवर्तन, पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार के विखंडन जैसे विषयों को प्रमुखता से उठाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. फजले गुफरान (5 जनवरी 2011). 'गृह विज्ञान: आधुनिक महिला का आदर्श करियर', लाइव हिन्दुस्तान. मूल से 19 अप्रैल 2014 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 18 अप्रैल 2014।
2. मैरी हेन्कॉक (2001), 'होम साइंस ऐंड द नैशनलाइजेशन ऑफ डोमिस्टिसिटी इन कोलोनियल इण्डिया', मॉडर्न एशियन स्टडीज, खंड 35, भाग 4।
3. मालविका कार्लेकर (1994), 'वुमंस नेचर ऐंड एक्सेस टू एजुकेशन', सी. मुखोपाध्याय एवं एस. सेमोर (सम्पा.), वुमॅन, एजुकेशन ऐंड फैमिली स्ट्रक्चर इन इण्डिया, बोल्डर वेस्टव्यू, यूएसए।

नई कहानी: संवेदना और शिल्प

डॉ० विनय कुमार

टीजीटी इंग्लिश, जीबीएसएसएस नं. 3, नजफगढ, नई दिल्ली-110043

सन् 1950 के बाद की कहानी विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से पूर्ववर्ती कहानी से भिन्न है। पुरानी कहानी में जहाँ पूर्वाग्रह है, वहीं नई कहानी पूर्वाग्रह से मुक्त है। पुराने कहानीकार ने अपनी आँखों पर सामाजवादी, नैतिकतावादी, रूमानी या मनोविश्लेषणवादी चश्मा तगाकर जीवन को देखा, किन्तु नए कहानीकार ने सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जीवन को यथार्थ रूप में देखने-समझने का प्रयास किया। उसकी कहानी 'भोगे हुए यथार्थ' से जुड़ी है, इसलिए वह अधिक प्रामाणिक है। आधुनिक मानव के जीवन को विविध कोणों से देखकर उसका साही परिप्रक्ष्य में चित्रण करने का प्रयास इन कहानीकारों ने किया है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार–''अभी तक जो कहानी सिर्फ कथा कहती थी, या कोई चरित्र पेश करती थी अथवा एक विचार को झटका देती थी, वही.....जीवन के प्रति एक नया भाव-बोध जगाती है।[1]

नयी कहानी में विषयों की विविधता के साथ-साथ शिल्प का नयापन भी विद्यमान है। उसमें प्रभावान्विति पर इतना जोर नहीं है। जितना जीवन के संश्लिष्ट खंड में व्याप्त संवेदना पर है। नया कहानीकार किसी दार्शनिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक विचारधारा से प्रतिबद्ध न होकर विशुद्ध अनुभूति की सचाई और विषय की यथार्थता के प्रतिप्रिबिद्ध होता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर ने नयी कहानी के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है–''नई वैचारिक दृष्टि।''[2] आज का कहानीकार पहले से अधिक सूक्ष्मदर्शी और संवेदनशील है। वह बिना किसी लाग-लपेट के तटस्थता एवं सच्चाई के साथ यथार्थ वास्तविकता को अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करता है। डॉ. गणपित चन्द्र गुप्त के अनुसार–''नई कहानी का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है–कथा तत्त्व का ह्रास, नया कहानीकार कथानक को महत्त्व नहीं देता।[3]

स्वतंत्रता बाद हमारी मानसिकता में बदलाव आया है। प्रजातांत्रिक मूल्यों के संबंध में हमारी आदर्शवादी कल्पनाएँ झूठी साबित हुई हैं तथा जीवन के कठोर यथार्थ से हमारा परिचय और भी घनिष्ट हुआ है। भूख, गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा जैसी समस्याओं ने हमारे जन-जीवन को पूरी तरह प्रभावित किया है। अत: कहानियों के विषय अब जीवन की वास्तविक समस्याओं से पूरी तरह जुड़े हुए दिखाई पड़ रहे हैं। प्रसिद्ध विद्वान् मार्कण्डेय के अनुसार–''नयी कहानी से हमारा मतलब उन कहानियों से है जो सच्चे अर्थों में कलात्मक निर्माण हैं, जो जीवन के लिए उपयोगी हैं और महत्वपूर्ण होने के साथ ही उसके किसी न किसी नए पहलू पर आधारित है।''[4]

नयी कहानी की विकास यात्रा बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में प्रारंभ हुई। सन् 1955 ई. में 'कहानी' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, जिसमें प्रकाशित होने वाली कहानियाँ परंपरागत कहानियों से कुछ अलग दिखाई पड़ रही थीं कथा और टेकनीक दोनों ही दृष्टियों से। बाद में इन कहानियों को 1955-56 के आसपास 'नयी कविता' की तर्ज पर 'नयी कहानी' का जाने लगा। नयी कहानी में जीवन के यथार्थ को ईमानदारी के साथ चित्रित किया गया है तथा वह कल्पना-प्रसूत होने पर भी अपने आस-पास के जीवन की कहानी दिखती है। उसमें विषय वैविधय भी है। यदि हम उसे विभिन्न वर्गों में विभक्त करना चाहें तो निम्न वर्गों में बाँट सकते हैं–

1. ग्रामीण अंचल की कहानियाँ
2. नगर बोध की कहानियाँ
3. यथार्थबोध की कहानियाँ

4. यौन समस्याओं का चित्रण करने वाली कहानियाँ
5. व्यंग्य प्रधन कहानियाँ

छठे दशक के आरंभ में हिन्दी कहानी में ग्रामीण अंचल की कहानियों ने पाठकों को विशेष आकृष्ट किया। इन कहानीकारों में शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, फणीश्वरनाथ रेणु के नाम प्रमुख हैं। इनकी कहानियों में गाँव की तस्वीर साफ-सुथरे रूप में उभरी है, किन्तु उनमें रोमांस की प्रधानता है, शिवप्रसाद सिंह के कहानी संकलनों के नाम है–आर-पार की माला, सुदसिराय, इन्हें भी इंतजार है, आदि। मार्कण्डेय के कहानी संकलनों में महुए का पेड़, भूदान, हंसाजाई अकेला, माही, आदि प्रमुख है। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में आंचलिकता उभर आई है। 'लाल पान की बेगम' और 'तीसरी कसम' उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं।

नयी कहानी में नगरबोध की प्रवृति प्रमुखता से व्यक्त हुई है। आज के नगरीय जीवन में पाया जानेवाली सतही सहानुभूति, आंतरिक ईर्ष्या, स्वार्थपरता, जीवन की कृतिमता आदि की अभिव्यक्ति कमलेश्वर निर्मल वर्मा, अमरकांत की कहानियों में देखी जा सकती है। नयी कहानी में आधुनिक बोध कई अर्थों में विद्यमान है। मध्यकालीन मूल्यों के ह्रास तथा नवीन वैज्ञानिक सोच ने आज की कहानी को प्रभावित किया है। नगरीय जीवन की वास्तविक स्थितियों को चित्रण तो इन कहानियों में है ही साथ ही आधुनिक बोध से उत्पन्न अकेलेपन एवं रिक्तता की अनुभूति, युगीन संक्रमण एवं तनावों को भी उसमें अभिव्यक्त किया गया है। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, अमरकांत, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा की कहानियों में ये स्थितियाँ देखी सकती है।

नयी कहानी को समृद्ध करने में हिन्दी कथा लेखिकाओं का भी महत्त्वूपर्ण स्थान है। उषा प्रियंषदा, मन्नू भंडारी, कृष्ण सोवती, शिवानी, नेहरून्निसा परवेज एवं रजनी पानेकर जैसी कहानी लेखिकाओं ने प्रति-पत्नी एवं नारी-पुरुष संबंधें को अपनी कहानियों में प्रमुखता से अभिव्यक्त किया है। 'मैं हार गई', त्रिशंकु, तीन निगाहों की एक तस्वीर, यही सच है--आदि मन्नू भंडाी के प्रमुख कहानी संकलन हैं।

प्रेम और विवाह के कटु-मधुर संबंधें का चित्रण भी नए कहानीकारों ने किया है। कमलेश्वर की 'व्यान', राजा निरवासिया, राजेन्द्र यादव की 'टूटना', मन्नू भंडारी की 'यही सच है' और मनोहन राकेश की उपस्थिति कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। मोहन राकेश की 'मिस पाल', कमलेश्वर की 'तलाश' उषा प्रियंवदा की 'छुट्टी का एक दिन', अमरकांत की 'जिंदगी और जोंक कहानियाँ टूटी हुई नारी या टूटे हुए पुरुष की कहानियाँ हैं।

नई कहानीकारों में प्रमुख हैं–महीप सिंह, दिनश पालीवाल, राजकुमार श्रमर, नरेन्द्र कोहली, गोविंद मिश्र, श्रद्धा कुमार, ममता कालिया, निरुपमा सोवती, दीप्ति खण्डेलवाल आदि। यद्यपि यह सूची किसी भी सीमा तक बढ़ायी जा सकती है, तथपि यहाँ प्रमुख काहनीकारों का उल्लेख करके संतोष कर लिया गया है।

'नई कहानी' हिन्दी कथा विकास यात्रा की एक उपलब्धि है। यद्यपि इस कहानी पर मूल्यहीनता का आरोप लगाया जाता है, क्योंकि 'जीवन के शाश्वत मूल्य' जैसी किसी चीज में इनका कोई विश्वास नहीं है, तथापि हम इसे इस आरोप से वरी कर सकते हैं। नई कहानी में मूल्यहीनता न होकर मूल्यों का परिवर्तन है।.....नई कहानी किसी एक क्षण या एक स्थिति या एक संवेदना को व्यक्त करने वाली कहानी है। मानव की दृष्टि बदलने के साथ ही नई कहानी का 'शिल्प' भी बदला है।

नई कहानी का विषय क्षेत्र सीमित है–ऐसा आरोप इस पर लगाया गया है तथा प्रयोग धर्मिता ने भी इसके स्वरूप को विकृत्त किया है–इस धरणा को भी नई कहानी से जोड़ा गया है। केवल रचना चमत्कार एवं बुद्धि वैभव के बल पर 'प्रेमचन्द' नहीं बना जा सकता। इस तथ्य को नए कहानीकार यदि ध्यान में रखें और जीवन की गहन वास्तविक अनुभूति से जुड़े तो वे अध्कि प्रभावशाली रचना को जन्म दे सकेंगे।

नई कहानी की भाषा एवं एवं शिल्प में भी परिवर्तन हुआ है। रेणु जी की भाषा में ग्रामीण अंचल की सुगंध है, यथा–''है किसी के पास एक घूर जमीन भी इस गाँव में।''[5] नये कहानीकारों ने जटिल संवदनाओं को व्यक्त करने के लिए लाक्षणिक एवं विम्बात्मक भाषा का प्रयोग किया है। कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश की कहानियों में भाषा का यह स्वरूप देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, निर्मल वर्मा की भाषा को देखा जा सकता है। ''जब कभी दरबाजा खुलता है, धूप का एक साँवला-सा धब्बा खरगोश की तरह भागता हुआ घुस आता है।''[6] नई कहानी की भाषा में सांकेतिकता अधिक है, वर्णनात्मकता कम। कमलेश्वर की 'तलाश' कहानी में बुझे हुए सिगरेट के टुकड़ों, जीने का खुला दरवाजा एवं तकिए पर पड़े गडढे से यह संकेत दिया गया है कि सुमी की ममी किसी प्रेमी के साथ मिला करती है। इसी तरह भीष्म साहनी की कहानी 'चीक की दावत' में माँ संपूर्ण परंपरा का बोध कराती

है। जो परंपरा हमारी दृष्टि में हेय है, वही विरेशियों को आकृष्ट करती है और जब विदेशी उसकी प्रशंसा करते हैं तो हमें भी वह मूल्यवान लगने लगती है।

सामयिक कहानियों नगरबोध एवं महानगरीय जीवन तक केन्द्रित हो गई हैं। ग्रामीण पृष्ठभूमि से जुड़ी कहानियाँ अब बहुत कम दिखाई दे रही हैं। समकालीन कहानी का फलक बहुत विस्तृत है। जीवन के हर क्षेत्र से जुड़ी समस्या आज कहानी का विषय बन रही है। कहानी का 'वाद' या 'आंदोलन' के घेरे में कैद करने से उसकी शक्तिमता क्षीण ही होती है, अत: वास्तविक अर्थ में कहानी वही है, कि जसमें जीवन के अनुभूत सत्य को साहित्यिक रूप प्रदान किया गया हो। जीवन की कोई ऐसी समरूा नहीं है जो कहानीकार की दृष्टि से छूटी हो।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. कहानी : नयी कहानी, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1967, पृ. 76
2. आजकल, जनवरी, 2012, संपा. सीमा ओझा, पृ. 27
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- गणपति चन्द्र गुप्त, पृ. 206
4. कथादेश–अप्रैल, 2008, संपा. हरिनारायण व्यास, पृ. 42
5. हिन्दी गद्य-साहित्य-रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ. 312
6. वही. पृ. 314

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्धः संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे के लिए प्रयास

डॉ० दीपक कुमार

एम.ए., पीएच.डी. विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सारांश

दूसरे महायुद्ध के पहले तक साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियां बहुत ही ताकतवर हो गई और उसकी एकता भी मजबूत हुई। मजदूर आन्दोलन संगठित हो गया और किसान आन्दोलन के साथ उनकी एकता बढ़ी। ब्रिटिश भारत और रियासती जनता के आन्दोलन मिलकर एक होने लगे, सारे भारत की जनता ऐक्यबद्ध होकर ब्रिटिश साम्राजियों और उनके आधारस्तम्भ सामंत सरदारों से लोहा लेने के लिए आगे बढ़ने लगी। मजदूरों, किसानों और अन्य श्रमजीवियों के आर्थिक आन्दोलन धीरे-धीरे राजनीतिक आन्दोलन के साथ जुड़ते गए। साम्राजियों की संघ योजना के विरूद्ध और युद्ध विरोधी प्रचार पर प्रतिबंध के विरूद्ध तथा विधान निर्मात्री परिषद के लिए और कम्युनिस्ट पार्टी के ऊपर से प्रतिबंध हटाने के लिए आन्दोलन तेज हो गया, भारतीय जनगण के नए-नए हिस्से इस आंदोलन के मैदान में उतरते गए। ऐसा लग रहा था जैसे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की निर्णायक घड़ी जल्दी आने वाली है।

किन्तु, देश में बढ़ती संयुक्त मोर्चे की भावना का एक परिणाम यह भी हुआ कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और गैरकानूनी कम्युनिस्ट पार्टी के बीच एक समझौता हुआ जिसमें दोनों सहमत हुए कि कांग्रेस को संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे में रूपांतरित करने का प्रयास वे मिलकर करेंगे। कम्युनिस्ट पार्टी मांग कर रही थी कि कांग्रेस को वास्तविक संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे में रूपांतरित करने के लिए ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, ऑल इंडिया किसान सभा, ऑल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेंस जैसे जन संगठनों को कांग्रेस से सामूहिक तौर पर संबद्ध किया जाए। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने उसके इस प्रयास का समर्थन करने का वादा किया। लेकिन उसके दक्षिणपंथी नेतृत्व ने कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों की यह एकता ज्यादा दिनों तक नहीं चलने दी जिसका परिणाम संयुक्त मोर्चे के लिए घातक सिद्ध हुआ।

संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की स्थापना -

राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम को सफल क्रांति की तरफ ले जाने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता थी। संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की एक क्रांतिकारी कार्यक्रम और क्रांतिकारी नेतृत्व की। इस दिशा में वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों का प्रयास सराहनीय था। कम्युनिस्टों ने इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए 'नेशनल फ्रंट' (राष्ट्रीय मोर्चा) नामक साप्ताहिक पत्र निकाला था। उनके इस पत्र का प्रकाशन कांग्रेस सरकारों द्वारा जनतांत्रिक अधिकारों पर से प्रतिबंधों को हटाने के कारण संभव हुआ था। उसके संपादक थे पूरनचंद जोशी। ब्रिटिश शासक उसे बंद करने की हर तरह कोशिश करते थे और जो प्रेस उसे छापता उससे जमानत मांगते थे। इन परेशानियों के बावजूद यह पत्र निकलता रहा और 'संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा' स्थापित करने की भरसक कोशिश करता रहा। उनका घोषित लक्ष्य था साम्राज्यवाद के विरूद्ध मार्क्सवाद-लेनिनवाद के आधार पर संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की स्थापना के लिए हर तरह प्रयत्न करना।

संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की स्थापना के लिए पहली आवश्यकता यह थी कि सभी समाजवादी ऐक्यवद्ध किए जाएं, दूसरी यह कि सभी वामपंथियों की एकता कायम की जाएं, तीसरी यह कि ऐक्यवद्ध जनसंगठन स्थापित किए जाएं और चौथा यह कि कांग्रेस को संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे में रूपांतरित किया जाए। वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट इन बातों को समझते थे और इसलिए

उन्होंने इस दिशा में प्राय: चारों कदम एक साथ उठाने की कोशिश की। जनसंगठनों की एकता कायम करने में वे सफल हुए। मजदूर आन्दोलन की फूट समाप्त हो गई और ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में फिर सब ऐक्यबद्ध हो गए। क्रांतिकारी शक्तियों की एकता के लिए सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों की एकता निहायत जरूरी थी। उनकी एकता के बिना कोई भी 'संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा' संभव नहीं था। दोनों पार्टियों के प्रतिनिधियों को लेकर एक ऑल इंडिया काटैंक्ट कमेटी (अखिल भारतीय सम्पर्क समिति) स्थापित की गई थी। इनका उद्देश्य था दोनों पार्टियों के सदस्यों के बीच सम्पर्क बढ़ाना और ऐसा कार्यक्रम तैयार करना जिसे दोनों पार्टियों के कार्यकर्त्ता मिलकर पूरा करें। कम्यूनिस्ट पार्टी के अनेक सदस्य और कार्यकर्त्ता कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बने और उसे शक्तिशाली बनाया।

कम्युनिस्ट चाहते थे कि कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ता एक साथ मिलकर जगह-जगह काम करें, काम के जरिए वे एक दूसरे का विश्वास प्राप्त करें और उनके बीच एकता कायम हो। अनुकूल अवसर आने पर दोनों पार्टियों को मिलाकर एक कर दिया जाए और इस नई पार्टी का नाम 'संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी' रखा जाए। दोनों पार्टियों की कार्यकारिणी कमेटियों को मिलाकर संयुक्त पार्टी की कार्यकारिणी कमेटी बनाई जाए। वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट उनकी इस योजना का समर्थन करते थे। चूँकि दक्षिणपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट नेता ऐसी एकता नहीं चाहते थे इसलिए वे असंभव प्रस्ताव रखते थे। उन्होंने कहा कि वे भी चाहते है कि कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी मिलकर एक हो जाए। कम्युनिस्ट पार्टी अपने सिद्धान्त और अपना कार्यक्रम छोड़ दे। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सिद्धान्त और कार्यक्रम को अपना लें, वह अपने को भंग कर दें और उसके सारे सदस्य कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बन जाए। अगस्त 1937 में उन्होंने ये शर्त्ते रखीं और अपने को मार्क्सवादी घोषित किया। मार्के की बात है कि ये नेता अपने को मार्क्सवादी कहने को तैयार थे लेकिन मार्क्सवादी लेनिनवादी नहीं।

दक्षिणपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट नेताओं का शड्यंत्र -

अप्रैल 1938 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का चौथा सम्मेलन लाहौर में हुआ। देखा गया कि बहुमत दक्षिणपंथी नेतृत्व के साथ नहीं है। इस सम्मेलन में नई कार्यकारिणी के लिए दो लिस्टें पेश की गई। एक लिस्ट में वामपंथी सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों का बहुमत था। दूसरी लिस्ट दक्षिणपंथी नेतृत्व की तरफ से पेश की गई थी। उसमें उन्होंने वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों को सिर्फ एक तिहाई सीटें दी थी। बहुमत को अपने विरूद्ध जाते देख और नेतृत्व पर वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्टों तथा कम्युनिस्टों के कब्जे का खतरा देख दक्षिणपंथी नेतृत्व ने पार्टी के दो टुकड़े कर देने की धमकी दी। इस धमकी से वे थोड़े से बहुमत से अपना प्रस्ताव पास करा सकें।

सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों की एकता को तोड़ने के लिए मसानी जैसे दक्षिणपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट नेताओं ने एड़ी-चोटी का पसीना एक किया। मीनू मसानी ने तो 1938 में एक दस्तावेज प्रचलित किया जिसका नाम 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के खिलाफ कम्युनिस्टों का शडयंत्र' था। इस दस्तावेज में उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के एक गुप्त सर्कुलर को उद्धृत किया और उसके आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिशि की कि कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अंदर से तोड़ने और दुर्बल बनाने का शड्यंत्र कर रहे है। इससे कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी सभी कमेटियों और सदस्यों को आदेश दिया था कि वे कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों की एकता को मजबूत करने के लिए जी-जान से कोशिश करे, जो कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अंदर काम करते हैं, वे उसे जनप्रिय और मजबूत करें तथा अपने कामों द्वारा अपने विरोधियों का भी विश्वास प्राप्त करें।

सर्कुलर के आरंभ में ऑल इंडिया काटैक्ट कमेटी (सम्पर्क समिति) के बारे में कहा गया था कि उसके सभी फैसलों को कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य कादारी के साथ पूरा करेंगे। उसमें आशा जाहिर की गई कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता भी सर्कुलर भेजकर अपनी सभी कमेटियों को आदेश देंगे कि जितने अवसरों और मोर्चो पर संभव हो उतने पर संयुक्त कार्यवाही की जाए। इस सर्कुलर में कम्युनिस्ट पार्टी ने आशा जाहिर की थी कि इस तरह एक साथ काम करने से एक दिन दोनों पार्टियों के बीच के मतभेद दूर हो जाएंगे और दोनों को मिलाकर एक सोशलिस्ट पार्टी बन जाएगी।

हम आशा करते हैं कि इस तरह की ऑल इंडिया कमेटी (सम्पर्क समिति) एक संयुक्त कार्यकारिणी के निर्माण की तरफ जाने का कदम होगी और इस कमेटी में होने वाले विचार विवेचन समाजवादी आन्दोलन की सैद्धांतिक और राजनीतिक एकता को दिन व दिन ज्यादा मजबूत करेंगे तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का सुनिश्चित पथ प्रदर्शन करेंगे।

मुम्बई, कोलकाता और कानपुर में दक्षिणपंथी कांग्रेस सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों के बीच संबंध सबसे ज्यादा कटु थे। उक्त सर्कुलर में कम्युनिस्ट पार्टी ने कहा था कि इन स्थानों में खुद उसकी स्थानीय कमेटियों को 'संपर्क समितियां' बनाने में पहल करनी चाहिए और जैसे भी मुमकिन हो और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी जिन भी सवालों पर तैयार हो, उन पर संयुक्त आंदोलन करना चाहिए।

कम्युनिस्ट पार्टी ने नारा दिया था कि सब समाजवादी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो जाएं किन्तु उसके इसी नारे को दक्षिणपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट नेता संदेह की दृष्टि से देखते थे और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी पर कब्जा करने की चाल समझते थे। उनके इस मनोभाव को देखकर उक्त सर्कुलर में कम्युनिस्ट पार्टी ने आदेश दिया था कि फिलहाल उसके सदस्य इस नारे को स्थगित रखें। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की एकता बनाए रखने का विश्वास कांग्रेस सोशलिस्ट के नेतृत्व के अन्दर पैदा करने के लिए, इस एकता को बढ़ाने में समर्थ होने के लिए हमलोग फिलहाल बाहर से मांग पर जोर न देंगे कि 'सब समाजवादी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो जाएं।' कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अन्दर हमारा काम इस विचार से चलाना होगा कि हम समाजवादी एकता के सचेत निर्माता हैं, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की एकता बनाए रखना हमारा काम है।

उक्त सर्कुलर के ये उद्धरण यह साबित करने के लिए काफी है कि कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के खिलाफ कोई शडयंत्र नहीं कर रहे थे, वे इस पार्टी को अंदर से तोड़ भी नहीं रहे थे और न दुर्बल बना रहे थे। वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के भीतर और बाहर सभी सोशलिस्टों की एकता स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे। संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे के लिए, राष्ट्रीय मुक्ति क्रांति को सफल बनाने के लिए कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों की एकता बहुत जरूरी थी, लेकिन अफ़सोस कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दक्षिणपंथी नेतृत्व को इसमें भी कम्युनिस्ट शडयंत्र दिखाई पड़ रहा था। पार्टी के लाहौर अधिवेशन में उन्होंने धमकी दी थी कि अगर कार्यकारिणी कमेटी में वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों का बहुमत हो गया तो वे अलग हो जाएगें, अन्य शब्दों में पार्टी में फूट डाल देंगे। इस तरह से वे अपने बहुमत की कार्यकारिणी कमेटी का प्रस्ताव पास कराने मे समर्थ हुए थे। किन्तु उन्होंने एकता विरोधी नीति नहीं छोड़ी। उनकी इन चालों के बावजूद सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों के बीच सहयोग बढ़ता देख जुलाई 1939 में मीनू मसानी, अशोक मेहता, राममनोहर लोहिया और अच्युत पटवर्धन ने पार्टी की कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया और खुलकर अपना कम्युनिस्ट विरोधी रूप जाहिर किया। उन्होंने समाचारों में बयान दिया कि कम्युनिस्ट राष्ट्रीय आंदोलन के स्वतंत्र विकास में बाधा डाल रहे हैं। उन्होंने साम्यवाद को विघटनकारी शक्ति बताया और सोवियत सरकार की मातहत कहा। उन्होंने कहा : 'हमारे सिद्धांतों और दृष्टिकोण के बीच बहुत से मौलिक अंतर हैं। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का यह दक्षिणपंथी नेतृत्व आखिर में सोशलिस्ट-कम्युनिस्ट एकता को तोड़ रहा था। कम्युनिस्टों और साशलिस्टों की एकता का अभाव संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा स्थापित करने में बड़ा बाधक साबित हुआ। दक्षिणपंथी सोशलिस्ट नेताओं ने स्पष्ट घोषित किया था कि उनकी एकता कांग्रेस के दक्षिणपंथी बुर्जुआ सुधारवादी नेताओं से होगी लेकिन कम्युनिस्टों से नहीं, राष्ट्रीय आंदोलन को वे उसी तरह शांतिपूर्ण और वैध उपायों से चलाना चाहते हैं जैसे कांग्रेस के सुधारवादी दक्षिणपंथी नेता। वे राष्ट्रीय मुक्ति क्रांति के रास्ते को गलत मानते है और क्रांति की जगह सुधारवाद का रास्ता अपनाना चाहते हैं।

1937-39 के बीच कांग्रेस की जो शक्ति बढ़ी थी उसका बहुत कुछ श्रेय वामपंथियों का था। वामपंथी राष्ट्रवादी, कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट उसके अंदर काम करते थे और उनके काम श्रमजीवियों को कांग्रेस की तरफ आकर्षित करते थे। कांग्रेस सचमुच राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे का रूप धारण कर रही थी। कितनी ही कांग्रेस कमेटियां वस्तुत: संयुक्त मोर्चे की तरह काम कर रही थीं। कितनी ही कमेटियों में वामपंथियो का बहुमत था।

कांग्रेस के लखनऊ और फैजपुर के अधिवेशनों के अध्यक्ष पद पर जवाहरलाल नेहरू का और उसके बाद हरिपुरा कांग्रेस तथा त्रिपुरा कांग्रेस के लिए सुभाषचन्द्र बोस का चुना जाना कांग्रेस के अन्दर वामपंथियों के बढ़ते प्रभाव का प्रमाण था।

दूसरे महायुद्ध का खतरा त्रिपुरा अधिवेशन से पहले से ही साफ देखा जा रहा था। इससे संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की संभावना उज्ज्वल हो गई थी। देशवासी साम्राज्यवादी युद्ध को राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में बदलने को उत्सुक थे। वामपंथी भी इसके लिए तैयार थे किन्तु कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेता नहीं। वे तो इस संकट के समय कुछ दबाव डालकर ब्रिटिश शासकों से कुछ सुविधाएँ लेने के ताक में थे। 1938 के अंत में कांग्रेस अध्यक्ष सुभाषचंद्र बोस ने 'संग्राम की योजना' पेश की थी। वामपंथियों के पहले सम्मेलन (कलकत्ता, 8 फरवरी 1939) ने इसका समर्थन किया। कम्युनिस्टों ने वामपंथी राष्ट्रवादियों और कांग्रेस सोशलिस्टों के समर्थन से त्रिपुरा कांग्रेस

में इसे पास करना चाहा था। लेकिन सुभाष की बीमारी की वजह से उनसे बातचीत नहीं हो सकी। फलतः उनकी जगह जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किया गया राष्ट्रीय मांगों का प्रस्ताव पास हो गया।

कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने पर बाध्य होने के बाद ही सुभाषचन्द्र बोस ने फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना की तरफ कदम उठाया। जून 1939 में उसका पहला सम्मेलन मुम्बई में हुआ और ठीक उसी वक्त जब वहाँ कांग्रेस महासमिति की बैठक हो रही थी। इसके प्रथम अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस थे। सुभाष उसे सब रेडिकलों और साम्राज्यवाद विरोधियों का मंच बनाना चाहते थे। वे सब वामपंथियों को फारवर्ड ब्लॉक के झंडे के नीचे गोलबंद करना चाहते थे। मजे की बात यह है कि मसानी, मेहता, लोहिया और पटवर्धन जैसे नेताओं ने उसके निर्माण का स्वागत किया। दूसरी ओर कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने मिलकर जून 1939 में ही बयान दिया कि फारवर्ड ब्लॉक के निर्माण से वामपंथी शक्तियों की फूट और भी गहरी हो जाती है तथा उससे साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों के ब्लॉक को खतरा पैदा हो जाता है। इस वक्तव्य में प्रस्ताव किया गया कि एक नया वामपंथी सम्मेलन बुलाया जाए और फारवर्ड ब्लॉक, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी तथा कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों को लेकर 'लेफ्ट को ऑपरेशन कमेटी' (वामपंथी सहयोग समिति) स्थापित की जाए और सब मिलाकर एक सर्वसम्मत राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर काम करें।

ब्रिटिश शासक संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की स्थापना के इस प्रयास पर कड़ी नजर रख रहे थे और उसे नाकाम करने तथा स्वाधीनता संग्राम को दुर्बल करने की चालें चल रहे थे। सामंत, जमीन्दार और सांप्रदायिकतावादी उनकी इस चालों के मोहरे थे। उनकी प्रेरणा से जमीन्दारों का अखिल भारतीय सम्मेलन दिसम्बर 1938 में हुआ और उनके संगठन 'ऑल इंडिया फेडरेशन ऑफ लैंडलार्ड्स (अखिल भारतीय जमीन्दार संघ) की स्थापना 3 अप्रैल 1939 को हुई। राजाओं-महाराजाओं के संगठन 'चैंबर ऑफ प्रिंसेज' (नरेन्द्र मंडल) को पुनः 1938 में सक्रिय बनाया गया और उसकी स्थाई कार्यकारिणी चुनी गई। जमीन्दार संघ तथा कितने ही सामंत सरदारों ने ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रस्तावित संघ योजना में शामिल होने की इच्छा जाहिर की। ब्रिटिश साम्राजियों की सहायता से एक तरफ मुस्लिम लीग और दूसरी तरफ हिन्दू महासभा ने साम्प्रदायिका का जहर फैलाया। उल्लेखनीय है कि परस्पर विरोधी ये दोनों संगठन राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करने वाली कांग्रेस को दुश्मन और ब्रिटिश साम्राजियों को दोस्त समझते है। 'इस्लाम खतरे में है' का नारा बुलंद कर मुस्लिम लीग कांग्रेस को विशुद्ध हिन्दू संस्था बताकर मुसलमानों को साम्राज्यवाद विरोधी संग्राम से अलग रखने की कोशिश कर रही थी और हिन्दू महासभा हिन्दुओं के बीच कांग्रेस के बायकाट का नारा दे रही थी। दोनों अपने कामों से कौमी तहरीक की नहीं, ब्रिटिश साम्राजियों की खिदमत कर रही थी।

निष्कर्ष -

कांग्रेस सभी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का संयुक्त संगठन बना रही थी। वह धीरे-धीरे संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे का रूप ले रही थी किन्तु कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेता यह पसंद नहीं करते थे। वे कांग्रेस को साम्राज्यवादी शासकों और उनके आधारस्तंभ सामंत सरदारों के विरूद्ध भारतीय जनता का क्रांतिकारी अस्त्र नहीं बनने देना चाहते थे। वे इसे साम्राजियों पर दबाव डालने और उनके साथ समझौता करने का अस्त्र बनाए रखना चाहते थे। उन्होंने मजदूरों, किसानों वगैरह के जनसंगठनों और उसके नेतृत्व के संग्रामों को मजबूत करने की जगह उन्हें कमजोर बनाने का रास्ता अपनाया। कांग्रेसी सरकारें साम्राज्यवाद विरोधी जन संग्राम का अस्त्र बन सकती थी लेकिन दक्षिणपंथी नेताओं ने उन्हें संग्राम को विकसित करने का नहीं, उसे रोक रखने का साधन बनाया। त्रिपुरा कांग्रेस के बाद से तो उन्होंने कांग्रेस को वामपंथियों से और भी दूर रखने और उसे सिर्फ एक संसदीय वैधानिकतावादी पार्टी बना देने का रास्ता अपनाया। दक्षिणपंथी नेतृत्व ने प्रस्ताव पास कराया कि कोई भी कांग्रेसजन प्रदेश कांग्रेस कमेटी की इजाजत के बिना किसान या किसी अन्य सत्याग्रह में हिस्सा नहीं ले सकता। वे सीधे कांग्रेस सेन्ट्रल पार्लमेंटरी कौंसिल के मातहत रहेंगी। ये सब कदम उठाकर दक्षिणपंथियों ने कांग्रेस को संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा नहीं बनने दिया। दूसरे महायुद्ध के शुरू होने के पहले तक राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे के लिए बड़ी ही अनुकूल परिस्थिति वर्तमान थी। कम्युनिस्ट, वामपंथी, कांग्रेस सोशलिस्ट और वामपंथी राष्ट्रवादी इसके लिए बहुत ही प्रयत्न कर रहे थे लेकिन इसमें सबसे बड़ी बाधा डाल रहे थे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दक्षिणपंथी नेता।

संदर्भ :-

1. बालाबुशेविच और झाकोव : कांटेंपररी हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृष्ठ संख्या-294, 304, 328
2. होम/पोल/1934, एफ. 45/1(सुबोध राय : कम्युनिज्म इन इंडिया अनपब्लिशडडाकूमेंट्स 1925-1934, पृष्ठ संख्या-213-17
3. पट्टाभि सीतारमया : कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ- 961
4. कांग्रेस सोशलिस्ट, 18 मई 1937, 7 जनवरी 1937
5. 'दि टाइम्स', 9 मार्च 1937
6. 'हर्षदेव मालवीय : लैंड रिफार्म्स इन इंडिया, (दिल्ली 1954ऋ, पृ० सृं - 57
7. 'आज' 18, 22 अप्रैल 1935, 4 अगस्त 1935
8. सुभाषचन्द्र बोस - दि इंडियन स्ट्रगल, भाग-3, पृ0 सं0 - 19-20
9. नेशनल फ्रंट, 2, 9, 16 जुलाई 1939
10. वी.बी. कार्णिक द्वारा संग्रहित, इंडियन कम्युनिस्ट पार्टी डाकूमेंट्स 1930-1936, दि डेमोक्रेटिक रिसर्च सर्विस, बम्बई और दि इंस्टिच्यूट ऑफ पैसिफिक रिलेशंस (न्यूयार्क, 1957) पृ० सं० 36-45

आधुनिक समय में अस्थानिक गर्भावस्था - बढ़ती समस्याः एक अध्ययन

अर्पणा सिन्हा

शोध छात्र, मगध महिला कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था की बढ़ती समस्याओं को दृष्टिपात किया गया है। गर्भधारण करना हर महिला का सपना है। बेशक, लेकिन इसमें कई तरह की शारीरिक परेशानियां होती है, लेकिन घर में नन्हें मेहमान के आने का अहसास मात्र ही इन परेशानियों को कम कर देता है। कुछ महिलाओं को गर्भावस्था की पूरी योजना बनाने के बाद भी किसी न किसी परेशानी से जूझना पड़ता है, जिनका इलाज समय पर करना जरूरी होता है, नही तो छोटी - सी समस्या बड़ा रूप ले सकती है। इन्हीं परेशानियों में से एक है, अस्थानिक गर्भावस्था, जिसे अंग्रजी में एक्टोपिक प्रेग्नेंसी कहते है। अध्ययन के लिए महिलाओ को मगध कॉलोनी , कुर्जी, पटना, बिहार से लिया गया है, जिनका चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया एवं आकड़ो का संग्रहण साक्षात्कार प्रविधि एवं विश्लेषण प्रतिशत के माध्यम से किया गया है। इस अध्ययन की उत्तरदाताएँ महिलायें थी जो शिक्षित और अशिक्षित दोनो थी। अध्ययन में सबसे ज्यादा अज्ञानता एवं अशिक्षित महिलाओं की भी अहम् भूमिका हैं। इस अध्ययन को व्यापक स्तर पर करने से प्राप्त सुझावों के आधार पर महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था का पता लगाया जा सकता है जो शिक्षित और अशिक्षित दोनो महिलाओं के हित मे होगा।

शब्द कुंजी - अस्थानिक गर्भावस्था, शिक्षित महिला, अशिक्षित महिला, लिंग-भेद।

प्रस्तावनाः

माँ दुनिया का सबसे खूबसूरत शब्द है जिसके अंदर सम्पूर्ण दुनिया समाहित हो जाती है, एक मां अपना सब कुछ छोड़ कर भूलकर एक नए बीज को इस दुनिया में लाती हैं। एक कहावत सच प्रतीत होता है कि फल को जन्म देने के लिए फूल अपना अस्तित्व मिटा देता है। किंतु मां बनना सरल प्रक्रिया नही है इसकी तैयारी किशोरावस्था से ही शुरू हो जाती है। स्वस्थ शिशु को जन्म देने के लिए माता का स्वस्थ रहना बेहद जरूरी है। इसलिए यह जरूरी है कि किशोरावस्था से ही बालिका के संतुलित एवं पौष्टिक भोजन पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। गर्भकालीन अवस्था में एक साथ दो मानव शरीर का पोषण होता है। जन्म से पूर्व 40 सप्ताह तक अर्थात् 9 माह तक शिशु मां के गर्भ में विकसित होता है। गर्भकाल में भोज्य पदार्थो की मात्रा एवं गुणवता दोनो में ही वृद्धि करनी होती है।

प्रजनन संबंधी अवस्था, एक मादा के गर्भाशय में भ्रूण के होने को गर्भावस्था (गर्भ + अवस्था) कहते हैं, तदुपरांत महिला शिशु को जन्म देती है। आमतौर पर यह अवस्था मां बनने वाली महिलाओं में 9 माह तक रहती है, जिसे गर्भवती महिला कहते है। कभी-कभी संयोग से एकाधिक गर्भावस्था भी अस्तित्व में आ जाती है जिसमें जुड़वां या एक से अधिक संतान की उपस्थिति होती हैं।

एग फर्टिलाइजेशन से लेकर प्रेगनेंट होने तक का सफ़र बहुत मुश्किल होता है। इस दौरान कई तरह की मुश्किलें आ सकती है जिनमें से एक एक्टोपिक प्रेग्नेंसी भी हैं। फर्टिलाइजेशन से लेकर डिलीवरी तक प्रेग्नेंसी के दौरान कई तरह के शारीरिक बदलाव आते

है। जब फर्टिलाइज्ड एग खुद गर्भाशय से जाकर जुड़ जाता है, तब प्रेग्नेंसी शुरू होती है। एक्टोपिक प्रेग्नेंसी में फर्टिलाइज्ड एग गर्भाशय से नहीं जुड़ता है बल्कि वह फैलोपियन टड्ूब, एब्डोमिनल कैविटी या गर्भाशय ग्रीवा से जाकर जुड़ जाता है। इसे अस्थानिक गर्भावस्था भी कहा जाता है। एक निशेचित अंडा गर्भाशय के अलावा कहीं भी ठीक से विकसित नहीं हो सकता है। अमेरिकन एकेडमी ऑफ फैमिली फिजिशियन के अनुसार एक्टोपिक प्रेग्नेंसी 50 में से एक महिला को होती है। यदि एक्टोपिक प्रेग्नेंसी का इलाज न किया जाए तो इसकी वजह से मेडिकल एमेरजेंसी की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। सही उपचार से एक्टोपिक प्रेग्नेंसी में आने वाली जटिलताओं के खतरे को कम, भविष्य में स्वस्थ गर्भावस्था की संभावना को बढ़ाया और आने वाली स्वास्थ्य समस्याओं को कम किया जा सकता हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :

- यह पता लगाना कि शिक्षित शहरी महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था की जानकारी किस स्तर तक हैं।
- यह पता लगाना कि शिक्षित ग्रामीण महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था की जानकारी किस स्तर तक हैं।
- यह पता लगाना कि शिक्षित ग्रामीण एवं शिक्षित शहरी महिलायें अस्थानिक गर्भावस्था के कारणो से अवगत है या नही।

संदर्भ स्त्रेत का पुनरावलोकन :

यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में सभी गर्भधारण के लगभग 1-2 प्रतिशत एक्टोपिक गर्भधारण हैं और पश्चिमी दुनिया में टड्ूबल एक्टोपिक गर्भावस्था, गर्भावस्था की पहली तिमाही में मातृ मृत्यु का सबसे आम कारण बनी हुई है (फरक्वार, 2005, वर्मा और गुप्ता, 2009)।

वायलेन एट ऑल 2009 के द्वारा किये एक अध्ययन के अनुसार सिगरेट पीने से एक्टोपिक प्रेगनेंसी का खतरा बढ़ जाता है। हालाँकि धूम्रपान क्यों एक्टोपिक प्रेगनेंसी के खतरे को बढ़ाता है इसके कारणों को समझना अभी बाकी ही है।

ऊपर के संदर्भो को देखने से यह पता चलता है कि शोध तो बहुत हुए है लेकिन ''अस्थानिक गर्भावस्था बढ़ती समस्या'' पर शोध करना आवश्यक है, इसलिए शोधकर्ता ने अपने शोध के लिए इस विषय का ही चयन किया।

शोध प्रविधियाँ :

अध्ययन का क्षेत्र - प्रस्तुत शोध के लिए मगध कॉलोनी, कुर्जी, पटना, बिहार का चयन किया गया है।

निदर्शन आकार एवं निदर्शन तकनीक - अध्ययन के लिए कुल 50 महिलाओं का चयन किया गया है, जिसमें से 25 ग्रामीण क्षेत्रों सें शिक्षित महिलाओं को लिया गया है, तथा 25 शहरी क्षेत्रों में से शिक्षित महिलाओं का चयन किया गया है। अर्थात् 50 महिलाओं का चुनाव उद्देश्यपूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया है।

आँकड़ों का संग्रहण -

1. **प्राथमिक स्त्रेतः**- साक्षत्कार, अनुसूची, प्रस्तुत शोध अध्ययन में महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था के प्रति जागरूकता का अध्ययन करने हेतु स्वनिर्मित अनुसूची का निर्माण किया गया। इसके अलावा साक्षात्कार एवं अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया।
2. **द्वितीयक स्त्रेतः**- द्वितीयक स्त्रोत का संकलन शोध पत्रिकाओं, पुस्तक, समाचार पत्र आदि जगहों से प्राप्त हुए।

आँकड़ो का विश्लेषण - आँकड़ो का विश्लेषण प्रतिशत में किया गया हैं।

इस शोध कार्य के दौरान सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए अध्ययन इकाईयों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया। इसके अंतर्गत साक्षात्कार अनूसूची का उपयोग किया गया तथा संकलित तथ्यो का विश्लेषण प्रतिशत के आधार पर किया गया।

परिणाम एवं परिचर्चा :

प्रस्तुत अध्ययन आधुनिक समय में अस्थानिक गर्भावस्था बढ़ती समस्या एक अध्ययन के बारे में महिलाओं की जानकारी के आकलन हेतु किया गया था। इस अध्याय में अध्ययन से प्राप्त आकड़े एवं उनके विश्लेषण का वर्णन है।

तालिका - 1 शिक्षित शहरी महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था की जानकारी का स्तर (न०=50)

Øमांक	अस्थानिक गर्भावस्था की जानकारी का स्तर	महिलाओ की संख्या ¼50½	प्रतिशत
1	हाँ	24	48%
2	नही	10	20%
3	कुछ-कुछ	16	32%

अस्थानिक गर्भावस्था ऐसी गर्भावस्था है जिसमें शुक्राणु से मिलने के बाद अंडा गर्भाशय के बाहर विकसित होता है। शुक्राणु से मिलने के बाद अंडा गर्भाशय के बाहर नहीं रह सकता है, अगर इसे विकसित होने के लिए छोड़ दिया जाता है, तो यह आस-पास के अंगो को नुकसान पहुंचा सकता है और इसके कारण होने वाले खून के रिसाव से जान भी जा सकती है। तालिका 1 अनुसार में शिक्षित शहरी महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था के जानकारी के स्तर को परखा गया। इस शोध में शिक्षित शहरी महिलाओं में जानकारी का 48 प्रतिशत स्तर था वही अज्ञानता 20 प्रतिशत था। वही फिर 32 प्रतिशत कुछ-कुछ की स्थिति में थी। शिक्षित शहरी महिलाओं में जानकारी का यह स्तर चिंतनीय है क्योंकि शिक्षित शहरी महिलाओं से जानकारी के अच्छे स्तर की अपेक्षा थी जो कहीं-न-कही चिंताजनक स्थिति को प्रदर्शित करता है। शिक्षित महिलाओं में ज्ञान का स्तर उत्तम होना स्वाभाविक होना चाहिए था, किंतु ऐसा न होना परिस्थिति को और भी गंभीर करता है।

तालिका - 2 शिक्षित ग्रामीण महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था की जानकारी का स्तर (न०=50)

Øमांक	अस्थानिक गर्भावस्था की जानकारी का स्तर	महिलाओ की संख्या ¼50½	प्रतिशत
1	हाँ	06	12%
2	नही	32	64%
3	कुछ-कुछ	12	24%

आमतौर पर गर्भधारण करने के बाद छठे से दसवें सप्ताह के बीच अस्थानिक गर्भावस्था का पता चलता है। इसके अलावा पीरियड्स मिस होने के दो सप्ताह बाद अस्थानिक गर्भावस्था के लक्षण महसूस होने लग जाते है। इसके लक्षण नजर आने के तुरंत बाद डॉक्टर से संपर्क करना चाहिए और इलाज कराना चाहिए। तालिका - 2 के अनुसार शिक्षित ग्रामीण महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था की जानकारी का स्तर काफी निम्न था। सिर्फ 12 प्रतिशत महिलाएं ही इससे परिचित थी। बाकी की 64 प्रतिशत महिलाएं इससे अनभिज्ञ थी और 24 प्रतिशत महिलाएं कुछ-कुछ की स्थिति में थी। अस्थानिक गर्भावस्था एक घातक समस्या का रूप दिन-प्रतिदिन धारण करता जा रहा है। ऐसे में ग्रामीण महिलाओं का इसकी जानकारी से अनजान रहना आधुनिक समय के लिए सही नही है, यह आधुनिक समय का सबसे निराशाजनक विषय है।

तालिका - 3 शिक्षित ग्रामीण एवं शहरी शिक्षित महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था के कारणो की जानकारी का स्तर (न०=50)

Øमांक	अस्थानिक गर्भावस्था के कारणो की जानकारी	ग्रामीण महिलाओ की संख्या ¼50½	प्रतिशत	शहरी महिलाओ की संख्या ¼50½	प्रतिशत	योग
1	हाँ	06	12%	24	48%	30
2	नही	32	64%	10	20%	42
3	कुछ-कुछ	12	24%	16	32%	28

तालिका - 3 से स्पष्ट है कि सर्वेक्षण में दोनो समूहों के ग्रामीण शिक्षित महिलाओं एवं शहरी महिलाओं में से 30 प्रतिशत जागरूक है, 42 प्रतिशत जागरूक नही है, 28 प्रतिशत कुछ-कुछ जागरूक पायी गयी। उपरोक्त तालिका से यह भी स्पष्ट होता है

ग्रामीण शिक्षित महिलाओं एवं शहरी शिक्षित महिलाओं की जागरूकता में अंतर है। ग्रामीण शिक्षित महिलाओं में 12 प्रतिशत जबकि शहरी शिक्षित महिलाओं में 48 प्रतिशत जागरूक पायी गयी। इसी प्रकार शिक्षित ग्रामीण महिलाओं में 64 प्रतिशत जागरूक नही पायी गयी जबकि शहरी शिक्षित महिलाओं में 20 प्रतिशत जागरूक नही पायी गयी। इसी तरह ग्रामीण शिक्षित महिलाओं में 24 प्रतिशत जबकि शहरी शिक्षित महिलाओं में 32 प्रतिशत कुछ-कुछ जागरूक पायी गयी।

निष्कर्ष

- एक्टोपिक गर्भावस्था का मतलब है **गलत स्थान पर** और यह ऐसी गर्भावस्था होती है जो गर्भाशय के बाहर विकसित होती है। यह आमतौर पर किसी एक डिंबवाही नलिका में विकसित होना शुरू हो जाती है। इसलिए इसे ट्यूबल प्रेग्नेंसी भी कहा जाता है। इस सर्वेक्षण में शहरी शिक्षित महिलाओं एवं ग्रामीण शिक्षित महिलाओं के जानकारी के स्तर का पता लगाया गया है। किंतु सर्वेक्षण के परिणाम काफी निराशाजनक थे।
- एक्टोपिक गर्भावस्था में जैसे-जैसे गर्भावस्था बढ़ती है, इसमें दर्द और रक्तस्त्रव होता है। अस्थानिक गर्भावस्था के इन लक्षणों को पहचाना न जाए तो फैलोपियन ट्यूब फट भी सकती है। यह चिकित्सकीय आपतस्थिति है और यदि आप उपचार न कराये तो यह जान लेवा भी साबित हो सकती है। इतनी खतरनाक होने के बावजूद लोग एवं महिलाएं इससे बिलकुल ही अनजान है जो आज के समय में स्थिति को और भी गंभीर करती जा रही है। शोध का सबसे चिंताजनक विषय है कि ग्रामीण महिलाएं तो अनजान थी ही साथ ही शहरी शिक्षित महिलाएं भी पूर्णतः इससे अनजान प्रतीत होती है।
- सबसे दुख की बात यह है कि अस्थानिक गर्भावस्था में गर्भावस्था कभी नही बच पाती और न ही इसे गर्भाशय में स्थानांतरित किया जा सकता है। डॉक्टर को इसे और प्रभावित डिंबवाही नलिका को हटाना ही पड़ता है। इतनी गंभीर परिस्थिति होने के बाद भी कुछ भी सकारात्मक परिणाम हाथ नही लग पा रहा है। सर्वेक्षण से केवल निराशा ही हाथ लगी है जो आधुनिक काल में असंतोष की स्थिति पैदा कर रही है।
- अस्थानिक गर्भावस्था को पहचान पाना शायद इतना आसान न हो। इसमें माहवारी के दर्द जैसा महसूस हो सकता है या फिर मरोड़ और रक्तस्त्रव होने पर आपको लग सकता है कि गर्भपात हो रहा है। अगर इसी तरह से अस्थानिक गर्भावस्था से संबंधित अज्ञानता बढ़ती जाएगी तो पूरी सृष्टि विनाश की ओर अग्रसर हो जाएंगी।
- अध्ययन का सबसे आश्चर्यजनक और अवश्य ही असंतोषजनक परिणाम था कि कुछ महिलाएं शिक्षित होने के बावजूद वे इस बात से पूर्णतः अज्ञात थी।

प्रस्तुत शोध अत्यंत छोटे स्तर पर किया गया है। स्तर को ओर वृहद करने से एक बड़े वर्ग से जानकारी मिलने पर आगे का कदम उठाना और सरल हो पाएगा। शिक्षित एवं अशिक्षित महिलाओं में बड़े स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन से कई ओर नए विचार सामने आएँगे जो महिलाओं में अस्थानिक गर्भावस्था की जानकारी में सुधार लाने में अत्यंत लाभकारी सिद्ध होंगे।

संदर्भ - सूची :

पुस्तकः

- सिंह बृंदा डॉ०, ***आहार विज्ञान एवं पोषण***।
- सिंह बृंदा डॉ०, ***मातृ-कला एवं शिशु विज्ञान***।
- सिंह बृंदा डॉ०, ***मानव विकास***।
- वर्मा प्रीति डॉ०, ***मानव विकास***।

बेबसाइटः

https:èèhi.m.wikipedia.org
www.myupchar.comèdiseaseèmalnutrition
www.momjunction.com
www.babycenter.in
www.myupchar.com
www.livehindustan.com>article
www.dawa.net

भारत में ई - कामर्स की वर्तमान स्थिति

स्वाति शर्मा

Research Scholor, Dept of Commerce Pt. R.S.U. Raipur

डॉ० एस. आर. ठाकुर

Professor (Dept of Commerce)

Govt V.Y.T.P.G. Autonomous College, Durg (C.G.)

भारत में ई - कामर्स की वर्तमान स्थिति

सारांश

ई कामर्स खरीदारी का भविश्य है। ई-कामर्स भी व्यावसायिक विकल्पों में से एक है। ई-कामर्स हमारे देश में तेजी से बढ़ रहा है। बढ़ते इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के आधार जनसांख्यिकी पर भारतीय ई-कामर्स उद्योग ने पिछले कुछ वर्षो में प्रभावशाली वृद्धि दर्ज की है। भविश्य में भी ई-कामर्स में वृद्धि के जबरदस्त अवसर है। लेकिन कुछ रूकावटे है। जिन्हें ठीक करने की आवश्यकता है। वर्तमान पेपर में भारत में ई-कामर्स की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करने और ई-कामर्स व्यवसाय में होने वाली रूकावटों का जांच करने और भारत में ई-कामर्स के भविश्य पर चर्चा का प्रयास किया गया है।

की-वर्ड :- ई-कामर्स, भारत

प्रस्तावना :-

इंटरनेट पर वस्तुओं और सेवाओं के आदान - प्रदान को ई-कामर्स के रूप में परिभाषित किया जाता है, ई-कामर्स एक आधुनिक व्यवसाय पद्धति है। विश्व व्यापार संगठन ने ई-कामर्स को इलेक्ट्रानिक माध्यमों से वस्तुओ, सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विपणन बिक्री और वितरण के रूप में परिभाषित करता है। (wto 1998)

(OECD 2002) की परिभाषा के अनुसार कम्प्यूटर पर नेटवर्क पर संचालित अन्य सार्वजनिक या निजी संगठनों के साथ व्यवसायों, परिवारो, व्यक्तियों, सरकारों के बीच वस्तुओं या सेवाओं की बिकी या खरीद को इलेक्ट्रानिक लेन-देन कहते है।

अध्ययन का उद्देश्य :-

01. भारत में ई-कामर्स की वर्तमान स्थिति को समझना ।
02. ई-कामर्स व्यवसाय में होने वाली रूकावटों के बारे में चर्चा करना।
03. भारत में ई-कामर्स के भविष्य के बारे में चर्चा करना।

शोध तरीका :- यह शोधे द्वितीयक आंकडों पर आधारित है। जिसमें प्रकाशित पुस्तकों, पत्रिकाओं, शोधपत्रों, जर्नल तथा दैनिक समाचार पत्र, लेख है। यह अध्ययन क्षेत्र में लागू विधियों का व्यवस्थित और सैद्धांतिक विश्लेषण है।

ई-कामर्स के प्रकार

01 **B2B बिजनेस टू बिजनेस :-** ई-कामर्स के कंपनियों के बीच किए गये सामानों या सेवाओं के सभी इलेक्ट्रॉनिक लेन-देन शामिल होते है। निर्माता और पारंपरिक वाणिज्य थोक व्यापारी आमतौर पर इस प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य में काम करते है। Alibaba इस B2B मॉडल का उदाहरण है।

02 **B2B C व्यापार से उपभोक्ता :-** ई-कामर्स के इस प्रकार में ई-कामर्स व्यवसाय और उपभोक्ताओं के बीच इलेक्ट्रॉनिक व्यापार, संबंध शामिल होते है। Filpkart.com इस B2C मॉडल का उदाहरण है।

03. **C2B C उपभोक्ता से बिजनेस :-** ई-कामर्स के इस मॉडल में व्यवसाय के लिए उत्पादों या सेवाओं को बेचने वाले उपभोक्ता शामिल है। C2B में उपभोक्ता मूल्य बनाते है। और व्यवसाय उस मूल्य का उपयोग करते है, उदाहरण के लिए जब कोई उपभोक्ता ऑनलाइन उत्पाद पर लिखता है। अर्थात समीक्षा करता है या जब कोई उपभोक्ता नए उत्पाद विकास के लिए एक उपयोगी विचार देता है, तो उपभोक्ता व्यवसाय के लिए मूल्य उत्पन्न करता है।

04. **C2C** उपभोक्ता से उपभोक्ता इस प्रकार के ई-कामर्स में उपभोक्ता अपनी वस्तुएं आपस में एक दूसरे को बेच सकते है। इसमें किसी ऑनलाइन मार्केट की सुविधा उपलब्ध कराने वाली बेबसाइट जैसे नीलामी की बेबसाइट की सहायता ली जाती है। ऐसे ई-कामर्स में किसी वस्तु को बेचने की इच्छा रखने वाला कोई भी उपभोक्ता अपनी वस्तु का वितरण और अपेक्षित मूल्य बेबसाइट पर डाल सकता है। अन्य उपभोक्ता उस वस्तु के लिए बोली लगा सकते है। बेबसाइट का स्वामी या संचालक अपना कमीशन लेकर उस वस्तु के विक्रय और धन के लेन देन को संभव बनाा है इकंलण्बवउ इस माडल का उदाहरण है।

साहित्यक समीक्षा

Elizabeth & MC Gregor 2000 ने अपने शोध पेपर में उपभोक्ताओं, सार्वजनिक नीति, व्यवसाय और शिक्षा पर ई-कामर्स के प्रभाव का विश्लेषण किया। DasGupta & Sengupta 2002 ने अपने पेपर में भारतीय बीमा उद्योग में ई-कामर्स के भविष्य और संभावनाओं की जांच की है।

Abhijit 2013 ने अपने पेपर में कहा कि ई-कामर्स ने एक और क्रांति ला दी है। जो उत्पादों और सेवाओं को खरीदने और बेचने के तरीके को बदल रही है। नई पद्धतियाँ विकसित हुई है। व्यावसायिक संबंध बनाने में भौगोलिक दूरियॉ की भूमिका कम हो जाती है। 3G और 4G वायरलेस संचार प्रौद्योगिकी के विकास के साथ इंटरनेट अर्थव्यवस्था में मजबूती से वृद्धि जारी रहेगी।

Cinomona et at 2014) ने कहा ई-कामर्स प्रदान की गई सेवाओं की प्रकृति और सेवाओं को प्रदान करने की प्रक्रिया दोनो को बदल दिया है।

भारत में ई-कामर्स की वर्तमान स्थिति :- भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ता की बात की जाये तो, जून 2017 में 465 मिलियन इंटरनेट उपयोगकर्ता है। IBEF Report तथा यह 23: की दर से बढ़ रहा है।

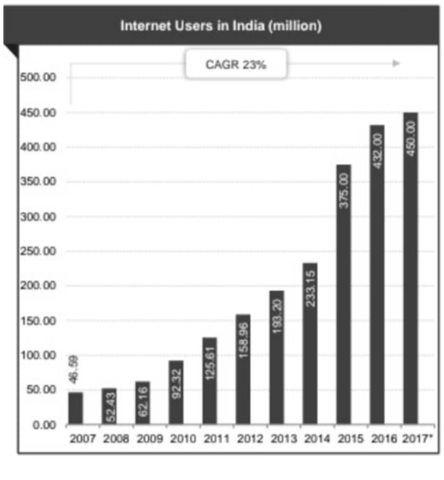

आकृति 1.1 द्वारा इसे दर्शाया गया है।

भारत में ई–कामर्स बाजार की बात की जाये तो यह अभी बढती अवस्था में है। ई–कामर्स की शुरूआत की बात की जाये तो यह 1970 की दशक से प्रारंभ हुआ था। Wikipedia भारत में पहली ई–कामर्स बेबसाइट rediff.com भी आज ई–कामर्स हमारे समाज का एक अभिन्न अंग बन गया है।

पिछले कुछ वर्षो में भारत में ई–कामर्स कंपनियों की संख्या में वृद्धि देखी गयी है। भारत में कुल इंटरनेट उपयोगकर्ता में 60: ई–कामर्स साइटों पर जाते है। IBEF report भारत में Flipart, Amazon in, Indiamart, Myntra, Snapdeal, First cry, 1mg book my show, nykaa 2GUD Top India ई–कामर्स प्लेटफार्म है।

तालिका 1.1

Amazon India	200 million visits
Flipkart	157.5 million visit
India mart	52.2 million visit
Myntra	14.2 million visit
Snapdeal	12.9 million visit
Firstcry	12.5 million visit
1mg	9.05 million visit
Book my show	7.2 million visit
Nykaa	5.35 million visit
2GUD	4.65 million visit

ग्राफ 1.2 और तालिका 1.1 से यह पता चलता है। भारत में सबसे ज्यादा लोग Amazon India में ज्यादा विजिट करते है।

भारत में ई–कामर्स के बाजार का भविश्य :– भारत में ई–कामर्स बाजार की बात की जाये तो यह बढ़ती अवस्था में है। 2009 में ई–कामर्स बाजार 3.9 $ बिलियन था तथा 2011 में 6.3 $ बिलियन था, 2015 में 24 $ बिलियन तक पहुंच गया था। तथा 2018 में 38.5 बिलियन डालर तक बढ़ गयाथा तथा 2020 में इसके 120 बिलियन डॉलर तक पहुंच जाने की उम्मीद है। जो सालाना 51 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। wikipedia (www.ibef.com)

आकृति 1.2

वर्ष	**विक्रय बिलियन में**
2009	3.9
2013	6.3
2015	12.6
2018	38.5
2020	120

भारत मे ई–कामर्स की बिक्री

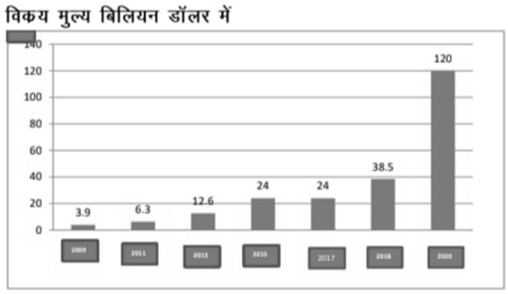

तालिका 1.2 और आकृति 1.3 से 2009 से 2020 तक ई-कामर्स की वृद्धि पर प्रकाश डाल रहा है। तालिका और आकृति से स्पष्ट हो रहा है कि ई-कामर्स की बिक्री बढ़ती प्रवृत्ति। 2009 में 3.9 बिलियन डालर जो 2015 में 12.6 पहुंचकर 2020 में 120 डालर पहुंचने की उम्मीद है, आने वाले वर्षो में इसके और बढ़ने की उम्मीद है।

ई-कामर्स व्यवसाय में होने वाली रूकावटे

खराब इंटरनेट सुविधाएँ :- इंटरनेट को ई-कामर्स की रीढ़ माना जाता है, लेकिन भारत में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में इंटरनेट सुविधाओं की पहुंच बहुत कम है। हमारे देश में इंटरनेट की गति भी बहुत बडी चुनौती है। हम 4जी इंटरनेट सेवाओं की ओर बढ़ रहे है। लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

तार्किक और आपूर्ति श्रंखला :- सही और बेहतरीन सप्लाई चेन (आपूर्ति श्रृंखला) ई-कामर्स कंपनियों के लिए बडी चुनौती रही है। भारत की आबादी की बात की जाये तो अधिकांश गांवों में रहती है। गांव में उपभोक्ताओं तक पहुंचना एक बडी चुनौती है।

(COD) कैष ऑन डिलिवरी :- कैष ऑन डिलीवरी ई-कामर्स कंपनियों के लिए बडी समस्या है। डिजिटल भुगतान के युग में कैश ऑन डिलवरी अभी भी उपभोक्ताओं द्वरा उपयोग किये जाने वाले भुगतान का सबसे पसंदीदा तरीका है। ई-कामर्स कंपनियों के लिए यह माध्यम बहुत महंगा है। कुरियर कंपनियॉ ग्राहकों से डीलरों द्वारा एकत्र की गई नकदी को वापस करने के लिए 30-40 दिन का समय लेती है। यदि उपभोक्ता कंपनी से उत्पाद को लौटाता है। तो यह कंपनी के लिए बहुत महंगा हो जाता है। क्योंकि कंपनी दो तरफ के कूरियर शुल्क का भुगतान करती है।

उच्च प्रतियोगिता:- ई-कामर्स बाजार में खिलाडी के बीच गला काट प्रतियोगिता है। तीव्र प्रतिस्पर्धा के साथ कंपनियों की लाभप्रदता कम हो जाती है। क्योंकि वे आक्रमक मूल्य निर्धारण रणनीति का उपयोग करते है, और भारी छूट और कमीशन प्रदान करते है।

भौतिक खरीदारी :- अधिकांश भारतीय उपभोक्ता अभी भौतिक खरीदारी में सहज महसूस करते है। वे खरीदने से पहले उत्पाद को देखना और छूना चाहते है। इसलिए वे ऑनलाइन उत्पादन खरीदना पसंद नही करते है।

निष्कर्ष :- ई-कामर्स ने खरीदारी को आसान बना दिया है। भारत में ई-कामर्स उद्योग तेजी से बढ़ रहा है। यह वर्तमान में बढ़ते उद्योगो में से एक है। जो 2009 में 3.9 बिलियन था तथा यह 2020 में 120 बिलियन हो जाने की संभावना है, ई-कामर्स में यह अभूतपूर्व वृद्धि स्मार्ट फोन और इंटरनेट उपयोगकर्ताओं 3जी / 4जी इंटरनेट सेवाओं में वृद्धि के कारण है। जनता में जागरूकता, अच्छी इंटरनेट सुविधा, एडवांस शिपिंग, भुगतान विकल्प, तथा यातायात के साधनों को बेहतर करके ई-कामर्स की ग्रोथ को बढ़ा सकते है।

संदर्भ सूची :-

- Abhijit, Mitra (2013) E-commerce in India A Review, International journal of Marketing Financial Services and management Research Vol.2 126-131
- Dasgupta, Prithviraj & Sengupta, Kasturi (2002) E-commerce in India insurance Industry. Electronic commerce Research vol. - 2 43-60
- Elizabeth Gold Smith & Mc Gregor L.T. (2000) E-commerce consumer protection Issues and implications for research and education journal of consume studies and Home Economics Vol. 24, 124-127
- Chinomona R. Masinge G & Sandada M. (2014) The influence E service avality on customer perceived value customer satisfaction and loyalty in south Africa mediterranean journal of social sciences 5 (9) 331-341 http doi orgè10 590è1 miss 2014 V. 59 P. 33
- www.ibef.og
- www.disfold.com
- www.ecommerce wikipedia.in
- Satista (2017) E-commerce in Billion us Dollars (2015-2020) Avaliable at http:èèwww.statista.comèstatisticsè289770è India retall – E-commerce sales.
- w To (1998) Definition of E-commerce Retrieved httpèèwww.wto.orgèenglishèforumseèbusiness eè1-1 TUTHIL pdf

आधुनिक भारत में शिक्षा का विकास (1757-1964)

डॉ० रवि शंकर

इतिहास विभाग, पी-एच.डी., यू.जी.सी. नेट, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

प्राचीन काल में भारत में शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी तथा स्त्री एवं पुरुष दोनों ही शिक्षा पाते थे। शिक्षा गुरु-शिष्य की परम्परा पर आधारित थी तथा शिक्षा गुरुकुल में ही दी जाती थी। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म के आगमन के पश्चात् बुद्ध शरणम गच्छामि के कारण एक संघ का निर्माण हुआ जो कलान्तर में विश्वविद्यालय निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ। ईशा के कुछ शताब्दी पूर्व ही भारत में नालन्दा तथा तक्षशिला जैसे विश्वविख्यात विश्वविद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी। इन विश्वविद्यालय में देश-विदेश के विद्यार्थी अध्ययन करते थे। मुगल साम्राज्य के पतन के दिनों में देश में जो राजनीतिक व्यवस्था उत्पन्न होने लगी थी उसके कारण से शिक्षा की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। अत: शिक्षा की स्थिति सोचनीय हो गई।

यूरोपीय जातियों को आगमन के समय यहाँ शिक्षा के अनुक देशी तरीके मौजूद थे, यह केवल एक या दो प्रान्तों तक ही सीमित नहीं था, अपितु देश के विभिन्न भागों में शिक्षा की व्यवस्था थी। प्रारंभ में यूरोपीय देशों की व्यवसायिक कम्पनियों का उद्देश्य भारत में तिजारत करना था, लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने साम्राज्य-विस्तार व धर्म प्रचार को भी अपना लक्ष्य समझकर अनेक शिक्षण संस्थायें स्थापित की।

अन्य यूरोपीय देशों की भांति अंग्रेजों का भी ध्यान भारत में शिक्षा प्रसार की ओर गया और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 1614 से ही प्रोटेस्ट धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से भारतीयों को प्रशिक्षित करना प्रारम्भ कर दिया। शिक्षा नीति के निर्माण में भारत के अंग्रेज शासकों ने इस सिद्धान्त का अक्षरश: पालन किया कि ''यदि किसी देश को दास बनाना है, तो उसके साहित्य और संस्कृति का विनास कर देना चाहिए।'' 1698 में भारत की अंग्रेज वस्तियों में पाठशालाओं की स्थापना कर भारत में अंग्रेजी शिक्षा का सुत्रपात भी किया गया।

लॉर्ड मैकाले गवर्नर जनरल काउन्सिल का कानून सदस्य नियुक्त किया गया। वह अंग्रेजी का प्रकाण्ड पंडित, सफल, लेखक एवं कुशल वक्ता था। उसके आगमन के समय भारत में आंग्लावादी एवं प्राच्यवादी विवाद छिड़ा हुआ था। तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड विलियम वेटिक ने मैकाले को सर्वसाधारण शिक्षा समिति का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया। 2 फरवरी 1835 को लार्ड मैकाले ने गवर्नर जनरल के काउन्सिल के समक्ष अपना विश्वास प्रस्तुत कर उसमें पाच्य शिक्षा का खण्डन कर अंग्रेजी माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य व विज्ञान की शिक्षा का समर्थन किया। इस प्रकार भारतीय शिक्षा के संबंध में सर्वसाधारण शिक्षा समिति का वर्णन लागू हो गया।

यह मैकाले की पहल का क्रमबद्ध प्रयत्न था जिसके द्वारा अंग्रेजी सरकार ने भारत के उच्च वर्ग को अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षित करने को प्रयत्न किया था। मैकाले का उद्देश्य जनसाधारण को शिक्षित करना नहीं था। वह स्पष्ट जानता था कि सीमित साधनों से समस्त जनता को शिक्षित करना असंभव है वह विप्रेशन सिद्धान्त (Infiletration thery) में विश्वास करता था कि अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग एक **'दुभाषी श्रेणी'** (Class of Interpreter) के रूप में कार्य करेंगे और भारतीय भाषाओं और साहित्य को समृद्धशाली बनाएंगे और इस प्रकार पाश्चात्य विज्ञान तथा साहित्य का ज्ञान जनसाधारण तक पहुँच जाएगा। इस प्रकार मैकाले के इस सिद्धान्त का परिणाम भारतीय भाषाओं को अंग्रेजी भाषा के सहायक के रूप में बढ़ावा देना था। मैकाले शिक्षा पद्धति का अवगुण यह था

कि मातृभाषा का विकास नहीं हो पाया। फलस्वरूप किसी राष्ट्रीय भाषा का भी विकास नहीं हो पाया। इसका दूसरा दोश यह था कि जनसाधारण में इसके कारण अंग्रेजियत हावी होती चली गई जिससे हम आज भी उवर नहीं पाये और भारत में कोई राष्ट्रीय भाषा का उद्‌भव नहीं हो पाया।

सर चार्ल्स वुड जो अर्ल आफ एबरडीन (1852-55) में मिलीजुली सरकार में बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के अध्यक्ष थे अंग्रेजी इतिहास के पामर्स्टन युग की उपज थे। उन्होंने 1854 में भारत की भावी शिक्षा के लिए एक वृहत् योजना बनाई जिससे अखिल भारतीय आधार पर शिक्षा की नियामक पद्धति का गठन किय। इसे प्राय: भारतीय शिक्षा का मैग्ना-कार्टा कहा जाता है।

वुड द्वारा अनुमीदित विधियों और आदर्शों का लगभग 50 वर्षों तक बोलवाला रहा। इसी काल में शिक्षा का तीब्र गति से पाश्चात्यकरण हुआ और बहुत सी संस्थायें स्थापित हो गई। इन दिनों संस्थाओं के मुख्याध्यापक और आचार्य प्राय: यूरोपीय ही होते थे। प्रस्तुत इशाई मिशनरी संस्थाओं ने भी अपना योगदान दिया। निजी भारतीय प्रयत्न भी इस क्षेत्र में दिखाई देने लगे।

1882 में सरकार ने डब्लू. डब्लू. हण्टर की अध्यक्षता में एक आयोग शिक्षा के क्षेत्र में 1854 के पश्चात्य हुई प्रगति की समीक्षा करने के लिए नियुक्त किया। एक कारण यह भी था कि इंग्लैण्ड में पादरी लोग यह प्रचार कर रहे थे कि भारत में शिक्षा वुड के प्रस्तावों के अनुसार नहीं हो रही है। प्रस्ताव में कहा गया कि आयोग ऐसे सुझाव दे कि जिससे भारत में लोक शिक्षा की भिन्न शाखाएँ एकत्रित हो आगे बढ़ सके अर्थात् समस्त भारत में प्राथमिक शिक्षक अध्यापन की समीक्षा की जाए और देखा जाए कि कैसे इसका सुधार और विस्तार किया जा सकता है। इसका कार्य विश्वविद्यालयों के कार्य की समीक्षा करना नहीं था। इसे केवल प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा समीक्षा तक ही सीमित रहना था। इसने सभी प्रान्तों का भ्रमण किया और लगभग 200 प्रस्ताव पारित किए। इस आयोग के सुझावों के पश्चात् आने वाले 20 वर्षों में माध्यमिक और कॉलेज शिक्षा का अभूत पूर्व विस्तार हुआ। 1882 में पंजाब और 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय स्थापित किए गए।

सितम्बर 1901 में कर्जन ने शिमला में समस्त भारत के उच्चतम शिक्षा और विश्वविद्यालय अधिकारों का एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन का आरंभ कर्जन के भाषण से हुआ। उसने कह ''हमलोग यहाँ शिक्षा की पूर्णतया नई योजना बनाने और जन साधारण पर इच्छा से अथवा अनिच्छा से उनपर लादने के लिए एकत्रित नहीं कराते।'' परन्तु कलान्तर में यह सिद्ध हुआ कि जो उसने चाहा वह किया। सम्मेलन में 150 प्रस्ताव पारित किए जो शिक्षा के सभी पक्षों से सम्बन्धित थे। तदन्तर एक आयोग सर टामस जैसे (Sir Thomas Raleigh) की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया जिसका उद्‌देश्य विश्वविद्यालयों की स्थिति का अनुमान लगाना था और उनके संविधान तथा कार्यक्षमता के विषय में सुझाव देना था। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा इनकी परिधि से दूर थी। फलस्वरूप 1904 में भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित किया गया।

1919 को मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के अधीन प्रान्तों में शिक्षा विभाग लोक निर्वाचन मंत्री के नियंत्रण में दे दिया गया। केन्द्रीय सरकार ने अव शिक्षा में रूचि रखनी बद कर दी और इस विभाग को अन्य विभागों में मिला दिया। शिक्षा के लिए केन्द्रीय अनुदान बन्द कर दिया गया। वित्तीय कठिनाईयों के कारण प्रान्तीय सरकारों ने शिक्षा योजनाओं को हाथ में नहीं लिया। इतना होते हुए भी लोकोपकारी पुरुषां के प्रयत्नों से शिक्षा में बहुत विकास हुआ।

1944 में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रणा मंडल (Central Advisory Board of Education) एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार की जिसे प्राय: सार्जेन्ट योजना (Sargent Plan) कहा जाता है। इस योजना के अनुसार देख में प्रारंभिक विद्यालय (Elementary School) उच्च माध्यमिक विद्यालय (High School) जिसमें कनिष्ट और उच्च आधार विद्यालय (Junior Senior Basic School) स्थापित करने और 6 तथ 11 वर्ष के बच्चों के लिए व्यापक, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा दिए जाने की योजना थी। इस योजना में 40 वर्ष में देश में शिक्षा के पुर्णनिर्माण की कार्य पूरा होना था। तद्न्तर खेर समिति (Kher Committee) ने इस अवधि को घटाकर 16 वर्ष कर दिया।

नवम्बर 1948 में सरकार डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक आयोग नियुक्त किया जिसे विश्वविद्यालय शिक्षा पर अपनी रिपोर्ट देनी थी और उसके सुधार के लिए सिफारिशें देनी थी। अगस्त 1949 में उन्होंने अपनी स्फिारिशें दी। इनमें सिफारिशें कार्यान्वित करने के लिए 1953 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बना दिया गया। स्वारों को निश्चित करना और उनका समन्वय करना भी इसी का उत्तरदायित्व था।

जुलाइ 1964 में एक आयोग डॉ. डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया जिसे सरकार को शिक्षा के सभी पक्षों तथा प्रक्रमों (Stages) के विषय में राष्ट्रीय नमूने की रूपरेखा, साधारण सिद्धान्त तथा नीतियों की रूपरेखा बनाने का आदेश था।

आयोग ने यह स्वीकार किया कि शिक्षा तथा अनुसंधान, दोनों ही देश की समस्त आर्थिक, सांस्कृतिक तथा आत्मिक विकास तथा प्रगति के निर्णायक हैं। इसने वर्त्तमान, पद्धति की कठोरता (rigidity) की आलोचना की और शिक्षा नीति में उस लचीलेपन की आवश्यकता पर बल दिया जो बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल हो। उसका विश्वास था कि वह देश में शैक्षणिक क्रान्ति लोन की शिक्षा में एक कदम होगा।

स्त्रेत

यह अध्ययन मुलतः समकालीन मौलिक एवं सहायक स्त्रोतों पर आधारित होगा। इसमें सभी तरह के उपलब्ध स्त्रोतों एवं इससे प्राप्त जानकारी की समीक्षा की जायेगी तथा तथ्यों का विश्लेषण किया जायेगा।

उपयुक्त शोध प्रबंध के लिए निम्नलिखित पुस्तकों की सहायता भी ली जा सकती है।

संदर्भ

1. A.R. Desai-Social Background of Indian Nationalism
2. Dayal, B. The Development of Modern Indian Education (1953).
3. Mukerjee, S.N. History of Education of India (1957)
4. Nurullah and Naik – History of Education in India during the British Period (1956).
5. Aparna Basu – Growth of Education and Political Development in India.
6. Basu, A.N. – Education in Modern India – A British Review. (Social Economical and Political Perspective).

प्राचीन भारत के शिल्पी एवं व्यावसायिक जीवन में पशुओं का महत्त्व

डॉ० केशव कुमार रंजन

प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

भारतीयों के शिल्पी एवं व्यावसायिक जीवन में पशुओं का महत्त्व बहुविध था। इनसे जीवन-यापन के कई साधन सम्बद्ध थे। आखेट से कई लोग एवं वर्ग सम्बद्ध थे। पशु-पक्षियों को पोष्य बनाकर भी जीविका चलानेवालों के कई समूह बन चुके थे जिनके कारण समाज में जातियों की संख्या बढ़ी। पशुओं से सम्बन्धित शिल्प मुख्यत: तीन प्रकार के थे-ऊनी वस्त्र-शिल्प, चर्म-शिल्प एवं गजदन्त-शिल्प।

पशुओं से सम्बन्धित सम्भवत: जीवन-यापन का प्राचीनतम साधन उनका आखेट करना था। प्रागैतिहासिक युग के गुहाचित्रों में आदिमानव को अकेले एवं सामूहिक रूप में विभिन्न अरण्य पशुओं का आखेट करते दिखाया गया है। जब आगे चलकर पशुपालन आरम्भ हुआ एवं कृषि भी जीविका का साधन बनी तब भी आरण्य पशु-पक्षियों का आखेट करना चलता रहा। सैंधव मुद्राओं एवं गुहा-चित्रें में भी हमें इसके दृष्टान्त मिलते हैं। पशु-पक्षियों के आखेट में अधिकतर अरण्यवासी लगे रहते थे जो विभिन्न उपायों द्वारा उनका आखेट करते थे। ऐसे आखेटकों के भी कई वर्ग थे। इनकी संख्या इतनी अधिक थी कि इनके कई गाँव बस गये थे। वे लोग तीरों से वेधकर एवं जाल में फँसाकर पशु-पक्षियों का शिकार करते थे। पहले पशुओं का पता उनके पदचिह्न, पानी पीने के स्थानों, उनके आराम करने एवं विचरण करने के आधार पर लगाते थे तब उनका आखेट करते थे। घायल पशुओं को वे तलवार या छुरे से काटते थे। वे उनकी त्वचा छुड़ाते एवं माँस खाते तथा बेचते थे।

आरण्यों में पशु-पक्षियों की संख्या इतनी थी कि लुब्धक वर्ग के भी कई उपवर्ग बन गये थे जो विशेष प्रकार के पशु-पक्षियों के आखेट में दक्ष होने के कारण विशेष नामों से पुकारे जाते थे, यथा उदकलुद्धक-जलपक्षी पकड़नेवाले, गोधलुद्धक-गीध मारने वाले, शकुनिक-छोटे पक्षियों को पकड़ने वाले, तित्तिरलुब्द्धक-तितिर मारनेवाले तथा मृगछद्दक-हरिण मारने वाले। पक्षियों को पकड़ने वाले अधिकतर जालों का प्रयोग करते थे जिनमें वे झुण्ड के झुण्ड पक्षी पकड़ते एवं झाँपियों में भरकर बाजारों एवं ग्रामों तथा नगरों में बेच देते थे। मत्स्यजीवी लोग भी सरोवरों एवं नदियों से जालों एवं वंशियों के द्वारा मछलियाँ पकड़ते थे। बुद्ध के समय तक शिकारियों की कई जातियाँ बन गयी थीं जो आखेट कर जीवन-यापन करती थीं, यथा-मेद, मुद्ग, उग्ग एवं निशाद आदि। इन लोगों का सामाजिक स्तर शूद्रों से भी नीचा था। यद्यपि निम्नवर्ग के लोग शिकारी जीवन बिताते थे पर जातकों में ब्राह्मणों के भी उल्लेख हैं जो लुब्धक का व्यवसाय अपनाते थे।

कौटिल्य ने आखेटकों, शाकुनिकों एवं व्याघ्रों का उल्लेख कई संदर्भों में किया है। उनकी बातों की पुष्टि मेगास्थनीज के वर्णन से भी होती है। उसने भारत की सात जातियों में आखेटकों की भी गणना की है जो पशु-पक्षियों का आखेट कर देश को हानिकर जन्तुओं से रहित कर देते थे। वे इस कार्य को बड़े उद्योग एवं उत्त्कष्ठा से करते थे। वे आरण्य पशुजनित विघनों से देश को मुक्त करते थे जो यहाँ बहुत होते थे। इस कार्य के लिए राजा उन्हें अन्न देता था क्योंकि उन हानिकारक पशु-पक्षियों को मार कर वे उनसे खेत में बीजों एवं खड़ी फसलों की रक्षा करते थे। वे पर्यटन करते रहते थे एवं शिविरों में निवास करते थे।

पतंजलि ने भी मृगया पर जीवन-यापन करने वालों के सम्बन्ध में सूचना दी है। मृगया का इतना अधिक प्रचलन था कि इसके लिए एक स्वतंत्र शास्त्र बन गया था। इसके अन्तर्गत समस्त श्वापदों का वध आता है। व्याधया लुब्धक शिकार पकड़ने के लिए

प्रशिक्षित कुत्तों का उपयोग करते थे। कुछ लोग बड़ी संख्या में ऐसे कुत्ते रखते एवं भाड़े पर भी देते थे। कुछ लोग मृगया का एक अंश कुत्तों के स्वामी को देते थे। पाक्षिक लोग जाल या आनाप रखते थे जिसे बागुरा भी कहते थे एवं इनको रखने वाले या भाड़े पर देने वाले या उपयोग करने वाले वागुरिक कहे जाते थे। आखेटक लोग पशु-पक्षियों से इतने परिचित होते थे कि उनकी बोली से ही वे दूर से उन्हें पहचान लेते थे। विभिन्न मृगों के बोलने का समय भिन्न-भिन्न होता था। रात्रि में बोलने वाले पशुओं को नैशिक कहा जाता था।

पाक्षिक लोग पक्षियों को पकड़ने के लिए जाल एवं तीर-धनुष के अतिरिक्त प्रशिक्षित श्येन पक्षियों का भी प्रयोग करते थे। कभी-कभी अनेक पाक्षिक एकत्र होकर अपने-अपने बाज छोड़ते थे जो पक्षियों को पकड़ने के लिए उनपर एक साथ टूट पड़ते थे। यह क्रिया श्येनम्पाता कही जाती थी। इसी प्रकार जाल या आनाप के सहारे मछलियों को पकड़ने के व्यवसाय करने वाले मैनिक, शाफरिक या शाकुन्तिक कहे जाते थे।

आखेट एवं मत्स्य द्वारा जीवन-यापन करनेवालों का एक वर्ग निषादों का था जिनका उल्लेख वैदिक एवं वैदिकेतर ग्रंथों में बहुधा हुआ है। अपने पापकर्मों के कारण इनका स्थान समाज में निम्न था। ये शूद्रवर्ण में गिने जाते थे। चुल्लनन्दीय जातक से विदित होता है कि ब्राह्मण भी निशाद का व्यवसाय अपनाने पर पतित हो जाते थे। रोहन्तमिग जातक में एक राजा ने निशाद को अपना कर्म त्यागकर अन्य व्यवसाय अपनाने का उपदेश दिया है क्योंकि वह कर्म पापमय था। चाण्डलों के समान निशाद भी ग्रामों से बाहर रहते थे।

आखेट से सम्बद्ध उपर्युक्त विभिन्न व्यवसायों के अतिरिक्त वधिक का व्यवसाय करने वाले लोग भी थे जो आरण्य एवं ग्राम्य पशुओं का वधकर उनका माँस विक्रय करते थे। या तो वे पशुओं को स्वयं पकड़ते या लुब्धकों से खरीदते थे। स्वभाव से ये लोग बड़े ही निर्दय होते थे। काष्ठ खण्ड पर ये माँस को छुरियों की सहायता से कई प्रकार के आकारों में काटकर बेचते थे। नगरों में इनके मुहल्ले अलग हुआ करते थे एवं राज्य इनपर निगरानी रखता था ताकि वे सड़े-गले माँस न बेचने पावें।

पशुओं के शिकार से सम्बन्धित व्यवसाय करने वालों में सबसे नीची श्रेणी के लोग श्वपच् कहे जाते थे क्योंकि वे कुत्तों का भी माँस खाते थे। वे अस्पृश्य थे एवं ग्रामों एवं नगरों से दूर रहा करते थे। मृत पशुओं को ग्रामों एवं नगरों से हटाना भी इनका काम था। इनका कर्म इतना निकृष्ट था कि लोग इनके द्वारा मारे गये पशुओं का माँस भी नहीं खाते थे।

विभिन्न पशुओं के पालन का व्यवसाय भी था जिनके द्वारा लोग जीवन-यापन करते थे। उनमें सबसे प्रमुख गोप या गोपाल थे, जो आज भी गोप एवं ग्वार या ग्वाला के नाम से जाने जाते हैं। इनका मुख्य कार्य था दुधारू पशुओं, यथा-गायों एवं महिषों का पालन करना तथा दुग्धोत्पादनों का विक्रय करना (जैसे दूध, नवनीत, मट्ठा एवं घृत। यह व्यवसाय आज भी यह जाति करती है। कुछ लोग गोपालों को नियुक्त करते थे जो उनके पशुओं का रक्षण एवं पालन करते थे। इसी प्रकार आभीर जाति का भी मुख्य व्यवसाय पशुपालन से अपनी जीविका चलाना था। आज भी यह जाति यही धंधा करती है एवं उत्तर भारत में अहीर के नाम से जानी जाती है।

गायों एवं भैंसों के अतिरिक्त अन्य पशुओं के पालनकर्त्ता भी थे जो पशु विशेष के नाम से जाने जाते थे-यथा, अविपाल एवं अजपाल। इनका मुख्य व्यवसाय पशुओं के बाल प्राप्त करना था जिनसे ऊनी वस्त्र बनाये जाते थे। दूध एवं माँस भी इनसे प्राप्त होते थे। एक वर्ष के भीतर भेड़ें एवं बकरियाँ कई बच्चे देती थी एवं इनके पालन में कोई कठिनाई भी नहीं थी। झुण्ड के झुण्ड इन पशुओं को कुछ लोग ही चरा सकते थे। इसी प्रकार हस्तिप एवं अश्वप भी थे जो हाथियों एवं अश्वा का पालन करते थे। सेना में हाथियों एवं अश्वों से सम्बन्धित कई भृत्य रहते थे जिनका विवरण दिया जा चुका है।

पशुओं के सम्बद्ध एक अन्य व्यवसाय करने वाले भी थे जिन्हें पशु-चिकित्सक कहा जाता था। ये औषधियों के प्रयोग एवं शल्य-क्रिया द्वारा उनकी चिकित्सा करते थे। अथर्ववेद के गेहूँ द्वारा भी उनकी चिकित्सा होती थी। इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

लोग विभिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करते थे जिनमें भेड़ों एवं बकरों से उपलब्ध बलों का भी उपयोग किया जाता था। इनसे कम्बल एवं अन्य वस्त्र बनते थे। वैदिक काल में उत्तर-पश्चिम भारत से प्राप्त ऊन उत्तम कोटि की होती थी। ऊनी वस्त्र को पवित्र

माना जाता था। इससे बनी छननी से सोम रस छाना जाता था। अज से प्राप्त ऊन को निम्नकोटि का माना जाता था क्योंकि भेष से प्राप्त होने वाली ऊन की तुलना में यह कड़ी एवं शरीर में गड़ने वाली थी। अच्छे प्रकार की ऊन की कसौटी कोमलता थी। ऊर्णास्तु का ऊन के धागों का गोला था जिसको सोमविक्रयी के मुँह पर भी फेंका जाता था क्योंकि वह उसका मूल्य बढ़ा-चढ़ाकर माँगता था।

जातक-आख्यानों में भी ऊन से निर्मित कई प्रकार के वस्त्रों का वर्णन है जिनमें कई आरामदायक एवं अलंकृत थे। इसी कारण उनका उपयोग भिक्षुओं के लिए निषिध था। मज्झिम निकाय में ऊन निर्मित वस्त्रों की गणना की गयी है, यथा गोणाक, पटिक (कम्बल), पटलिक (चित्रित कम्बल), तूलिक (रूई एवं ऊन से बनी रजाई), उद्दलोमी (लोई या रजाई जिसके दोनों ओर कोमल ऊन होती थी) एवं एकन्तलोमी (रजाई जिसके केवल एक ओर ऊन होती थी)। कुट्टकम् ऊन से बना गलीचा था जिसपर नृत्यांगनाएँ नृत्य करती थीं। पशुओं के वालों एवं उलूक के पंखों से भी कम्बल बनाया जाता था जिसे मुख्यतः तपस्वी एवं संन्यासी ओढ़ते थे।

पश्चिमोत्तर भारत उत्तम प्रकार की ऊन के लिए विख्यात थे। इसी प्रदेश के पाणिनि भी थे, जिन्होंने ऊनी वस्त्रें के सम्बन्ध में सूचना दी है जिन्हें ओर्ण या ओर्णाक कहा जाता था। अनेक प्रकार के कम्बल बनते थे। पण्य कम्बल उसको कहते थे जो बिक्री के लिए बुने जाते हैं। उनके आकार एवं भार का निर्धारण उनमें प्रयुक्त ऊन पर निर्भर करता था। कम्बल का सामान्य भार ''कब्लल्य'' कहा जाता था जो एक सौ पल या पाँच सेर के बराबर था। कम्बल्य वस्तु विनिमय का भी माध्यम थी जैसा कि काशिका में द्वि या त्रिकम्बल्य से खरीदी जाने वाली बकरियों एवं भेड़ों का उल्लेख है। प्रावार भी ऊनी वस्त्र था जो आरण्य पशुओं (मृगरोम) के बालों से बनाया जाता था। महाभारत में प्रावार का उल्लेख कम्बल के रूप में हुआ है। जो ठंढ से रक्षा के लिए ओढ़ा जाता था। विदित होता है कि प्रावार पण्य कम्बल की अपेक्षा अच्छे प्रकार की ऊन का बना होता था एवं इसका उपयोग समृद्ध लोग करते थे। रंकु नामक मृग के बालों से बने कम्बल को रांकव कहा जाता था या रांकवाचन। यह भी उत्तम कोटि का ऊनी वस्त्र था। वर्णक ऊनी कम्बल था जिसका उल्लेख कौटिल्य ने भी किया है। गोण से निर्मित वस्त्र को गोणी कहा जाता था जो एक प्रकार का थैला था। वैदिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है, पर ब्रह्मजाल- सूत्र में इसको गोणक कहा गया है जो बड़े आकार के अज के लम्बे बालों से बनता था। पाणिनि ने गोणों एवं गोणीतरी का उल्लेख किया है। प्रथम एक प्रकार का बोरा था जिसमें सामान रखकर ऊँटों, बैलों या अश्वतरों की पीठ पर लादा जाता था पर दूसरी थैली थी जिसको भेड़-बकरियों की पीठ पर रख कर ले जाया जाता था। मौर्ययुग में बननेवाले ऊनी वस्त्रें का उल्लेख कौटिल्य ने किया है।

पशुओं पर आधृत शिल्पों में चर्म-शिल्प प्रमुख था। मनुष्य ने आखेट में मारकर आरण्य पशुओं के माँस को अपने भरण-पोषण के लिए उपयोग किया, पर उनके चर्म से अनेक सामग्रियाँ बनायी, जिनमें तन ढँकने के वस्त्रों की प्रमुखता थी। हड़प्पा संस्कृति में भी विभिन्न आरण्य एवं ग्राम्य पशुओं का वाहुल्य था पर उनके चर्मशिल्प के सम्बन्ध में हमें कोई ज्ञान नहीं है। मुख्यरूप से पशुपालक होने के कारण ऋग्वैदिक आर्य भी विभिन्न वस्तुएँ चर्म से बनाते थे। उनमें वस्त्र, पादत्रण, पाश, आस्तरण, झोले, अंगुलित्र एवं ढाल प्रमुख थे। देवगणों को भी अजिन पहने वर्णित किया गया है एवं शिव का विचित्र वस्त्र गजचर्म कहा गया है। अश्वमेध में जहाँ अश्व की बलि दी जाती थी उस स्थान पर एक आसन्दी रखी जाती थी जो गजचर्म से ढँकी रहती थी।

चर्म के अनेक उपयोगों के कारण इसको कार्य-हेतु योग्य बनाना आवश्यक था। अतः यह कर्म एक कौशलयुक्त कला के रूप में विकसित हुआ। जो यह कार्य करता था उसको चर्मम्न कहते थे। कच्चे चर्म को भूमि पर शंकुओं के द्वारा विस्तृत कर उसे स्वच्छ एवं कोमल बनाया जाता था जिसके लिए जल एवं लवण का उपयोग किया जाता था। चर्मण्य शब्द इस कर्म का बोधक था। जो व्यक्ति केवल मृगचर्म का कार्य के लायक बनाता था उसको अजिनसंघ कहा जाता था। जब चर्म काम लायक हो जाता था तब उसको लपेट लिया जाता था एवं बाद में कार्य के अनुसार उसको टुकड़ों में काट कर वांछित सामान बनाया जाता था। चर्म-खण्डों को सूई एवं तन्तु के द्वारा एक दूसरे से संयुक्त किया जाता था। इस संदर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि व्याहृतियाँ (भू. भूवः एवं स्वहः) वेदों को संयुक्त करने के लिए रज्जु के समान है। यह वैसा ही है कि एक वस्तु को दूसरे से जोड़ा जाय जैसे तन्तु के द्वारा दो या अधिक चर्म खण्डों को जोड़ा जाता है।

वैदिक चर्म शिल्पी ताम्र के निर्मित यंत्रों का उपयोग वस्तुओं को बनाने में करते होंगे पर उनका उल्लेख नहीं मिलता है। सम्भव है, वे प्रस्तर खण्ड या ताम्रनिर्मित उपकरण से चर्म पर के बालों को साफ करते हों। उसको तैयार करने के उपरान्त वे उसे तीक्ष्ण धारवाली छूरी को तलहत्थी से दबाकर काटते हों। यह भी सम्भव है कि चर्मकार की सूई की नोंक गोल न होकर चपटी हो क्योंकि उससे चमड़ा छेदना सहज था। चर्मखण्डों को ऊनी धागों या चर्मतन्तु से संयुक्त किया जाता होगा।

जातकों में चर्मकारों एवं चर्मशिल्प के सम्बन्ध में जो विवरण उपलब्ध होते हैं उनसे विदित होता है कि यह शिल्प अधिक विकसित था। पादत्रणों का निर्माण सबसे प्रमुख कार्य था। विनयपिटक में कई प्रकार के जूतों एवं चप्पलों का उल्लेख है, जिन्हें अनेक प्रकार से अलंकृत भी किया जाता था। इसके अतिरिक्त वे चमड़े के कई आकार के झोले एवं बोरे ढाल, छत्र, पाश, तलवार रखने के लिए कोष एवं प्रत्यंचा भी बनाते थे। चर्मशिल्पियों की श्रेणियाँ भी थी जिनसे विदित होता है कि वे संगठित होकर कार्य करते थे।

पाणिनि ने भी चर्मशिल्प का उल्लेख किया है। उन्होंने चर्म-निर्मित नध्री (चपटी एवं पतली रस्सी) एवं वर्धा (मजबूत रस्सी) का उल्लेख किया है। इसका उपयोग कई कामों में होता था। चर्म को कार्य-हेतु बनाने के कर्म को उन्होंने "त्वचयति" शब्द का प्रयोग किया है। जब कोई वस्तु पूर्ण रूप से चर्म से ही बनायी जाती थी तो उसको "सर्वचर्मीन" कहा जाता था जो उसके उत्तम कोटि का प्रमाण माना जाता था। लोग चर्मकारों से अपने पैरों की नाप देकर जूते बनवाते थे एवं वैसे पादत्रणों को अनुपादिना कहा जाता था। ये सामान्य जूतों की अपेक्षा अच्छे प्रकार के होते थे। चमड़े के बड़े (कुतू) एवं छोटे (कुतुप) थैले भी बनाये जाते थे जिनमें घी एवं तेल जैसे तरल पदार्थ रखे जाते थे। उदड्क चर्म-निर्मित थैला था जिसमें तेल रखा जाता था पर उदच्चन बड़े आकार का थैला था जिनका उपयोग कुएँ से पानी निकालने के लिए होता था। उन्होंने दृति का भी उल्लेख किया है, जिसका वर्णन वैदिक साहित्य में भी है। यह चर्म -निर्मित कुप्पी थी जिसमें तरल पदार्थ रखे जाते थे। दृति में रखे पदार्थ को दार्त्तेय कहा जाता था। पश्चविंश ब्राह्मण से विदित होता है कि दृति में क्षेर एवं सुरा भी रखे जाते थे। पाणिनि के समय में दृतियों में तरल पदार्थ रखकर बैलों की पीठ पर लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता था। पाणिनि ने भस्त्र का भी उल्लेख किया है जो चर्म-निर्मित छोटा थैला था एवं भस्त्रिक वह व्यक्ति था जो भस्त्र के द्वारा काम करता था या सामान ढोता था। भस्त्रिक लोग संगठित होकर भस्त्राओं में जलमार्ग द्वारा सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे। उत्तर-पश्चिम भारत में उन्हें भस्त्रका कहा जाता था। कौटिल्य ने भी विभिन्न प्रकार के चर्मों एवं उनसे निर्मित पदार्थों का उल्लेख किया है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

पतंजलि के महाभाष्य में भी चर्मशिल्प के कई उल्लेख हैं। चर्मकार मृत पशुओं के चमड़े उधेड़ते तथा जमाकर उन्हें कोमल बनाते थे एवं उनसे आवश्यक वस्तुएँ बनाते थे। आर्द्र एवं रक्तमिश्रित चर्म का भी व्यवहार होता था। चर्मकार अनेक वस्तुएँ बनाते थे, यथा वार्ध्रा (वद्धी), नदी (नद्धी), वरत्र (बरत), कोश (म्यान), सनंग्र, छदि (आवरण) एवं उपानह। जिस रथ को चर्म से आच्छादित किया जाता था उसको चर्मण रथ कहते थे।

चर्म के इन विभिन्न सामानों के अतिरिक्त कई वाद्ययंत्र भी बनाये जाते थे, यथा दुन्दुभि, मृदंग, डमरू एवं ढोलक, आदि। मुख्य वाद्य काष्ठ का बना होता था एवं उस पर जमाया हुआ सूखा चर्म मढ़ा जाता था जो दोनों ओर रज्जु से कसा जाता था। उन पर कई प्रकार के मशाले भी लगाये जाते थे जिनसे चर्म सूखा रहता था। फलतः वांछित ध्वनि उत्पन्न की जा सकती थी। दर्दुर एक प्रकार का ढोल था जो मिट्टी का बना होता था एवं चर्माच्छादित होता था। जातकों में इसे छटदर्दुर कहा गया है। पंतजलि ने उस व्यक्ति को मार्दंगिक कहा है जो मृदंग बनाता था बजाता था। इन वाद्ययंत्रों का उपयोग युद्धक्षेत्र में सैनिकों का उत्साह बढ़ाने, मांगलिक अवसरों पर प्रसन्नता व्यक्त करने एवं आखेट के अवसरों पर आरण्य पशुओं को जगाने या भगाने आदि के लिए होता था। पृथक्-पृथक वाद्यों को भी बजाकर लोग अपनी जीविका चलाते थे।

चर्मशिल्यियों की स्थिति समाज में अच्छी नहीं थी। वे आर्थिक दृष्टि से भी उतने सम्पन्न नहीं थे। उनका कर्म मृत पशुओं से सम्बद्ध था एवं चर्म अपवित्र माना जाता था। उनका शिल्प यद्यपि उपयोगी था पर वे शूद्रवर्ण के थे एवं अन्य निम्न शूद्रों के समान उनकी भी स्थिति दयनीय थी।

हस्तिदंत और अन्य पशुओं की हड्यिाँ प्रागैतिहासिक काल से मानव के लिए बहुत उपयोगी रही हैं। इनका उपयोग तीरों के शीर्ष भाग एवं आभूषण बनाने के लिए किया जाता था। सैन्धव घाटी की खुदाई से प्राप्त मुहरों, मृण्मूर्तियों और हाथियों के अस्थि-पंजरों के अवशेषों से यह प्रमाणित होता है कि यहाँ हाथी अधिक संख्या में पाये जाते थे। लोथल से पश्चिम एशिया में निर्यात होने वाली वस्तुओं में बहुमूल्य पत्थर, सूत एवं सूती वस्त्रों के साथ-साथ गजदंत के बने सामान भी थे। सैन्धव घाटी में हाथियों के पाये जाने के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि सैन्धव घाटी की जलवायु हाथियों के लिए उपयुक्त नहीं थी, अतः वे बाहर से लाये जाते थे। पर ज्वॉइनर महोदय का विचार है कि हाथी वहाँ पालतू पशुओं की तरह पाले जाते थे। सैन्धव घाटी में, गैंडा से लेकर गिलहरी तक, सभी पशु पाले जाते थे एवं उनकी अस्थियों का विभिन्न उपयोग होता था। पक्षियों की हड्डियों का उपयोग भी छोटी चीजों को बनाने में किया जाता था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में हस्तिदन्त के ऊपर विस्तार से प्रकाश डाला गया है, यथा, वह कैसे प्राप्त किया जाता था और उसका क्या मूल्य होता था। मृत हस्ति के दाँत को निकालने वाले व्यक्ति को सवा चार पण देकर पुरस्कृत किया जाता था। मौर्यकाल में गजदन्त का इतना महत्त्व था कि कौटिल्य ने लिखा है कि नदी के किनारे रहनेवाले गज के दाँत ढाई वर्षों के उपरान्त काटना चाहिए, जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले गज के दाँत पाँच वर्षा के उपरान्त काटे जायें। लेकिन दाँतों को काटने में यह ध्यान रखना है कि उनकी जड़े क्षतिग्रस्त न हों। कौटिल्य के अनुसार हस्तिदन्त के चौपड़ भी बनते थे। जुआ खेलने वालों से पैसे लेकर वे चौपड़ दिये जाते थे।

पटना से प्राप्त हस्तिदंत से निर्मित एक सैनिक भी बड़े ही स्वाभाविक मुद्रा में दिखाया गया है जो शुंगकालीन माना गया है। इसी प्रकार की सामग्रियाँ भोकरदन (महाराष्ट्र), हस्तिनापुर, चन्द्रकेतुगढ़, नेवासा, नंगल एवं नगरी नामक स्वानों से भी प्राप्त हुई हैं। ये सभी शुंगकालीन मानी जाती हैं।

गजदन्तशिल्पी किस प्रकार एवं किन उपकरणों से काम करते थे, इसका उल्लेख नहीं मिलता है पर वे भी उन यंत्रों का उपयोग करते होंगे जिनका उपयोग बर्धकी करते थे। इनके अनेक प्रकार की आरियाँ, परशु, छेनी, हथौड़े, छेदनी, बसफली और रुखानियाँ प्रमुख थी। विभिन्न अंगों को बनाकर उन्हें जोड़ा जाता था। उन्हें चमकदार बनाने के लिए रगड़ा जाता था एवं लेप भी किया जाता होगा।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि हस्तिदंत का उपयोग विभिन्न कार्यों में धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। एक अभिलेख से यह भी पता चलता है कि हस्तिदंत भारत से ईरान निर्यात किये जाते थे। एक दूसरे अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि गजदंत शिल्पियों की अपनी एक श्रेणी थी जिसने साँची में एक तोरण बनवाया था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि हस्तिदंत के शिल्पकारों के ऐतिहासिक काल में विदिश, उज्जैन, तक्षशिला और अहिच्छत मुख्य केन्द्र थे।

सन्दर्भ सूची

1. जातक, भाग-6, पृ0 71
2. वही, भाग-3, पृ0 184-85
3. सिंह, मदन मोहन, लाइफ इन नॉर्थ इस्टर्न इण्डिया इन प्री मौर्यन टाइम्स, पृ0 230
4. वही, 4/4/35
5. अष्टाध्यायी, 5/4/61
6. बरुआ, भरहूत, भाग-3, चित्र 146
7. पीछे देखें, अध्याय-2,
8. मिश्र, योगेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ0 11
9. महाभाष्य, 1/1/68, पृ0 435
10. मज्झिम, भाग-1, पृ0 76
11. महाभारत, आरण्यक पर्व, 3/51
12. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2/11
13. अग्रवाल, वासुदेव, पूर्वलिखित, पृ0 146
14. अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, पूर्वोक्त, पृ0 318
15. राव, एस आर, लोथल एण्ड वेस्ट एशिया, समरीज ऑफ पेपर्स, इन्टरनेशल कॉफरेन्स ऑफ एशियन आर्केलॉजी, पृ0 48
16. मार्शल, मोहेंजोदड़ो, भाग-2, पृ0 531
17. दीक्षित, एम0 जी0 त्रिपुरी, 1952, पृ0 132
18. द्विवेदी, बी0 पी0 इण्डियन आइवरीज, पृ0 12-15
19. घिर्शमान, ईरान, पृ0 165

लघुवित्त के माध्यम से निर्धनतम् तक पहुँच एवं प्रभाव

डॉ० श्वेता

अर्थशास्त्र विभाग, बी० एन० महाविद्यालय, भागलपुर, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

लघुवित्त निर्धनों को गरीबी का सामना करने योग्य बनाने के उद्‌देष्य से उनके कौषल में स्तरोन्नयन तथा उद्यमशीलता में विकास लाने सहित सभी प्रकार की वित्तीय एवं गैर-वित्तीय सेवाओं का प्रतिपादन करता है। लघुवित्त वित्तीय सेवाओं की उस विशेष उपशाखा की ओर संकेत करती है जो अति गरीब लोगों को छोटे-छोटे कर्ज उपलब्ध कराती है (प्राय: बिना कोई सम्पत्ति गिरवी रखें। यह कर्ज व्यक्तिगत् उपभोग, उत्पादक गति-विधियों या फिर छोटे-छोटे व्यापार के लिए भी हो सकता है। हाल के दिनों में बचत, लघु बीमा आदि जैसे कर्ज से इतर वित्तीय सेवाओं को भी लघुवित्त के दायरे में सामिल किया जाने लगा है। लघुवित्त की विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत वित्तीय सेवा का आकार बहुत छोटी होती है, और जो लोग ये सेवायें प्राप्त करते हैं, वे गरीब या अति गरीब होते हैं।

दूसरे शब्दों में लघुवित्त से आशय गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे व्यक्तियों की ऋण आवश्यकतायें पूरा करने से होता है। विशेषतया उनमें उपभोग एवं उत्पादन सम्बन्धी प्रयोजनों में अन्तर कर पाना कठिन होता है। समाज के इन्हीं सबसे गरीब वर्गो की छोटी-छोटी धन सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिये प्रदान किए जाने वाले ऋण को लघुवित्त (माइक्रोफाइनेंस) कहा जाता है। लघुवित्त अनेक मामलों में सामान्य ऋण/समान्य श्रेणी से भिन्न होता है।

लघुवित्त की विशेषतायें:

1. यह समाज के सबसे गरीब वर्ग की ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दिया जाता है।
2. इस वर्ग की ऋण की राशि आवश्यकता बहुत छोटी होती है।
3. इनकी ऋण आवश्यकताओं में उपयोग एवं उत्पादक प्रयोजनों का समावेश रहता है।
4. ये लोग ऋण की छोटी-छोटी खुराक लेना पसन्द करते हैं।
5. समाज के इस वर्ग में अपनी आस्ति (सम्पत्तियों) को समाहित करने की योग्यता नहीं होती है। अत: समय-समय पर उनको मार्ग-दर्शन की आवश्यकता होती है।
6. इनकी ऋण आवश्यकतायें अल्पावधि की होती है। ये धन आते ही पुराने ऋण चुकाने का प्रयास करते हैं, किन्तु नई आवश्यकता आने पर पुन: ऋण लेना चाहते हैं। वस्तुत: इनके पास आय का नियमित स्रोत नहीं होता है एवं आय का स्तर बहुत निम्न होता है।

लघुवित्त का महत्व

इस तथ्य में निहित है कि औपचारिक संस्थागत बैंकिंग क्षेत्र ने गरीबों की वित्तीय आवश्यकता को पूरा करने की अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को ठीक से नही निभाया है। लघुवित्त इस सन्दर्भ में अतिमहत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, कयोंकि वित्त उपलब्ध होने पर

गरीब खुद ही रोजगार शुरू कर सकते हैं और मजदूरी पर उनकी निर्भरता कम हो सकती है। स्वरोजगार से उनका, खासकर महिलाओं के सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है। परन्तु लघुवित्त की सबसे बड़ी प्रासंगिकता तो यही है कि इससे गरीबों को सेठ-साहूकारों के चंगुल से बचाया जा सकता है।

लघुवित्त के संस्थाएं

पिछले 25 वर्षों में ग्रामीण ऋण क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की लघुवित्त संस्थाएं उभर कर सामने आई हैं। इनमें से अधिकतर लघुवित्त संस्थाएं बांग्लादेश के ग्रामीण बैंक के प्रादर्श पर आधारित हैं। इस प्रादर्श के आधार में समूह एकता होते हैं। इनमें से प्रत्येक में पांच कर्ज लेने वाले लोग होते हैं। आठ एकता समूहों को मिलाकर एक केंद्र बनता है। दस केंद्रो से एक समूह (क्लस्टर) बनता है और सात समूहों से एक शाखा। इस प्रकार की अनेक शाखाओं को मिलाकर लघुवित्त संस्थायें बनती है। लघुवित्त संस्थाओं (एम.एफ. आई) को भारत में सोसायटियों, ट्रस्ट, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों अथवा स्थानीय क्षेत्रीय बैंको (एल.ए.बीज.) के रूप में पंजीकृत किया जाता है। उनके संचालन के अपने-अपने नियम कायदे होते हैं।

इस प्रादर्श के अनुसार लघुवित्त संस्थाएं वाणिज्यिक बैंकों के बैंक संवाददाताओं अथवा व्यापारिक मददगारों के रूप में काम करते हैं और कर्जदारों की पहचान कर तथा बैंकों में आवेदन करने की प्रक्रिया आदि में सहायता कर ऋण प्राप्त करना सुविधाजनक बनाते हैं। ऋण खाते की देखभाल (प्रबंधन) बैंक ही करता है।

लघुवित्त से संबंधित चुनौतियां

भारत में लघुवित्त क्षेत्र व्यापक विस्तार की दहलीज पर खड़ा है। परंतु इस क्षेत्र के समक्ष अनेक अहम चुनौतियां हैं। इस क्षेत्र के सतत विकास के लिये अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिये इस चुनौतियों का निराकरण होना जरूरी है।

गरीबों को ऋण मिलने में अनेक बाधाएं हैं, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। परिसंपत्ति का अभाव और ऋण वितरण की संस्थागत व्यवस्था की कमी- ये दो प्रमुख कारक हैं जिनसे गरीब लोग ऋण प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। यद्यपि वाणिज्यिक बैंक, सहकारी साख समितियां और नवजात एमएफआईज कुछ हद तक इस समस्या के समाधान की कोशिश करते रहे है, फिर भी गरीबों को कर्ज देने प्रणाली को बेहतर और चुस्त-दुरूस्त बनाने की महती आवश्यकता है। जहाँ स्वयं सहायता समूह आंदोलन ने इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में एक अनुकूल वातावरण बनाने का प्रयास किया है। आवश्यकता इस बात की है कि स्वयं सहायता समूह बैंक संपर्क कार्यक्रम, प्राथमिक कृशि सहकारी साख समितियों और लघुवित्त संस्थाओं जैसी लघुवित्त प्रदान करने वाली मौजूदा व्यवस्थाओं को सुदृढ बनाया जाए और डाकघर जैसी एजेंसियों को भी लघुवित्त क्षेत्र में ले आया जाए।

तालिका 1: भारत में लघुवित्त प्रदाता एवं उनके नियन्त्रण हेतु वैधानिक ढांचा

क्र॰ सं॰	भारत में ऋणप्रदाताओं की श्रेणी	गतिविधियों के नियन्त्रणके लिये वैधानिक ढांचा।	
A.	घरेलू वाणिज्यिक बैंक, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक, निजी क्षेत्र के बैंक और स्थानीय क्षेत्र के बैंक	(i)	भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934
		(ii)	बीआर अधिनियम, 1949
		(iii)	एस. बी. आई. अधिनियम
		(iv)	एस. बी. आई. सहायक अधिनियम
		(v)	अधिग्रहण और उपक्रम हस्तांतरण अधिनियम, 1970 और 1980
B.	ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक	(i)	आर. आर. बी. अधिनियम, 1976
		(ii)	आर. आर. बी. अधिनियम, 1934
		(iii)	बी. आर. अधिनियम, 1949
C.	स्हकारी बैंक	(i)	सहकारी समिति अधिनियम
		(ii)	बी. आर. अधिनियम, 1949 (ए.ए.सी.एस.)

D.	सहकारी समितियाँ	(i)	एमएसीएस जैसे राजकीय विधान
E.	पंजीकृत एन. बी. एफ. सी.	(i)	आर. बी. आई. अधिनियम, 1934
		(ii)	कम्पनी अधिनियम, 1956
F.	अपंजीकृत एन. बी. एफ. सी.	(i)	आर. बी. आई. संशोधन अधिनियम, 1997 लागू होने से पहले किसी विळीय संस्था के व्यवसाय का संचालन करने वाले एन. बी. ए. सी. जिनके सी. ओ. आर. आवेदन बैंक द्वारा अब तक खारिज नहीं किये गये हैं।
		(ii)	कम्पनी अधिनियम का खंड-25
G.	समितियों, ट्रस्टों जैसे अन्य प्रदाता	(i)	समिति पंजीकरण अधिनियम, 1960
		(ii)	भारतीय ट्रस्ट अधिनियम
		(iii)	आर. बी. आई अधिनियम, 1934 का अध्याय प्प्.सी
		(iv)	राज्य साहूकारी अधिनियम

स्रोतः योजना जनवरी, 2008

लघुवित्त निर्धनों को गरीबी का सामना करने योग्य बनाने के उद्देश्य से उनके कौशल में स्तरोन्नयन तथा उद्यमशीलता में विकास लाने सहित सभी प्रकार की वित्तीय एवं गैर-वित्तीय सेवाओं का प्रतिपादन करता है। निर्धनों के लिये कार्यक्रमों के निरूपण के सन्दर्भ में लघुवित्त की मान्यता तथा इसकी स्वीकृति निर्धनों के सामाजिक तथा आर्थिक सशक्तीकरण (विशेशकर महिलाओं के सशक्तीकरण पर बल देना) से निर्धनता-उन्मूलन के नये दृश्टांतो में से एक है।

विश्व की कुछ अविकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं वाले देश जैसे बांग्लादेश, इंडोनेशिया, नेपाल, केन्या, एवं वर्मा में एक प्रयोग किया गया। हर देशों में कुछ स्वयं सेवी संगठनों ने समाज के सबसे कमजोर वर्ग की सहायता करने के लिए उनको संगठित करने का प्रयास किया। उनको किसी अन्य की सहायता पर नहीं, वरन् स्वयं आपसी मदद से अपनी समस्याओं को सफलझाने में सहायता दी। इस प्रयोग ने चमत्कार कर दिखाए। जो काम सरकारी सहयोग से भी संभव नहीं हो सका था उसको इस स्वः सहयोग के द्वारा प्राप्त कर लिया गया। सामूहिक रूप से अपनी स्वयं सहायता करने के इस प्रयास ने ही 'स्वयं सहायता समूह' की अवधारणा को जन्म दिया।

नाबार्ड ने स्वयं सहायता समूहों को परिभाशित करते हुए कहा है कि ''स्वयं सहायता समूह गरीब व्यक्तियों के छोटे-छोटे समूह होते है। ये व्यक्ति सामान्यतः एक जैसी परिस्थितियों में रहने वाले होते हैं। स्वयं सहायता समूह अपने सदस्यों को नियमित रूप से छोटी-छोटी बचत के लिए प्रेरित करते हैं। इस बचत की राशि (जिसे 'सामूहिक निधि' कहा जाता है) में से सदस्यों को छोटे-छोटे ऋण प्रदान किए जाते हैं। शेश राशि को बैंक में स्वयं सहायता समूह के नाम से खाता खोलकर जमा किया जाता है। इस प्रकार, लगभग छह माह तक नियमित बचत करके समूह में आपस में आंतरिक लेनदेन करने के पश्चात् बैंक इन्हें इनकी पात्रता अनुसार ऋण प्रदान करते हैं।

हमारे देश में स्वयं सहायता समूह एवं बैंक सर्वदाता कार्यक्रम का प्रारंभ संगठित रूप से वर्ष 1992 से शुरू हुआ है। स्वयं सहायता समूहों के गठन में प्रेरकों, बैंक अधिकारियों, ग्राम विकास अधिकारी, ग्राम पंचायत विकास अधिकारी, ब्लॉक स्तर पर नियुक्त सुविधादाताओं, एनजीओ तथा ग्राम प्रधान कि अहम भूमिका होती है। वे समूह के गठन में समूह के सदस्यों का अनेक प्रकार से सहायता करते हैं। ये ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब तथा गरीबी की रेखा के नीचे जीवन- यापन करने वाले महिला एवं पुरुषों को चिन्हित करते हैं, फिर उन्हें अपना समूह बनाने हेतु प्रेरित करते हैं। साथ ही उन्हें समूह के गठन की प्रक्रिया में मदद करते हैं। समूह के गठन के पश्चात उन्हें समूह की बहियों के रख-रखाव, समूह की बैठक की प्रक्रिया, स्वरोजगार के चयन तथा उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करने का कार्य करते हैं।

लघुवित्त की पहुंच एवं प्रभाव

यह ज्ञात हुआ कि स्वयं सहायता समूह के माध्यम से लघुवित्त कार्यक्रम तीव्र गति से लोगों तक पहुंच रहा है तथा ग्रामीण गरीब जनता इसके महत्व व आवश्यकता को भली-भांति समझ चुकी है। ग्रामीण लोगों को यह बात समझ में आ गयी है कि बिना उनके स्व-सहयोग के उनकी गरीबी दूर नहीं हो सकती है। दूसरी ओर, बैंकों को भी अब यह कार्यक्रम केवल नाबार्ड या सरकार का न होकर, एक 'लाभदायक व्यावसायिक अवसर' नजर आ रहा है लगभग सभी बैंक फिर से अपना ध्यान 'ग्रामीण बाजार' पर लगा रहे हैं, क्योंकि 'कॉरपोरेट वित्त' का उनका अनुभव कुछ खास अच्छा नहीं रहा है स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से पिछले 20 वर्षों में उनके द्वारा दिए गए ऋणों में वसूली एवं गैर-उत्पादन संपत्तियां (एन.पी.ए) का अनुभव उन्हें इस कार्यक्रम के प्रति आकर्षित कर रहा है इतना ही नहीं कुछ प्राइवेट बैंक भी (जैसे आई.सी.आई.सी.आई. बैंक एवं फाइनेंशीयल कम्पनीयां आदी) अब इस क्षेत्र में प्रवेश कर इस क्षेत्र की महत्ता को दर्शा रहे हैं। अत: प्रत्येक बैंक को इस अवसर का लाभ उठाना चाहिए।

लघुवित्त एवं स्वयं सहायता समूह का सदस्यों पर प्रभाव

स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम का विभिन्न वर्गों पर निम्नलिखित प्रभाव देखा जा सकता है।

1. स्वयं सहायता समूह के सदस्यों में बचत करने की आदत का विकास हो रहा है।
2. सदस्यों को छोटे-छोटे परिवारिक कार्यों के लिए भी स्वयं सहायता समूह के समूह निधि से तुरंत ऋण प्राप्त हो जाती है।
3. स्वयं सहायता समूह के माध्यम से बिना किसी गिरवी या प्रतिभूति के भी बैंक से ऋण प्राप्त करना संभव हुआ है।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब जनता को सेठ साहूकार या महाजनों के चंगुल से छुटकारा मिल रहा है।
5. स्वयं सहायता समूह के माध्यम से सस्ते ब्याज पर बैंकों से ऋण की सुविधा मिलने लगी है।
6. स्वयं सहायता समूह के कारण विभिन्न सरकारी अनुदान वाली योजनाओं के तहत भी ऋण मिलना आसान हो गया है जिससे गरीब जनता को अनुदान का लाभ मिलता है।
7. स्वयं सहायता समूह के द्वारा सदस्यों में आत्मविश्वास की जागृति हुई है।
8. स्वयं सहायता समूह द्वारा महिला सदस्यों में आर्थिक स्वावलंबन में वृद्धि, परिवारिक एवं आर्थिक निर्णय में सहभागिता करने का अवसर प्राप्त हो रहा है।
9. स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम से 'महिला सशक्तिकरण' को एक नया आयाम मिल रहा है।
10. स्वयं सहायता समूह के महिला एवं पुरुष सदस्यों में नेतृत्व क्षमता का विकास हो रहा है।
11. स्वयं सहायता समूह के द्वारा सदस्यों में आपसी विश्वास एवं भाईचारे की भावना जागृत हुई है।

स्वयं सहायता समूह से देश में ग्रामीण निर्धनों के जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। इन स्वयं सहायता समूह कार्यक्रम द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में जहाँ एक ओर रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी हो रही है वहीं दूसरी ओर समाज के सभी वर्गों में आय का समान वितरण हो रहा है। गांव में स्थानीय संसाधनों का प्रयोग करके गरीब लोग अपनी आजीविका के साधन जुटा रहे हैं। स्वयं सहायता समूह के कारण इन्हें सेठ-साहुकार व महाजनों के चंगुल से बचने का रास्ता मिला है। रोजगार के नये-नये साधनों के कारण प्रति व्यक्ति आय में एवं सकल घरेलू उत्पाद जीडीपी में भी वृद्धि हो रही है। इन समूहों द्वारा बच्चों को शिक्षा टीकाकरण, पल्स पोलियो अभियान, स्वच्छता अभियान, पोषाहार मिड-डे-मिल। परिवार कल्याण कार्यक्रम, शराबबंदी, नशाबंदी, स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया जा रहा है। कहा जा सकता है कि स्वयं सहायता समूह के कारण देश में गरीबों को स्वावलंबन की प्राप्ति हुई है एवं उनकी जागृति के कारण समाज में सुधार हो रहा है जो अपने आप में एक मिसाल है। आज जरूरत है इन स्वयं सहायता समूहों को और अधिक ढंग से पोषित करने की ताकि ये नये समाज का निर्माण कर सकें।

सन्दर्भ सूची

- श्रीवास्तव मयंक, मुहम्मद युनुस का योगदान, योजना, जनवरी, 2008. सिन्हा संजय, हिन्दी - चीनी ग्रामीण वित्त, योजना, जनवरी, 2008. सिंह रहीस, लघुवित्त भारतीय एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्य, योजना, जनवरी, 2008
- द्विवेदी अर्चना, स्वयं सहायता समूह बनाम लघुऋण उद्देश्य और हकीकत का फासला योजना, जनवरी, 2008

- सूद अर्चना, सफलता के लिए स्वयं सहायता, योजना, दिसम्बर, 2007. जार्ज एन. डी., भारत में लघुवित्त मुंदे और रणनीतियों, योजना, शोध सन्दर्भ 313 जनवरी, 2008
- देव कृष्ण, लघुवित्त क्षेत्र (विकास एवं विनियम) बिल, 2007 - एक समालोचना, योजना, जनवरी, 2008
- बाफना प्रदीप कुमार एण्ड सिंह चरणजीत, स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से माइक्रोफाइनेंस: निर्धनतम व्यक्तियों तक पहुँच एवं प्रभाव, लघुशोध परियोजना, आईबीए. बुलेटिन, द इडियन बैंक्स एसोशियेशन, मुम्बई, सितम्बर, 2004
- पन्त मंदाकिनी, पंचायतीराज में महिला सहभागिता और स्वयं सहायता समूह, पंचायतवार्ता, अक्टूबर-दिसम्बर, 2004
- कुमार प्रकाश, पंचायत और स्वयं सहायता समूह - नजदीकियों और दूरियाँ, पंचायतवार्ता, अक्टूबर - दिसम्बर, 2004
- कुमार शालिनी, ग्राम सभा सशक्तीकरण में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका, पंचायतवार्ता, अक्टूबर-दिसम्बर, 2004
- जैन भालचन्द, स्वयं सहायता समूहों के स्वावलम्बन में बैंकों की भूमिका, बैंकिंग चिन्तन - अनुचिन्तन, अप्रैल - जून, 2004
- सिन्हा, राजीव कुमार, ग्रामीण विकास में सूक्ष्म ऋण संस्थाओं की बढ़ती भागीदारी, बैंकिंग चिन्तन - अनुचिन्तन , बैंकर प्रशिक्षण महाविद्यालय, आर.बी.आई., मुम्बई, जुलाई - सितम्बर, 2003

परिवार कल्याण कार्यक्रम: पद्धति और मूल्यांकन

डॉ० शंकर पंडित

+2 सहायक शिक्षक (अर्थशास्त्र), मोदनारायण इंटरस्तरीय विद्यालय, अम्बा, शाहकुंड, भागलपुर (बिहार)

जनसंख्या नियोजन में सामाजिक प्रयास तभी सफल हो सकता है जब परिवार कल्याण कार्यक्रम का व्यक्तिगत स्तर पर अभ्यास किया जाए। परिवार कल्याण कार्यक्रम को जीवन के रूप में अपनाने के लिए लोगों को प्रभावित करने के लिए, प्रजनन योग्य आयु वर्ग में 103 मिलियन से अधिक जोड़ों को लक्षित करने के लिए एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम होना वांछनीय है ताकि वे छोटे परिवार के मानक को स्वीकार करें। साठ लाख से अधिक अनपढ़ और गरीब युगल उन्हें परिवार कल्याण कार्यक्रम के बारे में जानकारी नहीं हैं।

परिवार कल्याण कार्यक्रम के विभिन्न तरीके नीचे दिए गए हैं:

1. सुरक्षित अवधि (लय विधि)

यह एक ऐसी विधि है जब सहवास मासिक धर्म चक्र (एमसी) में उन समय तक सीमित हो सकता है जब कम संभावना होती है कि निशेचन के लिए एक अनुचर उपलब्ध होगा। जब चक्र 282 दिन का होता है, तो सुरक्षित अवधि में मासिक धर्म प्रवाह के 4 दिन, मासिक धर्म के 3 दिन बाद और 9 दिन पूर्व मासिक धर्म शामिल होते हैं। यदि चक्र 28 दिनों से कम है, तो उस समय को मासिक धर्म की सुरक्षित अवधि से घटाया जाना चाहिए जब यह 28 दिनों से अधिक लंबा हो जाता है, तो इस चरण में समय जोड़ा जा सकता है। सभी महिलाओं में मासिक धर्म से पहले के 7 दिन सबसे सुरक्षित होते हैं। सुरक्षित अवधि की गणना प्रत्येक महिला के लिए अलग-अलग मासिक धर्म की आदतों के कई महीनों के अध्ययन के बाद अलग-अलग की जाती है, और नियमित रूप से मासिक धर्म वाली महिलाओं में काफी विश्वसनीय हो सकती है। इस पद्धति के फायदे यह हैं कि यह नियमित चक्रों को छोड़कर किसी पर लागू नहीं होता है, और यह कि सहवास सहज इच्छा के बजाय अंकगणित द्वारा निर्धारित होता है। हालांकि, यह लाभ के लिए अन्य तरीकों के साथ जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार कई जोड़े जननक्षम अवधि के दौरान गर्भनिरोधक का उपयोग करते हैं, लेकिन सुरक्षित अवधि के दौरान 'मौका लेते हैं'।

2. अधूरा सहवास

(अ) सहवास इंटरफेमोरा: इस अभ्यास में पुरुष अंग योनि में प्रवेश नहीं करता है, लेकिन मादा की जांघों के बीच में फंस जाता है।

(ब) सहवास जलाशय: यह पूर्ण प्रवेश की अनुमति देता है लेकिन शारीरिक संचार और उत्तेजना को प्रतिबंधित करता है ताकि कामोन्माद और स्खलन न हो।

(स) सहवास की रुकावट (अपूर्ण मैथुन): इस अभ्यास में सहवास होता है लेकिन स्खलन से तुरंत पहले लिंग को वापस ले लिया जाता है।

इन तीन विधियों के फायदे हैं कि वे कुछ भी खर्च नहीं करते हैं और उन्हें किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन ये तरीके विश्वसनीय नहीं हैं। स्खलन का नियंत्रण हमेशा अनिश्चित होता है और सक्रिय शुक्राणु अक्सर पूर्व स्खलन बलगम में मौजूद होते हैं जो लिंग से बच जाता है।

3. पुरुष आवरण (कंडोम)

उर्ध्वशीर्ष लिंग को ढंकने के लिए और वीर्य को रखने के लिए आवरण सबसे अधिक महीन रबड़ से बने होते हैं और इसका उपयोग केवल एक बार किया जाता है।

इसके फायदे हैं: (अ) तकनीक सरल है, (ब) यह मैथुन और अन्य संक्रमणों के हस्तांतरण से बचाती है, और (स) यह अपेक्षाकृत कुशल है।

इसके नुकसान हैं: (अ) यह अपेक्षाकृत महंगा है (ब) यह पूर्ण जननांग संपर्क में हस्तक्षेप करता है और संपर्क को दोनों पक्षों के लिए कम सुखद बनाता है।

4. रासायनिक और भौतिक रासायनिक गर्भनिरोधक

शुक्राणुनाशक मवाद, गोलियां, क्रीम या जेली को सहवास से पहले योनि में डाला या संक्रमित किया जा सकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि उन्हें योनि के गहराई में लगाया जाता है, क्रीम और जेली को लंबे इंजेक्शन नली के साथ ट्यूबों में आपूर्ति की जाती है। सहवास से ठीक पहले इनका उपयोग किया जाता है। एक शुक्राणुनाशक के साथ गर्भवती घुलनशील अर्ध पारदर्शी फिल्में ग्रंथियों के लिंग या गर्भाशय ग्रीवा को सुरक्षित करने के लिए विकसित की गई हैं। कुछ गोलियां घुल जाती हैं जो शुक्राणुजोजा और गर्भाशय ग्रीवा के बीच एक यांत्रिक अवरोध पैदा करती हैं। रासायनिक गर्भ निरोधकों के फायदे हैं: वे लागू करना आसान है, वे सहवास अधिनियम के साथ हस्तक्षेप नहीं करते हैं, और वे स्नेहन द्वारा सहवास की सुविधा देते हैं। लेकिन वे अविश्वसनीय हैं जब अकेले प्रयोग किया जाता है, यहां तक कि वे जो विट्रो परीक्षण में अत्यधिक शुक्राणुनाशक होते हैं।

5. योनि विशेष पथरी (डच कैप, योनि डायाफ्राम)

डच कैप एक तश्तरी के आकार का रबर डायाफ्राम होता है, जिसकी रिम में एक धातु का तार लचकदार होता है जो ऊपरी योनि के रास्ते में पूरी तरह से फिट बैठता है। सहवास नीचे और उसके पीछे होता है। कैप मिलीमीटर में उनके व्यास के अनुसार आकार की होती हैं और जो सबसे अधिक उपयोग की जाती हैं वे 60, 65, 70, 75 और 80 हैं। सही आकार परीक्षण और त्रुटि से पाया जाता है। संभोग के प्रत्येक कार्य से पहले डायाफ्राम डाला जाना चाहिए और संभोग के बाद कम से कम आठ घंटे तक रहना चाहिए। एक बार जब इसे ठीक से डाला जाता है तो यह बिना किसी असुविधा के 24 घंटे तक योनि में रह सकता है। इस पद्धति का दोष यह है कि यह नैदानिक विधि है और चूंकि सही आकार निर्धारित किया जाना है। यह सहजता में फिट नहीं किया जा सकता है, जो योनि दीवारों, बहिर्मुखी गर्भाशय, या बहुत मोटापे से ग्रस्त महिलाओं को पीड़ित करते हैं।

6. गर्भाशय ग्रीवा के बीजकोश

ग्रीवा बीजकोष का उपयोग उन कुछ मामलों में किया जा सकता है जहां डच कैप अक्षम साबित होती है, रेट्रोवेगियन के कुछ मामलों में, उदाहरण के लिए: वे गर्भाशय ग्रीवा के ऊपर सटीक रूप से उपयुक्त होने के लिए डिजाइन किए गए छोटे गुंबददार रबर के उपकरण हैं। अगर गर्भाशय ग्रीवा लचर या अनियमित आकार का है तो बेकार हैं। ग्रीवा ढक्कन का व्यवस्था डच कैप के समान है इसके साथ संयोजन में एक रासायनिक गर्भनिरोधक का उपयोग किया जाना चाहिए।

घरेलू विधि में एक शुक्राणुनाशक तरल पदार्थ जैसे सिरका समाधान में भिगोए गए छोटे स्पंज का उपयोग शामिल है। वे डच कैप के समान कार्य कर सकते हैं लेकिन आम तौर पर इतने कुशल नहीं होते हैं क्योंकि वे विस्थापित हो सकते हैं।

बहुत से प्लास्टिक (IUCD) को तैयार किया गया है और आसान परिचय प्रदान करने के लिए आकार दिया गया है और साथ ही साथ गर्भाशय में अवधारण भी किया गया है। (IUCD) को खुले या बंद के रूप में वर्गीकृत किया जाता है और अब यह अनुशंसा की जाती है कि वर्गीकृत उपकरणों का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे पेट के गुहा में प्रवेश करने पर बाध्य या गला

घोंटने की क्षमता रखते हैं। लूप्स और कॉइल्स में से जिसने सबसे अच्छा परीक्षण किया है वह है लिप्स बॉप, टी-शेडेड डिवाइस जैसे कि कॉपर टी और कॉपर 7 लोकप्रिय हैं। एक सपाट ढाल के आकार का, डलकन ढाल का व्यापक रूप से उपयोग किया गया था, लेकिन इसे वापस ले लिया गया है क्योंकि कुछ विशेष परिस्थितियों में इसने पैल्विक संक्रमण का एक विशेष जोखिम उठाया है। धातु या प्लास्टिक के स्प्रिंग्स और रिंगों से युक्त कई (IUCDs) हैं, और कई, प्रत्येक क्लिनिक की अपनी प्राथमिकता है।

सभी प्लास्टिक (IUCD) के अपने स्वयं के परिचयकर्ता हैं और उनके पास नायलॉन की पूंछें जुड़ी हुई हैं जो गर्भाशय ग्रीवा के माध्यम से योनि में लटकती हैं। ये महिला और मेडिकल अटेंडेंट को यह पुष्टि करने का साधन देते हैं कि उपकरण यथावत रहता है और साधारण कर्षण द्वारा इसे हटाया भी जाता है। एक उपकरण डालने का सबसे अच्छा समय मासिक धर्म की समाप्ति के बाद या कुछ दिनों के भीतर होता है।

बंध्याकरण

हालांकि, जन्म नियंत्रण का सबसे सस्ता, सबसे अच्छा और सबसे सुरक्षित तरीका, आज नसबंदी है। यह पुरुष या महिला दोनों में से किसी एक ऑपरेशन द्वारा पूरा किया जाता है। पुरुष में, यह सबसे अच्छा एक ऑपरेशन द्वारा प्राप्त किया जाता है जिसे नसबंदी 'पुरुष नसबंदी' शुक्राणुजोजा के उत्थान के साथ हस्तक्षेप नहीं करता है, लेकिन उन्हें सामान्य वीर्य से बचाता है। नसबंदी या वास की कटिंग बहुत मामूली ऑपरेशन है और आमतौर पर स्थानीय संवेदनाहारी के साथ 10 या 15 मिनट के भीतर पूरा हो जाता है। तो पुरुष नसबंदी जन्म नियंत्रण का सबसे अच्छा और सही तरीका है।

परिवार कल्याण कार्यक्रम तकनीक की चर्चा होने के बाद, परिवार कल्याण कार्यक्रम तकनीकों के बारे में सार्वजनिक प्रतिक्रिया का अध्ययन करना और उनका आकलन करना महत्वपूर्ण हो जाता है, गर्भ निरोधकों के लिए उनकी प्राथमिकता, आय, व्यावसायिक और शैक्षिक स्तरों पर विधि के लिए लेना। दूसरी ओर, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में इसके और उनके सापेक्ष स्वीकार्यता के खिलाफ विभिन्न आपत्तियाँ। लोगों के बीच परिवार कल्याण कार्यक्रम की स्वीकार्यता सार्वजनिक प्रतिक्रिया से बहुत प्रभावित होती है, और परिवार कल्याण कार्यक्रम के बारे में विभिन्न नीतियों की सफलता और गठन भी निस्संदेह इस पर निर्भर करते हैं।

परिवार कल्याण कार्यक्रम तकनीक की चर्चा होने के बाद, सार्वजनिक प्रतिक्रिया का अध्ययन करना और उसका आकलन करना एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन जाती है। लोगों के बीच परिवार कल्याण कार्यक्रम की स्वीकार्यता सार्वजनिक प्रतिक्रिया से बहुत प्रभावित होती है।

निष्कर्ष

परिवार कल्याण कार्यक्रम ग्रामीण लोगों की तुलना में शहरी पुरुषों में अधिक पाए जाते हैं। सरकार द्वारा समय-समय पर आयोजित परिवार कल्याण कार्यक्रम के लिए शहरी पुरुष तुलनात्मक रूप से अधिक जागरूक हैं। ग्रामीण पुरुष इस क्षेत्र में मुख्य रूप से अपने अविश्वास, गलतफहमी और परिवार कल्याण कार्यक्रम के बारे में गलतफहमी के कारण सक्रिय भागीदारी करने में असमर्थ हैं। इसलिए, अध्ययन के तहत भारत के साथ-साथ कई क्षेत्र में परिवार कल्याण कार्यक्रम की सफलता के लिए, सरकार को पहले परिवार कल्याण कार्यक्रम के बारे में प्रचलित अविश्वासों, गलत धारणाओं और गलतफहमियों को दूर करना चाहिए।

संदर्भ

- अग्रवाल, एस एन (1973): ''भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति दृष्टिकोण'', नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
- बालकृष्ण, एस। (1977): ''परिवार कल्याण कार्यक्रम - ज्ञान दृष्टिकोण और अभ्यास'', एनआईसीडी अहमदाबाद
- बाम्बास, ए पी (1975): ''भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम का कार्यान्वयन,'' कागज कुआलपुर, जून में एशियन सेंटर फॉर डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन की एक बैठक में प्रस्तुत किया गया। 1975
- बेन्नेरजे, डी (1982): ''भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम - एक आलोचना और एक परिप्रेक्ष्य'', पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

- भाटिया, बृजेश: ''परिवार कल्याण कार्यक्रम में सामग्री का महत्व'' केंद्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम संस्थान, नई दिल्ली (उत्तर प्रदेश)
- भाटिया, बीय दुबे, डी सी और देवगन, ए.के. (1965): ''परिवार कल्याण कार्यक्रम संचार में एक अध्ययन - प्रत्यक्ष मेलिंग'', केंद्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम संस्थान, नई दिल्ली
- बोस, आशीष: ''परिवार कल्याण कार्यक्रम की योजना'', आर्थिक विकास संस्थान, दिल्ली (माइमोग्राफ्ड)
- चन्द्राकरन, सी। और कुदेर, के। (1965): क्लिनिक के माध्यम से परिवार कल्याण कार्यक्रमय ग्रेटर बॉम्बे,
- एलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, बॉम्बे में परिवार कल्याण कार्यक्रम क्लीनिक के सर्वेक्षण की रिपोर्ट
- दांडेकर, कुमुदिनी: 'गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ इकोनॉमिक्स एंड पॉलिटिक्स द्वारा संचालित परिवार कल्याण कार्यक्रम अध्ययन। पून', क्लाइड वी किकर (एड) रिसर्च इन फैमिली वेलकेयर प्रोग्राम, प्रिंसटन
- देसाई, ए आर (1980): ''शहरी परिवार और भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रम '। लोकप्रिय प्रकाशन, बॉम्बे
- आर्मिटेज, ए (1993): माघरेब में परिवार कल्याण कार्यक्रम: जिम्मेदारी को फिर से परिभाषित करना, एन्टर नेफ डेन डेन, 24: 10दृ11
- बार्नेट, बी (1998): परिवार कल्याण कार्यक्रम अक्सर एक परिवार के निर्णय का उपयोग करते हैं, नेटवर्क, 18 (4): 10दृ11, 1314
- धनु, ए और नेगी, ए.जे. (2004): कमजोर परिस्थितियों में रहने वाले युवाओं के बीच कंडोम प्रमोशन, जर्नल ऑफ फैमिली वेलफेयर, 50 (2): 73-84

उत्तर बिहार में मखाना खेती की समस्याएं और संभावनाएँ

डॉ० राजेश कुमार सुमन

सहायक प्राध्यापक (अतिथि), ए० पी० एस० एम० महाविद्यालय, बरौनी,
ल० ना० मी० विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

उत्तर बिहार के जिलों में कई प्राकृतिक और मानव निर्मित आर्द्रभूमि पाए जाते हैं। आर्द्र प्रदेश में बाढ़ के मैदानों, उथले झीलों और तालाबों, दलदल और अन्य जल-जमाव वाले जगह शामिल हैं। हाल के वर्षों में, आर्द्रभूमियों के वातावरण पर असंख्य खतरे उत्पन्न हुए हैं, जिससे उनकी जैव-विविधता को नुकसान, प्रदूषण, सिकुड़न और स्थलीय नुकसान हुआ है। इन जगहों को संरक्षण और पारिस्थितिक प्रबंधन की आवश्यकता है। आर्द्रभूमि जल निकायों के डूबे हुए क्षेत्र हैं जिनमें प्राकृतिक और कृत्रिम, स्थायी या अस्थायी, स्थिर या बहने वाली, ताजी, खारी और नमकीन झील, खाई और समुद्री पानी शामिल हैं।

आर्द्रभूमि का मूल्य हमारे पर्यावरण की रक्षा करने और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए अपार है। यह संभव नहीं है कि दलदली भूमि, जल भराव वाले क्षेत्रों, तालाबों और तालाबों को छोड़ दिया जाए, क्योंकि वे कई वस्तुओं का उत्पादन करने की बड़ी क्षमता रखते हैं, जिनके पास संसाधन निर्माण के अलावा मानव के लिए महान उपयोगिता है। आर्द्रभूमि पर्यावरण को सुशोभित करने, अधिक वर्षा को आकर्षित करने और पक्षियों, मछलियों, कीटों और पौधों की कई प्रजातियों के लिए जीवित निवास प्रदान करने के साथ-साथ प्रदूषण फैलाने वाले भी होते हैं, जिनका हमारे जीवन के दैनिक जीवन में बहुत अधिक औषधीय महत्व है।

आर्द्रभूमि के मूल्य को ध्यान में रखते हुए, उनके संरक्षण और प्रबंधन के लिए उपाय शुरू करने होंगे। आर्द्रभूमि के संरक्षण की आवश्यकता के बारे में लोगों को शिक्षित करने के साथ-साथ उनकी उत्पादकता पर वैज्ञानिक और अनुप्रयोग उन्मुख अनुसंधान के प्रारंभ के अलावा उनकी आर्थिक उपयोगिता के बारे में शिक्षित करना आवश्यक है।

उत्तर बिहार के आर्द्रभूमि दुनिया की सबसे अधिक उत्पादक जलीय प्रणाली हैं और यह अद्वितीय मीठे पानी का पारिस्थितिकी तंत्र अत्यधिक उत्पादक लगता है और इसके लिए ऐसी पारिस्थितिकी प्रणालियों की उत्पादक क्षमताओं के सर्वोत्तम उपयोग के साथ नई विकास रणनीतियों को नया करके विकसित किया जा सकता है।

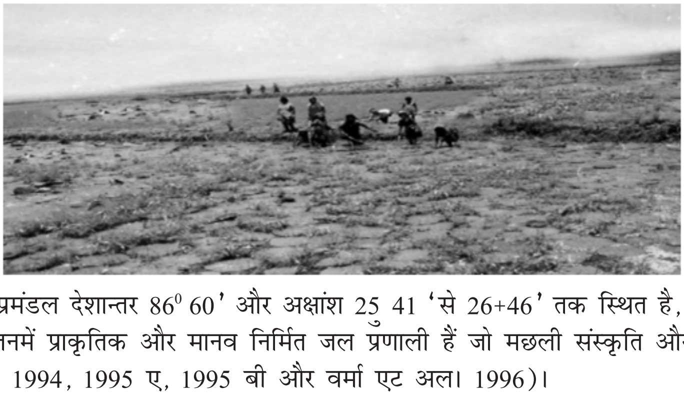

उत्तरी बिहार के कोसी प्रमंडल देशान्तर 86^0 60' और अक्षांश 25 41 'से 26+46' तक स्थित है, जिसमें सहरसा, सुपौल और मधेपुरा जिले शामिल हैं, जिनमें प्राकृतिक और मानव निर्मित जल प्रणाली हैं जो मछली संस्कृति और मखाना की खेती के लिए उपयोग की जाती हैं। (वर्मा 1994, 1995 ए, 1995 बी और वर्मा एट अल। 1996)।

उत्तर बिहार में कोसी प्रमंडल का एक विशाल जल क्षेत्र मखाना की खेती के लिए उपयोग किया जाता है। सुपौल जिले में सार्वजनिक और निजी दोनों प्रकार के स्वामित्व के तहत इसकी खेती का सबसे बड़ा जल क्षेत्र है। मधेपुरा जिले में दोनों क्षेत्रों में सबसे कम जल क्षेत्र है। सहरसा जिले की स्थिति सुपौल जिले के बगल में है। तालिका 2 में मखाना की खेती के अर्थशास्त्र का विवरण है। एक (1) हेक्टेयर क्षेत्र में इसकी खेती से 23,691 रुपये का शुद्ध लाभ प्रकट करता है। दूसरे वर्ष में लाभ और बढ़ जाता है क्योंकि बीज बोने की कोई आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि तालाब के बिस्तर पर बचे हुए बीज सफल मौसम में फसल के रूप में अंकुरित हो जाते हैं।

तालिका 1: मखाना की खेती के तहत जल क्षेत्र (हेक्टेयर)।

जिला	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र
सहरसा	322.06	406.13
सुपौल	540.00	860.00
मधेपुरा	135.25	167.00

मखाना और सिंघारा की खेती मछली पकड़ने के समुदाय का पारंपरिक व्यवसाय है। सहरसा जिले में, मखाना की खेती में लगे इस समुदाय के 4,375 व्यक्तियों में से 80% का मुख्य रूप से कब्जा है, जबकि 16% और 4% इसे क्रमशः द्वितीयक और तृतीयक व्यवसाय के रूप में अपनाते हैं।

सुपौल जिले में 66.70% मछुआरे इसे प्राथमिक व्यवसाय के रूप में पसंद करते हैं और 19.97% द्वितीयक व्यवसाय के रूप में। इसी तरह मधेपुरा जिले में, उच्चतम प्रतिशत इसे प्राथमिक व्यवसाय के रूप में अपनाते हैं

कोशी डिवीजन में, 997.31 हेक्टेयर मखाना पैदावार जल क्षेत्र सार्वजनिक स्वामित्व में है और 1433.13 हेक्टेयर जल क्षेत्र निजी क्षेत्र में है। इन जल निकायों को उच्च उपज, मध्यम उपज और कम उपज वाले लोगों में बांटा जा सकता है। सुपौल जिले में उच्च उपज देने वाली श्रेणी के अंतर्गत 975.06 हेक्टेयर जल क्षेत्र है जबकि सहरसा और मधेपुरा जिलों में मध्यम पैदावार की श्रेणी के अंतर्गत क्रमशः 489.07 और 198.57 हेक्टेयर क्षेत्र के सबसे बड़े जल क्षेत्र हैं।

तालिका 2: मखाना उपज जल निकायों (हेक्टेयर में जल क्षेत्र) का वर्गीकरण।

श्रेणी	सहरसा	सुपौल	मधोपुरा
उच्च्य उपज	158.15	975.06	60.48
मधयम पैदावार	489.07	321.05	198.57
कम पैदावार	80.97	103.89	43.20

तालिका 3: मखाना काश्तकारों द्वारा कीटनाशकों का प्रयोग

कीटनाशक	खेती करने वालों का प्रतिशत
बेंजीन हेक्साक्लोराइड (BHC)	70.00
मेलाथियान	7.00
एल्ड्रिन	21.00
सेविडन	1.50
फॉस्फैमिडोन	0.50

मखाना के पौधों पर कई प्रकार के कीटों का हमला होता है। कोसी प्रमंडल में 70: काश्तकार एफिड्स को नियंत्रित करने के लिए बेंजीन हेक्साक्लोराइड (BHC) लगाते हैं, 21 प्रतिषत काश्तकार एल्ड्रिन का उपयोग करते हैं और मालाथियन को 7 प्रतिषत कृषकों द्वारा लगाया जाता है। मखाना की खेती कुशल और अकुशल युवाओं को स्वरोजगार के अवसर प्रदान करती है। 3 वयस्कों के एक परिवार को रु 24000/हेक्टेयर की वार्षिक आय प्राप्त होती है। इस फसल की खेती करके इस प्रकार प्रत्येक सदस्य को रु 8000/वर्ष और लगभग रु 700/महीने। मखाना की फसल को पूर्ण समय की आवश्यकता नहीं होती है, इसलिए कृषक अन्य व्यवसाय को समवर्ती रूप से चलाकर अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

उत्तर बिहार के तालाबों में मखाना की तुलनात्मक पारिस्थितिकी:

मखाना उत्तर बिहार के लगभग एक दर्जन जिलों में हजारों स्थिर मीठे पानी वाले निकायों में विकसित हुआ। यह क्षेत्र के हजारों मछली पकड़ने वाले परिवारों को आजीविका प्रदान करता है। यह विदेशी मुद्रा का संभावित उपार्जक है। यह अपने पोषण और औषधीय गुणों के लिए जाना जाता है। इसके आहार मूल्यांकन पर हाल के अध्ययनों से यह पता चला है कि प्रोटीन की एक अच्छी मात्र (11.5 प्रतिशत) आवश्यक अमीनो एसिड इंडेक्स और रासायनिक स्कोर के उच्च प्रतिशत के साथ पाया जाता है। (झा 1987, झा एट अल 1991) ये फसल ने इस क्षेत्र में जीव विज्ञानी और पारिस्थिति की विदों का ध्यान आकर्षित किया है (दत्ता 1984, लाला और दत्तमुंशी 1985, दुदानी एट अल 1986)।

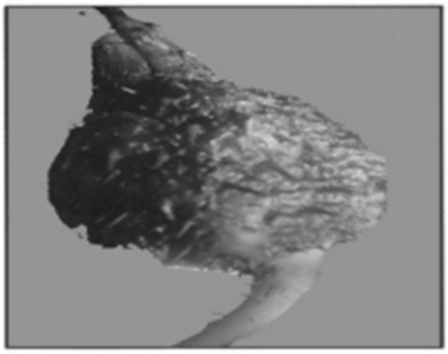

उत्तर बिहार क्षेत्र में बीज बुवाई का सामान्य समय अक्टूबर-नवंबर है। बीज की लगभग (7,000-10,000) की आवश्यकता होती है। 100-125 किग्रा/हेक्टेयर जल क्षेत्र में। बीज नीचे की ओर डूबते हैं और मखाने में अंकुरित होते हैं। अंकुरण दिसंबर - जनवरी तक होता है और प्रारंभिक पत्तियाँ तालाब की सतह पर जनवरी - फरवरी के दौरान दिखाई देती हैं। मार्च - अप्रैल में थिनिंग ऑपरेशन किया जाता है और 2 पौधों के बीच लगभग 1 मीटर का अंतर रखकर उपलब्ध पानी के स्थान पर नमूने प्रत्यारोपित किए जाते हैं। अप्रैल-मई के दौरान में पूरे पानी की सतह विशाल पत्तियों से ढक जाती है। फूल मई के शुरूआत में होते हैं और फल महीने के अंत तक निर्धारित होते हैं। फूलों का अतुल्यकालिक उद्भव तब तक जारी रहता है जब तक कि पौधों को सितंबर - अक्टूबर में उखाड़ नहीं दिया जाता है, इस प्रकार यह उत्तर बिहार में वार्षिक फसल की स्थिति प्रदान करता है। परिपक्व फल अगस्त - सितंबर के आसपास फूटते हैं और बीज पूरे तल पर बिखर जाते हैं। विशाल पत्तियों को काटकर फेंक दिया जाता है या सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है।

मखाना के बिखरे हुए बीज सितंबर - अक्टूबर के दौरान हाथ से एकत्र किए जाते हैं। संग्रह की प्रक्रिया जल क्षेत्र के पूरे तल के एक व्यापक रूप से सम्मिरलित है। फर्श के व्यापक, ढेर बनाने और उनकी पुनर्प्राप्ति के लिए पानी के अंदर कई गोता लगाने की आवश्यकता होती है। यह काम को वास्तव में श्रमसाध्य बनाता है। एक समूह जिसमें 120 प्रशिक्षित व्यक्ति होते हैं, सामान्य रूप से 1 हेक्टेयर तालाब से बीज एकत्र करने में एक सप्ताह से अधिक समय लगता है। संग्रह का काम आम तौर पर अक्टूबर के अंत तक पूरा होता है और अंत में इन्हें आगे की प्रक्रिया के लिए रखा जाता है।

मखाना की खेती उत्तर बिहार में कई तनावों का सामना कर रही है। हालांकि, यह खतरा औद्योगिक कचरे या विषाक्त पदार्थों के कारण नहीं है, क्योंकि उत्तर बिहार के मखाना उत्पादक क्षेत्रों में व्यावहारिक रूप से कोई भारी उद्योग नहीं है। लेकिन निकट भविष्य में स्थिति बदलने की संभावना है। मखाना की खेती के तहत आर्द्रभूमि क्षेत्र में तेजी से सिकुड़न और निर्यात के आंकड़े बढ़ने से इसकी कीमत सभी समय के उच्च स्तर पर पहुंच गई है। मखाना धीरे-धीरे उत्तर बिहार में आम आदमी की पहुंच से बाहर होता जा रहा है।

मछली पालन संस्कृति के साथ मखाना का एकीकरण

बिहार के मैदानों को गंगा नदी द्वारा दो असमान हिस्सों (उत्तर और दक्षिण बिहार) में विभाजित किया गया है जो पश्चिम से पूर्व की ओर मध्य में बहती है। उत्तर बिहार देशान्तर 83029 से 88313 'और अक्षांश 31055 से 27031' पर स्थित है और इसमें 20 जिले शामिल हैं, जिनमें से दरभंगा, मधुबनी और सहरसा एनरेल फेरॉक्स सेलिसब की खेती के लिए प्रसिद्ध हैं। आम बोलचाल में इसे मखाना की खेती के रूप में जाना जाता है।

असंख्य तालाब और उसके विभिन्न आयाम 39997.16 हेक्टेयर के जल प्रसार क्षेत्र के साथ पूरे उत्तर बिहार में बिखरे हुए हैं, पूरे राज्य के कुल जल प्रसार क्षेत्र का लगभग 42 प्रतिशत (तालाबों और टैंकों के रूप में 95116.84 हेक्टेयर) है (अहमद एट. अल. 1990)। ये बिखरे और अलग-थलग जल निकाय उपयोगी जलीय जीवों और नियंत्रित या अर्ध-नियंत्रित परिस्थितियों में उच्च आर्थिक महत्व के पौधों के पालन और संवर्धन के लिए उपयुक्त हैं। इन्हें मछली की संस्कृति के साथ-साथ मखाना (एयूरेल फेरॉक्स) और सिंघारा (ट्रापा नटन्स वर्न बिस्पिनोसा) जैसे बढ़ते पानी के फलों के लिए लाभदायक रूप से प्रबंधित किया जा सकता है, जो उच्च पोषक मूल्य के होते हैं और भारत और विदेशों में लोगों द्वारा पसंद किए जाते हैं।

सुझाव एवं उपाय

उत्तर बिहार में जलजीवों का विस्तार होता है, जिनमें मछली की संस्कृति और मखाना की खेती की काफी संभावनाएं हैं। निम्नलिखित सुझावों का मखाना उत्पादकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर असर पड़ सकता है।

1. मखाना की खेती और उत्पादन को एक उद्योग के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।
2. खेती के लिए ऋण और सब्सिडी की सुविधा का प्रावधान होना चाहिए।
3. एक सुनिश्चित जल आपूर्ति उपलब्ध कराई जानी चाहिए ताकि किसान जल आपूर्ति के लिए मानसून पर अपनी निर्भरता कम कर सकें।

4. वर्तमान प्रणाली ठेकेदारों को आय का एक बड़ा हिस्सा अलग में रखने में सक्षम बनाती है और वास्तव में मखाना की खेती में शामिल लोगों के लिए बहुत कम उपलब्ध है। इसलिए सरकारी एजेंसियों या सहकारी समितियों के माध्यम से विपणन की व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. जल निकायों के शोषण को खत्म करने की आवश्यकता है सरकार और अन्य समाजों को इसकी देखभाल करनी चाहिए।
6. विशाल पैमाने पर पानी के प्रदूषण के कारण मछली पालन बाधित है। यह प्रदूषण लोगों द्वारा जल निकायों का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों जैसे कपड़े धोने या बर्तन धोने या मवेशियों को स्नान कराने आदि के कारण होता है, इन्हें अवश्य ही समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि मछलियाँ प्रदूषित पानी में जीवित नहीं रह सकती हैं और जब वे जीवित रहती हैं तब भी वे लाभकारी नहीं होती हैं मानव उपभोग के लिए क्योंकि जहर उनमें रहता है।
7. मानवजनित गड़बड़ी को पूरी तरह से समाप्त किया जाना चाहिए ताकि मछलियां स्वस्थ पानी में रह सकें।
8. जो लोग मछली पालन में लगे हुए हैं वे पूरी तरह से अप्रशिक्षित व्यक्ति हैं। कोई कह सकता है कि मछली पालन में लगे शत-प्रतिशत लोगों के पास मछली पालन का कोई प्रशिक्षण नहीं है। इसलिए बड़े पैमाने पर प्रशिक्षण अभियान शुरू किया जाना चाहिए।
9. मछली पालन, यह सच है, उन लोगों द्वारा संचालित किया जाता है, जिन्हें लागत लेखांकन के अर्थशास्त्र का कोई ज्ञान नहीं होता है, संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग, न्यूनतम संसाधनों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए, आदि। मछली किसानों को आर्थिक योजनाकारों द्वारा सलाह दी जानी चाहिए।
10. अधिकांश मछली किसान अनपढ़ लोग हैं। यह नितांत आवश्यक है कि उन्हें साक्षर बनाया जाए। साक्षरता का अर्थ का ज्ञान पढ़ना, लिखना, आदी है, इसका मतलब मछली पालकों की समस्याओं, आवश्यकताओं और समस्याओं के समाधान का ज्ञान होना चाहिए। एक व्यक्ति जो मानविकी में स्नातक है, को साक्षर कहा जा सकता है लेकिन उसकी साक्षरता मछली पालन के क्षेत्र में कोई फायदा नहीं है। साक्षरता का मतलब प्राणीशास्त्र का ज्ञान होना चाहिए।
11. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को मछली पालन के पेशे में लाने के लिए विशेष प्रशिक्षण और प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। वर्तमान में मछली पालन के क्षेत्र में (एससी) और (एसटी) की संख्या लगभग नगण्य है। अगर ऐसा किया जाता है तो इसके दोहरे फायदे होंगे। सरकार नीति, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के उत्थान के लिए है और यह मत्स्य पालन के विकास के माध्यम से किया जा सकता है।
12. महिलाओं के साथ भी ऐसा ही है, सरकार महिलाओं को सशक्त बनाना चाहती है और साथ ही साथ सुधार भी करना चाहती हैय उनके रहने की स्थिति। यह मछली पालन में महिलाओं को प्रोत्साहन और सुविधाएं देकर किया जा सकता है। वर्तमान में 5 से 6 प्रतिशत महिलाएँ इस पेशे में हैं।
13. यह देखा गया है कि मत्स्य पालन उन व्यक्तियों द्वारा किया जा रहा है, जिनका मुख्य पेशा मछली पालन नहीं, बल्कि कुछ और है। इसलिए परंपरा और जन्म से मछुआरों के जीवन स्तर में सुधार के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।
14. मछली की खेती आमतौर पर छोटे पैमाने पर या मध्यम स्तर पर सबसे अच्छी तरह से की जाती है। लेकिन इसे बड़े पैमाने पर किया जाना चाहिए। इससे जीवन स्तर में सुधार होगा और बड़ी संख्या में व्यक्तियों की आय बढ़ेगी।
15. मछली पालन ज्यादातर संयुक्त परिवारों के लिए अनुकूल है। इसलिए उन संयुक्त परिवारों को प्रोत्साहन और प्रोत्साहन देने के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए जिन्होंने मछली पालन के व्यवसाय को करने और संचालित करने का विकल्प चुना है।
16. मछली संस्कृति पर जोर दिया जाना चाहिए मछली पकड़ने से ज्यादा। इसलिए तालाबों, झीलों, आदि की उचित देखभाल और देखभाल की जानी चाहिए।
17. मछुआरों की सहकारी समितियों को वहां मजबूत किया जाना चाहिए और मछलियों के उत्पादन के लिए भ्रष्टाचार और गुटबाजी से मुक्त मछुआरों को पर्याप्त रूप से वित्त पोषित किया जाना चाहिए और समय पर मदद की जानी चाहिए।

18. मछलियों के उचित विपणन के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए जो एक खराब होने वाली वस्तु है। प्रशीतन परिवहन वाहनों का बड़े पैमाने पर व्यवस्था किया जाना चाहिए।
19. जलकर प्रबंधन अधिनियम, 2006 को उचित रूप से संशोधित किया जाना चाहिए और जिला मजिस्ट्रेट को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और यह देखने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए कि अधिनियम के प्रावधान पत्र और उत्साह दोनों में लागू होते हैं। वर्तमान में, जिला मजिस्ट्रेट जिन्हें अधिनियम द्वारा जिले में सर्वोच्च प्राधिकरण माना जाता है। प्रावधानों को लागू करने में लापरवाही के लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए।
20. क्षीण मौसम में जब छोटे तालाबों या टैंकों में पानी उपलब्ध नहीं होता है, तो उन टैंकों या तालाबों में पानी की आपूर्ति की व्यवस्था की जानी चाहिए।

प्रतिबन्ध

मखाना की खेती करने वालों को विभिन्न प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। सूखे और पानी की बर्बादी पर्यावरण की बाधाएं हैं। कीट और फंगल रोगों का हमला और जलीय खरपतवारों का संक्रमण जैविक बाधाओं के अंतर्गत आया। बाकी बाधाओं में कृषकों की कमजोर आर्थिक स्थिति और बिचौलिया की घुसपैठ शामिल है। परिवहन और विपणन के दौरान प्रबंधन की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। जैविक बाधाओं का प्रतिशत 55.20 प्रतिशत से अधिक है।

अनुशंसाएँ

उत्तर बिहार में जलजीवों का विस्तार होता है, जिनमें मछली की संस्कृति और मखाना की खेती की काफी संभावनाएं हैं। निम्नलिखित सुझावों से मखाना उत्पादकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर असर पड़ सकता है:

1. मखाना की खेती और उत्पादन को एक उद्योग के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।
2. मखाना की खेती के लिए ऋण और सब्सिडी की सुविधा का प्रावधान होना चाहिए।
3. एक सुनिश्चित जल आपूर्ति उपलब्ध कराई जानी चाहिए ताकि किसान जल आपूर्ति के लिए मानसून पर अपनी निर्भरता कम कर सकें।
4. वर्तमान प्रणाली ठेकेदारों को आय का एक बड़ा हिस्सा अलग रखने में सक्षम बनाती है और वास्तव में मखाना की खेती में शामिल लोगों के लिए बहुत कम उपलब्ध होता है। इसलिए सरकारी एजेंसियों या सहकारी समितियों के माध्यम से विपणन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

संदर्भ सूची

1. वर्मा ए.एम. 1994: मखाना (एयूरेल फेरॉक्स) के साथ एकीकृत मछली पालन। मछली पकड़ने की झंकार 14 (20): 13
2. वर्मा ए। एम। 1995 ए: जलीय बागवानी - उत्तर बिहार के कोसी डिवीजन के मछुआरों के समुदाय का कब्जा। पर्यावरण और पारिस्थितिकी 13 (4): 960-64
3. वर्मा ए.एम. 1995 बी: कोसी डिवीजन, उत्तर बिहार में अंतर्देशीय मछली संस्कृति: समस्याएं और संभावनाएं, मीठे पानी के जीवविज्ञान 7 (3) के जर्नल: 207-16
4. वर्मा ए एम, अहमद एसएच और झा वी 1996: उत्तर बिहार के अपमानजनक आर्द्रभूमि में मखाना (यूरेले फेरॉक्स सेलिसब) के साथ वायु-साँस लेने वाले मांसाहारी मछलियों की एकीकृत संस्कृति, इंडिया जर्नल ऑफ फ्रेश वाटर बायोलॉजी 8: 117-20
5. अहमद एस एन, फजल ए ए और सिंह ए के 1990। बिहार में मत्स्य पालन की संभावना और संभावना। मछली पकड़ने की झंकार 9 (11): 46 - 49

6. देहाद्रि पी वी 1972. दलदल की संस्कृति के लिए वायु-श्वास मछलियों पर अखिल भारतीय समन्वित

7. अनुसंधान परियोजना पर वार्षिक रिपोर्ट। पटना में 20-21 दिसंबर, 1972 को द्वितीय कार्यशाला में प्रस्तुत किया गया। केंद्रीय अंतर्देशीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर।

8. देहाद्रि पी वी 1994. उत्तर बिहार का दलदल। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इकोलॉजी, नई दिल्ली के बुलेटिन, 7: 17-21

9. झा वी, करगुप्ता ए एन, दत्ता आर एन, झा यू एन, मिश्रा के के और सरस्वती के सी। 1991. मिथिला (उत्तर बिहार) में यूरीयुल फेरॉक्स सेलिसबरी का उपयोग और संरक्षणय भारत। जलीय वनस्पति 39: 295 -314

10. लाल, ए.के. 1981: मछलियों और अन्य वस्तुओं के उत्पादन के संबंध में उत्तरी बिहार में दलदलों की पारिस्थितिकी और उत्पादकता पर अध्ययन। पीएच.डी. थीसिस, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, भारत।

11. वर्मा ए.एम. 1994: मखाना (एयूरेल फेरॉक्स) के साथ एकीकृत मछली पालन। मछली पकड़ने की झंकार 14 (20: 13)

12. वर्मा ए एम, अहमद एसएच और झा वी 1996: उत्तर बिहार के अपमानजनक वेटलैंड, फ्रेशवाटर बायोलॉजी के इंडिया जर्नल में मखाना (यूरेले फेरॉक्स सेलिसब) के साथ वायु-श्वास मांसाहारी मछलियों की एकीकृत संस्कृति। 8: 117-20

13. बनदी एस.आर. 1972. यूरेल फेरॉक्स सालिसब का संक्रमण। बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी के लार्वा द्वारा। 69 (1) जर्नल ऑफ बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी। 69 (1): 79-90

14. देहाद्रि पीवी 1972। बिहार, असम और कर्नाटक-द्वितीय कार्यशाला में दलदल की पारिस्थितिकी पर काम की प्रगति, एयर ब्रीथिंग फिश, पटना की संस्कृति पर एआईसीआरपी।

15. ठाकुर, एन.के. (1978): मखाना संस्कृति। भारतीय खेती 27 (10): 27-29

डॉ० राधाकृष्ण सहाय का नाट्य चिंतन और समाज

डॉ० चंदन कुमार

एम0 ए0 (हिन्दी), बी0 एड0, पी-एच.डी. (हिन्दी), उच्च माध्यमिक शिक्षक, मोदनारायण इंटरस्तरीय विद्यालय, अम्बा, शाहकुण्ड, भागलपुर, बिहार

हिन्दी-साहित्य की लुप्तप्राय विधा (नाटक) को पुनः रंगमंच पर लाने के लिए 'समकालीन हिन्दी नाटक-साहित्य और राधाकृश्ण सहाय का नाट्यकर्म' एक मील का पत्थर साबित होगा। इससे हिन्दी नाटक के क्षेत्र में एक नया अध्याय जुड़ेगा। आश्चर्य की बात तो यह है कि एक छात्र के अनुरोध मात्र से हिन्दी नाटक को इतना समृद्ध कोई कैसे कर सकता है? भागलपुर विश्वविद्यालय में अध्यापन करते हुए सहायजी ने जहाँ भागलपुर की कला-संस्कृति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है (वहीं बचे समय का उपयोग नाटक-कथा, निबंध, पत्रकारिता, कविता तथा भाशा-विज्ञान को समृद्ध बनाने में किया है। समकालीन हिन्दी नाटक की स्थिति बहुत उत्साहजनक नहीं है, किन्तु सहायजी के नाट्यकर्म के द्वारा बहिष्कृत विधा (नाटक) को पुनः घर वापस लाने का भगीरथी प्रयास किया गया है। भगीरथी प्रयास हेतु सहायजी ने एक-से-एक उच्च स्तरीय नाटक की रचना कर न सिर्फ हिन्दी रंगमंच के खालीपन को भरा है, बल्कि कथा-शिल्प, भाशा और भावों की दृष्टि से मील का पत्थर स्थापित किया है। समकालीन हिन्दी नाटक में नाटककारों की तीन पीढ़ियाँ सक्रिय रही हैं। एक पीढ़ी उन नाटककारों की है, जिन्होंने स्वाधीनता के पूर्व नाटक लिखने प्ररम्भ किये थे। इस पीढ़ी के नाटककारों में से कुछ ही नाटकों का इस कालावधि में प्रकाशन हुआ है। जैसे- गोविन्द वल्लभ पंत का 'काशी का जुलाहा', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'अम्बपाली' आदि। स्पष्ट है कि इस कालावधि में इस पीढ़ी की सक्रियता का कोई विशेश अर्थ नहीं है और न ही यह पीढ़ी बहुत सक्रिय है।

दूसरी सक्रिय पीढ़ी उन नाटककारों की है, जिन्होंने स्वाधीनता के बाद रचना प्रारम्भ की। इस पीढ़ी के नाटककारों में से जगदीशचन्द्र माथुर तथा विश्णु प्रभाकर उक्त कालावधि में बहुत सक्रिय रहे हैं। उनके नाटक एक स्तर पर नारी अस्मिता स्वतंत्रता और उसके ऊपर लगे विभिन्न सामाजिक व नैतिक मूल्यों के द्वंद्व चित्रित करते हैं तो दूसरी ओर अधिक सूक्ष्म स्तर पर ये दार्शनिक आयामों से जुड़ जाते हैं। उनकी मूल दृष्टि मानवतावादी है, जिसके कारण उन्होंने समकालीन जीवन में व्याप्त विभिन्न विभीशिकाओं का मार्मिक और सजीव चित्रण किया है। इस कालावधि के नाटकों में वस्तु और शिल्प दोनों के स्तर पर इतनी विविधता है कि उनके नाटकों की केन्द्रीय विशेषता के रूप में प्रयोगशीलता को ही रेखांकित किया जा सकता है। मध्यवर्गीय जीवन-मूल्य-द्वंद्व, स्त्री-पुरुष संबंधों की समस्याएँ आज के जीवन के आर्थिक व राजनीतिक प्रश्न और जीवन तथा जगत से संबद्ध दार्शनिक प्रश्न आदि को प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने अपने नाटकों के कथानक इतिहास पुराण एवं समकालीन जीवन से उठाये हैं और उन्हें अपने नाटकों में मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

इस पीढ़ी के बाद नाटककारों की तीसरी पीढ़ी सामने आती है, जिसने सातवें दशक के अंतिम वर्शों में और आठवें दशक में नाटक लिखना प्रारम्भ किया। 1974 में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' नाटक आया। नौटंकी शिल्प को अपनानेवाला भ्रष्टाचार पर चोट करने वाला यह नाटक बार-बार मंचित हुआ। इसके परवर्ती नाटकों में सक्सेनाजी राजनेताओं पुलिस-न्यायाधीश आदि की पोल खोली है। शायद इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए राधाकृष्ण सहायजी ने अपने नाटक 'खेल जारी खेल जारी' में लोकनाट्य शैली को अपनाया है। इस पीढ़ी के और इस कालावधि में भी खूब सक्रिय रहने वाले नाटककार सुरेन्द्र वर्मा हैं। जैसे- साहित्य की अन्य

विधाओं में वैसे ही नाटक के क्षेत्र में भी एक विशेष बात सामने आयी है। यह विशेष बात है कि नाट्यलेखन में लेखिकाओं का प्रवृत्त होना। यह हमारे समाज में चुपचाप होनेवाला मौलिक परिवर्तन है। मन्नु भण्डारी के साथ मृदुला गर्ग ने भी कथा-साहित्य के साथ-साथ नाट्यलेखन में भी अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है।

नाटककार और रंगमंच का पारस्परिक सम्बन्ध न बन पाने का दुष्परिणाम केवल हिन्दी नाटकों को ही नहीं भुगतना पड़ा, बल्कि नाटकों के मंचन के प्रति समर्पित अनेक नाट्य संस्थाओं को भी भुगतना पड़ा। वे या तो काल कवलित हो गयी या उन्हें विदेशी तथा अन्य भारतीय भाशाओं के नाटकों के हिन्दी रूपान्तरों या कथाकृतियों के नाट्य रूपान्तरों का सहारा लेना पड़ा। फिर भी हिन्दी में नाट्य रचना बन्द नहीं हुई। हिन्दी में समकालीन नाटक बराबर लिखे जाते रहे हैं। समकालीन हिन्दी नाटककार न नाटङवस्तु की विविधता और सार्थकता के प्रति उदासीन हैं और न ही शिल्पगत विविधता और प्रयोगशीलता के प्रति। हाँ, रंगकर्मी उसके प्रति उदासीन अवश्य हैं। आवश्यकता इस बात की है कि नाटककार और रंगकर्मी परस्पर मिलकर इस उत्साह और उमंग की पुनः सृष्टि करे। राधाकृष्ण सहायजी के नाट्यकर्म द्वारा हिन्दी में एक बार फिर से क्लैसिक्स की रचना संभव हो सका है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नाटककार निर्देशक और नाट्यकर्मी के बीच जो खाई पैदा हुआ था सहायजी के नाट्यकर्म ने उस खाई पर सेतु बना दिया, जिसके फलस्वरूप नाटककार और नाट्यकर्मी के बीच का अहं समाप्त होगा।

समकालीन नाटककारों ने अपने नाटक के कथानक का चयन वर्तमान जीवन के साथ-साथ इतिहास, पुराण स्वदेशी, विदेशी मिथकों आदि से किया है, लेकिन किसी भी नाटककार ने अतीतजीविता का परिचय नहीं दिया है। कथानक चाहे अतीत से चुना हो या वर्तमान से जोड़ा हमेशा उसे वर्तमान से है। वर्तमान की समस्याओं और सरोकारों से है। स्वाधीनता से पहले श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियाँ वही बनी थीं, जो सत्ता से टकराती थी, वर्तमान का छिद्रान्वेशण करती थी और वर्तमान को बदलना चाहती थी। स्वाधीनता के बाद भी स्थिति यही रही है, इसलिए इस कालावधि में लिखित तमाम नाटक वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था की तीखी आलोचना करते है। साथ ही, वे प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार उसकी संवेदनहीनता आम आदमी की अपेक्षा यातना आदि के बराबर रेखांकित करते हैं। कहा जा सकता है कि इस कालावधि के नाटकों की एक केन्द्रीय वस्तु राजनीति और प्रशासन की आलोचना है। इस कालावधि के नाटकों की दूसरी केन्द्रीय वस्तु स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध है। परम्परागत स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों को अब शायद ही कोई नाटककार स्वीकार करता है। परम्परागत नैतिक मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए स्त्री की स्वाधीनता और स्वायत्तता की पक्षधरता बराबर सामने आ रही है और स्त्री पर किये जाने वाले अत्याचारों का विरोध किया जा रहा है। जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं है, जो समकालीन नाटक की विषय वस्तु न बना हो और नाटककार की दृष्टि प्रगतिशील न हो, इसलिए समकालीन नाटक में व्यंग्यात्मकता भी खूब मुखर है।

जहाँ तक नाट्यशिल्प का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि शिल्प के मामले में समकालीन हिन्दी-नाटक की मुख्य प्रवृत्ति प्रयोगधर्मिता है। इस कालावधि में ऐसे अनेक नाटक लिखे गये हैं, जिनमें यथार्थवादी नाटक के पारंपरिक नाट्यशिल्प को अपनाया गया है। लेकिन अधिकता उन नाटकों की है जिनमें शिल्प को लेकर तरह-तरह के प्रयोग किये गये हैं। कहीं लोकमंचीय शैलियों को अपनाया गया है। कहीं फंटासी को अपनाया गया है, कहीं प्रतीकात्मकता की प्रधानता है, कहीं विसंगत नाट्यशैली का उपयोग किया गया है और कहीं एकाधिक शैलियों का मिश्रण कर एक नयी शैली निर्मित की गयी है।

हर जनता का साहित्य उनके जीवन का दस्तावेज है, इसलिए वह उनके बाह्याभ्यंतर अनुभवों की निचोड़ ही प्रस्तुत करता है। भिन्न परिवेशों के संपर्क में आने वाले और परिस्थितियों से गुजरने वाले जीवन की गति नाना प्रकार के उत्थान-पतनों और गव्यन्तरों से प्रभावित है। बहुस्वरता, अनुभवमूलक, प्रतिलोपता एवं गतिरोधक तत्वों से साक्षात् होने वाले जीवन हमेशा मृदुतान से संयोजी वीणा नहीं है। प्रायः मानव जीवन संकीर्ण व्यवहार जगत में जकड़कर इतना अकुला जाता है कि वह कभी-कभी कराह उठता है, आक्रोश कर उठता है, ललकारने लगता है। अभिशाप देता है और व्यंग्य वाण छोड़ने लगता है। यह तो सामान्य तथ्य है--No One is agreeable to everybody. तब तो स्पष्ट है जीवन में कहीं-कहीं मतभेद के क्षण अनिवार्य हैं। जहाँ मतभेद है, वहाँ विरोध निश्चित है।

समकालीन हिन्दी नाटकों और विविध कारणों से विद्रोह का यह स्वर वस्तुगत और शैलीगत दोनों स्तरों पर काफी मात्र में मुखर हो उठा है। रचनात्मक स्तर पर पूर्ववर्ती नाटककारों के रचनासंकेतों, अंक-विभाजन, दृश्य विधान एवं पात्रविधान संबंधी प्रचलित धारणाओं को नकारते हुए इन नाटकों में नये संकेतों और विधानों को अपनाया गया। सामाजिक प्राणी होने के नाते परिस्थितियों के

प्रति उत्पन्न और सामाजिक अनुभवों से उद्रिक्त क्षोभ जब प्रतिक्रियाशील हो उठता है तब कृतिकार के सामाजिक हित चिन्तन के रूप में जागृत होने वाली विद्रोह भावना उसके संवेदन स्तर से जुड़कर कलात्मक रूप ले लेती है। कहने का तात्पर्य है कि विद्रोह चाहे वह किसी भी रूप का भले ही क्यों न हो, नाटक का अन्त: तत्व बना रहता है। मानवीय अन्त: संघर्षो से प्राणयुक्त नाटक मानव जीवन के विभिन्न वैशम्यपूर्ण अवस्थाओं से जुड़कर ही प्राणान्वित होता है। समकालीन नाटकों में समसामयिक जीवन के विविध पक्षों से संबद्ध होकर विविध रूपों में साक्षात्कृत विद्रोही चेतना का यह अनुशीलन पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक, शैक्षणिक, नारी-पुरुष संबंध, यौन-संबंध, दलित चेतना, व्यवस्था विरोधी तत्वों जैसे विविध आयामों में रखा गया है।

मानव की हृदयगत अभिव्यक्ति के सशक्त और प्रभावपूर्ण साहित्यांगों में नाटक मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है। अन्य साहित्यांगों कविता, कहानी, उपन्यास की अपेक्षा नाटक सर्वाधिक प्रभावोत्पादक है, क्योंकि अन्य विधाओं में उल्लेखित दृश्य कंठ तथा कानों तक सीमित रहते हैं जबकि नाटक में दृश्य आँखों से अभिन्न संबंध स्थापित कर लेते हैं। अप्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष में, प्रभावोत्पादक की शक्ति का आधिक्य स्वाभाविक ही है। नाटक को सर्वकला समन्वित साहित्य-विधा माना गया है। कला की दृष्टि से तो कला का कदाचित ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जो नाटक में समाहित न हो पाता हो।

नाट्य कलातत्व के अंतर्गत स्थापत्य, संगीत, चित्र, काव्य, वेश-भूशा, सज्जा इत्यादि सभी कलाओं का समावेश होता है। इस संबंध में भरत मुनि का यह कथन सर्वथा युक्तियुक्त है--

न संयोगो न तत्कर्म नाट्य* स्मिनयन्न दृश्यते।

सर्व शास्त्रणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च।।

अर्थात् ऐसा कोई योग, कर्म, शास्त्र या शिल्प नहीं है, जो नाटक में दिखाई न देता हो। वास्तव में मंचीय प्रस्तुति के कारण नाटक, जीवंत जीवन और जगत् की प्रस्तुति करता है। दृश्य काव्य होने के कारण इसमें जो ओजस्विता, सजीवता, प्रत्यक्षानुभवता एवं मनोहारिता है, वह साहित्य के अन्य किसी भी अंग मे यथेष्ट रूप से नहीं पाई जाती है।

नाटक की महत्ता का मूल कारण उसकी सांद्रता या आपेक्षिक घनता है, क्योंकि इसमें एक साथ संगीत, नृत्य और संलाप के साथ आकर्शक-दृश्य तथा चित्रात्मकता के होने के कारण यह हमारी अधिकांश ज्ञानेंद्रियों को आकृष्ट करने की दक्षता रखता है। अन्य किसी साहित्यिक विधा में इस प्रकार श्रोत-ईक्षण-संबंधी दक्षता नहीं है। अतएव कई इंद्रियों को एक साथ छू सकने की तीव्रता तथा कई कलाओं को अपने में समन्वित करने की क्षमता के कारण नाटक का प्रभाव अधिक मर्मस्पर्शी और व्यापक होता है।

नाटक, लोकवृत्त का अनुकरण माना जाता है। लोकवृत्त, सामाजिक आचरण का ही नाम है (क्योंकि नाटक में सामाजिक आचरण की सहज अभिव्यक्ति पाई जाती है इसलिए नाटक और समाज का अभिन्न संबंध माना जाता है। नाटक और समाज के गहरे संबंध को ध्यान में रखकर ही नाटक देखने वाले दर्शकों को सामाजिक की पारिभाशिक संज्ञा दी गई है। इस संबंध में बाबू गुलाब राय का यह कथन अत्यधिक सार्थक प्रतीत होता है, ''नाटक सामाजिकों की अभिवृत्तियों, कार्य व्यवहारों को अभिनय के माध्यम से रंगमंच पर उपस्थित करता है, जिसे देखकर सामाजिकों का मन: प्रसादन होता है। नाटक में सभी वर्गों, जातियों की अवस्था, गुण रुचि के अनुसार सामग्री उपलब्ध रहती है। नाटक की कथावस्तु में जिस धर्म, क्रीड़ा, श्रम, हास्य, युद्ध एवं काम आदि भावों की अभिव्यंजना रहती है, वास्तव में वे भाव ही हमारे जीवनगत एवं सामाजिक मूल्य हैं। मंच पर उन्हें प्रतिफलित होते देखकर हमें एक प्रकार का आनंद मिलता है। हमारे सामाजिक भाव की तृप्ति होती है। 'महाकवि कालिदास ने इसलिए नाटक को भिन्न रुचि सम्पन्न सामाजिकों की तुष्टि का एकमात्र साधन माना है। इस संबंध में उन्होंने लिखा है, 'नाट्य भिन्नरूपेजन्स्य हुघा प्येक समाराधनम्'। वस्तुत: नाटक में सामाजिक जीवन की सफलतम अभिव्यक्ति होती है।

नाट्यशास्त्र में नाटक की रचनात्मक समृद्धि को ध्यान में रखकर आचार्य भरत मुनि ने लिखा है, 'योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख-दु:ख-समन्वित:। सोऽड.गधभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीते।।' अर्थात् जिसमें स्वभावत: ही लोक का सुख-दु:ख समन्वित होता है और जिसका अंगों आदि के द्वारा अभिनय किया जाता है। नाटक का उद्देश्य अत्यंत महत्त्वशाली है। आचार्य भरत ने इसे 'सार्ववर्णिक' वेद कहा है (क्योंकि अन्य वेद केवल द्विजमात्र के लिए उपयोगी तथा उपादेय होते हैं, परन्तु नाटक का उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिए है। प्रत्येक व्यक्ति इस आनंद का अधिकारी होता है।

नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि चारों वेदों- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की रचना केवल उच्च वर्ण के लिए हुई थी। शूद्रों के लिए वेद का अध्ययन वर्जित था इसलिए ब्रह्मा ने चारों वेदों से नाट्यतत्व

संवाद, अभिनय कला, संगीत, रस, नृत्य आदि एकत्र करके पाँचवें वेद के रूप में नाटक का निर्माण किया। चारों वर्ण समान रूप से जिसका रसास्वादन कर सके। अत: नाटक एक ऐसी साहित्यिक विधा बनी, जिसका दर्शक या प्रेक्षण पूरा समाज बना। संभवत: इसीलिए प्रेक्षकों को सामाजिक की संज्ञा से अभिहित किया गया। नाटक को देखकर एक अनपढ़ सामाजिक भी अपने भावों की तुष्टि कर लेता है। नाटक का महत्त्व सभी लोगों के लिए समान है। यही कारण है इसे समाज के बहुत निकट माना जाता है।

नाटक हमारे यथार्थ जीवन से अधिक निकट है। अत: सामाजिक मूल्यों की परख साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक द्वारा अधिक सही एवं व्यापक धरातल पर की जा सकती है। साहित्य की अन्य विधाओं में अभिव्यक्ति की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। उपन्यास में लेखक को रचनातंत्र गढ़ने में पर्याप्त अवास्तविकता का सहारा लेना पड़ता है। उपन्यास का पात्र, स्वाभाविक या यथार्थ के प्रति बाध्य ही हों यह आवश्यक नहीं, परन्तु नाटक में स्वाभाविकता और यथार्थ के प्रति अधिक आग्रह रहता है। इसलिए नाटक के माध्यम से जीवन मूल्यों की स्वाभाविक प्रक्रिया का ज्ञान संभव है। कविता, निबंध आदि में भी कल्पना के अतिरेक तथा विषय एवं अभिव्यक्ति की व्यापकता के लिए कम अवसर होने के कारण मूल्योद्घाटन का मौका कम रहता है (जबकि नाटक मूल्याभिव्यक्ति की जीवंत एवं अपेक्षाकृत व्यापक प्रक्रिया उपस्थित करता है।

नाटक अनुभूति और संप्रेषण, दोनों धरातल पर समाजोन्मुखी है। नाटक का आस्वाद दर्शक एक साथ बैठकर प्राप्त करते हैं, इसलिए नाटककार की वैयक्तिक अनुभूति भी नाटक में सामूहिक अनुभूति बनकर व्यक्त होती है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक में मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति अधिक सजीवता से उभरकर सामने आती है। नाटककार का अव्वल दायित्व भी यही है कि वह जीवन के विभिन्न यथार्थ अधिकाधिक प्रस्तुत करे। यही चेतना और भावना उसे समाज के निकट संपर्क में लाती है। फलस्वरूप उसमें समाज-व्यवस्था और समाज प्रतिरूपों की जाँच के द्वारा उद्घाटित होने का अधिक अवसर प्राप्त होता है। इस मार्ग का अनुसरण करने के कारण आज की अधिकांश नाट्य रचनाएँ नयापन लिए हुए हैं। उनमें सामान्य मानव जीवन के बदलते संदर्भों और उसकी असंगतियों को अधिक निकट से देखने-परखने की क्षमता है। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का भी हिन्दी नाट्य-साहित्य पर प्रभाव पड़ा है।

समसामायिक सामाजिक जीवन के प्रति चिंता का भाव आधुनिक हिन्दी नाटक की अपनी मौलिक पहचान है। आरम्भ से ही यह यथार्थ-बोध हिन्दी नाटकों में अंतर्निहित रहा है। भारतेन्दु के पूर्ववर्ती नाटककारों ने ऐतिहासिक पौराणिक वस्तु को ही नाटकों का आधार बनाया, किन्तु भारतेन्दु युग के पुनर्जागरण काल में राष्ट्रीयता एवं सामाजिकता के तत्व एक-दूसरे के साथ परस्पर मिले-जुले रूप में व्यक्त हुए जो समाज सुधार की नई चिंता को व्यंजित करते हैं, उनके नाटक इस सामाजिक प्रक्रिया के ही दस्तावेज हैं।

आज युग गति बहुत तीव्र है। इस बदलते युग में जहाँ हमारे रीति-रिवाजों, मान्यताएँ, मूल्य परिवर्तित हो रहे हैं (वहां नाटक की रचना प्रक्रिया में भी परिवर्तन हो रहे हैं। आज का नाटक समकालीन सामाजिक बोध से विमुख नहीं है। वह अपने उत्तरदायित्व का सफल निर्वाह कर रहा है। आज का नाटक अपनी पुरानी शैली बदलकर नए मुहावरे में दर्शकों के सामने आ रहा है। इसमें हमारे दैनंदिन जीवन की आवश्यकताओं, मूल्यों, आस्थाओं का चित्रण सफलता से हो रहा है।

आधुनिक युग की जटिल, अर्द्ध-अनुभूत और अनुभूत संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए नाटक जैसा उपयुक्त अन्य साहित्य रूप नहीं है। नए युगबोध के साथ-साथ व्यक्ति ने अपने ऊपर चढ़ी हुई धर्मान्धता को ही नहीं, सामाजिक और नैतिक परतों को भी खुरचकर हटाने का प्रयास किया है। इस प्रकार उसने अपने अस्तित्व को एक स्वतन्त्र गरिमा प्रदान करने का मार्ग अपनाया है। वैसे तो सैद्धान्तिक रूप से मानव सार्वभौमिक सत्ता के रूप में स्थापित हो गया है, लेकिन युद्ध, वर्ग-संघर्ष, सामाजिक परिवर्तनजनित कुछ इस प्रकार की परिस्थितियों ने भी जन्म ले लिया है, जिससे मनुष्य के चारों ओर निकटता छा गई है। यह ऐसा परिवेश है, जो अपने साथ सामाजिक विशमताओं एवं मानवीय संवेदनाओं का एक पूरा संसार लिए रहता है। इस परिवेश से जुड़ना और जुड़कर लिखना स्वयं अपनी सजीवता के लिए आवश्यक है। आधुनिक नाटककार समकालीन परिवेश में रहकर ही अनुभव करता है और इस अनुभव को परिवेश के सन्दर्भ से ही अभिव्यक्ति भी करता है।

वर्तमान भारतीय समाज की परम्परागत आधार और पारिवारिक सम्बन्ध औद्योगिक और तकनीकी विकास के साथ परिवर्तित हुए हैं। युवा पीढ़ी स्वभावत: पहले की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र होना चाहती है। उसके समक्ष परिवर्तनशील समाज और पुराने नए मूल्यों के मध्य अपने अस्तित्व का प्रश्न मुख्य बन गया है। दो पीढ़ियों के मध्य का यह संघर्ष आधुनिक नाटक में अभिव्यक्त किया गया

है। वस्तुत: नाटक जीवन के गतिशील कार्य-व्यापार की प्रतिमूर्त्ति है। समाज से अलग, समूह से बाहर नाटक की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। सामाजिक-व्यवस्था को बनाए रखने में जन-आकांक्षाओं की पूर्त्ति, निराशाओं एवं जीवन में आने वाले तनावों से मुक्ति प्रदान करने तथा सामाजिक पुनर्निर्माण में नाटक की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

नाटककार नाटक के प्रदर्शन द्वारा सामाजिक संघर्श, वर्ग-भेद, युद्ध शोषण, अत्याचार, गरीबी और भ्रष्टाचार को रंगमंच पर उपस्थित करता है जिसका सीधा प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है, इसलिए समाज व्यवस्था के नियमन, परिवर्तन एवं निर्माण में नाटक का विशेष योगदान हो सकता है। इस सम्बन्ध में नाटककार और नाट्य समीक्षक डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है, ''नाटक का प्रभाव अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा अधिक गहरा होता है। नाटक अपने युग के यथार्थ से साक्षात्कार करवाता है। नाटक ही समग्र जीवन के प्रमुख अंशों की ओर एक काल-विशेष की सार्थक अभिव्यक्ति है। ''अत: नाटक में जीवन और समाज के यथार्थ की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्त प्रदान करने की सम्भावनाएँ रहती हैं।

डॉ. सहाय ने आधुनिक युग में बदलते सम्बन्धों को दर्शाया है। आज के भारतीय समाज में मानव सम्बन्ध संकट में है। आधुनिक जीवन स्थितियों की सबसे बड़ी विद्रपुता यह है कि आज दाम्पत्य जीवन के पुराने मूल्यों का विघटन हो रहा है। अस्मिता और अहंभाव की प्रवृत्ति उभर रही है। पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों में एक दरार, टूटन और अलगाव-सा है। समकालीन युग के सारे सम्बन्ध किसी एक बिन्दु पर पहुँचकर झूठे पड़ गए हैं। नए सन्दर्भो में रिश्ते का अर्थ सिर्फ एक छत के नीचे रहने से अधिक कुछ नहीं है। रहते हुए भी न रहने का बोध जीवन में अनापेक्षित ठहराव उत्पन्न कर देता है। परिचित होते हुए भी अपरिचय की गंध जीवन को अधिक यातनादायक बना देती है। अपनों के बीच बेगाना होने की यंत्रणा और अकेलेपन की यातना ने समकालीन मानव को तोड़ डाला है। अपरिचय का बोध जीवन में गहरा कर एक बिन्दु पर अपने आप से भी बेगाना बनादेता है। दाम्पत्यगत दूरियों, अपूर्णता, रिक्तताबोध और एकाकीपन के दंश ने अनेक वैवाहिक सम्बन्धों को खोखला और मात्र जीवन जीने की मजबूरी का रूप दे दिया। डॉ. सहाय कृत 'अत: किम' नाटक में इसी अलगाव की समस्या को उजागर किया गया है।

आधुनिक भावबोध आधुनिकता की प्रक्रिया की किसी युग विशेष और देश-विदेश की समकालीनता की सापेक्षता में हुई परिणति मात्र है। यही कारण है कि आधुनिकता में एक अविराम गतिशीलता है, एक प्रक्रियात्मक निरंतरता है जबकि आधुनिकतावादी भावबोध में यह सब नहीं है, क्योंकि आधुनिकतावादी भावबोध में एक सापेक्ष प्रकृति का ठहराव है। इस सम्बन्ध में अमृतराय ने लिखा है- 'सब व्यर्थताओं और विभीशिकाओं के बीच होकर उनका बोझ मन पर ढोते हुए पुरानी आस्थाओं को खोकर और नई किसी आस्था के अभाव में जो एक भावबोध बनता है, और निराशा और अविश्वास जिसका आवश्यक तत्त्व है।

आधुनिक भावबोध अर्थ-सम्बन्ध से उपजी नवीन दृष्टि है, जिसका उद्देश्य अपने और समाज के बीच के सम्बन्ध सूत्रों को समझना और उन्हें विश्लेशित करना है। वर्तमान अर्थव्यवस्था और अर्थ-केंद्रित सामाजिक गठन में संघर्ष और उससे उत्पन्न ग्लानिविक्षोभ, असंतोश, ईर्ष्या और विशाद का होना अवश्यंभावी है। यही इस व्यवस्था की नियति है। आधुनिक भावबोध पर प्रकाश डालते हुए गजानन माधव मुक्तिबोध ने लिखा है, 'ऐसी सभ्यता में जो आधुनिक भावबोध है वह है अनाशा और दु:ख भावना का, ग्लानि और विरक्ति का, अगति का। समसामयिक जीवन की इन्हीं विवशताओं, विशमताओं और जटिलताओं के प्रति विकसित बौद्धिक दृष्टि ही आधुनिक संवेदना और आधुनिक भावबोध की आधार भूमि है।

समकालीन जीवन के सन्दर्भो में ही डॉ. सहाय ने अपने नाटकों में पौराणिक कथाओं को ग्रहण नहीं किया है। उनकी हर नाट्य रचना चाहे वह सामाजिक यथार्थ से सम्बन्धित हो या उसमें अतीत का सहारा लिया गया हो अपनी-अपनी दृष्यगत जीवंतता के कारण वह आधुनिक-भावबोध को उद्घाटित करने वाली है। वे मिथक को आधुनिकता की अभिव्यक्ति के लिए बहुत सार्थक मानते हैं और अपनी कई नाट्य कृतियों में उन्होंने आधुनिकतावादी भाव बोध को उद्घाटित करने हेतु मिथक का सुन्दर प्रयोग भी किया है। इस सम्बन्ध में उनका मत है, 'विशेषकर नाटक में जब कोई मिथक आ जाता है तो मिथक की शक्ति इतनी बढ़ती है कि उससे सहज ही इतिहास, वर्तमान तथा भविष्य जैसे प्रकाशित हो उठता है, क्योंकि मिथक प्रतिबिम्ब बनकर त्रिआयामीय हो उठता है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष दृष्यगत जीवन में से अपना रूप पाता है। स्पष्ट है कि वर्तमान के रूपायन व आधुनिक भाव बोध के लिए केवल यथार्थवादी नाट्य शैली या सामाजिक कथानक आवश्यक नहीं, बल्कि पौराणिक कथानकों से इस उद्देश्य की प्राप्ति सफलतापूर्वक हो सकती है।

डॉ. सहाय के नाटकों का विषय बहुत गहन व विस्तृत है। उनके नाटकों में आधुनिकतावादी भावबोध को उद्घाटित किया गया है। उन्होंने अपने नाटकों में नवीन युग-चेतना, पश्चातय संस्कृति का प्रभाव पुराने मूल्यों के विघटन एवं नए मूल्यों की अस्पष्टता,

देश विभाजन के पश्चात् आनेवाली महँगाई, घूसखोरी, कालाबाजारी, परम्परा व आधुनिकता के संघर्ष से उत्पन्न निरर्थकता बोध आदि समस्याओं को उजागर किया है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से व्यक्ति मानव की गुत्थियों एवं ग्रन्थियों को विश्लेषित किया है। डॉ. सहाय ने व्यक्ति की परिस्थितिजन्य पीड़ा, कुण्ठा, निराशा, संत्रस, अजनबियत आदि संवेदनाओं को भी नाटकों में चित्रित किया है। ये सारे सूत्र आधुनिकतावादी भाव बोध के विशिष्ट पहलू हैं, जिन पर अलग-अलग विचार करके हम डॉ. सहाय की आधुनिकतावादी दृष्टि को समझने में सहुलियत की अनुभूति होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सम्पादक डॉ. बैजनाथ सिंहल (हिन्दी विधाएँ स्वरूपात्मक अध्ययन, पृ0 65 से उद्धष्त.
2. सम्पादक बाबू गुलाब राय (हिन्दी नाट्य-विमर्श, पृ0 1-2.
3. कालिदास (मालविकाग्निमिता नाटक, (सम्पादक डॉ. करूणा शर्मा, पृ0 34) प्रकाशकवाणी प्रकाशन, पृ. 1-2.
4. सम्पादक डॉ. बैजनाथ सिंहल (हिन्दी विधाएँ स्वरूपात्मक अध्ययन, पृ0 70 से उद्धष्त.
5. राम की लड़ाई (भूमिका), सम्पादक करुणा शर्मा, लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्य साहित्य सामाजिक दृष्टि, वाणी प्रकाशन, पृ0 2-3.
6. अमृत राय (आधुनिक भावबोध की संज्ञा, (वाणी प्रकाशन, सम्पादक डॉ. करुणा शर्मा, पृ0 131) पृ0 9.
7. गजानन माधव (मुक्तिबोध : नई कविता का आत्मसंघर्श तथा अन्य निबन्ध, पृ0 183 (लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्य साहित्य सामाजिक दृष्टि, प्रकाशकवाणी प्रकाशन, सम्पादक डॉ. करुणा शर्मा, पृ0 131).
8. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल (कलंकी, पृ0 7-8, प्रकाशक लोक भारती प्रकाशन (सम्पादक डॉ. राधाकृष्ण सहाय, खेल जारी खेल जारी, भूमिका, पृ0 15)

कविता विधामे वैधनाथ मिश्र' यात्रीक योगदान

प्रीति कुमारी

अतिथि व्याख्याता, मैथिली विभाग, ललित नारायण स्मारक महाविद्यालय, वीरपुर (सुपौल) बिहार

श्रम शक्तिक पुजारी, व्यवस्थाक विरोधी, नवीन पीढ़ी क आवेशी सतत् भ्रमणशील, समाज आ व्यवस्थाक रग-रग कँ चिन्हैवला कवि वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' निर्धन, निर्बल, निरीह, निरालम्ब आ निराश्रित जन समुदायक प्रति प्राण-पण सँ प्रतिबद्ध अपन कविताक माध्यम सँ संवेदना दृष्टि कँ प्रस्तुत कयलनि।

कवि वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' विरचित दू गोट मुक्तक कविता संग्रह प्रकाशित अछि- चित्र' आ 'पत्रहीन नग्न गाछ'। 'चित्र' मुक्तक कविता संग्रह कवि 'यात्रीक' पहिल मैथिली रचना थीक जाहिमे 28 गोट कविता संकलित अछि। अधिकांश कविता तत्कालीन समाजीक गतिविधिक स्थिति पर लिखल गेल अछि। किछु एहिनो कविता अछि जाहिमे यात्रीक व्यक्तिगत जीवनक प्रतिबिम्बन भेल अछि। ओना चित्रक प्रत्येक कविता मे कविक व्यक्तित्व आ जीवन शैलीक प्रभाव अछि।

कवि 'यात्रीक' मुक्तक काव्य 'पत्रहीन नग्न गाछ' चित्रक बाद प्रकाशित भेल जाहिमे कुल छियानवे (96) गोट कविता अछि। एहि कविता संग्रह मे कवि स्वंय कहने छथि जे ''एहि मे अधिक टटका ओ बीछल रचना सभ संकलित कयल गेल अछि''। आन्हड़ जिन्दगी एवं राधिका वर्ष 1954 ई0 मे लिखल गेल जे क्रमशः 1955 एवं 1960 ई0 मे प्रकाशित भेल।

साधारण रूपें 'चित्र' ओ 'पत्रहीन नग्न गाछ' कविक दू नवीन आयामक सुचना दैछ। मुदा, दुनू मे मूलतः कोनो विशेष भिन्नता नहि बुझि पड़ैछ। चित्र मे शब्दशिल्प ओ भावक व्यंजना सरल, स्फीत, प्रांजल ओ संवेगात्मक छैक। कविवर यात्रीक 'चित्र' कविता संग्रहक एकटा कविता अछि-'परम सत्य' । ओहि कविताक पाँती अछि-

> सत्य थिक संसार
> सत्य थिक मानव समाजक क्रमिक उन्नति-क्रमिक बुद्धि विकास,
> सत्य थिक संघर्षरत जनताक ई इतिहास
> सत्य धरती, सत्य थिक आकाश।

परम सत्य मनुख अपनहि थीक -जे हुनक कवि-कर्मक अथवा एना कही जे मनुष्य- जीवनक मार्गदर्शक जीवन- दर्शन थीक। अपन सम्पूर्ण साहित्यमे ओ एकरे दुःख-दर्द कँ सोचलनि। जत' कतहु गलत देखलनि, तकर मुखर विरोध कयलनि। ने तोतरयलाह ने डेरयलाह।

अपन देशकोस, माटि-पानि, लोक व्यवहार एवं लोक-संस्कृति सँ असीम अनुराग राख*वला यात्री 'माँ मिथिले! मे मिथिला विभूति सभक प्रति गौरवबोध करैत हुनक यशोगान कैलनि अछि तऽ अंतिम प्रणाम' (1936) मे मातृभूमिक प्रति अपन रागात्मकता, कोमलभाव, पत्नी तथा घर परिवारक विछोह सँ उत्पन्न आत्मिक दंश, पिताक प्रति आक्रोश, सँहि एहि सभक अछैत सभसँ आन्तरिक लगावक अभिव्यक्ति कैलनि अछि। चित्रक 'बूढ़वर' (1941) तथा 'गोठ बिछनी' रचनाकारक संवेदना, अवांछितक प्रति अस्वीकार भाव आ

> गरीबक दुःख दर्दक मार्मिक अभिव्यंजनाक रूपमे
> प्रकट भेल अछि । एहि दुनू कविताक शब्द चयन,
> बिम्ब-योजना, कलापक्ष, व्यंग्य-छटा अमानवीयताक
> अन्तराल सँ बहार कैल गेल करूणा, देखबा योग्य अछि।

एकटा कमलक कोंढ़ी आ 'चम्पाकली' बाला कँ 'ढ़ें कोकनल' सुखैल पकठैल काठसन' 'धनुषाकार', 'निदन्त' , 'बूढ़-बकलेल', चारिम विवाहक इच्छुक 'बुढ़वर' के मडूआक दोबर' बेचि देल जाइत छनि तथा किकियाब *, कुहर * मर लेल छोड़ि देल जाइत छनि।

'गोठबिछनी' कँ संबोधित करैत कवि कहैत छथि-

बीछि रहल छँ बनगोइठा तों
घूमि घामि कए बाध बोन मे
पथिया नेने भेल फिरइ छैं
तीनू खूट, चारियो कोन मे
बगड़ा जेना लगाबए खोंता
तेहने रूच्छकेस छउ तोहर''

एहि दूनू कविताक केन्द्र मे दूटा बाला अछि। एकटा बूढ़वर सँ विआहल जाइवाली आ बादमे विआहल दोंसर बाधबोन मे गोइठा बीछय वाली। दूनूक वर्णन काव्य-सौन्दर्य चरम पर अछि।

यात्री ई सौन्दर्य-दृष्टि, प्रथा-परम्पराक नाम पर पसरल कुरीति, परिवेशक वीभत्सता, कुरूपता एवं निम्न वर्गक दुर्दान्त गरीबीक, गर्भ सँ बहार कैलनि अछि, दरिद्रजनक प्रति संवेदना सँ बौद्धिक सम्पन्नता अर्जित कैलनि अछि।

कविवर यात्रीक 'पत्रहीन नग्न गाछ' मे संगृहीत 'बाँसक छाहरि' 'पड़ल छी छगुन्ता मे', 'पाकल अछि ई कटहर', ओ 'सिंह वाहिनी दशभुजा चण्डी' आदि कविता मे सेहो सामाजिक यर्थाथक चित्रण भेल अछि। यात्रीक यथातथ्य-वर्णन मे सर्वत्र एक व्यंग्य निहीत अछि, जे समाज मे प्रचलित विद्रूप, कुरीति आदि के ठिकिआ आुर देखबैत सुधारक दिशा मे बढ़ैत अछि।

यात्रीक 'पत्रहीन नग्न गाछ' मे जतय एकदिश ''जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गोरपि गरियसी'' क भावनाक ओत-प्रोत अवस्था अछि तँ दोसर दिस सामाजिक टीस, पीड़ा, करूणा यथार्थ रूपमे।

जीवन जहिना अछि तहिना ग्रहन कए ओकरा अभिव्यक्त करब यर्थाथवादी प्रवृत्ति कहबैत अछि, सामाजिक स्तर पर जीवनक जेहनरूप अछि, ओकरहि यथातथ्य वर्णन करब सामाजिक यर्थाथक चित्रण मानल जाइत अछि । एहि क्रममे यात्रीजी युगक शोषण तथा ओहि शोषणसँ स्वंय ग्रस्त होइतहुँ स्वस्थ तथा स्वतंत्र जीवनक लेल संघर्षरत लोकक चित्रण कयलनि एवम् अपन माटि-पानिक गन्ध, ग्राम्य आ नागरिक जीवनक विषमताकँ जानलनि ओ चिन्हलनि, संगहि सामाजिक चेतनाकँ वाणी दय अभिव्यक्त कयलनि। महाजनी चट्टानसँ ठोकर खाइत, भयंकर संघर्षक आगिमे बरकैत सर्वहाराकँ समर्थन दैत यात्रीक कविता साम्राज्यवादी संस्कृतिक विनाशक प्रयासकँ जेना चुनौती दैत हुअए। एहि संदर्भमे ''सुखैल टटैल एकटा बेंग'' क पाँति दृष्टव्यक लेल वेस उपयुक्त रहत-

''आइ अथवा काल्हि अथवा परसू
हे बेटा करत वृष्टिपात ......
कृशकाय ई दुर्दर बेचारे
ने जानि कत्ती काल धरि
रहता तकैत आकाश दिश
अहेतुक नहि थीक हिनक ई याटक
हे बेटा करत वृष्टिपात
आइ अथवा काल्हि अथवा परसू।''

'पत्रहीन नग्न गाछ' मे संग्रहीत 'पत्रहीन नग्न गााछ' शीर्षक एकटा कवितो अछि। एहि मे अन्हार गुज्ज राति मे कारी आ ठुट्ठ आकृतिक पत्रहीन नग्न गाछक बिम्ब एक दिश जँ सामयिक परिवेशक स्पन्दनहीनता, रूक्षता ओ भयावहता कँ द्योतित करैत अछि, तँ दोसर दिश 'सौंसे शरीर कँ रोमांचक टटका प्रसाद बँटैत तरबातरक मोलाएम नवांकुर'क बिम्ब ओहि वातावरण सँ मुक्त होएबाक प्रबल आशा प्रदान करैत अछि। अर्थात-पत्रहीन नग्न गाछ समस्त रूढ़ि कँ, जड़ता कँ स्पष्ट करबाक एकटा प्रतीक थिक, आ नवांकुर नव चेतनाक प्रतीक।

निष्कर्षत: 'चित्र' एवम् 'पत्रहीन नग्न गाछ' मुक्तक काव्यमे मानवीय एवम् सामाजिक जीवनक विविध आयामक चित्रण भेल अछि। दर्शन, संस्कृति, अध्यात्म, सामाजिक आ आर्थिक विशमता, वैवाहिक समस्या, प्रकृति चित्रण, राष्ट्रीय एकता, सम्प्रदायिक सद्भाव आदि विविध आयाम एहि काव्यक विषय-वस्तु बनाओल गेल किन्तु अधिकांश कविता मे कविक प्रगतिवादी विचारधाराक अभिव्यक्ति भेल अछि।

कवि तँ एतय धरि लिखलनि-

''धन्य हे श्रमशील मानव-विश्व भरि मे व्याप्त धन्य तोहर जाति ।''

अतएव कविवर 'यात्री' पूर्णत: प्रगतिवादी कवि छथि।

परिशिष्ट

सम्पादन

(01) यात्री साहित्यावलोकन

परामर्शी मंडल

डॉ0 लेखनाथ मिश्र

डॉ0 रमानन्द झा 'रमण'

डॉ0 कलानाथ मिश्र

डॉ0 सत्यनारायण मेहता

सम्पादक

डॉ0 वासुकी नाथ झा

चेतना समिति, पटना

(02) शिखरिणी

सम्पादक

श्री गोविन्द झा

डॉ0 आनन्द मिश्र

श्री मोहन भारद्वाज

डॉ0 रमानन्द झा 'रमण'

श्री कुमार शैलेन्द्र

चेतना समिति, पटना

सार्क और भारत

शिप्रा भारती

शोध छात्रा, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

सारांश

आज जब पूरा विश्व वैश्वीकरण और संचार क्रांति के कारण एक छोटा सा गाँव बनता जा रहा है। ऐसी स्थिति में 'सार्क' देशों में अपार संभावनाए है। अभी विभिन्नताओं के बावजूद इन देशों की समानताएँ स्पष्टतः परिलक्षित होती है। आपसी वाणिज्य और व्यापार के अलावा सार्क देश पर्यटन उद्योग को साथ मिलकर बढ़ावा दे सकते है। ये देश प्राचीन धर्मों से तो जुड़े है ही इनकी जैव विविधता, नृत्य-संगीत, विविधता तथा इन देशों की प्राचीन संस्कृतियाँ और इनके नागरिकों के जीवनशैली विदेशी के लिए निरंतर आकर्षण का विषय बनी रहती है।

दक्षिण एशिया के देशों के बीच अगर पारस्परिक सहयोग बढ़ता है तो उत्तर के विकसित देशों के साथ राजनीतिक और आर्थिक सौदेबाजी बढ़ जाएगी और आपसी निर्भरता का विकास करने पर विकसित देशों पर इनकी निर्भरता में कमी आएगी। इस तरह के कदम से इस क्षेत्र के देश स्वयं को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक सशक्त गुट के रूप में प्रस्तुत कर सकते है। भले ही सार्क का मकसद किसी भी रूप में गुटों की राजनीति से संबंधित नहीं था। सार्क के सशक्त बनने से गुटनिरपेक्ष आंदोलन और भी मजबूत होगा तथा इन सभी देशों की स्थिति में भी सुधार आएगा।

प्रस्तावना

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व का वातावरण इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया कि पूरे विश्व में अशांति व असहयोग का माहौल बन गया था। जिस कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप नए गठित हुए राष्ट्रों ने आपसी सहयोग को बढ़ावा देने का सोचा, जिसका उद्देश्य आर्थिक व सामाजिक समस्याओं का समाधान करना तथा क्षेत्रीय सुरक्षा को बढ़ावा देना था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस क्षेत्र में मुख्यतः दो प्रकार से संगठनों का बढ़ावा मिला। एक सैन्यसंधि पर आधारित थे, तो दूसरे आपसी समझौते पर। जिनका उद्देश्य था आपसी समझौते पर आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक आदि क्षेत्रों में रिश्तों को बढ़ावा देना। ऐसे ही प्रयासों का एक अनोखा परिणाम है "सार्क (SAARC)"

"South Asian Association for Reginal Co-opretion" दक्षिण एशियाई देशों का क्षेत्रीय सहयोग समूह, जिसका गठन 7-8 दिसम्बर, 1985 को किया गया, दक्षिण एशिया के उन विकासशील देशों का सहयोग समूह है, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अस्तित्व में आए थे। ये वे देश थे जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध की भयावह तस्वीरों से यह सीख लिया था कि शांति व सुरक्षा का माहौल आपसी सहयोग से ही बन सकता है। इसके सदस्य देश एक लंबे समय से उपनिवेशवाद की जंजीरों से निकल कर अपनी स्वतंत्र छवि बनाने के लिए प्रयासरत थे। वे हर कीमत पर आत्मनिर्भर होना चाहते थे और कहीं-न-कहीं इसी सोच एवं संघर्ष का परिणाम था "SAARC"A 7-8 दिसम्बर, 1985 को ढाका में आयोजित सात देशों (भारत, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, बांग्लादेश और मालदीव) के सम्मेलन में इनके राष्ट्राध्यक्षों द्वारा इस क्षेत्रीय सहयोग समूह को गठित किया गया, जो दक्षिण एशिया की राजनीति में एक नया अध्याय जोड़ती है। यह विश्व राजनीति में दक्षिण एशिया के इन सात नवोदित पड़ोसी देशों की इस दिशा में पहली शुरूआत थी। हालांकि इससे पूर्व भी कुछ क्षेत्रीय संगठनों का गठन आर्थिक आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के धारा- 52 के तहत किया गया था, जैसे- अमेरिकी राज्यों का संगठन 1948, अरब लीग 1945, यूरोपियन यूनियन 1947 (वास्तविक उद्भव 1993) आदि।

विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्या वाला यह संघ उन देशों का है जो प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण तो थे, परंतु इनकी की तत्कालिन समस्या थी– जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, कुपोषण आदि। इन्हीं समस्याओं से निजात पाने की सोच में इस क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने वाला संघ की स्थापना को प्रेरणा दी। 'सार्क' का विकास इन्हीं विचारधाराओं का परिणाम है जो श्नै-श्नै विश्व राजनीति में एक नए अध्याय के तौर पर जुड़ा। इस संगठन को गठित करने का विचार बांग्लादेश के पूर्व राष्ट्रपति जिया-उर-रहमान ने किया।

हालांकि इस तरह के संगठन की स्थापना काफी पहले से की जानी चाहिए थी, लेकिन दक्षिण एशिया की राजनीति में संघर्षों की बहुलता के कारण ऐसा नहीं हो पाया। भारत की विशालता को देखते हुए इसके अन्य पड़ोसी देश इससे भय खाते थे और वे इस बात से चिंतित थे कि कहीं भारत अपनी विशालता के बल पर उन्हें खुद में समेट न ले। इसका बहुत बड़ा कारण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत की भूमिका भी रही। इसके कारण भारत के छोटे पड़ोसी देश भारत के विरोधी शक्तियों स संबंध स्थापित करने के लिए हमेशा प्रयासरत रहते थे। जिससे भारत इनके प्रति आशांकित हो गया था। इस स्थिति ने भारत को ''बौनो (लीलीपुट) के बीच दैत्यों'' की संज्ञा दिला दी थी। और यह कहा जाने लगा कि भारत इन क्षेत्रों पर अपना अधिपत्य जमाना चाहता है। परंतु इन तर्कों ने बहुत अधिक लंबा समय नहीं बिताया, धीरे-धीरे स्थिति सामान्य होती गई। और विश्व राजनीति में नए-नए अध्याय जुड़ते चले गए।

इन्हीं प्रयासों एवं विचारों ने "SAARC" जैसे महासंगठनों की नींव रखने में मदद की। दिसम्बर 1985 में ढाका में सम्पन्न एक सम्मेलन में "SAARC" का विधिवित उद्घाटन किया गया, जिसकी अध्यक्षता बांग्लादेश के तत्कालिन राष्ट्रपति ने की। जिसमें सदस्य के तौर पर भारत के तत्कालिन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी, वर्मा के राष्ट्रपति ज्याऊल हक, श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्धने, मालदीव के राष्ट्रपति अब्दुल करीम तथा नेपाल व भूटान नरेश शामिल हुए। इस सम्मेलन में "SAARC" के विधिवत संचालन हेतु दस सूत्री चार्टर अपनाया गया तथा "SAARC" का विधि अनुसार शुभारंभ किया गया। चार्टर के अन्तर्गत यह उल्लेख किया गया कि सदस्य देशों की राजनीति समस्याओं पर चर्चा की जाएगी। इसके स्थाई सचिवालय के लिए भी व्यवस्था की गई थी। साथ ही यह भी तय किया गया कि यह क्षेत्रीय संगठन किस दिशा या किन-किन क्षेत्रों में कार्य करेगा। हालांकि इस दिशा में 1983 को कुछ क्षेत्र इंगित किए जा चुके थे परंतु इस सूची को पूर्णता मिला 'सार्क' की स्थापना के साथ वर्ष 1985 में आयोजित ढाका में। इसमें कृषि, स्वास्थ्य सेवाएँ, मौसम विज्ञान, डाक-तार सेवाएँ, ग्रामीण विकास, विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र, दूर-संचार तथा यातायात, खेलकूद व सांस्कृतिक सहयोग के साथ-साथ आतंकवाद की समस्या, मादक-द्रव्यों की तस्करी और क्षेत्रीय विकास में महिलाओं की भूमिका को शामिल किया गया।

"SAARC" अपने स्थापना के साथ ही अपने अन्तर्गत शामिल सभी क्षेत्रों में अपनी भूमिका का निर्वहन करना प्रारंभ कर चुका था।"SAARC" की जिन उद्देश्यों व क्षेत्रों को ध्यान में रख कर की गई थी उनको प्राप्त करने के लिए सार्क के चार्टर में कुछ संस्थाओं का जिक किया गया। सार्क के चार्टर में कुछ दस (10) धाराएँ हैं, जिनके अन्तर्गत सार्क के उद्देश्यों, सिद्धांतों संख्याओं एवं इसके संचालन का विवरण दिया गया है।

चार्टर के अनुच्छेद– एक (1) में इसकी स्थापना के उद्देश्यों का जिक किया गया जो इस प्रकार देखे जा सकते है: (i) दक्षिण एशियाई क्षेत्रों में निवास करने वाली समस्त जनता का कल्याण व उनके जीवन स्तर में सुधार करना; (ii) सदस्य देशों में सामूहिक आत्म-निर्भरता में वृद्धि करना; (iii) क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में तेजी लाना; (iv) आपसी विश्वास, सूझ-बूझ तथा एक-दूसरे की समस्याओं का मूल्यांकन करना; (v) आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में सकिय सहयोग एवं पारस्परिक सहायता में वृद्धि; (vi) अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग में वृद्धि करना; (vii) सामान्य हितों के मामलों पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर आपसी सहयोग मजबूत करना।[1]

चार्टर के अध्याय-2 में इसके सिद्धांतों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है–

- संगठन के ढांचे के अन्तर्गत सहयोग, समानता, क्षेत्रीय अखंडता, राजनीतिक स्वतंत्रता, दूसरे देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना तथा आपसी लाभ के सिद्धांतों का सम्मान करना।
- सहयोग द्विपक्षीय या बहुपक्षीय सहयोग नहीं बल्कि पूरक होगा।
- इस प्रकार सहयोग द्विपक्षीय और बहुपक्षीय उत्तरदायित्वों का विरोध नहीं होगा।

चार्टर के 3 से 10 तक "SAARC" के संस्थाओं का विवरण दिया गया है। अनुच्छेद-3 में "SAARC" के शिखर सम्मेलन होने की बात कही गई। और यह यह कहा गया कि इस शिखर बैठक में सदस्य देशों के शासनाध्यक्ष भाग लेगे। इसका पहला शिखर बैठक इसकी स्थापना के वक्त किया गया था। "SAARC" के अबतक के हुए शिखर सम्मेलनों का विवरा हम इस प्रकार देख सकते है–

काल	स्थान	दिनांक
पहला	ढाका (बांग्लादेश)	7-8 दिसम्बर, 1985
दूसरा	बंगलौर (भारत)	16-17 नवम्बर, 1986
तीसरा	काठमांडू (नेपाल)	2-4 नवम्बर, 1987
चौथा	इस्लामाबाद (पाकिस्तान)	दिसम्बर, 1988
पाँचवां	माले (मालदीव)	22-23 नवम्बर, 1990
छठा	कोलंबो (श्रीलंका)	21 दिसम्बर, 1991
सातवां	ढाका	10-11 अप्रैल, 1993
आठवां	नई दिल्ली (भारत)	2-4 मई, 1995
नौवां	माले (मालदीव)	12-14 मई, 1997
दसवां	कोलंबो (श्रीलंका)	29-31 जुलाई, 1998
ग्यारहवां	काठमांडू (नेपाल)	5-6 जनवरी, 2002
बारहवां	इस्लामाबाद (पाकिस्तान)	5-6 जनवरी, 2004
तेरहवां	ढाका (बांग्लादेश)	12-13 नवम्बर, 2005
चौदहवां	नई दिल्ली (भारत)	3-4 अप्रैल, 2007
पंद्रहवां	कोलंबो (श्रीलंका)	2-3 अगस्त, 2008
सोलहवां	थिम्पू (भूटान)	28-29 अप्रैल, 2010
सत्रहवां	अड्डू सिटी (मालदीव)	10-11 नवम्बर, 2011
अठारहवां	काठमांडू (नेपाल)	26-27 नवम्बर, 2014
उन्नीसवां	इस्लामाबाद (पाकिस्तान)	9-10 नवम्बर, 2016 (रद्द)
बीसवां	प्रतीक्षारत	प्रतीक्षारत

चार्टर के अनुच्छेद-4 से 10 तक "SAARC" के मंत्रिपरिषद्, स्थायी समिति, तकनीकी समितियाँ, कार्यकारी समिति, सचिवालय, वित्तीय प्रावधान आदि का जिक किया गया है।

सार्क और भारत

दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश भारत आज विश्व की नई शक्ति के रूप में उभर कर सामने आ रहा है जिसका स्वागत पूरी दुनिया कर रही है। सार्क देशों के सभी सदस्य देशों में लगभग 70% आबादी वाला भारत सार्क देशों में अपनी मजबूत पकड़ बना चुका है। आर्थिक दृष्टि से भी देखा जाए तो भारत का अन्य सार्क देशों के साथ व्यापार 15 बिलियन डॉलर यानि 1002 अरब रू0 के बराबर का है जो भारत की भूमिका को मजबूती प्रदान करता है। अफगानिस्तान, हो या पाकिस्तान, या फिर मालदीव, नेपाल, श्रीलंका भारत मदद करने में कभी पीछे नहीं हटा है। अगर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो ये सब कभी-न-कभी भारत का अभिन्न अंग हुआ करता था इसलिए इस दृष्टिकोण से भी भारत इस संगठन में केन्द्र की तरह है जो सबको एक परिधि में बांधे

हुए है। साहित्यिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संबंधों के ऐसे प्रभाव में और क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण एवं विकास के अदान-प्रदान ने दक्षिण एशियाई देशों को पुनर्बल प्रदान किया है

भारत सार्क संगठन से संबंधित विभिन्न गतिविधियों में हमेशा से ही अपनी अहम भूमिका का निर्वहन करते आया है। सार्क शिखर सम्मेलन की सिफारिशे भारत एवं अन्य सदस्य देशों द्वारा संयुक्त रूप से कियान्वित की गई और उसने अपने संसाधन एवं सामर्थ्य के अनुकूल उनकी सफलता में सर्वोत्तम संभव तरीके के योगदान किया। सार्क का झुकाव आर्थिक सहयोग, पर्यावरण, गरीबी, उन्मूलन आदि प्रमुख क्षेत्रों में ठोस विकासोन्मुख विचार-विमर्श की ओर है। चूँकि भारत सार्क देशों के बीच सामूहिक आत्मनिर्भरता के प्रति वचनबद्ध है इसलिए उसने उसके मंच पर सदैव इस बात का समर्थन किया है कि क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों का इसके कार्यो और कियाकलापों के लिए उपयोग किया जाए।

भारत कई बार सार्क का अध्यक्ष रहा। यह अन्य सार्क देशों के साथ सीमाओं के अलावा भाषा, धर्म और संस्कृति के आधार पर जुड़ा हुआ है। भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के शपथ ग्रहण समारोह (2014) में सभी सार्क राष्ट्राध्यक्षों की मौजूदगी यह साबित कर चुकी है कि भारत के लिए सार्क की महत्ता क्या है ? प्रथम सार्क व्यापार मेला जनवरी 1996 में नई दिल्ली में संपन्न हुआ था तब इस क्षेत्र में हितों का उल्लेख करते हुए नई दिल्ली में ही 19 से 21 नवम्बर, 1996 में ही अग्रगामी बहुआयामी सार्क आर्थिक सहयोग सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। सार्क सम्मेलन में इस बात की घोषणा की गई कि दक्षिण एशिया क गैर सरकारी संगठनों और स्वयंसेवी संगठनों के बीच सहयोग का संवर्धन करने के संबंध में विशिष्ट सिफारिशें की जाएगी। सार्क के दसवें शिखर सम्मेलन में भारत द्वारा महत्वपूर्ण पहल की गई। तत्कालिन प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने यह घोषणा की भारत 1 अगस्त, 1998 से सार्क देशों के लिए मात्रात्मक प्रतिबंध हटा लेगा। साथ ही यह भी कहा गया कि त्वर मार्ग प्रकिया के अन्तर्गत सार्क देशों में भारत के विदेशी निवेश के लिए 80 लाख से 150 मिलियन अमेरिकी डॉलर कर दिया जाएगा।

भारत ने हमेशा ही सार्क देशों का साथ मजबूती से दिया है और निरंतर यह प्रयास करता रहा कि कैसे दक्षिण एशिया के ये विकासशील देश विकसित देशों पर निर्भर होने के बजाए आत्मनिर्भर बने। इसी दिशा में वर्ष 2004 में सार्क के बारहवें शिखर बैठक में तत्कालिन भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा ठोस कदम उठाया गया, जिसमें सार्क देशों के मध्य कई तरह के कार्यकमों की पेशकश की गई। जिसमें गरीबी उन्मूलन के लिए कोष बनाने की बात कही गई साथ ही यह भी कहा गया कि भारत इसके लिए एक बड़ी राशि दान देगा, जो की भारत को छोड़कर अन्य सार्क देश अपने विकास के लिए उपयोग में ला सकेंगे। साथ ही इस बात की पेशकेश की गई कि सार्क देशों के मध्य रेल, सड़क, वायु एवं जलमार्ग परिवहन व्यवस्था मजबूत करने के लिए दक्षेस कार्यदल का गठन किया जाए तथा साथ ही सूचना-प्रौद्योगिकी, जैव तकनीक एवं विज्ञान के क्षेत्र में आपसी सहयोग की बात कही गई।

वर्ष 2007 में सार्क के गठन से अब तक के सफर में तीसरी बार भारत ने सार्क सम्मेलन की मेजबानी की जिसमें भारत की ओर से क्षेत्र के अल्पविकसित देशों के लिए शुल्क मुक्त व्यवस्था की एक तरफा घोषणा सम्मेलन बड़ी प्रमुख उपलब्धि रही। भारत सार्क का एक मात्र सदस्य है जिसने सार्क विकास निधि (SDF) में 18.9 मिलियन अमरीकी डॉलर का सहयोग किया है। नई दिल्ली में दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय की स्थापना से उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग के नए आयाम को छूने की आशा है। सार्क क्षेत्र में लोगों में आपस में गतिविधियों में कमिक वृद्धि हुई है। भारत ने नई दिल्ली में द्वितीय सार्क बैंड उत्सव, आगरा में सार्क साहित्य उत्सव तथा चंडीगढ़ में द्वितीय सार्क लोकगीत उत्सव की सफलतापूर्वक मेजबानी की। तथा निरंतर इस दिशा में प्रयासरत रहने की भी बात कही।

भारत 'सार्क' में हमेशा से ही अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है और यह आशा करता रहा है कि सार्क देशों के मध्य आर्थिक, सामाजिक, तकनीकि, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिए एक प्रभावी साधन के रूप में इसका विकास हो जैसा की इसके चार्टर में उल्लेख कर अपेक्षा की गई है।

निष्कर्ष

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने जो परिवर्त्तन का दौर देखा है उसे शब्दों में बांध पाना उतना आसान नहीं। पूरा विश्व एक ऐसी परिस्थिति से गुजर रहा था जहाँ कई समस्याएँ अचानक से जन्म लेकर अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों एवं राजनीति को प्रभावित

कर रही थी। इनमें सबसे बड़ी समस्या थी ''द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नए उदित हुए राष्ट्रों का विकास''। यह विकास सिर्फ उन्हें जीवंत करने के लिए आवश्यक नहीं था, अपितु उन्हें आत्मनिर्भर करने के लिए जरूरी था। इन्हीं जरूरतों ने नवोदित राष्ट्रों के मध्य क्षेत्रीय सहयोग की भावना को जागृत कर 'सार्क', जैसे क्षेत्रीय सहयोग संगठनों को गठन करने के प्रेरणा डाली।

''दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ'' (दक्षेस) की स्थापना दक्षिण एशिया के उन नवोदित राष्ट्रों (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, मालदीव और अफगानिस्तान) के आपसी संबंधों एवं क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने के दृष्टिकोण से किया गया था। सार्क का विकास धीरे-धीरे हुआ है। इसकी नींव में इन सभी सदस्य देशों के मध्य आपसी सहयोग एवं तनाव को समाप्त करने की भावना है। इस संगठन का जन्म से इन देशों के बीच सद्भावना, भाईचारा और सहयोग की भावना का एक नया युग आरंभ होता है। हालांकि इनके मध्य की विभिन्नताएँ इसके विकास के मार्ग में बाधक रहीं परंतु समय-समय पर इसे कम करने का प्रयास भी किया जाता रहा है।

सार्क के माध्यम से सरकारों की तरफ से अनेक क्षेत्रों में सहयोग के विकास का सार्थक प्रयास तो किया ही गया है। साथ ही गैर सरकारी संगठनों के स्तर पर भी अनेक प्रयास किए गए है। सार्क के सदस्य देशों के नागरिकों के बीच श्रव्य-दृश्य (Audio-Video) के अदान-प्रदान के माध्यम से संबंधों में विस्तार हुआ है। दक्षिणी एशियाई देशों के प्रति पर्यटन की भावना का भी विकास हुआ है तथा सांस्कृतिक संबंध प्रगाढ़ हुए है। सार्क ने कृषि सूचना केन्द्र खोला है तथा प्राकृतिक विपदाओं को रोकने के लिए, पर्यावरण में सुधार के लिए, मानव संसाधनों के विकास के लिए, सार्क देशों से प्रत्यक्ष पूँजी निवेश की संभावना के विकास के लिए भी विचार किया जा रहा है।

सार्क के अन्तर्गत खाद्यानों की सुरक्षा के लिए भी भंडार बनाया गया है। आतंकवाद को दबाने के लिए क्षेत्रीय समझौता किया गया है; जिसमें प्रत्यर्पन का विषय भी शामिल है। इस तरह के आपसी सहयोग व समझौता से क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा मिला है तथा इसे आगे भविष्य में भी निरंतर जारी रखने के प्रयास करते रहने होगें। भौगोलिक रूप से जुड़े हुए सार्क देशों को आर्थिक लाभ लेने के लिए एकीकृत परिवहन प्रणाली को अपनाना होगा। सार्क देशों के लिए वायुमार्ग से जुड़ने से ज्यादा आवश्यक है कि वे सड़क मार्ग के जुड़ने का प्रयास करें। जब तक ऐसी व्यवस्था नहीं होगी, तब तक दक्षिणी एशिया के देशों के मध्य व्यापार बढ़ने की संभावना कम ही रहेगी। हालांकि 'साफ्टा' के माध्यम से दक्षिण एशिया की क्षेत्रीय व्यापारिक एकता न सिर्फ ऊँची होने की गुंजाईश रखती है अपितु इन देशों को आर्थिक-सामाजिक समस्याओं से भी लड़ने में मदद दे सकती है। इतना ही नहीं साफ्टा से अंतरक्षेत्रीय कारोबार हर पाँच साल में दोगुना हो जाएगा और साफ्टा से ही सार्क को क्षेत्रीय व्यापार की इकाई और आर्थिक संघ में तब्दील किया जा सकेगा। इससे यह आशा की जा सकती है कि 'साफ्टा' के तहत सार्क देश एकजुट होकर आर्थिक-सामाजिक इतिहास को पलटने के लिए तेजी से कदम बढ़ाएगें और इन देशों की जनता विकास का जश्न मानएगी।

सन्दर्भ

1. विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट, 1998-99, पृ. 13
2. फड़िया, बी0 एल0, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, पृ. 367-375, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2011
3. http://www.saarc-sec.org/SAARC-summit/7/
4. http://www.saarc-sec.org
5. डॉ. पदभाशा, राजीव गांधी का नेतृत्व, पृ. 32, साहित्य निधि पब्लिकेशन, दिल्ली, 1988

भारत-रूस संबध: सामरिक संबंधो का 21वीं शताब्दी के संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ० रणबीर गुलिया

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

अमित कुमार

पीएच. डी., शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, महर्षि दयानदं विश्वविद्यालय, रोहतक

शोध सार

किसी भी देश को अपने देश की एकता एवं अखण्डता को बनाए रखने के लिए अपने सामरिक संबंधो को मजबुत करना पड़ता है। भारत को भी अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबुत करने के लिए अंतराष्ट्रीय संबंधो के द्वारा अपने सामरिक क्षेत्र की आवश्यकताओं को लगातार बढ़ाते रहना पड़ता है भारत-रूस के साथ मिलकर अपने सामरिक संबंधो को 20वी शताब्दी में एक नया आयाम प्रदान कर रहा है भारत-रूस के बीच सैन्य तकनीकी सहयोग पुराने समय से ही चला आ रहा है दोनो देशो के बीच के.स. 226 टी समझौता, ब्राह्मेस कूज मिसाइल कार्यकम, सुखोई एस 30 एम कार्यकम, मिग-21 एस विमान, अटकुला-2 परमाणु पनडुब्बी, टी-90 यू.एस भीष्मा टैंक एवं एस-400 मिसाइल रक्षा समझौता आदि को लेकर आपसी सामरिक समझौता किए गए है। भारत व रूस के बीच सामरिक संबंधो की प्रगाढ़ता में 21वीं शताब्दी में कुछ परिवर्तन भी देखने को मिलते है।

मुख्य शब्द: अटकुला-2 पनडुब्बी, एस-400 मिसाइल, सुखोई, अंतर सरकारी आयोग- एमटीसी, विमान वाहक पोत विकमादित्य, राफेल समझौता।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-पत्र मे ऐतिहासिक वर्णात्मक, विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया है इस शोध को सम्पूर्ण करने के लिए द्विपक्षीय आंकड़ो का सहारा लिया गया है जिसमें विभिन्न पुस्तकों, जर्नल, पत्र-पत्रिकाओं, इंटरनेट तथा विभिन्न शोधार्थियों के भारत-रूस संबधो पर किए गए शोध की समीक्षा करते हुए शोधार्थी ने स्वयं के अनुभव से भी इस शोध कार्य को पूरा किया है

शोध के उद्देश्य

1. भारत-रूस के बीच सामरिक संबंधो की प्रगाढ़ता को जानना।
2. 21वी शताब्दी के संदर्भ में दोनो देशो के सामरिक संबंधो के परिवर्तन को जानना।
3. भारतीय विदेश नीति में रूस के साथ संबंधो को लेकर उसके दृष्टिकोण को जानना।
4. भारत-रूस की अंतर्राष्ट्रीय संबंधो में एक-दूसरे की भूमिका को जानना।

भारत-रूस के सामरिक संबंध

विश्व पटल पर रूस की उपस्थिति 1992 में हुई थी जिसने सोवियत संघ की जगह ली थी भारत ने अपने सामरिक हितों की पूर्ति के लिए 1971 में सोवियत संघ के साथ एक 20 वर्षीय संधि की थी। जिसमें दोनों देशो के बीच यह समझौता हुआ था कि यदि कोई देश उन पर आक्रमण कर देता है तो वे आपसी सहायता करेगें। रूस की उत्पति के बाद भी दोनो देशों देशो के बीच अपने सामरिक संबंधो को प्रबलता प्रदान करने के लिए एक-दूसरे देशों की यात्राएं की गई। 1993 में भारत के रक्षा मंत्री शरद पवार ने रूस की यात्रा की थी जिसमें दोनो देशो के बीच रक्षा समझौतों को लेकर गहनता से विचार-विमर्ष किया गया था। 1994 में भारत के प्रधानमंत्री की रूस यात्रा के दौरान रूस ने भारत को 30 सुखोई विमान तथा भारत मे दो परमाणु रिएक्टर खोलने पर सहमति प्रदान की गई थी। दोनो देशों के बीच 1974 में ही 10 वर्ष के लिए रक्षा समझौते किए गए थे। 1996 में रूस के राष्ट्रपति की भारत यात्रा के दौरान सुखोई बहुउद्देश्यीय युद्धक विमान खरीदने के लिए 500 करोड़ रुपये का अग्रिम भुगतान भारत के द्वारा किया गया था। 1996 में भारतीय दल ने रूसी यात्रा की थी जिसमें 40 सुखोई 30 एम.के. द्वितीय युद्धक विमान तथा सेना व नौसेना के लिए मास्को में 6500 करोड़ रुपये के सौदे का समझौता किया था। इस प्रकार के लड़ाकू विमान मिल जाने से वायुसेना की मारक क्षमता मे कई गुणा वृद्धि हुई थी। ये लड़ाकू विमान 8000 किलोग्राम के हथियार, बम, प्रक्षेपास्त्र आदि को ले जाने में सक्षम थे। इस प्रकार के रक्षा समझौते के तहत दोनो देशोके रक्षा अनुसंधान व विकास संगठन के बीच भागेदारी को बढ़ावा मिला था। भारत ने मई 1998 को परमाणु परीक्षण करके दुनिया को यह दिखा दिया था कि भारत भी अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में परमाणु सम्पन्न देश बन गया है। भारत के इस कदम पर अमेरिका ने भारत पर आर्थिक प्रतिबंध भी लगा दिए थे। लेकिन रूस ने भारत के साथ अपने सामरिक संबंधो को बनाए रखा और इसी दौरान जून 1998 को दोनो देशो के बीच एक समझौता हुआ जिसमें रूस ने भारत को तमिलनाडु प्रोजेक्ट के लिए परमाणु रिएक्टर देने पर सहमति प्रदान कर दी थी। इस प्रोजेक्ट पर 1987 में भारत के प्रधानमंत्री व सोवियत संघ के राष्ट्रपति के बीच सहमति-पत्र के आधार पर यह समझौता किया गया था। इस समझौतो के आधार पर रूस तीन महीने के अंदर इस प्रोजेक्ट को पुरा करेगा औरवी.वी. आर-1000 किस्म के दो परमाणु रिएक्टर को भी देगा जिसके तहत तमिलनाडु मे एक-एक हजार मेगावाट क्षमता के दो परमाणु ऊर्जा रिएक्टर लगाए जाएगे। इस के लिए भारत द्वारा रूस को 2.6 अरब डॉलर की राषि प्रदान करनी होगी। साल 1999 में कारगिल युद्ध में रूस ने भारत का समर्थन किया। 1999 में भारत-रूस के बीच सैन्य सहयोग के लिए समझौता किया गया था। जिसमें कहा गया था कि अगले तीन वर्ष तक रूस भारत में 4 अरब डॉलर की सैन्य सामग्री का निर्यात करेगा। जिसमें 1.5 अरब डॉलर के 60 मिग-29 विमान, 1.5 अरब डॉलर के आधुनिकतम युद्धक विमान सुखोई-30 होगे तथा 1 अरब डॉलर के टी-90 टैंक बेचने पर खर्च किए जाएगे। सामरिक सहयोग को बढ़ाने के लिए दोनो देशों के बीच एक अंतर सरकारी आयोग-एमटीसी भी बनाया गया था जिसकी बैठको में दोनो देशो के बीच इस प्रकार के सैन्य तकनीकी सहयोग के लिए रक्षा मंत्रियों व अन्य अधिकारियों के बीच बैठके होती रहती है। 2000 में रूसी राष्ट्रपति पुतिन ने भारत की यात्रा की थी जिसमें रणनीतिक साझेदारी को बढ़ावा देने की घोशणा की गई थी। इस यात्रा के दौरान रूसी राष्ट्रपति ने भारतीय प्रधानमंत्री को वचन दिया था कि उनका देश ऐसी संधि या संगठन में शामिल नहीं होगा जो सैन्य राजनीतिक प्रकृति वाला हो और दोनों देशो के राष्ट्रीय हितो के लिए चिंताजनक स्थिति पैदा करने वाला हो इस यात्रा के दौरान दोनो देशो के बीच कुछ सैन्य समझौते भी किए गए थे जिसमें 300 टी-90 एयर यात्रा टैंक, टैंक निरोधी गाइडेड मिसाइल, एस.यू-30 विमान, नौसेना के लिए 4 टी.बी-20 को भारत को पट्‌टे पर देना, विमान वाहक पोत गोर्षकोव (विक्रमादित्य) को बेचने संबंधी आदि समझौते किए गए थे। रूस के द्वारा निर्मित सुखोई-30 विमानो की पहली खेप 2002 में भारतीय वायुसेना में शामिल कर ली गई थी। भारत के रक्षा विषेशज्ञों ने माना की सुखोई-30 की टक्कर का कोई विमान अभी विकसित नहीं हुआ है। यह विमान लेजर आधारित उड़ान प्रणाली से युक्त होने के कारण सभी प्रकार के मौसमों में उड़ान भरने में सक्षम है। दिसंबर 2005 में भारतीय प्रधानमंत्री की रूस यात्रा के दौरान सैन्य तकनीकी सहयोग के क्षेत्र में बौद्धिक संपदा अधिकारी के पारस्परिक संरक्षण पर भारत सरकार व रूसी संघ की सरकार के बीच समझौते किए गए थे। जनवरी 2007 में रूसी राष्ट्रपति पुतिन ने भारत की यात्रा की थी जिसमें परमाणु उर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग के क्षेत्र में सहयोग हेतु संयुक्त समझौते किए गए थे। इस दौरान कुडनकुलम में चार अतिरिक्त बिजली इकाइयों का निर्माण करने हेतु समहति प्रदान की गई थी। भारत रूस के बीच सैन्य तकनीकी सहयोग को बढावा देने के लिए अंतर सरकारी आयोग की बैठक का 2008 में

नई दिल्ली में आयोजन किया गया था। जिसमें सुखोई विमान, टी-90 (भीष्म) टैंको के भारत में उत्पादन तथा विमानवाहक पोत गोर्षकोव के भारत को स्थानान्तण आदि के मुद्दो पर विचार विमर्ष किए गए थे। दोनों देशों के बीच भारतीय सेना के लिए नए टी-90 भीष्म टैंको का स्वदेश में ही उत्पादन करने पर सहमति प्रदान की गई थी। 2009 में भारत के प्रधानमंत्री की रूसी यात्रा के दौरान सैन्य और तकनीकी सहयोग (एमटीसी) के तहत रक्षा उपकरणों के लिए समझौते किए गए थे। जिसमें बहुउद्धेष्यी ट्रांसपोर्ट एयरकाफ्ट उत्पादन से संबंधित थे। मार्च 2010 में रूसी प्रधानमंत्री की भारत यात्रा के दौरान भी सामरिक संबंधो को बढावा देने के लिए अंतरिक्ष एवं प्रौद्योगिकी के ऊर्जा क्षेत्रो में संयुक्त सहयोग पर समझौते किए गए थे। 2012 में रूसी राष्ट्रपति ने भारत की यात्रा की थी। जिसमें दोनों देशों के बीच रक्षा के क्षेत्र में रिष्तों को मजबुती प्रदान करने के लिए करीब 22000 करोड रूप्ये के 10 समझौते किए गए थे। सैन्य क्षेत्र में 71 एमआई-175 हेलीकॉप्टरों की आपूर्ति के समझौते के अलावा एस यू-30 एम के आई लाइसेंस से युक्त उत्पादन के लिए 42 प्रौद्योगिकी मिलो की आपूर्ति का अनुबंध किया गया था। अब आधुनिकतम सुखोई-30 एमकेआई युद्धक विमानों को उत्पादन भारत में एच.ए.एल. के द्वारा किया जाएगा। एस 42 सुखोई विमानों के लिए प्रौद्योगिकी किट उपलब्ध कराऐगा। इस यात्रा के दौरान रूसी राष्ट्रपति पुतिन ने सामरिक सहयोग के क्षेत्र में आपसी सहायता करने के लिए बैंकिग व दुरसंचार क्षेत्र में भी समझौते किए थे। दोनों देशों के बीच दोनो पक्षो ने रक्षा सेना के युद्ध अभ्यास व आईएनएस 'तेग' व आईएनएस 'तारक' की पांचवी पीढी के लड़ाकू विमान, मल्टीरोल ट्रांसपोर्ट एयरकाफ्ट, सुपरसोनिक मिसाइल ब्रह्मेस, विमानवाहक पोत 'विकमादित्य' आदि पर हुए समझौतो की डिलीवरी के बारे में भी विचार विमर्ष किया गया था। दिसंबर 2014 में रूसी राष्ट्रपति की भारत यात्रा के दौरान सामरिक संबंधो को बढावा देने हेतु दोनों देशों के बीच अगले 20 वर्ष में कम से कम 12 नई परमाणु ऊर्जा इकाइयों के निर्माण पर सहमति प्रदान की गई थी। जिसमें कुडनकुलम परमाणु ऊर्जा संयंत्र में दो नई इकाइयाँ भी शामिल थी। इसके साथ सैन्य क्षेत्र में एयरकाफ्ट, स्पेसकाफ्ट के मषीनी उपकरणों को खरीदने संबंधी सहमति-पत्र जारी किए गए थे। 2016 तक भारत के सैन्य सामग्री आयात में रूस की 68 प्रतिशत भागेदारी बताई गई थी। 2017 में दोनों देशों के बीच एक संयुक्त सहयोग के द्वारा केए-226 टी हेलीकॉप्टर के निर्माण के लिए उधम की आधारषिला रखी गई थी। अक्तूबर 2018 में आप भारत व रूस के बीच एस-400 मिसाइल रक्षा समझौता किया गया। यह समझौता भी भारत को सैन्य क्षेत्र में बहुत अधिक बलषाली बनाता है। सितम्बर 2019 में भारतीय प्रधानमंत्री ने रूस की यात्रा की थी। जिसके दौरान दोनों देशों के बीच 'मेक इन इंडिया' की तर्ज पर काम करते हुए सैन्य क्षेत्र में 14.5 मिलियन डॉलर के हथियार व सैन्य उपकरण खरीदने के लिए भारत में रूस के साथ समझौता किया है। भारत रूस के बीच सैन्य क्षेत्र में आयात-निर्यात उपकरणों एवं अन्य उत्पादकों का वर्णन निम्न तालिका के द्वारा दर्षाया गया है। जिसको 2000 से लेकर 2019 तक के वर्षो के रूप में दर्षाया गया है जो अमेरिकी बिलियन डॉलर में है–

वर्ष	रूस निर्यात न्यूक्लियर रियक्टर उपरण	रूस निर्यात एयरकाफ्ट, स्पेसकाफ्ट के पार्टस	भारत निर्यात न्यूक्लियर रियक्टर उपकरण	भारत निर्यात एयरकाफ्ट, स्पेसकाफ्ट के पार्टस
2000	15.98	27.74	8.32	0.11
2001	17.89	5.56	12.74	4.35
2002	27.04	4.96	11.76	0.01
2003	33.97	4.19	12.99	3.00
2004	26.28	1.78	18.36	4.16
2005	62.69	5.44	16.79	10.29
2006	67.02	81.57	36.49	16.41
2007	96.26	21.27	50.13	45.63
2008	70.67	22.28	34.10	72.91
2009	54.93	18.65	47.42	45.99

2010	58.29	11.19	30.03	98.54
2011	101.37	21.86	73.51	61.90
2012	159.84	101.91	124.8	193.62
2013	76.21	26.32	95.88	73.98
2014	45.29	116.82	322.40	98.07
2015	76.34	47.96	93.83	106.52
2016	126.74	35.85	221.13	111.53
2017	98.09	31.63	182.42	39.21
2018	66.18	9.19	202.24	16.33
2019	82.99	40.56	352.19	29.38

स्त्रोत: भारत सरकार कोमर्स व उद्योग विभाग मंत्रालय, नई दिल्ली

21वीं शताब्दी में सामरिक संबंधों के परिवर्तनशीलता की समीक्षा

भारत रूस के बीच सामरिक संबंधों में 21वीं शताब्दी में परिवर्तन भी देखने को मिलते हैं पहले भारत अपने सामरिक सहयोग के लिए अंतराष्ट्रीय संबंधो में सबसे ज्यादा रूस के साथ ही इनको बढ़ावा देता था लेकिन 21वीं शताब्दी में इसमें परिवर्तन भी देखने को मिला है इसमें हम भारत अमेरिका के बीच हुए परमाणु असैन्य 123 समझौता का उदाहरण दे सकते है। जो 2008 में सम्पन्न हुआ था। इस समझौते का विपक्षी दलों ने विरोध भी किया था क्योंकि वे मानते थे कि इससे भारत रूस के बीच संबंधों में अनुचित परिवर्तन आ सकता है ऐसे विचार उन्होंने प्रकट किए थे। भारत ने अपनी सामरिक क्षमता को बढाने के लिए फ्रांस के साथ 2016 में राफेल संबंधी समझौता किया गया था। जिसमें 36 राफेल भारत को फ्रांस के द्वारा दिए जाएंगे। जब ये समझौता किया गया था तब कुछ विषेशज्ञों ने रूस के सुखोई एस यू-30 एम केआई लडाकू फाईटर जैट के विस्तार करने की बात कही थी। और राफेल समझौते को न करने के पक्ष में बात कही थी लेकिन भारतीय सरकार ने दोनों देशों की महतता को स्वीकार करते हुए राफेल डील की गई थी। जिससे ये पता चलता है की भारत अब अकेला रूस पर ही सैन्य क्षेत्र में निर्भर नहीं है। वह विश्व के अन्य देशों से भी अपने सामरिक सहयोग को बढावा दे रहा है आज भारत इजराइल से भी अत्याधुनिक हथियारों की खरीद के लिए अनेक समझौते कर रहा है जिसके कारण हम कह सकते है कि भारत रूस के 21वीं शताब्दी में सामरिक संबंधों में ये कुछ परिवर्तन भी देखने को मिले है। भारत अब अन्य देशों के साथ भी सैन्य क्षेत्र में आपसी भागीदारी को बढावा देने के लिए उनके साथ अपने संबंधों को प्रगाढ़ता प्रदान कर रहा है। जिसमें अमेरिका इजराइल फ्रांस जापान, आस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया आदि देशों का नाम लिया जा सकता हैं लेकिन हमें इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि भारत रूस के संबंधों में कुछ परितर्वन तो अवष्य देखने को मिला है। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि दोनों देशो में सबंधों की प्रगाढता खत्म हो गई है। भारत रूस के लिए आज भी वही सदाबहार पुराना मित्र है और दोनों के संबधों की गतीषिलता ऐसे ही चलती रहेगी।

निष्कर्ष

भारत रूस के बीच सामरिक सबंधों का 21वीं शताब्दी के संदर्भ में एक अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि भारत व रूस के बीच सोवियत काल के समय से ही सामरिक संबंधो की प्रबलषीलता देखने को मिलती है दोनों देशो के 21वीं शताब्दी में सामरिक संबंधो को बढाने के लिए अनेक समझौते किए गए है जिसमें सुखोई, ब्रह्मोस कार्यकम, एस-400 मिसाइल सिस्टम समझौता आदि के नाम लिए जा सकते है। इसके साथ साथ भारत अपने सामरिक संबंधो को अन्य देशों के साथ भी बढ़ाने के लिए अपनी कूटनीति एवं विदेश नीति में एक संतुलित आयाम को प्रदान कर रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिहं, अषोक, 'आधुनिक स्त्रोतेजिक विचारधारा एवं राष्ट्रीय सुरक्षा', प्रकाशन बुक डिपो, बरेली, 2014।
2. मोहनती, अरूण, 'इंडिया नीड ए स्ट्रीगर पार्टनरषिप विद रशिया इन दा मल्टीपल वर्ल्ड, वोल्यूम XLVII नं0 5, 2009
3. वाजपेयी, अरूणोदय 'समकालीन विश्व एवं भारत प्रमुख मुद्धे एवं चुनौतियां' डार्लिग किडंरस्ले (इंडिया) प्रा0 लि0 2012
4. एम. संजुकता 'इंडो-रशिया शक्योरिटी कॉपरेशन' वर्ल्ड फोकस 2013।
5. बख्शी, ज्योत्सना, 'भारत-रूस रक्षा सहयोग' राजनीतिक विश्लेषण, वॉल्यूम न.-2, 2006
6. कॉमर्स व उद्योग मंत्रालय विभाग :- भारत सरकार नई दिल्ली।
7. en.wikipedia.org/wiki/india-russia relations.
8. Economictimes.indiatimes.com/india-russiadefencedeal.
9. Hindustantimes.com/indianews/india-russiadefence deals.

छत्तीसगढ़ में लघुवनोपज संग्रहण एवम् सरगुजा जिले के वनोपज संग्राहक श्रमिकों का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ० घनश्याम दुबे

सहायक प्राध्यापक (इतिहास विभाग), गुरू घासीदास (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

अभिषेक अग्रवाल

शोध छात्र (इतिहास विभाग), गुरू घासीदास (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

धान का कटोरा नाम से प्रसिद्ध छत्तीसगढ राज्य एक आदिवासी बहुल क्षेत्र है। जहाँ की लगभग आधी से भी अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है। छत्तीसगढ़ राज्य का सरगुजा जिला वन सम्पदा बहुल क्षेत्र हैं, यहाँ विभिन्न प्रकार के लघु वनोपज प्राप्त होते हैं।

सरगुजा जिले की अर्थव्यवस्था वन तथा वनोपज पर आश्रित है। तेन्दूपत्ता सरगुजा का महत्वपूर्ण लघु वनोत्पाद है, जिसका उपयोग बीड़ी बनाने में किया जाता है। तेंदूपत्ता के कारोबार में सरगुजा के 80 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण आदिवासी कार्यरत हैं।

वन सम्पदा के अंतर्गत सरगुजा के आदिवासियो के शोषण का इतिहास सदियो पुराना है। छत्तीसगढ़ के दूरस्थ जंगलो मे रहने वाले आदिवासियों का जंगलो से प्राप्त नैसर्गिक संपदा के लिए स्वतंत्रता से पूर्व, अंग्रजों द्वारा तथा राष्ट्रीयकरण से पूर्व व्यापारियो, ठेकेदारों एवं बिचौलियों द्वारा शोषण विभिन्न प्रकार से किया जाता था। वनोपज संग्राहक श्रमिकों का के श्रम का इस व्यापार में कोई मूल्य नही था।

तेंदूपत्ता संग्राहकों के शोषण, वनोपज की अत्यधिक बढ़ती हुई मांग तथा उसकी व्यापारिक उपयोगिता को देखते हुए प्रदेश सरकार द्वारा तेन्दूपत्ता का राष्ट्रीयकरण **28 नवंबर 1964** को 'मध्यप्रदेश तेन्दूपत्ता विनियमन अधिनियम' के तहत किया गया, इसके साथ-साथ (1969 एवं 1970) अन्य वनोत्पादों का राष्ट्रीयकरण किया गया, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति तथा वनोपज राष्ट्रीयकरण के बाद भी तेंदूपत्ता श्रमिकों का शोषण किसी न किसी रूप में जारी है।

मूल शब्द: वन, वनोपज, ठेकेदार, बिचौलिये, शोषण, राष्ट्रीयकरण।

वन सम्पदा किसी भी राष्ट्र की मूल सम्पत्ति होती है। जो राष्ट्र जितनी ही अधिक वन सम्पदा से सम्पन्न होता है, वह उतना ही अधिक सम्पन्न शील राष्ट्र होने का अधिकारी होता है। छत्तीसगढ़ अंचल वन सम्पदा के वैभव से सम्पन्न प्रदेश है, किन्तु वन सम्पदा से इतना सम्पन्न होते हुए भी इस क्षेत्र को भौतिक प्रगति से वंचित रहना या पिछड़े हुए हालत में बने रहना, यहाँ के वनोपज संग्राहकों के लिये एक दुःख का ही विषय रहा।

छत्तीसगढ़ में आदिवासियों की आजीविका में लघु वनोपजों जैसें तेन्दूपत्ता, सालबीज, हर्रा, महुआ, गोंद, चिरौंजी का महत्वपूर्ण स्थान है। वनों से लगे हुए इस क्षेत्र में आदिवासी, हरिजन एवं पिछड़े वर्ग के लोग विभिन्न वनोपजों का सीधे उपयोग कराने के अतिरिक्त उनका संग्रहण कर निवर्तन से प्राप्त आय से अपनी अन्य जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते हैं। ''छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले में एक सर्वेक्षण के अनुसार एक औसत आदिवासी परिवार जिसकी कुल वार्शिक आय 1750 रूपये थी, उसमें से 1500 रूपये की आय केवल छोटी वनोपजों की शामिल थी।''[1] इस आय को प्राप्त करने में न कोई जोखिम न कोई पूंजीगत विनियोग करना पड़ा था। इससे छोटी वनोपजों का आदिवासी अर्थव्यवस्था में महत्व ही स्पष्ट होता है। परन्तु आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासियों का ही सम्पन्न वर्गो द्वारा शोषण किया जाता रहा है, जों कि किसी भी योजना की सफलता के लिए मूलभूत समस्या रही है।

''आदिवासी अर्थव्यवस्था अनादिकाल से लघु वनोपज पर आश्रित रही है। वन प्रबन्ध के पहले दौर में आदिवासियों का लघु वनोपज पर कहीं निजी उपयोग के लिए और कहीं विक्रय के लिए भी उनके अधिकार को स्वीकार किया गया था।''[2] किन्तु फिर भी जंगल से प्राप्त इस नैसर्गिक वनोपज के संग्राहक श्रमिकों का शोषण विभिन्न चरणों में शोषण जारी रहा।

''कृषि के अतिरिक्त जनजातियों का आर्थिक आधार वनों से प्राप्त सामग्री है। आदिवासी वनों से इन सामग्रियों को एकत्रित करते है और साप्ताहिक बाजार में इनके बदले आवश्यकता की वस्तुये खरीदते हैं। अधिकतर आदिवासी तौल एवं वास्तविक मूल्य से अनभिज्ञ होने के कारण बहुत सस्ते में अपनी वस्तुऐं दे देते हैं। व्यापारी इनकी अनभिज्ञता का लाभ उठाते हैं। अत: जल्दी ही ये ऋण के बोझ से दब जाते हैं। परिणामत: अनेक बार इन्हें पर्याप्त भोजन भी प्राप्त नहीं होता।

ऋणग्रस्तता आदिवासियों की अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बन गया है। बस्तर के अतिरिक्त सभी जनजातियो में ऋणग्रस्तता गम्भीर समस्या है। परिणामत: ये लोग बंधक मजदूर हो जाते हैं। जिससे ऋणदाता इनका शोषण करता रहता है। हाट में आने वाले व्यापारी भी इन्हें ऋण के बन्धन में बांध लेते है। जिससे भी इन्हें सरलता से मुक्ति नहीं मिलती।[3]

भारत का हृदय प्रदेश छत्तीसगढ़ वनों की हरीतिमा से अच्छादित है। इस भूभाग के 41 प्रतिशत क्षेत्र में वन हैं। ''स्वतंत्रता प्राप्ति के पष्चात भारत सरकार ने वनोपज पर आधारित उद्योगों की स्थापना की दिशा में कदम उठाए। वन संरक्षण की नीति अपनाकर सरकार द्वारा वनो ंका राष्ट्रीयकरण किया गया, वनोपज के क्रय-विक्रय, लकड़ी काटने इत्यादि पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए। वनों के राष्ट्रीयकरण के पष्चात वनोपज का संग्रहण शासन द्वारा नियुक्त अभिकर्ता ही कर सकता है। वनोपज के व्यापार बिचौलियों की समाप्ति, उत्पादक को उत्पादन का उचित मूल्य दिलवाना तथा शासन की आय में वृद्धि करना आदि दृष्टि से वनों का राष्ट्रीयकरण किया गया था।''[4]

सरगुजा जिले में वनोपज संग्रहण

सरगुजा क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य के उत्तर क्षेत्र में स्थित वन सम्पदा बहुल क्षेत्र है। वनों की बहुलता के कारण सरगुजा क्षेत्र को छत्तीसगढ़ की **''उत्तरी हरित पेटी''** कहा जाता है। ''यह क्षेत्र प्रारम्भ से ही वन सम्पदा से परिपूर्ण रहा है। विभिन्न जनजातियों के आश्रय स्थल तथा उनकी आजीविका के रूप में वनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। ये जनजातियाँ वनों में आखेट के अतिरिक्त अनेक प्रकार के वन उत्पादनों से अपनी आजीविका का अर्जन करती है। वनोपज के रूप मे साल, सागौन, बांस, लाख, महुआ, शहद, और खैर, हर्रा, बहेड़ा, आंवला, प्रमुख थे। जनजातियाँ का जीवन सामान्यत: वनों पर पूरी तरह से आश्रित हैं।''[5]

तेन्दूपत्ता सरगुजा जिले का बहुत बड़ा व्यवसाय एवं उद्योग है किन्तु इसका लाभ तेन्दूपत्ता संग्राहकों को नहीं मिल पाता था, जिसका मुख्य कारण बिचौलियों द्वारा मामूली दरों पर कच्चा माल प्राप्त करना एवं उससे अच्छा लाभ कमाना था।

एक दशक पूर्व, वन को आय का एक प्रमुख साधन माना जाता था, जिसके परिणामस्वरूप जंगलों की अंधाधुंध कटाई की जाती थी। लधुवनोपज के विपणन के सम्बन्ध में राज्य शासन ठेकेदारों पर निर्भर होते थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि आदिवासियों द्वारा एकत्रित की जाने वाली वनोपज जैसे तिखुर, मूसली, हर्रा, गोंद, चिरौंजी, तेन्दूपत्ता, साल बीज आदि के व्यापार में बिचौलिये और व्यापारी मालामाल होते चले गए। जबकि आदिवासियों को न्यूनतम मजदूरी भी नहीं दी जाती थी।

प्रचूर वन सम्पदा तथा खनिज सम्पदा से समृद्ध सरगुजा राज्य के लघु वनोपज संग्राहकों का जीवन स्तर बहुत ही निम्न रहा है। आर्थिक स्तर निम्न रहने का कारण षिक्षा का अभाव, नये उपायों एवं सिद्धान्तों को समझने की जिज्ञासा एवं देश के विभिन्न भागों

से दूर करना आदि है। यहाँ के निवासी अपनी सहजता और सरल स्वभाव के कारण समीपस्थ राज्यों के अधिक विकसित एवं व्यावसायिक वृद्धि मे कुषल लोगों के शोषण का षिकार भी रहे। परिणामस्वरूप सरगुजा राज्य नैसर्गिक रूप में परिपूर्ण होने के बावजूद भी विकास की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाया।

सरगुजा क्षेत्र के लघुवनोपज संग्राहक श्रमिकों का वनोपज राष्ट्रीयकरण के पूर्व शोषण

सरगुजा जिले के आदिवासियों के शोषण का इतिहास सदियों पुराना है। सरगुजा जिले में वनोपजों के संग्रहण एवं विपणन में आदिवासियों, हरिजनों एवं अन्य कमजोर वर्ग के लोगों का शोषण ब्रिटिश काल से होता रहा है। स्वतंत्रता पष्चात स्थानीय व्यापारियों, महाजनों एवं कोचियों द्वारा भी इनके शोषण का एक लम्बा इतिहास है। वनोपज राष्ट्रीयकरण से पूर्व वनोपज संग्राहक श्रमिकों का शोषण संभवतः उनकी नियति बन गई थी। इतने अधिक शोषण के बावजूद भी यहाँ के वनोपज संग्राहक व्यापारियों, महाजनों, ठेकेदारों पर पूर्ण विश्वास करते थे तथा धन की आवश्यकता होने पर इस वर्ग पर ही निर्भर रहते थे, इससे उनका शोषण का चक्र चलता रहता था।

अषिक्षा और शहरी सभ्यता से दूर नहीं जंगलों में निवास करने वाले आदिवासियों का आर्थिक शोषण कोई नई बात नहीं थी। वनों से प्राप्त नैसर्गिक नैसर्गिक संपदा के लिए व्यापारी, ठेकेदारों और बिचौलियों द्वारा भारी शोषण किया जाता था।

सरगुजा जिले का बहुत बड़ा एवं महत्वपूर्ण लघु वनोत्पाद तेन्दूपत्ता है। बीड़ी को जिस आवरण से लपेटकर प्रस्तुत किया जाता है, वह तेन्दूपत्ता ही है। छत्तीसगढ़ प्रदेश में जैसे-जैसे बीड़ी व्यवसाय फैला, जंगलों से तेनदूपत्ता खरीदने का काम भी प्रारम्भ हुआ। तेन्दूपत्ता की मांग बहुत बढ़ गई और इसके साथ ही बढ़ते तेन्दूपत्ते की तुड़वाई का कार्य।

''राज्य में जैसे-जैसे बीड़ी का व्यवसाय फलने-फूलने लगा जंगलों से तेन्दूपत्ते का महत्व और बढ़ने लगा। राज्य से बाहर इसके निर्यात में भारी वृद्धि होने लगी। तेन्दूपत्ता व्यापारियों ने राज्य में एक ऐसी व्यवस्था कायम की कि नाममात्र की मजदूरी देकर आदिवासियों से तेन्दूपत्ता तुड़वाया जाने लगा। अषिक्षित और निरीह आदिवासी जो 20 तक गिनती नहीं जानता, इस व्यवसाय में ठगे जाते रहे और शोषण कुचक्र चलते रहे।''[6]

सरगुजा क्षेत्र के प्रमुख लघु वनोत्पाद तेन्दूपत्ता संग्राहक श्रमिकों के शोषण का एक लम्बा काल रहा है। सरगुजा क्षेत्र में तेन्दूपत्ता संग्राहक श्रमिकों का रियासत काल एवं उसके बाद भी अत्यधिक शोषण होता रहा, वनोपज व्यापार मे उनकी भूमिका मात्र संग्राहक की ही रह गई। तेन्दूपत्ता व्यापार में वन ठेकेदारों का ऐसा जाल बिछा हुआ था कि तेन्दूपत्ता संग्राहक श्रमिकों का प्रत्येक चरण में शोषण होता रहा था।

सरगुजा क्षेत्र में वनोपज संग्राहक श्रमिको के शोषण का एक पूरा चक्र बना होता था, जिसमें वनोपज श्रमिक फंसा होता था। तेन्दूपत्ता के व्यापार में ''व्यापारी फसल आने से पहले ही जंगलों में अपना जाल बिछा लेते हैं। उनके एजेंट गांव-गांव में फैल जाते हैं। फड़ों के माध्यम से आदिवासियों को कुछ एडवांस रकम देकर उन्हें एक प्रकार का बंधुआ बना लेते हैं ताकि वे समय पर ठेकेदार अथवा व्यापारी का काम करें। आदिवासियों की इस परम्परा एवं ईमानदारी का व्यापारी भरपूर फायदा उठाते हैं। जब तक तेन्दूपत्ते का काम चलता है, ठेकेदार या व्यापारी यह सुनिष्चित करते हैं कि अग्रिम की कुछ राषि आदिवासी मजदूर के ऊपर बकाया रहे। आदिवासियों को काम में लगानें के लिये उन्हीं के बीच का मुखिया, पटेल या अन्य प्रभावषाली व्यक्तियों का उपयोग होता है। उन्हीं के माध्यम से लाखों आदिवासियों पर बिना किसी निरीक्षण के व्यापारी अपना पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं।

तेन्दूपत्ता संग्राहक श्रमिकों का वनोपज व्यापार में तेन्दूपत्ता ठेकेदारों, फड़दारों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से शोषण किया जाता था। फड़दार पत्तियों की संख्या, गुणवत्ता, आदि के आधार पर श्रमिकों के साथ बेईमानी करते थे। वनोपज श्रमिकों को इस व्यापार में अपने श्रम का उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता था।

''जब सीजन में पत्ते की तुड़ाई होती है तो आदिवासी पत्तों की गस्त्रीयाँ बनाकर लाते हैं। गस्त्री में एक सौ पचास पत्ता होना चाहिए, ऐसी 1000 गस्त्रीयों को एक मानक बोरा के बराबर माना जाता है। पाँच पत्ता कम या अधिक होने को महत्व नहीं दिया जाता। परन्तु आदिवासी गिनती ही नहीं जानते। आदिवासी अपने मोटे अंदाज से ही गस्त्रीयाँ बनाते जाते हैं। अक्सर गस्त्रीयों में पत्ते अधिक ही होते हैं। आदिवासी श्रमिक सूर्योदय के पूर्व से तथा दोपहर तक जंगलों से पत्ते तोड़ते हैं तथा दोपहर के बाद पत्तों की

गस्त्रीयाँ बनाते हैं। गस्त्री पतली हुई तो फड़मुंषी वापस भी कर सकता है। फड़मुंषी पत्तों की गस्त्रीयाँ लेते सेमय बहुत हेराफेरी करता है। पत्तों मे खामियाँ निकाली जाती हैं, जैसे पत्ता दागदार है, आकार में छोटा है, निकाल दी जाती है और आदिवासी श्रमिकों को उनकी तुड़ाई का भुगतान नहीं मिलता, परन्तु ऐसे सभी पत्तों की गस्त्रीयाँ ठेकेदार स्वयं रख लेता है और उसे बाजार में बेच देता है।''[7]

गड्डियाँ लेते समय ''**पचोर व्यवस्था**'' चलती थी अर्थात् सौ पत्तों की एक गड्डी होती थी और ऐसी ही गड्डियों पर पाँच गड्डी ऊपर से मुफ्त में देना होता था। यह सामान्य परम्परा बन गई थी। परन्तु ठेकेदारों से फड़दार इन अतिरिक्त गड्डियों का पैसा भी मिलता था। वर्तमान में भी यह व्यवस्था किसी न किसी रूप में जारी है।

इसके अलावा गड्डियों की गिनती में भी वनोपज संग्राहकों को ठगा जाता था। सौ गड्डी हो तो फड़दार सत्तर, अस्सी या पचास कुछ भी गिन सकता है। अनपढ़ आदिवासी कुछ नहीं समझता, वह तो सिर्फ यह देखता है कि उसे उसकी जरूरत लायक पैसा मिलता है या नहीं। श्रम का मूल्य यहाँ नहीं होता। शोषण का यह हाल है कि दिन भर एक आदिवासी सपरिवार तुड़ाई के कार्य में लगा रहता है और इसके बाद घण्टों बैठा रहता है। फड़दार के पास गड्डियाँ जमा करवाने हेतु मुंह अंधेरे काम शुरू होता है और सूरज ढलने पर आदिवासी घर जाता है। जंगलों में आदिवासी के लिए ओव्हरटाईम की व्यवस्था तो अकल्पनीय होती थी।

सरगुजा क्षेत्र के वनोपज श्रमिकों का फड़दार द्वारा उनके वेतन भुगतान में भी उनसे बेईमानी की जाती थी तथा उनका शोषण किया जाता था। ठेकेदार उनके अषिक्षित होने का लाभ उठाकर उन्हें कम मजदूरी देता था। तेन्दूपत्ता श्रमिक शासन की न्यूनतम वेतन जानकारी के अभाव, अषिक्षा एवं गैर जागरूकता के कारण इस व्यापार में ठगा जाता था तथा उसका जीवन स्तर निम्न बना हुआ था।

''आदिवासियों को दैनिक वेतन के आधार पर रखा जाता है। पर भुगतान साप्ताहिक होता है। अत: जब सप्ताह के अन्त मे गड्डियों का टोटल लगाया जाता है तो आदिवासी फिर बेवकूफ बनता है। पुन: गिनती में हेराफरी की जाती है। तेन्दूपत्ते के व्यापार में ठेकेदारों को ऐसा जाल बिछा होता है कि आदिवासी कदम-कदम पर ठगा जाता है। पत्तो का ग्रेडेशन करना हो, पत्तों का सुखाना हो या बारों में भरना, नाम मात्र का पैसा देकर मुफ्त के भाव यह सब काम करवा लिया जाता है। इस कुचक्र में कई कर्मचारी भी शामिल हो जाते हैं तथा उनका आर्थिक शोषण होता ही है। परन्तु प्राय: यह देखने में आता है कि ठेकेदार या उनके आदमी आदिवासी लड़कियों का यौन शोषण तक करते हैं।''[8]

इन कुचक्रों पर वार करने के लिए शोषण के तरीकों का पूरा अध्ययन जरूरी है और फिर उससे बचने के व्यवहारिक तरीके इजाद करने की जरूरत है।

''लघु वनोपज के व्यापार से बिचौलिए निजी व्यापारियों की समाप्ति और वनोपज के संगंहण में लगे आदिवासी, हरिजन, मजदूरों को संरक्षण देने के लिए मध्यप्रदेश के पूर्ववर्ती अनुसूचित जाति एवम् जनजाति आयोग से बिचौलियों तथा मध्यस्थों द्वारा आदिवासी मजदूरों के शोषण के बारे में पहली बार आपत्ति करते हुए लिखा।''[9]

लघु वनोपजों के संग्राहक आदिवासियों को शोषण से बचाने हेतु सहकारी प्रयास

छत्तीसगढ़ (तत्कालीन म.प्र.) में 1964 के पूर्व तेंदूपत्ता के व्यापार पर वन विभाग का नियंत्रण नगण्य प्राय था। व्यापारी बहुत ही कम कीमत पर एक बड़े क्षेत्र का ठेका प्राप्त कर लेता था एवम् श्रमिकों को मनमाने ठंग से मजदूरी देकर तेन्दूपत्ता संग्रहित कराता था। अत: तेन्दूपत्ता के इस व्यापार में आदिवासी एवं पिछड़े वर्ग के लोगों को शोषण से मुक्त कराने के लिए ''28 नवंबर 1964 में 'मध्यप्रदेश तेंदूपत्ता अधिनियम' लागू करके राज्य शासन ने तेंदूपत्ते के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किया।''[10]

''इसके बाद 21 जून 1969 को संपूर्ण मध्यप्रदेश में लघु वनोपज गोद के व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त किया गया। 21 जून 1969 को हर्रे का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।''[11]

इस अधिनियम द्वारा श्रमिको कां उचित दर पर पारिश्रमिक तथा उत्पाद को उचित मूल्य दिलाने के लिए उचित प्रावधान किया गया। इस कार्यवाही से राज्य शासन के राजस्व में भी आषातीत वृद्धि होती रही है। उक्त अधिनियम के मुख्य उद्देष्य निन्नानुसार रहे है-

''(अ) राज्य के सहकारी वनों में अधिक मूल्यवान एवं विषाल मात्रा में वन उपज उत्पन्न की जाती है, जिसके व्यापार के विनियमन (Regulate) करने के लिए कोई प्रावधान नहीं है जिससे व्यापार का मुनाफा ठेकेदारों या बिचौलियों (मध्यस्थों) द्वारा शोषण कर लिया जाता है। राज्य के ऐसे आगम (Proceeds) के लिए विधिपूर्ण विनियोग द्वारा राज्य के संसाधनों में वृद्धि करने हेतु वन उपज के व्यापार को विनियमित करने के लिए अधिनियम की आवश्यकता है।

(ब) ऐसे व्यक्ति जिनकी रोजी-रोटी का खास साधन वनउपज का संग्रह है, जिनमें आदिवासी जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के लोग हैं, उन्हें उनकी संग्रहित वन उपज का यथार्थ मूल्य उपलब्ध नहीं हो पाता है। इसलिए भी वन उपज के व्यापार का विनियमन एवं राज्य का एकाधिकार होना अवाष्यक है।''[12]

''उक्त अधिनियम की सफलता से प्रभावित होकर वन उपज व्यापार विनियमन अधिनियम 1969 लागू किया गया, क्योकि राज्य के आदिवासी तथा पिछड़े हुए लोगों को जिनकी जीविका का मुख्य साधन वनोपज संग्रहण ही है। ठेकेदारों तथा मध्यस्थ व्यक्तियों से आदिवासियों को पर्याप्त प्रतिलाभ नहीं मिल पाता था एवं अधिलाभ का अधिकांष भाग ठेकेदारों तथा अन्य मध्यस्थ व्यक्तियों द्वारा हड़प लिया जाता था। इस अधिनियम के पारित हो जाने से तेन्दूपत्ता के साथ गोंद, हर्रा और सालबीज का भी एकाधिकार शासन के पास आ गया।''[13]

तेन्दूपत्ता सरगुजा क्षेत्र का महत्वपूर्ण लघु वनोत्पाद है, जिसका उपयोग राज्य में बीड़ी बनाने में किया जाता है। प्रारंभ में ब्रिटिश काल में रियासतों द्वारा एवं स्वतंत्रता बाद तेंदूपत्ता श्रमिकों का वनोपज ठेकेदारो, बिचौलियों एवं व्यापारियों द्वारा व्यापक शोषण किया जाता था, यद्यपि शासन द्वारा लघु वनोत्पादों के राष्ट्रीयकरण एवं उसके पष्चात विभिन्न नीतियों के निर्माण से लघु वनोत्पाद श्रमिकों के शोषण में कुछ कमी आयी है, किंतु अभी भी उनका शोषण किसी ना किसी रूप में जारी है।

अधिक मांग एवं उपयोगिता को देखते हुए सरकार द्वारा वनोपज का राष्ट्रीयकरण किया गया था, किन्तु इसके बाद भी तेंदूपत्ता संग्रहण ठेकेदार तेंदूपत्ता से ग्रहण में सक्रिय रहे तथा तेंदूपत्ता संग्रहण में ठेकेदारी व्यवस्था चलती रही और ठेकेदार तेंदूपत्तों की बोली लगाते रहे तथा आदिवासियों का शोषण जारी रहा। इस व्यवस्था का दुष्परिणाम यह हुआ कि मुनाफा सरकार के पास जाने के जगह ठेकेदारों के पास जाने लगा। राष्ट्रीयकरण के बाद ठेकेदारों की बजाय विभागीय संस्थायें ही आदिवासियों का शोषण करने लगीं और ज्यादा मुनाफा सरकार के पास जाने लगा तथा सरकार उसका लाभ जनता तक नहीं पंहुचा पाई। अतः आदिवासियो के शोषण का कुचक्र जारी रहा। इन कुचक्रों पर वार करने के लिए शोषण के तरीकों का पूरा अध्ययन जरूरी है और उनसे बचने के व्यवहारिक तरीके इजाद करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. इण्डियन जनरल ऑफ माइनर फारेस्ट प्रोड्यूस, इन्स्टीट्यूट ऑफ डेसीडियस फॉरेस्ट, जबलपुर, मध्यप्रदेश, वाल्यूम 1, नंबर 1-2, जनवरी-जून 1991, पृष्ठ संख्या 11-12.
2. शर्मा डॉ. ब्रह्मदेव, 'आदिवासी विकास एक सैद्धान्तिक विवेचन', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1982, पृष्ठ संख्या 91-92.
3. कुमार प्रमिला, ''मध्यप्रदेश एक भौगोलिक अध्ययन'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2000, पृष्ठ संख्या 142-143.
4. शुक्ला डॉ. सुरेष चन्द्र एवं शुक्ला डॉ. अर्चना, 'छत्तीसगढ़ का समग्र इतिहास', शिक्षादूत ग्रंथागार प्रकाशन, रायपुर, 2018, पृष्ठ संख्या 277-278
5. त्रिपाठी डॉ. मंजू, 'छत्तीसगढ़ की राजतंत्रीय व्यवस्था: सरगुजा समूह की रियासतें', वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, 1999, पृष्ठ संख्या 153.
6. नायडू, पी.आर., ''भारत के आदिवासी विकास की समस्यायें'', राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ संख्या 156.
7. वही, पृष्ठ संख्या 157.
8. वही, पृष्ठ संख्या 157.
9. रिपोर्ट ऑफ द कमिशनर फॉर एस टी, एस सी फिफ्त एण्ड सिक्सथ रिपोर्ट, 1955/1983-84, पृष्ठ संख्या 170 एवम् 50.

10. मध्यप्रदेश तेन्दूपत्ता (व्यापार विनियमन) अधिनियम, 1964 (वर्ष 1964 का 29) (म.प्र. शासन वन विभाग की अधिसूचना क्र. 14334-ग. 64 दि. 28 नवम्बर 1964, राजपत्र असाधारण म.प्र. दि. 28 नवम्बर 1964, पृ. 3368.
11. मध्यप्रदेश वन उपज (व्यापार विनियमन) अधिनियम, 1969, क्रमांक 9/1969, (म.प्र. राजपत्र असाधारण दि. 02 अगस्त 1969, पृ. 1943-1953, अघिसूचना क्र. 21438, दि. 01 अगस्त 1969, भोपाल.
12. मध्यप्रदेश वन उपज (व्यापार विनियमन) अधिनियम, 1969, अध्यादेश क्रमांक 9/1969 पृष्ठ संख्या 363.
13. सेन, डी.पी. एवम् सेन वरूणा, मध्यप्रदेश फॉरेस्ट मेन्यूअल, दिलायर्स होम्स, इन्दौर, वर्ष 1993, पृष्ठ 162.

गुप्तोत्तर काल के पश्चात् शूद्रों की स्थिति : एक अध्ययन

मुकेश कुमार पासवान

यू0 जी0 सी0 नेट, शोधार्थी (इतिहास विभाग), भू0 ना0 मं0 वि0 वि0 मधेपुरा (बिहार)

सारांश

8वीं से 12वीं शताब्दी के मध्य भारत में शूद्रों के सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए। इस काल को प्राचीन युग का अंत एवं पूर्व मध्य युग का आरंभ माना जाता है। उत्तर भारत के इतिहास में यह काल राजपूत युग के नाम से विख्यात है। इस काल में कृषकों के रूप में शूद्रों का रूपांतरण और वैश्यों के स्तर में, शूद्र स्तर तक की गिरावट से वर्ण व्यवस्था में विशिष्ट परिवर्तन हुआ।

मूल शब्द: रूढ़िवादिता, असहिष्णुता, संकीर्णता, वर्जनशीलता, अनुदारता।

प्रस्तावना

गुप्तोत्तर काल के पश्चात् प्रचीन सामाजिक व्यवस्था नष्ट हो गई थी। चार मूल वर्णों के स्थान पर हिन्दुओं में अनेक नवीन जातियों और उप-जातियों का प्रादुर्भाव हो गया था। ये जातियां जन्म, निवास स्थल, खान-पान के भेद-भाव, रीति-रिवाजों, धार्मिक संस्कारों आदि से संबंधित थी। उद्योग-धंधों के आधार पर नई-नई जातियां बनने लगी थी। प्रादेशिक सीमाओं के कारण जातियां अनेक उपजातियों में विभक्त हो गई थी। ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था, वे आध्यात्मिक एवं धार्मिक ज्ञान के स्रोत माने जाते थे, वे राजाओं के मंत्री, सभासद्, परामर्शदाता, राजपुरोहित, एवं भविष्यवक्ता होते थे। वे अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ-अनुष्ठान, धार्मिक कार्य यजमान-वृति के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते थे।

समाज में ब्रह्मणों के पश्चात् क्षत्रियों का स्थान काफी महत्वपूर्ण था। क्षत्रिय शासन तथा सैन्य कार्य करते थे। वैश्य व्यापार, वाणिज्य तथा लेन-देन का कार्य करते थे। शूद्र कृषि एवं अन्य प्रकार के व्यवसाय तथा शिल्प कार्य करते थे। सामाज में अछूतों का भी एक वर्ग था, जो गाँव तथा नगर से बाहर निवास करते थे। ये जनसाधरण युद्धों, सामंतों, जागीरदारों और राजाओं के विलासमय जीवन का भार वहन करते थे। जाति व्यवस्था में जटिलता एवं संकीर्णता उत्पन्न होने से अनेक जातियों तथा उप जातियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिसकारण से जाति व्यवस्था में जटिलता उत्पन्न होती जा रही थी। प्रत्येक जाति में अपने संस्कारों धर्म तथा रीति-रिवाजों की रक्षा के लिए नियम बना ली थी, जो सवर्था अनुलंघनीय माने जाते थे। रूढ़िवादिता, असहिष्णुता, संकीर्णता, वर्जनशीलता आदि अवगुण उत्पन्न हो गये। यहाँ तक कि एक ही जाति से उत्पन्न विभिन्न उपजातियों में भी वैवाहिक संबंध तथा खान, पान का निषेध व्यवहार में आने लगा। फलत: सामाजिक प्रगति अवरूद्ध हो गई। पूर्व काल में जो भी विदेशी भारत में आये वे हिन्दु समाज में समा गये, किन्तु अब भारतीय समाज विधर्मियों को आत्मसात करने में असमर्थ हो गया। शूद्रों के ऊपर अनेक प्रकार की यात्नाएँ थोपे जाने लगे, इससे बन्धुत्व तथा राष्ट्रीयता की भावना के विकास में भी बाधा पहुँची। समाज की एकता नष्ट हो गई। व्यापकता और प्रगतिशीलता का स्थान जड़ता एवं संकीर्णता ने ले ली। सामाजिक ढ़ांचा विघटित होने ला। बहुसंख्यक प्रजा शूद्र की श्रेणी में थे जिसका खामियाजा उन्हें तुर्कों के हाथों भुगतना पड़ा।

गुप्तोत्तर काल के पश्चात् शूद्रों की सामाजिक स्थिति

सामाजिक संरचना: परपंरा के अनुसार भारतीय समाज चार वर्णों ब्रह्मणों, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभाजित था। परंपरागत चार वर्णो के अतिरिक्त उस काल में जातियों एवं प्रजातियों की संख्या में बेतहासा वृद्धि हुई, उसकी पुष्टि न केवल धार्मिक ग्रंथों, अभिलेखों तथा साहित्यिक ग्रंथों से होती है बल्कि विदेशी यात्रियों- हेवनसांग, अल-इदरिसी, अलमसूदी, खुददव अलबरूनी आदि के विवरण से भी प्रमाणित होती है। खुददर्वा के अनुसार हिन्दु समाज सात जातियों में विभक्त था, ये जातियां 1. सब कफरिया, 2. ब्रह्म, 3. कतारिया, 4. बेसुर 5. सुदरिया 6. संडलिया एवं 7. लइद थे। अल-इदरिसी लहूद के स्थान पर जकिया नामक जाति का उल्लेख करता है। इन सात जातियों में से दुसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवी एवं छठी जाजियाँ कमश: ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और चंडाल जातियों का प्रतिनिधित्व करती है। प्रथम जाति सबकुफरिया से तात्पर्य सम्भवत: सत्क्षत्रियों से है। अलबरूनी का वर्णन स्पष्ट है वह समाज के चार वर्णो के अतिरिक्त आठ प्रकार के अंतयजों का चर्चा करता है। कल्हण की राजतरंगिणी में तो 64 उपजातियों का उल्लेख मिलता है। इन विवरणों से यह सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि पूर्व मध्यकालिन समाज में जाति प्रथा कितनी प्रबल थी।

वैश्य अभी मुख्य रूप से व्यापार करते थे परन्तु शूद्रों की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। वे शिल्प और भृति के अतिरिक्ति बड़े पैमाने पर कृषि में भी संलग्न हो गये तथापि उनकी सामाजिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन आया। ब्रह्मणों की सेवा करना उनका धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था। उनपर अनेक प्रकार के समाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक प्रतिबंध लगाये गए थे, जिनका पालन करना उनके लिए आवश्यक था। दासों और अंतयजों की स्थिति भी असंतोषजनक थी। समाज में छूआ-छूत की भावना प्रबल थी, अंत्यजों को जाति व्यवस्था से बाहर रखा गया। अस्पृश्य जातियाँ जैसे—चाण्डाल।

आदि नगर की समाी में बिना सूचना दिये प्रवेश नहीं कर सकते थे, इस समय जाति व्यवस्था पहले से अधिक कठोर और अनुार बन गई थी। पहले की तरह विदेशियों (मलेच्छो, अरबो, तुर्को) को भारतीय समाज में सम्मिलित नहीं किया गया। विवाह, खान-पान संबंधी नियम भी जाति व्यवस्था के अनुरूप ही संचालित हाते थे सामान्यत: अपनी जाति में ही विवार करने की परंपरा थी, अन्तर्जातिय विवाह प्रतिबंधित था तथापित अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों के उदाहरण मिलते हैं। ऐसे विवाहों को समाज में अच्छा नहीं माना जाता था। सामंती व्यवस्था के विकास के साथ समाज में बाल विवाह, बहु-विवाह, सती प्रथा एवं जौहर प्रथा जैसी कुप्रथाओं ने अपना प्रभाव बना लिया था, इन कुप्रथाओं के कारण स्त्रियों की समाजिक स्थिति में काफी गिरावट आ चुकी थी। सामान्य स्त्रियों को शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। समाज में गणिकाओं, वैश्याओं और देवदासियों का भी एक वर्ग था, स्त्रियाँ स्वतंत्र नहीं थी, उनपर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगा दिए गए थे। सामान्यत: उन्हें भोग-विलास का वस्तु समझा जाने लगा था। अस्पष्टयता की भावना एवं उच्च वर्ग के लोगों द्वारा निम्न वर्ग के लोगों की शोषण की प्रकिया ने भारतीय समाज को अन्दर से खोखला बना डाला था। इनता ही नहीं समाजिक विभेद के कारण अधिकांश जनता में देश प्रेम की भावना का अभाव होता गया, फलत: सामंतों को जनता का सहयोग नहीं मिल सका। इस प्रकार कोई भी राज्य जनसमर्थन के अभाव में विदेशी आकमणकारियों का सामना नहीं कर सका, जिसका खामियाजा तुर्को के आकमण से भुगतना पड़ा। प्रो0 निजामी ने ठीक ही लिखा है कि ‘‘भारतियों के पराजय का मुख्य कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था और अन्यायपूर्ण जाति भेद थे, जिन्होंने अनेक सम्पूर्ण संगठन को असुरक्षित एवं दुर्बल बना दिया। जाति-भेद और आडम्बरपूर्ण बंधनों ने उनकी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक एकता की भावना को नष्ट कर दिया।

गुप्तोत्तर काल के पश्चात् शूद्रों की आर्थिक स्थिति

गुप्तोत्तरकालीन भारत की अर्थ व्यवस्था का मुख्य आधर कृषि ही था। इस काल में भूमि-स्वामित्व एक विवादास्पद विषय है तथा समकालीन स्त्राोत इसे और भी भ्रामक बना देते है। 9वीं शदी के महत्वपूर्ण स्मृतिकार मेधतिथि उदाहरणस्परूप जहाँ एक जगह लिखते हैं कि राजा भूमि का स्वामी था वही दूसरी जगह लिखते है कि भूमि उसी की होती थी, जो उसे साफ करके कृषि योग्य बनाता है। गुप्तोत्तरकालीन भारत में जमीन का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया। भूमि के आधार पर ही प्रशासन और अर्थ व्यवस्था का गठन हुआ, जिसने सामंती वयवस्था का शिकंजा समाज पर कस दिय। भूमि का वास्तविक स्वामी राजा होता था, इस अधिकार से वह खेती करने वालों से भू-राजस्व या लगान लेता था। खेती करने के लिए राजा भूमिया वर्ग (जमीन पर पैतृक अधिकार वाले)

तथा गिरसिया वर्ग (जमीन पर सिर्फ संरक्षण के अधिकार वाले) को देता था। किसान जमीन व पैतृक दावा नहीं कर सकते थे, उन्हें लगान के बदले खेती करने का अधिकार था। इस समय जमीन का विभाजन अनेक श्रेणियों में किया गया था। किसान फसल बटाई अथवा लगान के बदले की अनुमति सभी वर्णों को दी गई है, किन्तु ह्वेनसांग, खुर्दादबेह, अलरसिदी, के कथनों से स्पष्ट है कि कृषि करना शूद्रों का ही व्यवसाय था। स्मृति तथा निबंधों में साधारणतया सेवा और शिल्प शूद्रों के व्यवसाय निर्धारित किये गये है। मेधातिथि के अनुसार शूद्र के लिए आवश्यक नहीं कि वह द्विजातियों की सेवा से आजीविका चलाये। इस काल में स्मृतियों तथा निबंधों में भी सेवावृत्ति के अतिरिक्त शूद्र के लिए अनेक व्यवसाय निर्धारित किये गये है,जिनसे उनकी आर्थिक स्थिति में निश्चित सुधार हुआ। अति, देवल तथा प्रासर ने शूद्र के लिए सेवा के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन, वाणिज्य तथा शिल्प उपयुक्त व्यवसाय बताये है। उसना ने व्यापार और शिल्प को शूद्र की आजीविका का साधन बताये है। वृहस्पति के परिभाषा के अनुसार स्वर्णकार, लोहार, चर्मकार (चमार), तंतुवाय (जुलाहा) के कार्य शिल्पों के अन्तर्गत आते हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और पद्म पुराण के अनुसार कुम्भकार, बढ़ई, संगतरास (पत्थर का काम करने वाला) लोहार इत्यादि से संबंध शिल्प शूद्रों के लिए निर्दिष्ट किये गये है। तत्कालिन स्मृतियों तथा निबंधों में कुल मिलाकर सभी उद्योग और व्यवसाय शूद्रों की आजीविका के साधान बताये गये है।

आर्थिक दृष्टि से इस युग की महत्वपूर्ण विशेषता है कृषि कार्य का आमतौर पर शूद्रों का व्यवसाय होना। ह्वेनसांग तथा इब्नखुर्दाद्रब ने कृषि शूद्रों का सामान्य व्यवसाय बताया है। वे कृषि का संबंध वैश्यों से नहीं बताते। व्यास, पाराशर और वेजयंती में एक कृषक वर्ग का उल्लेख है जिन्हें कुटूबी' कहा गया है। इन्हें शूद्रों के अंतर्गत रखा गया है। एक और वर्ग 'कीनाश' का उल्लेख आता है। प्राचीन ग्रंथों में कीनाश वैश्य है। किन्तु 8वीं शताब्दी के नारद स्मृति के टीकाकार असहाय ने कीनारों को शूद्र बतलाया है। इन किसानों को दो वर्गो में बांटा जा सकता है। (1) स्वतंत्र किसान (संभवत्: कुटुंबी इसी श्रेणी के थे) जो भूमि के स्वामी थे (2) किसान जो बटाई पर खेती करते थे। उन्हें 'तयथसीरिन या 'सीरिन' कहा गया है। उन्हें उपज का 1/3 श्स 1/4 भाग मिलता था। किसान मजदूरों को उपज का 1210 से 124 भाग तक मिलताथा। अधिकतर शूद्र कृषक इसी श्रेणी के थे। आदिवासी कृषक वर्ग को हिन्दू समाज में सामाशिट होने पर शूद्र वर्ण में रखा गया। हर्षचरित में आदिवासी कृषकों का उल्लेख है। गुप्तकाल के अभिलेखों में शिल्पी (बढ़ई) के खेत का उल्लेख है। इस काल में अनेक शिल्पी कृषि को आजीविका के अतिरिक्त साधन समझते थे। निसंदेह इस युग में शूद्र कृषकों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। वे बड़े भू-स्वामी भले ही न रहे हो। किन्तु स्वतंत्र थे। वे स्वतंत्र खेती करते और अनेक प्रकार के कर दते थे। करों की अधिकता के कारण वे आर्थिक दृष्टि के उदभव एवं प्राचीन जातियों के लोप के पीछे आर्थिक कारण को ही जिम्मेदार ठहराया। गुप्तोत्तर कालीन समाज में कृषकों के रूप में शूद्रसें का रूपांतरण और वैश्यों के स्तर में शूद्र स्तर तक की गिरावट से वर्ण व्यवस्था में विशिष्ट परिवर्तन हुआ।

गुप्तोत्तरकाल के पश्चात शूद्रों की धार्मिक स्थिति

कर्मकाण्ड, जटिल वर्णाश्रम व्यवस्था और यज्ञों में व्यापक पैमाने पर पशुबलि व्याप्त थी। इसकी पुष्टी न केवल धार्मिक ग्रन्थों अभिलेखों तथा स्मृतिग्रंथों से होती है, बल्कि विदेशी यात्रियों, ह्वेनसंग, अलमसूढ़ी अलवसुनी आदि के विवरण से भी यह प्रमाणित होता है। अलवरूनी के अनुसार वैश्यों और शूद्रों को वेदों के अध्ययन य श्रवन की अनुमति नहीं थी। वास्तविक स्थिति यही मालूम पड़ती है। अलवरूनी ने आगे लिखा है कि यदि यह सिद्ध हो जाए कि वैश्य और शूद्रों ने वेद-पाठ सुना हे तो ब्राह्मण उन्हें न्यायाधीश के पास ले जाते और उनकी जीभ काट दी जाती थी।

कुछ तो सुधरती हुई आर्थिक स्थिति की वजह से और कुछ इसलिए कि बदलती हुई परिस्थितियों ने समाज में शूद्रों की संख्या बढ़ गई थी और ब्राह्मणों को यजमानों से आर्थिक लाभ था, शूद्रों की धार्मिक स्थिति में सुधार हुआ। शूद्रों को दो वर्णों में विभक्त किया यगा- सत् और असत। सत् शूद्रों को पौराणिक विधि से संस्कार, पंचमहायज्ञ इत्यादि धार्मिक कृत्य करने का अधिकर दे दिया गया। ''मूर्त धर्म'' अर्थात समाज हित के कार्या जैसे जलदान के लिए तालाब खुदवाना, छाया के वृक्ष लगाना, दान देना इत्यादि कृत्यों से वे पूण्य प्राप्त कर सकते थे। इस युग में वैष्णव और शैव धर्म जनसाधारण के प्रति सहिष्णु एवं उदार थे। समाज के निर्देशकों ने बदलती हुई परिस्थितियों में धर्म को लचीला बना दिया। वैदिक धर्म की श्रेष्ठता को मानते हुए वैष्णव और शैव संप्रदायों को ब्राह्मण धर्म का ही अंग मान लिया गया। वैदाध्ययन तथा वैदिक यज्ञ के संबंध में शूद्रों पर जो प्रतिबंध थे वे तो अब भी बने रहे, किंतु विष्णु और शिव का नाम स्मरण, तीर्थयात्रा, दान जैसे कर्म शूद्रों के लिए स्वर्ग प्राप्ति एवं मोक्ष के सुलभ साधन बताए गए। इस अत्रलोकप्रिय धर्म का तत्कालीन पुराणों ने प्रचार किया। वेद श्रवण के स्थान पर पुराणश्रवण को शूद्रों के ज्ञन का साधन बताया गया

और छठी शताब्दी ई0 से तांत्रिक धर्म का प्रसार होने लगा। इन मंत्रों में मातृदेवी की प्रधानता दी गई। तांत्रिक पूजा के लिए स्त्री और शूद्र सभी दीक्षित हो सकते थे। शूद्रचार्य शूद्रों को दीक्षित कर सकते थे।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः धार्मिक ग्रंथों, तात्कालीन अभिलेखों, साहित्यिक ग्रंथों तथा विदेशी यात्रियों के वृतांत से जानकारी प्राप्त होता है कि कृषकों के रूप में शूद्रों का रूपान्तरण और वैश्यों के स्तर में शूद्र स्तर तक की गिरावट से वर्ण व्यवस्था में विशिष्ट परिवर्तन हुआ। इस युग का सर्वाधिक विषमकारी परिवर्तन जातियों का प्रगुणन था, जिसने सभी वर्णो को प्रभावित किया। क्षत्रिय ब्राह्मणों के समान समझे जाते थे, किन्तु खेतिहर क्षत्रीय और वैश्य बराबर थे, परन्तु वे शूद्रों से बहुत ऊँचे नहीं थे। इन्हें वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था और उनके धार्मिक कृत्य पुराणवत् मंत्रों द्वारा होते थे, वैदिक मंत्रों द्वारा नहीं। परन्तु शूद्रों के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति असंतोषजनक थी उनपर अनेक प्रतिबंध लगा दिये गये थे। समाज में दास और वर्णसंकर जातियाँ भी थी, छूआ-छूत की भावना प्रवबल थी, चाण्डालों को नगर से बाहर विशेष चिन्हों से युक्त मकानों में रहना पड़ता था उनका संसर्ग वर्जित था। जाति व्यवस्था कठोर और अनुदार बना दी गई थी। वर्ण व्यवस्था एवं जाति प्रथा पर आधारित सम्पूर्ण भारतीय समाज विभिन्न जातियों और वर्णो में विभक्त था। अस्पष्टयता की भावना एवं उच्चवर्ण के लोगों द्वारा निम्न वर्ण के शोषण की प्रकिया ने भारतीय समाज को अन्दर से खोखला और कमजोर बना दिया था। सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में अनेक बुराईयाँ (ृराबखोरी, बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा, जुआबाजी, दिखावापन इत्यादि) प्रवृट हो गई थी। सामाजिक विभेद के कारण अधिकांश जनता में देश-प्रेम की भावना का अभाव था, जिसका मुख्य कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था एवं अन्यायपूर्ण जाति भेद थे, जाति भेद और आडंम्बरपूर्ण बंधनों ने उनकी सामाजिक एकता की भावना को पूर्णतया नष्ट कर दिया था। अहिंसा की नीति का प्रचार करते थे, तो वही ब्राह्मण धर्म कर्म की अपेक्षा भाग्य को कही अधिक महत्वपूर्ण मानता था। रूढ़िवादिता, असहिष्णुता, संकीर्णता, अनुदारता, वर्जनशीलता आदि अवगुण उत्पन्न हो गये। फलतः सामाजिक प्रगति अवरूद्ध हो गई, इससे बंधुत्व तथा राष्ट्र की एकता नष्ट हो गई। जिसका दण्ड उन्हें तुर्को के आकमण से भुगतना पड़ा।

सन्दर्भ सूची

1. आर.एस.शर्मा, शोसल चेंज इन अर्ली मेडिवल इंडिया (सर्का एडी 500-1200)
2. आर.एस.शर्मा, शूद्राज इन संशिएट इंडिया, परिशिष्ट-2
3. पाणिनि, VI 2.62.
4. अर्थशास्त्र, II 4.
5. आर.एस.शर्मा, शूद्राज इन संशिएट इंडिया, पृ. 167-78
6. जटाशंकर प्रसार मिश्र, अलबेरूनी के भारत का राजनीतिक और सामाजिक अध्ययन, काशी हिन्दू वि0 वि0 वाराणसी, 1963
7. आर भूषण, एंसिएंट इंडियन हिस्ट्री, श्री पबिल्शंस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-2010
8. के.एल. चंचरीक दलितस् इन एंसियंट एण्ड मेडिवल इंडिया, श्री एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2010
9. एस. गुप्ता, भारत में जाति व्यवस्था, सूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली-2011
10. रश्मि पाठक, प्राचीन भारत का समााजिक इतिहास, अर्जून पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2012
11. देव प्रकाशन, जातिगत सामाजशास्त्र, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2017
12. के.सी. जैन, प्राचीन भारत का इतिहास : 650 ई0 में से 1200 ई0 तक : यूनिवर्सिटी पब्लिकेश्न, नई दिल्ली, 2012
13. के. एल. चंचरीक, भारतीय दलित जाति कोष, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2012.

मुजफ्फरपुर जनपद की बस्ती के स्थानिक वितरण में स्त्री/पुरुष साक्षरता का विवेचनात्मक अध्ययन

सुनील कुमार

शोध छात्र, भूगोल विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रस्तावना

मानव जीवन रूपी ढाँचा ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसके दो पहलू हैं जैविक तथा जीवों से निमित सामाजिक एवं सांस्कृतक तथा आर्थिक, जहाँ जीवन के विकास एवं संवर्द्धन के लिए भोजन एवं प्रजनन जैविक जीवन को बनाये रखने के लिए आवश्यक है, वहीं मानव जीवन में शिक्षा समाजिक, सांस्कृतिक एंव आर्थिक संरचना के लिए अति आवश्यक है। असाक्षरता या अशिक्षा मानव को अज्ञानी, रूढ़िवादी धर्मभीरू बनाता है साथ ही अशिक्षा उसके स्वाभिमान पर कुढ़ाराघात भी करता है। अज्ञानता के कारण गरीबी एवं मानसिक एकाकीपन आता है। शांतिपूर्ण एवं मैत्रीपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, आर्थिक विकास एवं राजनैतिक प्रौढ़ता में अवरोध आता है।

शिक्षा व्यक्ति के उन गुणों का विकास करती है जिससे वह अपनी समस्याओं का समाधान कर सके एवं अपने पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित कर सके। साक्षरता का अन्य जनांकिकीय लक्षणों जैसे उत्पादकता, मर्त्यता, व्यवसाय आदि पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए साक्षरता प्रतिरूप समाज के सामाजिक आर्थिक विकास की गति का सूचक है। किसी विशेष क्षेत्र में जनसंख्या के अनुपात के रूप में साक्षरों की संख्या (अर्थात ऐसे व्यक्तियों की संख्या जो किसी भाषा को समझ कर लिख-पढ़ सके) से है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र मुजफ्फरपुर का अक्षांशीय विस्तार 26°7'21" उत्तर से उत्तरी अक्षांश एवं देशांतरीय विस्तार 85°23'26" पूर्व से पूर्वी देशांतर के मध्य हे। यह तिरहुत प्रमंडल का भाग है एवं प्रमंडल का मुख्यालय भी है। इसके उत्तर में मोतिहारी एवं सीतामढ़ी जिला, दक्षिण में वैशाली एवं सारण, पूर्वी भाग में दरभंगा एंव समस्तीपुर तथा पश्चिमी भाग में सारण एवं गोपालगंज जिला आते हैं। अध्ययन क्षेत्र मुजफ्फरपुर का कुल क्षेत्रफल 3172 वर्ग किमी0 है। इसमें 2 सबडिवीजन 16 प्रखंड ओर 1796 गांव है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र मुजफ्फरपुर में साक्षरता की यथास्थिति का विश्लेषण करना है जो कि शिक्षा के स्तर, आयु संरचना, जनसंख्या वृद्धि, विकास आदि को प्रभावित करती है। इस अध्ययन द्वारा यह हभी स्पष्ट करना है कि पिछले दो दशकों से इस क्षेत्र की साक्षरता दर में किस प्रकार के परिवर्तन हुए हैं साथ ही पुरुष-स्त्री साक्षरता दर में जो अन्तर है वह कितना कम हुआ है तथा साक्षरता से किस प्रकार के सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन आये हैं।

साक्षरता

1991 की जनगणना के अनुसार देश की कुल साक्षरता दर 52.21 प्रतिशत था जिसमें पुरुष 64.13 प्रतिशत तथा स्त्री साक्षरता 39.29 प्रतिशत था। 2001 में देश की कुल साक्षरता दर में 12.63 प्रतिशत की वृद्धि हुई और साक्षरता दर 64.84 प्रतिशत हो गयी, जिसमुं पुरुष साक्षरता दर में 11.13 प्रतिशत की वृद्धि हुई आरैर पुरुष साक्षरता दर 75.26 थी वहीं स्त्री साक्षरता 53.67 प्रतिशत थी। 2001 की तुलना में जनगणना 2011 में साक्षरता दर में 9.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई और साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत रही जिसमें पुरुष साक्षरता दर 6.88 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 82.14 प्रतिशत रही वहीं स्त्री साक्षरता दर में 11.79 प्रतिशत की वृद्धि रही और स्त्री साक्षरता 65.46 प्रतिशत हो गयी स्पष्ट है कि 1991 से लेकर 2001 से 2011 तक देश में साक्षरता दर में लगातार वृद्धि हुई है और 2011 में साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है फिर भी, देश शतप्रतिशत साक्षरता प्राप्त के अपने लक्ष्य से अभी काफी दूर है। योजना आयोग ने वर्ष 2011 2012 में पुरुष तथा स्त्री साक्षरता के मध्य अन्तर का लक्ष्य 10 प्रतिशत था जो कम होकर जनगणना 2011 में 18. 68 प्रतिशत हो गया लेकिन पुरुष तथा स्त्री साक्षरता के मध्य अन्तर का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सका।

1991 में सम्मिलित बिहार में साक्षरता का प्रतिशत 38.50 प्रतिशत था। 2000 में बिहार का विभाजन हुआ और 2001 में बिहार की साक्षरता 47.53 प्रतिशत जिसमें, पुरुष साक्षरता 60.32 प्रतिशत था और स्त्री साक्षरता 33.57 प्रतिशत था। 2001 में स्त्री पुरुष के बीच साक्षरता का अन्तर 36.75 प्रतिशत था जो काफी अधिक था। 1991 से साक्षरता दर में बिहार में वृद्धि दर धीरे-धीरे बढ़ती गयी। जनगणना 2011 में बिहार की साक्षरता दर 61.80 प्रतिशत है जिसमें पुरुष साक्षरता 71.20 प्रतिशत और स्त्री साक्षरता 51.50 प्रतिशत है। 2001-2011 में स्त्री साक्षरता में 17.93 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी। जनगणना में बिहार राजय की साक्षरता की दृष्टि से भारत के सबसे निचले पायदान पर है।

मुजफ्फरपुर जिला में 2001 की जनगणना के अनुसार कुल साक्षरता 47.95 प्रतिशत था जिसमें पुरुष साक्षरता 59.10 प्रतिशत और स्त्री साक्षरता दर 35.81 प्रतिशत था। 2001 में मुजफ्फरपुर जिला का साक्षरता बिहार राज्य के कुल साक्षरता दर से 0.42 प्रतिशत अधिक था स्त्री साक्षरता भी समूचे बिहार के साक्षरता से अधिक था। मुजफ्फरपुर जिला में 2001 में कुल साक्षर व्यक्ति की संख्या 1440954 था।

जनगणना 2011 में मुजफ्फरपुर जिला में साक्षरता 63.43 प्रतिशत है जिसमें पुरुष साक्षरता दर 71.28 प्रतिशत है वहीं स्त्री साक्षरता दर 54.67 प्रतिशत है। जनगणना 2011 से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय साक्षरता की कुल साक्षरता से मुजफ्फरपुर जिला काफी पीछे है। 2001 से 2011 में मुजफ्फरपुर जिला के साक्षरता में 15.49 प्रतिशत की वृद्धि देखी जाती है। पुरुष साक्षरता में 12.18 प्रतिशत की वृद्धि एवं स्त्री साक्षरता में 18.86 प्रतिशत की सबसे अधिक वृद्धि देखी जाती है। जिले की कुल जनसंख्या 4801062 है जिसमें कुल साक्षरों की संख्या 2509232 है वहीं निरक्षर व्यक्तियों की संख्या 2291830 है।

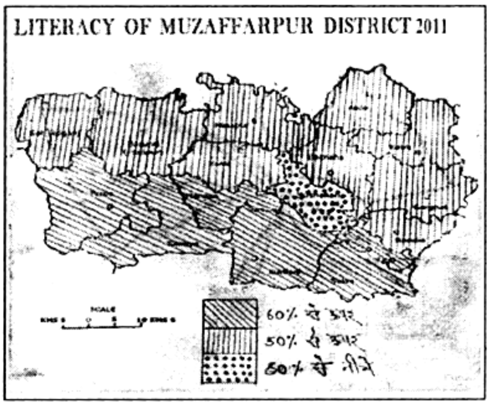

ब्लॉक स्तर पर साक्षरता की स्थिति

मुजफ्फरपुर जिला में कुल 16 ब्लॉक है जिसमें सकरा ब्लॉक में साक्षरता की स्थिति बेहतर है। जहाँ कुल साक्षरता 69.76 प्रतिशत है जिसमें पुरुष 73.79 है और स्त्री साक्षरता 64.68 प्रतिशत है। सकरा की साक्षरता बिहार की कुल साक्षरता दर से अधिक है, इसका मूल कारण वहाँ की सामाजिक आर्थिक स्थिति ठीक है। सकरा के बाद मुरौल ब्लॉक की सिथति (68.34%) ठीक है कुढनी ब्लॉक की साक्षरता 65.73% है। पारू, मातीपुर, मरवान सरैया और बंदरा में साक्षरता की दर 60 प्रतिशत से अधिक है। इन सभी प्रखण्डों में साक्षरता की दर ठीक होने के कारण वहाँ की सामाजिक आर्थिक एंव अन्य स्थितियाँ बेहतर है। वहीं बोचहां, औराई, साहेबगंज, मुशहरी आदि में कम साक्षरता है जो 50 प्रतिशत के आस-पास है।

भारत में विभिन्न दशकों का तुलनात्मक साक्षरता प्रतिशत

वर्ष	कुल साक्षरता प्रतिशत	पुरुष साक्षरता प्रतिशत	स्त्री साक्षरता प्रतिशत	कुल साक्षरता प्रतिशत अन्तर	पुरुष साक्षरता प्रतिशत अन्तर	स्त्री साक्षरता प्रतिशत अन्तर
1991	52.21	64.13	39.29			
2001	64.84	75.26	53.67	12.63	11.13	14.38
2011	74.04	82.14	65.46	9.20	6.88	11.76

बिहार में विभिन्न दशकों का तुलनात्मक साक्षरता प्रतिशत

वर्ष	कुल साक्षरता प्रतिशत	पुरुष साक्षरता प्रतिशत	स्त्री साक्षरता प्रतिशत	कुल साक्षरता प्रतिशत अन्तर	पुरुष साक्षरता प्रतिशत अन्तर	स्त्री साक्षरता प्रतिशत अन्तर
1991	38.5	52.5	22.9			
2001	47.53	60.32	33.57	9.03	7.82	10.67
2011	61.80	71.20	51.50	14.29	10.88	17.93

मुजफ्फर जिला के विभिन्न दशकों का तुलनात्मक साक्षरता प्रतिशत

वर्ष	कुल साक्षरता	पुरुष साक्षरता	स्त्री साक्षरता	कुल साक्षरता प्रतिशत अन्तर	पुरुष साक्षरता प्रतिशत अन्तर	स्त्री साक्षरता प्रतिशत अन्तर
2001	47.95	59.10	35.81			
2011	63.43	71.28	54.67	15.48	12.18	18.86

2011 में मुजफ्फरपुर जिला के प्रखंडों में साक्षरता प्रतिशत में

कम सं	प्रखण्ड का नाम	पुरुष	महिला	कुल साक्षरता प्रतिशत
1	सकरा	73.79	64.68	69.76
2	मुरौल (ढोली)	76.21	59.83	68.34
3	कुढ़नी	73.42	56.33	65.73
4	साहेबगंज	69.68	39.66	53.73

5	मोतीपुर (बरूराज)	54.66	46.79	56.25
6	पारू	71.55	52.04	62.33
7	सरैया	73.81	55.03	64.90
8	कांटी	65.76	52.34	59.42
9	मरवन	71.84	53.91	63.37
10	मीनापुर	63.34	45.42	54.95
11	औराई	60.91	42.81	52.44
12	बोचहां	62.40	47.24	55.26
13	कटरा	62.51	47.09	55.20
14	गायघाट	53.96	38.98	57.38
15	मुसहरी	51.93	37.05	39.63
16	बांदरा	68.60	50.53	59.70

अध्ययन क्षेत्र मुजफ्फरपुर की साक्षरता दर में पिछले दो दशकों से लगातार वृद्धि हुई है। स्त्रियों की साक्षरता दर में पुरुषों की साक्षरता दर की अपेक्षा कुछ ही वृद्धि हुई है। स्त्री साक्षरता दर में वृद्धि अधिक होने का मुख्य कारण यह है कि स्त्री साक्षरता दर पुरुषों की साक्षरता दर से काफी कम थी। जिसका मुख्य कारण स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर की चाहारदिवारी में सीमित रहनाय स्त्रियों के आवागमन में कमी, शिक्षा और रोजगार के प्रति प्रतिकूल प्रभाव होना, शिक्षा की सीमित उपलब्धि तथा गरीबी आदि रही है। सामान्य साक्षरता दर बढ़ने के साथ ही स्त्रियों का साक्षर होना, सामाजिक आर्थिक दृष्टि से आवश्यक हो गया, सर्व शिक्षा अभियान के प्रचार प्रसार विद्यालयों की निकटतम स्थिति, आर्थिक कार्यो में स्त्रियों की सहभागिता बढ़ने की वजह से स्त्री साक्षरता दर में वृद्धि हुई है। फिर भी स्त्री साक्षरता दर में वृद्धि के लिए अभी भी प्रयासरत रहने की आवश्यकता है। शिक्षा का वर्तमान सामाजिक आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। पिछले दो दशकों में स्त्री पुरुष की साक्षरता दर में वृद्धि हुई है जिसका मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती सामाजिक आर्थिक चेतयना है जिसकी वजह से लोगों में मन में शिक्षा प्राप्ति की भावना बलवती है।

सन्दर्भ

1. Banergee, N. (1977) The Pattern of Sex Ratio in Sanghbkurn District, Geographical Review of India, Vol. 39, pp. 30-37.
2. Bhende, A.A. (2014) Principles of Population Studies, Himalaya Publishing House, Mumbai.
3. Primary Census Abstract (2011) Registrar General of India, New Delhi.

रोहतास जिला में पत्थर उद्योग का पर्यावरण पर प्रभावः एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ० शैलेन्द्र कुमार सिंह

संसाधन, पर्यावरण एवं मानव प्रकृति के अभिन्न अंग हैं। आदिमानव की अधिकांश आवश्यकताएं प्रकृति संपर्क से ही पूरी थी। आधुनिक मानव विशेषकर औद्योगिक कांति के बाद अधिकाधिक संसाधन दोहन से उत्पन्न अपशिष्टों के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गया है। क्योंकि औद्यौगिक एवं तकनिकी विकास के नाम पर ऐसे प्रयोगों का शुभारम्भ किया गया जिससे प्रकृति पर आधारित तत्व एक के बाद एक अपना गुण खोने लगे और मिट्टी की उर्वरा शत्तिफ कम हो रही है। इसी प्रकार वायु और जल भी अपनी गुणवत्ता खो रही हैं। वन विनाश के कारण पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। इसके साथ ही जनसंख्या वृद्धि के कारण संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है। संसाधनों की कमी एवं पर्यावरण के प्रदूषण के कारण विविध प्रकार की बिमारियाँ, कुपोषण असंतोष के कारण जीवन की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। इसके परिणामस्वरुप मनुष्य एवं पर्यावरण के बीच शत्रुता पूर्ण संबंध कायम हो गयी है। सौभाग्यवश पर्यावरण की दृष्टि से जागरूक कुछ लोग प्रकृति के अनियोजित, अवैज्ञानिक एवं निर्मम विदोहन से उत्पन्न दुष्परिणामों को बता कर आगाह कर रहे हैं। उनका कहना है की पर्यावरण प्रदूषण न तो केवल भयावह और जानलेवा है अपितु समस्त मानव समुदाय के अस्तित्व को ही समाप्त कर देगा।

अध्ययन क्षेत्र का सीमांकन- रोहतास जिला में पत्थर उद्योग से संबंधित सभी कियाएं इस जिले के लगभग बीचो-बीच अवस्थित एक लम्बी मेखला के रूप में है जिसकी लम्बाई 15 किलोमीटर तथा चौड़ाई 4 किलोमीटर है। इस क्षेत्र का सीमांकन निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है-

(1) केशर मीलों की स्थिति (2) पहाड़ो में विस्फोटक द्वारा पत्थरो को तोड़े जाने वाले स्थानों की स्थिति (3) पत्थर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बिकय स्थलों की स्थिति तथा (4) पत्थर उद्योग द्वारा होने वाले पर्यावरण प्रदूषण से प्रभावित क्षेत्रो की स्थिति,

उपर्युत्तफ चारो तथ्यों के आधार पर रोहतास जिला में पत्थर औद्योगिक क्षेत्रो का विस्तार लगभग 60 वर्ग किलोमीटर में है।इस क्षेत्र का अक्षांशीय विस्तार 24डिग्री 55मिनट00सेकंड से लेकर25 डिग्री उतरी अक्षांश तथा83 डिग्री 55मिनट00सेकंड से लेकर84डिग्री00मिनट00सेकंड पूर्वी देशांतर के बीच है। इस औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार सासाराम से लेकर डेहरी तक लगभग 20 गांवो तक फैला हुआ है जिसको स्टोन चिप्स क्षेत्र के नाम से जाना जाता है।

भौतिक पर्यावरण

धरातल की संरचना- पत्थर औद्योगिक क्षेत्र के बीचो-बीच रेलवे लाइन तथा जी टी रोड गुजरती है जिसके दक्षिण में रोहतास का पठार तथा उत्तर में मैदानी क्षेत्र है। दक्षिण का पठारी क्षेत्र जो विंधयाचल पर्वत श्रेणी का ही एक भाग है जिसका निर्माण लाल पत्थरों, चूना पत्थर, तथा बालू से प्रोरोजोइन काल यानि 140 से 60 करोड़ वर्ष पूर्व की बनी हुई है। ऊपरी विंधयन कम (काल) में बालुकाश्म प्रधान विंधयन शैलकमो का अवसादन हुआ है, जबकि निचले विंधयन (काल) चूना प्रधान सियरी तथा कैमूर कम का अवसादन है।

सेमरी श्रेणी की चट्टान की बनावट तथा उत्पत्ति के विषय में पर्याप्त मतभेद है। अहमद, नारायण तथा साहनी के अनुसार ये चट्टानें सागरीय उत्पत्ति की है। सेमरी श्रेणी में मुख्य रूप से चूने के पत्थर एवं बालुका पत्थर पाए जाते हैं। इस श्रेणी के सबसे

नीचे कांग्लोमरेट तथा बालुका प्रस्तर मिलते हैं जिनके ऊपर शेल तथा मोटी परत वाले चूना-पत्थर पाया जाता है। इसके बाद पुन: शैल, बालुका प्रस्तर, बजरी शेल आदि संस्तर मिलते हैं जो कि उत्थान को इंगित करते हैं। निचले विंध्यन कम के ऊपर पुन: असमान विंध्यन के बाद ऊपरी विंध्यन कम की चट्टानें मिलती हैं जिसमे कि चट्टानें मिलती है जिसमे नीचे से ऊपर कैमूर श्रेणी कि शैलें दृष्टिगत होती हैं, जिनमे बालुका प्रस्तर, चूना प्रस्तर शेल आदि प्रमुख चट्टानें पायी जाती है। सबसे ऊपरी क्वाटर्नरी युग के जलोढ़ जमाव मिलते है। इस क्षेत्र कि चट्टानें अभिनति प्रकृति कि हैं। यह विश्वाश किया जाता है कि विंध्यन कम कि चट्टानों का जमाव एक भूसन्नति में हुआ जो कि एक आन्तरिक जलभाग कि रूप थी। वर्तमान समय में यह पठारी भाग पत्थर उद्दिमयो के प्रयास से विस्फोटकों द्वारा तोड़ कर या तो समतल बना दिया गया है या समतल भूमि से 10-20 मीटर गड्ढा खनन कर के तालाब बना दिया गया है।

इसके ठीक विपरीत रेलवे मार्ग के उत्तर समतल मैदानी भाग है इस संरचनात्मक इकाई की भूगर्भिक रचना जलोढ़ का अवसादीकरण से मानी जाती है। इस भाग की संरचना भी मूलत: क्षैतिज है इसकी सामान्य ढाल दक्षिण से उत्तर की ओर है। हिमालय उत्थान के अंतिम चरण के बाद कैमूर पठार के उत्तर में फैले असंवलित खण्ड में अवसाद के जमाव के परिणाम स्वरुप इस मैदान का निर्माण हुआ है तथा पुराना जलोढ़ मैदान होने के कारण इसे बांगर निक्षेप भी कहा जाता है। स्वभावत: इसमें महीन बालू से भरी मृतिका की सभी मध्यस्थ अवस्थाओ की उपस्थिति देखी जाती है। इन जलोढ़ मैदान की मोटाई आधार तल से 300 से 350 मीटर तक मानी जाती है। जहाँ ग्रामीण बस्तियां है जहा स्टोन चिप्स के बड़े-बड़े केसर लगाए गए है रेलवे मार्ग के दोनों तरफ पत्थर उद्योग से सम्बंधित कियाएं देखने को मिलती है। ये मैदानी क्षेत्र कृषि के लिए उपजाऊ भूमि है जो पत्थर उद्योग से प्रदूषित होकर बंजर भूमि बन गई है जी टी रोड के आस-पास सघन बस्तियां हैं जहाँ अनेको स्कूल कॉलेज मेडिकल कॉलेज (नारायण मेडिकल कॉलेज) तथा अनेको बाजार केंद्र विकसित हुए हैं।

पत्थर खनन पट्टों का क्षेत्रवार विवरण

क्षेत्र कस्बा	खनन पटटोंकी संख्या	क्षेत्रफल (एकड़ में)
करवंदिया	15	33.4
बासा क्षेत्र (सासाराम)	8	20.6
गायघाट, वजीर गंज	2	5.1
धेडंड-सासाराम	1	3.8
बढ़ैयाबाग-सासाराम	1	1.3
अमरा तालाब	1	2.8

स्रोत- खनन विभाग कार्यालय, सासाराम, रोहतास

रोहतास जिले का पत्थर खनन उद्योग ग्रैंड-ट्रक रोड एवं ग्रैंड कोड रेलवे के आसपास 10 से 12किलोमीटर लम्बा एवं 2 किलोमीटर चौड़ा एक औद्योगिक पट्टी के रूप में अवस्थित है। इसमें पत्थरो को बारूद से तोड़ना उसे यातायात के विभिन्न वाहनों द्वारा औद्योगिक केंद्र तक पहुँचाना मशीनों द्वारा उसे विभिन्न आकारों में तोड़ना, विभिन्न आकार के अनुसार उसे अलग करना और तब उसे आवश्यकता अनुसार बिहार के विभिन्न कोनों में पडोसी राज्यों के अनेको शहरो में पहुँचाने का कार्य होता है। इस प्रकम में हजारो की संख्या में श्रमिक अपनी जीविका पाते हैं तथा मकानों के बनने में इन पत्थरों का उपयोग होता है लेकिन इन पत्थरों का खनन अनियोजित तथा अवैज्ञानिक ढंग से होने के कारण इससे निकलने वाले धूल,धुआँ, पत्थरों के महीन कण लोगों के फेफड़ो में जम जाते हैं जिसके कारण अनेक रोग उत्पन्न हो रहे हैं। इस उद्योग के चलते एक रिपोर्ट के अनुसार 2009 के सितम्बर माह तक 316 टी बी मरीजों की पहचान इस पत्थर खदान के औद्योगिक केन्द्रो के आस-पास किये जा चुके हैं।

इसके अलावा इस क्षेत्र के जीव-जंतु तथा वनस्पतिया मानसिक एवं भौतिक विकृत्यों से गुजर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप यहाँ के लोगों में कार्य करने की क्षमता घट रही है। इतना ही नहीं इस जिला का पत्थर खनन उद्योग अवैध खनन के शिकार हैं जिसके

कारण जिला खनन, वन विभाग कर्मियों एवं अवैध खनन धारियों के बीच बार-बार द्वन्द होता रहता है इसी कम में अनेको बार वन विभाग के कर्मियों को जान से हाथ धोना पड़ता है।

पर्यावरण के प्रति सजगता का आभाव आधुनिकीकरण की देन है। सजगता के आभाव में आधुनिक समाज द्वारा यह मान लिया गया था की प्रकृति का प्रांगण हर प्रकार के अनाचार के लिए सुरक्षित क्षेत्र है। लेकिन पिछले तीन चार दशकों से पर्यावरण अवनयन की घटनाओ से उपजी विविध कठिनाइयों विशेष कर जीवन के आधारी तत्वों के अवनयन से पृथ्वी का बढ़ता तापमान, बढ़ते प्राकृतिक प्रकोप, ओजोन परत के क्षरण एवं अम्ल-वर्षा सदृश्य घटनाओं की सूचना के बाद सभी के कान खड़े हो गए है, एक के बाद एक दृश्य पर्यावरणीय आपदाओं की सूचना के बाद घबराहट बढ़ती जा रही है। उल्लेखनीय है की पर्यावरण की नैसर्गिक व्यस्था स्वनियंत्रण पर आधारित है। इसमें कुप्रभाव तभी प्रकट होता है जब किसी प्रकार का हस्तक्षेप प्रकृति सहन सीमा से अधिक होने लगता है। पश्चिमी औद्योगिक देशों द्वारा अधिक लाभ आधारित भौतिक सुख के लिए प्रकृति के विधान में किये गए हस्तक्षेप सम्पूर्ण मानवता के लिए खतरे का कारण बनते जा रहा है। अपने को प्रबुद्ध और ज्ञानी-विज्ञानी कहने वाला आधुनिक मानव समाज ऐसी भूलें करता रहा है, जिससे आज सम्पूर्ण मानव समाज चिंतित है। सुख सुविधा के नाम पर हम जिस डाल पर बैठे हैं उसी को काटने की भयंकर भूल कर रहें हैं। यहाँ याद दिलाना समीचीन है की भारतीय संस्कृति पर्यावरणवादी होने के कारण अभी सिमित स्तर पर ही पर्यावरण की अनदेखी से उपजी कठिनाइयों के लिए अपराध बोध से ग्रस्त है। यह निर्विवाद सत्य है कि प्रकृति जीवनता कि व्यवस्था नैसर्गिक नियमो पर आधारित है जिसके प्रेरणा पेड़ पौधों और जीव-जंतु है। लेकिन चतुर मानव ने प्रकृति को वश में करने कि दु:साहस के तहत ऐसे कार्य किये है जो महाविनाश के कारण बन सकते हैं। भारत में प्रकृति को माँ

कि तरह मान्यता प्राप्त है, फलत: उससे हम उतनी ही अपेक्षा करते हैं जितनी वह प्रसन्नता पूर्वक दे सकें। इसके विपरीत पश्चिमी देशों कि संस्कृति प्रकृति को लूटने खसोटने में विश्वास करती है। फलत: एक के बाद एक डरावनी सूचनाएं आने लगी है इन्ही देशों के प्रभाव में आकर युगो-युगो से प्रचलित मान्यता श्तरु देवो: भव:श को भूलकर हम भी पछताने लगे हैं। अत: मानव समाज का भविष्य कितना सुरक्षित है, यह चिंतन

और मनन का विषय बन गया है। स्पष्ट है कि जब तक प्रत्येक व्यत्तिफ अपने पर्यावरण कि कार्य व्यस्था से परिचित होकर तदनुसार अपने आचरण को यथा संभव प्रकृति के साथ समायोजित नहीं करेगा, स्थिति बद से बदतर होती जाएगी और अंतत: बचाव के सभी मार्ग बंद हो जायेंगे।

वर्त्तमान शोध पत्र परियोजना पत्थर खनन उद्योग से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं से ग्रस्त लोगों एवं जीवों से सम्बंधित है। इन समस्यायों के चलते यहाँ के लोग पेड़-पौधों तथा अन्य जीव जंतु विभिन्न रोगो से ग्रस्त हैं, जिनको इन समस्याओं से निजात दिलाना अति आवश्यक है। वर्तमान शोध परिकल्पना रोहतास जिला का पत्थर खनन उद्योग से सम्बंधित है। यहाँ का पत्थर उद्योग लगभग एक दशक से विवादित रहते हुए भी लगभग 400उद्यमियों द्वारा पत्थर केशर प्लांट का संचालन तथा भण्डारण का कार्य चल रहा है। इस उद्योग में हजारों कि संख्या में श्रमिक अपनी जीविका पातें है। लेकिन इन पत्थर उद्योगों से निकलने वाले धूल-धुआँ, पत्थरों के महीन कण से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है अत: शोधार्थी कीमूल परिकल्पना होगी :-

1. पत्थर उद्योग का संचालन वैज्ञानिक तथा नियोजित है या नहीं ?
2. इस उद्योग से निकलने वाले धूलकण, धुआँ तथा विस्फोटकों द्वारा कितने लोग प्रभावित हो रहे हैं ?
3. पत्थर उद्योग के चलते वन विभाग कर्मियों एवं पत्थर उद्यमियों के बीच द्वन्द तथा विवाद कैसे रोका जाये ?

पर्यावरण सम्बंधित समस्यायों से जुड़े शोध परियोजनाओ का अभाव है

भारतीय भूगोलविदों द्वारा शोध परियोजना के रूप में कानपुर नगर का अध्ययन कुमार (1982) काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ। इसके बाद भारत के अनेक विद्वानों ने अपने अपने शोध पत्रों का प्रकाशन कराया जिनमे सिंह (1983), सिंह (1988) सिंह (1991), शर्मा (1992), केसठा (1986), प्रमुख है। 2000 के बाद नागी प्रकाशित शोध पत्रों में कविता (2010) श्रीवास्तव (2010) राव (2002) आदि प्रमुख हैं। अन्यशोध पत्रों में द्विवेदी(2007) एवं सिंह (2008), प्रमुख हैं। लेकिन खासकर बिहार में विभिन्न विश्वविद्यालयों में पर्यावरण से सम्बंधित सीमित शोद्यार्थियों ने अपनी शोद्य परियोजनाओ को पूरा किया है। लेकिन रोहतास जिले को खनन उद्योग जो काफी महत्वपूर्ण है था पर्यावरणीय समस्याओ के कारण काफी चर्चित रहा है। अधिकतम जिस पर शोध कार्य करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है।

दृष्टिकोण

प्रस्तुत शोध पत्र के लिए आकड़ो का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक श्रोतो से करके अनुभाविक वर्णात्मक विधियों से प्रस्तुत किया गया है। इसके लिए विभिन्न भौगोलिक एवं सांख्यिकीय विधियों द्वारा इन ऑकड़ों को दर्शाकर प्रस्तुत शोध पत्र को पूरा किया गया है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के लोगो से साक्षात्कार एवं सर्वेक्षण तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं प्रकाशित आंकड़ों की सहायता ली गयी है।

अत: रोहतास जिला का पत्थर खनन उद्योग को उचित नियोजन एवं प्रबंधन की आवश्यकता है। ताकि यहाँ के लोगों को विभिन्न पर्यावरणीय समस्यायों से निजात दिलाया जा सके। वर्त्तमान शोध परियोजना इन्ही समस्यायों को दूर करने का एक प्रयास मात्र है। चूँकि मै (शोधकर्ता) इसी क्षेत्र का रहने वाला हूं जिसके कारण यहाँ की मूल समस्याओं के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी रखता हूँ। अत: मेरा परम कर्त्तव्य है की इस क्षेत्र की पर्यावरणीय समस्याओं को वैज्ञानिक तथा नियोजित सुझावों के द्वारा दूर कर सकूँ

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हारुन मो0-2007 आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर। पेज सं0 540-41
2. सिंह सविन्द्र-1994 पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन,इलाहाबाद। पेज सं0 44
3. हिंदुस्तान शुकवार 11 दिसम्बर 2009, पटना पेज सं0-3
4. हिंदुस्तान मंगलवार 15 दिसम्बर, 2009, पटना पेज सं0-3
5. सिंह सविन्द्र 1989 इन्मारमेंटल जियोग्राफी कॉसेप्सुअल फेमवर्क नेशनल ज्योग्राफर वॉल्यूम 24 पेज सं0 13 से 28
6. कुमड़ावी0 के0, 1982 कानपुर सिटी- ए स्टडी इन इन्भारमेंटल पोलुशन, तारा बुक एजेंसी, वाराणसी। पेज सं0 10से 12
7. डिटेयर टी0 आर0 1971 मेन्स इम्पैक्ट ऑन इन्भारमेंट मैक ग्राहिल्स न्यूयार्क। पेज सं0 120 से 128
8. दीक्षित के0 आर0, 1984- ए प्रोलांग टू द सीम्पोजियम ऑन ज्योग्राफी एन्ड टीचिंग ऑफ इन्भारमेंट, डिपोर्टमेन्ट ऑफ ज्योग्राफी, पूना यूनिवर्सिटी। पेज सं0 88 से 112
9. सिंह एस0 एन्ड तिवारी आर0 सी0 1989-ज्योग्राफी एन्ड इन्भारमेंट एडिटद्ध, इलाहाबाद, ज्योग्राफी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी। पेज सं0 153 से 170
10. कविता एन 2010 ग्राउंड वाटर पॉलूशन इन डिंडीगुल टाउनएनाल्स ऑफ द नागी वॉल्यूम तीस नम्बर दो दिसम्बर 2010
11. श्रीवास्तव जे 2010 एयर पॉलुशन इन जबलपुर सिटी एम् पी द इंडिया एनाल्स ऑफ द नागी वॉल्यूम 30 2 दिसम्बर 2010 पेज सं0 78 से 94

प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्यिक साधन

डॉ० रिंकु कुमारी

मु-सुन्दरपुर बीरा, पोस्ट-वासुदेवपुर बीरा, जिला-दरभंगा

सारांश

भारत (आधिकारिक नामः भारत गणराज्य, दक्षिण एशिया में स्थित भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे बड़ा देश है। पूर्ण रूप से उत्तरी गोलार्ध में स्थित भारत, भौगोलिक दृष्टि से विश्व में सातवाँ सबसे बड़ा और जनसंख्या के दृष्टिकोण से दूसरा सबसे बड़ा देश है। भारत के पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर-पूर्व में चीन, नेपाल और भूटान, पूर्व में बांग्लादेश और म्यान्मार स्थित हैं। हिन्द महासागर में इसके दक्षिण पश्चिम में मालदीव, दक्षिण में श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व में इंडोनेशिया से भारत की सामुद्रिक सीमा लगती है। इसके उत्तर की भौतिक सीमा हिमालय पर्वत से और दक्षिण में हिन्द महासागर से लगी हुई है। पूर्व में बंगाल की खाड़ी है तथा पश्चिम में अरब सागर हैं। प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता, व्यापार मार्गों और बड़े-बड़े साम्राज्यों का विकास-स्थान रहे भारतीय उपमहाद्वीप को इसके सांस्कृतिक और आर्थिक सफलता के लंबे इतिहास के लिये जाना जाता रहा है। चार प्रमुख संप्रदायों: हिंदू, बौद्ध, जैन और सिख धर्मों का यहां उदय हुआ, पारसी, यहूदी, ईसाई, और मुस्लिम धर्म प्रथम सहस्राब्दी में यहां पहुचे और यहां की विविध संस्कृति को नया रूप दिया। कमिक विजयों के परिणामस्वरूप ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी ने 18वीं और 19वीं सदी में भारत के ज्यादतर हिस्सों को अपने राज्य में मिला लिया। 1857 के विफल विद्रोह के बाद भारत के प्रशासन का भार ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर ले लिया। ब्रिटिश भारत के रूप में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रमुख अंग भारत ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक लम्बे और मुख्य रूप से अहिंसक स्वतन्त्रता संग्राम के बाद 15 अगस्त 1947 को आजादी पाई। 1950 में लागू हुए नये संविधान में इसे सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर स्थापित संवैधानिक लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित कर दिया गया और युनाईटेड किंगडम की तर्ज पर वेस्टमिंस्टर शैली की संसदीय सरकार स्थापित की गयी। एक संघीय राष्ट्र, भारत को 29 राज्यों और 7 संघ शासित प्रदेशों में गठित किया गया है। लम्बे समय तक समाजवादी आर्थिक नीतियों का पालन करने के बाद 1991 के पश्चात् भारत ने उदारीकरण और वैश्वीकरण की नयी नीतियों के आधार पर सार्थक आर्थिक और सामाजिक प्रगति की है। 33 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के साथ भारत भौगोलिक क्षेत्रफल के आधार पर विश्व का सातवाँ सबसे बड़ा राष्ट्र है। वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था कय शत्तिफ समता के आधार पर विश्व की तीसरी और मानक मूल्यों के आधार पर विश्व की दसवीं सबसे बडी अर्थव्यवस्था है। 1991 के बाजार-आधारित सुधारों के बाद भारत विश्व की सबसे तेज विकसित होती बड़ी अर्थ-व्यवस्थाओं में से एक हो गया है और इसे एक नव-औद्योगिकृत राष्ट्र माना जाता है। परंतु भारत के सामने अभी भी गरीबी, भ्रष्टाचार, कुपोषण, अपर्याप्त सार्वजनिक स्वास्थ्य-सेवा और आतंकवाद की चुनौतियां हैं। आज भारत एक विविध, बहुभाषी, और बहु-जातीय समाज है और भारतीय सेना एक क्षेत्रीय शत्तिफ है।

प्राचीन भारत की सभ्यता, संस्कृति तथा शासन कला का अध्ययन करने के पूर्व इतिहास की उन सामग्रियों का अध्ययन करना अत्यावश्यक है जिनके द्वारा हमें प्राचीन भारत के इतिहास का ज्ञान होता है। यों तो भारत के प्राचीन साहित्य तथा दर्शन के संबंध में जानकारी के अनेक साधन उपलब्ध हैं, परन्तु भारत के प्राचीन इतिहास की जानकारी के साधन संतोषप्रद नहीं है। उनकी न्यूनता के कारण अति प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं शासन का कमवद्ध इतिहास नहीं मिलता है। फिर भी ऐसे साधन उपलब्ध हैं जिनके अध्ययन एवं सर्वेक्षण से हमें भारत की प्राचीनता की कहानी की जानकारी होती है। इन साधनों के अध्ययन के बिना अतीत और

वर्तमान भारत के निकट के संबध की जानकारी होती है। इन साधनों के अध्ययन के बिना अतीत और वर्तमान भारत के निकट के संबंध की जानकारी करना भी असंभव है।

प्राचीन भारत के इतिहास की जानकारी के साधनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है-साहित्यिक साधन और पुरातात्विक साधन, जो देशी और विदेशी दोनों हैं। साहित्यिक साधन दो प्रकार के हैं-धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य। धार्मिक साहित्य भी दो प्रकार के हैं-ब्राह्मण ग्रन्थ और अब्राह्मण ग्रन्थ। ब्राह्मण ग्रन्थ दो प्रकार के हैं-श्रुति जिसमें वेद ब्राह्मण उपनिषद इत्यादि आते हैं और स्मृति जिसके अन्तर्गत रामायण महाभारत पुराण स्मृतियाँ आदि आती हैं। लौकिक साहित्य भी चार प्रकार के हैं-ऐतिहासिक साहित्य विदेशी विवरण, जीवनी और कल्पना प्रधान तथा गल्प साहित्य।

प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी के प्रमुख साधन साहित्यिक ग्रन्थ हैं जिन्हें दो उपखण्डों में रखा जा सकता है-धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य। इनका पृथक-पृथक उल्लेख करना आवश्यक है।

ब्राह्मण या धार्मिक साहित्य

ब्राह्मण ग्रन्थ प्राचीन भारतीय इतिहास का ज्ञान प्रदान करने में अत्यधिक सहयोग देते हैं। भारत का प्राचीनतम साहित्य प्रधानतः धर्म-संबंधी ही है। ऐसे अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ हैं जिनके द्वारा प्राचीन भारत की सभ्यता तथा संस्कृति की कहानी जानी जाती है। वे निम्नलिखित मुख्य हैं-

(क) वेदः ऐसे ग्रन्थों में वेद सर्वाधिक प्राचीन हैं और वे सबसे पहले आते हैं। वेद आर्यों के प्राचीनत ग्रन्थ हैं जो चार हैं-ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद से आर्यों के प्रसार; पारस्परिक युद्ध; अनार्यों, दासों, दासों और दस्युओं से उनके निरंतर संघर्ष तथा उनके सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक संगठन की विशिष्ट मात्रा में जानकारी प्राप्त होती है। इसी प्रकार अथर्ववेद से तत्कालीन संस्कृति तथा विधाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

(ख) ब्राह्मणः वैदिक मन्त्रों तथा संहिताओं की गद्य टीकाओं को ब्राह्मण कहा जाता है। पुरातन ब्राह्मण में ऐतरेय, शतपथ, पंचविष, तैतरीय आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं। ऐतरेय के अध्ययन से राज्याभिषेक तथा अभिषित्तफ नृपतियों के नामों का ज्ञान प्राप्त होता है। शथपथ के एक सौ अध्याय भारत के पश्चिमोत्तर के गान्धार, शाल्य तथा केकय आदि और प्राच्य देश, कुरु, पांचाल, कोशल तथा विदेह के संबंध में ऐतिहासिक कहानियाँ प्रस्तुत करते हैं। राजा परीक्षित की कथा ब्राह्मणों द्वारा ही अधिक स्पष्ट हो पायी है।

(ग) उपनिषदः उपनिषदों में 'बृहदारण्यक' तथा 'छान्दोन्य', सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थों से बिम्बिसार के पूर्व के भारत की अवस्था जानी जा सकती है। परीक्षित, उनके पुत्र जनमेजय तथा पश्चातकालीन राजाओं का उल्लेख इन्हीं उपनिषदों में किया गया है। इन्हीं उपनिषदों से यह स्पष्ट होता है कि आर्यों का दर्शन विश्व के अन्य सभ्य देशों के दर्शन से सर्वोत्तम तथा अधिक आगे था। आर्यों के आध्यात्मिक विकास प्राचीनतम धार्मिक अवस्था और चिन्तन के जीते जागते जीवन्त उदाहरण इन्हीं उपनिषदों में मिलते हैं।

(घ) वेदांगः युगान्तर में वैदिक अध्ययन के लिए छः विधाओं की शाखाओं का जन्म हुआ जिन्हें 'वेदांग' कहते हैं। वेदांग का शाब्दिक अर्थ है वेदों का अंग, तथापि इस साहित्य के पौरूषेय होने के कारण श्रुति साहित्य से पृथक ही गिना जाता है। वे ये हैं-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूत्तफ, छन्दशास्त्र तथा ज्योतिष। वैदिक शाखाओं के अन्तर्गत ही उनका पृथक्-पृथक वर्ग स्थापित हुआ और इन्हीं वर्गो के पाठ्य ग्रन्थों के रूप में सूत्रों का निर्माण हुआ। कल्पसूत्रों को चार भागों में विभाजित किया गया-श्रौत सूत्र जिनका संबंध महायज्ञों से था, गृह्य सूत्र जो गृह संस्कारों पर प्रकाश डालते थे, धर्म सूत्र जिनका संबंध धर्म तथा धार्मिक नियमों से था, शुल्व सूत्र जो यज्ञ, हवन-कुण्ठ बेदी, नाम आदि से संबंधित थे। वेदांग से जहाँ एक ओर प्राचीन भारत की धार्मिक अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त होता है, वहाँ दूसरी ओर इसकी सामाजिक अवस्था का भी।

(ङ) रामायणः महाभारत-वैदिक साहित्य के उत्तर में रामायण और महाभारत नामक दो महाकाव्य साहित्य का प्रणयन हुआ। सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य में ये दोनों महाकाव्य अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। रामायण की रचना महर्षि बाल्मीकि ने की जिसमें अयोध्या की रामकथा है। इसमें राज्य सीमा, यवनों और शकों के नगर, शासन कार्य रामराज्य आदि का वर्णन है। मूल महाभारत का प्रणयन व्यास मुनि ने किया। महाभारत का वर्तमान रूप प्राचीन इतिहास कथाओं उपदेशों आदि का भण्डार है। इस ग्रन्थ से भारत

की प्राचीन सामाजिक तथा धार्मिक अवस्थाओं पर प्रकाश पड़ता है। इन दोनों महाकाव्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे आर्य संस्कृति के दक्षिण में प्रसार का निर्देश करते हैं। रामायण में तत्कालीन पौर जनपदों और महाभारत से 'सुधमां' और 'देवसभा' का हमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उससे पता चलता है कि राजा किस सीमा तक स्वेच्छाचारी था और कहां तक उसके प्रभाव और कार्य की सीमायें इन राजनीतिक संस्थाओं तथा प्रजा प्रतिनिधित्व द्वारा परिमित थी।

(च) पुराण: महाकाव्यों के पश्चात् पुराण आते हैं जिनकी संख्या अठारह है। इनकी रचना का श्रेय 'सूत' लोमहर्षण अथवा उनके पुत्र उग्रश्रवस या उग्रश्रवा को दिया जाता है। पुराणों में पाँच प्रकार के विषयों का वर्णन सिद्धान्ततः इस प्रकार है–सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर तथा वंशानुचरित। सर्ग बीज या आदि सृष्टि का पुराण है प्रतिसर्ग प्रलय के बाद की पुनर्सृष्टि को कहते हैं, वंश में देवताओं या ऋषियों के वंश वृक्षों का वर्णन है, मन्वन्तर में कल्प के महायुगों का वर्णन है जिनमें से प्रत्येक में मनुष्य का पिता एक मनु होता है और वंशानुचरित पुराणों के वे अंग हैं जिनमें राजवंशों की तालिकायें दी हुई हैं और राजनीतिक अवस्थाओं, कथाओं और घटनाओं के वर्णन हैं। उपर्युDr पांच पुराण के विषय होते हुए भी अठारहों पुराणों में वंशानुचरित का प्रकरण प्राप्त नहीं होता। यह दुर्भाग्य ही है क्योंकि पुराणों में जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण विषय है, वह वंशानुचरित है। वंशानुचरित केवल भविष्य, मत्स्य, वायु, विष्णु, ब्रह्माण्ड तथा भागवत पुराणों में ही प्राप्त होता है। गरुड़-पुराण में भी पौरव, इक्ष्वाकु और बार्हदय राजवंशों की तालिका प्राप्त होती है। पर इनकी तिथि पूर्णतया अनिश्चित है। पुराणों की भविष्यवाणी शैली में कलियुग के नृपतियों की तालिकाओं के साथ शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व, आन्ध्र तथा गुप्तवंशों की वंशावलियाँ भी प्राप्त होती हैं। शिशुनागों में ही बिम्बिसार एवं अजातशत्रु का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार पुराण चौथी शताब्दी की स्थितियों का उल्लेख करते हैं। मौर्य वंश के संबंध में विष्णु पुराण में अधिक उल्लेख मिलते हैं। ठीक इसी प्रकार मत्स्य पुराण में मान्ध्र वंश का पूरा उल्लेख मिलता है। वायु पुराण गुप्त सम्राटों की शासन प्रणाली पर प्रकाश डालते हैं। इन पुराणों में शूद्रों और म्लेच्छों की वंशावली भी दी गयी है। आभीर, शक, गर्दभ, यवन, तुषार, हूण आदि के उल्लेख इन्हीं सूचियों में मिलते हैं।

(छ) स्मृतियाँ: ब्राह्मण ग्रन्थों में स्मृतियों का भी ऐतिहासिक महत्व है। मनु, विष्णु, याज्ञवल्क्य नारद, वृहस्पति, पराशर आदि की स्मृतियाँ प्रसिद्ध हैं जो धर्म शास्त्र के रूप में स्वीकार की जाती हैं। मनुस्मृति में जिसकी रचना संभवतः दूसरी शताब्दी में की गयी है, धार्मिक तथा सामाजिक अवस्थाओं का पता चलता है। नारद तथा वहस्पति स्मृतियों से जिनकी रचना करीब छठी सदी ई. के आस-पास हुई थी, राजा और प्रजा के बीच होने वाले उचित संबंधों और विधियों के विषय में जाना जा सकता है। इसके अतिरित्तफ पराशर, अत्रि हरिस, उशनस, अंगिरस, यम, उमव्रत, कात्यान, व्यास, दक्ष, शरतातय, गार्गेय वगैरह की स्मृतियाँ भी प्राचीन भारत की सामाजिक और धार्मिक अवस्थाओं के बारे में बतलाती हैं।

अब्राह्मण ग्रन्थ

धार्मिक साहित्य के ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरित्तफ अब्राह्मण ग्रन्थों से उस समय की विभिन्न अवस्थाओं का पता चलता है।

(क) बौद्ध ग्रन्थ: बौद्धमतावल्बियों ने जिस साहित्य का सृजन किया, उसमें भारतीय इतिहास की जानकारी के लिए प्रचुर सामग्रियाँ निहित हैं। 'त्रिपिटक' इनका महान ग्रन्थ है। सुत, विनय तथा अमिधम्म मिलाकर 'त्रिपिटक' कहलाते हैं। बौद्ध संघ, मिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के लिये आचरणीय नियम विधान विनय पिटक में प्राप्त होते हैं। सुत्त पिटक में बुद्धदेव के धर्मोपदेश हैं। गौतम निकायों में विभत्तफ हैं-

प्रथम दीर्घ निकाय में बुद्ध के जीवन से संबद्ध एवं उनके सम्पर्क में आये व्यत्तिफयों के विशेष विवरण हैं। दूसरे संयुत्तफ निकाय में छठी शताब्दी पूर्व के राजनीतिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है, किंतु सामाजिक और आर्थिक स्थिति की जानकारी इससे अधिक होती है। तीसरे मझिम निकाय को भगवान बुद्ध को दैविक शत्तिफयों से युत्तफ एक विलक्षण व्यत्तिफ मानता है।

चौथे, अंगुत्तर निकाय में सोलह महानपदों की सूची मिलती हैं। पाँचवें, खुद्दक निकाय लघु ग्रंथों का संग्रह है जो छठी शताब्दी ई. पूर्व से लेकर मौर्य काल तक का इतिहास प्रस्तुत करता है। अमिधम्म पिटक में बौद्ध धर्म के दार्शनिक सिद्धान्त हैं। कुछ अन्य बौद्ध ग्रंथ भी हैं। मिलिंदमन्ह में यूनानी शाशक मिनेण्डर और बौद्ध मिक्षु नागसेन के वार्तालाप का उल्लेख है।

'दीपवंश' मौर्य काल के इतिहास की जानकारी देता है। 'महावंश' भी मौर्यकालीन इतिहास को बतलाता है। 'महाबोधिवंश' मौर्य काल का ही इतिहास माना जाता है। 'महावस्तु' में भगवान बुद्ध के जीवन को बिन्दु बनाकर छठी शताब्दी ई. पूर्व के इतिहास को

प्रस्तुत किया गया है। 'ललित विस्तार' में बुद्ध की ऐहिक लीलाओं का वर्णन है जो महायान से संबद्ध है। पाली की 'निदान कथा' बोधि सत्वों का वर्णन करती है। यातिमोक्ख, महावग्ग, चुग्लवग्ग, सुत विभंग एवं परिवार में भिक्खु-भिक्खुनियों के नियमों का उल्लेख है। ये पाँचों ग्रन्थ 'विनय' के अन्तर्गत आते हैं।

अमिधम्म के सात संग्रह है जिनमें तत्वज्ञान की चर्चा की गयी है। ऐतिहासिक ज्ञान के लिए त्रिपिटकों का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि इसमें बौद्ध संघों के संगठनों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार बौद्धग्रन्थों में जातक कथाओं का दूसरा महत्वपूर्ण स्थान है जिनकी संख्या 549 है। ''इनका महत्व केवल इसीलिए नहीं है कि उनका साहित्य और कला श्रेष्ठ है, प्रत्युत तीसरी शताब्दी ई. पूर्व की सभ्यता के इतिहास की दृष्टि से भी उनका वैसा ऊँचा मान है।'' जातक में भगवान बुद्ध के जन्म के पूर्व की कथाएँ उल्लिखित हैं।

(ख) जैन ग्रन्थः प्राचीन भारतीय इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जैन ग्रन्थ भी उपयोगी हैं। ये प्रधानतः धार्मिक हैं। इन ग्रन्थों में 'परिशिष्ट पर्वत' विशेष महत्वपूर्ण हैं। 'भद्रबाहु चरित्र' दूसरा प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ है जिसमें जैनाचार्य भद्रबाहु के साथ-साथ चन्द्रगुप्त मौर्य के संबंध में भी उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों के अतिरित्तफ कथा-कोष, पुण्याश्रव-कथाकोष, त्रिलोक प्रज्ञस्ति, आवश्यक सूत्र, कालिका पुराण, कल्प सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र आदि अनेक जैन ग्रन्थ भारतीय इतिहास की सामग्रियां प्रस्तुत करते हैं। इनके अतिरित्तफ दीपवंश, महावंश, मिलन्दिपन्हो, दिव्यावदान आदि ग्रन्थ की इन दोनों धर्मो तथा मौर्य साम्राज्य के संबंध में यत्र-तत्र उल्लेख करते हैं।

लौकिक साहित्य

ऐतिहासिक सामग्रियों की उपलब्धि के दृष्टिकोण से लौकिक साहित्य को प्रमुखतः निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(क) ऐतिहासिक ग्रन्थः ऐसे अनेक विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ है जिनमें केवल सम्राट तथा शासन से संबंधित तथ्यों का ही उल्लेख किया गया है। ऐसे ग्रन्थों में कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' नामक ग्रन्थ सर्वप्रथम आता है जो पूर्णतः ऐतिहासिक है। इसमें कथा-वाहिक रूप में प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों राज्य शासकों और प्रशस्तियों के आधार पर ऐतिहासिक वृतान्त प्रस्तुत किये गये हैं। इसकी रचना। 1148 ई. में प्रारम्भ की गयी थी। कश्मीर के सारे नरेशों के इतिहास जानकारी इस प्रसिद्ध ग्रन्थ से होती है। इसमें कमबद्धता का पूरी तरह निर्वाह किया गया है। इसी श्रेणी में तमिल ग्रन्थ भी आते हैं। ये हैं नन्दिवक लाम्बकम्, ओट्टत्तफूतन का कुलोत्तुंगज-पिललैत्त मिल, जय गोण्डार का कलिंगत्तुंधरणि, राज-राज-शौलन-उला और चोलवंश चरितम्। इसी श्रेणी में सिंहल के दो ग्रन्थ-दीपवंश और महावंश भी आते हैं जिनमें बौद्ध भारत का उल्लेख मिलता है।

गुप्तकालीन विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' सिकन्दर के आकमण के शीघ्र बाद ही भारतीय राजनीति का उद्घाटन करता है। पोरस, जिसने सिकन्दर के दाँत खट्टे कर दिये थे। मुद्राराक्षस के प्रमुख पात्रों में एक है। साथ ही साथ, चन्द्रगुप्त मौर्य चाणक्य तथा कुछ तत्कालीन नृपतियों का भी इसमें उल्लेख मिलता है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी इस संबंध में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसकी रचना मुद्राराक्षस के पूर्व ही की गयी थी। इस ग्रन्थ में रचनाकार ने तत्कालीन शासन-पद्धति पर प्रकाश डाला है। राजा के कर्त्तव्य, शासन-व्यवस्था, न्याय आदि अनेक विषयों के संबंध में कौटिल्य ने प्रकाश डाला है। वास्तव में मौर्यकालीन इतिहास का यह ग्रन्थ एक दर्पण है।

पाणिनी का 'अष्टाध्यायी' एक व्याकरण ग्रन्थ होते हुए भी मौर्य पूर्व तथा मौर्यकालीन राजनीतिक अवस्था पर प्रकाश डालता है। इसी तरह पातंजलि का 'महाभाष्य' भी राजनीति के संबंध में चर्चा करता है। 'शुकनीतिसार' भी एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसमें तत्कालीन भारतीय समाज का वर्णन मिलता है। ज्योतिष ग्रन्थ गार्गी संहिता पुराण का एक भाग है जिसमें यवनों के आकमण का उल्लेख किया गया है। कालिदास का 'मालविकाग्निमित्र' साहित्यिक होते हुए भी ऐतिहासिक सामग्रियाँ प्रस्तुत करता है। इस ग्रन्थ में कालिदास ने पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र तथा विदर्भराज की राजकुमारी मालविका की प्रेम कथा का उल्लेख किया है।

(ख) विदेशी विवरणः देशी लेखकों के अतिरित्तफ विदेशी लेखकों के साहित्य से भी प्राचीन भारत के इतिहास पृष्ठ निर्मित किये गये हैं। अनेक विदेशी यात्रियों एवं लेखकों ने स्वयं भारत की यात्रा करके या लोगों से सुनकर भारतीय संस्कृति में ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इनमें यूनान, रोम, चीन, तिब्बत, अरब आदि देशों के यात्री शामिल हैं। यूनानियों के विवरण सिकन्दर के पूर्व, उसके

समकालीन तथा उसके पश्चात की परिस्थितियों से संबंधित हैं। स्काइलेक्स पहला यूनानी सैनिक था जिसने सिन्धु नदी का पता लगाने के लिए अपने स्वामी डेरियस प्रथम के आदेश से सर्वप्रथम भारत की भूमि पर कदम रखा था। इसके विवरण से पता चलता है कि भारतीय समाज में उच्चकुलीन जनों का काफी सम्मान था। हेकेटियस दूसरा यूनानी लेखक था जिसने भारत और विदेशों के बीच कायम हुए राजनीतिक संबंधों की चर्चा की है। हेरोडोटस जो एक प्रसिद्ध यूनानी लेखक था, ने यह लिखा है कि भारतीय युद्ध प्रेमी थे। इसी लेखक के ग्रन्थ से यह भी पता चलता है कि भारत का उत्तरी तथा पश्चिमी देशों से मधुर संबंध था। टेसियस ईरानी सम्राट जेरेक्सस का वैद्य था जिसने सिकन्दर के पूर्व के भारतीय समाज के संगठन रीति रिवाज, रहन-सहन इत्यादि का वर्णन किया है। पर इसके विवरण अधिकांशतः कल्पना प्रधान और असत्य हैं।

सिकन्दर के समय में भी ऐसे अनेक लेखक थे जिन्होंने भारत के संबंध में ग्रन्थों की रचना की। ये लेखक सिकन्दर के भारत पर आकमण के समय ही उसके साथ भारतवर्ष आये थे। इनमें अरिस्टोबुलस, निआर्कस, चारस, यूमेनीस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सिकन्दर के पश्चात् कालीन यात्रियों और लेखकों में मेगास्थनीज, प्लनी, तालिमी, डायमेकस, डायोडोरस, प्लूटार्क, एरियन, कर्टियस, जस्टिन, स्ट्रेबो आदि के नाम उल्लेख मेगास्थनीज यूनानी शासक सेल्यूकस की ओर से राजदूत के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया था। इसकी 'इण्डिका' भारतीय संस्थाओं भूगोल समाज के वर्गीकरण, पाटलिपुत्र आदि के संबध में प्रचुर सामग्रियाँ देती हैं। यद्यपि इस ग्रन्थ का मूल रूप अप्राप्य है, पर इसके उद्धरण अनेक लेखकों के ग्रन्थों में आये हैं। डायमेकस राजदूत के रूप में बिन्दुसार के दरबार में कुछ दिनों तक रहा जिसने अपने समय की सभ्यता तथा राजनीति का उल्लेख किया है। इस लेखक की भी मूल पुस्तक अनुपल्बध है तामली ने भारतीय भूगोल की रचना की। प्लिनी ने अपने 'प्राकृतिक इतिहास' में भारतीय पशुओं, पौधों, खनिज आदि का वर्णन किया। इसी प्रकार एरेलियन के लेख तथा कर्टियस, जस्टिन और स्ट्रेबो के विवरण भी प्राचीन भारत इतिहास के अध्ययन की सामग्रियाँ प्रदान करते हैं। 'इरिथियन' सागर का पेरिप्लस' नाम ग्रंथ जिसके रचयिता का नाम अज्ञात है, भारत के वाणिज्य के संबंध में ज्ञान देता है।

उपसंहार

पुराण, हिंदुओं के धर्म संबंधी आख्यान ग्रंथ हैं। जिनमें सृष्टि, लय, प्राचीन)षियों, मुनियों और राजाओं के वृत्तात आदि हैं। ये वैदिक काल के बहुत्का बाद के ग्रन्थ हैं, जो स्मृति विभाग में आते हैं। भारतीय जीवन-धारा में जिन ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान है उनमें पुराण भत्तिफ-ग्रंथों के रूप में बहुत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। अठारह पुराणों में अलग-अलग देवी-देवताओं को केन्द्र मानकर पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, कर्म और अकर्म की गाथाएँ कही गई हैं। कुछ पुराणों में सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक का विवरण किया गया है। श्पुराणश का शाब्दिक अर्थ है, श्प्राचीनश या श्पुरानाश।पुराणों की रचना मुख्यतः संस्कृत में हुई है किन्तु कुछ पुराण क्षेत्रीय भाषाओं में भी रचे गए हैं।पुराणों में वर्णित विषयों की कोई सीमा नहीं है। इसमें ब्रह्माण्डविद्या, देवी-देवताओं, राजाओं, नायकों, ऋषि-मुनियों की वंशावली, लोककथाएं, तीर्थयात्रा, मन्दिर, चिकित्सा, खगोल शास्त्र, व्याकरण, खनिज विज्ञान, हास्य, प्रेमकथाओं के साथ-साथ धर्मशास्त्र और दर्शन का भी वर्णन है। विभिन्न पुराणों की विषय-वस्तु में बहुत अधिक असमानता है। इतना ही नहीं, एक ही पुराण के कई-कई पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं जो परस्पर भिन्न-भिन्न हैं। हिन्दू पुराणों के रचनाकार अज्ञात हैं और ऐसा लगता है कि कई रचनाकारों ने कई शताब्दियों में इनकी रचना की है। इसके विपरीत जैन पुराण जैन पुराणों का रचनाकाल और रचनाकारों के नाम बताए जा सकते हैं। कर्मकांड (वेद) से ज्ञान (उपनिषद्) की ओर आते हुए भारतीय मानस में पुराणों के माध्यम से भत्तिफ की अविरल धारा प्रवाहित हुई है। विकास की इसी प्रकिया में बहुदेववाद और निर्गुण ब्रह्म की स्वरूपात्मक व्याख्या से धीरे-धीरे मानस अवतारवाद या सगुण भत्तिफ की ओर प्रेरित हुआ। पुराणों में वैदिक काल से चले आते हुए सृष्टि आदि संबंधी विचारों, प्राचीन राजाओं और ऋषियों के परंपरागत वृत्तांतों तथा कहानियों आदि के संग्रह के साथ साथ कल्पित कथाओं की विचित्रता और रोचक वर्णनों द्वारा सांप्रदायिक या साधारण उपदेश भी मिलते हैं। पुराण उस प्रकार प्रमाण ग्रंथ नहीं हैं जिस प्रकार श्रुति, स्मृति आदि हैं। पुराणों में विष्णु, वायु, मत्स्य और भागवत में ऐतिहासिक वृत्त– राजाओं की वंशावली आदि के रूप में बहुत कुछ मिलते हैं। ये वंशावलियाँ यद्यपि बहुत संक्षिप्त हैं और इनमें परस्पर कहीं कहीं विरोध भी हैं पर हैं बड़े काम की। पुराणों की ओर ऐतिहासिकों ने इधर विशेष रूप से ध्यान दिया है और वे इन वंशावलियों की छानबीन में लगे हैं।

सन्दर्भ

- प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास (गूगल पुस्तक; लेखक- ओम प्रकाश प्रसाद)
- प्राचीन भारत का सामाजिक और आर्थिक इतिहास (गूगल पुस्तक; लेखक- शिव स्वरूप सहाय)
- A brief introduction to technological brilliance of Ancient India (इण्डियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंटिफिक हेरिटेज)
- प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार (गूगल पुस्तक; लेखक- स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती)
- प्राचीन भारत में रसायन का विकास (गूगल पुस्तक; लेखक- स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती)
- प्राचीन भारत में दूत पद्धति (गूगल पुस्तक; लेखक- आनन्द प्रकाश गौड़)
- श्रेण्य युग (श्क्लासिकल एजश का हिन्दी अनुवाद) (गूगल पुस्तक; लेखक- आर सी मजुमदार ; अनुवादक- शिवदान सिंह चौहान)
- भारतीय इतिहास के कुछ विषय (Archaeology & Ancient India) (गूगल पुस्तक; लेखक- रघुनाथ राय)
- प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास (गूगल पुस्तक ; लेखक- धनपति पाण्डेय)
- हिन्दू सभ्यता (गूगल पुस्तक; लेखक- राधाकुमुद मुखर्जी)

वैदिक कालीन महिलाओं की स्थिति एवं वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता

प्रज्ञा शिखा

शोध-छात्र, इतिहास विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

शोध-सारांश

वैदिक कालीन भारत के कुछ साम्राज्यों में नगरवधु जैसी परंपराये मौजूद थीं। महिलाओं में नगरवधु के प्रतिष्ठित सम्मान के लिए प्रतियोगिता होती थी। आम्रपाली नगरवधु की सबसे प्रसिद्व उदाहरण रही है। अध्ययनों के अनुसार प्रारंभिक वैदिक काल में महिलाओं को बराबरी का दर्जा और अधिकार मिलता था। हांलाकि बाद में (लगभग 500 ईसा पूर्व) स्मृतियों (विशेषकर मनुस्मृति) के साथ महिलाओं की स्थिति में गिरावट आनी शुरू हो गयी और बाबर एवं मुगल साम्राज्य के इस्लामी आक्रमण के साथ और इसके बाद इन्सानियत ने महिलाओं की आजादी को सीमित कर दिया।[1] वैदिक काल यह दर्शाता है कि शुरू में महिला और पुरूष के बीच समानता थी, फिर कई कारणों से पितृसत्ताात्मक समाज व्यवस्था शुरू हो गई और मध्यकाल में काफी लम्बे अर्से तक चलते विदेशी आक्रमणों के कारण महिलाओं के स्तर में गिरावट आती गई एवं वह घर की चाहरदीवारी में बंद हो गई। देश की आजादी से पहले सामाजिक रूप से चेतन शिक्षित पुरूषों में यह अहसास गहराया और नारी शिक्षा, नारी जागरण तथा समाज सुधार कार्यों की शुरूआत हुई। फिर महिलाओं की कई संस्थाऐं शुरू और संगठित हुई और उन्होंने नारी आन्दोलन शुरू किए।

मुख्य शब्द : वैदिक युग, मातृरूप, कन्या भ्रुणहत्या, शैक्षणिक स्तर, साफ्टवेयर उद्योग, मैत्रयीसंहिता

परिचय

वैदिक कालीन में महिलाओं की स्थिति की भूमिका वेदों में मिलती है, जो कि भारतीय आर्य सभ्यता का मूल आधार है (2500-1500 ई०पू०)। इसके अलावा इसके प्रमाण संहिताओं, ब्राह्मणों और उपनिषदों के युग (1500-500 ई०पू०) सूत्रों, महाकाव्यों और स्मृतियों (500 ई०पू० से 500 ईसवी तक) तथा बाद की स्मृतियों, टीकाकारों और सारे संग्रहकारों के युग (500 ई० से 1800 ई० तक) में भी मिलते हैं। इनके अनुसार महिलाओं की स्थिति 2500 ई०पू० से 500 ई०पू० तक काफी अच्छी रही। इसके बाद महिलाओं की स्थिति धीरे-धीरे बिगड़ती गयी। वैदिक युग में महिलायें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में पुरूषों के समान सभी क्षेत्रों में निपुण थी और स्वतंत्र निर्णय ले सकती थीं। पूरा समाज नारी जाति के प्रति सरोकार और सम्मान व्यक्त करता था और उन्हें सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के भिन्न क्रियाकलापों में काफी स्वतन्त्रता मिली हुयी थी। महिलाओं को अलग-थलग नहीं रखा जाता था तथा समाज में वे मुक्त रूप से विचरण करती थीं। सामाजिक और धार्मिक समारोहों में उन्हें गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था।[2] धर्म की दृष्टि से महिलायें पूरी तरह से पुरूषों के बराबर मानीजाती थीं। वे पुरूषों से स्वतन्त्र रूप में बलि चढ़ाने का अनुष्ठान कर सकती थीं। यदि कोई पत्नी विधवा हो जाती थी तो उसे अपने पति की चिता में बैठकर सती होने को नहीं कहा जाता था। उस समय सती प्रथा कहीं भी प्रचलित नहीं थी। यदि विधवा की इच्छा होती थीतो वह पुन: विवाह कर सकती थी या नियोग प्रथा को अपना सकती थी, जिसके अन्तर्गतविधवा को यह अनुमति थी कि वह संतानोत्पत्ति के लिए, अपने पति के छोटे भाई या किसीऔर निकट के संबंधी के साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर सकती थी। जिस विधवा के संतान होती थी, उसे नियोग अपनाने की अनुमति नहीं थी। वैदिक काल में नारी के अस्तित्व एवं योगदान से गृहस्त आश्रम को आदर्श रूप प्राप्त होता था। वेद युगीन गृह का अस्तित्व नारी के अस्तित्व में ही निहित माना जाता था। वैदिक काल में नारी समाज में पूज्य मानी जाती थी तथा

उस काल में नारियों ने भी समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ उपभोग किया था। इस प्रकार वैदिक समाज भरतीय समाज इतिहास का सर्वाधिक आदर्श समाज रहा है। ऋग्वैदिक युग में कन्या सुख का कारण मानी जाती थी। अथर्ववेद मे कहा गया है- ''नववधू तू जिस घर में जा रही है वहाँ की साम्राज्ञी है। तेरे सास-ससुर देवर व अन्य व्यक्ति तुझे साम्राज्ञी समझते हुऐ तेरे शासन में आनन्दित हो।''[3] वैदिक युग में पति की पूर्णता पत्नी के अस्तित्व मे ही निहित मानी जाती थी। पत्नी के रूप में नारी निश्चय ही पति की अर्द्धांग्नि होती थी। वेद युग में पत्नी को पति के मित्र का रूप प्रात था। इस युग में नारी मातृरूप में देवी के समान पूज्य मानी जाती थी। पर्दा प्रथा का पूर्णत: अभाव था। कन्यायें निर्मुक्त होकर युवकों के साथ अध्ययन करती थी तथा काम धंन्धे भी करती थी। महिलाएं अध्यापकगण आदि क्षेत्र भी अपनाती थी तथा खुली सभाओं में भी भाग लेती थीं। वैदिक युगिन महिलाएं वैदिक वाड्मय का विधिवत् अध्ययन करती थी एवं यज्ञों में भाग लेकर मंत्रेच्चारण भी करती थी। वैदिक समाज में धर्म के नाम पर महिलाओं के प्रति दुराचार नही किया जाता था। अत: धार्मिक क्षेत्र में वैदिक महिलाएं पुरूषों के समान समस्त अधिकारों का उपभोग करती थी। पत्नी व्यक्गित सम्पत्ति की अधिकारी होती थी। वैदिक काल में विधवाएं यातनामन जीवन नही जीती थीं अपितु वे समस्त सुख-सुविधाओं का उपभोग करती थी। पुनर्विवाहिता विधवा समाज मे आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। इस प्रकार वैदिक काल में महिलाएं समस्त अधिकारों की उपभोक्ता थी। तथा समाज में उनकी स्थिति उच्च तथा आदरणीय थीं।प्राचीन भरतीय इतिहास में वैदिक काल नारी के उत्थान की पराकाष्ठा का काल माना जाता था।[4]

विषय-वस्तु

प्राचीन काल में विशेषकर वैदिक युग नारी जाति का स्वर्णिम युग था। इस युग में नारी अत्यंत उन्नत स्थिति में थी। महिलाओं की स्थितिके सन्दर्भ में यह कहा गया है कि वैदिक काल में उनकी स्थिति गरिमामयी थी। प्राचीनकाल में प्रत्येक धर्मग्रंथों में नारी की महिमा का सम्मान पूर्वक वर्णन किया गया था। नारियों की निम्नतम स्थिीत के संकेत परवर्ती सूत्रों उत्तर वैदिक काल में मिलते हैं। वैदिक काल का भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्व था पुत्र के समान कन्या को पाला जाता था। इसके सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का कोई विरोधाभास नहीं था। कन्याओं के जन्म पर बराह ग्रहा सूत्र में प्रसन्नता व्यक्त की जाती थी। कुछ श्लोकों में अभिभावकों द्वारा स्नेह की अभिव्यक्ति पुत्रियों के लिए, की गई थी। पुत्र प्राप्ति की कामना का उल्लेख वेदों से भी प्राप्त होता था। तैतंरीय संहिता के अनुसार पिता द्वारा पुत्र जन्म पर अत्यधिक प्रसन्नता तथा कन्या के जन्म पर शोक जैसे उदाहरणों प्राप्त हाते हैं। आर्य ग्रन्थों में पुत्र-पुत्री को समान मानना सम्भव नहीं है। कन्या जन्म पर शोक व बालिका शिशु हत्या वैदिककाल में प्रारम्भ नहीं हुई थी।[5]

वैदिक युग में महिलाओं को वेदों के अध्ययन करने की अनुमति थी और वे देवताओं को बलि चढ़ा सकती थी, जिसके लिए, पुत्र का होना जरूरी नहीं था। विवाह से 7-8 वर्ष पूर्व ही वे वेद और ऋचाऐं कंठस्थ कर लिया करती थीं। स्वयं महिला कवियत्रियों ने वेदों की रचनायें लिखी हैं। ऋग्वेद में 8 से 91 मंत्र ब्रह्मवादिनी अपाला के लिखे हुए हैं। लोपामुद्रा में वेद-ऋचायें लिखी हैं और वे ऋषिका कहलायीं। पेशे के तौर पर लड़कियों के मामले में संगीत, नृत्य, चित्रकला और उसके अलावा कताई बुनाई को प्रोत्साहन दिया जाता था। वैदिक युग में महिलाओं की सम्मानपूर्ण स्थिति का एक कारण धर्म का प्रभाव भी था। एक वैदिक उद्धरण में यह उल्लेख मिलता है कि पुरूष अपने आप में आधा होता है और जब तक उसका पत्नी से मेल नहीं होता, वह पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। किसी भी दिव्य युगल का उल्लेख करते हुए पहले हमेशा नारी का नाम लिया जाता है जैसे सीताराम, लक्ष्मी नारायण, राधाकृष्ण आदि। हिन्दू धर्म में आज भीबहुत सी देवियों की पूजा की जाती है। उपनयन संस्कार लड़कियां और लड़कों दोनों के लिए, लगभग 9 या 10 वर्ष की आयु में किया जाता था। स्त्रियाँ पुरोहित बनकर यज्ञ आदि भी सम्पादित करती थीं 500 ई0पू0 के लगभग लड़कियों की विवाह आयु को कम करने और उसके परिणाम स्वरूप उनके उपनयन संस्कार और शिक्षा को हतोत्साहित करने के प्रयास किये गये। लड़कियों की शिक्षा को बन्द करने और उसे उपेक्षित करने तथा उनकी विवाह आयु को कम करने से महिलाओं की स्थिति पर अनर्थकारी प्रभाव रहा। वैदिक और उपनिषद् कालों में, जो बाल विवाह वर्जित माना जाता था, 400 ई0पू0 आते आते उसकी वकालत कीजाने लगी। इस अवधि के दौरान महिलाओं ने अपना सामाजिक स्तर कैसे खोया, इसके बारे में अलग अलग मत हैं। एक कारण, दूसरे गोत्र की लड़कियों को आर्य परिवारों में विवाह की अनुमति दिया जाना भी हो सकता है। इन लड़कियों को कम सामाजिक स्तर का माना जाता था और उन्हें कई अधिकारों से वंचित कर दिया जाता था। उन्हें शिक्षा और संस्कृति के ज्ञानी परिधि से बाहर रखा जाता था, इसलिए वे धार्मिक ग्रन्थों का पाठ नहीं कर सकती थीं।

वर्तमान में महिलाओं की स्थिति की प्रासंगिता

भारत में वर्तमान में महिलाओं की स्थिति संतोष जनक नही कही जा सकती आधुनिकता के विस्तार के साथ साथ देश में दिन प्रतिदिन बढते महिलाओ के प्रति अपराधो की संख्या के आंकड़े चौकाने वाले है। उन्हें आज भी कई प्रकार के धार्मिक रीति रिवाजो कुत्सित रुढियो यौन अपराधो लौगिक भेदभावों घरेलू हिंसा निम्नस्तरीय जीवन शैली अशिक्षा कुपोषण दहेज उत्पीडन कन्या भ्रुणहत्या सामाजिक असुरक्षा तथा उपेक्ष का शिकार होना पड रहा है हालांकि पिछले कुछ दशकों में रक्षा और प्रशासन सहित लगभग सभी सरकारी गैर-सरकारी क्षेत्रों में महिलाओं की बढती भागादारी उनकी स्वायत्तता तथा अधिकारो का कानूनी एवं राजनैतिक संरक्षण तेजी से बदलते सकारात्मक सामाजिक नजरिये सुधरते शैक्षणिक स्तर अंतरराष्ट्रीय खेल प्रतिस्पर्धाओं में उनकी प्रतिभागिता एवं कौशल तथा सिनेमा, रचनात्मकता व्यापार, संचार, विज्ञान तथा तकनीकी जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में कई बडे बदलाव भी देखने सामने आये है। लेकिन यह महज शुरूवात भर है। जब तक सामज के प्रत्येक वर्ग में महिलाओं की पुरूषो के बराबर भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो जाती, वे हर प्रकार से शिक्षित, सुरक्षित तथा संरक्षित नही हो जाती, तब तक हमारी आजादी अधुरी मानी जायेगी।[7]

आज की नारी राजनिति, कारोबार, कला तथा नौकारीयों में पहुँचकर नये आयाम गढ़ रही है। भूमण्डलीकृत दुनियाँ में भारत और यहीं की नारी ने अपनी एक नितांत सम्मानजनक जगह कायम कर ली है। आँकड़े दर्शाते हैं कि प्रतिवर्ष कुल परीक्षार्थियों में 50 प्रतिशत महिलायें डाक्टरी की परीक्षा उत्तीर्ण करती है। आजादी के बाद लगभग 12 महिलायें विभिन्न राज्यो की मुख्यमंत्री बन चुकी है। भारत के अग्रणी साफ्टवेयर उद्योग में 21 प्रतिशत पेशेवर महिलायें है। फौज, राजनीति, खेल, पायलट तथा उद्यमी सभी क्षेत्रों में जहाँ वर्षो पहले तक महिलाओं के होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। वहां सिर्फ नारी स्वयं को स्थापित ही नहीं कर पायी है बल्कि वहां सफल भी हों रही हैं। यदि आपके विकास करना है तो महिलाओं को उत्थान करना होगा। महिलाओं को विकास होने पर समाज का विकास स्वत: हो जायेगा - जवाहर लाल नेहरू। [8]

महिलाओं को शिक्षा देने तथा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये जो सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उससे समाज में एक नयी जागरूकता उत्पन्न हुई है। बाल-विवह, भ्रूण-हत्या पर सरकार द्वारा रोक लगाने का अथव प्रयास हुआ है। शैक्षणिक गतिशीलता से पाविरिक जीवन में परिवर्तन हुआ है। गाँधी जी ने कहा था कि एक लड़की की शिक्षा एक लड़के की शिक्षा की उपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्यों लड़के को शिक्षित करने पर वह अकेला शिक्षित होता है किन्तु एक लड़की की शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। शिक्षा ही वह कुंजी है जो जीवन के वह सभी द्वार खोल देती है जो कि आवश्यक रूप से सामाजिक है। शिक्षित महिलाओं को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय होने में बहुत मदद् मिली। महिलाएँ अपनी स्थिति व अपने अधिकारों के विषय में सचेत होने लगी। शिक्षा ने उन्हें आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक न्याय तथा पुरूष के साथ समानता के अधिकारों की माँग करने को प्ररित किया। संवैधानिक अधिकारों में विभिन्न कानूनों के द्वारा महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार मिलने से उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ। महिलाओं की विवाह विच्छेद परिवार की सम्पत्ति में पुरूषों के समान अधिकार दिये गये। दहेज पर कानूनी प्रतिबन्ध लगा तथा उन व्यक्तियों के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी जो दहेज की मांग को लेकर महिलाओं का उत्पीड़न करते हैं। अब सरकार लिव इन पर विचार कर रही है। संयुक्त परिवारों के विघटन होने से जैसे-जैसे एकांकी परिवार की संख्या बढ़ी इनमें न केवल महिलाओं को सम्मानित स्थान मिलने लगा बल्कि लड़कियों की शिक्षा को भी एक प्रमुख आवश्यकता के रूप में देखा जाने लगा। वातावरण अधिक समताकारी होने से महिलाओं को अपने वयक्तित्व का विकास करने के अवसर मिलने लगे। वस्तुत: इक्कीसवीं सदी महिला सदी है। वर्ष 2001 महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मनाया गया। इसमें महिलाओं और कौशल का विकास करके उन्हें अधिक सशक्त बनाने तथा समग्र समाज को महिलाओं की स्थिति और भूमिका के संबंध में जागरूक बनाने के प्रयास किये गए। महिला सशक्तिकरण हेतु 2001 में प्रथम बार प्रथम बार ''राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति''[9] बनाई गई जिससे देश में महिलाओं के लिये विभिन्न क्षेत्रों में उत्थान और समुचित विकास की आधारभूत विशेषताएँ निर्धारित किया जाना संभव हो सके। इसमें आथिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में पुरूषों के साथ समान आधार पर महिलाओं द्वारा समस्त मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं का सैद्धान्तिक तथा वस्तुत: उपभोग पर तथा इन क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी व निर्णय स्तर तक समान पहुँच पर बल दिया गया है। आज देखने में आया है कि महिलाओं ने स्वयं के अनुभव के आधार पर, अपनी मेहनत और आत्मविश्वास के आधार पर अपने लिए नई मंजिलें नये रास्ते का निर्माण है। क्या मात्र इस आधार पर उस सफलता के पीछे क्षणांश भी किसी पुरूष के हाथ होने की सम्भावना को नकार दिया जायेगा? यदि नहींतो फिर समस्या कहाँ है? मैं कौन हूँ का प्रश्न अभी भी उत्तर

की आस में क्यों खड़ा है? जवाब हमारे सभी के अन्दर ही है पर उसके सामने लाने में हम घबराते भी दिखते है। स्त्री को एक देह से अलग एक स्त्री के रूप में देखने की आदत को डालना होगा। स्त्री के कपड़ो के भीतर से नग्णता को खींच-खींच कर बाहर लाने की परम्परा से निजात पानी होगाी। कोड ऑफ कंडक्ट किसी भी समाज में व्यवस्था के संचालन में तो सहयोगी हो सकते है। किन्तु इसके अपरिहार्य रूप से किसी भी व्यक्ति पर लागू किये जाने से इसके विरोध की सम्भावना उतनी ही प्रबल हो जाती है जितनी कि इसको लागू करवाने की। क्या बिकाऊ है और किसे बिकना है, अब इसका निर्धारण स्वयं बाजार करता है, हमें तो किसी को बिकने और किसी को जोर जबरदस्ती से बिकने के बीच में आकर खड़े होना है। किसी की मजबूरी किसी के लिए व्यवसाय न बने यह समाज को ध्यान देना होगा।[10] नग्णता और शालीनता के मध्य की बारीक रेखा समाज स्वयं बनाता और स्वयं बिगाड़ता है। एक नजर में उसका निर्धारक पुरूष होता है तो दूसरी निगाह उसका निर्धारक स्त्री को मानती हैं। उचित और अनुचित, न्याय और अन्याय, विवेकपूर्ण और अविवेकपूर्ण, स्वाधीनता और उच्छृंखलता, दायित्व और दायित्वहीनता, श्लीलता और अश्लीलता के मध्य धुँधलके को साफ करना होगा। समाज में सरोकारों का रहना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि किसी भी स्त्री-पुरूष का। सामाजिकता के निर्वहन में स्त्री-पुरूष को समान रूप से सहभागी बनना होगा और इसके लिए स्त्री पुरूष को अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं समझे और पुरूष भी स्त्री को एक देह नहीं, स्त्री रूप में एक इंसान स्वीकार करे। स्त्री की आजादी और खुले आकाश में उड़ान की शर्त उत्पादन में उसकी भूमिका हो। स्त्री की असली आजादी तभी होगी जब उसके दिमाग की स्वीकार्यता हो, न कि केवल उसकी देह की। अन्ततः कहीं ऐसा न हो कि सत्री स्वतन्त्रता और स्वाधीनता को पर्व सशक्तिकरण की अवधारणा पर खड़ा होने के पूर्व ही विनष्ट होने लगे और आने वाली पीढ़ी फिर वही सदियों पुराना प्रश्न दोहरा दे कि मै कौन हूँ? वर्तमान समय में भारतीय सरकार द्वारा महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक कार्यक्रम एवं योजनाओं का संचालन तो की जा रही हैं लेकिन इन योजनाओं का क्रियान्वयन निचले स्तर तक उचित ढंग से न पहुँच सकने के कारण स्त्रियों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पा रहा है। यह सत्य है कि वर्तमान समय में स्त्रियों की स्थिति में काफी बदलाव आए हैं। लेकिन फिर भी वह अनेक स्थानों पर पुरूष-प्रधान मानसिकता से पीड़ित हो रही है। इस सन्दर्भ में युगनायक एवं राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है, वहाँ की महिलाओं की स्थिति। हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्याओं को अपने ढंग से स्वयं सफलझा सकें। हमें नारीशक्ति के उद्धारक नहीं, वरन् उनके सेवक और सहायक बनना चाहिए। भारतीय नारीयाँ संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भाँति अपनी समस्याओं को सफलझाने की क्षमता रखती हैं। आवश्यकता है उन्हें उपयुक्त अवसर देने की। इसी आधार पर भारत के उज्जवल भविष्य की संभावनाएँ सन्निहित हैं।''[11]

निष्कर्ष :

भारत में महिलाओं की स्थिति सदैव एक समान नहीं रही हैं इसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहे हैं। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। तथा उनके अधिकारों में तदनरूप बदलाव भी होते रहे हैं। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी परिवार तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। उनको शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। सम्पत्ति में उनको बराबरी का हक था। सभा व समितियों में से स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेती थी तथापि ऋग्वेद में कुछ ऐसी उक्तियां भी हैं जो महिलाओं के विरोध में दिखाई पड़ती हैं। मैत्रयीसंहिता में स्त्री को झूठ का अवतार कहा गया हैं। ऋगवेद का कथन है कि स्त्रियों के साथ कोई मित्रता नही है, उनके हृदय भेड़ियों के हृदय है। ऋगवेद के अन्य कथन में स्त्रियों को दास की सेना का अस्त्र-शस्त्र कहा गया हैं। स्पष्ट है कि वैदिक काल में भी कहीं न कहीं स्त्रियाँ नीची दृष्टि से देखी जाती थीं। फिर भी हिन्दू जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समान रूप से आदर और प्रतिष्ठित थीं। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महान योगदान था। संस्थानिक रूप से स्त्रियों की अवनति उत्तर वैदिककाल से शुरू हुई। परंतु वर्तमान समय की नारी राजनीति, कारोबार, कला तथा नौकारीयों में पहुँचकर नये आयाम गढ़ रही है। भूमण्डलीकृत दुनियाँ में भारत और यहीं की नारी ने अपनी एक नितांत सम्मानजनक जगह कायम कर ली है। आँकड़े दर्शाते हैं कि प्रतिवर्ष कुल परीक्षार्थियों में 50 प्रतिशत महिलायें डाक्टरी की परीक्षा उत्तीर्ण करती है। आजादी के बाद लगभग 12 महिलायें विभिन्न राज्यो की मुख्यमंत्री बन चुकी है।

संदर्भ-सूची :-

1. किशोर राज : स्त्री परम्परा और आधुनिकता : प्रथम संस्करण 2004 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 8 ए 12 ए 16 ए 23

2. शर्मा प्रेम नारायण, झा संजीव कुमार, विनायक वाणी, विनायक सुष्मा : महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास : प्रथम संस्करण 2005, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, पृष्ठ संख्या 172,178
3. खेतान प्रथम : उपनिवेश में स्त्री मुक्ति कामना की दस वार्त्ता में प्रथम संस्करण 2003, राज कमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 142
4. तिवारी, प्रेमलता : कौशिक विजय : भारत में महिला शक्ति : प्रथम संस्करण 1994, कनिष्ठा पब्लिशर्स इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 94
5. अवस्थी, अशोक कुमार : महिलाओं के संवैधानिक एवं कानूनी अधिकार : योजनामासिक समाचार पत्रिका, अक्टूबर 2006, पृष्ठ संख्या 23,34
6. कौशिक, आशा : विमर्श एवं यथार्थ : प्रथम संस्करण 2004, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर राजस्थान, पृष्ठ संख्या 113,114
7. जैन प्रतिभा, शर्मा संगीता : भारतीय स्त्री राजनीतिक संदर्भ : प्रथम संस्करण 2003, रावत पब्लिशर्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 167,168
8. कुमार, राधा : स्त्री संघर्ष का इतिहास : 1800.1960 प्रथम संस्करण 2002, वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ संख्या 150
9. सिसोदिया, यतीन्द्र सिंह : पंचायत राज एवं महिला नेतृत्व : प्रथम संस्करण 2000, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 126
10. शर्मा, ऋषभदेव : स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम : प्रथम संस्करण 2004 नीता प्रकाशन, हैदराबाद 68
11. दिनेश नंदिनी, मल्होत्र रश्मि : नये आयामों की तलाशती नारी 2007 : नवचेतन प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 16

महिलाओं के विरुद्ध अपराध एवं मानव अधिकार: एक समाजशास्त्रीय समीक्षा

डॉ० मोनी कुमारी

पूर्व शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांशिका

महिलाओं के साथ असमानता कारी व्यवहार व शोषण, उत्पीड़न एवं अपराध का इतिहास लंबा एवं पुराना रहा है – भारतीय संदर्भ में यदि हम बात करें तो स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज का धर्मिक विधि-विधन एवं प्रावधनों द्वारा संचालन, नियमन एवं नियंत्रण हो रहा था, जो पुरुष सत्तावादी एवं महिला उत्पीड़न कारी मानसिकता से परिपूर्ण एवं महिला अधीनता को प्रेरित करने वाला एवं बनाए रखने वाला था – महिलाओं को वह सारे अधिकार प्राप्त नहीं थे, जो एक स्वतंत्र क्षमता पूर्ण अधिकार युक्त मानव को मिलने चाहिए – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात समतावादी विचारको एवं स्त्री चिंतकों ने महिलाओं को पितृसत्ता एवं शोषण वादी सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति दिलाने के लिए अनेक कानूनी एवं सामाजिक प्रयत्न किए, जिसके लगातार सकारात्मक परिणाम भी परिलक्षित होते रहे हैं और महिलाओं के जीवन में सकारात्मक एवं रचनात्मक बदलाव हुए हैं – परंतु स्त्री संघर्ष अभी भी थमा नहीं है – इसका मुख्य कारण यह है कि स्त्री शोषण वादी मानसिकता आज भी कथित आधुनिक समाज में एक्जिस्ट करती है और महिलाओं को दोयम दर्जे पर ही बनाए रखने के लिए आमादा है – सामाजिक परिवर्तन एवं स्त्री कल्याणकारी नियमों प्रावधनों एवं संस्थाओं के माध्यम से जेंडर गैप को कम करके स्त्री पुरुष समानता एवं महिलाओं को पूर्णत: मानवीय अध्किार एवं स्वच्छंदता दिलाने हेतु समतावादी समाज अग्रसर है द्य

प्रस्तुत शोध आलेख में महिलाओं के विरुद्ध होने वाले विभिन्न प्रकार के अपराधें एवं हिंसा के बारे में संक्षेप एवं गहन विचार विमर्श एवं समीक्षा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है –

मुख्य शब्द : महिलाओं के विरुद्ध अपराध, शोषण, उत्पीड़न, मानवाधिकार.

प्रस्तावना

महिलाओं के विरुद्ध अपराध एवं हिंसा कोई नई सामाजिक – सांस्कृतिक प्रघटना नहीं है – सदियों से स्त्रियों को नियंत्रित करने के उद्देश्य से एवं पुरुष वर्चस्व की अभिव्यक्ति के रूप में लगातार विभिन्न तरीकों से अपराधें एवं हिंसा का शिकार बनाया जाता रहा है – भारतीय परिपेक्ष में न केवल महिलाओं के प्रति उपेक्षा का भाव रखा जाता है बल्कि उनके विरुद्ध दिन प्रतिदिन बढ़ते अत्याचार एवं अपराध किसी भी संवेदनशील व्यक्ति, समूह व समाज के लिए अत्यंत चिंता का विषय है और इससे भी अधिक चिंता का विषय यह है कि महिलाएं उतने संगठित तरीके से इस शोषण एवं अपराध के विरुद्ध लड़ती नहीं दिखाई देती हैं, जितना कि होना चाहिए – अधिकांश नारीवादी विचारों को एवं लेखकों का विचार है कि नारियों को जेंडर सोशलाइजेशन के तहत इस तरीके से समाजीकृत कर दिया जाता है कि उनका माइंड वास हो जाता है और वह पुरुष वर्चस्व वादी संस्कृति के साथ अपने आप को स्थापित कर लेती हैं – स्त्रियां दासता को झेलते झेलते दासत्व की स्थिति में आ जाती है – उसके बाद उनको पुरुष सत्तावादी एवं पुरुष वर्चस्व वादी संस्कृति भी अच्छी संस्कृति लगने लगती है – वह उसे नियति मान कर बैठ जाती हैं और उसी में जीना सीख

जाती हैं - उसका विरोध करने के बजाय उसके संरक्षण में जुट जाती हैं और ऐसी स्थिति को ही दासत्व की स्थिति कहते हैं; अर्थात मन: स्थिति में दास बन जाना–

मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट की बुक इंडिकेशन आफ राइट्स ऑफ वूमेन से स्त्री अधिकारों की बात शुरू होती है और 19वीं एवं 20 वीं सदी में यह काफी जोर-शोर से उठाई जाती रही - स्त्रियों को शोषण वादी सामाजिक व्यवस्था से निजात दिलाने के लिए कई नारी वादियों एवं समाज सुधारकों ने अपना पूरा जीवन लगा दिया - स्त्रियों की स्थिति में उनके इस मेहनत का सकारात्मक परिणाम भी नजर आता है, परंतु समस्त अपराधें, शोषण एवं अत्याचारों से समस्त स्त्रियां अभी मुक्त नहीं हो पाई है - यदि भारत में स्त्रियों की पराधीनता एवं अपराध कारी व्यवस्था पर नजर डालें तो स्वतंत्रता एवं संविधन प्राप्ति के पश्चात विभिन्न स्त्री अधिकारों के संरक्षण एवं विकास हेतु नियम कानून सृजित एवं क्रियान्वित किए गए - इन नियमों कानूनों का प्रत्यक्ष सकारात्मक परिणाम देखने को मिलता है, जो उन्हें एक अस्पष्ट मानवीय अधिकार दिलाता है और जेंडर गत भेदभाव को समाप्त करने की नींव रखता है–

अवधरणात्मक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज सहित विश्व के अधिकांश समाजों में महिलाओं को सैद्धांतिक रूप से एक सम्मानजनक स्थान दिया गया है, परंतु व्यवहार में जो सामाजिक क्रियाएं निष्पादित की जाती हैं, वह सैद्धांतिक प्रावधनों या विचारों के विरुद्ध प्रतीत होती हैं- मनुस्मृति सहित कई ग्रंथ ऐसे भी हैं जिसमें महिलाओं के अधीनिकरण से संबंधित एवं उन्हें अधीनस्थता की स्थिति में बनाए रखने हेतु प्रावधन भी किए गए हैं, जो एक दृष्टि से उन्हें सुरक्षा प्रदान करते हुए दिखाई देते हैं तथा दूसरी दृष्टि से उनको शक्ति, सत्ता एवं संसाधन से स्पष्टत : वंचित करते हैं–

प्रस्तुत शोध विषय 'महिलाओं के विरुद्ध अपराध एवं मानव अधिकार' पर विशद व्याख्या एवं विश्लेषण करने से पूर्व हमें उसके अवधारणात्मक पृष्ठभूमि एवं पहलुओं को स्पष्ट कर लेना आवश्यक है, जिससे कि संपूर्ण शोध को समझना एवं आत्मसात करना आसान हो जाएगा।

महिलाओं के विरुद्ध अपराध शब्दावली से तात्पर्य है कि समाज की आधी आबादी अर्थात नारियों के विरुद्ध किसी भी प्रकार की भावात्मक, मानसिक, शारीरिक एवं योनिक या किसी भी अन्य प्रकार से क्षति पहुंचाने या उसका प्रयास करने से है - इन समस्त प्रकार के अपराधों एवं अत्याचारों का उद्देश्य पुरुष वादी सत्ता की अभिव्यक्ति को दर्शना तथा महिलाओं को बार बार यह याद दिलाना होता है कि वह पुरुषों की दास है और वह अपने तरीके से पारिवारिक या सामाजिक जीवन का संचालन नहीं कर सकतीं -

मानव अधिकार से तात्पर्य उन अधिकारों से है जिनके माध्यम से व्यक्ति वह सारे अधिकार पाता है जिससे कि वह अपना सर्वांगीण विकास कर सके एवं समाज में समतामूलक स्थान पाने में सक्षम हो सके - सत्ता, शक्ति एवं संसाधनों पर अधिकार का क्षमता पूर्ण पूरा अवसर प्राप्त कर सके और अंततः अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके - हेराल्ड लास्की कहते हैं कि अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियां हैं जिनके बिना सामान्यत: कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूरा विकास नहीं कर सकता - मानवाधिकार के बारे में यह कहना तर्कसंगत होगा कि ऐसे अधिकार जिनके बिना मानव अपने व्यक्तित्व के पूरा विकास के बारे में नहीं सोच सकता, जो कि मानव में मानव होने के फलस्वरूप अंतरनिहित है - मानवाधिकार से अभिप्राय ऐसे अधिकार से हैं जो एक मानव होने के नाते प्रत्येक मानव को निश्चित रूप से मिलना चाहिए -

भारतीय संदर्भ में अंसारी विचार व्यक्त करते हैं कि भारत में दास प्रथा के विरुद्ध मानवीय अधिकारों के लिए सबसे पहले गौतम बुद्ध ने आवाज उठाई और बिच्छू बनकर दासों के द्वारा मुक्ति देने का कार्य चलाया - इंट्रोडक्शन टू ह्यूमन राइट्स में उल्लेख किया गया है कि स्पष्टत: मानव अधिकार हमें अवसर देते हैं कि हम अपनी मानवीय क्षमताओं, मानवीय गुणों, माननीय मेध व मानवीय चेतना का अधिकतम विकास करते हुए अपने आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की मनवांछित तरीके से पूर्ति कर सके - संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार केंद्र की भाषा में कहा जा सकता है कि मानवाधिकार को सामान्यता उन अधिकारों के रूप में परिभाषित किए जा सकते हैं जो कि हमारी प्रकृति के अभिन्न अंग है तथा जिन के अभाव में हम मानव प्राणी के रूप में नहीं रह सकते -

महिलाओं के विरुद्ध होने वाले प्रमुख अपराध एवं उनके स्वरूप

जब हम महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों की बात करते हैं, जिससे हमारा तात्पर्य उन अपराधों से होता है जो कुछ विशेष प्रकार के अपराध है और वह सिर्फ महिलाओं के विरुद्ध ही किए जाते हैं - महिलाओं के विरुद्ध होने वाले प्रमुख अपराधों के कुछ स्वरूप निम्नवत है....

घरेलू हिंसा

घरेलू हिंसा से संबंध्ति अपराधों में स्त्रियों के साथ मारपीट एवं उन्हें भूखा रखकर शारीरिक, मानसिक, तथा अन्य प्रकार से हानि पहुंचाने का प्रयास किया जाता है – घरेलू हिंसा कोई नई समस्या नहीं है बल्कि समय के साथ साथ इसके स्वरूपों एवं क्रियाकलापों में परिवर्तन आता रहा है, परंतु यह समाप्त अभी भी पूर्णतः नहीं हुआ है – दैनिक समाचार पत्रों में आपको आसानी से प्रत्येक दिन किसी न किसी क्षेत्र विशेष में घरेलू हिंसा या उससे संबंधित अपराधों के बारे में खबरें मिल जाएंगे, जो यह स्पष्ट करते हैं की महिलाओं के विरुद्ध होने वाली घरेलू हिंसा समकालीन समय में भी एक गंभीर समस्या बनी हुई है। व्यापक संदर्भ में घरेलू हिंसा का संबंध केवल वर्तमान पतियों से ही न होकर पुरुष मित्रों, पूर्व पतियों या परिवार के अन्य सदस्यों से भी हो सकता है। इस तरह से घरेलू हिंसा पीड़ित एवं प्रत्यर्थी के संबंध को दर्शाता है – घरेलू हिंसा का निहित उद्देश्य महिलाओं को पराधीन बनाए रखना होता है – इसके लिए हिंसा के विभिन्न रूपों का सहारा लिया जाता है –

बलात्कार

कबीलाई काल से ही पुरुष सर्वथा महिलाओं की यौनिकता पर एकाधिकार करने का प्रयास करता रहा है – इसके प्रयास के रूप में कई सामाजिक परंपराओं, प्रथाओं का भी सहारा लिया गया है – वर्तमान आधुनिक राष्ट्र राज्य की कल्पना के मध्य समतावादी समाज में पुरुषवादी मानसिकता की यह प्रवृति समाप्त नहीं हुई है और उसी की अभिव्यक्ति लगातार महिलाओं के बलात्कार के रूप में परिलक्षित होती रहती है। वर्तमान समय में बलात्कार या उसका प्रयास एक सामान्य अपराध की भांति प्रतीत होता है इसका कारण इसकी आवृत्ति का अत्यधिक होना है। बलात्कार के लिए वर्तमान समय में पुरुषवादी मानसिकता के अलावा रूढ़ीवादी सामाजिक नियम कानून एवं यौन स्वच्छंदता ना होना भी है- जिसके कई भयानक परिणाम हमें लगातार देखने को मिलते रहते हैं- शुरुआती दौर में महिला कल्याणकारी नियमों के सृजन के अलावा सरकारें इस पर प्रमुखता से ध्यान देते हुए कार्य करने में अक्षम रही हैं-

महिलाओं की तस्करी एवं अपहरण

पूरी दुनिया में महिलाओं के यौन सेवा की अत्याध्कि मांग रही है, जिसमें सबसे पुरातन व्यवसाय वेश्यावृत्ति व्यवसाय अपनी भूमिका निभाता है- वेश्यावृत्ति व्यवसाय के नए स्वरूप जैसे होटल गर्ल्स, कॉल गर्ल्स एवं डिमांड के आधर पर उपलब्ध कराई जाने वाली योन सेवा देने वाली लड़कियों की आपूर्ति के लिए दूरदराज के क्षेत्रों तथा गरीब परिवारों एवं मासूम लड़कियों को बहला-फुसलाकर नौकरी या किसी अन्य फायदे का लालच दिला कर उन्हें वेश्यावृत्ति में ध्केल दिया जाता है और इसके लिए बड़े स्तर पर महिलाओं की तस्करी एवं अपहरण की जाती है- यदि भारतीय कानून व्यवस्था की बात करें तो वह भी इससे अनभिज्ञ व अपरिचित नहीं है, बल्कि वह भी इसे एक मौके के रूप में फायदा उठा कर कमीशन लेकर तस्करों को छोड़ देते हैं –

दहेज उत्पीड़न एवं हत्या

महिलाओं के विरुद्ध होने वाली दहेज प्रथा से संबंधित उत्पीड़न एवं शोषण महिला संरक्षणात्मक कानून के लागू होने के इतने दशक बावजूद भी वर्तमान समाज में अस्तित्व रखता है – आज भी कई ऐसे परिवार एवं क्षेत्र है जहां दहेज के रूप में एक अच्छी खासी रकम या कोई अन्य संपत्ति ली व दी जाती है – दहेज पूर्ति न होने की दशा में महिला के साथ शारीरिक, मानसिक, यौनिक या किसी अन्य प्रकार से उत्पीड़न एवं शोषण किया जाता है – यहां तक कि कई मामलों में यह भी देखा गया है की महिलाओं की हत्या तक कर दी जाती है –

ऑनर किलिंग

प्रतिष्ठा के लिए की गई हत्या अर्थात ऑनर किलिंग एक ऐसी हत्या है, जो कथित रूप से सम्मान बचाने के उद्देश्य से परिवार या किसी अन्य निकट नातेदार या गांव द्वारा ही स्त्री की हत्या कर दी जाती है। ऑनर किलिंग की अत्यधिक खबरें विवाह पूर्व यौन संबंध या प्रेम संबंध स्थापित करने या अपनी इच्छा से किसी व्यक्ति विशेष से विवाह करने या जीवन बिताने के निर्णय लेने के फल स्वरुप होता है – इसके लिए पूर्णत सामाजिक कुरीतियां एवं रूढ़िवादी पारंपरिक नियम कानून ही उत्तरदाई है – ऑनर किलिंग

हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में व्यापक रूप से व्याप्त है एवं इसके अलावा बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र आदि राज्यों में भी पाया जाता है -

वैवाहिक बलात्कार एवं पारिवारिक व्यभिचार

स्त्रियों के विरुद्ध होने वाले उपर्युक्त दोनों अपराध विवादास्पद अपराध रहे हैं। सामान्यत: इन अपराधों की महिलाओं द्वारा किसी भी प्रकार की शिकायत पुलिस व्यवस्था में नहीं की जाती, जिसके कारण यह आंतरिक रूप से लगातार घटित होता रहता है- वैवाहिक बलात्कार एक ऐसा अपराध है जिसमें यदि किसी शिकायतकर्ता महिला द्वारा अपने पति पर केस भी किया जाता है तो कोर्ट में यह सिद्ध करना बहुत ही मुश्किल हो जाता है कि वह सहमति से किया गया यौन संबंध था या पति द्वारा जबरदस्ती यौन संबंध स्थापित किया गया था, जिससे वैवाहिक बलात्कार की श्रेणी में रखा जाए - अधिकतर मामलों में सुबूतों की कमी के कारण फैसला पति के पक्ष में ही जाता है - यदि हम पारिवारिक व्यभिचार की बात करें तो ऐसे मामलों में परिवार की इज्जत बचाने के लिए महिलाएं व्यभिचार करने वाले की शिकायत नहीं करती है - ऐसे मामलों को अधिकांशत: घर के चारदीवारी के अंदर ही समाप्त कर दिया जाता है -

महिलाओं पर तेजाब से हमला

समकालीन समय में भी प्रेम संबंधें में असफलता प्राप्त करने पर उत्पीड़नवादी मानसिकता के लोगों द्वारा महिलाओं पर तेजाब डालकर हमला किया जाता है जिससे कि अधिकांश महिलाओं की मृत्यु हो जाती है तथा जो महिलाएं बच जाती हैं, उनके अंग एवं त्वचा इतनी खराब हो जाती है की सामाजिक और असमानता एवं कुरीतियों के कारण सामाजिक जीवन जीना मुश्किल हो जाता है- इसके रोकथाम के लिए कोई सटीक उपाय प्रशासनिक व्यवस्था या सरकार द्वारा नहीं निकाला गया है - सिर्फ कानूनी सहायता पीड़िता को प्राप्त होती है तथा अत्याचारी या अपराधी व्यक्ति को कानून सम्मत सजा सुनाई जाती है, परंतु इससे इस तरह से अपराधों से निजात नहीं पाई जा सकती-

कार्य स्थलों पर शारीरिक मानसिक एवं यौनिक उत्पीड़न

महिलाओं के विकास हेतु विभिन्न महिला कल्याणकारी योजनाएं और कार्यक्रम तथा आरक्षण मुहैया कराकर महिलाओं को सरकारी तथा गैर सरकारी नौकरियों में समायोजित किया जाता है, जिससे कि वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सकें तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके उन्हें अपने पति या किसी अन्य पुरुष पर निर्भर न रहना पड़े द्य परंतु पुरुष वर्चस्व वादी एवं महिला उत्पीड़न कारी मानसिकता के लोग महिलाओं का कार्य स्थलों पर भी शारीरिक, मानसिक एवं यौनिक उत्पीड़न करने से बाज नहीं आते हैं, जिसके कारण कई बार स्त्रियां नौकरिया छोड़ देती है या आत्महत्या तक कर लेती हैं- कार्य स्थलों पर होने वाले छेड़छाड़ उत्पीड़न एवं शोषण को जलते हुए कई बार महिलाएं ऐसे प्रकरण को पुलिस व्यवस्था तक नहीं ले जाती - कई सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि महिलाओं की आर्थिक समस्याओं की वजह से वह नौकरी को नहीं छोड़ना चाहती - इसलिए वह किसी भी अधिकारी के खिलाफ प्रकरण दर्ज नहीं करवाती -

महिलाओं का अपराधों से संरक्षण एवं मानवाधिकार

भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात महिलाओं को शोषणकारी समाज से मुक्ति दिलाने एवं उनके सर्वांगीण विकास हेतु भारतीय संविधान में अनेक प्रावधान किए गए - साथ ही कई अधिनियम द्वारा महिलाओं के संरक्षण एवं विकास को सुनिश्चित किया गया - डॉक्टर भीमराव अंबेडकर तथा अन्य विद्वानों का यही प्रयास था कि महिलाओं को वह सारे अधिकार दिए जाएं, जो एक मानव होने के नाते उन्हें दिया जाना अनिवार्य होना चाहिए; जिससे कि वह अपना सर्वांगीण विकास कर सके तथा इस सक्षम हो सके कि वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि समस्त क्षेत्रों में अपना परचम लहरा सकें -

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत महिलाओं को कानून के समक्ष समानता दी गई तथा अनुच्छेद 15 के तहत लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव और उत्पीड़न से निषिद्धि सुनिश्चित किया गया अनुच्छेद 16 के तहत सरकारी योजनाओं में समतापूर्ण अधिकार व अवसर दिए गए अनुच्छेद 23 और 24 के अनुसार बलात श्रम, शोषण एवं महिलाओं के अश्लील चित्र

व तस्करी पर प्रतिबंध लगाया गया - अनुच्छेद 39 के तहत राज्य को यह निर्देश दिया गया कि वह स्त्रियों के कल्याण हेतु कार्य करें व उन्हें किसी भी प्रकार से भेदभाव और शोषण से बचाए - अनुच्छेद 42 के तहत उन्हें मानवीय आधर पर प्रसूति काल में छुट्टी देने की व्यवस्था की गई -

इसके अलावा महिलाओं के विकास एवं संरक्षण के लिए हिंदू विवाह उत्तराधिकार अधिनियम 1956, हिंदू विवाह अधिनियम 1955, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1925, कारखाना अधिनियम 1928, खान अधिनियम 1952, अनैतिक देह व्यापार अधिनियम 1956, दहेज प्रथा निषेध अधिनियम 1961 घरेलू हिंसा प्रतिषेध अधिनियम 2004, कार्यस्थल पर संरक्षण अधिनियम 2013 आदि भारतीय संसद द्वारा पास किया गया, जिसके माध्यम से महिलाओं के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित किया गया साथ ही यह भी लक्ष्य रखा गया कि समस्त महिलाएं समता पूर्ण, अधिकार पूर्ण एवं अवसर पूर्ण जीवन जी सकें-

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र में गहन विषय विश्लेषण एवं समीक्षा के पश्चात यह निष्कर्ष सामने आता है कि कई दशकों से लगातार स्त्रियों के साथ अपराध पूर्ण एवं हिंसात्मक व्यवहार तथा असमानता कारी नियमों प्रावधनों के कारण उनको दोयम दर्जे पर धकेला गया तथा पराधीनता की स्थिति में लाने का प्रयास किया गया है, जिसके कारण उनका सर्वांगीण विकास नहीं हो पाया; परंतु भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात अनेक समतावादी एवं स्त्री उत्थान मूलक नियमों कानूनों एवं प्रावधानों के बल पर स्त्रियों के कल्याण एवं समता हेतु सकारात्मक कदम उठाए गए, जिसका हमें रचनात्मक परिणाम सामने देखने को मिलता है - परंतु यह भी स्पष्ट होता है कि स्त्रियां आज भी वह सारे अधिकार नहीं पा सकी हैं, जिसकी वह एक मानव होने के नाते अधिकारी हैं, अर्थात समस्त भारतीय स्त्रियां आज भी विभिन्न सामाजिक कुरीतियों एवं शोषणकारी संस्थाओं का शिकार हो रही हैं- समस्त स्त्रियों को अपने जीवन में समतावादी एवं विकासवादी व्यवहार एवं क्रियाएं नहीं मिलती; बल्कि यह सिर्फ होने उन्ही महिलाओं तक सीमित है जो उच्च तबके से संबंध रखते हैं या एक अच्छी आर्थिक स्थिति में पहले से ही है - अत: सरकार एवं महिला कल्याण हेतु कार्य करने वाली सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं को इस पर ध्यान देना चाहिए कि महिलाओं को वह समस्त मानवाधिकार मिले जिससे कि वह अपना सर्वांगीण विकास कर सकें -

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नायडू, वाई. गुरप्पा (2011), वायलेंस अगेंस्ट वीमेन इन इंडिया, नई दिल्ली : सेरिअल्स पुब्लिकेशन्स।
2. देवगन, आदेश के. (2008), क्राइम अगेंस्ट वीमेन एंड चाइल्ड, नई दिल्ली: साइबर टेक पुब्लिकेशन्स।
3. दुबे, अभय कुमार (2016) ए फुटपाथ पर कामसूत्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. विजयश्री, प्रियदर्शिनी अनु. झा, विजय कुमार (2010) ए देवदासी या धर्मिक वेश्या, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
5. साहनी, रोहिनी, संकर, वी. कल्याण, आप्टे, हेमन्त, (2008), प्रोस्टीटूशन एंड बियॉन्ड: एन एनालिसिस ऑफ सेक्स वर्कर्स इन इंडिया, सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।
6. जैन, प्रतिभा एवं शर्मा, संगीता (1918), भारतीय स्त्री: सांस्कृतिक सन्दर्भ, जयपुर: रावत प्रकाशन।
7. सियाराम, डॉ. (2012), नयी सहस्राब्दी में स्त्री विमर्श: चिंतन के विविध सन्दर्भ, नयी दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन्स
8. सिंह, नमिता (2017), स्त्री प्रश्न, नयी दिल्ली: राध पब्लिकेशन।
9. मिश्र, डॉ. उर्मिला प्रकाश (2002), प्राचीन भारत में नारी, भोपाल: मध्य प्रदेश हिंदी अकादमी।
10. लता, मंजू (2017), अनुसूचित जाति में महिला उत्पीड़न, नयी दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हॉउस।
11. पांडेय, करुणा (2008), जाति, वर्ग और महिला, जयपुर: नेशनल पब्लिशिंग हॉउस।
12. धर्मवीर, डॉ. (2001), कामसूत्र की सन्तानें: मातृसत्ता, पितृसत्ता एवं जारसत्ता भाग-1, नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
13. पाण्डेय, मृणाल (2002) स्त्री: देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, नयी दिल्ली: राध प्रकाशन।

आधुनिक भारत एवं महिला राजनीति

डॉ० निखिल कुमार

समाजशास्त्र विभाग, ति.माँ.भा. विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध-सारांश

महिलाओं की स्थिति में हमेशा परिवर्तन होता रहा है। वैदिक युग में महिलाओं की स्थिति उत्तम थी तो मध्ययुग में दयनीय हो गई। आजादी के पहले और बाद में इनकी स्थिति में सुधार के लिए काफी प्रयास किये गये। समय-समय पर महिलाओं के अधिकारो के लिए संघर्ष होता रहा है। जहाँ भारतीय महिलाएँ एक ओर घर के अन्दर सीमित हो गई थी वही आज वे राजनीति में भागीदारी कर रही हैं। समाज और लोगों का प्रतिनिधित्व कर रही है। इन्दिरा गाँधी, सुषमा स्वराज, मायावती, वसुंधरा राजे, शीला दीक्षित, ममता बनर्जी, सोनिया गाँधी आदि ने राजनीति के क्षेत्र में अपना परचम लहराया है। भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका का अपना एक इतिहास है। -

मुख्य शब्द: महिला राजनीति, भागीदारी, प्रतिनिधित्व, आर्थिक निर्भरता, भेदभाव, आत्मनिर्भर।

परिप्रेक्ष्य

महिलाओं की राजनीति में सहभागिता एक नवीन विचारधारा है। देश के आजादी के पूर्व बहुत कम महिलाओं का राजनीति से सरोकार था। हलॉकि महिलाओं का राजनीति में प्रवेश प्रथम विश्वयुद्ध के समय से ही हो गया था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता अंदोलन में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को काफी प्रोत्साहित किये। नमक कानून का विरोध, शराबबंदी, विदेशी कपड़ो का बहिष्कार आदि कई कार्यो में महात्मा गाँधी ने महिलाओं को बढ़-चढ़ कर हिस्सा दिलवया। सन् 1920-22 में अहसयोग आन्दोलन में महिलाओं की भारी संख्या सम्बद्ध रही। सन् 1921 के कांग्रेस सम्मेलन में 144 महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया, समय-समय पर विभिन्न आन्दोलनों में महिला की भागीदारी रही किन्तु बहुत कम मात्रा में।

सन् 1952 से स्वतंत्र भारत में महिला राजनीति में सक्रिय हुई। विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा महिला संगठनों का निर्माण किया गया है। सन् 1970 और 1980 के दशक में एसे संगठनों का विस्तार हुआ। सन् 1977 में समाजवादी महिलाओं में महिला दक्षता समिति, गठित की गई जो प्रमिला दंडवते और सुमन कृष्णकांत के नेतृत्व में बनी। नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडिया विमेन महिला कांग्रेस, दुर्गा वाहनी, आदि ऐसे संगठन बने जिन्होंने महिलाओं को राजनीति संगठन में जोड़ने का कार्य किया। इन प्रयासों के बावजूद भी लोकसभा एवं राज्य सभा में महिलाओं को प्रतिनिधित्व बहुत कम रहा। महिलाओं के राजनीतिक क्षेत्रों में उचित भागीदारी के लिए भारतीय संविधान में अनेक प्रावधान किये गये है। भारतीय संविधान में 73वें और 74वें संशोधन विधेयक पारित होने से महिलाओं को ग्राम पंचायतों और नगर-निगमों में 33 प्रतिशत आरक्षण का कानूनी अधिकार मिल गया। जहाँ महिलाओं की इन क्षेत्रों में भागीदारी नहीं थी अब 33 प्रतिशत आरक्षण और अन्य कारणों से राजनीतिक क्रियाकलापों में सक्रिय हुई है। महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हो रही है, जो उनकी राजनीति छवि को दर्शाता है। इसके बावजूद भी महिलाओं को राजनीति क्षेत्रों में प्रवेश करने के लिए अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है :

1. महिलाओं की संकोची प्रवृति।
2. अधिकतर महिलाएँ आर्थिक रूप से पराधीन है।
3. असुरक्षा का भय।

4. राजनीतिक दलों में सत्ता प्राप्त करने की प्रवृति खर्चीली है।
5. राजनीतिक दलों द्वारा महिलाओं को टिकट देने तथा जीतने के पश्चात् अहम भूमि का देने के मुद्दे पर महिलाओं के प्रति भेदभाव।

श्राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु निम्न प्रयास आवश्यक है :

1. महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र तथा आत्मनिर्भर होने की आवश्यकता है।
2. राजनीति में प्रवेश के लिए उनमें, साहस, त्याग तथा निर्भीकता की भावना का विकास होना आवश्यक है जो निःसंदेह आर्थिक निर्भरता से ही आएगी।
3. भारतीय सामाजिक संरचना का समानता के आधार पर गठन करना।
4. शिक्षा परिवर्त्तन की कुंजी है, अतः देश में बालको तथा बालिकाओं के लिए समान शिक्षा सुनिश्चित करना।
5. महिलाओं के प्रति हो रहे अपराधों के प्रति कठोर रूख अपनाया जाना चाहिये।
6. सभी राजनीतिक दलों को महिलाओं को राजनीति से जुड़ने हेतू प्रोत्साहित करना चाहिए।

निष्कर्ष

राजनीति क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि समाज में प्रत्येक स्तर पर महिला सशक्तिकरण तथा उनकी सामुदायिक भागीदारी के लिए प्रयास किये जाएँ ताकि उनमें आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता आदि गुणों का विकास हो।

संदर्भ-सूची

1. तनवीर एजाज, महिलाओं के लिए आरक्षण
2. प्रशान्त पाण्डेय, पंचायतो में महिलाओं की भागीदारी
3. आशा कौशिक, नारी सशाक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ
4. एम. एम. लवानिया एवं शशि के. जैन,-राजनीतिक समाजशास्त्र
5. एम. के. दलीज, गाँधी के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार

वर्त्तमान समय में लोहिया दर्शन की प्रासंगिकता

डॉ० चन्दा कुमारी

प्रोफेसर कॉलोनी, अल्लपट्टी, दरभंगा

शोध-सारांश

इतिहास हमेशा व्यक्तितव के बारे में भावनात्मक जुड़ाव से अलग है। यह सावित हो गया है कि व्यक्तियों को निर्दयता से विस्मृति में फेंक दिया जाता है जब उनके काम और विचार समकालीन समाज के लिए खतरे में होते हैं और उन लोगों को लाइमलाइट में लाते हैं जिनकी मानव जाति की भलाई के लिए बलिदान शाश्वत है जो उनके जीवनकाल के दौरान अच्छे हो सकते हैं। कुछ बौद्धिकों के विचारों और विचारों की प्रासंगिकता दूरगामी सकती है और उनके जीवनकाल के दौरान दूरदर्शी उनके समकालीनों द्वारा अविश्वसनीय महसूस किया जा सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि येहमेशा के लिए बेकार रहते। इंजीलवादियों का एक और समूह है, जिसका पेशा अप्रासंगिक विचारों को महत्वपूर्ण बनाना है और एक जीविकोपार्जन करना है चाहे वे आम लोगों के लिए उपयोगी हों या बेकार। समय की निर्दोषता के शिकार लोगों की सहायता के लिए धोर पंगिकता के साथ धर्म विश्वास पर आधारित हो स है कि कुछ विचार हमेशा सार्वजनिक क्षेत्र में दिखाई दे। आधुनिक समय में जब भी समाज को राजकता और कट्टरता की ओर खींचा जाता है तब डॉ.० राम मनोहर लोहिया जैसे महापुरुष के विचार प्रागिक जान पड़ते हैं। प्रस्तुत शोध-आलेख में वर्तमान समय में लोहिया दर्शन की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य-शब्दः सामाजिक समानता; साम्यवाद; सप्तक्रांति; लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण।

पृष्ठभूमिः

दिलचस्प घटनाएं हैं जो लोहिया को याद करने के लिए हाल के दिनों में महत्वपूर्ण हैं। सोवियत संघ का पतन, यूरोप में संकट, कट्टरपंथ के पुनरुत्थान के साथ-साथ नवउदारवादी नीतियों का उभरना, कॉर्पोरेट मीडिया का नियंत्रण और सार्वजनिक बहसों में भारतीयों की गरीबी की असंगति एक बार फिर लोहिया के विचारों पर प्रतिबिंब के लिए आध्यान करती है। कुछ विद्वानों ने 2010 में शताब्दी वर्ष के दौरान लोहिया पर आकर्षक पत्र और पुस्तकें प्रकाशित की हैं, यह एक अवसर है कि उन्हें आज उनकी प्रासंगिकता को समझने के लिए एक कस्टम के रूप में याद करने के लिए किसी भी दायित्वों का बोझ नहीं है। कई अन्य भारतीय नेताओं के विपरीत, लोहिया अपने उच्च अध्ययन के लिए इंग्लैंड नहीं गए क्योंकि उन्होंने एंग्लो-सैक्सन्स (हालांकि जर्मन सैक्सन्स के तहत आते हैं, उन्होंने कभी ऐसा दावा नहीं किया) का अपमान किया। उन्हें अपने समय के सबसे बड़े आर्थिक इतिहासकार सोमवर्त से प्रशिक्षित किया गया था और उनके समकालीनों में प्रसिद्ध शुमेकर भी शामिल थे, जिनके 'Small is Beautiful' गांधी और बुद्ध के व्युत्पन्न विचार थे। भारतीय समस्याओं के अध्ययन के लिए उनका दृष्टिकोण स्वदेशी और गंभीर रूप से भारतीय दार्शनिक विचारों से लिया गया है। अपने ''मार्क्स, गांधी और सोशलिज्म'' को भारतीय विचार में उनके बहुत महत्वपूर्ण योगदान में से एक है, यह पढ़कर बहुत रोशन होता है, लोहिया ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए शंकर जैसे भारतीय विचारकों से कई उदाहरण लिए। वह एक ही समय में मार्क्स के होने के बारे में बहुत आलोचनात्मक थे और उन्होंने अपने विश्लेषण के लिए अध्शिेष मूल्य के अपने सिद्धांत का इस्तेमाल किया। मार्क्स के खिलाफ उनकी प्रमुख आलोचना यह थी कि उनोंने अपनी यूरोपीय पृष्ठभूमि का उपयोग एशियाई या भारतीय समस्याओं के अध्ययन के लिए किया था जो अलग-अलग हैं। उनका मत था कि एशियाई समाज के बारे में

उनके ज्ञान की कमी ने उन्हें अत्यध्कि सामान्यीकरण करने के लिए बनाया, जिसने उन्हें सार्थक निष्कर्ष निकालने की अनुमति नहीं दी और एक तरह से उन्हें भारतीय संदर्भ में अप्रासंगिक बना दिया। एक उदाहरण जो उन्होंने मार्क्स के लिए इस्तेमाल किया था, वह आर्थिक संकट और विनियोगकर्ताओं के विनियोग के बारे में है। यह यूरोप के पूंजीवादी उन्नत देशों में नहीं हुआ, बल्कि केवल एशिया और रूस में हुआ। वास्तव में यह आलोचना कुछ अनुयायियों द्वारा मार्क्सवाद की निंदा करने के लिए एक असंवैधनिक हद तक की जाती है। सोवियत संघ के स्टालिन युग के बारे में लोहिया की आलोचना लंबे समय तक नहीं चली। यहाँ लगता है कि हमें उसे प्रासंगिक बनाने के लिए लोहिया पर अपने कुछ प्रतिबिंबों को संशोध्ति करने की आवश्यकता है।श

लोहिया के आलोचकों और प्रशंसकों को यह मानने में संकोच नहीं करना चाहिए कि मार्क्स और सोवियत मॉडल की सीमाएं और यहां तक कि चीन भी तर्क को आगे बढ़ाने के लिए मौजूद नहीं है। यदि हमें इस तथ्य का एहसास नहीं है तो हम केवल एक छाया से लड़ रहे होंगे। इसी तरह मार्क्सवादी जो साम्यवाद के प्रति लोहिया के दृष्टिकोण के बारे में आलोचनात्मक थे, वे विश्व में बदली परिस्थितियों और लोहिया द्वारा वकालत किए गए समाजवादी कार्यक्रम की प्रासंगिकता और पूंजीवाद से लड़ने के लिए एक मंच पर सभी प्रगतिशील ताकतों को लाने के लिए अपने विचारों के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता पर विचार कर सकते हैं। हमारे अधिकांश भारतीय कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों द्वारा मार्क्सवाद के अक्सर रूपक का उल्लेख आधार और सुपर संरचना के बारे में है। इतिहास की कुछ भौतिकवादी व्याख्याओं ने अम्बेडकर और लोहिया जैसे बुद्धिजीवियों की जबरदस्त हकीकत को खारिज कर दिया है, जो एक सुपर स्ट्रक्चर मुद्दे पर समय और संसाधनों को बर्बाद करते हैं जो एक बार आर्थिक मुक्ति से उड़ जाएंगे। हमें पता है कि आज वास्तव में उस व्याख्या का क्या हुआ है। कट्टरपंथियों को सख्ती देने के लिए उन्होंने वामपंथियों के साथ काम किया। यह आलोचना के तथ्य की बात नहीं हो सकती है, लेकिन मुख्य धारा द्वारा लोहिया और उनके विचारों की कुछ व्याख्याओं और हाशिए पर चले जाने से भारत में लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद की नींव को बहुत नुकसान पहुंचा है।

लोकतंत्र के संसदीय रूप में चार दशक की वामपंथी सक्रिय भागीदारी देखी गयी है और उनकी मांगों, गतिविधियों, नीतियों के क्रियान्वयन आदि को लोहिया की वकालत से अलग नहीं किया है। अब उद्देश्य और व्यक्तिपरक स्थिति और भारत के बारे में धारणा बदल गई है। ऐसा लगता है कि वामपंथियों और समाजवादी समूहों ने गरीबों और सामाजिक रूप से वंचितों की दयनीय स्थितियों को कम करने के लिए आने वाले समय में कीमती समय और ऊर्जा खो दी है। क्या यह इस घटना की प्राप्ति की कमी के कारण है, जो स्थान खुला रखा गया है यह अब अवसरवादी और हेगामोनिक कंप्रिडर्स द्वारा कब्जा कर लिया गया है?

लोहिया ने 6 कार्यक्रमों को अधिकतम प्राप्य समानता, सामाजिक स्वामित्व, छोटी और स्वदेशी तकनीक, राज्य के चार स्तंभ, उद्योग के विकेंद्रीकरण, और विश्व संसद और सरकार के रूप में अपने समाजवादी एजेंडे के बारे में बताया है। ये लक्ष्य शायद लोहिया ने सोचा था कि उनकी सात सूत्री क्रांति या श्सप्त क्रांतिश के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। वो हैं पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता, रंग भेदभाव से दूर रहना, जाति का विनाश और जन्म के आधार पर स्थिति का विरोध, उपनिवेशवाद के खिलाफ काति, निजी पूंजी के खिलाफ क्रांति, सेनाओं के खिलाफ क्रांति और विश्य संसद का निर्माण। दुर्भाग्य से बहुत कम वामपंथी विचारकों ने इन विचारों को बहुत गंभीरता से लिया है और कभी भी उनसे पूछताछ नहीं की। हालांकि, उनके कदर अनुयायी भी इस उदासीनता के लिए एक हद तक जिम्मेदार हैं जो अखिल भारतीय स्तर पर सार्वजनिक बहस के लिए इन मुद्दों को उठाने में विफल रहे। लोहिया के अनुयायी हिंदी पट्टी और सामाजिक समूहों की कुछ जेब तक सीमित थे, हालांकि उन्हें बहुजन बहुमत (लोहिया विरासत के कारण हो सकता है) द्वारा समर्थित किया गया था।श

लोहिया के कुछ बौद्धिक योगदान उत्तरी अटलांटिक आधिपत्य के उद्भव के बाद अभी भी मान्य पाए जाते हैं, जिसे लोहिया ने अपने जीवनकाल के दौरान रोक दिया था। उनके तीन महत्वपूर्ण विचारों जैसे पूंजीवाद और साम्राज्यवाद, राम के सीमित व्यक्तित्व और पूंजीवादी उत्पादन संबंधों को दे तो भारतीय मार्क्सवादियों के विपरीत लोहिया लैटिन अमेरिकी विद्वानों में से एक थे जिन्होंने इस विचार को विकसित किया कि किस तरह यूएसए का साम्राज्यवादी केंद्र परिधि के अविकसित होने के लिए जिम्मेदार था। लोहिया ने मानर्स के निरूपण पर सवाल उठाया है कि पूंजीवाद विस्तार के अंतिम चरण में साम्राज्यवाद आता है। वह इससे सहमत नहीं थे और कहा कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ब्रिटिश पूंजीवाद के विकास के लिए जिम्मेदार था और दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। ये शायद

लैटिन अमेरिकी विद्वानों जैसे बालरस्टीन, गुंटर फ्रैंक, काठोस, अरिधी आदि का अनुमान लगा रहे थे, जब उन्होंने कहा कि शोषण शहर द्वारा शोषण किए जा रहे गांव की तरह था। यद्यपि लेनिन ने साम्राज्यवाद पर मार्क्सवादी विश्लेषण की निरंतरता के रूप में विस्तार से बताया है, दिलचस्प रूप से एम एन रॉय और लोहिया दोनों ने इसे एक अलग विश्लपण दिया जहां तक भारत का संबंध है. आज लोहिया को प्रासंगिक बनाने के लिए इस पर और अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है। मार्क्सवादियों और भारत के तथाकथित भौतिकवादियों ने समाजवाद के एजेंडे को पटरी से उतारने की क्षमता की अवहेलना के लिए सबसे बड़ी कीमत चुकाई है, इसे बर्दाश्त करने के संदर्भ में देखा जा सकता है। यह लोहिया ही थे जिन्होंने राम के सीमित व्यक्तित्व पर सवाल उठाकर और उन्हें अपना आदर्श बनाकर हिंदू लोकाचार का काम संभाला। लोहिया के आलोचक होने की वजह से गांधी के रामराज्य की कल्पना की जा सकती थी? मीडिया और सार्वजनिक प्रवचन पर उनके नियंत्रण के कारण भारतीय बौद्धिक वर्ग) कभी किसी स्वदेशी विचारक को लाइमलाइट में नहीं आने दिया जिसने उनके सामाजिक आधिपत्य पर सवाल उठाया था। ये इसे पुराने समय से करते आ रहे हैं और हम इसे पिछली शताब्दी के दौरान पाले, अंबेडकर, पेरियार, लोहिया और कई अन्य लोगों के मामले में देख सकते थे। हम समकालीन समय के साथ-साथ प्रौद्योगिकी के समर्थन में भी देख रहे हैं और साथ ही साथ शैतानी भी इसकी विश्वसनीयता पर सवाल उठा रहे हैं?

उत्पादन की बहस के गोड के क्षेत्र में लोहिया के महत्वपूर्ण योगदानों में से एक उत्पादक बलों के बजाय उत्पादन संबंधों के विनाश पर मार्क्सवादी ओवरपेहस की उनकी आलोचना है। यह देखा गया है कि सोवियत संघ का पतन उत्पादक शक्तियों की निरंतरता से संबंधित हो सकता है जो समाजवादी शासन के नेक्रोपोलिस बन गए और बुर्जुआ वर्ग के विकास ने जो यूएस और पश्चिमी यूरोप के लिए सामाजिक अधिशेष को मोड़ दिया और अंततः सिस्टम को नीचे खींच लिया। इस बात की जाँच की जानी चाहिए कि लोहिया इस भविष्यवाणी में किस हद तक सही थे।

संसद में रंग और लैंगिक भेदभाव को लेकर हुई बहस और लोहिया पर निशाना साधने से लगता है कि ये मीडिया में विकृत हो गए हैं। लेकिन इस मामले की सच्चाई यह है कि लोहिया ने अश्वेत लोगों की सुंदरता के बारे में बात की और द्रौपदी के व्यक्तित्व के बारे में विस्तार से बताया। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश गोरे हमारे औपनिवेशिक स्वामी होने के बजाय अफ्रीकी अश्वेतों थे, काले रंग हमारे सार्वजनिक प्रवचन में गोरे का स्थान ले सकते थे। आप इसे अब हमारे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और विज्ञापन उद्योग में देख सकते हैं जिसके साथ हमारे भारतीय संस्कृति के स्वयंभू रक्षक सफेद और यूरोपीय रंग और गोरेपन को सहजता से ग्रहण कर रहे हैं। यह याद दिलाता है कि एंग्लो-सैक्सन और आर्यन लिंक के साथ उनके संबंध उनके श्वेत सत्ता के अधीन होने पर प्रदर्शित होते हैं लेकिन उनकी जाति गीडिया द्वारा चमकती है। इन विचारों में से कुछ को हटाने के लिए ये विपक्षी खेमे से एक पालतू काली बिल्ली लाते हैं।

लोहिया जाति व्यवधा के पीड़ितों को लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और सत्ता के प्रबल समर्थकों में से एक थे। शायद यह इस संदर्भ में था कि उन्होंने वास्तविक सर्वहारा वर्ग को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए पार्टी और सत्ता की राजनीति में निम्न जातियों को प्रोत्साहित किया है। मार्क्सवादियों के विपरीत, जो भारत में जाति की असमानता और वर्ग की उपस्थिति की घोषणा करते हैं, लोहिया ने एक स्वदेशी विचारक होने के कारण एक जातिगत हिंदू हिंदू समाज में इक्विटी और समानता (समता और समत्व) लाने के लिए अपने राजनीतिक कदम को सही ढंग से रणनीतिक रूप इस प्रक्रिया में लोहिया अपने जाति के व्यक्ति और संरक्षक गांधी और मार्क्सवादियों से बहुत आगे हैं। अफसोस की बात है कि दोनों समूहों को अब अप्रासंगिक माना जाता है और भारत को एक लोकतांत्रिक समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष देश बनाने के लिए एकजुट संघर्ष के निर्माण के लिए खुला दायरा व्यापक है. जिसमें सभी वाम और लोकतांत्रिक ताकतें एक साथ आती हैं। लोहिया का जीवन और मिशन निश्चित रूप से हम सभी को इस दिशा में समृद्ध करेगा।

समाजवाद, पूंजीवाद और साम्यवाद

लोहिया समाजवादको प्रतिपादक हैं। वह समाजवाद की व्यवस्था में विश्वास करता है। वह पूंजीवाद और साम्यवाद के जन्मजात आलोचक हैं। वह इस आधार पर पूंजीवाद और साम्यवाद की आलोचना करता है कि दोनो प्रणालियाँ समान रूप से स्वतंत्रता और

समानता के बीज के अंकुरण के लिए मिट्टी तैयार करने में विफल रही हैं। इसलिए, लोहिया समाजवाद की प्रणाली को प्राथमिकता देते हैं जो स्वतंत्रता और समानता दोनों के समान विकास में विश्वास करता है।

उनके अनुसार "यदि समाजवाद को दो शब्दों में परिभाषित करना है तो वे हैं समानता और समृद्धि। मुझे नहीं पता कि या परिभाषा किसी भी समय पहले दी गई है या नहीं। यदि हां, तो मैं इसे अब तक की सबसे अच्छी परिभाषा कह सकता हूं।"

लोहिया कहते हैं कि पूंजीवाद और साम्यवाद में वास्तविक स्वतंत्रता संभव नहीं है क्योंकि पूंजीवाद एक ओर असमानताओं को जन्म देता है और दूसरी ओर साम्यवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना को मारता है। इसलिए. दोनों प्रणालियों लोकतंत्र की सच्ची भावना के लिए अयोग्य हैं जो स्वतंत्रता और समानता दोनों का प्रतीक है। लोहिया, रसेल, लारकी और नेहरू एक लोकतांत्रिक समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं जो लगातार स्वतंत्रता और समानता की धुरी पर आगे बढ़ेगा। स्वतंत्रता इस प्रकार समानता का अर्थ है। स्वतंत्रता और रामानघ संघर्ष में नहीं हैं और न ही अलग भी हैं, लेकिन एक ही आदर्श के विभिन्न पहलू हैं। लोहिया का हैं: ष्स्वतंत्रता और रोटी कम से कम एशिया में अविभाज्य हैं, और न तो साम्यवाद और न ही पूंजीवाद हमें इन दो लेखों की आपूर्ति कर सकता है। मेरा सुझाव है कि एशिया को साम्यवाद से बचाया जा सकता है, यदि इसे पूंजीवाद और सामंतवाद से बचाया जाए।

इसलिए, लोहिया और लास्की के लिए, समानता स्वतंत्रता या न्याय प्राप्त करने की प्राथमिक शर्त है। कोई यह विश्वास करने की हिम्मत नहीं कर सकता है कि यह पूंजीवादी व्यवस्था के तहत प्राप्त किया जा सकता है जो विशेषाधिकारों और भेदों का पालन करता है। स्वतंत्रता की अपनी चर्चा में वे जो वास्तविक बिंदु चाहते हैं वह यह है कि वर्तमान में व्यवस्थित आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में, रचनात्मक आत्म अभिव्यक्ति के अवसरों को पुरुषों के सभी छोटे समूहों से वंचित किया जाता है।

पुरुषों के सापेक्ष आगों के मुक्त खेलने और व्यक्तिगत विविधता के उच्च स्तर के मामले में स्वतंत्रता संपत्ति की वर्तमान प्रणाली के साथ असंगत है, इसके परिणाम के लिए कुछ हाथों में शक्ति की एकाग्रता है जो औसत के राजनीतिक निजीकरण के लिए बनाता है।

असमानता पूंजीवादी समाज की एक अंतर्निहित विशेषता है, जबकि एक समाजवादी समाज जरूरी समान समाज होगा। लोहिया और लास्की दोनों का तर्क है कि आर्थिक असमानता अन्य सभी असमानताओं का मूल कारण है। वे यह भी कहते हैं कि स्वतंत्रता केवल पूंजीवादी समाज में एक छोटे से अल्पसंख्यक के लिए सा है जो संपत्ति का मालिक है और उसे नियंत्रित करता है। धन की महान असमानताएं स्वतंत्रता की प्राप्ति को असंभव बनाती है।

मानव समाज से असमानता को दूर करना लोहिया के सात क्रांतियों में से एक है। वह बताते हैं कि "देश जितना गरीब है, उसके भीतर असमानता उतनी ही अधिक है। लोहिया अपने विचार में हैं कि पूंजीवादी समाज असमानता को जन्म देता है जो स्वतंत्रता के लिए विरोधी साबित होता है। इसी तरह, वह कम्युनिस्ट प्रणाली को नापसंद करता है जो डर पर आधारित है; जबकि, पूंजीवादी प्रणाली लाभ के प्रलोभन के तहत काम करती है। ऐसी प्रणालियों जो उनकी गतिशीलता और विकास के लिए प्रलोभन और भय पर निर्भर करती हैं, अनिवार्य रूप से असमानता को जन्म देती हैं।

निष्कर्ष

डॉ.० लोहिया व्यक्तिगत स्वतंत्रता, लोकतांत्रिक संस्थानों और समाजवाद के प्रवल समर्थक थे। उन्होंने लोकतांत्रिक समाजवाद की वकालत की। वह उच्च शक्तियों के आलोचक थे जो या तो पूंजीवाद या साम्यवाद का अनुसरण कर रहे थे। वह विकसित अर्थव्यवस्थाओं से भारत जैसी अविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए किसी भी तरह की प्रत्यक्ष सहायता के खिलाफ थे क्योंकि इस तरह की सहायता के लिए, गोताखोरों में वर्चस्व की भावना और रिसीवरों में अधीनता की भावना थी। उन्होंने विश्व विकास प्राधिकरण के माध्यम से ऐसी सहायता की सिफारिश की जहां अमीर राष्ट्र गरीबों के लिए योगदान दे सकते हैं। उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का पक्ष लिया लेकिन यह एक तरफा यातायात नहीं होना चाहिए बल्कि यह दो तरफा यातायात होना चाहिए। लोहिया का मुख्य योगदान आधुनिक पूंज साम्यवाद के खतरे का विश्लपण करने और उजागर करने और एक समाजवादी प्रणाली के लिए एक

प्रस्ताव रखना है जो भौतिक आराम के माधयम से लोगों को अधिकतम कल्याण सुनिश्चित कर सकता है और साथ ही व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए स्वतंत्रता का आश्वासन देता है।

संदर्भः

1. लोहिया, राम मनोहर, नोटस और टिप्पणियाँ, वॉल्यूग ट प्रकाशन विभाग, हैदराबाद, 1972. पी. 85।
2. लोहिया, राम मनोहर, इतिहास का पहिया, प्रकाशन विभागा, हैदराबाद, 1974 1974 पी. 121।
3. गुप्ता, आरसी, द ग्रेट पॉलिटिकल थिंकर्स, ईस्ट एंड वेस्, आगरा, 1974, पी. 188।
4. मेहरोत्रा, एन.सी., लोहियाः ए स्टडी, आत्मा राम एंड संस, दिल्ली, 1978, पीपी 205-10।
5. लोहिया, राम मनोहर, विल टू पावर एंड अदर राइटिंगरा, नवहिंद पब्लिकेशन, हैदराबाद, 1956, पृ. 71।
6. लोहिया, राम मनोहर, द ड्राइविंग फोर्सेस ऑफ हिस्ट्री; एक विश्लेषण, जनता. वॉल्यूम 7. नंबर 1, 20 जुलाई, 1952, पी. 2।
7. लोहिया, राम मनोहर, मैनवाइंड में समानता का अर्थ, नंबर 4, 1956, पीपी. 366-380।

आधुनिक युवाओं एवं बच्चों पर मीडिया का प्रभाव

ईश्वर प्रसाद यदु

पी.एच.डी, शोधार्थी, शिक्षा विभाग

तेजराम नायक

पी.एच.डी, शोधार्थी, शिक्षा विभाग

डॉ० राकेश कुमार डेविड

एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, रावतपूरा सरकार युनिवर्सिटी, रायपुर

प्रिन्ट मीडिया से लेकर सोशल मीडिया तक की विस्तार यात्रा का समाज के प्रत्येक वर्ग पर सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। किन्तु सर्वाधिक प्रभाव हमें युवाओं पर देखने को मिलता है। युवा मन सदैव ही आसानी से नवाचारों को ग्रहण कर लेता है और अपनी प्रतिक्रिया भी त्वरित रुप से देता है। प्रस्तुत शोध लेख में यह प्रदर्शित किया गया है कि स्वतंत्रता आन्दोलन से लेकर आज तक राष्ट्र निर्माण एवं सामाजिक परिवर्तन में युवाओं की सहभागिता सर्वाधिक रही है। इस सम्पूर्ण परिवर्तन में मीडिया का प्रभाव सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रहा है। मीडिया के प्रभाव स्वरूप एक तरफ जहाँ रचनात्मकता में वृद्धि हुई है नही विध्वंशात्मक प्रवृत्तियों का भी विकास हुआ है।

भारतीय समाज में मीडिया के विकास के साथ-साथ इसने भारतीय सामाजिक परिवेश को किस प्रकार प्रभावित किया है तथा इसके माध्यम से किस प्रकार एवं कितना परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन समाज के किसी एक भाग में अधिक प्रभावशील है। इस प्रभावशीलता का प्रभाव सूचना प्रसारण तथा उसकी ग्रहणशीलता पर सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। इसमें परिर्वतन आने का सबसे बड़ा कारण सूचना प्रसारण के संसाधनों का विस्तार है। जिसका परिणाम यह है कि यह वृहद समाज सूचना प्रौद्योगिकी के परिणाम स्वरूप संकुचित होकर भूमंडलीय आधार पर एक केन्द्र में संचालित हो गया है।

किसी भी देश की युवा पीढ़ी बहुत महत्त्वपूर्ण मानव संसाधन होती है तथा इस पीढ़ी के माध्यम से देश के संकटों का निवारण आसानी से किया जा सकता है। यह पीढ़ी प्रत्येक देश में परिवर्तन एवं विकास ला सकती है। विकासशील देशों में तो युवाओं की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि उनकी सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति में एक अनुशासित, कर्तव्यनिष्ठ एवं समर्पित युवा शाक्ति का महत्त्व मानव शारीर में प्रवाहित होने वाले रक्त जैसा है। भारतीय युवा हमारे देश की आशा एवं भविष्य का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। समाज में होने वाले परिवर्तन का मुख्य आधार उस समाज में उपयोग किये जाने वाले संसाधन तथा सूचना एवं जानकारी देने तथा प्राप्त करने के साधनों का विकास तथा विस्तार है।

मीडिया कहते या सुनते ही हमारे सामने सबसे पहले समाचार पत्र-पत्रिका,मोबाइल, रेडियो एवं टेलीविजन जैसे सूचना संसाधन दृष्टिगोचर होने लगते हैं जहां कुछ समय पूर्व तक सूचना को भेजने तथा प्राप्त करने के लिए मनुष्य को स्वयं जाना पड़ता था या हम जानवरों का सहारा लेते थे, जिसमें सूचना को उसके गन्तव्य स्थल तक पहुँचाने में अधिक समय लगता था। समय के साथ प्रारंभ

में धीरे-धीरे परंतु बाद में तेजी से सूचना माध्यमों का विकास हुआ। जिसमें सूचना को बड़े माध्यम के रूप में हमारे सामने अतिविस्तृत रूप में तथा कम लागत मूल्य में समाचार पत्र तथा पत्रिका ने जगह ली। जिसके साथ ही वर्तमान में विश्व भर में सूचना के इतने संसाधन कम लागत मूल्य पर उपलब्ध हैं जिनसे पलक झपकाते ही विश्वभर की आवश्यकता अनुसार सारी सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है। यानी मीडिया का विकास अति तीव्र अवस्था में आ पहुंचा हैं जिसमें हम पलक झपकाते ही तमाम सूचना प्राप्त कर सकते है और यह सब संभव हुआ है,न्यू मीडिया या वेब बेस्ड मीडिया के फलस्वरूप और यह वही मीडिया है जिसने विश्व को एक गाँव में बदल दिया है, राज्यों की सरहदों को खत्म कर दिया है देश के प्रत्येक व्यक्ति को संवाद का मंच दे दिया है तथा विश्वभर की छोटी से छोटी सूचना को प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचा दिया है और यही नहीं संचार के प्राचीन माध्यमों को समय एवं आवश्यकता अनुसार बना दिया है।

वर्तमान समय में मीडिया का उपयोग प्रत्येक व्यक्ति अपनी रोजाना की दिनचर्या में किसी न किसी रूप में करता है। कुछ लोग इसका उपयोग प्रत्यक्ष तौर पर करते हैं यानि की प्रत्यक्ष तरीके से मीडिया संसाध्नों से सूचना को प्राप्त करना, समाचार पत्र-पत्रिका, मोबाइल, रेडियो एवं टेलीविजन की अहम भूमिका सबसे ज्यादा है। वहीं कुछ लोग जिनका प्रतिशत काफी कम है इसका उपयोग अप्रत्यक्ष तौर पर करते हैं। यह वे लोग हैं जो उन लोगों से सूचना प्राप्त करते हैं जो मीडिया का प्रत्यक्ष तौर पर उपयोग करते है। शौली चयन पर निर्भर होती है और चयन, सूचनाओं तथा संपर्क्र की प्रक्रिया के फल पर निर्भर होता है। मीडिया ये सूचनाएं लोगों तक पहुँचाती हैं। वहीं बच्चे, युवा, पुरुष, महिलाएं तथा बुजुर्ग इसका उपयोग प्रतिदिन अपने समय एवं आवश्यकता अनुसार करते हैं।

जर्मनी के प्रख्यात समाजशास्त्री हर्बर्ट मारकोज़े का कहना है कि “संचार मीडिया के प्रचार के परिणाम स्वरूप सामने आने वाला उपभोग मनुष्य में एक अद्वितीय प्रवृत्ति उत्पन्न करता है और उसे पहले से अधिक, समाज में प्रचलित हित साधने के वातावरण पर निर्भर कर देता है।”

मनुष्य सदा से ही सामाजिक तथा जिज्ञासु है। वर्तमान में मनुष्य की इस जिज्ञासा को शाांत करने का सबसे बेहतर माध्यम मीडिया है। देश में इलेक्ट्रॉनिकी के असाधारण विकास से दूरदर्शन के कार्यक्रमों में बहुत सुधार और परिवर्तन आया है। कम्प्यूटर के प्रवेश से दूरदर्शन तथा वीडियो कैसेट आदि के निर्माण में अद्‌भुत क्रांति हो गयी है। अगस्त 1984 में यूजीसी उच्च शिक्षा परियोजना उच्च गुणवत्ता युक्त शिक्षा के प्रसार के प्रयोगार्थ के उद्‌देश्य से शाुरू की गई। भारतीय दूरदर्शन का भौगोलिक दायरा विश्व के किसी भी दूरदर्शन से अधिक है। इनमें समाचार और सामयिक विषय, विज्ञान, कला, संस्कृति, पर्यावरण आदि से सम्बधित कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। सामाजिक विषयों के अन्तर्गत वृत्तचित्र, लघु फीचर फिल्म, सीरियल, संगीत, नाटक आदि के प्रसार होते हैं।

मीडिया का सबसे अधिक प्रभाव 17 से 26 वर्ष के युवाओं तथा 4 से 16 वर्ष तक के बच्चों में देखने को मिलता है। यह प्रभाव सकारात्मक भी है और नकारात्मक भी है। अपनी शाुरूआत में प्रिंट मीडिया हमारे देश में एक मिशन के रूप में था। उनका उद्‌देश्य सामाजिक चेतना को और अध्कि जागरुक करने का था। इंसान की भाषायी अथवा कलात्मक अभिव्यक्ति तथा स्थानों तक पहुँचाने की व्यवस्था को ही मीडिया का नाम दिया गया है। पिछली कई सदियों से प्रिन्ट मीडिया इस मायने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा है। जहां हमारी लिखित अभिव्यक्ति होती है तथा बाद में छायाचित्रों को शाामिल करने पर दृश्य अभिव्यक्ति भी प्रिन्ट मीडिया के द्वारा संभव हो सकी है। यह मीडिया बहुरंगी कलेवर में और भी प्रभावी हुई, बाद में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने भी साथ-साथ अपनी जगह बनाई, जहां पहले तो श्रव्य अभिव्यक्ति को रेडियो के माध्यम से प्रसारित करना संभव हुआ बाद में टेलीविजन के माध्यम से श्रव्य-दृश्य दोनों ही अभिव्यक्तियों का प्रसारण संभव हो सका। प्रिन्ट मीडिया की अपेक्षा यहां की दृश्य अभिव्यक्ति अधिक प्रभावी हुई क्योंकि यहां चलायमान दृश्य अभिव्यक्ति भी संभव हुई। आधुनिक युग में औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने अनेक प्रकार के सामाजिक परिवर्तनों को जन्म दिया है। जिससे विभिन्न प्रकार के नवीन मूल्यों का जन्म हुआ।

इस प्रिन्ट, दृश्य एवं श्रव्य अभिव्यक्ति से युवा वर्ग सदैव प्रभावित रहा है। चाहे वह 20 वीं शाताब्दी का हो या 21 वीं शाताब्दी का क्यों न हो। इसने युवाओं को सदैव ही जानकारी प्रदान करने का गुरूत्तर दायित्य निभाया है। वहीं टेलीविजन, रेडियो एवं सिनेमा ने इन्हें हमेशा, मनोरंजन के साथ आधुनिक जीवन जीने का सलीका भी सिखाया। वर्तमान में इसी संदर्भ में एक श्रृंखला और जुड़

गई है और वह है सोशल मीडिया। भारत में वर्तमान में लगभग 60 प्रतिशत युवा है, और इन युवाओं को जोड़ने का काम सोशल मीडिया कर रहा है। इसका क्रेज दिनों दिन बढ़ता चला जा रहा है। जो युवाओं की दिनचर्या का एक अहम हिस्सा हो गया है। इस अहम हिस्से ने जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया है। इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया के आँकड़ों के अनुसार हमारे देश में शाहरी क्षेत्रों में प्रत्येक चार में तीन व्यक्ति सोशल मीडिया का किसी न किसी रूप में प्रयोग करता है। इसी के अनुसार 35 प्रमुख शाहरों के आंकड़ों के आधार पर यह भी बताया है कि 77 प्रतिशत उपयोगकर्ता सोशल मीडिया का उपयोग मोबाइल द्वारा करते है। इसमें भी युवाओं की भूमिका प्रमुख है। इन्टरनेट से लेकर थ्री,फोर व फाइब जी मोबाइल तक युवा सोशल मीडिया के माध्यम से देश- दुनिया की सरहदों को पार कर अपने सपनों को लम्बीं उड़ान के साथ पूरा कर रहे हैं।

वर्तमान में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में युवाओं की सकारात्मक सहभागिता को प्रोत्साहित किया है। शिक्षा एवं रोजगार के लिए नये अवसरों को चयन करने से लेकर प्रदान करने तक के अवसर प्रदान किये है। बस सोशल साइट्स पर जाइये जिज्ञासा को व्यक्त कर सर्च पूरा कर दीजिये। सामने सारे सवालों के जवाब मिल जायेगे। कुछ समय पूर्व तक किसी सूचना को ध्यान में रखने तथा दूसरे को बताने के लिए लिखना पड़ता था परंतु आज बस एक पिक लेले और सेव कर लो अपने फोन में रख लो तथा उसी रूप में दूसरे व्यक्ति तक भी पहुंचा दो। यही नहीं नोट पेड के फार्म में सारी जिज्ञासा तथा खुद से संबंधित दस्तावेज भी अब अपने पास अपने मोबाइल या मेल आईडी में सहज कर रख लो जब जैसे जरूरत हो तब उस अनुसार उसका उपयोग कर लो। यही नहीं ब्लागिंग के माध्यम से युवा अपनी समझ, ज्ञान, पिपासा, जिज्ञासा, भण्डार, कौतुहल को निकाल रहे हैं तथा सोशल मीडिया साइट्स के माध्यम से दुनिया भर में अपनी समान मानसिकता के लोगों को जोड़कर सामाजिक दायित्व–सरोकार को पूरा कर रहे है।

युवाओं द्वारा सोशल साइट्स पर दिनभर में कई बार स्टेट्स अपडेट करना घण्टों तक मित्रों के साथ चैटिंग करना आदतों का एक नशा जैसा हो गया है। इन सोशल साइट्स के द्वारा अश्लील सामग्री और भड़काउ–उत्तेजक संदेशों को भी प्रसारित किया जा रहा है। साथ ही कहीं न कहीं हमारी प्राइवेसी भी खत्म होती नजर आती है। इसके माध्यम से कई आतंकवादी गतिविधियों को अंजाम देने में मदद मिली है। वर्तमान में युवाओं में एक बड़ी भाषायी समस्या भी देखने में आ रही है, जो है व्यक्तिगत संवाद जिससे वे सामाजिक रूप से प्रभावी संवाद नहीं कर पा रहे। साथ ही युवाओं में पश्चिमी सभ्यता को अपनाना, उनका आधुनिक होना प्रतीत कराता है। जिससे हमारे देश के युवाओं की जीवन शैली प्रभावित हो रही है। जिसमें वेशभूषा, खान–पान, रहन–सहन, स्मोकिंग और शाराब पीने साथ नशा करना, बोलचाल सभी कुछ शाामिल है। सोशल नेटवक्रिंग साइट्स की आदत के कारण युवाओं में एकाग्रता में कमी, डिप्रेशन, अनिद्रा, चिड़चिड़ापन, बेचैनी जैसी कई समस्यायें भी बढ़ रही हैं।

अब्राहम लिन्कन के अनुसार "यह एक बच्चा ही है जो किसी व्यक्ति द्वारा प्रारंभ किए गए कार्यो को भविष्य में पूरा करेगा। वह वहाँ पर बैठने जा रहा है जहाँ पर व्यक्ति आज विराजमान है और व्यक्ति के चले जाने पर बच्चा ही उसके द्वारा महत्त्वपूर्ण समझी जाने वाली क्रियाओं को सपन्न करेगा। यदि बच्चे का विकास उनकी प्रकृति के अनुसार होगा तो हमें संघर्ष नहीं करना पड़ेगा, हमें अर्थहीन आदर्श प्रस्ताव नहीं पारित करने पड़ेंगे, और हम प्रेम से प्रेम एवं शाान्ति से शाान्ति के मार्ग की ओर अग्रसर होंगे।"

बच्चों में सामाजिक चेतना जागृत करने हेतु मीडिया सबसे महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य कर रहा है। यह अपनी प्रभावी प्रस्तुतियों के माध्यम से बच्चों को न सिर्फ दिशा देता है बल्कि दिशा निर्देशों के माध्यम से स्वयं को संचालित करने के लिए प्रेरित भी करता है। इसके माध्यम से ही बच्चे आज हमारी संस्कृति से इतने रूबरू हुए है कि वह भारतवर्ष की हर चीज़ को जानते तथा और जानने के लिए उत्सुक हैं। वे यहीं तक सीमित नहीं हैं, वे इससे भी अधिक पूरे विश्व को जानना चाहते हैं तथा जानते भी हैं। उनमें हर विषय के प्रति उत्सुकता बढ़ी है तथा हर विषय को जानना चाहते हैं। उनमें नये–नये प्रयोग कर विश्व में उपलब्धि हासिल करना चाहते है। उनमें दूसरों से तो छोड़िये स्वयं से ही प्रतिस्पर्धा बड़ी है। वे नित्य नया करना चाहते हैं। वे टेक्निकली माहिर हो रहे हैं। वर्तमान में बच्चों का टेलेन्ट मीडिया के बदौलत और उभर कर आया है, जिसमें सबसे बड़ा सहयोग विभिन्न चैनल्स पर प्रसारित होने वाले रियलिटी शाो का है। जिसने शाहरों के साथ–साथ गॉवों के बच्चों का टेलेन्ट दिखाया भी साथ ही बढ़ाया भी है। आज यह बच्चे मीडिया के उपयोग के कारण किसी पर डिपेन्ड नहीं हैं। यह अपनी आवश्यकता की सामग्री इसके माध्यम से प्राप्त कर लेते हैं। कार्टून की दुनियां इन्हे अपनी कल्पना की दुनियां में ले जाकर इनका भरपूर मनोरंजन करती है। आज यह बच्चे समाज

में हो रही सामाजिक-राजनैतिक एवं आर्थिक गतिविधियों में भी भरपूर रुचि रखते हैं। यह सब संभव हो सका है मीडिया के कारण। एसोचैम की एक रिपोर्ट के अनुसार "6 से 17 साल की उम्र के बच्चे एक हफ्ते में कम से कम 35 घण्टे से ज्यादा टीवी देखते हैं। ज्यादा टीवी देखने से इन बच्चों के स्वभाव में बदलाव आ रहा है। बच्चों की मनोवृत्ति बदल रही है। उनमें हिंसक प्रवृत्ति में भी बढ़ोत्तरी हो रही है। अध्ययन में यह भी पता चला है कि दस साल से कम उम्र के 4 प्रतिशत बच्चे अपने माता-पिता से मारपीट करने से भी नहीं डरते। यदि बच्चों की कोई बात नहीं मानी जाती तो वे अपने माता-पिता के प्रति बहुत उग्र एवं हिंसक हो जाते हैं।"

दिल्ली साइक्रियेटिक सेन्टर डीपीसी के निदेशक एवं वरिष्ठ मनोचिकित्सक डॉ. सुनील मित्तल बताते है कि "सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर अधिक समय रहने के अलावा अधिक समय तक टेलीविजन देखना बच्चों, किशोरों एवं युवाओं में डिप्रेशन झुंझलाहट एवं अनेक अन्य मनोवैज्ञानिक समस्यायें पैदा करते हैं।"

बच्चे, टीवी पर आने वाले अपने पसंदीदा कार्यक्रमों को देखने के बाद हूबहू वही करने की कोशिश करते हैं जिसे वे अपने रोल मॉडल को टीवी पर करता हुआ देखते हैं। वे इन कार्यक्रमों को हकीकत में देखना और जीना पसंद करते है। साथ ही वर्तमान में बच्चों में इस वजह से अकेले रहने की प्रवृति में भी इज़ाफा हुआ है। इसके साथ ही बढ़ती न्युक्लियर फैमलीज के कारण भी बच्चें अपने मनोरंजन के लिए एक इसी माध्यम पर आश्रित हैं। इसके साथ ही बच्चे आउटडोर गेम खेलने के प्रति इतनी रुचि नहीं रखते जितनी कि इन माध्यमों द्वारा वर्तमान में प्रचलित खेल जिन्हे कम्प्यूटर एवं मोबाइल पर खेला जाता है, उसे खेलने के प्रति रखते हैं। इससे इनके शाारीरिक एवं मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ा है। साथ ही छोटे-छोटे बच्चों में कई प्रकार की इस उम्र में न होने वाली बीमारियों ने भी अपनी घुसपैठ कर ली है। वर्तमान में बच्चें अपनी उम्र से पहले मैच्योर हो रहे है चाहे वह शाारीरिक तौर पर हो या मानसिक तौर पर क्यों न हो।

युवाओं एवं बच्चों पर मीडिया का प्रभाव

प्रभाव या लक्षण			
युवाओं पर सकारात्मक प्रभाव	**युवाओं पर नकारात्मक प्रभाव**	**बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव**	**बच्चों परनकारात्मक प्रभाव**
राष्ट्रीय एवं अतंर्राष्ट्रीय स्तर पर जागरुकता, समाज में जागरुकता, अभिव्यक्ति	एकाग्रता में कमी, डिप्रेशन, अनिन्द्रा, चिड़चिड़ापन, बेचैनी	बच्चों में टेलेन्ट, रियलिटी शो, शिक्षा से जुड़े कार्यक्रम, जागरुकता	डिप्रेशन, झुंझलाहट, चिड़चिड़ापन, मनोवैज्ञानिक समस्यायें

उपसंहार

समाज में मीडिया संवाद-वहन का कार्य करता है। समाज में समाचार पत्रा-पत्रिकाएं, टेलीविजन, मोबाइल, रेडियो एवं इन्टरनेट की सशक्त भूमिका एवं सशक्त स्वतंत्र स्थिति से ही उस समाज या राष्ट्र की प्रगति एवं उन्नति संभव है। भारतवर्ष में भी बच्चों की महत्ता को समझा गया तथा राष्ट्रीय बाल नीति 1974 और अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष 1979 में बनाई गई राष्ट्रीय कार्य योजना में बच्चों को राष्ट्र की सबसे महत्त्वपूर्ण निधि माना गया। राष्ट्रीय कार्य योजना के अनुसार "एक राष्ट्र का भविष्य उनके विकास पर निर्भर करता है। शिक्षित बच्चा कल का क्रियाशील एवं बुद्धिमान नागरिक है।

मीडिया का सामाजिक जागरुकता में योगदान सदैव अमूल्य रहा है। इसके माध्यम से समाज में छोटी से छोटी सूचना से लेकर बड़ी से बड़ी सूचना जन-जन तक पहुचाना, सामाजिक सुरक्षा-सरोकार, राष्ट्रहित, लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जागरुक करना एवं समाज में व्याप्त कुरीति, अंधविश्वास जैसे सामाजिक परिवर्तनों में इसने अपनी अहम् भूमिका निभाई है परंतु इसी के साथ में जैसे सिक्के के दो पहलू होते हैं, उसी प्रकार कुछ ऐसा ही मीडिया के साथ भी है। इसके भी अच्छे सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही पहलू हैं।

लारसन के अनुसार "जनसंचार के विकास ने अनेकों नये विकल्पों को प्रोत्साहित किया है। जिसमें प्रकाशन, जनसंपर्क, मनोरंजन एवं विज्ञापन प्रमुख हैं। यह आज सूचना प्रभाव के मुख्य स्त्रोत बन गये हैं जिनसे मनुष्य के बाह्य वातावरण में क्षेत्रीय विकास हो रहा है। इसने न केवल नये क्षेत्र में आदान-प्रदान एवं आन्तरिक अन्तः क्रिया के विश्लेषण में सहायता की है अपितु मूलवार्ताओं के

क्रम एवं भाषाओं की आदत का भी मानक बनाया है। इससे सामाजिक स्तर एवं अधिकारों की बढ़ोत्तरी हुई है एवं इसने पुरानी परम्पराओं को चुनौती दी है।"

लेज़रसफेल्ड और मर्टन ने लिखा है "जनसंचार जन पर नशीला प्रभाव उत्पन्न करते हैं। समाज के सदस्य देखते, पढ़ते और सुनते है तब ऐसी स्थिति में पहुंच जाते है।" राईट सी.आर. का मानना है "जन को एक दूसरे से पृथक करने का कार्य किया है। इसके अधिक प्रयोग से सामाजिक सम्बन्धों में दूरियाँ आयी है क्योंकि अन्तः क्रिया सीमित हो जाती है। यह साधन इतना अधिक विकल्प प्रस्तुत करते हैं कि लक्ष्य और साधनों के मध्य भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाती है। नवीनता का प्रचार इतना अधिक होता है कि परम्पराएं इस प्रचार में खो जाती हैं तथा दिवा स्वप्न दिखाते हैं।"

भारत में 1929 में रेडियो से पाठ देना प्रारंभ किया गया। आकाशवाणी प्रसारण में शौक्षिणिक कार्यक्रम से संबंधित नीतियाँ रखी गयी हैं। रेडियो टेलीविजन प्रचार का सबसे आधुनिक साधन हैं। रेडियो से भी टेलीविजन ने इतना महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है कि इसे प्रचार का सर्वोतम साधन समझा जाने लगा है।

इस प्रकार भारतवर्ष में युवाओं को देश की आशा एवं भविष्य का प्रतिनिधि समझा गया। उन्हें इस देश के एक सशक्त संसाधन के रूप में देखा जाता है। किसी भी प्रकार की बुराई एवं सामाजिक समस्या के विरुद्ध जागरुकता लाने के लिए युवाओं का उपयोग किया जाता रहा है तथा इसके अच्छे परिणाम भी सामने आए हैं। इसलिए यह महसूस किया जाता रहा है कि युवाओं की शाक्तियों, उनकी गतिशीलता तथा उनकी आशाओें एवं इच्छाओं को रचनात्मक कार्यक्रमों एवं क्रियाओं में लगाया जाये। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन केवल राष्ट्रीय स्वतंत्रता का ही संघर्ष नहीं था अपितु सामाजिक परिवर्तन लाने के प्रयासों का एक अंग था। इस आन्दोलन में भारतीय युवाओं ने कक्षाओं का बहिष्कार, आन्दोलनों का आयोजन इत्यादि वैध साधनों का प्रयोग करते हुए किया तथा विदेशी शाासन का विरोध किया। नगर में रहने वाले युवकों ने इस भूमिका को पसन्द किया। राष्ट्रीय नेताओं ने भी इस पुनीत कार्य में युवाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया। परंतु पैसे की होड़ में जहाँ समाचार पत्र अपराधिक गतिविधियों से भरे पड़े हैं, वहीं सकारात्मक खबरों का प्रतिशत् केवल नाममात्रा का ही है। वहीं वर्तमान में टीवी चैनल्स की संख्या विगत् कुछ वर्षों में इतनी तादात में हो गयी है कि जिसने अपनी टी.आर.पी. को बढ़ाने के लिए हर प्रकार की खबरों को शाामिल कर रहा है। छोटी-छोटी सी बातों पर कुछ लोगों को बैठाकर बहस करायी जाती है, जिसके परिणामस्वरूप समाज पर उसका कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है। वहीं छोटी-छोटी खबरों को नाटकीय रूप देकर इतना बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है, कि श्रृजनात्मकता पूरी तरह नष्ट हो जाती है। परंतु यह हमें ही तय करना है, कि इन सूचना माध्यमों द्वारा हमें क्या ग्रहण करना है। यह सूचना माध्यम हमें क्या बताये तथा किस प्रकार बताएं। ताकि यह हमारे आने वाले समय के समाज निर्माता हमारे युवा एवं बच्चों को राष्ट्र एवं समाज हित में सही दिशा की ओर अग्रसर कर सके तथा इन माध्यमों द्वारा सही सूचना प्राप्त कर उसका सही दिशा में दोहन कर अपना तथा राष्ट्र का विकास कर सकें।

संदर्भ

1. कृषि एवं ग्रामीण पत्रकारिता 2016–डॉ. नरेष गौतम 978-81-7445-541-3

2, आधुनिक पत्रकारिता के विविध आयाम 2018 -नीरज वर्मा- 978-81-7445-549-9

3, जनसंचार एवं समाज 2018–डॉ. मोनिका नागोरी 81-86064-47-8

4, चौथीसत्ता डॉट ब्लोगस्पॉट

5, डबल्यू डबल्यू डबल्यू अधिवक्ता परिषद् डॉट कॉम

6, चाय की दुकान डॉट ब्लोगस्पॉट

7, चर चाये ए खास डॉट ब्लोगस्पॉट डॉट इन

8, डबल्यू डबल्यू डबल्यू उदय इंडिया डॉट इन

9, वानी हिन्दी डॉट ब्लोग स्पॉट डॉट इन

बिहार की महिलाओं का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान

डॉ० अर्चना कुमारी

(इतिहास विभाग), तिलकामाँझी विश्वविद्यालय भागलपुर, भागलपुर

आरंभिक ब्रिटिश विरोधी संघर्श में जिस तरह बिहार की भूमिका अग्रणी रही उसी प्रकार देश में ब्रिटिश सत्ता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए संचालित राष्ट्रीय आंदोलन में भी बिहार की भूमिका निणार्यक रही। बिहार की महिलाओं का स्वतंत्रता आन्दोलन में योगदान महत्वपूर्ण रहा है। राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य देश को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराना और जन प्रतिनिधियों के हाथ में सत्ता हस्तांरित करना था। इसका नेतृत्व शिक्षित एवं नगरीय मध्यम वर्गीय महिलाओं के हाथ में भी था। इस आंदोलन में यह चेतना स्पष्ट थी कि भारत के सभी लोग एक है। उनकी समस्याएँ एक जैसी है और स्थानीय समस्याओं के मूल में भी ब्रिटिश शासन से उत्पन्न शोषण और विभेद पूर्ण नीतियाँ है।[1]

1857 ई0 का विद्रोह ब्रिटिश विरोध के चरमोत्कर्ष को दर्शाता है। यह ब्रिटिश विरोधी संघर्श देश की स्वंतत्रता की स्वतंत्रता की लड़ाई का आरंभिक चरण था जिसे अनेक विद्वान पूर्व राष्ट्रीयता (Proto Nationaliosm) का चरण मानते है। इस आरंभिक चरण में देश में राष्ट्रीयता को भावना पूर्ण तरह जागृत नहीं हुई थी, लेकिन देशभक्ति की भावना या अपने शासक के प्रति निष्ठा की भावना अवश्य थी। अंग्रेजों के द्वारा छल-बल से सत्ता हथियाने के कारण उनके प्रति दोश और विरोध की भावना थी।

19वीं शताब्दी में ज्यादा बड़े पैमाने पर ब्रिटिश विरोधी संघर्श आरंभ हुए। जन आंदोलन के माध्यम से अंग्रेजों की सत्ता को चुनौती दी जाने लगी। अंग्रेजो को भारत में सबसे सशक्त जन आंदोलन का सामना 1857 में हुआ। राष्ट्रीय भावना में जागरण के पूर्व ब्रिटिश विरोधी आंदोलन सबसे महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। 1857 ई0 के विद्रोह में बिहार की महिलाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। 1857 ई0 के विद्रोह मे वीर कुंवर सिंह के साथ महिलाओं का सहयोग प्रत्यक्ष रूप से नजर आता है, जिसमें बिहार की धर्मन बीबी और करमन बाई का नाम आता है। जो वीर कुंवर सिंह के साथ हमेशा रहती थी और उन्हें गुप्त सूचनाएँ पहुँचाने का कार्य करती थी। 1857 ई0 के विद्रोह में बिहार के भागलपुर एवं मुंगेर का भी नाम आता है। महिलाओं में आशा देवी एवं शोभा देवी ने भी 1857 ई0 के विद्रोह में वीर गति को प्राप्त की थी। भागलपुर को देवी चौधराइन का भी नाम 1857 के विद्रोह में भाग लेने के कारण चर्चित रहा था।

राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य देश को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराना था। बिहार में राष्ट्रीय चेतना का जागरण लगभग उसी समय हुआ जब राष्ट्रीय स्तर पर इस भावना का प्रसार हो रहा था।

स्वंतत्रता आंदोलन ने बिहार की महिलाओं ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। घर की चार दीवारी से बाहर निकलकर वे पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता में न केवल भाग ली बल्कि आन्दोलन को नेतृत्व भी प्रदान की।

1917 ई0 में बिहार में महात्मा गाँधी के पदार्पण के साथ ही आंदोलन में महिलाओं को झुकाव बड़ गया। 1919 तक कस्तुरबा गाँधी, श्रीमति सरला देवी प्रभावती देवी, राजवंशी देवी, सुनीति देवी, राधिका देवी आदि वीरांगना महिलाओं की प्रेरणा से सम्पूर्ण बिहार की महिलाओं में आजादी की ओर रूझाान बढ़ गया। श्रीमति सावित्री देवी ने प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन के दौरान होने वाले समारोहों के बहिष्कार आंदोलन को नेतृत्व प्रदान किया। पटना की श्रीमति सी0सी0 दास और श्रीमति उर्मिला देवी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में चरखा एवं अन्य स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार में भाग लिया। गाँधी जी जब-जब बिहार आते थे तो यहाँ

की महिलाएँ अपने आभूशणों को दान में देती थी। इस कार्य में महात्मा गाँधी के साथ श्रीमति प्रभावती देवी ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1930 ई0 के नमक आंदोलन में बिहार की महिलाओं ने बड़े जोश के साथ भाग लिया। महिलाओं ने भी कई जगहों पर नमक बनाकर नमक कानून को भंग किया। श्रीमति शैल बाला राय के उत्तेजनात्मक भाशण से संथाल परगना (झारखंड) की महिलाओं ने भी नमक कानून को भंग किया। हजारीबाग की श्रीमति सरस्वती देवी तथा श्रीमति साधना देवी को नमक कानून के उल्लघंन के लिये छह माह की सजा भी मिली। गिरीडीह की श्रीमति हसन इमाम तथा श्रीमति विन्ध् वासिनी देवी के नेतृत्व ने महिलाओं ने विदेशी वस्त्रों के दुकानों के सामने धरणा प्रदर्शन को सफल बनाया। पटना के तत्कालीन अधिकारी को उन महिलओं से मुकाबला करने के लिये भारी संख्या में महिला पुलिस बल की बहाली करनी पड़ी थी। पटना की अन्य महिला नेत्रियों में प्रमुख थी कुमारी गौरी दास, श्रीमति सी0सी0 दास आदि।

मुंगेर की श्रीमति शाह मुहम्मद जुबैर एक बड़े घराने की मुस्लिम महिला थी इन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में बड़ चड़कर भाग ली थी। बहुरिया रामा रामरूप देवी ने इतना बड़-चड़ कर आंदोलन में भाग ली कि उन्हें 1931 में भागलपुर जेल में बंद कर दिया गया। संथाल परगना (झारखंड) में महिलाओं के साथ छोटे-छोटे बच्चे भी धरने पर बैठ जाते थे। श्रीमति चद्रावती देवी गया की थी वे स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख महिला कार्यकर्त्ता थी। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के समय बहुत मजबूती से अंग्रेजों का सामना किया। 23 मार्च 1931 को सरदार भगत सिंह, राजबुरू और सुखदेव को दिये गये मृत्युदंड के विरोध में आरा में एक विराट सभा का आयोजन हुआ, जिसकी अध्यक्षता श्रीमति कुसुम कुमारी देवी ने की। 26 जनवरी को स्वंतत्रता दिवस मनाने के आरोप में पटना में डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की पत्नी श्रीमति राजवंशी देवी तथा डिक्टेटर चन्द्रावती देवी सहित सात महिलाओं को गिरफ्तार किया गया। श्रीमति राजवंशी देवी तथा चंद्रावती देवी को डेढ़ वर्श का कारावासा का दंड भी मिला।

गाँधी जी जहाँ-जहाँ भी जाते थे और सत्याग्रह करने के लिए तैयार होते थे, तो महिलाएँ भी गाँधी जी के साथ सत्याग्रह करने के लिए तैयार हो जाती थी। सत्याग्रह करने के आरोप में गया की श्रीमति प्रियवंद्रा देवी, जगत नारायण देवी एवं जानकी देवी को गिरफ्तार किया गया। झारखंड के दुमका में सत्याग्रह आंदोलन का नेतत्व श्रीमति महोदेवी केसरी वाला ने किया। असहयोग आंदोलन 1 अगस्त 1920 को प्रारंभ हुआ। यह आंदोलन दिन प्रतिदिन तीव्र होता चला गया। महात्मा गाँधी ने सम्पूर्ण भारत का दौरा किया। जगह-जगह पर सभाएँ हुई। जिनमें आंदोलन की प्रगति को देखकर गाँधीजी ने ढ़ड़-कठोर शब्दों में यह घोशणा की, कि 31 दिसम्बर 1921 ई0 तक भारत को स्वराज्य प्राप्त हो जायेगा।

असहयोग आंदोलन की तीव्रता से ब्रिटिश सरकार घबराने लगी। असहयोग आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी से भी अंग्रेज कॉपने लगे थे। दिसंम्बर 1921 ई0 तक गाँधी जी के अतिक्ति सभी प्रमुख्य कांग्रेसी को जेल में डाल दिया गया था। इन परिस्थितियों में कांग्रेस का अहमदा बाद अधिवेशन हुआ। जिसमें यह ढुढ़ निश्चय प्रकट किया गया कि कांग्रेस अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन को तब तक जारी रखेगी जब तक भारत सरकार की बागडोर जनता के हाथों में न आ जाये। इस कार्य की पुर्ति हेतू कांग्रेस ने सारे अधिकार गाँधी जी को दे दिये। अत: गाँधी जी कांग्रेस के सर्वेसर्वो बन गये। आंदोलन इस समय अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था तथा सम्पूर्ण देश उत्साह एवं आशा से गाँधी जी की और देख रहा था। दिसम्बर 1920 में गाँधी जी बिहार आये। बिहार की महिलाओं ने गाँधी जी को चंदा एकत्रित कर सहयोग के रूप में दिया। यह बिहार की महिलाओं का राष्ट्र के प्रति त्याग का परिचय देता है। असहयोग आंदोलन के दौरान भागलपुर की सावित्रि देवी एवं उर्मिला देवी ने महिलाओं में देश के प्रति देश भक्ति का मंत्र दिया।

असहयोग आंदोलन इस समय अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था तथा सम्पूर्ण देश उत्साह एवं आशा से उनकी ओर देख रहा था। गाँधी जी ने 1 जनवरी 1922 को वायसराय के पास अल्टीमेटम भेजा की अगर बंदियों को तुरंत रिहा न किया गया व दमनचक्र बंद न किया गया तो सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ कर दिया जायेगा, किन्तु इसी बीच 5 फरवरी 1922 को गोरखपुर जिलों के चौरीचौरा नामक स्थान पर क्रुद्ध भीड़ ने एक थानेदार व 21 पुलिस कर्मियों को जेल में बंद कर जीवित जला दिया इस प्रकार असहयोग आंदोलन के हिंसात्मक हो जाने के कारण गाँधी जी ने 12 फरवरी 1922 को असहयोग आंदोलन को समाप्त कर दिया। गाँधी जी के असहयोग आंदोलन की लहर ने महिलाओं में जोश भर दिया। लेकिन साथ ही गाँधी जी के अचानक स्थगित कर देने के निर्णय का सर्वत्र घोर विरोध भी किया गया। सुभाशचंद्र बोस ने भी यह कहा कि राष्ट्रीय संघर्श को ऐसे समय में बंद करना अत्यंत कष्टप्रद था जब जनता का जोश अपने सर्वोच्च शिखर पर था।

सविनय अवज्ञा आंदोलन की विधिवत घोषणा महात्मा गाँधी जी के द्वारा 12 मार्च 1930 को की गयी। 6 अप्रैल 1930 को सविनय अवज्ञा आंदोलन गाँधी जी के द्वारा प्रारंभ किया गया गाँधी जी ने इस आंदोलन के कार्यक्रम को घोशणा की जिसमें प्रमुख बातें निम्नलिखित थी:-

1. गॉव-गॉव में नमक कानून तोड़ा जाय
2. छात्र सरकारी विद्यालयों व कर्मचारी दफ्तरों को छोड़ दें।
3. विदेशों वस्त्रों को जलाया जाय।
4. सरकार को कर न दिया जाय।
5. नारियाँ शराब, अफीम और विदेशी वस्त्रों को दुकानों को घिराव करें।

अनेक स्थान पर विदेशों वस्त्रों को जलाया गया स्त्रियों के द्वारा शराब को दुकानों का घिराव किया गया। मजदूरों और किसानों ने लगान देना बंद कर दिया और छात्रों ने विद्यालयों तथा कॉलेजों को बहिश्कार करके आंदोलन को सशक्त बनाया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें महिलाओं ने भी महत्वपूर्ण कार्य किये। सवनिय अवज्ञा आंदोलन में बिहार में सर्वप्रथम चम्पारण तथा सारण जिले की महिलओं ने भाग लिया। चम्पारण में सबसे अधिक जगहों पर नमक बनाया गया। इस सविनय अवज्ञा आंदोलन में श्रीमति शिवधारी पाण्डे तथा अन्य महिलओं ने भाग लिया। सरस्वती देवी भागलपुर की तथा साधना देवी संथाल परगना (झारखंड) की ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में बड़-चड़कर कार्य की थी। जिसके चलते उन्हें 6 महीनें की साधारण कैद की सजा भी हुई थी। श्रीमति शाह मुहम्मद जुबैर ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में एक बैठक को संबोधित कर देश के लिये महत्वपूर्ण कार्य की थी। इन्होनें इस कार्य को कर देशभक्ति का परिचय अन्य महिलाओं की दी। उनके इस प्रकार के कार्य से अन्य दूसरी महिला भी प्रात्साहित हुई। श्रीमति सी0सी0 दास के बेटी विंध्य वासिनी देवी ने भी सविनय अवज्ञा आंदोलन में अपने आपकों देश को समर्पित किया। ठकुरानी देवी मुंगेर की थी, इन्होंने विदेशों वस्त्रें विदेशी, वस्तुओं के बहिश्कार का प्रचार प्रसार किया। सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं ने विशेष रूप से देश के लिये कार्य की और आंदोलन को गति प्रदान की।

गाँधी जी क्रिप्स आयोग के असफल रहने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न जन आक्रोश का उपयोग करना चाहते थे। अंत 14 जुलाई 1942 ई0 को वर्धा में कांग्रेस की कार्य समिति में भारत छोड़ो का प्रस्ताव पारित किया। इस कार्य समिति ने कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं ने भाग लिया। कांग्रेस की अखिल भारतीय समिति की बैठक 7 अगस्त 1942 ई0 को बम्बई में हुई। कार्य समिति ने प्रस्ताव को 8 अगस्त को पारित कर दिया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि भारत में ब्रिटिश शासन का तुरंत अन्त होना चाहिए। अत: गाँधीजी ने अंग्रेजों से भारत छोड़ने की अपील की तथा अंग्रेजों भारत छोड़ो का नारा दिया। आंदोलन प्रारंभ होने के पहले ही गाँधीजी तथा कांग्रेस के लगभग सभी प्रमुख नेताओं को बंदी बना लिया गया। सरकार के इस कार्य की सूचना मिलने पर भारतीयों के सब का बांध टूट गया तथा जनता ने सरकार के विरूद्ध आंदोलन प्रारंभ कर दिया। जनता को केवल यह याद था कि महात्मा गाँधी ने करो या मरो (Do Or Die) का मंत्र दिया है अत: सम्पूर्ण भारत में विरोध प्रारंभ हो गया। यह आंदोलन भारत में संगठित रूप से प्रारंभ हुआ। बिहार में भी भारत छोड़ो आंदोलन की लहर तीव्र गति से प्रारंभ हुई। भारत छोड़ो आंदोलन में बिहार को महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस आंदोलन में जय प्रकाश नारायण तथा उनकी पत्नी ने महत्वपूर्ण कार्य किये। अरूणा आसफ अली ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राजवंशी देवी का भी (बिहार को) योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है। इन्होनें भारत छोड़े आंदोलन में काफी प्रचार प्रसार किया तथा साथ ही महिलाओं में उत्साह को जगाने का कार्य की। विद्यार्थियों किसानों और मजदूरों ने भी प्रशंसनीय कार्य करते हुए स्वतंत्रता के लिये सरकार का विरोध किया। 1942 के आंदोलन में शहीद होने वाली महिलाओं में से अधिकतर महिलाएँ बिहार की ही थी। मुंगेर के राहियारा गॉव के श्री भुट्टों गोप की पुत्री कुमारी छतुरी देवी एवं कुमारी हुकेरी भी भारत छोड़ो आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 14 अगस्त 1942 को भागलपुर जिले के बिहपुर क्षेत्र की कांग्रेस कार्यकर्त्ता माया देवी ने ब्रिटिश सरकार को परेशान कर आंदोलन को तीव्रता प्रदान की थी। बरारी भागलपुर को जानकी देवी को भारत छोड़ो आंदोलन में तोड़ फोड़ करने के आरोप में गिरफ्तार किया गया था। 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस मनाने के आरोप में पटना में डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की पत्नी राजवंशी देवी तथा साथ ही चंद्रावती देवी सहित सात महिलाओं को गिरफ्तार किया गया था। भागलपुर का रामस्वरूप देवी मुंगेर की संपत्तियाँ देवी सहित अन्य और महिलाओं ने भी स्वतंत्रता संग्राम मे अपना बलिदान दी। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन

के दौरान कई महिलाएँ पुलिस को गोली से भी शहीद हो गई। इनमें प्रमुख है, घोड़ मारा की विराजी मधियाइन आदि महिलाएँ।

बिहार की अन्य चर्चित महिलाओं में शारदा देवी एवं श्रीमति उशा रानी मुखर्जी, लीला सिंह का भी नाम बहुत ही महत्वपूर्ण है। इन्होनें भी भारतीय स्वतत्रंता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार बिहार की महिलाओं ने सदैव ही आंदोलन को महत्व दिया तथा साथ ही कदम से कदम मिलाती हुई चली और अपने उद्देश्य में कामयाब हुई।

अत इस प्रकार भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार की महिलाओं का योगदान इतिहास में सदैव ही प्रशंसनीय तथा महत्वपूर्ण है।

संदर्भ :-

1. अहमद इमत्याज एवं अहसन कमर - बिहार एक परिचय - 43, 44, 45
2. प्रभात कुमार चौबे दिनकर चौबे कुमार संजय - बिहार दिग्द शिका - पृष्ठ सं0-141
3. मित्तल डॉ0 ए0के - भारत का राजनीतिक एवं सांस्तकृतिक इतिहास- पृष्ठ सं0- 560
4. मित्तल डॉ0 ए0के - भारत का राजनीतिक एवं सांस्तकृतिक इतिहास- पृष्ठ सं0- 593

परिवार के लिए उचित व पौष्टिक पोषण

डॉ० मंजू श्री

गृह विज्ञान, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

मानव जीवन के लिए भोजन आवश्यक ही नहीं बल्कि यह व्यक्ति को स्वस्थ, सुगठित रखने के साथ कार्य करने के लिए ऊर्जा भी प्रदान करता है। भोजन मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। मानव शरीर के आंतरिक अंगों एवं बाह्य अंगों में निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है। इसलिए निरोग जीवन के लिए पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन को पौष्टिक होने के साथ-साथ स्वादिष्ट एवं रूचिकर भी होना चाहिए क्योंकि' दिल का रास्ता पेट से होकर जाता है''। भोजन के आयोजन से कई बड़े - बड़े काम भी सरलता से चुटकियों में निकल जाते हैं। इन्हीं सब बातों को जानने के लिए भोजन, पोषण और स्वास्थ्य के बारे में जानना जरूरी है क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। व्यक्ति को अपने तथा परिवार के स्वास्थ्य के लिए उचित पोषण आवश्यक है।

उद्धेश्य :-

* भोजन, पोशण तथा स्वास्थ्य के बीच संबंध
* पोशण तथा पोशण स्तर
* भोजन के वर्गीकरण
* भोजन के कार्य

भोजन, पोषण तथा स्वास्थ्य

आप अब भोजन , पोशण तथा स्वास्थ्य के संबंधों के बारें में जानेंगे। भोजन जीवन के लिए एक मौलिक आवश्यकता है। भोजन ही शरीर का पोशण करता है। प्रत्येक भोज्य पदार्थ में शरीर को पोशित करने की अलग-अलग क्षमता होता है क्योंकि प्रत्येक भोज्य पदार्थ में पोशक तत्त्व की मात्रा अलग-अलग होती है। पोशण मनुष्य एवं उसके बीच का संबंध है एवं इसमें शारीरिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा जैविकीय पहलू भी सम्मिलित होते हैं।

पोशण वह विज्ञान है जिसमें भोजन, पौष्टिक तत्त्व एवं उनमें उपस्थित अन्य पदार्थ, उनकी क्रियाएँ, पारस्परिक क्रियाएँ एवं आपसी संतुलन का स्वास्थ्य एवं रोग की स्थितियों से संबंध होता है।

- स्वास्थ्य व्यक्ति विशेष की पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक निरोगता की स्थिति हे, केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं
- शारीरिक, मानसिक, सामाजिक या भावनात्मक किसी भी प्रकार का विकास अवरूद्ध होना ''रोग'' कहलाता है। केवल शारीरिक कमजोरी या बीमारी होना ही रोग नहीं कहलाता है।
- स्वास्थ्य किसी व्यक्ति द्वारा अनुभूत सफलता के वे अनुभव है जिनके द्वारा वह अपने वातावरण की चुनौतियों का सफलता के साथ समायोजन कर पाता है।
- पोशण और पोशण विज्ञान का प्रत्यक्ष रूप से सहसबंध पोषक तत्त्व प्रदान करने वाले भोजन और शारीरिक स्वास्थ्य से है। भोजन से ही व्यक्ति उचित पोषण, उचित वातावरण प्राप्त कर शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक स्वस्थता

प्राप्त करता है जबकि अनुचित पोषण और वातारवरण से व्यक्ति अस्वस्थता प्राप्त करता है। भोजन से उचित पोषण प्राप्त करने के लिए उचित ''आहार आयोजन'' किया जाता है।

स्वास्थ्य के विभिन्न आयाम - विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार स्वास्थ्य के चार पक्ष है :-

- शारीरिक
- मानसिक
- समाजिक
- आध्यात्मिक

विभिन्न पोषक तत्वों की प्राप्ति के महत्वपूर्ण स्त्रेत

(Important sources of Different Nutrients)

	पोशक तत्व	स्त्रेत
1.	प्रोटीन	मांस, मछली , अंडा, पनीर दूध, सोयाबीन ,मूँफली, सूखी फलियॉ, मटर, मेवे, (बादाम, काजू, पिस्ता), (पशुजन्य प्रोटीन से उत्तम प्रोटीन प्राप्त होती है)।
2.	वसा	घी, मक्खन, मलाई, खोया, मॉस की चर्बी बिनौला, सरसों, नारियल, मेवा, (बादाम, काजू पिस्ता मूँगफली), तेल (नारियल, सरसों मूँगफली, तिल आदि) ।
3.	कार्बोहाईड्रेट	शक्कर, गुड़, शहद, अनाज, (बाजरा, जौ, ज्वार), मकई, चावल, गेहूँ, आदि।
4.	लोहा	मोटे अनाज, (बाजार, रागी आदि) हरी पत्तेदार सब्जियॉ (पालक, मेथी, सरसों, चने का साग, चौलाई, शलगम के पत्ते, सूखी फलियॉ और मटर) मॉस, कलेजी, गुड़, अंडे का पीला भाग।
5.	कैल्शियम	दूध और दूध से बनी वस्तुएँ (दही, पनीर खोया आदि), तिल, बादाम, मछली, समुद्र से प्राप्त भोजन (sea Foods), हरी पत्तेदार सब्जियॉ।
6.	आयोडीन	जल, हरी, पत्तेदार, सबिजयॉ, मछली, नमक में मिलाया गया आयोडीन ।
7.	विटामिन ए	अंडे की जर्दी, मछली का तेल, कलेजी, मक्खन, दुध, पीले फल व सब्जियॉ (गाजर, पपीता, पका आम, सन्तरा, पेठा, अरवी, सीताफल), हरी सब्जियॉ (धनिया, पुदीना, पालक, मेथी का साग) मारजीन।
8.	विटामिन $बी_1$	साबुत अनाज, मेवा, मटर फलियॉ, साबुत दालें, खमीर, दुध और दुध से बनी वस्तुएँ, हरी सबिजयॉ और फल, सुअर का मॉस आदि ।
9.	विटामिन $बी_2$ राइबोफलेबिवन	यकृत, दूध, अंडा, हरी सब्जियॉ, साबुत, दालें । अनाज
10.	विटामिन सी	ऑवला, अमरूद, खट्टे रस वाले फल (सन्तरा, नींबू, कीनू, अन्नानास, टमाटर आदि), हरी पत्तेदार सब्जियॉ (बंदगोभी, गॉठगोभी, धनिया आदि) अंकुरित अन्न व दालें आदि।

शारीरिक कार्य :-

1. ऊर्जा प्रदान करना
2. शरीर के निर्माण हेतु
3. सुरक्षात्मक भोजन
4. नियंत्रित भोजन

व्यक्ति को जीवन की क्रियाओं जैसे सॉस लेना, परिसंचरण, पाचन और अवशोषण के लिए की आवश्यकता होती है। ये अनैच्छिक क्रियाओं हैं जो शरीर में निरंतर होती रहती है। कुछ ऐच्छिक क्रियाएँ जैसे चलना, दौड़ना, खेलना, गाना इत्यादि के लिए भी ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो हमें कार्बोज और वसा से प्राप्त होती हैं ।

शरीर में एनाबोलिक और कैटाबोलिक कार्य होते रहते हैं जिन्हें सम्मिलित रूप से मेटाबोलिज्म कहते है। कार्य करने से तंतु घिस जाता है तथा वृद्धि और विकास के लिए नए तंतुओं का निर्माण होता है। बचपन, किशोरावस्था तथा गर्भावस्था में नए तंतु अधिक बनते है। प्रोटीन ही वे महत्त्वपूर्ण भोज्य तत्त्व है जो शरीर में नए तंतुओं का निर्माण तथा मरम्मत करते है।

विटामिन और खनिज लवण ग्रहण करने से शरीर में रोगों से लड़ने की क्षमता उत्पन्न होती है। विटामिन 'ए' लेने से अंधापन, विटामिन 'डी' से रिकेट्स, औस्टोपोरोसिस नहीं होता है। लौह और आयोडीन लेने से खून की कमी, एनीमिया तथा घेघा नहीं होता।

जल और रफेज भिन्न -भिन्न शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित करते है। पानी व्यर्थ पदार्थो के निष्कासन में सहायक होता है। रफेज क्रयानुकुंजन क्रिया में सहायक होता है जिससे कब्ज नहीं होता है ।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्य - भोजन, परिवार तथा समाज का अभिन्न अंग है। सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बहुधा सगे संबंधियों तथा मित्रों के साथ मिलकर नाश्ता तथा भोजन किया जाता है। इससे लोग एक दूसरे के समीप आते हैं तथा वातावरण खुशनुमा हो जाता है। यह लोगों में खुशियाँ, दुःख तथा व्यवहारों कों बॉटने का माध्यम है। इससे सांस्कृतिक भिन्नताएँ दूर होती है। उत्तर भारत के लोग रोटी -दाल, छोले-भटूरे आदि खाते हैं जो दक्षिण भारतीयों को खिलाना चाहेंगे । दक्षिण भारत के लोग इडली-डोसा आदि खाते हैं। परंतु दक्षिण भारतीय चने के साग और मक्के की रोटी खाना चाहेंगे और उत्तर भारतीय इडली- डोसा। होली पर गुझियाँ, क्रिसमस पर केक, पोंगल में चावल, ईद पर बकरे का मीट आदि धार्मिक संस्कृति क उदाहरण है। धार्मिक संस्कृति से प्रभावित होकर कुछ व्यक्ति शाकाहारी भोजन करते है तो कुछ माँसाहारी। भोजन के विभिन्न प्रकार उनका उपयोग और कार्यो को जानने के बाद हम कह सकते है कि भोजन हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1. स्वास्थ्य व्यक्ति के जीवन का आधार है।
2. स्वास्थ्य का अर्थ है- व्यक्ति को 'शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक निरोगता।
3. रोग से सामान्य वृद्धि और विकास में अवरोध पैदा होता है।
4. पोषण एक प्रक्रिया के साथ -साथ विज्ञान भी है।
5. भोजन के सभी पोषक तत्व उस भोजन के पोषण स्तर को निर्धारित करते है।
6. भोजन को शारीरिक क्रिया तथा पौष्टिक तत्वों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।
7. कुपोषण, अत्यधिक पोषण, अपर्याप्त पोषण तथा असंतुलित पोषण से प्रभावित होता है।
8. पोषण स्तर पौष्टिकता का रचना तथा गरीबी रेखा से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है।

संदर्भ

1. WHO का मैनुअल
2. श्री मती भुपिन्दर कौर बख्सी - आधार व पोषण के मूल आधार
3. डॉ0 श्रीमती प्रमिला वर्मा एवं डॉ0 श्री मती कान्ति पाण्डेय -आहार व पोषण विज्ञान
4. डॉ0 प्रेमलता व डॉ0 कंचन यादव -आहार के पोषक तत्व
5. प्रो0 (श्रीमति) गायत्री सिन्हा
6. डॉ0 प्रेमचन्द्र स्वर्णकार

मध्यकालीन भारत के संदर्भ में जनसम्पर्क की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः एक अध्ययन

डॉ० उपेन्द्र कुमार

विभागाध्यक्ष, शिक्षा -शास्त्र विभाग, आर. एस. पी. कॉलेज, झरिया, धनबाद, झारखंड

सारांश भारत एक कल्याणकारी राज्य है। भारतवासियों को न्याय, स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति का अधिकार, समानता का वचन देने का अर्थ है प्रजातंत्र की चारों स्तंभ मजबूत रहे। विकास कार्य की दिशा में जो मीलों रास्ते तय करने है। उनके लिए वे परस्पर जुड़ी रहे है। जनसंचार की भूमिका सकारात्मक होने के साथ-साथ नकारात्मक प्रवृति की भी रही है। फिर भी यह मानव जीवन क अपरिहार्य अंग है। कोई भी देश हो, वहाँ की शासन-व्यवस्था जिस प्रकार की हो, सभी देशो की सरकारें सदा कोशिश करती रहती है कि जनता के बीच उसकी छवि सुन्दर बनी रहे। विकास के लिए जो भी प्रशासनिक कदम उठाया जाए उसको अपनाने के लिए जनता आगे आए। इसक लिए सूचना जल्द-से-जल्द उपलब्ध कराने में जनसंपर्क का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में कोई भी विकास संबंधित योजनाएं तब तक प्रभावी ढंग से क्रियान्वित नहीं की जा सकती जब तक उसके प्रशासकीय तत्वों को पूर्णतः न समझ लिया जाए और उसी के अनुरूप प्रशासन तंत्र की व्यवस्था न की जाय।

प्रस्तुत आलेख में मध्यकालीन भारत के संदर्भ में जनसंपर्क की प्रकृति महत्व एवं तौर तरीके को दर्शाया गया है। मध्यकाल जन जागरण का योग्य माना जाता है। यह समय जनसंपर्क प्रणालियों एवं अभियानों की स्थापना का काल रहा है। कहने का अर्थ है कि जनसंपर्क का रूढ़िवादी स्वरूप नवीन स्वरूप में बदलाव का यह दौर है। अतः जनसम्पर्क की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन प्रासंगिक प्रतीत होता है, अध्ययन का उद्देश्य मध्यकालीन भारत के संदर्भ में जनसंपर्क की ऐतिहासिक-पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालना है।

परिचय

जनसंचार या जनसम्पर्क का अलग इतिहास रहा है जो आरम्भ के वर्षो में संघर्ष से जुझता रहा। वह ऐसा समय था जब पत्रकारिता केवल विकास संबंधी कार्यक्षेत्र तक सीमित नहीं थी बल्कि देश की महानता को बनाए रखने के लिए कड़ा संघर्ष चलाने के समान थी। देश सेवा ही एकमात्र लक्ष्य अथवा आकर्षण था। आज की तरह धन अथवा आकर्षण पत्रकारों के समक्ष नहीं होते थे, बल्कि पत्र निकालने के लिए धन जुटाना एक चुनौती थी। बिना धन के पत्र छपना संभव नहीं था। वैसे भी लोगों में इतनी जागरूकता नहीं थी कि पत्रों को पढ़े या प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध हों। देश में शिक्षा का प्रसार बहुत कम था। कारोबार अधिक नहीं हुआ करते थे। संचार व्यवस्था भी विकसित नहीं थी। आने-जाने के साधन कम होने के कारण जनसंचार करना पेचिदा था। ऐसे में विकास की बात कौन करता?

लैरी कालिन्स और दॉ मिनियक लैपियर की चर्चित पुस्तक ''आधी रात की आजादी'' की चन्द पंक्तियाँ संदर्भ के लिए उद्घृत है - 'भारत में अंग्रेजों की शासन-पद्धति शुरू से कुछ ऐसी रहीं, जैसी कोई बूढ़ा स्कूल मास्टर कक्षा के उजडु विद्यार्थियों को बेंत के जोर पर सही करने निकला हो। इस स्कूल मास्टर को पूरा विश्वास था कि विद्यार्थियों को जो शिक्षा वो दे रहा है, वही उनके लिए सही ओर सर्वश्रेष्ठ है। यदि अपवादों को छोड़ दे तो अंग्रेज अधिकारी अपनी योग्यता और भ्रष्टाचार हीनता का ही परिचय देते थे। वे पक्का फैसला करके घर से निकलते थे कि भारत के हितों की हर सूरत में रक्षा करेंगे लेकिन समस्या केवल यह थी कि भारत के हितों की रक्षा कहाँ है और कहाँ नहीं, इसका निर्णय वे भारतीयों को न देकर स्वयं किया करते थे। उनकी सबसे बड़ी

कमजोरी थी वह दूरी, जिसे वे भारतीयों और स्वयं के बीच हमेशा बनाए रखना चाहते थे। भारतीयों पर शासन वे उनके साथ घुल-मिलकर नहीं, बल्कि उनसे दूर रहकर करते थे। सन् 1918 के बार इण्डियन सिविल सर्विस में अंग्रेजों की भरती दिनों दिन कठिन होती गई। अन्ततः उन्हें भारतीयों की सेवाएँ स्वीकार करनी पड़ीं। 1947 के नववर्ष दिवस पर, मुश्किल से एक हजार अंग्रेज 'इंण्डियन सिविल सर्विस' में रह गए थे। भारत की चालीस करोड़ जनता को उन मुठ्ठीभर अंग्रेजों ने, न जाने कैसे, अपनी शासकीय समताओं से जकड़ रखा था।''[1]

उपरोक्त पुस्तक का प्रसंग भले ही अंग्रेजों की क्रुरता का द्योतक हो लेकिन यह प्रसंग इस बात की ओर दृष्टि देता है कि कहीं-न-कहीं भारतीय जनता एकजुट नहीं थी उनके बीच संचार नहीं था। जनसम्पर्क जितना अधिक होता गया आजादी की लड़ाई उतनी ही मजबूत होती गई। कहने का अर्थ है कि जनसंचार ने लोगों में ये भावना उत्पन्न की कि जब-तक प्रशासन खुद की मुद्दी में नहीं होगा तब तक भारतीयों का विकास नहीं होगा, वे स्वतंत्र नहीं होगें।

आज से लगभग दो सौ बत्तीस वर्ष पूर्व सन् 1772 में लंदन से कोलकाता व्यापार करने आए जेम्स अगस्तस हिक्की भारत में पत्रकारिता के जनक कहें जाते हैं, जिन्होंने अपनी कलम की धार से बेबाक पत्रकारितका की राह दिखाई। इंग्लैण्ड से भारत आब हिक्की निर्भीक, वेबाक और साहसी पत्रकार के रूप में मिसाल है। जिसके कारण कई बार वो जेल भी गए, फिर भी सत्ता ओर जुल्म के विरूद्ध अपनी आवाज बुलंद की। उस वक्त माध्यम विकसित नहीं था, फिर भी प्रशासन के सही-गलत फैसले पर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने का काम 'पत्रकारिता' करती थी। उनकी मान्यता थी कि अखबार में अलग प्रशासन की खामियों की आलोचना की जाए तब उनके सुधार हो सकता है।

प्राचीन काल में सूचना तकनीकी विकसित नहीं थी, पत्र-पत्रिकाएँ ही विकास-प्रशासन को त्वरित करने का कार्य करती थीं। सामाजिक परिवर्तन लोने की दिशा में समाचार जगत की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसने बड़े से बड़े शासन की हिलाकर रख दिया साथ ी उसे जनकल्याण की ओर प्रेरित करने की भूमिका भी अदा की है। विश्व के महान योद्धा नेपोलियन ने एक बार कहा था कि यदि चार समाचार-पत्र नाराज हो जाएँ जब उनका प्रहार एक हजार सैनिकों से भी अधिक घात सिद्ध होता।

इतिहास साक्षी है कि समाचार-पत्रों ने अपने जन्मकाल से ही जब-जागरण की लिए समाचार-पत्र ही जनसंचार का कार्य करते थे। धीरे-धीरे रेडियों-टेलीविजन क्रांति के बाद सूचनाओं के आदान-प्रदान और प्रतिक्रिया प्राप्त करने का स्वरूप बदलता गया। प्रसारण की प्रक्रिया ने अपने को बहुत तेजी से व्यस्क बनाया है। बीसवीं सदी के प्रवेश के साथ ही बेतार संवाद का प्रयोग शुरू हुआ और आधी शताब्दी गुजरते-गुजरते जनसंचार की कला परवान चढ़ गई। 19वीं सदी के अंततक इस बात की कोरी-कल्पना और ख्याली-पुलाव समझा जाता रा कि कोई आदमी दूर के एक स्थान पर बोले ओर उसकी आवाज को बिना तार या किसी सीधे संबंध के दूसरी जगह के लोग सुनें।

भारतीय धर्मशास्त्रों में ऐसी कल्पना के लिए ''आकाशवाणी'' शब्द का प्रयोग होता था, जो मात्र ईश्वर या देवताओं द्वारा बोली जाने वाली वाणी थी। किसे पता था कि आकाशवाणी कुछ ही दिनों में गरीब अमीर, पुण्यात्मा और पापी, आस्तिक और नास्तिक सबके लिए आम हो जाएगी।

द्वितीया विश्वयद्ध के बाद दुनिया का राजनीतिक नक्शा बदल गया। पूरा संसार दो गुटों में बँट गया। राजनीति का ध्रुवीकरण प्रारम्भ हुआ। अमेरिका और रूस क्रमशः पूंजीवादी एवं समाजवादी अर्थप्रणाली के प्रचारक बने। ये दो देश अपनी प्रभुता एवं बड़प्पन प्रचारित करने के लिए आतुर हो उठे। संचार एवं अन्य साधनों के जरिए दुनिया क्रमशः छोटी होती गई और राष्ट्र एक-दूसरे के करीब आते गए। सबसे बड़ी बात यह उभरी कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राजनीति एवं अर्थनीति के लिए राजनयिक अगुओं के स्थान पर ''जनता'' आ खड़ी हुई।

समाजवादी रूस हो या पूंजीवादी अमेरिका या साम्राज्यवादी इंग्लैण्ड-वहाँ की जनता रंगमंच पर उभर कर आ खड़ी हुई और बिना जनता को संतुष्ट किए बिना किसी भी राष्ट्रनायक के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कोई फैसला लेना संभव नहीं रहा। इस समूह चेतना को उद्‌बोधित करने के लिए राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जनसंचार-माध्यमों को दुनिया के तमाम राष्ट्रों ने अपने राष्ट्र के लिए तथा बाहर की दुनिया के लिए अपनी बात कहने के सर्वश्रेष्ट साधन के रूप में अपनाया।

कहने का तात्पर्य है कि जनसंचार-माध्यमों या जनसम्पर्क ने आरम्भ से ही विकास-प्रक्रिया में भूमिका निभायी है। जनसंचार का काम देश के नागरिकों के नजरिए को अधिक से अधिक व्यापक बना और देश की नीतियों, विकास व प्रगति की योजनाओं एवं

कार्यक्रमों के अमल में उनकी सक्रिया भागीदारी प्राप्त करना है। इस प्रकार देश का आर्थिक-विकास कर सकें और सामाजिक परिवर्तन लाने में मदद करें, ताकि राष्ट्रीय एकता, अखण्डता और सुरक्षा मजबूत हो। विकास के लिए प्रशासन की सजगता हमारे देश में अति प्राचीन काल से रही है। समय-समय पर जनसम्पर्क या जनसंचार के कारण प्रशासनिक संस्था किस प्रकार मजबूत बनी इसके अध्ययन के लिए आवश्यक है भारतीय शासन में जनसंचार कि अस्तित्व के विकास का अवलोकन जो प्रमाणित करेगी कि कैसे जनसंचार प्रशासन के कार्यो का पर्यायवाची रहा, साहचर्य रहा। अध्ययन की सुविधा के लिए इसे निम्न कालों में विभाजित करते हैं -

- प्राचीन काल
- मध्यकाल
- ब्रिटिशकाल
- स्वतंत्र भारत के बाद का काल

मध्यकालीन भारत के संदर्भ में जनसम्पर्क

मध्यकालीन भारत को सल्तनत काल (1200-1526) और मुगलकाल (1526-1707) में विभाजित किया जाता है।

सल्तनत काल

दिल्ली साम्राज्य बहुत विशाल था जिसे शासन-प्रबंध की सविधा के लिए अनेक भागों और उप-भागों में बाँटा गया था। सम्पूर्ण राज्य प्रान्तों में विभाजित था। प्रान्त शासन की सबसे बड़ी इकाई थी। प्रारंभ में इसे 'इक्ता' कहा जाता था पर अलाउद्दीन के शासनकाल में इसे 'सूबा' कहा जाने लगा। प्रान्तों या सूबों की संख्या दिल्ली सल्तन काल में घटती बढ़ती रही। प्रान्तों को भी प्रशासनिक दृष्टि से परगनों में बाँ दिया गया था। परगनों को गाँवों में बाँटा गया था। गाँव ही राज्य की सबसे छोटी शासकीय इकाई थी। प्रान्त के मुख्य अधिकारी सूबेदार कहे जाते थे। परगने के आमल और मुशरु नाम प्रमुख अधिकारी होते थे। गाँवों का प्रबन्ध लम्बरदार, पटवारी, पंचायतों आदि द्वारा किया जाता था। लम्बरदार शांति-व्यवस्था बनाए रखता था और भूमि-कर एकत्रित करने में सहायता देता था। गाँवों को अपने मामलों में काफी स्वतंत्रता मिली हुई थी।

सल्तनतकालीन सफलतान अलाउद्दीन खिलजी जिसे 'खजाइनुल' फतूह में अमीर खूसरो में ''विश्व का सफलतान'', ''पृथ्वी के शासकों का सफलतान युग का विजेता, जनता का चरवाहा जैसी पदवियों से विभूषित किया था, जिसने स्वयं को 'यस्मिन-उल-खिलाफ-नासिरी-अमीर-उल-मुमिनिन'' की उपाधि प्रदान की थी-अपने शासन काल में कुछ सुधार पूर्णत: नवीन किए थे। इतिहास के गहन अध्ययन में न जाकर एक सरसरी निगाहों से देखा जाए तो ''मुहतासिव'' और ''मुनदियन'' पदों का सृजन करना कहीं-न-कहीं शासक के जनसम्पर्क प्राप्त करने से प्रेरित था।

गौरतलब है कि ''मुहतासिब'' जनसाधारण के आचरण का रक्षक था। वह बाजारों पर भी नियंत्रण रखता था और नाप-तौल का निरीक्षण करता था। आज के परिवेश में जनसंचार माध्यम कभी जनसाधारण के आचरण के रक्षक का ही काम करता है। इसी प्रकार से गुप्तचर विभाग का मुख्य अधिकारी ''बरीद-ए-मुमालिक'' था। इसके अधीन अनेक बरीद शहरों में नियुक्त किए जाते थे। ''बरीद'' के अलावा अलाउद्दीन खिलजी ने अपना सूचनादाता नियुक्त किए थे, जो 'मुनाहियन' कहलाते थे। अलाउद्दीन द्वारा सृजित किए गए ये पद कहीं-न-कहीं समाज की चौकसी से जुड़े थे, प्रशासन को आगाह करते थे, फीडबैक प्राप्त करने के लिए गुप्त रूप से काम भी करते थे।

इसी प्रकार से इब्राहिम-लोदी (1517-1526) के शासन में सफलतान की सहायता के लिए अनेक मंत्री होते थे उसे प्रशासकीय हित के लिए होते थे '' दीवने ईशा'' पर शाही पत्र-व्यवहार का उत्तरदायित्व था। शाही घोषणाओं और पत्रों के मसविदे तैयार करना इसी मंत्री का कार्य था। इसी से सफलतान के फरमान जारी होते थे। ''बरीद-ए-मुमालिक'' सूचना-विभाग तथा गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष होता था। डाक चौकियों का प्रबंध भी इसी के अधीन होता था।

'दीवाने-ईशा' का काम वहीं था, जे आज सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय का कार्य है। कहीं-न-कहीं जनसंचार की व्यवस्था उ काल में थी जो आवश्यकता एमझती थी कि विकास की गतिविधियाँ जनता तक पहुँचे और जनता उससे सरोकार रखे।

इसी प्रकार संगमकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में ''दूतार'' राजदूत या दूत और ''औरर'' गुप्तचर का काम करते थे। विजयनगरकालीन प्रशासन में व्यापारिक निगम, ग्रामीण संस्थाएँ, धार्मिक संस्थाओं से जुड़ी जन समितियां राजा की निरंकुशता को नियंत्रित करती थी। जैसे कि आज जनसंचार के माध्यम प्रशासन की स्वेच्छाचारिता को अंकुश लगाने का काम करते है।

मुगलकाल :-

मुगल साम्राज्य में गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई थी। परगने गाँवों में विभाजित थे। गाँव प्रबंध पंचायतें करती थी। गाँव की सफाई, सुरक्षा, शिक्षा, सिंचाई, झगड़ों के फैसले आदि का भार उन्हीं पर था। गाँव के तीन महत्वपूर्ण अधिकारी थे-मुकदम गाँव की देखभाल करता था, पटवारी लगान वसूल करता था और चौधरी पंचायतों की सहायता से झगड़े सफलझाता था। सुरक्षा की दृष्टि से प्रतयेक गाँव में एक चौकीदार होता था।

गुगल प्रशासन में कस्बों और नगरों में नगरपालिका और कुशल पुलिस प्रबंध की व्यवस्था थी। कोतवाल मुख्य अधिकारी होता था जो जनता के जानमाल की हिफाजत करता था, दंगा-फसादों को दबाता था, अपराधों का पता लगाता था। सामाजिक कुरीतियों को मिटाने का प्रत्यन करता था और लावारिस सम्पति का उचित बन्दोबस्त करता था। उनकी सहायता के लिए अनेक कर्मचारी भी होते थे। डॉ0 श्री राम महेश्वरी ने अबुल फजल कृत आइन-ए-अकबरी से निम्नलिखित लेखाँश उद्धत किया है, जिसमें मेरी दृष्टि इस काल में जनसंचार की उपस्थिति की ओर ग है'' वो लेखाँश इस प्रकार है,

''.........उसे चाहिए कि कुछ निवासियों को मिलाकर एक मुहल्ला अथवा टोलना बना ले, और अपने अधीन कर्मचारियों में से एक चतुर व्यक्ति को उसके निरीक्षण के लिए नियुक्त कर दें और उससे प्रतिदिन वहाँ आने-जाने वालें की तथा वहाँ जो भी घटनायें घटें उनकी एक मुद्रांकित रिपोर्ट प्राप्त कर लिया करें। और उसे चाहिए कि वहाँ के किसी ऐसे अविज्ञात निवासी को गुप्तचर नियुक्त करे जिसकी अन्य निवासियों से जान-पहचान न हो, और उसकी लिखित रिपोर्ट को सुरक्षित रखे और उनकी सावधानीपूर्वक जाँच करें। .... विविधि प्रकार के भेदियों द्वारा अनजाने आगन्तुकों के संबंध में जानकारी प्राप्त करे। विभिन्न वर्गो के लोगों की आय और व्यय का सावधानीपूर्वक अवलोकन करे, उनकी बातचीत ऐसी मधुर होनी चाहिए कि उसकी जागरूकता उसके प्रशासन को गौरवान्वित करने लगे। ......।''

इस प्रकार मुगलकाल में प्रशासन विभिन्न कल्याणकारी कार्यो को सम्पादित करते हुए निरीक्षण और मूल्यांकन का भी काम करता था। यही नहीं मुद्रांकित रिपोर्ट प्राप्त करने का निर्देश भी दिया गया है जो पत्रकारिता का ही काम है। इसका अर्थ ये है कि प्रशासन ने मुगलकाल में भी जनसंचार से खुद को जोड़कर रखा। मुगलकालीन भारत में दैनिक समाचार बुलेटिन निकाले जाने के प्रमाण मिलते हैं। लंदन की रॉयल एशियाटिक सोसायटी में ये संग्रहीत है। इस न्यूज शीट्स का आकार 8'' ग $4\frac{1}{2}$ '' का होता था। इस प्रकार के बुलेटिन परवर्ती शासकों के समय में भी निकाले जाते रे। इन संवाद लेखकों की महळ्ा पर प्रकाश डालते हुए रामरतन भटनागर लिखते है कि शड़यंत्रों, युद्ध तथा शांति के समय इनका अत्यधिक महत्व था तथा इन संवाद लेखकों द्वारा प्रेषित समाचारों के आधार पर लड़ी गई लड़ाइयों में जय एवं पराजय हुई।

मुगलकाल के संवाद लेखकों कों ''वाकिया नवीस'' कहा जाता था। ये वाकिया नवीस समाचार पुस्तिकाओं में समाचारों को लिखते थे। ये समाचार पुस्तिकाएँ सरकार के सभी केन्द्रों पर उपलब्ध रहती थी। इस विभाग के मुख्यि को ''वाकिया निगार'' (Waqia Nigar or state Intelligenes) कहा जाता था।

प्रभावी शासन व्यवस्था की दृष्टि से भी इसके महत्व को युगीन शासकों ने मसूस कर लिया था। सन् 1333 में मुहम्मद बिन तुगलक की शासन व्यवस्था में डाक-व्यवस्था के संकेत मिलते हैं। इस डाक-व्यवस्था से सरकार तथा प्रशासन को नीति-निर्धारण एवं उसके क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण लाभ मिला।

सम्राट अकबर ने इसे व्यवस्थित करने के स्वयं प्रयास किए। अकबर के समय में समाचार संकलित तथा प्रेषित करने वाला खबर नवीस, समाचार-लेखक तथा समाचारों, जो प्राय: पत्र के रूप में या डायरियों के रूप में होते थे, को ले जाने वाले फेंपक या हरकारे कहे जाते थे। शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने के साथ-साथ लगभग अठारहवीं शताब्दी के अन्त में यह व्यवस्था बन्द हो गई 'मुहतसिव' जनसाधारण के आचरण का निरीक्षक था। इसका कर्त्तव्य था कि शरीयत में मना किए गए कार्यो से लोगों को रोके तथा साधारणत: जनता में दुश्चरित्तता को रोके।

उल्लेखनीय है कि ओरंगजेब ने प्रथम बार 'मुहतसिब' की नियुक्ति की थी।

भारत में प्रशासन की वर्तमान संरचना और कार्य-प्रणाली मूलतः ब्रिटिश शासन की देन है। ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत में जो स्वायत-शासन व्यवस्था थी उसे अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया और उसके स्थान पर अपनी पद्धति की व्यवस्था की। इस प्रकार भारत की अपनी मौलिकता जाती रही ओर भारतीय स्थानीय संस्थाओं पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। ग्राम पंचायतों का महत्व जाता रहा, स्वायत्त शासन की गौरवशाली परम्परा छिन्न-भिन्न हो गई और ब्रिटिश-पद्धति आरम्भ हुई।

चुँकि अध्ययन का उद्देश्य मध्यकालीन भारत के संदर्भ में जनसंचार को ऐतिहासिक-पृष्ठभूमि के इर्द-गिर्द ही रहना है इसलिए ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्थाओं, विभिन्न प्रस्तावों और अधिनियमों के विस्तृत अध्ययन की ओर न जाकर सीमित अध्ययन करना है।

ब्रिटिश शासन कल्याणकारी होने की जगह पुलिस राज्य हो गया इसका मुख्य उद्देश्य कानून-व्यवस्था बनाए रखना था और साम्राज्य की सुरक्षा के लिए पुलिस-प्रणाली एवं भारतीय सिविल सेवा की व्यवस्था हुई। अंग्रेजो की नीतियों और प्रशासनिक कार्यकलापों के कारण भारत की अर्थव्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए। इसका विनाशकारी प्रीााव यहाँ के लोगों पर पड़ा। इस कारण लोगों ने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अनेक विद्रोह किए। सदियों से दासता से मुक्ति पाने की होड़ ने भारतीयों के अंदर राष्ट्रीय भावना का संचार किया। जब-जब ब्रिटिश प्रशासकों ने शासन संबंधी भारतीयों के अहित में कद उठाए तब-तब विद्रोह हुए और शासन को मजबूर किया। फैसला बदलने में। निःसंदेह स्तंत्रता-संग्राम को जन व्यापक बनाने का काम जनसम्पर्क से हुआ जिसमें पत्र-पत्रिकाओं, पोस्टर, लोककलाओं आदि मददगार साबित हुए। जनसंचार इस काल में अनुगामी न होकर प्रशासन के कार्यकलापों का प्रतिगामी थी।

इस काल का अध्ययन करने से पता चलता है कि आरम्भ में जनसंचार ने सामाजिक पुनर्जागरण की ओर खींचा। प्रथम शिक्षित व्यक्ति, आधुनिक भारत के जन्मदाता और भारत में पत्रकारिता के जनक कहे जाने वाले राजा राम मोहन ने सामाजिक कुरीतियों के विरोध में आवाज उठायी थी। सती प्रथा, जाति प्रथा, मूर्तिपूजा आदि का विरोध किया और ब्रिटिश शासकों की मदद से इन प्रथाओं के उन्मूलन हेतु अधिनियम पारित करबाए। समाज के उत्थान के लिए आवश्यक था विस्तृत जनसंचार/जनजागरण राजा राम मोहन राय ने विलियम बैंटिक के काल में 1929 ई0 के अधिनियम द्वारा सती प्रथा को समाप्त किया। बालिका शिशु हत्या को 1765 ई0 के बंगाल रेगुलेशन संख्या 21 द्वारा अवैध घोषित कर दिया गया। इसी प्रकार 1856 ई0 के हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम के द्वारा विधवा-विवाह को कानूनी मान्तय मिली। इस युग के विभिन्न आंदोलनों के कारण शासकों ने कानूनी बदलाव किए, बुद्धिजीवियों ओर विद्वानों ने ये माना होगा कि जब तक सामाजिक-व्यवस्था सुदृढ़ नहीं होगी, लोग रूढ़ियों और परम्पराओं से स्वतं नहीं होगे, तब तक भारत का विकास संभव नहीं है।

भारत में राष्ट्रीय भावना का विकास का प्रश्रय राजा राम मोहन राय ने दिया जिससे भारत के प्रत्येक वर्ग व हर श्रेणी के लोग यह अनुभव करने लगे थे कि विदेशी प्रशासक उनके हितों को हानि पहुँचा रहे हैं, देशी भाषाओं के पत्रों का प्रवर्तक राजा राम मोहन को कहा जता है। उन्होंने 1821 में बंगला अखबार 'संवाद कौमुदी' निकाला।

1. ब्रिटिश काल के अधिकांश पत्र उन्नीसवी सदी के मध्य या अंत में ईसाई मिशनरियों ने बाइबिल के अनुवाद के लिए स्थापित किये हुए मुद्रणालयों से शुरू किए। लेकिन यह बीच भारतीय के अंदर राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में अंकुरित हुआ। नेता एक-एक पत्र अपनी मातृभाषा में निकालता था, और साथ ही एक-एक अंग्रेजी में। उनका उद्देश्य स्पष्टतः राजनैतिक विचारों का प्रचार था।

स्वतंत्रता पूर्व जनसंचार एक तरह की अग्नि परीक्षा थी। किसी भी समय ब्रिटिश सरकार की दमनकासरी नीतियों के कारण जब्ती, कुर्की, वारंट, दंड, जेल-यात्रा। इन सबके लिए मानसिक और शारीरिक तैयारी रखनी पड़ती थी। पत्रकारों को राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय राजनीति का बड़ी गहराई से अध्ययन करते हुए प्रशासन का विरोध करना पड़ता था।

इस काल में जनसंचार के ऊपर जिम्मेदारी थी-स्वतंत्रता के आंदोलन में हिस्सेदारी के साथ-साथ लोकशिक्षण और समाज सुधार। वो इसकी भी चौकसी करते थे कि ब्रिटिश प्रशासक भारतीयों के लिए किस प्रकार कानून ला रहा है, उसका विद्रोह प्रशासक भारतीयों के लिए किस प्रकार कानून ला रहा है, उसका विद्रोह करना, साथ ही उस कानून को न मानने के लिए जनता को प्रेरित करना।

अब वो चाहे सरकार के समक्ष स्वराज की मांग से संबंधित हो या बंग-भंग आंदोलन के रूप में, जनसंचार ने अंग्रेज शासन को फैसले बदलने का मजबूर अवश्य किया। लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र मराठा एवं केसरी तथा एनीबेसेंट ने अपने पत्र कॉमनदील तथा न्यूज इंडिया के माध्यम से होमरूल आंदोलन लीग का प्रचार किया। रॉलेट बिल जो काला कानून से प्रसिद्ध है, इसके विरोध में गांधी जी ने सत्याग्रह नामक गैरकानूनी पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र ने जनता में जागरूकता उत्पन्न किया जिसके कारण दूसरा विधेयक पास नहीं हो सका।

भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के मार्क्सवादी विश्लेषण का प्रथम प्रयास ''इंडिया इन ट्रांजिशन'' और ''वैन्गाई ऑफ इंडियन इंडिपेडेंस'' पत्र था। 1927 में मराठी पत्रिका ''क्रांति'' थी और भारत में प्रकाशित होने वाली पहले कम्युनिस्ट पत्रिका 'सोशलिस्ट' थी, साप्ताहिक अखबार 'गदर' आदि भी राष्ट्रवादी भावनाओं से प्रेरित अखबार थी।

स्वाधीन भारत में प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण और रचना 'लोकतंत्रत्मक प्रशासन' की अवधारणा और 'लोकल्याणकारी' राज्य के आदर्शो को ध्यान में रखते हुए की गई। फ्रेन्च विद्वान मोन्सियर पुजेट लॉ के अनुसार लोकतन्त्रात्मक प्रशासन के तीन मापदण्ड हैं-प्रथम, वह आम नागरिक के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहता है, इसे जनता के साथ प्रक्रिया-पूछताछ एवं सम्पर्को द्वारा सम्बन्ध बढ़ाने चाहिए। द्वितीय, प्रशासन को केवल अधिकारी वर्ग के पदसोपान द्वारा ही नीं, वरन् लोकमत एवं लोकस्वतंत्राताओं द्वारा भी नियंत्रित होना चाहिए। स्वतंत्र प्रेस, भाषण एवं प्रदर्शनों की स्वतंत्रता, आदि लोकतंत्रात्मक संस्थाओं का प्रशासन प्रणाली पर अंकुश रहना अनिवार्य है। तृतीय, प्रशासन शक्ति को राजनीतिक सत्ता के नियंत्राण एवं निर्देशन के अधीन रहना चाहिए।

भारत को लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली में जनसंचार माध्यमों का स्वत: अस्तित्व है, इस बात की पुष्टि लोकतन्त्रीय प्रशासन की निम्नलिखित विशेषताओं से स्पष्ट होती है :-

(क) जन-इच्छा का सम्मान - लोकतंत्र में प्रशासन जनता का सेवक है न कि मालिक, प्रशासन जनता के लिए है न कि जनता प्रशासन के लिए। प्रशासन के लिए आवश्यक है कि वह जन-इच्छा का सम्मान करे। इसके लिए प्रशासन को जन-सम्पर्क का एक व्यापक जाल बिछाना होगा। इसका अर्थ हुआ कि प्रशासन खुद ही ''जनसंचार'' को अपनाए।

(ख) उत्तरदायित्व :- लोकतंत्र में प्रशासन को लोकमत के प्रति उत्तरदायी रहना चाहिए। संसदीय संस्थाओं के माध्यम से प्रशासन को सतत् उत्तरदायी बनाया जाता है।

(ग) प्रचार एवं प्रसार :- लोकतंत्र में प्रशासकीय निर्णय गुप्त नहीं रखे जाते। प्रशासकीय निर्णयों की पूरी जानकारी जनता को उपलब्ध करायी जाती है। स्वतंत्र प्रेस, विरोधी दल एवं संगठित लोकमत की प्रतिक्रिया में सरकारी निर्णयों का प्रचार एवं प्रसार किया जाता है। सरकार की नीतियाँ जनता की आलोचना के लिए खुली रहती है और ये खुला मंच तेयार करते हैं जनसंचार के विभिन्न माध्यम।

(घ) जन-सहयोग :- लोकतंत्र में जनता को प्रशासन में सक्रिय होना चाहिए। जनता के प्रतिनिधियों को सलाहकार समितियों एवं बोर्डो में स्थान प्रदान कर अथवा संगठित हित समूहों के माध्यम से सरकारी नीतियों पर प्रभाव डालने के अवसर प्रदान किए जाते हैं। भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के क्रियान्वयन में पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी यह इंगित करती है कि विकास प्रशासन जनता के दृष्टिकोण को समझने का इच्छुक है।

(ड़) स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण :- लोकतंत्र में प्रशासन निरंकुश ओर स्वेच्छाचारी नहीं बन सकता। उसे अनेक संवैधानिक एवं संस्थागत नियंत्रणों में रहकर काम करना होता है। उस पर न्यायपालिका और विधायिका का नियंत्रण रहता है और ये नियंत्रण बनाने में जनसंचार माध्यम मददगार होते हैं।

(च) जन-विचारों के प्रति प्रतिक्रिया :- लोकप्रशासन अपने उत्तरदायित्व को निभाते समय केवल जवाबदेयता पर ही आधारित न रहे क्योंकि इसमें सीमित होने पर कानून के पालन को ही अधिक ध्यान में रखेगा तो नकारात्मक हो जायेगा। एक लोकतांत्रिक प्रशासन व्यवस्था जनता की भावनाओं को महसूस करे। उसका हाथ हमेशा जनता की नाड़ियों पर हो और वह एक मनोवैज्ञानिक की भाँति जनता के चेहरे का अध्ययन लगातार करता रहे। प्रशासन अपने को जनता से भिन्न न समझे। सही मायने में प्रशासन के इस काम में मदद जनसंचार द्वारा ही हो सकता है।

(छ) विकेन्द्रीकरण :- लोकतांत्रिक प्रशासन में विकेन्द्रीकरण जनता के नजदीक आने का प्रयास है। अनेक स्तरों पर जनप्रतिनिधियों को साथ लिया जा सके। इस व्यवस्था में, प्रशासन की नौकरशाही से संबंधित अनेक बुराइयाँ कम हो सकेंगे इससे संगन में पद सोपान के स्तर कम होंगे और प्रशासक जन-प्रतिनिधियों से मिलकर जन-भावना के अनुकूल चलने का आदी हो जाएगा। इससे शासन में अधिक नागरिक भाग ले सकेंगे।

(ज) प्रशासन का प्रजातांत्रिक ढाँचा :- प्रोड़ एपिलबी के अनुसार यदि सरकार को लोकतांत्रिक बनाना है तो नौकरशाही को भी विस्तृत रूप से प्रतिनिधिक बनाना चाहिए अर्थात् नौकरशाही में सभी वर्गो का समुचित प्रतिनिधित्व हो।

वस्तुत:, भारत में स्वतंत्रता के बाद जो भी योजनाबद्ध परिवर्तन किए गए उनमें जनसंचार माध्यमों का सहअस्तित्व रहा। अब वो चाहे भूमि सुधार के रूप में रही, चाहे सामुदायिक विकास कार्यक्रम के रूप में।

विकास कौन चाहता है जनता या ऐच्छक संगन या राज्य? इस प्रश्न क जवाब हम सभी जानते हैं कि ''विकास'' सभी को चाहिए। लेकिन विकास-कार्यक्रमों, नीतियों ओर विकास-प्रशासन को सुदृढ़ कर लेना ही पर्याप्त नहीं होता। आवश्यकता है जनसहभागिता की। विकास की प्रक्रिया की सहभागिता के लिए जनता शिक्षित और सक्षम होनी चाहिए, जनता का किसमें किस स्तर तक, सहभागिता की प्रकृति आदि के संबंध में जनता को जानकारी होनी चाहिए, जनता सहभागिता करे इसके लिए विकसित संचार व्यवस्था होनी चाहिए।

विकसित जनसंचार माध्यम जनता की सहभागिता प्राप्त करने के लिए तीन तरह से सहायक होते हैं :- पहला, जनता को राष्ट्रीय विकास की सूचना देना। लोंगो का ध्यान परिवर्तन की आवश्यकता पर केन्द्रित करना। परिवर्तन के अवसरों और माध्यमों के बारे में बताना और कुछ हद तक लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं को बढ़ावा देना। जनसंचार माध्यमों का दूसरा काम लोगों को इस बात के लिए तैयार करना है कि वे 'विकास की प्रक्रिया' में सहभागी बन सकें। आवश्यकता के अनुरूप निर्णयों को प्रभावित कर सकें। यह तभी संभव है, जब शासक और शासित के बीच विचारों का सीधा आदान प्रदान हो। परिवर्तन के मुद्दे और लक्ष्य स्पष्ट हों तथा विकल्पों के बारे में पूरी जानकारी हों। जनसंचार माध्यमों का तीसरा काम लोगों के लिए आवश्यक तकनीक सिखाना है। साक्षरता, शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग और कृषि-संबंधी आधुनिक जानकारी से यह सम्भव है।

नीति-निर्माताओं, प्रशासकों, विशेषज्ञों और मीडियाकर्मियों ने ये माना कि विकास-प्रशासन में जनसंचार-माध्यमों की सजगता हो इसके लिए आवश्यक है जनसम्पर्क तन्त्र, संचार के विभिन्न साधनों-दृश्य, श्रव्य, दृश्य-श्रव्य, आदि संस्थाओं का विकास हो। व्यवस्थापितका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के साथ-साथ वह भी राज्य का अंग बने, प्रशासन के कार्यो में सहभागी बनें। प्रजातंत्र का चौथा स्तम्भ बनें। सी सम्मान को देने के लिए भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् समाचार पत्रों के प्रकाशन की मात्रा एवं गुणात्मक स्तर को विकसित करने के लिए मुद्रण तकनीक में प्रगति की र्ग। टेलिप्रिंटर्स की सहायता से सैकड़ों में हजारों किलोमीटर की दूरी पर समाचार पहुंचाए जाने लगे। जब देश आजाद हुआ, देशभर में केवल 300 विभागीय टेलीफोन सक्सचेंज थे और टेलीफोन कनेक्शनों की संख्या 83,000 से अधिक न थी। आज भारत में एशिया का सबसे बड़ा टेलीफोन 'नेटवर्क' है। इसी प्रकार से ग्रामोफोन, टेपरिकार्डर, रेडियों-टेलीविजन सेट के विकास ने जनसंचार माध्यमों को सक्रिय बनाया। जनता को प्रशासन के करीब लोने में तमाम कोशिशें इन उपकरणों के माध्यम से किया जाने लगा।

निष्कर्ष

जनसंचार शासकों का जनता के साथ वांछनीय सम्पर्क का दूसरा नाम है, इसलिए इसकी जिम्मेदारी वास्तव में प्रशासक के हाथों में होती है या जनसंचार बनाने वालों पर। प्रशासक अपनी छवि अच्छी बनाए रखने के लिए और जनता की सहायता प्राप्त करने के लिए यह जरूरी समझता है कि वो जनता के लिए अच्छे-अच्छे कार्य करें, सुविधा प्रदान करें। पुन: इन सबके लिए उसे जनसंचार पर भी निर्भर रहना पड़ता है। इतिहास के पन्नों पर एक नजर डालते हुए अध्ययन का निष्कर्ष यही निकलता है कि विकास-प्रशासन में जनसंचार की भूमिका या अस्तित्व नया नहीं है। नया कुछ हुआ है तो जनसंचार का माध्यम, उसकी नवीन तकनीकियाँ, उसे लागू करने का ढंग, उसके विचार उसकी संस्कृतियाँ। इस पूरी नवीनता में उसके साथ ना तो विकास प्रक्रिया गौण रही और ना ही प्रशासन के मुद्दे। बदलाव हुआ है तो सिर्फ ये कि इनमें कार्यरत कर्मियों के सोचने का ढ़ंग, काम करने का माहौल। ऐसे में इतिहास के योगदान का अध्ययन करते हुए हमें विकास-प्रशासन और जनसंचार को साहचारी समझना होगा। दोनों एक दूसरे के अनुगामी हैं ये मानना होगा। अनुकूल समय आने पर भारत ऐसे विकासशील देश आगे बढ़ जाएगे। ज्ञान की वृद्धि और प्रसार होने से विकास का ऐसा दौर आएगा जो इतिहास की असाधारण घटना बन जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ

- भारद्धाज, डा० कमल, प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
- मध्यकालीन भारत का इतिहास, एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा प्रकाषित
- लैपियर, दॉ मिनियक एवं कालिन्स, लैरी, आधी रात की आजादी, पृष्ठ
- महाजन, वी० डी०, मध्यकालीन भारत, एस० चन्द प्रकाशन, नई दिल्ली
- भानावत, संजीव, पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, जयपुर
- चन्द्रा, सतीष, मेडिएवल इण्डिया फ्रॉम सल्तनत टू मुगल, सिक्स एडीशन
- फाड़िया, डॉ० बी० एल०, भारत में लोकप्रशासन, पृष्ठ-42-43
- गुप्त, बृजमोहन, जनसंचार विविधि आयाम
- शर्मा, डॉ० हरिश्चन्द्र, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, पृष्ठ-12-13
- जनसंचार, संपादक-राधेश्याम शर्मा, पृष्ठ-335, 336, 337, 211, 239
- सिद्धेश्वर, समकालीन यथार्थ-बोध
- चौधरी, डॉ० विमला, प्राचीन भारत में गुप्तचर व्यवस्था, पृष्ठ-2, 23
- वैदिक, डॉ० वेद प्रताप, हिन्दी पत्रकारिता के 150 वर्ष, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 27 मई 1976, पृष्ठ-9 (स्त्रेत पुस्तक)
- सिन्हा, डॉ० किशोर, हिन्दी की आंचलिक कहानी, परम्परा और प्रयोग
- संवादक राजकिशोर, समकालीन पत्रकारिता मूल्यांकन और मुद्दे पृष्ठ-13

प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-शिक्षिकाओं के कृत्य संतोष एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

योगेश कुमार पाल

शोधार्थी (शिक्षाशास्त्र)
डी0वी0 कॉलेज उरई (जालौन) उ0प्र0
सम्बद्ध-बुन्देलखण्ड वि0वि0 झाँसी, उ0प्र0

डॉ० राजेश पालीवाल

असि0 प्रो0, शिक्षक-शिक्षा विभाग
डी0वी0 कॉलेज उरई (जालौन) उ0प्र0

सारांषः

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य जनपद झांसी के अन्तर्गत आने वाले प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक-शिक्षकाओं के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना था। शोधार्थी ने झांसी तहसील के अन्तर्गत आने वाले 250 शिक्षकों का चयन किया। शिक्षकों का चयन उद्देश्य पूर्ण प्रतिचयन विधि से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों का संकलन करने के लिए डॉ0 एस0के0 सक्सेना द्वारा निर्मित कृत्य संतोश मापनी और डॉ0 एन0एन0 श्रीवास्तव द्वारा निर्मित वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया गया है। परिकल्पनाओं के विश्लेशण के लिए क्रान्तिक अनुपात (सी0आर0) का प्रयोग किया गया है। विश्लेशण में यह पाया गया है कि शिक्षक एवं शिक्षकाओं के कृत्य संतोश के मध्य सार्थक अन्तर है। शिक्षक एवं शिक्षकाओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है। शिक्षक एवं शिक्षकाओं के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति के मध्य सार्थक अन्तर है।

शब्द कुंजी : कृत्य संतोश, वैज्ञानिक अभिवृत्ति, शिक्षक-शिक्षिकाएं।

प्रस्तावना :

पं0 जवाहर लाल नेहरू ने 1946 में अपनी पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इण्डिया में उल्लेख किया कि वैज्ञानिक अभिवृत्ति का प्रभाव मनुश्य की जीवनचर्या पर पड़ता है। इसमें किसी घटना या कार्य के पीछे प्राकृतिक कारणों को देखने की आदत तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसा कार्य करना जिसमें त्रुटि न हो, क्योंकि त्रुटि का अभाव वैज्ञानिक की असफलता का सूचक है। यदि एक शिक्षक में वैज्ञानिक समस्याओं का समाधान करने एवं सही निर्णय लेने की क्षमता है तो वह छात्रों में एक स्वस्थ्य अभिवृत्ति का विकास कर सकता है और शिक्षण व्यवसाय को भी प्रभावशाली बना सकता है और उसे कार्य के प्रति संतोश की अनुभूति हो सकती है। शैक्षिक प्रक्रिया के विकास के क्षेत्र में वर्तमान शिक्षक की स्थिति सर्वथा भिन्न है। वह उपेक्षा, असुरक्षा, अनुशासनहीनता से पीड़ित है। शिक्षकों की इन समस्याओं का अध्ययन कर उनमें अपेक्षित सुधार आवश्यक है ताकि वे अपने उत्तरदायित्व का ईमानदारी से निर्वहन कर सकें और शिक्षा में परिवर्तन कर समाज एवं राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकें। आज के इस वैज्ञानिक युग में प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों में सृजनशीलता एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास करने के लिए शिक्षकों का सृजनशील होना बहुत आवश्यक है वास्तविकता तो यह है कि आज भी हमारे विद्यालयों में विज्ञान का स्तर ऊँचा नहीं उठ सका है जिसके कारण छात्रों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति विकसित नहीं हो पाती है। यदि शिक्षक का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है तो वह छात्रों की समस्याओं का समाधान अच्छी तरह से कर सकता है और शिक्षण कार्य के प्रति शिक्षक को एक सुखद अनुभूति हो सकती है। शिक्षक का कृत्य संतोश उसके कार्य,

व्यक्तिगत विशेषताएं, सामाजिक वातावरण जिसमें वह रहता है। इन तीनों पर आधारित होती है। शिक्षक अपना कार्य सुचारू रूप से क्यों नहीं करते अर्थात वे छात्रों को मन लगाकर क्यों नहीं पढ़ाते हैं? इसका कारण यह तो नहीं कि शिक्षक अपने कार्य से संतुष्ट नहीं है। अगर संतुष्ट नहीं है तो किस कारण से। के0यू0 लिंविगिया (1974) ने पुरूष शिक्षकों की तुलना में स्त्री शिक्षकों में उच्च कार्य संतुष्टि पायी। दीक्षित (1980) ने पाया कि माध्यमिक विद्यालयों की तुलना में प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक अधिक संतुष्ट है। शिक्षण में रूचि, वैज्ञानिक अभिवृत्ति, कृत्य संतोश आदि कारक हमारे शिक्षण को प्रभावित करते हैं। कृत्य संतोश पर अरूगुगासामी (2012), शगुफ्ता एवं फरहान (2013), किडवेल जेम्स (2004), रामीरेजगार्सिया (2005) वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर गुप्ता एम0पी0 (2007), सिंह सुभाश (2013), आर राजगोपाल एवं टी मलिंगा (2015) द्वारा अध्ययन किये गये। इन शोधों के निष्कर्षो ने शोधार्थी को इस दिशा में शोध की प्रेरणा दी। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी ने प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के ख्रत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति से सम्बन्धित विषय को शोध के लिए चुना।

समस्या कथनः प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक-शिक्षकाओं के ख्रत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

प्राथमिक विद्यालयः बेसिक शिक्षा परिशद द्वारा संचालित ऐसे सरकारी स्कूल जिनमें कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।

शिक्षकः शिक्षक से आशय बेसिक शिक्षा परिशद द्वारा संचालित सरकारी स्कूलों में अध्यापन कार्य करने वाले शिक्षक-शिक्षिकाओं से है।

कृत्य-संतोशः अपने कार्य या पेशे से प्राप्त होने वाले आनन्द या संतोश को कृत्य संतोश कहते हैं।

वैज्ञानिक अभिवृत्तिः वैज्ञानिक अभिवृत्ति को ज्ञान प्राप्त करने के लिए खुली अभिव्यक्ति, सही ज्ञान के लिए इच्छा, विश्वास की प्रक्रियाओं के रूप में परिभाशित किया जा सकता है। वैज्ञानिक अभिवृत्ति बिना किसी पक्षपात के विभिन्न निश्पक्ष समस्याओं तक पहुँचने में सहायक है और उचित निर्णय लेने के लिए मदद करती है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :

- प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के कृत्य संतोश का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकाओं के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएं :

- प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के कृत्य संतोश में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकाओं के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध अध्ययन की परिसीमाएं :

- प्रस्तुत शोध में उ0प्र0 के झांसी जिले से 250 शिक्षक-शिक्षकाओं का चयन किया गया है।
- प्रस्तुत शोध अध्ययन में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत 125 शिक्षक एवं 125 शिक्षिकाओं का चयन किया गया है।
- प्रस्तुत शोध अध्ययन में सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत कक्षा 1 से 8 तक के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं का चयन किया गया है।
- प्रस्तुत शोध अध्ययन झांसी जिले तक ही सीमित है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन :

- वर्मा, नीलम एवं हंसराज पाल, आशा पाल (2015) ने शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर के सह-सम्बन्ध तथा कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर पर लिंग एवं अनुभव के प्रभाव का अध्ययन किया और पाया कि शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर के मध्य कोई सार्थक सह-सम्बन्ध नहीं है। महिला एवं पुरूष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- आरा, जहाँ (2016) ने प्राथमिक विद्यालय स्तर पर शिक्षकों की कार्य संतुष्टि पर अध्ययन किया और पाया कि लिंग का कार्य संतोश के साथ सार्थक सम्बन्ध है। महिला अध्यापक पुरूष अध्यापकों तुलना में कम संतुष्ट है।
- सिंह, भीमषंकर (2016) ने महाविद्यालयों में शिक्षक प्रशिक्षण विभाग के शिक्षक एवं अन्य विभाग के शिक्षकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि शिक्षक एवं अन्य विभाग के शिक्षकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- बावल, जगदीष (2017) ने सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं कम्प्यूटर अभिवृत्ति का अध्ययन किया और पाया कि सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है।

शोध विधि : शोधार्थी द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रतिदर्ष : इस अध्ययन में उद्देश्य पूर्ण प्रतिचयन विधि का प्रयोग किया गया है। 250 शिक्षकों को प्रतिदर्श के रूप में चुना गया है।

उपकरण :

कृत्य संतोश मापनी के लिए डॉ0 एस0 के0 सक्सेना द्वारा निर्मित मानकीकृत परीक्षण एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति के लिए डॉ0 एन0 एन0 श्रीवास्तव द्वारा निर्मित मानकीकृत परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकी: प्रस्तुत शोध कार्य में शोधार्थी ने प्रतिदर्श के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण क्रान्तिक अनुपात सांख्यिकी विधि का प्रयोग करते हुए शून्य परिकल्पना की जांच की है।

आंकड़ों का विश्लेषण :

परिकल्पना : प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के ख्रत्य संतोश में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी-1

प्रतिदर्श	N	Mean	S.D.	D	S_{ED}	C.R.
शिक्षक	125	20.98	4.052	1.288	.486	2.650.05 स्तर पर सार्थक
शिक्षिकाएं	125	22.27	3.622			

सारणी 1 से स्पष्ट है कि परिगणित सी0आर0 का मान 2.650 है जो कि .05 स्तर के मान 1.97 से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना को निरस्त करते हुए कहा जा सकता है कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के कृत्य संतोश के मध्य सार्थक अन्तर है।

परिकल्पना : प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी-2

प्रतिदर्श	N	Mean	S.D.	D	S_{ED}	C.R.
शिक्षक	125	52.94	8.456	1.128	.953	1.183.05 स्तर पर असार्थक
शिक्षिकाएं	125	51.81	6.485			

सारणी 2 से स्पष्ट है कि परिगणित सी0आर0 का मान 1.183 है जो कि .05 स्तर के मान 1.97 से कम है। अतः शून्य परिकल्पना को स्वीकार करते हुए कहा जा सकता है कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के कृत्य संतोश के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।

परिकल्पना : प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी-3

वैज्ञानिक अभिवृत्ति

कृत्य-संतोश	प्रतिदर्श	निम्न	मध्यम	उच्च	कुल	काई वर्ग
	निम्न	20	14	7	4155	26.823 कत्रि 4
	मध्यम	11	28	16		
	उच्च	3	8	18	29	
	कुल	34	50	41	125	

सारणी 3 से स्पष्ट है कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षिकों के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति के लिए गणितीय काई वर्ग का मान 26.823 है, जो कि कत्रि 4 पर सार्थकता के लिए आवश्यक काई वर्ग का मान (.05-9.488) से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना को अस्वीकार करते हुए कहा जा सकता है कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है।

परिकल्पना : प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षिकाओं के ख्रत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी-4

वैज्ञानिक अभिवृत्ति

कृत्य-संतोश	प्रतिदर्श	निम्न	मध्यम	उच्च	कुल	काई वर्ग
	निम्न	14	11	7	3253	16.597 कत्रि 4
	मध्यम	13	30	10		
	उच्च	4	22	14	40	
	कुल	31	63	31	125	

सारणी 4 से स्पष्ट है कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षिकाओं के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति के लिए गणितीय काई वर्ग का मान 16.597 है, जो कि कत्रि 4 पर सार्थकता के लिए आवश्यक काई वर्ग का मान (.05-9.488) से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना को अस्वीकार करते हुए कहा जा सकता है कि प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षिकाओं के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत आंकड़ों के विश्लेशण के पश्चात निम्नलिखित निश्कर्श प्राप्त हुए।

- प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के कृत्य संतोश में सार्थक अन्तर है। पुरूषों की अपेक्षा महिला शिक्षिकों में कृत्य संतोश अधिक पाया गया।
- प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं है। महिला शिक्षिकाओं में पुरूषों की अपेक्षा वैज्ञानिक अभिवृत्ति कम पाई गयी।
- प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है।
- प्राथमिक विद्यालय के शिक्षिकाओं के कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है।

सुझावः

महिला शिक्षिकाओं में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति संतोशजनक ढंग से होने के कारण कृत्य संतोश अधिक पाया गया। अतः शिक्षकों के कृत्य संतोश को उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सामान्य की जा सकती है। महिला शिक्षकों में अपने कार्य के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, जिज्ञासा, वस्तुनिष्ठा, ईमानदारी, विनम्रता, ज्ञान की इच्छा, खुला चिन्तन होने से वैज्ञानिक अभिवृत्ति अधिक पाई गयी। पुरूष शिक्षकों में इन सकारात्मक गुणों का विकास कर वैज्ञानिक अभिवृत्ति को बढ़ाया जा सकता है। अध्ययन से स्पष्ट है कि विभिन्न समस्याएं शिक्षकों के विकास में बाधा डालती है। जैसे अति संवेदनशील कक्षाएं, बुनियादी सुविधाओं की कमी, कार्य की अधिकता, उत्तेजक और आक्रामक छात्र, कमजोर मनोबल और सामाजिक आर्थिक स्थिति, घरेलू जिम्मेदारियाँ, स्कूल की दूरी आदि शिक्षकों के प्रदर्शन को प्रभावित करती है। इन सभी समस्याओं को दूर कर शिक्षकों में कृत्य संतोश एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास कर विद्यालय, संस्थान, समाज एवं सरकार लाभ उठा सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आरा, जहाँ (2016); प्राथमिक विद्यालय स्तर पर शिक्षकों के कार्य संतुष्टि पर एक अध्ययन, *Asian Journal of Multidisciplinary Studies,* Vol. 4., Issues 10, Sep. 2016, Retervied from https:èèwww.ijms.co.in.
2. कपिल, एच0के0 (2012); *सांख्यिकी के मूल तत्व (सामाजिक विज्ञानों में),* आगरा : श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, पेज नं0 480.
3. के0यू0 लिविगियों, (1974); *पी-एच0डी0 एजूकेशन, गुजरात विश्वविद्यालय, एम0बी0 बुच सेकेण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, बड़ौदा, सोसाइटी फार एजूकेशन रिसर्च एण्ड डवलपमेन्ट, पेज नं0 439*
4 गैरेट ई हेनरी एवं आर0एस0 वुडवर्थ (2011); *शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग,* नई दिल्ली : कल्याणी पब्लिशर्स, पेज नं0 61
5. गुप्ता, एस0पी0 एवं अलका गुप्ता (2010); *व्यवहारपरक विज्ञानों में सांख्यिकी विधियां,* इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन, पेज नं0 72.
6. गुप्ता, विनीता (2013); *सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का सामुदायिक योगदान के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन, शिक्षा चिन्तन, वर्ष 12, अंक 45, पेज नं-6-7*
7 गुप्ता, एम0पी0 (2007); *धार्मिक अभिवृत्ति, वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में किशोरों की पर्यावरणीय जागरूकता का अध्ययन, पी-एच0डी0, शिक्षाशास्त्र, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान), पेज नं0 265-295*
8. गुप्ता, एस0पी0 एवं अलका गुप्ता (2009); *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन,* इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन, पेज नं0 533
9. तिवारी, अशोक कुमार (2003); शिक्षक कार्य संतुष्टि पर लिंग, वास स्थली एवं विद्यालय प्रबन्ध का प्रभाव, आधुनिक भारतीय शिक्षा, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग एन0 सी0 ई0 आर0 टी0, अक्टूबर, 2003.

10. बावल, जगदीश एवं सरिता मेनारिया (2017); सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं कम्प्यूटर अभिवृत्ति का एक अध्ययन, *श्रृंखला एक शोध परख वैचारिक पत्रिका,* Vol.4., Issues 4., Feb. 2017, Pp 60-61
11. रामीरेज, गार्शिया (2005); *संयुक्त राज्य अमेरिका में लाभ के स्थापित कॉलेजों में पूर्णकालिक विभागीय शिक्षकों का -त्य संतोश तथा पृष्ठभूमीय गुणों का अध्ययन, पी-एच0डी0 एजूकेशन, हावर्ड विश्वविद्यालय, डिजरटेशन आब्सट्रैक्टस इण्टरनेशनल, वैल्यूम 66 (ए), पेज नं0 187*
12. वर्मा, नीलम एवं हंसराज पाल, आशा पाल (2015); *शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर के सहसम्बन्ध तथा कार्य संतुष्टि एवं आकांक्षा स्तर पर लिंग एवं अनुभव के प्रभाव का अध्ययन,* Indian Journal of Educational Studies, An Interdisciplinary Journal, Vol. 2, (1), ist ua0 54-58
13. सिंह, अरूण कुमार (2008); *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां,* पटना : भारती भवन पब्लिकेशन पेज नं0 525
14. सफलेमान, मुहम्मद (2006); *मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां,* पटना : जनरल बुक एजेन्सी पेज नं0 11
15. सिंह, भीमशंकर एवं रश्मि शर्मा (2016); *महाविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षण विभाग के शिक्षक एवं अन्य विभाग के शिक्षकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन,* पी-एच0डी0 शोध प्रबन्ध पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, पेज नं0 221-229

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्ता, एस0पी0 एवं अलका गुप्ता (2010); *व्यवहारपरक विज्ञानों में सांख्यिकी विधियां,* इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन, पेज नं0 72.

जैनेन्द्र कुमार और भबेन्द्र नाथ शइकीया की बाल मनोविज्ञान की कहानियाँः एक अवलोकन

डॉ० रीतामणि वैश्य

विभागाध्यक्ष एवं सहयोगी अध्यापक, हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

जयश्री काकति

शोधर्थी, हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

1. प्रस्तावना

साहित्य की सभी विधओं में कहानी एक अन्यतम विध है। साहित्य समाज का दर्पण है। बदलते समाज के साथ साहित्य के विषय में भी परिवर्तन आता है। उसीके साथ साहित्य लेखन की शैली में भी परिवर्तन होता है। कहानीकार समाज तथा मानव जीवन के हर एक पहलूपर नजर रखते हुए उसे कहानी का रूप देता है। कहानीकार मानव जीवन का सुख-दुख, हर्ष-आनन्द सभी छोटी-बड़ी घटनाओं का आत्मसात कर कहानी की रचना करता है। फलस्वरूप कहानी में मानव मन के विविध पक्ष भी प्रतिबिंबित होते हैं।

जैनेन्द्र कुमार (1905-1988) और भबेन्द्र नाथ शइकीया (1932-2003) आधुनिक भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण नाम हैं। जैनेन्द्र कुमार हिन्दी साहित्य के विशाल समुद्र के प्रेमचन्द्रोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं, तो भबेंद्र नाथ शइकीया असमीया साहित्य के रामधेनु युग के कहानी जगत के अनमोल रत्न हैं। दोनों ने अपनी कहानियों में मनुष्य मन को केंद्र में रख विभिन्न आयु के स्त्री तथा पुरुषों के मनोजगत का चित्रण किया है। ये दो समकालीन कहानीकार हमारे देश के दो अलग प्रान्तों से हैं। पर चरित्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में दोनों कहानिकारों में समानता पायी जाती है। इन दो कहानीकारों की बाल मनोविज्ञान पर आधरित कहानियों पर यहाँ विश्लेषण किया जा रहा है।

2 मनुष्यमन की विविध अवस्था तथा उपबोध मन

मानव मन का अध्ययन अति प्राचीन काल से होता आया है। चेतन के उदय के साथ ही मानव में अपने सहधर्मियों में अभिरुचि भी जागृत हुई होगी, उसमें अपने संपर्क में आने वाले व्यक्तियों को समझने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई होगी और उसी समय मनोविज्ञान का अध्ययन किसी न किसी प्रकार प्रारम्भ हो गया होगा। साहित्य और मनोविज्ञान दोनों का मूल संबंध मानव मन से है। मनोविज्ञान का संबंध वास्तविक जगत से होता है तो साहित्य इसी वास्तविक जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

जैसे-जैसे शिशुबड़ा होता जाता है, वैसे-वैसे उसके शरीर के अंग बढ़ते जाते हैं। साधरण तौर पर वृद्धि का अर्थ शरीर के विभिन्न अंगो एवं अंगो के कार्य करने की क्षमता के विकास से है। विकास का अर्थ गर्भावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक होनेवाले विभिन्न परिवर्तन को कहते हैं। विकास का यह कार्य गर्भावस्था से ही शुरू हो जाता है। इस प्रकार से विकास की प्रक्रिया में गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था आदि कई अवस्थाओं से गुजरते हुए शिशु परिपक्क होता है। शारीरिक विकास के साथ-साथ मनुष्य की मानसिकता का भी विकास होता है। विकास के स्तर के आधर पर मनुष्य की सोच तथा समझ आदि में भी बदलाव आने लगते हैं। एक ही बात को एक शिशु जिस तरह से ग्रहण करता है, एक प्रौढ़ व्यक्ति उसे अन्य रूप में ग्रहण करता है।

5 से 12 वर्ष के बीच का समय बालक के उपबोध मन (Subconscious mind) की अवस्था है। इस अवस्था में बालक को कुछ हद तक अच्छे बुरे एवं सही गलत की जानकारी होती है। शैशवावस्था की तुलना में इस अवस्था में विकास की गति कुछ धीमी पड़ जाती है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि इस अवस्था में बालक की तर्कशक्ति एवं चिन्तन की क्षमता बढ़ जाती है। इस अवस्था में बालक माता-पिता एवं परिवारजनों के अलावा अन्य बच्चों के संपर्क में आता है। क्योंकि इस समय वह स्कूल जाना शुरू कर देता है। इस अवस्था में स्कूल का वातावरण, उनके साथ पढ़ने वाले बच्चों एवं उनको पढ़ाने वाले शिक्षकों के व्यवहार उसे प्रभावित करता है।

3 बालमनोविज्ञान पर आधरित जैनेन्द्र कुमार की कहानियाँ

जैनेन्द्र कुमार की रचनाओं में मनोवैज्ञानिक तत्वों का समावेश है। आपकी कहानियों में मनोग्रंथियों का अति सूक्ष्म वर्णन मिलता है। आपकी कहानी हो या उपन्यास हर क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकता झलकती है। इसी कारण उन्हें मनोवैज्ञानिक कथाकार भी कहा जाता है। जैनेन्द्र के साहित्य में फ्रायड के सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा है। उनके पात्रों में कुंठा है, असाधरणता है, कुछ मनोविकृतियाँ है, काम-भाव दमनोत्पन्न अनेक विवशताएँ हैं। 'परख' उनका प्रथम उपन्यास था जिसमें वे प्रेमचंद की कला के प्रभाव से अपने को सर्वथा मुक्त नहीं कर पाये थे। पर जैनेन्द्र ही हैं, जिन्होंने साहित्य को एक नई दिशा दी अर्थात उन्होंने उपन्यास और कहानी को प्रेमचंद के प्रभावों से मुक्त किया। उन्होंने कहानी तथा पात्र को मनोवैज्ञानिक धरातल पर रखने की व्यवस्था की।

बालक तथा बालिकाओं के क्रिया कलाप, जिज्ञासा आदि को बरे ही सुंदर तरीके से जैनेन्द्र ने अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी है। 'अपना अपना भाग्य' जैनेन्द्र कुमार द्वारा रचित एक प्रसिद्ध कहानी है, जो एक गरीब बच्चे के ऊपर केन्द्रित है। अभाव के कारण उपेक्षित जीवन जीने के लिए वह मजबूर है। कहानी नैनीताल की भयंकर सर्दी से प्रारम्भ होती है जहाँ 10-11 साल का बच्चा जीने का संघर्ष करता रहता है। बच्चा होने पर भी वह स्वाभिमानी है, मेहनती है। भूखा रहने पर भी वह किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता और न ही कहीं चोरी करता है। बच्चा मन से सच्चा होता है, यह उसका उदाहरण है। बच्चा स्पष्टवादी है। लेखक और उसके मित्र ने उस लड़के से जो भी सवाल किये थे, वह उसका स्पष्ट उत्तर देता है-

"कहाँ सोएगा?"

"यहीं कहीं। "

"कल कहाँ सोया था?"

"दुकान पर"

"आज वहाँ क्यों नहीं?"

"नौकरी से हटा दिया!"

"क्या नौकरी थी?"

"सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।" (जैनेन्द्र 2008 : 218)

अंत में भूख और ठण्ड से बच्चा मर जाता है। किसी अमीर ने उसके प्रति संवेदना नहीं दिखाई, उसकी मदद नहीं की। एक गरीब बच्चा भूख और दण्ड से दम तोड़ देता है और समाज उसे अपना भाग्य मान लेता है।

बच्चे बचपन से ही इनाम और सजा से परिचित होते हैं। किस बात पर उन्हें इनाम मिलेगा और किस बात पर सजा मिलेगी, वह उन्हें भलीभाँति पता होता है। 'इनाम' कहानी धनंजय नामक एक बालक पर केन्द्रित है। धनंजय सातवें कक्षा में अव्वल आता है। उसे पता है अव्वल आना कोई छोटा काम नहीं है। उसके लिए उसे इनाम मिलनी चाहिए। माँ जब उसके अव्वल आने की खबर पर ध्यान नहीं देती, तब वह पिताजी के बारे में पूछता है। क्योंकि उसे पता था पिताजी उसे इनाम जरूर देंगे-

'धनंजय ने पूछा, "पिताजी गये?"

"मैं क्या जानूँ? गये होंगे। "

धनंजय उत्तर के स्वर पर अस्त होने लगा। लेकिन फर्स्ट आना छोटी बात न थी। बोला, "जल्दी चले गये आज, मैं तो आया था कि....। "'(जैनेन्द्र 2008:158)

बच्चे छोटे होने पर भी वे अपने आस-पास के व्यक्ति तथा परिवेश पर पूरा नजर रखते हैं। वे नासमझ होकर भी बहुत कुछ समझ जाते हैं। वे हमेशा अपने आस पास खुशी का माहोल देखना चाहते हैं। धनंजय अपनी माँ के काम-काजों से समझ जाता है कि माँ तथा पिता के बीच प्रमिला के कारण उनके घर का माहोल खराब हो गया है। माँ को उनके घर में प्रमिला का आना एकदम पसंद नहीं है। अपने घर के परिवेश को सुंदर बनाने के लिए ही धनंजय अव्वल आने के इनाम के रूप में प्रमिला और अपने पिता से इनाम के रूप में प्रमिला को उनके घर आने से तथा मिलने से रोकता है। इससे सबकी मन की मैल धूल जाती है-

'बालक ने प्रमिला को पास बिठा लिया। उसके गले में हाथ डालकर वह बोला, "देखो टालना मत। मेरा इनाम यह है कि इस घर में तुम अब से कभी न आना। तुम मुझे प्यार करती हो न?"

पिता बोले, ''यह क्या बकवास है, मुन्ने!"

मुन्ने ने कहा, "आप भी तो इनाम देंगे। यही दीजिए कि इनसे कभी न मिलिए।"' (जैनेन्द्र 2008:162)

बच्चे दूसरे के पास जो देखते हैं, उसे खुद भी पाना चाहते हैं । 'पाजेब' कहानी में मुन्नी सहेलियों को नई तरह की पाजेब पहनती हुई देखती है तो अपने लिए भी ठीक उसी तरह की पाजेब की मांग पिताजी से करती है

'हमारी मुन्नी ने भी कहा कि बाबूजी, हम पाजेब पहनेंगे। बोलिए, भला कठिनाई से चार बरस की उम्र और पाजेब पहनेगी।

मैंने कहा कि कैसी पाजेब?

बोली, कि हाँ, वही जैसे रुकमिन पहनती है, जैसी शीला पहनती है।'(जैनेन्द्र 2008:163)

बच्चों में ईर्षा तथा हठ भी होते हैं। मुन्नी को पाजेब दिया तो उसके भाई आशुतोष भी अपने लिए बाईसाइकिल की मांग करता है-

'थोड़ी देर बाद वह ठुमकने लगे कि मुन्नी को पाजेब दी, सो हम भी बाईसिकललेंगे।

बुआ ने कहा कि अच्छा बेटा, अबके जन्म-दिन को तुझे भी बाईसिकलदिलवाएँगे। आशुतोष बाबू ने कहा कि हम तो अभी लेंगे।' (जैनेन्द्र 2008:164)

बच्चों में वाद-विवाद करने की क्षमता नहीं होती है। वे घुमा-फिराकर पूछे गए टेढ़े-मेढ़े प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ होते हैं। पिता तथा माता के प्रश्नों से आशुतोष इतना घेर दिया जाता है कि वह अपना अपराध स्वीकार करना ही अच्छा समझता है। बालकों की कोमल बुद्धि टेढ़े-मेढ़े और तर्कपूर्ण प्रश्नों के सामना नहीं कर पाती है। उसके पिता कभी स्नेह प्रकट करते हैं, कभी उसे डराते हैं और आशुतोष इन भावों में उलझकर रह जाता है। अपना अपराध मानकर भी वह उल्टा-पुल्टा जवाब देता रहता है। क्योंकि जो गलती उसने की ही नहीं उसे मानकर उसे और भी झूठों का सहारा लेना पड़ता है

'"अच्छा, तुमने कहाँ से उठायी थी?"

"पड़ी मिली थी।"

"और फिर नीचे जाकर वह तुमने छुन्नू को दिखायी?"

"हाँ!"

"फिर उसी ने कहा कि इसे बेचेंगे?"

"हाँ!"

"कहाँ बेचने को कहाँ?"

"कहा, मिठाई लाएँगे। नहीं, पतंग लाएँगे।"

अच्छा, पतंग को कहा?"

"हाँ!"

"सो पाजेब छुन्नू के पास रह गयी?"

"हाँ!"

"तो उसी के पास होनी चाहिए न? या पतंग वाले के पास होगी। जाओ बेटा, उससे ले आओ। कहना हमारे बाबूजी तुम्हें इनाम देंगे। "

वह जाना नहीं चाहता था। उसने फिर कहा कि छुन्नू के पास नहीं हुई तो कहाँ से देगा?' (जैनेन्द्र 2008:168)

'खेल' कहानी में बाल क्रियाओं का मनोरम वर्णन किया गया है। मनोहर और सुर्रो रानी आपस में खेलते हैं, लड़ते हैं और कुछ देर बाद हिलमिल भी जाते हैं। बालकों का आपस में लड़ना-झगड़ना तथा कुछ समय मनाना, फिर झट से मान जाना - ये स्वाभाविक हैं। इस बात को बहुत ही सुंदरता से जैनेन्द्र ने मनोहर और सुर्रो के माध्यम से दिखाया है-

'सुरबाला वैसी ही खड़ी रही।

"सुरी, रूठती क्यों है?"

बाला तनिक न हिली।

"सुरी! सुरी!...ओ, सुरी!"

अब बनना न हो सका। मनोहर की आवाज हठात कंपी-सी निकली।

सुरबाला अब और मुँहफेरकर खड़ी हो गयी। स्वर के इस कम्पन का सामना शायद उससे न हो सका।

"सुरी... ओ सुरिया! मैं मनोहर हूँ... मनोहर!... मुझे मारती नहीं!"

यह मनोहर ने उसके पीठ पीछे से कहा और ऐसे कहा, जैसे वह यह प्रकट करना चाहता है कि वह रो नहीं रहा है।

"हम नहीं बोलते।'' बालिका से बिना बोले न रहा गया। उसका भाड़ शायद स्वर्गविलीन हो गया। उसका स्थान और बाला की सारी दुनिया का स्थान, काँपती हुई मनोहर की आवाज ने लिया।' (जैनेन्द्र 2008:197)

भाड़ तैयार होने के बाद सूरवाला को जो खुशी होती होती है वैसा किसी बुजुर्ग को सोने की महल मिलने पर भी नहीं हो सकता है। एक बच्चे को अपने कार्य की सफलता पर जो उत्सुकता तथा खुशी होती है, वही सूरवाला को हुई। सूरवाला के लिए ब्रह्मांड का सबसे सम्पूर्ण भाड़ और विश्व की सबसे सुंदर वस्तु तैयार हो गयी थी-

'वह उस उजड्ड मनोहर को इस अपूर्व कारीगरी का दर्शन कराएगी, पर अभी जरा थोड़ा देख तो और ले। सुरबाला मुँह बनाए आँखें स्थिर करके इस भाड़-श्रेष्ठ को देख-देखकर विस्मित और पुलकित होने लगी। परमात्मा कहाँ बिराजते हैं, कोई इस बाला से पूछे, तो वह बताए-इस भाड़ के जादू में।'(जैनेन्द्र 2008:196)

'किसका रुपया' कहानी में जैनेन्द्र ने दिखाया है कि बच्चे को जिससे सबसे ज्यादा प्यार मिलता है, उससे कुछ भी तिखी बात कहने पर उसे बहुत ज्यादा चोट पहुँचती है। पढ़ने में तेज होने के कारण रमेश कोमास्टर से अत्यंत स्नेह मिलता है। पर क्लास में गलतजवाब देने पर मास्टर उसे पीटते हैं और मुर्गा बनने को कहते हैं। उस बात से रमेश को बहुत दुख होता है। घर जाकर भी माँ से कुछ नहीं कह पाता और फिर बिना लक्ष्य के घर से निकल जाता है-

'उधर रमेश बढ़ा चला जा रहा था। चलने में उसकी दिशा न थी न कदमों में अगला- पिछला था। चलते चलते वह घास के मैदान में आ गया और वहाँ एक जगह बैठ गया।' (जैनेन्द्र 2008:201)

बालक दूसरे द्वारा किए गए वर्णन के आधार पर अपने मन में किसी का भी तस्वीर बना लेते हैं। साधरण रूप में जिस चीज से डर लगता है वह राक्षस का रूप ले लेता है। 'चोर' कहानी में भी प्रद्युम्न बड़ों की बात सुन-सुनकर अपने मन में चोर की छवि एक राक्षस के रूप में बना लेता है और चोर के डर के कारण वह रात को सो नहीं पाता। क्योंकि उसने सुना था चोर रात के अंधेरे में आता है।

"भाभी, चोर कैसा होता है?"

मैं सुनकर हैरत में रह गयी। मैंने कहा, "अरे वह सचमुच में थोड़े ही होता है। वह तो झूठ- मूठ की बात। "

"तो वह नहीं होता?"

मैंने कहा, "बिलकुल नहीं होता।" सुनकर वह चुप रह गया। मैंने कहा, "सो जाओ, भैया!"

उसने जोर से कहा, "होता है।"

मैं हँसकर बोली, "तो बताओ कैसा होता है?"

बोला, " मेरी किताब में राक्षस की तस्वीर है, वैसा होता है। दो सींग, गदहे के-से कान और लम्बी जीभ।"'(जैनेन्द्र 2008:212)

इस तरह जैनेन्द्र कुमार की अनेक कहानियों में बाल मन का सुंदर चित्रण हुआ है।

4 बालमनोविज्ञान पर आधारित भबेंद्र नाथ शइकीया की कहानियाँ

मानव मन के अध्ययन और उनके अनाकन में असमीया कथाकार भबेंद्र नाथ शइकीया अन्यतम हैं। 'बर्णबोध' कहानी में शइकीया ने बाल चरित्रा रमा, जयंती और गजेन के माध्यम से दूसरे के घर में काम करने वाले बच्चों का यथार्थ चित्रण किया है। सबका अपना स्वाभिमान होता है। किसी को भी दूसरे के यहाँ नौकर रहना पसंद नहीं होता है। पर सबका दिन समान नहीं होता। परिस्थिति के कारण मन के विरुद्ध कुछ कार्य करने पड़ते हैं। रमा, जयंती और गजेन के साथ भी ऐसा ही हुआ। तीनों एक दूसरे को नहीं जानते थे। अपने-अपने मालिक के रिश्तेदारों की शादी में उन तीनों की मुलाकात होती है। जयंती दुलहन की छोटी दीदी माखनी का लड़का मंतु को और रमा बड़ी दीदी कुंतला के लड़के काजल, बादल को संभालने का काम करती है। अपने खेलने कूदने के उम्र में उन्हें दूसरों की देख भाल का दायित्व उठाना पड़ता है। बड़े घर के बच्चे जब किसी भी छोटी बात के लिए रोते हैं तो माँ दौड़ कर आती है। पर काम करने वाली छोटी-छोटी बच्चियों के मन की हालत तथा दुख कोई नहीं देख पाता। उन्हें भी भूख लगती है, उन्हें भी स्वादिष्ट खाना पसंद है। शादी वाले घर में हर एक मेहमान के खाने पीने का ध्यान रखा गया है। पर काम करने वाली लड़कियों को एक बार के लिए भी खाने के लिए पूछा भी नहीं गया जाता है। जयंती रमा के बाल मन पर नजर रखते हुए जूठ कहती है कि उसने केवल पूरी और सब्जी ही खाई थी। दरअसल में उसने पूरी के साथ मिठाई भी खाई थी-

'जयंतिये सुध्लि,

"तुमि किबा खालाने नाइ?"

"खालो?"

"लुचि आरु भाजी"।

"आरु?"

"आरु नाइ। "'(हाजरिका 2015:385)

बड़े होने के साथ-साथ बच्चे बातों को संयमित रूप से कहना सिखते हैं। कौन सी बात कहाँ कहनी चाहिए उस पर विशेष ध्यान रखते हैं। इसका कारण यह है कि वे मानसिक रूप से विकसित होते हैं, उसकी सोच- विचार की क्षमता बढ़ती है। इसी कारण जयंती और रमा जब अपने-अपने घरों की बातें करते थे, तब जयंती संक्षेप में अपनी कथा सुनाती थी। पर रमा इतनी विस्तारित रूप से कहती थी कि उसकी कथा का अंत न होता था। इससे रमा की बाल मानसिकता झलकती है।

'राक्षस' कहानी में रीता और गीता के माध्यम से बालमन का बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है। बच्चे स्वभाव से ईर्षालु होते हैं। रीता स्कूल से आते समय अपने जमा के पैसों से दो फीते खरीदकर लाती है। पर अपनी छोटी बहन गीता रो-धेकर फीतों को अपने बालों में लगा लेती है। रीता को यह बात सहन नहीं होती। पढ़ने के वक्त पर भी वह इसी सोच में होती है कि किस प्रकार अपनी बहन से फीता वापस ले सकेगी। वह रात को नींद से जगकर भी गीता के बालसे फीता लेने की कौशिश करती है। पर गीता भी जग जाती है-

'रीताइ ताइर किताप-बहीबोर ठिक करार निचिना देखुवाइ आछे; किन्तु ताइ प्रतिमुहूर्तते चिन्ता करि आछे नतुन फिता दुडालर कथा। ताइ निजे गोटोवा पइचारे कालि स्कुलर परा आहोँते फिता दुडाल किनि आनिछे, किन्तु घर सुमुवार लगे-लगे गीताइ मोक दे मोक दे कै चिजर-बाखर लगाले। सह्य करिब नोवारि माक सुशीलाइ कॉले," देचोन ताइ अकणमान लउक। दिब नहइ आकौ। "' (हाजरिका 2015: 674)

बच्चों का सबसे बड़ा अस्त्र है रोना। रोकर वे सब हासिल कर लेते हैं। गीता इस बात को अच्छी तरह जानती है। इस कारण जब भी सीता फीता लेने के लिए गीता पर हमला करती है, तो गीता जोर जोर से रोने लगती है-

'राति एबार सार पायो रीताइ गीतार मूरत हात दिछे, किन्तु लगे-लगे गीतायो सार पाइछे। रातिपुवा शुइ उठि, केनेबाकै रीताइ फीता लै जाय बुलि, गीता माकर उछरे- उछरे फुरिछे। '(हाजरिका 2015:674)

बच्चे स्वभाव से सरल होते हैं। वें जीवन की टेढ़ी मेढ़ी बातें नहीं जानते। न उसे राजनीति की खबर होती है। वे केवल स्नेह समझते हैं, अपनापन का अनुभव करना जानते हैं। जन्म के साथ कोई मन में कपट भाव लेकर नहीं आता। समाज तथा परिस्थिति है, जो हमें सब सिखाते हैं। बच्चे हमेशा अपनी मन की सुनते हैं। कोई कितना भी कहे पर बच्चा वही करेगा, जो उसका मन कहता है। उसे अगर लगता है कि फलाना व्यक्ति उसे प्यार करता है और उनसे उसे कोई खतरा नहीं है, तो वह हजार माना करने पर भी उस व्यक्ति के पास जरूर जाएगा।

'सहायिका' कहानी में इंद्राणी के माता-पिता को लगता है कि इंद्राणी सो गयी है। वे अपने परोसी हृदयानन्द दास के घर की बात करने लगते हैं। बातों-बातों में चौधुरी जब अपनी पत्नी से इंद्राणी को दास के घर जाने से रोकने की बात करती है तो इंद्राणी रोने को हो आती है-

'"कि ह'ल इंद्राणी?" चौधुरीये ताइ सपोनते चिञरिछे ने नाइ तार उमान लॉबलोइ बुलि सुधिले।

"मइ खुरीहँतर घरलै जाम।"

"कि?" चौधुरीये सेप ढुकि लै सुधिले।

"अंजलिये मोक इमान मरम करे, सनातन दादाइ मोक इमान मरम करे, खुरिये मोक इमान मरम करे, खुराइ मोक इमान मरम करे; मइ खुरीहतर घरलै जाम, मइ अंजलिहँतर लगत खेलिम। "इंद्राणीर मातटो कान्दो-कान्दो है गॉल।"'

इस तरह से भबेंद्र नाथ शयकीया ने भी अपनीकहानियों के माध्यम से बाल मन क सुंदर चित्रण किया है।

5 तुलनात्मक विश्लेषण एवं निष्कर्ष

जैनेन्द्र और भबेन्द्र नाथ शइकीया दोनों साहित्यकारों की कहानियों के विषय तथा पात्रा अपने ही समाज के हैं। दोनों साहित्यकार फ्रायद से प्रभावित थे। जैनेन्द्र कुमार और भबेंद्र नाथ शयकीया ने बालक के हठ, क्रिया-प्रतिक्रिया, भय-उत्साह आदि को अपनी कहानियों में दर्शाया है। दोनों ही ने मनोवैज्ञानिक तत्वों के प्रस्तुतीकरण के लिए अपनी कहानियों में पात्रों की मनोदशा का वर्णन किया है। आप दोनों ने अपनी कहानियों के पात्रों को अपने-अपने समाज से लिया है। आपकी कहानियों पर नजर डालने से यह बात देखी जाती है कि हर एक बच्चे की सोच तथा चरित्र अपनी परिस्थिति के ऊपर निर्भर करते हैं ।

हिन्दी तथा असमीया साहित्य में मनोवैज्ञानिक साहित्य लेखन का आरंभ 20वीं सदी में हुआ। इससे पहले कहानी ने आदर्शवादी, यथार्थवादी, प्रगतिवादी आदि के दौर से गुजरते हुए सुदीर्घ यात्रा में अनेक उपलब्धियाँ हासिल की हैं। असमीया साहित्य में मनोवैज्ञानिक कहानी लेखन की धरा प्रेमचंदोत्तर युग में शुरू हुई थी तथा असमीया साहित्य में यह धरा युद्धोत्तर युग में आरंभ हुई, जो आज भी निरंतर गति से चली जा रही है। जैनेन्द्र कुमार और भबेंद्र नाथ शइकीया दोनों क्रमशः हिन्दी और असमीया साहित्य में मनोवैज्ञानिक कहानीकार के रूप में विशेष रूप से ख्यात हैं। बच्चों के मन को समझने के लिए इन दोनों कहानिकारों की कहानियाँ सहायक हो सकती हैं।

सहायक ग्रंथ अँग्रेजी

Hurlock Elizabeth B- Developmental Psychology A Life –Span Approach-Mcgraw Hill Education (India) Private Limited- New Delhi- 2016-

असमीया

- गोस्वामी, त्रैलोक्य नाथ. आधुनिक गल्प साहित्य. बाणी प्रकाश. पाठशाला. 1987
- गोस्वामी, त्रैलोक्य नाथ. साहित्य समीख्यान. असम प्रकाशन परिषद. 1981
- गोस्वामी, दीनेश चन्द्र (मुख्य संपा). शराइघात अभिधन. शराइघात प्रकाशन. गुवाहाटी. जुलाई 2012
- ठाकुर, पंकज (संपा). शताब्दिर पोहरत असमीया चुटिगल्प. साहित्य एकादेमी. नई दिल्ली. 1997

- दत्त, उदय. चुटि गल्प. स्टूडेंट स्टोरेस. गुवाहाटी. 1994
- बरा,जतीन. साहित्य समालोचनार चमु बुरंजी. बनलता प्रकाशन. डिब्रुगढ़, 1999
- बरा, लीलाबती शइकीया (संपा.) असमीया चुटि गल्प प्रवाह. गौहाटी विश्वविद्यालय. 2003
- बरगोँहाञि, होमेन. असमीया साहित्यर बुरंजी (छठा खंड). आनंदराम बरुआ भाषा कला संस्कृति संस्था, असम. गुवाहाटी. 2017
- महन्त, चित्र. असमीया साहित्य का इतिहास. असम हिन्दी प्रकाशन.
- रायचौधुरी, भूपेंद्र,संपा. असमीया साहित्य निकष. विश्वविद्यालय प्रकाशन विभाग. 2006
- हाजरिका, अनंत, संपा. डॉ. भबेन्द्र नाथ शइकीयार गल्प समग्र. चतुर्थ. बनलता प्रकाशन, 2015
- शर्मा, सत्येन्द्रनाथ. असमीया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त. अरुणोदय प्रकाशन, 2017

हिन्दी

- उपाध्याय, देवराज. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान. साहित्य भवन प्राइवेटलिमिटेड. एलाहाबाद, 1963
- कोहली, माधुरिमा. जैनेन्द्र कुमार चिंतन और सृजन. पराग प्रकाशन. नई दिल्ली. 1982
- जैन, निर्मला (संपा.). जैनेन्द्र रचनावली (टवस.4). भारतीय ज्ञानपीठ. नई दिल्ली. 2008
- जैन, निर्मला (संपा.). जैनेन्द्र रचनावली (टवस.5). भारतीय जनपीठ. नई दिल्ली. 2008
- थमस, जानसी. जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य का मनोवैज्ञानिक पहलू. अडवेत प्रकाशन. नई दिल्ली,2017
- नगेंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. मयुर प्रकाशन. नोएडा. 2008
- नूरजहां. कहानीकार जैनेन्द्र. प्रथम लखनऊ. कल्पकर प्रकाशन, लखनऊ 1974
- भरद्वाज, दिनेश. शिक्षा मनोविज्ञान. प्रथम. विनोद पुस्तक मंदिर, आग्रा 1977
- सिंह, बच्चन. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास. राधकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली. 2009
- शर्मा, शिवकुमार. हिन्दी साहित्य की युग और प्रवृत्तियाँ. अशोक प्रकाशन. दिल्ली. 2008
- शुक्ल, रामचन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. कमल प्रकाशन. नई दिल्ली, 1997
- श्रीवास्तव, मुकुंडीलाल, कालिका प्रसाद और राजवल्लव साहाय (प्रका.). वृहत हिन्दी कोश.ज्ञानमंडल प्रकाशन. बनारसी, 2010

नागार्जुन की कविता में जनपक्षधरता

डॉ० उमा देवी

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), मनोहारी देवी कनोई महिला महाविद्यालय

सारांश :

सजग एवं संवेदनशील रचनाकार सदैव अपने समसामयिक परिस्थितियों के प्रति सजग एवं समाज के प्रति प्रतिबद्ध होता है। प्रगतिवादी कवि नागार्जुन ऐसे ही कवि हैं। जिनकी कविता समाज का लिखित इतिहास हैं। जनसरोकारों को अपने में समेटे ये कविताएँ शोषित, पीड़ित एवं निर्धन किसान, मजदूरों की पक्षधर हैं। इनमें सत्ताधारी, पूँजीपति, सामंत जैसे शोषकों के प्रति आक्रोश और विद्रोह फूट पड़ा है। कवि नागार्जुन की कविताएँ भोगे हुए दुख, दर्द, पीड़ा तथा उपेक्षा का लिखित दस्तावेज हैं। अत: उनमें भूख की पीड़ा, गुलामी की तड़प, उपेक्षा का दर्द, नई रोशनी की आशा, बेहतर की आकांक्षा तथा संघर्ष के जुनून की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। जात-पांत, आडंबर, ऊँचनीच, भ्रष्टाचार, गरीबी के विरूद्ध उनकी बेबाकी एवं साहस ही नागार्जुन को हिंदी साहित्य में विशिष्ट बनाता है।

बीज शब्द : नागार्जुन, किसान, सर्वहारा, शोशण, विद्रोह।

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में प्रगतिवादी चेतना के प्रखर कवि नागार्जुन का जन्म सन् 1911 में एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। उन्होंने संस्कृत, मैथिली और हिंदी में साहित्य-सृजन किया। संस्कृत में 'चाणक्य' नाम से, मैथिली में 'यात्री' तथा हिंदी में 'नागार्जुन' नाम से लिखते रहें। नागार्जुन यायावरी प्रवृत्ति के थे। इसी प्रवृत्ति ने उनकी सृजनशीलता एवं चिंतन को ऊर्जा प्रदान की। उनके साहित्य में अभिव्यक्त संवेदना तथा विचारों का मूलाधार उनके गहन अध्ययन, यायावरी प्रवृत्ति तथा अनुभव को ही माना जा सकता है। चार वर्ष की आयु में ही माँ का आँचल छिन गया। अनेक अभावों एवं दुखों के बीच बाल्यकाल व्यतीत होने लगा। उनका बचपन गरीब, शोषित किसानों तथा सर्वहारा वर्ग के बच्चों के साथ बीता था। उन्होंने अनेक सड़ी-गली परंपराओं और मान्यताओं के कुप्रभावों को देखा। फलत: उनमें विरोधी प्रवृत्ति का विकास होने लगा। बाल्यकाल में नागार्जुन में विकसित हुई विरोधी प्रवृत्ति एवं जनवादी चेतना ने ही उन्हें परवर्ती काल में मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट किया।

डॉ. शिवकुमार मिश्र के शब्दों में - 'नागार्जुन स्वभाव से विद्रोही हैं, उन्हें आडम्बर और प्रदर्शन से बेहद नफरत है। उनकी लेखनी आडम्बरों, रूढ़ियों और विषमताओं के विरूद्ध जमकर चली है। विद्रोह उनके स्वभाव में मूर्तिमान है। यह विद्रोह उस परिवेश की देन है जिसके बीच उन्होंने जीवन जीया है। अपने अंतर की इस विद्रोह वृत्ति को उन्होंने सदैव रचनात्मक दिशाओं की ओर सक्रिय किया है। हँसमुख इतने कि उनके जीवन संघर्शो से अपरिचित व्यक्ति शायद ही यह जान पाये कि जीवन का इतना विश पीने और पचाने के बाद यह हँसी सौगात के रूप में मिली है।'[1]

बनारस में अध्ययन करते समय उनकी रूचि अखबार पठन की ओर बढ़ी। फलत: विश्व राजनीति तथा राष्ट्रीय आंदोलन आदि पर उनकी कृष्टि तैयार होने लगी। सन् 1936 के लंका प्रवास के पश्चात् वे पूर्णत: प्रगतिवादी विचारों से जुड़ते हैं। इसी दौरान मार्क्सवादी विचारों ने उन्हें प्रभावित किया। यही पर बौद्ध दर्शन का गहन अध्ययन कर बुद्ध के 'समता सिद्धांत' का ज्ञान प्राप्त करते हैं। मार्क्सवादी आंदोलन से वे राहुल सांस्कृत्यायन तथा स्वामी सहजानंद सरस्वती की प्रेरणा से जुड़े। नागार्जुन अपने राजनैतिक गुरू सहजानंद के आह्‌वान पर सन् 1938 में किसान आंदोलन में शामिल हुए। अर्थात् कवि की चेतना एवं विचारों को सही दिशा और अर्थ लंका प्रवास के पश्चात् ही प्राप्त हुई। वे सही अर्थो में जनसामान्य से जुड़े।

सजग एवं संवेदनशील रचनाकार कभी भी अपनी समसामयिक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों से अनभिज्ञ नहीं रह सकता। नागार्जुन के काव्य में भी समय की उथल-पुथल का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। विशेषरूप से सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ उनकी कविताओं के केन्द्र में हैं। उनकी कृष्टि में साहित्यकार का उद्देश्य जनसामान्य के हितों के प्रश्नों से जुड़े रहना है। समसामयिक परिस्थितियों को अनदेखा करके वह शाश्वत सत्य की स्थापना या उद्घाटन नहीं कर सकता -

कवि हूँ, सच है

किन्तु क्षणिक तथ्यों को यों अवहेलित करके

शाश्वत का सीमांत क्या कभी छू पाऊंगा?[2]

कवि स्वयं कृषक वर्ग से आते हैं। उन्होंने दुख, पीड़ा एवं अभावों को बहुत करीब से देखा और भोगा। अत: साधारण लोगों के बीच रहते हुए उसी वर्ग की स्थितियों को अपनी लेखनी का विषय बनाया। उनकी कविताओं में कृषक जीवन अपनी वास्तविकताओं के साथ चित्रित हुआ है। वे स्वयं को भी देश के शोषित, पीड़ित कृषकों में एक मानते हैं। जिसका सारा जीवन केवल उदरपूर्ति की चिंता में कट जाता है -

'पैदा हुआ था मैं- / दीन-हीन अपठिट किसी कृषक कुल में

आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से।

मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व, रूद्ध है सीमित है -

आटा - दाल - नमक - लकड़ी के जुगाड़ में।'[3]

नागार्जुन जीवन के कटु यथार्थ को पहचानते हैं अत: कल्पना या दिवास्वप्न में जीना उन्हें स्वीकार नहीं। जब चारों ओर गरीबी और भूखमरी का नृत्य चल रहा हो। तब पहली आवश्यकता रोटी की है। उनकी कृष्टि में अन्न ही ब्रम्हा है। अन्य सभी ब्रम्हा भूखे व्यक्ति के लिए व्यर्थ हैं। उदरपूर्ति के अभाव में सब मिथ्या है। भूख की पीड़ा उनकी कविताओं में बार-बार अभिव्यक्त हुई है। महिमा में किसान अन्नदाता है। सबका उदर भरता है। किन्तु विडंबना है कि स्वयं का और अपने परिवार का पेट भरने की स्थिति उसकी नहीं होती। आटा, दाल और नमक के जुगाड़ में जीवन गुजर जाता है। अपने अभावग्रस्त स्थिति से वह जीवनपर्यन्त निकल ही नहीं पाता। सपने देखने और उन्हें पूरा करने की न उसके पास क्षमता है, न समय और न अधिकार ही है। कवि की कविताएँ भोगे हुए यथार्थ का लिखित दस्तावेज हैं -

'जन-गण-मन अधिनायक जय हो, प्रजा विचित्र तुम्हारी है।

भूख-भूख चिल्लाने वाली अशुभ अमंगलकारी है.....।

ख्याल करो मत जनसाधारण की रोजी का रोटी का।''[4]

कवि उस देश को नरक समान कहते हैं जहाँ रात-दिन की मेहनत के बावजूद किसानों, मजदूरों और सर्वहारा वर्ग का पेट नहीं भरता। सत्ताधारी भ्रष्टाचार तथा वोट की राजनीति में व्यस्त हैं। देश के गरीबजन से उनका कोई सरोकार नहीं। ऊपर से काला बुखार, पेचिश, मलेरिया जैसी महामारियाँ उन्हें ग्रास बनाने को तत्पर हैं। घोर निर्धनता और इलाज के लिए असक्षम लोगों के लिए मृत्यु ही पीड़ा से छुटकारा पाने का सहज उपाय है। उनकी कविताओं में इस कटु सत्य का मार्मिक चित्रण है। कवि के विषय में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं - 'नागार्जुन अपने समय और समाज की सच्चाई कविता में लाकर उसे जन-मन में उतारते हैं। ....नागार्जुन की काव्य-यात्रा उनकी जीवन-यात्रा से अलग नहीं है।'[5]

नागार्जुन जनकवि हैं। वे समाज के किसान, मजदूर, हरिजन आदि की स्थिति में सुधार चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें भी भरपेट भोजन मिले, स्वास्थ्य तथा शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध हों। देश के शासक, नेता, पूँजीपति आदि में मानवता का विकास हो। क्योंकि सही अर्थ में मानव समाज की प्रगति तभी हो सकती है, जब एक मनुष्य में दुसरे के प्रति सम्मान, आदर एवं प्रेम हो। वे दलित, शोषित, उपेक्षित जन के पक्षधर और सामंतवादी तथा पूँजीवादी व्यवस्था के घोर विरोधी हैं। उनकी कविताओं में भ्रष्टाचार, आडंबर, भाषावाद, साम्प्रदायिकता तथा अमानवीय प्रथाओं के प्रति आक्रोश है। 'देखना ओ गंगा मैया' और 'खुरदरे पैर' कविताओं में सामाजिक विषमता मूर्त हो उठी है। 'खुरदरे पैर' में ग्रामीण जीवन के कष्ट, वैषाम्यादि हैं। कवि मानते हैं कि इस दुनिया में भी दो अलग-अलग दुनिया हैं। एक गरीब और शोषित की, दूसरी अमीरों और शोषकों की दुनिया। सत्ता और पूँजी ने दुनिया का विभाजन कर मानवता

को चोट पहुँचाई है। गरीब उपेक्षित दुनिया के वासी हैं। उस दुनिया में जी रहे गरीबों की असहाय स्थिति का वर्णन कवि कुछ इस प्रकार 'खाली नहीं और खाली' कविता में करते हैं –

'खाली नहीं माइंड, खाली नहीं ब्रेन,
खाली है हाथ, खाली है पेट,
खाली है थाली, खाली है प्लेट।'[6]

सामंती समाज के उत्पीड़न और वैभव प्रदर्शन का कवि ने अति सूक्ष्म वर्णन किया है। समाज के एक वर्ग के पास ऐशों-आराम और आडंबर के सारे साधन उपलब्ध हैं। पूँजी ने मनुष्य-मनुष्य में भेद कर दिया है। उनकी कविताओं में वैभव की क्रूरता, अमानवीयता तथा उसके उन्मत्त प्रदर्शन की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी वे किसान और सर्वहारा वर्ग के हित में लिखते रहें। उनकी लेखनी तथा दृष्टि से कोई भी घटना बच न सकी। उन्होंने प्रत्येक घटना पर रचनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की है। स्वतंत्रता के पश्चात् भी सत्ता, समाज एवं सम्पत्ति पर शक्तिशाली वर्ग का ही अधिकार रहा। किसानों तथा गरीबों के लिए योजनाएँ एवं नीतियाँ तो बनी लेकिन कागजों तक ही सीमित रह गई। 'प्रेत का बयान' कविता स्वतंत्र भारत में एक मास्टर की विवशता का वर्णन करता है, जो अभाव और निर्धनता के बीच पेचिस रोग से मर जाता है। यमराज के प्रश्नों का उत्तर देते हुए वह कहता है –

नागरिक हैं हम स्वाधीन भारत के
पूर्णिया जिला है, सूबा बिहार के ......
पेशा से प्राइमरी स्कूल का मास्टर था
'किन्तु भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको
सावधान महाराज,
नाम नहीं लीजिएगा
हमारे समक्ष फिर कभी भूख का।'[7]

स्वतंत्रता के पश्चात् भी भूख की समस्या का कोई हल न निकला। आज तो परिस्थिति इतनी भयावह है कि किसान हर रोज आत्महत्याओं को मजबूर हैं। भूख, कर्ज, उचित मूल्यों का अभाव, किसानी के लिए सुविधाओं की अनुपलब्धता तथा बेरोजगारी जैसी समस्याए देश के अन्नदाता का जीना दूभर कर रही हैं।

शिक्षा जीवन स्तर और संभावनाओं में परिवर्तन लाती है। व्यक्ति के विकास एवं सम्मानपूर्ण जीवन के लिए शिक्षा आवश्यक है। इसके अभाव में वह अंधविश्वासों, रूढ़ियों एवं सड़ी-गली परंपराओं का शिकार होता है। आर्थिक उन्नति के लिए भी शिक्षा अस्त्र समान है। परन्तु आर्थिक कमजोरी के कारण किसान, मजदूर आदि अपने बच्चों को स्कूल भेजने में असक्षम होते हैं। फीस चुकाने हेतु पैसे का जुगाड़ नहीं कर पातें। ऐसी स्थिति में शिक्षा कैसे मिल पायेगी? शिक्षा भी केवल अमीरों की बपौती बनकर रह गई है। पैसे वाले अपने बच्चों को बड़े-बड़े महंगे स्कूलों में पढ़ाते हैं। गरीबों के बच्चे ऐसे स्कूलों का स्वप्न भी नहीं देख पातें। आज भी अमीरों और गरीबों के लिए अलग-अलग शिक्षा संस्थानें बनी हुई हैं। 'जया' कविता में कवि ऐसे ही एक असहाय पिता की वेदना का चित्रण करते हैं –

ह्कैसा असहा, कितना जर्जर / यह मध्यवर्ग का निचला स्तर !
मैंने झाँका तो यह देखा- / बाहर सफेद, अंदर धुँधला
क्या कर सकता वह बाप भला / बहरी-गूँगी उस बच्ची की शिक्षा-दीक्षा का इंतजाम!'[8]

मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ माना जाता है। इसका प्रथम कारण है उसके सोचने की शक्ति, चिन्तन-मनन की शक्ति, जो पशुओं से भिन्न होती है। इस दृष्टि से देखे तो पशु केवल अपने लिए सोच पाते हैं। उचित-अनुचित, सत्य-मिथ्या जैसे मूल्यों से केवल मनुष्य का वास्ता होता है। अत: केवल अपने लिए जीना मानव जीवन की सार्थकता नहीं। सूर्य, चन्द्र तथा प्रकृति आदि निरंतर अविरल

गति से अपना कर्तव्य पालन करती है। मनुष्य को भी दूसरे मनुष्यों की भलाई में जीवन व्यतित करना चाहिए। 'यह कैसे होगा?' कविता में कवि अपने कर्तव्य की बात कहते हैं। जब सारी सृष्टि, प्रकृति लोगों की भलाई में लगी है। ऐसे में कवि केवल अपने सुखों और लाभों के लिए जीना व्यर्थ मानते हैं। वे जन सामान्य के सुख-दुख को ही अपना सुख-दुख स्वीकारते हैं -

'अधिकाधिक योग-क्षेम / अधिकाधिक शुभ-लाभ
अधिकाधिक चेतना / कर लूँ संचित लघुतम परिधि में।
असीम रहे व्यक्तिगत हर्ष-उत्कर्ष।
अकेले ही सकुशल जीलूँ सौ वर्ष।
यह कैसे होगा? / यह क्योंकर होगा?'[9]

कवि चाहते हैं कि अपने शोषण के खिलाफ हक के लिए स्वयं शोषितों को संघर्ष करना होगा। उस मानसिकता के खिलाफ उठ खड़ा होना होगा, जिसने सदियों से उन्हें पशु-तुल्य जीवन का भागी बनाया। सुविधाभोगी वर्ग इन निर्धनों की मेहनत पर ऐशो-आराम का जीवन व्यतित करते रहे हैं। उनके लिए गरीबजन धरती पर बोझ हैं। कदम-कदम पर अपमानित और उपेक्षा का विश पीते जन में कवि ने अपने अधिकारों के लिए चेतना जगाई है। उन्हें संघर्ष का रास्ता दिखाया है।

कवि नागार्जुन की कविताओं में आक्रोश, विद्रोह के साथ-साथ नई रोशनी के प्रति उत्साह, जोश भी है। उनमें 'परिस्थितियाँ एक दिन बदलेंगी' की आशा और आकांक्षा विद्यमान हैं। उनमें भविष्य के लिए कामनाएँ जगती हैं। अतः समय और परिस्थितियाँ बदलने के लिए कवि युवाओं का आह्वान करते हैं। इस देश के तरूण और किशोर ही हवा का रूख बदल सकते हैं। भ्रष्टाचार, शोषण, गरीबी तथा, भूख से समाज को मुक्त करने के लिए उन्हें संघर्ष की मशाल जलानी होगी। 'तुम किशोर, तुम तरूण' कविता में लिखते हैं-

'आओ, आगे आओ, अपना दायभाग लो
अपने स्वप्नों को पूरा करने के खातिर
तुम्हें नहीं तो और किसे हम देखें बोलो।
निविड अविद्या से मन मूर्छित / तन जर्जर है भूख-प्यास से
व्यक्ति-व्यक्ति दुख-दैन्य ग्रस्त है / दुविधा में समुदाय पस्त है।
लो मशाल, अब घर-घर को आलोकित कर दो'[10]

सम्पूर्ण हिंदी साहित्य में नागार्जुन की कविताओं का अपना विशेष महत्व है। ये युगीन दस्तावेज हैं। इनमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक असंगति, अंतर्विरोध, विद्रूपता आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। वे परिवर्तन के पक्षधर हैं। उनका मानना है कि घोर गरीबी तथा भूखमरी वाले इस देश में पूँजी का प्रयोग सर्वहारा वर्ग की उन्नति में करना चाहिए। उपनिवेशवादी ताकतों तथा शोषकों पर पैसा बहाना अनुचित है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार सही अर्थों में कवि नागार्जुन जनकवि हैं। जनसामान्य से दूर रहकर अपना अस्तित्व कभी उन्होंने स्वीकारा नहीं। जीवन भर आम आदमी की तरह आम लोगों के बीच जीते रहें। यही कारण है कि उनकी कविताओं में असली भारत उभरता है। एक ओर नीम, बबूल के पेड़, आम के बौर तथा यहाँ के मिट्टी की सौंधी खुशबू पाई जाती है। दूसरी ओर भ्रष्टाचार, शोषण, उत्पीड़न, सामंतवाद, पूँजीवाद, अशिक्षा तथा घोर निर्धनता का वास्तविक घिनौना एवं अमानवीय रूप दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने जो देखा, भोगा और महसूस किया सीधे-सीधे कह दिया। निम्न मध्यमवर्गीय किसान परिवार में जन्में नागार्जुन ने दुख-दर्द, पीड़ा, तिरस्कार एवं अपमान का कटु रूप देखा और सहा था। रूढ़ि, एवं सड़ी-गली परंपराओं के दुष्प्रभावों को देखा था। अतः उनमें इनके प्रति विद्रोह तथा पीड़ित, शोषित किसानों, मजदूरों के प्रति सहानुभूति एवं अपनापन देखा जाता है। वे शोषकों के प्रति अत्यंत कठोर हैं। नागार्जुन को जनकवि बनाने में मार्क्सवादी दर्शन एवं बौद्ध दर्शन दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जीवनपर्यन्त वे शोषणमुक्त समाज की स्थापना के लिए संघर्षरत रहे हैं। उनकी बेबाकी, साहस एवं, जनपक्षधरता ही उन्हें विशेष बनाती हैं। अंत में उन्हीं के शब्दों में -

'प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ -
बहुजन समाज की प्रगति के निमित्त -
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निशेधार्थ ....
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया-धसान' के खिलाफ .....
अंध-बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए ....।'[11]

संदर्भ सूची -

1. डॉ. शिवकुमार मिश्र : साहित्य और सामाजिक संदर्भ, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण - 2012, पृष्ठ संख्या - 124
2. तालाब की मछलिया : नागार्जुन, पृष्ठ संख्या - 72
3. नागार्जुन : युगधारा, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 2008, पृष्ठ संख्या - 13-14
4. https:èèwww.hindi-kavita.comèHindi-Hazar-Hazar-Bahon-Wali- Nagarjun.php
5. मैनेजर पाण्डेय : आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण -2005, पृष्ठ संख्या - 185-186
6. नागार्जुन : युगधारा, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 104
7. वही, पृष्ठ संख्या - 62
8. वही, पृष्ठ संख्या - 109
9. नागार्जुन : सतरंगे पंखोवाली, यात्री प्रकाशन, कलकत्ता, संस्करण - 1959, पृष्ठ संख्या - 12
10. वही, पृष्ठ संख्या - 28
11. नागार्जुन : खिचड़ी विप्लव देखा हमने, सभावना प्रकाशन, हापुड, प्रथम संस्करण-1980, पृष्ठ संख्या - 57

भवभूति की नाटयकला तथा शैलीगत वैशिष्टयः एक अनुशीलन

प्रो. प्रसून दत्त सिंह

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यलय, मोतिहारी, बिहार

संस्कृत नाटय काव्य रचयिताओं में भास, कालिदास तथा भवभूति की त्रयी विशेष प्रसिद्ध है। इनके नाटयवैशिष्टय की झलक मात्रा इसी बात से हो जाती है कि आलोचक कविचूडामणि कालिदास से सदा ही इनकी तुलना करते रहे हैं और इन्हें समकक्ष नहीं तो कालिदास के उपरान्त श्रेष्ठ नाटककार (कवि) तो मानते ही हैं। किंवदन्ती है कि एक बार किसी ने कालिदास से पूछा कि नाटक के क्षेत्र में आप और भवभूति में अधिक सफल कौन हैं तो कालिदास का उत्तर था -

नाटकं भवभूतिर्वा वर्य वा वयमेव वा।

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।।

अर्थात् नाटक की रचना में 'भवभूति' अथवा मैं या इन दोनों में कोई श्रेष्ठ है अथवा (हो सकता है) मैं ही श्रेष्ठ हूं। किन्तु उत्तररामचरित में भवभूति मुझसे विशिष्ट हैं ।

यद्यपि यह किंवदन्ती कालिदास और भवभूति के कालक्रम से मेल नहीं खाती किन्तु भवभूति की महत्ता का निदर्शन तो कराही देती है।

भवभूति का वास्तविक नाम क्या था? यह विवाद का विषय है। उनके दो अन्य नाम श्रीकण्ठ तथा भद उम्बेक भी प्राप्त होते हैं। 'श्रीकण्ठ' नाम तो उनका पितृप्रदत्त अथवा प्रसिद्धिगत अवश्य था किन्तु भद उम्बेक वही थे या कोई अन्य व्यक्ति इस पर विचारकों में मतभेद है। डा.पी.वी. काणे तथा प्रोत्र कुप्पस्वामी शास्त्री के अनुसार भवभूति तथा उम्बेक दोनों एक ही व्यक्ति के नाम हैं। दर्शन जगत् में भवभूति उम्बेक नाम से जाने गये। इसके विपरीत डा. मिराशी तथा डा. कुन्हन राजा ने भवभूति और उम्बेक को दो प्रबल व्यक्ति माना है। वैसे अधिकांश विचारक प्रथम मत से ही सहमत हैं। प्रो. काणे के अनुसार भवभूति नाटककर्ता होने के कारण नाटकीय पात्रों के तुल्य अपना नाम बदलने में निपुण थे। दक्षिण भारत में उन्होंने द्रविड़ोचित उम्बेक नाम रख लिया ।

भवभूति लिखित तीन साहित्यिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं -

महावीरचरित : यह भवभूति का प्रथम नाटक है और प्रथम काव्य होने के कारण इसमें वह भाषीय परिष्कार और काव्यगत चमत्कार नहीं दिखता, जो हमें उनके परवर्ती ग्रन्थों में दिखता है। इसमें सात अंकों में राम विवाह से राम के राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। रामायण पर आधरित होने के बावजूद इस पर मुख्यतः भास के 'अभिषेक' तथा रामचरित का ही प्रभाव परिलक्षित होता है।

मालतीमाध्व : यह दस अङ्कों का एक प्रकरण ग्रंथ है जिसमें मालती-माध्व की कल्पना प्रसूत प्रेमकथा वर्णित है। इस पर भास के 'अविमारक' नाटक का प्रभाव दिखता है यद्यपि दोनों का कथानक लोक - कथाओं से लिया गया है। इसकी कथा का साम्य सुबन्धु की वासवदत्ता से भी है।

उत्तररामचरित : भवभूति का यह अन्तिम और सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटय ग्रन्थ है जिसमें रामायण की उत्तरार्द्ध कथा सात अंकों में निबद्ध है। उत्तरामचरितम् में भवभूति ने कथा में अनेक मौलिक परिवर्तन कर दिये हैं, जिनमें दो घटनायें विशेष रूप से ध्यातव्य हैं-

प्रथम - लव-कुश का राम से युद्ध न कराकर उनका चन्द्रकेतु से युद्ध करना (राम की वीरता की रक्षा करना)।

दितीय - अन्त में सीता का राम से पुनर्मिलन (नाटक को दु:खान्त होने से रोकना)

इसके अतिरिक्त चित्रवीथीदर्शन, राम का वनदेवता वासन्ती से मिलन, दण्डकारण्य में छाया - सीता की उपस्थिति, वाल्मीकि आश्रम में जनक कौशल्या, वशिष्ट, अरूधती आदि का आगमन तथा सातवें अंक का गर्भाङ्क आदि भी कवि की नितान्त मौलिक कल्पनायें हैं।

इन परिवर्तनों को सर्वथा मौलिक तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसकी कथा अनेकश: पद्मपुराण के पाताल अंक में वर्णित रामकथा के सदृश है और डा. बेलावस्कर ने तो उत्तररामचरित को पद्मपुराण पर आधरित भी माना है। लेकिन यह भी बहुत निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पुराणों में समय - समय पर प्रक्षेप होते रहे हैं और संभव है कि उत्तररामचरित के उपरान्त ही पद्मपुराण में यह कथा पक्षिप्त हुई हो ।

वैसे यदि हम पद्मपुराण के उत्तररामचरित से साम्य रखनेवाले कथाशों को हटा भी दें, तो भवभूति अपनी उत्कृष्ट कल्पना के लिये अपना महत्त्व अक्षुण्ण रखेंगे। वस्तुत: जिस तरह से कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महाभारत की कथा को अपनी प्रतिमा से नितान्त मौलिक रूप दे दिया, उसी प्रकार भवभूति ने भी उत्तररामचरित की कथा को अनूठी विशिष्टता प्रदान की है।

मूलत: केवल कवित्व चमत्कार हेतु ही नहीं, अपितु अन्य कारणों से भी मूलकथा में परिवर्तन अपेक्षित था। सर्वप्रथम रामायण की कथा सुखान्त थी जिसे नाटयशास्त्रीय मानकों के अनुरूप सुखान्त बनाना था, पुन: राम की वियोगजन्य पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ - साथ सीता के समक्ष उसके परोक्ष प्रकटीकरण के द्वारा राम के चरित्र को निष्कलुष और उदात्त भी दिखाना था। अपने इस प्रयत्न में भवभूति पूर्णतया सफल हुए हैं।

भवभूति करूण रस के कवि हैं और उन्होंने करुण रस को वह वैशिष्टय प्रदान किया है, जिससे यह काव्य का मुख्य रस भी माना जा सके। वस्तुत: भवभूति का करूण रस में वही स्थान है जो श्रृंगार रस में कालिदास का। दोनों ही नाटककार के रूप में प्रतिस्पर्द्धी महाकवि हैं। कालिदास अपनी विविध विशिष्टताओं के कारण शीर्षस्थान तो रखते हैं, किन्तु कम से कम दो पक्षों में भवभूति आगे बढ़े हुये हैं।

प्रथम - करूण रस सिद्धि में भवभूति का कोई सानी नहीं है। विभिन्न समालोचकों ने विभिन्न रूपों में एतदर्थ भवभूति की प्रशंसा की है। कहा भी जाता है

'कारूण्यं भवभूतिरेव तनुते'

दूसरे - कालिदास का प्रेम भौतिकवादी अध्कि है वहां शारीरिक सौंदर्य व आकर्षण का भी प्राधन्य है। इसके विपरीत भवभूति आन्तरिक भावनाओं के कवि हैं। मानव की अन्त: स्थिति का जितना सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भवभूति ने किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि भावों की गहरायी में प्रेम का अत्यन्त उदात्त रूप प्रस्तुत करता है। उनकी वाणी में इतना बल है कि वे वृक्ष - वनस्पति ही नहीं अपितु पर्वतों को भी रुला देने की क्षमता रखते हैं ।

भाव के अतिरिक्त भाषा पर भवभूति का असाधरण अधिकार है। उत्तररामचरित में भवभूति की स्वत: गर्भोक्ति है 'यं ब्रह्माणमियं देवी वाऽवश्येवानुवर्तते'। जिसको सरस्वती देवी वशवर्तिनी के तुल्य अनुसरण करती हैं।

अवसरानुकुल प्रसाद, माधुर्य, ओज गणों से युक्त शैली, भाषीय प्रौढ़ता तथा अर्थगाम्भीर्य भवभूति की प्रकृति में ही निहित है। गौड़ी रीति के तो वे नि:सन्देह श्रेष्ठ कवि गिने जाते हैं। उत्तररामचरित में गौड़ी और वैदर्भी का मणिकांचन संयोग है। करूण रस के वर्णनों में वैदर्भी रीति है तथा वीर रस और प्रकृति वर्णनों में गौड़ी रीति है।

भावानुकूल भाषा का ऐसा प्रयोग कम ही देखने को मिलता है। उनकी भाषा सरल और क्लिष्ट, सुबोध और दुर्बोध, कोमल और कठोर समासरहित और समाससहित इन विरोधी गुणों से युक्त हैं।

शब्दों का चयन भी सावधनीपूर्वक किया गया है, जिससे वाक्य - विन्यास नितान्त श्लाधय हो गया है।

अत्यन्त रोचक तथ्य यह है कि भवभूति प्रकृत्या गौड़ी रीति के कवि हैं वे वीरस प्रधन रचना (महावीरचरित) में नहीं, अपितु करूण रस प्रधन रचना (उत्तररामचरित) में सफल हुये।

भवभूति की शैली विवरणात्मक और वाच्यार्थ प्रधन है उनके नाटकों में अभिध वृत्ति मुख्य है। लक्षणा और व्यञ्जना वृत्तियों का न्यूनतम आश्रय लिया गया है। कालिदास में व्यञ्जना है तो भवभूति में अभिध की मुख्यता है। अतएव वे वर्ण्य - वस्तु का साङ्गोपाङ्ग चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

भवभूति ने संवादों की रोचकता बनाये रखी है। सबसे महत्त्वपूर्ण है उनके द्वारा संवादात्मक श्लोकों का प्रयोग, जिसमें श्लोक का पूर्वार्द्ध एक व्यक्ति बोलता है और उत्तरार्द्ध दूसरा व्यक्ति। कुछ स्थलों पर एक ही श्लोक अनेक पात्र बोलते हैं। भवभूति में अनेक श्लोकों की बारंबार आवृति भी की गयी है। उन्होंने अपने तीनों नाटकों में 43 श्लाकों या श्लोकांशों की पुनरावृत्ति की है।

वस्तुतः भवभूति प्रयोगधर्मा कवि हैं। उनकी यह प्रयोगधर्मिता गङ्गा गोदावरी, वनदेवता आदि प्राकृतिक तत्वों के मानवीकरण के द्वारा भी परिलक्षित होती है जो उनकी महत्वूपर्ण विशेषता है। इसके अतिरिक्त भवभूति ने परंपरागत प्रणाली के परित्याग का भी प्रचुर प्रयास किया है। उन्होंने अनेक परंपरागत प्रतीकों जैसे - कोयल की ध्वनि, आम्रमञ्जरी, चन्द्र - ज्योत्स्ना आदि को प्रयोग में नहीं लाया है। उनके किसी भी नाटक में विदूषक का प्रयोग भी नहीं है।

भवभूति की शैली विवरणात्मक और वाच्यार्थ प्रधान है उनके नाटकों में अभिध वृत्ति मुख्य है। लक्षणा और व्यञ्जना वृत्तियों का न्यूनतम आश्रय लिया गया है। कालिदास में व्यञ्जना है तो भवभूति में अभिध की मुख्यता है। अतएव वे वर्ण्य - वस्तु का साङ्गोपाङ्ग चित्रण प्रस्तुत करते हैं ।

भवभूति ने संवादों की रोचकता बनाये रखी है। सबसे महत्त्वपूर्ण है उनके द्वारा संवादात्मक श्लोकों का प्रयोग, जिसमें श्लोक का पूर्वार्द्ध एक व्यक्ति बोलता है और उत्तरार्द्ध दूसरा व्यक्ति। कुछ स्थलों पर एक ही श्लोक अनेक पात्र बोलते हैं। भवभूति में अनेक श्लोकों की बारंबार आवृति भी की गयी है। उन्होंने अपने तीनों नाटकों में 43 श्लाकों या श्लोकांशों की पुनरावृत्ति की है।

वस्तुतः भवभूति प्रयोगधर्मा कवि हैं। उनकी यह प्रयोगधर्मिता गङ्गा गोदावरी, वनदेवता आदि प्राकृतिक तत्वों के मानवीकरण के द्वारा भी परिलक्षित होती है जो उनकी महत्वूपर्ण विशेषता है। इसके अतिरिक्त भवभूति ने परंपरागत प्रणाली के परित्याग का भी प्रचुर प्रयास किया है। उन्होंने अनेक परंपरागत प्रतीकों जैसे - कोयल की ध्वनि, आम्रमञ्जरी, चन्द्र - ज्योत्स्ना आदि को प्रयोग में नहीं लाया है। उनके किसी भी नाटक में विदूषक का प्रयोग भी नहीं है।

उपमाओं के प्रयोग में भी भवभूति ने कुछ मौलिकतायें लायी है। उदाहरणार्थ बहते आंसुओं की उपमा टूटी हुयी मोती की माला से, सस्वेद बाहूओं की उपमा चन्द्रकौमुदी से परिस्नुत चन्द्रकान्त मणि से, सीता के लोकापवाद की उपमा पागल कुते के विष से, राम के करूण रस की उपमा पुटपाक से, सीता की उपमा कारूण्य और विरह व्यथा से। भवभूति के पात्र आदर्शपरक हैं, सभी अपनी मर्यादा की सीमाओं में रहते हैं। किन्तु सर्वथा आदर्शपरकता के कारण उनके पात्रों में वह चरित्र - वैविध्य नहीं मिलता जैसा कि मृच्छकटिकम् आदि में उपलब्ध है।

किन्तु चरित्र-चित्रण में जैसा रसोत्कर्ष और जैसी मनोवैज्ञानिकता दिखायी गयी है, उससे वैविध्य की न्यूनता पूरित हो जाती है।

भवभूति ने तृतीय अंक में छाया - सीता की एक अनूठी कल्पना प्रस्तुत की है, और इसके द्वारा उन्होंने रोचक ढंग से राम और सीता के हृदयोदगारों को अभिव्यक्त कर दिया है। हालांकि गर्भनाटक और छाया सीता की इस परिकल्पनाओं को कुछ आलोचकों ने निरर्थक बताया है। किन्तु वास्तव में यह कल्पना उत्तररामचरितम् की संजीवनी है। जिस प्रकार मेघदूतम् में मेघ की दूत के रूप में परिकल्पना और स्वप्नवासवदतम् में स्वप्निल उदयन की जाग्रत वासवदत्ता से वार्ता की परिकल्पना संस्कृत वाङ्गमय में अपना अनूठा स्थान रखती है उसी प्रकार छाया - सीता की कल्पना भी अप्रतिम है।

'तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं

तमसा सीता से कह रही है - हे बेटी! इस समय तुम्हारा हृदय पुनः समागम की आशा न रह जाने के कारण उपेक्षामय, अकारण परित्याग से विवादपूर्ण, दीर्घवियोग में अचानक भेंट हो जाने से नितान्त स्तब्ध, राम के सहज सौजन्य से प्रसन्न, प्रिय के विलापों से अत्यन्त शोकाकुल, तथा निरतिशय प्रेम के कारण सर्वथा द्रवीभूत सा हो रहा है।

भवभूति अपने पद्यों में अर्थ के अनुकूल ध्वनि पैदा करने में विशेष कुशल हैं। उनके शब्दों में वर्ण-वस्तु की झंकार स्पष्ट सुनायी पड़ती है। साथ ही छन्दों के प्रयोग में भी भवभूति ने अत्यन्त प्रवीणता दिखायी है। वे कभी तो मसृण अथवा विकट वर्णो से तो कभी वर्णो के विन्यास कौशल से भाव की व्यञ्जना कर देते हैं। शिरवरिणी के प्रयोग में तो वे अद्वितीय माने जाते हैं। क्षेमेन्द्र ने भवभूति की शिरवरिणी की अत्यन्त प्रशंसा की है -

'भवभूतेः शिरवरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रूचिरा धन सन्दर्भ सा मयुरीव नृत्यति॥'

भवभूति की पद्यशैली की ही भांति गद्य शैली भी अत्यन्त मनोहर है। यथा - अहो दलन्नवनीलात्पलश्याम'

भवभूति ने यत्र - तत्र व्यंग्य का भी बड़ा मर्मभेदी प्रयोग किया है। प्रथम अक में राम को 'नूतन राजा' कहा गया है, जो कोई भी (सीता - निर्वासन का भी) आदेश दे सकता है।

'तृतीय अंक में राम का विशेषण रघुनन्दन है, जिससे यह संकेत मिलता है कि उन्हें बस अपने वंश की ही चिन्ता है। लव की राम के प्रति व्याजोक्ति तो अत्यन्त तीखी है -

'श्री रामचन्द्र जी वयोवृद्ध हैं। अत: उनके चरित्र की आलोचना उचित नहीं।

अबला स्त्री (ताड़का) को मारकर भी उनका यश कुण्ठित नहीं हुआ। और संसार में अब भी महापुरूष माने जाते हैं। खर राक्षस से युद्ध करते समय वे जो तीन पग पीछे हटे थे अथवा इन्द्र के पुत्र बाली को मारने में उन्होंने जिस कौशल का परिचय दिया था उन सभी बातों से सारा संसार भली - भांति परिचित हैं।

भवभूति के अनेक प्रयोग नाटयशास्त्रीय मानकों के प्रतिकूल पड़ने के कारण दोष मान लिये गये हैं। किन्तु इनमें आंशिक सत्यता ही है और आधुनिक मानदण्डों पर ये दोष गुण बन जाते हैं।

न्यूनतायें

(1) नाटक का अङ्गी रस श्रृंगार या वीर ही होना चाहिये।

(2) विदूषक का अभाव।

(3) नायक पर भी लाञ्छन (व्यंग्य)।

(4) नायक की अधीरता ।

(5) वस्तु - विन्यास में शिथिलता

(6) भाषा की दुरूहता।

(7) संवादों का विस्तार।

(8) अनेक अनुचित प्रसङ्ग।

उत्तररामचरित में करूण रस सिद्धि

लक्षणग्रन्थों के अनुसार दृश्यकाव्य में श्रृंगार या वीररस ही होना चाहिये, परन्तु महाकवि भवभूति का उत्तररामचरितम इस नियम का अपवाद है।

रसों की प्राचीन परम्परा को मानने वाले कुछ आलोचक उत्तररामचरितम को विप्रलम्भ - श्रृंगार के अन्तर्गत सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, किन ऐसा मानना भवभूति के साथ घोर अन्याय है। भवभूति ने स्पष्ट रूप से इसमें करुण रस माना है। उनकी मान्यता है कि श्रृंगार आदि भी करूण के ही विकार हैं।

एको रसः करूण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयेत निवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेवे तु तत् समस्तम्॥

(2) तृतीय अंक का प्रारम्भ और अन्त करूण रस से होता है।

(3) सामान्यतया करूण विप्रलम्भ श्रङ्गार अविवाहित प्रेमी-प्रेमिका के प्रणय से होता है। उसके आलम्बन विवाहित दम्पति नहीं होते।

(4) राम का रोदन वियोगी प्रेमी का रोदन नहीं है अपितु विधुर पति का रोदन है।

हा हा देवि! स्फुटित हृदयं संसते देहबन्धः शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तवलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधरो मज्जतीवान्तरात्माः विष्वङ् मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि

(5) यदि सीता परित्याग सावधि होती और मिलन की आशा होती तो विप्रलंभ शृंगार होता, किन्तु यह परित्याग निरावधि है अतः सीता परित्यागजन्य शोक के कारण करूण रस है।

(7) रावण ने छद्म-नीति का प्रयोग करके सीता का हरण किया। उसके वियोग में राम की वह दयनीय स्थिति थी कि पत्थर भी रो देते थे और वज्र का हृदय भी फट जाता।

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणछद्मविधिना
तथा वृत्तं पापयध्थयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वजस्य हृयम्।।

इस प्रकार न्युनमेव महाकवि भवभूति नाटककार के रूप में सर्वतोभावेन श्रेष्ठ एवं अद्वितीय कवि है।

सन्दर्भ सूची -

1. उत्तररामचरित।।- डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी (चौ. सु) पृष्ठ संख्या- 19
2. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास- बलदेव उपाध्याय (चौ.सू) पृष्ठ संख्या-40
3. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास- पृष्ठ संख्या-45, 47
4. महाकवि भवभूति- डॉ. गंगासागर राय, वि.रा , - 78
5. महावीरचरितम्- भवभूति प्रकाश वि.रा. 18
6. उत्तररामचरितम्- भवभूति, कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ संख्या- 184, 52
7. भवभूति महावीरचरित- 1/45
8. भवभूति उत्तररामचरितम्- 2/18
9. भवभूति, उत्तररामचरितम्- 1/39
10. भवभूति, उत्तररामचरितम्-2/31
11. मलतीमादव- अंक 1
12. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास- पृष्ठ संख्या-12
13. वहीं, पृष्ठ संख्या- 47
14. वहीं, पृष्ठ संख्या-107
15. वहीं, पृष्ठ संख्या- 97
16. उत्तररामचरितम् 1/28

भारत में महिला सशक्तिकरण की स्थिति

डॉ० कुमारी पूजा

शिक्षिका, +2 उच्च विद्यालय, खैरा, जमुई (बिहार)

परिचय

देश की आबादी में महिलाओं की हिस्सेदारी 48.1% है. इसके बाद भी शिक्षा, नौकरी, और राजनितिक क्षेत्र में उन्हें आबादी के हिसाब से उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला है।

अब जबकि महिला सशक्तिकरण एक चर्चा का विषय है, खासतौर से पिछड़े और प्रगतिशील देशों में क्योंकि उन्हें इस बात का काफी बाद में ज्ञान हुआ कि बिना महिलाओं तरक्की और सशक्तिकरण के देश की तरक्की संभव नही है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का अर्थ उनके आर्थिक फैसलों, आय, संपत्ति और दूसरे वस्तुओं की उपलब्धता से है, इन सुविधाओं को पाकर ही वह अपने सामाजिक स्तर को उंचा कर सकती है।

पिछले हजारों सालों में समाज के अन्दर महिलाओं की स्थिति में बहुत बड़े स्तर पर बदलाव हुआ है। अगर गुजरे चालीस-पचास सालों को ही देखे तो हमें पता चलता है की महिलाओं को पुरुषों के बराबर हक मिले इस पर बहुत ज्यादा काम किया गया है। पहले के जमाने में महिलाओं के घर से बाहर निकलने पर सख्त पाबन्दी थी। वे घर की चारदीवारी के अन्दर रहने को मजबूर थी। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य यही था की उन्हें अपने पति और बच्चों का ख्याल रखना है। महिलाओं के साथ न तो पुरुषों जैसा व्यव्हार किया जाता था और न ही उन्हें पुरुषों जैसी अहमियत दी जाती थी।

भारत के आजाद होने के बाद महिलाओं की दशा में काफी सुधार हुआ है। महिलाओं को अब पुरुषों के समान अधिकार मिलने लगे है। महिलाएं अब वे सब काम आजादी से कर सकती है जिन्हें वे पहले करने में अपने आप को असमर्थ महसूस करती थी। आजादी के बाद बने भारत के संविधान में महिलाओं को वे सब लाभ, अधिकार, काम करने की स्वतंत्रता दी गयी है जिसका आनंद पहले सिर्फ पुरुष ही उठाते थे। वर्षों से अपने साथ होते बुरे सफलूक के बावजूद महिलाएं आज अपने आप को सामाजिक बेड़ियों से मुक्त पाकर और भी ज्यादा आत्मविश्वास से अपने परिवार, समाज तथा देश के भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए लगातार कार्य कर रही है।

हमारे देश की आधी जनसँख्या का प्रतिनिधित्व महिलाएं करती है। इसका मतलब देश की उन्नति का आध दारोमदार महिलाओं पर और आध पुरुषों के कंधे पर निर्भर करता है। हम अंदाजा भी नहीं लगा सकते उस समय का जब इसी आधी जनसँख्या को वे मूलभूत अधिकार भी नहीं मिल पाते थे जिनकी वे हकदार है। उन्हें अपनी जिंदगी अपनी खुशी से जीने की भी आजादी नहीं थी। परन्तु बदलते वक्त के साथ इस नए जमाने की नारी ने समाज में वो स्थान हासिल किया जिसे देखकर कोई भी आश्चर्यचकित रह जायेगा। आज महिलाएं एक सफल समाज सुधारक, उधमी, प्रशासनिक सेवक, राजनयिक आदि है।

महिलाओं की स्थिति में सुधार ने देश के आर्थिक और सामाजिक सुधार के मायने भी बदल कर रख दिए है। दूसरे विकासशील देशों की तुलना में हमारे देश में महिलाओं की स्थिति काफी बेहतर है। यद्यपि हम यह तो नहीं कह सकते कि महिलाओं के हालात पूरी तरह बदल गए है पर पहले की तुलना में इस क्षेत्र में बहुत तरक्की हुई है। आज के इस प्रतिस्पर्धत्मक युग में महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति पहले से अधिक सचेत है। महिलाएं अब अपनी पेशेवर जिंदगी (सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक) को लेकर बहुत अध्कि जागरूक है जिससे वे अपने परिवार तथा रोजमर्रा की दिनचर्या से संबंधित खर्चों का निर्वाह आसानी से कर सके।

महिलाएं अब लोकतंत्र और मतदान संबंधी कार्यो में भी काफी अच्छा काम कर रही है जिससे देश की प्रशासनिक व्यवस्था सुधर रही है। हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है। उदाहरण के तौर पर मतदान के दिन मतदान केंद्र पर हमें पुरुषों से ज्यादा महिलाओं की उपस्थिति नजर आएगी। इंदिरा गाँधी, विजयलक्ष्मी पंडित, एनी बेसंट, महादेवी वर्मा, सुचेता कृपलानी, पी.टी उषा, अमृता प्रीतम, पदमजा नायडू, कल्पना चावला, राजकुमारी अमृत कौर, मदर टेरेसा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि कुछ ऐसे नाम जिन्होंने महिलाओं की जिंदगी के मायने ही बदल कर रख दिए है। आज नारी बेटी, माँ, बहन, पत्नीं के रूप में अलग अलग क्षेत्र जैसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शिक्षा, विज्ञान तथा और विभागों में अपनी सेवाएं दे रही है। वे अपनी पेशेवर जिंदगी के साथ-साथ पारिवारिक जिम्मेदारियों को भी बखूबी निभा रही है। महिलाओं की दशा सुधरने में इतना सब होने के बाद भी हमे कहीं न कहीं उनके मानसिक तथा शारीरिक उत्पीड़न से जुडी खबरें सुनने को मिल जाती है।

भारत सरकार ने हाल ही में महिला सुरक्षा से संबंधित कानूनों में महत्वपूर्ण बदलाव किया है। पुराने जुवेनाइल कानून 2000 को बदलते हुए नए जुवेनाइल जस्टिस (चिल्ड्रेन केयर एंड प्रोटेक्शन) बिल 2015 को लागू किया है। इसे खास-तौर पर निर्भया केस को ध्यान में रख कर बनाया गया है। इस कानून के अंतर्गत कोई भी किशोर जिसकी आयु 16 से 18 साल के बीच है और वह जघन्य अपराध में शामिल है तो उस पर कड़ी से कड़ी कार्यवाही की जा सकेगी।

महिला सशक्तिकरण क्या है ?

महिला सशक्तिकरण को बेहद आसान शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है कि इससे महिलाएँ शक्तिशाली बनती है जिससे वो अपने जीवन से जुड़े हर फैसले स्वयं ले सकती है और परिवार और समाज में अच्छे से रह सकती है। समाज में उनके वास्तविक अधिकार को प्राप्त करने के लिये उन्हें सक्षम बनाना महिला सशक्तिकरण है।

भारत में महिला सशक्तिकरण की क्यों जरुरत है ?

महिला सशक्तिकरण की जरुरत इसलिये पड़ी क्योंकि प्राचीन समय से भारत में लैंगिक असमानता थी और पुरुषप्रधन समाज था। महिलाओं को उनके अपने परिवार और समाज द्वार कई कारणों से दबाया गया तथा उनके साथ कई प्रकार की हिंसा हुई और परिवार और समाज में भेदभाव भी किया गया ऐसा केवल भारत में ही नहीं बल्कि दूसरे देशों में भी दिखाई पड़ता है। महिलाओं के लिये प्राचीन काल से समाज में चले आ रहे गलत और पुराने चलन को नये रिती-रिवाजों और परंपरा में ढ़ाल दिया गया था। भारतीय समाज में महिलाओं को सम्मान देने के लिये माँ, बहन, पुत्री, पत्नी के रुप में महिला देवियो को पूजने की परंपरा है लेकिन इसका ये कतई मतलब नहीं कि केवल महिलाओं को पूजने भर से देश के विकास की जरुरत पूरी हो जायेगी। आज जरुरत है कि देश की आधी आबादी यानि महिलाओं का हर क्षेत्र में सशक्तिकरण किया जाए जो देश के विकास का आधार बनेंगी।

भारत एक प्रसिद्ध देश है जिसने 'विविधता में एकता' के मुहावरे को साबित किया है, जहाँ भारतीय समाज में विभिन्न धर्मो को मानने वाले लोग रहते है। महिलाओं को हर धर्म में एक अलग स्थान दिया गया है जो लोगों की आँखों को ढ़के हुए बड़े पर्दे के रुप में और कई वर्षो से आदर्श के रुप में महिलाओं के खिलाफ कई सारे गलत कार्यो (शारीरिक और मानसिक) को जारी रखने में मदद कर रहा है। प्राचीन भारतीय समाज दूसरी भेदभावपूर्ण दस्तूरों के साथ सती प्रथा, नगर वधु व्यवस्था, दहेज प्रथा, यौन हिंसा, घरेलू हिंसा, गर्भ में बच्चियों की हत्या, पर्दा प्रथा, कार्य स्थल पर यौन शोषण, बाल मजदूरी, बाल विवाह तथा देवदासी प्रथा आदि परंपरा थी। इस तरह की कुप्रथा का कारण पितृसत्तामक समाज और पुरुष श्रेष्ठता मनोग्रन्थि है।

पुरुष पारिवारिक सदस्यों द्वारा सामाजिक राजनीतिक अधिकार (काम करने की आजादी, शिक्षा का अधिकार आदि) को पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया गया। महिलाओं के खिलाफ कुछ बुरे चलन को खुले विचारों के लोगों और महान भारतीय लोगों द्वारा हटाया गया जिन्होंने महिलाओं के खिलाफ भेदभावपूर्ण कार्यों के लिये अपनी आवाज उठायी। राजा राम मोहन रॉय की लगातार कोशिशों की वजह से ही सती प्रथा को खत्म करने के लिये अंग्रेज मजबूर हुए। बाद में दूसरे भारतीय समाज सुधरकों (ईश्वर चंद्र विद्यासागर, आचार्य विनोभा भावे, स्वामी विवेकानंद आदि) ने भी महिला उत्थान के लिये अपनी आवाज उठायी और कड़ा संघर्ष किया। भारत में विधवाओं की स्थिति को सुधारने के लिये ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने अपने लगातार प्रयास से विध्वा पुर्न विवाह अधिनियम 1856 की शुरुआत करवाई।

भारत में महिला सशक्तिकरण के मार्ग में आने वाली बाधाएं

1) सामाजिक मापदंड: पुरानी और रुढ़ीवादी विचारधाराओं के कारण भारत के कई सारे क्षेत्रों में महिलाओं के घर छोड़ने पर पाबंदी होती है। इस तरह के क्षेत्रों में महिलाओं को शिक्षा या फिर रोजगार के लिए घर से बाहर जाने के लिए आजादी नही होती है। इस तरह के वातावरण में रहने के कारण महिलाएं खुद को पुरुषों से कमतर समझने लगती है और अपने वर्तमान सामाजिक और आर्थिक दशा को बदलने में नाकाम साबित होती है।

2) कार्यक्षेत्र में शारीरिक शोषण: कार्य क्षेत्र में होने वाला शोषण भी महिला सशक्तिकरण में एक बड़ी बाध है। नीजी क्षेत्र जैसे कि सेवा उद्योग, साफ्टवेयर उद्योग, शैक्षिक संस्थाएं और अस्पताल इस समस्या से सबसे ज्यादे प्रभावित होते है। यह समाज में पुरुष प्रधनता के वर्चस्व के कारण महिलाओं के लिए और भी समस्याएं उत्पन्न करता है। पिछले कुछ समय में कार्यक्षेत्रों में महिलाओं के साथ होने वाले उत्पीड़ने में काफी तेजी से वृद्धि हुई है और पिछले कुछ दशकों में लगभग 170 प्रतिशत वृद्धि देखने को मिली है।

3) लैंगिग भेदभाव: भारत में अभी भी कार्यस्थलों महिलाओं के साथ लैंगिग स्तर पर काफी भेदभाव किया जाता है। कई सारे क्षेत्रों में तो महिलाओं को शिक्षा और रोजगार के लिए बाहर जाने की भी इजाजत नही होती है। इसके साथ ही उन्हें आजादीपूर्वक कार्य करने या परिवार से जुड़े फैलसे लेने की भी आजादी नही होती है और उन्हें सदैव हर कार्य में पुरुषों के अपेक्षा कमतर ही माना जाता है। इस प्रकार के भेदभावों के कारण महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक दशा बिगड़ जाती है और इसके साथ ही यह महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को भी बुरे तरह से प्रभावित करता है।

4) भुगतान में असमानता: भारत में महिलाओं को अपने पुरुष समकक्षों के अपेक्षा कम भुगतान किया जाता है और असंगठित क्षेत्रो में यह समस्या और भी ज्यादे दयनीय है, खासतौर से दिहाड़ी मजदूरी वाले जगहों पर तो यह सबसे बदतर है। समान कार्य को समान समय तक करने के बावजूद भी महिलाओं को पुरुषों के अपेक्षा काफी कम भुगतान किया जाता है और इस तरह के कार्य महिलाओं और पुरुषों के मध्य के शक्ति असमानता को प्रदर्शित करते है। संगठित क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को अपने पुरुष समकक्षों के तरह समान अनुभव और योग्यता होने के बावजूद पुरुषों के अपेक्षा कम भुगतान किया जाता है।

5) अशिक्षा: महिलाओं में अशिक्षा और बीच में पढ़ाई छोड़ने जैसी समस्याएं भी महिला सशक्तिकरण में काफी बड़ी बाधाएं है। वैसे तो शहरी क्षेत्रों में लड़किया शिक्षा के मामले में लड़को के बराबर है पर ग्रामीण क्षेत्रों में इस मामले वह काफी पीछे हैं। भारत में महिला शिक्षा दर 64.6 प्रतिशत है जबकि पुरुषों की शिक्षा दर 80.9 प्रतिशत है। काफी सारी ग्रामीण लड़कियां जो स्कूल जाती भी हैं, उनकी पढ़ाई भी बीच में ही छूट जाती है और वह दसवीं कक्षा भी नही पास कर पाती है।

6) बाल विवाह: हालांकि पिछलें कुछ दशकों सरकार द्वारा लिए गये प्रभावी फैसलों द्वारा भारत में बाल विवाह जैसी कुरीति को काफी हद तक कम कर दिया गया है लेकिन 2018 में यूनिसेफ के एक रिपोर्ट द्वारा पता चलता है, कि भारत में अब भी हर वर्ष लगभग 15 लाख लड़कियों की शादी 18 वर्ष से पहले ही कर दी जाती है, जल्द शादी हो जाने के कारण महिलाओं का विकास रुक जाता है और वह शारीरिक तथा मानसिक रुप से व्यस्क नही हो पाती है।

7) महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराध: भारतीय महिलाओं के विरुद्ध कई सारे घरेलू हिंसाओं के साथ दहेज, हॉनर किलिंग और तस्करी जैसे गंभीर अपराध देखने को मिलते हैं। हालांकि यह काफी अजीब है कि शहरी क्षेत्रों की महिलाएं ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के अपेक्षा अपराध्कि हमलों की अधिक शिकार होती हैं। यहां तक कि कामकाजी महिलाएं भी देर रात में अपनी सुरक्षा को देखते हुए सार्वजनिक परिवहन का उपयोग नही करती है। सही मायनों में महिला सशक्तिकरण की प्राप्ति तभी की जा सकती है जब महिलाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके और पुरुषों के तरह वह भी बिना भय के स्वच्छंद रुप से कही भी आ जा सकें।

8) कन्या भूणहत्या: कन्या भूणहत्या या फिर लिंग के आधर पर गर्भपात भारत में महिला सशक्तिकरण के रास्तें में आने वाले सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है। कन्या भूणहत्या का अर्थ लिंग के आधर पर होने वाली भूण हत्या से है, जिसके अंतर्गत कन्या भूण का पता चलने पर बिना माँ के सहमति के ही गर्भपात करा दिया जाता है। कन्या भूण हत्या के कारण ही हरियाणा और जम्मू कश्मीर जैसे प्रदेशों में स्त्री और पुरुष लिंगानुपात में काफी ज्यादे अंतर आ गया है। हमारे महिला सशक्तिकरण के यह दावे तब तक नही पूरे होंगे जबतक हम कन्या भ्रूण हत्या के समस्या को मिटा नही पायेंगे।

भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए सरकार की भूमिका

पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं के खिलाफ होने वाले लैंगिक असमानता और बुरी प्रथाओं को हटाने के लिये सरकार द्वारा कई सारे संवैधानिक और कानूनी अधिकार बनाए और लागू किये गये है। हालाँकि ऐसे बड़े विषय को सफलझाने के लिये महिलाओं सहित सभी का लगातार सहयोग की जरुरत है। आधुनिक समाज महिलाओं के अधिकार को लेकर ज्यादा जागरुक है जिसका परिणाम हुआ कि कई सारे स्वयं-सेवी समूह और एनजीओ आदि इस दिशा में कार्य कर रहे है। महिलाएँ ज्यादा खुले दिमाग की होती है और सभी आयामों में अपने अधिकारों को पाने के लिये सामाजिक बंधनों को तोड़ रही है। हालाँकि अपराध इसके साथ-साथ चल रहा है।

भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए कई सारी योजनाएं चलायी जाती है। महिला एंव बाल विकास कल्याण मंत्रालय और भारत सरकार द्वारा भारतीय महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कई सारी योजनाएं चलायी जा रही है। इन्हीं में से कुछ मुख्य योजनाओं के विषय में नीचे बताया गया है।

1) बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं योजना
2) महिला हेल्पलाइन योजना
3) उज्जवला योजना
4) सपोर्ट टू ट्रेनिंग एंड एम्प्लॉयमेंट प्रोग्राम फॉर वूमेन (स्टेप)
5) महिला शक्ति केंद्र
6) पंचायाती राज योजनाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण

कानूनी अधिकार के साथ महिलाओं को सशक्त बनाने के लिये संसद द्वारा पास किये गये कुछ अधिनियम है - एक बराबर पारिश्रमिक एक्ट 1976, दहेज रोक अधिनियम 1961, अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम 1956, मेडिकल टर्मनेशन ऑफ प्रेग्नेंसी एक्ट 1987, बाल विवाह रोकथाम एक्ट 2006, लिंग परीक्षण तकनीक (नियंत्रक और गलत इस्तेमाल के रोकथाम) एक्ट 1994, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन शोषण एक्ट 2013।

निष्कर्ष

जिस तरह से भारत सबसे तेजी आर्थिक तरक्की प्राप्त करने वाले देशों में शुमार हुआ है, उसे देखते हुए निकट भविष्य में भारत को महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने पर भी ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। हमें महिला सशक्तिकरण के इस कार्य को समझने की आवश्यकता है क्योंकि इसी के द्वारा ही देश में लैंगिग समानता और आर्थिक तरक्की को प्राप्त किया जा सकता है।

सन्दर्भ

- क्लेरिस्स बदर द्वारा वूमन इन ऐन्शन्ट इण्डिया . ट्रबनर्स ओरिएंटल सीरीज. रौत्लेदगे, 2001. आईएसबीएन 978-0-415-24489-3.
- *Pruthi, Raj Kumar; Rameshwari Devi and Romila Pruthi (2001). Status and Position of Women: In Ancient, Medieval and Modern India. आई.एस.बी.एन. 81.7594.078.6.* मूल से 14 फरचरी 2012 को
- "Asia's women in agriculture, environment and rural production: India". मूल से 30 जून 2014 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 24 दिसंबर 2006.
- "Nothing to Go Back To - The Fate of the Widows of Vrindavan, भारती'' WNN - Women News Network

- नेशनल कमिशन फॉर वूमन
- मिनिस्ट्री ऑफ वूमन एंड चाईल्ड डेवलपमेंट
- साउथ एशियन वूमंस नेटवर्क (एसएडब्लूएनईटी)
- वूमन ऑफ दी मुगल डाइनस्टी
- इंडियन वूमन एंड डाउरी लॉ मिस्यूज
- वूमन ऑफ इंडिया
- 21 टॉप वूमन सीईओज ऑफ इंडिया
- दी बैंगल कोड - फिक्शन रिलेटेड टू अनरिटेन सोशल रूल्स दैट इंडियन वूमन हैव टू डील विथ
- ए ग्लोबल नेटवर्क फॉर इंडियन वूमन
- सीआरएस सेंटर फॉर सोशल रिसर्च

‘यात्री’क चित्रामे प्रगतिवादी स्वर

गोपाल कुमार

अतिथि शिक्षक, मैथिली विभाग, आर. के. कॉलेज, मधुबनी (बिहार)

मैथिली साहित्याकाश मध्य आधुनिक मैथिली काव्य क्षेत्रमे श्री वैद्यनाथ मिश्र ‘यात्री’क एक विशिष्ट स्थान अछि। आधुनिक मैथिली साहित्यक भंडारकेँ अपन विविध रचनासँ भरनिहार कवि, उपन्यासकार; संस्कृत, हिन्दी, मैथिली, बंगला भाषाक मर्मज्ञ विशिष्ट विद्वान श्री वैद्यनाथ मिश्र मैथिली साहित्यमे ‘यात्री’ ओ हिन्दी साहित्यमे ‘नागार्जुन’ नामे जानल जाइत छथि। श्री यात्री काव्यगगनमे अपन असाधारण प्रतिभा तथा काव्यक सर्वांगपूर्ण प्रसाद- माधुर्य युक्त काव्यसँ अपन अक्षुण्ण आभाक आभास नहि दैत छथि, अपितु साहित्य मर्मज्ञकेँ रसास्वादन करयबामे सूक्ष्मगतिक प्रदर्शक छथि। जाहि भावक वर्णन आन-आन कवि पैघ-पैघ छन्दमे कएने छथि आ ओकर अभिव्यक्ति लेल ध्वनि तथा अलंकारक बोझसँ दबि गेल छथि, तकरा श्री यात्री गामक भाषाक माध्यमसँ छोट छंदमे अभिव्यक्त करबामे पूर्ण सफल भेल छथि।

श्री यात्री मैथिली साहित्यमे प्रसिद्ध छथि अपन कविता लए कए, कथा लए कए ओ उपन्यास लए कए। यात्रीक यायावरी प्रवृत्ति हुनक अनुभूतिकेँ विस्तृत फल प्रदान कएलक। ओना यात्री मूलत: कवि- उपन्यासकार छथि। मुदा अन्य विधामे सेहो हिनक रचना ठाम-ठाम भैटेत अछि। गीत, यात्रा, संस्मरण, तथा रिपोर्ताजक अलावे हिनक किछु स्तम्भ लेखन उपलब्ध अछि। मैथिली साहित्यमे कवि यात्रीक पाँच टा प्रकाशित पोथी अछि, जाहिमे ‘चित्रा’, ‘पत्रहीन नग्न गाछ’ क्रमश:1949,1968 ई. मे प्रकाशित कविता संकलन अछि। ‘पत्रहीन नग्न गाछ’ पोथीपर श्री यात्रीकेँ भारत सरकारक प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली द्वारा 1968 ई.मे पुरस्कृत कएल गेलनि।हुनक लिखल मैथिली उपन्यास पारो, नवतुरिया आ बलचनमा प्रकाशित अछि।

श्री यात्रीक कवि-व्यक्तित्व विकासशील रहल अछि। प्रारम्भमे ओ अपन गुरु सीताराम झासँ छन्दोबद्ध कविता तथा मैथिल आचार-विचारक शिक्षा ग्रहण करैत रहलाह। कालान्तरमे जखन व्यापक विश्वक दर्शन कएलनि तँ महापंडित राहुल सांकृत्यायनक हुनकापर बहुलांश प्रभाव पड़ल। अत: ओ ‘एहि बातक पातिल फोड़ि-फाड़ि’1 बौद्ध भिक्षुक भए गेलाह। हुनक सत्यान्वेषणक ई यात्रा चलितहि रहल। ओ बौद्धसँ पुन: ब्राह्मण भेलाह आ युवकसँ प्रोढ, गांधीवादीसँ साम्यवादी भेलाह, मुदा रहलाह मिथिलाक माटि-पानिसँ अगाध स्नेह रखनिहार मैथिल पुत्र। जीवनक संघर्ष हुनक बौद्धिक चेतनाकेँ झंकृत करैत रहल। पूंजीवादी व्यवस्थाक औकातसँ उत्पन्न आक्रोश हुनका अनायास द्वंदात्मक भौतिकवादपर आधरित साम्यवाद दिस आकृष्ट कएलक। एहि तरहेँ विभिन्न संस्कारक सम्मिलित प्रभाव हुनक व्यक्तित्वकेँ संघर्षशील स्वरुप प्रदान कएलक। हुनका अखबार आ पत्र-पत्रिकाक माध्यमे देश-दुनियाक विषयमे जनबाक अवसर भेटलन्हि। एकर प्रभाव वामपंथी विचारधरा, जे मार्क्सवाद नामेँ अभिहित छल, मे रूचि लगलनि जे क्रमश: प्रगाढ़ होएत गेलनि। एकरे परिणाम छल 1938 ई. क किसान आंदोलनमे सहभागिता आ जेल-यात्रा एहि मार्क्सवादी विचारधराक परिणति थीक साहित्य प्रगति। मैथिली साहित्यमे एहि भावधारामे अग्रणी रचनाकार रहथि यात्री।

मैथिली ठेठ शब्द सभपर यात्रीक पूर्ण अधिकार छनि। समाजक दरिद्रताक प्रतीक एक ग्रामीण कन्याक यथार्थ चित्रण हुनक कविता सभमे भेल अछि। हिनक बहुतो कवितामे कृषक जीवन समस्त आकांक्षा ओ वेदनामे बजैत अछि। एक गोठविछनीक दयनीय दशाकेँ देखि कवि क्षुब्ध छथि, दुखी छथि आ छथि परम आश्चर्यित। ओकर दशामे ई किछुओ परिवर्तन नहीं पबैत छथि। भाग्य-लक्ष्मी ओकरापर सदिखन रूष्टे छथिन। एहि पक्षक समर्थन हेतु हिनक ‘गोठबिछनी’ शीर्षक कविताक किछु पाँती प्रस्तुत करैत छी -

''माघक ठार, रौद बिइसाखक,
तोरा लेखे बड़नी धन सन ।
दीन बालिके अजगुत लागए,
केहेन कठिन छउ तोहर जीवन। ''[2]

श्री यात्री हृदयसँ एक प्रगतिवादी कवि छथि। प्रगति शब्दक सार्थक अर्थ होइछ आगा बढ़ब। प्रगतिवादी साम्राज्यवादक विपत्ति थीक। एहिमे बौद्धिकता तथा व्यंग्यक माध्यमसँ निम्नवर्गक उत्पीड़न ओ आर्थिक विषमतासँ उत्पन्न कचोट ओ वेदना प्रकट कएल गेल अछि। प्रगतिवाद साम्राज्यवादक विभीषिकाक विरुद्ध जनवादी स्वरकँ उठबैछ।

हिनक कवितामे देश-प्रेमसँ उत्पन्न आत्मावेदना, साम्राज्यवादक भयंकर स्वरूपक विरुद्ध क्रांति, जनवादी परंपराकँ संगठित रूपसँ प्रकट करब, समाजमे प्रचलित कलारूपकँ अपनाएब आ जनभाषाक सरस-सरल स्वरूप दिशि झुकान देखैत छी। एतवे नहि, हिनक रचनामे मार्क्सवादी प्रभाव देखबामे अबैछ, जाहिमे आर्थिक विषमता, समष्टिक भावना, भावक गहराइ, पलायनवादी प्रवृत्ति अभाव, समष्टिक चेतनापर बल निम्न स्तरक जीवन पर प्रकाश अछि। जन-जागृति हेतु प्रगतिशील भावना 'हम छी क्षुब्ध' शीर्षक कवितामे द्रष्टव्य थीक--

''किए जनपद बनल रहतै,सदए वज्र देहात?
किए ने लगतैक सभकेँ, नगर केर बसात ?
किए ई पछुएल रहतै, अपन मिथिला-देश ?
पाकि जेतइ प्रवासहिमे, किए ककरो केश ?''[3]

उपर्युक्त कविता पर दृष्टिपात करितहि कवि हृदयक एक स्पष्ट चित्र हमरा लोकनिक समक्ष अबैत अछि।अपन मातृभूमिक प्रति प्रेम, एहि ठामक निवासी जे जीविकोपार्जनक हेतु चिर-प्रवासी छथि, तनिका सभक प्रति सहानुभूति, मिथिलाक प्रगतिहीनतापर क्षोभ तथा जनपदक बीच एक मंगलमयप्रभात सृजन करबाक प्रबल उत्कंठा परिलक्षित होइछ। प्रथम दू पाँती पढ़ला उत्तर बोध होइछ जे देहातक अज्ञान तिमिरकँ देखि कविक मन उबि गेल छनि। हिनक हृदय मे देहातक विषमता ओ नगरक 'विकास' दुहुक अनुभूति छनि।नगरक सुसज्जित ओ सुसंस्कृत वातावरण देहातमे उपस्थित करबाक कविक प्रयास हिनक प्रगतिशीलताक प्रतीक अछि। हिनक काव्यमे युग-चेतना समुन्नत रूपसँ जागृत भेल अछि।ई 'प्रलय-सृजन'क विप्लवी छथि।

कविकँ आत्मविश्वास छनि जे शिक्षाक दिव्यलोकसँ वंचित रहबाक कारणेँ तथा साधनक अभावमे आइ हमरा समाजक नेना सभ 'घसबहि', 'महिसबारि' करैत अछि।जँ ओकरा सभक लेल भोजन, शिक्षण आदिक समुचित प्रबंध रहितय तँ ओहिमे सँ बहुतो तानसेन, रवि वर्मा आदिक सन गुणज्ञ तथा कालिदास ओ विद्यापति सन कवि भए सकैत आ मिथिलाक कोन कथा जे सम्पूर्ण विश्वक इतिहासमे अपन नामकँ अमर बनबितए!किन्तु खेद! जे ओ चिर उपेक्षित अछि, धनहीन अछि तथा अछि प्रगति पथसँ दूर।ओकरा सभक प्रतिभाक आइ कनियो विकास नहि। एहि विषमताकँ देखि कवि भावनाक तीव्र आवेगमे कहैत छथि जे हमर विप्लवी गान जँ पेट-पाँजर सटल बोनिहारक कानमे पहुँचय तँ साधना सभ प्रकारसँ सफल होएत। 'कविक स्वप्न' शीर्षक कवितामे हिनक हृदयक अनुभूतिक तीव्र आवेग कोन प्रकारसँ अभिव्यंजित भेल अछि से देखू--

''तानसेन कतेक रविवर्मा कते,
घास छीलथि बागमतीक कछेर मे।
कालिदास कतेक विद्यापति कते,
छथि हेरायल महिसबारक हेड़मे॥

* * * *

हमर वीणा ध्वनि कने पहुँचौत जँ,
सटल पाँजर बोनिहारक कान मे।''[4]

श्री यात्री स्वतंत्र विचारक लोक छथि।ओ साम्यवादी छथि मुदा गांधीक प्रति हुनका आस्था छनि।ओ भारतीय छथि, मुदा मैथिल सेहो छथि। मैथिलीक कविमे यात्री पहिल व्यक्ति छथि जे यन्त्रयुगक सोझ सम्पर्क मे अएलाह। अनुभूति हुनक अपन छनि। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादपर आधरित जाहि विचारधराक यात्री पक्षधर छथि। ओ साहित्यमे प्रगतिवादी नामसँ अभिहित कएल जाएछ। प्रगतिवादी साहित्यक समस्त लक्षण यात्री-काव्यमे अक्षरश: उपलब्ध होइछ।

मैथिली साहित्यमे श्री यात्री युगान्तर उपस्थित कएलनि अछि तथा एकरा नव आलोक प्रदान कए विकसित कएलनि अछि। जाहि प्रगतिवादकँ भुवनेश्वर सिंह भुवन अपन रचनामे बीज रोपण कएलनि, ओकरा यात्री अपन रचनामे पल्लवित-पुष्पित कएलनि अछि। ओ जन-जीवन तथा जगतक कवि छथि।ओ अपन रचनामे वर्तमान स्वार्थनीति, पूंजीवाद तथा शासक वर्ग पर तीक्ष्ण प्रहार कएलनि अछि।ओ रूढ़िग्रस्त समाज, अंधविश्वास, वर्ग संघर्षक चित्रण तथा सोषित वर्गक प्रति सहानुभूतिक अभिव्यक्ति बड़ सुक्ष्मतासँ कएलनि अछि।हुनक रचनामे साम्यवाद भए उठल अछि। ओ 'परम सत्य' शीर्षक कवितामे कहैत छथि-

''सत्य धरती, सत्य थीक ई आकाश,
परम सत्य मनुक्ख अपनहि थीक।''[5]

श्री यात्री मैथिली कविताक प्रगतिवादी धाराक सर्वश्रेष्ठ कवि छथि। हुनका शोषणरहित समाजक प्रति आस्था छनि। ओ तेहन समाजक कल्पना करैत छथि, जाहिमे सभ काज करत, बैसल क्यो नहि रहत,क्यो मूर्ख नहि रहत, क्यो शोषण नहि कए सकत, क्यो बहुत रास संचय नहि कए सकत। हुनक विचारधाराक अभिव्यक्तिक धारणा 'वंदना' शीर्षक कवितामे कएने छथि--

''नहि पड़ल रहत भेटतैक काज,
सभ करत मौज सभ करत राज।''[6]

श्री यात्रीक जीवन आर्थिक पराभवसँ ग्रस्त रहल अछि। जीवनक जटिल परिस्थितिक हुनका कटु अनुभव छनि। अत: हुनक काव्य आधुनिक युगक प्रगतिशील भावनासँ अनुप्राणित अछि। सामाजिक रुढ़िक विरोध, समसामयिक स्थितिक चित्रण,संघर्षरत व्यक्तिक समष्टिमूलक चित्रण आदि हुनक काव्यक स्वर अछि। 'कविक स्वप्न' शीर्षक कवितामे कवि इएह आकांक्षा अंकित करैत कहैत छथि--

'' तोहर मान दौड़ैत छह कोठाक दिस,
पैघ-पैघ धनीक दिस दरबार दिस ।
गरीबक दिस ककर जाइत छै नजरि,
के तकै अछि हमर नोरक धार दिस।''[7]

श्री यात्री संघर्षशील व्यक्तित्व स्थितिक आधारपर मात्र नोर बहायब पर्याप्त नहि बुझैछ। ओ ओहि स्थितिमे आमूल परिवर्तन अनबाक चेष्टा करैछ। ओ कविताक प्रयोग हथियारक रूपमे करैछ। अत: कवि 'कविक स्वप्न' शीर्षक कविता मे कहैत छथि--

''उठा कवि तों दहक ललकारा कने
गिरी शिखर पर पथिक दल चढतैक रे।''[8]

चित्राक अधिकांश कवितामे यथार्थवाद स्पष्ट अछि। एहि ठाम प्रगतिवादी कवि यात्री समाजवादी अर्थनीतिके स्वीकार करैत छथि। एहि अर्थनीतिक स्वीकृतिमे कतहु समाजवादी सिद्धांतक पालन करैत छथि आ कतहु अपन काव्यमे साम्यवादी योजनाकँ अपनबैत छथि। एहि लेल हिनक प्रगतिवादी कवितामे 'समाजवादी' तथा 'साम्यवादी' दुनू स्वर सुनबामे अबैछ।

श्री यात्री भाव एवं भाषा दुनू दृष्टिसँ मैथिली काव्य साहित्यमे क्रांति अनलनि अछि। ओ भावनुकूल भाषाक प्रयोगमे निपुण छथि। डा.दुर्गानाथ झा 'श्रीश' अपन इतिहासमे लिखैत छथि --

''अभिव्यक्ति शैलीमे तँ ई क्रांति उपस्थित कए देल। मैथिली साहित्यमे हिनकहि टा भाषा यथार्थ रूपमे लोकभाषा थिक। किंतु अपन प्रतिभाक स्पर्शसँ ओ ग्राम्य भाषाकँ साहित्यिकता प्रदान कएल। हिनक रचनाकँ सर्वाधिक मार्मिकता प्रदान करैत अछि से थिक इएह स्वभाविक भाषाक प्रयोग ओ वक्रतापूर्ण कहबाक रीति जाहिमे व्यंग्यार्थ विशेष चमत्कारक होइत अछि।''[9]

यात्रीक कविताक अभिव्यंजना-शक्ति बेजोड़ अछि।ओकर व्यंग सोझे हृदयपर चोट करैत अछि, मस्तिष्ककँ झमारि दैत अछि। ओहि व्यंजना-शक्तिकँ तीव्र करबामे हुनक भाषा सेहो खूब सहायक अछि। एखुनका कविमे मैथिली भाषाक सुच्चा रूप हुनकामे

देखल जा सकैछ। हुनक परवर्ती अनुयायी हुनक भाषाक सामर्थ्यकँ नहि छुबि सकलाह अछि। हुनक अलंकार-योजना अभिप्रेत भावनाकँ वहन करबामे पूर्ण सक्षम भेल अछि। लोकजीवनमे भोतिआयल उपमाकँ साहित्य क्षेत्रमे आनि ओहिसँ अपन भाषाक श्रृंगार कएलनि अछि। कहबाक तात्पर्य अछि जे हुनक दृष्टि सामयिक जीवनक प्रत्येक स्तरकँ स्पर्श करैत प्रगतिवादी स्वरकँ मूर्तिमान कएलक अछि। शोषक सत्ता तथा जर्जर रूढ़ी रीतिपर हुनक रचना बज्र खसल अछि। हुनक उदघोषणा छनि --

''जे काजुल से भरिपेट खाएत।

ककरो नहि बड़का धोधि हएत।।''[10]

चित्रा मे दिसंबर 1941ई. सँ ल' क' नवंबर 1949 ई. धरिक कुल 28 गोट कविता संकलित अछि।एहि पोथीमे कवि एक कुशल चित्रकारक रूपमे विविध चित्र सजा कए हमरा सबक समक्ष उपस्थित भेल छथि। हुनक काव्य संवेदनाक केंद्रमे सुख-दुखक लेल एक सामाजिक मनुक्खक भूमि प्रतिष्ठित अछि।

एहि तरहँ श्री यात्री मैथिली साहित्यमे प्रगतिवादी स्वरकँ पुष्पित ओ पल्लवित कएलनि।

सन्दर्भ :

1. यात्री समग्र- वैघनाथ मिश्र 'यात्री', पृष्ठ संख्या-26,प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,पटना-6,प्रकाशन वर्ष-2003ई.
2. ओएह - पृष्ठ संख्या- 74
3. ओएह - पृष्ठ संख्या- 143
4. ओएह - पृष्ठ संख्या - 29
5. ओएह - पृष्ठ संख्या - 73
6. ओएह - पृष्ठ संख्या - 63
7. ओएह - पृष्ठ संख्या - 28
8. ओएह - पृष्ठ संख्या- 29
9. मैथिली साहित्यक इतिहास-डा. दुर्गानाथ झा 'श्रीश', पृष्ठ संख्या- 205, प्रकाशक-भारती पुस्तक केन्द्र, टावर चौक, दरभंगा, प्रकाशन वर्ष -1991 ई.
10. यात्री समग्र- वैघनाथ मिश्र 'यात्री', पृष्ठ संख्या-63, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., पटना- 6, प्रकाशन वर्ष- 2003

राजभाषा के रूप में हिन्दीः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० प्रीति बैश्य

सहकारी प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, प्रागज्योतिष महाविद्यालय, गुवाहाटी-781009, कामरूप (असम)

संक्षिप्त सार

राज्य या प्रशासन की भाषा 'राजभाषा' है, जिसका प्रयोग सरकारी कामकाज के लिए होता है। राजभाषा का प्रयोग क्षेत्र शासन की इकाइयाँ-विधान, शासन, न्यायपालिका और कार्यपालिका तक सीमित रहता है। हिन्दी को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(1)में राजभाषा की मान्यता दी गयी है। हमारा संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू होने के बाद यह आशा की गयी थी कि सन् 1965 तक हिन्दी सम्पूर्ण राष्ट्र में राजभाषा का उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेगी और अंग्रेजी के सहयोग की उसे आवश्यकता न होगी। भारत सरकार ने हिन्दी को देश की राजभाषा के रूप में विकसित करने के लिए कुछ आवश्यक कदम भी उठाये हैं, लेकिन राजकीय कार्यों में अंग्रेजी का प्रयोग हिन्दी की अपेक्षा आज भी अधिक है। विविध प्रयासों के परिणामस्वरूप हिन्दी का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। यह आशा निराधार नहीं है कि भविष्य में हिन्दी सम्पूर्ण राष्ट्र में सही अर्थ में राजभाषा का उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेगी।

बीज शब्दः हिन्दी, राजभाषा, संविधान, सरकारी कामकाज

1.प्रस्तावना

राज्य या प्रशासन की भाषा 'राजभाषा' है। इसके माध्यम से सभी प्रशासनिक कार्य सम्पन्न होते हैं। राजभाषा औपचारिक माध्यम के रूप में प्रशासन और प्रशासित के बीज सेतु का काम करती है। राजभाषा का प्रयोग क्षेत्र शासन की इकाइयाँ-विधन, शासन, न्यायपालिका और कार्यपालिका तक सीमित रहता है। राजभाषा सरकारी कामकाज के लिए, प्रशासन की फाइलों और पत्रचार के लिए व्यवहृत होती है।

2. अध्ययन का महत्व

आज हिन्दी का प्रयोग सामान्य भाषा, साहित्यिक भाषा, परिनिष्ठित भाषा, प्रयोजनमूलक भाषा आदि विविध रूपों में हो रहा है। हिन्दी का प्रयोग राजकाज चलाने के लिए भी होता है। अतः हिन्दी भाषा के विविध रूपों के प्रयोग को पूर्ण रूप से जानने के लिए, सरकारी कामकाज और प्रशासन में प्रयुक्त भाषा तथा उसकी उपयोगिता को समझने के लिए उपर्युक्त अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण होगा।

3. अध्ययन का शीर्षक

अध्ययन का शीर्षक है - राजभाषा के रूप में हिन्दीः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन।

4. अध्ययन का उद्देश्य

राजभाषा के रूप में हिन्दी का चित्रण करना प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य रहा है।

5. अध्ययन की सीमाबद्धता

हिन्दी का प्रयोग क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। हिन्दी का प्रयोग विज्ञान, चिकित्सा आदि में 'तकनीकी भाषा' के रूप में, वाणिज्य-व्यापार, बैंक आदि में 'वाणिज्यिक भाषा' के रूप में, रेडियो, टेलीविजन, पत्रकारिता, विज्ञापन आदि में 'जनसंचारी भाषा' के रूप में, साहित्य की विविध विधाओं में 'साहित्यिक भाषा' आदि विविध नाम-रूपों के साथ हो रहा है। विषय के अंतर्गत प्रस्तुत शोध-पत्र में हिन्दी के विविध रूपों में से राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग पर चर्चा की गयी है। इसका प्रयोग सरकारी कामकाजों में कहाँ तक हुआ है इस पर विचार किया गया है।

6. अध्ययन की पद्धति एवं व्यवहृत उपाय

अध्ययनकी पद्धति विश्लेषणात्मक है। शोध-पत्र MLA (MODERN LANGUAGE ASSOCIATION) 'आधुनिक भाषा संस्था' के सप्तम संस्करण शोध पद्धति के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इसमें राजभाषा हिन्दी से संबन्धित ग्रन्थों तथा इन्टरनेट का भी उपयोग किया गया है।

7. विश्लेषण एवं निर्वचन

हिन्दी भारतीय संविधान के अष्टम अनुसूची में स्वीकृत 22 महत्वपूर्ण भाषाओं (हिन्दी, असमीया, बंगला, उड़िया, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, कश्मीरी, उर्दू, संस्कृत, सिंधी, मणिपुरी, कोंकणी, नेपाली, संथाली, मैथिली, बोड़ोऔर दोगरी) में से एक है। हिन्दी भारत के 10 राज्यों (बिहार, झाड़खंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, राजस्थान, हरियाना, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली) की राज्य भाषा ही नहीं, विदेशों में व्यवहृत संपर्क भाषा ही नहीं, इसे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(1) में राजभाषा की मान्यता दी गयी है। हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में 14 सितम्बर सन् 1949 को स्वीकार किया गया। संविधान में राजभाषा के संबंध में धारा 343-352 तक की व्यवस्था की गयी है। भारत के संविधान में कहीं भी 'राजभाषा' शब्द की कोई परिभाषा या व्याख्या नहीं दी गयी है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार -

राजभाषा उसे कहते हैं जो केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा पत्र-व्यवहार, राजकार्य और अन्य सरकारी लिखा-पढ़ी के कार्य में लायी जाए ('तरुण': 13)।

'राजभाषा' का प्रारम्भिक उल्लेख 343(1) में यह कहकर हुआ है कि -

संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप (अर्थात 1, 2, 3 आदि) होगा।

राजभाषा के रूप में 'हिन्दी' को स्वीकृति देने में तीन मुख्य बातें थीं -

1. हिन्दी को राजभाषा के रूप में विकास किया जाए,
2. संविधान के प्रारम्भ से पंद्रह वर्ष तक अंग्रेजी ही राजभाषा रहे और
3. हिन्दी के विकास के कारण अन्य भारतीय भाषाओं के हितों की उपेक्षा न हो।

भारतीय संविधान के भाग 5, 6 और 17 राजभाषा संबंधी उपबंध हैं, जिनमें भाग 17 का शीर्षक 'राजभाषा' है। इस भाग में क्रमश: संघ की भाषा, प्रादेशिक भाषाओं, उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय आदि की भाषा तथा कुछ विशेष निर्देशों से संबन्धित चार अध्याय हैं। ये सभी अध्याय अनुच्छेद 343-351 के अंतर्गत हैं। अनुच्छेद 351 में हिन्दी के समुचित विकास का दायित्व भी केन्द्रीय सरकार को सौंपा गया। डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या इस संदर्भ में कहते हैं -

सन् 1949 में नागरी-लिपि में लिखी हुई हिन्दी को अंग्रेजी के साथ हमारे संविधान में 'सरकारी भाषा' (Official Language) की मान्यता दी गयी है। पर इस सरकारी भाषा हिन्दी का भविष्य रूप क्या होगा, इस विषय पर संविधान की 351 संख्यक धारा में कुछ इंगित किया गया है (चाटुर्ज्या: 163)।

हिन्दी के सरकारी प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा हिन्दी भाषा-आदेश जारी किया गया, जिसके अनुसार भारत सरकार के सभी मंत्रालय तथा संबंध विभाग निम्न कार्यों के लिए अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया-

1. जनता के साथ पत्र-व्यवहार में,
2. प्रशासनिक रिपोर्ट, सरकारी पत्रिकाओं तथा संसद में प्रस्तुत की जानेवाली रिपोर्टों में,
3. सरकारी प्रस्तावों, संसदीय विधिओं, संधिपत्र आदि में,
4. जिन राज्य सरकारों ने हिन्दी को अपनी राजभाषा मान लिया है, उनके साथ पत्र-व्यवहार में,
5. अन्य देशों की सरकारों, उनके राजदूतों तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ पत्र-व्यवहार आदि में ।

विभिन्न मंत्रालयों में हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के लिए गृह मंत्रालय ने तारीख 2 दिसंबर, 1955 में एक कार्यालय ज्ञापन जारी करके सभी मंत्रालयों को ये सुझाव दिए -

1. जनता से प्राप्त हिन्दी पत्रों का उत्तर जहां तक संभव हो, हिन्दी में ही दिये जाए। उनकी भाषा सरल होनी चाहिए।
2. प्रशासनिक रिपोर्ट, सरकारी पत्रिकाओं, संसद को प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्टों आदि को यथासंभव अंग्रेजी और हिन्दी दोनों में प्रकाशित किया जाए।
3. सरकारी संकल्पों, विधायी अधिनियमों आदि को यथासंभव अंग्रेजी और हिन्दी में जारी किया जाए। किन्तु इनपर यह बात स्पष्ट रूप से लिख देनी चाहिए कि अंग्रेजी पाठ ही प्रामाणिक माना जाएगा।
4. जिन राज्यों ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान लिया है, उनके साथ पत्र-व्यवहार में अंग्रेजी के साथ हिन्दी का अनुवाद भी भेजा जाए ताकि संवैधानिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

हिन्दी को संघ की राजभाषा 1950 में ही घोषित कर दिया गया था। परंतु केंद्र सरकार के कामों में हिन्दी को अंग्रेजी का स्थान देने के लिए गंभीरता से प्रयास केंद्र सरकार द्वारा 1960 और विशेषकर राजभाषा अधिनियम, 1963 के पास होने के बाद से प्रारम्भ किया गया और उस अधिनियम में 1976 में संशोधन किया गया। संक्षेप में राजभाषा अधिनियम और नियमावली की मुख्य बातें इस प्रकार हैं -

1. राजकीय कामकाज में हिन्दी और अंग्रेजी का प्रयोग साथ-साथ होगा।
2. अंग्रेजी सरकार के कामकाज में सहभाषा के रूप में जारी रखने की कोई निश्चित समय का निर्धरण नहीं होगा।
3. जिन राज्यों ने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है उनके साथ पत्र-व्यवहार अंग्रेजी में किया जाएगा, अर्थात जिन राज्यों ने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपने पत्र-व्यवहार के माध्यम के रूप में अपना लिया है, उनके बीच पत्रादि हिन्दी में ही लिखे जाएँगे।
4. हिन्दी में पत्र-व्यवहार निम्नलिखित कार्यालयों के बीच होगा-
   (क) केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय को।
   (ख) एक विभाग या कार्यालय से दूसरे विभाग या कार्यालय को।
   (ग) उन कम्पनियों या निगमों के बीच जिनको केन्द्रीय सरकार ने अपना लिया है।
   (घ) केन्द्रीय सरकार और हिन्दी भाषी क्षेत्रों में स्थित राज्य सरकार के कार्यालयों या विभागों के बीच।

उपधारा (3) के अनुसार-संकल्प (Resolutions), सामान्य आदेश (GeneralOrder@Circular), अधिसूचनाएँ (Notifications), नियम (Rules), प्रशासनिक और अन्य रिपोर्टें (Administrativeand Other Reports), विज्ञापन (Advertisements), प्रेस विज्ञप्तियाँ (PressReleases), संविदा (Contracts), करारनामे (Agreements), सूचनाएँ (Notices), निविदाएँ (Tenders), लाइसेंस (Licences), परमिट (Permits) आदि में हिन्दी और अंग्रेजी का साथ-साथ प्रयोग अनिवार्य है। जब तक अहिंदीभाषी राज्य हिन्दी को एकमात्र राजभाषा बनाने के लिए सहमत न हो जाएं, तब तक हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी भी काम में लायी जाएगी।

5. संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए हिन्दी के प्रयोग में हुई प्रगति का पुनर्विलोकन एक संसदीय समिति द्वारा किया जायेगा, जो अपनी सिफारिशें राष्ट्रपति के सामने रखेगी।

सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए 1976 में राजभाषा नियम बनाया गया। इससे हिन्दी के प्रयोग में काफी सहायता मिली है। इस नियम की महत्वपूर्ण व्यावस्थाएँ मुख्यत: इसप्रकारहैं ख्र

1. हिन्दी भाषी राज्यों (जिन्हें 'क' क्षेत्र के राज्य कहा गया) के केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार अथवा किसी अन्य कार्यालय या व्यक्ति को पत्र हिन्दी में भेजे जाएंगे। यदि किन्हीं असाधारण दशाओं में कोई पत्रदि इन्हें अंग्रेजी में भेजे जाते हैं, तो उनका हिन्दी अनुवाद भी साथ में भेजा जाएगा।
2. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से पत्रादि पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र तथा चंडीगढ़, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के संघ शासित क्षेत्रों में प्रशासनों को (जिन्हें 'ख' में शामिल किया गया है) सामान्यत: हिन्दी में भेजे जाते हैं। लेकिन इन राज्यों में किसी व्यक्ति को भेजे जानेवाले पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी दोनों में से किसी भाषा में भेजे जा सकते हैं।
3. अन्य अहिंदी भाषी राज्यों (जिन्हें 'ग' क्षेत्र कहा गया है) के किसी कार्यालय या व्यक्ति को पत्रादि सामान्यतया अंग्रेजी में भेजे जाएंगे।
4. केन्द्रीय सरकार के 'ख' तथा 'ग' क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी अथवा अंग्रेजी में हो सकते हैं।
5. हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर हिन्दी में ही दिए जाएंगे।
6. कर्मचारी फाइल में टिप्पण हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकता है और उससे दूसरी भाषा में अनुवाद नहीं माँगा जाएगा।
7. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से संबन्धित सभी मैनुअल, फार्मों और रजिस्टरों के शीर्ष, नामपट्ट, सूचनापट्ट आदि हिन्दी-अंग्रेजी दोनों भाषाओं में होगी।

हमारा संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ। संविधान के लागू होने के बाद यह आशा की गयी कि सन् 1965 तक हिन्दी सम्पूर्ण राष्ट्र में राजभाषा का उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेगी और अंग्रेजी के सहयोग की उसे आवश्यकता न होगी। भारत सरकार ने हिन्दी को देश की राजभाषा के रूप में विकसित करने के लिए कुछ आवश्यक कदम भी उठाये हैं, जैसे 1960 में केंद्रीय हिन्दी निदेशालय की स्थापना हुई, प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में केंद्रीय हिन्दी समिति गठित की गई। प्रत्येक मंत्रालय और विभाग में संबन्धित मंत्री की अध्यक्षता में हिन्दी सलाहकार समितियों की भी स्थापना हुई, जो मंत्रालय में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने में सरकार को सलाह देती है। इसके अतिरिक्त राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 4 के उपबंधों के अनुसार संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया। यह समिति निरंतर भारत सरकार के कार्यालयों का हिन्दी की प्रगति पर समीक्षा कर राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। तकनीकी और विधि शब्दावली निर्माण के लिए 1961 में राष्ट्रपति के आदेशानुसार वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना, 1971 में प्रशासनिक साहित्य के अनुवाद के लिए केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो का गठन, अहिंदी भाषी सरकारी कर्मचारियों को हिन्दी प्रशिक्षण देना, हिन्दी टाइपराइटरों, कंप्यूटर, इलैक्ट्रानिक टेलीप्रिंटर आदि यांत्रिक साधानों की व्यवस्था करना, 1975 में राजभाषा से संबन्धित संवैधानिक, विधिक उपबंधों के कार्यान्वयन हेतु राजभाषा विभाग की स्थापना, 1986 में नई शिक्षा नीति लागू करना आदि महत्वपूर्ण कार्य भी राजभाषा हिन्दी के विकास के लिए किए गए। उच्च शिक्षा के माध्यम के संबंध में नई शिक्षा नीति के कार्यान्वयन-कार्यक्रम में कहा गया कि -

स्कूल स्तर पर आधुनिक भारतीय भाषाएँ पहले ही शिक्षण माध्यम के रूप में प्रयुक्त हो रही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि विश्वविद्यालय के स्तर पर भी इन्हें उत्तरोत्तर माध्यम के रूप में अपना लिया जाए। इसके लिए अपेक्षा यह है कि राज्य सरकारें, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से परामर्श करके, सभी विषयों में और सभी स्तरों पर शिक्षण माध्यम के रूप में उत्तरोत्तर आधुनिक भारतीय भाषाओं को अपनाएं (https://hi-m-wikipedia-org>wiki_ dated 17/9/2019)।

इसके अलावा 2004-2005 में कंप्यूटर की सहायता से हिन्दी स्वयं सीखने के लिए कंप्यूटर प्रोग्राम तैयार करवाकर उसके निशुल्क प्रयोग के लिए उसे राजभाषा विभाग की वैब साइट पर उपलब्ध करा दिया। मई, 2018 में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद ने हिन्दी माध्यम से इंजीनियरिंग की शिक्षा की अनुमति दी। 17 जुलाई, 2019 से सर्वोच्च न्यायालय ने अपने सभी निर्णयों का हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं (असमीया, कन्नड़, मराठी, ओडिया एवं तेलुगु) में अनुवाद करना आरंभ किया (https%@@hi-m.wikipedia.org.wiki_dated 17/9/2019)।

लेकिन इन सब प्रयासों के बाद भी आज हिन्दी की जो स्थिति है, वह सर्वजन विदित है। इस प्रसंग में संविधान की राजभाषा संबंधी उपबंधों का जिक्र करना आवश्यक जान पड़ता है। संविधन के अनुच्छेद 343 (1) और 343 (2) में यह कहने के बाद कि सन् 1965 से संघ की राजभाषा हिन्दी होगी, अनुच्छेद 343 (3) में यह अनिश्चितता उपस्थित कर दी गई कि संसद कानून द्वारा सन् 1965 के बाद भी कुछ प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी के प्रयोग का उपबंध कर सकती है। अनुच्छेद 348 में उच्चतम न्यायालय

और विधि की भाषा अंग्रेजी बताई गई है और अंग्रेजी की समाप्ति के बारे में कुछ स्पष्ट नहीं करता। इसके अतिरिक्त आज भी सरकारी प्रेसों की हिन्दी की मुद्रण-क्षमता संतोषजनक नहीं है। इससे न तो हिन्दी के प्रकाशन समय पर निकल पाते हैं और न ही समुचित मात्रा में हिन्दी का प्रयोग बढ़ पाता है। यह भी परिलक्षित होती है कि राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के लिए अभी तक मंत्रालयों, विभागों, कार्यालयों आदि में समुचित हिन्दी स्टाफ की व्यवस्था नहीं हो पायी है। फिर भी, विविध प्रयासों के परिणाम स्वरूप हिन्दी का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

8. उपलब्धियाँ

प्रस्तुत अध्ययन की उपलब्धियों का अनुमान कुछ इसप्रकार लगाया जा सकता है ख़

- प्रशासन की भाषा ही राजभाषा है।
- राजभाषा सरकारी कामकाज के लिए, पत्राचार के लिए व्यवहृत होती है।
- राजभाषा प्रशासन और प्रशासित के बीच सेतु का काम करती है।
- हिन्दी को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) में राजभाषा की मान्यता दी गयी है।
- राजकीय कार्य में हिन्दी के प्रयोग की अपेक्षा अंग्रेजी कई कदम आगे है।
- भारत सरकार ने सरकारी कामकाज में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए कुछ आवश्यक कदम भी उठाये हैं।
- भारत सरकार द्वारा हिन्दी को देश की राजभाषा के रूप में विकसित करने के लिए किए गए प्रयासों के परिणामस्वरूप हिन्दी का प्रयोग दिन-व-दिन बढ़ रहा है।

9. निष्कर्ष

अत:निष्कर्ष रूप में हम यही कह सकते हैं कि आज आजादी के 72 वर्षों के बाद भी हिन्दी को सरकरी काम-काज और प्रयोग की भाषा के जिस रूप में प्रतिष्ठित होनी थी, वह वस्तुत:नहीं हो सकी। राजकीय कार्यो में अंग्रेजी का साम्राज्य अब भी कायम है। विदेश नीति संबंधी कार्य अंग्रेजी में होता है और भारतीय दूतावासों में प्रमुख रूप से अंग्रेजी ही चलती है, हिन्दी का प्रयोग केवल औपचारिक प्रतीक के रूप में होता है। परंतु यह आशा निराधार नहीं है कि हिन्दी अपना खोया हुआ पद अवश्य प्राप्त कर लेगी और सम्पूर्ण राष्ट्र में राजभाषा का उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेगी।

ग्रंथ सूची

- चातुर्ज्या, सुनीतिकुमार. भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी, पंचम. तीसरी आवृत्ति. नई दिल्ली:राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 2004
- मोहम्मद, मलिक. राजभाषा हिन्दी, नई दिल्ली: प्रवीण प्रकाशन, 1999
- रमेश 'तरुण'. प्रयोजनमूलक हिन्दी, नवीन संस्करण. दिल्ली: अशोक प्रकाशन 2012

पत्रिका

- पंत, कैलाशचन्द्र (प्र.सम्पा). अक्षरा (हिन्दी के प्रति बढ़ती उदासीनता), जनवरी-फरवरी, 2010
- सिद्धेश्वर प्रसाद और अन्य (सम्पा). विश्व हिन्दी, प्रथम. नई दिल्ली, अक्तूबर, 1983
- 17 सितंबर, 2019. <https://hi.m.wikipedia.org-wiki

भारत में लैंगिक असमानता और कुपोषण

सुकन्या

शोधर्थी, गृह विज्ञान विभाग (फूड एंड न्यूट्रीशन), टी.एम.बी.यू., भागलपुर

डॉ० अंजु सिंह

एच.ओ.डी., गृह विज्ञान विभाग (फूड एंड न्यूट्रीशन), टी.एम.बी.यू., भागलपुर

परिचय

शरीर के लिए जरुरी पोषक तत्वों से भरपूर सन्तुलित आहार का लम्बे समय तक न मिलना ही कुपोषण है। कुपोषण के कारण बच्चों और महिलाओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है जिससे वे आसानी से कई तरह की बीमारियों के शिकार बन जाते हैं। बच्चों और स्त्रियों के अधिकांश रोगों का मुख्य कारण कुपोषण है।

यूनिसेफ के अनुसार पोषण की कमी या कुपोषण का अर्थ है प्रोटीन, कैलोरी या माइक्रो न्यूट्रिएंट जैसे पोषक तत्वों की कमी। यह कमी सिर्फ तभी नहीं होती जब भरपेट भोजन न मिले, यह तब भी हो सकती है जब आप खाना तो खा रहे हैं, लेकिन उस खाने में पौष्टिक तत्व नहीं हैं। WHO के सर्वेक्षण के अनुसार दुनिया भर में लगभग 2 बिलियन वयस्क मोटे होने के बावजूद कुपोषण का शिकार हैं।

आयरन, कैल्शियम, जिंक, विटामिन ए और आयोडीन वह मुख्य पोषक तत्व हैं जिनकी कमी अधिकतर लोगों में पाई जाती है।

विटामिनों की कमी हो और यदि इसकी पूर्ति आहार पदार्थो से न होती हो, तो कृत्रिम विटामिन के सेवन से इसे पूरा किया जा सकता है। गर्भवती स्त्रियों को प्रतिदिन 100 मिलीग्राम विटामिन सी की आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति एक गिलास नारंगी के रस अथवा 100 मिलीग्राम ऐकौर्बिक अम्ल के खाने से हो सकती है। उम्र और अवस्था का लिहाज करते हुए उन्हें प्रतिदिन पूर्ण और संतुलित भोजन मिलना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र का कहना है कि भारत में हर साल कुपोषण के कारण मरने वाले पांच साल से कम उम्र वाले बच्चों की संख्या दस लाख से भी ज्यादा है। मध्य प्रदेश और राजस्थान में किए गए सर्वेक्षणों में पाया गया कि देश के सबसे गरीब इलाकों में आज भी बच्चे भुखमरी के कारण अपनी जान गंवा रहे हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि अगर इस ओर ध्यान दिया जाए तो इन मौतों को रोका जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र ने भारत में जो आंकड़े पाए हैं, वे अंतरराष्ट्रीय स्तर से कई गुना ज्यादा हैं। भारत में फाइट एसीएफ की रिपोर्ट बताती है कि भारत में कुपोषण जितनी बड़ी समस्या है, वैसा पूरे दक्षिण एशिया में और कहीं देखने को नहीं मिला है। रिपोर्ट में लिखा गया है, 'भारत में अनुसूचित जनजाति (28%), अनुसूचित जाति (21%), पिछड़ी जाति (20%) और ग्रामीण समुदाय (21%) पर अत्यधिक कुपोषण का बहुत बड़ा बोझ है।

महिलाओं की पोषण जरुरत

एक महिला को जीवन के विभिन्न चरणों में अच्छे स्वास्थ्य के लिए अलग-अलग अनुपात में पोषण और उचित आहार की जरुरत पड़ती हैं। कई महिलाएं अपने काम व्यस्त कार्यक्रम, काम के दबाव या पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण अपनी आहार संबंधी जरूरतों की उपेक्षा करती हैं; इसलिए वे पोषण संबंधी कमियों से ग्रस्त हैं।

विभिन्न अनुसंधानो से ये साबित हुआ है कि कई उच्च पोषण वाले खाद्य अगर एक महिला की थाली में नियमित आहार के भाग के रूप में शामिल हों, तो महिलाएं बहुत से बिमारियों जैसे की कैंसर, योनि संक्रमण, गर्भावस्था से संबंधित समस्याओं, पीएमएस से संबंधित समस्याओं आदि से बच सकती हैं ।

भारत में लैंगिक असमानता

हम 21वीं शताब्दी के ऐसे आधुनिक भारतीय हैं जो एक बेटा पैदा होने पर खुशी का जश्न मनाते हैं और यदि बेटी का जन्म से परेशान हो जाते हैं। यहाँ तक कि समाज में बेटियों के जन्म की कोई खुशी या जश्न न मनाने के अलिखित नियम और परम्पराएँ प्रचलित हो गये हैं। लड़के के लिये पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में इतना ज्यादा प्यार है, कि लड़कों के जन्म की चाह में प्राचीन काल से ही लड़कियों को जन्म के समय या जन्म से पहले ही मार दिया जाता रहा है। यदि सौभाग्य से वो बच जाती तो हम जीवनभर उनके साथ भेदभाव के अनेक तरीके ढूँढ लेते हैं।

लैंगिक असमानता की परिभाषा और संकल्पना

'लिंग' सामाजिक-सांस्कृतिक शब्द हैं जो सामाजिक परिभाषा से संबंधित करते हुये समाज में 'पुरुषों' और 'महिलाओं' के कार्यो और व्यवहारों को परिभाषित करता हैं । जबकि, 'सेक्स' शब्द 'स्त्री' और 'पुरुष' को परिभाषित करता है, जो एक जैविक और शारीरिक घटना है। अपने सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहलुओं में लिंग, पुरुष और महिलाओं के बीच शक्ति और कार्य का संबंध हैं, जहाँ पुरुष को महिला से श्रेष्ठ माना जाता हैं। इस तरह 'लिंग' को मानव निर्मित सिद्धान्त समझना चाहिये, जबकि 'सेक्स' मानव की प्राकृतिक या जैविक विशेषता हैं।

लिंग असमानता को सामान्य शब्दों में इस तरह परिभाषित किया जा सकता हैं कि, लैंगिक आधर पर महिलाओं के साथ भेदभाव। समाज में परम्परागत रुप से महिलाओं को कमजोर जाति-वर्ग के रुप में माना जाता हैं

महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त पोषण

मनुष्य की उम्र, लिंग, वर्ग और पंथ चाहे जो भी हो-उपयुक्त पोषण सबके अच्छे स्वास्थ्य, विकास एवं वृद्धि के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। बच्चों के सन्दर्भ में, उनकी तीव्र गति से हो रही वृद्धि और विकास के कारण उनका उचित पोषण और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार महिला के लिए भी उचित पोषण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है चूंकि वे गर्भधरण व बच्चे/बच्चों को जन्म देने के साथ-साथ स्तनपान के जरिए उनका लालन-पालन भी करती हैं। इसलिए महिलाओं और बच्चों के उचित शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनके भोजन में सभी आवश्यक पौष्टिक तत्व पर्याप्त मात्रा में नियमित रूप से सम्मिलित किए जाए।

हम अक्सर देखते हैं कि अधिकांश घरों में पुरुषों के आहार को गुणवत्ता और मात्रा के सन्दर्भ में अध्कि महत्ता दी जाती है। इसके विपरीत महिलाओं के आहार एवं पोषण की आमतौर पर उपेक्षा की जाती है। जबकि तथ्य यह है कि पुरुषों और महिलाओं की पोषण सम्बन्धी आवश्यकताएं एक दूसरे से ज्यादा भिन्न नहीं हैं।

महिलाओं के लिए पौष्टिक आहार का अत्यधिक महत्व है। और इसकी उपलब्धता का ध्यान न केवल शादी के बाद, बल्कि किशोरावस्था और बचपन के दौरान भी रखने की जरूरत है। इसलिए जन्म के बाद से ही एक बालिका के पोषण और देखभाल को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए ताकि कुपोषण के पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाले चक्र को रोका जा सके।

यद्यपि पुरुषों की तुलना में महिलाओं की ऊर्जा की जरूरत थोड़ी कम; लगभग 80 प्रतिशत है। इसका कारण उनकी शारीरिक संरचना और वजन में अंतर है। अक्सर पुरुष कद-काठी में लम्बे और भारी होते हैं। महिलाओं की प्रोटीन और विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की जरूरतें (केवल थियामिन, राइबोफ्लेविन, लोहे, नियासिन तथा जिंक को छोड़कर) तकरीबन बराबर हैं। माहवारी में रक्त के स्त्राव के साथ लोहे के क्षय से महिलायों में लोहे जैसे कुछ पोषक तत्वों की जरुरत अधिक बढ़ जाती है।

गर्भावस्था व स्तनपान की परिस्थितियां महिलाओं की पौष्टिक तत्वों की जरूरतों को और भी बढ़ा देती हैं, जिसके फलस्वरूप उनके शरीर में संचित पोषक तत्वों का संग्रह कम होने लगता है और माताएं अक्सर पोषण-सम्बन्धी कमियों का शिकार हो जाती हैं।

चूंकि माता का पोषण-स्तर गर्भावस्था से पहले और गर्भावस्था के दौरान दोनों ही अवस्थाओं में, भ्रूण की वृद्धि और विकास को अत्यधिक प्रभावित करता है। अतः यह बहुत जरूरी है कि माता शारीरिक और भावनात्मक रूप से स्वस्थ हो और उसका पोषण-स्तर सही बना रहे।

कई शोधों के आधार से पता चलता हैं कि भ्रूण, शिशु या बच्चे में (खासकर छोटी बालिकाओं में) विकासात्मक विफलताएं पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली जाती हैं। इसलिए कुपोषण के पीढ़ी-दर-पीढ़ी चक्र को तोड़ने के लिए, बालिकाओं के साथ-साथ महिलाओं, विशेषकर गर्भवती व धात्री माताओं के लिए, उचित पोषण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

बिहार के 38 जिलों में से 23 जिलों में बच्चों में कुपोषण की स्थिति दयनीय

2018 के एनएफएचएस' की रिपोर्ट के अनुसार 0-5 साल तक के लगभग 50% बच्चों को 'कुपोषण' के परिणामस्वरूप 'बौनेपन' का शिकार बताया गया है। इस रिपोर्ट के अनुसार राज्य में कुल 47.3% बच्चे कुपोषित हैं। बिहार के 38 जिलों में से 23 जिलों में बच्चों में कुपोषण की स्थिति बेहद दयनीय है। इनमें शामिल बक्सर, गया, नवादा, नालंदा, कैमुर, भोजपुर, सारण, सिवान, वैशाली, मुंगेर, जमुई, भागलपुर, किशनगंज, पूर्णिया, कटिहार, मधेपुरा, सहरसा, सुपौल, अररिया, पूर्वी चंपारण, पश्चिम चंपारण, मुजफ्फरपुर और दरभंगा सहित अन्य जिले शामिल हैं।

निष्कर्ष

भारत में हर तीन गर्भवती महिलाओं में से एक कुपोषण की शिकार होने के कारण खून की कमी अर्थात् रक्ताल्पता की बीमारी से ग्रस्त हो जाती हैं। हमारे समाज में स्त्रियाँ अपने स्वयं के खान-पान पर ध्यान नहीं देतीं। जबकि गर्भवती स्त्रियों को ज्यादा पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। उचित पोषण के अभाव में गर्भवती माताएँ स्वयं तो रोग ग्रस्त होती ही हैं, साथ ही होने वाले बच्चे को भी कमजोर और रोग ग्रस्त बनाती हैं। अक्सर महिलाएँ पूरे परिवार को खिलाकर स्वयं बचा हुआ रूखा-सूखा खाना खाती हैं, जो उनके लिए अपर्याप्त होता है।

'India State Level Disease Burden Initiative report 2020' के अनुसार भारत में पांच साल से कम उम्र के 68% बच्चों की मौत का कारण शिशु और माता का कुपोषण है।

भारत में, महिलाओं के आहार को सबसे कम प्राथमिकता दी जाती है और वे पूरे परिवार की भली-प्रकार देखभाल करके भी सबसे आखिरी में और बहुत कम खाती हैं। अतः महिलाओं के पोषण को अधिक नहीं तो कम-से-कम एक समान महत्व दिया जाना चाहिए और परिवार के बाकी सदस्यों द्वारा इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। महिलाओं को स्वयं, विशेष रूप से गर्भावस्था और स्तनपान के दौरान अपने आहार की मात्रा और गुणवत्ता पर ध्यान देने की जरूरत होती है।

सामाजिक और आर्थिक विकास के पैमाने पर देखें तो भारत की एक विरोधाभासी तस्वीर उभरती है। एक तरफ तो हम दुनिया के दूसरे सबसे बड़े खाद्यान्न उत्पादक देश हैं, तो दूसरी तरफ तमाम कोशिशों के बाद भी हमारी आधी से ज्यादा आबादी (जिसमे महिलाओं की बहुसंख्या है) भूख और कुपोषण की शिकार है।

सन्दर्भ

- *Measham, Anthony R.; Meera Chatterjee (1999). Wasting away: the crisis of malnutrition in India. World Bank Publications. p. 11. ISBN 978-0-8213-4435-4. Malnutrition in India.*
- "Malnutrition Kills Over 3 Million Children Annually Worldwide". Medical News Today. Retrieved February 20, 2018.
- *"Universal Declaration of Human Rights". www.un.org. October 6, 2015. Retrieved February 24, 2018.*
- *"What is the Right to Food? | Right to food". www.righttofood.org. Retrieved February 24, 2018.*
- *"Universal Declaration on the Eradication of Hunger and Malnutrition". Archived from the original on October 8, 2018. Retrieved February 24, 2018.*

- Nikolaos Katsilambros (2011). Clinical Nutrition in Practice. John Wiley & Sons. p. 37. ISBN 978-1-4443-4777-7.
- "A campaign to end malnutrition in Bihar". www.ideasforindia.in. Retrieved 9 October 2015.
- *Ackerson, L. K.; Subramanian, S. V. (15 May 2008). "Domestic Violence and Chronic Malnutrition among Women and Children in India". American Journal of Epidemiology.* ***167*** *(10): 1188–1196. doi:10.1093/aje/kwn049. ISSN 0002-9262. PMC 2789268. PMID 18367471.*

आधुनिक लोकतंत्र में असहमति का महत्त्व

प्रतिमा सिंह

प्रवक्ता, नागरिक शास्त्र, इंडियन गर्ल्स इंटर कॉलेज, प्रयागराज

सारांश

आधुनिक लोकतंत्र की कोई ऐसी सुनिश्चित सर्वमान्य परिभाषा नहीं की जा सकती जो इस शब्द के पीछे छिपे हुए संपूर्ण इतिहास तथा अर्थ को अपने में समाहित करती हो। भिन्न-भिन्न युगों में विभिन्न विचारकों ने इसकी अलग अलग परिभाषाएँ की हैं, परंतु यह सर्वदा स्वीकार किया है कि लोकतंत्रीय व्यवस्था वह है जिसमें जनता की संप्रभुता हो। जनता का क्या अर्थ है, संप्रभुता कैसी हो और कैसे संभव हो, यह सब विवादास्पद विषय रहे हैं। फिर भी, जहाँ तक लोकतंत्र की परिभाषा का प्रश्न है अब्राहम लिंकन की परिभाषा - लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन - प्रामाणिक मानी जाती है। लोकतंत्र में जनता ही सत्ताधारी होती है, उसकी अनुमति से शासन होता है, उसकी प्रगति ही शासन का एकमात्र लक्ष्य माना जाता है। परंतु लोकतंत्र केवल एक विशिष्ट प्रकार की शासन प्रणाली ही नहीं है वरन् एक विशेष प्रकार के राजनीतिक संगठन, सामाजिक संगठन, आर्थिक व्यवस्था तथा एक नैतिक एवं मानसिक भावना का नाम भी है। लोकतंत्र जीवन का समग्र दर्शन है जिसकी व्यापक परिधि में मानव के सभी पहलू आ जाते हैं।

परिचय

लोकतंत्र की आत्मा जनता की संप्रभुता है जिसकी परिभाषा युगों के साथ बदलती रही है। इसे आधुनिक रूप के आविर्भाव के पीछे शताब्दियों लंबा इतिहास है। यद्यपि रोमन साम्राज्यवाद ने लोकतंत्र के विकास में कोई राजनीतिक योगदान नहीं किया, परंतु फिर भी रोमन सभ्यता के समय में ही विचारकों ने आध्यात्मिक आधार पर मानव समानता का समर्थन किया जो लोकतंत्रीय व्यवस्था का महान गुण है। सिसरो, सिनेका तथा उनके पूर्ववर्ती दार्शनिक जेनों एक प्रकार से भावी लोकतंत्र की नैतिक आधारशिला निर्मित कर रहे थे। मध्ययुग में बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी से ही राजतंत्र विरोधी आंदोलन और जन संप्रभुता के बीज देखे जा सकते हैं। यूरोप में पुनर्जागरण एवं धर्मसुधार आंदोलन ने लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। इस आंदोलन ने व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता पर जोर दिया तथा राजा की शक्ति को सीमित करने के प्रयत्न किए। लोकतंत्र के वर्तमान स्वरूप को स्थिर करने में चार क्रांतियों, 1688 की इंगलैंड की रक्तहीन क्रांति, 1776 की अमरीकी क्रांति, 1789 की फ्रांसीसी क्रांति और 19वीं सदी की औद्योगिक क्रांति का बड़ा योगदान है। इंगलैंड की गौरवपूर्ण क्रांति ने यह निश्चय कर दिया कि प्रशासकीय नीति एवं राज्य विधियों की पृष्ठभूमि में संसद् की स्वीकृति होनी चाहिए। अमरीकी क्रांति ने भी लोकप्रभुत्व के सिद्धांत का पोषण किया। फ्रांसीसी क्रांति ने स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धांत को शक्ति दी। औद्योगिक क्रांति ने लोकतंत्र के सिद्धांत को आर्थिक क्षेत्र में प्रयुक्त करने की प्रेरणा दी।

प्रकार

सामान्यत: लोकतंत्र-शासन-व्यवस्था दो प्रकार की मानी जानी है :

(1) विशुद्ध या प्रत्यक्ष लोकतंत्र तथा

(2) प्रतिनिधि सत्तात्मक या अप्रत्यक्ष लोकतंत्र

वह शासनव्यवस्था जिसमें देश के समस्त नागरिक प्रत्यक्ष रूप से राज्यकार्य संपादन में भाग लेते हैं प्रत्यक्ष लोकतंत्र कहलाती हैं। इस प्रकार का लोकतंत्र में लोकहित के कार्यो में जनता से विचार विमर्श के पश्चात ही कोई फैसला लिया जाता है। प्रसिद्ध

दार्शनिक रूसो ने ऐस लोकतंत्र को ही आदर्श व्यवस्था माना है। इस प्रकार का लोकतंत्र प्राचीन यूनान के नगर राज्यों में पाया जाता था। वर्तमान में स्विट्जरलैंड में प्रत्यक्ष लोकतंत्र चलता है। यूनानियों ने अपने लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों को केवल अल्पसंख्यक यूनानी नागरिकों तक ही सीमित रखा। यूनान के नगर राज्यों में बसनेवाले दासों, विदेशी निवासियों तथा स्त्रियों को राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया था।

आजकल ज्यादातर देशों में प्रतिनिधि लोकतंत्र या अप्रत्यक्ष लोकतंत्र का ही प्रचार है जिसमें जनभावना की अभिव्यक्ति जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा की जाती है। जनता का शासन व्यवस्था और कानून निर्धारण में कोई योगदान नहीं होता तथा जनता स्वयं शासन न करते हुए निर्वाचन पद्धति के द्वारा चयनित शासन प्रणाली के अंतर्गत निवास करती है। इस प्रकार की व्यवस्था को ही आधुनिक लोकतंत्र का मूल विचार बताने वालों में मतभेद है।

संसदात्मक तथा अध्यक्षात्मक लोकतंत्रीय संगठन

आजकल सामान्यतया दो प्रकार के परंपरागत लोकतंत्रीय संगठनों को चुनाव पद्धति द्वारा स्वीकार किया जाता है - संसदात्मक तथा अध्यक्षात्मक। संसदात्मक व्यवस्था का तथ्य है कि जनता एक निश्चित अवधि के लिए संसद सदस्यों का निर्वाचन करती है। संसद द्वारा मंत्रिमंडल का निर्माण होता है। मंत्रिमंडल संसद के प्रति उत्तरदायी है और सदस्य जनता के प्रति उत्तरदायी होते है। अध्यक्षात्मक व्यवस्था में जनता व्यवस्थापिका और कार्यकारिणी के प्रधान राष्ट्रपति का निर्वाचन करती है। ये दोनों एक दूसरे के प्रति नहीं बल्कि सीधे और अलग अलग जनता के प्रति विधिनिर्माण तथा प्रशासन के लिए क्रमशः उत्तरदायी हैं। इस शासन व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्र का प्रधान (राष्ट्रपति) ही वास्तविक प्रमुख होता है। इस प्रकार लोकतंत्र में समस्त शासनव्यवस्था का स्वरूप जन सहमति पर आधारित मर्यादित सत्ता के आदर्श पर व्यवस्थित होता है।

लोकतंत्र का व्यापक स्वरूप

लोकतंत्र केवल शासन के रूप तक ही सीमित नहीं है, वह समाज का एक संगठन भी है। सामाजिक आदर्श के रूप में लोकतंत्र वह समाज है जिसमें कोई विशेषाधिकारयुक्त वर्ग नहीं होता और न जाति, धर्म, वर्ण, वंश, धन, लिंग आदि के आधार पर व्यक्ति व्यक्ति के बीच भेदभाव किया जाता है। इस प्रकार का लोकतंत्रीय समाज को लोकतंत्रीय राज्य का आधार कहा जा सकता है।

राजनीतिक लोकतंत्र की सफलता के लिए उसका आर्थिक लोकतंत्र से गठबंधन आवश्यक है। आर्थिक लोकतंत्र का अर्थ है कि समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने विकास की समान भौतिक सुविधाएँ मिलें। लोगों के बीच आर्थिक विषमता अधिक न हो और एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण न कर सके। एक ओर घोर निर्धनता तथा दूसरी ओर विपुल संपन्नता के वातावरण में लोकतंत्रात्मक राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है।

नैतिक आदर्श एवं मानसिक दृष्टिकोण के रूप में लोकतंत्र का अर्थ मानव के रूप में मानव व्यक्तित्व में आस्था है। क्षमता, सहिष्णुता, विरोधी के दृष्टिकोण के प्रति आदर की भावना, व्यक्ति की गरिमा का सिद्धांत ही वास्तव में लोकतंत्र का सार है।

लोकतंत्र के उपादान (टूल्स)

आधुनिक युग में लोकतंत्रीय आदर्शो को कार्यरूप में परिणत करने के लिए अनेक उपादानों का आविर्भाव हुआ है। जैसे लिखित संविधानों द्वारा मानव अधिकारों की घोषणा, वयस्क मताधिकारप्रणाली द्वारा प्रतिनिधि चुनने का अधिकार, लोकनिर्माण, उपक्रम, पुनरावर्तन तथा जनमत संग्रह जैसी प्रत्यक्ष जनवादी प्रणालियों का प्रयोग, स्थानीय स्वायत्त शासन का विस्तार, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायालयों की स्थापना, विचार, भाषण, मुद्रण तथा आस्था की स्वतंत्रता को मान्यता, विधिसंमत शासन को मान्यता, बलवाद के स्थान पर सतत वादविवाद और तर्कपद्धति द्वारा ही आपसी संघर्षो के समाधान की प्रक्रिया को मान्यता देना है। वयस्क मताधिकार के युग में लोकमत को शिक्षित एवं संगठित करने, सिद्धांतों के समान्य प्रकटीकरण, नीतियों के व्यवस्थित विकास तथा प्रतिनिधियों के चुनाव के सहायक होने में राजनीतिक दलों की उपादेयता - आधुनिक लोकतंत्र का एक वैशिष्ट्य है। मानव व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी विकास के लिए प्रशासन को जनसेवा के व्यापक क्षेत्र में पदार्पण करने के लिए आधुनिक लोकतंत्र को लोक कल्याणकारी राज्य का आदर्श ग्रहण करना पड़ा है।

लोकतंत्र के शत्रु

- भ्रष्टाचार
- उग्रवाद, आतंकवाद, हिंसा

- वंशवाद, परिवारवाद, कॉर्पोरेट वाद
- राजनैतिक अधिनायक प्रवर्ती
- निरंकुश शासकीय व्यवस्था
- अवांछित गोपनीयता
- प्रेस पर रोक
- अशिक्षा एवं निरक्षरता

असहमति

असहमति या मतभेद से तात्पर्य किसी प्रचलित विचार (जैसे, एक सरकार की नीतियां) या एक इकाई (जैसे, एक व्यक्ति या राजनीतिक दल जो ऐसी नीतियों का समर्थन करता है) के प्रति विरोध की भावना या दर्शन है। इस शब्द के विलोम में सहमति, आम-सहमति (जब सभी या लगभग सभी पक्ष किसी बात पर सहमत होते हैं) और सम्मति शामिल हैं, जब एक पक्ष दूसरे द्वारा किए गए प्रस्ताव पर सहमत होता है।

कुछ राजनीतिक प्रणालियों में, विपक्षी राजनीति के रूप में मतभेद को औपचारिक रूप से व्यक्त किया जा सकता है, जबकि दमनकारी शासन असंतोष के किसी भी रूप को दबाने का प्रयास करते हैं, जिससे मतभेद का दमन हो। इससे सामाजिक या राजनीतिक सक्रियता को बढ़ावा भी मिल सकता है। ऐसे व्यक्ति जो कुछ देशों की नीतियों के अनुरूप या समर्थन नहीं करते हैं, उन्हें 'मतभेदी' के रूप में जाना जाता है। कई विचारकों ने तर्क दिया है कि एक स्वस्थ समाज को न केवल मतभेद की रक्षा करना चाहिए, बल्कि उसे प्रोत्साहित करने की भी आवश्यकता है।

- असहमति को प्राय: दो अन्य अवधारणाओं समालोचनात्मक चिंतन (Critical Thinking) और सहिष्णुता से भी जोड़कर देखा जाता है।
- असहमति, प्रभावी तर्क-वितर्क का एक शक्तिशाली स्रोत है जो स्वयंमेव किसी राज्य/राष्ट्र की संस्थाओं अथवा उसकी कार्यवाहियों के साथ ही किसी समाज के रीति-रिवाज एवं प्रथाओं की वैधता को निर्धारित करने के लिये आवश्यक होता हैं।
- धार्मिक प्रथाओं को लेकर व्यक्त असहमति के प्रति सहिष्णुता किसी राज्य के भीतर समावेशन और सहमति के दायरे का विस्तार करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

असहमति के अधिकार का महत्त्व

- लोकतंत्र की आधारशिला: लोकतंत्र को शासन के सर्वाधिक स्वीकार्य पद्धति के रूप में देखा जाता है क्योंकि यह एक नागरिक को पीड़ित होने के भय के बिना असहमति प्रकट करने का अधिकार प्रदान करता है (जब तक ऐसी असहमति किसी अमानवीय या असंवैधानिक कार्यवाही का कारण नहीं बनती)। असहमति का अधिकार संविधान में निर्दिष्ट वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के दायरे में आता है।
- लोकतंत्र में असहमति के महत्त्व को रेखांकित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि "असहमति वस्तुत: लोकतंत्र का सुरक्षा वाल्व है।"
- विरोध प्रदर्शन किसी भी प्रगतिशील लोकतंत्र के नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। उल्लेखनीय है कि गांधीजी, नेल्सन मंडेला तथा मार्टिन लूथर किंग के शांतिपूर्ण प्रतिरोध ने इन देशों के सामाजिक-राजनीतिक ताने-बाने में आमूल-चूल परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- एक मौलिक मानवीय गुण के रूप में असहमति: एक दूसरे से असहमत होना एक मूलभूत मानवीय गुण है। कई दार्शनिकों ने यह तर्क दिया है कि एक बालक सार्थक रूप से स्वयं की भावना को तभी ग्रहण करता है जब उसमें मैं और मेरा की अवधारणा का बोध होता है। इसके अलावा जब वह पहली बार नहीं कहना प्रारंभ करता है तब इसे उसके आत्मविकास के अधिकारों के विकास के तौर पर देख जाता है।
- इसके अतिरिक्त जिस रूप में हमारा समाज और राष्ट्र असहमति को ग्रहण करता है, उससे हमें एक सशक्त पहचान प्राप्त होती है।

- असहमति से ज्ञान का सृजन: असहमति नवीन ज्ञान और नई समझ के सृजन का मार्ग प्रशस्त करती है। विज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में हुई प्रगति असहमति के बिना संभव नहीं होती। क्योंकि इस क्षेत्र में हुआ विकास वस्तुत: दूसरे के विचारों में दोष ढूँढने से ही संभव हो सका। इससे अंतत: नवीन ज्ञान का विकास हुआ। इसलिये बुद्ध और महावीर के बारे में कहा जाता है कि वे पहले भिन्न मतावलंबी (Dissenters) थे और उसके बाद दार्शनिक थे।

असहमति के अधिकार की सुरक्षा

- विधिक संरचना में सुधार: सरकार को उन सभी विधियों की समीक्षा करने के लिये एक स्वतंत्र आयोग का गठन करना चाहिये जो वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाते हुए उन्हें अपराध की श्रेणी के अंतर्गत लाते हैं।
- इसके अतिरिक्त ऐसी विधियों/कानूनों को निरस्त या संशोधित करने तथा उन्हें अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानदंडों और संधियों में भारत द्वारा व्यक्त दायित्वों के अनुरूप बनाने के लिये प्रयास करना चाहिये।
- प्रशासनिक तंत्र को संवेदनशील बनाना: सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिये पुलिस को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है कि वह अनुचित और अप्रासंगिक मामलों को दर्ज न करे। न्यायाधीशों (विशेष रूप से निचली अदालतों के) को शांतिपूर्ण अभिव्यक्ति मानकों के बारे में उन्नत प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ताकि वे वाक् की स्वतंत्रता का उल्लंघन करने वाले मामलों को खारिज कर सकें।
- संचार के मुक्त माध्यमों को उपलब्ध कराना लोकतंत्र हेतु आवश्यक है। अवरुद्ध माध्यम और विकृत सूचना प्रवाह, शासित और शासक दोनों को गंभीर नुकसान पहुँचाते हैं। ऐसे में लोकतंत्र में सिविल सोसाइटी, गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि ये लोगों को तर्क-पूर्ण तरीके से असहमति प्रकट करने का मंच प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष

लोकतंत्र की परिकल्पना सार्वभौमिक जन-चेतना से उत्पन्न होती है। भारत जैसे वृहद् राष्ट्र में प्रत्येक निर्णय के लिए मत-संग्रहण संभव नहीं है। इसके समाधान हेतु इसी जन-चेतना ने एक व्यवस्था निर्धारित की है जिसमें हर वयस्क स्त्री-पुरुष, परिमित समयकाल के लिए अपने जन-प्रतिनिधि चुनते हैं ताकि वे सर्वहित के लिए विशेषकर भौतिक संपदा से वंचित समूहों के परिवर्धन हेतु नीतियाँ बनाएँ एवं क्रियान्वित करें।

विश्व में जनतंत्र का कोई रूप क्यों ना हो, उसके मूल में यही अवधारणा वास करती है तथा इसी परिकल्पना को साकार करने के लिए देश का प्रत्येक नागरिक अपनी अलिखित सहमति देता है। नागरिक अवज्ञा, किसी भी नागरिक द्वारा अपनी सरकार के कुछ कानूनों, आदेशों का पालन न करने की प्रतिज्ञा और उसका सम्यक अनुपालन है। इसे अहिंसा के प्रमुख हथियार के रूप में विश्व के विभिन्न हिस्सों में अपनाया गया है। कभी-कभी नागरिक अवज्ञा कभी-कभी अहिंसक प्रतिरोध के बराबर होती है। यद्यपि नागरिक अवज्ञा को कानून के लिए अवमानना की अभिव्यक्ति माना जाता है, अमेरिका के मार्टिन लूथर किंग ने नागरिक अवज्ञा को कानून के प्रति सम्मान और प्रदर्शन के अभ्यास के रूप में माना; क्योंकि 'कोई भी व्यक्ति जो कानून को तोड़ता है, जो विवेक उसे बताता है वह अन्यायपूर्ण है और कानून के अन्याय पर समुदाय के विवेक को जगाने के लिए जेल में रहने से स्वेच्छा से अनुग्रह स्वीकार करता है, उस समय कानून के लिए सर्वोच्च सम्मान व्यक्त करता है।'

सन्दर्भ

- Violent Civil Disobedience and Willingness to Accept Punishment, 8, Essays in Philosophy, जून, 2007, मूल से 13 जून 2010 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 17 अगस्त 2018
- John Morreall (1976), "The justifiability of violent civil disobedience", Canadian Journal of Philosophy, 6 (1): 35–47, JSTOR 40230600
- Brooks, Ned. "Meet The Press: Martin Luther King, Jr. on the Selma March". NBC Learn. NBC Universal Media. मूल से 5 जुलाई 2018 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 15 अगस्त 2018
- Zunes, Stephen (1999:42), Nonviolent Social Movements: A Geographical Perspective, Blackwell Publishing

अरुण कमल की कविताओं में शिल्प-विधान

सत्यनारायण कुमार

शोध-छात्र, हिन्दी विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

सारांश : *अरुण कमल की कविताओं में एक तरफ भाव की गरिमा मौजूद है, तो दूसरी तरफ शिल्प का चरमोत्कर्ष भी है। प्रत्येक काव्य का अभिन्न अंग होता है- 'शिल्प'। अंग्रेजी के 'टेकनिक' शब्द का पर्याय है- शिल्प। जिसका सामान्य व विशेष अर्थ है- विधि, ढंग, तरीका, विधान, रचना-शिल्प, कला-कौशल तथा प्रविधि आदि। शिल्प के अंतर्गत 64 कलाओं का उल्लेख किया गया है। कविता में शिल्प के लिए प्रयास नहीं किया जाता है। यह स्वत: समाहित होता चला जाता है काव्य-सृजन में। 'धूमिल' का समकालीन काव्य-भाषा के बारे में विचार है-*

''छायावाद के कवि शब्दों को तोल कर रखते थे,
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोल कर रखते थे,
नई कविता के कवि शब्दों को गोल कर रखते थे,
सन् साठ के बाद कवि शब्दों को खोल कर रखते हैं।''

मूल शब्द : अरुण कमल, कविता, शिल्प-विधान

प्रस्तावना

अरुण कमल का व्यक्तित्व साफ व सौम्य है। यदि इनकी कविताओं का वैशिष्ट्य निरूपण करना हो, तो दो भागों में बांटकर करना होगा। इनकी कविताओं में एक तरफ भाव की गरिमा मौजूद है, तो दूसरी तरफ शिल्प का चरमोत्कर्ष भी है। अरुण कमल की कविताओं की विशिष्टता निम्नलिखित दो तरीके से बताई जा सकती है-

(क) भाव-सौंदर्य
(ख) शिल्प-सौंदर्य

लेकिन इस आलेखानुसार अरुण कमल की कविताओं में केवल शिल्प-सौंदर्य का जिक्र किया गया है।

शिल्प-सौंदर्य

प्रत्येक काव्य का अभिन्न अंग होता है- 'शिल्प'। इसके बिना कविता संभव नहीं है। किसी भी कविता के लिए शिल्प एक ढांचा है, जिसके अंदर कवि अपने भावों को बुनता है, सहेजता है।

शिल्प का शाब्दिक अर्थ है- ''किसी वस्तु के निर्माण का ढंग अथवा विधान या क्रिया अथवा उन तत्त्वों का समुचित समायोजन जिनके समानुपातिक उपयोग से किसी अभिनय रचना का आविर्भाव होता है।''[1] जब एक कलाकार अपने मन में छिपी भावना को आकार या मूर्त रूप देने के लिए जो विधियाँ अथवा तरीके अपनाता है, उन्हें शिल्प-विधान के अंतर्गत रखा जाता है। टाल्सटाय का भी यही स्वीकृति है ''कला वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कलाकार अपनी मनोगत अनुभूतियों को दूसरों तक पहूँचाने में सफल होता है।''[2]

अंग्रेजी के 'टेकनिक' शब्द का पर्याय है- शिल्प। जिसका सामान्य एवं विशेष अर्थ है- विधि, ढंग, तरीका, विधान, रचना-शिल्प, कला-कौशल तथा प्रविधि आदि। शिल्प के अंतर्गत 64 कलाओं का उल्लेख किया गया है। कविता में शिल्प के लिए प्रयास नहीं किया जाता है। यह स्वत: समाहित होता चला जाता है काव्य-सृजन में। जिस प्रकार हरेक कवि का वैचारिक दृष्टिकोण अलग-अलग होता है, उसी तरह काव्य शिल्प के अभाव में अधूरी होती है। इसीलिए गिरिजा कुमार माथुर ने काव्य-शिल्प पर अपना मंतव्य व्यक्त किया है- ''मैं कविता में विषय से अधिक 'टेकनिक' पर ध्यान दिया है। विषय की मौलिकता का पक्षपाती होने पर भी मेरा विश्वास है कि 'टेकनिक' के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है।''[3]

- शिल्पान्तर्गत आगत तत्त्व निम्न हैं-
    1. काव्य-भाषा
    2. बिम्ब
    3. प्रतीक
    4. छंद, लय

उपर्युक्त शिल्पान्तर्गत चार आगत तत्त्वों के द्वारा समकालीन और प्रगतिशील कवि अरुण कमल की कविताओं को तौलने का काम किया गया है। 'धूमिल' का समकालीन काव्य-भाषा के बारे में विचार है-

''छायावाद के कवि शब्दों को तोल कर रखते थे,
प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोल कर रखते थे,
नई कविता के कवि शब्दों को गोल कर रखते थे,
सन् साठ के बाद कवि शब्दों को खोल कर रखते हैं।''

वैश्वीकृत भाषा के अथाह सागर में काव्य-शिल्प के अपमानित प्रान्त को ढूँढ़ कर मानवीय संवेदना के कवि बन जाते हैं- अरुण कमल। कविताओं में युगानुसार बदलती भाषा, बिम्ब, शिल्प शैली आदि की प्रयुक्ति को लेकर खुद स्वीकारते हैं- ''मेरे लिए हर कविता एक आविष्कार है, संचार का नवीनतम साधन जिसका उपयोग होना है अभी, अभी।''

1. काव्य-भाषा

युगीन स्थितियों-परिस्थितियों की देन है- समकालीन कविता। इसके पूर्व कविता जीवन से दूरी बनाने लगी थी। उसे फिर से समकालीन कविता दूरी मिटाने का प्रयास कर रही है। कविता में नैसर्गिक सौंदर्य रूपी भाषा का प्रयोग अत्यावश्यक। काव्य-भाषा के महत्त्व को बताते हुए डॉ० नामवर सिंह लिखते हैं- ''आधुनिक कविता का मर्म ग्रहण करने के लिए काव्य-भाषा का उपादान ही एकमात्र विश्वसनीय माध्यम रह गया है, जिससे हम इस युग विशेष के काव्य-सर्जन की क्षमता को समझ सकते हैं।''[4]

समकालीन कवि अरुण कमल की कविताओं में शब्द-सौष्ठव सामान्य होते हुए भी अर्थ के कारण विशिष्ट हैं। 'अपनी केवल धार' की एक कविता है- 'बच्चा हँसता क्यों हैं?' इसमें कवि की काव्य-भाषा और सामान्य शब्द-सौष्ठव देखा जा सकता है-

''खतरा बढ़ रहा है
अब उन्हें साथ सोयी पत्नी से करवट बदलने से भी डर लगता है
पत्ता हिलने से बच्चों के हँसने से
अब अपनी ही साँस से डर लगता है
खतरा बढ़ता जा रहा है''[5]

अरुण कमल की कुछ कविताओं में चित्रात्मक भाषा का भी प्रयोग मिलता है। उदाहरणत: 'छोटी दुनिया', 'पुतली में संसार' एवं 'अहिंसा और भीख माँगते बच्चे' आदि।

''और मैं देखता हूँ, तो मुझे केवल पुतली नहीं
    पूरी आँख दिख रही है गुरुदेव

और मछली और वह खम्भा
और आकाश और आप और ये सब जन धनुर्धर
इतनी भीड़ इतनी ध्वनियाँ
और मैं तो केवल नीचे ताक रहा हूँ, तेल के कुण्ड में
फिर भी पूरा आकाश घूमता लग रहा है''[6]

2. बिम्ब-विधान

हिन्दी के 'बिम्ब' और अंग्रेजी के 'इमेज' दोनों एक दूसरे का पर्याय है। काव्य-भाषा की तरह 'बिम्ब' भी काव्य का अभिन्न अंग है। यह कविता में स्वत: स्फुर्त है। ऐन्द्रिक शब्द-चित्र बिम्ब अलंकृत होने के साथ ही मानवीय संवेग से जुड़ा होता है। डॉ० अवधनारायण त्रिपाठी के अनुसार- ''बिम्ब विधान से तात्पर्य उन भावात्मक शब्द चित्रों से है, जो जीवन के व्यवहारिक पक्ष और कल्पना के शाश्वत लोक से संबद्ध हो।''[7]

'बिम्ब' को परिभाषित करते हुए डॉ० केदारनाथ सिंह लिखते हैं- ''बिम्ब वह शब्द चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिक अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।''[8] कला सृजन के क्षणों में कवि की अमूर्त अनुभूतियों को बिम्बों के द्वारा ही आकार प्रदान किया जाता है। अरुण कमल की कविता शिल्पानुरूप नहीं, बल्कि कवितानुरूप ही शिल्प निर्मित हुआ है। उनकी कविता परंपरा एवं आधुनिकता के आग्रह को ध्यान में रखकर छंद, लय, भाषा-शैली, बिम्ब आदि को धारण किया है।

चाक्षुष, घ्राणिक, स्पर्शिक, श्रवण, आस्वाद्य एवं भाव-बिम्ब का अरुण कमल की कविताओं में सुन्दर, किन्तु आवश्यकता जनित प्रयोग हुआ है। इनके बिम्ब-विधान के विषय में राजेश जोशी कहते हैं- ''अरुण कमल की कविता के बिम्ब की सुन्दरता शायद इस बात में है कि उसमें बहुत प्रकट विवरण हैं, तो बहुत बारीक अक्सर अनदेखे कर दिये जाने बाले महीन विवरण भी। वह मूर्त और अमूर्त से मिलकर बनने वाला बिम्ब है। उसमें आँख से देखा ही नहीं, कान से सुना, जीभ से चखा और नाक से सूँघा भी शामिल है। कई जगह तो त्वचा और नर्वस पर पड़ने वाले दबावों के साथ वह एक ऐसा भरा पूरा और सघन बिम्ब है कि कई बार वह शब्द से बाहर आकर रूपाकर लेता हुआ प्रतीत होता है।''[9]

'चाक्षुष' बिम्ब का सीधा संबंध आँख से होता हैं अरुण कमल की कई कविताओं में चाक्षुष बिम्ब का प्रयोग है-

''सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा खड़े हों आमने-सामने
कुछ सिर फिरे तो होंगे ही जो आँख बेचकर भी तमाशा देखें-
ढेर सारे छोटे दृश्यों को देखने से अच्छा हैं
बस एक बार देखना सौन्दर्य का विपुल पुंज।''[10]

'योगफल' की कविता 'मणि-कर्णिका' में चाक्षुष बिम्ब-विधान अद्‌भुत है-

''आज भी आठ बजा
नौ
दस
अंधकार
सातवीं या आठवीं मंजिल पर
राख।''[11]

संपूर्ण सृष्टि की कल्पनाएँ और दृश्य अरुण कमल की कविता में समाहित है। 'सबूत' काव्य-संग्रह की कविता 'मतलब' में चाक्षुष बिम्ब का अद्‌भुत नजारा है-

''मैंने लाल दहकती हुई धमन भठ्ठी देखी

और लगा कोई बुला रहा है
जैसे कोई दिल खुल रहा हो मेरे लिए
फाँक-फाँक हो रहा हो सूर्य-संतरा''[12]

'घ्राणिक' बिम्ब से तात्पर्य है- नासिका (घ्राणेन्द्रिय) से। अरुण कमल की कविता गंध को पहचानती है। कवि का मानना है कि कटते खीरे की गंध जन्म सूचक तथा अधसुखे कपड़ों की गन्ध मृत्यु द्योतक प्रतीत होता है-

''पहचानो किस कटे खीरे की गंध है हवा में
पहचानने की कोशिश करो
शायद वह खीरा भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अष्टमी का हो
जिसके लिए तुम पहली बार जगे थे
रात भर।''[13]

'अपनी केवल धार' की कविता 'असंवैधानिक मौत' में कवि ने दिखाया है भूख से तड़पते हुए मरणासन्न व्यक्ति को। जिसकी दयनीय स्थिति आम आदमी के त्रासद जीवन बिम्ब के माध्यम से उपस्थित हुआ है-

''गंध थी बीज की तरह फटी आँखों, फटे होठों, फटी नसों
और चार रोज से खाली अँतड़ियों में
हुक्के की तरह गुड़गुड़ाती
फेफड़ों से आयी एक फेफड़ा हवा की।''[14]

'श्रवण' बिम्ब का संबंध है: महीन-से-महीन ध्वनि सुनने की चेष्टा से। कोमलकांत हृदयी कवि अरुण कमल के लिए आम आदमी का दु:ख अपना ही दु:ख है। मजदूरों की वेदना के स्वर निकट ही सुनाई पड़ती है। 'श्रवण' बिम्ब का उदाहरण निम्न है-

'कोई रो रहा है
आज फिर कोई रो रहा है
इतने पास से आ रही आवाज
लगता है कोई रो रहा है
मेरी ही पीठ से सटकर'

'जीवधारा' की कविता में भी 'श्रवण' बिम्ब विधान मौजूद है। हजारों तारे कवि को लगता है वाद्ययंत्र की तरह ध्वनित हो रहे हैं –

'बज रही है धरती
हजारों तारों वाले वाद्य-सी बज रही है धरती
चारों ओर पता नहीं कितने जीव जन्तु
बोल रहे हैं हजारों आवाजों में
कभी मद्धिम कभी मंद्र कभी शांत'[15]

साहित्य अकादमी से पुरस्कृत काव्य संग्रह है- 'नये इलाके में'। इस संकलन में एक कविता है 'जैसे'। कवि ने इस कविता में 'श्रवण' बिम्ब का अद्‌भुत प्रयोग किया है:

''जैसे
मैं बहुत सारी आवाजें नहीं सुन पा रहा हूँ
चीटियों के शक्कर तोड़ने की आवाज
पंखुड़ी के एक एक कर खुलने की आवाज

गर्भ में जीवन बूँद गिरने की आवाज
अपने ही शरीर में कोशिकाएँ टूटने की आवाज''

'आस्वाद' बिम्ब का संबंध जीभ से है। जीभ का काम है वस्तु का स्वाद परखना। ठीक उसी प्रकार कविता में भी आस्वाद होता है। मतलब ये हुआ कि सृष्टि में स्वाद को मूर्त रूप में वाणी से अभिव्यक्त करना की शक्ति केवल मनुष्य में है। जिसे कवि अरुण कमल ने परखा और गूँथ दिया-

'बस एक काट काटा अमरूद
कि भर गया रस से सारा शरीर
भींग गयी हड्डी तक'[16]

अरुण कमल की कविता सघन ऐन्द्रियता से परिपूर्ण है। इस विषय में राजेश जोशी का विचार- 'अपनी सघन ऐन्द्रिकता के लिये अरुण कमल की कविता अपने समकालीनों में अलग पहचानी जा सकती है। इतने सघन रूप से रस, गंध, स्वाद और ध्वनियों का संग्रथित बिम्ब कम ही कवियों के पास होगा जैसा अरुण के पास सहज ही दिख जाता है।'[17] आस्वाद बिम्ब का अनोखा उदाहरण अरुण कमल की कविता 'अमरुल' में है। जो 'सबूत' काव्य-संग्रह में सकलित है-

''मुझे छप्पन व्यंजन नहीं
बस एक फल दो
सूर्य का लाल फल
अंधकार का काला फल
जिसे बस एक बार काटूँ
और अमर हो जाऊँ
वही अमरुल!''[18]

'स्पर्श' बिम्ब का सीधा संबंध त्वचा से है। त्वचा के संपर्क से ही कठोरता, कोमलता का एहसास होता है वस्तु में। 'नींद' कविता 'सबूत' काव्य-संग्रह में सकलित है। जिसमें स्पर्श बिम्ब का अनूठा उदाहरण है-

''धीरे-धीरे भारी हो रहा है
तुम्हारा शरीर
मेरी बाँह पर माथा तुम्हारा
ढल रहा है
नींद का शरीर
शीरे की तरह गाढ़ा
शहद की तरह भारी
डूबता चला जाता है
जल में
तल तकह[19]

'भाव' बिम्ब का संबंध हृदय से है। वाकई जो कविता हृदय के जितने गहरे तल से निकलती है, उस कविता में भाव की भी गहराई उतनी ही होती है। मतलब ये हुआ कि भाव के बिना कविता क्या? अरुण कमल एक भावुक कवि हैं, तो स्वाभाविक है 'भाव' बिम्ब की प्रधानता कविता में रहेगी। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित कृति 'नये इलाके में' की कविता है- 'नये इलाके में'। जिसमें भाव बिम्ब देखा जा सकता है।

हइन नये बसते इलाकों में
जहाँ रोज बन रहे हैं नये नये मकान
मैं अक्सर रास्ता भूल जाता हूँ''[20]

समकालीन कवियों की कविताओं में मानवीय रिश्तों से गहरा लगाव होता है। कवि को माँ की याद जेल में आता है-

''सब कुछ यही रहता है
ऐसी ही थाली
ऐसा ही कटोरी
x x x
माँ ने रख दी होती एक सुडौल मिर्च
और थोड़ा सा नमक।''[21]

भाव बिम्ब के अन्य उदाहरण-

''जिसने सच-सच कह दी अपनी कहानी
उसे कैसे कहूँ कि इसे सजाकर लिखो।
जिसके पास कुछ नहीं सिवा इस देह के
उसे कैसे कहूँ आज बाज़ार का दिन है।''[22]

कविता तो भाव प्रधान ही होती है। भाव बिना कविता निष्प्राण होती है। निम्नलिखित दो पंक्तियों में भाव बिम्ब का अनूठा प्रयोग है-

''कुछ तो है
ये हवा जो उठा रही है मुझे बाँह पकड़ कर''[23]

कवि का हृदय सहजता और सरलता से भरा है। 'मैं वो शंख महाशंख' में संकलित कविता 'कुछ परिभाशाएँ' की अंतिम दो पंक्तियों में कवि हृदय का भाव देखने को मिलता है, जो भाव बिम्ब का अनूठा उदाहरण है:

''सितारा बनने से अच्छा है
गन्दी गली का लैम्प पोस्ट बनना-कवि की इच्छा है।''

3. प्रतीक

'प्रतीक' विशेष अर्थ बोधक शब्द है। प्रतीक के सहारे गंभीर अभिव्यक्ति को कहा जा सकता है। जब सामान्य भाषा से अभिव्यक्ति नहीं हो पा रहा हो, तो 'प्रतीक' विस्तार को संक्षेपित करने का माध्यम है। कैलाश वाजपेई के अनुसार- ''प्रतीक की वह शक्ति हमारे जातीय अनुभव से प्राप्त होती है। वह एक प्रकार से हमारी सामाजिक, भाव-परम्परा का स्मृति चिह्न है, जिसे हम समय के साथ-साथ नये अर्थों में संयुक्त करते रहते हैं।''[24] 'नये इलाके में' में संकलित कविता 'जितनी भी है दिप्ती' में कवि अरुण कमल ने प्रतीक का सुन्दर प्रयोग किया है-

''चारों ओर अँधेरा छाया
मैं भी उठूँ जला लूँ बत्ती
जितनी भी है दीप्ति भुवन में
सब मेरी पुतली में कसती।''[25]

'प्रतिनिधि कविताएँ' में संकलित कविता 'शाम' पूरे प्रतीकात्मक ही है। 'शाम' से तात्पर्य है- सामंती व पूँजीपति का ढलान। जागेगा सर्वहारा तो मिटेगा अँधेरा-

''हिलेगा नाक का मीना
मूँद लेगा आँख पोखर गोल नभ में नींद
जब भीड़ होगी पक्षियों की ठीक माथे पर

छिटेगा एक तारा
और मुँह पर हवा पाँखों की''26

4. अरुण कमल के काव्य में छंद, लय एवं शब्द-सौष्ठ

'छंद, लय एवं शब्द' के बिना प्राणरहित होती है कविता। कविता को स्वर प्रदान करने का कार्य 'छन्द' का है। इसी के संपर्क में रहकर कवि लयात्मक, गतिमान व प्रवाहमान होता है। हर कविता की इच्छा होती है गीत बन जाना। इसके लिए शब्द का प्रयोग करने आना चाहिए, तभी कविता लयात्मक होगी। लयात्मकता ही तो गीतात्मकता है। छन्द के संबंध में श्री कमल जी की मान्यता है- 'छंद कविता को और कवि को दीर्घायु बनाता है। जैसे कुछ ट्रकों को सर्वदेशीय परमिट मिला रहता है वैसे ही छन्द कविता का परमिट है। तुक लिखने की ऊब को कम करता है शब्दों के नये संबंध ढूँढ लाता है। कई बार जब लगता है कि अब कविता नहीं आयेगी तब यह तुक ही जो कवि के सामने ऐसे शब्द ला जमा करता है कि गाड़ी चल पड़ती है और छन्द किसी एक पंक्ति के टुकड़े को भी उठाता-उड़ाता कवि को कुछ दूर लिये लाता है....जिस प्रकार देवी-देवाताओं के चित्रों में उनके मुखमण्डल के चारों ओर एक आभा होती है, एक प्रभामण्डल के वैसे ही छन्द और लय कविता की आभा या प्रभामंडल की सृष्टि करते हैं।''[27]

अरुण कमल की कविता 'उत्सव' में लय, छन्द और शब्द-सौष्ठव तीनों का मेल देखा जा सकता है-

''देखों हत्यारों को मिलता राजपाट सम्मान
जिनके मुँह में कौर मांस का उनको मगही पान

x x x x

प्रजातंत्र का महामहोत्सव छप्पन विध पकवान
जिनके मुँह में कौर मांस का उनको मगही पान''[28]

अरुण कमल की कविता के स्वर उसी प्रकार शून्य जगत को बेधते हैं जैसे तम के वक्षस्थल को प्रकाश के तीर-

''चारों ओर अंधेरा छाया
मैं भी उठूँ जला लूँ बत्ती
जितनी भी है दीप्ति भुवन में
सब मेरी पुतली में कसती।''[29]

निष्कर्ष

वस्त्र तन ढकने का भाव है, लेकिन अभिकल्पित वस्त्र शिल्प है। छंद, लय, बिम्ब आदि के अभाव में कविता केवल भाव है। या यों कहें शिल्प के बिना कविता निष्प्राण पार्थिव शरीर के समान है। अंग्रेजी के 'टेकनिक' शब्द का पर्याय है- शिल्प। शिल्प के अंतर्गत 64 कलाओं का उल्लेख किया गया है। कविता में शिल्प के लिए प्रयास नहीं किया जाता है। यह स्वत: समाहित होता चला जाता है काव्य-सृजन में। जिस प्रकार हरेक कवि का वैचारिक दृष्टिकोण अलग-अलग होता है, उसी तरह काव्य शिल्प के अभाव में अधूरी होती है। वैश्वीकृत भाषा के अथाह सागर में काव्य-शिल्प के अपमानित प्रान्त को ढूँढ़ कर मानवीय संवेदना के कवि बन जाते हैं- अरुण कमल। काव्य-भाषा के महत्त्व को बताते हुए डॉ० नामवर सिंह लिखते हैं- ''आधुनिक कविता का मर्म ग्रहण करने के लिए काव्य-भाषा का उपादान ही एकमात्र विश्वसनीय माध्यम रह गया है, जिससे हम इस युग विशेष के काव्य-सर्जन की क्षमता को समझ सकते हैं। ''अरुण कमल की कविता के स्वर उसी प्रकार शून्य जगत को बेधते हैं जैसे तम के वक्षस्थल को प्रकाश के तीर-

''चारों ओर अंधेरा छाया
मैं भी उठूँ जला लूँ बत्ती
जितनी भी है दीप्ति भुवन में
सब मेरी पुतली में कसती।''

संदर्भ-सूची

1. पंत का काव्य शिल्प, डॉ० शिवपाल सिंह, पृष्ठ 16
2. वही, पृष्ठ 17
3. तारसप्तक, अज्ञेय, पृष्ठ 40
4. कविता के नये प्रतिमान, डॉ० नामवर सिंह, पृष्ठ 98
5. अपनी केवल धार, अरुण कमल, पृष्ठ 82
6. पुतली में संसार, अरुण कमल, पृष्ठ 13
7. नई कविता में वैयक्तिक चेतना, डॉ० अवध नारायण त्रिपाठी, पृष्ठ 256
8. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान, केदारनाथ सिंह, पृष्ठ 22
9. एक कवि की नोटबुक, राजेश जोशी, पृष्ठ 22
10. अपनी केवल धार, अरुण कमल, पृष्ठ 22
11. योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 20
12. सबूत, अरुण कमल, पृष्ठ 12
13. पुतली में संसार, अरुण कमल, पृष्ठ 56
14. अपनी केवल धार, अरुण कमल, पृष्ठ 69
15. सबूत, अरुण कमल, पृष्ठ 12
16. वही, पृष्ठ 15
17. एक कवि की नोटबुक, राजेश जोशी, पृष्ठ 205
18. सबूत, अरुण कमल, पृष्ठ 36
19. वही, पृष्ठ 47
20. नये इलाके में, अरुण कमल, पृष्ठ 13
21. वही, पृष्ठ 16
22. मैं वो शंख महाशंख, अरुण कमल, पृष्ठ 87
23. योगफल, अरुण कमल, पृष्ठ 34
24. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, कैलाश वाजपेई, पृष्ठ 73
25. नये इलाके में, अरुण कमल, पृष्ठ 93
26. प्रतिनिधि कविताएँ, सं० प्रेमरंजन अनिमेष, पृष्ठ 83
27. कविता और समय, अरुण कमल, पृष्ठ 216
28. सबूत, अरुण कमल, पृष्ठ 62
29. नये इलाके में, अरुण कमल, पृष्ठ 93

डिजिटल कला का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

डॉ० संगीता कुमारी

अतिथि सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, एस. के. महिला कॉलेज, बेगूसराय,
एल. एन. एम. यू. दरभंगा, बिहार

सारांश

डिजिटल कला आज के वैज्ञानिक युग की कला है। ''विज्ञान के सहारे मानव ने प्रकृति के अनेक रहस्यों का पता लगाकर अद्‌भुत सफलता प्राप्त कर ली है। 18 वीं शताब्दी में विश्व में औद्योगिक क्रान्ति होने के कारण हाथ से कार्य करने की परम्परा का स्थान मशीनों ने ले लिया था।'' उस समय के कलाकारों ने भी इसका लाभ उठाया व वर्तमान कलाकार भी इस औद्योगिक क्रान्ति के विकास एवं प्रयोग में पीछे नहीं है। आज सूचना प्रौद्योगिकी ने न केवल मानव जीवन को प्रभावित किया है, बल्कि इसके कारण समस्त सोच, दृष्टिकोण, जीवनशैली में भी बदलाव आया है। सम्पूर्ण कला जगत् इससे प्रभावित हुआ है। मनुष्य और उसके कृत्तित्व को समझने के लिए उसके मन को समझना आवश्यक है। कला, मनुष्य का एक श्रेष्ठ और सुरूचिपूर्ण ही नहीं, अपितु सहज और स्वाभाविक कृत्तित्व है। जिसके द्वारा वह अपने आप को (आत्मा को), अपनी इच्छा, सुरूचि, मूल्यबोध, स्वप्न, कामना, कल्पना, उड़ान, स्फूर्ति, अनेक विधा मनोभाव एवं अनुभूतियों को रूपित करता है, इन्द्रिय ग्राह्य गठन में बाँधता है, अभिव्यक्ति देता है। डिजिटल माध्यम से सृजन कार्य करते हुए भी कलाकार उपरोक्त सभी घटकों का सदुपयोग करता है। इस कारण डिजिटल कलाकार की सृजन प्रक्रिया भी, एनालॉग माध्यम का प्रयोग कर सृजन कार्य करने वाले कलाकार की तरह ही होती है।

मुख्य शब्द : सूचना प्रौद्योगिकी, ब्रॉडबैंड, एनालॉग माध्यम, औद्योगिक क्रान्ति, कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग

परिचय

किसी भी कलाकृति की सृजन-प्रक्रिया इसके अध्ययन का आधार होती है। डिजिटल कला सृजन-प्रक्रिया में कलाकार के सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति के साथ-साथ सूचना-प्रौद्योगिक क्रान्ति का पक्ष भी समानान्तर अपनी भूमिका निभाताहै। ''यहाँ सूचना प्रौद्योगिकी से आशय उन समस्त बहुसंचारी (मल्टीमिडिया) पद्धत्तियों से है, जिनके अन्तर्गत टेलीफोन, फैक्स, मोबाइल फोन, टेलीप्रिंटर, टी.वी., कम्प्यूटर, इंटरनेट, ई-मेल इत्यादि त्वरित संदेश व सूचना-प्रवाह के माध्यम के रूप में प्रकट होते हैं।'' सूचना प्रौद्योगिकी का तेजी से प्रचार कम्प्यूटर के फलस्वरूप संभव हुआ है। कम्प्यूटर का व्यापकता से प्रयोग होने के कारण ही सूचना तकनीक का शीघ्रतम विकास संभव हो पाया है, क्योंकि सूचना प्रचार एवं प्रसार की जितनी भी तकनीकों का विकास हुआ, वे सब कम्प्यूटर पर ही आधारित हैं। जैसे- ई-मेल, ई-कॉम, इंटरनेट, ब्रॉडबैंड आदि। वर्तमान दर्शक व कला कारइन सब डिजिटल सूचना प्रौद्योगिकी के उपकरणों के बीच रहकर, स्वयं के सौंदर्यात्मक अनुभव व अभिव्यक्ति को इनके प्रभावों से अलग नहीं कर सकता। क्योंकि उसके परिवेश एवं वातावरण में डिजिटल क्रियाएं निरंतर बढ़ रही हैं, जो समकालीन मानव के जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस प्रकार डिजिटल सौंदर्यात्मक व्यवहार का उदय होता है जो डिजिटल कला के स्वरूप में हमारेसामने प्रकट होता है। वुण्ट व अन्य मनोवैज्ञानियों ने माना कि इस जगत् में अनेक प्रकार की भौतिक ऊर्जा पाई जाती है, जिन्हें ज्ञानेंद्रियां ग्रहण करती है जिनके फलस्वरूप हम प्रतिक्रिया करते हैं। भौतिक ऊर्जा परिवर्तन को जब ज्ञानेंद्रियां ग्रहण कर लेतीहै तो उसे उद्दीपक कहते हैं, व प्राणी की प्रतिक्रिया अनुक्रिया कहलाती है। ये उद्दीपक बाह्य व आंतरिक दोनो प्रकार के हो सकते हैं। कलाकृत्ति से संवेदनातथा प्रत्यक्षीकरण ग्रहण करके ही मानव सौंदर्यात्मक व्यवहार करता है। सौंदर्यात्मक व्यवहार एक ऐसी गतिविधि या क्रिया का उदाहरण है, जिसमें दर्शकसौंदर्य संबंधी सूचनाएं प्राप्त करता है एवं उन्हें अपने स्मृतिकोश में संग्रहित करता है। ताकि भविष्य में आने वाली विशिष्ट परिस्थितियों में उनका प्रयोग कर सके।

विषय-वस्तु

सौंदर्यात्मक व्यवहार क्रिया के वशीभूत होकर डिजिटल कलाकार ने अपने स्मृति कोष में संग्रहित सौंदर्यात्मक सूचनाओं को डिजिटल क्रान्ति की विशिष्ट परिस्थिति में प्रयोगान्वित कर डिजिटल कला का सृजन किया। अनेकों मनोवैज्ञानिक विद्वानों ने कलाकार्यों से जुड़ी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के अंतर्गत मनुष्य की कला कल्पना, कलात्मक सृजन तथा दर्शक पर कलात्मक प्रभाव का व कला समीक्षा से सम्बन्धित पक्षों का अध्ययन किया एवं इसके अन्तर्गत मानव सत्ता एवं व्यवहार पर कला के प्रभाव का अध्ययन भी किया गया और पाया कि प्रत्येक कृति कम या अधिक मात्रा में कलाकार, दर्शक, कला, समाज व संस्कृति को प्रभावित करती है। और ''यह तो निश्चित है कि युग, आदर्श तथा देश की विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव कलाकार को अवश्य प्रभावित करता है, परन्तु कलाकार की अपनी निजी सत्ता होती है जो उस प्रभाव में रहते हुए भी अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़े बिना नहीं रहती। ''यही कारण है कि डिजिटल कलाकार ने अपनी रूचि के अनुसार कला-माध्यम के रूप में डिजिटल अमूर्त व मूर्त चित्र-सृजन किया तथा दर्शक व समाज ने इनकी कलाकृतियों को कला रूप में सहर्ष स्वीकार भी किया। यहाँ यह कहना भी उचित होगा कि कला माध्यम की भी अपनी निजी सत्ता होती है, जो उस प्रभाव में रहते हुए माध्यम होने के नाते कलाकृति में अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहती। चूंकि डिजिटल कलाकृति को पिक्सल में देखा जा सकता है। उसे सूक्ष्म करके कुछ पलों में सुदूर स्थान पर भेजा जा सकता है। इस विचार ने भी कहीं न कहीं कलाकार को यह माध्यम अपनाने के लिए लालायित किया है। व्यक्ति और कला दोनो परस्पर सापेक्ष है।

व्यक्ति के बिना कला नहीं बन सकती और कला के बिना व्यक्ति विकसित नहीं हो सकता। कला, व्यक्ति द्वारा सृजित है तो व्यक्ति कला द्वारा सिंचित है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति का कला पर तथा कला का व्यक्तियों पर अवश्य ही अधिकाधिक प्रभाव पड़ता है। कला, व्यक्ति व्यवहार को समझने की अपरिहार्य आवश्यकता है। डिजिटल कला के युग कीजटिलता को देखते हुए यहाँ यह कहा जा सकता है कि अनेकों जटिलताओं के चलते भी मनुष्य ने सौन्दर्यात्मक स्वरूप को किसी न किसी रूप में स्वयं में खोजा है। मनोविज्ञान का क्षेत्र सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र के समान ही विस्तृत है। मनोविज्ञान सब मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है एवं सौन्दर्यशास्त्र, अनुभूति का। सौन्दर्यशास्त्र सभी प्रकार की वेदनाओं और भावों का अध्ययन नहीं करता। यह केवल उदात्त और सुन्दर के भावों से सम्बन्धित है। केवल सौन्दर्य-विषयक भाव इसके विषय है। कला मनोविज्ञान मनुष्य के कलात्मक सृजनया कला समीक्षा से सम्बन्धित पक्षों का अध्ययन करता है। विद्वानों के अनुसार कलासृजन प्रक्रिया जितनी जटिल है उतनी ही जटिल प्रक्रिया उसकीकला-समीक्षा की है।

मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा के अनुसार कलाकारचित्र-सृजन प्रक्रिया में जिन मानसिक चरणों से गुजरता है। चित्र से आनन्द ग्रहण करने के लिए दर्शक को भी उन्हीं चरणों से गुजरना होता है। इस प्रकार मनोविज्ञान एवं सौन्दर्यशास्त्र का समन्वित रूप कला समीक्षा में भी प्रस्तुत होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि डिजिटल कला का माध्यम की कसौटीसे परे उसके भौतिक सुन्दर स्वरूप एवं सम्प्रेषण सटीकता के आधार परसौन्दर्यात्मक मनोवैज्ञानिक अध्ययन करना औचित्यपूर्ण है तथा डिजिटल कला की कला समीक्षा या आनन्द ग्रहण करते समय समीक्षक व दर्शक को कलाकार की अभिव्यक्ति व माध्यम प्रक्रिया दोनों चरणों से गुजरना होगा। इस स्थिति में डिजिटल कला समीक्षक व दर्शक पर दो तरफा सौन्दर्यात्मक मनोवैज्ञानिक प्रभावरखती है। प्रथम कृति के भौतिक स्वरूप से सम्बन्धित तथा दूसरा उसकी जटिलनिर्माण प्रक्रिया से सम्बन्धित। उदाहरणस्वरूप- चार्ल्स सूरी द्वारा सृजित ऐल्गोरिद्म चित्र 'रूट ऑफ इविल' व 'रिबन रोम कलात्मक सौन्दर्य के पक्ष से दर्शक को आकर्षित तो करता ही है साथ ही उसकी संरचनापक्ष को समझने पर भी वह दर्शक को आचर्श्यचकित करता है। जिससे डिजिटल कला में दर्शक की रूचि बढ़ती है।

इस प्रकार डिजिटल कलाकृतियाँ दर्शक व समाज व कलाकार के कलात्मक मनोविज्ञान को प्रभावित करती है। हम जन्म से मृत्यु तक विभिन्न आकारों में हर वक्त घिरे रहते हैं तथा परिस्थिति वश कुछ आकार हमारे मन-मस्तिष्क पर अधिक छाए रहते हैं। जब इन आकारों का प्रभाव हमारे मन-मस्तिष्क पर सघन हो जाता है। तब प्रतिक्रिया केतौर पर आकारों द्वारा व्यक्ति अभिव्यक्ति करता है। आकार हमेशा हमारे आस-पास के वातावरण से ग्रहण किए जाते हैं तथा उन्हीं का ही प्रयोग अभिव्यक्ति हेतु किया जाता है। डिजिटल कला में प्रयुक्त आकारों, व डिजिटल यन्त्रों के आकारों ने भी दर्शक, कलाकार तथा समाज को प्रभावित किया, जिसके

परिणामस्वरूप 'छद्म यथार्थवाद' जैसे कलावादों का उदय हुआ। यही नहीं कलाकारों ने विभिन्न संदर्भों में डिजिटल यन्त्रों के आकारों का चित्रण भी अपनेचित्रों में किया है। भारत में आज डिजिटल शैली में कलाकार्य सृजन करने वाले कई कलाकार है। हमारा व्यवहार भी वैसा ही होता है जैसा हमारी आन्तरिक स्थिति (मनोस्थिति) होती है। उदाहरणस्वरूप-हम खुशी और दु:ख का आभास आन्तरिकरूप में ही प्राप्त कर पाते हैं तथा मनुष्य स्वयं की आन्तरिक स्थिति के अनुसार ही प्रतिक्रिया करता है। इस सन्दर्भ में फ्रॉयड की अवचेतना की विचारधारा इसे अधिक स्पष्ट करती है कि अनुभूति की अभिव्यक्ति में किसी प्रकार की जबरदस्ती नहीं हो सकती। उदाहरण स्वरूप- दु:खद अवस्था में कोई भी व्यक्ति खुशी काव्यवहार नहीं कर सकता। इसी प्रकार आज हमारे आसपास का सम्पूर्ण वातावरण डिजिटल क्रियाओं से भरा हुआ है। इस स्थिति में वर्तमान कलाकार वैदिक युग के चित्रण-माध्यम का प्रयोग तथा वैदिक वातावरण का चित्रण अपनी कृत्ति में नहीं कर सकता।

प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति, अनुभव व भाव की मात्र भिन्न-भिन्न होती है तथा एक ही व्यक्ति के अनुभव व भाव अलग-अलग परिस्थितियों में भिन्न-भिन्नहोते हैं। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति की अभिव्यक्ति भी भिन्न-भिन्न होती है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तिगत रूप से भिन्न होता है जिस कारण प्रत्येक व्यक्ति के विभिन्न व्यक्तिगत स्वतन्त्र व्यहार के दर्शन हो पाते हैं। चूंकि कला का रस्वयं की व्यक्तिगत अनुभूति, अनुभव व भाव स्तर के आधार पर ही सृजन कार्यकरता है तथा दर्शक भी स्वयं के व्यक्तिगत स्तर के आधार पर ही आनन्द ग्रहण कर पाते हैं। इस कारण कलाकृति से आनन्द ग्रहण करने का स्तर भिन्न-भिन्न होता है। इस पूरी प्रक्रिया में व्यक्ति की प्रत्यक्षण (Perception), सौन्दर्यात्मक संवेदनशीलता व सौन्दर्यात्मक आनन्द का प्रभाव पड़ता है जो अन्य तत्वों जैसेव्यक्ति के पालन-पोषण, वातावरण, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियों तथा लिंग व आयु आदि से प्रभावित होती है। इन सबका प्रभाव उसकी पसन्द व नापसन्द को प्रभावित करता है तथा इन्हीं कारकों से मनुष्य का सौन्दर्यात्मक व्यवहार निश्चित हो जाता है। डिजिटल कलाकृति से आनन्द ग्रहण करते समय भी ये सभी घटक अपनी भूमिका निभाते हैं, जिसके आधार पर दर्शक अपनी पसन्द व नापसन्द को निर्धारित करता है। अत: मानवीय व्यवहार क्षण-प्रतिक्षण, विभिन्न उद्दीपकों के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है।

आधुनिक औद्योगिक, डिजिटल व संचार के युग में डिजिटल संचार की तीव्र गति के कारण मानव को क्षण-प्रतिक्षण अनेकानेक उद्दीपक मिलते रहते हैं जिस कारण आज का मानव-जीवन व व्यवहार बहुत पेचिदा होता जा रहाहै। तथा जीवन की जटिलता का प्रभाव कला में आना स्वाभाविक है। इस कारण वर्तमान समय में कला में भी जटिलता का पूर्ण समावेश हो रहा है तथा पल-पलनई कलाकृतियों का जन्म हो रहा है। उदाहरण स्वरूप- कुछ ही पलों में कई कलाकृतियाँ आपके सम्मुख प्रस्तुत की जा सकती है। जैनरेटिव कला रूप इस का उचित उदाहरण है। चूँकि परिवर्तन और विकास स्वाभाविक प्रक्रिया है और समय की जरूरत भी। वे उस समय की परिस्थितियाँ थी, जब कला और साहित्य कभी धर्म तो कभी सत्ता के अनुयायी थे, लेकिन अभिव्यक्ति पर बन्दिशें हटते ही कला में अनेक प्रकार के प्रयोग सामने आए। यह परिवर्तन, तकनीकी और वैचारिक दोनों स्तरों पर हुआ। यह भी समय के अनुकूल था। यह आवश्यक भी था कि हम अनेकों आग्रहों और जकड़नों से बाहर आये।

डिजिटल कला भी इन्हीं बन्दिशों से मुक्त प्रौद्योगिकी समाज की देन है। डिजिटल कला भी कलाकार समाज में वैज्ञानिक स्तर पर परिवर्तन होने के कारण ही अस्तित्व में आया। ''इसके अतिरिक्त आधुनिक समय में कम्प्यूटर का बोलबाला है जिसके आधार पर मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को 'कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग' के मॉडल पर समझने, वर्णन करने एवं व्याख्या प्रस्तुत करने की दिशा में अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयत्नशील है और उन्हें अपने प्रयासों से पर्याप्त सफलता मिल रही है।यही नहीं, कलाकारों ने भी कम्प्यूटर का कला सृजन हेतु भरपूर प्रयोग किया तथा सुन्दर व औचित्यपूर्ण महान् कलाकृतियों का सृजन करने में भी सफल रहे। आज कला, मनोविज्ञान तथा अन्य वैज्ञानिक क्षेत्रों की प्रगतियों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल रही है। इस स्थिति में यह कहा जा सकता है कि ''आज के एटमी युग में अपनी सम्पूर्ण शक्ति और आध्यात्मिक सम्भावनाओं के साथ युग के हृदय में प्रवेश करना चाहिए। हमारा विचार है कि नूतन मनुष्य के निर्माण के लिए नूतन मन बनाना होगा और इसके लिए कला की भावोद्रेक, भावोन्मेष की शक्ति का उपयोग करना भी अपेक्षित है।'' इस प्रकार डिजिटल कला को उसके मनोवैज्ञानिक प्रभावों के आधार परसमझा जा सकता है कि, आज कलाकार स्वयं को शीघ्र-अतिशीघ्र अभिव्यक्त करने को तत्पर है, इस कारण भी वह डिजिटल कला माध्यम का प्रयोग कला सृजन हेतु कर रहा है। डिजिटल कला के सौन्दर्यात्मक व्यवहार को समझने व जानने हेतु अनेकों विद्वानों द्वारा दी गई सौन्दर्यात्मक व्यवहार की कत्तिपय सैद्धान्तिक विचारधाराओं को आधार बनाया गया है।

अध्ययन के आधारभूत मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त व कला, कलाकार, दर्शक पर डिजिटल कला के प्रभाव:

पुरात्तन समय से ही भारत, चीन तथा पश्चिमी देशों के कलाकारों, कला-विचारकों, कला-समीक्षकों व दर्शकों ने स्वयं के देश व काल की कला को समझने व जानने हेतु कला के कुछ आधारभूत सिद्धान्तों का प्रयोग किया। उदाहरणस्वरूप- भारतीय-शड्ंग, चीनी-शड्ंग तथा पाश्चात्य कला के तत्व एवं सिद्धान्त आदि जिनके आधार पर चित्रकला को जानने व समझने का प्रयास किया जाता रहा है। बिना किसी आधार के किसी वस्तु का मूल्यांकन करना, समझना वजानना बहुत कठिन कार्य है। आधुनिक काल में मनोविज्ञान की अनेक विचार धाराएं विकसित हुई हैं। आधुनिक काल से मेरा तात्पर्य वैज्ञानिक युग से है, जिसकी समय-सीमा 18वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी है। तथा इसी समय में मनोविज्ञान एक स्वतन्त्र विषय के रूप में उभरकर सामने आया और मानव जीवन से जुड़े विविध पक्षों की मनोवैज्ञानिक गवेषणाएं या धारणाएं प्रतिपादित की गई। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने दृश्यकला पर आधारित अनेक परिक्षण तैयार किए व उनके माध्यम से मानव व्यवहार का अध्ययन किया। कला क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों ने समय-समय पर कला के मानव मस्तिष्क पर पड़ने वाले कई मनोवैज्ञानिक प्रभावों का अध्ययन किया है तथा कला को समझने व समीक्षा हेतु कई मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का वर्णन किया है। उसी आधार पर कला समीक्षा का मनोविज्ञान के अन्तर्गत यहाँ डिजिटल कला के मनोवैज्ञानिक प्रभावों का अध्ययन करने हेतु कतिपय मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं को आधारभूत सिद्धान्तों के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

मनोभौतिक मनोवैज्ञानिक विचारधारा-

मनोविज्ञान की इस शाखा के जन्मदाता वेबर एवं फैचनर हैं। उन्होंने मनोविज्ञान के क्षेत्र में भौतिकी (Physics) के नियमों एवं सिद्धांतों को प्रस्तुत किया। इसमें उन्होंने मानसिक प्रक्रियाओं, संवेदनाओं और भौतिक उद्दीपनों के मध्य परिमाणात्मक संबधों का अध्ययन किया। मानव ने जब पृथ्वी पर अपने नेत्रों का उन्मीलन किया तो स्वयं को आकारों से घिरा हुआ पाया। यही आकार मानव मन तथा शरीर पर प्रभाव डालते है। मानव मन सदा ही रहस्यमय रहा है एवं स्वयं मानव के अध्ययन का विषय रहा है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन वातावरण के साथ क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं के बीच व्यतीत होता है। मनुष्य अपने आस-पास की विभिन्न वस्तुओं एवं व्यक्तियों को देखता है, अनेकों आवाज़ें सुनता है, वस्तुए स्पर्श करता है, सूंघता है, स्वाद को चखता है। ये सभी क्रियाएँ ज्ञानेन्द्रियों से होती है जो इन ढ़ेर सारी वस्तुओं को ऊर्जा के रूप में ग्रहण करती है। इन्हें ही ग्राहक कहते हैं। ग्राहकों द्वारा ऊर्जारूप में ग्रहण की गई सूचनाओं से संदेशों को मस्तिष्क द्वारा संगठित, संकलित और मूल्यांकित किया जाता है और तब व्यक्ति उक्त उत्तेजना के प्रति कोई प्रतिक्रिया अनुक्रिया करता है। वातावरण में उपस्थित उत्तेजनाओं के प्रति की जानेवाली अनुक्रिया को ही व्यवहार कहते है। यद्यपि प्राय: हम आकारों से प्रभावित होने का कारण नहीं जान पाते हैं परन्तु मानव आकारों से अवश्यमेव प्रभावित होतेही हैं। इन आकारों से उत्पन्न उद्दीपकों से प्राप्त भौतिक-जगत संबंधी उत्तेजनाओंको ही संवेदन कहते है।

संवेदन एक मानसिक क्रिया है जो, भौतिक उद्दीपकों के द्वारा उत्पन्न की जाती है। संवेदन की तीन प्रमुख विशेषताएँ मानी गई है- गुणया प्रकार (Quality) ए तीव्रता (Intensity) तथा अवधि (Duration) ये तीनों विशेषताएँ भौतिक जगत् के उद्दीपकों से सम्बन्धित होती है। प्रमुख विशेषताओं का अर्थ वे गुण एवं विशेषताएं, हैं जो प्रत्येक प्रकार की संवेदना (दृष्टि संवेदना, श्रवण संवेदना, स्पर्श संवेदना, गंध संवेदना व स्वाद संवेदना) में पायी जाती हैं। प्रकार: ज्ञानेद्रियों के आधार पर संवेदना के प्रकार में भेद होता है। उदाहरण स्वरूप- आँख द्वारा दृष्टि संवेदना, त्वचा द्वारा स्पर्श संवेदना, नाक द्वारा गंध संवेदना, जीभ द्वारा स्वाद संवेदना आदि। इसे संवेदना का सामान्य गुण कहते हैं, तथा इसी के साथ इसका विशिष्ट गुण भी पाया जाता है। जैसे- भिन्न प्रकारके रंगों की संवेदना आँख द्वारा ही होती है। लेकिन, उनमें भी अन्तर पाया जाता है। कभी हल्के पीले रंग, तो कभी गाढ़े पीले रंग की संवेदना होती है। यही बात डिजिटल कला से रंगों के संबंध में देखी जा सकती है, इसे ही संवेदना का विशिष्ट गुण कहते हैं। तीव्रता: संवेदना में तीव्रता का गुण भी देखा जाता है। कुछ संवेदना अधिक तीव्र होती है और कुछ संवेदना कम तीव्र। जैसे- रेल के इंजन की सीटी की संवेदन तीव्रता में और मच्छर की भन भनाहट की संवेदन तीव्रता में अंतर होता है। इन दोनों से प्राप्त संवेदना में भिन्नता होगी। अवधि: प्रत्येक संवेदना की अपनी अवधी होती है। उद्दीपक की अवधि जितनी अधिक विस्तृत होगी, उससे उत्पन्न संवेदना भी उतनी ही तीव्र होगी। सुई की दृष्टि संवेदना से रेलगाड़ी की दृष्टि संवेदना विस्तृत होगी।

दृष्टि-भ्रमण (Eye Movement)-

डिजिटल कला में दृष्टि-भ्रमणकलाकृति के भौतिक सौन्दर्य की वृद्धि में विशेष महत्व रखता है। मानव की ज्ञानेन्द्री आँख का इसमें विशेष स्थान है। इस सृष्टि में व्याप्त रूप, रंग, रेखा, आकार की जानकारी हमारी दृश्येन्द्रियों द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचाई जाती है और प्रकृति के इस लयात्मक स्थूल रूप की अनुभूति मन को आनन्द प्रदान करती है, जिससे रसानुभूति होती है। औपचारिक स्थूल सौन्दर्य (Formal Physical Beauty) के प्रत्यक्षण से जो सौन्दर्यशास्त्रीय आनन्द प्राप्त होता है। वह प्रायः दृष्टि भ्रमण याविचरण से होता है। डिजिटल कलाकृति देखते समय कृति में संयोजित आकारों पर दर्शक की दृष्टि मुख्य व सहायक आकारों पर भ्रमण करती है जिसे दृष्टि भ्रमण (EyeMovement) कहा जाता है। अनेक विद्वानों के अनुसार, ''भौतिक सौंदर्य को समझने के लिए दृष्टि भ्रमण का विशेष योगदान रहा है''।

किसी भी चित्र में आकारतथा रंग संगति महत्वपूर्ण सौंदर्य शास्त्रीय कारण है। तथा आकारों व रंग कीसंगति ही दर्शक के दृष्टिभ्रमण को प्रभावित करती है'', इस कारण मनोभौतिक मनोविज्ञान की दृष्टि से चित्र में दर्शक का दृष्टिभ्रमण तथा दृष्टि का ठहराव, अध्ययन का विषय है। डिजिटल चित्रों के सृजन में भी डिजिटल कलाकारों ने दृष्टि भ्रमण तत्व का समावेश किया है जो अध्ययन का विषय है। अनेक रूप व आकारों की संरचना से डिजिटल चित्र का निर्माण होता हैऔर यह चित्र दृष्टिगत एवं भावात्मक होता है जिसका मिला-जुला प्रभाव आँखपर एक साथ पड़ता है। यही भौतिक सौन्दर्यानन्द का कारण बनता है। इससौन्दर्य में अनेक महत्वपूर्ण तत्वों का समावेश होता है और इन्हीं तत्वों को सही अनुपात में जब संयोजित करते हैं तो वह चित्र संयोजन की दृष्टि से उचित मानाजाता है जैसे- राफैल की कलाकृति 'क्रूसीफिकेशन' का संयोजन भौतिक सौन्दर्यका आधार माना जाता है। दर्शक की दृष्टि एवं चित्र के बीच के सम्बन्ध पर अनेक विद्वानों एवं मनोवैज्ञानिकों ने शोध कार्य किए। अनेक विद्वानों ने प्रत्येक बार यहमाना कि भौतिक सौन्दर्य के प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त सौन्दर्यात्मक आनन्दानुभूति आँखों के भ्रमण से सम्बन्धित होती है।

सर्वप्रथम 1877 ई. में ग्रान्ट ऐलन (GrantAllen) नामक विद्वान ने कहा कि - ''आकारों की सुन्दरता मुख्य रूप सेनिकटवर्ती सटे बिन्दुओं पर आँखों के माँसपेशिय भ्रमण से सम्बन्धित होता है।'' तथा उन्होंने यह भी कहा कि ''रूचिकर भावनाएँ सम्बन्धित माँसपेशियों तथा अन्य उत्तकों के सरल तथा अबाधित क्रिया के कारण सभी लावण्ययुक्त आकारों से आती है। इनका यह भी मानना था कि- जब आँखे किसी चित्र के सुन्दरलयात्मक आकारों पर लयात्मक रूप से विचरण करती है तो उससे सौन्दर्यानन्द प्राप्त होता है। इस कारण दृष्टिभ्रमण सौन्दर्य तत्व से युक्त डिजिटल कलाकृतियाँ सौन्दर्यात्मक आनन्दानुभूति का कारण बनती है।

रंग संगति (Colour Harmony).

अनेक रूप व आकारों की संरचना तथा संयोजन से चित्र का सृजन होता है। इन सबका मिला जुला प्रभाव आँख पर एक साथ पड़ता है। चित्र के यही दृष्टिगत प्रभाव आनन्द का कारण बनते हैं। एक चित्र में अनेक महत्वपूर्ण तत्वों का समावेश होता है। उदाहरण स्वरूप- रेखा, रंग, तान, पोत, आकार 70 व संयोजन, लय, विषय-वस्तु, केन्द्रियता, अंतराल, अनुपात आदि। कला मनोविज्ञान की दृष्टि से औपचारिक सौंदर्य में रंग एक मुख्य तत्व है, तथा रंग की लयात्मक या संगतिपूर्ण अभिव्यक्ति रंग संगति कहलाती है। रंग संगति रंग का सौन्दर्य शास्त्रीय पक्ष होता है। रंग से प्राप्त संवेदना हमारे मन व मस्तिष्क पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। डिजिटल कलाकी प्रत्येक रंगयुक्त डिजिट कला संवेदना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। औपचारिक सौन्दर्य के दृश्यीय प्रत्यक्षण का मस्तिष्क की तरंगों पर भी प्रभाव पड़ता है। इस कारण अनेक विद्वानों ने रंग को कला समीक्षा तथा औपचारिक सौंदर्य के मनोविज्ञान के संदर्भ में समझना महत्वपूर्ण माना। औपचारिक सौन्दर्य के दृश्यीय प्रत्यक्षण में आकार के साथ-साथ रंग भी दर्शक पर सीधा प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार डिजिटल कला के मनोविज्ञान को समझने के लिए डिजिटल कलाकृतियों के रंगों का प्रभाव को जानना भी आवश्यक है।

सन्दर्भ-सूची :

1. टेलर, मदनलाल (सूचना प्रौद्योगिकी का शिक्षा में योगदान), राजस्थान बोर्डशिक्षण पत्रिका, अप्रैल, 2002- मार्च, 2003 (एक वर्षिय समेकित अंक), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान : अजमेर, पृ0 सं.-25
2. शर्मा, डॉ. हरद्वारी लाल, कला मनोविज्ञान (सौंदर्य, माधुर्य और उदात्त काविवेचन), मानसी प्रकाशन : कैलाशपुरी, मेरठ, प्रथम संस्करण-1992, पृ0 सं.-11

3. https://en.wikipedia.org/wiki/psyche_(psychology)
4. नरसिंहचारी, डॉ. एस. टी., सौन्दर्य तत्व निरूपण, वाणी प्रकाशन : कमलानगर, दिल्ली प्रथम संस्करण-1977, पृ0 सं.-1
5. टेलर, मदनलाल (सूचना प्रौद्योगिकी का शिक्ष में योगदान), राजस्थान बोर्डशिक्षण पत्रिका, अप्रैल, 2002- मार्च, 2003, पूर्वोक्त, पृ0 सं.-25
6. Giles, Bridget (Editor), History of Psychology, Grange Books:Kent, 2005, P. No-32-35
7. आर्य, जयदेव, कला का अध्यापन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन : आगरा, पृ0 सं. -36
8. Funch, Sode Bjarne, The Psychology of Art Appreciation, MuseumTusculanum Press : Njalsgade, 1997 P.No.-1
9. सरना, प्रो. किरन, अप्रकाशित लेख 10 मिश्र, अवधेश, (जरूरत, आज की), कला दीर्घा, अप्रेल-2015, वॉल्यूम-15, नम्बर-30, गोमती नगर : लखनऊ, पृ0 सं.-4
10. मिश्र, ब्रज कुमार, मनोविज्ञान : मानव व्यवहार का अध्ययन, पी एच आईलर्निंग प्रा. लि. : नई दिल्ली, 2010, पृ0 सं. -22

हिंदी साहित्य पर महात्मा गांधी का प्रभाव

डॉ० अनीता

दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड कॉमर्स, (दिल्ली विश्वविद्यालय)

मनुष्य महान पैदा नहीं होता उसके विचार उसे महान बनाते हैं। माननीय विचारों की शुद्धता और सहजता ही व्यक्ति को आम जनमानस से अलग करती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, जिन्हें प्रेम से दुनिया 'बापू' कहती है, अपनी सोच में महान, किंतु एक साधारण इंसान थे। करोड़ों देशवासियों के जीवन में बदलाव लाना उनके जीवन का मकसद था ।

आलोचक प्रो० मैनेजर पांडे ने 'गांधी: महात्मा से चेथरिया पीर तक' शीर्षक लेख में लिखा है: "गांधी की एक विशेषता उनकी दृष्टि की समग्रता है जो स्वाधीनता आंदोलन के किसी दूसरे नेता में नहीं मिलती। उनकी दृष्टि भारत की केवल राजनीतिक स्वाधीनता तक सीमित न थी। उनके सामने भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण का महाप्रश्न था। उनकी आकांक्षा का स्वराज केवल राजनीतिक और आर्थिक ही नहीं, नैतिक भी था। उस युग के कुछ नेता भारत के अतीत की स्मृति में खोये हुए थे, कुछ वर्तमान के बोध से आक्रांत और कुछ भविष्य की चिंता में डूबे हुए थे। लेकिन गांधी की दृष्टि में अतीत की स्मृति, वर्तमान के बोध और भविष्य की चिंता की जटिल समग्रता थी, केवल एक विचार के रूप में ही नहीं, ह्दय के विवेक के रूप में। उनकी ह्दय के विवेक के निर्माण में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका थी"।

चाहे गुजराती भाषा हो, या मराठी, तमिल अथवा हिंदी भाषा हो- सभी के साहित्यकारों से गांधीजी का निकट संबंध था। गांधी जी की एक विशेषता यह भी थी कि वे एक जागरूक पाठक भी थे। हिंदी साहित्य के अनेक कवियों और साहित्यकारों से गांधी जी विचार-विमर्श भी करते थे। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, भवानीप्रसाद मिश्र, बनारसीदास चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमचंद, निराला, पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, वियोगी 'हरि' आदि लेखक - कवि ऐसे थे, जिनके विचारों की समझ कहीं न कहीं गांधी के विचारों से मेल खाती थी। ध्यान देने की बात है कि मनुष्य मूल रूप से एक रचनात्मक प्राणी है। इंसानी रचनात्मकता की गहराई और फलक उसे शेष जीव -जंतुओं से अलग करती है। गांधीजी अक्सर कहते थे कि यदि रचनात्मकता या मौलिकता की अभिव्यक्ति से मनुष्य को अलग कर दिया जाएगा, तो मनुष्य, सिर्फ एक सामान्य मनुष्य के रूप में ही समाप्त हो जाएगा। इस रचनात्मकता को प्राप्त करने के लिए गांधी जी प्रकृति की और बड़ी आन्तरिकता से जुड़ते हैं। उनका मानना था कि प्रकृति ने मनुष्य को बहुत कुछ दिया है। उनका यह भी कहना था कि प्रकृति अपने आप में अपार, रचनाशील और बेहद सुंदर है और उसके साहचर्य में ही मनुष्य सहज और सुन्दरतम हो सकता है । गांधी जी का कवि मन प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर मुक्ति के पर्याय को स्पष्ट करता है। इस प्रकार गांधी वैश्विक पटल पर एक वैकल्पिक चिंतन प्रणाली का विकास करते नजर आते हैं।

हिंदी साहित्य में गांधी के प्रभाव को स्पष्ट और व्यापक तौर पर देख सकते हैं। महात्मा गांधी के चिंतन, राष्ट्र के निर्माण का स्वप्न, स्वराज और स्वावलंबन इत्यादि को हिंदी के अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। भारतीय संस्कृति के मूल आधार-सत्य, अहिंसा, समन्वय और सामासिकता की संस्कृति पर गाँधी जी का समग्र चिंतन आधरित है। महात्मा गांधी श्रीराम के चित्र से बहुत प्रभावित थे; और तुलसीदास के 'रामराज्य' की कल्पना से भी प्रभावित थे। यहाँ तक की अंतिम साँस तक वे 'राम' को नहीं भूल पाए। डॉ. श्रीभगवान सिंह अपनी पुस्तक 'गांधी का साहित्य और भाषा चिंतन' की भूमिका में लिखते हैं- 'हिंदी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र से लेकर महावीर प्रसाद द्विवेदी तक जिस हिंदी नवजागरण की चर्चा की जाती है, उसे पूरे देश में राष्ट्रीय जागरण

में परिणत करने का कार्य गांधीजी के हाथों ही हुआ- विशेषकर दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार के काम का श्रेय उन्हें ही जाता है। खेद की बात है कि हिंदी में अब तक हुए लेखन में हिंदी नवजागरण की जो चर्चा की जाती है, उसमें गांधीजी की इस राष्ट्रव्यापी भूमिका पर खास ध्यान नहीं दिया गया।

महात्मा गांधी भगवान बुद्ध की मूल संकल्पना 'बहुजन हिताय,बहुजन सुखाय' एवं ग्राम- स्वराज के पक्ष में खड़े रहे; जिसका प्रभाव हिंदी साहित्य में प्रेमचंद और उनके बाद के रचनाकारों पर भी देखा जा सकता है।कई असमानताओं के होते हुए भी गांधीजी और प्रेमचंद के चिंतन में कई समानताएँ थीं । प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों- 'गोदान', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प' तथा अनेक कहानियों के माध्यम से भारतीय जन-जीवन को चित्रित किया है जिसमें गाँधी-दर्शन का प्रभाव दीखता है। इसी क्रम में फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यास 'मैला आंचल' में भी ग्राम स्वराज की बात की गयी है। वाहन तो 'गन्हीमहात्मा' बहुत स्पष्टता के साथ आते हैं। इसके आलावा और भी कथाकार हैं जिनकी रचनाओं में गांधीवाद का स्वर बड़ी प्रमुखता से सुनाई पड़ता है जिनमे जैनेन्द्र कुमार प्रमुख हैं।

कथा साहित्य के अलावा हिंदी कविता में भी गांधी जी के आदर्शों का प्रभाव देखा जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' अपने समय में भारतीय जनों के कंठ का हार थी। उसमें राष्ट्रीयता का प्रधन स्वर था और गांधी जी के अनेक सपनों और आदर्शों की बातें झलकती हुई दिख जाती हैं । उदाहरण के लिए, 'श्री गोखले, गांधी - सदृश नेतामहामतिमान'।

मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई सियाराम शरण गुप्त की भी अधिकांश रचनाओं में सत्य,करुणा,अहिंसा, विश्वबंधुत्व और विश्व शांति आदि गांधीवादी विचारों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। इसीप्रकार, सुभद्रा कुमारी चौहान पर भी गाँधी जी के चिंतन का बहुत प्रभाव दीखता है। उन्होंने 'बालिका का परिचय' कविता में लिखा है --

'मेरा मंदिर, मेरी मस्जिद, काबा- काशी यह मेरी,
पूजा-पाठ ध्यान जप-तप है घट घट वासी यह मेरी।'

महादेवी वर्मा तो एक कदम और आगे बढ़कर गांधीजी को 'धरा पुत्र' कह कर उनका सम्मान करती हैं-

'हे धरा के अमर पूत, तुमको अशेष प्रणाम!'

सोहनलाल द्विवेदी राष्ट्रीय चेतना और जागरण के महान कवि हैं। उनकी रचनाओं में गाँधी-चिन्तन अनेक रूपों में व्यक्त हुआ है। उन्हों ने अपनी एक रचना में गांधी जी को 'महात्मा' और 'पुण्यात्मा' कहा है-

'ठहरो चिता लगाओ मत, ओ निर्मम देश महात्मा की,
एक बार फिर चरण-धूलि ले लेने दो पुण्यात्मा की।'

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और भवानी प्रसाद मिश्र की 'कालजयी' में भी गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। वस्तुतः गांधीजी भारत के जन के मन में सत्य, अहिंसा, प्रेम, एकता, शांति, सद्‌भाव, साम्प्रदायिक एकता, समानता इत्यादि की भावना पैदा करने के लिए निरंतर जूझते रहे जिसे हिंदी के अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में प्रतिबिंबित करने का प्रयास किया द्य

सार रूप में हम कह सकते हैं कि गांधी जी से हिंदी साहित्य के रचनाकारों को हमेशा प्रेरणा मिलती रही और गांधी जी से प्रभावित होकर अनेक आधुनिक रचनाकारों ने उन्हें अपनी रचनाओं में किसी न किसी रूप में स्थान दिया है। कहीं- कहीं गांधीजी ने भी हिंदी के अनेक रचनाकारों से प्रेरणा ली है, खासकर पुराने कवि तुलसीदास से गाँधी जी का सकर्मक जीवन हिंदी के रचनाकारों के लिए अपने समय में तो प्रेरणा का स्त्रोत रहा ही; आज भी है।

संदर्भः-

1. अनभै साँचा, डॉ. मैनेजर पाण्डेय पृष्ठ-204, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. गांधी का साहित्य और भाषा चिंतन, श्री भगवान सिंह, पृष्ठ 4, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी- 221001
3. SahityaKunj-net
4. वही
5. वही

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019 का प्रारूपः समग्र विश्लेषण

अनुराग तिवारी

शोधार्थी, मालवीय शांति अनुसंधान केंद्र, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारत के समग्र शिक्षा का एक लम्बा और शानदार इतिहास रहा है। प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं था, जैसे इस दुनिया के जीवन या स्कूल के बाहर के जीवन के लिए तैयारी करना, अपितु स्वयं का पूर्ण बोध और मुक्ति भी एक अहम् उद्देश्य था।वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था 3 दशक पुरानी भारतीय शिक्षा नीति, 1986 (1992 में संशोधित) से परिसंचालित है। इन तीन दशकों में विश्व की अधिकांश प्रणाली में बदलाव हुए है। हम सामान्य कंप्यूटर प्रणाली के दौर से स्मार्ट कंप्यूटर प्रणाली के दौर में प्रवेश कर चुके है। हम स्वचालन के सिद्धांत पर आधारित चौथी औधौगिक क्रांति के मुहाने पर खड़े है जिसके प्रमुख उपकरण अर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, मशीन लर्निंग तथा 5G आदि होंगे। हम आज उत्तर संरचनावाद और उत्तर आधुनिकवाद के दौर में है जहाँ मूल्यों के मायनों में परिवर्तन हो चूका है। इन 3 दशकों के दौरान अधिकांश विमर्श एवं सिद्धांतों तथा तकनीकों के स्वरुप में परिवर्तन हो चूका है जो कि आज विश्व को एक नया स्वरुप प्रदान करते है, जबकि हमारी शिक्षा पद्धत्ति अभी भी 3 दशक पुरानी प्रणाली से संचालित हो रही है। ऐसे में बदलते नए भारत के लिए निश्चित तौर पर यह जरुरी है कि हम अपनी शिक्षा व्यवस्था में वैश्विक मानकों के अनुसार जरुरी परिवर्तन की नीति निर्धारित करें। इस उद्देश्य से 2017 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) के पूर्व प्रमुख डॉण्ब्रष्णस्वामी कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में एक नई समिति गठित की गई। नई सरकार बनते ही समिति की ओर से तैयार नई शिक्षा नीति का मसौदा मानव संसाधन विकास मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक को 31 मई, 2019 को सौंप दिया गया। हालाँकि इससे पहले भी नई शिक्षा नीति के निर्माण हेतु कई समितियाँ बनीं थी जिनकी सिफारिशें लागू नहीं हो पाई। अब जबकि हम शिक्षा नीति के मामले में पहले से ही तीन दशक पीछे हैं और केंद्र में पूर्ण बहुमत की सरकार भी है इसीलिए यह अपेक्षा है कि जरुरी संशोधनों के साथ इन सिफारिशों को लागू किया जाये। इस लेख में नई शिक्षा नीति, 2019 के मसौदे के महत्वपूर्ण प्रावधानों के साथ-साथ वर्तमान में इन नीतियों की कितनी आवश्यकता है, इनसे सम्बन्धित महत्वपूर्ण चुनौतियां क्या हैं तथा इनमे कौन से सुधार किये जा सकते है आदि पर चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द-भारतीय शिक्षा, नई शिक्षा नीति, विद्यालयी शिक्षा, उच्च शिक्षा, लिब्रल शिक्षा

नई शिक्षा नीति की आवश्यकता

युवा शिक्षार्थी आज एक ऐसी पीढ़ी से संबंध रखते है जो तकनीक समृद्ध वातावरण में जन्मी और पली बढ़ी है। वे उन तकनीकों के प्रयोग में रूचि रखते है जिनका अविष्कार किया जाये और आने वाले समय में वे उन नौकरियों में जाएंगे जो वर्तमान में मौजूद नही है। वर्तमान समय के वैश्वीकरण के इस युग में एक नॉलेज इकॉनमी (अर्थव्यवस्था का ज्ञान) और नॉलेज सोसायटी (ज्ञानवान समाज) की मांग इस बात पर जोर देती है कि शिक्षार्थियों द्वारा नए कौशल के अधिग्रहण की नियमित रूप से आवश्यकता है। ज्ञान की इस नई पीढ़ी और उसके प्रयोग के बीच संकीर्ण समय अंतराल को देखते हुए, खासकर विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एवं शिक्षार्थियों के बदलते सामाजिक व व्यक्तिगत आवश्यकताओं और उभरते राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों की प्रासंगिकता बनाये रखने के लिए

स्कूल और उच्च शिक्षा के पाठ्यचर्या का समय-समय पर नवीनीकरण करना आवश्यक होता है। इसीलिए वैश्वीकरण की इस दुनिया में यह जरुरी है कि देश में बच्चे और युवा ज्ञान, कौशल, मनोभाव और मूल्यों के साथ-साथ रोजगार योग्य कौशल से लैस हो, जो आने वाले समय में उन्हें भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्क्रतिक बदलाव में योगदान करने में सक्षम बनाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019 की प्रमुख सिफारिशें

नई शिक्षा नीति का उद्देश्य वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली की प्रमुख चुनौतियों का समाधान सुझाना है जिनमे प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा के सभी स्तर शामिल है। इस नीति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के साथ-साथ कृषि शिक्षा, कानूनी शिक्षा, चिकित्सा शिक्षा और तकनीकी शिक्षा जैसी व्यावसायिक शिक्षाओं को भी इसके दायरे में लाया गया है। नीति द्वारा चिन्हित भारतीय शिक्षा की प्रमुख चुनौतियों के क्षेत्र हैं- शिक्षा की पहुँच, समानता, गुणवत्ता, वहनीयता तथा जवाबदेहिता। समिति द्वारा प्रस्तावित शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए सुझाई गई प्रमुख सिफारिशें निम्न है-

विद्यालयी शिक्षा के लिए प्रावधान

- **प्रारंभिक बाल्यावस्था में देखभाल और शिक्षा:** बच्चे के सिखने की प्रक्रिया जन्म से ही शुरू हो जाती है। न्यूरोसाइंस के साक्ष्य बताते है कि बच्चे के मस्तिष्क का 85 प्रतिशत विकास 6 वर्ष की आयु से पहले हो जाता है। आरम्भिक वर्षों में बच्चे के मस्तिष्क के सतत विकास तथा वृद्धि को प्रेरित करने के लिए विकासात्मक स्तर के अनुरूप देखभाल और प्रोत्साहन बहुत महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में भारत में सीखने की गंभीर चुनौती विधमान है, यहां बच्चे प्राथमिक विद्यालओं में नामांकित तो है लेकिन बुनियादी साक्षरता और गणना जैसे मूलभूत कौशलों को सिखने में भी असफल हो रहे है। वर्तमान समय में प्रारंभिक बाल्यावस्था से सम्बन्धित शिक्षण के प्रमुख केंद्र आंगनवाड़ी और निजी-पूर्व प्राथमिक विद्यालय है जिसमे प्रारंभिक बाल्यावस्था के दौरान शैक्षिक व्यवस्था पर काम ध्यान दिया जाता है। इसलिए समिति ने नीति में प्रारंभिक बाल्यावस्था में देखभाल और शिक्षा के लिए दो भागों में कार्यक्रम की अनुशंसा की है-
  - अभिभावकों तथा शिक्षकों के लिए तीन वर्ष तक के बच्चों हेतु दिशा-निर्देश, और
  - तीन से आठ वर्ष तक के बच्चों के लिए शैक्षिक रुपरेखा से सम्बन्धित। इसका कार्यान्वयन वर्तमान आंगनवाड़ी व्यवस्था में सुधार तथा उनका विस्तार कर और प्राथमिक विद्यालयों के साथ उनकी सहस्थापना द्वारा किया जाएगा।
- **शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 का विस्तार:** नीति के अंतर्गत वर्तमान में मौजूद शिक्षा के अधिकार अधिनियम के दायरे को बढ़ाकर इसमें बचपन की शिक्षा को भी (3-6 वर्ष के उम्र के बच्चों को भी) इसमें शामिल करने का प्रावधान किया गया है। नीति के अंतर्गत प्राथमिक पूर्व शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुए इस कानून का दायरा प्राथमिक पूर्व शिक्षा से लेकर 12वीं कक्षा तक की शिक्षा (18 वर्ष की उम्र तक) के लिए लागू करने की सिफारिश की गई है।
- **5+3+3+4 का पाठ्यक्रम ढांचा:** नई शिक्षा नीति में प्री-प्राइमरी से 12वीं कक्षा तक की पढाई को एक नए फॉर्मूले के तहत चार चरणों में बाँटने की बात कही गई है। पाँच साल का पहला चरण 3 से 8 वर्ष की आयु के बच्चों के लिये है, इसे बुनियादी अवस्था कहा गया है, जिसमें 3 वर्ष प्री-प्राइमरी स्कूल के और कक्षा 1 तथा 2 शामिल है। दूसरा चरण, कक्षा 3 से 5 तक 8 से 11 वर्ष के बच्चों के लिये है, इसे प्राथमिक अवस्था कहा गया है। तीसरा चरण, कक्षा 6 से 8 तक 11 से 14 वर्ष के बच्चों के लिये है, इसे माध्यमिक या उच्च प्राथमिक अवस्था कहा गया है। चौथा और अंतिम चरण कक्षा 9 से 12 तक 14 से 18 वर्ष के बच्चों के लिये है, इसे उच्च या माध्यमिक अवस्था कहा गया है।
- **स्कूल कॉम्प्लेक्स का निर्माण:** समिति के अनुसार छोटे आकर के विद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति तथा जरुरी संसाधनों का परिचालन जटिल होता है। इसके लिये समिति कई सरकारी स्कूलों को एक साथ लेकर एक व्यापक स्कूल कॉम्प्लेक्स निर्माण की सिफारिश करती है जिसमें एक माध्यमिक विद्यालय होगा तथा सभी अन्य नजदीकी प्राथमिक पूर्व से कक्षा 8 तक के सरकारी विद्यालय होंगे। इस विद्यालय कॉम्प्लेक्स में आंगनवाड़ी, व्यावसायिक शिक्षा सुविधा तथा एक व्यस्क शिक्षा केंद्र भी होगा।

- **विद्यालयी परीक्षा पद्धत्ति में सुधार:** समिति ने इस बात को रेखांकित किया है कि वर्तमान बोर्ड परीक्षाओं का ढांचा कुछ ऐसा है कि ये बच्चों पर दबाव बनती है कि वे केवल कुछ विषयों पर अपना ध्यान केंद्रित करें। इसके चलते उनका समग्र विकास बाधित होता है। इसके अलावा ये बोर्ड परीक्षाएं केवल दो बार आयोजित होती है- कक्षा 10 और 12 के दौरान, तो इससे स्पष्ट है कि ये परीक्षाएं अधिकांशत: योगात्मक होती है न कि रचनात्मक, जो अपने आप में एक अवसर को गंवाने जैसा है। विद्यालय की परीक्षा में सुधार के लिये समिति कक्षा 3, 5 तथा 8 में स्टेट सेन्सस परीक्षा आयोजित करने की सिफारिश करती है। ये सभी परीक्षाएं भी बच्चों की स्तर के अनुसार मूल अवधारणाओं के बारे में उनकी स्पष्टता, उच्च स्तरीय कौशल और जीवन में इनके प्रयोग का आंकलन करेगी।
- **नवोन्मेषी शिक्षण उपायों को अपनाना:** इसके तहत पहली व दूसरी कक्षा में भाषा व गणित पर जोर देने की बात कही गई है। चौथी व पाँचवी कक्षा के बच्चों के साथ लेखन कौशल पर जोर देने के अलावा भाषा सप्ताह, गणित सप्ताह व भाषा मेला, गणित मेला जैसे आयोजन करने की बात भी कही गई है। पढ़ने और संवाद करने की संस्कृति को प्रोत्साहित करने के लिये पुस्तकालयों के महत्व को पुन: स्थापित करने के अलावा कहानी सुनने, रंगमंच, समूह में पठन-पाठन, लेखन व बच्चों द्वारा बनाये हुए चित्रें व लिखी हुई सामग्री इत्यादि का प्रदर्शन करने जैसी गतिविधियों को आयोजित करने की बात भी की गई है।
- **त्रिभाषा सूत्र:** नीति के प्रारूप में इस बात को रेखांकित किया गया है कि प्राथमिक और माध्यमिक चरण में क्षेत्रीय भाषा का इस्तेमाल पहले से ही होता आया है। इस सन्दर्भ में नीति में यह उल्लिखित है कि राज्य सरकार माध्यमिक या उच्च प्राथमिक शिक्षा के दौरान से ही त्रिभाषा नीति का अनुसरण करें। जिसके तहत हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिंदी और अंग्रेजी भाषा के अलावा कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा, मुख्यत: दक्षिण के राज्यों की भाषा का अध्ययन किया जाए और गैर-हिन्दी भाषित क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी के अलावा हिन्दी भाषा का अध्ययन किया जाए। इसके अलावा सरकार ने अपने मसौदे में यह स्पष्टीकरण भी दिया है कि जो विद्यार्थी पढाई जाने वाली तीन भाषाओं में से एक या अधिक भाषा बदलना चाहते है, वे कक्षा 6 या 7 में ऐसा कर सकते है। इसके अतिरिक्त, बहुभाषा को प्राथमिकता के साथ शामिल करने और ऐसे भाषा-शिक्षकों की उपलब्धता की बात भी कही गई है जो बच्चों की मातृभाषा समझते हो। चूँकि यह समस्या राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राज्यों में दिखाई देती है, इसीलिये पहली से पाँचवी कक्षा तक जहाँ तक संभव हो सके बतौर शिक्षण माध्यम मातृभाषा का इस्तेमाल किया जाए। जहाँ घर और स्कूल की भाषा अलग-अलग है वहाँ दो भाषाओं के इस्तेमाल का सुझाव दिया गया है।
- **राज्य विद्यालय नियामक प्राधिकरण का गठन:** विद्यालयी शिक्षा के लिये शासन स्तर में बदलाव भी सुझाया गया है। नई शिक्षा नीति के प्रारूप में राज्य विद्यालय नियामक प्राधिकरण बनाने का सुझाव दिया गया है ताकि शिक्षा को समग्र रूप में पर्यावरण हितैषी व इसके द्वारा ज्ञानवान समाज बनाने के उद्देश्यों को हासिल किया जा सके। यह प्राधिकरण सार्वजनिक व निजी, दोनों प्रकार के स्कूलों के लिये बुनियादी और एक समान मानकों का निर्धारण करेगा।

उच्च-शिक्षा के लिए प्रावधान

एक राष्ट्र के आर्थिक विकास एवं लोगों की आजीविका के सतत उपार्जन में उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है और मानव कल्याण में भी यह एक बड़ी तथा समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नीति के प्रारूप में उच्च शिक्षा का लक्ष्य विचारों और नवाचारों के विकास के लिए एक केंद्र की स्थापना करना है जो व्यक्तियों को प्रबुद्ध करने के साथ ही देश को भी सामाजिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, आर्थिक और कलात्मक रूप से आगे बढ़ने में मदद कर सकें। नीति के प्रारूप में उच्च-शिक्षा को सुदृढ़ करने हेतु सुझाये गए प्रमुख बिंदु इस प्रकार है-

- **लिब्रल (उदार) शिक्षा का दृष्टिकोण:** प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयों में तक्षशिला और नालंदा दुनिया के सबसे पुराने और बेहतरीन विश्वविद्यालय थे। इन विश्वविद्यालयों ने 'लिब्रल कलाओं' और 'लिब्रल शिक्षाओं' की परंपरा पर ही विशेष जोर दिया था जहाँ दुनिया भर से विद्यार्थी व्याकरण, दर्शन, चिकित्सा, राजनीति, गणित, संगीत, खगोलशास्त्र आदि अन्य

कई विषयों का अध्ययन करने यहाँ आते थे। एक लिब्रल शिक्षा की सार्थकता इस बात में निहित होती है कि वह एक इंसान में सभी काबिलियतों यथा-बौद्धिक, सामाजिक, भावनात्मक, शारीरिक, नैतिक, सौंदर्यबोध को एक संतुलित और समन्वित रूप में विकसित करती है। लिब्रल शिक्षा का महत्व और उद्देश्य इस बात में निहित है कि यह विद्यार्थियों को विज्ञान और मानविकी, गणित और कला, चिकित्सा और भौतिकी आदि के बीच महत्वपूर्ण रिश्तों को समझने और तमाम ज्ञान के क्षेत्रों में अन्तर्निहित एकात्मकता के प्रति जागरूकता विकसित करने के काबिल बनाये। ये विद्यार्थियों को भविष्य में विभिन्न रोजगार परिदृश्यों के लिए अपनी राह तैयार करने के साथ ही अपने पेशे में दूसरी भूमिकाएँ निभाने में भी सक्षम बनाएगा।

- **उच्च शिक्षा के लिए नई संस्थागत वास्तुकला:** नीति में यह उल्लिखित है कि, गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा को सभी की पहुँच तक सफलभ बनाने के लिए तथा शोध को बढ़ावा देने के लिए एक नए संस्थागत ढांचे को निर्मित करने की जरुरत है जिसमे तीन प्रकार के संस्थानों को विकसित किया जाएगा। ये तीनों प्रकार के संस्थान लक्ष्य और कार्य में तो भिन्न-भिन्न होंगे, लेकिन उच्च गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए तीनों के मध्य समान प्रतिबद्धता होगी। ये तीन प्रकार के संस्थान होंगे-
- टाइप 1- शोध विश्वविद्यालय। ये अनुसंधान और शिक्षण पर समान रूप से ध्यान केंद्रित करेंगे तथा नए ज्ञान सृजन के लिए एवं अत्याधुनिक शोध के लिए प्रतिबद्ध होंगे।
- टाइप 2- शिक्षण विश्वविद्यालय। ये मुख्य रूप से स्नातक, परास्नातक और डॉक्टरेट, पेशेवर, व्यवसायिक, सर्टिफिकेट और डिप्लोमा कार्यक्रमों में उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षण पर ध्यान केंद्रित करेंगे।
- टाइप 3- कॉलेज। ये संस्थान उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के लक्ष्यों पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित करेंगे।
- **राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान:** यह नीति भारत में अनुसंधान की गुणवत्ता और मात्र को रूपांतरित करने के लिए देश भर में अनुसंधान और नवाचार को उल्लेखनीय रूप से बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान की स्थापना की बात करती है जो कि एक स्वायत निकाय होगा। छत्थ के गठन के द्वारा देश के शिक्षा संस्थानों में, प्रमुखत: विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के हर संकाय में अनुसंधान हेतु अनुदान और मार्गदर्शन देने, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने और साथ-ही-साथ गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान के लिए शोधार्थियों की क्षमता बढ़ने का कार्य किया जाएगा। इस संस्थान के 4 प्रमुख विभाग होंगे- विज्ञान, तकनीकी, सामाजिक विज्ञान तथा कला और मानविकी। इसके अतिरिक्त, इस संस्थान की शासन परिषद् को यदि ऐसा लगेगा कि समाज के लाभार्थ हेतु इसमें और भी विभागों (जैसे- स्वास्थ्य, कृषि, पर्यावरणीय मुद्दे आदि) को जोड़ा जाना चाहिए, तो ऐसा करने का प्रावधान भी इसमें मौजूद होगा। इस संस्थान को 20,000 करोड़ (जी.डी.पी. का लगभग 1 प्रतिशत) वार्षिक अनुदान दिया जाएगा और इसे अपनी वित्त व्यवस्था स्वयं संचालित करने की, नियम बनाने की और क्रियान्वयन की विधियाँ तय करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाएगी।
- **उच्च शिक्षा के समन्वय और विकास के लिए विनियमन:** नीति के प्रारूप के अंतर्गत सभी उच्चतर शिक्षा के लिए राष्ट्रीय उच्चत्तर शिक्षा नियामक प्राधिकरण की स्थापना की बात कही गई है। यह एक स्वतंत्र निकाय होगा जो उच्च शिक्षा के लिए कार्य कर रहे सभी नियामकों के स्थान पर, प्रोफ़ेशनल शिक्षा सहित उच्च शिक्षा के लिए एकमात्र नियामक होगा। राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् में बदलाव करते हुए इसे पुनर्निर्मित किया जाएगा और इसको युजीसी से अलग करके पूरी तरह से स्वतंत्र और एक स्वायत्त निकाय में बदला जाएगा और सभी विषयों और क्षेत्र में उच्च शिक्षा के सभी संस्थानों की मान्यता या प्रत्यायन की देखरेख की जिम्मेदारी दी जाएगी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उच्च शिक्षा अनुसंधान परिषद् में बदल जाएगा। यह संस्थान प्रोफेशनल शिक्षा सहित पुरे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विकासात्मक अनुदान और फेलोशिप के वित्तीय पोषण के लिए जिम्मेदार रहेगा। इसके अतिरिक्त, वर्तमान में स्थित सभी उच्च शिक्षण संस्थान जैसे कि सामान्य, प्रोफेशनल और व्यावसायिक जो किसी भी अध्ययन के माध्यम से छात्रों को डिग्री या डिप्लोमा प्रदान करते है, को 2030 तक स्वायत्त कर दिया जाएगा।

अन्य महत्वपूर्ण सिफारिशें

- **शिक्षण में तकनीक का इस्तेमाल:** शिक्षा प्रणाली में उन्नत तकनीकों के प्रयोग हेतु नीति में सुचना एवं संचार के जरिये राष्ट्रीय शिक्षा मिशन की संकल्पना की गई है। शिक्षकों की सुविधा के लिए तकनीक के इस्तेमाल को प्रोत्साहित करने

की बात भी नई शिक्षा नीति करती है। इसके लिए कंप्यूटर, लैपटॉप व मोबाइल फोन इत्यादि के जरिये विभिन्न एप्स का इस्तेमाल करके शिक्षण को रोचक बनाया जा सकता है। नीति के अंतर्गत तकनीक को शिक्षकों के विकल्प के रूप में देखने के बजाय सहायक शिक्षण सामग्री के रूप में देखने का सुझाव दिया गया है। इसके अलावा शिक्षण, मूल्यांकन, नियोजन, प्रशासन आदि में सुधार हेतु प्रौद्योगिकी के उपयोग पर विचारों के मुक्त आदान-प्रदान को एक मंच प्रदान करने के लिए एक स्वायत्त निकाय के रूप में राष्ट्रीय शैक्षिक तकनीकी मंच का निर्माण किया जाएगा। इसका उद्देश्य प्रौद्योगिकी को अपनाये जाने और किसी क्षेत्र विशेष में उसके उपयोग से सम्बंधित निर्णयों को सुगम बनाना होगा।

- **व्यावसायिक शिक्षाः** समित्ति द्वारा आंकलित आंकड़ों के अनुसार भारत में 19-24 आयु वर्ग की श्रमशक्ति में से 5 प्रतिशत से भी काम लोगों ने व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त की है। जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में यह संख्या 52 प्रतिशत, जर्मनी में 75 प्रतिशत तथा दक्षिण कोरिया में 96 प्रतिशत है। इस स्थिति को देखते हुए नीति के अंतर्गत व्यावसायिक शिक्षा को सभी शैक्षिक संस्थानों- स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय के साथ एकीकृत करने की बात की गई है। व्यावसायिक शिक्षा का शैक्षिक संस्थानों के साथ एकीकरण करने से यह सुनिश्चित होगा कि प्रत्येक छात्र को कम-से-कम एक व्यवसाय में प्रशिक्षण प्राप्त हो।
- **वयस्क शिक्षाः** जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार भारत में 3.26 करोड़ युवा (15-24 आयु वर्ग के) और कुल मिलाकर 26.5 करोड़ वयस्क (15 वर्ष से अधिक आयु के) अशिक्षित है। इस सन्दर्भ में, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के एक घटक के रूप में एक स्वायत्त केंद्रीय वयस्क शिक्षा संस्थान की स्थापना की जाएगी जिसमे वयस्क शिक्षा के विशेषज्ञ शामिल होंगे। यह संस्थान वयस्क शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा विकसित करेगा। वयस्क शिक्षा के लिए सीखने-सीखने की प्रभावी सामग्री तैयार करना और इस शिक्षा हेतु कार्यक्रमों के नियोजन, क्रियान्वयन और निरीक्षण में सहयोग देना इस संस्थान की जिम्मेदारी होगी। केंद्रीय वयस्क शिक्षा संस्थान द्वारा वयस्क शिक्षा के लिए पांच व्यापक क्षेत्र हेतु रुपरेखा तैयार की जाएगी-
    - बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान,
    - महत्वपूर्ण जीवन कौशल,
    - व्यावसायिक कौशल,
    - बुनियादी शिक्षा, एवं
    - सतत शिक्षा।

नीति से संबंधित विवाद तथा चुनौतियां

- **समिति में किसी भी शिक्षक को शामिल न करनाः** शिक्षा के सभी स्तरों पर सुधार हेतु बनी समिति में प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर के एक भी शिक्षक को समिति में शामिल नहीं करने से यह सवाल उठना स्वाभाविक ही है कि यह समिति नीति-निर्माण में किस तरह से प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा की जमीनी हकीकत और चुनौतियों को सही रूप में सम्बोधित करेगी। वर्तमान समय में देश में लगभग 80 लाख शिक्षक कार्यरत है जो इस नीति के प्रस्तावों द्वारा सुझाये गए बदलाव की एक बड़ी इकाई साबित होंगे। ऐसे में मूल नीति-निर्माण के दौरान उनकी भागीदारी की उपेक्षा करने से कई ऐसी निहित समस्याएँ सामने नहीं आ पाएंगी जिनका एक शिक्षक को विद्यालय में प्रतिदिन सामना करना पड़ता है। उनकी सक्रिय भागीदारी के बिना विद्यालयी शिक्षा की बुनियादी चुनौतियों के समाधान की अपेक्षा नहीं की जा सकती।
- **निजी विद्यालयों से विविधता के प्रावधान को कमजोर करनाः** शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 के अंतर्गत निजी विद्यालयों एवं विशेषीकृत विद्यालयों में नजदीकी कमजोर वर्ग (नेबरहुड) और सुविधाहीन समूह के बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा हेतु न्यूनतम 25 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने का प्रावधान किया गया था। प्रस्तावित नीति के अंतर्गत इस प्रावधान को प्रभावी नहीं बताते हुए इसे विद्यालयों के लिए बाध्यकारी न रखकर स्वैच्छिक बनाने की बात की गई है। नीति के अंतर्गत यह उल्लिखित है कि, 'निजी विद्यालयों को यह निर्णय करना चाहिए कि वे इसे चाहते है या नहीं। शिक्षा के अधिकार अधिनियम के प्रावधान 12 (1) जैसे बाध्यकारी उपायों के जरिये विद्यालयों पर इसे थोपने की वजह से यह उस रूप में प्रभावी नहीं हो पाया जैसा इससे आशा की गई थी। सही तरीके से कार्य करने और नवाचारों के लिए विद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान करने से विद्यालय बेहतर कार्य करने को प्रोत्साहित होंगे।' मसौदा नीति की यह सिफारिश एक तरह

से शिक्षा के अधिकार अधिनियम के इस प्रावधान के मूल स्वरुप को ही प्रभावित करती है। वर्तमान समय में जब 25 प्रतिशत न्यूनतम सीटों के बाध्यकारी होने के बावजूद भी अधिकांश विद्यालय इसे प्रभावी तरीके से लागु नहीं कर पा रहे हैं तो फिर इसके स्वैच्छिक हो जाने के बाद इसका बेहतर कार्यान्वयन कैसे होगा और शिक्षा में समानता की राह कैसे विकसित होगी यह सोचनीय है।

- **त्रि-भाषी सूत्र:** प्रस्तावित नीति विद्यार्थियों के लिए तीन भाषा को सीखने की बात करती है। इसके अनुसार, राज्य सरकार को एक आधुनिक भारतीय भाषा के अध्ययन की नीति बनानी चाहिए जिसके अंतर्गत हिंदीभाषी राज्यों में हिंदी और अंग्रेजी के अलावा एक दक्षिण भारतीय भाषा को सीखने की तथा गैर-हिंदीभाषी राज्यों में क्षेत्रीय भाषा तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी के अध्ययन को प्राथमिकता दी जानी चाहिये। स्वाभाविक है कि इससे भाषा की अस्मिता को लेकर प्रश्न उठेंगे। चूँकि भाषा संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और भाषा के साथ अस्मिता और अस्तित्व का सवाल भी जुड़ा होता है इसलिये स्वाभाविक तौर पर भाषायी रूप से अल्पसंख्यक वर्ग के लोग इससे खतरा महसूस करेंगे। बहरहाल, यदि इन सब मुद्दों को छोड़ भी दिया जाए तो यहाँ यह प्रश्न भी उठता है कि एक सामान्य विद्यार्थी को तीन भाषाओं को सिखने के लिए क्यों बाध्य किया जाना चाहिये जबकि विद्यालय से निकलने के बाद उसकी कोई विशेष उपयोगिता नहीं रह जाएगी। इतनी ऊर्जा नई तकनीक और कौशल को सीखने में खर्च करने की बजाय भाषा जो कि मूल रूप में तो किसी भी विषय को समझने और स्वयं को अभिव्यक्त कर पाने का एक माध्यम भर है, को सीखने में तीन गुना अधिक ऊर्जा क्यों खर्च की जाए ?

निष्कर्ष

शिक्षा जैसे व्यापक विषय पर एक समग्र नीति के अंतर्गत कुछ सीमाओं और चुनौतियों का होना स्वाभाविक ही है। जरुरी यह है कि इस पर एक व्यापक चर्चा आयोजित हो जिसमे इन चुनौतियों से निपटने के रास्ते तलाशे जा सकें। शिक्षा से संबंधित सभी प्रमुख हितधारकों को इस चर्चा में प्रमुखता से शामिल किया जाए जिससे तमाम ऐसे विचार सामने आ सके जिनसे निहित चुनौतियों को दूर किया जा सकें। साथ ही जिस प्रकार नीति-निर्माण के क्रम में प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षकों को शामिल न करके उनके अनुभवों की अनदेखी की गई है, अब उन्हें इससे संबंधित परिचर्चा में प्रमुखता दी जाए एवं देश-विदेश के प्रमुख शिक्षाविदों और विद्वानों के परामर्श को भी महत्व दिया जाए। अंतिम रूप में तैयार नीति के अंतर्गत किसी भी ऐसे प्रावधान को सम्मिलित करने से बचा जाए जो शिक्षा में समनता और समावेशन जैसी महत्वपूर्ण अवधारणाओं को कमजोर करते हो। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में त्रि-भाषा जैसे फॉर्मूले का विरोध स्वाभाविक ही है। अत: ऐसे किसी भी व्यापक बदलाव से बचना चाहिये जिसे किसी बड़े नागरिक समूह पर बाध्यकारी रूप से थोपना पड़े तथा जिससे उसे अपनी अस्मिता पर ही खतरा महसूस होने लगे।

हालाँकि अभी यह केवल नीति का प्रारूप है जिसे अंतिम स्वरुप लेने में अभी कई प्रक्रियाओं से गुजरना बाकी है। जरुरी यह है कि इन सभी प्रक्रियाओं से गुजरकर नई शिक्षा नीति जल्द ही एक औपचारिक नीतिगत स्वरुप धारण करे जो नए भारत के विकास में एक महत्वपूर्ण कुंजी साबित हो। सहस्राब्दि विकास लक्ष्य संख्या 4 के अनुसार भारत को 2030 तक सार्वभौमिक गुणवत्तायुक्त और आजीवन शिक्षा के लक्ष्य को हासिल करना है। निश्चित तौर पर नई शिक्षा नीति इस दिशा में मील का पत्थर साबित होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019.https:èèmhrd.gov.inèsitesèupload_filesèmhrdèfilesèDraft_NEP_2019_HI.pdf
2. Government of India. *All India Survey on Higher Education 2017-18.* Ministry of Human Resource Development, Department of Higher Education. New Delhi. 2018.
   https:èèmhrd.gov.inèsitesèupload_filesèmhrdèfilesèstatistics-neweèAISHE2017-18.pdf
3. 13वीं एन्युअल स्टेटस ऑफ एजुकेशन रिपोर्ट (असर 2018)
   http:èèimg.asercentre.orgèdocsèASER%202018èRelease%20Materialèaser2018pressreleasehindi.pdf

4. Basu, Sreeradha D. “Overall representation up but India drops out of top 300 in global rankings." The Economic Times, September 12, 2019. Accessed October 21, 2019.

https:èèeconomictimes.indiatimes.comèindustryèservicesèeducationèindian-universities-out-of-top- 300-in-global-rankingsèarticleshowè71092191.cms?from=mdr

5. Draft National Education Policy 2019. PRS Legislative Research.

https:èèwww.prsindia.orgèreport-summariesèdraft-national-education-policy-2019

6. Jebaraj, Priscilla. “Draft National Education Policy proposes formal education from age of three." The Hindu, June 09, 2019. Accessed October 17, 2019.

https:èèwww.thehindu.comèeducationèdraft-national-education-policy-proposes-formal-education-from-age-of-threeèarticle27706234.ece

7. Chopra, Ritika. “Explained: How education can be flexible." The Indian Express, June 11, 2019. Accessed October 17, 2019.

https:èèindianexpress.comèarticleèexplainedèsimply-put-how-education-can-be-flexible-national-education-policy-5774128è

पेरिस शांति सम्मेलन का भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन पर प्रभाव

डा. सुरेन्द्र कुमार सिंह

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर जो शान्ति सम्मेलन किया गया, उसमें साम्राज्यवाद अपने वास्तविक चरित्र के साथ सामने आ गया था और घटनाएँ प्रमाणित कर रही थीं कि शान्ति समझौता का मूल उद्देश्य युद्ध पूर्व के वादों को जिसमें जनतंत्र की रक्षा और आत्मनिर्णय के अधिकार को लागू करना प्रमुख थे, पूरा नहीं करने जा रहा था। इंगलैंड पराजित देशों पर अपनी शर्तो को थोप रहा था और औपनिवेशिक जनता के लिए किये गये वादों के प्रति उदासीन ही दिख रहा था। अब राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं के लिये सिवा इसके कि वे आन्दोलन तेज करे, अन्य कोई विकल्प नहीं बचा था। 1918 में काँग्रेस के विशेष अधिवेशन में 'सुधारों' की निन्दा की गई थीं जिसके कारण गाँधी को छोड़ कर काँग्रेस के तमाम नरमदली नेता कांग्रेस से अलग हो कर लिबरल फेडरेशन की स्थापना किये थे। 1919 के दिसम्बर में कांग्रेस ने पुनः सुधारों को समर्थन देने का प्रस्ताव पारित किया था, परन्तु इस बार मतभेद का स्वर ज्यादा प्रखर था।

टर्की के युद्ध में शामिल होने के बाद ब्रिटिश और अन्य मित्र राष्ट्रों ने यह वादा किया था कि वे टर्की की क्षेत्रीय अखण्डता को भंग नहीं करेंगे, परन्तु यह घोषणा फलीत होते नहीं देखी जा रही थी। 31, अक्टूबर 1918 को ब्रिटेन और टर्की के साथ जो समझौता हुआ उसमें यह कहा गया था कि मित्र राष्ट्रों की फौज टर्की के उस भाग में भी प्रवेश करेंगी जिन पर वे कब्जा नहीं कर पाए हैं। एलायड कन्ट्रोल कमीशन जब कान्स्टेन्टीनोंपुल के स्वरूप में आया तब ब्रिटिश, फ्रांसीसी और इटालीयन फौजों ने दक्षिण एनाटोलिया के बड़े भाग पर कब्जा किया और यह समझौता आइजज्त पाशा के द्वारा, जो एक दल हीन नेता थे, किया गया था और जिन्होंने प्रगतिशील दल की कैबिनेट को हटा दिया था जिसके कारण टर्की के बहुत सारे युवा नेता देश छोड़ कर जर्मनी भाग गए थे और आटोमन साम्राज्य की बरबादी हो गई थी। इस घटना ने तमाम मुस्लिम समुदाय को सकते में डाल दिया था। कहा जा सकता है कि ब्रिटेन का यह काम धोखाधड़ी वाला था। जिसने मुसलमानों की भावनाओं को कुचला था। इसी से मर्माहत भारतीय मुसलमान भी टर्की के प्रति ब्रिटिश नीति में बदलाव की माँग कर रहे थे। राष्ट्रीय आन्दोलन ने टर्की के सम्बन्ध में मुसलमानों की माँगों का समर्थन किया और हाकिम अजमल खाँ ने कहा कि यह एक विशुद्ध धार्मिक मसला था। जिसका निर्णय सिर्फ मुसलमानों पर था। इस सम्बन्ध में किसी भी बाहरी हस्तक्षेप को मुसलमान बर्दास्त नहीं कर सकते।

हालांकि खिलाफत का प्रश्न विशुद्ध मुस्लिम धार्मिकता का प्रश्न था। जिसका समर्थन गाँधीजी ने इस कारण किया था कि संकट में मुसलमानों का साथ दिया जाय। गाँधी के लिये इसका समर्थन इस कारण भी आवश्यक बन गया था कि इस काल के उमड़ते क्रान्तिकारी आन्दोलनों के खिलाफ उन्हें यह विकल्प के रूप में दिखा। मुसलमानों कि मजबूरी यह थी कि उन्हें भी इस प्रश्न पर सम्पूर्ण भारत में आन्दोलन करने की एक दिशा और सहायता कांग्रेस से मिलने वाली थी, जिसको उन्होंने स्वीकार किया। 21 सितम्बर 1919 को लखनऊ में आयोजित अखिल भारतीय मुस्लिम कान्फ्रेंस ने 17 अक्टूबर, 1919 को सम्पूर्ण देश में खिलाफत दिवस को मनाने का फैसला किया तब उसको भारत के समाचार पत्रों का व्यापक समर्थन मिला।

11 नवम्बर, 1919 को खिलाफत कमिटि ने अपना नाम बदल कर सेन्ट्रल खिलाफत कमिटी ऑफ इन्डिया रखा और अपने लक्ष्यों को घोषित किया :-

क. टर्की के लिए न्यायसंगत और सम्मान जनक शान्ति,

ख. 5 जनवरी 1918 को लार्ड जार्ज द्वारा किए गए अश्वासनों को लागू करना

ग. इसके लिए ब्रिटिश मंत्रियों, वायसराय और सम्भव हो तो अमेरीका के राष्ट्रपति को उन वचनों की याद दिलाना।

15 मई 1920 को भारत सरकार ने एक अधिसूचना प्रकाशित की। इस अधिसूचना में टर्की के लिए शान्ति शर्ते थी। मित्र राष्ट्रों ने टर्की के लिए जो शान्ति शर्ते रखी थी वे निराशाजन थी।

ब्रिटेन के इस रूख ने भारतीयों को मर्माहत किया है गाँधी ने एक बयान में कहा ''टर्की की शान्ति शर्ते निश्चित रूप से भारतीय मुसलमानों पर जबरदस्त प्रहार है।30 मई, 1920 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटि कि जो बैठक बनारस में हुई उसके एक प्रस्ताव में कहा गया,'' अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटि का दृढ़ मत है कि टर्की को जो शान्ति शर्ते बतायी गयी है, वह महामहिम सरकार द्वारा दिए गए पवित्र वायदों के खिलाफ है और मित्र द्वारा स्वीकृत राष्ट्रीय स्वनिर्णय तथा भारतीय मुसलमानों कि भावनाओं के घोर विरोध में है।

केन्द्रीय खिलाफत कमिटी के तत्वाधान में इलाहाबाद में हिन्दुओं और मुसलमानों कि एक ऐतिहासिक बैठक जून 1, 2 को टर्की के समक्ष शान्ति शर्तो और असहयोग आन्दोलन के संम्बंध में विचार करने के लिए आयोजित की गई।

बम्बई कि केन्द्रीय खिलाफत कमिटि अंगोरा और मुस्का कमाल की सही जानकारी प्राप्त करने के लिए काबूल भेजा। मुस्तफा ने 10 मार्च 1920 को निम्नलिखित उपहार भेजा :- टर्की कि बड़ी राष्ट्रीय विधान सभा (ग्रेंड नेशनल एसेम्बली) ने जो नियम पारित किए हैं वे इस प्रकार है:-

1. खलीफा को हटा दिया गया है।
2. खिलाफत कार्यालय जिसका अर्थ वस्तुतः सरकार एवं गणतंत्र था उसे समाप्त कर दिया गया है। टर्की गणतंत्र के भीतर खिलाफत कार्यालय का अस्तित्व विदेशी एवं टर्की के आन्तरिक राजनीतिक स्थिति के लिए बाधक था।

भारतीय मुसलमानों के सारे परिश्रम व्यर्थ हो गए निश्चित रूप से भारतीय मुसलमानों एवं तुर्क मुसलमानों में वैचारिक मतभेद था। टॉयन्बी ने लिखा है ''टर्की राष्ट्रवाद अपनी सीमाओं के भीतर राष्ट्रीय सीमा कि अखंडता कायम रखने के लिए राष्ट्रीय आजादी एवं स्वशासन कि स्थापना के लिए चिन्तित थे, उनलोगों ने अन्य मुस्लिम राष्ट्रों पर शासन करने की आकांक्षा छोड़ दी है और इस्लाम की लड़ाई में अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं करने के लिए कृतसंकल्प थे। दूसरी ओर भारतीय मुसलमान इस्लाम की एकता एवं खलीफा कि सांसारिक सार्वभौमिकता को कायम रखने के लिए चिन्तित थे।

खिलाफत की समाप्ति के बाद जो राजनीतिक परिदृश्य सामने आय वह कापफी दुविधा जनक था। भारतीय नेताओं को राष्ट्रपति विल्सन पर विश्वास था। विल्सन कि प्रशंसा करते हुए मदन मोहन मालविय ने कहा कि उन्होंने आजादी के सभी प्रेमियों को कृतज्ञता के साथ एक बेहतर दुनिया के लिए वचन दिया है। कांग्रेस ने माँग की कि ब्रिटिश संसद और शान्ति सम्मेलन के द्वारा भारत को एक प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए जहाँ स्वनिर्णय के सिद्धान्त को लागू किया जाना चाहिए।

शान्ति सम्मेलन ने भारतीय नेताओं के अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने अमेरिकी सीनेट की सहायता कि माँग की। सिनेटर हडले, एफ. मेलोन (न्यूयार्क) ने 29 अगस्त 1919 को सिनेट की विदेश प्रभाग के समक्ष भी अपना मामला रखा। भारत के लिए स्वनिर्णय सिद्धांत पर जारे डालते हुए उन्होंने कहा कि लीग ऑफ नेशन (राष्ट्रमंडल) के प्रावधानों में संशोधन करना चाहिए और प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के लिए यह आवश्यक बना देना चाहिए कि उनके अधीन जो लोग रह रहे हैं उन्हें गणतांत्रिक अधिकार (संस्था) मिलना चाहिए।

कांग्रेस की रूचि विदेशी मामलों में भी रही। 1920 में इसने आयरिश देश भक्त, मैकस्विनी को श्रद्धांजलि अर्पित की और आयरिश जनता को सहानुभूति का संदेश भेजा। एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों ने जो उन दिनों विदेशी दासता में जकड़े हुए थे कांग्रेस के आह्वान को ध्यान से सुना। टर्की का स्थान इसमें प्रथम था। शायद कारण यह रहा हो कि भारतीय मुसलमानों ने टर्की के पक्ष में अपनी भावनाओं का परिचय दिया था। टर्की के समस्याओं के समाधान में ब्रिटिश सरकार बुरी तरह असफल हो चुकी थी। 1922 में कांग्रेस ने न केवल टर्की को एक स्वतंत्र एवं सार्वभौम राष्ट्र के रूप में मान्यता देने की माँग की, बल्कि कांग्रेस यह भी चाहती थी कि टर्की इस्लाम में अभिभावक के रूप में भूमिका अदा करे। 1923 में तुर्क जनता को सफलता के लिए बधाई

देते हुए कांग्रेस ने न केवल उसके संघर्ष कि चर्चा की बल्कि यह भी कहा कि पूर्व के तमाम राष्ट्रों कि आजादी के लिए यह एक निश्चित मार्ग है।

कांग्रेस को अरब भूमि की भी चिन्ता थी। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अरब भूमि एक आदेश के तहत ब्रिटेन और फ्रांस के अधीन थी। इस अरब भूमि में इस्लाम के भी पवित्र स्थान थे और भारतीय मुसलमान गैर मुस्लिम के हाथों में इसके नियंत्रण के विरोधी थे। मुस्लिम भावनाओं को अपने पक्ष में करने के लिए कांग्रेस ने माँग कि यह भूमि गैर मुस्लिम के हाथों से स्वतंत्र कर दी जाए। 1923 में भारत के राष्ट्रवादियों ने माँग भी कि सभी तरह के विदेशी नियंत्रण को उस पर से हटा लिया जाय। कांग्रेस की रूचि बर्मा एवं सीलोन के मामलों में भी थी क्योंकि भारतीयों की एक अच्छी संख्या इन देशों में आबाद थी। 1921 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आजादी की लड़ाई लड़ने कि लिए बर्मा की जनता को बधाई दी। महात्मा गाँधी ने स्पष्ट किया कि आजादी होने दें पर वह भारत के नियंत्रण से पृथक होगा। उन्होंने स्वीकार किया कि बर्मा की अपनी एक सभ्यता है। 1924 में बर्मा की जनता के प्रति सहानुभूती प्रकट करते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने भारतीय प्रवासियों से आग्रह किया कि देशी जनता की कीमत पर वे पृथक से काई अधिकर पाने की माँग नहीं करें। कांग्रेस ने सीलोन के लिए भी यही दृष्टिकोण अपनाया। 1927 में सीलोन दौरा के दौरान उन्होंने भारतीयों को सलाह दी कि वे अपने भाग्य को सीलोनी जनता के भाग्य के साथ बाँध ले। भारत ने चीन की ओर भी ध्यान दिया। शुरूआती दौर में कांग्रेस केवल यही चाहती थी कि भारतीय फौज चीन में नहीं रहे। 1925 में चीन कैनटन भी राष्ट्रवादी सरकार के विदेश विभाग के कमिशनर ने महात्मा गाँधी एवं दूसरों को सूचित किया कि भारतीय फौज चीनी जनता पर गोली बरसाती है। गाँधीजी ने इसे अपमानजनक माना और कहा कि "यदि भारत आजाद होता तो वे उसे सहन नहीं करते।" अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटि ने राष्ट्रीय एकता के संघर्ष के लिए चीनी जनता के प्रति सहानुभूति प्रकट की और चीन में भारतीय फौज भेजने का तीव्र विरोध किया। कांग्रेस एशियाई राष्ट्रों का एक परिसंघ का भी निर्माण चाहती थी। महात्मा गाँधी ने 1920 में एशियाई राष्ट्रों की समरसत्ता एवं सांस्कृतिक एकता पर प्रकाश डालते हुए बताया कि दुनिया की राजनीति में उसे सक्रिय भूमिका अदा करनी चाहिए। 1922 में सी. आर. दास ने भी एशिया के शोषित राष्ट्रों के परिसंघ की माँग की। आगामी वर्ष मुहम्मद अली ने पूर्वी महासंघ स्थापित करने की योजना को सराहा।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि शान्ति समझौतों ने विभिन्न तरीकों से हिन्दुस्तान में राजनीतिक जागृति फैलाने का कार्य किया। गाँधीजी कि नेतृत्व में खिलाफत आन्दोलन ने आजादी की एक लहर पैदा कर दी। शान्ति समझौते के बाद के वर्षो में विदेशों में रह रहे भारतीय क्रांतिकारियों, देश के भीतर के समाजवादियों और खासकर मजदूर संगठनों में काम करने वाले कम्युनिस्ट और कांग्रेसियों के संयुक्त प्रयास का ही नतीजा था कि ब्रिटिश सरकार के कठोर दमनात्मक करवाइयों के, जिसे उसने भारत लौट रहे मुहाजिरों पर पेशावर शडयंत्र केश चला कर, देश के अंदर रह रहे क्रांतिकारियों पर कानपुर शडयंत्र केश चला कर और फिर 1929 में मेरठ शडयंत्र केश चलाकर किया था, इसके बावजुद भी क्रांतिकारी आन्दोलन कापफी आगे बढ़ा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रिपोर्ट ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस 1918 पृ० 14
2. जवाहर लाल नेहरू गिल्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री पृ० 745
3. द लीडर, 15 अक्टूबर 1919 को देखा जा सकता है।
4. हिस्ट्री ऑफ द नन को-ऑपरेशन एण्ड खिलाफत मुवमेन्टस पृ० 144
5. मुसलमान मई 21, 1920
6. इण्डियन नेशनल कांग्रेस 1920-1923 पृ० 9-10
7. द मुसलमान मार्च 1924
8. टायनबी ए. जे.- द वर्ल्ड आफ़टर पीस कान्फ्रेंस पृ० 79
9. रिपोर्ट ऑफ द 33 इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पूर्वानुसार पृ० 24,25
10. उपरोक्त

11. न्यूयॉर्क टाइम्स 21 अक्टूबर 1919
12. रिपोर्ट ऑफ द 35वीं इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ० 95
13. द इण्डियन नेशनल कांग्रेस (1920-1923), पृ० 305
14. रिपोर्ट ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस (1920 - 1923), पृ० 1
15. द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, 1924 पृ० 34
16. यंग इण्डिया, 1 दिसम्बर 1927
17. उपरोक्त 30 जुलाई 1925
18. द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, 1924, इलाहाबाद, 1926, पृ० 4
19. यंग इण्डिया, 14 अप्रैल, 1920
20. रिपोर्ट ऑफ द 37वीं इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ० 32

भारत में आर्थिक नियोजन एवं संघवाद पर उसका प्रभाव

डॉ० अनामिका ब्रजवंशी

पी-एच. डी., (इतिहास विभाग), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

विख्यात इंजीनियर एम. विश्वेश्वरैया ने सन् 1934 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्लाण्ड इकॉनामी फॉर इण्डिया' में एक ऐसी योजना का रूप रखा था, जिसका उद्देश्य दस वर्ष में देश की राष्ट्रीय आय को दुगना करना था। इसके बाद कांग्रेस ने पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक ' राष्ट्रीय योजना समिति' का गठन किया। इस समिति ने प्रो. के. टी. शाह को अवैतनिक मंत्री चुना। समिति ने अपना कार्य आरम्भ करने के लिए 26 उपसमितियां बनाई, जिनमें से 25 उपसमितियों ने अपनी रिपोर्ट पेश की, लेकिन तत्कालीन विदेशी सरकार व कांग्रेस में संघर्ष व द्वितीय महायुद्ध के कारण यह समिति अपना कार्य पूरा करने में असमर्थ रही। सन् 1944 में भारत सरकार ने भी एक 'नियोजन एवं विकास विभाग' का गठन किया। सन् 1946 में एक 'परामर्शदाता नियोजन बोर्ड' भी गठित किया गया। सन् 1946 में 'नियोगी समिति' ने सिफारिश की थी कि आर्थिक नियोजन के कार्य की प्रकृति ही ऐसी है कि ''एक ऐसे एकीकृत शक्तिशाली तथा मंत्रिपरिषद् के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी संगठन की केन्द्र में स्थापना आवश्यक है जो भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्पूर्ण क्षेत्र पर दत्तचित होकर स्थाई रूप से कार्य कर सके।''

शब्द कुंजी- वर्गरहित समाज, आर्थिक नियोजन, आर्थिक स्वतंत्रता, राष्ट्रीय विकास परिषद्, वित्त आयोग, परामर्शदात्री।

परिचर्चा

नियोजन से अभिप्राय है 'उचित रीति से सोच-विचारकर पग उठाना।' फेयोल के अनुसार नियोजन का अर्थ है 'पूर्व दृष्टि', इससे अभिप्राय आगे की ओर देखना है ताकि यह स्पष्ट पता चल जाए कि क्या-क्या काम किया जाना है? प्रत्येक वह क्रिया नियोजित क्रिया कहलाती है जो दूरदर्शिता, विचार-विमर्श तथा उद्देश्यों एवं उनकी प्राप्ति हेतु प्रयुक्त होने वाले साधनों की स्पष्टता पर आधारित हो। दूसरे शब्दों में, किसी कार्य के लिए पूर्व तैयारी ही नियोजन है। भारतीय योजना आयोग के अनुसार, ''नियोजन साधनों के संगठन की एक विधि है जिसके माध्यम से साधनों का अधिकतम लाभप्रद उपयोग निश्चित सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है।''

स्वाधीनता के बाद भारत में आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन की अवधारणा को स्वीकार किया गया। 'योजना आयोग' और 'राष्ट्रीय विकास परिषद्' जैसे निकाय अस्तित्व में आए। योजना आयोग सामान्य रूप से आरम्भ हुआ था, किन्तु कुछ ही समय में उसने एक विशाल संगठन का रूप धारण कर लिया। जिसे प्रारम्भ में एक परामर्शदात्री संस्था समझा गया था, वह आकार में एक अन्य सरकार के रूप में परिवर्तित हो गई। योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद ने संविधान की अन्य व्यवस्थाओं जैसे-वित्त आयोग, संघवाद तथा प्रजातंत्र को काफी हद तक प्रभावित किया है।

नियोजन के उद्देश्य-आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को निम्न भागों में बांटा जा सकता है:

(1) आर्थिक उद्देश्य-नियोजन के आर्थिक उद्देश्य हैं-आर्थिक समानता, अवसर की समानता, अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार तथा अविकसित क्षेत्रों का विकास। नियोजन में राष्ट्रीय आय तथा अवसरों का समान वितरण सम्मिलित है। आय की समानता धनी वर्ग से अधिक कर द्वारा प्राप्त आय को निर्धन वर्ग को सस्ती सेवाएं - चिकित्सा, शिक्षा, सामाजिक बीमा, सस्ते मकान, आदि सुविधाएं- उपलब्ध कराने पर व्यय करके की जा सकती है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों को जीविकोपार्जन के समान अवसर प्रदान करके असमानता को दूर किया जा सकता है। लोगों के जीवन-स्तर को उच्च करने के लिए उत्पादन के समस्त क्षेत्रों-कृषि, उद्योग, खनिज, आदि-में वृद्धि की जा सकती है। नियोजन द्वारा राष्ट्र के समस्त कार्य योग्य नागरिकों के लिए रोजगार का प्रबन्ध करना भी आवश्यक है। सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन-स्तर में समानता स्थापित करने हेतु राष्ट्र के अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित क्षेत्रों को राष्ट्र के अन्य क्षेत्रों के समान करना भी नियोजन का एक प्रमुख ध्येय होता है।

(2) सामाजिक उद्देश्य-नियोजन के सामाजिक उद्देश्यों में वर्गरहित समाज की स्थापना करने का लक्ष्य सम्मिलित है। श्रमिक व उद्योगपति दोनों को उत्पत्ति का उचित अंश मिलना चाहिए। पिछड़ी जातियों को शिक्षा में सुविधाएं देना, सरकारी सेवाओं में प्राथमिक प्रदान करना तथा अन्य सम्मान प्राप्त जातियों के समकक्ष स्तर पर लाना नियोजन का ध्येय है।

(3) राजनीति उद्देश्य-नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य राष्ट्र की राजनीतिक सत्ता की रक्षा, शक्ति तथा सम्मान में वृद्धि करना भी है। देश में राजनीतिक स्थिरता की उपस्थिति में ही अर्थव्यवस्था में स्थिरता सम्भव है।

भारत में नियोजन की आवश्यकता

आर्थिक नियोजन आधुनिक काल की एक नूतन प्रवृत्ति है। उन्नीसवीं शताब्दी में पूंजीवाद, व्यक्तिवाद व व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बोलबाला रहा और अधिकांश राष्ट्र 'उन्मुक्त व्यापार नीति' व 'आर्थिक स्वतंत्रता' के समर्थक रहे, किन्तु पिछली अर्द्ध शताब्दी में रूसी क्रान्ति, विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी, दो भीषण महायुद्धों, तकनीकी प्रगति, नवजात सामाजिक-आर्थिक समस्याओं, आदि के कारण राष्ट्रों एवं अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक नियोजन के महत्व को समझा और नियोजित आर्थिक व्यवस्था अपनाने पर जोर दिया। वस्तुत: वर्तमान युग 'नियोजन का युग' है और विश्व में लगभग सभी देश अपने विकास व उन्नति के लिए आर्थिक नियोजन में जुटे हुए हैं।

भारत में कई कारणों से नियोजन की आवश्यकता महसूस की गई-(i) देश की निर्धनता, (ii) विभाजन से उत्पन्न आर्थिक असंतुलन तथा अन्य समस्याएं, (iii) बेरोजगारी की समस्या, (iv) औद्योगीकरण की आवश्यकता, (v) सामाजिक तथा आर्थिक विषमताएं, (vi) देश का पिछड़ापन, धीमी गति से विकास, विस्फोटक जनसंख्या, आदि। ये सब समस्याएं एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं, अत: इनके निवारण व देश के समुचित आर्थिक विकास के लिए नियोजन ही एकमात्र वांछनीय विकल्प है।

भारत में नियोजन

विख्यात इंजीनियर एम. विश्वेश्वरैया ने सन् 1934 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्लाण्ड इकॉनामी फॉर इण्डिया' में एक ऐसी योजना का रूप रखा था, जिसका उद्देश्य दस वर्ष में देश की राष्ट्रीय आय को दुगना करना था। इसके बाद कांग्रेस ने पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक ' राष्ट्रीय योजना समिति' का गठन किया। इस समिति ने प्रो. के. टी. शाह को अवैतनिक मंत्री चुना। समिति ने अपना कार्य आरम्भ करने के लिए 26 उपसमितियां बनाई, जिनमें से 25 उपसमितियों ने अपनी रिपोर्ट पेश की, लेकिन तत्कालीन विदेशी सरकार व कांग्रेस में संघर्ष व द्वितीय महायुद्ध के कारण यह समिति अपना कार्य पूरा करने में असमर्थ रही। सन् 1944 में भारत सरकार ने भी एक 'नियोजन एवं विकास विभाग' का गठन किया। सन् 1946 में एक 'परामर्शदाता नियोजन बोर्ड' भी गठित किया गया। सन् 1946 में 'नियोगी समिति' ने सिफारिश की थी कि आर्थिक नियोजन के कार्य की प्रकृति ही ऐसी है कि ''एक ऐसे एकीकृत शक्तिशाली तथा मंत्रिपरिषद् के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी संगठन की केन्द्र में स्थापना आवश्यक है जो भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्पूर्ण क्षेत्र पर दत्तचित होकर स्थाई रूप से कार्य कर सके।''

भारत में योजना आयोग

भारत में योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च, 1950 को हुई जिसके बारे में केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने संकल्प पारित किया था। प्रो. ए. एच. हेन्सन के विचार से मंत्रिमंडल ने योजना आयोग को एक मूलत: परामर्शदात्री अंग माना था जिसका कार्य केवल सलाह

देना था। मंत्रिमंडल के संकल्प (संख्या पी.सी.) 50, भारत का राज्यपत्र, 15 मार्च, 1950 में कहा गया था कि वास्तविक संसाधनों को ध्यान में रखते हुए तथा सभी संगत आर्थिक पहलुओं का निष्पक्ष विश्लेषण करते हुए व्यापक योजना बनाने की आवश्यकता है और इस कार्य के लिए एक ऐसे संगठन की आवश्यकता है जो दैनिक प्रशासनिक कार्यकलापों से मुक्त हो, किन्तु जिसका सरकार से उच्चतम स्तर पर सम्पर्क हो। योजना आयोग इस उद्देश्य से स्थापित किया गया, जिसके मूल निदेश पद-सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन, सामूहिक हित में सम्पत्ति का बंटवारा और अर्थव्यवस्था का हितकारी विकेन्द्रीकरण - राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्तों पर आधारित थे। अत: योजना आयोग के निम्नलिखित सात दायित्व थे।

(1) देश के भौतिक संसाधनों और जनशक्ति (तकनीकी व्यक्तियों सहित) का अनुमान लगाना तथा राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार उन संसाधनों की वृद्धि की सम्भावनाओं का पता लगाना।

(2) देश के संसाधनों के संतुलित उपयोग के लिए अत्यन्त प्रभावकारी योजना बनाना।

(3) योजना की क्रियान्विति के चरणों का निर्धारण तथा उनके लिए संसाधनों का नियमन करना।

(4) आर्थिक विकास में आने वाली बाधाओं की ओर संकेत करना तथा योजना की सफल क्रियान्विति के लिए उपयुक्त परिस्थिति निर्धारित करना।

(5) योजना के प्रत्येक चरण की सफल क्रियान्विति के लिए आवश्यक तन्त्र का स्वरूप निश्चित करना।

(6) समय-समय पर योजना की चरणवार प्रगति का अवलोकन तथा इस बारे में आवश्यक उपायों की सिफारिश करना।

(7) आयोग के कार्यकलापों को सुविधाजनक बनाने अथवा वर्तमान परिस्थिति और विकास कार्यक्रम को ध्यान में रखते हुए अन्तिम सिफारिश करना अथवा केन्द्र या राज्यों की समस्याओं का समाधान करने के लिए परामर्श देना।

योजना आयोग का संविधान में कोई उल्लेख नहीं है, अत: इसका संगठन परामर्शदात्री व विशेषज्ञ संस्था के रूप में सरकार के एक प्रलेख संकल्प द्वारा हुआ। फलस्वरूप इसके स्वरूप एवं संगठन में विविध सरकारों द्वारा समय-समय पर परिवर्तन किया जाता रहा।

भारत में संघवाद पर नियोजन के प्रभाव-कुछ आलोचकों ने तो आयोग को समानान्तर सरकार तथा '**सुपर कैबिनेट**' की संज्ञा दे डाली है। संघवाद पर नियोजन के प्रभाव को निम्नलिखित शीर्षकों में समझा जा सकता है :

(क) नियोजन की विषय-वस्तु-नियोजन अपने आप में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति लिए होता है क्योंकि इसका सम्बन्ध शासन के सभी विषयों से होता है। शासन के सभी विषयों पर योजना आयोग योजना बनाता है अर्थात् राज्य सूची के विषयों पर भी वह एक सीमा तक छाया रहता है। एक संघात्मक व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के मध्य विषयों का बंटवारा होता है जबकि योजना आयोग के माध्यम से एकात्मकता की प्रवृत्ति का विकास होता है।

(ख) योजना प्रारूप की अन्तिम स्वीकृति केन्द्रीय संसद द्वारा-योजना प्रारूप का अंतिम निर्णय केन्द्रीय संसद के हाथों में है। इस प्रकार व्यवहार में वास्तविक केन्द्रीय कार्यपालिका के हाथों में है और उसके निर्णयों की क्रियान्विति राज्य कार्यपालिकाओं को करनी होती है। राज्यों के पास अपने पृथक् योजना बोर्ड नहीं हैं, अत: केन्द्र द्वारा स्थापित और शासित योजना आयोग का राज्य सरकारों पर व्यापक प्रभाव होता है।

(ग) योजना आयोग में केन्द्रीय मंत्रियों का वर्चस्व- प्रधानमंत्री योजना आयोग का अध्यक्ष होता है और केन्द्रीय वित्त, आयोजन, गृह और कृषि मंत्रियों को इसका सदस्य बना दिया जाता है। इससे योजना आयोग में केन्द्रीय मंत्रियों का वर्चस्व स्थापित हो जाता है। अत: योजना आयोग की रचना भारतीय संघवाद को केन्द्र के अनुकूल प्रभावित करने की क्षमता रखती है।

(घ) योजना का निर्माण-योजना आयोग सम्पूर्ण देश की योजना के लिए कुछ आधारभूत विषय और प्राथमिकता निश्चित करता है। चूंकि प्रत्येक राज्य की समस्या अलग-अलग है, इसलिए उनकी मूल समस्याओं का निराकरण नहीं हो पाता है। योजना आयोग ने प्रारम्भ में यह सोचा था कि केन्द्र तथा राज्य की समस्याएं एक ही प्रकृति की होंगी। इसलिए आयोग ने अपनी नीतियों में एकरूपता कायम करने की कोशिश की, जबकि संघवाद एकरूपता पर इतना अधिक बल नहीं देता है।

(द) योजना की क्रियान्विति-राज्य योजनाओं को लागू करने वाले अभिकरण मात्र समझे जाते हैं। केन्द्र निर्देश देता है और राज्यों को योजना सम्बन्धी निदेश कार्यान्वित करने होते हैं।

(च) धन सम्बन्धी पक्ष-राज्य सरकारों की एक बहुत बड़ी शिकायत यह रही है कि धन सम्बन्धी अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण आयोजना के क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार का प्रभाव बहुत अधिक रहा है। इस सम्बन्ध में एक लम्बे समय तक आलोचना का एक बिन्दु यह भी रहा है कि केन्द्र योजना सहायता की राशि को पक्षपातपूर्ण ढंग से बांटता है। यह भी कहा जाता है कि केन्द्र की योजना राशि सभी राज्यों की सम्मिलित योजना राशि से भी कहीं अधिक तेजी से बढ़ रही है। इतना ही नहीं, केन्द्रीय शक्तियों द्वारा राज्य को ये आदेश दिए जाते हैं कि वे अपने विकास कार्यों को किस प्रकार व्यवस्थित करे। केन्द्र के पास अधिक लचीले वित्तीय साधन है और विधान द्वारा अपने इस प्रदत्त अधिकार के आधार पर विशेष सुविधाओं का लाभ उठाते हुए केन्द्र अपनी स्थिति को मजबूत कर रहा है। विदेशों से मिलने वाली भारी आर्थिक सहायता भी केन्द्र की स्थिति को सुदृढ़ बनाती है और विकास के नाम पर केन्द्र को अपने साधनों को समृद्ध बनाने का सुअवसर देती है। कृषि, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विकास की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर है। केन्द्र के पास अपने विकास कार्य कम हैं, किन्तु वित्तीय साधन राज्यों की तुलना में बहुत विपुल और लचीले हैं। इसलिए केन्द्र ऐसी स्थिति में है कि वह वित्तीय सहायता के माध्यम से राज्यों की नीतियों और योजनाओं पर अपनी इच्छाओं को आरोपित कर सकता है। इसके फलस्वरूप संविधान में प्रस्तावित संघ व्यवस्था की आत्मा का तो हनन हुआ ही है, साथ ही राज्यों से सम्बन्धित वित्तीय साधनों और स्रोतों का भी समुचित विकास नहीं हो सका है। इन्हीं स्थितियों का लाभ उठाते हुए केन्द्र एकरूपता आरोपित करने के नाम पर अपने साधनों का दुरुपयोग करता है। केन्द्रीय सरकार राज्यों पर उन योजनाओं को हाथ में लेने के लिए दबाव डालती है जो राज्य सरकार की दृष्टि से अवांछनीय हैं और जिनकी क्रियान्विति भी आसानी से नहीं की जा सकती। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जबकि केन्द्र की सहायता के बन्द होने पर राज्यों ने अपनी कितनी ही परियोजनाओं को भी बन्द कर दिया है। यह भी कहा जाता है कि केन्द्रीकरण का एक लाभ जो कि संतुलित विकास के रूप में देखा जाना चाहिए था, देश को नहीं मिल सका है। जिस प्रकार व्यक्तियों के विषय में यह कहा जाता है कि मालदार लोग अधिक मालदार और गरीब लोग अधिक गरीब बने हैं, ठीक उसी प्रकार योजनाओं के कारण राज्यों की भी यही दशा हुई है। अनेक राज्यों की यह मान्यता रही है कि विकास की योजनाओं के आरम्भ से पूर्व राज्यों में जो असंतुलित स्थिति थी उसे योजना व्यवस्था ठीक नहीं कर सकी है। केन्द्र द्वारा आवण्टित प्रोजेक्ट्स समान रूप से नहीं बांटे जाते। कम औद्योगिक क्षेत्रें में उद्योग लगाने की औद्योगिक नीति को भी केन्द्र प्रभावशाली ढंग से लागू नहीं कर सका है। केन्द्रीय सरकार ने विकसित राज्यों के पक्ष में ऐसे कितने ही निर्णय लिए हैं जिनसे केन्द्रीकृत वित्तीय सहायता केवल ऐसे केन्द्रीय संस्थानों को ही मिल सकी है जो विकसित प्रदेशों में स्थित थे।

(छ) राष्ट्रीय विकास परिषद-बदलते राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय विकास परिषद को 'सहयोगी संघवाद' का सम्बल कहना समीचीन होगा। केन्द्र एवं राज्यों में योजना से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मामलों में समन्वय स्थापित करने की दृष्टि से यह निकाय सर्वोच्च नीति-निर्माता निकाय के रूप में उभरा है। के. सन्थानम् का कथन है कि राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थिति सम्पूर्ण भारतीय संघ के उच्च मंत्रिमंडल के समकक्ष सी है अर्थात् उसने एक ऐसे मंत्रिमंडल का रूप धारण कर लिया है जो भारत सरकार और साथ ही सभी राज्यों की सरकारों के लिए कार्य कर रहा है।

डॉ. सी. पी. भाम्भरी ने लिखा है कि योजना सम्बन्धी मामलों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य समायोजन की स्थापना के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना की गई है।

पिछले तीन दशकों से राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठकों में एक नवीन प्रवृत्ति देखने को मिलती है। राज्यों के मुख्यमंत्री खुले तौर से केन्द्रीय दबावों का विरोध करते हुए पाए गए हैं। सन् 1969 में कुछ राज्यों ने चौथी योजना के प्रारूप को औपचारिक रूप से अस्वीकृति प्रदान की। केरल और पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्रियों ने कहा कि उन्हें तब बुलाया गया जबकि योजना का प्रारूप बिल्कुल तैयार था तथा उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन की गुंजाइश नहीं थी। मार्च 1977 के बाद राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठकों में राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने राज्यों के लिए अधिकतम वित्तीय संसाधनों की मांग की। अब राज्यों में केन्द्र सरकार से भिन्न राजनीतिक दलों की सरकारें होने के कारण सौदेबाजी की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

सरकारिया आयोग के समक्ष 'योजना आयोग तथा आर्थिक नियोजन' की प्रचलित पद्धति की आलोचना करते हुए विभिन्न राज्य सरकारों ने निम्नलिखित शिकायतें दर्ज कराई हैं:

1. कई राज्य सरकारों को कहना है कि योजना आयोग की स्थापना इस मान्यता से हुई थी कि ''यह संघ तथा राज्य दोनों के लिए विशेषज्ञ सलाहकार निकाय के रूप में कार्य करेगा और रोजमर्रा के प्रशासनिक कार्यों से अपने आपको मुक्त करेगा।'' कुछ वर्षों से योजना आयोग संघ सरकार के एक अंग के रूप में कार्य करने लगा है।

2. राज्य सरकारों की एक शिकायत यह है कि उन्हें संघ द्वारा किए गए कठोर और विस्तृत निदेशों का पालन करना पड़ता है। वह भी केवल इसलिए क्योंकि योजना निधि प्राप्त करने के लिए उन्हें केवल संघ सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है।
3. केन्द्र सरकार राज्य सूची में शामिल विषयों पर मुख्यत: केन्द्रीय रूप से प्रायोजित स्कीमों के रूप में होने वाली अनुवर्ती खर्च का भार अपने ऊपर लेती है। उदाहरणार्थ, कृषि और ग्रामीण विकास कार्यक्रम अधिकांशत: राज्य के विषय हैं, फिर भी उसके लिए लगभग 43 प्रतिशत परिव्यय का निर्धारण केन्द्रीय क्षेत्र की योजना में किया गया है। ग्रामोद्योग और लघु उद्योग के क्षेत्र में भी केन्द्र का योजनागत परिव्यय कुल परिव्यय का लगभग 52 प्रतिशत रखा गया है। स्वास्थ्य (चिकित्सा सहित), आवास, शहरी विकास और जलापूर्ति, जो कि विशेष रूप से राज्य सूची में हैं, के अधीन केन्द्रीय क्षेत्र की योजना में परिव्ययों का निर्धारण अत्यधिक मात्र में किया गया है।

   राज्यों द्वारा केन्द्रीय रूप से आयोजित स्कीमों की आलोचना के कारण हैं-इन स्कीमों को लागू करने से पहले राज्यों के साथ परामर्श न किया जाना, इस सम्बन्ध में संसाधनों के अन्तरण में मनमानी करना या विवेक शक्ति का इस्तेमाल करना, व्यापक मार्ग निर्देशों के माध्यम से विस्तृत कार्यान्वयन राज्यों पर छोड़ देने की बजाय केन्द्र सरकार द्वारा छोटे-से-छोटे ब्यौरे की जांच करना, आदि।
4. राष्ट्रीय विकास परिषद समन्वयकारी संस्था के रूप में कार्य नहीं कर सकती क्योंकि इसकी बैठक जल्दी-जल्दी नहीं होती और अधिक अवधि के लिए नहीं होती। वर्ष 1952 से अब तक 50 से भी कम बैठकें की गई हैं। यह परिषद एप्रोच लेख और प्रारूप योजनाओं को अनुमोदित करती है, लेकिन योजना की प्रगति पर नजर नहीं रख पाती। विचार-विमर्श की प्रक्रिया में मुख्यमंत्रियों के घिसे-पिटे भाषण होते हैं जिनमें परस्पर विचार-विमर्श अत्यन्त कम होता है। राज्यों को अपने विचारों को निश्चित रूप देने के लिए निर्धारित किया गया समय प्राय: अपर्याप्त होता है।

   क्या संसद निरस्त हुआ है ?- प्रो. पाल एच. एपिलबी का मत है कि केन्द्रीय सरकार अपनी नीतियों के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारों पर आश्रित है, फिर योजना आयोग की तुलना में राष्ट्रीय विकास परिषद नीति-निर्माता निकाय के रूप में अधिक शक्तिशाली है। राष्ट्रीय विकास परिषद में राज्यों के मुख्यमंत्रियों को स्थान दिया गया और ये परिषद की कार्यवाहियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। योजनाओं की अन्ततोगत्वा स्वीकृति राष्ट्रीय विकास परिषद के द्वारा होती है, अत: यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता है कि आर्थिक नियोजन से भारत में संघ-व्यवस्था समाप्त हो गई है।
6. **आर्थिक नियोजन और विकेन्द्रीकरण की समस्याएं**- आर्थिक नियोजन के परिणामस्वरूप भारत में राजनीतिक और आर्थिक केन्द्रीकरण में वृद्धि हुई है। योजना आयोग की भूमिका केन्द्रीकरण पर बल देती है जबकि संविधान में विकेन्द्रीकरण पर बल दिया गया है और पंचायती राज की स्थापना के प्रयत्न किए जाते रहे हैं। एक असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो गई है कि हमारी राजनीतिक व्यवस्था का उद्देश्य विकेन्द्रीकरण हो अथवा केन्द्रीकरण।
7. **जनता की सहभागिता की समस्याएं**-आर्थिक नियोजन पंचवर्षीय योजनाओं को ऊपर से थोपने की एक प्रक्रिया है जबकि हमारा संविधान और राजनेता व्यवस्था में जनसाधारण की सहभागिता की आवश्यकता पर बल देते रहे हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में चुनौतीपूर्ण समस्या यह है कि योजनाओं के क्रियान्वयन में जनसहभागिता कैसे विकसित की जाए।

निष्कर्ष

भारत में योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद तथा उनके द्वारा निर्मित योजनाओं ने राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित किया है, किन्तु इससे यह अभिप्राय नहीं है कि हमारी राज-व्यवस्था के स्वरूप एवं ढांचे में कोई आमूल-चूल परिवर्तन आ गया हो। संसदात्मक लोकतंत्र और संघात्मक व्यवस्था हमारे प्रमुखतम राजनीतिक स्तम्भ हैं। संसद आज भी नीति-निर्माता निकाय के रूप में संविधान का केन्द्र-बिन्दु है। आर्थिक नीतियों के निर्माण में संसद की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस प्रकार राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी नहीं कही जा सकती। ए. एन. झा ने ठीक ही लिखा है कि योजना का कार्यान्वयन, चाहे वह कानून द्वारा हो या प्रशासनिक कार्यवाही द्वारा हो, राज्यों के हाथों में है। प्रो. जे. डी. सेठी ने सम्पूर्ण योजना ढांचे पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, ''भारत में नियोजन के सम्बन्ध में निर्णय लेने की सत्ता अनेक निकायों में निहित है। योजना आयोग के अतिरिक्त राष्ट्रीय विकास परिषद, संसद, मंत्रिमंडल, इत्यादि को कहीं-न-कहीं योजनाओं के निर्माण में निर्णय लेना ही पड़ता है। योजनाओं के क्रियान्वयन में वित्त-मंत्रालय, योजना आयोग, प्रधानमंत्री कार्यालय और राज्य सरकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।''

फिर भी यह एक बुनियादी प्रश्न है कि आधुनिक परिस्थितियों में विभाजित और समवर्ती शक्तियों की संवैधानिक अनिवार्यता के साथ आयोजना के वृहत्त स्तर के केन्द्रीकरण की आवश्यकता का कैसे समाधान किया जाए? दूसरे शब्दों में, यह देखना है कि संघ किस प्रकार से संविधान निर्धारित ऐसे क्षेत्रें में, जो केवल राज्यों की अधिकारिता में आते हैं या जो समवर्ती अधिकारिता के विषय हैं, अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप किए बगैर तथा बिना किसी प्रतिकूल प्रतिक्रिया के आयोजना के राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। यह अधिकांश राज्य सरकारों ने सरकारिया आयोग के सामने यह विचार था कि योजना आयोग को संघ सरकार द्वारा प्रभावित हुए बिना या आदेश प्राप्त किए बिना न केवल स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहिए बल्कि उसे वस्तुपरक सिद्धान्तों के आधार पर निष्पक्ष निकाय के रूप में भी कामकरना चाहिए।

संदर्भः

1. Sharma, Arvind K: *Planning Commission in India : A Caste for Reorganization.*
2. मेहता, बलराज : ''योजना आयोग का नया स्वरूप क्या हो?'' राजस्थान पत्रिका, पृ0 4.
3. ठतमबीमतए डपबींमस रू *। च्वसपजपबंस ठपवहतंचीलए 1959ए* चण 521ण
4. "It has been defined as the economic cabinet merely for the union but also for the states." Chanda, Ashok : *Federation in India,* 1953, p. 281.
5. Sethi, J. D. : *India in Crisis,* pp. 54-55.
6. तृतीय पंचवर्षीय योजना (प्रस्तावना)।
7. Chanda, Ashok : *Federation in India,* p.196.
8. Appen, A. T. :"A Critic of Indian Fiscal Federation",*Public Finance,*Vol. No. 4,1969, p. 537.
9. केन्द्र-राज्य सम्बन्ध आयोग रिपोर्ट, भाग 1 (भारत सरकार, 1988), पृ० 345-369.
10. Sethi, J. D.: *India in Crisis,* p. 155.
11. केन्द्र-राज्य सम्बन्ध आयोग रिपोर्ट, भाग 1 (भारत सरकार, 1988), पृ० 346.

भारत में वामपंथी आंदोलन एवं उनसे संबंधित प्रमुख घटनाएं

डॉ० अनंता कुमारी

पी-एच. डी. (इतिहास विभाग), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

20 वीं सदी में दूसरे दशक के अंतिम वर्षो एवं तीसरे दशक के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन का चरित्र बदलने लगा। अब तक कांग्रेस का लक्ष्य राजनीतिक स्वतंत्रता की मांग भी की जाने लगी। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के दोनों मोर्चो, यथा राजनीतिक एवं आर्थिक मोर्चे एक दूसरे के समीप आने लगे। कांग्रेस के अंदर एक शक्तिशाली वामपंथ का उदय हुआ जिसका नेतृत्व युवा, कर्मठ नेता नेहरू तथा सुभाष कर रहे थे।

''वाम'' (Leth) शब्द की ऐतिहासिकता फ्रांसीसी क्रांति के समय की नेशनल असेम्बली का संगठन तथा कार्यप्रणाली से जुड़ा हुआ है। ''वाम'' शब्द का प्रयोग ऐसे दलों और आंदोलनों के अर्थ में होता आया है जो सरकार और समाज के वंचित तथा पीड़ित वर्गो के हितों को ध्यान में रखते हुए सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में मूलभूत सुधारों के लिए लड़ते है। सामान्यतया वामपंथ को समाजवाद का पर्याप्त माना जाता है।

असहयोग आंदोलन की किलता के बाद युवा वर्ग का गांधीवादी रणनीति से मोह भंग होने लगा। इसी बीच 1929 ई. के विश्वव्यापी आर्थिक मंदी ने पूंजीवादी व्यवस्था की रीढ़ को तोड़ दिया। लाखों व्यक्ति बेकार हो गये और उनके जीवनयापन पर प्रश्नचिन्ह उठने लगा।

दूसरी तरफ समाजवादी रूस अपनी पंचवर्षीय योजनाओं के सफल कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप विकास की ओर तेजी से अग्रसर हो रहा था। स्वाभाविक रूप से मार्क्सवाद, समाजवाद और आर्थिक नियोजन में लोगों को दासता एवं गरीबी से मुक्ति के मार्ग नजर आने लगे।

इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीतिक पटल के युवा नेतृव्त का एक समूह विशेष समाजवादी आदर्शो एवं सिद्धांतों में अपनी आस्था प्रकट करने लगा। यह आस्था धारे-धीरे प्रथमत: आग्रह एवं उसके बाद एक निश्चित सामाजिक व राजनीतिक उद्देश्य में तब्दील होता गया। वस्तुत: भारत में समाजवादी आंदोलन के उदय की पृष्ठभूमी यही रही है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध के आलोक में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समाजवादी स्वरूप के विकास का क्रमिक विश्लेषण करते हुए उसके पंडित जवाहरलाल नेहरू की भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजी- वॉल्शेविज्म, कम्युनिस्ट पार्टी, कानपुर शड्यंत्र, मेरठ शड्यंत्र केस,फॉरवार्ड ब्लॉक, साम्राज्यवाद, कांग्रेस समाजवादी पार्टी।

परिचर्चा

दक्षिण और वाम शब्दों का प्रयोग पहली बार फ्रांसीसी क्रांति में किया गया। राजा के समर्थकों को दक्षिण पंथी और विरोधियों को वामपंथी कहा गया। 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत में वामपंथी विचारों को प्रचार-प्रसार तेजी से होने लगा। भारत में वामपंथी विचारधारा के प्रसार के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी रहे-

1. प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत भारत में उत्पन्न परिस्थितियां।
2. भारत में किसानों एवं श्रमिकों में राजनीतिक चेतना।
3. युवाओं में असहयोग आंदोलन की असफलता के कारण असंतोष का होना।
4. भारतीय युवाओं जैसे एम. एन. राय, नलिनी गुप्ता आदि का सोवियत संघ से संपर्क।
5. भारतीय समाचार पत्रों द्वारा वॉल्शेविज्म का प्रचार-प्रसार।

भारत में साम्यवादी विचारधारा को प्रचारित करने का श्रेय मानवेन्द्रनाथ राय (मूल नाम नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य) को दिया जाता है। मूल रूप से वे अनुशीलन समिति के सदस्य थे। 1915 ई. में वे विदेश चले गये। 1919 ई. में मेक्सिको में रूसी साम्यवादी नेता मिखाइल बोरोदीन के संपर्क में आए तथा यहां दोनों ने मिलकर कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की। 1920 ई. में वे कम्युनिसट इंटरनेशनल के द्वितीय अधिवेशन में भाग लेने के लिए मास्को आये। इस इंटरनेशनल का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्यवाद की विचारधारा को प्रसारित करना था। तृतीय इंटरनेशनल में रूसी साम्यवादी पार्टी की ओर से औपनिवेशिक देशों को यह निर्देश दिया गया कि वे अपने देश के राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के साथ मिलकर काम करे। इस मुद्दे पर एम. एन. राय का विचार लेनिन के विचार से भिन्न था। इसी कारण 1929 ई. में एम. एन. राय को कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से निष्कासित कर दिया गया।

अक्टूबर 1920 ई. में एम. एन. राय, मोहम्मद अली, मोहम्मद शफीक ने मिलकर ताशकंद में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया की स्थापना की। एम. एन. राय ने वहां हिजरत आंदोलन के मुहाजिरों को राजनीतिक सैनिक प्रशिक्षण देने के लिए एक स्कूल की स्थापना की। 1922 ई. में उन्होंने अपना प्रधान कार्यालय बर्लिन बनाया, जहां से उन्होंने वेनगार्ड ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस नामक पाक्षिक तथा इंडिया इन ट्रांजिशन नामक पत्रों का प्रकाशन किया। इसी समय गदर आंदोलन के अनके नेता जेसे रतन सिंह, संतोष सिंह, तेजा सिंह भी कम्युनिस्ट बन गए। एम. एन. राय ने नलिनी गुप्ता तथा शौकत उस्मानी के माध्यम से भारत के कम्युनिस्ट समूहों से गुप्त संपर्क करना प्रारंभ कर दिया।

अगस्त 1922 ई. में एम. ए. डांगे ने बंबई से सोशलिस्ट नाम पहला समाजवादी साप्ताहिक निकाला। उन्होंने गांधी बनाम लेनिन नामक एक पुस्तक लिखी। मई 1923 ई. में सिंगारवेलू ने लेबर किसान पार्टी के गठन की घोषणा की। सिंगारवेलू ने लेबर किसान गजट का संपादन किया। दिसंबर 1925 ई. में कानपुर में हुए कम्युनिस्ट सम्मेलन के संयोजक सत्यभक्त थे। स्वागत समिति के अध्यक्ष हसरत मोहानी एवं सम्मेलन के अध्यक्ष सिंगारवेलू को बनाया गया। अधिकांश प्रतिनिधियों का मानना था कि उनकी नीति रूसी कॉमिन्टर्न से स्वतंत्र होनी चाहिए। इस प्रकार भारत में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना 1925 ई. में हुई मानी जाती है। शीघ्र ही इस संगठन पर बंबई के एस. बी. घाटे जैसे कट्टरपंथी कम्युनिस्ट का नियंत्रण हो गया। भारत में कम्युनिस्ट पार्टी का उद्देश्य भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्त करना तथा यहां श्रमिकों एवं किसानों का लोकतंत्र स्थापित करना था।

1925-26 ई. में बंगाल में लेबर स्वराज पार्टी का गठन किया गया। बाद में इसका नाम पीजेण्ट एंड लेबर पार्टी रखा गया। इसकी स्थापना करनेवालों में मुजफ्फर अहमद, नजर-उल- इस्लाम, कुतुबुद्दीन अहमद, हेमंत सरकार प्रमुख थे। इसी संगठन द्वारा दो बंगला पत्रिका लांगल एवं गणमानी प्रकाशित की गई। मुजफ्फर अहमद ने नवयुग का संपादन किया, जबकि काजी नजरूल इस्लाम के साथ मिलकर लांगर का संपादन किया। पंजाब में 1926 ई. में गदर पार्टी के पुराने नेता संतोष सिंह ने कीर्ति पत्रिका का संपादन किया। सोहन सिंह जोश, संतोष सिंह आदि लोगों के द्वारा बाद में कीर्ति किसान पार्टी का गठन किया गया। पंजाब के गुलाम हुसैन ने इंकलाब का संपादन किया। बंबई में जनवरी 1927 में एस. एस. मिरारकर, एस. वी. घाटे आदि ने मिलकर लेबर पीजेण्ट नामक पार्टी की स्थापना की। मद्रास में 1923 ई. में लेबर किसान पार्टी ऑफ हिन्दुस्तान की स्थापना की गई। इन सभी प्रांतीय संगठनों को मिलाकर 1928 ई. में अखिल भारतीय स्तर पर 'वकर्स एण्ड पीजेण्ट पार्टी का गठन किया गया। 1921 ई. से एम. एन. राय ने अपने समर्थकों को भारत भेजना शुरू किया। सर्वप्रथम 1921 ई. में नलिनी गुप्ता को कलकत्ता भेजा गया। बाद में अवनी मुखर्जी भी आई। रूस से आने वाले कई कम्युनिस्ट को पकड़ा गया और उनपर 1922-23 ई. में पेशावर शड्यंत्र केस चलाकर उन्हें सजा दी गई। ब्रिटिश सरकार कम्युनिस्ट को मजबूत होने से पहले ही कुचलना चाहती थी। इसलिए उनपर 1924 ई. में कानपुर शड्यंत्र के स हुआ। इसके तहत डांगे, मुजफ्फर अहमद, नलिनी गुप्ता, शौकत उसमानी को चार-चार वर्ष के कैद की सजा दी गई।

20 वीं सदी के तीसरे दशक में ब्रिटेन से भी समाजवादी विचारधारा के नेता भारत आने लगे। पर्सी ग्लैडन व जॉर्ज ऐलिसन ने बंबई एवं मद्रास के श्रमिक आंदोलनों में भाग लिया। 1926 ई. में इन दोनों को सजा दी गई। इसी वर्ष इंग्लैण्ड से फिलिप स्प्रैट भारत

आये तथा लेबर रिसर्च ऑर्गनाईजेशन की स्थापना की। 1927 ई0 में बेंजामिन फ्रांसिस बिटले तथा 1928 ई0 में एच. एन. हचिंसन जैसे श्रमिक नेता भारत आये। दिसंबर 1928 ई. में कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कार्यकारिणी का चुनाव हुआ। कार्यकारिणी ने मुजफ्फर अहमद को कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के लिए अपना सदस्य चुना। 1928-29 ई. में साम्यवादियों के प्रभाव को रोकने के लिए चार महत्वपूर्ण कदम उठाये गए- (1) पब्लिक सेफ्टी बिल, (2) व्हीटले कमीश, (3) ट्रेड डिसज्यूट बिल (4) मेरठ शड्यंत्र केस।

कम्युनिस्ट आंदोलन पर ब्रिटिश सरकार का सबसे बड़ा प्रहार मेरठ शड्यंत्र केस (1929-33 ई.) था। जिसके तहत कम्युनिस्ट के 27 बड़े नेताओं को सजा दी गई। सजा पाने वालों में तीन अंग्रेज- फिलिप स्प्रैट (बंगाल के मजदूरों में काम करने वाला ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य), फ्रांसिस ब्रेडले और एच. एल. हचिंसन शामिल थे। इस मुकदमे में कुल 31 अभियुक्त थे। सजा पाने वाले अन्य नेता- शौकज उस्मानी, पी. सी. जोशी, मुजफ्फर अहमद, श्रीपाद अमृत डांगे आदि। मुजफ्फर अहमद को आजीवन कारावास दिया गया, जबकि डांगे, जोगलेकर, निम्बालकर, स्प्रैट को 12 वर्ष की तथा ब्रेडले, उस्मानी को 10 वर्ष की सजा दी गई। इन मुकदमो के लिए कांग्रेस ने केन्द्रीय सुरक्षा समिति का गठन किया तथा सुनवाई के लिए नेहरू, कैलाशनाथ काटजू एवं एफ. एच. अंसारी, छागला को प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत किया गया। गांधी जी कैदियों से मिलने जेल गए। छठी कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के निर्देश पर कम्युनिस्टों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से संबंध विच्छेद कर लिया। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान एक तरफ जहां कांग्रेस विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कर रही थी वहीं कम्युनिस्ट नेता लंकाशायर के मजदूरों को सहानुभूति देने के लिए वहां के बने कपड़े के प्रयोग के लिए बल दे रहे थे। 1934 ई. में सरकार ने भारत में साम्यवादियों के विस्तार को देखते हुए इस दल पर प्रतिबंध लगा दिया। अप्रैल 1936 ई. में लखनऊ में प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई, जिनके प्रमुख सदस्य- हसरत मोहानी, जोश मलिहावादी, फिराक गोरखपुरी थे। यह संस्था 1932 ई. में बने रूसी कम्युनिस्ट के सातवें इंटरनेशनल में कम्युनिस्टों को संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा बनाने की अनुमति मिली।

मार्च 1936 ई. में आर. पी. दत्त एवं बैन ब्रेटले ने अपना निबंध 'भारत में साम्राज्यवाद विरोधी जनता का मोर्चा' प्रकाशित किया। इसे दत्ता-ब्रेटले थीसिस भी कहा जाता है। इसमें साम्यवादियों को सुझाव दिया गया कि वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस मे सम्मिलित हो जाये। उनके संगठन का प्रयोग करें और कांग्रेस समाजवादी दल को सुदृढ़ बनाये और जो प्रतिक्रियावादी दक्षिण पंथी लोग है, उन्हें निकाल बाहर करें। इसी आधार पर जयप्रकाश नारायण, पी. सी. जोशी के प्रयासों से राष्ट्रीय मोर्चा का निर्माण हुआ। दोनों ने मिलकर नेशनल फ्रंट नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसके प्रमुख संपादक पी0 सी0 जोशी थे। अन्य सदस्य- अमृत डांगे, अजय घोष, रणदिवे, महमूद जर आदि थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ में साम्यवादी कांग्रेस के साथ थे, किंतु जून 1941 ई. में हिटलर द्वारा रूस पर आक्रमण करने के साथ उनके रणनीति में परिवर्तन आया और वे सरकार के सहयोगी बन गए। भारत छोड़ों आंदोलन में साम्यवादियों ने भाग नहीं लिया। 1942 ई. में साम्यवादी दल ने एक प्रस्ताव पारित कर कहा कि भारत एक बहुराष्ट्रवादी राज्य है, जिसमे न्यूनतम 16 राष्ट्र है। 1946 ई. में उन्हो ने कैबिनेट मिशन के सम्मुख एक प्रस्ताव रखा कि भारत को 17 पृथक प्रभुसत्तापूर्ण राज्यों में बांट दिया जाए। शक्ति के हस्तानांतरण के समय साम्यवादियों की नीति मुस्लिम समर्थन की रही। पी. सी. जोशी ने लोक संस्कृति के माध्यम से साम्यवाद को प्रसारित करने की योजनाएं बनाई। 194 ई. के बाद इस विचारधारा को प्रसारित करने में इंडियन पिपुल्स थियेटर की प्रमुख भूमिका रही। इससे जुड़े प्रमुख कलाकार-बलराज साहनी, कैफी आजमी, सलील चौधरी, शंभु मित्र, सुचित्र मुखर्जी आदि। 1952 ई. के प्रथम चुनाव में कम्युनिस्टों को 23 सीटें प्राप्त हुई। यह कांग्रेस के बाद दूसरा सबसे बड़ा राजनीतिक दल था। 1961 ई. में विजयवाड़ा कांग्रेस के उपरांत कम्युनिस्ट पार्टी में विभाजन हो गया और एक नया दल सी. पी. आई. (मार्क्सवादी) बना। उल्लेखनीय है कि भारत में वामपंथी आंदोलन की दो मुख्य धाराएं विकसित हुई थी- (1) साम्यवाद, जो कि अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन के भाग के रूप में उभरा और जिसकों कॉमिन्टर्न नियंत्रित करता था। (2) कांग्रेस सोशलिस्ट दल, जो कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वामपंथी दल था।

निष्कर्ष

वस्तुतः भारतीय राजनीतिक पटल पर समाजवादी आंदोलन एवं वामपंथ के उदय में अनेक परिस्थितियां सहायक सिद्ध हुई। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति, औपनिवेशिक शोषण, पूंजीवाद का विकृत स्वरूप, श्रमिक वर्ग का उदय, असहयोग आंदोलन की असमय समाप्ति आदि अनेक कारण इसके लिए सहायक सिद्ध हुए। मार्क्स के क्रांतिकारी विचारों तथा रूस

में साम्यवाद के सफल उदय ने भी भारतीय जनमानस को अभिप्रेरित किया। परिणामत: एक नवीनद विचारधारा का जन्म हुआ जिसे समाजवाद अथवा वामपंथ के नाम से जाना गया तथा जिसके वैचानिक आयाम भी नवीन मूल्यों से पोषित थे।

संदर्भ

1. शुक्ला, रामलखन (आधुनिक भारत का इतिहास) : हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ० सं० 727-746
2. सिंह, अयोध्या (भारत का मुक्ति संग्राम) : मैकमिलन इण्डिया, दिल्ली, पृ० सं० 462-475
3. राय, सत्या (भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ० सं० 403-437
4. शर्मा, बी० एम० (सविता दत्त, आर. के.) भारतीय राजनीतिक चिंतक, पृ० सं० 270
5. दत्त, डॉ. के. के. (बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, भाग-1, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ० सं० 208, 283-285, 379-383, 298-300, 208, 180, 181, 269, 218
6. ग्रोवर, बी. एल., यशपाल (आधुनिक भारत का इतिहास-एक नवीन मूल्यांकन, एस. चन्द एंड कम्पनी) प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ० 446-449

चंपारण सत्याग्रहः भारत छोड़ो आंदोलन की पूर्वपीठिका द्वारा

डॉ० अरुण कुमार निराला

पी-एच. डी., बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में भारत छोड़ो आंदोलन एक युगांतकारी आंदोलन माना जाता है। ऐसी धारणा मुख्यत: दो कारणो से है- प्रथम यह कि यह क्रांति थी। दुसरा कारण यह कि सही अर्थो में यह स्वतंत्रता के लिए किया गया प्रथम जन आंदोलन भी था। इस आंदोलन का स्वरूप जनस्फूर्त माना जाता है। गाँधी जी के करो या मरो के आह्वान पर पहली बार संपूर्ण भारत की जनता उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व पूँजीवाद के विरूद्ध सड़को पर आयी थी। सभी प्रथम पंक्ति के नेताओ की गिरफ्तारी के बावजुद यह आंदोलन लंबे समय तक जारी रहा। इस आंदोलन की प्रखरता ने ब्रिटीश प्रशासको को भारत के प्रति उनकी नीति पर पुर्नविचार के लिए बाध्य भी किया। इस आंदोलन की विशिष्टता का कारण लाखो भारतीयों के अदम्य साहस व सहनशीलता का सामूहिक प्रदर्शन माना जाता है। इस क्रांति ने यह स्पष्ट कर दिया था कि केवल कुछ नेता, संस्था ही नहीं बल्कि भारतीय जनता भी अब स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत है। भारतीय इतिहास में स्वर्णिम अक्षरो में दर्ज 'भारत छोड़ो आंदोलन' गाँधी जी के उस विश्वास का भौतिक प्रदर्शन था, जो उन्होंने 'चंपारण सत्याग्रह' के पश्चात् जनकधारी प्रसाद को 1925 ई. में लिखे एक पत्र में व्यक्त किया था। दूसरे शब्दो में महात्मा गाँधी के चंपारण सत्याग्रह से ही इस आंदोलन की पृष्ठभूमि व आधारभूत संरचना का विकास होना आरंभ हो गया था। अत: 1942 ई. के आंदोलन की स्मृतियो का पुर्नावलोकन, चंपारण आंदोलन की स्मृतियों के साथ ही पूर्ण हो सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन में 1917 ई. के चंपारण आंदोलन के महत्व का अध्ययन 1942 ई. के भारत छोड़ो आंदोलन के सापेक्ष किया जाएगा।

परिचय

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में भारत छोड़ो आंदोलन एक युगांतकारी आंदोलन माना जाता है। ऐसी धारणा मुख्यत: दो कारणों से है- प्रथम यह कि यह क्रांति थी। दूसरा कारण यह कि सही अर्थो में यह स्वतंत्रता के लिए किया गया प्रथम जन आंदोलन भी था। इस आंदोलन का स्वरूप जनस्र्फूत माना जाता है। गाँधी जी के करो या मरो के आह्वान पर पहली बार संपूर्ण भारत की जनता उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व पूँजीवाद के विरूद्ध सड़को पर आयी थी। सभी प्रथम पंक्ति के नेताओ की गिरफ्तारी के बावजुद यह आंदोलन लंबे समय तक जारी रहा। इस आंदोलन की प्रखरता ने ब्रिटीश प्रशासको को भारत के प्रति उनकी नीति पर पुनर्विचार के लिए बाध्य भी किया। इस आंदोलन की विशिष्टता का कारण लाखो भारतीयों के अदम्य साहस व सहनशीलता का सामुहिक प्रदर्शन माना जाता है। इस क्रांति ने यह स्पष्ट कर दिया था कि केवल कुछ नेता, संस्था ही नहीं बल्कि भारतीय जनता भी अब स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत है। भारतीय इतिहास में स्वर्णिम अक्षरो में दर्ज 'भारत छोड़ो आंदोलन' गाँधी जी के उस विश्वास का भौतिक प्रदर्शन था, जो उन्होंने 'चंपारण सत्याग्रह' के पश्चात् जनकधारी प्रसाद को 1925 ई. में लिखे एक पत्र में व्यक्त किया

था। दूसरे शब्दो में महात्मा गाँधी के चंपारण सत्याग्रह से ही इस आंदोलन की पृष्ठभूमि व आधारभूत संरचना का विकास होना आरंभ हो गया था। अत: 1942 ई. के आंदोलन की स्मृतियो का पुर्नावलोकन, चंपारण आंदोलन की स्मृतियों के साथ ही पूर्ण हो सकता है।

चंपारण व गाँधी जी

चंपारण जिले को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, ऐसा इसलिए क्योंकि दक्षिण अफ्रीका से लौटने के पश्चात् राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने अपने जीवन का प्रथम सफल प्रयोग यही किया। यहीं से गाँधी जी ने सत्य अहिंसा, सत्याग्रह को राष्ट्रीय आंदोलन के हथियार के रूप मे स्थापित किया। समाज की मुख्यधारा से कटे दलित समाज को आंदोलन से जोड़ने तथा आर्थिक असमानता पर प्रहार करने का कार्य भी यही से आरंभ हुआ। दूसरे शब्दो में कहे तो चंपारण मे ही सर्वप्रथम गाँधी जी ने उन प्रवृतियों पर प्रहार किया, जो व्यक्ति को व्यक्ति से अलग करती है। व्यक्ति को व्यक्ति से अलग समझने की मनोवृति ही उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, पूंजीवाद जैसे घ्रणित विचारधारा का मूल तत्व होता है। चंपारण में गाँधी जी ने इसी 'मूल तत्व' को चिंहित किया। एक ऐसे समाज को निर्मित करने का प्रयाय किया जो समानता पर आधारित हो ताकि राजनीतिक समानता की स्थापना की जा सके। इस प्रकार उन्होने राजनीति व समाज के बीच के द्वन्द को समाप्त करने का प्रयास भी यहीं से आरंभ किया।

राजकुमार शुक्ल के अनुरोध पर चंपारण आने का प्रस्ताव गाँधी जी ने स्वीकारा तथा इसे प्रथम प्रयोग स्थल बनाया। इसके पीछे कारण यह था कि इन्होने यहॉ के लोगो की जागरूकता, नैतिक पद्धति में विश्वास, सत्य के लिए लड़ने की क्षमता को पहचान लिया था। चंपारण मे विद्यमान उपरोक्त तत्वों को वे प्रगति व सृजनात्मक परिवर्तन के लिए आवश्यक तत्व मानते थे।

चंपारण आंदोलन लालचपूर्ण आर्थिक नीति के विरूद्ध था। चंपारण में नील की खेती केवल अधिक धन प्राप्ति के लालच में जबरदस्ती करवायी जा रही थी। लाखो एकड़ उर्वर भूमि को नील की खेती ने अनुर्वर कर दिया। किसान बगान मालिको के दया के पात्र बनकर रह गए। 1857 ई. से ही चंपारण में बगान मालिको का विरोध शुरू हो गया था। 1907-08 ई. में शेखगुलाब व सिताब राय के नेतृत्व में बगान मालिको के विरूद्ध सशक्त आंदोलन भी खड़ा हुआ था। जिससे डरकर सरकार ने इस संर्पूण क्षेत्र को आतंकी क्षेत्र घोषित कर दिया था। जो किसान नील उपजाने से मना करते थे, उन्हें लगभग दोगुना लगान चुकाने के लिए बाध्य किया जाता था। इस विकट स्थिति से गाँधी जी का परिचय राजकुमार शुक्ल ने करवाया। तत्पश्चात् किसानो की समस्याओ का हल ढूंढने गाँधी जी चंपारण आए। अप्रैल 1917 ई. गाँधी जी के आगमन के पश्चात् चंपारण वह स्थल बना, जहाँ से सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह इत्यादि स्वतंत्रता आंदोलन का अंग बना। इस चंपारण सत्याग्रह के जरिए बिहार व बिहार के बाहर के कई लोगो को एक मंच पर ला दिया। इनमें प्रमुख व्यक्ति थे- राजेन्द्र प्रसाद, ब्रज किशोर सिंह, सी एफ एंड्रयुज, एच. एच. पालेक, महादेव देसाई, आचार्य कृपलानी इत्यादि।

इन लोगो के सहयोग से मोतिहारी व बेतिया मे कैंप आयोजित करके, पीड़ित किसानों से संवाद स्थापित किया गया। किसानो की समस्याओं की सत्यता की पड़ताल की गयी। फिर नैतिक व विधिक तरीके से 'तीन कठिया प्रथा' के अंत के लिए सरकार को विवश भी किया गया। यह गाँधी जी कि नैतिक रूप से बाध्य कर देने की पद्धति की प्रथम विजय थी। इस विजय के पश्चात् बड़ी संख्या में चंपारण मे स्कूल खोले गए। समाज सुधार का कार्य भी शुरू हुआा। गाँधी जी ने ग्रामवासियों को स्वच्छता का प्रशिक्षण दिया। नाला-सफाई, सड़क का पुनर्निमाण आदि जन-सहयोग से पुर्ण करवाया। चंपारण में किए गए इन कार्यो को गाँधी जी ने स्वयं के लिए महान अनुभव बताया था। 1925 ई. में जनकधारी प्रसाद को लिखे एक पत्र में गाँधी जी ने इस बात को स्वीकार किया है-

" I treasure the memory of the faithful co-workers of champaran. I shall never had a more faithful band to work with. If I had such a band throughout India, swaraj will not be long to coming."

1920-47 ई. तक महात्मा गाँधी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के आत्मा बने रहे। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन मे इनकी पहचान एक संत व सक्रिय राजनीतिज्ञ की है। इन्होंने सत्य, अहिंसा, असहयोग, सविनय अवज्ञा आदि का प्रयोग साम्राज्यवाद के विरूद्ध किया। इस हथियार का परीक्षण उन्होने चंपारण में ही किया था। अपनी चंपारण यात्रा के दौरान इन्होने वस्तुस्थिति को समझाने के लिए दलित व स्त्रियों के साथ विशेष तौर पर बात की। अपने सहयोगीयो को सहभोज तथा हिंदी में बात-चीत के लिए प्रेरित किया। एक

सामान्य व्यक्ति व पदाधिकारीयों के बीच के अंतर को समाप्त किया। अंग्रेजों तथा बड़े बगान मालिकों के समकक्ष होने का भान आम-भारतीयों को करवाया। जिससे उनमें शक्ति व आत्मसम्माान का भाव पैदा हुआ। लोगो ने शत्रु को मित्र बनाकर रखते हुए, उसे हानि पहुॅचाने की कला भी सिखी। 'चंपारण सत्याग्रह' के दौरान गाँधी जी के विभिन्न प्रयोग व उसके निहितार्थ को उनके समकालीन सहयोगी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के बताए गए अनुभवों के माध्यम से बेहतर ढ़ग से समझा जा सकता है।

राजेन्द्र प्रसाद के अनुभव गाँधी जी व चंपारण सत्याग्रह के संदर्भ में

1. गाँधी जी जब चंपारण जाने के क्रम में मुजफ्फरपुर पहुँचे, तो बहुत से लोग आए जिन्होंने अपनी समस्याएँ सुनायी। वहाँ प्लांटर्स एशोसिएशन के मंत्री तथा तिरहुत डिविजन के कमिश्नर भी आए थे। इन्होने गाँधी जी को चंपारण जाने से मना किया। यह बताया कि गवर्नमेंट स्वयं रैययतो की शिकायतो पर विचार कर रही है। अत: आपके वहाँ जाने से फसाद होगा। इसके बाद गाँधी जी कि इच्छा और प्रबल हो गयी। वे चंपारण आए, उनपर मुकदमा भी चला। परंतु उन्हे चंपारण के किसानो की स्थिति जाँचने की अनुमति मिल गयी। अब हजारो की संख्या मे रैयत अपनी शिकायत लिखवाने आते थे। शिकायत लिखने वालो को हिदायत थी कि खूब जाँच परख कर ही शिकायत लिखी जाए तथा इस बीच गाँवो में सभा करके व्याख्यान देने की अनुमति नहीं थी। गाँधी जी ने स्वयं भी कोई व्याख्यान नहीं दिया। इस तरह किसानो के बयान लेने से एक तो ठीक-ठीक जानकारी भी एकत्रित हो गयी और दूसरा रैययतो का डर भी समाप्त होता गया।

इस प्रसंग के संदर्भ में राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि गाँधी जी के साथ काम करने के पुर्व हम बस इतना समझते थे कि कांग्रेस का कार्य- केवल सभा में व्याख्यान देना, अदालत तक जाने लायक बात को अदालत पहुँचाना, तथा कौंसिल में प्रश्न करना या प्रस्ताव रखना मात्र है। इससे अधिक और कुछ नहीं हो सकता है। किंतु गाँधी जी के साथ काम करकें यह पता चला कि काम इससे आगे भी हैं। लोगो की समस्याओं को सुनना-समझना तथा लोगो के अंदर विधमान समस्याओ के प्रति भय को समाप्त करना, उन्हें संघर्ष करने योग्य बनाना भी एक महत्वपूर्ण कार्य है।

2. रिपोर्ट लिखने वाला दल कई भागो में विभक्त होकर कार्य करता था। एक दिन जब एक दल बयान लिख रहा था, तो वहाँ पुलिस का सब इंसपेक्टर आकर बैठ गया। दल के व्यक्ति ने सब इंस्पेक्टर को दूर से देखने सुनने को कहा। सब इंस्पेक्टर ने महात्मा जी से इस बात की शिकायत की। गाँधी जी ने बयान लिखने वाले सज्जन को बुलाया और पूछा बात क्या है? सज्जन ने सब इंस्पेक्टर को जो बात कही थी उसे स्वीकार की। इस पर गाँधी जी ने सज्जन से पूछा जब आप रिपोर्ट लिखे रहे थे तो आप अकेले थे या वहाँ और भी लोग थे। इस पर सज्जन ने उत्तर दिया बहुतेरे लोग थे। गाँधी जी ने फिर पूछा कोई गुप्त काम कर रहे थे? उन्होने कहा कि नहीं। तो गाँधी जी ने पूछा तो सब इंसपेक्टर से छिपाने की कोशिश क्यों कर रहे थे। उन्होने कहा- ''छिपाने की कोई बात नही थी पर यह पास आकर बैठ जाते है, मैने इन्हे दुर से देखने सुनने को कहा। गाँधी जी ने कहा,'' रैयत् के इतने लोग जब आपको घेरे हुए थे और उनसे आपको बाधा नहीं पड़ती थी, तब एक आदमी और भी वहाँ आकर बैठ गया तो आपने बाधा क्यों महसूस की। आपने इनको भी उन रैययतो मे से एक क्यों नही समझा? इतना सुनते ही सब इंसपेक्टर पर घरो पानी पड़ गया। क्योंकि वह तो रोब जमाने आया था। गाँधी जी ने उसे रैयतो मे से एक घोषित कर दिया। इस प्रकार गाँधी जी ने भारतीयो के बीच के आंतरिक विभाजन को कम करने का प्रयास किया। लोगो के मन से अफसरशाही का भय भी समाप्त किया।

ऐसे कई अनुभव राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा मे बताए है। उन्होने अपनी आत्मकथा में इस बात का उल्लेख किया है कि गाँधी जी के चंपारण सत्याग्रह से उन्होने सार्वजनिक जीवन का अद्‌भुत पाठ सीखा। उन्होने बताया है कि गाँधी जी किस तरह नीलवरो को बहुत बड़ी हानि पहुँचाकर भी उसके मित्र बने रहे। जब कमीशन का काम खत्म हो गया तो चंपारण में स्कूल खोलने में इन्ही नीलवरो से मदद भी ली। कमीशन में जो बाते सफलता से तय हुयी, वह रैययतो के माँग से बहुत कम थी। मगर इस सारे आंदोलन का नतीजा यह हुआ कि नीलवरो का रोब खत्म हो गया। अब उनकी इतनी शक्ति नहीं रह गयी कि वे जुल्म कर सके। रैयतो में हिम्मत व जान आयी। अब वे चुपचाप शोषण बर्दाश्त करने को तैयार नहीं थे। बिना जुल्म के मुनाफा संभव नहीं था। अत: नीलवर अपनी जमीने बेचने लगे। इस प्रकार उनकी जमीन रैयतो के हाथ आ गया।

आगे चंपारण सत्याग्रह के पैटर्न को गाँधी जी ने देशव्यापी बनाया। अब सबके मन में यह भाव आने लगा कि, भारत के स्वराज का मामला भी ऐसे ही हल हो जाएगा, बहुत कुछ छोड़कर भी हम सोलह आने बहुत जल्द ही ले सकेंगे, अगर संपूर्ण देश में चंपारण

की तरह अटल विश्वास, निःसंकोच कादार कार्यकर्ता अहिंसा पालन की दृढ़ निश्चयता का निर्माण हो। चंपारण सत्याग्रह के समय बिहार में शायद ही ऐसा कोई आदमी था जो अपना सारा समय देकर देश के लिए काम करता हो। चंपारण सत्याग्रह के पश्चात् लोगो की आँखे खुली। अब लोग यह समझने लगे कि जब तक हममे से कुछ लोग सारा समय देश को नहीं देगे तब तक बिहार का सार्वजनिक जीवन ढ़ीला ही रहेगा। अतः लोगो में पेशे से अधिक देश व समाज के लिए कुछ करने की मनोवृति का निर्माण हुआ।

इस प्रकार गाँधी जी का एक जिले के किसानो के लिए दिया गया 10 महीने का समय केवल किसानो की समस्याओं के अंत के लिए ही नहीं जाना जाता है। बल्कि कांग्रेस को अखिल भारतीय संगठन बनने का प्रशिक्षन देने, जनता के मन से ब्रिटीश सर्वश्रेष्ठता की भावना समाप्त करने, लोगो में देश के लिए जीवन जीने की मनोवृति का निर्माण करने के लिए भी जाना जाता है।

निष्कर्ष

चंपारण सत्याग्रह के दौरान गाँधी जी ने यह अनुभव कर लिया था कि भारत में विद्यमान समस्याओं का समाधान समाजिक मनोवृति में परिवर्तन से ही संभव है। साम्राज्यवाद, पुंजीवाद अथवा उपनिवेशवाद का अंत तभी संभव है, जब एक व्यक्ति-दूसरे व्यक्ति को स्वयं से भिन्न ना समझे। व्यक्ति व व्यक्ति के बीच की असमानता दूर हो। आर्थिक विषमता व शोषणपुर्ण व्यवस्था की समाप्ति के लिए जनता के मन से अफसरशाही के भय की समाप्ति, साहस में वृद्धि, आत्मविश्वास, जागृति व भारतीयों का आंतरिक विभाजन समाप्त होना आवश्यक है। चंपारण में उन्होने इन सारे सिद्धांतो का प्रायोगिक परीक्षण किया। जिसका परिणाम 'तीन कठिया प्रथा' के अंत के रूप में सामने आया। कांग्रेस जो कि इसके पुर्व मात्र एक राजनीतिक संगठन था, उसे इस तथ्य से अवगत कराया कि केवल सभा में भाषण देना सरकार को याचिका देना ही राष्ट्रीय आंदोलन नहीं हैं। इसके लिए देश की आम जनता से जुड़ना व उनके मन में आत्मसम्मान व जागृति पैदा करना आवश्यक है। देश के लिए कुछ करने के लिए राजनीतिक आंदोलन एवं रचनात्मक कार्य समान रूप से जरूरी हैं।

चंपारण सत्याग्रह के तेइस वर्षो बाद सन् 1942 ई0 में जनता से स्वःस्फूर्त आंदोलन करके, यह दिखा दिया था कि अब संपूर्ण भारत में मुक्ति के लिए वही अटल विश्वास व निःसंकोच परस्पर सहयोग का वातावरण है जो 1917 ई. में चंपारण में था।

भारतीय ने अपनी अदम्य साहस व शौर्य का परिचय दिया था। उनके अंदर अफसरशाही या साम्राज्यवादी शक्ति का कोई भय नहीं था। उन्होने यह दिखा दिया कि अब वे शोषण सहने के लिए तैयार नहीं हैं। वे देश के लिए सर्वस्व अर्पण करने को भी तैयार है। अतः अब ब्रिटीश शक्ति के पास भारत में बने रहने का कोई आधार नहीं हैं, उन्हे भारत छोड़ना ही होगा। भारतीयों के 1942 ई. के इस प्रदर्शन की आधार भूमि चंपारण सत्याग्रह ने ही तय की थी। अब भारतीय बिना कुछ छोड़े सोलहआने पा लेने के लिए दृढ़निश्चयी हो गए थे।

संदर्भ ग्रंथ

1. आत्मकथा- राजेन्द्र प्रसाद, पृष्ठ-136-154
2. चौधरी पी. सी. राय- डिस्ट्रीक्ट गजेटेरियर ऑफ चंपारण, पटना, 1960 ई., पृष्ठ-90
3. विनोद कुमार वर्मा- चंपारण एंड इंडियन नेशनल मूवमेंट, पृष्ठ-1-7
4. मजुमदार, आर. सी.- हिस्ट्री ऑफ द फ्रीड्म मुवमेंट इन इंडिया, वौल्युम-3, पृष्ठ-64
5. दत्ता के. के.- फ्रीडम मूवमेंट इन बिहार, वौल्युम-1, पृष्ठ-302
6. पांडेया, विष्णुकांत, चंपारण और महात्मा गाँधी-पृष्ठ-35, 37

बिहार में सामाजिक आंदोलनः पृष्ठभूमि एवं परिप्रेक्ष्य द्वारा

डॉ० बिजेन्द्र कुमार सिंह

पी-एच. डी. (इतिहास विभाग), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

प्राचीन काल से ही बिहार भारतीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु रहा है। समय-समय पर रूढ़ सामाजिक-राजनीतिक व सांस्कृतिक मान्यताओं एवं प्रथाओं के विरूद्ध बिहार ने अपनी आवाज बुलंद किया एवं इस क्षेत्र में नवीन मूल्यों, मान्यताओं को स्थापित करते हुए नवीन मार्ग प्रशस्त किया है।

19 वीं-20 वीं सदी में हुए सामाजिक सुधार आंदोलनों ने बिहार क्षेत्र के जनमानस में एक नवीन चेतना का संचार किया। बिहार में निम्नवर्गीय राजनीति का उदय की पृष्ठभूमि का निर्माण, इसी नवीन चेतना का प्रतिफल रहा है।

प्रस्तुत अध्ययन में बिहार की पारंपरिक सामाजिक संरचना के आलोक में आधुनिक काल में हुए सामाजिक जागरण एवं उसके परिणाम एवं प्रभाव की प्रक्रिया को विश्लेषित किया गया है।

शब्द कुंजी- जाति-व्यवस्था, श्रेणीकरण, जातिय आंदोलन, शुद्धि आंदोनल, पाश्चात्य शिक्षा, उपनिवेशीकरण।

परिचर्चा

1857 के प्रथम स्वतंत्र्य युद्ध के बाद भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से निकल कर सीधे ब्रिटिश महारानी के हाथों में आ गया। व्यवस्थित शासन के लिए भारत में बसने वाले समुदायों की पहचान और उनका वर्गीकरण जरूरी समझा गया। 1867-71 के बीच पहली जनगणना हुई और हर दस साल पर यह क्रिया दुहराई जाने लगी। कई जातीय संगठनों और आंदोलनों की पृष्ठभूमि में दरअसल 1871 की यह पहली जनगणना भी एक कारक थी। जातियों के श्रेणीकरण के क्रम में कुछ जातियों को अपराधी जाति घोषित कर दिया गया था तो कुछ को शूद्र, कुछ को नौकरी के लिए अयोग्य करार दिया गया था तो कुछ को ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय मानने से इंकार किया गया था।

भारत में जातियों के श्रेणीकरण का यह कोई पहला प्रयास नहीं था। वैदिक काल से लेकर आज के पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट तक हर कुछ सौ वर्षो के अंतराल पर जातियों का श्रेणीकरण किया जाता रहा है।

जातियों की पहचान और उनके श्रेणीकरण की समय-समय पर जरूरत भी इसलिए पड़ी कि जातियां भारतीय समाज में जड़ श्रेणियां नहीं रही हैं। नई-नई जातियां-उपजातियां बनती रहीं और नई-पुरानी जातियों की सामाजिक सोपान में स्थिति भी बदलती रही। सगोत्रीय/सजातीय विवाह पर आधारित जनजातीय सामाजिक संगठन, श्रम-विभाजन और विभिन्न जनजातियों और समुदायों का जमीनी स्तर पर सम्मिलन-इन सारी चीजों ने मिलकर जाति-व्यवस्था का आकार ग्रहण किया था।

1871 ई. में शुरू हुई जातियों के श्रेणीकरण की कोशिश ने जातिय आंदोलनों और विमर्श को जन्म दिया। बदले में इन आंदोलनों और विमर्श ने जातियों के श्रेणीकरण को प्रभावित किया। जातियों के श्रेणीकरण और जातीय आंदोलनों के बीच यह परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया 1871 से 1931 के बीच करीब 60 वर्षों तक लगातार चलती रही।

19 वीं सदी के धर्म एवं समाज सुधार आंदोलन का प्रभाव बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में भी व्यापक रूप से महसूस किया गया। स्मरणीय है कि इस नयी चेतना के विकास में बंगाल की भूमिका अग्रणी रही है और बिहार उस समय बंगाल का ही अंग था। अत: बिहार का प्रभावित होना स्वभाविक था। हिन्दू समाज में नवजागरण लाने में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी आदि का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय का बिहार से संबंध रहा था। उनके सहयोगियों में केशवचंद्र सेन की प्रेरणा से पटना और गया में ब्रह्म समाज की शाखाएं खोली गयी। डॉ. कृष्ण नंदन घोष द्वारा भागलपुर में 1866 में ब्रह्म समाज की शाखा स्थापित की गयी। बिहार में यह पहली शाखा थी, मगर जल्दी ही पटना, मुंगेर, जमालपुर और अन्य नगरों में भी इसकी शाखाएं खुली। हिन्दू धर्म को अंधविश्वास से मुक्त करने और नैतिक आचरण एवं एकेश्वरवादी विश्वास पर बल देने में इस आंदोलन का मुख्य योगदान रहा है। समाज सुधार और शिक्षा के क्षेत्रों में प्रगति लाने में भी इसकी भूमिका अग्रणीय रही है। बिहार में इसके प्रमुख सुधारकों में गुरु प्रसाद सेन, प्रकाश चन्द्र राय, हरिसुंदर बोस, निवारण चंद्र मुखर्जी और कामिनी देवी का नाम शामिल है।

आर्य समाज की स्थापना के बाद स्वामी दयानंद सरस्वती ने भी बिहार की यात्र किये थे। पटना, मुंगेर, भागलपुर और छपरा उनकी यात्र क्रम में शामिल थी। बिहार में पहला आर्य समाज मंदिर 1855 में दानापुर में स्थापित हुआ। आरा, पटना, सिवान, मुजफ्फरपुर, मोतीहारी और भागलपुर आदि नगरों में इसकी शाखाएं स्थापित हुई। शिक्षा और समाज सुधार के क्षेत्र में इस आंदोलन का प्रमुख योगदान रहा। जाति-प्रथा और अनावश्यक कर्मकांडों का विरोध करने के साथ महिलाओं का उद्धार और शिक्षा के विकास पर इस आंदोलन ने विशेष ध्यान दिया। सबसे बढ़कर इसने राष्ट्रीय चेतना को पल्लवित करने और स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए युवकों को प्रेरित करने का काम किया। इसके प्रमुख बिहारवासी सुधारकों में बालकृष्ण सहाय, पं. अयोध्या प्रसाद, डॉ. केशव देव शास्त्री, भवानी दयाल संयासी आदि के नाम आते हैं। इस आंदोलन का मुख्य नारा था- ''वेदों की ओर लौटो''। आर्य समाज द्वारा 'शुद्धि आंदोलन', 'गोरक्षा समिति' आदि के प्रसार से सांप्रदायिक वैमनस्य भी बढ़ा।

'रामकृष्ण मिशन' का भी बिहार में गहरा प्रभाव रहा। रामकृष्ण परमहंस द्वारा 1868 में और स्वामी विवेकानंद द्वारा 1886, 1890 और 1896 में बिहार की यात्रा की गयी। 1920 में पहली बार रामकृष्ण मिशन की शाखा बिहार में जमशेदपुर (वर्तमान में झारखंड) में स्थापित हुई। पटना एवं देवघर में इसकी शाखाएं 1922 में खुलीं। आध्यात्म और शिक्षा के प्रचार में इस संस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा। बिहार में इसके प्रमुख सुधारकों में जतीन्द्रनाथ मुखर्जी और डॉ. राजेश्वर ओझा का नाम उल्लेखनीय है।

थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थापक कर्नल ऑलकॉट और ऐनी बेसेन्ट ने 1894 में बिहार की यात्रा की थी। उस समय पटना में यह आंदोलन पल्लवित (आरम्भिक दौर में) हो रहा था। अगले एक दशक तक इसकी शाखाएं भागलपुर, गया, आरा, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, मोतीहारी आदि में संगठित हो चुकी थी। इसके प्रमुख सुधारकों में मधुसूदन प्रसाद, सरुराज हुसैन खां और पूर्णेन्दु नारायण सिंहा आदि थे। इसमें श्री सिन्हा एक दशक तक 'थियोसोफिकल सोसायटी ऑफ इंडिया' के महासचिव भी रहे। इस संस्था ने धार्मिक समन्वय, साम्प्रदायिक भाईचारे और आध्यात्म के विकास में योगदान दिया। होमरूल आंदोलन के माध्यम से श्रीमति एनी बेसेन्ट ने स्वतंत्रता संग्राम को भी नयी प्रेरणा प्रदान की जिसका प्रभाव देश और बिहार में भी महसूस किया गया।

बिहार के मुसलमानों में भी धर्म और समाज सुधार के प्रयास हुए। 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बहावियों के माध्यम से यह प्रयास आरंभ हुए। इनका मुख्य केन्द्र 'पटना' था। इन्होंने इस्लाम धर्म के मूल उपदेशों और शुद्ध आचरण का आह्वान किया और धर्म में विदित रुढ़िवादिता एवं विकार का विरोध किया। इस उद्देश्य से उन्होंने शैक्षिक संस्थाएं संगठित की जहां पारंपरिक इस्लामी शिक्षा प्रदान की जाती थी। ऐसी संस्थाओं में पटना का 'मदरसा इसलाहुल मुसलमीन' 1890-91 में मौलाना अब्दुल रहीम द्वारा सबसे पहले स्थापित किया गया।

स्वतंत्रता आंदोलन के क्रम में बिहारी मुसलमानों में भी राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई। 1917 में मौलाना मोहम्मद सज्जाद ने बिहार में 'जमीतुल उलेमाएं हिन्द' की शाखा संगठित की। खिलाफत और असहयोग आंदोलनों के दौरान बिहार के मुसलमानों की एक अत्यंत महत्वपूर्ण संस्था 'इमारते शरीया' के रूप में 1921 में स्थापित हुई। इसके भी संस्थापक मौलाना मोहम्मद सज्जाद थे और इसका मुख्यालय पटना के निकट फुलवारी शरीफ में स्थित था। इसके द्वारा मुस्लिम समुदाय के धार्मिक और सामाजिक कार्यो को संचालित करने में सुनियोजित तरीकों से प्रयास किये गये। यह संस्था आज भी कार्यरत है और इसके अधिकार क्षेत्र में उड़ीसा और बंगाल के क्षेत्र भी शामिल हैं।

ईसाई धर्म-प्रचारकों का बिहार में आगमन 18 वीं सदी में ही आरंभ हो गया था। परंतु संगठित ढ़ंग से धर्म प्रचार का काम 1846 के बाद आरंभ हुआ जब 'अनस्टेशियस हार्टमैन' नामक पादरी को इस कार्य का दायित्व सौंपा गया और पटना में पदस्थापित किया गया। पटना के अतिरिक्त बेतिया, मुंगेर, भागलपुर और पूर्णियां में भी ऐसे संगठित प्रयास आरंभ हुए। कालांतर में इन कार्यो का प्रसार छोटानागपुर के आदिवासी क्षेत्रों में हुआ और वहीं ऐसे प्रयासों को आधिक सफलता भी मिली। इस कार्य में अनेक मिशन और चर्च संगठन सक्रिय रहे जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार में भी निर्णायक भूमिका निभायी। स्वास्थ्य सेवाओं के विकास में इनका स्वैच्छिक योगदान प्रशंसनीय रहा।

इस तरह के धर्म-सुधारों ने भारतीय समाज में वैज्ञानिक सोच को जन्म दिया और कष्टदायक आचार-विचार एवं रूढ़िवादिता को समाज से दूर निकाल फेंका। साथ ही इन सुधारों से समाज के सभी वर्ग लाभान्वित हुए और नयी चेतना के साथ भारतीयों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान दिया।

19 वीं सदी का उत्तरार्ध आते-आते ब्रिटेन का शासक समूह भी बदल चुका था। तिजारती पूंजी की जगह औद्योगिक और वित्तीय पूंजी हावी हो चुकी थी। इन नए शासक समूहों के हित तिजारती समूहों के हितों से भिन्न थे। ईस्ट इंडिया कंपनी की मुख्य दिलचस्पी भूराजस्व और व्यापार में थी, जबकि औद्योगिक और वित्तीय समेह भारत को अपने तैयार औद्योगिक माल का बाजार और अपनी अतिरिक्त पूंजी के निवेश का सुरक्षित ठिकाना बनाना चाहते थे। कमरतोड़ लगान के नीचे दबा और बार-बार दुर्भिक्ष का शिकार रैयत न तो उनके तैयार माल का बाजार हो सकता था और न ही ऐसे रैयतों वाला देश उनके पूंजीनिवेश का सुरक्षित ठिकाना। भारत की क्रयशक्ति और कुछ हदतक उसकी उत्पादन शक्ति को बढ़ाना इन नए शासक समूहों के लिए जरूरी हो गया। उपनिवेशीकरण का आर्थिक आधार बदलना था और ऐसा ही हुआ भी, हालांकि ब्रिटिश शासक समूहों के अंदरूनी अंतर्विरोध और नौकरशाही जड़ता के कारण इसमें थोड़ा समय लगा। कापफी विवाद के बाद भी लार्ड मेयो और ओ. ऐ. ह्यूम राजस्व विभाग का नाम बदलकर कृषि शब्द जोड़ दिया गया। खैर, परिवर्तन की रफ्तार धीमी अवश्य थी लेकिन उसकी दिशा स्पष्ट थी।

सामाजिक आंदोलन की पृष्ठभूमि में तीसरा कारक हिन्दुओं के बीच चला सुधार आंदोलन था। हिन्दू समाज में जाति भेद और जातीय उत्पीड़न के खिलाफ समय-समय पर वैचारिक-सामाजिक आंदोलन होते रहे है और कालक्रम में ऐसे आंदोलन के प्रणेताओं को पूरे समाज में संत के रूप में स्वीकृति और सम्मान मिलता रहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के नेतृत्व में आर्यसमाज आंदोलन उन दिनों ऐसा ही एक सशक्त आंदोलन था जिसने जिछड़ी और दलित जातियों में एक नए जागरण का सूत्र्पात किया।

दरअसल, अन्य प्रदेशों की तरह बिहार में भी प्रबुद्ध लोगों के बीच सनातन धर्म में व्याप्त पाखंडों और कुरीतियों को लेकर गहरा असंतोष था और वे इस बावत कुछ-न-कुछ करने की सोचते रहते। व्यक्तिगत स्तर पर कुछ-कुछ करते भी थी। बंगाल के ब्रह्मसमाज आंदोलन पर उनकी नजर थी। वे शास्त्रों का अनुशीलन करते, विचार-चिंतन मनन पर बल देते और धार्मिक विषयों पर आपस में तर्क-वितर्क किया करते। 19 वीं सदी के उत्तरार्ध में दानापुर में ऐसे ही प्रबुद्ध समाज-सुधारकों ने 'विचार-सभा' का गठन किया था। इस सभा के कुछ अग्रणी व्यक्ति थे- बाबू जनकधारी लाल, माधोलाल, रामनारायण, शिवगुलाम प्रसाद, ठाकुर प्रसाद शाह, बाबूलाल, श्यामलाल, हीरालाल आदि। बाद में इन लोगों ने पंजाव के सुधारवादी विचारक मुंशी कहैयालाल अलखधारी की पुस्तकों का अनुशीलन किया और उनके प्रभाव से 'विचार सभा' को 'हिन्दू सत्य सभा' का नया नाम दिया गया। फिर ये लोग स्वामी दयानंद सरस्वती के 'सत्यार्थ प्रकाश' से परिचित और प्रभावित हुए, उनके साथ पत्रचार किया और बंबई जाकर उनसे मिले। स्वामी जी की सलाह पर ही 'हिन्दू सत्य सभा' का नाम बदल कर 'आर्यसमाज' रखा गया। दानापुर आर्यसमाज की विधिवत् स्थापना 28 मार्च 1878 ई. को हुई। बाबू जनकधारी लाल इसके पहले प्रधान और बाबू माधोलाल इसके पहले मंत्रे चुने गए। स्वामी दयानंद 30 अक्टूबर 1879 ई. को खुद दानापुर पधारे और बीस दिन तक रहे। शीघ्र ही दानापुर पूर्वी भारत में आर्यसमाज का सर्वप्रमुख केन्द्र बन गया।

ऐसे हर सुधार आंदोलन की तरह इस सुधार आंदोलन के भी दो आयाम थे- एक, अन्य मतों और सम्प्रदायों के बरखिलाफ वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करना। इसका मुख्य तरीका था शास्त्रार्थ और शुद्धिकरण। दूसरा, हिन्दू समाज के अंदर प्रचलित विभिन्न कुरीतियों और पाखंडों का विरोध और उनका ठोस निराकरण। पहला कार्य जहां आर्य समाजियों को प्राय: अनय मतावलम्बियों (खासकर मुसलमानों और ईसाईयों) के साथ टकराव की ओर ले जाता, वहीं दूसरा पक्ष उन्हें कट्टरपंथियों का कोपभाजन बनाता।

आर्य समाजी जन्म को नहीं बल्कि कर्म को प्राथमिकता देते थे, उन्होंने वेदों के पठन-पाठन पर ब्राह्मणों के एकाधिकार को चुनौती दी और मंदिरों में दलितों के प्रवेश का पुरजोर समर्थन किया, वे जातीय भेद-भाव औश्र अस्पृश्यता के सख्त खिलाफ थे और

पिछड़ी तथा दलित जातियों के बीच यज्ञोपवीत (जनेऊ) आंदोलन शुरू करने का श्रेय उन्हें ही जाता है। उन्होंने विधवा विवाह को मान्यता दिलाने, बालविवाह रोकने, स्त्रियों के बीख पर्दाप्रथा हटाने और उन्हें शिक्षा देने के लिए आंदोलन चलाया। इसके साथ ही उन्होंने कई पाठशालाओं और अनाथालयों की भी स्थापना की।

जाहिर है कि इस सुधार आंदोलन का मध्यवर्ती और दलित जातियों पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा और बिहार में वे इस आंदोलन की मुख्य शक्ति बन गए। अनुन्नत/दलित जातियों में आत्मसम्मान का भाव जागा और इस तरह एक वृहत्तर सामाजिक आंदोलन की जमीन तैयार हुई।

सामाजिक आंदोलन की पृष्ठभूमि में चौथा कारक राष्ट्रीय आंदोलन था। उन दिनों राष्ट्रीय आंदोलन यद्यपि प्रारंभिक अवस्था में था, फिर भी बंग-भंग, स्वदेशी, तिलक की गिरफ्तारी और निर्वासन जैसी घटनाओं का प्रभाव पड़ता ही था। अधिकार की चेतना, न्याय और समानता की चेतना संक्रमणशील होती है। जब राष्ट्र के जन्मसिद्ध अधिकार की बात उठेगी, राष्ट्रों के बीच न्यायपूर्ण और समानता पर आधारित संबंध की मांग होगी तो देर-सबेर समुदायों, जातियों और व्यक्तियों के मामलों में भी ऐसी मांगें दुहरायी जाएंगी। इसलिए राष्ट्रीय आंदोलन प्राय: ऐसे कितने ही छोटे-बड़े आंदोलनों को या तो जन्म देता है या फिर गति प्रदान करता है। प्रत्यक्षत: राष्ट्रीय आंदोलन और जातीय आंदोलनों के बीच परस्पर विरोध दिखाई देता है और कुछ हद तक होता भी है, लेकिन दूरगामी तौर पर यह पूरी प्रक्रिया समाज के वृहत्तर जनतांत्रिकरण की ओर ही ले जाती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार, ब्रिटिश शासन के बदलते स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में एवं उसकी भारतीय प्रतिक्रिया के संदर्भ में ही अखिल भारतीय स्तर पर जिस सामाजिक जागरण का सूत्रपात हुआ, बिहार का सामाजिक जागरण भी उसी की एक कड़ी माना जा सकता है। यह जागरण सभी सम्प्रदायों एवं सभी वर्गो तक विस्तृत रहा है। इस प्रकार के सामाजिक आंदोलनों का सबसे बड़ा परिणाम राजनीतिक चेतना का जागरण भी था। इस में कोई संदेह नहीं की इसी राजनीतिक चेतना में एक तरफ बिहार को एक पृथक प्रांत के रूप में गठित करने में अपने भूमिका निभाई। वहीं दूसरी ओर प्रकारांतर से इस में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को भी गतिशील बनाया।

संदर्भ

1. शर्मा, डॉ. राधाकृष्ण एवं मिश्रा, गुलाब बिहार का इतिहास, जेनरल बुक एजेन्सी, पटना, पृ० 249
2. वही, पृ० सं० 249
3. वही, पृ० सं० 250
4. वही, पृ० सं० 252
5. चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ० सं० 95
6. वही, पृ० सं० 96
7. राउत, सुरेन्द्र बिहार समग्र : नैनो पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ० 26
8. वही, पृ० सं० 26

आधुनिक भारतीय इतिहास के संभावित स्रोत के रूप में वैज्ञानिक उपादानः एक अवलोकन

दिलीप कुमार

यूजीसी-नेट/जेआरएफ

शोधरत, (इतिहास विभाग), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

ऐतिहासिक अध्ययन वस्तुतः मानव सभ्यता के विकास का एक लेखा-जोखा है। इस दिशा में इतिहास-लेखन के कई दृष्टिकोण विद्यमान है। साम्राज्यवादी, राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी, उपाश्रयी, संशोधनवादी दृष्टिकोण, सभी के अपने उद्देश्य एवं तर्क है। इन लेखनों में स्रोत एवं साक्ष्य इसके दिशा-निर्देशन एवं वर्गीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका में होता है। इसकी खास सीमा भी होती है कि इनके केन्द्रबिन्दु में कोई व्यक्ति, संस्था या वर्ग होता है। इसका अनुपालन अधिकांश इतिहासविदों द्वारा किया जाता रहा है। इस प्रकार सभ्यता के विकास को समग्रता से लेने का प्रयास अधूरा रहा जाता है। स्रोत के रूप में भी परंपरागत दृष्टिकोण का ही सहयोग लिया जाता रहा है।

आज के वैज्ञानिक विकास ने मानव सभ्यता के विकास को नई दिशा दी है। इस परिप्रेक्ष्य में इतिहास-लेखन की दिशा को प्रासंगिक बनाये रखने के लिए सबसे जरूरी है कि अब इतिहास को समग्रता में देखने का प्रयास किया जाये। इतिहास लेखन एवं स्रोत साक्ष्य संकलन के प्रति हमारा दृष्टिकोण व्यापक हो। इस तथ्य से हम नहीं मुकर सकते है कि वैज्ञानिक विकास ने सभ्यता का विकास को नई दिशा दी है। ऐसे परिस्थिति में ऐतिहासिक स्रोत का दायरा बढ़ना भी अवश्यंभावी हो जाता है। माइक्रो फिल्म एक उदाहरण हो सकता है जिसे अभी तक स्वीकार किया जा चुका है। साथ ही ऐसे असंख्य वस्तुएँ है जो ऐतिहासिक स्रोत के रूप में प्रयोग में लाई जा सकती है। संचार क्रांति ने सभ्यता की गतिशीलता प्रदान की है। ऐसी परिस्थिति में इससे जुड़ी वस्तुएँ भी नई स्रोत के रूप इस्तेमाल की जा सकती है। मानव द्वारा प्रयुक्त सारी वस्तुएँ ऐतिहासिक सामग्री हो सकती है।

वैज्ञानिक क्रांति ने जहाँ 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की उक्ति को चरितार्थ करती है तो फिर ऐतिहासिक स्तर पर हमारा दृष्टिकोण संकुचित नहीं हो सकता है। भारत के आधुनिक इतिहास लेखन के स्रोत की दायरा में फैलाव को निश्चित रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए। भारत में वैज्ञानिक विकास से जुड़े उपस्कर, सिद्धांत पर लिखित पुस्तक को संभाव्य स्रोत के रूप में रखा जा सकता है। समग्र-इतिहास लेखन में यह महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उपलब्ध है।

KEYWORD- इतिहास-लेखन, स्रोत, साक्ष्य, वैज्ञानिक विकास, वैज्ञानिक उपस्कर, समग्र इतिहास-लेखन।

परिचर्चा

इतिहास अतीत के अध्ययन से संबंधित है वहीं इतिहास लेखन अतीत की व्याख्या अध्ययन से संबंधित है।

आधुनिक भारत के इतिहास-लेखन में राजनीतिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए ऐतिहासिक व्याख्या पर जोर दिया गया है। यूरोपीय शक्ति के आगमन से इसकी शुरूआत होकर राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन तक काफी समय तक समुचित व्याख्या के स्थान पर यथासंभव केन्द्रिकृत व्याख्या करने की प्रवृति रही है तथा राजनीतिक घटनाओं एवं व्यक्तियों को केन्द्रित कर इतिहास लिखा गया है जबकि यही काल बड़े ही तीव्र गति से सामाजिक-सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक परिवर्तन काल भी रहा है।

आधुनिक विज्ञान के विकास के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुठभेड़ की स्थिति भी उत्पन्न करने में अह्म भूमिका अदा करती रही है।

आजादी के बाद इतिहास लेखन में आधुनिक इतिहास लेखन में परिवर्तनशीलता स्वभाविक प्रक्रिया रही है। यह परिवर्तन कई स्तरों पर आए है- ऐतिहासिक पुस्तकों, पत्रिकाओं और शोध-ग्रंथों की बढ़ती हुई संख्या में, नए प्रकार के ऐतिहासिक स्रोतों और शोध-पद्धतियों के रचनात्मक उपयोग में नित्य नये विषयों और संदर्भो के अध्ययन में तथा इतिहासकारो के बदलते हुए दृष्टिकोण एवं विचारधाराओं में।

विषय का यह विस्तार स्रोतों के बेहतर संग्रह एवं उपयोग के बिना शायद ही संभव हो सकता है। पिछले दशक में स्रोत संबंधी समस्या का निराकरण काफी हद तक संभव हो पाया है। इतिहासकारों के लिए आधुनिक इतिहास-लेखन के संदर्भ में स्रोत के रूप में मौलिक एवं सहायक स्रोतों का बेहतर आधार मिल पाया है। इस प्रक्रिया में सरकारी अभिलेखागार तथा पुस्तकालय के साथ-साथ निजी उद्यम भी सहायक है। इन जगहों से पुरानी फाइलों, अखबारों, प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध-ग्रंथ की प्राप्ति सहज हो सकी है। संग्राहलयों का भी स्रोत की उपलब्धता सुनिश्चित कराने में अह्म भूमिका है। इसके अलावा दिल्ली के राष्ट्रीय आभिलेखागार नेहरू स्मारक पुस्तकालय जैसी संस्थाओं में पुराने दस्तावेजों को माइक्रोफिल्म पद्धति के जरिय सुरक्षित एवं बनाए जाने से ऐतिहासिक शोध में बड़ी सहायता मिली है निजी दस्तावेजों में डायरियों, पत्रों एवं आत्मकथा का उपयोग भी ऐतिहासिक स्रोत के रूप में बढ़ा है।

अग्रलिखित स्रोतों को ऐतिहासिक स्रोतो के रूप में मान्यता प्राप्त है परंतु इसकी सहायता से इतिहास-लेखन की एक सीमा है कि ये स्रोत संपूर्ण इतिहास-लेखन में सहायक नहीं है इनकी सहायता से संभवत: राजनीतिक इतिहास, आर्थिक इतिहास आदि केन्द्रिकृत विषय पर ही लेखन संभव है। अगर इतिहास को समग्रता से देखा जाये तो मानव-सभ्यता के विकास में प्रयुक्त वे सभी महत्वपूर्ण उपागम जिन्होंने इसे गतिशीलता प्रदान की है । ऐतिहासिक स्रोत हो सकते है। वैज्ञानिक विकास ने सभ्यता को निश्चित रूप से प्रभावित किया है। औद्योगिकरण के पश्चात् वैज्ञानिक विकास की बाढ़ आ चुकी है इससे पहले से भारत में लोक-विज्ञान की परंपरा रही है। आज भी जारी है। अब प्रश्न उठता है कि क्या सभ्यता के विकास-प्रक्रिया में वैज्ञानिक विकास का योगदान है या नहीं? अगर इसका जवाब हाँ है तो फिर इस संदर्भ में यह तथ्य भी स्वीकार करना अनिवार्य प्रतीत होता है कि वैज्ञानिक उपादान भी ऐतिहासिक स्रोत है।

यह मुख्यत: उस क्षेत्र के इतिहास लेखन में सहायक सिद्ध हो सकते है जहाँ तक विज्ञान की पहुँत संभव हो पायी है।

भारत में जनविज्ञान लोकविज्ञान की परंपरा प्राचीन काल से रही है आज भी जारी है। आज वैज्ञानिक विकास काफी ऊँचाई को प्राप्त कर चुकी है परंतु इसका स्वरूप संस्थागत है। इस में भारत जैसे विशाल भूभाग एवं जनसंख्या वाले देश में इसके व्यापक प्रसार का अभाव है। मुख्य हिस्से से कटे दुर्गम क्षेत्रों में भी मानव बसते है। उनकी अपनी दुनिया है अपना इतिहास है जो अभी तक लेखबद्ध नहीं किया गया है तो उनका इतिहास कैसे लिखा जाए? उनके इतिहास के स्रोत क्या हो सकते है?

इतिहास को समग्रता से प्रस्तुत करने के मार्ग में स्रोत संबंधी महत्वपूर्ण बाधाएं आज भी इतिहास-लेखन की प्रगति में रूकावट है। सम्पूर्ण इतिहास में संभावित स्रोतों को खोजना आज भी कठिन प्रतीत होता है। वैज्ञानिक उपादान इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कड़ी साबित होता है। इससे संबंधित व्याख्या कहीं-न-कहीं सभ्यता के विकास का विवरण हो सकता है। खासकर सांस्कृतिक इतिहास लेखन की दिशा में वैज्ञानिक उपादान संभाव्य स्रोतों के रूप में इस्तेमाल किये जा सकते है।

प्रारंभिक मानव यातायात एवं संचार में किस प्रकार के उपकरण का उपयोग करते थे कलांतर में किस तरह के परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए तथा आधुनिक विज्ञान के विकास के पश्चात् इसमें व्यापक परिवर्तन हुआ, प्रमाण सभी के समाने है। यह एका-एक संभव नहीं हो पाया है बल्कि सदियों संघर्ष का परिणाम है।

भाषा के विकास से लेकर दूरभाष यंत्र तक की विकास प्रक्रिया से संबंधित उपागम ने सभ्यता को गतिशीलता प्रदान की है। ग्रामोफोन से लेकर सैटैलाईट तक की यात्रा हो या फिर नाव से नौवहन तक का विकास, वायुयान निर्माण, रॉकेट युग तक का सफर मानवीय संघर्ष का परिणाम है।

गणित एवं ज्योतिष, खगोलविज्ञान से लेकर कम्प्यूटर, सुपर कम्प्यूटर तक विकास प्रक्रिया ने आज ब्रह्माण्ड का अध्ययन शुरू किया है। वस्त्र, आभूषण तथा अन्य प्रसाधन ने मानव के रूप को ही परिवर्तन कर दिया है। ऐसे असंख्य उदाहरण है जिससे सभ्यता को गतिशीलता मिली है।

प्राकृतिक रेशा से कृत्रिम रेशा का बनना, रोबोट मानव का प्रादुर्भाव किसी एक दिन की परिघटना नहीं है बल्कि हजारों वर्षो की विकास यात्रा के पश्चात् एवं असंख्य प्रयासों का परिणाम है।

वर्तमान स्थिति तक पहुंचने हेतु क्रमिक रूप से विकास हुआ है आगे भी जारी रहेगा। आज का वर्तमान कल का अतीत होगा। हम सभी स्वीकार करते है कि इतिहास अतीत का अध्ययन है तो हमे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि आज की उपलब्ध वस्तुएं कल के ऐतिहासिक स्रोत होंगे।

निष्कर्ष

आधुनिक भारत के इतिहास की विषयवस्तु में स्वतंत्रता के पश्चात विविधता आई है। अंग्रेजी प्रशासन स्वाधीनता संग्राम इत्यादि पुराने विषयों के साथ-साथ नए विषयों, जैसे- आर्थिक इतिहास, जनांदोलनों पर विस्तृत शोध तथा विभिन्न वर्गो एवं समुदायों के क्षेत्रिय सूक्ष्म अध्ययन में आधुनिक इतिहास लेखन को नई समग्रता प्रदान की है। आज के इतिहास-लेखन में 'सम्पूर्ण इतिहास' पर काफी जोर दिया जाने लगा है।

विज्ञान के क्षेत्र में हुए विकास का ऐतिहासिक अध्ययन की दिशा में भी शोध हो रहे है। नये प्रकार के इतिहास लेखन में स्रोतों की अपर्याप्त भी एक समस्या है। इस दिशा में संभाव्य स्रोतों की पहचान एवं प्रमाणिकता की जांच की प्रक्रिया जारी है। सामान्य तौर पर मानव द्वारा प्रर्युक्त वस्तुएं जो दीर्घ काल तक सुरक्षित रह पाती है। धातु निर्मित हो सकती है या अधातु या फिर अर्द्धधातु जिसे परिष्कृत कर मानव अपने उपयोग के लायक बना पाता है आज के संदर्भ में कोई मशीन या उपकरण हो सकते है जो वैज्ञानिक विकास का परिणाम होते है।

इस दृष्टिकोण से वैज्ञानिक उपादान इतिहास लेखन के संभाव्य स्रोत हो सकते है।

संदर्भ-

1. आधुनिक भारत का इतिहास (संपादक- रामलखन शुक्ल) हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ० सं० 7
2. उपरोक्त पृ० सं० 16
3. उपरोक्त पृ० सं० 17
4. उपरोक्त पृ० सं० 26
5. लेख, फेकल्टी ऑफ हिस्ट्री, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय

आधुनिक भारत में जातिवाद की पृष्ठभूमि: एक अध्ययन

डॉ० प्रज्ञा कुमारी

पी-एच. डी., (राजनीति शास्त्र विभाग), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

जाति, भारतीय सामाजिक जीवन की वास्तविकता है। स्वाभाविक रूप से जातिवाद एवं इससे व्युत्पन्न जातीय राजनीति भी भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की सच्चाई है। ब्रिटिश पूर्व भारत में भारत की देशीय परंपरा इतनी मजबूत स्थिति में थी कि उसपर किसी वाह्य वैचारिकी का प्रभाव मजबुती से प्रकट नहीं हो पाता था। आधुनिक काल के प्रारंभ के साथ उत्पन्न सामाजिक एवं वर्गीय चेतना ने भारतीय समाज में जातिवाद को नए रूप से विकसित होने का मार्ग प्रशस्त कर दिया एवं इसी पृष्ठभूमि पर जातिय राजनीति भी प्रारंभ हो गयी।

प्रस्तुत अध्ययन में आधुनिक भारत में जातीय राजनीति का उदय (दक्षिण भारत के संदर्भ में) को विश्लेषित किया गया है।

शब्द कुंजी- व्यवसायगत विशिष्टता, श्रेणीक्रम, मानवतावादी भावना, अब्राह्मण आंदोलन, जनगणना, ब्राह्मण-अधिपत्य।

परिचर्चा

अंग्रेजों के भारत में आने के पहले भारत की राजनीतिक व्यवस्था में यह बात सफ़ दिखाई देती है कि तब राज्यों के क्षेत्र बिखरे हुए थे, एक मुखिया या राजा का इलाका दूसरों के इलाकों से अलग रहता था। सामान्यत: ऐसे मुखिया या राजा के ऊपर कोई सम्राट स्वयं या उसका सूबेदार रहता था और मुखिया के नीचे भी सरदार रहते थे। मुखिया या राजा के इलाके की सीमाएं हमेशा बदलती रहती थी। सीमा वृद्धि या सीमा संकुचन का यह परिवर्तन उस मुखिया या राजा की सैन्य-शक्ति पर निर्भर करता था और इस पर भी कि सूबेदार या सम्राट इन मुखियाओं पर अपना नियंत्रण कितनी दृढ़ता से रखता है। यद्यपि कालांतर से यह सीमाएं परिवर्तित होती थी तथापि किसी एक समय में ये सीमाएं ही अलग-अलग मुखियों के अधीन प्रदेश की जनता के बीच दीवार बन जाती थी। अत: स्वाभाविक रूप से इस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था जातिगत संबंधों के समस्तरीय प्रसार को दृढ़ता से रोकती थी। संक्षेप में कहा जाये तो एक ही क्षेत्र के अंदर रहने वाली प्रत्येक जाति के बहुत अधिक नही तो थोड़े बहुत प्रभावकारी सामाजिक विस्तार की निर्णायक राजनीतिक सीमाएं होती थी। किसी खास दौर में सीमाएं बदलती रही, इस तथ्य का अर्थ यह है कि उस समय विद्यमान राजनीतिक सीमाओं के आरपार सांस्कृतिक बंधन बार-बार टूटने थे। राज्य पुनर्गठनल आयोग ने सांस्कृतिक तथा राजनीतिक सीमाओं की अनुरूपता को सुस्पष्ट रूप से मान्य किया।

राजनीतिक व्यवस्था द्वारा जातियों के समस्तरीय प्रसार की प्रवृति पर क्षेत्रीय सीमा के आरोपित करने का स्वाभाविक नतीजा यह हुआ कि एक ही क्षेत्र में रहने वाली अनेक जातियां एक दूसरे के साथ सहयोग करने के लिए प्रेरित हुई। व्यवसायगत विशिष्टता ने भी परस्पर निर्भर रहने को मजबूर किया क्योंकि हर जाति अपनी आजीविका के लिए दूसरी जातियों पर निर्भर रहती थी। और फिर एक जाति का हर सदस्य दूसरी जातियों द्वारा दी जा रही सुविधाओं तथा फायदों को पाने का इच्छुक था और इसका साफ मतलब यह है कि एक जाति के सदस्यों के संबंधों में विरोध रहता था। आर्थिक बंधनों द्वारा जातीय अवरोधों को काटने की इस प्रवृति को

राजनीतिक तथा धार्मिक बंधनों द्वारा समर्थन मिला। अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने से जातियां उन सीमाई बंधनों से मुक्त हो गयी जो पहले की राजनीतिक व्यवस्था से लगे थे। इस तरह अंग्रेजी राज्य ने जाति रूपी उस जिन्न को बोतल से मुक्त कर दिया।

अंग्रेजों ने जो दस-वर्षीय जनगणना की प्रथा शुरू की उसमें जाति अभिलेखित की जाती थी और अनजाने ही इससे सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा मिल गया। नीची जाति के समृद्ध लोग तथा वह भी जो अच्छे हाल में नहीं थे खुद को नये तथा आडंबरपूर्ण संस्कृत नामों से संबोधित करने लगे। जनगणना में नाम अभिलेखित कराना पूर्वापेक्षा उच्च पद पाने के आंदोलन का एक भाग था।

अंग्रेजी राज्य ने नीची जातियों को कभी-कभी आर्थिक लाभ पहुंचाया पर साधारण रूप से इस प्रकार के लाभ जाति-श्रेणीक्रम की उच्च जातियों को ही अधिक मिले है। ऊपर दिये गये उदाहरण में यह ध्यान देने की बात है कि अपवित्रता संबंधी अपनी धारणाओ के कारण ऊंची जातीयां शराब या चमड़े के व्यवसाय में नहीं आयीं। अन्य कामों में जाति संस्था ने उनके नये आर्थिक अवसरों का लाभ लेने में अड़ंगे डाले। किन्तु उच्चतर जातियों को इसी जाति संस्था के कारण अन्य क्षेत्रों में लाभ भी पहुंचा। पश्चिमी शिक्षा ने उन्हें इन क्षेत्रों में प्रवेश का भरपूर मौका दिया और ब्राह्मण, वैश्य तथा कायस्थ जैसी ऊंची जातियों के लिए जहां शिक्षा-अध्ययन की परंपरा थी उन जातियों की अपेक्षा जहां ऐसी कोई परंपरा नहीं थी, नये अवसरों का फायदा उठाने की बेहतर स्थिति थी। पहले से विशेष स्थिति में रहती आयी इन्हीं जाति के लोग ही लिपिक, शिक्षक, वकील, अधिकारी तथा डाक्टर बने। अंग्रेजी राज्य में मिली व्यावसायिक सुविधाओं का सर्वाधिक लाभ वैश्यों या बनियों ने लिया। जातियों के इन्हीं तीन समूहों से नया बुद्धिजीवी वर्ग आया और राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व का भार भी इन लोगों के कंधों पर ही मुख्य रूप से रहा। ऊंची जाति के लोग न केवल पहले राष्ट्रवादी थे, वरन् वे इस तथ्य के प्रति जागरूक थे कि वे हिन्दू है। यह बात विशेष रूप से ब्राह्मणों पर लागू होती थी उन्हें पारंपरिक श्रेणीक्रम में विशेषाधिकारपूर्ण स्थिति प्राप्त थी। हिन्दू-समाज पर ब्राह्मणों के प्रभुत्व कर कापफी जायजा यूरोपीय मिशन वालों ने लिया था क्योंकि भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए इस प्रभुत्व का खत्म करना जरूरी था।

नीची जातियों को प्राथमिकता देने की जो नीति अंग्रेजों ने अपनायी वह मानवतावादी भावना के अनुकूल थी और इसका यह प्रभाव हुआ कि नीची जातियां अपनी सुरक्षा के लिए अंग्रेजो की ओर देखने लगी। इससे ऊंची तथा नीची जातियों के बीच दरार आ गयी और यह बात प्रायद्वीपीय भारत में विशेष रूप से नजर आयी। ब्राह्मणों तथा अन्य ऊंची जातियों के नेता राष्ट्रीय आंदोलन मे सक्रिय थे। समस्त जनता में राष्ट्रीय भावना के प्रसार के श्रेय मुख्य रूप से महात्मा गांधी को है।

ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को अस्वीकार करने के प्रयत्न भारतीय इतिहास में सदैव किये गये है। पर इस शताब्दी का अब्राह्मण आंदोलन विगत आंदोलनों से न केवल विस्तार और प्रभाव बल्कि सैद्धांतिक दृष्टि से भी भिन्न है। उदाहरण के लिए 1920 से 1929 के बीच मद्राह में अब्राह्मण आंदोलन के नेताओं ने जो भाषण दिये उनसे उन पर हुए पश्चिमी यूरोप के उदार तथा सुधारवादी विचारों का प्रभाव पता लगता है। अब्राह्मण नेताओं ने इस बात पर जोर दिया कि वे ब्राह्मणों के बराबर ही श्रेष्ठ है और वे चाहते है कि अंग्रेज शासक कुछ समय के लिए उनके साथ प्राथमिक व्यवहार करें जिससे यह सर्वमान्य तथ्य बन जाये।

अंग्रेजी राज्य तथा पश्चिमी उदार सुधारवाद के नये संदर्भ में प्रायद्वीपीय भारत में जाति की चुनौती के प्रति हिन्दू-समाज के पददलित अंग का उत्तर था, अब्राह्मण आंदोलन। इस आंदोलन के संस्थापकों में से ऐ थे पूना के ज्योतिराव फूले, जाति के माली, जिन्होंने 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य बिना जात-पांत पर विचार किये मानव मात्र की महत्ता का प्रतिपादन करना था। कई दृष्टियों से फूले द्वारा किये गये सुधार बाद में मद्रास में हुये अब्राह्मण आंदोलन की अपेक्षाओं को पूर्ण करते । उन्होंने अब्राह्मणों से आग्रह किया कि वे अपने कर्मकांडों के संपादन के लिये ब्राह्मणों को नहीं बुलाये। अब्राह्मणों में शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता अनुभव कर 1848 में उन्होंने अब्राह्मण लड़के-लड़कियों के लिए एक शाला खोली। 1851 में उन्होंने पूना में अछूतों के लिए शाला खोली। सेवाओं तथा स्थानीय संस्थाओं में सभी जाति के लोगों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व के लिये भी उन्होंने मांग की।

फूले ने 19 वीं सदी के दूसरे तथा तीसरे चतुर्थांशों में (1825-1875) जिन उपायों का अनुमोदन किया वे ही इस शताब्दी के प्रथमार्द्ध में बंबई तथा मद्रस के अब्राह्मण-दलों के कार्यक्रम के प्रमुख मुद्दे बने। प्रो0 घुर्ये का मत है कि सेवाओं तथा स्थानीय संस्थाओं के अब्राह्मणों को विशेष प्रतिनिधित्व दिये जाने की फूले की मांग पर 19 वीं सदी के अंतिम दशक तक किसी ने ध्यान नहीं दिया जब तक कोल्हापुर के महाराज श्री साहु छत्पति ने अब्राह्मणों का समर्थन नहीं किया। यह उनके ही प्रयत्नों का फल है

कि माग्टेयु-चेम्फ्रोर्ड सुधारों के अंतर्गत सम्मिलित चुनाव क्षेत्रों में अब्राह्मणों के विशेष प्रतिनिधित्व की मांग स्वीकार की गयी। इन सुधारों ने बंबई की जनता को तीन श्रेणियों में बांट दिया-पहली श्रेणी में ब्राह्मण तथा अन्य समवर्गी जातियां थी दूसरी श्रेणी में मध्यमवर्गीय जातियां, माराठा तथा अन्य और तीसरी श्रेणी में पिछड़ी जातियां थी जिनमें अस्पृश्य शामिल थे। सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए भी इस सिद्धांत का प्रयोग किया गया। प्रो. घुर्ये ने बंबई शासन के वित्त विभाग के 17 सितंबर 1923 के एक संकल्प को उद्धृत किया है जिसके द्वारा निम्न सेवाओं में ब्राह्मणों तथा समवर्गी जातियों की भरती पर पाबंदी लगा दी गयी-जब कि कुल पदों के एक निश्चित अनुपात में मध्यवर्गीय तथा पिछड़ी जातियों के लोग भरती न कर लिए जाये। कुल पदों का एक निश्चित अनुपात अब्राह्मणों के लिए सुरक्षित करने की इस नीति का अन्य प्रदेश की सरकारों ने भी अनुकरण किया। इस नीति का तार्किक परिणाम मद्रास में 1924 में ही दिखाई दिया। ''भारतीय समाज सैकड़ों छोटे समुदायों में बंटा हुआ है। ये समुदाय इस अवसर का जो उन्हें सुविधा से दिया गया था, लाभ उठाने में पीछे नहीं रहे और इन्होंने विधान सभाओं, स्थानीय संस्थाओ, जन सेवाओं तथा यहां तक कि शैक्षणिक संस्थानों में विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए हल्ला मचाना शुरू कर दिया। शासन में भी अब्राह्मण तत्व कापफी प्रभावशाली था। शासन ने सत्ता जैसी सर्वोतम वस्तु के लिए निरंतर बढ़ती हुई मांग को पूरी करने की चेष्टा की, किंतु स्वाभाविक रूप से ही उसे सफलता नहीं मिली। इसने ईर्ष्या तथा शत्रुता पैदा कर दी जिससे अब दल (अब्राह्मण दल) पर भी घातक प्रभाव पड़ा।'' इसी समय मद्रास अब्राह्मण दल की बैठक की स्वागत समिति के अध्यक्ष ने एक जोरदार अपील की कि 'अभी तक जो साम्प्रदायिक नीति का पालन किया जा रहा है उसे छोड़ा जाय और इस दल को एक संगठन में परिवर्तित किया जाय जो सांविधानिक आधार पर सुधार का प्रयत्न करने वाली शक्तियों का प्रतिनिधित्व करे और जिसमें जाति, धर्म या रंग के भेदभाव के बिना सबको मुक्त रूप से प्रवेश मिले। इसके 12 वर्ष बाद 1936-37 में हुए चुनावों में अब्राह्मण दल की कांग्रेस के हाथों निर्णायक पराजय हुई। यह पराजय बंबई तथा मद्रास दोनों ही जगह हुई। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि अब्राह्मण आंदोलन समाप्त हो गया। अधिक उदारवादी अब्राह्मण कांग्रेस में शामिल हो गये और उन्होंने शीघ्र ही कांग्रेस में सत्ता जमा ली। मद्रास में श्री ई. व्ही. रामस्वामी नैकर के नेतृत्व में उग्रवादी अब्राह्मण द्रविड़ कड्गम में शामिल हो गये। द्रविड़ कड्गम एक युयुत्सु, निरीश्वरवादी, आर्य-विरोधी, उत्तर-भारतीय -विरोधी, हिन्दी विरोधी तथा ब्राह्मण विरोधी आंदोलन था। द्रविड़ मुनेत्र कड्गम की ही एक उपशाखा है जो द्रविड़ कड्गम की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील होने का दावा करती है। इसमें ब्राह्मण सदस्य भी भरती होते है। इसकी भी नीति राष्ट्रीयकरण की समर्थक तथा भूस्वामी विरोधी है।

प्रायद्वीप अब्राह्मण आंदोलन की एक विशिष्टता अब बेमतलब हो गयी है। ब्राह्मणों के प्रति यदि घृणा नहीं आते विरक्ति का भाव उक्त आंदोलन की ऐक्यकारी विशिष्टता थी। प्रथम विश्वयुद्ध के शुरू होने तक प्रायद्वीपीय भारत में केरल को छोड़कर प्रशासन तथा सरल व्यवसायों में ब्राह्मणों का अधिपत्य था। यह आरोप लगाया जाता है कि ब्राह्मण-अधिपत्य के दौरान ब्राह्मणों के साथ पक्षपात तथा अब्राह्मणों के प्रति भेदभाव बरतने की भावना बहुत ज्यादा फैली हुई थी। और जब अब्राह्मणों का वर्चस्व बड़ा और वे प्रभावशाली हुए तब उन्होंने ऐसा लगता है अपने अधीन कार्य करने वाले ब्राह्मणों को तंग किया। प्रो. घुर्ये ने बंबई शासन द्वारा इंडियन स्टेच्यूटरी कमीशन को 1928 में भेजे गये ज्ञापन को उद्धृत किया है जिससे पता चलता है कि उन जिला स्कूल परिषदो में जहां अब्राह्मणों का बहुमत था ब्राह्मणों की क्षमता पर बिना विचार किए उन्हें निकालने के प्रयत्न किये गये। महात्मा गांधी की हत्या के बाद कोल्हापुर तथा अन्य स्थानों में हुए दंगों में अब्राह्मणवाद ने हिंसक रूप धारण कर लिया। ब्राह्मण विरोधी प्रदर्शन, ब्राह्मणों के मकान, मुद्रणालयों, कारखानों तथा मकानों को लूटने तथा जलाने की घटनाएं बड़े पैमाने पर हुई। महात्मा गांधी की हत्या के पहले कुछ सप्ताहों तक ब्राह्मणों द्वार संचालित तथा सम्पादित मराठी समाचार पत्रें में गांधीजी की कापफी आलोचना की गयी थी। 20 वीं शताब्दी के तीसरे तथा चौथे दशक में बंबई में अब्राह्मण आंदोलनों के नेताओं में एक श्री ए0 बी0 लट्ठे ने इन दंगों पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा है- 'तीस वर्ष पूर्व अब्राह्मण आंदोलन का एक विनम्र सहयोगी होने के नामे मैं अभी भी सोचता हूं कि यह आंदोलन आवश्यक रूप से न्यायपूर्ण था किन्तु बाद में वह अनेक अब्राह्मण समुदायों की नग्न साम्प्रदायिकता के स्तर तक गिर गया और इसी कारण से अंत में वह आंदोलन टूट गया । कुछ थोड़े से ब्राह्मणों के पापों का दण्ड प्रतिनिधिरूप में सारे ब्राह्मणों को देना मूर्खता है और एक समुदाय की दूसरे के प्रति घृणा प्रजातंत्र के लिए आत्मघातक है। जातीय-अल्पतंत्र के दिन बीत चुके है और उसे न तो पुनर्जीवित किया जा सकता है और न ही उसे पुर्नजीवित करना चाहिए। इस राज्य में जो लोग संकीर्ण साम्प्रदायिक गर्व को बढ़ावा देते है वे इस राज्य तथा जनता के सबसे बड़े शत्रु है।

वस्तुतः जातिवाद की शक्ति तथा कार्यकलाप उसी दर से बढ़े जिस अनुपात से शासन से जनता को धीरे-धीरे बढ़ते हुए राजनीतिक अधिकार मिलते गये। अधिकारों का हस्तांतरण अंग्रेजों के काल में शुरू हुआ और यह हस्तांतरण भारतीय गणतंत्र के संविधान में पूरा हो गया जिसके अंतर्गत प्रत्येक पांच वर्ष में चुनावों में मत देने का अधिकार प्रत्येक वयस्क को प्राप्त हुआ ।

दक्षिण भारत में अब्राह्मण आंदोलन एक शताब्दी से भी अधिक पुराना है। मद्रास में शिल्पी जातियों ने राजस्व-मण्डल के समक्ष प्रतिवेदन प्रस्तुत किया कि सार्वजनिक कार्यालयों में सभी व्यक्ति बिना भेदभाव के नियुक्ति किये जाने चाहिए और इस संबंध में ब्राह्मणों का एकाधिकार समाप्त हो। यह आंदोलन धीरे-धीरे शक्तिशाली हुआ। प्रो. घुर्ये के मतानुसार फूले ने जब अपने विचार सामने रखे तब अनके वर्षो तक अब्राह्मणों ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। मगर अचानक भविष्य में शासन के स्वरूप के प्रश्न पर जनता तथा भारत शासन से विचार करने के लिए 1916 में माण्टेग्यू-चेम्स्फोर्ड सुधार प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में होने के पहले नहीं घाषित किये गये। दक्षिण भारत के अब्राह्मण नेताओं ने यह महसूस किया कि अपने देशवासियों को सत्ता मिलने से ब्राह्मण-तानाशाही आ सकती है। माण्टेग्यू-चेम्स्फोर्ड सुधार की घोषणा होने के पूर्व कोल्हापुर के महाराजा ने यह दलील दी कि यदी गृह-शासन को अल्पतंत्र में परिवर्तित होने से रोकना है तो कम से कम 10 वर्षो के लिए 'साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व' की व्यवस्था की जानी चाहिए। मद्रास के अब्राह्मण दल के मुख-पत्र 'जस्टिस' के प्रकाशन के दस वर्ष पूरे होने के अवसर पर आयोजित समारोह में पनागल के राजा ने घोषित किया कि प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर अब्राह्मण नेता यह महसूस करते है कि अंग्रेज भारतवासियों को कुछ राजनीतिक अधिकार देंगे। 'इन पहले के नेताओं ने यह महसूस किया था कि कोई भी राजनीतिक अधिकार देने के पूर्व सारी जनता या उनमें से अधिकांश को उस किसी एक समुदाय के विरूद्ध जोर देने की स्थिति में अवश्य होना चाहिये जो अधिकार को हथिया लेने की कोशिश करेगा।' 'जस्टिस' समाचार पत्र का प्रकाशन 26 फरवरी 1917 को आरंभ किया गया था जिसका उद्देश्य अब्राह्मणों के हितों का सम्वर्द्धन करना था। इसके बाद तीन अन्य समाचार पत्र-तामिल में दो कुदिआरासु और द्रविडार तथा तेलगू में एक समदर्शिनी भी इसी उद्देश्य से शुरू किये गये। अब्राह्मण दल के नेता शासन के साथ मिल गये और उन्होंने प्रशासन के पदों तथा स्थानीय संस्थाओं और विधान सभाओं में स्थानों के कुछ प्रतिशत अब्राह्मणों के लिए सुरक्षित कराने के लिए प्रयत्न किये। स्थान सुरक्षित करने का सिद्धांत शैक्षणिक संस्थानों में भरती पर भी लागू किया गया।

कुमारी मौरीन पैटरसन ने एक गम्भीर लेख 'कास्ट एण्ड पालिटिक्स इन महाराष्ट्र' में विदर्भ तथा मराठवाड़ा छोड़कर महाराष्ट्र की राजनीति में जातीय शक्तियों के प्रभाव का विश्लेषण किया है। कुमारी पैटरसन ने महाराष्ट्र की राजनीति में तीन प्रमुख जातियों-ब्राह्मणों, मराठा और महार की भूमिका की चर्चा की है। महाराष्ट्र में ब्राह्मणों का पाश्चात्यकरण सबसे पहले हुआ। इसके फलस्वरूप नयी व्यवस्था में पदों पर उनका लगभग एकाधिकार हो गया। शुरू के राजनीतिक नेताओं में से अधिकांश कोंकण ब्राह्मण थे। इस क्षेत्र में ब्राह्मणों की आबादी केवल चार प्रतिशत है जबकि मराठे 25 प्रतिशत है, कुनबी जो चाहते है कि उन्हें धीरे-धीरे मराठा मान लिया जाये, 8 प्रतिशत और महार 10 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्रों में मराठे भूस्वामी है और उन्होंने अपने जाति के नेता-कोल्हापुर के महाराजा के अग्रिम प्रयासों के बावजूद अभी तक पढ़ने-लिखने की ओर ध्यान नहीं दिया है। महारों में 11 प्रतिशत लोग पढ़े-लिखे है जबकि 7 प्रतिशत मराठे ही साक्षर है। परंपरानुगत भूमि से महारो का संबंध इतना मजबूत नहीं जितना मराठों का है। महार लोग 'वंशपरंपरा से गांव के चौकीदार होते थे जिनके पास जमीन बिल्कुल ही नहीं या थोड़ी तादाद में होती थी। मराठों के समान ही महारों ने प्रथम विश्वयुद्ध के समय सैन्य सेवा में प्रवेश किया। और अब बंबई में बड़ी संख्या में महार लोग सूती मिलों में श्रमिकों के रूप में काम करते पाये जाते है।

कुमारी पैटरसन कहती है कि तीसरे दशक में मराठो ने कोल्हापुर, सतारा तथा अन्य नगरों में ब्राह्मणों को पुरोहित, छोटे शासकीय अधिकारी तथा शिक्षक के पदों से हटाने के लिए संयुक्त प्रयत्न किये।

मद्रास की भांति महाराष्ट्र में 1936-37 के चुनावों में कांग्रेस को उल्लेखनीय सफलता मिली और अब्राह्मण दल के उम्मीदवार बुरी तरह परजित हुए। कु. पैटरसन के मतानुसार कांग्रेस मराठा तथा अन्य अब्राह्मणों को अपने दल की ओर आकर्षित कर सकी क्योंकि कांग्रेस के नेता महात्मा गांधी ब्राह्मण नहीं थे। कु0 पैटरसन की राय में, 'जातिवाद ने लगातार, अनेक प्रकार से, महाराष्ट्र में कांग्रेस संगठन पर महत्वपूर्ण और कभी सूक्ष्म भी प्रभाव डाला'। अप्रैल 1948 में महाराष्ट्र कांग्रेस के एक बड़े हिस्से ने पीजेण्ट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी बनाने के लिए अपना दल छोड़ दिया। नये दल के नेता श्री के. जेधे और श्री एस. एस. मोरे थे। कु. पैटरसन का मत है कि 'इस दल के निर्माण को कांग्रेस में उन लोगों के प्रभुत्व, जिन्हें प्रत्यक्ष रूप में 'पूंजीपति' माना गया, के खिलाफ विरोध

का प्रयत्न करना तथा जिले महाराष्ट्र कांग्रेस संगठन के नेतृत्व पर ब्राह्मणों का लगातार नियंत्रण होना कहा गया उसे छोड़ देना-दोनों ही माना जा सकता है''। 1924 में पीजेण्टस एण्ड वर्कर्स पार्टी दो दलों में विभक्त हो गयी जिनमें से एक का नेतृत्व श्री जेधे कर रहे थे और दूसरे का श्री मोरे। श्री जेधे अगस्त 1954 में फिर से कांग्रेस में शामिल हो गये जब कि कठोर वामपंथियों का दल पी. डबल्यु. पी. में श्री मोरे के साथ रह गया।

सारे मराठी भाषी क्षेत्रों को एक राज्य में एकीकृत करने के पक्ष में हाल ही में हुए आंदोलन से लगता है अधिकांश महाराष्ट्रियनों में, चाहे वे किसी भी क्षेत्र के क्यों न हो,उ एकता हो गयी है। किन्तु उनमें एक उल्लेखनीय अपवाद भी था-ये थे अनुसूचित जातियों के नेता डॉ. बी. आर अम्बेडकर। उन्होंने कहा कि 'एकीकृत विशाल महाराष्ट्र में मराठों का स्पष्ट बहुमत होने से वे छो जायेंगे।' उन्होंने आगे कहा कि इतिहास इस बात का प्रमाण है कि मराठे अल्पसंख्यकों विशेषकर अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के साथ न्याय नहीं करेंगे। डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि महाराष्ट्र को मराठी भाषी तीन क्षेत्रों पूर्व पश्चिम और मध्य में बांट दिया जाये जिससे अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों पर मराठे अधिकार जमाने का अवसर न पा सकें।

श्री सेलिग एस. हेरीसन ने 'कास्ट एण्ड दि आंध्र कम्युनिस्ट' नामक अपने हाल ही के एक निबंध में आंध्र प्रदेश की राजनीति में कार्यशील शक्तियों का प्रभावकारी विश्लेषण किया है। मैं श्री हेरीसन के निबंध से कापफी उद्धरण बिना किसी क्षमा याचना के दे रहा हुं क्योंकि यह निबंध दक्षिण भारत की राजनीति में जातिवाद द्वारा निर्णायक भूमिका अदा करने के निश्चित प्रमाण प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष

भारत (विशेषकर दक्षिण भारत) की परंपरागत सामाजिक संरचना में व्याप्त मान्यताओं के संदर्भ में आधुनिक वैचारिकी के हसतक्षेप ने भारतीय समाज में जातीय चेतना को नए सिरे से जाग्रत किया। भारत के जिस हिस्से में सामाजिक जटिलता जितनी अधिक थी, उस हिस्से में जातीय चेतना के जागरण की प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीक्षण रही। जातीय राजनीति का उदय, इसी प्रतिक्रिया का परिणाम थी।

संदर्भ

1. श्रीनिवास, एम. एन. (इण्डियाज विलेजेज बम्बई) 1960, पृ० सं० 86
2. धुर्ये, जी. एस. (कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया) बंबई 1952, पृ० सं० 48
3. बेली, डॉ. एफ. जी. (कास्ट एण्ड दी इकॉनोमिक फ्रांटियर), 1957, पृ० सं0 28
4. मेयर, डॉ. ए. सी. (वेस्टर्न जनरल एण्ड एंथ्रोपोलोजी), 1952, पृ० सं० 55
5. धुर्ये, जी. एस. (कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया बंबई) 1952, पृ० सं० 55
6. दि एडमिन्सिट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ द लीग ऑफ नन ब्राह्मण यूथ, मद्रास, पृ० सं० 19, 26, 27

प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं शैक्षिक प्रकल्प

डॉ० संतोष कुमार

पी-एच. डी. (इतिहास विभाग), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

प्राचीन भारत में शिक्षण संस्थाएं कभी भी सरकार के हाथों में नहीं थी। लोग अपनी क्षमता और उत्साह से शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करते और उन्हें चलाते थे। जो लोग शिक्षण संस्थाओं को चलाते थे वे आजीवन इसी व्रत में लगे रहते थे। शिक्षक लोग अपने घरों पर ही पाठशाला खोलते थे, जहां पर दूर-दूर से विद्यार्थी एकत्र होते थे। यह बात शिक्षक की प्रसिद्धि पर निर्भर करती थी कि उसके यहां कितने विद्यार्थी एकत्र होते थे। किसी-किसी पाठशाला में एक से अधिक शिक्षक अध्यापन कार्य करते थे। अपने शिक्षण कार्य के लिए शिक्षक विद्याथियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लेते थे। अध्ययन समाप्त हो जाने के बाद विद्यार्थी अपने मन से यथाशक्ति जो कुछ अपने गुरू को देते थे वे स्वीकार कर लेते थे।

विद्यार्थी गुरूगेह में गुरू की सेवा करता था। उनकी कृषि, पशुपालन तथा यदि कोई अन्य कार्य हो तो उसमें गुरू की आवश्यक सहायता पहुंचाता था। अपनी जीविका पालने के लिए वह भिक्षाटन करता था। गृहस्थ घर की स्त्रियां विद्याथियों को भिक्षा दे देती थी, क्योंकि उनके मन में यह भावना काम करती थी कि उनके लड़के भी कहीं पर इसी तरह भिक्षा मांग कर पेट भरते होंगे। विद्यार्थी जो कुछ भी भिक्षा मांग कर लाते, उसी में आचार्य तथा उनके परविार का काम चलता था। गुरूओं का जीवन व्रत था जो सादा और संतोषपूर्ण था।

आपस्तम्ब धर्म-सूत्र में कहा गया है कि आचार्य वही हो सकता है जो विद्वान हो, जिसक कुल में विद्या कई पुश्तों से आ रही हो तथा जो धर्म का पालन करता हो। शिक्षक अपना सारा ज्ञान विद्यार्थी को दे देते थे।

निर्धनता किसी मेधावी छात्र के जीवन में बाधक नहीं बन सकती थी। आचार्य किसी भी कुशाग्रबुद्धि विद्यार्थी को पढ़ाते थे। सुदामा से गरीब और कृष्ण से धनी भी समान जीवन व्यतीत करते हुए विद्या अध्ययन करते थे। उन सबों की वेशभूषा समान होती थी और सबों को समान रूप से नियमों का परिपालन करना पड़ता था। विद्यार्थियों की वेषभूषा तथा मंत्रें के पठन-पाठन में जो कुछ अंतर आया वह प्रारंभिक काल में नहीं था।

सभी आर्यो के लिये प्रारंभिक शिक्षा प्रायः आवश्यक थी, क्योकि वे उपनयन संस्कार सम्पादित करते थे। शिक्षण संस्थानों में समय-समय पर अनेक प्रकार के संस्कार होते थे ।

इस युग में पठन-पाठन का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया था। वेदों के सहित उनके छः अंगों की पढ़ाई होती थी। वेदांग छः माने गये है- शिक्षा, कला, व्याकरण, निरूक्त, छन्द तथा ज्योतिष। इनके अतिरिक्त उपनिषदों का अध्ययन होता था।

प्रस्तुत शोध आालेख में प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं शैक्षिक प्रकल्पों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

KEYWORD:- मंत्र, वेदांग, गुरूकुल, गृहस्थ, ब्रह्मचर्य।

परिचर्चा

प्राचीन भारतीय शिक्षा के संदर्भ के लिए सामान्यतः जो शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं, उनमें 'ज्ञान', विद्या' और 'शिक्षा' प्रमुख हैं। अरबी-फारसी में शायद 'इल्म', 'तालीम' और 'हुनर' शब्दों का प्रयोग किया गया है। इन शब्दों के अभिप्राय, संदर्भ और निहितार्थो

में सूचना और कौशल, सत्य और न्याय, विज्ञान और नैतिकता, धर्म और चरित्र जैसी अवधारणाएं समाहित हैं। कुल मिलाकर कला और संस्कृति का एक व्यापक फलक इस तरह शिक्षा की परिधि में आ जाता है। शिक्षा की आधुनिक अवधारणा इस तुलना में अपेक्षाकृत सीमित और कई मामलों में तो संकीर्ण प्रतीत होती है।

प्राचीन काल में शिक्षा का प्रसार अत्यन्त सीमित रहा, यह सर्वविदित तथ्य है। फिर भी शिक्षा की प्राचीन भारतीय अवधारणा आश्चर्यजनक रूप से समाज के बीच आज भी प्रचलित है। यह भी उल्लेखनीय है कि समाज शिक्षा के 'आधुनिक रूप' को संकीर्ण मानता है और संशय की दृष्टि से देखता है। यहां समाज से हमारा अभिप्राय व्यापक जन-समाज से है, जिसमें बहुसंख्य निरक्षर या कम पढ़े-लिखे तबके भी शामिल हैं जबकि आधुनिक शिक्षित वर्ग शिक्षा के आधुनिक अर्थ को वरीयता देता है और प्राचीन अवधारणा को व्यावहारिक नहीं पाता। यह अलग बात है कि यही शिक्षित वर्ग आधुनिक शिक्षा के सैद्धांतिक और व्यवहारिक पक्ष में द्वैत देखता है और आधे-अधूरे रूप में ही शिक्षा को आत्मसात करता है, जबकि जनसाधारण 'शिक्षितों' की अहमन्यता और एकांगी आचरण से अक्सर संतुष्ट रहता है।

इस विचार के पीछे कुछ बातें रही हैं, जिन्हें इस प्रकार कहा जा सकता है-ज्ञान को भारतीय जनसाधारण ऊंचा स्थान देता रहा है। इसके लिए सम्प्रदायों के बीच के संघर्ष देखे जा सकते हैं, जहां कोई सम्प्रदाय विशेष अपने धर्म में ज्ञान का उच्च स्तर साबित करने का प्रयास करता है। यहां धर्म की तरह ज्ञान को भी मुक्ति के साधन के रूप में देखा गया है। हालांकि ज्ञान की कई सारणियां अंतत: पुन: धर्म के रहस्यलोक में खो जाती रही हैं। व्यक्ति का चरित्र और उसका आचरण ही उसके शिक्षित होने का सबसे बड़ा साक्ष्य माना गया है। इस संदर्भ में विभाजित व्यक्तित्व सदैव गरिमा रहित और संशय से देखे गये हैं। व्यक्ति के आचरण का मापदंड सत्य और न्याय के प्रति उसका व्यवहार और रवैया रहा है।

सूचना की तुलना में अनुभव को वरीयता दी गई है। सूचना अपनी प्रामाणिकता अनुभव अथवा व्यवहार से पाती रही है। सूचना और अनुभव का संगत संयोग 'विद्या' का रूप लेता रहा है।

विज्ञान और तकनीक की संगति सामाजिक सापेक्षता और नैतिक पहलुओं से आंकी जाती रही है। बेशक इसके पीछे पाप और पुण्य की अवधारणा भी काम करती रही है।

लोक-ज्ञान शिक्षा के पृथक नहीं माना गया। इसकी व्यावहारिकता इसे 'विद्या' (कौशलब) और तार्किकता) 'ज्ञान' का दर्जा दिलाता है।

संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों को भी महत्वपूर्ण दर्जा प्राप्त रहा है। शिक्षा और संस्कृति के संबंध बहुत प्रगाढ़ रहे हैं। ऐसा लगता है कि शिक्षा का हर पक्ष 'संस्कृति' में मान्य था, लेकिन संस्कृति का हर पक्ष 'शिक्षा' है-यह जरूरी नहीं था। शिक्षा को सदैव सर्वोच्च, गरिमापूर्ण और गंभीर हैसियत मिलती रही, उसे कभी भी द्वितीयक या मनोरंजक वस्तु नहीं माना गया।

शिक्षा की प्रकृति इतनी भिन्न है कि इस उपक्रम से संबद्ध पेशेवर लोग अर्थात् शिक्षकों से भी भिन्न अपेक्षाएं रखी गई हैं। 'गुरु विषयक धारणाएं इसका प्रमाण है।

ऐसी ही अपेक्षाएं लगभग ज्ञान के भिन्न अनुशासनों में सक्रिय विशेषज्ञों, जैसे वैद्य, पशु चिकित्सक, मौसम वैज्ञानिक, औषधि, जादूगर के बारे में जानकारी रखने वालों से रही है, हालांकि उन्हें समाज में उतनी मानद हैसियत प्राप्त नहीं रही है।

शिक्षा के प्रवाहमान और जीवित स्वरूप को एक प्रक्रिया के रूप में मान्यता ज्यादा रही है। 'आंखिन देखी' अनुभव आधारित और 'कागद लेखी' : लिखित ही प्रमाण, विधाओं के मध्य द्वंद्व और सहयोजन की प्रक्रिया भी चलती रही है। शिक्षा में अंतर्निहित शक्ति और संभावनाओं को देखते इस पर एकाधिकार करने और वर्चस्व स्थापना में इसे इस्तेमाल करने की प्रवृत्तियों का जनसाधारण ने सदैव प्रतिकार किया है। शिक्षा से स्वतंत्रता और मुक्ति की अवधारणाएं भी गहरे संबद्ध रही है।

अत: हम कह सकते हैं कि शिक्षा के किसी भी तर्कसंगत सिद्धान्त में व्यक्ति को मानसिक शक्तियों को समाज के प्रति उसके व्यवहार से पृथक् नहीं किया जाना चाहिए। दोनों की एक-दूसरे पर गम्भीर प्रतिक्रिया होती है। अतएव शिक्षा का उद्देश्य - व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार का निर्माण, उसकी तर्क-शक्ति एवं विवेक पर आधारित करना होना चाहिए, न कि केवल सामाजिक स्वीकृति अथवा अस्वीकृति पर। किसी भी प्रकार के बाह्य तत्वों से प्रभावित हुए बिना मानव के मस्तिष्क को विकसित करना–शिक्षा का प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिए। जो शिक्षा-व्यवस्था मानव के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करती है, वह उसे निश्चय रूप से तर्कपूर्ण विवेचन की शक्ति प्रदान करती है। ऐसी शिक्षा-व्यवस्था मस्तिष्क में उन रूढ़िगत तथा अनुदार विचारों का प्रादुर्भाव नहीं होने देती है, जो सामाजिक, राजनीतिक तथा चारित्रिक क्षेत्रों में नवीन धारणाओं को अंगीकार करने में संकोच करते हैं।

इसके अतिरिक्त, मानव के व्यक्तित्व के विकास से समाज को वास्तविक उन्नति करने का अवसर उपलब्ध होगा। ऐसी परिस्थिति में समाज पूर्व-निश्चित धारणाओं का अंधानुकरण न करके, उनसे सम्बन्ध-विच्छेद करने का सतत् प्रयास करेगा और इस प्रकार तर्क पर आधारित मार्ग का अनुसरण करके प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा। इस प्रकार, शिक्षा का यह पहलू–मानव के व्यक्तित्व का विकास-उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि समाज से अनुकूलन करने का अन्य पहलू। ''वस्तुतः वास्तविक शिक्षा का महत्त्व, मानव के व्यक्तित्व को विकसित करने और इसके साथ ही व्यक्ति का समाजीकरण करने तथा इस प्रकार उसको समाज की नैतिक तथा भौतिक संरचना के अनुकूल बनाने में है। शिक्षा के उचित आदर्श में इन दोनों उद्देश्यों का समन्वय होना आवश्यक है।''8

वैदिक युग से लेकर आज तक भारत में शिक्षा का मूल तात्पर्य यह रहा है - शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शन करती है क्योंकि शिक्षा का तात्पर्य प्रकाश से है, अतः वैदिक काल में केवल पुस्तकीय ज्ञान को ही शिक्षा का पर्यायवाची नहीं माना गया। वैदिकयुगीन शिक्षा का तात्पर्य - अन्तर्ज्योति तथा शक्ति से था, जिससे मानव की शारीरिक, मानसिक, बौ)िक तथा आत्मिक शक्तियों का संतुलित विकास हो सकता था।

वैदिक कालीन शिक्षा के उद्देश्य तथा आदर्शों में ईश्वर-भक्ति तथा धर्मिकता की भावना का विकास, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन, सामाजिक कुशलता की उन्नति, तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार करना प्रमुख था।

इस काल में शिक्षा की व्यवस्था के अंतर्गत पाठशाला के समान संस्था मौजूद थी। गुरु-गृह में रहकर अध्ययन करना पड़ता था। संघ, चरण, परिषद्, मठ, गुरुकुल व आश्रम जैसी संस्थाएँ थी। चारों वर्णो के लिए शिक्षा के विषय भिन्न-भिन्न थे। ब्राह्मणों को धर्म-कर्म की, क्षत्रियों को युद्ध विद्या व राजनीति की, वैश्यों को वाणिज्य व कृषि- विज्ञान की तथा शूद्रों को हस्तकलाओं की शिक्षा दी जाती थी।

वैदिक कालीन शिक्षा के तत्त्व एवं विशेषताएँ निम्नलिखित थी - उपनयन संस्कार के उपरान्त विद्या का अध्ययन आरम्भ होता था। अध्ययन प्रारम्भ करने की आयु के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि ब्राह्मण को अपने पाँचवें वर्ष में, क्षत्रिय को छठे वर्ष में और वैश्य को आठवें वर्ष में विद्या का अध्ययन प्रारम्भ कर देना चाहिए। अध्ययन-काल साधारणतः 10 वर्ष का था। शिक्षा-सत्र श्रावण मास की पूर्णिया को प्रारम्भ होता था और पौष मास की पूर्णिमा को समाप्त होता था। शिक्षण का कार्य सम्भवतः प्रातःकाल से मध्यान् तक और फिर कुछ विश्राम के उपरान्त सायंकाल तक चलता था। विद्यालय-भवनों के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है। गुरुकुल प्रकृति के समीप, परन्तु किसी नगर या ग्राम के समीप थे। छात्रें को तामसिक भोजन करने का निशेध था। उनकी वेशभूषा निश्चित थी। उन्हें संध्या के समय हवन करना पड़ता था। वे नृत्य तथा संगीत का आनन्द नहीं ले सकते थे। उन्हें सादगीपूर्ण जीवन जीने की शिक्षा दी जाती थी। छात्र गुरु की सेवा करते थे तथा अध्यापक भी छात्रें के प्रति पुत्रवत व्यवहार करते थे, विशेष परिस्थितियों में छात्रें को शारीरिक दण्ड दिया जाता था। शिक्षा निःशुल्क थी तथा यह बाह्य नियंत्रण से मुक्त थी। पाठ्यक्रम में वेद, उपनिषद्, आलोचना, देव-विद्या, ज्योतिष, औषध-विज्ञान आदि विषय थे, शिक्षण- विधि मौखिक थी तथा इसकी पद्धति वैयक्तिक थी। कक्षा में नाटकीय पद्धति का प्रचलन था। जब छात्र शिक्षा प्राप्त करके घर लौटते थे, तब आचार्य उनको समावर्त्तन-उपदेश देते थे। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था, साथ में व्यावसायिक शिक्षा की भी उपेक्षा नहीं की गई।

वैदिक काल के बाद बौद्ध काल में शिक्षा व्यवस्थ की पुरानी व्यवस्था चलती रही परन्तु उसमें कुछ परिवर्तन भी दृष्टिगत होते हैं। इस काल में बौद्ध-शिक्षा के प्रमुख केन्द्र 'संघ' थे। केवल संघ के श्रमणों को ही शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध-संघ की पद्धति ही बौद्ध-शिक्षा-पद्धति थी। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक शिक्षा की व्यवस्था मौजूद थी।

सार्वजनिक या प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र 'बौद्ध-मठ' थे। प्रारम्भ में यह शिक्षा केवल धार्मिक थी, पर बाद में सांसारिक शिक्षा भी दी जाने लगी। प्राथमिक शिक्षा 6 वर्ष की आयु में प्रारम्भ होती थी। शिक्षा का माध्यम 'पाली' भाषा थी ।

उच्च शिक्षा के केन्द्र भी 'बौद्ध-मठ' थे। व्याकरण, धर्म, ज्योतिष, दर्शन, औषधि-विज्ञान आदि किसी में विशेष योग्यता प्राप्त की जाती थी। उच्च शिक्षा के प्रमुख केन्द्र नालंदा, बलभी, विक्रमशिला, जगदल, ओदन्तपुरी, मिथिला और नादिया थे।

इस काल की शिक्षा की विशेषताएँ निम्नलिखित थी-चांडालों के अतिरिक्त सभी जातियों के व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। छात्रें के चुनाव के नौ आधार थे। विद्याध्ययन आरम्भ करने की आयु 8 वर्ष की थी। प्रवेश के समय प्रव्रज्या-संस्कार होता था। 20

वर्ष की आयु में उपसम्पदा-संस्कार सम्पादित होता था। अध्ययन-काल 22 वर्ष का होता था। छात्रों के लिए भिक्षा माँगने, साधारण भोजन करने, कम वस्त्र पहनने, पानी में खेल न करने व अनुशासन में रहने का आदेश था। गुरु और छात्रों के एक-दूसरे के प्रति निश्चित कर्त्तव्य थे, गुरु-शिष्य का सम्बन्ध स्नेहपूर्ण होते थे। पाठ्यक्रम में बौद्ध, हिन्दू व जैन-धर्म, दर्शन, अध्यात्म-विद्या, तर्कशास्त्र, संस्कृत, पाली, औषधि-विज्ञान, प्रशासन आदि विषय थे। शिक्षण-विधि मौखिक थी पर तर्क, वाद-विवाद, विश्लेषण, व्यवस्था व स्पष्टीकरण विधियों का भी प्रयोग किया जाता था। शिक्षा का माध्यम देश की प्रचलित भाषाएँ होती थीं। शिक्षा की पद्धति सामाजिक थी तथा शास्त्रीय विवाद को प्रोत्साहित किया जाता था। सामान्य विद्यालयों का आयोजन था इस काल में स्त्री शिक्षा में अवनति के लक्षण दिखते हैं - स्त्री- शिक्षा का स्थान पुरुष-शिक्षा से निम्न था। विभिन्न उद्योगों व 19 शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी।

इस काल में बौद्ध शिक्षा के साथ ब्राह्मणीय शिक्षा व्यवस्था भी प्रचलित थी अत: इन दोनों बीच समानता एवं असमानता के पहलुओं की पड़ताल आवश्यक है जहाँ तक समानता का प्रश्न है तो - भिक्षा माँगना, विलास की वस्तुओं का निशेध, अहिंसा, वृक्ष के नीचे निवास, शारीरिक पवित्रता, उपवास, प्रवेश-संस्कार, शिक्षा आरम्भ की निश्चित आयु, ब्रह्मचारी व सामनेर की उपाधि, गुरु-शिष्य सम्बन्ध पर बल दोनों व्यवस्था में मौजूद थी।

परन्तु दोनों में कुछ भिन्नताएँ भी मौजूद थी - जहाँ ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति शिक्षा की पारिवारिक प्रणाली पर आधारित थी वहीं बौद्ध-शिक्षा-पद्धति बौद्ध-संघ की प्रणाली पर आधरित थी। ब्राह्मणीय शिक्षा पद्धति में शिक्षा का केन्द्र गुरु-गृह, बौद्ध शिक्षा पद्धति में शिक्षा का केन्द्र-विहार होता था। ब्राह्मणीय शिक्षा पद्धति में धन का अभाव था वहीं बौद्ध प्रणाली में धन की प्रचुरता थी। ब्राह्मणीय प्रणाली में गुरु-शिष्य सम्बन्ध-बौद्ध की अपेक्षा अधिक उत्तम था। ब्राह्मणीय प्रणाली में गृहस्थ आश्रम की आज्ञा थी, वहीं बौद्ध में यह नहीं था। ब्राह्मणीय में व्यक्तिगत शिक्षा-संस्थाए मौजूद थी, बौद्ध में ऐसा नहीं था। ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली में बोलकर भिक्षाटन किया जाता था वही बौद्ध में मौन रूप से भिक्षाटन की आज्ञा थी। ब्राह्मणीय में शिक्षक केवल ब्राह्मण होते थे वहीं बौद्ध में प्रत्येक जाति के शिक्षक होते थे। ब्राह्मणीय में विद्यालय का स्वतंत्र अस्तित्व मौजूद था। जबकि बौद्ध में ऐसा नहीं था, ब्राह्मणीय में व्यावसायिक शिक्षा पर अपेक्षाकृत अधिक बल था जबकि बौद्ध में धार्मिक शिक्षा पर जोर था।

आगे चलकर मुस्लिमों के आगमन के बाद एवं दिल्ली सल्तनत की स्थापनाओं के उपरांत पुरानी शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ एक नई प्रकार की शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ। भारत में लगभग साढ़े पाँच सौ वर्ष मुसलमानों का शासन रहा। इस काल में शिक्षा की एक नवीन प्रणाली प्रस्फुटित हुई, जिसे 'मुस्लिम शिक्षा' की संज्ञा दी जाती है।

संदर्भ

1. Body H. Bode : *Fundamental of Education,* p. 221.
2. H. H. Horne : *The Philosophy of Education,* p. 160-161.
3. John Dewey : *Democracy and Education,* p. 7-11.
4. C. Panunzio : *Major Social Institutions,* p. 242.
5. W. G. Summer : *Folkways,* p. 638.
6. O'Shea : *Social Development and Education,* p. 249.
7. K. N. Venkatarayappa : *Education & Society in India,* p. 23.
8. P. H. Prabhu : *Hindu Social Organisation,* p. 108.

भारत में वैज्ञानिक विकास की ऐतिहासिक परम्परा: एक अध्ययन

डॉ० वेदवती

पी-एच. डी., इतिहास विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

विज्ञान समाज की गहन क्रियाशीलता का प्रतीक होता हैं, जो सामाजिक मूल्यों से संयुक्त होता हैं। अत: विज्ञान का विकास समरूप ना होकर, अनेकानेक रूपों में होता हैं। विज्ञान के विकास की प्रक्रिया किसी समाज के सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति को प्रतिबिंबित करती हैं। अत: विज्ञान अतीत की स्वीकृत मान्यता से अधिक आकस्मिक व सांस्कृतिक सापेक्ष होती हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही स्तरों पर अनुसंधानकर्त्ता के पूर्व ज्ञान, सामूहिक उद्देश्यों की पृष्ठभूमि एवं ठोस स्रोत से प्राप्त सूचनाओं के आलोक में ही किए जाते हैं।

भारत में औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना के पूर्व से ही एक सुव्यवस्थित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की परंपरा रही हैं। यहाँ के विज्ञान पर भारतीय समाज व संस्कृति की विविधता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। भारत में विज्ञान का इतिहास, भारत पर पश्चिमी विज्ञान के प्रक्षेपण का इतिहास नहीं हैं। यहाँ विज्ञान प्रौद्योगिकी एवं आर्यु विज्ञान की दीर्घ परम्परा रही हैं। जो व्यापक ऐतिहासिक प्रभावों एवं विविध सांस्कृतिक क्रिया-कलापों से जुड़ी थी।

ब्रिटिश काल में अपनी प्रभुसत्ता को वैद्य ठहराने के लिए, औपनिवेशिक शासकों द्वारा एक महत्वपूर्ण तर्क का सहारा लिया जाता था कि भारतीय समाज में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का अभाव रहा हैं, अत: उनका वैज्ञानिक विकास पिछड़ी अवस्था में रहा, जिसने सामाजिक व राजनीतिक जड़ता पैदा की। ब्रिटिश सरकार इस प्रकार के तर्क इस कारण गढ़ सकी, क्योंकि भारत में पूर्व का विज्ञान, मिथ्या विज्ञान से इस प्रकार मिश्रित था कि उन्हें एक-दूसरे से अलग करके देखना कठिन था। हालांकि विज्ञान के विकास का प्रयास ब्रिटिश शासन द्वारा आरंभ में नहीं किया गया।

औपनिवेशिक शासकों से भारतीय वैज्ञानिक समुदाय के सांस्कृतिक मुठभेड़ के क्रम में भारतीय विज्ञान को प्रकाश में लाने हेतु कुछ प्रयास किए गए।

भारत का इतिहास हजारों वर्ष पुराना हैं। इस लम्बे इतिहास मे कई मौखिक एवं लिखित परम्पराएँ विकसित होती रही। इसमें देशी व विदेशी तत्वों का मिलन भी होता रहा। इसी विविधता के कारण भारतीय विज्ञान के एकल स्वरूप का निर्धारण कठिन प्रतीत होता हैं।

भारत में जिन परंपराओं को प्राय: हिन्दू परम्परा कहा जाता हैं, उसमें अनुभव जन्य, निरीक्षण आधारित विज्ञान सहित, वैज्ञानिक चिन्तन के कई सूत्र विद्यमान हैं। जो ब्रह्माण्ड विज्ञान, फलित ज्योतिष से संबंधित थे।

वैदिक कालीन भारत में खगोल विज्ञान अधिकांश विषयों में धार्मिक अनुष्ठान से जुड़ा था। यज्ञ व अनुष्ठानों के लिए विषुव व संक्रांतियों का ज्ञान आवश्यक था। वही उत्तरवैदिक काल व आरंभिक मध्य युग में खगोल विज्ञान, त्रिकोणमिति, बीज गणित, कर्मकांड से असंबद्ध होने लगा। 'सूर्य सिद्धांत' गुप्तकालीन अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना थी। जिसके कई अध्याय उपग्रहों की गति और स्थिति, ग्रहणों के स्वरूप, समय निर्धारण, सूर्य एवं चन्द्रमा के उदय एवं अस्त और 'छल्लेदार गोला' जैसे खगोलीय संदर्भो का वर्णन करते हैं। परन्तु इसमें सूरज एवं चन्द्रमा के अशुभ पक्षों का भी उल्लेख मिलता हैं। यही कारण रहा कि भारत में विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं चिकित्सीय परम्पराओं का उल्लेख प्राय: तर्कहीन एवं असंगत प्रयास के रूप में होता हैं। इस तार्किता से 'औपनिवेशिक विज्ञान'

जैसी मान्यताओं का जन्म हुआ, जिसकी यह मान्यता थी कि समुद्रपारीय देशों में 'आधुनिक विज्ञान' के प्रथम प्रवेश तथा राष्ट्रीय विज्ञान और स्वतंत्र वैज्ञानिक परंपरा में इसकी परिणति के बीच का संक्रमण कालीन चरण, औपनिवेशिक विज्ञान था।

19वीं सदी के आरंभिक वर्षों में विज्ञान प्रौद्योगिकी, आर्युविज्ञान को औपनिवेशिक सत्ता द्वारा अपने 'सभ्य बनाने के परम लक्ष्य' की प्राप्ति हेतु प्रभावी उपकरण के रूप में देखा जाने लगा। इन्होंने भारत को पिछड़ा व अंध विश्वास ग्रस्त देश के रूप में देखा तथा इसे सभ्य बनाने का दायित्व अपने ऊपर लिया। 19वीं-20वीं सदी में भारतीय वैज्ञानिक व बुद्धिजीवियों ने 'भारतीय विज्ञान' के एकल स्वरूप निर्धारण का प्रयत्न किया। परम्पराओं को चयनात्मक विधि से समाविष्ट किया। ताकि यह भारत देश की सांस्कृतिक विरासतों व अपेक्षाओं के अनुकूल अपनी पहचान बना सके।

अगर हम भारत में विज्ञान की परम्परा की बात करे तो, वेदों में ही विज्ञान की झलक मिलती हैं। अर्थववेद में 'विज्ञान' को परिभाषित करते हुए, यह बताया गया हैं कि जब हम अनुभवों को सिद्धान्त रूप में सामान्यीकृत कर देते हैं, तो वह विज्ञान कहलाता हैं। वही 'अर्थशास्त्र' में कौटिल्य ने विज्ञान की महत्ता को स्थापित करते हुए, यह बताया हैं कि जो पुरुष विज्ञान से सम्पन्न होता हैं, वह स्वयं को भी जीत सकता हैं। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हैं कि भारत में वैज्ञानिक चिन्तन व विज्ञान की महत्ता स्थापित थी।

किन्तु विज्ञान एवं मिथक इस प्रकार जुड़े थे कि कभी-कभी यह विज्ञान कम और मिथ्या विज्ञान अधिक प्रतीत होता हैं। ऐसा संभवतया इस कारण था कि प्राचीन भारत में विज्ञान के विकास का स्वरूप जन विश्वास के अनुकूल था। तात्कालीन परिस्थितियों में इससे परे जाना संभव भी नहीं था। तात्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर वर्ग विशेष का प्रभाव होता था, जिसे कई प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थी। इस प्रभाव व सुविधाओं को बनाए रखना आवश्यक था। अगर विशुद्ध विज्ञान का प्रयोग होता तो निष्कपटता व वस्तुनिष्ठता ज्ञान का आधार बनती। इसके आधार पर समाज पर वर्चस्व बनाए रखना संभव नहीं हो पाता। मानव समाज में उसकी अपरिकृष्त व आदिम अवस्था से ही वैज्ञानिक, विवेक व उद्यम के अंश रहे हैं। दक्षिण एशियाई समाज, विशेषकर भारत ने एक चिंतन वाली सभ्यता का पोषण किया है। यहाँ की वैज्ञानिक व तकनीकी परम्परा में मुख्यतया संश्लेषण की परम्परा रही हैं। पूर्व आधुनिक समय में इसे इसके खगोल विज्ञान, चिकित्सा और गणित में योगदान के लिए जाना जाता रहा हैं। 'सैयद अल अंदालूसी' लिखित विज्ञान के इतिहास की पहली पुस्तक ''तबकात-अल उमान' में भारत का उल्लेख एक ऐसे देश के रूप में किया गया हैं जहाँ विज्ञान को प्रोत्साहन दिया जाता था।

मगध साम्राज्य की राजधानी राजगृह में बौद्ध कालीन प्रसिद्ध चिकित्सक (जीवक) की चर्चा पाते हैं, जिसके आर्युवेदिक चिकित्सा पद्धति में (विज्ञान) दिखायी देता हैं। आर्युविज्ञान 'सर्वतो भावेन' धर्म निरपेक्ष प्राकृतिक विज्ञान की एक शाखा हैं। 600 ई. पू. से ही आर्युविज्ञान फला फुला। अजात शत्रु के काल में लौह प्रौद्योगिकी के विकास का उदाहरण हमें दो युद्ध यंत्रों (महाशिलाकंटक व रथ मुसल' के रूप में दिखायी देता हैं। विज्ञान के क्षेत्र में भारत में गणित का विकास ज्यादा हुआ। अंक लेखन में शून्य और दशमलव प्रणाली की खोज ने विश्व स्तर पर गणित के विकास में क्रांतिकारी योगदान किया था। कुषाण काल में चिकित्सा विज्ञान के अंतर्गत चरक संहिता व सुश्रुत संहिता प्रमुख ग्रंथ हैं। कौटिल्य, चरक, आर्यभट्ट, वाराह-मिहिर और ब्रह्मगुप्त आदि विद्वानों ने विज्ञान की प्रगति में अपना अमूल्य योगदान दिया।

सिन्धु नगरों के अध्ययन से तात्कालीन विकसित वैज्ञानिक दृष्टि की जानकारी होती हैं। वैदिक कालीन आदिम जनजातियों द्वारा शहद, घी, तेल, विभिन्न पुष्प आदि से चिकित्सा का सर्वन मिलता हैं।

मौर्यकाल में अधिकांश गतिविधियों का केन्द्र पाटलिपुत्र था। इस काल में अधिक वैज्ञानिक विधि से बीमारियों का इलाज किया जाने लगा था। कौटिल्य ने पागलपन, कुष्ठ रोग, क्षय रोग, सिर रोग, बेहोशी रोग आदि के इलाज पर प्रकाश डाला हैं। इस समय 10-15 दिनों तक भूख नहीं लगने, विष की पहचान करने की औषधि मिलती थी। यहाँ तक कि भ्रूण प्रत्यारोपण का भी उल्लेख कौटिल्य ने किया हैं।

नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी, फुल्हारी, शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र थे। यहाँ रसायन विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, दर्शनशास्त्र, खगोल विज्ञान आदि की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार हम प्राचीन भारत में विज्ञान की एक विकसित परम्परा देखते हैं। जहाँ आर्यभट्ट, वाराहमिहिर, जीवक, ब्रह्मगुप्त जैसे वैज्ञानिक हुए। हालांकि इनके वैज्ञानिक चिंतन पर समकालीन 'अंधविश्वास' का प्रभाव बना रहा। जो समकालीन परिस्थितियों के अनुकूल था। इन परिस्थितियों के बीच, जब इन वैज्ञानिकों पर ईश्वरवादी प्रवंचना युक्त विचारों को उनके वैज्ञानिक चिंतन में शामिल करने का दबाव था, इन्होंने विज्ञान के विकास हेतु कार्य किया।

प्राचीन भारत के वैज्ञानिकों में आजीवक सम्प्रदाय के मक्खालिपुत्र गोशाल का प्रमुख स्थान है। जिसने कर्म, संसार व मोक्ष के सिद्धान्त को अस्वीकार किया। यह मत प्रतिपादित किया कि जीवन परमाणु के संयोजन से बोध व संज्ञान प्राप्त करता है। यह परमाणु शाश्वत, अविभाज्य है, जिसकी ना रचना की जा सकती हैं, और ना हि जिसे नष्ट किया जा सकता हैं। इसी मत की पुष्टि कणाद के वैशेषिक दर्शन में होती हैं। जो यह बताता हैं कि परमाणु चार तत्वों में विभाजित हैं, विभिन्न संयोगों में उसकी सहलग्नता से जड़ पदार्थ व प्राणियों की उत्पत्ति होती हैं, तथा सह-लग्नता भंग होने से विनाश।

यह द्रव्य अविनाश्य होता हैं, जो कारण-कार्य से नष्ट नहीं होता हैं, यह वस्तुओं के गुण व कार्य का सामान्य कारण हैं, इसका मूल्य स्वयं के अलावा और कहीं नहीं होता हैं।

गौतम के न्याय सूत्र में वस्तु जगत की वास्तविकता, मनुष्य के इंद्रियों द्वारा तार्किक संश्लेषण को विश्व की मूल संज्ञेयता का प्रारम्भ बिन्दु माना हैं।

भारतीय दार्शनिकों की वैज्ञानिक चिंतनशीलता से भिन्न, विशुद्ध विज्ञान को विकसित करने वालों में वाराह मिहिर का नाम प्रमुख हैं। वाराह मिहिर प्रमुख खगोल वेत्ता थे। जिसने आर्यभट के ग्रंथों का अध्ययन किया था। यह 'उज्जैन' में विक्रमादित्य के दरबार में था। इसने वृहत् संहिता की रचना की थी। इसने पंचसिद्धांतिका में 5 प्राचीन सिद्धान्तों का निरूपण किया। इन्होंने ग्रहण का कारण राहु को बताया। इस प्रकार से इन्होंने 'खगोल विज्ञान' के वर्णन में जन विश्वास को भी स्थान दिया।

पऊम चरिऊ में 'विशल्या' नामक एक स्त्री चिकित्सक का वर्णन आता हैं, जो सर्जरी में विशेषज्ञ थी। यह गणित, नक्षत्र, भूकम्प, गृह विज्ञान, खगोल विज्ञान आदि का प्रशिक्षण राजकुमारों को प्रदान करती थी।

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों में आर्यभट सबसे प्रसिद्ध था। यह पाटलिपुत्र का निवासी था। वाराहमिहिर ने इसका वर्णन प्राचीन आचार्यों में किया था। इसने गणित को अन्य विषयों से मुक्त स्वतंत्र रूप दिया। आर्यभट्टीय, दशगीतिक सूत्र, आर्याष्टरात आदि की रचना की। इसने गणित में मूल क्रिया, घात क्रिया, क्षेत्रफल, आयतन आदि की खोज की। वह प्रथम व्यक्ति था, जिसने इस देश में पृथ्वी को सर्वप्रथम गोल माना और परिधि का माप प्रायः सही प्रस्तुत किया। उसने पृथ्वी का अपनी धुरी पर घुमना भी सिद्ध किया। पहली बार उसने ग्रहण का राहु ग्रास वाला, जनविश्वास निर्मूल कर प्रमाणित किया कि चन्द्र ग्रहण सूर्य व चन्द्रमा के बीच पृथ्वी के आने से होता हैं।

इन्होंने गणित में अंकन पद्धति, दशमलव पद्धति का विकास किया। अंक गणित, बीज गणित, रेखा गणित के कठिन प्रश्नों का हल 30 श्लोकों में भर दिया। 20 श्लोकों में ग्रहों की मध्यम व स्पष्ट गति संबंधी नियम वर्णित हैं। इन्होंने मास, वर्ष व युगों के बीच के संबंध को दर्शाया, जो मनुस्मृति के वर्णन के प्रतिकूल हैं। इन्होंने ग्रहों की गति संबंधी नियम का प्रतिपादन भी किया। पृथ्वी के विभिन्न अक्षांश, विषुवत वृत, ध्रुव को भी व्याख्यायित किया हैं।

यह ज्योतिष पर लिखने वाले ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीय पूर्वज्ञान से, झूठे सिद्धांतों के बीच से वैज्ञानिक तथ्यों को बाहर निकालने का कार्य किया। ये फलित ज्योतिष के वैज्ञानिक वैद्यता के विरुद्ध थे।

कुषाण काल में चरक नामक' एक चिकित्सक हुए, जो कनिष्क के राजवैद्य थे। इन्होंने 'चरक संहिता' की रचना की। चरक संहिता में विरेचन व कषाय दो प्रकार के चिकित्सा पद्धतियों का वर्णन है। इसमें चिकित्सालय निर्माण की विधि दी गयी हैं। जो योजनाबद्ध तरीके से निर्मित आधुनिक सुविधाओं से युक्त चिकित्सालय निर्माण का डिजायन हैं।

धवंतरि प्राचीन भारतीय चिकित्सक थे। इन्होंने सुश्रुत संहिता की रचना की थी। जिसमें आर्युवेद की परिभाषा तथा 101 प्रकार के शैल्य यंत्रों का वर्णन किया गया हैं। नागार्जुन तांत्रिक रसायन विज्ञान के आचार्य माने जाते हैं। जिन्होंने कृत्रिम रूपों से स्वर्ण निर्माण विधि तैयार की थी।

जीवक एक प्रमुख प्राचीन चिकित्सक था। इसने तक्षशिला से चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया था। इसने बिंबिसार, गौतम बुद्ध व राजा प्रद्योत का इलाज किया था। चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकों में 'चरक संहिता' प्रमुख ग्रंथ मानी जाती है। 5वीं शताब्दी में हरिश्चन्द्र भट्टार ने इस पर टीका लिखी। 'अलबरूनी' ने भी इस बात का वर्णन किया हैं कि चरक संहिता का अरबी अनुवाद भी किया किया गया था। इसने चीनी व तिब्वती आर्युवेद को भी प्रभावित किया था।

उपरोक्त प्रमुख वैज्ञानिक विचारकों के कार्यों के अतिरिक्त भारत में ग्राम विज्ञान, शिल्प विज्ञान, धातु विज्ञान, उपकरण, रसायन विज्ञान का विकास भी हुआ, जो शिल्पियों व श्रमिक के अनुभव पर आधारित था।

प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विविध क्षेत्रों खगोल विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, गृह विज्ञान, गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, धातु परिष्करण आदि विधाओं की एक शानदार, उत्कृष्ट, समृद्ध व गौरवशाली परंपरा रही। ऐसा माना जाता है कि शून्य एवं दशमलव का सर्वप्रथम ज्ञान भारतीयों ने ही विश्व में फैलाया था। मोहनजोदड़ों एवं हड़प्पा का शहरीकरण तथा मेहरौली के लौह स्तम्भ का अनुठापन ये सभी प्राचीन भारतीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की श्रेष्ठता को प्रतिबिम्बत करते हैं।

सैधव सभ्यता के क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों में प्रयुक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं प्रवृत्ति का संकेत मिलता हैं। उस समय नगर निर्माण, धातु शोधन, मिट्टी के बर्त्तन बनाने, पक्की ईंट बनाने, वस्तुओं की माप-तौल तथा आयतन ज्ञात करने के लिए वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग किया जाता था। आर्यो को ज्योतिष शास्त्र, खगोल विज्ञान, गणित, औषधि शास्त्र आदि का विशेष ज्ञान था।

गणित के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय विद्वानों ने अंक विचार, दशमलव पद्धति, शून्य का आविष्कार किया। 200 ई. पू. में अपसतेम्ब ने यज्ञ की वेदियों के निर्माण हेतु व्यवहारिक ज्यमिति का प्रयोग किया हैं। ऋग्वेद के शूल्व सूत्र में भी यज्ञ के वेदी निर्माण की विधियों का उल्लेख मिलता है। इसमें न्यूण कोण, अधिक कोण, समकोण का विस्तृत विवरण दिया गया हैं। गुप्त काल में आर्यभट्ट ने सम कोण का क्षेत्रफल ज्ञात करने का नियम निर्धारित किया, जिससे त्रिकोणमिति का जन्म संभव हो सका। गुप्त काल में गणित का विकास तेजी से हुआ। दशमलव पद्धति के प्रयोग का शिलालेखीय साक्ष्य 5वीं सदी ई. पू. पूर्व से प्राप्त हुआ। ब्रह्म गुप्त, भास्कराचार्य जैसे गणितज्ञों ने अनेक आविष्कार किए। भारतीय गणितज्ञों को वर्गमूल, घनमूल जैसी प्रक्रियाओं का पूर्ण ज्ञान था। आर्यभट्ट ने पाई का अनुमानित मान दिया था, जो आधुनिक मान के कापफी निकट हैं। 'सिद्धांत शिरोमणि' बीज गणित से संबंधित उत्तम देन है।

सूर्य सिद्धांत, खगोल शास्त्र की सर्वोत्कृष्ट कृति हैं। जिसके आधार पर ग्रहण लगने की भविष्यवाणी की जाती हैं। आर्यभट्ट व वारामिहिर सर्वाधिक प्रख्यात खगोलशास्त्री थे। आर्यभट्ट में बेबीलोनिया की पद्धति से ग्रह, नक्षत्रों की गणना की थी। उन्होंने सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण के कारणों का पता लगाया था। अनुमानों के आधार पर उन्होंने पृथ्वी की परिधि को माना था, जो आज भी सही मानी जाती हैं। उन्होंने सर्वप्रथम यह बतलाया था कि सूर्य स्थिर हैं और पृथ्वी उसके चारों ओर चक्कर लगाती हैं। वाराहमिहिर की प्रमुख कृति वृहत् संहिता में कहा गया कि चन्द्रमा, पृथ्वी का एक उपग्रह हैं, जो पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता हैं।

वेदों, विशेषकर अथर्ववेद में 700 श्लोक आर्युवेद से संबंधित हैं। इसमें औषधियों के संदर्भ में प्रारंभिक उल्लेख मिलती है। चरक संहिता व सुश्रुत संहिता में मोतियाबिंद, पथरी, शैल्य चिकित्सा, क्षय रोग, मिरगी आदि के उपचार का विवरण दिया गया है।

प्राचीन कालीन भौतिक शास्त्र धर्म व धर्म संहिता से संबद्ध था। प्राय: सभी धर्मों का विश्वास था कि विश्व का निर्माण, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश नामक पंचतत्वों से हुआ। अधिकांश धार्मिक सम्प्रदायों की मान्यता थी कि जितने प्रकार के तत्व हैं, उतने ही प्रकार के परमाणु भी हैं। बौद्धों का मानना था कि परमाणु आकार में अविभाज्य हैं। लेकिन परमाणु की उत्पत्ति के साथ ही उसका विनाश हो जाता है। यह सिद्धान्त प्लांक के आधुनिक क्वांटम सिद्धान्त से मिलता-जुलता हैं।

ईसा पूर्व 2500 ई. में हड़प्पावासियों ने ताँबा, काँसे को शुद्ध करने हेतु प्रक्रियाओं को विकसित किया था। 7वीं सदी के साहित्य में रसायनशास्त्रियों द्वारा अनेक महत्वपूर्ण अम्ल, क्षार, लवणों के उत्पादन का विवरण मिलता है। सफलतानगंज (बिहार) से प्राप्त बुद्ध की प्रतिमा, मेहरौली का विशाल लौह-स्तम्भ, उत्कृष्ट धातु निष्कर्षण तकनीक का ज्वलंत नमूना है। मैंगनीज ऑक्साइड की पतली परत चढ़ाकर उसे जंगरहित बनाया जाता था। इसके अतिरिक्त धार, आबुपर्वत के लौह स्तम्भ तथा पूरी एवं कोणार्क स्तम्भ भी भारत की उच्च धातु तकनीक का प्रमाण हैं।

इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्र में भी नवीन तकनीकों का प्रयोग हुआ, जैसे - बीजों का संरक्षण, खेत की तैयारी, सिंचाई व्यवस्था, फसल चक्र, अन्न भंडारण की विधियों प्राचीन काल से यहाँ विद्यमान रही हैं।

प्राचीन भारत में विज्ञान की परम्परा विकसित थी। हालांकि इसका स्वरूप जनमानसिकता के खंडन का नहीं, बल्कि उससे अनुकूलन का था। चूंकि समकालीन संस्कृति व सामाजिक व्यवस्था से विज्ञान का विकास असंपश्क्त होता हैं, अत: सामाजिक पूर्वाग्रहों का प्रभाव उस पर होता ही हैं। प्राचीन कालीन सामाजिक व्यवस्था में तो एक प्रभावशाली वर्ग के विशेषाधिकार के संरक्षण की प्रवृत्ति थी। अत: ज्ञान को जन विश्वास से परे ले जाने का अर्थ था, सुविधाओं में ह्रास होना। अत: प्राचीन काल में विज्ञान निष्कपट व वस्तुनिष्ट ना होकर जन विश्वास के अनुकूल था।

इस प्राचीन मानसिकता व परिस्थितियों के बीच आर्यभट्ट एक ऐसे वैज्ञानिक थे, जिन्होंने वैज्ञानिक तर्क के माध्यम से जन विश्वास का खंडन करके जनता को अंध विश्वास से मुक्त करने का प्रयास कुछ सीमा तक किया।

प्राचीन भारत की विज्ञान परम्परा में 'मिथक' की भरमार, जनविश्वास की अनुकूलता आदि सीमाओं के कारण ही, भारतीयों को वैज्ञानिक दृष्टि से पिछड़ा तथा वैज्ञानिक चिंतन विहिन मान लिया गया। यही अवधारणा औपनिवेशिक विज्ञान के विकास का आधार बनी।

संदर्भ ग्रंथः

1. *औपनिवेशिक भारत में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और आर्युविज्ञान* - आर्नोल्ड, डेविड, पृ० 17-21
2. बासल्ला, जार्ज - '*द स्प्रेड ऑफ वेस्टर्न साइंस* : (1967), पृ० 611-22
3. 'चाणक्य' अर्थशास्त्र, - *प्रगीत सूत्र,* पृ० 800, 789
4. अथर्ववेद, कांड - 2, सुक्त 5, पृ० 508-9
5. वृहत् संहिता, पृ० 10, 16
6. चरक संहिता, पृ० 7
7. सुश्रुत संहिता, पृ० 4
8. गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, उपाध्याय, भगवत शरण, पृ० 372
9. वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, सत्य प्रकाश, पृ० 221-222, 158
10. 'हिन्दू एस्ट्रोनोमी' कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया, सेन गुप्ता, पी. सी., जिल्द II, पृ० 374-378

दलित एवं पिछड़ी जाति के किशोरों की व्यक्तित्व आवश्यकताओं का अध्ययन

डॉ० धनवीर प्रसाद

सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), मनोविज्ञान विभाग, सी0 एम0 जे0 कॉलेज, दोनवारीहाट खुटौना, मधुबनी

शोध-सारांश

प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत किशोरों में जातिगत आवश्यकताओं का प्रभाव जानने का प्रयास किया गया है। मधुबनी शहर के आर. के. कॉलेज से 150 छात्रों का उद्‌देश्य परक विधि से प्रतिचयन किया गया जिनकी आयु 13-18 वर्ष के बीच थी। किशोरों में पिछड़ी जाति एवं दलित जाति समूह से 75-75 लोगों को लिया गया। उन पर टी. पी. पी.एस. को प्रशासित किया गया । परिणाम विश्लेषण में माध्य मानक विचलन एवं 'टी' मूल्य सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया। विश्लेषणोपरान्त यह निष्कर्ष पाया गया कि पिछड़ी जाति की उपेक्षा दलित जाति में क्रमशः सुव्यवस्था एवं अन्तर्विवेचन आवश्यकताएं अधिक मात्रा में पायी गयीं तथा सांख्यिकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर भी पाया गया, जबकि पिछड़ी जाति समूह में दैन्य आवश्यकता सार्थक रूप से अधिक पायी गयी। शेष आवश्यकाएं, उपलब्धि, समादर, प्रदर्शन, स्वचारिता, सम्बन्धन, पोषण प्रदान प्रभुत्व, पोषण-प्राप्ति, यौन, परिवर्तन, अधससाय तथा आक्रामकता आवश्यकताओं पर सार्थक अन्तर पिछड़ी जाति समूह एवं दलित जाति समूह के मध्य नहीं पाया गया।

मुख्य-शब्दः शैक्षिक मनोविज्ञान, अनुसूचित जनजाति, स्वचारिता, दैन्य, मनोवैज्ञानिक तथा समाज

विषय-वस्तु

भारतीय जीवन की जाति व्यवस्था एक ऐसी विशेषता है जो इतिहास में हुए अनेक परिवर्तनों के पश्चात जिसका स्वरूप आज भी विद्यमान है। ऋग्वेद की ऋचाओं में इसका आभास मिलता है, रामायण तथा महाभारत में इसकी अनुगूंज सुनाई पड़ती है, बौद्ध एवं जैन साहित्य में इसका रूप मिलता है तथा चन्द्रगुप्त और अशोक के अभियान में भी इसका प्रखर आदर्श जीवन्त है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना में जाति की मान्यताओं पर चिंतन किया है। स्मृति की रचना में जाति-व्यवस्था के महत्व को मनु ने स्वीकार्य किया है। आवश्यकता शब्द का प्रथम प्रयोग शैक्षिक मनोविज्ञान में 1930 में किया गया था। इस सम्बन्ध में फ्रायड, एरिक फ्राम, लेविन एवं मेरे ने अपने विचार प्रस्तुत किये। मेरे के अनुसार आवश्यकताएं दो प्रकार की -जैविक एवं मनोजनित होती हैं। भोजन, पानी , स्वॉस, निद्रा एवं यौन आदि जैविक आवश्यकताएं होती हैं जबकि मनोजनित या पर्यावरणीय आवश्यकताओं के अन्तर्गत परिवर्तन, दैन्य, प्रभुत्व, यौन, उपलब्धि, प्रदर्शन, आक्रामकता, अध्यवसाय एवं सम्बधन, आदि आते हैं। अधिकांश अध्ययनकताओं ने सम्बन्धन, अनुमोदन, प्रदर्शन, समायोजन, बौद्धिक प्रकार्य एवं अधिगम तथा उपलब्धि अभिप्रेरकों के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन किया है। अनुसंधान सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि पर्यावरणीय आवश्यकताओं पर कम कार्य हुआ है। किसी भी अध्ययनकर्ता ने विभिन्न जातियों की सामाजिक आवश्यकताओं का क्रमबद्ध तथा तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया है। अधिकांश अध्ययन उच्च जाति एवं दलित जाति समूह के मध्य हुए हैं पिछड़ी जाति एवं दलित जाति समूह के मध्य बहुत ही कम अध्ययन हुए हैं। प्रस्तुत अध्ययन इसी रिक्तपूर्ति का एक प्रयास है। अनन्त ने आन्ध्र प्रदेश में हरिजनों द्वारा अपनी प्रस्थिति के प्रत्यक्षण का विश्लेषण किया है तथा परिणामों की तुलना उत्तर भारत में प्राप्त इसी प्रकार के तथ्यों से की है। उनके अध्ययन से यह पाया गया कि हरिजनों में अपनी प्रस्थिति जाति-प्रथा में प्रचलित भेदभाव के प्रति अधिक असन्तोष है। ओझा ने उपलब्धि अभिप्रेरणा का हिन्दू एवं मुसलमान किशोरों पर अध्ययन किया। अध्ययन का परिणाम यह पाया कि हिन्दू और मुस्लिम किशोरों में उपलब्धि अभिप्रेरणा पर किसी प्रकार का अन्तर नहीं था, पिछड़ी जाति एवं दलित जाति में भी सार्थक अन्तर नहीं पाया गया, परन्तु पिछड़ी जाति के अंक दलित की तुलना

में अधिक थे। सिडाना एवं त्यागराजन ने दलित जाति के किशोरों पर सामाजिक दूरी का एक विवरणात्मक अध्ययन किया। उन्होंने एक शहर के 6 कालेजों के यादृच्छिक प्रतिदर्श पर सामाजिक दूरी मापनी का प्रयोग किया। इस मापनी में अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों की पिछड़ी जाति जैसे यादव के प्रति मनोवृत्ति का अध्ययन किया। परिणाम यह प्राप्त हुआ कि प्रयोज्यों ने अपनी जाति के प्रति अधिक निकटता प्रदर्शित की। अदसूल ए.के. एवं बी. काम्बले ने अपने अध्ययन में पाया कि उच्च जाति एवं अनुसूचित जाति में उपलब्धि अभिप्रेरणा पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जनजाति की अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है।

शर्मा, एस के अध्ययन में यह पाया गया कि समायोजन किसी के लिए उपलब्धि हो सकती है, दूसरे के लिए एक प्रक्रिया हो सकती है। स्वास्थय समायोजन उस प्रक्रिया को इंगित करता है, जिसमें व्यक्ति अपनी जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा समाज की आन्तरिक आवश्यकता और बाहरी माँगों के बीच संतुलन स्थापित करता है।

उद्देश्य - पिछड़ी जाति समूह तथा दलित जाति समूह के किशोरों के मध्य व्यक्तित्व आवश्यकताओं का अध्ययन।

पतिदर्श विधि - प्रस्तुत अध्ययन में आर.के. कालेज मधुबनी के 13 से 18 वर्ष के 150 किशोरों को लिया गया। ये सभी छात्र दो जाति समूहों -पिछड़ी जाति (यादव, कुर्मी) तथा हरिजन जाति से लिये गये। प्रत्येक जाति समूह से 75-75 उत्तरदाता थे।

परीक्षण -प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत परीक्षण हेतु त्रिपाठी वैयक्तिक पसंद अनुसूची (टी. पी. पी . एस.) की सहायता ली गई है।

प्राक्कल्पना-पिछड़ी जाति तथा दलित जाति के किशोरों के मध्य टी0 पी0 पी0 एस0 के विभिन्न आवश्यकताओं पर सार्थक अन्तर पाया जाता है।

परिणाम एवं व्याख्या

त्रिपाठी वैयक्तिक पसंद अनुसूची पर पिछड़ी एवं दलित जाति समूह के किशोरों का मध्यमान प्राप्तांक, मानक विचलन एवं ''टी'' मूल्य

	पिछड़ी जाति		दलित जाति			
आवश्यकता	माध्य	मानक विचलन	माध्य	मानक विचलन	'टी' मूल्य	सार्थकता स्तर
उपलब्धि	12.63	2.49	13.23	3.22	1.28	N.S
समादर	13.33	3.37	13.20	4.00	.22	N.S
सुव्यवस्था	13.87	3.03	15.60	3.10	3.46	<.01
प्रदर्शन	13.07	3.79	12.00	3.17	1.88	NS
स्वचारिता	15.17	2.40	15.13	2.89	.09	NS
सम्बन्धन	12.57	3.94	13.47	3.04	1.58	NS
अन्तर्विवेचन	14.07	3.19	15.87	3.09	3.55	<.01
पोषण प्राप्ति	15.17	3.52	15.33	3.43	.28	NS
प्रभुत्व	13.37	3.66	13.73	2.60	.69	NS
दैन्य	18.37	4.55	15.20	3.85	4.59	<.01
पोषण प्रदान	16.50	3.98	15.73	3.91	1.20	NS
परिवर्तन	13.37	3.53	13.33	3.51	.07	NS
अध्यावसाय	15.83	4.00	15.33	3.51	.82	NS
यौन	11.32	8.86	11.03	6.08	.24	NS
आक्रमकता	11०77	3०48	11.57	3.39	.36	NS

तालिका से स्पष्ट है कि टी. पी. पी. एस. के 'सुव्यवस्था' आवश्यकता पर पिछड़ी एवं दलित जाति समूह का मध्यमान क्रमशः 13.87 तथा 15.60 प्राप्त हुआ, मानक विचलन क्रमशः 3.03 तथा 3.10 पाया गया। 'टी' मूल्य 3.10 सांख्यकीय दृष्टिकोण से <.01

पर सार्थक अन्तर पाया गया। दलित जाति समूह में सुव्यवस्था आवश्यकता की अधिक मात्रा पायी गयी है। 'अन्तर्विवेचन ' आवश्यकता पर पिछडी जाति समूह मध्यमान 14.07 तथा मानक विचलन 3.19, दलित जाति समूह मध्यमान 15.87 तथा मानक विचलन 3.09 पाया गया। 'टी' मूल्य 3.35 है जो सार्थकता स्तर के <.01 पर सार्थक पिछड़ी जाति समूह में अन्तर्विवेचन आवश्यकता की कम मात्रा इंगित करता है। 'दैन्य' आवश्यकता पर पिछड़ी समूह का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 18.37 तथा 4.55 तथा दलित जाति समूह का माध्य एवं मानक विचलन क्रमशः 15.20 तथा 3.85 पाया गया। 'टी' मूल्य 4.59 है जो सार्थकता स्तर के <.01 स्तर पर सार्थक पाया गया। दलित पायी गयी।

उपलब्धि आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह का मध्यमान दलित जाति समूह के मध्यमान से कम है। दोनों जाति समूहों के मध्यमानों में सांख्यकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। परन्तु सांख्यकीय दृष्टिकोण से असार्थकता।

'प्रदर्शन' आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह ने मध्यमान 13.07 एवं दलित जाति समूह का मध्यमान 12.00 पाया गया। 'टी' मूल्य 1.88 सांख्यकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर नहीं पाया गया, जबकि पिछड़ी जाति समूह मध्यमान दलित जाति समूह से अधिक है। 'स्वचारिता' आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह का मध्यमान दलित जाति समूह से अधिक पाया गया। दोनों जाति समूहों के मध्यमानों के बीच सांख्यकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। 'सम्बन्धन' आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह तथा दलित जाति समूह का मध्यमान अंक क्रमशः 12.57 एवं 13.47 प्राप्त हुआ। 'टी' मूल्य 1.58 सांख्यकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर नहीं पाया गया परन्तु दलित जाति समूह में मध्यमान अंक अधिक पाया गया। सिडाना एवं त्यागराजन ने अपने अध्ययन में परिणाम प्राप्त किया कि दलितों में सम्बन्धन की मात्रा अधिक पायी गयी जो प्रस्तुत अध्ययन के पिरणाम का समर्थन करता है।

'पोषण प्राप्ति' आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह तथा दलित जाति समूह के मध्यमान अंकों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। पोषण प्राप्ति आवश्यकता पर दलित जाति समूह ने पिछड़ी जाति समूह के अपेक्षा अधिक मध्यमान अंक प्राप्त किया। 'प्रभुत्व' आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह का मध्यमान अंक 13.37 तथा दलित जाति समूह का मध्यमान अंक 13.73 प्राप्त हुआ। 'टी' मूल्य सांख्यकीय दृष्टिकोण से सार्थक नहीं पाया गया परन्तु दलित जाति समूह ने प्रभुत्व आवश्यकता पर अधिक मध्यमान अंक प्राप्त किया। 'पोषण' प्रदान आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह का एवं दलित जाति समूह का मध्यमान अंक क्रमशः 16.50 तथा 15. 73 प्राप्त हुआ। 'टी' मूल्य 1.20 पाया गया जो सांख्यकीय दृष्टिकोण से सार्थकता स्तर पर असार्थक पाया गया। गया। पिछड़ी जाति समूह ने दलित जाति समूह के अपेक्षा पोषण प्रदान आवश्यकता पर अधिक अंक प्राप्त किया। 'परिवर्तन' आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह तथा दलित जाति समूह का मध्यमान अंक 13.37 तथा 13.33 प्राप्त हुआ । सांख्यकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

'अध्यावसाय' आवश्यकता पर दोनों जाति समूहों का मध्यमान अंक क्रमशः 15.83 तथा 15.33 प्राप्त हुआ। 'टी' मूल्य सार्थकता स्तर पर सांख्यकीय दृष्टिकोण से सार्थक नहीं पाया गया। 'यौन' आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह का मध्यमान अंक 11.32 तथा दलित जाति समूह का मध्यमान अंक 11.03 पाया गया। 'टी' मूल्य 24 सांख्यकीय दृष्टिकोण से अन्तर सार्थक नहीं पाया गया। 'आक्रामकता' आवश्यकता पर पिछड़ी जाति समूह एवं दलित जाति समूह का मध्यमान अंक क्रमशः 11.77 तथा 11.57 प्राप्त हुआ। 'टी' मूल्य 36 विश्वसनीयता स्तर पर सांख्यकीय दृष्टिकोण से असार्थक अन्तर है। पिछड़ी जाति समूह का मध्यमान अंक दलित जाति समूह के मध्यमान अंक से अधिक पाया गया। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'दैन्य' आवश्यकता पिछड़ी जाति समूह में अधिक पायी गयी। दलित जाति समूह में सुव्यवस्था तथा अन्तर्विवेचन आवश्यकता प्रवल रूप से पायी गयी। जबकि शेष आवश्यकता जैसे-उपलब्धि, समादर, प्रदर्शन, स्वचारिता, सम्बन्धन, पोषण प्राप्त, प्रभुत्व, पोषण प्रदान, परिवर्तन, अध्यावसाय, यौन तथा आक्रमकता आवश्यकता पर प्रवल रूप से पायी गयी। जबकि शेष आवश्यकता जैसे-उपलब्धि, समादर, पोषण प्रदान, परिवर्तन अध्यावसाय, यौन तथा आक्रमकता आवश्यकता पर पिछड़ी जाति एवं दलित जाति समूहों के मध्यमान अन्तर अवश्य पाया गया परन्तु सांख्यकीय दृष्टिकोण से सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

संदर्भ-सूची :

1. Murray Henry ' Ex ploration in Personality' oxford university Press, 1938.

2. Anant, S.S. ‘Perception on their Status', Study in Andhra Pradesh (India) Psychology. An International Journal of Psychology in other orient, 16 (3), 1973, 147-153.
3. Ojha, H. ‘Achievement Motivation among Hindu and Muslim’. Journal of Psychological, Researches 26 (3) , 1982, 133-136.
4. Sudane, G.R.& Thiagarajan, A.P. ‘Social distance among Scheduled cast Students’. A case Study. Indian Journal of Social work, 44 (1), 1983 35-45.
5. Adsul, A.k. and Kamble, v. ‘Achievement Motivation as a function of Gender, Economic Background and cast Differences in college students.’ Journal of the Indian Academy of Applied Psychology, 34 (2) 2008, 323-327.
6. Sharma, Suraj ‘Adjustment Process, Achievement, Characteristics Journal of Academic Researches Vol. 3, issue 1 (2) , 2016.
7. Tripathi, R.R., ‘Personal Preference Schedule’, Prasad Psychological Cooperation, 1973
8. Ojha, H, op. cit.
9. Sudane and Thiagarajam , op. cit.

बिहार के निर्माण में महेश नारायण का योगदान

डॉ० हरिशंकर राय

सार

महेश नारायण एक जाने-माने एवं मजे हुए पत्रकार के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थे। उन्होंने बिहार की बदहाली की तस्वीर पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से बिहार के लोगों के सामने रखी और उन्हें दलदल से मुक्त होने का आह्वान किया। उन्होंने सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि बिहार बंगाल प्रान्त का उपांग बनकर रह गया है। बंगालियों ने बिहार को अपना चारागाह बना लिया है। आधुनिक शिक्षा का प्रसार यहां अच्छी तरह होने नहीं दिया गया है। सरकारी नौकरियों और अदालतों में बंगालियों ने अपना वर्चस्व कायम कर रखा है। इस प्रकार उन्होंने जोर देकर कहा कि जब तक बिहार के सामाजिक परिदृष्य में परिवर्तन नहीं होगा बिहार आधुनिकता के रास्ते पर आगे बढ़ नहीं सकता। बिहार में लोगों की पहली और आखिरी पहचान उसकी जाति से होती है। लोग दकियानूसीपन एवं रूढ़िवादिता के दलदल में ंसे हुए हैं। अपने आदर्शों को ठोस आधार प्रदान करने के लिए उन्होंने पत्रकारिता का सहारा लिया। महेश नारायण की गणना आधुनिक बिहार के महापुरूषों के रूप में की जाती है। प्रस्तुत आलेख द्वारा बिहार के निर्माण में महेश नारायण की योगदान को दर्शान के प्रयास किया गया है।

मुख्य-बिन्दु: जीवन परिचय; काव्यात्मक छवि; जागरूकता; पुनर्जागरण; बिहार का निर्माण।

परिचय

महेश नारायण (1858 से 1907) एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनका नाम साहित्य और समाज दोनो में नई चेतना के लिये दस्तक देता है। उनके पिता मुंशी भगवतीचरण संस्कृत और फारसी के विद्वान थे तथा उन्होंने महेश नारायण को शुरू से ही विकास का ऐसा वातावरण प्रदान किया जिसके कारण बचपन से ही उनके अंदर कुछ कर गुजरने की चाह बनी रही। पटना से इंट्रेंस की परीक्षा पास करने के बाद वह उच्च शिक्षा के लिये कलकत्ता चले गए। बीए की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर वे वापस अपने बड़े भाई गोविंदचरण के पास पटना आ गए। तथा उसके बाद उन्होंने बिहार टाइम्स और कायस्थ और कायस्थ गजेट का प्रकाशन किया। वे आधुनिक बिहार के निर्माता के रूप में भी जाने जाते हैं।

महेश नारायण ने हिंदी और अँग्रेजी दोनो में अनेक निबंधों और कविताओं की रचना की। लेकिन उनकी रचना के केन्द्र में आम आदमी के जीवन की समस्याएँ ही रहीं तथा इसी क्रम में उन्होंने समाज और राष्ट्र की समस्याओं को उठाया। हिंदी भाषा जनता की अस्मिता के लिये उन्होंने लगातार हिंदी की वकालत की तथा अपने द्वारा संपादित पत्रों के संपादकीय में भारतीय राष्ट्रीयता के सवाल को उठाया।

काव्यात्मक छवि

सन 1881 में 23 वर्ष की अवस्था में उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में स्वप्न नामक एक कविता की रचना की जिसका प्रकाशन पटना से प्रकाशित बिहार बंधु में 13 अद्रूबर 1881 में ई को हुआ। यह खड़ी बोली हिंदी में लिखित अपने समय की सबसे लंबी कविता तो है ही, साथ ही हिंदी भाषा के पूरे इतिहास में मुक्तछंद की पहली कविता है। इसका प्रकाशन सूर्यकांत त्रिपाठी निराल

की जूही की कली से प्राय: 36 वर्ष पूर्व हुआ था। इस कविता के प्रकाशन ने तत्कालीन हिंदी कविता के इतिहास में हलचल मचा दी तथा भारतेंदु मंडली के लेखकों और उस समय के भाषाविदों की इस राय को झुठला दिया कि खड़ी बोली में कविता लिखी ही नहीं जा सकती है। क्यों कि उस समय भाषा विज्ञान के क्षेत्र में खड़ी बोली को लेकर जिस तरह की हलचलें मची हुई थीं तथा उसकी स्वीकृति अस्वीकृति का दौर चल रहा था वह अपने आप में एक कड़वी सच्चाई है।

इस अस्वीकृति के चलते महेश नारायण की इस कविता की चर्चा नहीं हो सकी। परिणाम यह हुआ कि खड़ी बोली हिंदी की यह लंबी और मुक्तछंद की प्रथम कविता दब गई तथा इतिहास ने इसे फिर से उभरने का अवसर नहीं दिया। इस अस्वीकृति का अंदाज हम इसी बात से लगा सकते हैं कि जब खड़ी बोली काव्य आंदोलन के प्रखर प्रवक्ता अयोध्याप्रसाद खत्री ने मुजफ्फरपुर से अपना पुस्तक खड़ी बोली का आंदोलन में भारतेंदु हरिश्चंद्र के दृष्टिकोण को नकारात्मक मानते हुए अपने समय के जाने माने भाषाविद जार्ज ग्रियर्सन के पास पुस्तक की एक प्रति भेजी तथा जब उन्हें उसका उत्तर मिला तो वे हत्प्रभ रह गए। अपने छह सितंबर 1888 के पत्र में ग्रियर्सन ने उन्हें लिखा-

खड़ी बोली के लिये जो भी प्रयास किया जाएगा वह असफल होगा। इस संबंध में बनारस के बाबू हरिश्चंद्र ने विचार किया है और मैं समझता हूँ कि उनका मत उचित है। इतना ही नहीं, खड़ी बोली में काव्य रचना के आंदोलन को दबाने के लिये पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने अपने पत्र ब्राह्मण के संपादकीय में स्पष्ट लिखा कि आधुनिक कवियों के शिरोमणि भारतेंदु जी से ही जब यह कार्य न हो सकता तो यत्न निष्फल है। वही स्पष्टत: उनका संकेत अयोध्याप्रसाद खत्री की पुस्तक और महेश नारायण की कविता स्वप्न की ओर था।

महेश नारायण की कविता स्वप्न एक कल्पना पर आधारित है। जिसमें एक युवक और युवती की प्रेम कथा तथा युवती की सौतेली माँ का छल प्रपंच साथ साथ चलती है। सौतेली माँ संपत्ति के लालच में युवती का विवाह एक बुढ़े से कर देती है। तथा उसेक मरने के बाद उसकी पूरी धन संप्तित पर कब्जा कर लेती हैं। युवती विधवा होकर अपने पहले प्रेमी की खोज में निकल पड़ती है। और ज्यों ही उसे प्राप्त करती है त्यों ही उसका क्रूर पिता उसे घुमाकर शून्य में फेंक देता है। लड़की का सपना टूट जाता है इस प्रकार इस कविता का नाटकीय अंत होता है।

भाषा शिल्प की कृष्टि से यह कविता खड़ी बोली में लिखित अपने समय की सबसे लंबी कविता ही नहीं, बल्कि हिंदी कविता के इतिहास में मुक्त छंद की प्रथम कविता भी है। इसमें कवि ने तत्सम और अरबी फारसी के शब्दों के व्यवहार के साथ ही वार्तालाप की अनौपचारिक शैली का भी प्रयोग किया है। यदि विचार करें तो बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से इस कविता में कवि ने भारतीय समाज में व्याप्त अनमेल विवाह, लड़कियों पर किये जा रहे अत्याचार, और हिंदुसातान की दासता तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगी पाबंदी की सार्थक अभिव्यक्ति की है। कविता भाषा एकदम सरल है। तथा कवि ने छोटे छोटे शब्दों और मुक्त छंदों के माध्यम से त्ताकालीन समय और समाज की जिंदगी की धड़कनों को पकड़ने की कोशिश की है।

बिहार के लिए जागरूकता

पाश्चात्य षिक्षा के कारण बिहार में भी बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हुआ, जिससे वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए उन्होंने महसूस किया कि पृथक् बिहार प्रान्त के गठन के बाद ही बिहारियों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में बदलाव आ सकता है। सर्वप्रथम 1876 ई. में मुंगेर से प्रकाशित 'मूर्ध-ए-सुलेमान' नामक पत्रिका में 'बिहार बिहारियों के लिए' शीर्षक से बिहार पृथक् आन्दोलन की बात कही गयी। इस पत्र ने मांग की थी कि बिहार में सरकारी नौकरियों में बंगालियों के स्थान पर बिहारियों की ही नियक्ति की जाए। 22 जनवरी, 1877 ई. को उर्दू पत्र 'कसीद' ने बिहार को बंगाल से पृथक् करने की जोरदार वकालत की। उसने कहा कि बंगाल और बिहार का साथ असंगत है, क्योंकि दोनों की परम्पराएं, रीति-रिवाज एवं व्यवहार भिनन हैं। जहां बंगालियों को इससे लाभ हो रहा है, वहीं बिहारियों की स्थिति दयनीय होती जा रही है।

1894 ई. में पृथक् बिहार संबंधी आन्दोलन और अधिक तीव्र हुआ। इस आन्दोलन को शुरू करने का श्रेय वास्तव में महेश नारायण को दिया जाता है। अन्य प्रमुख लोगों में सच्चिदानन्द सिन्हा, नंद किशोर लाल, कृष्णा सहाय, अली इमाम, मौलाना शर्फूद्दीन, मौलाना मजहरूल हक, दीपनारायण सिंह, परमेश्वर लाल महथा आदि थे। महेश नारायण ने 'कायस्थ गजट' के माध्यम से बिहार

पृथक् आन्दोलन को ठोस आधार प्रदान किया। अपने पत्र के माध्यम से उन्होने बिहारियों के पिछड़ेपन पर विस्तृत प्रकाश डाला। दीपनारायण सिंह के प्रयत्न से ही बिहार में प्रान्तीय कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन सम्पन्न हुआ था।

पुनर्जागरण

1857 ई. के महान क्रांति के बाद बंगाल के लोगों में पुनर्जागरण आया एवं उनमें भरपूर बौद्धिक विकास हुआ। बुद्धिजीवी बंगालियों ने ब्रिटिश शासन के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि अपनानी शुरू की एवं धीरे-धीरे राष्ट्रवाद का बीज उगना प्रारंभ हुआ। ब्रिटिश सरकार के लोगों ने इसे अपने अनुकूल नहीं माना एवं उन्हें कमजोर तथा सीमाबद्ध करने का प्रयास किया जाने लगा। बंगाल को कमजोर करने के उद्देश्य से बिहारियों का ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा खुला समर्थन किया जाने लगा। लेफिटनेंट गवर्नर कैम्पबेल ने कहा कि जब तक बिहार के लोगों को जीविका का अवसर प्रदान नहीं किया जाता, बिहार का विकास नहीं हो सकता। उसने पृथक् बिहार के निर्माण की वकालत की। आंग्ल-भारतीय समाचार पत्रों ने बंगाल-बिहार के मामले को जानबूझ कर तूल दिया तथा बिहारियों के मन में बंगालियों के प्रति द्वेश एवं प्रतिस्पर्द्धा की भावना पैदा की। इस कार्य में आंग्ल-भारतीय पत्र 'इंग्लिशमैन' का महत्वपूर्ण योगदान रहा। 1880 ई. में कैम्पबेल के उत्तराधिकारी ऐशले एडन ने बिहार का दौरा किया है तथा बिहार में सरकारी नौकरियों में बिहारियों के लिए आरक्षण की मांग की। ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों ने बिहार में मुसलमानों एवं कायस्थ संस्थाओं को प्रोत्साहित किया। इन संस्थानों में मुंशी प्यारेलाल द्वारा स्थापित 'सदर अंजुमन-ए-हिन्द' तथा इमाम अली द्वारा गठित 'साइंटिफिक सोसायटी' प्रमुख थे।

महेश नारायण तथा अन्य नेताओं ने बिहार में पूर्ण स्वायत्तशासी स्थानीय सरकार के गठन की मांग की। भाषा के आधार नये प्रान्त के गठन ने जोर पकड़ा। वस्तुत: भाषा के आधार पर अलग प्रान्त के गठन का यह भारत का पहला आन्दोलन था।19वीं सदी के अंतिम दशक आते-आते बंगाल राष्ट्रवादियों, उग्रवादियों तथा क्रांतिकारियों की शरणस्थली बन गया था। ब्रिटिश प्रशासन के लिए यह घोर चिन्ता का विषय था। वह उग्रवादियों एवं क्रांतिकारियों को कमजोर करने के उद्देश्य से अतिशीघ्र बंगाल का विभाजन करना चाहते थे। महेश नारायण अनुकूल परिस्थिति को ध्यान में रखकर ले. गवर्नर चार्ल्स इलियट तथा एलेक्जेण्डर मैकेंजी को पृथक् बिहार के निर्माण हेतु स्मरण पत्र सौंपा, लेकिन इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

1903 ई. में भारत के गवर्नर जनरल ने यह स्पष्ट किया कि प्रशासनिक सुविधा के लिए बंगाल का विभाजन आवश्यक है। लार्ड कर्जन ने विलियम वार्ड की योजना को मूर्त्त रूप देने के लिए बंगाल के चटगांव मंडल एवं ढाका तथा मैमनसिंह दो जिलों को आसाम में मिलाने की बात को स्वीकार किया। इसके फलस्वरूप गृह विभाग के सचिव हरबर्ट रिजले ने 3 दिसंबर 1903 ई. को बंगाल विभाजन की योजना की घोषणा की। इसकी प्रतिक्रिया देशव्यापी हुई। पृथक् बिहार आन्दोलन के प्रमुख नेताओं ने भी बंगाल विभाजन का विरोध कियहा। वे बंगाल से अलग बिहार प्रान्त के पक्षधर थे, न कि बंगाल विभाजन के। महेश नारायण ने अपनी पुस्तक 'पार्टीशन ऑफ बंगाल : सेपरेशन ऑफ बिहार' में भी इस बात का उल्लेख किया है। राजेन्द्र प्रसाद कलकत्ता के 'बिहारी क्लब' के सचिव थे। वे बिहारी छात्रों का एक सम्मेलन आयोजित करना चाहते थे। इसके लिए वे पटना आकर महेश नारायण जैसे नेताओं से मुलाकात की और विचार-विमर्श किया। फलत: 1906 ई. में प्रथम बिहार छात्र सम्मेलन पटना कॉलेज में डॉ; शर्फूद्दीन के सभापतित्व में आयोजित किया गया। यह सम्मलेन निश्चित रूप से छात्रों एवं अन्य बिहारी बुद्धिजीवियों को एक मंच पर लाने में सफल हुआ।

बिहार का निर्माण

'बिहारी टाइम्स' के नाम से महेश नारायण की पत्रिका जुलाई, 1906 ई. से 'बिहारी' नाम से प्रकाशित होने लगी तथा यह पुन: नये कलेवर के साथ बिहार के लोगों के हितों से संबंधित मुद्दों को प्रकाशित करती थी। 1907 ई. में महेश नारायण की मृत्य के पश्चात् सच्चिदानन्द सिन्हा, ब्रह्मदेव नारायण, मजहरूल हक, अली इमाम, हसन इमाम, मोहम्मद फखरूद्दीन आदि लोगों ने पृथक् बिहार आन्दोलन को आगे बढ़ाया। 1908 ई. में इन नेताओं के प्रयास से अली इमाम की अध्यक्षता में पटना में 'बिहार प्रादेशिक' सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में मोहम्मद फखरूद्दीन ने बिहार को अलग करने का प्रस्ताव रखा, जिसे सर्वसम्मति से पारित किया गया।

आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव के कारण शर्फूद्दीन को 1907 ई. में कलकत्ता हाईकोर्ट के बेंच में शामिल किया गया तथा 1908 ई. मे अली इमाम स्टैंडिंग कौंसिल के पद पर बहाल किए गए। 1910 ई. में सच्चिदानन्द सिन्हा बंगाल विधान परिषद की ओर से केन्द्रि विधान परिषद् कि सदस्य चुने गये। उन्हीं के प्रयास से अली इमाम गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिसर के विधि सदस्य बनाये गये, जिससे 'पृथक् बिहार आन्दोलन' को और अधिक बल मिला।

सर अली इमाम ने गवर्नर जनरल को इस बात को समझाने का प्रयास किया कि बंगाल विभाजन व्यावहारिक नही है। अत: उसे तत्काल वापस लिया जाना चाहिएं इसके स्थान पर बिहार एवं उड़ीसा को बंगाल प्रान्त से अलग कर उसे स्वतंत्र प्रान्त का दर्जा देना व्यावहारिक होगा। गवर्नर जनरल को उनकी बात तर्कसंगत लगीं 1911 ई. में इंग्लैण्ड के सम्राट् जॉर्ज पंचम के भारत आगमन पर दिल्ली में शाही दरबार का आयोजन किया गया। इस अवसर पर गवर्नर जनरल लॉर्ड हार्डिंग ने बंगाल विभाजन को रद्द कर बंगाल से अलग बिहार एवं उड़ीसा दो नए प्रान्त बनाये जाने की घोषणा की। इस प्रकार 1 अप्रैल, 1912 ई. को बिहार एवं उड़ीसा प्रान्त का विधिवत् उद्घाटन हुआ। पटना बिहार प्रान्त की राजधानी बनी तथा सर चार्ल्स वेली को इस नये प्रान्त का प्रथम लेफ्टिनेंट गवर्नर नियुक्त किया गया। उसकी कार्यकारी परिषद् में ई. ए. गेट, ई. वी. लेविंग तथा दरभंगा के महाराजा रामेश्वर सिंह को सदस्य बनाया गया।

निष्कर्ष

नि:संदेह महेश नारायण आधुनिक बिहार के महान स्तम्भ थे। इन्होंने बिहार को स्वतंत्र पहचान दिलवायी और बिहारियों की अस्मिता के वे प्रतीक बने। वे बड़े स्वाभिमानी व्यक्ति थे। अपने आदर्शों एवं जीवन के मूल्यों से उन्होंने कभी भी समझौता नहीं किया। वे बड़ें शिक्षाविद् एवं महान पत्रकार थे और जीवन के हर क्षेत्र में वे अनुशासन को बहुत महत्व देते थे। एक सफल पत्रकार एवं समाजसेवी के रूप में उन्होंने काफी यश कमाया। आधुनिक बिहार सदा उनका आभारी रहेगा।

संदर्भ

- आर., सुमंथी, द लॉस्ट लैण्ड आर्फ ल्यूमेरिया, फेबुलस ज्योग्रफीस, कैटस्ट्राफिक हिस्ट्रीज, युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, लॉस एंजिलिस, 2004.
- सिंह, सुमिता, रोल ऑफ प्रेस इन क्रिएशन आफ बिहार, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, वॉ. 73. 2012
- दत्ता, के. के., अनरेस्ट एगेंस्ट ब्रिटिश रूल इन बिहार 1831-1859, पटना, 1975.
- ठाकुर, जे. के., मूवमेंट ऑफ 1857-58 इन तिरहुत, जर्नल आफ बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना, 1975.
- झा, जे. एस., ओरीजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ कल्चरल इंस्टीच्युशन इन बिहार, द जर्नल ऑफ हिस्टोरीकल रिसर्च सोसाइटी, रांची, 1965.

भारतीय संस्कृति पर भूमंडलीकरण का प्रभाव

डॉ० पूर्णिमा आर

सहायक प्रोफेसर, श्री शंकरा विद्यापीठ कॉलेज, वलयंचिरंगरा, पेरुंबावूर, केरल

मनुष्य राशि के विश्वास, ज्ञान ,आचरणादि का परिष्कृत और विकसित रूप संस्कृति है। संस्कृति शब्द संस्कृत के 'सम्' उपसर्ग के साथ 'कृ' धातु के जुडने से बना है जिसका अर्थ है परिष्कृत कार्य। पाणिनि के अष्टाध्याई के अनुसार संस्कृति शिष्टाचार है और उसमें शब्दार्थ की अपेक्षा शब्दों का भावार्थ ग्रहण करना चाहिए जो विशेष और व्यापक है। संस्कृति के अंतर्गत मनुष्य की भाषा, विश्वास रीति- रिवाज, दर्शन, ज्ञान, साहित्य, कला, मूल्य, व्यवस्था तथा जीवन शैली, धार्मिक अनुष्ठान, पर्व, त्योहार, विधि। निषेध, सामाजिक संस्थाएं , एक दूसरे के प्रति दृष्टिकोण और इनसे जुड़ी सारी चीजें आ जाती है। यह सब मिलकर एक विशिष्ट जीवन व्यवस्था बनती है जिसे सांस्कृतिक धरोहर कहते हैं। विश्वास और मूल्य चेतना पर संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ता है। राष्ट्र, देश और काल से इसका गहरा संबंध है। संस्कृति की परिभाषा सर मोनियर विलियम्स ने इस प्रकार दी है 'प्रयत्न द्वारा कार्य की संपन्नता करना संस्कृति है'[1] हिंदी विश्व कोश के अनुसार संस्कृति उस समुच्चय का नाम है जिसमें ज्ञान विज्ञान, कला, नीति, विधि, रीति। रिवाज का समावेश रहता है। [2] हिंदी साहित्य कोश के अनुसार 'विभिन्न शास्त्रों, दर्शन आदि में होने वाले चिंतन, साहित्य, चित्रांकन आदि कलाओं एवं परहित साधन आदि नैतिक आदर्शों तथा व्यापारों को संस्कृति कहा जाता है।[3] रामधारीसिंह दिनकर के अनुसार संस्कृति का अर्थ मनुष्य काभीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार है और दूसरों को समझने की शक्ति है। [4] हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार संस्कृति विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।[5] इस प्रकार कई विद्वानों ने विविध प्रकार से संस्कृति को परिभाषित किया है। संस्कृति का विकास बदलते भौतिक स्थितियों से मनुष्य के निरंतर संघर्ष, रोज के अनुभवों से शिक्षा और अगली पीढ़ियों तक अपने ज्ञान को नए समय के अनुसार संस्कार कर पहुंचाने की सामर्थ्य पर निर्भर है-[6]

भारतीय संस्कृति में वैचारिकता का अति महत्वपूर्ण स्थान है। चूंकि संस्कृति का संबंध मनुष्य के आंतरिक विचारों से है, यह एक अंतर्मुखी प्रक्रिया है जो मानव को ऊर्ध्वमुखी बनाती है। संस्कृति ही हमारे संस्कारों का परिष्कार करती है और मानव, संस्कारों के द्वारा ही उसकी सांस्कृतिक चेतना को निर्मित और प्रबल करता है। सांस्कृतिक चेतना से ही हमारी संस्कृति वास्तविक रूप में बढ़ती है। सांस्कृतिक चेतना मनुष्य को, संस्कार, अपने आचरण में दिखाने को प्रेरित करती है। यह व्यक्तिगत होते हुए भी समष्टिगत रूप ले लेती है। भारतीय संस्कृति वैश्विक संस्कृति है और इसकी सांस्कृतिक चेतना का मूलभूत आधार वसुधैव कुटुंबकम की भावना है द्ययही यजुर्वेद भी पुष्ट करता है। 'वेनस्तत् पश्यनविहितं गृहा सद्। यत्र विश्व भवति एक नीडम्।।[7] हमारी संस्कृति दो स्तरों पर काम करती है। भौतिक स्तर और अभौतिक स्तर पर। भौतिक स्तर पर संस्कृति मूर्त वस्तुओं से संबंधित होती है और उनका सरोकार मानव के द्वारा बनाई गई वस्तुओं से होता है। अभौतिक संस्कृति में सभी तत्व आते हैं जिसका स्वरूप अमूर्त होता है जैसे आचार, विचार, भाषा, धर्म, रीतियां, कुरीतियां, संगीत, नृत्य आदि। भारतीय संस्कृति में सांस्कृतिक चेतना किसी न किसी रूप में मुखरित होती ही रहती है और इसके द्वारा हमें भारत के आध्यात्मिक चिंतन को वाणी देने का मौका मिलता है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी धार्मिक जडें है। सृष्टि के पीछे जो चिरंतन सत्ता विद्यमान है वही वास्तविक शक्ति मानी जाती है। यह अकृष्य शक्ति ही पर ब्रह्मया परमात्मा कहलाती है। भारतीय संस्कृति में ब्रह्म, आत्मा की एकता को घोषित करता है।[8] परम तत्व ब्रह्म विश्व व्यापक है 9 और वही विश्वकर्ता एवं जगत का स्वामी है।[10] इसी सत्ता की सर्वत्र [11] अनुभूति प्राप्तकरना ही जीवन का परम लक्ष्य माना गया है।

भारतीय संस्कृति वैचारिक संस्कृति होने के कारण इसका मूल तत्व अध्यात्म है। अध्यात्म का दिग्दर्शन दर्शनशास्त्र के द्वारा होता है और स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होने की भावना को दर्शाता है। भारतीय कृषि मुनियों ने अध्यात्म और भौतिकता को समकृष्टि से देखा है और जीवन में समग्रता लाने के लिए भौतिकता के प्रति अनासक्ति को बढ़ावा दिया। इस वैचारिकता ने संस्कृति के साथ नाता जोडकर, सांस्कृतिक वैचारिकता का उत्कर्ष किया जिसे तात्विक धरातल प्रदान करने में कई मनीषियों ने उल्लेखनीय योगदान दिया –महर्षि गौतम का न्याय दर्शन, महर्षि कणाद का वैशेषिक दर्शन, कपिलमुनि का सांख्यदर्शन, पतंजलि का योगदर्शन इत्यादि इस दिशा में अतिमहत्त्वपूर्ण हैं। यही नहीं ऐसे अनेक आचार्य हुए हैं जिन्होंने विभिन्न प्रकार की सैद्धांतिकी से भारतीय संस्कृति को परिपुष्ट किया है जिनमें प्रमुख हैं शंकराचार्य का अद्वैतवाद, माध्वाचार्य का द्वैतवाद, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद , रामानुजाचार्य का विशिष्टा द्वैतवाद और निंबार्काचार्य का द्वैता द्वैतवाद। इन आचार्यों ने अपनी तात्विक वैचारिकी के द्वारा साहित्य तथा संस्कृति को और प्राकारांतर से लोक चेतना को प्रभावित किया ।

भारतीयों ने संस्कृति की रचना औरलोक संचालन के लिए तीन तत्वों को प्रमुखता दी जिनमें प्रथम ईश्वर है, 12, दूसरा जीव है और तीसरी प्रकृति है। जीव और प्रकृति के मेल से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है और ईश्वर इसका नियामक और संचालक है। 13, 14 अध्यात्म, संस्कृति, प्रकृति आदि को अनुस्यूत करके भारतीय चिंतकों ने ऐसी अवधारणाएं रची जिनमें सर्वभूतों के हित की रक्षा, सर्वत्र समदर्शन और सर्व भूतों में सौहार्द स्थापन प्रमुख भरहा। वर्तमान की भूमंडलीय मानसिकता ने भारतीय जनमानस से इन अवधारणाओं को नष्ट किया। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित भारतीय जनता आज वैचारिक रूप से समुन्नत नहीं हो पा रही है। आंख मूंदकर पाश्चात्य सिद्धांतों का अनुकरण करने की होड़ में लगी है, जबकि पाश्चात्य जगत भारतीय चिंतन परंपरा में उन मूल्यों की खोज मेंरत है जिनसे संपूर्ण मानव समाज का कल्याण हो सकता है। भूमंडलीय युग में आर्थिक सुदृढ़ता के लिए प्रयत्न करने वाले मनुष्य प्राणी वैचारिक धरातल पर कमजोर दिखाई दे रहे हैं जिसके कारण समाज में नवीन सिद्धांतों की कमी दिखाई दे रही है।

हमारी संस्कृति कर्म प्रधान संस्कृति है अर्थात कर्म करने में ही जीवन का साफल्य मानने वाली संस्कृति है एवं निरंतर कर्म करने को बाध्य करती है। वेदों में 'चरैवेति' को महामंत्र उद्घोषित किया गया है। मानव की उपादेयता, सार्थकता और कर्म सौन्दर्य संस्कृति के केन्द्रीय तत्व माने गये है। कर्म ही मानव को सम्मान और प्रतिष्ठा दिलाता है।[15] इसलिए हमारी संस्कृति में आत्मतत्व शोधन, आत्मतत्व विस्तार आदि के लिए सत्कर्म करने की सीख मिलती है और कर्म परायणता को धर्म से जोड़ा गया है। भगवत गीता का कहना है कि कर्म के बिना व्यक्ति रह ही नहीं सकता 'नहि कश्चित्क्षणमपिजातुतिष्ठत्यकर्मकृत'[16] इससे कर्म प्रधानता उजागर होती है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों का केंद्रीय तत्व भी कर्म संस्कृति ही रही है। इन महाकाव्यों में हर एक पात्र अपने अपने कर्म में लीन चित्रित किए गए हैं। सत्कर्म से, सृजनात्मकता से, सकारात्मक चिंतन से कर्तव्य परायणता सुदृढ़ होती है एवं व्यक्ति के आचार, विचार, व्यवहार से कर्म सौन्दर्य झलकता है। कर्तव्यहीन व्यक्ति का न शरीर स्वस्थ रहता है न मन। इसीलिए खाली दिमाग शैतान का घर माना गया है। कर्म को आत्मतत्व का विस्तार मानकर उसे लोककल्याणार्थ समाज में स्थान दिया गया है। कर्म को अनासक्त भाव[17] से करने को प्रेरित किया गया है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संड्गोस्त्वकर्मणि'[18] कहकर कर्म में अकतृत्व और समर्पण भाव को दर्शाया है। समर्पण में अहम् की शांति मानी जाती है। कर्तृत्व भाव के नष्ट होने से स्वार्थता कम हो जाती है। आज बाजारीकरण ने मानव को पैसा कमाने का पुतला बनाकर छोड़ा है। नैतिक मूल्य क्षतिग्रस्त हो रहे है। कर्म भी प्रबल नहींरहा। येन केन प्रकारेण धनार्जन और उपभोग ही मुख्य ध्येय बना हुआ है। मंडीकरण के नए संदर्भ में कर्ता को प्रमुखता प्रदान की है। अकतृत्व भावना का भारतीय चिंतन परंपरा से लोप हो गया है। अस्मिताओं के उभरने का वर्तमान परिप्रेक्ष्य इसको बढ़ावा देता नजर आता है। पाश्चात्य चिंतन से अनुप्राणित कई अवधारणाएं भारतीय मनीषा में घर कर रही है और भारतीयों की स्वसृजित अवधारणाएं अपना स्थान पाने में असमर्थ हो रही है।

भारतीय संस्कृति का मूलभूत तत्व सत्यं वद धर्मं चर है। सात्विक आचरण, सत्य भाषण पर विशेष बल दिया गया है क्योंकि इससे व्यक्ति झूठ और पाप से बच जाता है। परमेश्वर को सत्य का स्वरूप माना गया है। 'सत्यव्रतं सत्यपरम् त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये। सत्यस्य सत्यामृत सत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वंशरणं प्रपद्ये।।'[19] सत्य की उर्जा भारतीय संस्कृति को अमरत्व प्रदान करती है। सत्य के साक्षात्कार के लिए भारतीय चिंतकों ने चिंतन मनन किया है[20]। पाश्चात्य संस्कृति में भी सत्याचरण पर बल है लेकिन जिस प्रकार से भारतीय समाज ने सत्याचरण को अपनाया है उसी तरह उसी रूप में पाश्चात्य लोगों ने कम ही अपनाया है। आज

सच के पैकेट में झूठ बिक रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य इसका साक्षी है और हर पदार्थ बाजार की वस्तु है और उसे बाजारी मूल्य पर बिकना चाहिए। आज हमारा राष्ट्र विचार शून्य, संवेदन शून्य, भाव शून्य बनता जा रहा है। सब संरचनाएं टूट रही है। न संस्कृति टिक पा रही है, न धर्म, न ईश्वर, न मनुष्य। सब खंडित होते नजर आ रहे हैं । प्रसार तंत्र ने अच्छे बुरे, उचित अनुचित, पाप पुण्य का भेद मिटा दिया है। सब अपने-अपने परिप्रेक्ष्य में ठीक है। यही आज का नारा है। कोई भी विचार हो, सिद्धांत हो या नैतिक मूल्य, मानव के व्यवहार को संचालित नहीं करता, मात्र व्यवहारिकता, समय की आवश्यकता और सुविधा ही अच्छे आचरण की कसौटी बन रही है। बुद्धि का मापदंड हर स्थिति में अपनी रक्षा सुनिश्चित करने में है।

भारतीय संस्कृति आचरण और व्यवहार की संस्कृति है। समन्वयता पर बल देती है। लौकिक और पारलौकिक उन्नति इसका लक्ष्य माना गया है। विश्वबंधुत्व इसकी भावना के मूल में व्यापक रूप में दृष्टिगोचर होता है। हमारी संस्कृति अनेकता में एकता का पाठ पढ़ाती है। विश्व मानवतावाद को अनुप्राणित करती है। मानव मूल्य इसका प्रमुख तत्व है। हमारी संस्कृति विपत्ति में संपत्ति, अंधकार में प्रकाश, निराशा में आशावादी ताजगी लाने वाली है। संघर्ष में भी हर्ष देखने वाली है, पराजय में भी विजय देखने वाली है।[21] इसका मुख्य उद्देश्य आनंदानुभूति है। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी आनंद के लिए निरंतर प्रयास करना भारतीय संस्कृति की मूलभूत प्रवृत्ति है और यह सत् चित और आनंद का स्वरूप बनकर मनुष्य के अंदर आनंद जागृत करने के लिए निरंतर सक्रिय रहती है। जिओ और जीने दो इसका एक और परम तत्व है। भूमंडलीकरण के इस दौर में अपने अस्तित्व को बनाए रखने और क्षेत्र विस्तार करने हेतु बाजार कटिबद्ध है। पूरे संसार को एक संस्कृति में बांधना बाजार का परम ध्येय है। इस विपणन तंत्र के फलस्वरूप मनुष्य व्यक्ति केन्द्रित हो गया है साथ ही उसका मानवतावादी दृष्टिकोण संकुचित हो रहा है ।

भारतीय संस्कृति में आत्मतत्व शोधन को मानव जीवन का परम लक्ष्य माना है। आत्मचिंतन से उदात्तता की वृद्धि और सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ संपूर्ण चराचर में एकात्म भाव[22] स्थापित किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप भौतिक धरातल पर समन्वयात्मक भावना[23] का उदय होता है। द्वंद्वों को प्रकृतिस्थ मानकर अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ती है और द्वंद्वों में वैरुद्धता का दर्शन कम होता है। मानव-मानव के बीच और मानव-प्रकृति के मध्य समन्वय स्थापित होता है जो सर्वकल्याण भावना को अनुप्राणित करता है। परिणामतः सर्वहित समर्पण और सहिष्णुता का भाव जगत में स्थापित होता है एवं समाज में ग्रहणशीलता की प्रवृति बढ़ती है। आत्मावलोकन व्यक्ति के अंतर्मन में ऊर्जा प्रवाहित करता है जिससे नकारात्मक सोच सकारात्मक हो जाती है। व्यक्ति के साथ ही यह सकारात्मकता का भाव समाज में व्याप्त होता है। आज के वैश्विक नागरिक को न आत्मचिंतन का समय है न इच्छा, वह अपने उपभोग में लिप्त रहता है। एक के बाद एक तरंग की तरह अविराम रूप से उत्पन्न होती इच्छाओं की पूर्तीकरण में जुड़ता ही जाता है और व्यक्ति चेतना में उपभोग की प्रवृत्ति की मात्रा में निरंतर वृद्धि होती ही रहती है। व्यक्ति अर्थ और उपभोग में जकडकर निराशावाद के गर्त में अपने आपको पता है।

भारतीय संस्कृति में बुद्धि और भाव पर विशेष बल दिया गया है। बुद्धि की शुद्धता और निर्मलता पर जोर है और इसका प्रभाव आचरण पर परिलक्षित होता है द्य इसके कारण स्वभाव में अहंग्रस्तता एवं स्वार्थता पर नियंत्रण रखा जा सकता हैं। शुभ और अशुभ कर्म का प्रभाव मानव व्यक्तित्व पर पड़ता है। इसलिए भारतीय संस्कृति में योग और ध्यान पर बल दिया गया है और योगानुष्टान किया जाता है। पतंजलि योगसूत्र का उद्घोष है 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'[24]। भूमंडलीकरण और मंडीकरण के प्रभाव से मानव मन में भौतिक सुख साधनों के प्रति आसक्ति का प्रवर्धन होता हुआ दिखाई दे रहा है फलस्वरूप बुद्धि तार्किकता और वस्तु संग्रह में प्रवृत्त होती है। किसी भी हाल में अपनी कही हुई बात का समर्थन करना, अपनी अस्मिता को ऊंचा उठाने के लिए दूसरों की प्रतिष्ठा को कमत्तर करके दिखाने की चेष्टा जैसे अवांछित कार्यों में व्याप्त रहता है द्यमानव के पास न योग करने का समय है न ध्यान। उसका मन सैकड़ों कार्यों में अंतर्लिप्त है। बुद्धि की शुद्धता और निर्मलता पर ध्यान केंद्रित करना असंभव नहीं तो श्रमसाध्य जरूर हो गया है।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को ईश्वर समान पूजा जाता है। प्रत्येक चर और अचर तत्व में देवत्व का प्रतिपादन कर पृथ्वी को बचाने का संकल्प दिखाई देता है। पुराणों में प्रत्येक देवता के वाहन के रूप में जानवरों को रखकर प्राणी मात्र में एकात्मकता पर बल दिया गया है और प्रकारांतर से प्राणी जगत की सुरक्षा संपन्न की गई है । वृक्ष की पूजा, पंच तत्वों की पूजा आदि से संपूर्ण सृष्टि में देवत्व का दर्शन कराकर पर्यावरण की रक्षा हेतु प्रयत्न किया गया है। पाश्चात्य वस्तु केंद्रित संस्कृति की व्याप्ति के कारण

भारतीय उदात्त चिंतन में परिवर्तन का स्वर गूंज रहा है। मानव व्यक्ति केन्द्रित हो रहा है, औदात्य क्षर रहा है। बाजार केंद्रित मानसिकता के रहते प्रकृति का अंधाधुंध शोषण जारी है फलस्वरुप पर्यावरणीय संकट उपस्थित हुआ है ।

भारतीय संस्कृति ग्रहण की अपेक्षा त्याग में, लेने की अपेक्षा देने में, स्वार्थता की अपेक्षा पर दु:खकातरता में, स्व की अपेक्षा पर में, व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि में आनंद अनुभूतकरती है। भूमंडलीकरण ने इस उदात्त भावना को दरकिनार कर मानव में त्याग की अपेक्षा भोग में, देने की अपेक्षा लेने में, पर की अपेक्षा स्व में लिप्त किया है। नैतिक मूल्य सिक्कों में तुला जा रहा है। बुद्धि तत्व, हृदय तत्व, उदातत्ता सब बिकाऊ हो चला है। संपूर्ण मानवता अर्थ केंद्रित होती जा रही है। भौतिकवादी संस्कृति ने संपूर्ण मानवता से मानवतावादी गुणों का क्षरण किया है। वैश्विक ग्राम, सांस्कृतिक अस्तित्व को संकटग्रस्तता की ओर धकेल रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी इसकी गति को त्वरित कर रही है। दूरसंचार इसका यंत्र, विपणन इसका तंत्र और अर्थ इसका मूलभूत मंत्र बन चुका है। यदि सभी भारतीय मिलकर हमारी संस्कृति को बचा पाएंगे तो हमारी राष्ट्रीय अस्मिता ज्यों की त्यों रहने की संभावना रहेगी, नहीं तो न हमारी संस्कृति बचेगी न भाषा न हम। किसी ने ठीक ही कहा है - 'न हम भी बचेंगे न तुम भी बचोगे जब डूबेगी कश्ति तो डूबोगे सारे' / निष्कर्ष रूप में शंभुनाथ जी के शब्दों में कहा जा सकता है कि भारत का अस्तित्व उसकी बहुलतावादी संस्कृति के रचनात्मक नवोन्मेष में है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सर मोनियर विलियम्स: ए संस्कृतसंस्कृत डिक्शनरी पृ 1120
2. हिन्दी शब्द कोश खंड 12 पृ 14
3. हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृ 801-802
4. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर-भूमिका से
5. अशोक के फूल, हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ 64
6. हिन्दी साहित्य ज्ञान कोश-डॉ शंभुनाथ, पृ 3911
7. यजुर्वेद 32/8
8. सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि -श्रीमद् भगवत् गीता अध्याय 6/29
9. विश्वात्मन् विश्वसंभव -भीष्मस्तवराज 84, शान्ति पर्व, महाभारत ।
10. यं वै विश्वस्य कर्तारं जगतस्त स्थुषां पतिम् -वही 37
11. यस्मिन् सर्व यत:सर्वय: सर्वेसर्वतश्च य: - वही 83
12. सर्वदेवेश्वरं विष्णुं सर्वात्मानं हरिं प्रभुं- महाभारत, अनुस्मृति -15
13. चराचरगुरुर्विष्णु:- अनुस्मृति -23
14. सर्वात्मा सर्ववित् सवरू: सर्वज्ञ: सर्वभावन: -भीष्मस्तवराज: 28, शान्ति पर्व, महाभारत।
15. क्षिप्रं ही मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा- श्रीमद् भगवत् गीता अध्याय 4/12
16. श्रीमद् भगवत् गीता अध्याय 3/5
17. योगिनां कर्म कुर्वन्ति संड्गं त्यक्त्वात्म शुद्धये - श्रीमद् भगवत् गीता अध्याय 5/11
18. श्रीमद् भगवत् गीता- अध्याय 2/47
19. श्रीमद्भागवतमहापुराणदशम स्कंध 1/2
20. सत्यं परं धीमहि- श्रीमद्भागवत महापुराण 1/1
21. सुखदु: खेत समे -त्वा लाभालाभौ जयाजयौ -श्रीमद् भगवत् गीता अध्याय 2/38
22. सुहृदं सर्वभूतानां- श्रीमद् भगवत् गीता अध्याय 5/29
23. सर्व भूतहिते रता: - श्रीमद् भगवत् गीता अध्याय 5/25
24. पतंजलियोगसूत्र 1.2

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का युवाओं पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

प्रीती मौर्या

शोधार्थी, मालवीय शांति अनुसंधान केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

संक्षेपः-

युवा किसी भी राष्ट्र का आधार होते हैं और यही युवा राष्ट्र का भविष्य भी निर्धारित करते हैं, इसलिए इनके ऊपर पड़ने वाले अच्छे या बुरे प्रभावों से राष्ट्र या समाज प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। आज भारत में इन्टरनेट लगभग 48 करोड़ से ज्यादा लोगों की ताकत बन चुका है और इनमें सबसे अधिक युवा हैं। इलेक्ट्रानिक मीडिया का प्रयोग व्यक्तिगत सरोकारों से लेकर सामाजिक क्रान्ति लाने तक में हुआ है, एवं इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत आने वाले कुछ साधन ऐसे भी है कि जिनका उपयोग साक्षर तथा निरक्षर ग्रामीण तथा शहरी दोनों लोग कर सकते हैं, जैसे रेडियो और टेलीविजन आदि। यही कारण है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ग्रामीण क्षेत्रें में भी सूचनाओं के संचार का सशक्त माध्यम बना हुआ है। यह लोगों को एक ऐसा प्लेटफार्म उपलब्ध कराता है, जहाँ पर लोग अपनी आवाज उठा सकते हैं तथा समाज की आवाज को सुन भी सकते हैं। इससे लोग अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति पहले से अधिक जागरूक हुए हैं। इस शोध पत्र में इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संचार तथा सूचना जगत में आये परिवर्तन का विश्लेषण किया गया है तथा इस परिवर्तन की सार्थकता और महत्ता को वर्तमान समाज में तलाशने का प्रयास किया गया है। वर्तमान समय में इलेक्ट्रानिक मीडिया साम्राज्य में जो कुछ भी घटित हो रहा है, जैसे-इन्टरनेट का प्रभाव, विज्ञापन का प्रभाव, सिनेमा का प्रभाव, रेडियो तथा स्मार्टफोन आदि के प्रभावों पर भी प्रकाश डाला गया है तथा इनका विश्लेषण करके यह जानने का प्रयास किया गया है कि इनका समाज एवं युवाओं पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

मुख्य शब्दः-

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, वर्चुवल समाज, डिजिटल युग, इन्टरनेट, समाजशास्त्रीय प्रभाव, संचार, सूचना प्रौद्योगिकी, समाजीकरण।

प्रस्तावनाः-

आज के समाज में हम यह देख सकते हैं कि सूचना के प्रसारण में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया प्रगति का सूचक बन गया है, ऐसा नहीं है कि इसका लाभ और पहुँच केवल सुविधा सम्पन्न व्यक्ति विशेष को ही मिलती है, बल्कि इसकी पहुँच सभी आम या खास व्यक्ति तक होती है, इससे ग्रामीण और शहरी सभी क्षेत्र प्रभावित होते हैं, एवं इस मीडिया के अन्तर्गत इलेक्ट्रॉनिक से चलने वाले संचार के सभी यन्त्र आते हैं। इसका प्रयोग समाज के सूचनाओं के संचार तथा जागरूकता के लिए किया जाता है, यह लोगों को परिवर्तन के लिए इलेक्ट्रॉनिक स्क्रीन से सड़कों तक लाने लगा है, परिणामतः हम यह देख सकते हैं कि यह विभिन्न क्रान्तियों और आन्दोलनों के प्रचार तथा उन्हें बढ़ावा देने में सहयोग कर रहा

है। आज इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रयोग हर जगह हो रहा है, ग्रामों में, शहरी क्षेत्रों में, शिक्षा में, युवाओं के बीच तथा प्रोफेशनल्स और घरेलू महिलाओं तक इसका प्रयोग किया जा रहा है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया क्या है ?

इसके अन्तर्गत हम रेडियो, टी0वी0, इन्टरनेट, फैक्स, कम्प्यूटर, मोबाइल इत्यादि को शामिल करते हैं। इन सभी माध्यमों को हम अपने मनोरंजन के रूप में प्रयोग करते हैं तथा साथ ही साथ अपने ज्ञान में वृद्धि के लिए और संसार की सम्पूर्ण गतिविधियों से अवगत रहने के लिए करते हैं। आज गाँवों में भी टी0वी0, इन्टरनेट का प्रयोग तेजी से हो रहा है, हम गाँवों में मोबाइल तथा इन्टरनेट के प्रयोग को आसानी से देख सकते हैं, और यह सब ई-क्रान्ति की ही देन है। शहरों और कस्बों में तो बिजली, पानी, टेलीफोन आदि का भुगतान ई-मेल से कराया जाता है, जो इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी का ही चमत्कार है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से लाखों-करोड़ों लोगों के कार्य शीघ्र ही हो जाते हैं, जो समय धन और श्रम का अपव्यय रोकने के अचूक साधन है, महिलाओं, बुजुर्गो, विद्यार्थियों, कार्यालय कर्मचारियों, व्यापारियों और औद्योगिक घरानों, किसानों, कारीगरों, मजदूरों तथा अन्य गरीब वर्गो के लिए यह वैद्युत संसाधन वरदान बन गये हैं। घर बैठे आप जिन्दगी के हर रंग तथा अच्छे-बुरे पहलू से रूबरू हो जाते हैं और सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्रिया-कलापों की पारदर्शिता का भी अवलोकन सरलतापूर्वक कर सकते हैं।

युवाओं पर रेडियो, टेलीविजन, इन्टरनेट और मोबाइल का प्रभावः-

रेडियो ज्ञान और मनोरंजन का एक सर्वसुलभ इलेक्ट्रानिक माध्यम है तथा अधिकाशंतः यह दुनिया के प्रत्येक घरों में उपलब्ध है, इसका एक मुख्य बिन्दु यह है कि भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय है और कारण यह है कि इसे सुनने तथा समझने के लिए शिक्षित होना अनिवार्य नहीं है, इसे युवाओं का मनोरंजन तथा शैक्षिक कार्य दोनों ही होता है, क्योंकि इस पर बहुत से कार्यक्रम शैक्षिक दृष्टि से प्रसारित किये जाते हैं, रेडियो कई तरह के शैक्षिक व स्वास्थ्य संगठनों से जुड़े होते हैं और इन संगठनों से जुड़कर वे शैक्षिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान को प्रसारित करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक-रेडियो के कार्यक्रम का महत्वपूर्ण योगदान है, जैसे-स्कूल ब्राडकास्ट प्रोजेक्ट, इग्नू ऐ0आई0आर0 ब्राडकास्ट, यूनिवर्सिटी ब्राडकास्ट प्रोजेक्ट, लैग्वेज लर्निग प्रोग्राम आदि। अतः रेडियो दूरस्थ शिक्षा को भी बढ़ावा देता है तथा साथ ही साथ, स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा सरकार की नई योजनाओं की जानकारी, आँगनबाड़ी से सम्बन्धित सूचनाएं और महिलाओं के लिए स्थानीय भाषा में अनेक लाभकारी प्रोग्राम चलाये जाते हैं।

टेलीविजन का उदय भारत में समाचार तथा आवश्यक जानकारी के प्रसार के लिए हुआ था। भारत में सर्वप्रथम-दूरदर्शन-सितम्बर 1959 में आया, जब दिल्ली से इसका प्रसारण केवल 4 घंटे के लिए आरम्भ हुआ था। वर्ष 1991 में भारत ने अन्तरिक्ष में अपने सेटेलाइट स्थापित करके निजी चैनलों को भी प्रसारण की आज्ञा दी, इसके बाद तो भारतीय आकाश में चैनलों की बाढ़ सी आ गयी और आज लगभग 500 चैनल विभिन्न भाषाओं में अपने कार्यक्रम का प्रसारण कर रहे हैं। टेलीविजन के माध्यम से युवा दुनिया के हर संस्कृति से जुड़ रहे हैं, किसी भी स्थानीय परम्परा या संस्कृति का प्रभाव-वैश्विक रूप लिए हुए होता है, जो युवाओं को दुनिया को देखने और समझने का विस्तृत नजरिया देता है, कोई भी परम्परा या संस्कृति अब किसी विशेष क्षेत्र तक सीमित नहीं रह गयी है, इसका दायरा विस्तृत हो गया है, जो समाज के एक बड़े हिस्से को प्रभावित करता है, यह सब टेलीविजन के प्रसार का प्रभाव है, टेलीविजन के माध्यम से युवाओं में शैक्षिक तथा राजनीतिक जागरूकता भी बढ़ी है, अब वे राजनीति में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं, हर पार्टी एक युवा संगठन या युवा मोर्चा बनाने लगी है तथा युवाओं में अपने राजनीतिक प्रतिनिधि के अच्छे और बुरे कार्यो को लेकर जागरूकता बढ़ी है और वे राजनीतिक कार्यो में ज्यादा से ज्यादा सहभागिता दर्ज करा रहे हैं। शैक्षिक दृष्टि से टेलीविजन पर विभिन्न प्रोग्राम प्रसारित किये जाते हैं जो कुछ शैक्षिक चैनलों के माध्यम से होता है, जैसे- लोकसभा, दुनिया आज की, वर्ल्ड टूडे, डिस्कवरी, नेशनल जियोग्राफी, एनीमल प्लैनेट, हिस्ट्री इत्यादि।

मोबाइल और इन्टरनेट के माध्यम से वर्तमान समाज-वैश्विक हो गया है। मोबाइल और इन्टरनेट वर्तमान युवाओं के विकास और समाजीकरण को आकार दे रहे हैं। वर्तमान समय में लगभग 483 मीलियन इन्टरनेट उपयोगकर्ता भारत में हैं। इससे युवा सरल

संचार व्यवस्था से जुड़े रहते हैं, इन्टरनेट से समाज में सूचनाएं शीघ्र ही प्रसारित हो जाती है तथा इसे कोई भी आसानी से उपयोग कर सकता है, तथा इससे युवा हमेशा नई सूचनाओं से अवगत रहते हैं। इन्टरनेट से तथ्य तथा सामग्री और आँकड़ों को ढूँढ़ने में बहुत आसानी होती है, क्योंकि इन्टरनेट पर बहुत से नये-नये आँकड़े उपलब्ध रहते हैं, जिसमें सम्पूर्ण विश्व से सम्बन्धित तथ्य शामिल होते हैं तथा इससे युवा नई जीवन शैली, फैशन, फिल्मों, विज्ञापनों आदि से जुड़ते हैं और अपनी समझ को परखते हैं तथा उपलब्ध ज्ञान का विश्लेषण करते हैं। आज फेसबुक, व्हाट्सप्प और ट्वीटर के द्वारा युवा समाज से हमेशा जुड़े रहते हैं और समाज के ज्यादा करीब होते हैं और सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वह अपनी जगह पर स्थित होते हैं, वहीं दूसरी तरफ हम यह भी देखते हैं कि इन्टरनेट के प्रभाव के द्वारा युवा वर्ग एक नई तरफ की आभासी दुनिया (वर्चुवल सोसाइटी) से जुड़ते जा रहे हैं तथा अपने प्राथमिक सम्बन्धों और वास्तविक समाज से दूर होते चले जा रहे हैं, इससे परिवार और समाज में औपचारिकता को बढ़ावा मिला है तथा यह युवाओं को ज्ञान और समझ के लिए दूसरों पर निर्भर कर रहा है, परन्तु इन्टरनेट के द्वारा समाज तथा युवाओं के मध्य जो अन्तर्क्रिया होती है वह महत्वपूर्ण है, जिससे युवाओं में नवाचार और रचनात्मकता आती है। इलेक्ट्रानिक मीडिया के द्वारा वर्तमान समय में सूचना का लोकतंत्रीकरण हुआ है, जहाँ सूचनाएं स्थानीय और वैश्विक दहलीज को लांघते हुए सम्पूर्ण विश्व में समान रूप से प्रसारित हो जाती है।

इसका डिजिटल रूप सोशल मीडिया वर्तमान समय में सूचना और संचार का प्रचलित तथा सर्वश्रेष्ठ माध्यम बन गया है, जो विभिन्न तरह के आन्दोलनों और पहल को आगे बढ़ाने का बेहतरीन प्लेटफार्म साबित हो रहा है, हालांकि इससे बहुत सी भ्रामक सूचनाएं भी प्रसारित हो जाती है, जिससे लोग भ्रमित हो जाते हैं और इसका परिणाम हमें प्रायः साम्प्रदायिक दंगों व हिंसा के रूप में देखने को मिलता है। परन्तु इसके बावजूद भी समाज में इसकी महत्ता बनी हुई है, क्योंकि समस्या संचार के माध्यम में नहीं है, बल्कि समस्या सूचना प्रसारित करने वाले स्त्रोतों में होती है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का शैक्षिक क्षेत्र में सुधार लाने तथा उसकी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए भी उपयोग किया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2017 में आरम्भ की गयी दो शैक्षिक योजनाएं स्वयं एवं स्वयंप्रभा डिजिटल शिक्षा का उत्कृष्ट उदाहरण पेश करती है।

इस पहल का मुख्य उद्देश्य समाज में ई-शिक्षा को बढ़ावा देना तथा 2020 तक उच्च शिक्षा में दाखिले का अनुपात 24.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 करना है। स्वयंप्रभा के अन्तर्गत यू0जी0सी0, इग्नू, एन0सी0ई0आर0टी0, आई0आई0टी0, सी0ई0सी0, एन0पी0टी0ई0एल0 संस्थानों के माध्यम से शैक्षिक सामग्री उपलब्ध करायी जायेगी। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले तथा जहाँ पर इन्टरनेट सुचारू रूप से कार्य नहीं करता है, वहाँ पर भी गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा को पहुँचाया जा सकता है। इससे दूरस्थ शिक्षा (डिस्टेन्स लर्निंग) को बढ़ावा मिल रहा है। इस इलेक्ट्रानिक मीडिया साम्राज्य में व्यक्ति स्वयं ही सूचनाओं का उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों है इससे सुचना का लोकतंत्रीकरण तो हुआ है, परन्तु यही वजह कभी-कभी संघर्ष का कारण बनती है। स्पष्ट है कि मीडिया का पारम्परिक माध्यम हो या डिजिटल माध्यम दोनों ही समाज की प्रगति को रफ्तार दे रहे हैं, परन्तु यह कभी-कभी विघटनकारी भी साबित हुए हैं, इसलिए यह पूर्णतः उपयोगकर्ता पर निर्भर करता है कि वह इसका उपयोग कैसे करता है।

सिनेमा जगत और युवाः-

इलेक्ट्रानिक मीडिया के विकास और प्रसार के कारण सूचना जगत में उल्लेखनीय क्रान्ति हुई है, तथा इससे सिनेमा जगत में सुधार, विकास तथा वृद्धि हुई है। भारत में फिल्में मनोरंजन का लोकप्रिय साधन है और मुख्यतः फिल्मों से सबसे ज्यादा युवा ही प्रभावित होते हैं, फिल्मों के द्वारा युवाओं पर अच्छे तथा बुरे दोनों ही प्रभाव पड़ रहे हैं। फिल्में जहाँ अपनी कहानियों के द्वारा समाज में अच्छे तथा जागरूक करने वाले संदेश देती है, वहीं बहुत सी बुराईयों तथा अपराधों की जड़ भी साबित हुई है। आज के युवाओं के आदर्श कोई महापुरूष या देशभक्त न होकर फिल्मों के नायक व नायिका हो गये हैं, प्रायः फिल्मों में दिखाई जाने वाले बिन्दुओं को युवा वास्तविक जीवन में अपनाने लगते हैं (फिल्मों में दिखाये जाने वाले बहुत से तथ्य केवल कोर-कल्पना होते हैं), इससे समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है, फिल्मों में युवा जिस संस्कृति तथा सभ्यता को देखते हैं, उसे ही वास्तविक जीवन में लागू कर लेते हैं, प्रायः इसमें बहुत से नकारात्मक तथ्य होते हैं, जिससे युवाओं का नकारात्मक समाजीकरण होने लगता है, वहीं पर कुछ फिल्में

ऐसी है जो सामाजिक बुराईयों व असमानता के खिलाफ आवाज उठाती है और जनमानस के चेतना को प्रभावित करती है और उसका सकारात्मक परिणाम भी समाज में दिखाई देता है। वर्तमान समय में ऐसी बहुत सी फ़िल्में हैं, जो समाज के ज्वलंत मुद्दों पर बनी है- जैसे-तारें जमी पर (2007), थ्री इंडियट्स (2009), रंग दे बसन्ती (2006), चक दे इण्डिया (2007), पी0के0 (2016) इत्यादि। इन फिल्मों का समाज पर एक सकारात्मक प्रभाव रहा और यह युवाओं को प्रगति तथा विकासोन्मुख संदेश देने में सफल रही।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का वैश्विक प्रभाव:-

तकनीक आज पूरे विश्व का प्रतिनिधित्व कर रही है, जिस कारण छोटी आवश्यकताओं से लेकर बड़ी जरूरतों के लिए लोग तकनीक पर निर्भर हो गये हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से युवा पीढ़ी में बहुत से परिवर्तन आये हैं और ये परिवर्तन बहुत मूलभूत और महत्वपूर्ण है, जिससे सिर्फ युवा ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण संस्कृति और देश प्रभावित हो रहा है, इसके द्वारा आज हर संस्कृति, हर नियम का सार्वभौमीकरण होता जा रहा है, जिससे किसी भी संस्कृति या नियम का दायरा अब संकुचित नहीं रह गया है, बल्कि अब वह विस्तृत रूप से फैल चुका है। इसी अर्थ में मार्शल मैक्लूहान ने कहा है कि आज पूरा विश्व एक गाँव बनता जा रहा है। इसके द्वारा आज विभिन्न देशों के बीच की दुरियाँ कम हुई हैं, उनकी सीमाएं समाप्त हुई हैं तथा दुनिया के देश करीब आ रहे हैं। टेक्नोलाजी के द्वारा परिवहन के साधनो में बदलाव आया है, जहाँ प्राचीन समय में परिवहन के लिए मुख्यत: जानवरों का प्रयोग किया जाता था, वहीं आज साइकिल, मोटरसाइकिल, मोटरगाड़ी और जलमार्ग तथा हवाई मार्ग का उपयोग किया जाने लगा है, और यह सब इलेक्ट्रानिकी के वैश्वीकरण के द्वारा ही संभव हो पा रहा है। मनोरंजन तथा विज्ञापन के क्षेत्रों में वैश्विक प्रभाव का समावेश दिखाई देता है, जिससे हमारी जीवन शैली का आकार परिवर्तित हो रहा है। वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण हम एक डिजिटल अन्तर्क्रिया को साझा करत हैं तथा डिजिटल समाज का निर्माण करते हैं। वर्तमान सामाजिक अन्तर्क्रिया में पिक्सेल (Pixel) और बाइटस (Bytes) का बोलबाला है तथा अधिक से अधिक तथ्य व आँकड़ों का संग्रहण एक छोटी सी चीप में हो जाता है, इलेक्ट्रानिकी की यह उपलब्धि किसी देश-विदेश की उपलब्धि न होकर एक वैश्विक उपलब्धि है जो बहुत से राष्ट्रों के सामूहिक प्रयास के फलस्वरूप संभव हो पाया है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का समाज-शास्त्रीय विश्लेषण:-

इलेक्ट्रानिक मीडिया के द्वारा सामाजिक अन्तर्क्रिया का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, इसके माध्यम से सामाजिक अन्तर्क्रिया वृहत पैमाने पर किया जाता है, क्योंकि यह पूरे समाज में फैला होता है। समाज शास्त्रीय दृष्टि से इसका महत्व यह है कि समाज के लोगों के बीच सामाजिक सूचनाओं का संचार और प्रसार बहुत तीव्र गति से किया जाता है, जिससे समाज में रहने वाले लोगों में जागरूकता आती तथा नवाचार का प्रसार होता है, यह लोगों को आपस में जोड़ने तथा उनके बीच सम्बन्धों को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इसके माध्यम से लोग आनलाइन समाज से जुड़े रहते हैं, इलेक्ट्रानिक मीडिया समाजीकरण की प्रक्रिया में सहायक है, परन्तु यह नकारात्मक ओर सकारात्मक दोनों रूपों में होता है, क्योंकि यह एक आनलाइन समाजीकरण होता है। यह विभिन्न सामाजिक संस्कृतियों तथा सभ्यता के संरक्षण में भी सहायता करता है, लुप्त-होती या कमजोर होती संस्कृतियों के प्रचार के द्वारा उसका महत्व और संरक्षण सम्बन्धी तथ्यों को प्रसारित करने में भी इलेक्ट्रानिक मीडिया मददगार साबित हो रहा है। सकारात्मक तथ्यों के होते हुए भी समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से इलेक्ट्रानिक मीडिया से समाज में बहुत से परिवर्तन होते हैं, जो समाज के पारम्परिक रूप से भिन्न है, जैसे- प्राथमिक सम्बन्धों के महत्व में कमी आ रही है, क्योंकि लोग वर्चुवल समाज में अधिक विश्वास करने लगे हैं तथा सामाजिक संस्थाओं के महत्व में भी कमी आयी है, क्योंकि लोग तकनीक पर निर्भर होते चले जा रहे हैं तथा अपना निर्णय खुद ही करने में समर्थ हैं, तो सामाजिक संस्थाओं को अनदेखा करते जा रहे हैं। वर्तमान समय में तकनीक ने बच्चों के बचपन पर प्रहार किया है, वे प्राकृतिक वातावरण में शिक्षा नहीं ले पाते हैं, वे तकनीक पर निर्भर हो जाते हैं तथा समय से पहले ही बड़े हो जाते हैं।

निष्कर्षः-

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्तमान समय में युवाओं पर इलेक्ट्रानिक मीडिया के प्रभावों को तथा इसके द्वारा समाज कैसे प्रभावित हो रहा है, का विवरण और विश्लेषण किया गया है, आज का युवा तकनीक जनित सेवाओं का भरपूर उपयोग कर रहा है, इसके द्वारा उन पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ रहे हैं। आधुनिक समय में इलेक्ट्रानिकी एवं तकनीक का बोलबाला है यह युग तकनीक और इलेक्ट्रानिकी का युग है, आज तकनीक का इतना विकास हो गया है कि सारा विश्व एक गाँव बन गया है। प्राचीन समय में जिस समाज में ठहराव दिखाई देता था, आज उसी समाज को गति एवं रफ्तार मिल गयी है, रेडियो, टेलीविजन तथा इन्टरनेट ने सामाजिक क्रान्ति ला दी है। सरकार ने भी इलेक्ट्रानिक मीडिया का प्रयोग अपनी नीतियों तथा विचारों और कार्यक्रमों को आम जनता तक पहुँचाने तथा इसमें पारदर्शिता लाने के लिए किया है। इतने लाभ के बावजूद भी कुछ ऐसे असामाजिक लोग है, जो इन साधनों का दुरूपयोग करते हैं तथा इससे किसी के निजी जीवन में दखल देते हैं और उसकी निजता का हनन करते हैं और अपराध फैलाते है। तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर समग्र रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि रेडियो, टेलीविजन, स्मार्टफोन, इन्टरनेट आदि माध्यमों के द्वारा समाज में संचार व्यवस्था को गति मिली है, जिससे कोई भी संचार की क्रिया बहुत ही सरलता से हो जाती है, यह अन्तर्क्रिया का सर्वश्रेष्ठ माध्यम बन चुका है, इन माध्यमों से समाज के विकास को दिशा और गति मिली है, परन्तु साथ ही साथ इसकी कुछ बुराईयाँ भी हैं, जो समाज को विखण्डित कर रही हैं, इंटरनेट के माध्यम से समाज में साम्प्रदायिक दंगे तथा हिंसा में वृद्धि हो रही हैं जो सामाजिक एकता और एकीकरण के लिए एक खतरा बनी हुई है। एक तरु जहाँ इन्टरनेट माध्यमों के द्वारा शैक्षिक कार्यो में प्रगति आयी है, सामाजिक विकास की प्रक्रिया को रफ्तार मिली है, वहीं पर इसके अत्यधिक प्रयोग के कारण समाज के लोग तथा युवा समाज से ही दूर हो गये हैं तथा आभासी समाज (वर्चुअल सोसाइटी) पर निर्भर होते जा रहे हैं। यह साइबर क्राइम को भी बढ़ावा दे रहा है, इससे साइबर अपराध, बाल अपराध तथा और भी विभिन्न सामाजिक बुराईयों को बढ़ावा मिल रहा है। अतः यह स्पष्ट है कि इलेक्ट्रानिक मीडिया के जहाँ एक तरफ सकारात्मक पक्ष है, तो वहीं दूसरी तरफ कुछ नकारात्मक पहलू भी है, जिससे युवा और समाज दोनों प्रभावित हो रहे हैं। नकारात्मक पहलू के अन्तर्गत वर्तमान समय में साइबर क्राइम एक बड़ी चुनौती बना हुआ है, क्योंकि साइबर अपराधों पर नियंत्रण एवं निगरानी रख पाना दुश्वारियों भरा काम हैं, चूँकि ये नये किस्म के अपराध हैं, इसलिए इनकी कानूनी पकड़ भी मजबूत नहीं हो पायी है तथा दूसरी तरफ इसका क्षेत्र पूरा विश्व है, बहुत दूर किसी देश में बैठा हुआ अपराधी भी अपराध कर सकता है, अपराधिक दायित्व सुनिश्चित करने में भी मुश्किलें आती हैं, क्योंकि इसमें बेवसाइड, इन्टरनेट सर्विस प्रोवाइडर तथा व्यक्ति विशेष सबकी सहभागिता रहती है। अतः इन नकारात्मक पहलूओं से समाज में असंतुलन तो उत्पन्न हुआ है, परन्तु हम इलेक्ट्रानिक मीडिया के सभी गुणात्मक तथा सकारात्मक पक्षों को भी अनदेखा नहीं कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंत, अतुल, *शिक्षा में सोशल मीडिया रूमदद अथवा बाधा*, योजना 58, अंक 5, 2013:15-16.
2. अरोड़ा, वेद प्रकाश. *इलेक्ट्रॉनिकी और सुचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदम.* योजना 56, अंक 8, 2012: 19-20.
3. ओझा, दुर्गादत्तण *संचार क्रांति एवं सुचना प्रौद्योगिकी का भविष्य.* योजना 56, अंक 8, 2012 : 31-33.
4. Macnamara Jim, "21st Century Media Revolution: Emergent communication Practices', New York: Peter Lang 2010
5. Thussu Daya Kishan: "Electronic Empires: Global Media and Local Resistance", Arnald, Member Headline Group. P. 338 Eastern Road, London NW.3BH

आर्थिक विकास में शिक्षा का योगदानः अमरपुर प्रखण्ड (बांका जिला) के विशेष संदर्भ में

अनुज कुमार

रिसर्च स्कॉलर, यूनिवर्सिटी डिपार्टमेंट ऑफ इकोनॉमिक, टी. एम. भागलपुर यूनिवर्सिटी, बिहार

सारांश

शिक्षा आर्थिक अभिवृद्धि का मूलाधार है। यह सुयोग्य मानव शक्ति, सामाजिक एवं आर्थिक विकास तथा विकासात्मक कार्यकलापों के दृष्टिकोण के सृजन का आवश्यक घटक है। शिक्षा मानव के लिये निवेश है क्योकि शिक्षित मानव आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह विचारधारा जब से शिक्षा एवं अर्थशास्त्र में प्रबल हुई, तभी से, शिक्षा के द्वारा आर्थिक अभिवृद्धि एक विवेचना का प्रकरण बना। इस विशय के विश्लेषण से अनेक प्रश्न उभर कर सामने आते है। जैसे किसी देश की शिक्षा पर कितना विनियोग किया जाय। यह राशि किस प्रकार संग्रह किया जाय? क्या शिक्षा पर किया गया व्यय विनियोग है? यदि यह विनियोग है तो दूसरे निवेशों की अपेक्षा इससे, कितना लाभ होता है। विगत तीन दशकों से यह विषय अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं लोक प्रिय हो गया है।

मुख्य शब्दः शैक्षिक अर्थशास्त्र, अभौतिक, अधिवक्ता, मानवपूँजी, आर्थिक अभिवृद्धि, शिक्षक प्रशासक

विषय-वस्तु

वास्तव में शिक्षा एवं आर्थिक विकास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और किसी एक के अभाव में दूसरा अपूर्ण एवं एकांगी है। आज विश्व के दोशों में हो रही औद्यौगिक एक तकनीकी विकास से, शिक्षित एवं सुयोग्य व्यक्तियों की मांग उत्तरोत्तर बढ़ रही है क्योकि नियोजित आर्थिक विकास के लिये कुशल जनशक्ति आवश्यक है। भारत में भी, पंचवर्षीय योजनाओं के वृहद एवं दूरगामी आर्थिक सामाजिक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा स्रुलता हेतु, अपेक्षित एवं विशिष्ट प्रौद्योगिकी औार तकनीकी ज्ञान से युक्त व्यक्तियों की सुलभता हेतु, सामान्य शैक्षिक शालाओं के साथ, विशिष्ट स्कूल, कालेज संस्थान एवं विश्वविद्यालय स्थापित किये गये है, और किये जा रहे हैं। शैक्षिक अर्थशास्त्र के इस शीर्षक की मूल अवधारणा यही है कि शिक्षा के द्वारा मान पूँजी सृजित कर आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया जाय तथा निर्धनता बेरोजगारी तथा आर्थिक विकास जैसी समस्याओं के लिये उचित नीति-निर्धारण किया जाय।

''अर्थशास्त्र की शब्दावली में कोई भी चीज, जो मानव की आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है एक वस्तु है'' वस्तुओं का उत्पादन मूलत : मानव की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिये ही किया जाता है। आर्थिक वस्तु के दो रूप हैं-एक भौतिक, दूसरा-अभौतिक। शिक्षा अभौतिक आर्थिक वस्तु है क्योंकि अभौतिक आर्थिक वस्तु प्रदत्त की गयी सेवायें होती है। जिससे मानवीय आवश्यकता की पूर्ति होती है। अभौतिक वस्तुओं का उत्पादन, देश की सभ्यता के विकास तथा आर्थिक प्रगति के साथ बढता है।

अभौतिक वस्तु के रूप में शिक्षा की वृद्धि प्रगति अर्थात शैक्षिक विकास की अपरिमित सम्भावनायें होती हैं । भौतिक वस्तुओं के उपभोग की एक सीमा प्रत्येक व्यक्ति की हैं। भौतिक वस्तुओं के उपभोग की एक सीमा प्रत्येक व्यक्ति की है किन्तु वैयक्तिक विभिन्नताओं के अध्ययन शिक्षा के उपभोग या ग्रहण करने की असीम क्षमता सामान्यत : व्यक्ति में होती है। शिक्षा उत्पादक एवं उपभोग वस्तु दोनों ही है।

जब ज्ञान प्राप्त करने एवं शिक्षित होने का उद्देश्य व्यक्ति के अपने जीवन को समृद्ध, सुसंस्कृत एवं सुयोग्य बनाना तथा अपनी क्षमताओं एवं अंर्तनिहित शक्तियों का अधिकतम विकास करना होता है तब शिक्षा उपभोग हैं। किन्तु जब शैक्षिक प्रयोजन, शिक्षक प्रशासक, अधिवक्ता, डाक्टर, इन्जीनियर या किसी विशिष्ट पेशे हेतु निपुण बनना है और इसका उद्देय भौतिक या अभौतिक वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करना है,तब यह उत्पादक है। पूँजी, आधुनिक उत्पादन का जीवन रक्त है। यह आर्थिक वृद्धि एवं विकास की आवश्यक शर्त अत्यन्त महत्वपूर्ण उपादन है। इसके बिना आर्थिक विकास सम्भव नहीं है। पूँजी हेतु शिक्षा, मानव पर निवेश है। जब आर्थिक प्रगति हेतु पूँजी अपरिहार्य है, तब मानव पूँजी, जो शिक्षा से सृजित होती है, का महत्व आर्थिक अभिवृद्धि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाता है और यह यथार्थ है कि, मानवपूँजी की गुणवत्ता उत्पादन के परिणाम एवं कोटि, दोनों को ही अधिक सीमा तक प्रभावित करती है। प्रारम्भ से ही अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास में शिक्षा की उपादेयता को स्वीकारा है। अर्थशास्त्र के जनक एडम स्मिथ 1776 से लेकर प्रख्यात प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री एल्फ्रेड मार्शल तथा आधुनिक अर्थशास्त्री एवं शिक्षाविद् मानव समाज की खुशहाली, सम्पन्नता एवं आर्थिक विकास में शिक्षा और शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता को स्वीकार किये है। मार्शल ने लिखा है ''शिक्षा एक सामान्य कार्य करने वाले को भी महान अप्रत्यक्ष लाभ प्रदान करता है। यह उसके मानसिक क्रियाकलाप को उकसाता है, उसके जिज्ञासा की आदत को बढ़ाता है यह उसके सामान्य कार्य में अधिक वुद्धिमान, अधिक तत्पर, अधिक विश्वसनीय बनाता है। यह कार्यविधि में उसके जीवन के सुर को ऊँचा करता है। यह भौतिक धन के उत्पादन हेतु एक विश्वसनीय साधन है।

अभी हाल के एक अध्ययन से वीना डी0आर0 ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि ''शिक्षा स्वयं में आर्थिक विकास हेतु महत्वपूर्ण है। इतना ही नहीं यह देश की सुलभ जन शक्ति की प्रकृति एवं प्रतिरूप सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण है''। इस तरह स्पष्ट है कि प्रारम्भ से लेकर आज तक के प्रमुख अर्थशास्त्री तथा आधुनिक शिक्षाविद् इससे सहमत हैं कि आर्थिक अभिवृद्धि एवं विकासात्मक कार्यकलापों के दृष्टिकोण के सृजन में शिक्षा मुख्य कारक है। इससे लोगों की क्षमता एवं कुशलता में वृद्धि होती है, अर्थव्यवस्था का विकास होता है और विकासात्मक कार्यकलापों हेतु प्रगतिशील अभिवृत्ति का निर्माण होता है।

मानव पूँजी में तकनीकि ज्ञान, कौशल एवं उत्पादन से सम्बन्धित विशिष्ट प्रौद्योगिकी तथा उत्पादक एवं उपयोगी ज्ञान होने से देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का विकास होता है। उत्पादकता में वृद्धि, अधिक कुशल जन शक्ति, श्रम संघटन तथा कार्य एवं जीवन के प्रति स्वस्थ और परिवर्तित दृष्टिकोण आदि शिक्षा के आर्थिक प्रतिलाभ है। शिक्षा भौतिक एवं अभौतिक दोनों प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन एवं उपभोग हेतु समाज को तैयार करती है। किसी देश की प्रगति केवल प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता एवं सुलभता पर ही नहीं वरन् शिक्षित, कुशल एवं अभिनव तकनालजी के ज्ञान से युक्त जन शक्ति पर निर्भर करती है। जिनमें संसाधनों के उपयोग एवं इसे मानव की सेवाओं हेतु उपयोग करने की क्षमता होती है। ब्लाग ने लिखा है – ''उन सभी अर्थव्यवस्थाओं की अपेक्षा औसतन ऊॅची आय आर्जित करते है।

आज यह अत्यधिक स्पष्ट है कि मानव संसाधन का विकास समाज एवं देश के सभी नागरिकों के कला कौशल, क्षमता एवं ज्ञान के विकास की प्रक्रिया है। शिक्षा के बिना मानव संसाधन का विकास असम्भव है। आर्थिक विकास की दर को मानव शक्ति से ही गति मिलती है। आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिये एक वांछनीय बात, युगानुरूप बदलते सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में, परम्परागत मान्यताओं, प्रथाओं रूढ़ियो एवं दृष्टिकोणों में परिवर्द्धन एवं संशोधन आवश्यक होता हैं। शिक्षा से ही यह सम्भव है क्योकि विचारों में परिवर्तन केवल शिक्षा द्वारा ही होता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि अंतिम रूप से समाज एवं देश का आर्थिक विकास, मानव प्रयास का परिणाम होता है और जब तक कोई देश अपनी मानव शक्ति का विकास नहीं करता तब तक वहॉ काई आर्थिक प्रगति नहीं होगी और यहॉ तक कि राजनैतिक विधा भी लोक कल्याणकारी नहीं बन पायेगी। मानव संसाधन का विकास, शिक्षा की मात्रा एवं गुणवत्ता, तकनीकी ज्ञान, अच्छा स्वस्थ्य एवं उन्नत जीवन शैली से अभिव्यक्त होती है। हरविसन फेडरिक एण्ड मेयर चार्ल्स ए0 ने लिखा है– ''वास्तव में यदि कोई देश अपने मानव संसाधनों का विकास करने में सक्षम

है तो यह कुछ और नहीं बन सकता, चाहे यह आधुकिन राजनैतिक व्यवस्था हो या राष्ट्रीय एकता की भावना या समृद्धि अर्थव्यवस्था''। वास्तव में शिक्षा जो ज्ञान एवं दीक्षा है, शक्ति है और शक्ति ही दशाओं एवं व्यवस्थाओं में परिवर्तन ला सकती है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने लिखा है- ''माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य देश की युवाओं को अच्छे नागरिक बनते हेतु शिक्षित करना है, जो अपने देश की सामाजिक पुर्नरचना एवं आर्थिक विकास में अपनी भूमिका प्रभावी ढ़ंग से अदा कर सकें। भारत में आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिये चल रही पंचवर्षीय योजनाओं ने भी आर्थिक वृद्धि में शिक्षा को उल्लेखनीय कारक माना है। तृतीस पंचवर्षीय योजना (1961-66) में उल्लिखित बातें प्रासंगिक है। -स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं समान अवसरों के मूल्यों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था निर्मित करने तथा त्वरित आर्थिक विकास एवं तकनीकि प्रगति प्राप्त करने में शिक्षा सर्वाधिक महतवपूर्ण एक घटक है। भारत का राष्ट्रीय शिक्षा आयोग समग्र भारत के भावी स्वरूप की आधारशिला शिक्षा को ही मानता हैं। ''भारत का भावी भाग्य इसके अध्ययन कक्षों में निर्मित हो रहा है। हमारे इस विश्वास में कोई अतिश्योक्ति नहीं है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर आधारित आज की विश्व में, शिक्षा हीं लोगों की समृद्धि, कल्याण एवं सुरक्षा के स्तर को निर्धारित करती है। राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण के महान साहस में, जिसका उद्देश्य अपने लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा करना है, हमारी सफलता उन व्यक्तियों की संख्या एवं गुणवत्ता पर निर्भर है जो आज के विद्यालयों एवं कालेजों से निकल रहे है। आर्थिक अभिवृद्धि एवं प्रगतिशील दृष्टिकाण के निर्माण में शिक्षा की उपयोगिता को सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985-90 भी स्पष्ट रूप से दर्शाता है। उसमें उल्लिखित है कि- किसी विकास की व्यूह रचना में, विशेषकर अधिक जनवसंख्या वाले देश में मानव संसाधन-विकास की भूमिका भूमिका अनिवार्य रूप से निर्दिष्ट की जानी चाहिये। अच्छी प्रकार से शिक्षित एवं दीक्षित, एक बड़ी जनसंख्या स्वयं, इच्छित दिशाओं में सामाजिक परिवर्तन सुनिश्चित करने एवं आर्थिक अभिवृद्धि को तीव्र करने में सहायक है। शिक्षा प्राथमिक कौशलों एवं योग्यताओं को विकसित करती है और दीर्धकालीन तथा तत्कालीन राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों को पूरा करने मुं सहायक मूल व्यवस्थाओं को तीव्र करती है यही कारण है कि केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों पंचवर्षीय योजनाओं में शैक्षिक कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दे रही है। शैक्षिक अवसरों की समानता हेतु पिछड़े कम विकसित एवं आदिवासी क्षेत्रों को प्राथमिकतायें दी गयी है।

आर्थिक प्रगति के साथ राष्ट्रीय आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, एवं लक्ष्यों की प्राप्ति तथा समाज के आधुनिककरण एवं विकास हेतु शिक्षा को सशक्त माध्यम बनाया गया है। कोठारी आयोग 1964 -66 का मानना है कि समाज का व्यापक रूपान्तरण, परिवर्तन एवं विकास शिक्षा से ही सम्भव है। ''यदि गहन रूप से परिवर्तन, बिना हिंसा की करनी है और उसके लिये भी आवश्यक होगी तो केवल एक उपकरण है, एक ही उपकरण केवल, शिक्षा, जिसका उपयोग किया जा सकता है। अन्य बाते भी इसमें सहायक हो सकती हैं और कभी -कभी उनके स्पष्ट परिणाम भी परिलक्षित हुये है। किन्तु वास्तव में, राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली ही एक ऐसी विधा है जो जन-जन तक पहुॅच सकती है।

वास्तव में भौतिक, प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों के विकास, आर्थिक अभिवृद्धि की पृष्ठभूमि मे होती है। इसमें भी आर्थिक विकास की दृष्टि से संसाधनों का विकास भौतिक संसाधन-विकास से ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योकि भौतिक संसाधन विकास किसी साध्य के साधन हैं जबकि मानव संसाधनों का विकास स्वयं में साधन है तथा इसके विकास के बिना भौतिक संसाधन-विकास सम्भव नहीं है। इस प्रकार मानव शक्ति ही उत्पादन का वासततिक श्रोत है। आर्थिक अभिवृद्धि का मूलाधार-उत्कृष्ट जीवन की इच्छा एवं जीवन यापन की कला शिक्षा द्वारा ही आती है। शिक्षित व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता को पहचानता है तथा स्वयं की आय बढ़ाकर राष्ट्र का आर्थिक विकास करता हैं। आर्थिक प्रगति का एक आधार उत्पादन की नयी तकनीक का संज्ञान एवं उनका प्रयोग होता है। शिक्षा से ही ये कार्य होते है। इस तरह शिक्षा आर्थिक विकास की शर्त के साथ आर्थिक दृष्टिकोण सृजन करने के कारण, उसके लिये प्रेरक भी है।

प्रभावी आर्थिक विकास के लिये एक नये परिवेश -विश्वास के परिवेश की आवश्यकता है। प्रकृति एवं प्राकृतिक धारणाओं को समझने एवं उनका सामना करने का साहस, भी शिक्षा द्वारा आता हैं अंधविश्वास, भाग्यवाद, आत्म विश्वास की कमी, प्रकृति का भय जो पूर्व औद्योगिक क्रन्ति युगीन विशेषतायें थी, शिक्षा से ही दूर हुयी। अत: आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने के लिये तथा इसे गति देने के लिये अर्थव्यवस्था का प्रत्येग सदस्य शिक्षित होना चाहिये।

यही कारण है कि भारत सरकार एवं प्रदेश सरकारें पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से, प्रत्येक वर्ष ज्यादा राशि पर व्यय कर रही है। अत: यह परीक्षण करना समीचीन होगा कि क्या विभिन्न शिक्षित श्रेणियों के व्यक्तियों द्वारा आर्थिक विकास प्रभावित होता है।

प्रतिदर्श अध्ययन :

शिक्षण संस्थाओं की ग्रामीण विकास में भूमिका के आकलन हेतु चार प्रतिदर्श ग्रामों-सूर्यपुरा असना भटौली बुजुर्ग एवं दईडीहा के विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले कुल 130 परिवारों का सर्वेक्षण किया गया है। प्रतिदर्श ग्रामों के चयनित परिवारों की कुल संख्या गरीबपुर में 219 दारा बुजुर्ग 128, बाराहट में 204 एवं जयपुर में 264 है। इन ग्रामों में विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाओं की दूरी एवं चयनित परिवारों की कुल साक्षर जनसंख्या सारणी -01 में प्रदर्शित है।

सारणी -01

प्रतिदर्श ग्रामों में शिक्षण ग्रामों में शिक्षण-संस्थाओं की दूरी (किमी0 में) 2011

ग्राम	प्राथमिक विद्यालय	हाई स्कूल	इण्टर कॉलेज	महाविद्यालय	साक्षरता (प्रतिशत में)
गरीबपुर	ग्राम में	ग्राम में	3.00	20.00	70.00
छारा	ग्राम में	ग्राम में	5.00	10.00	60.00
बाराहट	ग्राम में	6.00	6.00	7.00	52.00
जयपुर	ग्राम में	8.00	4.00	9.00	51.00

शिक्षण संस्थाओं की दूरी का साक्षरता पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित हुआ है। गरीबपुर, जो सभी प्रकार के शिक्षण-संस्थाओं से सुगम्य है, शिक्षित जनसंख्या का प्रतिशत भी सर्वोच्च है, जबकि दारा में इनकी अधिाक दूरी (महाविद्यालय को छोड़कर) अल्प साक्षरता के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। उल्लेखनीय है कि बाराहट बुजुर्ग एवं जयपुर में शिक्षण संस्थाओं की दूरी लगभग समान है। किन्तु परिवारों की निम्न आर्थिक स्थिति (गरीबपुर की अपेक्षा) के कारण शिक्षित जनसंख्या सापेक्षत: कम है। समवेत प्रतिदर्श ग्रामों में अल्प साक्षरता के सन्दर्भ में पूछे जाने पर लोगों ने अन्य अनेक कारणों का उल्लेख किया परन्तु उपर्युक्त दोनों कारण-विद्यालयों की दूरी एवं निम्न अर्थिक स्थिति हेतु विशेष अवरोधाक सिद्ध हो रहें है।

विभिन्न स्तर के शिक्षित व्यक्तियों का प्रतिशत सारणी -02 में प्रदर्शित है जिससे स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर के अतिरिक्त शेष सभी स्तर पर इसमें काफी असमानता मिलता है। हाईस्कूल से अधिक शिक्षित व्यक्तियों का सर्वोच्च प्रतिशत गरीबपुर तथा अतिन्यून प्रतिशत जयपुर में है। वास्तव में जयपुर एवं दारा में निम्न आर्थिक स्थिति के कारण उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का प्रतिशत कम है। पुरूषों की अपेक्षा महिला साक्षरता पर विद्यालयों की दूरी का स्पष्ट प्रभाव दृष्टव्य है।

सारणी -02

प्रतिदर्श ग्रामों में विभिन्न स्तर के साक्षरों का प्रतिशत (2011)

ग्राम	प्राथमिक विद्यालय	हाई स्कूल	इण्टर कॉलेज	महाविद्यालय	साक्षरता (प्रतिशत में)
गरीबपुर	ग्राम में	ग्राम में	3.00	20.00	70.00
दारा	ग्राम में	ग्राम में	5.00	10.00	60.00
बाराहट	ग्राम में	6.00	6.00	7.00	52.00
जयपुर	ग्राम में	8.00	4.00	9.00	51.00

स्रोत: व्यक्तिगत सर्वेक्षण

जहाँ तक शिक्षा एवं कृष्येत्तर रोजगार का प्रश्न है, उच्च साक्षरता वाले ग्रामों में यह अल्प शिक्षित ग्रामों की अपेक्षा अधिक है यथा -गरीबपुर में कुल जनसंख्या का 17.18 प्रतिशत, बाराहट बुजुर्ग में 8.20 प्रतिशत, जयपुर में 6.48 प्रतिशत कृशयेत्तर कार्यो में संलग्न हैं। यद्यपि शिक्षा के विकास से प्राय: सभी ग्रामों में परम्परागत रूढ़ीयों, अंधाविश्वासों, गरीबी आदि में कमी आयी है, किन्तु अभी तक इस दिशा में वाँछित विकास नहीं हो पाया है। इस संदर्भ में शैक्षणिक संस्थाओं की कमी एवं उनकी दोषपूर्ण कार्य-पद्धति की संक्षिप्त व्याख्या समीचीन प्रतीत होती है। प्राथमिक शिक्षण संस्थाऐं जो आगामी उच्च शिक्षा के आधार स्तंभ हैं, कि स्थिति अत्यन्त दयनीय हैं। यहाँ शिक्षण सामग्रियों, शिक्षकों, भवनों आदि की कमी तो है ही, विद्यमान शैक्षणिक वातावरण और भी दूषित है। शिक्षकों का प्राय: विद्यालय से अनुपस्थित रहना, विद्यालयों से ग्रामों की दूरी आदि कारणों से ग्रामीण पाठशाला, शिक्षा के विकास में वाछिंत सहयोग नहीं प्रदान कर पा रहे है। माध्यमिक विद्यालयों के संदर्भ में भी लोगों ने लगभग ऐसी ही समस्या का जिक्र किया है। उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में ऐसी खामियाँ अल्प है। फिर भी निर्धानता, शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि आदि कारणों से उच्च शिक्षा का स्तर निम्न है। यद्यपि विगत दशक में साक्षरों की संख्या में वृद्धि हुई है, परन्तु वृद्धि दर कम रही। वर्तमान शिक्षा पद्धति भी अनेक व्यवहारिक कठिनाइयों से ग्रसीत है। वास्तव में शिक्षा का अर्थ संतुलित सामाजिक विकास है किन्तु आज का शिक्षित व्यक्ति समुचित रोजगार के अभाव में परमुखापेक्षी एवं पुरूषार्थ हीन होता जा रहा है। निष्कर्षत: उपर्युक्त आलोक में हमारी शिक्षा पद्धति देश 'काल एवं परिस्थितियों के अनुरूप हो न कि पशिचमी देशों का अन्धानुकरण है।

संदर्भ-सूची :

1. शाही, सुनील कुमार (1989), आर्थिकी, पृ. 111-113
2. यादव, संवन सिंह (1988), ग्रामीण विकास : नया दृष्टिकोण वर्ष 34 अंक 2 पृ. 34-39
3. बिहार जनगणना हैंड बुक-2011
4. शर्मा, एस.के. (2011), आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका, प्रतियोगिता दर्पण, फरवरी, 18 पृ.1095
5. दत्त, कृष्ण कुमार, बढ़ती जनसंख्या विकास में बाधक योजना वर्ष 33 अंक 23 पृ. 7-8
6. शाही, सुनील कुमार (1989), पूर्वात्तर, पृ.123-124

बौद्ध धर्म में नारी की स्थिति

कल्याणी कुमारी

शोध छात्रा, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सारांश- बुद्ध ने नारी को ज्ञानी, मातृत्वशील, सृजनात्मक, भद्र व सहिष्णु के रूप में स्वीकार किया। बुद्ध की शिष्याओं में ऐसी महिलाएं थी जो मानसिक व दैहिक दुखों से मुक्त होकर अर्हत् बनी। कुछ भिक्षुणियों की अपनी खुद की शिष्याएं थी जो धर्मप्रतिपादन में सक्षम थी। बुद्ध व दूसरे भिक्षुओं की मध्यस्ता के बिना उन्हें पूर्ण मुक्ति दिला सकती थी। बुद्ध तथा आनन्द जैसे उनके शिष्यों का मानना था कि जाति की तरह लिंग भी किसी व्यक्ति के द्वारा दुःख से छुटकारा पाने के बौद्ध लक्ष्य को प्राप्त करने में बाधा नहीं हो सकता था। इस प्रकार गौतम बुद्ध और आनन्द जैसे शिष्यो का महिलाओं के प्रति बड़ा ही सकारात्मक व क्रातिकारी रूख था। बुद्ध ने स्त्री व पुरूष दोनों के लिए समान रूप से अपने संघ के दरवाजे खोले। यह एक ऐसा रूख था जो उस समय के लिए एक असाधारण बात थी और जिसे बुद्ध के आलोचकों ने एक उग्र व खतरनाक कदम माना। बौद्ध साहित्य से प्राप्त साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि संघ में भिक्षुणी के रूप में दीक्षा प्राप्त करने के बाद अनेक स्त्रियों ने बौद्ध धर्म के प्रसार और संघ को मजबूत करने में अपना योगदान दिया। अनेक भिक्षुणियो ने अपने ज्ञान और साधना के उदाहरण प्रस्तुत किये। गौतमी खेमा जैसी विदुषी और साधिकाए प्रसिद्ध है उनके ज्ञान और तर्क से वैदिक काल की विदुषियो गार्गी और मैत्रियी का स्मरण स्वत ही हो जाता है संघ में प्रवेश मिलने से स्त्री समाज में एक नया उत्साह आ गया। स्त्रियों द्वारा सेवा साधना और ज्ञान के जो उदाहरण बौद्ध साहित्य में मिलते है वे नारी की भूमिका को बताते है की वे किसी से कमतर नही है। प्रस्तुत शोध पत्र में बौद्ध धर्म में नारी की स्थिति का विशद विवरण प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द- बौद्ध धर्म, नारी, धार्मिक क्रांति, बौद्ध संघ, भिक्षुणी।

प्रस्तावना

ईसा पूर्व शताब्दी एक व्यापक धार्मिक एवं आध्यामिक क्रान्ति का युग था। इस शताब्दी में धार्मिक एवं बौद्धिक आन्दोलन के प्रमाण अनेक देशों में मिलते हैं। चीन में कन्फ्यूशियम, ईरान में जरथुष्ट एवं यूनान में पाइथोगोरस के सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाए जाने से एक नीवन धार्मिक क्रान्ति का आविभवि हुआ। भारतवर्ष में इस क्रान्ति को जैन एवं बौद्ध धर्मो के अभ्युदय के रूप में देखते हैं। उक्त धार्मिक परम्परायें निवृत्तिवादी चिन्तन प्रक्रिया की द्योतक थीं, जिसमें त्याग, वैराग्य के लिए आग्रह है और व्यस्ततम संसार से सम्बन्ध-विच्छेद का आदर्श प्रस्तुत किया गया। इस निवृत्तिवादी विचारधारा को सामाजिक एवं धार्मिक संघर्ष के रूप में लिया जाता है।

नेपाल की तराई के पूर्वोत्तर बिहार में एक छोटा-सा गणराज्य था, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। बुद्ध यहाँ के प्रमुख (राजा) शुद्धोधन के पुत्र थे। बुद्ध को ई. पू. 536 लुंबिनी उद्यान में महामाया ने जन्म दिया। सिद्धार्थ के जन्म के सातवें दिन माता का देहावसान हो गया। विमाता महाप्रजापति गौतमी ने इनका पालन किया। सिद्धार्थ को पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ युद्ध प्रणाली, घुड़सवारी, मल्ल युद्ध एवं अस्त्रा-शस्त्रा की शिक्षा दी गई। किन्तु सिद्धार्थ बाल्यकाल से ही ध्यानावस्थित जाते थे। गणराज्य के प्रमुख का पुत्रा होने के कारण सिद्धार्थ की सुख-सुविधाओं का विशेष ध्यान रखा जाता था। सोलह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह यशोधरा के साथ सम्पन्न हुआ। यशोधरा ने एक पुत्रा को जन्म दिया, जिसका नाम राहुल रखा गया। सिद्धार्थ की चिन्तनशील मनोवृत्ति को दृष्टिगत

रखते हुए उनके लिए अधिक विलासमयी सामग्री जुटाई गई, तीन ऋतुओं के अलग-अलग तीन प्रसाद निर्मित करवाए गए। किन्तु भोगविलास एवं महलों के सुख में रहकर भी सिद्धार्थ जीवन के कठोर सत्य जन्म, जरा, रोग, मृत्यु के दुःख से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। बुद्ध चरित में विवेचन मिलता है-''मैं तो जन्म, मृत्यु एवं व्याधि से होने वाले भय को देखकर अत्यन्त भयातुर एवं विकल हूँ। अग्नि से जलते हुए समान जगत् को देखकर मुझे न शान्ति है न धीरज है।''

बुद्ध ने नारी के सम्मान को इतना महत्व प्रदान किया कि उन्होंने कहा की यदि लिच्छवी को अपने राज्य में समृद्धता चाहिए तो नारी को आदर और सम्मान देना होगा। एक अच्छी गृहणी ही एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकती है क्योकि उसके द्वारा किये गये अच्छे और बुरे दोनों ही कार्यो का प्रभाव समाज पर पड़ता था। प्रारम्भिक बौद्ध साहित्य में अनेक ऐसी नारियो का उल्लेख मिलता है जिनके द्वारा किये गये कार्यो की चर्चा समाज में फैलने लगी थी। बौद्ध समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन न था। स्त्री का चरित्र ही उसका आवरण है। इस प्रकार का मत बौद्ध साहित्य मे मिलता हैं। बौद्धकालीन समाज में माता को विशेष स्थान प्राप्त था। माता के रूप में स्त्री को सम्मान प्रत्येक व्यक्ति ने दिया है। बौद्ध साहित्य में माता का स्थान बहुत ऊंचा है। एक स्थान पर उसे देवता कहा गया है। गर्भवती स्त्रियो का विशेष ध्यान रखा जाता था उनकी समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति करना कौठुम्बिक और सामाजिक कर्तव्य थां। वृद्धावस्था में माता का निरीक्षण एवं परिपोषण पुत्र का परम् कर्त्तव्य है तथा इसके लिए माता को भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। बुद्ध के अनुसार नारी में कोई भी कमी नहीं है।

बौद्ध धर्म में नारी की स्थिति-

महिलाओं के प्रति प्राचीन भारतीय बौद्ध रूख का मूल्यांकन करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि हमारी अधिकतर व्याख्या संघ व इसके सदस्यों के कार्यकलापों पर आधारित है। बुद्ध या फिर संघ का वृहत समाज की गतिविधियों पर अत्यंत कम या फिर नही के बराबर नियंत्रण था। लेकिन दूसरी तरफ, समाज बौद्ध संघ के फैसलों को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता था, क्योंकि संघ विभिन्न प्रकार के समर्थन के लिए समाज पर निर्भर था। बुद्ध जैसे महान् व्यक्तित्व के आभाव में, आक्रामक पुरूष-प्रधान प्राचीन भारतीय ब्राहाण समाज के प्रभाव से बचना असभंव रहा होगा। प्राचीन भारत की ब्राहाणीय व्यवस्था में कार्यरत उभय केंद्रित-पितृसत्तात्मक समाज में पुरूषों को सामान्य तथा महिलाओं को इसका अपवाद माना गया। इस व्यवस्था ने पुरूषों को समाज द्वारा मूल्यावान मानी जाने वाली सभी स्थितियों को धारण करने हेतु वैध स्वामी माना, जबकि महिलाओं को पुरूषों द्वारा अपनी स्थिति कायम रखने हेतु मौन सहमति देने वाली सहायिका के रूप में देखा। दूसरे शब्दों में, पुरूषों को महिलाओं को वश में रखने की शक्ति प्राप्त थी और धार्मिक नेतृत्व व आर्थिक शक्ति जैसी समाज द्वारा मानी जाने वाली सभी मूल्यावान वस्तुओं पर पुरूषों का एकाधिकार सुरक्षित था। इसलिए प्राचीन भारत में असमानता उभय केंद्रित-पितृसत्ता का मौलिक आधार था जिसके तहत पुरूष स्त्रियों पर वास्तविक शासन चलाते थे तथा खुद नियम व उनका प्रचलन तय करते थे जिनके दायरे में रहकर महिलाओं को अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता था। वे महिलाएँ जो इन नियमों का अनुसरण नहीं करती थीं या बहुत-सी वे जो करती थी, उन्हें एक अन्य प्रकार के पुरूष प्रभुत्व को शारीरिक हिंसा के रूप में झेलना पड़ता था। महिलाओं पर पुरूष-प्रधानता ने सामाजिक पदानुक्रम व दमन के सभी रूपों को आधार प्रदान किया। लेकिन प्राचीन भारत में उभय केंद्रवाद व पितृसत्ता के सबसे अपमानजनक पक्षों में एक पुरूषों का महिलाओं पर अर्जित या योग्यता-आधारित होने के बजाय स्वचालित अधिकार की स्थापना करना था। ब्राह्मणवाद का तापसिक नारीद्वेश (Ascetical Misogyny) नारी एवं नारी-जाति के प्रति अपनी अभिव्यक्ति में उससे भी अधिक नकारात्मक तथा आक्रामक था। इसके द्वारा व्यक्त की गई चिंता की विशेष सूची में महिलाओं को बर्बादी, दुचित व तबाही की धरोहरों के रूप में माना गया। बौद्ध धर्म का तपस्वीकरण व ब्राहाणीकरण भारतीय महिलाओं के इतिहास में न केवल एक काला अध्याय था, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप भिक्षुणी-संघ का अस्तित्व समाप्त हो गया, बल्कि बौद्ध धर्म के लिए भी यह एक त्रासदी थी, क्योंकि इससे इसकी पहचान के एक पहलू का अंत हो गया था।

त्रिपिटक में बार-बार हुए संशोधनों की वजह से महिलाओं के सबंध में अभिव्यक्त किए गए विचारों की विविधता मिलती है। ये विचार असामान्य रूप से सकारात्मकता से लेकर पूर्ण निंदा व अपमान तक से ओतप्रोत हैं। संदर्भ की पहचान करना अत्यावश्यक है, जिसमें से इस तरह के प्रत्येक विचार का उद्धव हुआ। केट ब्लैकस्टॅन के विचार में बौद्धों का नारीद्वेशक रूख इस तथ्य की उपज

था कि महिलाओं की दीक्षा को धर्म व विनय के लिए एक गंभीर व अपरिहार्य खतरे के रूप में देखा गया। पालि विनय में बुद्ध द्वारा अपनी सत्ता को संघ को एक सामूहिक निकाय के रूप में सतर्कतापूर्वक सौंपे जाने महिलाओं के प्रति रूख का विवरण मिलता है और यदि उस सत्ता को अंतर्निहित पुरूशत्व के रूप में प्रदर्शित किया जाए, तो इस तर्क को मानने पर, महिलाओं की उपस्थिति भारी त्रासदी के रूप में चित्रित है। और ब्लैकस्टॅन ने इसमें एक महत्तवपूर्ण सुराग खोजा है कि महिलाओं का दीक्षित होना क्यों खतरे की निशानी मानी गई और कैसे संस्थागत दमन का प्रयोग इससे बचने के लिए किया गया था। लेकिन विद्वानों द्वारा इसकी व्याख्या करने के प्रयास को दो विरोधी गुटों में बाँटा जा सकता है। एक गुट इसकी व्याख्या समतावादी रूख को बाद के नारीद्वेशक संपादकों द्वारा बदल दिए गए रूख के द्वारा करता है और दूसरा गुट इसे एक अंतर्निहित सेक्सवादी, यहाँ तक कि थेरवादी नारीद्वेशक, रूख से धीरे-धीरे सुधरकर महायान और वजयान में लैंगिक समतावाद के विकास के रूप में देखता है।

बुद्ध का युग गंगा नगरीकरण के उद्भव व विकास के साथ-ही-साथ व्यक्तिवाद के उदय और तत्कालीन ब्राह्मण संस्कृति के हाशिए पर सामाजिक व आध्यात्मिक रूप से रह रहें लोगों पर इसके प्रभाव गवाह था। उभरती नई सामाजिक व्यवस्था की विद्यमान सामाजिक मूल्यों के बचाव में बहुत कम दिलचस्पी थी और ऐसे वातावरण में महिलाएँ व निचले सामाजिक तबके के लोग आम तौर पर अपनी पसंद के धार्मिक लक्ष्य को पाने व प्रकट करने में अधिक स्वतंत्रा थे। जिस प्रकार बुद्ध द्वारा स्थापित लक्ष्य किसी खास वर्ग में पैदा हुए लोगों के लिए नही था, उसी प्रकार यह केवल पुरूषों तक ही सीमित नहीं था। दोनों ही स्थितियाँ परंपरागत सामाजिक व लिंग विकृतियों से कहीं परे के सद्‌गुण व आध्यात्मिक संभावना को खोजने के प्रयास को प्रदर्षित करती हैं। दोनों को ही वैयक्तिकता की एक नई उभर नही चेतना के साक्ष्य के रूप में देखा जा सकता है जिसने वैदिकोत्तर काल में सीमित जैविक व सामाजिक बाध्यताओं पर अग्रता लेने की शुरूआत की। बहुत-सी महिलाओं ने बुद्ध द्वारा मुहैया कराए गए इस अवसर का फायदा उठाया।

बुद्ध की शिष्याओं में कुछ साधारण शिष्याएँ ही बनी रही और कुछ ने भिक्षुणियाँ बनने के लिए सांसरिक मोहमाया को त्याग दिया। भिक्षुणी या कुँआरी की भूमिका में मानवीय अंत शक्ति की उपलब्धि के लिए लैंगिकता के महत्व को अनदेखा किया जा सकता था। जननी की भूमिका में, कामवासना को सामान्यतया एक नियंत्रित व्यक्तित्व के पूरक पहलुओं के तौर पर करूणा व बुद्धि के रूप से प्रबुद्ध मानी जाती थीं। भारतीय बौद्ध साहित्य का प्रारंभिक स्तर इस तथ्य को मानता है कि महिलाएँ अर्हत बन सकती थीं और कई बनीं भी जो मानवीय अस्तित्व को यथार्थ बनाने वाले मानसिक एवं जैविक दुःखों से पूर्णतः मुक्त थी। त्रिपिटक में उपलब्ध सूचना के अनुसार महिलाओं में ऐसी अर्हतों के कई उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने सांसरिक जीवन का त्याग कर दिया था और यहाँ तक कि मगध के राजा की पटरानी, खेमा जैसी महिलाओं के कुछ उदाहरण भी हैं जिन्होनें गृहस्थ जीवन त्यागने से पहले ही पूर्णतः बुद्धत्व प्राप्त कर लिया था! पाटाचारा व सोणा जैसी कई प्रसिद्ध महिला अनुचर धर्म-प्रवचन में निपुणता के लिए जानी जाती थी, खेमा जैसी महिलाओं के प्रति, धर्म का गहरा ज्ञान रखने के लिए स्वयं बुद्ध के मन में उच्च श्रद्धा थी। कुछ भिक्षुणियों का अपना व्यक्तिगत शिष्य-समुदाय था जो न केवल धर्म प्रस्तुत करने में समर्थ थीं, बल्कि वे बुद्ध या कुछ दूसरे वरिष्ठ भिक्षुओं की मध्यस्थता के बिना भी नए महत्वाकांक्षियों को संपूर्ण मुक्ति तक पहुँचा सकती थीं। यद्यति त्रिपिटक में बहुत-सी महिलाओं को दूसरी महिलाओं दूसरी महिलाओं की शिक्षिकाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है, लेकिन फिर भी इन ग्रंथों के प्रति संकुचित मानसिकता रखने वाले संपादकों ने धम्मदित्र जैसी महिलाओं के कुछ वृतांत बचाकर रख लिए, जिसे भिक्षुणी बनने के बाद अपने पूर्व-पति विसाख को निर्देश देने का मौका। जैसा कि चूलवेदल्लसुत्त में बताया गया है, धम्मदित्रा, विसाख द्वारा सिद्धांत व व्यवहार के पहलुओं से संबधित पूछे गए प्रश्नों की एक लंबी श्रृंखला का उत्तर देती है। विसाख एक प्रसिद्ध व्यापारी व अयाजकीय बौद्ध शिक्षक था और जैसा कि अट्टकथाएँ बताती हैं, उसका अपना एक महत्वपूर्ण शिष्य-समुदाय था। विसाख, बाद में, धम्मदित्रा के उत्तरों से बुद्ध को अवगत कराता है और बुद्ध बड़े खुश होकर कहते हैं कि वे भी बिलकुल धम्मदित्रा की तरह ही उत्तर देते। इस सुझाव का पर्याप्त प्रमाण है कि महिलाएँ न केवल आरंभिक बौद्ध समुदाय में स्पष्ट रूप से उपस्थित थीं, बल्कि साधिकाओं व शिक्षिकाओं दोनों ही रूपों प्रमुख व सम्माननीय जगह बुद्ध महिलाओं के साथ उनके व्यक्तित्व के आधार पर व्यवहार करते थे। सैद्धांतिक रूप से वह उन्हें पुरूषों के समान ही समझते थे, हालॉकि इस प्रकार की स्थिति महिलाओं की निर्वाण प्राप्त करने की योग्यता तक ही सीमित रही दिखाई पड़ती है। समाज के अंदर महिलाओं के अधिकारों की ओर बुद्ध का ध्यान इतना नहीं गया होगा,

जितना ध्यान उन्हें मिलना चाहिए था। फिर भी, यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि जब भी मौके मिले, बुद्ध ने अपने मन की ही बात की। उनके द्वारा पसेनदि को कहे गए शब्दों से यह बात सिद्ध होती है, जो यह समाचार सुनकर दुःखी हुआ कि उसकी पत्नी ने पुत्र की जगह पुत्री को जन्म दिया था। बुद्ध ने उससे कहा कि पुत्री, वास्तव में, ज्ञानी व गुणी बनकर पुत्र से भी अधिक अच्छी संतान सिद्ध हो सकती है। एक बार यह जान लेने के बाद कि महिलाएँ धार्मिक जीवन अपनाने की पूरी क्षमता रखती हैं, आरंभिक बौद्ध संघ को यह निर्णय करना था कि इस तरह के विचार से उत्पन्न रूचि के संबंध में क्या किया जाना चाहिए। आरंभ में, कोई खास समस्या पैदा होती नजर नहीं आती क्योंकि आंतरिक मामलों पर प्रभुत्व व बाह्य मामलों में स्वीकार्यता के सबंध में किसी भी चिंता को समाप्त करने में बुद्ध का महान व्यक्तित्व व चमत्कार ही यथेष्ट था। लेकिन, महापरिनिर्वाणोत्तर काल में जैसे-जैसे ही संघ विकसित हुआ, उसने अपने चरित्र को बाहरी समाज के अनुसार ढालना शुरू कर दिया। इस तरह के परिवर्तन के फलस्वरूप, ऐसे बढ़ते हुए रूख का प्रमाण मिलता है, जिसका अर्थ था कि महिलाएँ धर्मरायणता को पूर्णकालिक पेशा तो बना सकती हैं लेकिन केवल एक ऐसे सावधानीपूर्वक नियंत्रित संस्थागत ढाँचे के भीतर रहकर, जो पुरूष-प्रधानता व महिला-अधीनीकरण को पारंपरिक रूप से स्वीकृत सामाजिक मानकों के द्वारा सुरक्षित व सशक्त बनाता हो।

निष्कर्ष

मानव जीवन पद्धति में नारी विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना है सृष्टिकर्म में नारी का महत्वपूर्ण स्थान के साथ ही उसका प्रभूत योगदान है। नारी समाज और संस्कृति की सबसे बड़ी निर्मात्री ओर संरक्षिका है। नारियो ने ही संस्कृति की नीव डाली और एक सुसंस्कृत समाज की रचना की। परन्तु युगे-युगे नारी के प्रति समाज की अवधाराणाये बदलती रही। जिससे हर युग में नारी की परिस्थिति भी भिन्न होती गई। कही कही पर उसको आदर सम्मान और समानता प्रदान की गई और कही कही पर उसका निरादर और अपमान भी किया गया। परम्पराओ के अनुसार प्राचीन काल से ही नारी को अत्यंत गरिमा और आदर प्राप्त था। व्यक्तिगत रूप से बुद्ध ने संघ के भीतर महिलाओं को पुरूषों के समान दर्जा प्रदान किया। प्राचीन भारतीय बौद्ध साहित्य में पाए जाने वाले महिला-विरोधी वक्तव्य विहार के विशिष्ट वर्ग के उन सदस्यों द्वारा बुद्धवचन में जोड़े गए क्षेपक हैं, जिनके महिलाओं के प्रति रूख को, कम-से-कम कुछ सीमा तक, विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों ने आकार प्रदान किया। पालि त्रिपिटक का बड़ा भाग तृतीय बौद्ध संगीति में संकलित हुआ प्रतीत होता है। बुद्धवचन तय करने के लिए बुलाई गई इस संगीति व इससे पहले की दो संगीतियों में प्रबल उभयकेंद्रित-पितृसत्तात्मक भिक्षु अपने विचार थोपने में सफल रहे।

इस प्रकार बौद्ध धर्म ने महिलाओं को मुक्ति पाने तथा खुद को संयोजित करने का मौका दिया। उसे भिक्षुणी रूप देकर अशांत विश्व की मानवता को शांति का पाठ पढ़ाने के लिये उद्धत किया और सध मे प्रवेश दिला कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया यह वास्तव मे महिला सशक्तिकरण की दिशा मे एक अनूठा प्रयास था जिसने महिलाओ को पुन वही गरिमा और सम्मान प्रदान किया।

संदर्भ सूची

1. एंशियन्ट इंडियन बुलेटिन पृष्ठ 128 प्लेट न LVI
2. ऋग्वेद हिन्दी भाष्य 1.17.9 सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली।
3. जैन कोमल चन्द्र बौद्ध और जैन आगम में नारी जीवन।
4. जातक अट्कथा, भाग 3 अनु, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सम्पा. शिवशंकर त्रिपाठी।
5. त्रिपाठी चन्दबली भारतीय समाज मे नारी आर्दशों का विकास।
6. जातकअट्कथा, पूर्वोक्त भाग 6।
7. अंगुत्तर निकायपालि, 5.4.4 सम्पा. द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी।
8. महावग्ग अनु राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा सारनाथ।
9. विनयपिटक, राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा सारनाथ।
9. संयुक्तनिकायपालि, 3.16 सम्पा शास्त्री द्वारिका दास बौद्ध भारती प्रकाशन, वाराणसी।

10. दीघनिकायपालि महापरिनिब्बानसूत्रा सम्पा भिक्षु जगदीश कश्यप, पालि पब्लिकेशन।
11. थेरगाथापालि एवं थेरीगाथापालि; हि0 अनु सहित बौद्ध ग्रंथमाला।
12. चुल्लवग्ग, अनु भिक्षु कश्यप, जगदीश कश्यप, पालि पब्लिकेशन बोर्ड।
13. आई बी हार्नर विमेन अंडर प्रिमेटिव बुद्धिज्म।
14. सांकृत्यायन राहुल विनय पिटक।
15. एस बील बुद्धिस्ट रिर्काड आफ वेर्स्टन वर्ल्ड।
16. पराशर चिरंजीवी लाल नारी और समाज।
17. ई हुल्स कार्पस इन्सक्रिपसन्स इंडिकेरम।

कालिदास कृत मेघदूतम् में मेघ-यात्रा

विपुल कुमार

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

जीवन दर्शन, जीवन बोध, अन्तर्निहित ज्ञान तथा विज्ञान शब्द के शब्द बोध से परिचित कवि कालिदास ने परवर्ती साहित्य को न केवल गाम्भीर्य प्रदान किया, अपितु वर्णन कौशल की ऐसी पराकाष्ठा का पाठ भी पढ़ाया जिसमें काव्य साहित्य की अन्यान्य विधाओं का समावेश भी हो। ''कीर्तिर्यस्य स जीवति'' का सिद्धान्त ही कालिदास के विषय में अमरत्व का एकमात्रा प्रमाण है। मेघदूत के दो भाग है-पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में प्रारम्भिक विषय वस्तु के माध्यम से कवि ने यक्ष परिचय और मंगलाचरण का भी निर्वाह किया है। मेघोदूतो यस्मिन काव्ये तत् मेघदूतम्। अथवा मेघ एव दूतो मेघदूत:, मेघश्चासौ दूत: मेघदूत:। तमधिकृत्य कृतं काव्यं मेघदूतम्। अर्थात् जिस काव्य में मेघ को दूत बनाया गया है वह काव्य मेघदूत है अथवा मेघ ही दूत हो जिसमें वह मेघदूत है या यह मेघदूत है जिसे अधिकृत करके लिखा गया काव्य मेघदूत है।

मुख्य शब्द: मेघदूत, कीर्तिर्यस्य सजीवति, अखण्ड रसाभास, पूर्वमेघ और उत्तरमेघ, अन्तर्निहित ज्ञान

विषय-वस्तु

वस्तुत: कालिदास प्राकृतिक, सामाजिक, नैतिक, या व्यावहारिक पक्षों के वर्णन में अभावग्रस्त कवि नहीं हैं बल्कि उनकी कविता चातुरी और नैपुण्य नें अन्यों को भी समृद्ध बनाया है। सैद्धान्तिक पक्ष भी अक्षुण्ण जैसा प्रतीत होता है। जीवन दर्शन, जीवन बोध, अन्तर्निहित ज्ञान तथा विज्ञान शब्द के शब्दबोध से परिचित कवि कालिदास ने परवर्ती साहित्य को न केवल गाम्भीर्य प्रदान किया, अपितु वर्णन कौशल की ऐसी पराकाष्ठा का पाठ भी पढ़ाया जिसमें काव्य साहित्य की अन्यान्य विधाओं का समावेशभी हो। ''कीर्तिर्यस्य सजीवति'' का सिद्धान्त ही कालिदास के विषय में अमरत्व का एकमात्रा प्रमाण है। ऐतिहासिक प्रमाणों में कालिदास के जीवन सम्बन्धी मतैक्यता का सर्वथा अभाव है। कालिदास कौन थे? कहाँ के थे? कहाँ-कहाँ गये थे? ऐसा निश्चय करना कठिन और दुष्कर है। किन्तु कालिदास रचित दूत काव्य मेघदूत का अवलोकन यह प्रमाणित करता है कि उन्हें भौगोलिक परिवेश का नितान्त प्रामाणिक और जीवन्त बोध था ऐसा कहनें का तात्पर्य यह है कि जिन महत्वपूर्ण स्थलों, जिन प्राकृतिक परिवेशों के मर्मस्पर्शी और स्पष्ट वर्णन मेघदूत के पूर्वमेघ में किये गये हैं वे या तो उन सभी स्थलों की यात्रा -प्रत्यक्ष से सम्भव हैं अथवा किसी एक स्थान पर रहकर उन विभिन्न स्थानों का वैशिष्ट्य वर्णन कालिदास की केवल कल्पना भूमि से सम्भव हुए हों ।

यात्रा साहित्य यद्यपि हिन्दी जगत का एक समृद्ध साहित्य है तथापि संस्कृत जगत भी इससे अछूता नहीं हैं। यात्रा पठन से जो भौगोलिकता घर बैठे जीवन्त होती है वह प्रत्यक्ष रूप में अनेक उपलब्धियों के साथ प्रामाणिक होती है। एक ओर यात्रा वर्णन कवि के भौगोलिक ज्ञान को दर्शाता है तो दूसरी ओर पाठक को सहज अनुभूति के माध्यम से कला - कौशल और संस्कृति का विस्तार परिचय भी कराता है। राहुल सांकृत्यायन आदि द्वारा वर्णित यात्रा तथ्य इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। यात्रा तो कालिदास के मेघदूत में मेघ ने भी की है जो विरह दग्ध होकर बादल को सन्देशवाहक बनाकर रामगिरि पर्वत से अलकापुरी तक भेजता है। मेघ के इस यात्रा पथ में पर्वतों, प्राकृतिक छटाओं, नगरो, और उज्जयिनी की स्त्रियों आदि के जो स्वाभाविक चित्रण उपस्थित है उनसे महाकवि कालिदास की रचना-धर्मिता में एक अप्रतिम भौगोलिक वातावरण का निदर्शन और प्राकृतिक वैशिष्ट्य की उपलब्धि होती है जो एक अखण्ड रसाभास है।

मेघ के यात्रा पथ में पर्वत, सागर, नदी, झरनें, सरोवर, वनकानन, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, दिवस, लतायें, वनस्पतियाँ, तथा पशु पक्षियों के प्राकृतिक विषयों का हृदयहारी चित्रण है। विरही यक्ष शापित है, प्रिया वियोगी है, काम सन्तप्त भी है, उसकी काम सन्तप्तता ने उसे मतिहीन बनाया है जिससे वह चेतन और अचेतन का विवेक किये बिना ही बादल को अपनी प्रिया के पास सन्देश भेजनें के लिये दूत बनाता है, माध्यम बनाता है। सर्वथा विचारणीय है कि अपार जल-राशि धारण करने वाला कोई मे घखण्ड किसी की मनोदशा का सन्देश लेकर किसी अन्य के पास कैसें पहुँचा सकता है? किन्तु कालिदास के मेघ ने तो ऐसा किया है। विरही यक्ष पात्रा हो सकता है प्रौढ़ नहीं। जबकि कालिदास सुपात्र भी है प्रौढ़ भी। यक्ष को चेत और अचेत का विवेक नहीं हो सकता है क्योंकि वह वर्ण्य विषय में स्वामी द्वारा दिए गए कार्यो के सम्पादन में असफल होकर शापित हो चुका है। संस्कृत साहित्य में बिम्बित यक्ष जाति सुकुमार जाति है उसके लिये प्रिया से एक वर्ष का वियोग अत्यन्त दारूण है। ऐसा होने से उसका देवत्व नष्ट है। पुनश्च काव्य प्रतिभा नें कॉच मणि और कांचन को एक सूत्र में पिरोकर चेतन और अचेतन के बीच में सजीवता स्थापित कर संवादपूर्ण बनाते हुए प्रिया-प्रियतम संयोग कराकर सहृदय पाठक के लिए मेघयात्रा से अनुस्यूत प्राकृतिक, हृदयावर्जक और चिरस्थायी आनन्द प्रदान किया है। निश्चित स्थान पर रहकर विभिन्न प्रान्तों दूरस्थ वन प्रदेशों तथा देश विशेष की महिला संस्कृति का वर्णन इतना जीवन्त और यथार्थ होगा ऐसा कल्पनातीत है।

मेघदूत के दो भाग है - पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। पूर्वमेघ में प्रारम्भिक विषय वस्तु के माध्यम से कवि ने यक्ष परिचय और मंगलाचरण का भी निर्वाह किया है। जहाँ पर यह बताया गया है कि यक्षों के अधिपति कुबेर ने किसी यक्ष को जो उत्तरदायित्व सौंपा था उसका प्रमादवश सम्पादन न करने से कुबेर ने अपराधमानकर उसे यह शाप दे दिया। इसके पश्चात् वह महत्वहीन होकर एक वर्ष तक अपनी प्रिया से वियुक्त होते हुए जनकतनया सीता के स्नान किये हुये पवित्र जल वाले घनी छाया के वृक्षों से युक्त रामगिरि नामक पर्वत के आश्रमों में निवास करने लगा। शापित होने के कारण यक्ष की सम्पूर्ण महिमा समाप्त हो चुकी है वह अपनी नगरी अलका से आकर रामगिरि पर्वत के आश्रमों में निवास कर रहा है। इस क्रम में आठ महीनें बीत गये, यक्ष ने उसी रामगिरि पर्वत की चोटी पर चिपके हुये मेघ को देखा, उस मेघ दर्शन ने ही इस क्रम में आठ महीनें बीत गये, यक्ष ने उसी रामगिरि पर्वत की चोटी पर चिपके हुये मेघ को देखा, उस मेघ दर्शन ने ही यक्ष के प्रिया विरह को दु:सह बनाया। रामगिरि पर्वत भौगोलिक दृष्टि से हिमालय से समीपवर्ती किसी पर्वत का नाम है। यह तो कालिदास के वर्णन का एक बहाना मात्रा है कि वे उदात्त प्रकृति और भौगोलिकता को रचना में उत्कृष्टता प्रदान करना चाहते है। किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि उनके इस रचना विधान से विश्व वाङ्मय में दूत काव्य परम्परा का सूत्रापात आरम्भ हुआ। जड़ को किसी चेतन ने विरहावस्था की सम्प्रेषणीयता हेतु प्रथम बार कालिदास के मेघदूतम् में ही दूत बनाया है। यहाँ बिम्ब- प्रतिबिम्ब भाव की उपपत्ति का यह एक मौलिक और चिरनवीन साहित्यिक निदर्शन है जो अल्पबुद्धि को भी सहज ही कल्पना शीलता और उस कल्पना में यथार्थता का बोध कराने लगता है। सबसे पहले मेघदूत शब्द का अर्थ समझा जाये तो यह प्राकट्य होता है कि-

मेघोदूतो यस्मिन काव्ये तत् मेघदूतम् ।

अथवा मेघ एव दूतो मेघदूत:,

मेघ चासौ दूत: मेघदूत: ।

तमधिकृत्य कृतं काव्यं मेघदूतम् ।

अर्थात् जिस काव्य में मेघ को दूत बनाया गया है वह काव्य मेघदूत है अथवा मेघ ही दूत हो जिसमें वह मेघदूत है या यह मेघ दूत है जिसे अधिकृत करके लिखा गया काव्य मेघदूत है। आचार्य मल्लिनाथ ने कालिदास के इस प्रणयन को मेघदूत की एक टीका ''संजीवनी'' में यह कहा है कि राम का सीता के प्रति हनुमान द्वारा प्रेषित सन्देश ही मेघदूतम् की रचना में प्रेरणास्रोत बना-

''सीतां प्रति रामस्य हनुमत् सन्देशं मनसिनिधाय मेघसन्देशं कवि: कृतवान् ।''

अधिकार शब्द का अर्थ कर्तव्य भी होता है जिससे प्रमत्त अर्थात् असावधान या अनवधान व्यक्ति महत्वहीन या महिमाहीन हो ही जाता है। जिस तरह स्वामी द्वारा दिये गये कार्य के प्रति प्रमत्त यक्ष की दशा हुई है। अतएव भारतीय मनीशा की जो दार्शनिकता कर्त्तव्यपालन में निहित है वह भी प्रकारान्तर से कालिदास द्वारा पूर्वमेघ के प्रथम श्लोक में ही निर्दिष्ट है। यक्ष का अभीष्ट केवल विरहावस्था का सम्प्रेषण नहीं बल्कि अपने सकुशल जीवित रहने का समाचार भेजना है। मेघयात्रा शुभ होगी इसके लिये शकुन भी

परिलक्षित है। रास्तें में राजहंस मेघ का साथ देंगे जिससे वह अपना मार्ग पूरा करेगा। सर्वप्रथम वह यक्ष मेघ को अलकापुरी का मार्ग बतलाते हुये कहता है कि जाते समय गाँव की सुन्दरियाँ और सिद्धांगनायें लोभ मुद्रा से मेघ को देखेंगी। यहाँ विशेष ध्यातव्य है कि मेघ को यक्ष ने उस पर्वत की चोटी पर वप्रक्रीडा (उत्खातकेलि) पर दन्तप्रहार करते हुये हाथी की तरह देखा जिसे हलायुध कोश में इस प्रकार कहा गया है- तिर्यक् दन्त प्रहारस्तु गज: परिणतो मत: अर्थात् यक्ष ताशे विरहावस्था में है फिर भी मेघ को देखकर उसकी कल्पना क्रीड़ा जैसे कोमल विषय का अतिक्रमण नहीं कर पा रही है। इसीलिये वह एक गज की क्रीड़ा का जो विशाल शरीर वाला है और बलसम्पन्न होते हुये भी कान्तानुरागी होकर बद्ध हो जाता है। यही संयोग जड़मेघ को सन्देश वाहकता में दूत की यथार्थता का आरोप सार्थक करता है। यही समर्थन भारतीय मनीशा का प्रस्तुत श्लोक भी करता है-

कुरगमातंगपतंगशृंगमीना हता: पंचशिरेव पंच।

यस्तु प्रमादी न स हन्नयते कथं य: सेवते पृंचशिरेव पंच।

इसके पश्चात् मेघ उत्तर की ओर जायेगा और निरन्तर उत्तराभिमुख ही होता रहेगा। नर्मदा नदी के जल का पान करेगा। इस बीच जिन प्राकृतिक शोभाओं को यक्ष ने मेघ के समक्ष प्रकट किया है वह उसे यात्रा हेतु प्रोत्साहित करते है। जैसे -श्लोक संख्या 15 से लेकर 18 तक में वर्णित विभिन्न प्राकृतिक छटायें। इसी क्रम में यक्ष मेघ से कहता है कि तुम विदिशा नाम की नगरी जाकर अपनी विलासिता का सम्पूर्ण फल भी प्राप्त कर लोगे। क्योंकि वहाँ पर वेत्रवती नाम की नदी के मधुर जल को चंचल लहरों रूपी नायिका कटाक्ष की भाँति अपनी गर्जना से तटप्रान्त के जल को पीयोगे। अन्यथा वेत्रवती का आधुनिक नाम बेतवा है। दशार्णो की राजधानी का नाम विदिशा है। विदिशा के समीप विश्राम करने के लिये मेघ नीच्चै: नामक पर्वत पर रूकेगा। जहाँ विदिशा वासियों के उत्कृष्ट यौवन से भी परिचित होगा। पुन: जंगली नदियों के मार्ग से होता हुआ जूही की कलियों को नवीन जल से सींचता हुआ फूल चुनने वाली स्त्रियों से परिचय करते हुये आगे बढ़ते रहना और उज्जयिनी पहुँच जाना पूर्वमेघ के 28 वें श्लोक में पुन: मेघ का उत्तर दक्षिण और दक्षिण उत्तर का घुमाउ मार्ग उज्जयिनी जाने के लिये उत्तराभिमुख हो जायेगा। जिस हेतु उज्जयिनी जाने में उसका मार्ग यद्यपि टेवक्र: पन्था यद्यपि भवत:

प्रस्थितस्योत्तराशां सौधोत्सड ़्गप्रणयविमुखो मा स्म शुरूज्यायिन्या:।

विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराड्गनानां लोलापाड्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वचिंतोऽसि ।।

इसी श्लोक में कवि ने अपने नैपुण्य से निर्विन्ध्या नदी का पूर्वाभास भी करा दिया। उस नदी में शिलाखण्ड है जिससे उसके वेग लड़खड़ाते हुये है। इसके पश्चात् वह सिन्धु नामक नदी से मिलन करेगा। जो मेघ मिलन की प्रतिक्षा में है। श्लोक संख्या 30 इसका पूर्ण कथन करता है। सिन्धु नदी का वर्णन होना भी कालिदास के भौगोलिक परिवेशीय ज्ञान को नितान्त पुष्ट करता है। उज्जयिनी वर्तमान उज्जैन है सिन्धु नदी के मिलन के पश्चात् यक्ष ने मेघ को अवन्ति नामक जनपद में जाने को कहा है। उज्जयिनी में क्षिप्रा है जहाँ की प्रभातकालीन वायु के गुणों में सारसों के मद का तीव्र होना चित्रित किया गया है।

अत: यात्रा लाभ में कालिदास की दृष्टि पारखी है। साथ ही यहाँ पर उज्जैयिनी के बाजारों में बिकने वाली विभिन्न वस्तुओं और आभुषणों के वर्णन भी है। जिनसे यही प्रतीत होता है कि मेघ के स्थान पर कालिदास ने ही यात्रा की हो। इसी क्रम में महाकाल इत्यादि के दर्शन कराते हुये कवि ने यक्ष द्वारा मेघ को गम्भीरा नदी के भी दर्शन कराये है। पश्चात् मेघ बरसेगा और पृथ्वी फल-फूलों वाली होगी। उसी समय वह देवगिरि नामक स्थान आधुनिक (देवगढ़) को जाने की इच्छा करेगा। देवगिरि में कार्तिकेय के निवास स्थान होने का पूर्वाभास यक्ष ने मेघ को कराया है -तत्रास्कन्दं नियतवसति पुष्पमेघी कृतात्मा पूर्वमेघ 47 यहाँ से मेघ पर्वत पर चुककर सम्मान करेगा। अर्थात् यहाँ पर मेघ अपनी यात्रा में पर्वत से नीचे उतरेगा। चर्मण्वती पार करने के पश्चात् मेघ दशपुर नामक नगर से होकर जायेगा। वहाँ की स्त्रियों की कान्ति का प्रत्यक्ष अनुभव कालिदास को है तभी तो कह रहे है कि दशपुर की स्त्रियाँ तुम्हें उत्सुकता पूर्वक देखेंगी जिनके नेत्रों में लता के समान भौंहों का विलास है पलके उपर उठ जाने के कारण नेत्रों की शोभा कुन्दपुष्प के साथ हिलते हुये भौरों की तरह है। दशपुर के बाद मेघ ब्रह्मावर्त नामक जनपद में अपनी छाया बिखेरते हुये उस स्थान पर जायेगा जहाँ अर्जून ने सैकड़ो बाण क्षत्रियों के मुख पर बरसाये थें।

निष्कर्ष -

कालिदास रचित दूत काव्य मेघदूत का अवलोकन यह प्रमाणित करता है कि उन्हें भौगोलिक परिवेश का नितान्त प्रामाणिक और जीवन्त बोध था ऐसा कहनें का तात्पर्य यह है कि जिन महत्वपूर्ण स्थलों, जिन प्राकृतिक परिवेशों के मर्मस्पर्शी और स्पष्ट वर्णन मेघदूत के पूर्वमेघ में किये गये हैं वे या तो उन सभी स्थलों की यात्रा- प्रत्यक्ष से सम्भव हैं अथवा किसी एक स्थान पर रहकर उन विभिन्न स्थानों का वैशिष्ट्य वर्णन कालिदास की केवल कल्पना भूमि से सम्भव हुए हों ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- उपाध्याय, बलदेव, 2001, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, पृ0 155।
- रेग्मी, शेषराज, 2003, रघुवंशम्, चौखम्भा सुरभरती प्रकाशन, वारणसी, पृ0 9।
- आचार्य, रामकृष्ण, 1973, मेघदूतम्, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ0 148।
- यादव, बलवानसिंह, 2010, रघुवंशमहाकाव्यम् द्वितीय सर्गः, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, पृ0 01।
- यादव, बलवानसिंह, 2010, रघुवंशमहाकाव्यम् द्वितीय सर्गः, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, पृ0 35।
- द्विवेदी, रेवाप्रसाद, 1986, कालिदास ग्रन्थावली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, पृ0 258।
- चतुर्वेदी, सीताराम, 2006, कालिदास ग्रन्थावली, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ, पृ0 101।
- द्विवेदी, रेवाप्रसाद, 1986, कालिदास ग्रन्थावली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, पृ0 288।
- शर्मा, उमाशंकर, 2014, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, पृ0 215।

इतिहास एक विज्ञान है अथवा कला

चंचला कुमारी

अतिथि प्राध्यापक, बी. पी. एस. कॉलेज भोरे, जेपी विश्वविद्यालय

सरांश- विद्धानों ने प्रत्येक युग में इतिहास-लेखन की आवश्यकता अनुभव की है। मानव इतिहास निरंतर अकुशल से कुशल की ओर बढ़ता जा रहा है। समाज के स्वरूप में परिवर्तन प्रगति के कारण होता है। इस परिवर्तन के साथ सामाजिक अवस्था में विकास होता रहता है। इस विकास की प्रक्रिया के साथ सामाजिक आवश्यकताओं में परिवर्तन होना निश्चित है। समाज के सन्दर्भ में इतिहास की वही भुमिका है जो मनुष्य के सन्दर्भ में उसकी स्मृति की। इस इतिहास समष्टि की अपने अतीत की स्मृति है पर जब कोई व्यक्ति इस स्मृति का वैज्ञानिक अध्ययन के सहारे संयोजन करता है, उसे लिपिबद्ध करता हैं। या यूँ कहे कि अतीत की पुनर्रचना करता हैं। तभी इतिहास का जन्म होता है। इस प्रकार अतीत को प्रस्तुत करने जानने समझने, उससे प्रेरणा लेकर वर्तमान को सँवारने एवं भविष्य के लिये मार्गदर्शन लेने का साधन इतिहास ही है। प्रस्तुत शोध पत्र में इतिहास को विज्ञान, कला अथवा दोनों रूपों में विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द- इतिहास, ऐतिहासिक विश्लेषण, विज्ञान अथवा कला, मौलिक तथ्य।

इतिहास विज्ञान के रूप में-

आर.जी. कालिंगवुड महोदय इतिहास को एक विशेष प्रकार का विज्ञान मानते हुए लिखते है, ''इतिहास विज्ञान है किन्तु एक विशेष प्रकार का विज्ञान है। यह एक ऐसा विज्ञान है जो ऐसी घटनाओं का अध्ययन करता है जो प्रत्यक्ष नहीं प्राप्य हैं अपितु जिन्हें प्रत्यक्ष प्राप्य वस्तुओं के आधार पर-जिन्हें इतिहासकार साक्ष्य कहता है-अनुमानात्मक ढंग से जाना जाता है।'' जिस प्रकार वस्तुएँ अपने स्वभाव से विशेषित होती हैं, उसी तरह मनुष्य इतिहास से। परिवर्तनशीलता विकास का लक्षण है और मनुष्य इस अर्थ में निरन्तर विकासशील है। इतिहास एक शास्त्रा है तथा एक अपरिवर्तनीय श्रृंखला में संम्बद्ध मानव अनुभवों का शास्त्रा। अतएव इतिहास मेरे जींवन का सुव्यवस्थित विज्ञान है और इस कारण वह वर्तमान का विज्ञान है। विज्ञान में हम प्रकृति का अध्ययन करते हैं एवं इतिहास में मनुष्य का। अतः कालिंगवुड महोदय इतिहास को एक प्रकार का शोध बताते हैं जिसका सम्बन्ध विज्ञान से है। जिस प्रकार विज्ञान से हमें प्रकृति सम्बन्धी समस्याओं का समाधान मिलता है, उसी प्रकार मानव समाज के जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर हमें इतिहास से मिलता है।

इतिहास को विज्ञान मान भी लें तो सबसे बड़ी समस्या यह है कि इतिहास का लेखन इतिहासकार द्वारा किया जाता है और उसके पूर्वाग्रह इतिहास को विज्ञान नही रहने देते। एलन बुलक इस तारतस्य में स्पृट करते है कि ''इतिहासकार सामान्य सिद्धान्तों का प्रयोग करता है किन्तु एक उपकरण के रूप में जिन्हें समय क्रम में उनकी उपयोगिता के अनुसार वह त्यागता रहता है अथवा अपने अनुकूल रूपान्तरित करता रहता है अथवा उसका निर्वाह करता चलता है। एक प्रयोगपरक अनुमान के रूप में जिसे आवश्यकतानुसार छोड़ दिया जाय या अपना लिया जाय, यह अपरिहार्य है किन्तु एक पूर्वाग्रही विश्वास के रूप में यह मस्तिष्क को अपने शिकंजे में जकड़ लेता है और इतिहासकार को साक्ष्यों में तोड़ मरोड़ करने को विवश करता है।'' वस्तुतः व्याख्या करते समय इतिहासकार वैज्ञानिक से अधिक साहित्यकार बन जाता है और उसके पूर्वाग्रह एवं व्यक्तित्व इतिहास पर हावी हो जाते हैं। इसीलिए जे.बी.ब्यूरी इतिहास को साहित्य से मुक्त करने पर विशेष जोर देते हैं। इतना ही नहीं, इतिहास को इतिहासकार के व्यक्तित्व तथा उसकी परिष्कृत शैली

से वंचित कर मात्रा यथार्थता के आवरण में सुशोभित किया जाय। विज्ञान की भांति ही इतिहास का भी एकमात्रा उद्देश्य यथार्थता का सत्यान्वेशण होना चाहिए। अतः इसी उच्च आदर्श को इतिहास में प्रतिरोपित कर हम उसे वैज्ञानिक स्तर प्रदान कर सकते है। ब्यूरी महोदय ने वैज्ञानिक ढंग से तथ्यान्वेशण तथा सूक्ष्म निरीक्षण पद्धति को इतिहास अध्ययन का अनिवार्य अंग स्वीकार किया है। ट्रेवेलियन महोदय का भी मानना है कि इतिहासकार का कर्तव्य यथार्थ तथ्यों की खोज, उनका सूक्ष्म निरीक्षण, कारणों तथा प्रभावों की व्याख्या है।

इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा उन्नीसवीं सदी की देन है। विश्व की परिवर्तित परिस्थितियों ने इतिहासकार को भी धर्म एवं भाव-प्रधान विचारों का परित्याग कर पर्यावरण के परिवेश में मानवीय प्रक्रिया को सूक्ष्म विवेचन करने हेतु बाध्य किया। उन्नीसवीं तथा बींसवी सदी में इतिहास को विज्ञान माना जाने लगा। इतिहास को विज्ञान मानने का उद्देश्य यह था कि समाज में समय के सापेक्ष में मानवीय कार्य व्यवहार का एवं उसे व उसकी परिस्थितियों को नियंत्रित करने वाले नियमों का समझा जा सके क्योंकि इन्ही नियमों के कारण समाज में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिवर्तन होते हैं। उक्त नियमों को वैज्ञानिक आवरण में समझकर हम इतिहास के परिवर्तनों को भी एक सीमा तक समझ सकते है। एडम स्मिथ महोदय के अनुसार इतिहास और विज्ञान में एक अंतर भी है। इतिहास घटनाओं का वर्णन करता है किंतु विज्ञान सिद्धांतों को मानकार निगमन करता है। इतिहासकार घटनाओं का सामान्यीकरण करता है अर्थात् कोई घटना कैसे घटी, क्यों घटी और कब घटी। वह किसी नियम की स्थापना नही करता।

कुछ लेखकों ने इतिहास को विज्ञान मानने से इंकार किया है। उदाहरणस्वरूप, ट्रेवेलियन कहता है, ''विज्ञान ने मानव का सामाजिक और आर्थिक जीवन बदल दिया है तथा शिक्षित लोगों के धार्मिक और अन्तरिक्ष दृष्टिकोण में क्रांति ला दी है। भौतिक विज्ञान की इन आष्चर्यजनक उपलब्धियों के कारण पचास वर्ष पहले इतिहासकारों के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इतिहास को विज्ञान मानने तथा वैज्ञानिक विधियों और आदर्शो को ग्रहण करने से इतिहास का महत्व बढ़ जाएगा।'' वह कहता है कि यह उपमा गलत है क्योंकि मानव-अध्ययन, अणु अध्ययन या जीव विज्ञान का अध्ययन नही हो सकता। कारण स्पृष्ट है। एक अणु के जो गुण हैं, वे सभी अणु के लिए समान है। लेकिन एक व्यक्ति के गुण सभी व्यक्ति के लिए समान नहीं हो सकते। साथ ही, किसी व्यक्ति के जीवन इतिहास का कोई वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया जा सकता। कारण स्पष्ट है। व्यक्ति के गुण सभी व्यक्ति के लिए समान नही हो सकते। साथ ही, किसी व्यक्ति के जीवन इतिहास का कोई वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया जा सकता। कारण स्पष्ट है। व्यक्ति का स्वभाव, उसकी अवधारणाएँ, उसके आध्यात्मिक विचार आदि अति जटिल होते हैं। अतः किसी एक व्यक्ति के वैज्ञानिक विश्लेषण से सभी व्यक्तियों के बारे में कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता। वस्तुतः इतिहास सभी प्राप्त तथ्यों का एक स्थूल अनुमान है। यह बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों का भी अध्ययन करता है जिसका कोई वैज्ञानिक विश्लेषण संभव नहीं है। इतिहास को विज्ञान मानने में निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं। (क) इतिहास अनन्य रूप से अद्वितीय का अध्ययन करता है। (ख) इतिहास से हमें कोई सबक नहीं मिलता। (ग) इतिहास भविश्यवाणी नहीं कर सकता। (घ) इतिहास प्रधानतः विषयपरक है। (ड) इतिहास में धर्म और नैतिकता का गहन मेल है।

यह कहा जाता है कि विज्ञान सामान्य और विश्वजनीन का अध्ययन करता है तथा इतिहास विशेष और अद्वितीय का अध्ययन करता है। यह कहा जा सकता है कि इतिहासकार भी समान घटनाओं के आधार पर सामान्यीकरण का नियम निर्धारित करता है। वह अपने साक्ष्य की जांच भी सामान्यीकरण से करता है। कार कहता है, ''इतिहास के पाठक और लेखक सामान्यीकरण पर जोर देते हैं। वे ऐतिहासिक संदर्भ उनके समकालीन भी हो सकते है।'' वह आगे कहता है, ''यह कहना व्यर्थ है कि सामान्यीकरण इतिहास के लिए कोई नई चीज है। इतिहास का आधार सामान्यीकरण है।'' इल्टन भी कहता है, ''इतिहासकार को ऐतिहासिक तथ्यों के संग्रहकर्ता से जो अलग करता है वह सामान्यीकरण है।''

यह कहना भी गलत है कि इतिहास कोई सबक नहीं सिखाता। वस्तुतः सामान्यीकरण के कारण हम लोग एक तरह की घटना से जो सबक सीखते हैं उसे ठीक उसी तरह की दूसरी घटना में उसका प्रयोग करते हैं। उदाहरण स्वरूप 1815 ई0 के वियना सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने राष्ट्रीयता और उदारवाद के सिद्वांतों की उपेक्षा कर गलती की। अतः 1919 ई0 में पेरिस शांति सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने गलती से बचने की कोशिश की और आत्म-निर्णय (Self-determination) के सिद्वांत पर बल दिया। इसी तरह 1917 ई0 के रूसी क्रांतिकारियों ने 1789 के फ्रांस के क्रांतिकारियों से बहुत कुछ सीखा।

यह कहना भी गलत है कि इतिहास कोई भविश्यवाणी नहीं कर सकता। वस्तुत: इतिहासकार सामान्यीकरण करते समय भविष्य के लिए मार्ग-दर्शन निर्धारित कर देता है। यह सत्य है कि इतिहास में घटना विशेष की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। किंतु, जिन परिस्थितियों में क्रांतियाँ हुई हैं उनके आधार पर किसी देश की परिस्थितियों का अध्ययन कर वहाँ क्रांति होने या न होने की भविष्यवाणी की जा सकती है। यह ठीक है इतिहासकार किसी घटना की तिथि या काल निर्धारित नहीं कर सकता। अत: कार ने कहा है, ''इसका अर्थ यह नही है कि इतिहास से भविष्य के मार्गदर्शक अवश्य बन सकते है।[23] इतिहास में ठीक-ठीक भविष्यवाणी संभव नहीं होने के कारण स्पृट हैं। कारण यह है कि मानव प्राणियों में अत्याधिक जटिल है और उसके आचरण के अध्ययन करने में कठिनाइयाँ हैं।

इतिहास की वैज्ञानिक प्रकृति को इसलिए भी चुनौती दी जाती है चूँकि इतिहासकार विषयपरक है कि इस अध्ययन में एक दूसरे के विचार या व्यवहार का घात-प्रतिघात हो। संभव है कि इतिहासकार अपने दृष्टिकोण के किसी व्यक्ति के आचरण का अध्ययन करे। किंतु, कार का कहना है, ''यह आवश्यक नहीं कि इतिहासकार अपने सभी पर्यवेक्षणों में पूर्वाग्राही ही हो। जिस चीज का पर्यवेक्षण किया जाता है उसे पर्यवेक्षण प्रक्रिया प्रभावित और मर्यादित करती है। यह दो विपरीत दिशाओं में संभव है। ''मानव आचरण का विश्लेषण कर भविष्यवाणी की जा सकती है और उसे संभावित खतरे से बचने के लिए सावधान किया जा सकता है। लेकिन यह भी संभव है कि घटना नही घटे और भविश्यवाणी असत्य निकले। इतिहास पुनरावृति नही करता। इसका एक कारण यह है कि विचारशील मानव दूसरी गलती को दुहराना नहीं चाहता। इसे नकारा नहीं जा सकता कि इतिहासकार और वैज्ञानिक एक नहीं हो सकते क्योंकि इतिहासकार विषय परक है जब कि वैज्ञानिक वस्तुपरक है।

इतिहास को विज्ञान कहने में उपर्युक्त आपत्तियों में कुछ तो बिल्कुल सही हैं। प्रो0 कार का कहना है, ''वैज्ञानिक, सामाजिक वैज्ञानिक और इतिहासकार सभी के सभी समान अध्ययन की विभित्र शाखाओं में लगे हुए हैं। यह सामान्य अध्ययन मानव और उसके पर्यावरण का अध्ययन है। अध्ययन का उद्देश्य भी समान है। उद्देश्य है मानव ज्ञान में वृद्धि और उसके पर्यावरण पर पूर्णता प्राप्त करना।'' वह आगे कहता है, ''अतीत को समझने के लिए इतिहासकार भी अन्य वैज्ञानिकों की तरह अपने उत्तरों की विविधता को सहज बनाने के लिए विवश है। इस प्रकार वह अनेक कारणों व घटनाओं में समरूपता लाने की कोशिश करता है।''

बी. शेख अली ने इस सन्दर्भ में यह भी संकेत किया है कि, ''जनता के चरित्र की व्याख्या हेतु हमें उसकी भौगोलिक दशाओं, जलवायु, उनके भौतिक वातावरण, उनकी बौद्धिक पृष्ठभूमि और उनकी राजनीतिक अथवा सामाजिक अथवा आर्थिक आवश्यकता को ध्यान में रखना चाहिए। .... ये सभी तथ्य विज्ञान की कोटि में आते हैं। अत: इतिहास को विज्ञान से अलग नहीं किया जा सकता है।

निस्सन्देह यह सत्य है कि किसी विशिष्ट घटना की भविश्यवाणी इतिहास में सम्भव नहीं है और दुर्घटना की सम्भावना सदैव बनी रहती है परन्तु इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि अपने क्रान्ति के कारणों के विशिष्ट ज्ञान से वह वर्तमान दशा में इतिहासकार भविष्यवाणी कर सकता है कि निकट भविष्य में एक क्रान्ति हो सकती है। इसे हम सही शब्दों में इतिहास की चेतावनी भी कह सकते हैं। वस्तुत: साधारण लोगों की तुलना में बड़े लोग केवल एक दुर्घटना और अपवाद होते हैं। यदि न्यूटन नहीं होता तब कोई अन्य व्यक्ति गुरूत्वाकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता और नेपोलियन की अनुपस्थिति में कोई अन्य फ्रांसीसी इंग्लैण्ड के विरूद्ध तलवार उठाता। यदि शिवाजी का जन्म न हुआ होता तब कोई अन्य मराठा इस दायित्व को निभाता। मिलती-जुलती घटनओं के आधार पर इस प्रकार की भविश्यवाणी इतिहास में सम्भव हैं।

प्रोफेसर ई. एच.कार ने भी इस सन्दर्भ में लिखा है, ''इसका तात्पर्य यह कदाचित नहीं है कि परिणाम इतिहास से भविश्य के सम्बन्ध में निकाले जाते हैं, महत्वकालीन होते हैं अथवा उनमें दशात्मक सत्यता नहीं होती है जो घटनाओं के घटित होने की क्रिया-कलापों के निर्देशक और हमारी समझदारी की कुंजी के रूप में कार्य करते हैं। .... मानव वस्तुत: हमारी जानकारी सर्वाधिक जटिल प्राकृतिक इकाई है और व्यवहार का अध्ययन हमें भौतिक वैज्ञानिकों से भी अधिक कठिनाइयों का सामना करने में संलग्न कर सकता है।''

विज्ञान और इतिहास दोनों का उद्देश्य सत्य को स्थापित करना है। विज्ञान सत्य को जानने का एक विधिवत ज्ञान है जबकि इतिहास का उद्देश्य अतीत को पुन:निर्मित करते हुए उसमें निहित सत्य को प्रकट करना है। वस्तुत: इतिहास का उद्देश्य अतीत को आइने में प्रतिबिम्बित करना है ताकि घटित वास्तविक घटनाओं की वास्तविक तस्वीर देखी जा सकें।

इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप को इतिहास के वस्तु-विषयक होने कारण चुनौती दी जाती है। इतिहासकार का अध्ययन क्षेत्र मानव और उसके क्रिया-कलाप होते हैं। ज बवह स्वयं उन पर गहन दृष्टि डालता है तब उसके निर्णय उसके दृष्टिकोण को प्रभावित करते हैं परन्तु प्रोफेसर ई. एच.कार इससे सहमत नहीं है। वह लिखते है, ''यह सत्य है कि व्याख्या की प्रक्रिया उसमें सुधार करे अथवा उसे प्रभावित करे जिसको कि ध्यानपूर्वक जाना गया है।''

यह भी कहा जाता है इतिहास के अन्तर्गत धर्म एंव नैतिकता को अधिक महत्व दिये जाने के कारण भी उसे विज्ञान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। कई सन्दर्भ में अपने दृष्टिकोण को सिद्ध करने लिए बहुत से विद्वानों ने धर्म का सहा लिया है जो अन्यथा विरोधी हो सकता था। वे इतिहासकार जो इतिहास को विज्ञान की संज्ञा देते हैं उन्हें अपने तथ्यों की पुष्टि के लिए किसी उच्च ऐतिहासिक शक्ति को साधन नहीं बनाना चाहिए। इसी प्रकार इतिहासकार जो नैतिक के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं में व्यक्ति की भूमिका का उल्लेख करता है, वह उसके विज्ञान होने के मार्ग में अड़चन पैदा करता है।

प्रोफेसर ई. एच. कार जो इतिहास को विज्ञान मानने के सिद्धान्त के प्रबल समर्थक हैं, ने भी स्पष्ट लिखा है, ''वैज्ञानिक, सामाजिक वैज्ञानिक और इतिहासकार एक ही विषय की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन में संलग्न है जो वातावरण का अध्ययन है। इस अध्ययन का उद्देश्य एक है कि वह अपने ज्ञान में वृद्धि के द्वारा अपने वातावरण पर अधिपत्य स्थापित कर ले। .... इतिहासकार भी इसी प्रकार वैज्ञानिकों की भांति अपने अतीत के अध्ययन के आधार पर इस प्रश्न के अत्तर के सरलीकरण में संलग्न है ताकि वह एक उत्तर को दूसरे का अधीनस्थ बना सके और घटनाओं और कारणों की अराजकता में एकता व कमबद्धता स्थापित कर सकें।''

इतिहास का कला के रूप में

अभी तक हमने इतिहास को एक विज्ञान के रूप में वर्णित किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इतिहास को हम इसलिए विज्ञान कह सकते हैं क्यों उसने कुछ वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा आँकड़ों के संग्रह करने में, प्रमाणों को परिवर्तित करने में और तर्क के द्वारा परिणामों तक पहुँचने की प्रक्रिया को अपनाया है। कार्ल आर. पामर ने भी लिखा है, ''इतिहास विज्ञान नहीं अपितु एक कला है।'' दूसरा विचारणीय पहलू यह है कि इतिहास एक कला है किन्तु इतिहास को हम उस भाव से कला स्वीकार नहीं कर सकते हैं जिस प्रकार हम चित्रकला, मूर्तिकला और संगीत को कला मानते हैं। इतिहासकार द्वारा प्रयोग की कल्पना की तुलना हम कदाचित चित्रकार अथवा कलाकार की कल्पना से नहीं कर सकते। इतिहासकार अतीत को स्थापित करने के लिए तत्कालीन उपलब्ध साक्ष्यों का प्रयोग करता है लेकिन साथ ही वह अपनी कल्पना का भी प्रयोग करता है ताकि वह अतीत का भव्य चित्र प्रस्तुत कर सके और इस दृष्टि से इतिहास को एक कला की श्रेणी में रखा जा सकता है। एक प्रसिद्ध इतिहासकार की भी यह मान्यता है कि, ''एक दूसरी दृष्टि से भी एक इतिहासकार को कलाकार, उसके वर्णन के तरीके के आधार पर कहा जा सकता है। वास्तव में गिब्बन की महानता बहुत सीमा तक उसके कार्यो की कलात्मकता के कारण है।''

वी. शेख अली की भी यह मान्यता है कि दस्तावेज व सामग्री संग्रह केवल ईट, सीमेण्ट व मामला है और इतिहासकार निर्माता है जिससे वह या तो वैलूर के मन्दिर के समान अथवा ताजमहल के समान कब्र बना सकता है। यह इतिहासकार है जो यह निर्णय करता है कि उसे वैज्ञानिक व कलात्मक तत्व को अपने आधीन करना है अथवा प्रशंसनीय प्रभाव के साथ सही औसत में प्रस्तुत करना है।''

इतिहास को विज्ञान मानने वाले प्रमुख प्रणोता ने यह स्वीकार किया है कि, ''आज विज्ञान और कला को इतिहास के रूप में अपने मिलन का एक धरातल प्राप्त हो गया है परन्तु साहित्यिक एवं वैज्ञानिक इतिहासकारों के मध्य प्रयोग की विधि में कुछ अन्तर है। प्रथम मूलत: सामान्यीकरण की प्रवृत्ति का पोशक है जबकि द्वितीय शोध का।''

इस विवादास्पद प्रश्न को हल करने के लिए हम बी. शेख अली ने मतानुसार यह कह सकते है, ''फिर भी एक वैज्ञानिक व इतिहासकार के मध्य यह कुछ अन्तर हैं- प्रथम के पास एक प्रयोगषाला होती है जबकि दूसरे के पास पुस्तकालय। वैज्ञानिक निर्णय, संक्षिप्त और अपरिवर्तनीय होते हैं जबकि इतिहासकार के निर्णय लचीले और विषय परक होते है। वैज्ञानिक, प्रतीको और ग्राफो का प्रयोग करता है जबकि इतिहासकार का कार्य वर्णन और व्याख्या पर निर्भर होता है। वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ होता है किन्तु ऐतिहासिक

नियम सदैव त्राुटिपूर्ण होते हैं। इतिहास और विज्ञान का मिलन इस दृष्टि से एक है कि दोनो आँकडों के संकलन के लिए एक ही पद्धति को अपनाते है और दोनों का उद्देश्य एक होता है अर्थात् दोनों का अन्तिम ध्येय सत्य की खोज करना है।''

इतिहास विज्ञान एवं कला दोनों है

प्रो. जे. बी. ब्यूरी, वाल्श, ई. एच. कार रेनियर आदि विद्वान जहाँ इतिहास को विज्ञान मानते है, वहीं हेनरी पिरेन, क्रोचे, ट्रेवेलियन एवं ब्ल्यूक आदि विद्वान इतिहास को कला मानते है परन्तु जी. एम. ट्रेवेलियन, ए. एल. राउज आदि अनेक कुछ ऐसे विद्वान भी है जो मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए इतिहास को कला एवं विज्ञान दोनों मानते है।

ऐसे विद्वान जो इतिहास को कला एवं विज्ञान दोनों मानते है, उनका मत इतिहास के साथ सही न्याय करता है। हम इतिहास को न ता पूर्णतः विज्ञान मान सकते है और न ही पूर्णतः कला क्योंकि इतिहास विज्ञान एवं कला का एक सुन्दर संयोग है। जब एक इतिहासकार इतिहास लेखन के लिए तथ्यों का अन्वेशण करता है, तब उसे एक वैज्ञानिक की भाँति पर्यावरण, जलवायु एवं वातावरण के सापेक्ष में मानव एवं उसके कार्यो का अध्यययन करना पड़ता है। तथ्यों के एकत्रीकरण के पश्चात् उसे अपनी कल्पना शाक्ति द्वारा विषय के सापेक्ष तथ्यों का चयन करना होता है और चूँकि अभिव्यक्ति के सम्प्रेषण का सर्वश्रेष्ठ माध्यम कला है अतः इतिहासकार को तथ्यों के एकत्रीकरण एवं चयन के पश्चात् प्रस्तुतीकरण के समय कला का सहारा लेना होता है।

इतिहास लेखन हेतु ऐतिहासिक तथ्यों की यथार्थता वैज्ञानिक प्रविधि में ही निहित है परन्तु उनका प्रस्तुतीकरण कलात्मक ढंग से जन सामान्य को ग्रह्य होगा। वैज्ञानिक प्रविधि से एकत्रित तथ्य प्रायः नीरस एवं निर्जीव होते है, अतः उन्हें कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कर ही सजीव एवं सरस बनाया जा सकता है। निर्जीव तथ्यों को कैंची एवं गोंद की तरह के इतिहास में यथावत् रखने पर इतिहास अध्ययन जन सामान्य के लिए नीरस, कठिन एवं दुरूह हो जायेगा। अतः नीरस व निर्जीव तथ्यों को ग्राह्य व आत्मसात योग्य बनाने के लिए इतिहास की कलात्मक एवं सास प्रस्तुति आवश्यक है। इस प्रकार जहाँ यथार्थता के लिए इतिहास का विज्ञान होना आवश्यक है, वहीं बोधगम्य होने के लिए इतिहास का कला होना आवश्यक है।

जी.एम. ट्रेविलियन का यह कथन कफी उपयुक्त प्रतीत होता है कि ''ऐतिहासिक तथ्यों की खोज प्रणाली वैज्ञानिक होनी चाहिए किन्तु पाठकों के सामने उसे पेश करने की विधि कला है। शब्दों की लेखन कला साहित्य है।'' जी.आर. एल्टन का भी यही मानना है कि ''इतिहास लेखन को वैज्ञानिक विधियों से परिष्कृत करने के बावजूद उसके प्रस्तुतीकरण व्याख्या में कलात्मक शैली की नितान्त आवश्यकता है।'' ए.एल.राउज की भी यही मान्यता है कि ''वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा इतिहास लिखा जाता है लेकिन इसका सृजन कला है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास कला व विज्ञान दोनों है। कार्ल पियर्सन के अनुसार तो कलात्मक शैली को भी विज्ञान का अभिन्न अंग स्वीकार किया गया है क्योंकि कला से ज्ञान को दक्षता प्रदान की जाती है। कला ही अभिव्यक्ति का प्रेरणा स्त्रोत है। यदि विज्ञान का सम्बन्ध जानने से है तो कला का सम्बन्ध करने से है। इतिहास विज्ञान है क्योंकि वह सत्यता के परीक्षण उपरान्त उन्हें सम्प्रेशित करता है। अतः निश्चित रूप से इतिहास कला और विज्ञान दोनों है। प्रो.जे.बी. ब्यूरी ने भी अन्ततः इतिहास को विज्ञान एवं कला का सुन्दर सम्मिश्रण स्वीकार किया है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त वर्णन से यह पूणतः स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास केवल विज्ञान ही नहीं अपितु कला भी है। उसे पूर्ण रूप से विज्ञान नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह विज्ञान से सम्बन्धित सभी शर्षो को पूर्ण नहीं करता है। इसी प्रकार वह पूर्णरूप में एक कला भी नहीं है क्योंकि कलाकार का कार्य मौलिक व रचनात्मक होता है जबकि इतिहासकार दूसरे पर आधारित एवं प्रस्तुतकर्त्ता होता है। अतः इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इतिहास में एक विज्ञान व कला दोनों के गुण विद्यमान है, भले ही वे आंशिक रूप में हो। कालिंगवुड ने भी इतिहास को एक विशेष प्रकार का विज्ञान स्वीकार किया है। इस सन्दर्भ में ई. एच. कार की भी मान्यता है कि मानव और उसके वातावरण का अध्ययन ही इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन है।

अत: में डॉ. जे. चौबे के शब्दों में हम यह कह सकते है, ''इतिहास में प्राय: विज्ञान सम्बन्धी सभी विशेषताएँ पायी जाता है। डिल्थे ने इतिहास को विज्ञान के समकक्ष ही नहीं, इतिहास समाज के लिए रूचिकर एवं उपयोगी हो। सामाजिक आवश्यकता को यदि ध्यान में रखा जाये तो इतिहास का कला होना ही अधिक उपयोगी होगा क्योंकि इतिहासकार के पास ऐतिहासिक सामग्री का अक्षय भण्डार होता है और उसके द्वारा अर्जित ज्ञान में समाज की भागीदारी ही उसके लेखन का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए और यह तभी सम्भव है जबकि इतिहास सहज, सरल, सरल एवं सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया जाये, ताकि समाज के लिए पठनीय एवं आत्मसात योग्य बन सके। इस दृष्टिकोण से यदि हम देखें तो इतिहास कला होने पर ही समाज की आवश्यकताओं पर अधिक खरा उतरेगा।

संदर्भ सूची

1. ए. के. वार्डर, भारतीय इतिहास लेखन की भूमिका, चण्डीगढ, 1987
2. परमानंद, सिंह, इतिहास दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2000
3. बुद्ध प्रकाश, इतिहास दर्शन, हिन्दी समिति, प्रयाग, 1962.
4. शर्मा रामविलास, इतिहास दर्शन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995.
5. सांकृत्यायन, राहुल, अतीत से वर्तमान, विद्या मंदिर प्रेस, वाराणसी, 1956.
6. पाण्डेय गोविन्द चन्द्र, इतिहास, स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1993.
7. सीताराम दुबे, (सं.) समसामयिक इतिहास लेखन: प्रविधि एवं प्रवृत्तियाँ, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2001
8. जगदीश नारायण दुबे, इतिहास विज्ञान, सुभाष प्रकाशन, वाराणसी, 1988
9. राधेशरण, इतिहास और इतिहास लेखन, म. प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2003
10. चौबे, झारखण्डे, इतिहास दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999
11. मो. अकरम लारी आजाद, भारतीय इतिहास का लेखन, महेन्द्र प्रकाशन, गोरखपुर, 1987
12. रोमिला थापर, इतिहास की पुनर्व्याख्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
13. कार ई.एच., इतिहास क्या है, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1993.

K

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन

देवेन्द्र प्रताप सिंह

पी.एच.डी. शोधार्थी (शिक्षा शास्त्रा), बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

सारांशः

सीखने के समस्त साधनों में अध्ययन सबसे महत्वपूर्ण साधन है। विद्यार्थी जब विद्यालय में अध्ययन प्रारम्भ करता है तभी उसकी अध्ययन आदतों में औपचारिक परिवर्तन प्रारम्भ होता है, लेकिन अध्ययन केवल पढ़ना मात्रा नहीं है अपितु पढ़ने से कहीं अधिक व्यापक है। अध्ययन में उन सभी आदतों, प्रचलित तरींकों एवं व्यक्तिगत प्रयासों का योग होता है जिनका व्यक्ति जानने के क्रम में उपयोग करता है। इस प्रकार ज्ञान को ग्रहण करने की समग्र प्रक्रिया ही अध्ययन आदत है।

बीज शब्द :अध्ययन आदतें, विषय वर्ग, अभिलेखन, अभिमुखता।

प्रस्तावनाः

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज की उन्नति का आधार उसके शिक्षित एवं चिन्तनशील नागरिक होते हैं। शिक्षा प्रत्येक युग में समाज को उसकी तत्कालीन आवश्यकता के अनुरूप नागरिक प्रदान करने का सराहनीय कार्य करती रही है। वस्तुतः प्रत्येक युग में शिक्षा ने अपने स्वरूप में व्यापक परिवर्तन कर तत्कालीन समाज के लिए स्वयं को प्रासंगिक बनाया है।

स्वामी विवेकानन्द-*''मनुष्य की अन्तर्निर्हित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।''*

प्राथमिक स्तर पर बालक की अध्ययन की आदतें अलग होती हैं, आगे चलकर कुछ बदल जाती हैं। माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों के लिए अध्ययन आदतें अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। अध्ययन की आदतों से व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। रचनात्मकता का निर्धारण होता है, रचनात्मकता, बौद्धिकता, भाषाव्यकता, साहित्यिकता एवं कलात्मकता का विकास अध्ययन आदतों पर निर्भर करता है। माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक एवं शैक्षिक विकास की नींव पड़ चुकी होती है। अतः इस स्तर पर अध्ययन की आदतें छात्रों के आन्तरिक गुणों को प्रभावित करती हैं। माध्यमिक स्तर की शिक्षा की सम्पूर्ण शिक्षा की रीढ़ की हड्डी कहा जाता है। क्योंकि इस स्तर की शिक्षा ही विद्यार्थी के पथ-पदर्शक का काम करती है। इस स्तर पर शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रा अपनी किशोरावस्था में होते हैं अगर इस स्तर पर उन्हें सही मार्गदर्शन दिया जाये तो वे बड़ी से बड़ी सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

अध्ययन आदत सफलता का आधारभूत सोपान है। अध्ययन आदत का भविष्य निर्माण की दिशा से गहन सम्बन्ध है। अच्छी अध्ययन आदतें विद्यालय में सफलता प्राप्त करने, प्रतियोगी भावना के विकास, अच्छे गुणों का विकास और बच्चों को यह अनुभूति करने में सक्षम बनाने, कि वे विद्यालय और जीवन में बेहतर कर सकते हैं, के लिए अनिवार्य है। अच्छी अध्ययन आदतों को निर्माण अध्ययन में सफलता प्राप्त करने की आधारभूत सीढ़ी है। अच्छी अध्ययन आदतों का सम्बन्ध हेतु उपर्युक्त वातावरण का निर्माण,

चयन करने तथा उसे निरन्तर बनाये रखने से भी है। अच्छी आदत में शामिल करने से है, जिसके द्वारा अध्ययन की प्रक्रिया इस प्रकार स्वतः परिचालित होती है, जिससे कि शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति पूर्णतया सुनिश्चित हो सके।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :

विद्यार्थियों में अध्ययन की आदत का विकसित किया जाना उनके व्यक्तित्व के लिए तो आवश्यक है ही, साथ ही भावी जीवन के निर्माण के लिए भी आवश्यक है। अध्ययन की प्रभावशाली आदतों का विकास न कर सकने के कारण ही वे अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में किल होते हैं। जो छात्रा अपने अध्ययन में सफलता प्राप्त करते हैं, वे साधारणतः अकेले अध्ययन करते हैं या अध्ययन की किसी निश्चित विधि का अनुसरण करते हैं। ये छात्रा सफल होने के कारण अपने उद्देश्य को प्राप्त करते हैं। यदि इस उद्देश्य का सम्बन्ध उनकी विशिष्ट इच्छा से होता है, तो वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति को अध्ययन में लगा देते हैं।

जीवन में प्रसन्नता, कुशलता तथा उन्नति आदतों पर निर्भर करती है। अच्छी आदतें मनुष्य के जीवन की पूँजी होती है। हमारा जीवन सामाजिक, संवेगात्मक तथा बौद्धिक आदतों का एक पुंज है। आदतें हमारे व्यवहार को उभारती हैं तथा उत्साह देती हैं। यह बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। आदतें ही आचरणिक तथा सामाजिक गुणों, सामाजिक तथा नैतिक अनुशासन सीखने तथा शिक्षा का सारांश अनुभव करें और मनोविज्ञान ही आदतों का महत्व जानने में सहायता करती है। शिक्षा के क्षेत्र में आदतों पर आश्रित होना पड़ता है। अच्छी आदतें आसानी एवं सुविधा के साथ ज्ञान प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होती हैं। जो व्यक्ति स्कूल और घर में पढ़ाई पर अपना ध्यान करने के आदी हैं, वह आसानी से थकता नहीं। इसी प्रकार कुशलतापूर्वक लिखने, पढ़ने तथा वार्तालाप करने की आदतों का बहुत लाभ होता है, उचित रूप से तर्क करने, सहयोग देने, चिन्तन करने, निर्णय लेने, नियमित रूप से काम करने, साफ रहने, ईमानदारी के साथ काम करने की आदतों के कारण विद्यार्थी सुविधापूर्वक वातावरण के अनुरूप अपने आपकों ढाल सकता है और थोड़े समय में आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

सामान्यतः समाज में यह अवधारणा प्रचलित है कि विज्ञान वर्ग का विद्यार्थी कला वर्ग के विद्यार्थी की तुलना में ज्यादा प्रखर बुद्धि का होता है तो क्या समाज की इस अवधारणा में विद्यार्थियों के विषय संबंधी अध्ययन आदतों की कोई सार्थक भूमिका है या नहीं। प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी ने यही जानने का प्रयास किया कि विषय वर्ग (streme) का विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के साथ कोई सार्थक संबंध होता है या नही और यदि होता है तो किस वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें श्रेष्ठ होती हैं।

समस्या कथन :

''माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन''

समस्या कथन में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण :

(क) माध्यमिक स्तर

- **सम्प्रत्यात्मक अर्थ**- माध्यमिक स्तर से तात्पर्य कक्षा 9 एवं 10में संचालित होने वाली विद्यालयी षिक्षा से है।
- **संक्रियात्मक अर्थ**-प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर से तात्पर्य जनपद कानपुर नगर के शहरी क्षेत्र के यू0पी0 बोर्ड से मान्यता प्राप्त विद्यालयों में अध्ययनरत् कक्षा 9 व 10के कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों से है।

(ख) कला एवं विज्ञान वर्ग विद्यार्थी-

प्रस्तुत अध्ययन में कला वर्ग विद्याार्थी से तात्पर्य कक्षा 9 एवं 10 स्तर पर यू0पी0 बोर्ड द्वारा निर्धारित विषयों जैसे- कला, इतिहास, हिन्दी, सामाजिक विषय आदि विषयों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों से है।

प्रस्तुत अध्ययन में विज्ञान वर्ग विद्याार्थी से तात्पर्य कक्षा 9 एवं 10 स्तर पर यू0पी0 बोर्ड द्वारा निर्धारित विषयों जैसे-रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान एवं गणित आदि विषयों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों से है।

(ग) अध्ययन आदतें

- **सम्प्रत्यात्मक अर्थ**-अध्ययन आदतों से अभिप्राय विद्यार्थियों द्वारा अध्ययन करने की उन शैलियों से है जिनके द्वारा वह सहजता से सफलतापूर्वक अध्ययन करते हैं जिसके अन्तर्गत समझने की योग्यता, एकाग्रता, कार्य के प्रति अभिमुखता, रटने का अभ्यास एवं अभिलेखन आदि आदतों के समुच्चय से है।
- **संक्रियात्मक अर्थ**-प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययन आदतों से तात्पर्य एम0 मुखोपाध्याय और डी0एस0 सन्सवाल द्वारा निर्मित स्टडी हैबिट इन्वेंट्री (SHI-MS) मानक उपकरण में प्रतिदर्श प्रयोज्यों द्वारा प्राप्त किये गये प्राप्तांकों से है।

अध्ययन उद्देश्य :

(1) माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का अध्ययन करना।

(2) माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का अध्ययन करना।

(3) माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन परिकल्पनाएँ :

(1) माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का स्तर उच्च हैं।

(2) माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का स्तर उच्च हैं।

(3) माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन सीमांकन :

(1) प्रस्तुत अध्ययनजनपद कानपुर नगर (उत्तर प्रदेष) के शहरी क्षेत्र तक ही सीमित है।

(2) प्रस्तुत अध्ययन यू0पी0 बोर्ड से मान्यता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों तक ही सीमित है।

(3) प्रस्तुत अध्ययन केवल कक्षा 9 तथा कक्षा 10 में अध्ययनरत् कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों तक सीमित है।

(4) प्रस्तुत अध्ययन विद्यार्थियों के केवल अध्ययन आदतों के अध्ययन तक सीमित है।

कतिपय पूर्व शोध :

* जायसवाल, विजय (2006) ने छत्रापति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर में "A Study of Scientific Creativity as related to Scientific Attitude, Study Habits and Achivement" विषय पर शोध किया। अपने अध्ययन में उन्होंने पाया कि वैज्ञानिक सृजनशीलता तथा अध्ययन आदतों का लिंग एवं विषय वर्ग के साथ कोई संबंध नहीं है।
* राजकुमार (2012) ने बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल में **''छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यार्थियों की अध्ययन आदत एवं व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन''** विषय पर शोध किया। अध्ययन निष्कर्ष के रूप में इन्होंने पाया कि लिंग के संदर्भ में विद्यार्थियों की अध्ययन आदत में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है अर्थात बालक एवं बालिकाओं की अध्ययन आदतें एक समान होती हैं। हालांकि व्यक्तित्व के संदर्भ में लिंग की भूमिका होती है, तात्पर्य बालक एवं बालिकाओं का व्यक्तित्व अलग-अलग होता है।
* गुप्ता, रत्ना (2016) ने स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, शाहजहांपुर, लखनऊ के शिक्षक-शिक्षा विभाग में **'शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की अध्ययन आदतों की शैक्षिक उपलब्धि में भूमिका'** विषय पर शोध किया। अपने अध्ययन में इन्होंने पाया कि शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों की अध्ययन आदतों का स्तर निम्न है जिसका कारण मोबाइल, इण्टरनेट, टीवी, सोशल मीडिया आदि से युक्त परिवर्तित आधुनिक जीवन शैली है साथ ही उच्च एवं औसत अध्ययन आदतों वाले शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर है जबकि निम्न अध्ययन आदतों वाले शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि :

प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययन विधि के रूप में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया जिसके अन्तर्गत Cross Sectional SurveyDesign के अन्तर्गत समूह तुलना (Group Comparison) तकनीक का प्रयोग किया गया।

अध्ययन चर :

1. स्वतंत्रा चर -विषय वर्ग (कला एवं विज्ञान वर्ग)
2. आश्रित चर - अध्ययन आदतें
3. नियंत्रित चर - शैक्षिक स्तर (माध्यमिक स्तर), संस्था प्रकृति (यू.पी. बोर्ड)

जनसंख्या एवंन्यादर्श:

प्रस्तुत अध्ययन में जनपद कानपुर नगर के शहरी क्षेत्र में स्थित यू.पी. बोर्ड, प्रयागराज से मान्यता प्राप्त समस्त माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 9 एवं 10 में अध्ययनरत कला एवं विज्ञान वर्ग के सभी विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में परिभाशित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श के रूप में कक्षा 9 एवं 10 में अध्ययनरत कला एवं विज्ञान वर्ग के 100 विद्यार्थियों का चयन किया गया, तथा जिन्हें चुनने के लिए बहुस्तरीय यादृच्छिक न्यादर्शन (Multi Stage Random Sampling) विधि प्रयोग की गयी।

सारणी-1

Øमांक	विद्यालय का नाम	वि'ाय वर्ग		कुल विद्यार्थी
		कला वर्ग	विज्ञान वर्ग	
1.	ए0 एन0 अम्बेडकर इण्टर कॉलेज, नौबस्ता, कानपुर	10	10	20
2.	हलीम मुस्लिम इण्टर कॉलेज, चमनगंज, कानपुर	10	10	20
3.	सनरेज एम0 जी0 इण्टर कॉलेज, कानपुर	10	10	20
4.	इकरा पब्लिक गर्ल्स इण्टर कॉलेज बाबूपुरवा, कानपुर	10	10	20
5.	कानपुर पब्लिक स्कूल, किदवई नगर, कानपुर	10	10	20
कुल				**100**

अध्ययन उपकरण :

प्रस्तुत अध्ययन में उपकरण के रूप में एम0 मुखोपाध्याय (नई दिल्ली) और डी0 एन0 सन्सवाल (इन्दौर) द्वारा निर्मित 52 एकांशों की Study Habits Inventory (SHI-MS) का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीक :

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्त विश्लेशण एवं परिकल्पना परीक्षण के लिए वर्णनात्मक एवं प्राचल सांख्यिकी संक्रियाओं का प्रयोग किया गया जिसके अंतर्गत मध्यमान (M) ए मानक विचलन (SD), क्रांतिक अनुपात (CR) एवं सार्थकता स्तर (SL)आदि का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्त विश्लेशण एवं परिकल्पना परीक्षण :

प्राप्त आंकडों के अंकन एवं सारणीयन के पश्चात कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अलग-अलग की गयी विविध प्रकार की सांख्यिकीय गणना द्वारा निम्न परिणाम प्राप्त हुए -

सारणी सख्या-2

प्रयोज्य संख्या (n)	मधयमान (M)	मानक विचलन (SD)	मधयमान मानक त्रुटि (SED)	स्वतंत्रता स्तर (df)	क्रांतिक अनुपात (CR)	सार्थकता स्तर (SL)	परिणाम
50	101.6	17.2	3.53	98	0.33	0.05 स्तर (असार्थक)	स्वीकृत
50	100.4	18.2				0.01 स्तर (असार्थक)	

अध्ययन परिणाम एवं व्याख्या :

- **मध्यमान के आधार पर:** अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का मध्यमान 101.6 तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का मध्यमान 100.4 है। अत: दोनो ही वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के जो मध्यमान मान प्राप्त हुए है उनसे यह प्रमाणित होता है कि कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों से आंशिक रूप से उच्च है।
- **मानक विचलन के आधार पर:** अध्ययन से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि यू0पी0 बोर्ड के कला वर्ग के विद्यार्थियों का मानक विचलन 17.2 तथा विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों का मानक विचलन 18.2 है। अत: विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों का फैलाव कला वर्ग के विद्यार्थियों से अधिक है। इससे यह सिद्ध होता है कि भले ही कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों से उच्च हैं लेकिन दोनों ही समूह की अध्ययन आदतों का वितरण एक समान नहीं है साथ ही विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में विविधता का स्तर अधिक है।
- **क्रान्तिक अनुपात के आधार पर:** प्रस्तुत अध्ययन में क्रान्तिक अनुपात का मान 0.33 है जो सार्थकता के 0.05 स्तर तथा 0.01 स्तर पर df(98) का मान क्रमश: 1.98 तथा 2.56 है। अत: दोनों ही स्तरों पर परिगणित क्रान्तिक मान तालिका मान से कम है जिससे यह स्पष्ट होता है कि दोनो ही सार्थकता स्तर पर परिकल्पना स्वीकृत है। अत: कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है परिणामत: यह कहा जा सकता है कि कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें एक समान हैं अर्थात विषय वर्ग का विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से कोई सार्थक संबंध नहीं है।

अध्ययन निष्कर्ष :

- कला वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का स्तर विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों के स्तर से उच्च है।
- विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का विविधता स्तर कला वर्ग के विद्यार्थियों के स्तर से उच्च है।
- कला एवं विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें एक समान हैं अर्थात विषय वर्ग का अध्ययन आदतों के साथ कोई सार्थक जुड़ाव नहीं है।

सन्दर्भ सूची

- लाल, रमन बिहारी (2016), *'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त'*, मेरठ : रस्तोगी पब्लिकेशन, पृ0 सं0 2. 3
- रूहेला, प्रो0 एस0पी0 (2015), *'शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार'*, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन, पृ0 सं0 10.12
- सिंह, डॉ0 रामपाल शर्मा (2012), *'शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी'*, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, पृ0 सं0 7.8
- जायसवाल, विजय (2006), *"A Study of Scientific Creativity as related to scientific attitude, Study Habit and Achivement in Science"*, कानपुर : छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय (अप्रकाशित शोध प्रबंध)
- राजकुमार (2012), *''छात्रावासी व गैर छात्रावासी विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन''*, भोपाल : बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय (अप्रकाशित शोध प्रबंध)
- गुप्ता, रत्ना (2016), *'शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की अध्ययन आदतों की शैक्षिक उपलब्धि में भूमिका'*, लखनऊ : स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय (अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध)

भारतीय समाज में मुस्लिम महिलाओ की शिक्षा

डॉ० बबीता कुमारी

सिमरी, दरभंगा

किसी भी सभ्यता और संस्कृति के स्तर, धारणाओं, भावनाओं आदि को समझने और संस्कृति में स्त्रियों की साधारण दशा, उनके अधिकारों, स्वतत्वों और स्तर को जान लेना आवश्यक है। यदि समाज में स्त्रियों का स्तर उँचा है, उन्हें विभिन्न अधिकारें प्राप्त है, समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा र्प्राप्त है विभिन्न ललित कलाओं में उनकी प्रशंसनीय उपलब्धियाँ हैं तो उस समाज और संस्कृति का स्तर श्रेष्ठ होगा। प्राचीन काल में महिलाओं की दशा आधुनिक युग की अपेक्षा अच्छी थी।अतीत से ही भारत में स्त्रियों को शिक्षा देने की व्यवस्था रही है। उस समय स्त्री शिक्षा केवल उँचे घराने की लड़कियों तक ही सीमित थी। इस काल में राजा, नवाबों तथा बादशाहों की पुत्रियों ने उच्च शिक्षा प्राप्त करके प्रशासन राजनिति साहित्य आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रसिद्वि प्राप्त की थी। ब्रिटिश काल के प्रथम चरण में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति न हो पायी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप नारी शिक्षा की विशेष व्यवस्था नही हो पाई। स्वतंत्रता के बाद विभिन्न आयोगों ने स्त्री शिक्षा में सुधार के लिए महत्वपूर्ण सिफारिशे कि परंतु सामाजिक जटिल व्यवस्था और रूढ़िवादिता के कारण मुस्लिम स्त्रियों को विशेष लाभ नहीं मिल पाया और मुस्लिम समुदाय की स्त्रियों की शिक्षा में अवरोधक तत्व आते ही रहे। जब इस्लाम धर्म अपनी पराकाष्ठा पर था तो महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे। स्वयं पैगम्बर की महिलाएं पर्दे में अलग-अलग जीवन व्यतीत नहीं करती थी, बल्कि उन्हें बहुत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। उनकी प्रथम पत्नी खजीदा 25 वर्ष तक उनके जीवन के प्रत्येक परिवर्तन और अवसर पर साथ रही और उनकी मृत्यु के बाद दूसरी पत्नी आयशा ने कामिल की लड़ाई में उनका साथ दिया था। उनकी पुत्री फातिमा राजनितिक विदुशी महिला थी। उनकी पोती जैनव सार्वजनिक जीवन में उपलब्धियो के लिए प्रसिद्व थी। पैगम्बर की योजना में महिलाओं के लिए अलग थलग पड़े रहना स्वीकार नही था। मुस्लिम महिलाएं संप्रभु थी, अध्यापिका थी, धर्मशास्त्री थी और धार्मिक संप्रदायों की प्रर्यवेक्षिका थी हिन्दु महिलाओं के समान वे भी अपने ज्ञान और प्रशिक्षण के लिए प्रसिद्व थी। सुल्तान वायजिद प्रथम के शासन काल में मुस्लिम महिलाऐं मस्जिद में विधार्थीयों को शिक्षा प्रदान करती थी। उस युग में बालक और बालिका दोनों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। इस्लाम में औरतों को दिनी और दुनियावी तालिम की न सिर्फ इजाजद दी गई है बल्कि उनकी तालिम को उतना ही जरूरी करार दिया गया है जितना मर्दो की तालिम को। इस्लाम ने औरत और मर्द की तालिम के बीच कोई ८र्क नहीं किया है। इस्लामी हिसाब से औरत की सभी तालीम वह है जो उसको एक बेहतरीन बीबी, बेहतरीन माँ और एक बेहतरीन घरवाली बनाए, उसका कार्यक्षेत्र घर है। इसलिए खासतौर से उन बातों की तालिम दी जानी चाहिए जो उस क्षेत्र में उसे ज्यादा कुशल बना सकती है साथ ही वह ज्ञान भी उसके लिए जरूरी है जो इंसान को इंसान बनाने वाले और उसके अखलाख को संवारने वाले और उनकी नजर को व्यापक करने वाले हो ऐसी तालिम का मिलना हर मुस्लमान औरत के लिए जरूरी है। इसके बाद अगर कोई औरत गैरमामूली अक्ली व जहनी योग्यता रखती है और इसके अलावा उँची तालीम भी हासिल करना चाहे तो इस्लाम उसकी राह में रोड़े पैदा नहीं कर सकती है बशर्ते की वह उन हदो से आगे न बढ़े जो शरीयत ने औरतों के लिए मुकर्रर कर दी है। कुछ व्यवहारिक रूढ़िवादी निर्णय मुस्लिम महिलाओं के शिक्षा के पिछड़ेंपन के लिए जिम्मेवार है लेकिन रूढ़िवादी निर्णयों के पिछे कोई सैद्धांतिक आधार नहीं है। वास्तव में इस्लाम अर्जित ज्ञान के विरोध में नहीं है वह चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति के लिए सजग हो इस्लाम के अनुसार ज्ञान सभी महिलाओं और पुरूषों के लिए आवश्यक है। कुरान के अनुसार शिक्षा के द्वारा ही एक अच्छे चरित्र का विकास

होता है। हदीस में भी कहा गया है कि ज्ञान की खोज के लिए प्रत्येक मुस्लिम महिला व पुरूष को प्रयासरत रहना चाहिए धर्म कहीं भी मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा के आड़े नहीं आता शिक्षा जीवन के लिए है। जीवंतता के लिए और मनुष्य के सर्वांगिन विकास मुख्यत: अध्यात्मिक प्रगति के लिए होना चाहिए मात्रा जीविकोपार्जन के लिए नही।

निष्काम कर्म और नि:स्वार्थ सेवा मानव चरित्र का सर्वोच्च प्रयोजन है। इस प्रयोजन में महिलाओं की भुमिका नि:संदेह आवश्यक या महत्वपूर्ण है। उतार चढ़ाव में सबसे अधिक दयनीय स्थिति मुस्लिम समुदाय की रही और इसका सबसे अधिक असर स्त्री शिक्षा पर पड़ा। मध्य काल में स्त्री का विकास बाधित हो गया। न तो पूर्व की भाँति स्वस्थ सामाजिक कृष्टि रही और नही शैक्षिक समानता। अत्यंत अल्प मात्रा में ही और वह भी अपने धर पर कुछ महिलाओं ने शिक्षा प्राप्त की। अल्प आयु में विवाह एवं पर्दाप्रथा के प्रचलन ने प्रमुख अवरोधक की भूमिका निभाई। किसी भी देश या समाज के उत्थान में बालिकाओं की शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नारी के स्मपूर्ण व्यक्तित्व का विकास भी शिक्षा के माध्यम से ही संभव है।

मध्यकाल में मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा: मध्यकाल मुस्लिम काल के नाम से जाना जाता है जहाँ अधिक स्त्री शिक्षा का ह्रास हुआ। इस युग में समुदाय की सांस्कृतिक मान्यताओं व रूढ़िवादियों ने नारी के कार्य क्षेत्र की सीमा को अत्याधिक संकुचित कर दिया। मुस्लिम संस्कृति में पर्दा प्रथा का महत्वपूर्ण स्थान है। मुस्लिम समाज में आज भी पर्दा प्रथा का प्रर्याप्त प्रचलन है। इतनी जागृति के उपरांत भी इतना पर्दा है तो मध्य युग में पर्दा प्रथा का कितना प्रचलन रहा होगा तथा उनका कितना कट्टरता से पालन किया जाता होगा इसका अनुमान सरलता पूर्वक लगाया जा सकता है। इस कट्टर पर्दा प्रथा के कारण मुस्लिम युग में नारी शिक्षा का विकास नहीं हो पाया। स्त्रियों को कड़े पर्दे में रहना पड़ता था। फलत: उनकी शिक्षा की कोई भी व्यवस्था संभव नहीं थी।

मध्यकाल में उच्चस्तरीय वर्ग के परिवारो नें अपने धरों में ही बालिकाओं के लिए मकतब बना रखे थे, जिनमें उसी परिवार की तथा अन्य पड़ोसी बालिकाएँ पढ़ना-लिखना सीखाती थी। शिक्षा की कृष्टि से इन्हें बोस्ता तथा गुल्सिता की शिक्षा भी दी जाती थी। इन धरेलू मकतबों में शिक्षण-कार्य सामान्य शिक्षित विधवा महिलाएँ करती थी।

राजकीय हरमों की बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था शासन द्वारा की जाती थी। प्रत्येक मुस्लिम शासक का अपना एक हरम होता था उसमें बालिकाओं की शिक्षा के लिए विशेष प्रबंध रहता था। मुस्लिम युग में हमें अनेक एसी विदुषी महिलाओं के कृष्टांत मिलते है जिनकी शिक्षा केवल हरम में हुई थी। नूरजहाँ, रजिया बेगम, जहाँआरा, गुलबदन, मुमताज महल आदि ऐसी विदुषी महिलाएँ थी।

हरम में कुरान, धर्म, निति, संगीत तथा नृत्य आदि की शिक्षा की व्यवस्था रहती थी जिसमें सभी वर्ग की बालिकाओं को शिक्षा प्रदान की जाती थी। इनमें उन्हें सिलाई, बुनाई, नृत्य, संगीत, युद्धकला, रणकला आदि की शिक्षा दी जाती थी।

ब्रिटिश काल में मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा: ब्रिटिश काल से तात्पर्य 18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से लेकर स्वतंत्रता से पूर्व तक के समय से है। इसमें ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों का आगमन हुआ। ब्रिटिश काल के प्रथम चरण में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति नहीं हो पायी। ईस्ट इण्डिया कंपनी ने भी स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया यधपि मिशनरियों ने बालिकाओं के लिए कुछ विधालय अवश्य खोलें।

बंगाल के गर्वनर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने 1781 में कलकत्ता के मुसलमानों के लिए मदरसे की स्थापना की। 1801 में लॉर्ड वेलेजली ने कलकत्ता फोर्ट विलियम की स्थापना की जिससे अरबी, फारसी, भाषा से संबंधी योग्यताओं, सेवाओं, कार्यकाल का निर्धारण किया गया। 1815 में लार्ड हेस्टिंग्स ने शिक्षा पर चिंता व्यक्त की।

सर्वप्रथम 1820 में स्त्री शिक्षा हेतु विधालय कलकत्ता में डैडी हियर द्वारा स्थापित किया गया। कालांतर में इस दिशा की ओर सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं ने ध्यान देने का प्रयास किया। सन् 1821 में मिशनरियों द्वारा 371 बालिका विधालय की रूपरेखा को एक निश्चित स्वरूप दिया गया तथा विधालय स्थापित होने के पश्चात इनमें कुल 11193 छात्राओं ने प्रवेश लिया।

वुड घोषणा पत्र (1854) में यह सुझाव दिया गया था कि भारतीय जन-जीवन में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का बीजारोपन तभी हो सकेगा जबकि स्त्री शिक्षा का विकास किया जाए। सन् 1893 में नवाब अब्दुल लतीफ द्वारा मोहम्न लिटरेरी सोसयाटी नामक संस्था की स्थापना की गई जिनका ध्येय मुस्लिम छात्रों को शिक्षा के प्रति आकर्षित करना था। हण्टर आयोग ने (1882) में

मुसलमानों की शिक्षा के संबंध में मत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए। उनके अनुसार मुस्लिम शिक्षा के विकास व प्रोत्साहन का भार स्थानीय संस्थाओं व प्रांतों के कोषों पर हो, जिन क्षेत्रों में मुसलमानों की जनसंख्या अधिक है वहाँ के मिडिल और हाइस्कूलों में फारसी की शिक्षा की व्यवस्था की जाए। मुस्लिम छात्रों को दी जाने वाली छात्रवृति प्राथमिक कक्षाओं से लेकर हाईस्कुल कक्षाओं तक हो तथा बाद में कॉलेजो में भी दी जाए। मुसलमान अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए नए स्कूल खोले जाये। मुस्लिम प्राथमिक विद्यालयों के लिए मुसलमानों निरीक्षकों की नियुक्तियाँ अधिक संख्या में की जाये।

1889 में मिर्जा गुलाल अहमद के नेतृत्व में अहमदिया आंदोलन को जन्म दिया गया जिसका उद्देश्य भारतीय मुसलमानो को उनके हितों व अधिकारों के लिए तैयार करना था तथा इस आंदोलन में 95 प्रतिशत मुस्लिम छात्रा थें क्योंकि उस समय मुस्लिम शिक्षा की अपेक्षा की जा रही थी।सन् 1903 में लार्ड कर्जन ने नारी शिक्षा की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिये किन्तु भारतीय सामाजिक जटिल व्यवस्था व रूढ़िवादिता के कारण स्त्रियों को विशेष लाभ नहीं मिल पाया और विशेषकर मुस्लिम समुदाय की स्त्रियों की शिक्षा में अवरोधक तत्व आते हीं रहे। अवरोधक तत्व निम्नलिखित थे।

1. मुस्लिम समुदाय का सामान्य शिक्षा की अपेक्षा धार्मिक शिक्षा पर बल देना।
2. मुस्लिम समुदाय में विघमान पर्दा प्रथा का होना।
3. बालिकाओं का स्थान केवल चहारदीवारी तक सीमित होना।
4. स्वयं मुस्लिम नारियों का शिक्षा के प्रति उदासीन होना।
5. बालिकाओं का अल्प आयु में ही विवाह कर देने की परंपरा होना।
6. बालिकाओं को सहशिक्षा वाले विधालय में न भेजने का संकुचित दृष्टिकोण होना।
7. मुस्लिम परिवारों में सदस्यों की संख्या अधिक होना पर लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की शिक्षा के प्रति उदासीन होना।

उन्नीसवीं शताब्दी के शुरूआत में मुस्लिम महिलाओं की शिक्षा: उन्नीसवीं शताब्दी के शुरूआत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति बहुत ही निम्न थी और मध्यवर्गीय व उच्चवर्गीय महिलाओं के लिए सिर्फ अपने ही परिवार के पुरूषों से बात करने की आज्ञा थी। अन्य परिवारों के पुरूषों से बात करना उनके समुदाय में अच्छा नहीं माना जाता था। कुछ उच्चवर्गीय मुस्लिम परिवारो में लड़कियों को अरबी भाषा में कुरान पढ़ने की अनुमति थी बहुत से अभिभावक लड़कियों को स्कूल भेजना इस्लामिक नियमों के विरूद्ध मानते थें। 1896 में सर्वप्रथम ख्वाजा गुलमेस ने मुस्लिम शिक्षा के वार्षिक सम्मेलन में स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान देने का प्रस्ताव पास किया और मुर्तजा अली को 1902 में महिला शाखा का सेक्रेटरी नियुक्त किया। उन्होनें कहा कि पहले महिला शिक्षकों को प्रशिक्षण के लिए तैयार करना चाहिए जिसके लिए उन्होने उच्चवर्गीय परिवारों की लड़कियों या महिलाओं को शिक्षित करना शुरू किया लेकिन सर शेख अब्दुल्ला उनके इस विचार से सहमत नहीं थे क्योंकि पहले प्रर्याप्त मिडिल पास लड़कियों की आवश्यकता थी। उसके बाद उन्हें प्रशिक्षित किया जा सकता था।

भारतीय इतिहास में भोपाल की बेगम सुल्तान ऐसी पहली मुस्लिम महिला थी जो स्त्री की मुक्ति का साधन या बंधनहीनता शिक्षा के द्वारा मानती थी। उन्होने सन् 1903 में मुस्लिम लड़कियों के लिए पहला स्कुल सुल्तानिया के नाम से शुरू किया जिसमें प्रथम वर्ष में दस वर्ष तक की आयु की 140 लड़कियाँ थी। उनके लिए स्कूल से घर तक आने-जाने के लिए यातायात के साधनों का पूर्णतया प्रबंध किया गया और उन्हें वहाँ उर्दू, अंग्रेजी, भूगोल और अर्थशास्त्र विषय का ज्ञान कराया गया लेकिन धार्मिक शिक्षा पर अधिक बल दिया गया। जो व्यक्ति स्त्री शिक्षा के विरोधी थे उन्होने शताब्दी के अंत तक स्वीकार कर लिया। 1904 में शेख अब्दुला ने 'खातून' नामक एक पत्रिका शुरू की जिसके द्वारा उनके मुस्लिम स्त्री शिक्षा के विचारों को अलीगढ़ में प्रसिद्धि मिली। 1906 में अलीगढ़ में द्वितीय बालिका विधालय खोला गया। स्कूल के आरंभ में केवल 6 लड़कियाँ थी। 1911 में रूकयया शेखावत हुसैन के द्वारा बंगाल में शेखावत मेमोरियल बालिका हाई स्कूल शुरू किया गया। मौलाना करामत हुसैन और महमूदाबाद के राजा ने भी बालिका शिक्षा का समर्थन किया और 1912 में लखनऊ में एक बालिका विधालय शुरू किया।

शिक्षा निति 1913 में स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। बालिकाओं के लिए उनकी आवश्यकतानुसार पाठयक्रम बनाये गये। बालिका शिक्षा के लिए सहायता अनुदान की शर्ते और अधिक उदार की गई। बालिकाओं के लिए अलग से स्कूल खोले गए। महिला

अध्यापकों और निरीक्षिकाओं की संख्या में वृद्धि की गई।सन् 1917 में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने स्त्रीयों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये - मुस्लिम छात्राओं को विशेष सुविधा देकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाये 15-16 वर्ष की आयु तक शिक्षा लाभ उठाने वाली लड़कियों के लिए सरकार द्वारा पर्दा - स्कूलों की व्यवस्था की जाय, ढ़ाका में शीघ्र ही आवासीय शिक्षण विश्वविद्यालय की स्थापना की जाये जिसमें मुस्लिम छात्र भी समान अवसरों को प्राप्त कर सके। मुसलमानों के लिए प्रशिक्षण स्कूल खोले गए जिससे मुस्लिम शिक्षको की संख्या में वृद्धि हुई तथा अनेक व्यक्तिगत संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाय। वर्तमान शिक्षा निति का उद्देश्य 6 से 14 वर्ष तक के आयु वर्ग के सभी बच्चों को अच्छी और सस्ती शिक्षा उपलब्ध कराना है जो उनकी पहुँच के अंदर हो। बिहार में इसके अलावे अंतर स्नातक एवं स्नातक तक पढ़ने वाली छात्राओं को छात्रावृति प्रदान की जाती है। जाहिर है कि इसका लाभ मुस्लिम छात्राएँ भी बेशक उठाती है। देश का सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समुदाय क्यों पिछड़ रहा है? वैसे तो पिछड़ापन प्रत्येक क्षेत्र में ही स्पष्ट दिखाई पड़ता है लेकिन इन सबका मूल कारण शिक्षा ही है। शिक्षा के क्षेत्र में वर्ल्ड बैंक यूनीसेफ आदि अंतराष्ट्रीय संस्थाएँ तथा एन0 जी0 ओ0 विशेष रूचि ले रहे है। लेकिन इन सबके प्रयासों के बावजूद भी मुस्लिम लड़कियाँ पिछड़ रही है। सच्चर कमेटी के गठन के साथ ही मुसलमानों के पिछड़ेपन पर भी बहस शुरू हो गई। तालीम और रोजगार किसी भी कौम की तरक्की की बुनियादी तत्व माने जाते है। लेकिन मुस्लिम महिलाएँ इन दोनो ही मोर्चो पर पिछड़ती जा रही है। देश के शैक्षिक स्तर व पिछड़े तथा अल्पसंख्यक वर्ग के उत्थान एवं संवैधानिक प्रावधानों को पूर्ण करने के लिए ही प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकारों ने अनेक योजनाएँ क्रियान्वित किए लेकिन आज भी देष के मुस्लिम बाहुल्य प्रान्तों में बालिकाओं की शिक्षा उपेक्षित रही है।

निष्कर्ष:- भारतीय समाज मे मुस्लिम महिलाओं में विकास एवं परिवर्तन की प्रक्रियाएँ आजादी पूर्व से चल रही है, परंतु इसके बीच अपेक्षित विकास नहीं हो पाया है। जबकि इन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़कर विकास की गति तेज करने के लिए निरंतर प्रयास किये जा रहे है आजादी के वर्षो के बाद भी मुस्लिम महिलाओं मे विकास सपना बना हुआ है। इनके पास रहने के लिए ठीक से धर नही, बिजली नही, ठीक से भोजन भी नसीब नहीं हो रही है। न्युनतम मजदूरी पर अपना गुजर-बसर करने वाली मुस्लिम महिलाओं मे अनेक प्रकार की समस्याएँ विधमान है। साथ ही साथ इन्हें विशेष प्रकार की सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं है। राज्य के अनेक जिलों में मुस्लिम महिलाओं कें बीच शिक्षा का समुचित ढ़ंग से विकास नहीं हो पाया है। यधपि केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार के द्वारा इस संदर्भ में किए जा रहे प्रयासों के बावजूद आज भी अधिकांश मुस्लिम बालिकाएँ शिक्षा से वंचित है।

मुस्लिम समुदाय में लड़कियों की शिक्षा के मार्ग की बड़ी बाधा लड़कियों को लड़कों के समान शिक्षा प्राप्त करने के अवसर उपलब्ध नहीं हो पाना हैं। हमारे यहाँ शिक्षा के सभी स्तरों और लगभग सभी पक्षों पर लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा में असमाताएँ पायी जाती हैं लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर लड़कों की अपेक्षा कम मिल पाते है प्रजातांत्रिक स्वरूप की रक्षा के लिए तथा लड़कियो की शिक्षा के प्रसार के लिए यह आवश्यक है कि लड़कियो को भी शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रर्याप्त अवसर मिले। वास्तव में लड़के तथा लड़कियों दोनों को शिक्षा के अवसर मिलने चाहिए। अत: यह आवश्यक है कि शैक्षिक अवसरों की समानता स्थापित करने के लिए विशेष प्रयास किये जाय।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि मुस्लिम समुदाय से जुड़े हर मसले पर विचार विमर्श में उलेमा को प्राथमिकता दी जाती है उलेमा को आधूनिक अर्थव्यवस्था की कोई समझ नहीं और वे केवल अपने पारंपरिक सिद्धांतो से चिपके रहना जानते हैं। वे तंग-दिमाग और दकियानुसी है। इससे खराब बात यह है कि उन्हें केवल अपने पंथ की सीमा से बाहर जाकर पूरे समूदाय की एकता स्थापित करने के हर प्रयास में वे पलीता लगाते हैं। इन चुनौतियों से पार पाना बहुत कठिन काम है। उलेमा तो मदरसों का आधुनिकीकरण भी नहीं होने दे रहें है। यदि मदरसे धार्मिक शिक्षा के साथ- साथ आधुनिक शिक्षा भी प्रदान करने के केन्द्र बन जायें, तो वे मुसलमानों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए अत्यंत उपयोंगी सिद्ध होंगे। पारंपरिक उलेमा, मदरसों के पाठयक्रम में किसी बदलाव के लिए तैयार नहीं है।

उल्लेखनीय है कि इन सबके बावजूद वर्तमान परिकृष्य में मुस्लिम छात्राओं में आधुनिक शिक्षा के प्रति गहरी आस्था देखी जा रही हैं।

संदर्भ:-

1. सकिब गुलाल नबी, मुस्लिम शिक्षा का आधुनिकीकरण: एक अध्ययन, प्रोग्रेस आफ एजुकेशन, जुलाई, 2005
2. मंडल, रहीम शेख, पश्चिम बंगाल के मुस्लिम समुदाय की शैक्षिक स्थिति का अध्ययन, फिल्म सर्वे आफ एजुकेशन रिसर्च, वोल्युम -2 न0 2 एन0 सी0 आर0 टी0 नई दिल्ली।
3. खातून, परवीन, कॉलेज छात्राओं का धर्म 9 शिक्षा के प्रति स्वप्रत्यय 9 झुकाव: एक अध्ययन , फिफ्थ (ट) सर्वे आफ एजुकेशन रिसर्च वोल्युम -2 न0 2 एन0 सी0 आर0 टी0 नई दिल्ली।
4. बेग, रशीद, मुस्लिम शिक्षा का आधुनिकीकरण, वि कि इन्साइक्लोपिडिया, यू0 एस0 ए0 2005
5. शेख, रहीम, मुस्लिम महिला शिक्षा के शैक्षिक स्तर, समस्याएँ एवं उपेक्षाएँ गॉडग्रेस, ढ़ाका, बांग्लादेश 2006
6. केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति रिपोर्ट, लड़कियों की शिक्षा और स्कूली ब्यवस्था, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, जून 2005
7. जयरथ, सुषमा, सिद्धीकी, खदीजा, लैंगिक संवेदनशीलता की दृष्टि से भोपाल के सहशिक्षा मदरसों का शोध अध्ययन, एन0 सी0 आर0 टी0 नई दिल्ली, अप्रैल 2010
8. कुमार, ललित, मुस्लिम पुर्नजागरण आंदोलन एवं मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा का प्रसार, भारतीय आधुनिक शिक्षा, अक्टूबर, 2009
9. निशात, परवीन मुस्लिम बालक एवं बालिकाओं में शैक्षिक पिछड़ेपन का अध्ययन एन0 सी0 आर0 टी0 2006 नई लिल्ली।
10. जौहरी, बी0 पी0, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विनोद पुसतक मंदिर आगरा, 2006
11. पाण्डेय, गर्ल्स ड्रॉप आउट इन स्कूल एजुकेशन कॉलेज एण्ड रिमेडल, मेजरमेंट, अप्रकाशित पी-एच0 डी (एजुकेशन) थिसिस, पुणे कॉलेज, पुणे, 1989
12. अनवार, क्रिटिकल स्टडी आफ ग्रोथ एण्ड डेवलपमेंट आफ मुस्लिम माइनोरिटी एजुकेशन इन्स्टीटयूशन इन महाराष्ट्र स्टेट डयूरिंग द पास्ट इंडिपेंडेन्ट पिरियड, इण्डियन एजूकेशन एबसट्रेक्ट जुलाई 2006
13. चित्रा, यू एवं व्यागराजन 'पी0' कास्ट डिस्टेन्स अमंग हायर सेकेण्डरी गर्ल्स जनरल आफ एजूकेशन रिसर्च एण्ड एक्सटेंसन वोल्युम-37, न0 4, 2000,
14. पाण्डेय 'के पी0' 21 वी सदी में भारतीय शिक्षा की उभरती चुनौतियाँ अन्वेशिका, इण्डियन जर्नल आफ टीचर एजूकेशन, वोल्युम-7, एन0 सी0 आर0 टी0 नई दिल्ली, जून 2010

आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता को प्रभावित करने वाले तत्वों का ऐतिहासिक विश्लेषण

मो० इंतखाब हसन

शोध छात्र, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला यूनिवर्सिटी, दरभंगा, बिहार

सरांश- उन्नीसवीं सदी के अंत तक राष्ट्रवाद के उदय के साथ-साथ संप्रदायवाद ने भी सर उठाया और इसके कारण भारतीय जनता और राष्ट्रीय आंदोलन की एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा पैदा हुआ। संप्रदायवाद मूल रूप से एक विचारधारा है। सांप्रदायिक दंगे इस विचारधारा के अनेक परिणामों में से केवल एक परिणाम है। संप्रदायवाद इस विश्वास का नाम है कि चूंकि कुछ लोग किसी एक विशेष धर्म को मानते हैं, इसलिए उनके पार्थिव अर्थात् सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हित भी समान होते है। यह इस विश्वास का नाम है कि भारत में हिंदू, मुसलमान, सिख और ईसाई अलग-अलग और विशिष्ट समुदाय हैं, कि किसी धर्म के मानने वालों के धार्मिक हित ही नहीं बल्कि पार्थिव हित भी समान होते हैं, कि भारतीय राष्ट्र नाम की कोई वस्तु न है और न हो सकती है बल्कि इसके बजाय यहां केवल हिंदू राष्ट्र, मुस्लिम राष्ट्र, आदि हैं। भारत उपर्युक्त कारण से धार्मिक समुदाय का एक महासंध मात्रा है। एक साम्प्रदायिक व्यक्ति या व्यक्ति समूह वह है जो कि प्रत्येक धार्मिक अथवा भाषायी समूह से पृथक् होते है। और उनके विरोध भी हो सकते है। ऐसे ही व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूह की विचारधारा को सम्प्रदायवाद या साम्प्रदायिकता कहा जायेगा। सामान्यत: एक सम्प्रदायवादी का दृष्टिकोण समाज विरोध होता है। उनको समाज विरोधी इसलिए कहा जा सकता है। क्योंकि वह अपने समूह के संकीर्ण हितों को पूरा करने के लिए अन्य समूहों के और संपूर्ण देश के भी हितों की अवहेलना करने से पीछे नहीं हटता। साम्पदायिक संगठनों का उदेश्य शासकों के ऊपर दबाव डालकर अपने सदस्यों के लिए आधिक सत्ता, प्रतिष्ठा तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में आधुनिक भारत में सांप्रदायिकता को प्रभावित करने वाले तत्वों का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द- संप्रदायिकता, आधुनिक भारत, ब्रिटिश साम्राज्यवाद,

प्रस्तावना- मानव इतिहास में धर्म के नाम पर सदैव विवाद उठते रहे हैं। धर्म की दृष्टि से भारत विशेष रूप से हत भाग्य रहा है। स्वाधीनता आंदोलन के समय अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन बनाये रखने के लिए धार्मिक भेद-भावों का विशेष लाभ उठाया। अंग्रेजी शासनकाल में साम्प्रदायिक भावनाओं को राजनीतिक रूप मिलने का एक कारण यहाँ प्रतिननिधि या निर्वाचित संस्थाओं की स्थापना थी। अंग्रेज लोग प्रतिनिधित्व का अर्थ अलग-अलग समूहों, वार्गों, हितों, क्षेत्रों, संस्थाओं और सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व समझते थे।

संप्रदायिकता एक आधुनिक विचार या संकल्पना है, जो एक ऐसे सामाजिक सिद्धांत की व्याख्या करता है जिसका केंद्र -बिंदू समुदाय होता है तथा इसमें व्यक्तिगत हितों की बजाय सामुदाय का अस्तित्व केवल इसके सदस्यों की व्यक्तिगत हितपूर्ति के लिए ही होता हैं फलस्वरूप व्यक्तिगत हितपूर्ति, सामुदायिक हितपूर्ति में ही निहित है। नकारात्मक रूप में सांप्रदायिकता एक समुदाय के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक हितों को, दूसरे समुदाय के हितों से प्रमुख मानती है, जिसमें समुदायों के बीच विवाद की आशंका प्रबल बनी रहती हैं। यह बात सही नहीं है कि संप्रदायवाद मघ्य काल का अवशेष है या तब से चला आ रहा है। हालांकि धर्म लोगों के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है और धर्म को लेकर कभ-कभी वे झगड़ते भी रहे हैं, फिर भी 1870 के दशक

के पहले तक शायद ही किसी सांप्रदायिक विचारधारा और सांप्रदायिक राजनीति का असितत्व रहा हो। संप्रदायवाद एक आधुनिक प्रवृति हैं इसकी जड़ें आधुनिक औपनिवेशिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संरचना में निहित है। संप्रदायवाद में यह दूसरी धारणा भी निहित है कि किसी धर्म के अनुयायियों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक हित किसी दूसरे धर्म के मानने वालों के हितों से भिन्न होते है। संप्रदायवाद का तीसरा चरण तब आरंभ होता है जब विभिन्न धर्मो के अनुयायियों या विभिन्न धार्मिक ''समुदायों'' के हितों को परस्पर विरोधी और शत्रुतापूर्ण समझा जाने लगता है। इस चरण में संप्रदायवादी यह दावा करते हैं कि हिंदूओं और मुसलमानों के पार्थिव हित समान नहीं हो सकते और उनके पार्थिव हितों का एक दूसरे से टकराना निश्चित है।

सांप्रदायिकता को प्रभावित करने वाले तत्व

सांप्रदायवाद का उदय जनता और उसकी भागीदारी पर आधारित एक नई, आधुनिक राजनीति का परिणामा हैं इसके कारण जनता से व्यापक संबंध बनाने और उसकी आस्था जीतने तथा नई पहचान कायम करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई। यह प्रक्रिया अनिवार्यत: कठिन, धीमी और जटिल रही। इस प्रक्रिया के लिए राष्ट्र, वर्ग और सांस्कृतिक भाषायी पहचानों के आधुनिक विचारों का उदय और प्रसार आवश्यक था। नई और अपरिचित होने के कारण ये नई पहचानें भी धीमे-धीमे और उतार-चढ़ाव के साथ विकसित हुई। अक्सर लोग नई वास्तविकता को समझने, व्यापक संबंध बनाने और नई पहचानें कायम करने के लिए जाति, स्थान, पंथ और धर्म की पुरानी और परिचित पहचानों का उपयोग करते रहे। ऐसा पूरी दुनिया में हुआ है। लकिन धीरे-धीरे राष्ट्र, जातीयता और वर्ग की नई, आधुनिक और ऐतिहासिक रूप से आवश्यक पहचानें स्थापित हुई है। सम्प्रदायिकता के विकास में ब्रिटिश साम्रज्यवाद की शक्तियों ब्रिटिश नीति को सफलता हमारी आंतरिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ही मिली। विदेशी शासक यह कठिन भूमिका मुख्यतया इसलिए अदा कर सका कि उसके हाथ में सता की शक्ति थी जो कि किसी भी राजनितिक विचारधारा या आंदोलन के राजनीतिक भाग्य की निर्णायक होती है। सांप्रदायिकता उन महत्वपूर्ण अस्त्रों में से एक थी जिनके माध्यम से अँग्रेज बढ़ते हुए राष्ट्रीय आंदोलन तथा एक राष्ट्र के रूप में एकजुट होती हुई भारतीय जनता के विरोध का मुकाबला कर सके और उसकी शक्तियों को क्षीण कर सके। वस्तुत: यह ऐसा एकमात्र अस्त्र नहीं था। उन्होंने जाति, भाषा औार यहाँ तक कि वर्ग के आधार पर भी भारतीयों के बीच दाराय डालने की कोशिश की। 1937 तक ये सभी प्रयास अस्फल होने लगे थे और सांप्रदायिकता ही अकेले ऐसे साधन के रूप में रह गई थी, जो कि अभी तक कामयाब थी। उन्होंने इन सभी को इसकी बाजी पर रख दिया।

इस संबंध में अँग्रेजों की नीति की प्रकृति और स्वरूप क्या था? सर्वप्रथम, यह स्पष्ट रूप से देखा जाना चाहिए कि यह, जैसा कि हिंदू संप्रदायवादी इसे बता रहे थे, मुसलिम -समर्थक नीति नहीं थी? इसका उदेश्य मुसलमानों का पक्ष लेना नहीं था बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन को तथा भारतीयों के एक देश या एक राष्ट्र के रूप में संगठित होने की प्रक्रिया को विधटित करना था। दूसरे, यह नीति किसी रूपरेखा या सुविचारित योजना के आधार पर विकसित नहीं हुई थी। इसका विकास औपनिवेशिक प्रशासन की बदलती हुई जरूरतों का सामना करने के लिए परीक्षण-प्रणाली (trial and error method) के माध्यम से समय के साथ धीरे-धीरे हुआ था। तीसरे, इसे इस तथ्य से बहुत अधिक मदद मिली कि उपनिवेशवाद तथा सांप्रदायिकता दोनों ही का सामाजिक आधार समान था-अर्थात् जमींदार तथा उच्चवर्गीय नौकरशाही तत्त्व। चौथे, अँग्रेंजों की नीति बड़ी जटिल थी तथा इसमें एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में काफी भिन्नता थी। पंजाब में सांप्रदायिकता को 1945 तक नियंत्रित रखा गया (उत्तर प्रदेश में 1937 तक धर्म -निरपेक्ष जमींदारों पर आधारित राजनीति का आश्रय लिया गया। भरपूर समर्थन करते समय अँग्रेज प्रशासकों ने सांप्रदायिक हिंसा पर नियंत्रण रहखा जिससे कानून और व्यवसाय को खतरा पैदा होता था और इस तरह से सुच्यवस्थित प्रशासन को खतरा पैदा होता था। इसी कारण से इन्होंने सभी तरह की जन-राजनीति का विरोध किया, यहाँ तक कि सांप्रदायिक विविधता की राजनीति का भी।

सांप्रदायिकता को औपचारिक रूप से प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने क्या साधन तथा नीतियाँ अपनाई? सबसे पहले हिंदुओं, मुसलमानों तथा सिक्खों को निरंतर ऐसे अलग-अलग संप्रदाय मानकर, जिनमें कोई समानता नहीं थी, यह कहा गया कि भारत न तो एक राष्ट्र था और न ही इसमें राष्ट्रीयता का आंचलिक तथा स्थानीय साहचर्य विद्यमान था (यह तो रूढ या बँधे-बँधाए धार्मिक समुदायों से बना था। दूसरे, संप्रदायवादियों को शासकीय प्रश्रय प्रदान किया गया। तीसरे, सांप्रदायिक अखबारों तथा व्यक्तियों के प्रति राष्ट्रीय अखबारों तथा व्यक्तियों की तुलना में असाधारण सहनशीलता का रवैया अपनाया गया। चौथे, सांप्रदायिक माँगों को तुरंत स्वीकार किया गया।

1935 में सांप्रदायिक निर्णय द्वारा लगभग वह सब कुछ प्रदान कर दिया गया जिसकी माँग मुसलमान संप्रदायवादी कर रहे थे। 1939 से 1946 तक मुसलमानों को हिंदुओं के साथ किसी भी राजनीतिक समझौते पर पूर्ण वीटो प्रदान किया गया। दौरान जब महात्मा गाँधी ने राजगोपालचारी के कहने पर जिन्ना के साथ 1944 में बातचीत शुरू की तो सांप्रदायिक नेताओं ने यह प्रचार शुरू कर दिया कि कांग्रेस ने मुसलिम लीग को मुसलमानों का प्रतिनिधि के तौर पर नहीं बल्कि एक बड़ी पार्टी -जिसके साथ अधिकतर मुसलमान थे- मानती है। कांग्रेस की इस मान्यता का अधिक असर नहीं हुआ क्योंकि एक तरु तो सांप्रदायक तनाव बढ़ रहा था, दूसरी तरफ अँग्रेज शासक इस अवसर का ायदा उठाने के लिए हमेशा तैयार थे। ब्रिटिश शासकों ने सांप्रदयिक नेताओं को उनके संप्रदायों का प्रवक्ता खुशी से स्वीकार किया जब कि राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं को विरल अल्पमत वाले, विशिष्ट -वर्गीय आदि समझा गया। छठे, अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों ने सांप्रदायिक राजनीति के विकास के लिए महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में कार्य किया। 1909 में आरंभ की गई इस पद्धति के अंतर्गत मुसलिम मतदाताओं तथा बाद में सिक्ख तथा हिंदू मतदाताओं को अलग-अलग चुनाव क्षेत्रों में रखा गया, जिससे हिंदू, मुसलमान और सिख्ख अपने -अपने वोट डाल सकते थे। अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्रों ने चुनावों तथा विधान मंडलों को संकटपूर्ण और नगरपालिका तथा स्थानीय सरकारी संस्थाओं को सांप्रदायिक जटिलता का अखाड़ा बना दिया। चूँकि मतदाता और प्रत्याशी दोनों केवल एक ही धर्म के अनुयायी थे, प्रत्याशियों को सांप्रदायिक अनुरोध खुले तौर पर करने का अवसर मिला और धीरे-धीरे मतदाताओं को सांप्रदायिक ढ़ंग से सोचने की शिक्षा दी गई। विधानमंडलों, सरकारी सेवाओं, शिक्षा संस्थाओं आदि में सीटों के आरक्षण तथा इस पर दिए जाने बाले जोर से भी ऐसे ही पिरणाम निकले। इस नीति ने लोगों के बीच आर्थिक प्रतिस्पर्धा की भावना को सांप्रदायिकता की भावना में बदलने में निर्णायक भूमिका अदा की। अंत में, सांप्रदायिकता के विरूद्ध कोई कार्यवाही न करने कि नीति अपनाकर सरकार ने भी सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया। सांप्रदायिकता के विकास पर नियंत्रण रखने के लिए आवश्यक कुछेक सुनिश्चित उपाय ऐसे थे जो केवल सरकार द्वारा ही किए जा सकते थें। इन उपायों के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी सरकार द्वारा न लिए जाने के कारण सांप्रदायिक शक्तियाँ और मजबूत हुई। सरकार ने विशाक्त सांप्रदायिक विचारों और सांप्रदायिक आदतों के प्रेस, पैम्फलेटों, साहित्य, इतिहास, पाठ्यपुस्तकों तथा अन्य मंचों के माध्यम से प्रचार-प्रसार के विरूद्ध कदम उठाने को अस्वीकार कर दिया। सांप्रदायिक दंगों के प्रति कार्यवाही में अँग्रेज प्रशासकों ने अपेक्षाकृत निष्क्रियता की तथा उतरदायित्वहीनता की नीति अपनाई (और राष्ट्रीय आंदोलन तथा अन्य-जन-आंदोलन के खिलाफ जितना तैयारी वे करते थे या उनकी रोकथाम के जितने उपाय करते थे उतनी तैयारी या रोकथाम के उपाय सांप्रदायिक तनाव की स्थितियों का मुकाबला करने के लिए शायद ही कभी उन्होंने किए हों।

संप्रदायवाद के प्रचार में अंग्रेजों का भी हाथ था। उन्होंने सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व, सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों और साम्राज्यी हि्त में प्रांतों के पुनर्गठन आदि तरीकों से अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए राजनीतिक संतुलन की समर नीति अपनाई थी। इससे भी देश में संप्रदायवाद बढ़ा और स्वतंत्रता के लिए जनता के संयुक्त राष्ट्रीय आंदोलन का विकासअव हुआ। हम आगे देखेगे कि कब ब्रिटिश रानेताओं ने भी यह समझा कि ब्रिटिश प्रभुसत्ता को सबल बनाने के लिए ही संतुलन की नीति अपनाई गई थी। संप्रदायवाद मूलत: ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारतीय सामाजिक अर्थिक और सास्कृतिक विकास औार बिटिश सरकार और इन संप्रदायों के निहित स्वार्शों की रणनीति का परिणाम था।

निष्कर्ष-जब एक समुदाय समझ -बूझकर धार्मिक -सांस्कृतिक भेदों के आधार पर राजनीतिक माँगें रखने का निर्णय करता है तब सामुदायिक चेतना सम्प्रदायवाद के रूप में एक राजनीतिक सिद्धांत बन जाती है। राजनीतिक स्वायत्तता को जब सांस्कृतिक स्वातत्तता सुरक्षित रखने की अनिवार्य शर्त धोपित कर दिया जातजा है। बहुसंस्कृतीय समाज में सामाजिक तनाव तथा टकराहट वास्तव में विभिन्न समूहों के बीच चल रहे सत्ता द्वन्द्व के लक्षण है इस पारस्परिक द्वंद को सैद्धांतिक स्तर पर धर्म की शिला पर खड़ा करना एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में सम्प्रदायवाद का मूल सार है। औपनिवेशिक शोषण के फलस्वरूप भारतीय जनता पर इसका जो प्रभाव पड़ा उसके कारण ऐसी स्थितियां पैदा हो गई जो भारतीय समाज के विभाजन और कलह में सहायक थी। बेकारी खास तौर पर शिक्षित एवं मध्य वर्ग के लिए, विकट समस्या बन गई थी। 1927 के बाद विश्वव्यापी मंदी के दौरान आर्थिक अवसर सीमित हो गए और भारी संख्या में लोग बेरोजगार हो गए। इसी कारण सरकारी नौकरियां, वकालता बढ़ाने के लिए जाति, प्रांत और धर्म जैसी सामूहिक पहचानों का सहारा लिया गया। अत: इससे सांप्रदायिकता और बढ़ गई। किया गया। क्योंकि यह भारत का आर्थिक

शोषण कर रहा था और इसके कारण गरीबी बढ़ रही। वहीं समाज के कुछ वर्गो ने इस गरीबी को धार्मिक एवं सामुदायिक भेदभाव के रूप में देखा।

संदर्भ सूची

1. शुक्ल, रामलखन (सं), आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2008
2. दीक्षित, प्रभा, साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक सन्दर्भ, मेकमिलन, बम्बई, 1980
3. ग्रोवर, वी, एल, मेहता, ए. तथा यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिं., नई दिल्ली, 2011
4. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत (1885-1947), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009
5. रामगोपाल : भारतीय मुसलमानों का राजनीतिक इतिहास, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1970
6. दिनकर, रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2013
7. चन्द्र, प्रो. विपिन : गांधी जी, धर्म निरपेक्षता और साम्प्रदायिकता (गांधी : एक पुनर्विचार), सहमत, नई दिल्ली, 2004
8. मुहम्मद, सान, इण्डियन मुस्लिमस, भाग दो, मिनांक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1980
9. सिंह, विरकेश्वर प्रसाद, भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सांविधानिक विकास, भारती भवन, पटना, 1995
10. वेली, ए.सी., लोकल रूटस ऑफ इंडियन पॉलिटिक्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूर्याक, 1975
11. सिंह, अयोध्या, भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 1987

गाँधी जी का ग्राम-स्वराजः एक अध्ययन

डॉ० रंजीत पासवान

सिमरी, दरभंगा

ग्राम-स्वराज ऐसी सरल और सादी ग्राम अर्थव्यवस्था है, जिसका केन्द्र मनुष्य है जो शोषण रहित है और विकेन्द्रित है। वह स्वेच्छापूर्ण सहयोग के आधार पर अपने हर नागरिक को पूरा काम देने का प्रबंध करती है और जीवन की अन्न-वस्त्र की प्राथमिक आवश्यक्ताओं तथा अन्य आवश्यक्ताओं के विषय में स्वाबलंबन सिद्ध करने का प्रयास करती है। वस्तुतः ग्राम-स्वराज गाँधी जी के आजीवन शोध का परिणाम है जो भारत के लाखों भूखों मरने वाले लोगों के साथ एकरूप हो गए थें। उन्होने भारत की सारी बुराईयों के रामबाण के रूप में ग्राम-स्वराज की योजना हमारे सामने रखी है। यह योजना सारे संसार के लिए उतनी ही परिणामकारी सिद्ध हो सकती है, जिसके आज तक के इतिहास में किसानों को सर्वत्रा शोषण और भुखमरी का शिकार होना पड़ा है। अपने 04.10.45 के पत्र में गाँधी जी ने पंडित नेहरू को लिखा था ''मैं यह मानता हूँ कि अगर हिन्दुसतान को सच्ची आजादी पाना है और हिन्दुस्तान के मार्फत दुनियाँ को भी, तब आज नहीं तो कल देहातों में हीं रहना होगा, झोपड़ियो में महलों में नहीं। कई अरब आदमी शहरों में और महलों में सुख से और शांति से कभी नही रह सकते। न एक दूसरे का खून करके यानि हिंसा से, न झूठ से यानी असत्य से। सिवाय इस जोड़ी के (अर्थात सत्य और अहिंसा) मनुष्य जाति का नाश हीं है।, इसमें मुझे जरा सा भी शक नहीं है। उस सत्य और अहिंसा का दर्शन हम देहातों की सादगी में कर सकते है। वह सादगी चरखा में और चरखा में जो चीज भरी है, उसी पर निर्भर है।'' गाँधी जी की कल्पना का ग्राम-स्वराज एक सच्चा और शक्तिशाली लोकतंत्र है जो आज की शासन-पद्धतियों के साथ जुड़ी हुई अनेक राजनीतिक बुराइयों का रामबाण इलाज है। ऐसा शासन विकेन्द्रिकृत लोकतंत्र संपूर्ण मानवजाति के लिए आशा का उदार संदेश देने वाला होगा। गाँधी जी की दृष्टि में राजनीतिक सत्ता अपने आप में कोई साध्य नही थी परंतु लोगों के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्थिति सुधारने की क्षमता प्राप्त करने का एक साधन मात्रा थी। इसलिए अपने आखिरी वसीयत नामा में गाँधी जी ने कहा था कि भारत में राजनितिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली है। लेकिन उसे ''अभी शहरों कस्बों से भिन्न अपने सात लाख गाँवों के लिए सामाजिक, आर्थिक, नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना बाकी है। उस बसीयत नामों में ग्राम-स्वराज अर्थात पंचायतराज का चित्रा और कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है जो दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण राजनीतिक सत्ता भोगने वाला एक प्रहिंसक, स्वावलंबी और स्वयंपूर्ण आर्थिक घटक है।''

विश्वशांति की आकांक्षा रखने वाले संसार के राजनीतिज्ञ उपर से नीचे की ओर जाने वाली योजना बनाने की बात सोंचते है जबकि गाँधी जी कि सारी योजना नीचे से उपर की दिशा में काम करने की थी। इसलिए उनहोने कहा है- ''स्वतंत्रता नीचे से आरंभ होनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक गाँव एक प्रजातंत्र अथवा पंचायत होगा, जिसके हाथ में संम्पूर्ण सत्ता होगी।''

इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक गाँव को स्वाश्रयी और आत्मनिर्भर बनाना होगा तथा अपने सारे कामकाज की व्यवस्था स्वयं करने की योग्यता प्राप्त करनी होगी।

गाँधी जी की दृष्टि में ''स्वराज का अर्थ है सरकार के नियंत्राण से स्वतंत्र रहने का निरंतर प्रयास, फिर वह विदेशी सरकार हो या राष्ट्रीय सरकार। यदि देश के लोग जीवन की हर बात की व्यवस्था और नियम के लिए स्वराज सरकार की ओर ताकने लगे, तब तो उस सरकार का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।''

ग्राम-स्वराज में अंतिम सत्ता व्यक्ति के हाथ में रहेगी। व्यक्ति यदि वास्तव में ग्राम-स्वराज का आदर्श-सिद्ध हुआ देखना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम 'स्व-राज्य' सिद्ध करना चाहिए। यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्ड' इस प्रकार 'ग्राम-स्वराज' स्वराज की उस भावना का प्रतीक होगा, जिसे ग्राम-स्वराज के अभिन्न अंग बने हुए व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में प्रकट करेंगे। इसलिए ग्राम सेवक को सबसे पहले ग्रामवासियों की सच्ची शिक्षा पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। वह शिक्षा ब्यक्ति के मष्तिष्क, हृदय और हाथ का सामंजस्यपूर्ण विकास साधने वाली होनी चाहिए। नई तालीम गाँधीजी की तपस्या का सुफल है। वे मष्तिष्क हृदय और हाथ के सांमजस्यपूर्ण विकास के मूर्ति मंत उदाहरण थें।

गाँधी जी के ग्राम-स्वराज दर्शन में सबकों रोटी, कपड़ा, मकान, रोजगार, स्वास्थ्य आदि मुहैया कराना समाहित है। गाँधी जी का मत है कि बुनियादी आवश्यकता मुहैया कराए बिना लोकतंत्रा वास्तविक रूप में सक्षम नहीं हो सकता। जीवन में आहार, आत्मसम्मान, एवं आजदी की रक्षा हीं गाँधी दर्शन का प्रेरक तत्व है। आम आदमी को रोटी, कपड़ा, मकान चाहिए बाद में आत्मसम्मान और आजादी ग्राम-स्वराज का बुनियादी आधार है। गाँधी जी मानते थे कि बुनियादी आवश्यक्ताओं पूरा किए बिना आदमी आत्मसम्मान से नही रह सकता। **यंग इंडिया के 19 मार्च, 1931 के अंक में उन्होने लिखा** है कि ''स्वराज एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ आत्म अनुशासन और आत्म संयम है।

गाँधी जी चाहते थें कि भारत में सच्चे लोकतंत्र की स्थापना हो इसलिए उन्होने कहा था ''सच्चा लोकतंत्र केन्द्र में बैठे हुए बीस व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा सकता। उसे प्रत्येक गाँव के लोगोंको नीचे से चलाना होगा।'' ग्राम-स्वराज में गाँव सम्पूर्ण सत्ताएँ भोगने वाला एक विकेन्द्रित राजनीतिक घटक होगा, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का सरकार अथवा मे सीधा हाथ होगा गाँव का शासन चलाने के लिए प्रतिवर्श गाँव को पाँच व्यक्तियों कि एक पंचायत चुनी जाऐगी। इसके लिए एक अल्पमत निर्धारित योग्याता वाले गाँव के वयस्क स्त्री-पुरूषों को अपने पंच चुनने का अधिकार प्राप्त होंगे। इस ग्राम-स्वराज्य में दंड की कोई प्रथा नहीं होगी, इसलिए यह पंचायत धारा सभा, न्याय सभा और व्यवस्थापिका सभा तीनों का कार्य संयुक्त रूप से करेंगीं।

गाँधी जी के अनुसार ग्राम-स्वराज एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी महत्व की जरूरत के लिए इपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर भी बढ़ती दूसरी जरूरतों के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर लें। उसके पास इतनी फाजील जमीन होनी चाहिए जिसमे पशु चर सके और गाँव के बड़े व बच्चों के लिए मनबहलाव के साधनों और खेलकूद के मैदान बगैरह का बंदोबस्त हो सके। जहाँ तक हो सकेगा, गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किए जाएंगे। जात-पात और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाए जाते है।

सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्रा के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन-बल होगी। गाँव की रक्षा के लिए ग्राम सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौर पर बारी-बारी से गाँव के चौकी पहरे का काम करना होगा। गाँधी जी चाहते थें कि ऐसा आदर्श गाँव स्थापित व बसाया जाना चाहिए जिससे सम्पूर्णतया निरोग रह सके। उसके झोपड़ीं और मकानों में काफी प्रकाश और वायु आ जा सकें। ये ऐसी चीजों के बने हो जो पाँच मील की सीमा के अंदर उपलब्ध हो सकती है। हर मकान के अस-पास या आगे -पीछे इतना बड़ा आँगन हो जिससे गृहहस्थ अपने लिए साग-सब्जी लगा सके और अपने पशुओं को रख सके। गाँवों की गलियों और रास्तों पर जहाँ तक हो सके धूल न हो अपनी जरूरत के अनुसार गाँव में कुएँ हो, जिनसे गाँव के सब आदमी पानी भर सके। सबके लिए प्रार्थना घर या मंदिर हो सार्वजनिक सभा वगैरह के लिए एक अलग स्थान हो, गाँव की अपनी गोचर भूमि हो, सहकारी ढ़ंग की एक गोशाला हो, ऐसी प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ हो जिनमें ऑद्योगिक शिक्षा सर्वप्रधान वस्तु हो और गाँव के अपने मामलों का निपटारा करने के लिए ग्राम-पंचायत भी हो। एक आदर्श गाँव की मेरी अपनी यह कल्पना है।

ग्राम-स्वराज के अन्तर्गत गाँधी जी के अनुसार हर एक को इतना काम मिल जाना चाहिए किवह अपने खाने पहनने की जरूरते पूरी कर सके। और यह आदर्श निरविवाद रूप से तभी क्रियान्वित किया जा सकता है जब जीवन की प्राथमिक आवश्यक्ताओं के उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में रहे। वे हर एक को बिना किसी बाधा के उसी तरह उपलब्ध है जिस तरह की भगवान की दी हुई हवा और पानी हमें उपलब्ध है किसी भी हालत में वे दूसरों के शोषण के लिए चलाए जाने वाले व्यापार का वाहन न

बनें। हमें आज न केवल अपने इस दुखी देश में बल्कि दुनियाँ के दुसरें हिस्सों में भी जो गरीबी और भुखमरी देखते है उसका कारण इस सरल सिद्धांत की उपेक्षा हीं है उनके अनुसार हर स्त्री-पुरूष जिंदा रहने के लिए शरीर-श्रम करें। इसका मतलब यह है कि हर स्वस्थ आदमी को अपनी रोटी के लिए शरीर-श्रम करना ही चाहिए। मनुष्य को अपनी बुद्धि की शक्ति का उपयोग आजिविका या उससे भी ज्यादा प्राप्त करने के लिए नहीं बल्कि सेवा के लिए, परोपकार के लिए करना चाहिए। इस नियम का पालन सारी दुनिया करने लगे तो स्वतः ही सब लोग बराबर हो जाऐंगे। इस नियम का पालन करने पर इसका चमत्कारी असर होता है। क्योंकि उसे परम शांति मिलती है, उसकी सेवा शक्ति बढ़ती है और उसकी तंदुरूस्ती बढ़ती है।

आजकल इस देश में अमीर लोग या ऊँचे वर्ण के माने-जाने वाले लोग शरीर-श्रम का अनादर करते हैं इसलिए इस धारणा को बदलना होगा। शरीर-श्रम को ऊँचे दर्जा देने की बड़ी जरूरत है और बुद्धि शक्ति को सच्चा बेग देने के लिए भी शरीर-श्रम की यानी किसी भी उपयोगी शारीरिक धंधे में शरीर को लगाने की जरूरत है। लाखों भूख से पीड़ित ब्यक्ति एक ही चीज चाहते है और वह है जीवन देने वाला भोजन। यह भोजन उन्हें दिया नही जा सकता। उन्हें स्वयं इसे पाना होगा। यह केवल कड़े श्रम द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। गाँधी जी मानते है कि रचनात्मक कार्य अहिंसापूर्ण स्वाराज मुख्य चाबी हैं आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूँजी और मजदूरी के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना। जब तक मुट्ठी भर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच जीवन-आसमान का अंतर बना रहेगा तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राज्य-ब्यवस्था कायम नही हो सकेगी।

आर्थिक समानता की जड़ में धनिक का ट्रस्टीपन निहित है। इस आदर्श के अनुसार धनिक को अपने पड़ोसी से एक कौड़ी भी ज्यादा रखने का अधिकार नही। अगर वह प्रमाणिकता से संरक्षक बनेगा जो पैसा पैदा करेगा उसका सदव्यय करेगा जब मनुष्य अपने आपको समाज का सेवक मानेगा समाज की खातीर धन कमाएकगा, समाज के कल्याण के लिए उसे खर्च करेगा, तब उसकी कमाई में शुद्धता आएगी। गाँवों को केन्द्र में रखकर जिस भारत का निर्माण होगा उसकी अपेक्षा वह शहर प्रधान भारत जल, थल और वायु, वायुसेनाओं से सुसज्जित होगा तो भी विदेशी आक्रमण का कम खतरा रहेगा। कारखानों की सभ्यता पर अहिंसा का निर्माण नहीं किया जा सकता लेकिन वह सवावलंबी और स्वाश्रयी ग्रामों के आधार पर निर्माण की जा सकती है। गाँधी जी के अनुसार ग्रामीण अर्थरचना शोषण का सर्वथा त्याग करती है और शोषण हिंसा का सार है।

स्वेदेशी एक सार्वभौम धर्म है। हर मनुष्य का पहला कर्त्तव्य अपने पड़ोसियों के प्रति है। इसमें परदेशी के प्रति द्वेश नहीं है औरस्वसदेशी के लिए पक्षपात नही है। शरीरधारी की सेवा करने की शक्ति मर्यादा होती है। वह अपने पड़ोसियों के लिए भी मुश्किल से अपना धर्म पूरा कर सकता है। अगर पड़ोसी के प्रति सब कोई अपना धर्म अच्छी तरह पाल सकें। तो दुनिया मे मदद के बिना कोई दुःख न भोगे। इसलिए यह कहा जा सकता है कि मनुष्य पड़ोसी की सेवा करके दूनिया की सेवा करता है। असल में तो इस स्वदेशी धर्म में अपने-पराये का भेद हीं नही है। पड़ोसी के प्रति धर्म पालन करने का अर्थ है, जगत के प्रति धर्म पालन। और किसी तरह से दुनिया की सेवा हो नही सकती जिसकी दुष्टि मे सारा जगत ही कुटुंब है उसकी अपनी जगह सेना के द्वारा हीं हो सकती है।

गाँधीजी ने ग्राम-स्वराज का आधार स्तंभ स्वावलंबन को माना है। उनके अनुसार समाजका घटक एक गाँव या एक लोगों का ऐसा छोटा समूह होना चाहिए जिसकी व्यवस्था हो सके और आदर्श की दृष्टि से स्वयंपूर्ण और आरम्भ निर्भर हो हर गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूररत का सारा अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। आदमी का मुख्य काम है हर गाँव को अनाज और कपड़े के बारे मे आत्मनिर्भर बनाना।

ग्रामिणों को सहयोग से रहना चाहिए और सबकी भलाई के लिए काम करना चाहिए जहाँ तक संभव हो गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर लिए जाऐं। सहकारिता की पद्धति किसानों के लिए ही ज्यादा जरूरी है। जमीन सरकार की है इसलिए जब उसे सहकारिता के आधार पर जोता जाएगा तो उससे किसान को ज्यादा से ज्यादा आमदनी होगी। सत्याग्रह और असहयोग के अस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामिण समाज का शासन-बल होगी। ग्राम-स्वराज में हर एक धर्म की अपनी पूरी और बराबरी की जगह होगी हम सब एक हीं आलीशान पेड़ के पत्ते है। इस पेड़ को हिलाई नही जा सकती क्योंकि वह पाताल तक पहुँची हुई है।, जबरदस्त से जबरदस्त आँधी भी उसे हिला नहीं सकती। ग्राम-स्वराज हेतु गाँधी जी नई तालीम के पक्षधर थें। उनके अनुसार शिक्षा

ऐसी हो जो बालक की या प्रौढ़ की शरीर, मन तथा आत्मा की क्षमताओं का सर्वांगीण विकास किया जाए और उन्हे प्रकाश में लाया जाए।

अक्षर-ज्ञान न तो शिक्षा का अंतिम लक्ष्य है। और न उसका आरंभ है। वह तो मनुष्य की शिक्षा के कई साधनों में केवल एक साधन है। अक्षर-ज्ञान अपने आप में शिक्षा नहीं है। इसलिए गाँधी जी बच्चों की शिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई दस्तकारी सिस्वाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षण का आरंभ करे उसी क्षण से उसे उत्पादन के योग्य बनाकर करना चाहते थें। इस प्रकार प्रत्येक स्कूल आत्मनिर्भर हो सकता है। शर्त सिर्फ यह है कि इन स्कूलों की बनीं चीजे राज्य खरीद लिया करे।

गाँधी जी ने अंधविश्वास एवं रूढ़ियों में जकड़ी नारी को घर की चौखट से बाहर पुरूषों से बराबर की मान्यता दिलायी। पीड़ित नारी को सार्वजनिक क्षेत्र तक की दिशा दिखाने में गाँधी जी की देन असाधारण है। गाँधी जी ने नारी को संकोच, लज्जा, भय से निकालने की नयी विचारधारा दी। दबाव में जीने वाली नारी को नयी जीवन शक्ति दी। यही नही उन्होने नारी को अपना जीवन सार्थक बनाने की नयी परिभाषा दी। समाज में नारी का स्थान क्या है? इस बात पर गाँधी जी नारी-पुरूष दोनों की समानता के कायल थें। समाज में नारी को समानता मिले यह गाँधी जी की हार्दिक इच्छा थी। गाँधी जी का यह भी कहना है कि भारतीय मूल्यों को जिन्दा रखने एवं उसके विकास में यहाँ की नारी की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। भारतीय संसकृति एवं सभ्यता को उत्कृष्ट बनाने में भारत की नारी का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

निष्कर्ष:- ग्राम-स्वराज गाँधी जी का सपना था उनकी आत्मा गाँवों में बसती थी। वे ग्राम-स्वराज के रूप में अहिंसक समाज की स्थापना चाहते थे। उनका कहना था कि **भारत की 80 प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है।** अत: स्वदेशी पर उन्होने जोर दिया। ग्रामीण उद्योग-धंधे एवं कुटीर उद्योग को बढ़ावा दिया तथा ग्रामोद्योग को स्वदेशी बनाया। उनहोने नशाबंदी, शिक्षा-प्रसार, हरिजन सेवा, स्त्री सम्मान, किसान, मजदूर हितों का संरक्षण आदि बातों पर ध्यान दिया। भारत में 'ग्राम-स्वराज' पर अनेक कानून बने। पंचायती राज की स्थापना के प्रयास हुए। किंतु सही अर्थो में 'ग्राम स्वराज' नहीं आ पाया। क्योंकि गाँधी के सपनों का ग्राम-स्वराज उनके दर्शन के मुताबिक ही होगा अन्यथा नहीं। वे विकेन्द्रित ग्राम-स्वराज्यों का समर्थन करते थें। उनका मानना था कि प्रत्येक गाँव जहाँ तक संभव हो भोजन, कपड़ा, पानी, दूध, सफाई, माध्यमिक शिक्षा अपैर मनोरंजन के मामले में आत्मनिर्भर हो। ग्रामवासी स्वयं बारी-बारी से गाँव की रक्षा करें। गाँव की सरकार गाँव के बयस्क नागरिकों द्वारा निर्वाचित पंचायत के माध्यम से चलायी जाए। गाँव की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि और छोटे कुटिर उद्योगों पर आधारित हो।

गाँधि का आर्थिक-समाजिक दर्शन जिस सर्वोदय पर आधारित है उसका लक्ष्य है-आध्यात्मिक उन्नति एवं जीवन की शुद्धि। वसुधैवकुटुम्बकम गाँधी दर्शन में समाहित है। इसलिए समाज में अंतिम व्यक्ति का दु:ख दूर करना भी उनके आर्थिक एवं सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक स्तर निम्न कोटि का है। उनका मत था किसारा देश उत्पादन में भागीदार ने। सर्वोदय अर्थशास्त्र हीं सामाजिक अर्थशास्त्र है जिसका उदेश्य सका विकास हैं। इसी से देश में सामाजिक एवं आर्थिक समानता प्राप्त हो सकती है। यदि सबका आरंभ से ही गाँव के इस दर्शन को अपनाया जाता जो हालात भारत में आज है, कदापि नही होते। अमीर और अमीर और गरीब और गरीब नही होता।

गाँधी जी बसुधैव कुटुम्बकम के दर्शन में आस्था रखते थें। जिसका अभिप्राय जो वर्त्तमान में भूमंडलीकरण से है। उनके दर्शन में भौतिकता आध्यात्मिकता यथार्थवाद एवं आदर्शवाद का मिश्रण है। गाँधी जी मानवता के पूर्ण समर्थक थे नई सामाजिक व्यवस्था के लिए आर्थिक ही नही बल्कि नैतिक मूल्यों पर भी बल देते थे। वही वर्तमान भूमंडलीकरण खुला बाजार ने ले लिया है। अर्थात आर्थिक खुलेपन एकीकरण तथा पारस्परिक आत्मनिर्भरता को बढ़ाने का कार्य किया है। साथ ही समाज के सांस्कृतिक मूल्यों को परिवर्तित करने में बड़ा योगदान दिया है।

(संदर्भ:)-

1. गाँधी जी का नेहरू के नाम पत्र 04.10.1945
2. गाँधी जी का अंतिम वसियतनामा।

3. महात्मा गाँधी ग्राम-स्वराज, प्रभात पेपर बॉक्स, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली 2011 पृ018
4. हरि प्रसाद व्यास, ग्राम-स्वराज, भूमिका, पृ019
5. यंग इंडिया, 19 मार्च 1931
6. महात्मा गाँधी, ग्राम-स्वराज, पूर्व उद्धत, पृ0 49
7. वन्दना सक्सेना, पूर्व उद्धत, पृ0 67
8. अभय कुमार दुबे, 01 (सं0) भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003 पृ0 243
9. निर्मला मुखर्जी, कैन मार्केट आल्टर जेडरं रिलेशंस, जेंडर टेक्नोलॉजी एंड डेवलपमेंट, सेज प्रकाशन, दिल्ली, जनवरी-अप्रैल 1999, खंड-3, अंक-1
10. अमरेश्वर अवस्थी एवं रामकुमार अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज, नई दिल्ली, 1980 पृ0 457

गुप्तकालीन सामाजिक स्थिति का मूल्यांकन

डॉ० सरिता कुमारी

+2 शिक्षिका (इतिहास), परि0 बार0 उ0 मा0 विद्यालय, कल्याणपुर चौक, समस्तीपुर

शोध-सारांश

विभिन्न स्रोतो तथा महत्वपूर्ण पुस्तकों के आधार पर यह माना जाता है कि गुप्त साम्राज्य की नींव तीसरी शताब्दी के चौथे दशक में तथा उत्थान चौथी शताब्दी की शुरुआत में हुआ। सच कहा जाय तो गुप्त वंश का प्रारम्भिक राज्य आधुनिक उत्तरप्रदेश और बिहार में था। इस साम्राज्य के संस्थापक श्री गुप्त थे। जिसने प्रयाग के निकट कौशाम्बी में नीव डाली। हालांकि प्रभावती गुप्त के पूजा ताम्रपत्र अभिलेख में श्रीगुप्त सम्राट को आदिराज कहकर सम्बोधित किया गया है। गुप्त सम्राटों द्वारा दीर्घकालीन शान्ति कायम की जाने के परिणाम स्वरुप देश में आर्थिक जीवन के सभी पक्षों में व्यापक उन्नति हुई और देश खुशहाल हुआ। यद्यपि सामाजिक जीवन में उदारता थी रिु भी अनेक क्षेत्रों में रुढ़िवादिता का प्रभाव देखने को मिली। गुप्त काल के महान सफलता इस तथ्य को लेकर कही जा सकती है कि उन्होने शक तथा कुशाणों के विदेशी शासन को समाप्त किया। फलत: जिस प्रकार शुंग काल में वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर समाज के संगठन का प्रयास किया गया था। ठीक उसी प्रकार गुप्तकालीन समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था का पुर्नगठन किया गया लेकिन गुप्त सम्राटों का दिग्विजय बहुत ज्यादा व्यापक और स्थायित्व का उल्लेख मिला है, जिसके चलते इस काल की वर्ण व्यवस्था में उदार दृष्टिकोण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गुप्तकाल के अभिलेखों मे जातियों का कम उल्लेख मिलता है। प्राय: वर्णो का उल्लेख किया गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विभिन्न वर्णो के कर्तव्य पालन पर अधिक बल दिया गया था। इस वर्ण व्यवस्था में गतिशीलता भरी पड़ी थी तथा व्यवसायों के परिवर्त्तन और अर्न्तजातीय विवाहों में इस गतिशीलता उदार नीति का अनुभव किया जा सकता है। इतना ही नही राजाओं के कर्त्तव्यों में वर्ण व्यवस्था की रक्षा का भी उल्लेख परम्परागत रुप से अभिलेखों में मिलता है, लेकिन राजाओं के अधिकार में क्षत्रिय के अलावे ब्राह्मण,वैश्य और शूद्र भी थे। वस्तुत: धर्म में उदारता, आर्थिक क्षेत्र में आमूल-चूल समृद्धि, सामाजिक क्षेत्र में गतिशीलता इस गुप्त काल की खास विशेषताएँ है। इन समाजिक गतिशीलता के अनेक महत्वपूर्ण कारण था- विदेशियों का भारतीय समाज में सम्मिलित होना, अर्न्तजातीय विवाह होना, बहुसंख्य आदिवासी समाजों को शिल्पकारों के रुप में शूद्र में शामिल करना।

मुख्य शब्द: वर्णाश्रम व्यवस्था, वैदिक धर्म, समाजिक गतिशीलता, दास प्रथा, स्कन्दपुराण

विषय-वस्तु

क्षत्रियों की स्थिति

गुप्तकाल में क्षत्रिय की स्थिति संतोषजनक ही नही वरण् कर्मठता, कर्त्तव्यपरायणता की भावना से ओत-प्रोत था। इनका कर्त्तव्य अध्ययन, दान और रक्षा करना था। गुप्तकालीन अभिलेखों में क्षत्रियों का उल्लेख नही मिलता है। धर्मशास्त्रों में क्षत्रियों के लिए भी आपद् धर्म के रुप में निम्न वर्ग का व्यवसाय करने की अनुमति दी गयी है। इतना ही नही इस काल में अनेक क्षत्रियों ने वैश्यों के व्यवसाय को अपना लिया था। स्कन्दगुप्त के काल में एक ताम्र अभिलेख से यह जानकारी मिलती है कि तैलिय श्रेणी का एक सदस्य क्षत्रिय था। इस काल में विदेशी जातियों को भारतीय समाज में सम्मिलित किया जा रहा था, यद्यपि यह प्रक्रिया मौर्यतर काल

में ही आरम्भ हो गयी थी। इस तरह स्वाभाविक था कि विदेशी युद्ध-प्रिय जातियों के भारतीय समाज मे धुलमिल जाने से क्षत्रिय वर्ण में भी उपजातियों का निर्माण हो रहा था। इस काल के साहित्य में क्षत्रियों के विभिन्न उपभेदी जैसे-सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, पुरुवंशी, क्रथकैशिक, नीपवंशी, पांड्य आदि का उल्लेख मिलता है।

इस युग की महत्वपूर्ण घटना राजपूतों का अभ्यूदय है, जिन्होने प्राचीन क्षत्रियों का स्थान ले लिया था। प्राचीन ग्रंथो में राजवंश के कुमारो को राजपुत कहा गया है किन्तु इस काल में यह शब्द लड़ाकू जातियों और सांमत वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। इन युद्धप्रिय जातियों ने अपने राजवंश स्थापित कर लिये थे। इनके अधीन अनेक सामंत थे जिन्हे राज्य के अंतर्गत भू भाग विशेष में शासक नियुक्त कर दिया गया था। वेतन के बदले उन्हे शासन- क्षेत्र के अंतर्गत भूमि पर सभी राज्याधिकार दे दिये गये थे। अनेक विद्वान इतिहासकार का मानना है कि 12 वी0 शताब्दी तक राजपूतों की 36 जातियाँ प्रसद्धि हो गयी थी, जैसे चालुक्य, चौहान, प्रतीहार, परमार, गुहिल, चंदेल, कछवाहा, मेद आदि। ये सभी क्षत्रिय कहलाने लगे। इस युग में कई अक्षत्रिय राजाओं का भी उल्लेख है। ह्यनत्सांग ने मणिपुर और सिंधदेश के राजा को शुद्र कहा है, कामरुप का शासक ब्राह्मण था। बंगाल के सातवीं सदी के लेख में एक शुद्र राजा उल्लेख है। दक्षिण में अनेख लेख प्राप्त हुये है जिनमें नायक तथा रेडडी वंश के शासक अपने को शुद्र कहते है। इस वास्तयिकताओं को ध्यान में रखकर मनु के टीकाकार मेधातिथि ने लिखा है कि राजा शब्द अक्षत्रिय के लिए भी प्रयुक्त हो सकते है बशर्ते कि वह राज्य का स्वामी हो, दूसरे शब्दों में यह अनिवार्य नही है कि राजा क्षत्रिय ही हो।

इत्न खुर्दादब ने क्षत्रिय के दो वर्गो का उल्लेख किया है- सवूकफूरिया और कतरिया। अल्तेकर के अनुसार सवूकफूरिया सत् क्षत्रिय थे। इसके अंतगर्त राजवंश और सामंत वर्ग और योद्धा क्षत्रिय वर्ग को सम्मिलित किया गया। कतरिया साधारण क्षत्रिय थे जो कृषि, व्यापार इत्यादि व्यवसायों से भी आजीविका चलाते थे। आहार अभिलेख में क्षत्रिय व्यापारी 'साहाक' का उल्लेख है। अलबरुनी के वृत्तांत से पता चलता है कि राजपूत क्षत्रिय ब्राह्मणों के सामान समझे जाते थे किन्तु खेतिहर क्षत्रिय और वैश्य बराबर थे।

ब्राह्मणों की स्थिति

गुप्त काल में वैदिक धर्म का नवीन स्वरुप वैष्णव धर्म के रुप में स्थापित हुआ था। इससे ब्राह्मणों की श्रेष्ठता भी स्थापित हुई। पर हाँ, व्यवसायों की शिथिलता का उनकी स्थिति पर कोई प्रभाव नही पड़ा। जातियों में सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों का कर्त्तव्य अध्ययन-अध्यापन, धार्मिक कर्मकाण्ड, दान ग्रहण करना था। कुमार गुप्त प्रथम के कमरदण्डा अभिलेख में ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है, जो स्वाध्यायी और धर्मशास्त्रों के ज्ञाता थे। यह भी बताते चले कि गुप्त सम्राट के संबंध में अनेक इतिहासकार ऊहापोह में है कि वे ब्राह्मण जाति के थे कि नही ? इसी उधेर-बून के बीच कतिपय इतिहासकार गुप्तों को ब्राह्मण मानते है। उन विद्वानो में डॉ राय चौधरी, डॉ रामगोपाल गोयल व डॉ उदयनारायण राय का नाम प्रमुख रुप से लिया सकता है। इन विद्वानो ने अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये है-

गुप्त शासक चन्द्रगुप्त-प्प्ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक नरेश रुद्रसेन-II के साथ किया था। वाकाटक ब्राह्मण थे, फलत: माना जाता है कि गुप्त भी ब्राह्मण ही रहे होगें।

वाकाटक अभिलेखों में प्रभावती गुप्त को धारण गोत्र का बताया गया है। स्कन्दपुराण से ज्ञात है कि धारण ब्राह्मणों का गोत्र था, अत: गुप्त भी वाकई ब्राह्मण ही थे। सच में यदि गुप्त-वंश ब्राह्मणेत्तर राजवंश होता तो उक्त वैवाहिक संबंध प्रतिलोभ विवाह के तहत् आता, जिसमें वधु वर से श्रेष्ठ वर्ण की होती है। स्मृतियों में प्रतिलोभ विवाह की कटु आलोचना की गयी है। अत: उक्त प्रकार के वैवाहिक संबंध द्वारा गुप्त शासक ब्राह्मण धर्म के किसी नियम की अवहेलना नही कर सकते है। अत: गुप्त ब्राह्मण रहे होगे। इतना ही नही शासक शान्तिवर्मण के तालगुंठ अभिलेख से कदम्ब व गुप्तों के मध्य वैवाहिक संबंधों के विषय में भी पता चलता है, कदम्ब ब्राह्मणों थे, अत: गुप्तों का ब्राह्मण होना प्रमाणित होता है, पर उपरोक्त तर्को के आधार पर गुप्तों को ब्राह्मण स्वीकार नही किया जा सकता व इन तर्को का सरलतापूर्वक खण्डन किया जा सकता है:-

विवाह अर्न्तजातीय भी हो सकता है। प्राचीन भारत में ऐंसे अनेक उदाहरण मिलते है जहाँ क्षत्रिय और वैश्य अपने पुरोहित का गोत्र धारण कर लेते थे। फलत: प्रभावती गुप्त का धारण गोत्र उसे ब्राह्मण प्रमाणित नही करता है। बुद्धगुप्त के एरण अभिलेख में महाराज मातृविष्णु का विप्रर्षि, स्वकर्मनिरत,

यज्ञकर्त्ता कहा गया है। मातृबिष्णु ब्राह्मण था, जिसने क्षत्रीय-धर्म ग्रहण कर लिया था। मनु और वशिष्ट ने ब्राह्मणो को आपद धर्म के रुप में क्षत्रिय धर्म की अनुमति दी थी। पराशर स्मृति ब्राह्मणों को वैश्यों के व्यवसाय करने की अनुमति देती थी। वाकाटक शासक ब्राह्मण थे। इस काल में बहुसंख्य ब्राह्मणों का आमात्यों, राज्याधकारी सैनिक, प्रशासक के रुप में उल्लेख प्राप्त होता है। कही कही तो ऐसा भी उदाहरण प्राप्त होते है कि ब्राह्मणों ने वैश्यों के व्यवसायों को ग्रहण किया था। मृगच्छकटिक नाटक का प्रमुख पात्र चारुदत्त ब्राह्मण है और वीणा कार्य कर रहा है।

इस काल में स्मृतियों ने ब्राह्मणों के विशिष्ट अधिकारों तथा उनकी सर्वोच्चता के प्रावधानों को पुष्ट किया है। वाराहमिहिर ने वृहदसंहिता में ब्राह्मणों के लिए नगर में अलग अलग आवास की व्यवस्था का उल्लेख देखने को मिलती है। वे विभिन्न वर्णों के लिए विभिन्न प्रकार के भवनों का भी प्रावधान करता है। नारद स्मृति में ब्राह्मणों को करो से मुक्त रखा गया है। पूर्व स्मृतियों में तो ब्राह्मणों को दण्ड व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की छूट प्रदान की गयी थी। नारद स्मृति में इस बात की पुष्टि की गयी है। इसमें कहा गया है कि ब्राह्मणों को मृत्युदंड नही दिया जा सकता था। उसका अधिकतम सजा (दण्ड) निर्वासन मात्र था। परन्तु साक्ष्य के मामले में नारद स्मृति मे पूर्व व्यवस्था को अस्वीकार कर सभी वर्णो के साक्ष्य के समान मान्यता प्रदान की है। इस काल की एक अन्य विशेषता ब्राह्मण का प्रवर तथा गोत्र के आधार पर उपवगों में विभाजित करना था। साथ ही दान पत्रों से पता चलता है कि अधिकांश ब्राह्मण सामवेदी तथा यजुर्वेदी थे। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वश्रेष्ठ या केवल धार्मिक ग्रन्थों से ही नही अपितु विदेशी यात्रियों के वृतांत से भी इस बात की पुष्टि होती है। हवेन सांग ने लिखा है कि अनेक वर्ण और जातियों में ब्राह्मण सबसे अधिक पवित्र है और उन्हे सबसे अधिक सम्मान मिलता है।

दास प्रथा

इस काल में दास प्रथा का प्रचलन था। कुछ शूद्र दासों की श्रेणी में रखे थे। नारद स्मृति में पन्द्रह प्रकार के दासों का उल्लेख प्राप्त होता है लेकिन अन्य स्मृतियों में कहा गया है कि दास का वर्ण स्वामी के वर्ण से ऊँचा नही होना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण को छोड़कर अन्य वर्गदास की श्रेणी में आते है। महाभारत तथा कत्यायन व नारद स्मृतियों में मनुष्यों को बेचने की निन्दा की गई है, फिर भी इसी प्रकार का क्रय-विक्रय की प्रथा प्रचलित थी। अमरकोश में दासीसमम् अर्थात् दासियों के दलो का उल्लेख प्राप्त होता है। इस काल की स्मृतियों में दासों के प्रति उदार दृष्टिकोण का उल्लेख मिलता है। नारद स्मृति में दासता से मुक्ति के लिए अनुष्ठान की व्यवस्था की गई है। इससे यह जान पड़ता है कि इस काल में दास प्रथा शिथिल हो रही थी। इसका कारण यह है कि इस काल में वर्ण व्यवस्था दुर्बल हो गई थी। रामशरण शर्मा लिखते है ऐसा लगता है कि वर्ण व्यवस्था ही शिथिल पड़ गई थी और इसके चलते दासप्रथा में कमजोरी आयी। वर्ण व्यवस्था का नियम था कि शूद्र को दास बनाना चाहिए, पर गुप्तकालीन पुराणों के वर्णन से ज्ञात होता है कि वैश्य और शूद्र अपने वर्ण-धर्म का पालन नहीं करते थे।

वैश्य की स्थिति

धर्मशास्त्रों के अनुसार वैश्यों का मुख्य कार्य वाणिज्य, पशुपालन और कृषि था। इस प्रकार के कार्यों में उन्हे शूद्रों का सहयोग लेना पड़ता था। इससे स्मृतियों में वैश्यों का स्थान नीचा करके उन्हें शूद्रो के समकक्ष कर दिया गया, लेकिन व्यवहारिक रुप में वैश्यों का स्थान बहुत नीचा नही था और समाज में उनकी प्रतिष्ठा तथा सम्मानजनक स्थान था। इस काल में उन्हे वणिक, श्रेष्ठि, सार्थवाह कहा गया है। वैश्य लोग समृद्ध थे, उनके दान देने के अनेक उदाहरण देखने को मिलती है। फाह्यान कहता है कि धनी वैश्यों नेनगरो में औशधालय स्थापित किया था। वह अनेक स्थानों पर पंथ-शालाओं की चर्चा करता है, जहाँ यात्री विश्राम करते थे। वैश्यों को व्यवसाय बदलने की पूर्ण स्वतंत्राता प्राप्त थी। लाट क्षेत्रों से जब तन्तुवाय श्रेणी दसपुर (मन्दसौर) आयी, तब उस श्रेणी के कई सदस्य सैनिक, विद्वान चारण बन गये लेकिन व्यवसाय बदलने से उनका वर्ण यथावत रहा। यह सब होते हुये भी रुढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था में वैश्यों को महत्वपूर्ण स्थान नही मिला। खानपान तथा अन्य प्रकार के सामाजिक व्यवहार में वैश्य शूद्र के अधिक समीपता दिखी। वैश्यों के लिए वैदिक संस्कार सिद्धांत रुप से अनुमत थे किन्तु अलबरुनी ने लिखा है कि वैश्यों और शूद्रों को वेदों के अध्ययन या श्रवण की अनुमति नही थी वास्तविक स्थिति यही मालूम पड़ती है। अलबीरुनी ने आगे लिखा है कि यदि यह सिद्ध हो जाए कि वैश्य और शूद्रों ने वेद-पाठ सुना है तो ब्राह्मण उन्हे न्यायधीश के पास ले जाते है और उनकी जीभ काट दी जाती है। अलीबीरुनी

ने वैश्यों और शूद्रों के सामाजिक स्तर में कोई भेद नही देखा है। उसके अनुसार वे नगर और गाँवों में एक साथ रहते थे और कभी-कभी एक ही कारण हो सकता है। उन्हें कई बस्तुओं में व्यापार करने की अनुमति दी गई थी। इस युग में वैश्य वर्ग वैष्णव धर्म तथा जैन धर्म का अनुयायी था। पुराणों में अनेक धनी वैश्यों की कथाएँ है जिन्होने प्रभूत धनराशि दान देकर पुण्य लाभ उठाया। जिस प्रकार प्राचीन काल में वैश्यों ने बौद्ध धर्म के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया उसी प्रकार पूर्व मध्यकाल में वैशणव और जैन धर्म में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थान, कर्नाटक तथा गुजराज में जैन धर्म के प्रसारण में वैश्यो की समृद्धि प्रमुख कारण है।

धर्मशास्त्रों में वैश्यों के लिए कृषि, पशुपालन और व्यापार जैसे व्यवसाय निर्दिष्ट किए गए है और पाराशर ने कुसीद वृत्ति (सूद पर रुपये उधार देना) वैश्य का व्यवसाय बताया है। बौद्ध, जैन, और वैष्णव धर्म में प्रतिपादित अहिंसा-सिद्धान्त के प्रभाव से वैश्यों ने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए कृषि कर्म तथा पशुपालन छोड़ दिया था और व्यापार को अपनी आजीविका का साधन बना लिया था। भविष्यत-कथा में एक वैश्य के संबंध में कहा गया है कि उसने नावों को खरीदने के लिए अपने पशु भी बेच दिए। माध के शिशुपालन वध में व्यापारियों को राजा की सेना के साथ यात्रा करते हुए तथा फौजी खेमे में समान बेचते हुए प्रस्तुत किया गया है। अब तक उपलब्ध अभिलेखों से पता चलता है कि बंगाल, बिहार, गुजरात और मालवा में वैश्य वर्ग के लोग अपनी समृद्धि के कारण समाज में प्रभावशाली हो गए थे और राजनीतिक पदों के लिए स्पर्ष करते थे। बिहार प्रदेश से प्राप्त आठवी सदी के दूधपाणि 'अभिलेख से ज्ञात होता है कि उदयमान नामक एक समृद्ध व्यापारी ने तीन गाँव के लोगों की ओर से राजकीय कर दिया। इस गाँव के लोगों ने उदयमान को अपना प्रभु द्धराजा स्वीकार कर दिया) बंगाल में सेना राजा लक्ष्मणसेन के समय सुवर्ण के व्यापारी इतने समृद्ध थे कि वे अपने धन और वैभव के कारण राजा का विरोध करने लगे और राजा से युद्ध करने पर उतारु हो गए। दंडस्वरुप राजा ने उन्हे जाति से बहिष्कृत कर दिया चालुक्य नरेशों से भी गुजरात के कई समृद्ध व्यापारियों का संघर्ष हुआ। उदयपन, तेजपाल इत्यादि धनी व्यापारी मंत्रिपद पर नियुक्त थे। जयसिंह सिद्धराज के राज्यकाल में कई व्यापारियों को सामंत की पदवी दी गई थी,

शूद्रो की आर्थिक स्थिति

शूद्रो की पर्याप्त उन्नति के बावजूद उनकी सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्त्तन नहीं दिखाई देता। स्मृति तथा निबंधो में साधारणतया सेवा और शिल्प शूद्र की व्यवसाय निर्धारित किया गए है। कुछ स्मृतियो के अनुसार उच्छिष्ट गृहभृत्य के लिए है, स्वतंत्र शूद्र के लिए नहीं। मेधातिथि के अनुसार शूद्र के लिए आवश्यक नही कि वहा द्विजातियों की सेवा से आजीविका चलाए। इस काल की स्मृतियों तथा निबंधो में भी सेवावृत्ति के अतिरिक्त शूद्र के लिए अन्य अनेक व्यवसाय निर्धारित किए गए है जिनसे उनकी आर्थिक स्थिति में निश्चित सुधार हुआ। अति, देवल तथा पाराशर ने शूद्र के लिए सेवा के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन, वाणिज्य तथा शिल्प उपयुक्त व्यवसाय बताए है। उशना ने व्यापार और शिल्प, शूद्र की आजीविका के साधन बताए है। बृहस्पति की परिभाषा के अनुसार स्वर्णकार, लोहार, चर्मकार (चमार), तंतुवाय (जुलाहा) के कार्य शिल्पों के अन्तर्गत जाते है। ब्रह्मवैवत पुराण और पदम् पुराण के अनुसार कुंभकार, बढ़ई, संगतराश (पत्थर का काम करने वाले), लौहाकार इत्यादि से संबंद्ध शिल्प शूद्रों के लिए निदिष्ट किए गए है।

इस काल में शूद्रों की स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार हुआ था। याज्ञवल्वय ने शूद्रो को व्यापार, शिल्प और कृषि करने की अनुमति दी है। इस काल में शूद्र वर्ण के लोग कृषक तथा शिल्पी थे। किसानों के रुप में उनका उल्लेख बार-बार प्राप्त होता है। कृषि मजदूर प्रायः सभी शूद्र थे, साथ ही यह भी सम्भव है कि शूद्र भूमि-स्वामी भी मिलते हों। गुप्त काल की आर्थिक समृद्धि से शिल्पकारों के जीवन का स्तर ऊँचा उठ गया था। बृहस्पति स्मृति में उल्लेख है कि शूद्र के व्यापार करने के अधिकार को स्वीकार किया गया है। सामान्य श्रमिकों को शूद्र की श्रेणी में रखा गया है। इन सामान्य श्रमिकों के अन्तर्गत तीन प्रकार के श्रामिक थे-सेना में काम करने वाले श्रामिक, कृषि- श्रमिक और भारवाहक श्रामिक। शूद्रो को पंचमहायज्ञ करने तथा रामायण एवं महाभारत सुनने का अधिकार था। मत्स्य पुराण में शूद्रों को मोक्ष पाने का अधिकार था। मत्स्य पुराण में शूद्रों को मोक्ष पाने का अधिकार बताया गया है। वे दान देने तथा यज्ञादि जैसे कर्म कर सकते है। शूद्र सेना मे पदाधिकारी थे। ह्वेनसांग ने मतिपुर के शूद्र राजा का उल्लेख किया है। इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि आर्थिक समृद्धि तथा परिवर्तनों से शूद्रों की स्थिति में सुधार हुआ था।

अस्पृश्यता

फाह्यान के वर्णन से इस बात की जानकारी मिलती है कि गुप्त कालीन समाज में एक अस्पृर्श्य वर्ग अस्तित्व में था। फाह्यान के अनुसार वे नगर के बाहर निवास करते थे और केवल दिन में नगर में प्रवेश करते थ। वे ढोल बजाते हुए नगर में प्रवेश करते थे ताकि लोग उनके स्पर्ष से बच सके। ढोल सुनकर लोग अपने घरों के दरवाजें और खिड़कियाँ बन्द कर देते थे जिससे उन पर दृष्टि न पड़े। उन पर दृष्टिमात्रा पड़ने से द्विज अपवित्र हो जाता है, यह अस्पृश्यता का निकृष्ट रुप था। तात्कालीन स्मृतियो में शुद्धि के लिए धार्मिक अनुष्ठानों का वर्णन मिलता है। स्मृतियों में अस्पृश्यों को चाण्डाल, अन्त्यज तथा प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न बताया गया है। उनकी वृत्तियों में जानवरों का शिकार, मछली पकड़ना, श्मशान की देखभाल करना था। इस काल में अस्पृश्यता विकसित ही नहीं हुई बल्कि चाण्डालों की संख्या में भी वृद्धि हुई।

उपजातियाँ

गुप्तकाल में कायस्थों का उल्लेख प्राप्त होता है जो राज्य का अधिकारी वर्ग था लेकिन इस वर्ग ने अभी तक जाति का रुप ग्रहण नही किया था। इस काल में कुछ मिश्रित अथवा उपजातियों का निर्माण हुआ है, जैसे- मूर्द्धाणषिक्त, करण, अम्बष्ठ, पराशव, उग्र। अन्य उपजातियों में प्रमुख रुप से मगध, रथकार, कर्मकार, चर्मकार, मणिकार गोपाल, वणिक आदि का उल्लेख किया गया जो स्पष्ट रुप से वर्ण के तहत नही आती थी।

स्त्रियों की दशा

गुप्त काल के साहित्य व कला में नारी का आदर्शमय चित्रण है किन्तु व्यावहारिक रुप में उनके अधिकारों में कटौती कर दी गयी थी। साहित्य में नारी के चरित्र का आदर्श वर्णित किया गया है। महाभारत पत्नी के बिना जीवन को शून्य मानता है, रघुवंश में अज अपनी प्रिया को सखी, सचिव एवं प्रिय शिष्या कहता है, स्वप्नवास-वदत्ता में उदयन वासवदत्ता को प्रिये और प्रिये शिष्ये कहता है लेकिन वास्तविक जीवन में स्थिति निम्न थी। वाल्यावस्था में विवाह का होना तथा सती प्रथा इसी काल में प्रचलित हुई। कन्या को इस काल में समस्या समझा जाने लगा और उसकी सुरक्षा पर जोर दिया गया। कालिदास के नाटकों तथा मृच्छकटिक में सती प्रथा का उल्लेख मिलता है।

मनुस्मृति में स्त्री द्वारा वैदिक मन्त्रों के उच्चारण पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। गुप्त काल के पहले स्त्रियों का उपनयन संस्कार बन्द कर दिया गया। इससे उनकी धर्मिक शिक्षा प्रतिर्वधित हो गई। इसके बाद उन्हे लौकिक शिक्षा प्राप्त होती रही। कामसूत्र में शिक्षित महिलाओं का उल्लेख मिलता है। वे संगीत, गृहकला, चित्रकला में पारंगत होती थी। यह लौकिक शिक्षा केवल उच्च वर्ग की महिलाओं तक सीमित थी। अमरकोश में उपाध्या और आचार्य का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। बाल विवाह का प्रचलन उत्तरोतर बढ़ता जा रहा था। स्मृतिकारों का सामान्य मत से प्रतीत होता है कि रजस्वला होने से पहले ही कन्या का विवाह कर दिया जाये लेकिन वयस्क कन्याओं का विवाह भी प्रचलित था, यह कामसूत्रा से पता चलता है। इस काल के साहित्य में भी नायिकाओं को वयस्का में रुप में प्रस्तुत किया गया है।

इस काल में पर्दा प्रथा प्रचलित नही थी। स्त्रियाँ प्रशासन तथा सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेती थी। गुप्त राजमहिर्शियों का मुद्राओं पर अंकन किया गया है। गुप्त राजकुमारी प्रभावती गुप्त ने अपने अल्पवस्यक पुत्रों की संरक्षिका के रुप में वाकाटक राज्य का संचालन किया था। काणे का मत है कि इस युग की स्मृतियों में स्त्रियों की शिक्षा अथवा विवाह के विषय में जिन प्रतिबन्धों का उल्लेख किया गया है, वे केवल ब्राह्मण कन्याओं के लिए थे। अभिलेखों में लक्ष्मी द्वारा स्कन्दगुप्त का वरण अथवा मातृगुप्त का लक्ष्मी द्वारा स्वेच्छा से वरण करना स्वयम्बर प्रथा प्रचलित होने को प्रमाणित करता है। ध्रुवदेवी प्रकरण से विदित होता है कि स्त्रियाँ विशेष परिस्थितियों में पुनर्विवाह कर सकती थी सती प्रथा प्रचलित हो गयी। 510 ई0 के एरण अभिलेख में गोपराज नामक सेनापति को पत्नी के सती होने का उल्लेख है। इस काल मे गणिकाओं तथा मन्दिरों में देवदासियों का उल्लेख भी प्राप्त होता हैं।

इस काल में परिवार संयुक्त प्रणाली पर आधारित थे। ाह्यान ने लोगो के पवित्र आचार-विचारों का वर्णन किया है। लोगों का जीवन सुखमय था। उनका जीवन श्रृंगार तथा मनोरंजन से परिपूर्ण था।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गुप्त काल का साम्राज्य अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि इस काल मे खासकर परंपरागत वर्ण व्यवस्था के आधार पर जातियों का निर्धारण तो हुआ, पर सभी जातियों में सर्वश्रेष्ठ जाति ब्राह्मण समुदाय को ही माना गया। ये समाज के पंथ प्रदर्शक, ज्ञानदाता के साथ समाज सुधाकर भी थे। परन्तु अन्य जातियों क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को भी समाज के नवनिर्माण, विकास के प्रगति पथ पर, लाने में अहम भूमिका अदा करते हुए उसे सहयोगात्मक प्रयास के साथ सामजस्यतापूर्वक भाईचारा की भावना से गुप्तकाल के सामाजिक बदलाव में चार चाँद लग गया।

संदर्भ-सूची

1. भारत का इतिहास-पेज न0-136 से 141 लेखक-रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली , 2000
2. इतिहास-पेज नं0-254 से 257 तथा 334 से 338 लेखक-डॉ0 ए0 के0 चतुर्वेदी, प्राचार्य, परिष्कार कॉलेज ऑफ ग्लोबल एक्सीलेंस, जयपुर (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) 2018
3. भारतीय सामंतवाद-पेज नं0-122 से 131 लेखक-रामशरण शर्मा 2002
4. प्राचीन भारत का इतिहास-372 से 376 संपादक-द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली 2001
5. इतिहास- भारतीय इतिहास का विषय-बस्तु पेज नं0-36 से 37 लेखक- डॉ ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव 2019

आधुनिक बिहार के जनजातीय विद्रोह की स्वतंत्रता संग्राम में भूमिका

श्याम मूर्ति भारती

(नेट-यू.जी.सी.)
(पी-एच.डी.-ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार)
इतिहास

विषय प्रवेश :

औपनिवेशिक सत्ता की भारत में स्थापना के साथ ही उनकी शोषणकारी नीतियों की शुरूआत हो गई। इन शोषणकारी नीतियों के विरूद्ध जनजातीय क्षेत्रों में भी कई चुनौतियाँ शुरू हुई। ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ ही अंग्रेजों ने जनजातीय क्षेत्र में हस्तक्षेप कर जनजातियों के जीवन को तहस-नहस कर दिया। अंग्रेजों की नीतियों ने जनजातियों के मध्य असंतोष उत्पन्न किया। इस असन्तोष ने कालांतर में विद्रोह का रूप ले लिया।

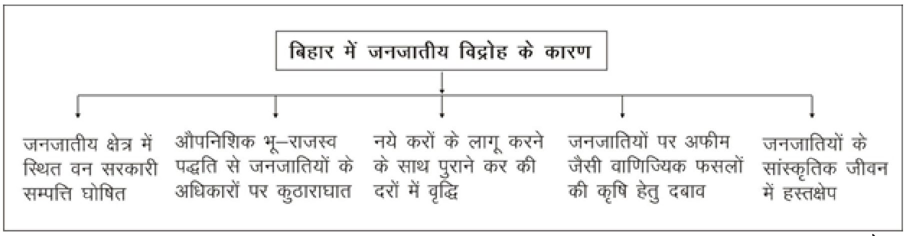

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त अंग्रेजी शोषणकारी व्यवस्था के अन्तर्गत जनजातीय क्षेत्रों में पुलिस थाने, सैनिक छावनियों की स्थापना कर बाहरी लोगों को प्रवेश दिया गया। अंग्रेजों द्वारा ऐसी गतिविधियों का कारण जनजातीय क्षेत्रों को कंपनी निर्मित कानून के अन्तर्गत लाना था।

जनजातीय क्षेत्रों में कंपनी के हस्तक्षेप ने स्थानीय निवासियों के मन में आशंका को जन्म दिया। क्योंकि जिस प्रकार ब्रिटिश शासन द्वारा जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्ख्रतिक तथा प्रशासनिक जीवन में हस्तक्षेप किया जा रहा था इससे जनजातीय लोगों में असंतोष बढ़ा और इस असंतोष ने विद्रोह को जन्म दिया।

वर्ष 1765 के पश्चात् बिहार के पठारी जनजातीय क्षेत्र में औपनिवेशिक सत्ता के विरूद्ध असंतोष मुखर होने लगे, जिसने कलांतर में जनजातियों को अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध एकजुट कर विद्रोह हेतु प्रेरित किया। ब्रिटिश शासन के विरूद्ध हुए इन विद्रोहों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

तमाड़ विद्रोह

छोटानागपुर क्षेत्र में हुए इस विद्रोह में स्थानीय उराँव जनजातियों की महत्वपूर्ण भागीदारी रही। यह विद्रोह उराँव जनजाति द्वारा ब्रिटिश शासन संरक्षित तत्कालीन राजाओं एवं जमींदारों के विरूद्ध हुआ था, जो वर्ष 1789 से 1794 ई. के मध्य चला। तमाड़ विद्रोह

के परिणामस्वरूप सरकार ने स्थानीय क्षेत्र में शंति-व्यवस्था स्थापित करने तथा ब्रिटिश शासन व्यवस्था बनाए रखने हेतु वर्ष 1809 में जमींदारी पुलिस बल की व्यवस्था की।

चेरों विद्रोह

भूषण सिंह के नेतृत्व में वर्ष 1800 ई, में हुआ विद्रोह औपनिवशिक सत्ता के विरूद्ध असंतोष का परिणाम था। स्थानीय लोगों ने भूषण सिंह के नेतृत्व में पलामू रियासत के विरूद्ध विद्रोह किया था। तत्कालीन राजा ने विद्रोह के रूप को देख कर ब्रिटिश शासन से मदद माँगी, जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश सेना ने इस विद्रोह का दमन कर दिया, तथा वर्ष 1802 में भूषण सिंह को फाँसी दे दी गई।

कोल विद्रोह

वर्ष 1831-32 वर्ष में यह विद्रोह छोटानागपुर, सिंहभूम तथा पलामू क्षेत्र में हुआ था। कोल विद्रोह बुद्धो भगत, सिंगराय तथा सुर्गा मुंडा के नेतृत्व में हुआ था। इस विद्रोह का तात्कालिक कारण छोटानागपुर क्षेत्र के तत्कालीन राजा के भाई हरनाथ शाही द्वारा इनकी भूमि को हस्तगत कर अपने प्रिय लोगों में सौंपना था। कालांतर में इस विद्रोह में हो जनजाति के लोग भी सम्मिलित हो गए थे।

भूमिज विद्रोह

भूमिज विद्रोह गंगा नारायण सिंह के नेतृत्व में कोल एवं हो आदि जनजातियों के समर्थन से ब्रिटिश कंपनी के विरूद्ध हुआ था। इस विद्रोह में विद्रोहियों को स्थानीय जमींदारों का भी समर्थन प्राप्त था। क्योंकि ब्रिटिश सरकार द्वारा जमींदारों पर इतना अधिक राजस्व लाद दिया था, जिसे चुकाना जमींदारों के लिए कठिन प्रतीत हो रहा था। इस विद्रोह का प्रारम्भ वर्ष 1832 में हुआ था।

खेरवार विद्रोह

1860 ई. के दशक में हुए खेरवार विद्रोह को सरदारी लड़ाई भी कहते हैं। खेरवार विद्रोह भागीरथ माँझी के नेतृत्व में संथाल परगना क्षेत्र में हुआ था। इस विद्रोह के अन्तर्गत स्थानीय लोगों ने भूमि पर अधिकार कर लिया तथा लगान सीधे ब्रिटिश शासन को देने हेतु तैयार थे किन्तु जमींदारों का विरोध कर लगान देने से इंकार कर दिया था।

ताना भगत आन्दोलन

वर्ष 1913-14 के मध्य ताना भगत आन्दोलन जतरा भगत के नेतृत्व में हुआ था। यह आन्दोलन बाहरी व्यक्तियों, जिन्हें वे दीकू के नाम से सम्बोधित करते थे, के तथा जमींदारों एवं ब्रिटिश शासन के विरूद्ध हुआ था। इस आन्दोलन की मुख्य विषेषता थी- अहिंसात्मक रूप से संवैधानिक संघर्ष के माध्यम से अपनी मांगों की पूर्ति। इन आंदोलन से जुड़े लोगों ने गाँधी जी के आह्वान पर शुरू हुए असहयोग आन्दोलन में भी महत्वपूर्ण भागीदारी निभायी थी।

संथाल विद्रोह

जनजातीय संघर्षो में संथाल विद्रोह सर्वाधिक सशक्त विद्रोह था। यह विद्रोह वर्ष 1855-56 में दामन-ए-कोह क्षेत्र में हुआ था। दामन-ए-कोह क्षेत्र पूर्वी बिहार के भागलपुर जिले से राजमहल क्षेत्र तक विस्तृत था। इस क्षेत्र में संथाल जनजातियों की संख्या सर्वाधिक थी, जो स्थानीय भूमि को कृषि योग्य बना कर झूम एवं पडू विधि से कृषि कार्य करते थे। स्थानीय वनों से ईंधन एवं पशुओं हेतु चारा भी इन्हें प्राप्त हो जाता था। अत: इन लोगों का भूमि से भावनात्मक सम्बन्ध विकसित हो चुका था।

भारत में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् ब्रिटिश शासन ने जनजातियों के आर्थिक, सामाजिक, एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया, जिसे स्थानीय लोगों ने अपने पारंपरिक अधिकारों पर कुठाराघात माना, तथा यही विद्रोह का मूल कारण बना। जनजातियों के मध्य इस प्रकार का हस्तक्षेप स्थानीय लोगों को बिल्कुल पसन्द नहीं था।

ब्रिटिश शासन द्वारा स्थानीय सरदारों को जमींदारों का दर्जा देकर एक नवीन लगान व्यवस्था का प्रतिपादन कर इस क्षेत्र में जमींदारी व्यवस्था की शुरूआत की गई। करों की दर बढ़ा कर, इसे वसूलने हेतु उत्तरी बिहार के लोगों की नियुक्ति की गई। तथा

समय पर कर नहीं अदा करने वाले लोगों की जमीनें नीलाम की जाने लगाी। बढ़ी हुई लगान की अदायगी हेतु संथाल महाजनों तथा साहूकारों पर आश्रित होने लगे। इससे महाजनों तथा साहूकारों को शोषण का नया साधन मिल गया। बाहर से आए लोगों ने न सिर्फ इस क्षेत्र पर प्रभाव स्थापित किया बल्कि स्थानीय लोगों की बहू-बेटियों की इज्जत भी लूटने लगे। इस प्रकार संथालों के शोषण का दौर आरंभ हुआ। परिणामस्वरूप संथालों ने संघर्ष का रास्ता चुना।

ब्रिटिश शासन के इस क्षेत्र में आगमन से पूर्व उनका अपना राजनीतिक ढ़ाँचा था, तथा इसके अन्तर्गत पुरहा पंचायत के माध्यम से स्थानीय क्षेत्र में शासन किया जाता था। संथाल स्थानीय लोगों में से ही सरदारों का चुनाव करते थे, जो संथालो के हितों के लिए उत्तरदायी होता था। किन्तु औपनिवशिक प्रशासन के प्रवेश से उनका अपना राजनीतिक ढ़ाँचा भी ध्वस्थ हो गया।

संथाल धार्मिक रूप से स्वतंत्र थे, तथा अपने लोगों में से ही पुरोहित का चुनाव कर अनुष्ठानिक कार्यों को सम्पन्न कराते थे। किन्तु इस क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों के आगमन से संथालों की धार्मिक भावनाएँ आहत हुई तथा असंतोष की तीव्रता में वृद्धि होने लगी।

संथाल विद्रोह का तात्कालिक कारण बना भागलपुर से वर्द्धमान के मध्य चल रहे रेल परियोजना हेतु संथालों से बेगार लिया जाना। इस बेगार का विरोध करने वालों पर ब्रिटिश शासन द्वारा जुल्म ढ़ाए गए तथा उन्हें कठोर यातनाएँ दी गई। इस संकट में और वृद्धि उस समय हुई जब स्थानीय महाजनों ने पुलिस अधिकारी की सहायता से चोरी के अपराध में संथालों को गिरफ्तार करवा दिया। परिणामस्वरूप आवेश में आकर एक संथाल ने पुलिस अधिकारी की हत्या कर दी।

संथालों ने इस घटना के विरोध में 30जून, 1855 को भगनाडीह नामक गाँव में, लगभग 6000 की संख्या में एकत्र होकर ब्रिटिश शासन एवं साहूकारों के विरूद्ध विद्रोह का निर्णय लिया। संथाल विद्रोह को नेतृत्व प्रदान किया सिद्धू-कान्हू भाइयों ने।

संथालों के जमींदारों, साहूकारों तथा पुलिस अधिकारियों पर हमले से विद्रोह का प्रारम्भ हो गया। संथालो ने ब्रिटिश शासन के उपस्थित सभी प्रतीकों को निशाना बनाया। उनका मुख्य उद्देश्य था- ब्रिटिश शासन की समाप्ति, बाहरी लोगों को भगाना तथा धर्म का राज स्थापित करना। किन्तु संथालों का प्रतिरोध अधिक दिनों तक नहीं टिक सका।

ब्रिटिश शासन ने क्षेत्र में मार्शल लॉ लागू कर कैप्टन एलेक्जेंडर तथा लेफ्टिनेंट थॉमसन आदि के नेतृत्व में अत्याचार एवं निरंकुशतापूर्ण कार्रवाई कर विद्रोह को कुचल दिया। वर्ष 1855 में सिद्धू को पकड़ कर मार डाला गया। वर्ष 1856 में कान्हू को भी गिरफ्तार कर लिया गया।

संथाल विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश सरकार द्वारा निम्नलिखित कदम उठाए गए-

- संथाल परगना टिनेन्सी अधिनियम का निर्माण।
- संथाल परगना जिले का निर्माण (वीरभूम तथा भागलपुर के कुछ क्षेत्रों को काट कर)।
- ग्रामीण अधिकारियों को पुलिस का अधिकार।

मुंडा विद्रोह

उलगुलान के नाम से प्रसिद्ध मुंडा विद्रोह जनजातीय विद्रोहों में सर्वाधिक व्यापक विद्रोह माना जाता है। वर्ष 1899 से 1900 ई. के मध्य चला यह विद्रोह तत्कालीन बिहार राज्य एवं वर्तमान झारखण्ड राज्य के छोटानागपुर क्षेत्र में स्थित रांची जिले में हुआ था। बिरसा मुंडा के नेतृत्व में चला यह विद्रोह ब्रिटिश सरकार द्वारा जनजातियों के परंपरागत अधिकारों में किये गए हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ था।

जनजातीय क्षेत्र में सामूहिक भू-स्वामित्व से सम्बंधी 'खूंटकट्टी व्यवस्था' प्रचलित थी तथा वे इसी माध्यम से ख्रषि करते थे। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने तत्कालीन खूंटकट्टी वयवस्था को समाप्त कर एक नवीन निजी भू-स्वामित्व पर आधारित व्यवस्था की शुरूआत की, जो जनजातियों के शोषण पर आधारित थी। इसके फलस्वरूप 'बैढ़-बेगारी व्यवस्था' के माध्यम से जनजातियों का शोषण किया जाने लगा।

मुंडा किसान निर्धन थे, तथा उन्हें ख्रषि के नवीन तकनीकों का भी ज्ञान नहीं था। अत: उन्हें भूमि से उपज की कम प्राप्ति होती थी। किन्तु ब्रिटिश शासन ने उन्हें बढ़ी हुई लगान दर देने हेतु विवष किया। जिसे वे देने में सक्षम नहीं थे। ऐसी स्थिति में उन्हें लगान

चुकाने हेतु साहूकारों की शरण लेनी पड़ी। साहूकारों ने अधिक ब्याज पर इन्हें कर्ज प्रदान किया, तथा कर्ज नहीं अदा करने की स्थिति में अशिक्षित किसानों की भूमि पर कब्जा कर लिया। अंग्रेज अधिकारियों द्वारा जमींदारों को समर्थन तथा पुलिस के अधिकार दिए जाने से जमींदार की स्थिति और मजबूत हो गई।

जनजातीय क्षेत्रों में ईसाई मिशनरियों के प्रवेश के पश्चात् स्थानीय लोगों ने इस आकांक्षा से ईसाई धर्म ग्रहण करना शुरू किया कि शायद ईसाई मिशनरियों के माध्यम से उन्हें जमींदारी व्यवस्था से मुक्ति मिल सके। किन्तु ब्रिटिश शासन, जमींदार वर्ग तथा ईसाई मिशनरियाँ एक दूसरे के सहयोगी थे। और ईसाई मिशनरियों को जनजातियों की स्थिति से कोई सहानुभूमि नहीं थी।

ऐसी स्थिति में बिरसा नामक एक 20 वर्षीय स्थानीय युवक ने आगे बढ़ कर नेतृत्व संभाला। बिरसा का जन्म राँची के चालकंद गाँव में वर्ष 1975 में हुआ था। बिरसा ने आरंभिक जीवन में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की तथा ईसाई मिशनरियों के प्रभाव में ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। किन्तु कालान्तर में वैष्णव धर्म स्वीकार किया तथा एक वैष्णव धर्म के अनुयायी मुनि आनन्द के साथ रहने लगा।

बिरसा मुंडा ने स्वयं को भगवान का दूत घोषित किया तथा जनजातियों को यह संदेश दिया कि उसे भगवान ने मुंडा जनजाति को बाहरी तत्वों से मुक्ति दिलाने तथा उनके उत्थान हेतु भेजा है। बिरसा मुंडा ने जनजातियों के मध्य नैतिक आचरण की शुद्धता, आत्मसुधार तथा एकेश्वरवाद का उपदेश दिया। बिरसा ने अंग्रेजों को भगाने का संकल्प लेते हुए अपने अनुयायियों को ब्रिटिश शासन को लगान नहीं देने का आदेश दिया। बिरसा ने नारा दिया था– 'कटोंग बाबा कटोंग, साहेब कटोंग-कटोंग, राडी (रानी) कटोंग - कटोंग'।

बिरसा के आह्वान का जनजातियों के मध्य सकारात्मक प्रभाव पड़ा, तथा वर्ष 1895 तक बिरसा ने 6 हजार समर्पित मुंडा लोगों का दल तैयार कर लिया। इसके पश्चात् बिरसा के नेतृत्व में मुंडाओं ने साहूकारों, मिशनरियों तथा अधिकारियों सहित सभी दीकुओं (बाहरी लोगों) पर आक्रमण कर दिया। ब्रिटिश शासन ने बिरसा को षडयन्त्र रचने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया तथा उसे दो वर्ष की सजा हुई।

वर्ष 1998 में महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के अवसर पर बिरसा को कैद से मुक्ति मिली। कैद से मुक्ति के पश्चात् पुन: बिरसा ने जनजातीय गाँवों में प्रचार कर लोगों का आह्वान किया तथा वर्ष 1899 में क्रिसमस की पूर्व संध्या पर मुंडा जाति का शासन स्थापित करने की घोषणा की तथा कलियुग को समाप्त कर सतयुग की स्थापना की बात कही। बिरसा ने जनजातियों से अपील करते हुए कहा कि दिकुओं के खून से धरती को ऐसे लाल करना है, जैसे लाल झंडा हो।

बिरसा की क्रांतिकारी गतिविधियों को देखते हुए ब्रिटिश शासन ने 3 फरवरी, 1900 में उसे गिरफ्तार कर जेल भेज दिया, जहाँ जून, 1900 में हैजे के कारण उसकी मृत्यु हो गई। बिरसा मुंडा के नेतृत्व में चला मुंडा विद्रोह यद्यपि असफल हो गया। किन्तु भारतीय स्वतंत्रता संग्राम हेतु उदाहरण के रूप में एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। मुंडा विद्रोह के पश्चात् स्थानीय स्तर पर भी निम्नलिखित सकारात्मक परिणाम सामने आए–

- वर्ष 1903 में काश्तकारी संशोधन अधिनियम के माध्यम से सरकार द्वारा पहली बार खुंटकट्टी व्यवस्था को कानूनी मान्यता प्रदान की गई।
- वर्ष 1908 में छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम बना।
- वर्ष 1905 में स्वतंत्र खूंटी अनुमण्डल का निर्माण किया गया।
- सरकार द्वारा जनजातियों के प्रति संवेदनशीलता दिखाते हुए जनजातियों के हित में कई प्रशासनिक कदम उठाए गए।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों एवं स्थानीय समस्याओं के कारण प्रारम्भ हुए जनजातीय विद्रोह ने स्वतंत्रता सेनानियों को यह संदेश दिया कि भारतीयों द्वारा संगठित होकर न सिर्फ भारतीय परिप्रेक्ष्य में हस्तक्षेप को रोका जा सकता है बल्कि ब्रिटिश शासन को अपनी नीतियों में परिवर्तन करने हेतु विवष भी किया जा सकता है। आधुनिक बिहार में हुए जनजातीय विद्रोहों ने संथाल विद्रोह एवं मुंडा विद्रोह के माध्यम से ब्रिटिश शासन के प्रति न सिर्फ सशस्त्र विद्रोह का उदाहरण प्रस्तुत किया बल्कि ताना भगत आंदोलन द्वारा संवैधानिक मार्गो के माध्यम से भी स्वतंत्रता संग्राम हेतु आदर्श प्रस्तुत किए। अत: कहा जा सकता है कि जनजातीय विद्रोहों ने भारतीय सवतंत्रता संग्राम हेतु उदाहरण प्रस्तुत कर महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

संदर्भ स्रोतः

1. चन्द्र विपिन (2000), आधुनिक भारत,एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली।
2. ग्रोवर बी.एल, यशपाल (2005), आधुनिक भारत का इतिहास, एक नवीन मूल्यांकन, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
3. सिंह मणिकांत (2009), भारतीय इतिहास- एक विश्लेषण, किताब महल, इलाहाबाद।
4. सिंह सुनील कुमार (2016), सामान्य ज्ञान, लूसेन्ट पब्लिकेशन, पटना।
5. पाण्डे एस. के. (2017), आधुनिक भारत, प्रयाग पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
6. कुमार संजय (2006), आधुनिक भारत, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
7. चंद्र बिपन, त्रिपाठी अमलेश, दे बरूण (2006), स्वतंत्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
8. सिंह सूरज (2019), सामान्य अध्ययन, ड्रीमर्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
9. चन्द्र बिपिन, मुखर्जी आदित्य, पनिकर क.न., महाजन सुचेता (2005), भारत का स्वतंत्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
10. भारद्वाज सत्येन्द्र सिंह (2014), इतिहास (मुख्य परीक्षा हल प्रश्न-पत्र), प्रतियोगिता संदर्भ पब्लिकेशन, पटना, दिल्ली।

बागवानी कृषि का विकासः बून्दी जिले का एक अध्ययन

डॉ० नंदकिशोर जेतवाल

एसोसिएट प्रोफेसर, धनराज साहू (शोध छात्र), भूगोल विभाग
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

प्रस्तावना -

कृषि मानव के प्राचीनतम उद्यमों में से एक है जो जीवन निर्वाहन के साथ-साथ आर्थिक विकास की धुरी है। कृषि मानव जीवन का मुख्य आधार है, क्योंकि कृषि से ही मानव एवं मानव संस्कृति हेतु भोजन, वस्त्र, आवास, औषधि और मनोरंजन के साधन प्राप्त होते है।वर्तमान में कृषि मात्र खाद्यान्न आपूर्ति ही नहीं करती अपितु विभिन्न उद्योगों हेतु कच्चा माल भी प्रदान करती है। भौगोलिक तत्वों के साथ मानव के समायोजन का सबसे उत्तम उद्धाहरण कृषि प्रतिरूप को देखा जा सकता है। भौगोलिक वातावरण में भिन्नता के कारण कृषि प्रतिरूप में भी बदलाव देखा जा सकता है। जिसका प्रभाव मानव के सामाजिक-आर्थिक जीवन में परिवर्तन के रूप में दृष्टिगत होता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर वर्तमान समय तक कृषि का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाये तो ग्रामीण जनसंख्या का 75% कार्यशील जनसंख्या कृषिगत कार्यो से जुड़ी हुई है। ग्रामीण क्षेत्र के अधिकतर नौजवान रोजगार की प्राप्ति के लिए कृषि पर निर्भर है।

उद्वेष्यः-

1. जिले में कृषि विकास की प्रवृत्ति को ज्ञात करना
2. जिले मशीलें बागवानी फसलों के विस्तार एवं उत्पादन का विवेचन करना
3. बागवानी कृषि के विकास की समस्याओं को उजागर करना
4. जिले में बागवानी कृषि के विस्तार एवं विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन-क्षेत्र :-

बून्दी राजस्थान के दक्षिण-पूर्व मे स्थित हाड़ौती प्रदेश का एक जिला है। जिसकी अक्षांशीय अवस्थिति 24°59'11" उत्तर अक्षांश से 25°53'11" उत्तरी अक्षांश तक तथा देशान्तरीय अवस्थिति 75°19'30" पूर्वी देशान्तर से 76°19'30" पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इस जिले के उत्तर में टोंक, उत्तर-पूर्व में सवाई माधोपुर, पश्चिम में भीलवाड़ा, तथा दक्षिण व पूर्व में कोटा जिला स्थित है। बून्दी जिले का क्षेत्रफल 5850.5 वर्ग किलोमीटर है। इसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम 111 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण तक 104.6 किलोमीटर है।

आंकड़ो का संकलन एवं विधितंत्र :-

अध्ययन क्षेत्र की बागवानी फसलों के स्वरूप व उत्पादक क्षेत्रों के अध्ययन के लिए प्राथमिक आँकड़ें व्यक्तिगत पर्यवेक्षण एवं साक्षात्कार द्वारा एकत्रित किये गये है। द्वितीयक आँकड़े जिला सांख्यिकी विभाग, बून्दी, उपनिदेशक कृषि (विस्तार) जिला परिषद्

बून्दी, सहायक निदेशक उद्यान बून्दी एवं अन्य सम्बन्धित विभागों एवं समाचार-पत्रों सें प्राप्त किये गये है। प्राप्त आँकड़ों का एकत्रीकरण करते हुये तालिकाओं ,आरेख एवं मानचित्रों द्वारा विश्लेषण किया गया।

Key Map of Bundi District

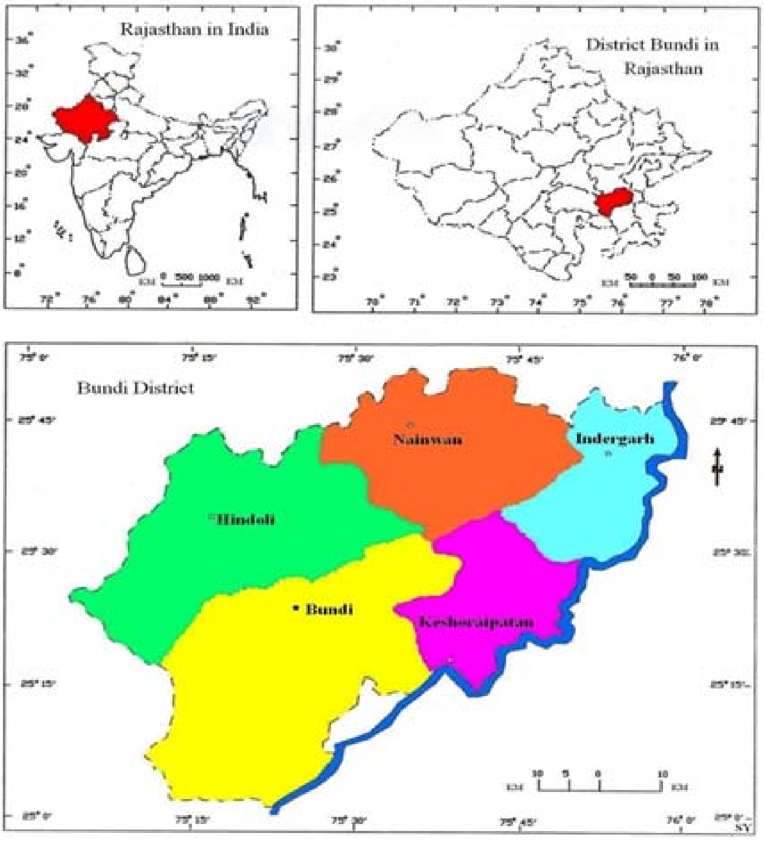

अध्ययन का महत्त्वः-

राजस्थान में पारम्परिक कृषि अब वाणिज्यिक कृषि में परिवर्तित होती जा रही है। फलस्वरूप जिले में परम्परागत फसलों के स्थान पर फलों, सब्जियों, मसालों, फूलों, एवं औशधीय फसलों के उत्पादन की ओर कृषकों का रूझान बढ़ा है। गत दो दशकों से राज्य सरकार के बागवानी विभाग द्वारा राज्य में अच्छी गुणवत्ता वाले रोपण पौधे उपलब्ध करवा कर कम जोखिम वाली फसलों एवं अधिक लाभकारी फसलों को लेने के लिए कृषकों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। जल संग्रहण ढाँचों का निर्माण, फसलोत्तर प्रबन्ध, शीतभण्डारण, बागवानी प्रसंस्करण, विपणन आदि का प्रबन्धन करने से जिले में बागवानी कृषि का विस्तार एवं विकास संभव हुआ है। प्रस्तुत अध्ययन से जिले में कृषि विकास में बागवानी कृषि के योगदान, ग्रामीण क्षेत्रों में बागवानी कृषि से रोजगार के अवसरों में वृद्धि, कृषकों के जीवन स्तर में सुधार, कर्ज मुक्ति, कृषि में यंत्रीकरण का विस्तार आदि में मदद मिलेगी।

राश्ट्रीय बागवानी मिशन के तहत बागवानी फसलों के विकास को बढ़ावा देने हेतु विभिन्न कार्यक्रम किये जा रहे है। कृषि को ओर अधिक लाभकारी एवं रोजगार परक बनाने के लिए कृषि विविधीकरण का महत्वपूर्ण स्थान है। बढ़ती जनसंख्या की आवश्कताओं की पूर्ति के लिए उद्यानिकी फसलों की खेती एक उचित उपाय है। बागवानी फसलों द्वारा पोषण सुरक्षा, स्वस्थ वातावरण एवं जलवायु क्षम्य कृषि कार्य की परिकल्पना की जा सकती है। छोटी जोत, शुष्क कृषि क्षेत्रों, पहाड़ी एवं पठारी भागों में बागवानी फसलों का उत्पादन अत्यधिक लाभकारी हो रहा है। इससे ऊसर, बंजर एवं पड़त भूमि का योजनाबद्ध विकास भी संभव

होगा तथा भविष्य में ग्रामीण रोजगार के अवसरों में वृद्धि संभव होगी। बागवानी फसलों के प्रसंस्करण से छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों का विकास एवं फसलों के उचित मूल्य व विपणन से आर्थिक विकास में मदद मिलेगी।?

जिले में बागानी फसलों का क्षेत्र :-

बून्दी जिले में बागानी फसलों के क्षेत्र में गत वर्षों की अपेक्षा दिन-प्रतिदिन बढ़ोतरी हो रही है। आज का किसान नकद केश में ज्यादा काम करना पसन्द करता है। क्योकि पहले के किसान परम्परागत फसलों का उत्पादन करके किसी आड़तिये के यहाॅ अपना माल बेंच देता था औंर माल के पैसे लगभग उसे एक महीने में प्राप्त होते थे। लेकिन आज का किसान पड़ा-लिखा व समझदार हो गया है। वह माल को बेचकर नकद प्राप्त करने में ज्यादा विश्वास करता है।

बून्दी जिले में बागाती कृषि लगभग सभी तहसीलों में की जाती है। जिसमें सभी प्रकार की बागानी फसलों का उत्पादन किया जाता है। सर्वाधिक बागानी फसलों का क्षेत्र बून्दी, केशवराय पाटन व इन्द्रगढ़ तहसील में अंकित किया गया है और सबसे कम नैनवां तहसील के अन्तर्गत की जाती है। बागानी फसलो के अन्तर्गत मसाले, फल, सब्जियों का उत्पादन किया जा रहा है।

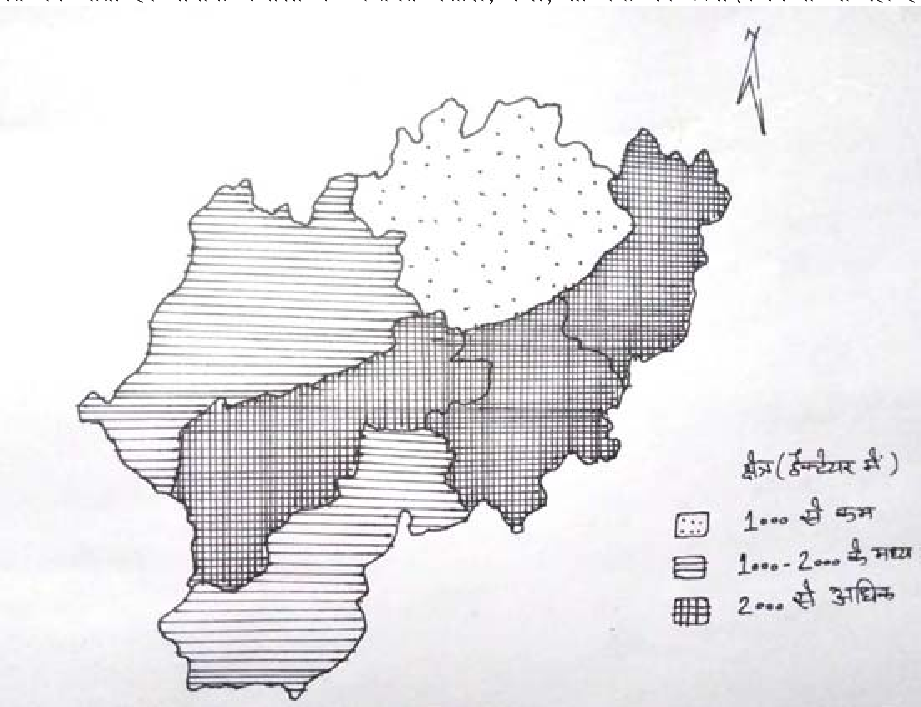

जिले में बागानी फसलों का उत्पादन :-

बून्दी जिले में बागानी फसलों के क्षेत्र में गत वर्षों की अपेक्षा दिन-प्रतिदिन बढ़ोतरी हो रही है। वर्ष 2014-15 में 438 हेक्टेयर भूमि पर जहाँ सब्जियाॅ उगाई जा रही थी। वहीं पर वर्ष 2017.18 में यह क्षेत्र बढ़कर 494 हैक्टेयर भूमि हो गया है। औंर इस वर्ष 2018.19 में इसका क्षेत्र बढ़कर 625 हैक्टेयर भूमि पर सब्जियों की खेती की गई।

जिले में सब्जियों का उत्पादन 2014.15 में 2598 मैट्रिक टन था। जो आगे बढ़कर वर्ष 2017-18 के अन्तर्गत 5270 मैट्रिक टन हो गया। जबकि वर्ष 2018.19 में उत्पादन में कमी देखी गई है। यह उत्पादन घटकर 4375 मैट्रिक टन ही रह गया। इसका मुख्य कारण तापमान में बढ़ोतरी होने के कारण फसल में रोग, कीटो का लगना है। जिससे इस वर्ष अमरूद के उत्पादन में कमी दर्ज की गई। बून्दी जिले में फलों के अन्तर्गत सर्वाधिक उत्पादन अमरूद का ही किया जाता है। पिछले 5 वर्षों का उत्पादन व क्षेत्रफल निम्नानुसार है-

आलेखः- 1

जिले में बागानी फसलों में सब्जियों का उत्पादन

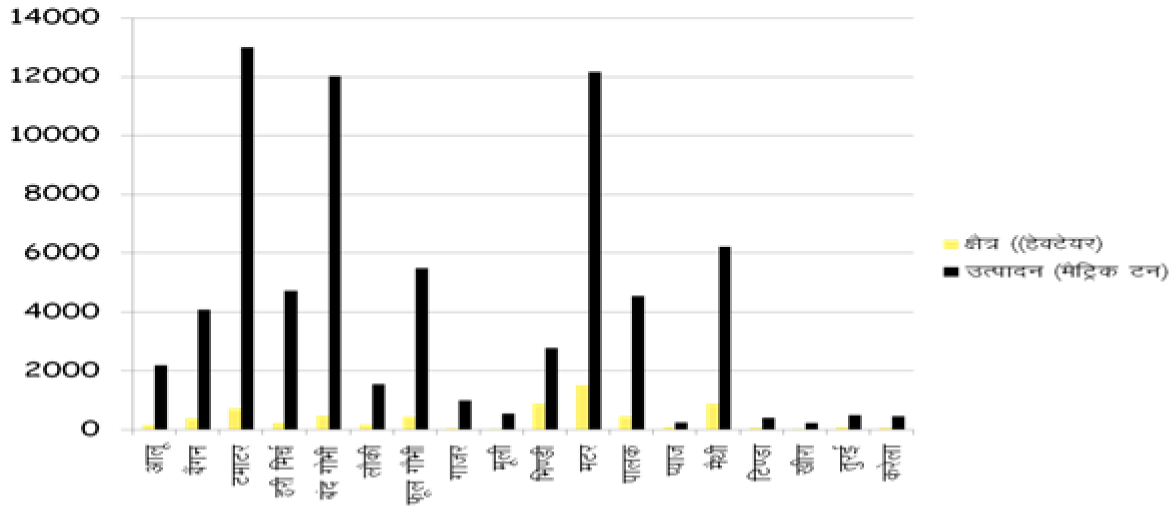

बागवानी कृषि -

बून्दी जिले में बागवानी कृषि के अन्तर्गत विभिन्न फसलों का उत्पादन हो रहा है। जिससे कृषक को आमदनी में बढ़ोतरी हो रही है। इसके लिए सरकार ने बहुत सी योजनाओं के द्वारा किसानों को अनुदान भी दिया जा रहा है। उपरोक्त सारणी से स्पश्ट होता है कि सर्वाधिक उत्पादन टमाटर, बंद गोभी, मटर का हो रहा है। मटर की मंण्डी बड़ा नया गॉव में NH-12 (वर्तमान में NH-52द्ध पर स्थित है। जहॉ से यहॉ का माल परिवहन के माध्यम से दिल्ली जैसे बड़ें महानगरों तक पहुॅचाया जाता है।

जिले में अमरूद व नीबू का उत्पादन अधिक मात्रा में किया जा रहा है इसके अलावा पपीता, अनार, संतरा, एवं चीकू का भी उत्पादन होता है। बून्दी जिले में सब्जियों का उत्पादन बड़े लेवल पर हो रहा है। बून्दी की सब्जियों को बाहरी बाजार में बेचने के लिए किसानों को प्रोत्साहन किया जा रहा है। जिससे किसानों को अधिक मूल्य प्राप्त हो रहा है। इसी कें लिए सरकार ने बून्दी जिले में सब्जियों की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए Centre of Excellence for Vegetable खोला गया है।

निष्कर्ष व सुझावः-

- बागवानी कृषि में व्यापारिक फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन हेतु विपणन की व्यवस्था करना ।
- किसानों को अधिक फायदा देनी वाली फसलों की पौध उपलब्ध कराना।
- बागवानी फसलों को रोगों से बचाने हेतु प्रशिक्षण, अनुदान पर दवाईयॉ उपलब्ध्रा करना।
- फलों से जैम व जैली बनाने का प्रशिक्षण देकर उद्योगों की स्थापना कर रोजगार सेवा उपलब्ध करना।
- सरकार को गॉवों में केम्प लगाकर बागवानी फसलों के उत्पादन का प्रशिक्षण देना।
- रोजगार मेलों के माध्यम से बागवानी फसलों के उत्पाद का विपणन करना।

सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार मेलों का आयोजन करना चाहिए। जिससें उनके कुटीर उद्योगों को बढ़ावा मिल सके। उनको उचित प्रशिक्षण देकर लघु-कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दे सकती है। शैक्षणिक भ्रमण के माध्यम से उनको उन स्थानों का भ्रमण

करवाना जहॉ पर बागवानी फसलों का अच्छी गुणवतापूर्ण तरीके से उत्पादन हो रहा है। तथा किसान भाई भ्रमण पर सीखे हुये ज्ञान के माध्यम से अपनी खेती में सुधार कर पाऐगें।

संदर्भ सूची :-

1. बून्दी जिला 'एक दृश्टि में' वर्ष - 2018, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग, बून्दी (राज0)
2. जिला सांख्यिकीय रूपरेखा, 2018
3. जिला सहायक निदेशक उद्यान, बून्दी
4. Dr. Yadav, Sandeep : Atlas of Bundi, Department of Geography, Govt. P.G.College, Bundi
5. नन्दवाना, गरीमा : कृषि एवं सामाजिक-आर्थिक रूपान्तरण (बून्दी जिले का एक अध्ययन) कोटा वि. वि. कोटा की पी. एच.डी थिसिस, 2008

माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० रतन कुमार भारद्वाज

आचार्य, संजय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लाल कोठी योजना, जयपुर

प्रभुदयाल

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

विश्व में निवास करने वाले सभी प्राणियों में मनुष्य को ही सर्वश्रेष्ठ होने का दर्जा प्राप्त है। इसका मुख्य श्रेय शिक्षा को ही जाता है। जन्म के साथ सभी प्राणियों में पाश्विक प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। शिक्षा ही मनुश्य को इन पाश्विक प्रवृत्तियों से निकालकर उच्च शिक्षित, नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों से ओत-प्रोत करती है। भारतीय परिवेश में किये गये अनेक अध्ययन मुस्लिम विद्यार्थियों की शैक्षिक समानता पर प्रकाश डालते हैं और इस तथ्य को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करते हैं कि इस संबंध में किये गये प्रयास व संवैधानिक प्रावधान व्यावहारिक रूप में प्रभावषाली हुए या नहीं। सैद्धान्तिक रूप में भी समुदाय के छात्र-छात्राओं को वांछित अवसर प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। विभिन्न अवसरों की उपलब्धता ने शैक्षिक सुविधाओं में वृद्धि के साथ-साथ उनके पिछड़ेपन में कमी की है। साथ ही शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता ने विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि के मार्ग को भी प्रशस्त किया है। शैक्षिक उपलब्धि बालक द्वारा अधिगमित एवं प्रयोग में लाये गये ज्ञान को मापने का सर्वोत्तम साधन है। इस शोध अध्ययन में माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि स्तर में समानता पायी गयी।

मुख्य शब्द : शैक्षिक उपलब्धि, मुस्लिम समुदाय, माध्यमिक स्तर ।

प्रस्तावना

जिस आधार स्तम्भ के सहारे मानव अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त करता है, वह शिक्षा ही होती है। अन्य रूपों में शिक्षा का एक कार्य मनुष्य को इस भौतिकतावादी संसार में स्वयं का अस्तित्त्व बनाये रखने का सामर्थ्य प्रदान करना भी है। अतः माध्यमिक शिक्षा के साथ शिक्षा के विभिन्न स्तरों के बदलते हुए स्वरूप और उपलब्धि को भली प्रकार स्वीकारा जाने लगा है। मनुष्य द्वारा जो उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं वो पूरे होंगे या नहीं, यह उसके द्वारा किये गये प्रयासों पर निर्भर करता है। मनुष्य जिस हद तक मनवांछित उद्देश्यों को पूरा करने में सफल हो जाता है, उसे उपलब्धि कहा जाता है।

शिक्षण प्रक्रिया में रत विद्वजन विभिन्न स्तर के विद्यार्थियों के लिए शिक्षण उद्देश्य निर्धारित करते हैं तथा इनकी प्राप्ति के लिए शिक्षण अधिगम क्रियाओं का आयोजन करते हैं। विद्यार्थी द्वारा जिस सीमा तक इन उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया जाता है, वही उसकी

शैक्षिक उपलब्धि कहलाती है। शैक्षिक उपलब्धि, बालक द्वारा अधिगमित एवं प्रयोग में लाये गये ज्ञान को मापने का सर्वोत्तम साधन है। शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर ही विभेदन द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि बालक किस श्रेणी में आता है; अर्थात् वह प्रतिभाशाली है, सामान्य है या पिछड़ा है।

सुपर के अनुसार :-

''शैक्षिक उपलब्धि से तात्पर्य है कि विद्यार्थी ने शिक्षण के उपरांत क्या और कितना सीखा, तथा वह कोई कार्य कितनी भली भाँति कर लेता है।''

माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों में एक ही कक्षा में समान परिस्थितियों में कुछ विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सामान्य, सामान्य से अधिक या सामान्य से कम होती है। माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन उनकी विशेषताओं, शिक्षण प्रक्रियाओं, शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्थाओं को पहचानने के लिए और उनमें सुधार हेतु क्षेत्रों की पहचान करने में लाभदायी सिद्ध हो सकता है। इसी परिस्थितीय महत्त्व को ध्यान में रखते हुए इस समस्या का चयन अध्ययन हेतु किया गया।

शोध का उद्देश्य :-

माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

संबंधित साहित्य अध्ययन :-

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु निर्मित परिकल्पनाओं का दत्त संकलन के आधार पर सांख्यिकीय विश्लेषण से प्राप्त परिणामों के अनुसार मुस्लिम समुदाय के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन किया गया। इसके परिणाम शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर पूर्व में हुए अलग-अलग शोधकार्यों के अनुक्रम में हैं, जहाँ झा, दिलीप कुमार (2019) ने ''माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन के संबंध में कक्षा पर्यावरण प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन'' विषय पर शोध कार्य किया जिसके परिणाम दर्शाते हैं कि छात्रों के कक्षा पर्यावरण प्रत्यक्षीकरण एवं शैक्षिक उपलब्धि तथा कक्षा पर्यावरण प्रत्यक्षीकरण एवं समायोजन में सार्थक सहसम्बन्ध पाया गया। भदौरिया एवं शर्मा (2018) नें''उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन'' नामक विषय पर शोध कार्य किया और पाया कि उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध मौजूद है। रानी, के.वी.(2017) ने ''रीजनिंग एबिलिटी एण्ड अकादमिक अचिवमेन्ट अमोंग सैकण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स इन त्रिवेन्द्रम'' विषय पर शोध किया और पाया कि माध्यमिक स्कूल के छात्रों में तर्क क्षमता और शैक्षिक उपलब्धि के बीच महत्त्वपूर्ण उच्च सकारात्मक सहसंबंध मौजूद है। राय, गीता (2014) द्वारा किये गये शोध अध्ययन के परिणाम उत्तराखण्ड राज्य के माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के आकांक्षां स्तर और अकादमिक प्रदर्शन पर उन विद्यार्थियों के अभिभावकों के प्रोत्साहन प्रभाव का धनात्मक संबंध प्रदर्शित करते हैं। पाण्डेय एवं पाण्डेय (2009) द्वारा किये गये शोध अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि विद्यार्थियों के समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच परिमित धनात्मक सहसंबंध उपस्थित हैं तथा विद्यार्थियों में सामाजिक एवं आर्थिक भिन्नता के बावजूद जवाहर नवोदय विद्यालय, ज्ञानपुर, सभी विद्यार्थियों को एक समान शैक्षिक वातावरण उपलब्ध करवाता है जो विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को समान रूप से प्रभावित करता है। प्रस्तुत शोधकार्य में माध्यमिक स्तर पर मुस्लिम समुदाय के छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक उपलब्धि स्तर में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया जो कि पूर्व में हुए शोध के परिणामों से पुष्ट होता है; जहाँ दास, अरिआनि एवं मिरदाद (2015) द्वारा किये गये शोध अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए स्कूल डिज़ाइन एक महत्त्वपूर्ण कारक है तथा शारीरिक अधिगम क्षेत्र एवं निजी स्कूल डिज़ाइन वाली विषेषताएँ विद्यार्थियों के प्रदर्शन पर मौलिक प्रभाव डालती हैं। कमात्ची (2014), पन्य (2014), अब्राहम (2014), दुग्गल (2014), लॉरेन्स (2014), यादव (2014), पिल्लै (2014), यादव (2013), सक्सेना एवं लक्ष्मी (2013), बत्रा (2011), शर्मा (2011), सैनी (2010), शैल (2003), इब्राहिम एवं मेहमेत (2014), चुआन एवं अन्य (2013), अकपोन्ग एवं जॉर्ज (2013), सावस्की एवं तोमूल (2013), अदनान एवं अन्य (2012), ट्रान एवं लेविस (2012), आफरी एवं स्वेखिन (2012) नें अपने अध्ययन शैक्षिक उपलब्धि तथा अन्य भिन्न चरों के साथ किये; किन्तु माध्यमिक

स्तर पर मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि आधारित कोई अध्ययन भारत या विदेशों में सम्पन्न अध्ययनों में प्राप्त नहीं हुआ। अतः शोधकर्त्ता द्वारा यह अध्ययन, माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करने के उद्देश्य से किया गया।

शोध परिकल्पना :-

- माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि :-

प्रस्तुत शोधकार्य में सर्वेक्षण विधि प्रयुक्त की गई।

शोध उपकरण :-

शैक्षिक उपलब्धि मापनी (शैक्षिक उपलब्धि मापन हेतु छात्राओं की कक्षा 10 वीं में प्राप्त अंको को आधार बनाया गया) ।

जनसंख्या :-

राजस्थान राज्य में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान से सम्बद्ध माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत मुस्लिम समुदाय के समस्त विद्यार्थी।

शोध न्यादर्श :-

शोधकर्त्ता द्वारा इस शोधकार्य हेतु न्यादर्श के रूप में शेखावाटी क्षेत्र के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान से सम्बद्ध माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत कुल 400 मुस्लिम विद्यार्थियों को; 200 ग्रामीण, तथा 200 शहरी को, चुना गया जो कि विभिन्न विद्यालयों का प्रतिनिधित्त्व करते हैं।

शोध में प्रयुक्त चर :-

स्वतंत्र चर :-मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थी ।

आश्रित चर :-शैक्षिक उपलब्धि ।

शोध में प्रयुक्त न्यादर्शन विधि :-

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता द्वारा सम्भाव्य न्यादर्शन की साधारण यादृच्छिक विधि को प्रयुक्त किया गया है।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी :-

प्रस्तुत शोध में निम्न सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है -

- मध्यमान
- मानक विचलन
- मानक त्रुटि
- स्वतंत्रता अंश
- आलोचनात्मक अनुपात

परिकल्पना-1

माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी संख्या - 1

(मध्यमान, मानक विचलन, मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि, मध्यमानों का अन्तर, स्वतंत्रता के अंश तथा आलोचनात्मक अनुपात का प्रदर्शन)

मुस्लिम समुदाय	संख्या *N*	मध्यमान *M*	मानक विचलन *SD*	अन्तर की मानक त्रुटि SE_D	मध्यमानों का अन्तर *D*	स्वतंत्रता के अंश *df*	आलोचनात्मक अनुपात *C.R.*
ग्रामीण	200	52.54	11.77	1.28	1.66	398	1.29
शहरी	200	54.20	13.86				

व्याख्या एवं विश्लेषण -

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांकों के मध्यमान क्रमशः 52.54 व 54.20 हैं तथा दोनों समूहों के मानक विचलन क्रमशः 11.77 व 13.86 हैं। दोनों समूहों के मध्यमानों के अन्तर की मानक त्रुटि 1.28 है तथा मध्यमानों का अन्तर 1.66 है। दोनों समूहों के प्राप्तांकों का आलोचनात्मक अनुपात 1.29 है जो कि स्वतंत्रता के अंश 398 हेतु 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान 1.96 से कम है, अतः दोनों समूहों में मध्यमान का सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अतः परिकल्पना - 1 को निरस्त नहीं किया जा सकता है।

लेखाचित्र संख्या - 1

माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता का लेखाचित्रीय प्रदर्शन

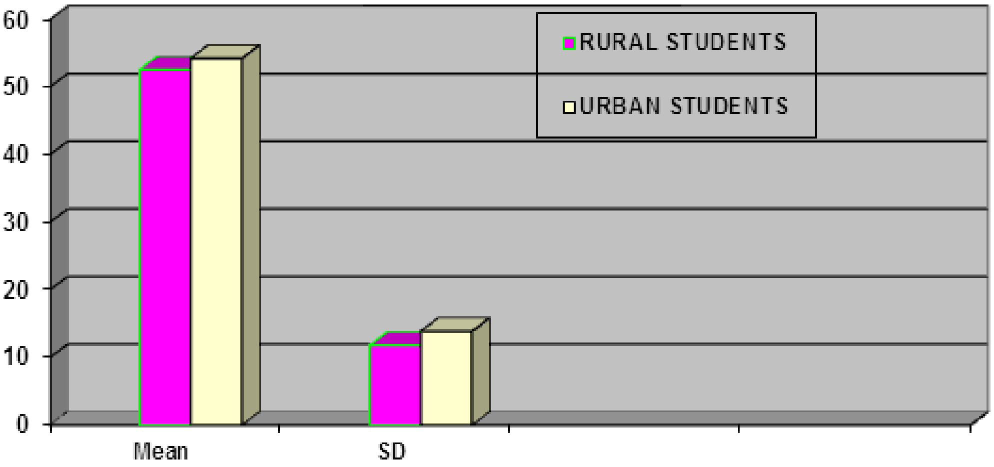

परिणाम :-

दत्त विश्लेषणानुसार माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अर्थात् माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के शहरी एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि स्तर में समानता पायी गयी। हालांकि मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान (54.20) मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के मध्यमान (52.54) से अधिक है, लेकिन दोनों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। जो भी अन्तर है, वह संयोगवष ही है। उद्र अर्थापन इंगित करता है कि माध्यमिक स्तर पर मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण

एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थी शैक्षिक उपलब्धि स्तर की द्रष्टि से समान हैं, उनकी शैक्षिक उपलब्धि में कोई विषेष अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष -

- माध्यमिक स्तर के मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमानों में सार्थक अन्तर नहीं है।

सुझाव -

मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के अभिभावकों को इन विद्यार्थियों के शैक्षिक परिवेश के प्रति अधिक सजग किया जाना चाहिए।

- मुस्लिम समुदाय के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की बौद्धिक क्षमताओं के साथ-साथ इनके ग्रामीण एवं शहरी वातावरण पर भी विषेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- *गुप्ता एवं गुप्ता (2007), आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।*
- *गैरेट, एच.ई. (1981), मनोविज्ञान एवं शिक्षा में सांख्यिकी, दशम् संस्करण, बी.एफ. एण्ड सन्स, बॉम्बे।*
- *झा, दिलीप कुमार (2019),माध्यमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं समायोजन के संबंध में कक्षा पर्यावरण प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन, पीरिओडिक रिसर्च, 7(3), 97-103।*
- *ठाकुर, हरिनारायण (2009), भारत में पिछड़ा वर्ग आन्दोलन और परिवर्तन का नया समाजयशास्त्र, कल्पाज़ पब्लिकेशन, नई दिल्ली।*
- *भदौरिया एवं शर्मा (2018), उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन, शोधयतन, 5(9), 136-144।*
- *शर्मा, सुरेन्द्र (2007), रिसर्च मैथडोलॉजी-शैक्षिक परिप्रेक्ष्य, नेहा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।*
- *हटन, जे.एच. (2002), भारत में जाति प्रथा (अनुवादित), श्री जैनेन्द्र प्रेस, दिल्ली।*
- *शर्मा, राजलक्ष्मी (2011), स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की आकांक्षा, आत्मविश्वास, सेवा अवधारणा एवं शैक्षणिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन, डॉक्टरल थीसिस, जैन विश्व भारती यूनिवर्सिटी, लाडनूँ।*
- *सैनी, मोनिका (2010),अ स्टडी ऑव अकादमिक अचिवमेन्ट ऑव सिड्यूल्ड कास्ट सैकण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स इन रिलेशन टू स्टडी हैबिट्स, होम एनवायरमेन्ट एण्ड स्कूल एनवायरमेन्ट, डॉक्टरल थीसिस, महर्षि दयानन्द यूनिवर्सिटी, रोहतक।*
- *Abraham, Y. (2014), Emotional Intelligence, Self-esteem and Academic Achievement of Professional Course Students, EDUTRACKS, Vol. 14(2), pp 25-33.*
- *Lawrence, A.S.Arul. (2014), Relationship Between Study Habits and Academic Achievement of Higher Secondary School Students, Education, Vol. 4(6), pp 143-145.*
- *Pandey, Shriniwas & Pandey, Rajesh kumar. (2009), Jawahar Navoday Vidyalay me Kishorawastha ke samayojan evam Shaikshik Uplabdhi ka Adhyyan, Indian Journal of Teacher Education:Anwesika, Vol. 6(2), pp 133-141.*
- *Pany, Sesadeba. (2014), Academic Achievement of Secondary School Students having differential levels of Problem Solving Ability, MERI Journal of Education, Vol. 9(1), pp 77-82.*
- *Pillai, Anil Kumar MB. (2014), A Study of Learner Characteristics, School Environment, Achievement and Placement of Scheduled Caste Students of Madhya Pradesh,Indian Educational Review, Vol. 52(1), pp 59-80.*

References: Websites

- *www.eric.ed.gov*
- *www.scholar.google.com*
- *www.shodhganga.inflibnet.ac.in*

सारण जिले में जनसंख्या वृद्धि एवं जनसंख्या वितरण का प्रतिरूप : एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ० पिंकी कुमारी

पोस्ट - डॉक्टोरल रिसर्च स्कॉलर
विश्वविद्यालय भूगोल विभाग
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश :

सारण जिला 2664.76 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में $25^{0}36'$ उत्तरी अक्षांश से $26^{0}13'$ उत्तरी अक्षांश एवं $84^{0}34'$ पूर्वी देशान्तर के बीच अवस्थित हैं इसकी दक्षिणी सीमा मुख्य रूप से गंगा नदी द्वारा निर्धारित है तथा उत्तरी सीमा गंडक नदी के सहारे समाप्त होती है। एक समद्विबाहु त्रिभुज (Isoscale Triangle) के आकार में पश्चिम से इसका आधार सिवान एवं गोपालगंज जिलों की कृत्रिम सीमा से बना है जबकि पूर्व में शीर्श (Apex) गंगा एवं गडक नदियों के संगम बिन्दू से निर्मित है। 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या 3943098 व्यक्तियों की है।

वर्त्तमान शोध कार्य सारण जिला में जनसंख्या की गत्यात्मकता तथा जीवन की गुणवता के बीच के अन्तर्सम्बन्ध की खोज की ओर लक्षित है। यहाँ जनसंख्या का इतिहास अति प्राचीन है। प्राक्-वैदिक काल से ही (10,000 वर्ष पूर्व) यह एक सुविकसित संस्कृति एवं सभ्यता का क्षेत्र रहा है। जनसंख्या विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से गुजरने के क्रम में इसने अनेक परिवर्तन देखे हैं। विषेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) के उपरान्त कृषि के क्षेत्र में किये जानेवाले विकास तथा चिकित्सा विज्ञान की चमत्कारपूर्ण उपलब्धियों के कारण यहाँ कई सारे सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन हुए हैं। भूमि-मानव अनुपात का बढ़ता असन्तुलन एवं जैवमंडल का प्रदुषण उल्लेखनीय है यद्यपि कि इस अवधि में जीवन की गुणवता में ज्वलन्त रूप से प्रगति भी हुअ है। कृषि उत्पादन में वृद्धि एक निश्चित सीमा तक ही संभव है, जबकि जनसंख्या की वृद्धि अनियंत्रित रूप में अबाधगति से होती है। ऐसी दशा में जीवन की उपलब्ध गुणवता को बनाये रखना एक संघर्षपूर्ण कार्य है। प्रस्तुत अध्ययन जीवन की गुणवता पर जनसंख्या की जनवरत रूप से होनेवाली वृद्धि द्वारा पड़नेवाले प्रभाव पर केन्द्रित है।

इस अध्ययन में समाहित विश्लेषण के आधार पर तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या एवं अपेक्षाकृत मन्दगति सेबढ़ते हुए संसाधन के बीच के समीकरण को समझा जा सकता है। जनसंख्या विकास की वर्त्तमान गति (लगभग 2.5 प्रतिशत वार्षिक) के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि सारण जिला की आबादी वर्त्तमान शताब्दी के मध्य तक दुगुनी से भी अधिक होगी। ऐसी कोई भी स्थिति इस क्षेत्र विषेष की आर्थिक-समृद्धि तथा सामाजिक स्थिरता के लिएघातक होगी क्योंकि अध्ययन क्षेत्र संसाधन की दृष्टि से काफी पहले ही सम्पृक्त (ैजनतंजमक) हो चुका है (1915-20)। चिकित्सा विज्ञान में अप्रत्याशित प्रगति, विदेशों से खाद्यान्नों की आपूर्ति तथादेश के भीतर कृषि उत्पादन में हरित-क्रांति के दौरान हुये विकास से प्रतिफलित ह्रासोन्मुख मृत्यु दर के कारण जनसंख्या विकास को ''परिवार कल्याण'' प्रभावित करने में अभी तक असमर्थ रहा है। विगत् दशकों में बढ़ती हुई जनसंख्या ने खाद्यान्न की कमी को पूरा करने के उद्देश्य से हरिक्रांति का लाभ लेते हुये कृषि *में क्षितिजवत् तथा लम्बवत् प्रसार भी किया है। इसका प्रभाव यहाँ जीवन की बढ़ती गुणवता के रूप में भी देखा जा सकता है, हॉलाकि इस दृष्टि से यहाँ ज्वलन्त स्थानिक (ैचंजपंस) परिवर्त्तनीयतायें (टंतपंजपवदे) भी पायी जाती है। इसका विषेष लाभ संयमित एवं अनुशासित जनसंख्या समुहों को ही प्राप्त हुआ है।*

Key Words :

सारण, जनसंख्या, वृद्धि, वितरण, सामाजिक, आर्थिक, जनांकिकीय

विधितंत्र :

वर्तमान अध्ययन में सांख्यिकीय एवं वर्णनात्मक दोनों प्रकार की विधियाँ व्यवहृत हो सकती है। जनसंख्या वृद्धि, परिस्थितिकीय पृष्ठभूमि इत्यादि के विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों के माध्यम से संभव है। भूमि उपयोग एवं कृषीय उत्पादन तथा जीवन की गुणवत्ता का विश्लेषण वर्णनात्मक विधियों से किया जाना है।

शोध कार्य को अधिक से अधिक वस्तुनिष्ट बनाने की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र को जनसंख्या की विषेषताओं के आधार पर छोटे-छोटे सम्भागो (ones) में विभाजित किया जाना है तथा प्रत्येक संभाग से प्रतिदर्श चुने जाने हैं। जीवन की गुणवत्ता का विशिष्ट अध्ययन एवं सर्वेक्षण से संभव है।

साहित्य का पुनरावलोकन :

अध्ययन क्षेत्र पर प्रकाशित एवं अप्रकाशित रचनाओं में (क) प्रोब्लेम्स ऑफ रूरल डेवलपमेंट इन सारण प्लेन (पराशर, एस0, 2003), (ख) क्लैन सेटलमेंट इन सारण प्लेन (सिंह, आर0 पी0 बी0, 1977), (ग) एन एग्रीकल्चरल जियोग्रोफी ऑफ सारण प्लेन (सिंह, एस0 बी0, 1986), (घ) प्रोबलेम्स एण्ड पैटर्न्स ऑफ लैण्ड यूटिलाइजेशन इन गंगा-गंडक दोआब (वर्मा, बी0 के0, 1989), (´) बिहार डिस्ट्रीक्ट गजेटियर : सारण (चौधरी, पी0 सी0 राय, 1960) एवं बिहार एण्ड उड़ीसा डिस्ट्रीक्ट गजेटियर : सारण (ओ0 मैली, 1930) के नाम उल्लेखनीय है। इनमें अंतिम दो को छोड़ शेष शोध-ग्रन्थ है जिनमें अध्ययन का विषय या तो अधिवास या भूमि उपयोग, कृषि इत्यादि है। पूर्ववर्ती दो जिला की भौगोलिकियाँ है। जनसंख्या की गत्यात्मकता तथा जीवन की गुणवत्ता जो यहाँ शोध का केन्द्र बिन्दू है, उस पर कोई शोध कार्य नहीं हुआ है।

जनसंख्या-वृद्धि :

परिचय :

किसी भी देश व प्रदेश व प्रखण्ड की जनसंख्या सामाजिक समुदाय का प्राकृतिक आधार होती है। जिसमें वृद्धि, ह्रास या स्थिरता की दशाएँ विद्यमान होती है। विकसित या विकासशील किसी भी दशा में इसकी गत्यात्मकता प्राय: वृद्धि के रूप में प्रस्फटित होती है। दूसरी विशेषता इसकी परिवर्तनीयता है जो जनसंख्या की मात्रात्मक एवं गुणात्मक विशेषकों से प्रतिनिधित्व पाता है। मात्रात्मक परिवर्तन से तात्पर्य संख्यात्मक परिवर्तन है जो समय के किसी भी अन्तराल (वार्शिक, अर्द्धवार्शिक या दशकीय) पर प्राप्त किया जा सकता है। वेलेन्टी, डी0 आई0 (1979) के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि संसार में सर्वत्र, सामाजिक-आर्थिक विकास, सांस्कृति रूपान्तरण, ऐतिहासिक प्रघटन और राजनैतिक दर्शन का प्रतिफल होती है। वृद्धि जनांकिकीय अध्ययन का फलत: एक महत्वपूर्ण बिन्दू बन जाता है। मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि इतिहास के गलियारों में मन्द या तीव्र हो सकती है, फिर भी इसकी अभिव्यक्ति यथार्थ में उत्पादन की विध्जिनित परिवर्तनों द्वारा होती है।

संसार में सर्वत्र जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित करने वाले नियम के परिप्रेक्ष्य में पूर्ववर्ती अनुच्छेद में प्रस्तुत संकल्पना महत्वपूर्ण बन जाती है। वस्तुत: ऐतिहासिक क्रम में परिवर्तनीय सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजैनतिक दशाओं का प्रभाव प्राणीमात्र पर निश्चित रूप से पड़ता है। अत: जनांकिकीय एवं गैर-जनांकिकीय प्रघटनों के अन्तर्सम्बन्ध की जानकारी जनसंख्या वृद्धि की विवेचना के लिये आवश्यक है। अन्य कारकों, जैसे कि सांस्कृतिक एवं भौगोलिक का नियंत्रण भी जनसंख्या वृद्धि दर पर सर्वदा से बना रहता है। सी0 पी0 फोर्ड (1995) के अनुसार जनसंख्या के प्रारूप मित्रावत या शत्रुवत दोनों प्रकार के भौतिक कारकों से प्रभावित होते रहते है। महान दार्शनिक मार्क्स (1879) ने जनसंख्या की वृद्धि में होने वाले परिवर्तन को प्रभावषाली सामाजिक सम्बन्धों से नियंत्रित होता हुआ पाया है यद्यपि कि जनसंख्या की वृद्धि एक जैविक प्रक्रिया है, जिस पर सामाजिक प्रणाली के स्वरूप, आर्थिक विकास के स्तर एवं धार्मिक विश्वास तथा आस्था का प्रभाव आवश्यम्भावी है।

जिला– सारण

अक्षांशीय विस्तार – 25°36′15″N से 26°13′30″N
देशान्तरीय विस्तार – 84°24′15″E से 85°15′15″E

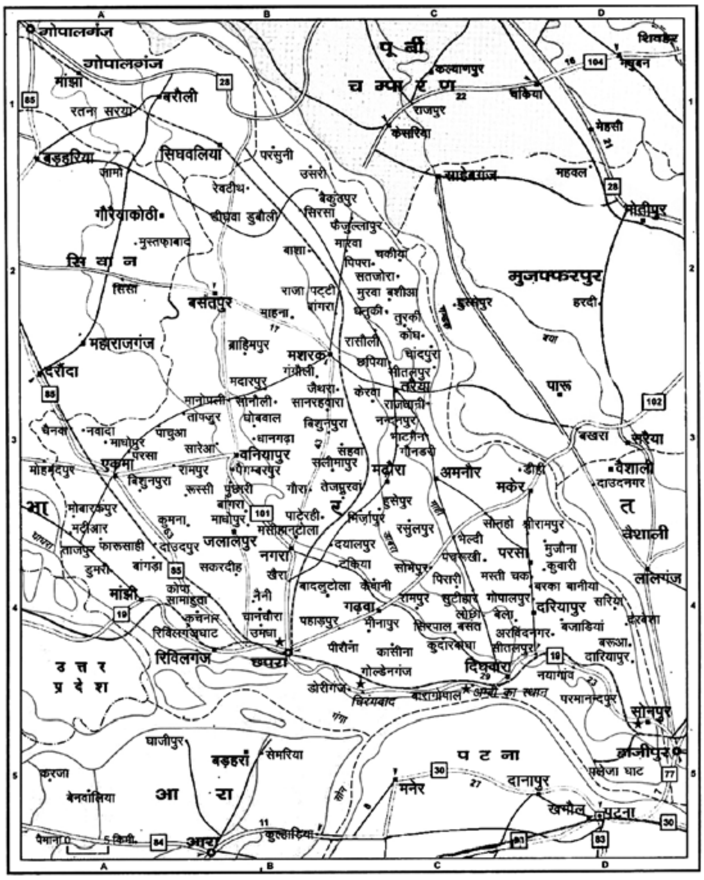

प्राक् स्वतंत्राता अवधि :

मध्य गांगेय मैदान की समान ही प्राक् स्वतंत्रता अवधि में सारण जिला में जनसंख्या की वृद्धि हुयी है। 1921 एवं 2001 के बीच यहां की जनसंख्या में 276 प्रतिशत (2373123) की संचयी वृद्धि परिकलित की गयी है। अर्थात विगत 80 वर्षो में ही जनसंख्या का आकार तीन गुणा के लगभग बढ़ा है, हलांकि दशकीय वृद्धि का दर समरूपी नहीं रहा है। 1991 से 1911 का दशक तो जनसंख्या के ह्रास का था जब दुर्भिक तथा महामारी ने अनेकानेक व्यक्तियों को कालकवलित कर लिया। जिला की एक बहुत बड़ी जनसंख्या इस दशक में उच्च मृत्यु–दर द्वारा विनाश को प्राप्त हुयी। इसके उपरान्त 1911'21 के दशक में 2.2 प्रतिशत की दशकीय वृद्धि आलेखित हुयी। पी0 सी0 राय चौधरी (1960) के अनुसार इस दशक में जनसंख्या वृद्धि का कोई प्रोत्साहक कारक विद्यमान नहीं था। बल्कि केवल महामारियों की संघातिकता में आयी कमी के कारण मृत्यु दर ह्रासोन्मुख हआ जिसकी परिणति 2. 2 प्रतिशत का दशकीय वृद्धि के रूप में परिकलित की गयी। उल्लेखनीय है कि इस दशक में पुरुशों की संख्या 50,523 की वृद्धि हुयी, स्त्रियों के लिये वृद्धि 17,560 की प्रतिवेदित थी। वृद्धि के इस प्रारूप की संभावना का आधार पुरुश प्रधान प्रवास में आयी कमी को माना गया है। उन दिनों महामारियों की संघातिकता का प्रभाव स्त्रियों पर पुरुशों की अपेक्षा अधिक हुआ करता था।

तालिका - 1: प्राक्स्वतंत्रता अवधि में जनसंख्या की वृद्धि (1901-1951)

क्र0 सं0	*जनगणना वर्ष*	*समग्र जनसंख्या*	*पुरुष*	*स्त्री*
1	1901	−2.30	−	−
2	1911	−4.90	−2.83	‘6.74
3	1921	+2.21	+6.39	−1.43
4	1931	+6.30	+7.74	+4.87
5	1941	+15.00	+12.61	+17.35
6	1951	+10.30	+9.24	+11.26

1921-31 के दशक में वृद्धि का दर पूर्व के दशक से उच्चतर (6.3 प्रतिशत) रहा। इस दशक में भीमहामारियों का प्रघटन सीमित था। हैजा एवं प्लेग जैसी महामारियाँ उतनी संघातिक नहीं थी जितनी कि वे पूर्व के दशकों में अनुभव की गयी। 1931-41 का दशक जनसंख्या वृद्धि की दृश्टि से जिला में उत्साहबर्द्धक था। दशकीय वृद्धि इस दशक में 15 प्रतिशत से भी अधिक परिकलित की गयी। इसका मुख्य कारण महामारियों की संघातिकता में आयी कमी के साथ-साथ चिकित्सा तथा स्वास्थ्य की बढ़ती सुविधाओं का बढ़ता प्रभाव भी था। 1941-51 के दशक में एक बार फिर सारण जिला को जनसंख्या की मन्द वृद्धि के दौड़ से गुजरता पड़ा क्योंकि इसी दशक में द्वितीय विश्व युद्ध तथा भारत-पाकिस्तान विभाजन का दु:खद परिणाम सम्पूर्ण राश्ट्र के साथ इस जिला को भी झेलना पड़ा था। तत्कालीन ब्रिटीश शासन तब तक जनहित के लिये पहले की तुलना में अधिक जागरूकता भी हो चुका था क्योंकि पहले की तुलना में अधिक जागरूक भी हो चुका था क्योंकि राश्ट्रप्रेमियों का उनके प्रति विरोध भी काफी मुखर हो चुका था।

1941-51 एवं 1951-61 के दो दशकों को छोड़ वृद्धि का दशकीय दर पुरुशों की तुलना में स्त्रियों का सदा से कम रहा। बल्कि शताब्दी के प्रारम्भ मं जब समग्र जनसंख्या में वृद्धि की जगह संख्यात्मक कमी आयी, स्त्रियों में (7.74 प्रतिशत) आयी कमी पुरुशों (2.83 प्रतिशत) की तुलना में काफी अधिक थी। 1911-21 के मध्य भी जहां पुरुशों ने वृद्धि (6.39 प्रतिशत) की प्रवृति का प्रदर्शन किया, स्त्रियों के संदर्भ में यह नकारात्मक (-1.42 प्रतिशत) दशक सिद्ध हुआ। उल्लेखनीय है कि जिला में जनसंख्या वृद्धि का लैंगिक अन्तरीय मुख्यत: जिला से होनेवाले पुरुश प्रधान प्रवास का अनुगामी है। सामान्य रूप से मर्त्यता दर यहां स्त्रियों में पुरुषों की तुलना में उच्चतर रहा है। अत: सामान्य दशा में स्त्रियों की वृद्धि का दर पुरुशों से निम्न होना स्वाभाविक है। किन्तु प्रवासी पुरुशों के परिणाम में वृद्धि होने पर उक्त लैंगिक अन्तरीय संकुचित हो जाता है।

स्वातंत्रोत्तर अवधि :

स्वतंत्रता के उपरान्त की गयी जनगणना के अनुसार जनसंख्या वृद्धि का दर उतरोतर रूप में 15.20 प्रतिशत (1951-61, 18. 13 प्रतिशत (1961-71), 21.91 प्रतिशत (1971-81), 22.98 प्रतिशत (1981-91) एवं 26.86 प्रतिशत (1991-2001) बढ़ता गया है। वृद्धि की इस प्रवृति से स्पश्ट है कि वृद्धि तीव्र से तीव्रतर होती गयी है। सामान्य रूप से पूर्ववत् जन्म दर की दशा में मर्त्यता दर में आया ह्रास इसका प्रमुख कारण है। साथ ही साथ कृषि तथा उद्योग में जिविकोपार्जन के बढ़ते अवसरों से प्रेरित ह्रासोन्मुख पुरुश प्रधन प्रवास की भी इसमें भूमिका है।

तलिका - 2: स्वातंत्रोतर अवधि में जनसंख्या की वृद्धि (1951-2001)

जनगणना वर्ष	*कुल जनसंख्या*	*दशकीय प्रतिशत परिवर्तनीयता*
1951	1256306	−
1961	1447297	15.20
1971	1709722	18.13
1981	2084322	21.91
1991	2562939	22.98
2001	3251474	26.86
2011	3943098	21.37

लैंगिक वृद्धि :

स्वतंत्रता के उपरान्त प्रारम्भिक रूप से पुरुशों की जनसंख्या वृद्धि का दर जहां 924 प्रतिशत (1941-51) एवं 11.75 प्रतिशत (1951-61) था, प्रतिपक्षी दर 11.26 प्रतिशत (1941-51) एवं 15.31 प्रतिशत (1951-61) परिकलित की गयी। 1981-91 का दशक वृद्धि की दृश्टि से स्त्रियों की तुलना में पुरुशों के लिये उत्साहवर्द्धक था। विकास के लिये कये गये प्रयासों का यह प्रतिफल था कि स्थानीय रूप से उपलब्ध जीविकोपार्जन के अवसरों से प्रेरित होकर पुरुश प्रवास के प्रति निरूत्साहित हुये। नि:संदेह हरित क्रांति के फलस्वरूप कृषीय प्रगति के कारण जिला में जीविकोपार्जन के अवसरों में वृद्धि हुयी है। परिणामत: जीविकोपार्जक प्रवासी होने वाले पुरुश जिला में ही ठहराव के प्रति प्रोत्साहित हुआ है।

स्थानिक परिवर्तन के स्वरूप :

1947 के पुर्व की अवधि में जनसंख्या वृद्धि की स्थानिक भिन्नताएँ कृषित क्षेत्र के विस्तार से प्रभावित थीं और कृषित क्षेत्र का विस्तार बाढ़ के द्वारा लायी गयी विभीशिका पर निर्भर था। उन दिनों कृषि का उत्पादन कृषिम क्षेत्र के क्षेत्रीय आच्छादन से निर्धारित होता था जो कालान्तर मे जनसंख्या वृद्धि को निर्धारित करता था। इसके अतिरिक्त संघातिक महामारियों के प्रभाव की गहनता में आया स्थानिक अन्तर की भूमिका की महत्वपूर्ण थी। शहरों से समीपस्थ संघटकों (Components) में महामारी जैसी प्राकृतिक विपदाओं पर नियंत्रण भी अपेक्षाकृत अधिक हो पाया करता है।

स्वतंत्रता के उपरान्त जनसंख्या वृद्धि की स्थानिक परिवर्तनियताएें मुख्य रूप से नगरीकरण की गति हरित क्रांति की उपलब्धी तथा कृषीय-औद्योगिक प्रगति से निर्धारित होती है। 1951-61 के दशक में 15-20 प्रतिशत की वृद्धि शहरी जनसंख्या वाले छपरा, सोनपुर एवं रिविलगंज अंचलों में हुयी थी। इसका कारण ग्रामीण-नगर प्रवास की प्रवृति में हुयी वृद्धि की 1961-71 में जनसंख्या की वृद्धि तीव्रतर रही। 20 से 25 प्रतिशत की वृद्धि उन अंचलों में परिकलित की गयी जिनमें 1951-61 के दशक में वृद्धि का दर अपेक्षाकृत निम्न था। 1971-81 जनसंख्या वृद्धि के तीव्रतर दर का दशक था। शुद्ध ग्रामीण जनसंख्या वाले तीव्रतर वृद्धि के अंचल हरित क्रांति से लाभान्वित हुये। कृषि में आयी प्रगति ने रोजगार के अवसर प्रदान किये। परिणामत: प्रवासियों की संख्या में ह्रास हुआ जिसका सकारात्मक प्रभाव जनसंख्या की वृद्धि पर पड़ा। शहरकृत छपरा एवं सोनपुर जैसे शहरों से युक्त अंचलों में तो वृद्धि का दर 30 प्रतिशत से भी अधिक रहा। उन्नत स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता एवं कृषि उत्पादकता में आयी प्रगति ने बाद के दशकों में भी जनसंख्या को समृद्धि एवं सुखी जीवन प्रदान किया है। कालान्तर में समेकित ग्रामीण विकास के कार्यक्रम से भी जन-जीवन सुखी एवं सम्पन्न हुआ है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (नरेगा) ने विषेषकर दलितों एवं महादलितों के लिये सुख एवं समृद्धि के द्वार खोल दिये हैं। 1991-2001 के दशक की तीव्रतम जनसंख्या वृद्धि विकास के लिये किये गये इन्हीं सभी प्रयासों का प्रतिफल है।

नगरीय जनसंख्या की वृद्धि :

विगत शताब्दी के प्रारंभिक वर्ष इन शहरों के लिये संघातिक बीमारियों की दृश्टि से संकटपूर्ण थे। पी0 सी0 राय चौधरी (1960) के अनुसार बल्कि इन शहरों से लोगों का पलायन ही महामारी के कारण प्रारम्भ हो चुका था। छपरा एवं रिविलगंज शहर जिला के अपेक्षाकृत पुराने शहर है। जहां जनसंख्या की वृद्धि तथा ह्रास दोनों काफी ज्वलन्त रहा है। इसके अतिरिक्त शहरी जनसंख्या वृद्धि पर प्रथम विश्व युद्ध का नकारात्मक प्रभाव भी देखा गया। 1921 के उपरान्त महामारियों की संघातिकता मेंआयी कमी के कारण सारण जिला में शहरी जनसंख्या की अभूतपूर्व वृद्धि हुयी। जिसमें समीपवर्ती गांवों का शहरों के साथ सम्मिलन तथा शहरों की ओर ग्रामीण जनसंख्या का रोटी-रोजी के लिये प्रवास प्रमुख इसकी जनसंख्या में वृद्धि कारण रहा।

तालिका - 3: छपरा एवं रिविलगंज शहरों की जनसंख्या (1901-2001)

जनगणना वर्ष	*छपरा*		*रिविलगंज*	
	जनसंख्या	प्रतिशत	जनसंख्या	प्रतिशत
1901	45901	-19.96	9765	-27.50
1911	42373	-7.68	8334	-14.65

1921	42415	+0.09	8186	−1.77
1931	47448	+11.86	8812	+7.64
1941	55142	+16.21	10643	+20.77
1951	64309	+16.62	11321	+6.37
1961	75780	+17.32	12684	+12.03
1971	83101	+9.95	15300	+2.62
1981	111564	+34.25	20454	+33.68
1991	136877	+22.40	27075	+32.37
2001	178835	+30.65	34044	+25.44

छपरा एवं रिविलगंज जैसे पुराने शहरों में वृद्धि 1921-31 के बाद के दशकों में उत्तरोत्तर रूप में वृद्धि होती रही है लेकिन पूर्ववर्ती 1901-1911 एवं 1911-1921 के दशक इन दोनों शहरों के लिए उत्साहवर्द्धक नहीं थे। छपरा एवं रिविलगंज शहरों की जनसंख्या में सर्वाधिक वृद्धि 1971-1981 के दशक में क्रमशः 34.25 प्रतिशत तथा 33.68 प्रतिशत का परिकलित किया गया। इसका प्रमुख कारण शहरों के साथ गाँवों का सम्मिलन था। हाल में भी छपरा, रिविलगंज, सोनपुर, दिघवारा एवं मड़हौरा शहरों की जनसंख्या में ज्वलन्त वृद्धि समीपस्थ गाँवों के साथ उनके सूचीकृत होने के कारण ही है। दूसरा प्रमुख कारण ग्रामीण-नगरीय प्रवास हैं ग्रामीण जनसंख्या की अपेक्षा शहरी जनसंख्या की तीव्रतर वृद्धि से स्पष्ट है कि इन दोनों क्षेत्रों में समान जन्म तथा मृत्युदर की दशा में शहरी जनसंख्या में वृद्धि का कारण जनसंख्या का गाँवों से शहरों की ओर प्रवसन होना है।

तलिका - 4: सरण जिला में ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या की सापेक्ष वृद्धि (1921-2011)

जनगणना वर्ष	*प्रतिशत वृद्धि (ग्रामीण)*	*प्रतिशत वृद्धि (नगरीय)*
1921	+2.67	−12.35
1931	+6.08	+12.83
1941	+14.90	+19.43
1951	+9.10	+49.88
1961	+13.44	+18.83
1971	+16.27	+19.75
1981	+16.30	+75.94
1991	+22.12	+38.30
2001	+26.28	+27.21
2011	+27.37	+31.46

जनसंख्या प्रक्षेप संकल्पना एवं विधि-तंत्र

प्रक्षेप किसी योजना पर आधारित नहीं होकर सहज कल्पनाओं पर आधारित होता है। इसके अनुसार भूतकालीन प्रवृतियाँ भविष्य में भी बनी रहेगी, शर्तबन्द यह है कि अभिव्यक्त अवधारणा सत्य हो तथा वैसे कारक, जिनपर अवधारणाओं की नजर नहीं होती, वास्तविकता को विदुप न कर दें। प्रक्षेप की अवधि अगर लम्बी हो तथा अवधारणाओं के समूह उपादेय नहीं हो तो उसकी विश्वसनीयता अति न्यून हो जाती है (साह, पी0 डी0; 2003)। अतः प्रक्षेप भावी जनसंख्या का मात्र अनुमान ही है जो परिवार कल्याण योजना एवं सरकारी स्वास्थ्य के प्रभावों को प्रतिबिम्वित नहीं करता। प्रक्षेप की अपेक्षा भविष्यवाणी की शब्दावली अधिक उपयुक्त है। प्रक्षेप को एक भविष्यवाणी कहना ही सही है न कि उसे किसी भी समय बिन्दू पर वास्तविक एवं अन्तिम जनसंख्या। वृद्धि हो या ह्रास, जनसंख्या का परिवर्तन जन्म, मृत्यु स्थानान्तरण या संयोजक (Annexation) द्वारा अनिवार्य है। जनसंख्या में होने वाले भावी परिवर्तन का आकलन जनसंख्या प्रेक्षप कहलाता है। जनसंख्या प्रक्षेप अवधारणओं के चयनित समूह का संख्यात्मक परिणाम है जिसे भावी जनसंख्या का शर्तबन्द (Conditional) कथन कहा जाता है क्योंकि आवश्यक नहीं कि उनसे पूर्णतः

सम्भावित परिणाम ही प्राप्त हो। अर्थात् यह भूल की जनसंख्या प्रवृतियां का भविष्य में प्रसार का एक अभ्यास है जिसमें स्वास्थ्य सम्बन्धित सरकारी नीतियों एवं परिवार कल्याण की योजनाओं इत्यादि का विचार नहीं होता है।

डेविस किंगस्ले के अनुसार जनसंख्या की भविष्यवाणी कोई सरल कार्य नहीं होती। यहाँ वास्तविक कठिनाई उन कारकों से सम्बन्धित है जिन पर कि जनन क्षमता, मर्त्यता एवं स्थानान्तरणशीलता से संबंधित अवधारणाएँ आधारित होती है। इसका कारण यह है कि प्रजननता, मर्त्यता एवं स्थानान्तरणशीलता से संबंधित सही भविष्यवाणी की कोई निश्चित विधि नहीं है। यही कारण है कि कुछ प्रक्षेप यथार्थ से दूर होते हैं। गनेट हेनरी (1909) ने शायद ठीक ही कहा हे कि एक-दो प्रक्षेप ही संयोगवष सच्चाई के समीप होते हैं, अन्यथा प्रायः वास्तविकता से वे काफी दूर होते हैं। इस दृश्टि से भविष्यवाणियाँ संक्षिप्त, मध्यम एवं लम्बी अवधियों की होती है। संक्षिप्त अवधि की भविष्यवाणी भावी पाँच वर्षो के लिए होती है। प्रायः ये आर्थिक विकास की पंचवर्षीय योजनाओं को ध्यान में रखकर की जाती है। इनकी विश्वसनीयता अपेक्षाकृत अधिक होती है। मध्यम अवधि की भविष्यवाणी 15-20 वर्षो की अवधि के लिए की गयी है। इससे जनसंख्या की गत्यात्मकता का आभास होता है। लम्बी अवधि की भविष्यवाणी 30-50 वर्षो तक की अवधि के लिए होती है। ऐसी भविष्यवाणी जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान प्रवृतियों को ध्यान में रखकर लम्बी अवधि के लिए की जाती है। इनकी विश्वसनीयता अपेक्षाकृत कम है क्योंकि लम्बी अवधि में जनसंख्या की प्रक्रियाओं के एक समान बने रहने की सम्भावना बहुत कम होती है।

जनसंख्या का वितरण प्रतिरूप :

जनसंख्या का वितरण किसी क्षेत्र में भौगोलिक प्रघटनों का संश्लेशण है इसके अतिरिक्त इसके द्वाा मानव की वृत्तियों के माध्यम से उसकी पसन्दगी तथा नापसन्दगी का प्रतिबिम्ब भी प्राप्त होता है। यद्यपि कि जनसंख्या के वितरण पर मिट्टी की उर्वरता, धरातलीय रूप-रेखा, जलवायुविक दशाओं एवं अजैव-विन्यास के प्रभाव को बिना किसी विवाद के सबों ने स्वीकारा है। किसी क्षेत्र या प्रदेश में बसने वाली जनसंख्या का सकेन्द्रण को ही जनसंख्या का वितरण कहा जाता है (अलेक्जेन्डर, जे0 डब्ल्यू0, 1963) छितराव का स्वरूप भारत में ग्राम, ग्राम पंचायत, अंचल, अनुमंडल, जिला एवं राज्य इत्यादि स्तर पर निर्धारित किया जा सकता है, लेकिन वितरण की स्थानिक परिवर्तनियताएँ सभी स्तरों पर समाहित होती है (सिंह, सी0 डी0, 1991) जनसंख्या का वितरण किसी क्षेत्र में भौगोलिक प्रघटनों का संश्लेषण है इसके अतिरिक्त इसके द्वारा मानव की वृत्तियों के माध्यम से उसकी पसन्दगी तथा नापसन्दगी का प्रतिबिम्ब भी प्राप्त होता है। यद्यपि कि जनसंख्या के वितरण पर मिटी की उर्वरता, धरातलीय रूप-रेखा, जलवायुविक दशाओं एवं अजैव-विन्यास के प्रभाव को बिना किसी विवाद के सबों ने स्वीकारा है। सारण जिला में इनका प्रभाव पूर्णतः प्रदर्शित नहीं होता, क्योंकि निक्षेपात्मक समान धरातल वाले एक छो क्षेत्र में परिवर्तनियताओं का प्रस्फुटन ज्वलन्त रूप से ही नहीं पाता है। अधिक से अधिक वितरण ग्रामीण क्षेत्रों में समान तथा नगरीय केन्द्रों पर गुच्छित रूप में यह पाया जा सकता है। हालाकि ग्रामीण क्षेत्र में भी वितरण पूर्णतः समान नहीं हैं। घाघरा तथा मही नदी के सहारे दुर्बल सकेन्द्रण का संकेत मिलता है। जिला के ये क्षेत्र बाढ़ प्रवण है। सकेन्द्रण उत्तरी-पश्चिमी भीतरी भाग में सबल है। उल्लेखनीय है कि मही नदी के दांये तथा बांये बाजू के सकेन्द्रण में अन्तर है। नदी के बॉये बाजू का उत्तरी क्षेत्र बाढ़ की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है, जबकि दांये बाजू का दक्षिणी भाग बाढ़ से कुप्रभावित आर्थिक गतिविधियों के लिये सुरक्षित नहीं है, यद्यपि कि नदी तट से 500 मीटर की चौड़ाई में शुष्क तथा बाढ़ से मुक्त क्षेत्र जो बाढ़ जल स्तर से ऊपर होता है, अधिवास के उपयुक्त है। मही नदी एवं उसकी प्रशाखा गोगड़ी तथा धनौती के सहारे ऐसे क्षेत्र बसाव के रैखिक प्रारूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। गुच्छित सकेन्द्रण छपरा, रिविलगंज, सोनपुर, दिघवारा एवं मड़हौरा जैसे शहर केन्द्रों द्वारा चिन्हित है। ये सभी गुच्छे बाढ़ प्रवण नदियों के तट पर हीं अवस्थित है। अर्थात् इनका उद्‌भव बाढ़ से सुरक्षित शुष्क स्थलों पर हुआ है जो निम्नांकित है -

(1) निम्न सकेन्द्रण - दक्षिण-पश्चिम में घाघरा नदी की बाढ़ से कुप्रभावित एवं छपरा-सीवान मुख्य मार्ग से दूरस्थ मॉझी एवं रिविलगंज अंचल निम्न सकेन्द्रण वाले हैं। नदी के पृष्ठ-प्रवाह से जलप्लावित तथा जलाक्रांत दक्षिणी-पूर्वी दरियापुर तथा परसा जैसे अंचल भी निम्न सकेन्द्रण के हैं।

(2) मध्यम सकेन्द्रण - सोनपुर एवं दिघवारा संघटकों से बनी गंगा के सहारे फैली पेटी नदी की उछाल से ग्रस्त तो है लेकिन सोनपुर एवं दिघवारा की नगरीय जनसंख्या से युक्त होने के कारण मध्यम संकेन्द्रण का प्रतिनिधित्व करती है। मड़हौरा, बनियापुर, जलालपुर एवं गरखा जैसे संघटकों से बना क्षेत्र जो आंशिक रूप से बाढ़ से प्रभावित है, मध्यम सकेन्द्रण का है। ये सभी जिला के शहरी केन्द्रों से दूर एवं सोनपुर-छपरा-सीवान मुख्य मार्ग से भी विलग पड़ते हैं।

(3) उच्च सकेन्द्रण – मात्र छपरा संघटक से विकसित उच्च सकेन्द्रण की पेटी छपरा की नगरीय जनसंख्या से समर्थित है। छपरा जिला का मुख्यालय तथा सबसे बड़ा एवं सबसे प्राचीन शहर है। द्रष्टव्य है कि नगरीय केन्द्रों पर जनसंख्या गुच्छों (ब्सनेजमते) के जमावड़े को छोड़ दिया जाये तो जिला में जनसंख्या का सकेन्द्रण बाढ़ की उन्मुक्तता की सीमा तथा आवृति पर निर्धारित है। बाढ़ प्रवणता की दृष्टि से प्राप्त उत्कृष्टता द्वारा शुद्ध एवं कुल बोयी गई भूमि की सीमा निर्धारित होती है जो दूसरी ओर जनसंख्या सकेन्द्रण का परिणाम निर्धारित करता है।

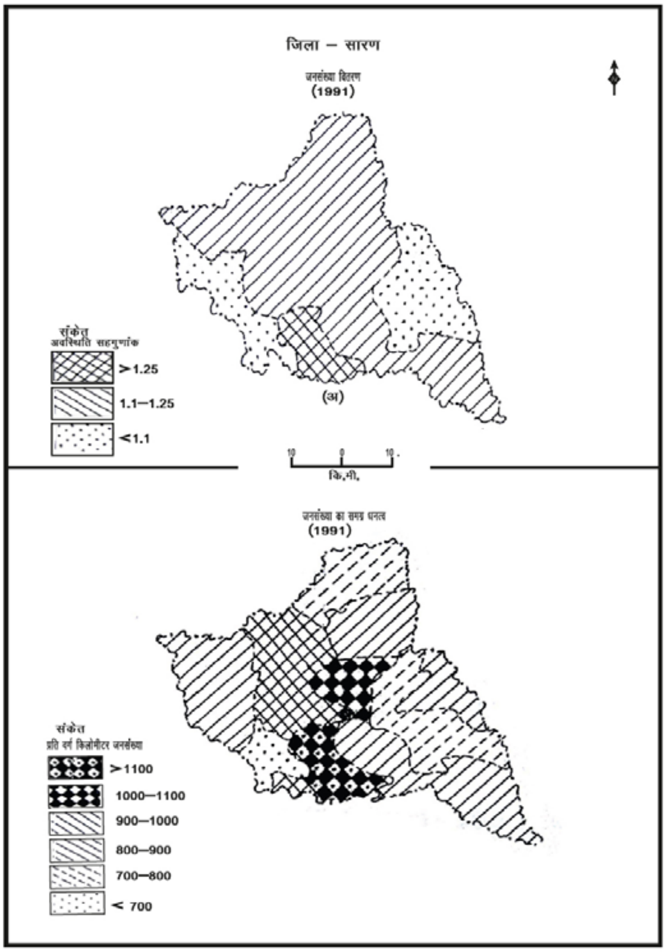

जनसंख्या घनत्व :

गंगा नदी के पृष्ठ प्रवाह से उत्पन्न बाढ़ से प्रभावित दरियापुर एवं परसा के दक्षिण-पूर्वी अंचलों में जनसंख्या का उक्त घनत्व मध्यम (700-800 वर्ग कि0मी0) श्रेणी का है। घाघरा के सहारे अवस्थित मॉझी अंचल में भी घनत्व की यही श्रेणी द्रष्टव्य है। भौगोलिक औसत समग्र जनसंख्या घनत्व जिला में प्रति वर्ग कि0 मी0 891 व्यक्तियों (1991) का है। उल्लेखनीय हे कि रिविलगंज अंचल में शहरी जनसंख्या विद्यमान है, फिर भी समग्र घनत्व जिला में यहाँ सबसे कम (700 से कम) परिकलित है। घाघरा नदी के बाढ़ के प्रति इस अंचल की संवेदनशीलता अत्यधिक है। मानवीय बसाव की दृष्टि से इन अंचलों में जलीय दशायें सघन घनत्व को निरूत्साहित करती है। अपेक्षाकृत उच्चतर घनत्व तरैया, गरखा, अमनौर, दिघवारा एवं सोनपुर संघटकों से बने पौकेटों में द्रष्टव्य है। अन्त के दो अंचल शहरी जनसंख्या से युक्त है जबकि शेष बाढ़ से सुरक्षित होने के कारण कृषि एवं कृषि आधारित गतिविधियों

के लिए उत्साहवर्द्धक दशाएँ वाले हैं। कुछ (जलालपुर, बनियापुर एवं मशरख) तो नदियों द्वारा लायी गयी प्रयलकारी बाढ़ की सीमा के पूर्णत: बाहर हैं। घनत्व यहाँ प्रतिवर्ग किलोमीटर 900-1000 के मध्य है। सर्वोच्च घनत्व (1100) छपरा संघटक के लिए परिकलित है जहाॅ सारण प्रमंडल का सबसे बड़ा शहर तथा मुख्यालय अवस्थित है। विश्लेषण में यह सिद्ध है कि जिला में जनसंख्या का घनत्व शहरी जनसंख्या से युक्त संघटकों के बाहर बाढ़ से उन्मुक्ता की सीमा का अनुसरण करता है। हालाकि शहरी जनसंख्या वाले संघटकों में बाढ़ के आंशिक प्रभाव के बावजूद प्रशासकीय, व्यावसायिक एवं शैक्षणिक गतिविधियों के कारण जनसंख्या का उच्चतर घनत्व पाया जाता है। अध्ययन से यह भी सिद्ध है कि जिला में जनसंख्या का भौगोलिक घनत्व प्रति दशक प्रति वर्ग किलोमीटर लगभग 100 व्यक्तियों की दर से वृद्धिगत है। हालाकि शहरी जनसंख्या से युक्त संघटकों में घनत्व की वृद्धि का दर ग्रामीण जनसंख्या वाले संघटकों जैसा नहीं है। नगरों के स्थानिक विस्तार अर्थात् उनके साथ ग्रामों के विलयन के कारण घनत्व की वृद्धि प्रतिदशक प्रति वर्ग किलोमीटर 200 से भी अधिक व्यक्तियों की छपरा, सोनपुर एवं दिघवारा शहरों में हुयी है।

कायिका घनत्व :

कायिक घनत्व तुलनात्मक रूप से यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करता है। यहाँ मनुष्य को अपने आहार के लिए वस्तुत: कृषि के भौगोलिक विस्तार पर ही मुनहसर करना पड़ता है। 1400-1600 का सर्वोच्च कायिक घनत्व छपरा संघटक से बनी मे खला में द्रष्टव्य है जहाॅ का गणितीय जनसंख्या घनत्व भी नगरी जनसंख्या के कारण सर्वोच्च परिकलित है। जिला के उत्तरी-पश्चिमी भाग में उक्त घनत्व 800 से 1000 के प्रसार में है जबकि इससे भी अधिक जलालपुर, बनियापुर एवं अमनौर संघटकों से बनी पेटी केलिये परिकलित है। बाढ़ से पूर्णत: सुरक्षित होने के कारण शुद्ध बोयी गयी भूमि का विस्तार भी यहाँ अधिक है, जबकि शुद्ध बोयी गयी भूमि में जब क्षेत्रगत वृद्धि होती है, कायिक घनत्व में ह्रास अनिवार्य हो जाता है। लेकिन यहाँ कायिक तथा समग्र घनत्व में वृद्धि एक जैसी ही प्रतिवर्ग किलोमीटर प्रति दशक 100 व्यक्तियों की है जबकि रिविजनल सर्वे के काल से ही जिला चुके शुद्ध बोयी गयी भूमि की दृष्टि से सम्पृक्त है, स्वाभाविक है कि दोनों प्रकार के घनत्व में एक जैसी वृद्धि हो हालाकि अन्यत्र हरित क्रांति के क्रम में शुद्ध बोयी गयी भूमि के क्षेत्र में हुयी वृद्धि के कारण कायिक घनत्व में हुयी वृद्धि भौगोलिक घनत्व में होनेवाली वृद्धि की अपेक्षा मन्द पायी जाती है।

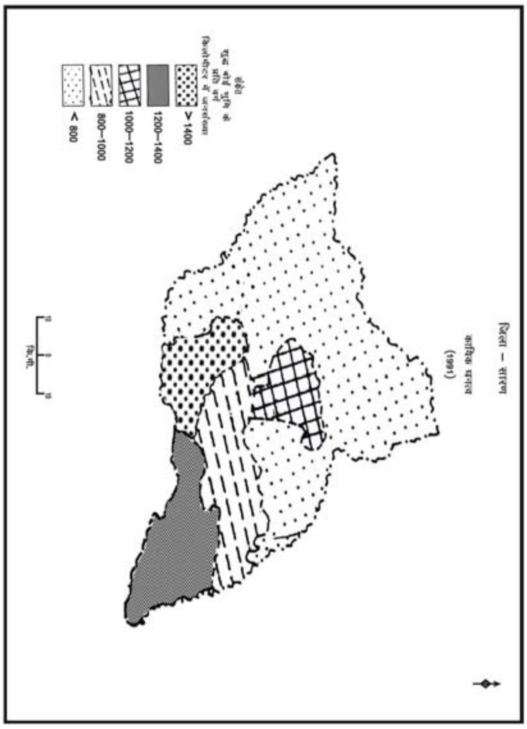

प्रति व्यक्ति कृषीय भूमि :

कायिक घनत्व के विश्लेषण से भी प्रति व्यक्ति कृषीय भूमि की उपलब्धता का अनुमान कठिन होता है। बल्कि उक्त तथ्य की जानकारी मानव-भूमि अनुपात को अधिक प्रभावषाली ढंग से प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि अलेकजेण्डर (1963) ने प्रति व्यक्ति (एकड़ या हेक्टेयर या अन्य) क्षेत्रगत इकाई में भूमि की उपलब्धता का ज्ञान आवश्यक माना है क्योंकि आहार में ली जानेवाली खाद्यान्न फसलों का मापन भूमि की प्रति इकाई कठा, बिगहा, एकड़, हेक्टेयर इत्यादि के आधार पर किया जाता है। ऐसा उपागम प्रति व्यक्ति आहार के लिए आवश्यक अन्नोपार्जन हेतु भूमि की उपलब्धता की अनुशंसा भी करता है। तिरूपलाई (1954) के अनुसार इस दृष्टि से न्यूनतम प्रति व्यक्ति एक हेक्टेयर भूमि आवश्यक है, जबकि मुखर्जी (1938), वर्मा (1967) एवं सिंह (1970) के अनुसार भारत जैसे मध्य अक्षांशीय अवस्थिति वाले देशों में प्रति व्यक्ति 0.40 हेक्टेयर भूमि की उपलब्धता से भी जनसंख्या के स्वास्थ्य को बनाये रखा जा सकता है। सारण जिला में प्रति व्यक्ति भूमि को उपलब्धता ऊपर में दी गयी किसी भी मानक से निम्नतर है। सारण जिला बल्कि विगत शताब्दी के प्रारम्भ के पूर्व ही इस दृष्टि से काफी तनावपूर्ण स्थिति में रहा है। मानव-भूमि अनुपात जिला में दिनानुदीन असंतुलित होता जा रहा है। उल्लेखनीय है कि जिला में आवास का इतिहास अती पुराना है। प्राक्-वैदिक युग से ही इसे मानव निवसित माना गया है। कालान्तर में आवास के स्थायित्व ने जनसंख्या वृद्धि को प्रोत्साहित किया है। इस दशा में जबकि घनत्व में वृद्धि अनवरत हो रही है, वर्मा (1967) के अनुसार शुद्ध बोयी गयी भूमि का विश्रृखंलिता होना स्वाभाविक है। सारण जिला बल्कि विगत शताब्दी के प्रारम्भ के पूर्व ही इस दृश्टि से काफी तनावपूर्ण स्थिति में रहा है। मानव-भूमि अनुपात जिला में दिनानुदीन असंतुलित होता जा रहा है।

पोषणात्मक घनत्व :

पोषणात्मक घनत्व कुल जनसंख्या को कुल बोयी गयी भूमि से विभाजित कर प्राप्त किया जाता है। किसी एक कृषि पंचांग वर्ष में बोयी गयी सभी फसलों में संलग्न भूमि का कुल जोड़ कुल बोयी गयी भूमि कहलाती है। इस समीकरण के अनुसार जनसंख्या तथा शस्य गहनता के बीच के अन्तर्सम्बन्ध का तथ्य पोषणात्मक घनत्व द्वारा आलोकित होता है। शस्य गहनता से तात्पर्य एक बार से अधिक बोयी गयी भूमि का विस्तार या भूमि के किसी टुकड़े में बोआई की आवृति है। अर्थात् एक बार से अधिक बोयी गयी भूमि जितनी ही अधिक होगी जो कि बोआई की आवृति का प्रतिफल है, कुल बोयी गयी भूमि का क्षेत्र उतना ही अधिक होगा। यहाँ छपरा एवं सोनपुर जैसे संघटकों में जहाँ जगरीय जनसंख्या के रूप में जनसंख्या का सकेन्द्रण है, वहाँ उच्च पोषणात्मक घनत्व, उच्च से अति उच्च भौगोलिक घनत्व का परिणाम है। उक्त घनत्व ग्रामीण जनसंख्या के गरखा, बनियापुर, जलालपुर एवं मशरख अंचलों में अपेक्षाकृत निम्न है। इन अंचलों की शस्य गहनता भी अन्य अंचलों की तुलना में उच्चतर है।

निष्कर्ष :

1921 एवं 2011 के बीच यहाँ की जनसंख्या में 276 प्रतिशत (2373123) की संचयी वृद्धि परिकलित की गयी है। अर्थात् विगत 80 वर्षो में ही जनसंख्या का आकार तीनगुणा के लगभग बढ़ा है, हालांकि दशकीय वृद्धि का दर समरूपी नहीं रहा है। 1901 से 1911 का दशक तो जनसंख्या के ह्रास का था। 1911-21 के दशक में 22 प्रतिशत की दशकीय वृद्धि आलेखित हुयी। इस दशक में जनसंख्या वृद्धि का कोई प्रोत्साहक कारक विद्यमान नहीं था बल्कि केवल महामारियों की संघातिकता में आयी कमी के कारण मृत्यु दर ह्रासोन्मुख हुआ जिसकी परिणति 2.2 प्रतिशत की दशकीय वृद्धि के रूप में परिकलित की गयी। उल्लेखनीय है कि इस दशक में पुरूषों की संख्या में 50,523 व्यक्तियों की वृद्धि हुयी। स्त्रियों के लिये वृद्धि 17,560 की प्रतिवेदित थी। 1921-31 के दशक में वृद्धि का दर पूर्व के दशक से उच्चतर (6.3 प्रतिशत) रहा। 1931-41 का दशक जनसंख्या वृद्धि की दृष्टि से जिला में उत्साहवर्द्धक था। दशकीय वृद्धि इस दशक में 15 प्रतिशत से भी अधिक परिकति की गयी। इसका मुख्य कारण महामारियों की संघातिकता में आयी कमी के साथ-साथ चिकित्सा तथा स्वास्थ्य की बढ़ती सुविधाओं का बढ़ता प्रभाव भी था। 1941-51 के दशक में एक बार फिर सारण जिला की जनसंख्या को मन्द वृद्धि के दौड़ से गुजरना पड़ा क्योंकि इसी दशक में द्वितीय विश्वयुद्ध तथा भारत-पाकिस्तान विभाजन का दुखद परिणाम सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ इस जिला को भी झेलना पड़ा था। स्वतंत्रता के उपरान्त की गयी जनगणना के अनुसार जनसंख्या वृद्धि का दर उत्तरोत्तर रूप में 15.20 प्रतिशत (1951-61), 18.13 प्रतिशत (1961-71), 21.91 प्रतिशत (1971-81), 22.98 प्रतिशत (1981-91) एवं 26.86 प्रतिशत(1991-2001) बढ़ता गया है, यद्यपि कि 2001-2011 के

दशक में वृद्धि का दर ह्रासोन्मुख(21.37 प्रतिशत) आलेखित है। वृद्धि की इस प्रवृति से स्पष्ट है कि वृद्धि 2011 की जनगणना को छोड़ तीव्र से तीव्रतर होती गयी है। स्वतंत्रता के उपरान्त जनसंख्या वृद्धि की स्थानिक परिवर्तनियताएँ मुख्य रूप से नगरीकरण की गति हरितक्रांति की उपलब्धी तथा कृषीय-औद्योगिक प्रगति से निर्धारित होती रही है। 1951-61 के दशक में 15-20 प्रतिशत की वृद्धि शहरी जनसंख्या वाले छपरा, सोनपुर एवं रिविलगंज अंचलों में हुयी थी। इसका कारण ग्रामीण-नगर प्रवास की प्रवृति में हुयी वृद्धि थी। ह्रासोन्मुख दर विधि द्वारा किये गये प्रक्षेप की प्रासंगिकता भी वर्तमान परिपेक्ष में कम नहीं है क्योंकि 2011 की जनगणना में वृद्धि के ह्रासोन्मुख प्रतिशत दर का संकेत मिलना प्रारम्भ हो गया है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि 40-50 वर्षो के उपरांत 2051 में जिला की जनसंख्या अपने वर्तमान आकार तथा वृद्धि की वर्तमान प्रवृति के अनुसार (जनसंख्या प्रक्षेपण चाहे जिस विधि से भी परिकलित की गयी हो) दो गुणी या दो गुणी के समीप अवश्य होगी, जैसाकि 1951-2001 के मध्य 50 वर्षो की अवधि में वृद्धिगत रही है। वृद्धि उपरोक्त चार प्रक्षेपणों में किसके अनुरूप होगी इसका उत्तर तो केवल भविष्य ही बतलायेगा। जनसंख्या का भावी आकार चाहे जो भी हो दोआब में जुड़नेवाली संख्या की मौलिक आवश्यकताओं के मद्दनजर, उपरोक्त प्रक्षेप महत्वपूर्ण है क्योंकि दशकीय प्रतिशत वृद्धि दर में भले हीं ह्रास आलेखित हुआ है, प्रतिवर्ग कि0मी0 जनसंख्या का घनत्व 1230 व्यक्तियों (2001) से बढ़कर 1493 व्यक्तियों (2011) का परिकलित है।

संदर्भ ग्रन्थ :

- फैन्कलीन, एस0 एच0; 1956 - ''पैटर्न ऑफ सेक्स रेशियो इन न्यूजीलैण्ड', इकॉनॉमिक जियोग्राफी, भाल्यूम 2.
- त्रिवार्था, जी0 टी0; 1957 - ''एलीमेन्ट्स ऑफ जियोग्राफी'', न्यूयार्क, पृष्ठ 50.
- हैरीसन, सी0 ए0; 1964 - ''ह्यूमेन बाइलॉजी'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, पृष्ठ 117.
- चन्दना, आर0 सी0 एवं सिद्धू, मनजीत सिंह; 1980 - इन्ट्रोडक्शन टु पोपुलेशन जियोग्राफी, दिल्ली।
- गोशाल, जी0 एस0; 1961 - ''इंटरनल माइग्रेशन इन इण्डिया ए रिजनल एनालाइसिस'', आई0 जी0 डी0 36/3, पृष्ठ 106-121.
- यूनाईटेड स्टेट्स; 1973 - ''दी डिटरमिनेन्ट एण्ड कॉन्सिक्युन्स ऑफ पोपुलेशन ट्रेंट्स'', डिपार्टमेन्ट ऑफ इकॉनॉमिक्स एण्ड सोसल अफयर्स, पोपुलेशन स्टडिज, न0 50, भाल्यूम- 1, न्यूयार्क, पृष्ठ 262.
- गोशाल, जी0 एस0; 1961 - ''इन्टरनल माइग्रेशन इन इण्डिया ए रिजनल एनालाइसिस'', आई0 जी0 डी, 36/3, पृष्ठ 106-121.
- प्रो0 बघेल, जी0 एस0; 1995 - ''जियोग्राफी ऑफ ह्यूमन रिसोर्स'', मोहित पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 165.
- शर्मा, एस0 के0; 1983 - भयोसैन्क संरचना और कृषि विकास में संबंध, विकासशील भूगोल पत्रिका, न0- 1, पृष्ठ 10.

चम्पारण क्षेत्र में अनुसूचित जाति/जनजाति का आर्थिक क्रियाकलाप : एक भौगोलिक विश्लेषण

अम्बरीष कुमार

शोध छात्र, विश्वविद्यालय भूगोल विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

परिचय

पूर्वी चम्पारण बिहार के तिरहुत प्रमंडल का एक जिला है। चंपारण को विभाजित कर 1972 में बनाए गए पूर्वी चम्पारण का मुख्यालय मोतिहारी है। पंचारण का नाम पंचा+अरण्य से बना है। जिसका अर्थ होता है - चम्पा के पेड़ों से आच्छादित जंगल। 1866 वीं चम्पारण के उत्तर में एक ओर जहां नेपाल तथा दक्षिण में मुजफ्फरपुर स्थित है। वहीं दूसरी ओर इसके पूर्व में शिवहर और सीतामढ़ी तथा पश्चिम में पश्चिमी चम्पारण जिला है। चंपारण बिहार प्रान्त का एक जिला था। अब पूर्वी चम्पारण और पश्चिमी चम्पारण नाम के दो जिले हैं। भारत और नेपाल की सीमा से लगा यह क्षेत्र स्वाधीनता संग्राम के दौरान काफी सक्रिय रहा है। महात्मा गांधी ने अपनी मशाल यहीं से अंग्रेजों के खिलाफ नील आंदोलन से जलायी थी। बेतिया पश्चिमी चंपारण का जिला मुख्यालय है और मोतिहारी पूर्वी चम्पारण का। चंपारण से 34 किलोमीटर दूर दक्षिण साहेबगंज-चकिया मार्ग पर लाल छपरा चौक के पास अवस्थित है। प्राचीन ऐतिहासिक स्थल केसरिया। जहां एक वृहद् बौद्धकालीन स्तूप है जिसे केसरिया स्तूप के नाम से जाना जाता है। लेकिन यह बात हमेशा ही विवादग्रस्त रही है कि किन समुदायों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्रदान किया जाए। अनुसूचित जनजाति का दर्जा मिलने का अर्थ है कि इन समुदायों को राजनैतिक प्रतिनिधित्व के रूप में, स्कूलों में आरक्षित सीटों के रूप में और सरकारी नौकरियों के रूप में वांछित ठोस लाभ प्राप्त होना। पिछले कुछ वर्षो में सामाजिक और राजनीतिक लामबंदी के कारण अनुसूचित जनजातियों की संख्या अब एक से अधिक राज्यों में एक दूसरे से टकराती हुई 700 तक पहुंच गई है, जबकि सन् 1960 में इनकी संख्या 225 थी। जैसे-जैसे अनुसूचित जनजातियों का दर्जा हासिल करने को इच्छुक समुदायों की संख्या बढ़ रही है, वैसे-वैसे ही किसी समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता देने के औचित्य पर भी सवाल उठने लगे हैं। और यही कारण है कि इसे दर्जा प्रदान करने के मानदंड की जांच करने की मांग भी बढ़ती जा रही है।

चम्पारण क्षेत्र अनुसूचित जनजाति का दर्जा : स्पष्टीकरण की आवश्यकता

पिछले तीन दशकों में नर्रिकुरोवर समुदाय अपने-आपको आदिवासी मानकर अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त करने की कोशिश में जुटा हुआ है जब उसने पूछा गया कि उन्हें यह दर्जा क्यों दिया जाए तो उन्होंने उतर दिया कि उनके समुदाय को इसकी जरूरत है और इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपनी आर्थिक और सामाजिक बदहाली का चिक्र किया उनकी बदहाली ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में खानाबदोशी का जीवन-यापन करने के कारण और भी बढ़ गई है। अनुसूचित जनजाति का दर्जा हासिल करने के लिए अपेक्षित भौगोलिक अलगाव के मानदंड से यह बिल्कुल मेल नहीं खाता इसके अलावा नर्रिकुरोवर समुदाय के लोग अपने उत्पाद आम लोगों को बेचते हैं और इस कारण उन्हें आम लोगों से जुड़ने में संकोची भी नहीं माना जा सकता। और यह भी अनुसूचित जनजाति का दर्जा हासिल करने का एक और मानदंड है चंकि ये मानदंड स्पष्ट नहीं है इसलिए किसी भी समुदाय के लिए अपनी

राजनैतिक मांगों को परिभाषित करना भी आसान नहीं है नर्रिकुरोवर समुदाय के लिए मार्ग अभी-भी लंबा और उबड़-खाबड़ है, क्योंकि अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त करने की पात्रता की न तो कोई सामाजिक आंकड़े भी मौजूद नहीं है, जिनकी मदद से अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त करने के इच्छुक समुदायों की अन्य अनुसूचित जनजातियों और भारत के जन-सामान्य के साथ तुलना की जा सके और बदहाली के आधार पर यह तय किया जा सके कि उनका संबंध किस वर्ग से है ताकि अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त प्रदान करने की प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी और विश्वस्त बनाया जा सके।

अनुसूचित जाति/जनजाति समुदाय के विकास के लिए सरकार कृतसंकल्प : मुख्यमंत्री। माननीय मुख्यमंत्री, बिहार श्री नीतीश कुमार ने बिनवलिया हरनाटांड में भारतीय थारू कल्याण महासभा के 40 वें महाधिवेशन को संबोधित करते हुए कहा कि अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग के उत्थान एवं सर्वागीण विकास हेतु सरकार कृतसंकल्पित है। अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग के कल्याण के लिए सरकार द्वारा अनेकों योजनाएं चलायी जा रही है। उन्होंने कहा कि थारू समाज की महिलाएं पहले से ही सशक्त है। महिलाओं की सशक्तीकरण हेतु राज्य में कई कदम उठाये गये हैं। जिमें बिहार देश में पहला राज्य है जहां महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण का लाभ दिया गया। उन्होंने कहा कि पश्चिमी चम्पारण जिला में अनुसूचित जनजातियों में थारू समुदाय की बहुलता को देखते हुए समेकित थरूहट विकास अभिकरण की स्थापना वर्ष 2009 में किया गया है और इसके तहत थारू समुदायों के बीच विभिन्न प्रकार के विकास के कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। पश्चिम चम्पारण जिला में थरूहट पंचायत में 5 अनुसूचित जनजाति आवासीय विद्यालय भवन का निर्माण कार्य प्रति आवासीय विद्यालय 13.75 रुपये की लागत से बिहार राज्य शैक्षणिक आधारभूत संरचना विकास निगम लिमिटेड, पटना द्वारा पूर्ण करायी गयी है। जिसमें बगहा-2 प्रखंड के बैरागी सोनवर्षा पंचायत में अनुसूचित जनजाति आवासीय उच्च विद्यालय, कदमहवा का निर्माण, नौगाहा प्रखंड के बेलसंडी पंचातय में अनुसूचित जनजाति आवासीय उच्च विद्यालय बेलसंडी का निर्माण, गौनाहा प्रखं डमें ही धमौरा पंचायत में अनुसूचित जनजाति आवासीय उच्च विद्यालय, धमौरा का निर्माण,रामनगर प्रखं डमें सपही मुधबनी पंचायत में अनुसूचित जनजाति आवासीय उच्च विद्यालय मधुबनी का निर्माण तथा प्रखंड मैनाटांड़ में डमरापुर पंचायत में अनुसूचित जनजाति आवासीय उच्च विद्यालय, भिरभिरिया दुधौरा का निर्माण कराया गया है।

उन्होंने कहा कि थरूहट बाहुल्य क्षेत्रों के कुल 21 विद्यालयों में खेलकूद सामग्री का वितरण किया गया है। वहीं युवा कौशल विकास योजना अंतर्गत थरूहट क्षेत्र के युवक-युवतियों को कम्प्यूटर, सिलाई-कटाई, इलेक्ट्रीशियन, डेस मेकिंग, सिक्यूरिटी गार्ड आदि ट्रेडों में व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान कराया गया है। जिसमें से प्रशिक्षण प्राप्त युवक-युवतियों को विभिनन कंपनियों द्वारा रोजगार भी उपलब्ध हो रहा है। थारू नेताओं के द्वारा अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण का मुदा उठाये जाने पर माननीय मुख्यमंत्री द्वारा बताया गया कि आरक्षण का लाभ आबादी के आधर पर ही दिया जाता है। उन्होंने कहा कि नौरंगिया गोलीकांड से वे अत्यंत दुखी है और उस कांड के पीड़ित को सरकार द्वारा नियमों को शिथिल कर मुआवजे की राशि का भुगतान कराया गया है। माननीय मुख्यमंत्री द्वारा सात निश्चय योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में किये गये विकास कार्यो का उल्लेख भी किया गया। उन्होंने कहा कि हर टोलों में बिजली पहुंचा दी गयी है और हर घर में बिजली पहुंचाने के लक्ष्य को शीघ्र ही प्राप्त कर लिया जायेगा। हर घर में जल का जल, शौचालय का निर्माण आदि की दिशा में बहुत तेजी से कार्य हो रहा है और जल्द ही संपूर्ण चंपारण क्षेत्र खुले में शौचमुक्त हो जायेगा। उन्होंने कहा कि स्कूली छात्र-छात्राओं के कल्याण के लिए साईकिल योजना, पोशाक योजना का राज्य में क्रियान्वयन लगातार जारी है। महिलाओं की मांग कर राज्य में पूर्ण शराबबंदी लागू की गयी है। बाल विवाह और दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों को खत्म करने के लिए अभियान चलाया जा रहा है।

उन्होंने कहा कि लड़की के जन्म लेने पर पहले परिवार उसे बोझ समझते थे इसी उदेश्य से सरकार लड़कियों के उत्थान के लिए कई तरह की योजनाएं चला रही है। जिसमें कन्या सुरक्षा योजना, कन्या विवाह योजना, कन्या उत्थान योजना ादि प्रमुख है। उन्होंने कहा कि अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग के छात्र-छात्राओं के प्रोत्साहन के लिए सरकार द्वारा एक नई योजना लायी गयी है जिसमें बीपीएसपी की प्रारंभिक परीक्षा उतीर्ण होने पर उन्हें 50 हजार रुपया एवं यूपीसपी की प्रारंभिक परीक्षा उर्तीण होने पर 1 लाख रुपये की सहायता राशि प्रदान की जायेगी ताकि वे इसके आगे की मुख्य परीक्षा में ज्यादा अच्छा प्रदर्शन कर सके। उन्होंने कहा कि वाल्मीकि वन क्षेत्र अत्यंत ही मनोरम स्थल है। यही कारण है कि साल में कम से कम एक बार वे जरूर यहां आते हैं। अपने संबोधन में थारू समाज से आने वाले श्री गढ़वाल ने विभिन्न क्षेत्रीय समस्याओं के बारे में माननीय मुख्यमंत्री का ध्यान आकृष्ट किया जिसमें थरूहट क्षेत्र में एक अलग विधानसभा क्षेत्र का गठन, बगहा-2 प्रखंड का मुख्यालय सिधाव में स्थानांतरण,वन भूमि अधिनियम 2006 एवं 2012 के तहत वन भूमि का उपयोग कर रहे लोगों को बासगीत का पर्चा दिलाने दोन कैनाल क्षेत्र में लिफ्ट हरीगेशन

की व्यवस्था करने एनएच-28 का पुरानी सड़क होकर ही निर्माण करने थरूहट क्षेत्र में संचालित कालेज का अधिग्रहण करने सदोहरा मेला को आदिवासी मेला के रूप में मान्यता प्रदान करने तथा थरूहट में अवैध बालू खनन पर रोक लगाने की मांग शामिल है। वहीं अन्य माननीय प्रतिनिधियों ने भी गन्ना किसानों के हितों की रक्षा करने के साथ-साथ अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग के उत्थान के लिए विषेष योजनाओं का क्रियावन्यन करने की मांग किया गया। इसके पूर्व माननीय मुख्यमंत्री द्वारा दीप प्रज्जवलित कर भारतीय थारू कल्याण महासभा के 40 वें महाधिवेशन का उद्घाटन किया गया। तदुपरांत थारू छात्राओं द्वारा स्वागत गान का प्रदर्शन किया गया तथा थारू महिलाओं द्वारा पारंरिक नृत्य का प्रदर्शन किया गया। इस अवसर पर गन्ना विकास मंत्री विकास मंत्री, श्री खुर्शीद उर्फ फिरोज अहमद, स्थानीय संसद, श्री सतीश चंद्र दुबे, स्थानीय विधायक धीरेन्द्र कुमार सिंहउर्फ रिंकू सिंह, लौरिया विधायक, श्री विनय बिहारी, पूर्व एमपी, श्री बैधनाथ महतो, श्री कैलाश महतो, पूर्व एएलए, श्री राजेश सिंह, श्री सतीश सिंह, थारू कल्रूाण महासभा के सचेतक, श्रीमती चन्द्रकांति देवी, अध्यक्ष दीपनारायण प्रसाद, जिला परिषद् अध्यक्ष-सह-महामंत्री, श्री शैलेन्द्र गढ़वाल, अन्य गणमान्य व्यक्ति/जनप्रतिनिधि आदि उपस्थित थे। इस सभा में बड़ी संख्या में स्थानीय लोग सम्मिलित हुए जिसमें महिलाओं की संख्या ज्यादा थी। सभा को संबोधित करने वालों में गन्ना मंत्री, संसाद, विधायक, जिला परिषद् अध्यक्ष के नाम शामिल हे। मंच का संचालन थारू वर्ग के सेवानिवृत कर्मी, श्री रमेन्द्र गौरव ने किया। माननीय मुख्यमंत्री श्री सभा में सरकार के मुख्य सचिव, श्री अंजनी कुमार सिंह, प्रधान सचिव, श्री अतीश चन्द्रा, आयुक्त तिरहुत प्रमंडल,श्री नर्मदेश्वर लाल, मुख्यमंत्री के ओएसडी, श्री गोपाल सिंह, जिलाधिकारी, पश्चिम चम्पारण डा0 निलेश रामचंद देवरे, पुलिस अधीक्षक, बगहा श्री अरविन्द कुमार गुप्ता, अनुमंडल पदाधिकारी, बगहा, श्री घनश्याम मीणा, जिलास्तरीय पदाधिकारी आदि उपस्थित थे।

उद्योग

निवेश

- पूर्वी पम्पारण की मजबूत कृषि पृष्ठभूमि है।
- मेहसी में मोती बटन उद्योग, पूरे देश में अपनी तरह का एकमात्र उद्योग है जिसने दुनिया में प्रसिद्धि अर्जित की थी।
- 1995 में केंद्र सरकार द्वारा मछली विकास के लिए एक महत्वाकांक्षी योजना शुरू हुई। यहां बड़ी संख्या में टैंक और मन झीले है। मोतीहारी शहर में मोतीझील और कररिया झील में मत्स्य विकास योजनाओं और इसके आसपास के क्षेत्र में मछली उत्पादन के लिए उपयुक्त झील बनाने के लिए विश्व बैंक ने 19 करोड़ वित पोषित किया।

औद्योगिक प्रोफाइल

- पूर्वी चम्पारण में कृषि आधारित उद्योग प्रचलित है।
- लकड़ी और लकड़ी के उद्योगों
- मरम्मत और सेवा
- धातु आधारित उद्योग
- रबड़, प्लास्टिक और पेट्रो आधारित
- इंजीनियरिंग इकाइयां
- विद्युत मशीनरी और परिवहन उपकरण

उद्योग एक पर नजर

- पंजकृत औद्योगिक इकाइयां : 1477
- कुल औद्योतगिक इकाइयां : 1477
- पंजीकृत मध्यम और बड़ी इकाई
- लघु उद्योगों में नियमों दैनिक कार्य करने वालों की अनुमानित औसत संख्या- 06

- बड़े और मध्यम उद्योगों में रोजगार :
- औद्योगिक क्षेत्र की संख्या : 01

प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र

1. रक्सौल प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र है
2. प्राप्त भूमि क्षेत्र 2.94 हेक्टेयर
3. आवंटित भूखंडों की संख्या 29
4. उत्पादन में इकाइयों की संख्या 5
5. पर्ल बटन उद्योग
    1. मेहसी रेलवे स्टेशन के नजदीक महेसी में एक छोटा ग्रामीण बाजार है जहां मोती बटन उद्योग स्थापित किया गया है।
    2. ऑयस्टर-शैल से बटन तैयार किए जाते है, आमतौर पर सिकरहना नदी में हाथ से निकाले जाते है।
    3. मेहसी अंचल के 13 पंचायतों में उद्योग की 160 इकाइयां है, जिससे लगभग 10,000 कुशल श्रमिकों को रोजगार और 20,000 श्रमिक अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार देते है।
6. मछली पालन
    1. अनुमान है कि 1920 एकड़ के 9 जल क्षेत्रों के साथ 823 सरकारी टैंक और 161 निजी टैंक है।
    2. मछली का वार्षिक उत्पादन अनुमानित 2500 एमटी, लगभग 25 करोड़ रुपये से कम नहीं है।
    3. मोतीहारी शहर में मोतीझील और कररिया झील में मत्स्य विकास योजनाओं और इसके आसपास के क्षेत्र में मछली उत्पादन के लिए उपयुक्क्त झील बनाने के लिए विश्व बैंक के 19 करोड़ वित पोषित किया।

अन्य प्रावधान

2) धारा-14 (विषेष न्यायालय की व्यवस्था) के अंतर्गत इस अधिनियम के तहत चल रहे मामले को तेजी से ट्रायल विचारण के लिये विषेष न्यायालय की स्थापना का प्रावधन किया गया है। इससे फैसले में विलम्ब नहीं होता है। और पीड़ित को जल्द ही न्याय मिल जाता है। धारा 15 के अनुसार इस अधिनियम के अधीन विषेष न्यायालय में चल रहे मामलों को तेजी से संचालन के लिये एक अनुभवी लोक अभियोजक सरकारी वकील नियुक्त करने का प्रावधन है। धारा 17 के तहत इस अधिनियम के अधीन मामलों से संबंधित जांच पड़ताल डी.एस.पी स्तर का ही कोई अधिकारी करेगा कार्यवाही करने के लिये पर्याप्त आधार होने पर वह उस क्षेत्र को अत्याचार ग्रस्त घोषित कर सकेगा तथा शांति और सदाचार बनाये रखने के लिए सभी आवश्यक उपाय करेगा तथा निवारक कार्यवाही कर सकेगा। धारा 18 के तहत इस अधिनियम के तहत अपराध करने वालें अभियुक्तों को जमानत नहीं होगी।

3) धारा -21 (1) में कहा गया है कि इस अधिनियम के प्रभावी ढंग से कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकार आवश्यक उपाय करेगी। (2) (क) के अनुसार पीड़ित व्यक्ति के लिये पर्याप्त सुविधा एवं कानूनी सहायता की व्यवस्था की गई है। (ख) इस अधिनियम के अधीन अपराध के जांच पड़ताल और ट्रायल विचारण के दौरान गवाहों एवं पीड़ित व्यक्ति के यात्रा भता और भरण-पोष्णण के व्यय की व्यवस्था की गई है। (ग) के अन्तर्गत सरकार पीड़ित व्यक्ति के लिये आर्थिक सहायता एवं सामाजिक पुनर्वास की व्यवस्था करेगी। (घ) के अनुसार ऐसे क्षेत्र की पहचान करना तथा उसके लिये समुचित उपाय करना जहां अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों पर अत्यधिक अत्याचार होते हैं। अधिनियम की धारा 21 (3) के अनुसार केन्द्र सरकार राज्य सरकार द्वारा अधिनियम से संबंधित उठाये गये कदमों एवं किये गये उपायों में समन्वय के लिए आवश्यकतानुसार सहायता करेगी। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1995 यह नियम अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 का ही विस्तार हैं। अधिनियम के अधीन दर्ज मामलों को और अधिक प्रभावी बनानें तथा पीड़ित व्यक्ति कोत्वरित न्याय एवं मुआवजा दिलाने के लिये अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण नियम 1995 पारित किया गया है।

4) धारा 5 (1) थाना में थाना प्रभारी को सूचना संबंधी - इसके अनुसार अधिनियम के तहत किये गये अपराध के लिये प्रत्येंक सूचना थाना प्रभारी को दिये जाने को प्रावधन हैं। यदिसूचना मौखिक रूप से दी जाती है। तो थाना प्रभारी उसे लिखित में दर्ज करेंगे लिखित बयान को पढ़कर सुनायेंगे तथा उस पर पीड़ित व्यक्ति काहस्ताक्षर भी लेंगे। थाना प्रभारी मामलों को थाना के रिकार्ड में पंजीकृत कर लेगें (2) उपनियम के तहत दर्ज एफ.आई.आर. लेने से इन्कार करते हैं तो पीड़ित व्यक्ति इसे रजिस्ट्री द्वारा एस.पी. को भेज सकेगा। की एक कॉपी पीड़ित को नि:शुल्क दिया जायेगा। (3) अगर थाना प्रभारी एफ.आई.आर लेने से इन्कार करते हैं तो पीड़ित व्यक्ति इसे रजिस्ट्री द्वारा एस. पी. को भेज सकेगा। एस.पी. स्वयं अथवा डी.एस.पी. द्वारा मामलें की जांच पड़ताल करा कर थाना प्रभारी को एफ.आई.आर.ज करने का आदेश देंगे।

5) धारा 6 के अनुसार डी.एस.पी. स्तर का पुलिस अधिकारी अत्याचार के अपराध की घटना की सूचना मिलते ही घटना स्थल का निरीक्षण करेगा तथा अत्याचार की गंभीरता और सम्पति की क्षति से संबंधित रिर्पोट राज्य सरकार को सौंपेगा।

6) धारा 7 (1) के तहत इस अधिनियम के तहत कियें गये अपराध की जांच डी.एस.पी. की नियुक्ति राज्य सरकार/डी.जी. पी. अथवा एस.पी. करेगा। नियुक्ति के समय पुलिस अधिकारी का अनुभव, योग्यता तथा न्याय के प्रति संवेदनशीलता का ध्यान रखा जायेगा। जांच अधिकारी डी.एस.सी. शीर्ष प्राथमिकता के आधर पर घटना की जांच कर तीस दिन के भीतर जांच रिपोर्ट एस.पी. के सौपेगा। इस रिपोर्ट को एस.पी. तत्काल राज्य के डी.जी.पी. को अग्रसारित करेंगे।

7) धारा 11 (1) में यह प्रावधन किया गया हैं कि मामले की जांच पडताल, ट्रायल विचारण एवं सुनवाई के समय पीड़ित व्यक्ति उसे गवाहों तथा परिवार के सदस्रूों को जांच स्थल अथवा न्यायालय जाने आने का खर्च दिया जायेगा। (2) जिला मजिस्ट्रेट/एस.डी.एम. या कार्यपालक दंडाधिकारी अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति और उसके गवाहों के लिये न्यायलय जाने अथवा जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत होने के लिये यातायात की व्यवस्था करेगा अथवा इसका लागत खर्च भुगतान करने की व्यवस्था करेगा।

8) धारा 12 (1) में कहा गया है कि जिला मजिस्ट्रेट और एस.पी. अत्याचार के घटना स्थल की दौरा करेंगे तथा अत्याचार की घटना का पूर्ण ब्यौरा भी तैयार करेंगे। (3) एस.पी. घटना के मुआवजा करने के बाद पीड़ित व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करेंगे तथा आवश्यकतानुसार उस क्षेत्र में पुलिस बल की नियुक्ति करेंगे। (4) के अनुसार डी.एम./एस.डी.एम. पीड़ित व्यक्ति तथा उसके परिवार के लिये तत्काल राहत राशि उपलब्ध करायेंगे साथ ही उचित मानवोचित सुविधा प्रदान करायेंगे।

आज दलितों को भार में जो भी अधिक मिल है उनकी पृष्ठभूमि इसी शासन की देन थी। यूरोप में हुए पुर्नजागरण और ज्ञानोदय आंदोलनों के बाद मानवीय मूल्यों का महिला मंडन हुआ। यही मानवीय मूल्य यूरोप की क्रांति के आदर्श बने। इन आदर्शो की जरिए ही यूरोप में एकऐसे समजा कीरचना की गई जिसमें मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता दी गई। ये अलग बाद है कि औद्योगिककरण के चलते इन मूल्यों की जगह सबसे पहले पूंजी ने भी यूरोप में ली। लेकिन इसके बावजूद यूरोप में हीसबसे पहले मानवीय अधिकारों को कानूनी मान्यता दी गई। इसका सीधा असर भारत पर पड़ना लाजमी था और पड़ा भी। इसका सीधा सा असर हम भातर के संविधन में देख सकते हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना से लेकर सभी अनुच्देद इन्हीं मानवीय अधिकारों की रक्षा करते नजर आते हैं। भारत में दलितों की कानूनी लड़ाई लड़ने का जिम्मा सबसे सशक्त रूप में डॉ0 अम्बेडकर ने उठाया। डॉ0 अम्बेडकर दलित समाज के प्रणेता है। बाबा साहब अंबेडकर ने सबसे पहले देश मे दलितों के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों की पैरवी की। साफ दौर भारतीय समाज के तात्कालिक स्वरूप का विरोध और समाज के सबसे पिछड़े और तिरस्कृत लोगों के अधिकारों की बात की। राजनीतिक और सामाजिक हर रूप में इसका विरोध स्वाभाविक था। यहां तक ही महत्मा गांधी भी इन मांगों के विरोध में कूद पड़े। बाबा साहब ने मांग की दलितों को अलग प्रतिनिधित्व पृथक निर्वाचिका मिलना चाहिए यह दलित राजनीति में आज तक की सबसे सशक्त और प्रबल मांग थी। देश की स्वतंत्राता का बीड़ा अपने कंधे पर मानने वाली कांगेंस की सांसे भी इस मांग पर थम गई थी। कारण साफ था समाज के ताने बाने में लोगों का सीधा स्वार्थ निहित था। और कोई भी इस बाने बाने में जरा सा भी बदलाव नहीं करना चाहता था। महात्मा गांधी जी को इसके विरोध की लाठी बनाया गई और बैठा दिया गया आमरण अनशन पर। आमरण अनशन वैसे ही देश के महात्मा के सबसे प्रबल हथियार था और वो इस हथियार को आये दिन अपनी बातों को मनाने के लिए प्रयोग करते रहते थे। बाबा साहब किसी भी कीमत पर इस मांग से पीछे नहीं हटना चाहते थे वो जानते कि इस मांग से पीछे हटने का सीधा सा मतलब था दलितों के लिए उठाई गई सबसे महत्वपूर्ण मांग की खिलाफ में हामी भरना। लेकिन उन पर चारों ओर से दबाव पड़ने लगा। और अंतत: पूना पैक्ट के नाम से एक समझौते में दलितों के अधिकारों की मांग को धर्म की दुहाई

देकर समाप्त कर दिया गया। इन सबसे बावजूद डॉ0 अम्बेडकर ने हार नहीं मानी और समाज के निचले तबको के लोगों की लड़ाई जारी रखी। अंबेडकर की प्रयासों का ही ये परिणाम है। कि दलितों के अधिकारों को भारतीय संविधान में जगह दी गई। यहां तक कि संविधन के मौलिक अधिकारों के जरिए भी दलितों के अधिकारों की रक्षा करने की कोशिश की गई।

संदर्भ

1. Data Highlights : The Scheduled Castes Census of India 2001 (PFD) Censusindia.gov.in ukekywe izkpyA accesdate = की उपेक्षा की गयी। (access-date = सुझावित है) (enn)
2. Paswan – Encyclopedia from Isrg Ranjan. Paswan Samaaj. 2ITI.
3. Article 342 in The constitution of India 1949. Indiankanon.org.
4. Scheduled Caste and Scheduled Tribe (Prevention of Atrociaties) Act, 1989.
5. संक्षिप्त शब्द सागर-रामचंद्र वर्मा संपादक, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, नवम संस्करण, 1987 पृष्ठ 468
6. From Buddhist texts to East India company to now, Dalit has come a long way – Times of India. The Time of India. अभिगमन तिथि 1 मार्च 2019
7. कितना सच हुआ दलितों के लिए भीमराव अंबेडकर का सपना ? दा इंडियन वायर
8. भारतीय दलित आंदोलन : एक संक्षिप्त इतिहास लेखक, मोहनदास नैमिशराय, बुक्स फॉर चेन्ज, आई0एस0बी0एन
9. तकि बचा रहे लोकतन्त्र, लेखक - रवीन्द्र प्रभात, प्रकाशक-हिन्द युग्म, 1 जिया सराय, हौज खास नई दिल्ली 110016, भारत वर्ष 2011 आई एस बी एन 8191038587 आई एस बी एन 9788191038583
10. छलित साहित्य के प्रतिमान : डॉ0 एन0 सिंह0 प्रकाशक : वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 110002, संस्करण : 2012
11. मनसरोवर : प्रकाशक : हंस बुक डिपो, इलाहाबाद-3

भीष्म साहनी का व्यक्तित्व और उनका जीवन-दर्शन

डॉ० आमोद कुमार

एम० ए० (हिन्दी), पी-एच० डी०, पोस्ट- डॉक्टोरल रिसर्च स्कॉलर
विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग, बी०आर०ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

उच्च कोटि के कथाकार और नाटककार भीष्म साहनी का जीवन विलक्षण विषमताओं का केन्द्र-विन्दु है। उनके व्यक्तित्व में जहाँ सात्विकता है वहाँ उनका जीवन-दर्शन समाज-प्रेम, राष्ट्र-भक्ति और मानवता की भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित दिखता है। जिन दिनों भारतवासी स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए अँग्रेजों से संघर्ष कर रहे थे, उन्हीं दिनों रावलपिण्डी के एक आर्यसमाजी सम्भ्रान्त परिवार में 8 अगस्त 1915 ई0 को उनका जन्म हुआ था। इस समय कुछ महापुरुषों द्वारा देश में सुधारवादी आन्दोलन चलाये जा रहे थे। राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म-समाज' की, देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने 'तत्त्वबोधिनी सभा' की, केशवचन्द्र सेन ने 'प्रार्थना-समाज' की तथा दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य-समाज' की स्थापना कर हिन्दू-समाज में सुधार लाने का प्रयत्न किया। सती-प्रथा, बाल-विवाह जैसी सामाजिक बुराइयों को रोकने के लिए तथा जन-मानस से रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को समाप्त करने के लिए एक आन्दोलन खड़ा हो गया। भीष्म साहनी का परिवार कटर आर्यसमाजी और हिन्दू रीति-नीति का समर्थक था जिसका प्रभाव बालक भीष्म पर पड़ना स्वाभाविक ही था।

भीष्म साहनी की स्वोक्ति है -- 'बहुत कुछ है जो अपने बचपन से हम संस्कारस्वरूप ग्रहण करते हैं, ज्यों-ज्यों बालक अपने परिवेश पर आँखें खोलता है त्यों-त्यों कुछ वह देखता-सुनता है, वही संस्कार बनता जाता है। आकाश की नीलिमा, ठंढ़ी हवा के झोंके, गली में घूमते भिखारियों की आवाजें, जहाँ कहीं कोई-सी घटना दिल की अथक चेतना को छू जाती है, वहीं अपनी छाप छोड़ जाती है। इसके अतिरिक्त बचपन में माता-पिता और घर के परिवेश का असर बहुत गहरा पड़ता है। मैंने जिस माहौल में आँख खोली वह 'ठहरा' हुआ दौर नहीं था। उसमें हलचल थी। नये-नये विचार समाज को आन्दोलित कर रहे थे। मेरे पिताजी आर्यसमाजी विचारों के थे। घर के अन्दर सदा समाज-सुधार की चर्चा चलती रहती। दूसरी ओर स्वतंत्रता-आन्दोलन भी जोर पकड़ रहा था। जलसे-जुलूसों का जमाना था। भावनात्मकता से भरा वातावरण हमारे चारों ओर था। उसका प्रभाव मुझ पर और मेरे लेखन पर जरूर पड़ा है।'[1]

भीष्मजी बचपन में वे बहुत अधिक रुग्ण रहा करते थे। उन दिनों उनमें इतनी चपलता और उद्दनता थी कि उनसे सारा परिवार तंग रहा करता था। यदा-कदा वे यत्र-तत्र भटक जाते थे और किसी-किसी तरह घर पहुँच पाते थे। उन्हें ताँगे पर चढ़ने का बड़ा ही शौक था। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं ही कहा है -- 'ताँगे पर नहीं चढ़ता तो गलियों में घूमता। जहाँ मन जाता, निकल जाता और अक्सर रास्ता भटक जाता। पिता जी ने मेरे गले में पीतल का एक गोल-सा पतरा लटका रखा था जिस पर पिताजी का नाम और पता अंकित था। रास्ता भटक जाने पर जब किसी को सड़क पर डोलता नजर आता तो कोई-न-कोई खुदातर्स गोद में उठाकर घर छोड़ जाता।'[2]

भीष्मजी की प्रारंभिक शिक्षा रावलपिण्डी में ही हुई। विद्यालय में अपनी पृथक् पहचान बनाने के लिए वे अच्छे-से-अच्छे वस्त्र धारण करते थे। कला और साहित्य में उन्हें काफी अभिरुचि थी। आरंभ में पढ़ने-लिखने में उनका मन नहीं लगता था, मगर पिताजी के प्रयास से पढ़ाई-लिखाई में उनका मन लगने लगा। सुदर्शन और प्रेमचन्द की रचनाओं को तो वे बड़े चाव से पढ़ते ही थे, पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियों को भी अपने पिताजी से सुन चुके थे।

किशोर भीष्मजी जाति-पाँति और छुआछूत की भावना से दूर रहते थे। तभी तो उनके आर्यसमाजी परिवार में भी उनके मुसलमान दोस्तों का आना-जाना शुरू हो गया जिसे उनका परिवार पसन्द नहीं करता था।

इप्टा से जुड़ जाने पर वे जगह-जगह नाटकों का मंचन करने लग गये थे और स्वयं भी अभिनय करते थे। उनके द्वारा लिखित उपन्यास पर जब फिल्म बना तो उसमें उन्होंने भी अभिनय किया। फिल्म के निर्देशक गोविन्द निहलानी ने उनकी अभिनय-कला की प्रशंसा करते हुए कहा है -- 'जहाँ तक भीष्मजी द्वारा 'तमस' में अभिनय करने की बात है, तो जब मैंने उपन्यास पढ़ा और सरदार हरनाम सिंह का चरित्र पढ़ा तो मुझे लगा कि भीष्मजी इस किरदार को बखूबी निभा पायेंगे क्योंकि उस चरित्र में एक सादापन था; जिसे कहते हैं न पैदाइशी ईमानदारी, वह थी और भीष्मजी में ये सारी बातें मुझे दिखाई दीं। उनकी आँखों में, आवाज में मुझे ईमानदारी दिखी। इसलिए मैंने उन्हें चुना । जब हम सूटिंग कर रहे थे तो मेरा अंदाजा सही निकला। बेहद स्वाभाविक अभिनय किया उन्होंने । उनकी 'परफार्मेन्स' ऐसी थी कि वह पूरी 'यूनिट' को 'टच' करते थे।'[3]

किशोर भीष्म साहनी बड़े ही संवेदनशील व्यक्ति थे। एक दिन उन्होंने एक असहाय और निरीह युवती को सड़क पर भटकते देखा। वह देखने में तो सुन्दरी थी ही, उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में भी गजब का सौन्दर्य था। पास के अस्पताल के बरामदे पर एक बीमार युवक बैठा था। ये दोनों ही गाँव से भागकर यहाँ आये थे। इन दोनों को देखकर कुछ युवक इन पर फब्तियाँ कस रहे थे। इन्हें ठहरने के लिए कोई स्थान नहीं मिल पा रहा था। इस घटना से प्रभावित होकर भीष्मजी ने अपनी पहली कहानी 'नीली आँखें' लिखी जो 'हंस' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई और इस कहानी के माध्यम से उन्हें एक अच्छे साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली।

अपने पिताजी के आदेश पर उन्हें व्यापार में लगना पड़ा, मगर अँग्रेजी विषय से एम0 ए0 पास भीष्मजी का मन व्यापार में न लगा। इसी समय उन्हें अम्बाला के डी0 ए0 वी0 कॉलेज में प्राध्यापक के पद पर कार्य करने-हेतु पत्र मिला। अब एक ही साथ वे तीन काम करने लग गये -- व्यापार, अध्यापन और नाटक-मंचन।

सच्चा कलाकार या साहित्यकार सामाजिक प्राणी होता है जिस पर विभिन्न सामाजिक गतिविधियों का प्रभाव पड़ता ही है। उन दिनों देश को स्वतंत्र करने के लिए काँग्रेस ने आन्दोलन छेड़ रखा था। भीष्म साहनी ने भी इस आन्दोलन में जमकर भाग लिया। देश को दो टुकड़ों में बँटते हुए भी उन्होंने अपनी आँखों देखा था। देश-विभाजन के क्रम में जो हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए उसमें बहुत-से लोग मारे गये, घायल हुए जगह-जगह आगजनी की घटनाएँ हुईं। इन सबका बड़ा ही सजीव चित्र भीष्म साहनी ने अपने उपन्यासों में उकेरा है। 'उनका 'तमस' जहाँ हिन्दू-मुस्लिम दंगे और अँग्रेजी हुकुमत की दोगली नीति का पर्दाफाश करता है, वहाँ 'म"यादास की माड़ी' में उस कालखण्ड में हो रहे हिन्दुस्तानी चरित्र में लीपा-पोती का जीता-जागता दस्तावेज है।'[4] दंगे के समय भीष्म जी अपने अग्रज वलराज साहनी के बम्बई स्थित मकान में सपरिवार रहने लगे। यहीं इप्टा से जुड़ जाने पर उन्होंने काँग्रेस से इस्तीफा दे दिया और कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर ली। वे अब पूर्णत: समाजोन्मुखी बन गये। कम्युनिस्ट पार्टी में उनकी गतिविधियों को देखकर कई बार पुलिस उनके पीछे पड़ गयी थी।

इसी बीच उनकी पत्नी शीला साहनी को जालंधर में नौकरी मिल गयी। फिर दिल्ली में भी उन्हें नौकरी मिल गयी। अब भीष्म साहनी अपनी पत्नी के साथ दिल्ली में ही रहने लग गये। यहीं वे प्रगतिशील आन्दोलन से जुड़े थे।

भीष्मजी को कई देशों के भ्रमण का सुअवसर मिला जिनसे उन्हें भाँति-भाँति के अनुभव प्राप्त हुए। जब रूस से लौटकर वे भारत आये तो उन्हें पुन: दिल्ली में प्राध्यापक के पद पर नौकरी करने लगे। यहाँ प्रगतिशील आन्दोलन में जोर-शोर से कार्य करने लगे जिससे उक्त आन्दोलन को एक नई ऊर्जा मिली। उनके अथक प्रयास और परिश्रम के कारण ही देश के विभिन्न भागों में प्रगतिशील लेखक-संघ की अनेक शाखाएँ स्थापित हुईं। उनकी विषेष अर्हता को देखते हुए ही भाषा-विभाग पंजाब ने उन्हें 'साहित्य शिरोमणि' के अलंकार से विभूषित किया और 'तमस' उपन्यास पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति स्वाभाविकता के धरातल पर बड़े ही कलात्मक ढंग से हुई है।

इस प्रकार भीष्म साहनी का व्यक्तित्व और उनका जीवन-दर्शन बड़ा ही आदर्श कहा जा सकता है।

सन्दर्भानुक्रम -

1. राजेश्वर सक्सेना प्रताप ठाकुर -- भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, तृ0 सं0, वाणी प्रकाशन, दरियागज, नई दिल्ली, पृ0 सं0 09.
2. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर -- भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, तृ0 सं0, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, पृ0 सं0 50.
3. वही, पृ0 सं0 39.
4. विवेक द्विवेदी -- भीष्म साहनी : उपन्यास साहित्य, द्वि0 सं0, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, पृ0 सं0 27-28.

क्रांतिकारी आंतकवादी आन्दोलनः एक सर्वेक्षण

अरविन्द कुमार सिंह

शोध अध्येता, स्नातकोत्तर, इतिहास विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवाद के साथ-साथ क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन का विकास हुआ। दोनों के उद्‌भव के कारण एकसमान थे। भेद केवल यह था कि क्रांतिकारी शीघ्र परिणाम चाहते थे। वे उदारवादी दल के प्रेरणा (Persuationद्ध और उग्रवादियों के धीमे-प्रभाव (two-grade pressure) में विश्वास नहीं करते थे। क्रांतिकारी यह विश्वास करते थे कि राष्ट्रीय जीवन में जो भी उपयुक्त तत्व है जैसे कि धार्मिक और राजनीति स्वतंत्रताएँ, नैतिक मूल्य तथा भारतीय संस्कृति, उन सभी को विदेशी शासन समाप्त कर देगा।

कांग्रेस के उदारवादी नेताओं ने शुरू से ही संवैधानिक और प्रशासनिक सुधारों की मांग सरकार के सामने रखी। परन्तु सरकार ने उनपर ध्यान नहीं दिया। 1892 का भारत परिषद अधिनियम भारतीयों को संतुष्ट नहीं कर सका। 1895 के प्रेस कानून से भी नराजगी थी। अंग्रेजों की नीति शुरू से ही प्रतिक्रियावादी और दमन की थी। यद्‌यपि 1858 के बाद निरन्तर कानून के शासन की बात की जा रही थी लेकिन भारतीयों के प्रति अविश्वास और प्रजातीय विभेद की नीति अपनायी गयी। चाहे विधान परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या बढ़ाने की बात हो, चाहे आई0सी0एस0 परीक्षा में भारतीयों के लिए उम्र सीमा बढ़ाने की बात हो। उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक का काल अकाल, प्लेग जैसी महामारी का काल था, परन्तु सरकार द्वारा पर्याप्त राहत नहीं पहुँचायी गयी। अंग्रेज भारतीय संस्कृति को हेय दृष्टि से देखते थे। उन्नीसवीं सदी के सांस्कृतिक पुनः-जगरण, आर्यसमाजी आन्दोलन ने हिन्दू संस्कृति, वैदिक संस्कृति पर बल दिया और गुलामी की जंजीर तोड़ने की बात कहीं। पाश्चात्य संस्कृति के साथ असहयोग की बात की एवं राष्ट्रीयता की भावना को विकसित किया। विवेकानन्द ने सारे विश्व को वेदान्त का ऋणी बताया। उन बातों ने भारतीयों के आत्मगौरव को बढ़ाया।

उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के आरम्भ में हुई कुछ घटनाओं ने यूरोपियों की अजेयता के सिद्धान्त की अवधारणा को तोड़ा। अबीसीनिया के हाथों इटली की हार, रूस-जापान युद्ध में रूस की हार, चीन में बॉक्सर युद्ध, मिस्र, तुर्की आदि जगहों में हो रहे स्वतंत्रता संग्राम से भारतीय प्रभावित हुए। यह भावना उभरने लगी कि बात है कि विश्व में सर्वत्र अग्रेजों निरोध हो रहा है तो यहाँ सहयोग क्यों किया जाए।

गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन के द्वारा अपनायी गयी नीतियों से भी मध्यम वर्ग आहत हुआ। कलकत्ता नगर निगम अधिनियम, कलकत्ता विश्वविद्यालय अधिनियम, दिल्ली दरबार का आयोजन से लोग नाखुश थे। 1905 में बंगाल विभाजन की घोषणा को लोगों ने राष्ट्रीय विपत्ति माना और लोगों में घोर निराशा भर गयी।

विदेशी प्रमुल्न से भारत को स्वतंत्र कराने की प्रेरणा उन्हें इस बात से भी मिली कि सन् 1907 में सन् 1857 के महान् विद्रोह की अर्द्धशताब्दी होनेवाली थी।

क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन को दो चरणों में बाँटा जा सकता है- (i) बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से प्रथम विश्वयुद्ध तक, और (ii) बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक से बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक के दौरान। प्रथम चरण में क्रांतिकारियों के उद्देश्य

थे- ''भारत की पूर्ण आजादी''। क्रांतिकारी अलोकप्रिय अधिकारियों के हिंसा के हिमायती थे। इस चरण में वे व्यक्तिगत हिंसा पर बल देते थे। वे लोग शासन स्वरूप पर एकमत नहीं थे। उनके शासन स्वरूप में धार्मिक पुट शामिल था। द्वितीय चरण में इनके उद्देश्य प्रथम चरण की भाँति पूर्ण आजादी ही बना रहा। इस चरण के क्रांतिकारी जनशक्ति में विश्वास करते थे। वे सामूहिक हिंसा के हिमायती थे। उनपर लेनिन का प्रभाव था। शासन स्वरूप में वे धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद के पक्षधार थे।

1918 की विद्रोह समिति की रिपोर्ट (Sedition Committee Report) में कहा गया कि भारत में क्रांतिकारी आन्दोलन का पहला आभास महाराष्ट्र में मिलता है विषेषकर पूना के चितपावन ब्राह्मणों में। यूरोपियों की प्रथम राजनैतिक हत्या 22 जून, 1897 को पूना में चापेकर बन्धु-दामोदर चापेकर और बालकृष्ण चापेकर द्वारा की गयी। जिसमें पूना प्लेग समिति के अध्यक्ष श्री रैण्ड़ तथा लेफ्टिनेन्ट एयर्स्ट मारे गये। बम्बई और पूरे महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आन्दोलन जोर पकड़ा गणेश दामोदर सावरकर ने ''लघु अभिनव भारत मेला'' में कुछ विद्रोही कविताएँ छापी थी। गणेश सावरकर के कुछ दोस्तों ने नासिक के जिला जज जैक्सन की गोली मारकर हत्या की।

बंगाल के क्रांतिकारियों ने सबसे पहले अनुशीलन समितियों (1902) की स्थापना की। जहाँ नवयुवकों को राजद्रोहात्मक सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती थी और शारीरिक प्रशिक्षण दिया जाता था। इन समितियों के चलते बंगाल में क्रांतिकारी आन्दोलन जोर-शोर से चला। 30 अप्रैल,1906 को मुजफ्फरपुर (आधुनिक बिहार) में क्रांतिकरियों ने जिला जज किंग्सफोर्ड, की हत्या का प्रयास किया गया। यह काम खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को सौपा गया। परन्तु बमवारी में गलती से दो यूरोपियन महिलाएँ मारी गयी। प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस पकड़े गये। चाकी ने आत्महत्या कर ली परन्तु बोस को फाँसी दी गयी। कुछ दिनों बाद बंगाल में मानिकतला के पास बम बनाने का कारखाना मिला जिसमें वारीन्द्र घोष, उल्लासकरदत्त, उपेन्द्रनाथ बनर्जी, कन्हाईलाल दत्त आदि को फाँसी दी गयी।

पंजाब में क्रांतिकारियों के आन्दोलन का नेतृत्व अजीत सिंह और सैफ्यद हैदर ने किया। इन्होंने ''भारतीय देशभक्त'' (1902) नामक सभा का गठन किया। इनलोगों को लाला लाजपतराय का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। ब्रिटिश सरकार ने लाजपतराय और अजीत सिंह को देश से निर्वासित कर दिया।

दिसम्बर,1912 में लार्ड हार्डिंग के दिल्ली प्रवेश के समय चाँदनी चौक में बम मारा गया जिसमें वे बाल-बाल बचे।

प्रथम चरण में क्रांतिकारियों द्वारा विदेशों में भी संगठनों का निर्माण किया गया। श्यामजी कृष्ण वर्मा लन्दन में इन्द्रिया होमरूल सोसायटी (1905) की स्थापना की वीर सावरकर, मैडम कामा, अजीत सिंह जैसे लोग इससे सम्बद्ध थे।

लालाहरदयाल, सोहन सिंह आदि ने 1 नवम्बर,1913 को कैलिफोर्निया में ''हिन्दुस्तान एसोसिएशन ऑफ द पैसिफिक कोस्ट'' का गठन किया जो गदर पार्टी के नाम से विख्यात हुई। 1909 में मदनलाल ढ़ीगरा ने कजंन वायली की हत्या की। रासबिहारी बोस जापान में भारतीय स्वतंत्रता के लिए गुप्त समितियों से बात चला रहे थे।

क्रांतिकारी आन्दोलन के विदेश गमन के मुख्य उद्देश्य थे-

i) ब्रिटिश विरोधी राष्ट्रों से सहयोग प्राप्ति की उम्मीद।
ii) वे अस्त्र-शस्त्र का बेहतर प्रबन्धन कर सकेंगें।
iii) पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से क्रांतिकारी विचारों का प्रश्रय।

क्रांतिकारी आन्दोलन के विदेश गमन के प्रभाव:-

i) विदेश प्रवास के दौरान उसकी दृष्टि धर्मनिरपेक्ष होती गयी।
ii) उसका साम्राज्यवादी दृष्टिकोण विकसित हुआ।
iii) उसके संघर्ष का दायरा व्यापक हुआ। आयरिश और रूसी विद्रोहियों से उसका सम्पर्क हुआ।
iv) वे अन्तराष्ट्रीय एवं साम्यवादी आन्दोलन के प्रभाव में आये।

प्रथम विश्वयुद्ध की शुरूआत होने से क्रांतिकारी आन्दोलन लगभग शांत रहा। इसके दो प्रमुख कारण थे- (i) कांग्रेस में उग्रवादी और उदारवादी तत्वों के बीच समझौता हो गया। फलत: उग्रवादी शांत रहे और क्रांतिकारी घटनाएँ दब गयीं। (ii) 1917 ई0 में महात्मा गाँधी के पदार्पण से भारतीय रानीति में एक नया मोड़ आया। अब गाँधी ही राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गए और दूसरे राजनीति दलों का प्रभाव काँफी हद तक घट गया।

क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन का दूसरा चरण सन् 1922 से 1935 तक दिखाई पड़ता है। असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद सारे देश में निराशा भर गयी। कांग्रेस के बाहर कुछ लोगों को लगा कि अहिंसक सत्यग्रह द्वारा गाँधी स्वराज लाने में सक्षम नहीं है। स्वराज के लिए अंग्रेजी राज्य पर सीधा प्रहार किया जाए। इसके लिए हिंसा, बम-पिस्तौल को आधार बनाया जाए। पुराने क्रांतिकारियों-सचिन सन्याल, योगेश चटर्जी आदि ने बताया कि पुनः आतंकवादी आन्दोलन चलाया जाए एवं गाँधी का विकल्प बनाया जाए। रूस में हिंसा के बल पर साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई थी। इस घटना ने वामपंथियों को काफी हद तक प्रेरित किया। इनका एक तबका रूसी विचारधारा को उसी रूप में यहाँ लाना चाह रहा था और इसी गुट से क्रांतिकारी आ रहे थे।

1924 में सचीन सन्याल एवं योगेश चटर्जी ने कानपुर में ''हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन'' का गठन किया। इसमें भगत सिंह सहित कई नौजवान शामिल हुए। हिंसा के द्वारा स्वराज चाहने वाले कई लोग इससे जुड़े। यथा-चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, रौशन सिंह, राजेन्द्र लाहिड़ी आदि। ये गाँधीवादी राजनीति के आलोचक थे। हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन को सामूहिक हिंसा के लिए धन की आवश्यकता थी। अत: उन्होंनें धन के लिए डकैतियाँ (सरकारी खजाना लूटना आदि) डालनी शुरू की। लखनऊ के पास काकोरी में सरकारी खजाना लूटने का प्रयास किया गया (9 अगस्त,1925)। पुलिस ने कई क्रांतिकारियों को पकड़ा। जिनमें रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्ला खाँ, राजेन्द्र लाहिड़ी, रौशन सिंह को फाँसी दे दी गयी। कइयों को आजीवन कारावास दिया गया। एसोसिएशन की शाखाओं को प्रतिबंधित कर दिया गया। सचीन सन्याल, योगेश चटर्जी भूमिगत हो गये। भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद जैसे कुछ लोग बच गए।

भगत सिंह ने क्रांतिकारी गतिविधियों को एक नये रूप में भारत में लाने का प्रयास किया। वे छोटी मोटी हिंसा के विरोधी थे। वे जनहिंसा के समर्थक थे तथा जनहिंसा द्वारा ही सामजिक परिवर्तन के समर्थक थे।भगत सिंह पर कार्ल मार्क्स विषेषकर लेनिन का प्रभाव था। वे सम्पूर्ण जनता में हिंसा के प्रति जागृति पैदा करना चाहते थे। भगत सिंह महात्मा गाँधी की तरह जनशक्ति में विश्वास करते थे। लेकिन वे जनशक्ति का प्रयोग हिंसक और अहिंसक दोनों रूप में करने को इच्छुक थे। जबकि गाँधीजी सदैव अहिंसा के समर्थक थे। भगत सिंह लगातार संघर्ष के हिमायती थे जबकि गाँधी संघर्ष के बीच में पड़ाव को भी जरूरी मानते थे। दोनों समाज में परिवर्तन चाहते थे। इनके बीच मतभेद सिर्फ ''तरीका (प्रक्रिया)'' को लेकर था। भगत सिंह एक ही साथ दो स्तर पर संघर्ष करना चाहते थे-(क) अंग्रेजी शासन के विरूद्ध वे सरकार के साथ किसी भी समझौता के विरोधी थे। उनका उद्देश्य था- ''पूर्ण स्वराज की प्राप्ति''। (ख) भारतीय पूँजीपति वर्ग को उखाड़ फेकने का आध्वान उन्होंने किया। महात्मा गाँधी साम्रज्यवाद के साथ संघर्ष चाहते थे परन्तु वे वर्ग सहयोग के हिमायती थे जबकि भगत सिंह वर्ग संघर्ष, सर्वहारा शासन के समर्थक थे। भगत सिंह पर मार्क्सवाद का प्रभाव था लेकिन उन्होंनें ''अन्राष्ट्रीय साम्यवाद'' के अपना लक्ष्य नहीं बनाया। उनका मानना था कि ''जब हमारा देश पराधीन है जो हम अन्रीष्ट्रवाद की बात क्या करें।''

भगत सिंह ने अपने विचारों को क्रियान्वित करने के लिए कराँची में भारतीय नौजवान सभा (1926) का गठन किया। जिसका उद्देश्य था- किसानों, मजदूरों के बीच क्रांतिकारी आतंवादी भावना का विस्तार। इसमें भगत सिंह को यशपाल का समर्थन मिला। सितम्बर,1928 में भगत सिंह ने भारतीय नौजवान सभा को पुन:-जीवित किया। चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, सुखदेव, भगवतीचरण बोहरा, फणीन्द्रनाथ घोष (बिहार के साम्यवादी नेता) आदि ने मिलकर फिरोजशाह कोटला मैदान में ''हिन्दुस्तान सोशिलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन'' की स्थापना की। भगवतीचरण बोहरा ने फिलाँसफी ऑफ बम लिखकर इसको सैद्धान्तिक आधार दिया। इस संगठन का उद्देश्य था (i) समाजवादी राज्य की स्थापना करना एवं व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करना। (ii) यह परिवर्तन किसी भी विधि से आये। यदि अहिंसक हो तो और भी अच्छा है। (iii) वे रूसी पैटर्न पर आधारित समाज चाहते थे। वे लेनिन की तरह जनशक्ति को संगठित कर भारत में आन्दोलन चलाना चाहते थे।

1927-28 में जब साइमन कमीशन भारत आया तब क्रांतिकारियों ने जोरदार विरोध किया। लाहौर में सहायक पुलिस कप्तान साण्डर्स ने लाला लाजपत राय पर लाठियाँ बरसाई जिससे उनकी मृत्यु हो गयी। क्रांतिकारियों ने साण्डर्स की हत्या कर दी (17 दिसम्बर,1928)।

8 अप्रैल,1929 को दिल्ली में केन्द्रीय विधानसभा भवन में ''पब्लिक सेफ्टी बिल'' तथा ''ट्रेड़ डिस्प्यूट बिल'' पर बहस चल रहा था। तब भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने खाली बेंचों पर कम क्षमता वाला बम मारा और गिरफ्तार हो गये। उनकी इच्छा किसी की हत्या करने की नहीं थी। वे केवल फाँसीसी विप्लवकारियों के उस कथन को सत्य करना चाहते थे कि बधिरों को सुनाने के

लिए अत्यधिक कोलाव्ल करना पड़ता है। दोनों पर लाहौर में मुकदमा चलाया गया। बाद में भगत सिंह का नाम साण्डर्स हत्याकाँड से जोड़ दिया गया। इन क्रांतिकारियों ने लाहौर जेल में भी ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध संघर्ष जारी रखा और अपनी मांगों को पूरा करवाने के लिए जेल के अन्दर भूख हड़ताल की। हड़ताल के 64वें दिन जतिनदास की मृत्यु हो गयी। इसका देशव्यापी प्रभाव पड़ा और सरकार को इनकी मांगें माननी पड़ी। स्पेशल ट्रिब्यूनल ने भगत सिंह, राजगुरू, और सुखदेव को फाँसी की सजा दी (7 अक्टुबर,1930) और 23 मार्च,1931 को इनको फाँसी दे दी गयी। भगत सिंह के फाँसी के बाद ही द्वितीय चरण लगभग समाप्त हो गया। कुछ दिनों तक चन्द्रशेखर आजाद ने क्रांतिकारी गतिविधियाँ जारी रखी। परन्तु इलाहाबाद में पुलिस गोलीकांड़ में वे मारे गये। इसके साथ ही क्रांतिकारी आन्दोलन शिथिल पड़ गया।

द्वितीय चरण में एक महत्वपूर्ण घटना हुई जो चटगाँव केस के नाम से जानी जाती है। यहाँ सूर्यसेन के नेतृत्व में चटगाँव, बारीसाल, मैमनसिंह के शस्त्रगारों पर एक ही समय हमला करने की योजना बनायी। चटगाँव के क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास में विषेष महत्व रखता है क्योंकि पहली बार दो क्रांतिकारी युवतियों कल्पना दत्त और प्रीतिलता बाडेकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूर्यसेन अन्त में पकड़े गये और 1933 में इन्हें फाँसी दे दी गयी।

क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन के अपने लक्ष्य, उद्देश्य को पाने में सफल नहीं रही इसके मुख्य कारण थे-

(क) ब्रिटिश सरकार की दमन नीति ने आतंकवादी आन्दोलन को रोकने के लिए समय-समय पर कठोर कानून बनाये। सरकार की गुप्तचर प्रणाली काफी मजबूत थी। जिससे आतंकवादी गतिविधियों की जानकारी पहले हो जाती थी।

(ख) वे जनता के बीच अपना प्रचार-प्रसार ठीक ढंग से नहीं कर पाये। उनका मूल उद्देश्य था-सर्वहारा राज्य की स्थापना। परन्तु उनका नेतृत्व शहरी एवं मध्यमवर्गीय रहा। अत: वे आम जनता के बीच प्रभाव नहीं बना पाये।

(ग) कांग्रेस के नेतृत्व में चलनेवाला राष्ट्रीय आन्दोलन क्रांतिकारी आन्दोलन की गति को धीमा करने में सफल रहा। किसान, मजदूर वर्ग कांग्रेस के करीब आ चुके थे। गाँधी एक जननायक के रूप में स्थापित हो चुके थे। उन्होंने जनता को मुड़ने नहीं दिया।

(घ) क्रांतिकारियों का कोई व्यापक संगठन नहीं था। एक निशिचत केन्द्रीय संगठन के अभाव में उनके कार्यक्रमों में एकरूपता नहीं थी।

(ड.) इनके हिंसक गतिविधियों से लोग भयभीत रहते थे। जिससे इन्हें खुला समर्थन नहीं मिल पाता था।

(च) ये सर्वहारा वर्ग के हिमायती थे। अत: पूँजीपत्ति वर्ग का सहयोग इन्हें प्राप्त नहीं हुआ।

क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन यद्‌यपि असफल रहा लेकिन भारतीय राजनीति में इनके योगदान अविस्मणीय रहे। यथा-

(क) कांग्रेस ने जहाँ ''पूर्ण स्वराज'' की मांग को सन् 1929 में अपनाया, वहीं क्रांतिकारियों ने इसे बहुत पहले ही अपना लिया था।

(ख) द्वितीय चरण के क्रांतिकारी आतंकवाद की मुख्य विषेषता यह है कि इस समय वह समाजवाद एवं साम्यवाद के प्रभाव में आ गयी थी।

(ग) क्रांतिकारी आन्दोलन को कांग्रेस के वैधानिक आन्दोलन का पूरक कहा जा सकता है। अंग्रेज क्रांतिकारियों के बढ़ते प्रभाव से भयभीत होते थे। अंग्रेज नहीं चाहते थे कि अधिक से अधिक लोग इससे जुड़े। अत: उनपर काँग्रेस की वैधानिक माँगों को मानने का दबाव सदा बना रहता था।

(घ) क्रांतिकारियों ने भारतीय जनमानस के सम्मुख अभूतपूर्व त्याग और बलिदान का उदाहरण प्रस्तुत किया। भारतीयों के मानवीय गौरव को वापस लौटाया। यद्‌यपि राष्ट्रीय काँग्रेस तथा महात्मा गाँधी इस प्रक्रिया के कटर विरोधी थे परन्तु वे सभी इन देशभक्तों की देशभक्ति के सामने नतमस्तक थे। गाँधी जी ने भगत सिंह की देशभक्ति की सराहना की और स्पष्ट रूप से कहा, ''हमारे मस्तक भगत सिंह की देशभक्ति, साहस तथा भारतीय जनता के प्रति प्रेम तथा बलिदान के आगे झुक जाते हैं।''

आज भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले क्रांकिकारी उन शहीदों के रूप में याद किये जाते हैं जिन्होंने मातृभूमि के लिए जान दे दी।

''शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का यही नामो निशां होगा।''

संदर्भ ग्रंथ

1. अयोध्या सिंह:- भारत का मुक्तिसंग्राम-(मैकमिलन) पृ0-234, -234, 238-239, 251, 263-64, 275-76, 459-460; 540, 569-571, 579।
2. सुमित सरकार:- आधुनिक भारत-राजकमल प्रकाशन, पृ0-150-51, 173-175; 289-90; 306-308(
3. विपिन चन्द्र:- आधुनिक भारत का इतिहास-ओरियंट ब्लैकस्वॉन पृ0सं - 251-252; 269-270; 299-301(
4. वीरेन्द्र कुमार बरनवाल:- जिन्ना एक पुनर्दृष्टि : राजकमल पेपरबैक्स, पृ0 सं-322-324
5. बी . एल ग्रोवर, यशपाल:- आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन- एस चन्द - पृ0सं 309 से 315
6. कुलदीप नैयर:- शहीद भगत सिंह क्रांति में एक प्रयोग पृ0सं - 44, 56-57, 61-62, 76-77

आचार्य नरेन्द्र देव का सामाजिक, आर्थिक एवं दार्शनिक चिंतन

डॉ० रवीन्द्र कुमार राय

इतिहास विभाग, भू0 ना0 मं0 वि0 वि0 मधेपुरा (बिहार)

सारांश :-

शिक्षाविद्, राजनेता, चिंतक और समाजवादी आचार्य नरेन्द्र देव वैज्ञानिक समाजवाद के मनीषी, सिद्धान्तकार और मीमांसक थे । नरेन्द्र देव मार्क्सवादी थे और जीवनपर्यन्त मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद के निष्ठावान शिष्य बने रहे । आचार्य जी समाजवाद को सांस्कृतिक अभियान माना और लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने तथा उनमें भातृत्व भावना को बलवती करने का प्रयत्न करते रहे । आचार्य जी मार्क्स एवं बुद्ध के सिद्धांत से प्रेरणा लेकर लोकतांत्रिक समाजवाद का प्रतिपादन किया । उनका मानना था कि वैज्ञानिक समाजवाद ही आर्थिक विषमता का एक मात्र रामबान औषधि है । मानव को रोटी, शांति और स्वतंत्रता वांछनीय है । इनकी उपलब्धित एक मात्र सच्चे समाजवाद की स्थापना के द्वारा ही संभव हो सकती है । मानव समाज का उद्धार सामाजिक शक्तियों के ऐसे नवीन संगठन द्वारा ही हो सकता है जो मनुष्य को उन साधनों का मालिक बनाये जो उनको जीवन प्रदान करते है । जब औद्योगिक व्यवसाय का संगठन समाज कल्याण के लिए होगा और उत्पादन के सम्पूर्ण साधनों पर व्यक्ति के अपेक्षा समाज का एकाधिकार होगा तो वैसी स्थिति में समाज वस्तुओं का उत्पादन अपनी आवश्यकतानुसार ही करेगा उससे समाज के प्रत्येक सदस्यों को शक्तियों के विकास के अवसर उपलब्ध हो जाए । उत्पादित वस्तुओं के वितरण एवं विनिमय का कार्य जब समाज द्वारा किया जाएगा तो समाज में अकिंचता और अशांति नहीं रहेगी और परम संतोष होगा । आचार्य जी एक नई आर्थिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करना चाहते थे जिसमें उत्पादन के साधन तथा उत्पन्न वस्तुओं का वितरण और विनिमय सरकार के हाथ में हो । नरेन्द्र देव जी का चिंतन तत्कालीन समाज के विभिन्न वर्गो कृषक, मजदूर, कर्मकार एवं समाज के अंतिम पैदान के पिछड़े लोगों के जीवन स्तर को उठाना तथा समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी के विषमता को दूर कर एक कल्याणकारी समाज की स्थापना करना था ।

मूल श्ब्द :- समाजवाद, मार्क्सवाद, नैतिकता, वैज्ञानिक समाजवाद, सत्याग्रह, लोकतांत्रिक समाजवाद

प्रस्तावना :-

भारतीय राजनीति में आचार्य नरेन्द्र देव जी की भूमिका और प्रतिष्ठा राष्ट्रीय स्तर पर एक चिंतक एवं दार्शनिक की थी । इसके साथ ही वह सामाजवादी सिद्धांत और विचारधारा के अन्र्तराष्ट्रीय विद्वान थे । एक राजनेता की महत्वकांक्षा और रणनीतिक कौशल उनके अन्दर नहीं था, न ही उन्होंने अपनी प्रतिभा और उर्जा को उस दिशा में बढ़ाया । आचार्य जी के विचारों का सबसे बड़ा महत्व सामाजिक परिवर्तन की क्रांतिकारी प्रक्रिया वाले व्यक्ति के नैतिक मूल्यों को बढ़ाना था । सामाजिक परिवर्तन के नैतिक पक्ष पर उनका जोर भारतीय दृष्टिकोण से संबंधित था। आचार्य जी वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तकार, मनीषी और मीमांसक थे । वैज्ञानिक समाजवाद एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करना चाहता है, जिसमें उत्पादन के साधन तथा उत्पन्न वस्तुओं का वितरण और विनिमय सरकार के हाथ में हो । मार्क्सवाद एवं बौद्धिकवाद के प्रखर अध्येता आचार्य नरेन्द्र देव के चिन्तन में कृषकों, श्रमिकों और कमजोर वर्ग के लिए प्रचुर सामग्री उपलब्ध है ।

आचार्य नरेन्द्र देव का सामाजिक चिंतन :-

आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार हमारे देश में दो तरह के विचार रहे है एक के अनुसार व्यक्ति का महत्व है, तो दूसरे के अनुसार समाज का महत्व है । जब तक दोनों में संतुलन नहीं होगा तब तक मानव आगे नहीं बढ़ सकता । आचार्य जी का मानना था कि समाज का प्रादुर्भाव जबसे हुआ, उसी समय से ही उसके अन्दर कुछ न कुछ समस्याएँ मौजूद रही है। वह समस्या चाहे लूट-खसोट, ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी की रही होगी या दासता और गुलामी की रही होगी, किन्तु यह बात अपने-आप में स्पष्ट है कि समाज के अन्दर ऐसी समस्याएँ शुरू से चली आ रही है । व्यवस्था और समाज की संरचना को बदलनी जरूरी है तो राज्य पर अधिकार किये बिना सम्भव नहीं है । व्यक्ति और समाज दो पैर के समान है, केवल एक पैर को आगे बढ़ाने से काम नहीं चलता । व्यक्ति और समाज एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित है, अत: व्यक्ति और समाज दोनों को बदलने का कार्य करना होगा । समाज के बाहर व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है, समाज में ही उसका विकास संभव है । व्यक्ति और समाज दोनों के बदलने के लिए जनतांत्रिक समाजवादी सिद्धांत सामने आया । केवल माहौल के बदलने से इन्सान नहीं बदल सकता, इन्सान को बदलने के लिए समाज के नियमों का पालन करते हुए स्वयं व्यक्ति को कोशिश करनी पड़ती है । आचार्य जी ने अपने चिंतन द्वारा बता दिया कि समाजवाद रोटी की लड़ाई नहीं है, समाजवाद एक सांस्कृतिक अभियान है, जिसका कार्य लोगों के नैतिक स्तर को ऊँचा करना है, उनमें भाईचारे की भावना को बलबती करना है । इनके बिना इंसान तरक्की नहीं कर सकता है । नैतिकता को उन्होंने आचारसंहिता कहा और कहा कि इनके बिना व्यक्ति और समाज आगे नहीं बढ़ सकते ।

आचार्य जी ने समाजवादियों को सलाह दी कि नैतिकता और आचारसंहिता के बिना न तो क्रांति लायी जा सकती है न ही जनता का दिल जीता जा सकता है । आचार्य जी मार्क्स, एंगल्स, लेनिन, रोजा लुक्जमबर्ग और कार्ल काउट्स्की के विचारों का गहन अध्ययन किया और मार्क्सवादी हो गया । किन्तु वे मार्क्स को एक सामज विज्ञानी के रूप में मानते थे, वे उनके अन्धभक्त नहीं थे, उनके कथन को प्रमाण नहीं मानते थे । उनकी दृष्टि में मार्क्सवाद समाजिक विश्लेषण और सामाजिक परिवर्तन का शास्त्र है । वह एक पद्धति है जिसमें परिवर्तन और विकास का होना अप्रत्याशित नहीं है। उन्होंने बुद्ध और मार्क्स में समन्वय कभी नहीं किया, किन्तु जो प्रेरणा बुद्ध से मिली वही प्रेरणा उन्हें मार्क्स से भी मिली। दोनों को सामने रखकर जिस सिद्धांत का निर्माण किया उसका मूल जनतांत्रिक समाजवाद में मिलता है । मार्क्सवादी क्रांति में राज्य सत्ता पर अधिकार करना जरूरी माना जाता है, क्योंकि बिना सत्ता के पूँजीपति के स्वामित्व को समाप्त कर आर्थिक व्यवस्था को बदलना संभव नहीं है। मार्क्स के जमाने तक यूरोप में व्यापक लोकतंत्र की स्थापना नहीं हुई थी। अत: राज्य पर मजदूर वर्ग द्वारा बलपूर्वक अधिकार करने की बात कही गई है । परन्तु आचार्य नरेन्द्र देव और उनके समाजवादी साथियों ने भारत में सशस्त्र क्रांति को उपयुक्त साधन नहीं माना और समाजवाद की स्थापना के लिए राज्य की सत्ता पर जनता का अधिकार करने के लिए जनतांत्रिक तथा शांतिमय उपायों का प्रतिपादन किया । आचार्य जी का लोकतांत्रिक समाजवाद के बारे में विचार स्पष्ट थी कि सता परिवर्तन समाजवादी समाज के दिशा में प्रारंभिक कदम है । लोकतंत्र को वे उतना ही महत्व देते थे जितना समाजवाद को । जो लोग लोकतंत्र की उपेक्षा कर समाजवाद की स्थापना की बात करते थे, उनकी उन्होंने कड़ी आलोचना की । उन्होंने प्रतिपादित किया कि समाजवाद एक संस्कृतिक अभियान है और नैतिक मूल्यों के बिना समाजवाद नहीं आ सकता । राजनीति में भी वे गाँधी जी के भाँति नैतिकता पर विषेष बल देते थे, वे विरोधी पक्ष के जिम्मेवारी से सत्ता पक्ष के जिम्मेवारी के कम नहीं मानते थे । 1948 ई0 में उन्होंने अपने 12 साथियों के साथ उत्तर प्रदेश के विधानसभा से त्यागपत्र देते समय एक छोटा सा भाषण दल के नेता के हैसियत से दिया था, वह लोकतंत्र के इतिहास का एक मूल्यवान दस्तावेज है । खेद है कि आज के समाजवादी नेतागण अपने नेता के बताये गये मार्ग से विचलीत हो गए है, जिसका परिणाम आज विधान सभाओं एवं संसद की राजनीतिक नेतृत्व की गिरती हुई प्रतिष्ठा दिखाई पड़ता है । उनका मत था कि यदि सरकार लोकतंत्र के मार्यादाओं का उल्लंघन करें तो इसका अर्थ यह नहीं है कि विरोधी पक्ष भी वैसा ही करें, विरोधी पक्ष पर अपने व्यवहार द्वारा लोकतंत्र की उच्च मर्यादाओं को स्थापित करने और उनकी रक्षा करने का विषेष दायित्व है। 1948 ई0 में विधान सभा से इस्तिफा देकर पुन: अपने दल के नाम पर चुनाव मे खड़ा होकर उन्होंने लोकतंत्र के इतिहास में एक नई परंपरा स्थापित की । आचार्य जी राजनीति में राष्ट्र के अंदर ही नहीं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी हिंसक उपायों को खत्म करने के पक्ष में थे ।

आचार्य नरेन्द्र देव वर्ग संघर्ष के अहिंसक तरीके को स्वीकार करते थे, समाजवादियों ने इसे 'शांतिमय उपाय' का नाम दिया था उन्होंने पंडित नेहरू को जवाब देते हुए एक बार कहा - ''सत्याग्रह केवल ब्रिटिश सरकार के प्रसंग में ही नहीं बल्कि अपनी सरकार के प्रसंग में भी किया जा सकता है, क्योंकि सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा आंदोलन का रास्ता बंद कर देना मजदूरों, कृषकों एवं शोषितों के साथ अन्याय करना होगा, वे हड़ताल के माध्यम से ही अन्याय के खिलाफ लड़ते हैं, यदि पिछड़े एवं शोषित वर्गो से

अहिंसा का रास्ता छीन लिया गया हो वह हिंसा की ओर बढ़ेंगे ही ।'' मार्क्स ने किसान वर्ग को प्रतिक्रियावादी माना है, क्योंकि उसे नीजि सम्पत्ति का मोह होता है। परन्तु चीन में माओं की भाँति, भारत में आचार्य नरेन्द्र देव ने छोटे किसानों को क्रांतिकारी वर्ग माना है अतः भारत में समाजवादियों ने किसानों को संगठित किया । आचार्य जी का मानना था कि समाजवाद लाने हेतु दलितों, मजदूरों, किसानों और समाज के मजबूर एवं दुखी लोगों के साथ मिलकर कार्य करना होगा, हिंसक संघर्ष को सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा आंदोलन के संघर्ष में बदलना होगा । यह कार्य में शिक्षा, नवचेतना और समाजवादी समाज के निर्माण की प्रेरणा पैदा करना होगा । किसी आंदोलन की परख उनकी शिखर के नेताओं से नहीं बल्कि उनके साधारण कार्यकर्त्ताओं से होती है, इसके लिए हमें साधारण लोगों की चेतना, शिक्षा और नैतिक स्तर को ऊँचा करने के लिए कार्य करना होगा । उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजली तभी होगी जब हम यह कार्य राजनीतिक सत्ता से हटकर नौजवानो ंको साथ लेकर करें ।

आचार्य नरेन्द्र देव का आर्थिक चिंतन :-

आचार्य नरेन्द्र देव का समाजवाद काल्पनिक समाजवाद अथवा समाजसुधारकों का समाजवाद नहीं था । वे वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तकार, मनीषी और मीमांसक थे । वैज्ञानिक समाजवाद में न तो सुधारवाद है न काल्पनिक समाजवाद । यह समाज की एक ऐसी नवीन आर्थिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करना चाहता है, जिसमें उत्पादन के साधन तथा उत्पन्न वस्तुओं का वितरण और विनिमय सरकार के हाथ में हो । वैज्ञानिक समाजवाद गरीबों की गरीबी दूर करना चाहता है न कि कुछ अमीरों से कुढ़कर उनको तबाह करना । एतदर्थ वैज्ञानिक समाजवाद का प्रारंभ मशीन युग में होता है । मशीन युग तथा उसमें पैदा होने वाला पूँजीवाद ही वैज्ञानिक समाजवाद का जन्मदाता है । मशीन के माध्यम से जो औद्योगिक प्रगति हुई उसने यह सिद्ध कर दिया है कि संसार में विपन्नता, भूख और वस्तुओं का अभाव का कारण स्वल्पता नहीं बल्कि उत्पादन के साधनों पर कुछ मुट्ठी भर पूँजीपतियों की अधिकार सत्ता का होना है और यह उत्पादन समाज हित की अपेक्षा उनकी स्वार्थपूर्ति के लिए होता है । जब तक विभिन्न वर्गों में आर्थिक वैषम्य प्रतिष्ठित है तब तक सुखद जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है ।

आचार्य जी का मत था कि यदि हम मशीन युग के दोशों से मुक्ति पाना चाहते है तो उसका यह तरीका नहीं है कि हम अतीत की ओर देखे और औद्योगिक प्रगति को विनष्ट कर संसार की निर्धनता और उत्पीड़न को और बढ़ा दें । वैज्ञानिक समाजवाद ही इस आर्थिक विषमता का एक मात्रा रामबाण औषधि है । आज मानव को रोटी, कपड़ा, शांति और स्वतंत्रता सभी वांछनीय है, इनकी उपलब्धि एकमात्र सच्चे समाजवाद की स्थापना द्वारा ही सम्भव हो सकती है । मानव समाज का उद्धार सामाजिक शक्तियों के ऐसे नवीन संगठन द्वारा ही हो सकता है जो मनुष्य को उनके साधनों का मालिक बनावे जो उनको जीवन प्रदान करें। जब औद्योगिक व्यवसाय का संगठन समाज कल्याण के लिए होगा और उत्पादन के सम्पूर्ण साधनों पर व्यक्ति की अपेक्षा समाज का एकाधिकार होगा तो वैसी स्थिति में समाज वस्तुओं का उत्पादन अपनी आवश्कतानुसार ही करेगा उससे समाज के प्रत्येक सदस्य की शक्तियों का विकास के अवसर उपलब्ध हो जाएंगे । उत्पादित वस्तुओं के वितरण एवं विनिमय का कार्य जब समाज द्वारा किया जायेगा तो समाज में अकिंचनता और अशान्ति नहीं रहेगी और परम संतोष होगा । आचार्य जी ने उत्पादन के साधनों को सामाजिक सम्पत्ति बनाये जाने पर जो दोष उत्पन्न होगा उस पर भी विचार किये थे । उन्हें भय था कि नौकरशाही की अधिकार सत्ता इससे बढ़ेगी । यह नहीं बढ़ सके इसके लिए उपाय करने होंगे, इसके लिए नियमों का निर्माण करना होगा जिससे जन-नियंत्रण उनपर रहे । औद्योगिक व्यवसाय के प्रबन्ध में एकमात्र राज्य के प्रभुत्व से ही आचार्य नरेन्द्र देव संतुष्ट नहीं थे, अपितु उन्होंने श्रमिक वर्ग को पर्याप्त भागीदार बनाये जाने पर बल दिया ।

आचार्य जी का दार्शनिक चिंतन :-

आचार्य जी के चिंतन की समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन की तैयारी में नैतिकता पर जोर देना कदाचित उनकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात थी । उनका विश्वास था कि सत्ता हासिल करने में और बुनियादी सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए लोकतांत्रिक और समूचित साधनों का उपयोग जरूरी है । किन्तु उन्हें सत्ता की राजनीति से घृणा थी । यह बड़े दुख की बात है कि वर्तमान युग में सत्ता की राजनीति के समक्ष बौद्धिक स्वाधीनता, व्यक्तिक स्वतंत्रता और यहाँ तक की नैतिक सिद्धांतों का त्याग करने की प्रवृति आ चुकी है नैतिक स्तर इतना गिर गया है कि समाजवाद के नाम पर हर प्रकार के कार्य का औचित्य सिद्ध किया जाता है । यह भावना सभी प्रकार के संगठनों में प्रवृष्ट हो रही है, ऐसी दशा में आंदोलन अपने रचनात्मक प्रेरणा से वंचित हो जाता है । क्योंकि ''सत्ता की राजनीति स्वयं आदोंलन के उद्वेश्य को भ्रष्ट कर देते है । क्रांति अनैतिक नहीं है, यह नीतिनिरपेक्ष भी नहीं

है, क्रांति को अनैतिक साधनों से आगे बढ़ाया नहीं जा सकता । क्रांतिकारियों को अपनी नैतिक उत्कृष्टता को उद्भाषित करना होगा और उन्हें जनता को यह विश्वास दिलाना होगा कि वे लोग नीतिपूर्ण समाज की स्थापना करेंगे, जिसमें भेद-भाव, दमन व शोषण निषिद्ध होगें । आचार्य जी नियतिवादी नहीं थे और जानते थे कि सत्ता परिवर्तन तथा समाजवादी समाज की रचना मे ंदीर्घकाल तक सचेष्ट मानवीय कर्म की महत्वपूर्ण प्रस्तुत निर्णायक भूमिका आवश्यक है । इस संबंध में उनका कथन है - ''समाजवाद एक नई संस्कृति की स्थापना करना चाहता है यह संस्कृति वही आसमान से नहीं टपकेगी, ज्ञान की पिपासा, सत्य की आराधना, मौलिक सिद्धांतों का स्पष्ट ज्ञान, नई संस्कृति और नये समाज में निष्ठा, चरित्र की दृढ़ता और काम की लगन इन गुणों का पोषण प्रत्येक कार्यकर्त्ता को करना चाहिए ।

लोकतंत्र को वे उतना ही महत्व देते थे जितना समाजवाद को । जो लोग लोकतंत्र की उपेक्षा कर समाजवाद की स्थापना की बात करते थे, उनकी उन्होंने कड़ी आलोचना की । उन्होंने प्रतिपादित किया कि समाजवाद एक संस्कृतिक अभियान है और नैतिक मूल्यों के बिना समाजवाद नहीं आ सकता । राजनीति में भी वे गाँधी जी के भाँति नैतिकता पर विषेष बल देते थे, वे विरोधी पक्ष के जिम्मेवारी से सत्ता पक्ष के जिम्मेवारी के कम नहीं मानते थे । आचार्य जी का मानना था कि समाजवाद लाने हेतु दलितों, मजदूरों, किसानों और समाज के मजबूर एवं दुखी लोगों के साथ मिलकर कार्य करना होगा, हिंसक संघर्ष को सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा आंदोलन के संघर्ष में बदलना होगा । यह कार्य में शिक्षा, नवचेतना और समाजवादी समाज के निर्माण की प्रेरणा पैदा करना होगा । किसी आंदोलन की परख उनकी शिखर के नेताओं से नहीं बल्कि उनके साधारण कार्यकर्त्ताओं से होती है, इसके लिए हमें साधारण लोगों की चेतना, शिक्षा और नैतिक स्तर को ऊँचा करने के लिए कार्य करना होगा । उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजली तभी होगी जब हम यह कार्य राजनीतिक सत्ता से हटकर नौजवानो ंको साथ लेकर करें ।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षत: आचार्य जी के सामाजिक, आर्थिक एंव दार्शनिक चिंतन का मुख्य विषेषता यह थी कि वे समाज में निहित विभिन्न वर्गो को तोड़कर वर्गविहीन समाज का निर्माण करना चाहते थे । वह व्यक्तित्व के विकास के मार्ग में अवरोधक सामाजिक बंधनों से उसे मुक्त करना चाहते थे । उनके चिंतन में समाज के मजदूर, किसान और समाज के अन्तिम पैदान के लोगों को साथ लेकर चलना था । उनका मानना था कि वैज्ञानिक समाजवाद ही आर्थिक विषमता का एक मात्र रामवाण औषधी है । वह अस्तित्वपूर्ण समाज के ढ़ाचे को इस प्रकार निर्मित करना चाहते थे जिसमें शोषक एवं शोषित, उत्पीड़क एवं उत्पीड़ित वर्ग का अंत हो जाय । आचार्य जी शोषण मुक्त समाज की रचना कर तत्कालीन समाज में मौजूद दासता, विषमता और असहिष्णुता को सदा के लिए दूर करके समाजवाद, समता और भ्रातृत्व की वास्तविक स्थापना करना चाहते थे । अत: आचार्य नरेन्द्र देव एक विद्वान, चिंतक एवं समाजसुधारक सामाजवादी चिंतक थे और वे जीवन पर्यन्त समाज के गरीब, अक्षम एवं पिछड़े व्यक्तियों की सामाजिक अस्तित्व को स्थापित करने के चिंतन में लगा दिया । उनकी महानता अविस्मरणीय है ।

संदर्भ सूची :-

1. सोशलिज्म एण्ड नेशनल रेवोल्यूशन - आचार्य नरेन्द्र देव, संपाक-यूसुफ मेहर अली ।
2. 'नेशनल हेराल्ड', इंगलिश दैनिक, लखनऊ, 20 अप्रैल, 1970 ।
3. राष्ट्रीयता और समाजवाद - आचार्य नरेन्द्र देव ।
4. समाजवाद लक्ष्य तथा साधन - आचार्य नरेन्द्र देव
5. आचार्य नरेन्द्र देव - युग और नेतृत्व, प्रो0 मुकुटबिहारी लाल, आचार्य नरेन्द्र देव जी समाजवादी संस्थान, वाराणसी, 1970
6. साहित्य शिक्षा और संस्कृति, आचार्य नरेन्द्र देव (संपाक-रमेश चन्द्र तिवारी एवं कृष्ण नाथ) धार्मिक आंदोलन में एकता का आधार, काशी विद्यापीठ के निमित्त, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 1998
7. आचार्य नरेन्द्र देव - एकेमेमोरेशन वाल्यूम, बी0 वी0 केलरकर एवं बी0 के0 एन0 मेनन (संपादक) नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नई दिल्ली, 1971
8. आचार्य नरेन्द्र देव - युग और विचार, जगदीश दीक्षित (संपादक) 'महानता और सदगुणों का संगम, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ0 प्र0 (शासन)
9. नरेन्द्र देव - ए सेलेक्शन ऑफ हिम राईटिंग्स, अजय कुमार (संपादक) आचार्य नरेन्द्र देव समाजवादी संस्थान, वाराणसी, 1989
10 टुवर्डस सोशलिस्ट सोसाईटी, आचार्य नरेन्द्र देव (संपादक-ब्रह्मानंद), 'नीड फॉर विगरस फिलास्फी ऑफ लाईफ' (मूल इंगलिश)

भारत में नक्सवादी आन्दोलनः एक विश्लेषण

डॉ० कलानंद मंडल

एम0 ए0 (राजनीति विज्ञान)
यु0जी0सी0- नेट, पीएच.डी
ग्राम+पोस्ट-भतखोड़ा, भाया-बुधमा
जिला-मधेपुरा, 852114

जन आंदोलन से शुरू हुआ नक्सलवाद अब लेवी के रूप में 1500 करोड़ रूपए का संगठित रंगदारी व्यवसाय बन गया है। पुलिस और केंद्रीय सुरक्षा अधिकारियों ने कहा कि भाकपा खासकर इससे जुड़े समूह रंगदारी से जो रकम हासिल करते हैं इसका इस्तेमाल वे आंदोलन चलाने के लिए नहीं बल्कि अपने नेताओं की ऐशो आराम वाली जीवन शैली को बरकरार रखने के लिए करते हैं। भारत-चीन युद्ध 1962 के बाद 1964 में भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी साम्यववाद की रूसी और चीनी विचारधारा और रणनीति के मतभेदों के कारण दो गुटों में विभाजित हो गई । चीनी विचारधारा वाले गुट ने मार्क्सिस्ट कम्यूनिस्ट पार्टी के नाम से नई पार्टी बनाकर अनुकूल क्रांतिकारी परिस्थिति के आने तक सशस्त्र संघर्ष को टालकर चुनाव में भाग लेने का तय किया। जब उसने 1967 के चुनाव में भाग लेकर बंगला कांग्रेस के साथ पश्चिम बंगाल में संविद सरकार बनाई तब चारू मजूमदार ने मार्क्सिस्ट कम्यूनिस्ट पार्टी पर क्रान्ति के साथ विश्वावसघात और नवसाम्राज्यवादी, सामंती तथा पुंजीवादी व्यवस्था का दलाल होने का आरोप लगााकर मार्क्स-लेनिन-माओ की विचारधारा के आधार पर नया गुट बना लिया। इसी वर्ष दार्जिलिंग जिले के एक गांव नक्सलवाड़ी में जब एक आदिवासी युवक न्यायालय के आदेश पर अपनी जमीन जोतने गया तो उसपर जमीदारों के गुंडों ने हमले कर दिया।

इस घटना के विरोध में आदिवासी किसानों ने कानू सन्याल और चारू मजुमदार के नेतृत्व में जमीदारों ने कब्जे की जमीन छीनने का सशस्त्र संघर्ष छेड़ दिया।

नक्सलबाड़ी गांव से शुरू होने के कारण इस संघर्ष को नक्सलवाद कहा जाने लगा। लेकिन मार्क्स-लेनिन-माओ के विचार मानने के बावजूद कानू सन्याल और चारू में रणनीति का मतभेद था। कानू सन्याल जनता को विचारों से लैस कर लड़ाई के लिए तैयार करने की बात कहते थे। लेकिन चारू सीधे दुश्मनों की हत्या के पक्ष में थे।

नक्सलबाड़ी का विद्रोह कानू सान्याल के नेतृत्व में किसानों का विद्रोह था। लेकिन पश्चिम बंगाल में नक्सलवाद का विकास चारू के विचारों के आधार पर आगे बढ़ा और गांव से शहरों तक फैल गया। इसमें नक्सलवादियों और शासन द्वारा व्यापक हिंसा हुई। यह आन्दोलन पश्चिम बंगाल की सरकार द्वारा निर्ममता के साथ दबा दिया गया।

1980 में आंध्रप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में पीपुल्स वार ग्रुप के नाम से नक्सलवाद का दूसरा आंदोलन शुरू हुआ, जो उड़ीसा, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ तक फैल गया। जिस तरह माओ ने सशस्त्र क्रांति द्वारा चीन की सत्ता हाथ में ली थी, नक्सलवादी उसी तरह नेपाल और भारत की सत्ता हथियाने का सपना देखते हुए पिछले कुछ ही वर्षो में 9 प्रदेशों के 85 जिलों से बढकर 12 प्रदेशों के 119 जिलों में फैल गए हैं। नक्सलवाद के जन्म से अब तक विचारधारा और रणनीति के मतभेदों के चलते उनमें अनेक गुट बने। लेंकिन 21 सितंबर 2004 को प्रमूख गुटों पीपुल्स वार ग्रुप और भारतीय माओवादी कम्यूनिस्ट सेंटर ने आपसी समन्वय से एक नई पार्टी कम्यूनिस्ट पार्टी आफ इंडिया लिबरेशन गुट अभी अलग है और वह माओवादी दल की रणनीति को अराजक मानता है।

नक्सलवादी भारतीय संविधान को नहीं मानते हैं। वे भारत की पूरी राजनैतिक व न्याय व्यवस्था को साम्राज्यवाद और सामंतवाद की कठपुतली और उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ होते हुए आंध्रप्रदेश तक एक सघन लाल गलियारा बनाने की फिराक में हैं। विभिन्न

अभियानों के दौरान केंद्रीय सुरक्षा एजेंसियों और पुलिस द्वारा जब्त किए गए नक्सल साहित्य और दस्तावेजों से नक्सली समूहों द्वारा वसूली जाने वाली लेवी के बारे में विस्तृत खुलासा हुआ है जिसका हर साल का आंकड़ा करोड़ों रूपये का हैं।

भाकपा हालांकि झारखण्ड में अब भी प्रमुख नक्सली समूह है। लेकिन अन्य भी बहुत से छिटपुट समूह हैं, जिन्होंने अपहरण लूटपाट और मादक पदार्थो की तस्करी के अतिरिक्त लेवी लगााने का काम शुरू कर दिया है जिसके तहत राय से सालाना लगभग तीन अरब रूपए की वसूली होती है। यदि नक्सलवाद से सर्वाधिक प्रभावित सात राज्यों तथा लाला गलियारे के रूप में जाने वाले झारखण्ड, छत्तीसगढ़, आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र से लेवी के जरीए हासिल होने वाली रकम के बारे में सुरक्षा एजेंसियों के आंकड़ों पर भरोसा किया जाए तो सलाना लगभग 1500 करोड़ रूपए की आमदनी बैठती है। सुरक्षाबलों द्वारा बरामद किए गए दस्तावेजों से नक्सलियों की आय के बारे में खुलासा हुआ है जिनमें ठेकेदारों, पेट्रोल पंप मालिकों तथा भूस्वामियों से वसूली जाने वाली लेवी राशि के सही आंकड़े स्पष्ट दिखाई देते हैं।

सड़कें बनाने की परियोजनाओं में जहां आम तौर पर 10 प्रतिशत लेवी वसूली जाती है वहीं छोटे पुलों और अन्य परियोजनाओं के मामले में पांच प्रतिशत लेवी वसूल की जाती है। तय लेवी के अतिरिक्त वाम विचारधारा वाले चरमपंथी समूह क्षेत्र में काम करने वाले उद्योगपतियों से भी धन की मांग करते हैं। इतना ही नहीं वे वसूले गए धन के लिए रसीद भी जारी करते हैं। केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के उप महानिरीक्षक आलोक राज ने बताया कि राय में वाम विचारधारा से जुड़े छह चरमपंथी समूह काम कर रहे हैं उनमें से पीपुल्स लिबरेशन फ्रंट आफ इंडिया ज्यादातर अपराधियों से बना है। इस समुह को पहले झारखण्ड लिबरेशन टाइगर्स कहा जाता था। इन्होंने कहा कि ये समूह लंबे समय तक विचारधारा के लिए नहीं बल्कि रंगदारी के लिए काम करते हैं।

रोचक बात यह है कि धन के लिए सिर्फ नक्सली ही ठेकेदारों से संपर्क नहीं करते बल्कि कुछ मामलों में ठेकेदार खुद धन के साथ नक्सलियों से संपर्क साधते हैं। बिहार से अलग हुए झारखंड के पुलिस महानिदेशक वीडी राम ने कहा कि कुछ मामलों में देखने में आया है कि ठेकेदारों ने अपने द्वारा बनाई गई सड़कों को नक्सली उड़ा देंगे तो उनमें लगाई गई सामग्री की गुणवत्ता की कोई जांच नहीं हो पाएगी। अधिकारियों ने कहा कि माओवादी नेता सभी तरह की आधुनिक सुख सुविधाओं के साथ ऐशोआराम की जिन्दगी व्यतीत करते हैं। हालांकि वे अपने संगठन में दुसरों के बच्चों की जबरन भर्ती करते हैं लेकिन उनके खुद बच्चे अच्छे पब्लिक स्कूलों में पढ़ने जाते हैं। माओवादी पूर्वोत्तर राज्यों के विद्रोहियों की तरह ग्रामीणों को अफीम की खेती करने के लिए भी उकसाते हैं।

वर्ष 2007 में देशभर में बरामद किए गए 1.07 लाख किलोग्राम गांजे में से 15 हजार 498 किलोग्राम नगालैण्ड से, 14 हजार 815 किलोग्राम मध्य प्रदेश से, 12 हजार 551 किलोग्राम महाराष्ट्र से, 07 हजार 470 किलाग्राम छत्तीसगढ़ से और 07 हजार 59 किलोग्राम गांजा आंध्रप्रदेश से बरामद किया गया था।

अब फिर पश्चिम बंगाल के मिदनापुर में ट्रेन पर किये गये हमले में नक्सलियों ने करीब सौ नागरिकों के परिवार को उजाड़ दिया है। जब हमले दर हमले करके नक्सली इस लोकतंत्र की चूलें हिलाने में लगे हैं। दांतेवाड़ा के एर्राबोर से लेकर चिंतलनार और अब पश्चिम बंगाल के मिदनापुर तक में बौखलाहट में जब आम-लोगों, बस और ट्रेन यात्रियों को निशाना बना रहे हैं तब वास्तव में 'सलवा जुडूम' की याद आ रही है। जिस तरह से देश-द्रोही तत्वों ने दुष्प्रचार कर-कर के, लोकतंत्र के सभी स्तंभों द्वारा क्लीन-चीट हमले पर भी जिस तरह से आस्तीन के साँपों ने दुष्प्रचार कर के इस महान आन्दोलन को कमजोर किया, शायद इसी की परिणति है नक्सलियों द्वारा अपने नापाक मंसूबे में कामयाब होते जाना।

आदिवासियों से उस स्वत: स्फूर्त आन्दोलन को जिस तरह से दिल्ली के गोरे मीडिया और भाई लोगों ने बेच खाया ऐसा कोई अन्य उदाहरण मिलना असंभव हैं। जो लोग हर बार यह तुकबंदी देकर कि यह आन्दोलन टाटा के साथ एमओयू होने के अगले दि नहीं शुरू होना बताते हैं। इस तुकबंदी के सहारे ही वह नक्सल विरोध को पूंजीपतियों का सहमति ठहराने की कोशिश करते हैं इनके लिए एक तुकबंदी और कथित एमओयू उस दिन हुआ था या नहीं, लेकिन सलवा-जुडूम के जन्मदिन ही इतिहास में दो और मुख्य घटनाएं दर्ज हुआ । एक ऑपरेशन ब्लू स्टार और दूसरे थ्येन-आन-मन नरसंहार।

वास्तव में कई बार संयोग भी अपना औचित्य खुद ही साबित कर देता है। ऐसा भी हो सकता है कि प्रकृति कुछ संयोगों के सहारे कोइ संदेश देना चाह रही हो। आज से बीस साल पहले की बात है, चीन की राजधानी बीजिंग के थ्येन आनमन नामक चौराहे पर अपने लोकतांत्रिक अधिकारों की मांग करते हुए कुछ हजार लोग एकत्र हुए और चीन की कम्युनिस्ट सरकार ने गोलियों की

बौछार शरू कर दी । हजारों लोग देखते ही देखते मांस के लोथड़े में तब्दील हो गये। भारत का जालियाँवाला बाग जैसा भयानक मंजर था वहाँ भी। दोनों जगह सरकारों ने एक जैसा ही कमाल कर दिखाया था। बस फर्क था तो यह कि उस समय भारत एक गुलाम देश था जबकि चाइना में नरसंहार के वक्त उन्हीं कथित सर्वहारा की सरकार थी, जिनके लिए चीन ने बंदूक का मुंह खोल दिया था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नक्सलवाद एक विचारात्मक राजनीतिक व आर्थिक संघर्ष था। जो तत्कालीन शासक वर्ग की राजसत्ता को उखाड़ फैकना चाहता था। ऐसे शासक वर्ग की राजसत्ता को जिसके मालिक देशी, विदेशी पूंजीपति, भूस्वामी, ठेकेदार, दलाल और नौकरशाह हैं और जो बहुसंख्यक श्रमजीवी वर्ग की क्रान्ति का नारा लगाने वाला नक्सलवादी आन्दोलन अपने मूलभूत सिद्धान्तों, उद्देश्यों व कार्यप्रणाली से दिगभ्रमित हो चुका है। यह अपनी हिंसक गतिविधियां से राष्ट्र की आन्तरिक शान्ति, सुरक्षा एवं विकास के मार्ग में एक अवरोधक बन चुका है।

नक्सलवादी नाम से आमतौर पर प्रचलित कम्यूनिस्ट क्रान्तिकारियों की इस धारा में दो भिन्न प्रवृतियां दिखाई देती हैं। जिनमें से एक पीपुल्स वार ग्रुप के नाम से नक्सलवाद की अराजकतावादी धारा है। जिसका प्रसार आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, बिहार, झारखण्ड एवं उड़ीसा के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों तक है। जबकि दूसरी प्रवृति भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी को कहा जाता है। जो संसदीय व गैर-संसदीय संघर्ष को अपना साधन मानती है। पीपुल्स वार ग्रुप का गठन तमिलनाडु के नक्सली नेता कोंदडरामन व आन्ध्र प्रदेश के नक्सली नेता कोंडापल्ली सीतारमैया ने मिलकर किया, जिसके तहत उन्होंने अपनी विचारधारा का प्रचार-प्रसार करने व ग्रुप को सशक्त बनाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में रैयत कुली संघम तथा शहरों में रेडिकल स्टूडेण्ट यूनियन व रेडियकल यूथ लीग संगठन की स्थापना की सांस्कृतिक क्षेत्र में इस संगठन ने विप्लवी रचयिता संघम और 'जन नाट्य मण्डली' का गठन कर एक सांस्कृतिक एवं वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी जिससे मध्यवर्गीय युवक एवं गरीब व उपेक्षित वर्ग के लोग इसमें विषेष रूप से रूचि लेने लगे, परिणमस्वरूप इसका विस्तार आन्ध्रप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र से लेकर महाराष्ट्र के गडचिंरोली और चन्द्रपुर तक तथा छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले में भी इसका प्रभाव प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगा।

आज वस्तुस्थिति यह है कि नक्सलवाद भारत के किसी एक राज्य की समस्या नहीं है, बल्कि यह देश के बहुत बड़े भू-भाग पर अपने पांव पसार चुकी है। राज्य प्रशासन द्वारा अभूतपूर्व दमन, दबाव एवं उत्पीड़न के बावजूद नक्सलवावदी गतिविधियों का सिलसिला जारी है। अपनी अनेक भूलों के कारण नक्सलवाद अपने मूल स्थान पश्चिम बंगाल में तो नहीं पनप सका, किन्तु आज यह उन राज्यों में सशक्त रूप में उभरा है। जहाँ नक्सलियों के छिपने एवं कूटयोजना बनाने हेतु जंगल व घाटी क्षेत्र विषेष रूप से उपलब्ध हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए ज्वलन्त आन्तरिक खतरा बन चुकी नक्सलवादी समस्या से छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, आन्ध्रप्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र तो ग्रसित हैं ही, किन्तु इसकी आंच से केरल, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक तथा पश्चिम बंगाल भी अछूते नहीं है।

जहाँ तक नकसलवादी गुटों की प्रकृति का प्रश्न है, तो न तो वे अलगाववादी है, न ही आतंकवादी और न ही उन्हें उग्रवादियों की श्रेणी में रखा जा सकता है। घोषित तौर पर वे क्रान्ति करने निकले हैं। लेकिन वे स्वयं इस सवाल का जबाव नहीं दे सकते कि कुछ निर्दाष नौकरीपेश लोगों की हत्या करके वे लोग कौन सी क्रान्ति कर लेंगे? इन्हें सोचना होग वे जिन लोगों की हत्या कर रहें है वे भी समाज के गरीब तबकों से ही आते है। और अपने व अपने परिवार की रोजी-रोटी के लिए नौकरी कर रहे है। जिन महिलाओं एवं बच्चों की हत्या नक्सलियों के हाथों हो रही है उन्होंने किसी का क्या बिगाड़ा है? इस प्रकार कहा जा सकता है कि नक्सलवादियों के नजर में वह हर व्यक्ति दोषी है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास रखता है, उसे यह नहीं भुलना चाहिए कि हिंसा के द्वारा न तो क्रान्ति उत्पन्न की जा सकती है और न ही अपने उद्येश्य को प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्षस्वरूप हम कह सकते हैं कि- पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी सम्भाग के एक छोटे से गांव नक्सलवाड़ी से साठ के दशक में किसान आन्दोलन के रूप में शुरू हुए संघर्ष को नक्सली आन्दोलन के संज्ञा से अभिहीत किया जाता है। इस समस्या के समाधान हेतु सन्तुलित तरीके से प्रयास करने की आवश्यकता है जिसके लिए जरूरी है कि संबंधित समन्वित राज्य प्रशासन भूमि सुधारों को सत्यनिष्ठा से लागु करे, समाजिक विषमता दुर करें और कल्याणकारी योजनाओं का लाभ भी उन सभी लोगों को प्राप्त करवाए, जो उसके असली हकदार हों। नक्सलवाद आज इस कारण जिंदा है, क्योंकि हमारे समाज में असंतोष व विक्षोभ के कारण बने हुए है। जबतक गरीबी, भूख, उत्पीड़न, दबाव, दहशत, अशिक्षा, पीड़ा और वंचित आबादी रहेगी तब तक असंतोष अराजकता, नक्सलवाद

जैसे आन्दोलनों को जन्म देती रहेगी। अर्थात् कहा जा सकता है कि नक्सलवाद वहीं पनपता है जहां समाजिक स्तर के मतभेद गहरे होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. ''नक्सलवादः समस्या और समाधान'', डॉ. विरेन्द्र सिंह बघेल, प्रकाशक-आत्माराम और बेटा, संस्करण-2011, आईएसबीएनः 8188090697
2. ''भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या'', जगजीवन राम, राजपाल एंड सन्स प्रकाशन, 2010
3. ''नक्सलिज्म'', मनोज श्रीवास्तव, संस्करण - 2011, आईएसबीएनः 9788191055047
4. ''ऐ नक्सल स्टोरी'', दिपेन्द्रा राय चौधरी, ज्ञान बुक्स प्र. लि., आईएसबीएनः 8189766317
5. ''माओइस्ट और नक्सलाइट पोलिटिक्स इन इंडिया'', डॉ. एस. दास, ज्ञान बुक्स प्र. लि., आईएसबीएनः 8184202458
6. ''नक्सलिज्म मूवमेन्टः ए बीगेस्ट चेलेन्ज टू द इन्टरनल सेक्यूरिटी'', उदय कुमार संस्करण- 2011, आईएसबीएनः 8191060701
7. ''नक्सलवादः कारण, समस्या एवं समाधान'', मनोज श्रीवास्तव, ज्ञान बुक्स प्र. लि. संस्करण-2011, आईएसबीएनः 8191055015
8. ''नक्सलवादः उदय और विकास'', ललेन्द्र कुमार कुन्दन, संस्करण-2011, आईएसबीएनः 8170545439
9. ''नक्सलवादी आन्दोलन में महिलाएँ'', डॉ. घनश्याम राय, ज्ञान बुक्स प्र. लि. संस्करण-2009, आईएसबीएनः 8190381954
10. ''नक्सलवादी समस्या पर स्थिति काजग'', दक्षिण एशिया आतंकवाद पार्टल।
11. ''नक्सलवाद विद्रोहः एक समाजिक-राजनीतिक अध्ययन'', सचिदानन्द पाण्डेय, संस्करण-1985
12. ''इकोनोमिस्ट पत्रिका लेख।
13. ''नक्सल प्रभावित जिलों में एकीकृत कार्य योजनाः एक आलोचना'', मेधा चतुर्वेदी, वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी आईपीसीएस, 31 अक्टुबर 2012
14. ''वार्षिक रिर्पोट 2011-2012'', भारत सरकार, गृह मंत्रालय
15. '' सलवा जुडुम अवैध है, अनुसूचित जाति का कहना है'', हिन्दू, 5 जुलाई 2011
16. ''उपग्रह से नक्सलियों पर नजर, एजेंसियां'', नई दिल्ली हिन्दुस्तान, 14 जनवरी 2011
17. ''प्रतियोगिता दर्पण, हिन्दी मासिक पत्रिका।
18. ''बिहार पर नजरें इनायत'', दैनिक जागरण पेज न. 10, 8 नवम्बर 2011।

ऑनलाइन स्टडी और आज का परिवेश

जनमेजय मिश्र

पी.एच. डी.(राजनीतिशास्त्र) डॉ. सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.)

कृष्ण कुमार पाण्डेय

शोध छात्र, इतिहास, डॉ.सी.वी.रमन विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश-

ऑनलाइन स्टडी अपनी सुविधा और आसान संचालन की प्रक्रिया से अधिक लोकप्रिय हो रहा है। ऑनलाइन अध्ययन शिक्षा का एक आधुनिक डिजिटल तरीका है जहाँ पर शिक्षक और छात्र उपकरणों जैसे कि लेपटॉप, स्मार्टफोन, टैब या अन्य उपकरणों का उपयोग कर एक दूसरे से बातचीत करते है। स्वास्थ्य संबंधित इतने नुकसान के बाद भी इस अध्ययन प्रक्रिया का उपयोग विशिश्ट परिस्थितियों में बहुत ही फायदेमंद साबित हुआ है।

शब्द कुन्ज - ऑनलाइन, महामारी, विचार, स्वास्थ्य .... इत्यादि।

प्रस्तावना -

इन दिनों ऑनलाइन अध्ययन का प्रचलन सा बन गया है, **कोविड-19** के चलते इस लॉकडाउन में कई स्कूलों में पिछले कुछ महीनों से ऑनलाइन अध्ययन की प्रक्रिया को अपनाकर इसे अधिक उपयोग में लाया है। ऑनलाइन स्टडी अपनी सुविधा और आसान संचालन की प्रक्रिया से अधिक लोकप्रिय हो रहा है। ऑनलाइन शिक्षा की प्रक्रिया में फायदें और नुकसान दोनों ही शामिल है।

ऑनलाइन अध्ययन शिक्षा का एक आधुनिक डिजिटल तरीका है जहाँ पर शिक्षक और छात्र उपकरणों जैसे कि लेपटॉप, स्मार्टफोन, टैब या अन्य उपकरणों का उपयोग कर एक दूसरे से बातचीत करते है। अध्ययन की यह पद्धति या प्रणाली इन दिनों काफी प्रचलित है, जबकि इस महामारी के फैलने के बाद हमें घर से बाहर न निकलने को कहा गया है। **कोविड-19** महामारी को देखते हुए कई स्कूलों में ऑनलाइन अध्ययन के तरीके को अपनाया है और इस प्रक्रिया को काफी हद तक सफल भी बनाया है।

विषयवस्तु - ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली कई संचार मोड का उपयोग करके, शिक्षकों और छात्रों दोनों को विचारों और जानकारी का आदान-प्रदान करने, परियोजनाओं पर, घर के आसपास, दुनिया भर में कहीं-भी काम करने की अनुमति देती है। ई-लर्निंग दूरस्थ शिक्षा का एक स्वरुप है, जहॉ शिक्षक के पास टड्यूटर की भूमिका कम होती है और उसकी शिक्षा में छात्र का योगदान सामान्य अध्ययन की स्थिति से अधिक होता है।

ऑनलाइन शिक्षा प्रक्रिया में फायदें और नुकसान

ऑनलाइन शिक्षा के फायदें -

ऑनलाइन अध्ययन के तरीके से अध्ययन के कई फायदें है। यह बहुत सुविधाजनक है इस सुविधा के उपयोग से आप अपने घर पर ही रहकर बातचीत कर सकते है। आप क्लासरूम की तरह यहॉ पर भी एक दूसरे से सवाल जवाब कर सकते है।

प्राकृतिक आपदा या आपातकाल की स्थिति में ऑनलाइन अध्ययन की प्रक्रिया का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। इस प्रक्रिया का सही उदाहरण हाल में ही में फैली कोविड-19 महामारी है, जिसका प्रभाव सारी दुनियॉं में है और इसके प्रभाव से बचने के लिए सभी प्रयत्नशील है। इन दिनों कई स्कूल छात्रों की सुरक्षा को देखते हुए ऑनलाइन अध्ययन की प्रक्रिया को अपना रहें है। वास्तव में ऑनलाइन अध्ययन की प्रक्रिया स्कूली शिक्षा के लिए एक सुरक्षित विकल्प है।

ऑनलाइन शिक्षा के नुकसान -:

ऑनलाइन अध्ययन की प्रक्रिया में कई लाभें के अलावा कुछ नुकसान भी हमारे सामनें प्रस्तुत होते हैं। जिस तरह वास्तविक कक्षा में जो उत्साह का वातावरण होता हैं यहॉं उस वातावरण का अभाव होता है। एक जीवंत कक्षा या लाइव क्लास में जो आनंद का माहौल होता है, ऑनलाइन अध्ययन में उस माहौल की कमी होती है। यहॉं पर एक शिक्षक और छात्र एक दूसरे से केवल एक ही विषय को लेकर बातचीत और चर्चा कर सकते है।

इसके अलावा इसके कारण गैजेट का ओवर एक्सप्रोजर से स्वास्थ्य के कई खतरें जैसे कि सिरदर्द, ऑखों का कमजोर होना और एकाग्रता में कमी आना इत्यादि का खतरा बढ़ जाता है।

ऑनलाइन स्टडी छात्रों के लिए कितनी अच्छी है -:

अध्ययन की यह प्रक्रिया के अपने फायदें है। यह काफी सुविधाजनक और अध्ययन की बहुत सस्ती प्रक्रिया है। ऑनलाइन स्टडी के लाभों में कुछ महत्वपूर्ण लाभ का विवरण नीचे किया गया है-

** सुविधाजनक-*

ऑनलाइन अध्ययन की इस विधि द्वारा छात्रों के साथ-साथ शिक्षकों के लिए भी काफी उपयोगी और सुविधाजनक है। दोनों ही अपने घर के बाहर बिना कदम रखें ही शिक्षा के सत्र में इस प्रक्रिया द्वारा भाग ले सकते है। उन्हें एक दूसरे से जुड़ने के लिए केवल एक अच्छे डिवाइस और इंटरनेट कनेक्शन की आवश्यकता होती है। बस आप अपनी आवश्यकता की किताबों के साथ अपने कमरें में एक उचित स्थान पर आराम से बैठकर अपने क्लासमेट्स के साथ ऑनलाइन कक्षा में भाग ले सकते है।

** सस्ता-*

ऑनलाइन अध्ययन स्कूली शिक्षा प्रणाली के कई मामलों में कॉफी सस्ती विधि है। सबसे पहला स्कूल जाने और वापस आने में ट्रान्सपोर्ट व अन्य खर्चो की आवश्यकता नहीं पड़ती है, दूसरा यह कि स्कूल के अन्य सभी खर्चे कम हो जाते है। कभी-कभी पुस्तके भी हमें ऑनलाइन ही उपलब्ध हो जाती है जिसकी कीमत हार्ड कॉपी की तुलना में काफी कम होती है। आप अपनी आवश्यकता के अनुसार इसे डाउनलोड कर सकते है, जिसमें की वास्तविक किताबों की तरह ही सामग्री उपलब्ध होती है। यहां तक आपको बस इंटरनेट कनेक्शन के पैसे ही खर्च करने होते है और कुछ नहीं।

** सुरक्षित-*

इसमें कोई संदेह नहीं कि ऑनलाइन अध्ययन सुरक्षित विकल्प है जिसमें खतरें की संभावना बहुत कम होती है। यह आपके लिए एक वरदान के रूप में है जबकि आपका घर से बाहर निकलना आपको खतरनाक साबित हो सकता है। हम सभी कोविड-19 महामारी के बारे में अच्छी तरह से जान चुके है, जिसने पूरे पृथ्वी को लॉकडाउन में डाल दिया है। जिसके कारण छात्र एक दूसरें के शारीरिक संपर्क में नहीं आते है और इसके कारण उनमें इस महामारी के फैलने की संभावना काफी कम हो जाती है। शुक्र है कि छात्र नियमित रूप से ऑनलाइन कक्षा में भाग लें रहें हैं जिसके कारण पाठ्यक्रम भी नहीं पिछड़ा है।

** लचीलापन-*

ऑनलाइन स्टडी पाठ्यक्रमों के दौड़ में आगे जाकर एक जबरदस्त लचीलापन ला सकता है। हमारे यहां कुछ विश्वविद्यालय आपके द्वारा चुने गये विषयों की ऑनलाइन सर्टिफिकेट प्रदान करता है जिसका पंजीकरण से लेकर परीक्षा तक की प्रक्रिया सब कुछ

ऑनलाइन के माध्यम से किया जाता है। इसके अलावा इसके सत्र की कक्षाएं रिकार्ड हो जाती ह, जिसे आप बाद में भी उपयोग कर सकते हैं।

** कम पेपर का इस्तेमाल-*

ऑनलाइन शिक्षा की प्रक्रिया का एक और लाभ यह भी है कि इसमें कागजों का उपयोग बहुत कम हो जाता है। क्लासरूम प्रणाली की अपेक्षा डिजिटल प्रणाली से अध्ययन करने में पेपर के उपयोग की मात्रा लगभग न के बराबर हो जाती है। आपको बस अपने में ये सब नोट करना होता है, जबकि आपका शिक्षक आपको बिना किसी पेपर के भी पढ़ा सकता है। इसके अलावा ऑनलाइन स्टडी भी आयोजित किए जाते है जिसके कारण पेपर का इस्तेमाल बहुत कम हो जाता है।

** कम संकोच-*

क्लास रूम एनवायरमेंट ही तुलना में ऑनलाइन अध्ययन में छात्र शिक्षक के बीच अधिक तालमेल देखा जा सकता है। आमतौर पर कक्षा में व्याकुलता ज्यादा मौजूद होते है जबकि ऑनलाइन कक्षा में इसकी संभावना काफी कम हो जाती है जिसके कारण छात्र शिक्षक द्वारा बतायी गयी बातों पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करने में मदद मिलती है। इसके अलावा छात्र अधिक संवेदनशील हो जाते है जिससे कि वो अपने संकोच को अपने शिक्षक के साथ बात करके उसका हल निकाल सकता है।

** शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार -*

ऑनलाइन शिक्षा कंप्यूटर-आधारित अनुकूल परीक्षण प्रदान करती है, और वैकल्पिक शिक्षा और विचारों को बढ़ावा देती हैं। यह छात्रों, शिक्षकों, माता-पिता, कार्यकर्ताओं और संस्थानों और सांख्यिकीय प्रतिक्रिया द्वारा निरंतर सुधार के बीच सहयोग को प्रोत्साहित करता है। ऑनलाइन शिक्षा छात्रों, शिक्षकों, और स्कूलों और विश्वविद्यालयों को मापने और रैंक करने और छात्रों के सर्वागीण विकास को पुरस्कृत करने के लिए एक सतत ग्रेडिंग प्रणाली प्रदान करती है।

** सुलभता में सुधार-*

ऑनलाइन और खुले सूचना पोर्टल किसी भी समय कहीं से भी सुलभ है यह न केवल पुस्तकों और अन्य संसाधनों (व्याख्यान, वक्ताओं के विडियों) को लाता है, बल्कि ग्रामीण इलाकों में शिक्षा फैलाने के लिए दूरस्थ शिक्षा पहलुओं को भी बढ़ता हैं यह विशेष आवश्यकताओं वाले छात्रों को ऑनलाइन पाठ्यक्रम भी प्रदान करता हैं। उदाहरण के लिए, उन लोगों के लिए 24 घण्टे 7 दिन स्कूली शिक्षा, जो दिन के दौरान नियमित स्कूलों में भाग नहीं ले सकते है।

** शिक्षा की लागत कम-*

ऑनलाइन शिक्षा ऑनलाइन समाधान के माध्यम से कम लागत पर सेवाएं प्रदान करता है। यह ऑनलाइन सिस्टम के माध्यम से ''खुद को सीखें'' और ''सामुदायिक शिक्षा'' को प्रोत्साहित करता है और कम कीमत पर सामान्य आधारभूत संरचना प्रदान करके स्वयं सेवकों को बढ़ावा देता है। यह शिक्षकों, स्कूलों और परीक्षा बोर्डो के लिए पाठ्यक्रम प्रदान करने और कम लागत पर परीक्षा आयोजित करने और मूल्यांकन करने के लिए उपकरण प्रदान करता हैं। यह भविष्य के खर्च पर रिर्टन और मार्गदर्शन के माप की अंतर दृश्टि भी देता है।

** सामाजिक अवसर-*

ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली किसी भी समय, कही भी प्रदान की जा सकती है। सामाजिक और सांस्कृतिक कारण उन्हें रोक रहे, तो घर से ऑनलाइन सीखना लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए दरवाजे खोलता है। यह वयस्कों के लिए व्यवसायिक पाठ्यक्रम और आत्म-शिक्षण सीखने को भी बढ़ावा देता हैं। यह सांस्कृतिक रूप से विविध भारत को एक आम सीखने के मंच पर लाने में मदद करता है, जो सभी भाशाओं में पेश किया जाता हैं। प्रभावी ऑनलाइन शिक्षण वातावरण छात्रों को सोचने के उच्च स्तर की ओर अग्रसर करते है, सक्रिय छात्र भागीदारी को बढ़वा देते है, व्यक्तिगत मतभेदों को समायोजित करते है और शिक्षार्थियों को प्रेरित करते है।

*** प्रशिक्षकों के लिए अवसर -**

ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से, शिक्षकों से अधिक छात्रों की भागीदारी होगीं। वे तकनीक का उपयोग कर नई शिक्षण तकनीकों के साथ प्रयोग कर सकते है, जो उनके ऑनलाइन पाठ्‌डक्रमों और आमने-सामने पाठडक्रमों के लिए काम करेंगे। यह उन छात्रों तक पहुंचने में सक्षम बनाता है, जो अन्यथा अपने पाठडक्रम नहीं ले सकते है। ऑनलाइन पाटडक्रमों में छात्रों की विविधता ऑनलाइन शिक्षण के सबसे पुरस्कृत पहलुओं में से एक हो सकती हैं ऑनलाइन शिक्षण लचीला और सुविधाजनक है। कोई भी कहीं भी पढ़ सकता हैं, जहां आप इंटरनेट का उपयोग कर सकते है। अधिकांश ऑनलाइन प्रशिक्षकों का मानना है कि वे कक्षा में जो कुछ करते है, उसके बारे में सामान्य रूप से बेहतर शिक्षक बन जाते है। छात्रों के साथ विभिू प्रकार के संचार के अवसर है।

*** छात्रों के लिए अवसर-**

यह उन्हें यह सीखने पर नियंत्रण देता है और प्रशिक्षक और अन्य छात्रों के साथ बढ़ती बातचीत प्रदान करता है। ऑनलाइन शिक्षा सुविधाजनक और लचीली है, विशेष रूप से गैर-पारंपरिक छात्रों के लिए नौकरियों, परिवारों आदि के लिए। छात्रों को कही भी ड्राइव नहीं करना, पार्किंग ढूढ़ना, प्रशिक्षकों के कार्यालयों के बाहर इंतजार करना, परिसर में परीक्षण करना आदि जाना है और यात्रा की कमी समय और पैसा बचाती है। यह उन छात्रों के लिए एक सुरक्षित वातावरण भी प्रदान करता है, जो आम तौर पर शामिल होने के लिए भाग नहीं लेते है।

कैसे ऑनलाइन स्टडी छात्रों के लिए अच्छा नहीं है -

ऑनलाइन अध्ययन के कई फयादों के बावजूद इसके ढेरों नुकसान भी है-

*** खुद पर नियंत्रण -**

एक ऑनलाइन अध्ययन की सफलता आपके खुद के आचरण पर निर्भर करता है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में हो। ऑनलाइन अध्ययन की प्रक्रिया सफल हुई या नहीं यह बात केवल आपके सीखने की उत्सुकता पर ही निर्भर करती है, हो सकता हैं कि आपका अध्यापक आपको न देख सकें, यह आपकी स्वतंत्रता पर निर्भर करता है कि आप सीखने के कितने इच्छुक है। आप खुंद के मन को कैसे नियंत्रित कर उस कक्षा से कितना सीखते है यह आप पर निर्भर करता है।

*** ईमानदारी पर निर्भर -**

यह ऑनलाइन अध्ययन की एक महत्वपूर्ण कमियों में से एक है। ऑनलाइन कक्षा में रहते हुए आपका ध्यान हमेशा स्क्रीन पर होनी चाहिए, उसके लिए आप कक्षा में स्वतंत्र नहीं हैं। आप ऑनलाइन कक्षा के प्रति कितने ईमानदार है यह आपकी उपस्थिति पर निर्भर करता है। ऐसी कक्षा में सभी छात्र पर ध्यान देना शिक्षक के लिए संभव नहीं है।

*** केवल कोर्स संबंधी बातें -**

अक्सर एक ऑनलाइन कक्षा में विषय के उस बिन्दु पर चर्चा की जाती है जिस विषय में चर्चा की जानी होती है। आमतौर की कक्षाओं में शिक्षक जहाँ अपनी निजी तथ्य और जोक्स भी शामिल करता है, ऑनलाइन कक्षा में इसकी कमी रहती है। कक्षा में जहां शिक्षक कई अन्य बातों के बारे में भी बात कर सकता है वही वह ऑनलाइन कक्षा में केवल विषय से संबंधित बातें ही बताता है।

*** ओवर एक्सपोजर टू स्क्रीन -**

ऑनलाइन अध्ययन में कक्षाओं के संचालन के लिए इलेक्ट्रानिक स्क्रीन गैजेट्स की आवश्यकता होती है। छात्रों को लम्बें समय तक, कभी-कभी 2 से 3 घंटे तक लगातार स्क्रीन पर देखना पड़ता है। इस तरह लम्बे समय तक स्क्रीन के उपर देखने के कारण हमारे स्वास्थ्य की प्रतिरोधक क्षमता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके कारण कुछ छात्रों में सिर दर्द और आंखों की समस्या देखने को मिलती है।

** सीमित बातचीत -*

हॉलाकि शिक्षक और छात्रों के बीच ऑनलाइन कक्षा में बातचीत की कोई सीमा तय नहीं की गई है, फिर भी यहां एक सीमित मात्रा में बात की जाती है। एक शिक्षक को सभी छात्रों के प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते है इस कारण शिक्षक छात्रों को बस कुछ ही मिनट दें पाता है, इसके लिए वह बाध्य होता है।

निष्कर्ष -

ऑनलाइन अध्ययन का माध्यम शिक्षक और तकनीकी का एक संलयन है। यह हमें सिखाती है कि नयी तकनीक के माध्यम से हम कैसे शिक्षा प्रणाली का लाभ उठा सकते है और हम इसमें विकास और सुधार के लिए और शिक्षा और अधिक प्रयास कर सकते है। शिक्षा के क्षेत्र में यह प्रणाली एक क्रांति लाने की दिशा में हर दिन नये कदम की ओर अग्रसर है जो कि पहले कभी नहीं हुआ।

ऑनलाइन अध्ययन का तरीका कुछ मामलों में पूर्ण नहीं है। यह तो निश्चित है कि इसके अपने कई नुकसान है, पर कुछ महत्वपूर्ण परिस्थितियों में यह हमारे बहुत फायदेमंद साबित हुआ है। जैसे कि कोविड-19 महामारी में लॉकडउन होने के उपरान्त यह कई स्कूल और बहुत सारें छात्रों के लिए एक आशीर्वाद के रूप उन्हें मिला है।

स्वास्थ्य संबंधित इतने नुकसान के बाद भी इस अध्ययन प्रक्रिया का उपयोग विशिश्ट परिस्थितियों में बहुत ही फायदेमंद साबित हुआ है। जबकि आपका घर आपकी सुविधा और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है तो उस स्थिति में ऑनलाइन अध्ययन की प्रक्रिया आपके लिए एक वरदान साबित हो जाता है। कोविड-19 के प्रभाव स्वरूप गांधी जी की नई तालिम द्वारा आज लोगों को आत्मनिर्भर बनाने की आवश्यकता है। जिससे देश को स्वरोजगार मिल सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची-:

1. Govt. of India (2012). National policy on ICT in school Education, MHRD , Govt. of India
2. Critical Understanding Of ICT, Dr pawan kumar, Foundation publishing House, New Delhi-
3. शिक्षा में सूचना एवं सम्प्रेशण तकनिकी, कुलदीप सारस्वत, अंजना प्रकाशन मंदिर, आगरा ।
4. योजना, प्रकाशन विभाग , नई दिल्ली।
5. शैक्षिक तकनिकी एवं सूचना । सम्प्रेशण तकनीकी, जे. सी. अग्रवाल एस. पी. कुल्श्रेष्ठ, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा ।
6. शैक्षिक तकनीकी एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकी, राखी प्रकाशन आगरा।

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का आध्यात्मिक बुद्धि पर प्रभाव का अध्ययन

दीपक कुमार चौबे

पी. एच. डी. शोधार्थी शिक्षाशास्त्र डॉ. सी. वी. रामन विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

डॉ० पार्वती यादव

शोध निर्देशिका, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, डॉ. सी. वी. रामन विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

सारांश - शोधकर्ता द्वारा अपना शोधकार्य ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का आध्यात्मिक बुद्धि पर प्रभाव का अध्ययन'' पर किया है। शोध का उद्देय उच्च, औसत एवं निम्न मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन करना है जिसके लिए सर्वेक्षण शोध विधि प्रयोग की। न्यादर्श के रूप में गढ़वा जिले के 600 विद्यार्थियों को यादृच्छिक प्रविधि से लिया है। उपकरण के रूप में डॉ0 के0 एस0 मिश्रा द्वारा निर्मित आध्यात्मिक मूल्य मापनी तथा डा0 अरूण कुमार सिंह एवं डा0 अल्पना सैन गुप्ता द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य बैटरी तथा सांख्यिकी प्रविधि के रूप में मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया है। शोधार्थी द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जिन विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य तुलनात्मक रूप से जितना अच्छा है उन विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि उतनी ही अधिक है तथा जिन विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य अपेक्षाकृत जितना कम है उन विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि अपेक्षाकृत उतनी ही कम है। अत: व्यक्तियों की आध्यात्मिक बुद्धि के विकास हेतु व्यक्तियों के मानसिक स्वास्थ्य के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

शब्द कुंजी - मानसिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक बुद्धि .... इत्यादि।

परिचय - व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य विभिन्न कारकों जैसे-खानपान, परिवेश, अनुवंशिकता, समाज, दुर्घटना आदि से प्रभावित होता है। इसीलिए व्यक्तियों के मानसिक स्वास्थ्य में विभिन्नता विद्यामान रहती है। व्यक्तियों की इस मानसिक स्वास्थ्य की भिन्नता के कारण व्यक्तियों के व्यवहार, बुद्धि, उपलब्धि, जीवन मूल्य आदि में भिन्नता मिलती है। जो व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ्य होते है वे समाज में सामजस्य आसानी से स्थापित कर लेते है तथा वे विपरित पस्थितियों में भी विचलित नहीं होते है। जब ऐसे व्यक्तियों के सम्मुख कोई परेशानी या समस्या आती है तो वे उस परेशनी या समस्या को धैर्य एवं समझ के साथ सकारात्मक रूप में देखते है तथा समस्याओं को हल कर लेते है। दूसरी ओर जो व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होते है वे समाज में आसानी से सामजस्य स्थापित नहीं कर पाते है तथा जब व्यक्तियों के सामने कोई समस्या या परेशानी आती है तो वे मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होने के कारण वे धैर्य एवं समझदारी नहीं रख पाते है तथा समस्याओं को नकारात्मक के रूप में अधिक देखते है जिससे समस्या, हल होने के स्थान पर जटिल होती जाती है ऐसी स्थिति में व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होने लगता है तथा व्यक्ति स्वयं के साथ-साथ देश एवं समाज के लिए हानिकारक होता जाता है। अत: व्यक्तियों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखा जाना चाहिए। वर्तमान समय में विश्व की अधिकांश से अधिक आबादी मानसिक विकृति, दबाव, तनाव आदि से ग्रसित है। देखने में यह भी आता

है जिन देशों के व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा है उन देशों का विकास अच्छा एवं तीव्र गति से हो रहा है तथा उस देश की शिक्षा, खानपान, उपलब्धि, जीवन मूल्य, बुद्धि उच्च स्तर के है जबकि जिन देशों के व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य सही नहीं है, उन देशों का विकास सही एवं तीव्र गति से नहीं हो रहा है।

अध्ययन का औचित्य - आज के समय में व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य उसके व्यक्तित्व के लगभग सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। जिन व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है उनका व्यक्तित्व भी अच्छा होता है तथा जिन व्यकितयों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं होता तो उन व्यक्तियो का व्यक्तित्व प्रभावित होकर पूर्ण विकसित नहीं हो पाता है। इसलिए व्यक्तियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों तथा मानसिक स्वास्थ्य से प्रभावित होने कारकों का अध्ययन आवश्यक है। शोधकर्ता के शोध कार्य के आधार पर विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के आध्यात्मिक बुद्धि पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी प्राप्त होगी जिसके आधार पर विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि में उन्नयन किया जा सकेगा। इसलिए यह शोधकार्य आज के परिपेक्ष्य में आवश्यक है।

शोध समस्या - शोधार्थी द्वारा शोध अध्ययन हेतु चुनी गयी शोध समस्या का का समस्या कथन निम्नवत है-

''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का आध्यात्मिक बुद्धि पर प्रभाव का अध्ययन ''

समस्या कथन में प्रयुक्त पदों की सक्रियात्मक परिभाषायें- समस्या कथन में प्रयुक्त पदों की सक्रियात्मक परिभाषाऐं निम्नलिखित हैं-

* **विद्यार्थी** - प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त विद्यार्थी शब्द से शोधकर्ता का तात्पर्य बालकों के सामान्यत: उस उभयनिष्ठ एवं संयुक्त सम्बोधन की ओर इशारा करता है, जो एक निश्चित समय तक नियन्त्रित परिवेश अर्थात विद्यालय में रहकर निर्धारित पाठ्यक्रम के तहत औपचारिक शिक्षा ग्रहण करने के कारण विद्यार्थियों की श्रेणी में आते हैं।
* **मानसिक स्वास्थ्य** - मानसिक स्वास्थ्य का तात्पर्य व्यद्रि के व्यवहार एवं विचार में सन्तुलन से है जिसके द्वारा व्यद्रि अपनी विपरित परिस्थितियों में अपने आप को सन्तुलित रखता है।
* **आध्यात्मिक बुद्धि** - आध्यात्मिक बुद्धि जन्मजात आन्तरिक आध्यात्मिक गुणों, पारदर्शी सोच, कार्यो और अभिवृत्ति को प्रकट करने की क्रिया है।

उद्देश्य - उच्च, औसत एवं निम्न मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन करना।

परिकल्पना - उच्च, औसत एवं निम्न मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।

परिसीमायें- शोध समस्या से जुड़े विभिन्न पक्षों का सीमांकन निम्न प्रकार से है-

* शोध अध्ययन झारखण्ड के गढ़वा जिले तक सीमित है।
* शोध अध्ययन माध्यमिक विद्यालयों की कक्षा 9 के विद्यार्थियों तक सीमित है।
* शोध अध्ययन कक्षा 9 में हिन्दी माध्यम से अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों तक सीमित है।
* शोध अध्ययन 600 विद्यार्थियों तक सीमित है। जिसमें 300 छात्र एवं 300 छात्राएँ है।

शोध विधि - शोध का मुख्य उद्देश्य माध्यमिक स्तर की कक्षा दस के अध्ययनरत उच्च, औसत एवं निम्न मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि का अध्ययन करना है जिसके लिए सर्वेक्षण शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या एवं न्यादर्ष - शोधकर्ता द्वारा शोध अध्ययन हेतु झारखण्ड के गढवा जिले के माध्यमिक स्तर की कक्षा दस के हिन्दी माध्यम से अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में लिया गया है। शोधकर्ता द्वारा शोध अध्ययन हेतु 600 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में लिया गया है जिसमें छात्र एवं छात्राओं को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। शोध अध्ययन के लिए यादृच्छिक प्रविधि का प्रयोग किया।

शोध उपकरण -

* डॉ0 के0 एस0 मिश्रा द्वारा निर्मित आध्यात्मिक मूल्य मापनी
* डा0 अरूण कुमार सिंह एवं डा0 अल्पना सैन गुप्ता द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य बैटरी

सांख्यिकी प्रविधि -

* मध्यमान
* मानक विचलन
* क्रान्तिक अनुपात

उद्देश्य के परिणाम का विश्लेषण - सांख्यिकी विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए-

उच्च, औसत एवं निम्न मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि में में तुलना हेतु सारणी

चर	स्तर	विद्यार्थियों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	विचलन की मानक त्रुटि	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता स्तर	परिणम
ध्यात्मिक बुद्धि	उच्च	147	175	12.00	1.44	13.11	0.05 = 1.96	अस्वीकृत
	औसत	307	160	10.06			0.01 = 2.59	
ध्यात्मिक बुद्धि	उच्च	147	175	12.00	1.34	20.08	0.05 = 1.96 0.01 = 2.59	अस्वीकृत
	निम्न	146	148	11.00				
ध्यात्मिक बुद्धि	औसत	307	160	10.06	1.07	11.15	0.05 = 1.96 0.01 = 2.59	अस्वीकृत
	निम्न	146	148	11.00				

उच्च और औसत - सारणी क्रमांक 4.1 के से ज्ञात होता है कि उच्च और औसत मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि के आधार पर प्राप्त किये गये मध्यमान क्रमषः 175 तथा 160 है। वहीं प्रमाणित विचलन क्रमषः 12.00 तथा 10. 06 है। मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता जांचने के लिए ज मूल्य परीक्षण किया गया। गणना से प्राप्त ज का मान 13.11 है। df = 452 के लिए ज का सारणी मान 0.05 के सार्थकता स्तर पर 1.96 तथा 0.01 के सार्थकता स्तर पर 2.59 है। ज का प्राप्त मान ज के सारणी मान से 0.05 तथा 0.01 दोनों ही सार्थकता स्तरों पर अधिक है। अर्थात् उच्त और औसत मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि में सार्थक अन्तर पाया गया।

उच्च और निम्न - सारणी क्रमांक 4.1 के से ज्ञात होता है कि उच्च और निम्न मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि के आधार पर प्राप्त किये गये मध्यमान क्रमशः 175 तथा 148 है। वहीं प्रमाणित विचलन क्रमश 12.00 तथा 11. 00 है। मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता जांचने के लिए ज मूल्य परीक्षण किया गया। गणना से प्राप्त ज का मान 20.08 है। df = 291 के लिए t का सारणी मान 0.05 के सार्थकता स्तर पर 1.96 तथा 0.01 के सार्थकता स्तर पर 2.59 है। t का प्राप्त मान ज के सारणी मान से 0.05 तथा 0.01 दोनों ही सार्थकता स्तरों पर अधिक है। अर्थात् उच्त और निम्न मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि में सार्थक अन्तर पाया गया।

औसत और निम्न - सारणी क्रमांक 4.1 के से ज्ञात होता है कि औसत और निम्न मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि के आधार पर प्राप्त किये गये मध्यमान क्रमश 160 तथा 148 है। वहीं प्रमाणित विचलन क्रमश 10.06 तथा 11. 00 है। मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता जांचने के लिए t मूल्य परीक्षण किया गया। गणना से प्राप्त ज का मान 11.15 है। df

= 451 के लिए ज का सारणी मान 0.05 के सार्थकता स्तर पर 1.96 तथा 0.01 के सार्थकता स्तर पर 2.59 है। t का प्राप्त मान t के सारणी मान से 0.05 तथा 0.01 दोनों ही सार्थकता स्तरों पर अधिक है। अर्थात् औसत और निम्न मानसिक स्वास्थ्य वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि में सार्थक अन्तर पाया गया।

निष्कर्ष - मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में औसत से उच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में औसत अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि की तुलना में सार्थक रूप से अधिक है।

मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में औसत से उच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में औसत से निम्न अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि की तुलना में सार्थक रूप से अधिक है।

मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में औसत अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में औसत से निम्न अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि की तुलना में सार्थक रूप से अधिक है।

शोध अध्ययन में शोधकर्ता ने पाया कि मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में उच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि का मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में औसत अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों से अधिक होने, मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में औसत अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि का मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण पर निम्न अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों से अधिक होने, मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में उच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि का मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में निम्न अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों से अधिक होने का कारण शायद विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक रूप से अधिक स्वास्थ्य होना है। शोधार्थी द्वारा यह भी देखा गया कि जिन विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य तुलनात्मक रूप से जितना अच्छा है उन विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि उतनी उतनी ही अधिक है तथा जिन विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य अपेक्षाकृत जितना कम है उन विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि उतनी ही अपेक्षाकृत उतनी ही कम है क्योंकि जिन विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा या उच्च स्तर का होता है वे घृणा, द्वेश अलगाव द्वन्द्व आदि मानसिक विकारों से कम प्रभावित होते हैं तथा जीवन की वास्तविक को सही रूप में समझकर निर्णय ले पाते हैं। जिससे उनकी सोच, समझ एवं निर्णय क्षमता पक्षपात रहित होती है तथा उनकी आध्यात्मिक बुद्धि में उन्नयन होता है। अत: विद्यार्थियों की आध्यात्मिक बुद्धि में बुद्धि का उन्नयन करने हेतु विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को अच्छा बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए विद्यार्थियों को स्वास्थ्य तर्क, विचार, विमर्श, निपक्ष अभिव्यक्ति एवं स्वस्थ्य पाठ्य सहभागी क्रियाओं की ओर आकर्षित किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों के मानसिक विकास कम हो एवं वे मानसिक रूप से स्वस्थ एवं मजबूत हों तथा उनकी आध्यात्मिक बुद्धि में वृद्धि हो ।

शैक्षिक निहितार्थ - शोध निष्कर्षो के आधार के आधार पर छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं आध्यात्मिक बुद्धि पर मानसिक स्वास्थ्य के प्रभाव के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होगी। जिससे अध्यापक छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं आध्यात्मिक बुद्धि को बढ़ाने हेतु विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर धन देंगे तथा वे कक्षा में ऐसे वातावरण एवं क्रियाओं की व्यवस्था करने के लिए प्रेरित होंगे। जिससे विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार हो सके।

सन्दर्भ सूची -

1. कुप्पूस्वामी, बी0 (1976) बाल व्यवहार और विकास, नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0।
2. गुप्ता, एस0पी0 (2008) आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन, पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स।
3. गुप्ता, ए0 (1982) स्ट्रेस एमंग वर्किंग, इट्स इफेक्ट्स ऑन मैरिटल एडजमेंट, पेपर प्रेजेन्टेड एट दि0 यू0 जी0 सी0 सेमिनार ऑन स्ट्रेंस इन कॉन्टेम्प्रेरी लाइफ, नई दिल्ली : स्ट्रेटजी ऑफ कोपिंग।
4. गुप्ता , ए0 पी0 (2009), सांख्यिकीय विधियाँ, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक मन्दिर।
5. भार्गव, डा0 महेश (2009), मनोवैज्ञानिक परीक्षक एवं मापन, आगरा: राखी प्रकाशन, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस।
6. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, जूलाई-दिसम्बर, 2006
7. मेनन, एस0 के0 (1973), ''उच्च क्षमता वाले शैक्षणिक सफलताओं की व्यक्तित्व प्रोफाईल का एक तुलनात्मक अध्ययन'' शैक्षिक अनुसंधान का पाँचवाँ सर्वेक्षण, वाल्यूम-एक नई दिल्ली, एनसीईआरटी।
8. यादव, अनिल (2010), एम0फिल डेजर्टेशन, आईएएसई विश्वविद्यालय गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर।

मनोभाषाविज्ञानः अवधारणा एवं स्वरूप

डॉ० वंदना शर्मा

सहायक प्रोपफेसर, हिंदी, राजकीय महाविद्यालय नलवा, हिसार

डॉ० गोविंद सिंह

सहायक प्रोपफेसर, मनोविज्ञान, राजकीय महाविद्यालय नलवा, हिसार

आधुनिक युग में हर क्षेत्र में कुछ नयापन दिखाई देता है। इसी तरह साहित्य के कथा क्षेत्र में भी इससे एक नया रंग भर गया है। आज के साहित्य में कहीं न कहीं आधुनिकता के दर्शन होते हैं।आज का मनुष्य बहुत ही बुद्धिमता वाला और सजग है।इसलिए जो भी कथात्रः साहित्य की रचना की जाए,उसकी विषय-वस्तु सजग होनी चाहिए क्योकि हर एक मनुष्य को जन्मजात मस्तिष्क मिला है।जिससे वह सोचता है,बाद में अपनी सोच या विचारधारा को अपनी भाषा में प्रकट करता है,उस वक्त मन और भाषा का अध्ययन जरूरी बन जाता है।

मनुष्य के मन का अध्ययन करने वाला शास्त्र है-मनोविज्ञान।मन और भाषा के अंतः संबंध को स्पष्ट करने वाला शास्त्र है-मनोभाषाविज्ञान।[1]

भाषाविज्ञान में भाषा या भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है और भाषा जीवन का प्रमुख अंग हैक्योंकि भाषा के बिना जीवन और जगत् का कोई भी कार्य नहीं हो सकता है।भाषा मानव जीवन की समस्त गतिविधियों का मूल आधार होती है। भाषा से ही परस्पर हम एक- दूसरे के विचारों से अवगत होते हैं।अपनी इच्छा या अभिलाषा व्यक्त करते हैं और लोग व्यवहार में प्रभावित तथा दूसरों को प्रभावित करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।भाषा ही हमें ज्ञान-विज्ञान के अनुसंधानों में सहायता प्रदान करती है और भाषा से हम प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर प्रकृति के विविध रहस्यों का उद्घाटन करने मेंसहमत होते हैं।जब भाषा हमो जीवन जगत् ज्ञान-विज्ञान आदि के सभी क्षेत्रों में अपना अधिकार रखती है। तब भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले भाषाविज्ञान का संबंध सामान्य ज्ञान-विज्ञान की अन्य शाखा एवं परशाखाओं के प्रतिपादक विविधशास्त्रों से होना स्वाभाविक है।वैसे भी भाषा ज्ञान -विज्ञान की सभी शाखाओ से सहायता प्राप्त करके अपने क्षेत्रों में परमपरि होता हैऔर विविध शास्त्रों से उपयोगी सामग्री लेकर भाषा की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।[2]

इसके अतिरिक्त जब सभी शब्द अपने ज्ञान-विज्ञान द्वारा जीवन और जगत के रहस्यो का अनुसंधान से सर्वेक्षण करते हुए अपने-अपने विषयों प्रतिपादन करते हैं। तब सभी शास्त्रों का पारस्परिक संबध भी अपरिहार है। इसका कारण यह है कि विषय परिपादक के प्रमुख साधन भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन करने में भाषा विज्ञान का विविध शास्त्रों से घनिष्ठ संबंध है।[3]

भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान का घनिष्ठ संबंध है। भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान के घनिष्ठ संबंध के कारण ही भाषामनोविज्ञान (साइकोलिंग्विस्टिक्स) नांमक एक नयी पद्धति का विकास हुआ है।मनोभाषाविज्ञान-भाषा को सीखने,प्रयोग करने,समछने एवं अभिव्यक्त करने से संबंधित मनोवैज्ञानिक एवं तंत्रिका जैविक कारकों का अध्ययन करता है।[4] भाषा की सृष्टि विचारों से होती है। पहले मन में किसी प्रकार का विचार उत्पन्न होता है और तब उस विचार के अनुकूल भाषा का सृजन होता है।भाषा वास्तव में विचार

रूपी साध्य का साधन है। विचारो का संबंध मन या मस्तिष्क से है।इस प्रकार भाषाविज्ञान का मनोविज्ञान के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित होता है। सुक्ष्म दृष्टि से यदि देखा जाए तो भाषा की केवल बाह्य संरचना नही होती है,अपितु आंतरिक संरचना भी होती है। बाह्य संरचना में जहां हम भाषा का ध्वनि शब्द रूप का वाक्यपरक अध्ययन करते हैंएवहीं आंतरिक संरचना का संबंध मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया से जुड़ा होता है। मनुष्य की मन:स्थिति का अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। **चाँमस्की** ने 'रूपांतरक प्रजनक व्याकरण'सिद्धांत में बाह्य संरचना की अपेक्षा आंतरिक संरचना ही प्रमुख होती है क्योकि दोनों स्थितियों में हमारा मस्तिष्क क्रियाशील रहता हैअर्थात् भाषाविज्ञान की वहशाखा जिसका अनुप्रयोगमनोविज्ञान के आधार पर हो, **मनोभाषाविज्ञान** है।[5]

आसगुड के अनुसार मनोभाषाविज्ञान का संबंध भाषा या वाक्यों के बोधन से उत्पन्न होने वाली प्रक्रिया है।[6]

जाँनसन लेयर्ड ने भी ठीक इसी प्रकार का मत रखा जिससे स्पष्ट होता है कि मनोविज्ञान का संबंध भाषा के प्रायोगिक पक्ष से है।इसलिए मनोभाषाविज्ञान भाषाविज्ञान का अनुप्रयुक्त पक्ष कहलाता है।[6] हम जो कुछ भी सुनते हैं,उसका अर्थ कैसे ग्रहण करते हैं?हम जो कुछ भी बोलते हैं उसकी संरचना का निर्माण और निर्धारण कैसे होता है? कोई शिशु जब भाषा सीखता है तो जटिल रूप सहज ढ़ंग से कैसे सीख जाता है?बोलते,सुनते समय उसके मस्तिष्क में किस प्रकार की प्रक्रिया चलती है?इन सभी प्रश्नों के उत्तर हम मनोभाषाविज्ञान की परीधि में ही जान सकते हैं। इसलिए मनोभाषाविज्ञान भाषिक क्ष्मता से प्रयुक्त व्यवहार का अध्ययन करता है।इसका ज्ञान मानव की संचयन और अनुसरण क्षमता द्वारा होता है और ये दोनों क्षेत्र मनोविज्ञान के अंतर्गत आते हैं। इसलिए मनोभाषाविज्ञान भाषाविज्ञान का अनिवार्य पक्ष है। मनोभाषाविज्ञान आधुनिक युग में विकसित होने वाला नवीन विषय है। भाषा के क्षेत्र संबंध विद्वानों,शिक्षविदो,भाषा शिक्षकों और मनोवैज्ञानिकों के अतिरिक्त भाषा प्रौधोगिकी और सांख्यिकी से संबद्ध विद्वानों के सम्पर्क के कारण यह विषय साठ के दशक सेद्रुतगति से विकसित हो रहा है। शब्दों में अर्थ आदि जो परिवर्तन होते हैं,उनके कारण और स्वरूप आदि को समझाने के लिए भाषाविज्ञान में मनोविज्ञान का आश्रय लिया जाता है। मनोभाषाविज्ञान भाषाउपार्जन और भाषा अधिगम का विज्ञान कहा जा सकता है,क्योकि यह विषय भाषा उपार्जन की प्रक्रिया, स्वरूप, सिद्वांत, नियम, समस्याएं, कठिनाईयां, अभिप्रेणा, अभिवृतियां, अभिरूचियां, भाषा परिमार्जन, वाक्दोषों का अध्ययन, वाक् दोष व वाणी सुधार, द्वितीय या अनेक भाषाओं का अधिगम, मातृभाषा के उत्पन्न व्याघात और एक भाषा का दुसरी भाषा पर प्रभुत्व आदि अनेक भाषा संबंधी विषयों का अध्ययन मनोवैज्ञानिक अध्ययन हाने के साथ-साथ भाषावैज्ञानिक अध्ययन भी है। भाषा किसी सामाजिक समुदाय या समाज में ही व्यवहृत होती है। इस कारण सम्प्रेषणीयता की समस्या और सुचना के विविध पक्षों, वक्ता-श्रोता के मनोवैज्ञनिक, भाषावैज्ञानिक और प्रतीकात्मक आदि का अध्ययन भी मनोभाषाविज्ञान का ही विषय है। भाषा के प्रमुख उपयोग भावनाओं और विचारों के आदान -प्रदान के माध्यम के रूप में सुचना के सम्प्रेषण के साथ जटिल रूप से भाषाविज्ञान से संबंध हैं। संभाषण के समय कोडीकरण और विकोडीकरण प्रक्रिया के सम्पन्न होने के लिए भाषिक शब्दों में निहीत प्रतीक व्यवस्था उनका क्रमिक विकास भाषा के विकास के साथ और उन प्रतीकों के संज्ञान का विकास मनोभाषाविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है, जिसने सम्भवत: आधुनिक मनोभाषावैज्ञानिक आसगुड, स्किनर, चामस्की, निलर, पियाजे सहित अन्य विद्वानों को भी अध्ययन के लिए प्रेररित किया।[7] मनोविज्ञान व्यक्तिविषेष के अनुभवों,धाराणाओं एवं क्रियाओं का अध्ययन करता है। व्यक्ति विषेष की धारणाओं एवं अनुभव प्रत्यक्षत: उसी के अनुभूत होते हैं। व्यक्ति अपने निजी अनुभव और धारणाओं की अभिव्यक्ति करता है। व्यक्ति के अभिव्यक्तिकरण और व्यवहार के साधनों में से प्रमुख साधन उसका वाक् उच्चारण है। व्यक्ति भाषा के द्वारा अपने को समाज से जोड़ता है तथा भाषा के द्वारा उसके अंर्तमन को जानने मेंबहुत सहायता मिलती है। व्यक्ति के वाक् व्यवहार का अध्ययन भाषावैज्ञानिक भी करता है और मनोवैज्ञानिक भी करता है। मनोवैज्ञानिक भाषा के आधार पर किसी मनुष्य के व्यक्तित्व तथा उसके वयवहार का अध्ययन करता है।इसके लिए वह उसकी मातृभाषा की सामान्य भाषिक व्यवस्थाओं एवं संरचना से इतर उसके वाक् -व्यवहार की विशिष्टताओं का आकलन करता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान एक-दूसरे से घनिष्ठता रखते हुए मनोभाषाविज्ञान (साइकोग्विंस्टिक्स) का स्वरूप धारण कर इसको परिभाषित करते हैं।

संदर्भ-सुची :

1. मनोभाषाविज्ञान: एक परिचय-सुशमा श्रीवास्तव, पृ॰5, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
2. व्यावहारिक शैलीविज्ञान: भोलानाथ तिवारी, पृ॰26, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली,1983
3. संरचनात्मक शैलीविज्ञान: रवींद्रश्री वास्तव, आालेख प्रकाशन दिल्लीए1979
4. भाखा बहता नीर: महावीर सरन जैन, साहित्य अमृत, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,
5. मनोभाषाविज्ञान: एक परिचय-सुशमा श्रीवास्तव, पृ॰5, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
6. मनोभाषाविज्ञान: एक परिचय-सुशमा श्रीवास्तव, पृ॰5, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
7. भाषाविज्ञान: भोलानाथ तिवारी,भुमिका -धीरेंद्र वर्मा, पृ॰41, किताबमहल प्रकाशन, इलाहाबाद।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में वैवाहिक जीवन की अभिव्यक्ति

डॉ० उमेश कुमार शर्मा

सहायक प्राचार्य (अतिथि), विश्वविद्यालय-हिन्दी-विभाग, ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

हिन्दू-विवाह-संस्था और दाम्पत्य जीवन के संघर्षों की जटिलता इस युग में भी व्याप्त है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में इनकी व्यापक प्रस्तुति हुई हैं, जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं में देखा जा सकता है-

1. परम्परागत वैवाहिक सम्बन्धों की अभिव्यंजना
2. नए वैचारिक आन्दोलन से प्रभावित वैवाहिक जीवन का चित्रण
3. परम्परा के प्रति विद्रोह
4. विवाह में कन्या की इच्छा पर ध्यान
5. स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने की व्यग्रता

उक्त बिन्दुओं का क्रमवार विश्लेषण पंडित लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों के आधार पर प्रस्तुत है-

परम्परागत वैवाहिक सम्बन्धों की अभिव्यंजना

लक्ष्मीनारायण मिश्र के अनेक नाटकों में शास्त्रीय विधानपूर्वक विवाह-कार्य सम्पादित होने, विवाह को एक अनिवार्य धार्मिक संस्कार एवं अटूट सामाजिक बन्धन मानने तथा उसकी मर्यादाओं-पातिव्रत्य, सती-प्रथा, कुल-गोत्र, जाति आदि को पर्याप्त महत्त्व देने से सम्बन्धित विविध दृश्य उपस्थित किये गये हैं।

परम्परागत भारतीय समाज में पत्नी के लिए उसका पति ही परमेश्वर होता है। अतएव, जन्म-जन्मांतर तक पति की सेवा करते रहने में ही स्त्री अपने जीवन की चरम सिद्धि मानती है। 'राजयोग' नाटक में चन्दा अपने पति शत्रुसूदन से कहती है- ''स्त्री के लिए पति ही ईश्वर है। आप नहीं जानते? सधवा स्त्री के लिए तीर्थ और व्रत शास्त्रों में वर्जित है। पति ईश्वर है... पति भगवान है। आप मेरे लिए भगवान हैं।''[(1)] इन्हीं विचारों के कारण स्त्रियाँ स्वयं को पति की सेविका या दासी मान बैठती हैं, जबकि यह सामाजिक-धार्मिक परम्परा के द्वारा फैलाया गया भ्रम है। इससे स्त्री-स्वातंत्र्य को गहरा आघात पहुँचता है, क्योंकि स्त्रियाँ इन्हीं भ्रामक मान्यताओं - सोचों के कारण युग-युगान्तर से शोषण झेलती आ रही हैं। अत: आधुनिक स्त्रियों को अस्मिता की तलाश करनी चाहिए। दूसरी बात है कि भारतीय समाज में विवाह को एक धार्मिक अनुष्ठान माना जाता है। इसलिए उसमें सिर्फ पवित्र आचरणों का ही विधान किया गया है। यहाँ तक कि पुरुष को स्वप्न में भी देखना भारतीय ललनाओं के लिए पाप समझा गया है। मिश्रजी रचित 'वितस्ता की लहरें' नाटक में पतिव्रताओं की प्रशंसा करते हुए ताया अलिकसुंदर से कहती है- ''पति से बड़ा देवता कोई नहीं होता। दूसरे पुरुष के संसर्ग से बड़ा पाप इनके लिए कोई दूसरा नहीं है। नारी के इसी भाव से यहाँ का एक पुरुष पारस के सौ पुरुषों के बराबर है।''[(2)] ताया ने भारतीय नारियों के आदर्श पति-सेवा में रत रहना, सतीत्व पर संकट पड़ते देखकर अग्नि में कूद पड़ना, हीरे की नग चाट लेना देखे हैं, अपने प्रति भारतीयों के व्यवहार देखे हैं और यवनों को भी अमानवीय व्यवहार करते देखा है। एक मनुष्यता के सर्वोच्च शिखर पर है तो दूसरा पशुता से भी निम्न स्तर पर।

भारतीय समाज में विवाह को धार्मिक अनुष्ठान मानने की परम्परा रही है। पश्चिमी देशों में विवाह को स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध बनाए जाने की सामाजिक और पारिवारिक स्वीकृति माना जाता है, तथापि परम्परा में यह धारणा सर्वथा गौण है। यहाँ विवाह को शारीरिक आवश्यकता-पूर्ति का साधन न मानकर संतति-विकास या संतानोत्पत्ति का माध्यम माना जाता है। यहाँ यौन-सम्बन्ध मनोरंजन का आधार नहीं, संतानोत्पत्ति के लिए अनिवार्य कर्म माना जाता है। 'वितस्ता की लहरें' नाटक में स्त्रियों के प्रति उपभोक्तावादी दृष्टि रखने वाले अलिकसुन्दर से प्रसंगवश सम्राट् पुरु कहते हैं- ''नारी के प्रति हमारा अनुराग पुत्र के फल के लिये होता है। वह पुत्र, जिसे कुलदेव, पितृदेव और अग्निदेव की उपासना का अधिकार हो। ताया के पुत्र को यह अधिकार न होगा।''[(3)] इन्हीं विचारों का समर्थन 'मृत्युंजय' नाटक में भी किया गया है। गाँधीजी पटेल से कहते हैं- ''प्रेमिका प्रेमी अंग्रेजी-साहित्य में होते हैं। यहाँ तो नायक-नायिका हैं। यूनानी-साहित्य से लेकर यूरोप के सभी आधुनिक साहित्य में ढूँढ़ आओ नर-नारी के प्रेम का वर्णन तो वहाँ बहुत है, पर क्या उस कर्म का फल संतान में कहीं है''[(4)] अस्तु, जिस नारी में पुत्र की कामना न हो, वह ज्वाला के समान है। इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि विवाह-रूपी धार्मिक अनुष्ठान के माध्यम से जिस संतान की उत्पत्ति होती है, वही परिवार के सामाजिक-धार्मिक कार्यों को सम्पादित करने हेतु अधिकृत होता है। पुरु के कथन से यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है, जहाँ वे कहते हैं- ''मेरा पितर परम्पराहीन मानती है उसे। उसके साथ धर्म का कोई कार्य नहीं किया जा सकेगा। अग्निहोत्र से लेकर पुत्र की उत्पत्ति

तक निग्रह और परिग्रह कुछ नहीं।''[5] भारतीय समाज की मान्यताओं के अनुसार स्त्रियाँ मात्र भोग्या ही नहीं, धर्म का आधार भी हैं। 'वितस्ता की लहरें' नाटक में शशिगुप्त अलिकसुन्दर से यही कहता है- ''शरीर-तृप्ति भर का आधार हम नारी को नहीं मानते। धर्म का आधार है वह हमारे लिए।''[6]

विवाह को धार्मिक संस्कार माने जाने के कारण भारतीय समाज में एक पत्नीत्व की प्रधानता रही है। वास्तव में एक पत्नीत्व की परम्परा पारिवारिक स्थिरता के साथ ही स्त्रियों के सम्मान के लिए अनिवार्य है। मिश्रजी ने अपने नाटकों में यद्यपि विवाहेतर सम्बन्धों की अधिकता दिखायी है, तथापि वे विवाह के तौर पर एक पत्नीत्व के समर्थक हैं। इसलिए उन्होंने केकय-नरेश पुरु से कहलवाया है- ''मेरे कुल में बस एक पत्नी की विधान है।''[7]

पारम्परिक विवाह-प्रणाली में तंत्र-मंत्र, विधि-विधान को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यद्यपि यह एक आडम्बर है, इसका निषेध होना चाहिए। वैवाहिक सम्बन्धों में वर-कन्याओं की स्वीकृति को गौण कर परम्परागत विवाह को सम्पन्न कराया जाता है। 'राक्षस का मंदिर' नाटक में इसी का हवाला देती हुई दुर्गावती अपने पति मुनीश्वर से कहती है- ''आपने मेरा हाथ नहीं पकड़ा....उस दिन. ..रात को....उस मंडप में...वेद-मंत्रों के बीच।''[8]

परम्परागत वैवाहिक सम्बन्धों में स्त्री की यौन-शुचिता को अनिवार्य माना जाता है। पुरुष चाहे स्वयं वेश्यागामी और लम्पट ही क्यों न हो, पत्नी के रूप में सती-साध्वी की तलाश उसे रहती है। स्त्रियाँ कौमार्य-भंग होने पर वह विवाह के लिए उपयुक्त नहीं मानी जाती हैं। 'गरुड़ध्वज' नाटक में काशीराज कालिदास के परिणय हेतु अपनी पुत्री समर्पित करते हुए कहते हैं- ''मैं तुम्हें अपनी कन्या दे चुका...तुम उसे स्वीकार कर सकते हो सम्भव है, तुम उसे अपवित्र समझो।''[9] स्त्रियाँ अपने पति-देवता के लिए यौन-शुचिता को बनाए रखने का हरसम्भव प्रयास करती हैं। 'मुक्ति का रहस्य' में यद्यपि उमाशंकर और आशादेवी में दाम्पत्य सम्बन्ध नहीं है, तथापि वह उन्हें देवता मानकर शारीरिक पवित्रता नष्ट होने के बाद स्वयं को उनके काबिल नहीं समझती है। वह कहती है- ''वे मेरे ईश्वर हैं-देवता हैं,..उनको पाने के लिए.... उन्हें मैं अपवित्र नहीं करूँगी।''[10]

परम्परागत वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए केवल शारीरिक शुचिता ही नहीं, वंशगत और रक्तगत पवित्रता की भी अपेक्षा होती है। विवाह के पूर्व तो इस पर गहराई से विचार किया ही जाता है, विवाह के लम्बे अर्से के बाद भी अगर वंश और गोत्र की निम्नता साबित हो जाती तो यह विवाह-विच्छेद का प्रमुख कारण बनता है। मिश्रजी ने अपने कुछ नाटकों में इस मामले को उठाया है और इसे प्रमुख वैवाहिक समस्या के रूप में प्रस्तुत किया है। 'गरुड़ध्वज' नाटक में कालिदास कहता है- ''किस वंश में हुआ था मेरा जन्म..मेरे जैसे अज्ञात को कौन अपनी कन्या देगा।''[11] इसी प्रकार रक्त और वंश की पवित्रता की समस्या 'मुक्ति का रहस्य' नाटक में उठायी गयी है, जिसके कारण शत्रुसूदन और चम्पा का दाम्पत्य-जीवन बिखर जाता है। चम्पा ठाकुर बिहारी सिंह की औरस संतान नहीं है, गजराज की है- इससे शत्रुसूदन की नजर में उसका रक्त अशुद्ध है। शत्रुसूदन कहता है-''पाँच वर्ष से इस स्त्री के साथ मैं नरक में पड़ा हूँ।''[12] स्पष्ट ही चम्पा के जारज संतान सिद्ध होने पर वह उनसे नफरत करने लगता है। शत्रुसूदन कहता है- ''लेकिन तुम्हारा माला मेरे योग्य नहीं, तुम इस लायक नहीं, पीछे हटो। मेरा शरीर न छूना।''[13] 'गरुड़ध्वज' नाटक में भी विवाह के लिए जातीय गौरव को ध्यान में रखा गया है। इस नाटक में विक्रममित्र कहता है- ''जिसकी अवस्था उस समय पचास वर्ष की थी और यदि वह बीस का भी होता तब भी, हमारे जातीय गौरव के लिए तो यह घोर ग्लानि की बात थी कि हमारी कन्या उद्धत यवन की भार्या बने।''[14] प्रारम्भिक विवाह-सम्बन्ध में स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह करती हैं। उनके जीवन का प्रमुख ध्येय पति की प्राणपण से सेवा ही है। वह सदैव उनकी कल्याण-कामना में अपनी खुशी तलाशती है। पति के यश में वह अपना सौभाग्य मानती है। 'वितस्ता की लहरें' नाटक में यही सोचकर विष्णुगुप्त ने रोहिणी को आशीर्वाद देते हुए कहा है- ''बर्वर यवन को जीतने का यश मिले तुम्हारे पति को। इससे बड़ी कामना इस देश की किसी भी देवी की क्या हो सकती है?''[15] भारतीय स्त्रियाँ अपने पुरुष (पति) के लिए आदर का भाव लेकर जन्म लेती हैं। स्त्री को जीवनपर्यन्त पति का सहारा मिले, इस देश में अनादिकाल से पत्नी की सबसे बड़ी कामना रही है।

नए वैचारिक आन्दोलन से प्रभावित वैवाहिक जीवन का चित्रण

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक- बौद्धिक क्षेत्रों में द्रुतगति से परिवर्तन होने और वैज्ञानिक युग में तर्क को अधिकाधिक महत्त्व दिये जाने के कारण प्राचीन मान्यताओं के प्रति लोगों का विश्वास घटने लगा है, अतीत के आदर्शों के प्रति श्र)ा समाप्तप्राय : हो गयी और वर्त्तमान जीवन को नयी प्रवृत्तियों के अनुरूप व्यतीत करने का आग्रह प्रबल हो उठा है। नव-जागरणकाल में सामान्यत: सभी दिशाओं में परिवर्तन की आवश्यकता समझी गई। साथ ही, नारी-जीवन की समस्याएँ अधिक विचारणीय विषय रही हैं और उनमें सर्वाधिक ध्यान वैवाहिक सम्बन्धों पर रखा गया। विवाह के क्षेत्र में उन परम्परागत आधारों, नियमों और प्रचलनों का विरोध किया गया, जिनमें अनपेक्षित यातनाओं से मुक्त करने की मांग की गई, विवाह को भाग्याश्रित नहीं माना गया और कन्या की इच्छा का ध्यान रखना भी आवश्यक बताया गया। प्रकृतिवाद से प्रभावित लोगों ने पुरुष की ही भाँति नारी को भी स्वच्छंद जीने के अधिकार पर बल दिया। फलत: पति और पत्नी का वैवाहिक सम्बन्ध एक समझौता बनकर रह गया। दोनों रेल की पटरी के समान हो गए- 'मिलो मत, पर साथ जरूर चलो।' नए वैचारिक आन्दोलन के कारण पति-पत्नी एक-दूसरे को स्वतंत्र कर देते हैं। 'संन्यासी' नाटक में किरणमयी और प्रोफ़ेसर दीनानाथ का वैवाहिक सम्बन्ध इसी प्रकार का समझौता है, जिसमें किरणमयी से दीनानाथ कहते हैं- ''आओ तुम भी स्वतंत्र और मैं भी। हम दानों एक-दूसरे की बेड़ी काट दें।''[16]

वैवाहिक सम्बन्धों को प्रभावित करने में सह-शिक्षा का भी कम योगदान नहीं है। इसके कारण विवाह जैसे धार्मिक संस्कार छिन्न-भिन्न होकर रह गये हैं। विवाह-पूर्व प्रेम और स्वच्छन्द होकर शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना कॉलेज-स्कूल के लड़के-लड़कियों के लिए सामान्य बात हो गई है। 'संन्यासी' नाटक में मालती अपने प्रेमी विश्वकांत के कमरे में पकड़े जाने के बाद अपने पिता से निर्भीक होकर कहती है- ''सभी पढ़ने वाली लड़कियाँ मिलती-जुलती रहती हैं।''[17] पिता भी इसे नयी

शिक्षा-प्रणाली का परिणाम मानते हुए स्वीकार करते हैं कि शिक्षा मनुष्य को स्वतंत्र कर, पिंजड़े के बाहर निकाल देती है। सह-शिक्षा-प्रणाली के कारण ही विवाह के लिए अपेक्षित कौमार्य की अनिवार्यता समाप्त हो गई और स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध के लिए विवाह बाधक न रहा। इस तरह सह-शिक्षा-पद्धति ने स्त्री की यौन (शारीरिक) शुचिता को बिगाड़ कर रख दिया। 'राजयोग' नाटक की नायिका चम्पा अपने पूर्व प्रेम की चर्चा करती हुई पति शत्रुसूदन के सामने स्वीकार करती है कि विवाह होने के पहले ही मेरा जीवन बिगड़ चुका था। यह अपराध मेरा नहीं उनलोगों का है, जिन्होंने मुझे पढ़ने के लिए कॉलेज में भेज दिया।[18]

नयी वैचारिकता ने सामाजिक मर्यादा के भय को समाप्त करके रख दिया। समाज के भय से जहाँ स्त्री-पुरुष किसी प्रकार के अवैध सम्बन्ध बनाने से बचते थे, वहीं अब लोगों ने इस भय से मुक्त होकर व्यक्ति-स्वातंत्र्य को गति प्रदान की है। 'मुक्ति का रहस्य' नाटक की आशादेवी यही बात डॉ. त्रिभुवननाथ से कहती है- ''हमारा अपना जीवन रहेगा। कोई क्या कहता है.. इसकी चिंता हमलोग नहीं करेंगे।''[19] स्पष्ट ही, इस तरह के व्यक्ति-स्वातंत्र्य ने समाज को दूषित करके रख दिया है।

विवाह को धार्मिक संस्कार माने जाने के कारण इसमें पारम्परिक विधि-विधानों को प्रधानता देने का प्रचलन है। इसी कारण विवाह के समय वर-वधू विवाह-मंडप में अग्नि को साक्षी मानकर जीवनपर्यन्त साथ निभाने की कसमें खाते हैं, तथापि नए वैचारिक आंदोलनों ने इसकी पावन परम्परा को छिन्न-भिन्न करके रख दिया है। 'राक्षस का मंदिर' नाटक में जब दुर्गावती अपने पति मुनीश्वर को याद दिलाती हुई कहती है- ''आपने मेरा हाथ नहीं पकड़ा..उस दिन.. उस रात को मंडप में वेद-मंत्रों के बीच।''[20] इस पर मुनीश्वर हँसते हुए परंपरित विधानों का मखौल उड़ाते हुए कहता है- ''पगली! स्त्री और पुरुष के भीतर जो प्रकृति है, उसकी ओर न देखकर मंडप, वेद, मंत्र, कन्यादान की माया में अबतक इतने दिन पड़ी रह गयी।''[21]

सतीत्व की अवधारणा भारतीय स्त्रियों के लिए रूढ़ हो चुकी है। स्त्रियों से सदैव यौन-शुचिता की अपेक्षा की जाती है। पत्नी के लिए उसका पति ही परमेश्वर है। वह अपने पति को छोड़कर किसी अन्य पुरुष की छाया भी अपने पर पड़ने में पाप समझती है। फिर भी सतीत्व का प्रश्न विवाहिताओं के साथ ही उठता है। कुमारियाँ इससे मुक्त मानी जाती हैं। इसी प्रकार वैधव्य को भारतीय समाज ने भाग्य से जोड़कर देखा है, तथापि इसके प्रति लोगों का नजरिया आधुनिक काल में काफी बदला है। मिश्रजी ने 'सिंदूर की होली' में वैधव्य की नई और तार्किक परिभाषा दी है, जिसमें चन्द्रकला मनोरमा से कहती है-''तुम्हारा विधवापन तो रूढ़ियों का विधवापन है, वेद-मंत्रों का और महाभोज का, जिस पुरुष को तुमने देखा नहीं, उसकी कोई स्मृति नहीं है, जिसकी कोई छवि तुम्हारी आत्मा को हिला न सकी, उसका वैधव्य कैसा?''[22]

परम्परा के प्रति विद्रोह

सती-प्रथा पर रोक लगाना परम्परागत वैवाहिक संस्कार पर सबसे बड़ा विद्रोहात्मक प्रहार था। पुर्तगाली, फ्रेंच, डच आदि अपने साथ उदार दृष्टिकोण लेकर आए थे और उन्हें भारतीय धर्माचारों एवं महान् जीवनादर्शों से कोई प्रयोजन नहीं था। लार्ड वेंटिक द्वारा सती-प्रथा को रोकने की घोषणा से उदारतावादियों को अत्यधिक प्रश्रय मिला तथा ब्रह्म-समाज एवं आर्य-समाज ने समाज-सुधार के नाम पर भी इसे सर्वथा सार्थक सिद्ध किया। परिणामतः भारतीय समाज में सती होने की जो परम्परा चली आ रही थी, वह प्रायः समाप्त हो गयी। नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र इससे बहुत प्रभावित हुए, क्योंकि वे युगीन सामाजिक गतिविधियों की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। विवाह को धार्मिक संस्कार मानने के कारण इसमें मंडप, वेद-मंत्र आदि को वैवाहिक परम्परा में अनिवार्य माना जाता है, लेकिन नए वैचारिक आन्दोलनों के कारण इसे महत्त्वहीन माना जाने लगा। 'राक्षक का मंदिर' नाटक में मुनीश्वर इस परम्परा का विरोध करते हुए अपनी पत्नी दुर्गावती से कहते हैं- ''पगली! स्त्री और पुरुष के भीतर जो प्रकृति है उसकी ओर न देखकर मंडप, वेद-मंत्र, कन्यादान की माया में अबतक इतने दिन पड़ी रह गयी।''[23]

मिश्रजी के नाटकों में विवाह के लिए धर्म और जाति के बंधन की परम्परा के प्रति विद्रोह साफ झलकता है। इन बंधनों के कारण कई लड़के-लड़कियों की इच्छा मार दी जाती है। 'गरुड़ध्वज' नाटक में वासंती अपनी इच्छा के विरुद्ध पिता द्वारा किये गये फैसले के सम्बन्ध में मलयवती से कहती है- ''धर्म और जाति के किस उपकार के लिए उन्होंने (पिता ने) मुझे इस प्रकार प्रासाद में बंद कर रखा है।''[24] विवाह-सम्बन्ध के द्वारा अपनी इच्छा के विरूद्ध दाम्पत्य-जीवन बिताने के प्रति भी विद्रोहात्मक स्वर 'संन्यासी' नाटक में प्रकट होता है, जिसमें पति-पत्नी एक-दूसरे को स्वतंत्र कर देते हैं और बंधनों की बेड़ियाँ काट देते हैं।

विधवा-विवाह वर्जित माना जाता है। भारतीय समाज में विधवाओं को मृत पति का स्मारक बनकर जीना पड़ता है। दुनिया की सारी सुख-सुविधाएँ उनके लिए बन्द हो जाती हैं। विधवा सपने में भी पर-पुरुष की छाया न देखे समाज के लोग इसके लिए सदैव तत्पर रहते हैं, परन्तु मिश्रजी के नाटकों में विधवा-विवाह का विरोध समाज के द्वारा नहीं किया जाता है, बल्कि विधवा स्वयं सतर्क इससे परहेज करती है, किन्तु वह प्रेमी बनाने में कोई परहेज नहीं रखती। 'सिंदूर की होली' की मनोरमा रमाशंकर से कहती है- ''मैं तुम्हें अपना दुल्हा तो नहीं बना सकती, लेकिन प्रेमी बना लूँगी।''[25] विधवाओं द्वारा इस प्रकार का प्रेम-निवेदन स्पष्ट ही भारतीय समाज की सड़ी-गली परम्परा के प्रति खुला विद्रोह है, जिसमें स्त्री-स्वातंत्र्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

पति को परमेश्वर मानना, विवाह को भाग्याधीन समझना आदि ऐसे विषय हैं, जो पूर्णतः श्रद्धा पर अवलम्बित हैं, परन्तु वैचारिक आंदोलन ने श्रद्धा के स्थान पर तर्क को प्रतिष्ठित कर दिया है। अतः जो नारियाँ कपोतव्रता होती थीं, वे अब वाचालता प्रदर्शित करने में कुशल होने लगीं। पहले जहाँ पत्नी पति की अधिकाधिक सेवा करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती थी, वही अब उसके साथ 'बहस' करने में अपनी दक्षता सिद्ध करने लगी। 'राजयोग' नाटक में हमें इसकी स्पष्ट झलक मिल जाती है। चम्पा अपने पति शत्रुसूदन से कहती है- ''अब तो स्त्री तर्क करेगी, प्रतिवाद करेगी और जरूरत पड़ेगी तो युद्ध करेगी।''[26] अतएव इन संघर्षों में परम्परा के प्रति विद्रोह का भाव परिलक्षित होता है।

विवाह में कन्या की इच्छा पर ध्यान

विवाह में वर-कन्या के मंतव्यों को जान लेना आवश्यक है, परन्तु भारत में कुछेक अपवादों को छोड़कर विवाह के सम्बन्ध में कन्या से कुछ भी पूछने का प्रचलन ही नहीं है। वर के मत को भी बहुत महत्त्व तो नहीं दिया जाता है, फिर भी उसकी इच्छा को समझने का यत्न अवश्य किया जाता है। नारी-आंदोलन ने यह प्रभाव उत्पन्न किया कि कन्या की इच्छा के विरु) उसका विवाह करा देना अन्याय है। भारतीय नारी-समाज भी इस आंदोलन से अप्रभावित नहीं रहा। नारियों ने उस विधान के प्रति विद्रोह किया कि विवाह के सम्बन्ध में उन्हें कुछ भी बोलने का अधिकार नहीं है। लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित 'गरुड़ध्वज' में वासंती अपनी इच्छा के विपरीत पिता के द्वारा किए गए फैसले के सम्बन्ध में कहती है- ''धर्म और जाति के किस उपकार के लिए उन्होंने (पिता ने) मुझे इस प्रकार प्रासाद में बंद कर रखा है।''[27] विवाह में पिता अपनी पुत्री की प्रसन्नता के लिए, सबकुछ समर्पित कर देते हैं, परन्तु उनके पसंद से वर का चयन नहीं करने देते। यदि स्त्रियाँ अपने पसन्द से वर का चयन कर लें, तो परिवार के लिए मानो शामत आ जाती है। परिवार वालों की नाक कट जाती है। इतनी प्रगतिशीलता के बाद भी हमारा समाज स्त्री-स्वातंत्र्य में बाधक बना हुआ है। वर्तमान समय का स्त्री-आन्दोलन इसी स्वातंत्र्य की तलाश करता है। 'गरुड़ध्वज' नाटक में कन्या की इच्छा पर ध्यान देते हुए विक्रमामित्र वासंती से कहता है- ''तुम उनमें जिस किसी को चाहना, चुन लेना।''[ढ28ऋ]

पुरुष-समाज सदा से स्त्रियों को अपने वश में रखने का आदी है। ऐसे में कन्याएँ जब अपनी पसंद का जीवन-साथी चुनती हैं तो उन्हें 'आनर किलिंग' का सामना करना पड़ता है। 'वितस्ता की लहरें' नाटक में तारा रोहिणी से कहती है- ''मैं सुख से उसका वरण करूँगी या नहीं तो माता भैरवी की सेवा करूँगी।''[29]

भारतीय समाज में बेटियाँ परायी सम्पत्ति मानी जाती हैं। साथ ही, पिता अथवा अभिभावक द्वारा अनधिकारपूर्वक उसे किसी के हाथ में सौंप देने की परम्परा है, जो न्यायसंगत नहीं है। कन्या कोई वस्तु या पशु-सम्पत्ति नहीं कि उसे उससे बिना पूछे किसी को सौंप दिया जाए। 'गरुड़ध्वज' नाटक में मलयवती को उसके पिता बिना उसकी इच्छा जाने यवन को दे देते हैं। 'संन्यासी' नाटक में भी विश्वकांत की प्रेमिका मालती अपने पिता की इच्छा के विरूद्ध विश्वकांत से प्रणय-निवेदन करती है। अस्तु, जीवन-साथी चुनने में पुरुष (वर) के समान ही स्त्री (कन्या) की इच्छा का भी ध्यान रखा जाना जाहिए, जिसमें दो अपरिचित स्त्री-पुरुष को एक कमरे में बन्द कर देने की परम्परा है। यहाँ वैवाहिक सम्बन्ध का आधार एक-दूसरे का प्रेम और समर्पण न होकर यौनाकर्षण-मात्र है। विवाह के बाद इच्छा अथवा अनिच्छा से कन्या स्वयं को समर्पित करने को बाध्य होती है। भारतीय विवाह-व्यवस्था का यह सबसे बड़ा अवगुण है। दूसरी बात कि प्रेमियों के विवाह-सम्बन्ध को सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध माना जाता है। 'सिन्दूर की होली' नाटक में मनोरमा समाज की रूढ़ियों के खिलाफ़ विधवा होने पर मनोज शंकर से प्रेम-निवेदन करती है। इस प्रकार अब लड़कियाँ स्वयं आगे आकर अपनी इच्छा से वर का चयन करती हैं। चयन के क्रम में वे ऐसे ही वरों को चुनती हैं, जो उन्हें समर्पित भाव से प्रेम कर सकें। जाति, गोत्र, सम्पत्ति आदि अब इसका आधार नहीं बनता। 'वितस्ता की लहरें' नाटक में तारा वर-चयन में पारम्परिक आधार का निषेध करती हुई कहती है- ''बीस से लेकर पचास तक, उनकी आयु चाहे जो हो। कोई दूसरी पत्नी न हो उन्हें...केवल मेरे पुरुष बने। धन के नाम पर दो हाथ हो, उनके बस। इतने से काम चल जायेगा।''[30] इससे स्पष्ट होता है कि पुरुष के समान स्त्रियाँ भी प्रेम में एकनिष्ठता की तलाश करती हैं। वे नहीं चाहतीं कि उनका पति किसी और स्त्री से सम्बन्ध रखें। ऐसा तभी सम्भव है, जब कन्याएँ स्वयं ही वर का चयन करें।

नारी-आन्दोलन का प्रभाव न केवल विवाह के पूर्व कन्या की इच्छा को जान लेने पर पड़ा है, अपितु विवाहोपरांत की परिस्थितियाँ भी उससे परिचालित-प्रभावित हुई हैं। अब पत्नी अकेले कष्ट सहन कर वैवाहिक जीवन में सामंजस्य रखने के पक्ष में नहीं है। वह दूसरा विवाह भले ही न करे, पर अलग रहकर स्वाभिमान के साथ जीना पसंद करती है। खासकर ऐसी स्थिति अनमेल विवाह में उत्पन्न होती है। 'संन्यासी' नाटक में अधेड़ उम्र वाले पति के यह कहने पर कि मैं नहीं मिलता तो गयी होती किसी मजदूर के पास। किरणमयी निर्द्वन्द्व भाव से कहती है- ''जो मजदूर बुड्ढ़ा नहीं होता तो बिना शान के सुखी रहती। जहाँ कुछ नहीं, वहाँ शान भी तो रहे.. जीने के लिए कुछ कारण होना चाहिए।''[31] स्पष्ट है कि अगर किरणमयी स्वयं ही अपने वर का चयन करती तो वह दीनानाथ जैसे बुड्ढ़े को न चुनती।

स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने की व्यग्रता

वैज्ञानिक दृष्टि एवं प्रगतिवादी दृष्टिकोण के कारण वैवाहिक क्षेत्र में स्वच्छंद प्रेम की प्रवृत्ति अत्यधिक बढ़ी है। स्वच्छन्दता की भावना मुख्यत: तीन रूपों में विकसित हुई है- विवाह के पूर्व से ही प्रेम करने की, विवाहोपरांत भी निर्द्वन्द रूप से अन्य से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने की तथा विवाह न कर आजीवन स्वच्छन्द प्रेममय जीवन व्यतीत करने की। हिन्दी नाटकों में इन तीनों ही रूपों की अभिव्यक्ति मिलती है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित 'संन्यासी' नाटक की मालती विवाह के पूर्व ही विश्वकांत के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। अंतत: विश्वकांत के साथ उसका विवाह होता भी नहीं है। मालती के पिता स्वयं उसे विश्वकांत की श"या पर पड़े देख चुके हैं, परन्तु मालती को उसकी किंचित भी चिंता नहीं है। वह नि:संकोच अपने पिता से कहती है- ''..सभी पढ़ने वाली लड़कियाँ मिलती-जुलती रहती हैं।''[ढ32)] तब उसके पिता भी उदार विचार वाले हो जाते हैं और मालती के मत का समर्थन करते हैं-''शिक्षा मनुष्य को स्वतंत्र कर पिंजड़े से बाहर निकाल देती है,''[33] परन्तु सोचने की बात यह है कि क्या यह पलंग की स्वतंत्रता मर्यादा के पिंजड़े से अधिक संकीर्ण नहीं है। अंततोगत्वा मालती स्वयं ऐसा अनुभव करती है। वह स्वच्छन्द प्रेम के दुष्परिणाम को भुगतकर पश्चात्ताप करती हुई रमाशंकर से कहती है- ''मैं रोमांटिक प्रेम नहीं चाहती- विश्वकांत के साथ मेरा यही प्रेम था। मैं वह प्रेम चाहती हूँ जो आजकल की दुनिया में समझदारी के साथ निबाहा जा सके।''[34] वस्तुत: स्वच्छन्द सम्पर्क के पीछे कामुकता और केवल कामुकता की ही प्रवृत्ति रहती है। उसमें वासना तथा तरुणाई का र्सि पशुओं की तरह उपभोग करने का उद्देश्य होता है। इसलिए

इस विचारधारा के लोग विवाह को भी काम-तृप्ति के साधन के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते। दीनानाथ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वह किरणमयी से स्पष्ट शब्दों में कहता है- ''मैं शराब पीता हूँ, इसलिए तो तुमसे विवाह करने की आवश्यकता पड़ी।''[35] किरणमयी भी तंग आकर दीनानाथ से कहती है- ''फिर वही बात। तुम दिन-रात में कोई दो घंटा इसके लिए नियत कर लो।''[36] इतना ही नहीं, अपने पति दीनानाथ को अन्य महिलाओं से भी सम्पर्क स्थापित करते देखकर, किरणमयी भी दूसरे पुरुषों से प्रेम करने लगती है। वह मुरलीधर के हाथ में हाथ रखकर घूमती है, विनोद की बातें करती हैं। आदि-आदि। वह बिना किसी हिचकिचाहट के अपने पति से स्वच्छन्दता की मांग करती है- ''तुम इधर-इधर मिस और मेमों से मिला करते हो। मुझे भी अपने मित्रों से मिलने दो।''[37] स्वच्छन्दता की इस प्रवृत्ति का भारतीय समाज पर भी इतना प्रबल प्रभाव पड़ा है कि प्रत्येक शहर में ऐसी किरणमयी दिखायी पड़ जायेगी। 'आधी रात' नाटक की मायावती भी पाश्चात्य प्रभाव में पड़कर ही स्वतंत्रता के नाम पर दो प्रेमियों से प्रेम करने लगती है, परन्तु यह प्रेम अथवा विवाह की स्वतंत्रता नहीं, अपितु वासना का विस्फोट है। इसी स्वच्छन्द प्रेम के कारण अंत में आशा देवी को आत्महत्या करने के लिए विवश होना पड़ता है। 'सिंदूर की होली' में भी स्वच्छन्द प्रेम को सामाजिक व्यवस्था के लिए घातक बताया गया है। नए वैचारिक आन्दोलन के बहाने उच्छृंखलता प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति की आलोचना करती हुई मनोरमा मनोजशंकर से कहती है- ''और अगर प्रकृति के नाम पर हम चिरंतन पशुवृत्ति की ओर बढ़ें, तब तो न कोई चिंता है, न खेद-लेकिन तब कोई समस्या भी नहीं है और समाधान भी नहीं।''[38] जब मनुष्य भी पशुओं की श्रेणी में ही घुल-मिलकर एक हो जाएगा तो फिर मानवीय महत्ता की समस्या का प्रश्न ही कौन उठाएगा और किसके समक्ष? यदि मनुष्य को पशुओं से उच्च कहलाने का गौरव है, तो उसकी रक्षा के लिए पुरुष और नारी दोनों को शील तथा संयम का परिचय देना होगा। वर्त्तमान युग में नारी-समाज में अधिक खुलापन आ गया है। स्त्रियाँ पुरुषों की समता करने के लिए व्यग्र दिखाई पड़ रही हैं, परन्तु समता की स्थापना स्वच्छन्द रूप से कामोपभोग हो जाने से ही नहीं हो जायगी; उससे तो स्त्रियों की प्रतिष्ठा में वृद्धि होने की अपेक्षा ह्रास ही अधिक हो रहा है। 'राजयोग' में नरेन्द्र आधुनिक महिलाओं के विवाह और प्रेम-सम्बन्धी उन विचारों को उनके लिए अनुचित समझता है, जिनके कारण वे अपने को पुरुष के समकक्ष मानने का भ्रम करती हैं। वह चम्पा से कहता है- ''पुरुषों के आश्रम में स्त्रियों का रहना तुम्हारी समझ में उनकी अयोग्यता है, लेकिन प्रकृति बदली नहीं जा सकती। नारी-सुधार और नारी-समस्या के नाम पर स्त्री पुरुष नहीं बनाई जा सकती।''[39]

अतः स्वच्छंद जीवन व्यतीय करने की व्यग्रता आधुनिक काल में स्त्री और पुरुषों में प्रमुख रूप से देखी जा सकती है।

संदर्भ-संकेत

1. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोगऋ, पृ.-199.
2. वितस्ता की लहरें - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-125.
3. वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ०-111.
4. मृत्युंजय - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ०-124.
5. वितस्ता की लहरें-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ०-111.
6. वही, पृ०-111.
7. वितस्ता की लहरें - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ०-119.
8. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राक्षस का मंदिरऋ, पृ०-89.
9. गरुड़ध्वज- लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ०-154.
10. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्यऋ, पृ.-180.
11. गरुड़ध्वज - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-53.
12. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्यऋ, पृ.-221.
13. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्यऋ, पृ.-229.
14. गरूड़ध्वज - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-80.
15. वितस्ता की लहरें - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-25.
16. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्यऋ, पृ.-41.
17. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (सन्यासीऋ, पृ.-10.
18. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोगऋ, पृ.-230.
19. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (मुक्ति का रहस्यऋ, पृ.-182.
20. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राक्षस का मंदिरऋ, पृ.-89.
21. वही, पृ.-89.
22. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (सिन्दूर की होलीऋ, पृ.-282.
23. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राक्षस का मन्दिरऋ, पृ.-89.
24. गरुड़ध्वज - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-33.
25. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (सिंदूर की होलीऋ, पृ.-260.
26. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (राजयोगऋ, पृ.-45.
27. गरुड़ध्वज - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-33.
28. गरुड़ध्वज-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-80.
29. वितस्ता की लहरें - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-60.
30. वितस्ता की लहरें - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ०-60
31. लक्ष्मीनारायण मिश्र रचनावली, भाग-2, (सन्यासीऋ, पृ.-39
32. सन्यासी - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ०-37.
33. वही, पृ.-37.
34. वही, पृ.-166.
35. सन्यासी - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ०-45.
36. सन्यासी - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-54ख्र
37. वही, पृ.-107.
38. सिंदूर की होली - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-49.
39. राजयोग - लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ.-92.

भारत में राज्यपालों की भूमिका (1967 ई. के बाद)

डॉ० गुंजन कुमार

पी-एच.डी. (राजनीति विज्ञान), मधुबनी (बिहार)

1967 ईद्र के चतुर्थ आम चुनाव के बाद एक दलीय शासन के युग का अंत हो गया। केन्द्र-राज्य में विदलीय और गठबंधन सरकारों के गठन एवं दल-बदल से राजनैतिक अस्थिरता की घटनाओं में वृद्धि हुई। फलस्वरूप राज्यपालों का महत्व और भी बढ़ गया। वह न केवल मंत्रिपरिषद के गठन का भाग्य विधाता बन गया अपितु राष्ट्रपति शासन में वास्तविक प्रशासक की भूमिका का निर्वाह करने लगा। जिससे केन्द्र में सत्ताधारी दल से जुड़े हुए राजनीतिज्ञों की राज्यपाल पद पर नियुक्ति की जाती रही यहाँ तक कि यही राजनीतिक पृष्ठभूमि राज्यपाल पद पर नियुक्ति की योग्यता का पैमाना बन गया। दूसरी तरफ इंदिरा युग से नौकरशाहों को राज्यपाल बनाया जाने लगा इससे निष्पक्ष प्रशासन के चरित्र पर शंका उत्पन्न हो सकता है। साथ ही इसे प्रशासन के राजनीतिकरण के रूप में देखा जाना चाहिए। कई बार तो किसी व्यक्ति को केन्द्र या राज्य के सक्रिय राजनीति से दूर करने हेतु राज्यपाल बनाया गया।

मुख्यमंत्री के परामर्श लेने की परंपरा की अनदेखी की गई जिससे नवनियुक्त राज्यपाल के संबंध राज्यमंत्रिपरिषद् से अच्छे नहीं बन सके। कइ्र बार तो राज्यपालों का इसलिए पद से हटाया या स्थानांतरित किया गया क्योंकि उनके मधुर संबंध केन्द्र की निंदनीय राज्य सरकार के साथ थे। इसी तरह राज्यपालों को राजनीतिक कारणों से बिना मुख्यमंत्री की सलाह से या मुख्यमंत्री के दवाब से स्थानांतरित किया गया। जिससे राज्यपालों को निष्पक्ष होकर कार्य करना कठिन हो गया।

26 जून, 1975 ईद्र को लागू किए गए आपातकाल में राज्यपालों की भूमिका प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के दूत के रूप में हो गयी। राज्यपालों ने 'यस मैडम' के अलावा हर दायित्वों को भुला दिया। तमिलनाडू की बहुत प्राप्त (डी.एम.के.) सरकार बर्खास्त की गई। गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं उड़ीसा में राज्यपालों द्वारा स्थापित परंपराओं की अनदेखी की गई। जिस किसी राज्यपाल ने इंदिरा गाँधी या संजय गाँधी की धून पर नाचने से इन्कार किया उन्हें हटना पड़ा। जिसमें अकबर अली (उड़ीसा) एवं ए. आयंगर (बिहार) के नाम लिए जा सकते हैं। यहाँ तक कि राज्यपालों के 1977 ई. के लोकसभा चुनाव में सक्रिय योगदान करने को कहा गया। नवगठित जनता पार्टी से मुकाबला करने के लिए दिग्गज काँग्रेसियों को राज्यपाल पद से त्यागपत्र देकर लोकसभा चुनाव लड़ने को कहा गया। इसी तरह राज्य विधानसभा चुनावों में भी राज्यपालों ने त्यागपत्र देकर काँग्रेस का टिकट प्राप्त किया। इस अवधि में पूर्णतया राज्यपाल पद का राजनैतिकरण हो गया। कुल मिलाकर राजभवन का उपयोग 'काँग्रेस मुख्यालय' के रूप में किया गया।

जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद भी राज्यपालों की भूमिका संबंधी आदर्श नहीं अपनाए गए। बाद के दिनों में श्री वी.पी. सिंह की सरकार द्वारा राज्यपाल पद पर नियुक्ति एवं पदच्युति की घटनाओं से राज्यपाल की स्थिति केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित हुई। पी.वी. नरसिंह राव से लेकर एन.डी.ए. और यू.पी.ए. शासनकाल में नियुक्ति, स्थानांतरण और पदच्युति में कोई परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है। केन्द्रीय सरकार यही मानसिकता जाहिर करती रही कि राज्यपालों को हर कार्य उसकी सलाह से करना होगा। दूसरी तरफ विपक्षी दलों द्वारा केन्द्र सरकार का विरोध करने हेतु राज्यपाल का विरोध किया जाता रहा है। सांविधानिक पदधारी राज्यपाल बदले की राजनीति की चक्की में पिसता रहा है।

राज्यपाल पद की गरिमा को धूमिल करने में राज्यपालों के दोष भी कम नहीं है। कभी किसी मुख्यमंत्री को सदन में विश्वासमत सिद्ध करने का मौका ही नहीं दिया तो कभी जानबूझकर विश्वासमत खो चुके मुख्यमंत्री को विश्वासमत का परिचय देने के लिए कहने में अनावश्यक विलंब किया। एक ही परिस्थिति में राज्यपालों ने अलग-अलग निर्णय किए हैं। उधर विधानसभा के सत्रावसान की घोषणा में भी पक्षपात के अनगिनत उदाहरण सामने आए। किसी मंत्रिपरिषद का बहुमत संदिग्ध होने पर राज्यपालों ने बजाए इसके कि बहुमत का परिचय प्राप्त करते, उन्होंने सत्रावसान कर दिया। 1967 ई. में मध्य प्रदेश, 1968 ई. में उत्तर प्रदेश, 1970 ई. में हरियाणा, 1981 ई. में असम की घटनाएँ काँग्रेसी राज्य सरकारों के लिए संजीवनी लाने (बहुमत जुटाने) का अवसर देना था। लेकिन, पश्चिम बंगाल के राज्यपाल ने ऐसा नहीं किया, क्योंकि यहाँ वाममोर्चा की सरकार थी। इसी तरह विधानसभा विघटित करने की शक्ति का दुरूपयोग विरोधी दल को सत्ता में आने से रोकने के लिए किया गया है। जिसके दो पहलू नजर आते हैं। प्रथम-जब विधानसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिला हो और केन्द्र में सत्ताधारी दल के विरोधी दल के सरकार गठन की संभावना हो तब विधानसभा का विघटन। 1967 ई. में मध्यप्रदेश, 1967 ई. में पंजाब, 1968 ई. में उत्तर प्रदेश और बिहार की घटनाओं में एक ही परिस्थिति में राज्यपालों ने अलग-अलग निर्णय लेकर काँग्रेस के हितों की पूर्ति की। आगे भी 1988 ई. में नागालैण्ड, 1989 ई. में कर्नाटक, 1998 एवं 2005 ई. में बिहार की घटनाओं से भी इसी बात की पुष्टि होती है। जब राज्यपालों ने सांविधानिक मुखिया से ज्यादा केन्द्र का प्रतिनिधि बनकर अपने नियोक्ताओं को प्रसन्न किया था।

राज्यपाल के अभिभाषण की परंपरा का दुरूपयोग हर किसी ने किया है, चाहे वह राज्य का सत्ता पक्ष हो, जिसने केन्द्र सरकार या स्वयं राज्यपाल की आलोचना उन्हीं के मुख से करवाने का प्रयास किया है। विपक्ष ने भी राज्य सरकार, केन्द्र सरकार या स्वयं राज्यपाल का विरोध करने का अवसर अभिभाषण की परंपरा को माना है। हाल ही में उत्तर भारतीय बनाम मराठा विवाद के चलते बिहार के राज्यपाल श्री आर.एस. गवई का विरोध किया गया और सदन में समांतर अभिभाषण में पढ़ा गया है। ज्ञात हो कि श्री गवई महाराष्ट्र के निवासी हैं।

राज्यपालों के स्वविवेकी निर्णयों में मुख्यमंत्री की नियुक्ति को लेकर भी पक्षपात के आरोप लगता रहा है। केवल राजनीतिक पृष्ठभूमि के नहीं वरन् निष्पक्ष नौकरशाही की पृष्ठभूमि वाले राज्यपालों ने भी दोहरे मापदण्ड अपनाये हैं, और केन्द्रीय सत्ता को ज्यादा तरजीह दी है। ऐसे लोग जो विधानमंडल के सदस्य नहीं थे बड़ी संख्या में मुख्यमंत्री नियुक्त किए गए। हंग विधानसभा के स्थिति में राज्यपालों को मनमानी करने का और भी अवसर प्राप्त हुआ। कभी सिंगल लार्जेस्ट पार्टी तो कभी गठबंधन को सरकार गठन का न्यौता दिया गया। यानि किसी एक परंपरा का पालन नहीं किया गया है। 1967 ई. में राजस्थान और उत्तर प्रदेश, 1969 ई. में बिहार, 1982 ई. में हरियाणा, 1998 ई. में मेघालय, 2000 ई. में बिहार जैसे राज्यों में सिंगल लार्जेस्ट पार्टी की सरकार बनवाई गई। लेकिन, 1971 ई. में पश्चिम बंगाल, 1978 ई. में महाराष्ट्र जैसे राज्यों में इस परंपरा की अनदेखी की गई। सबसे बड़े गठबंधन की बात करें तो भाजपा-जदयू को वर्ष 2005 में बिहार व झारखंड एवं 1977 ई. में काँग्रेस को जम्मू-कश्मीर, 2003 ई. में नागालैंड में सरकार गठन का अवसर नहीं दिया गया। हाल ही में मार्च, 2008 ई. में मेघालय विधानसभा चुनाव के बाद राज्यपाल ने 60 सदस्यों वाली विधानसभा में 28 विधायकों वाले काँग्रेस की सरकार बनवा दी है। लेकिन, 31 विधायकों वाले मेघालय प्रोगेसिव एलायंस गठबंधन को मौका नहीं दिया। जिस पर रा.कां.पा. नेता श्री पी.ए. संगमा ने राज्यपाल के इस कदम को रामेश्वर प्रसाद (6) बनाम भारत संघ (2006) मुकदमे पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लंघन किए जाने का आरोप लगाते हुए मुकदमा किया है। लेकिन, राज्यपाल श्री एस.एस. सिद्धु द्वारा नियुक्त काँग्रेसी मुख्यमंत्री श्री डी.डी. लापांग ने बहुमत का परिचय देने से पूर्व ही त्यागपत्र दे दिया और मेघालय प्रोग्रेसिव एलायंस के श्री दोनकुपर रॉय की ताजपोशी राज्यपाल को करनी पड़ी।

राज्यपालों के दोहरे मापदंड केन्द्र के सत्ताधारी दल को ध्यान में रखकर अपनाया गया। इस दोहरे मापदंड का शिकार जनसंघ-भाजपा भी बना और काँग्रेस भी। हाल ही में कर्नाटक के राज्यपाल श्री रामेश्वर ठाकुर ने भाजपा-जनतादल (एस) को सरकार गठन के लिए बुलाने में हिचकिचाहट दिखलाई है।

संविधान के अनुच्छेद 164 (2) के अनुसार मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधानसभा के प्रति उत्तरदायी है। अत: राज्यपाल को किसी मंत्रिपरिषद् को बर्खास्त करने के पूर्व सदन में बहुमत का पता लगाना चाहिए। संसदीय लोकतंत्र का यही तकाजा है। लेकिन, उत्तर प्रदेश में चरण सिंह, 1984 ई. में सिक्किम, 1989 ई. में कर्नाटक, 1991 ई. में मेघालय, 1996 ई. में गुजरात, 1997-98 ई. में उत्तर प्रदेश, 1999 ई. में बिहार की मंत्रिपरिषदें बर्खास्त कर दी गयी। जिससे राज्यपाल की निष्पक्षता के साथ-साथ लोकतंत्र पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा हो गया। इन सभी मामलों में भी केन्द्र में सत्ताधारी दल के विरोधियों की सरकारें बर्खास्त हुई, फिर चाहे केन्द्र में काँग्रेस, जनता पार्टी, राष्ट्रीय मोर्चा, संयुक्त मोर्चा, एन.डी.ए. या यू.पी.ए. किसी की भी सरकार क्यों न रही हो। वर्ष 2008 की

शुरूआत में ही 3 जनवरी को नागालैंड की नेफियु रियो (भाजपा-जदयू) की बहुमत प्राप्त सरकार विधानसभा अवधि समाप्त होने के पूर्व बर्खास्त की गई है। शायद केन्द्र की यू.पी.ए. सरकार राज्य में राष्ट्रपतिशासन में चुनाव करवाना चाहती थी। पर क्यों ? क्या उसे चुनाव आयोग पर भरोसा नहीं था ? या बोम्मई केस पर सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की जानकारी नहीं है ? मुख्यमंत्री ने केन्द्र के इस निर्णय को 'लोकतंत्र की हत्या' करार देकर सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। अनुच्छेद 356 के प्रयोग का एक पहलू यह भी रहा है कि कई बार विधानसभा को भंग किया गया तो कई बार निलंबित। यह निलंबन का भंग करने की कार्रवाई राजनीति को ध्यान में रखकर की गई। जहाँ केन्द्र का सत्ताधारी दल या गठबंधन के विरोधी राज्य विधानसभा में बहुमत में था या उनके द्वारा सरकार बनाने की संभावना थी वहाँ विधानसभा भंग कर दी गई। लेकिन, केन्द्र में राज कर रहे राजनीतिक दल यदि विधानसभा में बहुसंख्या में थे या जोड़-तोड़ कर सकने की स्थिति में थे तो विधानसभा को निलंबित किया गया। 30 अप्रैल, 1977 ई. में जनतापार्टी द्वारा एवं इसके बाद 1980 ई. में इंदिरा गाँधी की सरकार द्वारा विरोधी दल के 9 राज्य सरकारों को बर्खास्त कर दिया गया। 1992 ई. में अयोध्या में विवादित ढाँचा गिराए जाने के बाद उत्तर प्रदेश के अलावा अन्य तीन भाजपा शासित राज्य सरकारें बर्खास्त कर दी गयीं। अनुच्छेद 356 के दुरूपयोग का क्रम अब भी जारी है। इसलिए विद्वान इस अनुच्छेद को 'पालिटिकल टेररिज्म' की संज्ञा देते हैं।

इसी प्रकार कुलाधिपति की भूमिका को लेकर भी विवाद की स्थिति है। ऐसा भी नहीं कि न्यायपालिका इन विवादों पर चुप्पी साधे हुए है। समय-समय पर न्यायिक निर्णयों से राज्यपाल की सांविधानिक स्थिति स्पष्ट हुई है, साथ ही उनकी भूमिका या पद के दुरूपयोग पर लगाम लगाने का प्रयास किया गया है। फलत: राज्यपालों के स्वविवेक पर अंकुश लगता जा रहा है। अब यह राजनीतिज्ञों को घटनाओं से न्यायालय के फैसलों के विपरीत निर्णय किया गया प्रतीत होता है।

न्यायालय की नजर में राज्यपाल, राज्य का सांविधानिक प्रधान है, इसलिए उसे दवाब रहित होकर निष्पक्ष रूप से कार्य करने की सलाह दी गई है। अब तो न्यायालय द्वारा राज्यपाल के स्वविवेक की समीक्षा की बात स्पष्ट हो गई है। साथ ही हाल ही में दिए गए निर्णयों से राज्यपाल को स्पष्ट दिशा-निर्देश पूर्व मुख्य न्यायाधीश बी.एन. खरे का यह कहना काफी महत्वपूर्ण है कि:

''न्यायपालिका सीमा अतिक्रमण नहीं कर रही है, वह तो सिर्फ

कानून लागू करने को कहती है। कानून को ठीक से लागू नहीं किया जाता, अगर लागू भी करते हैं तो गलत तरीके से, इसलिए याचिका आती है। कभी-कभी कार्यपालिका अपनी ड्यूटी वैसे नहीं निभाती है जैसे निभाना चाहिए, तब न्यायालय का हस्तक्षेप होता है।''

विभिन्न आयोगों ने भी राज्यपाल से बहुमत प्राप्त मंत्रिपरिषद् के साथ सहयोग करने की अपील की है। साथ ही स्वविवेकी शक्तियों के प्रयोग से भी निष्पक्ष होकर कार्य करने की बात कही है। जैसी भावना संविधान सभा की थी उसी को कमोवेस दुहराया गया है। लेकिन, इतना तो स्पष्ट है कि राज्यपालों की भूमिका संविधान निर्माताओं के दृष्टिकोण के ठीक विपरीत जाती दिखलाई पड़ती है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राज्यपाल ने अपनी भूमिका केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में ज्यादा निभाया है। विषेषकर 1967 ई. के बाद उनकी भूमिका सांविधानिक कम रही है। ऐसा उनकी नियुक्ति एवं पदच्युति की प्रक्रिया में केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप के कारण होता रहा है। केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में वह अपने दायित्वों को केवल अपने नियोक्ता के आदेश पर आधारित मानता है क्योंकि संविधान में स्पष्ट वर्णित है कि राष्ट्रपति के इच्छापर्यन्त ही वह पद पर रहेगा। और यह इच्छा राष्ट्रपति की न होकर केन्द्र में सत्तारूढ़ दल के सरकार की होती है। असमय पदच्यूति की तलवार राज्यपाल पर लटकी रहती है, जिससे वह निष्पक्ष रूप से कार्य नहीं कर सकता। चुँकि राज्यपाल का पद भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में अनिवार्य और महत्वपूर्ण है। यह भारतीय संसदीय परंपरा के अनूकूल है। अत: इसमें व्याप्त अतिशयोक्तियों को रोकने के लिए शोधकर्त्ता की ओर से कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जा रहे है:-

(1) नियुक्ति से संबंधित सुझाव:

(क) राज्यपाल पद पर यथासंभव गैर राजनीतिक व्यक्तियों को नियुक्त किया जाना चाहिए।

(ख) पूर्व नौकरशाहों की भी नियुक्ति विषेष परिस्थिति में ही की जानी चाहिए जिससे लोकसेवा की निष्पक्षता बनी रहे।

(ग) एक राज्य के निवासी को उसी राज्य में राज्यपाल नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

(घ) राज्यपाल की नियुक्ति से संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री से भी सलाह किया जाना चाहिए।

(´) राज्यपाल का पद बहुआयामी होता है अतः उक्त पद पर सेवानिवृत न्यायाधीशों, वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, कलाकारों, पूर्व सैन्य अधिकारियों को नियुक्त किया जाना चाहिए।

(च) राज्यपालों की नियुक्ति के लिए राष्ट्रपति के नेतृत्व में एक सर्वदलीय समिति का गठन किया जाना चाहिए।

(छ) केन्द्र में सत्ताधारी दल से जुड़े व्यक्ति को विदलीय शासन वाले राज्य में राज्यपाल नियुक्त किया जाना चाहिए।

(2) पदच्यूति के संबंध में:-

(क) राज्यपाल की बर्खास्तगी का स्पष्ट नियम बनना चाहिए और उसी आधार पर उनकी बर्खास्तगी होनी चाहिए।

(ख) राज्यपाल की बर्खास्तगी के लिए संबंधित राज्य विधानमंडल को प्रस्ताव देने का अधिकार मिलना चाहिए।

(ग) राज्यपाल को कार्यकाल के पूर्व हटाने या स्थानांतरित करने के मामले को संसद में लाना चाहिए।

(घ) न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए गए राज्यपाल अवश्य पदमुक्त किए जाने चाहिए।

(3) मंत्रिपरिषद् से संबंधित सुझाव:-

(क) मुख्यमंत्री की नियुक्ति को लेकर स्पष्ट दिशा-निर्देश निर्धारित किया जाना चाहिए।

(ख) राज्यपाल को स्वविवेकी शक्तियों संबंधी दिशा-निर्देशों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

(ग) अनुच्छेद 356 का प्रयोग अंतर्राज्यीय परिषद् की स्वीकृति तथासंसद की अनुशंसा के बाद ही किसी राज्य में किया जाना चाहिए।

(घ) अनुच्छेद 356 के प्रयोग के लिए केन्द्र सरकार को उक्त राज्य में एक समिति भेज कर उपयुक्त जाँच करवा कर ही स्वीकृति देनी चाहिए।

(´) यदि न्यायालय राष्ट्रपति शासन को असांविधानिक करार दे तो इसकी जिम्मेदारी केन्द्र पर भी हो।

(4) राज्यपाल और विधायिका:-

(क) विधानसभा के गठन एवं विघटन के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश होना चाहिए।

(ख) बड़े पैमाने पर दल-बदल जनादेश का अपमान है। अतः इस स्थिति में विधानसभा भंग कर देना चाहिए।

(ग) अनुच्छेद 200 और 201 के अधीन राज्यपाल द्वारा राज्य विधायिका द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित किए जाने पर राष्ट्रपति के विचार की समय-सीमा निश्चित किया जाना चाहिए ताकि राज्य सूची का अतिक्रमण न हो। यह संघवाद के दृष्टिकोण से अतिआवश्यक है।

इन सुझावों का उद्देश्य राज्यपाल पद को निष्पक्ष और निर्भीक बनाने के लिए प्रयास करना होगा जो वकर्तमान परिपेक्ष्य की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. एस. के. खन्ना, क्राइसिस ऑफ इंडियन डेमोक्रेसी, (1998), पृ.सं. 135.
2. सुभाष सी. कश्यप, ब्लू प्रिंट ऑफ पोलिटिकल रिफार्मर्स, (2003), पृ.सं. 248-52.
3. एस.एन.मिश्रा, द गवर्नर अन्डर द कन्सटिच्यूशन ऑफ इंडिया, (इलाहाबाद यूनिवर्सिटि स्टडिज, 1971), पृ.सं. 305-6.
4. जे.एन.पाण्डेय, कंस्टीच्यूशनल लॉ ऑफ इंडिया, (सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 1985), पृ.सं. 305.
5. एच.के. छाबडा, स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया : ए स्टडी ऑफ सेंटर स्टेट रिलेसन्स, (सुरजीत पब्लिकेशन, दिल्ली,1977), पृ.सं. 126-30
6. दिनमान, (नई दिल्ली), जूलाई 10, 1982.
7. ए.सूर्यप्रकाश, 'सरकारिया आयोग का योगदान', दैनिक जागरण, (पटना), अक्टूबर 26, 2007, पृ.सं. 8

20वीं शताब्दी में बिहार के किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थितिः एक अध्ययन

मो० शाहनवाज आलम

शोधार्थी, इतिहास विभाग, भू0 ना0 मं0 वि0 वि0 मधेपुरा (बिहार)

सारांश

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, भारत के राष्ट्रवादियों और क्रांतिकारियों द्वारा देश की स्वतंत्रता की लड़ाई थी तो, वहीं दूसरी तरफ बिहार के किसानों का आंदोलन, अपनी जमीन को जमींदारों, साहूकारों, गुमाश्तों से छुटकारा पाने के लिए था। औपनिवेशिक शासन ने बिहार के किसानों के लिए कुछ ऐसी आर्थिक दोहन की नीति बनाई, जो किसानों की जिन्दगी को तबाह और बर्बाद कर डाला। औपनिवेशिक शासन द्वारा लागू की गई दस साला प्रबंधन, स्थीय बंदोबस्त, जमींदारी प्रथा, चारागाह कर तवान, तीन कठिया प्रणाली आदि नीतियों के कारण बिहार के किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति दयनीय हो गई। जमींदार अपने पाले हुए गुमास्तों द्वारा कर वसूली का कार्य करते थे और कर वसूल करने वाले गुमास्त लोग जमींदार द्वारा तय की गई कर की मात्रा से अधिक वसूल किया जाता था, जमींदार की राशि देने के पश्चात् शेष राशि गुमास्तो द्वारा अपने पास रख लिया जाता था, इस प्रकार जमींदार और उसके नुमाइन्दे दिन-व-दिन अमीर होते जा रहे थे और किसानों की आर्थिक स्थिति बद-से-बदत्तर होती जा रही थी।

औपनिवेशिक शासन के पहले, जो किसान भूमि का स्वामी हुआ करता था, उनकी भूमि जमींदरों एवं अंग्रेजी शासन द्वारा विभिन्न मनमाने कर लगा दिये जाने के कारण किसान कर चुकाने में असमर्थ होते चले गये और उनकी भूमि नीलाम कर दिया जाता था, जिस कारण वे किसान से खेतिहर मजदूर बनते गये, यहां तक कि कर नहीं चुका पाने की स्थिति में उनके बहू-बेटियों को भी जमींदार व साहूकार उठा लिया करते थे। इस प्रकार किसानों की आर्थिक स्थिति के साथ-साथ सामाजिक स्थिति भी बद से बदत्तर होती गई। इन शोषणों के खिलाफ किसानों द्वारा कई बार आंदोलन किये गये। किसानों को ऐसा लगने लगा था जब तक औपनिवेशिक शासन व्यवस्था इस देश में रहेगी तब तक उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति सुदृढ़ नहीं हो सकता, जिस कारण किसानों ने अपने अस्तित्व की लड़ाई के साथ-साथ राष्ट्रीय आंदोलन में भी भाग लेना आरंभ किया और उनकी आर्थिक एवं स्थिति में सुधार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही सम्भव हो सका।

उपनिवेशवादी शासन का बिहार के किसानों पर आर्थिक प्रभाव

बिहार अपनी भौगोलिक स्थिति, उपजाऊ मिटी और अनुकूल जलवायु के कारण उच्च कृषि उपज वाले क्षेत्रों में गिना जाता रहा है। यही कारण था कि ब्रिटिश उपनिवेशिक काल से ही यह भू-राजस्व संग्रहण का केन्द्र था, किन्तु औपनिवेशिक शासन की अनुचित, अनैतिक और आतार्किक भू-राजस्व नीति तथा उनके समर्थक जमींदारों, साहूकारों आदि के शोषण ने किसानों में अत्यधिक विरोध का भाव उत्पन्न कर दिया।

ब्रिटिश कम्पनी अपनी एक मुश्त लगान वसूली हेतु एक नई भू-राजव्व व्यवस्था लागू की, जिसके तहत बड़े-बड़े जमींदारों को जमीन के मालिक के रूप स्वीकृत कर निश्चित अवधि के लिए, निश्चित लगान के बदले उन्हें जमीन का स्वामीत्व प्रदान किया। आरंभ में इसके अन्तर्गत जमींदारो के साथ दस साला प्रबंध किया। बंगाल एवं बिहार में इस दस साला व्यवस्था को स्थायी बंदोबस्त का स्वरूप प्रदान किया। इस व्यवस्था के लागू होने से अब किसान मात्र रैयत के रूप में जमींदारों पर आश्रित हो गये। किसानों

के भूमि संबंधी एवं अन्य पैतृक अधिकार समाप्त कर दिये गये । इस व्यवस्था के तहत जमींदार के लिए निश्चित अवधि पर लगान जमा करना आवश्यक था अन्यथा उनका स्वामित्व सामप्त कर उनकी जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी । इसलिए, जमींदार को प्रत्येक स्थिति में चाहे किसानों का फसल हो या नहीं, निश्चित समय पर लगान वसूल कर कंपनी के कोष में जमा करना ही पड़ता था । जहाँ यह व्यवस्था कंपनी और जमींदारों के लिए लाभदायक सिद्ध हुई वहीं कृषकों एवं कृषि पर इसका विनाशकारी प्रभाव पड़ा । स्थायी बंदोबस्त ने किसानों के दुर्दिन ला दिए । उन्हें अत्याचारी और लालची जमींदारों की दया पर छोड़ दिया गया । उनका भूमि पर से स्वामित्व समाप्त कर दिया गया, उनके परंपरागत अधिकार (सार्वजनिक चारागाह, जंगल, मछली-पालन इत्यादि) छीन लिए गए और उन्हें जमींदारों का व्यक्तिगत रैयत बना दिया गया । इतना ही नहीं, पैदावार पर भी उनका एकाधिकार नहीं रहा । जमींदार उनसे मनमानी राशि वसूलकर कंपनी को निश्चित रकम देते थे, और शेष अपने पास रख लेते थे, साथ ही उन्हें जमींदारों को बेगार, उपहार, नजराना इत्यादि भी देना पड़ता था। उन्हें जमींदारों एवं उनके गुमाश्तों के अत्याचारों का भी सामना करना पड़ता था । फलतः किसानों की आर्थिक स्थिति हमेशा के लिए दयनीय बन गई ।

किसानों के आर्थिक कमजोरी के कड़ी में उत्तर बिहार में नेपाल से सटे हुए चंपारण में किए जाने वाले नील की खेती का भी महत्वपूर्ण स्थान है । नील की खेती अंग्रेजो द्वारा 18वीं शताब्दी के अंतिम चरण में बंगाल में जबरन आरंभ करवाई गई थी । आरंभ में कंपनी ने नील की खेती को बढ़ावा देने के लिए वेस्ट इंडिज से इस काम में लगे लोगां को भारत बुलवाया एवं इसकी खेती करने को प्रोत्साहित किया, परन्तु धीरे-धीरे कंपनी ने नील की खेती का काम यूरोपियन बगान मालिकों के जिम्मे सुपुर्द कर दिया । इन निलहे साहबों ने बंगाल और बिहार में बड़े पैमाने पर नील की खेती आरंभ की । इसकी खेती से बगान-मालिकों को बहुत अधिक मुनाफा होता था परन्तु किसानों की दशा गुलाम सदृश हो गई थी। किसानों को नील की खेती करने के लिए बाध्य किया गया । उनके शोषन के नए-नए उपाय किये गये । निलहे साहब कलकत्ता में एक पौंड नील करीब एक रूपया चार आने में खरीदते और उसे इंगलैन्ड के बाजार में पाँच से सात रूपये में बेचलते थे । इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि नील की खेती करवाने से उन्हें कितना अधिक मुनाफा होता था । स्वभावतः इस लाभप्रद व्यवसाय पर वे अपना शिंकजा जमाये रखना चाहते थे । इसके लिए वे किसानों को मूर्ख तो बनाते ही, उनपर अमानवीय अत्याचार भी करते थे । बंगाल में नील की खेती करवाने के लिए निलहें साहबों से दादनी व्यवस्था का सहारा लिया। इसके अनुसार किसानों को बगान मालिकों से दो रूपया प्रति बीधा की दर से आग्रिम धन राशि देकर उसे अपनी जमीन में नील की खेती करने को बाध्य किया जाता था । किसान को मालिक के साथ एक प्रकार का अनुबंध करना पड़ता था जिसमें जमीन की नाप, नील की कीमत इत्यादि का उल्लेख रहता था । फसल खराब होने पर किसान को हरजाना देना पड़ता था । इस व्यवस्था ने किसानों को वस्तुतः निलहे साहबों का गुलाम ही बना दिया । एक बार अग्रिम धन ले लेने के बाद उन्हें इसकी खेती करने से कभी छुटकारा नहीं मिलता था । उनके कर्ज की रकम बढ़ती ही चली जाती थी । इसे चाह कर भी वे चुकता नहीं कर सकते थे । उन्हें पुस्त-दर-पुस्त बगान मालिकों एवं उनके उत्तराधिकारियों के लिए नील की खेती करनी ही पड़ती थी । इनकार करने पर उन्हें कोड़ों से पिटा जाता, उनके घर एवं संपत्ति लूट ली जाती, आग लगा दी जाती एवं अनेक बार तो उनकी हत्यायें भी कर दी जाती। इसी प्रकार बिहार के चंपारण में भी निलहें साहबों का अत्याचार भी चरम पर था।

औपनिवेशिक काल में बिहार के किसानों की आर्थिक स्थिति को चरमराने वाली एक अन्य प्रथा कमियौटी प्रथा प्रचलन में थी। इस प्रथा के अंतर्गत बिहार में कृषि दास के रूप में खेती करने वाले कमियां जाति के लोग अपने मालिकों द्वारा प्राप्त ऋण पर दी जाने वाली ब्याज की राशि के बदले जीवन भर उनकी सेवा करते थे।

उत्तर बिहार में नेपाल से सटे हुए चंपारण में भी नील की खेती बहुत दिनों से होती थी । इस क्षेत्र में अंग्रेज बगान मालिकों को रामनगर और बेतिया राज में जमीन की ठेकेदारी दी गई थी। इन लोगों ने इस क्षेत्र में तीनकठिया प्रणाली लागू कर रखी थी । इसके अनुसार प्रत्येक किसान को अपनी खेती योग्य जमीन के 15 प्रतिशत भाग में नील की खेती करनी पड़ती थी । इतना ही नहीं किसान अपना नील बहार नहीं बेच सकते उन्हें बाजार से कम निश्चित मूल्य पर बगान मालिकों को ही नील बेचनी पड़ती थी । इससे किसानों का आर्थिक शोषण होता था। किसानों को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी । ये इतने अल्प थे कि उनके लिए आजीविका अर्जित करना बहुत कठिन था । चंपारण में किसानों की स्थिति के बारे में डी.जी. तेन्दुलकर लिखते है : भारतीय दंगों की कहर की कहानी, ब्रिटिश बगान मालिकों द्वारा इन्डिगो को मजबूर करने के लिए औपनिवेशिक शोषण उद्देश्यों में से एक है । इन्सानी खून से सना हुआ बिना इन्डिगो का कोई खेप इंग्लैण्ड नहीं पहुँचा । 1900 ई0 के बाद जब नील की खपत कम होने लगी और इसका मूल्य घटने लगा तब निलहों ने इस क्षति की पूर्ति भी किसानों से ही करनी चाही । उनपर अनेक प्रकार के नए कर लगा दिए गए

अगर कोई किसान नील की खेती से मुक्त होना चाहता था तो उसके लिए आवश्यक था कि वह बगान मालिक को एक बड़ी राशि तवान के रूप में दें । किसानों से बेगार भी लिया जाता था । उन्हें शारीरिक कष्ट भी भोगना पड़ता था । वस्तुतः चंपारण में नील की खेती करने वाले किसानों की स्थिति बंगाल के किसानों से भी अधिक दयनीय थी ।

चंपारण के अतिरिक्त दरभंगा राज के छोटे-छोटे जमींदार द्वारा भी किसानों का शोषण किया जा रहा था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बढ़ती महंगाई से किसान भी बुरी तरह प्रभावित हुए थे । जमींदार किसानों से लगान के अतिरिक्त अन्य प्रकार के करों की वसूली भी जबरन करते थे । जिससे बिहार के इन क्षेत्रों के किसानों की आर्थिक बदलाली हो चुकी थी । फलस्वरूप उक्त क्रूर प्रथाओं और कर व्यवस्थाओं के विरोध में किसानों द्वारा समय-समय पर कई आन्दोलन किए गए।

उपनिवेशवादी शासन का बिहार के किसानों की सामाजिक स्थिति पर प्रभाव

ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषणकारी नीति का खामयाजा सबसे अधिक किसानों को ही चुकाना पड़ा था । शुरू से ही अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी एवं ब्रिट्रिश राज के अधिकारियों ने भारत के किसानो से अधिक राजस्व उगाहना अपना अधिकार माना । जमींदारों और गुमाश्तों ने किसानों का खून चूसने में कोई कसर बांकी नहीं रखी। बगान मालिकों द्वारा इस तरह की परिस्थितियाँ पैदा कर दी गई जिसमें किसी भी रैयत के लिए जीना मुश्किल हो गया था। बिहार के किसानों का भी हालत बद से बदत्तर हो चुकी थी ।

सबसे पहले कर्नवालिस ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में स्थाई बंदोवस्त के जरिये भारत में जमींदारों का सृजन किया । बिहार के जमींदारों ने अपनी गुमास्तो के जरिये किसानों से तरह-तरह के नए कर लगाकर तथा कर की राशि में वृद्धि कर किसानों की आर्थिक स्थिति जर्जर बना दिया । लगान की राशि किसानों द्वारा समय पर नहीं चुका पाने पर जमींदारों के नुमाइन्दे उनके जमीन को नीलाम करवा देते थे । ऐसी स्थिति में किसान साहुकारों एवं सुदखोरों से कर्ज लेकर अपनी भूमि को बचाने का प्रयास किए लेकिन वे समय पर कर्ज की राशि वापस नही कर पाने की स्थिति में सूद की राशि दिन दोगुणा रात चौगुणा के हिसाब से साहुकारों द्वारा बढ़ा दिया जाता था। कर्ज की राशि के बदले में उनकी घर से बहु-बेटियों को उठाकर साहुकार लोग अपने घर की दासियाँ बना लेते थे। किसान जो कल तक जमीन का मालिक हुआ करता था, वो अब जमींदरों एवं साहुकारों के यहाँ बेगार बनकर रह गए । इस प्रकार बिहार के किसानों का सामाजिक स्थिति दिन-प्रतिदिन गिरता चला गया।

ब्रिटिशं साम्राज्यवादी शोषणकारी नीति का एक स्वरूप बिहार में किसानों पर जबरन तीनकठिया प्रथा थोपा जाना था । ब्रिटिशकाल में कृषि के वाणिज्यीकरण के परिणामस्वरूप बिहार के किसानों का बहुत बुरा हाल हुआ। अब उसे भारतीय एवं विश्व की मंडी के लिए फसल उगाना पड़ता था । वाणिज्यीकरण के कारण किसान धीरे-धीरे व्यापारियों पर निर्भर होता गया और अपनी बेहतर माली हालत के कारण व्यापरियों ने किसानों की गरीबी का पूरा फायदा उठाया । किसान के गरीबी के और भी अनेक कारण थे । समय-समय पर होने वाली कृषि संकट के अतिरिक्त सूखा और अति वर्षा जैसे प्राकृतिक आपदा के कारण भी किसानों की तंगहाली बढ़ी । किसान बुरे दिनों के लिए धनराशि का संचय नहीं कर पाता था। मानसून अच्छा न होने पर अधिकांश किसानों के पास लगान जमा करने के लिए पैसा नहीं रहता था और इसलिए वे कर्ज में फँसते गए । ऋणग्रस्ता के कारण कुछ किसान अन्तोगत्व कृषि ऋणग्रस्तता की स्थिति में पहुँच गया । जिससे बिहार के किसानों की सामाजिक स्थिति दयनीय होता चला गया ।

औपनिवेशिक काल में बिहार की सामाजिक स्थिति जाति व्यवस्था जैसे रोग से ग्रस्त था। जिसमें ब्रह्मण को सर्वोपरि माना जाता था और शुद्र किसान सबसे निचले दर्जे का माना जाता था । ऐसे विभेदकारी समाज में किसानों को न्याय मिलना असंभव था । जाति व्यवस्था पदानुक्रमित श्रेणी श्रृंखला आवद्ध थी । इस प्राकर चारों ओर से सताये गये हमारे किसान सत्वहीन हो गये और बाल विवाह प्रथा के कारण उनका काफी पतन हुआ । किसान गरीबी के कारण शरीर से भी निर्बल हुए, अज्ञानता के कारण धार्मिक रीति-रिवाज में पीसाते गये, साथ ही अशिक्षा के कारण अधिकांशतः अपनी जमीन जायदाद भी गवाँ बैठे। किसान वर्ग के महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी । प्रदा प्रथा का प्रचलन इन वर्गों में नहीं था । इनकी घर के महिालाएं कृषि कार्य के अतिरिक्त साहुकारों, गुमाश्तों के घर में चुल्हा चौका का कार्य करती थी । किसानों को शिक्षा से वंचित रखा गया था । इस प्रकार किसानों की आर्थिक एंव सामाजिक स्तर औपनिवेशिक काल में काफी जर्जर हो चुकी थी । जिस कारण उन्होंने अनेकों आन्दोलन किये ।

निष्कर्ष

ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों एवं नई भू-राजस्व व्यवस्था का दुष्परिणाम सबसे अधिक किसानों को ही भुगतना पड़ा। उन्हें एक ही साथ कंपनी एवं जमींदारों दोनों के अत्याचारों का सामना करना पड़ता था। भूख, दरिद्रता और शोषण से पीड़ित किसानों ने अनेकों बार बिद्रोह किये। इनका मुख्य उद्देश्य आर्थिक, सामाजिक शोषण तथा लगान में रियायत पाना था।

औपनिवेशिक शासन द्वारा लागू की गई स्थाई बंदोवस्त, जमींदारी प्रथा, चारागाह कर, तवान एवं तीन कठिया आदि के कारण बिहार के किसानों की हालत जर्जर हो गई। जमींदार अपने पाले हुए गुमास्तों के द्वारा कर वसूली का कार्य करते थे और गुमास्त लोग किसानों से जमींदरों के कर से अधिक कर वसूला करते थे और शेष राशि अपने पास रख लिया करते थे। इस प्रकार जमींदार और उसके नुमाइन्दे दिन व दिन अमीर होते जा रहे थे अैर किसान की आर्थिक स्थिति के साथ-साथ सामाजिक स्थिति बदतर होती जा रही थी। किसान जो भूमि का मालिक हुआ करता था। उनकी जमीन कर नहीं चुका पाने के कारण नीलाम कर दी जाती थी और वे किसान से खेतिहर मजदूर बनते गए। यहाँ तक की कर नहीं चुका पाने की स्थिति में उनके बहु-बेटियों को भी जमींदार व साहुकार उठवा लिया करते थे। अत: किसानों की आर्थिक स्थिति के साथ-साथ सामाजिक स्थिति दयनीय होती गई। इन शोषणों के खिलाफ किसानों द्वारा कई आन्दोलन किए गए परन्तु उनकी स्थिति में बहुत ज्यादा सुधार नहीं हुआ और किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का वास्तविक में सुधार औपनिवेशिक शासन के अन्त एवं भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही संभव हुआ।

संदर्भ सूची

1. वी.डी. महाजन, ब्रिटिश रूल इन इंडिया एण्ड आफटर।
2. पार्था चटर्जी, नेशनल थाउट एण्ड दि कोलोनियल वर्ल्ड : ए डेरिवेटिव डिसकोर्स (दिल्ली, 1986)
3. ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, इकोनोमिक डिस्लोकेशन इन नाइनटिन्थ सेन्च्यूरी यू.पी. सम इम्पलिकेशन ऑफ दि डिकलाइन ऑफ आर्टिशनल इन्डस्ट्री इन कोलोनियल इंडिया इन पी. रोव (इंडि.) रूरल साउथ एशिया।
4. सुभाष चक्रवर्ती दि राज सिन्ड्रोम-ए स्टडी इन इम्पेरियल परसेप्सन्स (दिल्ली, 1989)
5. बी.वी. मजमूदार, इंडियन पॉलिटिकल एसोसिएशन एण्ड रिफोर्म ऑफ लेजीस्लेटर 1818 - 1917 (कलकत्ता-1965)
6. जे. आर. मेकलेन, इंडियन नेशनालिज्म एण्ड द अर्ली कांग्रेस (प्रिंसटन 1977)
7. सुमित सरकार, पोपुलर मुवमेंट्स एण्ड मिडिल क्लास इन लेट कोलोनियल इंडिया: परसेपेक्टिव एण्ड प्रॉवलेम्स ऑफ ए हिस्ट्री फ्रॉम बिलोअ, सेन्टर फॉर स्टडीज इन सोशल साईस कलकत्ता 1983
8. बी.सी. जोशी (एडि.), राममोहन राय एण्ड द प्रोसेस ऑफ मॉर्डन इजेशन इन इंडिया (विकास पब्लिकेशन, दिल्ली, 1975)
9. बीपिन चन्द्र, आधुनिक भारत, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, दिल्ली।
10. प्रसाद, के.एन, बिहार के साधन कृषि और उद्योग।
11. भाले राव, डॉ0 म0 म0, भारतीय कृषि अर्थशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
12. अकाल जाँच आयोग 1945 का प्रतिवेदन।
13. भारतीय खेत मजदूर यूनियन का पाँचवा राष्ट्रीय सम्मेलन (रिपोर्ट एवं प्रस्ताव), राजगीर, बिहार।
14. कांग्रेस कृषि सुधार समिति, रिपोर्ट, 1939-47
15. प्रथम कृषि श्रम जाँच समिति, 1950-51

स्वतंत्र भारत में महिला आंदोलन का स्वरूपः एक अध्ययन

मृदुला कुमारी

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारत का महिला आंदोलन अनेक लड़ियों में पिरोया हुआ है। हरेक ने विभिन्न रंग व बुनावटों में इसमें अपना योगदान दिया है। लाखों कहानियों के ताने-बाने जोड ़कर आंदोलन खड़ा हुआ है। कितनी ही महिलाओं के खून, पसीने, आंसुओं, अंतर्दृष्टि, सपनों, विचारों और शक्तियों से आंदोलन का निर्माण हुआ है। कितनी ही महिलाओं की कोशिश रही है कि वे अपने प्रति हुए अन्याय, हिंसा और शोषण को आंदोलन की भट्टी भस्मीभूत कर सकें। आज जब संपूर्ण विश्व में बढ़ती गैर बराबरी, भेदभाव, गरीबी और हिंसात्मक टकराव का संकट छाया हुआ है, महिलाओं की सामूहिक ताकत का अपना अलग महत्व है। महिलाओं ने इसे अपने योगदान से विस्तृत और बहुआयामी बनाया है। महिला समूहों एवं सामूहिक प्रयत्नों से महिलाओं की स्थिति सुधारने की कोशिश की है। उनकी कोशिश यह है कि समाज, राष्ट्र और विश्व के संपूर्ण ढांचे में परिवर्तन लाया जा सके। महिलाएं अलग-अलग प्रसंगों में अर्थपूर्ण सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तन के बीच रही है।[1]

भारतीय महिला आंदोलन ने अन्र्तराष्ट्रीय स्तर पर अपना स्थल बनाया है। इस आंदोलन की नींव में दलित, कामकाजी, मजदूर, निम्न, मध्यम एवं उच्च मध्यवर्ग सभी का योगदान है। उनकी अलग-अलग सामाजिक परिस्थितियाँ है लेकिन अनेक महिलाओं ने एक-दूसरे की परिस्थितियों, समस्याओं, संघर्षो एवं प्राथमिकताओं को समझने की चुनौती स्वीकार की है। आंदोलन में एक साथ चर्चा और बातीचत से खास-खास मुद्दों पर संयुक्त मंच बने हैं। ऐसा नहीं है कि भीतर मतभेद और टकराव नहीं है। कुछ टकवारा वर्ग परिस्थितिजन्य हैं तो कुछ सोच और नजरिए में अंतर के कारण है। मुद्दे काफी जटिल है और आसानी से सुलझ वाले नहीं है। एक समस्या सुलझता नहीं, दूसरी उभर आती है। आज समकालीन विश्व में अनेक तरह के संकट छाए हुए है। महिलाओं की गैरबराबर स्थिति केवल एक पहलू है। जब तक बहुत से संबंधित क्षेत्रों में वृहत स्तरीय परिवर्तन नहीं आता महिलाएं अपने मुख्य लक्ष्य हासिल नहीं कर सकेंगी।[2]

महिला आंदोलन के लिए यह आवश्यक है कि उसके दूसरे आंदोलनों से जुड़ावों को समझा जाए और उनको बनाए रखा जाए। भारतीय महिला आंदोलन के इतिहास में हमें अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ मजदूरों, दलितों, आदिवासियों, क्रांतिकारियों ने मिलकर संघर्ष किए हैं। महिला आंदोलन का जुड़ाव स्वाधीनता संग्राम से भी है। जब वर्ग, जाति और लिंगीय शोषण का बोझढ़ोने वाली महिला अपनी खामोशी तोड़ती है तो सामाजिक-आर्थिक ढांचे की नींव हिलने लगती है।

महिला आंदोलन में कुछ अलग-अलग दिखने वाली लड़ियाँ हैं- स्वायत नारीवादी संगठन, वामपंथी महिल समूह, गांधीवादी महिला समूह, धर्म या समुदाय तथा अलग-अलग व्यवसाय पर आधारित समूह । हालांकि व्यवहार में यह अंतर हमेशा दिखाई नहीं देता है। उदाहरण के लिए 'सेवा' (सेल्फ-एम्पलयाड विमिंस एसोसिएशनद्ध ने कामगार महिलाओं को ट्रेड यूनियन की तर्ज पर संगठित किया है किन्तु वैचारिक रूप से वह गांधी-दर्शन से प्रभावित है। इसी तरह 'प्रगतिशील महिला संगठन' स्वायत संगठन है किन्तु वैचारिक रूप से एक सीमा तक वामपंथी है। 'यंग विमेंस क्रिश्चियन एसोसिएशन' धर्म आधारित संगठन है पर कई महिला मुद्दों को 'फोरम अगेंस्ट ऑप्रेशन ऑफ विमिन' जैसे स्वायत महिला संगठन, और 'अखिल भारतीय जनवादी महिला संगठन' जैसे वामपंथी संगठन इत्यादि के साथ मिल-जुलकर उठाता है। विभिन्न महिला संगठनों को वर्गीकृत करना आसान नहीं है। किसी भी संगठन की विचारधारा, प्राथमिकताएं, आकार, ढांचा, लक्ष्य, रणनीति और गतिविधियां बहुआयामी होती है। कई बार

विभिन्न संगठनों के बीच एक पुल बनाने की कोशिश की गई है। व्यवहार में कई बार वे मुद्दे विषेष को लेकर एक संयुक्त मंच पर सक्रिय हुए हैं।

महिला आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है आम महिलाओं से रिश्ता और जुड़ाव, अंततः आंदोलन की नींव उन लाखों-करोड़ों आम औरतों ने डाली है जिन्होंने सदियों से सवाल उठाए हैं, असंतोष जताया है, विरोध के स्वर उठाए हैं और असहयोग की शुरूआत की हैं। रूढ़ीवादी इतिहासकार भले ही इसे अनदेखा कर दें, पर वास्तविकता यह है कि महिला आंदोलन की जड़ें, महिलाओं के रोजमग्र के जीवन से जुड़ी है।[3] आंदोलन की जड़ें वे छोटे-छोटे अनौपचारिक महिला समूह हैं, जो खेतों, फैक्टरियों और घरों में साथ-साथ या एक तरह का काम करती हुई महिलाएं स्वतः ही बना लेती हैं। इनको एक-दूसरे से सहारा एवं बल मिलता है। समाज में, काम की जगह, घर-परिवार, आस-पड़ोस में अनेक ऐसे अनौपचारिक समूह हैं जिनसे महिलाओं को मुसीबत के समय सहारा मिलता है, वे आपस में सुख-दुख बांटती हैं, जानकारी और रणनीतियां बांटती हैं। माँ, दादी, नानी, रिश्तेदार, सहेलियां और पड़ोसिनें लड़कियों को तमाम हुनर सिखाती हैं। महिलाएं रोजमर्रा के जीवन में कई स्तरों पर महसूस करती हैं कि उन्हें सहारा देने वाली अन्य महिलाएं हैं। समाज में कई बार महिलाएं किसी मुद्दे को लेकर जुड़ती हैं, थोड़े समय के लिए सामूहिक रूप से सक्रिय होती हैं, फिर बिखर जाती हैं।

यों औपचारिक रूप से महिला आंदोलन से जुड़ी महिलाओं की संख्या हजारों में ही दिखती हो, इसका अनौपचारिक आधार काफी विस्तृत है। देश के कोने-कोने में महिलाएं महिला आंदोलन के बीज बो रही हैं एवं जड़े सींच रही हैं। सदियों से महिलाएं नए एवं संपर्ण मानव जाति के लिए उपयोगी रास्ते खोजती रही हैं। मानव विज्ञानीय खोजों से पता चला है कि वह पहली किसान थीं, बागवानी, सुपोषण एवं दवाई विषेषज्ञ थीं। प्रकृति को संहार से बचाने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई हैं। पितृसत्तात्मक समाज में दमन और शोषण के भार को वहन करते हुए बेहद सीमित उपलब्ध जगह में उन्होंने अपने विस्तार और विकास के रास्ते बनाए हैं। उनके योगदान और अभिव्यक्ति को समझ पाना कोई बार आसान नहीं होता।[4]

समकालीन भारतीय आंदोलन का इतिहास काफी संपन्न है। समकालीन महिला आंदोलन की जड़ें बुद्ध के समय में देखी जा सकती हैं जब सुमंगल माता और भुट्‌टा ने घर-गृहस्थी और समाज के जंगल को त्यागकर भिक्षुणी बनने का निर्णय लिया। महाभारत में द्रौपदी की दंतकथा का उदाहरण हमारे सामने है जब उसने शत्रु के राज दरबार में अपने पांच पतियों को चुनौती दी थी। मीराबाई और महादेवियक्का का उदाहरण भी हमारे सामने है जिन्होंने समाज के बंधनों को तोड़कर सड़कों पर भक्ति गीत गाए और हमारे लिए कविता और संगीत की एक समृद्ध वसीयत छोड़ीं । महिला आंदोलन को 19वीं सदी के मध्यमें छत्तीसगढ़ की आदिवासी महिलाओं के पूंजीवाद विरोधी संघर्ष में भी देख सकते हैं। आंदोलन को सावित्रीबाई फुले की स्त्री शिक्षा और स्वास्थ्य संघर्ष में, विधवाओं के पुनर्स्थापन में, राजा राममोहन रायके सभी प्रथा के विरोध में 1920-30 व '40 दशकों में गांधी के आंदोलनों में, तेलंगाना और तैभागा की किसान महिलाओं के संघर्ष में भी देख सकते हैं। एक बात तो स्पष्ट है कि महिला आंदोलन की शुरूआत कोई अभी हाल में नहीं हुई । इसकी शुरूआत हजारों स्थानों पर हजारों तरह से हुई है। इसकी तुलना उस नदी से नहीं की जा सकती जो एक स्पष्ट स्रोत से शुरू होकर एक स्पष्ट जगह समाप्त हो जाती है। वरन इसमें सैकड़ों धाराएं मिलती हैं जो स्वयं हजारों धाराओं और झरनों से मिलकर बनी है।

स्वतंत्रता के पश्चात कांग्रेस ने महिलाओं से किए गए वादों को पूरा करने के अनेक प्रयास किए। इन कोशिशों के तहत सबसे पहले संविधान में स्त्रियों को समान अधिकार दिए जाने की घोषणा की गई। इसके साथ ही महिलाओं को प्रगति के अवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से उपाय सुझानेवाली अनेक प्रशासकीय इकाइयों का गठन किया गया । हालांकि ये कोशिशें सरकारी पक्ष की नेकनीयती का नमूना थीं फिर भी आजादी के कुछ वर्षों बाद नारीवादियों को संतोषजनक नहीं लगे। हिन्दू कोड बिल का तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सहित अनेक प्रभावषाली कांग्रेसजनों ने बड़े पैमाने पर विरोध किया इसलिए इसे कई टुकड़ों में, इसकी कुछ धाराओं को अलग कानून की शक्ल देकर पचास के दशक के मध्य में पारित किया गया।[5]

उपरोक्त संदर्भ में उल्लेखनीय है कि नारीवादियों द्वारा 1930 के दशक में सभी हिन्दू व्यक्तिगत कानूनों को एक परिष्कृत, समेकित सार्वभौम कानून के अंतर्गत लाकर समान नागरिक संहिता के निर्माण की मांग 1930 के दशक में उठाई गई। नारीवादियों की इस मांग के मद्देनजर बी.एन.राऊ की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसने सन् 1944 में कोड से संबंधित मसौदा सरकार को सौंपा। बी.एन. राऊ की रिपोर्ट पर स्वाधीनता के बाद भी कोई कार्रवाई नहीं की गई।[6]

कार्रवाई तब हुई जब तत्कालीन कानून मंत्री बी.आर.अंबेडकर की अध्यक्षता में एक अन्य समिति की स्थापना हुई। अंबेडकर समिति द्वारा बिल विधेयकद्ध में विवाह की आयु सीमा बढ़ाने, स्त्रियों को तलाक का अधिकार देने, मुआवजा तथा विरासत के अधिकार के साथ-साथ दहेज को 'स्त्रीधन' मानने के सुझाव दिए गए।[7]

हालांकि इन सुझावों का नारीवादियों एंव समाज सुधारकों के साथ-साथ अधिसंख्य कांग्रेसजनों ने भी समर्थन किया परन्तु राजेन्द्र प्रसाद एवं सरदार पटेल का विरोध ही नेहरू के हाथ-पाँव फुलाने के लिए पर्याप्त था। उन्होंने इसे सन् 1955-56 तक तब तक लटकाए रखा जब तक कि इसकी धाराओं को चार भिन्न कानूनों के रूप में पारित नहीं कर दिया गया। जो चार कानून बनाए गए थे वे क्रमश: हिन्दू विवाह कानून, हिन्दू उत्तराधिकार कानून, हिन्दू अल्पवयस्कता एंव अभिभावकत्व कानून तथा हिन्दू गोद एंव गुजारा कानून के रूप में जाने गए। नहेरू के इस कदम के विरोध में अंबेडकर ने उसके मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया तथा महिला संगठनों ने काफी चिल्ल-पों मचाई लेकिन सरकार ने समेकित हिन्दू कोड की मांग पर अन्य कोई कार्रवाई नहीं की। नारीवादियों की चीख-पुकार भी आहिस्ता-आहिस्ता मंद पड़ गई और मामला समाप्त हो गया।[8]

स्वतंत्र भारत में नारीवादियों में अभूतपूर्व बिखराव आया क्योंकि अब उन्हें अंग्रेजों के समान शत्रु दिखाई नहीं पड़ रहा था। इस दौर में राजनीतिक अलगाव पहले की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो गया। इसका कारण शायद यह था कि नारीवादियों ने कभी भी लिंग आधार पर शत्रु की पहचान नहीं की थी। इसका आंशिक कारण एक तो साम्राज्यवादी दमनात्मक कार्रवाइयाँ थीं और दूसरा कारण शायद भारत की बहुआयामी मिश्रित संस्कृति थी जिसमें पश्चिम की तरह लिंग-संबंधों को साफ रूप से परिभाषित नहीं किया गया था। स्वाधीनता-पूर्व के नारीवादियों में से अधिसंख्य किसी अन्य राजनीतिक दल से जुड़ने के बजाय कांग्रेस सरकार के सदस्य बन गए क्योंकि कांग्रेस स्त्रियों की दशा में सुधार लाने के लिए बचनबद्ध थी। अगर कहीं असंतोष की भावना उभर भी रही थी तो वह बहुत मामूली थी। इसीलिए पचास एवं साठ के दशक में महिला आंदोलनों में खामोशी रहीं परन्तु सत्तर एवं अस्सी के दशक में शुरू हुए नारी आंदोलन अलग तथा अपने समय के परिवर्तनकारी आंदोलन माने जाते हैं।

देश के विभाजन तथा स्वाधीनता के फौरन बाद खेत श्रमिकों, किसानों कम्युनिस्टों और समाजवादियों में छले जाने की भावना तेजी से उभरी। कांग्रेस की ओर से प्रभावषाली भूमि पुनर्वितरण के वादे को पूरा करने में किए गए विलंब की कारण किसान सभाओं को विरोध की नई स्फूर्ति से भर दिया। यह वह समय था जब भारतीय कम्युनिस्ट ने किसान सभाओं के नेतृत्व में सरकार द्वारा किए गए प्रयासों को अपर्याप्त बताते हुए उसकी आलोचना की तथा बटाईदारों की रैलियाँ, हड़तालें एवं प्रदर्शन आयोजित कराए और भूमि सुधारों की मांग की ।9 इनमें से अधिसंख्य आंदोलनों को सरकार ने खेतिहर नेताओं को गिरफ्तार करके कुचल दिया परन्तु यह दमनात्मक कार्रवाई 1948-50 के बटाईदारों के आंध्रप्रदेश के तेलंगाना आंदोलन में संभव नहीं थी। भारतीय कप्युनिष्ट पार्टी सीपीआई के माओवाद से प्रभावित नेताओं के नेतृत्व में तेलंगाना जिले के कोई ढ़ाई हजार गांवों को आजाद करा दिया गया। बटाईदारों के कर्जे खत्म कर दिए गए, किसानों को बटाईदारों की ओर से दिया जानेवाला जमीन किराया हिस्सा देना बंद कर दिया गया तथा बटाईदारों में भूमि का पुनर्वितरण कर दिया गया।[10] सितम्बर सन् 1948 में भारतीय सेनाओं ने राज्य को अपने कब्जे में ले लिया तथा किसान नेताओं को गिरफ्तार करने के साथ-साथ प्रदर्शनकारी किसानों पर गोलियां बरसाई। सीपीआई को गैर कानूनी संगठन घोषित कर दिया गया जिससे आंदोलन भूमिगत होने को मजबूर हो गयां सीपीआई पर प्रतिबंध लगने के बाद कम्युनिष्टों ने गुरिल्ला युद्ध की रणनीति अपनाई।

महिलाओं के प्रति तेलंगाना आंदोलन के नेताओं का रवैया बड़ा उदार एवं जिम्मेदाराना था। परन्तु जब आंदोलन भूमिगत हो गया तो महिलाओं को छापामार गुरिल्लाद्ध दस्ते में शामिल होने की आज्ञा नहीं दी गई परन्तु उनसे शरण उपलब्ध कराने, संदेशवाहक बनने जैसे सहायक कार्य करने की अपेक्षा जरूर की गई। अपवादस्वरूप अगर कुछ महिलाओं ने गुरिल्लों में शामिल होने की व्यवस्था कर भी तो बाद में उन्हें काफी पछतावा हुआ। उन्होंने बताया कि जब वे गुरिल्ला आंदोलन से निकलकर वापस अपने परिवारों में पहुँचीं तो उन्हें यह कहकर स्वीकार नहीं किया गया कि उन्होंने अपना स्त्रीत्व खो दिया है।[11]इस दौरान भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के अंदर नीतियों को लेकर मंथन होता रहा और नीतियों में बदलाव की जरूरत महसूस की जाने लगी। किसानों के बजाय पार्टी ने श्रमिक वर्ग को आंदोलन में शामिल होने का निर्णय लिया और सन् 1951 में अपने नुकसान की भरपाई के लिए सीपीआई ने तेलंगाना आंदोलन समाप्त कर दिया। भाकपा की इस कार्रवाई से आंध्र प्रदेश के कम्युनिस्अ बहुत आहत हुए।

भूमि के पूर्नवितरण के इस हिंसा रहित अभियान को उत्तराखंड के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्रों में भी भावे के माध्यम से पाँव रखने की जगह मिली। विनोबा के निर्देश पर उत्तराखंड में जंगलों की कटाई तथा बढ़ती शराबखोरी पर अंकुश लगाने के प्रयास किए गए।

आजादी के बाद इस क्षेत्र में मीरा बहन तथा सरला बहन द्वारा स्थापित किए गए गांधी आश्रम इन प्रयासों के केन्द्र बने जिसके परिणामस्वरूप साठ के दशक के पूर्वार्द्ध में महिलाओं का शराब-विरोधी आंदोलन अस्तित्व में आया। सुन्दरलाल बहुगुणा, जिन्होंने शराबखोरी के विरूद्ध अनशन का गांधीवादी अस्त्र उठाया, के नेतृत्व में आंदोलनकारियों ने शराब निर्माताओं तथा विक्रेताओं के विरूद्ध कार्रवाई करने पर ध्यान केन्द्रित किया तथा शराब के व्यापक बहिष्कार तथा उपभोग एवं बिक्री पर रोक लगाने में सफलता प्राप्त की। श्री बहुगुणा शराबखोरी के विरूद्ध जनमत तैयार करने में तो स ुफल हुए परन्तु वे क्षेत्र से शराब या शराबखोरी को पूरी तरह नहीं मिटा सकें।[12]

महिलाओं के लिए अनेक सरकारी योजनाएं शुरू की गईं। सामुदायिक विकास एवं कई और समाज कल्याण कार्यक्रम बने। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण गरीबी कम करना और ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक दशा और सुधार लाना था। सारे देश की महिलाओं में एक नई आशा जगी कि स्वाधीन भारत में उनकी दशा में बुनियादी अंतर आएगा, जनता में विश्वास जगा कि उनकी गरीबी कम होगी। आम जन-स्तर में सुधार आएगा। किन्तु अपर्याप्त सरकारी योजनाओं के कारण ग्रामीण महिलाओं की दशा में कोई खास सुधार नहीं आयां सामुदायिक विकास कार्यक्रम अपने सीमित समझ के कारण उनकी बुनियादी जरूरतों जैसे भूमि और कृषि संबंधी, रोटी, कपड़ा, मकान, बच्चों की देखभाल में हस्तक्षेप नहीं कर पाया। महिलाओं की जरूरतों की परिभाषा सरकारी योजनाओं में घरेलू काम जैसे सिलाई-कढ़ाई तथा पापड़ बनाने आदि तक ही सीमित रही। उनकी वास्तविक जरूरतों को अनदेखा करके फिर से एक दमनकारी ढांचा खड़ा हो गया जहां उनके विकास के रास्ते खुलने के बजाय और भी बंद होते दिखे।[13] इस स्थिति में साफ होते देर नहीं लगी कि इनसे उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में कोई विषेष अंतर आने वाला नहीं है।

महिलाओं की बढ़ती गरीबी देश में गहराते राजनीतिक और आर्थिक संकट का केवल एक हिस्सा थी। देश के विकास के नाम पर बनी योजनाओं द्वारा देश भर के जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन आने लगे। पंचवर्षीय योजनाओं ने श्रम की कीमत पर पूंजी आधारित भारी उद्योग-धंधों को बढ़ावा दिया। इससे बेरोजगारी बढ़ी, भूमिहीन और अधिक गरीब हुए। कृषि 'सुधारों' से श्रमिक, दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्गों की दशा और ज्यादा खराब हुई। गांवों में पूंजी के प्रवेश से भारी उथल-पुथल हुई। बड़ी-बड़ी जल विद्युत और ताप विद्युत परियोजनाओं तथा भारी उद्योगों से लाखों करोड़ों लोग अपने पुरखों के समय से चली आ रही जमीन से विस्थापित किए गए। एक स्थायी जीवन प्रणाली से रह रहे लोगों को मजदूर बनने के लिए मजबूर किया गया। उन्हें अपनी जमीन और गांव छोड़कर अन्यत्र जाने को मजबूर किया गया ।[14]

निष्कर्षत :

निष्कर्षतः यह कहा जाता है कि अब तक संस्कृति, लिंग, जाति तथा कबीले जैसे उपेक्षित रहे मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित होना शुरू हुआ। क्रांतिकारी वामपंथियों की देखादेखी समाजवादी आंदोलन में भी नए विचारों एवं आंदोलनों का विकास हुआ यह अलग बात है कि बहुत सीमित दायरे में इनमें राज्य क्रांति, पर्यावरण, ट्रेड-यूनियन तथा लिंग के मुद्दे शामिल थे। इन अनेक नए विचारों एवं आंदोलनों में स्त्रियों के सर्वाधिक पसंदीदा अभियान उत्तराखंड के सुदुरपूर्व गांवों में पर्यावरणीय नारीवादी आंदोलन, महाराष्ट्र में शहद एवं मूल्यवृद्धि- विरोधी आंदोलन तथा गुजरात में सेवा एंव नवनिर्माण आंदोलन थे।

संदर्भ

1. शर्मिला रेज, सोशियोलॉजी ऑफ जेंडर, सेज पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2003, पृ0 354
2. उपरोक्त
3. मंडक्रांत बोस, फेसेज ऑफ द फेमिनाइन इन ऐसियंट, मैडाइवल एण्ड मार्डन इंडिया, आक्सर्फोड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली 2000, पृ0 189
4. उपरोक्त, पृ0 63-64
5. जे.एम. एवरेस्ट, वुमेन उण्ड सोशल चेंज, इन इंडिया, हेरिटेज, दिल्ली, 1985, पृ0 - 164
6. वी0 मजुमदार ''द सोषल रिफॉम फ्रॉम रानेड टू नेहरू'' इन बी0आर0नंदा, एडिटेड इंडियन वुमेन : फ्रॉम पर्श टू मार्डनिर्टी, विकास पब्लिशिंग हाउस, न्यू दिल्ली 1976, पृ0 35-51
7. उपरोक्त

8. इंदुप्रकाश सिंह का अप्रकाशित शोध निबंध : डायलेटिक्स ऑफ ला एंड स्टेट्स ऑफ इंडियन वीमेन समाज व्यवस्था अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली 1985 पृ0 97-107
9. डी0 एन0 धनागड़े, 1983, पीजेंट्स मूवमेंट्स इन इंडिया, 1920-1950, दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ0 107-111
10. सुनील सेन, 1974, एग्रेरियन रिलेसंस इन इंडिया, नयी दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पृ0-201.
11. स्त्री शक्ति संघटन : वि वबेर मेकिंग हिस्ट्री..लाइफ स्टोरीज ऑफ वीमेन इन दि तेलगाना पीपुल्स स्ट्रगल', दिल्ली, काली फॉर वीमेन, 1987
12. सेमिनार पत्रिका में चिपको विषय पर जे. बंद्योपध्याय एवं वंदना शिवा का आलेख, फरवरी, 1987, पृष्ठ-35
13. प्रतिमा अस्थाना, बुमेन्स मुवमेंट इन इंडिया, विकास पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 1974, पृ0-107-113
14. नंदिता शाह एण्ड नंदिता गांधी, द इश्यू ऐट स्टेक : थ्योरी एण्ड पैक्टिस इन द कँनटेमपररि बुमेन्स मूवमेंट इन इंडिया, काली फॉर वुमेन, न्यू दिल्ली, 1992, पृ0-39-42

काशी नगरी का गौरव देववाणी संस्कृत की आधुनिक परिप्रेक्ष्य एवं उच्च शिक्षा में उपयोगिता

कृष्ण कुमार पाण्डेय

शोध छात्र, इतिहास, डॉ. सी.वी.रमन विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश -

संस्कृत विश्व की सर्वोपयोगी भाषा है और यह भारतवर्ष का गौरव है। इसे बढ़ावा और प्रमुख भाषा का स्थान मिलना ही चाहिए। नासा के अध्ययन के अनुसार- विश्व की कल्याणकारी भाषा संस्कृत ही है। इसी उद्देष्य के रुप में यह कम्प्यूटर के लिए सबसे मूल्य परक एवं उपयुक्त भाषा है। संस्कृत को आधुनिक सन्दर्भो में संयुक्त रुप से जीवनोपयोगी बनाना अनिवार्य है। संस्कृत वाॅमय प्राचीनता, महनीयता एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के कारण विश्वविख्यात है।

शब्द कुन्ज -

अर्वाचीन, मनीशियों, संवृद्व, नैसर्गिक, पांडुलिपियाॅ, वाग्यमय, दैदिप्यमान, रत्न विश्रुत..... इत्यादि।

प्रस्तावना-

यह भाषा प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं की जननी है। यह वाॅमय संस्कृत ग्रन्थ रत्नों का अक्षय भण्डार है। अद्यापि अनेकशः ग्रन्थ ऐसे हैं, जो विद्वानों के द्वारा पूर्णतया उपेक्षित है। भारत के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक आध्यात्मिक, दार्षनिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन एवं विकास के सोपानों की सम्पूर्ण व्याख्या संस्कृत वाग्मय के माध्यम से आज विश्व विश्रुत है। सहस्त्रषताब्दियों से इस भाषा और इसके वाॅमय को भारत में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है और साथ ही भारत की सांस्कृतिक भाशा रही है। शताब्दियों तक समग्र भारत को उच्च शिक्षा तथा सांस्कृतिक, भावात्मक एकता में अबाध रखने में इस भाशा ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। आधुनिक विद्वानों का मानना है कि- पाॅच सहस्त्र वर्षो से संस्कृत भाषा का अविरल अखण्ड प्रवाह बहता चला आ रहा है। इसी कारण भारतीय मनीशियों ने इसको अमर भाषा या देववाणी के नाम से सम्मानित किया है। देवनागरी में 13 स्वर और 34 व्यंजन हैं। संस्कृत केवल स्वविकसित भाषा नहीं, बल्कि संस्कारित भाषा भी है, अतः इसका नाम संस्कृत है। केवल संस्व्रत ही एकमात्र भाषा है, जिसका नामकरण उसके बोलने वालों के नाम पर नहीं किया गया है। संस्व्रत को संस्कारित करने वाले भी कोग्र साधारण भाषाविद नहीं, बल्कि महर्षि पाणिनि, महर्षि कात्यायन और योगशास्त्र के प्रणेता महर्षि पतंजलि हैं।

विषयवस्तु -

वैदिक काल से आज तक संस्कृत भाशा के माध्यम से समस्त वांग्यमय का निर्माण होता रहा है। विश्व भर की समस्त प्राचीन भाशाओं में संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। विश्व साहित्य का प्रथम ग्रन्थ माना जाने वाला ॠग्वेद इसी भाशा का दैदिप्यमान रत्न है। भारतीय संस्कृति एवं भाशा का रहस्य संस्कृति भाशा में निहित है। इसके अध्ययन के बिना भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का

ज्ञान असम्भव है। संस्कृत में 1700 धातुएं, 70 प्रत्यय और 80 उपसर्ग हैं, इनके योग से जो शब्द बनते हैं, उनकी संख्या 27 लाख 20 हजार होती है। यदि दो शब्दों से बने सामासिक शब्दों को जोड़ते हैं तो उनकी संख्या लगभग 769 करोड़ हो जाती है। संस्क्र त इंडो-यूरोपियन लैंग्वेज की सबसे प्राचीन भाषा है और सबसे वैज्ञानिक भाषा भी है। इसके सकारात्मक तरंगों के कारण ही ज्यादातर श्लोक संस्क्रत में हैं। भारत में संस्क्रत से लोगों का जुड़ाव खत्म हो रहा है लेकिन विदेशों में इसके प्रति रुझान बढ़ रहा है।

उच्च शिक्षा में संस्कृत -

ब्रह्मांड में सर्वत्र गति है। गति के होने से ध्वनि प्रकट होती है। ध्वनि से शब्द परिलक्षित होते हैं और शब्दों से भाषा का निर्माण होता है। आज अनेकों भाषायें प्रचलित हैं। किन्तु इनका काल निश्चित है कोम्र सौ वर्ष, कोम्र पाँच सौ तो कोम्र हजार वर्ष पहले जन्मी। साथ ही इन भिन्न-भिन्न भाषाओं का जब भी जन्म हुआ, उस समय अन्य भाषाओं का अस्तित्व था। अतः पूर्व से ही भाषा का ज्ञान होने के कारण एक नयी भाषा को जन्म देना अधिक कठिन कार्य नहीं है। किन्तु फिर भी साधारण मनुष्यों द्वारा साधारण रीति से बिना किसी वैज्ञानिक आधार के निर्माण की गयी सभी भाषाओं मे भाषागत दोष दिखते हैं। ये सभी भाषाए पूर्ण शुद्धता, स्पष्टता एवं वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। क्योंकि ये सिर्फ और सिर्फ एक दूसरे की बातों को समझने के साधन मात्र के उद्देश्य से बिना किसी सूक्ष्म वैज्ञानिकीय लचतन के बनाम्र गयी। किन्तु मनुष्य उत्पत्ति के आरंभिक काल में, धरती पर किसी भी भाषा का अस्तित्व न था।

जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्व है। कालक्रम के अनुसार-शिक्षा के विभिन्न आयाम उद्घाटित व विलुप्त होते रहे है, इतिहास इसका साक्षी है। संस्कृत वांमय क्षेत्र में संवृद्व रहा है, वैदिक वांमय शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। इस समय दुनिया के 17 से अधिक देशों की कम से कम एक विश्वविद्यालय में तकनीकि शिक्षा के कोर्सेस में संस्कृत पढ़ाई जाती है। शिक्षा पद्वति और शिक्षा व्यवहार के परिज्ञान से आपूरित है अपना वांमय और महीनीय नैसर्गिक प्रवाह संस्कृत साहित्य में भी स्पष्ट परिलक्षित है।

जिसके अनेक बिन्दु है जो इस प्रकार हैं---

1. संस्कृत और पर्यावरण
2. संस्कृत और जीवन आदर्ष
3. संस्कृत और जीवन मूल्य
4. संस्कृत और संस्कार
5. संस्कृत और कर्मकाण्ड
6. संस्कृत और औशधि
7. संस्कृत और योग
8. संस्कृत और अभियन्ता

किसी उर्जा चक्र को सक्रिय करके व्यद्रि की चेतना के स्तर में अभिवृद्धि करता है। वस्तुतः संस्क्रत भाषा का प्रत्येक शब्द इस प्रकार से संरचित (Design) किया गया है कि उसके स्वर एवं व्यंजनों के मिश्रण (Combination) का उच्चारण करने पर वह हमारे विशिष्ट ऊर्जा चक्रों को प्रभावित करे। प्रत्येक शब्द स्वर एवं व्यंजनों की विशिष्ट संरचना है जिसका प्रभाव व्यद्रि की चेतना पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसीलिये कहा गया है कि व्यद्रि को शुद्ध उच्चारण के साथ-साथ बहुत सोच-समझ कर बोलना चाहिए। शब्दों में शद्रि होती है जिसका दुरूपयोग एवं सदुपयोग स्वयं पर एवं दूसरे पर प्रभाव डालता है। शब्दों के प्रयोग से ही व्यद्रि का स्वभाव, आचरण, व्यवहार एवं व्यद्रित्व निर्धारित होता है।

कालांतर में पाणिनी ने नियमित व्याकरण के द्वारा संस्क्रत को परिष्क्रत एवं सर्वम्य प्रयोग में आने योग्य रूप प्रदान किया। पाणिनीय व्याकरण ही संस्क्रत का प्राचीनतम व सर्वश्रेष्ठ व्याकरण है। दिव्य व दैवीय गुणों से युद्र, अतिपरिष्क्रत, परमाजित, सर्वाधिक व्यवस्थित, अलंक्रत सौन्दर्य से युद्र, पूर्ण समृद्ध व सम्पन्न, पूर्ण वैज्ञानिक देववाणी संस्क्रत मनुष्य की आत्मचेतना को जागृत करने वाली, सात्विकता में वृद्धि, बुद्धि व आत्मबलप्रदान करने वाली सम्पूर्ण श्विव की सर्वश्रेष्ठ भाषा है। अन्य सभी भाषाओ में त्रुटि होती है पर इस भाषा में कोम्र त्रुटि नहीं है। इसके उच्चारण की शुद्धता को इतना सुरक्षित रखा गया कि सहस्त्रों वर्षो से लेकर आज तक वैदिक मन्त्रों की ध्वनियों व मात्राओं में कोम्र पाठभेद नहीं हुआ और ऐसा सिर्फ हम ही नहीं कह रहे बल्कि श्विव के आधुनिक विद्वानों और भाषाविदों ने भी एक स्वर में संस्कृत को पूर्णवैज्ञानिक एवं सर्वश्रेष्ठ माना है।

प्रसिद्व **शिक्षाविद् विल डूरेन्ट** मानते है कि – **''संस्कृत आधुनिक भाषाओं की जननी है। यह बच्चों के सर्वांगीर्ण बोध ज्ञान को विकसित करने में मदद करती है।''**

इसलिए विद्याथियों को संस्कृत का आधुनिक समय में अध्ययन करना अत्यधिक आवष्यक है। विद्याथियों के लिए यह भाशा सबसे सरल तथा सुयोग्य है। यह शिक्षा का प्रारूप है क्रोध में हो अथवा किसी रस के प्रवाह में है शड्दर्षन अप्रसांगिक हो जाता है इसलिए नैतिक मूल्यों और जीवन आदर्षो से सम्प्रक्त ज्ञान ही सर्वग्राहय है।

प्राचीन काल से काषी संस्कृत की उच्च शिक्षा का प्रमुख केन्द्र रहा है। वेद, उपनिशद, पुराण, महाकाव्य, अन्य संस्कृत ग्रन्थ तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र आदि प्राचीन उच्च शिक्षा की धरोहर हैं। इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत भाशा में रक्षा और प्रचार में वाराणसी के विद्वानों का बड़ा हाथ रहा है। भारतीय लोक जीवन में संस्कृत की ऐसी शास्त्रीय प्रतिश्ठा रही है कि ग्रन्थों की मान्यता के लिए संस्कृत में रचना को आवष्यक माना जाता था। इसी कारण बौद्वों और जैनों के दर्षन, धर्म सिद्वान्त, पुराण गाथा आदि नाना पक्षों के हजारों ग्रन्थों पाली या प्राकृत में ही नहीं संस्कृत में रचना हुई है।

विलियम थियाडोर ने कहा है कि– **''भारत तथा संसार का उद्वार और सुरक्षा संस्कृत ज्ञान के द्वारा ही सम्भव है।''**

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संस्कृत–

संस्कृत उत्तराखण्ड की आधिकारिक भाशा है। अरब लोगों की दखलांदाजी पहले संस्कृत भारत की राश्ट्रीय भाशा थी। किसी और भाशा के मुकाबले संस्कृत में सबसे कम शब्दों में वाक्य पूरा हो जाता है। नासा के मुताबिक संस्कृत पृथ्वी पर बोली जाने वाली सबसे स्पश्ट भाशा है। संस्कृत में दुनिया की किसी भी भाशा से अधिक शब्द है । वर्तमान में संस्कृत में प्राप्त शब्द कोश में 102 अरब 78 करोड़ 50 लाख शब्द है। संस्कृत में प्रत्येक शब्द के 25 रूप होते है। संस्कृत किसी भी विषय के लिये एक अद्भुत खजाना है। नासा के पास संस्कृत में ताड़पत्रों पर लिखी 60,000 पांडुलिपियॉ है जिन पर नासा रिसर्च कर रहा है। **भारतीय वैज्ञानिकों के अनुसार**– ''संस्कृत का प्रत्येक शब्द हमें अनुसंधान के लिए प्रेरित करता है।''

संस्कृत दुनिया में अकेली ऐसी भाशा है जिसे बोलने में जीभ की सभी मांसपेषियों का इस्तेमाल होता है। **अमेरिकन हिन्दू विश्वविद्यालय के अनुसार** – संस्कृत में बात करने वाला मनुश्य रक्तचाप, मधुमेह, कोलेस्ट्राल आदि रोग से मुक्त हो जायेगा। संस्कृत में बात करने से मानव शरीर का तन्त्रिका तन्त्र सदा सक्रिय रहता है जिससे व्यक्ति का शरीर सकारात्मक आवेष के साथ सक्रिय हो जाता है। संस्कृत स्पीच थेरेपी में भी कॉफी मददगार है यह एकाग्रता को बढ़ाती है। कर्नाटक के मुत्तूर गांव के लोग केवल संस्कृत में ही बात करते है। आपको जानकर हैरानी होगी कि कम्प्यूटर द्वारा गणित के सवालों को हल करने वाली विधि यानि एल्गोरिथज्म संस्कृत में बनी है न कि अंग्रेजी में। संस्कृत सीखने से दिमाग तेज हो जाता है और याद करने की शक्ति बढ़ जाती है। इसीलिए लन्दन और आइसलैण्ड के कई स्कूलों में संस्कृत को अनिवार्य विषय बना दिया गया है।

सुधर्मा संस्कृत का पहला अखबार था, जो 1970 ई. में शुरू हुआ था। आज भी इसका ऑनलाइन संस्करण उपलब्ध है। जर्मनी में बड़ी संख्या में संस्कृत भाशियों की मांग है। जर्मनी के 14 विश्वविद्यालयों में संस्कृत पढ़ाई जाती है।

नासा के वैज्ञानिको के अनुसार जब वो अन्तरिक्ष यात्रा को सन्देश भेजते थे तो उनके वाक्य उलट जाते थे। इस कारण सन्देश का अर्थ ही बदल जाता था। उन्होनें कई भाशाओं का प्रयोग किया लेकिन हर बार यही समस्या आयी। अखिर में उन्होनें संस्कृत में सन्देश भेजा क्योंकि संस्कृत के वाक्य उलटे हो जाने पर भी अपना अर्थ नहीं बदलते है।

जैसे –

अहम् विद्यालयं गच्छामि।
विद्यालयं गच्छामि अहम्।
गच्छामि अहम् विद्यालयं।

उक्त तीनों के अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। फोबर्स पत्रिका ने जुलाई 1987 में संस्कृत को कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के लिये सबसे उपयुक्त भाशा माना है।

नासा के वैज्ञानिको के द्वारा बनाये जा रहे 6वीं और 7वीं जनरेशन सुपर कम्प्यूटर संस्कृत भाशा पर आधरित होंगे। जो 2034 तक बनकर तैयार हो जायेगें।

निष्कर्ष -

भारत को पुन: **विश्व** गुरु और जगत सिरमौर बनाने हेतु संस्कृत के अति उत्थान की आवष्यकता है क्योंकि संस्कृत हमारी विरासत है और उस पर हमारा जन्म सिद्व अधिकार है। भारत की प्राचीन संस्कृत भाशा अत्यन्त समर्थ, सम्पन्न और ऐतिहासिक महत्व की भाशा है। इस प्राचीन वाणी का वांमय भी अत्यन्त व्यापक सर्वतोमुखी मानवतावादी तथा परम सम्पन्न रहा है। आज के युग के वैज्ञानिको ने माना है कि-नई पीढ़ी के कम्प्यूटर के लिए संस्कृत ही सर्वोत्तम भाशा है। विश्व भाशा और साहित्य में संस्कृत भाशा और साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समस्त विश्व के प्राच्य विद्या प्रेमियों ने संस्कृत को जो प्रतिश्ठा और उच्चासन दिया है, उसके लिए भारत के संस्कृत प्रेमी सदा कृतज्ञ बनें रहेगें।

सन्दर्भ सूची -

- ह.वि. एवं यु.वि. महाकाव्य में वर्णित समाज पृश्ठ 2
- आचार्य विश्वनाथ, साहित्य का इतिहास,
- डॉ. मोतीचन्द्र, 2010, काषी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी काषी का इतिहास पृश्ठ 16,
- लुणिया, बी.एन., 2010-11, प्राचीन भारतीय संस्कृति, प्रकाषक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ 710.
- पाण्डेय, हरेश, भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्ववित्तपोषित पाठ्यक्रम का विकास, परिप्रेक्ष्य, शैक्षिक योजना एवं प्रशासन, वर्ष 14 अंक-1, अप्रैल 2007
- शुक्ल, षिववरण, 2001, पर्याकृतिशास्त्रम् सं. शो. संस्थान प्रकाशन रायबरेली।
- फोबर्स पत्रिका ने जुलाई 1987
- hindi.kashiyana.com
- historybhu.blogspot.com
- wikipedia.org
- bharatdiscovery.org
- www.upgov.in
- www.Jagran.com

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की ई-शासन सेवाओं का अध्ययन

प्रदीप

शोधार्थी, लोक प्रशासन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

सारांश

उच्च शिक्षा के केंद्र के रूप में विश्वविद्यालयों की भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका हैं। स्वतंत्रता के पहले इनकी संख्या बहुत कम थी परन्तु अब विश्वविद्यालयों का व्यापक स्तर पर विस्तार हुआ हैं। इसी के साथ विश्वविद्यालयों की प्रशासनिक कार्यप्रणाली को सूचना व संचार प्रौद्योगिकी से लैस किया गया हैं क्योंकि पहले विश्वविद्यालयों में जो कार्य होते थे, उनमें देरी बहुत ज्यादा होती थी। लेकिन शासन में जब से ई-शासन आया हैं तब से लगभग सेवाओं को ऑनलाइन किया गया हैं। जो बिना देरी किए हितधारकों को समय पर उब्लब्ध हो जाती हैं और साथ ही विश्वविद्यालयों में ई-शासन द्वारा शिक्षण,परीक्षा संचालन ,मूल्यांकन ,छात्रवृत्ति आदि कार्यो में गुणवत्ता ,पारदर्शिता और समयबद्धता लाने की आवश्यकता महसूस हो रही हैं। इसलिए विश्वविद्यालय सुख्रढ़ वेब पोर्टल विकसित कर ई-शासन प्रणाली को प्रभावी ढंग से लागू कर रहे हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में विश्वविद्यालयों की ई-शासन सेवाओं का का मूल्याकंन किया गया है, जिसके लिए हरियाणा राज्य के दो विश्वविद्यालयों रोहतक व कुरुक्षेत्र से 425 विद्यार्थी उत्तरदाताओं का चयन स्तरीख्रत निदर्शन विधि द्वारा किया गया हैं। आकड़ों को एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार अनुसूचि विधि का प्रयोग किया गया हैं, जिसके लिए शोधार्थी ने बहुउद्देष्यपूर्ण प्रष्नों का प्रयोग किया हैं। शोध से प्राप्त निष्कर्ष से यह स्पश्ट है कि विश्वविद्यालयों द्वारा शुरू कि गई विभिन्न ऑनलाइन सेवाओं की स्थिति संतोषजनक हैं।

मुख्य शब्द :- ई-षासन, सूचना प्रौद्योगिकी, विश्वविद्यालयों, पारदर्शिता, ऑनलाइन।

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय में ई-शासन की पहल

विश्वविद्यालय ने शासन प्रणाली में नवीनतम तकनिकीकरण का उपयोग किया है और पहले से ही ई-शासन पहल करने की पहल की है। विश्वविद्यालय के शिक्षण विभागों और शिक्षा निदेशालय के विभिन्न कार्यक्रमों के लिए प्रक्रिया ऑनलाइन कर दी गई और प्रवेश से संबंधित खराबी को रोकने के लिए,विषेष रूप से प्रवेश परीक्षणों में प्रतिरूपण करने के लिए, प्रवेश परीक्षाओ में बायोमेट्रिक उपस्थिति की शुरूआत की गई है। पिछले दो वर्षो में विश्वविद्यालय द्वारा की गई प्रमुख ई-शासन पहलों में ऑनलाइन फाइल ट्रैकिंग सिस्टम, परीक्षा कार्य का कम्प्यूटरीकरण और ऑनलाइन कॉलेज पोर्टल की स्थापना की गई है। भारत सरकार के डीजी-धन पहल को प्रदान करने और सुविधा प्रदान करने के लिए, विश्वविद्यालय के कैशियर कार्यालय में च्वै मशीन स्थापित किए गए हैं और डिजिटल वित्तीय लेनदेन के बारे में कर्मचारियों व छात्रों को जागरूक करने के लिए विश्वविद्यालय द्वारा डीजी-धन जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं।[1]

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में ई-गवर्नेंस एवं डिजिटलाइजेशन की पहल

बदलते समय के अनुसार कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने डिजिटल व कैशलेस यूनिवर्सिटी की दिशा में अपने कदम आगे बढ़ाये है। विद्यार्थियों,शिक्षकों एवं कर्मचारियों को ई-गवर्नेंस का लाभ मिल सके इसके लिए हरियाणा नॉलेज कमीशन के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर कर परीक्षा तंत्र के डिजिटलाइजेशन की प्रक्रिया को लागु कर दिया गया है। विश्वविद्यालय से हर वर्ष परीक्षा देने वाले 7.5 लाख विद्यार्थियों की आशाओं को पूरा करने के लिए विद्यार्थियों के परीक्षा फार्म को डिजिटल किया गया है। इसके साथ ही ऑनलाइन फीस पेमेंट व कैशलेस की सुविधा देकर विश्वविद्यालय ने नई प्रक्रिया प्रारम्भ की है।[2]

साहित्यिक समीक्षा

डे एवं सोभान (2008), ने अपने पेपर '' **कॉन्सेप्चुअल फ्रेमवर्क फॉर इंट्रोडलसग ग्र-गवर्नेंस इन यूनिवर्सिटी एडमिनिस्ट्रेशन**'' में बताया है कि प्रौद्योगिकी के उभरने और समाज की बढ़ती मांग के साथ ग्र-शासन एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया और विकसित देशों ने उत्तरदायित्व और पारदर्शिता के साथ कुशल एवं प्रभावी सेवाओं के माध्यम से अपने नागरिकों की बेहतर सेवा के लिए इसे अपनाना शुरू कर दिया। ग्र-शासन प्रभावी ढंग से लागू होने पर विश्वविद्यालय के कल्याण को भी सुनिश्चित कर सकता है। ग्र-शासन प्रथाओं को अपनाने के लिए अंतर्निहित लक्ष्यों को विश्वविद्यालय के कानूनों और ख्रत्यों के अनुसार नियमों के अनुरूप शिक्षा और प्रशासन प्रसारित करने में बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित करना है। इस पत्र में लेखक विश्वविद्यालयों के लिए एक वैचारिक ग्र-शासन ढांचे का प्रस्ताव देने और इसे बेंचमार्क करने का प्रयास करते हैं।

वधवा (2009) ने अपने लेख, ''**ग्र-गवर्नेंस इन यूनिवर्सिटीज**'' में वर्णन किया है कि लिपिक कर्मचारियों को कंप्यूटर ज्ञान की कमी के कारण हस्तलिखित रूप में सूचना की आपूर्ति करने के लिए मजबूर किया जाता है। विश्वविद्यालय के अधिकारी जिनके पास कंप्यूटर का फ़ोबिया है, उन्हें निश्चित समय अवधि में एमएस वर्ड और एमएस एक्सेल की मूल बातें सिखाग्र जानी चाहिए। इससे विश्वविद्यालयों में ग्र- शासन संभव हो सकेगा,जो समय की जरूरत है। विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को ग्र-शासन टूल्स से परिचित होने के लिए सेमिनार, विस्तार व्याख्यान और कार्यशालाओं के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। एक बार लिपिक कर्मचारी वर्ग कंप्यूटर के काम के आदी हो जाने के बाद,ग्र-शासन एक पेपरलेस प्रशासन का मार्ग प्रशस्त करेगा। हाल ही में महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय,रोहतक ने घोषणा की कि वह विश्वविद्यालय प्रशासन के लिए ग्र-शासन मॉडल को अपनाएगा जो एक प्रशंसा योग्य कदम है।

भारद्वाज एवं लसह (जुलाग्र 2011) ने अपने शोध पेपर ''**ऑटोमेटेड इंटीग्रेटेड यूनिवर्सिटी एग्जामिनेशन सिस्टम**'' में बताया है कि अधिकांश भारतीय विश्वविद्यालयों मे परीक्षा प्रणाली मैन्युअल रूप से प्रबंधित की जाती है। मैन्युअल परीक्षा प्रणाली को कग्र समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जैसे परीक्षा परिणामों को सही समय और सटीक रूप से घोषित नहीं करना। विश्वविद्यालयों में आग्रसीटी विश्वसनीय,कुशल,स्केलेबल,पारदर्शी और मजबूत ग्र-शासन समाधान लाने के लिए विभिन्न प्रशासनिक स्तरों पर परीक्षा प्रणाली की विभिन्न गतिविधियों को एकीकृत और स्वचालित करने के लिए एक प्रभावी उपकरण है।

सूरी एवं कौर (2013) ने अपने लेख,''**ए स्टडी ऑन ग्र-गवर्नेंस इनटिएटिवस इन पंजाब यूनिवर्सिटी**'' में वर्णन किया है कि समय के साथ बदलते हुए पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ ने कग्र छोटी-छोटी ग्र- शासन परियोजनाओं/प्रोत्साहनों की संकल्पना की है। यह अध्ययन पंजाब विश्वविद्यालय में ग्र- शासन प्रभावषीलता के संबंध में छात्रों, संकाय और कर्मचारियों की धारणा की जांच करने की कोशिश करता है। इस अध्ययन के लिए कुल 200 उत्तरदाताओं से डेटा एकत्र और विश्लेषण किया गया है। संकाय सदस्यों ने विश्वविद्यालय के ग्र- शासन की वर्तमान स्थिति में सुधार के लिए 'उचित प्रशिक्षण' को सबसे प्रभावी उपाय के रूप में पहचाना और अध्ययन में यह भी बताया गया है कि विश्वविद्यालय में ग्र- शासन के पूर्ण कार्यान्वयन में तकनीकी हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर आधारभूत संरचना का निर्माण शामिल होगा। इससे बेहतर और तेज कनेक्टिविटी विकल्प भी शामिल होंगे।

शोध उद्देष्य (Objectice of Study)

- विश्वविद्यालयों द्वारा शुरू की गई ई-षासन सेवाओं का अध्ययन करना।

अनुसंधान प्रसंरचना (Research Design)

अध्ययन की प्रकृति (Nature of Study)

प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति विवरणात्मक है। जिसमें चयनित विश्वविद्यालयों में 'ई-षासन की कार्यप्रणाली का मूल्यांकन' किया गया है। जिसमें ये अध्ययन किया गया है कि वर्तमान समय में यह सेवा व्यवस्था कैसे काम कर रही है। इसमें छात्रों के ई-षासन के प्रति क्या विचार हैं। इसमें क्या कमियाँ है और उनको किस प्रकार दूर किया जा सकता हैं।

शोध का समग्र (Area of Study)

प्रस्तुत शोध में हरियाणा राज्य के दो जिलों के विश्वविद्यालयों का चयन किया गया हैं।

प्रतिदर्षन का चयन (Sample Selection)

शोध के लिए दोनों विश्वविद्यालयों से 425 उत्तरदाताओं का चयन स्तरीख़त निदर्शन विधि (ेजतंजपपिमक ेउचसपदह द्ध द्वारा किया गया हैं।

तालिका-1: प्रतिदर्श का वर्गीकरण

क्रम सं	जिला	चयनित विश्वविद्यालय	विभागों की संख्या	उत्तरदाताओं की संख्या
1	रोहतक	महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय	38 विभाग	190 पीजी, एम.फिल व पीएच.डी विद्यार्थी
2	कुरुक्षेत्र	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय	47 विभाग	235 पीजी, एम.फिल व पीएच.डी विद्यार्थी 425
3	कुल	2 विश्वविद्यालय	85 विभाग	पीजी,एम.फिल व पीएच.डीविद्यार्थी (कुल 425 उत्तरदाता)

आँकड़ों का संग्रहण व स्त्रोत (Sourse of Data Collection)

आँकड़ों के सग्रहण के लिए प्राथमिक व द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का प्रयोग किया गया।

प्राथमिक आँकड़ें (Primary Data)

प्राथमिक आँकड़ों का संग्रहण प्रत्येक छात्र उत्तरदाताओं से साक्षात्कार व अनुसूचि विधि द्वारा किया गया।

द्वितीयक आँकड़ें (Secondary Data)

द्वितीयक आँकड़ें विषय से सम्बन्धित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, सरकारी रिर्पोर्ट व सर्वेक्षण, इटरनेट आदि के माध्यम से एकत्रित किये गये।

आंकड़ों का प्रक्रमण सम्पादन, संकेतन, वर्गीकरण एवं सारिणीयन (Explanation, Interpretation and Analysis)

शोधकार्य को पूर्ण करने के उद्देश्य से संकलित तथ्यों का वर्गीकरण करना आवश्यक होता है। सर्वप्रथम तथ्य सम्पादन एवं संकेतन किया गया। इसके पश्चात् तथ्यों को सर्कलित करते हुए संकलित सामग्री को सुव्यवस्थित किया गया। तत्पश्चात् इनका सारिणीयन कियागया। जिसमें वर्गीकृत आंकड़ों को समूहों में विभक्त किया गया।

आंकड़ों का विश्लेषण (Data Analysis Tools)

समस्त संकलित आंकड़ों का वर्गीकरण एवं सारिणीबद्ध करने के पश्चात् इनका विश्लेषण सांख्यिकीय एवं तार्किक दोनों आधार पर किया गया। सांख्यिकीय विश्लेषण में औसत,प्रतिशत, काई-वर्ग परीक्षण जिसका सूत्र है

- $x_c^2 = \sum \frac{(O_i - E_i)^2}{E_i}$

का प्रयोग किया गया है आंकड़ों का विष्लेशण तथा तकनीकों का प्रयोग चै सॉफ्टवेयर के माध्यम से किया है प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर उपयोगी सुझाव भी प्रदान किये गये है।

अध्ययन की सीमाएं (Limitations of study)

प्रस्तुत शोध में हरियाणा के दो विश्वविद्यालयों महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय को ही अध्ययन में शामिल किया गया है ।

परिणाम और विचार विमर्श

सारणी 2

विद्यार्थियों से यह जानना कि क्या आपके विश्वविद्यालय की वेबसाइट से पाठ्यक्रम डाउनलोड की सुविधा हैं

क्र. सं.	*विश्वविद्यालय*	*हाँ*	*नहीं*	*उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत*
1.	महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय	180(94.7%)	10(5.3%)	190 (100%)
2.	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय	216(91.9%)	19(8.1%)	235 (100%)
3.	कुल	396	29	425

स्त्रोत :- शोधार्थी द्वारा न्यादर्ष सर्वेक्षण के आधार पर निर्मित सारणी

Chi-Square Tests

	Value	df	Asymp. Sig. (2-sided)	Exact Sig. (2-sided)	Exact Sig. (1-sided)
Pearson Chi-Square	1.316[a]	1	.251		
Continuity Correction[b]	.909	1	.340		
Likelihood Ratio	1.343	1	.246		
Fisher's Exact Test				.334	.170
N of Valid Cases[b]	425				

a. 0 cells (.0%) have expected count less than 5. The minimum expected count is 12.96.

b. Computed only for a 2x2 table

उपरोक्त सारणी से प्राप्त आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि 94.4 प्रतिशत विद्यार्थी उत्तरदाताओं ने बताया है कि हमारे विश्वविद्यालय की वेबसाइट से पाठ्यक्रम डाउनलोड कर सकते हैं तथा 5.3 प्रतिशत का ही यह कहना है कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट से पाठ्यक्रम डाउनलोड करने की सुविधा नहीं है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के भी 91.9 प्रतिशत यह कहते हैं कि हमारे विश्वविद्यालय की वेबसाइट से पाठ्यक्रम डाउनलोड कर सकते हैं अंर 8.1 प्रतिशत ने कहा कि पाठ्यक्रम डाउनलोड की सुविधा उपलब्ध नहीं है। इसी संदर्भ में यदि हम दोनों विश्वविद्यालयो की स्थिति का अध्ययन करें तो 425 छात्र उत्तरदाताओं में से 396 छात्र यह बताते हैं कि हम बिना विश्वविद्यालय जाए घर बैठे ही विश्वविद्यालय की वेबसाइट से पाठ्यक्रम डाउनलोड कर सकते हैं। जबकि 29 विद्यार्थी यह कहते हैं कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर ऑनलाइन पाठ्यक्रम डाउनलोड की सुविधा नहीं है। ये वे छात्र हैं, जो अपने विभाग के लिपिक शिक्षकों द्वारा ही पाठ्यक्रम प्राप्त कर लेते हैं।

सारणी में दोनों विश्वविद्यालयो में विद्यार्थी उत्तरदाताओं से विश्वविद्यालय की वेबसाइट से पाठ्यक्रम डाउनलोड की सुविधा के बीच के सम्बन्ध को जानने के लिए काई-वर्ग परीक्षण (Chi square test) का प्रयोग किया गया। जिससे हमारी सार्थक मूल्य (Significant value) .51 निकल कर आई जोकि .05 से ज्यादा है। अत: स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो में इस विषय को लेकर कोई सहसम्बन्ध (Association) नहीं पाया गया है।

उपरोक्त सारणी से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो के अधिकांश विद्यार्थी यह कहते हैं कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट से हमें आसानी पूर्वक कहीं से भी पाठ्यक्रम डाउनलोड कर सकते हैं और इन्होंने पाठ्यक्रम डाउनलोड भी किया है। इसलिए यह छात्र ऐसा कहते हैं। सिर्फ थोड़े बहुत छात्र ऐसे हैं जो यह मानते हैं कि हमारे विश्वविद्यालय में यह सुविधा नहीं है और न हमने कभी पाठ्यक्रम वेबसाइट से डाउनलोड किया।

विद्यार्थियों द्वारा यह जानना कि क्या आपके लिए विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन री-इवैल्यूएशन या पुन: परीक्षा फॉर्म भरने की सुविधा है

जब भी कोई योजना संचालित होती है तो उनकी रुपरेखा इसी आधार पर तैयार की जाती है कि उनको समय पर ऑनलाइन भी कर सके ताकि उनका लाभ हर समय प्राप्त किया जा सके। इसी तरह विश्वविद्यालय में छात्रों के लिए परीक्षाओं के लिए फॉर्म भी ऑनलाइन किए गए हैं। प्रस्तुत सारणी में छात्रों से प्राप्त मतों को दर्शाया गया है।

सारणी 3

क्या आपके लिए विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन री-इवैल्यूएशन या पुन: परीक्षा फॉर्म भरने की सुविधा है

क्र. सं.	*विश्वविद्यालय*	*हाँ*	*नहीं*	*उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत*
1.	महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय	112(58.9%)	78(41.1%)	190 (100%)
2.	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय	163(69.4%)	72(30.6%)	235 (100%)
3.	कुल	275	150	425

स्रोत :- शोधार्थी द्वारा न्यादर्ष सर्वेक्षण के आधार पर निर्मित सारणी

Chi-Square Test

	Value	df	Asymp. Sig. (2-sided)	Exact Sig. (2-sided)	Exact Sig. (1-sided)
Pearson Chi-Square	4.989[a]	1	.026		
Continuity Correction[b]	4.544	1	.033		
Likelihood Ratio	4.980	1	.026		
Fisher's Exact Test				.032	.017
N of Valid Cases[b]	425				

a. 0 cells (.0%) have expected count less than 5. The minimum expected count is 67.06.

b. Computed only for a 2x2 table

उपरोक्त सारणी आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के 58.9 प्रतिशत उत्तरदाता यह कहते हैं कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट से री-ईवैल्युएशन व पुन: परीक्षा के फॉर्म ऑनलाइन भर सकते हैं। बल्कि 41.1 प्रतिशत ने इस विषय पर नहीं में उत्तर दिया है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के 69.4 प्रतिशत ने बताया कि हमारे विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन री-ईवैल्युएशन व री-अपीयर के फॉर्म भर सकते हैं एवं 30.6 प्रतिशत ने बताया कि रि-अपीयर व री-इवैल्यूएशन के फॉर्म की

ऑनलाइन सुविधा नहीं है। इसी संदर्भ में यदि हम दोनों विश्वविद्यालयो की स्थिति का अध्ययन करें तो 425 विद्यार्थी उत्तरदाताओं में से 275 छात्र यह कहते हैं कि हमारे विश्वविद्यालय की वेबसाइट से सभी तरह के फॉर्म ऑनलाइन भर सकते हैं। जिनमें री-अपीयर व री-इवैल्यूएशन के फॉर्म अप्लाई कर सकते हैं अंर इन्होंने यह फॉर्म ऑनलाइन भरे भी हैं। 150 छात्र यह कहते हैं कि सिर्फ री-अपीयर के फॉर्म ऑनलाइन भर सकते हैं, जबकि री- इवैल्यूएशन के फॉर्म हम ऑनलाइन नहीं भर सकते बल्कि हम विश्वविद्यालय की वेबसाइट से फॉर्म डाउनलोड कर सकते हैं। री-इवैल्यूएशन ऑनलाइन अप्लाई का कोई भी ललक नहीं दिया गया है।

सारणी में दोनों विश्वविद्यालयो में विद्यार्थी उत्तरदाताओं से विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन री-इवैल्यूएशन या पुन: परीक्षा फॉर्म भरने की सुविधा के बीच के सम्बन्ध को जानने के लिए काई-वर्ग परीक्षण (Chi square test) का प्रयोग किया गया। जिससे हमारी सार्थक मूल्य (Significant value) .26 निकल कर आई जो कि .05 से कम है। अत: स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो में इस विषय को लेकर काफी सहसम्बन्ध (Association) पाया गया है।

उपरोक्त सारणी से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो के अधिकतर छात्र यह कह रहे हैं कि हमारे विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन री-अपीयर व री-ईवैल्युएशन फॉर्म भर सकते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है जब शोधार्थी द्वारा स्वयं निरीक्षण किया गया तो पाया गया कि री-अपीयर के अलावा इंप्रूवमेंट के फॉर्म ऑनलाइन हेतु पोर्टल पर उपलब्ध है। परन्तु री-इवेलुएशन के फॉर्म की ऑनलाइन सुविधा नहीं है। इसलिए इन छात्रों ने भी री-अपीयर के ही ऑनलाइन फॉर्म भरे हैं। जबकि 150 ने तो साफ तंर पर इस सम्बन्ध में मना कर दिया कि हम विभागों के नियमित छात्र री-अपीयर का फॉर्म भी स्वयं नहीं भर सकते। यह कार्य भी विभाग के लिपिक ही करते हैं। जिनमें कई बार गड़बड़ी की संभावना रहती है।

विद्यार्थियों से यह जानना कि क्या आपके विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन माइग्रेशन फॉर्म भरने की सुविधा है

सूचना व संचार प्रंद्योगिकी के युग में सभी विभाग अपनी ई-सेवाओं को ई-षासन के तहत समय-समय पर जोड़ते रहते हैं। विश्वविद्यालय भी इसी कड़ी का हिस्सा है। यह भी अपनी ई-सेवाओं को जरूरत अनुसार ई-षासन में सम्मिलित करते रहते हैं। प्रस्तुत सारणी में दोनों विश्वविद्यालयो के विद्यार्थियों से यही जाना गया कि क्या आपके विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन माइग्रेशन फॉर्म भरने की सुविधा है।

सारणी 4

क्या आपके विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन माइग्रेशन फॉर्म भरने की सुविधा है

क्र. सं.	*विश्वविद्यालय*	*हाँ*	*नहीं*	*उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत*
1.	महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय	34(17.9%)	156(82.1%)	190 (100%)
2.	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय	98(41.7%)	137(58.3%)	235 (100%)
3.	कुल	132	293	425

स्त्रोत :- शोधार्थी द्वारा न्यादर्ष सर्वेक्षण के आधार पर निर्मित सारणी

Chi-Square Tests

	Value	df	Asymp. Sig. (2-sided)	Exact Sig. (2-sided)	Exact Sig. (1-sided)
Pearson Chi-Square	27.809[a]	1	.000		
Continuity Correction[b]	26.709	1	.000		
Likelihood Ratio	28.837	1	.000		
Fisher's Exact Test				.000	.000
N of Valid Cases[b]	425				

a. 0 cells (.0%) have expected count less than 5. The minimum expected count is 59.01.

b. Computed only for a 2x2 table

उपरोक्त सारणी से प्राप्त आँकड़ों से ज्ञात होता है कि महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के 82.1 प्रतिशत विद्यार्थी उत्तरदाताओं ने बताया है कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन माइग्रेशन फॉर्म भरने की सुविधा नहीं है। जबकि 17.9 प्रतिशत से प्राप्त जानकारी अनुसार माइग्रेशन ऑनलाइन फॉर्म की सुविधा है। इसी तरह कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के भी 58.3 प्रतिशत ने इस सम्बन्ध में मना किया है एवं 41.7 प्रतिशत यह कहते हैं कि हमारे विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर माइग्रेशन फॉर्म की भी ऑनलाइन सुविधा है। इसी संदर्भ में यदि हम दोनों विश्वविद्यालयो की स्थिति का अध्ययन करें तो 425 विद्यार्थी उत्तरदाताओं में से 293 विद्यार्थी ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट से माइग्रेशन फॉर्म ऑनलाइन भरने की सुविधा उपलब्ध नहीं है अंर दोनों विश्वविद्यालयो में माइग्रेशन लेने के लिए कोई ऑनलाइन फॉर्म भरा जाता, ऐसी व्यवस्था अभी तक हरियाणा के विश्वविद्यालयो द्वारा नहीं की गई है। परन्तु 132 विद्यार्थी तो वह है जो यह मानते हैं कि हमारे विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन माइग्रेशन फॉर्म भरने की सुविधा है।

सारणी में दोनों विश्वविद्यालयो में विद्यार्थी उत्तरदाताओं से विश्वविद्यालय की वेबसाइट से ऑनलाइन माइग्रेशन फॉर्म भरने की सुविधा के बीच के सम्बन्ध को जानने के लिए काई-वर्ग परीक्षण (Chi square test) का प्रयोग किया गया। जिससे हमारी सार्थक मूल्य (Significant value) .00 निकल कर आई जोकि .05 से कम है। अत: स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो में इस विषय को लेकर काफी सहसम्बन्ध (Association) पाया गया है।

उपरोक्त सारणी से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो के अधिकांष उत्तरदाताओं ने यही बतलाया है कि हमारे विश्वविद्यालय में माइग्रेशन फॉर्म भरने की ऑनलाइन सुविधा नहीं है। जबकि 132 छात्र यह कह रहे हैं कि माइग्रेशन फॉर्म ऑनलाइन भरने की सुविधा है। लेकिन ऐसा नहीं है दोनों विश्वविद्यालयो की वेबसाइट पर सिर्फ माइग्रेशन फॉर्म अपलोड किया हुआ है। इसके लिए अलग से ऑनलाइन लिंक चालु नहीं किया गया है, जिसके कारण घर बैठे ही माइग्रेशन के लिए अप्लाई हो सके ऐसी सुविधा अभी तक शुरू नहीं की गई है।

विद्यार्थियों द्वारा यह जानना कि क्या विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर ऑनलाइन फीस जमा करवाने की सुविधा है।

कुछ वर्ष पहले तक सभी विभागों में फीस ऑफ़लाइन जमा होती थी। लेकिन जब से विश्वविद्यालय के प्रशासन में ई-षासन को लागू किया है। तभी से फीस का लेन-देन भी ऑनलाइन माध्यम से होना शुरू हो गया है। शोधकर्ता द्वारा विद्यार्थियों से यही जानने की कोशिश की गई है कि क्या विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर ऑनलाइन फीस जमा करवाने की सुविधा है।

सारणी 5

क्या विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर ऑनलाइन फीस जमा करवाने की सुविधा है

क्र. सं.	*विश्वविद्यालय*	*हाँ*	*नहीं*	*उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत*
1.	महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय	0	190(100%)	190 (100%)
2.	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय	217(92.3%)	18(7.7%)	235 (100%)
3.	कुल	217	208	425

स्रोत :- शोधार्थी द्वारा न्यादर्श सर्वेक्षण के आधार पर निर्मित सारणी

Chi-Square Tests

	Value	df	Asymp. Sig. (2-sided)	Exact Sig. (2-sided)	Exact Sig. (1-sided)
Pearson Chi-Square	3.585E2[a]	1	.000		
Continuity Correction[b]	354.799	1	.000		
Likelihood Ratio	461.908	1	.000		
Fisher's Exact Test				.000	.000
N of Valid Cases[b]	425				

a. 0 cells (.0%) have expected count less than 5. The minimum expected count is 92.99.

b. Computed only for a 2x2 table

उपरोक्त सारणी से प्राप्त आंकड़े दर्शाते हैं कि महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के 100 प्रतिशत विद्यार्थी उत्तरदाताओं से प्राप्त जानकारी अनुसार उनके यहाँ पर ऑनलाइन फीस जमा करवाने की सुविधा नहीं है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के 92.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके विश्वविद्यालय में ऑनलाइन फीस जमा करवाने की सुविधा उपलब्ध है। जबकि 7.7 ने इस सम्बन्ध में बताया है कि ऑनलाइन फीस की सुविधा नहीं है। इसी संदर्भ में यदि हम दोनों विश्वविद्यालयो की स्थिति का अध्ययन करें तो 425 विद्यार्थी उतरदाताओं में से 217 विद्यार्थियों के अनुसार ऑनलाइन फीस भरने की सुविधा है, जिनका ऐसा कहने का कारण यह है कि उन्होंने ऑनलाइन फीस जमा करवाई है। परन्तु 208 उत्तरदाताओं का मानना है कि उनके यहाँ ऑनलाइन फीस नहीं ली जाती अर्थात ऑफलाइन फीस ही जमा होती है।

सारणी में दोनों विश्वविद्यालयो में विद्यार्थी उत्तरदाताओं से विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर ऑनलाइन फीस जमा करवाने की सुविधा के बीच के सम्बन्ध को जानने के लिए काई-वर्ग परीक्षण (Chi square test) का प्रयोग किया गया। जिससे हमारी सार्थक मूल्य (Significant value) .00 निकल कर आई जो कि .05 से कम है। अत: स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो में इस विषय को लेकर काफी सहसम्बन्ध (Association) पाया गया है।

उपरोक्त सारणी से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के सभी उत्तरदाताओं ने बताया है कि उनके विश्वविद्यालय में ऑनलाइन फीस जमा करवाने की सुविधा नहीं है। बल्कि फीस को ऑफलाइन माध्यम से बैंक द्वारा ली जाती है। इसी तरह कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के ज्यादातर विद्यार्थी यह कहते हैं कि उनके विश्वविद्यालय में ए.टी.एम., नेटबैंलकग द्वारा ऑनलाइन फीस जमा करवाने की सुविधा है अंर इन्होंने इन्हीं माध्यमों से फीस जमा भी करवाई है। सिर्फ थोड़े बहुत विद्यार्थी यहाँ पर ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि उनके यहाँ पर ऑनलाइन फीस जमा नहीं होती, वह ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि वह विश्वविद्यालय के वरिष्ठ छात्र है जिस समय उन्होंने दाखिला लिया था, उस दंरान ऑनलाइन फीस की सुविधा नहीं थी। इसलिए वह ऐसा कहते हैं। जबकि वर्तमान सत्र 2019-20 में महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय में ऑनलाइन फीस की व्यवस्था की गई है। जिस दंरान शोधार्थी द्वारा आंकड़े एकत्रित किए गए उस समय यह व्यवस्था चालू नहीं थी।

विद्यार्थियों द्वारा यह जाना गया कि क्या विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर आपके लिए ई-डिग्री, ई-मार्कशीट व डिजीलॉकर की सुविधा है।

विश्वविद्यालयों में देश व प्रदेश के साथ-साथ विदेशों के विद्यार्थी भी अलग-अलग जगहों से पढ़ने आते हैं। विश्वविद्यालयों की वेबसाइट पर अगर ई-डिग्री, ई-मार्कशीट, डिजीलॉकर की सुविधा होगी तो उनको काफी सुविधा भी होगी। जिन्हें अपनी डिग्री व मार्क सीट के लिए आने-जाने के लिए लंबा सफर तय करना पड़ता है। वे विद्यार्थी अपनी डिग्रियाँ ऑनलाइन प्राप्त कर सकेंगे अंर इसके अलावा उन विद्यार्थियों को भी मदद मिलेगी जो बाहर नौकरी करेंगे। वे अपने दस्तावेज वेरिफिकेशन ऑनलाइन द्वारा कर सकेंगे। प्रस्तुत सारणी में विद्यार्थीयों से यही जानने का प्रयास किया गया है कि क्या विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर आपके लिए ई-डिग्री, ई-मार्कशीट व डिजिलॉकर की सुविधा उपलब्ध है।

सारणी 6: क्या विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर आपके लिए ई-डिग्री, ई-मार्कशीट व डिजीलॉकर की सुविधा उपलब्ध है

क्र. सं.	*विश्वविद्यालय*	*हाँ*	*नहीं*	*उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत*
1.	महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय	1(0.5:)	189(99.5:)	190 (100:)
2.	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय	107(45.5:)	128(54.5:)	235 (100:)
3.	कुल	108	317	425

स्त्रोत :- शोधार्थी द्वारा न्यादर्ष सर्वेक्षण के आधार पर निर्मित सारणी

Chi-Square Tests

	Value	df	Asymp. Sig. (2-sided)	Exact Sig. (2-sided)	Exact Sig. (1-sided)
Pearson Chi-Square	1.123E2[a]	1	.000		
Continuity Correction[b]	109.907	1	.000		
Likelihood Ratio	145.403	1	.000		
Fisher's Exact Test				.000	.000
N of Valid Cases[b]	425				

a. 0 cells (.0%) have expected count less than 5. The minimum expected count is 48.28.

b. Computed only for a 2x2 table

उपरोक्त सारणी से प्राप्त आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि महषि दयानंद विश्वविद्यालय के 99.5 प्रतिशत विद्यार्थी उत्तरदाताओं से प्राप्त जानकारी अनुसार उनके विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर ई-डिग्री, ई-मार्कशीट व डिजिलॉकर की सुविधा नहीं है। लेकिन .05 प्रतिशत का ही यह कहना है कि यह सुविधा है। लेकिन इस सम्बन्ध में जब शोधकर्ता द्वारा यह जाना गया तो उन्होंने बताया कि मैं अपना स्वयं का डीजीलॉकर यूज करता हूँ। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के 54.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सुविधा के सम्बन्ध में मना कर दिया। जबकि 45.5 प्रतिशत ने विश्वविद्यालय द्वारा यह सभी सेवाएं शुरू करने की जानकारी प्रदान की है। इसी संदर्भ में यदि हम दोनों विश्वविद्यालयो की स्थिति का अध्ययन करें तो 425 विद्यार्थी उत्तरदाताओं में से 317 विद्यार्थी यह कह रहे हैं कि अभी यह सेवाएं शुरू ही नहीं की गई है। परन्तु 108 विद्यार्थी यह कह रहे हैं कि यह सभी सेवाएं शुरू की गई है। जब शोधार्थी द्वारा स्वयं इस सम्बन्ध में जाना गया तो पाया कि वर्ष 2018 में सिर्फ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में इन सभी ई-सेवाओं की घोषणा की गई है। यह सभी सेवाएं आधार नंबर द्वारा लिंक करके छात्रों को मुहैया करवाई जाएगी। इसलिए इन्होंने ऐसा कहा है।

उपरोक्त सारणी में दोनों विश्वविद्यालयो में विद्यार्थी उत्तरदाताओं से विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर ई-डिग्री, ई-मार्कशीट व डिजिलॉकर की सुविधा के बीच के सम्बन्ध को जानने के लिए काई-वर्ग परीक्षण (Chi square test) का प्रयोग किया गया। जिससे हमारी सार्थक मूल्य (Significant value) .00 निकलकर आई जो कि .05 से कम है। अतः स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो में इस विषय को लेकर काफी सहसम्बन्ध (Association) पाया गया है।

उपरोक्त सारणी से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो के ज्यादातर उत्तरदाताओं का यह कहना है कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर ई-डिग्री, ई-मार्कशीट व डिजिलॉकर की सुविधा नहीं है। अभी तक विद्यार्थियों को डिग्री व मार्कशीट हेतु विश्वविद्यालय के प्रशासनिक खंडों के चक्कर लगाने पड़ते हैं। परन्तु 108 विद्यार्थी ऐसा कहते हैं कि यह सेवाएं उपलब्ध है बल्कि यह सेवाएं उपलब्ध नहीं है इनके लिए अभी सिर्फ घोषणाएं ही हुई है अंर इनमें से कुछ विद्यार्थी ऐसे हैं जो पहले से ही डिजीलॉकर अकाउंट बनाए हुए हैं।

विद्यार्थियों से यह जानना कि क्या विश्वविद्यालय में ऑनलाइन आर.टी.आई. की सुविधा है

ई-षासन के तहत सभी विभागों में लगभग जरूरी सेवाओं को ऑनलाइन किया गया है। इसी के तहत आर.टी.आई. भी कई कार्यालयों में ऑनलाइन की गई है। कई विश्वविद्यालयों में भी आर.टी.आई. ऑनलाइन की हुई है। प्रस्तुत सारणी के माध्यम से दोनों विश्वविद्यालयो में विद्यार्थियों से यही जाना गया है कि क्या विश्वविद्यालयों में ऑनलाइन आर.टी.आई. की सुविधा है

सारणी 7: क्या विश्वविद्यालय में ऑनलाइन आर.टी.आई. की सुविधा है

क्र. सं.	*विश्वविद्यालय*	*हाँ*	*नहीं*	*उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत*
1.	महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय	0	190 (100%)	190 (100%)
2.	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय	184(78.3%)	51(21.7%)	235 (100%)
3.	कुल	184	241	425

स्त्रोत :- शोधार्थी द्वारा न्यादर्ष सर्वेक्षण के आधार पर निर्मित सारणी

Chi-Square Tests

	Value	df	Asymp. Sig. (2-sided)	Exact Sig. (2-sided)	Exact Sig. (1-sided)
Pearson Chi-Square	2.623E2[a]	1	.000		
Continuity Correction[b]	259.167	1	.000		
Likelihood Ratio	335.645	1	.000		
Fisher's Exact Test				.000	.000
N of Valid Cases[b]	425				

a. 0 cells (.0%) have expected count less than 5. The minimum expected count is 82.26.

b. Computed only for a 2x2 table

उपरोक्त सारणी से प्राप्त आंकड़े दर्शाते हैं कि महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के 100 प्रतिशत विद्यार्थियों के अनुसार उनके विश्वविद्यालय में ऑनलाइन आर.टी.आई. की सुविधा नहीं है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के 78.3 प्रतिशत विद्यार्थी उत्तरदाताओं से प्राप्त जानकारी के अनुसार विश्वविद्यालय में ऑनलाइन आर.टी.आई. की सुविधा है व 21.7 प्रतिशत के अनुसार ऑनलाइन आर.टी.आई. की सुविधा नहीं है। इसी संदर्भ में दोनों विश्वविद्यालयो की स्थिति का अध्ययन करें तो 425 विद्यार्थी उत्तरदाताओं में से 241 छात्रो का मानना है कि विश्वविद्यालय में ऑनलाइन आर.टी.आई. की सुविधा नहीं है एवं 184 विद्यार्थियों के अनुसार ऑनलाइन आर.टी. आई. की सुविधा उपलब्ध है। इनका ऐसा कहने का यह कारण है कि इन्होंने कहीं न कहीं ऑनलाइन आर.टी.आई. जरूर लगाई है, इसलिए यह विद्यार्थी ऐसा कह रहे हैं।

सारणी में दोनों विश्वविद्यालयो में विद्यार्थी उत्तरदाताओं से विश्वविद्यालय में ऑनलाइन आर.टी.आई. की सुविधा के बीच के सम्बन्ध को जानने के लिए काई-वर्ग परीक्षण (Chi square test) का प्रयोग किया गया जिससे हमारी सार्थक मूल्य (Significant value) .00 निकल कर आई जोकि .05 से कम है। अतः स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयों में इस विषय को लेकर काफी से सहसम्बन्ध (Association) पाया गया है।

उपरोक्त सारणी से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों विश्वविद्यालयो के अधिकतर उत्तरदाताओं का यही कहना है कि विश्वविद्यालय में ऑनलाइन आर.टी.आई. की सुविधा बिल्कुल नहीं है। परन्तु 184 उत्तरदाता यह कहते हैं कि ऑनलाइन आर.टी. आई. की सुविधा है जबकि ऐसा नहीं है। सिर्फ कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में आर.टी.आई. हेतु ऑनलाइन ललक बनाया गया है, लेकिन वह भी अभी तक प्रक्रियाधीन है। इसलिए यह विद्यार्थी ऑनलाइन ललक को वेबसाइट पर देख कर यह सोचते हैं कि आर.टी.आई. ऑनलाइन लगने की सेवा उपलब्ध है। महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय में अभी यह सेवा शुरू ही नहीं की है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

अंत में कह सकते है कि बदलते समय के अनुसार विश्वविद्यालय ने भी छात्रों हेतु विभिन्न प्रकार की ई-सेवाओं को ई-षासन के तहत ऑनलाइन किया है जो कि पहले ऑनलाइन नहीं थी है। जिनके माध्यमों से विभिन्न शैक्षणिक सेवाएं उपलब्ध कराई जा रही है। लेकिन विश्वविद्यालयों में ई-सेवाओं की प्रगति की गति बहुत धीमी है। इसके लिए बहुत से कारण उत्तरदायी है जैसे कि विश्वविद्यालय इस क्षेत्र में जो भी लक्ष्य निर्धारित करते हैं उनकी पूर्ण रूप से प्राप्ति उस निर्धारित समय में नहीं की जाती। विश्वविद्यालयों में ई- सेवाओं की कार्यप्रणाली का मूल्याकंन करने के दौरान भी कुछ ऐसे ही परिणाम सामने आए है।

- अतः दोनों विश्वविद्यालयो के छात्रों को चाहिए कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट द्वारा ही पाठ्यक्रम डाउनलोड करें।
- दोनों विश्वविद्यालयो के विद्यार्थियों को स्वयं ऑनलाइन फॉर्म भरने की स्वीकृति विश्वविद्यालयों के शीर्ष अधिकारियों द्वारा दी जानी चाहिए अंर री-इवैल्यूएशन के फॉर्म के लिए ऑनलाइन ललक दोनों विश्वविद्यालयो में विकसित किया जाए ताकि छात्र घर से ही यह फॉर्म अप्लाई कर सकें।
- विश्वविद्यालयो में छात्रों के लिए जल्द से जल्द माइग्रेशन के लिए अलग से लिंक खोला जाए ताकि छात्रों को घर बैठे हुए ऑनलाइन माइग्रेशन मिल जाए अंर उनको विश्वविद्यालय के चक्कर भी न काटने पड़े साथ ही इसके लिए फीस भी ऑनलाइन, नेटबैकिंग व एटीएम कार्ड द्वारा ली जानी चाहिए।
- सभी विश्वविद्यालयो में फीस के लिए जो पोर्टल बनाया गया है, वह उच्च श्रेणी का होना चाहिए क्योंकि फीस भरते समय बार-बार पोर्टल निरस्त हो जाता है अंर पे-टीएम द्वारा भी फीस भरने की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- सभी विश्वविद्यालयों में छात्रों को डिजिटल प्रारूप में शैक्षिक दस्तावेज उपलब्ध करवाए जाने चाहिए ताकि वह कहीं से भी अपने डिग्री निकाल सके व विद्यार्थियों को 24 घंटे उनके दस्तावेज ई-पेमेंट या ई-चालान से शुल्क अदा करके प्राप्त हो सके अंर इनके फटने या गुम होने का डर भी नहीं रहेगा।
- अतः सबसे पहले तो कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में आर.टी.आई. के लिए जो ऑनलाइन ललक बनाया गया है। उसको सुचारू रूप से चालू किया जाना चाहिए अंर महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय में भी आर.टी.आई. हेतु ऑनलाइन ललक जल्द से जल्द बनाया जाए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1. http://mdu.ac.in/UpFiles/UpPdfFiles/2018/Oct/Final%20Prospectus%20UTDs%20and%20UILMS%202018-19.pdf/ Retrieved April 19,2019 Time 3:29pm
2. http://www.kuk.ac.in/userfiles/file/Year2018/LeftLinks/AnnualReports/KUK%20Annual%2.pdfRetrieved April 25,2019 Time 12:52pm
3. डे,एसके एवं सोभान एमए.(2008)कॉन्सेप्चुअल फ्रेमवर्क फॉर इंट्रोडसिंग ग्र-गवर्नेंस इन यूनिवर्सिटी एडमिनिस्ट्रेशन,ACM इंटरनेशनल कांफ्रेंस प्रोसीडिंग सीरीज वॉल्यूम 351, 2008, च्हमे 433,2दक इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑन थ्योरी एंड प्रैक्टिस ऑफ इलेक्ट्रॉनिक गवर्नेंस, ICEGOV'08; Cairo; Egypt; 1 December 2008https://www.scopus.com/record/display. Retrieved September 08,2018 Time 4:25pm
4. वधवा ओम प्रकश (2009),''ई-गवर्नेंस इन यूनिवर्सिटीज'', http://tribuneindia.com/2009/20090317/edu.htm Retrieved January 04,2017 Time 3:40pm
5. भारद्वाज मोहिनी एवं सिंह अमरजीत (जुलाई 2011) ''ऑटोमेटेड इंटीग्रेटेड यूनिवर्सिटी एग्जामिनेशन सिस्टम'' हिमाचल प्रदेश यूनिवर्सिटी जर्नल, http://hpuniv.nic.in/Journal/Jul_2011 /Retrieved June 27,2017 Time 2:16pm
6. सूरी गुनमाला एवं कौर सरबजीत (2013, ''ए स्टडी ऑन ई-गवर्नेंस इनटिएटिवस इन पंजाब यूनिवर्सिटी'', ज्ञान ज्योति ई -जर्नल, वॉल्यूम 3, इशू 2 (Apr-Jun2013) ISSN 2250&348X 7जी इंटरनेशनल कांफ्रेंस, EMANATE 2013, on 'एजुकेशन, मैनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी' हेल्ड ऑन, February 2nd, 2013 at GJIMT, फेज II, मोहाली,पंजाब-इंडिया. https://www.gjimt.ac.in/wp-content/uploads/2017/10/1_Dr.-Gunmala-Suri-and-Sarabjeet-Kaur_A-study-on-E-Governance-Initiatives-in-Panjab-University.pdf Retrieved July 16,2018 Time 4:40pm

समकालीन कविता में स्त्री-संवेदना का संदर्भ

जैनेन्द्र चौहान

शोधार्थी (पी-एच.डी.) हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

समय के साथ घटने वाली घटनाएँ अपना संदर्भ स्वयं तय कर लेती हैं। पर स्त्री कोई घटना नहीं है। वह तो आदि शक्ति और जगत जननी है। इसने अपना संदर्भ तय तो नहीं किया पर हमारे पुरुष प्रधान समाज ने अपने स्वार्थ की रक्षा करते हुए स्त्री के संदर्भ को तय कर रखा है। आज इस पर विचार करने की आवश्यकता है। इसके लिए समकालीन कविता का अवलोकन कर सकते हैं। समकालीन कविता में स्त्री की संवेदना को सम्यक स्थान दिया गया है।

यहाँ 'समकालीन कविता' के संदर्भ में स्त्री पर विचार करना अध्येता का उद्देश्य है। अत: पहले 'समकालीन' शब्द पर विचार कर लेना संगत होगा। दो (या दो से अधिक) बराबर मूल्य की बस्तु, व्यक्ति, घटना या कोई अन्य परिस्थिति का एक समय में होना ही समकालीन कहलाता है। इससे स्पष्ट है कि हर समय अपनेआप में समकाल ही होता है। परन्तु साहित्य में समकालीन कविता का समय सन् 60 के बाद की कविताओं के लिए माना जाता है। सच तो यह है कि हिंदी में समकालीन कविता जैसी कोई काव्य-प्रवृत्ति नहीं है। नयी कविता (सन् 1959-60) के बाद के दौर में उभरे विभिन्न काव्यांदोलनों, काव्यधाराओं और काव्य-प्रवृत्तियों को ही यहाँ सुविधा के लिए समकालीन कविता कहा गया है। समकालीन कविता में तीन काव्य धाराओं को देखा जा सकता है—साठोत्तरी कविता या जिसे अकविता भी कहा जाता है, प्रगतिशील जनवादी कविता तथा नवगीत परंपरा। अकविता मूलत: व्यक्तिवादी कविता है, जिसमें कवियों ने तत्कालीन स्थितियों से निराश होकर अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को वाणी दी है। विचारधारा का विरोध, राजनीति का विरोध, व्यर्थथा बोध, स्त्रियों के प्रति कुंठित मनोवृत्ति, जनता को भीड़ समझना और निषेध की प्रवृत्ति—इस कविता की खास पहचान है।

समकालीन समय बाजारवाद और भूमंडलीकरण के घेरे में है। बाजारवाद के इस युग में नारी सौंदर्य प्रतियोगिताओं के द्वारा या विज्ञापनों के माध्यम से 'उपभोग की वस्तु' बन रही है। इसी कारण आज सौंदर्य भावना और चिन्तन के अनुरूप संवेदनाओं में बदलाव देखने को मिल रहा है। पूंजीवाद ने भी एक तरफ विकराल रूप धारण कर लिया है। इस पूंजीवाद ने ही स्त्री को कमोडिटी बना रखा है। स्त्री को पुरुष की संपत्ति के रूप ही नहीं वरन् पुरुष के सामूहिक उपभोग की वस्तु के रूप में देखना पूंजीवादी समाज की विकृत मनोदशा का ही प्रभाव है। आज नारी के प्रति यह भावना मध्ययुगीन समाज की मनोवृत्ति से भी अधिक विकृत और जुगुप्सोत्परक है। यद्यपि परिवर्तन आवश्यमभावी है। कोई भी स्थिति सदैव एक सी नहीं रहती। शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने अब नारी जागृति की ओर भी ध्यान देना शुरू किया है, जिससे एक संतुलित परिवर्तन की आशा की जा सकती है।

यद्यपि अपने देश में, शहरों में रहने वाली स्त्रियों में थोड़ी-बहुत जागृति उत्पन्न हुई है। इससे यह कदापि न समझना चाहिए कि समस्त देश की स्त्रियाँ जागृत हो गई हैं। बहुत अंश में स्त्रियों को अभी अपनी स्थिति का पता भी नहीं है। जबकि स्त्री भी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र का आवश्यक अंग है। सर्वविदित है कि किसी भी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र की उन्नति के लिए सर्वथा आवश्यक है कि उसके सभी अंग-प्रत्यंगों की एक साथ ही उन्नति होती रहे, जिनके द्वारा उस परिवार, समाज या राष्ट्र का निर्माण हुआ है। जिस प्रकार केवल हाथ, पैर या शरीर के किसी एक अंग के पुष्ट और मजबूत होने से कोई व्यक्ति बलवान नहीं कहा जा सकता, एकांगी पुष्टता उसके स्वास्थ्य की कमजोरी की ही निशानी समझी जाती है, उसी प्रकार कोई भी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र अंग विशेष के पुष्ट होने से मजबूत नहीं कहा जा सकता। स्पष्ट है कि स्त्री-पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। इनसे ही और इनके लिए ही परिवार, समाज या राष्ट्र है।

प्राचीन कविता से लेकर आधुनिक कविता तक में नारी की उपस्थिति अनिवार्य सी रही है पर वस्तु के रूप में, दृष्टि के रूप में नहीं। समकालीन कविता में नारी की दृष्टि भी परिलक्षित होने लगी है। जब तक वह वस्तु के रूप में प्रयुक्त हुई तब तक मनोरंजन का साधन थी पर दृष्टि के रूप में प्रयुक्त होते ही उसकी उपस्थिति का महत्त्व बदल गया है या कह लें बढ़ गया है। यह नारी दृष्टि एक आंदोलन है। इस आंदोलन से पुरुषों की दृष्टि भी बदलने लगी है। ऐसा नहीं है कि यह दृष्टि पहले नहीं थी। यह दृष्टि पहले भी थी और आज तो है ही। अन्यथा गोस्वामी जी की रचना 'रामचरितमानस' के 'सुन्दरकांड' दोहा संख्या- 58 के अंतर्गत यह देखने को कैसे मिलता "ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी। " अर्थात् भक्तिकाल में ही गोस्वामी जी ने यह स्पष्ट संकेत दे दिया था कि नारी को शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं है बल्कि वह शिक्षा पाने की अधिकारी भी है। तुलसीदास को ऐसा इसलिए कहना पड़ा क्योंकि ढोल, गवाँर, शूद्र, पशु और स्त्री की एक श्रेणी बना दी गई और इन्हें ही साहित्य की भाषा में दलित कहा जाता है। 'पशु' शब्द से स्पष्ट है कि शूद्र और नारी के साथ पशुवत् व्यवहार होता था। जो स्वयं को पंडित समझते हैं वे नारी की सत्ता को समझें। आजकल तो नारी-विमर्श की एक अलग धारा ही निकल पड़ी है। इस धारा से जुड़े लेखक-साहित्यकार, रचनाकार अपनी संवेदना नारी की सहानुभूति में व्यक्त करते देखे जाते हैं।

कविता में नारी- दृष्टि की दयनीय स्थिति होने या कह लें नारी–दृष्टि के न होने का सबसे बड़ा कारण यही रहा है कि नारी सदा से ही साहित्य विशेषत: कविता रूपी उत्पाद के लिए कच्चा माल रही है। इसका भी कारण यही है कि अब तक अधिकांश साहित्य पुरुष साहित्यकारों द्वारा रचा जाता रहा है, जबकि विश्व के अधिकांश साहित्य-रचना के केन्द्र में नारी ही रही है। रचनाकारों में नारी के प्रति संवेदना तो तब जागृत होने लगी जब "फ्रांसीसी क्रांति के समय समता, स्वतंत्रता और विश्वबंधुत्व का नारा दिया गया, तभी स्त्री के लिए भी समान अधिकारों की मांग उठने लगी। ... साठोत्तरी कविताओं के पश्चात् समकालीन कविता ने स्त्री की सर्वथा नई भूमिकाएँ और साहित्य में स्त्री रचनाकारों का सार्थक हस्तक्षेप दोनों ही उल्लेखनीय है।" रोचक बात तो यह है कि समकालीन हिंदी कविता में नारी न बिहारी की नायिका है न छायावादियों की एकांत प्रणयिनी है, बल्कि अपनी पूरी साधारणता, कमजोरियों और विशिष्टताओं के साथ विद्यमान है।

अकविता के इस दौर में नारी के प्रति सम्मान की भावना जहाँ कम हुई है, वहीं स्त्री रचनाकारों ने इसको नकारते हुए इसका सशक्त विरोध भी किया है। इस संदर्भ में सविता सिंह की कविता 'मैं किसकी औरत हूँ' को देखा जा सकता है–"मैं किसी की औरत नहीं हूँ / मैं अपनी औरत हूँ / अपना खाती हूँ / जब जी चाहता है तब खाती हूँ / मैं किसी की मार नहीं सहती / और मेरा परमेश्वर कोई नहीं है।" इस कविता में कवयित्री की नारी-दृष्टि नारी के वस्तु होने को नकारती है और यह सच भी है कि नारी भी तो मनुष्य ही है। क्या उसके बिना पुरुष की एकल सत्ता हो सकती है ? सर्वथा नहीं । अत: जब उसका मात्र उपभोग की वस्तु के रूप में उपयोग किया जायेगा तो इसका विरोध तो होना ही चाहिए। श्रीकांत वर्मा की काव्य-पंक्तियाँ भी इसी संदर्भ में द्रष्टव्य हैं–"कवियों की झूठ में लिपटी हुई / वेश्या-माँ / अपनी संतानों का स्वर्ग देख रही है।" यहाँ 'कवियों की झूठ' कह कर वर्मा जी स्पष्ट कर दिए हैं कि जो माँ अपनी संतानों का स्वर्ग देख रही है, अपनी संतान की भलाई देख रही है, क्या उसी माँ के अभाव में उस संतान के स्वर्ग की कल्पना भी हो सकती है क्या ?

समकालीन कविता में स्त्री का संदर्भ या कह लें या स्त्री-विमर्श, यह एक आंदोलन है जो अभी शुरू हुआ है। इसका संघर्ष अभी लम्बा चलने वाला है। अभी नारी जागृति बहुत बाकीहै। जब तक ग्राम-नारियाँ सचेत नहीं होंगी, तब तक यह संघर्ष चलता रहेगा। नारियों के सचेत होने से तात्पर्या आत्मबोध से है। ग्रामीण क्षेत्र की अधिकांश नारियों की जागृति अभी बाकी है। त्रिलोचन शास्त्री की कविता 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती' इस बात का गवाह है , यथा–"उस दिन चम्पा आई, मैंने कहा कि / चम्पा, तुम भी पढ़ लो / हारे गाढ़े काम सरेगा / .../ चम्पा ने यह कहा कि / मैं तो नहीं पढूँगी ङ्क" रीति, रिवाज और परंपरा का जो संस्कार भारतीय नारी पर युगों-युगों से पड़ा है, उसकी परत को हटाने में समय तो लगेगा ही। उसके लिए पति परमेश्वर है और वह उसकी दासी। दास हो या दासी,परतंत्र होते ही उनके विचार तक परतंत्र हो जाते हैं। इसीलिए तो गोस्वामी जी ने पहले ही कह दिया–"परतंत्रता सपनेहु सुख नाहीं।" आज की नारी अपनीस्वतंत्र दृष्टि की तलाश कर रही है। यह बात निर्मला गर्ग की निम्न काव्य-पंक्तियों से स्पष्ट होती है–"क्या ले जाऊँ नवजात बच्ची के लिए / मैं थोड़े से फूल / थोड़े से वाक्य / किसी कविता से / और यह विश्वास कि बड़ी होकर देखेगी दुनिया को / अपनी नजर से / तोड़ेगी जंजीरें / मांगेगी आजादी / उससे कम कुछ नहीं।" इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि नारी अपनी नजर से दुनिया को देखती तक नहीं। वह वही देखती है जो उसे दिखलाया जाता है, वही सुनती है, जो उसे सुनाया जाता है और वही बोलती है, जो उससे बुलवाया जाता है। इसीलिए कवयित्री आशा करती है कि

बच्ची बड़ी होकर दुनिया को अपनी नजर से देखेगी। पर विचारणीय बात तो यह है कि उसे ऐसा करने के लिए जंजीर यानी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को तोड़ना होगा। उसे आजादी मिलेगी नहीं, बल्कि वह भी छीननी पड़ेग। लीलाधर जगूड़ी अपनी कविता 'स्त्री प्रत्यय' में भारतीय नारी की परवशता का सुन्दर चित्रण करते हैं, "अकेली औरत पार करना चाहती है सूनी सड़क / आगे बढ़ चुके पति को पीछे बुलाती है / ... / वह मर्द को अगुआ करती है / डग भरती है / और एक जमाना पार कर रही हो / वह दिखती है एक खोए हुए साहस की तरह।" स्त्री का अपना खोया हुआ साहस जब तक वापस नहीं आता तब तक उससे अपनी दृष्टि की आश लगाना व्यर्थ होगा। अकेली औरत सूनी सड़क पार करना चाहती है। अर्थात् उसकी भी ईच्छा तो है कि वह आत्मनिर्भर हो सके परन्तु परतंत्रता उसकी आदत सी बन गई है। इस परतंत्रता से मुक्ति के लिए ही समकालीन नारी रचनाकार या नारीवादी पुरुष रचनाकार प्रयासरत हैं।

संदर्भ सूची -

ख गोस्वामी तुलसीदास, 'श्री रामचरित मानस', (टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार), गीताप्रेस, गोरखपुर-273005
- www@net-com
ख वही
ख 'आधुनिक हिंदी काव्य', अनुभाग अधिकारी प्रकाशन, सा. नि. वि. प्र. (इग्नू), पृ.- 82
ख 'समकालीन कविता', सं. डॉ. मालती तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण : 2013 ई., पृ.- 21
ख आधुनिक हिंदी काव्य', अनुभाग अधिकारी प्रकाशन, सा. नि. वि. प्र. (इग्नू), पृ.-88
ख समकालीन कविता', सं. डॉ. मालती तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण : 2013 ई., पृ. - 62

धर्म एवं विज्ञान का समन्वय

डॉ० रुचि कुमारी

एम.ए., पीएच.डी., दर्शनशास्त्र विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश :

धर्म एवं विज्ञान एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि सहयोगी है। धर्म के बिना विज्ञान अपंग है और विज्ञान के बिना धर्म अंधा है। दोनों परस्पर सहयोग न करेंगे तो वे अपूर्ण ही बने रहेंगे और उतने उपयोगी सिद्ध न हो सकेंगे जितना कि मिलजुलकर काम करने पर हो सकते हैं। दोनों के बीच जो दिशा विरोध दिखता है वह सतही है। दोनों के मध्य मौलिक समानता विद्यमान है और दोनों को पूर्ण बनने के लिए पारस्परिक सहयोग की नितांत आवश्यकता है।

धर्म एवं विज्ञान का समन्वय

सामान्यत: धर्म एवं विज्ञान एक-दूसरे के विरोधी समझे जाते हैं, पर वास्तविकता इससे भिन्न है। यह न तो परस्पर विरोधी है, न एक-दूसरे से पृथक, वरन ये एक-दूसरे के सहयोगी और पूरक हैं। सामान्यजनों ने इनके बाह्य कलेवर को देख इन्हें परस्पर पृथक और असंबद्ध माना है। पर यदि इस विषय पर गहन चिंतन-मनन किया जाय तो पृथकता व असंबद्धता का आवरण हट जाता है। यथार्थता प्रकट होने से यह समझ में आ जाता है कि ये परस्पर विरोधी नहीं, दूसरे के पूरक हैं। धर्म की अवमानना तथा विज्ञान को विरोधी ठहराए जाने का प्रधान कारण है कि धर्म रुपी सूर्य पर प्रथा-परंपराओं, लोक प्रचलनों का कुहासा छा गया है। यदि विवेक की हवा इस कुहासे को हटा दे तो धर्म के सूर्य की यथार्थता प्रकट हो जाती है। धर्म और विज्ञान दोनों ही एक बिन्दु पर आने लगते हैं। कारण कि रास्ते की भिन्नता के बावजूद दोनों ही सत्यान्वेषी है। दोनों के मिलन से ही मानवता की रक्षा हो सकती है। सच पूछा जाय तो धर्म और विज्ञान को एक दूसरे से पृथक समझना व्यावहारिक जीवन के लिए घातक सिद्ध होगा। इसीलिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित प्रख्यात दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल अपनी कृति 'Religion and Science' में विज्ञान और धर्म को सामाजिक जीवन के दो प्रमुख आधार बताया है। इनमें से एक आतंरिक एवं मानसिक विकास तथा स्थायी सुख-शान्ति के लिए आवश्यक है तो दूसरा भौतिक अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए। एक पक्ष की उपेक्षा कर देने अथवा दूसरे को अधिक महत्व देने से असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और जीवन के समग्र विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। पिछले दो महायुद्ध इस बात के साक्षी है कि एकांगी वैज्ञानिक प्रगति किस कदर मनुष्य को दिग्भ्रान्त कर उसके स्वयं के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा देती है। एकांकी धर्म भी आज के प्रगतिशील जीवन की उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। चिकित्सा, परिवहन, उद्योग शिल्प, कला, इंजीनियरिंग, टेक्नोलॉजी जैसी महत्त्वपूर्ण विधाओं के बिना आज जीवन की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। अत: दोनों का समन्वित विकास ही अभीष्ट है। वस्तुत: धर्म और विज्ञान एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं। एक हमें सच्चाई को तर्क, तथ्य, प्रमाण की कसौटी पर कसना सिखाता है, तो दूसरा नैतिक नियमों व उच्च आदर्शो के प्रति आस्थावान बनाता है। एक उपार्जन की विधा बताता है, तो दूसरा "शतहस्तं समहरं सहस्त्रहस्तं संकिर" (सैकड़ो हाथों से इकट्ठा करो और हजारों हाथों से बाँटो) कहकर उसके श्रेष्ठतम सदुपयोग करने का निर्देश देता है, तरीका बताता व प्रयोजन समझाता है। एक प्रत्यक्षवाद पर आधारित है और दूसरा परोक्षवाद पर। एक के अनुसंधान का विषय पदार्थ जगत है, तो दूसरे का आत्म-जगत। एक पदार्थ का अन्वेषण स्थूल यन्त्र उपकरणों के माध्यम से करने का प्रयास कर रहा है, तो दूसरा आत्मसत्ता का उदघाटन साधना प्रयासों द्वारा करता है। दोनों मूल सत्ता के ही दो रूप हैं। विज्ञान और धर्म उन्हें ही

अपने-अपने ढंग से ढूँढने का उपक्रम कर रहे हैं। दोनों के साथ रहने में ही समग्रता बनती है। अत: दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। जीवन में धर्म धारणा का उतना ही महत्व है, जितना विज्ञान का। अस्तु जीवन में दोनों का समावेश ही कल्याणकारी हो सकता है। यह आज की सर्वोपरि आवश्यकता है।

संसार के श्रेष्ठ वैज्ञानिक भी यह स्वीकार करते हैं कि विज्ञान और धर्म में कोई झगड़ा नहीं है, प्रत्युत वे एक दूसरे के सहयोगी हैं। आधुनिक युग के सबसे बड़े वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन (Einstein) को धर्म में पूर्ण विश्वास था और वे धर्म तथा विज्ञान दोनों को एक-दूसरे के लिए आवश्यक समझते थे। इसीलिए आइंस्टीन (Einstein) ने धर्म और विज्ञान के संबंध की व्याख्या एक उपमा के द्वारा की है। उन्होंने कहा है कि "धर्म के बिना विज्ञान लँगड़ा है और विज्ञान के बिना धर्म अंधा (Science without religion is lame] religion without science is blind)।"

धर्म और विज्ञान के पारस्परिक संबंधों पर मेधावी वैज्ञानिक हेराल्ड केरोलिंग ने सुविस्तीर्ण गंभीर अध्ययन किया और प्राप्त निष्कर्षों को शोध प्रबंध के रूप में 'बपमदबम 'दक त्मसपहपवद के नाम से पेन्सिलवानियाँ युनिवर्सिटी को प्रस्तुत किया। इस शोध में उन्होंने दोनों के साम्य और एक्य को बताते हुए जोरदार शब्दों में कहा है कि मानव की सर्वागपूर्ण प्रगति के लिए दोनों ही आवश्यक और अनिवार्य है। धर्म की कई बातें ऐसी हैं जिनसे विज्ञान दिशा ले सकता है और अपने को विध्वंसात्मक नहीं सृजनात्मक क्षेत्र में नियोजित कर सकता है। वहीं धर्म भी तर्क, तथ्य पूर्ण वैज्ञानिक विधि को अपनाकर लोक मान्यताओं, अंध-विश्वासों, चित्र-विचित्र प्रचलनों का कोहरा मिटाकर अपनी यथार्थता, प्रखरता, तेजस्विता को प्रकट कर सकता है। उन्होंने आगे बताते हुए लिखा है पिछले दिनों धर्म-विज्ञान का संघर्ष इन्हीं मुद्दों पर असहयोग के कारण होता था, जो अब समाप्त हो रहा है।

विज्ञान की हठवादिता भी अब छूटती जा रही है। कारण कि पदार्थ जिसे अपना आधार मान रखा था, सारे के सारे शोध प्रयास उसी में केंद्रित थे, अब अपना अस्तित्व खोता जा रहा है। डेनमार्क के नील्सबोर, फ्रांस के लुइसदे बोगली, ऑस्ट्रिया के इरविन स्क्रोडिंगर तथा बुल्फ गैंगपाली, जर्मनी के वारनर, हाइजोन वर्ग व इंग्लैंड के पाल डिरेक आदि ने अपने मिले-जुले शोध प्रयत्नों से यह सिद्ध कर दिया है कि पदार्थ अनित्य है। उसका रूपांतर ऊर्जा में होना अवश्यम्भावी है। वैज्ञानिकों की यह भी मान्यता है कि ऊर्जा जड़-चेतन सभी में समाई हुई है। इसे सर्वव्याप्तता कहना किसी भी तरह अत्युक्ति नहीं है। इनकी यह मान्यता प्रकारांतर सवेदांत का ही समर्थन करती है।

पदार्थ की अनित्यता का भान होने के साथ यह भी समझ में आता जा रहा है कि मानसिक और भावनात्मक सत्य का भी अस्तित्व है। इनका महत्व भी कम नहीं है। अपने को जड़वादी कहने में गर्व अनुभव करने वाले विज्ञानवेत्ता पुनर्जन्म परलोक, परमात्मा के अस्तित्व तथा मानव-मानव के बीच के संबंधों को ठुकरा नहीं सकते। उनको सुलझाने के लिए जिस भावनात्मक आधार की आवश्यकता है उसे धर्म ही पूरा कर सकता है।

वैज्ञानिकों द्वारा की जाने वाली नित्य नवीन शोध महत्त्वपूर्ण हैं। इनके महत्त्व से कोई इंकार भी नहीं कर सकता है। इस प्रकार के प्रयासों से मानव का दैनन्दिन जीवन कितना सहज व सुगम हो गया है, इसे सभी जानते हैं। इस सहजता व सुगमता में विज्ञान के साथ धर्म का भी हाथ है। उदाहरणार्थ डायनामाइट को ही लें। इसे किसी समय विज्ञान जगत की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता था, पर इसका उपयोग सुन्दर और भव्य भवनों का विनाश करके श्मशान बनाने में भी हो सकता है। ऊबड़-खाबड़, ऊँचे-बीहड़ पहाड़ों-चट्टानों को तोड़कर सड़कें बनाने के काम में भी। इन दोनों में समुचित कौन सा है और किसे अपनाया जाना उचित है? इस प्रकार औचित्यपूर्ण दिशा-दर्शन करना विज्ञान के बस की बात नहीं। कल्याणदायी इस दायित्व को निभा सकना धर्म से ही संभव है।

विज्ञान किसी भी वस्तु का वैज्ञानिक निर्णय और तार्किक चिंतन सही रूप में दे सकता है। जैसे यह मौसम की जानकारी दे सकता है, परमाणु विस्फोट से कितनी ऊर्जा पैदा होगी, यह बता सकता है, पर उसके सुनियोजन के बारे में नहीं बता सकता। देखा जा सकता है कि मानवीय व्यवहार और भावनाओं का भी एक क्षेत्र है। उसे भी यदि विज्ञान अपने तार्किक चिंतन से बताने लगे तो यह निर्णय गलत ही होगा। यह एक शक्तिशाली साधन है। इसके साध्य की प्राप्ति होगी, इसे धर्म द्वारा ही निर्धारित किया जा सकना संभव है। इसके द्वारा की गयी शोधों का मूल्यांकन एवं उन्हें मानवीय जीवन में व्यावहारिक धरातल पर लाना एक महत्वपूर्ण कार्य है, जिसे आत्मिकी ही पूरा कर सकती है।

धर्म- अंतर्ज्ञान भावसंवेदन व विवेक पर अवलंबित है। विज्ञान का अवलंबन बौद्धिक शक्ति पर है। प्रयोग की आवश्यकता दोनों में है। आध्यात्मिक सिद्धांतों, उपनिषदों के श्लोकों को यदि रटते रहा जाय तो कुछ भी बात नहीं बनेगी। बस एक तोते की भूमिका

ही निभाई जा सकेगी। प्रयोग में जुट पड़ने, इसके लिए समर्पित होने से सत्य का बोध पाकर सामान्य मानव से अतिमानव हुआ जा सकता है। विज्ञान का काम भी मात्र परिकल्पनाओं के आधार पर नहीं चलता। यथार्थ की खोज के लिए प्रायोगिक स्तर पर आना ही पड़ता है। इस प्रकार के किये जाने वाले प्रयोगों में यह अंतर अवश्य है कि एक के प्रयोग का क्षेत्र पदार्थ है, दूसरे का चेतन। एक के प्रयोग में बहिरंग जगत की प्रधानता होती है, दूसरे में अंतरंग की। फिर एक साम्य भी है। प्रयोग के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले उपादानों में दोनों को ही इन दोनों क्षेत्रों का सहारा लेना पड़ता है। वैज्ञानिक बहिरंग जगत में कितनी ही बड़ी प्रयोगशाला क्यों न बना लें, कितने ही उपकरण क्यों न जुटा लें, पर बुद्धि, मन, मस्तिष्क जो अंतरंग क्षेत्र के हैं इनका समुचित उपयोग किये बिना किसी तरह का प्रयोग परीक्षण संभव नहीं। इसी तरह आध्यात्मिक प्रयोगों में चेतना अर्थात अंतरंग की प्रधानता रहती है, फिर भी बहिरंग साधन शरीर की महत्ता है। इसी कारण तत्वविदों ने 'शरीर माद्यमखलु धर्म साधनं' भी कहा है। शरीर को स्वस्थ-सबल, समक्ष बनाने में वैज्ञानिक साधन भी प्रयुक्त होते हैं। इस तरह यह स्पष्ट होता है कि पारस्परिक विग्रह जैसी कोई बात नहीं है। इन दोनों का अस्तित्व परस्पर पूरक सहयोगी बने रहने में ही है।

ब्रिटिश विज्ञानविद् सर जेक्सजीन्स ने अपनी पुस्तक 'Physics and Philosophy' में लिखा है कि विज्ञान व धर्म दर्शन के परस्पर विरोध का काल अब समाप्त हो चुका। दोनों ही क्षेत्र यह अनुभव करने लगे हैं कि पारस्परिक सहायता के बिना किसी का प्रयोजन पूरा न हो सकेगा। दर्शनशास्त्री बिल डुरंट ने अपने ग्रन्थ 'The story of Philosophy' में ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं। वे कहते हैं 'विज्ञान का आरम्भ दर्शन में होता है और अंत कला में। यदि इसमें मानवी चेतना की सुसंवेदना उत्पन्न करने की क्षमता न होती तो इसके पीछे मानवी सुख शान्ति का जो उत्साह भरा लक्ष्य है, उसी ने विज्ञान की उन्नति का पथ-प्रशस्त किया है द्य' विख्यात चिंतक केसरलिंग ने अपनी पुस्तक 'Creative Understanding' में कहा है कि ज्ञान की दो धाराएँ विज्ञान एवं धर्म दर्शन अविच्छिन्न है। इन दोनों को मिलाकर एक शब्द 'दार्शनिक विज्ञान या वैज्ञानिक दर्शन' नाम दिया जाना इस युग में सब प्रकार से उपयुक्त होगा।

इन दोनों की अविच्छिन्नता को अब सभी मानने लगे हैं। अस्तु वैज्ञानिक दर्शन एक नए विश्वास के रूप में सामने आया है। विज्ञानी बारगर हाइजेनबर्ग ने अपने ग्रन्थ 'भौतिक विज्ञान एवं दर्शन' में अनिश्चितता के नियमों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- 'विज्ञान वस्तुत: दर्शनशास्त्र की स्थूल जाति का निरूपण करने की एक शैली मात्र है द्य' 'Philosophy of Physical Science' के लेखक सर एस. एडिंगस्टन ने अपनी मान्यता व्यक्त करते हुए लिखा है- विज्ञान के सिद्धांतों का समझना धर्म दर्शन के सिद्धांतों के सहारे ही संभव है। 'फ्रॉम यूक्लिड टू एडिंगटन' के लेखक सर एडमंड हेटकार ने लिखा है- "वह जमाना समाप्त हो गया है जब विज्ञान और धर्म दर्शन को परस्पर पृथक माना जाता था। अब नवीन शोध निष्कर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि दोनों में ही एकत्व और साम्य है।"

सचमुच इन दोनों के बाह्य स्वरुप भिन्न दिखाई पड़ने पर भी भिन्नता जैसी कोई बात नहीं। जिस तरह गंगा और यमुना एक ही हिमालय के दो विभिन्न स्थानों से निकलकर मीलों, कोसों का प्रगति पथ पूरा करती हुई भिन्न दिखती है। यहाँ तक कि उनका बाह्यरंग भी श्वेत और श्याम होने के कारण विभेद आभास कराता है, पर यह विभेद तीर्थ राज प्रयाग में सम्मिलित होने पर लुप्त हो जाता है। दोनों ही सागर की ओर चल पड़ती है। उसी तरह धर्म व विज्ञान की दोनों धाराएँ अंतराल की जिज्ञासा से ही प्रस्फुटित हुई हैं। स्थान भेद अवश्य है, एक है-"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" जो धर्म तत्वदर्शन के उत्कर्ष वेदांत का मूल स्रोत है। दूसरे को "अथातो प्रकृति जिज्ञासा" कहा जा सकता है इन दोनों अर्थात धर्म गंगा और विज्ञान यमुना के बाह्य स्वरुप श्वेत और श्याम का विभेद चिरस्थायी नहीं। 'क्वांटम थ्योरी' तथा 'थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी' रुपी यमुनोत्री से प्रवेश कर विज्ञान की यमुना का प्रवाह तीव्रता से चलकर मिलन बिंदु जिसे सही माने में तीर्थराज कहा जाना ही उपयुक्त है- पहुँच गया है। अब ये दोनों ही एकाकार होकर परम सत्य के असीम सागर की ओर लहराती-बलखाती तीव्रता से चल पड़ती है।

श्वेत श्याम का विभेद विज्ञान की प्राचीनता तथा मध्यकाल में आये धर्म में छाए लोक प्रचलनों रूढ़िमान्यताओं के कारण ही दिखता है, पर अब प्रगति प्रवाह बहुत आगे बढ़ गया है। अब विभेद की जगह अभेद है। मिलन के इस तीर्थराज को बुद्धिजीवी, मनीषी, चिंतक सभी इसे स्पष्ट देख सकते हैं। यह मात्र ऐसी अभेदता नहीं जहाँ इन मूर्धन्यों को ही संतोष मिले। समूची मानव जाति इस अपूर्व संगम में अवगाहन कर अर्थात धर्म और विज्ञान दोनों को अपने बहिरंग व अंतरंग जीवन के व्यवहार में लाकर, समृद्धि प्राप्त कर तथा व्यवहार में उत्कृष्टता संपूर्ण जगत के प्रति प्रेम आत्मभाव के विस्तार जैसे दिव्य गुणों की प्राप्ति कर सांसारिक जीवन को सुनिश्चित रूप से सफल बना सकती है। साथ ही अंतरंग के निर्मल और प्रखर होने तथा प्रवाह के साथ चल पड़ने से वह दिव्य

पथ-प्रशस्त हो जाता है जिसे अपनाकर कोई भी चिदानंद सागर का भी आनंद ले सकता है। यहाँ मात्र शान्ति नहीं, परम शांति है। विकास के उत्कर्ष का वह मर्म विभेद में नहीं अभेद में निहित है। इस अपूर्व तीर्थराज संगम में मज्जन-पान कर शरीर व मन की क्लान्ति, सारे संदेहों, पूर्वाग्रहों से मुक्त प्रसन्नचित हो विकास यात्रा पर चल पड़ने का उत्साह उत्पन्न होता है। समय की माँग है कि दोनों विधाओं के पक्षधर अब इस महायात्रा पर चल ही पड़े। उसी में जीवन की सार्थकता भी निहित है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि धर्म और विज्ञान दोनों एक रथ के दो पहियों के समान हैं, जिसमें एक के बिना दूसरे की गति संभव ही नहीं है; क्योंकि रास्ते की भिन्नता के बावजूद दोनों ही सत्यान्वेषी है। दोनों के मिलन से ही मानवता की रक्षा हो सकती है। इनमें से एक आतंरिक एवं मानसिक विकास तथा स्थायी सुख शान्ति के लिए आवश्यक है तो दूसरा भौतिक अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए। एक की उपेक्षा कर देने अथवा दूसरे को अधिक महत्व देने से असंतुलन उत्पन्न हो जाता है और जीवन के समग्र विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। दोनों का समन्वय ही आज की सर्वोपरि आवश्यकता है। जीवन में धर्म धारणा का उतना ही महत्व है जितना विज्ञान का। अत: दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं।

सहायक ग्रन्थ सूची :

1. पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, धर्मतत्व का दर्शन व मर्म, अखंड ज्योति संस्थान, मथुरा, 1998
2. कल्याण- धर्मशास्त्रांक , गीता प्रेस, गोरखपुर सं0 2069
3. श्रीराम शर्मा आचार्य, विज्ञान और आध्यात्म परस्पर पूरक, अखंड ज्योति संस्थान, मथुरा, 1998
4. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय धर्म और दर्शन, चौखम्भा ओरियन्टालिया, 1917
5. हिन्दू संस्कृति, गीता प्रेस गोरखपुर, सं0 2064
6. प्रो एस पी सिन्हा, दार्शनिक निबंध संचयन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद 2005

न्याय भाषा-दर्शन में वाक्यार्थ विचार

डॉ० नागेन्द्र तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, मुरारका कॉलेज, सुलतानगंज
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश :

भाषिक समस्याओं में वाक्यार्थ का न्याय दर्शन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। न्याय दर्शन में वाक्यार्थ बोध के चार कारण माने गए हैं- आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि और तात्पर्य। दूसरे शब्दों में वाक्य का अर्थ–आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि और तात्पर्य से युक्त पदों का समूह है।

वाक्यार्थ का बोध किस प्रकार होता है इस प्रश्न को लेकर भारतीय चिंतकों में विभिन्न मत पाये जाते हैं। नैयायिक तथा भाट्ट मीमांसक इस संबंध में अभिहितान्वयवाद की स्थापना करते हैं। इनके विरोध में मीमांसक प्रभाकर का संप्रदाय अन्विताभिधानवाद की स्थापना करते हैं। अभिहितान्वयवाद के अनुसार पद से हमें पदार्थ का ज्ञान पहले होता है और इसी से हमें बाद में वाक्यार्थ का ज्ञान होता है। इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य का कहना है कि सर्वप्रथम हम पदों से पदार्थ ज्ञान स्वतंत्र रूप से करते हैं पुनः आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि आदि के द्वारा वाक्यार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं। न्याय दर्शन भी कुमारिल भट्ट के समान यह स्वीकार करता है कि वाक्यार्थ ज्ञान का आधार शब्दार्थ ज्ञान ही है।

अन्विताभिधानवाद आचार्य प्रभाकर का मत है। प्रभाकर अपने अन्विताभिधानवाद में यह मानते हैं कि अन्वित पदार्थों का ही अभिधा शक्ति से वाक्यार्थ का बोध होता है। वाक्य में पद परस्पर सम्बंधित होकर ही वाक्यार्थ का बोध कराते हैं। इनके पारस्परिक सम्बन्ध के ज्ञान (अन्वय) से ही वाक्यार्थ बोध होता है। वाक्य में प्रयुक्त पदों का सामूहिक या समग्र अर्थ होता है और वाक्य से पृथक उनका कोई अर्थ नहीं होता है।

न्याय भाषा-दर्शन में वाक्यार्थ विचार

न्याय भाषा-दर्शन में वाक्यार्थ पर बहुत ही गंभीरता से विचार किया गया है। वर्णो का समूह पद और पदों का समूह वाक्य है जिसके द्वारा अर्थ की अभिव्यंजना होती है। किसी वाक्य के अर्थ को समझने के लिये कतिपय शर्तो का पालन करना अनिवार्य होता है। वाक्य की शर्तों को दो दृष्टिकोण से देखा जा सकता है- (1) वस्तुगत दृष्टि तथा (2) आत्मगत दृष्टि। नैयायिक वस्तुगत दृष्टि को स्वीकार करते हैं जबकि वैयाकरणों ने आत्मगत दृष्टि को स्वीकारा है। वस्तुगत दृष्टि के अनुसार किसी वाक्य का अर्थ उसके अवयव शब्द के अर्थ पर निर्भर करता है। साथ ही, शब्दों का प्रयोग होने का समय, स्थान आदि भी वाक्यार्थ के लिए आवश्यक हैं। इस दृष्टिकोण से नैयायिकों ने वाक्यार्थ की तीन शर्तों को स्वीकारा है। वे शर्त हैं- आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि[1]। वैयाकरणों ने इन शर्तों को आत्मगत दृष्टि से स्वीकारते हुए इनमें एक शर्त और जोड़ दिया है। वह शर्त है–तात्पर्य। हालाँकि बाद के नैयायिकों ने तात्पर्य नामक शर्त को भी स्वीकार किया है। इस प्रकार कुल मिलाकर वाक्यार्थ की चार शर्तें हैं।

आकांक्षा :

वाक्य में एक दूसरे पद की अपेक्षा रहती है[2]। यही आकांक्षा है। गाय, अश्व, पुरुष आदि सभी पद हैं, परंतु इनसे किसी वाक्यार्थ का ज्ञान नहीं होता। जब हम कहते हैं 'गाय चरती है', 'घोड़े को लाओ' तभी हमें बोध होता है। यहाँ गाय तथा चरने में एक दूसरे की अपेक्षा है। इस प्रकार निराकांक्ष पद समूहों को वाक्य नहीं कहते। आकांक्षा सन्निवेष आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि आकांक्षा पदों के पारस्परिक अर्थों का आपेक्षिक स्वरुप है जो वाक्य के अर्थ को अभिहित करती है।

योग्यता :

पदों में योग्यता होनी चाहिए,[3] अर्थात पदों में किसी प्रकार का विरोध नहीं होना चाहिए। उदाहरणार्थ वह आग से सींचता है (वहिना सिंचति)। इस वाक्य में आकांक्षा तो है, पर योग्यता नहीं। अग्नि से सींचना असंभव है। अग्नि दाहक है। वह सींचने के काम नहीं आ सकती।[4] अत: इस वाक्य में 'अग्नि' और 'सींचने' में विरोध है। इसीलिए श्री अन्नभट्ट में अर्थ स्पष्ट होने में बाधा के अभाव को योग्यता माना है। इस योग्यता के न रहने पर वाक्यार्थ बोध नहीं हो सकता।

सन्निधि :

पदों में निकटवर्ती सम्बन्ध का नाम सन्निधि है द्य5 यदि पदों में समय और स्थान की निकटता नहीं होगी तो वह वाक्य अर्थ का सूचक नहीं हो सकता। यदि कोई व्यक्ति पहले कहता है गाय और एक पहर बाद कहता है लाओ, तो इससे अर्थ का बोध नहीं होगा। विलम्ब के कारण अर्थ का बोध होना असंभव है। इस दृष्टि से श्री अन्नभट्ट कहते हैं कि 'पदों का अविलम्ब उच्चारण ही सन्निधि है'।

तात्पर्य :

तात्पर्य का अर्थ वक्ता का अभिप्राय है द्य6 पदों के अनेक अर्थ होते हैं। किसी भी अर्थ का ग्रहण काल, स्थान आदि के अनुसार किया जाता है। उदाहरणार्थ सैन्धव शब्द के दो अर्थ है- सिंधु देश का घोड़ा तथा नमक। यदि कोई व्यक्ति भोजन करते समय कहता है कि सैन्धव लाओ, तो इसका अर्थ है नमक। परंतु यदि भोजनोपरान्त वह तैयार होकर कहता है सैन्धव लाओ, तो इसका अर्थ है घोड़ा लाना। इस प्रकार प्रत्येक पद का अभिप्राय अलग है जो स्थान तथा काल से निश्चित किया जाता है।

वाक्यार्थ बोध की विधियाँ

वाक्यार्थ बोध किस प्रकार होता है इस विषय को लेकर भारतीय भाषा-दर्शन में विभिन्न मत पाये जाते हैं। जब हम किसी वाक्य को सुनते हैं तो हमें अर्थ का बोध होता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि अर्थ समग्र वाक्य से निकलता है अथवा वाक्य के घटक पदों के अर्थों के मिलने से निकलता है ? वैयाकरणों के मतानुसार वाक्य एक समष्टि के रूप में अपने अर्थ का बोधक होता है, उसमें पद का पृथक अस्तित्व नहीं होता। इस प्रकार वैयाकरण अन्वयवादी कहला सकते हैं। भाट्ट मीमांसकों का कथन है कि जब पद अपने-अपने अर्थों को अभिव्यक्त करते ही निवृत व्यापार हो जाते हैं तब उनके अर्थ सामूहिक रूप से वाक्य के अर्थ का बोध कराते हैं। इस प्रकार पद और वाक्य एक-दूसरे से अभिन्न होते हुए भी भिन्न है। वाक्यार्थ बोध के संबंध में यही अभिहितान्वय कहलाता है। प्रभाकर मीमांसक भाट्ट मीमांसकों के विचार से सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं कि परस्पर अन्वित पदार्थ ही वाक्यार्थ है। उनका मत अन्विताभिधानवाद के नाम से प्रसिद्ध है। जयन्त भट्ट ने मीमांसकों के मतों की समीक्षा करने के साथ ही एक नए मत का प्रवर्तन किया जो तात्पर्यवाद के नाम से विख्यात है। शबरस्वामी ने अपने भाष्य में यह कहा था कि 'पदानि हि स्वं पदार्थमभिधाय निवृत्तव्यापाराणि अथेदानी पदार्थो अवगता सन्तो वाक्यार्थ गमयन्ति'। शबरस्वामी के इस कथन का कुमारिल और प्रभाकर ने जो पृथक-पृथक विश्लेषण किया है, वही अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद के नाम से जाना जाता है।

अभिहितान्वयवाद :

यह आचार्य कुमारिल भट्ट का मत है। कुमारिल ने भाष्यकार के कथन का यह आशय बताया है कि वाक्य के सभी शब्द अपना-अपना अर्थ बताकर व्यापाररहित हो जाते हैं, तब ये ज्ञात पदार्थ ही संपूर्ण वाक्य का अर्थ देते हैं। कुमारिल के अनुयायी मानते हैं कि वाक्यार्थ बोध पदों के अर्थ पर निर्भर है। पद पहले सामान्य अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उसके पश्चात आकांक्षा , योग्यता, सन्निधि आदि के आधार पर उन अर्थों के पारस्परिक अन्वय से जिस समग्र अर्थ की अभिव्यक्ति होती है उसी को वाक्यार्थ कहते हैं। दूसरे शब्दों में, पदों से अर्थों का ज्ञान हमें पृथक-पृथक हो जाता है, परंतु वाक्य के अर्थ का ज्ञान हमें उन अर्थों के पारस्परिक संयोग से होता है। पद समूह ही आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि आदि के आधार पर समन्वित होकर वाक्य बन जाते हैं। अत: कुमारिल संसर्ग को ही वाक्यार्थ स्वीकार करते हैं। वाक्यार्थ का ज्ञान हमें पदार्थ ज्ञान के पश्चात होता है। जब तक पदार्थ का ज्ञान नहीं होगा, तब तक वाक्यार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। कुमारिल के कहने का अर्थ यह है कि पद अपने विशिष्ट अर्थ का बोध

कराते हैं और वाक्य में उनका पारस्परिक समन्वय उनके अर्थों के समन्वय के माध्यम से होता है, न कि एक पद का अन्य पद के साथ अन्वय से। वाक्य में प्रयुक्त हुए बिना भी पद का अर्थ समझा जा सकता है, परंतु जहाँ तक वाक्य के अर्थ का संबंध है, वह पद के अर्थों के समन्वय से ही घटित होता है।

अभिहितान्वयवाद को न्याय दर्शन ही स्वीकार करता है परंतु कुछ नैयायिक इसका खंडन भी करते हैं। श्री जयन्त भट्ट इसका खंडन करते हुए कहते हैं कि कोई शब्द दीपक की तरह अर्थ को प्रकाशित नहीं करता। शब्द का प्रयोग वाक्य के स्थान पर नहीं हो सकता। वाक्य के सभी शब्द मिलकर ही वाक्य के अर्थ का बोध करा सकते हैं। अकेला शब्द वाक्यार्थ बोध में असमर्थ है। जिस प्रकार वाहक संयुक्त रूप से पालकी उठाते हैं, उसी प्रकार किसी वाक्य में प्रयुक्त सभी शब्द मिलकर ही वाक्यार्थ बोध कराते हैं।

अभिहितान्वयवाद के समर्थन में कई तर्क दिए जाते हैं, जो निम्नलिखित है–

(क) यदि शब्दों का अर्थ भिन्न-भिन्न हो तो शब्दों में संज्ञा, विशेषण आदि रूप में विभाजन नहीं हो सकता। किसी वाक्य में संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया आदि विभिन्न शब्दों का प्रयोग होता है। यदि इन शब्दों का अर्थ भिन्न-भिन्न नहीं तो इनका संज्ञा, सर्वनाम आदि में विभाजन भी नहीं।

(ख) पहले शब्दार्थ ज्ञान हुए बिना वाक्यार्थ ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि वाक्यार्थ शब्दार्थों का संबंध वाचक योग है। पहले शब्दार्थों का ज्ञान होता है, पुनः शब्दार्थ के संबंध (वाक्यार्थ) का ज्ञान।

(ग) यदि वाक्यार्थ शब्दार्थों के संबंधों से भिन्न हैं तथा स्वतंत्र है तो किसी वाक्य से किसी अर्थ का ज्ञान होने लगेगा।

(घ) जब हम किसी कविता या संस्कृत के श्लोक का अर्थ जानना चाहते हैं तो सर्वप्रथम उसके सभी शब्दों का अलग-अलग अर्थ जानने का प्रयास करते हैं।

उपरोक्त तर्कों से सिद्ध होता है कि वाक्यार्थ से पहले हमें शब्दार्थ का ज्ञान होता है। शब्दों में शक्ति द्वारा हमें उनके अर्थ ही अभिहित होते हैं परंतु अर्थों का संबंध अभिहित नहीं होता। अर्थों के संबंध का ज्ञान तो पदों के क्रमरूप (आकांक्षा आदि) वाक्य सामर्थ्य से होता है।

अन्विताभिधानवाद :

मीमांसा दर्शन के दूसरे प्रमुख आचार्य प्रभाकर के मत को अन्विताभिधानवाद कहा गया है। प्रभाकर ने भी शबरस्वामी के उपर्युक्त कथन की अपने मतानुसार व्याख्या करते हुए कहा है कि भाष्य में प्रयुक्त पदार्थ शब्द का अभिप्राय अन्वित तथा वाक्यार्थ शब्द का अभिप्राय अन्वय से है। पद अन्वित होकर अन्वय का अवबोध कराते हैं। आचार्य प्रभाकर का कहना है कि वाक्य में प्रयुक्त पदों के दो कार्य है- अपने निजी अर्थ को प्रकट करना और सामूहिक अर्थ को प्रकट करना। इस मत के अनुसार वाक्यार्थ वाक्य से पृथक कुछ भी नहीं है, किन्तु वह पदों में ही रहता है। प्रत्येक पद अपने सामान्य अर्थ का ही नहीं अपितु अन्य पदों के अर्थ से समन्वित अर्थ का बोध कराते हैं।

आचार्य प्रभाकर वाक्य को भाषा की इकाई मानते हुए सावयव स्वीकार करते हैं। वाक्य में पद अवश्य रहते हैं, परंतु पदों का वह अर्थ वाक्यार्थ पर ही निर्भर है अर्थात वाक्य में प्रयुक्त पद ही सार्थक होते हैं। वाक्य में एक उद्देश्य निहित होता है। पदों का प्रयोग इसी निहित अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए है। इसीलिए आचार्य प्रभाकर स्वीकार करते हैं कि पद की शक्ति शुद्ध अर्थ में नहीं, वरन अन्वित सम्बन्ध युक्त अर्थ में है। अन्विताभिधानवाद भी कई प्रकार के माने गए हैं, जो निम्नलिखित है–

कार्यान्विताभिधान

शब्द बोध कार्यत्व विषयक होता है। अतः कार्यत्व बोधक लिङ्ग आदि का प्रयोग जिस वाक्य में नहीं होता, उससे शाब्दबोध नहीं होता। यही प्रभाकर का मत है।

इतरान्विताभिधान

इसके अनुसार इतर अर्थ का पदान्तर से होता है। नैयायिक अन्विताभिधानवाद को स्वीकार नहीं करते। जयन्त भट्ट ने अन्विताभिधानवाद का खंडन करते हुए कहा है कि समग्र वाक्य को अर्थ का बोधक मानने पर ज्ञान प्राप्त करना ही असंभव हो जायेगा, क्योंकि वाक्यों की संख्या अनंत है। दूसरी बात यह है कि ज्ञान यदि वाक्यार्थ पर ही निर्भर है तो शब्दों का प्रयोग निरर्थक

है। तीसरी बात यह है कि अन्विताभिधानवाद में गौरव है, क्योंकि इसमें पहले प्रकृति-प्रत्यय का अन्वय और पुनः पदार्थों का अन्वय होता है। आचार्य प्रभाकर अर्थ को पहले से ही समन्वित मानते हैं, परंतु आचार्य कुमारिल के अनुसार पद पहले अपने अर्थ को अभिव्यक्त करता है तथा पुनः अन्य अर्थों से सम्बद्ध होता है।

तात्पर्यवाद

वाक्यार्थ बोध के संदर्भ में तात्पर्यवाद का भी अपना विशिष्ट महत्व है। नैयायिक प्रायः अभिहितान्वयवाद के ही समर्थक हैं। परंतु कुछ नैयायिक तात्पर्यवाद को भी स्वीकार करते हैं। इसका प्रतिपादन करते हुए श्री जयन्त का कहना है कि शब्द का मुख्यार्थ अभिधा से अभिव्यक्त होता है परंतु यह शब्द का व्यष्टि रूप है। इसके अतिरिक्त शब्दों का एक समष्टि रूप भी है, जो वाक्य में प्रयुक्त होने पर ज्ञात होता है। इस प्रकार शब्द व्यष्टि रूप और समष्टि रूप दोनों अर्थों का प्रतिपादन करते हैं। अभिधा से शब्द का अभिधेयार्थ ग्रहण होता है। परंतु वाक्य के समष्टि रूप अर्थ अर्थात वाक्यार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए एक अतिरिक्त शक्ति को स्वीकार करना आवश्यक है। यह अतिरिक्त शक्ति तात्पर्य है। यह शक्ति तब तक कार्यरत रहती है, जब तक वाक्यार्थ अभिव्यक्त नहीं हो जाता द्य7 इस तात्पर्य-शक्ति को स्वीकार करना आवश्यक है। वाक्य का प्रयोग करने वाला किसी तात्पर्य को अभिव्यक्त करने के लिए ही वाक्य का प्रयोग करता है। आचार्य कुमारिल भी स्वीकार करते है कि जिस प्रकार चूल्हे में जलती हुई प्रत्येक लकड़ी का कार्य या उद्देश्य भोजन पकाना है, उसी प्रकार वाक्य में प्रयुक्त प्रत्येक पद का प्रयोजन वाक्यार्थ बोध ही होता है द्य8 इस दृष्टि से जयन्त तात्पर्यवाद का समर्थन करते हैं। वे एक रूपक के द्वारा इसे स्पष्ट करते है कि प्रज्ञा एक लता है, व्युत्पत्ति इसका मूल है, पद अंकुर है, पूर्वश्रुत वर्णो का संस्कार पत्ते हैं, पदों के अभिधेयार्थ इसके कुसुम है और वाक्यार्थ इसका फल है द्य9 इस रूपक से स्पष्ट है कि श्री जयन्त तात्पर्य को एक पृथक मान्यता प्रदान करते हैं। यह वक्ता का अभिप्राय है। परंतु अधिकांश नैयायिकों का कहना है कि वक्ता का तात्पर्य प्रकरण से स्पष्ट हो सकता है। शब्दों का प्रयोग जिस सन्दर्भ में होता है, उसका ज्ञान आवश्यक है परंतु यह सन्दर्भ-ज्ञान पदों तक सीमित है। श्री जयन्त इसे वाक्यार्थ मानते हैं।

निष्कर्ष :

अंत में निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि वाक्यार्थ बोध में अभिहितान्वयवाद, अन्विताभिधानवाद एवं तात्पर्यवाद का अपना-अपना विशिष्ट महत्व है। फिर भी, अभिहितान्वयवाद अत्यधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है जिसे नैयायिक भी स्वीकार करते हैं। जब हम किसी कविता या संस्कृत के श्लोक का अर्थ जानना चाहते हैं तो उसके सभी शब्दों का अलग अर्थ जानने का प्रयास करते हैं तभी वाक्य के अर्थ का बोध होता है। इसके अतिरिक्त किसी भी वाक्य में संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया आदि विभिन्न शब्दों का प्रयोग होता है। यदि इन शब्दों का अर्थ भिन्न-भिन्न नहीं होगा तो इनका संज्ञा, सर्वनाम आदि में विभाजन भी नहीं होगा। यह अभिहितान्वयवाद की दृष्टि है। अतः अभिहितान्वयवाद सभी मतों में अत्यधिक संगत एवं समीचीन मालूम पड़ता है।

सन्दर्भ :

1. आकांक्षा योग्यता सन्निधिश्च वाक्यार्थ-ज्ञाने हेतु-तर्कसंग्रह
2. यत्पदेन बिना यस्यानुभावकता भवेत् आकांक्षा-न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ,पृष्ठ 84
3. कारि0, 83
4. तत्वचिंतामणि
5. कारि0, 82
6. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ,पृष्ठ 84
7. अभिधात्री मता शक्तिः पदानां स्वार्थनिष्ठता।
   तेषा तात्पर्य शक्तिस्तु संसर्गावगभावधि द्य। - न्यायमंजरी,372
8. वाक्यार्थ मितये तेषां प्रवृतौ नान्तरीयकम्।
   पाके ज्वालेव काष्टानां पदार्थप्रतिपानम् द्य। - श्लोक वार्तिक, वाक्यधिकरणम् , श्लोक 343
9. सेयं व्युत्पत्तिमूला पदविसरस मुद्भिद्यभानांकुरश्रीः संस्कारोदारपत्रा कुसुमचयवती प्रोल्लसद्भि पदार्थो।
   प्रज्ञावल्ली विशाला फलति फलमिद स्वादुवाक्यार्थतत्वैः नैराकांक्ष्य लसद्भिः द्वदयमुपगतेनयान्ति यस्मिन प्रभास द्य। - न्यायमंजरी

भारतीय भाषा दर्शन में शब्दार्थ स्वरुप विचार

डॉ० विकास कुमार

सहायक प्राध्यापक (अतिथि संकाय)- दर्शनशास्त्र विभाग
गोरेलाल मेहता महाविद्यालय, बनमनखी
पूर्णिया विश्वविद्यालय, पूर्णिया

सारांश

शब्द और अर्थ (पद और पदार्थ) का सहज सम्बन्ध 'शक्ति' है। शक्ति से ही शब्दार्थ का निश्चय होता है। परंतु प्रश्न यह है कि वह अर्थ या वस्तु क्या है जिसका शब्द श्रवण के पश्चात ग्रहण होता है ? इस शब्दार्थ का स्वरुप क्या है ? कहने का तात्पर्य यह है कि पद का जिस पदार्थ से सम्बन्ध है, वह पदार्थ जाति रूप है या व्यक्तिरूप है या आकृतिरूप है अथवा इन तीनों को मिलाकर सम्मिलित रूप है ? इस विषय पर भारतीय दर्शन में अनेक मत दिए गए हैं किंतु उनमें से पाँच प्रधान है–(1) केवल जाति, (2) केवल व्यक्ति, (3) जाति विशिष्ट व्यक्ति, (4) आकृतिवाद और (5) अपोहवाद। ये पाँचों मत एक ही शब्द की भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या करते हैं। मीमांसक जातिरूप अर्थ में पद की शक्ति मानते हैं, व्यक्तिरूप अर्थ में नहीं। कुछ दार्शनिक व्यक्तिरूप अर्थ को ही मानते हैं। सांख्य आदि दर्शन के अनुसार किसी पद का अर्थ वह व्यक्ति है जो अपने गुणों के साथ प्रत्यक्ष हो सके। जैन दार्शनिक पद का अर्थ आकृतिरूप ही मानते हैं। न्यायदर्शन के अनुसार किसी पद का अर्थ जाति, व्यक्ति, आकृति तीनों का समन्वय है। इस प्रकार शब्दार्थ स्वरुप के सन्दर्भ में सांख्य ने व्यक्तिवाद, जैनों ने आकृतिवाद, मीमांसकों ने जातिवाद, बौद्धों ने अपोहवाद तथा नैयायिकों ने जात्याकृतिव्यक्तिवाद के विचारों को रखकर भारतीय भाषा दर्शन में अपनी एक विशिष्ट महत्ता प्रदान की है।

भारतीय भाषा दर्शन में शब्दार्थ स्वरुप विचार

भाषा से सम्बंधित समस्याओं (जैसे–शब्द का स्वरुप, शब्दार्थ सम्बन्ध, शब्दार्थ स्वरुप, वाक्यार्थ विचार आदि) के दार्शनिक विवेचन में भारतीय दार्शनिकों ने शब्दार्थ स्वरुप विचार पर भिन्न-भिन्न मत दिए हैं। पद (शब्द) के स्वरुप तथा पद और पदार्थ (अर्थ) के बीच विद्यमान सम्बन्ध के साथ ही इस विषय पर भी शास्त्रकारों का मतभेद रहा है कि अर्थ का स्वरुप क्या है ? अर्थात पद का संकेतितार्थ क्या है ? अथवा पद की शक्ति कहाँ रहती है ? शब्दार्थ क्या है ? अर्थ के साथ शब्द का एक सहज सम्बन्ध होता है जिसे शक्ति कहा जाता है। इस संबंध के द्वारा ही शब्द से अर्थबोध होता है। शक्ति से ही शब्दार्थ का निश्चय होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि वह अर्थ या वस्तु क्या है? इस शब्दार्थ का स्वरुप क्या है ? कहने का तात्पर्य यह है कि पद (शब्द) का जिस पदार्थ (अर्थ) से सम्बन्ध है, वह पदार्थ (वस्तु) जातिरूप है अथवा व्यक्तिरूप है या आकृतिरूप है या व्यक्ति विशिष्ट जातिरूप है ? इस विषय पर भारतीय दर्शन में अनेक मत हैं किंतु उनमें से पाँच प्रधान हैं–(1) केवल जाति (जातिवाद), (2) केवल व्यक्ति (व्यक्तिवाद), (3) जाति विशिष्ट व्यक्ति (जात्याकृतिव्यक्तिवाद) (4) आकृतिवाद और (5) अपोहवाद। ये पाँचों मत एक ही शब्द की भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या करते हैं। इस संबंध में प्रचलित विभिन्न मतों का सार इस प्रकार है :-

(1) व्यक्तिवाद (सांख्य मत)–

सांख्य दर्शन के अनुसार शब्द का श्रवण कर हम व्यक्ति का ही ग्रहण करते हैं। व्यक्ति सावयव तथा सगुण द्रव्य है। द्रव्य गुणों का आश्रय या अधिष्ठान है जिसका हमें इंद्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष होता है। गुण बिना द्रव्य के नहीं रह सकते। इनकी अभिव्यक्ति किसी मूर्ति के माध्यम से होती है। इस मूर्ति को ही व्यक्ति कहते हैं। उदाहरणार्थ–'गो' एक व्यक्ति है। हम कहते हैं कि 'गाय बैठी है',

'गाय चरती है' आदि। गति, विश्राम आदि गाय के विभिन्न गुण या धर्म हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष होता है। हम गुणों या धर्मों के आधार पर गुणी या धर्मी द्रव्य की सत्ता स्वीकार करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि 'गो' तो एक मूर्ति है, व्यक्ति है जिसका ज्ञान हमें 'गो' शब्द सुनकर होता है। इस प्रकार 'गो' का अर्थ 'गो जाति नहीं, व्यक्ति है'। जाति तो नित्य है और एक है परंतु व्यक्ति अनित्य अनेक है। अत: शब्द तो व्यक्तिवाचक ही होते हैं, इन्हीं को जाति-वाचक भी मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए 'गो' का अर्थ तो गो-व्यक्ति (एक गाय विशेष) है परंतु इसे ही जातिवाचक (गो जाति) मान लिया जाता है। पद का अभिप्रेत अर्थ होता है- विशिष्ट व्यक्ति। उदाहरणतया जब कोई कहता है कि गाय लाओ तो इससे 'गाय' व्यक्ति का ही ज्ञान होता है। 'गाय' शब्द से जाति को अभिप्रेत मानने पर भी जाति के अंतर्गत व्यक्ति की सत्ता माननी होगी अन्यथा व्यक्ति का बोध ही कैसे हो सकता है ? इस मत के विरुद्ध यह आक्षेप किया जाता है कि यदि शब्द व्यक्तिवाचक है तो इससे जातिगत किसी व्यक्ति का बोध हो सकता है। अत: एक विशेष व्यक्ति का बोध कैसे ? 'गो' कहने से काली गाय ही क्यों समझते हैं ? अत: 'गो व्यक्ति होते हुए भी जातिगत व्यक्ति है। इसमें जाति से भिन्न व्यक्ति का बोध नहीं होगा। लिंग, वचन और कारण आदि भी व्यक्ति की ही विशेषता बताते हैं। सूर्य, चंद्र आदि कई ऐसे पदार्थ भी हैं, जिनकी जाति नहीं होती। अत: शब्द का संकेतितार्थ व्यक्ति है।

(2) आकृतिवाद (जैन मत) –

जैन दार्शनिक आकृतिरूप अर्थ का ही ग्रहण मानते हैं। शब्द का संकेतितार्थ आकृति (सामान्य-विशिष्ट-विशेष) है1। किसी शब्द को सुनकर हम आकृति विशेष का ज्ञान प्राप्त करते हैं। आकृति तो किसी वस्तु विशेष का स्वरुप है जो किसी स्थान में विद्यमान रहता है[2]। इसे हम व्यक्ति का स्वरुप लक्षण कह सकते हैं। उदाहरणार्थ–'गो' का स्वरुप लक्षण 'गल कम्बल' होना है। यही गो की पहचान है। अत: 'गो' शब्द को सुनकर हम गल कम्बल वाले पशु को पहचान जाते हैं। आकृति का अर्थ चित्र नहीं वरन विशेषता है। उदाहरण के लिए, गो-पशु और गो-खिलौना दोनों एक ही समान है। परंतु गो शब्द से गल कम्बल वाले पशु का ही बोध होगा, गो-खिलौना का नहीं।

ओल्डन और रिचर्ड का भी यह मत है कि शब्द का उच्चारण होने पर तत्काल ही जो बोध होता है, वह वाच्य-वस्तु का नहीं, अपितु वाच्यवस्तु की आकृति का होता है।

आकृतिवाद के विरुद्ध यह आक्षेप है कि वस्तुओं की आकृति देश काल के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं। आकार एक-सा होने पर भी कई बार पदार्थ एक जैसा नहीं होता। कई बार आकार कुछ भिन्न होने पर भी पदार्थ एक जैसा होता है। इसके अतिरिक्त आकृति को एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं ले जाया जा सकता। किसी विषय की विशेषता उसके सामान्य के बिना नहीं जानी जा सकती। केवल आकृतिगत विशेषता से बिना जाति ज्ञान के हम वस्तु को नहीं जान सकते। दूसरी बात यह है कि इस सिद्धांत में आकृति का अर्थ स्पष्ट नहीं। आकृति का अर्थ आकार है परंतु मृत्तिका से निर्मित खिलौना गो का आकार तो यथार्थ गो के समान है। क्या यह खिलौना गो शब्द का वाच्य अर्थ है।

(3) जातिवाद (मीमांसा मत) –

मीमांसा दर्शन के अनुसार जाति मात्र ही शब्द अर्थ है। शब्द का संकेतितार्थ जाति माना है3। उनका कहना है कि शब्द का मुख्यार्थ तो एक ही होगा। यदि व्यक्ति को शब्द का अर्थ स्वीकार किए जाए तो व्यक्ति के अनेक होने से एक शब्द का अनेक अर्थ स्वीकार करना होगा। इस दोष से बचने के लिए यही स्वीकार करना होगा कि शब्द का अर्थ जातिमात्र है। मीमांसक मुख्यत: तीन हैं—आचार्य कुमारिल, प्रभाकर और मण्डनमिश्र। तीनों के अनुसार शब्द का अर्थ जातिमात्र है। परंतु व्यक्ति बोध के संबंध में तीनों में भेद है।

आचार्य कुमारिल के अनुसार शब्द से केवल जाति का बोध होता है, परंतु व्यक्ति का बोध अनुमान से होता है। उदाहरणतया जब किसी व्यक्ति को एक बार गाय का बोध करवा दिया जाता है तो दुबारा वह वैसे ही पशु को देखकर समझ जाता है कि वह गाय है। आचार्य प्रभाकर के अनुसार शब्द वाचक है और इसका अर्थ (वाच्य) जातिमात्र है परंतु जाति और व्यक्ति में 'तुल्यवितिवेधता' है, अर्थात दोनों में समान सामग्री 'ग्राह्यता' है। समान सामग्री होने के कारण जातिबोधक सामग्री से ही व्यक्तिबोध होता है। मण्डनमिश्र के अनुसार शब्द शक्ति से जाति बोध होता है, परंतु व्यक्ति का बोध लक्षणा से होता है। इस प्रकार सभी मीमांसक स्वीकार करते हैं कि शब्द की शक्ति केवल जाति में है, व्यक्ति में नहीं। व्यक्ति का ज्ञान किसी दूसरे प्रकार से होता है।

इस मत के विरुद्ध कई आक्षेप किये जाते हैं। पहली बात यह है कि व्यक्ति के बिना जाति का ज्ञान संभव नहीं। व्यक्ति तो जाति का अंग है, इसके बिना अंगी (जाति) का ज्ञान संभव नहीं। दूसरी बात यह है कि यह नहीं कहा जा सकता कि शब्द से प्रत्यक्ष रूप से जाति का बोध होता और परोक्ष रूप से व्यक्ति का, क्योंकि शब्द का एक ही अर्थ होता है जिसे मुख्यार्थ कहते हैं, इससे दो अर्थ का बोध नहीं हो सकता। तीसरी बात यह है कि जाति बोध और व्यक्ति बोध में काल-भेद और प्रकृयाभेद संभव नहीं है। शब्द सुनने के बाद जाति और व्यक्ति का समान रूप से बोध होता है। अत: यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि जाति बोध पहले और व्यक्ति बोध बाद में होता है।

मीमांसकों का विचार है कि केवल व्यक्ति में संकेत मानना उचित नहीं है। व्यक्ति को ही शब्दार्थ माना जाय तो इस प्रकार से तो अनन्त व्यक्तियों के लिए अनन्त शब्दों की कल्पना करनी पड़ेगी। अत: जाति में ही शक्ति मानी जानी चाहिये। जाति व्यक्ति के बिना रह नहीं सकती, इसलिये वाक्यार्थ-बोध के लिए व्यक्ति का आक्षेप कर लिया जाता है4। जाति एक और नित्य है, इसके मानने पर अनेक जातियों की कल्पना भी नहीं करनी पड़ती। अद्वैतवादी वेदान्तियों का भी यही विचार है5। जाति में जाति की कल्पना करके जातिवाद को त्रुटिपूर्ण बताना अनुचित है क्योंकि सामान्य अथवा जाति की जाति मानना उचित नहीं है।

(4) अपोहवाद (बौद्ध मत) –

अपोह अर्थाभिव्यक्ति की एक निषेधपरक प्रवृत्ति है। बौद्ध दार्शनिकों ने मीमांसक सम्मत नित्य जाति नामक पदार्थ को नहीं माना है। सर्वेक्षणिकत्वं के सिद्धांत को मानने वाले बौद्धों ने 'गाय' पद से सारी गौओं के ज्ञान के लिए भावात्मक सामान्य को न मानकर अपोहात्मक एक अनुगत सामान्य माना है। अपोह का तात्पर्य है–'अतद्व्यावृत्ति' अर्थात तदभिन्नभेद, इस अपोह से अन्य की व्यावृति करके ही अर्थज्ञान होता है6। जैसे गाय शब्द से गाय पशु का ज्ञान अगो (जो गाय नहीं है- अश्वादि) के निषेध से होता है7। अत: बौद्धों के मत में शब्दों का अर्थ अपोहात्मक अथवा निषेधात्मक है। बौद्धों द्वारा प्रतिपादित अपोहवाद एक विशिष्ट निजी कल्पना है तथा अन्य दार्शनिकों ने इसका खंडन किया है।

(5) जात्याकृतिव्यक्तिवाद (न्याय मत) –

नैयायिकों के अनुसार पद से व्यक्ति, आकृति एवं जाति तीनों संकेतित होते हैं8। न्याय के अनुसार शब्द सुनने के बाद श्रोता को जिन अर्थो का ज्ञान होता है वे सभी अर्थ शब्दार्थ हैं अर्थात उन सभी में शब्द की शक्ति है। शब्द सुनने के बाद हमें जाति, आकृति और व्यक्ति तीनों का ज्ञान होता है। अत: महर्षि गौतम का कहना है कि शब्द या पद के अर्थ तो जाति, आकृति और व्यक्ति तीनो हैं- 'जात्याकृतिव्यक्तिवस्तु पदार्थ (न्याय सूत्र 2,2,63) यह सर्वानुभव सिद्ध है। उदाहरण के लिए 'गो' शब्द के श्रवण से श्रोता को एक विशेष जाति, एक विशेष आकार के पशु व्यक्ति का बोध होता है। अत: 'गो' की शक्ति गोत्व (जाति) में, गलकम्बल वाला पशु (आकृति) और गो (व्यक्ति) इन तीनों का ज्ञान होता है।

आकृति को लेकर न्याय में कुछ विवाद है। प्राचीन न्याय के अनुसार आकृति का अर्थ आकार-अवयवों का संस्थान है। नव्य-न्याय के अनुसार आकृति का अर्थ जाति और व्यक्ति का संबंध है। अत: प्राचीन न्याय के अनुसार जाति, आकृति और व्यक्ति शब्दार्थ हैं, परंतु नव्य न्याय के अनुसार जाति, व्यक्ति और उन दोनों का समवाय सम्बन्ध ही शब्दार्थ है।

न्याय-मत के विरुद्ध भी कई आक्षेप किये जाते हैं। पहली बात यह है कि इस मत में गौरव है, लाघव नहीं। जाति, आकृति और व्यक्ति का एक साथ ग्रहण गौरवपूर्ण है। दूसरी बात यह है कि तीनों के एक साथ बोध में क्रम नहीं बन पाता। यदि शब्द श्रवण के पश्चात श्रोता को जाति, आकृति और व्यक्ति तीनों का समान काल में ही बोध हो तो इससे पूर्वापर क्रम नहीं बन सकता। हम यह बतलाने में असमर्थ होंगे कि किसका ज्ञान हमें पहले हुआ और किसका बाद में। तीसरी बात यह है कि न्याय के अनुसार जाति और व्यक्ति में समवाय सम्बन्ध है। यह समवाय भी शब्दार्थ है। समवाय को स्वीकार करना तो कठिन है। इसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता। अत: यह पदार्थ नहीं हो सकता।

निष्कर्ष :

इस प्रकार शब्दार्थ स्वरुप के विषय में सांख्य ने व्यक्तिवाद, जैनों ने आकृतिवाद, मीमांसकों ने जातिवाद, बौद्धों ने अपोहवाद तथा नैयायिकों ने जात्याकृतिव्यक्तिवाद के विचारों को रखकर भारतीय भाषा दर्शन में भाषा से सम्बंधित समस्याओं को दूर करने में अपनी

एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। अब प्रश्न यह है कि पद की शक्ति किस अर्थ में जातिरूप, व्यक्तिरूप या आकृतिरूप है ? मीमांसक जातिरूप अर्थ में पद की शक्ति मानते हैं, व्यक्तिरूप अर्थ में नहीं। जाति के कारण ही विभिन्न व्यक्ति एक ही नाम से पुकारे जाते हैं, जैसे घट इत्यादि। घट जातिरूप अर्थ का बोध कराता है। इसी प्रकार कुछ लोग व्यक्तिरूप अर्थ को ही मानते हैं। सांख्य आदि दर्शन के अनुसार किसी पद का अर्थ वह व्यक्ति है जो अपने गुणों के साथ प्रत्यक्ष हो सके। जब हम कहते हैं कि गाय चरती है, गाय बैठती है तो हमें गो व्यक्ति का ही बोध होता है जो अपने गुणों के साथ उपलब्ध हो रही है। गो का अर्थ गो-जाति नहीं, व्यक्ति है। इसी प्रकार कुछ लोग पद का अर्थ आकृतिरूप ही मानते हैं। जैनों का कहना है कि गोपद से आकृति विशेष वाले (सींग, पूँछ, खुर वाली) पशु (गाय) का बोध होता है। न्यायदर्शन के अनुसार किसी पद का अर्थ जाति, व्यक्ति, आकृति तीनों का समन्वय है[9]। उदाहरणार्थ- गो-पद से व्यक्ति-विशेष ग्रहण होता है, आकृति विशेष की सूचना मिलती है और जाति विशेष का निर्देश होता है। अतः पद का अर्थ है–जात्याकृतिविशिष्टव्यक्तिः[10]।

सन्दर्भ

(1) न्यायकुमुदचंद्र, पृष्ठ 568

(2) डॉ सागरमल जैन : जैन भाषा दर्शन, पृष्ठ 56

(3) तंत्रवार्तिक, 1/3/3

(4) जातिमेवाकृति प्राहुवर्यक्तिसकियते यथा।
सामान्यम तच्च पिण्डानामेकबुद्धिनिबंधनमिति द्य। 'श्लोक वार्तिक (आकृति) 3, 'आकृतिस्तु क्रियार्थत्वात'–शबर भाष्य 1/3/11/33

(5) 'जातेवर्यवित्समानसम्विवत्संवेद्यत्वात' वे0 परि0 पृष्ठ 164

(6) अथ जातिवलादेवान्यतोव्यावृतम्। भवतु जातिबलात स्वहेतुपरम्पराबलाद् वान्यव्यावृत्तम्। उभयथापि व्यावृत्तिप्रतिपत्तिरस्त्येद। रत्नकीर्ति, निबंधावली, पृष्ठ 54

(7) प्रमाणवार्तिक, पृष्ठ 203

(8) न्याय सूत्र 2/2/63

(9) व्यक्तयाकृतिजातयस्तु पदार्थः। न्याय सूत्र, 2, 2, 63

(10) शक्तिर्जात्याकृतिविशिष्टव्यक्तो। सि0 मु0 , 44

समकालीन कथा साहित्य में दलित विमर्श

डॉ० चंदन कुमार

एम0 ए0 (हिन्दी), बी0 एड0, पी0 एच0 डी0 (हिन्दी)
उच्च माध्यमिक शिक्षक,
मोदनारायण इंटरस्तरीय विद्यालय,
अम्बा, शाहकुण्ड, भागलपुर, बिहार

दलित का अर्थ समाज के दबे कुचले वर्ग से लिया जाता है। किन्तु इधर कुछ वर्शो से दलित का अभिद्येयार्थ 'अनुसुचित जाति' तक सीमित रह गया है। वास्तविकता यह है कि दलित वर्ग के अन्तर्गत शोशित वर्ग के साथ-साथ आदिवासी, खेतिहर मजदुर, गरीब किसानों को भी सम्मलित किया गया है भले ही वे किसी जाति के हो।

दलित साहित्य का प्रारंभ मराठी साहित्य में सर्वप्रथम हुआ। प्रारंभ में कुछ लोगों ने इसका अर्थ यह भी लिया कि जो साहित्य स्वंय दलित वर्ग के लोगों ने लिखा वही दलित साहित्य है, किन्तु आज भारत ने अनेक भाषाओं में दलित साहित्य की रचना तमाम ऐसे लोग भी कर रहे है जो स्वंय दलित वर्ग के नहीं है।

हिन्दी में दलित विमर्श का प्रारंभ प्रसिद्ध कहानी पत्रिका सारिका के दो 'दलित विशेषांकों' से माना जाता है जो क्रमश: अप्रैल 1975 एवं मई 1975 में निकाले गये। हिन्दी के दलित कथाकारों में डॉ. एन सिंह, ओम प्रकाश वाल्मीकि, रामशिरोमणी, जयप्रकाश कर्दम, माता प्रसाद, अरविंद राही, मलखान, मोहन दास, रघुवीर सिंह आदि के नाम लिये जा सकते है।

समकालीन हिन्दी साहित्य में दलित संदर्भो की दृष्टि से शैलेष मतियानी का नाम उल्लेखनीय है। 'अहिंसा', 'जुलुस', 'हारा हुआ', 'संगीत भरी संध्या', 'माँ तुम आओ', 'अलाप', 'परिवर्त्तन', 'आक्रोश', 'सतजुगीया', आदि कहानियाँ में दलित वर्ग से संबंधित चरित्र मुख्यता तीन वर्गो में चित्रित हुए हैं। पहला वह जो भारतीय समाज की अमानवियता से लाचार होकर समझौता करता दिखाई देता है। दुसरा वह जो समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश तो व्यक्त करता है, जो किन्तु उसका आक्रोश इतना दबा होता है कि अन्त: टुट कर समझौता की विवशता को झेलता है। तीसरा वह अपनी मान मर्यादा एवं हितों के लिए समाज व्यवस्था से सीधे टकराता है। 'माँ तुम आओं' कहानी में गैर दलितों की अमानवीयता और दलित वर्ग से सम्बद्ध चरित्रों को दलित होने के बोध के स्तरों से गुजरते हुए चित्रित किया गया है। इस कहानी से दलित वर्ग से सम्बद्ध 'बच्चू' बाल चरित्र और बड़ी बाँ नारी चरित्र को गैरदलित चरित्र माधो काका दलित होने के त्रासद बोध के धरातल पर ले जाता हुआ चित्रित हुआ है। 'हत्यारे' कहानी में दलितों की भवनाओं को भड़काकर राजनीतिक करने वालों नेताओं की कुटिसत चेस्तायें अनावृत हुई है। इस बहानी में हरफल चन्द्र अपनी विरादरी को क्रांति का आहवान करता चित्रित हुआ है, हतो मैं आपलोगों से कह रहा था कि हम हरिजन भाइयों पर जोर जूल्म की हुकुमत चलाने के वे नादिरगाही जमाने गुजर चुके, जो हमारे बाप-दादाओं के पीठों पर अपने जालिम निशान छोड़ गये है। अब वक्त आ गया है कि हम हरिजन दुनियाँ में अपने नामों निशान छोड़ जायें।

इस प्रकार शैलेश भतियानी के साहित्य में भारतीय समाज के हाशिये में रहे वर्शो से उपेसित एवं शोशित दलित-जीवन संदर्भो का प्रार्याप्त चित्रण हुआ है। आठवें-नवें दशक में कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा आदि के माध्यम से दलित चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है। इस समय हिन्दी दलित-लेखन की दृस्टि से एक ओर क्रांति का स्वर बुलंद हुआ तो दुसरी ओर दलित-लेखन सहजता की ओर बदा है। हिन्दी में पहली दलित आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ' डॉ॒ भगवान दास ने लिखी। इसके प्श्चात जूठन, (ओम प्रकाश वाल्मीकि) दोहरा अभिशाप (कौशल्या बसेती) आदि आत्मकथा से पठनीय एवं विचारोत्वेजक बन पड़ी है। इसके अतिरिक्त

बिहार के रामाशंकर आर्य की 'धुतन' बिहार के किसी दलित लेखक की पहली आत्मकथा है, जिसमें एक ओर जहाॅ सवर्णो के द्वारा एक दलित के प्रताड़ित होने की कथा है, वही दुसरी ओर दलितों एवं पिछड़ों द्वारा प्रताड़ित होने की कथा है जो आत्मकथाकार के लिए मानसिक परेशानी का सबसे बड़ा सबब बनता है। दलित-साहित्य भोगे हुए यथार्थ का धधकता हुआ प्रामाणिक दस्तावेज है। वह अनुभव की आॅच पर तपकर निकला हुआ सत्य है। दलित-साहित्य के दलितों के तमाम कश्टों यातनाओं उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं के भोगे हुए यथार्थ के आधार पर प्रामाणिक एवं भार्भीक अभिव्यक्ति मिली है। दलितों का मानना है कि उनका उत्थान केवल संघर्श के द्वारा होगा। कहीं-कहीं दलित-साहित्य राजनीतिक से प्रभावित जान पड़ता है। ऐसी स्थिती में दलित-साहित्य का उत्र्र्श्य उत्तर आधुनिक विमर्श के स्थान पर उत्तर हिन्दु विमर्श के रूप में दिखाई देता है। फलस्वरूप असंतोश एवं आक्रोश की परिणति अजातिवादी क्रोध, प्रतिहिंसा और घृणा के रूप में आमने आयी है, जो निश्चित रूप से चिन्तीय है, किन्तु अब देखा जा रहा है कि दलित-साहित्य भी सहजता की ओर बढ़ रहा है। हिन्दी में दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथा साहित्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वे दलित समुदाय की पीड़ा और आक्रोश का बेबाक चित्रण करते हैं लेकिन उसकी आड़ में किसी 'दलित धर्म' या 'दलित वाद' का प्रस्ताव नहीं करते। दलित समुदाय के भीतर उनकी परंपराओं को आलोचक की दृष्टि से देखते है और जहाँ आवश्यक होता है उसकी खामियों की ओर उँगली उठाते है। हत्यारे कहानी में उन्होंने दलितो में व्याप्त अंधविश्वास को बखुबी रेखांकित किया है। अस्मितावाद से मुरकर सार्बभौम्य मउस्यता तक पहुचना उनका गंतव्य है। 'सलाम ', 'खानावदोश', 'ब्र]मास्त्र' कहानियों में द्विज पात्र दलितों का साथ देना चाहते हैं लेकिन आधी दुर चलकर ठहर जाते हैं।अभी उन्हें वैचारिक वभावात्मक रूप से पुख्ता होने में समय लगेगा। 'घुसपैठिया' कहानी में लेखक ने मेडिकल काॅलेज में दलित छात्र की दशा को रेखंकित किया है जहाँ वह शोषण के कारण आत्महत्या कर लेता है, जिसे लेखक हत्या के रूप में देखता है। इनकी कहानियों में दलित पात्रों में हीनता बोध गहराई से पैदा हुआ है, वे कई बार जाति छुपाकर जीवनयापन करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि यह समझते है कि प्रतिशोध लेने वाला यदि अपने पूर्ववर्ती जैसा हो जाता है। जातिवाद व्यवहार के बदले यदि जातिवाद व्यवहार किया जाता है तो उसका क्रम कैसे टुटेगा ? यह बाबा साहेब का मार्ग नहीं ब्राह्मण वाद का नया संस्करण है।'मुम्बई कांड' नामक कहानी में वाल्मीकि जी ने यही मुद्दा उठाया है। हमुम्बई शहर का एक जागरूक कार्यकर्ता डाॅद्द अम्बेडकर की रिती को अपमानित करने फिर अम्बेडकर समर्थकों पर गोली चलाये जाने से अत्यन्त व्यभित है वह बदला लेना चाहता है और विचार करता है कि गाँधीजी के मूर्ति को जूतों की माला पहनाये। वह इसको अंजाम देने रात्रि में अकेले जाता है रात्रि के सन्नाटे में उसे गाँधीजी की मूर्ति मासूमियत से भरी दिखाई पड़ती है वह रूक जाता है तभी उसमें अपमान व प्रतिशोध की भावना उग्र हो जाती है अखवारों की वुर्खियों व समाचारों में दिखाये गये रक्तरंजित चेहरे दिखाई देने लगते है। वह घृणा से मूर्ति को देखता है। मूर्ति के चेहरे पर उसे उपेक्षाभाव दिखाई देने लगा है। लेकिन कहानी का अंत यही नहीं होता। सुमेर का द्वन्द देर तक चलता रहता है उसकी उरिणिती इस कौंध में होती है कि मुम्बई में किसी ने मेरे विश्वास पर ज?चोट की और मैं यहाँ किसी के आस्था पर चोट करने जा रहा हुँ।नही मैं एक गुनाह का बदला दूसरे गुनाह से नहीं लुंगा''।

निसन्देह देश में जातिवाद की समस्या भयावह है आज दलित -साहित्य कें जड़-रूढ़ जातिवादी साकाजिक संरचना को बदलने की शक्ति निहित है। सदियों से शोषण का शिकार दलित वर्ग संघर्शरत है कि वह भी स्वतंत्रता, समानता व समस्या को प्राप्त कर सके जबकि प्रकृति ने किसी के साथ भेदभाव नहीं किया तो समाज में भेदभाव क्यों ? आज दलित-साहित्य सहजता की ओर बढ़ रहा है। समाज में शोशित वर्ग की समस्या को सामने लाने वाले दलित-साहित्य का भविश्य उज्जवल है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. शैलेश भतियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ-3, प्रकल्प प्रकाशन इलाहाबाद
2. आजकल फरवरी 2007

सम्पूर्ण क्रांति की अवधारणा : एक अध्ययन

डॉ० अजय कुमार सिंह

ग्राम+पो0 - एकहरी
थाना + भाया-लदनियाँ
जिला- मधुबनी-847232

संपूर्ण क्रांति का उद्घोश जयप्रकाश नारायण ने सर्वप्रथम पटना में 5 जून, 1974 को विशाल सभा को संबोधित करते हुए किया था उस समय उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि ''मैं जो आपसे कहँगा वे विचार हुँकारों से भरे होंगे। वे विचार क्रांतिकारी होंगे जिन पर अमल करना आसान नहीं होगा। बलिदान करना होगा, कष्ट सहना होगा, गोली और लाठियों का सामना करना होगा। जमीनों की कुर्कियां होगी यह सब होगा।

संपूर्ण क्रांति किसी व्यक्ति या राजनीतिक दल के विरुद्ध न होकर भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ थी। इस भ्रष्ट व्यवस्था के समूलोच्छेदन के लिए एक नैतिक उत्थान के आंदोलन की आवश्यकता को जयप्रकाश ने महसूस किया। संभवत: इसी कारण जयप्रकाश ने बिहार छात्रा संघर्ष समिति के तत्त्वाधान में चल रहे आंदोलन का नेतृत्व करना स्वीकारा। इस छात्रों को संबोधित करते हुए जयप्रकाश ने कहा था, ''यह आंदोलन संपूर्ण क्रांति की शुरूआत करता है। इसका उद्देश्य केवल छात्रा संघर्ष समिति की माँगों को मनवाना ही नहीं है, इसका उद्देश्य सीमित नहीं है अपितु इसके उद्देश्य बहुत दूरगामी एवं व्यापक है। लोकतंत्रा को वास्तविक बनाना, सुदृढ़ बनाना, जनता का राज्य कायम करना, समाज में अन्याय शोषण एवं उत्पीड़न का उन्मूलन करना, नैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रा में क्रांति लाकर नवीन बिहार का निर्माण करना तथा अंत में नया भारत बनाना है। यही संपूर्ण क्रांति है, आप इसके वाहक है, मार्ग बड़ा कठिन है विजय आपकी निश्चित है यही युग की पुकार है।''

आजादी के बाद भारतीय जनता की तकलीफें बढ़ गई है। मूल्यवृद्धि, भ्रष्टाचार, भूखमरी, बेरोजगारी का सर्वत्रा बोल बाला हो गया है। शिक्षण संस्थाएँ भ्रष्टाचार का अड्डा बन गई है। निर्धनता अपने नग्न रूप में नृत्य कर रही है। भूमिहीनों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। देश की तत्कालीन अवस्था ने जयप्रकाश को संपूर्ण क्रांति की घोषणा करने के लिए बाध्य किया। उस समय असंतोष अपनी चरम सीमा पर था। संपूर्ण जनमानस असंतोष, क्षोभ की अग्नि में जल रहा था। जयप्रकाश नारायण के अनुसार वर्त्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में सीमित लोकतांत्रिक साधनों से जनता की समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता। सरकार विशेषकर निर्वाचनों के समय नित्य नए वायदे तो करती है परंतु उन्हें पूरा करने में असफल होती है। जयप्रकाश का मत था कि संवैधानिक माध्यमों से सरकार में परिवर्तन लाने की बात में कोई दम नहीं है, क्योंकि निर्वाचन पद्धति एवं शासन में अनेक त्राुटियाँ है।

भ्रष्टाचार से मुक्ति किस प्रकार मिले इस समस्या का क्या समाधान है ? देश में ऊपर से नीचे सर्वत्रा भ्रष्टाचार का बोलबाला है। जय्रपकाश नारायण का मत था कि राजनीति एवं प्रशासन में जब तक भ्रष्टाचार रहेगा तब तक देश में भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं किया जा सकता है। जवाहर लाल नेहरू का शासनकाल भी भ्रष्टाचार से पूर्णत: मुक्त नहीं था लेकिन इंदिरा गांधी के समय में इसका सर्वत्रा बोलबाला रहा।

इस पर विचार करते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि गुजरात के छात्रा आंदोलन ने हमें इस मार्ग एक रोशनी दिखाई है। प्रारंभ में यह आंदोलन छात्रों की समस्याओं से ही संबंधित था, परंतु धीरे-धीरे उनकी मांगे देशव्यापी बन गई है। इस आंदोलन के नेताओं ने मूल्यवृद्धि, कृत्रिम अभाव तथा बेरोजगारी को समाप्त करने की मांग की थी। गुजरात की तत्कालीन भ्रष्ट सरकार को अपदस्थ करना उनकी प्रमुख मांग एवं लक्ष्य था। गुजरात के छात्रों का अनुगमन बिहार के छात्रों ने भी किया। बिहार आंदोलन का

आरंभ विधान सभा या सरकार के त्याग पत्र के साथ नहीं हुआ था। छात्राों ने तो सरकार से त्यागपत्र की मांग तब की थी जब वह कानून एवं व्यवस्था तथा शांति बनाए रखने में असफल रही थी।[11]

जयप्रकाश ने संपूर्ण क्रांति की आवश्यकता पर विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी का उन्मूलन एवं शिक्षा में आमूल परिवर्तन हमारे आंदोलन की मूल्य मांगे है। नवीन समाज के निर्माण के लिए सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों की पूत्रि क्रांति से ही संभव है। संपूर्ण क्रांति समस्त जनता की निष्ठा एवं शक्ति से ही संभव है। जयप्रकाश के अनुसार बिहार एवं गुजरात के आंदोलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्वाचित जनप्रतिनिधि पूरी अवधि भर अपने पद पर बने रहने का अधिकारी नहीं है। भ्रष्ट, अक्षम तथा दमनकारी शासन को जनता उसकी अवधि से पूर्व त्यागपत्र को बाध्य कर सकती है।

संपूर्ण क्रांति की प्रक्रिया का प्रारंभ बिहार के छात्रा आंदोलन से हुआ। भारत का प्रजातंत्रा निर्धन व्यक्तियों के सुख-दुख को भूलकर पूंजीपतियों के सुख और आराम की व्यवस्था में संलग्न रहा है। इसके दुखद परिणाम को प्रत्येक नागरिक को अपने कंधों पर ढोना पड़ा है। उदास चेहरों पर खुशी की किरण को देखना एकदम कठिन और असंभव था 16 मार्च, 1974 के बाद बिहार का जनता जीवन असंतोष, दुर्व्यवहार, आतंक और पुलिस की ज्यादतियों से परिपूर्ण हो गया। 18 मार्च 1974 को बिहार विधानसभा का घेराव किया गया इस घेराव को तोड़ने के लिए पुलिस ने भयानक लाठी चाज्र किया। इस दु:खद घटना के बाद छात्राों के ऊपर हुए प्रहार से दुखी होकपर जयप्रकाश नारायण ने बिहार छात्रा आंदोलन को अपना आशीर्वाद दिया छात्राों की प्रारंभिक मांगे सरकार के त्यागपत्र की मांग से परिवर्तित हो गई।[12]

5 जून, 1974 को 5 लाख लोगों का एक विशाल जुलूस गांधी मैदान से राजभवन के लिए निकला। इस अवसर पर आयोजित सभा में आंदोलन के कार्यक्रम के रूप में निम्नलिखित घोषणा की गई-

1. बिहार विधानसभा के भंग करने की मांग को तेज किया जाए।
2. सरकार को प्रत्येक स्तर पर निर्जीव करने की तैयारी हो।
3. कर न देने का अभियान चलाया जाए।
4. एक वर्ष के लिए विश्वविद्यालय व कॉलेज बंद कराए जाए।
5. जनशक्ति को संगठित किया जाए।

इस अवसर पर जयप्रकाश ने प्रजातंत्रा के विरोधी लोगों को प्रताड़ित करते हुए कहा, 'आप जनता से घबराते हैं जनता के आप प्रतिनिधि ? किसी तरफ से शासन करने बैठे हैं आप ? आपकी यह हिम्मत कि लोगों को पटना आने से रोक लें ? उनकी राजधानी है आपकी राजधानी है ? ये पुलिस वाले का देश है ? यह जनता का देश है अगर कोई डेमोक्रेसी का दुश्मन है तो वो लोगों के दुश्मन है, जो नेता के शांतिमय कार्यक्रमों में बाधा डालते हैं, उनकी गिरफ्तारी करते है, उन पर लाठी चलाते है, गोलियां चलाते हैं।' 15 जुलाई, 1974 को तथा 2 अक्टूबर से 4 अक्टूबर 1974 तक दो बार पटना बंद का आह्वान किया गया। साथ ही साथ ग्राम स्वराज्य की स्थापना वर्त्तमान सरकार को कर न देने की बात 4 नवम्बर का विधानसभा भंग करने के लिए विराट प्रदर्शन तथा जनता सरकार की स्थापना की घोषनाएँ इस अवसर पर की गई।

4 नवम्बर, 1974 को पटना में व्यापक स्तर पर प्रदर्शन की तैयारी हो गई। इससे पूर्व इंदिरा गांधी जयप्रकाश नारायण के बीच अक्टूबर 1974 को आंदोलन समाप्त करने के संबंध में हुई वार्ता असफल हो गई थी। बिहार और केन्द्रीय सरकार के अत्यधिक अवरोध के बाद जयप्राकश नारायण जुलूस का नेतृत्व करने को पहुँचे। पुलिस ने लाठी प्रहार किया, जिसका निशाना जयप्रकाश बने। देश के बुद्धिजीवियों ने, राजनैतिक नेताओं ने और समाज के लिए सभी लोगों ने इस जघन्य कार्य के लिए सरकार के अमानवीय व्यवहार की निंदा की।[13]

असत्य, हिंसा और दम्भी राजगद्दी के मोहपाश में बंधी हुई कांग्रेसी सरकार के प्रबल विरोध के बाद भी यह आंदोलन पंजाब, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में फैल गया। 6 मार्च, 1975 को साम्यवादी दल को छोड़कर अन्य सभी राजनैतिक दलों के सहयोग के साथ दिल्ली में एक विराट प्रदर्शन का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शन के बाद लोग सभा अध्यक्ष को एक ज्ञापन प्रस्तुत किया गया जिसकी महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित है :-

1. बिहार तथा गुजरात में नए चुनाए कराए जाए।
2. आवश्यक वस्तुओं की सस्ते दर पर व्यवस्था हो।

3. कीमतों में स्थिरता हो।
4. न्यूनतम मजदूरी की गारंटी हो।
5. आर्थिक असमानताएँ दूर हो।
6. प्रभावकारी भूमि सुधार लागू किए जाएं।
7. भूमिहीनों को भूमि तथा खेतीहर मजदूरों को उचित मजदूरी मिले।
8. पूर्ण रोजगार का आश्वासन हो।
9. विधि के शासन की स्थापना के लिए प्रजार्तंत्रिाक अधिकार और नागरिक स्वतंत्रता सुलभ हो।
10. स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों की व्यवस्था।
11. मतदाता की आयु 21 वर्ष की बजाय 18 वर्ष की जाए।
12. लोकपाल की नियुक्ति की जाए जिससे जन-जीवन भ्रष्टाचार मुक्त हो सके।

इस संपूर्ण संघर्ष की स्थिति में अंततः 25 जून, 1975 की रात्रि को राष्ट्रपति के आदेश से संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर दी गई। मीसा के अंतर्गत 26 जून, 1975 को जयप्राकश सहित देश के सभी बड़े विरोधी दल के नेताओं को बंदी बना लिया गया। नागरिकों के अधिकारों को स्थगित कर दिया गया। पूरा देश एक कारागार बन गया। 18 जनवरी, 1977 को नए चुनावों की घोषणा की गई। 19 महीनों के दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम के लिए कांग्रेस पार्टी को और विशेष रूप से श्रीमति इंदिरा गांधी को उत्तरदायी ठहराया गया। चुनावों में कांग्रेस बुरी तरह पराजित हुई। जयप्रकाश के प्रयत्नों से चुनावों से पूर्व जनता पार्टी का गठन हो चुका था और चनावों के बाद उन्हीं के आशीष से सत्तारूढ़ हो सकी।

संपूर्ण क्रांति की व्याख्या करना एक कठिन कार्य हो गया है, क्योंकि जिसे हम संपूर्ण क्रांति कहते हैं वह तो एक दूषित व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए चलाया गया एक आंदोलन है। जयप्रकाश नारायण ने 5 जून, 1974 को पहली बार संपूर्ण क्रांति शब्द का प्रयोग पटना की विशाल सभा में किया था। इस शब्द के प्रयोग के पीछे जयप्रकाश नारायण की यह भावना रही, ''आज 27-28 वर्ष के बाद जो स्वराज्य है, उसमें जनता कराह रही है, भूख है, महंगाई है, भ्रष्टाचार है, जनता का कोई काम रिश्वत के बिना नहीं निकलता, सरकारी दफ्तरों में, बैंकों में, हर जगह टिकट लेने में भी रिश्वत बगैर कम नहीं होता। हर प्रकार के अन्याय के नीचे जनता दब रही है। शिक्षण संस्थाएँ भ्रष्ट हो रही है। हजारों नौजवानों का भविष्य अंधेरे में पड़ा हुआ है। नौकरियाँ मिलती नहीं, दिन पर दिन बेरोजगारी बढ़ती जाती है। गरीबी हटाओ के नारे अवश्य लगते है लेकिन गरीबी बढ़ी है पिछले वर्षो में।[14]

जयप्रकाश नारायण ने अपनी जेल डायरी में संपूर्ण क्रांति को सामाजिक क्रांति, आर्थिक क्रांति, राजनीतिक क्रांति, सांस्कृतिक क्रांति, वैचारिक क्रांति तथा शैक्षणिक और आध्यात्मिक क्रांति के साथ रूप बताए और इन सभी क्षेत्राों में केवल सुधार और कुछ छोटे-मोटे सुधारों की ही आवश्यकता नहीं है बल्कि निराशजनक परिस्थितियें को बदलने के लिए जीवन मूल्यें को बदलने की आवश्यकता है।

जयप्रकाश नारायण इस क्रांति के लिए केवल गांधीजी द्वारा निर्धारित मार्ग अहिंसा को ही अपनाने का आह्वान करते है उनके अनुसार, 'इतिहास में जो क्रांतियाँ हुई है वे सभी मेरे विचार में राजनीतिक क्रांतियाँ थी और औद्योगिक क्रांति को छोड़कर राजनैतिक क्रांतियाँ जितनी भी हुई है वे हिस्सा के माध्यम से हुई है और हम चाहते है कि हमारे यहाँ भारत में गाँधी के मार्ग से एक सामाजिक आर्थिक क्रांति अहिंसा के साधनों से हो।

जयप्रकाश नारायण संपूर्ण क्रांति के इस विचार उत्तेजक आंदोलन को तब तक पूर्ण नहीं मानते जब तक आर्थिक क्रांति के लिए संघर्ष न हो। गरीबी दूर किये बिना वह किसी भी प्रकार की सुधार योजना को सफल नहीं मानते, लेकिन उनका यह निश्चित मत है कि संघर्ष हो अथवा गरीबी दूर करने का अभियान जनता और सरकार केवल मात्रा अहिंसक साधनों से ही अपने साध्य को प्राप्त कर सकती है। यदि हिंसक साधनों को नहीं छोड़ा गया तब देश कठिन स्थिति में पहुँच जायेगा। संपूर्ण क्रांति के आह्वान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि शोषक स्वेच्छा से कुछ नहीं करेंगे तो उनके विरुद्ध शांतिपूर्ण संघर्ष होगा। इस दृष्टि से सर्वोदय विचार गोष्ठियों का क्षेत्रा छोड़कर मौलिक समस्याओं पर अपने को केन्द्रित करने में समर्थ दिखाई दे रहा है।[15]

संपूर्ण क्रांति की दोहरी प्रक्रिया है प्रथम समाज की संरचना राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्राों में परिवर्तन और द्वितीय, व्यक्ति में बौद्धिक, सांस्कृतिक और नैतिक या आध्यात्मिक परिवर्तन साथ-साथ आने चाहिये। व्यक्ति में यह परिवर्तन व्यापक शिक्षा प्रणाली से ही संभव है जिसके फलस्वरूप पुराने मानवीय मूल्यों के स्थान पर नवीन मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की जा सकें संपूर्ण क्रांति उस समय तक पूर्ण नहीं होगी जब तक नए व्यक्ति का जन्म नहीं होता।

संपूर्ण क्रांति के उपागम क्या होने चाहिए इसका उत्तर देते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा कि गाँधी जी का सना था लोकशक्ति का जागरण। बाप के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम का मैं एक सिपाही था। क्रांति जनशक्ति से होती है न कि सरकारी शक्ति से। विश्व में कोई भी क्रांति आज तक शासन द्वारा नहीं हुई है। गांधीजी समाज परिवर्तन का मुख्य साधन राज सत्ता को नहीं मानते थे। उनके अनुसार जनशक्ति ही क्रांति का प्रमुख साधन हैं उनकी मान्यता थी कि जिस समाज के चरित्रा को यदि मानवीय रखना है तो उस समाज को समानता और बंधुत्व के मौलिक सिद्धांतों में विश्वास करना होगा। समाज में इसकी स्वीकृति लोक शिक्षण और जब जरूरी हो सत्याग्रह से प्राप्त करनी चाहिये।

जयप्रकाश नारायण संपूर्ण क्रांति का आधार सर्वोदय को मानते थे। वे कहते थे कि इस समाज के सभी लोगों को स्वार्थों के जाल को तोड़ना होगा क्योंकि जब तक लोग अपने-अपने स्वार्थों को नहीं छोड़ेंगे तब तक वह अन्य दूसरे के हित के संदर्भ में विचार भी नहीं कर सकते। जयप्रकाश नारायण वर्त्तमान लोकतंत्राीय व्यवस्था को संपूर्ण क्रांति व लोक स्वराज्य की प्राप्ति का एक साधन मानते थे। हमारे समाज में जो कुरीतियाँ हैं उनका मुकाबला करना होगा। हमारे अंदर जाति वर्ग सम्प्रदायों के कारण ऐसे गलत मूल्य संस्कार और अंधविश्वास विकसित हो गए है जिनका न्याय और समता की जीवन पद्धति से मेल नहीं बैठता इन्हें तोड़ना होगा। दलित, शोषित लोगों को भी संगठित करना होगा। जयप्रकाश नारायण गांधी जी की तरह वर्ग संघर्ष में हिंसा को कोई स्थान नहीं देते थे। उनके विचार से संघर्ष शांतिमय होना चाहिए। उन्हीं के शब्दों में, 'मेरी कल्पना के वर्ग संघर्ष का कोई स्थान नहीं है। मेरी कल्पना का वर्ग संघर्ष शांतिमय, असहयोग, सत्याग्रह रूप में होगा। इतना ही नहीं बल्कि जाति भेद जैसी कुरीतियों का उन्मूलन करना आवश्यक होगा। मनुष्य-मनुष्य का भेद हमें मिटाना होगा।'[16]

श्री जयप्रकाश ने देश में अमीरी और गरीबी का भेदभाव मिटाकर एक शोषणहीन समाज की रचना के आदर्श की प्राप्ति के लिए जन-जागरण का आह्वान किया। उन्होंने विनोबा द्वारा अनुष्ठित दान-यज्ञों में पूरा सहयोग माँगा और कहा कि इसके द्वारा ही समाज की समस्याओं का सहज समाधान हो सकेगा।[17]

संपूर्ण क्रांति की अवधारणा निश्चित रूप से बहुत अच्छी है। इस आंदोलन में समाज के सभी नवयुवकों को संगठित होकर अहिंसात्मक कार्यवाही करनी है। लेकिन विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या लोग अहिंसात्मक आंदोलन के लिए बिना प्रशिक्षण पाए इतने लंबे समय तक धैर्य रख सकते हैं। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जा कसता है कि समाज का कोई भी वर्ग इतने समय तक धैर्य धारण नहीं कर सकता। संपूर्ण क्रांति में संदर्भ में सिद्धराज ने कहा कि इस क्रांति में विश्वास करने वाले निष्काम और समर्पित सदस्यों की कमी है। इसलिए ऐसे कार्यकर्त्ताओं का संगइन करना चाहिए जो कि समाज के लिए पूर्ण रूप से समर्पित हो।[17]

मनुष्य स्वभाव से गांधी की तरह नैतिक, एम.एन.राय की तरह बुद्धिमान और विनोबा की तरह सदाचारी नहीं होता है बल्कि वह बहुत स्वार्थी व उत्तेजित भावनायुक्त होता है। अत: वह संपूर्ण क्रांति में अहिंसक रहते हुए भी कहीं हिंसक हो सकता है। इसी बात को जयप्रकाश नारायण ने इस प्रकार व्यक्त किया है कि ''यदि कोई ऐसा हिंसात्मक आंदोलन होगा जिसमें परिवर्तन की संभावना छिपी होगी तो मैं उसका विरोध नहीं करूँगा। यह बात मैंने कई बार की है लेकिन इस परिस्थिति में क्या होगा कुछ कह नहीं जा सकता। मैं अभी निराश नहीं हूँ[23] सच्चिदानंद ने इसके विपरीत विचार व्यक्त किया है कि कि संपूर्ण क्रांति से जयप्रकाश का यह भी अर्थ है कि क्रांति करते समय साधन का ध्यान रखा जाए। अत: क्रांति शांतिमय अहिंसक साधनों से ही होगा।[18]

जयप्रकाश नारायण की विचारयात्राा का यथार्थ भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान में अपना अमिट छाप छोड़ा है। सर्वोदय के आलोचकों ने सर्वोदय सिद्धांत को एक सनक बताते हुए उसे सामाजिक परिवर्तन का वास्तविक यंत्रा मानने से इंकार किया है और उसे कोरी भावुकता बताया। जे.पी. इन आलोचनाओं को निराधार बताते हुए कहा कि ''र्वाधिक, मौलिक सामाजिक क्रांति का एक ठोस कार्यक्रम है।'' उन्होंने आलोचकों विशेषकर समाजवादियों को पूर्ण कल्पित भावनाओं और पूर्वाग्रह से मुक्त होकर वैज्ञानिक दृष्टि से सर्वोदय को समझने का परामर्श दिया हैं उनके अनुसार ''सर्वोदय और समाजवादी दल के विचारों

में आश्चर्य जनक समानता है। जो कोई सर्वोदय योजना को पढ़ने का प्रयत्न करेगा उसे पता चलेगा कि इस योजना में समाजवादी दल के तात्कालिक कार्यक्रम का 80 प्रतिशत अंश निहित है। उसके अलावा समाजवादी दल के वर्ग विहिनी एवं वर्ग विहीन समाज का आदर्श भी उसे मान्य है।

संदर्भ :

1. जयप्रकाश नारायण- माई टोटल रिवॉल्यूशन, एवरी मैन्स, दिसम्बर 22, 1974
2. जयप्रकाश नारायण- संपूर्ण क्रांति के लिए आह्वान, सर्वसेवा संघ वाराणसी, 1974, पृ. 6
3. डॉ. अंजनी कुमार-जयप्रकाश नारायण राजनैतिक एवं सामाजिक विचार, जयपुर, 1987, पृ.222
4. जयप्रकाश नारायण-मेरी विचार यात्राा, भाग-2, पृ. 92
5. जयप्रकाश नारायण - संपूर्ण क्रांति के लिए आह्वान, पृ. 41
6. जयप्रकाश नारायण-टोटल रिवॉल्यूशन, सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1975, पृ. 1
7. उपर्युक्त, पृ. 8
8. उपर्युक्त, पृ. 9
9. उपर्युक्त, पृ. 10
10. जयप्रकाश नारायण, टोटल रिवॉल्यूशन, पूर्वोक्त, पृ. 9
11. उपर्युक्त, पृ. 13
12. डॉ. रघुवंश - जयप्रकाश नारायण के विचार, पृ. 223
13. उपर्युक्त, पृ. 99
14. जयप्रकाश नारायाण : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्रा, पृ. 49-50
15. डॉ. रघुवंश : जयप्रकाश नारायण के विचार, 1976, पृ. 20-22
16. जयप्रकाश नारायण : समाजवाद क्यों ?, 1981, पृ. 20-22
17. जयप्रकाश नारायण : सोशलिज्म, सर्वोदय एण्ड डेमोक्रेसी (अंग्रेजी संस्करण), 1984, पृ. 8
18. जयप्रकाश नारायण : समाजवाद क्यों ? (अंग्रेजी संस्करण), 1981, पृ. 3-4

योगवासिष्ठ में अद्वैतवाद

डॉ० अमृत कौशल

संस्कृत अध्यापक (टी.जी.टी.)
आर्मी पब्लिक स्कूल, अम्बाला कैंट, हरियाणा।
मोबाईल-9467541979

महर्षि वाल्मीकि अद्वैतवाद सिद्धान्त के पोषक थे। वे एकमात्र ब्रह्म को ही परम तत्त्व तथा सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करते थे। वे ब्रह्म को अद्वैत मानते थे। अद्वैत से अभिप्राय है कि जहां सत्ता दो या दो से अधिक न हो, वह अद्वैत है। उनके अनुसार ब्रह्म पूर्ण है तथा जो पूर्ण है उसे संख्या में नहीं बांधा जा सकता। इसी कारण महर्षि वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ योगवासिष्ठ में अद्वैतवाद (ब्रह्म) का प्रतिपादन किया अर्थात् द्वैत के न होने का सिद्धान्त। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य योगवासिष्ठ में प्रतिपादित अद्वैतवाद सिद्धान्त की समीक्षा करना है।

अद्वैतवाद का सर्वप्रथम विवेचन ऋग्वेद में अवलोकित होता है। यथा-**'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'**[1] अर्थात् वह एक ही तत्त्व है जिसे विप्रजन अनेक कहते हैं। ऋग्वेद में अन्यत्र भी कहा गया है **'एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति'**[2]अर्थात् विद्वान् उस एक ईश को नानारूपों में प्रस्तुत करते है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि **'न तु तद् द्वितीयमस्ति'** अर्थात् उसका (ब्रह्म का) कोई द्वितीय नहीं है।[3]**'महद् देवानां सुरत्वमेकम्'**[4] अर्थात् देवताओं का महान सुरत्व एक ही है। श्वेताश्वेतारोपनिषद् में प्रतिपादित है कि-

'एको देव: सर्वभूतेषु गूढ: सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा'[5]

अर्थात् एक देव ही सभी भूतों में, उनकी अन्तरात्माओं में स्थित होकर सर्वव्याप्क है।

शंकराचार्यब्रह्मसूत्र भाष्य में कहते हैं कि-

'एक एव परमेश्वर: कूटस्थनित्यो विज्ञानधातुरविद्यया मायया मायाविवदनेकथा विभाव्यते नान्यो विज्ञानधातुरस्तीति'[6] अर्थात् एक ही परमेश्वर कूटस्थ नित्यविज्ञान रूप, अविद्या रूपी माया से मायावी के समान अनेक होता हुआ प्रतीत होता है, उससे अन्य विज्ञान स्वरूप कोई वस्तु नहीं है।

महर्षि वाल्मीकि को लौकिक संस्कृत का आदि कवि कहा गया है। अत: महर्षि वैदिक संस्कृत के बाद लौकिक संस्कृत का प्रथम दार्शनिक थे, जिन्होंने अद्वैतवाद का प्रचार किया। वे अपने आध्यात्मिक ग्रन्थ योगवासिष्ठ में कहते हैं कि जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल होता है, इसलिए समस्त जगत् ब्रह्ममय है-**'यद् बींज तत्फलं विद्धि तस्माद् ब्रह्ममयं जगत्'**[7]।

महर्षि दैतवाद का निराकरण करते हुये कहते हैं-

द्वैतं यथा नास्ति चिदात्मजीवयोस्तथैव भेदोऽस्ति न जीवचित्तयो:।
यथैव भेदोऽस्ति न जीवचित्तयोस्तथैव भेदोऽस्ति न चित्तसर्गयो:।।[8]
कर्मैव देहो ननु देह एवं चित्तं तदेवाहमितीह जीव:।
सजीव एवेश्वरचित्स आत्मा सर्व: शिवस्त्वेकपदोक्तमेतत्।।[9]

यथा चिदात्मा और जीव में द्वैत नहीं है, वैसे ही जीव और चित्त में द्वैत नहीं है। जैसे जीव और चित्त में भेद नहीं है, वैसे ही शरीर और कर्म में भेद नहीं है। कर्म ही देह है, देह ही चित्त है, चित्त ही अंहकार और जीव है। जीव ही ईश्वर है वही आत्मा सब कुछ है, वही सब कुछ है, वह एक परम पद शिव है। अनुसन्धेय ग्रन्थ में अन्यत्र भी कहा गया है-

यदब्रह्मात्मापि तुर्यश्च साश्र्षविद्या प्रकृतिश्च या।

तद्भिन्नसदैकात्म यथा कुम्भशतेषु मृत्।।[10]

अर्थात् यथा सैंकड़ों घटों में एक ही मिट्टी अभिन्न सत्ता से विद्यमान रहती है उसी प्रकार प्रकृति, अविद्या, तुर्या, ब्रह्म और आत्मा यथार्थ रूप में सब एक हैं। अद्वैत की पुष्टि कठोपनिषद में भी की गई है। यथा-

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।[11]

जगत् को ब्रह्म बताते हुए योगवासिष्ठ में कहा गया है-**'ब्रह्मबृहैव हि जगज्जगच्च ब्रह्मबृहंणम्'**[12] अर्थात् ब्रह्म की बृंहा (बर्धन शक्ति) ही जगत् है और जगत् ब्रह्म का बृंहण है। जो कुछ भी यह फैला हुआ जगत जाल दिखाई दे रहा है, वह सब शुद्ध ब्रह्म ही इस प्रकार स्थित है-

यदिदंकिंश्र्चिदाभोगि जगज्जालं प्रदृश्यते।

तत्सर्वममलं ब्रह्म भवत्येतद् व्यवस्थितम्।।[13]

योगवासिष्ठ में अन्यत्र भी लिखा है कि मन, बुद्धि, अंहकार, तन्मात्रा और इन्द्रिय यह नाना रूप ब्रह्म ही है। उसमें विषय संबंधी सुख-दु:ख नहीं है-

मनोबुद्धिरहंकारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।

ब्रह्मैवसर्वनानात्मसुख दु:खं न विद्यते।।[14]

निर्वाण प्रकरण के पूर्वार्ध में महर्षि वसिष्ठ जी महादेव से पूछते हैं कि व्याप्कस्वरूप अनन्त एवं अद्वितीय चेतन ब्रह्म-तत्त्व में द्वित्व कैसे प्राप्त हुआ? एवं उसका बुद्धि से निवारण कैसे हो, तांकि जीव के दु:खों का सर्वथा नाश हो जाये। इसका उत्तर देते हुये महादेव जी ने कहा कि जब यह ब्रह्म सत्स्वरूप, अद्वितीय और सर्वशक्तिमान् है, तब उसमें यह भेद और अभेद की कल्पना ही निर्मूल है। जिस प्रकार फूल, कोंपल, पत्ते आदि लता से वास्तव में भिन्न नहीं हैं, वैसे ही द्वित्व, एकत्व, जगत्त्व आदि उस परब्रह्म से भिन्न नहीं हैं।

योगवासिष्ठ के मुमुक्षुव्यवहार प्रकरण में ऋषि वसिष्ठ ब्रह्म की एकरूपता का प्रतिपादन करते हुये कहते है कि परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक, सबका आश्रय-स्थान, नित्य चेतन, अविनाशी, समस्त जीवों में प्रकाशरूप और अनन्त विलासों का एकमात्र अधिष्ठान है।[15] वह परब्रह्म परमात्मा अजन्मा, अजर, अनादि, सनातन, नित्य, कल्याणमय, निर्मल, अमोघ, सबका परम वन्दनीय, अनन्त, समस्त, कल्पनाओं का शून्य, कारणों का भी कारण, अनुभव रूप, अवेद्य, ज्ञानस्वरूप, विश्वरूप तथा अन्तर्यामी है। यथा-

'अजमजरमनाद्यं शाश्वतं ब्रह्मनित्यं,

शिवममलमनोघंवन्द्यमुच्चैरनिन्द्यम्।

सकलकलनशून्यं कारणं कारणाम्,

अनुभवनमवेद्यं वेदतं विश्वमन्त:।।[16]

केवल एकमात्र शुद्ध चिदघन निर्मल एवं सर्वव्यापक ब्रह्म ही सदा सर्वत्र विराजमान है-**'सर्व च खल्विदं ब्रह्म नित्यं चिद्धनमव्ययम्'**[17]। वह सर्वशक्तिमान होने से जिन-जिन कौशलपूर्ण कल्पनाओं की भावना करता है, उन्हें स्वयं ही प्राप्त करता है और स्वयं ही तद्रूप हो जाता है। यथा-

''स सर्वात्मा यथा यत्र समुल्लासमुपागत:।

तिष्ठत्याशु तथा तत्र तद्रूप इव राजते।।[18]

महर्षि वसिष्ठ योगवासिष्ठ के उत्पत्ति प्रकरण में द्वैतवाद का खण्डन करते हुये कहते हैं कि जिस प्रकार रूप रहित आकाश में भ्रमवश नील, पीत आदि वर्णों की प्रतीति होती है उसी प्रकार सच्चिदानन्दमय परब्रह्म में जगत सम्बन्धी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है।[19] यह भ्रान्ति इस प्रकार की है जिस प्रकार वात रोग के कारण प्रतीत होने वाले भूकम्प, बालक को भयभीत करने के लिये निर्मित कल्पित पिशाच, नाव के चलने से प्रतीत होने वाली वृक्षों की गति प्रतीत होती है। यह जगत् मिथ्या होने पर भी चिरकाल तक स्पष्ट रूप

से दृढ़ता को प्राप्त होकर जीव के हृदयाकाश में प्रकाशित होकर बढ़ने लगता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की चेष्टाओं का अनुभव करने वाला जीव इस जगत की कल्पना करता है। जगत अविद्या रूपी नदी है, जिसका कहीं अन्त नहीं है। यह विभिन्न धाराओं में फैलती हुई शोभा प्राप्त करती है। मूढ़ पुरुषों के लिये यह इतनी विशाल है कि वे इसे पार नहीं कर सकते।[20]

महर्षि कहते हैं कि जब तक दृश्य जगत की सत्ता है तब तक यह जन्म-मृत्यु रूपी संसार का बन्धन है। दृश्य का अभाव होने पर यह बन्धन कदापि नहीं रह सकता। जैसे सुषुप्ति में स्वप्न के संसार का अभाव हो जाता है, उसी प्रकार जो यह चराचर जगत् दिखाई देता है इसका कल्प के अन्त में अभाव हो जाता है। तदनन्तर निष्क्रिय, अपरिच्छिन्न नाम-रूप से रहित कोई अव्यक्त अनिर्वचनीय वस्तु ही शेष रह जाती है। विद्वानों ने व्यवहार निर्वाह के लिये उस सत्यस्वरूप परब्रह्म के लिये ऋत्, आत्मा, ईश्वर तथा सत्य आदि नाम रखे हैं। जैसे कि योगवासिष्ठ में प्रतिपादित किया गया है-

यदिदंदृश्यते सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्।
तत्सुषुप्ताविव स्वप्नः कल्पान्ते प्रविनश्यति।।
ततः स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम्।
अनाख्यमनभिव्यक्तं सत्किंचिदवशिष्यते।।
ऋतमात्मा परं ब्रह्म सत्ममित्यादिका बुधैः।
कल्पिता व्यवहारार्थं तस्य संज्ञा महात्मनः।।[21]

समस्त जगत् अद्वैत ब्रह्म पर ही आधारित है। जिस प्रकार स्वर्ण से निर्मित कड़ा स्वर्ण ही होता है, कड़े का स्वरूप भी स्वर्ण के स्वभाव के अन्तर्गत है, कड़े के स्वभाव के अन्तर्गत नहीं। उसी प्रकार यह दृश्यमान जगत भी अपने परिच्छिन्न स्वभाव को त्याग देने पर ब्रह्मभाव में ही प्रतिष्ठित होता है, जगत शब्द के अर्थ में नहीं। तात्पर्य है कि स्वर्ण में ही कड़े की कल्पना हुई है कड़े में नहीं। उसी प्रकार ब्रह्म में जगत की कल्पना हुई है, जगत में नहीं। अतः जगत ब्रह्म से भिन्न नहीं है। यथा-

यथा कटकशब्दार्थः पृथक्त्वार्हो न काञ्चनात्।
न हेम कटकात्तद्वज्जगच्छब्दार्थता परे।।[22]

द्धअन्यत्र भी कहा गया है) जगत परब्रह्म परमात्मा से उसी प्रकार भिन्न नहीं है, जिस प्रकार कालिमा काज़ल से भिन्न नहीं है, शीतलता वर्फ से पृथक् नहीं है। यथा मरुभूमि में प्रतीत होने वाली मृगतृष्णा में जल नहीं है तथा नेत्रदोष से प्रतीत होने वाले द्वितीय चन्द्रमा में चन्द्रत्व नहीं है, उसी प्रकार निर्मल परमात्मा में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने पर भी जगत नाम की कोई वस्तु नहीं है।[23]

जिस प्रकार स्वप्न देखने वाला पुरुष अपने लिये नगर का निर्माण कर लेता है, उसी प्रकार यह चेतन आत्मा भी पृथिवी आदि की सृष्टि कर लेता है। वास्तव में उस समय भी वह असंग चेतन आत्मा ही रहता है। जगत् का बीज है पञ्चतन्मात्राएं और उनका बीज है अविनाशी चेतन आत्मा। जो बीज है वही फल होता है क्योंकि उपादान कारण और कार्य में भेद नहीं होता। इसलिये समस्त जगत ब्रह्ममय ही है। यदि पञ्चभूतों की पञ्चतन्मात्राएं ब्रह्मस्वरूप हैं तो उनके कार्य रूप स्थूल पञ्चमहाभूतों को भी ब्रह्म ही समझों। अतः सिद्ध होता है कि समस्त जगत् अद्वैत ब्रह्म ही है।[24]परमात्ममयी अद्वैत शक्ति ही द्वैत और अद्वैत के भेद से जगत के निर्माण की लीला करती हुई विस्तार को प्राप्त होती है। यथा-

सदा सर्वं सदेवेदं नेह द्वित्वान्यते क्वचित्।
विद्येते विद्ययाव्याप्तं जगन्नेतरया धिया।।[25]

जैसे तरल होने के कारण जल ही अपने में आवर्त रूप में प्रतीत होता है उसी प्रकार चित्त रूप होने के कारण आत्मा ही अपने में जगत् सा प्रतीत होता है। जगत इससे कोई भिन्न पदार्थ नहीं है।[26] क्योंकि जो वस्तु का विलास होती है वह उससे कदापि भिन्न नहीं होती।[27]

महर्षि वसिष्ठ जी कहते हैं कि जैसे स्फटिक-शिला के भीतर भेद न होने पर भी उसमें प्रतिबिम्बित वन पंक्तियों का भेदपूर्वक समावेश प्रतीत होता है। उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्म में अभिन्न रूप से स्थित जगत और अहं के अज्ञान के कारण भेद की प्रतीति होती है। वास्वत में वह ब्रह्म का अपना चिन्मय स्वरूप ही होता है।[28]यथा अग्नि में जो प्रकाश है, वह उससे भिन्न न होकर

भी भिन्न सा प्रतीत होता है। उसी प्रकार ब्रह्म में जो यह जगत रूपी प्रकाश है वह उससे भिन्न न होकर भी भिन्न रूप से दिखाई देता है।[29] यहां पर केवल अज्ञान ही इसका कारण है।

महर्षि वसिष्ठ जी राम से कहते हैं कि जिस प्रकार एक ही दीपक से सैंकड़ों दीपक जल जाते हैं उसी प्रकार एक ही परम वस्तु चेतन अपने संकल्प से मानो नानात्व को प्राप्त हुआ है। मनुष्य चित्तमात्र ही है। चित्त के हट जाने पर यह जगत शान्त हो जाता है। मलदोष से मलिन नेत्रों से व्यक्ति जैसे चन्द्रमा आदि में दो आकृतियां देखता है, वैसे ही भ्रम से आक्रान्त हुआ जीवात्मा परमात्मा में द्वैत देखता है अर्थात् जीव और ईश्वर में भेद का दर्शन करता है। यह सब भ्रमवश चित्त का नृत्य-भाव संकल्प मात्र है।[30] जीवात्मा चित्त के संकल्प द्वारा ही स्थूलता को प्राप्त होता है और 'मैं उत्पन्न हूँ', मैं जीवित हूँ', 'मैं देखता हूँ', मैं संसार को प्राप्त करता हूँ, इत्यादि रूप से मिथ्या भ्रम का दर्शन करता है।[31]

निराकार ब्रह्म में विश्व उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार निश्चल होने के कारण सौम्य आकार वाले महासागर के जल में बड़ी-बड़ी लहरें विद्यमान रहती है। **यथा-'एकं यथा स्फुरति वारि तरंगभंगैरेवं परिस्फुरति चिन्नच किंचिदेतत्'**[32]। पूर्ण से पूर्ण का पसार होता है। जो पूर्ण में स्थित है वह पूर्ण ही है। अतः जगत कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ, जो उत्पन्न हुआ वह तत्स्वरूप (ब्रह्म) ही है। वह परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म, अत्यन्त अणु से भी अधिक अणु, परम शुद्ध, सूक्ष्म, शान्त और आकाश के मध्य भाग से भी बढ़कर निर्मल है। दिशा, काल व परिणाम से उसका स्वरूप सीमित नहीं है, वह अत्यन्त व्यापक है। उसका आदि-अन्त नहीं है। वह स्वयं प्रकाश स्वरूप है। दूसरे किसी के प्रकाश से वह प्रकाशित होने योग्य नहीं है।[33]

सदा उदित रहने वाला चेतनरूपी स्वयं ही अपने विचित्र रसोल्लास से युक्त चाँदनी और महान् चिन्मय प्रकाश बनाकर प्रकट हुआ। अपने चैतन्य स्वरूप के ज्ञान के आलोक से दृश्य प्रपञ्चरूपी अज्ञानान्धकार के नष्ट हो जाने पर वह चेतन आत्मा रूपी चन्द्रमा स्वयं ही पूर्णता को प्राप्त होकर उदित एवं प्रकाशित होता है और स्वयं ही जड़तावश स्थावर आदि पदार्थों में अहं भाव करने से सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है। चिन्मय महाकाशरूप ब्रह्म स्वयं ही अविचार दशा में स्पन्दशील प्राण आदि में आत्मभाव की कल्पना करने पर स्पन्दी अर्थात् संसारी हो जाता है। फिर विचार करने से 'मैं चेतन ही हूँ', इस प्रकार जब चैतन्य ज्ञान का उदय होता है तो वह पुनः पूर्ववत् अपने स्वरूपभूत चैतन्य में प्रतिष्ठित होता है। यह जगत चेतन रूपी दृष्टि का ही प्रकाश है। अतः ब्रह्म दृष्टि से तो यह ब्रह्मस्वरूप है।[34]

अज्ञानियों की जो समझ है उसी में 'जगत' शब्द का ब्रह्म से भिन्न अर्थ भासित होता है। वास्तव में ब्रह्म, जगत् और स्व इन शब्दों के अर्थ में कोई भेद है ही नहीं। नाम और रूप रहित चेतन ब्रह्म ही निर्विकार भाव से सर्वत्र विराजमान है।[35] ज्ञानवान् पुरुष सब प्रकार की सारी भ्रान्तियों को सच्चिदानन्द परब्रह्म के अन्दर सदा स्थित जानता है।[36]

ब्रह्म से लेकर कीट पर्यन्त बुद्धि वृत्ति का भ्रम रूप जगत असत् ही है। क्योंकि परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होने पर इसका वाध हो जाता है। यह जगत् ही मिथ्या ही उत्पन्न हुआ है, मिथ्या ही बढ़ता है, मिथ्या ही रूचिकर प्रतीत होता है और मिथ्या ही लय को प्राप्त होता है। शुद्ध सर्वव्यापी ब्रह्म अनन्त और अद्वितीय है।[37]

ृान्त, सर्वात्मक, जन्मरहित, अद्वितीय, आदि और मध्य से शून्य, निर्द्वन्द, माया के कार्य से रहित, जगत रूप में नाना सा प्रतीत होता हुआ भी वास्तव में एक, विशुद्ध, ज्ञानस्वरूप, अजन्मा सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही है।[38] जो कुछ जगत जन्म लेता, नष्ट होता, गमन करता अथवा स्थित रहता है, वह सब ब्रह्म के द्वारा ब्रह्म ही वर्तता है। कारण, कर्म, कर्ता, जन्म, मरण और स्थिति यह सब ब्रह्म ही है। उसे विना कोई दूसरी कल्पना है ही नहीं। यह सारा जगत परमात्मा ही है।[39]

महर्षि वाल्मीकि के अनुसार ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। ब्रह्म अपिरभाषेय, निर्विकल्प, अवर्णनीय, तथा अचिन्त्य सत्य है।

योगवासिष्ठ में कहा गया है कि परब्रह्म सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न है और उसमें सब वस्तुयें हैं। वह सदा ही सब प्रकार से सब कुछ है, सब के साथ और सब जगत है। वह परम तत्व है जिसमें सब कुछ है, जो सब ओर है, जो पूर्ण रूप से सब कुछ है, जो कि सदा और सब जगह पूर्णरूप से स्थित है।

स्र्वशक्ति परं ब्रह्म सर्ववस्तुमयं ततम्।
सर्वदा सर्वथा सर्वे सर्वैः सर्वत्र सर्वगम्।।[40]
यस्मिन्सर्वे यतः सर्वे यत्सर्वं सर्वतश्च यत्।
सर्वे सर्वतया सर्वे तत्सर्वे सर्वदा स्थितम्।।[41]

योगवासिष्ठ में ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण अन्यत्र भी कहा गया है-

'परं ब्रह्मैव तत्सर्वमजरामरमव्ययम्'[42]

'सर्वमेकमनाद्यन्तमविभागमखण्डितम्'[43]

'सर्वशक्ति परं ब्रह्म सर्ववस्तुमयं ततम्।

सर्वदासर्वथा सर्वं सर्वैः सर्वत्र सर्वगम्।।[44]

अर्थात् सब कुछ अजर, अमर, अव्यय, अनादि, अनन्त, खण्ड और विभाग रहित परम ब्रह्म ही है। परम ब्रह्म सदा ही सब प्रकार से सब कुछ है। वह सब में और सर्वत्र है।

योगवासिष्ठ में कहा गया है कि-

विचार्य यदनन्तात्मतत्वं तन्मयतां नय।

मनस्ततस्तल्लयेन तदेव भवति स्थिरम्।।

यथैवभावयत्यात्मत्मा सततं भविष्यति स्वयम्।

तथैवापूर्यते शक्त्या शीघ्रमेव महानपि।।[45]

भाविता शक्तिरात्मानमात्मतां नयति क्षणात्।

अनन्तमखिलं प्रावृड् मिहिका महती यथा।।[46]

उपर्युक्त कथनों का अभिप्राय है कि अनन्त आत्मतत्त्व का विचार करके मन को तन्मय बनाने का यत्न करना चाहिए। मन के तल्लीन होने पर वह स्थिर हो जाता है। आत्मतत्व ब्रह्म में मन को स्थिर करने से प्राणों सहित मन ऐसे लीन हो जाता है जैसे कि भोग्य पदार्थों का क्षीण होने पर हो जाता है। आत्मा जैसे जैसी भावना करता है, वह शीघ्र ही वैसा ही हो जाता है और वैसी ही शक्ति से पूर्ण हो जाता है। जैसे बरसाती नाले बारिश होने से बड़ी-बड़ी नदियां बन जाते हैं वैसे ही भावना द्वारा मन आत्मा होकर अनन्त और सब कुछ हो जाता है अर्थात् अपने आपको ब्रह्म समझते समझते वह स्वयं ब्रह्म बन जाता है।

मुण्डकोपनिषद् में कहा है कि--

'स यो ह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति'[47]

अर्थात् वह जो उस परम ब्रह्म को जानता है, स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है। ब्रह्म की प्राप्ति कर लेने पर 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति होती है। जैसा कि योगवाशिष्ठ में कहा गया है कि-

ब्रह्माहं त्रिजगद्ब्रह्म त्वं ब्रह्म खलु दृश्यभूः,

द्वितीया कलना नास्ति----------।।[48]

अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ, तूं ब्रह्म है, तीनों जगत् ब्रह्म हैं, सारी दृश्य वस्तुएं ब्रह्म हैं, दूसरा कुछ भी नहीं है।

सर्वं ब्रह्मैव नह्यस्ति तद्विना कल्पनेतरा।।[49]

अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है। उससे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

योगवासिष्ठ में स्पष्ट रूप से उद्घोषणा की गई है कि यह सारा जगद्रूप प्रपञ्च मिथ्या ही है, क्योंकि सत्य तो केवल ब्रह्म है और उस ब्रह्म के साथ मेरा अद्वैतभाव है, इसमें सारे वेदान्त हैं, गुरूओं के वाक्य प्रमाण है और ज्ञानियों का अपना अनुभव भी यहां पर प्रमाण है-

अयं प्रपञ्चो मिथ्यैव सत्यं ब्रह्माहमद्वयम्।

अत्र प्रमाणं वेदान्ता गुरवोऽनुभवस्तथा।।[50]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि जगत् में जड़ या चेतन जितने पदार्थ हैं, वे सब ब्रह्म से अभिव्यक्त होने के कारण ब्रह्म का ही रूप है। जिस प्रकार महासागर में तरंग आदि सब जल का रूप होते हैं, उसी प्रकार अनेक पदार्थों से समन्वित यह चराचरात्मक सारा जगत् ब्रह्म ही है। महर्षि वसिष्ठ कहते हैं कि यह सारा जगत् ब्रह्म ही है, क्योंकि सत्त्व, सत्ता अथवा तत्व के बोध से ऐसा

ही सिद्ध होता है-**'ब्रह्मैव जगदित्येतत्सर्व सत्त्वावबोधतः'**।[51] **योगवासिष्ठवासिष्ठ** में अनेक प्रकार से ब्रह्म और जगत् की सत्ता में अभिन्नता तथा एकरूपता आदि की स्थापना करता है, परन्तु इसके लिये ब्रह्मदृष्टि का होना अनिवार्य है-

ब्रह्मदृष्टि: परा दृष्टिर्योगवासिष्ठदर्शने।
निरूपिता च सर्वत्र सत्यबोधानुरूपतः।।
जगतिब्रह्मभावत्वं द्रष्टव्यं च ततो बुधैः।
चराचरस्वरूपत्वे स्वरूपत्वे तथैव च।।[52]

इस विवरण से योगवासिष्ठ में 'सर्व ब्रह्म' अर्थात् ब्रह्म सिद्ध होता है।

संकेत सूची

1. ऋ.वे.1 164.46
2. ऋ.वे.10.114.5
3. बृ.उ.4.3.23
4. ऋक्.सं.3.55
5. श्वेताश्वेतारोपनिषद्-6.11
6. ब्र.सू.भा.1.3.18
7. यो.वा.3.13.10
8. यो.वा.3.3.10
9. यो.वा.3.65.12
10. यो.वा.6.2.49.23
11. कठोपनिषद्-2.5.9
12. यो.वा-6.1.2.51
13. यो.वा-6.1.11.16
14. यो.वा-6-2.11.43
15. यो.वा.2.10-11
16. यो.वा.3.9.76
17. यो.वा.3.9.49
18. यो.वा.3.1.8
19. यो.वा.3.-7-8
20. यो.वा.2.3-4
21. यो.वा.3.1.11-13
22. यो.वा.3.1.18
23. यो.वा.3.10-11
24. यो.वा.3.12-13
25. यो.वा.5.17.23
26. यो.वा.3.12-13
27. यो.वा.3.14
28. यो.वा.3.61
29. यो.वा.3.67

30. यो.वा.3.66-79
31. यो.वा.3.66-79
32. यो.वा.6.13.26
33. यो.वा.3.10.11
34. यो.वा.3.14
35. यो.वा.3.15-16
36. यो.वा.3.61
37. यो.वा.3.66-79
38. यो.वा.3.80-83
39. यो.वा.3.100-102
40. यो.वा.6.14.08
41. यो.वा.6.184.46
42. यो.वा.3.4.68
43. यो.वा.3.84.26
44. यो.वा.6/2.14.8
45. यो.वा.6.69.49,52
46. यो.वा.4.11.59-60
47. मु.उ.3.2.9
48. यो.वा.6.1.49.23
49. यो.वा.3.100.30
50. यो.वा.3.21.25
51. यो.वा.3.9.30
52. यो.वा.6/2.142.39

बिहार की कृषि का वित्तीय क्षेत्र के लिए चुनौतियाँ: वरीयता क्षेत्र और बैंकिंग क्षेत्र का विशेष अध्ययन

मृत्युंजय कुमार मिश्र

शोधार्थी,
वाणिज्य संकाय व्यावहारिक अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य विभाग,
मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, (बिहार)

Keyword:

अल्प धनिक तंत्र, लीड बैंक स्कीम, एन. पी. ए., वित्तीय क्षेत्र,अर्थव्यवस्था, कृषि-नीति, पूंजी-निर्माण, प्रबंधन, संसाधन, आधुनिकीकरण संसाधन, सुविधाएं।

सारांश

कृषि व्यापार नहीं जीविका का साधन है-विशेष वित्तिय सहायता देने की जरूरत है। कृषि क्षेत्र में किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य न मिलना वित्त संकट को बढ़ा देता है। बिहार की समस्या है कि इसकी करीब 9 करोड़ की आबादी का 90 प्रतिशत गॉवों में रहता है, इसके कुल श्रमबल का करीब 66 से 75 प्रतिशत तक अपनी जीविका के लिए कृषि पर ही आधारित है और इसी से अपनी रोजी-रोटी अर्जित करता है। बिहार की कृषि का वित्त संकट उसके विकास और आधुनिकीकरण की बड़ी बाधा है। बिहार की कृषि के आधुनिकीकरण की जरूरत एक मजबूरी बन गई है। कृषि का आधुनिकीकरण वित्त की बड़ी मात्रा की मांग करता है और बिहार के पास वित्त का अभाव है- यह वित्त संकट बिहार में संसाधनों की कमी परिणाम स्वरूप पैदा हुआ संकट नहीं हैं। अमूमन कहा जाता है, इसका मूल कारण है बिहार की कृषि का पिछड़ापन, जिसके कारण उत्पादन और उत्पादकता दोनों का स्तर काफी नीचा है और पूँजी निर्माण तथा किसानों की आय बढ़ने के बजाय घटती जा रही है। प्रश्न है कृषि को वैज्ञानिक आधार पर आधुनिक बनाने का और इसके लिए आवश्यक धन के प्रबंधन का। सार्वजनिक धन का आबंटन द्वारा प्रारम्भिक विकास कार्य को संगठित करके किस तरह इस काम को किया जा सकता है। बिहार के वित्त संकट को दूर करने का मात्र एक तरीका है। इसकी कृषि का आधुनिकीकरण, उत्पादन बढ़ाना और कृषि आधारित उद्योगों का विस्तार करना। मगर किस तरह सरकार की नीति में भटकाव के कारण बिहार की कृषि पीछे रह गई है।

वितीय सुधार का क्रम भारत में वर्षो से चल रहा है और जाने या अनजाने एक बौद्धिकतवका सरकारी दलीलो को ही सही मान का इसकी स्तुति का रहा है। खास कर एन. पी. ए. मजबूत वितीय संरचना आदि की बाते कर सरकार बैंको को नीजी हाथों में देने और वरीयता क्षेत्र को मिलने वालीथोड़ी सुविधाओं पर हमला करने का काम कर रही है और मनोवादी तक्रों और आंकड़ो को सामने लाकर अपना पक्ष मजबूत करने का प्रयास कर रही है। आज जरूरत है इस समस्या के तह में जाकर विश्लेषण करने की कि वितीय क्षेत्र में सरकार के बदलाव के कदम भारत की जरूरतें है या सरकार विश्व बैंक और आई. एम. एफ. के आदेशों को लागू कर रही है। यह लेख बैंको के परिपेक्ष्य में और वरीयता क्षेत्र के सम्बन्ध में एक अध्ययन करता है।

भूमिका:

1990 के बाद भारत के वितीय क्षेत्र के लिए आ रही चुनौतियाँ 1990 के पूर्व की चुनौतिओं से भिन्न दिखती है। भारत के वितीय क्षेत्र के लिए आजादी के बाद से आ रही है चुनौतियों को मूलरूप से तीन कालों में विभाजित करके देखा जा सकता है। इन तीन कालो को वित और वितीय संस्थाओं पर नियंत्रण और आर्थिक विकास के साथ समन्वय के हिसाब से विभाजित किया जा सकता है। इनमें प्रथम काल वित और वितीय संस्थाओं पर मैनेजिंग एजेन्सियो के वर्चस्व का काल रहा है जो आजादी के पूर्व से ही चला आ रहा था और अन्नत: पहली अप्रील, 1970 को कम्पनी एमेन्डमेट् बील 1967 को लागू किए जाने के बाद मैनेजिंग एजेन्सी काल हमेशा के लिए समाप्त हो गया।[1] दुसरा काल बैंको के राष्ट्रीयकरण से 1990 तक का यानि नव उदारवादी नीति को भारत द्वारा अपनाए जाने के बीच का काल है। और तीसरा काल नवउदार वादी नीति के अपनाए जाने के बाद का है। इन तीनों कालों में भारत के वितीय क्षेत्र के लिए चुनौतियाँ तो आती रही मगर उनके चरित्र में बुनियादी फक्र देखा जा सकता है। मैनेजिंग एजेन्सियो के काल में मैनेजिंग एजेंटो ने मैनेजरियल और वितीय अधिकारो पर कब्जा सा बना लिया था प्राइवेट कम्पनियो के प्रमोटरो और वितीय मददगारो की भूमिका में रहे। बैंक प्राइवेट क्षेत्र में थे इस कारण मैनेजिंग एजेन्ट्स सफलता पूर्वक बैंक पूंजी का बहाव कम्पनियों को वितीय सहायता देने में कर पाने में सक्षम बन जाते थे। योजनाबद्ध आर्थिक विकास के लिए संसाधन जुटाने में सरकार को अतिशय कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। चूँकि मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र और नीजी क्षेत्र साथ-साथ चल रहे थे इस कारण वित प्रबंधन की मैनेजिंग एजेन्सी प्रणाली जो निजी कम्पनियों के प्रबंधक थे वे वित्त का बहाव निजी कम्पनियों की तरफ करते थे, जिनका लक्ष्य व्याक्तिगत मुनाफा कमाना था। मगर सार्वजनिक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था या लक्ष्य लोक कल्याण का था। इस प्रकार निजी मुनाफा और लोक कल्याण बीच का अन्तविरोध वित्त प्रवंधन में कठिनाई पैदा कर रहा था-

सम्पति और संसाधनों का संतुलन चंद हाथों होता जा रहा था। जो भारत के संविधान के खिलाफ था। [2]इस काल में इस प्रक्रिया द्वारा लाई गई चुनौतियों के विश्लेशण और सुधार के लिए केन्द्र सरकार ने कई कमिटियों का गठन का समस्या की तह तक जाने का प्रयास किया इनमें सर ए. वी (A.V.) विश्वनाथ शास्त्री कमिटी, महालनोविस कमिटी, डॉ. आर. के. हजारी कमिटी, आई. श्री पटेल कमिटी आदी थी जिन्होंने कम्पनी एक्ट,1956 में संशोधन के कई सुझाव दिए और सरकार ने कई संसाधनों को किया भी मगर नीजि क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के बीच का टकराव कम नहीं हुआ और सार्वजनिक क्षेत्र के हित में मैंनेजिंग एजेन्सी प्रथा को सरकार को समाप्त करना और बैंकों का राष्ट्रीयकरण करना पड़ा।

बैंक राष्ट्रीयकरण के बाद की चुनौतियाँ:-

बैंक राष्ट्रीयकरण के करीब 2 साल पूर्व जुलाई, 1967 में सरकार ने औधोगिक लाइसंसिगपॉलिसी कमिटी था। सुबिमल दत कमिटी का गठ्न किया था जिसने 1969 में अपनी रिपोर्ट दी थी। जुलाई, 1969 में 14 बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद वितीय संकट को दूर करने के लिए 1964 में गठित जस्टिस के.सी.दास गुप्ता के चेयरमैन सीप में गठित और दिसम्बर 1965 में दी गई मोनोपोली इंक्यावरी कमीशन की रिर्पोट की अनुशंसओं के आधार पर इजारेदारियो पर नियंत्रण के लिए कई कानून बने। जिनमें एम. आर.टी. पी. (मोनोपोली रेस्ट्रीक्टीव ट्रेड पालिसी, फेरा (FERA) फोरन एक्सचेन्ज रेगुलेसन एक्ट आदि का निर्माण क्रिया गया[3]।इस काल में यानि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पूर्व वितीय संस्थाओं के नीजी क्षेत्र में होने के कारण उनकी कर्ज देने की नीति बड़े औधोगिक धरानों के पक्ष में थी। इसके अलावा केन्द्र और राज्यों के फिनांस कारपोरेशनो के गठन एल आई सी तथा स्टेट बैंक आफ इण्डिया आदि सार्वजनिक क्षेत्र के वितीय संस्थानों ने भी अपनी कर्ज नीति को उसी तरह ढाला- बड़े औधोगिक धरानों को ही कर्ज देने के पक्ष में। इससे योजना है। विकास के लिए धन जुटाने में समस्याएं आती रही और देश में मोनोपोली के विकास को मदद मिल रही

थी। यह मुख्य कारण था जिससे बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। जिन 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया वे देश के सम्पूर्ण कॉमर्शियल बैंको की जमा पूंजी का 72 प्रतिशत और कुल कर्ज का 65 प्रतिशत के धारक थे। 15 अप्रील 1980 को सरकार ने छः और बैकों, का जिनकी कुल जमा पूंजी 200 करोड़ रूपया से ज्यादा थी, उनका भी राष्ट्रीयकरण किया। इन 6 अन्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद देश के खजाने पर पड़ रहा मौद्रिक बोझ में कमी आई और वरीयता क्षेत्र को बैकों से मिलने वाले कुल कर्ज में प्रतिशत को कुल बैंकों की कर्ज राशि का 33.025 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया गया।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद के करीब 14 साल बाद यानि1983 तक बैंकों के विस्तार में अभूतपूर्व तरक्की देखी गई। जून, 1969 से मार्च 1983 के राष्ट्रीयकृत बैंकों की शाखाओं में 32,920 की बढ़ोतरी हुई जिनमें बैंक विहीन क्षेत्रों (Non Bank) में 19,898 और बैंक वाले क्षेत्रों (Banked Centres) में 13,022 नई शाखाओं बनी। मार्च 1983 में देश में राष्ट्रीयकृत बैंकों की शाखाओं की संख्या 41,559 हो गई और प्रतिशाखा, राष्ट्रीयकरण के पूर्व, 65,000 आबादी पायी वह 1983 में घटकर 16,000 पर आ गई। राष्ट्रीकरण के पूर्व जून, 1969 को बैंको की जमा राशि कुंल 3872 करोड़ रुपया थी। जो मार्च, 1983 में बढ़कर 45,914 करोड़ रूपया हो गई। दिसम्बर 1969 को लीड बैंक स्कीम (Lead Bank Scheme) की शुरूआत की गई वह जून, 1986 तक 700 जिलों का सर्वे कर चूकी थी।

इसके अलावा वरियता क्षेत्र को मिलने वाला कर्ज जो जून 1969 को मात्र 504 करोड़ रूपया का था वह दिसम्बर 1982 के अंत तक बढ़कर 11,867 करोड़ रूपया को गया और कृषि क्षेत्र को इसी काल में मिलने वाला (जून 1969) जो 188 करोड़ रूपया था वह दिसम्बर 1982 के अंत तक 5144 करोड़ रूपया हो गया और लधु उद्योगों को मिला कर्ज 1969 जून में 286 करोड़ से बढ़कर दिसम्बर 1982 में 430 करोड़ रूपया हो गया। इस प्रकार राष्ट्रीकरण के बाद के वर्षो में लधु उद्योगों के कर्ज में 15 गुणा की वृद्धि आँकी गई। जून 1969 से जून 1973 तक बैंकों की जमा राशि में करीब 100 प्रतिशत की वृद्धि आई रूपया 3872 करोड़ से 7570 करोड़ की हो गई। स्टेटबैंक ऑफ इण्डिया समूह की जमा राशि 1239 करोड़ से बढ़कर 2516 करोड़ रूपया हो गई और 14 राष्ट्रीयकृत बैंकों की जमा राशि 2633 करोड़ रूपयासे बढ़कर 5054 करोड़ रूपया दे गई।

राष्ट्रीयकरण ने बैंकिंग क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास दर्ज कराया फिर भी सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र को एक साथ ले चलने के परिणाम स्वरूप दोनों सेक्टरो के आर्थिक नियम कानून अपने- अपने ढंग से काम करते रहे और एक दूसरे के साथ दुश्मनागत सम्बन्ध बनाते रहे।

वितीय क्षेत्र में विकास के नियम जिस तरह से नीजि स्वामित्व वालो आर्थिक व्यवस्था में काम करते है उससे विकास तो होता है इससे भी तेज गति से एकाधिकारवाद बढ़ता है। भारत में यह देखा जा सकता है कि वित के मामले में संसाधन सरकार के हाथों में आया तो जरूर मगर बैंकों की कर्ज पॉलिसी में कोई खास बदलाव नहीं आया और भरत में इजोरदरिया बढ़ती और मजबूत होती गई। बैंकों और अन्य वितीय संस्थाओं ने बड़ी पूंजी वाली कम्पनियों को ही अपने कर्ज का ज्यादा भाग देते रहे और सरकारी साधनों के द्वारा बड़ी कम्पनिया अपना आर्थिक साम्राज्य विस्तारित करती रही।[4]

राष्ट्रीयकरण के बाद समस्या

बैंकों की कर्ज नीति को ऐसी दिशा में लाने की चुनौति थी जिससे आर्थिक क्षेत्र की मदद से बड़ी पूंजी वाली कम्पनियाँ अपना विस्तार कर जोरदार न बन सकें।

मगर इसमें सफल न होने के कारण और निजि क्षेत्र पर अंकुश न लगा पाने के कारण अन्य कठिनाइयाँ आती रही। इसमें आपके देशों द्वारा तेल की कीमत बढ़ाने पर एक बड़ी आर्थिक कठिनाई सरकार के सामने आई और भारत अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष से कर्ज लिया था। चार किस्तों में मिलने वाले कर्ज के तीन किस्त भारत द्वारा लेलिए जाने पर आई.एम. एफ. ने भारत की आर्थिक नीतियों बदलने की जब शर्ते रखी तब भारत ने अन्तिम किस्त लेने से इन्कार कर दिया। इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद जब राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने तब उन्होंने निजी क्षेत्रपर अंकुश लगाने के बदले उसके लिए अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्रों को खोल दिया[5]। इस काल में एम. आए. टी. पी. एक्ट, फेरा, मोनोपोली इन्क्वायरी कमीशन हजारी कमिटी आदि के नियमों और अनुशंसाओं को शिथिल किया गया।इसके साथ-साथ बहुत सारी बस्तुओं को लाईसेंसिस मुक्त कर दिया गया।नीजि क्षेत्र को दी गई इन सुविधाओं के कारण देश की अर्थव्यवस्था को जो नकारात्मकझटका लगा और अर्थव्यवस्था अस्थिर हुई उसका उपाय था उन गलतियों को ठीक करना मगर

पी.वी. नरसिंहा राब की सरकार ने उल्टा कदम उठाया और आजादी के बाद में एक सर्वमान्य आर्थिक नीति-स्वावलम्बी विकास नीति चली आ रही उसके ठीक विपरीत दिशा में जाने वाली नव उदारवादी विकास नीति को अपना लिया। इसके बाद से भारत का आर्थिक संकट गहराता ही चला जा रहा है।

यह लेख उन कारणों की जाँच किया है कि भारत के सामने जो आर्थिक चुनौतियाँ आज है उनका कारण क्या है और निदान क्या हो सकता है।

साहित्य समीक्षाः

इस नवउदारवादी नीति के परिणामों पर भारत में जो वहस शुरू हुई थी वह अभी भी जारी है, बिना किसी एकमत पा आए। अभिमन्यु ने भारत और भारत में बाहर के बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के पास सम्पति के जमा होने का हवाला देते हुए जैसे अमेरिका के विलियम गेट्स के पास 90 मिलियन डॉलर या 3,87,200 करोड़ रूपया भारत के विप्रो के पास 33,120 करोड़ रूपया और अम्बानी रिलायन्स के पास 31,680 करोड़ रूपया जमा होने का हवाला देते हुए उसके कुपरिणामों का विवरण दिया है[6]। पुष्पा चौहान मोनोपोली विकास और नई आर्थिक नीति में भारत के वित्तीय हालत की विवेचना करते हुए बताया है कि स्ववलम्वी विकास नीति में बदलाव के परिणाम भारत के कितने घातक है [7]। राम लोचन सिंह ने अपनी पुस्तक भारतीय राज्य सत्ता कितनी संवैधानिक [8]मे इस निष्कर्ष पर आए हैं कि नवउदावादी नीति पर देश को चलाना गैर संवैधानिक राज्य को चलाना है।

सरकारी दस्तावेज और आर.बी.आई. के दस्तावेजों में किए जा रहे है। नीति बदलावों को सही ठहराने का प्रयास मिलता है। एसे दस्तावेजों में केन्द्र सरकार और कई राज्य सरकारों के आर्थिक सर्वेक्षण है जो वरीयता क्षेत्र पर दोषारोपण करते है कि वरीयता क्षेत्र का एन.पी.ए. के कारण बैंको का घाटा लग रहा है। और विकास अवरूद्ध हो रहा हैं। इसके अलावा आर.वी.आई. के दो सरकुलरें पहली जुलाई 2015 मास्टर सरकुलर प्रायरीटी सेक्टर लेन्डिंग टारगेट्स[9]के द्वारा पता चलता है कि वरीयता क्षेत्र में बदलाव लाकर कारपोरेट सेक्टर के लिए प्रवेश का रास्ता खोला जा रहा है। एक अन्य सरकुलर के द्वारा आर.वी.आई. प्रायरीटी सेक्टर लेन्डिंग रिभाइज्ड रिपोटिंग सिस्टम[10]जो रीजनल रूरल बैंकों के लिए दिया गया है उसमें भी वरियता क्षेत्र को पुर्नपरिभाषित करके ऐसा बनाया गया है कि कारपोरेट सेक्टर का प्रवेश इनमें हो जाय-खास का वरीयता क्षेत्र में निवेश की सीमा को काफी बढ़ाकर डॉ0 मोहन कुमार और गोविन्द सिंह के लेख [11] में सरकारी मत को ही प्रतिपारित किया गया है। इस तरह बैकिंग सेक्टर के क्षेत्र में आ रही चुनौतियों पर नव उदारवादी और नव उदारवाद विरोधी मत विभाजित है।

उद्धेश्यः

इस लेख का उद्धेश्य है कि उन तथ्यों का पता लगाया जाय कि भारत के वित्तीय क्षेत्र-खास कर बैकिंग क्षेत्र का जो संकट आज आ रहा है उसका असली कारण क्या है। साथ ही यह भी पता लगाना है कि वित्तीय क्षेत्र में सुधार के नाम पर सरकार द्वारा उठाया जा रहा कदम वास्तव में जरूरी कदम है या किसी दबाव में उठाया जा रहा है इस सुधार के कदमों का परिणाम वित्तीय क्षेत्र के जानवादी चरित्र को मजबूत करेगा या देश के अन्दर एक वित्तीय अल्पतंत्र (Financial Oligarchy) की स्थापना करेगा। भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था का भविष्य किस ओर जाएगा आदि।

सैद्धान्तिकता और पद्धतिः

यह लेख एक सैद्धान्तिक फ्रेम में लिखा जाएगा जो ह्आधार और संरचनाह्न का सिद्धान्त कहा जाता है और इस तर्क पर आधारित है कि किसी समाज उत्पादन के सम्बन्ध जिस तरह के क्षेत्र है उस समाज के आधार का ह्आधारह्न वही होता है और उसी के अनुरूप उस समाज की बाहरी संरचना स्वरूप ग्रहण करती हैं। इस सैद्धान्तिक फ्रेम में लेख जिस शोध पद्धति का अनुसरण करेगा वह ऐतिहासिक ग्वेश्नात्मक पद्धति होगी जिसमें नव उदारवादी नीति में ह्आधारह्न में आ रहे बदलाव के कारण 1990 के पूर्व की बाहरी संरचनाओं का विघटन हो रहा है और समस्या आ रही है।

स्थापनाः

लेख की स्थापना है कि भारत कि वित्तीय संस्थाओं का जो स्वरूप और लक्ष्य राष्ट्रीयकरण के बाद उभरा है वह साम्राजवादी और वित्तीय पूंजी द्वारा संचालित नवउदारवादी विकास नीति जो मेथोलोजीकल इन्डी भी खुलिज्म पर आधारित है- जिसमें उत्पादन प्रक्रिया व्यक्तिगत मुनाफे के लिए की जाती है, टकरा रहा है, क्योंकि 1990 के पूर्व और जुलाई 1969 के बीच वित्तीय संस्थाओ

का स्वरूप लोक कल्याणकारी स्वरूप बना वह नवउदारवाद के साथ खड़ा रहा है। लेख की स्थापना में यह विचार कर स्थापित किया जाएगा कि वित्तीय क्षेत्र के सुधार की दिशा क्या होनी चाहिए जो भारत के जनतांत्रिक व्यवस्था को आगे बढ़ाये न कि चंद हाथों में सम्पति का संचय कराये।

आंकड़ों और सूचनाओं का विश्लेषण:-

राजीव गाँधी के शासनकाल में सार्वजनिक क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए इन स्थापनाओं के आलोक में खोला गया कि इससे तकनीकी विकास को बल मिलेगा, स्थापित उद्योगों के पूरी क्षमता का इस्तेमाल हो सकेगा रोजगार सृजन होगा आदि और 21 वीं शदी में भारत एक उन्नत राष्ट्र के रूप में प्रवेश करेगा। 21 वीं शदी में चले इस नारे का यही लक्ष्य बताया गया। यहाँ भी इस बात को आसानी से भुला दिया गया कि निजी क्षेत्र का लक्ष्य कभी भी रोजगार सृजन, आर्थिक विकास आदि का नहीं होता बल्कि उसका उद्देश्य व्यक्तिगत मुनाफा अर्जित करने का ही रहता है सार्वजनिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र के प्रवेश के क्षेत्र को विस्तारित करने के लिए लाइसेंसिंग पॉलिसी एम आर टी फी एक्ट फेरा (FERA) मोनोपोली इंक्वायरी कमीशन आदि के प्रावाधानों को जब ढीला किया गया और निजी क्षेत्र का प्रवेश-क्षेत्र बढ़ गया तब देश के सामने आर्थिक संकट धनीभूत होता गया और यह इतना गहरा गया कि देश के सामने बैलेंस ऑफ पेमेन्ट का संकट आ गया। सरकार इन नीति गत बदलाव की गलतियों को सुधारने के बजाय अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के सामने कर्ज का प्रस्ताव लेकर जाने का निर्णय किया, यह प्रक्रिया 1990 से शुरू हुई। ब्रिटेनवुड के इन दोनों संगठनों का लक्ष्य सरकार के सामने स्पष्ट था कि वे उन्हीं देशों को कर्ज देने और मल्टीनेशनल कंम्पनियों को पूँजी निवेश के लिए हरी झंडी देते हैं जो बाजार बादी आर्थिक नीति के प्रति अपनी वचन वद्धता देते है। भारत सरकार के सामने भी यह प्रश्न आई एम. एफ. और विश्व बैंक से कर्ज पाने के लिए रखा गया और भारत सरकार ने इन शर्तों को स्वीकार कर साम्रज्यवादी देशों के सामने आत्म-सम्पर्ण कर दिया। वितीय सुधार और बाजारवाद को अपनाये जाने का सिलसिला भारत में यहीं से शुरू होता है। आई. एम. एफ. और विश्व बैंक से उधार लिये जाने की क्रिया को सही सावित करने के लिए वित्तीय क्षेत्र में 'संकट' के प्रश्न को देश के सामने सरकारी और कारपोरेट प्रचार तंत्र ने जोर-शोर से लाना शुरू किया जो हकीकत नहीं था।

वास्तविकता यह थी कि भारत को आई. एम.एफ. और विश्व बैंक से उधार मिलने के लिए विश्व बैंक ने भारत के सामने जिन शर्तो को रखा था [12]। उनमें एक प्रमुख श्शर्त भारत के वितीय क्षेत्र की पूर्ण संरचना का-ऐसी संरचना जो बाजारवादी अर्थव्यवस्था और कारपोरेट हित में हो-के प्रश्नो को रखा था। और भारत की सरकार जिसे मंजूर कर चूकि थी। उसे लागू करने के लिए देश में वातावरण बनाना था। वितीय क्षेत्र की पूर्ण संरचना के संबंध में जून 1990 को विश्व बैंक ने भारत सरकार को कन्फीडेन्सियल (Confidential) रिपोर्ट; इन्डिया: फिनान्सियल सेक्टर रिर्पाट: कन्सोलिडेसन ऑफ दि फिनन्सियल सिस्टम ह्[13]। वरीयता क्षेत्र के संबंध में विश्व बैंक का फरमान था कि वाणिज्यिक बैंकों से कर्ज लने वाले बड़े कर्जदारों छोटे उद्दमियों और खेती हरों के बीच अविलम्व पुर्नपरिभाषित किया जाय।

इस प्रकार वरीयता क्षेत्र के कर्ज के निर्धारित लक्ष्य को घटाकर 20 प्रतिशत किया जाय। इसके बाद तीन साल के भीतर वरीयता क्षेत्र के कर्ज के लक्ष्य को घटाकार 10 प्रतिशत किया जायह्[14]।

यही वह परिप्रेक्ष्य था जब 1990 में नरसिंहम (प्रथम) कमिटी का गठन सरकार ने किया और अपनी रिर्पाट भी इस कमिटी को नरसिंहम कमिटी प्रथम (1991) के नाम से जाना जाता है। अपने सुझावों में नरसिंहम (प्रथम) कमिटी ने एक कदम आगे बढ़कर सुझाव दिया कि वरीयता क्षेत्र को पूर्नपरिभाषित करके इसके दायरे में सिर्फ कमजोर वर्ग को रखा जाना चाहिए और इसके कर्ज की सीमा का निर्धारण 10 प्रतिशत होना चाहिए। विश्व बैंक ने जो आदेश दिया था कि विश्व के काल में सरकार को वरीयता क्षेत्र को कर्ज देना बंद कर देना चहिए। इसके स्वीकारते हुए नरसिंहम कमिटी (प्रथम) ने सुझाव दिया कि वरीयता क्षेत्र को दिया जाने वाला कर्ज क्रमश: बंद किया जाना चाहिए और 3 वर्ष बाद यह मुल्यांकन होना चहिए कि ऐसे कर्जो की जरूरत है या नहीं। विश्व बैंक ने वरीयता क्षे्त्र के कान्सेसनल इन्टरेस्ट रेट कोकम करने और मेडियम टर्म में उसे समाप्त करने को निर्देशित किया था और नरसिंहम कमिटी ने भी कन्सेसनल इन्टरेस्ट रेट को क्रमिक गति से समाप्त करने का सुझाव दिया।

इन सुधारों के पीछे कुछ ऐसी रहस्यमय बात छिपी है जिनको भारत सरकार कभी भी औपचारिक तौर पर स्वीकार नहीं कर सकती। बंगाल के पूर्व वित्त मंत्री अशोक मिश्रा ने अपनी किताब लाटलस से हेल बंगाल मार्क लिस्टगवर्नर (च्संजजसमतश्े ज्ंसम रू ठमदहंस डंतरमपेद ंदक ळवअमतउउमदजद्धमें दावा किया है कि डॉ0 मनमोहन सिंह को राज्य सरकार में वित्त मंत्री बहाल होने के

पूर्व यू. एस प्रशासन ने आई एम.एफ और विश्व बैंक के सहयोग से एक खास संदेश(ब्जमहपतपबंत डमेंहमद्ध नई दिल्ली को गुप्त बात-चीत के द्वारा भेजा कि भारत के नए वित्त मंत्री के नाम को तय करने का विशेषाधिकार भी वाशिंगटन हस्तान्तरित हो गया है[14]।इसी स्थिति में मनमोहन सिंह अमेरिकी प्रशासन के नुमाइन्दा के रूप में राव सरकार में वित्त मंत्री बने।वित्त मंत्री बनने के तुरंत बाद 27 अगस्त 1991 को मनमोहन सिंह ने आई एम. एफ के मैनेजिंग डायरेक्टर कैनेडसस को एक लिखित प्रतिज्ञा पत्र दिया जिसमें वित्त संस्थाओं और सार्वजनिक क्षेत्र की अन्य इकाइयों के साथ-साथ, भारत की सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था को बदलने की बचनवद्धता दी गई थी। पुनः एक साल बाद 2 जून 1992 को मनमोहन सिंह ने दुसरा प्रतिज्ञा पत्र आई.एम.एफ को दिया जिसमें पीछे के एक साल के अन्दर किए गए बदलावो का मूल्याकन और आगे के बदलावोकी रूप रेखा प्रस्तुत की गई थी[15]।यह परिप्रेक्षय है जिसमें नव उदारवादी नीति को भारत में लाई गयी। वास्तव में इन सारे तथाकथित सूधार कार्यक्रमों को एक वारगी लागू करने से डरी सरकार प्रत्येक पहलू पर बड़े पैमाने पर प्रचार कर जन आवाम को अपने पक्ष में लाने की चेष्टा करते है। क्योंकि जनविरोध का खतरा सरकार के सामने है।इस दरम्यान दिसम्बर 1997 को आर.बी. आई. के आर वही गुप्ता कमिटी की बहाली की गई और 21 अप्रैल 1998 को कमिटी ने अपनी रिपोर्ट दी।यह काल किसानों के द्वारा कर्ज बोझ के कारण आत्म हत्याओं का एक सिलसिला का काल था इस कमिटी का मुख्य काम किसानों को आसानी से कर्ज मिल सके इसके लिए डिलेवरी सिस्टम को सुधारने संबंधी सूझाव देना था।मगर इस कमिटी ने ऐसा कुछ नहीं किया। कमिटी ने जो सुझाव दिये उनमें प्रमुख थेः

1. कृषि को बैंक कर्ज कर मिलने वाला 18 प्रतिशत के बल लक्ष्य को समाप्त कर देना,
2. कृषि कर्ज पर मिलने वाली सब्सिडी को समाप्त कर देना और हर तरह के कर्जो पर सुद की दर स्वयं तैय करने की आजादी बैंकों को देना।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक कर्मचारीयों के पदस्थापन की अनिवार्यता समाप्त कर देना[16]।

गुप्ता कमिटी ने कृषि कर्ज की जरूरत कितनी धन की है। उसका आकलन नहीं किया। और कृषि के विकास के 2.1 प्रतिशत को एक उपलब्धि मानकर यह कह दिया की किसानों को कर्ज की जरूरत नहीं है। तर्क दिया गया कि विगत पाँच वर्षो में बैंकों के द्वारा कर्ज देने के लिए उपलब्ध राशि इतनी न ज्यादा वृद्धि हुई है कि बैंकों के कुल कर्ज का 18 प्रतिशत कृषि देना अनावश्यक लगता है। जब कृषि उत्पादन 2.1 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रहा था। तब बैंकों को कृषि कर्ज को दोगुणा से ज्यादा करना पड़ा था। किसान अब कर्ज की जरूरत नहीं महसूस नहीं करते है। लेकिन मामला ठीक उसके उल्टा था, कृषि विकास दर की धीमी गति का कारण था किसानों को कम सूद पर कर्ज प्राप्त नहीं होना जिस कारण वे कृषि विकास दर खर्च नहीं कर पाते। 1990-91 से 1998 के बीच के काल में कृषि का कर्ज में हिस्सेदारी में कमी आ गई। नीचे की तालिका इसे दर्शाती हैः

मार्च	23
1990	17.4

तालिका -1

बैंकों के द्वारा दिए गए सम्पूर्ण कर्ज में कृषि की हिस्सेदारी (प्रतिशत में)

स्त्रोत आर.बी.आई, वार्षिक रिपार्ट, विभिन्न वर्ष

गुप्ता कमिटी जब पाँच वर्ष के अन्दर कृषि कर्ज को दुगुना बताते हुए यह दलिल देती है कि किसान अब कर्ज लेना नहीं चाहते है तब वह मुद्रा स्थिति के प्रभाव को अपने आकलन में नहीं लाती 1990 से 1998 तक कृशि को मिला कर्ज को 1980 से 1981 के किमतो के आधार पर आका जाय तब स्थिती को नीचे की तालिका के अनुसार रखा जा सकता है।

तालिका नं0-2

1990-1998 कृषि कार्य का आकलन 1980-1981 की किमतो आधार पर (रूपया करोड़ में)

मार्च 23 1990 16526	मार्च 22 1991 16750	मार्च 20 1992 18157	मार्च 19 1993 19963	मार्च 18 1994 21208	मार्च 31 1995 23983	मार्च 29 1996 27044	मार्च 28 1997 31442	मार्च 27 1998 34869
1980–81	में	रूपया						
8.147	7437	7027	7127	6914	7123	7140	8112	

स्त्रोतआर. बी. आई. वार्शिक रिपोर्ट विभिन्न वर्ष

नोट:-1980-81 के रूपये जी.डी.पी. का अमूल्यन आर्थिक सर्वे के मुताबिक 1991 से 1997 के बीच कृषि के कुल अप्रत्यक्ष कर्ज में तेजी से विकास दिखाया गया मगर यह कर्ज किसानों को नहीं मिला था, बल्कि कृषि से संबंधित अन्य क्षेत्रों को दिया गया था किसानों को नही। बढ़ोतरी को नीचे की तालिका दर्शाता है।

तालिका नं0-3

कृषि के कुल कर्ज में अप्रत्यक्ष करने का आउट स्टैन्डिग हिस्सा (प्रतिशत में)

जून	जून	जून	मार्च	मार्च	मार्च	मार्च
1991	1992	1993	1994	1995	1996	1997
6.4	7.8	7.3	9.2	11.5	13.1	16.7

स्त्रोत: आर. बी. आइ. टेण्ड एण्ड प्रोग्रेस ऑफ बैकिंग इन इन्डिया, रिपोर्ट विभिन्न अंक

जो अप्रत्यक्षकृषि कर्ज 6.4 प्रतिशत जून, 1991 में था वह मार्च 1997 में बढ़कर एकवारगी 16.7 प्रति दर चला गया। यह किसानों को मिला कर्ज नहीं था बल्कि कृषि में लगने वाली मशीनों, और अन्य चीजों के डीलरों को दिया गया कर्ज, प्लानटेसन क्षेत्र को बिना उनके आकार पर विचार किये, दिया गया कर्ज और राज्य बिजली बोर्ड को ग्रामीण हलको में सिस्टम विकास के लिए दिया गया कर्ज था।इसके अलावाआर. भी. गुप्ता कमिटी ने तर्क दिया की कम सूद दर पर छोटे कर्जो से के बैंकों को इसके संचालन में प्रशासनिक खर्चे बढ़ जाते है आदि।

नरसिंहम द्वितीय कमिटि, 1998 ने पहली कमिटि की अनुसंसाधनों को स्वीकारते हुए वरियता क्षेत्र को पुन: परिभाषित करने को सूझाव दिया और वरियता क्षेत्र को कुल बैंक कर्जो का 10 प्रतिशत की सीमा तय करने की सलाह को स्वीकारा। इसने बैंकों में सरकारी एक्टिविटी को घटाकर 33 प्रतिशत करने, आर.बी.आई की भूमिका को घटाने, मजबूत बैंक ढाँचा की स्थापना के लिए बैंकों के एमलागमेसन का सूझाव दिया, स्टेच्यूटरी रिक्वीडीटी फण्ड को कम करने आदि सम्बंधी सुझाव दिए। ये सारे सुझाव विश्व बैंक के जून 1990 के कन्फीडेन्सिय रिपोर्ट में भारत को दिया गया निर्देश है जिसे सरकार लागू कर रही है और इसे ही वित्तीय क्षेत्र सुधार कह रही है।

निष्कर्ष:-

अभी हाल में आर.बी.आई के दो सरकुलर जारी हुए है पहली जुलाई, 1915 और 6 अक्टूबर 2016 को। पहली जुलाई 1915 के सरकुलर में वरियता क्षेत्र को पुन: परिभाषित किया गया है इसमें कृषि, अतिलधु,लधु और मंझौले उद्योग, निर्यात कर्ज, शिक्षा, अवन सामाजिक वाहसंरचना रिन्यूएबुल एनर्जी और अन्य 8 श्रेणिया रखी गई है[17]।

2016 का आर.बी.आई का सरकुलर [18]जो सिर्फ रीजनल रूरल बैंकों के लिए है उनके लिए वरीयता क्षेत्र से निर्यात कर्ज को हटा दिया गया है और कुल 7 आइटमो को रखा गया है। आर. आर. बी. के लिए प्रत्येक श्रेणी के लिए तय किया गया लक्ष्य नीचे प्रकार से है:

टेबुल नं0-4: आर.आर.बी.के लिए लक्ष्य

श्रेणी	लक्ष्य
कुल वरियता क्षेत्र	बैंकों के कुल का 75 प्रतिषत
कृषि	बैंकों के कुल कर्ज का 18 प्रतिषत
छोटे और सीमान्त किसान	बैंकों के कुल कर्ज का 8 प्रतिषत
अति लधु उद्योग	बैंकों के कुल कर्ज का 7.5 प्रतिषत
कमजोर तबका	बैंकों के कुल कर्ज का 15 प्रतिषत

स्त्रोत आर.बी आई सरकुलर 6 अक्टूबर, 2016 है पृश्ठं गगण।

सरकार के अति लघु, लघु और मंझीले उद्योग विभाग ने [19] इन क्षेत्रों में निवेश की राशि को बढ़ाकर इन उद्योगों के क्षेत्र को वरीयता क्षेत्र में ला दिया।

तालिका नं0 5

निवेश राशि की सीमा

निर्माण क्षेत्र:	
उद्योग क्षेत्र	प्लान्ट और मषीनरी में निवेष
अतिलघु उद्योग	25 लाख रूपया से ज्यादा नहीं
लघु उद्योग	25 लाख रूपया से ज्यादा मगर 5 करोड़ रूपया से ज्यादा नहीं
मझोले उद्योग	5 करोड़ रूपया से ज्यादा मगर 10 करोड़ रूपया से ज्यादा नहीं
सेवा क्षेत्र:	
उद्योग	औजारों में खर्च (निवेष)
अतिलघु उद्योग	10 लाख रूपया से ज्यादा नहीं
लघु उद्योग	10 लाख रूपया से ज्यादा मगर 2 करोड़ रूपया से ज्यादा नहीं
मझोले उद्योग	2 करोड़ रूपया से ज्यादा मगर 5 करोड़ रूपया से ज्यादा नही

स्त्रोत: आर.बी.आई, मास्टर सेकुलर प्रायरीटी सेक्टर लेन्डिंग टारगेट एण्डक्लासीफिकेशनद्धपूर्वोद्वत:)

इस तरह वरीयता क्षेत्र में निवेश की राशि बढ़ा देने से कारपोरेट पूंजी के प्रवेश का रास्ता खुल गया।इस बदलाव का परिणाम हुआ कि कारपोरेट सेक्टर का एन. पी. ए. जितना था उससे कम हो गया और वरीयता क्षेत्र में कारपोरेट पूंजी के प्रवेश से वरीयता

क्षेत्र का एन .पी. ए जितना था उससे बढ़ गया। इसके बावजूद भी आर बी आई ने सुप्रीम कोर्ट को जिन नामों का खुलासा करते हुए एन. पी. ए. की एक अधुरी सूची दी उसमें 2012 तक एन. पी. ए. की रकम दर्ज थी और वरीयता क्षेत्र के एक भी उद्योग का नाम नहीं था सूची नीचे लिखे प्रकार थी:।

तालिका नं0 6: एन. पी. ए. की रकम और कम्पनियाँ

(राशि करोड़ रूपयें में)

	कम्पनियाँ	रूपया		कम्पनियाँ	रूपया
1	विन्सन फॉर एचर ग्रुप	3969	9	जीलोंग सिस्टम	440
2	जूम डेमलपर्स	1911	10	टेली डाटा ग्रुप कम्पनी	577
3	एस कुमार रेड एण्ड टेलर	1759	11	विन्ध्यवासिनी स्टील ग्रूप क्र0	455
4	पर्ल पिक्सन ग्रुप कम्पनी	1226	12	आर ई आई एग्रो	313
5	किंग फिसर एयर लाइन्स	1798	13	पंथर फिनकैंप	233
6	डेक्कन कानिकल	991	14	जे. बी. डायमन्ड	465
7	एक्स एल एनर्जी	652	15	इन्डियन टेक्सनामिक	303
8	बेंटा नाप तौल	951			

स्त्रोत:प्रभात खबर, 2/अप्रील 2016 पृ 18 (रू0 करोड़ में)

बैंकवार ब्योरा इस एन. पी. ए. का नीचे लिखे अनुसार था:

बैंक	रूपया	बैंक	रूपया	बैंक	रूपया
भारतीय एक्जिम बैंक	223	आन्ध्रा बैंक	2,428	यूनाइटेड बैंक	1,369
आई सी आई बैंक लि0	85	बैंक आफ बड़ौदा	1,368	विजया बैंक	1,894
एल आई सी	1,217	बैंक आफ इण्डिया	1,232	एक्सिस बैंक	993
एस यू टी आई	378	बैंक आफ महाराष्ट्र	775	के एस बैंक	108
यू टी आई एम एफ	126	केनरा बैंक	3,199	डेवल्पमेंट केडिट	0.20
बी ओ बी ए के	23	सेन्ट्रल बैंक	3,574	धन लक्ष्मी बैंक	64
सिंडीकेट एन ए	18	कारपोरेषन बैंक	2,013	एच डी एफ सी बैंक	241
केडिट बैंक	16	देना बैंक	802	आई सी आई सी बैंक	393
सी टी बी सी बैंक	0.047	इन्डियन बैंक	1,200	आइ डी बी आई बैंक	1,666
ड्यूक बैंक	31	ओवरसीज बैंक	13	इंडसइंड बैंक	899
दोहा बैंक	72	ओरिएन्टल बैंक	3,545	कर्नाटका बैंक	60
आर बी ओ एस	0.50	पंजाब एंड सिन्ध बैंक	248	करूर वैष्य बैंक	375
सिनहान बैंक	578	पी एन बी	11467	कोटक महिन्द्रा बैंक	5,442
स्टेन्डर्ड चार्टर बैंक	301	सिन्डीकेट बैंक	680	डी एस बैंक	178
ईलाहाबाद बैंक	287	यूको बैंक	2,421	फेडरल बैंक	803
यूनियन बैंक	2991	जे. एण्ड. के बैंक	122		

स्त्रोत: उपरोद्धत:

उपर के तथ्य प्रमाणित करते हैं कि भारत की सरकार वितिय क्षेत्र में सुधार के नाम पर विश्व बैंक और आई एम. एफ के एजेन्डे को लागू कर रही है जिसका लक्ष्य है भारत में एक हअल्प धनिक क्षेत्रह की स्थापना करें जिससे बैंक पूंजी और औद्योगिक पूंजी का स्वामित्व एक ही ग्रुप के लोगों के हाथों रहता है और सरकारें उन्हीं की कार्यकारिणी के रूप में काम करती है। यह हमारे जनतांत्रिक व्यवस्था को नष्ट करने वाला है, इसका विरोध हर जनवादी नागरिक का आज प्रथम दायित्व हो गया है। एन. पी. ए. रोजगार में वाधक आदि जैसे दोषों को वरियता क्षेत्र का मढ़ना मनोवादी तर्को पर आधारित है।

संदर्भः सूची

1. अलक घोष इन्डियन इकोनामी, 23वॉ संस्करण 1984, वर्ल्ड प्रेस प्रा॰ लि॰ कलकला, पृ.164-65.
2. भारत का संविधान रूस के नीति निर्देशक सिद्धान्त; धारा 39.
3. MRTP और FERAij पूर्ण विवरण के लिए देखें: अलकघोष पूर्वोद्वत पृ. 376 - 379 (विवरण उपलबध है)
4. विस्तृत विवरण उल्लेख है: रामलोचन सिंह भारतीय राजसत्ता कितनी संवैधानिक, ज्ञान गंगा, दिल्ली, 2018, पृ. 129-160.
5. पुष्पा चौहान दि इन्डियन इन्डस्ट्रीज: हाइ। बीग्र हाउसेज मेनोपो लाइन्ड पेम, जानकी प्रकाशन पटना, नई दिल्ली, पुनमुद्रित, 2006 पृ॰-110-12.
6. अभिमन्यु पोलिटिक्स ऑफ-प्राईवेटाइजेसन एण्ड इटस् इम्पैक्ट राजशक्ति बुक हाउस, हैदराबाद 2003, पृ.6.
7. पुष्पा चौहान पूर्वोद्वत:
8. रामलोचन सिंह, पूवोद्वंत
9. R.B.I./2015-16/53FIDD. CO.PLACE.CO. BC.NO 171
10. RBI/2016-2017-79, FIDD. CO. Place. CO. BC. NO. 171 04.09.001è2016-17
11. डा॰ मोहन कुमार और गोविन्द सिंहह मार्केटिंग एन.पी.ए. इन इन्डियन कमर्शियल बैंकह इन्टरनेशनलजर्नल आफ ट्रन्सफारमेशन इन विजनेश मैनेजमेंट, 2012 न॰. 1 इस नं॰1 इस नं॰ 6 अप्रील जून.
12. Finaciala Re from and development (http. www. Thehindubinmens time. 2002/04/26/stores.2002042600060800 htm). S.D. Nak, business line the hinduse 26.april 2002. Retrielled 22 tebseecsy 201.
13. मेन इन्डक्स इन्डिया आर्काइव सर्चह गुप्ता नरसिंहम अटैक आन अग्रीकल्चरल क्रेडिट; : www. Mooism. Org/misc/india rupe/ aspests 26-27/ back Loans. Htm.
14. द्वारा उद्धृत: प्राज्वला गृहा ठकुरता congress orleft: who cored whose bluff?" S.K. fund I ndo-us nulleas Ial:A refesence compilation, this of jeuraralists and its meadi contse 2007. P. 308
15. 27 अगस्त, 1991 और 2 जून 1992 के प्रतिज्ञा पत्रों पर विशेष जानकारी के लिए देखें, पुष्पा चौहान पूर्वोद्धत, पृ. 122-130
16. आर.बी. आई वुलेटिन जून, 1998.
17. आर. बी. आई. का 2015 का सरकुलर, पूर्वोद्वत: पृ.2.
18. 2016 का आरबी आई.सर्कुलर .बी. पूर्वोद्वत: पृ.1.
19. भारत सरकार, अतिलघु लघु और मझोले उद्योगों विभाग साइड s-o-1642 (E) दिनांक 9 सितम्बर, 2006.

गाँधी के सर्वोदय की अवधारणा में नारी

डॉ० अविनाश कुमार

S/O सुरेश भगत
मोहल्ला-रामपुर (रहमगंज)
पो0-लालबाग, थाना-लहेरियासराय
जिला-दरभंगा (बिहार) 846004

''नये युग की नारी'' नामक पुस्तक में सर्वोदय के महान संवाहक और प्रेरणा स्रोत दादा धर्माधिकारी की यह उक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है कि -

''नियति ने और ईश्वर ने स्त्री के व्यक्तित्व में ताला लगाकर उनकी चाबी चुपचाप स्त्री के ही आंचल में बाँध दी है। स्त्री खोयी-खोयी सी दुनिया भर में उस चाबी को खोज रही है। सब जगह, सिवाय अपनी अन्तरात्मा के।''[1]

नयी आर्थिक नीति की हलचलों के बीच बाजार की शर्तों से जूझती आज की स्त्री अर्द्धविजेता अर्द्धपराजित के द्वन्द्व में अपनी पहचना ढूंढ़ रही है। बाजार की शक्तियों के दबाब में सृजित नयी भूमिकाओं के साथ - साथ अधिक मजबूत होती जाने वाली पुरानी भूमिकाओं की अपेक्षाओं के बीच स्त्री की अस्मिता पूर्नपरिभाषित हो रही है। इसके साथ ही स्त्री तथा राजनीति के रिश्ते भी अधिक पेचीदा होते जा रहे हैं। आज स्त्री राजनीति का एक मुद्दा भी है, इसकी एक संभावित सक्रिय एजेंट भी और उसकी शिकार भी।[2] बेशक स्त्री आज इस पुरुष व्यवस्था से आजिज आ चुकी है जिसमें उसे पूज्य या देवी मानकर पत्थर में तब्दील कर दिया जाता है या हाड़ - मांस की देह मानकर उसे भोग्या बना दिया जाता है।[3] इक्कीसवीं सदी के इस दौर में महात्मा गाँधी का सर्वोदय आन्दोलन अपने विशाल परिप्रेक्ष्य को लेकर पूनर्जीवित हो उठा हैं। सर्वोदय - आन्दोलन का एक परिदृश्य नारी में भी सम्बंधित रहा है। गाँधी जी ने एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें स्त्री और पुरुष साथ मिलकर देश और समाज को आगे ले जायेंगे। गाँधी के सर्वोदय की अवधारणा में नारी शक्ति का वह पूंज है जिसके प्रकाश में स्वयं पुरुष आलोकित होता है और वे दोनों पून: मिलकर समाज को आलोकित करते है।[4] गाँधी की नारी अवश्य ही एक आदर्शवादी नारी है जो देश और परिवार के प्रति पूर्ण समप्रित है। मगर उसके समर्पण में एक दिव्य शक्ति है, एक ज्वाला है जो अन्याय के खिलाफ लड़कर न सिर्फ अपना अधिकार प्राप्त कर सकती है बल्कि देश और दुनिया को भी जागरूक कर सकती है। वही सीता के रूप में दया, ममता ओर संवेदना का स्रोत है तो द्रौपदी के रूप में अपने अधिकार और स्वाभिमान के प्रति सजग भी।

महात्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित प्रो0 कुसुमलता केडिया ने गाँधी जी के विचारों का सार प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार इक्कीसवीं सदी की स्त्री का अर्थ है ईसा के बाद 2000 साल बीतने के बाद की नयी शताब्दी में स्त्री। इसका अर्थ है नयी शताब्दी में नये विश्व - संदर्भों में स्त्री। यूरोपीय सम्राज्यवादी चढ़ाव - उतार की पाँचवी शताब्दी के अन्त के बाद उभरते वैश्विक परिदृश्य में स्त्री। इस इक्कीसवीं सदी की स्त्री का महात्मा गाँधी से क्या रिश्ता है यह समझना जरूरी है। उनके अनुसार आज बीसवीं सदी के अन्त में दुनिया की जो दशा है उसको सम्भव बनाने में गाँधी जी की अद्वितीय भूमिका है। स्त्रियों के वर्त्तमान जीवन में जो भी शुभ, श्रेष्ठ और श्रेयस्कर है उसमें उन्मेष में गाँधी जी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है। जिस अहिंसक वीरता की गाँधी जी ने जीवन भर साधन की, उसे वे स्त्रियों में सहज मौजुद मानते थे। ऐसे अहिंसक सर्वोदय की प्रेरणा भी गाँधी जी ने स्त्रियों से ही पाई थी।[5]

सर्वोदय गाँधी ने अपनी आत्मकथा में एक स्थल पर यह उल्लेख किया है कि सत्याग्रह की शक्ति कस्तूरबा में उन्होंने किस रूप में देखी थी और उससे उन्हें क्या प्रेरणा मिली थी। उन्होंने लिखा है – 'मैं अपनी के हृदय में तब तक स्थान नहीं पा सका जब तक मैंने उसके प्रति अपने पहले के व्यवहार को बिल्कुल बदल डालने का निश्चय नहीं कर लिया। इसके लिए मैंने उसके पति की हैसियत से प्राप्त तथाकथित अधिकारों को छोड़ दिया और ये अधिकार उसी को लौटा दिये।''[6]

गाँधी ने महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए उन्होंन कहा – ''अपनी मौज मस्तियों की गुलाम बनी रहना बन्द करो। अपना ज्यादा श्रृँगार मत करो। क्योंकि इससे आप पुरुष की गुलामी में फँसती है। सच्ची सुगंध वह है जो तुम्हारे हृदय से आती है। यह सुगन्ध सिर्फ मर्द को मोहित नहीं करती, बल्कि वह पूरी मानवता को मोहित करती है। पुरुष, स्त्राी से उत्पन्न होता है, उसकी मांस – मज्जा से बनता है। अपनी प्रतिष्ठा फिर से प्राप्त करो। अपना श्रेष्ठ संदेश फिर से सुनाओ।''[7]

गाँधी जी की नजर में एक सशक्त महिला वह है जिसमें शील और धर्म के प्रति गहरी संवेदना और श्रद्धा है। अपनी इसी दृष्टि के कारण गाँधी जी के नेतृत्व में चले राष्ट्रीय आन्दोलन में उसकी व्यापक सहभागिता रही। रॉलेट एक्ट के विरूद्ध जो सत्याग्रह 1919 ई0 में चला, उसमें अनसूया बेन की अग्रणी भूमिका थी। पंजाब में श्रीमती रमाबाई, श्रीमती वेंकट सहित सैकड़ों स्त्रियाँ स्वदेशी एवं सत्याग्रह के लिए आगे आयी थीं। 1920 ई0 में देश भर में धूम – धूमकर गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन के लिए लोगों को तैयार किया। गाँधी जी ने कहा – ''जब तक इस कार्य में स्त्रियाँ पूरी तरह सहयोग नहीं करती, तब तक स्वराज्य की आशा रखना व्यर्थ हैं। राष्ट्र की स्वतंत्रता को बनाये रखना और स्वतंत्रता छिन गयी हो तो उसे प्राप्त करना उनका धर्म है। यह बात यदि स्त्रियाँ नहीं समझती हैं तो राष्ट्री की सुरक्षा असम्भव है।[8]

उनकी नजर में एक दृढ़ स्त्राी का कर्तव्य है अपने सही अधिकारों के प्रति जागरूक होना। जेनरल डायर के विषय में उन्होंने कहा कि यदि स्त्रियाँ धर्म का सच्चा अर्थ जानती तो वे डायर जैसे अत्याचारियों से स्वदेश एवं स्वधर्म की रक्षा करने योग्य वीरता का पाठ अपने पतियों और पुत्राों को अवश्य पढ़ाती।[9]

1930 ई0 में जो व्यापक नमक सत्याग्रह चला उसमें भी स्त्रियों की व्यापक सहभागिता थी। नमक सत्याग्रह में स्त्रियों का नेतृत्व स्वयं कस्तूरबा गाँधी ने किया था। साबरमती के आश्रम में मंत्री का काम कुसुम देसाई करती थी। गाँधी जी का कहना था कि स्त्रियाँ नमक कर विरोधी आन्दोलन तक ही सीमित न रहे बल्कि नैतिक उत्कर्ष के लिए भी काम करें। उन्होंने कहा – ''दुकानों पर धरना देने का काम जोखिम से भरा हुआ तो है किन्तु स्त्रियाँ तो हमेशा से ही जोखिम उठाती आयी है। इसी से यह संसार चल रहा है।''[10] इसी प्रकार 1925 में सरोजनी नायडू को काँग्रेस का अध्यक्ष बनवाने की पहल गाँधी जी ने की थी। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान जहाँ एक तरफ सूचेता कृपलानी ने अहिंसात्मक आन्दोलन का नेतृत्व किया वही अरूणा आसफ अली ने भूमिगत क्रान्तिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाया। गौरतलब है कि इस दौरान कई ग्रामीण महिलाओं ने बड़ी संख्या में आगे आकर इस आन्दोलन को एक नई दिशा दी।[11]

''न्यू साईस मूवमेंट'' और ''पर्यावरण आन्दोलन'' आज गाँधी जी को भविष्यद्रष्टा सिद्ध कर रहे हैं। उनका महत्व आज पहले से भी कहीं अधिक है। शक्ति की जो अवधारणा आधुनिकता के लेबल के तहत चलती रही और जिसने पिछले 1500 वर्षो में यूरोप में वर्चस्व कायम किया उसे गाँधी जी आसुरी मानते है, हिसंक मानते हैं।[12] आज की प्रचलित भाषा में उसे 'मेटेरियलिस्टिक' या भौतिकवादी दृष्टि कहते है। वस्तुत: यह तामसिक चित से उत्पन्न अवधारणा है। एक ऐसा चिन्तन जो भयभीत है क्योंकियह राग और द्वेष की भूमि पर अवस्थित है। गाँधी जी शक्ति की अहिंसक अवधारणा को प्रस्तुत करते हैं। वे स्त्रियों में उस शक्ति का स्वाभाविक उत्कर्ष देखते हैं। शक्ति की इस अवधारणा में कोमलता, स्नेह, बन्धुत्व, करूणा प्रेम, क्षमा आदि दोष नहीं हैं, बल्कि गुण है। वहाँ आत्मशक्ति ही वास्तविक शक्ति है। स्त्री में यह आत्मशक्ति होती है, इसीलिए वह सेवा को अपना धर्म मानती है। शक्ति की इस अवधारणा में कोई और किसी को सशक्त नहीं करता वरन् अपनी क्षमताओं का प्रस्फुटन और विस्तार स्वयं करना होता है। स्त्राी को सशक्त बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पूरा समाज शील, सदाचार और धर्म की निरन्तर साधना करे।

गाँधीजी के अनुसार, गाँधी के अनुसार, सम्पूर्ण जड़ – चेतना – सृष्टि एक ही दिव्य सत्ता की अभिव्यक्ति है। सबमे इस दिव्य सत्ता की उपस्थिति ही सबकी अस्मिता और गरिमा का प्रमाण है। प्राणिमात्रा में स्वयं अपने प्रयास और पुरुषार्थ से ईश्वर का साक्षात्कार कर सकने की क्षमता है। अत: स्त्राी को स्वयं इस सत्य का साक्षात्कार करना होगा।[12]

गाँधी जी के मतानुसार सीता और द्रौपदी आदर्श स्त्रियाँ है सीता को वे निरीह या कातर नहीं पाते वरन, अपने शील, तेज और धर्म द्वारा रावण जैसे प्रचण्ड बलशाली को रोकने और संयमित करने में समर्थ पाते है।[13] इस तरह सीता एक वीर स्त्री है। द्रौपदी में शील, धर्म और तेज का विशिष्ट उत्कर्ष है। गाँधीजी का कहना था कि स्त्री की खरी स्वाधीनता का बेहतर दृष्टांत है द्रौपदी। यदि सीता एक नाजुक फूल है तो द्रौपदी एक उन्नत देवदारू। महाबली भीम उसकी प्रचण्ड इच्छा के सामने नत है। बाकी सबके लिए भीम भयंकर दुर्धर्ष है। परन्तु द्रौपदी के समक्ष वह एक मेमना है। द्रौपदी को अपनी रक्षा के लिए पाण्डवों में से किसी की भी आवश्यकता नहीं थी। वह तो तेजोमयी थी।[15]

स्त्री को सशक्त बनने के लिए स्वयं प्रयास करना होगा। स्त्री को सशक्त होने के लिए आत्मग्लानि, आत्मदैन्य, आत्महीनता और आत्मविस्मृति से ऊपर उठना होगा। स्वधर्म - रक्षण, स्वधर्म - पालन, शील और तेज के उत्कर्ष, वीरता, विवेक का विका तथा भारतीय गुणों की प्रतिष्ठा के लिए पहले से कही अधिक प्रयास करना होगा। सत्यनिष्ठा और अधिक प्रखर और गहरी करनी होगी आधुनिकता के नाम पर प्रचारित पापूर्ण धारणाओं, मूल्यों और लक्ष्यों की सच्चाई पहचाननी होगी।[16] आज के मुक्त काम के दौर में स्त्रिा का शोषण और भी ज्यादा बढ़ गया है सर्वोदय की परिकल्पना में इस वर्जना से छुटकारा का उपाय है कि स्त्री अपनी शारीरिक शक्ति की जगह चरित्रा शक्ति का विकास करे।[17]

इसमें कोई दो राय नहीं है कि प्रत्येक क्षेत्रा में स्त्री अपेक्षाकृत जयादा सबल और मुखर हुई है। मगर आज पितृसत्तात्मक अंधेरे तंबू के नीचे उसका चेतन - अवचेतन भयमुक्त नहीं है। टीवी पर और फिल्मों में भले ही वे दुर्गा और काली का अवतार दीखती हों, मगर वास्तविक धरातल पर वे आज भी शारीरिक दुर्बलताओं के बोझा से दबी है। नारी की इसी कमजोरी ने उसे रूपनिष्ठ और शरीरनिष्ठ बना दिया है। पुरुषों की अपेक्षा नारी कहीं ज्यादा देहात्मवादी बन गई है। बाजार के इस दौर में समृद्ध देशों के इशारे पर तीसरी दुनिया के देशों, विशेषकर भारत में स्त्रियों को देह के रूप में कैद करने की साजिश चल रही है। जिस तरह से उनकी देह से वस्त्रा कम किये जा रहे है, वे बाजार की सुन्दर वस्तु बनकर दिखने को विवश है। देह की इस चकाचौंध में उसकी बुद्धि अस्मिता, मेधा और तमाम तरह की जागरूकताएँ जैसे खो गई हैं। सर्वोदय की परिकल्पना में इस समस्या का हल शरीर को असुन्दर या अनाकर्षक बनाना नहीं है। इससे उसे सत्त्व की हानि होगी। सौन्दर्य, ईश्वर की विभूति है। सुन्दरता में सहज शोभनीयता होती है। परन्तु श्रृंगार भी आपत्तिजनक नहीं हैं। बात इतनी सी है कि स्त्री का ब्राह्मचर्य और मातृत्व दोनों स्वाया व स्वाधीन हो। उससे सतीत्व का रक्षण और विकास करते हुए पुरुष - निर्भर और पुरुष - सापेक्ष जीवन से पर उठना होगा। यह तभी हो सकता है जब वह 'स्वरक्षित' हो। इसके लिए उज्जवल चरित्रा के साथ - साथ शुद्ध जीविका की भी आवश्यकता है।[18]

सर्वोदय की परिकल्पना में शिक्षा को नारी के विकास एवं आत्मसम्मान का प्रमुख जरिया माना गया है। शिक्षण - कार्य में स्त्री माता के नाते पुरुषों से हजारगुणा श्रेष्ठ मानी गयी हैं। मनु ने एक जगह कहा है'' दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य श्रेष्ठ है, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता श्रेष्ठ है, और माता हजार पिताओं की अपेक्षा (गुरू के नाते) श्रेष्ठ है।[19] श्रुतियों में गार्गी और मैत्रोयी जैसे उदाहरण तो देखने की मिलते है मगर स्त्री के आचार्य होने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। जब स्त्रियों के लिए गुरू कुल ही नहीं थे तो स्त्री आचार्य कैसे होती ? आज स्त्रियों की भूमिका में एक क्रान्ती आ गई है। मगर यह क्राँनित तब तक अधूरी रहेगी जब तक स्त्री अपने उद्धार के लिए पुरुषों पर निर्भर रहेगी। स्त्री को प्रेमजीवी कहा गया है मगर प्रेम करने के लिए बराबरी का नाता होना चाहिये। उसमें भय का एक कण भी नहीं होना चाहिये। कहते हैं कि 'भय बिनु होहि न प्रीति'।

''मगर भय और प्रेम एक साथ नहीं रह सकते। जब तक स्त्री को पुरुषों से भय रहेगा वह खुले दिल से प्रेम नहीं कर सकती। बलवान मन और बलवान हृदय ही प्रेम का पात्रा हो सकता है। यह मानसिक क्राँन्ती सम्यक् शिक्षण से ही हो सकती है स्त्री का शील अगर काँच के बर्त्तन की तरह होग तो उसमें काँच सी चमक और पारदर्शिता भी होनी चाहिए उसका नाजुकपन नहीं, कुरकुरापन नहीं।[20]

सर्वोदय में स्त्री और पुरुष के लिए अलग - अलग नैतिक मानदंडों को तोड़ने की बात की गई है। एक - एक करके सारी अनर्थ परम्पराओं को बलना होगा। वह पुरुष के साथ जरूर जायेगी मगर पुरुष के भरोसे नहीं। इस परम्परा को तिलांजलि देनी होगी कि मातृत्व के बिना स्त्री - जीवन की सार्थकता नहीं, पुरुष के बिना विवाह नहीं। वह पुरुष से प्रेम कर सकती है। एक माता के नाते बहन के नाते, कन्या के नाते। इन कौटुम्बिक भावनाओं का विस्तार नागरिक जीवन में आरम्भ करना होगा। उसके लिए कृष्ण-

द्रोपदी का उदाहरण सबसे उपयुक्त रहेगा। कृष्ण-द्रौपदी एक साथ पूजे जाने चाहिये उनमें यौन - सम्बन्ध नहीं था। न वह राधा थी कृष्ण की और न ही सुभद्रा, फिर भी उनके जीवन में एक - दूसरे के लिए उत्कट प्रेम था।

सर्वोदय अवधारणा के अनुसार सही मायने यदि स्त्राी आर्थिक क्षेत्रा में सशक्त होगी तो दोहरे मानदंड खुद-व-खुद समाप्त हो जायेंगे। पुरुषनिष्ठ स्त्राी यदि पतिव्रता कहलायेंगी तो पत्नीव्रत पति 'लंपट' की जगह पत्नीव्रत कहलायेगी। स्त्राी के जीवन में अर्थ की प्रधानता को स्थापित करने के विषय में जुलियट मिशेल ने लिखा है कि - ''विकसित औद्योगिक समाज में स्त्रियों का काम समूची अर्थव्यवस्था के सिर्फ हाशिये पर होता है जबकि काम के जरिये आदमी प्राकृतिक अवस्थाओं को बदल डालता है और इस प्रकार एक नये समाज का निर्माण करता है। जब तक उत्पान के क्षेत्रा में क्रान्ती नहीं होती श्रम के हालात स्त्रियों की स्थिति को पुरुषों की दुनिया के अंदर ही निर्धारित करते रहेंगे।[21]

सर्वोदय आन्दोलन से समाज के हर क्षेत्रा में परिवर्त्तन लाने के लिए सदियों की रूढ़ियों से त्रास्त मानसिकता और सोच को भी बदलने का प्रयास था। जिस रफ्तार से महिलाएँ साक्षर हुई हैं, पर्दे से बाहर आई हैं, नौकरियों से उन्होंने हिस्सा पाया है - इसी रफ्तार से बलात्कार, सेक्स, एम0 एम0 एस0 भ्रूण हत्या, दहेज, वेश्यावृत्ति, डांस गर्ल्स इत्यादि की समस्याएँ भी बढ़ी है।सीमेन द बोउआर ने लिखा है '' एक स्त्राी पैदा नहीं होती, बना दी जाती है।''[22]

वर्त्तमान की उलझती परिस्थिति में सर्वोदय के विचार में नारी की अस्मिता खतरे में जान पड़ती है। सर्वोदय का समरसतावादी सिद्धांत शायद स्त्रियों को 33: से 50: आरक्षण देकर संतुष्ट हो जाए। मगर यह आरक्षण उन्हें अगर दे भी दिया जाए तो , क्या यह उन जरूरतमंद कमजोर वर्ग की महिलाओं तक पहुँच पाएगा जिनकी पूरी जिंदगी चूल्हे और ' गोयठे' के समीकरण में बीत जाती है ? तमाम आन्दोलनों और जागृति के बाद भी स्त्रियाँ घरों में मुफ्त और उद्योग में बहुत कम वेतन पर काम करती रही है।[23] जमे ग्रीयर का यह कथन पूरी दुनिया की आधी आबादी का सच है। हमारा पूरा पारिवारिक ढाँचा स्त्रियों के शोषण पर टिका है। एक स्त्राी की सामाजिक और पारिवारिक परिस्थिति की ऐसी होती है जो उसे कुछ बनने नहीं देती। हमारे यहाँ एक ओर व्यवसाय के नाम पर खुलेपन की दादनत स्त्रियों को दी जाती रही है तो दूसरी ओर धैर्य के नाम पर उसे पर्दे में रखने की साजिश की जा रही है। इसलिए पुरुषों पर प्रहार से आज ज्यादा आवश्यक है पुरुषवादी संरचना पर प्रहार। स्त्राी - मुक्ति से मतलब है स्त्रियों को आत्मनिर्णय का अधिकार मिले।[24]

सर्वोदय आन्दोलन के शीर्षस्थ नेता एवं प्रवक्ता आचार्य विनोबा भावे का विचार है कि स्त्राी का उद्धार तभी होगा जब स्त्रियाँ जगेंगी और स्त्रियों में शंकराचार्य जैसा कोई प्रखर ज्ञान -वैराग्य- सम्पन्न, भक्तिमान और निष्ठावान शास्त्राकर्त्ता पैदा होगा। उन्होंने कहा , ''अगर मैं स्त्राी होता तो न जाने कितनी बगावत करता। मैं तो चाहता हूँ कि स्त्रियों की तरफ से बगावत हो। लेकिन बगावत तो सह स्त्राी करेगी जो वैराग्य की मूर्त्ति होगी। वैराग्य वृत्ति प्रकट होगी , तभी मातृत्व सिद्ध होगा। अगर स्त्रियाँ स्वतंत्रता चाहती है तो उन्हें वासना के बहाव में नहीं बहना होगा।''[25]

विनोबा भावे की दृष्टि में स्त्राी की सारी समस्याओं का समाधान वैराग्य भावना में है, जो पूर्णत: दे देने में विश्वास करती है। विनोबा भावे की स्त्राी महान शंकराचार्य की प्रतिमूत्ति है। मगर प्रश्न यह है कि आज जीवन की आधारभूत समस्याएँ रोटी, कपड़ा, मकान, बच्चे की फीस, नौकरी चाकरी आदि से जूझती नारी की समस्याएँ क्या वैराग्य से सलझ जाएँगी? वास्तव में इन सारी समस्याओं का समाधान जमीन पर रहकर ढूँढने में है। पलायन से समस्याएँ नहीं सुलझेगी।

मेरे समझ से लगता है कि चार साल की बच्ची हो या पचास साल की प्रौढ़, घर में रहने वाली औरत हो या बाहर काम करने वाली महिला, मंदिर , मठों , तीर्थो ं में रहने वाली विधवा हों या देवदासियां, पुरुष के संरक्षण में पुरुष से ही सुरक्षा चाहती है। स्त्राी आज हर जगह पुरुषों की हवस का शिकार होती है।[26]

सच यह है कि आजादी से लेकर आज तक स्त्राी कल्याण के नाम पपर जितने हो- हल्ला हुए, काम उस रूप में नहीं। आरक्षण का सवाल भी सवाल बनकर रह गया। सांसद की दीवारों पर कहीं उसकी आवाज गुम हो गयी। सड़क पर उतरती तो बात कुछ और होती। फिर तसलीमा नसरीन को यह नहीं लिखना पड़ता कि ''जंजीरें तोड़ दी है मैंने। पान के पत्ते से हटा दिया है संकार का चूना।[27]

नारी आन्दोलन का प्रस्थान- बिन्दु 1848 है जब न्यूयार्क सम्मेलन के जरिये समान अधिकार का घोषणा-पत्र महिलाओं ने जारी किया। नारी सशक्तीकरण वस्तुत: नारीवादी आन्दोलन से जूड़ा है। आधुनिक नारीवादी आन्दोलन की जन्मदाता है सिमेंन द बोउआर। उनकी कृति 'द सेकेंड सेक्स है जो 1946 में प्रकाशित हुई उसमें पली बार पुरुष सत्ता को गंभीर चुनौती दी गयी।[28]

बाद में इंगलैण्ड की वर्जिनिया वुल्फ, जर्मन ग्रीयर एवं अमेरिका की केट मिलेट ने अपने विद्रोह तेवर की कृतियों से इसे आगे बढ़ाया। पून: वेही फीडन के नेतृत्व में यह आन्दोलन पहले अमेरिका और फिर पूरे पश्चिमी जगत में फैल गया। यह सही है कि नारीवादी आन्दोलन में ठोस दिशा का अभाव था। कोई समाधान नहीं था, परन्तु फिर भी इसने समानता का अधिकार, विवाह तलाक आद पारिवारिक मूद्दे को हाशिये से उठाकर नारी-विमर्श के केन्द्र में ला दिया। आज स्त्रियाँ पुरुषों पर उनके ही हथियारों से हमला कर रही हैं, जिनका उपयोग वे अब तक उनके खिलाफ करते आ रहे थे। उनका कहना है कि यदि पुरुष एक से अधिक स्त्री से सम्बन्ध रख सकता है तो वे क्यों नहीं ? विवाह संस्था यदि जरूरी है तो उसकी पवित्राता एवं रक्षा का ठीका अकेले उसके ही सर क्यो ? पुरुषों के लिए यदि यौन - सुचिता का सवाल नहीं है तो स्त्री के लिए यह क्यों आवश्यक है कि वह अपनी यौन - यौन सुचिता को अग्निपरीचा देकर सबित करें ? विज्ञान ने आज इतना विकास कर लिया है कि गर्भधारण में भी इनके साहचर्य की आवश्यकता नहीं। दरअसल पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को हमेशा सेक्स से जोड़कर देखा गया है, शायद यही वजह है कि नारी - मुक्ति- आन्दोलन में देह की आजादी पर बहुत जोर दिया गया। इसे मन की आजादी से भी जोड़कर देखा गया है। सदियों से पुरुषों के दमन की यह आक्रोशमय मगर स्वाभाविक प्रतिक्रिया है।[29] पुरुषों पर प्रहार से ज्यादा आवश्यक है पुरुषवादी संरचना पर प्रहार। स्त्री सशक्ति का अर्थ है - स्त्रियों को आत्मा निर्णय का अधिकार और पुरुष ढाँचे पर हमला। समाज की अवधारणा को यौन- सुचिता के प्रति बदलना होगा, बलात्कार को एक एक्सीडेंट के रूप में लेना होगा न कि सर्वस्व लुट जाने के रूप में। बलात्कारी को कठिन से कठिन सजा देनी होगी।[30] मगर पुरुषों को निरंकुश बनाने में कुछ दोष स्त्रियों का भी है। पुरुषों को पालने वाली दादी, नानी, बुआ, मौसी इत्यादि का भी दोष है। एक औरत ही एक औरत की सबसे बड़ी दुश्मन होती है। बेटी के जन्म का मातम हो, ससुराल में वधु पर अत्याचार हो या भ्रूण - हत्या, औरतें ही कहीं न कहीं इसके लिए जिम्मेबार होती है। आज जरूरत है स्त्री के पुरुषवादी नजरये को बदलने की। अनामिका ने 'स्त्रीत्व के मानचित्रा में लिखा है ''महफिल उनकी साकी उनका , आँखें उनकी बाकी उनका' '।[31]

मगर आज आँखें भी अपनी नहीं है। उधार ली हुई है। जिस दिन अपनी आँखों से औरतें दुनिया को देखने और पहचानने लग जायेंगी उसी दिन सही मायने में उनका सशक्तिकरण होगा। शेखर बंधोपाध्याय के शब्दों में, गांधीजी ने एक आदर्श भारतीय नारीत्व की अवधारणा व्यक्त करते हुये, इसे मातृत्व से विलग भगिनीवादी सोच को प्रधानता दी जिसमें उन्होंने स्त्री के ''काम को नकारा है। किन्तु उनका स्त्रीत्व का स्पष्ट विचार धार्मिक उपमाओं की भाषा से भरा था जो स्त्रीतत्व के स्थापित पारंपरिक मूल्यों के अनुरूप नहीं था।[32]

छादा धर्माधिकारी ने गाँधी मार्ग में लिखा है - ''विकसित स्त्री का अर्थ 'नकली पुरुष नहीं है। स्त्री की भूमिका को पुरुषों की भूमिका केतुल्य बनाना होगा। स्त्री को प्रतिष्ठा वीर माता या वीर पत्नी बनने से ज्यादा स्वयं वीरांगना में हैं''।[33]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते है कि गाँधी के सर्वोदय कीस अवधारणा में नारी के आत्मसम्मानकी बात कही गई है गाँधी के सर्वोदय आन्दोलन से नारीयों में चेतना एवं जागृती आयी एवं एक सही मंच मिला जहाँ से वे अपनी आत्मसम्मान के लिए भी आवाज बुलंद की। गाँधी ने स्त्रियों को परदे से बाहर आकर राष्ट्रीय आन्दोलन, चरखा काटने और धरना में भाग लेने के लिए कहा और इसी के परिणाम स्वरूप गाँधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में स्त्रियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया और जेल भी गई। एक विदेश पत्रकार ने तो यहाँ तक कहा था कि यदि इस आन्दोलन से और कुछ प्राप्त न हुआ हो केवल स्त्रियों की स्वतंत्रता प्राप्त तो भी कृतकाय्रे हो गया है।

स्पष्ट है कि गाँधी के सर्वोदय की अवधारणा में नारी के आत्म सम्मान, विकास, अधिकार, समानता की बात थी जिससे समाज एवं राजनीति में नारी को उचित स्थान प्राप्त हो सके। पुरुष के कदम-से-कदम मिलाकर समाज एवं देश की उन्नति का मार्ग प्रसस्त करें।

संदर्भ सूचीः-

1. रूपरेखा वर्मा, **'परिभाषित हो रही अस्मिता',** कसौटी, दैनिक जागरण, 7 फरवरी 2005
2. मैत्रोयी पुष्पों, **'स्त्री के पक्ष में स्त्री', मानुषी,** सहारा समय, 4 सितम्बर 2004
3. प्रो0 कुसुमलता केडिया, **'21वीं की स्त्री और महात्मा गाँधी'**, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, मार्च 1998 पृ0-9
4. **'महात्मा गाँधी की आत्मकथा'** (गाँधी विचार) पृ0-279
5. उपर्युक्त
6. **सम्पूर्ण गाँधी वांग्मय,** खण्ड-11 विषय क्रमांक 223 एवं 237
7. पूर्वोक्त, खण्ड-43 पृ0-260-61
8. पूर्वोक्त
10. दादा धर्माधिकारी **'मैत्री', नये युग की नारी;** सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी फरवरी, 1998
11. पूर्वोक्त
12. पूर्वोक्त
13. पूर्वोक्त
14. दादा धर्माधिकारी, **'सर्वोदय दर्शन'**
15. अनिता वर्मा, **'जरूरत है जड़ से सवरने की',** कसौटी, दैनिक जागरण पटना 7 जनवरी 2005
16. सीमेन द बोउआर, **'द सेकेंड सेक्स',** 1946
17. रश्मि रेखा, **'टूटे पुरुषवादी संरचना',** सैनिक जागरण पटना 7 जनवरी 2005
18. आचार्य बिनोबा भावे, **'नारी की महिला',** सर्वसेवा संघ प्रकाशन वाराणसी 1999
19. पूनम सिंह, **'तालेबानी पहरेदारी में अस्मिता',** कसौटी, दैनिक जागरण 12 अगस्त 2005
20. शान्ति सुमन, **'क्षमता को ही बनाये हथियार,** कसौटी, दैनिक जागरण 12 जनवरी 2005
21. उपर्युक्त
22. रश्मि रेखा; **स्त्री विमर्श अपनी आभा की खोज में जागृति,** मुत/पटना 15 अगस्त 2005
23. पूर्वोक्त
24. अनामिका, **स्त्रीत्व का मानचित्रा(** सारांश प्रकाशन 1999

25. Shekhar Bandopadhyaya from plassey to partition, History of Modern India. Orient Longman 2004 P-391

26. Tanika Sarker '**Politics and Women in Bengal** :The Conditions andmanings of Participation. **The India Economic and social History Review** 1984, P. 101
27. 'गाँधी मार्ग' से
28. अर्चना वर्मा, **'असुरक्षित औरत',** कसौटी, असौट, दैनिक जागरण पटन/मुजफ्फरपुर 12 अगस्त 2005
29. पूर्वोक्त
30. **अनामिता कविता में औरत :** इतिहास वोध प्रकाशन इलाहाबाद जनवरी 2004
31. उपूर्वोक्त
32. पूर्वोक्त
33. उपूर्वोक्त
34. पूर्वोक्त
35. पूर्वोक्त
36. उपूर्वोक्त

मध्यकालीन मिथिला का सामाजिक जीवन

चंदन कुमारी

ग्राम+पो0-एकहरी, थाना + भाया-लदनियाँ
जिला-मधुबनी-847232

18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन और अंग्रेजों के शक्ति विस्तार के इस संक्रान्तिकाल में उत्पन्न राजनीतिक एवं आर्थिक अस्थिरता से सम्पूर्ण उत्तर-पूर्वी भारत विक्षुब्ध और आन्दोलित हो गया था। हालांकि इसके प्रभाव से मिथिला भी अछूता नहीं बचा था, परंतु मिथिला के सामाजिक जीवन पर इन शक्तियों का प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट प्रभाव देखने को नही मिलता है। यद्यपि यहाँ के जनसामान्य की जीवनचर्या और जीवनादर्श में राजनीतिक या फिर अन्य कारणों से कोई व्यक्तिक्रम नहीं हुआ। समाज का स्वरूप पूर्ववर्ती ढ़ाँचे पर आधारित था, जिसमें प्राचीन एवं मध्यकालीन सामाजिक जीवन के अनेक तत्व समाहित थे।

18वीं शताब्दी में मिथिला में ईट से बनी इमारतों की भी कोई कमी नही थी। जमींदार एवं धनी लोग भव्य एवं आलीशान भवनों में रहते थे। मिथिला के महाराज राघव सिंह ने अपने समय में ''रामबाग'' महल का निर्माण करवाया। अंग्रेजों के आगमन के कारण इस समय मिथिला को न सिर्फ पाश्चात्य शैली के भवन निर्माण की प्रेरणा मिली बल्कि एक नये प्रकार के भवनों का निर्माण भी बहुत अधिक संख्या में हुआ। जिसे बंगला कहा जाता था। मिथिला के कुछ धनी एवं समृद्ध व्यक्तियों ने अंग्रेजों एवं जमींदारों का अनुकरण कर ऐसे बंगलों का निर्माण प्रारंभ किया।[1]

18वीं शताब्दी में मिथिलावासी खान-पान के क्षेत्रा में काफी समृद्ध थे। फिर भी विभिन्न समुदायों एवं वर्गों के खान-पान के स्तर में काफी विविधता थी। अभिजन एवं श्रेष्ठ वर्ग के लोग जहाँ तरह-तरह के व्यंजनों एवं पकवानों का आनंद उठाते थे वही आमजन के भोजन साधारण तरह के होते थे। मिथिला में अधिकतर लोग शाकाहारी थे तथा यहाँ उपजाए जाने वाले प्रत्येक फसलों का उपयोग अपने भोज्य पदार्थ के रूप में करते थे। चावल मिथिला में मुख्य भोज्य पदार्थ माना जाता था, जिसे आम बोलचाल की भाषा में भात कहा जाता था। धनी वर्ग दिन में एक या दो बार चावल खाते थे जबकि निर्धन वर्ग को सप्ताह में एकाध-बार ही चावल खाने का अवसर प्राप्त होता था।[2] वास्तव में चावल विशिष्ट भोजन माना जाता था। एक बार एक व्यक्ति ने ग्रियर्सन महोदय से कहा ''हम जानते है कि वह चोर हैं, क्योंकि थोड़ा कमाने के बावजूद भी वह चावल खाता है।[3]

चावल से ही पकाया जानेवाला खिचड़ी मिथिलावासियों का लोकप्रिय भोजन था। इसे दाल, चावल और पानी के साथ धीमी आँच पर तैयार किया जाता था और कुछ घी एवं नमक भी इसमें डाला जाता था। इसके अलावा चावल का उपयोग विभिन्न रूपों में किया जाता था। चूड़ा उनमें से एक था।[4] चूड़ा-दही मिथिला के लोगों का प्रिय भोजन रहा हैं, जिसकी चर्चा ज्योतिरीश्वर ने अपने वर्णरत्नाकर में किया है। [5]

पूरी, मिठाई एवं अन्य पकवानों का भी प्रयोग विशेष अवसरों पर होता था। साधारणतया हिन्दू निरामिष होने के कारण दूध एवं इससे तैयार की गई दही, घी, मक्खन, मिठाई, खीर आदि चीजों को काफी पसंद करते थे। 18वी सदी में नंदीपति रचित कृष्णकेलिमाला नाटक में भात, सब्जी, खीर, पूरी, दही आदि भोज्य पदार्थो का उल्लेख प्राप्त होता है। [6]

चावल के अलावा भी विविध प्रकार के अनाज भोज्य पदार्थ के रूप में शामिल थे जैसे -मटर, चना, अरहर, मूँग, उड़ीद, बाजरा, खेसारी आदि।[7] मिथिला में फलों एवं सब्जियों का भी समान रूप से चलन था। यहाँ के लोग मौसम के अनुरूप फल एवं सब्जियों को खाते थे। फलों में आम, केला, अमरूद, खीरा, नारंगी, ककड़ी आदि प्रमुख फल माने जाते थे।[8] सब्जियों में बैंगन कद्दू, आलू

की विशेष रूप से पसन्द किया जाता था।[9] गरीब तबके के लोग साग खूब खाते थे, क्योंकि यह काफी सस्ती होती थी। ब्राह्मण एवं राजपूत परिवारों में लहसुन तथा प्याज खाना वर्जित था। परंतु मुस्लिम एवं निम्न वर्गीय हिन्दू इन चीजों को खाते थे।[10]

18वीं शताब्दी में मिथिला के हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों वर्गो में मांसाहारी भोजन का भी चलन था। प्राय: बाजारों में बकरे का माँस बेचा जाता था। यद्यपि ब्राह्मणों के लिए बकरे का हलाली मांस खाना वर्जित था तथापि बलि चढ़ाये गये छागर एवं कबूतर का मांस वे खाते थे। इसके अलावा मिथिला के लोग हिरण, खरगोश, साही, तीतर, कुर्ग बटेर एवं कछुआ के मांस भी बड़े चाव से खाते थे। मुस्लिम जाति के लोग गाय का मांस खाना पसंद करते थे।[11]

मांसाहारी भोजन के अन्तर्गत मिथिलावासी मछली के भी कम शौकीन नही थे। ऊँचे तबके के लोग रेहु, झिंगा, मोंगरी, सिंगहि, आदि मछलियाँ खाते थे जबकि गरीब तबके के लोग इचना, पोठी, टेंगरा, गरई, बोआरी जैसी मछलियों का सेवन करते थे।[12] जल-जन्तु की प्रजाति में सामान्य जन के बीच कछुआ, काकर और डोका (घोंघा) आदि लोकप्रिय था। मिथिला में वैष्णव धर्म को मानने वाले कुछ ऐसे लोग भी थे, जो माँस-मछली नहीं खाते थे।[13]

मिथिला के समाज में मद्य का व्यापक रूप से प्रचलन था। कुछ लोग खुले तौर पर शराब पीते थे तो कुछ लोग छिपाकर। सामान्य जन के मध्य खासकर शूद्र एवं मजदूर वर्गो में शराब अधिक लोकप्रिय थी जबकि ऊँची जाति के लोग चावल, चीनी, अन्नास, अंगूर से बनी शराब का सेवन करते थे।[14] मिथिला में शैव एवं शाक्त धर्म के अनुयायी के लिए शराब वर्जित नहीं था, परंतु वैष्णव मतावम्बी शराब को हाथ नहीं लगाते थे।[15]

मिथिला के लोग भाँग भी खूब पीते थे। नचारी एवं महेशवाणी गीतों में शिव के द्वारा भाँग पीने का अत्यधिक जिक्र किया गया है। लेकिन अधिक मात्रा में लेने से मनुष्य बेहोश भी हो जाता था। भाँग का मिठाई में प्रयोग माजुम कहलाता था। इसका एक रूप चरस भी था, कुछ लोग दैनिक जीवन में इसका उपयोग करते थे।[16]

शराब और भाँग के साथ-साथ मिथिला के लोग तम्बाकू का भी सेवन करते थे। तम्बाकू के संबंध में कई कहावतें भी प्रचलित थी। इसे लोग जलाकर भी पीते थे और हाथों में मलकर भी खाते थे। कुछ महिलायें हुक्का में तम्बाकू का प्रयोग करती थीं।[17]

18वीं शताब्दी में खंडवाला कुल के शासक ब्राह्मण जाति विशेष से जुड़े होने के बावजूद मद्य का सेवन करते थे। मिथिला भाषामय इतिहास के लेखक मुकुंद झा बख्शी ने खंडवाला शासक नरेन्द्र सिंह एवं प्रताप सिंह की विलासप्रियता एवं उनके द्वारा नशा हेतु प्रयोग किये जाने वाले साधनों की विस्तार से चर्चा की है।[18]

अत: स्पष्ट है कि शोध अवधि के दौरान शासक एवं आम जन के द्वारा नशा के विविध साधनों का प्रयोग किया जाता था।

18वीं शताब्दी में भारतीय समाज में पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रवेश होने के बावजूद मिथिला के लोगों के वस्त्रों में कोई विशेष परिवर्तन नही आया। लेकिन पहनावे- ओढ़ावे पर सदैव से व्यक्ति की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति असर डालती रही है। आलोच्य शताब्दी में भी मिथिला का समाज इन बातों से प्रभावित था।

मानव शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने में आभूषणों का विशिष्ट स्थान था, इसलिए सभी वर्ग के लोग इसे धारण करते थे। यद्यपि आभूषण का संबंध सिर्फ सौन्दर्य की बाह्य चमक -दमक से बल्कि आंतरिक गुणवत्ता, वैयक्तिक रूचि एवं समाज की सांस्कृतिक चेतना तक इसका प्रभाव व्याप्त रहा है। सिर में सुहाग और सौभाग्य का प्रतीक सिंदुर एवं मंगटीका से लेकर बेसर, नथिया हंसुली, हैकल, बाजूबन्द, सिकड़ी आदि आभूषण सौन्दर्य निरूपण के शालीन उपक्रम को उद्दीप्त करते थे।

18वीं शताब्दी में मिथिलावासी अपने सौन्दर्य के प्रति काफी सजग थे, तथा अपने सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए तरह-तरह के प्रसाधनों का इस्तेमाल करते थे।

स्त्रियाँ अपने बालों का खास ख्याल रखती थी, जिनमें बालों को नियमित रूप से धोना विभिन्न प्रकार के तेल एवं सुगंधित पदार्थो का उपयोग शामिल था। वे अपने बालों को कई तरह से सजाती एवं संवारती थी। शीशा और कंघा सामान्य सौन्दर्य प्रसाधन थे। वहीं पुरुष तील एवं सरसों के तेल से अपने शरीर की मालिश करते थे। उच्च एवं मध्यमवर्गीय लोक खास अवसरों पर खुशबुदार इत्रा का प्रयोग करते थे।सौन्दर्य प्रसाधन में काजल का उपयोग स्त्री-पुरुष दोनों करते थे। अधिकांश स्त्रियाँ अपने आँखों के सौन्दर्य के लिए सूरमें का भी इस्तेमाल करती थी। हाथों एवं पैरों को रंगने के लिए मेंहदी तथा होंठ को रंगने के लिए पान का उपयोग किया जाता था।

18वीं शताब्दी में मिथिला में हिन्दू एवं मुस्लिम स्त्रियों के मध्य गोदना गोदवाने की परम्परा का चलन था, जिसका उल्लेख बुकानन ने अपनी पूर्णियाँ रिपोर्ट में किया है। उनके अनुसार 10 से 12 वर्ष की आयु में ही लड़कियों के शरीर पर गोदना गुदे जाते थे। जिनके शरीर पर गोदना गुदा हुआ नहीं होता तो उसके हाथ का छुआ पानी भी हिन्दू परिवारों में वर्जित माना जाता था। इन गोदनाओं में प्रायः फूल, पती, ईश्वर के नाम, पति के नाम एवं कई तरह के आकृतियों को उकेरा जाता था।

मनोविनोद एवं मनोरंजन मिथिलवासियों के जीवन का अभिन्न अंग था। विवेच्य शताब्दी में मनोरंजन के अनेक साधन थे जिनमें प्रमुख निम्नलिखित है:-

खेल : मनोरंजन के साधन के रूप में मिथिला में विविध प्रकार के खेल लोकप्रिय थे जैसे-ताश, शतरंज, पच्चीसी, कबड्डी, चिक्का, गुल्ली-डंडा आदि।[19]

इसके आलावा 18 वीं सदी में मिथिला में कुश्ती एवं जादूगरी का भी चलन था। दो व्यक्तियों में से किसकी शारीरिक शक्ति अधिक है इसके लिए कुश्ती का आयोजन होता था। पूर्णियाँ जिले में अवस्थित धमदाहा गाँव उस समय पहलवानी एवं अखाड़ेबाजी के लिए जाना जाता था। जादूगरी का खेल दिखाने वाले को मिथिला में बाजीगर भी कहा जाता था। बुकानन को पूर्णियाँ में ऐसे दो परिवार मिले थे, जो जादूगरी का काम अपने घरों पर करते थे अन्यथा वे लोग घूम-घूमकार जादूगरी का प्रदर्शन करते थे।[20]

मिथिला में प्रचलित एवं लोकप्रिय मनोरंजन के अंतर्गत संगीत का भी महत्वपूर्ण स्थान था। वस्तुतः 18वीं सदी में भारतवासियों के मनोरंजन के प्रधान साधन नृत्य-गीत ही थे। 18 वीं सदी के एक लेखक काउफर्ड ने लिखा हैं- ''वे सारी रात गाना गाने, नाचने तथा गाना सुनने में आनन्द से बिता देते हैं।'' उस समय के यूरोप के यात्रियों के विवरणों में मनोरंजन के क्षेत्रा में नाच की प्रधानता बताई गई है। भागलपुर जिले के 19वीं सदी के पूर्व के विवरण में बुकानन ने लिखा है- ''संगीत की तो भरमार है।''[21]

संगीत के प्रति मिथिलावासियों के ह्रदय में अन्नय प्रेम था। ये मनोरंजन के उत्कृष्ट साधन तो थे ही साथ में सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी इसका अत्यधिक महत्व था। मिथिला में विभिन्न संस्कारों, उत्सवों, त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर गायन, वादन एवं नृत्य का आम रिवाज था। भक्ति गीत, संस्कार गीत, ऋतु गीत के अंतर्गत नचारी, महेशवाणी, तिरहुता बटगमनी, सोहर, लगनी, डहकन, चौमासा, बारहमासा, फगुआ आदि असंख्य किस्म मिथिला के स्त्री-पुरुष गाया करते थे।[22] निम्न वर्ग के लोगों में लोरिकाइन, सल्हेस, बिहुला, कोशी, कमला, गंगा आदि गीत लोकप्रिय थे।[23]इसके आलावा गीतों की ताल पर हल जोतते किसान, कठिन परिश्रम करते श्रमिक, बच्चों को लोरी गाकर सुनाती महिलायें, इस बात को प्रमाणित करती है कि 18वीं शताब्दी में मिथिला के गीत मानव के प्रत्येक क्रिया और व्यवहार में इस प्रकार समन्वित हो गया था कि इसके बिना सुखद जीवन की कल्पना करना असंभव था।सुमधुर गीतों की स्वरलहरी और नर्तकों की भाव-भगिमा का मिथिलावासी ही नहीं आपितु सम्पूर्ण उत्तर भारत के लोग बड़े चाव से रसास्वदन करते थे।

इसके आलावा मिथिला में भजनियाँ कीर्तनियाँ के समूह भी हुआ करते थे। इन समूहों में 5-7 आदमी होते थे। ये अधिकांशतः विष्णु और कृष्ण के भजन गाते थे। होली के अवसर पर भजनियाँ कीर्तनियाँ अपने भजनों से वातावरण को भक्तिमय बना देते थे एवं श्रोता इन्हें सुनकर मंत्रामुग्ध हो जाते थे।मिथिला में कुछ ऐसी औरतें थीं जो संगीत के धुन पर नाचती गाती थी, जिन्हें बाई कहा जाता था। यद्यपि उच्च वर्ग के हिन्दु इनसे डरे होते थे ताकि उनका चरित्रा भ्रष्ट न हो जाए। ऐसे में वे युवक नर्तकों के नृत्य-गीत का आनन्द उठाते थे, जिन्हें भक्तियाँ कहा जाता था।

इसी प्रकार नृत्यकली नामक युवा लड़कों का एक समूह होता था, जो शिव-पार्वती अथवा राधा-कृष्ण का परिधान धारण कर नृत्य एवं गायन किया करते थे। ढ़ोल और मृंदग वादक इनके गीतों की संगत करते थे। नृत्यकली का नाच विवाह तथा दुर्गा पूजा के अवसर पर होता था।

नर्तकों का एक समूह काली दमनिया कहलाता था, जो रूपक का प्रदर्शन करते थे। इन्हें अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नामों से संबोधित किया जाता था, कहीं इसे राम यात्राा तो कहीं जतरा वाला या फिर कहीं काली दमन कहा जाता था। ये राधा और कृष्ण से सम्बन्धित नृत्य एवं गीत गाकर लोगों का मनोरंजन किया करते थे।

तत्कालीन मिथिला में रामचरितमानस के आधार पर रामलीला का प्रदर्शन भी होता था। रामलीला मंडली में बहुत से कलाकार होते थे। रात में रामलीला का प्रदर्शन होता था, तथा यह कई महीनों तक चलता था। मिथिला में स्त्राी, पुरुष और बुढ़े तथा बच्चे सब कोई रात में जगकर इसका आनन्द उठाते थे। रामलीला के कलाकार शिक्षाप्रद तथा विमल आनन्द देने वाले अभिनय प्रस्तुत किया करते थें। रामलीला की भाँति मिथिला में रासलीला भी लोकप्रिय था।

आलोच्य सदी में जट-जटिन का नृत्य भी मिथिला में काफी लोकप्रिय था। इसमें महिलाओं के दो दल बनाए जाते, जिनमें एक दल जट का होता एवं दूसरा दल जटिन का होता था। दोनों दल की महिलायें एक-दूसरे के प्रति सवाल-जबाव की शैली गीत-गाते हुए नृत्य करती थी, जिसका आधार प्रेम-विलास एवं हास्य होता। प्रेम रस से परिपूर्ण गायन एवं नृत्य का ऐसा समागम मानव हृदय को भावविभोर कर देता था। वर्तमान समय में भी मिथिला के लोग मनोरंजन हेतु जट-जटिन के नृत्य का आयोजन करते हैं।

यद्यपि मुसलमानों में बहुत अधिक शोर-शराबे वाले गायन एवं नृत्य नहीं होते थे मुसलमानों में ताशावालों का एक समूह होता था, जो अपनी कला का प्रदर्शन कर लोगों को आनंदित करते थे। इस समूह के वादकगण ताशा, बड़ा ढ़ोल, मरफा एवं नेशान नामक वाद्ययंत्राों को मिलाकर बजाते थे। एक सामान्य बजनियाँ की टोली भी होती थी, जो हिन्दू एवं मुसलमान दोनों के परिवारों में होने वाले उत्सव, त्योहारों या संस्कारों के अवसर पर वाद्य वादन करते थे। बजनियाँ के समूह में दो ढ़ोल, एक झाँगी, एक सरनाई (शहनाई), तुरई (तुरही) एवं श्रृंगा (सिंघा) वादक होते थे।अतः स्पष्ट है कि आलोच्य सदी में मिथिला में मनोविनोद एवं मनोरंजन के साधनों की कोई कमी नहीं थी। खेल, गीत-संगीत, नृत्य आदि मिथिलावासियों के जीवन का अभिन्न अंग बन चुका था।

प्रारंभ से ही विवाह मिथिला समान में एक पवित्रा एवं अटूट परम्परा के रूप में विद्यमान रही है। वास्तव में यह एक ऐसी परम्परा थी जिसके अंतर्गत सामाजिक मान्यता प्राप्त स्त्राी-पुरुष का कुछ धार्मिक रीति-रिवाजों द्वारा आपसी मिलन होता था, जिसका उद्देश्य धर्म का पालन, पुत्रा की प्राप्ति एवं रीति सुख प्राप्त करना था। वस्तुतः यह एक व्यैक्तिक नहीं बल्कि धार्मिक, सामाजिक एवं पारिवारिक उत्तरदायित्व होता था, जिसका निर्वहन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक था।

विवेच्य शताब्दी में मिथिला के हिन्दू एवं मुस्लिम समाज में विवाह की अलग-अलग पद्धतियाँ प्रचलित थी, जिसका वर्णन अपेक्षित है।

हिन्दू धर्म के शोडश संस्कारों में विवाह एक प्रमुख संस्कार माना गया है। मनु ने हिन्दू धर्म के अतंर्गत प्रचलित विवाह की 8 पद्धतियों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है-ब्रह्म, दैव, आर्य, प्रजापात्य, गन्र्धव, पैशाच, राक्षस और असूर।[24] प्रारंभ से ही इन्हीं वैवाहिक पद्धतियों द्वारा विवाह संस्कार को संपन्न किया जाता रहा है।

लेकिन यह सत्य था कि इनकी पत्नियाँ मायके में ही रहती थी, जिससे कन्यादानी प्रथा का जन्म हुआ। बुकानन ने भी अपनी पूर्णियाँ रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख किया है।यद्यपि मिथिला के निम्न जातियों में स्थिति ठीक इसके विपरित थी। वहाँ वर पक्ष के द्वारा ही वधू पक्ष को दहेज देने का रिवाज था।[25]

अतः स्पष्ट है कि विवाह एक स्त्राी-पुरुष के जीवन को पूर्णता प्रदान करने के साथ-साथ वंशानुक्रम की परम्परा एवं सामाजिक नैतिकता को कायम रखने में भी सहायक था।

मिथिला के मुस्लिम समाज में भी विवाह को एक पवित्रा बंधन के रूप में स्वीकार किया गया था। इस समय मिथिला समेत सम्पूर्ण बिहार में मुस्लिम विवाह की दो पद्धतियाँ प्रचलित थी- शरई और उरफी अथवा धार्मिक और औपचारिक। मुस्लिम समाज के कट्टर तथा शिक्षित लोग शरई पद्धति के अनुसार विवाह संस्कार सम्पन्न करते थे। जबकि सामान्य लोग उरफी पद्धति का।[26]

शरई ऐसी विवाह पद्धति थी, जो सभी प्रकार के विधि-व्यवहार एवं रस्मों-रिवाज से मुक्त थी। इसमें दहेज की राशि (महर) निश्चित नहीं होती थी, बल्कि यह देने वाले के आर्थिक स्थिति के अनुसार तय की जाती थी।उरफी विवाह का 18वीं शताब्दी में उतना चलन नहीं था, जितना कि पूर्व की शताब्दियों में इस विवाह पद्धति में दहेज (महर) की एक निश्चित रकम तय की जाती थी। आमतौर पर शहरों में1 लाख टका और गाँव में 41 हजार 1 दिनार टका महर की रकम तय की जाती थी। निर्धन लोगों को भी दहेज (महर) की यही निर्धारित राशि देना पड़ता था।[27]

कई स्थानों में विवाह तय होने से पूर्व मँगनी का कार्यक्रम भी होता था।यद्यपि पत्राचार से ही वैवाहिक क्रिया आरंभ हो जाती थी। निकाह से पूर्व दलधोई, रतजग्गा, कंदूरी या बीबी के सहनक, तेल चढाएब, पोखरा खोनाएब आदि अनेकों रस्म अदा की जाती थी।

इन सारी रस्मों की समाप्ति के पश्चात काजी की उपस्थिति में मुल्ला या मौलवी द्वारा धार्मिक रीति से निकाह की विधि सम्पन्न की जाती थी। निकाह के पश्चात जुलवा देब, घर भरब एवं रूखसती की रस्म अदा की जाती थी। आमतौर पर रूखसती के साथ ही मुस्लिम विवाह की विधि सम्पन्न मानी जाती थी तथा वर अपनी वधू एवं बाराती संग घर लौटने के लिए प्रस्थान करता था।

18वीं शताब्दी में मिथिलावासी अपने सामान्य जीवन में ऐसी बहुत सी बातों पर यकीन करते थे, जिनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कोई महत्व नही था, परंतु आम लोगों की नजरों में इनका पालन करना महत्वपूर्ण माना जाता था।मिथिला में जब कई दिनों तक

वर्षा नहीं होने के कारण सुखा की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी, तब ऐसी स्थिति में निम्न जाति की महिलायें इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिए एक विशिष्ट तरह का टोटका करती थी। कुछ महिलायें शाम के समय एकत्रित होकर एक मेढ़क को पकड़ती थी। उस मेढ़क को ओखली में डालकर पर मूसल से चोट करती थी। इस निष्ठुर क्रिया को तब तक दोहराया जाता था, जब तक कि उस मेढ़क की मृत्यु न हो जाए। मेढ़क को कूटने के समय महिलायें ऊँचे स्वर में सवाल और जबाब की शैली में गीत गाया करती थी, जिसका भाव यह होता था कि वर्षा के अभाव में पति परदेस जा रहा है और स्त्री उससे परदेस से उपहार सामग्रियाँ ही नहीं बल्कि अनाज भी लाने की फरमाईश करती।

अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि राजनीतिक उथल-पुथल और आम अव्यवस्था के बावजूद मिथिला समाज ने अपने नैतिक मूल्यों तथा सभ्य व्यवहार के मानदण्डों को बनाए रखा। सामाजिक जीवन में मध्यकालीन परम्पराएँ बदस्तूर जारी थीं। मिथिला के सामाजिक जीवन की निरन्तरता बनी रही थी, कतिपय परिवर्तन के चिन्ह् भी दृष्टिगोचर हो रहे थे।

संदर्भ सूचीः

1. अरूण कुमार मिश्र, **ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में मिथिला की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दशा का अध्ययन** (1765-1858), अप्रकाशित शोध प्रबंध, ल0ना0मि0वि0, दरभंगा 1990, पृ0-183-184
2. फांसिस बुकानन, **एन एकाउंट ऑफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफ पूर्णिया**, इन 1809-10, बिहार रिसर्च सोसाइटी पटना, पृ0- 127-128
3. जार्ज अब्राहम, ग्रियर्सन, **नोट्स ऑन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ गया**, पृ0-123
4. जार्ज अब्राहम, ग्रियर्सन, **बिहार पिजेन्ट लाइफ**, पृ0-215
5. ज्योतिरीश्वर, **वर्णरत्नाकर**, मैथिली अकादमी, पटना, पृ0-30-31
6. **मिथिला परम्परागत नाटक संग्रह**, दरभंगा, 1986, पृ0-373-375
7. जे0 बेयर्न, **बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (भागलपुर)**, पृ0-55
8. उपर्युक्त
9. उपर्युक्त, पृ0-250-255
10. फांसिस बुकानन, पूर्वोक्त-पृ0-147-148
11. उपर्युक्त, पृ0-258-259
12. ओ0 मैली, **मुंगेर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर**, पृ0-72
13. आर0आर0 दिवाकर, **बिहार थ्रू दि एजेज**, जानकी प्रकाशन, जनवरी, 1959, पृ0-689
14. फांसिस बुकानन, पूर्वोक्त-पृ0-148-150
15. फांसिस बुकानन, पूर्वोक्त-पृ0-151-152
16. मुकुन्द झा बख्शी, **मिथिला भाषामय इतिहास**, बनारस, 1926, पृ0-250
17. फांसिस बुकानन, पूर्वोक्त-पृ0-139-140
18. मित्राा, **बिहारी लाईफ इन बिहारी रिडलस**, पृ0-18-19
19. **चम्पारण डिस्ट्रिक्ट गजेटियर**, पृ0-52
20. रंजन सिन्हा, **आस्पेक्ट ऑफ सोसाइटी एण्ड इकोनोमी ऑफ बिहार**, जानकी प्रकाशन, 1989, पृ0-129-130
21. फांसिस बुकानन, पूर्वोक्त-पृ0-141
22. साहु, **सम आस्पेक्ट ऑफ नॉर्थ इण्डियन सोशल लाइफ**, पृ0-78
23. **मिथिला मिहिर (मिथिलांक)**, 1935, पृ0-158-179, ग्रियर्सन, पूर्वोक्त-15, पृ0-152-156
24. वासुदेव उपाध्याय, **द सोशियो-रिलिजियस कंडीसन ऑफ नॉर्थ इण्डिया**, वाराणसी, 1964, पृ0-191
25. कालिकिंकर दत्त, **बिहारवासियों का जीवन और उनकी चिन्ता-धारा**, ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1987, पृ-26
26. दुर्गानाथ झा, श्रीश **मैथिली साहित्यिक इतिहास**, भारती पुस्तक केन्द्र, दरभंगा, पृ0-210-211
27. के0के0दत्त (सम्पादक), **द कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ बिहार**, भाग-3, पार्ट-2, पृ0-86

दिल्ली सल्तनत की स्थापना: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० मो० इन्तेखाब आलम

उमरी, मधुबनी (बिहार)

भारत में तुर्की सत्ता का स्थापना तेरहवीं शताब्दी के आरंभ (1206 ई0ऋमें भारत में हुआ। यह ऐतिहासिक विकास का परिणाम था जिसमे शक्ति के द्वारा अधिकृत क्षेत्र राजनीतिक रूप से संगठित किया गया। सम्प्रभुता, सैनिक शक्ति, प्रशासनिक नियंत्रण और सांस्कृतिक प्रभाव स्थापना में महत्वपूर्ण कारण बने। इस्लाम के साथ संपर्क ने जो महमूद गजनी के आक्रमणों से पूर्व ही प्रारंभ हो चुका था, एक सम्प्रभु तुर्की शक्ति के उदय को संभव बनाया। वह काल जिसमें यह प्रक्रिया पूरी हुई। वह दिल्ली सल्तनत की स्थापना का काल माना जाता है।

10 वीं सदी से तुर्क काबुल के हिन्दुशाही राज्य के सम्पर्क में आए और गजनवी वंश की स्थापना के पचास वर्ष पश्चात उन्होने भारत में प्रवेश पा लिया। भारत-भूमि में अंदर तक प्रवेश पाने का प्रथम श्रेय गजनबी-वंश के सुल्तान महमूद को गया यद्यपि भारत में राज्य स्थापित करने का श्रेय शंसबनी-वंश के मुहम्मद गोरी को प्राप्त हुआ।

महमूद गजनी के आक्रमणों ने दो रूपो में सल्तनत की स्थापना को संभव बनाया। प्रथम इन आक्रमणों के मध्य उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र पर कब्जा किया गया। और इसने आगे के मुस्लिम आक्रमण को संभव बनाया। दूसरे बहुत सारे उपदेशको और यात्रियों की उपस्थिति ने भारतीय समाज में मुस्लिम आक्रमणकारियों को आगे मान्यता दी। महमूद ने न केवल भारत की सदियो से संचित सम्पत्ति को ही लूटने में सफलता प्राप्त की वरन पंजाब मुल्तान और अफगानिस्तान के प्रदेशों में गजनवी वंश की स्थापना की। मुस्लिम आक्रमणकारियों के लिए महमूद की सबसे बड़ी देन हिन्दूशाही-राज्य का विनाश था जिसके कारण मुसलमानों के लिए भारत विजय सरल हो गयी। डॉ डी0 सी0 गांगुली ने लिखा है-ष पंजाब और अफगानिस्तान के गजनी राज्य में सम्मिलित किये जाने के कारण इस्लाम द्वारा भारत विजय सरल हो गयी। अब प्रश्न होने अथवा न होने का नहीं था बल्कि सिर्फ या था कि कब वह शक्तिशालीवाद सम्पूर्ण भारत को धराशयी कर देगी।ष

महमूद गजनवी ने भारत को आर्थिक और सैनिक दृष्टि से दुर्बल बनाया तथा उसकी उत्तर पश्चिमी सीमा पर तुर्क-राज्य को स्थापित किया परन्तु उसने भारत में तुर्क-राज्य की स्थापना नहीं की। इस कार्य की पूर्ति गोर-वंश के शासक मुहम्मद गोरी ने की।

1206 ई0 से 1290 ई0 के मध्य में दिल्ली सल्तनत के सुल्तान गुलाम-वंश के सुल्तानों के नाम से विख्यात हुई। वे सभी सुल्तान तुर्क थे तथा उनके वंश पृथक-पृथक थे। कुतुबुद्दीन ऐबक ने श कुतबी श इल्तुतमिश ने श शम्सी श और बलवन ने श बलबनी श राजवंश की स्थापना की।

इतिहासकार हसन निजामी और मिनहाज उस-सिराज तुर्क विजय को दैवी कृपा मानते है। कुछ विद्वान तुर्की विजय का कारण तुर्की अश्वारोही सेना की कुशलता तथा भारतीय समांती सेना की दुर्बलता बताते है। सर यदुनाथ सरकार के अनुसार मुख्य रूप से तीन कारण मुस्लिम सफलता के लिए जिम्मेदार थे। प्रथम तुर्की में समनता और भाई चारे की भावना दूसरे युद्ध में मृत्यु भय से मुक्त होकर लड़ना तथा अंत में नशे से परहेज रखना। अनेक अंग्रेज इतिहासकार एलिफिंस्तन लेनपूल, स्मिथ आदि का मानना है कि तुर्क इसलिए विजय हुए कि तुर्क युद्ध प्रिय थे और भारतीय शांतिप्रिय इसके आलावा अनेक कारण थे जिसके कारण दिल्ली सल्तनत

की स्थापना हुई। तुर्की आक्रमण के पूर्व भारत अनेक राज्यों में विभाजित था। इनके शासक अपने राज्य के विस्तार तथा वंश की प्रतिष्ठा के लिए एक दूसरे से निरंतर युद्धरत थे। जिसके कारण इनमें आपसी ईर्ष्या द्वेष भी प्रबल था। इस काल में राजवंशो के प्रशासन तथा राज्य के ढाँचे में एक सीमा तक जनजातीय तत्व विधमान थे। प्रशासन तथा सेना के उच्च पदो पर ब्राहमण तथा राजपूतो ही वंशानुगत रूप से नियुक्त हुए। जिसके कारण निम्न वर्ग में संकट के समय राज्य के लिए उत्सर्ग की भावना का अभाव होना स्वाभाविक था। राजनीतिक एकता के अभाव में सामंतीकरण की प्रक्रिया में भी बड़ा योगदान दिया। सांमत अपनी क्षेत्रीय चेतना तथा सैनिक शक्ति द्वारा केन्द्रीय सत्ता को अधिकतर निर्बल ही करते थे। किसी भी राज्य में सैनिक शक्ति की श्रेष्ठता या रणनीति तथा युद्ध प्रणाली में नवीनता नहीं थी। तुर्को ने एक-एक करके सभी राजपूतों राज्यो को पराजित कर दिया।

राजपूतो राज्यों में विदेशी गतिविधियों पर नजर रखने के लिए कोई उपाय नहीं था। साथ ही जनकल्याणकारी कार्यो की उपेक्षा से वे अपने ही देश के सर्वधरण से भी लगभग दूर होते गए। इन्ही अलगाववादी राजनीति परिस्थितियो में मुसलमानो का राज्य भारत में स्थापित हुआ।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था बहुत ही प्रगतिहीन थी। यह वर्ण व्यवस्था पर आधारित थी। इसमे निचले वर्णो को राजनीतिक एवं सैनिक सेवा में नहीं के बराबर भर्ती हो पाती थी। समाज पर ब्रह्मण समर्थित राजपूतो का वर्चस्व था। राजपूतों की जनसंख्या का कुल जनसंख्या का मात्र 10:थी। सैनिक सेवा में राजपूत वर्गो का एकाधिकरी था। दूसरी तरफ सामाजिक दृष्टि से इस्लाम धर्म एक प्रगतिशील धर्म था। इसमे बधुत्व और समानता की भावना प्रबल थी। स्वाभाविक रूप से तुर्क आक्रमण के समय भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग हाथ बाँधे खड़ी रही और इस राष्ट्रीय संकट की घड़ी में भी दोषपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के कारण भारत की सम्पूर्ण मानवीय शक्ति का उपयोग नहीं किया जा सका। प्रो0 निजामी का भी मानना है कि भारतीयों की पराजय का मुख्य कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था और अन्यायपूर्ण जाति भेद थे। इस्लाम की सफलता क लिए धार्मिक कारण को उतरदायी माना जाता है।

माना जाता है कि धार्मिक विश्वास इस्लााम की एक अतिरिक्त शक्ति थी। इस्लाम के सैनिक, धर्म के नाम पर युद्ध करते थे और राजनीतिक संघर्ष को जेहाद का रूप दे देते थे। स्वभाविक रूप से धर्म के नाम पर मुस्लिमों को संगठित करना ज्यादा प्रभावकारी सिद्ध हुआ। हालाँकि हाल में इस अवधारणा पर प्रश्न चिन्ह लगाया जा रहा है। हाल के शोधो के अनूसार मानव संशोधनो अथवा आबादी की दृष्टि से राजपूत नियंत्रित क्षेत्र बेहतर स्थिति में थे। यह सोचना गलत होगा कि अन्यायपूर्ण जाति व्यवस्था के कारण राजपूत राजाओ को अपनी सेना में नियुक्त करने के लिए पर्याप्त संख्या में सैनिक नहीं मिल पाते थे। वस्तुत: यह सोचना भी अनुचित होगा कि राजपूत सेनाओं में केवल उन्हीं जाति के लोग होते थे। जाटो, मीनाओ आदि जैसे लड़ाकू समूह अथवा परवर्ती स्त्रोतों में कुवर्ण कहे जाने वाले समूह भी राजपूत सेनाओ में नियुक्त किए जाते थे, दूसरे राजपूत समाज की तरह ही तुर्की समाज भी सोपनिक प्रकृति का था अगर राजपूत समाज कुल पर आधारित था तो तुर्की समाज नस्ली श्रेष्ठता पर। दोनो ही के बीच सत्ता और पद पर संकीर्ण समूहो का एकाधिकार था।

किन्तु कुल मिलाकर राजपूतों की अपेक्षा तुर्को में सामाजिक गतिशीलता अधिक थी। यह सत्य है कि हिन्दू समाज ने हिन्दू धार्मिक चेतना की धारा में अछूतों को लाने की अन्य विधियो विकसित की थी। जैसे भ्रमणशील साधुओ और ब्राहमणों के जरिए जो उनके धार्मिक अनुष्ठानों को संपन्न कराते थे किन्तु इन विधियो के कारण राजपूत शासक वर्ग और जनसाधारण की खाई नहीं पारा जा सका।

इस्लाम की सफलता के लिए राजपूतो की सैनिक दुर्बलता को भी उतरदायी माना जाता है और ऐसा माना जाता है कि मुस्लिम तात्कालिक राजपूत शासको की तुलना में सैनिक दृष्टि से अधिक सक्षम थे। किन्तु आधुनिक शोध प्रमाणित करते है कि भारतीयों की तुलना में तुर्को के पास श्रेष्ठ हथियार नहीं थे। भारत में 8 वीं सदी से ही लोहे के रकाब का प्रयोग होने लगा था। तुर्की धनुष पर चलाये गये वाण लम्बी दूरी तक मार कर सकते थे लेकिन भारतीय धनुषों का निशाना भी अचूक और प्राणघातक होता था। वाणों के सिर साधरणत: विषैले होते थे। भारतीय तलवार विश्व में सर्वश्रेष्ठ था। अगर तुर्की घोड़े फुर्तीले और अधिक तगड़े होते थे तो भारतीयों को हाथियों का लाभ मिला हुआ था। परन्तु कोतल सेना क प्रयोग से तुर्की लोग हार की स्थिति को अपनी विजय में बदल देते थे। राजपूतो के मुख्य रण केन्द्र किले थे जिन्हे तोड़ने के लिए मजंनिक तथा अर्रादा नामक यंत्रो का प्रयोग बड़ा प्रभावशाली था। तुर्की के गुप्तचर शत्रु पक्ष के भेद का ज्ञान करके उनके दुर्बलताओ का पूरा लाभ उठाते थे।

वस्तुत : तुर्को की श्रेष्ठता सामाजिक और संगठनात्मक मामलों में थी। सामंतशाही की विफलता ने भारतीय राज्यों के प्रशासनिक ढाँचे और सैनिक संगठन को निर्बल बना दिया था। राजाओं को अनेक सरदारों पर अधिक निर्भर रहना पड़ता था जिनमे सहयोग की भावना का अभाव था। युद्ध परांत शीघ्र ही ये अपने-अपने क्षेत्र को लौट जाते थे। दूसरी तरफ तुर्की साम्राज्य की जनजातीय सरंचना और इक्ता एवं खालिसा पद्धति के विकास के कारण बड़ी संख्या में सैनिको की भर्ती संभव हो सका और ये सैनिक मैदान में अधिक समय तक टिके रह सकते थे।

जैसा कि आर0 पी0 त्रिपाठी का मानना है कि भारत में मुस्लिम सम्प्रभुता की शुरूआत इल्तुतमिश के साथ हुई। यह इल्तुतमिश ही था जिसने भारत को एक स्वंतत्र स्तर प्रदान किया। उसी ने राजतंत्रात्मक सरकार की स्थापना की और एक शासक वर्ग को जन्म दिया। उसने गोरी द्वारा जीते गये छिटपुट क्षेत्रों को संगठित साम्राज्य में तब्दील कर दिया।

दिल्ली सल्तनत के स्वरूप के बारे में इतिहासकारों में प्रारंभ से ही मतभेद रहा है। के0 एस0 लाल, यू0 एन0 डे और आर0 पी0 त्रिपाठी जैसे इतिहासकारों ने यह साबित करने की कोशिश की है कि दिल्ली सल्तनत काल में राज्य एक धर्मतंत्र था। लेकिन कुछ अन्य लेखको के अनुसार जिनमे डॉ0 डी0 एच0 कुरैशी, के0 ए0 निजामी और मु0 हबीब प्रमुख है, जिसने दिल्ली सल्तनत काल को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया है।

विस्तृत रूप से अध्ययन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि दिल्ली सल्तनत के अधीन राज्य न तो धर्मतंत्र था। और न ही धर्मनिरपेक्ष। सरकार नाममात्र के लिए धार्मिक सत्ता के अधीन थी किन्तु व्यवहार में वह स्वतंत्र थी। दिल्ली सल्तनत के अधीन राज्य एक जटिल अभिकरण जो कृषि उत्पादन के अधिशेष को पैदा करने उस के वसूल करने और उसे संगृहित करने के लिए निर्मित हुआ था। यह विभिन्न विचार धाराओं का उहापोह था। जिसे व्यक्त करने के लिए एक ही शब्द उचित होगा वह है- सैनिक निरंकुशवाद।

सल्तनत काल में एक मिश्रित राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था अस्तित्व में थी जिसके अंतर्गत ईरान एवं तुर्की राजनीतिक परंपराओ तथा भारतीय राजनीतिक तत्वो के समावेश था। भारत में तुर्की राज्य की स्थापना के साथ-साथ इसके प्रशासन की जिम्मेदारी भी दिल्ली सुल्तानों पर आ पड़ी। इसके लिए उन्होने जिस प्रशासनिक व्यवस्था को चुना उसमे इस्लामी एवं राजपूत तत्व विधमान थे।

सल्तनत काल में भारतीय अर्थयवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। प्रो0 हबीब के अनुसार पहले की सामंती अर्थव्यवस्था तुर्क, अफगाान काल में शहरी अर्थव्यवस्था में परिगत हो गई। यद्यपि भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि, पशुपालन, उद्योग-धंधे एवं व्यापार ही थे। तथापि छठी-सातवी शताब्दी से शहरी अर्थव्यवस्था का जो ह्रास हुआ था वह पुन: प्रतिस्थापित हो गया। फलस्वरूप अनेक व्यापारिक एवं औद्योगिक नगरो का विकास हुआ। व्यापार वाणिज्य का विस्तार हुआ, विभिन्न उद्योग-धंधे पुनजीवित हुए एवं सिक्को का प्रचलन पुन: आरंभ हुआ। तकनीकी क्षेत्र में हुए परिर्वन ने अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित किया।

सुल्तानों की शक्ति उनके सैनिक शक्ति पर निर्भर करती थी। यह सम्पूर्ण काल ऐसा था जिसमें सूल्तान भारत में इस्लाम की सत्ता को स्थापित और विस्तृत करने के लिए प्रयत्नशील रहे। इसी कारण हिन्दू राजाओ से संघर्ष और आन्तरिक विद्रोहो का दमन सम्पूर्ण-युग में चलता रहा। इसके अतिरिक्त एक लम्बे समय तक मंगोल आक्रमणों का भय भी रहा। सेना का संगठन और पदो का विभाजन मुख्यतया दशमलव प्रणाली के आधार पर किया गया था।

दिल्ली सुलतानों की युद्ध-पद्धति प्राय: समान रही। शत्रुओं की गतिविधि का पता लगाने के लिए गुप्तचर नियुक्त किये गये थे। सेना का एक अग्रगामी भाग आगे भेजा जाता था। युद्ध के अवसर पर सेना को मुख्यतया चार भागों में बाँटा जाता था। - केन्द्र, वाम पक्ष, दक्षिण-पक्ष और सुरक्षित दल। हाथियो को केन्द्र में सबसे आगे रखा जाता था और उनके बीच में पैदल सैनिक होते थे। घुड़सवारों के आक्रमण के लिए बीच में मार्ग छोड़ दिया जाता था। सुल्तान सेना का मुख्य सेनापति होता था। इल्तुतमिश, अलाउद्दीन खिलजी, गियासुद्दीन तुगलक तथा मुहम्मद तुगलक जैसे योग्य सुल्तानों के समय में सेना की शक्ति बहुत दृढ़ रही।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना 1206 ई0 में कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा की गई। 1206-1526 ई0 के मध्य दिल्ली क्रमश: आदि तुर्को, खिलजीयों, तुगलकों, सैययदों और लोदियों ने राज्य किया। तुगलको के समय से सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया आरंभ हुई। इसी समय अनेक क्षेत्रीय राज्यो का उदय आरंभ हुआ जिसने सल्तनत को कमजोर करना आरंभ कर दिया। लोदियों के शासनकाल में सल्तनत का पतन पूरा हो गया।

सल्तनत के स्वरूप एवं उनके संगठन में ही पतन के बीज बोए गए थे। दिल्ली के सुल्तानों ने एक स्वेच्छाकारी और निरंकुश राजतंत्र की स्थापना की। दिल्ली के सुल्तानों को भारत की बहुसंख्यक जाति विदेशी मानकर समर्थन नहीं देती थी बल्कि उनका सदैव विरोध ही करती थी। इसका उदाहरण राजपूताना और दोआब में स्वतंत्र क्षेत्रीय शक्तियों के उदय तथा दक्षिण में विजयनगर राज्य की स्थापना में देखा जा सकता है।

इक्तादारी प्रथा एवं सैनिक पदों को वंशानुगत बनाने की नीति ने अंततः सेना को दुर्बल और अक्षम बना दिया। सुल्तान का अधिकांश समय विद्रोह के दमन, साम्राज्य विस्तार अथवा अपनी गद्दी की सुरक्षा तथा भोग विलास में व्यतीत हुआ। जिन सुल्तानों ने प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित भी ि कवे उनकी मृत्यु के साथ समाप्त हो गया।

विदेशी आक्रमणो ने भी सल्तनत के लिए समस्याएँ उत्पन्न की। सल्तनत के आरंभिक काल से ही उत्तर-पश्चिम सीमांत में मंगोल आक्रमणो की समस्या बराबर बनी रही। तैमूर के आक्रमण के समय तुगलकवंश की सत्ता नाममात्र के लिए रह गई और स्वंय तुगलक शासक अपनी राजधानी छोड़कर भाग निकला। 1526 ई0 में बाबर के आक्रमण ने ही सल्तनत के पतन की प्रक्रिया को पूरी किया।

दिल्ली के सुल्तानों ने इस्लाम धर्म की व्यवस्था के अनुरूप ही शासन करने का प्रयास किया। सल्तनत काल में धीरे-धीरे सामाजिक एकता का स्थान सामाजिक विभेद ने ले लिया। मुस्लिम अपने को शासक वर्ग का तथा हिन्दू शासित वर्ग का मानने लगे। अविश्वास एवं विद्वेष की भावना ने सल्तनत पर घातक प्रभाव पड़ा।

दिल्ली सल्तनत के पतन में आर्थिक कारणों का भी योगदान था। सल्तनत को सदैव अर्थ संकट बना रहा। उनकी आमदनी का मुख्य स्त्रोत लगान विभिन्न प्रकार के कर एवं युद्ध तथा लूट से होने वाली आमदनी थी। सुल्तानो में से अधिकांश ने आर्थिक सुधारों, कृषि उद्योग, व्यापार की उन्नति तथा आमदनी बढ़ाने के लिए कोई प्रयास नहीं किए। इसके विपरित अनवरत युद्धो, विद्रोहो को दबाने, दरबार की शान-शोकत बढ़ाने आदि में अनावश्यक खर्च किया।

अतः विभिन्न कारणों ने दिल्ली सल्तनत के विधटन को आवश्यक बना दिया।

संदर्भ ग्रंथो की सूची

I. एल0 पी0 शर्मा : मध्यकालीन भारत (1000AD.1761AD)

II. एल0 पी0 शर्मा : दिल्ली सल्तनत (700.1526AD)

III. एल0 श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत

IV. Habib and Nizami : The Delhi Sultanat

V. Irfan Habib (ed) : Madhyakalin Bharat

VI. एच0 वर्मा : मध्यकालीन भारत

इच्छामृत्यु वरदान या श्रापः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सिकन्दर अन्सारी

रिसर्च स्कॉलर, दर्शनशास्त्र विभाग
ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में कुल मिलाकर दो ही भौतिक सत्य है- जीवन और मृत्यु। जीवन को तो सभी चाहते हैं पर मृत्यु को नहीं। जीवन को कई तरह से परिभाषित किया गया है जैसे आरसी प्रसाद सिंह नदी रूप में मानते हुए लिखते हैं-

यह जीवन क्या है? निर्झर है, मस्ती इसका पानी है
सुख-दु:ख के दोनों तीरों से चल रहा राह मनमानी है। र्थात्

मेरे विचार में जीवन हेराक्लाइटस के जेमवतल वि Becoming अर्थात् Changing या बौद्ध दर्शन के विज्ञान (Stream of Consciousness) की तरह है। परन्तु मृत्यु प्राकृतिक का वह उपहार है जिसे विश्व नीयी सुन्तरता से सजाा रहता है। कुदरती तौर पर आई मृत्यु तो उचित है लेकिन कभी-कभी हमारे सम्मुख ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती है जब न चाहते हुए भी हमें मृत्यु का वरण करना पड़ता है। अब यहाँ एक प्रश्न स्वाभाविक ही उठ खड़ा होता है कि व्यक्ति को जब अपने जीवन से इतना प्रेम है तो वह मृत्यु का वरण क्यों करे? यहाँ ध्यातव्य है कि कुछ विशेष परिस्थितियों में जब जीवन असहज हो जाये व्यक्ति दैहिक दुर्दशा और असहनीय पीड़ा भोग रहा हो वह लाइलाज बिमारी से ग्रसित हो तथा मृत्यु की ओर शनैः शनैः बढ़ रहा हो और उसका बचना नामुमकीन हो तो ऐसी स्थिति में पीड़ित व्यक्ति स्वेच्छा से मृत्यु की मांग करता है इस मृत्यु को ही इच्छा मृत्यु के नाम से इंगित किया गया है।

वर्तमान समय में मानव जीवन के अनेक क्रियाकलाप ऐसे दृष्टिगत हो रहे हैं जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी प्राकृतिक नियम, नैतिक नियम और ईश्वरीय नियम के विरुद्ध है। इन्हीं क्रियाकलापों में इच्छा मृत्यु संबंधित विचार है जो वर्तमान समय में गंभीर चर्चा का विषय बना हुआ है जिस पर विचार करना अनिवार्य हो जाता है। इच्छा मृत्यु की प्रासंगिकता के लिए कुछ निम्न मौलिक बिन्दुओं का विश्लेषण वांछनीय दृष्टिगत होता है-

1. इच्छा मृत्यु का स्वरूपगत परिचय
2. इतिहास
3. किन-किन देशों में प्रावधान
4. क्या कहता है भारतीय कानून
5. इच्छा मृत्यु के समर्थन में प्रस्तुत विचार
6. इच्छा मृत्यु के विरुद्ध में प्रस्तुत विचार
7. उपसंहार

1. इच्छा मृत्यु का स्वरूपगत परिचय :- इच्छा मृत्यु का अर्थ है किसी गंभीर और लाइलाज बिमारी से पीड़ित व्यक्ति को दर्द से मुक्ति दिलाने के लिए डा0 की सहायता से उसके जीवन का अंत करना।

यूथेनेसिया (Euthenasia) मूलतः ग्रीक शब्द है जिसमें Eu का मतलब है अच्छी तथा जीदंजवे का अर्थ मृत्यु होता है। इस प्रकार म्नजीमदेपं का शाब्दिक अर्थ है-''एक अच्छा अथवा आनंदपूर्ण मृत्यु''। यहाॅ व्यक्ति अपनी इच्छा से अथवा कानून की इच्छा से मृत्यु का चयन करता है अर्थात् वह जीवन जीना नहीं चाहता या अपनी इच्छा से मृत्यु की मांग करता है तो इसे इच्छा मृत्यु की संज्ञा दी जाती है।

कुछ विचारकों का कहना है कि यह भी एक प्रकार से हत्या या आत्महत्या ही है लेकिन ऐसा वे इस कारण कहते हैं कि उनको 'हत्या' तथा 'दयापूर्ण हत्या' या 'दया मृत्यु' में अन्तर नहीं पता होता है। यहाॅ थोड़ा सा ध्यान देने पर ही दोनों में अन्तर स्पष्ट हो जाता है। आत्महत्या में मरने का निर्णय व्यक्ति स्वयं और अकेले में लेता है जबकि दयामृत्यु में यह निर्णय सार्वजनिक तौर पर लिया जाता है। यहाॅ व्यक्ति के सहमति के अलावा डा0, परिवार, कानूनी सहमति को अनिवार्य माना गया है। इसी प्रकार दयामृत्यु को भी हत्या से भिन्न माना गया है क्योंकि हत्या में लालच, प्रतिशोध, क्रोध, घृणा की भावना से वशीभूत होकर किया जाता है और दूसरी तरफ दयामृत्यु प्रेम और दया की भावना से वशीभूत होकर किया जाता है जिससे पीड़ित व्यक्ति को कष्ट से जल्द से जल्द मुक्ति मिल जाए।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि 21वीं सदी में इसे दयामृत्यु अथवा दयापूर्ण हत्या के रूप में स्वीकार किया गया है। अधिकांश लोग इसे विधि सम्मत हत्या के रूप में देखते हैं। डा0 रिचार्ड लैमेर्टन के अनुसार इस Euthanasia का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है- 1. दयामृत्यु 2. दयापूर्ण हत्या

1. दयामृत्यु :-दयामृत्यु एक प्रकार से आत्महत्या में मदद करना है। लाइलाज बिमारी से ग्रसित रोगी कभी-कभी आत्महत्या करने में असमर्थ हो जाता है और इसलिए वे लोगों से प्रार्थना करते हैं, 'उन्हें इस बेबसी से मुक्ति दिला दें'।

2. दयापूर्ण हत्या :- जब रोगी अपनी इच्छा व्यक्त करने में असमर्थ हो। जैसे- कोमा, मस्तिष्क रक्तस्राव का रोगी कुछ भी बोलने से लाचार है। इस परिस्थिति में नैतिक दृष्टि से चिकित्सकों की राय ही उचित है। इस तरह की स्थिति में रोगी की इच्छा या अनिच्छा का महत्व नहीं दिया जाता है और उसे साक्षात ढंग से मौत दे दिया जाता है।

दयामृत्यु और दयापूर्ण मृत्यु के बीच महत्वपूर्ण अन्तर यही है कि दयापूर्ण मृत्यु अनैच्छिक या बिना रोगी की अनुमति या प्रार्थना के ही दे दिया जाता है जबकि दया मृत्यु में रोगी की इच्छा सम्मिलित रहती है।

अब प्रश्न उठता है कि किन-किन परिस्थितियों में दयामृत्यु या दयापूर्ण मृत्यु दिया जाए-

1. रोगी के रोग को योग्य चिकित्सकों द्वारा लाइलाज घोषित करना
2. रोगी की पीड़ा को वैज्ञानिक आधार पर असहनीय सिद्ध करना
3. रोगी द्वारा अपनी इच्छा से स्वतंत्रतापूर्वक मरने की इच्छा व्यक्त करना
4. योग्य चिकित्सकों की देख-रेख में मृत्यु की क्रिया को सम्पन्न करना

2. इतिहास :- महाभारत के दौरान महान योद्धा भीष्म पितामह को इच्छामृत्यु का वरदान हासिल था और उन्होंने अपनी इच्छा से प्राण त्याग किए। श्रीराम ने भी अपनी मर्जी से सरयु नदी में जल समाधि लिये। जैन मुनियों और जैन धर्मावलम्बियों में संथारा की प्रथा भी इच्छामृत्यु का ही एक प्रकार है जो वर्षो से प्रचलित है। इसमें मुनि कुश या फुश की चटाई पर लेटकर अन्न जल त्याग कर देते हैं जिससे उनकी मृत्यु शीघ्र ही हो जाती है। इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने अपनी स्वेच्छा से योग समाधि की विधि द्वारा अपने प्राण त्याग दिये। आचार्य विनोवा भावे ने अपने अन्तिम दिनों में इच्छामृत्यु का वरण किया जब उन्होंने स्वयं पानी लेने तक का त्यागकर दिया था।

3. किन-किन देशों में प्रावधान :- अमेरिका में सक्रिय इच्छामृत्यु गैरकानूनी है लेकिन ओरेगन, वाशिंगटन और मोंटाना राज्यों में डा. की सलाह से मरने की इजाजत है। स्विटजरलैण्ड में खुद से जहरीली सुई लेकर आत्म हत्या करने की इजाजत है हालांकि इच्छामृत्यु गैर कानूनी है। नीदरलैंड में भी डा0 के हाथों सक्रिय इच्छामृत्यु और मरीज की मर्जी से दी जानेवाली मृत्यु दण्डनीय अपराध नहीं है। वेलजियम में 2002 से इच्छामृत्यु वैधानिक हो चुकी है।

4.क्या कहता है भारतीय कानून :- भारत में इच्छामृत्यु और दया मृत्यु दोनों ही अवैधानिक कृत्य है। ये भारतीय दंडविधान (आइपीसी) की धारा 309 के अन्तर्गत आत्म हत्या का अपराध है लेकिन अब सुप्रीम कोर्ट ने निष्क्रिय इच्छामृत्यु को अनुमति प्रदान की है।

5. इच्छामृत्यु के समर्थन में प्रस्तुत विचार :- इच्छामृत्यु पर गंभीर रूप से विचार करने पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि दयामृत्यु अथवा दयापूर्ण मृत्यु के विकल्प को समाप्त नहीं किया जा सकता है। कुछ विचारक इसके प्रबल समर्थक हैं तथा बताते हैं कि दयामृत्यु कुछ परिस्थितियों में आवश्यक और उचित प्रतीत होता है उनका कहना है कि :-

1. जिन्दा लाश पर दया - इच्छामृत्यु के समर्थन में यह कहा जाताहै कि जिन लोग्रं का यह दिया जाता है वह मात्र जिन्दा लाश है वे हाड़ मांस का पुतला मात्र है। इसके अलावे और कुछ नहीं आगे उनकी मृत्यु निश्चित ही है।

2. मानवीय गरिमा के आधार पर - इस आधार पर भी इच्छामृत्यु का समर्थन किया जाता है यदि मनुष्य को सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार है तो सम्मानपूर्वक मरने का भी अधिकार है अर्थात् जीने का अधिकार है तो मरने का क्यों नहीं।

3. व्यक्तिगत स्वतंत्रता के आधार पर - इसके अनुसार मनुष्य को अपने शरीर और प्राण पर पूर्ण अधिकार है और यह और भी आवश्यक हो जाता है जब मरीज मरणासन अवस्था में हो। अब यह रोगी पर निर्भर करता है कि वह उपचार लेना बन्द कर दे या अन्य कोई दर्दरहित बाहरी साधन द्वारा अपना जीवन समाप्त कर लें।

4. असहनीय कष्ट एवं पीड़ा से मुक्ति - हमारे समक्ष कुछ ऐसी परिस्थितियाॅं आ जाती हैं जब रोगी असहनीय पीड़ा से तड़पते हुए और लाचारी के साथ स्वयं याचना करता है कि उसके जीवन का अन्त कर दिया जाय ताकि इसके द्वारा उसे असहनीय पीड़ा से मुक्ति मिल जाए। ठीक इसी प्रकार के विचार का समर्थन महात्मा गांधी ने भी किया है। उन्होंने यंग इण्डिया में एक जगह कहा है-''यदि कोई बछड़ा दर्द से कराह रहा है या छटपटा रहा है तो उसे मृत्यु दे देनी चाहिए।'' ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने भी अपनी पुस्तक में यह विचार दिया है कि मनुष्य का जीना या मरना उसकी इच्छा पर निर्भर है।

5. विपक्ष युक्ति - इच्छामृत्यु के पक्ष में जितनी युक्तियाॅं दी जाती है उतनी ही युक्ति इसके विपक्ष में भी दी जाती है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि बिलकुल ही युक्तिसंगत है लेकिन ऐसी बात नहीं है। किसी भी जीव की हत्या करना अथवा आत्म हत्या के लिए प्रेरित करना उचित नहीं है। उनका मानना है कि-

1. *जीने के अधिकार का हनन-* प्रत्येक प्राणी को जीवन जीने का पूर्ण अधिकार है। इच्छामृत्यु के द्वारा व्यक्ति के जीवन जीने के अधिकार का हनन होता है जो उचित नहीं है।
2. *मानवीय गरिमा का हनन-* कुछ विद्वानों का कहना है कि इच्छामृत्यु द्वारा मानवीय गरिमा का हनन होता है। यह कहाॅं तक उचित है कि रोगी को जब इलाज की जरूरत हो तो उसे लावारिस छोड़ दिया जाय या उसे मार दिया जाय। पाइगोरस का कहना है कि आत्महत्या से जीवन मरण का चक्र समाप्त नहीं होता है।
3. *ईश्वरीय नियम में बाधा-* धार्मिक विचारकों का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति की आयु निश्चित है जब ईश्वर ही जीवन की सृष्टि करते हैं तो जीवन लेने का अधिकार भी उन्हीं को है मानव को नहीं। व्यक्ति जब किसी को जीवन दे नहीं सकते तो जीवन लेने का भी अधिकार नहीं ऐसा करना ईश्वरीय कार्य में बाधा डालना है। सुख और दु:ख व्यक्ति के कर्मो के फल है।
4. *कुप्रथा का चलन-* अगर समाज में इसको मान्यता मिल जाए तो यह एक चलन बन जायेगा और अगर दवा कुछ दिन काम नहीं करे तथा पैसे के अभाव में लोग इसे हथियार की तरह इस्तेमाल करेंगे और यह हमारे समाज के लिए अभिशाप बन जायेगा और निजी स्वार्थ के लिए भी लोग इसका इस्तेमाल करने लगेंगे।
5. *मृत्यु को मिलेगा बढ़ावा-* कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इससे रोगमुक्ति की संभावना का नाश होता है विश्व में ऐसे अनेक मामले सामने आये है कि डा0 ने व्यक्ति के बचने की संभावना को सिरे से नकार दिया लेकिन व्यक्ति चमत्कारिक रूप से जीवित हो उठता है। इसलिए कहा गया है कि जब तक सांस है तब तक आस है। अगर उस व्यक्ति को मार दिया जाता है तो ऐसा नहीं होता।
6. *डा0 के पेशे के खिलाफ-* इच्छामृत्यु डा0 के पेशे के खिलाफ है क्योंकि डा0 को काम है किसी की जान बचाना न कि उसे मृत्यु देना। यह डा0 के काम के लिए विपरीत होगा।

6. उपसंहार :-उपर्युक्त दोनों विचारों को देखने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि इच्छामृत्यु के सन्दर्भ में निष्कर्ष के तौर पर कुछ भी कहना अत्यंत ही कठिन प्रतीत होता है क्योंकि पक्ष और विपक्ष में जो भी विचार प्रस्तुत किए गए हैं वह अपने-अपने दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। हमें किसी भी व्यक्ति को मृत्यु देना संगत दृष्टिगत नहीं होता है लेकिन साथ ही साथ असहनीय पीड़ा तथा वेदना

से तड़पते हुए नीरह पशु की तरह छोड़ना भी उचित प्रतीत नहीं होता है लेकिन फिर भी इन दोनों पक्षों पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमारे सामने कुछ ऐसी विकट परिस्थितियाँ आ जाती है जब इसके अलावे हमारे पास अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता है लेकिन यह अत्यंत ही दुर्लभ मामलों में दिया जाना चाहिए तथा साथ ही साथ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि रोगी के जीवन का अंत शांतिपूर्ण, मर्यादापूर्ण, दर्दरहित और दुःखरहित अवस्था में हो।

मेरा मानना है कि समाज में दयामृत्यु की स्वीकृति होनी चाहिए लेकिन इसके साथ ही साथ यहाँ कुछ विशेष बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है। दयामृत्यु में सबसे पहले रोगी अगर वह बताने में समर्थ हो तब कानून, योग्य चिकित्सकों तथा परिवार के सदस्यों की सहमति आवश्यक होनी चाहिए। अगर रोगी बताने में सक्षम नहीं हो तो डा0 की बात माननी चाहिए। अगर सभी पक्ष सहमत है तो यह दिया जाना चाहिए ऐसे में इसका दुरुपयोग नहीं होगा तथा पीड़ित व्यक्ति के साथ उचित न्याय होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चौरसिया, एम0 पी0, अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, प्रथम संस्करण, दिल्ली-2006
2. मिश्रा, प्रो0 नित्यानन्द, नीतिशास्त्र सिद्धांत और प्रयोग, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, प्रथम संस्करण, दिल्ली-2005
3. Singer Peter, Practical Ethics, Second Edition, Combridge University Press, 2003
4. ThomasA. Mapper. Jaue, Social Ethics, The Me Grew Hill Companies, ins. Newyork

नेपाली के गीतों में उनका व्यक्तित्व

डॉ० आर्य सिन्धु

नेट, पी-एच0 डी0 (हिन्दी)
भू0 ना0 मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा।

''हम धरती क्या आकाश बदलने वाले है।
हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं।''[1]

कलम की स्वाधीनता के पुरजोर समर्थक, सकुंठ गीतकार, करोडो जनता के दिलो में राज करने वाले तथा सधा हुआ शब्द शिल्पी कार व्यक्तित्व का दर्शन उनकी रचनाओं में स्पष्ट देखने को मिलता है:-

''वह तो मैं हूँ जो हँसता हूँ
मस्ती है, कुछ गाता हूँ
जो रोते हैं, उन्हें मना कर
अपना गीत सुनाता हूँ
मानव का वंदन करता हूँ
जग का अभिनंदन करता हूँ
है स्थिति यही, कलम-घिसकर
माथे पर चंदन करता हूँ।
युग कठोर है बंधु, इसलिए
यह सब जग में करना हैं।
रोने की न पिता की आज्ञा
हँसते-हँसते मरना है।
इसे मानिए दुख, तो दुख है
आप जानिए सुख, तो सुख है।''[2]

उनके इस व्यक्तित्व में मस्ती व फकराना अंदाज है, अभाव छटा है, प्रकृति से आत्मीय लगाव है, देश की प्रति सच्ची श्रद्धा भी

''तुमसा लहरों में बह लेता
तो भी मैं सत्ता गह लेता
ईमान बेचता चलता तो
मैं भी महलों में रह लेता।''[3]

कवि गोपाल सिंह नेपाली का जन्म 11 अगस्त 1911 को भारत राज्य के चंपारण जिले के बेतिया नामक शहर में हुआ था। इसके पिता रेल बहादुर सिंह सेना में हवलदार मेजर थेजबकि इसकी माता सरस्वती देवी कुमाऊ की एक सैनिक क्षत्रिय कन्या थी।

इस प्रकार नेपाली का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था, जहां साहस, शौर्य, बलिदान, निष्ठा व स्वाभिमान के भाव पूर्व से ही व्याप्तथे। अपने सैनिक पिता के साथ देहरादून से लेकर मसूरी तक प्रकृति कीरम्य गोद में रहने के कारण उनकी जन्मजात काव्य प्रतिमा प्रस्फुटित हुई-

''फूटा है मेरा कंठ यहीरे, निर्मल निर्झर के समान
सीखा है मैंने यहीं तीर पर सरिता के मृदु सरल गान
सिखाया है नित्यही मुझे पंछी ने उड़नापपाँख खोल
है हुआ यही क्रिड़ा निकुंज में मेरे जीवन का विहान।''[4]

अपने सैनिक पिता के साथ विभिन्न जगहों, यहां तक छावनीयों तक में रहने के कारण उनका जीवन प्रायः बिखरा हुआ ही रहा, परंतु इस बिखराव के बीच जीवन और संसार को नए ढंग से देखने परखने का अवसर उन्हें अवश्य मिला। ''अभाव और अकेलेपन ने इनकी जिंदगी को, कैसे सांचे में ढाल दिया, जो बाद में चलकर एक विराट व्यक्तित्व के रूप में देश और दुनिया के सामने उभरकर बुलंदियों को छूने लगी।''[5]

नेपाली जब 8 वर्ष के थे, तब उसकी माता का देहांत हो गया। इस मातृ- बिछोह ने उन्हें और भी अंतर्मुखी बना दिया। विधिवत शिक्षा चलने के बावजूद भी वे उत्प्रेरित नहीं हो सके। नेपाली के बचपन के गुरु महावीर सिंह वीरन तथा मंगल पांडे थे। इन सुयोग्य तथासाहित्यिकगुरुओं के साहचर्य में नेपाली के काव्य प्रतिभा प्रस्फुटित हुई तथा साहित्यिक संस्कार विकसित हुई। प्र सिद्ध लेखक नंदकिशोर नंदन कहते हैं - महावीर सिंहविरन के रूप में नेपाली को, ऐसे गुरु मिले जो न केवल कवि थे, अपितु स्वाधीनता आंदोलन के एक क्रांतिकारी योद्धा भी थे। इसलिए नेपाली के कवि में जो सहज कवित्वऔर क्रांतिकारी चेतना का मणिकांचन सहयोग है, उसका बीज उन्हीं गुरु की सत्संगति में शै'ाव काल में ही हो गया था।''[6]

1931 में कोलकाता के अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में जब उन्हें पहली बार सर्वश्री सेनगुप्त रामानंद चटर्जी, बनारसीदास चतुर्वेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामधारी सिंह दिनकर तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जैसे अनेक विभुतियों के दर्शन हुए तो इस मुलाकात ने उनके साहित्यानुराग को और भी बढ़ा दिया। इससे उनके व्यक्तित्व में भी निखार आया।

अगले ही वर्ष 1932 में जब प्रयाग में श्विेदी मेला लगा, जिसकीअध्यक्षता अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध कर रहे थे, तब उस अवसर पर सौ कवियों में मात्र पंद्रह कवि ही काव्य पाठ के लिए चयनित हुए, जिनमें नेपाली भी शामिल था। जब नेपाली ने अपना काव्य प्रस्तुत किया तो कथा सम्राट प्रेमचंद ने उछलकर उन्हें गले लगाकर पुछा-''बरखुरदार कविताई क्या माँ के पेट से ही सीख कर आए हो।''[7]

इस प्रकार नेपाली को इन साहित्यकारों से भी वे सारी प्रेरणा ही मिलीं, जिनसे वे हिंदी के एक विशिष्ट कभी बन गए। नंदकिशोर नंदन ने लिखा है-''नेपाली की प्रतिभा के विकास में जहाँ संघर्ष से प्राप्त विपुल जीवन अनुभव की महत्वपूर्ण भूमिका रही है वहीं महान रचनाकारों के साहचर्य-संवाद के अलावा उनकी यायावरीवृत्तिने भी उनकी प्रतिभा को हिमशिखरों की उच्च स्तर प्रदान की है। सैनिक पिता की साहसिकता, जुझारूपन और दृढ़ताने भी उन्हें वह अजय शक्ति दी होगी कि वह न कभी झुके औरनही टूटे।''[8]

इस प्रकार नेपाली बचपन से ही स्वाभिमानी और फक्कड़ स्वभाव के थे। उन्होंने हमेशा इस भाव को जिंदा रखा-

''लिखता हूं अपनी मर्जी से बसता हूँ कैंची दर्जी से
आदत ना रहे कुछ लिखने की, निंदावंदन खुदगर्जी से
कोई छेड़े तो तन जाती, बन जाती है संगीन कलम।''[9]

उन्होंने अपने प्रेम दर्शन को स्पष्ट करते हुए कहा है-

''मैं प्रेमी हूँ गुण गाता हूँ
प्रेम विरह को अपनाता हूँ

सुध है अपनी, बुध है अपनी

अपनी राह चला जाता हूँ।''[10]

उन्होंने जीवन भर संघर्ष कर अनेक शिखरों को छुआ। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में आशावादीता,यौवनकी मादकता, प्रकृति की रम्यता व अदम्य जिजीविषा के विराट दर्शन देखने को मिलता है–

''अगणित तारों के प्रकाश में

मैं अपने पथ पर चलता था

मैंने देखा गगन गली में

चाँद सितारों को छला था

आँधी में तूफानों में भी

प्रा.ादीप मेरा जलता था

तन का दिया प्राण की बाती

दीपक जलता रहा रात भर।''[11]

जब चीन ने 1962 में हमारे देश पर आक्रमण किया तब कवि का कविकर्म स्वत: लोगों को प्रेरित करने के लिए प्रस्फुटित हो गया–

''हुआ देश खातिर जनम है हमारा

कि कवि है तड़पना करम है हमारा

कमजोर पाकर मिटा देना कोई

इसी से जागाना धर्म है हमारा।''[12]

अपनी अनुभूति की तीव्रता और प्रबल आत्माभिव्यंजनों के बल पर वे लोगों को जीवन दर्शन का मर्म भी समझाते हैं।–

''घूँघट घूँघट नैना नाचे,पनघट पनघट छैयाँ रे

लहर लहर हर नैया नाचे, नैयाबीच खेबैयारे।''13

वेहमेशा सुखी समृद्ध मानवीय विश्व समाज के सपनों को साकार करने के उद्देश्य से ही अपने जीवन और साहित्य दोनों में अनवरत एक यौद्धा की भूमिका निभाते हुए नजर आए हैं। इसलिए तो वे कहते हैं–

''रहता हूँ मैं भी धरती पर लेकिन पशु हूँ नपरिंदा हूँ

मानव बनने की कोशिश में अपनी मेहनत पर जिंदा हूँ।''[14]

प्र सिद्ध विद्वान श्याम बाबू प्रसाद ने उनके व्यक्तित्व के बारे में ठीक ही लिखा है– ''आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य को नुतन–सौन्दर्यबोध और नयी अर्थवत्ता देने वाले गोपाल सिंह नेपाली का व्यक्तित्व संघर्ष, साधना और संकल्प के तत्वों से निर्मित हुआ है। सच तो यह है कि उनके संघर्षशील व्यक्तित्व ने तीव्रता दी है। नेपाली अपने विलopen.ा आत्मसम्मान और निर्भीक विचारों के कारण ही जनता का स्नेह पाने में सक्षम हो सके हैं।''[15]

उनके काव्य में प्रयुक्तप्रेम और संघर्ष, संघर्ष और जिजीविषा, मानव कल्याण, सामाजिक–प्रतिबद्धता तथा लोकगत सजगता आदि भाव ने नेपाली के व्यक्तित्व को और भी विशिष्ट बना दिया है–

''जब जब जनता पर दुख की बदली छाई है।

तब तक हमने विप्लव बिजली चमकाई है।

मानवता का परिहास बदलने वाले हैं।

हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं।''

स्वाधीन कलम के इस धनवान कवि ने अपने जीवन में कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना करके भी अपने स्वाभिमान को मरने नहीं दिया। यही कारण है कि उनका संपूर्ण जीवन आज भी उनकी संघर्षशीलता व अदम्य जिजीविषा का पर्याय है। इसलिए उन्होंने सच ही लिखा है-

''अफसोस नहीं इसका हमको, हम जीवन में कुछ कर न सके
झोलियाँ किसी की भरन सके, संताप किसी का हर न सके
अपने प्रति सच्चा रहने का जीवन भर हमने यत्न किया
देखा देखी हम जी ना सके, देखा देखी हम मर न सके।''

संदर्भ

1. गोपाल सिंह नेपाली समग्र- 1/528
2. वही /175/176
3. वही/527
4. वही /100
5. रघुनाथउपाध्याय शलभ/आजकल
6. गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि /3
7. डॉ0 सतीश कुमार राय गोपाल सिंह नेपाली/13
8. गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि/7
9. गोपाल सिंह नेपाली समग्र-1/526
10. वही /334
11. गोपाल सिंह नेपाली, डॉ0 सतीश कुमार राय /116-117
12. गोपाल सिंह नेपाली समग्र- 1/457
13. वही/570
14. अलाव, नेपाली जन्म शती-विशेषांक मार्च-अप्रैल-2012/386
15. गोपाल सिंह नेपाली के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य-/16
16. गोपाल सिंह नेपाली समग्र-1/528
17. गोपाल सिंह नेपाली युगद्रष्टा कवि/37

1900 ई. से 1976 ई.के बीच उत्तर बिहार में उद्योगों की स्थिति

डॉ० मनोज कुमार

गांधी चौक (बलुआ), वार्ड नं0 -12, पोस्ट + थाना - मधुबनी, जिला - मधुबनी, पिन-847211

सभ्य और सुसंस्कृत जीवन के लिय एक नियमित अनुशासन और अंकुश आवश्यक है। मानवता के इतिहास में अर्थ को एक प्रमुख भाग माना गया है। किसी भी समाज के विकास और पतन में अर्थ की प्रमुख भूमिका रही है। सभ्य मानव का विकसित मस्तिष्क समाज के मौलिक संघर्षों का अध्ययन करता है और उस समय यह भी ध्यान देता है कि समाज का कोई भी व्यक्ति दूसरों के आगे अपनी दीनता की झोली नहीं पसारे। सभ्यता और संस्कृति का यही स्फुलिंग समाज के कोढ़ को दूर करने का प्रयास करती है। उत्तर बिहार का समाज अनादि काल से सभ्य और सुंस्कृत रहा है। यहाँ गरीब और धनी के बीच अन्तर रहा है किन्तु कोई गरीब किसी धनी के समक्ष अपना हाथ नहीं फैलाया। यहाँ समाज में हर व्यक्ति अपने बल और साहस पर जीवित रहा है।समाज का वर्ग विभाजन अति प्राचीन काल में हो चुका था और प्रत्येक वर्ग को अलग-अलग पेशा भी निर्धारित कर दिया गया था। आधुनिक युग की तरह प्राचीन और मध्य काल में यांत्रिाक युग नहीं था। यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बुद्धि और अपने हाथ पर भरोसा था और अपनी क्षमता के अनुसार पेशा अपनाकर, अपनी मेहनत से उपार्जन कर लेता था। हर वर्ग अपने पेशे के अनुसार गृह उद्योग में लगे हुये थे और उसी से उनकी रोटी की समस्या का हल हो जाता था। गृह उद्योग हर जाति के साथ जुड़ा हुआ था और उनका आर्थिक जीवन सुदृढ़ था।[1]

उत्तर बिहार में अति प्राचीन काल से समाज का आर्थिक आधार कृषि रहा है।यहाँ विदेशियों का आक्रमण भी होता रहा, विदेशियों ने सामाजिक जीवन को कमजोर करने का प्रयास किया। अंग्रेजों के आगमन के बाद शहरी जीवन का भी विकास होने लगा किन्तु ग्राम्य जीवन का मुख्य आधार कृषि ही रहा। यहाँ का कृषि मूलतः प्राकृतिक वातावरण पर निर्भर करता था। यहाँ नदियों की भरमार थी जो सहायक भी थे और उनके बर्बादी के भी कारण थे। अधिक वर्षा हो जाने पर बाढ़ आ जाती और फसल नष्ट हो जाता और कम वर्षा होने पर फसल नहीं उपजता था। प्रकृति पर किसी का अधिकार नहीं होता है।[2] इन दुःख सुखों के बावजूद भी लोग कृषि में लगे रहते थे। कहा जाता है उत्तर बिहार में किसानों का हृदय पत्थर के समान था। दुर्भिक्ष आने के बाद भी अपने प्रधान पेशा कृषि से नहीं मुकरते थे। कहा जाता है उत्तर बिहार के लोगों का विश्वास था ''उत्तम खेती माध्यम वाण, निषिद चाकरी, भीख निदान।[3] वे सभी पेशों से अधिक महत्त्व खेती को देते थे। परन्तु अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी के आने के बाद, उसके द्वारा विभिन्न प्रकार के कानून पास करने के बाद, कॉर्नवालिस द्वारा स्थायी प्रबन्ध स्थापित करने के बाद, अत्याचारी सरकार और जमींदार कृषकों की भूमि पर स्वामित्व समाप्त कर दिया, उनके परंपरागत अधिकार (सार्वजनिक चारागाह, जंगल, मछली पालन इत्यादि) छीन लिया और उन्हें जमींदारों का व्यक्तिगत रैयत बना दिया। इतना ही नहीं पैदावार पर भी उनका एकाधिकार नहीं रहा। जमींदार उनसे मनमानी राशि वसूल कर कंपनी को निश्चित रकम देते रहे। शेष अपने पास रख लेते। कृषकों को जमींदारों के यहाँ बेगारी करना पड़ता, उपहार देना पड़ता, नजराना देना पड़ता।[4] जमींदारों एवं उनके गुमाश्तो के अत्याचारों का भी सामना करना पड़ता था, फलतः किसानों की दशा हमेशा के लिये दयनीय बन गयी। नई भूमि व्यवस्था ने किसानों को दरिद्र बनाकर उन्हें कर्ज के बोझ तले दबा दिया। जमींदारी और सरकारी शोषणों के शिकार किसान के पास भूमि के पैदावार का बहुत कम अंश बच जाता था। लगान एवं जमींदारी अंशों को चुकाकर उनके पास मुश्किल से ही अपने खाने भर का अनाज बच जाता था। सुखे और बाढ़ के चलते जब उनकी फसलें समाप्त हो जाती

थी। बाध्य होकर उन्हें कर्ज लेना पड़ता और कर्ज के बोझ के तले दबे रहते थे। उन्हें मालिक का बेगारी करनी पड़ती, अपना खेत गिरबी रखना पड़ता और अन्त में उसे बेचकर भूमिहीन मजदूरों की श्रेणी में स्थान लेना पड़ता। फलतः किसानों की दशा लगातार बिगड़ती चली गयी।''

किसानों के दुर्दिन अवस्था का यह भी कारण था कि अंग्रेजों ने विदेश में कच्चे माल भेजना शुरू कर दिया और जमींदारों के माध्यम से किसानों से वही फसल उपजाते जिसकी आवश्यकता इंगलैण्ड में थी। वे यहाँ के किसानों से रुई, पटसन, नील, अफीम, चाय इत्यादि पैदा करवाते। इसका परिणाम आम नागरिकों को भी भोगना पड़ता क्योंकि अनाज की उपज कम हो जाता और किसान अंग्रेजों के विरूद्ध आवाज नहीं उठा सकते थे।

इस प्रकार अंग्रेजी भू-राजस्व नीति के परिणामस्वरुप उत्तर बिहार की अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ गयी। समाज में जमींदार और साहूकार प्रधान बन गये। भूमिहीन श्रमिकों की संख्या बढ़ गयी। कृषि का वाणिज्यीकरण हुआ एवं जमीन पर बोझ बढ़ता गया। प्रो0 विपिनचन्द्र ने लिखा है ''अंग्रेजों ने जमीन को एक माल का रूप देकर जिसे खुलेआम खरीदा और बेचा जा सकता था, देश की तत्कालीन भूमि व्यवस्थाओं में एक बुनियादी परिवर्त्तन किया। भारतीय गाँव की निर्भरता हिल गयी। वस्तुतः ग्रामीण समाज का ढ़ाँचा टूटने लगा।''[5]

उत्तर बिहार में सभी वर्ग के लोग खेती करते थे। विशेषकर ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत, कोयरी, यादव और अन्य जाति के लोग अधिक पूँजी लगाते थे और उसे अपना पेशा समझते थे। वे पूर्णतः किसान थे और उनका आर्थिक जीवन पूर्णतः खेती पर ही निर्भर था। कंपनी सरकार की नीति के कारण उनका आर्थिक जीवन चरमरा गया। उनके समक्ष कोई दूसरा चारा भी नहीं था। जब अंग्रेजों ने इनके नीजि जमीनों में उनके इच्छा के विरूद्ध नील, अफीम, ईख आदि की खेती करने के लिये जोर देने लगे तो वे और भी अपार कष्ट में पर गये और कृषि पेशा छोड़ने को तैयार हो गये।[6]

उत्तर बिहार का मैदानी इलाका प्रतिवर्ष बाढ़ और सुखाड़ से प्रभावित होता है। उत्तर बिहार का मैदानी समतल इलाका जो प्रतिवर्ष बाढ़ और सुखाड़ की चपेट में आता रहा है। ब्रिटिश काल में या स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी औद्योगिक प्रगति के क्षेत्रा में पिछड़ा रहा है। दक्षिण बिहार में (अब झारखंड) में जहां बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना 20वीं सदी में हु वहाँ उत्तर बिहार में गिनती के ही उद्योग लगे। फिर भी ब्रिटिश काल में उत्तर बिहार में नील उद्योग विकसित अवस्था में था। 1917 ई. में महात्मा गांधी के नेतृत्व में चम्पारण सत्याग्रह के पश्चात् ही नील उद्योगों को धक्का लगा। स्वतंत्रता पूर्व 20वीं सदी में उत्तर बिहार में चीनी उद्योग का काफी विकास हुआ था।दक्षिण बिहार में बड़े -बड़े उद्योगों की स्थापना की गयी जबकि उत्तर बिहार में इसके बनिस्पत कम उद्योग लगे। अंग्रेजों के समय उत्तर बिहार में नील उद्योग विकसित अवस्था में था। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में 1917 में चम्पारण में नील उद्योगों को धक्का लगा। स्वतंत्रता पूर्व 20वीं सदी में उत्तर बिहार में चीनी उद्योग का काफी विकास हुआ था। उत्तर बिहार में कुल 32 चीनी मिलें स्थापित हो गई थी। सारण में 1904 ई0 में पहला चीनी मिल सारण में स्थापित किया गया। 1905 ई0 में लौरिया में, 1914 में रैयाम और लोहट में चीनी मिलों की स्थापना की गयी। पूरे देश में कुल 140 मिलें थी। सभी चीनी मिलें उत्तर बिहार के सारण चम्पारण पूर्णिया दरभंगा, मधुबनी, सीवान, समस्तीपुर, सीतामढ़ी में थी। लेकिन 1970 के दशक तक आते-आते अधिकांश चीनी मिलें रुग्ण इकाईयों में बदल गई, इसके पीछे क्या कारक थे ?[7]

पूर्णिया, कटिहार, किशनगंज, अररिया आदि जिलों में जूट उद्योग स्थापित किया गया। 1948 में जूट उद्योग में बिहार का दूसरा स्थान था लेकिन धीरे - धीरे जूट उद्योग दयनीय अवस्था में पहुँच गया।[8] वस्त्रा उद्योग में भी उत्तर बिहार अच्छी स्थिति में थी। असंगठित स्तर पर उत्तर बिहार के मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर मधुबनी आदि स्थानों पर पावरलूम एवं हैण्डलूम की महत्त्वपूर्ण उत्पादक इकाइयों के रूप में थे। कुटीर एवं लघु उद्योग के रूप में पटसन की वस्त्रा निर्माण की अधिकांश इकाइयाँ कटिहार, किशनगंज एवं दरभंगा जिले में स्थित थी। इस उद्योग की स्थिति भी दिनानुदिन बिगड़ती चली गई। अंडी, रेशम तथा तासर से निर्मित वस्त्रा उद्योग की स्थापना भागलपुर तथा उसके सीमावर्ती इलाकों में हुई थी लेकिन इनकी भी दयनीय स्थिति है।[9]

कम्पनी शासन काल में चावल उद्योग उन्नत अवस्था में था। उत्तर बिहार में चावल की सर्वाधिक मिलें स्थापित की गयी। मुँगेर में चावल की 100 से अधिक मिले थी। कागज एवं गत्ते के भी अनेक उद्योग उत्तर बिहार में स्थापित हुए। इनमें ठाकुर पेपर मिल समस्तीपुर, अशोक पेपर मिल दरभंगा उत्तर बिहार की प्रमुख मिलें थी।[10]

इस आलेख में हमें इस पर विचार करना है कि उत्तर बिहार में उद्योगों की स्थापना में किन लोगों की भूमिका रही। यहाँ के जमींदारों, धनाढ्यों समृद्ध लोगों ने उद्योगों का कितना प्रश्रय दिया? ब्रिटिश सरकार का इसमें कितना सहयोग मिला ?[11] क्या ब्रिटिश सरकार की उद्योगों की स्थापना के पीछे केवल मुनाफे की प्रवृति रही या वह यहां के सामाजिक आर्थिक परिदृश्य में बदलाव की भी इच्छुक रही ? उद्योगों का फायदा किसे मिला ? इसने क्षेत्रा में विकास में सामाजिक आर्थिक दृष्टि में कितना बदलाव लाया ?[12] स्वतंत्रता के पूर्व उत्तर बिहार में उद्योगों की स्थिति अच्छी थी लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उद्योगों की स्थिति बद से बदतर होती चली गयी। उद्योगों के ह्रासोन्मुख स्थिति पर भी विचार करना है और इसके उत्तरदायी कारणों का पता लगाना है। वस्तुत: उत्तर बिहार में स्वतंत्रता पूर्व अनेक उद्योग का विकास हुआ लेकिन उनकी स्थिति क्यों बिगड़ती चली गई? इसके पीछे कौन-सी परिस्थितियों और कारक जिम्मेदार थे।[13]

प्रस्तुत आलेख में हमें यह भी विचार करना है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उत्तर बिहार में उद्योगों की स्थापना के प्रति सरकार कितनी गंभीर रही ? पंचवर्षीय योजनाओं का लाभ उद्योगों की दृष्टि से स क्षेत्रा को कितना मिला?[14] क्या क्षेत्रा के सांसदों विधायकों ने अपनी भूमिका का सही ढंग से निर्वहन किया ? उन्होंने उद्योग लगाने के गंभीर प्रयास किए या नहीं ? क्या राजनीतिक दलों की आपसी प्रतिद्वंद्विता भी उद्योग के क्षेत्रा के विकास में बाधक रहा ?[15]

इस प्रकार प्रस्तावित शोध प्रबंध में आलोच्य काल में हमें यह देखना है कि उत्तर बिहार में उद्योग के विकास की दिशा में कौन-कौन से प्रयास हुए और नहीं हुए तो इसके पीछे कौन-कौन से कारण थे।[16] वस्तुत: उत्तर बिहार में उद्योगों के विकास के सभी पहलुओं पर हमें नयी रोशनी डालनी है जिस पर विद्वानों की सूक्ष्म दृष्टि अभी तक नहीं गई है।संपूर्ण भारत में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आर्थिक इतिहास पर अपेक्षाकृत काम हुआ है। बिहार के आर्थिक इतिहास पर भी पुस्तकों की कमी है।[17] रमेश चन्द्र दत्त 'भारत का आर्थिक इतिहास' लिखा है। नील उद्योग पर कई पुस्तकें लिखी गई हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की 'चम्पारण में महात्मा गाँधी', पी. के. शुक्ला की इंडिगो एंड द राज' प्रमुख पुस्तक है। डॉ. राम सागर सिंह ने 'चीनी उद्योगों का इतिहास' लिखा हैं वस्त्रा उद्योग पर ए.के. सिन्हा की महत्वपूर्ण पुस्तक है। वी.डी. बसु की पुस्तक 'रियूनस ऑफ इंडियन ट्रेड एण्ड इंडस्ट्रीज' उद्योगों की दशा पर प्रकाश डालती है।[18] 'द इंडस्ट्रीज इन बिहार एंड उड़ीसा' एस.एन. सिंह ने लिखी है। लेकिन किसी विद्वान ने उत्तर बिहार में उद्योगों के विकास पर स्वतंत्रता पूर्व और उसके पश्चात् सम्यक् दृष्टि से प्रकाश नहीं डाला हैं। अत: मेरा विनम्र प्रयास होगा कि उत्तर बिहार में आलोच्य काल में उद्योगों के विकास के आयाम के अनछुए पहलुओं पर नई रौशनी डाली जाय।[19]क्षेत्राीय इतिहास का अध्ययन अपने आप में चुनौतीपूर्ण होता हैं। अत: उत्तर बिहार में उद्योगों के विकास का अध्ययन का उद्देश्य इस क्षेत्रा में स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात् हुई प्रगति का समालोचनात्मक विश्लेषण है।वस्तुत: किसी भी क्षेत्रा के आर्थिक विकास का अध्ययन इतिहास की दृष्टि से काफी चुनौतीपूर्ण होता है।[20] अत: आलोच्यकाल में उद्योगों के विकास का अध्ययन महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता हैं। उत्तर बिहार का समतल मैदानी इलाका पिछड़ेपन का शिकार रहा है। ब्रिटिशकाल में यहाँ जो उद्योग स्थापित हुए वे भी स्वतंत्रता पश्चात् मृतप्राय हो गए। अत: इसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन समीचीन और प्रासंगिक है।[21]

प्रस्तुत शोध आलेख ज्ञान के क्षेत्रा में एक अहम कार्य साबित होगी। उत्तर बिहार में आर्थिक विकास पर अभी तक बहुत कम काम हुआ है। अत: उत्तर बिहार में उद्योगों के विकास के आयामों जैसे अछूते विषय के अध्ययन से ज्ञान के क्षेत्रा में शून्यता खत्म होगी।उत्तर बिहार का क्षेत्रा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ माना जाता है। स्वतंत्रता के बाद भी इस क्षेत्रा में बहुत बदलाव नहीं आया है। 20वीं सदी के प्रारंभ में यह क्षेत्रा उद्योगों की दृष्टि से कुछ मामले में आगे था लेकिन स्थिति बिगड़ गई। इसके पीछे कौन-कौन से कारण थे। इसका क्या प्रभाव पड़ा और भविष्य में इस क्षेत्रा के आर्थिक विकास की क्या संभावनाएं है। इन सभी पहलुओं पर विचार करना है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि बिहार के पिछड़े इलाके में कृषि आधारित उद्योगों का विकास जब तक नहीं होगा तब का विकास संभव नहीं होगा। स्वतंत्रता पूर्व जो उद्योग स्थापित हुए थे और प्रगति कर रहे थे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सारे उद्योग सुस्त पड़ गये और उसका विकास अवरूद्ध होता चला गयी जो चिंता का विषय है।

संदर्भ सूची :

1. एच० एच०रोजले, ट्राइव एण्ड कास्ट इन बंगाल, कलकत्ता, 1819, पृ० 282
2. विपिन चन्द्र , आधुनिक भारत, नई दिल्ली, 1965, पृ० 135

3. डब्लू॰ डब्लू॰ हण्टर, स्टैरिकल एकाउण्ट ऑफ बंगाल, लंदन 1877, वॉल्यूम-XIII, पृ॰ 44
4 एस0 ई0 क्रूक, टैभरनीयर ट्रैभल इन इंडिया ऑक्सफोर्ड 1935 वॉल्यूम-प्प, पृ॰ 211
5. जे॰होल्टन, बिहार द हर्ट ऑफ इंडिया, नो डेट, पृ॰-115
6. फ्रांसिस बुकानन, एन एकाउण्ट ऑफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफ पूर्णिया,
7. पी0सी0चौधरीराय, तिरहुत ड्यूरिंग द अरली ब्रीटिश रूल, जे0 बी0 आर0 एस0, वॉल्यूम-ग्स्प, 1964, पृ॰ 504
8. हेनरी थामस कोलब्रुक, रिमार्कस ऑन द हसबेन्ड्री एण्ड इंटरनल कामर्स ऑफ बंगाल
9. डब्लू॰ डब्लू॰हण्टर, द स्टैटिकल एकाउण्ट ऑफ बंगाल (तिरहुत एण्ड चम्पारण) वॉल्यूम-ग्प्प्, लंदन, 1877, पृ॰ 145-46
10. एल.एस.एस. ओ मैली, डी0 जी0 मुजफ्फरपुर, कलकत्ता 1907, पृ॰ 89
11. बी.एन.सिंह , ट्रेड एंड इंडस्ट्रियल मार्केट्स आफ बिहार
12. पी.दयाल, बिहार ए फिजीकल इकानामी एंड रिजनल ज्योग्राफी
13. पी0सी0चौधरीराय, तिरहुत ड्यूरिंग द अरली ब्रीटिश रूल, जे0 बी0 आर0 एस0, वॉल्यूम-ग्स्प, 1964, पृ॰ 504
14. आर0 आर0दिवाकर, बिहार थ्रू द एजेज,पटना 1958, पृ॰ 688
15. एच0 एच0रीजले, पीपुल ऑफ इंडिया,कलकत्ता 1905, पृ॰ 133
16. मदनेश्वर मिश्रा, सम आस्पेक्ट्स ऑफ लैण्ड रेवेन्यू हिस्ट्री ऑफ पूर्णिया डिस्ट्रिक्ट, पटना, 1995
17. आर0 एन0झा, हिस्ट्री ऑफ सरकार तिरहुत एण्ड द ईस्ट इण्डिया कंपनी,वनारस 1911 पृ॰ 171
18. वही
19. वही, पृ0 173
20. एम0 ई0 एम0 जॉन्स, वारेन हेस्टिंग्स इन बंगाल, आक्सफोर्ड, 1918, पृ॰ 244-245
21. एच0 आर0 घोषाल, ए ब्रीफ एकाउण्ट ऑफ बंगाल, 'ओपियम ट्रेड विथ चायना', पी0आई0, एस0सी0 1939, पृ॰ 1521

मनरेगा एवं ग्रामीण महिलाएं (उत्तराखण्ड के कुमाऊं मंडल के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ० निधि राणा

अर्थशास्त्र विभाग, एस0एस0जे0 परिसर, अल्मोड़ा,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल।

शोध सारांष- किसी भी देश के विकास के लिए महिलाओं की सहभागिता आवष्यक है हमोर देश की आधे से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है,अत: देश की प्रगति के लिए ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, उत्थान पर ध्यान देना अति आवष्यक है, ग्रामीण महिलाओं को संशक्त बनाने तथा उनकी क्षमताओं का निर्माण करने के लिए अनके योजनाएं चलाई जाती गई, महात्मा गॉधी राश्ट्रीय रोजगार गारण्टी योजना ''मनरेगा'' एक ऐसा कार्यक्रम है जिसमें महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान (33:) किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में मनरेगा के क्रियान्वयन से ग्रामीण महिलाओं के जीवन में आये बदलाओं का अध्ययन, उत्तराखण्ड राज्य के कुमाऊँ मण्डल के विशेष संदर्भ में किया गया है।

परिचय:-जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है, क्योंकि महिला एवं पुरुष विकासरूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। महिलायें राष्ट्र के विकास में उतना ही महत्व रखती हैं जितना पुरुषों का है। अत: देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बगैर संभव नहीं है।[1] ग्रामीण विकास में महिलाओं की अनदेखी नहीं की जा सकती। देश के ग्रामीण विकास में महिला रोजगार की महत्ता को सर्वोपरि समझते हुए केन्द तथा राज्य सरकारों द्वारा महिला रोजगार के विकास हेतु पिछले कुछ दशकों से प्रयास किए जा रहे हैं।[2] मनरेगा में भी 33 प्रतिशत रोजगार अनिवार्य रूप से ग्रामीण महिलाओं को देने का प्रावधान है जिसके सकारात्मक परिणाम भी प्राप्त हो रहे हैं। नरेगा के क्रियान्वयन से महिलाओं के संबंध में ग्रामीण भारत में मौन क्रान्ति हो रही है। नरेगा एक ऐसा कार्यक्रम है जिसने महिलाओं के जीवन में बदलाव लाना आरंभ कर दिया है।[3] महत्मागाँधी नरेगा से स्वतंत्र मजदूरी अर्जन के कारण महिलाओं की क्रय शक्ति तथा निर्णय लेने की क्षमता का विकास हुआ है।[4]उत्तराखण्डकी महिलाएं यहाँ की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। यहाँ की महिलाएं घर, बच्चों, बुजुर्गों की देखभाल के साथ ही अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने का कार्य भी कर रही हैं। पर्वतीय क्षेत्रों के सीढ़ीनुमा खेत आज भी कृषि के आधुनिक तकनीक से अछूते हैं जिसके कारण कुमाऊँनी ग्रामीण महिलाओं को रोपाई, निराई, गुड़ाई, फसल कटाई आदि कार्यों में कमरतोड़ मेहनत करनी पड़ती है साथ ही इन ग्रामीण महिलाओं को चारे व ईधन की खोज में लम्बी दूरी तक निर्जन एवं जंगली स्थानों की यात्रा करनी पड़ती है। कुमाऊँ की महिलाएं कृषक होने के साथ-साथ पशुपालक भी है। यहाँ की महिलाएं गाय, भैंस, बकरी, आदि पालकर दुग्ध उत्पादन कर उसे बेचती हैं तथा इससे प्राप्त आमदनी को घर के अन्य खर्चो में उपयोग करती हैं। कुछ महिलाएं मुर्गीपालन, सब्जी उगाने का कार्य भी करती हैं। इस प्रकार कठिन परिश्रम कर वह अपने परिवार को आर्थिक संबल प्रदान करती हैं।[5]उत्तराखण्ड में मनरेगा का क्रियान्वयन तीन चरणों में किया गया है। प्रथम चरण 2006-07 में राज्य के तीन जनपदों चमोली, चम्पावत तथा टिहरी में मनरेगा को लागू किया गया, द्वितीय चरण 2007-08 में मनरेगा हरिद्वार तथा ऊधमसिंह नगर जनपद में लागू की गयी तथा तृतीय चरण 1 अप्रैल, 2008 को सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में मनरेगा को लागू किया गया है।

निदर्शन योजना

उत्तराखण्ड राज्य को दो मण्डलों में विभाजित किया गया है। गढ़वाल मण्डल तथा कुमाऊँ मण्डल। प्रस्तुत अध्ययन के लिए कुमाऊँ मण्डल के 06 जनपदों (चम्पावत, ऊधमसिंह नगर, अल्मोड़ा, बागेश्वर, नैनीताल तथा पिथौरागढ़) में से 03 जनपद अल्मोड़ा, बागेश्वर तथा ऊधमसिंहनगर का चयन, मनरेगा के अन्तर्गत किये गये निष्पादन (वित्तीय प्रगति, भौतिक प्रगति, लक्ष्य के सापेक्ष सृजित मानव दिवस) के आधार पर उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधिसे किया गया है। अल्मोड़ा तथा बागेश्वर पूर्ण रूप से पर्वतीय जनपद है। अल्मोड़ा कुमाऊँ मण्डल में प्राचीन, ऐतिहासिक एवं केन्द्रवर्ती जनपद अग्रणी स्थान रखता है। बागेश्वर एक नवीन पर्वतीय जनपद है। जनपद ऊधमसिंह नगर का समस्त भाग मैदानी है। प्रस्तुत शोध पत्र 135 न्यादर्श मनरेगा महिला लाभार्थियों से प्राप्त जानकारी पर आधारित है जिनका चयन दैव निदर्शन विधि के आधार पर किया गया है।

क्षेत्र सर्वेक्षण से प्राप्त परिणाम-

** सृजित मानव दिवसों में महिलाओं का योगदान :*

महात्मा गाँधी नरेगा के संदर्भ में श्रम दिवस को एक कार्यदिन के रूप में परिभाषित किया गया है। एक व्यक्ति प्रति श्रम दिवस के लिए महात्मागाँधी नरेगा अधिसूचित शैड्यूल आफ रेट्स (वेतन) की मजदूरी का हकदार होता है।[6] शैड्यूल आफ रेट्स में उत्पादकता शर्तो का विस्तृत वर्णन है इसकी गणना काम की अवधि और गति के अध्ययन पर आधारित होती है सामान्य व्यक्ति जो नौ घण्टे काम करे और जिसमें एक घण्टे का अवकाश हो वह महात्मा गाँधी नरेगा द्वारा अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी प्राप्त करने के योग्य होना चाहिए।[7] तलिका 1 में कुल सृजित मानव दिवसों में महिलाओं की हिस्सेदारी के प्रतिशत को व्यक्त किया गया है। तलिका 1 के आधार पर कहा जा सकता है कि कुल सृजित मानव दिवसों में महिलाओं की हिस्सेदारी के संदर्भ में जनपद बागेश्वर का प्रदर्शन सर्वश्रेष्ठ रहा तथा जनपद ऊधमसिंह नगर का प्रदर्शन सबसे कम रहा जहाँ वित्तीय वर्ष 2010-11 से 2014-15 तक पाँच वर्षो में कुल सृजित मानव दिवस में महिलाओं की हिस्सेदारी का औसत 30.83 प्रतिशत रहा जबकि अल्मोड़ा तथा बागेश्वर जनपद में यह प्रतिशत क्रमशः 33.34 प्रतिशत तथा 39.00 प्रतिशत रहा।

तालिका 1: सृजित मानव दिवसों में महिलाओं की हिस्सेदारी (2010-11 से 2014-15 तक)

वित्तीय वर्ष	अल्मोड़ा		बागेश्वर		ऊधमसिंहनगर	
	कुल सृजित मानव दिवस	महिलाओं द्वारा सृजित मानव दिवस	कुल सृजित मानव दिवस	महिलाओं द्वारा सृजित मानव दिवस	कुल सृजित मानव दिवस	महिलाओं द्वारा सृजित मानव दिवस
2010-11	13.048	3.729 (28.58)	7.925	2.85 (35.96)	12.840	3.879 (30.21)
2011-12	10.729	3.556 (33.14)	6.567	2.438 (37.13)	14.757	4.168 (28.24)
2012-13	7.633	2.679 (35.09)	5.941	2.322 (39.08)	9.740	2.914 (29.91)
2013-14	9.612	3.651 (37.98)	8.067	3.14 (38.92)	9.129	2.590 (28.37)
2014-15	7.207	2.229 (31.89)	4.941	2.171 (43.93)	6.755	2.526 (37.40)
औसत		33.34		39.00		30.83

नोटः कोष्ठक में कुल सृजित मानव दिवस के सापेक्ष प्रतिशत दर्शाया गया है।

स्रोतः न्यादर्श जनपदों के विकासभवन कार्यालय से प्राप्त मनरेगा मासिक प्रगति रिपोर्ट (वर्ष 2010-11 से 2014-15 तक) के आधार पर

* मनरेगा के अन्तर्गत वित्तीय समावेशन का महिलाओं पर प्रभाव :

सभी 135 न्यादर्श महिला लाभार्थियों के बैंक में खाते हैं जिनमें से 63.70 प्रतिशत महिलाओं के एकल तथा 36.30 प्रतिशत महिलाओं के संयुक्त रूप से खाते खुले हैं लगभग 28 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार मनरेगा के क्रियान्वयन के पश्चात् ही उनका बैंक में खाता खुला। ''क्या मनरेगा में कार्य करने के उपरांत ही आपकी बैंकिंग तंत्र की समझ बढ़ी है''? इस प्रश्न के जबाब में 95.60 प्रतिशत महिलाओं ने ''सकारात्मक'' प्रतिक्रिया दी तथा जनपद बागेश्वर का प्रदर्शन अच्छा रहा जहाँ शत-प्रतिशत महिलाओं ने सकारात्मक प्रतिक्रिया दी। जनपद ऊधमसिंहनगर तथा अल्मोड़ा में यह प्रतिशत क्रमशः 95.70 प्रतिशत तथा 90.70 प्रतिशत रहा। कुछ महिला लाभार्थियों ने बताया कि ''मनरेगा के कार्य करने के पश्चात् ही उन्हें बैंक में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे पूर्व वे कभी बैंक में नहीं गयी थीं।

* मनरेगा के क्रियान्वयन के पश्चात् महिलाओं द्वारा आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने तथा क्रयशक्ति क्षमता में सुधार के संदर्भ में जानकारीः

कुल न्यादर्श महिलाओं में से लगभग 86 प्रतिशत महिलाओं ने यह माना कि मनरेगा से प्राप्त मजदूरी ने उन्हें आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनाया है तथा 67प्रतिशत महिलाओं ने यह माना कि उनकी क्रयशक्ति क्षमता का विकास हुआ है जनपदवार सकारात्मक प्रतिक्रिया देने वाली महिलाओं का प्रतिशत बागेश्वर, अल्मोड़ा तथा ऊधमसिंह नगर में क्रमशः 75.60 प्रतिशत, 74.40 प्रतिशत तथा 51.10 प्रतिशत रहा। क्रय शक्ति सुधार तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के संदर्भ में पर्वतीय महिला लाभार्थियों का प्रतिशत मैदानी महिला लाभार्थियों की तुलना में अधिक है। महिला लाभार्थियों के अनुसार मनरेगा से प्राप्त मजदूरी से उन्हें घरेलू सामान, छोटे-छोटे कृषि उपकरण बीज आदि खरीदने में सहायता मिलती है। पर्वतीय विकासखण्ड की कुछ ग्रामीण महिलाओं ने बताया कि योजना के क्रियान्वयन के पश्चात्, उनकी फेरी वालों से साज-सज्जा का सामान, बच्चे के खिलौने तथा वस्त्र आदि खरीदने की क्षमता का विकास हुआ है।

पर्वतीय जनपद अल्मोड़ा तथाबागेश्वरकी ग्रामीण महिला नरेगा लाभार्थियों के लिए मनरेगा की महत्ता, मैदानीजनपदऊधमसिंह नगर की महिलाओं की तुलना में अधिक है।जिसका कारण यह हैकिमैदानी जनपदकी महिलाएँ कृषि क्षेत्र तथा गैर कृषि क्षेत्र में मजदूरी कार्य में अधिक संलग्न है जबकि पर्वतीय जनपद की महिलाएँ कृषि कार्य में अधिक संलग्न रहती हैं तथा कुछ महिलाऐं कृषि क्षेत्र में मजदूरी कार्य करती हैं लेकिन पर्वतीय ग्रामीण महिलाएँ गैर कृषि क्षेत्र में मजदूरी कार्य नहीं करती।पर्वतीयजनपदोंकी अधिकांश महिलाओं का कहना है कि उन्हें सरकारी काम (मनरेगा में कार्य) करना पसंद है तथा इस योजना के तहत् उन्हें अधिक से अधिक दिनों का रोजगार दिया जाना चाहिए।

* मनरेगा के क्रियान्वयन के पश्चात् महिलाओं में क्षमता विकास :

कुल न्यादर्श महिलाओं में से 50.37 प्रतिशत महिलाओं ने इस संदर्भ में सकारात्मक प्रतिक्रिया दी। पर्वतीय न्यादर्श जनपदों में सकारात्मक प्रतिक्रिया देने वाली महिलाओं का सर्वाधिक प्रतिशत बागेश्वर में 62.22 प्रतिशत रहा तथा अल्मोड़ा में 58.14 प्रतिशत रहा। मैदानी जनपद ऊधमसिंह नगर में यह प्रतिशत मात्र 29.79 प्रतिशत रहा।

सकारात्मक प्रतिक्रिया देने वाली महिलाओं (विशेष रूप से पर्वतीय जनपदों की) ने बताया कि वे नियमित रूप से गाम प्रधान से गाँव में मनरेगा का काम लाने को कहती हैं। कार्यस्थल में अपनी उपस्थिति के प्रति सचेत रहती हैं, नियमित रूप से हस्ताक्षर करती है तथा काम में गए दिनों के अनुसार अपनी मजदूरी का हिसाब भी लगाती हैं। कुछ महिलाओं ने यह भी बताया कि मनरेगा के क्रियान्वयन के पश्चात् से वे ग्राम पंचायत/ग्राम सभा की बैठक में भाग लेने हेतु अधिक जागरूक हो गयी हैं तथा मनरेगा के अतिरिक्त दी जाने वाली अन्य जानकारियों को भी ध्यान से सुनती हैं।

**** मनरेगा से प्राप्त मजदूरी को महिलाओं द्वारा विभिन्न मदों में व्यय हेतु दी जाने वाली वरीयता सम्बन्धी जानकारी :***

सर्वेक्षण के दौरान महिला लाभार्थियों से यह जानने का प्रयास किया गया कि वे मनरेगा से प्राप्त मजदूरी को विभिन्न मदों जैसे अच्छा भोजन, बच्चों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य, स्वयं का स्वास्थ्य तथा ऋण भुगतान में किस प्रकार व्यय करती हैं। रेखाचित्र 1 में देखा जा सकता है कि अच्छे भोजन में व्यय को सर्वाधिक 40 प्रतिशत महिलाओं ने प्रथम वरीयता दी है तथा 36.30 प्रतिशत महिलाओं ने द्वितीय वरीयता दी। बच्चों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य को सर्वाधिक 43 प्रतिशत महिलाओं ने द्वितीय वरीयता दी तथा 34.10 प्रतिशत महिलाओं ने प्रथम वरीयता दी है। स्वयं के स्वास्थ्य में किए जाने वाले व्यय को सर्वाधिक 46 प्रतिशत तथा 27.40 प्रतिशत ने क्रमशः तृतीय तथा चतुर्थ वरीयता दी है तथा ऋणों के भुगतान में किए जाने वाले व्यय को सर्वाधिक 56.30 प्रतिशत महिलाओं ने चतुर्थ वरीयता दी है।

रेखाचित्र 1

विभिन्न मदों में व्यय के संदर्भ में दी गयी वरीयता के संदर्भ में महिलाओं की प्रतिक्रिया

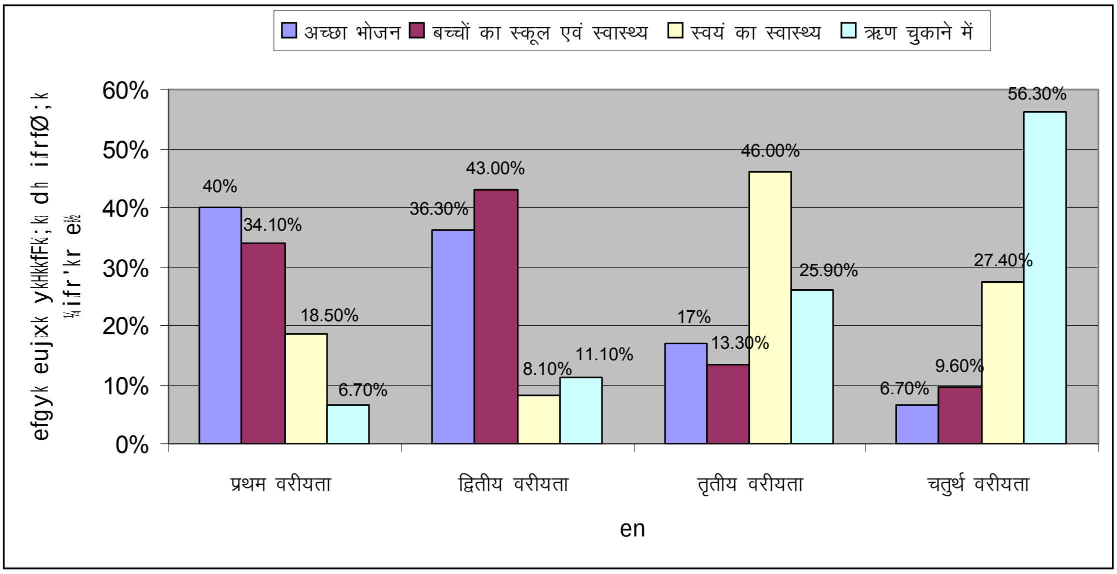

निष्कर्ष तथा सुझाव :-

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि मनरेगा ने ग्रामीण महिलाओं के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो रही है। जिससे उनकी क्रय क्षमता का विकास हो रहा है। महिला मनरेगा लाभार्थियों के अनुसार मनरेगा से प्राप्त मजदूरी से उनके परिवार के उपभोग स्तर में भी सुधार हो रहा है, मनरेगा से पहले वे घरेलू कृर्शि उत्पादों के उपभोग पर अधिक निर्भर थे लेकिन मनरेगा के पष्चात् बाजार की दालों, सब्जियों, अण्डा, मछली, आदि का सेवन कर लेते है।

स्थानीय निकायो में महिला पंचायत प्रतिनिधियों को 50: आरक्षण दे दिया गया है। जिसका लाभ महिला ग्राम प्रधानों को उठाना चाहिये तथा मनरेगा के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था के साथ- साथ ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक- शैक्षिक - आर्थिक विकास

की ओर ध्यान दिया जाना चाहिये। उत्तराखण्ड एक कृषि प्रधान राज्य है। अत: मनरेगा के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में जैविक खेती को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। महिला तथा पुरुष दोनों मनरेगा लाभार्थियों को मनरेगा के माध्यम से जैविक खेती के विषय में जानकारी दी जा सकती है। क्योंकि जैविक कृषि की मूलभूत आवष्यकताएं मृदा सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा आदि है। जो मनरेगा के मूलभूत उद्देश्य है। जैविक खेती को अपनाकर ग्रामीणों के पास आमदनी बढाने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध रहते है। मनरेगा में हस्तषिल्प को शामिल किया जा सकता है। जिसमें विशेष रूप से महिलाओ को रोजगार दिया जा सके पर्वतीय जनपदो में बहुपयोगी रिंगाल (पर्वतीय बांज) से आकर्शक उत्पाद जैसे फुलदान, टोकरी, चटाई, कुर्सी आादि का निमार्ण किया जाता है।

हालांकि मनरेगा एक अकुशल शारिरिक श्रम पर आधारित योजना है। जिसमें महिलाएं बढ- चढ कर हिस्सा लेती है। लेकिन समय - समय पर योजना के माध्यम से विभिन्न प्रकार के स्वंय सहायता समूह, गैर सरकारी संगठन, सरकारी संगठन, द्वारा महिला मनरेगा श्रमिको के लिये ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम यथा फलोत्पादन आधारित जैम, जैली, जूस उद्योग, ब्यूटीपार्लर प्रशिक्षण, सिलाई-कटाई प्रशिक्षण, हस्तषिल्प प्रशिक्षण का संचालन किया जा सकता है। जिनके माध्यम से उन्हें भविष्य के स्वरोजगार अपनाकर आर्थिक रूप से सशक्त बनने में सहायता मिल सके। मनरेगा एक ऐसा मंच हो सकता है जिसके माध्यम से ग्रामीण महिला लाभार्थियों को देश की न्यायव्यवस्था द्वारा महिलाओं के दिये गये विभिन्न अधिकारो की जानकारी भी दी जा सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बैरवा, एस0एस0 (2008); ''आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान'', कुरुक्षेत्र, मार्च, ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ0सं0 16
2. कुमावत, सुदीप (2008); ''ग्रामीण विकास और महिला रोजगार'', कुरुक्षेत्र मार्च, ग्रामीण विकास मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ0सं0 19
3. नेशनल फेडरेशन फॉर इण्डियन वूमेन (2008); ''सोशल इकानॉमिक इम्पावरमेन्ट आफ वूमेन अण्डर नरेगा'' ग्रामीण विकास मंत्रालय/यू0एन0डी0पी0, दिल्ली को प्रस्तुत रिपोर्ट
4. भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रुड़की (2010); ''कनकरेंट इवेल्यूएशन ऑफ नेशनल रूरल इम्पालयमेट गारण्टी स्कीम, इन द स्टेट ऑफ उत्तराखण्ड'', ग्रामीण विकास मंत्रालय/यू0एन0डी0पी0, दिल्ली को प्रस्तुत रिपोर्ट
5.. तिवारी, नीरज एवं कमला तिवारी (2013); ''कुमाऊँनी महिलाओं की अर्थतन्त्र में भागीदारी'', उत्तराखण्ड: विभिन्न आयाम, सम्पादक: डॉ0 राजेश चंद्र पालिवाल एवं डॉ0 दीपक पालिवालए मल्लिका बुक्स, दिल्ली, पृ0सं0 181-182
6. महात्मा गाँधी नरेगा समीक्षा (2006-12); ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ0सं0 3।
7. महात्मा गाँधी नरेगा समीक्षा (2006-12); ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ0सं0 2।

नई शिक्षा नीति की आवश्यकताएं

अजीत कुमार सिंह

गेस्ट फैकल्टी, एस.ओ.एल, दिल्ली विश्वविद्यालय

21 वीं सदी के डेढ़ दशक गुजर जाने के बाद भी भारतीय शिक्षा के विभिन्न पहलुओं में व्यापक सुधार होने की जगह क्षरण ही हुआ है। इधर बच्चों की शिक्षा एक गहरा सवाल बनकर उभरी है। आजादी के बाद बदलते समय के साथ शिक्षा संबंधित नीतियों में बदलाव शिक्षा को समान रूप से तथा इसके गुणात्मक स्वरूप के साथ प्रदान करना रहा है, लेकिन व्यवस्थागत खामियों एवं राज्य सरकारों की हीलाहवाली ने इसे पूरा नहीं होने दिया। शिक्षा जिस व्यापक मक्सद् के साथ चली थी उसे प्राप्त नहि किया जा सका। शिक्षा को उसके उद्देश्य की व्यापकता में देखे तो हम पाते हैं कि शिक्षा को एक साथ दो काम करने होते हैं- सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करना और समाज को परिवर्तन के लिए तैयार करना। शिक्षा, सामाजिक बदलाव एवं गतिशीलता की गति, प्रकृति और स्वरूप तीनों को प्रभावित करती है, वहीं दूसरी ओर शिक्षा की प्रकृति, विस्तार एवं गुणवत्ता दोनों स्तर पर सामाजिक बदलाव और गतिशीलता से प्रभावित होती है। शिक्षा न केवल बदलाव का एक सशक्त माध्यम ही बनती है बल्कि उस बदलाव की दशा एवं दिशा भी निर्धारित करती है, उसके विकल्प को तय करती है। शिक्षा जहाँ बच्चों एवं युवा पीढ़ी का विधिवत सामाजीकरण करती है बल्कि यथार्थ को जानने एवं समझने में सक्षम भी बनाती है। किसी भी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आयामों में विस्तारित हो रहा समाज शिक्षा से उसमें संचरण होने की उम्मीद करता है। यही कारण है कि सुप्रीम कोर्ट के विभिन्न निर्णय शिक्षा की इस व्यापकता को लक्षित करते है। 1984 तक की स्थिति यही थी कि सर्वोच्च न्यायालय, अपने कई फैसलों मसलन मेनका गाँधी बनाम भारत संघ 1978, फांसीसी कोरालाई बनाम दिल्ली प्रशासन (1981) इत्यादि में मौलिक अधिकारों की व्यापकता की बात कर चुका था। इन दोनों ही फैसलों में सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 को अन्य अनुच्छेद के साथ पढ़ने की बात कही, उसके साथ ही न्यायालय ने यह बात भी कही की अनुच्छेद 21 में गरिमामय जिन्दगी भी शामिल है।

हम अगर संविधान के अनुच्छेद 21, 38, 39 (ए), 39 (एफ), 41 और 45 को एक साथ पढ़े तो यह बात बड़े साफ तौर पर उभरती है कि संविधान निर्माताओं ने राज्यों को यह जिम्मेदारी सौंपी है कि वह अपने नागरिकों को शिक्षा उपलब्ध कराएं। (सिंह, 2005) अनुच्छेद 39 की उपधारा ई और उपधारा एफ से जिसमे कम उम्र के बच्चों को एक स्वस्थ और स्वतंत्र जीवन जीने की बात कही गयी है, उसके लिए यह जरूरी हो जाता है कि उन्हें स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध करायी जाएं। ये तो न्यूनतम् आवश्यकता है जो कि एक व्यक्ति की गरिमापूर्ण जिन्दगी के लिए आवश्यक है। इसलिए कोई भी सरकार चाहे राज्य सरकार हो या केन्द्र सरकार, उसे यह अधिकार नहीं कि वह कोई ऐसा कदम उठाए जिससे कोई भी व्यक्ति इन सुविधाओं से वंचित हो। अनुच्छेद 19 में दिया गया स्वतंत्रता का अधिकार जीने के अधिकार के बगैर बेमानी है क्योंकि वाक् स्वतंत्रता का मतलब किसी नागरिक के लिए तब तक नहीं है जब तक कि वह शिक्षित नहीं है और अपनी निजी गरिमा के प्रति सचेत न हो वहीं अनुच्छेद 14 में दिया गया समता का अधिकार शिक्षा के अधिकार के बिना हासिल नही किया जा सकता। कुल मिलाकर जीने का अधिकार तब तक सुनिश्चित नहीं हो सकता जब तक उसके साथ शिक्षा का अधिकार शामिल न हो। ये सब महसूस करते हुए सन् 2002 में 86 वें संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में अनुच्छेद 21(ए) में शामिल कर लिया गया जो 1 अप्रैल 2010 को शिक्षा के अधिकार के रूप में सारे देश में लागू हो गया। (अग्रवाल और गुप्ता, 2015)

उम्मीद थी की इस अधिकार के लागू हो जाने के बाद सभी बच्चे जो शिक्षा से वंचित हैं को शिक्षा आसानी से सुलभ हो जाऐगी। शिक्षा के अधिकार को लागू करने के पीछे का मक्सद् जहाँ बच्चों को जीवन के लिए शिक्षा प्रदान करना था वहीं आलोचनात्मक चेतना के लिए भी शिक्षा प्रदान करना था। लेकिन केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों में इच्छाशक्ति के अभाव के कारण ऐसा हो नहीं

पाया। वर्तमान समय में शिक्षा का स्तर बहुत गिर गया है। शिक्षा जहाँ ज्ञान के लिए थी, जीवन के लिए थी वह केवल साक्षरता प्रदान करने के लिए रह गयी है। साक्षरता से तात्पर्य उस शिक्षा से जो जीवन और समाज की परिस्थितियों से कट जाती है। भारत में बच्चों की शिक्षा साक्षरता से भिन्न नहीं है, क्योंकि वह बच्चो को समाज की सांस्कृतिक चेतना से जोड़ने की जगह बेगाना बनाने का साधन बना दी गई। इस तथ्य को बच्चों को 8 वीं क्लास तक नहीं रोकने की नीति से आसानी से समझा जा सकता है। इस नीति ने शिक्षा को बहुत ज्यादा नुकसान पहुँचाया है। शिक्षकों की जवाबदेही जहाँ शून्य हो गई वहीं उन्होंने अपने को शिक्षण की जिम्मेदारी से मुक्त कर लिया जिसका परिणाम बच्चें में शिक्षा के प्रति अरूचि के रूप में प्रकट हुआ। इस नीति ने बच्चों में शिक्षा के प्रति अरूचि इसलिए भी पैदा की क्योंकि बच्चे अच्छी तरह से जानते हैं कि अगर वे नहीं भी पढ़ेगे तब भी पास हो जाएंगे। बच्चों में विकसित हो चुकी इस सोच को दूर करने, उनमें शिक्षा के प्रति रूचि जगाने, शिक्षकों में जिम्मेदारी पैदा करने, उनकी जवाबदेही तय करने के लिए नीति-निर्माताओ ने इस नीति को समाप्त किया।

भारतीय शिक्षा को दुरूस्त करने एवं समय सापेक्ष बनाने के लिए नई शिक्षा नीति बनाने की बात चल रही है। नई शिक्षा सहीं एवं सार्थक रूप से निर्मित हो जो समाज की सारी आकाँक्षाओं की पूर्ती के साथ अति आवश्यक मूल्यों का भी संचरण करे। उसके लिए इन विभिन्न क्षेत्रों में नीति-निर्माताओं को महत्तम कार्य करना पड़ेगा वे क्षेत्र है- शिक्षकों की जवाबदेही एवं उत्तरदायित्व, नवाचार, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन, अनुशासन, रेगुलेटरी सिस्टम,स्वायत्ता और स्वतंत्रता आदि। आज शिक्षा में प्रयोगशीलता को आज की संपूर्ण परिस्थिति की आवश्यकताओं के संदर्भ में परिभाषित करने की शुरुआत करनी होगी। (कुमार, 2000)

8वीं कक्षा तक की नहीं रोकों नीति की वजह से शिक्षक इस शिक्षा प्रणाली में सिर्फ वेतनभोगी कर्मचारी का कार्य भर करते थे। इस नीति ने शिक्षकों में जो उत्तरदायित्व विमुखता एंव जवाबदेही शून्यता की स्थिति पैदा कर दी थी। उसे दुरूस्त करने की जरूरत थी जो इस नीति की विदाई से ही संभव था। इस नीति की विदाई की घोषणा एवं इस दिशा में किया गया प्रयास अभी प्रारंभिक अवस्था में है, अभी और सार्थक तथा ठोस कदम उठानें की जरुरत है।इस नीति को समाप्त करना तथा़नवाचार के लिए शिक्षकों को प्रेरित करना एवं तैयार करना शिक्षा के हित में था।

यह स्पष्ट है की ज्ञान का मूल आधार शिक्षा हैं इसका संबंध मनुष्य की चेतना एवं संवेदना से है। इस संदर्भ में अगर हम पाओलो फ्रेरे की बात करें तो हम पाते हैं कि वे शिक्षा में पर्याप्त स्वतंत्रता एवं आलोचनात्मक चेतना की बात करते हैं। उनके अनुसार बच्चों को स्कूली जीवन में तथा आगे की शिक्षा में पर्याप्त स्वतंत्रता होनी चाहिए ताकी वे स्वतंत्रतापूर्वक सीख सकें। (फ्रेरे, 2016) उनमें आलोचनात्मक चेतना का विकास जरुरी है, ताकी वे प्राकृतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक वास्तविकताओं के संदर्भ में सवाल कर सकें। ये सवाल करना उन्हें जहाॅ विस्तृत ज्ञान प्रदान करता है वही एक सशक्त एवं जागरुक इंसान बनाता हैं

शिक्षा में सामाजिक संबंधों की संरचना न केवल छात्रों को उनके कार्यस्थल पर अनुशासन का पाठ ही सिखाती है, बल्कि आचरण के तरीकों का विकास भी करती हैं। और देखें तो यह काम तो शिक्षा में केवल एक सशक्त पाठ्क्रम ही कर सकता हैं।पाठ्यक्रम शिक्षा का केन्द्रबिन्दु होता है। बच्चों के दिन-प्रतिदिन के जीवन तथा स्कूली पाठ्य-पुस्तकों के विषय-वस्तु के बीच की दूरी बढ़ने से ज्ञान बोझ में बदलता जा रहा है। (कुमार, 2006) यह सर्वविदित है कि पाठ्यक्रम हर देश में समय-समय पर बदलते रहते हैं और इन्हें बदलते रहना चाहिए, क्योंकि शिक्षा केबाहर हो रहे हर परिर्वतन के साथ उभरी नई चुनौतियों को स्वीकार कर उनका समाधान करने के लिए अपने को नए कलेवर में लगातार ढालना पढ़ता है। नई शिक्षा नीति की सफलता इस बात पर निर्भर कोगी की वह देश भार में एकसमान पाठ्यक्रम लागू करने की व्यवस्था करे। इसके लिए 80:20 के अनुपात का प्रसंग नई शिक्षा नीति के मसौदे में अवश्य हो। जहाँ 80 प्रतिशत सामग्री केन्द्रिय स्तर की हो और 20 प्रतिशत सामग्री राज्यों द्वारा स्थानीय महत्व एवं विरासत की हो। शिक्षा में अनुशासन की स्थिति विगड़ती जा रही है। इस अनुशासनहीनता को दूर करने के लिए स्कूल-कालेजों में सुविधाओं में वृद्धि करने के साथ-साथ मूल्य शिक्षा को एक स्वतंत्र एवं अनिवार्य विषय के रूप में प्राथमिक कक्षाओं से लेकर परास्नातक तक की कक्षाओं तक सार्वभौमिक रूप से लागू करने की जरूरत है। शिक्षा में मात्रात्मक एवं गुणात्मक कमियों की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। स्कूलों में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की नीति ने मूल्यांकन प्रक्रिया को यांत्रिक बना दिया। इस प्रक्रिया ने शिक्षकों की सृजनशीलता एवं नवाचार को लगभग समाप्त सा कर दिया है। नई शिक्षा नीति को इन सब समस्याओं को देखते हुए इनका भी समाधान ढूँढना है। विश्वविधालयों में मूल्यांकन का क्रेडिट सिस्टम सीबीसीएस लागू है जो एक अच्छा प्रयास है। इसकी प्रासंगिकता एवं प्रयोजनीयता का परिणाम अभी प्रतिक्षित है। भारत में मौजूदा शिक्षा से संबंधित नियामक संस्थाओं को और

ज्यादा सशक्त एवं सक्षम बनाने की जरूरत है। भारत में विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षकों की नियुक्ति के लिए एक राष्ट्रीयकृत परीक्षा आयोजित करना एवं उसके परिणाम के आधार पर देश भर के विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति व्यापक रूप से सक्षम एवं योग्य शिक्षकों की कमी को पूरा करेगी और शिक्षक भर्ती में घोटालों को रोकेगी।

विश्वविद्यालयों में शिक्षको की स्वतंत्रता एवं विश्वविद्यालयों की स्वायत्ता को प्रभावित करने वाले किसी भी राजनीतिक - गैर राजनीतिक कार्यों को बाधित एवं समाप्त करने की जरूरत है। यह याद रखने की जरूरत है कि विश्वविद्यालय अपने सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक परिस्थितियों के साथ जीवंत संबंधों के बीच विकसित होते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक सुधार के लिए नई शिक्षा नीति को बहुत कार्य करने की आवश्यकता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भविष्य की संभावित शिक्षा नीति के सामने चुनौतियाँ बहुत है। चुनौतियो का सामना एवं समाधान इस पर निर्भर करेगा की हमारे नीति नियंता किस प्रकार एक सशक्त एवं उज्जवल भारत के निर्माण के लिए नीतियों का निर्माण करते हैं और क्रियान्वयन की व्यवस्था करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

- अग्रवाल, जे, सी (2015),शिक्षा और समाज, दोआबा हाउस पब्लिकेशन, 1688, नई सड़क, दिल्ली
- कुमार, अक्षय (2006),शिक्षा की मुक्ति, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, सरस्वती कॉमप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली
- कुमार, कृष्ण (2000), शिक्षा और ज्ञान, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, सरस्वती कॉमप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली
- फ्रेरे, पाउले (2016), अलोचनात्मक चेतना के लिए शिक्षा (अनुदित), ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली
- सिंह, कुमार अजय (2005), बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार, परिप्रेक्ष्य, वर्ष-12, अंक - 2, अगस्त

समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात का बदलता स्वरुप

नीरज कुमार

(शोधार्थी), भ.ना.मं.वि.वि., मधेपुरा

डॉ० डी०के० चौधरी

एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, आर.एम.कॉलेज, सहरसा

भूमिका :-लिंगानुपात किसी जनसंख्या में सभी आयुवर्गो की कुल स्त्री एवं पुरुष का अनुपात है। यहकिसी क्षेत्र के समाजिक आर्थिक दषाओ का सूचक एवं प्रादेषिक विष्लेशण के लिए उपयोगी साधन है। इसका प्रभाव जनसंख्या वृद्धि विवाहदर तथा व्यवसायिक संरचना जैसे अन्य जनांकिकी गुणोपर भी पड़ता है। लिंगानुपात में परिवर्तन से विभिन्न आयुवर्गो पर पुरुषो एवं स्त्रियो की जन्म एवं मृत्युदर में परिवर्तन तथा प्रवास के स्वरुप का ज्ञान होता है। इससे समाजिक एवं आर्थिक जीवन की प्रवृति विष्लेशण एवं जनांकिकी तत्वों के प्रभाव को समझने में सहायता मिलती है।

अध्ययन क्षेत्र :-लिंगानुपात का अध्ययन क्षेत्र समस्तीपुर जिला है। जहाँ लिंगानुपात के स्वरुप में स्थानिक एवं कालिक वितरण में काफी असमानताये पायी जाती है। समस्तीपुर जिला के उत्तर में दरभंगा दक्षिण में बेगूसराय एवं पटना पूरब में दरभंगा एवं खगड़िया तथा पश्चिम में मुजफ्फरपुर एवं वैशाली जिला अवस्थित है। ज्यामितीय अवस्थिति में अक्षांशीय विस्तार $25^0$51'47"N से $25^0$86'30"N तथा देशान्तरीय विस्तार $85^0$46'E से $86^0$15'E के मध्य अवस्थित है। उसकी लम्बाई 66 Km चौड़ाई 48 Km क्षेत्रफल 2908 Km^2 ग्रामीण क्षेत्र 2888Km^2 तथा नगरीय क्षेत्र 16Km^2 है।

परिकल्पना :-परिकल्पना एक काल्पनिक विचार है, जिसकी जाँच परख से सत्य स्थापित की जाती है। शोध में परिकल्पना का विषिश्ट महत्व होता है। समाजिक विज्ञान के अधिकांष शोध छवद ग्मचमतपउमदजंस होते है। प्रस्तुत लेख आँकड़ों पर आधारित है, जिसमें अतीत के आधार पर भविष्य पर विचार किया जा सकता है। समस्तीपुर जिला में निरन्तर घटते लिंगानुपात से उस क्षेत्र का समाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्वरुप की जानकारी होती है। स्त्री पुरुष का संतुलित अनुपात संर्वागिक विकास में सहायक होता है जबकि असंतुलित संर्वागिक एवं सत्त विकास में बाधक होता है।

विधितंत्र :-समस्तीपुर जिला में लिगांनुपात के बदलते स्वरुप का अध्ययन के लिए आँकड़ो का संग्रह अनेक स्त्रोतो से किया गया है -

1. भारत की जनगणना 2001 एवं 2011 बिहार श्रृंखला- 11
2. इन्टरनेट से प्राप्त लिगांनुपात सम्बन्धी आकड़ो का संग्रह

3. अनेक पत्र पत्रिकाओ के अध्ययन से प्राप्त जानकारी
4. मानचित्र, आरेखो तथा आलेखो के निर्माण हेतु कम्पूटर तथा इन्टरनेट का प्रयोग
5. पूर्व के अनेक शोध ग्रंथो एवं पुस्तको का अध्ययन
6. भारत एवं बिहार सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त मानचित्र निर्माण में आधुनिक तकनिकी का प्रयोग से यह लेख तैयार किया गया है।

लिगांनुपात परिकलन की विधियाँ :-

लिगांनुपात किसी विषिश्ट समय पर किसी देश का क्षेत्र विशेष के स्त्री तथा पुरुषो की संख्या के अनुपात को प्रदर्षित करता है। इसका परिकलन विभिन्न देशो में अलग अलग प्रकार से होता है। जैसे न्पैण। में प्रति 100 स्त्री में पुरुषो की संख्या में मापी जाती है जबकि न्यूजीलैण्ड में प्रति 100 पुरुष में स्त्री की संख्या का मापन होता है। भारत में प्रति 1000 पुरुष में स्त्री की संख्या का मापन किया जाता है। जो सूत्रो से मापन किया जाता है -

1. प्रति 100 स्त्री में पुरुषो की संख्या $= \frac{M}{F} \times 100$

   जैसे किसी क्षेत्र में पुरुष = 500

   स्त्री = 400

   $= \frac{500}{400} \times 100 = \frac{500}{4}$

   $= \frac{500}{4} = 125$

   = प्रति 100 स्त्री में पुरुष की संख्या 125 यानि लिंगानुपात 125 होगा।

2. प्रति 100 पुरुष में स्त्री की संख्या $= \frac{F}{M} \times 100$

3. प्रति 1000 पुरुष में स्त्री की संख्या $= \frac{F}{M} \times 1000$

   थ= कुल स्त्री की संख्या

   ड = कुल पुरुष की संख्या

   जैसेभारत में स्त्रियो की संख्या 58.74 करोड़ है

   पुरुषो की संख्या 62.31 करोड़ है

   $= \frac{58.74}{62.31} \times 1000 = 943$

   अर्थात भारत का लिंगानुपात 943 है।

लिंगानुपात वृद्धि प्रारुप :-समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात का स्वरुप प्रति हजार पुरुषो पर स्त्रियो की संख्या का मापन होता है। यहाँ का लिंगानुपात स्वरुप का अध्ययन 1901 से किया जाय तो स्पश्ट है कि यहाँ लिंगानुपात स्वरुप में काफी परिवर्तन हुआ है जो निम्न आकड़ों से स्पश्ट है -

समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात का तुलनात्मक स्वरुप

वर्ष	समस्तीपुर	बिहार
1901	1056	1061
1911	1074	1051
1921	1051	1020
1931	1015	995
1941	1036	1022
1951	1008	1005
1961	1039	1005
1971	967	957
1981	972	948
1991	926	907
2001	928	919
2011	909	916

स्त्रोत भारत की जनगणना 2011

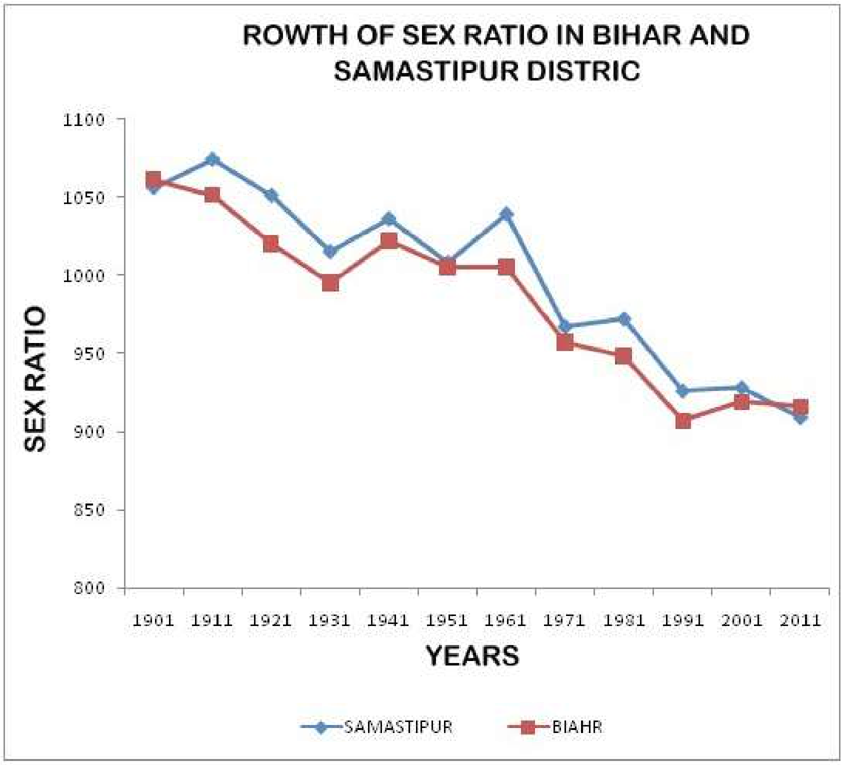

समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात परिवर्तन में क्रमवद्धता का अभाव है। किसी जनगणना वर्ष में लिंगनुपात सकारात्मक वृद्धि तो कभी नकारात्मक वृद्धि का षिलषिला रहा है। यहाँ लिंगानुपात को दो वर्गो में रखा जा सकता है। प्रथम अधिक लिंगानुपात काल

1901 से 1961 तक रहा इस समय पुरुष की अपेक्षा स्त्री की संख्या अधिक थी। लेकिन वृद्धि या ह्रास का क्रमवद्ध न होकर उतार चढ़ाव के क्रम रहा है। 1901 में लिंगानुपात 1056 था जो 1911 में बढ़कर 1074 हो गया लेकिन 1921 में लिंगानुपात में कमी आयी अर्थात 1051 हो गया। 1931 में 1015 हो गया लेकिन पुन: 1941 में बढ़कर 1036 जबकि 1951 में पुन: लिंगानुपात घटकर 1008 हो गया जबकि 1961 में बढ़कर 1039 हो गया।1961 तक प्रति हजार पुरुष में स्त्रियो की संख्या 1000 से अधिक थी। इस समय लिंगानुपात की अधिकता का कारण चिकित्सा सुविधा के अभाव सेलड़का का मृत्युदर अधिक था चूँकि पुरुष की अपेक्षा स्त्री में रोग अवरोध क्षमता एवं सहन क्षमता अधिक होती है। अत: पुरुषो का मृत्युदर स्त्रियो की अपेक्षा अधिक होने के कारण लिंगानुपात अधिक था। 1961 के बाद समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात प्रति हजार पुरुषो में स्त्रियो की संख्या 1000 से कम हो गयी। 1971 में 967 था जो 1981 में बढ़कर 972 हो गया। लेकिन 1991 में पुन: घटकर 926, 2001 में 928 जबकि 2011 में विगत सौ वर्शो में सबसे कम लिंगानुपात 909 हो गया। जो बिहार का लिंगानुपात 916 तथा भारत का लिंगानुपात 943 से काफी कम है। 1961के बाद चिकित्सा सुविधा के कारण पुरुष मृत्युदर में कमी आयी जिससे जनसंख्या वृद्धि का विस्फोटक रुप ले लिया। पुरुषो के मृत्युदर में कमी के साथ भ्रूण हत्या में वृद्धि से लिंगानुपात में काफी कमी आयी।

लिंगानुपात का क्षेत्रीय वितरण :-समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात में एकरुपता नहीं वरण लिंगानुपात में क्षेत्रीय भिन्नता पायी जाती है। सम्पूर्ण जिला का औसत लिंगानुपात 2011 में 909 था। अध्ययन क्षेत्र के किसी भी प्रखण्ड में अनुकूल लिंगानुपात नहीं है। सर्वत्र पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो की संख्या कम है जो निम्न आकड़ो से स्पश्ट है -

2011 में समस्तीपुर जिला का लिंगानुपात

Øe lå	Á[k.M	2001 e tula[;k ¼gtkj e½
1.	विथान	931
2.	कल्यानपुर	929
3.	सरायरंजन	928
4.	मोरवा	916
5.	विभूतिपुर	915
6.	खानपुर	914
7.	ताजपुर	912
8.	डजियारपुर	911
9.	सिघिंया	910
10.	दलसिंहसराय	909
11.	हसनपुर	909
12.	रोसड़ा	908
13.	पूसा	908
14.	पटोरी	904
15.	शि ावाजीनगर	902
16.	विद्यापति नगर	900
17.	वरिस नगर	899
18.	मोहद्दीनगर	897
19.	समस्तीपुर	892
20.	मेहनपुर	878
dy leLrhij ftyk		909

स्त्रोत - भारत की जनगणना 2011 बिहार श्रृखला

उपर्युक्त आँकड़ो में सबसे अधिक लिंगानुपात विथान प्रखण्ड में 931 है जबकि सबसे कम लिंगानुपात मोहनपुर में 878 है। समस्तीपुर जिला के दो प्रखण्डो दलसिंहसराय एवं समस्तीपुर में लिंगानुपात जिला का औसत लिंगानुपात 909 है जबकि नौ प्रखण्डो में लिंगानुपात औसत से अधिक तथा नौ प्रखण्डो औसत से कम है।

समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात का प्रखण्डीय वितरण प्रारुपद्धप्रति हजार पुरुष में स्त्री की संख्या 2011)

Øe l[;k	fyxkuikr ox	Á[k.Mk dh vkofr	Á[k.M leg dk fyxkuikr
1.	920 से अधिक	03 (कुल आवृति का 15%)	विथान (931), कल्याणपुर (928), सरायरंजन (924),
2.	910–920	06 (कुल आवृति का 30%)	मोरवा (916), विभूतिपुर (915),खानपुर (914), ताजपुर (912), उजियारपुर (911), सिघिंया (910)
3.	900–910	07 (कुल आवृति का 35%)	दलसिंहसराय (909), हसनपुर (909), रोसड़ा (908), पूसा (908), पटोरी (904)
4.	900 से कम	04 (कुल आवृति का 20%)	शि ावाजीनगर (902), विद्यापतिनगर (900), वारिसनगर (899), मोहद्दीनगर (897), समस्तीपुर (892), मोहनपुर (878)

स्त्रोत भारत की जनगणना, बिहार श्रृंखला-2011

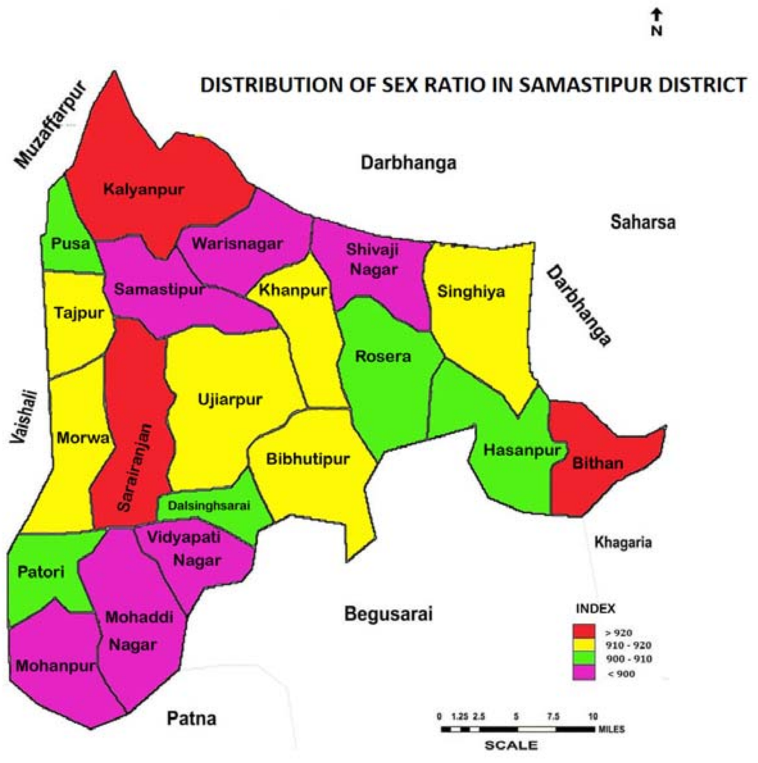

समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात के वितरण को चार वर्गो में रखा जा सकता है -

1. **लिंगानुपात 920 से अधिक:**-इसमें जिला का तीन प्रखण्ड विथान, कल्यानपुर एवं सरायरंजन सम्मलित है। यह कुल प्रखण्डो का 15:है। फिर भी लिंगानुपात अनुकुल नहीहै।
2. **लिंगानुपात 910-920 तक:**-इसमें समस्तीपुर जिला के 6 प्रखण्डों में मोरवा, विभूतिपुर, खानपुर, ताजपुर, उजियारपुर, सिंघिया सम्मलित है। इसमें कुल प्रखण्डों का 30 प्रतिशत है।
3. **लिंगानुपात 900-910 तक:**-इसमें जिला का 7 प्रखण्डों में दलसिंहसराय, हसनपुर, रोसड़ा, पूसा, पटोरी, षिवाजीनगर, विद्यापति नगर सम्मलित है जो कुल प्रखण्डों का 35 प्रतिशत है।
4. **लिंगानुपात 900 से कम:**-इसमें अध्ययन क्षेत्र का 4 प्रखण्डों में वारिसनगर, मोहऋी नगर, समस्तीपुर, मोहनपुर सम्मलित है। इसमें कुल प्रखण्डों का 20 प्रतिशत प्रखण्ड है।

समस्तीपुर जिला में किसी भी प्रखण्ड में लिंगानुपात की अनुकूलतम परिस्थितियाँ नहीं है जिससे सभी प्रखण्डों में पुरुष के अनुपात में स्त्री की संख्या काफी कम है।

ग्रामीण नगरीय लिंगानुपात का वितरण :-

समस्तीपुर जिला गाँवो का जिला है, यहाँ का 15 प्रखण्डों में केवल ग्रामीण जनसंख्या पायी जाती है। जबकिकेवल 5 प्रखण्डों में ग्रामीण एवं नगरीय दोनो जनसंख्या है।यहाँ 95 प्रतिशत लोग गाँव में निवास करते है जबकि केवल 5 प्रतिशत लोग शहर में निवास करते है। फिर भी ग्रामीण एवं नगरीय लिंगानुपात का स्वरुप निम्न आकड़ों से स्पश्ट है -

समस्तीपुर जिला में ग्रामीण नगरीय लिंगानुपात का वितरणद्धप्रति हजार पुरुष में स्त्री की संख्या 2011)

क्रम स०	प्रखण्ड	ग्रामीण लिंगानुपात	नगरीय लिंगानुपात
1.	कल्यानपुर	929	892
2.	रोसड़ा	909	905
3.	दलसिंहसराय	909	896
4.	वारिसनगर	899	900
5.	समस्तीपुर	890	897

स्त्रोत - भारत की जनगणना 2011 बिहार श्रृखला 2011

समस्तीपुर जिला में केवल पाँच नगरीय केन्द्र है। जहाँ ग्रामीण क्षेत्र का लिंगानुपात अपेक्षाकृत कम है। पाँच प्रखण्डों में ग्रामीण एवं नगरीय लिंगानुपात जिसमें समस्तीपुर में ग्रामीण लिंगानुपात 890 की अपेक्षा नगरीय लिंगानुपात अधिक है। वारिसनगर ग्रामीण लिंगानुपात 899 तथा नगरीय लिंगानुपात 900 है। दोनो नगरीय केन्द्रो में लिंगानुपात अपेक्षाकृत अधिक है।इसके विपरीत रोसड़ा प्रखण्ड में ग्रामीण लिंगानुपात 909 तथा नगरीय लिंगानुपात 905 है दलसिंहसराय प्रखण्ड में ग्रामीण लिंगानुपात 909 तथा नगरीय लिंगानुपात 896 है। कल्यानपुर प्रखण्ड में ग्रामीण लिंगानुपात 929 तथा नगरीय लिंगानुपात 892 है। उन तीन नगरीय केन्द्रों में ग्रामीण लिंगानुपात की अपेक्षा कम है।

0-6 वर्ष के बच्चो में लिंगानुपात:-

समस्तीपुर जिला में 2011 में 0-6 वर्ष के बच्चो में कुल लिंगानुपात 948 है जबकि ग्रामीण लिंगानुपात 942 तथा नगरीय क्षेत्र 897 है। जबकि 2001 में कुल लिंगानुपात 938 की अपेक्षा प्रति हजार थ्मउंसम बेपसक में 10 कीवृद्धि हुई है। 0-6 वर्ष के बच्चो में पिछले दसकी वृद्धि निम्न आकड़ो से स्पष्ट है -

0-6 वर्ष के बच्चो में लिंगानुपात (2001-2011) लिंगानुपात प्रति 1000 Male Childe में Female Child की संख्या

क्रम स०	प्रखण्ड	2001 लिंगानुपात	2011लिंगानुपात	अन्तर
1.	कल्यानपुर	920	1242	+318
2.	सिंघिया	974	935	−39
3.	विभूतिपुर	948	934	−14
4.	समस्तीपुर	934	933	−1
5.	दलसिंहसराय	929	931	+2
6.	विद्यापतिनगर	884	930	+46
7.	सरायरंजन	955	928	−27
8.	मोरवा	919	927	+8
9.	रोसड़ा	942	926	−16
10.	खानपुर	953	926	−27
11.	विथान	962	925	−37
12.	हसनपुर	934	921	−13
13.	ताजपुर	948	921	−28
14.	वारिसनगर	926	908	−18
15.	शि ावाजीनगर	954	899	−55
16.	मोहद्दीनगर	917	899	−18
17.	पूसा	933	898	−35
18.	पटोरी	929	897	−32
19.	मोहनपुर	952	896	−56
20.	उजियारपुर	945	891	−54

स्त्रोत - भारत की जनगणना 2011

उपर्युक्त आकड़ो में केवल चार प्रखण्ड कल्यानपुर, मोरवा, विद्यापतिनगर एवं दलसिंहसराय में 0-6 वर्ष के बच्चो के लिंगानुपात में सकारात्मक वृद्धि रहा जबकि अन्य 16 प्रखण्डों के बच्चो के लिंगानुपात में नकारात्मक वृद्धि रहा।

समस्तीपुर के 80 प्रतिशत प्रखण्डों में लिंगानुपात में गिरावट आना भविष्य में लिंगानुपात घटने का संकेत मिल रहा है। आज के बच्चे ही भविष्य के लिंगानुपात को निर्धारण में सहायक होंगे। तालिका 5.6 के आकँड़ों से स्पश्ट है कि अगर लिंगानुपात का यही स्वरुप रहा अगले 2021 की जनगणना में लिंगानुपात में कमी आएगी।

0-06 वर्ष के बच्चों में लिंगानुपात का क्षेत्राय स्वरुप (2011)

Øe l[;k fyxkuikr ¼gtkj yMdk ij yMdh dh l[;k½

Øe l[;k	fyxkuikr ¼gtkj yMdk ij yMdh dh l[;k½	Á[k.Mk dh vkofr	Á[k.M leg dk fyxkuikr
1.	930 से अधिक	06 (कुल आवृति का 30%)	कल्यणपुर (1242), सिंघिया (935), उजियारपुर(934), दलसिंहसराय (931), विभूतिपुर (934), विद्यापतिनगर (930)
2.	915–930	07 (कुल आवृति का 35%)	सरायरंजन (928), मोरवा (927), खानपुर (926), रोसड़ा (926), विथान (925), ताजपुर (921), हसनपुर (921)
3.	900–910	01 (कुल आवृति का 5%)	वारिसनगर (908)
4.	900 से कम	06 (कुल आवृति का 30%)	षिवाजीनगर (899), मोहद्दीनगर (899), पूसा (898), पटौरी (897), मोहनपुर (896), उजियारपुर (891)

स्त्रोत भारत की जनगणना, बिहार श्रंखला-2011

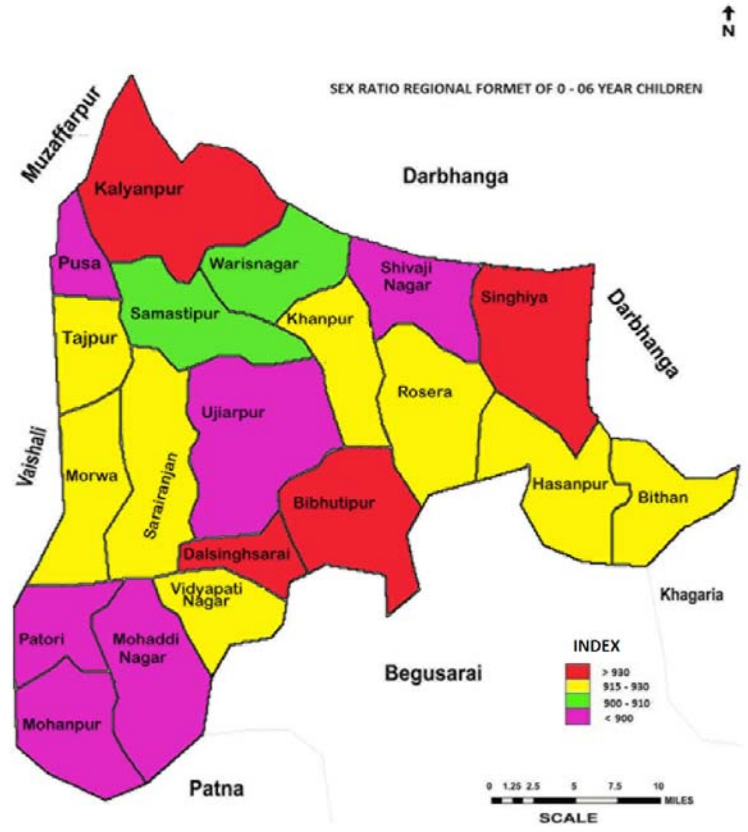

0-06 वर्ष के बच्चों में लिंगानुपात दिखाया गया है। जिसमें सबसे अधिक लिंगानुपात 915-930 के अन्तर्गत है। जिसमें जिला का 40 प्रतिशत प्रखण्ड सम्मलित है। उपरोक्त आधार पर कई लिंगानुपात समूहों में बाँटा जा सकता है जो निम्नाकित है-

1. **930 से अधिक लिंगानुपात वाला क्षेत्र** :-इसके अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र का 30 प्रतिशत प्रखण्ड सम्मलित है जिसमें प्रति 1000 पुरुष शिशु में स्त्री शिशु की संख्या कल्यानपुर में (1242) है जो 2001 में (920) था। विगत 10 वर्शो में यह 0-06 वर्ष के लड़की की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। सिंघिया में (935), उजियारपुर (934), तथा दलसिंहसराय में (931), विभूतिपुर (934), विद्यापतिनगर (930) है।
2. **915-930 लिंगानुपात वाला क्षेत्र**:-इसके अन्तर्गत समस्तीपुर जिला का 35प्रतिशत प्रखण्ड सम्मलित है। इसमें सरायरंजन (928), मोरवा (927), खानपुर (926), रोसड़ा (926), विथान (925), ताजपुर (921), तथा हसनपुर (921) सम्मलित है। यह मध्यम लिंगानुपात वाला क्षेत्र है। लेकिन यहाँ सामान्यत: न्यून लिंगानुपात है।
3. **900-915 लिंगानुपात वाला क्षेत्र**:-इसके अन्तर्गत वे प्रखण्ड सम्मलित है जहाँ लिंगानुपात 900-915 है। इसमें जिला का 5प्रतिशत प्रखण्ड सम्मलित है। जिसमें केवल वारिसनगर 908 शिशु लिंगानुपात पाये जाते हैं।
4. **900 से कम लिंगानुपात वाला क्षेत्र**:-इसके अन्तर्गत वे प्रखण्ड सम्मलित है जहाँ लिंगानुपात 900 से कम है। इसमें अध्ययन क्षेत्र का 35 प्रतिशत प्रखण्ड सम्मलित है। जिसमें षिवाजीनगर (899), मोहत्र्दीनगर (899), पूसा (898), पटोरी (897), मोहनपुर (896) तथा उजियारपुर (891) शिशु लिंगानुपात पाये जाते हैं।

समस्तीपुर जिला में राज्य एवं देश के औसत लिंगानुपात से काफी कम अर्थात यहाँ 909 स्त्री प्रति हजार पुरुष पाये जाते हैं। जबकि 0-06 वर्ष के बच्चों में लिंगानुपात में काफी वृद्धि अर्थात् 2001 में 938 से बढ़कर 2011 में 948 हो गया है जो भविष्य में लिंगानुपात में वृद्धि का संकेत है।

अध्ययन क्षेत्र समस्तीपुर के लिंगानुपात के अध्ययन से कुछ तत्य सामने आते हैं जो निम्नांकित हैं-

1. 2011 में समस्तीपुर जिला का लिंगानुपात राज्य के औसत लिंगानुपात 916 की तुलना में 909 राज्य के औसत लिंगानुपात से काफी कम है।
2. सबसे अधिक लिंगानुपात विथान प्रखण्ड में 931 है जबकि सबसे कम लिंगानुपात मोहनपुर प्रखण्ड 878 है।
3. 915 से 930 लिंगानुपात समूहन वाले प्रखण्डों में सबसे अधिक 7 अर्थात 35 प्रतिशत प्रखण्ड सम्मलित है।
4. सबसे अधिक ग्रामीण लिंगानुपात विथान में 931 तथा सबसे कम मोहनपुर 878 प्रखण्ड में है।
5. सबसे अधिक नगरीय लिंगानुपात रोसड़ा में 905 है तथा सबसे कम कल्यानपुर प्रखण्ड में 892 है।
6. 2001 के लिंगानुपात 928 की तुलना में 2011 के लिंगानुपात 909 में 19 की कमी आयी जिससे लिंगानुपात में तीव्र ह्रास कहा जा सकता है।
7. प्रखण्ड स्तर पर 2001 की तुलना में 2011 में सबसे अधिक विभूतिपुर में 67 लिंगानुपात में कमी आयी जबकि दूसरे स्थान पर षिवाजीनगर 66 तथा तीसरे स्थान पर मोहनपुर 22 लिंगानुपात का ह्रास हुआ।
8. लिंगानुपात में सबसे कम गिरावट वाला प्रखण्ड कल्यानपुर है जहाँ 2001 की तुलना में 2011 में केवल 03 की कमी आयी।
9. 0-06 वर्ष के बच्चों में 2001 की तुलना में 2011 में 938 से बढ़कर 948 हो गया।
10. सबसे अधिक लिंगानुपात वाला प्रखण्ड कल्याणपुर है जहाँ 2001 में 920 से बढ़कर 2011 में 1242 अर्थात् लिंगानुपात में 318 की वृद्धि दर्ज किया गया,यह आषातीत वृद्धि कहा जा सकता है।
11. 0-06 वर्ष के बच्चों में च्वेपजपअम ळतवूजी वाले प्रखण्डों में कल्यानपुर 318, विद्यापतिनगर 46, मोरवा 08 तथा दलसिंहसराय 02 शिशु की वृद्धि हुई।
12. 0-06 वर्ष के बच्चों में सबसे अधिक कमी वाला प्रखण्ड मोहनपुर तथा उजियारपुर है जहाँ लिंगानुपात में 56-56 की कमी आयी। जबकि समस्तीपुर प्रखण्ड के लिंगानुपात में केवल 01 की कमी आयी।
13. लिंगानुपात में कमी यहाँ की समाजिक जागरुकता, शिक्षा का स्तर, आर्थिक संरचना के निम्न स्तर को इंगित करता है।
14. प्रति हजार पुरुष पर महिलाओं की संख्या में गिरावट की प्रवृति आर्थिक, समाजिक स्वास्थ्य, परिवेष के लिए चिन्ताजनक पायी गई है।
15. समस्तीपुर जिला में लिंगानुपात 1901 से 1961 तक महिलाओं के लिए अनुकूल रहा है।
16. 1971 से 2011 तक लिंगानुपात के प्रतिकुल परिस्थितियों के कारण गिरावट दर्ज की गई
17. अध्ययन क्षेत्र में दहेज प्रथा तथा समाज में महिलाओं का निम्न स्थान, महिलाओ की उपेक्षा महिलाओं द्वारा होना, अशिक्षा, भ्रूण हत्या आदि कारणों से लिंगानुपात में गिरावट आयी है।
18. असंतुलित लिंगानुपात अनेक समाजिक बुराइयों एवं अपराधों को जन्म देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. हीरालाल - जनसंख्या भूगोल गोरखपुर
2. रघुनाथ ओझा - जनसंख्या भूगोल
3. ममोरिया जैर - जनसंख्या भूगोल
4- Dempo Gs. & The Geography study of Population in Population Geography
5- Chandra R.C. & Introduction of Population Geography New Delhi
6- Gosal G.S. & The Regionalism in sex Composition in Indias
7. भारत की जनगणना 2011 बिहार श्रृखला 2011

सती प्रथाः मुगलकालीन इतिहासकारों का दृष्टिकोण

अनुभा सिंह

शोध छात्रा, इतिहास विभाग,
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

डॉ० राजीव नयन

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
जगजीवन महाविद्यालय, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

किसी भी देश का इतिहास उस देश की जाति, मूल्यों, आदर्शों, व समाज के अतीत का धरोहर होता है तथा उसकी पहचान एवं संस्कृति आदर्शों के लिए साक्षी होता है। यही नहह्व किसी देश का ऐतिहासिक ग्रन्थ ही उस देश विशेष के लिए सबसे महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान होता है, क्योंकि यह ग्रन्थ ही उस जाति, समाज व संस्कृति को अपने विचारों में कैद रखता है, जिसकी खुशबू से हमारा अतीत गंरवान्वित होता है अंर उस इतिहास के पिटारों को खोलने से देश के अतीत को हमारे सामने प्रस्तुत करता है, जिसे पढ़ने से हमें अपने इतिहास पर गर्व होता है।

मुगलकाल में सती प्रथा अपनी प्राचीन स्थिति से फलती-फूलती समय के साथ आगे बढ़ती हुई अति व्यापक एवं भयावह रूप को पकड़ती जा रही थी जिसका उल्लेख तत्कालीन मुगल दरबारी इतिहासकारों एवं विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृत्तांत एवं संस्मरणों में सती प्रथा से जुड़े अनेक तथ्यों की प्राप्ति होती है। मनूची ने लिखा है कि एक राजपूत राजा की प्रमुख रानी को सती होने दिया गया, क्योंकि उसके सन्तान नहह्व थी। मनूची कहता है कि ''अपने पति की मृत्यु के बाद हिन्दू स्त्री के सामने चार रास्ते होते थे-द्ध1) या तो वह अपने पति के साथ जल मरे (2) अथवा वेश्यावृत्ति का पेशा अपनाए, (3) अपने माता-पिता के साथ रहे अंर (4) या पुनर्विवाह कर ले। इनमें दूसरा अंर चंथा रास्ता सामान्यतः न अपनाया जाता था।''[1]

''मनूची कहता है कि पति की मृत्यु के बाद स्त्री का सर मूँड़ने की प्रथा हर जाति अंर क्षेत्र में भिक्-भिक् थी।''[2]''गुजरात में पति की मृत्यु के दसवें दिन विधवा के बाल काटे जाते थे। दूसरी ओर, उत्तर प्रदेश की कुछ जातियों में पति की मृत्यु के दिन ही विधवा के बाल मूँड़ दिए जाते थे। उत्तरी भारत के कुछ भागों में अब भी यह प्रथा कायम है। मनूची ने राजमहल (बंगाल) अंर आगरा में सती होना देखा था।''[3] वह इसी के आधार पर इस प्रथा की चर्चा करता है। आगरा में जब एक विधवा के संबंधी उसे अपने पति के साथ जल मरने को ले जा रहे थे तो ''मनूची ने अपने एक आर्मेनियाई मित्र की सहायता से उसे बचाया था। उसके आर्मेनियाई मित्र ने बाद में उससे विवाह कर लियां'।''[4]'

उपर्युक्त तथ्यों का अंतर्निरीक्षण करने पर स्पष्ट होता है कि सती प्रथा से जुड़े तथ्यों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि मनूची ने सती प्रथा की कुवृत्तियों को स्पष्ट किया है।

सती प्रथा से जुड़े तथ्यों का अंतर्निरीक्षण करने पर स्पष्ट होता है कि- बर्नियर, अपने यात्रा-वृत्तांत में लिखा है कि-''स्त्रियों को जबरन उनके मृत पति के साथ जलाया जाता था।''[5] जब वह अहमदाबाद से आगरा की यात्रा पर था तो उसने एक विधवा के जलाये

जाने की घटना देखी जिसका वह उल्लेख करता है। ''अपने वर्णन में एक अन्य स्थान पर वह लिखता है कि उसने लाहर में एक कम उम्र की विधवा को जलाये जाते देखा जो 12 वर्ष से ज्यादा की न थी।''[6]''जब वह जलाये जाने के भयानक स्थान पर ले जाई जा रही थी तो वह जिन्दा से ज्यादा मुर्दा दिख रही थी। उसके दुखित मन की स्थिति वर्णन से परे थी। वही काँप रही थी अर जार-बेजार रो रही थी, पर तीन या चार ब्राह्मण एक बूढ़ी की सहायता से उस अनिच्छुक शिकार को भयानक स्थान की ओर ले जा रहे थे। उसके हाथ अर पाँव इस डर से बांध दिए गए थे कि कहह्न वह भाग न जाय। उस स्थिति में उस निर्दोष को जिन्दा जला दिया गया।''[7]

सती प्रथा की चर्चा करते हुए ''ट्रेवेर्नियर उन धार्मिक क्रिया-कलाप अर विधियों की चर्चा करता है जो आगरा, दिल्ली, गुजरात अर बंगाल के निवासी किसी विधवा को जलाने के समय करते थे।''[8] फोस्टर, सती-प्रथा की इस प्रकार चर्चा करता है-''हिन्दुओं में प्रथा है कि वे अपने मृत व्यक्ति को जला देते हैं अर उनके साथ इनकी कई पत्नियाँ भी अपने को जला डालती हैं।''[9] इस प्रथा के प्रचलन के कारणों पर कुछ प्रकाश डालने के बाद वह कहता है कि-वे इस प्रकार अपने को इसिलए जलाती हैं कि इस कार्य से ग्रंथों में उन्हें प्रसिद्ध अर सबसे विनम्र अर पतिव्रता पत्नी कहा जाएगा जिन्होंने सब सांसारिक सुखों को छोड़कर अपने पति के बाद अर ज्यादा न जीने की इच्छा का वरण किया।

विदेशी यात्रियों ने इसकी आवश्यक रूप से चर्चा की है। इस संबंध में अन्य बातों के अलावा उन्होंने इसके सभी विधि-विधान की चर्चा की है। इस संबंध में उन प्रतिबंधों के बारे में भी उल्लेख है जो इससे सम्बद्ध थे अर जिनको ब्राह्मण पुरोहित कार्यान्वित करते थे।ट्रेवेर्नियर भी लिखता है-''स्त्रियाँ अपने को कपड़े-लत्ते से इस प्रकार सजा लेती थह्न मानो वे विवाह करने जा रही हों।''[10] वे विजय की भावना से सती होने के स्थान पर जाती थह्न। ''वाद्य-यंत्रों अर उस स्त्री के सम्मान में उसके साथ चलने वाली महिलाओं के गाने की आवाज होती थी। वे इस प्रकार उस महिला की दृढ़ता अर साहस के लिए मानो जनता को प्रमाण-पत्र देती थह्न। बड़ी संख्या में पुरुष अर महिला उस दृश्य को देखते थे।''[11]

यूरोपियनों का मत रहा है कि मृत्यु का भय, जो स्वभावत : लोगों को होता है, दूर करने के लिए पुरोहित लोग उस स्त्री को कुछ द्रव पदार्थ पिला देते थे ताकि उसकी चेतना शून्य हो सके अर मृत्यु के बारे में उसका डर खत्म हो सके अर वह उसके लिए तैयार हो जाय। साथ ही, यह भी सामान्य-सी बात थी। वह अपने संबंधियों अर मित्रों को पान की पत्तियों अर जो रत्न-जवाहरात वह पहने रहती थी, बाँटती थी। तब वह सजी हुई चिता पर चढ़ती थी अर लोगों को आग लगाने का आदेश देती थी। जैसे ही आग की लपटों में विधवा जलने लगती थी, उसके संबंधी अर ब्राह्मण चिता की आग पर तेल अर घी डालने लगते थे ताकि आग शीघ्र ही उसके शरीर को राख में परिणत कर दे। इस संबंध में दूसरी विधि यह थी कि ''ब्राह्मणों को रत्न-जवाहरात देने के पूर्व विधवा चिता के सात फेर लगाती थी।''[12]

उपर्युक्त तथ्यों का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि मुगलकाल में सती प्रथा काफी भयानक एवं व्यापक रूप ग्रहण कर चुकी थी। इस प्रथा को भयानक रूढ़िवादिता ने अर भी क्रूर बना दिया। सम्पूर्ण राजपूताना, बंगाल, दिल्ली, गुजरात, आगरा, लाहर सती प्रथा की व्यापकता के बढ़ाव में था।

सन्दर्भ :

1. मनूची-निकोलो, स्टोरियो डी मुगल या मोगल इंडिया, अनुवादक-विलियम इरविन, जॉन मरे, लंदन, 1907, पृ. 60
2. वही, पृ. 60
3. वही, पृ. 60
4. वही, पृ. 96.97
5. बर्नियर फ्रांकोइस: ट्रैवेल्स इन मोगल इम्पायर (1656-1668), अनुवादक-वेस्टमिन्स्टर, आर्किवाल्ड कांस्टेबुल एण्ड कम्पनी, पृ. 309
6. वही, पृ. 309
7. वही, पृ. 310
8. ट्रेवेर्नियर,जॉन वैपटिस्टे, ट्रैवेल्स इन इंडिया, 1678, अनुवादक-वी बालं, मैकमिलन एण्ड कं. लंदन 1889, पृ. 408.409
9. सर विलियम फोस्टर, अलह्न ट्रैवेल्स इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लन्दन 1921, पृ. 119
10. ट्रेवेर्नियर, जॉन वैपटिस्टे, ट्रैवेल्स इन इंडिया, 1678, अनुवादक-वी बालं, मैकमिलन एण्ड कं. लंदन 1889, पृ. 406
11. वही, पृ. 406
12. वही, पृ. 409

मानवेन्द्र नाथ राय के दर्शन में मानव प्रकृति की विवेचना

पूनम कुमारी

(पीएच.डी शोध छात्रा, दर्शनशास्त्र), राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश :-

मानववाद मस्तिष्क की अभिवृत्ति है जो मानव और उसकी शक्तियों, मामलो लौकिक आकांक्षाओं तथा उसकी भलाई को प्राथमिक महत्व प्रदान करता है। मानववाद जिसका अर्थ मानव संबंधी विचार के दर्शन से हे। जिसमें मानव जीवन के सर्वक्षेष्ठ रूप का प्रतिपादन करने का प्रयास किया गया है। मानववाद कोई ऐसी विचार धारा नहीं है जो एक एक किसी एक युग विशेष में प्रकट हो गयी है। इसकी सुदीर्ध परम्परा भारतीय चिंतन में ही नहीं पाश्चात्य चिंतन में भी मिलता है। यह विचार धारा धरती के मानव का जयघोष है जिसमें लौकिक आध्यात्मिक जीवन का गान न होकर धरती के मानव की महत्व-प्रतिष्ठा है।

राय का नवमानववाद में व्यक्ति और उसकी स्वतंत्रता को र्स्वोच्च स्थान दिया गया है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति ही समाज के मूल में है। राय का ऐसा मानना था कि सामाजिक कन्याण व्यक्ति के कल्याण के द्वारा ही सम्भव है।

मुख्य बिंदु - मानव प्रकृति, स्वतंत्रता, विवेकशील, वातावरण।

प्रस्तावना :-

विश्व की सृष्टि में मानववाद प्रमुखतम् प्राणी है यही एकमात्र जीव है जो सभी तरह की जलवायु में विभिन्न प्रकार के औजारों का निर्माण एवम् प्रयोग कर रह सकता है। वह अग्नि का निर्माण कर सकता है, प्रार्थना करता है, बातचीत कर सकता है तथा युद्ध में अपने द्वारा निर्मित वस्तुओं का विनाश भी कर सकता है। विज्ञान के द्वारा मनुष्य ने ही सृष्टि के अनेक रहस्यों का उदघाटन किया, जैसे - उसने पृथ्वी का ज्ञान, एटम बम की बनावट और पौधों तथा जानवरों की संरचना आदि तथ्यो को भी प्रकाशित किया है। भारत के संस्कृति में भी कहा गया है -

'मनन करोति रति मनुष्य :

अर्थात् मनुष्य वही है जिसमें मनन करने की विचार करने की तर्क करने की, तथा विभेद करने की क्षमता है।'

मानवेन्द्र नाथ राय ने अपने विचारों में मानव प्रकृति की विशद विवेचना की है। हम पाते हैं कि मानव प्रकृति की विशेषताओं से राय का नवमानववाद का प्रारम्भ होता है। जिस पर उनके सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं आर्थिक विचार आधारित हैं। ''राय ने अपने नवमानववाद के घोषणा पत्र के 17वें सिद्धान्त-सूत्र में इसे स्पष्ट किये हैं वह यह है कि मानव द्वारा मानव के शोषण की सम्भावना को समाप्त करने के लिए समाज का समुचित आर्थिक पुनर्गठन करना होगा। इस व्यवस्था में सबसे पहले सभी व्यक्तियों की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होगी। इसके बिना उनकी बौद्धिक तथा अन्य मानवीय क्षमताओं का विकास सम्भव न हो पाएगा। नए आर्थिक पुनर्गठन के द्वारा मानव के जीवन स्तर का धीरे-धीरे विकास किया जाएगा। स्वतंत्रता के लक्ष्य की प्राप्ति की प्रथम शर्त यह है कि मानव आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो। 17वें सिद्धान्त-सूत्र से पाइथागोरस के उस कथन से राय अपनी सहमति व्यक्त करते हैं जिसमें उन्होंने कहा था कि दुनिया में जो कुछ भी है उसका पहला और अंतिम मापदंड मनुष्य

ही तो है। इस परिप्रेक्ष्य में राय मार्क्स के ऐसे ही कथन को भी स्वीकार करते हैं जिसमें मनुष्य को मानवता की आधारशिला बताया गया है।

राय मानते थे कि ''मनुष्य समग्र विकास का मूल है'' और ''मनुष्य अपने इतिहास का स्वयं निर्माता है ''नि: सन्देह यह कहा जा सकता है कि राय का रचनाओं में अनेक स्थलो पर यह अभिव्यक्त हुआ है कि इतिहास मानव को नहीं बल्कि मानव इतिहास की रचना किया करते है। समाज में मनुष्य का स्थान पहियों की बेजान तानियों के समान नहीं हुआ करता है बल्कि मानव तो विकास के पहियों को खुद गति दिया करता है। अब वह मानव जो पुरातन काल से ही प्रत्येक मानववादी विचार के द्वारा समग्र विकास की कसौटी माना जाता रहा है या माना जाता है और माना भी जाना चाहिए स्वंय उसे और उसके विकास के इतिहास और उसके विकास की प्रक्रिया की समग्रता को समझने के लिए उस मानव प्रकृति को समझना अनिवार्य पूर्व शर्त है।

राय ने रीजन, रॉमाँटिसज्म तथा रैवोल्यूशन नामक अपनी पुस्तक में मानव प्रकृति को 'सामाजिक-सम्बन्धों का संग्रह बताया। रॉय ऐसा सोचते थे कि मनुष्य की तर्क करने की क्षमता बहुत हद तक उसके वातावरण से निर्धारित होता है। वह यह मानते थे कि नैतिक मूल्य अपने आप में सम्पूर्ण न होकर, सम्बन्ध बोधक तथा सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होते हैं, यह कहा जा सकता है कि यदि कोई बात किसी के लिए नैतिक है तो आवश्यक नहीं कि वह औरों के लिए भी नैतिक हों। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नैतिक संहिता सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होती है। चूंकि राय मार्क्स की तरह ही ऐसे महान मानवतावादी थे जो व्यक्ति की साधुता में आस्था रखते थे। मार्क्स की तरह राय का भी मानना था कि व्यक्ति को उपयुक्त आर्थिक स्वतंत्रता उपलब्ध होनी चाहिए जिससे कि वह एक सफल सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन व्यतीत कर सके। व्यक्ति की राजनैतिक स्वतंत्रता आर्थिक स्वतंत्रता से ही प्राप्त होगी। इस तरह यहाँ पर राय ने मार्क्स की विचारधारा को एक आलोचना के रूप में लिया है। क्योंकि मार्क्स का सिद्धान्त मूल रूप से सर्वाधिकारवाद अथवा तानाशाही पर आधारित सिद्धान्त है। उनका मानना थ कि मार्क्स भी स्वतंत्रता की वकालता किया करते थे लेकिन मार्क्स ने आर्थक खुशहाली की वकालत करने के बजाए व्यक्ति के जीवन के सभी क्षेत्रों में कल्याण की बातों को महत्व देना चाहिए था या करना चाहिए था। मार्क्स को व्यक्ति के बौद्धिक कल्पना की बात करनी चाहिए थी।

स्पष्टत: राय का यह कहना था कि - ''मानवीय सत्य के रूप में व्यक्ति द्वारा उपभोग की जाने वाली स्वतंत्रता के अतिरिक्त अन्य सारी स्वतंत्रताऐं मेरे लिए तो अमूर्त है।

इस तरह यहाँ स्वतंत्रता का संबंध मानवीय अर्थ में व्यक्ति की 'समग्रता' से है तथा व्यक्ति की इसी समग्रता में उसके व्यक्तित्व का समग्र स्वरूप निहित है। उसके व्यक्तित्व के जितने विविध पहलू होते है जैसे - आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा आत्मिक आदि। स्वतंत्रता का मूल्य इन सब के संयुक्त और समग्र रूप में ही अपने अर्थ की पूर्णता और समग्रता को प्राप्त करने से है। राय के शब्दों में ''स्वतंत्रता की खोज को व्यक्ति के अस्तित्व के संघर्ष की और संदर्भित किया जा सकता है। अपने जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास क्रम में इस व्यकित द्वारा प्रकृति पर प्राप्त की जाने वाली विजय रूप में आँका जा सकता है।

प्रकृति के क्रिया कलाप समझने के प्रयास में उसके वैज्ञानिक दृष्टिकोण में उसे सदैव सहायता पहुँचाई है। क्योंकि बिना कारण कोई घटना नहीं घटती इसलिए प्रत्येक घटना के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है उस कारण को ढूँढ निकालने की उसकी जिज्ञासा तथा इच्छा उसकी वैज्ञानिक बुद्धि का ही परिणाम रही है।

राय ने धर्म को भी व्यक्ति के आरम्भिक विवेक की अभिव्यक्ति ही माना है। इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते है कि सदियों से चले आ रहे प्रकृति के विभिन्न नियमों की व्यवस्था को देखने वाले मानव ने पाया कि हमारे ऋतुओं के आवागमन, सूर्य, चन्द्रमा आदि के अनवरत चक्र रात और दिन की क्रमिकता इत्यादि, सब एक सुनिश्चित व्यवस्था से ही अनुशासित है न किये संयोग की घटनाओं के चमत्कार है, या यूँ कहे कि व्यक्ति का विवेक ही था जिसने तथ्य की वास्तविकता से उसे परिचित कराया।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि मानव के विवेक ने ही इस सब के सन्दर्भ में उसे यह ज्ञान भी कराया कि ज्ञान का क्षेत्र अपरिमित है शक्ति की क्षमताओं असीमित हैं। साथ में यह भी कह सकते है कि तभी से ज्ञान की खोज, स्वतंत्रता की खोज के समानान्तर चलती हुए समग्र विकास के कपाट खोलती चली गई है। परन्तु यहाँ इसका यह अर्थ नहीं लगा सकते कि मानव प्रकृति

किसी ऊपरी या किसी इतर शक्ति में विश्वास करती है। वास्तविकता यहाँ यह है कि मानव यदि आस्था भी करता है तो किसी ठोस तार्किक आधार पर ही ऐसा करताा है। यही ठोस प्रमाण है कि वह एक विवेकशील प्राणी है।

इस तरह से राय ने ठोस शब्दों में स्पष्ट किया कि यदि मानव प्रकृति में कुछ ठोस व स्थाई तत्व है, तो मात्र आस्था करने की प्रकृतिवादी अपितु मानव की विवेकशीलता ही है। उसमें तर्क करने की क्षमता है जो उसे हर बात की तार्किक व औचित्य-पूर्ण व्याख्या खोजने के लिए प्रेरित करती है। राय का स्पष्ट मानना था कि ऊपरी तौर पर असंबंद्ध दिखलाई पड़ने वाली घटनाओं के पीछे छुपे कुछ नियम, नियमितता एवं कुछ संबंद्धता को जानने की चाह ने इन सब के पीछे निर्देशक-शक्ति के रूप में अति-प्राकृतिक शक्तियों की कल्पना की ओर प्रेरित किया। इस तरह राय ने यह विश्लेषित किया कि आस्था या प्रतीति अज्ञानता पर आधारित हुआ करती है, यदि यही मानवीय प्रकृति का मूल आधार होती तो ज्ञान कभी सम्भव नहीं हो पाता और मानव अब भी अज्ञानता के घेरे में रह रहा होता। परन्तु यहाँ वास्तविकता कुछ ओर ही है, यहाँ वास्तविकता यह है ज्ञान का निरन्तर विकास हुआ है कि मानव अनिवार्यत: विवेकशील है तथा साथ ही नैतिक भी है।

निष्कर्ष :-

राय ने अपने दर्शन में मानव प्रकृति जिस प्रकार से व्याख्या की है वह दर्शन और हमारे समाज के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राय ने मानव प्रकृति की वैज्ञानिक व्याख्या कर व्यक्ति को सारे विकास का मूल सिद्ध करने का तर्क सम्मत प्रयास किया और साथ ही सिद्ध किया कि स्वतंत्रता तथा विवेकशीलता मानव प्रकृति के मूल अधार है जिससे मनुष्य को अलग नहीं किया जा सकता।

संदर्भ सूची :-

1. मनोज कुमार सिंह, शैलश कुमार चौधरी : भारतीय राजनीतिक चिन्तक मानवेन्द्र नाथ राय, संस्करण-2014
2. डॉ. प्रभाकर माचवे श्री सुरेन्द्र नारायण दफ्तुआर, आधुनिक भारत के विचारक संस्करण-1978
3. एम.एन.राय, नव मानववाद संस्करण-2017
4. रमेश चन्द्र सिन्हा विजश्री, समकालीन भारतीय चिंतक संस्करण-2000
5. डॉ. कुम कुम कपुर, एम.एन.राय नवोग्र-मानववाद और मार्क्स-संस्करण 1991

अलवर रियासत की महिलाओ की भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान

राहुल कुमार मीणा

पीएच.डी शौधार्थी, इतिहास एवं कला संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय

अलवर रियासत राजपूताना की प्रमुख रियासतों में से थी यह प्रचीन काल में मत्सय महाजन पद का अभिन्न हिस्सा था और मध्यकाल में यह मेवात क्षेत्र का हिस्सा थी यह स्वतंत्र रियासत बनने से पूर्व जयपुर रियासत का हिस्सा थी जिसे 1775 ई. में अलवर के प्रतापसिंह ने अपने साहस, बल, बुद्धि और निर्भिकता से इसे स्वतंत्र कर स्वतंत्र अलवर रियासत की नीवं रखी।

अलवर रियासत भौगोलिक दृष्टि से 27.5 डिग्री से 28.15 डिग्री उतर अक्षांश के बीच और 76.10 डिग्री से 77.15 डिग्री पूर्वी देशातंर तक फैला हुआ हे [1]यह राजस्थान की प्राचीनतम पर्वत श्रृंखला अरावती के आंचल में बसा हुआ हैं तथा राजस्थान के उतर पूर्व में स्थित है। इसकी उतर से दक्षिण की दूरी लगभग 137 किलोमीटर है और पूर्व से पश्चिम की दूरी लगभग 110 किलोमीटर है। [2]अलवर रियासत के उतर में पंजाब का गुडगांव जिला, उतर पश्चिम में पंजाब का महेन्द्रगढ़ जिला, दक्षिण पश्चिम में जयपुर और दक्षिण में सवाईमाधोपुर और जयपुर जिला से सटा हुआ है। [3]

अलवर रियासत में अनेक महिलाओं ने अपनी भक्ति तथा समाजसुधार कार्यो से यहाँ के लोगों के लिए जनकल्याण कार्य किया है इन महिलाओं में सहाजोबाई, दयाबाई, करमाबाई तथा समानबाई जैसी प्रमुख महिलाओं का नाम रहा है।

इस रियासत में कृषक आंदोलन तथा जागीरदारी आंदोलन में महिलाओं ने भी पुरुषों के साथ बराबर की भागीदारी दी तथा भारतीय स्वतंत्र आंदोलन जो देश के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग रूपो में चल रहा था उसमें अलवर रियासत ने भी प्रजामंडल आंदोलन के माध्यम से अपना योगदान दिया इसमें यहाँ की महिलाओं ने भी सराहनीय भूमिका निभाई।

यहा की महिलाओं ने 1925 ई. में हुए नीमूचाणा किसान आंदोलन में भी लगान वृद्धि के विरूद्व किसानों को संगठित करने तथा आंदोलन में भाग लेने के लिए भी जोड़ा इसमें नीमूचाणा गांव के रघुनाथ किसान की बेटी सीतादेवी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई[4]

रियासत में राजनीतिक चेतना फैलाने में राजगढ़ के गौरी सहाय जैमन की पत्नी कमलादेवी का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा वे कांग्रेस की विचारधारा से काफी प्रभावित थी 1931 ई. में उन्होने अपना राजनैतिक जीवन प्रारंभ किया, उन्होने खादी को अपने पहनावे में शामिल किया तथा खादी का प्रचार भी प्रारंभ किया। वे दिल्ली में रहकर अरूणा आसफ अली, सत्यवती, मीमोबाई से संपर्क कर उनके साथ कार्य करने लगी। 1932 ई. में चाँदनी चौक में इन महिलाओं के साथ सत्याग्रह में भाग लेती हुई वे गिरफ्तार हुई।[5]

श्रीमती सुशीला त्रिपाठी ने भी अलवर में सक्रिय भूमिका निभाई वे लोकजागरण के अग्रदूत श्री लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी की पत्नी थी उन्होने अपने पति के साथ दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार के लिए मद्रास में कार्य किया और हिन्दूस्तानी सेवा दल की महिला शाखा से भी जूड़ी। सुशीला त्रिपाठी ने 1933 में दिल्ली जाकर के दफा 144 तोड़कर चाँदनी चौक में सत्याग्रह किया। इस घटना में शामिल होने के कारण उन्हें 6 महिने की सजा देकर लाहौर महिला जेल में रखा गया।[6]

अलवर में 1938 में स्थापित प्रजामंडल की अध्यक्षता सुशीला देवी ने की। उन्होने प्रजामंडल के माध्यम से जनविरोधी नीतियों का भी विरोध करना प्रारंभ कर दिया। सुशीला देवी जी ने अलवर रियासत के सरकारी पाठशालाओं की फीस वृद्वि के नियम के विरूद्व महिलाओं को आगे आने के लिए प्रेरित किया तथा उनके नेतृत्व में छात्रों ने अलवर में हड़ताल की।[7] इन्होने 15 मार्च 1938 तथा 9 अप्रेल 1938 को पुरजन विहार में आयोजित जनसभाओं में भी शिक्षा के महत्व, खादी प्रचार तथा राष्ट्रीय उत्थान के विषयों पर भी विचार रखे।[8]

सुशीला देवी ने रामचन्द्र उपाध्याय व मास्टर भोलानाथ के साथ अलवर सरकार के 29 जून 1938 को पारित ''सेडिशियस मीटिंग एण्ड पब्लिकेशन एक्ट 1921'' का भी विरोध किया। इस एक्ट के तहत कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया जाता था और कार्यकर्ताओं को जेलों में अपमानित भी किया जाता और न ही इन्हें अपने वकील से मिलने दिया जाता था तथा राष्ट्रीय भावना के गीत गाने के कारण अधिकांश व्यक्तियों की 2 साल की कैद व बांड भरवाया जाता था। इस बांड में यह लिखा होता था कि ''अगर कोई छात्र राजनीति में भाग लेगा तो उसके संरक्षक जिम्मेदार होंगे''।[9]

पार्वती देवी जो 26 अक्टूबर 1938 को दिल्ली से अलवर आई उन्होने अपने ओजपूर्ण भाषण में अंग्रेजी सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना की तथा उतरदायी सरकार की माँग की। 1 अक्टूबर 1941 की अलवर राज्य में हुए विशाल खादी प्रदर्शनी के आयोजन के अवसर पर दिल्ली से सत्यवती देवी ने भाग लिया तथा 25 अक्टूबर 1941 को अलवर राज्य में खादी भंडार तथा महिला संघ का उद्घाटन भी सत्यवती देवी से कराया गया। इस खादी प्रदर्शनी में वनस्थली विद्यापीठ की श्रीमती रतन शर्मा 15 लड़कियों के साथ अलवर आई। इस प्रदर्शनी के दौरान 2 अक्टूबर का दिन केवल महिलाओं को खादी प्रदर्शनी देखने के लिए रखा गया।[10]

द्वितीय विश्वयुद्व में भी अलवर की महिलाओं ने अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक योगदान देकर भागीदारी दी। अलवर के गर्ल्स स्कूल में वारफंड हेतु एक कार्यक्रम किया गया इस कार्यक्रम में 18 गाने एवं डायलाग बोले गये। इनको हिन्दी तथा उर्दू में छात्राओं द्वारा गाया गया इस कार्यक्रम में 500 रूपये वारफंड में आये।[11] तथा अलवर वीमेन्स वार एड एसोसिएशन की ओर से ऊन से बना हुआ सामान सैनिकों के लिए भेजा गया श्रीमती लेडी लिनलिथगो के ''सिल्वर ट्रिजर फंड'' के लिए आभूषणों के साथ चांदी की सामान भी एकत्रित किया गया।[12]

जागीरदारों द्वारा किए जाने वाले शोषण के विरूद्व भी महिलाओं ने आवाज उठाई श्रीमती कौशल्या देवी ने जागीरदारों द्वारा महिलाओं से बेगार करवाने तथा बदले में पैसे ना देने के कारण महिलाओं की भारी मानसिक वेदना को महसूस किया। इसलिए वे गाँव-गाँव घूमकर प्रजामंडल के कार्यकर्ताओं के रूप में जागीर विरोधी एवं सामंती शासन विरोधी प्रचार किया तथा महिलाओं को जागीरी जूल्मों के विरोध में भी संगठित करना प्रारंभ किया जिसके परिणामस्वरूप इनके ससूराल पक्ष ने इन्हें अपने पीहर टोडानगर भेज दिया। इन्होने वहाँ जाकर भी जागीरदारों के अत्याचारों के विरोध में आम लोगों को संगठित करना शुरू किया। इनके पति को जागीरदारों ने ग्राम छोडने पर विवश कर दिया आखिरकार कौशल्या देवी वे उनके पति अलवर के पास आकर रहने लगे जिस मकान में वे रहने लगे उसमें सभी पुरुष महिलाओं का काम एक ही प्रकार से विदेशी शासन और सामंती सत्ता के जूल्मों के विरोध में वातावरण तैयार करना था और ये भी श्रीमती शांति गोठलिया, रामेश्वरी देवी और रामप्यारी आदि के साथ जलसे जुलुसों में भाग लेने लगी।[13]

अगस्त 1942 में बंबई से भारत छोड़ो आंदोलन की शुरूआत हुई। महात्मा गांधी ने रियासतों के प्रजामंडल के नेताओं को कहा की इस संघर्ष का नारा होगा ''अंग्रेजो भारत छोड़ो'' और रियासतों में नारा होगा ''राजाओं अंग्रेजों का साथ छोड़ो''। अलवर रियासत में भी भारत छोड़ो आंदोलन का प्रभाव रहा यहाँ रामचन्द्र उपाध्याय, कृपालदयाल माथुर व शोभाराम जैसे पुरुषों ने अपनी वकालात छोड़कर आंदोलन की गतिविधियों में शामिल हो गये। इस आंदोलन में श्रीमती गंगा देवी डाटा जैसी महिलाओं ने भी महत्वपूर्ण भागीदारी की श्रीमती गंगादेवी डाटा प्रसिद्व स्वतंत्रता सेनानी श्री शांतिस्वरूप डाटा की धर्मपत्नी थी अलवर रियासत में उतरदायी शासन की स्थापना के लिए महिलाओं को जाग्रत करने में इनकी अहम भूमिका थी इन्होने श्रीमती शोभा भार्गव, उमाजी माथुर, कमलाजी जैन, कलावती जी और रामप्यारी जी आदि देशभक्त महिलाओं के साथ मिलकर ''महिला मंडल'' का गठन किया जिसका उद्देश्य भारत छोड़ो आंदोलन के लिए धरना प्रदर्शन करना, जूलुस निकालना तथा तिरंगा झंडा फहराना था। गंगादेवी ने पर्दा प्रथा तथा बालविवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरोध में भी आवाज उठाई।[14]

श्रीमती रामप्यारी देवी जी जो की अलवर रियासत के प्रमुख देशभक्त शोभाराम की पत्नी थी उन्होने 1943 ई. में अपने पति बाबू शोभाराम के वकालात छोड़कर राजनीति में सक्रिय हो जाने पर इन्होंने विषम परिस्थितियों में परिवार का भरण पोषण किया। पारिवारिक जिम्मेदारियों के साथ ही इन्होंने चरखा संघ, महिला शिक्षा तथा राजनीतिक क्रियाकलापों में भी भाग लिया इसी प्रकार कलावती शर्मा का योगदान भी महत्वपूर्ण हैं इन्होने अल्पायु से ही छात्र-छात्राओं के साथ मिलकर प्रजामंडल के कार्यक्रमों में भाग लेना प्रारंभ कर दिया था इन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन में भी भूमिगत रहकर कार्य किया इनके प्रमुख केन्द्र मुंडावर ओर खैरथल थे इन्होने एक स्थान से दूसरे स्थान पर पर्चे बाँटना, पोस्टर लगाना तथा क्रांतिकारियों तक गुप्त संदेश पहुँचाने जैसे कार्य किये थे महिलाओं में इनकी प्रमुख सहायोगी श्रीमती शांति गुप्ता, जगराती ओमकार, रमादेवी पांडे, शांति गोठडिया, श्रीमती रूकमणी देवी, कमलेश शर्मा, कमला डाटा, कमला जैन व विमला शर्मा प्रमुख थी श्रीमती शांति गोठडिया ने भी भारत छोड़ो आंदोलन में महत्वपूर्ण भागीदारी की इन्होने 1943 में रामगढ़ में प्रजामंडल की एक सभा में मंच पर खड़े होकर पर्दा प्रथा त्याग की घोषणा की जो की तत्कालीन समय में एक बहुत बड़ी घटना थी क्योकि परंपरागत समाज में ऐसी घोषणा क्रांतिकारी मानी गयी। इन्हें इस घटना के कारण पारिवारिक विरोध का सामना भी करना पडा।[15]

अलवर राज्य की महिलाओं ने 8 फरवरी 1946 को सरकारी दमन चक्र के खिलाफ अलवर राज्य में आयोजित ''विरोधी दिवस'' के अवसर पर प्रजामंडल के जुलुस में विधार्थियों के साथ काफी भागीदारी की इस जुलूस में करीब 20-25 हजार व्यक्ति सम्मिलित थे इसमें महिलाएँ भी थी। अलवर प्रजामंडल की आर्थिक दृष्टि से सबल बनाने हेतू महिलाओं ने अपने आभूषण देकर योगदान किया 12 फरवरी 1946 को एक आमसभा में शोभाराम की पत्नी ने प्रजामंडल को अंगुठी भेंट की जिसे सदाराम हलवाई ने 600 रूपये में खरीद कर यह पैसा प्रजामंडल आंदोलन कोष के लिए दिया। उस सभा में करीब-करीब 400-500 महिलायें थी इसमें कृपादयाल की पत्नी ने 11 रूपये तथा प्रेमप्यारी ने भी 11 रूपये दिये। 23 अगस्त 1946 को प्रजामंडल द्वारा चलाये गये सत्याग्रह आंदोलन में भी काफी महिलाएँ गिरफ्तार हुई। इनमें शांति गुप्ता, कमला जैन, उमा माथुर, कैलाशवती तथा कमलादेवी प्रमुख थी।[16]

विभिन्न आंदोलनों में हिस्सा लेने पर जब महिलाओं को पुलिस पकड़ कर ले जाती थी तब इन्हें जेल में बंद नहीं किया जाता था क्योंकि महिलाओं को बंद करने के लिए जेल में व्यवस्था नहीं होती थी तथा महिला पुलिस की व्यवस्था भी नहीं होती थी इस कारण से अन्य महिलाओं के साथ ट्रक में भरकर 8 से 10 किलोमीटर दूर जंगलों में छोड़ दिया जाता था जहाँ से वापस आने के लिए वाहन व्यवस्था न होने पर कई बार पैदल ही अलवर आना पड़ता था कभी-कभी पुलिस से छिपकर इनकी सहयोगी महिलाओं के घर पर भी ये छिप जाती थी इनकी इन गतिविधियों के कारण इनके परिवार के अन्य सदस्यों को भी पुलिस की यातनाओं का शिकार होना पड़ता था।[17]

इस प्रकार अलवर रियासत की महिलाओं में कृषक आंदोलनों, जागिरदारी विरोध प्रदर्शनों और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया हालांकि महिलाओं के बारे में राष्ट्रीय स्तर के इतिहास लेखन में विवरण नहीं मिलता है किन्तु तात्कालीन समाचार पत्रो, अलवर रियासत की रिपोर्टो तथा प्रजामंडल आंदोलनों की रिपोर्टो के माध्यम से बहुत से अनछुए पहलु सामने निकलकर आते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अ मायाराम, राजस्थान डिस्ट्रीकट गजेटियर, अलवर, 1968 पृष्ठ-1
   ब पाउलेट, पी डब्ल्यु, अलवर गजेट, 1878, पृष्ठ-27
2. गहलोत, जगदीश सिंह, कछवाहों का इतिहास, युनिक ट्रेडर्स, 2004, पृष्ठ-283
3. जोशी, पंडित पिनाकीलाल, अलवर राज्य का इतिहास, चिन्माया प्रकाशन, 1930, पृष्ठ-1
4. सिंह, दिव्या राजस्थान में महिला नेतृत्व ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 2012, वोल्युम-27, पृष्ठ-534
5. सहरिया, फूलसिंह, राजगढ़ क्षेत्र का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन-गौरांग प्रकाशन, 2018 पृष्ठ-40
6. जोशी, सुमनेश, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, जयपुर ग्रंथागार, 1973, पृष्ठ-448
7. मीणा, सोनल, अलवर राज्य की स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस -2014, वोल्यूम-28, पृष्ठ 553-554

8. मिश्रा, स्मिता, पूर्वी राजस्थान में गाँधी युगीन चेतना तथा महिलाएँ, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 2014, वोल्युम 28, पृष्ठ-547
9. मीणा, सोनल, अलवर राज्य की स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस -2014, वोल्यूम-28, पृष्ठ 553-554
10. मिश्रा, स्मिता, पूर्वी राजस्थान में गाँधी युगीन चेतना तथा महिलाएँ, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 2014, वोल्युम 28, पृष्ठ-547
11. बस्ता न0-417, फाईल न0-4, युद्ध समाचार 17 अक्टूबर 1940, पृष्ठ-6 राजस्थान राज्य अभिलेखागार अलवर
12. बस्ता नम्बर- 417, फाईल नम्बर -4, युद्ध समाचार, 1 दिसंबर 1940, पृष्ठ-2, राजस्थान राज्य अभिलेखागार अलवर
13. मीणा, सोनल, अलवर राज्य की स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस -2014, वोल्यूम-28, पृष्ठ-554
14. वहीं पृष्ठ - 555-556
15. वहीं पृष्ठ - 555-556
16. मिश्रा, स्मिता, पूर्वी राजस्थान में गाँधी युगीन चेतना तथा महिलाएँ, राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 2014, वोल्युम 28, पृष्ठ-548
17. मीणा, सोनल, अलवर राज्य की स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस -2014, वोल्यूम-28, पृष्ठ-557

कर्णाटकालीन मिथिला का समाज

डॉ० राकेश कुमार

ग्राम- बिटुहर, पो0 -सोठोगाँव
जिला-मधुबनी (बिहार)

ग्यारहवीं शदी के अन्तिम चरण के उत्तर काल से लेकर चौदहवीं शताब्दी के प्रथम चरण के लगभग अन्त तक मिथिला में उसके अधिवासी पुत्राों (कर्णाट क्षत्रियों) का शासन बना रहा। यद्यपि उस काल में भी बाहरी शत्राुओं का आक्रमण यदा-कदा वहाँ होना बन्द नहीं हो गया था पर अन्य प्रदेशीय शासकों के शोषण रूक जाने से देश समृद्ध एवं जनता सुखी हो गयी थी।[1]

चौदहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में मैथिल समाज के गठन में किंचित् परितर्वन हुआ दृष्टिगत होता है। पर उस परितर्वन ने समाज को प्रगतिशील बनाने के स्थान में उसे और भी कट्टर होता बना दिया। राजा हरिसिंह देव (कर्णाट-कुल-नरेश) के शासन-काल में मिथिला के ब्राह्मण एवं कायस्थ समाज में कुलीन प्रथा का आरम्भ किया गया। पीछे इस प्रथा का प्रचार मिथिला से आरम्भ होकर बंगाल और आसाम तक हुआ।[2] राजा हरिसिंह देव की आज्ञा से मैथिल ब्राह्मण समाज का चार विभागों में वर्गीकरण 1610 और 1313 ई0 के बीच हुआ। इस वर्गीकरण के अनुसार ब्राह्मणों के चार विभाग क्रमशः (1) क्षोत्रिाय, (2) योग्य, (3) पंजीबद्व, तथा (4) जैवार के नाम से प्रसिद्ध हुए।[3]

मैथिल ब्राह्मणों में क्षोत्रिाय का स्थान उन परिवारों को प्राप्त हुआ जिनके सदस्य अपना समय सूर्योदय से सूर्यास्त तक केवल अग्नि-होत्रा, पूजा-पाठ, आदि पवित्रा वैदिक एवं स्मार्त कर्मों के करने में व्यतीत करते थे। कुलीन प्रथा में उनको स्थान सर्वोच्च एवं प्रथम प्राप्त हुआ। क्षोत्रिायों के बाद दूसरा स्थान योग्यों को प्राप्त हुआ। पंजीबद्वों का स्थान तीसरा था, तथा जैवारों का चौथा। कहा जाता है कि राजा हरिसिंह ने उपर्युक्त प्रकार का वर्गीकरण जनक जैसे दार्शनिक नृपति की मिथिला को संचार के समक्ष धार्मिक आचरण में उच्च तथा आदर्श तथा बनाने के विचार से किया था। इस कुलीन प्रथा के नियमानुसार वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने में उच्च और नीच की व्यवस्था की गयी, और एक वर्ग के साथ दूसरे वर्ग के सम्बन्ध के लिए नियम बनाये गये, जिनका पालन कड़ाई के साथ पीछे की शताब्दियों में भी होता रहा।[4]

राजा हरिसिंह देव के विवाह सम्बन्धी नियमों ने ब्राह्मण समाज में एक और नये वर्ग को जन्म दिया। वह वर्ग पंजीकार अथवा घटक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हरिसिंह देव ने नियम बना दिया था कि विवाह सम्बन्ध को अन्तिम रूप देने के पूर्व सम्बन्ध करने वालों को पंजीकारों से इस बात का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना होगा कि वह सम्बन्ध विवाह-निषेध नियमों के अन्तर्गत नहीं आता हैं।[5]

पंजीकारों को मैथिल-परिवारों की विस्तृत वंशावली रखनी पड़ती थी। किस वंश के साथ किस वंश का विवाह नहीं होना चाहिए, इसका निर्णय पंजीकारों को करना पड़ता था। कुछ विद्वानों का मत है कि मैथिलों की वंशावली रखने की प्रथा ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग भी थी, पर राजा हरिसिंह देव ने उसको विस्तृत रूप में वैज्ञानिक पद्धति से पंजीबद्ध करने की आज्ञा सर्वप्रथम अपने शासनकाल में दी थी।

इस प्रकार की पंजी प्रथा के आरम्भ के समबन्ध में एक अनुश्रुति मिथिला में प्रचलित है। कहा जाता है कि किसी मैथिली ब्राह्मण पंडित हरिनाथ उपाध्याय ने भूल से किसी ऐसे कुल की स्त्राी के साथ विवाह किया जिसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना शास्त्राीय नियमानुसार उसके वंश के व्यक्ति के लिए उचित नहीं था।यह भी कहा जाता है कि पं0 हरिनाथ उपाध्याय को बिना छानबीन किये विवाह कर लेने के कारण लज्जा और हार्दिक दुःख हुआ। भविष्य में ऐसी भूल पुनः किसी से न होने पावे इसके लिए उक्त पण्डित ने मैथिल ब्राह्मण एवं कायस्थों की संस्कृत में वंशावली 1313 ई0 में प्रस्तुत की। 'पंजी-प्रबंध' के प्रस्तुत होने के पश्चात् समय-समय

पर उसकी वंशावलीयों में पीछे जाने लगा, जो क्रम न्यूनाधिक रूप से अद्यपर्यन्त चालू हैं। राजा तथा मिथिला में विवाह शास्त्राानुकूल सम्पन्न हो, इसके हेतु अधीक्षण की व्यवस्था शासन की ओर से की गयी। पंजीकारों को किसी प्रस्तावित वैवाहिक सम्बन्ध को जाँच कर उसे शास्त्रानुकूल विहित घोषित करने तथा उसके विषय में प्रमाणपत्र देने का पूर्ण अधिकार दिया गया। उसके बिना उस काल में न कोई सम्बन्ध की वर्ता पक्की हो सकती थी और न विवाह-या ही सम्पन्न किया जा सकता था।[6]

पंजी-प्रबन्धानुसार पुत्राी के विवाह के इच्छुक क्षोत्रिय वंशीय पिता को अधिकार प्राप्त पंजीकार से 'अधिकार माला' प्राप्त करनी पड़ती थी, जिसमें ऐसे व्यक्तियों के नाम उनके पिता और पितामहों के नामों के साथ रहते थे, जिनके साथ कन्या का शास्त्रीय नियमों के अनुसार कोई सम्बन्ध नहीं होता था, तथा उनमें से किसी के साथ सम्बद्ध कन्या का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने में किसी प्रकार की शास्त्राोक बाधा नहीं समझी जाती थी। पश्चात् कन्या का पिता अथवा अभिभावक पंजीकार द्वारा प्रमाणित सूची में से एक अथवा अधिक वरों को पसन्द कर उनमें से एक के साथ विवाह करने की आज्ञा राजा से प्राप्त करने के हेतु अपने द्वारा चुने हुए नामों को शासन के समक्ष रखता था, और उससे विवाह करने का स्वीकृति-पत्र प्राप्त करने के बाद ही विवाह किया जाता था। राजा जाति के प्रश्न में ब्राह्मण-समाज का प्रधान-समझा जाता था। हरिसिंह देव क्षत्रिय था। उसके बाद मिथिला का शासनाधिकार ब्राह्मण-कुल को प्राप्त हुआ, जो निकट अतीत तक बना हुआ था।[7]

क्षोत्रियों के अतिरिक्त योगय, पंजीबद्ध तथा जैवारों के वैवाहिक सम्बनध को अन्तम रूप देने का अधिकार राजा के द्वारा पंजीकारों को प्राप्त था, और उनको आदेश दिया गया था कि वे शास्त्राोक्त नियमों तथा व्यवहारों को ध्यान में रखते हुए विवाह-यज्ञ को सम्पन्न करावें। स्मृतियों में 8 प्रकार के विवाहों का उल्लेख है, जिनमें वैदिक विधि से ब्राह्म-विवाह करने का स्थान सर्वोच्च हैं। वर-पक्ष एवं कन्या पक्ष में सम्बन्ध करने की वार्ता तय पा जाने पर ब्राह्म-विवाह की पद्धति के अनुसार विवाह-कार्य सम्पन्न किया जाता था।[8]

ब्राह्मणों की भाँति मिथिला के कायस्थों में भी कुलीन-प्रथा का प्रचार हो चुका था। उनका भी विभाजन दो दलों में किया गया था। एक को कुलीन अथवा उच्च वंशोद्रव माना जाता था, तथा दूसरे के गृहस्थ अथवा साधारण कुल में उत्पन्न। उन सबों को भी कायस्थ पंजीकारों से विवाह प्रमाण-पत्र प्राप्त कर विवाह करना पड़ता था। इस प्रकार की वंशावली विवाह-कार्य के हेतु केवल ब्राह्मणों तथा कायस्थों के लिए ही आवश्यक नहीं थी, प्रत्यत् क्षत्रिय परिवारों में भी इस प्रथा का प्रचार था।

कुलीन-प्रथा चलाने वालों की इस प्रथा के चलाने की प्रेरणा की जड़ में उच्च भावना थी, इसमें सन्देह नहीं है। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था को स्थिर रखने एवं मानव जीवन को धार्मिक एवं भद्र बनाने के विचार से इस प्रथा का आरम्भ तथा प्रचार और प्रसार किया था, जिसे मनुष्यों को अपने आदर्श कर्त्तव्य द्वारा ऊँचे उठने की प्रेरणा प्रतियोगिता के रूप में ही सही, अन्तरात्मा से प्राप्त हो सके। पर वे बातें हुई नहीं। केवल तथाकथित रक्त की शुद्धता को बनाये रखना, इस प्रथा का अन्ततोगत्वा ध्येय समझा जाने लगा। इसके प्रवर्तकों ने इसका प्रवर्तन समाज-हित की दृष्टि से किया था, पर परिणाम प्रतिकूल हुआ।[9]

जातिवाद में भी वर्गवाद का जन्म हुआ। खान-पान तथा शादी-विवाह में कट्टरता एवं संकीर्णता का समावेश हुआ। इससे समाज में व्यक्तियों का विकास बहुत अंशों में अवरूद्ध हो गया।

वैवाहिक सम्बन्ध में अर्थ-प्राप्ति की भावना का जन्म इस प्रकार के जाति-उपविभाग ने दिया। उच्च कुल की कन्या के लिए साधारण कुल के वर से पर्याप्त रूपये की माँग हाने लगी, और उसी तरह उच्च कुल के वर के साथ साधारण कुल की कन्या का विवाह करने के लिए कन्या-पक्ष से रूपये लेने की वर-पक्ष की ओर से माँग होने लगी। इस प्रकार विवाह-संस्कासर संस्कार न रहकर व्यापार बन गया। शास्त्राों की आज्ञा केवल सगोत्रा, सपिंड तथा गोतिया में वैवाहिक सम्बन्ध नहीं करने की थी। पर कुलीन-प्रथा के प्रसार ने इनके अतिरिक्त और अनेक बाधाएँ उपस्थित कर दी।[10]

घटकों और पंजीकारों की विवाह-वार्ता को अन्तिम रूप देने में प्रधानता तो थी ही। पीछे वैवाहिक सम्बन्ध तय करने की एक नयी विधि और रति निकल पड़ी। उसको सभा गाछी-विवाह लोग कहने लगे। सभा गाछी मधुबनी नगर से थोड़ी दूर पर सौराठ नामक ग्राम में हैं, जहाँ सम्पूर्ण मिथिला के प्रत्येक भाग से बहुसंख्यक विवाहेच्छुक व्यक्ति तथा उनके सहयोगीगण निर्धारित तिथियों की अवधि में एकत्रा होकर विवाह-वार्ता तय करते हैं। सभा गाछी में जाकर विवाह सम्बन्धी वार्ता करने की प्रथा आज भी प्रचलित हैं।

सभागाछी में घटक प्रायः वैवाहिक सम्बन्ध ठीक करते थे। उनकी समाज में प्रतिष्ठा थी। वे सत्यनिष्ठ होते उथे। पर शनैः-शनैः उनमें भी अनैतिकता का प्रवेश हुआ। उनका काम दलाल का हो गया। पारिश्रमिक (दलाली) प्राप्त कर वर-कन्या की समानता तथा उनके भावी दाम्पत्य-जीवन पर बिना विचार किये अर्थ-लाभ के लोभ से वे अनमेल विवाह भी तय कराने लगे, जिसका परिणाम

समाज-कल्याण के विरूद्ध एवं दु:सह तथा दु:ख हुआ। प्राचीन मिथिला के पवित्रा नाम एवं बिमल यश में इससे कलंक-कालिमा पुत गयी। घटक व्यवसायी बन गये। पंजीकर भी वंश-परंपरागत होने लग गये। प्राचीन काल में पंजीकार अध्ययनशील एवं बहुमुखी विद्या के ज्ञात होते थे। पर पीछे चलकर उनके वंशज विद्या तथा योग्यता के अभाव में भी पंजीकार वंश में उत्पन्न होने के कारण-पद पर प्रतिष्ठित होने लगें।[11]

स्त्रियों का स्थान समाज में अति निम्न माना जाने लगा था। समाज में स्त्री-जाति के लिए आदर रह नहीं गया था। नारी वर्ग को शुद्रों की कोटि का समझा जाता था। उन्हें केवल दन्द्रिय-तृप्ति का साधन माना जाता था। ज्योतिरीश्वर ने अपने 'वर्ण-रत्नाकर' में स्त्री-जाति के गुण एवं अवगुण दोनों का उल्लेख किया हैं अवश्य, पर उनके दोषों के प्रति उसकी दृष्टि तीक्षण रही है। उसने लिखा है कि 'स्त्रीक चरित्रा अइसन् दुर्लक्ष्य'। आगे चलकर वह लिखता है कि 'स्त्रीक चरित्रा अइसन दारूण'। उसने नारियों को निर्ल्लज्ज, आचार-हीन, निर्गति, निराश्रय आदि बताया है। उसके प्रेम और विनय के विषय में उसने अंकित किया हैं, यथा-'घनार्थेप्रेम', 'लोभर्थे विनय' आदि। विद्वान् लेखक के विचार में जितने दोष, जितनी चरित्रा-हीनता संसार में हैं, वह सब नारियों में पायी जाती थी। पुरुषवर्ग का चरित्रा तपाये हुए सोने के समान विशुद्ध एवं निर्मल उसके मतानुसार था।[12]

वेश्यावृति की स्थापना समाज में हो चुकी थी। पुरुषों से ही तो उसको प्रश्रय मिलता था। किन्तु चरित्राहीनता एवं निर्लज्जता का दोषारोपण ज्योतिरीश्वर ने अबला जाति पर ही किया हैं, सबल पुरुषवर्ग पर नहीं। उसने उसके विषय में लिखा है ''वेश्या आइसन परअनु-ग्राहक'' आदि। समाज में वेश्याओं का स्थान निकृष्टतम था। अपनी वृति के कारण वह घृणा की पात्री थी। उसकी गिरी हुई आर्थिक अवस्था के प्रति किसी की सहानुभूति न थी, जिसके कारण समाज में अपमानित होकर भी उस वर्ग की नीचतम वृति अपनानी पड़ती थी। कहा है-'बुभक्षित: किं न करोति पामम्'। स्त्रियों के चरित्रा को तमसपूर्ण बताया जाता था।[13]

मध्य-युग में उच्च परिवार की स्त्रियों के सती होने की चर्चा साहित्य में पायी जाती हैं। ओइनवार कुल के राजा भवसिंह की दो रानियाँ थी। राजा शिवसिंह देव की संदिग्ध मृतयु के विषय में विश्वस्त होने पर उसकी पटरानी लखिमा भी 'सती' हुई थी। बादशाह अकबर ने कानून बनाकर इस पर प्रतिबन्ध लगाया था।

वैश्यों तथा निम्नकोटि के लोगों का जीविका-व्यवस्था कृषि था। प्रागैतिहासिक युग से उस काल तक कृषि-कार्य प्राचीन पद्धति के हल के द्वारा बैलों के योग से होता था। कृषि-भूमि विशेषता परती परी रहती थी। कृषि करने के योग्य भूमि की अपेक्षा जंगली भूमि अधिक थी। सिंचाई के माध्यम से खेती कठिनाई के साथ की जाती थी। मिथिला के प्रत्येक गृह के प्रांगण में कंदली-कुंज रहता था। पर्यटकों के लेखों से पता चलता है कि मिथिला का प्रधान भोजन मध्य-युग चावल, दूध में पकायी हुई खीर, चूड़ा आदि था। कूप, वांपी, तड़ाग, पुष्करिणी तथा नदियों की भरमार थी। जन साधारण में संस्कृत विद्या का प्रचार था। मिथिला नगर धन-धान्य से सम्पन्न था। उसको 'यगयी' भी कहा जाता था। कृषक पूर्णतया उद्यमी और परिश्रमी नहीं थे। वाणिज्य, और व्यवस्था मिथिला का अन्य राज्यों के साथ होता था अथवा नहीं, इसका उल्लेख साहित्य में प्राप्य नहीं हैं।[14]

ज्योतिरीश्वर ने 'वर्णरत्नाकर' की रचना लगभग 1324 इ0 में की थी। वह ग्रन्थ सात अध्यायों में विभक्त है, यथा (1) नागर-वर्णन, (2) नायक-वर्णन, (3) स्थान-वर्णन, (4) ऋतु-वर्णन, (5) प्रयाक-वर्णन, (6) भट्टादि-वर्णन, तथा (7) कला-वर्णन। इस ग्रन्थों के अवलोकन से पता चलता है कि मैथिल-समाज की स्थिति जैसी 11वीं, 12वीं, 13वीं शताब्दी में थी, आज भी थोड़ा बहुत अन्तर के साथ वैसी ही बनी हुई है। उस ग्रन्थ में लगभग सारे उत्तर भारत की तात्कालिक राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति का वर्णन किया गया है, पर मिथिला का विशेष रूप से (क्योंकि वह वहाँ का निवासी था।[15]

डा0 एस0 के0 चटर्जी की राय में ज्योतिरीश्वर की मिथिला में शान्ति और सुख था। शान्ति का पता तो इतिहास देता है, पर सुख-समृद्धि की चर्चा 'वर्णरत्नाकर' में नहीं है। वहाँ, अन्यन्त्रा मिथिला नगर को धन-धान्य-सम्पन्न बताया गया है, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका हैं। ज्योतिरीश्वर के काल के समाज जिस प्रकार का था, वह तद्रुत आज भी मिथिला में विद्यमान हैं।[16]

ज्योतिरीश्वर का वर्णन विशेषकर नगर-वासियों के विषय में हैं। ग्रामीण-जीवन का पर्यवेक्षपण सम्भवत: उसने उतने गहरे आकार में नहीं किया था, जितने जीवन का। उसने द्यूतालय का नाम अंकन किया है। उसके साथ अन्य अनेक वस्तुओं के नाम भी उसने गिनायें है। परन्तु ग्रम्य-जीवन के वर्णन का पता उसके ग्रन्थ 'वर्णरत्नाकर' से नहीं चलता हैं। अपने 'धूर्त-समागम' में उसने एक उन्नतिशील कृषक के भवन का किंचित् वर्णन किया है, पर उससे गाँवों की रहन-सहन, रीति-रिवाज पर प्रकाश नहीं पड़ता हैं। उसने उसके सम्बन्ध में लिखा है, यथा-

''भअवं, पेक्ख पेक्ख,

विहिद-भअबज्जण-मुण्ड-सरिच्छ-हुअर-महिसि-स्वम्भ-सीहन्त-चउस्सांल इदो तदो सञ्चरन्त-बाल-गोवच्छ-साहिदं पीणुतुंगत्थण-लसपरिक्वलन्त- मन्दसञ्च रमणिञ्च - वासपरिसर - सञ्चरन्त - चेडियासमूहं कस्सवि महााधसास्स वासभंअणं विलोइ'' आदि (प्रथम दृश्यत्र्।

विद्यापति ने अपने वर्णनों में मिथिला के तत्कालीन समाज का चित्राण स्पष्ट शब्दों में किया है। उन्होंने 'कीर्तिलता' में निम्नांकित छंद लिखा है :-

''ठाकुर ठक भए गेल चोरे चपुरि घर लिज्झिअ
छासे गोसाञ निगाहिअ, धम्म गए धन्ध निमज्जिअ
खल सज्जन परिभविञ कोई नहीं होइ विचारक
जति अजाति विवाह अधम उत्तम कां पारक
अख्खर-रस निहारि नहिं कइकुल भमि भिख्खारि भँउ
तिरहुति तिरोहित सव्व गुणों राह गएनेस जवे सग्ग गँउ''।।[17]

कवि ने उपर्युक्त पद का आशय है कि राजा गणेशराय (गणेश्वर अथवा गुणेश्वर) की मृत्यपरान्त राज्य के सभी माण्डलिक ठाकुर ठग बन गये। चोरों को चोरी करने की छुट मिल गयी। धर्म पाप में प्लावित हो गया। कार्य-कलाप रूक गये, जोर-जुल्म का साम्राज्य हुआ। सद्-असद् की विवेचना लुप्त हो गयी। भले-बुरे में अन्तर करने वाला कोई रह नहीं गया। उच्च कुलोद्भव पुरुष दरिद्र होकर भिक्षुक बन गये। विदुष विलीन हो गये। तिरहुत के सभी सूक्ष्म और सुन्दर गुण तिरोहित हो गये, आदि-आदि। उपर्युक्त वर्णन से पता चलता है कि तिरहुत में उस समय चिरकाल तक अराजकता, अनुशासन-हीनता तथा अनैतिकता का साम्राज्य फैला हुआ था, जिसके लिए देश-भक्त कवि को हार्दिक दु:ख था।

विद्यापति के ऊपर के वर्णन से स्पष्टत: पता चलता है कि उसके काल में मिथिला के निवासी हिन्दुओं की दशा अति शोचनीय थी। उसके जौनपुर नगर के वर्णन से बात और भी साफ हो जाती हैं उस नगर में हिन्दु और मुसलमान, दोनों का ही निवास था। दोनों धर्मों के अनुयायियों में सद्भावना न थी एक धर्म के मानने वालो दूसरे के धर्म को निन्दा किया करते थे। हिन्दू दास-दासियों, धनुष-बाण आदि के विक्रय के हेतु वहाँ बाजार थे। रूपये के विनिमय करने वाले वहाँ रहते थे। वे अनेकानेक दासों को क्रय करते थे। जब एक मुसलमान की भेंट दूसरे मुसलमान से होती थी तो उनके बीच सलाम-बंदगी पुन:पुन: होती थी।[18] बलपूर्वक बेगारी कराने की प्रथा प्रचलित थी। सम्पन्न एवं शक्तिशाली तुर्क (मुसलमान) जब कहीं की यात्राा करता था तब वह मनुष्यों के बिना पारिश्रमिक दिये सेवा करने के हेतु बाध्य करता था। वे ब्राह्मण के लड़कों को पकड़कर उनके माथे पर गोमांस रखते थे। वे उन लड़कों के मस्तक पर से जाति-चिह्न चन्दन आदि मिटा देते थे और उनके यज्ञोपवीत तोड़ डालते थे। इसके पश्चात् उन्हें घोड़े पर चढ़ने के लिए कहते थे। वे देव-मन्दिरों को ध्वंस कर उनके स्थान में मसजिदों का निम्प्रण करते थे। साधारण मुसलमान भी जहाँ-कहीं हिन्दुओं को पाता था, वहाँ उन्हें पीटता था। ऐसा मालूम पड़ता था कि मानों वे हिन्दुओं की दयनीय दशा का वर्णन कर तत्कालीन मिथिला के समाज का जीता-जागता चित्राण पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। उसने ऐसी विषम स्थिति का वर्णन अपने निम्नांकित पदों में किया है :-

''धरि आनय बाँभन बटुआ माथा चढ़ावए गाइक चूडुआ
फोट चाट जनऊं तोड़ अमर चढ़ावए चाह घोर
हिंदू बोलि दूरहि निकार छोटे ओ तुरका भभकी मार
हिन्दूहि गोट्ओं गिलिए हल तुरूक देखि होउ भान''।।[19]

मिथिला के निवासी ब्राह्मण का वर्गाश्रम धर्म में विश्वास अत्यधिक था। वे देवी देवताओं की भक्तिपूर्वक पूजा कर उनका अनुग्रह प्राप्त करने में भी विश्वास रखते थे। उनके आराध्य थे-शिव, शक्ति तथा विष्णु। तीनों में ही उनकी समान श्रद्धा थी, और तीनों को ही अलौकिक वरदान देने वाले तथा मनोरथ पूर्ण करने वाले मानते थे। मैथिलों के ललाट पर चन्दन के तीन चिन्ह आज भी देखने को मिलते है। उनके मस्तक पर बनी भस्म की तीन आड़ी रेखाओं का त्रिपुंड शिव-भक्ति का, स्वच्छ मलयागिरि-उद्भूत चन्दन

की खड़ी रेख विष्णु-भक्ति का, तथा मध्य में रक्त चन्दन अथवा सिन्दूर का विन्दु शक्ति-उपासना का पृथक-पृथक् प्रतीक माना जाता हैं।

मिथिला में शिव-भक्ति का प्रचार विशेषतया पाया था। खासकर ब्राह्मणों में। शिव-मन्दिर प्रायः मिथिला में सर्वत्रा पाया जाता हैं। प्रत्येक महीने कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी, और कहीं-कहीं कृष्ण और शुक्ल-पक्ष दोनों की चतुर्दशियों के दिन उपवास, विशेष, अवसर पर लाखाउरी पार्थिव पूजा, तथा मिथिला के कवियों-विद्यापति, चन्द्र झा आदि रचित नचारी, महेश-बानी आदि शिव-भक्तिपूर्ण कविताओं का प्रचार-प्रसार प्रत्यक्षतः इसका द्योतक है कि भगवान आशुतोष शिव का स्थान मिथिला-निवासीयों के मानस में अति उच्च था। वे शिव और विष्णु में अन्तर नहीं मानते थे। वे दो रूप में एक ही परमात्मा की पूजा करते थे। विद्यापति ने अपने एक पद में कहा भी हैं :-

भल हरि, भल हर, भल तुअ कला।
खन पितवसन खनहिं वघछला।।
खन पंचानन खन भुज चारि।
खन शंकर खन देव मुरारि।।
खन गोकुल भए चराइअ गाय।
खन भिख माँगिए डमरू बजाय।।
खन गोविन्द भए लिय महादान।
खनहि भसम भरू काँख वो काना।
एक सरीर लेल दुई वास।
खन बैकुंड खनहि कैलास।।
भनई विद्यापति विपरीद वानि।
ओ नारायण ओ सूलपानि।।[20]

मिथिला तथा उसके आस-पास के ग्रामों एवं नगरों में शिव के अति प्राचीन मन्दिरों का अस्तित्व भी शिव-पूजा के प्रचार का द्योतक हैं। दरभंगा जिले के हसनपुर रेलवे-स्टेशन के निकट का कुशेश्वर स्थान, चम्पारण जिले के गोविन्द गंज थाने के अरेराज (अरराय राज) का सोमेश्वर महोदय मन्दिर, मुजफ्फरपुर के बाबा गरीब नाथ का मन्दिर, शिवहर के निकट का दुकुली शिवदेवल, लहेरियासराय के निकट देकुली का वर्द्धमनेश्वर शिव मन्दिर, भागलपुर जिले के कहल गाँव रेलवे-स्टेशन के निकट का बटेश्वर स्थान आदि अति प्राचीन शिव-मन्दिर हैं, जहाँ आज भी मिथिला की जनता दूर-दूर से आकर श्रद्धा एवं भक्ति के साथ शिव-पूजन करती है। मिथिला के निवासी बसंत पंचमी, शिवरात्रि, सोमवती अमावस्या आदि के अवसर पर चिरकाल से कंधे पर गंगाजल लेकर हजारों की संख्या में बैद्यनाथ धाम, कुशेश्वर स्थान, अरेराज के सोमेश्वर नाथ तथा मुजफ्फरपुर के बाबा गरीब नाथ के मस्तक पर गंगाजल अर्पण करने के हेतु भक्तिभाव से जाते देखे जाते हैं। यह क्रम अति प्राचीन काल से चालू हैं।[21]

शक्ति की पूजा भी मिथिला में शिव-पूजन के समान ही प्रचलित थी। लोगों का विश्वास था और है भी कि पूजा से सिद्धि प्राप्त होती है, और शंकर भगवान मुक्ति के दाता हैं। देवादित्य, उपाध्याय, तथा अनेक तान्त्रिाक साधु शक्ति के उपासक हो गये है।[22]

विशेष अवसरों पर, चुड़ाकरण, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों के पूर्व सम्पूर्ण मिथिला में मातृका पूजा करने की परिपाटी हैं। नवरात्रा के समय आश्विन शुक्ल, प्रतिपदा से नवमी तक लोग नवदुर्गा का व्रत घटस्थापन कर नियमित रूप से मिथिला में करते हैं। स्थान-स्थान पर माता दुर्गा की मृतिका की भव्य मूर्तियाँ प्रस्तुत कर बड़े समारोह के साथ प्रतिवर्ष मिथिला-निवासी पूजा करते हैं। दूर्गा-सप्तशती के पाठ क्रम भी मिथिला में अति प्राचीन काल से चला आ रहा है।

शालिग्रामों (विष्णु भगवान की एक प्रकार की स्वयंभू प्रस्तर-मूर्ति) के उद्रव-स्थान शालिग्रामी (नारायणी, सदानीरा, गण्डक) नदी के प्रति मिथिला के वासियों की श्रद्धा, राम-नवमी, कृष्णाष्टमी आदि वैष्णव-उत्सवों को समारोह के साथ मनाया तथा उपवास करना, श्रीमद्भागवत, हरिवंश, ब्रह्मावैवर्त एवं विष्णु पुराणों का मिथिला में प्रचार आदि से यह प्रमाणित होता है कि मैथिलों में ऊपर वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव कम न था।[23]

शैव, शाक्त, वैष्णव तथा सूर्योपासक के अतिरिक्त एक तपसी सम्प्रदाय के नाम का उल्लेख भी यत्रा-तत्रा मिलता है। उनको मन्द जाति का कहा गया है। सम्भवत: उन सबों का जीवन-निर्वाह मधुकरी (गृहस्थों के घर से पके अन्न की भिक्षा) द्वारा होता था। उस सम्प्रदाय के मूल में त्याग तथा विराम की उच्च भावना काम करती थी। कुछ विद्वानों के मतानुसार उनके भिक्षाटन की जडत्र में उनकी भौतिक दरिद्रता थी।

ब्राह्मणों और बौद्धों में विशेष था। ब्राह्मण वर्ग मुसलमानों से भी बड़ा शत्रु बौद्धों को मानता था। ऐसी स्थिति मुसलमानों द्वारा नालन्दा विश्वविद्यालय के निवास के पश्चात् तक नबी रही। ज्योतिरीश्वर ने बोद्धों को पतित एवं भयानक बताया है। यथा-''बौद्ध पक्ष अइसन अपात भीषण, उदयनक सिद्धानत अइसन प्रसन्न''। कतिपय विद्वानों ने द्रोणवार राजा पुरादित्य गिरिनारायण द्वारा नेपाल की तरीई के सप्तरी-क्षेत्रा के राजा अज्रुन के वद्य का कारण उसका बौद्धों के राजा होने के नाते बौद्धों की ओर से ब्राह्मण राजा पुरादित्य के विरूद्ध युद्ध छोड़ना था। विद्यापति के ग्रंथ 'खिनावलि' के श्लोकांश ''संग्रामे*र्जुनभूतपतिर्विनिहतो बंधा। नृशंसायित:' का 'बौद्धो नृशंसायित:' पाठ मानकर ब्राह्मणों द्वारा बौद्धो तथा उसके राजा अर्जुन के हनन करने की कथा का प्रचार किया गया। इस विषय की विवेचना राजा शिवसिंह देव के वृतान्त लिखने तथा द्रोणावार-कुल के वर्णन के संदर्भ में की जा चुकी हैं।[24]

मुसलमान विजेताओं के साथ इस्लाम धर्म का प्रवेश भारत के और भागों के समान ब्राह्मणों के जनपद मिथिला में भी हुआ। सदियों तक साथ रहने के कारण दोनों संस्कृतियों में मेल के लक्षण दीख पड़ने लगे। मुसलमानों के संसर्ग से फारसी एवं अरबी शब्दों को बाहुल्य मैथिलों की बोलचाल, कथनोपथन की भाषा में हुआ। मुसलमानों के धार्मिक समारोह तजिया अथवा 'दाहा' में मिथिला के हिन्दुओं ने भी श्रद्धापूर्वक भाग लेना आरम्भ किया। अकबर द्वारा चलित फसली सम्वत् का प्रचार मिथिला में होना आरम्भ हुआ। संगीत शास्त्रा में लोचन (राग-तरंगिणी के प्रणेता) जैस प्रसिद्ध मैथिल संगीताचार्यो ने इमाम और फिरसी रागों को भारतीय प्राचीन प्रचलित रागों के साथ स्थान दिया। मुसलमानों ने भी हिन्दुओं के पर्व-त्योहारों को आदर की दृष्टि से देखना और उसमें भाग लेना आरमभ किया। अनेक मुसलमान सन्तों ने हिन्दू सन्तों के समान ही राम-कृष्ण के भक्ति-पूर्ण भजन गाना आरम्भ किया। ऐसे संतों में रसखान, कबीर, रहिमन आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। मुसलमान शासन-युग के न्यायाधीशगण मिथिला में हिन्दुओं के विवादों का निर्णय 18वीं शती तक प्राचीन हिन्दू-पद्धति के अनुसार करते रहे।[25]

तिब्बती पर्यटक धर्मस्वामिन् ने मिथिला (तिरहुत) की यात्राा 1234 ई0 में प्रथम बार की थी। गृह प्रत्यागमन काल में 1236 ई0 में भी वह तिरहुत होकर ही लौटा था। उस समय उसने वहाँ के राजा रामसिंह देव द्वारा आमंत्रित होकर उससे भेंट भी की थी। उक्त तिब्बती यात्राी के शिष्य उपासक चोस-दर ने उसके मुख से ही उसकी जीवन-घटनाओं को सुनकर तिब्बती भाषा में उसकी संक्षिप्त जीवनी तथा यात्राा-वृतान्त प्रस्तुत किया था, जिसका अंग्रेजी भाषा में एक रूसी विद्वान् से अनुवाद करवा कर बिहार राज्य के पटना के के0पी0 जायसवाल अनुसंधान संस्थान' ने पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाया है। उस पुस्तक से उस युग की मिथिला की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक स्थिति पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है। उपर्युक्त तिब्बत निवासी तीर्थार्थी यात्राी अपने कतिपय सहचरों के साथ तीर्थाटन के क्रम में नेपाल होता हुआ वज्त्राासन (बोधगया) में तिरहुत के साथ तीर्थाटन के क्रम में नेपाल होता हुआ वज्त्राासन (बोधगया) में तिरहुत के 13वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध 1234 ई0 में तिरहुत पहुँचा। उसके यात्राा-वृतान्त में तिरहुत के एक प्रधान नगर 'प-ट' अथवा 'पठला' का उल्लेख है। उसके वर्णन से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वह नगर कर्णाट क्षत्रिय राजाओं का राज-नगर सिमराओंगढ़ था, जिसकी जनसंख्या एवं विस्तार विषयक सुनकर उसके शिष्य द्वारा प्रस्तुत की गयी थी। अत: निश्चित संख्या के सम्बन्ध में कंचित भूल लेखक के द्वारा होना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता है। पर अन्य वर्णन यथावत् होंगे, इसमें संदेह का स्थान नहीं हो सकता है।[26]

धर्मस्वामिन् के उल्लेखानुसार वह विशाल नगर सात उच्च एवं सुदृढ़ प्रकारों से परिवेष्टित था, जिसके अंदर 600,000 भवन विद्यमान थे। प्राचीरों की ऊंचाई के विषय में वह बताता है कि वह तिब्बत के दुर्गो की ऊंचाई से टक्कर लेती थी। शहर से पृथक् राजा रामसिहं देव का राज-प्रसाद था, जिसमें 11 बड़े-बड़े प्रवेश-द्वार थे, तथा 21 गहरी एवं आगम जल से परिपूर्ण खाइयों से राजमहल घिरा था। खाइयों के बीच-बीच विशाल वृक्षों की पंक्तियाँ खड़ी थी। पूरब, पश्चिम एवं दक्षिण में तीन-तीन द्वार थे, किन्तु औरों का आँखों देखा वर्णन उसने किया है। उसने उत्तर के दो द्वारों को छोड़कर शेष 1 द्वारों के सामने की खाइयों में आवागमन हेतु बने सेतुओं को देखा था। खाइयाँ चौड़ी थी। अत: उनके प्रत्येक पुल में लगभग 10 से अधिक पानी निकलने के मार्ग बने थे। सेतुओं के सम्मुख प्रहरी सैनिकों की टोलियाँ सदैव सतर्क एवं सन्नद्ध खड़ी रहती थी। सुरक्षा के हेतु इस प्रकार की सतर्कता एवं सुव्यस्थथा तुर्को (मुसलमानों) के आशंकित आक्रमणों से बचाव के विचार से की गयी थी। प्रहरी सैनिकों की संख्या में भी वृद्धि

की गयी थी। तुर्कों के आक्रमण का आतंक उस काल सतत बना रहता था। धर्मस्वामिन् का उपर्युक्त वर्णन उस काल का है जो पहले-पहल नेपाल से सीधे तिरहुत पहुँचा था। उसके कथनानुसार मुसलमानों का आक्रमण राजा रामसिंह की राजधानी सिमराओंगढ़ के सिरूद्ध अति सन्निकट अतीत में हुआ था, पर राज-नगर तक पहुँचने और उसमें प्रवेश करने में वे सब विफल रहते थे। उस तिब्बती संत का यह भी कथन है कि राजा रामसिंह देव के दुर्ग-द्वार पर असि-संचालन-कला-प्रवीण तीन सैनिक सतत सतर्क रहते थे। राजा की सवारी हथिनी पर निकलती थी।[27]

इतिहास लेखक वर्णी ने 'तारीख ए फिरोज शाही'- के आधार पर लिखा है कि जब सुलतान गयासुद्दीन मिथिला (तिरहुत) पहुंचा तो उसने वहाँ लखनावती के शासक सुलतान नसीर-उद-दीन को बुलाया। वह वहाँ आया था देश के सभी रईयों एवं राजाओं ने बादशाह की अधीनता नत होकर स्वीकार की।[28]

चण्डेश्वर ठाकुर के ग्रंथ 'दान रत्नाकर' में हरिसिंह देव का नाम आया है। उसमें उसे 'म्लेच्छ रूप-उर्म्मियों से उत्प्लावित धरा का उद्धारकर्ता' बताया गया है, यथा 'मग्नाम्लेच्छमहाणवे येनाधृता लीलया'। हरिसिंह देव ने किसी मुसलमान भूप को पराजित किया था। इस तथ्य का पृष्ठ पोषण नेपाल दरबार पुस्तकालय के कैटलॉग नं0 1536 पृ0 66, से भी होता है, जिसमें अंकित किया गया है, यथा 'नानायोधनिरूद्धनिज्जित सुरत्राणात्रा सद्वाहिनी। नृत्यद् भीम कबन्धमेल कदलद्भूमिभ्रमद्दधर। अस्ति श्री हरिसिंह देव नृपति-।' इस उद्धरण के अनुसार कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर प्रणीत 'धूर्त' समागम नायक द्वायांकी नाटक, जो कर्णाट चुड़ामणी महाराज हरिसिंह देव के नेपाल दरबार में अभिनीत हुआ था, में उसे 'सुरत्राण-जित' (सुलतान को जितने वाला) कहा गया है। यह प्रहसन गयासुद्दीन और हरिसिंह देव के 13324 वाले मिथिला में हुए युद्ध के पश्चात् लिखा गया था, जिसमें उक्त भयंकर समर का लोमहर्षण चित्राण किया गया है।

संदर्भ -सूची

1. प्रियर्सन: लिंगविस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, वॉल्यूम 5, पार्ट-2, पृ0-4
2. गृहस्थ रत्नाकर, आर0एल0 मिश्र: नोटिसेज ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स 5 नं0 1929, 1779, 1830, 1934, 1937, आदि, 2 नं0 1251
3. जे0के0 मिश्र: हिस्ट्र ऑफ मैथिली लिटरेचर, 1, 28, 78; एन0एन0 वसु: सोशल हिस्ट्री ऑफ कामरूप 2, पृ0 168
4. वह
5. जे0के0 मिश्र : ऑफ मैथिली लिटरेचर, 1, 27, 74
6. जनरल ऑफ दि बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी 3, 516; पटना युनिवर्सिटी जरनल, 1, 2, 11; जे0के0 हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर, 1, 27, 39
7. जनरल ऑफ दि बिहार ऐण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी 3, 516
8. वही
9. जनरल ऑफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी-3, 516
10. वही
11. जे0के0 मिश्र: हिस्ट्री ऑफ दि मिथिला लिटरेचर, 1, 30, 78; आर0एस0 दास : मिथिला दर्पण, 2, पृ0 16
12. जे0के0 मिश्र: हिस्ट्र ऑफ मैथिली लिटरेचर, 1, 30, 32
13. जनरल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी, 37, पार्ट-1-2, पृ0- 121
14. वही
15. वही
16. वर्णरत्नाकर, 17
17. वर्णरत्नाकर, 54
18. वर्णरत्नाकर, 26-27
19. वर्णरत्नाकर, पृ0 66; जनरल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी, 37, 1, 2, पृ0 121-23; 36, 3, 4, पृ0 183-91
20. गियर्सन : लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, 5, 2, पृ0 4; जरनल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी, 3, 47, 48

21. 14वीं विक्रम सम्वत् के जेन प्रभु सूरि कृत 'कल्प प्रदीप'; 'जैन विविध तीर्थकल्प' का मिथिला तीर्थकल्प भाग'; जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, 27, 295-96
22. जरनल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी 37, 3-4, पृ0 14-25
23. वही
24. वही, पृ0 35
25. जे0के0 मिश्रः हिस्ट्री ऑफ मिथिला लिटरेचर, 1, 121; वर्णरत्नाकर, विषय-प्रवेश 10
26. इण्डियन ऐन्टीक्वेरो, 1880, पृ0 189, पं0 19, श्लोक-10
27. सिलभ्यां लेवीः ली नेपाल, वॉल्यूम-2, पृ0-226; एच0सी0 रायः डाइनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्दर्न इण्डिया, 1, 221
28. परसीवल लैण्डनः नेपाल, वॉल्यूम-1, पृ0-37-31

गरीबी उन्मूलन के लिए कार्य-योजनाः एक अध्ययन

राकेश कुमार

शोध-छात्र, अर्थशास्त्र विभाग,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय,मुजफ्फरपुर।

ग्रामीण विकास एवं ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार करने की कार्यनीति पहले-पहल 1970 के दशक में अपनाइ गई थी। पांचवीं योजना के साथ ही गरीबी उन्मूलन देश के आपर्थिक नियोजन के एक प्रमुख उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। इस दौरान ग्रामीण गरीबों के लिए कई विशेष कार्यक्रम चलाए गए जिनमें से प्रमुख थेः लघु किसान विकास एजेंसी, सीमांत किसान एवं कृषि श्रमिक विकास एजेंसी, सूखा-पीड़ित क्षेत्रों के लिए कार्यक्रम, ग्रामीण रोजगार क्रैश योजना, सघन पायलट ग्रामीण विकास परियोजना तथा काम के बदले अनाज कार्यक्रम। परंतु इनमें से कोई भी कार्यक्रम पूरे देश को व्यापक रूप से कवर नहीं कर सका और उनमें से कुछ प्रादेशिक अतिव्याप्ति के शिकार हुए। इन कार्यक्रमों की मुख्य सीमा यह थी कि उन्हें केवल अनुदान देने वाले कार्यक्रमों में बदल दिया गया। ग्रामीण गरीबों को उच्च स्तरीय आय हासिल करने में सक्षम बनाने की दृष्टि से उनमें किसी नियोजित तरीके का सर्वथा अभाव था।[1]

समग्र विकास की एक योजना के रूप में आईआरडीपी अर्थात् समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की शुरुआत आरंभिक तौर पर 1978-79 में 2300 विकास प्रखंडों में की गई थी। छठी पंचवर्षीय योजना में, आईआरडीपी का विस्तार पूरे देश में कर दिया गया। लगभग उसी समय छठी योजना के हिस्से के रूप में ही एनआरईपी यानी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम का भी सूत्रपात हुआ। इसका लक्ष्य जनसंख्या के उस हिस्से को मदद पहुंचाना था जो ज्यादातर मजदूरी-आश्रित रोजगार पर निर्भर थे तथा कृषि की मंदी की अवस्था में जिनके पास आय का कोई समुचित स्रोत नहीं था। 15 अगस्त 1983 में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम शुरू किया गया जिसका लक्ष्य था ग्रामीण भूमिहीनों को रोजगार का अवसर प्रदान करना। मगर इन मजदूरी-आश्रित रोजगार कार्यक्रमों को ज्यादा प्रभावी बनाने के लिए, 1 अप्रैल 1989 से एनआरईपी और आएलईजीपी को एक ही ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम में मिला दिया गया और इसे 'जवाहर रोजगार योजना' का नाम दे दिया गया। इसकी बुनियादी कार्यनीति यह थी कि इन परिसंपत्तियों की मदद से इन गरीबों को स्व-रोजगार पाने में सहायता दी जाए ताकि वे गरीबी-रेखा से ऊपर उठने योग्य उपार्जन कर सकें। कार्यकुशलता विकसित करने के लिए, स्व-रोजगार हेतु युवकों का प्रशिक्षण नामक कार्यक्रम चलाया गया। दूसरी ओर आईआरडीपी की भी पुनःसंरचना की गई और इसे नया नाम दे दिया गया 'स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना'। इसके अलावा, प्रशिक्षण सहित कई संयुक्त प्रोग्राम भी इसमें शामिल किये गये हैं। सितम्बर 2001 में संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में मिलाए जाने से पहले रोजगार आश्वासन योजना के तहत रोजगार पाने के इच्छुक गरीब ग्रामीणों को 100 दिनों का अकुशल मैन्युअल कार्यदिवस दिया गया था।

गरीबी उन्मूलन के ये कार्यक्रम अनेक एवं विशिष्ट खामियों के शिकार हुए जिनके बारे में संदीप बागची की राय यह है कि वे खामियां मुख्यतः ''वातावरण की जटिलता का ध्यान न रख पाने, एक कार्यशील लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित करने और उसके आधार पर उपयुक्त तथा स्थायित्वपूर्ण कार्यनीति बनाने के बजाय अनेक एवं परस्पर-विरोधी लक्ष्यों के होने'' के कारण रही है।[2]

वर्तमान में, ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में रोजगार सृजन के लिए विशेष कार्यक्रमों को लागू किया जा रहा है। गरीब ग्रामीणों के लिए नियोजित कार्यक्रमों में शामिल हैं स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना तथा संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना। शहरी गरीब लोगों

की भलाई के लिए, नेहरू रोजगार योजना की शुरुआत अक्टूबर 1989 में की गई थी। 1997-98 में इसे स्वर्णजयंती शहरी रोजगार योजना में मिला दिया गया। संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना सितम्बर 2001 में शुरू की गई। बाद में जवाहर ग्राम समृद्धि योजना और रोजगार आश्वासन योजना को भी इसमें मिला दिया गया। संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी-आधारित रोजगार देना है और साथ ही खाद्य सुरक्षा भी। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना का सूत्रपात फरवरी 2006 में किया गया। इस योजना का उद्देश्य योजना के अंतर्गत आने वाले ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले प्रत्येक घर को तथा जिसके वयस्क सदस्य जो अकुशल श्रम करने के लिए स्वेच्छा से आगे आते हैं उन्हें एक वित्त वर्ष में गारंटी के साथ कम से कम 100 दिनों का रोजगार मुहैया कराना है।

गरीबी उन्मूलन संबंधी कार्यनीतियों में गरीबी की प्रकृति के बारे में सही समझ का अभाव प्रतीत होता है। इसके निम्नांकित कारण हैं[3]:

1. 'गरीब' की अवैज्ञानिक परिभाषा-इस कारण से गैर-गरीब लोग भी इन कार्यक्रमों का लाभ लेने की होड़ में शामिल हो गए;
2. वृहत स्तर पर तैयार किये गये कार्यक्रमों का सूक्ष्म स्तरों पर उपयुक्त साबित न होना;
3. इसमें इस बात का अनुमान नहीं किया गया है कि ग्रामीण गरीबी संपूर्ण रूप से ग्रामीण अर्थतंत्र के कार्य-संचालन का परिणाम है और इसे हटाने का एक ही तरीका है कि एक ऐसा समग्र उपाय प्रयोग में लाया जाए जिससे इस अर्थतंत्र की कार्यप्रणाली में बदलाव लाया जा सके;
4. बहुत हद तक शहरी गरीबी की उपेक्षा कर दी गई है। सरकारी हस्तक्षेप के माध्यम से विविध संवेदनशील क्षेत्रों के गरीब लोगों को संरक्षित करना समेकित विकास के लिए अत्यावश्यक है;
5. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के आय-सृजन संबंधी कदमों के अंतर्गत दीर्घकालिक रूप से गरीबी की दशाओं के उन्मूलन के लिए परिवार कल्याण, पोषण, सामाजिक सुरक्षा तथा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, इत्यादि को सतत् जारी रखने के महत्व की पहचान नहीं की गई है;
6. कार्यक्रम के जरिये विकलांगों, बीमार एवं सामाजिक रूप से अक्षम ऐसे लोगों के लिए नगण्य प्रयास किए गए हैं जो सामान्य आर्थिक कार्यकलापों में भाग नहीं ले सकते। अत: पारिवारिक संवितरण के संदर्भ में महिलाओं के साथ न्याय की उपेक्षा किए जाने से भी गरीबी उन्मूलन संबंधी प्रयास असफल रहे हैं;
7. गरीब उन्मूलन संबंधी कार्यक्रम आपूर्ति-पक्षीय अर्थशास्त्र के प्रति अत्यंत पूर्वाग्रह-ग्रस्त हैं। सरकार द्वारा गरीबों को वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति किए जाने पर तो जोर दिया गया है किंतु मांग पक्ष की बिल्कुल उपेक्षा कर दी गई है जिसके फलस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं की मांग और पूर्ति के बीच का तालमेल बिगड़ गया है। इसके कारण संसाधनों का अपव्यय हो रहा है और विकास प्रक्रिया को खारिज किया जा रहा है;
8. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम का प्रदर्शन संतोष्प्रद नहीं रहा है, जिसका कारण है: कार्यक्रम लागू करने वाले कर्मचारियों की क्षमता में कमी, कार्य-प्रविधि की जटिलताएँ, निगरानी तंत्र का अभाव तथा समुचित फॉलो-अप पर ध्यान न दिया जाना;
9. एक मुख्य खामी यह है कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम सरकारी कार्यक्रम बनते जा रहे हैं और लोगों में इन पर निर्भर होने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। जरुरत इस बात की है कि अफसरशाही वाली व्यवस्था के ताम-झाम के अंतर्गत विकास का एक नया नजरिया विकसित किया जाए ताकि यह कार्यक्रम लोकोन्मुखी, परिवर्तन-सापेक्ष एवं कार्य-केन्द्रित हो सके;
10. मजदूरी-आधारित रोजगार कार्यक्रम विकास योजनाओं में सही ढंग से समेकित नहीं किए गए हैं। जिस तरह की परिसंपत्तियाँ सृजित की गई हैं, वे ज्यादातर इस किस्म की हैं कि उनमें दीर्घकालिक रूप से स्थायित्वपूर्ण विकास की क्षमता का अभाव प्रतीत होता है।

गरीबी उन्मूलन के लिए कई क्षेत्रों में नीतियों को नए सिरे से पुनरुन्मुख किए जाने की जरुरत है। केवल आर्थिक विकास की गति तेज करना ही पर्याप्त नहीं है। गरीबी में ठोस कमी लाने के लिए व्यापक आधार वाले और गहन श्रम विकास आवश्यक है। ऐसी विकास प्रक्रिया के केंद्र में कृषि के रूपांतरण का होना आवश्यक है। पार्थसारथी ने सामूहिक शक्ति के निर्माण हेतु निम्नांकित दृष्टियों से गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम को नई दिशा देने की आवश्यकता पर जो दिया है- 1. भूमि एवं जल संसाधनों के विकास के लिए; 2. शोषण आधारित कार्य-प्रथाओं को समाप्त करने के लिए; 3. निम्न आय वाले परिवारों के पक्ष में क्रय-शक्ति को

प्रणालीबद्ध करने के लिए। सहायता के उत्पादक उपयोग की दृष्टि से अल्प क्षमता वाले पिछड़े क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप की प्रकृति ज्यादा से ज्यादा संस्थागत होनी चाहिए और स्व-रोजगार संबंधी उपक्रमों को शुरू करने से पहले उसका उद्देश्य शोषण करने वाले गठबंधन को तहस-नहस करना, लोगों के बीच ज्यादा जागरुकता फैलाना, सामाजिक समानता लाना, मानवीय पूंजी में निवेश करना होना चाहिए।

पिछले छह दशकों में, गरीबी कम करने की कार्यनीति पर जोर दिये जाने के फलस्वरूप इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि बाजार-नीति आर्थिक विकास से गरीबी खत्म नहीं की जा सकती है। वर्तमान समय में, राजनीतिक प्रणाली पर समेकित विकास सुनिश्चित करने के लिए लगातार दबाव बढ़ रहा है। यह प्रस्तावना इस समझ पर आधारित है कि संरचनात्मक असमानताएं और उनके कारण उत्पन्न होने वाले शक्ति-संघर्ष गरीबी उन्मूलन के प्रयासों पर निर्णायक प्रभाव डाले हैं। सांस्कृतिक परंपराओं द्वारा तय किये गये और संरक्षित सामाजिक-राजनीतिक एवं आर्थिक अलगाव के कारण गरीबों के आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है और इससे निर्भरता का रोग पनपता है। अतः ध्यान इस बात पर केंद्रित किया जाना चाहिए कि नीतियों की रूप-रचना और उनके कार्यान्वयन के रूप में संस्थागत परिवर्तन लाया जाए। जहां तक संसाधनों का सवाल है, स्थानीय समुदाय के अंतर्गत उन संसाधनों के संवितरण और उपयोग के आधार में परिवर्तन लाने की कोशिश अवश्य की जानी चाहिए। परंतु मौजूदा राजनीतिक प्रक्रियाओं के कारण ये परिवर्तन बाधित हो रहे हैं। इस प्रकार, गरीबी हटाने से संबंधित कार्यनीतियाँ संरचनात्मक- राजनीतिक रूपांतरण पर आधारित है।[4]

सापेक्ष एवं निरपेक्ष गरीबी

गरीबी की समस्या को सापेक्ष अथवा निरपेक्ष संदर्भ में देखा जा सकता है। सापेक्ष गरीबी का संबंध लोगों के एक वर्ग के मुकाबले दूसरे वर्ग या एक व्यक्ति के मुकाबले दूसरे व्यक्ति की आय या परिसंपत्ति से है। इस तरह, एक ही सामाजिक परिवेश में गरीब और अमीर, समृद्ध तथा अल्प-समृद्ध दोनों ही किस्म के लोग पाए जाते हैं। यहां आवश्यक बिंदु यह है कि एक की गरीबी दूसरे की अमीरी के सापेक्ष है। दूसरी ओर, निरपेक्ष गरीबी वह स्थिति है जबकि अपने स्वास्थ्य के संरक्षण और कार्यक्षमता के विकास के लिए किसी व्यक्ति को उपभोग की न्यूनतम वस्तुओं तक भी पहुंच हासिल नहीं है। निरपेक्ष गरीबी का प्रकटीकरण भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण एवं ऐसी ही अन्य बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति को अस्वीकार किये जाने के रूप में होता है। निरपेक्ष गरीबी को इसके घोर स्वरूप में भारत के अनेक हिस्सों में व्याप्त भूखे-अधनंगे, कुपोषित, निराश्रित एवं दीन-हीन लोगों में देखा जा सकता है जो निरंतर खराब स्वास्थ्य, रोग एवं शिक्षा तथा चिकित्सा सुविधा के अभाव से पीड़ित है।[5]

मानवीय गरीबी

गरीबी की पूर्ण संकल्पना के लिए, हमें अभाव या वस्तुओं से वंचित होने की शब्दावली में अपनी बात कहनी होगी। यही है मानवीय गरीबी की अवधारणा। इसका यह मतलब है कि मानवीय विकास के लिए आवश्यक अत्यंत दीर्घ, स्वस्थ तथा रचनात्मक जीवन नहीं जी पाता तथा वह सुंदर जीवन-स्तर, स्वतंत्रता, आत्म-सम्मान एवं दूसरों से प्राप्त होने वाली प्रतिष्ठा जैसी बातों का सुख प्राप्त नहीं कर सकता। किसी समुदाय में गरीबी किस हद तक व्याप्त है, इस संबंध में समेकित निर्णय पर पहुंचने की दृष्टि से जीवन संबंधी गुणवत्ता से वंचित करने वाले विविध तत्वों को एक संपूर्ण सूचकांक के रूप में प्रस्तुत करने के लिए मानव विकास रिपोर्ट 1997 में एक मानव गरीबी सूचकांक पेश किया गया है। मानव विकास रिपोर्ट द्वारा सृजित मानव गरीबी सूचकांक में मानव जीवन के निम्नांकित तीन तत्वों में अभाव पर ध्यान केंद्रित किया गया है- दीर्घ जीवन, ज्ञान एवं सुंदर जीवन-स्तर।[6]

1. पहले अभाव का संबंध जीवित रहने से है- बहुत ही कम उम्र में मृत्यु का शिकार हो जाने सेख तथा मानव गरीबी सूचकांक में इसे 40 वर्ष से कम उम्र में मर जाने की संभावना वाले लोगों के प्रतिशत से दर्शाया गया हैं
2. दूसरे आयाम का संबंध है ज्ञान से- अर्थात् पढ़ने-लिखने एवं संवाद- संचार इत्यादि की दुनिया से वंचित रहना- इसे निरक्षर वयस्कों के प्रतिशत द्वारा मापा जाता है।[7]
3. तीसरे पहलू का संबंध खासतौर पर अच्छे जीवन-स्तर से है, समग्र आर्थिक व्यवस्थापन से। इसे दो परिवर्तनीय घटकों द्वारा दर्शाया जाता है- आबादी का वह प्रतिशत जो संवर्द्धित जल-संसाधनों का प्रयोग नहीं कर पा रहा है तथा पांच साल से कम उम्र के उन बच्चों का प्रतिशत जिनका वजन सामान्य से कम है।[8]

निष्कर्ष

भारत में मानवीय गरीबी की दर बहुत उच्च है। मानवीय गरीबी का एक प्रमुख संकेतक है कम उम्र में मृत्यु। 40 से भी कम उम्र में मर जाना घोर अभाव प्रदर्शित करता है। भारत में, 2003 में वयस्क साक्षरता दर 39.0 प्रतिशत थी। आर्थिक प्रावधान संबंधी अभाव भी भारत में अत्युच्च है। हालांकि हाल के वर्षों में लोगों के लिए बेहतर पेयजल की उपलब्धता बढ़ी है, लेकिन पांच साल से कम उम्र के बच्चों में आधे से कुछ ही कम अभी भी कुपोषित हैं।

मानव विकास रिपोर्ट 2007-08 में 108 विकासशील देशों के लिए मानव गरीबी सूचकांक की संगणना की गई है। इस सूचकांक के परिप्रेक्ष्य में भारत 62वें स्थान पर है। इससे इस देश में मानवीय गरीबी को कम करने के लिए असंतोषप्रद कार्य-प्रदर्शन की ओर संकेत मिलता है। निरपेक्ष रूप से, चूंकि मानव गरीबी सूचकांक 31.3 प्रतिशत है, अतः कहा जा सकता है कि मानवीय गरीबी बहु-व्याप्त है।

सन्दर्भ सूचीः-

1. बेकल, भूपेन्द्र, ''गरीबी उन्मूलन कुछ मुद्दे'' *कुरुक्षेत्र*, वर्ष-36, अंक-12, अक्टूबर 1991.
2. अग्रवाल, विनोद कुमार, ''गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम समन्वित, ग्रामीण विकास कार्यक्रम'', *कुरुक्षेत्र*, वर्ष-33, सितम्बर 1988.
3. अरोड़ा, जी.एस., *पोवर्टी इन इकोनॉमिक रिफॉर्म्स : द सोशल कनसर्न*, एकेडमिक फाउंडेशन, न्यू दिल्ली, 2004.
4. कलवार, सुगनचन्द्र, मीणा तेजराम, *निर्धनता उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास*, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2001.
5. कौशिक, जगबीर, ''नरेगा गरीबों का सुरक्षा कवच'', *कुरुक्षेत्र*, वर्ष 56, अंक-2, दिसम्बर, 2009.
6. पंत, नवीन, ''गरीबी उन्मूलन और खाद्य सुरक्षा'', *योजना*, अक्टूबर 2010.
7. पाठक, गणेश कुमार एवं सहयोगी, ''गरीबी के कारण एवं से दूर करने के उपाय'', *कुरुक्षेत्र*, वर्ष-26, अंक-7, मई 1991.
8. पाण्डे, अशोक कुमार, ''भूमण्डलीय गॉव में भूख का सवाल'', *समयांतर*, नई दिल्ली, मई 2010.

आधुनिक भारत की राजनीति में धर्म का महत्त्व

डॉ० राम विनोद कामत

ग्राम - करौन्हा, पोस्ट- कुमरखत
थाना - लदनियाँ
जिला - मधुबनी (बिहार), पिन-847235

आधुनिक भारत के महान क्रांतिकारी विचारक गांधीजी का धर्म के क्षेत्रा में अमूल्य योगदान है। संसार के अधिकांश लोग गाँधीजी को एक महान राजनीतिज्ञ ही मानते हैं, परन्तु उन्होंने देश की सामाजिक उन्नति की अपेक्षा धार्मिक उन्नति को अधिक आवश्यक माना। उनके राजनीतिक विचार विभिन्न स्रोतों से लिये। उन्होंने थोरो, रस्किन, इमर्सन और टाल्स्टाय को पढ़कर उनसे प्रेरणा ली। वैष्णव धर्म और जैन धर्म से वे अधिक नहीं तो उतने ही प्रभावित थे क्योंकि गुजरात में जीवन के दर्शन से कुछ सीमा तक भिन्न था। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की आलोचना की ''मैं तो मानता हूँ कि हिन्दुस्तान ने जिस सभ्यता का नमूना दुनियाँ के सामने पेश की है, दुनियाँ की कोई सभ्यता उसका मुकाबला नहीं कर सकती।'' हिन्दस्वराज जिसे गाँधी की विचारधारा का प्रामाणिक वक्तव्य माना जाता है जिसमें उन्होंने भारतीय राष्ट्र की एक सभ्यता रूपी धारणा झलकती है। प्राचीन भारतीय सभ्यता सर्वश्रेष्ठ थी। भारतीय राष्ट्रीयता के स्रोत थे क्योंकि इसमें विभिन्न पंथों वाले विदेशियों के आत्मसात करने की असीमित क्षमता है। इस सभ्यता की जितनी बुनियाद ठोस है और जिसने हमेशा नैतिकता को उदात्त बनाया।

धार्मिक प्रतीकों और मुहावरों का कुशल प्रयोग उनके करिश्माई आकर्षण का आधार था। वे ऐसी पराप्राकृतिक शक्ति से लैस थे जो कष्टों को दूर करके आम जनता को उसकी रोजमर्रा की बदहालियों से मुक्ति दिला सकती थी। गाँधी के प्रति जनता के आकर्षण का कारण था उनकी सादगी वेशभूषा देहाती हिन्दी का प्रयोग, राम राज्य के लोकप्रिय मुहवरा जो आम लोगों की समक्ष में आसानी से आने वाली थी। वे केवल जनता को मारना नहीं चाहते थे, बल्कि एक नियमित जन आन्दोलन चाहते थे जो उनके तय किए हुए रास्ते पर ही सख्ती से कायम रहे। जनता ने गाँधीवादी राजनीति की सीमाओं का बार-बार उल्लंघन किया और उनके आदर्शों से अलग हटी।

भारतीय राजनीतिक मंच पर सबसे पहले 1917 के चम्पारण किसान आन्दोलन में गाँधी के राजनीतिक चिन्तन की छाप परिलक्षित होती है। लखनऊ काँग्रेस में चम्पारण के किसान 1916 में राजकुमार शुक्ल मिले। पंडित जवाहरलाल नेहरू से भी गाँधीजी की पहली मुलाकात यहीं हुई थी। राजकुमार शुक्ल चम्पारण आकर वहाँ के किसानों की स्थिति से गाँधीजी को अवगत कराना चाहते थे। गाँधीजी ने अनूठे ढंग से शुरुआत चम्पारण जिले में की। अपने एक विशिष्ट अंदाज में जो उनकी कार्य प्रणाली से मनोवैज्ञानिक रूप से जुड़ाया और जो बाद में उनकी एक विशिष्ट कार्यशैली बन गयी थी। ''चम्पारण की 19 लाख की दुखी प्रजा श्रीमान् के चरण कमल के दर्शन के लिए टकटकी लागए बैठी है और उन्हें आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि जिस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के चरण स्पर्श से अहिल्या तर गई उसी प्रकार श्रीमान् के चम्पारण में पैर रखते ही हम 19 लाख प्रजाओं का उद्धार हो जाएगा।'' शुक्लाजी के पत्र से स्पष्ट होता है कि भारत करिश्माई नेता के खोज में था जो उनके दुख को दूर करता और जिस पर भरोसा किया जा सके। चम्पारण में नीलहे साहब किसानों तिनकठियाँ व्यवस्था के अन्तर्गत नील पैदा करने के लिए मजबूर करते थे।

गाँधी का काम बगान मालिक को यह सूचित करने का था कि चम्पारण में उनका इरादा शिकायतों को छानबीन करने का है। इनलोगों के रूख से यह आभास हो गया था कि मुसबीत खड़ी होगी और जेल जाने की भी नौवत आएगी। इसके बावजूद व्यवस्थित ढंग से काम करना शुरू किया। नील बटाईदारों का बयान दर्ज करते गए, स्थिति असाधारण थी जैसा कि बगाल मालिकों ने कहा

गाँधीजी की कोई हैसियत चम्पारण में मौजूद रहने की नहीं थी और नहीं कोई अधिकार। लेकिन उनके व्यक्तित्त्व में ऐसा आकर्षण था कि शोषित नील मजदूरों का इतना बड़ा रैली उनके साथ खिंचा चला गया कि उस पर किसी प्रकार का दण्डनात्मक कार्रवाई असम्भव था। स्थानीय मजिस्ट्रेड ने उन्हें जिला बदर का आदेश दिया। गाँधी जी ने आदेश मानने से इन्कार कर दिया तब उन्हें कोर्ट में पेश किया गया। गाँधीजी के आचरण से मजिस्ट्रेट तो ह्वा-ब्वा रह गया क्योंकि भारत में ऐसा आचरण किसी ने न तो देखा था न सुना था। गाँधीजी ने अपने ऊपर लगाए गए सारे आरोप मान लिया और कानून के अनुसार सजा की माँग की। बाद में यही उनकी कार्यशैली बनी रह गई। इन घटना के व्यापक प्रचार से घबड़ाकर भारत सरकार ने मुकद्मा वापस ले लिया। ''आज ही भारत के वर्त्तमान इतिहास में सत्याग्रह का एक पवित्रा एवं ज्वलन्त उदाहरण मिलने वाला है, जिससे समस्त भारत की आँखें खुलने वाली है। महात्मा गाँधी भारत ही नहीं बल्कि संसार को इसकी सत्यता सिद्ध करने वाले हैं। वे चम्पारण की प्रजा के दु:खों को दूर करने के लिए कटिबद्ध थे, साथ ही दु:ख देने वालों को तनिक भी हानी नहीं पहुँचाने की इच्छा रखते हुए महात्मा गाँधी की पवित्रा आत्मा मानो मनुष्य रूप में इसीलिए अवतरित हुई है।'' इस अभियान से सरकार परेशान हो उठी। इस आन्दोलन ने सारे भारत का ध्यान आकर्षित किया। मानव कल्याण की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य उन्होंने प्राप्त कर लिया था और ऐसा उन्होंने सत्य, आत्मनियंत्राण और अहिंसा के बूते पर किया था। गाँधीजी पर खुफिया नियुक्त कर दिया गया। इनके हर क्रियाकलापों पर कड़ी नजर रखी जाती थी। सचमुच चम्पारण की घटना भारत में सत्याग्रह की पहली विजय माना जा सकता है।

गाँधीजी अहमदाबाद के कपड़ा मिलों की हड़ताल में 1918 के दौरान भी सामिल रहे। गुजरात में मील मालिक उनका विरोधी थे जो उनके करीबी थे। गाँधी ने अपना अंतिम हथियार भूख हड़ताल शुरू किया आखिर मील मालिक झुक गए और 27.5 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी मिली। ''ऐसे समय में जबकि बम्बई का कपड़ा उद्योग पूर्व समृद्धि के दौर से गुजर रहा था, कपड़ा मजदूरों के जीवन स्तर में इतनी गिरावट की कल्पना करने में भी कष्ट होता है। जबकि 1913 से 1918 के बीच बम्बई के कपड़ा व्यवसायियों ने जितना लाभ पाया उतना इससे पहले कभी नहीं कमाया था।'' इन्हीं स्थानीय लक्ष्यों को लेकर गाँधीजी ने राष्ट्रव्यापी लोकप्रियता प्राप्त की। हर मिसाल में गाँधी को नेतृत्व के लिए आमंत्रित किया गया। स्थानीय पहल से जनता की लामबंदी हो जाती थी।

जनता ने गाँधी के संदेश को अपेन ढंग से व्याख्या की और इस मसीहा जैसे नेता शक्तियों से जुड़ी चेतना भारी भरकम दुश्मनों का सामना करने में लगने वाला भय को समाप्त कर दिया। जनता ने भी हर जगह अपने एजेन्डों को आगे बढ़ाया जिसे उस क्षेत्रा के बुर्जुटा नेता नापसन्द करते थे। लेकिन इस प्रक्रिया में ये सभी क्षेत्रा गाँधी के राजनीतिक समर्थन के आधार बन गए, क्योंकि वहाँ से जनता ने राजनीतिक कार्रवाई के बारे में उनकी बाद की पुकारों का मुखर जवाब दिया। ''इसलिए 1918 में गाँधीजी ने साम्राज्य को स्वीकार करके और धीरे-धीरे शान्तिपूर्ण उपायों से आजादी प्राप्त करने की आशायें, अपने राष्ट्रवाद को संकट में डाल दिया। इस प्रकार राजनीतिक गाँधी राष्ट्रवाद और शांतिवाद के ऐसे संघर्ष में फस गया, जिसकी मूलोच्छेद असम्भव था। धार्मिक गाँधी ने अहिंसा तथा विश्व भावना का प्रचार करके और इस पर आचरण करके उसे हल करने का प्रयत्न किया।''

उपवास प्रार्थना के रूप में गाँधीजी के मानस में गहराई से बैठा हुआ था और उनके जीवन के प्रारम्भिक स्मृतियों से जुड़ा हुआ था। दूसरी ओर वे स्वयं को दण्डित करते थे तीसरी वे अब तक कई वार विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रार्थना के रूप में या अपने अनुयायियों द्वारा किए गए पापों के प्रतिकार के रूप में उपवास करते थे जिसका पता दुनिया को चला ही नहीं था। उपवास के बाद वे तरोताजा होकर नयी ऊर्जा के साथ निकलते थे। ''उपवास और प्रार्थना के समान शक्तिशाली वस्तु दुनिया में और कोई नहीं है। उनसे हमारे जीवन में आवश्यक अनुशासन पैदा होता है, आत्मत्याग की भावना बढ़ती है तथा नम्रता और संकल्प की दृढ़ता उत्पन्न होती है, जिनके बिना हमारी कभी प्रगति नहीं हो सकती है।'' गाँधीजी की शारीरिक विशेषता इस बात में थी कि बिना किसी बड़े स्थायी नुकसान के वे अपने उपवासों को काफी लम्बा कर सकते थे। उन्होंने जिन्दगी भर उपवास किया। उपवास करने की उनमें जबर्दस्त क्षमता थी।

साम्राज्य के एक वफादार नागरिक की हैसियत से विचार परिवर्त्तन का बिन्दू था। इस परिवर्त्तन में उन्हें एक ऐसा कटर विद्रोही बना दिया। अखबार में प्रकाशित रौलट समिति की रिपोर्ट पर उनकी नजर पड़ी। जैसा कि उन्होंने कहा उन सिफारिसों ने मुझे चौंका दिया। उन्हें विश्वास हो गया कि ब्रिटिश साम्राज्य शैतानियत का प्रतीक है। जिसे ईश्वर से प्रेम है वह शैतान से प्रेम नहीं कर सकता। गाँधीजी भारतीय अन्त:करण का प्रतिनिधित्व करते थे उनके मन का विद्रोह आने वाले क्रान्ति का शंखनाद था। गाँधीजी जैसे उदात्त और सत्यनिष्ठ बलि के लिए इस तरह का परिवर्त्तन आना भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के नैतिक नींव के विनष्ट होने का संकेत था।

मनुष्य के आध्यात्मिक प्रगति के इतिहास में ऐसे महिमा-मण्डित बिरले ही मानव हुए जिनका नैतिक मूलय असाधारण है। यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से महाविडम्बना का काल है। गाँधी ने स्वयं स्वीकार किया है कि लोग इस काम को राजनैतिक दृष्टि से असम्भव और असगत मान सकते हैं। देश की सारी शक्ति को एकत्रित करके आन्दोलन को ठीक निर्दिष्ट समय पर उसे इस तरह से रोक देना ओर स्पष्ट संकेत न देना सचमुच संकट को आमंत्रित करना है। इससे सत्याग्रह को दमित होने की आशंका है और आशंका है देश को बाँधने की क्षमता को अचानक टूट जाने की।

पंजाब और अन्यत्रा जो घटनाएँ घटी थी उसका उनसे राष्ट्रीय स्वाभिमान बहुत आहत हुआ था। गाँधीजी सबके बीच केन्द्रीय व्यक्तित्व के रूप में मौजूद थे। 1919 का वर्ष विपत्तियों से भरा था। अशान्ति के मुख्य कारण थे पंजाग में मार्शल और उसके दण्डात्मक परिणाम का, टर्की की पराजय, मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार। वह सत्याग्रह के जनक और प्रेरक होने के अलावे पंजाब जाँच समिति के सबसे अधिक सक्रिय सदस्य थे। उन्होंने अखिल भारतीय खिलाफत समिति की अध्यक्षता की थी, जिससे सावित होता है कि मुसलमानों का उन पर कितना विश्वास था। उनके विचार और कार्य का मूल तत्त्व सिद्धान्त रूप से यही था कि मूलत: मनुष्य ईश्वर का ही अंश है और जीवन का सम्पूर्ण प्रयोजन यही है कि व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में उसके देवत्त्व को स्वीकार किया जाय। सिद्धान्त और व्यवहार रूप में धर्म, दर्शनशास्त्रा, नीतिशास्त्रा, समाजविज्ञान। आदि इन सबका मूल लक्ष्य मानव को आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अहिंसा मानव समुदाय का मूल सिद्धान्त है। सचमुच में ''यह वही धर्म था जिसके प्रचार की कोशिश उन्होंने भारत के नैतिक, सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक जीवन में की। भारतीय राजनीति में उनका आगमन हमारे इतिहास में वस्तुत: एक नए अध्याय का आरम्भ था।'' गाँधीजी के अनुसार सत्य और अंहिसा में ही अभिव्यक्त होती है। सत्य ही वैयक्तिक जीवन का धर्म है। इसी के माध्यम से मानव अपनी आत्मा का साक्षात्कार करता है और जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करता है।

केन्द्रीय खिलाफत समिति ने इलाहाबाद की 2 जून की बैठक में असहयोग चलाने का फैसला किया गया जिसके अन्तर्गत पदवियों, सिविल सेवाओं, पुलिस और सेना की नौकरी का बहिष्कार और अन्त में करों की अदायगी न करने का निर्णय लिया गया। आन्दोलन का आरम्भ 01 अगस्त से होना था, असहयोग पर मुसलमानों की राय सभी विभाजित थी। 1920 की गर्मी में गाँधीजी और सौकत अली जन समर्थन जुटाने के लिए व्यापक मन्त्राणाएँ जब से की। हड़ताल को शानदार कामयाबी मिली। तिलक की मृत्यु के कारण और समर्थन मिला। अब काँग्रेस से प्रस्ताव वापस करना आवश्यक था। इसके लिए कलकत्ता में 1920 के 4 से 9 सितम्बर तक अधिवेशन चला जिसमें खिलाफत से संबंधित प्रस्ताव ''चूँकि खिलाफत के प्रश्न पर भारत व ब्रिटेन दोनों देशों की सरकार भारत के मुसलमानों के प्रति अपना फर्ज अदा करने में खास तौर से असफल रही है और ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने जान बूझकर उन्हें दिये हुए वादे को तोड़ा है और चूँकि प्रत्येक गैर मुस्लिम भारतीय का फर्ज है कि अपने मुसलमान भाई पर आई हुई धार्मिक विपत्ति को दूर करने में प्रत्येक उचित उपाय से सहायता करें।'' ये ऐतिहासिक प्रस्ताव पास किया गया और इसमें बताया गया कि किस प्रकार उचित समाधान की सभी कोशिशें असफल हो गयी। असहयोग आन्दोलन के दो तरह के उद्देश्य थे।

एक रचनात्मक कार्यक्रम और दूसरा ध्वंसात्मक। रचनात्मक गतिविधियों को चलाने के लिए तिलक के नाम पर एक करोड़ रूपये का कोष जमा करने, सरकारी अदालतों शिक्षा संस्थाओं और विदेशी सत्ता का बहिष्कार सफल बनाने के लिए एक करोड़ सदस्यों की एक स्वयंसेवक सेना तैयार करने, बेरोजगारों एवं अर्द्ध-बेरोजगारों को काम दिलाने के लिए बीस लाख चरखे काटने तथा विदेशी वस्त्राों की जगह हाथ से बने भारतीय वस्त्राों का उपयोग करना। ध्वंसात्मक उद्देश्य में मुख्य थे-वकीलों द्वारा अदालतों का बहिष्कार करने के बाद मुकदमें निपटाने के लिए जनता न्यायालयों की स्थापना। सरकारी स्कूलों तथा कॉलेजों का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना। केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बली का बहिष्कार। सभी सरकारी सम्मानों, उपाधियों आदि का त्याग। अंग्रेजी वस्तुओं का बहिष्कार उसकी जगह स्वदेशी को अत्रेकार करना। चरखे से कते सूत के हाथ से बने कपड़े का इस्तेमाल गाँधीजी का स्वदेशी का अर्थ-''अपनी सम्पत्ति का उपयोग इस हाथ इस तरह करें कि उससे तुम्हारे पड़ोसी को कोई कष्ट न हो-यह केवल कानून का सिद्धान्त नहीं, परन्तु एक महान् जीवन-सिद्धान्त भी है।

मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, राजेन्द्र प्रसाद, राजगोपालाचारी जैसे प्रसिद्ध वकीलों ने वकालत छोड़ दी। हजारों विद्यार्थियों ने स्कूलों और कॉलेजों का त्याग दिया और बहुत से शिक्षण संस्थाऐं खोली गई। सुभाषचन्द्र बोस ने इण्डियन सिविल सर्विस से त्याग पत्र देकर कलकत्ता के नेशनल कॉलेज के प्रिंसिपल का कार्य सम्भाल लिया। मुहम्मद अली के आह्वान पर अलीगढ़ के छात्राों ने जामिया मिलिया की स्थापना की। देश में गम्भीर हलचल मच गई और करोड़ों लोगों में जोश की अभुतपूर्व लहर दौड़ गई। नेहरू जी ने इलाहाबाद हाई कोर्ट से विदाई ले ली और आन्दोलन में कूदते हुए उन्होंने कहा-''इसमें कोई शक नहीं कि गाँधीजी बार-बार

आन्दोलन के धार्मिक और आध्यात्मिक पहलु पर जोड़ दिया करते थे। उनका धर्म रूढ़ियों से जकड़ा हुआ न था, परन्तु उसकी यह मंशा जरूर थी कि जीवन को देखने की दृष्टि से धार्मिक हो और इसलिए सारे आन्दोलन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा था।

पहली अगस्त, 1920 को शुरू हुआ असहयोग आन्दोलन। 6 फरवरी, 1922 तक दिन प्रतिदिन लगातार बढ़ता ही गया। यह आन्दोलन अनोखा था। जुलाई, 1921 तक असहयोग आन्दोलन की आग सारे देश में फैल गई। 19 सितम्बर को मुहम्मद अली को गिरफ्तार कर लिया गया और उस पर मुकद्मा चलाया गया। नवम्बर 1921 में ब्रिटेन के युवराज भारत आए। काँग्रेस कमिटि ने उसका बहिष्कार करने का निर्णय लिया। वे जहाँ भी गए हड़ताल, प्रदर्शन और विरोध सभाएँ हुई। दुर्भाग्य से बम्बई में स्थिति बेकाबू हो गई। कई जगह दंगे हुए पुलिस ने दमन चक्र चलाया। कलकत्ता में चितरंजन दास के नेतृत्व में सत्याग्रह आन्दोलन चला। सरकार ने काँग्रेस स्वयंसेवकों को गैर कानूनी करार दिया। उनकी पत्नी और पुत्रा स्वयंसेवक बने और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। ''गाँधी द्वारा शुरू किए कार्यक्रम और नीति से राष्ट्रीय काँग्रेस ने एक बहुत बड़ा कदम उठाया। अब काँग्रेस एक ऐसी राजनीतिक पार्टी बन गई थी जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध जनसंघर्ष का नेतृत्व करने की उठ खड़ी हुई थी। यहाँ से प्रगति करते-करते काँग्रेस इस स्थिति तक पहुँच गई कि वह राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य केन्द्र बिन्दु बन गई।'' इसके अलावे और कार्यक्रम थे जो जनसंघर्ष से अपरिचित था।

गाँधीजी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन का उद्देश्य बहुत व्यापक था। अपने आदर्श की प्राप्ति के लिए स्वराज आवश्यक साधन मात्रा था और खिलाफत एक विश्वास का प्रतीक आदर्श था। सत्य और अहिंसा पर भारतीय राजनीतिज्ञों द्वारा प्रयोग के आधार पर मानव की समस्या का हल निकालना। सत्य और अहिंसा तो मूलरूप से आध्यात्मिक थी। आध्यात्मिकता अविवेक से विपरीत होती है, क्योंकि अविवेक के गर्भ में हिंसा होती है। अहिंसा का अर्थ है, प्रेम, जो जाति, धर्म, गरीब-अमीर, स्त्राी-पुरुष के भेदभाव के विरूद्ध होता है। सत्य और अहिंसा पर आधारित समाज वही बना रह सकता है जहाँ मनुष्य का मनुष्य के द्वारा सभी प्रकार का शोषण बंद हो जाय। गाँधीजी के आदर्शों में बड़ी दूर की दृष्टि समाहित थी। ''गाँधी के नाम की गुंज देश के कोने-कोने में सुनाई देने लगी। उनकी अहिंसा की नीति को नाम दिया गया गाँधी की आँधी। बड़े-बड़े नगरों से लेकर छोटे-छोटे देहातों तक में अहिंसक युद्ध की तैयारियाँ शुरू की गई न्यायपूर्ण एवं शान्तिमय विप्लव की किरण भेदी बज उठी।''

असहयोग खिलाफत आन्दोलन ने गाँधीवादी काँग्रेस के नेतृत्व में भारत में जन आन्दोलन की प्रवृत्ति पर अनेक सवाल खड़े किए जा सकते हैं। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इस आन्दोलन के अलग-अलग रूप रहे। भारत में शहरी मध्यवर्ग का उत्साह जल्द ही ठंडा पर गया, व्यापारी वर्ग भी डगमगाने लगा। असहयोग आन्दोलन वहाँ सबसे कारगर रहा जहाँ किसान पहले से संगठित हो चुके थे। यह आन्दोलन वहाँ पर काँग्रेसी नेताओं के नियंत्राण में अधिक रहा जहाँ वे एकजुट थे। सामाजिक सामंजस्य को नुकसान पहुँचाए बिना अंग्रेजों को विस्थापित करना इस प्रस्तुति का भाव था। ''उनकी कल्पना में वास्तविक गाँधी और उनका अहिंसक कार्यक्रम अक्सर खो जाते थे। कल्पनाओं के गाँधी असाधारण रहस्यमय शक्तियों से लैस थे। किसन उनको ऐसा संत समझता था जो रोगों को दूर कर सकता था।''

चौरी-चौरा काण्ड के बाद असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया गया। गाँधीजी राष्ट्रहित के अपराध में 6 साल की सजा सुनाई गई और उन्हें भरवदा जेल भेज दिया गया। 20 मार्च, 1922 से 12 जनवरी, 1924 तक वे जेल में रहे। वे वहाँ बहुत खुश थे। जेल से भेजे गए पत्र में उन्होंने लिखा था एक पंछी की तरह मैं खुश हूँ।'' जेल से बाहर उनका जीवन सार्वजनिक था। इतने लोगों से घिरे रहते थे कि यह एकान्तप्रिय औन मननशील प्रकृति के लिए अच्छा था। अंग्रेज जेल अधिकारी इनके प्रति नम्र थे जब उन्होंने उनकी कोठरी से चरखा लाए जाने की अनुमति दी थी। इसी एक मात्रा सुविधा को उन्होंने स्वीकारा। प्रतिदिन चार घंटे कताई करने में उन्हें काफी प्रसन्नता होती थी। जेल से बाहर उन्हें कभी भी कताई के लिए घंटे भर से अधिक समय नहीं मिल पाता था। वैसे चक्र का अर्थ रहस्यमय है, जैसा कि बौद्ध मतावलम्बियों का मानना है। पर गाँधीजी के लिए इसका अर्थ अलग था।'' मैं जितनी बार चरखे से सूत निकालता हूँ उतनी ही बार भारत के गरीबों का विचार करता हूँ, मैं चरखे के लिए इस सम्मान का दावा करता हूँ कि वह हमारी गरीबी की समस्या को लगभग बिना कुछ खर्च किए और बिना किसी दिखावे के अत्यन्त सरल और स्वाभाविक ढंग से हल कर सकता है। वह राष्ट्र की समृद्धि का था और इसलिए उसकी आजादी का चिह्न है।'' सूत कताई के प्रति वे समर्पित थे। घुनाई और बुनाई पहले ही सीख ली थी। शेष बचे समय में वे पुस्तक पढ़ने, पत्र लेखन और चिन्तन में व्यस्त रहते थे। सबसे अधिक समय गीता पढ़ने में और कुरान, ईसाई ग्रन्थों के मनन में भी समय व्यतीत किया।

गाँधीजी को जेल के दरम्यान असहयोग आन्दोलन ठप हो गया था। इन परिस्थितियों में राष्ट्रवादियों को वे गुटों में नहीं बँटने देना चाहते थे। वे मानते थे कि भारत तब ही स्वतंत्र होगा जब इसकी शुद्धि हो जाएगी। भारत के शुद्धिकरण में सबसे पहला काम था हिन्दू मुसलमान के बीच मैत्राी कायम हो। उन दिनों देश 'युग इण्डिया' जिस के सम्पादक गाँधीजी स्वयं थे, के लेखों की प्रतियाँ रहती थी। दो समूदायों के बीच अधिक वारदातें हो जाया करती थी जिससे उनको लगा कि अहिंसा में लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। इसके लिए 18 दिसम्बर, 1924 को अपना ब्रह्मास्त्रा उठा लिया और हिन्दू-मुसलमानों के बीच शांति के लिए प्रार्थना के रूप में 21 दिनों के उपवास की घोषणा कर दी। उपवास समाप्ति के पहले ही अनेकों हिन्दू मुस्लिमों ने प्रार्थना की और शान्ति बनाए रखने की मन्नत माँगी। यह उपवास का ही जादुई प्रभाव था। ''उपवास के परिणाम आश्चर्यजनक थे। इस समय तक भारत में किसी भी व्यक्ति के लिए महात्मा जी के बिना जीवन की कल्पना कर पाना असम्भव हो गया था।'' तीन सप्ताह का उपवास विश्व पर छाया रहा। आज तक इससे पूर्व ऐसे विचार निर्मलता का ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है। अत्यन्त प्रसन्नचित, उत्साहित दुर्बल काया के खतरों को भी चिढ़ा दिया, जिनके युद्ध काल में या शांति के लिए खतरे उठाने से भी लोग कतराते हैं।

अपने निर्धारित कार्यक्रमानुसार अपने मुसलमान डॉक्टर से एक ग्लासी नारंगी का रस लेकर इमाम ने कुरान की आयतें पढ़ी। विनोबा भावे ने संस्कृत में उपनिषदों के पाठ पढ़े साथ ही उनका प्रिय वैष्णव भजन वहाँ उपस्थित लोगों से उन्होंने कहा-भाईचारे के लिए अपने जीवन का बलिदान देने के लिए तैयार रहो। आगे का कार्य था घर के किले मरम्मत करने का या हिन्दू मुस्लिम एकता के अलावे अस्पृश्यता निवारण और खादी का प्रचार करना, यही सब उनका रचनात्मक कार्य क्षेत्रा था। इस प्रकार उनका नैतिक प्रभुत्त्व बढ़ता जा रहा था। भारतीय उनको अपना आदेश मानते थे। 1925 में वे पुरे भारत वर्ष का दौरा किया। ''जहाँ कहीं वह जाते भीड़ की भीड़ उन्हें घेर लेती। लोग उन्हें देवता मानना शुरू कर दिया था। एक स्थान पर उन्हें बताया गया कि सारी गोड़ जाति उनकी पूजा करने लगी थी। बहुत लोग उन्हें कृष्ण और बुद्ध की तरह अवतार मानने लगे। दूर-दूर से उन्हें दर्शनों के लिए आने लगे।'' 1925 के बाद तो कई मंदिरों में उन्हें प्रति स्थापित कर दिया गया था।

भारत छोड़ों आन्दोलन भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास का एक ऐसा पक्ष है जिसके विषय में शोध कार्य बहुत कम हुए हैं। आन्दोलन के स्वरूप और विसतार के बारे में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। इन दिनों कुछ विद्वानों ने स्थानीय और क्षेत्राीय अध्ययन किए हैं, बावजूद कोई स्पष्ट चित्रा नहीं उभरता जिसका कारण दृष्टिकोण में भेद होना है। इस आन्दोलन को अगस्त क्रान्ति के नाम से भी जाना जाता है। भारतीय जनता की वीरता और लड़ाकूपन की अद्वितीय मिसाल है। उसका दमन भी इतना ही पाशविक था। जिन परिस्थितियों में यह आन्दोलन छेड़ा गया था वैसी प्रतिकूल स्थितियाँ भी राष्ट्रीय आन्दोलन में अब तक नहीं आई थी। काँग्रेस बम्बई में 7-8 अगस्त को महा समिति द्वारा निम्न प्रस्ताव पास किया गया।

''कमेटी भारत के स्वतंत्रता और स्वाधीनता के अविच्छेद अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली में अधिक विस्तृत परिणाम पर एक विशाल संग्राम चालू करने की स्वीकृति देने का निश्चय करती है जिसे देशगत बाईस वर्षो के शांतिपूर्ण संग्राम से संचित की गई समस्त अहिंसात्मक शक्ति का प्रयोग कर सके। यह संग्राम निश्चय ही गाँधी के नेतृत्व में होगा और कमेटियाँ उनसे नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्रवाईयों में राष्ट्र का पक्ष प्रदर्शन करने का निवेदन करती है।''प्रस्ताव पास हो गया। जनता का उत्साह देखते ही बनता था। अन्दर नेता विभिन्न मुद्दों पर विचार विमर्श कर रहे थे और बाहर जन समूह उमड़ रहा था। उसके बाद गाँधीजी ने भाषण देते हुए कहा-

''मैं इस लड़ाई में आपका नेतृत्व करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेता हूँ सेनापति या नियंत्राक के रूप में नहीं, बल्कि आपके तुच्छ सेवक के रूप में और जो कोई सर्वाधिक सेवा करेगा वही मुख्य सेवक माना जाएगा। मैं तो राष्ट्र का मुख्य सेवक हूँ। मेरी अन्तराल कहती है कि मुझे अकेले ही संसार से लोहा लेना पड़ेगा। वह मुझसे यह भी कहती है कि जब तक तुममें नि:शंशक होकर संसार का सामना करने की ताकत है, तब तक तुम सुरक्षित हो। भले ही दुनिया तुम्हें किसी और नजर से देखे।कृकृकृकृ अगर संसार के सभी राष्ट्र मेरा विरोध करें यदि समस्त भारत भी मुझे समझाने की कोशिश करे तो भी मैं अपने मार्ग से विचलित नहीं होऊँगा। मैं आगे ही कदम बढ़ाता जाऊँगा सिर्फ भारत के लिए नहीं, बल्कि सारे संसार के लिए।''

गाँधीजी के भाषण का असर जादू की छड़ी जैसा पड़ा। संघर्ष इसी छड़ी से शुरू हो रहा है। करो या मरो का नारा दिया गया। या तो भारत को हम आजाद कराएँगे या इस कोशिश में हम अपनी जान दे देंगे। गाँधीजी ने कुछ निर्देश भी दिए थे। सरकारी कर्मचारी नौकरी न छोड़े, सैनिक अपने देशवासियों पर गोलियाँ न चलाए, राजा महाराजा जनता की प्रभुसत्ता स्वीकारें, किसान मालगुजारी देना बंद कर दें, इससे गाँधीजी का इरादा स्पष्ट झलकता है।

9 अगस्त को काँग्रेस के सभी बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर अज्ञात जगह भेज दिया गया। सरकार के इस अचानक हमले से देश भर में आँधी आ गयी। 10 अगस्त को दिल्ली कानपुर-इलाहाबाद, वाराणसी, पटना, अहमदाबाद आदि जगहों पर हड़ताल रही। इसके बाद अखबार को भी नहीं बख्वा गया। हरिजन और नेशनल हेराल्ड तो आन्दोलन भर बंद ही रहा। ह्काँग्रेस एक गैर कानूनी संस्था करार दी गई। कोई निश्चित संगठन न था। भारत के विभिन्न भागों में बड़े पैमाने पर हिंसात्मक दंगे एवं आक्रमण और अनिश्चित दुर्व्यवस्था जैसे तार एवं फोन की लाइने काटना रेलवे की पटरियों, स्टेशनों आदि को नुकसान पहुँचाना। सरकार ने दमन के कड़े उपाय लगाए। कहीं-कहीं हवाई जहाजों से गोलियाँ चलायी गयी।'' इस तरह 1942 के आन्दोलन को दबाया गया।

भारत छोड़ो आन्दोलन स्वस्फूर्त आन्दोलन था। गाँधीवादी आन्दोलन का तरीका यह था कि नेतृत्व कर्त्ता कार्यक्रम की रूपरेखा बनाकर उसका कार्यान्वयन स्थानीय स्तर के कार्यकर्त्ताओं पर छोड़ दिया जाता। जिन लोगों ने हिंसक साधनों का प्रयोग किया उनका मानना था कि परिस्थितिवश ऐसा किया गया। उनमें से अनेक निष्ठावान गाँधीवादियों ने 1942 की हिंसा की निन्दा करने से इन्कार कर दिया था। उनका कहना था कि वह सत्ता की बड़ी हिंसा का जबाव था। ''यह विद्रोह आरम्भ से हीं हिंसक और पूरी तरह अनियमित रहा, क्योंकि काँग्रेस के नेतृत्त्व की पूरी पहली कतार इसके आरम्भ से पहले ही सलाखों के पीछे थी। इसलिए इसे स्वस्फूर्त क्रान्ति भी कहा जाता है, क्योंकि कोई भी पूर्व निर्धारित योजना ऐसे तात्कालिक और एक रस परिणाम नहीं दे सकती थी।'' हिंसा पर गाँधीजी की ज्यादा आपत्ति इसलिए थी कि इससे जन भागीदारी घटती थी, लेकिन 42 में स्थिति ऐसी नहीं थी।

इस ऐतिहासिक आन्दोलन की एक बड़ी खूबी यह रही कि इसके द्वारा आजादी की माँग राष्ट्रीय आन्दोलन पहली माँग बन गई। भारत छोड़ो के बाद अब पीछे नहीं मुड़ा जा सकता था। ब्रिटिश सरकार से भविष्य में जो भी बातचीत होनी थी उसमें सत्ता के हस्तान्तरण का सवाल आना ही था और इस सवाल पर कोई मोलभाव नहीं किया जा सकता था। आन्दोलन की दूसरी यह खूबी थी कि ब्रिटिश शासन ने यह महसूस किया कि युद्धकालीन सहशक्तियों के बिना ऐसे उग्र जन आन्दोलनो से निपटना मुश्किल होगा। युद्ध जब समाप्त होगा तो इतने भारी विरोध के मुकाबले ताकत के बल पर भारत को अपने बस में रखना हर तरह से महँगा सौदा होगा और इसलिए सम्मानजनक और सुव्यवस्थित ढंग से अलग होने के लिए समझौता वार्ता की अधिक तत्परता दिखाई देने लगी। नि वार्ताओं में काँग्रेस की प्रमुखता होने वाली थी। काँग्रेस का अर्थ गाँधीजी था क्योंकि वही अकेली राजनीतिक संगठन थी जिसमें ऐसा जन आन्दोलन खड़ा करने की क्षमता थी और उसे अकेला ऐसा संगठन भी माना जा रहा था जो भारत एक स्थित सरकार दे सकती थी।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि गाँधी ने जो भारतीय राजनीति में सत्य और अहिंसा के शस्त्रा का प्रयोग किया वह बेमिशाल है। महावीर, बुद्ध और वैष्णवों ने उसे लाखों लाख आत्माओं का सारतत्त्व बना दिया है। गाँधी ने उसमें वीरतापूर्ण रक्त संचार कर दिया। अतीत की विशाल छाया और न जाने कितनी शक्तियाँ भयंकर विभिन्न जड़ता में पड़ी थी उन्होंने उनको आवाज दी, नयी ऊर्जा दी, आवाज सुनते ही जाग उठे, उन्हीं में अपने को खोल सके। आज अमर भारत की आत्मा अपने मंदिरों और जंगलों से ऐसे आवेग के साथ निकल आयी है। यह संदेश केवल भारत की सीमा में ही आवद्ध नहीं है। वह और भी बहुत दूर तक फैल गया है। सत्य, अहिंसा का संदेश केवल भारत ही दे सकता है। उसने केवल अपनी अहिंसा का संदेश केवल भारत ही दे सकता है। उसने केवल अपनी अहिंसा को ही पवित्रा नहीं किया अपने त्याग को भी पवित्रा किया है। ''सम्भवत: किसी सम्पूर्ण जाति के आत्मत्याग से ही विश्व को नवीन जीवन प्राप्त होता है। यहूदियों ने अपने त्राता के लिए बलिदान दिया था जिसके आगमन के आशा में शताब्दियों से अपने मन में संजोये हुए थे। लेकिन जब वे त्राता आए रक्तरंजित क्रॉस पर पुष्पित हुए तव वे पहचान ही नहीं सके। भारतीयों ने अपने त्राता को पहाना है। यह उनका सौभाग्य है।''

संदर्भ सूची:

1. रोमा, रोला-महात्मा, गाँधी जीवन और दर्शन, लोक भारती प्रकाशन, साहित्य अकादमी की ओर से 2008, पृ0-17
2. शेखर बंद्योपाध्याय-पलासी से विभाज तक, औरिएंट ब्लैक स्वान, पृ0-209
3. गिरिराज किशोर-हिन्दू स्वराज, सस्ता साहित्य मंडल-2009, पृ0-242
4. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, चम्पारण में महात्मागाँधी- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ0-81,
5. पूर्वोक्त, पृ0-97

6. बिंसेट शीन-एक महात्मा की संक्षिप्त जीवनी, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
7. लुई फिशर-गाँधी की कहानी, सस्ता साहित्य मंडल, पृ0-65,
8. रविन्द्र कुमार, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, ग्रन्थ शिल्पी, पृ0-183,
9. लुई फिशर, पूर्वोक्त, पृ0-69
10. मो0 क0 गाँधी, यंग इंडिया-31.03.1920
11. शेखर बंद्योपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ0-321
12. बिशेंट शीन, पूर्वोक्त, पृ0-117
13. ताराचन्द, 1921 के असहयोग आन्दोलन, सूचना और प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृ0-6,
14. पटामिसीताराम"या-काँग्रेस का इतिहास, सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली, पृ0-158,
15. डी0जी0 तेन्दुलकर, महात्मा खण्ड-2, पृ0-15
16. लुई फिशर, पूर्वोक्त, पृ0-75
17. डी0जी0 तेन्दुलकर, महात्मा खण्ड-2, पृ0-71
18. मो0 क0 गाँधी-मेरे सपनों का भारत, राजपाल एण्ड सन्स नयी दिल्ली-2008, पृ0-110,
19. जवाहरलाल नेहरू-मेरी कहानी, सस्ता साहित्य मंडल, पृ0-111,
20. रजनी पामदत्त-आज का भारत, मैकमिलन, नयी दिल्ली, पृ0-351,
21. ए0जे0 ग्रीनवर्गर-द ब्रिटिश इमेज ऑफ इण्डिया, पृ0-86
22. प्रभुदास गाँधी-1921 के असहयोग आन्दोलन की झाँकियाँ (नया सेवरा नई चेतना) सूचना प्रकाशन भारत सरकार, पृ0-159
23. शाहिद अमीन-गाँधी एज महात्मा- खण्ड-3, सम्पादक आर गुहा, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस-दिल्ली, पृ0-196,

मानवाधिकार और हमारा समाज

डॉ० राम जानकी राय

शोध छात्रा (राजनीतिशास्त्र)
ल० ना० मि० वि०वि०, दरभंगा

भारतीय समाज एक बहुलतावादी समाज है जिसमें अनेकानेक धर्म, संप्रदाय, जाति के लोग शामिल है। इस समाज की शक्ति इसी में है कि सभी समूहों के लोग सद्भाव के साथ रहें और एक-दूसरे के कल्याण में योगदान करें। उन्हें यह स्वीकार करना चाहिए कि सत्य पर किसी का भी एकाधिकार नहीं है और प्राय: एक ही सत्य को लोग भिन्न-भिन्न प्रकार से देखते व अनुभव करते है। यह बात ऋषियों ने बहुत पहले कहीं थी: एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति वैदिक काल से ही भिन्न-भिन्न मार्गो से सत्य की साधना की चर्चा मिलती है। यही नहीं उस काल में यह भी कहा गया कि सभी ओर से अच्छे विचार आवे आने भ्रदा: क्रतवो यन्तु विश्वत:। तात्पर्य यह कि भिन्न-भिन्न विचारों और जीवनशैलियों के लिए खुलापन हमारे देश की परंपरा रही है।[1] समाज में समरसता हो, सभी साथ-साथ चले और आगे बढ़े ऐसी कामना की गई, संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनॉसि जानताम्।

भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पाऐंगे कि यहां शक, हूण, किरात, पारसी, मुसलमान अनेक जाति-प्रजाति के लोग आते रहें, समाज में घुलते-मिलते रहें और सामाजिक जीवन के अंग बन गए। उसके परिणामस्वरूप जिस विशिष्ट समाज का ढ़ांचा खड़ा हुआ उसमें विविधताएं आई पर समय के साथ-साथ बदलाव भी आया। बहुत सारी प्रथाएं एक समाज से दूसरे समाज में आई और उन्हें समादर भी मिला।

आज देश के सामने उभरती समस्याओं के बीच सबसे बड़ी समस्या पारस्परिक सद्भाव की कमी की है। इस कमी के कारण लोग एक-दूसरे पर भरोसा कम करने लगे है और संदेह से दूरी बढ़ती गई।[2] पर आज भी ऐसे अवसर दिखते हैं जब किसी दरगाह या फकीर पीर की मजार पर या किसी सिद्ध की धुरी पर अधिकांशत: बिना किसी धार्मिक भेदभाव के लोग एकत्रा होते है। जीने की कामना सबकी एक ही तरह की है।[3]

मानवाधिकार एवं मानव गरिमा की धारणों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् वह अधिकार जो मानव गरिमा को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं, उन्हें मानवाधिकार कहा जाता है। मानवाधिकारों का सम्बन्ध मानव की स्वतन्त्राता, समानता एवं गरिमा के साथ जीने के लिए स्थितियाँ उत्पन्न करने से होता है। मानवाधिकार ही समाज में ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं जिसमें सभी व्यक्ति समानता के साथ निर्भीक रूप से मानव गरिमा के साथ जीवन व्यतीत कर पाते हैं। प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक हेरोल्ड लास्की के अनुसार, ''अधिकार सामाजिक जीवन की वह परिस्थितियाँ होती हैं, जिनके अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर पाता।'' उल्लेखनीय है कि मानवाधिकारों को मूल अधिकार, आधारभूत अधिकार, नैसर्गिक अधिकार व जन्मजात अधिकार भी कहा जाता है।[4]

मानवाधिकारों के सम्बन्ध में भारतीय परम्परा को देखें तो स्पष्ट होता है कि पुरातनकाल में हमारे यहाँ मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सभी प्रकार की आवश्यक व्यवस्थाएँ की गई हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सार्वभौमिक सिद्धान्त हमारी संस्कृति का मूल रहा है , जिसमें न केवल देश, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के सभी प्राणियों को एक ही परिवार का सदस्य माना गया है।[5]

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा एवं भारत के संविधान में उल्लिखित मूल अधिकार सामान्य जनों को पिछले 65 वर्षों में उपलब्ध नहीं कराया जा सका है जिसके कारण पिछले वर्षों में मानवाधिकारों के हनन की घटनाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है और उसने लोकतांत्रिक ढ़ाँचे को कठिनाईयों से घेर दिया है। देश के अधिकांश जनता के लिए मौलिक अधिकारों का तब तक कोई मतलब नहीं रह जाता है जबतक राज्य के निर्देशक तत्त्वों की नींव पर नयी समाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था खड़ी

नहीं की जाय। संविधान के तहत भारत का उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय मूल अधिकारों को लागू किए जाने के सम्बन्ध में सरकार को निदेश जारी कर सकते है लेकिन निर्देशक तत्वों के मामले में ऐसा नहीं कर सकते। वर्त्तमान परिदृष्टि में आज सारा राष्ट्र मानवाधिकार के संदर्भ में अत्यन्त जटिलता एवं विविधता का सामना कर रहा है। भारत के नागरिकों को संवैधानिक मूल अधिकार एवं संयुक्त राष्ट्र संघ का मानवाधिकार संबंधी सार्वभौम घोषणा से वंचित किए जाने के चलते उग्रवाद, आतंकवाद और नक्सलवाद आदि द्वारा हिंसात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती रही है। फलत: मानवाधिकार अत्यन्त ही विविधता एवं जटिलता का अनुभव एवं सामना कर रहा है।[6]

आज भारतीय समाज हिंसा और घृणा के दौर से गुजर रहा है। आज की अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, अल्पसंख्यकों, पिछड़ों एवं गरीब संवर्ग जातियों पर गंभीर अत्याचार होते हैं। पुलिस की हिरासत में आज भी मौतें हो रही है और ये मौते केवल ग्रामीण एवं दूर दराज के क्षेत्रा में ही नहीं बल्कि राजधानी दिल्ली में भी हो रही है। हवालात में बंद कैदियों पर अमानवीय दंड दिया जाता है। महिला सशक्तिकरण की घोषणा के बावजूद भी महिलाओं पर अत्याचार की घटना बढ़ती ही जा रही है। सन् 2001 में देश भर में महिलाओं पर विभिन्न प्रकार के अत्याचारों के 119964 मामले प्रतिवेदित हुए हैं। पुरुष एवं महिलाओं को समानता का दर्जा हासिल होने पर भी आजादी के 58 वर्ष बाद समाज की सोच नहीं बदली है। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में महिलाओं को शिक्षित बनाने और उनके विकास पर जोड़ दिया गया है। लेकिन उनके लिए ठोस नीतियाँ नहीं बनायी गई। भारतीय समाज नारी के साथ सदियों से भेदभाव बरतता रहा है तथा कई सामाजिक कुरीतियों के चलते दहेज, बाल विवाह, भ्रूण हत्या जैसे नासूर उसके विकास में बाधक बने रहे। अत: आवश्यकता इस बात की है कि समाज और सरकार दोनों को इसके लिए अपनी जिम्मेवारी का निर्वहन करना पड़ेगा और महिला सशक्तिकरण के लिए महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक सोच में बदलाव लाकर उनकी उन्नति के पर्याप्त अवसर बनाने का ठोस प्रयास करना पड़ेगा।[7]

मानवाधिकार का संबंध मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में होनेवाली मृत्यु से भी है और ऐसी घटनायें कई राज्यों के साथ-साथ उत्तर बिहार में भी घटी है जिनमें जीविका का आधार क्षीण जाने से या परिवार का भरण-पोषण करनेवाले के अक्षम अथवा अशक्त बन जाने पर उनके पूरे परिवार ने आत्महत्या कर ली। प्राथमिक शिक्षा, चिकित्सा सुविधा तथा शुद्ध पेयजल की आपूर्ति तथा लघु एवं सीमान्त किसानों को कृषि की मूलभूत आवश्यक सामग्री उपलब्ध नहीं कराना या बड़े खेतीहरों को अपनी जमीन जोतने से बलात् रोका जाना मानवाधिकार हनन के बोलते प्रमाण है। इस प्रकार पिछले एक दशक में उत्तर बिहार में मानवाधिकार का हनन व्यापक स्तर पर हुआ है। उत्तर बिहार के इलाकों में हुए लगातार बाढ़ की तबाही एवं इससे हुई बर्बादी, अकाल का प्रकोप, भुखमरी, बेकारी की समस्या, जनसंख्या का विस्थापन एवं पलायन आदि समस्यायें मानवाधिकार के हनन के ज्वलन्त उदाहरण है जो आलेख का गंभीर मुद्दा है। उत्तर बिहार में मानवाधिकार का हनन जिस रूप में हुआ है कि उससे राज्य का सर शर्म से झुक गया है। यह एक ऐतिहासिक विषय बनकर रह गया है कि उत्तर बिहार में बच्चों, महिलाओं तथा निर्दोष लोगों की निर्मम हत्यायें, पुलिस उग्रवादी संगठनों तथा अपराधिक गिरोहों द्वारा किए जा रहे हैं। दलितों तथा जनजातियों तथा गरीब सवर्णो पर गंभीर अत्याचार तो नये-नये रूप पकड़ते रहते हैं तथा उनके द्वारा हत्यायें तथा सामूहिक नरसंहारों की जो कड़ी बना दी गई है, उससे जन-जीवन भयत्रास्त एवं अस्त-व्यस्त बन गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि उत्तर बिहार में सामाजिक, साम्प्रदायिक और जातीय तनाव किस वीभत्स मुकाम पर पहुँच गया है, जो आज समाज के सामने प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है। प्रस्तुत आलेख के जरिये मानवाधिकार हनन की विभिन्न समस्याओं को तलाशने का प्रयत्न किया जायेगा तथा उसके निदान की सम्भावनाओं का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा, ताकि उत्तर बिहार के समाज के विभिन्न वर्गों के बीच समानता समरसता, सद्भाव एवं समुन्नता की स्थिति बहाल किया जा सके।[8]

प्रस्तुत आलेख में उत्तर बिहार के विभिन्न जिले अर्थात पश्चिमी चम्पारण से पूर्णिया एवं किशनगंज तक पड़ने वाले लोगों के जीवन में मानवाधिकार हनन से जो प्रभाव पड़ा है, मानवाधिकार हनन के फलस्वरूप जो अमानवीय स्वरूप उभर कर आया है तथा आम जन-जीवन के सभी पहलुओं में जो एक आमूल परिवर्तन का दौर परिलक्षित हुआ है, उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन इस आलेख के जरिये करने का प्रयास किया गया है।[9]

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार संरक्षा विषय पर पर्याप्त चिंतन , परिसंवाद, संगोष्ठि, वाद-विवाद आदि व्यापक पैमाने पर हुए हैं जिनसे विषय-वस्तु के निरुपण एव विश्लेषण में बहुमूल्य सहायता मिल सकती है। परन्तु बिहार जैसा पिछड़ा एवं अविकसित राज्य के उत्तरी हिस्सा में जिस रूप में मानवाधिकार का हनन हुआ है, वह बिल्कुल ही जाँच का विषय बन जाता है।

उत्तर बिहार में सामाजिक न्याय का एक संकीर्ण तथा विकृत रूप उभर कर सामने आया है, लोकतंत्रा कमजोर हुआ है तथा मानवाधिकार का व्यापक तौर पर हनन हुआ है जो एक ज्वलंत विषय है। मानव अधिकार सुरक्षा अधिनियम 1993, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग तथा मानव अधिकार न्यायालयों का सृजन एवं संचालन, गैर सरकारी संस्थाओं के कतिपय प्रस्तावों, संसद एवं राज्य विधान सभा एवं परिषद में मानवाधिकार हनन के कतिपय दिए गए सुझावों, प्रस्तावों, प्रतिवेदनों आदि से पर्याप्त सामग्रियाँ प्राप्त होने की पर्याप्त संभावनाएँ है।

इस बहुलता और वैकल्पिकता की स्वीकृति के लिए स्थानीय स्तर पर समुदायों में परस्पर संबध के विकास की चेष्टा की आवश्यकता है। स्थानीय का विलोपन धीरे-धीरे व्यक्ति और राज्य के बीच किसी भी इकाई को नहीं रहने देता है। तब संकट में पड़े व्यक्ति के लिए एक समुदाय का समर्थन कम हो जाता है। निजी स्तर पर दूरियां बढ़ती जाती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों के द्वारा स्थानीय तर्कों के आधार पर स्थानीय इतिहास और भूगोल के भरोसे स्थानीय अर्थव्यस्था और सांस्कृति बुनावट को ध्यानमें रखते हुए सांप्रदायिक सद्भाव को और प्रगाढ़ तथा मजबूत बनाने की ओर अग्रसर हों जरथुष्ट्; ने कहा था-

'' पूजा के हजारों मंदिरों का निर्माण करने से ज्यादा अच्छा है कि अगर हम किसी
एक व्यक्ति को खुशी दें सके।''

बाहर के थोपे गए, उपदेश, कानून और उचित और अनुचित के बीच का विवेक एक सीमा तक ही कारगर हो सकता है। किन्तु इस बात का इतिहास गवाह है कि जिस विवेक और प्रेमभाव को स्थानीय परिचय और स्थानीय बनावट का समर्थन नहीं हासिल है उसकी नींव कमजोर होती है और एक मामूली उलट-फर से उसका समाजशास्त्रा बिगड़ सकता है प्रकृति और मनुष्य के बीच सामंजस्य बिठाकर सम्मानित जीवन जीने के मनुष्य के नैसार्गिक अधिकार की भावनात्मक गूंज से निकली कविवर रवींद्रनाथ टैगोर की ये पंक्तियां संपूण्र मानव जाति का सबब बन सकती हैं:

मैं जीना चाहता हूँ
इंसानों की फौज के बीच में
मैं जीना चाहता हूँ
उगते सूरज की फूटती किरणों के बीच में
सुदंरता और सुगंध के बीच में
मेरी इच्छा है काश मिल जाए
मुझे थोड़ी - सी जगह जीने वालों के दिलों
के बीच में।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रीय मानवाधिकार हनन में उत्तर प्रदेश नं0-1' अरूण कुमार त्रिपाठी, 28 मार्च 2006।
2. अंतर्राष्ट्रीय विधि एवं मानवाधिकार - डॉ0 बसंती लाल बावेल
3. हिन्दुस्तान, पटना, 10जनवरी 2006
4. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की वार्षिक रिपोर्ट-2002-03, पृ0 सं0 -202, केस न0 7882/95-96/रा0 मा0अ0आ0
5. एशिया का आधुनिक इतिहास - सत्यकेतु विद्यालंकार
6. 10 दिसम्बर 2005 को मानवाधिकार पर आयोजित एक कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी।
7. वही
8. संपादकीय 'दैनिक जागरण' मानवाधिकार हनन पर चिंता, 12 दिसम्बर 2005

9 वही

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संदर्भ में प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन करना

डॉ० लोकपति त्रिपाठी

अध्ययन की आवश्यकता-

हमारे समाज में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोग पाये जाते हैं। व्यक्ति के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उसके मानसिक स्वास्थ्य, आकांक्षा स्तर, का उसके शैक्षिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन के परिणाम बताते हैं कि जिन परिवारों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होती है, उन परिवारों के बच्चे विद्यालय में अपने साथियों के बीच उचित समायोजन नहीं कर पाते हैं जिससे उनमें हीन भावना और मानसिक विकार पैदा होते हैं। कन्ज्यूमर वॉच डॉग हिव्च न्यूयार्क (2011द्धने अपने सर्वेक्षण में पाया कि हविश्व में प्रत्येक सातवॉ व्यक्ति मानसिक समस्याओं से ग्रस्त है।''

यहाँ पर महत्वपूर्ण प्रष्न यह है कि आखिर ये लोग क्यों उपेक्षित हैं ?समग्र रूप से दृष्टिपात करने पर एक महत्वपूर्ण व प्रमुख कारक के रूप में यह सामने आता है कि शैक्षिक अवसरों की विशमता यथा- षिक्षण संस्थाओं का असमान वितरण व उनके स्तर की असमानताओं आदि के कारण गरीबों के बच्चों को आधुनिक पब्लिक स्कूलों में प्रवेष का अवसर उनके भारी-भरकम शुल्क व अन्य खर्चों की वजह से नहीं मिल पाता है। जो कि आर्थिक रूप से समृद्ध परिवार के बच्चों को आसानी से सुलभ होता है जिसके कारण वे उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले बच्चों से मानसिक व बौद्धिक रूप से पिछड़ जाते हैं जिससे उनका समुचित शैक्षिक, सामाजिक व बौद्धिकविकास नहीं हो पाता है फलत: उनमें नकारात्मक आत्म का विकास होने लगता है।तथा ये लोग निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के कारण किंचित मात्रा में उपलब्ध शैक्षिक अवसरों का भी समुचित लाभ नहीं उठा पाते हैं। इन वर्गो के लोगों में निरक्षरता का प्रतिशत बहुत अधिक है। वर्तमान समय में बालक को शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु निरूपित किया गया है। औपचारिक शिक्षा के साधन के रूप में विद्यालयों ने यद्यपि समाज व राश्ट्र की अनेक अपेक्षाओं को पूर्ण किया है। किन्तु समाज द्वारा विद्यालय शिक्षा से जो आपेक्षाएं हैं उनमें अनेक अपेक्षाओं की पूर्ति करने में विद्यालय प्राय: असफल रहे हैं। प्राय: बालक अधिकांष समय माता तथा परिवार के अन्य सदस्यों के साथ ही गुजारता है जिसके फलस्वरूप उनके व्यवहार का सीधा प्रभाव बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य एवं उनके व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। परिवार व समाज से प्राप्त होने वाले विभिन्न संवेगात्मक अनुभवों व बालक की मानसिक योग्यताओं के विकास में घनिश्ठ सम्बन्ध है। संतोशजनक शैक्षिक व सामाजिक अनुभवों से बालक को सीखने की प्रेरणा मिलती है एवं उसका स्वाभाविक व समरस विकास होता है। इसके विपरीत कटु शैक्षिक व सामाजिक अनुभवों की उपस्थिति में बालक में भावात्मक ग्रन्थियॉ विकसित हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप उसका विकास एकांगी या फिर कुंठित होने लगता है।

वर्तमान में शिक्षा की सार्थकता वहीं तक है जिस सीमा तक यह मानवीय आवष्यकताओं, अपेक्षाओं की पूर्ति कर सके। आज की चकाचौंध भरी भौतिकवादी, पूँजीवादी, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था में व्यक्ति की अपेक्षाओं एवं आकांक्षाओं का स्तर अत्यंतऊँचा होता है और उसकी पूर्ति न होने पर व्यक्ति कुण्ठा व निराषा का षिकार हो जाते हैं। फलत: उसका मानसिक स्वास्थ्य बुरी तरह से प्रभावित होता है।

प्रयुक्त तकनीकी पदों की संक्रियात्मक परिभाषा :

सामाजिक आर्थिक स्थिति: सामाजिक आर्थिक स्थिति का तात्पर्य विद्यार्थियों के समाज की विभिन्न जाति शहरी ग्रामीणनिवास स्थान पारिवारिक स्थिति,जन्म क्रमपास पडोस घर में भौतिक संसाधनों की उपलब्धता तथा माता पिता का पद एवं अर्थिक स्तर से सम्बंधित है

मानसिक स्वास्थ्य : मानसिक स्वाास्थ्य का अर्थ छात्र द्वारा अपनी भावनाओं, इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं औरआदर्शों को वास्तविकता के धरातल पर अपने आपको पर्यावरण के अनुसार ढालने और उसके साथसमायोजन करने अथवा पर्यावरण को अपने अनुकूल ढालने और उसके साथ समायोजन करने की योग्यता से है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर : प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भ में उच्चतर माध्यमिक स्तर से तात्पर्य माध्यमिक शिक्षापरिशद्, इलाहाबाद से मान्यता प्राप्त उत्तर प्रदेश के बस्ती जनपद के समस्त अनुदानित एवं गैर अनुदानिततथा ग्रामींण एवं शहरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों से है।

अध्ययन के उद्देश्य:-उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना-

$H0_{1.}$ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संदर्भ में सार्थक अन्तर नहीं है।

$H0_{1.1}$ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् उत्तम, मध्यम व निम्नसामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है।

$H0_{1.2.}$ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है।

$H0_{1.3.}$ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है।

$H0_{1.4.}$ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिकस्थिति एवं क्षेत्र विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं।

$H0_{1.5.}$ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के क्षेत्र विभेद एवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं।

$H0_{1.6.}$ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं।

$H0_{1.7.}$ उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सामाजिक -आर्थिक स्थिति, क्षेत्र विभेदएवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं।

शोध अध्ययन की विधि : प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध उद्देश्यों को दृष्टिगत करते हुए शोधकर्ता ने सर्वेक्षणशोध विधि का प्रयोग किया है।

जनसंख्या एवं न्यादर्श : प्रस्तुत शोध अध्ययन की जनसंख्या के रूप में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के उच्चतर माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं को सम्मलित किया गया है। शोधकर्ता ने न्यादर्श काचयन बहुस्तरीय यादृच्छिक प्रतिदर्षन विधि से निम्नांकित तीन स्तरों पर किया है-3-प्रस्तुत अध्ययन बस्ती जनपद के केवल यू0पी0 बोर्ड, इलाहाबाद/सी0बी0एस0ई0/आई0सी0एस0सी0 बोर्ड से मान्यता प्राप्तअनुदानित एवं गैर अनुदानित ग्रामीण एवं शहरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों तक ही सीमित है।

शोधकर्ता ने न्यादर्श का चयन बहुस्तरीय यादृच्छिक प्रतिदर्षन विधि से निम्नांकित तीन स्तरों पर किया है -

• उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अनुमोदित उ0 प्र0 के बस्ती जनपद के विकास खण्डों का चयन -

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अनुमोदित उ0 प्र0 के बस्ती जनपद के चौदह विकास खण्डों में से शोधकर्ता ने साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्षन विधि (ैपउचसम त्ंदकवउ ैउचसपदहद्धद्वारा पॉच विकास खण्डों को न्यादर्ष के रूप में चयनित किया है।

• उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का चयन:-

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अनुमोदित उ0 प्र0 के बस्ती जनपद के चौदह विकास खण्डों में से न्यादर्ष के रूप में चयनित पॉच विकास खण्डों में अवस्थित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों का शोधकर्ता द्वारा प्रत्येक विकास खण्ड से साधारण यादृच्छिक प्रतिदर्षन विधि (ैपउचसम त्ंदकवउ ैउचसपदहद्ध से न्यादर्श के रूप में चयन निम्नांकित ढंग से किया गया है -

तालिका सं0 -1: चयनित उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

Ø0 l0	fodkl [k.M dk uke	mPprj ek/;fed fo|ky;ksa dh la[;k
(i)	कप्तानगंज	5
(ii)	गौर	5
(iii)	बस्तीसदर	5
(iv)	हर्रैया	5
(v)	बहादुरपुर	5
योग		25

• उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों का चयन :-

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा अनुमोदित उ0 प्र0 के बस्ती जनपद के पॉच विकास खण्डों के न्यादर्ष के रूप में चयनित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं को उनकी क्षेत्रीयता व लिंग के आधार पर विभिन्न स्तरों में वर्गीकृत कर असमानुपाती स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिदर्षन विधि (छवद च्तवचवतजपवदंजम ैजतंजपपिमक त्ंदकवउ ैउचसपदह द्धद्वारा छात्र-छात्राओं को न्यादर्श के रूप में चयन निम्नांकित ढंग से किया गया है -

तालिका- : 2 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत्चयनित विद्यार्थी

Ø0 l0	mPprj ek/;fed fo|ky;ksa dk izdkj	mPprj ek/;fed fo|ky;ksa dh la[;k	Nk=ksa dh la[;k	Nk=kvksa dh la[;k	;ksx
(i)	“kgjh mPprj ek/;fed fo|ky;	13	136	144	280
(ii)	xzkeh.k mPprj ek/;fed fo|ky;	12	116	108	224
	;ksx	25	252	252	504

शोध अध्ययन की विधि-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध उद्देश्यों को दृष्टिगत करते हुए शोधकर्ता ने सर्वेक्षण शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त शोध उपकरण-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता ने निम्नांकित शोध उपकरणों का प्रयोग किया है जिनका विवरण अग्रांकित तालिका में निबद्ध है-

तालिका संख्या-3:चर तथा उनसे सम्बन्धित उपकरण

Ø0l0	lEcfU/kr pj	midj.k
1.	सामाजिक–आर्थिक स्थिति	सुनील कुमार उपाध्याय व अलका सक्सेना द्वारा प्रमापीकृत सामाजिक–आर्थिक स्तर मापनी ।
2.	मानसिक स्वास्थ्य	डॉ0 अरूण कुमार सिंह व डॉ0 अल्पना गुप्ता द्वारा प्रमापीकृत मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण माला ।

प्रयुक्त सांख्यिकीयप्रविधियां :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में संकलित आंकड़ों की प्रकृति के अनुसार शोधकर्ता ने आंकड़ों के व्यवस्थापन व विष्लेशण हेतु त्रिमार्गीय प्रसरण विष्लेशण एवं द्विमार्गीय काई वर्ग आदि सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया है।

तालिका-4 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, क्षेत्र विभेदएवं लिंग विभेद के विभिन्न स्तरों पर मानसिक स्वास्थ्यप्राप्तांकों के त्रि-मार्गीय प्रसरण विष्लेशण की सारांष सारणी

L=kr	df	SS	MS	F	lkFkZdrk Lrj
सामाजिक–आर्थिक स्थिति	2	4796.838	2398.419	16.438	.01 पर सार्थक
क्षेत्र– (शहरी / ग्रामीण)	1	59.432	59.432	0.407	दोनों स्तरों पर असार्थक
लिंग– (छात्र / छात्राए)	1	1948.573	1948.573	13.355	.01 पर सार्थक
(सा0आ0स्थिति xक्षेत्र)	2	158.3323	79.166	0.543	दोनों स्तरों पर असार्थक
(क्षेत्र x लिंग)	1	1924.95	1924.95	13.193	.01 पर सार्थक
(सा0आ0स्थि x लिंग)	2	86.70223	43.351	0.297	दोनों स्तरों पर असार्थक
(सा0आ0स्थिति x क्षेत्र x लिंग)	2	-34091.1	-17045.55	116.82	.01 पर सार्थक
त्रुटि	492	71784.1	145.903		
कुल	503	46667.84	92.779		

F- अनुपात का (df =k 1,492) पर सारणी मान F.05 =k 3.85 व F.01 =k 6.66

F- अनुपात का (df =k 2,492) पर सारणी मान F.05 =k 3.00 व F.01 =k 4.62

$H0_{1.1}$ उपरोक्त सारणी से स्पश्ट है कि F-अनुपात का अवकलित मान (F=k16.438) मुक्ताषों (df=k2,492) के लिए सारणी मान F.01=k4.62 से अधिक है जो कि .01 स्तर पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना ‘उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् उत्तम, मध्यम व निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है।’ को अस्वीकृत किया जाता है।

प्रदत्तों के विष्लेशणोंपरान्त प्राप्त परिणामों से यह विदित होता हैं। कि उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् उत्तम, मध्यम व निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर है।इसका सम्भावित कारण यह हो सकता है कि विद्यार्थियों का सामाजिक-आर्थिक स्तर यथा-माता-पिता का शैक्षिक स्तर, सामाजिक संस्थिति, जाति, घर, परिवार व सुमदाय का वातावरण तथा उनकी आर्थिक स्थिति आदि विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य पर सीधे प्रभाव डालती है।बालकों के माता-पिता/अभिभावकों की अनुकूल सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां उनके मानसिक स्वास्थ्य को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। जबकि प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां उनके मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य से सम्बंधित अन्य अध्ययनों में पाया गया कि बालकों के घर तथा उनके स्कूल का वातावरण, उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है (वानी,मंजू इ0, 2000), बालकों का मानसिक स्वास्थ्य उनके माता-पिता/अभिभावकों के शैक्षिक व व्यावसायिक स्तर पर निर्भर करता है (आनन्द, 2008)।

$H0_{1.2}$ F-अनुपात का अवकलित मान (F=k0.407) मुक्ताषों (df=k 1,492) के लिए सारणी मान F .05=k3.85 से कम है जो कि दोनों स्तरों पर असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना 'उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है।' को स्वीकृत किया जाता है।

उपरोक्त सारणी से यह विदित होता है कि बस्ती जनपद के शहरी व ग्रामीण विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्यमें सार्थक अन्तर नहीं है। इसका कारण यह हो सकता है कि वर्तमान सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने शहरी एवं ग्रामीण सभी को आधुनिक सूचना एवं संचार के संसाधन उपलब्ध कराकर शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियोंके बीच अन्तर कम किया है। नायर,एच0 (2007) ने पाया कि प्रायः ग्रामीण विद्यार्थी भी शहरी विद्यार्थियों की तरह सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के साधनों का पर्याप्त प्रयोग करते हैं

$H0_{1.3}$F-अनुपात का अवकलित मान (F=k 13.355) मुक्ताषों (df =k 1,492) के लिए सारणी मान F.01=k6.66 से अधिक हैं। जो कि.01स्तर पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना 'उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है।' को अस्वीकृत किया जाता है।

उपरोक्त सारणी से विदित होता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्र एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि उपरोक्त जनपद के अधिकांष लोग निम्न व मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्तर के हैं। जो कि प्रायः अशिक्षित या फिर अल्प शिक्षित है तथा ये अपने बच्चों की मूलभूत आवष्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। तथा बालक को बालिकाओं की अपेक्षा अधिक वरीयता देते हैं। जिससे बालिकाओं में विभिन्न प्रकार के तनाव कुन्ठा निराषा की भावना शुरू से ही घर कर जाती है।जिससे वे कुसमायोजन का षिकार हो जाती है। इतना ही नहीं बालक अपने घर से बाहर के कार्य आसानी से स्वयं निपटा लेते हैं जिससे उनमें आत्मविश्वास का स्तर उच्च होता हैं। जो कि उनके मानसिक स्वास्थ्य को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है जबकि बालिकायें अपने घर से बाहर के कार्य के लिये प्रायः दूसरों पर निर्भर होती हैं। इसके साथ ही साथ उन्हें तरह-तरह की सामाजिक वर्जनाओं का भी षिकार होना पड़ता हैं। जिससे वे महत्वाकांक्षी होने के बावजूद भी हीन भावना का शिकार हो जाती हैं। जो कि उनके मानसिक स्वास्थ्य को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करता है। जैसा कि कुलकर्णी (2009) ने अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि पुरुषों की तुलना में महिलायें अधिक महत्वाकांक्षी थी पर उनमें आत्मविश्वास का स्तर अपेक्षाकृत कम था।

$H0_{1.4.}$ F-अनुपात का अवकलित मान (F=k0.543) मुक्ताषों (df=k2,492) के लिए सारणी मान $F_{.05}$=k3.00 से कम है जो कि दोनों स्तरों पर असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना श्उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं क्षेत्र विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं। को स्वीकृत किया जाता है।

उपरोक्त परिणामों से यह विदित होता हैं। कि सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा क्षेत्र विभेद (शहरी एवं ग्रामीण) बालक एवं बालिकाओं के मानसिक स्वास्थ्य के लिये अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि शहरी एवं ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में प्रायः सभी प्रकार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के लोग पाये जाते हैं इसके साथ ही आधुनिक शिक्षा एवं संचार के संसाधनों के बढ़ते उपयोग ने ग्रामीण एवं शहरी विभेद को कम किया है। पाण्डेय, डी0 वमिश्रा, एस0 (2011) ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण एवं शहरी छात्रों की मनोवृत्तियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

$H0_{1.5}$ F-अनुपात का अवकलित मान (F=k13.193) मुक्ताषों (df=k1,492) के लिए सारणी मान $F_{.01}$=k6.66 से अधिक है जो कि(.01) स्तर पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना 'उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के क्षेत्र विभेद एवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं।' को अस्वीकृत किया जाता है।

प्रदळों के उपरोक्त विष्लेषण से यह स्पष्ट है किक्षेत्र एवं लिंग विभेद छात्र एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया करते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि प्रायः ग्रामीण लोगों में शहरी लोगों की अपेक्षा शिक्षा का आधिक अभाव है। तथा ये बालक को बालिकाओं की अपेक्षा अधिक वरीयता देते हैं। जिससे बालिकाओं में हीन भावना शुरू से ही घर कर जाती है। कुलकर्णी (2009) ने अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला किबालिकाओं में आत्मविश्वास का स्तर अपेक्षाकृत कम था।

$H0_{1.6}$ F-अनुपात का अवकलित मान (F=k 0.297) मुक्ताषों (df=k2,492) के के लिए सारणी मान $F_{.05}$ =k3.00से कम है जो कि दोनों स्तरों पर असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना 'उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं।' को स्वीकृत किया जाता है।

प्रदत्तों के उपरोक्त विष्लेषण से यह विदित होता है कि विद्यार्थियोंकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति वलिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते है। जिसका कारण यह हो सकता है कि बस्तीजनपद के अधिकांश लोग प्रायःमध्यमव निम्न मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोग हैं। जो कि प्रायः अशिक्षित या फिर अल्प शिक्षित है तथा इनकी सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ लगभग समान हैं। पाण्डेय एवं पाठक (2011) ने पाया कि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के अभिभावकों की अपने पोश्यों की परिवरिश के प्रति मनोवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है इसी प्रकार एण्डरसन, वानेल व सोफेन (1996) ने पाया कि अभिभावकों का अपने पाल्यों के प्रति व्यहार उनके आत्मसंप्रत्यय को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

$H0_{1.7}$ F-अनुपात का अवकलित मान (F=k116.82) मुक्ताषों (df=k2,492) के लिए सारणी मान $F_{.01}$=k4.62 से अधिक है जो fd.01स्तर पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना 'उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, क्षेत्र विभेदएवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं।' को अस्वीकृत किया जाता है।

प्रदळों के विष्लेशणोंपरान्त यह विदित होता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों का सामाजिक-आर्थिक स्थिति, क्षेत्र विभेद,व लिंग विभेद तीनों मिलकर संयुक्त रूप से विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया करते हैं।

परिणाम एवं व्याख्या

प्रदत्तों के विष्लेशणोपरान्त पाया गया कि उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं लिंग (छात्र/छात्राएं) के आधार पर उनके मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर है, जबकि क्षेत्रीयता (शहरी/ग्रामीण) के आधार पर उनके मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है तथा यह भी पाया गया कि उनके क्षेत्र विभेद एवं लिंग विभेद तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति, क्षेत्र विभेदएवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया करते हैंजबकिउनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं क्षेत्र विभेद तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के विश्लेषणोपरान्त प्राप्त परिणामों के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं-

विभिन्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर पाया गया। मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य, उच्च व निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उच्च पाया गया जबकि उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य, निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उच्च तथा मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की तुलना में अपेक्षाकृत निम्न पाया गया एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य, उच्च व मध्यम दोनों ही प्रकार की

सामाजिक-आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक निम्न पाया गया। शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में सार्थक अन्तर नहीं है जबकि छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य, छात्राओं की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उच्च पाया गया। तथा यह भी पाया गया कि उनके क्षेत्र विभेद एवं लिंग विभेद तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति, क्षेत्र विभेदएवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया करते हैं जबकि उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं क्षेत्र विभेद तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं लिंग विभेद उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिये सार्थक रूप से अन्तर्क्रिया नहीं करते हैं।

शैक्षिक निहितार्थ

देश के भविष्य का निर्माण देश की कक्षाओं में हो रहा है। राष्ट्र व छात्र के भविष्य को संवारने की जिम्मेदारी शिक्षक की होती है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षक लिंग, धर्म, जाति, सम्प्रदाय व क्षेत्र के आधार पर किसी प्रकार का पूर्वाग्रह न रखता हो तथा इन संकीर्ण विचारधाराओं से ऊपर उठा हुआ हो। एक शिक्षक को अपने षिक्षण कार्य को सफल बनाने के लिये यह आवष्यक है कि वह अपने छात्रों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं से परिचित हो तथा उसे कक्षा-कक्ष में अधिगम अनुभवों का आयोजन, अपने विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, पूर्वअनुभवों तथा उनकी आवष्यकताओं व आकांक्षाओं के अनुरूप करना चाहिये तभी वह अपनी कक्षा-कक्ष के सुविधा सम्पन्न तथा शैक्षिक, सामाजिक व आर्थिक रूप से वंचित सभी प्रकार के विद्यार्थियों का समुचित शैक्षिक विकास कर देश व राष्ट्र के निर्माण में योगदान कर सकता है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

- अग्रवाल, सुभाष चन्द (1983)। *ए कम्पेरेटिव स्टडी आफ लर्निंग स्टाइल आफ हाई एण्ड लो क्रियेटिव स्टूडेन्ट्स बिलांगिंग टू डिफरेन्ट इन्स्टीट्यूशन।* पी.एच.डी. डिजरटेशन, मेरठ यूनिवर्सिटी मेरठ, पृष्ठ संख्या 76।
- मोले, एस0 (1983)। *माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के सन्दर्भ में अध्ययन।* पीएच0 डी0 थीसिस इन एजूकेशन, रानी दुर्गावती यूनिवर्सिटी , जबलपुर पृश्ठ संख्या, म0प्र0, 76।
- एन0पी0ई0 (1986)। '*रिपोर्ट*', मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।
- मास्लो,ए0एच0(1987) *मोटिवेषन एन्ड पर्सनालिटी* (3rd रिवाइज्ड बाई हार्पर एन्ड रो न्यूयार्क)। रिट्राइब्ड आन 29/07/2011 फ्राम www.boston.com/bigpicture/ 2012/02/slum_life.html
- वुच, एम0 वी0(1987)। *तृतीय सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन।* एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 765।
- फेसटिंगर, एल0 (1989)। ए थेवरीटिकल इन्टरप्रेटेषन आफ षिफ्ट इन लेबलऑफएस्पाइरेषन। *इक्सटेन्डिंग साइकोलाजिकल फन्टियर,* न्यूयार्क : रसेल सेग फाउन्डेशन, पृष्ठ संख्या 324।
- राइडिग, ए0 व कीमा, जी0 (1991)। *लर्निंग स्टाइल्स ऑफ ट्वेल्थग्रेड स्टून्डेन्टस। इंगलीवुड क्लिफस,* न्यूजर्सी प्रेन्टिस हॉल, पृष्ठ संख्या 431।
- वुच, एम. वी.(1991)। *चतुर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन।* एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली।
- गुप्ता, शारदा एवं अग्रवाल, विषाल (2001)।*उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य, आत्मसंप्रत्यय, का उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर के सन्दर्भ में अध्ययन।* अप्रकाषित पीएच0डी0 थीसिस, शिक्षा संकाय, दुर्गावती यूनिवर्सिटी , जबलपुर, पृष्ठ संख्या 86।
- कन्जूमर वॉच डॉग हिव्च न्यूयार्क रिर्पोट (2011)। रिट्राइब्ड आन 20/02/2012 फ्राम http:// www.consumerwatchdog.org/ resources/ cwrateregulation.pdf
- वर्ल्ड डेवलपमेन्ट रिपोर्ट (2011)। रिट्राइब्ड आन 24/09/2011 फ्राम http://en. wikipedia.org/wiki/World_Development_Reportp27
- भारत (2012)। *जनसंख्या एवं नगरीकरण।* न्यू देहली : न्यू विषाल पब्लिकेशन।
- Cooly, C.H. (1902). *Human Nature and social order*. New York : Schockers Book. p.56.
- P. Soroken (1927). *Social and Cultural Mobility.* Newyork: free press p.15.
- Weber, max (1927). *Weber theory of social class* . Retrived on 24/09/2011 from www.brooklynsoc.org/courses/43.1/ weber.html
- Levin Kurt . (1930). *Philosphy of mind.* New delhi : T.M.H pp.104.

- J.D. Frank (1941). Recent studies of the level of aspiration .*Psychological Bulletin vol. (38)4* Vol.Apr. 1941, 218-226 *retrived on 29/04/2012 from* http://psycnet.apa.org/journals/bul/38/4/218/
- Raimy,V.C.(1943) . The self-concept as a factor in counseling and personality organization. *Doctoral Disseration*, Ohio state University, P.79.
- E.R.Hillgard (1948). *Theories of learning*. Neweyork:Apleton century craft 409 p.16.
- Fred. N.Kerlinger. (1973).A *foundation of behavioural research*. New delhi : sujit publication, p. 371.
- Parkins, R.C. (1959). *The self-concept:A Review of methodological considerations and measuring instrument.* (Revised Edition), Vol. I' lancoln university of Nebraska press. p. 76.
- Fifth All-india Educational Survey Vol. I & II (1992). New Delhi: Publication Department, N.C.E.R.T.

किन्नरों की संस्कृति व् सामाजिक स्थिति का अध्ययन (बिलासपुर जिले के चांटीडीह के विशेष सन्दर्भ में)

पूनम तिवारी

शोधार्थी एम.फिल (समाजकार्य), डॉ.सी.वी. रामन विश्वविद्यालय

डॉ० ऋचा यादव

विभागाध्यक्षसमाजकार्य विभाग, डॉ.सी.वी रामन विश्वविद्यालय करगी रोड
कोटा जिला बिलासपुर (छ.ग)

सारांश -

इतिहास की प्रत्येक संस्ख्रति में में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों का उल्लेख है। हिन्दू जैन बुद्धिस्ट धर्म ग्रन्थों और आम तौर पर भारतीय संस्ख्रति व कामसूत्र में भी ट्रान्सजेंडर का कई जगह उल्लेख किया गया है महाभारत में शिखंडी अवम वृहनल्ला जैसे ट्रान्सजेंडर व्यक्तियों का उल्लेख भी प्रमुखता से मिलता है ट्रांसजेंडर व्यक्ति आमतौर पर उस लिंग के व्यक्तियों के कपड़े पहनते हैं, जिस रूप में वे पहचाने जाते हैं। ट्रांसजेंडर व्यक्तियों की पहचान और उनका व्यवहार विशेषरूप से भारत में विस्तृत रूप से फैला हुआ है। समाज में उन्हें हिजड़ा के नाम से पुकारा जाता है। ट्रांसजेंडर शब्द को भी चौराहे से अलग किया जाता है , एक ऐसा शब्द जो शारीरिक यौन विशेषताओं के साथ पैदा हुए लोगों का वर्णन करता है ''जो पुरुष या महिला निकायों के विशिष्ट द्विआधारी धारणाओं को फिट नहीं करते हैं''। के विपरीत ट्रांसजेंडर है जो जिन व्यक्तियों के लैंगिक पहचान या अभिव्यक्ति उनको सौंपे सेक्स से मेल खाता है वर्णन करता है। जिस हद तक व्यक्ति अपनी बाहरी उपस्थिति के भीतर वास्तविक, प्रामाणिक और सहज महसूस करते हैं और अपनी वास्तविक पहचान को स्वीकार करते हैं, उसे ट्रांसजेंडर बधाई कहा जाता है। ट्रांसजेंडर के लिए यह एक बहुत छोटा लेकिन एक जटिल शब्द है। मूलशब्द- ट्रांसजेंडर, समलैंगिक, थर्ड जेंडर, ट्रांससेक्शुअल, हिजड़ा, संस्ख्रति

प्रस्तावना -

ट्रांसजेंडर वह व्यक्ति है, जो अपने जन्म से निर्धारित लिंग के विपरीत लिंगी की तरह जीवन बिताता है। जब किसी व्यक्ति के जननांगों और मस्तिष्क का विकास उसके जन्म से निर्धारित लिंग के अनुरूप नहीं होता है तब महिला यह महसूस करने लगती है कि वह पुरुष है और पुरुष यह महसूस करने लगता है कि वह महिला है। ट्रांसजेंडर एक जटिल शब्द है जिसका अर्थ बहुत कुछ हो सकता है। एक ट्रांस महिला वह होती है जो पुरुष के रूप में पैदा होता है लेकिन महिला के रूप में पहचाना जाता है उसे महिला

ट्रांसजेंडर कहा जाता है। एक ट्रांस पुरुष वह होता है जो महिला के रूप में पैदा होता है लेकिन पुरुष के रूप में पहचाना जाता है, उसे भी ट्रांसजेंडर कहते हैं। इसलिए कोई ऐसा व्यक्ति जो पूरी तरह ना तो पुरुष होता है और ना ही महिला उन्हें तीसरे लिंग के रूप में मान्यता दी गई है। समलैंगिकों की तरह ट्रांसजेंडर की कोई लैंगिक अनुरूपता नहीं होती है। ट्रांसजेंडर व्यक्ति पुरुष और महिला दोनों की तरफ आकर्षित हो सकता है। ट्रांसजेंडर कोई स्टाइल नहीं है। यदि एक पुरुष महिलाओं के कपड़े पहनना पसंद करता है तो इसका मतलब यह नहीं है कि वह ट्रांसजेंडर या हिजड़ा है। कुछ लोग अपने विपरीत लिंग के लोगों के कपड़े पहनते हैं लेकिन वे उस लिंग से नहीं पहचाने जाते हैं। एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति की पहचान ट्रांस महिला के रूप में हो सकती है, जिसका अर्थ किसी की आत्म-अवधारणा महिला हैय और पुरुष जननांग के साथ पैदा होने के बाद एक महिला के रूप में जीने की इच्छा रखता है या उसके साथ संक्रमण करता है। एक ट्रांस पुरुष महिला जननांग के साथ पैदा होने के बावजूद पुरुष के रूप में पहचान करता है। एक व्यक्ति जो गैर-बाइनरी है , वह सख्ती से पुरुष या महिला के रूप में पहचान नहीं करता है। बचपन की शुरुआत की तरह , एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति में लिंग डिस्फोरिया की लगातार भावनाएं हो सकती हैं – व्यक्ति के प्राथमिक और द्वितीयक लिंग लक्षणों और नामित लिंग और उस लिंग के बीच का अंतर जो उस व्यक्ति की पहचान करता है। जबकि कई बच्चे जो इस तरह की भावनाओं का अनुभव करते हैं, वे वयस्कता में ट्रांसजेंडर के रूप में पहचान करने के लिए नहीं जाते हैं, लंबे समय तक लिंग डिस्फोरिया वयस्कों में एक आम अनुभव है जो ट्रांसजेंडर के रूप में पहचान करते हैं।

ट्रांससेक्शुअल-एक ट्रांसजेंडर व्यक्ति ही होता है जो स्थायी रूप से अपना लिंग परिवर्तित करवा लेता है, जिसमें वह पहचाना जाता है। सर्जरी और हार्मोन चिकित्सा के द्वारा उसके शरीर में परिवर्तन कर उस लिंग से मिलाया जाता है जिस रूप में वह पैदा हुआ होता है। लिंग परिवर्तित करवाने की इस प्रक्रिया में आमतौर पर कई साल लग जाते हैं।

थर्ड जेंडर-ज्यादातर ट्रांसजेंडर या ट्रांससेक्शुअल व्यक्ति, महिला या पुरुष के रूप में पहचाने जाते हैं लेकिन दूसरे लोग उन्हें इन दोनों से भिन्न रूप में अर्थात् थर्ड जेंडर के रूप में देखते हैं। हिंदू, जैन, बुद्धिस्ट धर्मग्रंथों और आमतौर पर भारतीय संस्ख्रति और यहां तक कि कामसूत्र में भी ट्रांसजेंडर के बारे में कई जगह उल्लेख किया गया है। भारत पहला देश है जहां 2014 के न्यायालय के फैसले में थर्ड जेंडर को कानूनी रूप से पहचान मिल चुकी है। ट्रांसजेंडर लोग और हिजड़े अब अपने पासपोर्ट और सरकारी दस्तावेजों पर पुरुष और महिला के अलावा थर्ड जेंडर का चयन कर सकते हैं।हालांकि थर्ड जेंडर के रूप में कानूनी मान्यता भारत जैसे देश में आये दिन ट्रांसजेंडरों के साथ होने वाले भेदभाव काहल नहीं है। जो लोग थर्ड जेंडर के अंतर्गत आते हैं वे अपना वैध जेंडर स्टेटस नहीं बदलवाना चाहते हैं क्योंकि आगे रोजगार, शादी और संपत्ति के अधिकारों में भी उनके साथ भेदभाव किया जाता है।

हिजड़ा-हजारों वर्षो से हिजड़े भारतीय संस्ख्रति का हिस्सा रहे हैं। हिजड़ा व्यक्ति वह है जो पुरुष के रूप में जन्म लेता है लेकिन महिला या थर्ड जेंडर के रूप में पहचाना जाता है। भारत में सभी ट्रांस व्यक्ति हिजड़ो के रूप में नहीं पहचाने जाते हैं। हालांकि कुछ धारणाओं के अनुसार ट्रांससेक्शुअल होना ही हिजड़ा होना है। दोनों पहचानों में अंतर होता है। कुछ हिजड़े अपने समुदाओं में एक साथ रहते हैं। वे महिलाओं की तरह कपड़े पहनते हैं। परंपरागत रूप से हिजड़ो ने कामुकता को पूरी तरह त्याग दिया है और समाज में उन्हें पवित्र रूप में देखा जाता है। आज भारत में हिजड़े कई तरह के भेदभावों का शिकार हैं। इनमें से कुछ सेक्स वर्कर के रूप में काम करते हैं क्योंकि उनके लिए रोजगार का कोई अन्य माध्यम मौजूद नहीं है। वे अक्सर कानून के हाथों या स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्र में अवहेलना का शिकार होते हैं।

ट्रांसजेंडर और कानून-

हाल के वर्षो में भारत में ट्रांसजेंडर लोगों के लिए कानूनी अधिकारों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। भारत में ट्रांसजेंडर लोग अब महिला, पुरुष या ट्रांसजेंडर के रूप में अपनी पहचान का चयन कर सकते हैं और अपने आधिकारिक दस्तावेजों पर भी इसका उल्लेख करने की मान्यता उन्हें प्राप्त है। वर्ष 2014 में सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रांसजेंडर को थर्ड जेंडर के रूप में पहचान की मान्यता प्रदान की और इनके साथ शिक्षा, काम, स्वास्थ्य देखभाल,आवास और अन्य मूलभूत अधिकारों को प्राप्त करने में उत्पन्न होने वाली

परेशानियों के समाधान के लिए कानूनी कार्यवाही की भी मांग की। इस कानून को वर्तमान में ट्रांसजेंडर लोगों के खिलाफ हिंसा और दुरुपयोग के अपराधीकरण के लिए पुनर्वितरण किया जा रहा है। साथ ही, कुछ क्षेत्रीय सरकारें यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठा रही हैं कि ट्रांसजेंडर लोग सामाजिक कल्याण योजनाओं से लाभान्वित होते रहें। ट्रांसजेंडर लोगों की एक लिंग पहचान या लिंग अभिव्यक्ति होती है जो जन्म के समय उनके लिंग से अलग होती है। कुछ ट्रांसजेंडर लोग जो एक लिंग से दूसरे लिंग में संक्रमण के लिए चिकित्सकीय सहायता की इच्छा रखते हैं, ट्रांससेक्शुअल के रूप में पहचान करते हैं। ट्रांसजेंडर , जिसे अक्सर ट्रांस के रूप में छोटा किया जाता है , वह भी एक छत्र शब्द है: इसमें ऐसे लोगों को भी शामिल किया गया है, जिनकी लिंग पहचान उनके असाइन किए गए लिंग (ट्रांस पुरुष और ट्रांस महिलाओं) के विपरीत है , इसमें वे लोग शामिल हो सकते हैं जो विशेष रूप से नहीं हैं मर्दाना या स्त्री (जो लोग हैं गैर-द्विआधारी या जेंडर , जिसमें बिगेंडर , पैंगेंडर , लिंगफ्लुइड या एजेंडर शामिल हैंऋ। ट्रांसजेंडर की अन्य परिभाषाओं में वे लोग भी शामिल हैं जो तीसरे लिंग के हैं , या तीसरे लिंग के रूप में ट्रांसजेंडर लोगों की अवधारणा करते हैं। ट्रांसजेंडर को शामिल करने के लिए ट्रांसजेंडर शब्द को मोटे तौर पर परिभाषित किया जा सकता है। ट्रांसजेंडर होना यौन अभिविन्यास से स्वतंत्र है। ट्रांसजेंडर लोगों को विषमलैंगिक, समलैंगिक, उभयलिंगी , अलैंगिक के रूप में पहचाना जा सकता है या उनके यौन अभिविन्यास को लेबल करने के लिए अस्वीकार किया जा सकता है। कई ट्रांसजेंडर लोगों को लिंग डिस्फोरिया का अनुभव होता है , और कुछ चिकित्सकीय उपचार जैसे हार्मोन रिप्लेसमेंट थेरेपी, सेक्स रिअसाइनमेंट सर्जरी या मनोचिकित्सा की तलाश करते हैं। सभी ट्रांसजेंडर लोग इन उपचारों की इच्छा नहीं रखते हैं, और कुछ उन्हें वित्तीय या चिकित्सा कारणों से नहीं कर सकते हैं। कई ट्रांसजेंडर लोगों को कार्यस्थल में भेदभाव का सामना करना पड़ता है और सार्वजनिक स्थान तक पहुँचने में और स्वास्थ्य सेवा कई स्थानों पर, उन्हें कानूनी रूप से भेदभाव से संरक्षित नहीं किया जाता है।

अध्ययन का तर्क-

आजादी के 70 वर्ष के पश्चात भी समाज का एक ऐसा तबका जो आजादी के बाद मिले अधिकारों से वंचित है मनुष्य के रूप में जन्म लेने के बावजूद किन्नर अभिशप्त जीवन जीने हेतु विवश हैद्य किन्नरों के साथ होने वाले सामाजिक भेद भाव से उनका मनोबल टूटता है, उनके लिए शिक्षा, रोजगार की व्यवस्था है न ही परिवार जैसी कोई इकाई है समय समय पर दुनिया में अंतरराष्ट्रीय मंचो पर मानवाधिकारों की बदतर स्थिति की चर्चा की जाती है लेकिन मूलभूत सुविधाओं से वंचित और समाज की प्रताड़ना के शिकार किन्नरों की स्थिति पर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता हैद्य 21वीं शताब्दी को अधिकारों का कल कहा जाता है जिसमे अंततः किन्नरों को तृतीय लिंग के रूप में पहचान प्राप्त हुई है सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रांसजेंडर को सामाजिक रूप से कमजोर वर्ग के रूप में अधिसूचित किया है शिक्षण संस्थान में दाखिला लेते वक्त या नौकरी देते वक्त ट्रांसजेंडर की पहचान तीसरे लिंग के रूप में की जाएगी, तृतीय लिंग को शिक्षा अवम नौकरी में आरक्षण दिया जायेगा निश्चित ही शासन के प्रयासों व् गैर सरकारी संगठनों के सहयोग से तृतीय लिंग समुदाय को समाज की मुख्यधारा से आबद्ध किया जा सकता हैद्य आवश्यकता इस बात की भी है की लोगों को इनके प्रति जागरूक किया जाये ताकि समाज से पृथक ये लोग सामाजिक सदस्य के रूप में जीवन व्यतीत कर सकेद्य अनुसन्धानकर्ता द्वारा उक्त विषय के अध्ययन का मूलभूत कारण समाज में किन्नरों के समुदाय की सामाजिक स्थिति का आंकलन करना समाज द्वारा उन पर हो रहे शारीरिक व् मानसिक अत्याचार से सम्पूर्ण समाज को अवगत कराना इनके जीवन यापन में होने वाली कठिनाइयों का अध्ययन करना, ताकि अनुसंधानकर्ता के प्रयास से किन्नर समुदाय के प्रति जनमानस व् शासन को आकर्षित किया जा सके तथा इनके सुगम जीवन हेतु लोगों में सहयोग की भावना व् विविध योजना निर्धारित की जा सके।

भारत में ट्रांसजेंडर्स के समक्ष आने वाली परेशानियाँ

ट्रांसजेंडर समुदाय की विभिन्न सामाजिक समस्याएँ जैसे- बहिष्कार, बेरोजगारी, शैक्षिक तथा चिकित्सा सुविधाओं की कमी, शादी व बच्चा गोद लेने की समस्या, आदि।

ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को मताधिकार वर्ष 1994 में ही मिल गया था, परंतु इन्हें मतदाता पहचान-पत्र जारी करने का कार्य पुरुष और महिला के प्रश्न पर उलझ गया।

इन्हें संपत्ति का अधिकार और बच्चा गोद लेने जैसे कुछ कानूनी अधिकार भी नहीं दिये जाते हैं।

इन्हें समाज द्वारा अक्सर परित्यक्त कर दिया जाता है, जिससे ये मानव तस्करी का आसानी से शिकार बन जाते हैं।

अस्पतालों और थानों में भी इनके साथ अपमानजनक व्यवहार किया जाता है।

सामाजिक तौर पर बहिष्कृत

भारत में किन्नरों को सामाजिक तौर पर बहिष्ख्रत कर दिया जाता है। इसका मुख्य कारण इन्हें न तो पुरुषों की श्रेणी में रखा जा सकता है और न ही महिलाओं की, जो लैंगिक आधार पर विभाजन की पुरातन व्यवस्था का अंग है।

इसका नतीजा यह होता है कि ये शिक्षा हासिल नहीं कर पाते हैं और बेरोजगार ही रहते हैं। ये सामान्य लोगों के लिये उपलब्ध चिकित्सा सुविधाओं का लाभ तक नहीं उठा पाते हैं।

इसके अलावा ये अनेक सुविधाओं से भी वंचित रह जाते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य -

1 किन्नर समुदाय की संस्ख्रति व् सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना।

2 किन्नर समुदाय की समाज में वास्तविक पहचान, जगह, समानता व् अधिकारों का अध्ययन करना।

3 किन्नर समुदाय की रोजगार की स्थिति, व् आर्थिक स्थिति को जानना।

4 किन्नर समुदाय के आय के साधन को जानना उनके लिए समाज में होने वाले उत्पीडन का अध्ययन करना।

5 किन्नरों की संस्ख्रति रहन-सहन उनकी जीवनचर्या, दिनचर्या व् रीति रिवाजों उनको मुख्य धारा से जोड़ने हेतु सामाजिक कार्य का अध्ययन करना व् उनके चहुमुखी विकास हेतु प्रयास करना।

अध्ययन का क्षेत्र-

प्रस्तुत अध्ययन में अनुसंधानकर्ता ने इस शोध कार्य के लिए छ.ग राज्य के बिलासपुर जिले के चांटी डीह मोहल्ले का चयन किया है जहाँ बिलासपुर क्षेत्र के किन्नर समुदाय के लोग मुख्यरूप से निवास करते हैं अनुसंधानकर्ता ने इनके दिनचर्या, जीवनचर्या, आर्थिक व् सामाजिक स्थिति व् संस्ख्रति का अध्ययन किया है।

शोध अभिकल्प-

शोधकर्ता द्वारा इस शोध हेतु अन्वेशनात्मक अनुसन्धान विधि अपने गई हैद्य जब किसी समस्या के सैधांतिक तथा व्यावहारिक पक्ष की पर्याप्त जानकारी नहीं होती तथा अनुसंधानकर्ता का उद्देश्य किसी विशेष किसी विशेष सामाजिक घटना के लिए उत्तरदाई कारणों को खोज निकालना होता है, तब अध्ययन के लिए जिस अनुसन्धान का प्रयोग किया जाता है उसे अन्वेशनात्मक अनुसन्धान कहा जाता हैद्य जिसके अंतर्गत समस्या के विषय में प्राथमिक जानकारी प्राप्त कर भावी अध्ययन की आधार शिला तैयार की जाती है जब विषय से सम्बंधित कोई सूचना अथवा साहित्य उपलब्ध न हो और विषय सैधांतिक अवम व्यावहारिक पक्ष के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करना हो, जिससे इस प्रकार के शोध के लिए अनुसंधानकर्ता को इन चरणों को अपनाना होता है साहित्य सर्वेक्षण, अनुभव सर्वेक्षण, सूचनादाताओं का चयन, उपयुक्त प्रश्न पूछना।

असंभावित निदर्शन विधि (उद्देश्यपूर्ण)- असंभावित शोध विधि में विज्ञान सम्मत कार्यविधि से शोध में और बोधपूर्ण, तथ्यान्वेषण, निश्चित उद्देश्यपूर्ण खोज द्वारा विषय की प्रसंग- घटनाओं, सूचनाओं, व्यक्ति की समस्या शंकाओं, दुविधाओं का निराकरण ढूँढना जिसमे विस्मृत और अलक्षित तथ्यों को आलोकित करना, नए तथ्यों की खोज करना, लक्षित विषय, वस्तु, घटना, समूह, स्थिति का सही सही विवरण जुटाना, जिसमे तथ्यों की जानकारी व् उसके परिणाम असंभावित अथवा विशिष्ट उद्देश्य को लेकर उसकी पूर्ती हेतु किया जाता है।

नमूने का आकार -अनुसंधानकर्ता द्वारा शोध हेतु छ.ग राज्य के बिलासपुर जिले के चांटीडीह क्षेत्र में रहने वाले किन्नर समुदाय के 40 उत्तरदाताओं से लिया गया है।

परिणाम- सम्बंधित शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा तथ्यों के संकलन के लिए बिलासपुर जिले के चांटीडीह मोहल्ले के समग्र किन्नरों में से 40 उत्तर दाताओं का चयन किया गया है तथा उनसे प्राप्त जानकारियों को एकत्रित कर तथ्यों का विश्लेषण करके परिणाम प्राप्त किया गया है जिन्हें ग्राफ के माध्यम से दर्शाया गया है

प्रश्न 1:- आप तृतीय वर्ग समुदाय में कब से सम्मिलित हुए हैं ?

तृतीय वर्गसमुदाय में सम्मिलितN=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
जन्म से	10	25
बाल्यावस्था से	21	52
युवावस्था से	9	23
प्रौढ़ावस्था से	0	0

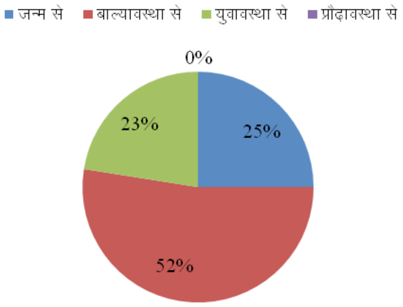

व्याख्या - तृतीय वर्ग समुदाय में (अ) जन्म से 10 (ब) बाल्यावस्था से 21 (स) युवावस्था से 9 (द) प्रौढ़ावस्था से 0लोग सम्मिलित हैं अतः इससे ज्ञात होता है की तृतीय वर्ग समुदाय में अधिकांश लोग बाल्यावस्था में सम्मिलित होते हैं

प्रश्न 2:- आप किन्नर समुदाय में कैसे सम्मिलित हुए है ?

किन्नर समुदाय में सम्मिलित N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वयं से	21	52.5
परिवार द्वारा बहिष्कार से	9	22.5
सामाजिक बहिष्कार से	4	10
अकेलापन होने से	6	15

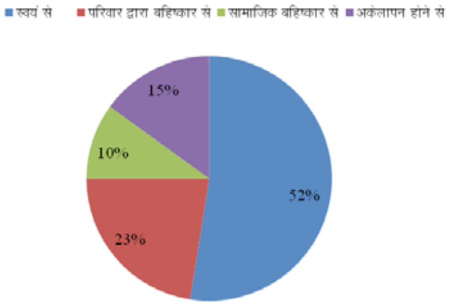

व्याख्या - किन्नर समुदाय में सम्मिलित (अ) स्वयं से 21 (ब) परिवार के बहिष्कार से 9 (स) सामाजिक बहिष्कार से 4 (द) अकेलेपन से 6 अत: इससे यह ज्ञात होता है की अधिकांश किन्नर स्वयं से ही समुदाय में सम्मिलित होते हैं

प्रश्न 3:- आपके समुदाय के प्रति समाज का रवैया कैसा है ?

समुदाय के प्रति समाज का रवैया N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
सामान्य	16	40
असामान्य	24	60
संतोषजनक	0	0
निंदात्मक	0	0

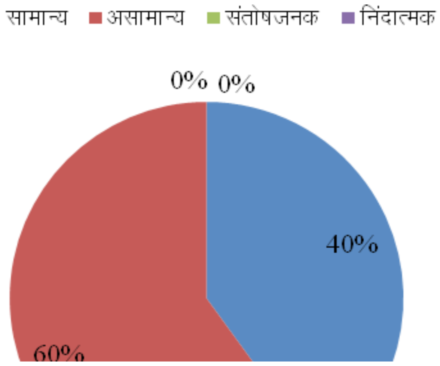

व्याख्या - किन्नर समुदाय के प्रति लोगों का रवैया (अ) सामान्य 16 (ब) असामान्य 24 (स) संतोषजनक 0 (द) निंदात्मक 0 अत: इससे यह ज्ञात होता है की लोगों का रवैया किन्नरों के प्रति असामान्य है

प्रश्न 4:- आप अपने जीवन निर्वहन हेतु क्या साधन अपनाते हैं ?

जीवन निर्वहन हेतु साधन N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
व्यवसाय	0	0
भिक्षावृत्ति	39	97.5
नौकरी	0	0
अन्य	1	2.5

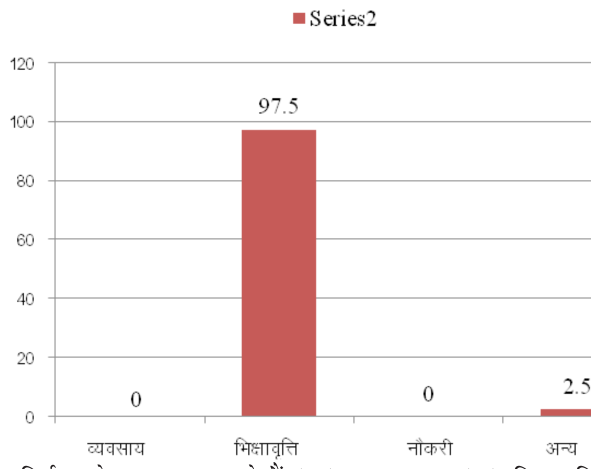

व्याख्या- किन्नर समुदाय जीवन निर्वहन हेतु साधन अपनाते हैं (अ) व्यवसाय 0 (ब) भिक्षावृत्ति 39 (स) नौकरी 0 (द) अन्य 1 अतः इससे यह ज्ञात होता है की जीवन निर्वहन हेतु किन्नर भिक्षावृत्ति का मार्ग अपनाते हैं

प्रश्न 5:-क्या आपने शिक्षा ग्रहण की है व् कहाँ तक की है?

शिक्षा ग्रहण N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
प्रिइंमरी	18	45
मिडिल	3	7.5
हायर सेकेंडरी	2	5
स्नातक	2	5
स्नातकोत्तर	1	2.5
नहीं	0	0

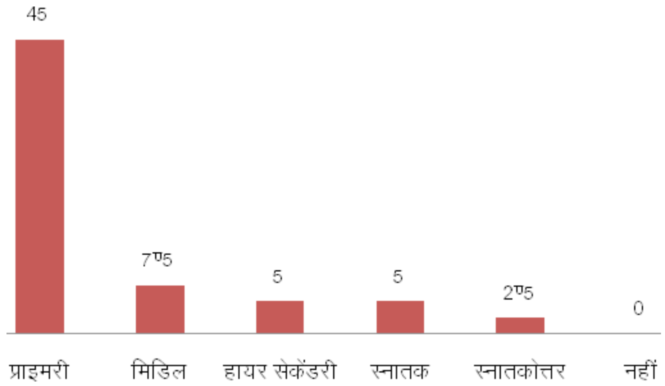

व्याख्या - किन्नर समुदाय में शिक्षा ग्रहण (क) प्राइमरी 18 (ख) मिडिल 3 (ग) हायर सेकेंडरी 2 (घ) स्नातक 2 (ड.) स्नातकोत्तर 1 (ज) नहीं 0 अतः इससे यह ज्ञात होता है की अधिकांश किन्नरों ने प्राइमरी तक की शिक्षा ग्रहण की है

प्रश्न 6:-क्या आप स्वयं को इस समाज का अंग मानते हैं? व् आप अपने जीवन में किसी भी प्रकार का परिवर्तन चाहते हैं?

समाज का अंगN=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	18	45
नहीं	22	55

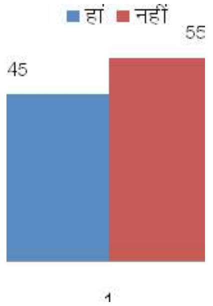

व्याख्या - किन्नर समुदाय समाज का अंग व् अपने जवन में परिवर्तन (अ) हां 18 (ब) नहीं 22 अतः इससे स्पष्ट होता है स्वयं को समाज का अंग मानते हैं व् अपने जीवन में परिवर्तन चाहते हैं

प्रश्न 7:- समाज में आपको अलग ख्रष्टिकोण से देखा जाता है तो आपको कैसा महसूस होता है?

समाज में दृष्टिकोण N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
सामान्य	0	0
असामान्य	9	22.5
अपमानित	31	77.5
घृणा	0	0

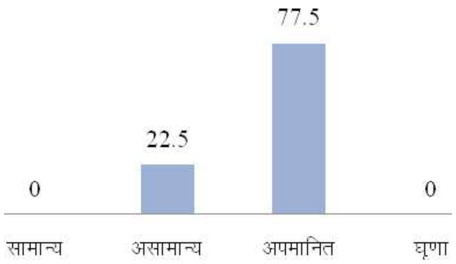

व्याख्या – समाज में आपको अलग ख्रष्टिकोण से देखा जाता है तो आपको कैसा महसूस होताद्धअत्रसामान्य 0 (ब) असामान्य 9 (स) अपमानित 31 (द) घृणा 0 अत: इससे यह ज्ञात होता है की किन्नरों को अलग ख्रष्टिकोण से देखा जाता है जिससे वह अपने आपको अपमानित महसूस करते हैं

प्रश्न 8:- तृतीय समुदाय को तीसरे लिंग के रूप में मान्यता मिलने से आपकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आएगा?

तृतीय समुदाय को तीसरे लिंग के रूप में मान्यता मिलने से आपकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	27	67.5
नहीं	13	22.5

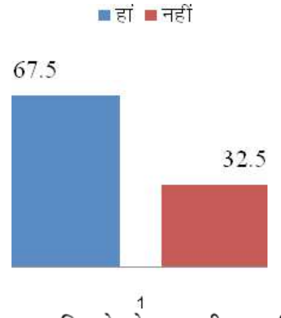

व्याख्या – तृतीय समुदाय को तीसरे लिंग के रूप में मान्यता मिलने से आपकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिवर्तन (अ) हां 8 (ब) नहीं 32 अत: इससे ज्ञात होता है की अधिकांशत: किन्नरों ने यह स्वीकार किया इससे सामाजिक अवम आर्थिक परिवर्तन आएगा

प्रश्न 9:-क्या आप घरेलु हिंसा के शिकार हुए हैं व् आपके साथ यौन शोषण हुआ है?

घरेलु हिंसा के शिकार व्यौन शोषणN=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	8	20
नहीं	32	80

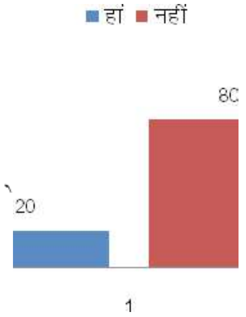

व्याख्या – आप घरेलु हिंसा के शिकार हुए हैं व् आपके साथ यौन शोषण (अ) हां 8द्धब) नहीं 32 अत: इससे ज्ञात होता है की अधिकांशत: किन्नरों के साथ घरेलु हिंसा व् यौनशोषण नहीं हुआ है।

प्रश्न 10:-क्या आपको अपने विधिक अधिकारों के विषय में जानकारी है?

अधिकारों के विषय में जानकारी N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	5	12.5
नहीं	35	87.5

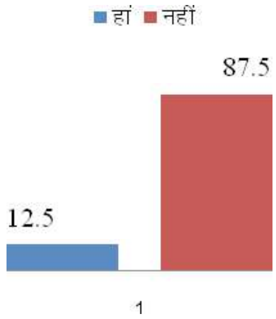

व्याख्या - अपने विधिक अधिकारों के विषय में जानकारी (अ) हां; (ब) नहीं 35 अतः इससे ज्ञात होता है की अधिकांश किन्नरों को अपने विधिक अधिकारों के बारे में जानकारी नहीं है

प्रश्न 11:- आपके अनुसार तृतीय समुदाय के लोगों को घृणा की ख़्रष्टि से देखने का क्या कारण हो सकता है?

तृतीय समुदाय के लोगो को घृणा की दृष्टि से देखने का कारण N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
शारीरिक बनावट	28	70
समाज से अमान्य	4	10
भिक्षावृत्ति	6	15
तृतीय वर्ग समुदाय का व्यव्हार	2	5

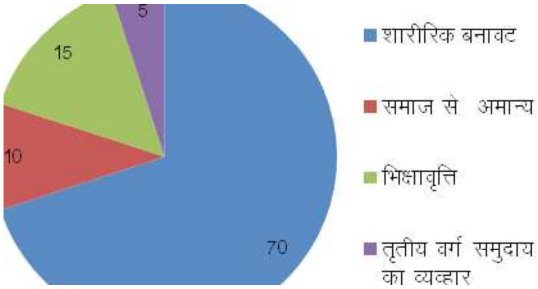

व्याख्या - तृतीय समुदाय के लोगों को घृणा की ख़्रष्टि से देखने का क्या कारण हो सकता है (अ) शारीरिक बनावट 28 (ब) समाज से अमान्य 4 (अ) भिक्षावृत्ति 6 (ब) तृतीय वर्ग समुदाय का व्यव्हार 2 अतः इससे ज्ञात होता है की अधिकांशतः किन्नरों को घृणा की दृष्टि से देखने का कारन उनकी शारीरिक बनावट को मानते हैं

प्रश्न 12:- आपकी सामान्य दिनचर्या क्या होती है मनोरंजन के लिए क्या करते हैं?

सामान्य दिनचर्या N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
नाच–गाना	8	20
समूहों में घूमकरभिक्षावृत्ति	23	57.5
वैश्यावृत्ति	0	0
घर में रहकर टी.वी व् अन्य माध्यमो से	5	12.5

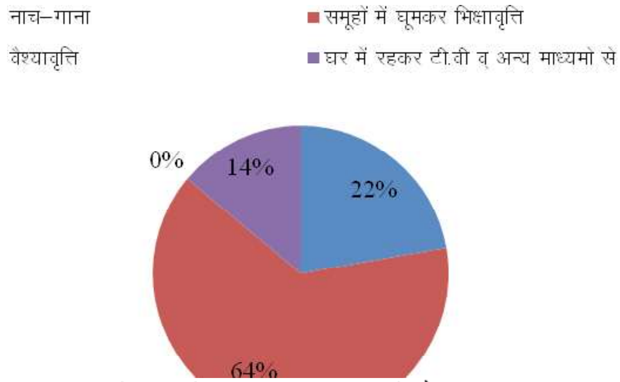

व्याख्या- आपकी सामान्य दिनचर्या व् मनोरंजन के लिए आप क्या करते हैं (अ) नाच-गाना (ब) समूहों में भिक्षावृत्ति (स) वैश्यावृत्ति (द) घर में रहकर टी.वी व् अन्य माध्यमो से अत: इससे यह ज्ञात होता है की अधिकांशत: किन्नर समुदाय समूहों में घूमकर भिक्षावृत्ति व् बधाई कार्य करते हैं

प्रश्न 13:-क्या आप पारिवारिक जीवन जीना चाहते हैं?

पारिवारिक जीवन जीना N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	22	55
नहीं	18	45

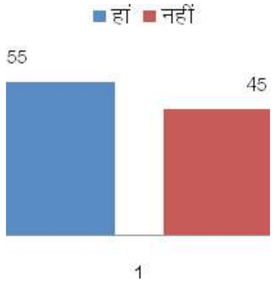

व्याख्या - आप पारिवारिक जीवन जीना चाहते हैं (अ) हां 22(ब) नहीं 18 अत: इससे ज्ञात होता है की अधिकांश किन्नर पारिवारिक जीवन जीना चाहते है

प्रश्न 14:-क्या आप धारा 377 के विषय में जानते हैं? धारा 377 के समाप्त होने से तृतीय वर्ग समुदाय समाज की मुख्यधारा में शामिल हो पाएगा?

धारा 377N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	18	45
नहीं	12	30
कुछ हद तक	7	17.5
संभावित	3	7.5

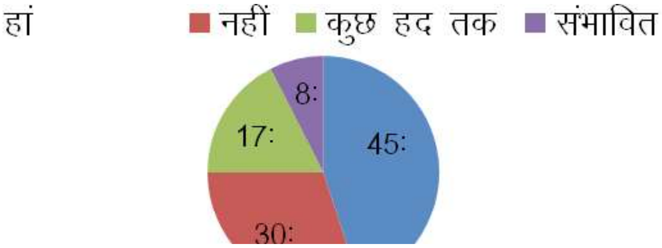

व्याख्या-377 के विषय में जानते हैं? धारा 377 के समाप्त होने से तृतीय वर्ग समुदाय समाज की मुख्यधारा में शामिल हो पाएगा (अ) हां 18(ब) नहीं 12(स) कुछ हद तक 7(द) संभावित 3अत: इससे ज्ञात होता है की तृतीय वर्ग समुदाय के लोग धारा 377 से समाज के मुख्या धारा में सम्मिलित हो पायेंगे।

प्रश्न 15:-क्या कभी भी आपसे किन्नर होने के कारन अभद्र व्यव्हार या किसी प्रकार के अपशब्दों का प्रयोग किया गया है?

किन्नर होने के कारन अभद्र व्यव्हार या किसी प्रकार के अपशब्दों का प्रयोग N=40		
वर्ग समुदाय	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	22	55
नहीं	0	0
कभी–कभी	8	20
हमेशा	10	25

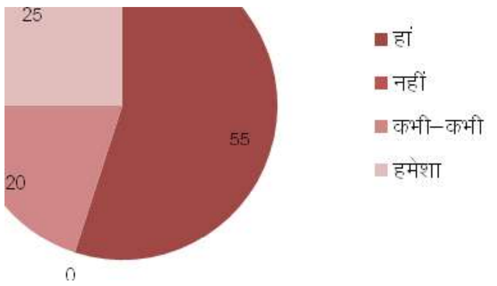

व्याख्या – आपसे किन्नर होने के कारन अभद्र व्यव्हार या किसी प्रकार के अपशब्दों का प्रयोग (अ) हां 22 (ब) नहीं 0 (स) कभी कभी 8 (द) हमेशा 10 अत: इससे यह ज्ञात होता है की अधिकांशत: किन्नर समुदाय के लोगों के साथ समाज के अन्य लोगों के द्वारा अभद्र व्यव्हार व् अपशब्दों का प्रयोग किया जाता है

निष्कर्ष

निष्कर्ष ज्ञात हुआ है की बिलासपुर में किन्नरों की सामाजिक आर्थिक स्थिति अपेक्षाख्रत दयनीय है उन्हें सामाजिक रूप से समाज की मुख्य धारा से पृथक रखा जाता है तथा समाज की गतिविधियों में उनकी भागीदारी ना के बराबर है सामाजिक स्तरीकरण में किन्नर समुदाय समाज के सबसे निचले पायदान पर स्थित है उनके प्रति जनमानस में जागरूकता का आभाव है फल्स्वरूप यह समुदाय शारीरिक व् मानसिक रूप से क्षुब्ध है।

सामाजिक रूप से पिछड़े होने के साथ साथ यह समुदाय आर्थिक ख्रष्टि से भी निम्न स्तर पर है। इसके सुगम जीवन यापन हेतु अर्थव्यवस्था का कोई पुख्ता आधार नहीं है यह समुदाय पारिवारिक मांगलिक कार्यक्रमों में आशीर्वाद प्रदान करने स्वरुप कार्य कर ये अपना जीवन यापन करते हैं इसके अतिरिक्त यह समुदाय मजदूरी के कार्यो में संलग्न रहता है सामाजिक व् आर्थिक ख्रष्टि से पिछड़े होने के कारन इनके विकास के क्षेत्र में कार्य करने की अपन सम्भावना है शाशन द्वारा वर्तमान में इस समुदाय के चहूँमुखी विकास हेतु विविध नीतियों का निर्माण किया जा रहा है परन्तु आवश्यकता इस बात की है की लोगों में इस समुदाय के प्रति सहानुभूति सम्मान व् सामानता की भावना प्रज्वल्लित हो जो इन्हें समाज की मुख्यधरा में शामिल करने में मददगार साबित हो सके

अनुसंधानकर्ता द्वारा इस विषय के चयन का उद्देश्य है की किन्नरों की वास्तविकता व् उनपर होने वाले उत्पीडन का अध्ययन किन्नरों के रोजगार व् जीविकोपार्जन के श्रोत का अध्ययन, सामाजिक संरचना में इनकी वास्तविक स्थिति का अध्ययन करना। जिससे इनकी समस्याओं का उचित समाधान किया जा सके और वे समाज में अन्य लोगों की भांति सरलता पूर्वक जीवन यापन करने में सक्षम हो पाए अनुसंधानकर्ता द्वारा किन्नरों के सामाजिक व् आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना निश्चित ही इनके उज्जवल भविष्य हेतु मिल का पत्थर साबित होगा।

संदर्भित ग्रन्थ

1. अनमोल, भगवंत 2017 जिन्दगी 50-50 राजपाल एंड संस
2. भीष्म, महेंद्र 2011 किन्नर कथा, नई दिल्ली सामाजिक

3. सौरभ, प्रदीप 2014 तीसरी ताली, नई दिल्ली वाणी
4. त्यागी, अनुसूया 2008 मैं भी औरत हूँ, नई दिल्ली, परमेक्षपर प्रकाशन
5. पाण्डेय तेजस्कर, पाण्डेय ओजतस्कर, समाजकार्य 2012, लखनऊ प्रकाशन
6. मुखर्जी, रविंद्रनाथ 2008, सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी, विवेक प्रकाशन
7. गुप्ता एंड शर्मा 2012, समाजशास्त्र साहित्य भवन प्रकाशन
8. लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी, पृष्ट. सं 77, वाणी प्रकाशन 2011
9. डॉ लवलेश दत्त, नवाब (कहानी)
10. नीरजा माधव, यमदीप उपन्यास, पृष्ट सं 113 सामयिक प्रकाशन
11. चित्रा मुद्गल, पो. बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा, पृष्ठ सं 71, सामयिक प्रकाशन 2017
12. डॉ सूरज बडत्या, (कहानी) कबीरन, पृष्ट.सं 11, हम भी इंसान हैं, वाड्मय बुक्स
13. समाचार पत्र, ऑनलाइन श्रोत विकिपीडिया।

भाषा शिक्षण के क्षेत्र में शिक्षक की अपेक्षाएँ

डॉ० राकेश कटारा

(शोध पर्यवेक्षक), शिक्षाधिकारी
(राजस्थान राज्य शिक्षा विभाग)

सुनिता जांगिड़

(शोधार्थी), महर्षि दयानन्द सरस्वती, विश्वविद्यालय अजमेर

भूमिका- भाषा के द्वारा ही मनुष्य अपनी संस्कृति व सभ्यता को विकसित करके भावी पीढ़ी तक पहुँचाया है। भाषा का विकास सामाजिक अंतक्रिया द्वारा होता है। भाषा मनुष्य के विकास की आधारशिला है शुद्ध सुसंस्कृत भाषा सुशिक्षित व्यक्ति का लक्षण है। चिरपरिवर्तनशील मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में भाषा का पर्याप्त हाथ है। ए.पेई नामक विद्वान ने लिखा 'भाषा की कहानी सभ्यता की कहानी है। इस प्रकार भाषा विकास बौद्धिक विकास का साधन है। पुरूषोत्तम दास टंडन ने लिखा है 'भाषा ही राष्ट्र का जीवन है' अत: भाषा शिक्षण के माध्यम से राष्ट्रोन्नति में सहायता मिलती है, भाषा से मनुष्य के आंतरिक एवं बाह्य दोनों ही स्वरूपों की उन्नति होती है। डॉ जॉनसन के अनुसार भाषा विचार का परिधान है। भाषा अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन है, मनुष्य अपने भावों मनोभावों इच्छाओं आदि की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही करता है। विद्यालय जाने के साथ बालक सुसंगठित रूप से भाषा सीखना प्रारम्भ कर देता है। प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक स्तर पर भाषा शिक्षण का अहम् स्थान है। विद्यालयी शिक्षा में भाषा शिक्षण का उद्देश्य बच्चों में भाषायी कौशल का विकास करना है। भाषा सीखाने में भाषा शिक्षक को भाषा सही भांति समक्ष लेनी चाहिए, भाषा शिक्षण अनेक मनोवैज्ञानिक व व्यवहारिक सिद्ध ान्तों पर आधारित है। हेम गिनोट शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि वह अपर्याप्त साधनों के बावजूद मुश्किल लक्ष्य को हासिल कर दिखाए और उसका करिश्मा ही कई बार असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाता है।

विद्यालयी स्तर पर भाषा शिक्षण में शिक्षकों का महत्वपूर्ण स्थान हे। शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा शिक्षक अपने ज्ञान से सम्प्रेवणीय कुशलता के आधार पर विद्यार्थियों को उस ज्ञान से आत्मसात कराता है। बी.ओ.स्मिथ के अनुसार ''शिक्षण अधिगम को उत्प्रेरित करने वाली एक पद्धति है'' अर्थात शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थियों को व्यवहारगत परिवर्तन लाना है। मनोवैज्ञानिक शिक्षण क्रिया के लिए अधिगम के सिद्ध ान्तों को शिक्षण में आवश्यक माना है। रिगेट का विचार है ''जेीम ंतज वि जमंबीपदह बवदेजंदजसल बींदहपदह''अर्थात शिक्षण कला निरन्तर परिवर्तित होती रहती है, शिक्षण कार्य में आवश्यकतानुसार दक्षताओं व नवाचारों का समावेश किया जाता है ताकि शिक्षण व्यवहारिक एवं गुणवतायुक्त बन सके। एन.सी.एफ. (2005) भी वर्तमान परिस्थिति एवं माहौल को ध्यान में रखकर रोचक एवं आनन्दायक शिक्षण का पक्षधर है ताकि समय-समय पर छात्र की कठिनाईयों का पता लगाकर विशेष कक्षाओं में विशेष शिक्षण कर सके एवं निर्धारित समय के अन्दर बच्चों में दक्षताएँ लाई जा सके।

शिक्षक की विद्यार्थी से अपेक्षाएं- बच्चा भाषा द्वारा रचे गए वातावरण में जीता है। बड़ा होता है उस वातावरण को बनाने में शिक्षक अपना योगदान देता है। भाषा शिक्षक विद्यार्थी के जीवन में भाषा के विभिन्न कार्य क्षेत्रों के प्रति संवेदनशील है तो वह बच्चे की बौधिक और भावनात्मक जरूरतों के अनुकूल कदम उठा सके। विद्यार्थी द्वारा प्रयोग की गई भाषा पर शिक्षक प्रतिभा का प्रभाव

होता है। एन.सी.एफ. (2005) में भाषा का आधार पत्र के पहले पृष्ठ में रहता है। पर्याप्त अवसर मिले तो बच्चा नई भाषाओं को आसानी से सीखेगा। भाषा शिक्षक विद्यालय में विद्यार्थियों को अधिक से अधिक अवसर उपलब्ध करवाकर उनकी भाषागत कौशलों का विकास कर सकता है।

विद्यार्थी अपनी शंका, संकोच व झिझक दूर कर शिक्षक से अपने अनुभव साझा करे, शिक्षक उनकी कल्पना शक्ति को समझते हुए उनकी भाषा का सम्मान करे। विद्यार्थी कक्षागत शिक्षण प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता बनाये अधिक से अधिक प्रश्न पूछें व अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करे। भाषा शिक्षक को विद्यार्थी के प्रति शिष्ट भाषा का प्रयोग रखना चाहिए। भाषा शिक्षण के साथ शिक्षक नैतिक मूल्यों की शिक्षा भी दें। आत्मपरिष्कार की साधनों के सूत्र विषय शिक्षण के साथ जोडें शिक्षण प्रक्रिया के दौरान शिक्षक निम्न बिन्दुओं का अनुसरण कर विद्यार्थी को सीखने हेतु अभिप्रेरित करता है।

- जिन छात्रों का सुलेख अच्छा है उसे प्रेरणात्मक वाक्य लिखवाना।
- छात्रों को अपने बारे में बात करने का अवसर देना।
- स्कूली अनुभवों पर बात करना।
- कवियों, लेखकों व महापुरूषों की तस्वीरों पर चर्चा करना।
- कहानियाँ सूनना व उन पर चर्चा करना।

भाषा शिक्षक को पूर्ण निष्ठा के साथ शिक्षण कार्य कराना चाहिए। शिक्षण आनन्ददायी रुचिपूर्ण बनाने का प्रयास करना चाहिए। परंपरावादी पद्धति से हटकर खेल विधि, क्रियात्मक पद्धति से शिक्षण करना चाहिए।

विद्यार्थी जब प्राथमिक कक्षा में प्रवेश करता है तो उसके पास घरेलु तथा आसपास की भाषा का वृहत भण्डार होता है इस संदर्भ में चोमस्की का कथन है कि ''एक बच्चा एक सामान्य भाषाई जगत से सम्पर्क के अन्तर्निहित भी क्षमता के साथ जन्म लेता है, अत: बच्चे की अन्तर्निहित भाषाई क्षमता का समुचित रूप से प्रयोग किया जाए।

जीवन में बच्चों का लक्ष्य स्कूल से अच्छी शिक्षा प्राप्त करना होता है वही विद्यालय में शिक्षकों का लक्ष्य बच्चों को बेहतर शिक्षा प्रदान करना है। विद्यालय में आने वाले विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती है कि वह एकाग्र हो व्यक्तित्व के विकास के लिए विभिन्न गतिविधियों में शामिल हो।

- विद्यालय से विद्यार्थी बेहतर इंसान बनाना व मानवीय मूल्यों अपनत्व, आदर, देशहित की सोच विकसित करना।
- विद्यार्थी को संस्कृति से रूबरू कराएं व उत्तम आचरण निर्माण हेतु अभिप्रेरित करें।
- शिक्षक खेल खेल में हर दिन नया सीखाये व अपने व्यवहार से बच्चों के समक्ष आदर्श स्थापित करें।
- शिक्षक अपेक्षा करता है कि विद्यार्थी कक्षा में नियमित आये तथा कक्षा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी आनन्द प्राप्त करें व अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता दे।
- शिक्षक अपेक्षा करता है कि विद्यार्थी शिक्षक की सत्ता का सम्मान करें तथा साथी छात्रों के साथ आदरपूर्वक व्यवहार करें।
- शिक्षक चाहता है कि विद्यार्थी शिक्षण समप्रत्यय व अर्थ को समझे तथा समप्रत्यय के साथ वास्तविक जीवन संबंध स्थापित करें।
- शिक्षक अपेक्षा करता है कि विद्यार्थी भाषा अधिगम द्वारा आलोचनात्मक चिन्तन बने तथा स्वयं विभिन्न प्रश्नों के उत्तर खोजे तथा विद्यार्थी कक्षा शिक्षण में सक्रिय रहें।
- शिक्षक चाहता है कि विद्यार्थी स्वयं अपनी क्षमता ताकत व कमजोरी पहचाने तथा लेखन, वाचन व पठन संबंधित त्रुटियों में सुधार करे।

शिक्षक की संस्थाप्रधान से अपेक्षाएँ– प्रत्येक विद्यालयों में शैक्षिक प्रशासन का उत्तरदायित्व मुख्य रूप विद्यालय प्रधानाचार्य/संस्था प्रधान का ही होता है। संस्था प्रधान न केवल प्रशासक के रूप में वरन् शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के प्रेरणा स्त्रोत, मार्गदर्शक विद्यालयी व्यवस्था का पर्यवेक्षक नीतियों को निर्धारण क्रियान्वयनकर्ता एवं मूल्याकंनकर्ता भी होता है विद्यालय के दैनिक कार्य व्यवहार प्रशासनिक एवं शैक्षिक नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्वयन प्रत्यक्ष रूप से विद्यालय संस्था प्रधान पर निर्भर करता है। विद्यालय की कार्यकुशलता व्यवस्था एवं श्रेष्ठता संस्था प्रधान की व्यक्तिगत योग्यता कौशल एवं व्यवसायिक निपुर्णता पर निर्भर करती है। भाषा शिक्षक की संस्था प्रधान से भिन्न अपेक्षाएं रहती है।

- संस्था प्रधान या प्रशासन कठिन परिस्थितियों में शिक्षक के साथ रहे कठिन परिस्थिति में शिक्षक के साथ रहे विद्यार्थी, अभिभावक से असहमति अन्य साथी अध्यापकों के साथ वैचारिक संघर्ष होने पर उनकी बात सुने उनके साथ खड़े रहे।
- भाषा शिक्षण प्रक्रिया व परिणाम का सही सटीक मूल्याकंन कर शिक्षाक का उत्साहवर्धन करे तथा कठिन समय में आवश्यकता होने पर उन्हें सलाह भी दें।
- भाषा शिक्षक चाहता है कि संस्था प्रधान अपनी अपेक्षाएं स्पष्ट रूप से शिक्षक के समक्ष रखे व चाहते है कि विद्यालय पॉलिसी व प्रक्रिया को स्पष्ट समझायें।
- छात्रों के कल्याण तथा उनमें अनुशासन बनाये रखने के लिए आवश्यक कदम उठाए।
- संस्था प्रधान अपने विद्यालय में भाषागत गतिविधियाँ जैसे कविता पाठ, आशुभाषाण, कवि दरबार, अन्ताक्षरी, वाद विवाद, एकांकी व नाटक प्रदर्शन आदि गतिविधियों के आयोजन को प्रोत्साहन देना।
- विद्यालय की प्रवृत्तियों में अभिभावकों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करने तथा उससे सम्पर्क बनाने के लिए अभिाभावक अध्यापक संघ बनाना।
- शिक्षक चाहता है कि संस्था प्रधान यह सुनिश्चित करें कि विद्यालय के सभी भाषा शिक्षक मिलजुलकर विद्यालय में भाषा संबंधित गतिविधियों का संचालन करें व उन्हें जरूरी सहयोग तथा संसाधन उपलब्ध कराये।
- विभिन्न कार्यक्रमों में भाषा शिक्षकों की सक्रिय भूमिका सुनिश्चित करना।
- विद्यालय पुस्तकालय में भाषा संबंधित शब्दकोश संबंधित साहित्यिक पुस्तकें, जर्नल आदि उपलब्ध कराना।
- विद्यालय में विद्यार्थियों की मौखिक/लिखित अभिव्यक्ति के विकास हेतु विभिन्न गतिविधियों का आयोजन करवाना तथा विजेता प्रतिभागियों को संस्था प्रधान द्वारा पुरस्कृत करना।
- जिला तथा राज्य स्तर पर आयोजित होने वाले भाषा प्रशिक्षण कार्यक्रमों संगोष्ठी, पत्र वाचन में विद्यालय से भाषा शिक्षक को भेजना। ताकि शिक्षक नवीन शिक्षक विधियों, प्राविधियों का उपयोग अपने शिक्षण में कर सके।

शिक्षक की समाज से अपेक्षाएँ– किसी भी समाज में शिक्षक का अपना विशिष्ट महत्वपूर्ण योगदान होता है। समाज का नेतृत्व संभालने और उसके गंभीर उत्तरदायित्वों को वहन करने योग्य शिक्षक बनाता है। शिक्षक नयी पीढ़ी का शिक्षण और मार्गदर्शन का कार्य करता है। स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि भारत में ऐसी शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए जिससे समाज के चरित्र का निर्माण हो मन की शक्ति में वृद्धि हो बुद्धि का विस्तार हो जिससे व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके। बच्चे जन्मजात भाषा क्षमता के साथ पैदा होता है।

अरोइन ने संकेत दिया कि 'समाज के बाहर भाषा का न तो अस्तित्व है और न ही उसका विकास होता है हमारी सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक विकास की आवश्यकताओं के कारण भाषा का विकास होता है। मानव समाज भाषा के बिना विचारों का गठन अभिव्यक्ति का संचय और प्रसारण नहीं कर सकता। क्रोशने ने कहा है कि उपलब्ध भाषा को विद्यार्थी तभी आत्मसात कर सकता है जब आस-पास के लोगों व अध्यापकों का रवैया सकारात्मक हो उसके अन्दर सीखने की प्रेरणा है। प्र सिद्ध मनोवैज्ञानिक वायगोत्सकी ने भाषा एवं समाज का संबंध अविछिन्न माना जाता है दोनों अपने अस्तित्व के लिए एक दूसरे पर निर्भर है। नई शिक्षा नीति 1986 में कहा गया है कि शिक्षक का स्तर समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक, लोकाचार का प्रतिबिम्ब है। कोई भी समाज अपने शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं जा सकता।

मनुष्य अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए समाज का सहारा लेता है। समाज का सहारा लेने के लिए किसी न किसी भाषा का सहारा लेना पड़ता है। ऐसी स्थिति में भाषा शिक्षक की समाज से अहम भूमिका होती है।

- शिक्षक चाहता है कि समाज में उसे सम्मानजनक स्थान मिले।
- शिक्षक छात्रों को समयनिष्ठ बने रहने की प्रेरणा देता है व पडोसियों के साथ मधुर संबंध बनाने की प्रेरणा देता है।
- भाषा शिक्षक छात्रों को अकादमिक प्रगति के साथ-साथ सामाजिक, संवेगात्मक व नैतिक विकास पर भी कार्य करता है।
- भाषा संस्कृति की वाहक होती है शिक्षक चाहता है कि समाज बच्चों की भाषायी पकड़ पर ध्यान देवें।
- शिक्षक समाज में परिवर्तन स्वीकार करें तथा समाज द्वारा दिए गए आवश्यक सुझाव स्वीकार करे।
- शिक्षक परिवार के बाद भाषा का सुसंगठित ज्ञान विद्यालय के माध्यम से देता है।

- शिक्षक चाहता है कि भाषा शिक्षण कक्षा कक्ष से बाहर निकालकर सामाजिक जीवन में उपयोगी बने।
- शिक्षक चाहता है कि समाज व समाज के लोग शिक्षकों की क्षमता के ऊपर भरोसा करें।
- शिक्षक चाहता है विद्यालय के बाहर परिवार, समाज समुदाय में भी बच्चों को मौखिक अभिव्यक्ति के अवसर मिले।
- शिक्षक चाहता है कि समाज के विभिन्न अंगों परिवार, विद्यालय समुदाय में व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा बच्चों को भाषागत शुद्ध उच्चारण करना सीखाये।
- शिक्षक प्रयास करता है कि शिक्षण विषयवस्तु सामाजिक संदर्भों में रखकर समझायी जाय ताकि छात्रों की समाज के साथ उसके संबंधों की समझ गहरी है।
- शिक्षक सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक संदर्भों में बच्चों को समझे।
- शिक्षक समाज के प्रति अपना दायित्व समझने तथा बेहतर विश्व के लिए काम करें।
- शिक्षक चाहता है कि समाज के सदस्य अपना मिशन व विजन साझा करें तथा विद्यालय कमेटी की बैठकों में हिस्सा लें।
- शिक्षक चाहता है कि समाज के लोग शिक्षा के मूल्य को समझने तथा समाज व समुदाय में भाषा शिक्षा को भी उच्च स्थान दें।
- शिक्षक चाहता है कि समाज, समाज के विद्यालयों व शिक्षकों पर गर्व करें तथा विद्यार्थी उपलब्धि (अकादमिक खेलकूद व अन्य गतिविधियों) मनायें।

शिक्षक की अभिभावक से अपेक्षाएं-विद्यार्थियों के अभिभावक उनके हितैषी होते हैं क्योंकि विद्यालय में प्रदान की जाने वाली शिक्षा उनके बच्चों के जीवन की संभावनाओं पर सीधा असर डालती है। अभिभावक व विद्यार्थी साझेदारी में कार्य करते है तो विद्यार्थियों को लाभ पहुंचाता है और उनके सफल होने की संभावना बढ़ती है विद्यालय एक संवेगात्मक जगह है जहाँ उन्हें समझना तथा उनका सम्मान होना आवश्यक है। माता-पिता अपने छोटे बच्चों को तरह-तरह अनुभव करायें अभिभावक दिनचर्या की चीजें देखना अवलोकन करना व संबंधित वस्तुओं का भाषागत ज्ञान कराये शिक्षक व अभिभावक ऐसा वातावरण प्रदान करें कि बच्चे भाषा को लगातार जीवन के अनुभवों व चीजों से जोड़ सके। ऐसा करने के लिए निम्न बातें सहायक होगी-

- बच्चे घर परिवार या आसपास में कई तरह की वस्तुएं देखें, एकत्रित करें तथा उनके बारे में बात कर उस पर निबंध या विचार लिखने के लिए अभिप्रेरित करें।
- बच्चों को उनके अनुभवों के बारे में कहने-लिखने और पढ़ने को कहा जाए जो स्कूल के बाहर हो।
- अभिभावक बच्चे की बौद्धिक और भावनात्मक मांगों के प्रति ध्यान दें बच्चों की मांगों को समझें उन्हें महापुरूषों की कहानियाँ, कविताएं रोचक तरीके से सुनाये जिससे बच्चे की स्मरण शक्ति, कल्पना शक्ति तर्क करले आदि बौद्धिक क्षमताओं का विकास होगा।
- अभिभावक बच्चों दैनिक व्यवहार के उपयोग किये जाने वाले शब्दों, विलोम, पर्याय, मुहावरों व लोकोक्तियों आदि का अर्थ ज्ञान व व्यवहारिक उपयोग बताये।
- अभिभावकों प्रतिदिन बच्चों के गश्हकार्य पर ध्यान देवें। उसकी कॉपियां देखें उसकी गलतियों को समझे तथा त्रुटि संशोधन करवायें।
- अभिभावक विद्यालय में आयोजित होने वाली विद्यालय प्रबन्धक समिति (एस.एम.सी.) शिक्षक अभिभावक बैठक में अपनी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करें ताकि बच्चे के बारे में शिक्षक को वास्तविक फीडबैक मिल सके।
- अभिभावक विद्यालय में शिक्षक अभिभावक एडवाइजरी बोर्ड की बैठकों में भाग लेकर आवश्यक सुझाव दें।
- अभिभावक घर पर बच्चों को समय दे किसी अध्यापक का मार्गदर्शन तभी कारगर सिद्ध होगा जब अभिभावक घर पर समय निकालकर अपने बच्चों पर ध्यान देगें। घर पर अपने बच्चों के लिए समय देना आवश्यक है।
- शिक्षक चाहता है कि अभिभावकों का सहयोग उन्हें मिले ताकि अधिक श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त किए जा सकें।
- शिक्षक चाहता है कि अभिभावक बच्चों को भाषा संबंधित व्यवहारिक बोध कराये।
- शिक्षक चाहता है कि अभिभावक परीक्षा के समय बच्चों पर अधिक दबाव ना बनाये, अंक कम आने पर कारणों का पता लगाकर सुधारात्मक प्रयास करें।
- अभिभावक बच्चे की तुलना दूसरे भाई-बहन या पडौसी के बच्चे से ना करें। बच्चे में जो खूबियाँ है उनकी प्रशंसा करें।

- अभिभावक बच्चों को स्वस्थ वातावरण प्रदान करें। यदि बच्चों में लेखन या वाचन की विशिष्ट कुशलता है तो उसे रचनात्मक दिशा प्रदान करें।

शिक्षक की दूरसंचार माध्यमों से अपेक्षाएं- दूर संचार माध्यम से आशय संदेश के प्रवाह में प्रयुक्त किए जाने वाले माध्यम से है। वर्तमान समय में संचार माध्यम और समाज से गहरा संबंध है। जिसका अभिप्राय होता है। दो बिन्दुओं को जोड़ने वाला संचार माध्यम है जो सम्प्रेषण और श्रोता को जोड़ते है। हेराल्ड लासवेल के अनुसार संचार माध्यम मुख्य कार्य सूचना संग्रह एवं प्रसार, सूचना विश्लेषण सामाजिक मूल्य एवं ज्ञान का सम्प्रेषण तथा लोगों का मनोरंजन करना ही भाषा शिक्षण में रेडियों टीवी विडियो, कम्प्यूटर नेटवर्क, सोफ्टवेयर, हार्डवेयर सैटेलाइट प्रणाली, विडियो कान्फ्रेसिंग, ईमेल, ब्लाग्स, भाषा प्रयोगशाला आदि प्रौद्योगिकी उपकरणों का उपयोग कर भाषा शिक्षण को प्रभावी बनाया जा सकता है। सूचना सम्प्रेषण तकनीकी की सहायता से अमूर्त जटिल एवं सूक्ष्म बातों को मूर्त सरल एवं स्वरूपगत बनाया जा सकता है।

प्रोफेसर वेबर ने यह सिद्ध किया कि ज्ञान ग्रहण की प्रक्रिया में 40 प्रतिशत ज्ञान हम आँखों के अनुभव से 25 प्रतिशत श्रवण के माध्यम से 17 प्रतिशत स्पर्श के द्वारा प्राप्त करते हैं। ज्ञानेन्द्रिय अनुभव द्वारा ही किसी वस्तु या क्रिया का मानसिक चित्र बनता है और इस मानसिक चित्र के आधार पर ही तत्सम्बन्धी प्रत्यय बनते है। शिक्षण द्वारा ज्ञान के प्रत्यक्षीकरण एवं उसे मूर्तता प्रदान करने के लिए दूर संचार माध्यमों की आवश्यकता एवं महत्ता स्वयं सिद्ध है।

दूर संचार माध्यमों को तीन वर्गो में बाँटा गया है-

- मुद्रित माध्यम-समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पोस्टर, जर्नल, पुस्तकें।
- इलेक्ट्रानिक माध्यम-रेडियो, टेलीविजन, टेलीग्राम, पेजर, विडियो कॉन्फ्रेसिंग, विडियो कॉलिंग
- नव इलेक्ट्रानिक माध्यम- इन्टरनेट, इमेल आदि

दूरसंचार माध्यमों के द्वारा श्रव्य दृश्य पद्धति अपनाकर भाषा शिक्षक बालक की अधिगम क्षमताओं का विकास किया जा सकता है। भाषा शिक्षण में शिक्षक को इन साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। साथ ही शिक्षक अनेक अपेक्षाएं रखता है, जो निम्नानुसार है-

- शिक्षक चाहता है कि विद्यालय में विभि- साफ्टवेयर पैकेज, सीडी, ऑडियो-विडियो उपलब्ध कराये जाये ताकि विद्यार्थियों को विभिन्न लेखकों, कवियों का जीवन परिचय विभिन्न कहानियों का प्रसारण श्रव्य, दृश्य रूप में किया जा सके।
- शिक्षक को आई.सी.टी. के विभिन्न साधनों के प्रभावी उपयोग हेतु अतिरिक्त प्रशिक्षण व समय दिया जाए।
- प्राथमिक कक्षाओं में वर्णमाला, अक्षर निर्माण, वाक्य निर्माण, वाक्य प्रयोग आदि का शिक्षण प्रोजेक्टर के माध्यम से कराया जा सके ताकि विद्यार्थी रुचिपूर्ण तरीके से अधिगम कर सके।
- शिक्षक चाहता है कि समय-समय पर दूर स्थित भाषा शिक्षाविदों के विचार व व्याख्यान विडियो कांफ्रेसिंग विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध करायी जाए।
- कक्षा अनुरूप समय सारणी में विभिन्न माध्यमों से शिक्षक रटाने हेतु कालांश निर्धारित किए जाए।
- विद्यालय में आई.सी.टी. के विभिन्न उपकरण व संसाधनों की उपलब्धता हो ताकि दूर दराज ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थी इनसे लाभान्वित हो सके।
- शिक्षक द्वारा पाठ निर्माण, नियोजन हेतु आवश्यक ई कंटेन्ट की उपलब्धता हो जिससे शिक्षक आवश्यकतानुसार उसका उपयोग कर सके।
- विद्यार्थियों को कक्षा कक्ष अधिगम के साथ ई लर्निंग हेतु अभिप्रेरित करना।
- भाषा प्रयोगशाला के माध्यम से छात्रों को भाषा के विभिन्न कौशलों का अभ्यास करवाया जाना।
- रेडियो, टेलिविजन आदि पर प्रसारित भाषा संबंधित व्याख्यान विद्यार्थियों को सुनाए जाने की व्यवस्था विद्यालय में करवाना।

सारांश- भाषा शिक्षा बच्चों को भावों तथा विचारों से समृद्ध करती है। उन्हें जीवन के सौन्दर्यात्मक पहलू को समझने की दृष्टि देती है। साहित्य कला तथा संगीत के जीवन में महत्व स्पष्ट करते हुए उन्हें जीवन की विविधता को समझने और सराहने का अवसर देती है।

उन्हें संवेदनापूर्ण तथा मानवीय बनाती है भाषा शिक्षक का महत्वपूर्णत स्थान है शिक्षक बालक के व्यक्तित्व का सर्वागिण विकास करता है। साथ ही शिक्षक की समाज, समूदाय, विद्यार्थी, अभिभावक विद्यालय आदि से आकांक्षा व अपेक्षाएं होती है जिनकी पूर्ति होन पर शिक्षक और प्रभावी तरीके से भाषा शिक्षण करवा कर शिक्षक अधिगम के क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित कर सकता है।

संदर्भ सूची

- Literature.awgp.org>book
- http//www.hindikunj.com>20/6/18
- blogprimarymaster.com
- http//www.open.edu>modsview
  TESS-India-All India Resource
- annual Report 2013-14, National Consider Teacher Education, Department in Languege Page No. 56
- कृष्ण कुमार, बच्चे की भाषा और अध्यापक एक निर्देशिका, पेज नं 1 से 48
- दिनेश कर्नाटक (2016) स्कूल में भाषा शिक्षक की भूमिका, प्रवाह फरवरी–मई (2016) पेज नं 2
- प्राथमिक शिक्षक, शैक्षिक संवाद की पत्रिका, वर्ष 42, अंक 4 फरवरी 2018 पेज नं. 52
- hindi Bhasha (5) pdf
  www.ncert.nic.in
- डा. केवलानन्द कण्डपाल, (2015) पेशेवर शिक्षक होने के मायने, प्रवाह, मई–सितम्बर 2015
- सामाजिक सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में संज्ञान एवं अधिगम, (2018) प्रारंभिक शिक्षा में पत्रोपाधि (डी.एल.एड.) द्वितीय वर्ष राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छतीसगढ़ रायपुर पेज नं. 1 से 21
- एन.सी.ई.आर.टी भाषा शिक्षा विभाग
  www.ncert.nic.in>del>Indey all
- सिन्धु आई.एस., विमल कुमार जितेन्द्र (2009) भारतीय आधुनिक शिक्षा, अप्रेल 2009, वर्ष 30, अंक–4 पेज नं. 68 से 76

कृषि के क्षेत्रीय विकास में आधुनिक तकनीकों का प्रयोग एवं वैज्ञानिकता

राम रतन मीना

शोधार्थी, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

विषय प्रवेश

कृषि खेती और वानिकी के माध्यम से खाद्य और अन्य सामान के उत्पादन से संबंधित है। कृषि एक मुख्य विकास था, जो सभ्यताओं के उदय का कारण बना, इसमें पालतू जानवरों का पालन किया गया और पौधों (फसलों) को उगाया गया, जिससे अतिरिक्त खाद्य का उत्पादन हुआ। इसने अधिक घनी आबादी और स्तरीकृत समाज के विकास को सक्षम बनाया। कृषि का अध्ययन कृषि विज्ञान के रूप में जाना जाता है तथा इसी से संबंधित विषय बागवानी का अध्ययन बागवानी (हॉर्टिकल्चर) में किया जाता है। तकनीकों और विशेषताओं की बहुत सी किस्में कृषि के अन्तर्गत आती है, इसमें वे तरीके शामिल हैं जिनसे पौधे उगाने के लिए उपयुक्त भूमि का विस्तार किया जाता है, इसके लिए पानी के चौनल खोदे जाते हैं और सिंचाई के अन्य रूपों का उपयोग किया जाता है। कृषि योग्य भूमि पर फसलों को उगाना और चारागाहों और रेंजलैंड पर पशुधन को गड़रियों के द्वारा चराया जाना, मुख्यतः कृषि से सम्बंधित रहा है। कृषि के भिन्न रूपों की पहचान करना व उनकी मात्रात्मक वृद्धि, पिछली शताब्दी में विचार के मुख्य मुद्दे बन गए। विकसित दुनिया में यह क्षेत्र जैविक खेती (उदाहरण पर्माकल्चर या कार्बनिक कृषि) से लेकर गहन कृषि (उदाहरण औद्योगिक कृषि) तक फैली है। आधुनिक एग्रोनोमी, पौधों में संकरण, कीटनाशकों और उर्वरकों और तकनीकी सुधारों ने फसलों से होने वाले उत्पादन को तेजी से बढ़ाया है और साथ ही यह व्यापक रूप से पारिस्थितिक क्षति का कारण भी बना है और इसने मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। चयनात्मक प्रजनन और पशुपालन की आधुनिक प्रथाओं जैसे गहन सूअर खेती (और इसी प्रकार के अभ्यासों को मुर्गी पर भी लागू किया जाता है) ने मांस के उत्पादन में वृद्धि की है, लेकिन इससे पशु क्रूरता, प्रतिजैविक (एंटीबायोटिक) दवाओं के स्वास्थ्य प्रभाव, वृद्धि हॉर्मोन और मांस के औद्योगिक उत्पादन में सामान्य रूप से काम में लिए जाने वाले रसायनों के बारे में मुद्दे सामने आये हैं।

प्रमुख कृषि उत्पादों को मोटे तौर पर भोजन, रेशा, ईंधन, कच्चा माल, फार्मास्यूटिकल्स और उद्दीपकों में समूहित किया जा सकता है। साथ ही सजावटी या विदेशी उत्पादों की भी एक श्रेणी है। वर्ष 2000 से पौधों का उपयोग जैविक ईंधन, जैवफार्मास्यूटिकल्स, जैवप्लास्टिक,ख्ाृ, और फार्मास्यूटिकल्सख्2, के उत्पादन में किया जा रहा है। विशेष खाद्यों में शामिल हैं अनाज, सब्जियां, फल और मांस। रेशे में कपास, ऊन, सन, रेशम और सन (फ्लैक्स) शामिल हैं। कच्चे माल में लकड़ी और बाँस शामिल हैं। उद्दीपकों में तम्बाकू, शराब, अफीम, कोकीन और डिजिटेलिस शामिल हैं। पौधों से अन्य उपयोगी पदार्थ भी उत्पन्न होते हैं, जैसे रेजिन। जैव ईंधनों में शामिल हैं मिथेन, जैवभार (बायोमास), इथेनॉल और बायोडीजल। कटे हुए फूल, नर्सरी के पौधे, उष्णकटिबंधीय मछलियाँ और व्यापार के लिए पालतू पक्षी, कुछ सजावटी उत्पाद हैं। 2007 में, दुनिया के लगभग एक तिहाई श्रमिक कृषि क्षेत्र में कार्यरत थे। हालांकि, औद्योगिकीकरण की शुरुआत के बाद से कृषि से सम्बंधित महत्त्व कम हो गया है और 2003 में-इतिहास में पहली बार-ख्ख्सेवा (अर्थशास्त्र) द्यसेवा क्षेत्र ने एक आर्थिक क्षेत्र के रूप में कृषि को पछाड़ दिया क्योंकि इसने दुनिया भर में अधिकतम लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया।इस तथ्य के बावजूद कि कृषि दुनिया के आबादी के एक तिहाई से अधिक लोगों की रोजगार

उपलब्ध कराती है, कृषि उत्पादन, सकल विश्व उत्पाद (सकल घरेलू उत्पाद का एक समुच्चय) का पांच प्रतिशत से भी कम हिस्सा बनता है।

आधुनिक कृषि तकनीकों का प्रयोग एवं प्रभाव

आधुनिक कृषि प्रणाली ने समूचे देश में अनाज के उत्पादन की वृद्धि में भारी योगदान दिया है। आधुनिक कृषि प्रणाली के प्रयोग से देश अनाज के उत्पादन में पर्याप्तता प्राप्त कर सकता है। कृषि कार्य में उपयोगी आधुनिक विधियाँ हैं- बेहतर बीजों का प्रयोग, उचित सिंचाई तथा रासायनिक खादों के प्रयोग से पौधों को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों की आपूर्ति व कीटनाशकों के प्रयोग से पौधों को लगने वाली बीमारियों व कीटाणुओं का नियंत्रण। आधुनिक कृषि में ट्रैक्टर, कम्बाइन हार्वेस्टर व सिंचाई के लिये टड्बवेलों द्वारा आधुनिक जोताई (खेती) की विधियों का प्रयोग किया है। उच्च उत्पादकता वाले बीजों के माध्यम से खाद्य-उत्पादन में भारी वृद्धि को हरित क्रांति कहा गया है। आधुनिक कृषि का मुख्य उद्देश्य अच्छी फसल के साथ-साथ वायु, जल, भूमि व मानवीय स्वास्थ्य का संरक्षण भी होना चाहिए।

कृषि का मशीनीकरण

विशाल क्षेत्रों पर उत्पादन की वृद्धि के लिये कृषि के क्षेत्र में मशीनीकरण का प्रारम्भ हुआ। विशाल भूमि के क्षेत्रों पर कृषि से सम्बन्धित सब प्रक्रियाएँ, थोड़े समय की अवधि में ही मशीनीकरण द्वारा संभव हो सकती है। साथ ही साथ मशीनों की सहायता से फसल जल्दी से जल्दी बाजार में भी पहुँच जाती है। विकासशील देशों में कृषि मजदूरों के कार्य पर निर्भर रहती थी, परन्तु बड़ी संख्या में ग्रामीण लोगों का शहरों में स्थानान्तरण के कारण, खेतों पर श्रमिकों की संख्या कम हो गयी। इस नई स्थिति से निपटने के लिये, कृषि-सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने में कृषि के मशीनीकरण के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रह गया। खेतों पर कार्यरत कुछ मशीनों के नाम इस प्रकार हैं- पानी के पम्प, जोत, कम्बाइन हार्वेस्टर, भूमि को समतल बनाने वाली मशीनें, जोतक, ऊर्जा द्वारा संचालित ट्रैक्टरों द्वारा छिड़काव के उपकरण, बुवाई करने वाली मशीनें, ट्रॉलियां, इत्यादि।

कम्बाइन हार्वेस्टर: इनको 'कम्बाइन' के नाम से भी जाना जाता है। यह एक बड़े आकार की मशीन है जो न केवल मक्के की कटाई करती है, बल्कि पौधों के बालों से अनाज को भी अलग करती हैं। इसमें पौधों के काटने व फसलीकरण के कार्य शामिल हैं। ये मशीनें खेतों के अंदर ही बालों से अनाज को अलग करती हैं।

हल: खेतों की जोताई या मशीनीकृत के लिये कई किस्म के मृदा की यांत्रिकीकरण द्वारा गुड़ाई, मिटी को ऊपर-नीचे करने के हल आजकल उपलब्ध हैं।

भूमि समतलक यंत्र: ये यंत्र भूमि के बड़े भागों को तोड़कर, भूमि को समतल बनाते हैं तथा इस तरह भूमि को बीज बोने के लिये तैयार करते हैं।

बॉक्स-ड्रिल (वपित्र): ये ट्रैक्टरों से जुड़े यंत्र होते हैं, जो बीजों को बोने के प्रयोग में आते हैं।

ऊर्जा द्वारा संचालित ट्रैक्टर स्प्रे: ये यंत्र पौधों की कतारों के बीच होकर खेत में फसलों के दोनों ओर कीटनाशकों या पीड़कनाशकों का छिड़काव करते हैं।

पम्प: ये साधारण बिजली द्वारा चलने वाले उपकरण हैं जो सिंचाई के पानी को खेतों तक पहुँचाते हैं।

थ्रेशर: वे मशीनें हैं जो कि मक्के, धान व गेहूँ के पौधों की बालों या शेष पौधों में से अनाज को पृथक करने के काम आती हैं।

मशीनीकृत पिकर: ये वे यंत्र हैं जो चूषण के सिद्ध ांत पर चलते हैं तथा रुई की फसल से रुई को अलग करने के प्रयोग में आते हैं। रुई उतारने के लिये रसायनों द्वारा पौधों का निष्पत्रण किया जाता है।

नवीन कृषि प्रणालियाँ

आधुनिक कृषि में पशुपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, मत्स्य पालन एवं मशरूम संवर्धन इत्यादि शामिल हैं जो भोजन के अन्य उत्पाद जैसे दूध, मांस, मछली, अंडे, मशरूम इत्यादि प्रदान करते हैं। पोषक भोजन की आपूर्ति करने के साथ-साथ ये दालों

के उपभोग को भी कम करने में अहम भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार आधुनिक किसान फसल उगाने के साथ-साथ उपरिलिखित कृषिकल्पों में से किसी को भी अपना सकता है।

(क) मुर्गीपालन की कृषि (Poultry)

मुर्गीपालन शब्द का प्रयोग बत्तख व मुर्गियों जैसे पक्षियों को, उनसे अण्डे व मांस पाने के लिये उनकी देखरेख और पालन की कृषि है। मुर्गीपालन थोड़े ही समय में इसलिये लोकप्रिय हुआ है क्योंकि इसका प्रारम्भ व संचालन की प्रक्रिया सरल है। मुर्गीपालन पर खर्च शीघ्र ही एक से छह महीनों में धनराशि लौटाता है। यह सरल रूप से संचालित और कम स्थान व श्रम से सम्भव है। मुर्गियों जैसे पक्षी व उनके अण्डे पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं।

भारतीय मुर्गियों से अच्छी गुणवत्ता का माँस पाया जा सकता है। परन्तु इनके अण्डे छोटे आकार के होते हैं। बाहर के कुछ देशों की विशिष्टतम किस्मों के मुकाबले में इनकी साधारण बीमारियों से लड़ने की स्वाभाविक क्षमता कम है।

विदेशीय पक्षियों के कुछ साधारण किस्में इस प्रकार हैं- लेग हॉर्न, रोड आइलैण्ड रेड, कॉर्निश।

साधारण भारतीय किस्में इस प्रकार हैं- असील, चिट्टागौंग, बसरा।

(ख) मशरूम (खुम्भी) की कृषि (Mushroom Culture)

मशरूम की कृषि न सिर्फ धन कमाने का एक आकर्षक तरीका है, बल्कि वह पोषक तत्वों से भी भरपूर खाद्य पदार्थ है। मशरूम एक प्रकार के कवक हैं जोकि छोटे आकार की सफेद गेदों के रूप में दिखायी देते हैं। इनमें एक छोटी शाखा और टोपी होती है, जो कि एक छतरी के समान ऊपर को खुलती हैं। इनमें क्लोरोफिल नामक तत्व की कमी होती है और ये खेतों व कारखानों के अपशिष्ट पदार्थों या कार्बनिक पदार्थों व कूड़ा-करकट पर उगते हैं। मानवीय उपभोग के लिये बेकार पदार्थों, कूड़ा-करकट को माध्यम बनाकर खुम्बी उगाई जा सकती है। इस प्रकार अपशिष्ट पदार्थों को पुन: प्रयोग में लाया जा सकता है। मशरूमों की अनेक किस्मों में से केवल कुछ ही खाने के योग्य हैं। भारत में उगने वाले कुछ खाने योग्य मशरूमों के नाम इस प्रकार हैं- सफेद बटन मशरूम (ऐगेरीकस बाइस्पोरस), धान के रेशे की मशरूम व ऑयस्टर मशरूम।

मशरूम ऊँचे स्तर के प्रोटीनों का एक अच्छा स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त ये विटामिनों एवं खनिजों जैसे पोषक तत्वों से भी भरपूर है। फल और सब्जियों की तरह मशरूम भी जल्दी सड़ने वाले पदार्थ हैं तथा संरक्षण व व्यवसायीकरण की प्रक्रियाओं के दौरान उन पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

(ग) मधुमक्खी पालन (Apiculture)

एपीकल्चर (मधुमक्खी पालन) को मधुमक्खी रखरखावध्पालन के नाम से जाना जाता है। 'एपिस' का अर्थ है- 'मधुमक्खी'। मधुमक्खी-पालन, बड़ी मात्रा में मधुमक्खियों से निकाले गए मधु के निर्यात के लिये, मधुमक्खियों के समूहों (कॉलोनियों) की देख-रेख व नियंत्रण है। प्राचीन काल में मधुमक्खी पालन लोग घर में ही कर लेते थे। परन्तु अब यह एक महत्त्वपूर्ण उद्योग का रूप ले चुका है।

मधुमक्खी-पालन के तीन मुख्य लाभ हैं–

(1) मधु (शहद) जैसे मूल्यवान खाद्य पदार्थ को प्राप्त करना।

(2) मधुमक्खी मोम प्रदान करती है, जिसका उद्योग में बहुत प्रयोग होता है

(3) मधुमक्खियाँ परागण के बहुत अच्छे एजेन्ट (कारक) हैं, जिनकी परागण प्रक्रिया से कृषि-उत्पादन बढ़ता है।

मधुमक्खियाँ मधु (Honey) व मोम (Wax) दोनों को निर्मित करती हैं, जिनकी बाजार में बहुत मांग है। परन्तु, कृषि में, परागण के एजन्टों के रूप में इनका कार्य प्रमुख है। फूलों से निकाला गया मधुरस (मकरंद) व पराग, शहद के निर्माण में प्रयोग होते हैं। मधुरस फूलों से निकला हुआ एक मीठा स्राव है। यह शहद के लिये कच्चा माल है। पराग कण भ्रूण (निषेचित अण्डों) के लिये, भोजन के रूप में काम आते हैं।

(घ) मछली-पालन और जलीय कृषि (Pisciculture andAquaculture)

दुनिया के बहुत से भागों में मछलियाँ प्रोटीनयुक्त खाद्य रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मछली पालन (मत्स्य पालन) का विकास अब एक अधिक संभावना वाला उद्योग बन चुका है।

भारत का एक लम्बा समुद्र तट है, जो कि समुद्री मछलियों का एक बड़ा उत्पादक है।ऐसे जलीय क्षेत्र जहाँ मछलीपालन व्यावसायिक रूप से होता है, उन्हें कृत्रिम मात्स्यकी (Artifical fisheries) का नाम दिया जाता है। यहाँ पर मछलियों की उत्पत्ति, पालन-पोषण व अंत में इनको 'फसल' के रूप में प्राप्त किया जाता है। मत्स्य उद्योग या तो एक प्राकृतिक जलीय क्षेत्र में, अथवा एक कृत्रिम जलीय क्षेत्र में सम्भव है। कई प्रकार की मछलियों का एक साथ पालन-पोषण भी किया जा सकता है।

जिस किस्म के जल में उनका पालन होता है, उसके आधार पर मात्स्यकी को निम्न श्रेणियों में बांटा जा सकता है:-

1. **समुद्री मात्स्यकी:** यानि जहाँ समुद्र तट पर मछली पकड़ी जाती है उदाहरण मैकरेल, सार्डीन, कैटफिश।
2. **अलवण जल या अंत:स्थली मत्स्य केन्द्र:** ये मछलियाँ नदियों, सिंचाई में प्रयुक्त नाले, झीलों, टैंकों, इत्यादि में पाई जाती है। उदाहरण- रोहू, कतला, मिस्टस।
3. **ज्वारनद:** ये उन जगहों पर पाई जाती हैं जहाँ नदी का पानी व समुद्र का पानी मिश्रित हो जाता है जैसे लगून, तटीय झील, डेल्टा चौनल इत्यादि। ये प्राय: बंगाल व केरल जैसे प्रदेशों में पाई जाती हैं। उदाहरण मुलेट, मिल्कफिश, पर्लस्पॉट।सके अतिरिक्त अन्य जलीय स्रोत हैं मोलसक जिनमें कस्तूरा, समुद्रफेनी, ऑक्टोपस एवं समुद्री खरपतवार इत्यादि शामिल हैं। इनका भी जलीय कृषि के लिये प्रयोग किया गया है। समुद्री खरपतवारों का प्रयोग खाद्य, मवेशियों और मुर्गियों के चारे, खाद व औद्योगिक उद्देश्य से अगार-अगार व ऐल्जिन की प्राप्ति के स्रोत के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। अत: ये नई किस्म की कृषि प्रणालियों न केवल रोजगार दे सकती हैं, बल्कि लाभदायक व्यवसाय का रूप भी धारण कर सकती हैं।

मवेशी/पशुओं का प्रबंधन

प्रबंधन में पशुओं की उचित देख-रेख, उनको चारा-पानी प्रदान करना, उन्हें निवास-स्थल (आश्रय) प्रदान करना व बीमारियों से रक्षा करना, ये सब शामिल हैं।

(क) मवेशियों का भोजन

पशुओं द्वारा खाए जाने वाले भोजन को भरण (Feed) कहते हैं। मवेशियों (गाय-भैसों) का भोजन सभी प्रकार के पोषक तत्वों से परिपूर्ण होना चाहिए। इसको देने से पहले जानवर की आयु, कार्य के प्रकार व स्वास्थ्य को ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरण के लिये, एक जवान गाय के बछड़े को एक बूढ़ी गाय से अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। पर्याप्त दूध देने के लिये व अच्छे स्वास्थ्य के लिये पशुओं को अच्छे आहार की आवश्यकता होती है।

गाय-भैंस के आहार में कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, जैसे पोषक तत्व शामिल होने चाहिए। मवेशियों के आहार को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है:-

(i) रुक्षांस (मोटा चारा), (ii) सांद्र (गाढ़ा किस्म का आहार)

(i) रुक्षांस में सेल्यूलोज जैसे कम पोषक पदार्थों व स्थूल कण एवं रेशे सम्मिलित हैं। चारा (ज्वार, बाजरा, रागी व मक्का), व फलीदार सब्जी (बरसीम इत्यादि) इसके उदाहरण हैं।

(ii) सांद्र में वे आहार शामिल हैं जो एक या एक से अधिक पोषक तत्वों से परिपूर्ण होते हैं। तिलहल (बिनोला), खल, अनाज, बाजरा, चना एवं भूसा इसके मुख्य उदाहरण हैं।

गाय-भैसों के अव्वल आहार बड़ी मात्रा में पानी, सांद्र और रुक्षांस से भरपूर होते हैं।

बरसीम, लूसर्न, कावपी जैसे फलीदार हरे चारे (Leguninous green fodder) बहुत पोषक हैं तथा मवेशियों को पसंद हैं। इन्हें शीतकाल में देना चाहिए। कुछ पोषक चारे की घास के नाम इस प्रकार हैं- एलीफेन्ट घास (Elephant grass), रोड्स घास, सूडान घास व नेपियर घास।

एक सामान्य गाय को प्रतिदिन निम्नलिखित आहार की आवश्यकता होती है-

1. हरा चारा व सूखी घास (रुक्षांस): 15 से 20 किलो।
2. अनाज का 'मिक्सचर' (सम्मिश्रण): 4 से 5 किलो
3. पानी: 32 किलो।

भारत के मवेशियों की जनसंख्या विश्व की मवेशी जनसंख्या का 25% हैं। परन्तु उनसे दूध की उत्पादन विश्व की कुल दूध की मात्रा का केवल 5% है। हमारे देश में एक गाय औसतन 1.5 लीटर दूध प्रतिदिन देती है व एक भैंस औसतन 2.5 लीटर प्रतिदिन देती है। इसके ठीक विपरीत कुछ विकसित देशों में एक गाय औसतन 8-11 लीटर दूध प्रतिदिन देती है। हमारे देश में दूध का कम उत्पादन निम्नलिखित कारणवश है:-

- मवेशी को निम्न स्तर का चारा (आहार) देना।
- चारा एवं आहार, इत्यादि की कमी।
- कम दूध देने वाली गाय-भैसों की स्थानीय किस्में।

इन सब कारणों के होते हुए भी, पिछले कुछ वर्षों में हमारे देश में मवेशियों की अच्छी नस्लों व बेहतर चारे के दौरान दूध का उत्पादन बढ़ा है। हमारी कुछ स्थानीय नस्लों की गायों के नाम हैं- साहिवाल, गीर, थारपरकर, लाल सिंधी, इत्यादि। विदेशीय किस्म की गायों के संकरण से हमारे देश की गायों की कुछ नई नस्लें इस प्रकार हैं- जर्सी, करन एवं स्विस ब्राउन (भूरे स्विस और साहिवाल का संकरण), करन और फ्राइज (थारपरकर और होलस्टाइन), फ्रेशवाल (फ्रोजियन और साहिवाल), होलस्टाइन-फ्रीजियन। ये नस्लें अधिक मात्रा में दूध देती हैं।

जर्सी नस्ल अमेरिका के जर्सी टापू की नस्ल है।

ब्राउन स्विस स्विटजरलैंड की एक प्रमुख नस्ल है।

होलस्टाइन-फेशियन हॉलैंड की एक नस्ल है।

भारत की कुछ भैंसों की नस्लों के नाम इस प्रकार हैं- मुर्रा, मेहसाना, सुरती और जाफराबादी।

(ख) जनन और दुग्धस्रवण

एक आयु के बाद एक मादा बछिया प्रजनन के लिये परिपक्व हो जाती है। वह दोनों प्रकार के प्रजनन के लिये, चाहे प्राकृतिक विधि हो या कृत्रिम विधि, तैयार हो जाती है और इसके फलस्वरूप वह बछड़े को दस महीने के प्रसवकाल के उपरांत जन्म देती है। इस समय अवधि में वह दुग्ध स्रवण (दूध देने की प्रक्रिया) की प्रक्रिया में प्रवेश कर जाती है और दूध देने लगती है। चार-छ: महीने के उपरांत, दूध का उत्पादन कम हो जाता है। दुग्धस्रवण की अवधि बढ़ाकर उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। परन्तु यदि दुग्धस्रवण अवधि को बाहर से, हॉर्मोनों के अविवेकपूर्ण प्रयोग से बढ़ाने की कोशिश की जाए, तब ये जानवरों व दूध की गुणवत्ता, दोनों के लिये हानिकारक सिद्ध होगा।

जलीय कृषि के प्रभाव

विश्व की तीसरे सबसे बड़े आकार की खाद्य निर्माण की व्यवस्था मात्स्यकी है। विश्व की व्यावसायिक समुद्री मछली पकड़ने का उद्योग मछली पकड़ने के जहाजों (विशाल औद्योगिक फैक्ट्री जहाजों) द्वारा होता है। इनमें अधिकतम मात्रा में मछली पकड़ने के सबसे आधुनिक तकनीक होती हैं। वास्तव में अधिकाधिक मछली पकड़ने के कारण प्रजनन कायम रखने, मछली की जनसंख्या में कमी आ गई है। अधिक से अधिक मछली पकड़ने की प्रक्रिया मछली की जनसंख्या को इतना कम कर देती है, कि व्यावसायिक रूप से इनको पकड़ना लाभदायक ही नहीं रह जाता।जलपोत और ड्रिफ्ट नेट जैसी मछली फँसाने (पकड़ने) के प्रयोग से मछलियों के साथ-साथ और भी अन्य रास्ते में आने वाली वस्तुएँ फँस जाती हैं। कभी-कभी तो फांसी गई वस्तुओं में से 70: प्रतिशत को फेंकना पड़ता है। इस व्यावसायिक विधि से मछली पकड़ने की प्रक्रिया हर वर्ष अन्य समुद्री जानवरों की शांति को भंग करती है। निकर्षक व जलपोत जैसे यंत्र समुद्री जानवरों के निवास-स्थलों पर बुरा प्रभाव छोड़ते हैं। अत: दुनिया भर की मछली की जनसंख्या निम्नलिखित बातों से पीड़ित है:

- अत्यधिक दोहन।
- आवासों का विनाश।
- अन्य रास्ते में आने वाले जानवरों की मौत।
- प्रदूषण।

आज तक समुद्री मात्स्यकी के प्रबंधन व सही संचालन में मानव-जाति पूरी तरह विफल रही है। कुछ ही खास किस्म की मछलियों की नस्लों को केन्द्रित कर हमने समुद्री परिवेश का विनाश किया है।अपक्षीर्णित या विनाश होती समुद्री मात्स्यकी, व समुद्री भोजन की मांग, जलीय कृषि दोनों का एक संभावित हल निकालता है। जलीय कृषि मछली, मात्स्यकी जलीय पौधों, मोलस्क, क्रस्टेशियन एवं जलपादप की कृषि है। मूलत: जलीय कृषि मछली सम्बन्धित कृषि है जो कि एक नियंत्रित वातावरण में मछलियों का पालन-पोषण करती है। इस नियंत्रित वातावरण में तटीय तालाब, टैंक, आदि शामिल हैं। सही आकार होने पर इन मछलियों को एकत्र कर लिया जाता है। जलीय कृषि लोगों को विविध प्रोटीनयुक्त भोज्य-सामग्री को प्रदान करती है।

यह विश्व खाद्य अर्थव्यवस्था का सबसे तेजी से विकास करता वर्ग है, जो प्रतिवर्ष 10: की दर से वृद्धि कर रहा है। अधिकतर जलीय कृषि एशिया में होती है। यद्यपि इस क्षेत्र में चीन विश्व नेता है।

जलीय कृषि की वर्तमान 'नीली क्रांति' (Blue Revolution) ने साधनों के समाग्रित प्रयोग द्वारा एक उद्योग का रूप ले लिया है, जिसका, दुर्भाग्यवश पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़ा है। जलीय कृषि की व्यवस्था विकसित करने के लिये एक पर्यावरणीय जलीय कृषि को समर्थन देना आवश्यक है।

जिससे न केवल उनके पर्यावरण का संरक्षण हो सके बल्कि सही प्रकार से मत्स्य-फसलीकरण किया जा सके। अत: उसे एक संपोषित तरीके से संचालित मात्स्यकी दीर्घोपयोगी होनी चाहिए।

जलीय कृषि गरीब ग्रामीणों के लिये रोजगार का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। मछली के उत्पादन सम्बन्धी, सेवाएँ एवं परिरक्षण इत्यादि से जुड़ कर वे प्रत्यक्ष रूप से उत्पादों को बेचकर आय उत्पन्न कर सकते हैं।

निष्कर्ष

हम डिजिटल ग्रीन नामक संगठन की मदद करते हैं, जो तकनीक की शक्ति और सामाजिक संगठनों की मदद से कृषि, स्वास्थ्य और पोषण में सुधार के लिए काम करता है। डिजिटल ग्रीन के सूचना प्रदान करने के नए और किफायती तरीके भारत के सात राज्यों में राष्ट्रीय कृषि संबंधी सेवाओं को मजबूत बना रहे हैं और कृषि उत्पादकता बढ़ा रहे हैं। डिजिटल ग्रीन समुदाय द्वारा तैयार किए गए वीडियो द्वारा छोटे खेतों वाले किसानों को नई और विकसित उत्पादन तकनीक, बाजार तक पहुंच और सरकारी कार्यक्रमों के बारे में सूचित करता है। यह 10,000 गांवों में एक मिलियन किसानों से जुड़ने के लिए भारत के राष्ट्रीय ग्रामीण जीविका मिशन, निजी क्षेत्र और शोध संस्थानों के साथ साझेदारी में काम करता है। हाल के दशकों में भारतीय कृषि काफी आगे बढ़ी है, लेकिन उत्पादकता अब भी चुनौती बनी हुई है। देश की लगभग आधी आबादी अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर है, लेकिन ग्रामीण इलाकों में गरीबी और कुपोषण का स्तर बहुत ऊंचा है। साथ ही पानी की कमी, जलवायु परिवर्तन और छोटे टुकड़ों में बंटी जमीनों जैसी समस्याओं की वजह से लाखों छोटे किसानों के लिए अपनी मेहनत का मुनाफा हासिल करना तो दूर परिवार का पेट पालना भी मुश्किल हो जाता है। बेहतर उत्पादन, कृषि प्रबंधन साधन और तकनीक, पशु देखभाल की बेहतर व्यवस्था, बीजों की बेहतर किस्म, बाजार से जुड़ाव और वित्तीय सेवाओं (कर्ज, बचत, भुगतान और बीमा) आदि तक पहुंच को बेहतर बना कर भारत के छोटे खेतों वाले किसानों का भविष्य काफी बेहतर बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. अल्वारेज, राबर्ट ए (2007), 1525/gfc। 2007। 7। 3। 28 दी मार्च ऑफ अम्पायर: मेंगोज, आवोकाडोज, एंड पोलिटिक्स ऑफ ट्रांसफर। गेस्ट्रोनोमिका, खंड 7, संख्या 3, 28-33। 12 नवंबर 2008 को पुन: प्राप्त।
2. बोलेंस, एल (1997), गैर पश्चिमी संस्कृतियों में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और चिकित्सा के इतिहास के विश्वकोश में 'कृषि', संपादक: हेलैने सेलिनय क्लुवर एकेडमिक पब्लिशर्स।

3. कोलिंसन, एम। (संपादक): अ हिस्ट्री ऑफ फार्मिंग सिस्टम्स रिसर्च CABI प्रकाशन, 2000। आईएसबीएन 0-85199-405-9
4. क्रॉसबी, अल्फ्रेड डब्ल्यू: दी कोलंबियन एक्सचेंज: 1492 के जैविक और सांस्कृतिक परिणाम प्रेगेर प्रकाशक, 2003 (30 वीं वर्षगांठ का संस्करण)। आईएसबीएन 0-275-98073-1
5. डेविस, डोनाल्ड आर और ह्यूग डी. रिओर्डान (2004), 43 बागान फसलों के लिए USDA खाद्य संरचना डेटा में परिवर्तन, 1950 से 1999। जर्नल ऑफ अमेरिकन कॉलेज ऑफ न्यूट्रीशन, खंड 23, संख्या 6, 669-682।
6. फरीदलैंड, विलियम एच. और एमी बार्टन (1975), डीस्टॉकिंग द वाइली टोमेटो: कैलिफोर्निया कृषि अनुसंधान में सामाजिक परिणामों का एक केस अध्ययन। स्टा। क्रूज पर कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, अनुसंधान मोनोग्राफ 15।
7. मजोयेर, मार्सेल, रोडार्ट, लॉरेंस (2006): अ हिस्ट्री ऑफ वर्ल्ड एग्रीकल्चर: निओलिथिक काल से वर्तमान संकट तक, न्यूयॉर्क, एनवाई: मासिक समीक्षा प्रेस, आईएसबीएन 1-583-67121-8
8. SaltiniAAStoria delle scienze agrarie, 4 खंड, बोलोग्ना 1984-89, आईएसबीएन 88-206-2412-5, आईएसबीएन 88-206-2413-3, आईएसबीएन 88-206-2414-1, आईएसबीएन 88-206-2414-X
9. वाटसन,IM (1974), 'दी अरब एग्रीकल्चरल रेवोल्यूशन एंड इट्स डिफ्यूजन', इकोनोमिक हिस्ट्री के जर्नल में, 34,
10. वाटसन,IM (1983), 'एग्रीकल्चरल इन्नोवेशन इन दी अर्ली इस्लामिक वर्ल्ड', कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस
11. वेल्स, स्पेन्सर: द जर्नी ऑफ मैन: ए जेनेटिक ओडिसी। प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003। आईएसबीएन 0-691-11532-X

नैषधीयचरितम् महाकाव्य में प्रयुक्त कुछ दुर्घट क्रियापदों का विवेचन

धारा

(प्राध्यापिका संस्कृत), राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, खुड्डाकलां, अम्बाला छावनी, हरियाणा
दूरभाष संख्या - 9416825767

सार्थकपदसमूह को वाक्य कहते हैं-'पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ'। इन पदों में क्रियापद मुख्य होता है। यदि वाक्य में से क्रियापद को निकाल दिया जाए तो शेष बचे हुए सभी संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण आदि पद परस्पर अन्वय सम्बन्धरहित होकर बिखर जाते हैं और अभीष्ट अर्थ का बोध नहीं कराते हैं। मेरा प्रस्तुत शोध-पत्र नैषध में प्रयुक्त कुछ ऐसे क्रियापदों के विवेचन से सम्बद्ध है, जो व्याकरण की पारिभाषिक शब्दावली में दुर्घट कहलाते हैं। दुर्घट पद से तात्पर्य ऐसे पदों से है, जिनकी व्युत्पत्ति या विश्लेषण सहज या साधारण पद्धति से न होकर कुछ कष्टपूर्वक या अनेक सूत्र लगाकर होता है। दूसरे शब्दों में- दुर्घट पद वे होते हैं, जो आपाततः अथवा सामान्य रूप से अपाणिनीय से दिखाई देते है,परन्तु सूत्रों में योगविभाग करके या अन्य निपातन आदि का सहारा ले करके विशेष प्रयत्न करते हुए जिन्हें सिद्ध या निष्पादित किया जाता है- 'दुःखेन घटयितुं शक्यः' इति दुर्घटः'।

इस प्रसंग में पहला दुर्घट प्रयोगनैषधीयचरितम् के श्लोकांश ''तदेकलुब्धे हृदि मेऽस्ति लब्धुं चिन्ता नचिन्तामणिमप्यनर्घम्'' में प्रयुक्त 'अस्ति' क्रियापद है। अस् धातु के लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन के 'अस्ति' क्रियापद का नैषधीयचरितम् महाकाव्य में 35 बार प्रयोग हुआ है। यह किसी भी कवि व लेखक के द्वारा अधिकतम प्रयुक्त होने वाला क्रियापद है तथापि पाणिनीय सूत्रों से निष्पन्न इस रूप में यह संदेह किया गया है कि 'खरि च' सूत्र के नियम के अनुसार 'अस्ति' इस प्रयोग में 'ख' रूप 'तकार' परे होने पर 'च' रूप 'सकार' को चर्त्व 'तकार' आदेश होना चाहिए था। अतः 'अत्ति' यह क्रियापद बनना चाहिए था।

दुर्घटवृत्तिकार शरणदेव ने इस दोष का निवारण इस प्रकार बताया गया है कि 'सः स्यार्धधातुके' सूत्र के द्वारा आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते सकार को तकार आदेश करने से ज्ञापित होता है कि 'खरि च' इस सूत्र से सम्बन्धित प्रयोगों में आर्धधातुक को छोड़कर अन्यत्र सार्वधातुक आदि अन्य प्रयोगों में 'स्' को 'त्' नहीं होता। यदि ऐसा स्वीकार नहीं किया जाए तो 'वस् आच्छादने' एवं 'आस् उपवेशने' धातु के लट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन में 'थासः से' सूत्र से 'से' आदेश करने पर निष्पन्न क्रमशः 'वस्से' तथा 'आस्से' रूपों में भी चर्त्व की अनिष्ट प्राप्ति होने लगेगीय क्योंकि लृट् लकार आर्धधातुक है, अतः वहाँ पर तो वस् धातु से 'वत्स्यति' रूप ही बनता है। अतः 'स' को 'त' करना तो आर्धधातुक लकार के ही संयोग से है। स्पष्ट है कि 'अस्ति' यह प्रयोग सार्वधातुक लकार का है, आर्धधातुक का नहीं। अतः पूर्वोक्त ज्ञापक के आधार पर इसमें 'खरि च' सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होगी। इसके अतिरिक्त शरणदेव ने दुर्घटवृत्ति में ज्ञापक समुच्चय का मत प्रस्तुत करते हुए यह भी बताया है कि 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' सूत्र की रचना से भी यह ज्ञापित होता है कि यहाँ पर पूर्वसवर्ण आदेश होता है। यह सूत्र 'उद्' उपसर्ग से उत्तरवर्ती 'स्था' और 'स्तम्भ' धातुओं को पूर्वसवर्ण आदेश करता है, जिससे इन धातुओं के सकार को पूर्वसवर्ण होकर 'उत्थानम्' तथा 'उत्तम्भनम्' रूपों की सिद्धि हो सके। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि 'झल' से उत्तरवर्ती सकार का 'झल्' परे रहते लोप करने वाले 'झलो झलि' सूत्र के आधार पर सलोप होकर भी 'उत्थानम्', तथा 'उत्तम्भनम्' आदि रूपों की सिद्धि हो सकती है, जिससे 'उदः स्थास्तम्भोः' सूत्र व्यर्थ होने लगता है और व्यर्थ स्वीकार करने पर ज्ञापित करता है कि 'झलो झलि' सूत्र से 'सिच्' के ही सकार का लोप होता है, अन्य सकार का नहीं। यह ज्ञापक मानने पर 'उदः स्थास्तम्भोः' सूत्र सार्थक हो जाता है, क्योंकि 'उत्थानम्' आदि में धातु के सकार का लोप 'झलो झलि'

सूत्र से नहीं होता है। अतः इन सूत्रोक्त नियमों के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'अस्ति' यह क्रियापद सार्थक है। पाणिनि ने स्वयं अपने सूत्रों यथा– 'अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः', 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' आदि में 'अस्ति' इस क्रियापद का प्रयोग किया है। अतः इससे निष्कर्ष निकलता है कि उन्हें स्वयं 'अस्ति' के 'स्' के स्थान पर 'त्' करना अभीष्ट नहीं था।

इस दुर्घट क्रियापदों के प्रसंग में दूसरा प्रयोग नैषधीयचरितम् के श्लोकांश ''क्व वा निधिर्निर्धनमेति किं च तं स वा कवाटं घटयन्निरस्यति'' का 'नि' उपसर्गपूर्वक 'असु क्षेपणे' धातुके लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का 'निरस्यति' क्रियापद है, जो 'श्नःसोरल्लोपः' सूत्र से सम्बन्धित है। इस क्रियापद का नैषधीयचरितम् में दो बार प्रयोग हुआ है। 'श्निसोरल्लोपः' सूत्र के द्वारा 'कित्', 'ङित्' प्रत्ययों के परे होने पर 'श्ना' विकरण तथा 'अस्' धातु के अकार का लोप होता है। इस नियम के अनुसार 'निरस्यति' यह प्रयोग विचारणीय हैय क्योंकि जैसे– 'स्तः','सन्ति' में ङित् प्रत्यय परे रहते 'श्नससोरल्लोपः' सूत्र से 'अस्' धातु के अकार का लोप होता है, वैसे ही 'निरस्यति' यहाँ नि उपसर्गपूर्वक दिवादिगण की 'असु क्षेपणे' धातु के भी अकार का इस सूत्र से लोप क्यों नहीं होताय क्योंकि जैसे– 'स्तः' 'सन्ति' में 'तस्' और 'झि' ङित् प्रत्यय परे हैं, वैसे ही 'निरस्यति में भी 'तिप्' तो भले 'पित्' हो, परंतु 'श्यन्' विकरण तो 'सार्वधातुकमपित्' सूत्र नियम से ङित परे है ही। अतः यहाँ भी अकार का लोप होना चाहिए।

परन्तु शरणदेव के अनुसार इसका समाधान यह बताया गया है कि 'निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य' अर्थात् जहाँ अनुबन्धरहित का ग्रहण होता है, वहाँ अनुबंधसहित का ग्रहण नहीं होता। इस परिभाषा के अनुसार इस उक्त सूत्र में दैवादिक 'असु क्षेपणे' धातु का ग्रहण अभीष्ट नहीं हैय क्योंकि 'अस् भुवि' धातु अनुबंधरहित है, जबकि 'असु क्षेपणे' धातु में 'उ' अनुबंध है। 'निरस्यति' प्रयोग इसी 'असु क्षेपणे' धातु से बना है। इस कारण उसके अकार का लोप नहीं होगा। ध्यान रहे कि पाणिनिधातुपाठ में 'अस्' इस अनुपूर्वी वाली और भी अनेक धातुएँ हैं, यथा– अस् भुवि, अस् आदाने, अस् गतौ, अस् दीप्तौ परंतु 'श्नसोरल्लोपः' सूत्र से मात्र अदादिक 'अस् भुवि' धातु में ही 'स्तः','सन्ति' आदि रूपों में 'अस्' के 'अ' का लोप की प्राप्ति हुई है। अन्यत्र तो 'असति', 'असतः', 'असन्ति' आदि रूप ही प्राप्त होते हैं।

तृतीय दुर्घट प्रयोग नैषधीयचरितम् के श्लोकांश ''जगति तिमिरं मूर्च्छामब्जव्रजेऽपि चिकित्सतः पितुरिव निजादस्माद्ग्रावधीत्य भिषज्यतः'' में प्रयुक्त 'अधि' उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' धातु से ल्यप करने पर बना 'अधीत्य' क्रियापद है जो 'अधिपरी अनर्थकौ' सूत्र का विषय है। इस क्रियापद का नैषधीयचरितम् में मात्र एक बार प्रयोग हुआ है। 'प्रादिप्रसङ्गे कर्मप्रवर्चनीयानां प्रतिषेधो वक्तव्यः' वार्तिक के अनुसार 'अधीत्य' यह प्रयोग चिन्त्य हैय क्योंकि 'अधिपरी अनर्थकौ' सूत्र द्वारा 'अधि' और 'परि' अनर्थक अर्थात् अन्य अर्थ के वाचक न हों तो कर्मप्रवचनीयसंज्ञक होते हैं। उदाहरण– 'कुतः अध्यागच्छति'। यहाँ धात्वर्थ के अतिरिक्त 'अधि' उपसर्ग का कोई अर्थ नहीं है। अतः 'अधीत्य' इस प्रयोग में अनर्थक 'अधि' के कर्मप्रवर्चनीयसंज्ञक (न कि 'उपसर्गाः क्रियायोगे' सूत्र से उपसर्गसंज्ञक) होने के कारण इसका उपयुक्त वार्तिकवचनानुसार 'इ' धातु के साथ समास नहीं होना चाहिए, जिसका फल यह होगा कि 'अधीत्य' इस प्रयोग में अधि का इ धातु के साथ समास न होने से 'समासेघ्ऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' सूत्र से ल्यप् की प्राप्ति भी नहीं होगी जिससे यह प्रयोग दोषयुक्त हो जाएगा। अतः समास का प्रश्न ही नहीं उठता। न्यासकार ने समुदाय (अधि+इ) के अर्थ का 'इङ्' धातु के अर्थ में उपचार करके 'अधि+इ' की धातु संज्ञा मानी है क्योंकि 'इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः' अर्थात् 'इङ्' तथा 'इक' का कहीं भी 'अधि' उपसर्ग से रहित प्रयोग नहीं देखा जाता है।

परंतु दुर्घटवृत्ति में इसका समाधान इस प्रकार दिया है कि स्वयं पाणिनि ने भी 'पोटायुवति...' सूत्र में 'अध्यापक' पद में अनर्थक व कर्मप्रवर्चनीयसंज्ञक 'अधि' का 'इ' धातु के साथ प्रयोग किया है। अतः यह माना जा सकता है कि पूर्वोक्तवार्तिकप्रोक्त कर्मप्रवर्चनीयसंज्ञक शब्दों के साथ समास का निषेध अनित्य होता है, इसी कारण से 'अतिस्तुतम्', 'सुस्तुतम्' प्रयोगों में क्रमशः 'अतिरतिक्रमणे च' तथा 'सु पूजायाम्' सूत्रों से 'अति' और 'सु' की कर्मप्रवर्चनीय संज्ञा हो जाने पर भी 'स्तु' धातु के साथ समास होकर 'उपसर्गात्...' सूत्र से उपसर्ग के अभाव में षत्व नहीं हुआ है यक्योंकि कर्मप्रवचनीय संज्ञा गति और उपसर्ग संज्ञा का बाध करने के लिए होती है और तथा किसी विशेष सूत्र से किसी एक संज्ञा का विधान होने पर पुनः कोई और संज्ञा नहीं हो सकती। अतः आकडारादेकासंज्ञा के अधिकार क्षेत्र में पठित होने के कारण गति संज्ञा न होने से 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से समास भी नहीं किया जा सकता है परन्तु उपरोक्त उदाहरणों में कर्मप्रवचनीय का धातु के साथ प्रयोग निर्दिष्ट है, अतः निष्कर्षतः इसी प्रकार इस समास को अनित्य मानकर 'अधीत्य' प्रयोग में भी अनर्थक 'अधि' का 'इ' धातु के साथ समास मानकर इष्ट प्रयोग प्राप्त किया जा सकता है।

इसी क्रम में श्रीहर्ष द्वारा नैषधीयचरितम् के श्लोकांश ''तप:फलत्वेन हरे: कृपेयमिमं तपस्येव जनं नियुङ्क्ते'' में प्रयुक्त 'कृपा' प्रयोग भी विचारणीय है। नैषधीयचरितम् महाकाव्य में इस पद का मात्र एक बार ही प्रयोग ही हुआ है। 'कृप्' धातु से 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' सूत्र से अङ् प्रत्यय करने पर बने 'कृपा' शब्द में यह संदेह उत्पन्न होता है कि यहाँ 'कृपो रो ल:' सूत्र के नियमानुसार लत्व होना चाहिए था। यदि 'क्रप् कृपायाम्' धातु से भी इसे सिद्ध मान लिया जाए तो भी समस्या बनी रहती है, क्योंकि 'क्रप्' को सम्प्रसारण होकर 'कृप्+अ' स्थिति में 'लत्व' की प्राप्ति पुन: होगी। ऐसी ही समस्या कृपाण:, कर्पट:, कर्पर: आदि प्रयोगों में भी उपस्थित होती है।

इसका दुर्घटवृत्ति में यह समाधान दिया गया है कि 'क्रप्' धातु का भिदादिगण में पाठ है और उसे सम्प्रसारण होकर 'कृप्' ऐसा बनने से वह लाक्षणिक है। अत: 'लक्षणप्रतिपदोक्तयो प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्' परिभाषा के अनुसार क्रप् धातु 'कृपो रो ल:' सूत्र का विषय नहीं बन सकती अर्थात् जो धातु मूल रूप में वैसी हो, वह प्रतिपदोक्त होती है एवं जो सूत्र लगाने के बाद नवीन रूप धारण करे, वह लाक्षणिक होती है। अत: किए गए सम्प्रसारण वाले इस 'कृप्' के लाक्षणिक अर्थात् लक्षणसूत्र द्वारा निष्पन्न हो जाने के कारण प्रतिपदोक्त इस सूत्र में इस 'कृप्' का ग्रहण नहीं होगा। इस प्रकार 'लत्व' का विषय नहीं होने के कारण 'कृपा' यह शब्द बन जाता है। 'कृपाण:',कर्पट: आदि प्रयोगों की सिद्धि के लिए भी यह कहा गया है कि ये प्रयोग उणादिसूत्रों से सिद्ध हुए हैं। महाभाष्यकार ने स्वयं इन प्रयोगों को 'कृपणादीनां प्रतिषेध:' वार्तिक के द्वारा लत्व के अभाव में सिद्ध किया है। अत: यह कृपा शब्द 'क्रप्' धातु का ही रूप है, जिसमें उपरोक्त नियमानुसार लत्व की आवश्यकता ही नहीं है।

इसी क्रम में पञ्चम दुर्घट प्रयोग नैषधीयचरितम् महाकाव्य के श्लोकांश ''या स्वौजसां साधयितुं विलासैस्तावत्क्षमा नामपदं बहु स्यात्'' में प्रयुक्त'क्षमा' पद है जो 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' तथा ''षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से सम्बन्धित है। इसका नैषधीयचरितम् महाकाव्य में दो बार प्रयोग हुआ है। 'क्षमूष् सहने' धातु से 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' सूत्र से अङ् प्रत्यय करके निष्पन्न 'क्षमा' यह प्रयोग इसलिए विचारणीय है, क्योंकि 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र के द्वारा 'षित्' व 'गौरादि' शब्दों से 'ङीष्' प्रत्यय का विधान है, यथा- 'स्तनन्धयी' पद में धेट् धातु के टित् होने के कारण 'टिड्ढाणञ्...' सूत्र से ङीप् की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार यहाँ पर भी 'क्षमूष्' धातु के षित् होने के कारण 'टाप्' के स्थान पर 'ङीष्' होना चाहिए था, जबकि यहाँ पर 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से 'टाप्' प्रत्यय करके रूप निष्पन्न हुआ है।

इसका समाधान इसी सूत्र की व्याख्या में दुर्घटवृत्ति में यह दिया गया है कि जब एक अनुबन्ध अवयव के प्रति चरितार्थ हो जाता है, फिर समुदाय के प्रति उसकी अनुपपत्ति ही रहती है। यहाँ पर पहले 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' सूत्र से अङ्विधि रूप अवयव (क्षम्) में चरितार्थ हो जाने पर पुन: समुदाय (क्षम्+अङ्=क्षम) में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से 'ङीष्' की अनुपपत्ति का अभाव रहता हैय क्योंकि 'षित्' के कारणस्वरूप जो कार्य एक बार किया जा चुका हो, फिर उसकी पुन: प्राप्ति नहीं हो सकती है। वास्तव में इन धातुओं को 'षित्' करने का प्रयोजन ही 'षिद्भिदादिभ्योऽङ्' सूत्र के द्वारा 'अङ्' प्रत्यय करना है। अत: 'क्षमूष्' आदि धातुओं के षित्करण का पहले ही अङ्विधि के प्रति चरितार्थ होने के कारण वह समुदाय के प्रति निष्प्रयोजक हो गया है। इस कारण 'ङीष्' की प्राप्ति नहीं होगी। अत: यहाँ पर 'क्षमा' यह प्रयोग साधु है।

इसी सूत्र से सम्बन्धित नैषधीयचरितम् श्लोकांश ''त्रपा हरीणामितिनम्रिताऽऽननै र्न्यवर्ति तैरर्धनभ: कृतक्रमै:' में प्रयुक्त 'त्रपा' पद भी द्रष्टव्य है। इसका भी इस महाकाव्य में मात्र एक बार प्रयोग हुआ है। यहाँ भी 'क्षमा' पद के समान 'त्रपा' में 'त्रपूष् लज्जायाम्' धातु के 'षित्' होने के कारण 'ङीष्' की प्राप्ति थीय परन्तु इसका निराकरण भी दुर्घटवृत्ति में 'क्षमा' के साथ ही यही दिया गया है कि जो अनुबंध अवयव के प्रति चरितार्थ हो जाता है, वह समुदाय के प्रति निष्प्रयोजन हो जाता है। इसमें भी धातु के 'षित्करण' का 'अङ्' विधि के प्रति चरितार्थ होने के कारण यह समुदाय (त्रप्+अङ्) के प्रति निष्प्रयोजन हो गया है, अत: 'त्रपा' यह एक समुचित प्रयोग है।

'ह्रस्व' सूत्र से संबंधित श्रीहर्ष द्वारा नैषधीयचरितम् के श्लोकांश ''कन्याऽन्त:पुरबोधनाय यदधीकारान्न दोषा नृपं, द्वौ मन्त्रिप्रवरश्च तुल्यमगदङ्कारश्च तावूचतु:'' में प्रयुक्त सप्तम प्रयोग 'ऊचतु:' है। इस क्रियापद का नैषधीयचरितम् में एक ही बार प्रयोग हुआ है। पाणिनि के सूत्रानुसार श्रीहर्ष के द्वारा प्रयोग किए गए इस क्रियापद में यह संदेह किया गया है कि 'ह्रस्व:' इस सूत्र के द्वारा अभ्यास सम्बन्धी 'अच' को ह्रस्व का विधान होता है। यदि इस नियम को दृष्टिगत किया जाए तो 'ब्रू' धातु के 'लिट्' लकार के द्विवचन का 'ब्रू' को 'वच' आदेश 'सम्प्रसारण', द्वित्व तथा सवर्णदीर्घएकादेश करके निष्पन्न 'ऊचतु:' प्रयोग विचारणीय हैय क्योंकि एकादेश

ऊकार को अभ्यास के प्रति अन्तवत् होने के कारण उसको 'ह्रस्व:' सूत्र से ह्रस्व होना चाहिए था। अर्थात् 'अन्तादिवच्च' सूत्र से इसे दीर्घ ऊकार में घटित अभ्यास का अंतिम अंश ऊकार मिला है तो अभ्यास का अवयव हो जाने के कारण अन्तवत् भाव से 'ह्रस्व:' सूत्र से अभ्यास में ह्रस्व की प्राप्ति होती है।

परंतु दुर्घटवृत्ति के अनुसार इसका समाधान यह दिया गया है कि 'अक: सवर्णे दीर्घ:' सूत्र से किया गया सवर्णदीर्घ एकादेश ह्रस्व की अपेक्षा बहिरंग है। इस कारण 'अ सिद्ध ं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' परिभाषा के अनुसार उसके अ सिद्ध हो जाने के कारण अनिष्ट ह्रस्व नहीं होगा। क्योंकि एकादेश सवर्णदीर्घ के अ सिद्ध हो जाने पर जब उसे दीर्घ माना ही नहीं गया तो ऐसी अवस्था में ह्रस्व करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अत: 'ऊचतु:' यह एक सार्थक क्रियापद है।

इसी क्रम में पाणिनि का एक दुर्घट प्रयोग 'प्रभावं' है जो 'नैषधीयचरितम्' के श्लोकांश ''एक: प्रभावमयमेति परेतराजौ तज्जिवितेशधियमत्र विधेहि मुग्धे!'' में प्रयुक्त किया गया है।

'प्र' उपसर्गपूर्वक 'भू सत्तायाम्' धातु से निष्पन्न 'प्रभावं' शब्द की सिद्धि में समस्या यह है कि यहाँ 'श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे' सूत्र के अनुसार 'प्र' उपसर्ग के पूर्व में होने पर यहाँ 'घञ्' प्रत्यय नहीं होना चाहिएय क्योंकि अनुपसर्गक श्रि, णी तथा भू आदि धातुओं से 'घञ्' प्रत्यय का विधान है। यहाँ पर यह समाधान प्रस्तुत किया गया है कि इसमें 'प्र भू' धातु से गतिसमास न होकर 'प्रकृष्टो भाव: प्रभाव:' इस प्रकार प्रादि समास हुआ है। काशिका, सुधानिधि, सिद्ध न्तकौमुदी में यही समाधान प्रस्तुत किया गया है। ऐसा मानने पर अब यह 'घञ' प्रत्यय पहले अनुपसर्ग 'भू' धातु से होकर 'भाव' शब्द बनता है फिर उसका प्रकृष्ट शब्द के साथ प्रादि समास होकर उक्त शब्द निर्बाध सिद्ध हो जाता है।

'भू' धातु का ही एक अन्य दुर्घट प्रयोग 'भवति' प्रयोग भी नैषधीयचरितम् के श्लोकांश ''सङ्ग्रामभूमिषु भवत्यरीणामस्रैर्नदीमातृकतां गतासु'' में द्रष्टव्य है, जिसका इस महाकाव्य में पाँच बार प्रयोग हुआ है।'भवति' इस विशिष्ट प्रयोग में भी आपत्ति का कारण यह रहा कि 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र के अनुसार 'उपदेश' तथा 'अनुनासिक' शब्द विचारणीय हैं। व्याकरण शास्त्र में निहित जिन वाक्यों के द्वारा प्रकृति, प्रत्यय आदि की प्रक्रिया को प्रस्तुत किया गया है, वे 'उपदेश' कहलाते हैं। अष्टाध्यायी के सूत्रपाठ तथा उसके परिशिष्ट के रूप में उपलब्ध खिलपाठ (धातुपाठ, गणपाठ) आदि 'उपदेश' शब्द के द्वारा ही संगृहीत माने गए हैं। धातुवृत्तिकार ने स्पष्टरूप से धातु, सूत्र, प्रातिपदिक, प्रत्यय, आगम वा आदेशों के प्रवचन को 'उपदेश' माना है। यहाँ संदेह यह है कि जिनकी उपर्युक्त सूत्र के माध्यम से 'इत्' संज्ञा मानी गई है, वे कहीं पर अनुनासिक दिखाई नहीं जान पड़ते। यथा- एध तथा स्पर्ध धातुनिर्देश में उपदेशावस्था के अकार को अनुनासिक न दिखाई देते हुए भी उसकी इत्संज्ञा मानी गई है। अत: यदि अनुनासिक न होने पर भी इत्संज्ञा उचित है तो उपदेशावस्था में दिखाई देने वाले प्रत्येक अच् की इत्संज्ञा होने लगेगी। इस प्रकार धातुपाठ में 'भू' धातु उपदिष्ट है, उसकी 'भूवादयो धातव:' से धातुसंज्ञा होती है, अत: इसमें भी 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र के द्वारा ऊकार की इत्संज्ञा प्राप्त होगी, जिससे 'भवति' रूप की सिद्धि नहीं हो सकेगी, अपितु भ्+शप्+तिप्=भवति यह अनिष्ट रूप बनेगा।

इसके लिए पाणिनीय सम्प्रदाय में इस समस्या के निवारणार्थ एक वचन निर्दिष्ट है-'प्रतिज्ञानुनासिक्या: पाणिनीया:।' प्रतिज्ञानुनासिक्या: का विग्रह है 'प्रतिज्ञया आनुनासिक्यं येषां ते प्रतिज्ञानुनासिक्या:'। तात्पर्य यह है कि केवल प्रतिज्ञामात्र से अभीष्ट 'अचों' की अनुनासिकता स्वीकार्य की गई है, अर्थात् जहाँ-जहाँ उपदिष्ट 'अच्' वर्णो की इत्संज्ञा अभीष्ट थी, वहाँ-वहाँ पर पाणिनि ने उसका सानुनासिक उपदेश किया था। भले ही आज उनका सानुनासिक उपदेश न दिखाई दे।

शरणदेव ने दूसरा समाधान यह दिया गया है कि 'भू' के 'ऊकार' को सानुनासिक नहीं माना गया था अर्थात् सानुनासिक के रूप में वह प्रतिज्ञात नहीं था। एक अन्य समाधान यह है कि 'भू' के 'ऊकार' की 'इत्संज्ञा' करने में कोई प्रयोजन न मानने के कारण उसकी 'इत्संज्ञा' भी नहीं होगी। इसका कारण यह बताया गया है कि 'भू' धातु के 'ऊदित्' होने पर 'स्वरतिसूति..' सूत्र के द्वारा विकल्प से 'इट्' की प्राप्ति होती है, जिस कारण आर्धधातुक लकारों में 'सेट्' व 'अनिट्' दो-दो रूप बनने लगेंगेय परंतु इसका खण्डन इस प्रकार किया गया है कि 'भू' धातु को उदात्त पढ़ा गया है, जिससे वह नित्य सेट् है।अत: विकल्प से 'इट्' का निषेध नहीं हो सकेगा, और यदि किया भी जाए तो धातु को उदात्त पढ़ना भी व्यर्थ है। यदि ऐसा मान भी लिया जाए कि 'गा' आदि धातुओं के समान 'भू' में भी अनुदात्तत्व की निवृत्ति हो जाए तो यह भी उचित नहीं हैय क्योंकि इस प्रकार उकार की इत्संज्ञा एवं लोप होने के कारण धातु 'अच्' से रहित हो जाएगी तथा तब तो अनुदात्त का प्रश्न ही नहीं उठता। अत: प्रयोजन के अभाव में 'भू' के 'ऊकार' की इत्संज्ञा नहीं होगी।

श्री हर्ष के द्वारा नैषधीयचरितम् के श्लोकांश ''तस्या दृशो वियति बन्धुमनुव्रजन्त्या- स्तद्बाष्पवारि न चिरादवधिर्बभूव।'' में प्रयुक्त 'भू' धातु के लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन से निष्पन्न 'बभूव' क्रियापद भी द्रष्टव्य है। इस क्रियापद का नैषधीयचरितम् में 22 बार प्रयोग हुआ है। 'इन्धिभवतिभ्यां च' सूत्र के नियमानुसार 'इन्ध' तथा 'भू' धातुओं से पर 'लिट्' सम्बन्धी प्रत्यय किद्वत् हो जाते हैं। यहाँ संदेह यह उत्पन्न होता है कि सूत्रस्थ 'भवति' पद के द्वारा कौन सी धातु के प्रयोग का औचित्य है? 'भू' धातु का प्रयोग तो यहाँ स्पष्ट है ही। क्या यहाँ पर 'अस्तेर्भूः' सूत्र से आदिष्ट होने वाला 'भू' आदेश भी 'भवति' पद से अभीष्ट है अथवा उसका ग्रहण नहीं किया जाना चाहिए। सूत्रों में धातुओं के निर्देश के समय सामान्यतया 'इक' अथवा 'शितप' प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। उक्त सूत्र में 'इन्ध्' धातु का निर्देश 'इक्' के द्वारा तथा 'भू' का निर्देश 'शितप्' के द्वारा किया गया है। अतः यहाँ पर यह विचारणीय है कि यहाँ 'शितप्' प्रत्यय मूल 'भू सत्तायाम' के साथ ही प्रयुक्त होकर निर्दिष्ट हुआ है, इस प्रकार उसी के प्रयोग को सही माना जा सकता है, अतः 'अस्' के स्थान पर आदिष्ट 'भू' का प्रयोग यहाँ नहीं हो सकता। परंतु यदि ऐसा मान लिया जाए कि 'अस' के स्थान पर निर्दिष्ट 'भू' के प्रयोग का ग्रहण नहीं किया जा सकता तो 'अस' धातु के लिट् लकार में 'किद्वत्' का आदेश प्राप्त न होने से गुण की प्राप्ति होकर 'बभूव' प्रयोग की सिद्धि नहीं मानी जा सकती।

इसका निराकरण दो प्रकार से माना गया है। तदनुसार नित्यशब्दवाद के आधार पर संस्कृत- व्याकरण शास्त्र शब्द, अर्थ और शब्दार्थ के पारस्परिक संबंध को नित्य मानता है। अतः 'अस्तेर्भूः' सूत्र का अर्थ यह मानना चाहिए कि 'अस' धातु को आदिष्ट 'भू' रूप का भी ग्रहण इस सूत्र द्वारा अभीष्ट है। इस प्रकार नित्यशब्दवाद के सिद्ध ान्त के अनुसार 'अस' के स्थान पर सीधे 'बभूव' प्रयोग को साधु मान लेने के कारण इस समस्या का निराकरण संभव है, क्योंकि 'भू' धातु से इस सूत्र के द्वारा निष्पन्न 'बभूव' प्रयोग ही 'अस' के स्थान पर निर्दिष्ट मान लिया जाएगा।

इसके विपरीत कार्यशब्दवाद सिद्ध ान्त के अनुसार शब्द, अर्थ तथा उसके संबंध को अनित्य मानते हुए अनुन्यासकार ने यह मत प्रस्तुत किया है कि सूत्रकार को किसी न किसी शब्द व्यक्ति का ही निर्देश करना था तो उनके द्वारा 'अस' न कहकर 'भू' का निर्देश कर दिया गया कि जहाँ पर 'भू' धातु का प्रयोग होगा वहाँ पर 'इन्धिभवतिभ्यां च' सूत्र के द्वारा किद्वत् की प्राप्ति होगी। 'भवति' निर्देश 'भू' धातु तथा विकृत 'अस्' के स्थान पर आदिष्ट 'भू' धातु इन दोनों से ही संबंधित है। इन दोनों ही धातुओं से निष्पन्न होने वाला 'बभूव' रूप समान ही है। इस प्रकार इस 'भवति' प्रयोग में दोनों ही रूपों का एकशेष द्वारा अन्तर्भाव अभीष्ट है। इस प्रकार दोनों ही रूपों में समान प्रयोग में कोई आपत्ति नहीं होगी।

इसी क्रम में अन्य श्लोकांश यथा- ''भवद्वियोगाद् भिदुरार्तिधारायमस्वसुर्मज्जति निःशरण्यः।'' में प्रयुक्त 'मस्ज् शुद्धौ' धातु के लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का 'मज्जति' तथा ''त्वत्प्रापकात् त्रस्यति नैनसोऽपि, त्व"येव दास्येऽसि न लज्जते यत।'' में प्रयुक्त 'लस्ज् व्रीडायाम' धातु ले लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का 'लज्जते' क्रियापद भी विचारणीय हैं। नैषधीयचरितम् में 'मज्जति' क्रियापद का एक बार तथा 'लज्जते' क्रियापद का दो बार प्रयोग है। 'मज्जति' तथा 'लज्जते' प्रयोगों की सिद्धि में यह समस्या उत्पन्न होती है कि 'मस्ज्' तथा 'लस्ज्' धातुओं में 'झलां जश् झशि' सूत्र के द्वारा 'स्' को 'द्' आदेश 'मद्ज्' और 'लद्ज्' स्थिति बनती है। पुनः श्चुत्व होकर 'मज्जति' और 'लज्जते' रूपों की सिद्धि होती है। यहाँ संदेह यह है कि 'स्तोः श्चुना श्चुः' सूत्र के प्रति 'झलां जश+झशि' सूत्र के अ सिद्ध हो जाने के कारण श्चुत्व कैसे संभव है?

यह रूप 'मस्जिनशोर्झलि' के निर्देश के द्वारा सिद्ध हो सकता हैय परंतु यह सूत्रपाठ ठीक नहीं है। न्यास में 'मज्जिनशोर्झलि' पाठ प्रयुक्त हुआ है। यह समाधान की दृष्टि से अधिक उचित प्रतीत होता हैय परंतु काशिका, सिद्ध ान्तकौमुदी तथा भाषावृत्ति में 'मस्जिनशोर्झलि' पाठ ही मिलता है। अतः उसके स्थान पर 'ग्रहिज्या...' सूत्र में प्रयुक्त 'भृज्जतीनाम्' पद को ज्ञापक माना जा सकता है। गणपति शास्त्री ने भी इसका संकेत किया है। भाषावृत्ति के नाम से यह समाधान भी प्रस्तुत किया गया है कि श्चुत्व के प्रति जश्त्व के अ सिद्ध हो जाने के कारण पहले श्चुत्व तथा बाद में जश्त्व होकर ये प्रयोग सिद्ध हो सकते हैं। यह समाधान धातुवृत्ति में भी विकल्प के रूप में दिया गया है।

एक अन्य समाधान रक्षित के मत के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है कि जिस प्रकार 'निशा' शब्द का 'निश' भाव होकर सप्तमी के बहुवचन में (निश्+सु) इस अवस्था में पहले 'झलां जशोऽन्ते' सूत्र से जकार तत्पश्चात् श्चुत्व तथा वैकल्पिक छ्त्व के द्वारा 'निच्छु' प्रयोग की सिद्धि होती है, इसी प्रकार 'मज्जति' एवं 'लज्जते' प्रयोगों में भी 'स्' के स्थान में 'श्' होने के पश्चात् पुनः श्चुत्व द्वारा जकार हो जाएगा। 'मज्जति' क्रियापद के समान ही 'लज्जते' प्रयोग की संदेह और समाधान की प्रक्रिया भी समान ही है। अतः पहले रूप के समान इसे भी यहाँ समझ लेना चाहिए।

अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि इस शोध-पत्र में श्रीहर्ष के द्वारा प्रयुक्त किए गए क्रियापदों में से कोई भी क्रियापद अपाणिनीय नहीं है। भले ही इस शोध-पत्र में वर्णित प्रयोग दुस्साध्य प्रतीत होते हैं, परन्तु इन प्रयोगों का विभिन्न युक्ति-प्रयुक्ति लगाकर शास्त्रों के द्वारा अनुमोदन किया जाता है, तो ये सभी व्याकरणशास्त्रसम्मत ही सिद्ध होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. नैषधीयचरिम् (नैषध.): श्रीहर्षय सम्पा. मल्लिनाथ, कृष्णदास अकादमी, 1987, श्लोक संख्या - 3.81
2. नैषध.: 3.81,3.104,4.108,5.57,5.94,6.88,7.19,7.60,7.70,9.56,9.67,9.94,11.36,11.61, 12.58,13.15,13.41,14.21,16.66,17.17,17.39,17.61,17.76,17.112,17.216,19.56,19.58, 20.35,20.41, 20.83,21.22,22.75,22.82(2)
3. पाणिनीयाष्टाध्यायी (पा.): पाणिनिय सम्पा. श्रीधरशास्त्री तथा सिद्धेश्वर शास्त्री, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना, 1935, सूत्र सं.- 8.4.55
4. पा. - 7.4.49
5. पाणिनीय धात्वनुक्रम-कोश (पा.धा.): पाणिनिय सम्पा. अवनीन्द्रकुमार, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली-अहमदाबाद, धातुक्रम- अदादिगण-13, आत्मनेपदी, सेट्
6. पा.धातु. – अदादिगण 11, आत्मनेपदी, सेट्
7. पा. - 8.4.61
8. दुर्घटवृत्ति (दु.वृ.): शरणदेवय सम्पा.टी.गणपतशास्त्री, कोलम्याम्दा प्रकाशन, 1909, दु.वृ.सू.-8.4.55, पृ.131- ''कथम् 'अस्ति', अनेन सकारस्य तकारप्रसङ्गात्। उच्यते। 'स: स्यार्धधातुकात्' अन्यत्र सस्य 'खरि च' (8.4.55) इति तकारो न भवति। अन्यथा 'आर्धधातुके इति किं वस्से, आस्से' इत्युक्तं स्यात्।''
9. पा. - 4.4.60
10. पा. - 7.3.96
11. नैषध. – 9.39
12. पा. धा. – दिवादिगण 99, परस्मैपदी, सेट्
13. पा. - 6.4.111
14. नैषध.: - 9.39,22.68
15. पा. - 1.2.4
16. परिभाषेन्दुशेखर (परि.): नागेशभटय सम्पा.- के.वी.अभ्यङ्कर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना, 1972, परिभाषा संख्या - 82
17. पा.धा. - दिवादिगण-99, परस्मैपदी, सेट्
18. पा.धा. - अदादिगण- 58, परस्मैपदी, सेट्
19. दु.वृ. - सू.स.- 6.4.111, पृ.- 106 ''कथं 'निरस्यति'। निरनुबन्धकपरिभाषया अस्तेर्ग्रहणात्।''
20. पा.धा. - अदादिगण -115, परस्मैपदी, सेट्
21. पा.धा. - भ्वादिगण -116,उभयपदी, सेट्
22. पा.धा. - भ्वादिगण -117,उभयपदी, सेट्
23. पा.धा. - भ्वादिगण – 118,उभयपदी, सेट्
24. नैषध.: - 19.50
25. पा.धा. - अदादिगण – 39, आत्मनेपदी, अनिट्
26. पा. - 1.4.93
27. काशिकावृत्ति (भा.1-6): वामन और जयादित्यय जिनेन्द्रबुद्धिप्रणीत न्यास (काशिकाविवरणपञ्जिका) तथा हरदत्तविरचित पदमञ्जरीसहित, सम्पा. स्वामी द्वारिकाप्रसादशास्त्री तथा पं. कालिकाप्रसादशुक्ल, प्राच्य भारती प्रकाशन, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 1965-67.वार्तिक संख्या – 2.2.18

28. पा. – 1.4.59
29. पा. - 7.1.37
30. पा. - 2.1.65 'पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहत्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जाति'
31. पा. - 1.4.95
32. पा. - 8.3.95 'उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्'
33. दु.वृ. - सू.सं.-1.4.93, पृ.- 38, ''कथमधीत्य 'कर्मप्रवचनीयानानां प्रतिषेध' इतिवचनादत्र तु सोपसर्गस्याध्ययनार्थत्वाद- धिशब्दस्या-नर्थकत्वे 'अधिपरी अनर्थकौ'(1.4.93) इति कर्मप्रवचनीयत्वात। समुदयार्थम् इङ्युपचर्य धातुत न्यास उक्तम्। उच्यते। 'अध्यापकधूर्तैर्जातिरि'ति ज्ञापकत्वात। अत एवातिस्तुत सुस्तुतमित्यत्रोपसर्गलक्षणषत्वाभाव।''
34. नैषध.: 6.93
35. पा. - 8.2.18
35. पा.धा. - क्रप कृपायाम् गतौ च - भ्वादिगण 522, आत्मनेपदी
37. परि. - परिभाषा संख्या 114।
38. दु.वृ. - सू.सं.- 8.2.18, पृ.- 124 - ''कथं तर्हि 'कृपा'। 'क्रपे: सम्प्रसारणं चे'ति भिदादिपाठाल्लाक्षणिकत्वात। कृपाणकर्पटकर्परादयस्तु उणादित्वात् सिद्ध ा:।''
39. पा. - 3.3.104
40. पा. - 4.1.41
41. नैषध. - 3.23,17.129
42. पा. धा. - भ्वादिगण 301,,आत्मनेपदी, सेट्
43. पा. - 4.1.15
44. पा. - 4.1.4
45. दु.वृ. - सू.सं.- 4.1.41, पृ..76 ''कथम् 'त्रपा क्षमा' यथा स्तनन्धयीत्यत्र धेटष्टित्त्वाद् ङीप्, तथा षित्वात् तत्र ङीष् स्यात्। उच्यते। षित्त्वात् तत्र ङीष् स्यात्। उच्यते। षित्त्वस्याङ्विधौ चरितार्थत्वात् समुदायार्थत्वानुपपत्ते:।''
46. नैषध. - 1.70
47. पा. - 7.4.59
48. नैषध.: 4.116
49. पा. - 'ब्रूवो वचि' - 2.4.53
50. पा. - 'वचिस्वपियजादीनां किति' - 6.1.15
51. पा. - 6.1.85
52. परिभाषेन्दुशेखर - परिभाषा सं.- 50
53. दु.वृ. - सू.सं.- 7.4.59, पृ. 121 ''कथम् 'ऊचतु:', एकादेशस्यान्तवत्त्वाद्धस्वप्राप्ते:। उच्यते। बहिरङ्गत्वादेकादेशस्येति रक्षित:।
54. नैषध. - 13.18
55. पा. धा.-भ्वादिगण 1, परस्मैपदी, सेट्
56. पा. - 3.3.24
57. दु.वृ. - सू. सं.- 3.3.24, पृ.- 66, ''कथं 'प्रभावरू'। प्रकृष्टो भाव: प्रभाव इति वृत्ति:।''
58. का. - सू. सं.- 3.3.24, पृ.-31-''कथं प्रभावो राज्ञ:? प्रकृष्टो भाव इति प्रादिसमासो भविष्यति।''
59. नैषध.:-3.38
60. नैषध.:-3.38,4.44,8.81,14.85,19.8
61. पा. - 1.3.2
62. का. - 1.3.2. ''उपदिश्यतेऽनेनेत्युपदेश:, शास्त्रवाक्यानि, सूत्रपाठ:, खिलपाठश्च। तत्र योऽनुनासिक: स इत्संज्ञो भवति। एध, स्पर्ध। प्रतिज्ञानुनासिक्या: पाणिनीया:..।''

63. वही
64. माधवीया धातुवृत्ति (मा.धा.): सायणय सम्पा.- स्वामी द्वारिकाप्रसाद शास्त्री, प्राच्य भारती प्रकाशन, कामच्चा, वाराणसी, 1964. पृ.-9
65. काशिका, 1.3.2
66. पा. - 6.2.44 'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा'
67. दु.वृ. - ... पृ.- 10, ''कथं भवत्तीति, ऊकारस्येत्संज्ञाप्रसंङ्गात्। उच्यते। निरनुनासिकत्वान्नेत्त्वं, 'प्रतिज्ञानुनासिक्या: पाणिनीया' इति। प्रयोजनाभावाद्वा। न 'स्वरतिसूती' (7.2.44) त्यादिना इड्विकल्प: प्रयोजनं, 'भूसत्तायां परस्मैभाष उदात्त:' इति उदात्तोपदेशानर्थक्यात्। तैन्नित्यमिडर्थ। न च गाप्रभृतीनामिवो दात्तत्वमनुदात्तनिवृत्त्यर्थे वाच्यं, निरच्कत्वादनुदात्तत्वाप्रसङ्गात्।''
68. नैषध.- 3.131
69. नैषध.:- 3.131,4.83,6.8,6.24,6.29,6.40,9.14,10.18,11.46,15.15,15.32, 15.48,15.62,15.67,15.68,16.44,16.84,16.106,17.7,18.57,22.110,22.118
70. पा. - 1.2.6
71. पा. 2.4.52
72. दु.वृ. - सू.सं.- 7.4.73, पृ.-122- ''कथम् अस्तेर्भूभावे कृते 'बभूवे'ति, भौवादिकनिर्देशात्। उच्यते। भू-सामान्यनिर्देशोऽयम्। तच्च यया कयाचिद्विभक्त्या निर्देष्टव्यमिति भवतिना निर्दिष्टम्। भुव इति न कृतं वैचित्र्यार्थम्।''
73. नैषध. - 3.113
74. पा. धा. - तुदादिगण 125, परस्मैपदी, अनिट्
75. नैषध. - 3.110
76. पा. धा. - तुदादिगण 10, आत्मनेपदी, सेट्
77. नैषध.:- 3.113
78. नैषधीयचरितम्: 3.110,5.117
79. पा. - 8.4.53
80. पा. - 8.4.40
81. पा. - 7.1.60
82. न्यास (भाग-3) 8.4.40, पृ. 1129
83. पा. - 6.1.16 'ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च'
84. दु.वृ. - पृ.143, पादटिप्पणी- 1
85. भाषावृत्ति, सू.सं. - 8.4.40 - 'स्तो: श्चुना श्चु:', पृ.- 568 - ''सस्य श स्तवर्गस्य चवर्ग: स्यात। कदा ? श्चुभ्यां योगे। कश्श्रूयते। कश्चिनोति। कश्शेते। कश्छात्र:। .....
86. धातुवृत्ति - पृ.. 487
87. पा. - 8.4.39
88. दु.वृ. - सू.सं. - 8.4.40 - 'स्तो: श्चुना श्चु:', पृ.- 131'- ''कथं 'मज्जति' 'लज्जते'। 'झलां जश् झशि'(8.4.53) इति सस्य दकारे तस्यानेन जकारो न युक्त:, पूर्वत्रा सिद्ध त्वात्। उच्यते। 'मस्जिनशोर्झलि' (7.1.60)? इति निर्देशादिति न्यास:। यद्वा 'गाङ्कुटादि.' (1.2.1) सूत्रे रक्षितेनोक्तं - 'निशाशब्दस्य निश्भावे 'झलां जशोऽन्ते' (8.2.39) इति जकारे सप्तमीबहुवचनस्य श्चुत्वेन तालव्ये शकारे जकारस्य चर्त्वेनचकारे निच्शु इति रूपम्। 'शश्छोऽटि' (8.4.63) इति छकारे निच्छु इति रूपमि''ति। तथात्रापि श्चुत्वेन दन्तस्य तालव्यशकारव्यक्तौ पुनश्चुत्वेन तस्य जकारे मज्जतीत्यादि।''

भारतीय पत्रकारिता में नैतिकताः एक मूल्यात्मक अध्ययन

डॉ० शशी भुषण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, लक्ष्मीनारायण महाविद्यालय, भगवानपुर (वैशाली)

परिचयः-

पत्रकारिता एक ऐसी वृत्ति है जिसमें समाचारों का एकत्रीकरण, लेखन, सम्पादन तथा उनका सम्यक् प्रस्तुतीकरण जैसे महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील क्रियाकलाप शामिल होते हैं। ये क्रियाकलाप महत्पूर्ण एवं संवेदनशील इसलिए होते हैं क्योंकि ऐसा करते समय समाज को जागरूक करने, नैतिक मूल्यों को स्थापित करने, भ्रष्टाचार पर प्रहार करने, पाठकों की चेतना को झकझोरकर जनमत का निर्माण करने जैसे दायित्वों का निर्वहन एक पत्राकार को करना पड़ता हैं। वर्तमान समय में विज्ञान एवं तकनीक के विकास ने पत्रकारिता के परम्परागत साघनों अखबार, पत्रिाका, रेडियों एवं टेलीविजन के अतिरिक्त आनलाइन वेबसाइट्स, आनलाइन न्यूज चैनलों, मोबाइल न्यूज एप्लीकेशन्स सोशल नेटवर्किंग वेब साइट्स जैसे नवीन माध्यमों को भी स्थापित किया है जहाँ24 ञ 7की तर्ज पर खबरों का प्रसारण अनवरत चलता रहता है। पत्रकारिता के विभिन्न माध्यमों के बहुतायत ने जहॉ एक ओर सूचना एवं प्रसारण के क्षेत्रा में एक प्रकार की क्रांति ला दी है तो वही दूसरी तरपफ बाजारवाद और प्रतिस्पर्द्धा के वर्तमान दौर में अपनी अस्तित्व को बनाए रखने की चुनौती ने निष्पक्ष एवं स्वतंत्र पत्रकारिता पर एक गंभीर प्रश्न चिन्ह भी खड़ा कर दिया है। ऐसे बदले परिवेश में पत्रकारिता के मानक सिद्धांतों एवं आदर्शों के आलोक में इस क्षेत्रा की वर्तमान चुनौतियों का समाधन ढूंढना अतिप्रासंगिक हो गया है। प्रस्तुत शोध–आलेख इसी दिशा में एक छोटा–सा प्रयास है।

पत्रकारिता का मुख्य उद्देश्यः-

तिलक के अनुसार[१]पत्रकारिता का उद्देश्य जनता को शिक्षित करना है। उन्होंने पत्रकारिता को स्वार्थ सिद्धि का साध्न न मानकर उसे आम जनता के लिए राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के साध्न के रूप में स्वीकार किया है।

सच्ची पत्रकारिता का मतलब यह होता है कि जन सरोकार से संबंध्ति मुद्दों को उठाया जाय तथा गरीब एवं आम जनमानस की आवाज सरकार तक पहुँचायी जाए। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आवास, बिजली, पानी, स्वच्छता जैसे मूलभूत एवं बुनियादी जरूरतों से जुड़े समस्याओं एवं सवालों को पत्रकारिता के केन्द्र में रखी जाए। पत्रकार राजकिशोर लिखते हैं[२] कि ‘पत्रकारिता खबरों की सौदागरी नहीं है, न उसका काम सत्ता के साथ शयन है। उसका काम जीवन की सच्चाईयों को सामने लाना है।’ सार रूप में पत्रकारिता का परम् उद्देश्य समाज कल्याण ही है। गाँधी के शब्दों में-श्जीम वइरमबजपअम वि श्रवनतदंसपेउ पे ेमतअपबमण्श

विश्वसनीय पत्रकारिता के स्थापित नैतिक आदर्श एवं मूल्य :-

लोकतंत्रा के चौथे स्तंभ, बेजुबानों की आवाज और अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित होने के लिए पत्रकारिता के क्षेत्रा में जिन नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का अनुसरण अतिआवश्यक माना गया है वे इस प्रकार हैं–

1. निष्पक्षता :- परनजॉय गुहा ठाकुरता ने अपनी किताब मीडिया एथिक्स[3] में निष्पक्षता को सच्ची पत्रकारिता का सबमें महत्वपूर्ण मानदंड माना हैं। एक सच्चे पत्रकार से यह अपेक्षा की जाती है कि किसी भी खबर को पेश करते समय वह अपनी व्यक्तिगत विचारों एवं मान्यताओं के बिना प्रभावित हुए खबर को निष्पक्ष रूप में प्रस्तुत करें। खबर से संबंधित सभी पक्षों की बातों को सूने तथा उन्हे भी समावेशित करे तथा किसी भी प्रकार के एकपक्षीय समाचार छापने या प्रस्तुत करने से बचे। यदि वह सरकार की किसी योजना के सपफलता-असपफलता से संबंधित रिर्पोट तैयार कर रहा है तो उसका यह दायित्व है कि वह उस सरकारी योजना की पड़ताल केवल सरकारी आकड़ों के आधर पर नहीं करे बल्कि उसके लाभुकों के पास जाकर उनसे बात करके उनकी समस्याओं एवं सुझावों को समझ कर, जान कर करे। संक्षेप में यहाॅ निष्पक्षता से आशय खबर से जुड़े सभी पक्षों को घ्यान में रखने से हैं।

2. वस्तुपरकता :-इसका संबंध इस बात से हैं कि कोई पत्रकार किसी तथ्य को कैसे देखता है। कई बार ऐसा होता है कि किसी मुद्दे पर पहले से बनी छवि हमारे निर्णय को प्रभावित करती है। यह पूर्वाग्रह है। यदि पूर्वाग्रह के साथ एक पत्रकार समाचार का निर्माण करता है तो वह अपने पाठकों एवं दर्शकों के साथ सीध सीध धेखा एवं छल करता है। बाजारवाद के इस दौर में विभिन्न मीडिया हाउसों द्वारा चलायी जा रही अध्किांश खबरों में इसी वस्तुपरकता/वस्तुनिष्ठता का सर्वथा अभाव पाय जाता है जो आज निष्पक्ष पत्रकारिता के रास्ते में सबसे बड़ा अवरोध है।

3. यथार्थता :- इसका संबंध किसी घटना के यथार्थ चित्राण से है। जो तथ्य है वही प्रकाशित या प्रसारित किया जाना चाहिए। यह अपने आप में जटिल प्रक्रिया हैं क्योंकि कई-बार एक पत्रकार भी घटना स्थल पर नहीं होता है लेकिन वह समाचार प्रसारण करता है। इसके लिए उसे तथ्यों की अच्छी तरीके से जॉच-परख करनी चाहिए। यदि वह तथ्यों को बिना जॉचे-परखे समाचार का प्रसारण करेगा तो निश्चित तौर पर वह इसे गलत तरिके से पेश करेगा।

4. संतुलन :- किसी भी पत्रकार के लिए समाचार प्रस्तुतीकरण के दौरान संतुलन का घ्यान रखना अत्यंत जरूरी होता है। यदि वह किसी एक पक्ष को घ्यान में रखकर काम कर रहा है तो वह पूर्वाग्रह से ग्रसित हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि किसी एक पक्ष को पफायदा पहुँचानें और दूसरे पक्ष की छवि विगाड़ने के लिए वह तथ्यों के साथ खेल रहा है और समाचार को तोड़-मरोड़ के पेश कर रहा है।

5. श्रोत :-यह एक अहम जरिया हैं जो इस बात की पुष्टि करता है कि कोई घटना सही मायने में कब, कहाॅ, क्या, कौन, कैसे और क्यों घटित हुई है। आज की पत्रकारिता में बिना श्रोत के भी समाचार लिखे जा रहे हैं। उनका चुनाव भी राजनीतिक और अर्थिक स्थिति को घ्यान में रखकर किया जा रहा है जो कि पत्रकारिता के सिद्धांतों के खिलापफ है।

6. निर्भीकता:-उपरोक्त नैतिक मूल्यों का अनुपालन के साथ-साथ एक सच्चे पत्रकार का यह भी दयित्त है कि अपनी पत्रकारिता के माघ्यम से वह सत्ता की कमियों, मनमानी व अनियमितता के विरूद्ध आवाज उठाये।साथ ही निर्भीकता के साथ सभी प्रकार के विभिन्न स्तरों पर हो रहे बेईमानी एवं अन्याय के विरूद्ध जनता की आवाज को सरकार तक पहुँचाये एवं लोगों का मार्गदर्शन करे, जिसका मूलभूत उद्‌दश्ेय जन सरकार एवं जनकल्याण हो।

भारतीय पत्रकारिता की वर्तमान दशा एवं स्थिति :-उपरोक्त स्थापित मूल्यों एवं आदर्शो के आलोक में यदि भारतीय पत्रकारिता की वर्तमान दशा एवं स्थिति का हम अवलोकन करते हैं तो हम पाते हैं कि बाजारबाद और व्यवसायीकरण के इस दौर में भारतीय पत्रकारिता और मीडिया आज अपने मूल उद्‌देश्य से भटक गया है। सत्ता की गलियारों की चमक और पैसों की खनक ने भारतीय मीडिया को आज लोकतंत्रा का नहीं बल्कि सत्ता-व्यवस्था का चौथा स्तंभ बना दिया है। आज भारतीय पत्रकारिता का बड़ा हिस्सा आवाम और समाज की आवाज बनने की बजाए व्यवस्था और सत्ता विमर्श का हिस्सा और संवाहक बन गया है। मीडिया के कॉरपोरेटिकरण से एक बहुत बड़ा बदलाव यह आया है कि अब मीडिया का उद्‌देश्य निष्पक्ष पत्रकारिता या सूचना प्रसारण नहीं बल्कि इसका एक मात्रा उद्‌देश्य अध्कि में अध्कि मुनाफा कमाना हो गया है। मुनापफे के चक्कर में ये सच्ची पत्रकारिता के लिए अतिआवश्यक स्वतंत्रता और निष्पक्षता जैसे मौलिक सिद्धांतों से भी समझौता करने को तैयार है। परिणाम यह हो रहा है कि आज भारतीय पत्रकारिता की स्वतंत्रता खतरे में पड़ गयी है। 2019 की `Reporters without Borders'[4] की 180 देशों की जारी सूची में, जिसमें प्रेस स्वतंत्रता की स्थिति को दर्शाया गया है, भारत का स्थान 140 वॉ था। इस रिपोर्ट में जिम्बाबवे, युगांडा, चड जैसे अल्पविकसित अप्रफीकी देशों की भी स्थिति भारत से कहीं बेहतर थी। ऐसा नहीं है कि भारतीय मीडिया ही केवल कॉरपोरेटीकृत

मीडिया है और बाजारबाद के अत्यध्कि हावी होने के कारण भारतीय मीडिया/पत्रकारिता की यह स्थिति है। अमेरिका सहित यूरोप के कई देशों की मीडिया भी भारतीय मीडिया की तरह कारपोरेटीकृत है और वहॉ हमारे यहॉ के मुकाबले कारपोरेटीकरण बहुत पहले की प्रक्रिया है पर इसके बावजूद इन देशों की मीडिया एवं वहाँ के पत्रकार भारतकी अपेक्षा कापफी अध्कि बेबाक और स्वतंत्र रूप से अपनी रिपोर्टींग करते है। यही कारण है कि प्रेस- प्रफीडम के मामले में अमेरिका तथा अन्य यूरोपीय देशों की स्थिति हमसे कही अच्छी एवं संतोषजनक है।

भारतीय पत्रकारिता की निवर्तमान समस्याएँ एवं चुनौतियॉ :-

भारतीय पत्रकारिता की निष्पक्षता एवं स्वतंत्र की राह में कई गंभीर चुनौतियॉ समस्याओं के रूप में खड़ी है जिनका निदान भारतीय समाज एवं भारतीय लोकतंत्रा के लिए अति आवश्यक है। वर्तमान में ये समस्याएँ निम्न रूपो में विद्यमान है-

1. प्रेस्टीट्युट (Presstitute) और पेड न्यूज :- अर्बन डिक्शनरी' के मुताबिक फ्रीलांस पत्रकार और मुख्याधरा से अलग मीडिया में काम करने वाले पत्रकार अमूमन प्रेस्टीट्युट शब्द का इस्तेमाल उन लोगों के लिए करते है जो सरकार या संस्थाओं के पक्ष में ऑख मूँद कर खबरे देते हैं और पत्रकार होने के नाते निष्पक्ष रहने की जिम्मेदारी नहीं निभाते। भारतीय पत्रकारों के संदर्भ में इस प्रकार की प्रवृति आजकल आम हो गयी है। वही दूसरी ओर कुछ पत्रकार ऐसे भी है जो पेड न्यूज के रूप में पैसे लेकर किसी को अनुचित लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से कोई खबर छापते या चलाते हैं।

2. पत्रकारिता का बाजारू और बिकाऊ स्वरूप :-बाजारू और बिकाऊ वह होता है जिसका पत्रकारिता के मूल्यो और सिद्धान्तो से कोई लेना-देना नहीं होता है। जो मीडिया को केवल व्यवसाय और लाभ कमाने का एक माध्यम समझता है। मसलन चुनाव के वक्त पर पैसे लेकर किसी पार्टी-विशेष के पक्ष में खबरे चलाना या जिस पार्टी की सरकार हो उसकी कमियो को भी नजरअन्दाज करना ताकि संरक्षण मिले, बड़े कॉरपेरेट घरानो से ऐड मिलने की लालच में उनकी त्राुटियों पर पर्दा डालना।

3. न्यूज (News) में अपने व्यूज (Views) डालने की प्रकृति :-स्वच्छ पत्रकारिता में न्यूज रिपोर्टर की व्यक्तिगत विचार (Views) से अलग एवं तटस्थ रखा जाता है। किसी भी न्यूज (समाचार) की वस्तुपरकता तभी संभव है जब न्यूज रिपोर्ट में रिपोर्टरो के अपने निजी विचार मिश्रित न हो। इस संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि श्बिजे ंतम ेबतमकए बवउउमदजे ंतम तिममष

आजकल पत्रकारिता के इस मानदण्ड का भरपूर उल्लंघन देखने को मिलता है। समाचार-पत्र में समाचारों का चुनाव, उन्हे प्रस्तुत करने का तरीका, उनके शीर्षक, किस समाचार को कितनी प्राथमिकता दी जाए, किसे मोटे अक्षरों में चार कालमों में फ्रंट पेज पर छापा जाए, और किसे एक कालम के किसी पिछले पन्ने पर ध्केल दिया जाए यह सब कुछ सॅम्पादकीय पूर्वाग्रहों पर निर्भर करता है जो हमेशा निष्पक्ष नहीं होता है। न्यूज चैनलों में भी अधिकांश रिपोर्टरो का यही हाल देखने को मिलता है ऐसे रिपोर्टर/ऐंकर अपना विचार पहले देते है और न्यूज उसके बाद सुनाते है।

4. न्यायपालिका से संबंधित रिपोर्टिंग :- न्यायपालिका सम्बंधे रिपोर्टिंग के संदर्भ में जो एक महत्वपूर्ण भटकाव देखने में आया है उसे मीडिया ट्रायल (Media Trial) कहा जाता है। न्यायपालिका का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है कि जब तक किसी व्यक्ति के विरूद्ध तर्कसंगत संदेह से परे कोई आरोप अदालत में प्रमाणित नहीं हो जाता है तब तक उसे निर्दोष ही माना जाना चाहिए। मगर आज की मीडिया किसी भी व्यक्ति पर आरोप लगते ही उसे दोषी ठहरा देती है थ्प्होते ही किसी व्यक्ति को दोषी मानकर उसे आतंकवादी हत्यारा और बलात्कारी जैसे विशेषणों से सुशोभित कर दिया जाता है। सुप्रीम कोर्ट ने मीडिया ट्रायल पर अपनी व्यथा सुनाते हुए मनु शर्मा टे स्टेट [(NCT of Delhi) – 2010(6) SCC1 (Paras 301 and 299), मामले में कहा है कि 'किसी आरोपी की मासूमियत की अवधरणा कानूनी अवधरणा है इसे शुरूआत में ही मीडिया ट्रायल के जरिये नष्ट नहीं करना चाहिए। खासकर तब, जब जॉच जारी हो। अगर ऐस किया जाता है, तो यह न्याय के बुनियादी सिद्धातों के विरूद्ध होगा और आरोपी को संविधान dsArticle 21 के तहत मिलने वाली सुरक्षा का अतिक्रमन भी होगा। संविधन के।तजपबसम 19 (1) (a) के तहत मिलने वाली प्रिफडम ऑपफ स्पीच का इस्तेमाल बेहद सावधनी और घ्यानपूर्वक किया जाना चाहिए, ताकि न्याय की राह में बाध न आए और अदालतों में विचाराधीन मामलों पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े।'

5. टेलीविजन रेटिंग प्वाइंट (TRP) बढ़ाने की होड़ :- इलेक्ट्रानिक मीडिया हाउस के बीच अध्कि से अध्कि ज्त्च्बटोरने की होड़ में, खबरो को मसालेदार और सनसनी बनाकर पेश करने की प्रवृत्ति ने पत्रकारिता के सभी मानक मूल्यो को पूरी तरह

अस्त-व्यस्त कर दिया है। TRP एक ऐसा शब्द है जिससे यह पता चलता है कि किसी News Channel को एक समयविधि में कितने लोग देख रहे है। वर्त्तमान में किसी न्यूज शो की सपफलता एवं असपफलता का पैमाना यही TRP हो गया है। न्यूज चाहे कितने भी जनसरोकार से संबंधित क्यों न हो यदि उसकी TRP रेटिंग कम है तो वह असपफल न्यूज शो होगा। दूसरी ओर यदि खबर का विषय बालीवुड के किसी सेलिब्रीटी के लव-अपफेयर या बिग बॉस जैसे रियलिटी शोज के चटपटे खबर से संबंधित है और यदि उसकी TRP रेटिंग अच्छी है तो वह शो सपफल माना जाता है। अर्थात न्यूज का कटेंट कुछ भी हो TRP रेटिंग बढ़िया एवं ऊँचा होना अतिआवश्यक है।[6] क्योंकि TRP ही इन चैनल्स की ओर एडवर्टाइसर्स को आकर्षित करती है जो कि इनकी गाढ़ी कमाई एक महत्वपूर्ण श्रोत होता है। ऐसी स्थिति में मीडिया से यह अपेक्षा करना कि वह आम एवं गरीब की आवाज बने सरासर बेइमानी है।

6. सत्ता और कॉरपोरेट का मीडिया से गठजोड़ :-वर्तमान में निष्पक्ष एवं स्वतंत्र पत्रकारिता के रास्ते में व्याप्त अधिकांश चुनौतियों एवं समस्याओं का यदि सूक्ष्म परीक्षण किया तो उन सभी के मूल में इसका एक मुख्य कारण सत्ता और कॉरपोरेट जगत से इसकी बढ़ती हुई नजदीकियाँ के रूप में उभर कर सामने आती है। प्रतिस्पर्द्धा के दौर में अधिकांश मीडिया संस्थान एवं अखबार अपने खर्चों एवं मुनाफे के लिए सरकार, राजनैतिक पार्टियो, बड़ी-बड़ी कंपनियों और बड़े-बड़े पूंजीपतियों के उपर निर्भर हो गए है। सरकार तथा बड़े-बड़े व्यवसायिक घराने भी समाज और सत्ता पर नियंत्राण बनाए रखने की चाह और अपने निजी वाणिज्यिक पफायदे एवं हितों को साधने के उद्देश्य हो मीडिया ओर पत्रकारिता को महत्वपूर्ण जरिया बना रहे है। कुछ अपवादों को छोड़कर लगभग सारे बड़े मीडिया घराने संस्थान और उनके ज्यादातर पत्रकार बीते कई बरसों से सत्ता, खासकर सत्ता शीर्ष से अपनी 'एक्सेस' को शानदार चमकदार पत्रकारिता का बुनियादी आधर मानते आ रहे है जिसकी बड़ी वजह है, मीडिया मालिकों एवं संचालकों की सत्ता से गठजोड़।[7] ऐसी स्थिति में निष्पक्ष और विश्वसनीय प्रत्राकारिता की परिकल्पना वास्तविकता से कही परे है।

उपाय एवं समाधन

उपरोक्त चुनौतियों एवं समस्याओं के आलोक में यदि निष्पक्ष एवं स्वतंत्र पत्रकारिता को सुनिश्चित करने हेतु किसी संवैधनिक प्रावधन की बात की जाए तो हमारे यहॉ संविधन में प्रेस की स्वतंत्रता के लिए अलग से कोई प्रावधन नहीं है जो कुछ है, वह संविधन के अनुच्छद 19. (1) (a) के रूप में ही वर्णित है। इस प्रावधन के अलावे यदि भारतीय मीडिया के क्वे और क्वदजे के संबंध में कहीं कोई विधन है[8] तो वो केवल टेलीविजन नेटवर्क (रेगुलेशन) एक्ट, 1995, प्रसार भारती (ब्रोडकास्टिंग कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया) एक्ट, 1990, ऑपिफसियल सेक्रेट एक्ट, 1923 के अलावे सेंशरसिप एवं कॉपीराईट से संबंधित कुछ कानून हैं। जो चुनौतियाँ एवं समस्याएं आज भारतीय पत्रकारिता के समक्ष है उनमें अधिकांश दुनिया के अन्य देशो में भी है मगर पिफर भी प्रेस प्रफीडम के मामले में भारतीय मीडिया की वैश्विक रैकिंग जैसी होनी चाहिए थी वैसी नहीं है। अमेरिकी प्रेस और वहॉ के पत्रकारों को उनके संविधन में अपेक्षाकृत बड़ा कवच प्राप्त है। अत: यहाँ भी एक ऐसी ही विस्तृत कानूनी या संवैधनिक प्रावधान की आवश्यकता है जो न सिर्फ पूर्व से लागू अन्य सभी कानूनों को प्रतिस्थापित करें बल्कि उसमें प्रेस की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के लिए वर्तमान चुनौतियों के अनुरूप ही व्यापक एवं विस्तृत प्रावधान की व्यवस्था हो।

संवैधनिक प्रावधन के अतिरिक्त सम्पूर्ण मीडिया जगत द्वारा एक स्वनिर्मित एवं स्वघोषित 'Universal code of ethics'[9] लागू किया जाना चाहिए जिसमें मीडिया नीतिशास्त्र के स्थापित मूल्यों एवं आदर्शों के अनुरूप तमाम नियम बनाए जाए तथा जिसका अनुपालन सभी के लिए बाध्यकारी हो।

न्यूज चैनल्स को TRP बढ़ाने की होड़ जैसी बुराई से बचाने के लिए एडवर्टाइजिंग एजेन्सियों के लिए भी एक नैतिक दायरा एवं मर्यादा का अनुपालन आवश्यक किया जाना चाहिए ताकि न्यूज चैनल्स को किसी भी प्रकार के अनैतिक प्रलोभन में पड़ने की संभावनाओं से सीमित किया जा सके। इसके साथ ही सभी पत्रकारिता स्कूलों में मीडिया एथिम्स को प्रमुखता से पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाए।

इसके अतिरिक्त खबर को रोचक बनाने के सकारात्मक उपाय अपनाये जाने पर जोर दिया जाए। खबरों का दायरा बढ़ाते हुए उसके केन्द्र में राजनीतिक मुद्दों की अपेक्षा आमजन की सामाजिक एवं आर्थिक सरोकार से जुडे मुद्दे एवं खबरो को महत्व दिया जाना चाहिए। इसके अलावे निष्पक्ष एवं स्वतंत्र पत्रकारिता करने वाले ईमानदार पत्रकारों द्वारा निर्भीकता के साथ पत्रकारिता को सुनिश्चित किये जाने हेतु आवश्यकतानुसार उनकी सुरक्षा के समुचित प्रावधन की भी व्यवस्था की जानी चाहिए। साथ ही खबर को

केवल खबर की तरह ट्रीट करना, उसपर अपना नजरिया थोपने से बचना, किसी भी खबर का केवल एक पहलू नहीं दिखाना, अगर विवाद हो तो हर पक्ष की बात को सामने रखना और पफैसला दर्शकों के विवेक पर ही छोड़ देना जैसे चंद ऐसे मंत्रा हैं जिनको अनुसरण करने से अध्किांश समस्याओं से निजात पाया जा सकता है।

निष्कर्ष

पत्रकार समाज का दर्पण होते है विपरीत परिस्थितियो में भी सच्चाई सामने लाते है। एक स्वच्छ और विश्वसनीय पत्रकारिता की स्थापना सच्चे एवं कर्तव्यनिष्ठ पत्रकारों के द्वारा ही संभव है। बिना सरकारी हस्तक्षेप के बाजारवाद से मुक्ति भी आसान नहीं है परन्तु तमाम दबावो और प्रलोभनो के बीच कुछ ऐसे पत्रकार और मीडिया न्यूज चैनल्स भी है जो आज भी लोकतंत्र के सजग प्रहरी के रूप में अपनी महती भूमिका समाज में अदा कर रहे है। जो निश्चित रूप से अनुकरणीय और अनुसरणीय है। परन्तु सारी जिम्मेदारी केवल मीडिया संस्थानो और अखबारों की ही नहीं है दर्शकों एवं पाठकों की भी यह जिम्मेदारी है कि वह अपनी मूल्यात्मक और समीक्षात्मक समझ से खबरों एवं लेखो को पढ़े ताकि वे इस बात में अंतर कर सके कि जो दिखाया और परोसा जा रहा है उनके लिए वह जरूरी है या जो उनके आम जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से संबंधित खबर एवं न्यूज है वो जरूरी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डा0 गोविन्द प्रसाद, हिन्दी पत्रकारिता का स्वरूप, पृ0 सं0 2
2. डा0 राजेन्द्र मिश्र, डा0 देवी सिंह राठौर, पत्रकारिता के विविध आयाम, पृ0 सं0 113.
3. परनजॉय गुहा ठाकुरता, मीडिया एथिक्स, ट्रुथ, फेयरनेस एंड ऑब्जेटिविटी, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, चैप्टर-7, पृ0 सं0 68-76
4. श्रोतः-http://rsf.org/en/ranking(table
5. श्रोतः-http://www.urbandictionary.com/define.php?term=kpresstititute
6. विभा चतुर्वेदी, प्रगति साहनी, अंडरस्टैंडिंग एथिक्स (प्रथम संस्करण, 2015), मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, पृ0सं0 226-227
7. वहीं पृ0 सं0 225
8. वहीं पृ0 सं0 231
9. एण्ड्रयू बेलसेथ, रूथ चैडविक, एथिकल इस्यूस इन जर्नलिज्म एंड द मीडिया, रूटलेज 11 न्यू पफेट्टर लेन, लंदन म्ब4च4म्म्ए 2006 एडिसन, चैप्टर-5, पृ0 सं0 51-52

अन्य संदर्भः-

- डा0 रमेन्द्र, अध्नीतिशास्त्रा एवं व्यावहारिक नीतिशास्त्रा, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, पृ0सं0 234-239

विद्यार्थी जीवन में नैतिक शिक्षा का महत्व

शालू तिवारी

असिस्टेंट प्रोपफेसर, बी. एड., तपेश्वर सिंह टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, आरा, बिहार

प्रत्येक राष्ट्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति वहां की शिक्षा पद्दति पर निर्भर करती है. हमारे देश में स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है. और वर्तमान में कला, वाणिज्य, विज्ञान, चिकित्सा आदि अनेक संकायों में विभिन्न सवर्गो में शिक्षा का गुणात्मक एवं संख्यात्मक प्रचार हो रहा है.सूचना प्रद्योगिकी के क्षेत्र या कंप्यूटर शिक्षा में भारत विश्व का अग्रणी देश बन गया है. फिर भी एक कमी यह है कि यहाँ नैतिक शिक्षा पर उतना ध्यान नही दिया जाता है. इससे भारतीय पीढ़ी संस्कारहीन और कोरी भौतिकवादी बन रही है. नैतिक शिक्षा का अर्थ उस शिक्षा से है जो बच्चे में नैतिकता के गुणों का विकास करती है। बच्चों को संस्कारों से जोड़ती है। उन्हें उनके कर्तव्यों का ज्ञान कराती है। परिवार, समाज, समूह के नैतिक मूल्यों को स्वीकारना तथा सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं व धर्मो का पालन करना सिखाती है। दूसरे शब्दों में कहे तो नैतिक शिक्षा समाज व समूह की रीतियों या कार्य करने के तरीकों का पालन करना सिखाती है द्यसाधारण बोलचाल की भाषा में कहे तो नैतिक शिक्षा वह शिक्षा है जो हमें बड़ों का आदर करना, सुबह जल्दी उठाना, सत्य बोलना, चोरी न करना, माता-पिता के चरणस्पर्श करना तथा अपराधिक प्रवृतियों से दूर रहना सिखाती है। यह चीजे तभी संभव है जब आप में अनुशासन हो। अतः नैतिक शिक्षा हमें अनुशासन का भी पाठ पढ़ाती है द्यनैतिक शिक्षा का अर्थ और मूल्य जानने के बाद आप यह समझ ही गए होंगे कि नैतिक शिक्षा का हमारे जीवन में क्या महत्व है और यह कितना आवश्यक है।

नैतिक शिक्षा का महत्व (Importance of moral education)

प्राचीन भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत चारित्रिक उत्कर्ष के लिए नैतिक शिक्षा पर बल दिया जाता था। उस समय विद्यार्थियों में नैतिक आदर्शों को अपनाने की होड़ लगी रहती थी। इस कारण वे संस्कार सम्पन्न होकर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते थे. लेकिन भारत सैकड़ो वर्षो तक पराधीन रहा था।

इसकी वर्णाश्रम व्यवस्था विछिन्न हो गई और शिक्षा का स्वरूप चरित्र निर्माण न होकर अर्थोपार्जन हो गया. इस कारण यहाँ नैतिक शिक्षा का हास्य हुआ है। ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठां, परोपकार, समाज सेवा, उदारता, सद्भावना, मानवीय संवेदना तथा उदात आचरण आदि का अभाव इसी नैतिक शिक्षा के हास का कारण माना जा सकता है। इस स्थति की ओर ध्यान देकर अब प्रारम्भिक माध्यमिक शिक्षा स्तर पर नैतिक शिक्षा का समावेश किया जाने लगा है।

नैतिक शिक्षा का समायोजन (Adjusting moral education)

भारतीय संस्कृति के उपासक लोगों ने वर्तमान शिक्षा पद्दति के दोषों गुणों के बारे में चिन्तन कर नैतिक शिक्षा के प्रचार का समर्थन किया है। फलस्वरूप विद्यार्थियों के लिए नैतिक शिक्षा का स्तरानुसार समायोजन किया जाने लगा है. प्राचीन निति शिक्षा से सम्बन्धित आख्यानों, कथाओं एवं ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्र को आधार मानकर नैतिक शिक्षा की पाठ्य सामग्री तैयार की गई है। वस्तुतः विद्यार्थी जीवन आचरण की पाठशाला है। सभ्य संस्कार सम्पन्न नागरिक का निर्माण विद्यार्थी जीवन में ही होता है. विद्यार्थी को जैसी शिक्षा दी जायेगी, जैसे संस्कार उन्हें दिए जाएगे, आगे चलकर वह वैसा ही नागरिक बनेगा. इस बात का ध्यान रखकर नैतिक शिक्षा का समायोजन किया गया है।

नैतिक शिक्षा की उपयोगिता (Usefulness of moral education)

नैतिक शिक्षा की उपयोगिता व्यक्ति, समाज और राष्ट्र इन सभी के लिए महत्वपूर्ण है. विद्यार्थी जीवन में तो नैतिक शिक्षा का अपना विशेष महत्व और उपयोगिता है। नैतिक शिक्षा के द्वारा ही विद्यार्थी अपने व्यक्तित्व एवं सुंदर चरित्र का निर्माण कर सकते है. नैतिक शिक्षा से मंडित विद्यार्थी का अपना भविष्य उज्जवल एवं गरिमामय बनता है। तथा देश के भावी नागरिक होने से उनसे समस्त राष्ट्र को नैतिक आचरण का लाभ मिलता है.देश में उच्च आदर्शों, श्रेष्ट परम्पराओं एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना तभी की जा सकती है। अतएवं प्रशस्य जीवन निर्माण के लिए विद्यार्थी जीवन में नैतिक शिक्षा की विशेष उपयोगिता है. नैतिक शिक्षा मानव व्यक्तित्व के उत्कर्ष का, संस्काररित जीवन तथा समाज हित का प्रमुख साधन है. इससे भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, प्रमाद, लोलुपता, छल कपट तथा असहिष्णुता आदि दोषों का निवारण होता है। मानवतावादी चेतना का विकास भी इसी से ही संभव है। जीवन का विकास उद्दात एवं उच्च आदर्शों से होता रहे, इसके लिए नैतिक शिक्षा का प्रचार अपेक्षित है. अतएवं विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास करना चाहिए।

नैतिक शिक्षा का महत्व पर निबंध 300 शब्दों में

प्रस्तावना– प्रत्येक राष्ट्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति वहां की शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर करती है. हमारे देश में स्वतंत्रता के बाद शिक्षा क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। फिर भी कमी यह है कि यहाँ नैतिक शिक्षा पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता है। इसमें भारतीय युवा पीढ़ी संस्कारहीन और कोरी भौतिकवादी बन रही है।

नैतिक शिक्षा का स्वरूप– प्राचीन भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत चारित्रिक उत्कर्ष के लिए नैतिक शिक्षा पर बल दिया जाता था. लेकिन भारत सैकड़ों वर्षो तक पराधीन रहा, इसकी वर्णाश्रम व्यवस्था विछिन्न हो गई और शिक्षा का स्वरूप चरित्र निर्माण न होकर केवल धनोपार्जन रह गया। इस कारण यहाँ नैतिक शिक्षा का हास हुआ। इस स्थिति की ओर ध्यान देकर अब प्रारम्भिक माध्यमिक शिक्षा स्तर पर नैतिक शिक्षा का समावेश किया जाने लगा हैं।

नैतिक शिक्षा का समायोजन– भारतीय संस्कृति के उपासक लोगों ने वर्तमान शिक्षा पद्धति के गुण दोषों का चिंतन कर नैतिक शिक्षा के प्रसार का समर्थन किया। फलस्वरूप विद्यार्थियों के लिए नैतिक शिक्षा स्तरानुसार समायोजन किया जाने लगा हैं। क्योंकि विद्यार्थी जीवन आचरण की पाठशाला हैं।

नैतिक शिक्षा की उपयोगिता– नैतिक शिक्षा की उपयोगिता व्यक्ति, समाज और राष्ट्र इन सभी के लिए हैं। नैतिक शिक्षा के द्वारा ही विद्यार्थी अपने चरित्र एवं सुंदर व्यक्तित्व का निर्माण कर सकते हैं। नैतिक शिक्षा से मंडित विद्यार्थी का भविष्य उज्ज्वल गरिमामय बनता है तथा देश के भावी नागरिक होने से उनसे समस्त राष्ट्र को नैतिक आचरण का लाभ मिलता हैं।

उपसंहार– नैतिक शिक्षा मानव व्यक्तित्व के उत्कर्ष का, संस्कारित जीवन तथा समस्त समाज हित का प्रमुख साधन है। इससे भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, प्रमाद, लोलुपता, छल कपट तथा असहिष्णुता आदि दोषों का निवारण होता है. मानवतावादी चेतना का विकास भी इसी से संभव हैं। अतएवं विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास करना चाहिए।

नैतिक शिक्षा की आवश्यकता

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। समाज में बने रहने के लिए उसे सामाजिक नियमों का पालन भी करना जरुरी होता है। बच्चा जब जन्म लेता है तो उस समय वह न तो नैतिक होता है और न ही अनैतिक। वह तो ईश्वर का दिया हुआ एक अनुपम वरदान होता है जिसे आप चाहे तो नैतिक बना सकते है या अनैतिक। लेकिन हर माता–पिता की यही इच्छा होती है की उनका बच्चा समाज में प्रतिष्ठा, प्रंशसा एवं लोकप्रियता हासिल करें। इसके लिए वह अपने बच्चे का अपने हैसियत से बढ़कर अच्छे से अच्छे स्कूल में एडमिशन कराते है ताकि वह नैतिक शिक्षा को ग्रहण कर नैतिक मूल्यों का विकास कर सके। लेकिन स्कूली शिक्षा के साथ–साथ बच्चों में नैतिक गुणों का विकास करने में माता–पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है द्यबच्चे समझाने से उतना नहीं समझते जितना कि वह आपकी आदतों से सीखते है। बच्चा सबसे जयादा वही सीखता है जो आप को करते हुए देखता है। बहुत से माँ–बाप ऐसे है जो अपने बच्चे की बचपन की गलतियों को बच्चा समझकर नजरअंदाज कर देते है लेकिन यह गलत है।

आधुनिक जीवन में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता और महत्व

बच्चे में नैतिक मूल्यों का विकास करने या उनमे संस्कार डालने की प्रथा आज से नहीं बल्कि आदि काल से चली आ रही है। हमारे धर्म ग्रंथो का यही उद्देश्य रहा है कि वह व्यक्ति के अन्दर नैतिक गुणों का विकास करें ताकि व्यक्ति स्वयं को तथा दूसरों को सही मार्ग दिखा सके। यही वजह है कि हमारे देश के संस्कार और परम्पराओं के चर्चे अन्य देशों में भी खूब होते रहे है।

आधुनिक बच्चों या विद्यार्थियों के जीवन में नैतिक मूल्यों का महत्व को हम निम्न विन्दुओं के द्वारा समझ सकते है–

- नैतिक मूल्यों से बच्चे के सुंदर चरित्र का निर्माण होता है।
- नैतिक मूल्यों के विकास से बच्चे में समाजीकरण की भावना का विकास होता है।
- बच्चे में नैतिकता का विकास हो जाने पर वह समाज विरोधी कार्यों को करने से डरता है। वह दुराचार के बारे में कल्पना में भी नहीं सोच पाता है। वह भली–भाति समझने लगता है कि अनुचित एवं गलत कार्यों से उसका तथा उसके माँ–बाप की बदनामी होगी।

निष्कर्ष

नैतिक शिक्षा मनुष्य के जीवन में बहुत आवश्यक है। इसका आरंभ मनुष्य के बाल्यकाल से ही हो जाता है। सब पर दया करना, कभी झूठ नहीं बोलना, बड़ों का आदर करना, दुर्बलों को तंग न करना, चोरी न करना, हत्या जैसा कार्य न करना, सच बोलना, सबको अपने समान समझते हुए उनसे प्रेम करना, सबकी मदद करना, किसी की बुराई न करना आदि कार्य नैतिक शिक्षा या नैतिक मूल्य कहलाते हैं। सभी धर्मग्रंथों का उद्देश्य रहा है कि मनुष्य के अंदर नैतिक गुणों का विकास करना ताकि वह मानवता और स्वयं को सही रास्ते में ले जा सके। एक बच्चे को बहुत पहले ही घरवालों द्वारा नैतिक मूल्यों से अवगत करा दिया जाता है। जैसे–जैसे उसकी शिक्षा का स्तर बढ़ता जाता है। उसके मूल्यों में विस्तार होना आवश्यक हो जाता है। ये मूल्य उसे सिखाते हैं कि उसे समाज में, बड़ों के साथ, अपने मित्रों के साथ व अन्य लोगों के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए। विद्यालय में किताबों में वर्णित कहानियों और महत्वपूर्ण घटनाओं के माध्यम से उसके मूल्यों को संवारा व निखारा जाता है। यदि एक देश का विद्यार्थी नैतिक मूल्यों से रहित होगा, तो उस देश का कभी विकास नहीं हो सकता। लेकिन विडंबना है कि यह नैतिक मूल्य हमारे जीवन से धूंधले होते जा रहे हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली से नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। क्योंकि इनमें नैतिक शिक्षा का अभाव है। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए हम किसी भी हद तक गिर जाते हैं। ये इस बात का संकेत है कि समाज कि स्थिति कितनी हद तक गिर चुकी है। चोरी, डकैती, हत्याएँ, धोखा–धड़ी, जालसाजी, बेईमानी, झूठ, दूसरों और बड़ों का अनादर, गंदी आदतें नैतिक मूल्यों में आई कमी का परिणाम है। हमें चाहिए नैतिक शिक्षा के मूल्य को पहचाने और इसे अपने जीवन में विशेष स्थान दे।

संदर्भ

1. http://hindigk50k-com/tag
2. https://www-khayalrakhe-com/2018/01/naitik&shiksha&essay-html
3. http://hihindi-com/naitik&shiksha&ki&avashyakta&par&nibandh/
4. http://www-mehtvta-com

न्याय-वैशेषिक के परमाणुवाद से अन्य परमाणुवादी सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० ओम प्रकाश प्रभाकर

एम० ए०, पीएच०डी०, दर्शनशास्त्र विभाग, बाबा साहेब भीम राव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

पारिचय

न्याय-वैशेषिक दर्शन असत्कार्यवाद (Asatkaryavada) के आधार पर जगत् के निर्माण की व्याख्या करने के लिये परमाणुवादी सिद्धांत (Atomistic Theory) स्वीकार करता है। यह सिद्धांत उसके बहुत्ववादी वस्तुवाद (Pluralistic Realism) का प्रमुख सिद्धांत है। इसके अनुसार सृष्टि (Creation) की व्याख्या परमाणु-संयोग (Combination of atoms) के माध्यम से तथा विनाश या प्रलय (Destruction) की व्याख्या परमाणु-वियोग (Separationof atoms) के माध्यम से की जाती है। ध्यातव्य है कि यह परमाणुवाद पश्चिम के परमाणुवाद से भिन्न है, क्योंकि यह भौतिकवादी (Materialistic) तथा यांत्रिकतावादी (Mechanistic) न होकर आध्यात्मिक (Spiritualistic) तथा प्रयोजनवादी (Teleological) है। इसका कारण यह है कि इसमें परमाणु-संयोग तथा वियोग के पीछे ईश्वर की भूमिका तो है ही, साथ ही आत्मा जैसे आध्यात्मिक द्रव्य (Spiritual Substance) तथा कर्म-सिद्धांत (Law of Karma) जैसे नैतिक नियम को भी स्वीकार किया गया है।

मुख्य शब्दः परमाणु पुद्‌गलद्रव्य, न्याय वैशेषिक, परमाणुवाद की प्रकल्पना, अभिध्यानमात्र, भौतिक जगत

विषय-वस्तु

परमाणु मानवीय मस्तिष्क के लिए इतना स्वभाविक है कि भौतिक जगत की व्याख्या के लिए आरम्भ में जितने भी प्रयत्न हुए, सबने इसी प्राकल्पना को अपनाया। उपनिषदों में भी इस प्राकल्पना के चिन्ह मिलते हैं, जो सब भौतिक पदार्थों को चार अर्थात् अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी से बना हुआ मानते हैं। आकाश को छोड़ दिया गया है क्योंकि इसका अपना एक विलक्षण स्वरूप है और यह अन्य तत्वों के साथ मिश्रित नहीं होता। किन्तु अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी अपने आप में परिवर्तनशील और विभाज्य है, जबकि यथार्थ को अपरिवर्तनशील, अविभाज्य तथा नित्य माना जाता है। स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि अपरिवर्तनशील, अविभाज्य तथा नित्य ये परमाणु है क्या? विचारधारा उस आन्दोलन में, जिसनें जैन और बौद्ध दर्शन जैसी बड़ी-बड़ी दर्शन पद्धतियों को जन्म दिया, कुछ ऐसी भी दर्शन पद्धतियाँ थी- उदाहरण स्वरूप में अजीवक और जैन जो परमाणुवाद की प्रकल्पना को मानती थी। कणाद ने इसकी कल्पना विशुद्ध आध्यात्मिक आधार पर की और इसके द्वारा जगत विषयक विचारधारा को सरस बनाने का प्रयत्न किया।

न्याय- वैशेषिक के मतानुसार विश्व का निर्माण परमाणु से हुआ है। ये परमाणुचार प्रकार के है। वे है पृथ्वी के परमाणु, जल के परमाणु, अग्नि के परमाणु और वायु के परमाणु। चूँकि विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणु से हुआ है, परमाणु शाश्वत होते हैं इनकी न सृष्टि होती है और न नाश होता है। परमाणु निरवयव है इसलिए ये निर्माण विनाश से परे हैं। प्रत्येक नित्य परमाणु में अपना 'विशेष' होता है जो उसका नित्य और व्यावर्तकपदार्थ है। इसके अतिरिक्त परमाणुओं में गुण-भेद और संख्या-भेद भी होते हैं।

वायु के परमाणु सूक्ष्मतम है जिसमें स्पर्शगुण होते है। तैजस परमाणुओं में रूप और स्पर्श रहते है। जल के परमाणुओं में रस, रूप और स्पर्श गुण होते हैं तथा पार्थिव परमाणुओं में गन्ध, रस, रूप और स्पर्श ये चारों गुण पाये जाते हैं। सावयव पदार्थों के गुण

उनके निर्माणक परमाणुओं के गुणों से आते हैं। परमाणु अतीन्द्रिय, निरवयव, अविभज्य औरनित्य होते है। ये गोल या परिमण्डल होते हैं। ये स्वभवत: क्रियाशून्य और नि:स्पन्द होते हैं। इनमें आद्यस्पन्दन या गति (जिसमें भौतिक सृष्टि उत्पन्न होती है। ईश्वर संचालित 'अदृष्ट' से आती है।

न्याय-वैशेषिक का परमाणुवाद जगत् के उसी भग की व्याख्या करता है जो अनित्य है। जगत् के नित्य भग की व्याख्या परमाणु सिद्धान्त के द्वारा नहीं हो पायी है। दिक् काल, आत्मा, मन और भौतिक परमाणु की न सृष्टि होती है और न विनाश होता है। परमाणु के संयुक्त होने से वस्तुओं का निर्माण होता है और परमाणुओं के विच्छेद होने से वस्तुओं का नाश होता है। इन्हीं अनित्य द्रव्यों की सृष्टि और लय का क्रम बतलाना परमाणुवाद का उद्देश्य है।

प्रशस्तवाद ने सृष्टि रचना तथा विनाश (प्रलय) से सम्बन्धित प्रक्रियाओं का वर्णन किया है। ब्रह्मा के दिन की गणना के अनुसार जब सौ वर्ष हो जाते हैं तो उसकी मुक्ति का समय आता है, तब विश्राम देने के लिए सर्वोपरि भगवान (जो ब्रह्मा से भिन्न है) समस्त सृष्टि को फिर से समेटने का इच्छा करता है। इस इच्छा का उदय का आशय होता है कि आत्माओं के उन सब अदृष्ट कारणों को जो प्राणियों के विविध शरीरों, इन्द्रियों तथा महाभूतों के कारण है, रोक देना। तब फिर परमरूप भौतिक द्रव्यों अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, तथा वायु का एक दूसरे के पश्चात् क्रमश: विलय हो जाता है। परमाणु एकांकी रह जाता है तथा आत्माएँ भी अपने पिछले पुण्य व पाप की क्षमताओं से व्याप्त अकेली रहती है। उसके पश्चात् फिर प्राणियों को उनके पूर्वकर्मों का फल भोगकराने के लिए, सर्वोपरि भगवान् सृष्टि-रचना की इच्छा करता है। ईश्वर की इच्छा सेवायु के परमाणुओं में, उन अदृष्ट प्रवृत्तियों के कारण जो कार्य करना प्रारम्भ करती है गति उत्पन्न होती है।

वायु के परमाणु द्वयणुक तथा त्रयणुक और अन्त में महान् वायु को बताने के लिए परस्पर संयुक्त होते है और अन्त में महान् जल प्रकट होता है, उसके बाद महान पृथ्वी और तब महान अग्नि। ईश्वर के विचार मात्र (अभिध्यानमात्र) से अग्नि तथा पृथ्वी के परमाणुओं से ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है, उसके अन्दर भगवान जगत् तथा ब्रह्मा को रचता है। उस ब्रह्मा के सुपूर्द ही भविष्य में सृष्टि रचना का कार्य रहता है। परमाणु का संयोग निम्नलिखित प्रकार से होता है, दो परमाणुओं के संयुक्त होने से द्वयणुक निर्मित होता है। तीन द्वयणुओं के संयोग से एक त्रयणुक का निर्माण होता है। चार त्रयणुओं के संयोग से चतुरणुओं का प्रादुर्भव होता है। जब चतुरणुक छोटी-बड़ी संख्याओं में संयुक्त होते हैं तब छोटे-बड़े द्रव्य का विकास होता है। स्थूल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल चतुरणुक के संयुक्त होने के फल कहे जा सकते हैं।

न्याय वैशेषिक परमाणुओं को इतने सूक्ष्म मानते हैं कि हम उन्हें आँखों से नहीं देख सकते। परमाणुओं के अस्तित्व के लिए न्याय वैशेषिक ने 'अनुमान प्रमाण' प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि सभी प्रत्यक्षगम्य पदार्थ अवयव-युक्त होते है जैसे कपड़े के अवयव तन्तु तथा घट के अवयव कपाल है। हम उन अवयवों के भी अवयव तथा उनके भी अवयव की कल्पना कर सकते हैं किन्तु कहीं-न-कहीं हमें इन अवयवों की धारा को विश्राम देना होगा। अन्तिम अवयव निरवयव होगा। यही परमाणु है। यहाँ प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि हम अवयव धारा को विश्राम न दे अनन्त माने तो क्या कठिनाई है? न्याय वैशेषिक कहते हैं कि ऐसी स्थिति में विशाल सुमेरू पर्वत व छोटे से राई के दाने के परमाणु में तुल्यता (समानता) होने लगेगी क्योंकि जिस प्रकार अवयव परम्परा का अन्त न मानने से पर्वत के अनन्त अवयव होंगे उसी प्रकार राई के भी अनन्त अवयव होंगे। ऐसी स्थिति में पर्वत और राई के परिणाम में अन्तर नहीं रह जायेगा। यदि दोनों के परमाणु अनन्त हैं तो दोनों के बीच भेद कैसे सम्भ्व है। अत: अवयवों के धारा में विश्राम करना आवश्यक है। ''जिस प्रकार महत् परिणाम के तारतम्य की समाप्ति आकाश में कर दी जाती है, उसी प्रकार अणु परिणाम की समाप्ति भी सबसे छोटे परम-अणु परमाणु में कर दी जाती है।'' इसलिए जहाँ भी अवयव धारा की समाप्ति करेंगे उस अन्तिम अवयव को नित्य ही स्वीकार करना होगा। वह परमाणु है।

न्याय वैशेषिक का परमाणुवाद आध्यात्मिक है, भौतिक नही क्योंकि यह जड़ परमाणुओं के साथ आत्मा तथा ईश्वर जैसी सत्ताओं तथा कर्मवाद के नैतिक नियम को स्वीकार करता है। इस प्रकार सृष्टि-रचना में परमाणु उपादान कारण है तथा अदृष्ट प्रेरित ईश्वर निमित्त कारण है। तर्कामृत नाम के एक नवीन ग्रन्थ में जो यह लिखा गया है कि सूर्य की आती हुई किरणों की बीच जो धुल के कण दिखाई पड़ते है उनके छठे भग को परमाणु कहते है।

जालान्तरस्थसूर्यांशौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रज:।
भगतस्य च शष्ठो य: परमाणु: स उच्यते।।

पाँचवी शताब्दी ई0पू0 यूनान में ल्यूसिपस एवं डेमोक्रिटस नामक दार्शनिकों ने सर्वप्रथम परमाणुवाद का प्रतिपादन किया था। न्याय-वैशेषिक के परमाणु और युनानी के परमाणुवादी विचारधाराओं में कुछ समानता है। जैसे, दोनों विचारधाराएँ परमाणुओं को अविभज्य, निरवयव, नित्य एवं अदृश्य तथा जगत् का उपादान कारण मानते हैं किन्तु दोनों में कतिपय महत्वपूर्ण बिन्दुओं के विषय में विभिन्नता भी पायी जाती है-

1. यूनानी परमाणुवाद परमाणुओं में गुणात्मक समानता मानता है अर्थात् उसके अनुसार सभी परमाणु एक से ही गुण रखते हैं उनमें अन्तर केवल मात्रात्मक होता है अर्थात् कोई छोटे और कोई बड़े होते हैं। इसके विपरीत वैशेषिक दार्शनिक परमाणुओं में गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों अन्तर मानते हैं।
2. यूनानी आत्मा को भी परमाणु निर्मित मानते हैं जबकि न्याय वैशेषिक आत्मा को निरवयव एवं नित्य मानते हैं।
3. यूनानियों के परमाणु स्वभवत: गतिशील है जबकि वैशेषिक के परमाणु निष्क्रिय है।
4. यूनानी परमाणुवाद यांत्रिक विचारधारा को प्रश्रय देता है क्योंकि यहाँ परमाणुओं का गति नियंत्रक कोई बाहरी तत्त्व नहीं है जबकि प्रारम्भिक न्याय वैशेषिक दर्शन में धर्म (अदृष्ट) तथा बाद के वैशेषिक दर्शन में ईश्वर को इसका नियंत्रक बताया गया है।

जैनमत सिद्ध परमाणु पुद्गलद्रव्य स्वरूप है। जैन दार्शनिकों ने रूप-रस-गन्ध-स्पर्श वाले ''पुद्गलद्रव्य'' को ही परमाणु शब्द कहा है।

जैने दर्शन के परमाणुवाद और न्याय-वैशेषिक के परमाणुवाद में कुछ साम्यता है। जैसे दोनों ही परमाणुओं को अविभज्य, निरवयव, नित्य और अदृश्य मानते हैं। किन्तु दोनों में कतिपय महत्वपूर्ण बिन्दुओं के विषय में विभिन्नता पायी जाती है।

1. जैन दार्शनिक रूप, रस, गन्ध और स्पर्श को सहचारी मानते है जहाँ इन चारों में से एक भी गुण प्रतीत होता है वहाँ शेष तीन अवश्य होते है। जैनो की यह मान्यता आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर भी सच्ची उतरती है। विज्ञान मानता है कि निरंतर ठंडा करते रहने से वायु एक प्रकार के नीले रस में परिवर्तित हो जाता है जिस प्रकार की वाष्प पानी के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। जब वायु में रूप सिद्ध हो जाता है तो रस और गन्ध सिद्ध हो जाता है। इसके विपरीत न्याय वैशेषिक वायु को केवल स्पर्श गुणयुक्त ही मानते है। वे कहते हैं कि वायु में वर्ण, रस और गन्ध नही है। न्याय वैशेषिक तेज में रस और गन्ध नही मानते। वे तेज में केवल स्पर्श और रूप को ही मानते है।

2. जैन दर्शन का परमाणुवाद नित्य नहीं है। यह मानता है कि पृथ्वी आदि किसी भी पुदगल के द्रव्य के परमाणु अप् आदि रूपों में परिणत हो सकते हैं। इनके अनुसार परमाणु के रूपों में परिवर्तन होता रहता है। नये-नये स्कन्धों के भेद से नये-नये परमाणु बनते रहते हैं। किसी अन्य स्कन्ध में मिल जाने पर वे उस स्कन्ध के समान हो जाते हैं। परमाणु की ऐसी जातियाँ नहीं बनी हुई है जिसमें वे नित्यरहते हो। इसके विपरीत न्याय वैशेषिक का परमाणुवाद नित्य है। सब द्रव्यों के परमाणु नित्य है। उनका कार्य बदलता रहता है वे कभी नही बदलते। न्याय वैशेषिक जिस प्रकार पृथ्वी आदि द्रव्यों में भिन्न गुण मानता है उसी प्रकार भिन्न द्रव्यों के भिन्न परमाणु भी मानता है। पृथ्वी के परमाणु अलग हैं, पानी के परमाणु अलग हैं, तेज के परमाणु अलग हैं और वायु के परमाणु अलग हैं। ये सारे परमाणु एक दूसरे से भिन्न हैं। पृथ्वी के परमाणु पानी के परमाणु नही बन सकते, पानी के परमाणु पृथ्वी के परमाणु नही बन सकते।

न्याय-वैशेषिक के परमाणुवाद और आधुनिक परमाणुवाद में कुछ समानता हमें देखने को मिलती है लेकिन इन दोनों के विचारधाराओं में अन्तर देखने को मिलता है।

* बींसवी सदी के पूर्व तक माना जाता था कि परमाणु अविभज्य है परन्तु जे.जे. थॉमसन, रदरफोर्ड, चैडविक आदि ने सिद्ध कर दिया कि परमाणु को विभजित किया जा सकता है। परमाणु में इलेक्ट्रान, प्रोट्रान एवं न्यूट्रान स्थाई तथा पाजिट्रान, न्यूट्रिनो, एन्टियूड्रिनो तथा मेसान आदि अस्थाई कण होते हैं जबकि न्याय-वैशेषिक का परमाणुवाद अविभज्य है।

* आधुनिक परमाणुवाद का परमाणु स्वचालित है, उसमें गति का कारण कोई बाहरी तत्त्व नही होता है। जबकि न्याय वैशेषिक के परमाणु में गति का कारण ईश्वर है।

* आधुनिक विज्ञान केवल अस्थिर तत्त्वों जैसे रेडियम, थोरियम, यूरेनियम, प्लूटोनियम आदि के परमाणुओं के विघटन तक ही अनुसंधान कर पाया है। जबकि कणाद के व्याख्या के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों प्रकार के तत्त्वों के परमाणुओं का विघटन किया जा सकता है।

* कणाद ने परमाणुओं में गुणभेद देखा। भौतिक द्रव्यो में गुणभेद है और इस भेद के कारण हमें रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का बोध होता है। संभ्वत: संवेदनाओं के भेद ने उसे परमाणुओं में गुणभेद देखने की प्रेरणा की।

नवीन विज्ञान कहता है कि कुछ तत्त्वों को छोड़ अन्य तत्त्वों के परमाणु अकेले नहीं मिलते, अपितु 2, 3, 4 के समूहों में मिलते है। कणाद के विचार में परमाणुओं का मिलकर भी ''चतुरणुक बनाना सृष्टि में मौलिक घटना है, इस संयोग का टूटना ही संहार या प्रलय है। अत: हम कह सकते हैं कि वैशेषिक का परमाणुवाद समाचीन दिखता है। इस विचारधारा ने भरत में और अन्यत्र भी वैज्ञानिक चिंतन को अंकुरित, पल्लवित और विकसित किया है। आधुनिक परमाणु बहुत कुछ उसी दिशा का और अधिक विकास है जिसका सूत्रपात सर्वप्रथम कणाद ने किया था। आधुनिक युग में बर्ट्रेल रसेल ने भी जिस तत्त्व मीमांसा को मान्यता दी है उसे तार्किक परमाणुवाद कहा जाता है। इसे वैशेषिक परमाणुवाद की परम्परा का आधुनिक दर्शन कहा जा सकता है। अत: विज्ञान के क्षेत्र में परमाणुवाद ने जो विजय प्राप्त की है। यह एक सफल प्राकल्पना थी। अत: यही हम कह सकते हैं कि ''न्याय-वैशेषिक विचारकों का विचार आधुनिक वैज्ञानिक विचार का पूर्वाभस है।''

सन्दर्भ-सूची

1. शोभ निगम, भारतीय दर्शन, 1988, पृ0सं0 198
2. राममूर्ति पाठक, भरतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, 1997, पृ0सं0 102
3. शोभ निगम, भरतीय दर्शन, 1988, पृ0सं0 199
4. मोहनलाल मेहता, जैन धर्म-दर्शन एक समीक्षात्मक परिचय, 1999,पृ0सं0 186-188
5. राधाकृष्णन, भरतीय दर्शन, भग-2, 1972, पृ0सं0 193
6. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भरतीय दर्शन की रूपरेखा, 1986 पृ0सं0 223
7. चन्द्रधर शर्मा, भरतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन पृ0सं0 169
8. सतीशचन्द्र चटोपाध्याय, भरतीय दर्शन, पृ0सं0 159
9. राधाकृष्णन, भरतीय दर्शन, भग-2, 1972, पृ0सं0 198-199
10. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भरतीय दर्शन की रूपरेखा, 1986 पृ0सं0 223

राष्ट्रीय निर्माण में महिलाओं की भूमिका

सोनी त्रिपाठी

(शोधार्थी), कला संकाय, हिंदी विभाग, कुमाऊं विश्वविद्यालय (नैनीताल)

"सजग, सचेत, सफल, समर्थ।
आधुनिक युग की नारी है।
मत मानो अब अबला उसको
सक्षम है बलधारी है।"

ईश्वर ने प्रकृति के बाद इस संसार में अपना सबसे सुंदर हस्ताक्षर स्त्री के रूप में किया है इस कारण स्त्री को प्रकृति, शक्ति, ममता, माया, क्षमा, तपस्या, आराधना आदि के रूप में जानते हैं चुकी स्त्री पर कोई इतिहास नहीं लिखा गया है इसलिए कब, क्यों और कैसे स्त्री अपनी वर्तमान स्थिति पर आ गई इसका वर्णन किसी के पास नहीं है? महिला देश समाज एवं परिवार का मुख्य आधार होती है। महिला समाज को सभ्य बनाने से लेकर देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। स्त्री आदि भी है और अंत भी। जब भारतीय ऋषियों ने अथर्ववेद में "माता भूमिः पुत्रों अहं पृथ्विया:" (अर्थात भूमि मेरी माता है और हम सब इस ध रा के पुत्र हैं) की प्रतिष्ठा की तभी से संपूर्ण विश्व में नारी महिमा का उद्घोष हो गया था। समाज के संपूर्ण आधे अंग को स्त्री का आधार बनाकर सदियों से ना जाने कितनी और कौन-कौन सी पद्धतियां चलाई गई हैं। जिस प्रकार स्त्री के बिना जीवन की कहानी अधूरी होती है उसी प्रकार स्त्री के बिना किसी राष्ट्र का निर्माण तथा किसी समाज का निर्माण भी अधूरा होता है। समय-समय पर राष्ट्र निर्माण में नारी की भूमिका बढ़ती ही रही है। कभी वह देश की रक्षा के लिए हथियार उठाती है तो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए राष्ट्र की बागडोर अपने हाथ में लेती है तो कभी माथे पर टोकरी धर भवन निर्माण में अपना बहुमूल्य योगदान देती है। वह सिर्फ भवन निर्माण कार्य ही नहीं करती बल्कि अपने प्रेम, ममता, दया से उस भवन को गृह भी बनाती है तथा उसे बसाती भी है। सौंदर्य, प्रेम, श्रद्धा, करुणा व दया की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत की जाने वाली स्त्री जब बंदूक, फावड़ा, कटार, हसुआ, कुदाल, आदि लेकर राष्ट्र निर्माण के लिए सामने आई तो चारों दिशाओं में उसके साहस, वीरता, ओज, शक्ति की जय जय कार होने लगी।

आदिकाल हो या वैदिककाल या फिर आज का आधुनिक काल महिलाएं हमेशा से ही शिक्षा और राष्ट्रीय निर्माण में अगण्य रही है, हां यह जरूर है कि मध्यकाल में महिलाओं की भूमिका जरूर गौण हो गई थी। उनको ना तो शिक्षा के क्षेत्र में आगे आने दिया गया और ना ही समाज में उनका कोई महत्त्व रह गया था लेकिन जैसे ही स्वतंत्रता की प्राप्ति हुई महिलाओं ने शिक्षा के साथ साथ समाज में अपना वर्चस्व बनाना शुरू कर दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से स्त्री ने राष्ट्री निर्माण के कार्य को विकास के पथ पर ले जाने वालों में अग्रिम पंक्ति में खड़ी रही। राष्ट्र के तीन मौलिक तत्व में संस्कृति का वरण यदि कोई करता है तो वह नारी ही है। राष्ट्र निर्माण में उस राष्ट्र की आधी आबादी अर्थात स्त्री की भूमिका के महत्व से हम इंकार नहीं कर सकते। आधी आबादी यदि किसी भी कारण से निष्क्रिय रहती है तो उस राष्ट्र की प्रगति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 39% कार्यशील जनसंख्या है जिसमें लगभग एक चौथाई महिलाएं हैं। भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहां के कृषि में महिलाओं ने अपनी सक्रिय भूमिका निभाई है सिर्फ कृषि ही नहीं बल्कि चिकित्सा, इंजीनियरिंग, सिविल सेवा, बैंक, पुलिस, शिक्षा जगत, फौज, व्यवसाय प्रत्येक क्षेत्र में यहां तक कि अंतरिक्ष में भी महिलाओं ने अपना वर्चस्व दिखाया है तथा अपने अस्तित्व का लोहा मनवाया है। आकाश से लेकर पाताल तक स्त्रियों ने खोद डाला। चूड़ियां सिर्फ कलाइयों

में खनकी ही नहीं बल्कि दुश्मनों के हृदय पर तांडव भी कर के आई, आंखें केवल कजरारे ही नहीं रहे बल्कि उनमें अग्नि की लपट भी देखी गई, मस्तक केवल सिंदूर से ही नहीं बल्कि मातृभूमि के मिट्‌टी से भी सुशोभित हुए। 26 जनवरी 2020 को सीआरपीएफ की महिला बाइकर्स ने रॉयल एनफील्ड बुलेट मोटरसाइकिल पर कलाबाजी दिखाई। ऐसा पहली बार हो रहा था जब महिला बाइकर परेड में स्टंट करते हुए नजर आ रही थी। 1986 में सीआरपीएफ ने एशिया क्षेत्र में पहली अशस्त्र महिला बटालियन को खड़ा किया था और वर्तमान में इसकी छः इकाइयां है जिनमें प्रत्येक में 1000 महिला कर्मचारी हैं। फौज के विभिन्न लड़ाकू गथे में महिलाएं हैं। राष्ट्र निर्माण में महिलाओं की सहभागिता को नकारा नहीं जा सकता।

मैरी कॉम, किरण बेदी, कल्पना चावला, पी टी उषा, साइना नेहवाल, इंदिरा गांधी, मीरा नायर, मीरा कुमार, मेनका गांधी, बछेंद्री पाल, संतोष यादव, सानिया मिर्जा, कर्णम मल्लेश्वरी, प्रतिभा पाटिल, गीता फोगाट, दीपा मलिक, कविता दलाल आदि की क्षमता एवं प्रदर्शन को भुलाया नहीं जा सकता। महिलाएं आज पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है और देश को आगे बढ़ा रही हैं।

सुभाष चंद्र बोस ने सही कहा था कि- "ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो हमारी महिलाएं नहीं कर सकती और ऐसा कोई भी त्याग और पीड़ा नहीं है जो वे सहन नहीं कर सकती"।

माता जीजाबाई ने शिवाजी को महान देशभक्त और कुशल योद्धा बनाया। रानी लक्ष्मीबाई, रजिया सुल्तान, पद्मावती, मीराबाई, के शौर्य, जौहर, भक्ति को भुलाया नहीं जा सकता जिन्होंने विकट परिस्थितियों में भी सुकृति का झंडा हराया तथा अपने देश का मान रखा। नारी अपने अस्तित्व की लड़ाई युगो युगो से लड़ती आ रही है।वह आरंभ से ही अनेक कार्य करते आ रही है पर कभी भी ना तो उसके भीतर शक्ति के संचार की कमी हुई है और ना ही उसने कभी अपने कदम को लड़खड़ाने दिया। एक स्त्री के पास गृह कार्य से लेकर बाह्य कार्य तक और साथ ही साथ पुरुष द्वारा बनाए गए समाज की बेदी पर प्रत्येक दिन उसे अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ता है अपने अस्तित्व के लिए अपने स्वाभिमान के लिए हर दिन संघर्ष करना पड़ता है यदि कहीं भी कुछ भी गलत होता है तो उसका सारा भार स्त्री पर ही डाल दिया जाता है। सुबह जल्दी उठ कर खाना बनाने से लेकर ऑफिस जाने तक वह एक पल भी बैठती नहीं है। ऑफिस से शाम को निकलते वक्त उसे यह भी भय रहता है कि यदि जल्दी घर पर नहीं पहुंची तो पति और सास नाराज होंगे बच्चों को खाना नहीं मिल पाएगा इस कारण वह यदि थोड़ा आराम करने को सोचे तो भी वह आराम नहीं कर सकती। वह भागती रहती है अपने कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए। कभी घर में भागती है तो कभी ऑफिस में परंतु वह थकती नहीं है क्योंकि उसमें शक्ति है, शौर्य हैं और साहस है जिसके कारण वह अपने कार्य को पूर्ण रूप से करती हुई आगे बढ़ती है।

ईश्वर ने एक अलग ही मिट्‌टी से स्त्री का निर्माण किया है और एक मान्यता के अनुसार जब ब्रह्मा ने स्त्री को बनाया उसके बाद वे बहुत रोए थे। कहा जाता है कि वह इसलिए रोए थे क्योंकि प्रकृति के बाद वह उनकी दूसरी सबसे खूबसूरत रचना थी। ब्रह्मा के आंसू के कारण ही स्त्री के जीवन में संघर्ष लिखा गया।

"नारी तुम स्वतंत्र हो,
जीवन धन यंत्र हो।
काल के कपाल पर,
लिखा सुखमंत्र हो।"

हर निर्माण में स्त्री की सहभागिता रही है चाहे वह गृह निर्माण हो, राष्ट्र निर्माण हो, समुदाय निर्माण हो, संघ या संस्कृति निर्माण हो। अकेले पुरुष कुछ भी नहीं कर सकता यदि उसे स्त्री का सहयोग प्राप्त ना हो तो। हर पुरुष को किसी न किसी रूप में स्त्री की आवश्यकता होती है। नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा था कि; "तुम मुझे एक योग्य माता दे दो मैं तुम्हें योग्य राष्ट्र दूंगा"।

राजनीति से लेकर विज्ञान तक के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या बढ़ रही है। आधुनिक भारतीय राजनीति में कई ऐसी महिलाएं रही हैं जिनकी ऐतिहासिक भूमिका से हम भलीभांति परिचित हैं। स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर आजाद भारत में सरकार चलाने तक महिलाओं की भूमिका अहम रही है। 1980 से लेकर 2014 तक महिला वोटर्स की संख्या में 15% की बढ़ोतरी हुई है। विश्व स्तर पर अगर भारत की एग्जिट पॉलिटिक में महिलाओं की स्थिति की बात करें तो 193 देशों में भारत का स्थान 141 है। विश्व स्तर पर संसद में 22.6 फीसदी महिलाओं की भागीदारी है। यूनियन केबिनेट मिनिस्ट्री में महिलाओं का प्रतिशत 5% था जो अब 2014 में बढ़कर 26% हो गया है।केवल राजनीति ही नहीं बल्कि इसी प्रकार से हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी दिनोंदिन बढ़ रही है।

धरती से आकाश तक, जल से स्थल तक महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई है यदि नारी घर पर रहती है तो वह घर का काम करती है बच्चों की देखभाल, बच्चों को अच्छे संस्कार देना, उन्हें बेसिक शिक्षा देना, उन्हें उचित, अनुचित, सत्य, असत्य के बीच में अंतर बताना यह भी एक प्रकार का राष्ट्र निर्माण कार्य ही है। घर हो या बाहर स्त्री हर जगह अपने दायित्व का निर्वहन करती है। स्त्री बच्चें को उचित शिक्षा देकर उसे राष्ट्र निर्माण के योग्य बनाती है यह भी राष्ट्र निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य है।

"नारी सरस्वती का रूप हो तुम,
नारी लक्ष्मी का स्वरूप हो तुम।
बढ़ जाए जब अत्याचारी,
नारी दुर्गा काली का रूप हो तुम।"

भारत में नारी सरस्वती, लक्ष्मी और काली के रूप में पूजनीय हैं अर्थात नारी ज्ञान देती है, धन देती है और आवश्यकता पड़ने पर काली रूप धारण कर विनाश भी करती है। हर क्षेत्र में नारी सभी पुरुषों पर भारी है। नारी केवल राष्ट्र निर्माण का कार्य ही नहीं करती बल्कि राष्ट्र की, समाज की गंदगी को भी दूर करती है। बिहार राज्य में महिलाओं की कोशिश के कारण ही राज्य सरकार ने पूरे राज्य में शराबबंदी कर दी। उत्तराखंड में महिलाओं के सहयोग से ही चिपको आंदोलन आरंभ हुआ और हमारे पेड़- पौधे कटने से बच गए। यह सब भी राष्ट्र निर्माण का ही कार्य है।

"एक औरत को शिक्षित करने का अर्थ है एक पीढ़ी को शिक्षित करना।"यह अटल सत्य है क्योंकि एक नारी से कई पीढ़ियां जुड़ी होती हैं, तो उसे शिक्षित करना आवश्यक है। राष्ट्र के निर्माण में महिलाओं ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया है। आत्मनिर्भर स्त्रियां या नौकरी करने वाली स्त्री ही राष्ट्र निर्माण का कार्य नहीं करती बल्कि अशिक्षित, कम पढ़ी लिखी एवं शिक्षित घरेलू व कामकाजी स्त्रियां भी राष्ट्र निर्माण में सहयोग करती हैं। जिन्हें अपनी आर्थिक तथा घरेलू अधिकारों की जानकारी है और जो अपने अधिकारों को प्राप्त कर चुकी हैं अथवा जो अपने आर्थिक अधिकारों की जानकारी की प्राप्ति के लिए संघर्षरत है वह भी राष्ट्र निर्माण में अपना योगदान कर रही।

चुनाव लड़ने से लेकर हवाई जहाज उड़ाने तक, बच्चा पालने से लेकर विश्वविद्यालय में शिक्षा देने तक, कपड़ा सिलाई से लेकर विश्व सुंदरी बनने तक, घर में झाड़ू लगाने से लेकर सरहद पर बंदूक चलाने तक, भवन निर्माण से लेकर गृह निर्माण तक, तलवार चलाने से लेकर जौहर की अग्नि में जलने तक, शासन की बागडोर संभालने से लेकर सरकार गिराने तक, पनघट से मरघट तक, आंगन से चौराहे तक, पालने से पलंग तक, एकांत से भीड़ तक, जहां तक जितना जीवन है वहां तक नारी ने निर्माण का ही कार्य किया है और करती आ रही है चाहे वह राष्ट्र-निर्माण हो, समाज निर्माण हो, गृह निर्माण हो या फिर संस्कृति निर्माण हो महिलाओं की जीवंत सहभागिता हमेशा से ही बनी हुई है और बनी रहेगी।

आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री राष्ट्र निर्माण में अपना बहुमूल्य योगदान देती रही है और आगे भी देती रहेगी परंतु उसे जरूरत है प्रेम की, विश्वास की जो वह चाहती है उसे समाज और अपने परिवार अपने जीवन साथी से प्राप्त हो यदि यह समाज सच्चे अर्थों में स्त्री को अपना कार्य करने दे तो वह सैकड़ों राष्ट्र का भविष्य लिख सकती है। आज के आधुनिक एवं टेक्नोलॉजी की दुनिया में महिलाएं पुरुषों से आगे बढ़कर अपना परचम लहरा रही हैं और राष्ट्र को सदैव गतिशील बना रही हैं। अब स्त्री केवल श्रद्धा नहीं है वह अब विश्वास बन चुकी है। अब वह कोमलंगी नहीं है बल्कि कठोर बन चुकी है। शर्ट के टूटे बटन से लेकर आदमी के टूटे विश्वास को एक स्त्री ही जोड़ती है।

अत: राष्ट्र निर्माण में नारी का सहयोग आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक बना हुआ है और बना रहेगा। सरकार द्वारा भी इन्हें अधिक से अधिक सहयोग और संरक्षण दिया जा रहा है ताकि यह अपना समुचित विकास कर राष्ट्र की एक नई पहचान बन सके। सभी वर्ग की महिलाओं चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, संप्रदाय, से क्यों ना हो उन्हें शिक्षित करना और उन्हें रोजगार देना सब कुछ राष्ट्र के हित में ही है। हर महिला किसी न किसी रूप में राष्ट्र निर्माण में अपना समुचित योगदान देती आ रही है और आगे भी देती रहेगी।

"नारी निंदा ना करो,
नारी रतन की खान।
नारी से नर होते हैं,
ध्रुव, प्रहलाद समान।"

संदर्भ ग्रंथ

1. महिला सशक्तिकरण (डॉक्टर सीता गुर्जर)
2. महिला सशक्तिकरण और नारीवाद (पी डी शर्मा)
3. भारत स्त्री असमानता (गोपा जोशी)
4. महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा (योगेंद्र शर्मा)
5. सीढ़ियां चढ़ती हुई मैं (डॉक्टर प्रभा खेतान)
6. एक और पहचान (डॉ. प्रभा खेतान)

संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में मनरेगा की दशा एवं दिशा

डॉ० रेणु कुमारी

(गेस्ट प्रोफेसर), भारती मंडन महाविद्यालय, रहिका, मधुबनी, ल० ना० मि० वि०, कामेश्वरनगर, दरभंगा

हर हाथ को काम दो।
काम का पूरा दाम दो।।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 70% से अधिक आबादी गाँवों में निवास करती हैं। जिसे "भारतीय आत्मा" का स्वरूप भी कहा जा सकता हैं। लेकिन भारतीय गाँवों की सबसे बड़ी त्रासदी मौसमी बेरोजगारी हैं जो वहाँ की बदहाल गरीबी का मुख्य कारण भी हैं। जिसके लिए भारत सरकार और राज्य सरकार समय-समय पर ग्रामीण लोकहित में योजनाओं का क्रियान्वयन करती रहती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अकुशल श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने और बेरोजगारी उन्मूलन के लिए सरकार ने जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई.), सुनिश्चित रोजगार योजना (ई.ए.एस), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.), राष्ट्रीय आहार के लिए कार्यक्रम (एन.एफ.एफ.डब्ल्यू.पी.) काम के बदले अनाज योजना लेकिन इन योजनाओं में से अधिकांशत: योजना रोजगार की गारंटी सुनिश्चित नहीं कर सकी। इसका मुख्य कारण ग्रामीण अकुशल बेरोजगार श्रमिकों तक इसे पहुँचाने का कोई सार्थक प्रयास नहीं किया गया। जिस कारण अधिकांशत: लोगों को इन योजनाओं का पता भी न चल सका और वे रोजगार से वंचित रह गये। व्यवस्था के कई स्तरों पर अनियमितताएँ एवं संवेदनहीनता भी इसका प्रमुख कारण रहीं।

फलत: भारत सरकार ने सर्वप्रथम उक्तांकित विभिन्न योजनाओं से अलग हटकर शहर की ओर रोजगार के लिए ग्रामीणों का पलायन रोकने के लिए भारतीय संसद द्वारा 23 अगस्त 2005 को ध्वनिमत से "राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा)" पारित किया। 2 अक्टूबर 2009 से इसे महात्मा गाँधी के नाम समर्पित करते हुए इसका नामाकरण "महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)" कर दिया गया है। यह अधिनियम 2 फरवरी 2006 से देश के सिर्फ 200 जिलों में लागू किया गया था लेकिन 200 जिलों में सफलतापूर्वक क्रियान्वयन होने के बाद 1 अप्रैल, 2008 से संपूर्ण ग्रामीण भारत (जम्मू-कश्मीर को छोड़कर) में लागू किया गया। 370 धारा हटने के बाद जम्मू एवं कश्मीर सहित लद्दाख क्षेत्रों में भी इसे सफलतापूर्वक लागू कर दिया गया हैं। इससे पूर्व "महाराष्ट्र राज्य ने सन् 1976 में 'रोजगार गारंटी अधिनियम' पारित किया था। यह आज भी लागू है। कुछ मायनों में तो यह राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 से बेहतर हैं। महाराष्ट्र के रोजगार गारंटी अधिनियम के तहत किसी व्यक्ति को असीम काम करने का अवसर प्राप्त हैं। कोई व्यक्ति कभी भी कितने दिनों काम हेतु आवेदन कर सकता हैं। वहाँ 'प्रति परिवार प्रति वर्ष 100 दिन' की कोई सीमा लागू नहीं होती।"[1]

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य भारतीय संविधान के भाग-3 (मौलिक-अधिकार) के अनुच्छेद-16 में "अवसर की समानता" के परिप्रेक्ष्य में देश के ग्रामीण परिवारों की आजीविका की सुरक्षा सुनिश्चित करना है। इस अधिनियम के तहत ग्रामीण क्षेत्र के 18 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति न्यूनतम पारिश्रमिक पर मजदूरी हेतु आवेदन ग्राम पंचायत या कार्यक्रम अधिकारी के पास कर सकता हैं। रोजगार पाने के लिए पंजीयन करवाना आवश्यक होता है, जो आवेदन की तिथि से 05 वर्ष के लिए मान्य होता हैं। 'न्यूनतम पारिश्रमिक पर मजदूरी करने को इच्छुक किसी भी व्यस्क को आवेदन के 15 दिनों के अंदर किसी सार्वजनिक काम में रोजगार

पाने का अधिकार प्राप्त हैं। यदि उसे 15 दिनों के अंदर रोजगार नहीं दिया गया तो वह बेरोजगारी भत्ते का हकदार होगा/होगी।... (2) हालांकि प्रति परिवार प्रति वर्ष 100 दिन का अधिकतम अवधि निर्धारित है।(6) यदि 15 दिनों के अंदर रोजगार नहीं दिया जाए तो आवेदकों को बेरोजगारी भत्ता का अधिकार मिल जाता हैं। पहले 30 दिनों के लिए यह भत्ता मजदूरी-दर का एक तिहाई होता है, और उसके बाद आधा।"[2] इस अधिनियम के लागू होने से मजदूरों का गाँवों से शहरों में पलायन में कमी आयी हैं। साथ ही यह रोजगार गारंटी महिलाओं के सशक्तिरकण का महत्वपूर्ण स्त्रोत साबित हुआ। इसके पीछे इसका श्रेय अधिनियम के रूप में पारित कर देश के सभी जिलों में लागू करने को जाता हैं। "योजना और अधिनियम में एक और महत्वपूर्ण अंतर है। योजनाएँ आती-जाती रहती हैं, मगर कानून अधिक स्थायी होते हैं। अफसरशाही में योजनाओं की काट-छाँट या निरस्तीकरण का डर भी रहता हैं; जबकि कानून में संशोधन परिवर्तन संसद द्वारा ही संभव है।"[3] इस अधिनियम के तहत बाढ़ नियंत्रण, सूखारोधी भूमि विकास आदि का काम आवेदक को निवास के 05 किमी. के अंदर में ही रोजगार देने का प्रावधान है। 05 किमी से बाहर की स्थिति में यात्राभत्ता देय होगा। नियम कहता है कि "यदि इस परिधि से बाहर कार्य दिया गया तो भी प्रखंड से बाहर नहीं हो और मजदूरों के पारिश्रमिक का 10 प्रतिशत आवास भत्ता और दैनिक आवागमन की व्यवस्था आवश्यक है। (अनुच्छेद-02, अवतरण 12 एवं 14)"[4] यह अधिनियम ग्रामीण मजदूरों खासकर महिला मजदूरों के सशक्तिकरण का एक मजबूत साधन हैं। रोजगार की निश्चित गारंटी होने की स्थिति में श्रमिक मजदूर वर्ग के सदस्य आर्थिक रूप से मजबूत होंगे। जिस कारण उसे ग्रामीण सूदखोर महाजनों से मुक्ति मिलेगी। वे संगठित होकर अपनी आवाज को बुलंद करेंगे। मनरेगा विश्व का सबसे बड़ा सार्वजनिक एवं महत्वाकांक्षी कार्यक्रम है। यह योजना ग्रामीणों को सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार प्रदान करती हैं। यह अधिनियम रोजगार पाने की गारंटी का कानूनी अधिकार देता है। इसमें लगभग एक चौथााई ग्रामीण परिवार प्रतिवर्ष भाग लेते हैं। यह योजना केन्द्र सरकार के वित्तीय सहयोग से राज्य सरकार द्वारा लागू की जाती है।

"इस अधिनियम के तहत भूमि विकास, जल-संरक्षण, सूखारोधी और बाढ़ नियंत्रण संरक्षण आदि अनेक कार्यो के क्रियान्वयन पर बल दिया गया है। इन कार्यो के क्रियान्वयन की प्रक्रिया और शर्तो का संचालन इस प्रकार किया गया है कि इससे स्थानीय स्तर पर सुशासन की अवधारणा का अहसास किया जा सके। इसी कारण इसे उत्तरदायित्व, पारदर्शिता और सामाजिक अंकेक्षण का उपकरण माना जाता है। नि:संदेह मनरेगा अधिनियम लोगों का कानून है। इसलिए इस अधिनियम के सफल क्रियान्वयन की प्रगति का मूल्यांकन करना अनिवार्य है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हरियाणा के पिछड़े जिले सिरसा जिसमें यह अधिनियम सबसे पहले क्रियान्वित किया गया।"[5]

इस कानून में ग्राम पंचायत के स्तर पर ग्राम सभा द्वारा नियमित सामाजिक मूल्यांकन रोजगार कार्ड का नियमित नवीनीकरण, हाजरी बही का अनिवार्य रूप से प्रदर्शन आदि पारदर्शिता और उत्तरदायित्व के कई प्रावधान है जिसमें मुख्य रूप से निजी ठेकेदारों को प्रतिबंधित किया गया है। साथ ही काम के बंटवारे में महिलाओं को इस प्रकार प्राथमिकता दी जाए कि लाभार्थियों में एक-तिहाई महिलाएँ हो। ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वागीण विकास के लिए ग्राम पंचायत एक महत्वपूर्ण इकाई मानी गयी है। ग्राम पंचायत में योजनाओं एवं अधिनियमों को लागू करने में ग्राम सभा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

"संविधान के अनुच्छेद-243 के अनुसार ग्राम सभा का अर्थ एक ऐसे निकाय से है जिसमें ग्राम पंचायत के क्षेत्र में आने वाले पंजीकृत निर्वाचक मंडल के व्यक्ति शामिल हैं। यह भी कहा गया है कि ग्राम सभा राज्य की विधानसभा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके गांव के स्तर पर अपने कार्य करती है।"[6] ग्राम सभा से उम्मीद की जाती है कि वह ग्राम पंचायत के कार्यो की निगरानी करें और योजना बनाने में प्रमुखता से हिस्सा ले कर अपनी सहभागिता सुनिश्चित करें।

यह एक 'मागोन्मुख' कानून है जिसके माध्यम से भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बेरोजगार नागरिक संविधान के मौलिक अधिकारों का उपयोग कर अनुच्छेद-16 के अंतर्गत लोक नियोजन के विषय में बेरोजगार होने की स्थिति में रोजगार की मांग कर सकता है अन्यथा कि स्थिति में बेरोजगारी भत्ता का हकदार होता है। लोकहित में सरकार की यह एक महत्वाकांक्षी योजना है। बिहार के संदर्भ में 100 दिनों का रोजगार संभव नहीं है। ग्रामीण विकास विभाग, बिहार, पटना के सचिव एस. एम. राजू ने 'मनरेगा के अंतर्गत सामाजिक वानिकी (फार्म फौरेस्ट्री/एग्रो फौरेस्ट्री के लिए मानक संचालन प्रक्रिया) के प्रस्तावना में अंकित करते हुए स्पष्ट करते हैं कि "मनरेगा केन्द्र सरकार की एक महत्वकांक्षी योजना है, जिसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में एक वित्तीय वर्ष में 100 दिनों

का रोजगार सभी इच्छुक व्यस्क को उपलब्ध कराया जाता है। लेकिन बिहार के परिप्रेक्ष्य में 100 दिनों का रोजगार नहीं दिया जा रहा हैं क्योंकि बिहार में ‘वतापदह’ मेंवद मात्र 4 से 5 महीना है, क्योंकि 38 जिलों में से 28 जिले बाढ़ग्रस्त हैं। जून 15 से जनवरी एवं फरवरी तक मिट्टी का कार्य इन बाढ़ग्रस्त जिलों में नहीं किया जा सकता हैं। इसकी वजह से 100 दिनों का रोजगार मिट्टी के कार्य में मिलना संभव नहीं हैं। इसलिए वृक्षारोपण ही एक ऐसी योजना है, जिसमें सालो भर बेरोजगारों को रोजगार दिया जा सकता हैं।”[7] इस प्रकार देखा जाय तो भारत सरकार के इस अधिनियम में राज्य के भौगोलिक परिवेश के अनुसार आंशिक परिवर्तन किया जा सकता है। ताकि मनरेगा राज्य के लोगों को हर परिस्थिति में 100 दिनों का रोजगार पहुँचाया जा सके।

महात्मा गाँधी नरेगा के अंतर्गत संचालित कार्यो की प्रक्रिया पूर्णत: संवैधानिक नियमों के अनुकूल संचालित होती है। लोकतंत्र की सबसे छोटी इकाई ग्राम पंचायत के माध्यम से इसके कार्यो का क्रियान्वयन सुचारू रूप से किया जा रहा है। इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि ग्राम पंचायत द्वारा किए जाने वाले कार्यो का अनुमोदन ग्रामसभा करेगी। फिर ग्राम सभा महात्मा गाँधी नरेगा कार्यो का सामाजिक अंकेक्षण भी करेगी। जिसमें ग्राम पंचायत इन कार्यो से संबंधित अभिलेखों यथा-मास्टर रोल, माप-पुस्तिका, बिल, रसीद, मंजूरी आदेशों की प्रतिलिपि संबंधित लेखा संबंधी कागजात आदि ग्राम सभा को उपलब्ध करवाती है। जिसमें ग्राम पंचायत के सरपंच की अध्यक्षता में ग्रामसभा सदस्यों के द्वारा मनरेगा के तहत किए जाने वाले कार्यो की पहचान कर उसको अनुमोदित किया जाता हैं। फिर जॉब कार्ड की पंजीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की जाती है और संबंधित जॉब कार्ड धारकों को पंचायत द्वारा कार्य उपलब्ध करवायी जाती हैं। इस प्रकार रोजगार देने की संपूर्ण प्रक्रिया संपन्न होती हैं। जिस कारण मजदूर वर्ग अपनी आजीविका का अर्जन कर जमींदारों, पूंजीपतियों, सूदखोर महाजनों के द्वारा किए जाने वाले शारीरिक, मानसिक एवं आर्थिक शोषण से बच जाते हैं। जिस कारण उनके जीवन में एक मौलिक परिवर्तन हुआ है और समाज के हासिये पर खड़े लोग सम्मान के साथ अपनी जिंदगी जी रहे हैं। निसन्देह मनरेगा समाज के वंचित लोगों का अधिनियम हैं। हमारे संविधान के 42वें संशोधन (1976) द्वारा यथा संशोधित उद्देशिका में स्पष्ट लिखा है –

“हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को : सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और *अवसर की समता* प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर .... एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते है।”[8]

अर्थात् राज्य, उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता (अनुच्छेद-16) एवं व्यक्ति की गरिमा प्रदान करेगी। जिसके दिशा में महात्मा गाँधी नरेगा कार्यक्रम सरकार का एक सार्थक महत्वकांक्षी एवं सराहनीय कदम है। जिससे समाज में खासकर अनुसूचित जाति/जनजातियों, पिछड़ो एवं अतिपिछड़ों वर्ग के लोगों को सम्मान के साथ जीने का मौका मिल रहा हैं। यह समाज के आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की दिशा में एक सकारात्मक पहल हैं। जिसका परिणाम समाज में परिलक्षित होने लगा हैं।

संविधान के 73वें संवैधानिक संशोधन (1993) में जोड़ी गयी संविधान की ग्यारहवीं (11वीं) अनुसूची में पंचायती राज संस्थाओं को कार्य करने के लिए उनतीस (29) विषय प्रदान किए गए हैं। जिसमें कृषि, जल प्रबंधन, सामाजिक वानिकी, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला एवं बाल विकास तथा समाज कल्याण आदि मुख्य हैं। इस अनुरूप देखा जाए तो मनरेगा संविधान की 11वीं अनूसूची की ‘आत्मा’ की तरह हैं। जिसमें मौलिक उद्देश्यों के अनुरूप ग्रामीण निर्धन व्यक्तियों के आजीविका संसाधनों के पूर्ति के लिए विभिन्न कार्यो का प्रबंधन किया गया है। साथ ही संविधान के भाग-3 : शोषण के विरूद्ध, मौलिक अधिकार के अनुच्छेद-23, व्यक्ति की खरीदी-बिक्री, बेगारी तथा इसी प्रकार की अन्य जबरदस्ती लिए जाने वाले श्रम को रोकथाम में महात्मा गाँधी नरेगा अधिनियम एक महत्वपूर्ण अधिनियम के रूप में समाज के दबे कुचले लोगों को प्रतिष्ठित एवं सकारात्मक जीवन जीने की दिशा में एक सार्थक कदम है। जिससे उसे अपने ही समाज में रहने वाले शोषक वर्ग से आजादी मिली और उनके जीवन-स्तर में गुणात्मक परिवर्तन आया। जिस कारण ग्रामीण महिला सशक्तिकरण की दिशा में भी एक नई दिशा मिली हैं।

संदर्भ सूची

1. डे निखिल, द्रेज ज्यां एवं खेरा रीतिका : रोजगार गारंटी अधिनियम (प्रवेशिका), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, पृ. सं.-06
2. वही, पृ. सं.-36 से 37.
3. वही, पृ. सं.-03.
4. वही, पृ. सं.-12.
5. कुरूक्षेत्र, अप्रैल 2014, अंक-06, पृ. सं.-24.
6. वही, पृ. सं.-26.
7. मनरेगा के अंतर्गत सामाजिक वानिकी (फार्म फौरेस्ट्री/एग्रो फौरेस्ट्री के लिए मानक संचालन प्रक्रिया), ग्रामीण विकास विभाग, बिहार, पटना (प्रस्तावना), वर्ष-2014.
8. कक्षा-10, आओ मिलकर चले एक सुरक्षित भारत की ओर (भाग-3), केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, प्रीत विहार, दिल्ली, पृ. सं.-अप

बेबसाइट

1. www.righttofoodindia.org
2. www.nrega.nic.in

लघु वनोपज संग्रहण से आदिवासियों के आर्थिक विकास पर प्रभाव (कोरबा वन क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में)

प्रिंस कुमार मिश्रा

पीएच.डी. शोध छात्र, वाणिज्य विभाग, डॉ. सी.वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

प्रो० प्रभाकर पाण्डेय

प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, डॉ. सी.वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

कोरबा जिले में वनाच्छादित जिला होने के कारण यहॉ के वनों में अत्यधिक मात्रा में विभिन्न प्रकार के वनोपज पाए जाते है। कोरबा जिले में उत्पादित लघु वनोपज संग्रहण (तेन्दुपत्ता, तेन्दु, मौसमी फल, महुआ, जड़ी-बुटी, बास आदि) से आदिवासियों की आय जुड़ी होती है। वनोपज को संग्रहण करने बहुत सारी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जैसे- जंगली जानवर का भय, सांप का भय एवं मौसम परिवर्तन आदि। कोरबा जिले के लघु वनोपज के विक्रय हेतु किस प्रकार की प्रक्रिया को अपनाता है। कोरबा जिले के उत्पादित लघु वनोपज से आदिवासियों के वर्तमान में आर्थिक विकास हेतु किस प्रकार से सहायक है। इस शोध पत्रिका में उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कोरबा जिले के वनान्चल क्षेत्र के 50 आदिवासियों का साक्षात्कार किया गया है। जिसमें पाया गया कि कोरबा जिले के लघुवनोपज संग्रहण से आदिवासियों के आर्थिक विकास हो रहा है। जिसका प्रभाव सकारात्मक है। फलस्वरुप उनके आर्थिक जीवन स्तर में भी धीरे-धीरे सुधार हो रहा है।

कीवर्ड: वनाच्छादित, लघु वनोपज, आर्थिक विकास, आदिवासी, संग्रहण इत्यादि।

प्रस्तावना

छत्तीसगढ़ राज्य प्राकृतिक एवं खनिज सपंदा की दृष्टि से एक संपन्न राज्य है। इसके सम्पूर्ण क्षेत्र फल का 43.85 प्रतिशत भाग वनाच्छादित है। छत्तीसगढ़ राज्य का देश में खनिज एवं वनों की उपलब्धता की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान है। यहॉ के वन जैव विविधता एवं वनौषधियों से भरे हुए हैं। इन वनों में प्रचुर मात्रा में लघु वनोपज पाये जाते है। लघु वनोपज यहॉ के आदिवासियों एवं ग्रामीणों के आजीविका का मुख्य साधन है, साथ ही साथ ये लघु वनोपज राज्य की आय के बड़े स्त्रोत भी है। यहॉ के वनों में मुख्य लघु वनोपजों के रूप तदुं पत्ता, साल बीज, हर्रा, गोंद, लाख, ऑवला तथा महुआ इत्यादि प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। राज्य शासन को वनोंपजों के माध्यम से करोड़ो रूपये वार्षिक राजस्व की प्राप्ति हाती है जिसमें लघु वनोपजों से 1000 करोड़ रूपये वार्षिक का राजस्व शामिल है। तेन्दूपत्ता एवं लाख के उत्पादन के लिए छत्तीसगढ़ राज्य पूरे भारत में अग्रणी उत्पादक के रूप में जाना जाता

है। राज्य के राजस्व प्राप्ति में लघु वनोपजों के इस महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि लघु वनोपजों राज्य की आर्थिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में है।

पूर्व में जब लघु-वनोपजों के संग्रहण, क्रय, विक्रय, व्यापार एवं प्रबंधन आदि में शासन का हस्तक्षेप नहीं था तब राज्य में लघु-वनोपजों के संग्रहण, क्रय, विक्रय, व्यापार एवं प्रबंधन इत्यादि का कार्य ठेकेदारों द्वारा किया जाता था। ठेकेदारों द्वारा ही आदिवासियों एवं ग्रामीणों से लघु वनोपजों का संग्रहण कराया जाता एवं विक्रय की प्रक्रिया पूरी की जाती थी। फलस्वरुप ग्रामीणों एवं आदिवासियों का शोषण कर ठेकदार धनवान होते गये। ठेकेदार ग्रामीणों को उनका उचित पारिश्रमिक एवं मूल्य नहीं देते थे, साथ ही लघु-वनोपजों के क्रय-विक्रय का उचित सरकारी प्रबंधन नहीं होने के कारण राज्य सरकार को राजस्व का अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ता था। जिसके कारण ग्रामीण आदिवासियों को आर्थिक घाटे का सामना करना पड़ता था और उनका आर्थिक जीवन स्तर गिरता चला गया।

लघु वनोपज के संग्रहण कार्य में लगे आदिवासियों एवं ग्रामीणों के हितों के संरक्षण के उद्देश्य से वर्ष 1984 में मध्यप्रदेश राज्य लघु-वनोपज (व्यापार एवं विकास) सहकारी संघ मर्यादित की स्थापना की गयी, जिसका उद्देश्य वनोपजों के व्यापार से ठेकेदारी प्रथा को पूर्ण रूपेण समाप्त करना और संग्रहण का उचित पारिश्रमिक आदिवासियों एवं ग्रामीणों को दिलाना था। लघु वनोपजों के क्रय-विक्रय एवं वितरण की ऐसी व्यवस्था करना जिससे कि उससे हित रखने वाले हितग्राहियों को सर्वोत्तम लाभ प्राप्त हो सके।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय

कोरबा जिला को 25 मई सन 1998 में प्रभावी पूर्ण राजस्व जिले का दर्जा प्राप्त हुआ था। जिसका मुख्यालय कोरबा शहर में है, जो कि हसदेव और अहिरन नदी के संगम के किनारे स्थित है। कोरबा जिला बिलासपुर संभाग के अंतर्गत आता है। कोरबा नवगठित जिला है जो कि छत्तीसगढ़ की ऊर्जाधानी के नाम से प्रसिद्ध भी है। कोरबा जिले को 5 इलाकों में बॉटा गया है जो कि कोरबा, पाली, पोडी उपरोड, कटघोरा एवं करतला के रुप में है। यहाँ मुख्य रूप से संरक्षित आदिवासी जनजाति कोरवा (पहाड़ी कोरवा) निवास करते हैं। कोरबा जिला चारों ओर से हरे भरे वनों से लाभान्वित हैं, यहाँ आदिवासियों की एक बड़ी जनसंख्या पायी जाती हैं। यहां के आदिवासी वन क्षेत्र में पर्यावरण के साथ रहना पसन्द करते हैं, जिसके कारण उन्होंने अपनी विशिष्ट सांस्क्रतिक विशेषताओं और पारंपरिक प्रथाओं को बरकरार रखा है।

कोरबा जिले की भौगोलिक स्थिति :

अक्षांश	22°012 से 23°012 उत्तर
देशांतर	82°072 से 83°072 पूर्व
सागर स्तर से ऊंचाई	304.8 मीटर

छत्तीसगढ़ राज्य में कोरबा जिला उत्तर की ओर स्थित है जो, कोरिया, सरगुजा, बिलासपुर, जांजगीर, रायगढ़ जिलों से घिरा हुआ है। कोरबा जिला मुख्यालय राजधानी रायपुर से लगभग 210 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। कोरबा जिले का कुल क्षेत्रफल 7, 14, 544 हेक्टेयर है जिसमें से 2, 83, 497 हेक्टेयर वन भूमि है, जो की कुल क्षेत्रफल का लगभग 40 प्रतिशत है।

जलवायु : कोरबा जिला गर्म शीतोष्ण जलवायु क्षेत्र के अंतर्गत आता है जिसके कारण जिले में बहुत गर्मी और सूखा रहता है। गर्मी का मौसम अप्रैल से मध्य जून तक शुरू होता है, दक्षिण-पश्चिम मानसून के कारण यहाँ बरसात का मौसम जून के मध्य से सितंबर के अंत रहता है। जिले में औसत वर्षा 1506.7 मिमी है, और सामान्य वर्षा 1287.6 मिमी है।

नदी : कोरबा जिले के मुख्य नदी हसदेव है, जो कोरबा जिले के मध्य से बहती है, जिसका उद्गम छोटा नागपुर की घाटी से है। इस नदी की कुल लंबाई 233 कि.मी. है इसकी सहायक नदियां गेजकोराई, टैन और अहिरन हैं।

वन : कोरबा जिला राज्य के उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र में स्थित है। सतपुरा पहाड़ियों की मैकाल पर्वत की पठार वाली अधिकांश भूमि उच्च और निम्न और खुली है। इस खुली भूमि का सबसे बड़ा क्षेत्र पासान के पास फैला हुआ है। प्रमुख पहाड़ी गुरुद्वारी हिल, जनता हिल, मातिन और धाजाक हैं। कोरबा की सामाजिक और वित्तीय संरचना में वन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह क्षेत्र वन संपत्ति में सममृद्ध है। जिले में दो वन विभाग हैं अर्थात् कोरबा और कटघोरा। कोरबा के सामाजिक और वित्तीय संरचना में वनों की महत्वपूर्ण

भूमिका हैं। यह जिला वनो उपज में पूरी तरह समृद्ध है, वन विभाग की दो मण्डल कोरबा और कटघोरा कोरबा जिले के अंतर्गत आते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

1. कोरबा जिले में उत्पादित लघु-वनोपज से आदिवासियों की आर्थिक विकास का अध्ययन करना।
2. कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के संग्रहण प्रक्रिया का अध्ययन करना।
3. कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के विपणन की प्रक्रिया में सुधार का अध्ययन करना।
4. कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के विक्रय की प्रक्रिया का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ

1. कोरबा जिले के आदिवासियों के आर्थिक विकास में लघु-वनोपज का महत्वपूर्ण योगदान है।
2. कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के संग्रहण की प्रक्रिया में सुधार हो रहा है।
3. कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के विपणन की प्रक्रिया में निरन्तर सुधार हो रहा है।
4. कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के विक्रय की प्रक्रिया में परिवर्तन हो रहा है।

शोध प्रविधि

वर्तमान शोध पत्र आदिवासियों के आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए शोधार्थी ने न्यादर्ष विधि का चुनाव यादृच्छिक न्यादर्ष के रूप में चुना है। जिसके लिए कोरबा क्षेत्र के 50 ग्रामीण आदिवासियों को प्राथमिक समंक हेतु चुना है। शोधकर्ता ने द्वितीयक संमंक हेतु शोध पत्रिका, समाचार पत्र, पूर्व में किये गये शोध का परिणामों को ध्यान में रखते हुए लिया गया है। प्रश्नावली के माध्यम से ग्रामीणों के विचारों का संकलन कर उचित सांख्यिकीय का उपयोग किया गया है।

आंकड़ों का संकलन एवं विश्लेशण

लघुवनोपज का उत्पादन एवं संग्रहण समय-समय पर पृथक-पृथक होता है। वनोपज की प्रजाति तथा इनका संग्रहण, मजदूरी आदि पर जनजातीय अर्थव्यवस्था निर्भर करती है। मजदूरी की दर पर रोजगार (मानव दिवस) के दिवस निर्भर करते हैं। उत्पादन एवं संग्रहण को तालिका 1 में दिखाया गया है।

तालिका 1: लघु वनोपज का उत्पादन, संग्रहण का मूल्यांकन

क्र.	लघु वनोपज	अनुमानित वर्तमान बाजार बिक्री दर (रुपये प्रति किलो)
1	काली मूसली	40 से 45
2	तीखुर	70 से 90
3	सफेद मूसली	1000 से 1400
4	पुआड, चरौटा	40 से 50
5	स्वर्ण पत्री, सनॉय	60 से 75
6	रजनजोत	30 से 40
7	गुड़मार	30 से 35
8	गिलोय	40 से 55
9	गोखरु	45 से 55
10	हर्रा	20 से 26

11	बहेड़ा	10 से 15
12	अर्जुन-फलछाल	25 से 3545 से 50
13	इमली-बीज सहित बीज	45 से 5010
14	बीजा फलछाल	40 से 5055 से 60
15	तेंदू-फलपत्ता (मानक बोरों में)बीज	30 से 351600 से 400045 से 50
16	बेचांदी	90
17	फूलबहारी	22 से 30
18	करंज	20 से 25
19	चिरौजी गुठली	60 से 70
20	ढाक, पलास-बीजफूलछाल	12 से 1525 से 3015 से 20
21	सलइ गोंद	70 से 110
22	माहुल पत्ता	अ. 15 से 20ब. 12 से 15स. 10 से 12
23	आम गुठली	8 से 10
24	महुआ फूलफल	30 से 4550 से 70
25	सबई घास	8
26	सर्पगंधा	160 से 200
27	लाख	200 से 250
28	धवई फूल	20 से 25
29	अश्वगंधा	250 से 300
30	कुल्लु गोंद	220 से 450
31	वाकेरीमूल	15 से 20
32	रोसा घास	तेल 1400
33	बिलवा	13 से 25
34	कुसुम बीज	15 से 25
35	चिरायता	25 से 40
36	नागरमोथा	20 से 35
37	शहद	250 से 350
38	इद्रजो-बीजछाल	18 से 2225 से 35
39	खैर बीज	25 से 35
40	बबूल बीज	10 से 12
41	नीम बीज	8 से 10
42	भट्ट कटेरी बीज	12 से 15
43	तुलसी कृश्ण	15 से 20
44	बच	120 से 150
45	आवला फल (सूखा)(हरा)	35 से 5015 से 20

46	बायबरंग	300 से 450
47	बेल गुदा	20 से 22
48	अड़ूसा	10 से 12
49	खींकवर/घृतकुंवारी	20 से 25
50	सतावर (कच्ची) (सूखा)	60 से 851000 से 1500

उपरोक्त दरें वर्तमान बाजार दरों पर आधारित हैं। लघु वनोपज की दरें बाजार मांग एवं उसके उत्पादन व फसल पर निर्भर करती हैं। यदि उत्पादन अधिक होगा व बाजार मांग कमजोर तो देरं गिर जावेंगी एवं यदि मांग अधिक व उत्पादन कम तो दरें बढ़ेंगी। इसी फसल के समय दाम कम रहते हैं व उसके पश्चात् अधिक। अत: यह अत्यन्त आवश्यक है कि लघु वनोपज की संग्रहण दर तय करते समय बाजार की मांग व फसल के उत्पादन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

परिकल्पनाओं के आधार पर आंकड़ों का संकलन

1. कोरबा जिले के आदिवासियों के आर्थिक विकास में लघु-वनोपज का महत्वपूर्ण योगदान है।

तालिका - 2

क्रमांक	हॉ	नहीं
1.	88%	12%

व्याख्या: कोरबा जिले के आदिवासियों के आर्थिक विकास में लघु-वनोपज का महत्वपूर्ण योगदान हेतु किए गये आर्थिक विकास के अध्ययन में लिये आदिवासियों ने सर्वे का 88% विचार हाँ और 12% नहीं में विचार व्यक्त किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कोरबा जिले के आदिवासियों के आर्थिक विकास में लघु-वनोपज का महत्वपूर्ण योगदान हो रहा है। कुछ ऐसे आदिवासी है जिनको ज्यादा जानकारी नहीं होने के कारण अपने गांव में विक्रय करते है या अपने संग्रहीत वनों उत्पाद बड़े व्यापरियों को कम दामों बेच देते है। जिससे उनके आर्थिक स्थिति में किसी प्रकार की सुधार नहीं पाया गया है।

2. कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के संग्रहण की प्रक्रिया में सुधार हो रहा है।

तालिका - 3

क्रमांक	हॉ	नहीं	
	1.	64%	36%

व्याख्या: कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु वनोपज के संग्रहण की प्रक्रिया में सुधार हेतु विचार प्रकट किया है। जिसमें 64 प्रतिशत आदिवासी हॉ में विचार दिया है और 36 प्रतिशत नहीं में विचार व्यक्त किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के संग्रहण की प्रक्रिया में सुधार हो रहा है। जिसका मुख्य कारण वर्तमान समय में नये तकनीकों का उपयोग कर लघु वनोपज का संग्रहण कर रहे हैं तथा कुछ ऐसे आदिवासी भी है जो आज भी पुराने तरीके से वनोपज संग्रहण करते है।

3. कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के विपणन की प्रक्रिया में निरन्तर सुधार हो रहा है।

तालिका - 4

क्रमांक	हॉ	नहीं	
	1.	76%	24%

व्याख्याः 1. कोरबा जिले के आदिवासियों के आवागमन के साधन सीमित होने के कारण और अन्य परिस्थितियों का सामान्य की सामान्य जानकारी भी नही होने के कारण बिचौलियों से ठगे जाते थे। और अपने उत्पाद का न्यूनतम मूल्य भी नही पाते थे। अब वे विभिन्न समितियों का गठन अपने गाँव में कर रहे है और उचित प्रकार से अपने उत्पादों का प्रचार - प्रसार भी कर रहे हैं।फलस्वरुप उन्हें उनके उत्पाद का उचित मूल्य प्राप्त होना प्रारम्भ हो गया है। लघु वनोपज के विपणन की प्रक्रिया में परिवर्तन हेतु विचार प्रकट किया है। जिसमें 76 प्रतिशत आदिवासी हॉ में विचार दिया है और 24 प्रतिशत नहीं में विचार व्यक्त किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कोरबा जिले के कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के विपणन की प्रक्रिया में निरन्तर सुधार हो रहा है। जिसका मुख्य कारण वर्तमान समय में शासन के नई-नई योजनाओं के माध्यम से लघुवनोपज का व्यापार कराया जा रहा है।

4. कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के विक्रय की प्रक्रिया में परिवर्तन हो रहा है।

तालिका - 4

क्रमांक	हॉ	नहीं
1.	84%	16 %

व्याख्या : कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु वनोपज के विक्रय की प्रक्रिया में परिवर्तन हेतु विचार प्रकट किया है। जिसमें 84 प्रतिशत आदिवासी हॉ में विचार दिया है और 16 प्रतिशत नहीं में विचार व्यक्त किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कोरबा जिले के आदिवासियों द्वारा विभिन्न लघु-वनोपज के विक्रय की प्रक्रिया में सुधार हो रहा है। जिसका मुख्य कारण वर्तमान समय में शासन के नई-नई योजनाओं के माध्यम से लघुवनोपज का विक्रय कराया जा रहा है। शासन द्वारा विक्रय के दौरान वनोपज की रकम तथा उनको बोसन के रूप में अन्य रकम प्रदान की जा रही है। जिसका अधिकतर आदिवासी इनका लाभ ले रहे हैं। कुछ ऐसे आदिवासी भी है जो आज भी संग्रहण से प्राप्त वनोपज को सामान्य बाजार में बेचते हैं जिसका कारण शासन के योजनाओं की जानकारी का अभाव है।

परिणाम

प्रस्तुत शोधपत्र में कोरबा जिले में लघु वनोपज के संग्रहण से आदिवासियों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है। शोध पत्र के उद्देश्य एवं परिकल्पनाओं के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि अधिकतर आदिवासी द्वारा लघु वनोपज के माध्यम से अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत किया है। साथ ही साथ शासन के योजनाओं का भरपूर लाभ उठाया है। जिससे इनकी वनोपज संग्रहण करने की प्रक्रिया में भी बदलाव देखने को मिला है। साथ ही साथ लघु वनोपज का विक्रय में भी शासन की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

उपसंहार

लघु वनोपज लोकप्रिय जैविक के रूप में प्राप्त होने वाले वे वनोपज होते है जिनका उत्पादन आम तौर वनों में विभिन्न प्रजाती के वृक्षों से होता है, इसमें मुख्यतः तेंदुपत्ता, बांस, इमली, महुआ, गोंद, हर्रा, लाख, चिरौंजी, खैर, बबूल, अंजन, साल बीज, साजा, छाल, धावड़ा, चरौटा बीज, वन तुलसी, आम गुठली, छिअं धास, नागरमोथा, ऑवला फल, चार गुठली, कुसुम बीज, बहेड़ा, धवई फूल बेल आदि आते हैं। लघु वनोपज वनों में रहने वाले वनवासियों के लिए प्राचीन काल से ही जीवकोपार्जन का महत्वपूर्ण साधन रहा है। वनवासी इन लघु वनोपज का उपयोग खाद्य पदार्थ एवं औषधी के रूप में करते रहे हैं। वर्तमान में लघु वनोपज न केवल वनवासियों के लिए महत्वपूर्ण है अपितु आज ये राज्य एवं केन्द्रीय शासन के लिए राजस्व प्राप्ति के एक महत्वपूर्ण साधन हैं। लघु वनोपज का संग्रहण वन विभाग के नियंत्रण में प्राथमिक वनोपज समितियों एवं संयुक्त प्रबंध के अन्तर्गत गठित वन समितियों तथा मुख्य कार्यपालन अधिकारी के नियंत्रण में गठित समितियों, राजस्व विभाग, लैम्पस् आदि के द्वारा किया जाता है। विभिन्न लघु वनोपज की संग्रहण दर अलग - अलग है। प्रदेश में कई लाख मानक बोरे तेन्दूपत्ता, कई लाख क्विंटल साल बीज, कई हजार क्विंटल हर्रा का उत्पादन औसतन होता है, जिनका अनुमानित मूल्य करोड़ों रूपये होता है।

संदर्भ सूची

- **Mahapatra, A. and C.P. Mitchell (1997)** : 'Sustainable development of non-timber forest products: Implication for forest management in India", in Forest Ecology and Management, Vol. 94 (1-3), Pg. 15-29, June 30, 1997.
- **Ojha, H. and B. Bhattarai (2003) :** 'Learning to manage a complex resource: a case of NTFP assessment in Nepal", in *International Forestry Review*, Vol. 5(2), Pg. 118-127
- **Pattanayak, S. K., E. O'Sills (2001):** 'Do tropical forests provide natural insurance? The microeconomics of non-timber forest products collection in the BrazilianAmazon", Land Economics, Vol. 77, No. 4, Pg. 596-612
- **Tewari, D. D. and J. Y. Cambell (1996):** 'Increased development of non-timber forest products in India: some issues and concerns", Unasylva 187, Vol. 47, pp 26-31.
- **शर्मा आर. (2007) :** छत्तीसगढ लघु वनोपज (व्यापार एवं विकास) सहकारी संघ मर्यादित 2008 वन उत्पाद अजीविका और संरक्षण
- **गौतम, राजेन्द्र सिंह एवं शर्मा, दीपक (2003) :** लाइवलीहुड प्रमोशन थ्रू नॉन टिंबर फॉरेस्ट प्रोडक्टः केस ऑफ छत्तीसगढ़ स्टटे।
- **शुक्ला, डॉ. शान्ता :** छत्तीसगढ़ का सामाजिक आर्थिक विकास : **नेशनल पब्लिकेशन दिल्ली**
- **भगवान सिंह वर्मा:** छत्तीसगढ़ का इतिहास म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
- **राठोर जाडिया :** आर्थिक विकास एवं नियोजन, **सूर्या पब्लिकेशन**
- **छत्तीसगढ़ लघु वनोपज (व्यापार एवं विकास) सहकारी संघ समिति :** लघु वनोपज संग्रहण निर्देशिका 2010
- **शर्मा आर सीः** छत्तीसगढ लघु वनोपज (व्यापार एवं विकास) सहकारी संघ मर्यादित 2008 वन उत्पाद अजीविका और संरक्षण
- छत्तीसगढ़ राज्य की लघु-वनोपज नीति - 2001
- www.dmgfpfed.org
- http://cgmfpfed.org/hi/NWFP%20Mart.php
- https://www.mygov.in

बौद्धकालीन समाज में स्त्री प्रश्नः एक नारीवादी अध्ययन

डॉ० अनामिका कुमारी

पी.एच., इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

नारीवादी अध्ययनकारों जैसे उमा चक्रवर्ती, कुमकुम रॉय, प्रेम चौध्री, कुमकुम संगारी इत्यादि ने भारतीय स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण भारतीय समाज में पितृसत्ता के उदय और इसके संस्थाकरण के प्ररिप्रेक्ष्य में किया है। उमा चक्रवर्ती ने बहुत ही गहन तरीके से ब्राह्मणवादी साहित्य का विश्लेषण किया और ब्राह्मणवादी पितृसत्ता एवं सामाजिक अध्क्रिम के साथ वर्ग, वर्ण और जेन्डर के रिश्तों को उद्घाटित किया। स्त्राी के अधीनीकरण की अध्रिचना, स्वरुप और कारणों का विश्लेषण आज के स्त्राी-विमर्श का केन्द्र बिन्दु है।

भारत में जेन्डर स्तरीकरण (Gender stratification) के विश्लेषणकर्ताओं ने भारत में स्त्राी के अधीनीकरण को इस प्रकार एक ऐतिहासिक आधर देने का प्रयास किया है। ताकि कैसे, कब और किन संदर्भो में पितृसत्तात्मक संस्थायें बनी और उनका रूपांतरण हुआ। प्रसिद्ध नारीवादी लेखक गर्डा लरनर (Gerda Lerner) ने "The Creation of Patriarchy" में विश्व सभ्यताओं और समाजों के परिप्रेक्ष्य में वर्ग और जेन्डर के संबंधें और स्त्राी की यौनिकता पर नियंत्राण के माध्यम से उसके अधीनीकरण का विश्लेषण किया। साथ ही यह भी बतलाया कि कैसे विभिन्न वर्गों की स्त्रियों की अलग-अलग स्थिति होने के बावजूद भी पुरूषों का नियंत्राण एक जैसा है। उत्पादन कैसे होता है और उस पर किसका नियंत्राण है, यह वर्गीय पक्ष (Class Dimension) है परन्तु कैसे पुनरूत्पादन (Reproduction) को व्यवस्थित किया गया और इस पर किस का नियंत्राण है-इस तथ्य का विश्लेषण गहराई से किया। गर्डा लरनर के इस विश्लेषण को भारत के परिप्रेक्ष्य में नारीवादी इतिहासकारों नें वर्ग के साथ-साथ जाति वर्ण व्यवस्था के प्रश्न के साथ जोड़ा और जेन्डर-संबंधें एवं स्त्राी के अधीनीकरण के नये पहलूओं पर प्रकाश डाला। इस प्रकार भारत में स्त्राीविमर्श के मुख्य आयाम पितृसत्ता, जेन्डर वर्ग और जाति के ढाँचे में विश्लेषित हुए।

प्राचीन काल से ही स्त्रियों को गश्ह की सामग्री के रुप में सम्मानजनक स्थान प्राप्त है अगर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति को देखें तो पाते हैं कि उस समय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों जैसे शिक्षा, धर्म, संस्कृति और सामाजिक विकास में स्त्रियों का स्वतंत्रा योगदान रहता था। वैदिक काल में पुरुषों के समान ही महिलायें भी ब्रह्मचर्य में रहकर विद्या अर्जन किया करती थीं। एकनिष्ठता के साथ जीवन पर्यन्त विद्याध्ययन में लगी महिलाओं को 'ब्रह्मवादिनी' कहा जाता था। कई ऋषि-महर्षि स्त्रियाँ भी हुई जिनमें, अपाला, घोषा, सिकता, आत्रोयी, आदि थी, परंतु इनकी संख्या कम थी। त्राग्वेद में एक हजार से ज्यादा सूक्त हैं, जिनमें महिला मनीषियों द्वारा दिए गए पूर्णतः या आंशिक रूप से संबंधित श्लोकों की संख्या महज 12-15 से ज्यादा नहीं है, अर्थात् गार्गी जैसी महिला दार्शनिकों की संख्या कापफी कम है।[1]

बुद्धकालीन समाज में बौद्ध, ब्राह्मणवादी व्यवस्थाओं में स्त्राी-पुरुष अंर्तसंबंधें को देखते हैं तो पाते हैं कि बुद्धकाल में भी वैदिक कालीन सामाजिक व्यवस्था के समान ही स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, परंतु उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की दशा में जो गिरावट आई, वह बनी रही। बुद्धकाल में ब्राह्मणवादी व्यवस्था में उत्तरवैदिक कालीन समाज के आधारभूत सिद्धांतों को स्त्रियों को अपनाने की हिदायत दी गई जिससे स्त्रियों का 'नैतिक पतन' ना हो। बौद्ध ध्र्मावलम्बी महिलाओं के प्रति कापफी उदारवादी दृष्टिकोण रखते थे और उन्हें हमेशा किसी पुरुष के संरक्षण में रहने की सलाह देते। छठी शताब्दी ई० पू० में ही जैन धर्म के

आविर्भाव ने उस समय व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार किया तथा ब्राह्मणवादी व्यवस्था के बाह्य आडम्बर पर आघात किया। समाज में पफैले धर्मिक रीति-रिवाज जो पहले से चले आ रहे थे और जो वैदिक और ब्राह्मणवादी व्यवस्था की लोकप्रियता बरकरार थी उसे गौतम बुद्ध और महावीर ने तोड़ने की कोशिश नहीं की। बुद्ध का विरोध केवल हिंसात्मक कर्मो तक ही रहा। बुद्ध ब्राह्मणवादी व्यवस्था में स्त्रियों के प्रति बनाये गये नियम कानून जैसे-शिक्षा, विवाह, धर्म, विध्वा पुनर्विवाह, यौनशुचिता से संबंधित कई वर्जनाओं को नहीं तोड़ सके। इसके संबंध में आगे प्रकाश डाला जायेगा।[3]

मौर्यो के उदय से समाज में स्त्री पुरुष के संबंधें को हम गिरते हुए पाते है। मौर्य काल में कन्या-जन्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा। लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति थी परंतु कुछ अतिरिक्त नियम थे जो लड़कों के लिए नहीं थे, जैसे लड़कियों को वैदिक मंत्रों के उच्चारण के लिए उपयुक्त नहीं माना गया।[4] इसके पीछे कारण यह प्रतीत होता है कि इस युग तक हिन्दू समाज में अंर्तजातीय विवाह का प्रचलन हो चुका था, जिसमें दूसरे वर्ण की ऐसी स्त्रियाँ भी होती थीं, जिनका बौद्धिक बाड्मय और आचार से कोई परिचय नहीं होता था। मौर्य शासन के अंतिम चरण में स्त्रियों की स्थिति और भी निम्न और दयनीय हो गई, कई बंध्न और अवरोध उनके ऊपर लगाये गए।[5]

मौर्यो के उपरांत शक, पह्लव तथा कुषाण काल तक स्त्रियों की दशा में उतार चढ़ाव दिखता है। सातवाहन काल में जहाँ स्त्रियों को सम्मान एवं सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ, वही कुषाण तक आते-आते महिलाओं को घृणित एवं व्याभिचारी बताया गया है।[6]

बुद्ध स्वयं स्त्रियों को दुर्गध्युक्त एवं नैतिकताहीन बताते हैं। सामाजिक जीवन में उनकी तुलना निकृटतम् वस्तुओं से की गई है। जातकों से ज्ञात होता है कि बौद्ध विचारों के अनुसार जहाँ की शासक एक स्त्राी होती है वह स्थान रहने योग्य नहीं होता। स्त्रियाँ आमतौर पर असंत और पापिनी प्रकृति की होती हैं[7] स्त्रियों का चरित्रा और प्रकृति संदिग्ध होते हैं। बुद्ध का मानना था कि स्त्रियाँ व्याभिचारिणी होती हैं। एक बुद्धिमान पुरुष के लिए यही उचित है कि स्त्री की प्रकृति को समझे, उससे घृणा न करें। बुद्ध ने आगे यह भी कहा कि स्त्रियाँ उस धर्म स्थल की नदी के समान होती हैं जहाँ साधु और चांडाल दोनों स्नान करते हैं। जातकों में भी पितृ सत्तात्मक सोच स्पष्ट दिखती है, स्त्रियों की कल्पना आम उपभोग की वस्तु के रुप में की गई है, जो एक सामान्य मानवोचित समझ के तहत स्त्रियों के सम्मान किए जाने की संभावना को भी पूरी तरह नकार देती है।[9]

बुद्धकाल के बाद भी स्त्रियों को सन्देह की दृष्टि से देखा गया। मौर्यकाल में दुश्चरित्रा स्त्राी की शुद्धि प्रतिमास होने वाले के रजस्राव से हो जाती है। जिससे उसका पाप और मल दूर हो जाता है।

स्त्रिय: पवित्राभुतलं नैषा दुश्यन्ति कहिचित्।

मासि मासि रजो ह्रासां दुरितानयंपकषित। (असामंत्रा जातक खण्ड-1)

गौतम के अनुसार सतीत्व के नष्ट होने पर स्त्राी के प्रायश्चित करने के उपरांत ही उसकी शुद्धि हो सकती हैं। प्रायश्चित कर लेने पर पत्नी को सभी अधिकार पुन: प्राप्त हो जाते थे।[10]

बौद्ध त्रिपिटक में तत्कालीन समाज में प्रचलित विवाह का उल्लेख पाते हैं। दीघ निकाय में यह चर्चा की गई है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का विवाह करना अति आवश्यक माना जाता था।[11] बुद्ध काल में समाज में धरणा बनी हुई थी कि पति रूपी आभूषण एवं वस्त्रा के अभाव में श्रृंगार व्यर्थ होता है तथा उसके बिना स्त्राी निर्वस्त्रा प्रतीत होती है। पाली पिटक में शोडषी कन्या का विवाह सर्वोत्तम माना जाता था जो मौर्यकाल में भी पाते हैं। ध्म्मपद टीका में उल्लेख है कि 16 वर्ष की कन्यायें पुरुष समागम के लिए उत्कंठित हो जाती थीं। सोलह वर्ष की कन्यायें विवाह योग्य सौन्दर्यमयी एवं सर्वलक्षण सम्पन्न मानी जाती थीं। पाली साहित्य में बाल-विवाह जैसी प्रथा का अभाव पाते हैं और साथ ही जैन साहित्य में भी इसकी चर्चा नहीं की गई है। परंतु इस समय वृद्ध विवाह के उदाहरण मिलते हैं।[12] कम उम्र की युवतियों से विवाह के वर्णन हम जातकों में भी पाते है। जिससे यह पता चलता है कि स्त्राी-पुरुष के बीच यौनिकता पर उम्र की कोई बंदिशे नहीं थीं, कालांतार में भी वृद्ध विवाह होते रहे।[13]

बुद्धकालीन समाज में जातिगत भावनायें प्रबल होती गई एवं साधरणतया; यह पसन्द नहीं किया जाता था कि अन्तर्जातीय वैवाहिक संबंधें के कारण किसी कुल का रक्त दूषित हो। माता-पिता; वर-वधू की जाति, कुल एवं गौत्रा का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। कालांतर में यही व्यवस्था इन्हीं आधरों पर चलती रही। मौर्ययुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, श्रेष्ठि, भांडगिरिक आदि अपनी संतान का विवाह स्वजाति के अन्तर्गत ही करते थे। अत: इस युग के साथ-साथ शक से कुषाण काल तक सजातीय विवाह (म्दकवहंउल) को प्रमुखता दी गई।[14] अन्तर्जातीय विवाह में भी अनुलोम एंव प्रतिलोम विवाह का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता था। प्रतिलोम विवाह समाज में अमान्य

था। वैश्य एवं शूद्र कन्या स्वजातीय विवाह कर सकती थी। क्षत्रिय, वैश्य कन्या से तथा ब्राह्मण क्षत्रिय कन्या से विवाह कर सकते थे। परन्तु वैश्य एवं शूद्र कन्या से उनका विवाह निषेध था।[15]

प्राचीनकाल से ही वेश्यावृत्ति अपनानेवाली गणिकाओं का स्थान भारतीय समाज में अन्य सभी व्यवस्थाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ था। महाकाव्य-काल में वेश्याँए समाज और परिवार में प्रतिष्ठित स्थान ग्रहण कर चुकी थीं। बो(ों के समय नगर का उल्लास और विलास गणिकाओं के संयोग से ही मुखरित होता था। वैशाली में अम्बपाली नामक गणिका रमणीय थी, यही नहीं उस समय राजगृह में भी अत्यंत रूपवती और संगीत कला में दक्ष सालवती नामक गणिका थी जिसका गणिकाभिषेक हुआ था। जिससे यह प्रमाणित होता है कि स्त्रियों को अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने की विशेष सुविध प्राप्त थी।[16] गणिकापुत्रा को भी सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, राजगृह की राजनर्त्तकी सालवत्ती से उत्पन्न जीवक उस काल के विख्यात राजवैध थे।

कालांतर में गणिकाओं को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाने लगा। ब्राह्मणवादी व्यवस्था के अनुसार इन्हें क्रूर, छली, धूर्त्त, क्षुद्र, ध्नलोलुप और विश्वासघाती बताया गया। मौर्य काल के बाद भी इन गणिकाओं के अलावा नर्तकी, सामान्य, रुपजीवा, देवदासी जैसे वर्ग उत्पन्न हो गये थे, जो मन्दिरों की सेवा में लगाई जाती थीं।[17] इस समय की ब्राह्मणवादी धर्मिक कट्टरता ने महिलाओं को वस्तु के समाज उपयोग की वस्तु माना। स्पष्ट है कि देवदासी प्रथा का उद्भव बौद्धकाल के बाद तीसरी शताब्दी ई० पूर्व में हुआ। अर्थशास्त्रा में भी वेश्याओं का वर्णन है परन्तु देवदासी का नहीं।

जातक कथाएँ जो बौद्धकालीन समाज का प्रतिबिम्ब हैं उनसे स्त्रियों के प्रति बौद्ध धर्म की मान्यता को परखने में सहायता मिलती है। बुद्ध स्त्रियों को संघ में प्रवेश के पक्ष में नहीं थे, लेकिन उनके प्रिय शिश्य आनन्द कें प्रयत्न और व्यक्तिगत प्रयासों से बुद्ध इस पर पुनर्विचार करने को तैयार हुए, कि स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान मोक्ष प्राप्त की अधिकारिणी हैं।[18] संघ में प्रवेश की अनुमति के साथ ही स्त्रियों के लिए अलग नियम और कानून बने। जैसे स्त्रियों को खुले आसमान के नीचे सोना मना था, उन्हें लहसुन खाना वर्जित था, उनको अपने से छोटे उम्र के भी पुरुष भिक्षु को सदैव नतमस्तक होकर सम्मान देना होता था। इस प्रकार स्त्री की यौनिकता नियंत्रित और प्रतिबन्धित करने की कोशिश की गई।[19] समाज में विध्वाओं को शु(एवं पवित्रा जीवन जीने की प्रेरणा दी जाती थी जो बुद्ध काल के बाद भी उसी तरह पाई जाती है जैसी वैदिक युगीन समाज में व्याप्त थी। ग्रीक लेखक स्ट्रेवों का मानना है कि विध्वाओं को जीवन पर्यन्त यज्ञ और अन्य कर्त्तव्य जो धर्म से जुड़ें थे करने की आज्ञा नहीं थी। विध्वाओं को उत्तराधिकार का अधिकार था। नियोग प्रथा का प्रचलन उस समय था और इसे हम बाद में भी पाते हैं।[20]

इस प्रकार बुद्धकालीन समाज के प्रथम भाग में स्त्रियों की दशा को संतोषजनक रूप में पाते हैं। परन्तु धीरे-धीरे समाज के पितृसत्ता से ग्रसित विचार ने उनके ऊपर कई बंध्न लगाये, जैसा कि मनुस्मिृति में भी कहा गया है कि स्त्रियों को सदैव किसी पुरुष सदस्य के संरक्षण में रहने की आवश्यकता है। मनु ने पिता और भाई के बाद पति की भूमिका को सराहा। क्योंकि इस लोक में तथा दूसरे लोक में नारी की गति उसके पति से ही होती है।[21]

अत: बुद्धकाल में स्त्रियों को सम्मानजनक एवं उन्नत अवस्था में पाते हैं, परन्तु इसमें ह्रास होता गया। प्रौढ़ विवाह ने भी 300ई०पू० बाद लगभग समाप्त होकर बाल-विवाह को अपना स्थान दे दिया। इस प्रकार इनके आध्यात्मिक विकास एवं नैतिक समुन्नति की आड़ में इनको बाह्य सुविधओं से वंचित कर दिया गया। बौद्धकालीन नारी की आवाज किसी सन्दर्भ के बिना मन्द होती हुई प्रतीत होती है।[22] परन्तु जैसी कि गाथायें प्रमाणित करती हैं कि यदि उन्हें अवसर दिया गया होता तो वे पुरुषों के समान अपनी योग्यता अवश्य साबित कर सकती थी। इस काल की सामाजिक परिस्थितियों और उसमें स्त्रियों की स्थिति के संकेतक (प्दकपबंजवते) पर विचार करने की आवश्यकता है, जेसे पितृसत्ता के विभिन्न रूप लड़का का जन्म, बालिका बध, स्त्राी शिक्षा, जेन्डरीकरण, वैवाहिक व्यवस्था, यौनिकता पर नियंत्राण, पुर्नरुत्पादन, विध्वा सम्पत्ति पर अधिकार, दासी, गणिकार्य आदि। इसके अलावा उस काल में स्त्रियों के विरोध के स्वर यानि स्वतंत्रा रहने और बंध्नों को तोड़ने के प्रयास भी नारीवादी दृष्टिकोण से आवश्यक है।

संदर्भ सूची:

1. सीमोन द वोडवार 'स्त्राी उपेक्षिता' प्रस्तुती-प्रभा खेतान पृ० 46-47
2. मिश्र जयशंकर; प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, प्रकाशन 1986, पृ० 441-446

3. प्राचीन भारतीय बौद्धधर्म; के०टी०एस० सराओं, प्रकाशन 2004, पृ० 87
4. चल्लुवग ग 1.3
5. थेरीगाथा: भिक्कखीन विमंग ग्प्ट पृ० 321-323
6. अंगुत्तर विसु(मग्ग 7/124 में उ(त
7. से चे भायसि दुक्कखस्य सचे ते दुक्खमप्तिय
   उपेहि बुद्ध संरण ध्म्म संघगप तादि।
   थेरीगाथा- 288
8. तेवेज्जा सुत-1.47 एवं संवाद-1, पृ०-78
9. थेरीगाथा: भिक्कखीन विमंग ग्प्ट पृ० 321-322
10. के०टी०एस० सराओ ओरिजिन एण्ड नेयर ऑपफ एंशियंट बुद्धिज्म, दिल्ली 1999, पृ० 94-95
11. थेरीगाथाए ग्प्ए प्प
12. थेरीगाथा, ग्स्ए प्ट
13. के०टी०एस० सराओ, प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म प्रकाशन 2004, पृ० 90-96
14. मज्झिम निकाय 1, पृ० 298-305
15. रीता, ग्रौस, बुद्धिज्म आपफटर पेटरिआर्की ए पफेमिनिज्म हिस्ट्री एनलिसिस एण्ड टिकन्सट्रक्शन ऑपफ बुद्धिज्म न्यूयार्क 1992, पृ० 36
16. चुल्लवग्ग उपरोक्त, पृ० 257
17. संयुक्त निकाय प्प्प्, 2, पृ० 6
18. के०टी०एस० सराओ, प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म प्रकाशन 2004, पृ० 100-103
19. तिस्स बारथेलोम्युज दि पिफमेल मेडिकेट इन बुद्धिस्ट श्रीलंका 'जेंस इग्नेशियो केबजोन' सुद्ध बुद्धिज्म संक्सुएनिटी एण्ड जेन्डर न्यूयार्क 1992, पृ० 38-55
20. थेरीगाथा - 22
21. संयुक्त निकाय ग, स्प्ट 108
22. थेरीगााथा-12

भ्रूण हत्या-एक समाजिक अभिशाप

अरूण कुमार

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, सरिया महाविद्यालय, सरिया

भारतीय समाज में पुत्र प्राप्ति की लालसा लगभग प्रत्येक युग में रही है। यदि भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करे तो हम यह पाते है कि एकाध कालक्रम यथा वैदिक एवं उत्तर-वैदिक सभ्यता, को छोड़ अधिकांश कालों में वाहय आक्रमणों, आन्तरिक युद्धों एवं अस्तित्व रक्षा के सधर्षो ने पुरूष को मानव जीवन का नीति-नियंता बना दिया। फलत: भारतीय समाज में पुरूषवादि समाजिक संरचना का निर्माण हुआ और परिवार पितृ-सत्तात्मक बन गया। ऐसे सामाजिक और पारिवारिक परिवेश में स्त्री सोच का उन्मुक्त न होना स्वाभाविक है। भारतीय समाज का यह परम्पागत ढांचा जो सदियों से हमारी संस्कृति और सभ्यता में धुली-मिली है, पूत्र को परिवार का भाग्य-विधाता बना डाला है जबकि पुत्री को परिवार कि प्रतिष्ठा ह्यास लाने वाला कारक। इसलिए हमारें समाज के कुछ समुदायों में जहां कन्या को जन्म लेते ही मार देने की परम्परा पाई गई, वही बड़ी ही निर्ममता से कन्या भ्रूण की हत्या को अब आमरूप से अंजाम दिया जाने लगा है। विकसित तकनीक (अल्ट्रासाउण्ड) का बढ़ता दुरूपयोग बिमार मानसिकता और नपुंसक एवं संकीर्ण सोच ने वर्तमान समय में भ्रूण हत्या की प्रवृति में जिस तीव्रगति से बढ़ोत्तरी की है, उससे भ्रूण हत्या बड़ी ही गम्भीर समस्या का रूप धारण करती जा रही है।

वर्तमान परिदृश्य

कई समाज सुधारकों ने यह विचार व्यक्त किया है कि महिला प्रगति के अभाव में समाज की प्रगति असंभव है। कार्ल मार्क्स ने भी कहा था कि "किसी काल में समाज की प्रगति को जानना हो तो उस काल विशेष में महिलाओं की स्थिति पर नजर डालों। "इस दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय समाज की स्थिति काफी संकटपूर्ण और भयावह प्रतीत होती है क्योंकि महिला प्रगति, महिला शक्ति और नारी स्वातंत्रता सभी की अनदेखी करते हुए हमारे समाज में कन्या भ्रूण की हत्या बड़े पैमाने पर की जा रही है ऐसा अनुमान है कि प्रत्येक छठी कन्या को जन्म से पहले ही मार दिया जाता है। एक गैर-सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार देश में प्रतिवर्ष एक करोड़ कन्याएं जन्म लेती है, जिनमें से लगभग 20 लाख जन्म लेने से पहले ही मौत के नींद सुला दिया जाता है यानि 20 लाख कन्या भ्रूण प्रतिवर्ष नष्ट कर दिए जाते है। लेकिन इंड़ियन मेडिकल, एसोसियन का मानना है कि देश में प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख भ्रूण नष्ट किए जाते है।राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्षा डॉ. गिरिजा व्यास ने की भ्रूण हत्या की बढ़ती प्रवृति को समाज के लिए चिंताजनक बताया है। विचारनुसार 1981-91 तक के दस वर्षो में एक करोड़ 37 लाख लड़कियां कम पैदा हुई और उनका यह अनुमान है कि अगर स्थिति वही रही तो सन् 2011 तक दो करोड़ 30 लाख लड़कियां को जीवन संगिनी मिलना दुर्लभ हो जाएगा।

समस्या

आंकड़े इस बात के साक्षी है कि देश में भ्रूण हत्याएं व्यापक स्तर पर हो रही है जो निश्चय ही आने वाले समय में विकट समाजिक परिस्थिति उत्पन्न करेगी। कन्या भ्रूण हत्या से जहां समाज में स्त्री-पुरूष अनुपात चिंताजनक होती जा रही है वही बलात्कार समाजिक रूप से अस्वीकार्य यौन सम्बन्ध वैज्ञानिक उपकरण एवं साधनों का दुरूपयोग, चिकित्सको की अनैतिक संलिप्तता जैसी कुत्सित की प्रवृतिया भी निरंतर बढ़ती जा रही है जिसे वर्तमान आधुनिक एवं सभ्य समाज के लिए एक अभिशाप कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

तालिका-1: स्त्री-पुरूष अनुपात

जनगणना वर्ष	स्त्री-पुरूष अनुपात (प्रति हजार पुरूषों पर महिलाएं)
1901	972
1911	964
1921	955
1931	950
1941	945
1951	946
1961	941
1971	930
1981	934
1991	927
2001	933
2011	943

तालिका-1 से स्पष्ट है कि सन् 2011 में प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की स्थिति थोड़ी बेहत्तर हुई है। सन् 2011 में प्रति हजार पुरूषों पर महिलाओं की संख्या 943 है जबकि 2001 में प्रति हजार पुरूषों पर 933 महिलाएं ही थी। लेकिन स्त्री-पुरूष अनुपात की यदि दीर्धकालीन प्रवृति पर दृष्टि डाले तो पाते है कि इसमें निश्चत ही ह्मास हुआ है क्योंकि की बीसवी सदी के प्रारंभ (सन् 1901) में प्रति हजार पुरूषों पर जहां 972 महिलाएं थी वहीं एक सौ दस वर्षो के बाद (सन् 1911 में) मात्र 943 अर्थात 29 महिलाओं की कमी हो गई।

इतना ही नहीं बल्कि विभिन्न राज्यों, सामाजिक समुहो और विभिन्न धर्मो के संदर्भ में भी देखा जाए तो देश भर में महिला-पुरूष अनुपात में अत्याधिक विषमता है।

तालिका-2: राज्यवार स्त्री-पुरूष अनुपात

क्र.सं	राज्य/केन्द्रशासित क्षेत्र	लिंगानुपात (प्रति हजार पुरूष पर महिलाएं)
1	केरल	1084
2	पांडिचेरी	1038
3	छत्तीसगढ़	991

4	तमिलनाडु	995
5	मणिपुर	997
6	आंध्रप्रदेश	992
7	उड़ीसा	978
8	मेधालय	986
9	हिमाचल प्रदेश	974
10	कर्नाटक	968
11	उत्तरांचल	963
12	गोआ	968
13	लक्षद्वीप	946
14	त्रिपुरा	961
15	झारखण्ड़	947
16	मिजोरम	975
17	असम	954
18	पश्चिम बंगाल	947
19	महाराष्ट	925
20	राजस्थान	928
21	गुजरात	918
22	मध्यप्रदेश	930
23	बिहार	916
24	नागालैण्ड़	931
25	उत्तरप्रदेश	908
26	अरूणाचल प्रदेश	920
27	जम्मू-कश्मीर	883
28	पंजाब	893
29	सिक्किम	889
30	हरियाणा	877
31	अंडमान-निकोबार द्वीप समुह	878
32	दिल्ली	866
33	दादर-नगर हवेली	775
34	चंडीगढ़	818
35	दमन एवं द्वीप	618

तलिका-02 से स्पष्ट है कि जहां देश के दक्षिणी राज्यों यथा तमिलनाडू, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक में और पूर्वी राज्य उडीसा में सबसे बेहत्तर - पुरूष अनुपात यानि 950 से अधिक हैं। वहीं पंजाब हरियाणा जैसे राज्यों में सबसे कम यानि 900 से भी कम महिला-पुरूष अनुपात है। बिहार में 916 है जो कि राष्ट्रीय औसत 943 की तुलना में काफी कम है।

हालांकि अधिकांश धर्मों में लिंगानुपात में अब भी सुधार की दरकार है। हिन्दू धर्म में पुरूषों के मुकाबले महिलाओं का अनुपात सबसे कम है। हिन्दुओं में 1.18 करोड़ पुरूष और 1.03 करोड़ महिलाएं 46.48% है यानि 6.83% का अन्तर 2001 की जनगणना के अनुसार यह अंतर .7.65% था। मुस्लिम समुदाय में पुरूषों का अनुपात 52.77% और महिलाओं का

47.22% है। इस समुदाय में महिलाएं 5.55% कम है जो 2001 में 6.97% के अन्तर से ज्यादा है। सिखों में पुरूषों के मुकाबले महिलाएं 5% कम है। 2001में यह अन्तर 5.67% था। जैन समुदाय में महिलाएं 48% है 2001 में 47.67% थी। ईसाइयों में पुरूषों और महिलाओं की संख्या में सबसे कम अंतर है पुरूषों के अनुपात 51.96% व महिलाओं का 48.03% है यानि 3.93% का अन्तर। यह पहले 4.25% था बौद्ध धर्म में पुरूषों के मुकाबले महिलाएँ काफी कम है। पहले यह अंतर 12.15% था जो अब 9.11% है जो निश्चित ही चिन्ताजनक है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह इंगित करता है कि भ्रूण हत्या जैसी कुकृत्य ही समाज में स्त्री-पुरूष अनुपात के संतुलन को भंग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है जिसके कारण ही महिलाओं के साथ आये दिन बलात्का, यौन-शोषण, छेड़-छाड़ जैसे दुर्व्यवहारों में वेतहाशा वृद्धि हुई है और समस्याएं चिन्ताजनक हो गई है। इस धटनाओं से नि:सदेह जहां महिलाओं की आभा, उनकी सहनशीलता और स्वतंत्रता प्रभावित हुई है, वही इसके प्रतिकुल मनोवैज्ञानिक प्रभाव नें लोगों को भ्रूण हत्या के लिए प्रेरित किया है।

कारण

देश में भ्रूण हत्या की समस्या वास्तव में हमारी आर्थिक-सामाजिक और धार्मिक जटिलताओं का मिला-जुला प्रतिफल है। हिन्दु हो या मुस्लिम, सिख हो या ईसाई सभी सम्प्रदायों में विवाह को पवित्र संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया। इसलिए समाज के प्रत्येक परिवार द्वारा इस संस्कार का निर्वाह किया जाना अनिवार्य -सा हो गया है। विवाह जहां एक धार्मिक अनुष्ठान है वही दहेज भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रथा बन गई है। पुत्री के जन्म लेते ही परिवार वालों को दहेज की चिंता सताने लगती है क्योंकि बेटी की शादी करना एक अनिवार्य सामाजिक-धार्मिक संस्कार है। लेकिन बिना दहेज के विवाह का सम्पन्न होना भी काफी कठिन है। इस दहेज-प्रथा के कारण ही वधु पक्ष के परिवार की आर्थिक दशा काफी दयनीय हो जाती है। यही कारण है कि पुत्री के जन्म पर परिवार में मायुसी छा जाती है जैसे कोई विपत्ति आ गई हो। इस विपदा से मुक्ति के लिए ही गर्भस्थ शिशु के लिंग की पहचान अल्ट्रासाउण्ड़ द्वारा करवाने की प्रवृति एक आम बात हो गई है। एक दम्पति को जैसे ही, कन्या-भ्रूण होने का पता चलता है वह उसे प्राय: मौत के हवाले कर देते है।

यङपि हम इक्कीसवी सदी में प्रवेश कर चुके है और मंगल ग्रह पर दुनिया बसाने की बात कर रहे है, यथपि हमारे भारतीय समाज में धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वासों का वर्चस्व अब भी कायम है। यही कारण है कि प्रत्येक सम्पति और परिवार के प्रधान में यह लालसा होती है कि उसे एक पुत्र की प्राप्ति अवश्य हो जो उसके कुल का नाम रोशन कर सकें, उसका वंश चला सके और उसके व्यवसाय एवं सम्पति को उसके मृत्यु के बाद संभाल सके। दुसरी ओर लोगों में यह आम धारणा बनी हुई है कि मरणोपरान्त पुत्र, पौत्र या फिर प्रपौत के हाथों मुखाग्नि पाने से मृतक के आत्मा को मोक्ष मिलता है और उसे 'स्वर्ग' और 'वैकुण्ठ लोक' की प्राप्ति होती है। इन्ही अवधावरणाओं ने समाज में पुत्र की लालसा को प्रबल बनाया है। जबकि पुत्री के प्राप्ति नाकारात्मक और द्वेषपूर्ण सोच उत्पन्न की है जिसके परिणाम बढ़ती कन्या-भ्रूण की हत्या है।

हमारे समाज की एक अवधारणा यह भी है कि पुत्र ही मां-बाप के बुढापे का सहारा होता है क्योंकि पुत्री तो विवाहपरान्त पराए ङर चली जाती है जबकि पुत्र को एक बीमा के रूप में स्थान मिलता है। एक आर्थिक पहल भी है और वह यह कि पुत्र विवाह कर अपने साथ दहेज भी लाता है जिससे परिवार कि आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है। वास्तव में दहेज

एक ऐसी प्रथा है जिसके तहत परिवार में अधिक संस्था में पुत्र होने पर धन प्राप्ति होने की संभावना अधिक होती है जबकि एक से अधिक पुत्री होने पर धन की हानी की संभावना उतनी ही अधिक रहती है। ऐसी धारणाएं और मान्यताओं ने ही एक दम्पति को पुत्र के लिए ज्यादा लालायित किया जाता है और पुत्री के प्रति उनके उपेक्षापूर्ण व्यवहार को प्रोत्साहित किया है जो कन्या भ्रूण हत्या जैसे जधन्य कुकृत्य के रूप में उभर कर सामने आया है।

आज भी हमारे देश की जनसंख्या का दो-तिहाई भाग गांवों में निवास कर रही है जहां शिक्षा का समुचित व्यवस्था अब तक नहीं हो सकी है और साक्षरता का प्रतिशत, विशेषकर महिलाओं में काफी कम है। ऐसे ग्रामीण पिछड़े समाज को प्राय: यह देखा

गया है कि पुत्र प्राप्ति की लालसा में अधिकांश महिलाएं ही पुरूषों को प्रोत्साहित करती है अर्थात महिलाए भी पूत्र प्राप्ति की लालसा से मुक्त नहीं है। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते है कि एक नारी भी पुत्री के प्रति सकारात्मक सोच का सर्वथा अभाव है जो बेहिचक भ्रूण हत्या में सहायक सिद्ध हो रही है।

लेकिन शहरों में भी स्थिति कुछ सुखद नहीं है। शहरों के शिक्षित दम्पति भी लड़का-लडकी में व्याप्त भेद-भाव से अपने को अलग नहीं कर पाये है और फिर शहरों में चिकित्सा सुविधा और साधन सर्वत्र सहज सुलभ है, फलतः ऐसे दम्पति के लिए आज गर्भपात (भ्रूण हत्या) कराना एक साधारण सी बात हो गई है। इसके अतिरिक्त शहरों में भी ऐसे दम्पतियों की संस्था न्यून है जो अपने सुनियोजित योजना और अपनी प्राथमिकता के आधार पर मां-बाप बनने की तैयारी करते है। इसलिए प्रायः गर्भधारण की धटना को प्राकृतिक संयोग या फिर अपनी विवशता ही लोग मानते है और ऐसी स्थिति में गर्भपात यानी भ्रूण हत्या लोगों की विवशता बन गई है।

पहल

यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय समाज में पुत्र की प्राप्ति एक बड़ा साध्य रहा है जिसके चलते परिवार में पुत्री की उपेक्षा उसके प्रति रोषपूर्ण व्यवहार और यहां तक कि उसकी हत्या प्रारंभ से ही होती रही है। लेकिन अल्ट्रासाउण्ड़ तकनीक के प्रचलन ने पिछले दो-तीन दशक से कन्या-भ्रूण हत्या की गति को तीव्रता प्रदान की है। इस तकनीकी का मूल उद्देश्य गर्भ में पल रहे भ्रूण के विकास और उसकी स्थिति का पता लगना था। परन्तू हमारे देश में इसका व्यापक दुरूपयोग ही हुआ है।

भ्रूण हत्या की रोकथाम और उस पर नियंत्रण पाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय स्तर पर कुछ पहल की गई है। सरकार द्वारा सन् 1974 में पारित मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रिग्नेन्सी (एम. टी. पी.) एक्ट के अनुसार यह प्रावधान है कि यदि गर्भस्थ शिशु के बारे में यह पता चल जाए कि वह असामान्य है और परिवार नियोजन के साधनों के उपयोग के बावजूद गर्भ में ठहर गया हो तो ऐसी स्थिति में गर्भपात कराना गैर-कानूनी नहीं होगा बशर्ते कि यह सारी प्रकियाएं 20 सप्ताह के भीतर हो जाए।

सरकार ने सन् 1994 में एक और पहल करते हुए लिंग-परीक्षण हेतु अल्ट्रासाउण्ड के उपयोग पर पूरी तरह से रोक लगा दी है। बालिका भ्रूण हत्या निषेध कानून द्वारा भ्रूण हत्या को प्रतिबंधित करने की पहल हुई है। संक्षेप में सरकार द्वारा उठाये गए कुछ दण्डात्मक कदम निम्नांकित है-

- गर्भस्थ शिशु के लिंग की पहचान हेतु जांच कराना कानूनन अपराध है।
- इस कानून के प्रथम बार उल्लंधन करने वाले डॉक्टर अथवा व्यक्ति (पुरूष हो या महिला) को 50 हजार रूपये तक के आर्थिक दण्ड के साथ-साथ तीन वर्ष कारावास की सजा दी जा सकती है।
- इसी तरह द्वितीय बार उल्लंधन करने पर एक लाख रूपये का दण्ड और साथ ही पांच वर्ष तक कठोर कारावास की सजा दी जा सकती है।
- गर्भवती महिला को लिंग परीक्षण हेतू बाध्य करने वाले पुरूष अथवा महिला को भी दण्ड दिया जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त प्रावधनों की व्यवस्था कर सरकार ने भ्रूण हत्या को नियंत्रित करने की दिशा में पहल महत्वपूर्ण पहल की है।

मूल्यांकन

भ्रूण हत्या वास्तव में एक सामाजिक कुकृत्य है। इस कुकृत्य के पिछे समाज में व्याप्त पुत्र और पुत्रियों के बीच भेदभाव एक महत्वपूर्ण कारक है जिसका प्रभाव समाज के लगभग सभी वर्गो एवं सम्प्रदायों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि सरकार स्तर पर भ्रूण हत्या को नियंत्रण करने हेतु प्रयास तो किए गए है फिर भी गर्भपात कराने की प्रवृति में कोई विशेष कमी नहीं हुई है। एक अनुपात के अनुसार हमारे देश में केवल दस प्रतिशत ही मामले ऐसे है जिसमें गर्भस्थ शिशु के विकास और उसके समुचित देख-भाल के उद्देश्य से अल्ट्रासाउण्ड कराया जाता है, जबकि 90 प्रतिशत मामले में अल्ट्रासाउण्ड यह पता लगाने के लिए कराया जाता है कि गर्भ में नर भ्रूण है या मादा और मादा भ्रूण होने पर उसे तत्काल नष्ट कर देने का प्रयास आरंभ हो जाता है। फलतः एक अजन्में शिशु को जीवन के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। इस प्रकार एक पुत्र की लालसा में न जाने कितनी पुत्रियों की मौत इस धरती पर आने से पहले ही हो जाती है।

समाधान

हमारे देश में पृत-सत्तात्मक समाज की जड़े काफी मजबूत है। इसलिए सभी सामाजिक व्यवस्था पुरूषों के पक्ष में जबकि महिलाओं के प्रतिकूल है। शिक्षा का मामला हो या स्वास्थ का सम्पति का मामला हो या रोजगार के अवसरों या फिर सत्ता में भागीदारी का, सभी जगहों पर भेदभाव की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। अत: इस असमानता को दूर करना होगा तभी लड़का और लड़की के बीच व्याप्त भेदभाव को समाप्त किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि महिलाओं को समान अवसर उपलब्ध करायें जाए। शिक्षा, रोजगार, शासन-सत्ता सभी में महिलाओं को पुरूषों के समान ही अवसर मिलना चाहिए। आज महिलाएं किसी भी क्षेत्र में पुरूषों से कम नहीं है। चाहे अंतरिक्ष में जाने की बात हो या युद्ध के मैदान, हवाई जहाज उड़ाना हो या फिर हिमालय की चोटी पर चढना सभी जगहों पर महिलाओं ने अपनी क्षमता सिद्ध कर दिया है। केवल अवसर अदान करने की बात है जो अपने संर्कीण सोच दकियानूसी एवं रूढ़ीवादी विचारों के कारण समाज अब तक महिलाओं को उदार भाव से नहीं दे पाया है।

ग्रामीण क्षेत्र हो या शहरी जिस परिवार में महिलाएं शिक्षित है नौकरी में है और आर्थिक दृष्टि से स्वालम्बी है वह परिवार प्रगतिशील विचारोवाला बना है उसकी समाजिक सोच विस्तृत हुई है और आर्थिक दशा भी बेहत्तर हुई है। अत: ऐसे परिवारों में भ्रूण हत्या जैसी समस्या नगण्य है। यह तथ्य दर्शाता है कि समतामूलक और भेदभाव रहित समाज की स्थापना से भ्रूण हत्या की समस्या नियंत्रित ही नहीं होगी बल्कि स्वत: समाप्त हो जाएगी।

हमारे देश में पुरूष-महिला का साक्षरता का अनुपात 74:65 है जो बताता है कि शिक्षा के क्षेत्र में महिलाए काफी पिछड़ी हुई है अत: जरूरत इस बात की है कि महिलाओं को शिक्षित किया जाए ताकि वे सामर्थ्यवान और आर्थिक दृष्टि से स्वालम्बी बन सके आई. ए. एस., आई. पी. एस., बैक अधिकारी, डॉक्टर और शिक्षिका इत्यादि के रूप में कार्यरत प्राय: सभी लड़कियों का विवाह बिना किसी दहेज के ही इसी समाज में सम्पन्न हुआ है, और आज भी हो रही है। इसलिए दहेज जैसी कुप्रथा जो कन्या भ्रूण हत्या का एक प्रमुख कारण है।

अत: परम्परा और धार्मिक अंधविश्वासों का त्याग करना होगा और समाज को भी योग बदलना होगा। हमारे समाज को इस मान्यता का त्याग कर देना चाहिए कि पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र द्वारा ही मुखाग्नि दी जाए और ऐसा करने पर मृतक की आत्मा को मोक्ष मिलेगी। आज पुत्र के स्थान पर 'संतान' द्वारा मुखाग्नि को सही मानने की जरूरत है और समय की मांग भी है तभी हम कन्या भ्रूण हत्या के सिलसिले को समाप्त कर सकेगें।

यह सच है कि शिक्षा और आधुनिकता लिंग भेद मिटाने का प्रवल साधन है लेकिन हमारे समाज में यह असफल सबित हो रहा है क्योंकि शहरी क्षेत्र जो कि शिक्षा एवं आधुनिकता का केन्द्र है भ्रूण हत्या के मामले में ज्यादा सक्रिय है। समाज की मानसिकता एवं सोच पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि शिक्षा मानव को, केवल साक्षर ही बना पायी है और एक ऐसे भागेदारी एवं असंवेदनशील समाज का निर्माण किया है, जिसमे नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों का कोई स्थान नही है। अत: जरूरत इस बात की है कि शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाया जाए और मानवीय मूल्यों को स्थान दिया जाए, नैतिकता का पाठ पढाया जाए जिससे कि मानव में मानवीय चेतना जागृत हो सकें और एक संवेदनशील एवं सृजनात्मक समाज का निर्माण हो सके, तभी हम भ्रूण हत्या जैसे सामाजिक जङन्य कृत्य से मुक्ति पा सकेगें।

निष्कर्ष

इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भ्रूण हत्या प्रकृति के साथ एक खिलवाड़ है। प्रकृति का अपना नियम होता है जिसे नकारने का परिणाम प्राय: भयंकर होता है भ्रूण हत्या को समाज में कई विसंगतियां पैदा हुई है जिसकी अनदेखी कतई संभव नहीं है। इससे जहां समाज को विषम महिला-पुरूष अनुपात का दंश झेलना पड़ रहा है वहीं समाज में महिलओं से प्रति असंवेदनशीलता और हिंसक प्रवृतिया इत्यादि कदम-कदम पर दृष्टिगोचर हो रही है।

यद्यपि सरकार इस समस्या के प्रति सजग है और कानून बनाकर इसे नियंत्रित करने की पहल भी की है तथापि भ्रूण हत्या की गति अप्रभावित है।

अत: स्पष्ट है कि इस सामाजिक अभिशाप का अंत केवल कानून द्वारा संभव नहीं है बल्कि लोगों की विचारधारा में परिवर्तन लाकर ही इस समस्या से मुक्ति पाई जा सकती है।

संदर्भ सूची

- कन्या-भ्रूण हत्या-मानव पर एक कलंक- कल्पना वर्मा
- आलचना और आलोचना - मोहन लाल, सुरेश चन्द्र गुप्त
- भारतीय अर्थव्यवस्था- दत एवं सुन्दरम
- जनगणना भारत सरकार -2011
- महिला एवं बाल विकास, विभाग, पत्र सूचना कर्यालय, वर्चुअल लर्निग

कृषि फ़सलों में विभिन्न पोषक तत्वों एवं रासायनिक उर्वरकों के प्रभाव

सत्यदेव

सहायक आचार्य (भूगोल विभाग), बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, 301001

सारांश

मनुष्यो की मूलभूत आवश्यक आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान है। जिसके बिना मनुष्य का जीवन अधूरा एवं असंभव सा है। मनुष्य की इस सभी मूलभूत आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति केवल कृषि (Agriculture) के द्वारा ही संभव है। अतः कृषि ही मनुष्य को खाने के लिए रोटी, शरीर को ढकने के लिए कपड़ा व रहने के लिए मकान आदि का व्यवस्था करती है। कृषि के अंतर्गत पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों का पालन-पोषण होता है। इसके माध्यम से प्राकृतिक में जैविक संतुलन बनाए रखने में सहायता मिलती है। कृषि से मानव संस्कृत हेतु कपड़ा, मकान, औषधि तथा मनोरंजन के साधन भी विकसित होते हैं इस प्रकार कृषि मानव जीवन का मुख्य आधार है। पहले कृषि का अर्थ सिर्फ फसल उत्पादन से ही लगाया जाता था। लेकिन बदलते दौर ने कृषि को भी बदल लिया है तथा समय-समय पर इसमे बहुत से व्यवसाय जुड़ते चले गए तथा इसके भाग बनते चले गए। फ़सलों की पर्याप्त वृद्धि और गुणवत्ता के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। प्रकृति में स्वाभाविक रूप से 16 तत्व पाए जाते हैं, जो पौधे के चयापचय के कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उन पोषक तत्वों की कमी के कारण, पौधे अपने जीवन चक्र को पूरा करने में असमर्थ हैं और इसलिए, उन्हें पौधे के विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्व माना जाता है। अधिक पैदावार के लालच में किसानों ने भी इसे स्वेच्छा से अपनाया। कल तक जो किसान कृषि में प्राकृतिक उर्वरकों का उपयोग करते थे, उन्होंने रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग करना शुरू कर दिया। जाहिर है कि इससे ख़षि उपज में भी वृद्धि हुई, लेकिन किसानों ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि ये रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक उनकी भूमि की उर्वरता को अवशोषित करेंगे।इस शोध पत्र में कृषि फ़सलों के विकास में पोषक तत्वों की भूमिका एवं रासायनिक उर्वरकों के प्रभाव का भौगोलिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य बिंदुः फ़सलों में आवश्यक पोषक तत्व, फ़सलों के पोषण में विभिन्न तत्वों की भूमिका, पोषण की कमी के रोग, सकारात्मक प्रभाव और नकारात्मक प्रभाव, कृषि फ़सलों पर कीटनाशकों एवं उर्वरकों के प्रभाव, रासायनिक उर्वरकों के प्रभाव एवं निष्कर्ष।

प्रस्तावना

कृषि एक बहुत ही व्यापक शब्द है जिसमें फसल उत्पादन, पशुपालन, मछली पालन व वानिकी आदि सभी पहलुओं को सम्मिलित किया जाता है। कृषि को एक कला, एक विज्ञान एवं एक वाणिज्य भी कहा जाता हैं क्योंकि कृषि इन सभी का एक योग हैं। कृषि में पोषक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है फ़सलों के विकास एवं उत्पादन भूमि की उर्वरता क्षमता पर ही निर्भर करता है। मानव फ़सल उत्पादन के प्राप्त अवशेष जैसे चारा पराली आदि को पशुओं को खिलाने में उपयोग करता है जबकि पंजाब में किसान पराली एवं कृषि जन्य अवशेषों को खेत में जला देते हैं जिससे मृदा को पोषक तत्व पुनः प्राप्त हो जाते हैं अतः इस शोध पत्र में हम कृषि फ़सलों में पोषक तत्वों एवं रासायनिक उर्वरकों की भूमिका का अध्ययन कर रहे हैं।

पोषक तत्वों से आशय

पोषक शब्द की उत्पत्ति न्यूट्रिशन शब्द से हुई है। पोषक तत्व एक ऐसा पदार्थ है जो प्रत्येक जीव अपने पर्यावरण से प्राप्त करता है और इसका उपयोग ऊर्जा या भौतिक घटकों के स्रोतों के जैव-संश्लेषण के लिए करता है। पौधे जमीन से पानी और पोषक तत्व, हवा से कार्बन डाइऑक्साइड और सूरज से प्रकाश ऊर्जा लेकर अपने विभिन्न हिस्से बनाते हैं। पेड पौधे भी मनुष्यों की तरह बढ़ने के लिए पोषक तत्वों का उपयोग करते हैं, पौधों को अपना विकास मिलता है। पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। पौधों को 17 तत्वों की आवश्यकता होती है, जिसके बिना पौधे की वृद्धि, विकास और प्रजनन संभव नहीं है। इनमें से मुख्य तत्व कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश हैं। इनमें से, पहले तीन तत्व वायुमंडल से ग्रहण करते हैं। पोषक तत्वों को पौधों की जरूरतों के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है।

1. मुख्य पोषक तत्व - नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश।

2. मध्यम पोषक तत्व - कैल्शियम, मैग्नीशियम और सल्फर।
3. सूक्ष्म पोषक तत्व - लोहा, जस्ता, तांबा, मैंगनीज, मालिब्डेनम, बोरॉन और क्लोरीन।

प्रमुख उद्देश्य

1. फ़सलों के पोषण में पोषक तत्वों के महत्व का अध्ययन किया गया है।
2. फ़सलों में पोषक तत्वों की कमी से उत्पन्न रोगों को बताया गया है।
3. कृषि में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

शोध परिकल्पना

1. फ़सलों के विकास में पोषक तत्व में उपयोगी रहे हैं।
2. फ़सलों के विकास हेतु पोषक तत्वों का उपयोग किया जा रहा हैं।
3. कृषि में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के उपयोग के दुष्प्रभाव सामने आ रहे हैं।

अध्ययन विधि

अध्ययन पद्धति के रूप में प्राथमिक सूचनाओं का संग्रह वन एवं पर्यावरण मंत्रालय और कृषि अनुसंधान केंद्रों के माध्यम में किया गया है। द्वितीयक सूचनाएं जैसे पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्र, सरकारी अभिलेख, मीडिया और टेलीविजन समाचार चैनल साक्षात्कार आदि का उपयोग किया गया है। यह अध्ययन वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति पर आधारित है।

फ़सलों में आवश्यक पोषक तत्व

फ़सलों की सामान्य वृद्धि और विकास के लिए कुल 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इन पोषक तत्वों में से किसी एक की कमी से पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इससे पर्याप्त फसल नहीं मिलती है।

1. फ़सलों हवा और पानी से कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन प्राप्त करते हैं।
2. फ़सलों को मिट्टी से नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम मिलता है। उनके पौधों को उनकी बहुत जरूरत है। इन्हें प्रमुख पोषक तत्व कहा जाता है।
3. पौधे कैल्शियम, मैग्नीशियम और सल्फर का सेवन कम मात्रा में करते हैं। इन्हें लौकी या द्वितीयक पोषक तत्व कहा जाता है।
4. पौधों को महत्वपूर्ण मात्रा में लोहा, जस्ता, मैंगनीज, तांबा, बोरान, मोलिब्डेनम और क्लोरीन की आवश्यकता होती है। इन्हें माइक्रोन्यूट्रिएंट्स कहा जाता है।

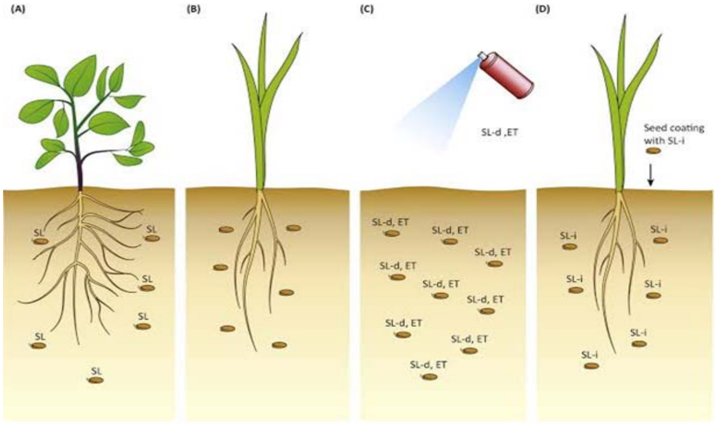

फ़सलों में पोषक तत्व

पादप पोषक तत्व रासायनिक तत्व हैं जो पादप स्वास्थ्य के पोषण के लिए आवश्यक हैं। पौधों के पोषक तत्व तीन श्रेणियों में आते हैं, जो सभी पौधों की जरूरतों पर आधारित होते हैं, न कि व्यक्तिगत तत्वों के महत्व पर। प्रत्येक पौधा पोषक तत्व पौधे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भोजन की उपलब्धता के आधार पर जीवों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है।

1. ऑटोट्रॉफ़िक पोषण: इस प्रकार के पोषण के तहत, जीव अपना भोजन बनाता है। ऑटोट्रॉफ़िक पोषण सभी हरे पौधों, नीले हरे शैवाल, कुछ बैक्टीरिया और अधिकांश एककोशिकीय जीवों में पाया जाता है। इस तरह से पोषण करने वाले जीवों को ऑटोट्रॉफ़ कहा जाता है।

2. हेटरोट्रॉफ़िक पोषण: इस प्रकार के पोषण में, जीव अपने भोजन को संश्लेषित (निर्माण) करने में सक्षम नहीं होते हैं, लेकिन वे इसे अन्य जीवों से प्राप्त करते हैं। इस प्रकार का पोषण सभी जानवरों, कवक और कुछ एककोशिकीय जीवों में पाया जाता है। इस तरह से पोषण करने वाले जीवों को हेटरोट्रोफ कहा जाता है।

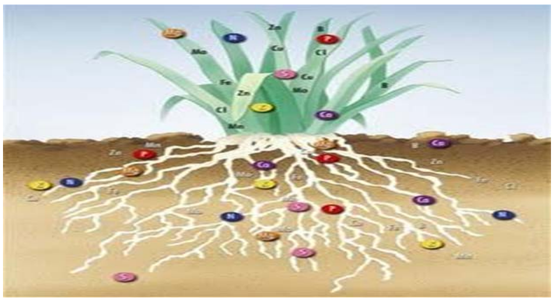

फ़सलों के पोषण में विभिन्न तत्वों की भूमिका

फ़सलों के विकास के लिए 17 आवश्यक तत्वों की आवश्यकता होती है, जिनमें से 9 तत्व दीर्घकालिक हैं और शेष 8 छोटे हैं। इनमें से किसी के अभाव में पौधे की पूर्ण वृद्धि नहीं हो पाती है।

1. मुख्य पोषक तत्व: एक दीर्घकालिक पोषक तत्व के तहत, पोषक तत्व आते हैं, जिन्हें पौधों को बड़ी मात्रा में आवश्यकता होती है। इसमें 10 तत्व होते हैं। ये कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम और सल्फर हैं।

2. सूक्ष्म पोषक तत्व: इसके अंतर्गत ऐसे पोषक तत्व आते हैं जिनकी पौधों को कम मात्रा में आवश्यकता होती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की संख्या 8 है। ये लोहा, जस्ता, तांबा, निकल, मैंगनीज, बोरान, मालिब्डेनम और क्लोरीन हैं।

3. अन्य महत्वपूर्ण तत्व: अधिकांश मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम की कमी होती है। इसलिए, भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिए, इन तत्वों को खाद के रूप में जोड़ा जाता है। इस कारण से, इन तीन तत्वों (एन, पी और के) को क्रांतिकारी तत्व कहा जाता है। पौधों के पोषण में निम्नलिखित तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका है -

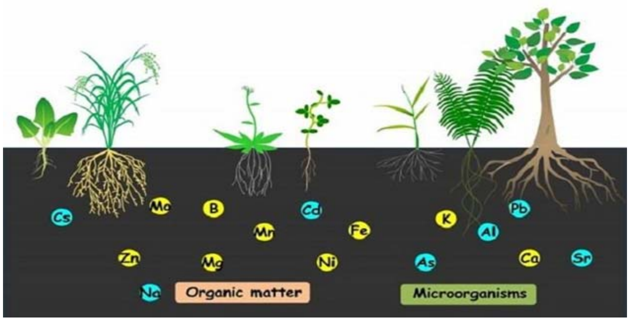

1. कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन: पौधे अपनी आवश्यकता के अनुसार वातावरण और पानी से उन्हें लेते हैं। कार्बन को वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में लिया जाता है और इसकी मदद से पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया करके अपना भोजन बनाते हैं। ऑक्सीजन का उपयोग जीवित कोशिकाओं के श्वसन में किया जाता है। तीनों तत्व पादप कोशिका और जीवों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. नाइट्रोजन: पौधे इसे वायुमंडल से प्राप्त करते हैं। ये तत्व मुख्य रूप से पौधों में प्रोटीन और न्यूक्लिक एसिड के गठन के लिए जिम्मेदार हैं। इसकी कमी के कारण, पौधों की वृद्धि रुक जाती है, जबकि अधिकता में, पौधों में फूल देर से बढ़ते हैं।

3. सल्फर: यह तत्व पादप प्रोटीन और जीवों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस तत्व की कमी के कारण, पेड़-पौधों की पत्तियां पीली हो जाती हैं और पौधे में फल नहीं लगते। यह तत्व पौधों की वानस्पतिक वृद्धि को प्रोत्साहित करता है। यह जड़ बनाता है और बीज निर्माण को उत्तेजित करता है। यह दालों की जड़ों में गांठें बनाने में मदद करता है।

4. फास्फोरसः यह तत्व न्यूक्लिक एसिड और फॉस्फोलिपिड पदार्थों में पाया जाता है। कोशिकाओं के उत्पादन और फसलों की परिपक्वता में इस तत्व की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

पोटैशियमः पोटेशियम तत्व पौधे की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी कमी से पत्तियों पर धुंधलापन आ जाता है, जो प्रोटीन संश्लेषण की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करता है।

5. कैल्शियमः यह प्रोटीन के साथ डीएनए और आरएनए के संयोजन में मदद करता है, गुणसूत्रों (संपत्ति सूत्र) का निर्माण, वसा का संश्लेषण, कार्बोहाइड्रेट और अमीनो एसिड का परिवहन। इसकी कमी के कारण, कुछ पौधे बीज पैदा नहीं करते हैं और हरी क्लोराइड ठीक से काम नहीं करते हैं।

6. मैग्नीशियमः प्रकाश संश्लेषण में इस तत्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह क्लोरोफिल के साथ जोड़ती है और प्रोटीन संश्लेषण में महत्वपूर्ण योगदान देती है। पौधों में मैग्निशियम की कमी के कारण, वे पीले हो जाते हैं, जिसे क्लोरोसिस कहा जाता है।

7. लोहाः यह तत्व पौधों में श्वसन क्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह क्रेब के चक्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह पौधे के जीवों और क्रोमैटिक में पाया जाता है। पौधों में लोहे की कमी से क्लोरोसिस या हरापन होता है।

8. मैंगनीजः पौधों में, क्लोरोफिल के निर्माण में इस तत्व की आवश्यकता होती है। यह नाइट्रेट से नाइट्रेट बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी कमी के कारण पौधों की पत्तियां भूरी हो जाती हैं।

9. तांबाः यहश्वसन में इस्तेमाल होने वाले एंजाइम में मौजूद है। इसकी कमी से पौधों में क्लोरोसिस होता है।

10. जस्ताः इस तत्व की कमी के कारण, पौधे की लंबाई में वृद्धि रुक जाती है और पौधे बौने हो जाते हैं। इसके साथ ही, फल नहीं बढ़ पाता है और पौधों की पत्तियां छोटी रह जाती हैं। यह इंडोल एसिटिक एसिड या प्।। के संश्लेषण में उपयोगी है।

11. बोरानः यह मुख्य रूप से शर्करा के अनुवाद में सहायक है। इसकी कमी के कारण पौधे का शूट टिप नष्ट हो जाता है।

12. मोलिब्डेनमः यह नाइट्रोजन के चयापचय में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। इसकी कमी से फूलगोभी और फूलगोभी में व्हिप्टैल रोग हो जाता है।

पोषण की कमी से होने वाली बीमारियाँ

1. धान खैरा रोग जिंक की कमी से होता है।
2. मटर मार्श रोग मैंगनीज की कमी के कारण होता है।
3. फूलगोभी व्हिपेल रोग मोलिब्डेनम की कमी के कारण होता है।
4. क्लोरोसिस बीमारी कैल्शियम, मैग्नीशियम और मोलिब्डेनम की कमी के कारण होती है।
5. डाईबैक बीमारी कॉपर की कमी से होती है।
6. आम की छोटी पत्ती की बीमारी जिंक की कमी से होती है।
7. नींबू की छोटी पत्ती की बीमारी कॉपर की कमी से होती है।

सकारात्मक प्रभाव :

1. नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति सुनिश्चित करती है कि मिट्टी को लौह, मैंगनीज और जस्ता जैसे अच्छे पोटेशियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम और सूक्ष्म पोषक तत्व मिलेंगे।
2. कॉपर और बोरोन - पौधों से नाइट्रोजन की वसूली में सुधार करता है।
3. मोलिब्डेनम - नाइट्रोजन की क्षमता को बढ़ाता है और फास्फोरस को बढ़ाता है।
4. कैल्शियम और जस्ता - फास्फोरस और पोटेशियम की वसूली में सुधार करता है।
5. सल्फर - मैंगनीज और जस्ता की वसूली में सुधार करता है।
6. मैंगनीज - तांबे की उपज बढ़ाता है।

नकारात्मक प्रभाव :

1. अत्यधिक नाइट्रोजन सामग्री फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, जस्ता और तांबे को कम करती है।
2. फास्फोरस की अत्यधिक मात्रा से लोहा, मैंगनीज, जस्ता और तांबे की उपज कम हो जाती है।
3. पोटेशियम की अधिक मात्रा मैग्नीशियम और कैल्शियम के उपयोग को कम करती है।
4. अत्यधिक मात्रा में कैल्शियम जिंक की कमी को पूरा करता है।
   लोहे की अधिकता जस्ता की प्राप्ति को कम करती है।
5. अत्यधिक मात्रा में जिंक मैंगनीज की उपज को कम कर देता है।

कृषि फ़सलों पर कीटनाशकों एवं उर्वरकों के प्रभाव

हरित क्रांति के बाद ही देश सही मायने में आत्मनिर्भर हुआ। देश में कृषि की पैदावार बढ़ी है, लेकिन हरित क्रांति का एक काला पहलू है, जो अब धीरे-धीरे हमारे सामने आ रहा है। जैसा कि हम जानते हैं, हरित क्रांति के दौरान, हमारे नीति निर्माताओं

ने देश में एक कृषि प्रणाली को बढ़ावा दिया, जिसमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अलावा अधिक पानी की खपत होती है। अधिक पैदावार के लालच में किसानों ने भी इसे स्वेच्छा से अपनाया। कल तक जो किसान ख़ृषि में प्राकृतिक उर्वरकों का उपयोग करते थे, उन्होंने रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग करना शुरू कर दिया। जाहिर है कि इससे कृषि उपज में भी वृद्धि हुई, लेकिन किसानों ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि ये रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक उनकी भूमि की उर्वरता को अवशोषित करेंगे।

जब रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग के कारण भूमि की उर्वरता कम हो गई, तो किसानों और कृषि श्रमिकों के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। फसलों में कीटनाशकों और उनके खतरनाक प्रभावों के संपर्क में आने के कारण किसानों में कैंसर सहित कई गंभीर बीमारियाँ पैदा हो गईं। चूंकि रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का पंजाब में सबसे अधिक प्रभाव था, इसलिए इसका भयानक नुकसान हुआ। पिछले कुछ वर्षों में, पंजाब के बठिंडा, फरीदकोट, मोगा, मुक्तसर, फिरोज़पुर, संगरूर और मनसा जिलों में बड़ी संख्या में किसान कैंसर से पीड़ित हैं। खुद सरकार द्वारा किए गए अध्ययन, जिनमें विज्ञान और पर्यावरण केंद्र, चंडीगढ़ स्थित पीजीआई और पंजाब विश्वविद्यालय शामिल हैं, ने इस तथ्य का खुलासा किया है कि कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग के कारण इन जिलों में कैंसर का प्रसार खतरनाक स्तर तक पहुंच गया है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने राज्य सरकार को इस पर स्वत: संज्ञान लेकर आवश्यक कार्रवाई करने के निर्देश दिए। मानवाधिकार आयोग के निर्देश का परिणाम था कि पंजाब सरकार ने अब कीटनाशकों के उपयोग, उत्पादन और आयात पर प्रतिबंध लगा दिया है जो कि प्रांत के अंदर स्वास्थ्य के लिए खतरनाक साबित हो रहे हैं। यह प्रतिबंध भी आवश्यक था। अगर इन कीटनाशकों पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाता तो प्रभावित किसानों का दायरा बढ़ जाता। यह बिना कारण नहीं है कि पंजाब में 2000 और 2010 के बीच आत्महत्या करने वाले पांच हजार किसानों और खेतिहर मजदूरों में से 3 हजार लोग केवल दो जिलों बठिंडा और संगरूर के हैं। असाध्य रोगों से जूझ रहे किसान अपने परिवारों को आर्थिक संकट से बचाने के लिए मौत को गले लगा रहे हैं।

खेती में कीटनाशकों के अनियंत्रित उपयोग पर प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता लंबे समय से महसूस की जा रही है। इसे देखते हुए, सरकार ने कुछ कीटनाशकों के खतरनाक प्रभावों के कारण उन पर प्रतिबंध भी लगाया, लेकिन फिर भी उन्होंने उनका उपयोग करना बंद नहीं किया। फसल को बीमारी से बचाने के लिए बहुत कम कीटनाशक का उपयोग इसके वास्तविक उद्देश्य के लिए किया जाता है। इसका एक बड़ा हिस्सा हमारे विभिन्न जल स्रोतों तक पहुँचता है और भूजल को प्रदूषित करता है। हालत यह है कि इन रसायनों के जमीन में रिसने के कारण कई जगहों का भूजल बहुत जहरीला हो गया है। इतना ही नहीं, ये रसायन बाद में नदियों, तालाबों आदि में प्रवाहित होते हैं, जिसका असर जल जीवों और पशु-पक्षियों पर भी पड़ रहा है। उनमें विभिन्न रोग उत्पन्न हो रहे हैं। कीटनाशकों के उपयोग से फसलों के खाने से न केवल मनुष्यों के स्वास्थ्य पर असर पड़ा, बल्कि पशु, पक्षी, पतंगे और पर्यावरण भी प्रभावित हुए।

इस सब के बावजूद, सरकार कीटनाशकों के उपयोग को रोकने या सीमित करने के लिए विशिष्ट कदम उठाने की थोड़ी भी इच्छा नहीं दिखाती है। कुछ ऐसा करें जो कीटनाशकों के उपयोग को हतोत्साहित करता है। जब भी रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग से उत्पन्न स्वास्थ्य खतरों को उठाया जाता है, तो यह तर्क दिया जाता है कि इस पर प्रतिबंध लगाने से उपज कम हो जाएगी। देश की खाद्य सुरक्षा प्रभावित होगी, लेकिन किस स्थिति में अधिक पैदावार मिल रही है, इसे जानबूझकर नजरअंदाज किया जाता है। खाद्य सुरक्षा का मतलब किसी भी तरह से पैदावार बढ़ाना नहीं है। भोजन ऐसा होना चाहिए जो स्वास्थ्य के लिए भी उपयुक्त हो। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग से न केवल मनुष्यों और जानवरों के स्वास्थ्य पर असर पड़ रहा है, बल्कि यह भूमि की उर्वरता को भी कम कर रहा है। अब समय आ गया है कि सरकार अपनी कृषि नीतियों की समीक्षा करे। आधुनिक कृषि प्रणाली के फायदे और नुकसान की सटीक समीक्षा करें।

सरकार द्वारा कीटनाशकों के उपयोग को नियंत्रित करने और ऋषि प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए एक पहल होनी चाहिए जो स्वास्थ्य और पर्यावरण के अनुकूल हैं, तभी खेत और किसान सुरक्षित रहेंगे।

रासायनिक उर्वरकों का उपयोग

रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध उपयोग भूमि की उर्वरता को खत्म कर रहा है। साथ ही यह पर्यावरण असंतुलन को बढ़ाने का कारण भी बन रहा है। 60 के दशक में हरित क्रांति की शुरुआत के साथ देश में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और संकर बीजों का उपयोग बढ़ा। केंद्रीय रासायनिक और उर्वरक मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार, 1950-51 में भारतीय किसानों ने केवल सात लाख टन रासायनिक उर्वरक का उपयोग किया था। जो अब बढ़कर 310 लाख टन हो गया है। इसमें से 7 मिलियन टन विदेशों से आयात किया जाता है। रासायनिक उर्वरक का उपयोग निश्चित रूप से बढ़ रहा है, लेकिन इसने खेत, खेती और पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

प्रतिकूल प्रभाव

1. जल, मिट्टी और वायु प्रदूषण के प्रमुख कारक
2. मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है।
3. मिट्टी क्षारीय होने के कारण पैदावार कम हो रही है।
4. उर्वरक का अधिक से अधिक उपयोग जैसे यूरिया और डीएपी मिट्टी से प्राख़तिक तत्व खो रहा है।
5. मृदा कणों में जल संग्रह की क्षमता कम हो रही है और अधिक सिंचाई की आवश्यकता है।
6. बीजों के सीधे संपर्क में आने से यूरिया का अंकुरण दर कम हो जाता है।
7. नाइट्रोजन स्थिरीकरण का बढ़ता प्रभाव।
8. ओजोन परत भी क्षतिग्रस्त है।
9. खासकर बच्चों में बेबी ब्लू सिंड्रोम जैसी बीमारी बढ़ रही है।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पोषक तत्वों का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाना चाहिए। इन पोषक तत्वों के पौधों पर सहक्रियात्मक (विरोधी) और विरोधी (नकारात्मक) प्रभाव होते हैं। फसल की वृद्धि पर अच्छा या बुरा प्रभाव ज्यादातर मिट्टी के प्रकार, पीएच, ईसी, कार्बनिक कार्बन जैसे मिट्टी की गुणवत्ता मानकों पर निर्भर करता है। साथ ही, वे मिट्टी के अन्य मूलभूत गुणों जैसे कि इसके भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों पर भी निर्भर करते हैं। पोषक तत्वों के स्रोत जैसे रासायनिक / जैविक उर्वरक, उनकी मात्रा-गुणवत्ता और उनका उपयोग कैसे करें, मौसम, तापमान आदि भी महत्वपूर्ण हैं। कृषि वैज्ञानिकों का कहना है कि अगर रासायनिक उर्वरकों की कमी नहीं है, तो इसका मानव जीवन पर बहुत अधिक दुष्प्रभाव होगा। रासायनिक उर्वरकों को कम करने के लिए, उन्होंने हर फसल से पहले मृदा परीक्षण को महत्वपूर्ण बताया। साथ ही नीम कोटेड यूरिया का उपयोग करने की सलाह दी। यह यूरिया पौधों को प्राख़तिक कीटनाशक प्रदान करता है और इसमें मौजूद नाइट्रोजन के अपघटन को भी कम करता है। साथ ही उन्होंने जैविक खाद के बदले में खाद खाद, वर्मी कम्पोस्ट, पोल्ट्री खाद के अधिक से अधिक उपयोग पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- डॉ. ए .के. सिंह, उप महानिदेशक, बागवानी प्रभाग, ख्रषि अनुसंधान भवन - प्प्, नई दिल्ली।
- दत्त, ज्ञानेंद्र और सूर्यमणि मिश्रा (1986): लैंड यूज मैपिंग, नेशनल एटलस एंड थीमैटिक मैनिंग ऑर्गनाइजेशन, कलकत्ता।
- कमलेश, एस. आर. (1996): कृषि भूगोल, बिलासपुर संभाग में ख्रषि विकास का स्तर, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर।
- कोली हरिनारायण (1996): पर्यावरण और मानव संसाधन, सूचक प्रकाशक, जयपुर (राज)।
- कुमार, प्रमिला और श्री कमल शर्मा (1985): ख्रषि भूगोल, एम.पी. हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
- कुंडू, अनिल कुमार और सूर्यमणि मिश्रा (1988): लैंड यूज असेसमेंट एंड मैपिंग, नेशनल एटलस एंड थमैटिक मैनिंग ऑर्गनाइजेशन, कलकत्ता।
- पांडे जेएन और एसआर कमलेश (1999): कृषि भूगोल, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर (उ.प्र.)।
- पांडे, जगत नारायण (1969): पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तर भारत भूगोल जर्नल, गोरखपुर का संयोजन क्षेत्र।
- शर्मा बीएल (1979): क्रॉपिंग लैंड यूज़ इंटेंसिटी एंड प्रोडक्टिविटी इन राजस्थान, भूदर्शन।
- शर्मा सुरेश चंद्र (1971): ज़िला इटावा, उत्तर भारत भूगोल जर्नल में भूमि उपयोग।

रतनपुर के प्राचीन धरोहर एवं धार्मिक अंचल का अध्ययन

डॉ० रामरतन साहू

असिस्टेण्ट प्रोफेसर एवं विभागाधयक्ष, इतिहास विभाग, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर, (छ.ग.)

अंजली

एम.फिल, शोधार्थी (इतिहास), डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर, (छ.ग.)

सारांश

छत्तीसगढ के रतनपुर को प्राचीन कलचुरी शासकों की राजधानी के रूप में देखा जाता है, वर्तमान में रतनपुर आज कस्बे के रूप में अवश्य हैं, परंतु पर्यटन एवं धार्मिक आस्था लोगों को यहॉ आने के लिए आकर्शित करता है। यहॉ प्राचीन किला, मंदिर विभिन्न धर्मो की प्रतिमायें एवं सरोवर वर्तमान में भी अपनी प्राचीन वैभवशाली कला को संजोये हुये है।

प्रस्तावना

छत्तीसगढ का प्राचीन नाम दक्षिण कोसल था। वाल्मीकी कशत रामायण में उत्तर कोसल और दक्षिण कोसल का उल्लेख हैं, सम्भवत. उत्तर कोसल सरयू तट पर स्थित था, जबकि दक्षिण कोसल विंध्याचल पर्वत माला के दक्षिण में विस्तीर्ण था। राजा दशरथ की भार्या कौशिल्या इसी दक्षिण कोशल की राजकुमारी थी, प्राप्त अभिलेखों और प्रशस्यिों में भी इस भू-भाग के लिए दक्षिण कोसल नाम प्रयुक्त हुआ है। रतनपुर शाखा के कल्चुरी शासक जाज्जल देव के रतनपुर अभिलेख में दक्षिण कोशल नाम अंकित है। वर्तमान रतनपुर की प्रसिद्दि चारों युगों में रही हैं। सतयुग में इसका नाम "मणिपुर", त्रेतायुग में "माणिकपुर", द्वापरयुग में "हीरापुर" और कलयुग में यह "रतनपुर" के नाम से प्रसिद्व रहा है। इसी रतनपुर में कलचुरी राजवंश की लहुरी शाखा ने 10 वीं, शताब्दी में राज्य स्थापित किया जो 18 वीं शताब्दी के मध्य तक कायम रहा है।

विषयवस्तु

छत्तीसगढ के बिलासपुर से मात्र 30 किलोमीटर की दूरी पर प्राचीन कालीन ऐतिहासिक गज किला का अवषेश स्थित हैं। जिसे राजा पशथ्वी देव द्वारा निर्मित करवाया गया था, यह किला चारों ओर से खाईयों से घिरा है। किले में चार द्वार बने हुए है, द्वार सिंह, गणेश द्वार, भैरव द्वार, तथा सेमर द्वार। सिंह द्वार के बायी ओर गंधर्व, किन्नर, अप्सरा एवं देवी देवताओं के साथ ही दशानन रावण अपना सिर काटकर यज्ञ करते हुए दर्षनीय है। इसके आगे एक विषाल प्रस्तर प्रतिमा हैं, जिसके सिर एवं धड का अंश शेश है। यहां वीर गोपाल राय के नाम से जाना जाता है। यह कहा जाता हैं कि गोपाल वीर की वीरता से प्रभावित होकर मुगल बादशाह

जहाँगीर ने राजा कल्याण साय को अनेक उपाधियां दी तथा रतनपुर से लगान लेना बंद कर दिया था। इसके पश्चात् गणेश द्वार की बायी तरफ हनुमान जी की प्रतिमा है। यहां से आगे जाने पर मराठा राजकुल की आनन्दी बाई द्वारा निर्मित लक्ष्मी नारायण मंदिर अवस्थित है। इसके आगे जाने पर जगन्नाथ मंदिर स्थित है, जिसका निर्माण राजा कल्याण साय ने करवाया था। इस मंदिर में भगवान जगन्नाथ, देवी सुभद्रा एवं बलभद्र की प्रतिमा स्थापित है। साथ ही यहां भगवान विश्णु तथा देवी अन्नपूर्णा की सुंदर प्रतिमायें भी है। इस मंदिर के पार्श्व भाग में रानीवास एवं महल के अवषेश विद्यमान है। इस किले का अंतिम द्वार मोतीपुर की ओर है, जहाँ बीस दुआरिया तालाब के किनारे राजा लक्ष्मण के साथ की 20 रानियां सती हुई थी। इन्ही की स्मशति में यहां वीर दुआरिया मंदिर बनवाया गया था। किला परिसर में उद्द्यान बनाया गया है। जगन्नाथ मंदिर के बायी ओर हनुमान की मंदिर स्थापित किया जाता है। आगे जाने पर दांयी ओर शिव जी का मंदिर हैं, तथा कुछ दूरी पर रानियों का महल है। जो वर्तमान में जीर्णो स्थिति में है।

तालाब के नीचे सीढ़ी था, जिसको पाट दिया गया, प्रधान जी के अनुसार गढ़ परिसर मे लगभग 120 कुएँ थे। 2003 में रानी महल की खुदाई की गयी जिसमें ग्रेनाइट पत्थर की मूर्ति, कटोरा की प्राप्ति की गयी थी, जो वर्तमान में रतनपुर के संग्रहालय में रखा गया है। महल के खुदाई करने में एक मूर्ति प्राप्त किया गया है। जिसकी आकशति परशुराम जैसे प्रतीत होती है। वर्तमान में महल के पीछे तरफ दो खाई हैं, जिसे छोटी खिया-बड़ी खिया कहा जाता है। रतनपुर महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल है। रतनपुर कलचुरी राजाओं की राजधानी रही है, कल्चुरी काल के भग्न स्मारक तथा प्रतिमाओं के लिये यह स्थल प्रसिद्ध हैं, रतनपुर आज कस्बे के रूप में अवश्य है किंतु पर्यटकों एवं धार्मिक आस्था के लोगों को आकर्शित करने के लिए यहां का प्राचीन किला, मंदिर विभिन्न धर्मो की प्रतिमायें एवं सरोवर वर्तमान में भी अपनी प्राचीन वैभवषाली कला को संजोये हुये है, यहां के मार्ग से ही यहां के शासकों की कला प्रियता दिखाई देने लगती है, मार्ग में पाए जाने वाले पुल के नीचे सोमवंशी एवं कलचुरी शासको के समय की प्रतिमाये अपने संरक्षण की बाट जोहती, कला सौंदर्य समेटे उपेक्षित स्थिति में है, यहां का प्राचीन किला यद्यपि अपने प्राचीन और गौरवपूर्ण रूप में नहीं है फिर भी दर्षनीय है, समय-समय पर इसका जीर्णोद्वार भी हुआ है मराठों ने 1742 में रतनपुर पर अधिकार करने के बाद इसका जीर्णोद्वार भी करवाया एवं कुछ नये द्वार भी बनवाये, किले की दीवारों में विभिन्न महलों एवं मंदिरों के पत्थर जीर्णोद्वार के समय लगाए गए है, ये पत्थर भी अपनी खुदाई एवं नक्काशी के कारण दर्षनीय है, गणेश द्वार के सामने किले के द्वार पर चौखट के पत्थर पर उत्कश्ट नक्काशी का काम है चौखट के दोनो तरफ गंगा एवं यमुना नदी देवियों की प्रतिमायें है, जिनकी पहचान उनके वाहनों के अंकन से की जाती है, एक स्थान पर हाथ पैरों से खंडित परिणाम विहीन प्रतिमा है, जिसे गोपाल ावीर की प्रतिमा बताया जाता है यह वीर राजा कल्याण साय को दिल्ली जाकर अपनी पहलवानी से बादशाह जहांगीर को प्रसन्न कर वापस रतनपुर लाने में सफल हुआ था, द्वार पर शिवजी का ताण्डव नश्त्य की एवं ब्रम्हा एवं विश्णु की प्रतिमायें भी अनुपम सौदर्य का नमूना है, इन तीनो प्रमुख देवताओं के नीचे नवग्रह प्रतिमायें भी सुंदर है, देवताओं की प्रतिमायें में कार्तिकेय की प्रतिमा बहुत आकर्शक है, यहां एक ऐसी दर्षनीय प्रतिमा भी है जो भारत में शायद ही कहीं मंदिरों में बनाई गई हो, वह है लंकापति दशासन द्वारा शिवलिंग पर पूजा करके अपना एक एक सिर काट कर चढाते हुए प्रदर्षित करने का और रावण द्वारा शिवजी को समर्पित यही सिर युद्व के समय उसके सिर के कटने पर तुरंत उसे शिवजी के वरदान स्वरूप वापस प्राप्त होते जाते थे, छत्तीसगढ़ के रतनपुर में अनेको मंदिर हैं, जिसमें से सबसे प्रसिद्व मंदिर महामाया मंदिर हैं, जो 51 शक्ति पीठों में से एक शक्ति पीठ रतनपुर का माँ महामाया मंदिर हैं, जिससे पूरे अंचल की धार्मिक आस्था जुड़ी हुई है, नवरात्रि पर्व पर आस पास के नगरों एवं गांवो से विषाल जनता आज भी यहां दर्षन करने एवं मनौतियाँ मांगने आती है, यह सिद्व स्थान माना जाता है यहां की पूज्य प्रतिमा प्राचीन प्रतिमा है, यहां का सभागश्ह राजा बाहर साय द्वारा शिल्पी छितकू से बनवाया गया है, मंदिर में एक शिलालेख भी है, सामने जलकुंड है यहां की कुछ प्रतिमायें रायपुर संग्रहालय में भी रखी गयी है, जिनमें शिव पार्वती विवाह की प्रतिमा लगभग दसवी सदी की है।

इस मंदिर का निर्माण लगभग 11 वीं सदी में राजा रत्नदेव द्वारा करवाया गया था, महामाया देवी की प्रतिमा में एक शरीर एवं दो चेहरे है। छत्तीसगढ में सरोवरों का अपना अलग महत्व है कहा जाता है, कि रतनपुर में लगभग एक हजार चार सौ सरोवर थे किंतु अब इसकी संख्या बहुत कम रह गयी है, यहां करैहापारा या कलचुरि पारा में रत्नेश्वर सरोवर है एवं शिव मंदिर है, तुलजा भवानी मंदिर भी दर्षनीय है, यहां एक प्राचीन भैरव मंदिर है जिससे लगभग नौ फुट की भैरव प्रतिमा है यहां एक विशाल जल कुंड

है तथा निर्माण कार्य बाबा ज्ञानगिरी द्वारा करवाया गया है, पहाडी पर लक्ष्मी देवी का मंदिर भी दर्शनीय है जिसे यहां इकबीरा का मंदिर भी कहा जाता है इसका आकार पुश्पक विमान के आकार का बताया जाता है, राम टेकरी पर राम पंचायत मंदिर है जिसे बिम्बाजी भोंसले द्वारा बनवाया गयी थी, कल्याण साय द्वारा जगन्नाथ जी का मंदिर बनवाया गया था जिसमें उडीसा के जगन्नाथ पुरी के अनुरूप जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा की मूर्तियां है, किले के अंदर भी और मंदिर है, तालाबों की परंम्परा में एक तालाब बैरागबंन है जिसे राजा बाहर साय ने बनवाया था और मंदिरों का निर्माण प्राय. तालाबों के पास बनाने की परंपरा के अंतर्गत यहां भी बैराग बन क्षेत्र में मंदिर बने हुये है जिनमें वर्तमान में केवल दो मंदिरो की स्थिति अच्छी है, इनमें एक नर्मदेश्वर महादेव का मंदिर है एवं दूसरा मंदिर राजा कल्याण साय का समाधि मंदिर है जिसे यहां रतनपुर में बीस दुबरिया मंदिर के नाम जाता है, यहां बौद्व एवं जैन धर्मो से संबधित प्रतिमाये हैं, प्रसिद्व बौद्व दार्षनिक नागार्जुन ने दो सौ के पूर्व यहां कुछ समय तक निवास किया था, यहां सती चौरे एवं सती मंदिर भी है, प्राचीन भारतीय धर्म संस्कृति के अनुरूप यहां सती नारियो का उल्लेख मिलता है सती विवरण भी उपलब्ध है, यहां मूसेखां की दरगाह भी है जहां अब उर्स भी होने लगा है। इससे यहां के शासकों की सभी धर्मो को समान रूप से मान्यता देने की पुश्टि होती है, बैराग बन तालाब से कुछ दूरी पर एक मंदिर है जिसे स्थानीय जन खिचड़ी केदारनाथ मंदिर के नाम से पुकारते है, स्थानीय थाना के पास भी लटेश्वर मंदिर हैं, राजा रत्नदेव चाहते थे कि इस शहर रतनपुर को प्रतिकाशी बनाया जाये क्योंकि पश्चिम से आने वाले यात्री जो जगन्नाथपुरी, गया, प्रयाग आदि तीर्थो की यात्रा पर जाते थे इसी शहर से होकर जाते थे, इसी आधार पर उन्होने यहां वृद्वेश्वर मंदिर बनवाया जो आज भी कर्नाटक के गोकर्ण महादेव जैसे शिवलिंग की साख देता है, इस शिवलिंग पर लगातार पानी डालते जाने पर भी वहां एक इंच से अधिक पानी नहीं दिखता, इस प्रकार के शिवलिंग छत्तीसगढ में कुछ अन्य स्थानों के मंदिरों में भी है, यहां लगभग सभी तालाबों के पास शिव मंदिर है, इस प्रकार रतनपुर आज भी अपने प्राचीन वैभव कर प्रदर्षन करता हुआ पर्यटकों एवं तीर्थ यात्रियों को आकर्शित करता है। आवश्यकता है, यहां पर्यटन सुविधाओं के विकास की जिससे इस क्षेत्र की यह गौरवमयी राजधानी अपना प्राचीन वैभव संस्कृति एवं उत्कर्श को संजोये रख सके। धार्मिक स्थलों की यात्रायें प्राचीन काल से ही भारत में पुण्य कार्य समझी जाती थी, इसी कम में छत्तीसगढ से काशी जाने का मार्ग रतनपुर एवं अंबिकापुर होकर ही था, इसी संदर्भ में छत्तीसगढ दक्षिणापथ भी कहलाता था, काशी जाने वाले यात्री मार्ग में पडने वाले सभी तीर्थ स्थलों के दर्षन करते हुये जाते थे, इसी प्रकार मार्ग में रतनपुर पडता था, जहॉं की धार्मिक मंदिरों का दर्षन सभी श्रद्वालु करते थे। रत्नराज ने तुम्माण में आम्रवन, फलोद्यान और पुब्पोद्यान आदि लगवाकर तथा मंदिर का निर्माण कराया। और उसने रतनपुर को अपनी राजधानी बनायी। इस नवीन नगर में अनेक मंदिरो का निर्माण किया गया। उसको कुबेरपुर की उपमा दी गयी और उसका महत्व बहुत अधिक बढ़ गया। महाकौशल में उसकी बराबरी का कई दूसरा शहर नहीं था। संप्रति यह रतनपुर के नाम से जाना जाता है। पृथ्वीदेव द्वितिय ने रतनपुर में अनेक मंदिर और तालाबों का निर्माण करवाने के साथ-साथ कुछ बगीचे भी लगवाये। एवं अपने शासन काल में सोने और तांबे के सिक्के जारी किये थे। रतनपुर में कलचुरियों ने अनेक मंदिरों, धर्मशालाओं, अध्ययन शालाओं, मठों इत्यादि का निर्माण करवाया, जिनके कारीगरी विशेष छटा दिखलाती है। यह कलचुरी-शिल्प के नाम से जाना जाता है। इनके मंदिरों के द्वार पर गजलक्ष्मी या शिव की मूर्ति पायी जाती है। गजलक्ष्मी कलचुरी-वंश की कुलदेवी थी और उनका कुल शिव-उपासक था। इनका ताम्रपत्र हमेशा "ओम नम. शिवाय" से आरम्भ होता है। रतनपुर के कलचुरी शासको ने सभी धर्मो एवं जातियों को सम्मानजनक स्थान दिया, योग्यतानुसार पद दिये जाते थे जातिगत भेदभाव नहीं था ब्राहमणों को कुछ दंडो से मुक्त अवश्य रखा गया था, जैसे उन्हे हथकड़ी नही लगाई जाती थी, अर्थ दंड से एवं पीटे जाने से मुक्ति थी उनकी भर्त्सना नहीं की जाती थी, राजा ब्राम्हणों को सम्मान देते हुये प्रणाम करते थे, महारानी वासटा के शिलालेख के अनुसार- ऋग्वेदी, यजुर्वेदी एंव सामवेदी ब्राम्हण। यहां थे तथा अमात्य आदि उच्च पदों पर थे, रतनपुर का पुर प्रधान वैश्य था सामंत वल्लभ राज भी वैश्य था, कायस्थ भी यहॉं प्रतिश्ठित पदों पर थे, इन्हे मंत्रिमंडल में भी स्थान प्राप्त था, सूत्रधार शिल्प कला में निपुण जाति थी, नारियों की भी सम्मान जनक स्थिति थी, हैहय कलचुरी शासको के काल में रतनपुर वैभवषाली स्थिति को प्राप्त था, सर्वप्रथम 1836 में पृथ्वी देव द्वितिय का सिक्का प्राप्त हुआ इसके बाद जााजल्ल देव प्रथम का बडे आकार का सोने का सिक्का मिला जिसके पृश्ठ भाग पर हाथी पर आकमण करते हुये सिंह का अंकन है, द्वितिय रत्नदेव के सोने बडे एवं छोटे सिक्के, तथा तांबे के भी बडे एवं छोटे सिक्के प्राप्त हुये है, प्रतापमल्ल के भी इसी प्रकार के सिक्के

मिले है, सोने के सिक्को का रतनपुर में प्रचलन उसकी वैभवता का प्रमाण है, रतनपुर राज्य की आय का प्रमुख साधन तो भू-राजस्व ही था, इसके साथ अन्य भी थे, जैसे व्यापार कर, पशुओं के चरने पर चारागाह कर, अपराधियों को सजा के रूप में अर्थदण्ड, अवैधानिक रूप से शराब बनाने पर आर्थिक दण्ड दिया जाता था इसका उल्लेख पृथ्वीदेव प्रथम के कलचुरी संवत 831 के आमोदा लेख पत्र में है, रतनपुर राज्य के अधीन क्षेत्रों से भी उनकी आय का छठवां भाग कर के रूप में प्राप्त होता था, नगरों एवं ग्रामों में समानों को बेचने के लिये मंडियॉ होती थी, इन्हें मंडविका कहते थे, यहां बेचे जाने वाले सामानो का पहले मूल्यांकन होता था फिर इन पर बिक्री कर लगाया जाता था। इन बाजारों में सामान बेचने वाले व्यापारियों को आज के समान लाइसेंस दिये जाते थे। यह एक प्रकार का परवाना होता था, युगा या चुंगा कहा जाता था, यह लाइसेंस केवल दिन भर के लिये ही दिया जाता था तथा इसे पाने वाले व्यापारी इसकी फीस के रूप में एक छोटा सिक्का राज्य को देता था जिसे धीर या पौर कहा जाता था, इन बाजारों में लगभग दैनिक उपयोग के सभी सामान बिक्री हेतु उपलब्ध रहते थे, इनसे पता चलता है प्राचीन रतनपुर में आधुनिक युग के अनुरूप विभिन्न कार्यो हेतु करों का प्रावधान था यहॉ का व्यापार चरमोत्कर्श पर था, यहॉ हाथियों एवं घोडों को भी बिक्री हेतु लाये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है, आज यही रतनपुर एक नगर के रूप में अपना वैभव समेटे हुये अस्तित्व में है, रतनपुर के कलचुरी शासको में अधिकांश शासक शिव के उपासक थे किंतु उन्होने धार्मिक भेदभाव या जबरदस्ती नहीं की सभी धर्मो को उन्होने आश्राय दिया, इसके प्रमाण स्वरूप शैव, वैश्णव, धर्मो की प्रतिमायें एवं मंदिर आज भी यहॉ देखे जा सकते है, शाक्त धर्म के अनुरूप शक्ति देवियों का भी यहाँ विशेष महत्व रहा है यहाँ की महामाया देवी वर्तमान में पूरे अंचल में सिद्व शक्ति के रूप में मान्य एवं पूज्य है, बौद्व एवं जैन धर्मो के भी प्रमाण यहा पाये जाते है, रतनपुर से संबधिक शिलालेख एवं ताम्रलेख समय-समय पर विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुये है, जिनसे यहॉ के इतिहास पर कमश. प्रकाश पडता जा रहा है, एवं इसका प्राचीन वैभव उजागर होता जा रहा है। 1758 से रतनपुर में मराठो ने शासन किया। बिम्बाजी भोंसले पहला शासक था। जिसने रतनपुर में रहकर प्रशासन किया। इसने रतनपुर में राम टेकरी पहाड़ी में एक भव्य राम मंदिर का निर्माण करवाया था, जो आज भी स्थिति है। 1787 में रतनपुर में सूबा प्रशासन शुरू हो गया। इसी समय फॉरेस्टर नामक एक यूरोपिय यात्री छत्तीसगढ़ आया था। उसने अनेक स्थानों की यात्रा की और वहां हाल अपने यात्रा के विवरण में उन्होने किया। उन्होने रतनपुर के बारे में कहा कि रतनपुर राज्य एक सुन्दर प्रदेश है यहॉ की जमीन उपजाऊ है तथा यहॉ बड़ी मात्रा में चावल उत्पन्न होता है। यूरोपिय यात्री कोलबुक ने भी रतनपुर की यात्रा की उन्होने भी रतनपुर के बारे में कहा कि रतनपुर के निवासी धर्मिक प्रवृति के है, यहॉ अनेक मंदिर है, रतनपुर के आस-पास चारों ओर गेहूं, धान और गन्ने के खेत है। यहॉ इन वस्तुओं की अच्छी उपज होती है। यहॉ का अनाज बहुत सस्ता है। यातायात की कठिनाई की वजह से किसानों को अपने गांव में ही अनाज बेचना पडता है। यहॉ के व्यापारी किसानों को उनकी उपज पर अधिक मूल्य नहीं देते है। वर्तमान में रतनपुर को एक धार्मिक नगरी के रूप में देखा जाता है। जहॉ अनेकों मंदिर स्थापित है। प्राचीन काल में रतनपुर राजाओं के ठाट-बाट के लिए जाना जाता था। वर्तमान में इसको चींहीत के रूप में रतनपुर के प्राचीन किले को देखा जाता है। यह किला प्राचीन काल के राजाओ के स्थिति को दर्शाता है। तथा इस किला के दीवार लाल रंग के चाकोर ईटो से निर्मित किया गया है। किले के द्वार में गणेश की मूर्ति स्थापित किया गया। एवं द्वार के दाये एवं बायी ओर हनुमान की मूर्ति स्थापित है किले परिसर के अंदर वर्तमान में उद्यान बनाया गया। जो कि अति सुशोभित होती है। इस परिसर के अंदर अनेक कुआं भी है। किले के चारों ओर तालाब दिखाई देता है। इस किले को गज किला भी कहा जाता है। यह किला प्राचीन राजा महाराजाओं के वैभव को दर्शाता है। प्राचीन कालीन मंदिर एवं प्राचीन कालीन किलो से यह जानकारी मिलती है कि रतनपुर बहुत ही समृद्व स्थल रहा है।

निष्कर्ष

रतनपुर प्राचीन किला एवं धार्मिक स्थलो के रूप में प्रचलित हैं, यहॉ पर्यटक यहॉ धार्मिक एवं यहॉ के सरोवरों का आनंद लेने आती हैं, रतनपुर कलचुरी काल से ही अति प्रसिद्व स्थलों में से एक हैं, जहॉ हजारों सरोवर, मंदिर एवं किला के लिए प्रासिद्व हैं, प्राचीन किला वर्तमान जीर्णोद्वार आवस्था में स्थित हैं, इससे पुनजीर्वित करने के अवश्यकता हैं, तथा वर्तमान में यहॉ पर्यटको को आने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। जिससे अधिक से अधिक सैलानी यहॉ आ के यहॉ की प्राचीन धरोहर के बारे में जानकारी

प्राप्त कर सके। एवं यहॉ के धार्मिक मंदिरों का दर्षन कर सके तथा यह अपनी प्राचीन वैभवषाली कला को संजोये रहे। यहॉ की महामाया मंदिर 51 शक्ति पीठों मे से एक हैं, जो पूरे अंचल में सिद्व शक्ति के रूप में मान्य एवं पूज्य हैं। तथा नवरात्री में यहॉ दूर-दूर से श्रद्वालु देवी मॉ के दर्षन के लिए आते है। वर्तमान में यही रतनपुर एक नगर के रूप में अपना प्राचीन वैभव समेटे हुये अस्तित्व में है।

संदर्भ ग्रंथ

1. शुक्ला, सुरेश चन्द्र एवंम् अर्चना शुक्ला, 2003, छत्तीसगढ का समग्र इतिहास, शिक्षादूत ग्रंथाग्रार प्रकाशन, रायपुर,
2. शर्मा, डॉ. टी. डी, 2004-2005, छत्तीसगढ के पर्यटन स्थल, अरपा पाकेट बुक्स, बिलासपुर।
3. शुक्ला, प्रदीप, पाण्डेय, सीमा, शुक्ला, महेश, 2008, छत्तीसगढ में पर्यटक, वैभव प्रकाशन, रायपुर, 2008।
4. मिश्र, रामेन्द्र एवम् झा, लक्ष्मीधर, 1998, छत्तीसगढ का राजनीति एवंम् सांस्कशतिक इतिहास, सेन्ट्रल बुक डिपो रायपुर।
5. शर्मा, रामगोपाल, छत्तीसगढ दर्पण, खण्डेवाल आफसेट प्रिंटर्स, बिलासपुर, 2001।
6. दैनिक भास्कर, बिलासपुर, 24 नवंम्बर 2019, पत्र।
7. सिंह, जीतमित्र प्रसाद, 2009, दक्षिण कोसल का सांस्कृतिक इतिहास, छत्तीसगढ हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, रायपुर।
8. यादव, कु. शोभा, हमारा छत्तीसगढ, सहायता महिला मण्डल, रायपुर।

छत्तीसगढ़ के आदिवासियों के आर्थिक विकास पर मनरेगा योजना का प्रभाव-एक अध्ययन (दक्षिण बस्तर दंतेवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में)

धरम दास टण्डन

पीएच.डी., शोध छात्र, वाणिज्य विभाग, डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

प्रो० प्रभाकर पाण्डेय

प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

भारतीय समाज में ग्रामीण जनता लंबे समय तक रोजगार के अभाव की समस्या से जूझती रही है। रोजमर्रा की जिन्दगी मे लोगों की मुख्य आवश्यकता इनके लिए भोजन, कपडे, आवास, शिक्षा, चिकित्सा आदि है, जो उनके जीवन स्तर को प्रभावित करती है। सरकार इस दिशा में अपनी योजना तैयार करती है। आर्थिक विकास हमेशा ही भारतीय योजनाओं का एक मुख्य अंग रहा है। शोध में स्वनिर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है। शोध का क्षेत्र दक्षिण बस्तर दन्तेवाड़ा जिले के दो विकास खण्ड के 8 गांवों को लिया गया है। मनरेगा ने ग्रामीण परिवारों को कग्र तरह से लाभान्वित किया है-ग्रामीण परिवारों को रोजगार की गारण्टी मिली। ग्रामीण परिवारों की आय में वृद्धि होने से उनके उपभोग व्यय में वृद्धि एवं जीवन-स्तर में सुधार आया। शहरों की ओर पलायन में कमी आग्र। मनरेगा योजना से जनता की रोजगार एवं प्राप्त आय से जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। इस प्रक्रिया में निरन्तर सुधार हो रहा है।

शब्द कुन्जः मनरेगा, आदिवासी, आर्थिक, अर्द्धविकसित, विकसित .... इत्यादि।

प्रस्तावना

आज के इस प्रगतिशील आधुनिक युग की सबसे महत्वपूर्ण समस्या आर्थिक विकास की है जो वर्तमान शताब्दी का केन्द्र बिंदु माना जा चुका है। अर्थशास्त्रियों ने अर्द्धविकसित दोनों के आर्थिक विकास में अधिक सूची लेना शुरू किया। इसका मुख्य कारण था कि विकसित व सम्पन्न राष्ट्र इस बात को अनुभव करने लगे कि वे हकिसी एक स्थान की दरिद्रता अन्य स्थानों की सम्पन्नता के लिये खतरा है।ह आज यह सर्वमान्य है कि सम्पन्नता का अस्तित्व निर्धनता के निवारण पर ही निर्भर करता है, अन्यथा निर्धनता सम्पन्नता को स्थिर रहने नहीं देगी। इस शोध कार्य में आर्थिक विकास एवं गरीबी उन्मूलन हेतु महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार

गारंटी योजना (मनरेगा) के विषय में उपलब्ध साहित्यों मे मुख्यत: विभिन्न आयोग एवं समितियों की अनुशंसायें संबंधित विभागों के प्रतिवेदन शासकीय रिपोर्ट परिशदों एवं सम्मेलन मे व्यक्त किये गये।

आधुनिक मानव ने अपनी पहचान अन्तिम हिम युग या उससे पहले ही प्राप्त कर ली थी, किंतु बहुत यकीन के साथ कहने के लिये मानव जीवाश्म की एक पूरी कड़ी चाहिए जो उपलब्ध नहीं है। विश्व के सभी मानव एक ही जाति के सदस्य है, जिन्हे जीवषास्त्र की भाषा मे **होमोसेपियन्स जाति** का आधार बनाया था। मानव ने अपने विशेषताओं को निखार कर नई स्थिति में स्वयं को स्थापित किया। विभिन्न प्रजाति विषुद्ध रूप से एक वैज्ञानिक संकल्पना हैं, वहाॅ जनजाति मुख्यत: सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधारों पर विकसित क्षेत्रीय धारणा है। एक ही प्रजाति के अंतर्गत अनेक जनजातियाॅ हो सकती है, जिनकी सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान एक दूसरे से भिन्न हो।

भारतीय समाज में ग्रामीण जनता लंबे समय तक रोजगार के अभाव की समस्या से जूझती रही है। स्वाधीनता के पश्चात भी ग्रामीण महिलाएं अधिकांशत: परम्परागत घरेलू खेती बाड़ी तथा पशुपालन जैसे कार्यो तक ही सीमित रही है। इसका एक कारण गांव में रोजगार का अभाव होना है। इसी बेरोजगारी की समस्या के स्थायी समाधान के उद्देश्य से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 मूर्त रूप में आग्र। इस योजना बाद में नाम बदल कर महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना की गग्र। मनरेगा अधिनियम 7 सितम्बर 2005 को अधिसूचित किया गया और 02 फरवरी 2006 को इस योजना को क्रियान्वित किया गया।

अध्ययन का औचित्य

भारत की सबसे बड़ी समस्या आज उनकी गरीबी और बेरोजगारी है। वर्श 2011 की जनगणना के आधार पर लगभग 70 फीसदी जनसंख्या ग्रामीण एवं निर्धन है। इसलिए आर्थिक विकास शब्द आज जीवन्त हो उठा है और केन्द्र सरकार राज्य सरकार, बैंक, वित्तीय तथा अन्य स्वयं सेवी संस्था इस दिशा मे विचार करना पड़ रहा है।शोध अध्ययन में आदिवासियों से यह जानने का प्रयास किया गया की मनरेगा के क्रियान्वयन के पूर्व उनके रोजगार में स्थिति कैसी थी ? मनरेगा योजना क्रियान्वित होने के पूर्व उत्तरदाता के रोजगार का साधन क्या रहा है। शोध अध्ययन में प्राप्त तथ्यों के अनुसार मनरेगा योजना शुरू होने के पूर्व आदिवासी ख्रशि और ख्रशि मजदूरी का कार्य अधिक करते थे। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है, आज आर्थिक विकास एक नारा के रूप मे उभरा है बल्कि आंकडे और अनेकानेक शोध गवाह है, कि अब इसके बिना काम चलने वाला नहीं है, देश का न केन्द्र का न राज्य सरकारों का और न वित्तीय संस्थाओं एवं बैंको का ऐसे मे आर्थिक विकास की स्पश्ट अवधारण तय करना तथा उसका समूचित कार्यान्वयन आसान नहीं है।

समस्या कथन

"छत्तीसगढ़ के आदिवासियों के आर्थिक विकास पर मनरेगा योजना का प्रभाव-एक अध्ययन" (दक्षिण बस्तर दंतेवाड़ा जिले के विशेष संदर्भ में)

शोध अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य

प्रत्येक शोध कार्य का उद्देश्य सुनिश्चित होते है तभी लक्ष्य पूर्ण व वैधानिक होता है। यह अध्ययन छ.ग. के आदिवासियों के आर्थिक विकास पर मनरेगा का प्रभाव विषय पर आधारित है। जिसमे आदिवासी परिवार कहाँ तक विकसित हुये है। इससे संबंधित शोध परक तथ्यों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है जो कि निम्न है -

1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों के लाभ का अध्ययन करना।
2. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों की रोजगार की गारंटी निश्चिता का अध्ययन करना।
3. मनरेगा योजना से जनता की रोजगार एवं प्राप्त आय से जीवन स्तर में सुधार का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

परिकल्पनाऐं शोध के पूर्व के अध्ययन को सरल बनाने की एक विधि है। जिसके अनुसरण के द्वारा हम निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। इस ज्ञान एवं अनुभवों या विचारों के आधार पर परिकल्पना का निर्माण करता है। इसके निम्न श्रोत पाये जाते हैं:

1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों को लाभ होता है।
2. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों की रोजगार की गारंटी निश्चित हो जाती है।
3. मनरेगा योजना से जनता की रोजगार एवं प्राप्त आय से जीवन स्तर में सुधार हो रहा है।

शोध प्रविधियां

दक्षिण बस्तर दन्तेवाड़ा प्राकृतिक सौंदर्य, घने जंगल वनोपज, भरपूर खनिज आदि के कारण भी शोध के लिये आकर्शण का केन्द्र है। बस्तर संभाग विभिन्न विषयों तथा नये संदर्भ में आर्थिक एवं वाणिज्यिक गतिविधियों के शोध अध्ययन के लिये सर्वाधिक उचित जान पड़ता है। मनरेगा याोजनाओं के अध्ययन हेतु दक्षिण बस्तर दन्तेवाड़ा जिले का चयन दो चरणों के आधार पर किया गया है। विकासशील एवं अविकासशील। इसमें भी दन्तेवाड़ा पूर्णत: मैदान भाग है। जबकि कुआकोण्डा दन्तेवाड़ा जिला का पहाड़ी और साल वनों से अच्छादित क्षेत्र है। अत: अध्ययन हेतु जिला का 40 प्रतिशत भाग का चयन किया गया है।

विकासखण्ड का चयन

न्यादर्शी जिले के दो विकासखण्ड को अध्ययन की सुविधा एवं प्राथमिकता आंकने को संकलित करने के लिये चुना गया है, जो कि जिले के विकासखण्डो की संख्या भी संभावित 50 प्रतिशत है। छत्तीसगढ़ी भाशा तथा रहन-सहन का आदिवासियों पर विशेष प्रभाव है जबकि बस्तर जिला अपने विविध रूपो में विख्यात है। शेश दन्तेवाड़ा जिला अत्यन्त पिछड़ा जिला है। जिस पर आन्ध्रप्रदेश की वेश-भूशा, रहन-सहन एवं संस्कृति की छाप है।

अत: शोध के लिये प्रत्येक विकासखण्ड से चार-चार ग्रामों (आबादी ग्राम एवं वन ग्राम) का चयन किया गया है। इस प्रकार जिले के दो विकासखण्ड से कुल 08 ग्रामों का चयन किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत शोध में स्वयं निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है।

आंकडों का संकलन

किसी भी शोध प्रबन्ध में 02 प्रकार के आंकड़ों का संकलन किया जाता हैं। प्रथम प्राथमिक आंकड़े तथा द्वितीय प्रकाशित आंकड़े प्राथमिक आंकड़े चयनित क्षेत्र एवं व्यक्तिगत सम्पर्क तथा प्रकाशित आंकड़े रिपोर्ट, प्रकाशन सम्मेलन आदि के आधार पर संकलन किया जाना है।

इस शोध अध्ययन हेतु निम्न तकनीको का प्रयोग किया जा रहा है–

1. निदर्षनी प्रणाली
2. सांख्यिकी विधि प्रणाली वर्ग
3. प्रश्नावली
4. अनुसूची
5. साक्षात्कार
6. प्रतिशत विधि

आवश्यकतानुसार अन्य विधियों का उपयोग किया जा सकता है।

आंकड़ों का संकलन एवं विश्लेषण

छत्तीसगढ़ राज्य एक आदिवासी बाहुल्य प्रदेश है। राज्य के कुल क्षेत्रफल का 65.12 प्रतिशत अनुसूचित क्षेत्र है। अनुसूचित क्षेत्र का कुल रकबा 81, 861.88 वर्ग कि.मी है। राज्य में अनुसूचित जनजाति की कुल आबादी 57.17 लाख है जो कुल जनसंख्या का 32.45 प्रतिशत है। इस अधिनियम को ग्रामीण लोगो की क्रय शक्ति को बढ़ाने के उद्देश्य से शुरु किया गया था। मुख्य रुप से ग्रामीण भारत मे रहने वाले लोगो कि लिये अर्द्ध कौशल पूर्ण था बिना कौशल पूर्ण कार्य चाहे वह गरीबी रेखा से नीचे हो या न हो। नियत कार्य बल का करीब एक-तिहाई महिलाओं से निर्मित है। शुरु में इसे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) कहा जाता था, लेकिन 2 अक्टूबर 2009 को इसका पुन: नामकरण किया गया जिसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना का नाम दिया गया।

परिकल्पनाओं के आधार पर आंकड़ों का संकलन

1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों को लाभ होता है।

तालिका - 1

क्रमांक	हाँ	नहीं
1.	70%	30%

व्याख्या : दक्षिण बस्तर दन्तेवाड़ा जिले के आदिवासियों के आर्थिक विकास में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों को लाभ होता है के अध्ययन में लिये आदिवासियों ने सर्वे का 70: विचार हाँ और 30 : नहीं में विचार व्यक्त किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों को लाभ होता है।

कुछ ऐसे आदिवासी है जिनको ज्यादा जानकारी नहीं होने के कारण अपने गांव में होते हुए बेरोजगारी का शिकार होते है।

2. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों की रोजगार की गारंटी निश्चित हो जाती है।

तालिका - 2

क्रमांक	हाँ	नहीं
1.	80%	20%

व्याख्या : दक्षिण बस्तर दन्तेवाड़ा जिले में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों की रोजगार की गारंटी निश्चित हो जाती है के अध्ययन में 80 प्रतिशत आदिवासी हॉ में विचार दिया है और 20 प्रतिशत नहीं में विचार व्यक्त किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दक्षिण बस्तर दन्तेवाड़ा जिले में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से हितग्राहियों की रोजगार की गारंटी निश्चित हो जाती है। जिसका मुख्य कारण वर्तमान समय में घर के पास काम मिलना। सरपंचों का कहना है कि मनरेगा ने गाँवों की किस्मत बदल दी है। 100 दिन के न्यूनतम रोजगार की जगह यदि सरकार 200 दिन के रोजगार की गारण्टी का प्रावधान कर दे तो गाँवों का कायाकल्प हो जाएगा। सब आलृथक रूप से सक्षम हो जाएं, ऐसा ही तो हम चाहते हैं।

3. मनरेगा योजना से जनता की रोजगार एवं प्राप्त आय से जीवन स्तर में सुधार हो रहा है।

तालिका - 3

क्रमांक	हाँ	नहीं
1.	68%	32%

व्याख्या : दक्षिण बस्तर दन्तेवाड़ा जिले में आदिवासियों के अध्ययन में मनरेगा योजना से जनता की रोजगार एवं प्राप्त आय से जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। जिसमें 68 प्रतिशत आदिवासी हॉ में विचार दिया है और 32 प्रतिशत नहीं में विचार व्यक्त किया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनरेगा योजना से जनता की रोजगार एवं प्राप्त आय से जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। इस प्रक्रिया में निरन्तर सुधार हो रहा है। जिसका मुख्य कारण वर्तमान समय में शासन के नई-नई योजनाओं के माध्यम से आदिवासियों को रोजगार मिल रहा है। वर्तमान समय में व्यक्ति की आर्थिक स्थिति एवं प्रतिशठा के निर्धारण में आय को प्रमुख आधार माना जाता है। इस प्रकार परिस्थिति निर्धारक एवं आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रमुख साधन होने के कारण आय का व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। आय परिश्रम का प्रतिफल है। आधुनिक समाज में सामाजिक स्थिति सामान्यत: व्यक्ति के आय के पैमाने द्वारा मापी जाती है। उत्तम आर्थिक स्थिति लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाती है। उचित आय के द्वारा व्यक्ति के जीवन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। वह अपने तथा परिवार की जरूरतों को निश्चित करता है। जिससे उनके आर्थिक स्थिति में सुधार पाया गया है।

परिणाम

प्रस्तुत शोधपत्र में दन्तेवाड़ा जिले में मनरेगा से आदिवासियों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो रहा है। शोध पत्र के उद्देश्य एवं परिकल्पनाओं के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि अधिकतर आदिवासियों ने मनरेगा के माध्यम से अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत किया है। दक्षिण बस्तर दन्तेवाड़ा जिले में आदिवासियों के अध्ययन में मनरेगा योजना से जनता की रोजगार एवं प्राप्त आय से जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। साथ ही साथ शासन के योजनाओं का भरपूर लाभ उठाया है। जिससे इनकी आर्थिक विकास की प्रक्रिया में भी बदलाव देखने को मिला है। साथ ही साथ रोजगाार एवं आय में भी मनरेगा महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

निष्कर्ष

मनरेगा ने ग्रामीण परिवारों को कम्र तरह से लाभान्वित किया है-ग्रामीण परिवारों को रोजगार की गारण्टी मिली। ग्रामीण परिवारों की आय में वृद्धि होने से उनके उपभोग व्यय में वृद्धि एवं जीवन-स्तर में सुधार आया। शहरों की ओर पलायन में कमी आम्र। दन्तेवाड़ा की 2011 की जनगणना के अनुसार - 247, 029 है। जिसमें आदिवासियों की कुल जनसंख्या 1, 73, 714 है। छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा जिले में मनरेगा के क्रियान्वयन में आने वाली कुछ बाधाओं को अध्ययन में चिन्हित किया जिनमें बारिश के मौसम में कार्य स्थगन, निम्न जागरूकता स्तर, रोजगार कार्डो की जमाखोरी और कर्मचारियों की भी आदि शामिल है। मनरेगा कार्यक्रम बड़े पैमाने पर एक ऐसी नीति के रूप में जाना जाने लगा है जो ग्रामीणों की आय बढ़ने के क्षमता के साथ-साथ सुरक्षा कवच प्रदान करती है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री डिजरायली ने कहा था "आलथक स्वतंत्रता के बिना राजनैतिक स्वतंत्रता अधूरी है।" आलथक रूप से आत्मनिर्भर व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र ही 21वह्व सदी की माँग है। आशा की जानी चाहिए कि मनरेगा ग्रामीण भारत के आलथक विकास में एक महत्वपूर्ण स्तम्भ बनकर उभरेगा।

संदर्भ ग्रन्थ

1. सिन्हा बी.सी., आर्थिक संवृद्धि और विकास, रायपुर पेपर बैक्स नोयड़ा पृष्ठ 6।
2. डॉ. बघेल डी. एस. एवं डॉ. बघेल श्रीमती किरण, अनुसंधान पद्धतिशास्त्र, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ 14।
3. शास्त्री राजा राम, समाज कार्य, उ.प्र. हिन्दी संरचना, लखनऊ पृष्ठ 298।
4. डॉ. बेहरा, राम कुमार, गुण्डाधुर बस्तर का जन नायक, छ.ग. शोध संस्थान रायपुर छ.ग. पृष्ठ 12।
5. रेड्डी सी.व्ही.एस. बस्तर की आदिशक्ति एवं बस्तर का अभूतपूर्व इतिहास पृश्ट 5 एवं 6।
6. w.w.w. cggovt.in.com.
7. राम मनिश एवं बलराम इन्द्रावती, भूमिका 1982 ई.।
8. छत्तीसगढ़ "यूडेसी स्टेट्स पृ. 23।
9. रसेल व हिरा लाल, ट्राइल्स एण्ड कास्ट आफ द सी.पी. ऑफ इंडिया पृष्ठ 64, 1975 ई.।
10. बस्तर का आदिवासी संघर्श, पृष्ठ 23।
11. वेरियर एल्विन मुरिया एण्ड देयर घोटूल, पृष्ठ 29।

मीडिया की दुनिया और नागरिक पत्रकारिता

डॉ० मुकेश कुमार मिरोठा

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

वर्तमान नागरिक समाज अपने आस-पास होने वाली घटनाओं और बदलावों को स्वयं देखने का अभ्यस्त होता जा रहा है। अनेक स्थानों पर वह स्वयं अपनी उपस्थिति दर्शाता है। वस्तुत: सत्य और यकीन को प्रस्थापित करने में आजकल मीडिया को खासा जोर-आजमाइश करना पड़ रहा है। कालांतर में उसके द्वारा की गई कुछ त्रुटियाँ एवं विसंगतियों की वजह से आम नागरिक का मन उसके द्वारा दिखाए गए सत्य से डगमगाया है। मीडिया की टीआरपी संस्कृति और ब्रेकिंग न्यूज शैली ने आम आदमी को किंचित उदासीन कर दिया है। प्रत्यक्ष हस्तक्षेप की सीमितता के कारण आम व्यक्ति मीडिया से मोहभंग की स्थिति में आ गया है। वैसे भी मीडिया के केन्द्र में या उसके प्रयोजन में आम नागरिक अभी भी अनुकूल वातावरण की तलाश में ही है। मीडिया की विश्वसनीयता संदेह के घेरे में है। सामाजिक सच की उसकी प्रस्तुति पूर्वाग्रह से ग्रसित लगती है। घटनाओं की उचित और समुचित जानकारी विज्ञापनों की आँधी में खो सी गयी है। आम नागरिक का सम्मान और संरक्षण विशिष्ट लोगों एवं उनके क्रियाकलापों की खबरों में तिरोहित हो गया है। इसका यह अर्थ कदापि न लिया जाना चाहिए कि लोकतंत्र में आम नागरिक की हैसियत घट गई है। भारत के केन्द्रीय एवं राज्यों में हुए आम चुनाव अधिकारों, अपनी जिम्मेदारियों और अपने विवेक के प्रति सजग है, सतर्क है। कई मामलों में तो वह मीडिया से भी आगे है। जेसिका लाल हत्याकांड, निर्भया बलात्कार कांड, अन्ना आंदोलन आदि इस बात के प्रमाण हैं। इनमें आम नागरिक ने अपनी भूमिका का सम्यक् निर्वाह किया और मीडिया और सत्ता तंत्र को अपनी सामूहिक ताकत से ध्यानाकर्षण कराया जिससे दोनों को इन पर ध्यान देना पड़ा और मीडिया की व्यापक कवरेज के बाद कठोर कानून बनाने का मार्ग सुलभ हो सका।

कहा जा सकता है कि लोकतंत्र में आम नागरिक का अपना महत्व है। एक सामान्य मतदाता होने के साथ-साथ वह तकनीकी युग में उपभोक्ता की भूमिका में भी रहता है। मीडिया का आकर्षण सदैव उसे अपनी तरफ खींचता रहता है। सम-सामयिक मुद्दों पर आम नागरिक 'वर्जुअल संसार' में अपनी राय प्रदर्शित करता रहता है। एक जिम्मेदार नागरिक होने के नाते वह अपनी उपस्थिति को देश-हित में लगाना चाहता है। आम नागरिक अपने परिवार, देश, समाज, और पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी के निर्वहन में पीछे नहीं हटता है। अपने दैनिक जीवन की गतिविधियों में महज एक दर्शक की भूमिका से इतर वह कुछ अच्छा करने की जुगत में लगा रहता है। सोशल मीडिया में उसकी उपस्थिति अपने विचारों से सबको परिचित कराने की है। इसी प्रवृत्ति के कारण वह दैनदिन जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी बनकर इंटरनेट पर प्रसारित भी कर देता है। इस पर बहस की जा सकती है कि सब कुछ 'ऑनलाइन' कर देने पर आमादा आम नागरिक वर्ग इसका किस प्रकार सकारात्मक उपयोग करे। सामाजिक दायित्व-बोध का अभाव इसकी जड़ में है। उधर मीडिया की दुनिया से आम नागरिक के सुख-दुख की खबरें लगभग गायब है। किसान, दलित, मजदूर, अल्पसंख्यक एवं अन्य हाशियाकृत समाज उसके एजेंडे से गायब ही है। यह एक चिंताजनक पहलू है। बावजूद इसके मीडिया की बढ़ती लोकप्रियता और पहुँच, तकनीकी दक्षता, आम नागरिक का इंटरनेट पर उदय, सोशल मीडिया में उसकी मौजूदगी और सामाजिक-राजनीतिक-धार्मिक-जातीय चेतना की वजह से एक आम नागरिक मीडिया संसार से अनिवार्य अन्तर्सम्बन्ध बनाए हुए है।

एक पत्रकार के लिए जरूरी यंत्र अब आपको 'मोबाइल' में एक जगह मिल जायेंगे। आम नागरिक को मोबाइल ने 'पावर' दी है। ज्ञान, सूचना, मनोरंजन की त्रयी अब मोबाइल की छोटी सी दुनिया में समाहित हो गई है। इंटरनेट एवं मोबाइल के अधिकाधिक प्रयोग से आम नागरिक के जीवन में क्रांतिकारी बदलाव आया है। 12 मार्च 1997 के जनसत्ता के अंक में सम्पदाकीय के अन्तर्गत

इंटरनेट की प्रवृत्तियों पर लिखा गया था कि- ह्इंटरनेट की परिकल्पना के पीछे दुनिया के सारे ज्ञान को समाहित कर लेने की इच्छा है। यह हमारे देखते-देखते हो रहा है कि सारे पुस्तकालय, सारे संगीत के रिकार्ड, सारे महत्वपूर्ण चित्र और दुनिया भर के तमाम विषयों की न जाने कितनी सारे महत्वपूर्ण चित्र और दुनिया भर के तमाम विषयों की न जाने कितनी स्थिर-गतिशील सूचनाएँ कुछ लोगों के कम्प्यूटर पर इंटरनेट के मार्फत आपस में सूचनाओं का आदान-प्रदान भी कर सकते हैं।ह्[1]

आज कम्प्यूटर का स्थान परिवर्तित होकर मोबाइल में स्थित हो गया है। अत: प्रत्येक मोबाइल वर्तमान में मीडिया का प्रभावी सूत्र नजर आता है। आम नागरिक इसके प्रयोग से मीडिया में अपनी सहभागिता निश्चित कर रहा है। साथ ही साथ वह मीडिया को अन्य माध्यमों के प्रयोग द्वारा नयी राह भी दिखा रहा है। लोक के प्रति अपनी जिम्मेदारी का अहसास और उसके हितार्थ उठाए गए आम आदमी के पत्रकारिय कदम नागरिक पत्रकारिता को जन्म देते हैं।

विश्व भर के मीडिया में इन दिनों नागरिक पत्रकारिता अर्थात् सिटीजन जर्नलिज्म को लेकर बहस छिड़ी हुई है। नागरिक पत्रकारिता पर व्यापक चर्चा हो रही है। इसके स्वरूप एवं क्षेत्र को लेकर बैठक की जा रही है। हालाँकि भारत में भी अब यह प्रारंभ हो चुका है। इसके भारतीय संस्करण को लेकर कुछ आशंकाएँ जरूर है लेकिन अपेक्षाकृत नया होने के बावजूद भारत में इसे लेकर काफी उत्साह है। वरिष्ठ टीवी पत्रकार राजदीप सरदेसाई ने अपने नए चैनल सीएनएनआबीएन (CNNIBN) को लाँच करते वक्त नागरिक पत्रकारिता का आह्वान किया था। चैनल की प्रमुख थीम नागरिक पत्रकारिता को केन्द्र में रखकर बनाई गई थी। दर्शकों के पास महत्वपूर्ण खबर की क्लिप को उन्होंने अपने चैनल पर जगह दी और कई बार तो कुछ नागरिक श्रेष्ठ सिटीजन जर्नलिस्ट के पुरस्कार से भी नवाजे गए। इससे दर्शकों में चैनल के प्रति आकर्षण बढ़ा और इसकी देखा-देखी कई मीडिया चैनलों ने अपने यहाँ भी नागरिक पत्रकारिता को प्रारंभ कर दिया है। फुटेज की डिमांड, सूचना का अधिकार और कैमरा या हैण्डीकैम से युक्त स्मार्टफोन की सर्वसुलभता ने नागरिक पत्रकारिता को नए आयाम दिए हैं। नागरिक पत्रकारिता को समझाते हुए गोपाल प्रधान लिखते हैं- ह्इन नागरिक पत्रकारों की खूबी यह है कि वे न सिर्फ मुख्यधारा के समाचार मीडिया के पाठक, दर्शक और श्रोता हैं बल्कि वे पुराने दौर के निष्क्रिय आडियंस की तुलना में अपने अधिकारों को लेकर सक्रिय आडियंस है।ह्[2] वैकल्पिक मीडिया के आंदोलन में सहभागी के रूप में नागरिक पत्रकारिता का दायरा निरंतर विस्तृत होता जा रहा है। मोहन जयपाल नागरिक पत्रकारिता की अवधारणा को बताते हुए लिखते हैं- ह्नागरिक पत्रकारिता से अभिप्राय साझेदारी पर आधारित एक ऐसी पत्रकारिता से है जिसमें आम नागरिक स्वयं सूचनाओं के संकलन, विशेशण, रिर्पोटिंग ओर उनके प्रकाशन-प्रसारण की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।ह्[3] एक तरह से नागरिक पत्रकारिता आम व्यक्ति का मीडिया में हस्तक्षेप और वैकल्पिक मीडिया को गति देने की भी पहचान रखती है।

नागरिक पत्रकारिता प्रत्येक नागरिक को पत्रकार बनाने की बात पर प्रारंभ होती है। मुख्यधारा के मीडिया द्वारा उपेक्षित होने पर आम नागरिक नए मंचों का निर्माण करता है। इन नए मंचों पर 'गेटकीपर' संपादक की भूमिका खत्म सी हो जाती है। एक स्वस्थ लोकतंत्र के निर्माण में स्वच्छ नागरिक पत्रकारिता ज्यादा सहायक होती है। शेन बाउमैन ओर क्रिस विलिस इसे लोकतंत्र की मांग मानते हैं- ह्नागरिकों की इस भागीदारी का उद्देश्य स्वतंत्र, विश्वसनीय, तथ्यपूर्ण, व्यापक और प्रासंगिक सूचनाएँ मुहैया कराना है जो कि लोकतंत्र की मांग होती है।ह्[4] पत्रकारिता की सीमा में निरंतर होता विस्तार आम नागरिक को सुविधा देता है कि वह आसपास की क्लिप बनाएँ, घटनाओं और तथ्यों का ब्यौरा एकत्र करें और उन्हें लिखकर या बोलकर अन्य लोगों तक पहुँचाए। ऐसे अनेक उदाहरण अब हमारे पास मौजूद हैं जिनसे पता चलता है कि नागरिक पत्रकारिता अपना कार्य बखूबी निभा रही है। सामाजिक जवाबदेही उसे नए मुकाम तक ले जा रही है। उसकी क्लिपिंग के आधार पर न्यूज निर्माण हो रहा है।

संचार के क्षेत्र में तेजी से हो रहे विकास के कारण परिवर्तन का स्वर सुदूर क्षेत्रों तक पहुँचा है। विशेषज्ञों का मानना है कि पत्रकारिता का झुकाव शहरीकृत रहा है। परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तन ने आम नागरिकों को जागरूक किया है। शहर के साथ-साथ गाँवों में भी तकनीक की दस्तक ने आम नागरिकों को मीडिया से जोड़ा है। अब आम नागरिक पत्रकार बनकर अपने क्षेत्र की समस्याओं को बताने का प्रयास कर रहे हैं। वस्तुत: चहुँमुखी विकास के लिए प्रत्येक नागरिक को अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। नागरिक पत्रकारिता की अवधारणा के मूल में यही है। समस्याओं को जानना, समझना और स्थितियों को सबसे अवगत कराना नागरिक पत्रकारिता का ध्येय है। इसमें आम नागरिक पत्रकार की भूमिका निभाते हैं। मीडिया की पारदर्शिता और उसकी

विश्वसनीयता को बरकरार रखे जाने के लिए भी नागरिक पत्रकारिता को धन्यवाद दिया जाना चाहिए। नागरिक अब अपनी भूमिका को पहचानकर उस नवीन मंच का भरपूर इस्तेमाल करने लगे हैं। इस सन्दर्भ में मीडिया पर नजर रखने वाला ब्लाग 'वीर-अर्जुन' पत्रकारिता के लिए नागरिक पत्रकारिता को महत्वपूर्ण मानता है- ह्आज का दर्शक या पाठक अपनी भूमिका को बेहतर समझने लगा है। लैटर टू एडीटर या हाँ या ना के संदेश भेजने से आगे निकलकर वह किसी भी मुद्दे पर अपनी राय देने के लिए सक्रिय हो गया है। अब एक आम आदमी सूचनाओं को हथियार के तौर पर प्रयोग करने में सक्षम है।ह्[5] यह सच है कि सूचना के अधिकार ने नागरिक पत्रकारिता को सशक्त बनाया है। इस अधिकार के प्रयोग से 'व्हिसल ब्लोअर' अनेक तरह की लाभदायक एवं सामुदायिक हित की जानकारी लेकर सम्बन्धित विभागों या संस्थाओं की कमजोरियों को उजागर कर रहे है। मध्यप्रदेश का व्यापम घोटाला, महराष्ट्र का आदर्श सोसायटी घोटाला इसी तरह के मामले हैं। कई बार तो एक सामान्य नागरिक की पोस्ट की गई फोटो या सूचना से कार्य की गति में तीव्रता देखी गई है। इस तरह के परिणामों से आम नागरिक का उत्साहवर्धन होता है। वह और ज्यादा सक्रिय होकर व्यवस्था की सच्चाई को सामने लाने में सक्रिय हो जाता है।

पत्रकारिता प्रारंभ से ही चुनौतियों भरा क्षेत्र रहा है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक चुनौतियों का मुकाबला करने की बदौलत ही आज पत्रकारिता अपने वर्तमान स्थान तक पहुँची है। अनेक तरह के आन्दोलनों एवं जनमत को तैयार करने में पत्रकारिता की अहम भूमिका रही है। पत्रकार की स्थिति पर बात करते हुए डॉ. रेणुका नैयर लिखती हैं- ह्एक पत्रकार सक्रिय रूप से समाज के प्रजातांत्रिक विकास के लिए विचार विनिमय द्वारा सामाजिक संक्रमण के लिए वातावरण तैयार करता है। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए भी वातावरण तैयार करता है ताकि निरस्त्रीकरण तथा राष्ट्रीय विकास संभव हो सके। पत्रकार को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, घोशणाओं व निर्णयों के प्रासंगिक प्रावधानों की जानकारी होनी चाहिए।ह्[6] रेणुका जी का कथन वर्तमान संदर्भो में समीचीन है किन्तु स्थानीय या क्षेत्रीय विकास के बिना राष्ट्रीय विकास की बात बेमानी है। मुख्यधारा का मीडिया राष्ट्रीय महत्व के विषयों को महत्ता देता है। इससे स्थानीय सार पर या कहें तो मीडिया के दायरे से अलग क्षेत्र उपेक्षित रह जाता है। ऐसे क्षेत्र के लोगों में जब सामुदायिक चेतना जन्म लेती है तो वे यथायोग्य तरीके से अपने आप एवं विवेचित क्षेत्र को सामने लाने का उद्यम करने लगते हैं। स्थानीय स्तर पर इससे उनमें पत्रकारीय गुण आना स्वाभाविक लगता है। शहरी स्तर पर प्रत्येक तकनीकधारी व्यक्ति मानवीय गुणों के अनुसार पत्रकार रूप धारण किए रहता है। मीडिया, सोशल मीडिया पर उसकी 'वर्चुअल उपस्थिति' इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण भी है।

नागरिक पत्रकारिता का मूल उद्देश्य किसी भी व्यक्ति के विचार को सामने लाना भी है। वह अपने आंतरिक भावों के संधर्ष को, द्वन्द्व को बाह्य जगत में स्पष्ट करने की इच्छा रखता हो। जरूरत बस एक 'प्लेटफॉर्म' की है जो आज की यांत्रिक दुनिया में दुलर्भ कार्य नहीं है। आम पत्रकारिता के विलग इसमें किसी डिग्री की भी आवश्यकता नहीं है। आपकी कलम, आपका फोन, आपका कैमरा या रिकॉर्डर ही आपके संसाधन हैं जो इसमें आपकी सहायता कर सकते हैं। भरपूर इच्छाशक्ति और समुचित विकास हेतु प्रतिबद्ध कोई भी आम नागरिक इनका इस्तेमाल करके भावी पत्रकारिता को नयी दिशा दे सकता है। सूचना का अधिकार जैसा कानून इसमें सहायक की भूमिका निभा सकता है। एक सक्रिय एवं जागरूक नागरिक लोकतंत्र में नागरिक पत्रकारिता के माध्यम से सकारात्मक एवं क्रियाशील भूमिका का निर्वाह कर सकता है। कहा जा सकता है कि आने वाले समय में अगर हम सब अपने उत्तरदायित्व का पालन ईमानदारीपूर्वक करने लगे तो नागरिक पत्रकारिता सामाजिक जीवन में एक बड़ी भूमिका निभा सकती है। लोकतंत्र में सामाजिक संवाद अत्यंत आवश्यक है, इसे नागरिक पत्रकारिता सीमित क्षेत्र में ही, लेकिन संभव बनाती है।

सोशल मीडिया की लोकप्रियता ने नागरिक पत्रकारिता को उड़ान का अवसर दिया है। हालांकि नागरिक पत्रकारिता पर अनेक तरह के आरोप लगाए जाते रहे हैं, किंतु अपनी सकारात्मक पहल से इसके उन सवालों का जवाब भी दिया है। तथ्य, स्पष्टता, संतुलन, वस्तुगत, अश्लीलता, व्यक्तिगत हमले, अतिहिंसा, भ्रामक, अफवाह आदि सन्दर्भों में नागरिक पत्रकारिता शिकायतों के केन्द्र में है। संपादक का न होना उसके लिए जिम्मेदार माना जाता है। इस सबके बावजूद मेरा तो यही मानना है कि नागरिक पत्रकारिता का ज्यों-ज्यों विकास होगा, प्रचार-प्रसार होगा सभी शिकायतें न्यून होती जाएगी। उसकी उड़ान और ऊँची होती जाएगी और वह अपने

मकसद में कामयाब हो पाएगा। नागरिक पत्रकारिता की सफलता का एक उदाहरण ह्सी.जी. नेट स्वरह्व है जो आदिवासी इलाकों कर समस्याओं को हमारे समक्ष लाता रहा है। अंत में यही कहाना चाहता हूँ कि सरकारें भी नागरिक पत्रकारिता को प्रोत्साहित करे जिससे पत्रकारिता अपने वास्तविक स्वरूप में लौट सके और अपने पर लग रहे आक्षेपों को जवाब दे सके। एक स्वस्थ लोकतंत्र हेतु नागरिक पत्रकारिता का विकास परमावश्यक है।

संदर्भ सूची

1. जनसत्ता, सम्पादकीय, पृ, - 12 मार्च 1997
2. आनंद प्रधान, asbmassindia.blogspot.com 31 जन. 2012
3. मोहन जयपाल, mohanjaipla.610GSpot.com, 12 oct., 2015
4. शेन बाउमैन, क्रिस विलिस, बी मीडिया: हाउ आडियंसेज आर सेंपिंग द फ्यूचर ऑफ न्यूज एंड इन्फोरमेशन
5. 'वीर अर्जुन' ब्लॉग, 24 अक्टू, 2013
6. डॉ. रेणुका नैयर, ग्रामीण क्षेत्र की पत्रकारिता, हरियाणा साहित्य अकादमी, हरियाणा पृ. 127-128, सं. 2002

हरविजय महाकाव्य में चित्रित सामाजिक मान्यताएँ : एक अध्ययन

डॉ० रेनू शुक्ला

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

सारांश

साहित्य समाज का दर्पण है प्रत्येक कवि की कृति पर तत्कालीन वातावरण कार्य एवं परिस्थितियां का प्रभाव पड़ता है। भारतीय समाज में आश्रम-धर्म का विधान किया गया है। जीवन के मर्म को हृदयंगम करके ही आश्रम व्यवस्था को विकसित किया गया है। मनुश्य की आयु का समय सौ वर्ष मानते हुए इन सौ वर्षो को चार आश्रमों में समविभक्त किया गया है- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। स्त्रियों की स्थिति किसी भी देश की सभ्यता का सच्चा मापदण्ड है। पाश्चात्य देशों के सर्वथा विपरीत भारत में पहले तो स्त्रियों की दशा परम समुन्नत थी। आश्रम व्यवस्था, वर्श व्यवस्था, आर्शीवाद, अतिथि सत्कार, सदाचार, विवाह, समाज में स्त्री सम्मान आदि का अध्ययन किया गया है। इसलिए किसी काव्य का सामाजिक अध्ययन करते समय उसमें वर्णित तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियॉ एवं परंपरागत मान्यताओं का निरूपण आवश्यक है।

शब्द कुन्जः चित्रित, सामाजिक, मान्यताएँ, अनुशीलन, समाहित, आख्यान ...... इत्यादि।

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण है प्रत्येक कवि की कृति पर तत्कालीन वातावरण कार्य एवं परिस्थितियां का प्रभाव पड़ता है। कवि जिस समाज में रहता है उसका शिष्ट एवं निर्मल लोक शास्त्र का ज्ञाता भी होता है। लोकशास्त्र आदि के अनुशीलन से प्राप्त हुई निपुणता के आधार पर ही वह काव्य में अपने भावों को समाहित करता है। इसके साथ ही कवि की भणिति भूत वर्तमान एवं भविश्य का सम्यक् रूपेण सौन्दर्य मण्डित वर्णन उपलब्ध रहता है। सत्य यह है कि निपुण कवि अतीत के जिस आख्यान को अपनी कृति का कथानक बनाता है। उसमें स्वाभाविकता सजीवता एवं पूर्णता लाने के लिए प्रयास करता है। परन्तु सत्य यह है कि कवि जिस समाज में रहता है उससे अश्वमेव प्रभावित होता है। यही कारण है कि काव्यानुशीलन से कवि एवं तत्कालीन जीवन विषयक प्रत्येक पक्ष यत्र-तत्र प्रतिबिम्बित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है एवं किसी काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन करते समय उसमें वर्णित तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं परम्परागत मान्यताओं का निरूपण आवश्यक है।

आश्रम व्यवस्था

भारतीय समाज में आश्रम-धर्म का विधान किया गया है। जीवन के मर्म को हृदयंगम करके ही आश्रम व्यवस्था को विकसित किया गया है। मनुश्य की आयु का समय सौ वर्ष मानते हुए इन सौ वर्षो को चार आश्रमों में समविभक्त किया गया है- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। महाभारत के अनुसार आश्रम व्यवस्था रूपी चार पदों वाली सीढ़ी है जो ब्रह्म की ओर क्रमशः ले जाती है। जो इस सीढ़ी पर चढ़ने में समर्थ होकर चढ़ जाते हैं वह अन्त में ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

चतुश्पदी हि निः ब्रह्मण्येशा प्रतिष्ठता
एतामारुह निः श्रेणी ब्रह्मालोके महीयते।

ब्रह्माचारी ग्रहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुक।

यथोक्तचारिण: सर्वे गच्छति परमा गतिम्।।

ब्रह्मचर्य आश्रम में शिश्य गुरु के सानिध्य में रहकर संयम के साथ सद्‌गुणों को विकसित करता है। हरविजय महाकाव्य के सम्यक् अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि- तत्काल समय में आश्रम व्यवस्था का परिपालन पूर्णरूपेण किया जाता था।

हरविजय महाकाव्य का प्रारम्भ ही शिव और पार्वती के सुखमय जीवन से प्रारम्भ होता है-

यस्यांरंतेशुपृथुपीननितम्बविम्ब,

शोभा स्फद्दशनपंक्तिकृशांगयष्टि:।।

कुर्मीव पुश्पधनुश: प्रियपाणिजाग्र-

कोणावमर्शमधुरक्वणितांगनासीत्।।[1]

दिवसावसन वर्णन[2], चन्द्रोदय वर्णन[3], गौरीश्वर देहार्ध वर्णन[4], समुद्रोल्लास वर्णन[5], प्रसाधन वर्णन[6], दूती संकल्प वर्णन[7], पान गोष्ठी वर्णन[8] में गृहस्थ जीवन के प्राय: समस्त सोपानों का विधिवत चित्रण हुआ है।

हरविजय महाकाव्य कालीन समाज में वानप्रस्थ आश्रम का अत्यधिक महत्व था ऋषि मुनि वनों में निवास करते थे। भगवान शिव अपनी शिवा के साथ वन में निवास करते थे।

गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रम में जीवन व्यतीत करने के पश्चात मनुश्य मोक्ष प्राप्ति की लालसा करता है। हरविजय महाकाव्य में मोक्ष विषयक श्लोक प्राय: प्राप्त है।[9]

तत्वत्रयीकृतपदाष्टविभेद वर्ग,

नि:शेशवांगमयनिबन्ध वर्ण राशिम्।

अन्यत्र प्रयुक्त अपवर्ग शब्द[10] इन्हीं भावों के द्योतक है। सन्यासी प्राय: ऊँकार में ही परब्रह्म के दर्शन करते हैं-

ऊँ तत्सर्दित्यमितत्परमं तृतीय,

कायावमर्शगहनागमबोधिसंवित्।

आवेदवन्ध्यधशतिधूतधनानुपाशो

वागीश्वरो जननि स प्रणवो मुर्खते।[11]

हरविजय महाकाव्य में प्रयुक्त निर्वाण शब्द सन्यासियों के मोक्ष प्राप्ति का द्योतक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकवि राजानक रत्नाकर ने अपने हरविजय महाकाव्य में आश्रम चतुष्टय का सम्यक् रूपेण चित्रण किया है।

वर्ण व्यवस्था

ऋग्वेद काल के ऋषियों की जाति प्रथा के सम्बन्ध मेंव विशेष परिज्ञान नहीं था समाज में विविध कार्यों की सविधि परिणति हेतु वर्ण व्यवस्था का विधान है। किन्तु वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में मनुश्य के विभाजन से अवश्य परिचित थे-

ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीद मुखमासीद बाहुराजन्म: कृत।

उरु तदस्य यद् वैश्य पदभ्यो शूद्रो अजायत।।[12]

यजुर्वेद काल 100-800 ई0 पू0 में जाति प्रथा की सत्ता विद्यमान थी। महाभारत काल में ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि के कर्तव्यों का बोध मिलता है।[13]

वैदिक वर्ण-व्यवस्था का आज की जाति प्रथा को जटिल बनाने का उत्तरदायित्व अवश्य देते हैं। अन्त:करण की सरलता ज्ञान-विज्ञान और शास्त्रीय वचनों में विश्वास ये सभी ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

वर्ण चातुर्य अन्तिम वर्ण जो पुरुश के पाद प्रदेश से उत्पन्न हुआ है। उसे शूद्र की संज्ञा दी गयी है इसका कार्य प्राय: वर्णत्रयों की सेवा करना है। परन्तु उन्हें यदि कोई भी नाम व्यवसाय अनुसार दिया गया हो तो सेवक को शूद्र के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

हरविजय महाकाव्य के अनुशीलन से परिज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी। हरविजय महाकाव्य में वर्णित प्रस्तुत श्लोक वर्णास्थिति की ओर संकेत करता है-

वर्ण स्थितिमतीमर्थ्या दधद्रुचिरभास्वराम्।
गिरं च पादपच्छायां श्रियश्च चतुरस्त्रताम्।।[14]

तत्कालीन समाज चार वर्णो में विभक्त था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णो के अनुसार कार्यो का विभाजन था समाज में ब्राह्मण का सर्वोच्च था। वह ज्ञान प्रदाता था। हरविजय महाकाव्य में अनेक स्थलों पर श्रुतियों और वेदों का वर्णन है जिसका ज्ञान ब्राह्मण ही देता था।

हरविजय महाकाव्य में अनेक स्थलों पर व्यापारिता शब्द[15] का प्रयोग है जिससे यह स्पष्ट होता जाता है कि वैश्यों का सम्बन्ध मुख्यत: व्यापार से है और तत्काल समय में व्यापार अधिक होता था।

शूद्रों का मुख्य कर्तव्य प्राय: अन्य वर्णो की सेवा सुश्रुशा करना था, किन्तु तत्काल में प्रयुक्त-

असावलम्बि शबलं मृगचर्म विभ्र-
दाकाशदेशमिव लग्नमुदंशुतारम्।।[16]

मृगचर्म शब्द से यह स्पष्ट होता है कि उस समय शूद्र चर्म कर्म किया करते थे। स्पष्ट है कि तत्काल में वर्ण व्यवस्था अति सुद्रढ़ थी। महाकवि राजानक रत्नाकर ने हरविजय महाकाव्य में इसका सम्यक् रूपेण वर्णन किया है।

अभिवादन-

धर्म ग्रन्थों में अभिवादन का विशेष महत्व है-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोऽपि सेविन:।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विधा यशोबलम्।।[17]

आयु विद्या यश और बल की प्राप्ति के लिए अभिवादन और श्रेष्ठ जनों की सेवा अपरिहार्य है।

हरविजय महाकाव्य के प्रत्येक पात्र अनुशासित हैं। हरविजय महाकालीन समय में साश्यंग अभिवादन की प्रणाली प्रचलित थी-

प्राणिपत्य चैनमथ कांचनावनि
स्खलितोत्पतन्मधुमुक्तशेखर:।
अविदूरदेशनिहितानि भेजिरे,
तदनुज्ञया मणि शिला सनानि ते।।[18]

इसके साथ ही भगवत् स्तुति[19] वर्णन तथा चण्डी स्तोत्र[20] में की गयी स्तुतियां अभिवादन परक ही हैं-

अविशेषवृत्तिरहिमत्विषो यथा,
सकलेशु वस्तुशु विभा विजृम्भते।
तव नाथ निश्प्रतिद्यनिर्मलीमसस्थितिरस्तमोह,
तिमिरा मतिस्तथा।।[21]

महाकवि राजानक रत्नाकर कालीन समय में नतशिर होकर भी अभिवादन किया जाता था-

त्रिदश गणपतीं स्तान्विश्लथन्मौलिरत्न
प्रणतिनतशिरस्कान्संयुगे दृश्टभक्तीन्।
अभिमत वारलाभै: सोऽथ संभाव्य देव्या,
सह सुखमनुभावात्स्वां पुरीमध्यतिष्ठत्।।[22]

महाकवि राजानक रत्नाकर के समय में प्राय: लोग अभिवादन करके विनत भाव से ही अपनी बात प्रारम्भ करते थे-

सन्दर्शयन्नसकलेन्दुभृतो विदृक्षो

रित्यग्रत: प्रणतमौलिरसाववोचत्।।[23]

हरविजय महाकाव्य के सम्यक् अध्ययन से यह पूर्णतय: स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज अत्यन्त शिष्ट, परिष्कृत एवं पूर्ण संस्कृति से युक्त था। सभी वर्ग अभिवादन के माहात्म्य एवं ज्ञान से पूर्ण हैं।

अतिथि सत्कार

"अतिथि देवा भव"

भारतीय संस्कृति उद्घोषणा परम्परा में अतिथि का अति वैष्ठ्यि पूर्ण महत्व है। अतिथि सत्कार हमारीअपनी परम्पर है जिससे श्रेष्ठ जनों से अक्षुण्य तप आशीर्वाद के रूप प्राप्त होता है। कठोपनिषद् की कथावस्तु ही अतिथि सत्कार का आश्रयण है। हरविजय महाकाव्य में जिस समय भगवान शिपव के समीप अन्धक असुर से पीड़ित समुदाय पहुँचता है उस समय उनकी क्रियाएँ दृश्टव्य है-

इति समयमनैषत्तित्र तास्ता: स चेष्ठा

विदधदचलकन्याविप्रयोगानभिज्ञ:।

सुरपतिभिरभक्ष्णं रत्नपट्टाघ्रिपीठाम्

लुठित मणिकिरीटाष्टापदै: सेव्यमान:।।[24]

प्रस्तुत श्लोक अतिथि सत्कार का ही द्योतक है।

अतिथि को सूचित स्थान देने की परम्परा का परिपालन अन्धक के द्वारा किया गया है।

वल्लभैर्मुदमधुर्दमधुर्य मनोहत:।।[25]

इस प्रकार हरविजय महाकाव्य का प्रत्येक पात्र और प्रकृति अवसरानुकूल प्रत्येक आगन्तुक का स्वागत करती है।

आशीर्वाद

प्रत्येक जीव के ह्रदय में ब्रह्म का निवास है और अन्त:करण से नि:श्रीत प्रत्येक शब्द का अपना महत्व है इसलिए आशीर्वाद की प्राप्ति जीवन का महत्वपूर्ण क्षण है।

स्मृतियों एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण से जब हम व्यवहारिक पक्ष का अध्ययन करते हैं तो अभिवादन और आशीर्वाद का जीवन में अत्यधिक महत्व है। सामाजिक ससृश्टता के साथ ही पारिवारिक सुदृढ़ता का बिम्ब परिलक्षित होता है तथा तत्कालीन सामाजिक अभ्युन्निति का प्रतीक स्वरूप संस्कृति का परिज्ञान होता है।

हरविजय महाकाव्य में आशीर्वचन का प्रारूप प्राय: इस प्रकार है-

आशीविषा: स्फरतिकेसररुपघोर-

जिहवा वहन्ति विकचोत्पलदामलीलाम्।।[26]

हरविजय महाकाव्य कालीन समय में प्राय: लोक आशीर्वादर स्मित वदन औनर गम्भीर गिरा से दिया करते थे-

अथतानुवाच दशनांशु -

निर्झरस्त्रपितोष्ठपल्लवमिंदजगत्पति:।

नयनीरभार भर मन्थराम्बु-

दस्तनितातिडम्बरगभीरया गिरा।।[27]

हरविजय महाकाव्य में प्राय: आशीर्वाद स्वरूप कल्याणी गिरा से ही सिंचित किया करते हैं-

कल्याणी गुरमुत्रत्रस्टुं विरला एव जानते।

सत्यां रेखां विलिखितुं चित्रकर्म विदो यथा।[28]

सदाचार

जीवन अपने वैज्ञानिक संविधानकों में संविभक्त है। सामाजिक, धार्मिक विधिविधानों का अपना पृथक वैशिष्ट्य है यही कारण है कि भारतीय जीवन जन्म से मृत्यु पर्यन्त विधिक संघटकों में सन्निबद्ध है। इन नियमों के आधार पनर जीवन के स्वास्थ्य का अनुभव करना ही सदाचार है। किरातार्जुनीयम् में महाकवि भारवि ने वैशिष्ट्यता को को विस्तारित करते हुए भारतीय मनीषा की सम्पूजा की है। भारतीय धरणा की है।

हरविजय महाकाव्य के सम्यक् परिशीलन से ज्ञात होता है कि महाकवि राजानक रत्नाकर द्वारा वर्णित सदाचरण की सार्वभौमिकता अनुकरणीय है-

पर्यन्तवर्तिपरिपाण्डुरपत्रपक्ति-

पद्यासनासनकुशेशयकोषचक्रम।

युष्मान्युनातु दषदुद्धतदुग्ध सिन्धु-

वीचिच्छटावलयितामरशैललीलाम्।[29]

मंगलाचरण

प्राचीन काल से विध्नों के विनाश तथा मंगल भावों के आदान के लिए मंगलाचरण विधान होता आ रहा है-

विध्न विनाशाय मंगलाय च मंगलमाचरणीपम्

सूक्ति आज भी विद्वत्समाज में प्रचलित है। काव्य में नान्दी पाठ और भरतवाक्य इसी भावना के द्योतक हैं। साथ ही काव्य के मध्य में भी देव-देवी स्तुतियों में यही भावना प्रस्फुटित होती है।

महाकाव्य में मंगल भावना से ओत-प्रोत दृश्टव्य है यह श्लोक-

कण्ठश्रियं कुवलयस्तवकाभिराम

दामानुारिविकटच्छविकालकूटाम्।

विभ्रत्सुखानि दिशतादुपहारपीत

धूपोत्थधूममलिनामिव धूर्जटिव:।।[30]

इसी प्रकार शिव स्तुति[31] और चण्डीस्तोत्र[32] में मंगबलाचरणां का विधिवत् प्रयोग स्तुति परक शैली में किया गया है। हरविजय महाकाव्य में अनेक मांगलिक कार्य किये जाते रहे जो सौभाग्य सूचक होते रहे हैं।[33] पान गोष्ठी[34] और संभोग वर्णन[35] अनेक ऐसे स्थल हैं जो मंगलार्थ प्रतिपादक हैं जिनमें भौतिक जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक प्रकार की मंगल कामनाएं की गयी हैं।

सम्मान

देव द्विज नृप एवं अपने ज्ञान वृद्ध, वयो वृद्ध, अनुभाव वृद्ध व्यक्तियों का सम्मान करना अनिवार्य है अर्थात् भारतीय संस्कृति के अपरिहार्य है एतद्रिक्त मर्यादा का उल्लंघन और अव्यवहारिकता ही निदर्शना होगी जो भारतीय समाज के लिए दूषण है।

शास्त्रोक्त एवं व्यवहार विदुक्त जनों के द्वारा निर्धारित भारतीय सम्मान प्रक्रिया विश्व-विश्रुत तथा उपादेय है जो श्लाध्य है और ग्राहय भी-

हरविजय महाकाव्य कालीन समाज में सम्मान की पराकाष्ठा अति व्याप्त थी[36] अत: 15 वें सर्ग में सम्मान की विवेचना व्याप्त है।

कुटुम्ब माहात्म्य

वैदिक काल से लेकर आज तक परिवार का अत्यधिक माहात्म्य रहा है। उस समय संयुक्त परिवार होते थे। परिवार का मुख्यिा पिता माना जाता था, अर्थात् पितृ प्रधान परिवार होते थे अत: पिता की आज्ञा ही सर्वमान्य थी। पुत्र-पुत्रियों के लिए उसे अलघ्य समझा जाता था। परिवार में एकता की भावना अत्यधिक व्याप्त थी ओर परिवार की श्रेष्ठता पारस्परिक समरसता में जिससे स्त्रियों की दशा परिवार में अति उच्च कोटि की सिद्ध हो गयी और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना सर्वत्र व्याप्त थी।

हरविजय महाकाव्य कालीन समाज में एकाकी परिवार अथवा विघटित परिवार का संकेत कहीं उपलब्ध नहीं होता और कुल तथा वृत पालन में लोगों की अटूट निष्ठा थी।

आबद्धक्रमहरिकम्प्यमानसाला सा
रामाभिगमसमाकुला तदानीम्।
लंकेव स्फुटशुकसारणा वनोर्वी
वभ्राजे घनरुचिराक्षसानुविद्धा।।[37]

पति-पत्नी सम्बन्ध

आदिकाल से ही पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान है और उसे आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। ऋग्वेद का यह मंत्र इसी भावना का प्रतीक है-

सम्राज्ञी श्वश्रुरै भव सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृशु।।[38]

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी पति का आधा भाग है जब तक पति विवाहित नहीं होता और पुत्र नहीं उत्पन्न करता तब तक वह अपूर्ण रहता है।[39] वैदिक धारणानुसार गार्हपत्य जीवन के लिए पत्नी का अपेक्षित है।[40]

दृश्टव्य है महाकाव्य का यह श्लोक-
श्लिष्टोनयो: किमु भवेदुत नैव संधि
र्देहाध्रयोर्धटितयोरिति तत्परीक्षाम्।
आरिप्सु यस्य रभसादिव चक्षुरर्ध
नारीश्वरस्य निरियाय लटापट्टात्।।[41]

शोड्स संस्कार

संस्कर, संस्कृति और संस्कृत तीनों का एक ही मूल है- संवारना शुद्ध करना।

संस्कारशब्द ही निष्पत्ति सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से धञ् प्रत्यय करने से होती है। संस्कार का अर्थ है- धार्मिक, विधि, विधान, कृत्य जो आत्मिक सौन्दर्य के प्रतीक हो, संस्कार पद से शिक्षा, संस्कृति प्रशिक्षण, शुद्धि परिष्करण, आभूषण अर्थ भी ग्रहीत होते हैं।

आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशय विशेष: संस्कार।।
संस्कार शब्द का आगम यज्ञांगभूत पुरोऽाशदि की विधिवत् शुद्धि से-
प्रोश्रणादिजन्य संस्कारों यज्ञाग पुरोऽाशेस्वित दृश्यचर्म-

अद्वैत वेदान्ती जीव पर शारीरिक क्रियाओं में मिथ्या आरोप को संस्कार कहते हैं जिससे सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विचरण एवं अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

भारत वर्ष में संस्कार केवल हिन्दू धर्म के नहीं अपितु अन्य धर्म एवं सम्प्रदायों के महत्वपूर्ण अंग रहे हैं। विगत अनेक शताब्दियों से संस्कार धार्मिक तथा सामाजिक एकता के प्रभावकारी माध्यम रहे हैं।

हिन्दू-संस्कारों का वर्णन भेदों के कुछ सूक्तों में कतिपय ब्राह्मण ग्रन्थों में गृहा धर्म सूत्रों में उपलब्ध होता है। गृहासूत्र साधारणत: विवाह में प्रारम्भ कर समावर्तन संस्कार पर्यन्त दैहिक संस्कारों का निरूपण करते हैं। गृहासूत्र में 12 पारस्कर बोधायन एवं वाराह ग्रहासूत्र में 13 वैखानस गृहासूत्र में 18 संस्कारों गौतम धर्म सूत्रों में 40 संस्कारों का निर्देश मिलता है।

इस धरा पर मानव का जन्म होना और संस्कारों का एक नया रूप है और मानव शरीर को संस्कारों से अविरित करता है। जन्म से मरण तक का संस्कार हमारे हिन्दू धर्म में है।

मनुस्मृति में 13 संस्कारों का माना याज्ञवल्क्यस्मृति में केशान्त छोड़कर मनुस्मृति के शेष 12 संस्कारों का विधान है।

परवर्ती स्मृतियों में 16 संस्कारों का वर्णन है। जिन 16 संस्कारों का विशेष प्रचलन रहा है। यथा दृश्टव्य है 16 संस्कारों का वर्णन–

1. गर्भाधान संस्कार
2. पुंसवन संस्कार
3. सीमन्तोत्रयन संस्कार और यह तीन संस्कार जन्म से पूर्व ही किये जाते हैं।
4. जातकर्म संस्कार
5. नामकरण संस्कार
6. निष्क्रमण संस्कार
7. अन्नप्रशासन संस्कार
8. चूड़कर्म संस्कार
9. कर्णवेध संस्कार
10. विद्यारम्भ संस्कार
11. उपनयन संस्कार
12. वेदारम्भ संस्कार
13. केशान्त एवं गोदान संस्कार
14. समावर्तन संस्कार
15. विवाह संस्कार
16. अन्त्येष्टि संस्कार

दृष्टव्य है संस्कारों का वर्णन निम्न क्रमानुसार

1. जन्म से पूर्व संस्कार (प्रथम तीन)
2. बाल्यावस्था के संस्कार (4 से 9)
3. शैक्षणिक संस्कार (10 से 14 तक)
4. विवाह संस्कार (15)
5. अन्त्येष्टि (16)

संस्कारों का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रयोजन तो मानवीय विकास की पूर्ति ही है। श्रेष्ठ संस्कारों का सद् आचरण से मानव शुभ एवं आचरण करता हुआ समस्त हिन्दू संस्कारों में इन अमंगल जनक तथ भूत-प्रेत पिशाचों के निराकरण के लिए नाना प्रकार की स्तुतियाँ एवं अनुष्ठान सदा से ही होते रहे हैं। इन विशेष अवसरों पर मनुश्य हर्ष शोक और दु:ख आदि को भी व्यक्त करने के लिये इन संस्कारों का आयोजन कभी-कभी करते हैं। इन संस्कारों के गम्भीर सांस्कृतिक प्रयोजनों का भी विद्वानों ने निर्देश किया है।

मनुस्मृति के कथनानुसार

जप-यज्ञ महायज्ञ आदि के वैदिक विधि विधानपूर्वक करने से मानव शरीर व्रहमीय हो जाता है।

स्वाध्यायेन वृतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राहनीयं क्रियते तनुः।।[42]

मानव शरीर स्थूल हो एवं सूक्ष्म शरीर की मानसिक व शारीरिक शुद्धि के लिए विधिवत क्रियाएँ की जाती हैं। ऋषियों और महर्षियों ने संस्कार नाम दिया है।

संस्कारों का उद्देश्य मनुश्य को अभ्युदय तथा माक्ष के लिए पूर्ण समर्थ बनाता है। संस्कार मनुश्य की आन्तरिक शक्तियों का विकास कर उसे पूर्ण बनाते हैं। पारिवारिक जीवन में संस्कार का विशेष स्थान है। व्यक्ति के द्वारा प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है। इस प्रकार किये गये संस्कारों द्वारा जीवन का योग्य गुणपूर्ण परिष्कृत तथा व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त होता था। वही व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना भी इनका उद्देश्य था। जिससे मानव मानवीय तथा अति मानवीय शक्तियों के अनुरूप अपने को निर्मित कर सके।

संस्कारों का विधान विकास और योजना इन सभी की पूर्ण रूप से यदि हृदयंगम किया जाये तो मानव का जीवन पूर्ण रूप से सुसंस्कृत बन सकता है। मानव मात्र के स्वास्थ्य आयु तथा अनुशासित जीवन के निर्माता भी संस्कार हिन्दू संस्कृति का चरित्र एवं नैतिकता का पूर्णतया विकास तथा पोषण होता है।

संस्कारों के प्रतिनिष्ठा की भावना अटूट होती है और मानवीय जीवन की आत्मवादी और भौतिक धारणाओं के बीच मध्य मार्ग का कार्य करते हैं। संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते हैं। हिन्दु का विश्वास था कि संस्कारों के अनुष्ठानों से दैहिक बन्धनों से मुक्त होकर मृत्यु सागर को पा कर लेते हैं। न्यायिक भावों को व्यक्त करने की आत्मव्यंजक शक्ति को संस्कार कहते हैं-

सविधि संस्कारों के अनुष्टान से संस्कृति व्यक्ति को विलक्षण एवं अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

शास्त्रीय दृष्टि से संस्कार गृहसूत्रों की विषय-सीमा के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। संस्कार शब्द का प्रयोग उसके वास्तविक अर्थ में प्राप्त नहीं होता है। पंचम संस्कार तथा पाक संस्कार का उल्लेख करते हैं जिसका अभिप्राय है यज्ञ, भूमि का मार्जन अथवा शोधन।

संस्कार से भी शरीर पर आद्यान किया जा सकता है। प्रत्येक द्विज को स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर की शुद्धि के लिए शोडश संस्कार करने चाहिए जिनसे इस लोक एवं परलोक में पवित्रता की प्राप्ति होती है।

भारतीय पुनर्जन्मवाद में आस्था रखकर एक भारतीय इस संस्कार को करता है। क्योंकि परलोक में सुख एवं कल्याण की शक्ति के लिए यह संस्कार आवश्यक माने गये हैं।

संस्कार व्यवहार में मानव जीवन के निर्माण व विकास की क्रमबद्ध योजना है ये संस्कार जीवन के परिस्कार एवं व्यक्तित्व के विकास में भी अपना योगदान करते हैं।

संस्कार शिक्षा दान का एक वैज्ञानिक प्रयोग है, महाभारत के प्रमुख पात्र अभिमन्यु ने अपनी माँ के पेट में चक्रव्यूह का ज्ञान एवं रचना प्राप्त कर लिया था। संस्कारों का ही क्रियान्वयीकरण होता है। निश्चय ही संस्कार मनुश्य को वास्तविक अर्थों में मानव बनाने का काया करते हैं।

हरविजय महाकाव्य में महाकवि राजानक रत्नाकर ने भी संस्कारों का वर्णन किया है-

प्रेखंत्फणामणिशिखारुणितोपवीत-

सूत्राधिकारभुजगः सदसीन्दुमौलेः।

निर्धौतधातुकपिलीकृतानिर्झराद्रि-

लीलां दधद्वचनमित्थमुदाजहार।।[43]

विवाह

विवाह समस्त संस्कारों में गौरवशाली महत्वपूर्ण माना जाता है इस संस्कार द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश होता है। यहाँ से व्यक्ति का समाजीकरण होकर उसके उत्तरदायित्व पूर्ण हो व्यक्तित्व का प्रारम्भ होता है। इसे एक यज्ञ का रूप मानकर ऐसा समझा जाता थ कि जो व्यक्ति विवाह करके गृहस्थ जीवन में प्रवेश नहीं करता वह अयज्ञिय अथवा यज्ञहीन कहा जाता था।

विवाह वैयक्तिक न होकर एक परिवारिक विषय था और वास्तव में उस समय वंश की अक्षुणता को बनाये रखने के लिए सन्तानोत्पत्ति करना ही विवाह का प्रमुख लक्षण था- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इसी संस्कार पर निर्भर करते थे।

विवाह शब्द का अर्थ व्युत्पत्ति की दृष्टि से ले जाना होता है उद्वहनम् नयनम् अर्थात् ले जाना। अतः विवाह का अर्थ-वधू को उसके पिता के घर से विशेष रूप में ले जाना विवाह के लिए उद्वाह परिणय, पाणिगृहण आदि शब्द भी प्रचलित थे अतः विवाह में पति-पत्नी के इस जन्म का ही नहीं अपितु जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध जुड़ जाता है।

विवाह के प्रकारों के सम्बन्ध लगभग सभी शास्त्रकारों ने आठ प्रकार के विवाह बताये हैं। जिनमें से प्रथम चार सभी वर्णो के लिए हितकारी, उत्तम और धर्मानुकूल है। शेष चार निम्न कोटि के माने गये हैं। ब्राह्मण वर्ण प्रथम 6 प्रकार के विवाह, क्षत्रिय वर्ण के लिए अन्तिम चार प्रकार के विवाह प्रशस्त माने गये हैं।

विवाह के प्रकार

1. ब्रह्म विवाह
2. आर्ष विवाह
3. प्रजापत्य विवाह
4. आसुर विवाह
5. गान्धर्व विवाह
6. राक्षस विवाह
7. पैशाच विवाह

हरविजय महाकाव्य महाकवि राजानक रत्नाकर ने शिव और पार्वती के विवाह को संसूचित किया है।[44]

वेष-भूषा

प्रगति की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मानव ने अपने व्यक्तित्व को अधिकाधिक आकर्षक बनाने के लिए विविध वस्त्राभूषणों एवं श्रृंगार प्रसाधनों का निर्माण किया और कर रहा है।

वेशभूषा के द्वारा ही समाजिक सम्पन्नता का बोध होता है। भारतवर्ष में तो ;तुओं के अनुकूल वस्त्र पहनने का विधान है। हेमन्त ;तु में दुकूल की साड़ी और सूक्ष्म अंशुक का स्तन पर स्त्रियाँ नहीं धारण करती थीं।[45] शिशिर मं मोटे वस्त्रों को पहनने का उल्लेख है।[46] रात्रि और दिन के लिए वस्त्र अलग-अलग होते थे।[47] बसन्त में कुसुम्भी रंग की साड़िया पहनी जाती थीं।[48] जो वस्त्र सहजता से पहनने योग्य हों उन्हें सुवसन कहा जाता था।[49] धोती पहनने वाली कलात्मक शैली प्रचलित थी।[50] फटे वस्त्र पहनना चाहिए क्योंकि वस्त्रों के माध्यम से ही मनुश्य का सौजन्य दैदीप्यमान होता है।[51] शरीर के रंग के अनुरूप ही वस्त्र और आभूषण पहनने का विधान था।[52]

महाकवि राजानक रत्नाकर के समय में पट्टाशुंक का प्रयोग होता रहा है -

येनाभयं निर्जयनप्रमूर्तेर्विद्धेषिण: संयुकमूर्ध्नि दत्वा।
हराट्टहासच्छवि दिक्पुंरध्रीपटटाशुकं चारु यशो ग्रहीतम्।।[53]

तत्काल में लोग अधोवस्त्र और उत्तरीय धारण करते थे-

तार्क्ष्ये स्थितस्तत्कनकावदातपतत्ररश्मिच्छुरितोत्तरीयः।
सुरारिसेनादलितास्तदानीं चमूचरान्त्रस्वानथशाङ्‍र्गपाणिः।।[54]

श्रृंगार

भारत वर्ष में शरीर संस्कार करके उसे रमणीय बनाने की प्रथा आदि काल से ही प्रचलित है।[55] शरीर को स्नान्नादि द्वारा स्वच्छ रखना सुगन्धित पुष्पों का और चन्दन रस आदि का प्रयोग करना केश संवारना आदि प्रमुख था।

हरविजय महाकाव्य में त्रयविंशति सर्ग में प्रसाधन की महत्त का वर्णन किया गया है।

जिससे तत्काल में स्त्रियां अधोलिखित प्रसाधनों से अपने को मण्डित कर प्रिय की प्रतीक्षा करती थी-

चण्डातक[56], पावक[57], कांची[58], चरकभरण[59], हार[60], वलय[61], अधरराग[62], ताम्बूल[63], पत्रलेखा[64], कर्णपूर[65], अंजन[66], कस्तूरिका तिलक[67] चतुला तिलक[68], केशवाश[69], अंगराग[70] प्रभृति[71]।

इन प्रसाधनों से हरविजय महाकाव्य कालीन समाज की प्रशासन प्रियता का ज्ञान होता है।

रत्न एवं आभूषण

हरविजय महाकाव्य के सम्यक् परिशीलन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में प्रसाधन हेतु विभिन्न प्रकार के आभूषणों का प्रचलन था। अनेक आभूषणों से स्त्री-पुरुष सुसज्जित रहते थे। तथा स्त्रियों का आभूषणों के प्रति विशेष अनुराग था स्त्रियाँ कट प्रान्त में सुन्दर मणिजटित करधानी भी धारण करती थीं।

एतदर्थ हरविजय महाकाव्य में आभूषणों का विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया। स्त्रियाँ आम्रचूड़ा[72] और रत्न चूड़ा पहना करती थीं।[73] पुरुष ताम्र चूड़ा पहनते थे।[74]

स्त्रियाँ कनक श्रृंखला को अत्यधिक अभिरुचि के साथ पहनती थी-

ददर्शान्धिकमाबद्धमध्यं कनकशर्ऱ्खलैः।
नितम्बपरिवृत्रार्करश्मिरेखमिवाचलम्।।[75]

कांचन मेखला[76] का भी तत्काल में प्रचलन था।[77]

हरविजय महाकाव्य कालीन समाज में कुण्डवल[78] और मणि कुण्डलों का प्रचलन था।[79]

समाज में स्त्री सम्मान

स्त्रियों की स्थिति किसी भी देश की सभ्यता का सच्चा मापदण्ड है। पाश्चात्य देशों के सर्वथा विपरीत भारत में पहले तो स्त्रियों की दशा परम समुन्नत थी। किन्तु शनैः शनैः अवनत हो गयी। यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवताः[80] की भावना ने नहि स्त्री स्वातंत्रयमर्हति में परिणत होकर गतिरेका पतिनार्याः का स्वरूप ग्रहण करते हुए नारी को दासी तुल्य बना दिया।

महाकवि राजानक रत्नाकर कृत हरविजय महाकाव्य में तत्कालीन समाज में स्त्रियों की महनीयता को उपवंशहित किया गया है।

सर्वप्रथम महाकाव्य में स्त्री की महनीयता एवं शालीनता का वर्णन किया गया है।

एतद्र्थ -

जरठपंकबीजसमत्विषो मधु निपातुमभिप्रजगल्भिरे
मधुलिहो विरहे कृतादिखव्यवधयो वधयोकृतः स्त्रियः।।[81]

श्रृंगार भाव में भी स्त्रियों का भाव दर्शन तथा शारीरिक सौष्ठवोत्पन सौन्दर्य का अद्भुत वर्णन प्रस्तुत है-

स्पष्टप्रेंत्पक्ष्मशोभिरामैर्नेत्रैः।

स्त्रीणां दिच्क्षु कान्तिं किरदिः।

फुल्लन्नीलाम्भोरुहैश्च स्त्रवन्त्याः

संघर्षेण व्यावहासीव तेने।।[82]

शारीरिक सौष्ठव

शरीर आद्यं खलु धर्म साधनम् इस संसार में शरीर सर्वप्रिय है और इसका सौष्ठव शरीर का निधान है और परमावश्यक भी इसलिए शरीर सौष्ठव के प्रति प्रत्येक व्यक्ति को सजग रहना परमावश्यक है।

मेरे मतानुसार पुरुषार्थ चतुष्टम् को सम्पन्न करने का हेतु ही शारीरिक सौष्ठव है।

हरविजय महाकाव्य में दृश्टव्य है काव्य के विविध शारीरिक सौन्दर्य के विविध प्रसंगों के परिदृश्य-

कान्तिं रतान्तजनितां श्रत्थयन्ति यत्र

मषिक्पमन्दिरगवाक्षपथप्रविष्टाः।

अभ्यर्णवर्तिसुरनिर्झरिणीतरंग

भगानुसारशिशिरा मरुतोडडनानाम्।।[83]

इसी प्रकार शरीर यष्टि का संविधानक दृष्टव्य है इन श्लोकों में-

तस्यास्तदा रुचिरचन्दनवारिपंक

चर्चाकृतामिव विधूसरतां प्रमार्ष्टुम्।

खेदाभ्भासि पूतिसमुन्नमितप्रहर्ष

रोमांचराजिनि ममज्ज शरीरयष्टिः।।[84]

मानवीय शारीरिक सौष्ठव एक महनीय उपलब्धि है और उसमें समरसता का संविधानक परमावश्यक है।

मैत्री भाव

"सुख दुःख का साथी एवं जीवन का अभिन्न अंग है- मित्र"

इसीलिए सच्चा मित्र जीवन की अमूल्य उपलब्धि है इसी कारण इसकी आवश्यकता प्रतिपल प्रत्येक समाज में अपरिहार्य है।

हरविजय महाकाव्य भी इन्हीं भावों की सम्पुष्टि करता है प्रस्तुत श्लोक-

येऽध्यवात्सुरपि कांचनाचलम्

तेऽहितीव्रकटक व्रतीहिते।

प्रेम वभ्रुरिह सुभ्रुवां स्थिता हे मतार्य पटुचर्य तामहे।।[85]

उपसंहार

प्राचीनकाल से ही वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था आदि सामाजिक मान्यातायें भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू समाज के संगठन का एक प्रमुख आधार रही है इस व्यवस्था के अर्न्तगत समाज को चार वर्गो में विभक्त किया गया। भारतीय समाज में आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, आर्शीवाद, अतिथि सत्कार, सदाचार, विवाह, समाज में स्त्री सम्मान आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए किसी काव्य का सामाजिक अध्ययन करते समय उसमें वर्णित तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियॉं एवं परंपरागत मान्यताओं का निरूपण आवश्यक है। हरविजय महाकाव्य में चित्रित सामाजिक मान्यताएँ इस तथ्य को चरितार्थ करती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हरविजय - 19 सर्ग
2. हरविजय - 20 सर्ग
3. हरविजय - 21 सर्ग
4. हरविजय - 22 सर्ग
5. हरविजय - 23 सर्ग
6. हरविजय - 25 सर्ग
7. हरविजय - 26 सर्ग
8. हरविजय - 47/21, 29
9. हरविजय - हरविजय 47/56, 58, 105, 106, 146
10. हरविजय - 47/92
11. ऋग्वेद - 10/90/92
12. भारतीय संस्कृति पृष्ठ संख्या-311
13. हरविजय - 6/123, 17/35, 28/103
14. हरविजय - 16/9, 5/88, 48/12, 44/29
15. हरविजय - 39/7, 20/56
16. मनुस्मृति
17. हरविजय - 6/3
18. हरविजय - 6 सर्ग
19. हरविजय - 47 सर्ग
20. हरविजय - 6/16
21. हरविजय - 50/95
22. हरविजय - 39/3
23. हरविजय - 2/64
24. हरविजय - 3/7
25. हरविजय - 47/163
26. हरविजय - 6/4
27. हरविजय - 32/70
28. हरविजय - 1/3
29. हरविजय - 1/1
30. हरविजय - सर्ग 2 और 6
31. हरविजय - सर्ग 47
32. हरविजय - सर्ग 23, 39, 40
33. हरविजय - सर्ग 26
34. हरविजय - सर्ग 27
35. हरविजय - 15 सर्ग
36. हरविजय - 17/44

37. ऋग्वेद - 10/85, 46
38. शतपथ - 2/2/1/10
39. ऋग्वेद - 10/45/34, 5/3/2, 5/28/3
40. हरविजय - 1/62
41. मनुस्मृति - 3/28
42. हरविजय - 16/3
43. हरविजय - प्रथम सर्ग
44. ;तु सं0 - 4/3
45. ;तु सं0 - 5/2
46. ;तु सं0 - 5/14
47. ;तु सं0 - 6/5
48. ;तु सं0 - 9/97/50
49. चुल्लुवग्ग - 5/29/4
50. चरक सूत्र - 5/92
51. महापरिनित्वान सूक्त - 2/18
52. हरविजय - 9/8
53. हरविजय - 48/10
54. हरविजय - 23/3
55. हरविजय - 23/4
56. हरविजय - 23/5
57. हरविजय - 23/6
58. हरविजय - 23/8, 10
59. हरविजय - 23/13
60. हरविजय - 23/15
61. हरविजय - 23/15, 16
62. हरविजय - 23/19, 20, 21
63. हरविजय - 23/31
64. हरविजय - 23/34
65. हरविजय - 23/35
66. हरविजय - 23/36
67. हरविजय - 23/37/38
68. हरविजय - 23/40, 43
69. हरविजय - 1/11
70. हरविजय - 1/12
71. हरविजय - 47/55
72. हरविजय - 48/4
73. हरविजय - 47/55

74. हरविजय - 32/56
75. हरविजय - 5/71
76. हरविजय - 21/40
77. हरविजय - 32/49
78. हरविजय - 31/40
79. मनुस्मृति -
80. रामा0 अयोध्याकाण्ड सर्ग - 24
81. हरविजय - 18/61, 69, 40/15
82. हरविजय - 1/11
83. हरविजय - 25/64
84. हरविजय - 5/92

शालेय वातावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन

राहुल कुमार तिवारी

शोध छात्र, शिक्षा विभाग, डॉ.सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश

शालेय वातावरण शैक्षिक उपलब्धि का आधार होता है। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सबसे अधिक उसके शालेय वातावरण से प्रभावित होती है। शोध हेतु सुल्तानपुर जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र को अध्ययन हेतु परिसीमित किया गया है। जिसमें कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों को लिया गया है एवं 14 वर्ष से 16 वर्ष तक की आयु सीमा तक सीमित किया गया है। इस अध्ययन को पूरा करने के लिए शोध में **"सर्वेक्षण विधि"** का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध में न्यादर्ष के रुप में 120 अध्ययनरत् विद्यार्थियों का चयन किया गया है जिसमें 60 छात्र एवं 60 छात्राएं हैं। प्रस्तुत शोध में शोधार्थी द्वारा **के.एस. मिश्रा** द्वारा निर्मित (SEI-M) शाला वातावरण का प्रयोग किया गया एवं शैक्षिक उपलब्धि मापनी (C.A.T) के लिए **डॉ. पी.के. नायक** द्वारा निर्मित प्रश्नावली को प्रयोग में लिया गया है। परिणामस्वरुप शालेय वातावरण का स्तर जितना श्रेश्ठ होगा विषयगत शिक्षण सुधार में उतना ही अधिक उपयोगी होगा। विद्यालय प्रांगण में वे सभी आवश्यक संसाधन निहित होने चाहिए जिससे विद्यार्थियों को अनुकूल वातावरण, पठन-पाठन के लिये मिल सकें। शोधकर्ता द्वारा अपने शोध में ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों के शालेय वातावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

शब्दकुन्जी: शालेय, वातावरण, शैक्षिक उपलब्धि, विद्यार्थी.......... इत्यादि।

प्रस्तावना

शिक्षा का औपचारिक साधन विद्यालय है विद्यालय से संस्कार, संस्कार से मनुश्य मनुश्य सामाजिक विकास होता है। प्रत्येक राष्ट्र अथवा समाज की अपनी ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक, स्थिति परिस्थिति एवं समस्याएं होती है। परंपराएं होती है, आदर्श एवं संस्क्रति होती है। और इन्हीं के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था होती है ताकि वह इन सब का आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरण कर सके हस्तांतरण के लिए विद्यालय सर्वोत्तम साधन है विद्यालय में प्रधानाध्यापक एवं अध्यापक की सहयोगी प्रवृत्ति इस कार्य को संपन्न कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में अर्जित उपलब्धि शैक्षिक उपलब्धि के नाम से जाना जाता है जिसमें निर्धारित पाठ्क्रम होता है समान मानसिक योग्यता ना होने पर यह किताब में सीमाओं के कारण बालक अलग-अलग मायने में शैक्षणिक प्रगति करता है इस प्रगति व ज्ञान प्राप्ति को शैक्षणिक उपलब्धि कहा जाता है जिसके द्वारा शिक्षा का मूल्यांकन होता है। मूल्यांकन को परिभाशित करते हुए थार्नडाइक महोदय ने लिखा है जिस वस्तु का भी अस्तित्व है उसका किसी ना किसी मात्रा में अस्तित्व होता है और जो कुछ मात्रा में है उसे मापा जा सकता है। उत्तम शैक्षणिक उपलब्धि तथा आत्म प्रत्यय शिक्षक और सहपाठियों से संबंधित होते हैं।

अध्ययन का औचित्य

विद्यालय का वातावरण ही विद्यार्थियों के अधिगम का अत्यंत प्रमुख साधन होता है। कक्षा उपलब्धि परीक्षण विद्यार्थियों के लिए विषय विशेषज्ञता का पता लगने सहायक होगा। शालेय वातावरण का स्तर जितना श्रेश्ठ होगा विषयगत शिक्षण सुधार में उतना ही अधिक उपयोगी होगा। विद्यालय प्रांगण में वे सभी आवश्यक संसाधन निहित होने चाहिए जिससे विद्यार्थियों को अनुकूल वातावरण, पठन-पाठन के लिये मिल सकें। अनुकूल वातावरण मिलने पर ही विद्यार्थी अपने आप को उस विद्यालय के दिशा निर्देशों के अनुकुल ढाल पाता है तथा अपने अधिगम को उच्चकोटी तक ले जाने में समर्थ हो जाता है।

अत: शैक्षिक उपलब्धि एवं शाला वातावरण का विद्यार्थियों से सीधा संबंध होता है। जो कि शोधार्थी के रूचि का विषय है। इसलिये शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत लघुशोध के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि आधुनिक युग की आवश्यकता के अनुसार विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में शाला वातावरण का क्या योगदान है? क्या सभी शिक्षक अपने विद्यार्थियों की शिक्षा पर यथोचित सहयोग देने में सफल है? क्या शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर है? क्या शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के शाला वातावरण में अंतर है। इसी समस्या के समाधान के लिए इस लघुशोध की आवश्यकता महसूस की गई।

समस्या कथन

"शालेय वातावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन"

प्रयुक्त पदों की क्रियात्मक परिभाशा

ख **शालेय वातावरण** - शालेय वातावरण वह तत्व है जो बालको में सीखने की प्रक्रिया वर्ग या कक्षा की भौतिक वातावरण को प्रभावित करता है। भौतिक वातावरण का अर्थ है विद्यालय का भवन, रोशनी की व्यवस्था, वायु-आगमन का प्रबंध, खेल के मैदान की व्यवस्था, टेबल-कुर्सी की व्यवस्था, शोरगुल का नियंत्रण इत्यादि।

ख **शैक्षिक उपलब्धि** - पी. डी. पाठक के अनुसार : उपलब्धि परीक्षण वे परीक्षाएं हैं जिनकी सहायता से विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों और दिखाई जाने वाली कुशलताओं में छात्रों की सफलता या उपलब्धि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शालेय वातावरण का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण और शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
3. उच्च एवं मध्य शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना।
4. उच्च एवं निम्नतम् शालेय वातावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना।
5. मध्यम एवं निम्नतम् शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएं

H_{01} ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शालेय वातावरण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

H_{02} ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

H_{03} उच्च एवं मध्य शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

H_{04} उच्च एवं निम्नतम शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

H_{05} मध्यम एवं निम्नतम शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

अध्ययन का परिसीमन

शोध समस्या का शीर्षक **"शालेय वातावरण का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन"** करना है।

शोध हेतु सुल्तानपुर जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र को अध्ययन हेतु परिसीमित किया गया है। जिसमें कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों को लिया गया है एवं 14 वर्ष से 16 वर्ष तक की आयु सीमा तक सीमित किया गया है।

शोध विधिः इस अध्ययन को पूरा करने के लिए शोध में **"सर्वेक्षण विधि"** का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा अध्ययन हेतु न्यादर्श के रूप में सुल्तानपुर जिले के कक्षा 9वीं में से 120 अध्ययनरत् विद्यार्थियों का चयन किया गया है जिसमें 60 छात्र एवं 60 छात्राएं हैं।

प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत शोध हेतु शोधार्थी द्वारा **के. एस. मिश्रा** द्वारा निर्मित (SEI-M) शाला वातावरण का प्रयोग किया गया एवं शैक्षिक उपलब्धि मापनी (C.A.T) के लिए **डॉ. पी. के. नायक** द्वारा निर्मित प्रश्नावली को प्रयोग में लिया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकी विधिः प्रदत्तों के विश्लेशण हेतु सांख्यिकी विधियॉ माध्य, माध्यमान, प्रमाणिक विचलन, प्रमाणिक त्रुटि, टी-मूल्य परीक्षण, स्वतंत्र कोटि द्वारा किया गया है।

निष्कर्षः H_{01} ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शालेय वातावरण में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

तालिका क्रमाक-1

S.No.	परिवेश	N	M	SD	S_{ED}	t-test Value	सारणीगत मान (118)	परिणाम
1.	ग्रामीण	60	162.5	13.11	2.5	0.46	0.05 =k 1.98	स्वीकृति
2.	शहरी	60	163.66	14.28			0.01 =k 2.62	

निष्कर्षः ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शालेय वातावरण में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अतः हमारी परिकल्पना स्वीकृत होती है।

H_{02} ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमाक-2

S.No.	परिवेश	N	M	SD	S_{ED}	t-test Value	सारणीगत मान (118)	परिणाम
1.	ग्रामीण	60	52.3	16.85	3.0	0.27	0.05 =k 1.98	स्वीकृति
2.	शहरी	60	60.03	16.03			0.01 =k 2.62	

निष्कर्ष : ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अतः हमारी परिकल्पना स्वीकृत होती है।

H_{03} उच्च एवं मध्य शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमाक-3

S.No.	समूह	N	M	SD	S_{ED}	t-test Value	सारणीगत मान (87)	परिणाम
1.	उच्च शाला वातावरण	33	77.3	7.96	2.13	13.22	0.05 =k 1.99	अस्वीकृति
2.	मध्यम शाला वातावरण	56	49.14	12.2			0.01 =k 2.63	

निष्कर्ष : उच्च एवं मध्य शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया गया। अत: हमारी परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

H_{04} उच्च एवं निम्नतम शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमाक-4

S.No.	समूह	N	M	SD	S_{ED}	t-test Value	सारणीगत मान (62)	परिणाम
1.	उच्चशाला वातावरण	33	77.3	7.96	2.12	17.56	0.05 =k 2.00	अस्वीकृति
2.	निम्नशाला वातावरण	31	40.03	8.95			0.01 =k 2.66	

निष्कर्ष : उच्च एवं निम्नतम शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया गया। अत: हमारी परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

H_{05} मध्यम एवं निम्नतम शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया जायेगा।

तालिका क्रमाक-5

S.No.	समूह	N	M	SD	S_{ED}	t-test Value	सारणीगत मान (62)	परिणाम
1.	उच्च शाला वातावरण	55	49.14	12.2	2.28	3.97	0.05 =k 1.99	अस्वीकृति
2.	निम्न शाला वातावरण	31	40.07	8.95			0.01 =k 2.63	

निष्कर्ष: माध्यम एवं निम्नतम शालेय वातावरण का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर समर्थक प्रभाव पाया गया अत: हमारी परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

शैक्षिक महत्व

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि सबसे अधिक उसके शालेय वातावरण द्वारा प्रभावित होती है अत: शिक्षकों, प्रधानाचार्य एवं प्रशासन का कर्तव्य बनता है कि वे कक्षा प्रबंधन, शाला प्रबंधन, शिक्षा प्रबंधन, एक्स्ट्रा करीकुलम एक्टीवीटी, खेल, शिक्षण सामग्री, पाठड्क्रम इत्यादि पर ध्यान प्रदान करे ताकि बच्चों का सर्वांगीण विकास संभव हो सके।

सुझाव

1. शिक्षकों को चाहिए कि वे अपने शालेय वातावरण को व्यवस्थित रखें।
2. शिक्षकों का यह दायित्व बनता है कि छात्रों के शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावशाली बनाने के लिए शाला वातावरण को अधुनिकतम एवं विकासशील बनाने का प्रयत्न करें।
3. शिक्षकों को विद्यार्थियों की शाला वातावरण में सामंजस्य स्थापित करने में सहायता करें।
4. शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों के शाला वातावरण की भ्रामक मानसिकता को दूर किया जाना चाहिए।
5. अभिभावकों में शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के भ्रम को दूर करना चाहिए।

उपसंहार

अनेक मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतो के अनुसार बालक के शैक्षिक उपलब्धि के विकास पर अनुवांशिकता और वातावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है परंतु बालक के बुद्धि के विकास पर अनुवांशिकता से कहीं अधिक प्रभाव वातावरण का पड़ता है। विद्यालय के वातावरण का बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रत्यक्ष रुप से अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि बच्चों को विद्यालय में

अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है तो वे सही दिशा में प्रगति कर सकते हैं। विचारणीय है कि विद्यालय का वातावरण बालक के शैक्षिक उपलब्धि को इस सीमा तक प्रभावित करता है कि योग्य और होनहार बालक विद्यालय के अनुपयुक्त वातावरण के कारण समुचित विकास से वंचित हो जाते हैं। विद्यालय का अच्छा वातावरण बालक के लिए सीखने की अनुकुल स्थितियां उपलब्ध कराता है।

विद्यालय का वातावरण ऐसा कारक है जो बच्चों को प्रभावित करता है और उसके शैक्षिक विकास में परिवर्तन लाता है। बच्चों के भविश्य की नीवं धर एवं विद्यालय में रखी जाती है। विद्यालय में शिक्षक द्वारा उसे अनुकूल बनाकर उस पर विकास का भवन निर्मित किया जाता है। शाला वातावरण को संवारने में शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालय में शिक्षक का बच्चों के प्रति व्यवहार स्वयं का व्यक्तित्व एवं चरित्र ऐसी कई बातें हैं जो बालक के शैक्षिक विकास को प्रभावित करती है। विद्यालय का संगठनात्मक तंत्र इस ढंग से सुव्यवस्थित होना चाहिए कि छात्रा-छात्राओं में स्वानुशासन की प्रवृत्ति सहजरुप से विकसित हो विद्यालय को उत्तम स्वरूप देने के लिए विद्यालय में भौतिक, शैक्षिक, सामाजिक सांस्ख्रतिक और मनोवैज्ञानिक वातावरण का निर्माण करना आवश्यक है। जिससे बच्चे विद्यालय की ओर आख्रष्ट हो और सीखने में उन को प्रेरणा मिले।

संदर्भ ग्रंथ

1. शर्मा. डॉ. आर. ए. (2001), शिक्षा अनुसधान, लाल बुक डिपो मेरठ।
2. कपिल. एच. के. (1975) सांख्यिकार्य के मूलतत्व विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
3. पचौरी. डॉ. गिरीश (2014), शिक्षा का सामाजिक आधार लायन बुक डिपो मेरठ।
4. पाटक. डी. पी. (1996), शैक्षिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
5. श्रीवास्तव डॉ. अनिल कुमार गुप्ता रेनु (2016) महाराजा बृज वि. वि. भरतपुर राजस्थान शिक्षित-अशिक्षित परिवारों का विद्यार्थियों के समायोजन व शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव।
6. अवस्थी, डॉ. दिलीप कुमार (2010) कर्नल ईश्वरी सिंह इंटरमीडिएट कक्कलेज जालौना- बच्चों के व्यक्तित्व विकास में विद्यालय वातावरण का प्रभाव।

राजस्थान में अनुसूचित जाति में सामाजिक गतिशीलता: जालोर जिले के मेघवाल समुदाय का अध्ययन

मोहनलाल गेहलोत

(शोधार्थी), डॉ. संजय गिल (शोध निर्देशक), गोविंद गुरु जनजातीय विश्वविद्यलय, बांसवाड़ा

सार

यह तथ्य निश्चित रूप से ध्यान दिये जाने योग्य है कि उस दौर में व्यवसाय परिवर्तन की प्रवृत्ति बड़ी तेजी से बढ़ती जा रही थी। पूर्व वर्णित आंकड़ों से इस बात की संपुष्टि भी होती है। कृषि कार्य में वैश्य जातीय लोग राजपूतों की तुलना में अपेक्षया अधिक थे। गूजर तथा रैबारी जातियां जो पारंपरिक रूप से चरवाहे का कार्य करती आ रही थी भी अब कृषि की ओर झुकती हुई दृष्टिगत हो रही थी। सन् 1921 में इनमें से अधिकतर ने कृषि कार्य और खेतों में मजदूरी के कार्य को अपना लिया था। इसके अतिरिक्त राजपूताना की निम्नवर्गीय जातियां उच्च नौकरियों तथा व्यवसायों की ओर भी झुक रही थी। यदि्प यह संख्या पूरी जाति ने अनुपात में कापफी कम या नाममात्रा की ही थी, परंतु समसामयिक सामाजिक में आने वाले परिवर्तन समसामयिक आर्थिक तथा व्यवसायिक जीवन गतिशीलता को समझने के लिए पर्याप्त थी। इस परिप्रेक्ष्य में इस सामाजिक गतिशीलता का अपना एक स्वतंत्रा महत्व था। इस बदलते हुए सामाजिक परिदृश्य में जहां एक जाति विशेष के लोगों के द्वारा अन्य जाति के लोगों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों को अपनाना शुरू कर दिया तब उन्होंने उसी जाति के सामाजिक अधिकार व प्रतिष्ठा प्राप्ति की अपेक्षा भी करनी शुरु कर दी। उदाहरण के रूप में इस तथ्य को उद्धृत किया जा सकता है कि, बीकानेर का व्यापारी वर्ग सामंतों को प्राप्त सुविधओं तथा विशेषाध्किारों को प्राप्त करने की होड़ करने लगा था, जिसे एक बड़े परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है।

प्रस्तावना

भारतीय समाज कई खांचों में विभाजित है। इसी में एक अहम विभाजक रेखा जाति भी है। जाति का सीध अर्थ समूह, विशेषता या गुण होता है। इसी अर्थ में पफूल, पशु, पक्षी, अनाज, पफल तथा सब्जी आदि की जाति जानी और पहचानी जाती है। जाति एक तरह की भेदक विशेषता का बोध्क है। हालांकि जाति यानी समूह की सीमा भी टूटती है जब कभी उसमें बदलाव लाया जाता है। जैसे आम की कलम भी होती है और 'कलमी आम' भी मिलते हैं। स्वाद की दृष्टि से उनमें नई विशेषता आ जाती है। ऐसे ही सामाजिक जीवन में भी एक स्तर पर भेद करना स्वाभाविक रूप से मिलता है और विश्व में हर जगह सामाजिक श्रेणियां पाई जाती हैं। जब हम भारत की सामाजिक दुनिया में प्रवेश करते हैं तो यहां हमारे समक्ष जाति एक जटिल और गतिशील सामाजिक सत्य के रूप में उपस्थित दिखती है जिसके अब तक संवैधनिक और रूढ़िगत कई-कई पाठ और संस्करण किए जा चुके हैं।

राजस्थान में अनुसूचित जाति में सामाजिक गतिशीलता

मेघवाल' मारवाड़, राजस्थान से हैं। 1981 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में मेघ, मेघवाल, मेंघवार के रूप में अधिसूचित लोगों की संयुक्त जनसंख्या 889, 300 थी। वे पश्चिमी गुजरात में (पाकिस्तान सीमा के पास) और भारत के अन्य भागों जैसे

महाराष्ट्र, पंजाब और हरियाणा में रहते हैं। 'मेघ' जम्मू-कश्मीर और हिमाचल प्रदेश से हैं और उन्हें मेघ, आर्य मेघ और भगत के नाम से जाना जाता है। कुछ स्थानों पर वे गणेशिया, मेघवंशी, मिहाग, राखेसर, राखिया, रिखिया, सिहमार, रिषिया और अन्य नामों से भी जाने जाते हैं। कुछ महाशा भी यह दावा करते हैं कि वे मेघों से संबंधित हैं। सन् 1947 में भारत के विभाजन के बाद मेघ, जो हिंदू धर्म में ध्र्मान्तरित हो गए थे, वे भारतीय क्षेत्रा में पलायन कर गए।उनमें से अधिकांश सियालकोट से आ कर पंजाब, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में उनके लिए स्थापित शिविरों में आ बसे। पाकिस्तान में शब्द मेघवाल के स्थान पर मेघवार प्रयोग किया जाता है। सन् 1991 में पंजाब (भारत) में मेघों की जनसंख्या 105157 होने का अनुमान था। सन् 2000 में पाकिस्तान में लगभग 226600 मेघवार रहते थे जो मुख्यत: उत्तर-पूर्व पंजाब के दादू और नवाबशाह शहरों में और सिंध में अधिकतर बदीन, मीरपुर खास, थारपरकर और उमेरकोट जिलों में बसे थे। मेघवंशियों का पेशा कृषि और बुनाई था। वे वर्ष में दो पफसलें लेते थे। शेष समय वे अन्य संबंद्ध गतिविध्यिों में व्यस्त रहते थे। राजस्थान के देहाती इलाके में अभी भी इस समुदाय के कई लोग अभी भी छोटी बस्तियों में रहते हैं। उनके आवास गारे की ईट से बनी गोलाकार झोपडिय्याँ हैं जिन पर रंगीन ज्यामितीय डिजाइन चित्रित होते हैं और जिन्हें विस्तृत जड़ाऊ दर्पण कार्य से सजाया गया होता है। बीते समय में मेघवाल समुदाय का मुख्य व्यवसाय कृषिश्रम था, बुनाई, विशेष रूप से खादी और काष्ठकार्य था और ये अभी भी उनके मुख्य व्यवसायों में हैं। महिलाएँ अपने कढ़ाई के काम के लिए प्रसिद्ध हैं और ऊन तथा सूती कपड़े की बढ़िया बुनकर हैं।

मेघवंशियों में से कुछ राजस्थान के गाँवों से मुंबई जैसे बड़े शहरों चले गए हैं। सन् 1936 में बी.एच मेहता, शोध्कर्ता ने एक अध्ययन में कहा कि गाँव के मनहूस जीवन से बचने के लिए उनमें से अधिकतर शहरों में गए और महसूस किया कि शहर में भीड़ और अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों के बावजूद उनके जीवन में सुधर हुआ है। आज मेघवालों में शिक्षितों की संख्या बढ़ी है और सरकारी नौकरियाँ प्राप्त कर रहे हैं। पंजाब में विशेषकर अमृतसर, जालंधर और लुध्यिाना जैसे शहरों में वे खेल, हौजरी, शल्य-चिकित्सा उपकरणों और धतुओं से वस्तुओं का उत्पादन करने वाले कारखानों में मजदूरी कर रहे हैं। उनमें से कुछ का अपना स्वयं का व्यवसाय या लघु उद्योग है। जीवन यापन के लिए छोटा व्यापार और सेवा इकाइयाँ उनका प्रमुख सहारा है।जम्मू-कश्मीर में भूमि सुधरों के सपफल कार्यान्वयन के बाद उनमें से कई छोटे किसान बन गए। पाकिस्तान से भारत में आने के बाद मेघों को भी अलवर (राजस्थान) में बंजर भूमि में दी गई। बाबू गोपी चंद ने उन्हें इस प्रक्रिया में बहुत सहायता की। यह अब उपजाऊ भूमि है।

उनके प्रधान भोजन में चावल, गेहूं और मक्का शामिल है और दालों में मूंग, उड़द और चना. वे शाकाहारी नहीं हैं। जम्मू में एक मेघ धर्मिक नेता भगता साध (केरन वाले) के नेतृत्व में एक बहुत बड़ा मेघ समूह शाकाहारी बना।

पारंपरिक मेघवाल समाज में महिलाओं का दर्जा कमतर है। परिवारों के बीच बातचीत के माध्यम से यौवन से पहले ही विवाह तय कर दिए जाते हैं। शादी के बाद पत्नी पति के घर में आ जाती है। प्रसव के समय वह मायके में जाती है। पिता द्वारा बच्चों का उत्तर दायित्व लेने और पत्नी को मुआवजा देने के बाद तलाक की अनुमति देने की परंपरा है। किसी बात के लिए नापसन्द व्यक्ति का हुक्का-पानी बंद करने की एक सामाजिक बुराई मेघों में है। इसे तुच्छ मामलों में भी इस्तेमाल किया जाता है। इससे मेघ महिलाओं के लिए सामाजिक कठिनाइयाँ बढ़ी हैं।

मेघवालों के प्रारम्भिक इतिहास या उनके धर्म के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। संकेत मिलते हैं कि मेघ शिव और नाग (ड्रैगन के उपासक थेद्ध. मेघवाल राजा बली को भगवान के रूप में मानते हैं और उनकी वापसी के लिए प्रार्थना करते हैं।कई सदियों से केरल में यही प्रार्थना ओणम त्योहार का वृहद् रूप धरण कर चुकी है। वे एक नास्तिक और समतावादी ऋषि चार्वाक के भी मानने वाले थे। आर्य चार्वाक के विरोधे थे। दबाव जारी रहा और चार्वाक धर्म का पूरा साहित्य जला दिया गया। इस बात का प्रमाण मिलता है कि 13वीं शताब्दी में कई मेघवाल इस्लाम की शिया निजारी शाखा के अनुयायी बन गए और कि निजारी विश्वास के संकेत उनके अनुष्ठानों और मिथकों में मिलते हैं। अधिकांश मेगवाल हिंदू है, हालांकि कुछ इस्लाम या ईसाई धर्म जैसे अन्य ध्र्मों के भी अनुयायी हैं।

मध्यकालीन हिंदू पुनर्जागरण, जिसे भक्ति काल भी कहा जाता है, के दौरान राजस्थान के एक मेघवाल कर्ता राम महाराज, मेघवालों के आध्यात्मिक गुरु बने। कहा जाता है कि 19 वीं सदी के दौरान मेघ आम तौर पर कबीरपंथी थे जो संतमत के संस्थापक संत सत्गुरु कबीर (1488 - 1512 ई.) के अनुयायी थे। आज कई मेघवाल संतमत के अनुयायी हैं जो कच्चे रूप से जुड़े धर्मिक

नेताओं का समूह है और जिनकी शिक्षाओं की विशेषता एक आंतरिक, एक दिव्य सिद्धांत के प्रति प्रेम भक्ति और समतावाद है, जो हिंदू जाति व्यवस्था पर आधरित गुणात्मक भेद और हिंदू तथा मुसलमानों के बीच गुणात्मक भेद के विरुद्ध है। वर्ष 1910 तक, स्यालकोट के लगभग 36000 मेघ आर्य समाजी बन गए थे परन्तु चंगुल को पहचानने के बाद सन् 1925 में वे 'आद धर्म सोसाइटी' में शामिल हो गए जो ऋषि रविदास, कबीर और नामदेव को अपना आराध्य मानती थी। भारत के एक सुधरवादी पफकीर और राधस्वामी मत के एक गुरु बाबा पफकीर चंद ने अपनी जगह सत्गुरू के रूप में काम करने के लिए भगत मुंशी राम को मनोनीत किया जो मेघ समुदाय से थे।

राजस्थान में इनके मुख्य आराध्य बाबा रामदेवजी हैं जिनकी वेदवापूनम (अगस्त - सितम्बर) के दौरान पूजा की जाती है। मेघवाल धर्मिक नेता गोकुलदास ने अपनी वर्ष 1982 की पुस्तक 'मेघवाल इतिहास', जो मेघवालों के लिए सम्मान और उनकी सामाजिक स्थिति में सुधर का प्रयास है और जो मेघवाल समुदाय के इतिहास का पुनर्निर्माण करती है, में दावा किया है कि स्वामी रामदेव स्वयं मेघवाल थे। गाँव के मन्दिरों में चामुंडा माता की प्रतिदिन पूजा की जाती है। विवाह के अवसर पर बंकरमाता को पूजा जाता है। डालीबाई एक मेघवाल देवी है जिसकी पूजा रामदेव के साथ-साथ की जाती है। भारत के जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हिमाचल, हरियाणा राज्यों में पूर्वजपूजा (एक प्रकार का श्राद्ध) की जाती है। जम्मू-कश्मीर में डेरे-डेरियों पर पूर्वजों की वार्षिक पूजा प्रचलित है। कुछ मेघवार पीर पिथोरो की पूजा करते हैं जिसका मन्दिर मीरपुर खास के पास पिथोरो गाँव में है। केरन के बाबा भगता साध मेघों के धर्मिक नेता और आराध्य पुरुष थे जिन्होंने जम्मू-कश्मीर में मेघ समुदाय के आध्यात्मिक कल्याण के लिए कार्य किया। बाबा मनमोहन दास ने बाबा भगता साध के उत्तराधिकारी बाबा जगदीश जी महाराज के निधन के बाद गुरु का स्थान ले लिया।

संदर्भ सूची

- बेदी, रघुवंश देव–सहकारिता के सिद्धान्त इतिहास एवं व्यवहार, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1981.
- भटनागर, के.पी. हजेला, टी.एन. निगम–सहकारिता देश और विदेश में, किशोर पब्लिकेशन हाउस, कानपुर, 1964.
- भटनागर, नंदलाल–सहकारिता के सिद्धान्त एवं भारतीय सहकारिता, रस्तोगी एंड क., मेरठ, 1959.
- दुबेशी, पी.आर.–प्रिन्सिपल एंड पिफलोसपी ऑपफ कापरेशन, बेकुंठ मेहता नेशनल इंस्टीट्यूट ऑपफ कोपरेशन मेनेजमेंट, पुना, 1970.

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के परिवारिक वातावरण का उनके नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन

शालू तिवारी

शोधछात्रा (शिक्षाशास्त्र), शिक्षक-शिक्षा संकाय
नेहरु ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तावना

शिशु को संस्कारित करने का उत्तरदायित्व परिवार का होता हैं। परिवार ही वह स्थान हैं, जो बालक में मानवीय मूल्य डालने का कार्य करता हैं। बालक जन्म के बाद पारिवारिक वातावरण में ही विकसित होता हैं द्यपरिवार बालक का समाजीकरण करने में मुख्य भूमिका का निर्वहन करता हैं द्ययह विदित है कि प्रत्येक व्यक्ति परस्पर पूर्णत: भिन्न है। उनका मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक तथा संवेगिक स्तर अन्य व्यक्तियों से पूर्णत: पृथक है। हर व्यक्ति अपने आप में विशिष्ट है और यह विशिष्टता उसे अपने पारिवारिक वातावरण और सांस्कृतिक संक्रमण द्वारा भी प्राप्त होती है। बालक अपने परिवार को देखकर ही सीखता है एवं उनका अनुकरण करता है।

परिवार में उपस्थित व्यक्तियों का असर मुख्यत: माता-पिता का व्यवहार, माता-पिता की शिक्षा का स्तर, माता-पिता का आर्थिक स्तर, माता-पिता द्वारा प्रदत्त स्नेह अथवा उपेक्षा बालक के मन पर गहरा और विशद प्रभाव डालता है।

महादेवी वर्मा जी ने अपने एक साक्षात्कार में कहा था ''बालक वे नहीं बनते, जो आप चाहते हैं बल्कि वे बनते हैं, जो आप होते हैं।

सरल शब्दों में यदि एक बालक के परिवार का वातावरण, कलहपूर्ण, कुंठा द्वन्दात्मक तथा अवसाद से ग्रस्त रहे तो बालक की मानसिक शक्तियों का समुचित विकास नही होता, फलस्वरूप बालक हमेशा दुश्न्चित एवं भ्रामक रहता हैं। उसके निर्णय तथा उसकी क्षमताएँ प्रभावित होने लगती। तब ऐसी स्थिति का प्रत्यक्ष प्रभाव उसके शरीर एवं सामाजिक व्यवहार तथा शैक्षिक निष्पादन पर भी पड़ता हैं। इसके विपरीत एक सामान्य आर्थिक स्तर तथा सामान्य शिक्षा स्तर के परिवार से संबंधित स्वस्थ हँसमुख उत्साह युक्त बालक सदैव नयी उर्जा से भरा रहता हैं। अभिप्रेरणात्मक वातावरण के कारण वह अपने पारिवारिक स्तर (आर्थिक, शैक्षिक व अन्य) से भी ऊँचा उठने का प्रयत्न करने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहता हैं। प्रत्येक अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति में वह नवीन संभावनाएँ तलाशने में जुटा रहता हैं। अत: कह सकते हैं की परिवार ही एक ऐसा माध्यम है जो विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों में वृद्धि कर सकता है एवं उन्हें नैतिकता का पाठ पढ़ा सकता है।

नैतिक मूल्य एक व्यापक शब्द हैं। जब किसी जनसमूह में समान इतिहास, परम्पराओ, आदर्शो के कारण सामान्य जीवन व्यातित करने की उत्कृष्ट अभिलाषा उत्पन्न होती है तो उसे नैतिक मूल्य की संज्ञा दी जाती है दूसरे शब्दों में, ''नैतिक मूल्य एक ऐसी भावना हैं, जो सम्पूर्ण समाज के आदर्श आचरण का आधार स्तम्भ है।

रामशकल पाण्डेय के अनुसार, ''नैतिक मूल्य एक ऐसी आचरण संहिता या सद्गुण है,जिससे व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता हैं। ''नैतिक मूल्य के अन्तर्गत मनुष्य की धारणायें, विचार, आकांक्षा, विश्वास, मनोवृत्ति,आस्था आदि समाहित है। ये एक ओर मनुष्य के अंत: करण द्वारा नियंत्रित होती है तो दूसरी ओर संस्कृति एवं परम्परा द्वारा क्रमश: निस्सृत एवं परिपोषित होती हैं। यह भी कहा जा सकता हैं कि नैतिक मूल्य मनुष्य के अन्तरतम में जगती हुई वह शक्ति है, जो उसे एक विशिष्ट प्रकार से कर्म करने के लिए प्रेरित करती है और उसके आचरण को शासित करती है।

जे व एच व रोज के शब्दों में, ''नैतिक मूल्य आदर्शो की वहश्रृँखला है, जो वर्तमान में मनुष्य के लिए एक प्रेरक शक्ति का कार्य करती है जिससे उसके व्यक्तित्व का समन्वित विकास होता है। ''प्रत्येक व्यक्ति का यहकर्तव्य है कि वह नैतिक मूल्यों को बनाये रखने में पूर्ण सहयोग प्रदान करें। नैतिक मूल्य किसी समाज द्वारा स्वीकृत विश्वास, आदर्श, सिद्ध ान्त और व्यवहार मानदण्डो को व्यक्तियों द्वारा दिया गया महत्व हैं नैतिक मूल्य वह सत्य है जिसके लिए व्यक्ति जीता हैं और आवश्यकता पडने पर वह संघर्ष करने, दु:ख सहने तथा मृत्यु को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है। वस्तुत: नैतिक मूल्य समाज की वह धुरी है जिसके कारण समाज का अस्तित्व है क्योकि उपयोगिता या कल्याणकरिता की भावना ही समाज को स्थिर बनाती है।

विद्यार्थियो के नैतिक मूल्यों पर पारिवारिक वातावरण का सार्थक एवं धनात्मक सम्बन्ध होता है जैसा कि पूर्व शोध अध्ययन से ज्ञात होता हैं कपूर अर्चना (2009) ने निष्कर्ष में पाया की सकारात्मक परिवेश में रहने वाले बालक एवं बालिकाओं के आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, परिवार प्रतिष्ठा मूल्य तथा सुखवादी मूल्यों में सांख्यिकीय दृष्टि से कोई सार्थक अंतर नही पाया गया, अर्थात् सकारात्मक परिवारिक परिवेश के बालक व बालिकाओ के इन मूल्यों में वास्तविक अंतर नही हैद्यसिंह, सृष्टि एवंअन्य (2012) ने निष्कर्ष के रूप में पाया, कि अनुकूलित पारिवारिक वातावरण में अध्ययनरत् विद्यार्थियो के राजनैतिक मूल्य प्रतिकूलित पारिवारिक वातावरण में अध्ययनरत् विद्यार्थियोकी अपेक्षा अधिक होते है। अनुकूलित पारिवारिक वातावरण वाले विद्यार्थियो के सामाजिक मूल्य प्रतिकूलित पारिवारिक वातावरण में अध्ययनरत् विद्यार्थियो की अपेक्षा अधिक होते हैं। अनुकूलित एवं प्रतिकूलित परिवारिक वातावरण के विद्यार्थियो के विभिन्न मूल्य सौन्दर्यात्मक, सैद्वान्तिक, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सुखवादी मूल्यों के प्राप्तांको के मध्यमान में 05 सार्थकता स्तर पर सार्थक अंतर प्राप्त हुआ हैं। गोयल डिम्पल (2015) ने निष्कर्ष मे पाया कि आधुनिक, मिश्रित एवं परम्परागत परिवारों की किशोर बालिकाओं के धार्मिक, सामाजिक, सुखवादी शक्ति सामाजिक, प्रतिष्ठा, व स्वास्थ्य मूल्य में कोई अंतर नही पाया गया लेकिन आधुनिक परिवार की बालिकाओं का प्रजातान्त्रिक मूल्य मिश्रित एवं परम्परागत परिवार बालिकाओं से उच्य पाया गया व मिश्रित परिवार की बालिकाओं का आर्थिक मूल्य आधुनिक व परम्परागत परिवार की बालिकाओं से उच्च पाया गया तथा परम्परागत परिवार की किशोर बालिकाओ का सौन्दर्यात्मक व ज्ञानात्मक मूल्य आधुनिक व मिश्रित परिवार की किशोर बालिकाओं से उच्य पाया गया।

समस्या कथन–

माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियो के परिवारिक वातावरण का
उनके नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन

उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अधययन किया गया हैं -

1 माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के परिवारिक वातावरण का उनके नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।

2 माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के परिवारिक वातावरण की विमओं का उनके नैतिक मूल्यों में सम्बन्ध का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

1 माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों के परिवारिक वातावरण का उनके नैतिक मूल्यों में कोई सम्बन्ध नहीं हैं।

2 माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियो के परिवारिक वातावरण की विमाओं का उनके नैतिक मूल्यों में कोई सम्बन्ध नहीं है।

शोधविधि-

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अंतर्गत सहसम्बंधात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या-

जनसंख्या के रूप में इलाहाबाद जनपत के माध्यमिक विद्यालयो में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं को जनसंख्या माना गया है।

न्यादर्श-

न्यादर्श के रूप में इलाहाबाद जनपत के 4 माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् 100 विद्यार्थियों का चयन साधारण यादृच्छिक बिधि से माना गया है।

उपकरण -

उपकरण के रूप में विद्यार्थियों के परिवारिक वातावरण को मापने के लिए के. एस. मिश्र. द्वारा निर्मित 'परिवारिक वातावरण अनुसूची' जो बीस विमाओं पर आधारित हैं तथा विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य को मापने के लिए डॉ अल्पना सेन गुप्ता एवं डॉ अरुण कुमार सिंह द्वारा निर्मित 'मोरल वैल्यू स्केल 'का प्रयोग किया गया है।

सांख्यकी विधि-

प्रस्तुत अध्ययन में आंकडो के विश्लेषण के लिए पियर्सन अद्युर्णसहसम्बन्ध गुणांक सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया हैं।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

तालिका-1

माध्यमिक कक्षास्तर के विद्यार्थियो के नैतिक मूल्यएवंपरिवारिक वातावरण के मध्य त का मान

परिवारिक वातावरणकी विमाएं	संख्या (N)	सहसम्बन्ध गुणांक त कामान
हार्दिकता	100	0.0697
मानवीयबल	100	0.2958'
बाधा	100	0.0514
नियंत्रण	100	0.2078'
सहानुभूति	100	0.0717
संसजकता	100	0.1451
संघर्ष	100	0.1193
प्रजातान्त्रिकअभिविन्यास	100	-0.0379
विवशता	100	0.1120
उत्साह	100	0.2125'
असुरक्षा	100	0.0342
औपचारिकता	100	0.0051
उदासीनता	100	0.1702

तनाव	100	−0.0427
संस्कृतिदीक्षा	100	0.0748
अनुरूपता	100	0.1267
प्रतियोगिता	100	0.2071'
द्वेषभाव	100	−0.0221
पुरस्कार	100	0.3202'
उपेक्षा	100	0.1339

df=98 पर *0.05 स्तर पर सार्थक

पारिवारिक वातावरण की विमा मानवीय बल, उत्साह, प्रतियोगिता एवं पुरस्कार तथा नैतिक मूल्य के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.2958, 0.2078, 0.2125, 0.2071,एवं 0.3202 हैं जो 0.05 स्तर पर सार्थक है अतः शून्य परिकल्पना 'माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियो के पारिवारिक वातावरण की विमा मानवीय बल, नियंत्रण, उत्साह, प्रतियोगिता एवं पुरस्कार तथा नैतिक मूल्य के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है ''निरस्त की जा सकती हैं अतः कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत्विद्यार्थियो के पारिवारिक वातावरण की विमा मानवीय बल, नियंत्रण, उत्साह, प्रतियोगिता एवं पुरस्कार तथा नैतिक मूल्य के मध्य धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध हैं। जबकि पारिवारिक वातावरण की विमा हार्दिकता, बाधा, सहानुभूति, संसजकता, संघर्ष, प्रजातांत्रिक, अभिविन्यास, विवशता, असुरक्षा,औपचारिकता, उदासीनता, तनाव, संस्कृति दीक्षा अनुरूपता, द्वेषभाव, उपेक्षा का नैतिक मूल्यों के मध्य सहसम्बन्ध का मान 0.05 स्तर पर सार्थक नही हैं अतः कहा जा सकता है कि पारिवारिक वातावरण की विमा हार्दिकता बाधा, सहानुभूति, संसजकता, संघर्ष, प्रजातांत्रिक अभिविन्यास, विवशता, असुरक्षा, औपचारिकता, उदासीनता, तनाव, संस्कृति दीक्षा अनुरूपता, द्वेषभाव, उपेक्षा का नैतिक मूल्यों के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नही है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अधययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- पारिवारिक वातावरण की विमा हार्दिकता बाधा, सहानुभूति, संसजकता, संघर्ष, प्रजातांत्रिक अभिविन्यास, विवशता, असुरक्षा, औपचारिकता, उदासीनता, तनाव, संस्कृति दीक्षा अनुरूपता, द्वेष भाव, उपेक्षा का नैतिक मूल्यों के मध्य कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।
- माध्यमिकस्तरपरअध्ययनरत् विद्यार्थियो के पारिवारिक वातावरण की विमा मानवीय बल, नियंत्रक, उत्साह, प्रतियोगिता एवं पुरस्कार तथा नैतिक मूल्य के मध्य धनात्मक एवं सार्थक सहसम्बन्ध हैं।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता हैं कि उच्च परिवारिक वातावरण का नैतिक मूल्यों पर सार्थक सम्बन्ध एवं प्रभाव पाया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

- अलपोर्ट, जी, डब्ल्लू (1960) स्टडी ऑफ वैल्यूज, कैलीफोर्नियायूनिवर्सिटी, बोस्टन
- कपूर, अर्चना (2009), ''परिवारिक परिवेश का बालक एवं बालिकाओं के मूल्य विकास पर प्रभाव, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष 28, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2009
- पाण्डेय, रामशकल (2003), मूल्य शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- पाण्डड, शाकुन्तला (1989) जीवन मूल्य, आर. एस. आई. ई.आर.टी., उदयपुर
- पाण्डेय सत्यप्रकाश (1960) मूल्य परक शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- माथुर, जी.पी. (2006) वैल्यू एण्ड इट्स ईफैक्य ऑन आफीसियल स्टेट्स इन रिलेशन टू जॉब सैटिस्फैक्सन,सेन्ट जार्ज कालेज, भुवनेश्वर, इण्डियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन अंक 37, पृष्ठ सं . 14-15
- गुप्ता, एन . एल . (2001) ए कम्प्रेटिव स्टडी ऑफ एफैक्टिवनेस ऑफ वैरियस स्ट्रेटजीज फार द डेवलपमेन्ट ऑफ मोरल वैल्यूज बी, पी. एच.डी . थिसिस राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

- रथ, एल. ई. व हर्मिन एम. (1960), हयूमन वैल्यूज एण्ड कल्चर रिडिमिंग रिडिमिंग टीचर्स एजूकेशन, एजुकेशन्स बुलेटिन (1961), अंक -5, सी. आई.ई . टी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ट संख्या 14-15।
- सिंह, कुलश्रेष्ट (1986), एफैक्टिवनेस ऑफ वैल्यू क्लासिफाईग स्ट्रेटजी इन वैल्यू ओरिएंटेशन ऑफ, बी. एड. स्टूडेंट्स, अप्रकाशित शोध योजना, एन .सी .ई .आर .टी (1986)।
- शर्मा, ए. एवं अग्रवाल, बी. एल. (2002) सोसियोमेट्री: ए हैण्डबुक फॉर टीचर्स एण्ड काउंसेलर्स, एन .सी. . ई.आर.टी., नई दिल्ली।
- वर्मा, आई . बी. (2005) एन इन्वेस्टीगेशन इनटू द इम्पैक्ट ऑफ ट्रेनिंग आन द वैल्यूज, इन बुच (एजू) ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, सी. एस. एस. ई., पृष्ठ संख्या 402-403।
- सिंह, सृष्टि एवं अन्य (2012), ने' माध्यमिक स्तर पर अनुकूलित एवं प्रतिकूलित परिवारिक वातावरण का विद्यार्थियो के मूल्यों पर प्रभाव, एशियन जर्नल ऑफ एजुकेशन रिसर्च टेक्नोलॉजी वाल्यूम-2 (1) . पृ. 151-164।

बौद्ध धर्म के इतिहास में "धर्म-चक्र प्रवर्तन"

डॉ० संजय कुमार

मु-सुन्दरपुर बीरा, पोस्ट-वासुदेवपुर बीरा, जिला-दरभंगा, बिहार

सारांश

भगवान बुद्ध के अनुसार धम्म जीवन की पवित्रता बनाए रखना और तथ्य-ज्ञान में पूर्णता प्राप्त करना है, साथ ही निर्वाण प्राप्त करना और तृष्णा का त्याग करना है। इसके अलावा भगवान बुद्ध ने सभी संस्कार को अनित्य बताया है। भगवान बुद्ध ने मानव के कर्म को नैतिक संस्थान का आधार बताया है। यानी भगवान बुद्ध के अनुसार धम्म यानी धर्म वही है। जो सबके लिए ज्ञान के द्वार खोल दे। और उन्होने ये भी बताया कि केवल विद्वान होना ही पर्याप्त नहीं है। विद्वान वही है जो अपने की ज्ञान की रोशनी से सबको रोशन करे। धर्म को लोगों की जिंदगी से जोड़ते हुए भगवान बुद्ध ने बताया कि करूणा शील और मैत्री अनिवार्य है। इसके अलावा सामाजिक भेद भाव मिटाने के लिए भी भगवान बुद्ध ने प्रयास करते हुए बताया था कि लोगों का मुल्यांकन जन्म के आधार पर नहीं कर्म के आधार पर होना चाहिए। भगवान बुद्ध के बताए मार्ग पर दुनिया भर के करोड़ों लोग चलते है। जिससे वो सही राह पर चलकर अपने जीवन को सार्थक बनाते हैं। तथागत गौतम बुद्ध अपने आपको संसार का रचियता अथवा जगतकर्ता या ईश्वर नहीं बताया है। पालि अर्थात वह वाणी जो कि भगवां गोतम बुद्ध के मुख से पायी गयी तो उस वाणी को ही पालि कहा गया। पालि में ष्भगवां सब्द(शब्द)का अर्थ है भग्ग करने वाला। जिसका पालि सुत्त ष्सुत्त पिटक" एवं "आचरिय बुद्ध घोस" के ग्रन्थ विसुद्धिमग्ग में है - "भग्ग रागो भग्ग दोसो भग्ग मोहो भग्गास च पापका धम्मा इतपि सो भगवां अरहं सम्माबुद्धो।।" अर्थात (वे) जिन्होने सभी प्रकार के राग, द्वेष और मोह का नाश कर दिया है एवं सभी प्रकार के पाप धर्मो का नाश कर दिया है, इसकारण से वे जो अरहतसम्यक सम्बुद्ध हैं भगवान कहे जाते हैं। अतः पालि में भगवां का अर्थ गुणवाचक उसके सब्द ष्भग्ग एवं भज्ज/भञ्ज धातु के कारण कहा जाता है। जिसका सम्बन्ध जगतकर्ता/ईश्वर से कुछ भी नहीं है।

गौतम बुद्ध

गौतम बुद्ध के जीवन के विषय में प्रामाणिक सामग्री विरल है। इस प्रसंग में उपलब्ध अधिकांश वृत्तांत एवं कथानक भक्तिप्रधान रचनाएँ हैं और बुद्धकाल के बहुत बाद के हैं। प्राचीनतम सामग्री में पालि त्रिपिटक के कुछ स्थलों पर उपलब्ध अल्प विवरण उल्लेख्य हैं, जैसे- बुद्ध की पर्येषणा, सम्बोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन एवं महापरिनिर्वाण के विवरण। बुद्ध की जीवनी के आधुनिक विवरण प्रायः पालि की निदानकथा अथवा संस्कृत के महावस्तु, ललितविस्तर एवं अश्वघोष कृत बुद्धचरित पर आधारित होते हैं। किन्तु इन विवरणों की ऐतिहासिकता वहीं तक स्वीकार की जा सकती है जहाँ तक उनके लिए प्राचीनतर समर्थन उपलब्ध हों।

ईसापूर्व ५६३ के लगभग शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी वन में गौतम बुद्ध का जन्म प्रसिद्ध है। यह स्थान वर्तमान नेपाल राज्य के अन्तर्गत भारत की सीमा से ७ किलोमीटर दूर है। यहाँ पर प्राप्त अशोक के रुम्मिनदेई स्तम्भलेख से ज्ञात होता है शहिद बुधे जातेश (=यहाँ बुद्ध जन्मे थे)। सुत्तनिपात में शाक्यों को हिमालय के निकट कोशल में रहनेवाले गौतम गोत्र के क्षत्रिय कहा गया है। कोशलराज के अधीन होते हुए भी शाक्य जनपद स्वयं एक गणराज्य था। इस प्रकार के राजा शुद्धोदन बुद्ध के पिता एवं मायादेवी उनकी माता प्रसिद्ध हैं। जन्म के पाँचवे दिन बुद्ध को "सिद्धार्थ" नाम दिया गया और जन्मसप्ताह में ही माता के देहान्त के कारण उनका पालन-पोषण उनकी मौसी एवं विमाता महाप्रजापती गौतमी द्वारा हुआ।

बुद्ध के शैशव के विषय में प्राचीन सूचना अत्यन्त अल्प है। सिद्धार्थ के बत्तीस महापुरुषलक्षणों को देखकर असित ऋषि ने उनके बुद्धत्व की भविष्यवाणी की, इसके अनेक वर्णन मिलते हैं। ऐसे भी कहा जाता है कि एक दिन जामुन की छाँह में उन्हें सहज रूप में प्रथम ध्यान की उपलब्धि हुई थी। दूसरी ओर ललितविस्तार आदि ग्रन्थों में उनके शैशव का चमत्कारपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। ललितविस्तर के अनुसार जब सिद्धार्थ को देवायतन ले जाया गया तो देवप्रतिमाओं ने स्वयं उठकर उन्हें प्रणाम किया। उनके शरीर पर सब स्वर्णाभरण मलिन प्रतीत होते थे, लिपिशिक्षक आचार्य विश्वामित्र को उन्होंने ६४ लिपियों का नाम लेकर और गणक महामात्र अर्जुन को परमाणु-रजः प्रवेशानुगत गणना के विवरण से विस्मय में डाल दिया। नाना शिल्प, अस्त्रविद्या, एवं कलाओं में सहज-निष्णात सिद्धार्थ का दण्डपाणि की पुत्री गोपा के साथ परिणय सम्पन्न हुआ। पालि आकरों के अनुसार सिद्धार्थ की पत्नी सुप्रबुद्ध की कन्या थी और उसका नाम श्भद्दकच्चानाश, भद्रकात्यायनी, यशोधरा, बिम्बा, अथवा बिम्बासुन्दरी था। विनय में उसे केवल श्राहुलमाताश कहा गया है। बुद्धचरित में यशोधरा नाम दिया गया है।

सिद्धार्थ के प्रव्राजित होने की भविष्यवाणी से भयभीत होकर शुद्धोदन ने उनके लिए तीन विशिष्ट प्रासाद (महल) बनवाए - ग्रैष्मिक, वार्षिक, एवं हैमन्तिक। इन्हें रम्य, सुरम्य और शुभ की संज्ञा भी दी गई है। इन प्रासादों में सिद्धार्थ को व्याधि और जरा-मरण से दूर एक कृत्रिम, नित्य मनोरम लोक में रखा गया जहाँ संगीत, यौवन और सौन्दर्य का अक्षत साम्राज्य था। किन्तु देवताओं की प्रेरणा से सिद्धार्थ को उद्यानयात्रा में व्याधि, जरा, मरण और परिव्राजक के दर्शन हुए और उनके चित्त में प्रव्राज्या का संकल्प विरूढ़ हुआ। इस प्रकार के विवरण की अत्युक्ति और चमत्कारिता उसके आक्षरिक सत्य पर संदेह उत्पन्न करती है। यह निश्चित है कि सिद्धार्थ के मन में संवेग संसार के अनिवार्य दुःख पर विचार करने से उत्पन्न हुआ। उनकी ध्यानप्रवणता ने, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, इस दुःख की अनुभूति को एक गम्भीर सत्य के रूप में प्रकट किया होगा। निदानकथा के अनुसार इसी समय उन्होंने पुत्रजन्म का संवाद सुना और नवजात को श्राहुलश नाम मिला। उसी अवसर पर प्रासाद की ओर जाते हुए सिद्धार्थ की शोभा से मुग्ध होकर राजकुमारी कृशा गौतमी ने उनकी प्रशंसा में एक प्रसिद्ध गाथा कही जिसमें श्नुबुत्तश (=निर्वृत्त = प्रशान्त) शब्द आता है।

सिद्धार्थ को इस गाथा में गुरुवाक्य के समान गंभीर आध्यात्मिक संकेत उपलब्ध हुआ। उन्होने सोचा कि इसने पाप और पुनर्जन्म से मुक्ति के लिए मुझे सन्देश दिया है। इसके साथ ही उन्होने मोतियों का अपना हार उतारकर उस युवती को दे दिया।

आधी रात के अंधकार में सोती हुई पत्नी और पुत्र को छोड़कर सिद्धार्थ कंथक पर आरूढ़ हो नगर से और कुटुम्बजीवन से निष्क्रान्त हुए। उस समय सिद्धार्थ २९ वर्ष के थे। निदानकथा के अनुसार रात भर में शाक्य, कोलिय और मल्ल (राम ग्राम) इन तीन राज्यों को पार कर सिद्धार्थ ३० योजन की दूरी पर अनोमा नाम की नदी के तट पर पहुँचे। वहीं उन्होंने प्रव्राज्या के उपयुक्त वेश धारण किया और छन्दक को विदा कर स्वयं अपनी अनुत्तर शांति की पर्येषणा (खोज) की ओर अग्रसर हुए।

आर्य पर्येषणा के प्रसंग में सिद्धार्थ अनेक तपस्वियों से से मिले जिनमें आलार (आराड़), कालाम एवं उद्रक (रुद्रक) मुख्य हैं। ललितविस्तर में अराड कालाम का स्थान वैशाली कहा गया है जबकि अश्वघोष के बुद्धिचरित में उसे विन्ध्य कोष्ठवासी बताया गया है। पालि निकायों से विदित होता है कि कालाम ने बोधिसत्व को श्आर्किंचन्यायतनश नाम की श्अल्प समापत्तिश सिखाई। अश्वघोष ने कालाम के सिद्धान्तों का सांख्य से सादृश्य प्रदर्शित किया है। ललितविस्तर में रुद्रक का आश्रम राजगृह के निकट कहा गया है। रुद्रक के श्नैवसंज्ञानासंज्ञायतनश के उपदेश से भी बोधिसत्व असन्तुष्ट रहे। राजगृह में उनका मगधराज बिम्बिसार से साक्षात्मार सुत्तनिपात के पब्बज्जसुत्त, ललितविस्तर और बुद्धचरित में वर्णित है।

गया में बोधिसत्व ने यह विचार किया कि जैसे गीली लकड़ियों से अग्नि उत्पन्न नहीं हो सकती, ऐसे ही भोगों में स्पृहा रहते हुए ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतएव उरुविल्व के निकट सेनापति ग्राम में नैरञ्जना नदी के तटवर्ती रमणीय प्रदेश में उन्होंने कठोर तपश्चर्या (प्रधान) का निश्चय किया। किन्तु अन्ततोगत्वा उन्होंने तप को व्यर्थ समझकर छोड़ दिया। इसपर उनके साथ कौंडिन्य आदि पंचवर्षीय परिव्राजकों ने उन्हें तपोभ्रष्ट निश्चित कर त्याग दिया। बोधिसत्व ने अब शैशव में अनुभूत ध्यानाभ्यास का स्मरण कर ध्यान के द्वारा ज्ञानप्राप्ति का यत्न किया। इस ध्यानकाल में उन्हें मार सेना का सामना करना पड़ा, यह प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित है। स्पष्ट ही मार घर्षण को काम और मृत्यु पर विजय का प्रतीकात्मक विवरण समझना चाहिए। आर्य पर्येषणा के छठे वर्ष के पूरे होने पर वैशाखी पूर्णिमा को बोधिसत्व ने सम्बोधि प्राप्त की। रात्रि के प्रथम याम में उन्होंने पूर्वजन्मों की स्मृति रूपी प्रथम विद्या, द्वितीय याम में दिव्य चक्षु और तृतीय याम में प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान प्राप्त किया। एक मत से इसके समानांतर ही सर्वध र्माभिसमय रूप सर्वाकारक प्रज्ञा अथवा संबोधि का उदय हुआ।

संबोधि के अनंतर बुद्ध के प्रथम वचनों के विषय में विभिन्न परम्पराएँ हैं जिनमें बुद्धघोष के द्वारा समर्थित श्अनेक जाति संसार संघाविस्सं पुनप्पुनंश आदि गाथाएँ विशेषत: उल्लेखनीय हैं। संबोधि की गंभीरता के कारण बुद्ध के मन में उसके उपदेश के प्रति उदासीनता स्वाभाविक थी। संसारी जीव उस गंभीर सत्य को कैसे समझ पाएँगे जो अत्यन्त सूक्ष्म और अतर्क्य है? बुद्ध की इस अनभिरुचि पर ब्रह्मा ने उनसे धर्मचक्र-प्रवर्तन का अनुरोध किया जिसपर दु:खमग्न संसारियों को देखते हुए बुद्ध ने उन्हें विकास की विभिन्न अवस्थाओं में पाया।

सारनाथ के ऋषिपत्तन मृगदान में भगवान् बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देकर धर्मचक्रप्रवर्तन किया। इस प्रथम उपदेश में दो अन्तों का परिवर्जन और मध्यमा प्रतिपदा की आश्रयणीयता बताई गई है। इन पंचवर्गीयों के अनंतर श्रेष्ठिपुत्र यश और उसके संबंधी एवं मित्र सद्धर्म में दीक्षित हुए। इस प्रकार बुद्ध के अतिरिक्त ६० और अर्हत् उस समय थे जिन्हें बुद्ध ने नाना दिशाओं में प्रचारार्थ भेजा और वे स्वयं उरुवेला के सेनानिगम की ओर प्रस्थित हुए। मार्ग में ३० भद्रवर्गीय कुमारों को उपदेश देते हुए उरुवेला में उन्होंने तीन जटिल काश्यपों को उनके एक सहस्र अनुयायियों के साथ चमत्कार और उपदेश के द्वारा धर्म में दीक्षित किया। इसके पश्चात् राजगृह जाकर उन्होंने मगधराज बिंबिसार को धर्म का उपदेश दिया। बिंबिसार ने वेणुवन नामक उद्यान भिक्षुसंघ को उपहार में दिया। राजगृह में ही संजय नाम के परिव्राजक के दो शिष्य कोलित और उपतिष्य सद्धर्म में दीक्षित होकर मौद्गल्यायन और सारिपुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। विनय के महावग्ग में दिया हुआ संबोधि के बाद की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण यहाँ पूरा हो जाता है।

इस प्रकार अस्सी वर्ष की आयु तक धर्म का प्रचार करते हुए उन क्षेत्रों में भ्रमण करते रहे जो वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश और बिहार के के अन्तर्गत आते हैं। श्रावस्ती में उनका सर्वाधिक निवास हुआ और उसके बाद राजगृह, वैशाली और कपिलवस्तु में।

प्रसिद्ध महापरिनिर्वाण सूत्र में बुद्ध की अंतिम पदयात्रा का मार्मिक विवरण प्राप्त होता है। बुद्ध उस समय राजगृह में थे जब मगध राज अजातशत्रु वृजि जनपद पर आक्रमण करना चाहता था। राजगृह से बुद्ध पाटलि ग्राम होते हुए गंगा पार कर वैशाली पहुँचे जहाँ प्रसिद्ध गणिका आम्रपाली ने उनको भिक्षुसंघ के साथ भोजन कराया। इस समय परिनिर्वाण के तीन मास शेष थे। वेलुवग्राम में भगवान् ने वर्षावास व्यतीत किया। यहाँ वे अत्यन्त रुग्ण हो गए। वैशाली से भगवान् भंडग्राम और भोगनगर होते हुए पावा पहुँचे। वहाँ चुंद कम्मारपुत्त के आतिथ्य ग्रहण में श्सूकर मद्दवश खाने से उन्हें रक्तातिसार उत्पन्न हुआ। रुग्णावस्था में ही उन्होंने कुशीनगर की ओर प्रस्थान किया और हिरण्यवती नदी पार कर वे शालवन में दो शालवृक्षों के बीच लेट गए। सुभद्र परिव्राजक को उन्होंने उपदेश दिया और भिक्षुओं से कहा कि उनके अनन्तर धर्म ही संघ का शास्ता रहेगा। छोटे मोटे शिक्षापदों में परिवर्तन करने की अनुमति भी इन्होंने संघ को दी और छन्न भिक्षु पर ब्रह्मदण्ड का विधान किया। पालि परम्परा के अनुसार भगवान् के अंतिम शब्द थे श्वयधम्मा संखारा अप्पमादेन संपादेथ।श (वयधर्मा: संस्कारा: अप्रमादेन सम्पादयेत - सभी संस्कार नाशवान हैं, आलस्य न करते हुये संपादन करना चाहिए।)

बुद्ध के समकालीन

- बुद्ध के प्रमुख गुरु थे- आदिगुरु, अलारा, कलम, उद्दाका रामापुत्त, सूरज आजाद आदि। उनके प्रमुख शिष्य थे- आनन्द, अनिरुद्ध, महाकश्यप, रानी खेमा (महिला), महाप्रजापति (महिला), भद्रिका, भृगु, किम्बाल, देवदत्त, उपाली, अंगुलिमाल आदि।[1]
- गुरु अलारा कलम और उद्दाका रामापुत्त : ज्ञान की तलाश में सिद्धार्थ घूमते-घूमते अलारा कलम और उद्दाका रामापुत्त के पास पहुंचे। उनसे उन्होंने योग-साधना सीखी। कई माह तक योग करने के बाद भी जब ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई तो उन्होंने उरुवेला पहुंच कर वहां घोर तपस्या की। छ: साल बीत गए तपस्या करते हुए। सिद्धार्थ की तपस्या सफल नहीं हुई। तब एक दिन कुछ स्त्रियां किसी नगर से लौटती हुई वहां से निकलीं, जहां सिद्धार्थ तपस्या कर रहे थे। उनका एक गीत सिद्धार्थ के कान में पड़ा- 'वीणा के तारों को ढीला मत छोड़ दो। ढीला छोड़ देने से उनका सुरीला स्वर नहीं निकलेगा। पर तारों को इतना कसो भी मत कि वे टूट जाएं।' बात सिद्धार्थ को जंच गई। वह मान गए कि नियमित आहार-विहार से ही योग सिद्ध होता है। अति किसी बात की अच्छी नहीं। किसी भी प्राप्ति के लिए मध्यम मार्ग ही ठीक होता है। बस फिर क्या था कुछ ही समय बाद ज्ञान प्राप्त हो गया।

- आनन्द : यह बुद्ध और देवदत्त के भाई थे और बुद्ध के दस सर्वश्रेष्ठ शिष्यों में से एक हैं। यह लगातार बीस वर्षों तक बुद्ध की संगत में रहे। इन्हें गुरु का सर्वप्रिय शिष्य माना जाता था। आनंद को बुद्ध के निर्वाण के पश्चात प्रबोधन प्राप्त हुआ। वह अपनी स्मरण शक्ति के लिए प्रसिद्ध थे।
- महाकश्यप : महाकश्यप मगध के ब्राह्मण थे, जो तथागत के नजदीकी शिष्य बन गए थे। इन्होंने प्रथम बौद्ध अधिवेशन की अध्यक्षता की थी।
- रानी खेमा : रानी खेमा सिद्ध धर्मसंघिनी थीं। यह बिंबिसार की रानी थीं और अति सुन्दर थीं। आगे चलकर खेमा बौद्ध धर्म की अच्छी शिक्षिका बनीं।
- महाप्रजापति : महाप्रजापति बुद्ध की माता महामाया की बहन थीं। इन दोनों ने राजा शुद्धोदन से विवाह किया था। गौतम बुद्ध के जन्म के सात दिन पश्चात महामाया की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात महाप्रजापति ने उनका अपने पुत्र जैसे पालन-पोषण किया। राजा शुद्धोदन की मृत्यु के बाद बौद्ध मठ में पहली महिला सदस्य के रूप में महाप्रजापिता को स्थान मिला था।

बुद्ध की शिक्षाएँ

भगवान् बुद्ध की मूल देशना (शिक्षा) क्या थी, इसपर प्रचुर विवाद है। स्वयं बौद्धों में कालान्तर में नाना सम्प्रदायों का जन्म और विकास हुआ और वे सभी अपने को बुद्ध से अनुप्राणित मानते हैं।

अधिकांश आधुनिक विद्वान् पालि त्रिपिटक के अन्तर्गत विनयपिटक और सुत्तपिटक में संगृहीत सिद्धान्तों को मूल बुद्धदेशना मान लेते हैं। कुछ विद्वान् सर्वास्तिवाद अथवा महायान के सारांश को मूल देशना स्वीकार करना चाहते हैं। अन्य विद्वान् मूल ग्रंथों के ऐतिहासिक विश्लेषण से प्रारंभिक और उत्तरकालीन सिद्धांतों में अधिकाधिक विवेक करना चाहते हैं, जिसके विपरीत कुछ अन्य विद्वान् इस प्रकार के विवेक के प्रयास को प्राय: असम्भव समझते हैं।

आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग, दस पारमिता, पंचशील आदि के रूप में बुद्ध की शिक्षाएँ समझी जा सकतीं हैं।

चार आर्य सत्य

तथागत बुद्ध का पहला धर्मोपदेश, जो उन्होने अपने साथ के कुछ साधुओं को दिया था, इन चार आर्य सत्यों के बारे में था। बुद्ध ने चार आर्य सत्य बताये हैं।

1. दु:ख

इस दुनिया में दु:ख है। जन्म में, बूढे होने में, बीमारी में, मौत में, प्रियतम से दूर होने में, नापसंद चीजों के साथ में, चाहत को न पाने में, सब में दु:ख है।

2. दु:ख कारण

तृष्णा, या चाहत, दु:ख का कारण है और फिर से सशरीर करके संसार को जारी रखती है।

3. दु:ख निरोध

दु:ख-निरोध के आठ साधन बताये गये हैं जिन्हें 'अष्टांगिक मार्ग' कहा गया है। तृष्णा से मुक्ति पाई जा सकती है।

4. दु:ख निरोध का मार्ग

तृष्णा से मुक्ति अष्टांगिक मार्ग के अनुसार जीने से पाई जा सकती है।

अष्टांगिक मार्ग

बौद्ध धर्म के अनुसार, चौथे आर्य सत्य का आर्य अष्टांग मार्ग है दु:ख निरोध पाने का रास्ता। गौतम बुद्ध कहते थे कि चार आर्य सत्य की सत्यता का निश्चय करने के लिए इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए :

1. **सम्यक् दृष्टि-** वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को जानना ही सम्यक् दृष्टि है।
2. **सम्यक् संकल्प-** आसक्ति, द्वेष तथा हिंसा से मुक्त विचार रखना ही सम्यक् संकल्प है।

3. **सम्यक् वाक्**– सदा सत्य तथा मृदु वाणी का प्रयोग करना ही सम्यक् वाक् है।
4. **सम्यक् कर्मान्त**– इसका आशय अच्छे कर्मों में संलग्न होने तथा बुरे कर्मो के परित्याग से है।
5. **सम्यक् आजीव**– विशुद्ध रूप से सदाचरण से जीवन-यापन करना ही सम्यक् आजीव है।
6. **सम्यक् व्यायाम**– अकुशल धर्मो का त्याग तथा कुशल धर्मो का अनुसरण ही सम्यक् व्यायाम है।
7. **सम्यक् स्मृति**– इसका आशय वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप के संबंध में सदैव जागरूक रहना है।
8. **सम्यक् समाधि** - चित्त की समुचित एकाग्रता ही सम्यक् समाधि है।

कुछ लोग आर्य अष्टांग मार्ग को पथ की तरह समझते है, जिसमें आगे बढ़ने के लिए, पिछले के स्तर को पाना आवश्यक है। और लोगों को लगता है कि इस मार्ग के स्तर सब साथ-साथ पाए जाते है। मार्ग को तीन हिस्सों में वर्गीकृत किया जाता है : प्रज्ञा, शील और समाधि।

पंचशील

भगवान बुद्ध ने अपने अनुयायिओं को पांच शीलों का पालन करने की शिक्षा दी है।

1. **अहिंसा**
   पालि में – पाणातिपाता वेरमनी सीक्खापदम् सम्मादीयामी !
   अर्थ – मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
2. **अस्तेय**
   पालि में – आदिन्नादाना वेरमणाी सिक्खापदम् समादियामी
   अर्थ – मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
3. **अपरिग्रह**
   पालि में – कामेसूमीच्छाचारा वेरमणाी सिक्खापदम् समादियामी
   अर्थ – मैं व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
4. **सत्य**
   पालि में – मुसावादा वेरमणाी सिक्खापदम् समादियामी
   अर्थ – मैं झूठ बोलने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।
5. **सभी नशा से विरत**
   पालि में – सुरामेरय मज्जपमादठटाना वेरमणाी सिक्खापदम् समादियामी।
   अर्थ – मैं पक्की शराब (सुरा) कच्ची शराब (मेरय), नशीली चीजों (मज्जपमादठटाना) के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

उपसंहार

शोध बताते हैं कि दुनिया में सर्वाधिक प्रवचन बुद्ध के ही रहे हैं। 35 की उम्र के बाद बुद्ध ने जीवन के प्रत्येक विषय और धर्म के प्रत्येक रहस्य पर जो कुछ भी कहा वह त्रिपिटक में संकलित है। त्रिपिटक अर्थात तीन पिटक- विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक। सुत्तपिटक के खुद्दक निकाय के एक अंश धम्मपद को पढ़ने का ज्यादा प्रचलन है। इसके अलावा बौद्ध जातक कथाएं विश्व प्रसिद्ध हैं। बुद्ध के धर्म प्रचार से उनके भिक्षुओं की संख्या बढ़ने लगी तो भिक्षुओं के आग्रह पर बौद्ध संघ की स्थापना की गई। बौद्ध संघ में बुद्ध ने स्त्रियों को भी लेने की अनुमति दे दी। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद वैशाली में सम्पन्न द्वितीय बौद्ध संगीति में संघ के दो हिस्से हो गए। हीनयान और महायान।सम्राट अशोक ने 249 ई.पू. में पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन कराया था। उसके बाद भी भरपूर प्रयास किए गए सभी भिक्षुओं को एक ही तरह के बौद्ध संघ के अंतर्गत रखे जाने के किंतु देश और काल के अनुसार इनमें बदलाव आता रहा।

सन्दर्भ

1. महात्मा बुद्ध के समकालीन लोग
2. मीर्चा ईटु, दर्शन और धर्म का इतिहास, बुखारेस्ट, कल की रोमानिया का प्रकाशन संस्था, दो हजार चार, एक सौ इक्यासी का पृष्ठ। (ISBN 973-582-971-1)
3. आनन्द केंटिश कुमारस्वामी, हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म, नई यॉर्क, गोल्डन एलिक्सिर प्रेस, दो हजार ग्यारह, चौहत्तर का पृष्ठ। (ISBN 978-0-9843082-3-1)
5. Department of Census and Statistics, The Census of Population and Housing of Sri Lanka-2011
5. 'बौद्ध धर्म और श्रीलंकन संस्कृती'. मूल से 20 दिसंबर 2016 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 10 दिसंबर 2016.

पर्यावरण एवं संपोषणीय विकास

लक्ष्मी कुमारी

शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, बी.एन.एन.यू., मधेपुरा

"पर्यावरण हमें अपने पूर्वजों से विरासत में नहीं मिली है अपितु यह हमारे पास भावी पीढ़ियों की धरोहर है।"

प्रकृति ने मनुष्य को पर्यावरण के रूप में एक अनमोल धरोहर प्रदान की है। पर्यावरण को प्राय: पारिस्थितिकी का पर्याय माना जाता है क्योंकि मनुष्य, जल, स्थल, वन, फसल, मार्ग, उद्योग आदि सभी इस पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) के अंग स्वरूप हैं। पृथ्वी के चारों तरफ के जैव-सक्रियता के पतले आवरण को ही मुरत्यतया पर्यावरण के नाम से जाता है।

पर्यावरण शब्द फ्रेंच भाषा के Environer शब्द से बना है, जिसका अर्थ संपूर्ण पारिस्थितिकी या पारिवृति से है। पर्यावरण का आशय किसी वस्तु के पास पड़ोस से है, जो उसकी वृद्धि एवं विकास में सहायक होती हैं। इसके अन्तर्गत वे सभी स्थितियाँ दशाएँ एवं प्रभाव आते है जो जैव अथवा जैविकीय समूह को किसी न किसी रूप में प्रभावित करते रहते हैं।

पर्यावरण वो परिवृति है जो मनुष्य को चारों ओर से घेरे हुए है तथा उसके सम्पूर्ण जीवन व क्रियाकलाप को प्रभावित करती है। हमारे लिए उस पर्यावरण का विशेष महत्व है जिसमें मनुष्य रहता है। हमारे लिए उस पर्यावरण का अध्ययन करना खास हो जाता है, क्योंकि मनुष्य का आवास पृथ्वी है और वह पृथ्वी के ही पेड़-पौधें और जीव-जन्तुओं पर भोजन तथा अपनी अन्य अवश्यकताओं के लिए आश्रित है। पृथ्वी के सभी पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं की परिवृत्तियों का गहनता से अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसी परिवृति में मनुष्य से बाहर के तत्व, तश्य, वस्तुएँ एवं दशाएँ सम्मिलित हैं जिनकी क्रियाएँ मनुष्य के जीवन विकास को प्रभावित करती हैं।

पर्यावरण के तत्व

पृथ्वी सौरमंडल का सबसे अनोखा यह है, क्योंकि केवल यहाँ पर ही पेड़-पौधो और जीव-जन्तुओं का विकास हुआ हैं और जीवन के अनुकूल परिस्थितियाँ भी विद्यमान हैं। पृथ्वी की इस विशिष्टता के पीछे कई कारक कार्य करते है, जो निम्नवत् हैं:

- क्र पृथ्वी सूर्य के निकटवर्ती ग्रहों बुध और शुक्र की भांति न तो बहुत गर्म है और न ही वृहस्पति जैसे सूर्य से बहुत दूर स्थित ग्रहों के समान अत्यन्त ठंडी।
- क्र पुथ्वी के चारों और फैले वायुमंडल में ऑक्सीजन पाई जाती है, जो सभी प्राणियों के जीवन के लिए अनिवार्य है।
- क्र वायुमण्डल, जो पृथ्वी के चारों ओर वायु का आवरण है और इसे चारों ओर से घेरे हुए है, पृथ्वी धरातल को सूर्य के ताप की चरमसीमा से बचाता है।
- क्र वायुमण्डल के कारण पृथ्वी पर दिन और रात होते हैं तथा गर्मियों एवं सर्दियों के तापमान में बहुत ज्यादा अंतर नहीं होता है। तापमान की इसी विशिष्टता के कारण पृथ्वी पर विशाल मात्रा में जल पाया जाता है।
- क्र पृथ्वी पर तापमान में होने वाले परिवर्तनों के कारण जल ठोस और गैसीय अवस्थाओं में भी पाया जाता है।
- क्र तापमान में परिवर्तनों से ही पानी का संचरण जलमण्डल स्थलमण्डल और वायुमण्डल के बीच होता रहता है।
- क्र पृथ्वी पर जल के कारण ही विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों और मनुष्य समेत जीव-जन्तुओं की विविध जातियों का विकास तथा वृद्धि संभव हो सकी है।

अत: पृथ्वी के उपयुक्त कारक ही उसे सौरमण्डल का विशिष्ट ग्रह बनाते हैं।

पर्यावरण के विभिन्न अंग

पर्यावरण के दो प्रमुख अंग निम्नवत् है -

1. भौतिक पर्यावरण: स्थल, जल और वायु पर्यावरण के अवयव हैं।

2. जैव पर्यावरण: पैड़-पौधों और छोटे-बड़े सभी जीव तथा मानव जैव पर्यावरण के अवयवों के अन्तर्गत आते हैं।

भौतिक पर्यावरण तथा जैव पर्यावरण एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। भौतिक पर्यावरण में कोई भी परिर्वतन आने से उसका प्रभाव जैव पर्यावरण पर भी पड़ता है। भौतिक पर्यावरण के बदलने से जैव पर्यावरण भी बदलने लगा है।

वायुमण्डल

वायुमण्डल वायु का वह आवरण है जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है। इसमें सबसे ज्यादा गतिशीलता पाई जाती हैय क्योंकि इसमे न केवल ऋतुओं के अनुसार परिवर्तन होता है। अपितु छोटी-सी अवधि में भी परिवर्तन हो जाता है।

सम्पूर्ण वायुमण्डल का 99% भाग पृथ्वी की सतह से 20 किलोमिटर का उँचाई में ही पाया जाता है। वायुमण्डल की इसी परत में अधिकांशत: परिवर्तन होते रहते हैं। को सुविधाजनक अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जाता है-

1. वायुमण्डल का संघटन: वायुमण्डल विभिन्न तत्वों, जैसे-गैस जलवाष्प एंव ठोस कणों का मिश्रण है।

2. वायुमण्डल की संरचना: वायुमण्डल का घनत्व उँचाई के साथ-साथ घटता जाता है। वायुमण्डल की संरचना चार विभिन्न परतों क्षोभमण्डल, तापमण्डल, आयनमण्डल, बाह्यमण्डल से मिलकर बनी है।

वायुमण्डल का महत्व

वायुमण्डल पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है। यह पृथ्वी के लिए आवरण का कार्य करता है, जिसके कारण सूर्य की पराबैंगनी किरण भूतल पर नहीं पहुँच पाती। सूर्य की किरणें वायुमण्डल को एक समान गर्म नहीं करतीं अर्थात् वायुमण्डल के समान रूप से गर्म न होने के कारण वायु में परिसंचरण होता है, जिससे पवनें चलती हैं, बादल बनते हैय वर्षण या वर्ष, हिमपात, ओले आदि होते है।

पृथ्वी पर इन्हीं सबके कारण जल-वायु की दशाओं में विविधता उत्पन्न होती हैं जिसके परिणास्वरूप पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं के वितरण में विविधता पाई जाती है।

पर्यावरण की अवधाराण का विकस

आज के समय में पर्यावरण विश्व के सभी देशों के विकास, उनकी व्यवसथा, समाजिकता, आर्थिक सम्पन्नता तथा संस्कृतियों को प्रभावित करने वाला कारक बन चुका है। पर्यावरण अब इतना महत्वपूर्ण विषय बन चुका है कि अगर हम इसकी अनदेखी करते हैं तो यह हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व को खतरे में डालने वाली बात होगी।

अरस्तु, मॉन्टेस्क्यू तथा मार्क्स जैसे राजनीतिक दार्शनिकों ने पर्यावरण को राजनीतिक ढ़ाँचे से और राजनीतिक ढ़ाँचे को पर्यावरण से संबंधित करने के गंभीर प्रयास किए।

पर्यावरण जीवन को सुगम बनाता है अरस्तु

अरस्तु ने उत्तम त्यावहारिक राज्य के रूप में राजतंत्र की व्याख्या करते हुए अपनी इस उक्ति को साबित किया। इसी प्रकार मॉन्टेस्क्यू ने कहा कि पर्यावरण ही राजनीतिक व्यवस्था को बनाते व बिगाड़ते हैं। मार्क्स ने बहुत सुदंर ढ़ंग से दर्शाया है कि व्यक्ति, राज्य तथा समाज का भौतिक विकास उसके पर्यावरण पर ही निर्भर करती है।

अत: पर्यावरण संपूर्ण विश्व के समक्ष एक ज्वलंत मुद्दा है जिसकी अनदेखी भावी पीढ़ियों को मुश्किल में डाल सकती है।

संपोषणीय विकास

पर्यावरण के क्षेत्र में बढ़ते ह्रास तथा परिस्थितिकी एंव मनुष्य समाज पर विकास के बढ़ते प्रभाव पर चिंता सर्वप्रथम 1970 के दशक में सम्पुर्ण विश्व समाज को हुई जब संयुक्त राष्ट्रपर्यावरणीय सरोकारों का प्रमुख पैरवीकार तथा संपोषणीय विकास का मुख्य प्रतिपादक बन कर उभरा।

आर्थिक विकास एंव पर्यावरणीय क्षति के बीच के संबंध को वर्ष 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन में मानव पर्यावरण का मुख्य एजेंडा बनाया गया। उस सममेलन के बाद विश्व के विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अन्तर्गत यूनाईटेड नेशंस एनवायरमेंट प्रोग्राम या यूएनइपी को स्थापित किया। जो आज वर्त्तमान में एक प्रमुख वैश्विक पर्यावरण एजेंसी बना हुआ है।

वर्ष 1973 में संयुक्त राष्ट्र ने पश्चिम अफ्रीका के मरूस्थलीकरण के विस्तार को घटाने के प्रयासें को बढ़ाने के लिए संयुक्त राष्ट्रसूडानों सहेलियन ऑफिस की स्थापना की। तथापि राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन एवं निर्णय प्रक्रिया में पर्यावरणीय चिंताओं को धीमी-गति से ही आगे बढ़ाया जाता रहा है। कुल मिलाकर पर्यावरण में क्षय होना जारी रहा, वैश्विक ताप, ओजोन छिद्र में वृद्धि एंव जल प्रदूषण जैसी समस्याएँ लगातार गम्भीर होती गई। दूसरी तरफ प्राकृति संसाधनों का विनाश भी चिन्ताजनक स्थिति तक बढ़ता गया।

वर्ष 1980 के दशक में सदस्य राष्ट्रों ने पर्यावरणीय मुद्दे पर संवेदशीलता दिखाई। ओजोन परत को सुरक्षित रखने एवंविषैले उत्सर्जन की गति नियंत्रित करने के लिए संधियाँ सम्पन्न हुई। वर्ष 1983 में महासभा द्वारा स्थापित पर्यावरण एंव विकास आयोग ने एक प्रकार के विकास के प्रति जरूरत, नई सूझा-बुझा तथा तात्कालिकता की भावना पेदा करने का सफल प्रयास किया। एक ऐसा विकासजो वर्त्तमान एंव भावी पीढ़ियों के आर्थिक कल्याण को सुनिश्चित करने के साथ-साथ पर्यावरणीय संसाधनों जिस पर सारा विकास अवलंबित है, को संरक्षित करेगा। वर्ष 1987 में इस आयोग ने संपोषणीय विकास की अवधारणा को सामने रखा। यह संपोषणीय विकास अनियंत्रित आर्थिक वृद्धि पर आधारित विकास का वैकल्पिक तरीका बना।

प्रस्तुत प्रतिवेदन पर विचार कर लेने के पश्चात महासभा में 1992 में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एंव विकास सम्मेलन-पृथ्वी शिखर सममेलन–को आहूत किया।

आज पर्यावरण को समर्थन देने और इसे संपोषणीय बनाए रखने की जरूरत हर क्षेत्र में महसूस की जा रही है। संयुक्त राष्ट्र एंव सरकारों, गैर सरकारी संगठनों, वैज्ञानिक समुदाय और निजी क्षेत्र के बीच गतिशील भागीदारी पर्यावरण समययाओं के लिए जो भी देशों के लिए समान हैं नए ज्ञान एवं ठोस कार्य को जन्म दे रही है। संयुक्त राष्ट्र का यह मानना है कि पर्यावरण को संरक्षित और सुरक्षित रखने की जरूरत का सभी आर्थिक एंव सामाजिक विकास गतिविधियों का अभिन्न हिस्सा होना चाहिए। जब तक पर्यावरण को सुरक्षित नहीं किया जा सकता, संपोषणीय विकास के लक्ष्य को हम प्राप्त नहीं कर सकते।

संपोषणीय विकास के लिए शिखर सम्मेलन

पर्यावरण एंव संपोषणीय विकास पर संयुक्त राष्ट्र के रियो द जेनेरियो, में वर्ष 1992 में सम्पन्न पृथ्वी शिख सम्मेलन में स्वीकार किया गया कि रियो सिद्धान्त पर आधारित संपोषणीय विकास के लिए सिद्धान्त, संरक्षण एवं सामाजिक तथा आर्थिक विकास बुनियादी तत्व हैं। इस संपोष्णीय विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विश्व नेताओं ने एजेंडा-21 नामक एक वैश्विक कार्यक्रम को स्वीकृत किया।

एजेंडा-21 में सरकारों ने एक ऐसी कार्यवाही की विरूतृत योजना की रूपरेखा को प्रसतुत किया जिससे विश्व आर्थिक वृद्धि के मौजूदा असंपोषणीय प्रतिदर्श से पृाकि हो कर ऐसी गति विधियों की ओर उन्मुख हो सकेगा, जो पर्यावरणीय संसाधनों को संरक्षित करने के साथ-साथ नवीकरण करेंगी। ऐसे संसाधनों पर ही यह वृद्धि और विकास निर्भर होगा। इस योजना में संपोषणीय विकास की प्राप्ति में स्त्रियाँ, श्रमिक, संगठनों, किसानों बच्चों और युवाजनों, देशीयजन, वैज्ञानिक समुदाय, स्थानिय अधिकारी, व्यवसाय, उद्योग तथा गैर सरकारी संगठन जैसे बड़े समूहों की भागीदारी को मजबूत करने के लिए उपाय सुझाए गए।

महासभा ने वर्ष-1997 में एजेंडा-21 पर अमल करने के लिए एक विशेष अधिवेशन पृथ्वी शिखर सम्मेलन +5 का आयोजन किया। वैश्विक संपोषणीय विकास के लिए वित्त जुटाने के प्रश्न पर सदस्य राष्ट्रों ने उत्पन्न मतभेदों को दूर करने के प्रयास किए, लेकिन इस बात पर जोर दिया गया कि आज के समय में एजेंडा-21 को अमली-जामा पहनाना, पहले से अधिक आवश्यक तथा

तात्कालिक हो गया है। इस सत्र के अंतिम दस्तावेज में इसी उद्देश्य को लेकर सिफाारिशें की गईय इन सिफारिशों में जिन बातों का समावेश है वे हैं– मौसम परिवर्तन करने वाली ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाने के लिए कानूनी तौर पर बन्धनकारी लक्ष्य, ऊर्जा-उत्पादन और वितरण तथा उपयोग के संपोषणीय ढ़ंगों की ओर संपोषणीय विकास के लिए एक प्राथमिक शर्त के रूप में गरीबी उन्मूलन पर ध्यान केंद्रित करना।

संपोषणीय विकास पर विश्व शिखर सम्मेलन जोहान्सबर्ग में वर्ष-2002 में सम्पन्न हुआ जिसमें वर्ष-1992 के पृथ्वी शिखर सम्मेलन के बाद हुई प्रगति की समीक्षा की गई। उसके सम्पोषणीय विकास पर जोहान्सबर्ग घोषणा तथा 54 पृष्ठों की कार्यान्वयन योजना ने सम्पोषणीय विकास के केन्द्रीय महत्व की पुनर्पुष्टि की गई तथा ज्यादा गम्भीर चुनौतियों पर ध्यान देने का रास्ता साफ किया गया। समयबद्ध विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रतिवद्धता जाहिर की गई। इनमें सफाई रसायनों के उपयोग एंव उत्पादन, मतस्य प्रजातियों को बनाए रखने तथा उनकी पुनर्स्थापना एंव जैव विविधता को बनाए रखने और उनकी क्षति की दर को घटाने के लक्ष्य भी शामिल थे। इस सम्मेलन में लघुद्विप तथा अफ्रीका के विकासशील देशों की विशिष्ट जरूरतों पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया।

एजेंडा-21

वर्ष 1992 के पृथ्वी शिखर सम्मेलन में एक एतिहासिक कदम उठाया गया जब इस पृथ्वी के भविष्य को सुरक्षित करने की दृष्टि से एजेंडा-21 नामक वैश्विक कार्यक्रम को विश्व के विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों ने स्वीकार किया। यह संपोषणीय विकास के लिए सभी क्षेत्रों में वैश्विक कार्य की विस्तृत योजना है।

एजेंडा-21 में उन पैटर्न पर ध्यान दिया गया जिनसे पर्यावरण पर दवाब पड़ता हैयजैसे-विकासशील देशों में गरीबी और विदेश कर्ज, उत्पादन एवं उपभोग के गैर-संपोषणीय पैटर्न, जनांकिकीय दबाव तथा अन्तराष्ट्रीय ढ़ाँचा। यह कार्य-योजना संपोषणीय विकास की उपलब्धि में मुख्य समूहों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका को मजबूत करने के लिए उपायों की सिफाारिश करती है।

निष्कर्ष

संयुक्त राष्ट्र ने संपोषणीय विकास की अवधारणा को सभी प्रासंगिक नीतियों एंव कार्यक्रम में एकीकृत करने के लिए कदम उठाए गए हैं। आमदनी पैदा करने वाली परियोजनाएँ वर्त्तमान में पर्यावरणीय परिणामों को भी ध्यान रख रही हैं। विकास सहायता कार्यक्रमों को ज्यादा से ज्यादा महिलाओं की ओर उन्मुख किया जा रहा है। जिनकी वस्तुओं, सेवाओं, खाद्य के उत्पादकों एवं पर्यावरण के रखवालों के रूप में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं। गरीबी उन्मूलन के लिए नैतिक एवं सामाजिक अनिवार्यताओं को यह मानते हुए अतिरिक्त अविलम्बता प्रदान की जा रही है जबकि गरीबी-उन्मूलन एवं पर्यावरणीय गुणवत्ता दोनों ही मिल-जुलकर चलते हैं।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. एन्ड्रेन चार्ल्स एफय पोलिटिकल लाइफ एण्ड सोशल चेंज: एन इन्ट्रोडक्शन टू पोलिटिकल साइन्स, कैलिफोर्निया वर्ड्सवथ पब्लिशिंग कं. - 1970
2. बशदत एच.पी. पोलिटिकल आइडियोलोजिज न्यूजर्सी, प्रेअिस हॉल - 1979
3. ब्लैकबर्न रोबिन, (सुपादक) आइडियोलोजी एण्ड सोशल साइन्स, (ग्लासगो, फाऊन्टेना, 1975)
4. सिंह डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद, समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त नोवेल्टी एण्ड कम्पनी, ओक राजपथ, पटना-800005
5. प्रतियोगिता दपर्ण (मासिक), उपकार प्रकाशन आगरा - 282002
6. हिन्दुस्तान, भागलपुर संस्करण।

अमेरिकी राष्ट्रपति और ब्रिटिश सम्राट तथा प्रधानमंत्री : एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० प्रभाकर

अतिथि प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, बी.एन.एम.भी कॉलेज, बी.एन. मंडल, विश्वविद्यालय, मधेपुरा

भूमिका

अमेरीकी राष्ट्रपति विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली प्रशासक है। राष्ट्रपति की तुलना विश्व के जिन अन्य व्यक्तियों से की जाती है उनमें सबसे प्रमुख ब्रिटिश सम्राट और ब्रिटिश प्रधानमंत्री हैं। ब्रिटेन और अमेरिका में दो अलग-अलग शासन प्रणालियाँ हैं। ब्रिटेन में संसदीय शासन प्रणाली है तो अमेरिका में अध्यक्षीय। ब्रिटेन में एकारात्मक सरकार है तो अमेरिका में संधात्मक। फलस्वरूप एक तरफ अमेरिकी राष्ट्रपति और दूसरी तरफ ब्रिटिश सम्राट एवं ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्ति, स्थिति और प्रभाव में अंतर होना स्वाभाविक है। लास्की ने इनके बीच तुलनात्मक अध्ययन करते कहा है– "अमेरिका का राष्ट्रपति न केवल ब्रिटिश सम्राट से कुछ कम और कुछ अधिक है, बल्कि वह ब्रिटिश प्रधानमंत्री से भी कुछ कम और कुछ अधिक है।"

अमेरिकी राष्ट्रपति तथा ब्रिटिश सम्राट में तुलना– अमेरिकी राष्ट्रपति तथा ब्रिटिश सम्राट दोनों पद के दृष्टि से समान हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति कुछ ही बातों में ब्रिटिश सम्राट से कम नजर आते हैं जबकि अधिक मामलों में वह ब्रिटिश सम्राट के बहुत अधिक है।

समानता

1. दोनों अपने-अपने राज्यों के प्रधान होते है।
2. दोनों को कई औपचारिक कार्य करने पड़ते हैं जैसे– समारोहों का उद्‌धाटन, विदेशी राजदूतों का स्वागत करना, औपचारिक भाषण देना वगैरह। लेकिन दोनों की स्थिति भिन्नहै। ब्रिटिश सम्राट वैद्यानिक प्रधान हैं अतः उनके ये औपचारिक कार्य उनके कर्त्तव्य का एक बड़ा भाग है लेकिन अमेरिकी राष्ट्रपति प्रशासनिक प्रधान है अतः उनके ये औपचारिक कार्य उनके कर्त्तव्य का कम महत्वपूर्ण और छोटा अंश मात्र है।

असमानतायें

1. ब्रिटिश सम्राट राज्य का नाममात्र का प्रधान है जबकि अमेरिकी राष्ट्रपति राज्य और शासन दोनों का वास्तविक प्रधान है। ब्रिटेन का सम्राट राज्य करता है, शासन नहीं क्योंकि सम्राट के अधिकारों का वास्तविक प्रयोगकर्त्ता ब्रिटिश मंत्रीमंडल समेत प्रधानमंत्री है। दूसरी तरफ अमेरिकी राष्ट्रपति को कार्यपालिका की वास्तविक शक्ति मौजूद है जिससे वह स्वंय प्रधानमंत्री भी है और मंत्रीमंडल का गठन अपने मनोनकूल करता है। उसके हाथ मंत्रियों की नियुक्ति-पदच्यूति, सेना के प्रधान तमाम राजनीतिक और प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति की शक्ति है।
2. संसद के द्वारा पारित विधेयक पर सम्राट को स्वीकृति देनी ही पड़ती है लेकिन अमेरिकी राष्ट्रपति को "बिलम्बकारी निषेधाधिकार तथा पाकेट निषेधाधिकार" प्राप्त है जो काफी प्रभावपूर्ण है।
3. सम्राट को प्रशासनिक आदेश या अध्यादेश जारी करने का अधिकार नहीं है जबकि राष्ट्रपति को प्रशासनिक अधिकार तो है ही साथ ही कई तरीकों से व्यवस्थापिका को भी प्रभावित कर लेता है।

4. ब्रिटेन का सम्राट किसी विषय पर सिर्फ परामर्श दे सकता है निर्णय लेने का सम्पूर्ण अधिकार वहाँ के मंत्रीमंडल को है। लेकिन अमेरिका में निर्णय राष्ट्रपति करता है और मंत्रीमंडल राष्ट्रपति की आज्ञा का पालन करता है।

दोनों के उपरोक्त स्थितियों और शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन से जान पड़ता है कि सम्राट की तुलना में राष्ट्रपति की स्थिति सम्राट से काफी शक्तिशाली है। लेकिन जहाँ तक सम्राट के व्यक्तित्व में आकर्षण और पद में जो गौरव और सम्मान प्राप्त है वह गौरव और सम्मान अमेरिकी राष्ट्रपति को प्राप्त नहीं है। सम्राट निर्दलीय और निष्पक्ष होने के कारण आजीवन सम्पूर्ण जनता में सम्मानित, लोकप्रिय तथा देवता तुल्य माना जाता है वहीं राष्ट्रपति दलीय प्रतिनिधि होने के कारण निष्पक्ष नहीं हो पाता और न जनता का आकर्षण ही बन पाता है। विरोधी दल की आलोचना का शिकार तथा महाभियोग जैसे सम्मानहीन प्रक्रिया से भी गुजरता है। इस प्रकार अमेरिकी राष्ट्रपति सम्राट से कुछ कम और कुछ अधिक भी है।

अमेरिकी राष्ट्रपति तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री की तुलना

लास्की ने कहा– “अमेरिकी राष्ट्रपति न केवल ब्रिटिश सम्राट से कुछ कम और कुछ अधिक है बल्कि वह ब्रिटिश प्रधानमंत्री से भी कुछ कम और कुछ अधिक है।” अमेरिकी और ब्रिटेन दोनों की शासन व्यवस्था भिन्न है। ब्रिटेन में संसदीय तथा अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली है। ब्रिटेन में एकात्मक सरकार है और अमेरिका में संघात्मक सरकार। फलस्वरूप अमेरिकी राष्ट्रपति और ब्रिटेन के प्रधानमंत्री के बीच तुलना बड़ा ही रोचक और महत्वपूर्ण विषय बन जाता है। ब्रिटेन में संवैधानिक प्रधान सम्राट है तथा संसदीय शासन का वास्तविक प्रधान, प्रधानमंत्री है। लेकिन अमेरिकी राष्ट्रपति संवैधानिक तथा प्रशासनिक दोनों वास्तविक प्रधान है। अमेरिका में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त अपनाया गया है जबकि ब्रिटेन में शक्तियों के बीच समन्वय की स्थापना की गई है। दोनों की शक्ति, स्थिति तथा प्रभाव में पर्याप्त अंतर होना स्वाभाविक है। इस प्रकार सरकार के अलग-अलग स्वरूप के कारण तुलना करना बड़ा जटिल हो गया है। विद्वानों के बीच भी मतभिन्नता पाई जाती है। राम्जेम्योर ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री को शक्तिशाली कहा तो ब्राइस ने अमेरिकी राष्ट्रपति को सर्वाधिक शक्तिमान। ऑग तथा रे ने अमेरिकी राष्ट्रपति को विश्व का सबसे शक्तिशाली कार्यपालक कहा तो लास्की ने ब्रिटिश सम्राट और प्रधानमंत्री से कुछ कम और कुछ अधिक कहा। ब्रोगन ने कहा “राष्ट्रपति के व्यक्तित्व में सम्राट और प्रधानमंत्री दोनों का समावेश है” अर्थात वह एक ऐसा सम्राट है जो स्वंय प्रधानमंत्री भी है। अमेरिकी राष्ट्रपति तथा ब्रिटेन के प्रधानमंत्री दोनों के बीच कुछ समानतायें और कुछ असमानतायें पायी जाती है।

समानतायें

1. दोनों जनता के प्रतिनिधि है।
2. दोनों प्रजातंत्रिक राज्यों में सर्वेसर्वा हैं।
3. दोनों विश्व की दो महान कार्यपालिका है।
4. दोनों अपने-अपने देश के प्रधान हैं जिन्हें व्यापक शक्तियाँ है।
5. दोनों जनता के प्रति उत्तरदायी शासन के संचालक हैं।
6. युद्ध तथा संकटकालीन समय में दोनों असीमित अधिकार का प्रयोग करते हैं।

असमानतायें

1. निर्वाचन के क्षेत्र में : अमेरिकी राष्ट्रपति का चुनाव एक निवार्चक मंडल के द्वारा होता है जो व्यवहारत: जनता द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव है। लेकिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री की नियुक्ति सम्राट करते हैं जबकि वह भी जनता द्वारा चुना गया प्रतिनिधि है।

2. कार्यकाल और पदच्यूति : ब्रिटिश प्रधानमंत्री की नियुक्ति पाँच वर्षो के लिये की जाती है। लेकिन प्रधानमंत्री तभी तक बना रहता है जब तक कॉमन्स सभा विघटित न हो जाय। कॉमन्स सभा के विश्वास पर्यन्त प्रधानमंत्री बना रह सकता है। पाँच वर्ष के पूर्व भी कॉमन्स सभा बहुमत के जरिये प्रधानमंत्री द्वारा पारित अविश्वास प्रस्ताव को हटा सकता है। अमेरिकी राष्ट्रपति का चुनाव 4 वर्षो के लिये होता है। लेकिन इस बीच महाभियोग के प्रस्ताव द्वारा राष्ट्रपति को हटाया जा सकता है जो एक जटिल प्रक्रिया है।

3. मंत्रीमंडल के साथ संबंध : ब्रिटिश प्रधानमंत्री का संबंध मंत्रीमंडल के साथ एक समकक्षी और सहयोगी का है। दोनों में स्वामी और दास का संबंध नहीं है।अमेरिकी मंत्रीमंडल राष्ट्रपति की कृति तथा उनके द्वारा गठित है। मंत्रीगण राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त

और पदच्यूत होते हैं। मंत्रीमंडल का सदस्य राष्ट्रपति का समकक्षी और सहयोगी न होकर अधीनस्त पदाधिकारी है जो राष्ट्रपति के आदेश के दास होते हैं।

4. दल से संबंध : अमेरिकी राष्ट्रपति तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री दोनों अपने-अपने दल का नेतृत्व करते हैं, लेकिन ब्रिटिश प्रधानमंत्री इस क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। प्रधानमंत्री अपने दल का केन्द्र-विन्दु है, वह दल के संगठन तथा दलीय नीति-निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अमेरिकी राष्ट्रपति की स्थिति वैसी नहीं है। राष्ट्रपति राष्ट्रीय नेता है। फिर भी उसके प्रति सदस्यों में वह भक्तिभाव नहीं है और न दलीय कठोर अनुशासन है जो ब्रिटेन में पाया जाता है।

5. शक्ति के क्षेत्र में : अमेरिकी संविधान शक्ति पृथककरण के सिद्धान्त पर आधारित है फलतः राष्ट्रपति का अधिकार सिर्फ कार्यपालिका क्षेत्र तक ही सीमित है। ब्रिटेन का संविधान शक्ति समन्वय सिद्धान्त पर आधारित है। फलतः ब्रिटिश प्रधानमंत्री कार्यपालिका के प्रधान होने के साथ व्यवस्थापिका का भी नेता है तथा न्यायपालिका को भी प्रभावित कर सकता है। इस प्रकार ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली है।

6. प्रदत्त अधिकार एवं शक्ति के क्षेत्र में : अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्ति और अधिकार संविधान में लिखित और सीमित है जिसका उल्लंधन वह नहीं कर सकता है। दूसरी तरफ ब्रिटिश प्रधानमंत्री की शक्ति और अधिकार संविधान में लिखित न होकर परम्परा पर आधारित है। समय की मांग के मुताबिक प्रधानमंत्री का अधिकार क्षेत्र घटबढ़ सकता है। इस क्षेत्र में प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से लाभदायक स्थिति में है।

7. व्यवस्थापिका के क्षेत्र में : विधायिका के क्षेत्र में ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली नजर आता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री तथा मंत्रीमंडल के सदस्य संसद के सदस्य हैं तथा कॉमन्स सभा के प्रति उत्तरदायी हैं। संसद के नेता होने के कारण संसद की बैठक बुलाना, कार्यवाही का संचालन, विधेयक प्रस्तुत करना, संसद को भंग करना वगैरह कई अधिकार ब्रिटिश प्रधानमंत्री को है। जबतक संसद में उसके दल का बहुमत है, संसद उसका दास है, उसी के इच्छानुसार संसद को चलना पड़ता है। फलतः राम्जेम्योर का कहना सही है कि– "संसद में बहुमत पर्यन्त प्रधानमंत्री जो कुछ कर सकता है, वह अमेरिका का राष्ट्रपति नहीं कर सकता है।"

लेकिन अमेरिकी राष्ट्रपति की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। काँग्रेस का सदस्य नहीं होने के कारण राष्ट्रपति व्यवस्थापिका का नेता नहीं है। काँग्रेस के दोनो सदन आपातकाल को छोड़कर अपने मनोनकूल कार्य करने को स्वतंत्र है। विधेयक निर्माण में राष्ट्रपति का स्थान नगण्य है। राष्ट्रपति काँग्रेस को भंग नहीं कर सकता है। कार्टर, रैने और हर्ज जैसे विद्वानों का कहना है कि– "प्रधानमंत्री को राष्ट्रपति से उपर इस अर्थ निर्णयात्मक लाभ है कि विधायिका सभा उसके नियंत्रण में है।" प्रो0 लास्की ने भी कहा कि राष्ट्रपति तर्क कर सकता है, सिफारिश कर सकता है, धमका सकता है, खुशामद कर सकता है लेकिन काँग्रेस से अलग होने के कारण काँग्रेस पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं है।

8. कार्यपालक-शक्तियों के संबंध में : कार्यपालिका के क्षेत्र में अमेरिकी राष्ट्रपति निश्चित रूपसे ब्रिटिश प्रधानमंत्री से शक्तिशाली है। राष्ट्रपति मुख्य कार्यपालक है तथा मंत्रीमंडल का सृजक होने के कारण उसका एकछत्र अधिकार है। राष्ट्रपति और उसके मंत्रीमंडल पर काँग्रेस का नियंत्रण नहीं है। संविधान में कार्यपालिका का सर्वेसर्वा होने के कारण धरेलू तथा वैदेशिक क्षेत्रों में राष्ट्रपति का ही बोलबाला है। बेजहॉट ने सरकार को दो भागों 1. प्रतिष्ठित और 2. प्रवीण में बाँटा है। बेजाहॉट के मुताबिक ब्रिटिश प्रधानमंत्री सिर्फ प्रवीण भाग का अधिकारी है प्रतिष्ठित भाग का अधिकारी सम्राट है।इसके विपरीत अमेरिकी राष्ट्रपति में ब्रिटिश सम्राट तथा प्रधानमंत्री दोनों की शक्ति समाहृत है। वह प्रतिष्ठित और प्रवीण दोनों भाग का अधिकारी है। वह राष्ट्र का प्रधान तथा कार्यपालिका का भी प्रधान है। फलतः अमेरिकी राष्ट्रपति अधिक शक्तिशाली है।

लेकिन कई विद्वानों का कहना है कि सही प्रतीत होता है कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री ही समस्त कार्यपालिका का शक्तियों का प्रयोग सम्राट के नाम पर करता है चाहे बात नियुक्ति, देश की नीति या विदेश की नीति की हो। जबकि अमेरिकी राष्ट्रपति की कार्यपालक शक्तियों पर सीनेट का प्रभावपूर्ण नियंत्रण है। नियुक्तियों और संधियों में सीनेट की स्वीकृति के बिना वह अप्रभावी हो जाता है। इस प्रकार ब्रिटिश प्रधानमंत्री ही लाभ की हालत में है।

9. वित्तीय क्षेत्र में : वित्तीय क्षेत्र में ब्रिटिश प्रधानमंत्री अमेरिकी राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली नजर आता है। ब्रिटेन में प्रधानमंत्री की देखरेख में वित्तमंत्री द्वारा बजट तैयार कर कॉमन्स सभा में प्रस्तुत करता है। कॉमन्स सभा बजट को पास कर देती

है क्योंकि अपने मंत्रीमंडल को कभी भी अविश्वास लाकर सरकार का पतन नहीं चाहती। दूसरी तरफ संसद को प्रधानमंत्री की सिफारिश पर भंग होने का खतरा बना रहता है। दूसरी तरफ अमेरिका में बजट राष्ट्रपति की देखरेख में बनाकर उसके निर्देशके द्वारा प्रतिनिधि सभा में पेश किया जाता है। वहाँ बजट में काफी संशोधन, परिवर्त्तन और कटौती भी कर दी जाती है।

10. न्यायिक क्षेत्र में : न्यायपालिका के क्षेत्र में ब्रिटिश प्रधानमंत्री की स्थिति अमेरिकी राष्ट्रपति से काफी मजबूत है। ब्रिटेन में संसद की सर्वोच्चता है। फलत: न्यायालय प्रधानमंत्री तथा मंत्रीमंडल के कार्यो को न तो नियंत्रित कर सकता है और न अवैध घोषित कर सकता है। संसद ही न्यायालय के कई निर्णय को रद्द कर देती है।दूसरी तरफ अमेरिकी राष्ट्रपति के आदेश, निर्णय और कार्य को वहाँ का न्यायालय नियंत्रितकर सकती तथा अवैध घोषित कर सकती है न्यायालय में चुनौती दिये जाने के कारण अमेरिकी राष्ट्रपति रूजबेल्ट की "न्यूडील योजना" को न्यायालय ने अवैध घोषित कर दिया था।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अमेरिकी राष्ट्रपति जहाँ प्रशासनिक क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है वहीं ब्रिटिश प्रधानमंत्री विधायिका, न्यायपालिका और वित्तीय क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। अंत में लास्की का कहना सत्य है कि राष्ट्रपति ब्रिटिश प्रधानमंत्री से कम और अधिक दोनों है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एस0 आर0 माहेश्वरी– कम्परेटिव गवर्मेट एण्ड पॉलिटिक्स (1963)
2. आमण्ड एण्ड पॉवेल– कम्परेटिव पॉलिटिक्स, ए डेभलपमेंट एप्रोच (1966)
3. जीन ब्लॉण्डेल– एन इन्ट्रोडक्शन टू कम्परेटिव गवर्मेंट। (1969)
4. पीटर एच0 मर्कल– माडर्न कम्परेटिव पॉलिटिक्स। (1983)
5. डेनियल कार्मेनी– कम्परेटिव पॉलिटिक्स। (2008)
6. एस0 ए0 पालेकर– कम्परेटिव पालिटिक्स एण्ड गवर्मेट। (2009)
7. रॉड हयुज, मार्टिन हार्प, शन वर्सलीन– कम्परेटिव गवर्मेट एण्ड पालिटिक्स एन इन्ट्रोडक्शन (1982)
8. राय0 सी0 मैक्रीडिस– कम्परेटिव गवर्मेट।
9. डेविड ईस्टन– द पालिटिकल सिस्टम।
10. सिडनी बर्वा– डायलमाज इन कम्परेटिव रिसर्च वर्ल्ड पालिटिक्स।
11. आर0 एन0 थाउलेस– द स्टडी ऑफ सोसायटी। (1956)
12. पुष्पा सिंह, चित्रा शर्मा– कम्परेटिव गवर्मेट एण्ड पॉलिटिक्स।
13. डॉ. वी0 एल0 फार्या– तुलनात्मक राजनीति।
14. डॉ. पुखराज जैन– तुलनात्मक सरकार और राजनीति।
15. सी0 बी0 गेना– तुल्नात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाऐं।
16. ओमप्रकाश गावा– तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा।
17. चन्द्रदेव प्रसाद– तुलनात्मक राजनीति।

हिन्दी साहित्य और सिनेमा

डॉ० संतोष कुमार

अध्यक्ष-सह-सहायक प्राचार्य, हिन्दी विभाग, भारती मंडन महाविद्यालय, रहिका, मधुबनी

प्रारूप

साहित्य और सिनेमा एक दूसरे के पर्याय हैं, जो खुद में सामाजिक विचारधारा का वाहक हैं। जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण है, ठीक उसी प्रकार सिनेमा भी समाज के सभी आयामों को स्वयं में प्रतिबिंबित करता हैं। आप कह सकते हैं कि साहित्य, सिनेमा का आधार है। विभिन्न रूपों में साहित्य, सिनेमा में समाहित रहता है। साहित्य का शाब्दिक रूप ही थोड़ा बहुत फेर-बदल कर सिनेमा में दृष्यात्मक रूप में दिखाया जाता है। साहित्य अर्थात् गद्य-पद्य के वे कल्पना प्रसूत ग्रन्थ जिनमें ज्ञान-संबंधी स्थायी विचार लिपिबद्ध रहते हैं। दूसरी तरफ सिनेमा चित्रपट पर प्रदर्षित आधुनिक यांत्रिक मनोरंजन का माध्यम है। साहित्य का स्वरूप चाहे वह कथा, उपन्यास, नाटक, गीत, काव्य या फिर कोई अन्य विधा हो, ये सभी सिनेमा के घटक होते हैं। साहित्य का मूल प्रयोजन मनुष्य को मनुष्य बनाए रखना हैं। इसका मनुष्य के जीवन पर गहरा और सीधा प्रभाव पड़ता है जबकि सिनेमा मनुष्य के ऊपर उस प्रकार का गहरा प्रभाव न डालकर आंषिक प्रभाव डालता है। इस प्रकार सिनेमा का मूल प्रतिफल सिर्फ और सिर्फ मनोरंजन हैं। इसके पिछे फिल्मकारों का अर्थोपार्जन का मूल उद्देश्य उत्प्रेरक के रूप में काम करता हैं। जिस कारण आज फिल्म मर्यादा को भूल अश्लीलता का परिचायक बन गया हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं हैं कि सभी फिल्म अश्लील ही होता हैं। बहुत सारे ऐसे फिल्म हैं, जिसका समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ा हैं, लेकिन आंषिक रूप से। साहित्य का प्रभाव मनुष्य के जीवन को बदल देता है, जबकि सिनेमा का प्रभाव क्षणिक होता हैं। दो-चार दिन या फिर हफ्तें-महीने के बाद वह हमारे मन-मस्तिष्क से धीरें-धीरे उतरता चला जाता हैं। लेकिन, प्रेमचन्द की रचना 'ईदगाह' का हामिद आज भी आदर्श को हमारे मन में स्थापित किए हुआ हैं। आदिकाल में साहित्य का स्वरूप मौखिक था। उस समय गुरूकुल में छात्र वेद, उपनिशद, पुराण, नीति-षास्त्र, दर्शन आदि की शिक्षा मौखिक रूप से ग्रहण करते थे। धीरे-धीरे लेखन की परंपरा की शुरूआत हुई और तालपत्रों, पेड़ के छालें आदि, साहित्य के प्रसार का माध्यम बना। जिसका स्वरूप प्राचीन पाण्डुलिपियों के रूप में आज भी हमारे पास उपस्थिति हैं। परन्तु दुर्भाग्य है कि साहित्य का यह स्वरूप संरक्षण के अभाव में नष्ट हो रहा हैं। प्राचीन भारतीय आर्यभाशा लौकिक संस्कृत (1000 ई0 पू0-500 ई0 पू0) और वैदिक संस्कृत (1500 ई0 पू0-1000 ई0 पू0) के रूपों में मौजूद था। जिसमें लौकिक संस्कृत ही पाली (500 ई0 पू0-1ली ई0), प्राकृत, (1ली ई0-500 ई0), अपभ्रंष (500 ई0-1000 ई0), अवहट (900 ई0-1100 ई0) के लंबे सफर को पार करते हुए वर्तमान आधुनिक हिन्दी साहित्य (1850 ई0 से अब तक) के रूप में स्थापित हैं। विषुद्धतः हिन्दी भाषा के इतिहास का आरंभ अपभ्रंष (500 ई0-1000 ई0) से माना जाता हैं। इसलिए इस काल को हिन्दी साहित्य में संक्रमणकाल या संक्रांतिकाल कहा जाता हैं।

दूसरी तरफ, हिन्दी साहित्य और सिनेमा का जुड़ाव गहरा हैं। सिनेमा के इतिहास के प्रारंभ में प्रेमचंद जैसे साहित्यकार भी सिनेमा के तरफ खींचे चले गयें। परन्तु अधिकांशतः साहित्यकार अपने सिद्धांतो से बंधा हुआ अनोखा जीव होता हैं। फलतः प्रेमचंद भी अपने सिद्धांत से समझौता नहीं कर सके और फिल्म जगत के मायानगरी से दूर पुनः अपने स्वच्छंद साहित्य की ओर पूर्णतः लौट आये। क्योंकि, साहित्य पढ़ना या लिखना मुक्ति का एहसास हैं। यह एक भावपूर्ण उपासना हैं। भारतीय सिनेमा का प्रारंभ 1913 ई0 में दादा साहेब फालके द्वारा निर्मित पहली मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद' से माना जाता हैं। वास्तव में 1899 ई0 में प्रदर्षित 'द रेसलर' जो हरिश्चंन्द्र सखाराम भाटवडेकर द्वारा एक कुश्ती मैच की सरल रिकार्डिग थी से सिनेमा का प्रारंभ माना जाता हैं। जिसकी शूटिंग हैगिंग गार्डन (मुंबई) में की गयी थी। 'राजा हरिश्चन्द्र' के बाद फिल्मों का बनना तेजी से जारी हुआ। इसी क्रम में 1931 ई0 में अर्देषिर

इरानी द्वारा निर्मित पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' और 1935 ई0 में अर्देषिर ईरानी द्वारा निर्मित एवं मोती गिडवानी द्वारा निर्देषित पहला हिन्दी रंगीन फिल्म 'किसान कन्या' बनी। जिसका प्रदर्शन 1937 ई0 में किया गया। इस प्रकार 1913 ई0 से भारतीय सिनेमा अपने उत्तरोत्तर विकास की ओर बढ़ता हुआ वर्तमान समय में पैसा, ग्लैमर, प्रतिष्ठा के साथ एक बड़ी व्यवसायिक संस्था के रूप में स्थापित हैं। इसी क्रम में क्षेत्रीय भाषाओं के फिल्मों, कला फिल्मों, मसाला फिल्मों आदि का नवीन स्वरूप भी निर्मित होता गया, जो अब-तक चला आ रहा हैं।

बीज शब्द: पर्याय, पूरक, प्रयोजन, उत्प्रेरक, सामाजिक, अस्मिता, घटक, प्रतिबिंब, अर्थोपार्जन, मनोरंजन, प्रतिफल, सकारात्मक, यथार्थ, स्वरूप, उद्देष्य, परिचायक, दृष्यात्मक, चित्रात्मक, संगीतात्मक, संरक्षण, सिंद्धांत, परंपरा, स्वच्छंद, निर्मित, उत्तरोत्तर, व्यावसायिक।

हिन्दी साहित्य का इतिहास का आरंभ अपभ्रंष काल (500 ई0-1000 ई0) से माना जाता हैं। अर्थात हिन्दी-भाषा-साहित्य का इतिहास लगभग 1000 वर्षो से भी अधिक पुराना हैं। जिसमें भाषिक रूपों की बहुलता हैं। हिन्दी साहित्य का क्षेत्र काफी विस्तृत हैं। हिन्दी की विभाषाओं में ब्रजभाषा, अवधी,भोजपुरी व मैथिली का साहित्य क्षेत्र काफी समृद्ध हैं। ब्रजभाषा तो हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में महान भाषा परंपरा का उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। यह अपने समय की उच्च कोटि की सहित्यिक भाषा थी। भक्तिकाल में कृष्णभक्त कवियों के साहित्य का भाषा ब्रजभाषा ही था। उसी प्रकार मैथिली साहित्य का भी अपना समृद्ध साहित्य परंपरा हैं। मैथिली में 14 वीं शती से लिखित साहित्य पाया जाता हैं। दुसरी तरफ अवधी में तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य की अनुपम कृति है। जिसके आधार पर बना टी.वी. धारावाहिक 'रामायण' ने टी.वी जगत में एक क्रांति ला दी। इसी प्रकार भोजपुरी भाषा का भी इतिहास काफी सुनहरा और उज्जवल हैं। भोजपुरी भाषा के नाटककार भिखारी ठाकुर का साहित्य में योगदान के कारण 'भोजपुरी का शेक्सपियर' और 'भोजपुरी का भारतेन्दु' कहा जाता हैं। दुसरी तरफ सिनेमा जगत में भोजपुरी ही हिन्दी की वह बोली है, जिसमें सबसे अधिक फिल्में बनती हैं। अर्थात् समग्र रूप में देखा जाए तो हिन्दी साहित्य का विस्तार व्यापक है। वैसे भी साहित्य के बगैर हम सिनेमा की कल्पना भी नहीं कर सकते और इस क्षेत्र में हिन्दी साहित्य ने अपनी अहम भूमिका निभाई हैं। हिन्दी-भाषा-सिनेमा-जगत का तो स्वरूप ही हिन्दी साहित्य से निर्मित हुआ हैं। वर्त्तमान समय में सिनेमा एक विश्वव्यापी प्रमुख कला माध्यम है, जिसके माध्यम से आधुनिक जीवन शैली को बहुत ही गहराई से चित्रित किया जाता हैं। कहने का तात्पर्य है कि साहित्य की तरह ही सिनेमा भी मानव जीवन व समाज का पर्याय हैं। साहित्य के विधा नाटक का ही पर्याय सिनेमा हैं। इस तरह साहित्य एवं सिनेमा का अंर्तसंबंध बहुत ही गहरा हैं। जहाँ साहित्य जीवन के यथार्थ का साक्षात्कार कराती है वही सिनेमा उसके प्रायोगिक रूप को यांत्रिक माध्यम से चित्रपट पर प्रस्तुत करता है। जिसका प्रभाव मानव जीवन पर शीघ्र पड़ता है। वैसे यह प्रभाव क्षणिक होता है, लेकिन साहित्य का प्रभाव मानव जीवन के मन-मस्तिष्क से जुड़कर उसको एक सकारात्मक जीवन जीने में सहायक सिद्ध होता है। लेकिन भारत में 2011 की जनगणना के आधार पर साक्षरता दर 74.04% है। जहाँ पुरुषों की साक्षरता 82.14% और महिलाओं की साक्षरता 65.46% है। अर्थात कहने का तात्पर्य है कि शिक्षा में कमी के कारण साहित्य की पहुँच सभी आम जन तक अभी पूरी तरह से नहीं हो पाया हैं लेकिन सिनेमा इस भूमिका को पूरी ईमानदारी से निभाता हैं। वह अपने दृष्यात्मक, संवादात्मक एवं संगीतात्मक गुण के कारण जन-जन में सरलता से समाहित हो जाता हैं और उसमें शीघ्र ही प्रत्यक्षत: परिलक्षित होने लगता हैं। जब एक निरक्षर रिक्शावाला भी अपने रिक्षा पर 'निरहुआ रिक्शावाला' लिखवाता है, तब उसके हाव-भाव, भाषा सब में उस फिल्म का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। अर्थात् सिनेमा आम जन तक आसानी से सुलभ भी हैं और उसके जनमानस पर गहरा प्रभाव भी डालता हैं। अत: फिल्मकारों को शुद्ध, सकारात्मक एवं समाज को सही दिशा देने वाले फिल्म का निर्माण करना चाहिए और यह तभी संभव है, जब साहित्य को फिल्म निर्माताओं द्वारा फिल्म में अक्षरष: सम्मान मिले एवं अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाने की प्रवृति को वह अपने मन से निकाल दें। लेकिन यह असंभव हैं। क्योंकि फिल्म निर्माण का मुख्य उद्देष्य सिर्फ मुनाफा कमाना ही हैं। जिस कारण वे अपने फिल्म के मूलाधार, साहित्य को विकृत रूप में प्रदर्षित करने में भी नहीं चुकता हैं। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण बंग्ला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपध्याय की महान कृति 'देवदास' के आधार पर सन् 1935 ई0 में कुन्दन लाल सहगल अभिनीत 'देवदास' से लेकर सन् 2009 में बनी फिल्म 'देव-डी', 'देवदास' उपन्यास की मूल भावनाओं के साथ खिलवाड़ को प्रस्तुत करता हैं।

फिल्मों के शुरूआती दौर में सिनेमा पर पारसी थिएटर का प्रभाव था। सिनेमा को लोकप्रिय और जन-जन तक पहुँचाने में गीतकारों और संगीतकारों का भी महत्वपूर्ण स्थान हैं। शैलेन्द्र जैसे गीतकार ने हिन्दी कविता को अपने गीतो में स्थान दिया। उसी

प्रकार गोपाल सिंह नेपाली ने भी अपने काव्यात्मक गीतों से फिल्मी जगत को सींचा। प्रदीप जैसे गीतकार तो हिन्दी साहित्य के गीतिकाव्य शैली के धरोहर ही हैं। इसी प्रकार नीरज ने भी फिल्म जगत में साहित्य के शुद्ध रूप को जीवंत बना के रखा।

साहित्य में संपूर्ण जीवन-दृष्टि समाहित होता हैं। जबकि फिल्म में उसका सिर्फ सार होता हैं। जिस कारण फिल्मकारों और साहित्यकारों का संबंध गहरा होता हैं। वास्तव में एक सफल फिल्मकार वहीं बन सकता हैं। जिसमें साहित्य की परख और समझ हों। क्योंकि दोनों ही समाज को खुद में प्रतिबिंबित करता हैं। सिनेमा के संबंध में तो *डॉ. राममनोहर लोहिया ने कहा था– "भारत को एक करने वाली दो शक्तियाँ हैं, पहला गाँधी, दूसरी फिल्में।"* फिर भी, कुछ एक तथ्यों को छोड़ दिया जाए तो साहित्य और सिनेमा का मूल प्रयोजन यथार्थ का चित्रण कर समाज को एक नई दिशा देना हैं। परन्तु वर्त्तमान में सिनेमा इन सकारात्मक उद्देश्यों से दूर होता जा रहा हैं, परन्तु साहित्य अपने उस अतीत की अस्मिता को आज भी प्रतिष्ठित किए हुए है। हाँ, रीतिकाल और सत्तर-अस्सी के दशकों में साहित्य अपने मूल उद्देश्यों से भटकने लगा लेकिन रीतिकाल में भी कुम्भन दास जैसे निर्भिक कवि हुए जो उस समय के शासक को खड़ा जवाब देने में नहीं चूँके। जब अकबर ने उन्हें बुलावा भेजा तो उन्होंने उसके प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहा–

संतन को कहा सीकरी सों काम।।
आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम।।
जिनको मुख देख दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम।।
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम।।

यह शक्ति साहित्य की हैं। सिनेमा में यह संभव नहीं हैं, क्योंकि वहाँ फिल्मकारों का मूल उद्देश्य अर्थोपार्जन हैं। इस संदर्भ में डॉ. आलोक रंजन पांडेय "'रिमेंक' फिल्में हिन्दी सिनेमा की नई पहचान" लेख के प्रारंभ में ही इशारा करते हुए कहते हैं कि *"बीसवीं शताब्दी में कई सामाजिक बदलाव के कारण सिनेमा में भी बदलाव हुआ और यह लाजमी भी था। हाँ, यह सच है की इस बदलाव के कारण सिनेमा गांव, समाज से कटकर कुछ ज्यादा ही व्यावसायिक हो गया और उसका मुख्य उद्देश्य पैसा कमाना रह गया, जिस कारण फिल्मों का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन या यथार्थ से हटकर केवल मनोरंजन होने लगा।"*[1]

वास्तव में, साहित्य और सिनेमा एक ऐसी ताकत हैं, जो देश और सामाज को जीने का एक संदेश देता हैं। साथ ही दोनों देश और समाज को नई दिशाएँ, नये विचार और सकारात्मक सोच देता हैं। इसलिए साहित्य और सिनेमा हमेशा सकारात्मक होना चाहिए।

सिनेमा, साहित्य का ही रूपांतरित यांत्रिक मनोरंजन का रूप है। जिस प्रकार साहित्य में विषय-वस्तु को कथानक के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता हैं, ठीक उसी प्रकार सिनेमा में यह कार्य पटकथा के द्वारा सम्पन्न किया जाता हैं। अर्थात् पटकथा कथानक का ही थोड़ा-सा बदला हुआ रूप होता हैं। साहित्य का काव्य ही सिनेमा में गीत बन जाता हैं, लेकिन थोड़े बदलाव के साथ। जिस कारण साहित्य के कथा के मूल भावना को अंषत: या पूर्णत: ठेस पहुँचता हैं, जो साहित्यिक कृति के लिए बिल्कुल भी ठीक नहीं है। अत: कथा का पटकथा में रूपांतरण के क्रम में कथा की मौलिकता बचाने का संभवत: प्रयास किया जाना चाहिए। ताकि, साहित्य की आत्मा और लेखक का भाव सिनेमा में प्रतिबिंबित हो सकें।

शरद जोषी की प्रसिद्ध व्यंग्य रचना 'तुम कब जाओगे, अतिथि' के मूल तथ्यों से छेड़-छाड़ कर वर्ष 2010 ई0 में एक फिल्म आया 'अतिथि तुम कब जाओगे' जो शरद जोशी के कथा के बिल्कुल विपरित था। जहाँ फिल्मकार ने पैसे तो कमा लिया, लेकिन रचनाओं के मूल भाव की हत्या कर दी।

सिनेमा एक व्यवसाय है, जहाँ लागत से मुनाफा तक का सफर तय कर मनोरंजन देने के सिद्धांत पर कार्य किया जाता हैं। फिल्मकार एवं उससे जुड़े कलाकार एवं कर्मी के लिए यह एक जीविकोपार्जन का साधन हैं। साथ ही, समाज का भी मनोरंजन हो जाता हैं। परन्तु साहित्य को क्या फायदा होता हैं– देखा जाए तो सिनेमा जगत हमेशा साहित्य का ऋणी रहेगा। लेकिन, कभी-कभी सिनेमा भी साहित्य को कुछ ऐसी चीज जाने-अनजाने में दे देता हैं जो शायद उतना आसान नही होता 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका में लेखक हरजेन्द्र चौधरी के लेख 'हिन्दी दूर-दूर' तक के एक अंष को मैं उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करता हूँ–

"1994-1996 के दौरान जापान के ओसाका विदेषी भाषा-अध्ययन विश्वविद्यालय में अपने अध्यापन-काल की एक घटना से शुरू कर रहा हूँ। लम्बी दाढ़ी वाले एक भारतीय, दिखते युवक से मैंने पूछा कि आप कहाँ से हैं? उत्तर मिला', 'ढ़ाका, बाँग्लादेश से। उसने बेहिचक हिन्दी बोली। मैंने तुरंत, पूछा,' आपने हिन्दी कहा सीखी ? हिन्दी फिल्मों सें। 'उसनें बताया।"[2] एक अन्य उदाहरण

के माध्यम से वे आगे बताते है कि हिन्दी भाषा की वैश्विकता में सिनेमा का योगदान अहम हैं। वे लिखते है– *"पोलैंड के वार्सा विश्वविद्यालय में अपने अध्यापन काल (2001-2005) के दौरान वार्सा -स्थित श्रीलंकाई दूतावास में एक उच्चाधिकारी को धाराप्रवाह हिन्दी बोलते सुनकर मैंने उनसे 'हिन्दी कहाँ सीखी' पूछा, तो भी वही उत्तर मिला, 'बचपन से हिन्दी फिल्मों का बहुत शौक रहा हैं।"*[3] इस प्रकार देखते हैं कि साहित्य से सिनेमा और सिनेमा से साहित्य आपस में जुड़कर पुष्पित पल्लवित हो रहे हैं। हिन्दी भाषा के वैश्विकरण मे सिनेमा का भी योगदान हैं। लेकिन फिल्म निर्माताओं द्वारा पैसा कमाने के लिए साहित्य का दुरूपयोग करना दु:खद हैं। डॉ. कुमार विमल कहते हैं-

साहित्य के प्रयोजन के विषय में काव्य-प्रकाशकार मम्मट की उक्ति बड़ी सुंदर है-

"काव्य यषसेऽर्थकृते व्यवहारविदे षिवेतरक्षतये।
सद्य: परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेषयुजे।।"

किन्तु, अगर यष और अर्थ मात्र के लिए काव्य की सृष्टि हो, तो वह अवष्य ही हीन साहित्य होगा। हिन्दी के अध्येता के लिए रीतिकाल इसका सुलभ उदाहरण है।"[4] साहित्य का उद्देश्य मानव जीवन और राष्ट्र को सकारात्मक दिशा में ले जाने वाला होना चाहिए। नहीं तो, वह अपने वजूद को खो देता हैं। समकालीन सिनेमा में साहित्य का अधिकांशत: दुरुपयोग ही किया जा रहा हैं। जो हिन्दी साहित्य के लिए एक विचारणीय प्रष्न है। साहित्य के सकारात्मकता को बताते हुए *डॉ. कुमार विमल इसे जीवन का मुख्य अंग मानते हुए कहते है– "साहित्य जहाँ जगत और जीवन से तथ्य ग्रहण करता हैं और स्वयं निर्मित होता है, वहाँ वह जगत्-जीवन के लिए तथ्य भी उपस्थित करता है और उसके निर्माण में सक्रिय भाग लेता हैं। मुझे यह मान्य हैं कि जीवन और साहित्य, दोनों में सत्य है, किन्तु जीवन का सपूर्ण सत्य हमारी कल्पना को अर्द्ध संतुष्ट भी नहीं कर पाता, जबकि साहित्य का अर्द्ध सत्य ही हमारी कल्पना और रागवृत्तियों को पूर्णत:सतुष्ट कर देता हैं।"*[5] साहित्य, सिनेमा एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य हमारे जीवन से जुड़कर सदा ही समाज को नवीन दिशा दिखालाई हैं। समाज जैसा भी क्यों न हो उसके लिए जीवन-दर्शन, आचार और नैतिकता आवश्यक हैं। साहित्य में समाज ही प्रदार्षित होता हैं, साहित्यकार तो मात्र एक प्रदर्शक की भूमिका में होता हैं। अत: समाज को बचाने के लिए नैतिकता आवश्यक है तभी हमारा साहित्य बचा रहेगा। *डॉ. कुमार विमल कहते हैं– "यथार्थवाद के चरम पर पहुँचकर साहित्यकार सत् और असत् का संतुलन खोकर जीवन के मात्र कालिमामय अंषो का उद्घाटन करता रहता हैं। फलत: उसकी साहित्य -सर्जना में स्वस्थ चरित्रों का निर्माण नहीं हो पाता हैं। यथार्थ के नाम पर उसकी काग-वृत्ति जीवन की दुर्गन्धि राषि पर ही चोंच मारती रहती हैं। अत: साहित्य पर नैतिकता की प्रकारांतर-छाया आवश्यक हैं।"*[6] साहित्य जीवन से जुड़ा हैं और सिनेमा उसका एक प्रतिरूप मात्र हैं, संपूर्ण जीवन नहीं। साहित्य फिल्म जगत के लिए हमेशा सफलता की कुंजी रहा हैं। फिल्मकारों ने साहित्यकारों के कहानियों और उपन्यासों पर कई सफल फिल्मों का निर्माण करते आ रहे हैं। प्रेमचंद के नामचीन कृति के आधार पर विश्वजीत राय ने सन् 1977 ई0 में अपनी फिल्म 'षतरंज के खिलाड़ी' का निर्माण किया था। इसी प्रकार भीष्म साहनी के 'तमस', धर्मवीर भारती के 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' आदि चर्चित कहानी और उपन्यासों पर कई सफल फिल्मों का निर्माण हुआ हैं, जो काफी चर्चित रहा हैं। ऐतिहासिकता, पौराणिकता और आंचलिकता के आधार पर रचे गये रचनाओं के आधार पर भी कई सफल फिल्में बनी हैं। जिसमें 'लगान' जैसी फिल्में सफलता की नई ऊँचाईयों को छुआ। फिल्म 'तीसरी कसम' महान आंचलिक कथाकार फणिश्वर नाथ 'रेणु' के 'मारे गए गुल्फाम' पर आधरित हैं। इस प्रकार साहित्य से अलग होकर हम सिनेमा की कल्पना नहीं कर सकते।

भारतीय सिनेमा के शिखर पुरुष महान फिल्मकार सत्यजीत राय ने अपने निबध संग्रह 'चलाचित्र: कल और आज' जिसका अनुवाद योगेन्द्र चौधरी द्वारा हिन्दी में किया गया। जिसके एक निबंध में सत्यजीत राय षिल्प को भाषा मानते हैं साथ ही इमेज और साउंड को क्रमश: बिंब और शब्द का पर्याय मानते हुए वे फिल्म को साहित्य का पूरक साबित करते हुए कहते हैं- *"...... षिल्प के बजाय यादि इसे भाषा कहा जाए तो चलचित्र का स्वरूप और भी ज्यादा स्पष्ट हो जाए और तर्क की कोई गुंजाइष ही न रहे।*

लेखक के हाथ से जिस तरह कहानी की रचना होती हैं, चलचित्र रचयिता के हाथ से उसी प्रकार, बिंब (इमेज) और शब्द (साउंड)। इन दो के संयोग से भाषा बनती हैं, उस भाषा के प्रयोग में यदि कुशलता का अभाव रहे, उसके व्याकरण पर रचयिता का यदि अधिकार न रहे और कुल मिलाकर फिल्म का कथ्य यदि सषक्त न हो तो अच्छी फिल्म का निर्माण कैसे हो सकता हैं ? इतना-इतना जो लिखा जाता हैं, उसमें से साहित्य के स्तर को कितने छू पाते हैं? पहले षिल्पी है, उसके बाद ही षिल्प हैं। जहाँ षिल्पी नहीं हैं, वहाँ षिल्प के उपकरण रहें तो भी उत्पत्ति की कोई संभावना नहीं है।"[7] अर्थात उन्होंने भी एक दूसरे को पूरक माना

है। वे साहित्य की उपयोगिता का सिनेमा में पूर्णरूपेण स्वीकार करते हैं। सिनेमा तो विविध कलाओं का एक समुच्चय हैं। जहाँ साहित्य, संगीत, नाट्य, अभिनय, संपादन गीत आदि के रूप में सदैव उपस्थित रहता है। साहित्य और सिनेमा हमेशा नये-नये प्रयोग को प्रोत्साहित करता हैं। यह देश-काल परिस्थिति के अनुरूप अपने भीतर नये आयामों को प्रतिबिबित करता है। यह बने-बनाए रास्ते पर नहीं चलकर अपना रास्ता स्वयं निर्धारित करता हैं। सिनेमा और साहित्य दोनो ही जीवन के प्रतिबिंबो को लोगों तक पहुँचाने का काम करता हैं। इसमें पक्षपात जैसे कुत्सित शब्दों का स्थान नहीं होता है नही तो उसका वास्तविक स्वरूप विकृत हो जाएगा और उसकी सुंदरता नष्ट हो जाएगी। यह दोनों ही समाज के जीवन-शैली को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता हैं। सिनेमाघरों ने समाज से भेद-भाव मिटाने का अच्छा उदाहरण उपस्थित किया है, जहाँ समाज के सभी लोग एक साथ बैठ कर मनोरंजन करते हैं। अर्थात् यह एक लोकतांत्रिक विधा है जिसका स्वरूप साहित्य से ही निर्मित होता है। इसलिए यह कहना सर्वथा उचित हैं कि सिनेमा साहित्य का ही यांत्रिकरण के फलस्वरूप निर्मित एक प्रयोगषील रूप हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आलोक रंजन पांडेय– लेख, 'रीमेक' फिल्में: हिन्दी सिनेमा की नई पहचान," (आजकल: दिसम्बर 2018) पृ. सं.-17
2. हरजेन्द्र चौधरी– लेख, 'हिन्दी दूर-दूर' (नया ज्ञानोदय सितम्बर 13) भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. सं. -07
3. वही, पृ. सं.-07
4. डॉ. कुमार विमल, मूल्य और मीमांसा, पृ. सं-31, 2004, साहित्य संसद, नई दिल्ली-110045
5. वही, पृ. सं.– 30
6. वही, पृ. सं.-38
7. सत्यजित राय, 'चलचित्र: कल और आज' (अनुवाद योगेंद्र चौधरी, राजकमल प्रकाशन) / साभार दिगंत पाठ्य पुस्तक, कक्षा– 11वीं, बि.स्टे.टे. प. कॉ. लिमिटेड, पटना, पृ. सं.-57

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में पुस्तकालय की भूमिका

डॉ० दिनेश कुमार

मोबाईल नम्बर-9417131787

भूमिका

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके समस्त क्रिया कलाप समाज में ही रहकर होते हैं। समाज से भिन्न होकर नहीं। मानव को रोटी कपड़ा और मकान की आवश्यकता के अतिरिक्त ज्ञान प्राप्ति की भी आवश्यकता पड़ी। आज से हजारों वर्ष पूर्व वैदिक काल में ज्ञान अर्जित करने की परम्परा केवल मौखिक ही हुआ करती थी। गुरु अपने शिष्यों को मौखिक रूप से ही ज्ञान देते थे। किन्तु इस शिक्षा अथवा ज्ञान को सुरक्षित न मानते हुए मौखिक शिक्षा को धीरे धीरे त्याग कर बोले जाने वाले अक्षरों के लिखित संकेत बनाकर शनै-शनै ताड़ के पत्रों से, फिर समय के चलते ग्रन्थ के रूप में परिवर्तित कर दिया। इस से ज्ञान को सुरक्षा प्राप्त हुई, जिसका लाभ सहस्रों वर्षों पश्चात् भी वर्तमान में भी प्राप्त हो रहा है।

चिंतकों, महापुरुषों एवं विद्वानों के अपने अनुभवों तथा विचारों से परिपूर्ण ग्रन्थों को एक स्थान पर भवन मे एकत्रित करके उस भवन को पुस्तकालय (पुस्तक+आलय अर्थात् पुस्तकोंका घर) नाम देकर जिज्ञासुओं के लिए ज्ञान अर्जित करने का स्रोत-स्थान बना दिया। जिज्ञासु वहाँ जाकर अपनी रुचि के अनुसार अथवा आवश्यकता के अनुसार पुस्तक लेकर अध्ययन के रूप में अपनी जिज्ञासा अथवा आवश्यकता पूर्ण करते हैं।

पुस्तकालय का इतिहास-भारत में पुस्तकालय का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल में भारत वर्ष में लगभग 400 ईस्वी में नालंदा विश्वविद्यालय सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था। इसका पुस्तकालय भी बहुत विशाल था। यह पुस्तकालय विद्यार्थियों तथा अध्यापकों की आवश्यकताएँ पूर्ण करता था। विदेशी विद्वान् भी इसी पुस्तकालय में आकर अपनी जिज्ञासा शांत किया करते थे। जिन में फाहयान हयूनसांग और इत्सिंग प्रमुख विद्वान् थे। इस पुस्तकालय में चिकित्सा, तर्क शास्त्र, साहित्य, वेदान्त, धर्म शास्त्र, पुराण, खगोल शास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र से संबन्धित ग्रंथ प्राप्त थे।

नालंदा के अतिरिक्त वल्लभी, तक्षशिला, विक्रमशिला, उदांतापुरी, मिथिला, नांदिया, और बनारस के शिक्षण संस्थाओं में विशाल पुस्तकालय थे। इनके अतिरिक्त दक्षिण भारत में अमरावती और नागराजन क्षेत्रों में स्थित विद्याकेन्द्रों में भी विशाल पुस्तकालय बने थे जहां जहां छात्र आकर अध्ययन करते थे।

पुस्तकालय के तत्त्व– पुस्तकालय से ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में तीन प्रकार के तत्त्व विशेष भूमिका निभाते हैं। (1) पुस्तक (2) पाठक (3) पुस्तकालयाध्यक्ष। अब इन तत्त्वों पर क्रमशः प्रकाश डालते हैं।

1. पुस्तक–पुस्तकें पुस्तकालय का आधार हैं, क्योंकि पुस्तकों के बिना वह 'पुस्तकालय' शब्द को सार्थक नहीं करता है। पुस्तकालय में किसी एक भाषा अथवा किसी एक विषय पर पुस्तकें नहीं होती हैं अपितु विभिन्न भाषाओं में लिखीं पुस्तकें विद्यमान होती हैं। वहां आवश्यक तथा ज्ञान वर्धक पुस्तकें रखीं जातीं हैं। ताकि जिज्ञासु को इच्छित पुस्तक प्राप्त हो सके और उसे पढ़कर वह अपनी जिज्ञासा शांत कर सके।
2. पाठक–पुस्तकालय तथा पुस्तकें पाठकों के लिए होतीं हैं। जिस पुस्तकालय में पाठक नहीं आते वह पुस्तकालय नहीं अपितु केवल भवन मात्र ही रह जाता है। पुस्तकालय में पहुंचा हुआ प्रत्येक व्यक्ति पाठक होता है। पाठक एक जिज्ञासु होता है,

उसकी जिज्ञासा को शांत करना पुस्तकालय का उद्देश्य होता है। पुस्तकालय का उद्देश्य यह भी होता है कि पाठक की प्रत्येक आवश्यकता को पूर्ण किया जाये। इसी लिए ही पुस्तकालय अपने कोश में जो कुछ भी होता है, वह उसे पाठक के लिए समर्पित कर देता है।

3. पुस्तकालयाध्यक्ष–पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तकों का संरक्षक तथा पाठकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में एक सहायक के रूप में होता है। वह पुस्तकों के माध्यम से समाज को ज्ञान प्रदान करने का कार्य करता है। जैसे अध्यापक के बिना विद्यालय नहीं हो सकता है वैसे ही पुस्तकालयाध्यक्ष के बिना पुस्तकालय की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यद्यपि पुस्तकें, पाठक तथा पुस्तकालयाध्यक्ष परस्पर पूरक हैं तथापि पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका मुख्य रूप से होती है। एक पुस्तकालय समाज में तभी अपनी उचित सेवा प्रदान कर पाता है जब पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका मुख्य होती है, क्योंकि उसे पुस्तकालय मेँ स्थित प्रत्येक पुस्तक का ज्ञान होता है जिसकी सहायता से पाठक अपनी आवश्यकता पूर्ण करता है।

पुस्तकालय के प्रकार– पुस्तकालय कई पृथक्-पृथक् परिस्थितियों में कार्य करते हैं। प्रत्येक पुस्तकालय का अपना क्षेत्र और उद्देश्य भी अलग-अलग होता है जिस कारण इसके अनेक प्रकार हो जाते हैं। जिन में से मुख्य इस प्रकार हैं– (1) राष्ट्रीय पुस्तकालय (2) सार्वजनिक पुस्तकालय (3) व्यावसायिक पुस्तकालय (4) सरकारी पुस्तकालय (5) शैक्षणिक पुस्तकालय आदि। अब इन पर संक्षिप्त अवलोकन इस प्रकार है–

1. राष्ट्रीय पुस्तकालय–जिन पुस्तकालयों का उद्देश्य सम्पूर्ण राष्ट्र की सेवा करना होता है उन्हें राष्ट्रीय पुस्तकालय कहते हैं। वहाँ हर प्रकार के पाठक की आवश्यकता के अनुसार पाठ्य सामग्री का संकलन किया जाता है। राष्ट्रीय पुस्तकालय का प्रमुख कर्तव्य सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रगतिशील विश्वविद्यालयों को इतिहास और साहित्य की सामग्री सुलभ कराना है।
2. सार्वजनिक पुस्तकालय–आधुनिक सार्वजनिक पुस्तकालयों का विकास वास्तव में प्रजातन्त्र की महान देन है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का प्रसारण एवं जन साधारण को सुशिक्षित करना प्रत्येक राष्ट्र का कर्तव्य है। जो व्यक्ति विद्यालय अथवा महाविद्यालय में नहीं पढ़ते, जो साधारण शिक्षित हैं अथवा जिनकी अध्ययन करने की अभिलाषा है किन्तु पुस्तकें नहीं खरीद सकते हैं, ऐसे वर्ग के लोगों को ध्यान में रख कर जनसाधरण की पुस्तकों की मांग को सार्वजनिक पुस्तकालय ही पूर्ण करते हैं ताकि उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त हो सके।
3. व्यावसायिक पुस्तकालय–इन पुस्तकालयों का उद्देश्य किसी विशेष व्यावसायिक संस्था अथवा वहाँ के कर्मचारियों की सेवा करना होता है। इनकी आवश्यकता के अनुसार ही विशेष पठन सामग्री का इन पुस्तकालयों में संग्रह किया जाता है।
4. सरकारी पुस्तकालय–सरकार अनेक पुस्तकालयों को वित्तीय सहायता देती है किन्तु जिन पुस्तकालयों का सम्पूर्ण व्यय सरकार वहन करती है उन्हें सरकारी पुस्तकालय कहते हैं। राष्ट्रीय पुस्तकालय, प्रांतीय पुस्तकालय, एवं संसद तथा विधन भवनों के पुस्तकालय भी सरकारी पुस्तकालय की श्रेणी में आते हैं ताकि वहाँ के कर्मचारी आवश्यकता के अनुसार पुस्तकों को उपयोग में ला सकें।
5. शैक्षणिक पुस्तकालय–शिक्षण संस्थाओं के पुस्तकालयों में विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय आते हैं। जहां प्रत्येक वर्ग के छात्र गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने में, जिनसे लाभान्वित होते हैं।

पुस्तकालयों के भाग–समान्यतः पुस्तकालय में दो भाग होते हैं, एक भाग पुस्तकें पढ़ने के लिए तथा दूसरा भाग पुस्तकों को जारी करने के लिए होता है जहां पुस्तकालयाध्यक्ष बैठा होता है जो पुस्तकालय में आने वालों की सूची भी रखता है।

1. अध्ययन अनुभाग (reading section)–पुस्तकालय में यह अनुभाग पढ़ने के लिए अथवा स्वाध्याय के लिए होता है। इस अनुभाग में भांति-भांति के समाचार पत्र, मासिक, दैनिक पत्रिकाएँ मेज पर रखी होती हैं। इस भाग में विभिन्न विषयों पर आधरित ढेर सारी पुस्तकें भी रखी होती हैं, कोई भी व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार वहाँ से पुस्तक को उठाकर इस स्थान पर शांति से बैठ कर एकाग्रमन से पढ़ सकता है।
2. पुस्तकें जारी करने का भाग–इस कक्ष में सम्पूर्ण पुस्तकालय की देख-रेख के लिए एक पुस्तकालयाध्यक्ष होता है। पुस्तकालयाध्यक्ष द्वारा जारी की गयी पुस्तकों को एक पञ्जिका (रजिस्टर) में अंकित करके रखा जाता है। कौन-कौन व्यक्ति पुस्तकालय में आ रहे हैं तथा उनके द्वारा पढ़ने के लिए चुनी गयी पुस्तकों की सूची पुस्तकें जारी करने के विभाग में पुस्तकालयाध्यक्ष द्वारा संभाल कर रखी जाती है।

पुस्तकालय के नियम-पुस्तकालय में पढ़ने के लिए कुछ नियमों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक होता है। जिन्हें निम्न प्रकार से समझ सकते हैं-

1. पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ते समय शांति बनाए रखना बहुत जरूरी होता है ताकि अन्य पाठकों को पढ़ने में अशांति प्रतीत न हो। वे भी शांत मन से अपने पठ्य को पढ़ सकें। पुस्तकालय मे दीवारों पर "कृपया ऊंची आवाज में बात न करें" जैसे वाक्य वहाँ के वातावरण को शांत बनाने के लिए लिखे होते हैं।
2. पुस्तकालय की पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं को क्षति पहुंचाना सख्त मना होता है। उन्हें सुरक्षित लेकर वापिस भी सुरक्षित लौटाना होता हे ताकि लौटाई गयी पुस्तक अन्य पाठक को सुरक्षित प्राप्त हो सके।
3. पुस्तकालय में शोर मचाने अथवा अनुशासन भङ्ग करने पर निलंबित भी किया जा सकता है।
4. यहाँ से ली गयी पुस्तकों को नियमित अवधि के भीतर वापिस लौटाना आवश्यक होता है जिस से पुस्तक के सुरक्षित होने का पता चलता रहे।
5. पुस्तकालय में किसी भी प्रकार का कचरा फैलाने अथवा किसी भी प्रकार की गंदगी फैलाना वर्जित होता है।

पुस्तकालय के सदस्य बनने के नियम–प्रत्येक पुस्तकालय के अपने-अपने नियम होते हैं तथापि पुस्तकालय के सदस्य बनने के सामान्य नियम प्राय: सब के समान ही होते हैं। पुस्तकालय के सदस्य बनने के कुछ नियम इस प्रकार हैं–

1. पुस्तकालय का सदस्य बनने के लिए सुरक्षानिधि के रूप में शुल्क देना आवश्यक होता है जो बाद में सदस्यता की समाप्ति पर कुछ वापिस लौटा दिया जाता है।
2. सदस्य बनने के लिए पुस्तकालयाध्यक्ष द्वारा पत्रक जारी किया जाता है जिसमें पुस्तकें जारी करना तथा पुस्तकें लौटाने के दिनांक एवं पुस्तकों के नाम अंकित होते हैं।
3. निर्धारित समय के भीतर एक बार पुस्तकों का पुनर्निवर्तन होता है ताकि पता चल सके कि पुस्तक गुम तो नहीं हुई है अथवा कोई क्षति तो नहीं पहुंचाई गयी है।

पुस्तकालय के लाभ–पुस्तकालय के लाभ कानिम्न प्रकार से अवलोकन कर सकते हैं -

1. पुस्तकालय व्यक्ति के ज्ञान-वर्धन का बहुत बड़ा एक साधन बंता है यहां पाठक को विभिन्न प्रकार की पुस्तकें पढ़ने का अवसर प्राप्त होता है।
2. यहाँ विभिन्न प्रकार के विषयों तथा भाषाओं से संबन्धित पुस्तकें पढ़ने का अवसर प्राप्त होता है।
3. इस स्थान पर पुस्तकें पढ़ने से मन एकाग्र रहता है।
4. पुस्तकालय में पुस्तक पढ़ने के लिए अधिक धन की आवश्यकता नहीं होती है। न्यून आय वाला व्यक्ति भी, जो कि बहुमूल्य की पुस्तक खरीदने में असमर्थ होता है, वह भी पुस्तकालय में कम शुल्क देकर पत्रक बनवा कर अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकता है
5. यहाँ सभी वर्गों के लोगों को पुस्तक पढ़ने का समान अवसर प्राप्त होता है।
6. इसके माध्यम से शिक्षा व्यवस्था सुदृढ़ होती है तथा शिक्षा गुणवत्तापूर्ण बनती है।
7. इससे देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में सहयोग प्राप्त होता है क्योंकि यहाँ ज्ञानवर्धक पुस्तकें पढ़कर व्यक्ति शुभकार्य करने में अग्रसर होता है।
8. शोधर्थी शोधकार्य हेतु पुस्तकालय से अपने विषय से संबन्धित ग्रन्थों को प्राप्त कर अपने शोधकार्य को सुगमता से पूर्ण कर सकता है। क्योंकि पुस्तकालय में पुस्तकों की विविधता ही शोधर्थी को शोध-कार्य पूर्ण करने में सहायक होती है।

इस प्रकार इनके अतिरिक्त पुस्तकालय के अन्य और लाभ भी अवलोकित हो सकते हैं।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और पुस्तकालय–शिक्षा मुख्य रूप से मनुष्य की चेतना शक्ति को विचारशील एवं विनम्र बनाती है जिससे मनुष्य समाज की उन्नति हेतु नूतन आविष्कार तथा नवीन एवं ज्ञानवर्धक विचारों का सृजन करता है जिससे समाज तथा देश को इसका लाभ मिलता है। समाज तथा देश के लाभान्वित होने में एवं मनुष्य को विचारशील और विनम्र बनाने में सहायक पुस्तकालय ही होते हैं शिक्षा और पुस्तकालय परस्पर पूरक भी हैं; इन दोनों का संबंध अविभाज्य है। जिस प्रकार शिक्षा के बिना शैक्षिक संस्थान

कि कल्पना भी नहीं की जा सकती है उसी प्रकार पुस्तकालय के बिना शैक्षिक संस्थान कि पूर्णता निश्चित नहीं की जा सकती है। जिस प्रकार शिक्षा चेतना शक्ति को विचारशील, ज्ञानशील तथा विनम्र बनाती है उसी प्रकार पुस्तकालय भी मानव-चेतना को ज्ञानार्जन का दिशा-निर्देश देता है और मानव की कौतूहलता को दूर करता है। पुस्तकालय अपने जन्म से ही शिक्षा को उज्ज्वल बनाने हेतु रेफरल सेवाएँ, सूचना, शैक्षिक साधन इत्यादि द्वारा शिक्षा संबंधी अनेक सेवाएँ प्रदान करता है। इन सेवाओं के माध्यम से पुस्तकालय ने अपने निरंतर प्रयास से शिक्षा के स्वरूप को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण रूप से एक नया आयाम दिया है। जिससे गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्राप्त करना सुगम हुआ है।

वर्तमान समय में कुछ पुस्तकालय अशिक्षित अभिभावकों को विदेशी तथा देशी भाषा सिखाने हेतु वर्गों का आयोजन कर रहे हैं। साथ ही उनके परिवार के सदस्यों को पुस्तक पढ़ने हेतु आकर्षित भी कर रहे हैं। कुछ पुस्तकालय समय-समय पर विभिन्न तथा नवीन विषयों पर संगोष्ठी, सम्मेलन और परिसंवाद का आयोजन कर शोध-पत्र की भी मांग करते हैं जिसमें शोध-छात्र के साथ-साथ सभी प्रकार के शैक्षिक तथा बौद्धिक क्षमता वाले लेखक अपने शोध-पत्र के माध्यम से ज्ञानवर्धक विचार को प्रस्फुटित करते हैं जिससे समाज एवं राष्ट्र को नई दिशा मिलती है।

पुस्तकालय और शिक्षा की अविभाज्यता–

पुस्तकालय और शिक्षा की अविभाज्यता को निम्न प्रकार से प्रकट कर सकते हैं -

पुस्तकालय शिक्षा

पुस्तकालय सेवाओं तथा संसाधन का संग्रह, उपयोगी शोध-सामाग्री प्रकाशित तथा अप्रकाशित सभी प्रकार के उपयोग हेतु दृश्य-श्रव्य अंतवस्तु जैसे– भू-विज्ञान, जैव-विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान, और उनसे संबंधित डाटाबेस आदि का प्रतिनिधित्व करता है। शिक्षा का प्रतिनिधित्व समाज को सकारात्मक दिशा-निर्देश देना, ज्ञान को आत्मसात करना, बौद्धिक तथा शैक्षिक वातावरण का निर्माण विद्यालय के माध्यम से करना होता है जिससे उनका व्यक्तिगत विकास के साथ ही सामाजिक विकास भी हो सके।

एक अच्छा पुस्तकालय अपने उपयोग कर्ताओं को मूल रूप से प्रगतिशील बनाता है जिससे वे अपने समाज के साथ-साथ अपने देश तथा स्वयं का निर्माण करते हैं। एक अच्छी शिक्षा मनुष्य को आत्म ज्ञान कराती है। आत्मविश्वसनीयता को सुदृढ़ बनाती है, विवेकी बनाती है।

पुस्तकालय एक सामाजिक तथा शैक्षिक संस्था है जिसके माध्यम से व्यक्ति विभिन्न प्रकार की सूचनाओं से अवगत होता है और लाभान्वित होता है। शिक्षा मानव के मस्तिष्क को सामाजिक तथा शैक्षिक वास्तुकला को समझने की शक्ति प्रदान करती है जिससे व्यक्ति सूचनाओं का निर्माण करके उन्हें अपने जीवन में क्रियान्वित भी करता है।

पुस्तकालय मुख्य रूप से तीन प्रकार के समुदायों का प्रतिनिधित्व करता है जो क्रमशः अपने क्षेत्र में उपयोग करने पर विशिष्ट हो जाते हैं– (1) विशिष्ट पुस्तकालय (2) सार्वजनिक पुस्तकालय (3) शैक्षिक पुस्तकालय शिक्षा मुख्य रूप से तीन प्रकार के आयामों को क्रमबद्ध करती है जिससे मनुष्य अपने जीवन में श्रेष्ठ बनता है और अन्य जीवों से पृथक् पहचान बनाता है– (1) विद्यालय (2) महाविद्यालय (3) विश्वविद्यालय

पुस्तकालय व्यक्ति की जिज्ञासा को शांत करता है शिक्षा जिज्ञासा को बढ़ाती है और आगे तक ले जाती है।

पुस्तकालय नवीन तथा पुरातन सूचनाओं का संग्रह करके उसे संरक्षण तथा विस्तारित करता है। शिक्षा नवीन तथा पुरातन सूचनाओं को समझने, चिंतन करने तथा शोध करने की प्रेरणा देती है।

पुस्तकालय का कार्य है पुस्तकों का संकलन करना एवं साथ ही सूचना तथा ज्ञान का भंडारण करना, जिसे पुस्तकालय के प्रशिक्षित कर्मचारी पुस्तकों, सूचना और ज्ञान को समुचित रूप से संरक्षित, सुव्यवस्थित करते है ताकि पाठक उपलब्ध संसाधनों का उचित उपयोग करके लाभान्वित हो सकें। शिक्षा का कार्य है मनुष्य को शिक्षकों के माध्यम से सुशिक्षित करना एवं विवेकी बनाना ताकि समाज में अच्छे और बुरे की पहचान हो सके।

पुस्तकों की उपयोगिता-वास्तव में पुस्तकालय में रखी पुस्तकों की उपयोगिता ही पुस्तकालय के उद्देश्य को पूर्ण करती है किन्तु कहीं-कहीं उसे भी पुस्तकालयों में अनदेखा कर दिया जाता है। कुछ पुस्तकालयों में पुस्तकों को अलमारियों में बंद करके रख दिया

जाता है। पाठकों को उन तक पहुँचने ही नहीं दिया जाता है। पुस्तकालय अधिकारी पुस्तकों की देखभाल तथा उनको खराब होने से बचाने के लिए चिन्तित होते हैं परंतु उन्हें उपयोग में लाने की चिंता कम करते हैं। वे स्वाभाविकतया पुस्तकों को कीमती वस्तुएं समझकर पुस्तकालयाध्यक्ष को उनकी रक्षा करने के लिए दायित्व दे देते हैं। पुस्तकों को खराब तथा खो जाने से बचाने के लिए पुस्तकालय में उनकी उपयोगिता में प्र्तिबंध अथवा न्यूनता ला दी जाती है। यद्यपि पुस्तकों की सुरक्षा तथा देखभाल करना पुस्तकालयाध्यक्ष का कर्तव्य है तथापि पुस्तकों को पाठकों के लिए सुलभ कराना भी उसका दायित्व होता है। यदि पाठक तथा पुस्तकालय की परस्पर दूरी रही तो पुस्तकालय केवल भवन मात्र ही रह जाएगा।

वर्तमान में पुस्तकालयों की आवश्यकता-प्राचीनकाल में जितनी आवश्यकता पुस्तकालयों की थी उतनी ही वर्तमान में भी है। किसी भी देश की पूर्ण साक्षरता तभी निर्धारित होती है जब उस देश के सभी नगरों और गांवों में पुस्तकालयों की पूर्ण सुविधा हो, क्योंकि पुस्तकालय की उस क्षेत्र में उपलब्धता अपनी ओर आकर्षित करती है, जिससे सुशिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि होती है। भारत के सम्पूर्ण शहरों तथा गाँवों में पुस्तकालयों की न्यूनता है जिस कारण देश पूर्ण साक्षर नहीं बन सका है। यदि पुस्तकालयों की व्यवस्थ और सुविधा सर्वत्र हो तो प्रत्येक क्षेत्र का निर्धन व्यक्ति भी पुस्तकालय की सुविधा प्राप्त करकेसाक्षर बनकर अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकता है।

वर्तमान में एक तो शिक्षा बहुत मूल्यवान हो चुकी है दूसरा पुस्तकों का मूल्य इतना होता है कि एक निर्धन व्यक्ति के लिए उन्हें खरीदना कठिन हो जाता है। अतः प्रत्येक क्षेत्र में पुस्तकालय होना परमावश्यक है। विदेशों में शिक्षा व्यवस्था सुदृढ़ होने का कारण वहाँ पुस्तकालयों का सुलभ होना है। वहाँ प्रत्येक नगर तथा गाँव में पुस्तकालयों की सुविधा प्राप्त है। यदि देश की साक्षरता में वृद्धि करनी हो तो पुस्तकालयों का विकास होना अत्यंतावश्यक है। इससे सामाजिक विकास के साथ-साथ देश के आर्थिक विकास में भी सहयोग प्राप्त होगा। क्योंकि सुशिक्षित समाज देश की उन्नति में सहायक होता है।

निष्कर्ष

अन्त में कहा जा सकता है कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में पुस्तकालय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी वर्ग का व्यक्ति पुस्तकालय से पुस्तकें प्राप्त करके अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकता है। पुस्तकालयों का प्रत्येक नगर एवं ग्राम में होना अत्यंतावश्यक हे। क्योकि पुस्तकालय की उपलब्धता तथा सुलभता व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ देश के विकास में भी सहयोग करती है।

बिहार में राष्ट्रीय चेतना का विकास और सांप्रदायिक सद्भाव

डॉ० रूमा कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), इतिहास विभाग
एल.एन.टी. कॉलेज, मुजफ्फरपुर, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फपुर

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के स्थापना के प्रारंभिक दिनों में बिहार के लोगों में काँग्रेस प्रति अत्यधिक उत्साह दीख पड़ता था एवं उसके अधिवेशनों में यहाँ से अनेक प्रतिनिधि भाग लिया करते थे। कुछेक वर्ष बाद बिहार में काँग्रेस के प्रति दिलचस्पी प्राय: समाप्त हो गई। इसका मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि यहाँ के लोग बिहार को पृथक करने में इतने व्यस्त थे कि अन्य कार्यो के लिए उनके पास यथेस्ट ऊर्जा नहीं रह गई थी। फिर भी अखिल भारतीय काँग्रेस कमिटी में बिहार का पांच स्थान दिया गया था तथा उसकी विषय-निर्वाचनी समिति में भी उतनी ही जगहें दी गई थीं। 1908 में जब लेफ्टिनेंट गवर्नर एण्ड्रयू फ्रेजर बिहार आए तो यहां उनको 'बिहार लैण्ड होल्डर्स एसोसिएशन', बिहार प्रोविन्सियल एसोसिएशन, और बिहार प्रोविन्सियल मुस्लिम लीग की ओर से एक संयुक्त ज्ञापन दिया गया जिसमें उनको बिहार-पश्चिम बंगाल-उड़ीसा के गवर्नर के रूप में संबोधित भी किया गया। इस ज्ञापन में लेफ्टिनेंट गवर्नर के समक्ष बिहारवासियों के बीच विभिन्न प्रकार की वास्तविक शिकायतों के कारणों को रखा गया। लेफ्टिनेंट गवर्नर फ्रेजर ने बिहारवासियों के इस ज्ञापन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का आश्वासन दिया और उन्होंने शीघ्र ही बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में उनके वास्तविक शिकायतों के कारणों को दूर करने के लिए सरकार के स्तर पर आवश्यक कदम उठाने का भरोसा दिलाया।[1]

बदली राजनीतिक परिस्थितियों में बिहार के काँग्रेसी नेताओं और कार्यकत्ताओं के दृष्टिकोण में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ और आमतौर पर वे यह महसूस करने लगे कि काँग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन में बिहार की भागीदारी को व्यापक और मजबूत आधार देने के लिए बिहार में चल रहे पृथक्करण आंदोलन की मांगों से जुड़ना जरूरी है। अब तक बंगाली और ऐंग्लो-इंडियन प्रेस इस मांग के प्रश्न पर बार-बार इस बात की दुहाई देते थे कि बिहारियों की इस मांग के पीछे न तो काँग्रेस के नेताओं का सहयोग है और न ही जमींदारों तथा समाज के ऊँचे तबके के लोग इसके पीछे हैं।[2]

1908 के सोनपुर मेले में सच्चिदानंद सिन्हा, मजहरूल हक, हसन इमाम, दीपनारायण सिंह आदि के सहयोग से खान बहादुर सरफराज हुसैन की अध्यक्षता में बिहार के कांग्रेसियों ने 'बिहार प्रदेश काँग्रेस कमिटी' का गठन किया। कमिटी के अध्यक्ष हसन इमाम बनाये गये, मजहरूल हक, सरफराज हुसैन, परमेश्वर नारायण, कृष्ण सहाय उपाध्यक्ष तथा सच्चिदानंद सिन्हा कोषाध्यक्ष बनाये गये। दीपनारायण सिंह तथा परमेश्वर लाल सचिव बने। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शुरूआती दौर से ही बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन का आधार हिन्दू-मुस्लिम एकता और *सांप्रदायिक सौहार्द्र* के मजबूत स्तंभों पर रखा गया और इसका लाभ बिहार के पृथक्करण आन्दोलन को भी मिला। प्रांतीय काँग्रेस कमिटी का मुख्यालय पटना में बनाया गया और इन नेताओं की मदद से इसका पहला अधिवेशन अली इमाम की अध्यक्षता में 12-13 अप्रैल 1908 को पटना में ही संपन्न हुआ।[3]

श्री मजहरूल हक सहित मुसलमान नेताओं के इसमें सम्मिलित होने का सम्मेलन के भविष्य पर बड़ा ही अनुकूल प्रभाव हुआ। सभी पढ़े-लिखे एवं उच्च वर्ग के मुसलमान इसमें सामूहिक रूप में सम्मिलित हुए। इस प्रकार उस युग में सारे भारत के लिए यह एक अभिनव दृश्य था जिसमें मुसलमान और गैर-मुसलमान एक साथ कंधो में कंधा मिलाकर आदर्शो एवं प्रेरणाओं से अनुप्रेरित होकर मिलजुल कर काम कर रहे थे।

बिहार प्रांतीय सम्मेलन की दूसरी बैठक 9-10 अप्रैल 1909 को भागलपुर में सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में आयोजित किया गया। इसके आयोजन में दीपनारायण सिंह की महत्वपूर्ण भूमिका थी। सच्चिदानंद सिन्हा ने अपने लम्बे अध्यक्षीय भाषण में भारत के राजनीतिक वातावरण की चर्चा करते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता को मजबूत करने पर बल दिया। उन्होंने इस दिशा में मुस्लिम नेता अली इमाम के योगदानों की प्रशंसा की।[4]

उपरोक्त संदर्भ में उल्लेखनीय है कि बिहार प्रांतीय सम्मेलन की इसकी बैठक में अपने अध्यक्षीय भाषण में सच्चिदानंद सिन्हा ने बिहार के अलगाव की मांग की चर्चा नहीं कि चूंकि 1908 के प्रांतीय सम्मेलन का मुख्य लक्ष्य बिहार की *हिन्दू-मुस्लिम एकता की मजबूती* थी। इस उद्देश्य को हासिल करने में यह सम्मेलन पूरी तरह सफल रहा। बिहार में हिन्दू एवं मुस्लिम सम्प्रदायों के इस सौहार्द पर तत्कालीन भारतीय समाचारपत्रों ने प्रशांस्तपूर्ण टिप्पणी लिखीं। *बंगाली* ने इन शब्दों में इसकी प्रशंसा की "बिहार प्रान्तीय सम्मेलन से हमें उस प्रांत हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य पारस्परिक सद्भावना का प्रमाण मिलता है। *इंडियन मिरर* ने इस पर टिप्पणी लिखते हुए कहा" बिहार में हिन्दू और मुसलमानों के मध्य सौहार्द तथा सद्भावना स्थापित करके एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। आशा की जाती है कि सम्पूर्ण देश में लोग इसका अनुकरण करेंगे और यदि ऐसा हुआ तो दुर्भाग्यपूर्ण हिन्दू-मुस्लिम विवाद समाप्त हो जाएंगे। लखनऊ के *ऐडवोकेट* ने लगभग इसी समय एक टिप्पणी प्रस्तुत की, "बिहार को इसका श्रेय दिया जाना चाहिए कि वहाँ के हिन्दू और मुसलमान अपने प्रांत के राजनैतिक कल्याण के हेतु कंधो से कंधा मिलाकर काम कर रहे हैं। काश! अन्य प्रांतों में भी ऐसा ही होता।"[5]

भारतीय राष्ट्रीय इतिहास के इस सम्वेदनशील युग में विदेशी सरकार द्वारा प्रोत्साहित तथा प्रोद्भूत साम्प्रदायिकता की भावना भारतीय राष्ट्रीय जीवन में फूट डालने को क्रियाशील थी। बिहार के मुस्लिम नेता राष्ट्रवाद के पक्ष में निष्ठवान रहे। ये लोग उदारवादी विचारों के थे एवं उनका दृष्टिकोण विश्वजनीन था। इनमें से कुछ मुस्लिम लीग के साथ संवद्ध थे, फिर भी मुख्य राष्ट्रवादी प्रवाह के प्रतिकूल नहीं। धयातव्य है कि 30 दिसम्बर, 1908 को अमृतसर मुस्लिम लीग के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से सर अली इमाम ने कुछ महत्वपूर्ण बात कही- हम भारत के शिक्षित मुसलमान इस देश में निवास करनेवाले अन्य सम्प्रदाय के लोगों की अपेक्षा अपनी जन्मभूमि के प्रति कम प्रेम नहीं रखते। हमारा उससे युग-युग का साथ रहने का संबंध है और हम अपनी मातृभूमि के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम में किसी से भी कम नहीं। इस अवतरण का उल्लेख करते हुए तत्कालीन एक सर्वप्रमुख अंग्रेजी पत्रिका *क्वाटर्ली रिव्यू* में इस प्रकार की टिप्पणी प्रकाशित हुई– संभवत: कम अंग्रेज पाठक ही इस वाक्य में किस युग का संकेत मिल रहा है यह समझ सकेंगे। भारतीय मुसलमान न केवल अपने भारतीय राष्ट्रिक होने की बात स्वीकार करता है बल्कि वह उसे अपना पवित्र अधिकार समझता है। यह एकता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है। इसका महत्त्व जितना भी आंका जाए, थोड़ा होगा।[6]

गौरतलब है कि दिसम्बर 1910 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के 25वें अधिवेशन में श्री मजहरूल हक ने बड़े ही उपयुक्त शब्दों में श्री जिन्ना द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का अनुमोदन किया था। इस प्रस्ताव में नगरपालिकाओं, जिला बोर्डो या अन्य स्थानीय निकायों में पृथक् निर्वाचन प्रणाली के सिद्धांत लागू करने का विरोध किया गया था। प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए उन्होंने कहा था, मेरे विचार में भारत की सर्वाधिक प्रमुख वर्त्तमान समस्या दो मुख्य सम्प्रदायों को एकत्र करने की है जिसमें मातृभूमि के पुनरूत्थान के हेतु वे कंधो में कंधो मिलाकर काम कर सकें। एक अन्य बिहारी देशभक्त सैयद हसन इमाम ने इस प्रस्ताव के समर्थन में जोरदार आवाज उठाई थी। इमाम ने पृथक् निर्वाचन प्रणाली को असीमित दुष्टतापूर्ण योजना कहकर उसकी आलोचना की थी तथा निष्कर्ष रूप में इमाम ने कहा था, "पृथक् निर्वाचन प्रणाली भारत के प्रत्येक परिवार में चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, पारसी, जैन, ईसाई, सिख या अन्य किसी सम्प्रदाय का हो, अनेक उलझनें पैदा कर देगी।"[7]

1912 भारतीय इतिहास में एक स्मरणीय वर्ष है, विशेष करके दो कारणों से। इसी वर्ष स्थानीय जनता की मांग पर बिहार को बंगाल से पृथक् करके एक अलग प्रांत बनाया गया और इसी वर्ष पटना में अखिल भारतीय काँग्रेस का 27वाँ वार्षिक अधिवेशन आर.एन. मुधोलकर की अध्यक्षता में हुआ। मौलाना मजहरूल हक स्वागत समिति के अध्यक्ष थे तथा सच्चिदानन्द सिन्हा महामंत्री। अपने स्वागत भाषण में मौलाना मजहरूल हक ने बिहार के गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण करते हुए बतलाया कि राष्ट्र-प्रेम में बिहारी किसी भी प्रांत के लोगों से पीछे नहीं है और मातृभूमि के बलिदान की जब भी आवश्यकता पड़ेगी, बिहारी प्रथम कतार में ही दृष्टिगोचर होंगे।

अधिवेशन के अध्यक्ष मुधोलकर ने बिहार के हिन्दू-मुसलमानों की एकता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता बनाये रखने में बिहार के प्रमुख व्यक्तियों ने अपूर्व योगदान दिया है, परन्तु बिहार को विश्व-बन्धुत्व के लिए इससे भी आगे बढ़कर काम करना है।[8]

1912-13 ई. में तुर्की तथा बालकन प्रायद्वीप के राज्यों के बीच युद्ध हुआ। बालकन प्रायद्वीप के ये राज्य बहुत समय से तुर्की के अधीन थे। यहाँ की जनता ईसाई धार्मावलम्बी थी, जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता की आकांक्षा से उत्प्रेरित थी। बालकन युद्ध के समय भारतीय मुसलमानों की सहानुभूति तुर्की के साथ थी; क्योंकि तुर्की का सुल्तान सिर्फ एक सीमित क्षेत्र का शासक ही नहीं था, बल्कि सम्पूर्ण मुस्लिम जगत् का भी धार्माध्यक्ष था। 6 मई, 1913 ई. को लखनऊ में अब्दुल बारी के निवास-स्थान पर एक सभा हुई, जिसमें मुहम्मद अली, शौकत अली, शेख मुशीर हुसेन किदवई तथा अन्य नेताओं ने तुर्की के प्रति चिंता व्यक्त की। इस सभा में अंजुमन-ए-खुदाय-ए-काबा नामक एक संस्था की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य मक्का-मदीना आदि धार्मिक स्थान को गैर मुसलमानी आक्रमणों से बचना था।

बालकन युद्ध से बिहार में भी सर्व-इस्लामवाद की लहर दौड़ उठी। दिसम्बर 1912 ई. में पटना काँग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष आर.एन. मुधोलकर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में तुर्की के विघटन के प्रति भी चिंता व्यक्त की। लखनऊ में अंजुमन-ए-खुदाए-ए-काबा की स्थापना के पश्चात् बिहार में भी अनेक अंजुमनों की स्थापना हुई, जिनका उद्देश्य तुर्की की सहायता के लिए कोष इकट्ठा करना था। गया, जहानाबाद तथा पूर्णिया खुदाय-ए-काबा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। मौलाना मजहरूल हक इस आंदोलन से पूर्णत: सम्बद्ध थे। युद्ध के दौरान मुजफ्फरपुर के एक नामी कार्यकर्त्ता अब्दुल वहीद अबा के कुस्तुनतुनिया जाने का भी प्रमाण मिलता है।

बिहार के भिन्न-भिन्न स्थानों में प्रतिदिन सभाएँ होती थीं, जिसमें तुर्की की आर्थिक सहायता के लिए कोष इकट्ठा किया जाता था। दरभंगा तथा मुंगेर में इस तरह की सर्वाधिक सभाएँ हुई। 22 नवम्बर, 1912 ई. के *मुसलमान* में एक संवाददाता ने 'बालकन युद्ध तथा बिहार' शीर्षक एक लेख में लिखा था, "तुर्की के रेड-क्रेसेंट कोष में सहायता करने के लिए बिहार में प्राय: प्रतिदिन सभाओं का आयोजन किया जाता है। तुर्की की विजय के लिए प्रति शुक्रवार को जगाए-मस्जिद में प्रार्थनाएँ की जाती हैं। बड़ी दरगाह के सजादानशीन शाह मोहम्मद हयत साहब की अध्यक्षता में रेड-क्रेसेंट समिति की एक शाखा भी खोली गई है, जिसके कोष में धन देने के लिए प्रत्येक व्यक्ति उत्सुक है। जुलाहे इस कोष में सर्वाधिक धन देने के लिए प्रयत्नशील हैं। अभी तक उन लोगों ने 4 हजार रूपये एकत्र किये हैं। स्थानीय विद्यालयों तथा मदरसों के विद्यार्थी भी अब तक सैकड़ों रूपये एकत्र कर चुके हैं।[9]

फिर भी मुसलमानों के एक प्रसिद्ध नेता सर आगा खाँ तुर्की को सक्रिय सहायता देने के विरूद्ध थे। उनका कहना था कि भारतीय मुसलमानों के लिए तुर्की को सिर्फ उत्साहवर्द्धक तार ही देना ठीक है, जैसे- बढ़ते जाओ। लड़ते जाओ। कितना भी बलिदान देना पड़े, परन्तु हार मत मानो। परन्तु तार भेजनेवालों को उसके बाद घर जाकर सुख की नींद सोना चाहिए। यहाँ इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि आगा खाँ के इन विचारों की कलकत्ता की एक सभा में एक प्रस्ताव द्वारा काफी भर्त्सना की गई। मौलाना मजहरूल हक ने आगा खाँ के विचारों को इस्लाम के प्रतिकूल बतलाया तथा इस्लाम के प्रत्येक अनुयायी को इसका विरोध करने के लिए कहा।

1914 में भारत से काँग्रेस का एक प्रतिनिधि मंडल इंग्लैंड गया; जिसमें दो प्रमुख बिहारी नेता मजहरूल हक और सच्चिदानंद सिन्हा भी थे। इंग्लैंड से लौटती बार मौलाना मजहरूल हक कुस्तुनतुनिया भी गये, जहाँ युवा तुर्क दल तथा रेड क्रेसेंट समिति के सदस्यों ने उनका भव्य स्वागत किया। वे तुर्की के सुल्तान से भी मिले। मौलाना "मजहरूल हक जब पटना लौटे, तब बिहार सरकार उन्हें संदिग्धा दृष्टि से देखने लगी। भारत सरकार को अपने पाक्षिक प्रतिवेदन में बिहार सरकार ने लिखा कि मजहरूल हक भारतीय मुसलमानों को गुप्त रूप से अंग्रेजों के विरूद्ध उभार रहे हैं। इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं कि मुसलमानों में वे इस भावना का प्रचार कर रहे हैं कि तुर्की का हित जर्मनी के हित से संबंद्ध है और इस्लाम के अनुयायियों की सहानुभूति जर्मनी के प्रति ही होनी चाहिए।"[10]

दरअसल बालकन युद्ध के प्रारंभ से ही भारतीय मुसलमान ब्रितानी सरकार से आग्रह करते रहे कि वह युद्ध में हस्तक्षेप कर तुर्की को विघटन से बचावे, परन्तु इससे कुछ फायदा नहीं हुआ। उल्टे ब्रितानी सरकार ने बालकन राज्यों का ही पक्ष लिया। अन्त में, युद्ध

में तुर्की की हार हो गई, जो भारतीय मुसलमानों ने राष्ट्रीय संकट समझा। ब्रितानी सरकार के रूख से भारतीय मुसलमानों को काफी तकलीफ हुई, जिससे उन्होंने हिन्दुओं की ओर दोस्ताना हाथ बढ़ाया।

बहरहाल 1914 ई. में जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया और तुर्की जब ब्रितानी सरकार के विरूद्ध युद्ध में शामिल हुआ, उसी समय मौलवी अब्दुल्ला भारत में ब्रितानी सरकार से लोहा लेने के उद्देश्य से पश्चिमोत्तर सीमा से होकर काबुल पहुँचे। वहाँ उन्होंने भारत के लिए एक अस्थायी सरकार बनाई, जिसके राष्ट्रपति महेन्द्र प्रताप, प्रधानमंत्री बरकतुल्ला और गृहमंत्री अब्दुल्ला बने। उन्होंने एक दैवी सेना का भी गठन किया, जिसका मुख्यालय मदीना बना। इस सेना के सर्वोच्च पदाधिकारियों में तीन बिहारी थे- रहीमाबाद (दरभंगा) के मौलवी अब्दुल अजीज, अजीमाबाद (पटनासिटी) के मौलवी अब्दुर रहीम तथा गाजीपुर (शाहाबाद) के मौलवी अब्दुल्ला। अब्दुल अजीज एक विख्यात वहाबी नेता थे और वहाबी धर्म के प्रचार के संबंध में सम्पूर्ण उत्तरी भारत का भ्रमण कर चुके थे। अब्दुल्ला शाहाबाद के अहमदिया मदरसा के एक शिक्षक थे तथा बंगाल, बिहार और उड़ीसा के वहाबी विद्यालयों से उनका घनिष्ठ संबंध था। दैवी सेना के तीसरे सर्वोच्च पदाधिकारी अब्दुर रहीम पटना के प्रमुख वहाबी नेता अहमदुल्ला के परिवार से संबंधि त थे। दैवी सेना के महाबलाधिपतियों की सूची में आलमगंज (पटना) के एक मुस्लिम नेता सद्रुहीन भी थे। परन्तु, ब्रितानी सरकार को इस शड्यंत्र का सुराग मिल गया जिससे काबुल स्थित अस्थायी सरकार की सारी योजना किल हो गई।

16 दिसम्बर, 1916 ई. को मौलाना मजहरूल हक के सभापतित्व में पटना में एक सभा हुई, जिसमें बिहार में होमरूल लीग की शाखा स्थापित करने की आवश्यकता पर विचार-विमर्श हुआ। मजहरूल हक ने अपने भाषण में बतलाया कि अन्य प्रांतों की तरह बिहार में भी होमरूल लीग की स्थापना अतिआवश्यक है, क्योंकि इसके बिना स्वराज्य के लक्ष्य तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है। उन्होंने कहा कि कुछ लोगों ने होमरूल के बारे में तरह-तहर की भ्रांतियाँ फैला रखी हैं, जिससे कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो अब होमरूल के नाम से घबराने लगे हैं। संभव है उन लोगों के दिमाग में आयरलैण्ड के उग्र प्रचार और भंयकर युद्ध के चित्र हों। वे चाहते हैं कि इस संस्था का, जो देश में सभी जगह कायम हो रही है, ऐसा नाम रखा जाय जो पहले की अपेक्षा कम संदेहात्मक हो। लीग के सिद्धांत को वे आपत्तिजनक समझते हैं, इसलिए इस नाम से उन्हें परेशानी हो रही है। अगर जनता की राय हो तो नाम बदला जा सकता है। परन्तु, यह नाम इसकी अर्थपूर्ण भावना तथा सादगी के कारण ही दिया गया। होमरूल का अर्थ अंग्रेजी ताज के अन्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना है, जिसे लार्ड हार्डिंज ने भारतीयों की न्यायपूर्ण आकांक्षा कहा। इसे देश के सभी बड़े अधिकारियों ने भी स्वीकार किया। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो विश्वयुद्ध के समय होमरूल की मांग को उचित नहीं समझते क्योंकि इससे ब्रितानी सरकार को युद्ध में बाधा पहुँचेगी, परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता। भारत की जनता समझती है कि स्वराज्य उनका जन्मसिद्ध अधिकार है और कोई भी आदमी अधिक दिनों तक इसे अपने स्वाभाविक अधिकारों से वंचित नहीं कर सकता। युद्ध के समय भारत होमरूल की मांग इसलिए कर रहा है कि युद्ध के बाद जब राष्ट्रों का पुनर्गठन हो, तब भारत किसी से पीछे न रहे।[11]

मौलाना मजहरूल हक ने कहा कि कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो भारतीयों को शासन संभालने में आयोग्य समझते हैं। परन्तु वे ऐसे लोग होंगे जिन्हें इतिहास पढ़ने से कोई सरोकार नहीं। पटना में जिसका नाम पहले पाटिलपुत्र था, स्वाशासन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मिलता है। अशोक के शासनकाल में पाटिलपुत्र स्वशासन का उत्कृष्ट नमूना था। यहाँ असंख्य निगम थे, जो यात्रियों तथा अतिथियों की सुख-सुविधा में रत थे। इतना ही नहीं, भारत के गाँव-गाँव में पंचायत थी, जहाँ गांव के झगड़ों का निपटारा हुआ करता था। इस संदर्भ में मजहरूल हक ने यह भी बतलाया कि मुसलमानों में भी अपने अनुयायियों के जनमत के आधार पर ही खलीफा का निर्वाचन होता था।

होमरूल लीग के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए मजहरूल हक ने बतलाया कि इसका उद्देश्य जनता को स्वशासन में प्रशिक्षित कर देश के कोने-कोने में स्वराज्य के महत्व का प्रचार करना होगा, इसके अतिरिक्त, हमारे सभी कार्य-कलाप वैधानिक ढंग से होंगे, जिससे हम अपने अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो सकें। इसी सभा में होमरूल लीग की स्थापना हुई, जिसके अध्यक्ष मौलाना मजहरूल हक, उपाध्यक्ष खाँ बहादुर सर्फराज हुसैन खां और राय बहादुर पूर्णेन्दुनारायण सिंह तथा मंत्री चन्द्रवंशी सहाय और वैद्यनाथनारायण सिंह बने।

29 दिसम्बर, 1916 ई. को लखनऊ काँग्रेस में स्वशासन सम्बन्धी एक प्रस्ताव पर बोलते हुए मौलना मजहरूल हक ने कहा जबतक हम अपने शासकों में अपनी होमरूल की माँ के प्रति विश्वास पैदा नहीं करेंगे, तबतक हमें अपने लक्ष्य की पूर्ति में कठिनाई

होगी। इसलिए हम अपने शासकों को यह दिखा दें कि भारत के स्त्री, पुरुष तथा बच्चे सभी होमरूल के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हैं। उन्होंने बतलाया कि मातृभूमि की उन्नति के लिए हिन्दू मुस्लिम एकता नितांत आवश्यक है। अब भाषण देने तथा वाद-विवाद का समय नहीं, अब काम करने का समय उपस्थित है।

बिहार में जगह-जगह होमरूल की शाखाएँ खोली गई। जनकधारी प्रसाद ने मुजफ्फरपुर के वकीलों, मुख्तारों और व्यापारियों की सहायता से मुजफ्फरपुर जिला होमरूल की स्थापना की तथा 1920 ई. तक इसके मंत्रीपद पर बने रहे। सारण जिले में भी होमरूल लीग की स्थापना हुई, जिसके अधिकतर सदस्य वकील और मुख्तार लोग थे। बजरंग सहाय तथा तारणी प्रसाद सिन्हा भी होमरूल आंदोलन से संबंधित थे।

निष्कर्ष

बिहार में होमरूल का काम भारत के अन्य भागों की तरह कुछ वर्षो तक प्रबल वेग से चलता रहा। परन्तु ज्यों-ज्यों काँग्रेस सक्रिय होती गई, होमरूल लीग के प्रति लोगों की आस्था क्षीण होती गई। दो-तीन वर्षो के पश्चात् इसके प्रति लोगों का उत्साह ही न रहा, न राष्ट्रीय प्रगति के लिए इसकी कोई आवश्यकता ही प्रतीत हुई। दरअसल बिहार में आधुनिक राष्ट्रीय चेतना का उद्भव काँग्रेस के प्रारंभिक दिनों से प्रारंभ होता है। 1906 में बिहारी स्टुडेन्ट्स कॉन्रेंस की स्थापना, 1908 में बिहार प्रांतीय काँग्रेस कमिटी का गठन बिहार में होमरूल आंदोलन आदि ने बिहार में राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

संदर्भ सूची

1. सुमंत नियोगी "द इंडियन अवेकनिंग ऑफ द 19[वीं] सेन्चूरी, ए स्टडी ऑफ इट्स इम्पैक्ट ऑन बिहार" ***एसेज इन मॉर्डन इंडियन हिस्ट्री,*** पटना, 01 अक्टूबर 1909
2. उपरोक्त
3. डा. नीहार नन्दन प्रसाद सिंह, "पृथक बिहार की मांग : नये प्रांत का सृजन" डा. विजय कुमार (सं) ***बिहार : सृजन से शताब्दी वर्ष,*** बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना, 2012, पृ. 36
4. उपरोक्त
5. जे.एस.एल. ***इमर्जेस ऑफ इंडियन नेशनल काँग्रेस : रिसपान्सेज एण्ड रियेक्सन इन बिहार (1885-1908),*** पृ. 25-26
6. उपरोक्त
7. उपरोक्त
8. सच्चिदानंद सिन्हा, ***समकालीन बिहार की विभूतियां,*** अनुवादक-कलानाथ मिस्र, पटना, 2008, पृ. 26-29
9. नागेन्द्र मोहन श्रीवास्तव, "वर्ल्डवार फर्स्ट एण्ड इंडियन प्रोविजनल गवर्नमेंट इन काबुल", ***जनरल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च***, राँची, अगस्त 15, 1973, पृ. 62
10. ***पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट, गवर्नमेण्ट ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा,*** फाइल नं. 1428
11. ***रिपोर्ट ऑफ दि इंडियन नेशनल काँग्रेस***, लखनऊ, 26-30 दिसम्बर, 1916, पृ. 85-86

राजनीतिक लामबंदी का दौर एवं सामाजिक परिवर्तन : संदर्भ एवं मुद्दे

अशोक कुमार शर्मा

शोधार्थी (राजनीति विज्ञान), बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

प्रारंभिक दशकों में जातिगत संगठनों के जरिए निचली जातियों की लामबंदी को एक सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में देखते हैं।जो किसी कानून बनानेवाले को एक पार्टी छोड़कर दूसरी पार्टी में जाने से रोक सके और कांग्रेस जैसी विरोधी पार्टी ने भी उस स्थिति का फायदा उठाकर तीन माह से कुछ अधिक अवधि के अंदर ही शास्त्री सरकार को सत्ता की गद्दी से नीचे उतार दिया। विधान सभा को निलंबित करवाया और वहां केन्द्रीय शासन लागू करा दिया, जो करीब एक वर्ष तक जारी रहा। जून, 1969 में नए चुनाव कराए गए। इन चुनावों ने शास्त्री को पुन: मुख्यमंत्री बना दिया, लेकिन वह एक माह से अधिक मुख्यमंत्री की कुर्सी पर नहीं रह सके।लेकिन यह वस्तुत: एक आर्थिक आंदोलन था जिसका लक्ष्य उत्पादन के साधनों, विशेषकर भूमि, पर उच्च जातियों के नियंत्रण को तोड़कर और सामाजिक श्रम विभाजन के निष्ठुर ढांचे को ध्वस्त कर उच्च जातियों के घनिष्ठ तंत्र को नष्ट करना था।सामाजिक परिवर्तन के लिहाज से बिहार की राजनीति में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। पहले पिछड़ी जाति के नेता अगड़ी जाति के नेताओं के पीछे चलते थे और अब अगड़ी जाति के नेता लालू प्रसाद और नीतीश कुमार के पीछे चलने को बाध्य हैं।

मुख्य शब्द: जातियों की लामबंदी, आर्थिक आंदोलन, श्रम विभाजन, सामाजिक परिवर्तन

प्रारंभिक दशकों में जातिगत संगठनों के जरिए निचली जातियों की लामबंदी को एक सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में देखते हैं। लेकिन यह वस्तुत: एक आर्थिक आंदोलन था जिसका लक्ष्य उत्पादन के साधनों, विशेषकर भूमि, पर उच्च जातियों के नियंत्रण को तोड़कर और सामाजिक श्रम विभाजन के निष्ठुर ढांचे को ध्वस्त कर उच्च जातियों के घनिष्ठ तंत्र को नष्ट करना था। जनेऊ धारण करने, अपनी जातियों के राजसी और संग्रामी प्रताप के पुराणों का बखान करने जैसे सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग केवल स्वाभिमान को बढ़ावा देने, जोश-उत्साह को ऊँचा बनाए रखने, धीरे-धीरे निचली जातियों के नियतिवाद को सान चढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता था। विपक्ष में अधिकतर पार्टियों का गठन विशिष्ट विचारधाराओं- वामपंथी, केन्द्र के वामपार्श्वस्थ, हिन्दू प्रधानता, मुसिलम संरक्षणवाद को लेकर किया गया था, जिन्होंने कांग्रेस के विस्तीर्ण गठबंधन को दमघोंटू और अपने निर्वाचन क्षेत्रों की प्रगति में बाधक पाया। इनके अलावा भी कुछ पार्टियां थी, जो एक ऐसे प्रमुख नेता के अधीन यथार्थवादी गुटों में थीं जो कांग्रेस को उस समय छोड़कर चला गया था जब उन्हें सत्ता में अपने इच्छित प्रभावशाली पद प्राप्त नहीं हुए।[1] कांग्रेस के गठबंधन संबंधी मॉडल के प्रतिवाद स्वरूप बनी विशिष्ट विचारधाराएं और विशिष्ट गुट अपने जन्म से ही एक-दूसरे के सिद्धांतों तथा हितों के प्रति असहज एवं प्रतिकूल थे। अनुकूलन, असमायोजन की भावना तब और बलवती हो गई जब विपक्ष की अनेक पार्टियां और गुटों का नियंत्रण एक नेता के हाथों में चला गया। इस कारण जब कभी विपक्ष के गठबंधन को सत्ता प्राप्त हुई, पार्टियां और गुटों के नेतागण, महत्वपूर्ण पदों पर कब्जा करने के लिए आपस में बुरी तरह लड़ने लग गए। इस बुरी कलहबाजी का नतीजा यह हुआ कि गठबंधन, सामान्यत: कुछ माह के अंदर ही या अधिक-से-अधिक एक साल में बिखर गया, ध्वस्त हो गया।

हालांकि विपक्षी गठबंधन में सं.सो.पा. सबसे बड़ी पार्टी थी जिसने 1967 के चुनावों में बिहार में कांग्रेस को हराया था। फिर भी लोहिया, अपनी प्रबल इच्छा एवं पसंद के बावजूद विधानमंडल गुट के नेता कर्पूरी ठाकुर को गठबंधन का नेता निर्वाचित कराने और मुख्यमंत्री पद का दावेदार बनाने में असफल रहे, क्योंकि राज्य स्तर के एक अन्य सं.सो.पा. नेता रामानंद तिवारी ने भी अपना दावा ठोक दिया। कर्पूरी-रामानंद की आपसी होड़ ने सं.सो.पा के विधायकों (एम.एल.ए.) को जाति के आधार पर विभाजित कर दिया। उच्च जातियां रामानंद का समर्थन कर रही थीं और निचली जातियां कर्पूरी के पीछे थीं। रामानंद गुट को अपना दावा वापस लेने के लिए लोहिया ने मनाने का बहुत प्रयास किया। लेकिन बात नहीं बनी, क्योंकि वे इस बात पर अड़े हुए थे कि या तो रामानंद होगा या फिर कर्पूरी या गठबंधन में शामिल किसी अन्य पार्टी से कोई व्यक्ति चुनना होगा।[2]

इस फूट को टालने के उद्देश्य से लोहिया एक नाम पर सहमत हो गए- महामाया प्रसाद सिन्हा। अधिकतर साझेदार भी उनके पक्ष में थे। एक समय था जब वह एक समाजवादी कहलाते थे। हालांकि तब भी कांग्रेस के साथ काम करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। कुछ वर्ष पहले अनेक महत्त्वपूर्ण प्रजा सोशलिस्ट नेताओं की तरह महामाया भी कांग्रेस में शामिल हो गए थे। लेकिन फिर उन्होंने एक नई पार्टी, जन क्रांति दल का गठन करने के उद्देश्य से कांग्रेस छोड़ दी, ताकि उनके वास्ते राजनीति में सौदेबाजी की संभावनाएं बेहतर हो सकें।[3]

नए गठबंधन की समस्याएं वहीं समाप्त नहीं हुई। उत्तर बिहार में सहरसा से एक बड़े यादव जमींदार, बी.पी.मंडल सं.सो.पा की ओर से लोकसभा के लिए निर्वाचित हो गए थे। इस सीट के लिए चुनाव राज्य विधान सभा चुनावों के साथ ही हुआ था, लेकिन मंडल चाहते थे कि उन्हें राज्य की गठबंधन सरकार में ही कोई पद दिया जाए। लोहिया ने उनकी बात मानने से साफ इंकार कर दिया, क्योंकि वह पहले ही सार्वजनिक रूप से घोषणा कर चुके थे कि किसी भी सांसद को राज्य सरकार में जगह नहीं दी जाएगी। मंडल ने भी-जिन्हें द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग की अध्यक्षता करने के लिए प्रसिद्ध होना था और जिनकी सिफारिशों को केन्द्र में एक गैर-कांग्रेस गठबंधन सरकार द्वारा कार्यान्वित किए जाने से 1990 के दशक में उच्च जाति विरोधी राजनीति नई ऊँचाईयों को छूने जा रही थी- अपना कदम पीछे हटाने से मना कर दिया। कर्पूरी-रामानंद संग्राम के दौरान मंडल की दृष्टि मुख्यमंत्री पद पर लगी हुई थी। उसमें सफल न होने पर, उन्होंने निश्चय कर लिया कि पहले वह महामाया सरकार में एक मंत्री बनेंगे और फिर उच्चतम पद प्राप्त करने का प्रयास करे रहेंगे।

मंडल की कोई समाजवादी पृष्ठभूमि नहीं थी; वह कांग्रेस का हिस्सा थे। यादव जाति से एक प्रमुख नेता के रूप में उन्हें उस समय एक सहयोजित सदस्य बनाया गया था जब 1963 से 1967 तक कांग्रेस की ओर से मुख्यमंत्री रहे, के.बी. सहाय एक अन्य यादव नेता रामलखन सिंह यादव को ले आए और अपने मंत्रिमंडल में रामलखन को वस्तुतः दूसरे नंबर पर रख दिया तथा मंडल को हाशिए पर डाल दिया।[4] कुछ ही समय बाद, मंडल ने कांग्रेस छोड़ दी और वह सं.सो.पा. में शामिल हो गए, क्योंकि लोहिया के नेतृत्व में निचली जातियों के संगठित होने से सत्ता में कोई महत्वपूर्ण पद पाने की उनकी आशाएँ जग उठी थीं। वह राज्य में पहली बार सत्ता में विपक्ष की गठबंधन सरकार से मिले अवसर को छोड़ना नहीं चाहते थे, भले ही इससे लोहिया को अपना ही नियम तोड़ने के लिए लज्जित क्यों न होना पड़े। मंडल की अशोभनीय लिप्सा, लालच पर लोहिया बहुत क्षुब्ध हुए । लेकिन इस डर से कि अगर उनकी लिप्सा को तृप्त नहीं किया गया तो पार्टी में काफी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं, फूट भी पड़ सकती है, लोहिया आखिरकार राजी हो गए। भले ही ऐसा करते हुए उन्हें अपने अधिकार का अपमान एक कड़वे घूंट की तरह पीना पड़ा हो।

मंडल के लिए, मंत्री का पद सिर्फ एक पड़ाव था : उनकी आंख तो मुख्यमंत्री की कुर्सी पर लगी थी। गठबंधन को शुरू से ही मुश्किलों का सामना करना पड़ा। अलग-अलग विचारधाराओं एवं सिद्धांतों से जुड़े गुट नीतियों, कार्यक्रमों और मुद्दों पर सहमत होने के बजाय असहमत अधिक होते थे। विपक्ष में सम्मिलित पार्टियों, विशेषकर सं.सो.पा. को जिन लोगों ने वोट दिया था, उन्हें यह देखकर घोर निराशा हुई कि नई सरकार ने उतनी ही प्राथमिकताएं तय की हैं, जितने साझेदार गठबंधन में हैं। सरकार के पास कोई दिशा नहीं थी। जो समस्याएं कांग्रेस शासन के दौरान लोगों के सामने थीं- वे समस्याएं वैसी ही बनी हुई थीं, उनमें कोई कमी नहीं आई थी। मसलन, जहां कि तहां अटकी खेती, उद्योगों का अल्प-विकास, बेरोजगारी, मंत्रियों और अधिकारियों का भ्रष्टाचार, खाद्य वस्तुओं की चढ़ती कीमतें।[5]

महामाया सरकार को अभी एक वर्ष भी नई हुआ था, जब मंडल ने सार्वजनिक निराशा की आड़ में पार्टी के मंत्री पद-लोभी करीब तीस विधायकों को लेकर सं.सो.पा. से किनारा कर लिया। कांग्रेस ने 'विद्रोह' को भड़काया और ऐसी किसी भी सरकार को समर्थन देने की घोषणा कर दी, जो मंडल को मुख्यमंत्री बनाए। हालांकि, एक माह के बाद ही कांग्रेस ने मंडल को दिया समर्थन वापस ले लिया और एक अछूत जाति से आए एक विधायक भोला पासवान शास्त्री के नेतृत्ववाली पार्टी के साथ समझौता कर लिया। गठबंधन ने इसमें वहीं देखा जो सच्चाई थी या सत्ता हथियाने के लिए कांग्रेस की एक चाल थी। किसी जनादेश द्वारा सदन में बहुमत नहीं मिला तो प्रलोभन देकर विधायकों को तोड़ने की चाल।

ऐसा कोई कानून नहीं था जो किसी कानून बनानेवाले को एक पार्टी छोड़कर दूसरी पार्टी में जाने से रोक सके और कांग्रेस जैसी विरोधी पार्टी ने भी उस स्थिति का फायदा उठाकर तीन माह से कुछ अधिक अवधि के अंदर ही शास्त्री सरकार को सत्ता की गद्दी से नीचे उतार दिया। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने विधान सभा को निलंबित करवाया और वहां केन्द्रीय शासन लागू करा दिया, जो करीब एक वर्ष तक जारी रहा। जून, 1969 में नए चुनाव कराए गए। इन चुनावों ने शास्त्री को पुनः मुख्यमंत्री बना दिया, लेकिन वह एक माह से अधिक मुख्यमंत्री की कुर्सी पर नहीं रह सके। किसी भी पार्टी या गठबंधन के साथ बहुमत न होने के कारण, राज्य को फिर करीब आठ माह तक केन्द्रीय शासन के अधीन रहना पड़ा।[6] इस बीच कांग्रेस ने पर्याप्त सदस्यों को अपने पक्ष में कर लिया और अगले आठ माह तक शासन किया जब तक कि विपक्ष ने कांग्रेस में फूट डालने वाले तत्त्वों की सहायता से दारोगा प्रसाद राय की सरकार को गिरा नहीं दिया।

राय के बाद कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व में संविद सरकार बनी। लेकिन कांग्रेस ने छह महीनों के अंदर ही गठबंधन को पटखनी दे दी। उसने भोला पासवान शास्त्री को साथ लेकर सरकार बना ली। शास्त्री, जो अब पार्टी में नहीं थे, अगले छह माह तक कठपुतली मुख्यमंत्री बने रहे।[7] इस बार इंदिरा गांधी के सितारे बुलंदी पर थे। पाकिस्तान का 'विभाजन' और बांगलादेश का जन्म उनको भारी लोकप्रियता दिलाने के दो बड़े कारण थे। उन्होंने राज्य में नए चुनाव कराए और कांग्रेस वापस सत्ता में आ गई। विपक्ष ढह गया था और उनके, हताश विषम गठजोड़ों का कोई नतीजा नहीं निकला।1967 में पहली गठबंधन सरकार बनने के पहले कुछ महीनों में ही कांग्रेस ने वे सारे हथकंडे जल्दी सीख लिए थे, जिन्हें अपनाकर विरोधी गठबंधनों को समाप्त किया जा सकता है। गठबंधन में वैचारिक दरारें बहुत स्पष्ट थीं और ऐसी ही दरारें दलगत, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की दरारों के अंदर थीं। कांग्रेस को बस एक बड़े हिस्से को यह भरोसा देकर अलग करने का प्रयास करना था कि उसके प्रमुख नेता को मुख्यमंत्री बना दिया जाएगा।

बाद में तो कांग्रेस की यह परिपाटी बन गई कि जब कभी केन्द्र में और जहां कहीं भी विपक्ष की गठबंधन सरकार बने, उसे अस्थिर करने और गिराने के प्रयास शुरू कर दिए जाएं : किसी गुट संबंधी नेता को खींच लो और एक नई सरकार चलाने में उसकी मदद करो जब तक कि वह खुद को बदनाम न कर ले, उसका विश्वास न घट जाए, फिर उससे समर्थन वापस लेकर उसे नए चुनाव कराने के लिए बाध्य कर दो। उसके बाद कांग्रेस मतदाताओं के पास इस वादे के साथ जाएगी कि कांग्रेस की सरकार एक स्थिर सरकार होगी। 1980 के दशक तक लोहिया के नेतृत्व में गठित 1950 के दशक की सोशलिस्ट पार्टी समाप्त हो गई थी; उसके बिखरे हुए जो कुछ अंश रह गए थे उनमें लोहिया के समाजवाद का लड़ाकू सक्रियतावाद अब नहीं था और अन्य पार्टियों की तरह उनका ध्येय भी सिर्फ चुनाव लड़ना रह गया था। इस पतन की शुरूआत 1967 में लोहिया की मृत्यु के कुछ महीनों के बाद ही हो गई थी जब बिहार में पहली बार समाजवादी सत्ता में आए। इसके बारे में प्रतिष्ठित वामपंथी इतिहासकार विपिन चंद्र लिखते हैं कि आत्यंतिक दक्षिणपंथियों और वामपंथियों का एक 'बेतरतीब गठजोड़' था जिनका एक ही उद्देश्य था – कांग्रेस शासन की अनंतता को समाप्त करना।[8] लोहिया ने कांग्रेस की तर्ज पर विपक्ष के जिस स्थूल गठबंधन को जन्म दिया, बाद के दशकों में राज्यों और केन्द्र में उसके कई स्वरूप सामने आए। यहां तक कि जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में 1974 का बिहार आंदोलन भी जिसने 1977 में कांग्रेस को केन्द्र से और बिहार से सत्ता से निष्कासित किया। ऐसे ही विस्तीर्ण गठबंधन पर खड़ा हुआ था। तथापि, विपक्ष का मॉडल करीबन हमेशा 'एक नकल' ही साबित हुआ।

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि 1967 और 1972 के बीच बिहार में लोहिया के कांग्रेसवाद विरोधी मॉडल के आधार पर विपक्ष की जितनी भी विस्तीर्ण गठबंधन सरकारें सत्ता में आईं, उनके विफल होने के कारण हर बार केवल कांग्रेस की चालबाजी रही हो और 1979 में उसी प्रकार जे.पी.मॉडल की गठबंधन सरकार केवल कांग्रेस की चालों के कारण गिरी हो। भारतीय राजतंत्र का विखंडन

एक प्रकार से सामाजिक विखंडन की तस्वीर भी दिखता है, क्योंकि समाज के सभी वर्ग अपने-अपने विशेष हितों को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से एकजुट हो गए थे।[9] राजा से लेकर रंक तक, हर किसी को कोई-न-कोई शिकायत थी। नेहरू के सिद्धांतों पर आधारित, कांग्रेस के 'समाजवाद' संबंधी भाषणों ने दक्षिणपंथी ताकतों- महाराजाओं, लघुतर जमींदारों, व्यापारी वर्ग को बैरी बना लिया था और किसानों, मध्य वर्ग तथा निर्धनों में ऊँची-ऊँची आशाओं, संभावनाओं को जगा दिया था। वे सब यह निर्णय करने के लिए एकजुट हुए कि भारत की स्वतंत्रता का उनके लिए एक वर्ग के रूप में क्या अभिप्राय होना चाहिए? मुकाबले को मात देने की खातिर वर्गीय और संप्रदायवादी भावनाओं के झंझावात का पूरा-पूरा फायदा उठाते हुए और अपने विशिष्ट उग्र उपायों से उसे उत्तेजना के उफान तक लाकर, अनेक ऐसी राजनीतिक पाटियां उठ खड़ी हुई जिन्होंने मिल-जुलकर गठबंधन तो बना लिए थे, लेकिन वे गठबंधन उनकी अपनी विषमता और असामंजस्य के भार तले ही टूटकर बिखर जानेवाले थे।[10]

सामाजिक परिवर्तन के लिहाज से बिहार की राजनीति में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। पहले पिछड़ी जाति के नेता अगड़ी जाति के नेताओं के पीछे चलते थे और अब अगड़ी जाति के नेता लालू प्रसाद और नीतीश कुमार के पीछे चलने को बाध्य हैं। ऐसे में ही पिछले 55 सालों की बिहार की राजनीति बदल गई। कोई इतिहास उच्च चोटी पर सदा बैठा नहीं रह सकता है। कांग्रेस अपने पतन के दौर में ब्राह्मण-राजपूत समीकरण का प्रयोग करती रही। यह बिहार में कांग्रेस की राजनीति के पतन की कहानी तो बयां करती ही है साथ ही सामाजिक परिवर्तन को भी रेखांकित करती है। यह लालू के सत्तासीन होने और उनके पतन की कहानी भी कहती है। बीस साल राज करने का दावा करनेवाले लालू प्रसाद को 2005 के चुनाव में सिर्फ 75 सीटों पर ही सिमट जाना पड़ा। नीतीश कुमार के नेतृत्व में बिहार विधानसभा 2010 के चुनाव में जीत ने पिछली जीतों का रिकार्ड तोड़ दिया। बिहार में किसी गठबंधन को शायद ही कभी इतना भारी बहुमत मिला हो। इसका मायने यह कि नीतीश कुमार के पक्ष में एक जबरदस्त मौन लहर चल रही थी। लालू प्रसाद के खिलाफ नीतीश का नया सामाजिक समीकरण भी बेहद कारगर रहा।[11]

निष्कर्ष

स्पष्टत: यही कारण है कि बड़ी आबादी का समर्थन रखने के बावजूद लालू प्रसाद और रामविलास पासवान हाशिए पर आ गए। हालत यह हुई कि प्रतिपक्ष की नेता राबड़ी देवी दोनों सीटों तथा कांग्रेस अध्यक्ष महबूब अली कैसर चुनाव हार गए। नीतीश के भारी बहुमत से सत्ता में दुबारा वापसी को बिहार में सामाजिक परिवर्तन का नया अध्याय माना जा सकता है।बिहार में लालू प्रसाद के सामाजिक न्याय के दौर के बाद नीतीश कुमार के सामाजिक सशक्तीकरण का दस साल गुजरा। लेकिन, नीतीश सरकार को उदारीकरण के इस दौर में आनेवाले सालों में आर्थिक सशक्तीकरण पर पूरा ध्यान देना होगा, क्योंकि इसके बिना दस करोड़ बिहारियों के जीवन में बदलाव शायद ही आ पाए। सामाजिक परिवर्तन के लिहाज से बिहार की राजनीति में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। पहले पिछड़ी जाति के नेता अगड़ी जाति के नेताओं के पीछे चलते थे और अब अगड़ी जाति के नेता लालू प्रसाद और नीतीश कुमार के पीछे चलने को बाध्य हैं। ऐसे में ही पिछले 65 सालों की बिहार की राजनीति बदल गई।

संदर्भ सूची

1. नये बिहार राज्य के निर्माण और इससे संबंधित राजनीति के लिए देखें विजय चंद्र प्रसाद चौधरी, द *क्रिएशन ऑफ मार्डन बिहार*, यजेश्वर प्रकाशन, पटना, 1964
2. प्रकाश लुईस, *जनशक्ति*, मानक पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2008, पृ. 122
3. रामश्रय राय, ''कास्ट एण्ड पॉलिटिकल रिक्रूटमेंट इन बिहार'' संकलित रजनी कोठारी (सं) *कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स*, अरोरियंट लॉगमैन, दिल्ली, 1970, पृ. 241-43
4. अरूण सिन्हा, *नीतीश कुमार और उभरता बिहार*, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 55
5. हैरी डब्ल्यू ब्लेयर, ''राइजिंग कुलक्स एण्ड बैकवर्ड क्लासेज इन बिहार'' *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली*, 12 जनवरी 1980, पृ. 68

6. विपिन चन्द्र, *आजादी के बाद भारत,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2002, पृ. 343-348
7. संजय कुमार, 'न्यू फेज इन बैकवर्ड कास्ट पॉलिटिक्स इन बिहार, 1990-2000', संकलित, घनश्याम शाह (सं.), *कास्ट एण्ड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इंडिया,* परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली, 2002, पृ. 313-19
8. फ्रैंसीन आर, फ्रैंकेल 'कास्ट, लैण्ड एण्ड डॉमिनेन्स इन बिहार', संकलित, फ्रैंसीन आर. फ्रैंकेल और एम.एस.ए. राव (सं.), *डॉमिनेन्स एण्ड स्टेट पावर इन माडर्न इंडिया : डिक्लाइन ऑफ ए सोशल आर्डर खंड-1,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1989, पृ. 105-15
9. वेंकिटेश रामकृष्णन, 'सोशल जस्टिस एण्ड न्यू चैलेंज', *फ्रंटलाईन,* 16 दिसम्बर, 2005, पृ. 9-10
10. हैरी डब्ल्यू, ब्लेयर, 'राइजिंग कुलक्स एण्ड बैकवर्ड क्लासेज इन बिहार', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* 12 जनवरी, 1980, पृ. 69
11. अलख एन शर्मा, 'एग्रेरियन एण्ड सोशियो-इकोनॉमिक चेंज इन बिहार', पूर्वोक्त, पृ. 965-66

मौर्यकालीन साम्राज्य के सांस्कृतिक आयाम

डॉ० मनीष कुमार

शोधार्थी (इतिहास विभाग), भू0 ना0 मं0 वि0 वि0, मधेपुरा (बिहार)

कला किसी भी संस्कृति के मूलभूत पहचान के साथ ही मानवीय जनजीवन की रचनात्मक अभिव्यक्ति है। इस दृष्टिकोण से मौर्यकालीन साम्राज्य के सांस्कृतिक आयाम भारतीय कला के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि इसी समय कला में मिट्टी या लकड़ी के जगह पत्थर के उपयोग से कला को स्थिरता एवं निरंतरता प्राप्त होती है। मौर्यकाल में स्थानीय एवं कुछ विदेशी प्रभाव से कला का स्वरूप विकसीत हुआ।

मौर्यकाल में कला की भी यथेष्ठ प्रगति हुई। मौर्ययुगीन आर्थिक संपन्नता ने कला के विकास को प्रभावित किया। वस्तुतः हड़प्पा-सभ्यता के पश्चात पहली बार भारतीय कला के स्पष्ट प्रमाण इस समय मिलते हैं। वास्तुकला और मूर्तिकला की अनोखी प्रगति हुई। इस समय राजकीय कला के साथ-साथ लोककला का भी विकास हुआ। पुरातात्विक साक्ष्यों से मौर्यकालीन कला पर प्रकाश पड़ता है। राजकीय कला के अन्तर्गत शासकों के प्रयास से सून्दर कलाकृति बनायी गयी। इसमें हम चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मित पाटलिपुत्र के राजप्रसाद, अशोक द्वारा स्थापित स्तम्भ, स्तुप एवं गुफाओं को रख सकते हैं। मौर्ययुग के भवनों में पकायी गयी ईटों के व्यवहार का प्रमाण यद्यपि बड़े पैमाने पर मिलता है तथापि लकड़ी और पत्थर का उपयोग भी भवन निर्माण के लिए किया जाता था। इसका सबसे बढ़िया नमुना काष्ठनिर्मित पाटलिपुत्र का राजप्रसाद है, जिसकी प्रशंसा युनानी लेखक करते हैं। उनके अनुसार पाटलिपुत्र नगर की सुन्दरता अद्वितीय थी। इसके राजप्रसाद की तुलना में सुसा और एकबतना भी फीके थे।

अशोक ने राज प्रसाद का विस्तार किया तथा अनेक भवन भी बनाये। उसके समय में भवन में पत्थरों का भी इस्तमाल हुआ। कुम्हरार से एक विशाल भवन जो 80 प्रस्तर स्तम्भों पर टिका हुआ था, प्रकाश में आया है। अनेक स्तम्भ अब भी अपनी जगहों पर टिका हुआ है जिनका फर्श और छत लकड़ी का बना हुआ था। भवन के स्तम्भ बलुआ पत्थर के बने हुए हैं और उनपर चमकदार पॉलिश है। फाहियान भी अशोक के भवनों में पत्थरों के उपयोग की चर्चा करता है। इन भवनों से वह इतना प्रभावित हुआ था कि वह कहता है कि इन्हें देवताओं ने बनाया था, मनुष्य ने नहीं। ह्वेनसांग भी अशोक द्वारा बनाये गये भवनों का उल्लेख करता है।

अशोक ने अनेक स्तुपों का भी निर्माण करवाया। सॉची, भरहुत और सारनाथ के स्तुप आरंभिक रूप में अशोक के समय ही बने। उसने भिक्षुओं के लिए बिहार भी बनाये। कला के क्षेत्र में अशोक का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान गुफाओं का निर्माण था जो ठोस पहाड़ की चट्टानों को कुशलतापूर्वक काटकर गुफाओं का निर्माण करवाया गया। बिहार में गया जिला के अंतर्गत बराबर ही पहाड़ियों अशोक के राज्याभिषेक के 12वें वर्ष के बाद आजीवकों को दी गई। दूसरा गुफा (विश्व झोपड़ी) भी इसी वर्ष आजीवकों को दी गई। तीसरी गुफा (कर्ण चौपड़ा) राज्याभिषेक के 19वें वर्ष सन्यासीयों को बाढ़ से सुरक्षा के उद्देश्य से दी गयी थी। गुफाओं कि निर्माण शैली बौद्ध शैली से मिलती-जुलती है। बाद में अशोक के पुत्र दशरथ ने भी नागार्जुन की पहाड़ियों में तीन गुफाऐं बनवाकर आजीवकों को दान में दी। अशोक के द्वारा बनावाये गये गुफाओं के आधार पर ही कालान्तर में भाजा, कन्हेरी और कार्ले के चैत्य गृहों का निर्माण हुआ।

अशोक के समय की कला का सर्वोत्तम नमुना उसके द्वारा बनावाये गये प्रस्तर स्तम्भ है। ये सभी स्तम्भ एकाश्म पत्थर से बनवाये गए थे। इनके निर्माण में चुनार का बलुआ पत्थर उपयोग में लाया गया था। इनपर अशोक के आदेश खुदे हुए हैं। ये स्तम्भ अनेक जगहों पर प्राप्त हुए हैं जैसे- दिल्ली-टोपरा, दिल्ली-मेरठ, लौरिया-अरेराज, लौरिया-नंदनगढ़, रामपूर्वा, सारनाथ, कौशाम्बी इत्यादि।

इन स्तम्भों पर चमकदार पॉलिश की गई है। स्तम्भों के शीर्ष पर घंटा, गोल अंडा या चौकी है, जिसमें कुछ पर पशुओं के, कुछ पर चक्रों एवं हंसों की पंक्तियाँ अंकित है। उदाहरणस्वरूप जहाँ सारनाथ स्तम्भ पर चार सिंह एक दुसरे से सटे हुए बैठे हैं और एक चक्र धारण किऐ हुए हैं। वहीं रामपूर्वा में स्तम्भ शीर्ष को एक साँढ़ सुशोभित कर रहा है। इसी प्रकार लोरिया-नंदनगढ़ स्तम्भ के शीर्ष पर सिर्फ एक सिंह की अनुकृति है। वस्तुत: अशोक के स्तम्भ अपनी सुंदरता, विशालता एवं पशुओं की जीवन्त अनुकृति के लिए विश्व विख्यात है।

अनेक विद्वानों का विचार है कि अशोक के स्तम्भ इरानी और युनानी कला से प्रभावित है। ऐसा मत मुख्यत: पाश्चयात विद्वानों ने व्यक्त किया है। भारतीय विद्वान इस मत से सहमत नहीं है। इनकी धारणा है कि अशोक स्तम्भों का निर्माण विशूद्ध परंपराओं के अनुरूप हुआ था। इन पर विदेशी कला का प्रभाव नहीं है। प्रो0 निहार रंजन राय ने मौर्यकालीन राजकीय कला पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि यह मूल रूप से व्यक्तिगत था। व्यक्तिगत इच्छाओं और अभिरूचियों के अनुसार ही इसे ढ़ाला गया था। अनेक विद्वान मानते हैं कि अशोक के लाट पर जिस प्रकार की पशु आकृतियाँ है वह हड़प्पा की पशु आकृतियों की परम्परा में है। वे यह भी मानते हैं कि पत्थर पर चमकदार पॉलिश करने की कला भारत में इरानी सम्पर्क के पहले से प्राप्त थी। इसका प्रमाण काली मिट्टी के बर्त्तनों को पॉलिश कर चमकदार बनाने की प्रक्रिया में ढूंढ़ा जा सकता है। पुन: इरानी स्तम्भ जहाँ नालीदार है और प्रस्तर खण्डों के जोड़ने से बने हैं वहीं अशोक के लाट-सपाट और एकाश्म पत्थर से बने हैं। दोनों स्तम्भों के घंटा और अलंकरण में भी अंतर है।

राजकीय कला के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से लोककला का भी विकाश इस युग में हुआ है। मिट्टी के सुंदर बर्त्तन, मूर्तियाँ एवं खिलौने बनाये गये। मिट्टी के बर्त्तनों पर काली पॉलिश कर उन्हें चमकदार बना दिया जाता था। इनकी चमक आज भी बनी हुई है। बुलन्दीबाग (पटना) से हँसते हुए बालक की मिट्टी की मूर्ति अनायास ही ध्यान आकृष्ट करती है। मिट्टी एवं धातुओं के सुन्दर आभूषण भी बनाये गये। पत्थर से सुन्दर और जीवन्त मूर्तियाँ भी बनी। मौर्यकालीन मूर्तियों में विशेष उल्लेखनीय है परखम (मथुरा) से प्राप्त यक्ष की मूर्ति, पटना से प्राप्त यक्ष की दो मूर्तियाँ, दीदारगंज से प्राप्त चमरधारिनी यक्षि की मूर्ति, लोहानीपुर से प्राप्त नग्नतीर्थकर की मूर्ति, बेसनगर से मिली यक्षिप प्रतिमा इत्यादि। इन मूर्तियों की जीवन्तता देखते ही बनती है। दिदारगंज की यक्षि मौर्यकालीन मूर्तिकला की सर्वोत्तम कृति मानी जाती है। समूचे विश्व में इसके समकक्ष अन्य कोई भी मूर्ति नहीं है। अन्य ललितकलाओं, नाटक, संगीत, नृत्य, चित्रकारी इत्यादि का भी इस समय विकाश हुआ।

मौर्ययुग धार्मिक सहिष्णुता का युग था। यद्यपि इस समय के शासक स्वयं भिन्न-भिन्न धर्मो को मानते थे तथापि किसी भी शासकों ने जबरदस्ती अपनी धार्मिक विश्वास को प्रजा पर थोपने की कोशिश नहीं की। सभी धर्माबलम्बी स्वतंत्र रूप से अपना-अपना धर्म मानते थे। तत्कालीन स्त्रोतों से इस समय तीन धर्मो के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। वैदिक या ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म। इनके अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे धार्मिक संप्रदाय भी थे।

ब्राह्मण धर्म या वैदिक धर्म नये धर्मो के उदय के वावजूद अस्तित्व बनाये हुऐ था, यद्यपि इसके स्वरूप में कुछ परिवर्त्तन हो चुका था। यज्ञ एवं बलि की प्रथा अब भी प्रचलित थी। विभिन्न संस्कारों के पालन तथा वर्ण और आश्रम व्यवस्था की पवित्रता को बनाये रखने पर बल दिया जाता था। समाज में पुरोहितों और ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा थी। मेगास्थनीज इसे दार्शनिक कहता है। इनकी दो श्रेणियाँ थी - ब्राह्मण और श्रमण। इनके धार्मिक प्रभाव के कारण इनका सम्मान किया जाता था। ब्राह्मण यज्ञ संबंधी कार्य करते थे। परन्तु श्रमण सन्यासी का जीवन व्यतीत करते थे। ब्राह्मणों को कर मुक्त भूमि (ब्रह्मदेय भूमि) दी जाती थी। श्रमण तप एवं भक्ति मार्ग का पालन करते थे। ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत अनेक संप्रदाय प्रचलित थे। आजीविको का संप्रदाय महत्वपूर्ण था। अशोक और उसके उत्तराधिकारी दशरथ ने आजीवकों को नागार्जुन एवं बराबर की पहाड़ियों में गुफाऐं दान में दी। भागवत सम्प्रदाय भी अस्तित्व में आ चुका था। मेगास्थनीज स्वंय कहता है कि मथुरा में हेराक्लीज (कृष्ण) की पूजा का प्रधान केन्द्र था। शिव-भागवत या शैव-संप्रदाय भी प्रचलित था। इसके अतिरिक्त अन्य देवताओं की पूजा होती थी। इन देवताओं में प्रमुख थे- ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरूण, कुवेर, कार्तिकेय इत्यादि। देवताओं के लिए उनकी मूर्तियाँ बनायी जाती थी। अर्थशास्त्र में देवताध्यक्ष नामक पदाधिकारी का उल्लेख मिलता है, जो मंदिरों और देवताओं की देखभाल करता था। मंदिरों में पूजा, उत्सव तथा मेला लगा करते थे। देवताओं के सहयोगियों के रूप में यक्ष-यक्षि की पूजा होती थी। भूत-प्रेत, जादू-मंतर का भी प्रभाव था। वृक्ष-पूजा, नाग-पूजा भी प्रचलित थी। अनेक स्थल

तीर्थकेन्द्र के रूप में विख्यात हो चुके थे। राज्य यात्रियों से तीर्थ कर शांतिपूर्ण तरीके से अपने धार्मिक विश्वासों का पालन करते थे, धार्मिक कट्टरपंथ या असहिष्णुता नहीं थी।

मौर्यकाल में अशोक के पूर्व जैन धर्म एक प्रभावी धर्म था। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन मतावलम्बी था। यद्यपि भद्रबाहु से प्रभावित होकर उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था, तथापि चन्द्रगुप्त ने अपने धार्मिक विश्वासों को प्रजा पर थोपने का प्रयास नहीं किया एवं धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनायी। चन्द्रगुप्त के समय में ही एक महत्वपूर्ण घटना घटी जिसमें जैन धर्म को दो संप्रदायों में विभक्त कर दिया गया। उसके राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में बारह वर्षो का भीषण दूर्भिक्ष (आकाल) पड़ा। इससे जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। इस प्रकृति प्रकोप से दु:खी होकर चन्द्रगुप्त ने राज्य त्याग दिया। बड़ी संख्या में जैन भिक्षु भद्रबाहु के साथ मगध छोड़कर श्रवणबेलगोला चले गये। जो जैन अब भी मगध में रह गये। उन्होंने स्थूलभद्र को अपना नेता स्वीकार कर लिया। बारह वर्षो के पश्चात दूर्भिक्ष की समाप्ति पर कर्नाटक से बहुत से जैन पुन: वापस मगध आये। इनका मगध के जैनों से आचरण-संबंधि नियमों को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। पाटलिपुत्र की सभा में इस विवाद को निबटाने की कोशिश की गई, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। फलत: जैन धर्म श्वेताम्बर और दिगम्बर में विभक्त हो गया। मगध के जैन श्वेताम्बर कहलाये और भद्रबाहु के शिष्य दिगम्बर।

बौद्ध धर्म की मौर्यकाल में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। अशोक जैसे महान सम्राट के प्रयासों से 'धम्म' के साथ-साथ बौद्ध धर्म का भी व्यापक रूप से प्रसार हुआ। उनके प्रयासों से यह धर्म लंका एवं मध्य एशिया तक फैल गया। अशोक ने व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्म के उत्थान एवं प्रसार में रूचि ली। बौद्ध संध में व्याप्त मतभेदों को दूर करने के लिए उसने बौद्ध धर्म की तीसरी संगीति पाटलीपुत्र में मोगालिपुत तिस्स के सभापतित्व में बुलायी। उसने संघ में फूट डालने वालों के लिए दंड की व्यवस्था की। बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए उसने बौधगया की यात्रा की, लुम्बिनी में टेक्स कम कर दिया, अहिंसा की नीति अपनायी तथा 48000 स्तूपों का निर्माण करवाया। अशोक के इन कार्यो ने बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा में चार चॉद लगा दिया। व्यक्तिगत रूप से बौद्ध होते हुए भी अशोक ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनायी। ब्राह्मणों और श्रमणों को भी दान दिया, सभी पंथों के लिए आवास की सुविधा प्रदान की तथा आजीविको को गुफाऐं दान में दी। वस्तुत: सभी मौर्य शासकों ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनायी।

शैक्षणिक एवं साहित्यिक प्रगति के दृष्टिकोण से भी मौर्य साम्राज्य महत्वपूर्ण है। गुरूकुलों से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। यद्यपि राज्य स्वयं अपनी तरफ से शिक्षा की व्यवस्था नहीं करता था तथापि आचार्यो एवं पुरोहितों को आर्थिक सहायता दी जाती थी। राज्य की तरफ से इन्हें ब्राह्मदेय भूमि भी दान में दी जाती थी। समूचे साम्राज्य में अनेक विख्यात शैक्षणिक केन्द्र स्थापित हो गये थे। तक्षशिला, बनारस, उज्जैन इत्यादि प्रमुख शिक्षा केन्द्र थे। जहाॅ दूर-दूर से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे। धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त राजनीतिक शास्त्र, धर्नुविद्या, चिकित्सा शास्त्र, मंत्र विद्या इत्यादि की शिक्षा भी दी जाती थी। शिल्पी-संघ व्यवसायी शिक्षा देते थे। लिखने की कला से भारतीय परिचित हो चुके थे। इसका प्रमाण अशोक के अभिलेख है। कौटिल्य भी कहते हैं कि भारतीय सन के वस्त्र के टूकड़े एवं वृक्षों के छाल का प्रयोग लिखने के लिए करते थे।

मौर्यकाल में भाषा-लिपि एंव साहित्य का भी विकाश हुआ। संस्कृत, पाली एवं प्राकृत-भाषाओं तथा ब्राह्मणी एवं खरोष्ठी-लिपियों का विकाश भी इस समय हुआ। ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध धर्मो के विकाश ने धार्मिक साहित्य की रचना को प्रभावित किया, वेदांगो, गृहसूत्रों एवं धर्मसूत्रों की रचना इसी काल में हुई। इसी प्रकार बौद्ध त्रिपिटकों एवं जैन सुत्रों की भी रचना हुई। मौर्यकाल की सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक रचना है- कौटिल्य का अर्थशास्त्र। इस पुस्तक की तुलना पाश्चात्य दार्शनिक मैकियावेली की पुस्तक 'प्रिंस' से की जा सकती है। पाणिनी ने अष्टाध्यायी लिखी। सुबन्धु इस युग का एक विख्यात नाटक था, जिसने स्वप्नवासवद्यता की रचना की।

संदर्भ सूची

1. रतिभानु सिंह नाहर, 'प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास किताब महल, इलाहाबाद- 1988
2. डी. एन. झा ''प्राचीन भारत एक रूपरेखा'' पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली- 1980
3. मौर्य साम्राज्य का इतिहास 'डॉ. सत्यकेतु विद्यांलकार' श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली - 1986

4. चौधरी राधाकृष्ण – प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली – 1986
5. गोपाल एम0 एच0, ''मौर्यन पब्लिक फाइनान्स'' लंदन – 1935
6. चोपड़ा पूरी दास ''भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास'' मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली – 1959
7. ''प्राचीन भारत एक रूपरेखा'' पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली – 1980
8. ''सम आसपेक्ट ऑफ एन्शियेन्ट इंडिया हिस्ट्री एण्ड कलचर'' दिल्ली – 1947
9. रोमिला थापर ''भारत का इतिहास'' 1000 ई0 पू0 से 1526 ई0 तक राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली – 1988
10. आर0 सी0 मजूमदार ''प्राचीन भारत'' मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली – 1986

नशे की लतः चिकित्सा और थेरेपी के लाभ

डॉ० मनोज कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, नारायण कॉलेज, गोरियाकोठी, सिवान
(जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार)

कई लोग मानते हैं कि नशे को "ना" कहना ही इसकी लत से छुटकारा पाने का एक तरीका है। लेकिन सच्चाई ये है कि नशे के आदी किसी भी व्यक्ति को बहुत इलाज और सहायता की जरूरत पड़ती है।

नशे की लत क्या है?

नशे की लत या इसका आदी हो जाना या नशीली दवाओं का सेवन करना : ये एक ऐसी स्थिति है जिसमें किसी व्यक्ति के भीतर किसी ख़ास नशीली दवा या ड्रग का नियमित सेवन करने की हानिकारक प्रवृत्ति बन जाती है, और वह सामान्य दिनचर्या चलाए रखने के लिए ड्रग पर ही निर्भर रहने लगता है। अगर आप कोई ड्रग आदतन लेते हैं, तो आप लगातार इसके लिए परेशान होते हैं, और सोचते हैं कि आप उसके बिना जिंदा नहीं रह सकते। नशे की लत से, गंभीर भावात्मक, शारीरिक और अंतरवैयक्तिक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। अगर आप नशेड़ी हैं तो हो सकता है आप इतनी आसानी से इस आदत को नहीं छोड़ पाएँगे, अगर आप वास्तव में ऐसा चाह भी रहे हों, तब भी नहीं।

हममें से कई लोग सोचते हैं कि ड्रग कोई ताकतवर, मूड बदलने वाला पदार्थ होता है। कोई भी रसायन या कैमिकल जो मानव मस्तिष्क के काम करने के तरीके में बदलाव ले आता है, उसे ड्रग या नशीली दवा कहा जा सकता है। ड्रग मस्तिष्क में पहुँचकर उन प्राकृतिक रसायनों को बेअसर कर देते हैं या उनकी नकल करने लगते हैं जिन्हें हमारा दिमाग पैदा करता है। इस परिभाषा के लिहाज से, कॉफी, अल्कोहल, तंबाकू, जरूरत से ज्यादा दवाओं का इस्तेमाल और मनोरंजक पदार्थ- ये सभी नशे की श्रेणी में आ जाते हैं।

नशे की लत कैसे पड़ती है?

जैसा अल्कोहल के सेवन में होता है, लोग पहले कौतूहल में, संगी साथियों के दबाव में, पढ़ाई लिखाई और एथलेटिक्स में बेहतरीन प्रदर्शन करने की आकांक्षा में, या अपने तनावों और संकटों को भुलाने के लिए नशा लेना शुरू करते हैं। धीरे धीरे, उस ड्रग के सेवन से, दिमाग में आए बदलाव, व्यक्ति में उस नशे को और लेने की इच्छा जगा सकते हैं और उसके सेवन की मात्रा पर उनका काबू नहीं रहता। फिर चाह कर भी व्यक्ति नशा नहीं छोड़ पाता है क्योंकि ऐसा करने के लिए जिस इच्छाशक्ति और सामर्थ्य की जरूरत होती है उसे गंवा बैठता है।

कई लोग सोचते हैं कि नशे का आदी व्यक्ति कमजोर होता है या उसमें इच्छाशक्ति की कमी होती है। आम मान्यता है कि ऐसे लोग अपना व्यवहार बदलने के प्रति बहुत आलसी होते हैं, और वे चाहें तो नशे को "ना" कहकर अपनी आदत से पीछा छुड़ा सकते हैं। पर सच्चाई ये है कि नशे की लत का जितना संबंध आनुवंशिकी (जीन) या पर्यावरण से है, उतना ही व्यक्ति की अपनी इच्छा पर भी है। "ना" कहना नशे से छुटकारा पाने का केवल एक छोटा सा हिस्सा है– नशे के शिकार व्यक्ति को इलाज और बहुत सहारे की जरूरत पड़ती है। तभी वे नशे से पूरी तरह छुटकारा पा सकते हैं।

नशे का सेवन कई तरीकों से किया जा सकता है : धूम्रपान, सूंघकर, इंजेक्शन के जरिए, चबाकर या पी कर। मारिजुआना, सांस के जरिए भीतर खींचे जा सकने वाले नशे, तम्बाकू और जरूरत से ज्यादा चिकित्सा। भारत में नशे की लत के ज्यादातर मामले ऐसे ही हैं।

ड्रग मानव मस्तिष्क पर कैसे असर डालते हैं?

मानव मस्तिष्क पर ड्रग का सबसे सीधा असर डोपामीन नाम के न्यूरोट्रैन्स्मिटर (तंत्रिका तंत्र से जुड़ा एक रसायन) के रिलीज होने के रूप में पड़ता है। जब कोई व्यक्ति ड्रग लेता है, तो वह ड्रग दिमाग की संदेश प्रणाली से उत्पन्न प्रभाव की हूबहू नकल करने लगता है। इसी प्रक्रिया के दौरान डोपामीन निकलता है, जिसे दिमाग आनंद की भावना के रूप में पढ़ता है। दिमाग चाहता है कि ये भावना फिर से बने, इस तरह वह ड्रग के प्रति चाहत पैदा कर देता है। ड्रग के नियमित सेवन से, दिमाग की संवेदनशीलता कम होती जाती है। इसका अर्थ ये हुआ कि आनंद का पहले जैसा असर पैदा करने के लिए नशे की और अधिक मात्रा की जरूरत पड़ती है। दूसरे शब्दों में, ड्रग लेने से दिमाग इस रूप में भ्रमित होता जाता है कि उसे और ड्रग चाहिए, जबकि व्यक्ति को इसका कोई वास्तविक लाभ कभी नहीं मिल पाता है।

लंबे समय तक नशा करने से दिमाग की संज्ञानात्मक कार्य पद्धति को नुकसान पहुँच सकता है यानि उसके सोचने समझने की ताकत कम होती जा सकती है। इस बारे में किये गए अध्ययन बताते हैं कि लंबे समय तक नशा करने वालों के दिमाग के वे हिस्से ज्यादा प्रभावित होते हैं जो सीखने, निर्णय करने, तर्क करने और व्यवहार को नियंत्रण में रखने की क्षमताओं से जुड़े हैं। इसके अलावा, ऐसे व्यक्तियों को अवसाद और मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी अन्य बीमारियों की चपेट में आने का ख़तरा ज्यादा हो जाता है।

नशे की लत से होने वाली अन्य समस्याएँ हैं–

- कंपकंपी
- भूख न लगना और अनिद्रा
- दौरे
- वजन में उतार-चढ़ाव
- समाज से अलगाव
- अतिसक्रियता
- घबराहट और गुस्सा
- चिंता और सनक

नशे की लत की पहचान

नशे की आदत कब लत में बदल जाती है– इसकी पहचान के लिए आप नीचे लिखे कुछ सूत्रों की मदद ले सकते हैं:

- आप ये नोट करते हैं कि आप पहले की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही ड्रग ले रहे हैं।
- आप नशे की पहली खुराक लेने से पहले कुछ अलग लक्षणों का अनुभव करते हैं जैसे कंपकंपी, थरथराहट और चिड़चिड़ापन
- आप ड्रग लिए बिना अपना दिन बिताने की कल्पना नहीं कर सकते हैं
- आप अगली खुराक लेने के लिए बहाने ढूंढते हैं
- आप अपने परिवार, दोस्तों और घर परिवार और कामकाज से जुड़ी जिम्मेदारियों पर ध्यान केंद्रित करने में असमर्थ होते जाते हैं
- आप नशे की अपनी आदत को दूसरों से छिपाने की लगातार कोशिश करते हैं, आप इस आदत का शिकार होने से साफ इंकार भी करते रह सकते हैं, या ड्रग की जो मात्रा आप आमतौर पर लेते हैं उसे कम करके आंकते हैं
- आप अपनी आदत को लेकर ग्लानि में रहते हैं या शर्मिंदा होते हैं
- आप सोचते हैं कि कभी न कभी आप ये आदत छोड़ देंगे, लेकिन इस काम को टालते रहते हैं

अगर ऊपर बताए गए सूत्र नशा करने की आपके अनुभव से मेल खाते हैं, तो आपको मदद की जरूरत पड़ सकती है। CAGE परीक्षण का एक संशोधित रूप भी नशे की लत की पहचान में मददगार हो सकता है–

- क्या आपने कभी महसूस किया है कि आपको अपना पीना या दूसरे किसी नशे का इस्तेमाल कम करना चाहिए?
- क्या आपकी इन आदतों पर लोग आपकी आलोचना कर आपको परेशान करते हैं?

- क्या आपको कभी अपनी इन आदतों पर बुरा लगा है या शर्म आई है या ग्लानि का बोध हुआ है?
- क्या आपने कभी सुबह होते ही शराब पी है या नशा लिया है सिर्फ इसलिए कि आपकी नसें सामान्य रहें या आप हैंगओवर से छुटकारा पा सकें?

अगर आप ऊपर लिखे सवालों में से दो या दो से ज्यादा के जवाब "हाँ" में देते हैं तो समझना चाहिए कि आपको नशे की लत है और आपको मदद की आवश्यकता है।

अगर आप सोचते हैं कि आपका कोई प्रिय नशे का आदी हो चला है, तो आप नशे की लत से जुड़े शारीरिक और व्यवहारिक लक्षणों पर केंद्रित हमारी सूची को देख सकते हैं।

नशे की लत का निदान

चिकित्सा क्षेत्र के जानकार कई तरीकों से नशे की लत का निदान कर सकते हैं। अगर आप सोचते हैं कि आप या आपका कोई प्रिय व्यक्ति नशे की लत का शिकार है, तो आप किसी मनोचिकित्सक या परामर्शदाता की मदद ले सकते हैं जो समस्या का आकलन कर आपको किसी विशेषज्ञ के पास जाने की सलाह दे सकता है। विशेषज्ञ चिकित्सक समस्या की गंभीरता को जानने के लिए ख़ास परीक्षण करता है, कोई काम्प्लकेशन तो नहीं है इसके लिए वो मरीज की पूरी चिकित्सकीय और शारीरिक जांच भी करता है।

नशे की लत का इलाज

नशे की आदत कब लत में बदल जाती है– इसकी पहचान के लिए आप नीचे लिखे कुछ सूत्रों की मदद ले सकते हैं–

- आप ये नोट करते हैं कि आप पहले की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही ड्रग ले रहे हैं।
- आप नशे की पहली खुराक लेने से पहले कुछ अलग लक्षणों का अनुभव करते हैं जैसे कंपकंपी, थरथराहट और चिड़चिड़ापन
- आप ड्रग लिए बिना अपना दिन बिताने की कल्पना नहीं कर सकते हैं
- आप अगली खुराक लेने के लिए बहाने ढूंढते हैं
- आप अपने परिवार, दोस्तों और घर परिवार और कामकाज से जुड़ी जिम्मेदारियों पर ध्यान केंद्रित करने में असमर्थ होते जाते हैं
- आप नशे की अपनी आदत को दूसरों से छिपाने की लगातार कोशिश करते हैं, आप इस आदत का शिकार होने से साफ इंकार भी करते रह सकते हैं, या ड्रग की जो मात्रा आप आमतौर पर लेते हैं उसे कम करके आंकते हैं
- आप अपनी आदत को लेकर ग्लानि में रहते हैं या शर्मिंदा होते हैं
- आप सोचते हैं कि कभी न कभी आप ये आदत छोड़ देंगे, लेकिन इस काम को टालते रहते हैं

अगर ऊपर बताए गए सूत्र नशा करने की आपके अनुभव से मेल खाते हैं, तो आपको मदद की जरूरत पड़ सकती है। CAGE परीक्षण का एक संशोधित रूप भी नशे की लत की पहचान में मददगार हो सकता है:

- क्या आपने कभी महसूस किया है कि आपको अपना पीना या दूसरे किसी नशे का इस्तेमाल कम करना चाहिए?
- क्या आपकी इन आदतों पर लोग आपकी आलोचना कर आपको परेशान करते हैं?
- क्या आपको कभी अपनी इन आदतों पर बुरा लगा है या शर्म आई है या ग्लानि का बोध हुआ है?
- क्या आपने कभी सुबह होते ही शराब पी है या नशा लिया है सिर्फ इसलिए कि आपकी नसें सामान्य रहें या आप हैंगओवर से छुटकारा पा सकें?

अगर आप ऊपर लिखे सवालों में से दो या दो से ज्यादा के जवाब "हाँ" में देते हैं तो समझना चाहिए कि आपको नशे की लत है और आपको मदद की आवश्यकता है।

अगर आप सोचते हैं कि आपका कोई प्रिय नशे का आदी हो चला है, तो आप नशे की लत से जुड़े शारीरिक और व्यवहारिक लक्षणों पर केंद्रित हमारी सूची को देख सकते हैं।

नशे की लत का निदान

चिकित्सा क्षेत्र के जानकार कई तरीकों से नशे की लत का निदान कर सकते हैं। अगर आप सोचते हैं कि आप या आपका कोई प्रिय व्यक्ति नशे की लत का शिकार है, तो आप किसी मनोचिकित्सक या परामर्शदाता की मदद ले सकते हैं जो समस्या का आकलन कर आपको किसी विशेषज्ञ के पास जाने की सलाह दे सकता है। विशेषज्ञ चिकित्सक समस्या की गंभीरता को जानने के लिए ख़ास परीक्षण करता है, कोई काम्प्लकेशन तो नहीं है इसके लिए वो मरीज की पूरी चिकित्सकीय और शारीरिक जांच भी करता है।

नशे की लत का इलाज

नशे की लत के इलाज में चार महत्त्वपूर्ण लक्ष्य शामिल हैं–

- मरीज के शरीर से ड्रग का जहर निकालना
- मरीज की ड्रग लेने की चाहत और कमजोरी के दूसरे लक्षणों से निपटने में उसकी मदद करना
- लत से जुड़ी मरीज की मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक मुश्किलों से जूझने में उसकी मदद करना
- नशे की आदत से दूर मरीज को नई जीवनशैली विकसित करने में उसकी मदद करना

नशे की लत का इलाज दूसरी किसी लत के इलाज जैसा ही है। इसमें चिकित्सा और दवा का इस्तेमाल, व्यक्तिगत थेरेपी और ग्राउंड थेरेपी शामिल हैं। इलाज की प्रक्रिया का हर पहलू मरीज की जरूरत और उसकी मेडिकल हिस्ट्री के हिसाब से तैयार किया जाता है। मरीज किस तरह का नशा लेता था और इलाज के दौरान क्या क्या जटिलताएँ आ सकती हैं- इन बातों का भी ख़्याल रखा जाता है। इलाज का लक्ष्य मरीज के भीतर ऐसी क्षमता विकसित करने का होता है जिससे वह ड्रग के सेवन से दूर रहे और दुबारा नशे का आदी न बन जाए।

ज्यादातर मरीजों को छोटी अवधि के इलाज की जरूरत पड़ती है जिसके बाद पुनर्वास और फॉलोअप के सत्र (सेशन) चलते हैं जिनसे मरीज को नशे से छुटकारा पा लेने के बाद का जीवन सामान्य रूप से बिताने में सहूलियत मिलती है।

नशे की ओर फिर से लौट जाने की प्रवृत्ति को रोकना इलाज की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। जब कोई व्यक्ति पहलेपहल ड्रग का आदी बनता है तो उसे लैप्स माना जाता है यानि वह मुश्किल में फँसा हुआ है। इस लत के इलाज के बाद जब वह व्यक्ति ठीक होने लगता है और नशे से कुछ अवधि तक दूर रह चुका होता है, वह अगर फिर से नशे की ओर चला जाए तो ये रिलैप्स कहा जाता है। यानि उस मुश्किल में फिर से गिर जाना। रिलैप्स रोकने की आदर्श प्रक्रिया ये है कि शुरुआती इलाज के दौरान दख़ल की व्यवस्था रखी जाए ताकि मरीज संभावित रिलैप्स से जूझ सके।

नोट: कई लोग मानते हैं कि "ना" कह देने भर से नशे की लत से छुटकारा पाया जा सकता है। लेकिन ये सिर्फ इच्छाशक्ति का मामला नहीं है। जब कोई व्यक्ति नशे का आदी बनता है, तो वह नशा उस व्यक्ति के दिमाग में निर्णय करने की क्षमता देने वाले हिस्से में बदलाव कर देता है, और "ना" कह देना व्यवहारिक तौर पर असंभव हो जाता है। ऐसे व्यक्ति ना कह सकते हैं लेकिन फिर से लेने की तीव्र इच्छा और न लेने से जुड़ी लाक्षणिक समस्याएँ उन्हें वापस नशे की ओर धकेल देती हैं। ऐसे व्यक्तियों को नशे की आदत से छुटकारा पाने के लिए और सहायता की जरूरत पड़ती है। इसीलिए नशे की लत का प्रभावी इलाज, चिकित्सा के साथ साथ थेरेपी पर भी जोर देता है।

सन्दर्भ

- Szalavitz M (2016)- Unbroken Brain- St- Martin's Press- ISBN 978&1&250&05582&8-
- उजाले की ओर। rchived 6 अक्टूबर 2014 at the oscSd मशीन. (केन्द्रीय मनश्चिकित्सा संस्थान, राँची)
- नशीली दवाइयों का व्यमसन और दुरुपयोग
- व्यसनों से मुक्ति पाने के उपाय
- धूम्रपान एक व्यसन या एक रोग

पर्यावरणीय मनोविज्ञान : पर्यावरण और मानव व्यवहार में अंतर्संबंध

डॉ० सैयद फरहत

सहायक अध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, अल हफीज कॉलेज आरा
(वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय आरा) भोजपुर बिहार

परिचय

पर्यावरणीय मनोविज्ञान (Environmental psychology) मानव एवं उसके पर्यावरण के अर्न्तसंबंधों के अध्ययन पर केन्द्रित एक बहुविषयी क्षेत्र है। यहाँ पर पर्यावरण (environment) शब्द की वृहद परिभाषा में प्राकृतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण, निर्मित पर्यावरण, शैक्षिक पर्यावरण तथा सूचना-पर्यावरण सब समाहित हैं।

विगत वर्षो में पर्यावरण के विभिन्न पक्षों को लेकर व्यापक शोध कार्य हुए हैं और यह विषय क्रमशः एक समृद्धि अध्ययन क्षेत्र बनता जा रहा है इस विषय में अध्ययन में अनेक विषयों का योगदान रहा है। इसके अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत वातावरण के प्रकार, उनके, प्रति मनुष्य की अभिवृत्ति, संस्कृति के प्रभाव, पर्यावरण की संरचना और अभिकल्प इत्यादि का विस्तृति विश्लेषण किया जा रहा है।

''पर्यावरण'' के साथ सरोकार मनोवैज्ञानिक अध्ययनों की एक विविशता है अन्यथा मनोवैज्ञानिक परिवर्त्य केवल आंतरिक मानसिक प्रक्रमों को ही संबोधित करते रहेंगे और इस तरह सदैव परोक्ष या आदृश्य ही बने रहेंगे। आन्तरिक प्रक्रियाओं पर से रहस्य का आवरण हटाने के लिए और वास्तविक जगत के साथ सार्थक संवाद स्थापित करने के लिए पर्यावरण को उद्दीपक के रूप में संदर्भ के रूप में या प्रत्यक्षीकरण के रूप में, अपने अध्ययन में शामिल करना आवश्यक हो जाता है।

आरंभ में पर्यावरण मनोविज्ञान को ज्यादातर भौतिक पर्यावरण पर केन्द्रित अध्ययन के रूप में लिया गया और बाद में उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों को भी जोड़ा गया।

सिद्धांत

पर्यावरण मनोविज्ञान में इस समय तीन प्रमुख सैद्धान्तिक उपागम प्रचलित हैं–

- अनुकूलन,
- अवसर की संरचना तथा
- सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमान।

अनुकूलन का उपागम पर्यावरण को उसकी भौतिक विशेषताओं के रूप में ग्रहण करता है और व्यक्ति को एक जैविक व मनोवैज्ञानिक प्राणी मानता है। इसका उद्देश्य पर्यावरण में विद्यमान खतरों को टालना होता है। अवसर-संरचना का उपागम पंर्यावरण के उदेश्य और देश काल से जुड़ी हुई विशेषताएँ, उसमें प्राप्त अवसर तथा सुविधाओं पर बल देता है। पर्यावरण की समस्याएँ सामाजिक संरचना द्वारा उत्पन्न मानी जाती है और स्वयं पर्यावरण सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से परिभाषित एक व्यवस्था है। अन्तर्विनिमय का उपागम व्यक्ति को परिवेश में स्थापित करके विश्लेषित करता है तथा यह मानता है कि व्यक्ति और पर्यावरण

एक-दूसरे को निरन्तर प्रभावित करते रहते हैं। स्मरणीय है कि इन उपागमो के साथ कुछ विशेष प्रकार के मूल्य तथा अभिग्रह भी जुड़े हुए हैं और शोध की समस्याओं और विधियों का चयन उन्हीं पर निर्भर करता है।

आज की समकालीन पर्यावरणीय समस्याएँ एक स्थानीय तथा वैश्विक दोनों ही स्तरों पर उपस्थित हैं। पर्यावरण मनोविज्ञान अपने अध्ययन के प्रयास में पर्यावरण की समस्याओं को सुलझाने और जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि लाने के लिए प्रतिबद्ध है। इसके समुचित विकास के लिए वास्तविक जीवन की परिस्थितियों के बारे में निष्कर्ष निकालना अपर्याप्त ही नहीं असंगत भी है। पर्यावरण और व्यावहार का संबंध प्राय: सीधा न होकर अन्य परिवर्त्यों द्वारा प्रभावित होता रहता है। यह मनोवैज्ञानिकों की रुचि का विषय रहा है।

भीड़ का मानव व्यवहार और पर्यावरण पर प्रभाव

आधुनिक पर्यावरण-मनोविज्ञान का एक बड़ा भाग पर्यावरण की उन भौतिक विशेषताओं के अध्ययन से जुड़ा है जो मनुष्य के सामान्य व्यवहारों को बाधित करती है। भीड़, शोर, उच्च तापक्रम, जल तथा वायु प्रदूषण आदि का मनुष्य के स्वाभाव तथा अभियोजनात्मक व्यवहारों पर प्रभाव अध्ययन किया गया है। भारतीय परिवेश में जनसंख्या के दबाव तथा ऊर्जा की समस्या को ध्यान में रखकर कई प्रश्न उपस्थिति होते हैं। भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने भीड़ की अनुभूति और उसके मनोवैज्ञानिक परिणामों का विशेष रूप में अध्ययन किया है। गाँव से शहर में पलायन के कारण शहरों में भीड़ बढ़ती जा रही है और इसके फलस्वरूप न केवल भौतिक पर्यावरण बल्कि मनुष्य के स्वास्थ्य, सामाजिक कार्य-कलाप और कार्यकुशलता आदि भी नकारात्मक ढंग से प्रभावित हो रही है। भीड़ जनसंख्या के घनत्व से जुड़ी है परन्तु भीड़ की अनुभूति के रूप में उसका एक मनोवैज्ञानिक पहलू भी है। जिसको ध्यान में रखे बिना भीड़ के प्राभावों का समुचित विश्लेष्ण नहीं किया जा सकता। प्रयोगशाला और वास्तविक जीवन में हुए अनेक अध्ययन यह दिखाते हैं कि भीड़ की अनुभूति कार्य निष्पादन, सामाजिक अंत:क्रिया, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य आदि पर ऋणात्मक प्रभाव डालती है। मनुष्य की आवश्यकताओं का स्वरूप तथा प्रतिद्वन्द्विता-सहिष्णुता की प्रवृत्ति भीड़ के प्रभाव को परिसीमित करते हैं। स्मरणीय है कि जनसंख्या के घनत्व से निश्चित स्थान में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या का बोध होता है और भीड़ स्थान के अभाव की अनुभूति की दशा है। भीड़ कि अनुभूति घर बाहर प्राथमिक तथा द्वितीयक पर्यावरण में अलग-अलग पायी जाती है।

भीड़ के अध्ययन प्रयोगशाला और वास्तविक जीवन दोनों तरह की दशाओं में हुए हैं। प्रयोगशाला में किए गए अध्ययनों में सामान्यीकरण की संभावना अपेक्षाकृत सीमित रहती है। साथ ही भीड़ की अनुभूति भी विभिन्न स्थानों पर एक जैसी नहीं होती। अध्ययनों के परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि अनुभूति न केवल परिस्थिति विशिष्ट होती है बल्कि बची जा सकनेवाली दशाओं में भीड़ अपरिहार्य दशाओं की तुलना में अधिक होती है। भीड़ और शोर के कारण जटिल कार्यों का निष्पादन घट जाता है परन्तु जब व्यक्ति इन प्रतिबलों से अनुकूलित रहता है तो भीड़ का ऋणात्मक प्रभाव घट जाता है। घर के अन्दर के पर्यावरण का प्रत्यक्षीकरण शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में अलग-अलग पाया गया है। भीड़ पर हुए अध्ययनों के परिणामों का सामान्यीकरण वस्तुत: एक चुनौती है क्योंकि वास्तविक जीवन की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं। एक ही व्यक्ति अपनी दैनिक जीवनचर्या में भिन्न-भिन्न प्रकार की और भिन्न-भिन्न अनिश्चितता की मात्रा वाली भीड़ की स्थितियों से गुजरता है। सम्भवत: इन परिस्थितियों के अनुभव के आधार पर व्यक्ति एक अनुकूल स्तर विकसित करता है और उसी के आधार पर प्रतिक्रिया करता है।

भीड़ का मानव व्यवहार पर नाकारात्मक परिणाम क्यों पड़ता है? इसे समझने के लिए कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इनमें व्यवहार सीमा, नियन्त्रण तथा उद्दोलन के सिद्धान्त प्रमुख हैं। इनमें भीड़ के प्रभावों की व्याख्या के लिए अलग-अलग मध्यवर्ती परिवर्त्यों की संकल्पना की गयी है उनकी अध्ययनों द्वारा आंशिक पुष्टि हुई है। भीड़ और स्वास्थ्य के बीच सम्बन्धा उपलब्ध सामाजिक समर्थन की मात्रा पर निर्भर करता है। भीड़ और तापक्रम के प्रभाव भी संज्ञानात्मक कारकों की मध्यवर्ती भूमिका को स्पष्ट करते हैं। घरों में जनसंख्या के घनत्व का स्वास्थ्य, बच्चों के साथ व्यवहार, सांवेदिक समर्थन आदि पर ऋणात्मक प्रभाव पाया गया है परन्तु सामाजिक आर्थिक तथा जनांकिक कारकों को नियन्त्रित करने पर यह प्रभाव घट जाता है। स्मरणीय है कि कोई भी परिवर्त्य स्थायी रूप से मध्यवर्ती चर नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक अन्त: क्रिया गत्यात्मक होती है।

पर्यावरण और सांस्कृतिक परम्पराएँ

पर्यावरण और उसकी समस्याओं पर सार्थक विचार सांस्कृतिक कारकों के परिप्रेक्ष्य में ही संभंव है। विशेषरूप से उच्च जनसंख्या वृद्धि, सीमित संसाधन, गरीबी, समाज की ग्रामीण एवं कृषि प्रधान पृष्ठभूमि सामाजिक परिवर्तन के लिए विकास योजना व विभिन्न

सांस्कृतिक परम्पराएँ हमारे लिए विचारणीय हैं। अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों, परिवार और समुदाय को प्रधानता देने वाले भारतीय समाज में, जहाँ व्यक्ति नहीं बल्कि परिवार समाज की मूल ईकाई है, पर्यावरणीय प्रतिबलों का प्रभाव पश्चिमी देशों जैसा नहीं होगा। भारतीय परिस्थिति इन अर्थ में भी भिन्न है यहाँ पर आने वाले प्रतिबल विविध प्रकार के हैं। वे एक-दूसरे से जुड़े होते हैं तथा इनके ऊपर नियंत्रण आसानी से नहीं किया जा सकता। आधुनिक भारतीय अध्ययन सम्प्रत्यात्मक रूप से अधिकांशत: पाश्चात विचारधारा से ही प्रभावित रहें हैं और भारतीय सामाजिक यथार्थ के प्रति कम संवेदनशील रहे हैं। वस्तुत: भीड़ की अनुभूति भारतीय परिवेश में जहाँ लोगों का जीवन विभिन्न संस्कारों, रीति-रिवाजों, रस्मों, नाते-रिश्ते की भागीदारी से ओतप्रोत रहे हैं भिन्न होती है। अभी भी एकांकी परिवार की संख्या में वृद्धि होने के बावजूद संयुक्त परिवार किसी-न-किसी रूप से बना हुआ है।

ऐसी स्थिति में एक अलग दृष्टिकोण अपेक्षित है। बहुत सारे अवसरों पर भीड़ की उपस्थिति वांछनीय मानी जाती है और व्यक्ति को इसमें गौरव की अनुभूति होती हैं। साथ ही, सम्बन्धों को स्थापित करना और उनका निर्वाह एक सामाजिक दायित्व माना गया है। ऐसी स्थिति में भीड़ की अनुभूति का होना या न होना मात्र लोगों की उपस्थिति या अनुपस्थिति पर ही नहीं वरन् इस पर निर्भर करती है कि भीड़ में कौन से लोग उपस्थिति हैं। जब परिचित या प्रियजन होते हैं तो उनके बीच के व्यक्ति को स्वयं अपने 'स्व' के विस्तार की अनुभूति होती है। भीड़ को प्राय: सीमित स्थान में लोगों की उपस्थिति में उत्पन्न स्थानाभाव के बोध या अनुभूति के रूप में लिया जाता है। इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता है क्योंकि भीड़ की अनुभूति के लिए यह अपर्याप्त है। भीड़ में कौन से लोग हैं और उनके एकत्र होने का उदेश्य क्या है? बिना इस ध्यान दिए भीड़ का सम्प्रत्ययन अधूरा होगा।

सन्दर्भ

- Badcock, Christopher R- (2015)- Nature&Nurture Controversy, History of"- International Encyclopedia of the Social & BehavioralSciences-pp-340–344-doi,10-1016:B978-0-08-097086-8-03136-6-ISBN 978-0-08-097087-5-
- Cascio, Wayne F- (2015)- Industrial–Organizational Psychology, Science and Practice"- International Encyclopedia of the Social & Behavioral Sciences- pp- 879–884- doi%10-1016:B978-0-08-097086-8-22007-2- ISBN 978-0-08-097087-5-
- Chryssochoou, Xenia (2015)- Social Psychology"- International Encyclopedia of the Social & Behavioral Sciences- pp- 532–537- doi,10-1016/B978-0-08-097086-8-24095-6- ISBN 978-0-08-097087-5-
- Deakin, Nicholas (2015)- Philosophy, Psychiatry, and Psychology"- International Encyclopedia of the Social & Behavioral Sciences- pp- 31–36- doi,10-1016:B978-0-08-097086-8-27049-9- ISBN 978-0-08-097087-5-
- Demetriou, Andreas (2015)- Intelligence in Cultural, Social and Educational Conteñt"- International Encyclopedia of the Social & Behavioral Sciences- pp- 313–322- doi%10-1016:B978-0-08-097086-8-92147&0- ISBN 978-0-08-097087-5-

भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता और धर्म

डॉ० राजेश कुमार पांडेय

राजनीति विज्ञान, जयप्रकाश कॉलेज आरा भोजपुर बिहार

परिचय

भारत को हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। अक्सर कहा जाता है कि भारत में धर्म-निरपेक्षवाद का भविष्य अंधकारमय है। यह एक विवादास्पद विषय है।

किन्तु पक्ष में जो तर्क दिया जाता है कि भारत में धर्मनिरपेक्ष समाज के निर्माण में धर्म सबसे बडी बाध है, उसमें कोई दम नहीं। यह कहना अधिक सही हौगा कि सबसे बड़ी बाध आजादी के बाद प्रचलित होती जा रही भ्रष्ट राजनीति है।

चिन्तनात्मक विकास

अपने मजहब में गहरी आस्था रखना "साम्प्रदायिकता" नहीं है। मजहब की आजादी तो हर मनुष्य का एक मौलिक अधिकार है। भारत के संविधान ने इस अधिकार को स्वीकारा है। साम्प्रदायिकता का अर्थ है, "मजहब का हौवा खडा करके लोगों की भावनाओं को भड़काना और 'राष्ट्रीयता' के बजाए 'मजहबी उन्माद' फैलाना।"

कट्टरपंथी ताकतें राष्ट्र को एकता व प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने से रोकती हैं। वास्तव में भारत में साम्प्रदायिकता का उदय एवं विकास ब्रिटिश शासकों द्वारा किया गया। धर्म एवं जाति के नाम पर सभी लोगों में ईर्ष्या-द्वेष एवं भेदभाव साम्प्रदायिकता को जन्म देते हैं।

परिणामस्वरूप देश में हिंसात्मक घटनाएं प्रतिदिन होती रहती हैं। यह वर्तमान समय की एक विकट समस्या है जिसने समुचित राष्ट्रीय विकास के समस्त मार्ग अवरूद्ध कर दिये हैं। इससे देश की आन्तरिक शान्ति एवं एकता ही नहीं अपितु समूचे विश्व की शान्ति भी भंग होती है।

साम्प्रदायिकता से तात्पर्य किसी धर्म एवं भाषा से है जिसमें किसी समूह विशेष के हितों पर बल दिया जाता है और इन हितों को राष्ट्रीय हितों से अधिक प्राथमिकता दी जाती है। उस समूह मे पृथकता की भावना पैदा की जाती है और उसे प्रोत्साहन दिया जाता है।

पारसियों, बौद्धो, जैनियों तथा ईसाईयों के अपने-अपने संगठन हैं, साथ ही वे अपने सदस्यों के हितों की साधना में लिप्त रहते हैं, किन्तु ऐसे संगठनो को प्राय: साम्प्रदायिक नहीं कहा जाता क्योंकि इनमें पृथकता की भावना नहीं होती है।

इसके विपरीत, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग एवं अन्य कुछ संस्थाओं को साम्प्रदायिक कहा जा सकता है क्योंकि वे धार्मिक अथवा भाषा समूहों के अधिकारों तथा हितों को राष्ट्रीय हितों से सर्वोपरि रखते हैं। विसेंट स्मिथ के अनुसार एक सामुदायिक व्यक्ति या व्यक्ति समूह वह है जो कि प्रत्येक धार्मिक अथवा भाषायी समूह को एक ऐसी पृथक् सामाजिक तथा राजनीतिक इकाई मानता है, जिसके हित अन्य समूहों से पृथक् होते हैं और उनके विरोधी भी हो सकते हैं।

ऐसे ही व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूह की विचारधारा को सम्प्रदायवाद या सम्प्रदायिकता कहा जाएगा। साम्प्रदायिक संगठनों का उद्देश्य शासको के ऊपर दबाव डालकर अपने सदस्यों हेतु अधिक सत्ता, प्रतिष्ठा तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना होता है।

मानव इतिहास में सदैव धर्म-के नाम पर विवाद उठते रहते है। धर्म की दृष्टि से भारत विशेष रूप से हतभाग्य रहा है। स्वतन्त्रता

आन्दोलन के समय अग्रेजों ने भारत में अपना शासन बनाए रखने के लिए धार्मिक भेद-भावों का विशेष लाभ उठाया।

अंग्रेजों की फूट डालो और राज्य करो नीति

अग्रेजी शासनकाल में साम्प्रदायिक भावनऔं को राजनीतिक रूप मिलने का एक कारण यहाँ प्रतिनिधि या निर्वाचित सस्थाओं की स्थापना थी। अग्रेज लोग प्रतिनिधित्व का अर्थ अलग-अलग समूहों, वर्गो, हितों, क्षेत्रों, संस्थाओं और सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व समझते थे।

उन्होंने भारत के अनेक सम्प्रदायों और जातियों की समस्या को इनके स्वाभाविक् अस्तित्व बोध और एक-दूसरे की आपस की वैमनस्यता की समस्या समझा और उसका उपाय अलग-अलग धार्मिक समूहों को पृथक्-पृथक् प्रतिनिधित्व देने में समझा।

भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या हरित शासन की समकालिक है। अंग्रेजों ने भारत में 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनायी ताकि वे हिन्दुओं और मुसलमानों को लड़ाते रहें और भारत पर अपनी हुकूमत चलाते रहें।

अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत में हिन्दू-मुस्लिम शासकों और नवाबों के हाथों में सत्ता थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी उनसे डरती थी। फलस्वरूप उन्होंने हिन्दुऔं की सहायता और सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की।

प्लासी के युद्ध के पश्चात् जब कंपनी के हाथ में शासन सत्ता आने लगी तो उसने मुसलमानों के प्रति सौतेला व्यवहार किया और हिन्दुऔं को नौकरियों में प्रोत्साहन देकर मुसलमोनों के प्रति उपेक्षा की नीति अपनायी। 'बहाबी आन्दोलन' के रूप में मुस्लिम असन्तोष व्यक्त हुआ।

सन् 1905 में कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया ताकि मुसलमानों की राजभक्ति प्राप्त कर सकें और उन्हें प्रसन्न कर सकें। बंगाल का विभाजन 'फूट डालो और शासन करो' की कुटिल नीति का ही परिणाम था। भारत में सर्वप्रथम धर्म एवं साम्प्रदायिक विभेद का कारण अंग्रेज ही थे। धीरे-धीरे साम्प्रदायिकता की भावना भारत में अपनी जड़े मजबूत करती गई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साम्प्रदायिकता का स्वरुप

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है लेकिन फिर भी भारतीय राजनीति में आज भी साम्प्रदायिकता की समस्या बराबर बनी हुई है क्योंकि भारत में अनेक जातियों तथा अनेक धर्मो से सम्बंधित लोग निवास करते हैं। प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने-अपने धर्म की रक्षा करने में लगे रहते हैं तथा धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों को प्रभावित करते रहते है।

आज राजनीतिक दल अपने हितों की पूर्ति करने हेतु तथा चुनाव में वोट प्राप्त करने के लिए विभिन्न धर्मो या सम्प्रदायों का सहारा लेते हैं। मुसलमानों में पृथक्करण की भावना भी साम्प्रदायिकता का कारण बनी है, इसीलिए वे अपने आपको राष्ट्रीय धारा में सम्मिलित नहीं कर पाए।

अनेक मुस्लिम नेताओं ने इस बात का आश्वासन दिया कि वे समय-समय पर राजनीतिक दलों का सहयोग देंगे एवं समाजवाद, धर्म निरपेक्षता एवं आर्थिक न्याय को बनाए रखेंगे परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हुआ क्योंकि अनेक मुस्लिम नेता चाहते हैं कि मुस्लिम धर्म के हितों की रक्षा के लिए उन्हें पृथक् रूप से राजनीति में भाग लेना चाहिए।

स्वाधीनता से पूर्व एवं पश्चात् मुसलमान आर्थिक रूप से पिछड़े हुये रहे हैं। शैक्षिक दृष्टि से भी पिछड़े होने के कारण सरकारी नौकरियों, व्यापार एवं उद्योग-धंधें में उनकी स्थिति सुधार नहीं पाई है जिससे उनका मनोबल गिरा है और उनमें असन्तोष बढा है।

फलत: इस असन्तोष ने उग्र रूप धरण कर हिंसा का रूप ले लिया।

भारत में हिन्दू-सम्प्रदाय से सम्बंधित ऐसे लोग हैं जो इस बात का प्रचार करते हैं कि भारत हिन्दुओं का देश है। अत: इस देश पर उन्हीं का अधिकार है। इन संगठनों पर हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का विशेष रूप से प्रभाव रहा है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ मुसलमानों हा कट्टर विरोधी है। इस प्रकार के विचार साम्प्रदायिकता की भावना उत्पन्न करते हैं। साम्प्रदायिक रंगों का एक अन्य कारण सरकार एवं प्रशासन की उदासीनता भी है। अत: स्वतन्त्रता के बाद भी साम्प्रदायिकता कम नहीं हुई अपितु इसमें वृद्धि ही हुई है, किन्तु इस विषय में स्थिति विभिन्न क्षेत्रों एवं नगरों मे भिन्न-भिन्न है।

रत्ना नायडू के शब्दों में, ऐसे नगर जिनमें बडे साम्प्रदायिक उपद्रव हुये हैं, दो प्रकार के है। इनमें एक प्रकार के नगर वे है जो औद्योगिक नगर हैं और दूसरे प्रकार के वे जो दस्तकारी एवं उद्योगों के नगर हैं तथा जो उद्योग एवं व्यापार के आधुनिक केन्द्रों के रूप में विकसित होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रथम वर्ग के उदाहरण जमशेदपुर, राउरकेला, आदि हैं और दूसरे वर्ग के उदाहरण मुरादाबाद, अलीगढ़, अहमदाबाद, बनारस आदि हैं। वास्तव में साम्प्रदायिकता की भावना को फैलाने वाले तत्व राजनीतिक दल ही हैं। आजकल साम्प्रदायिक घटनाओं के पीछे विदेशी हाथ होने की शंका व्यक्त की जा रही है। हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों की धार्मिक भावनाओं का आज दुरूपयोग किया जा रहा है, यह दर्शाने के लिए कि एक सम्प्रदाय दूसरे को नष्ट करने पर उतारू है, उनके रीति-रिवाजों एवं व्यवहारों में अन्तर को उछाला जा रहा है।

अत: ऐसे मामलों का कोई स्थायी समाधन नहीं हो सकता। स्वयं लोगों को आपसी दुर्भावना को समाप्त करना होगा। "इस प्रकार भय, अविश्वास और दोनों समुदाय के बीच एक-दूसरे के प्रति सन्देह की भावना ही सांम्प्रदायिक वैमनस्य का मुख्य कारण है।"

जब सरकार समस्या के मूल कारणों की चर्चा करने के बजाय 'विदेशी धन' और 'विदेशी हाथ' की चर्चा करके ही संतुष्ट हो जाती हो तो समस्या का भयावह रूप धरण कर लेना स्वाभाविक ही है। साम्प्रदायिकता के कारण भारत में आज समाज को, राष्ट्रीय एकता एवं अनेक संगठनों को कितना खतरा पैदा हो गया है, इसका अनुमान भारत मे होने वाली प्रतिदिन की हिंसात्मक घटनाएं बता देती हैं।

राजनितिक दल और साम्प्रदायिकता

भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता हेतु किसे दोषी ठहराया जाए यह एक प्रश्नचिन्ह ही है। वर्तमान राजनीतिक अस्थिरता साम्प्रदायिकता का ही परिणाम है क्योंकि साम्प्रदायिकता ही ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है जो राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न करती हैं।

यह राष्ट्रीय एकता की भी गम्भीर शत्रु है क्योंकि इसी के वशीभूत हो लोग अपने-अपने तुच्छ स्वार्थो एवं हितों के लिए संघर्ष करते हैं और देश में हिंसा, लड़ाई-झगड़े फैलाते हैं और परिणामस्वरूप लोगों को अपने प्राणों से हाथ धेना पड़ता है। शायद ही कोई ऐसा साम्प्रदायिक दंगा हुआ हो जिसमें कुछ व्यक्तियों की जाने न गयी हों। भारत एक बहुसम्प्रदायवादी देश है।

यहाँ अनेक अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक व्यक्ति निवास करते हैं और इन्हीं के बीच जो साम्प्रदायिकता, झगडे और तनाव पैदा होते हैं तथा हिन्दू एवं मुसलमानों द्वारा अपने-अपने हितों के लिए सरकार से लड़ना एवं आपसी द्वेष और वैमनस्य फैलाना, राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु गंभीर खतरा पैदा कर देते हैं। फलत: इन सभी दुष्परिणामों के कारण देश की आर्थिक हानि होती है।

न जाने कितनी दुकानें लूटी जाती है, कितनी ही राष्ट्रीय सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, कितने ही लोग कार्य नहीं कर पाते। इतना ही नहीं, साम्प्रदायिक दंगों पर काबू पाने के लिए अत्यधिक धन व्यय किया जाता है। आर्थिक उन्नति व औद्योगिक विकास मे बाध पडती है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधो पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है किन्तु फिर भी भारतीय राजनीति को धर्म अथवा सम्प्रदाय विशेष रूप से प्रभावित किये हुये हैं। एक ओर धर्म प्रभाव एवं शक्ति अर्जित करने का माध्यम है तो दूसरी ओर इसके द्वारा राजनीति में तनाव पैदा होते हैं क्योंकि वर्तमान समय में धर्म के आधार पर राजनीतिक दलौं का निर्माण होता है तथा राजनीतिक दलौं को चुनाव के समय धर्म या सम्प्रदायों का समर्थन मिलता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से वर्तमान समय तक धर्म और सम्प्रदाय ने भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्वतन्त्र भारत में अधिकांश राजनीतिक दलों का गठन धर्म व सम्प्रद्राय के आधार पर हुआ है, जैसे हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, अकाली दल आदि।

इन साम्प्रदायिक दलों ने राजनीति मे धर्म को विशेष महत्व दिया है। आज राजनीतिक दल अपने हितों की पूर्ति करने के लिए तथा चुनाव मे वोट प्राप्त करने के लिए विंभिन्न धर्मो व सम्प्रदायो का सहारा लेते हैं। वास्तव में देखा जाए तो प्रत्येक राजनीतिक दल का किसी न किसी सम्प्रदाय से सम्बंध अवश्य होता है।

कांग्रेस भी इससे अछूती नहीं रही है। केरल में ईसाई समुदाय के साथ कांग्रेस का ऐसा गठजोड रहा है कि इसे संकुचित दृष्टि से भी साम्प्रदायिकता कहा गया है। आज भारतीय राजनीति में धार्मिक संगठन शक्तिशाली दबाव समूहों की भूमिका निभा रहे हैं।

ये धार्मिक संगठन शासन की नीतियों को समय-समय पर प्रभावित करते रहते है और अपने हितों के अनुकूल निर्णय पारित करवाने का प्रयत्न करते रहते है। उदाहरणार्थ, मुस्लिम धार्मिक संगठनों जैसे जमायते इस्लामी, उलमा-ए-हिन्द अमारते शरिया ने सरकारी नीतियों को प्रभावित कर अपने हितों में तीन महत्वपूर्ण बातों को मनवाया-प्रथम, उर्दू को संवैधानिक संरक्षण दिया गया।

द्वितीय, अलीगढ विश्वविद्यालय का अल्पसंख्यक स्वरूप स्थापित किया जाए। तृतीय, मुस्लिम निजी कानून से सम्बन्धित कोई परिवर्तन न किया जाए। इसके विपरीत हिन्दू धार्मिक संगठन सरकारी नीतियों को प्रभावित करने में सफल नहीं हो पाए, जिस कारण हिन्दुओं की आपत्ति व आलोचनाओं के बावजूद भी सरकार ने हिन्दू कोड बिल पारित कर दिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जो धार्मिक संगठन सरकारी नीतियो को प्रभावित करने में सफल हो जाते है वे अपने हित मे कानून पारित करवा सकते हैं। भारतीय राजनीति में कई बार अप्रत्यक्ष रूप से धर्म के आधार पर पृथक् राज्यों की माँग की गई है। उदाहरण के लिए पजाब का विभाजन धर्म के आधार पर ही हुआ था। अभी भी पजाब धर्म के आधार पर ही 'खालिस्तान' की माँग कर रहा है।

नागालैण्ड के ईसाईयों ने भी धर्म के आधार पर ही पृथक् राज्य की माँग की थी। राज्यो की राजनीति में भी धर्म और धार्मिक समुदायों ने अनेक तरह से प्रभाव डाला है, इसके अतिरिक्त धर्म एवं साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता के लिए भी घातक माने जाते हैं। देश का विभाजन धार्मिक मतभेदों के कारण ही हुआ था और आज भी विघटनकारी तत्व सक्रिय है।

मन्त्रिमण्डल निर्माण में भी धार्मिक आधार पर प्रतिनिधित्व को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। केन्द्र एवं राज्यों मे मन्त्रिमण्डल बनाते समय हमेशा इस बात को ध्यान में रखा जाता है कि प्रमुख सम्प्रदायी और धार्मिक विश्वासी वाले व्यक्तियों को उनमें प्रतिनिधित्व मिल जाए। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे अल्पसख्यकों जैसे मुसलमानों, सिक्खों, ईसाईयों को हमेशा प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

भारत में चुनाव के समय विभिन्न राजनीतिक दल एवं उनके नेता धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर वोट मांगते हैं। वोट बटोरने के लिए मठाधीशों, इमामी, पादरियों और साधुओं के साथ सांठ-गांठ की जाती है। अत: यही कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति मे धर्म एवं साम्प्रदायिकता का प्रभाव बढने से धर्मनिरपेक्ष राजनीति के विकास का मार्ग अवरुद्ध हुआ है।

भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित करने का लक्ष्य यह था कि धर्म को राजनीति से पृथक् रखा जाए लेकिन व्यवहार में धर्म का प्रभाव भारतीय जनता पर छाया हुआ है। आज भी राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र मे धर्म के आधार पर भेदभाव किया जाता है। वास्तव में आज धर्म और सम्प्रदाय राजनीति का शोषण करने लगे हैं।

साम्प्रदायिकता मानवता हेतु गम्भीर अभिशाप है और भारत जैसे देश मे तो यह और भी घातक है, क्योंकि भारत विविध धर्मो का देश है। साम्प्रदायिकता को दूर किया जा सकता है यदि सरकार ध्यान रखे कि देश में कोई भी एसा कार्य न होने पाए जिससे कि साम्प्रदायिकता बढे, सर्वत्र इस भावना को प्रोत्साहन दिया जाए कि सब धर्मों के लोग मिल-जुलकर रोज मौन प्रार्थना करें, शिक्षा एवं शिक्षण संस्थाओं में आध्यात्मिक मूल्यों एवं आदर्शों का समावेश किया जाए, किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र में बहुमत के आधार पर कोई प्रवृत्ति पैदा न की जाए, सरकार को भी हमेशा इस प्रकार के कानूनों का निर्माण करना चाहिए जो सभी व्यक्तियों पर समान रूप से लागू हों।

जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय एवं भाषा के आधार पर किसी के साथ भी भेदभाव न किया जाए, विभिन्न सम्प्रदाय सरकार से अपने विशेष प्रतिनिधित्व की मांग करते हैं। सरकार को इन सबके इस प्रभाव को केवल साम्प्रदायिकता के आधार पर ठुकराना होगा तथा भाषा के आधार पर भी सरकार को अपनी नीति ठीक करनी होगी।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हम भारतीय हैं, हमे इस बात पर गर्व है क्योंकि यहाँ विभिन्न धर्मों एवं जातियों के लोग रहते हैं। इसीलिए भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है जिससे कि धर्म को राजनीति से हटाया जाए, किन्तु धर्म का प्रभाव व्यावहारिक रूप से भारतीय जनता के मन-मस्तिष्क से नहीं मिट पाया है।

आज भी राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में धर्म के आधार पर भेदभाव किये जाते हैं। राजनीतिज्ञ और राजनीतिक दल धर्म एवं सम्प्रदाय को राजनीतिक सफलता के लिए एक साधन के रूप मे अपनाते रहे है। साम्प्रदायिक झगडे भले ही छुटपुट और स्थानीय

हों, लेकिन उनसे देश की बदनामी होती है और उसका लोकतान्त्रिक धर्मनिरपेक्ष स्वरूप कलंकित होता है क्योंकि साम्प्रदायिकता का उद्देश्य संकुचित हितो की रक्षा करना होता है।

अत: राष्ट्रीय नेताओं पर यह दायित्व है कि वे समुदाय के सीमित तथा राष्ट्र के बृहत्तर हितो के मध्य सन्तुलन स्थापित करें, समुदाय को राष्ट्र में बदलें। भविष्य मे यह आशा व्यक्त की जा सकती है कि राजनीतिक चेतना एवं लोकतान्त्रिक आदर्शो एवं मूल्यो में वृद्धि होने से देश में धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप भी निखरता जाएगा।

उपसंहार

स्वभाव से ही राजनीति सारे देश पर अपना प्रभाव डालती है। इस, कारण यह कहना सही होगा कि भारत में धर्मनिरपेक्षता का भविष्य राजनीति की प्रकृति से जुड़ा है। यदि स्वच्छ राजनीति का प्रचलन होगा और सभी दल राष्ट्रीय मुद्दों को ईमानदारी से उठाएंगे तब धर्मनिरपेक्षता का भविष्य निश्चय ही उज्जवल होगा।

किन्तु यदि ये दल द्वेष एवं बंटवारे की राजनीति का खेल खेलते रहेंगे, तो उनके वोट बैंक भले ही सुनिश्चित हो जाएंगे, परन्तु धर्म निरपेक्षवाद और देश का भविष्य अंधकार में ही डूबा रहेगा। हमारा देश इक्कीसवीं सदी में उन्नत रूप में प्रवेश करेगा या विनष्ट दशा में, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हम इस समस्या से किस प्रकार निपटते हैं।

सन्दर्भ

- Khatri, Naresh- 2013- Anatomy of Indian Brand of Crony Capitalism- https://ssrn.com/abstract_2335201
- Kohli, Suresh (1975)- Corruption in India% The Growing Evil- India% Chetana Pvt-Ltd- ISBN 978-0-86186-580-2.
- Dwivedy, Surendranath_ Bhargava] G- S- (1967)- Political Corruption in India"-
- Gupta, K. N. (2001): Corruption in India- Anmol Publications Pvt Ltd. ISBN 978-81-261-0973-9.
- Halayya, M. (1985): Corruption in India"- Affiliated East-West Press.
- Guhan, Sanjivi_ Paul, Samuel (1997)- Corruption in India: Agenda for Action"- Vision Books-
- Vittal, N- (2003): Corruption in India: The Roadblock to National Prosperity- Academic Foundation- ISBN 978-81-7188-287-8.
- Somiah, C-G- (2010)- The honest always stand alone- New Delhi, Niyogi Books: ISBN 978-81-89738-71-6.
- Kaur, Ravinder- India Inc- and its Moral Discontents"- Economic and Political Weekly.
- Sharma, Vivek Swaroop- Give Corruption a Chance, in The National Interest 128, November-December 2013, 38-45. Full text available at: https://www.researchgate.net/publication/279587155_Give_Corruption_a_Chance.

भारतीय राजनीतिः आधुनिकता और परम्परा

प्रियरंजन

शोध छात्र, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय आरा भोजपुर बिहार

प्रस्तावना

राजनीति में आधुनिकीकरण एवं परम्परा का अपना विशेष महत्व होता है। प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था में यह दोनों तत्व विद्यमान होते हैं। आधुनिकीकरण से तात्पर्य विकासात्मक स्थिति से होता है जबकि परम्परागत स्थिति इसके विपर्रीत है।

आधुनिक समझी जाने वाली पाश्चात्य सभ्यताओं में भी परम्परागत तत्व कहीं न कहीं अवश्य दृष्टिगोचर हो जाते हैं। इस दृष्टि से भारत की राजनीतिक व्यवस्था में भी परम्परागत एबै आधुनिक तत्वों का सुन्दर समागम दिखाई देता है। चिन्तनात्मक विकासः स्वतन्त्रता से पूर्व भारत की राजनीतिक व्यवस्था पूर्णतः परम्परागत थी अर्थात् समाज पुरानी कुरीतियों, अन्धविश्वासों पर आधरित था। शासन सत्ता एक ही व्यक्ति द्वारा संचालित होती थी।

भारतीय राजनीती का पारंपरिक स्वरुप

परम्परागत दृष्टि से समाज पिछड़ा हुआ था। राजनीति राजतन्त्र पर आधरित थी। राजाओं द्वारा जनसाधरण हितों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता था। वह भोग-विलास में लिप्त रहते थे। अर्त्यिक, सामाजिक, राजनीतिक दृष्टि से समाज पिछड़ा हुआ था किन्तु स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत में लोकतान्त्रिक प्रणाली की व्यवसथा की गई।

अतः राजनीतिक व्यवस्था भी आधुनिकता की ओर अग्रसर हुई। जनता के हित सर्वोपरि थे। जनसाधरण के हितों की रक्षा हेतु संविधान का निर्माण किया गया। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक विकास की ओर ध्यान दिया गया। राजनीतिक संरचनाओं में आधुनिकीकरण को अपनाया गया।

कहने को तो राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था मे आधुनिकीकरण का प्रवेश था किन्तु वास्तव में भारतीय समाज में से परम्परागत प्रभाब अथवा परिस्थितियाँ पूर्णतः समाप्त नहीं हुई थी। समाज में रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, जातिवाद, अशिक्षा अभी विद्यमान थी। अतः भारतीय राजनीतिक व्यवस्था मे दोनों तत्वों का समागम आज भी देखने को मिलता है।

मुख्यत

सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं की विशेषता होती हैः आधुनिकता और परम्परा का सम्मिलित स्वरूप। कुछ देशों की राजनीतिक व्यवस्थाएं अत्यधिक आधुनिक होती हैं तो कुछ की अत्यधिक परम्परागत होती हैं। पश्चिमी राष्ट्र जो कि आधुनिक सभ्यता का स्वरूप समझे जाते हैं, वहाँ पर भी परम्परागत तत्व दिखाई दे ही जाते हैं। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था जोकि आधुनिक मानी जाती है, परन्तु लार्ड सभा, राजतन्त्र आदि संस्थाओं के कारण उसमें परम्पराजनित रूप दिखाई देता है।

तीसरी दुनिया के देशों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् आधुनिक समझी जाने वाली पश्चिमी राजनीतिक संस्थाओं को अपनाया, किन्तु समाज यहाँ के परम्परागत ही बने रहे, जिससे यहाँ आधुनिकता और परम्परा का मिश्रण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

इस दृष्टि से भारतीय राजनीति में भी जहाँ एक ओर आधुनिकता और परम्परा का सुन्दर एवं बृहत् स्तर पर समागम दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर इन दोनों मे टकराव भी देखने मे आता है। कुछ विचारकों ने अपना मत प्रस्तुत करते हुये कहा है कि भारत की राजनीतिक संरचनाएं आधुनिक हैं और भारतीय सामाजिक ढाँचा परम्परागत है।

भारत में परम्पसगत सामाजिक ढाँचे के साथ आधुनिक राजनीतिक संरचनाओं को ऊपर से आरोपित करने का प्रयास किया गया है। फलस्वरूप राजनीतिक संस्थाएं पकड़ मजबूत नहीं कर पायीं। आज भारत मे परम्परागत व्यवस्था अत्यधिक शीघ्रता से आधुनिकीकरण का स्वरूप धरण कर रही है क्योंकि भारत एक विकासशील समाज है। परम्परागत आदर्शों एवं मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है।

अत: परम्परागत सामाजिक संस्थाए राजनीति के सम्पर्क में आने से परिवर्तित रूप में दिखलाई देने लगी हैं। परम्परागत एवं आधुनिक तत्वों का अलग-अलग अध्ययन करने से हमें ये स्पष्ट हो जाएगा कि ये दोनों तत्व किस तरह से भारतीय समाज एवं राजनीति को प्रभावित कर रहे हैं।

परम्परावादी समाज रूढिवादी होता है। इस समाज के विभिन्न पक्ष मानव जीवन के विश्वास द्वारा संचालित होते हैं और इस संदर्भ में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एव तर्क-वितर्क को महत्व नहीं दिया जाता। परम्परावादी समाज में अन्धविश्वासों एव धर्म की प्रधानता होती है।

परम्परावादी समाज में मनुष्य की सामाजिक स्थिति उसके जन्म द्वारा निश्चित एवं निर्धारित होती है। इस समाज में न कर्म का कोई महत्व होता है ओर न ही समानता का, क्योकि यह समाज वर्ग विशेष पर आधरित होता है तथा जाति एवं धर्म जैसे तत्वों को विशेष प्रमुखता दी जाती है।

ऐसे समाज में व्यक्ति की निष्ठा एवं सद्भावना भी संकीर्ण होती है। राष्ट्रीय हितों के बजाय जातीय, धार्मिक व स्थानीय हितों को वरीयता दी जाती है। यहाँ राजनीतिक व्यवस्था विभिन्न दलों में विभाजित नहीं होती अपितु एक ही व्यक्ति शासन के समस्त कार्यो-विधयी, न्यायिक और प्रशासकीय सभी का संचालन करता हैं।

अशिक्षा के कारण जनसाधरण धर्म के दास बन जाते है फलस्वरूप अन्धविश्वास उग्र रूप धरण कर लेता है और निपतिवाद का प्रभाव बढने लगता है। मनुष्य परिश्रम औए कर्म को महत्व न देकर ईश्वर और भाग्यवाद के सहारे जीवन व्यतीत करता है।

परम्परावादिता के अनेक तत्व भारतीय समाज एवं राजनीतिक व्यवस्था मे व्याप्त हैं। वर्तमान समय में भारत की जिस सामाजिक व्यवस्था पर आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था टिकी हुई है, उसका स्वरूप आज भी परम्परागत है।

भारतीय आधुनिक राजव्यवस्था के पीछे जो सामाजिक तत्व सक्रिय है और जिसके कारण भारतीय राजनीति में निरन्तर परिवर्तन आ रहा है, उसके विषय में जानना भी अति आवश्यक है। आज भी चुनाव व्यवस्था पर राजा-महाराजाओं और पूर्ण-सामन्तों का प्रभाव निहित है। भारतीय समाज का संगठन जातियों के आधार पर हुआ है और जातियाँ सुसगठित रूप से भारत की प्रशासनिक व राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करती रही है।

राजनीतिक दल चुनावों में अपने प्रत्याशियों का चुनाव करते समय जातिगत आधार पर निर्णय लेते हैं। जातिवाद को चुनावों में साधन के रूप में अपनाया जाता है। जातीय संगठन राजनीतिक महत्व के दबाव समूह के रूप में प्रवृत्त हैं।

धर्म और सम्प्रदाय भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धार्मिक विभिन्नता के कारण समाज में विभिन्न प्रकार के तनाव उत्पन्न होते हैं। चुनावों की राजनीति में धर्म और सम्प्रदाय, भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धार्मिक विभिन्नता के कारण समाज में विभिन्न प्रकार के तनाव उत्पन्न होते हैं।

चुनावों की राजनीति ने धर्म और सम्प्रदाय के नकारात्मक महत्व को उभारा है। वास्तव में सम्प्रदाय राजनीतिक दलों के वोट बैंक बन गए हैं। जातिवाद के कारण ग्रामीण समुदाय में कर्मकाण्डों की दृष्टि से ब्राह्मण को आज मी सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

धार्मिक नेता, जैसे इमामों, मौलवियों, धर्मगुराओं, आदि की अपीलो का मतदान व्यवहार पर प्रभाव दिखलाई देता है। विवेकपूर्ण परिवर्तन की प्रक्रिया का स्वरूप है: आधुनिकीकरण। समाजों, सामाजिक संचालन और आर्थिक विकास के फलस्वरूप राजनीतिक परिवर्तनो को सामान्यता राजनीतिक आधुनिकीकरण का नाम दिया जाता है।

राजनीतिक आधुनिकीकरण की भी कुछ विशेषताएं हैं: राजनीतिक शक्ति के महत्व में वृद्धि, राजनीतिक आधुनिकीकरण की निशानी है क्योंकि यहाँ मानव जीवन की समस्त शक्तियों एवं गतिविधियो का राजनीतिक व्यवस्था में केन्द्रीयकरण होने लगता है।

आधुनिक राजनीतिक समाज में केन्द्र और परिसर की अन्त:क्रिया बहुत बढ जाती है। परिसर से तात्पर्य समाज से है और केन्द्र से तात्पर्य राजनीतिक व्यवस्था से है। राजनीतिक दल, हित और दबाव समूह, नौकरशाही एवं निर्वाचनों के माध्यम से परस्पर समीपता मे वृद्धि होती है और सम्पर्क बना रहता है।

संचार के साधनो के कारण इनमें निरन्तरता भी बनी रहती है। इस व्यवस्था में सरकार का जनता से सीधे सम्पर्क होता है। आधुनिक राजनीतिक समाजों में परम्परागत, धार्मिक, जातीय एवं पारिवारिक सत्ताओं का स्थान एक लौकिकीकृत और राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता द्वारा ले लिया जाता है। शासन व्यवस्था का परम्परागत स्वरूप जब कमजोर होने लगता है और उसके स्थान पर राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता की स्थापना होती है तो यही राजनीति आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषता होती है।

अत: आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक संस्थाओं का विशेषीकरण और विभिन्नीकरण होना अत्यावश्यक है। इस प्रकार की व्यवस्थाओं में अधिक से अधिक जन-सहभागिता होती है और नागरिकों की अभिवृत्तियों में परिवर्तन होने लगता है।

आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था के लक्षणों को जानने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि इस व्यवस्था में भारतीय जन-जीवन के सभी क्षेत्रों में राज्य और राजनीतिक व्यवस्था का सकेन्द्रण निरन्तर बढ़ रहा है।

दूरस्थ इलाके एवं गाँव भी राज्य के परिसर में आ गए हैं। लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना ने सरकार की जनता तक पहुँच को सुलभ एवं सरल बना दिया है। समाज एवं राज्य मे परस्पर निकटता एवं अन्त:क्रिया में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

परिणामस्वरूप धर्म, गति, सामन्ती तत्वों का प्रभाव लगभग समाप्त होता जा रहा है और राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता दृढ़ हो रही है। पंचायती राज और लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीयकरण के कारण शासन में जन- सहभागिता निरन्तर बढ रही है और शासन की विभिन्न सरचनाओं-कार्यपालिका, न्यायपालिका, और विधयिका में विभिन्नीकरण स्थापित किया गया है।

मॉरिस जोन्स के अनुसार राजनीति की आधुनिक भाषा भारत के संविधान और अदालतों की भाषा है, संसद में बहस, उच्च प्रशासन की प्रक्रिया, राजनीतिक दलों की भूमिका, आदि सभी कुछ आधुनिकता को समेटे हुये हैं। भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण एक लम्बे ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। इस विकास जानने हेतु इसका क्रमबद्ध अध्ययन आवश्यक है:

पूर्व ब्रिटिशकालीन भारत और आधुनिकीकरण

केन्द्रीय राजनीतिक सत्ता की स्थापना पूर्व ब्रिटिश कालीन भारत मे नहीं हुई थी। भारत छोटी-छोटी रियासतों में बँटा हुआ था और लोगों की मानसिकता एवं निष्ठा संकुचित थी। इस काल में राष्ट्र-राज्य का उदय नहीं हुआ था। समाज विभिन्न जतियों एवं उपजातियों में विभाजित था। वर्णव्यवस्था और जातीय उच्चता के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक हैसियत की गिनती की जाती थी। समाज में महिलाओं एवं शुद्रों की स्थिति दयनीय थी।

समाज एवं मानवजीवन में सर्वत्र अंधविश्वास एवं धार्मिक रूढिवादिता एवं जातिवाद विद्यमान था। सर्वत्र अशिक्षा एवं अज्ञानता का बोलबाला था। शिक्षा का विकास नहीं हुआ था। अधिकांश जनता भारतीय गाँवो में निवास करती थी और उनके जीविकोपार्जन का साधन कृषि थी। कृषि ही प्रमुख व्यवसाय था। भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्णत: कृषि पर आधरित थी इसलिए आर्थिक विकास भी नगण्य था।

कानून एवं न्यायिक व्यवस्था व्यक्तिगत थी। सभी व्यक्तियों के लिए कानून समान नहीं था और सभी को न्यायालयों में भी समानता प्राप्त नहीं थी। राजनीतिक मामलो मे जनसाधरण का प्रवेश निषिद्ध था। एक व्यक्ति में ही समस्त सत्ता निहित होती थी।

निष्कर्षत: पूर्व ब्रिटिशकालीन भारत में केन्द्रीय राज्यसत्ता का पूर्णत: अभाव था, न ही राष्ट्रीय राज्य का निर्माण हुआ था, धार्मिक रूढिवादिता, अज्ञानता एवं सामाजिक असमानता का बोलबाला था। सत्ताधरी राजनेता प्राय: भोग-विलास में लीन रहते थे और जनता के हितों के लिये उनका विपरीत दृष्टिकोण था। लोगों की स्थिति दयनीय थी क्योंकि लोकतान्त्रिक व्यवस्था नहीं थी।

ब्रिटिसकालीन भारत में आधुनिकीकरण

भारत में अंग्रेजों का आगमन ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना से प्रारम्भ हुआ। ब्रिटिश शासन ने ही भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की नीव रखी। सम्पूर्ण देश को ब्रिटिश शासन ही एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत लाने में सफल हुआ।

ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित राजनीतिक व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि संकुचित स्थानीय निष्ठा का स्थान सम्पूर्ण देश के प्रति निष्ठा ने ले लिया। अखण्ड और केन्द्रीय भारत का विचार इस राजनीतिक एकीकरण का ही परिणाम था।

भारत में पाश्चात्य शिक्षा का प्रारम्भ ब्रिटिश शासन की ही देन है। पाश्चात्य शिक्षा के माध्यम से ही राष्ट्रीयता एवं स्वतन्त्रता की भावना को प्रोत्साहन मिला इसका कारण था कि भारत के नवयुवक जोकि पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, उन्होंने उनकी पुस्तकों

में पाश्चात्य देशों में शोषण के विरुद्ध संघर्ष का अध्ययन किया परिणामस्वरूप उनके मन-मस्तिष्क में भी अपने भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराने की भावना भर गई फलस्वरूप भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का प्रारम्भ हुआ।

अत: बर्क, मिल, मिल्टन, मैकाले और हर्बर्ट स्पेन्सर आदि विचारकों की कृतियों का अध्ययन कर भारतीय युवकों मे स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता एवं स्वराज्य की जीवनदायिनी भावनाओं का संचार हुआ। अंग्रेजी शासन ने भारत में नवीन प्रकार की प्रशासनिक एवं नौकरशाही व्यवस्था की स्थापना की। भारत में पहली बार दीवानी और फौजदारी संहिता की रचना की गई। कानून के समक्ष समता एवं विधि की एकरूपता को मान्यता दी गई। उद्योगीकरण का शुभारम्भ भी इसी काल में हुआ।

उद्योगों की स्थापना के साथ-साथ परिवहन और संचार के साधनों का विकास हुआ। रेलवे, डाक और तार का एक नवीन विकास था। परिणामस्वरूप ग्रामीण जनता का आगमन शहरों की ओर होने लगा जिससे कि शहरीकरण का विकास हुआ। ब्रिटिश काल में ही प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं का प्रचलन हुआ।

प्रतिनिधिक संस्थाओं की स्थापना, सीमित मताधिकार का प्रचलन और स्थानीय सस्थाओं के सूत्रपात से शासन व्यवस्था में जनसाधरण की अभिरूचि बढ़ने लगी और वे लोग स्वतन्त्रता एवं लोकतन्त्र की मांग करने लगे। अत: ब्रिटिश काल में भारत के अन्दर नवीन मूल्यों, सस्थाओं एवं वैज्ञानिक चिन्तन का आरम्भ हुआ जिससे राजनीतिक आधुनिकीकरण की गति को तीव्रता मिली।

ब्रिटिश काल में ही अनेक समाज सुधारक भी हुये जैसे, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, राजा राममोहन राय आदि। इन्होंने भारत को आधुनिकीकरण की ओर समुख करने हेतु भारतीय जनता में नवचेतना का संचार किया।

डॉक्टर जकारिया के अनुसार "भारत की नव-चेतना मुख्यता आध्यात्मिक थी तथा इसने अनेक सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया। 19वीं सदी के धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलन भारत को आधुनिकीकरण की दिशा में अग्रसर करने में बहुत अधिक सहायक सिद्ध हुये।

इस प्रकार के सुधार आन्दोलनों में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्णन मिशन और थियोसोफिकल सोसायटी का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। इन सुधार आन्दोलनों ने भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वास को दूर कर भारतीय समाज की प्रत्येक वस्तु को तर्क, विवेक और विज्ञान के प्रकाश में देखना सिखाया। इन सुधार आन्दोलनों ने एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की और वातावरण निर्मित किया, जिसके आधार पर राष्ट्रीयता की भावना विकसित हो सकी और भारतीय स्वतन्त्रता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सका।"

प्रोफेसर ए.आर. देसाई ने सुधार आन्दोलनों के सम्बंध में लिखा है: "सामाजिक क्षेत्र में जाति प्रथा के सुधार और उसके उन्तुलन, स्त्रियों के लिए समान अधिकार, बाल-विवाह के विरुद्ध आन्दोलन, सामाजिक और वैधनिक असमानता के विरुद्ध जेहाद किया। धार्मिक क्षेत्र में धार्मिक अंधविश्वासों, मूर्तिपूजा और पाखण्डों का खण्डन किया गया। ये आन्दोलन कम-अधिक मात्रा में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक समानता के लिए संघर्षरत थे और इनका चरम लक्ष्य राष्ट्रवाद था।"

स्वतन्त्र भारत में आधुनिकीकरण

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् ही भारत ने राजनीतिक आधुनिकीकरण की दिशा की ओर अपने कदम बढाने प्रारम्भ कर दिये। संविधान निर्माण हेतु संविधान निर्मात्री सभा का गठन किया गया। संविधान सभा द्वारा ऐसा संविधान बनाया गया जिसके अन्तर्गत गणतन्त्र, जन सम्प्रभुता और उत्तरदायी शासन के सिद्धान्तों को मान्यता दी गयी।

संविधान ने सीमित और भेदभावपूर्ण मताधिकार को समाप्त कर वयस्क मताधिकार को प्रमुखता दी। राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में जनसाधरण के प्रवेश का स्वागत किया। संविधान ने राजनीतिक, सामाजिक समानता को मान्यता दी और छुआछूत को असवैधानिक घोषित किया।

संविधान में व्यवस्था की गई कि सभी लोग कानून के समक्ष समान हैं। सभी लोगों को संघनिर्माण, विचार अभिव्यक्ति और समुदाय बनाने का अधिकार है किन्तु यह सब विधि द्वारा स्थापित मान्यताओं के अनुरूप होगा। शासन में जनता की सहभागिता बढ़ाने हेतु पंचायती राज की व्यवस्था की गई। निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र न्याय दिलाने हेतु स्वतन्त्र न्यायपालिका की स्थापना की गई। लोक सेवाओं में भर्ती हेतु निष्पक्ष लोक सेवा आयोगों की स्थापना की गई।

स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनावों की व्यवस्था की गई, साथ ही दलीय व्यवस्था को अपनाया गया। सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन लाने हेतु जमींदारी व्यवस्था को समाप्त किया गया। सम्पत्ति के अधिकार को कानूनी अधिकार में परिवर्तित किया गया। उद्योगीकरण के परिणामस्वरूप उद्योगों का विकास हुआ एवं उद्योगों मे श्रमिकों की भागीदारी को प्रोत्साहित किया गया।

अतः उद्योगीकरण और शहरीकरण की प्रवृत्ति में वृद्धि के फलस्वरूप लोगों के आदर्शों एवं मूल्यों में मूलभूत परिवर्तन आये। निष्कर्षतः भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के विषय में मॉरिस जोन्स का कहना है कि "भारत का समाज परम्परागत है और राजनीति आधुनिक।

यद्यपि संविधान द्वारा आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं का गठन किया गया है, लेकिन व्यावहारिक रूप से भारतीय समाज उसको पूरी तरह से पचा नहीं पा रहा है। उदाहरण के लिए, संविधान द्वारा स्वतन्त्र निर्वाचन की व्यवस्था की गयी है, किन्तु धर्म और जाति के तत्व उनको अत्यधिक प्रभावित करते हैं, संविधान द्वारा वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की गई है, किन्तु महिलाओं का एक बड़ा भाग चुनावों के समाय मतदान में हिस्सा ही नहीं लेता।

रजनी कोठारी ने इस स्थिति का वर्णन करते हुये भारत को जेनस लाइक मॉडल कहा है। जेनस एक ऐसा समुद्री जानवर होता है जिसके आगे और पीछे दोनों तरफ आंखे होती है और वह दोनों और एक साथ देखता है। जेनस की भाँति ही भारतीय राजनीतिक व्यवस्था भी आगे और पीछे दोनों और देखती है—वह न तो पूरी तरह अतीत से संबंध विच्छेद कर सकी है और न ही पूर्णरूप से आधुनिक ही बन पायी है। रुडोल्फ का मत है की "यह एक मिश्रित व्यवस्था है जिसमें परंपरावाद और आधुनिकता के तत्वों का मिश्रण पाया जाता है।"

स्पष्ट है की वर्तमान समय में भारत के राजनीतिक आधुनिकरण के रास्ते में अनेक कठिनाइयाँ है जैसे-धार्मिक अंधविश्वास, जातिवाद, गरीबी, अशिक्षा, संकीर्ण निष्ठा, आदर्श और मूल्य अथवा नैतिकता इत्यादि। अतः भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में जब तक परंपरावादी तत्व विद्यमान है तब तक उसका पूर्णतः आधुनिक स्वरूप ग्रहण करना अत्यधिक जटिल एवं अस्वाभाविक है।

उपसंहार

स्पष्ट है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था न तो पूर्णतः परम्परागत है और न ही पूर्णतः आधुनिक। वह परम्परागत तत्वों को भी साथ लेकर आधुनिकता की ओर बढ़ रही है। अतः भारत में निरन्तरता और परिवर्तन के बीच तालमेल बैठाने का प्रयास होने लगा और एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था उभरी जो पुरातनता और नवीनता दोनों ही तत्वों से मुक्त है।

सन्दर्भ

- Mahendra Prasad Singh (2011)- "Introduction"- Indian Political Thought: Themes and Thinkers- p- xiv- ISBN 8131758516.
- PROUT Globe"- proutglobe-org, Retrieved 2020-04-11.
- Indian Political Theory: Laying the Groundwork for Svaraj: a push for a reorientation of Indian political philosophy-
- Indian Political Thought: A Reader: comprehensive introduction to the study of contemporary Indian political philosophy.

संन्यासी विद्रोह

डॉ० विपेंद्र विक्रम

ग्राम-धनुपरा, पोस्ट-कोलवारा, थाना-जैन्तपुर ओपी

परिचय

अट्ठारहवीँ शती के अन्तिम वर्षो 1763-1800 ई. में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध तत्कालीन भारत के कुछ भागों में संन्यासियों (केना सरकार, द्विजनारायन) ने उग्र आन्दोलन किये थे जिसे इतिहास में संन्यासी विद्रोह कहा जाता है। यह आन्दोलन अधिकांशत: उस समय ब्रिटिश भारत के बंगाल और बिहार प्रान्त में हुआ था।

अंग्रेजों के विरुद्ध सन् 1763 से 1773 तक चला संन्यासी आंदोलन सबसे प्रबल आंदोलन था। आदिगुरु शंकराचार्य के दसनामी संप्रदाय ने एकजुट होकर भारतीय धर्म और संस्कृति को बचाने के लिए शस्त्र युद्ध का बिगुल बजाया।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ईस्ट इंडिया कंपनी के पत्र व्यवहार में कई बार फकीरों और संन्यासियों के छापे का जिक्र हुआ है। यह छापा उत्तरी बंगाल में पड़ते थे। 1770 ईस्वी में पड़े बंगाल में भीषण अकाल के कारण हिंदू और मुस्लिम यहां वहां घूम कर अमीरों तथा सरकारी अधिकारियों के घरों एवं अन्न भंडार को लूट लिया करते थे। ये संन्यासी धार्मिक भिक्षुक थे पर मूलत: वह किसान थे, जिसकी जमीन छीन ली गई थी। किसानों की बढ़ती दिक्कतें, बढ़ती भू राजस्व, 1770 ईस्वी में पड़े अकाल के कारण छोटे-छोटे जमींदार, कर्मचारी, सेवानिवृत्त सैनिक और गांव के गरीब लोग इन संन्यासी दल में शामिल हो गए। यह बंगाल और बिहार में पांच से सात हजार लोगों का दल बनाकर घूमा करते थे और आक्रमण के लिए गोरिल्ला तकनीक अपनाते थे। आरंभ में यह लोग अमीर व्यक्तियों के अन्न भंडार को लूटा करते थे। बाद में सरकारी पदाधिकारियों को लूटने लगे और सरकारी खजाने को भी लूटा करते थे। कभी-कभी ये लुटे हुए पैसे को गरीबों में बांट देते थे। समकालीन सरकारी रिकॉर्ड में इस विद्रोह का उल्लेख इस प्रकार है– "सन्यासी और फकीर के नाम से जाने जाने वाले डकैतो का एक दल है जो इन इलाकों में अव्यवस्था फैलाए हुए हैं और तीर्थ यात्रियों के रूप में बंगाल के कुछ हिस्सों में भिक्षा और लूटपाट मचाने का काम करते हैं क्योंकि यह उन लोगों के लिए आसान काम है। अकाल के बाद इनकी संख्या में अपार वृद्धि हुई। भूखें किसान इनके दल में शामिल हो गए, जिनके पास खेती करने के लिए न ही बीज था और न ही साधन। 1772 के ठंड में बंगाल के निचले भूमि की खेती पर इन लोगों ने काफी लूटपाट मचाई थी। 50 से लेकर 1000 तक का दल बनाकर इन लोगों ने लूटने, खसोटने और जलाने का काम किया।"

यह बंगाल के गिरि सम्प्रदाय के संन्यासियों द्वारा शुरू किया गया था। जिसमें जमींदार, कृषक तथा शिल्पकारों ने भी भाग लिया। इन सबने मिलकर कम्पनी की कोठियों और कोषों पर आक्रमण किये। ये लोग कम्पनी के सैनिकों से बहुत वीरता से लड़े।

इस संघर्ष की खासियत यह थी कि इसमें हिंदू और मुसलमान ने कंधे से कंध मिलाकर भाग लिया। इन विद्रोह के प्रमुख नेताओं में मंजर शाह, देवी चौधरानी, मूसा शाह, भवानी पाठक उल्लेखनीय है। 1880 ईस्वी तक बंगाल और बिहार में अंग्रेजो के साथ संन्यासी और फकीरों का विद्रोह होता रहा। इन विद्रोह का दमन करने के लिए अंग्रेजों ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी।

बांग्ला भाषा के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का सन 1882 में रचित उपन्यास आनन्द मठ इसी विद्रोह की घटना पर आधरित है।

संन्यासी विद्रोहियों ने अपनी स्वतंत्र सरकार बोग्रा और मैमनसिंह में स्थापित किया। इनकी आक्रमण पद्धति गोरिल्ला युद्ध पर आधरित थी।

संन्यासी विद्रोह के कारण

1. बंगाल में सबसे ज्यादा अत्याचार हिंदुओं पर होता था। अंग्रेजों ने हिंदुओं को उनके तीर्थ स्थानों पर जाने पर प्रतिबंध लगा दिया था जिसके चलते शांत रहने वाले संन्यासियों में असंतोष फैल गया।
2. बंगाल में अंग्रेजों की नीति के चलते जमींदार, कृषक, शिल्पकार सभी की स्थिति बदतर हो गई थी।
3. बंगाल में जब 1770 ईस्वी में भयानक अकाल आया तो अंग्रेज सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और जनता को उनके हाल पर ही छोड़ दिया।
4. बंगाल में हिंदुओं का धर्मांतरण चरम पर था। गरीब जनता की कोई सुनने वाला नहीं था।

क्यों असफल हो गया यह आंदोलन?

अंग्रेजों की 'फुट डालो और राज करो' की नीति के चलते बंगाल में संन्यासियों और फकीरों ने साथ मिलकर लड़ने के बजाय अलग-अलग लड़ने का फैसला किया। अंग्रेजों ने मुस्लिम फकीरों को लालच किया तब उन्होंने हिन्दू संन्यासियों का साथ छोड़ दिया। इस फूट और बिखराव के चलते अंततोगत्वा संन्यासी विद्रोह को दबा दिया गया। इस विद्रोह को कुचलने के लिए वारेन हेस्टिंग्स को कठोर कार्रवाई करनी पड़ी थी। उन्होंने बेरहमी से संन्यासियों और हिन्दू जनता का कत्लेआम किया।

सन्यासी विद्रोह और उसके सबक

यह विद्रोह दशकों तक चलता रहा. और इस विद्रोह को ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा सालों साल के संघर्ष के बाद ही दबाया जा सका. राष्ट्र व् समाज में सत्ता के विरुद्ध विद्रोह तब तक नहीं खड़े हो सकते, जब तक उसकी शोषण, दमनकारी और अन्यायी क्रिया कलापों के चलते जन साधरण में असंतोष व् विरोध नहीं खड़ा हो जाता. इसलिए ऐसे विद्रोह तब तक खड़े होते भी रहेंगे जब तक जनसाधरण किसानो, मजदूरों, दस्तकारों की लूट चलती रहेगी। उनपर अन्याय व् अत्याचार होता रहेगा. चाहे उसका रूप 1770 के जैसा हो या वह आधुनिक युग के छली, कपटी, भ्रष्टाचारी जनतांत्रिक बाजारवाद के जैसा हो. जिस तरह से विदेशी सत्ता के जरिये जनसाधरण के शोषण, लूट की जा रही थी, उसी तरह वर्तमान युग में बढ़ाते वैश्वीकरण के साथ विदेशी पूंजी, विदेशी नीतियों व् प्रस्तावों के जरिये आम किसानों, दस्तकारों की लूट जारी है। राष्ट्रव् जन साधरण पर विदेशी साम्राज्य का बढ़ना जारी है। क्या आज के सन्यासी, फकीर, महात्मा, धर्मगुरु और धार्मिक नेता सन्यासी विद्रोह के शहीदों व् फकीरों से प्रेरणा ले सकेंगे? इन विदेशी साम्राज्यी ताकतों और उनके सहयोगी देश के धनाढ्य वर्ग से संघर्ष कर सकेंगे? उनके द्वारा लाई गयी और लागू की गयी नीतियों का विरोध कर संकेंगे? इसकी संभावना नहीं है। क्योंकि आज के सन्यासी-फकीर भी लक्ष्मीपूजक हो गये हैं। देशी व् विदेशी धन कुबेरों एवम शासकों के हिस्सों के साथ हो गये हैं। वे किसानों-मजदूरों के साथ आयें न आयें, पर चौतरफा बढती जा रही लूट के विरुद्ध आम लोगों को खड़ा होना ही पड़ेगा। वर्तमान दौर में तो नहीं लगता कोई सन्यासी भी ऐसा है जो इस रास्ते पर आगे चलेगा।

सन्दर्भ

- Ghosh] Jamini Mohan (1930)- Sannyasi and fakir raiders in Bengal- Bengal Secretariat Book Depot- पृ. 47- OCLC 500497978-
- Lorenzen] David N- (2006)- Who Invented Hinduism% Essays on Religion in History- Yoda Press- पृ. 61. आई.एस.बी.एन. 9788190227261. मूल से 2 जुलाई 2020 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 14 जुलाई 2020.
- "संग्रहीत प्रति" (PDF). मूल से 22 दिसंबर 2018 को पुरालेखित (PDF). अभिगमन तिथि 13 जुलाई 2020.
- निहालचन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित बंकिम समग्र 1989 हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी पृष्ठ 991

विनोबा भावे की जीवनी व उपलब्धियां

डॉ० सुधीर कुमार सिंह

ग्राम+पोस्ट-सोनौल सुलतान, थाना-पुरनहिया, जिला-शिवहर

भारत में भूदान तथा सर्वोदय आन्दोलनों के लिए सुपरिचित सन्त विनोबा भावे भगवदगीता से प्रेरित जनसरोकार वाले नेता थे। वह महात्मा गाँधी से बहुत प्रभावित थे तथा गाँधीजी के साथ उन्होंने देश के स्वाधीनता संग्राम में बहुत काम किया। उनकी आध्यात्मिक चेतना समाज से जुड़ी थी द्य इसी कारण सन्त स्वभाव के बावजूद उनमें राजनैतिक सक्रियता भी थी। उन्होने सामाजिक अन्याय तथा धार्मिक विषमता का मुकाबला करने के लिए देश की जनता को स्वयंसेवी होने का आह्वान किया। विनोबा भावे के इन्हीं सामाजिक सरोकारों के दायित्वपूर्ण कामों के लिए 1958 में उन्हें सामुदायिक नेतृत्व का पहला मैग्सेसे पुरस्कार प्रदान किया गया।

विनोबा भावे का जीवन परिचय

11 सितम्बर 1895 को कोलाबा जिले के गाकोडा गाँव में जन्मे विनोबा भावे का असली नाम विनायक नरहरि भावे था और वह जन्म से ब्राह्मण थे। विनोबा के आध्यात्मिक विकास पर उनकी माँ रुक्मिणी देवी का गहरा प्रभाव था। विनोबा भावे ने इसी प्रभाव में महाराष्ट्र के सभी सन्त तथा दार्शनिकों को पढ़ा था द्य विनोबा भावे की गणित में विशेष रुचि थी।

वर्ष 1916 में विनोबा भावे अपनी इन्टरमीडियेट की परीक्षा देने मुम्बई जा रहे थे। रास्ते में ही उनका मन बदला और वह बनारस की ओर चल पड़े। उनके मन में अनश्वर ज्ञान तथा अनादि ब्रह्म को जानने की अदम्य इच्छा जागी। बनारस में उन्होंने संस्कृत के पौराणिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। दरअसल, इस घटना ने उनके जीवन की धारा बदल दी।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में विनोबा भावे ने गाँधीजी का प्रवचन सुना। वह उनसे इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने गाँधी जी को पत्र लिखा। कुछ पत्राचार के बाद गाँधी जी ने विनोबा भावे को अहमदाबाद के कोचराब आश्रम में मिलने के लिए बुलाया। 7 जून 1916 को विनोबा भावे गाँधी जी से मिले। इस भेंट ने विनोबा भावे को इतना प्रभावित किया कि उनका गाँधी जी से अटूट बंधन जुड़ गया। वह गाँधी जी के आश्रम में उनके सभी काम जैसे पठन-पाठन, चरखा कताई तथा जन सेवा आदि करने लगे।

1921 में विनोबा भावे ने गाँधीजी के निर्देश पर वर्ध आश्रम के संचालन का काम संभाला। 1923 में विनोबा भावे ने एक मराठी मासिक पत्र 'महाराष्ट्र धर्म' के नाम से प्रकाशित करना शुरू किया, जिसमें विनोबा भावे के उपनिषदों पर लिखे निबन्ध छपे। साथ ही इनका जुड़ाव गाँधी जी के रचनात्मक कार्यों, जैसे खादी, ग्रामोद्योग, नई शिक्षा तथा स्वच्छता आदि की तरफ गहरा होता गया।

23 दिसम्बर 1932 को वह नालवाडी आ गए, जहाँ इन्होंने केवल चरखे पर निर्भर रहकर जीवनयापन का प्रयोग किया। बाद में 1938 में वह बीमार होकर पवनार आश्रम पहुँच गए, जिसे उन्होंने परमधम आश्रम का नाम दिया। 1940 में विनोबा भावे महात्मा गाँधी द्वारा पहले एकल सत्याग्रही के रूप में चुने गए और महात्मा गाँधी ने उन्हें 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी साथ लिया। पवनार आश्रम में आने के बाद वही उनका स्थायी मुख्यालय बन गया। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद विनोबा भावे ने समाज सुधार के आदोलन की शुरुआत की। इस क्रम में भूदान तथा सर्वोदय आन्दोलन बहुत प्रभावी रहे।

सर्वोदय में विनोबा भावे सबके उदय की बात करते थे। उनकी इस सोच में वह लोग भी शामिल थे, जो निर्धन, विपन्न तथा अशिक्षित थे। उन लोगों के लिए विनोबा जी ने भूदान आन्दोलन शुरू किया। उन्होंने दान में भूमि माँगना शुरू किया ताकि निर्धन विपन्न लोगों के लिए व्यवस्था की जा सके। विनोबा जी कर्मप्रधान व्यक्ति थे इसलिए गीता उनका आदर्श थी। विनोबा जी ने अपने प्रवचनों में गीता का सार बेहद सरल शब्दों में जन-जन तक पहुँचाया ताकि उनका आध्यात्मिक उदय हो सके।

1970 में उन्होंने यह घोषणा की कि अब वह स्थायी रूप से केवल पवनार में रहेंगे। 25 दिसम्बर 1974 से 25 दिसम्बर 1975 तक उन्होंने एक वर्ष का मौन व्रत रखा। महात्मा गाँधी के गहन अनुयायी होने के कारण वह कांग्रेस पार्टी के निर्विवाद समर्थक थे। 1975 में जब तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने लोकतन्त्र तथा संविधान को परे करते हुए आपातकाल लगाया, तब भी विनोबा जी की आस्था इन्दिरा गाँधी तथा कांग्रेस पर बनी रही। वह समय विनोबा भावे के मौन व्रत का था तब उन्होंने एक स्लेट पर लिखकर अपना सन्देश दिया था कि 'आपातकाल अनुशासन पर्व है' इस बात को लेकर वह विवाद से घिर गए थे और उनकी आध्यात्मिकता तथा जन सरोकार को संशय से देखा जाने लगा था।

आध्यात्मिक ज्ञान का उनके भीतर कितना आवेग था यह इस तथ्य से समझा जा सकता है कि 1932 में उन्हें ब्रिटिश सरकार का विरोध करने के अपराध में जेल में डाल दिया गया। जेल में विनोबा भावे ने अपनी मातृभाषा मराठी में साथ के दूसरे कैदियों को एकत्र करके गीता पर शृंखलाबद्ध प्रवचन किए। बाद में यही प्रवचन उनकी पुस्तक 'गीता प्रवचन' में संकलित होकर प्रकाशित हुए तथा सभी भारतीय भाषाओं में उनका अनुवाद हुआ। भारत के बाहर भी यह प्रवचन पहुंचे और विविध भाषाओं में अनूदित हुए।

इन प्रवचनों के बारे में विनोबा भावे का स्वयं यही मानना रहा कि उनके दूसरे काम भले ही लोग भूल जाएँ लेकिन ये प्रवचन तथा पुस्तक हमेशा याद रखी जाएगी।

उनकी जन चेतना का उदाहरण उनका भूदान कार्यक्रम सामने लाता है। इस कार्यक्रम में विनोबा, पदयात्री की तरह गाँव-गाँव घूमे और इन्होंने लोगों से भूमिखण्ड दान करने की याचना की, ताकि उसे कुछ भूमिहीनों को देकर उनका जीवन सुधारा जा सके। उनका यह आह्वान जितना प्रभावी रहा वह विस्मित करता है। विनोबा भावे की जन नेतृत्व क्षमता का अंदाज इसी घटना से लगता है कि इन्होंने चम्बल के डाकुओं को आत्मसमर्पण के लिए प्रेरित किया और वह विनोबाजी से प्रभावित होकर आत्म-समर्पण के लिए तैयार हो गए।

आचार्य विनोबा भावे के अनमोल विचार व् कथन

"जिसने ज्ञान को आचरण में उतार लिया, उसने ईश्वर को मूर्तिमान कर लिया।" आचार्य विनबा भावे

"हिन्दुस्तान का आदमी बैल तो पाना चाहता है लेकिन गाय की सेवा करना नहीं चाहता। वह उसे धार्मिक दृष्टि से पूजन का स्वांग रचता है लेकिन दूध के लिये तो भैंस की ही कद्र करता है। हिन्दुस्तान के लोग चाहते हैं कि उनकी माता तो रहे भैंस और पिता हो बैल। योजना तो ठीक है लेकिन वह भगवान को मंजूर नहीं है।" आचार्य विनबा भावे

"मौन और एकान्त, आत्मा के सर्वोत्तम मित्र हैं।" आचार्य विनबा भावे

"मनुष्य जितना ज्ञान में घुल गया हो उतना ही कर्म के रंग में रंग जाता है।" आचार्य विनबा भावे

"जिस राष्ट्र में चरित्रशीलता नहीं है उसमें कोई योजना काम नहीं कर सकती।" आचार्य विनबा भावे

"ऐसे देश को छोड़ देना चाहिए जहाँ न आदर है, न जीविका, न मित्र, न परिवार और न ही ज्ञान की आशा।" आचार्य विनबा भावे

"स्वतंत्र वही हो सकता है जो अपना काम अपने आप कर लेता है।" आचार्य विनबा भावे

"विचारकों को जो चीज आज स्पष्ट दीखती है दुनिया उस पर कल अमल करती है।" आचार्य विनबा भावे

"प्रतिभा का अर्थ है बुद्धि में नई कोपलें फूटते रहना। नई कल्पना, नया उत्साह, नई खोज और नई स्फूर्ति प्रतिभा के लक्षण हैं।" आचार्य विनबा भावे

"महान विचार ही कार्य रूप में परिणत होकर महान कार्य बनते हैं।" आचार्य विनबा भावे

"जबतक कष्ट सहने की तैयारी नहीं होती तब तक लाभ दिखाई नहीं देता। लाभ की इमारत कष्ट की धूप में ही बनती है।" आचार्य विनबा भावे

"द्वेष बुद्धि को हम द्वेष से नहीं मिटा सकते, प्रेम की शक्ति ही उसे मिटा सकती है।" आचार्य विनबा भावे

"जिसने ज्ञान को आचरण में उतार लिया, उसने ईश्वर को मूर्तिमान कर लिया।" आचार्य विनबा भावे

दृष्टिकोण

"हिन्दुस्तान का आदमी बैल तो पाना चाहता है लेकिन गाय की सेवा करना नहीं चाहता। वह उसे धार्मिक दृष्टि से पूजन का स्वांग रचता है लेकिन दूध के लिये तो भैंस की ही कद्र करता है। हिन्दुस्तान के लोग चाहते हैं कि उनकी माता तो रहे भैंस और पिता हो बैल। योजना तो ठीक है लेकिन वह भगवान को मंजूर नहीं है।" आचार्य विनबा भावे

"मौन और एकान्त, आत्मा के सर्वोत्तम मित्र हैं।" आचार्य विनबा भावे

सन्दर्भ

- आचार्य श्री विनोबा भावे-आचार्य श्री विनोबाजी के तत्वज्ञान, विचारों तथा कार्यों बारे में समग्र जानकारी
- विनोबा भावे-मुम्बई सर्वोदय मण्डल द्वारा विनोबा के बारे में समग्र जानकारी
- आचार्य विनोबा भावे का आर्थिक दर्शन (शब्द ब्रह्म)
- महान विचारक और समाज सुधारक विनोबा भावे
- विनोबा भावे का सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य

बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन के जनक राजा नारायण सिंह

डॉ० सुनीता कुमारी

ग्राम+ पोस्ट-पखनाहा श्रीराम, जिला-मुजफ्फरपुर

परिचय

बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन के शुभारंभ का श्रेय शिरीष कुटुंबा के जमींदार और पवई रियासत के राजा नारायण सिंह को जाता है। उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ सबसे पहले जंग का बिगुल फूंका था और 1786 तक ब्रिटिश हुकूमत से जमकर लोहा लिया था।

स्वतंत्र भारत के इतिहास में यदि स्वतंत्रता संग्राम का जिक्र किया जाए तो देश का हर आम नागरिक भी इस बात को स्वीकार करेगा कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम लड़ाई का बिगुल मंगल पांडेय ने वर्ष 1857 में फूंकी थी और उसके बाद कई लड़ाईयां छिड़ीं और देश 1947 में आजाद हुआ। मगर बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि 1857 से 87 वर्ष पूर्व ही वर्ष 1770 में औरंगाबाद के पवई रियासत के राजा नारायण सिंह ने अंग्रेजों के खिलाफ सबसे पहले जंग का बिगुल फूंका था और 1786 तक ब्रिटिश हुकूमत से जमकर लोहा लिया था।

भारतीय इतिहासकारों द्वारा उपेक्षा

हालांकि, स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास लिखने वालों ने कभी उनके साथ न्याय नहीं किया और न ही कहीं इनके बहादुरी के किस्से उजागर किए. मगर इनके साथ शाहाबाद के तात्कालीन कलेक्टर और अंग्रेज लेखक रेजीनाल्ड हैंड ने इन्साफ किया और 1781 में स्वलिखित पुस्तक अर्ली इंग्लिश एडमिनिस्ट्रेशन में उनका जिक्र किया। किताब के पृष्ठ संख्या-84 पर राजा नारायण सिंह का जिक्र है।

इस पृष्ठ पर हैण्ड ने पावरफुल जमींदार्स शीर्षक से एक आर्टिकल लिखा था और उस आर्टिकल में राजा नारायण सिंह को ब्रिटिश हुकूमत का पहला शत्रु करार दिया गया है। वहीं इस संदर्भ में फारसी लेखक शैरुन मौता खरीन की ओर से लिखित फारसी इतिहास और सर्वे सेटेलमेंट गया में भी उनकी इसी रूप में चर्चा है। प्रसिद्ध इतिहासकार के.के दत्ता ने भी प्राचीन भारतीय इतिहास में उनका इसी रूप में उल्लेख किया है। इन सभी पुस्तकों में लिखी बात आज भी इस बात को बल दे रही है कि राजा नारायण सिंह अंग्रेजों के प्रथम शत्रु थे और उन्होंने स्वतंत्रता की लड़ाई उस समय लड़ी जब अंग्रेजी सरकार के खिलाफ विद्रोह की लहर नहीं चली थी।

बता दें कि 1764 में बक्सर के मैदान में ईस्ट इंडिया कंपनी ने दिल्ली के शाह आलम, बिहार बंगाल के नवाब मीर कासिम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला को बक्सर युद्ध में राजा चेत सिंह के साथ मिलकर हरा दिया था। उस दिन भारत गुलाम हो गया था और आजादी के लिए राष्ट्रीय आंदोलन का शुभारंभ हुआ था, जो अंग्रेजों के साथ मराठा और सिख युद्ध, हैदर अली, टीपू सुल्तान, जयसिंह, राजा नारायण सिंह और राजा रणजीत सिंह के विद्रोह के रूप में देखने को मिलता है।

बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन के शुभारंभ

बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन के शुभारंभ का श्रेय शिरीष कुटुंबा के जमींदार पवई रियासत के राजा नारायण सिंह को जाता है। इनके

चाचा विष्णु सिंह ने प्लासी युद्ध के समय पलामू राजा के साथ मिलकर बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला से युद्ध किया था। उन्होंने ही मीर कासिम और अवध के नवाब सिराजुद्दौला को बक्सर युद्ध में चेत सिंह के साथ मिलकर पछाड़ा था और चेत सिंह ने हार स्वीकार नहीं की और वे अंग्रेजों का सदा विरोध करते रहे। इनके ससुर टिकारी के राजा पीतांबर सिंह, पवई के राजा विष्णु सिंह और युवराज नारायण सिंह के मित्र थे।

विष्णु सिंह का नाम पवई राज के बड़े विजेता के रूप में शुमार था। यही कारण था कि उन्हें जगदीशपुर रियासत से दहेज के रूप में पंचवन क्षेत्र मिला था। राजा विष्णु सिंह के बाद 1764 ईस्वी में उनके भतीजा राजा नारायण सिंह पवई की गद्दी पर आसीन हुए और उन्होंने अंग्रेज विरोधी रुख अख्तियार किया। राजा नारायण सिंह को राष्ट्रीयता विरासत में मिली थी और उन्होंने अंग्रेजों की शोषण नीति और मालगुजारी वसूली की ठेका पद्धति का विरोध किया क्योंकि अंग्रेज इससे जमींदार रैयत और आमजनों पर मनमाना शोषण करते थे।

उन्होंने 1764 ईस्वी में ही विष्णु सिंह की अनुपस्थिति में ब्रिटिश सरकार के नायब मेहंदी हुसैन को खदेड़ कर अपने औरंगाबाद स्थित दुर्ग शाहपुर कचहरी की रक्षा की थी। वर्तमान में इस दुर्ग में राम लखन सिंह यादव कॉलेज चल रहा है। 1765 इसी में उन्हें सीरीस, कुटुंबा सहित छह परगना अंछा, पचवन, गोह, मनोरा की बंदोबस्ती 175000 में दी गई थी। लेकिन जमीनदारी के ठेका को अंग्रेजों की शोषण नीति मानकर राजा नारायण सिंह लगातार विरोध करते रहे।

1770 के भीषण अकाल में लोगों की मदद और अंग्रेजों को मालगुजारी देने से इंकार

1770 के भीषण अकाल में उन्होंने रैयतों की मालगुजारी माफ कर जनता में अपना खजाना बांटते हुए अंग्रेजों को मालगुजारी देने से इनकार किया। लाचार होकर कंपनी सरकार ने तिलौथू के शाहमल को अवमिल नियुक्त कर उनके पास मालगुजारी वसूली के लिए भेजा लेकिन राजा नारायण सिंह ने अंग्रेजों के खिलाफ अपनी लड़ाई का बिगुल फूंक दिया और मालगुजारी वसूलने आए शाहमल को उनके सैनिकों के साथ खदेड़ दिया।

इस घटना के बाद अंग्रेज लगातार उनपर चढ़ाई करते रहे। मगर उन्होंने बराबरी का टक्कर देते हुए अंग्रेज के सिपाहियों को अपनी सीमा में प्रवेश नहीं करने दिया। अंत में ब्रिटिश सरकार के दीवान कर्नल बॉर्डर को शेरघाटी छावनी से सेना सहित उनसे कर वसूली के लिए भेजा गया, जिसने बगावत करने पर इनके पवई दुर्ग को 1778 ईस्वी में ध्वस्त कर दिया पर उसके बावजूद भी राजा नारायण सिंह झुके नहीं और मिट्टी का घर बनाकर रहने लगे।

राजा कल्याण सिंह को बिहार की दीवानी का पद और जमींदारों को कैद

बाद में ब्रिटिश हुकूमत द्वारा नई व्यवस्था के तहत पटना के राजा कल्याण सिंह को कंपनी सरकार का दीवान यानी बिहार के जमींदारों का प्रधान बनाया और बनारस के राजा चेत सिंह के शत्रु ख्यालीराम को कल्याण सिंह का नायब नियुक्त किया और मिस्टर मैक्सवेल को कंपनी ने राजस्व प्रधान बनाया। इस व्यवस्था के अनुसार कल्याण सिंह को बिहार के जमींदारों को बकाया मालगुजारी नहीं देने पर बंदी बनाने का अधिकार प्राप्त हो गया था।

इसी आधार पर राजा कल्याण सिंह ने पवई के राजा नारायण सिंह, नरहट सराय के राजा अकबर अली, भोजपुर के राजा विक्रमजीत सिंह, जगदीशपुर के राजा भूप नारायण सिंह, तिरहुत के राजा मधु सिंह और अन्य राजाओं को पटना की बेगम की हवेली में मालगुजारी बकाए के कारण बंदी बना लिया। इस क्रम में कंपनी सरकार ने बगावत की संभावना को देखते हुए किस्त वसूली का मालिकाना हक स्वीकृत कर राजा नारायण सिंह समेत सभी राजाओं को 1778 ईस्वी में रिहा कर दिया।

रिहाई और कम्पनी शासन के विरुद्ध खुली बगावत

जब बनारस के राजा चेत सिंह ने कंपनी शासन के विरुद्ध बगावत कर आजादी की खुली घोषणा कर दी तब कई अन्य जमींदारों ने उनका साथ दिया। इस क्रम में भूप नारायण सिंह और विक्रमजीत सिंह ने आरा-बक्सर होकर दानापुर छावनी से आने वाली फौज को रोक दिया। मधु सिंह ने छपरा बलिया का मार्ग बंद किया और पवन सिंह ने सासाराम के साथ मिलकर मोर्चाबंदी की। इधर पवई के राजा नारायण सिंह में सासाराम के अवमिल कुली खाव टेकारी के राजा पीताम्बर सिंह के साथ मिलकर सोन के पश्चिमी

तट पर मोर्चाबंदी की और कलकत्ता से आने वाली सेना को बारुन के मल्लाहों से नदी में डुबवा दिया और बचे खुचे सैनिकों को मार डाला।

5 मार्च 1781 को राजा नारायण सिंह ने पहली बार अंग्रेजों को उनके क्षेत्र में ही पराजित किया। बिहार के राजाओं के द्वारा ऐसी नाकाबंदी के कारण पूरब तरफ ब्रिटिश फौज बनारस या चुनार नहीं पहुंच सकी, जिससे वारेन हेस्टिंग्स की जान खतरे में पड़ गई। तब इलाहाबाद, कानपुर और गोरखपुर की सेना ने पहुंचकर हेस्टिंग्स की सहायता की. इसके बाद राजा भूपनारायण सिंह बंदी बना लिए गए। जबकि भोजपुर के राजा विक्रमजीत सिंह भय से अंग्रेजों के साथ मिल गए। लेकिन राजा नारायण सिंह अंग्रेजों के साथ लड़ते रहे।

कैमूर की लड़ाई और कैद

राजा नारायण सिंह ने चतरा से शेरघाटी होकर राजा चेत सिंह पर चढ़ाई करने जा रही मेजर क्रोफोर्ड की सेना को औरंगाबाद क्षेत्र में रोक रखा था और उनकी 1500 सेना मैरवा आकर चेत सिंह के सेनापति बेचू सिंह से और उनके सैनिकों से मिलकर कोडिया घाटी और कैमूर पहाड़ियों में मेजर क्रोफोर्ड से भारी युद्ध किया था, जिसमें पलामू के राजा गजराज ने साथ दिया था। जबकि उनके विरुद्ध चरकांवां के राजा छत्रपति सिंह और उनके पुत्र फतह नारायण सिंह ने 900 सैनिकों सहित मेजर क्रोफोर्ड का साथ दिया।

छत्रपति सिंह की गद्दारी के कारण राजा नारायण सिंह टिकारी की ओर नहीं जा सके. बल्कि पुनपुन, सोन की घाटी, पवई, रामनगर और कैमूर की पहाड़ियों में मेजर क्रोफोर्ड को गुरिल्ला युद्ध में उलझाए रखा। जब क्रोफोर्ड को कार्यकारी गवर्नर चार्टर और जनरल हार्डो ने राजा नारायण सिंह को कैद कर लेने का आदेश दिया, तब महादेवा के राजा मारू सिंह ने उनका विरोध कर उन्हें पकड़वाने का शड्यंत्र किया और अंतत: वे तिलौथू क्षेत्र में मेजर क्रोफोर्ड और जनरल की बड़ी सेना से घिर गए।

मृत्यु

तब अनुज राम सिंह की सलाह पर वे उप गवर्नर से वार्ता करने पटना गए, जहां उन्हें कैद कर लिया गया और 5 मार्च 1786 को उन्हीं राजकीय बंदी के रूप में ढाका जेल भेज दिया गया। बाद में रिहा होने पर राजा नारायण सिंह पवई स्थित अपने दुर्ग में ही रहने लगे और उसी वर्ष उनकी मृत्यु हो गई।

सन्दर्भ

- Paramita Maharatna (2012)- ¶The Zamindars of Bihar% Their Resistance to Colonial Rule Between 1765&1781"- Proceedings of the Indian History Congress- 73% 1435- JSTOR 44156363-
- • Tahir HussainA nsari (20 June 2019)- MughalA dministration and the Zamindars of Bihar- Taylor & Francis- pp- 297–298- ISBN 978&1&00&065152&2-
- •A nandA - Yang (1 February 1999)- Bazaar India% Markets] Society] and the Colonial State in Bihar- University of California Press- p- 67- ISBN 978&0&520&91996&9-
- • Nagendra Prasad Verma (2005)- ¶Repercussions in Bihar of the Rebellion of Chait Singh of Banaras"- Proceedings of the Indian History Congress- 66% 845–851- JSTOR 44145897-
- Prasad] Ganesh (August 2017)- ¶Here's The Story Of The 'First' Freedom Fighter Raja Narayan Singh Who FoughtA gainst The British Before Mangal Pandey"- IndiaTimes- Retrieved 23 July 2019-

आधुनिक मैथिली साहित्यमे हंसराजक अवदान

कुमकुम कुमारी

शोध-गवेषिका, (यूजीसी-नेट), विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

आधुनिक मैथिली साहित्याकाशमे जगमगाइत एकटा नक्षत्र जे सभ दिन अपन अस्तित्वक नव-नव परिचय दैत रहलाह कतौ स्थिर भऽ नहि रहि, घुमन्तू जीवनकेँ अंगीकार कयलनि, ओ छलाह श्री हंसराज।

हंसराजक मूल नाम मंत्रनाथ झा छल। मुदा साहित्यक प्रति समर्पण जेना हिनक मूल नामके तर करैत, उपनामसँ 'हंसराज'केँ सर्वाधिक प्रतिष्ठा देलक। ई एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न रचनाकारक रूपमे मैथिली साहित्यमध्य समादृत रहलाह।

हिनक जन्म दरभंगा जिलान्तर्गत उजान गाममे 28 अक्टूबर 1938 ई कँे भेलनि। आ मात्र 67 वर्षक अवस्था मे 11 अप्रैल 2005 ई कँे संसार त्याग देलनि। हिनक घरक नाम हीरा छलनि। प्रारम्भिक शिक्षा गामक स्कूलेमे भेल आ छठम वर्गसँ दशम वर्ग धरि ई लक्ष्मीश्वर एकेडमी, सरीसब-पाही उच्च विद्यालयक छात्र रहलाह। 1955 ई मे ही ओतहिसँ बोर्ड परीक्षामे उतीर्ण भेलाह। उच्चतर शिक्षाक प्राप्तिक हेतु कटिहार गेलाह। जतयसँ आइ.ए. एवं भागलपुरसँ बी.ए. 1962 ई में पास कएल। मगध विश्वविद्यालय बोधगया सँ स्नातकोत्तरक शिक्षा ग्रहण कए 1962 ई मे डॉ. शैलेन्द्र मोहन झाक निदेशनमे 'उपन्यासक क्षेत्रमे मिथिला मिहिरक योगदान' विषयपर ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय सँ पी.एच.डी.क उपाधि प्राप्त कएल। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहि रहलाक कारण हंसराजजी भिन्न-भिन्न प्रकारक नौकरी करैत रहलाह। सर्वप्रथम अजन्ता प्रसमे पटनामे चुन्नू-मुन्नू हिन्दी पत्रिकाक सह-सम्पादक रूपमे ई नौकरी धएलन्हि। जाहिठाम किछु उपन्यासक अनुवादक कएलन्हि जे अप्रकाशित अछि। हंसराज 1963 ई सँ 1975 ई धरि मैथिली प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका 'मिथिला मिहिरक' उपसम्पादक दायित्वक निर्वहन कएल। किछु दिन टी. एन. बी. कॉलेजमे मैथिली अध्यापन कएल। तत्पश्चात 1975 ई सँ अवकाश ग्रहण धरि दरभंगा स्थित चन्द्रधारी मिथिला महाविद्यालयमे प्राध्यापक रूपमे मैथिली अध्यापन क्षेत्रमे वेष ख्याति अर्जित कएल। यदि हिनक प्रकाशित-सम्पादित पोथीक प्रकाशन वर्षपर ध्यान दी तँ स्पष्ट होइत जे प्राध्यापकीय जीवनमे प्रवेशसँ पहिने ओ बेसी पोथी प्रकाशित-सम्पादित कएने छलाह। कथा संग्रहके रूपमे सतंजा (1971), जे किने से (1992), प्रेतकथा (2002), चितकाबर (2003), अतिरिक्त हंसराजक निम्नलिखित प्रकाशित-सम्पादित कृति अछि- सम्पादन-विद्यापति पुनर्मूल्यांकन' (1969 ई.) एवं 'एगो रहिथ राजा' (1970), भेंटवार्ता- 'ओ जे कहलिन' (1971), संस्मरण- 'विसरल बिसरल' (1973), एवं पाछासँ अबैत इजोत' (2007), कविता संग्रह- 'संधान' (1974) एवं 'अनेरे' (1994), विनिबन्ध-मणिपदम (1996) आदि। एतावता कहबाक आशय ई जे मैथिली साहित्यक विभिन्न विधामे हंसराजक अवदान महत्वपूर्ण अछि। मुदा से होइतहुँ कथाकारक रूपमे हुनक प्रसिद्धि बेसी जगजिआर रहल अछि आ एतए हमर प्रतिपाद्य सेहो सेहे थिक।

हंसराजक पहिल कथा संग्रह थिक 'सतञ्जा'। एहिमे संगृहित कथासभ मेसँ एक आधटा पूर्वमे पत्र-पत्रिकामे प्रकाशित भए चुकल छल, जे चर्चीत-प्रशंसित सेहो भेल, 'सतञ्जा'क कथा सभमे 'अप्पन लोक,' 'चोर', ओ 'छिद्र' प्रभृति कथा विशेष लोकप्रिय भेल। मैथिली कथाक क्षेत्रमे हंसराजक अवदानकेँ प्रो. राधाकृष्ण चौधरी स्वीकार कएल अछि।[1]

'संतञ्जाक अन्तर्गत 'अप्पन लोक कथा एकगोट निराश्रिता स्त्रीक खिस्सा कहैत अछि। यथा- भुल्लीक माय ओकर नेनपनहिमे मरि गेली। ओकर नानी ओकरा पोसैत छैक। नानी पंडित बाबूक हबेलीमे खबासिन छलैक। भुल्ली ओकर संगे-संग हवेली जाय अबैत छलनि। ओकर टहल-टिकोरामे हाथ बँटबय आ एहि क्रममे ओ जवान भेली। विवाह भेलै, सासुर गेलहि। पतिक नाम मखना छियैक। ओ रिक्शाचालक अछि। किछु दिनक बाद ओ मनोजबाबू ओतय नौकरी करय लगलनि। मनोज बाबूक पंडितबाबूक बालक छलाह। भुल्लीक नेनपन हिनकहि हवेलीमे बीतल छैक। संभ्रांत लोकक चालि-ढ़ालि किछु अतिरिक्त होइत छैक। जाहिसँ भुल्ली मनोज बाबूसँ डेरायल-लागलि रहैत। कथाक द्रष्टव्य अछि -

''हिनक गोर दगदग छातिमे खूब सघन कारी केश। पैघ-पैघ आँखि। छुरिया नाक। औठियाकेश। बड़ थोड़ बजैत। तैयो ओ हिनक घर बहारि-नीपि अबैत छलनि। आ देखैत रहैत छलनि बड़का बच्चा-सुतलछथि। कछमछ करैत, करोट फेरैत ई पाथर मारने जाय आ पायर मारने आबय।''[2]

समकालीन कथाक इहो विशेषता अछि जे कथाकार अपन कथामे उत्सुकता आ अभिरूचि लेल शैलीक विलक्षणतापर सर्तक रहैत छथि। हंसराजक एहि कथामे शैलीक ई विशेष गुण स्वत: दृष्टिगोचर होइछ। ओ अपन कथामे गंभीर जीवन बोधकँ, विद्रूपातकँ युयुत्सा, लाचारी, अवसाद, तनाव आ अभावकँ संघर्षक निष्कर्षपर कसैत देखाइत छथि।

भुल्ली अनुरक्त होइत गेलि। ओकर विश्वास छलल गेलै जखन मनोजबाबूक पत्नी एकर क्रिया-कलापपर एक दिन उग्ररूप धारण कऽ लेलखिन। भुल्ली मानोसँ अड़ि गेल ओकर इएह अराड़ि घरसँ निष्कासनक कारण बनल। कथाकारक अपन संवादमे ओहि सत्यक उद्घाटक करैत छथि, जे सत्य असंवदेनशील लोकक स्वरूपकँ देखार करैत अछि। शुद्र-कन्याक शोषण कथा कहि जाइत अछि। भुल्ली धोखा खाइए कछमछाहटि आ एहि कछमछाहटिमे पश्चातापक उत्ताप छैक। ओकर समर्पण बेकार रचल गेलै ओ मनोज बाबूक कहलोपर दुखिताह पतिक सेवा नहि कए सकलि। मनोजबाबूकपर भरोस कएलक। ओ ने हिनक अप्पन लोक भऽ सकल आ ने मखनाक।

हिनक 'चोर' कथा एकटा तेरह चौदह अबोध नेनाक त्रासदीक कथा थिक। बापक आर्थिक स्थितिसँ परिचित मुदा स्वयंके प्रति उदासीन मधवा पढ़ाइमे मोन नहि लगैत छैक। सुखलालक इच्छा छैक जे मधवा पढ़ि-लिखि मनुक्ख बनय। मुदा मधवा कए बंशी खेलाइत, कबड्डी खेलाइत, हाट-बाजार बौआइत आ टोल-पड़ोसमे रहब पसिन पड़ैक। कथाकार 'चोर' शीर्षक दए ओहि नुकाएल चोरकँ उघार करैत छथि। कथानक साधारण रहितहुँ विचार प्रधान अछि।

'उग्रास' कथा एकटा लेखकीय उत्तरदायित्वकँ निमाहैत एकटा लाचार युवतीक साहसपूर्ण गाथा कहि जाइत अछि। यासमिन एकटा भिखमंगनी थिक। लोक ओकरा दू-चारि पाइ दैत आ बदलामे ओकर देहक खिघांस करैत छैक। ओकर विवशताक जे चित्र उकेरल गेल अछि ओ सहृदय पाठककँ रोमांचित करैत छैक। लोकक एहि इर्द-गिर्दक दृश्यक विपक्षमे ठाढ़ कथाकार, सामाजिक विद्रपतापर प्रहार कऽ लेखकीय दायित्वक निर्वाह करबामे पूर्णता सफल भेलाह अछि। यासमिन जीबय चाहैए, अपन विकलांग पिताक लेल, बूढ़िमायक लेल। मुदा ढ़ंगक जीवन। सच्चारित्र जीवन जीबाक आकांक्षी ओ दर-दर ठोकर खाइए। भिखमंगनीसँ जूता पॉलिश करबाक व्यवसाय करैए।

मैथिली कथामे भाषाओ शिल्पक दृष्टिसँ जे परिवर्तन आएल, जनसामान्यक भाषाकँ जे स्थान भेटल, शोषित-पीड़ित एवं उपेक्षित पात्र कथामे स्थान पौलक ई सभ शुभ-संकेत हंसराजक कथामे भेटैछ। एकर संगहि उपेक्षाकदंशसँ औनाइत-छटपटाइत मानवीय- संवेदना, आर्थिक-विषमतासँ उपजल असंतोष, आक्रोश ओ संघर्षक वातावरण 'उग्रास' कथाक पृष्ठभूमि थिक। समस्याग्रस्त नारी-समाजक चिंता कथाकारक चिंता बनि ठाढ़ अछि। जकर निष्पादनमे नारीक स्वतंत्र अस्तित्वक उद्घोष कथाकँ प्राणवंत बनबैत अछि।

एहि संग्रहक कथा सभक केन्द्रमे समाजक शोषित-पीड़ित एवं उपेक्षित निम्न-मध्यवर्गक विविध समस्या, मानवीय सम्बन्ध, पनपैत संघर्षक भावना आदि तत्व प्रभावी रहल अछि। से देखि डा. भीमनाथ झा लिखल अछि-"मानवीय सम्बन्धक तन्तुपर ठाढ़ हिनक कथा भावनाक ग्रन्थि खोलैत चलैत अछि, 'चोर', 'छिद्र', 'अप्पन लोक', 'उग्रास' 'तिनबटी' हिनक उत्कृष्ट कथा थिक। अपन छोट कलेवरमे 'चोर' एकटा पैघ बात कहि जाइत अछि। निम्नवर्गक आर्थिक आ सामाजिक असुरक्षाकँ बड़ प्रभावपूर्ण ढ़ंगसँ ई कथा अभिव्यक्ति दैत अछि। संगहिँ असुरक्षाक विरूद्ध संघर्षक लोकक सोझाँ पसरल कुहेस ओकरा अनिर्णयक केहन विस्फोटक बिन्दुपर आनिकँ ठाढ़ कए दैत अछि, तकर प्रतीति नीक जकाँ ई कथा करबैत अछि।"[3]

हंसराज एकान्त साधक छलाह जे हिनक कविताक शैलीसँ सेहो स्पष्ट होइत अछि। ओ मंचीय कवि वरू नहि होथि, मुदा हुनक कविताक गम्भीर्यकँ अस्वीकार नहि कएल जा सकैछ। ओ कविताक प्रस्तुति सहज भावसँ करैत छलाह जाहिसँ श्रोता कविताक अर्थ गम्भीर्यसँ अवगत भऽ जाइत छल। हिनक अधिकांश कविता अतुकान्त छनि, जे सफल दृष्टिक परिचायक अछि। हिनक काव्य संकलन संधान एवं अनेरे प्रकाशित अछि।

काव्य कलाक निकषपर हिनक कविता भाव-वैविध्यक संगहिँ उपादेय सेहो सिद्ध भेल अछि। युगक दशा-दिशा परिवर्तन लोकवृति आ समाजमे विसंगति जन्य कुरीति आ अन्यान्य चित्र-वैविध्य कथा सेहो कहैछ, जे तथ्य सत्यसँ सम्पृक्त अछि आ अछि संग-संग सम्यक अभ्युत्थानक दिशाहित महत्ता रखैत।

हिनक संधान शीर्षक कवितामे बियालिस गोट कविता-संगृहीत अछि। जाहिमे रात्रि वन्दना, मूढ़, ईश्वर, क्रोध, बौक, उल्लास, निमंत्रण, असंतोष, तरंग, मानव बल, गाम, आदि कवितामे कवि भावक स्वयं उद्घोष करैत अछि। बिम्ब-विधान, प्रतीकात्मक शैली, जीवनक उत्थान, अनास्या दुख, दैत्य आशा, आकांक्षा, पतन आदिकँ उद्बोधित करैत अछि। कवि कुंठा, जिजीविषा आ जीवन, संघर्षक प्रतिमान ठाढ़ करैत छथि। हंसराजक कविताक वैशिष्ट्य अछि, हिनक स्पष्टवादिता स्वरूप। जीवनक जटिलताकँ आशाक अमृतसँ सिंचित कए हरित-भरित करबाक कविक संकल्प जखन परिस्थिति जन्य जगमगाय लगैत अछि तऽ ओ आक्रोशित सेहो होइत छथि। ओना हंसराजक कवितामे ई आक्रोश विरले भेटत।

हंसराज प्रतिवाद, आक्रोश, प्रेम आविश्वासक कवि छलाह। मुदा प्रतिवादक स्वर ओतेक मुखर नहि जतेक प्रेम आ विश्वासक। स्वभावसँ ओ संकोची छलाह। जाहि कारणे प्रतिवादहुमे संकोच देखाइत छनि। ओ सम्पूर्णत: मनुक्ख छलाह। मनुक्खसँ स्नेह करैत छलाह। जाहिकारणँ ककरो मोनमे दु:ख पहुँचयबाक साहस नहि होइत छलनि।

''यमुनाक कछेरमे कदमक गाछ तर
एकटा बाल-ब्रहमचारी
रचने रहथि राश
इजोरिया रातिमे।''[4]

हंसराजक काव्य-जगतमे परिभ्रमण कएलाक उपरांत लगैत अछि जे कविता हृदयक सम्पूर्ण संवेदनाक अभिव्यक्ति देबामे सक्षम छनि। वैचारिकताक प्रवल आकांक्षी छथि। एकशब्दमे कहल जा सकैछ जे हंसराज कुंठामे जीबैत, सत्रासकँ भोगैत, जिजीविषाक पक्षधर छथि।

संस्मरणक मैथिली साहित्यमे बड़ अभाव अछि तथापि किछु ने किछु बराबरि लिखल जाइत रहल अछि। एहि क्षेत्रमे सर्वप्रथम छेदी झा अपन जेल जीवनक यात्रा संस्मरण मिहिर मे प्रकाशित करबाओल। तत्पश्चात ज्यो. बलदेव मिश्र, डा. गंगानाथ झा, बच्चा झा, बबुआजी झा, म.म. मुरलीधर झा, म.म. परमेश्वर झा, पं. जीवन झा, म.म. जयदेव मिश्र आदिपर स्वर्गीय विभूतिक संस्मरण लिखलनि। 1960क पश्चात मिथिला मिहिरमे प्रकाशित भेल संस्मरणक सूचि बरू छोट रहे मुदा महत्वपूर्ण अछि। एहि संस्मरणसबमे वैविध्यता अछि।

संस्मरण थिक समृतिक मेघ, जे मानव मस्तिष्कमे चकमाउर दैत रहैए। कोनो खास व्यक्ति, कोनो खास स्थान आ कि कोनो वस्तु जखन कखनहुँ संग नहि छोड़ैत अछि, ओकर स्मृति हर पल, हर क्षण व्यक्तिकँ मोन पाड़ैत रहैत छैक तऽ ओ ओहि क्षणकँ कागतपर उतारि, मोनक भारकँ हल्लुक कऽ लैत अछि।

हंसराज 'बिसरल-बिसरल' संस्मरण आ 'पाछासँ आबैत इजोत'क रचना कयलनि। ओ वस्तुत: कर्मयोगी छलाह। अनासक्त मन वचन कर्मसँ मैथिली भाषाक प्रति समर्पित लेखक। मौन साघक। ओ जे लिखैत छलाह से पूर्ण तन्मयताक संग। आ इएह कारण भेल जे एहन विभूति जे मैथिलीक मौन साघक रहलाह आ जनिक विषयमे आमलोक अनभिज्ञ रहल, तकर संस्मरण लिखिओ ओहि नुकाएल साधककँ दृष्टि पथपर अनलनि। एहि क्रममे आशु कवि राजदेव झा, स्व. चिरंजीवि झा, मैथिलीक तुलसी आचार्य रामलोचनशरण एवं राजकमल चौधरीपर प्रकाश एहि बातक धोतक थिक जे दू अनाम भेल विभूतिक संग दू परिचित मुदा अवडेरल व्यक्तित्वक चर्चा कए, साहित्य-संसारकँ अयना देखाएब। ओहि व्यक्तित्वक पुनर्मूल्यांकन आवश्यक अछि, इएह उदेद्श्य।

''जनिक परिचय हमरा जेहन भेटल तेहने कहबाक प्रयास कएलहुँ अछि, संगहि विभिन्न परिवेशमे कहल गेल थिक तँ एकरूपताक अभाव से केवल स्थापनहिमे नहि अपितु प्रस्तुतीकरणहुँमे लक्ष्य।''[5]

प्रसंगवश हंसराज विवेच्य रचनाकारक सम्बन्धमे अपरिचित, परीचित, चर्चित आ बहुचर्चित शब्दक प्रयोग कएलनि अछि, से बहुत सोचि-विचार कए। जतय आशुकवि राजदेव झा सर्वथा अपरिचित, स्व. चिरंजीव झा मात्र परिचित, रामशरणजी जँ चर्चित तऽ राजकमल बहुचर्चित व्यक्तित्व। मुदा हंसराजक परिचयसँ विभूतिक वैशिष्ट्य सँ मैथिली साहित्य-संसार जे अनुप्रमाणित भेल, ओकर भिन्न महत्व छैक। इतिहासक गर्भमे नुकाएल राजदेव झाक इतिहासमे दू शब्द लिखि, अपन कर्तव्यकँ इतिहासकार इति श्री बुझथि, मुदा हंसराजक साहित्य-चेतना इति श्री कोना बुझितय?

'पाछाँ सँ अबैत इजोत' हंसराजक एहन संस्मरण थिक जकर प्रकाशन हिनक मृत्युपरांत भेल। अन्तिम समयमे ओ अतिरूग्ण भऽ गेल रहथि। डायविटीजसँ पीड़ित, एकदम कृशकाय एवं आँखिक ज्योतिविहीना परिस्थितिमेजँ लेखकक भीतर सर्जना अहुँरिया कटैत होअय तऽ आओर भयावह स्थिति उत्पन्न भऽ जाइत छैक। इएह परिस्थिति रहनि हंसराजक ओहि समयमे। संयोग जँ बनय आ उदारमना, समर्पित सहायिका आकि सहायक पड़ोसिया रहथि, तऽ प्रतिकूल परिस्थितियो अनुकूल भऽ जाइत छैक। एहने संयोग लागि गेलनि हंसराजजीकँ पड़ोसमे रहथिन सुपरिचित कथा-लेखिका डा. नीता झा। पोथीक नामकरणहिसँ ज्ञात होइत अछि जे ई संस्मरण सभ लेखक द्वारा बहुत मोन पाड़ि-पाड़ि लिखाओल गेल अछि।

हंसराज सरल भाषामे निबद्ध ई संस्मरणात्मक कृति सामाजिक जीवन, पारिवारिक उत्थान-पतन, मनोरंजन, अत्यंत सरस ओ स्वाभाविक चित्रणसँ भरल-पुरल अछि। लेखक कोनो घटना आकि परिवेशक चित्रण स्वाभाविक एवं नाटकीय ढ़ंगसँ पोथीकँ सुरूचिपूर्ण बनयबाक सफल प्रयास कएलनि अछि।

निष्कर्षत : हंसराजक रचना ततेक रोचक ततेक स्वाभाविक रमनगर होइत छलनि। मुदा एहूमे भाषाक भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण छलनि। एहि विवेचनक आधारपर कहल जा सकैछ जे हंसराज आधुनिक मैथिली साहित्य भंडारकँ भरबाक लेल हिनक कएल गेल अवदानकँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्मरण करत।

सन्दर्भ

1. ए सर्वे ऑफ मैथिली लिटरेचर- प्रो. राधाकृष्ण चौधरी, पृष्ठ सं.-241 प्रकाशक-शान्ति देवी बोमपास टाउम देवघर, प्रकाशन वर्ष-1976
2. सतंजा-हंसराज पृष्ठ सं.-8ए प्रकाशक-वीणा प्रकाशन, पटना, प्रकाशन वर्ष-1971
3. परिचायिका-डा. भीमनाथ झा, पृष्ठ सं.-208, प्रकाशक-भवानी पुस्तक केन्द्र, पटना, प्रकाशन वर्ष-1985
4. संधान-हंसराज पृष्ठ सं.-31 प्रकाशक-वीणा प्रकाशन भागलपुर, प्रकाशन वर्ष-1974
5. बिसरल-बिसरल-हंसराज,पृष्ठ-प्रसंगवशमे प्रकाशक-मैथिली साहित्य संस्थान, पटना प्रकाशन वर्ष-1973

ब्रिटिश राज में भारतीय समाचार पत्रों का विकास और भूमिका

कुमारी रीना

पीएचडी, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सारांश

संचार के क्षेत्र में छपाई हेतु मुद्रण यंत्रो यानी प्रेस के आ जाने से विचारो के आदान-प्रदान एवं संप्रेषण तथा ज्ञानार्जन की प्रकिया न केवल कम खर्चीली हो गई, बल्कि उनकी पहुँच भी और व्यापक हो गयी। अंग्रेजी और देशी भाषा के समाचार-पत्रों में अनेक प्रतिबंधों के बावजूद तेजी से वृद्धि होने से औपनिवेशिक प्रशासन् के अत्याचारों के विरुद्ध सशक्त जनमत तैयार हुआ, जिसने राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय समाचार-पत्रों का इतिहास यूरोपीय लोगो के आने के साथ ही आरंभ हुआ।

परिचय

भारत में प्रिटिंग प्रेस की शुरुआत 16 वी सदी में उस समय हुई जब गोवा के पुर्तगाली पादरियों ने सन् 1557 में एक पुस्तक छापी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना पहला प्रिटिंग प्रेस सन् 1684 में बंबई में स्थापित किया। लगभग 100 वर्षो तक कंपनी के अधिकार वाले प्रदेशो में कोई समाचार-पत्र नहीं छपा क्योकि कंपनी के कर्मचारी यह नहीं चाहते थे कि उनके अनैतिक, अवांछनीय तथा निजी व्यापार से जुड़े कारनामो की जानकारी ब्रिटेन पहुँचे। इसलिए भारत में पहला समाचार-पत्र निकालने का प्रयास कंपनी के असंतुष्ट कर्मचारियों ने ही किया था। सन् 1766 में कंपनी के असंतुष्ट कर्मचारी विलियम बोल्ट्स ने अपने द्धारा निकालने गए समाचार-पत्र में कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की नीतियों के विरुद्ध लिखा, लेकिन, बोल्ट्स को शीघ्र ही इंग्लैंड भेज दिया गया।

कालांतर में भारत में स्वतंत्र तथा तटस्थ पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रथम प्रयास जेम्स आगस्टस हिक्की द्धारा सन् 1780 में किया गया। उसके द्धारा प्रकाशित प्रथम समाचार-पत्र का नाम श्बंगाल गजटश अथवा 'द कलकत्ता जरनल एडवरटाइजर' था। शीघ्र ही उसकी निष्पक्ष शासकीय आलोचनात्मक पत्रकारिता के कारण उसका मुद्रणालय जब्त कर लिया गया। सन् 1784 में कलकत्ता गजट, 1785 में बंगाल जरनल तथा द ओरियंटल मैंगजीन ऑफ कलकत्ता अथवा द कलकत्ता एम्यूजमेंट, 1788 में मद्रास कुरियर इत्यादि अनेक समाचार-पत्र निकलने आरंभ हुए। जब कभी कोई समाचार-पत्र कंपनी के विरुद्ध कोई समाचार प्रकाशित करता तो कंपनी की सरकार कभी-कभी पूर्व-सेंसरशिप की नीति भी लागु कर देती थी और तथाकथित अपराधी संपादक को निर्वासन् की सजा सुना दिया करती थी।

गंगाधर भट्टाचार्य द्धारा सन् 1816 में प्रकाशित बंगाल गजट (Bengal Gazette) किसी भी भारतीय द्धारा हिन्दी में प्रकाशित पहला समाचार-पत्र श्उदन्त मार्तण्ड था, जिसका प्रकाशन सन् 1826 में कानपुर से जुगल किशोर ने किया। सन् 1818 में मार्शमैन द्धारा बांग्ला भाषा में 'दिग्दर्शन नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया गया। राजा राममोहन राय प्रथम भारतीय थे, जिन्हे राष्ट्रीय प्रेस की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने सन् 1821 में अपने साप्ताहिक पत्र 'संवाद कौमुदी' और सन् 1822 में फारसी पत्र 'मिरात-उल अखबार' का प्रकाशन कर भारत में प्रगतिशील राष्ट्रिय प्रवृति के समाचार-पत्रों का शुभारंभ किया। सन् 1851 में दादा भाई नौरोजी के संपादकत्व में बंबई से एक गुजराती समाचार-पत्र 'रफ्त गोफ्तार' का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसी समय 19वी शताब्दी के महान भारतीय पत्रकार हरिश्चंद्र मुखर्जी ने कलकत्ता से श्हिन्दू पैट्रियाट (Hindu Patriot) नामक पत्र का प्रकाशन किया। एक अन्य साप्ताहिक समाचार-पत्र 'चंद्रिका' हिन्दू समाज के रूढ़िवादी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता था।

भारतीय स्वामित्व वाले समाचार-पत्रों की संख्या और प्रभाव में 19वीं शताब्दी के परवर्ती काल में तेजी से वृद्धि हुई। प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों में शिशिर कुमार घोष तथा मोतीलाल घोष द्वारा संपादित 'अमृत बाजार पत्रिका' तथा मद्रास से प्रकाशित 'हिन्दू' प्रभावशाली पत्र थे। देशी भाषाओं के प्रेस पर लगे प्रतिबंध से बचने के लिए अमृत बाजार पत्रिका तत्काल एक अंग्रेजी का समाचार-पत्र बन गयी। प्रख्यात समाज-सुधारक ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने सन् 1859 में बंगाली भाषा में 'सोम प्रकाश' का संपादन किया। यही पहला ऐसा समाचार-पत्र था जिसके विरुद्ध लिटन का वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (Vernacular PressA ct) लागू हुआ था। बाल गंगाधर तिलक ने बंबई से अंग्रेजी में श्मराठाश और मराठी में 'केसरी' का प्रकाशन किया। प्रारंभ में 'केसरी' का संपादन अगरकर तथा 'मराठा' का संपादन केलकर किया करते थे।

देश के अनेक समाचार-पत्रों का संपादन अंग्रेजी द्वारा भी किया गया। भारत में अंग्रेजी द्वारा संपादित समाचार-पत्रों में प्रमुख इस प्रकार थे– टाइम्स ऑफ इंडिया (1861 ई.), स्टेट्समैन (1875 ई.), फ्रेंड ऑफ इंडिया, मद्रास मेल, पायनियर (इलाहाबाद), सिविल एंड मिलिटरी गजट (लाहौर), इंगलिश मैन आदि। इन एंग्लो-इंडियन अखबारों में 'इंगलिश मैन' सर्वाधिक रूढ़िवादी एवं प्रतिक्रियावादी, 'स्टेट्समैन' सर्वाधिक उदारवादी दृष्टिकोण वाले और 'पायनियर' सरकार-समर्थक अखबार के रूप में जाने जाते थे।

ब्रिटिश भारत में प्रकाशित समाचार-पत्र : एक दृष्टि में

समाचार पत्र	भाषा	वर्ष	प्रकाशन स्थल	संस्थापक/संपादक
टाइम्स ऑफ इंडिया	अंग्रेजी	1861	बम्बई	रॉबर्ट नाइट
स्टेट्स मैन	अंग्रेजी	1875	कलकत्ता	रॉबर्ट नाइट
पायनियर	अंग्रेजी	1865	इलाहाबाद	जॉर्ज एलन
सिविल एण्ड मिलीट्र गजट	अंग्रेजी	1876	लाहौर	रॉबर्ट नाइट
अमृत बाजार पत्रिका	बंग्ला	1868	कलकत्ता	मोतीलाल घोष/शिशिर कुमार घोष
सोम प्रकाश	बंग्ला	1859	कलकत्ता	ईश्वरचंद्र विद्यासागर
हिन्दू	अंग्रेजी	1878	मद्रास	वीर राघवाचारी
केसरी, मराठा से)	मराठी, अंग्रेजी	1881	बम्बई	तिलक (प्रारंभ में अगरकर के सहयोग
नेटिव ओपिनियन	अंग्रेजी	1864	बम्बई	बी. एन. मांडलिक
बंगाली	अंग्रेजी	1879	कलकत्ता	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
बम्बई दर्पण	मराठी	1832	बंबई	बाल शास्त्री
कॉमन वील	अंग्रेजी	1914		एनी बेसेंट
कवि वचन सुध	हिन्दी	1867	संयुक्त प्रांत (उ. प्र.)	भारतेन्दु हरिश्चंद्र
हरिश्चंद्र मैगजीन	हिन्दी	1872	संयुक्त प्रांत (उ. प्र.)	भारतेन्दु हरिश्चंद्र
हिंदुस्तान स्टैंडर्ड	अंग्रेजी	1899		सच्चिदानंद सिन्हा
हिंदी प्रदीप	हिन्दी	1877	संयुक्त प्रांत (उ. प्र.)	बालकृष्ण
इंडियन रिव्यू	अंग्रेजी		मद्रास	जी. ए. नटेशन
यंग इंडिया	अंग्रेजी	1919	अहमदाबाद	महात्मा गाँधी
नव जीवन	हिन्दी, गुजराती	1919	अहमदाबाद	महात्मा गाँधी
हरिजन	हिन्दी, गुजराती	1933	पूना	महात्मा गाँधी
इंडिपेंडेस	अंग्रेजी	1919		मोतीलाल नेहरू
आज				हिन्दीशिव प्रसाद गुप्त

हिंदुस्तान टाइम्स	अंग्रेजी	1920	दिल्ली	के. एम. पाणिकर
नेशनल हेराल्ड	अंग्रेजी	1938	दिल्ली	जवाहरलाल नेहरू
उदन्त मार्तण्ड	हिन्दी(प्रथम)	1826	कानपुर	जुगल किशोर
द ट्रिब्यून	अंग्रेजी	1877	चंडीगढ़	सर दयाल सिंह मजीठिया
अल हिलाल	उर्दू	1912	कलकत्ता	मौलाना अबुल कलाम आजाद
अल बिलाग	उर्दू	1913	कलकत्ता	मौलाना अबुल कलाम आजाद
कामरेड	अंग्रेजी			मुहम्मद अली जिन्ना
हमदर्द	उर्दू			मुहम्मद अली जिन्ना
प्रताप पत्र	हिन्दी	1910	कानपुर	गणेश शंकर विद्यार्थी
गदर	अंग्रेजी, पंजाबी	1913, 1914		सैन फ्रांसिस्कोलाला हरदयाल
हिन्दू पैट्रियाट	अंग्रेजी	1855		हरिश्चंद्र मुखर्जी

समाचार एजेंस	**स्थापना वर्ष**
ए. पी. आई. (असोसिएट प्रेस ऑफ इंडिया)	1880
फ्री प्रेस न्यूज सर्विस	1905
यू. पी. आई. (यूनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया)	1927

प्रेस पर लगाए गए प्रतिबंध (Restrictions on Press)

प्रेस नियंत्रण अधिनियम, 1799 : ब्रिटिश भारत में प्रेस पर कानूनी नियंत्रण की शुरुआत सबसे पहले तब हुई जब लॉर्ड वेलेजली ने प्रेस नियंत्रण अधिनियम द्वारा सभी समाचार- पत्रों पर नियंत्रण (सेंसर) लगा दिया। ततपशचात सन् 1818 में इस प्री-सेंसरशिप को समाप्त कर दिया गया।

भारतीय प्रेस पर पूर्ण प्रतिबंध, 1823 : कार्यवाहक गवर्नर जरनल जॉन एडम्स ने सन् 1823 मां भारतीय प्रेस पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। इसके कठोर नियमो के अंतर्गत मुद्रक तथा प्रकाशक को मुद्रणालय स्थापित करने हेतु लाइसेंस लेना होता था तथा मजिस्ट्रेट को मुद्रणालय जब्त करने का भी अधिकार था। इस प्रतिबंध के चलते राजा राममोहन राय की पत्रिका शमिरात-उल-अखबारश का प्रकाशन रोकना पड़ा।

लिबरेशन ऑफ दि इंडियन प्रेस अधिनियम, 1835 : लॉर्ड विलियम बेटिक ने समाचार-पत्रों के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया। इस उदारता को और आगे बढ़ाते हुए चार्ल्स मेटकॉफ ने सन् 1823 के भारतीय अधिनियम को रद्द कर दिया। अत: चार्ल्स मेटकॉफ को भारतीय समाचार- पत्र का मुक्तिदाता कहा जाता है। सन् 1835 के अधिनियम के अनुसार मुद्रक तथा प्रकाशन के लिए प्रकाशन के स्थान की सूचना देना जरुरी होता था।

लाइसेंसिंग अधिनियम, 1857 : सन् 1857 के विद्रोह से निपटने के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक वर्ष की अवधि के लिए बिना लाइसेंस मुद्रणालय रखने और प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया।

पंजीकरण अधिनियम, 1867 : इस अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक मुद्रिक पुस्तक तथा समाचार-पत्र पर मुद्रक, प्रकाशक और मुद्रण स्थान का नाम होना अनिवार्य था तथा प्रकाशन के एक मास के भीतर पुस्तक की एक प्रति स्थानीय सरकार को नि: शुल्क भेजनी होती थी। सन् 1869-70 में हुए वहाबी विद्रोह के कारण ही सरकार ने राजद्रोही लेख लिखने वालों के लिए आजीवन अथवा कम काल के लिए निर्वासन् या फिर दण्ड का प्रावधान रखा।

वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट, 1878 : लॉर्ड लिटन द्वारा लागू किया गया वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट, 1878 मुख्यत: 'अमृत बाजार पत्रिका' के लिए लाया गया था जो बांग्ला समाचार-पत्र था। इससे बचने के लिए ही यह पत्रिका रातो-रात अंग्रेजी भाषा की पत्रिका में बदल गई। इस एक्ट के प्रमुख प्रावधान थे:

- प्रत्येक प्रेस को यह लिखित वचन देना होगा कि वह सरकार के विरुद्ध कोई लेख नहीं छापेगा।
- प्रत्येक मुद्रक तथा प्रकाशक के लिए जमानत राशि (Security Deposit) जमा करना आवश्यक होगा।
- इस संबंध में जिला मजिस्ट्रेट का निर्णय अंतिम होगा तथा उसके खिलाफ अपील नहीं की जा सकेगी।

इस अधिनियम को 'मुँह बंद करने वाला अधिनियम' कहा गया। जिन पत्रों के विरुद्ध इस अधिनियम को लागू किया गया, उनमें प्रमुख थे– सोम-प्रकाश तथा भारत-मिहिर। इस एक्ट को लॉर्ड रिपन ने सन् 1881 में निरस्त कर दिया।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1898 : इस अधिनियम द्वारा सेना में असंतोष फैलाने अथवा किसी व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध काम करने को उकसाने वालों के लिए दण्ड का प्रावधान किया गया।

समाचार-पत्र अधिनयम, 1908 : इस अधिनियम के द्वारा मजिस्ट्रेट को यह अधिकार दे दिया गया कि वह हिंसा या हत्या को प्रेरित करने वाली आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने वाले समाचार-पत्रों की सम्पत्ति या मुद्रणालय को जब्त कर ले।

भारतीय प्रेस अधिनियम, 1910 : इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नवत थे:

- किसी मुद्रणालय के स्वामी या समाचार-पत्र के प्रकाशन से स्थानीय सरकार पंजीकरण जमानत माँग सकती है, जो कि न्यूनतम रु. 500 तथा अधिकतम रु. 2000 होगी।
- आपत्तिजनक सामग्री के निर्णय का अधिकार प्रांतीय सरकार को होगा न कि अदालत को।
- सर तेजबहादुर सप्रू, जो उस समय विधि सदस्य थे, की अध्यक्षता में सन 1921 में एक समाचार-पत्र समिति की नियुक्ति की गई, जिसकी सिफारिशों पर 1908 और 1910 के अधिनियम निरस्त कर दिए गए।

भारतीय प्रेस (संकटकालीन शक्तियाँ) अधिनियम, 1931 : इस अधिनियम के द्वारा प्रांतीय सरकार को जमानत राशि जब्त करने का अधिकार मिला तथा राष्ट्रिय कांग्रेस के विषय में समाचार प्रकाशित करना अवैध घोषित कर दिया गया। उपर्युक्त अधिनियमो के अतिरिक्त, सन 1932 के एक्ट द्वारा पड़ोसी देशों के प्रशासन की आलोचना पर तथा 1934 ई. के एक्ट द्वारा भारतीय रजवाड़ो की आलोचना पर रोक लगा दी गयीं। सन 1939 में इसी अधिनियम द्वारा प्रेस को सरकारी नियंत्रण में लाया गया।

11वीं समाचार-पत्र जाँच समिति: मार्च 1947 में भारत सरकार ने एक समाचार-पत्र जाँच समिति का गठन किया और उसे आदेश दिया कि वह संविधान सभा में स्पष्ट किये गए मौलिक अधिकारों के सन्दर्भ में समाचार-पत्र संबंधी कानूनों का पुनरावलोकन करे।

समाचार-पत्र (आपत्तिजनक विषय) अधिनियम, 1951 : 26 जनवरी, 1950 को नया संविधान लागू होने के बाद सन 1951 में सरकार ने संविधान के अनुच्छेद 19 (2) में संशोधन किया और फिर समाचार-पत्र (आपत्तिजनक विषय) अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम उन सभी समाचार-पत्र संबंधी अधिनियमो से अधिक व्यापक था जो कि उस दिन तक पारित हुए थे। इसके द्वारा केंद्रीय तथा राजकीय समाचार-पत्र अधिनियम, जो उस समय लागू था, समाप्त कर दिया गया। नये कानून के तहत सरकार को समाचार-पत्रों तथा मुद्रणालयों से आपत्तिजनक विषय प्रकाशित करने पर उनकी जमानत जब्त करने का अधिकार मिल गया। परंतु अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन तथा भारतीय कार्यकर्ता पत्रकार संघ ने इस अधिनियम का भारी विरोध किया। अत: सरकार ने इस कानून की समीक्षा करने के न्यायाधीश जी. एस. राजाध्यक्ष की अध्यक्षता में एक समाचार-पत्र आयोग नियुक्त किया। एस आयोग ने अपनी रिपोर्ट अगस्त 1954 में प्रस्तुत की, जिसके आधार पर समाचार-पत्रों के पीड़ित संपादक तथा मुद्रणालय के स्वामियों को जूरी द्वारा न्याय माँगने का अधिकार प्राप्त हो गया।

स्वाधीनता संग्राम काल की कुछ प्रमुख कृतियाँ

पुस्तक	लेखक
अनहैप्पी इंडिया	लाला लाजपत राय
गीता रहस्य	बाल गंगाधर तिलक
बंदी जीवन	शचींद्र नाथ सान्याल

इंडियन होमरूल	महात्मा गाँधी
इंडिया डिवाइडेड	राजेंद्र प्रसाद
इंडिया टुडे	रजनी पाम दत्त
इंडियन इस्लाम	टाइटस
नेशन इन मेकिंग	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
पाकिस्तान एंड द पार्टीशन ऑफ इंडिया	बी. आर. अंबेडकर
भवानी मंदिर	बारीन्द्र कुमार घोष
द फिलॉसफी ऑफ द बॉम्ब	भगवती चरण बोहरा
माई एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ	महात्मा गाँधी
सत्यार्थ प्रकाश	दयानंद सरस्वती
इंडियन स्ट्रगल	सुभाषचंद्र बोस
पावर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया	दादाभाई नौरोजी
आनंद मठ	बंकिमचंद्र चटर्जी
इंडिया विन्स फ्रीडम	मौलाना अबुल कलाम आजाद
तराना-ए- हिंद	मोहम्मद इकबाल
डिस्कवरी ऑफ इंडिया	जवाहरलाल नेहरू
इंडिया फ्रॉम कर्जन टू नेहरू एंड आफ्टर	दुर्गा दास
द स्कोप ऑफ हैप्पीनेस	विजयलक्ष्मी पंडित
इंडियाज पास्ट	आर्थर ए. मैक्डॉनल
इंडिया एंड इंडियन मिशन	एलेक्जेंडर डफ
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम	वी. डी. सावरकर
पथेर दावी	शरतचंद्र चट्टोपाध्याय
लाइफ डिवाइन	अरविंद घोष
सोंग ऑफ इंडिया	सरोजिनी नायडू
गीतांजलि, गोरा	रवीन्द्रनाथ टैगोर
नेशन्स वॉयस	राधकृष्णन
गैदरिंग स्टॉर्म	लैपियरे, कॉलिंस
एसेज ऑन गीता	अरविंद घोस
नील दर्पण	दीनबंधु मित्र
द बन्च ऑफ ओल्ड लेटर्स	जवाहरलाल नेहरू
हिंट्स फॉर सेफ कल्चर	लाला हरदयाल
इंडियन फिलॉसफी	डॉ. राधकृष्णन
इंडिया अरेस्ट	वैलेन्टाइन शिरोल
इंडिया ए नेशन	ऐनी बेसन्ट
इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया	आर. सी. दत्त
इंडियन रेनेसां	सी. एफ. एडूज

क्रीसेंट मून, पोस्ट ऑफिस	रवीन्द्रनाथ टैगोर
द रिडल्स ऑफ हिंदुइज्म	भीमराव अंबेडकर
इंडियन डायरी	ई। एस. मांटेग्यू
कमेंटरीज ऑफ द कुरान	सैय्यद अहमद खान
ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री	जवाहरलाल नेहरू
माई अली लाइफ, हिंद स्वराज	महात्मा गाँधी
रिलिजन एंड सोशल रिफॉर्म	एम. जी. रानाडे

प्रेस की भूमिका एवं प्रभाव (Role and Impact of Press)

राष्ट्रीय भावना के उदय एवं विकास में प्रेस ने निश्चय ही देश के स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में राजनितिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कतिक एवं प्रत्येक स्तर पर इसकी भूमिका सराहनीय रही। वस्तुत: ब्रिटिश सरकार के वास्तविक उद्देश्य को, उसकी दोहरी चालो को तथा उसके द्वारा भारतीय के शोषण को जनता के समक्ष रखने वाला माध्यम प्रेस ही था।

प्रेस की भूमिका एवं प्रभाव संबंधी अन्य तथ्य इस प्रकार हैं:

- तत्कालीन युग का मुख्य उद्देश्य जन जागरण था और इस उद्देश्य की प्रगति में प्रेस की भूमिका सक्रिय तथा सशक्त रही।
- कांग्रेस की स्थापना से पहले समाचार-पत्र देश में लोकमत का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। पत्रकारिता को अपना बहुमूल्य समय देकर समाचार-पत्रों के माध्यम से सरकार की नीतियों की आलोचना कर तथा विभिन्न विषयों पर लेख लिखकर शिक्षित भारतीय देशवासियो को सरकार के विभिन्न कार्यो तथा देश की समकालीन स्थिति से अवगत करा रहे थे।
- भारतीय समाचार-पत्रों ने लोगो को राजनितिक शिक्षा देने का जिम्मा अपने ऊपर ले लिया था। कांग्रेस की माँग को बार-बार दोहराकर प्रेस सरकार तथा जनता को प्रभावित करता रहता था।
- अतिवादी जुझारू राष्ट्रवाद को फैलाने में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, वरिंद्र घोष, अरविंद घोष, विपिनचंद्र पाल इत्यादि ने प्रेस का ही सहारा लिया।
- सर्वाधिक उल्लेखनीय रूप से, राष्ट्रीय आंदोलन को लोकप्रिय बनाने में समाचार-पत्रों के अमूल्य योगदान को नकारा नहीं जा सकता। इन पत्रों के संपादकों एवं आम जनता के बीच भावनात्मक एकता एवं सहानुभूति का संबंध कायम हो चूका था। यह कहना भी गलत न होगा कि जनमत का निर्माण एवं विकास भारतीय भाषायी पत्रों की स्थापना एवं विकास के परिणामस्वरूप ही संभव हो सका।

सन्दर्भ

- अम्बिका प्रसाद वाजपेयी (1986), समाचारपत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल, वाराणसी।
- हिरण्यमय कार्लेकर (2002), 'द मीडिया : इवोल्यूशन, रोल ऐंड रिस्पांसिबिलिटी'।
- एन.एन. वोहरा और सव्यसाची भट्टाचार्य (सम्पा.), लुकिंग बैक : इण्डिया इन ट्वेंटियथ सेंचुरी, एनबीटी और आईआईसी, नयी दिल्ली।
- मोहित मोइत्रा (1993), अ हिस्ट्री ऑफ जर्नलिजम, नैशनल बुक एजेंसी, कोलकाता।
- आर. पार्थसारथी (1989), जर्नलिजम इन इण्डिया : फ्रऱॉम द अर्लिएस्ट टाइम्स टु प्रजेंट डे, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.
- एस.पी. शर्मा (1996), द प्रेस : सोसियो-पॉलिटिकल अवेकनिंग, मोहित पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.
- पी.सी. चटर्जी (1987), ब्रॉडकास्टिंग इन इण्डिया, सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.
- के. बालासुब्रह्मण्यम (1999), द इम्पेक्ट ऑफ ग्लोबलाइजेशन ऑफ मीडिया ऑन मीडिया इमेजिज : अ स्टडी ऑफ मीडिया इमेजिज बिटवीन 1987-1997, अप्रकाशित थीसिस, ओहाइयो स्टेट युनिवर्सिटी, कोलम्बस.

साहित्य के प्रसार में अनुवाद की भूमिका

डॉ० स्वाती ठाकुर

कोई भी अभिव्यक्ति संप्रेषण के बिना अधूरी है, असफल है। साहित्य भी मूलतः अभिव्यक्ति ही है। उसके भाव की संप्रेषणीयता को व्यापक क्षितिज प्रदान करने में अनुवाद की प्रक्रिया कारगर भूमिका अदा करती है। साहित्य का अनुवाद भी एक साहित्यिक प्रक्रिया ही है, जो पूरी सृजनात्मकता की माँग करता है। फर्क यह है कि अनूदित साहित्य में कल्पना का वह अवकाश नहीं रह पाता है।

साहित्य और अनुवाद यों तो दो भिन्न शाखाएँ हैं, पर, साहित्य को वैश्विक पघ्फलक प्रदान करने में अनुवाद की भूमिका असंदिग्ध है, इसमें कोई दो राय नहीं। साहित्य पूरी तरह रचनात्मक होता है, जबकि अनुवाद उस तरह से रचनात्मक नहीं होता है। अनुवाद के संदर्भ में उस तरह की रचनात्मकता संभव भी नहीं है। अनुवाद साहित्य की रचनात्मकता को दूसरी भाषा में रूपांतरित करता है। इस लिहाज से अनुवाद को संप्रेषण का माध्यम कहा जा सकता है। अनुवाद के ही माध्यम से किसी साहित्य की विषम एवं विजातीय समाज तक उपलब्धता संभव हो पाती है।

साहित्य जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है। विश्वभर के साहित्य में तद्युगीन सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवेश को विभिन्न विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है। इन अभिव्यक्तियों को अनुवाद ही विभिन्न भाषा-भाषी पाठक समुदाय से जोड़ता है। वे पाठक, जो सीधे तौर पर उन अभिव्यक्तियों से रू-ब-रू नहीं हो पाते, अनुवाद के माध्यम से ही उनका पाठ कर पाते हैं।

1857 के आस-पास ही भारत में तीन महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई, जिससे अंग्रेजी पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई। इसके साथ ही अंग्रेजी न जानने वालों तक अंग्रेजी साहित्य उपलब्ध कराए जाने की सोच भी बढ़ी। इससे अनुवाद विधा को और अधिक प्रश्रय मिला। अनुवाद की उपयोगिता को तद्युगीन साहित्यकार भी स्वीकार कर रहे थे:-

दूसरी भाषाओं के लेखों और पुस्तकों का अपनी भाषा में अनुवाद न किया जाए, तो साहित्य की बहुत हानि होती है- दूसरी भाषाओं में जो अच्छी-अच्छी बातें मौजूद हैं, वे अनुवाद के बिना हमारी भाषा में न आवें, तो हमें उनका ज्ञान भी न हों। हमारी दशा कूपमंडूक की सी हो जाए। मौलिक ग्रंथ यदि सूर्य है, तो अनुवाद-ग्रंथ दीपक हैं, जो अंशतः सूर्य का ही काम करते हैं।[1]

इसके विपरीत एक वर्ग ऐसा भी था, जो विदेशी भाषा, उनकी सभ्यता संस्कृति के खिघ्लाफ था। इनके अंग्रेजी के विरोध को देखते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं: किसी कारण से जो लोग अच्छी पुस्तकों के हिन्दी अनुवादों को हीन दृष्टि से देखते हैं, वे हिन्दी के मित्र नहीं शत्रु हैं। जिस हिन्दी के लेखकों में अभी तक दस-पाँच अनुवादक भी नहीं दिखाई देते, उनमें नए और मौलिक ग्रंथों को लिखने वाले कहाँ से आवेंगे एक भी अच्छी पुस्तक का अनुवाद पचास नई, पर निःसार पुस्तकों की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखता है। अतएव प्रलापियों के प्रलाप की परवाह न करके संस्कृत, अंग्रेजी, बांग्ला, मराठी और गुजराती आदि भाषाओं के उपयोगी ग्रन्थों का अनुवाद करके हमें हिन्दी का साहित्य उन्नत करने में जरा भी संकोच नहीं करना चाहिए।[2]

द्विवेदी जी के इस कथन से इस बात की पुष्टि होती है कि अनूदित साहित्य से समाज में जागरूकता आती है, लोगों की चेतना का विकास होता है। भारत में मध्य वर्ग का उदय सबसे पहले बंगाल में हुआ, वहीं सर्वप्रथम भारतीय तथा अंग्रेजी भाषा के साहित्य का हिन्दी अनुवाद किया गया। यही कारण है कि बंगाल में ही सर्वप्रथम नवजागरण आया। अभिप्राय यही कि सामाजिक, सांस्कृतिक विकास भी अन्य संस्कृतियों, समाज की स्थितियों को जाने बगैर संभव नहीं। अनुवाद दूसरी संस्कृति सभ्यता से हमारा साक्षात्कार ही नहीं, संवाद भी कराता है।

आधुनिक युग में साहित्यानुवाद का आरंभ नाटकों के अनुवाद से माना जा सकता है। इस युग के पहले ही चरण भारतेन्दु युग में मूल रचना के साथ-साथ दूसरी भाषाओं के नाटकों का अनुवाद भी किया जाता रहा। भारतेन्दु ने स्वयं संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी

के कई नाटकों का अनुवाद किया। उन्होंने 'विद्यासुन्दर' का संस्कृत के 'चौर पंचाशिका' के बांग्ला संस्करण से, 'मुद्राराक्षस' का संस्कृत से तथा 'दुर्लभ बंधु' का शेक्सपीयर के 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' से हिन्दी अनुवाद किया है। भारतेन्दु के अतिरिक्त भी कई रचानाकारों रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बालमुकुन्द गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, बच्चन, कमलेश्वर, अमृता प्रीतम, निर्मल वर्मा, अज्ञेय, मोहन राकेश, प्रभा खेतान आदि ने कापफी अनुवाद किया है। आज भी यह सिलसिला अनवरत चला आ रहा है। राजेन्द्र यादव, अशोक वाजपेयी, नीलाभ अश्क आदि ने कई महत्त्वपूर्ण कृतियों के अनुवाद किए हैं।

गणेश शंकर विद्यार्थी ने तो यहाँ तक कहा है कि–"किसी श्रेष्ठ कृति को अनुवाद के द्वारा लोगों को उपलब्ध कराना मौलिक रचना करने की तुलना में अधिक महत्वूपर्ण काम है।"[3]

अनुवाद ने भाषा के विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। श्रीधर पाठक द्वारा गोल्डस्मिथ की रचना 'द हरमिट' के 'एकांतवासी योगी' नाम से किए गए अनुवाद के बाद से ही खड़ी बोली में कविता की जाने लगी। डॉ. रमण कुमार सिन्हा का मानना है कि 'द हरमिट' के अनुवाद से काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली की स्थापना हुई।'[4]

साहित्य रचना मात्र नहीं होता, वह उत्प्रेरक भी होता है। साहित्यिक कृतियाँ विमर्श/आंदोलन को सतेज करती हैं। चूँकि साहित्य का सीधा सरोकार समाज से होता है, इसलिए साहित्यिक विमर्श सामाजिक आंदोलनों को तीव्र करने के लिए ही होता है। इन विमर्शों को अनुवाद ने ही व्यापकता प्रदान की है, इसमें कोई संदेह नहीं है। स्त्री-विमर्श इन दिनों साहित्य के केन्द्र में आता जा रहा है। इस स्त्री-विमर्श की धार को तेज करने में अनुवाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'द सेकण्ड सेक्स' अनुवाद के जरिए ही हिन्दी साहित्य समाज तक पहुँच सकी। सिमोन द बोउवार द्वारा लिखित इस रचना का हिन्दी अनुवाद प्रभा खेतान द्वारा 'स्त्री उपेक्षिता' शीर्षक से किया गया है। इसके अतिरिक्त जॉन स्टुअर्ट मिल के 'स्त्रियों के पराधीनता' के कारण पर किया गया विचार तथा वर्जीनिया वुल्पफ्फ आदि के प्रतिरोध के स्वर को हिन्दी समाज अनुवाद के सहारे ही सुन सका। तस्लीमा नसरीन की रचनाओं में व्यक्त विरोध, वहाँ की हैवानियत भरी स्थिति, वहाँ का भयावह सच अनुवाद के सहारे ही समग्र विश्व के सामने आ सका।

ठीक इसी भाँति दलित विमर्श की रचनाएँ भी अनुवाद के सहारे ही व्यापक पाठक-समुदाय से जुड़ पा रही हैं। हमारे यहाँ दलित-लेखन की शुरूआत मराठी साहित्य में हुई। बाद में, अनुवाद के द्वारा ही उसका प्रभाव व्यापक समूह पर पड़ सका। निर्मला पुतुल, दया पवार, शरण कुमार लिंबालेआदि का दलित साहित्य हम अनुवाद के माध्यम से ही पढ़ पा रहे हैं। अनुवाद न हो तो साहित्य के क्षेत्र में एक ठहराव निश्चय ही आ जाएगा, वह सीमित हो जाएगा। साहित्य सिर्फ अपने विषय से ही व्यापक नहीं बनता, संप्रेषण से भी बनता है। साहित्य की संप्रेषणीयता को व्यापक अनुवाद बनाता है और इस तरह से अनुवाद साहित्य को देशकाल की सीमा से बाहर निकाल विमर्श के लिए एक वैश्विक मंच प्रदान करता है।

साहित्य की तमाम विधाओं में प्रतिरोध के स्वर सुनाई देते हैं। इन्हीं स्वरों को अनुवाद और तेज कर देता है। साहित्य का लक्ष्य किसी भी तरह की विषमता के प्रति आक्रोश अभिव्यक्त कर संघर्ष को तेज करना तथा मानवता की स्थापना करना ही है। चाहे वह कबीर हों, निराला हों, नागार्जुन हों, पाश हों, महाश्वेता देवी हों, ओमप्रकाश वाल्मीकि हों, निर्मला पुतुल हों, सिमोन द बोउवार हों, सभी के साहित्य में अपने समकालीन समाज की विषमता तथा रूग्ण मानसिकता के प्रति तीखे प्रश्न किए गए हैं। अनुवाद ने प्रतिरोध के इन स्वरों को किसी भाषा विशेष की सीमा से बाहर निकाल कर व्यापक तथा तीव्र बनाया है।

अनुवाद न होता, तो ग्रीक साहित्य की महान त्रासदी सोफोक्लीज कृत 'इडिपस' को उस भाषा का ज्ञान न रखने वाला न जान पाता, अनुवाद न होता तो विश्व साहित्य की कई महान रचनाएँ– 'मदर', 'वार एंड पीस', 'क्राइम एंड पनिशमेन्ट', 'इलियड एंड ओडिसी', 'वुदरिंग हाइट्स', 'मेनकेम्फ' आदि से हम अनभिज्ञ ही रहते।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द, प्रेमचन्द, निराला आदि की रचनाओं से गैर भारतीय पाठक भी अनुवाद के ही माध्यम से परिचित हो पाता है। यही नहीं, भारतीय भाषाओं की भी कई रचनाओं को पढ़ पाने में हम अनुवाद के बिना असमर्थ ही होते। रवीन्द्रनाथ, शरत्चन्द्र, महाश्वेता देवी– की बांग्ला रचनाओं से, विद्यापति, नागार्जुन आदि की मैथिली रचनाओं से भी हिन्दी पाठक अनजान ही बने रहते।

अनुवाद के कारण ही जॉन मिल्टन, गोल्डस्मिथ, वड्र्सवर्थ, शेली, कीट्स, शेक्सपीयर भी अपनी विपुल रचनाओं के साथ हिन्दी में आते चले गए।

इसके अतिरिक्त कई महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों से भी भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य अनुवाद के बिना अप्रभावित ही रहता। यह अनुवाद ही है, जिसकी वजह से भारतीय नाट्यशास्त्र का प्रभाव स्तानिस्लाव्स्की तथा ब्रेख्त के रंगमंच सम्बन्धी चिंतन पर पड़ सका। यह अनुवाद ही है कि कुन्तक तथा क्रोचे, रिचर्डस के सम्प्रेषण सिद्धांत तथा भट्ठनायक के साधारणीकरण सिद्धांत की तुलना हो सकी है। इस अर्थ में अनुवाद न सिर्फ साहित्य के प्रसार में अपितु साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

रीनातो पोज्जोली ने "अनुवादकों को साहित्य के लोकतंत्र का सबसे अधिक विश्वव्यापी नागरिक बताया है, जिनकी अनुपस्थिति साहित्यिक परंपरा को धीरे-धीरे संकीर्ण और गेटे के शब्दों में एक प्रकार की उकताहट का शिकार बना लेती है।"[5]

आजकल तो रचनाओं के प्रकाशन के साथ ही उनके अनुवाद भी प्रकाशित होने लगे हैं। किरण देसाई, सलमान रूश्दी, अनीता देसाई, चेतन भगत, अरविन्द अडिगा आदि की रचनाएँ कई भाषाभाषियों को सहजता से उपलब्ध हो पा रही हैं। कई संस्थान तथा पत्रिकाएँ अनुवाद की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। अनुवाद को विधा के रूप में विकसित करने में पत्रिकाओं, प्रकाशन संस्थाओं तथा अकादमिक संस्थाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। साहित्य के अनुवाद की दिशा में जहाँ भारतीय ज्ञानपीठ तथा साहित्य अकादेमी दृढ़ता से प्रतिबद्ध हैं, वहीं नेशनल बुक ट्रस्ट साहित्य के साथ साहित्येतर रचनाओं के अनुवाद भी प्रकाशित करती है। इनके अतिरिक्त भारत-सरकार का प्रकाशन विभाग भी इस दिशा में उल्लेखनीय रूप से गतिशील है। 'अनुवाद' नामक पत्रिका इस क्षेत्र की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पत्रिका है। साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित 'इण्डियन लिटरेचर' और 'समकालीन भारतीय साहित्य' पत्रिकाओं का अनुवाद के व्यापक प्रचार-प्रसार में विशिष्ट योगदान है। इसके अतिरिक्त 'नया ज्ञानोदय' तथा 'हंस' में भी कई अनूदित रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं, जिससे निश्चय ही साहित्य का प्रसार क्षेत्र व्यापक होता है।

अंत में कहा जा सकता है कि "विश्व संस्कृति के विकास में अनुवाद का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। धर्म एवं दर्शन, साहित्य, शिक्षा, तकनीकी, वाणिज्य एवं व्यवसाय, राजनीति एवं कूटनीति जैसे संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का अनुवाद से अभिन्न सम्बन्ध है।"[6]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नवीनचन्द सहगल, काव्यानुवादः सिद्धांत और समस्याएँ, पृ. 9
2. वही, पृ. 8-9
3. Sherry Simonand Paul St- Pierre Ed., Changing the Terms, Pg. 89
4. डॉ. रमण सिन्हा, अनुवाद और रचना का उत्तरजीवन, पृ. 53
5. अनुवाद पत्रिका, अंक-85, अक्टूबर-दिसम्बर, 1995
6. जी. गोपीनाथ, अनुवाद सिद्धान्त और प्रयोग, पृ. 9

शोध-ललित कुमार सिंह नटवर : जीवनी और उनकी कविताओं में होली वर्णन

डॉ० कुमारी मीना सिंह

ग्राम + पोस्ट-बिठौली, वैशाली, थाना-भगवानपुर, बिहार

शोध सारांश

ललित कुमार सिह नटवर में साहित्यिक सरसता, राष्ट्रीय चेतना की दीप्ति, अभिनय की कुशलता और सामाजिक सेवा भावना की सृजनशील कर्मठता भरी हुई थी।वे कवि, नाटककार, कहानीकार के रूप मे बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उन्होनें अपने कहानियों में हास्य व्यंग का प्रयोग किया है वही अपने अभिनय कला से सभी को प्रभावित किया है। कवि के रूप मे उन्होने विभिन्न विषयों को अपना काव्य विषय बनाया है। होली पर इन्होने अनेक कविताएँ लिखी है। इन कविताओं के माध्यम से उन्होने लोगों को पवित्र ढंग से होली मनाने, दूसरो को कष्ट न पहुँचाने, भेदभाव मिटाकर एक रहने, सामाजिक समरसता बनाए रखने, होली के अवसर पर प्रेम से एक दूसरे को गुलाल लगाने की बात कही है। उनकी रचनाओं मे जीवन के विभिन्न रंगो की प्रस्तुति हुई है।

यदि साहित्य की सरसता, राष्ट्रीय चेतना की दीप्ति, अभिनय कीकुशलता और सामाजिक सेवा-भावना की सृजनशील कर्मठता से एक जीवन्तप्रतिमा का निर्माण किया जाय तो उसका नाम होगा-ललित कुमार सिंह

नटवर। नटवर जी को जन्म देने का श्रेय बिहार की रत्नगर्भा धरती मुजफ्फरपुर को है जो अनेक साहित्यकारों, समाजसेवियों, राजनेताओं तथा संतों को जन्म देकर गौरवान्वित होती रही है।

नटवर जी का जन्म मुजफ्फरपुर नगर के सरैयागंज मुहल्ले में संवत 1655 की ज्येष्ठ अमावस्या (तदनुसार 5 जून 1868 ई) को हुआ था। उनकेपिता का नाम महादेव सिंह और माता का नाम पान कुँवर था। महादेव सिंहआरा जिले के ब्रह्मपुर थानान्तर्गत महुआर गाँव के निवासी थे और यहाँ मुजफ्फरपुर नगरपालिका में तहसीलदार के पद पर नियुक्त थे। बाद में वे नगरपालिका में सब ओवरसियर हो गये। वस्तुत: 1815 के विद्रोह के बाद अंग्रेजों के दमनचक्र से बचने के लिए नटवरवजी के दादा रामफल सिंह जी अपने परिवार के साथ मुजफ्फरपुर आ गये तथा बहुत दिनों तक गुप्त रूप से यहाँ रहने के बाद वे यहीं के निवासी हो गये। बाबू रामफल सिंह जीवीर कुँवरसिंह की सेना के योद्धा थे। नटवर जी के पिता सत्संग प्रेमी सज्जन पुरुष थेऔर माता सात्त्विक जीवन व्यतीत करने वाली महिला। इन दोनों के जीवन व्यापार का गहरा प्रभाव नटवर जी पर पड़ा। सन् 1611 ई. में नटवर जी केपिता का तथा सन् 1616 ई. में माता का देहान्त हुआ। विद्यालय शिक्षा स्थगित हो जाने के बाद भी नटवर जी का पढ़ना-लिखना चलता रहा। स्वाध्याय के बल पर आपने हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला, उर्दू एवं गुजराती भाषाओं का अध्ययन किया। इनके माध्यम से आपका भाषा-ज्ञान विस्तृत हुआ और इन भाषाओं के साहित्य के अध्ययन से साहित्यिक संस्कारों का विकास हुआ। आप स्वभाव से सहृदय, रसिक और विनोदी थे। किशोरावस्था से ही आपमें नेतृत्व क्षमता एवं समाज सेवा की भावना प्रकट होने लगी। सन् 1913 ई. में आपने नवयुवक समिति की स्थापना की। नकल की प्रवृत्ति नटवर जी में बचपन से थी। दस-ग्यारह वर्ष की आयु में वे स्वांग बनाने में पटु हो गये थे। स्वांग में मुख्यत: वेश-भूषा, क्रिया और वाणी से किसी व्यक्ति की नकल की जाती है। यह अभिनय की प्रसिद्ध लोक शैली है। नाटक में अभिनय करके अभिनय कला विकसित करने वाले नटवरजी ने एक तो स्वयं कई छोटे-बड़े नाटकों की रचना की, दूसरे वे 1630 केबाद कलकत्ता चले गये। वहाँ उन्हें फिल्मों में काम करने का अवसर मिला। प्रसिद्ध रंगकर्मी श्यामानन्द जालान के अनुसार उन्होंने कलकत्ता में प्रसिद्ध न्यू थियेटर में संवाद लेखक तथा निर्देशक के रूप में काम किया। इसथियेटर में फिल्म

एवं नाटक दोनों का काम होता था। नटवर जी फिल्म में अभिनय, पटकथा, लेखन तथा निर्देशन का कार्य करते थे। यह एक स्थापित तथ्य है कि नटवर जी उच्च कोटि के अभिनेता थे। उनमें संवाद बोलने की पटुता तथा भाव-व्यंजना की अनुपम क्षमता थी। उनमें अभिनयकी प्रतिभा जन्मजात थी जो स्वांगों-जुलूसों से रंगमंच और फिल्मों तक पहुँची, विकसित हुई और निर्देशन तथा अभिनय दोनों क्षेत्रों में उसने अपना एक अलग कीर्तिमान बनाया।

नटवर जी साहित्य सृजन के क्षेत्र में कविता, कहानी, नाटक और आलोचनात्मक लेखों के सर्जक हैं। उनमें सृजनात्मक और आलोचकीय दोनों क्षमता थी। लेकिन एक बात बहुत स्पष्ट है कि सृजनात्मक लेखन, विशेषकर कविता के क्षेत्र में ही उनकी प्रतिभा अधिकउत्कर्ष पर पहुँची। नाटक जितना लिखा उससे अधिक अभिनय किया। उनकी रचनाएँ तत्कालीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई और पुस्तकाकार भी आयीं।

समाज सेवा के बीच से ही नटवर जी में राष्ट्र चेतना का भाव उदित हुआ। वे पहले क्रान्तिदल में सम्मिलित हुए। फिर 1616 ई. में होमरूल के लिए आन्दोलन किया। नटवर जी के साथ अनेक नवयुवकोंने राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर इस आन्दोलन में भाग लिया। सन् 1620 से 1631 तक वे कांग्रेस के कार्यकर्ता बनकर राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलनमें भाग लेते रहे। नटवर जी सहित कई लोग इस सिलसिले में कई बारजेल गये। उन्हीं के शब्दों में '1630 ई. में जवाहर दिवस के रूप में लगभग 31 सदस्य कांग्रेस के कार्य से जेल गये।' नवयुवक समिति के अध्यक्ष पशुपति कुमार शर्मा ने इन पंक्तियों के लेखक को बताया कि उनके पिता पं. रामेश्वर शर्मा इस बात की बराबर चर्चा करते थे कि नटवर जी के कारण नगर के सैकड़ों युवक देशभक्त बन गये और स्वाधीनता संग्राम मेंजेल गये। नटवर जी से स्वाधीनता का पाठ पढ़ने वाले भगवान लाल 1630 ई. में जवाहर दिवस के दिन तिलक मैदान में झंडा फहराते हुए शहीद हुए। रामनारायण मेहरोत्रा तथा वनवारी लाल शर्मा लगातार जेल यात्रा सेरुग्ण होकर मरे। इन सबके प्रेरणा गुरु नटवर जी ही थे।नटवर जी का जीवन सार्वजनिक जीवन का प्रतीक है।

उनका जीवन भारत और भारती की सेवा में इतना बिखरा हुआ है कि उनकेनिजी जीवन का कोई स्पर्श नहीं प्राप्त होता। मैं अनुमान करता हूँ कि उनके सामने एक वृहत्तर लक्ष्य था- समाजसेवा, जिसकी सिद्धि के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। साहित्य और समाज की सेवा में अपनी सम्पति बेचकर वे अनिकेत हो गये। कोई निश्चित आजीविका नहीं थी। अत: उनका जीवन पराश्रित था। वे खुले दिल के व्यक्ति थे। लगभग 30 के बाद उनका कार्य क्षेत्र बदल गया। वे कोलकाता में रहने लगे। वहाँ उन्होंने फिल्मों में काम किया। इससे लगता है कि वे जीवन यापन की कठिनाई से मुक्त होने के लिए सिनेमा की ओर गये। उन्होंने अवन्तिका सिने टोन नामक एक फिल्म संस्था का भी निर्माण किया जिसका कार्यालय पटना के बाकरगंज मुहल्ले में था।

ललित कुमार सिह ने अपनी लगभग दो दर्जन से अधिक कविताओं में होली से संबंधित अपनी भावनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने होली से संबंधित होली का संदेश, स्वागत बसंत, आ जाव, पवित्र होली, आज की होली आज लाज कैसी, आधुनिक ब्रज की होली, कईसे के होली मनाई, दुखिया किसान की होली, प्रेम मयी होली, आनंदमयी होली, अजीब धूम, होली उमंग सहित अनेक कविताएं लिखी है।

'पवित्र होली' शीर्षक कविता में उन्होंने कहा है कि होली का दिन शुभ दिन है। यह दिन भेदभाव मिटाकर सबको गले लगाने का दिन है। वे कहते हैं कि चलो भाई सभी लोग मिलकर होली मनाएं:

अहा! है आज शुभ दिन यह, मिलें सब एक हो कर के।
मिटा कर भेद-भावों को गले सब के लगाने को।
हृदय-पिचकारी में भर कर, मधुर सप्रेम के रंग को।
रँगे एक रंग में सब को दुरंगी के हटाने को।।
नशा पीवें सभी ऐसा कि निश दिन ही रहे रंगत।
झुमे फिर मस्त हो हो कर[1]

'आ जाव' शीर्षक कविता में उन्होंने कहा है बीते दिनों में अगर एक दूसरे से कोई गलती हुई हो तो उसे होली में भुलाकर एक दूसरे से मिलने का समय है:-

करो माफ पिछली जो अब तक हुआ हो।

मेरी भूल दिल से भुला जाव प्यारे।।

मधुर प्रेम - प्याला नशीला बना कर।

पिओ खुद भी, मुझको पिला जाव प्यारे।।

नहीं भेद भाव, रहे आज कुछ भी,

गले से लगो, खुद लगा जाव प्यारे।।

तुम्हें मैं चभोरूँ या तुम ही भिंजो दो।

रंगीली यह बाजी लगा जाव प्यारे।।

बहुत दिन तक ऐसा न अवसर मिलेगा।

खुले मन से आ जाव आ जाव प्यारे।।[2]

होली के अवसर पर ढोलक और झाल बजाने की परंपरा रही है। कवि निम्न पंक्तियों के माध्यम से संदेश देते हैं कि ऐक्य का ढोलक बजाकर उदासीनता को मिटाने की जरूरत है:-

उदासीपन मिटाने को।।

बजा कर ऐक्य का ढोलक सुधारक राग गा गा कर।

पवित्र होली के सन्देशे चलें सब के सुनाने को।।

न छोड़े इस सुअवसर को, सभी मिल कर अब आ जावें।

न जाने दिन कब आता है, पुनः इस के मनाने को।।[3]

एक अन्य रचना 'पवित्र होली' में उन्होंने सभी को एकता से रहने की बात करते हुए कहा है कि सभी मिलकर इस बात पर विचार करें कि अवनति कैसे मिटेगी और उन्नति कैसे हो।सभी एक दूसरे का प्रेमालीगंन करें और बैरी को भी होली के अवसर पर मीत बनाए:-

दै गलबाँहि लगाबहु गल सों, अरु मृदु वचन सुनाई।

परस्पर, वैरिन मीत बनाई।

सभी पिछली बिसराई।। खेलहु0।।

गाबहु राग - सुधार, एक्यता -ढोलक सुघर बजाई।

जुटि एक ठौर विचारहु सब मिलि, उन्नत बात सुहाई।

कवन बिधि अवनति जाईद्यखेलहु सब मिल भाई।[4]

अपने कई होली गीतो मे उन्होने सामाजिक एकता बनाए रखने की बात होली के माध्यम से की है। वे लोगो को होली संबंधी कविताओ के माध्यम से लोगो को समरसता बनाए रखने, विद्वेष की भावना को मिटाने और एक होकर रहने की बात करते हुए कहते है:-

अजी!आज होली है आओ सभी।

रंगो खुद भी, सब को रँगाओ सभी।।

बिना रंग में बोरे किसी को न छोड़ोय खुशी मन से गावो बजावो सभी।

यही आज अवसर है आपस में मिल कर। हृदय की बुराई नशाओ सभी। नहीं भिन्नता दोस्त - दुश्मन में मानोय गले एक एक को लगाओ सभी।

पिओ प्रेम-प्याला, नशा इस तरह हो।[5]

आज लाज कैसी शीर्षक 'कविता' में कवि ने गुलाल प्रेम से लगाने की बात कही है। वे कहते है कि प्रेम प्याला भर भर कर समाज से दूषितपन को मिटाकर होली के पावन अवसर पर सभी एक साथ मिलकर रंग पिचकारी से होली खेले:-

होली में लाज जनि कर प्यारे।
हिय सों लाग गुलाल मलन दे,मन की साध पुरा जा रे।
सब पिछली कर माफ हमारी, भेद भाव तजि आ जा रे।
प्रेम पियाला भर-भर कर तू, आकर आज पिला जा रे।
नेह-सलिल रंग-प्रेम घोर के, मन - पिचकार चला जा रे।
निज समाज दूषितपन को, जड़ से आज हटा जा रे।
आयो अवसर बहुत दिनन पर,चूको जनि सब आ जा रे।(6)

'दुखीए किसान की होली' मे एक व्यथित किसान की होली का वर्णन किया है। वे कहते है की भूके पेट, तन पर कपड़ा नही, पानी कम होने के कारण अन्न कम हुआ है। ऐसी स्थिति मे कैसे होली मानेगी। कहानी का तात्पर्य है की साधन संपन्नता होने पर होली का आनंद बढ़ जाता है अन्यथा व्यक्ति के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है:-

एक त पानी भेल न एमकी जे से होइत खूब अन्न।
जे कुछ भेल सेहु छिन लेलक की खाएब भगवन्त?
न दी तेपर मारे हमरा कोठरी में करे बन्द।
घर दुआर भी छीन निठुर कर देलक बेअवलम्ब।
बेगारी में काम करावें, पुरा देबे न बन्न।
करइत करइत काम बाप रे! टूट गेल छन बन्द।
की गाऊ आउर कथी बजाऊ न ढोलक न चंग।
की खाऊ पीऊ पइसा बिन न ताड़ी न भंग। सब केहु घर घर खुशी मनावे आएल देख बसन्त।(7)

'प्रेम मयी होली' शीर्षक कविता मे कवि ने सभी को मिल जुलकर होली खेलने का आह्वान किया है:-

सबहि मिलि आओ प्यारे, आज खेलें होरी।।
निर्मल वस्त्र पहन बनि ठनिकै,हाथ में लै रंग झोरी।
अपने अपने घर में निकसैं, गावत गीत सुहोरी।।
अबीर गुलाल मलैं गालिन में, सब तन देंय चभोरी(8)

संदर्भ

1. ललित सिह नटवर रचनावली- सं. - डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 21
2. ललित सिह नटवर रचनावली- सं. - डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 22
3. ललित सिह नटवर रचनावली- सं. - डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 23
4. ललित सिह नटवर रचनावली- सं. - डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 23
5. ललित सिह नटवर रचनावली- सं. - डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 23
6. ललित सिह नटवर रचनावली- सं. - डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 24
7. ललित सिह नटवर रचनावली- सं. - डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 26
8. ललित सिह नटवर रचनावली- सं. - डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 26

शोध-ललित कुमार सिंह नटवर: व्यक्तित्व और कविताओं में व्यक्त विचार

डॉ० मनोज कुमार सिंह

ग्राम+पोस्ट-बिठौली, वैशाली, थाना-भगवानपुर, बिहार

शोध सारांश

ललित कुमार सिंह नटवर बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उनका संपूर्ण जीवन सृजनात्मक शक्ति से संपन्न तथा कर्म समाज सेवा को समर्पित रहा है। उनकी रचनाओ में समाज सुधार, एकता, हास्य, व्यंग के साथ प्रभु कि आराधना के भी भाव व्यक्त हुए है। उन्होंनेहोली, विनय, प्रेम, देश, पावस, वसंत सहित अन्य अनेक विषयों पर अपनी भावना को अभिव्यक्ति दी है।

ललित कुमार सिंह नटवर का सम्पूर्ण जीवन रचनात्मक दृष्टि सम्पन्न तथा कर्म समर्पित मानव की महागाथा है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। कवि, नाटककार तथा कहानीकार के रूप में उन्होंने अपनी कृतियों से माँ भारती का श्रृंगार किया तथा अपनी नाट्य प्रतिभा और अभिनय कला से रंगमंच और सिनेमा दोनों को ऊँचाई दी। मुजफ्फरपुर की रंगमंच-परम्परा सही अर्थो में उन्हीं से प्रारंभ होती है।

नटवर जी की जीवन यात्रा के अवलोकन से कुछ रेखाएं उभरती हैं जिनसे उनके व्यक्तित्व का भावचित्र बनाया जा सकता है। मेरी दृष्टि में उनमें नेतृत्व की जन्मजात प्रतिभा थी। बचपन से ही हमजोलियों को संगठित कर कोई रचनात्मक कार्य कर डालना उनके व्यक्त्वि का आधारभूत गुण था। इसी सृजनात्मक नेतृत्व क्षमता के कारण वे नवयुवक समिति जैसी संस्था को जन्म दे सके, बालचर समिति के प्रान्तीय प्रचारक बनकर समाज की सेवा कर सके तथा युवकों की शक्ति को राष्ट्रभक्ति की चेतना में परिणत कर सके। वे स्वभाव से विनोदी और अभिनय कुशल थे। किशोरावस्था में स्वांग मंडली बनाकर लोगों का मनोरंजन करना, युवावस्था में नाटक खेलना तथा प्रौढ़ावस्था में फिल्मों में अभिनय करना उनके भीतर निहित अभिनय प्रतिभा का प्रमाण है। साहित्य में नाट्य रचना उनकी अभिनय प्रतिभा का रचनात्मक पक्ष है। सरदार राम औतार सिंह के अनुसार कलकत्ता के हिन्दी नाट्य परिषद् के साथ नटवर जी के जुड़ जाने से न केवल हिन्दी नाटकों पर पारसी प्रभाव का अन्त हुआ बल्कि कलकत्ता में आधुनिक रंगमंच एवं नाट्य अभिनय का विस्तार हुआ। प्रसिद्ध नाट्य संस्था अनामिका की स्थापना में नटवर जी की प्रेरणा थी। शिवकुमारी शर्मा के अनुसार वे नाट्य कला मर्मज्ञ एवं अभिनय सम्राट थे। सरलता उनकी विशेषता थी। प्रसिद्ध रंगकर्मी श्यामानन्द जालान को नाट्य अभिनय के क्षेत्र में लाने का श्रेय नटवर जी को है। नटवर जी के व्यक्तित्व में चुम्बकीय आकर्षण और सहृदयता की ऐसी तरलता थी कि हर व्यक्ति उनसे प्यार करता था। तभी तो नगर के जमींदार श्री सरयुग प्र. साह ने नटवर जी के अनुरोध पर नवयुवक समिति के वाचनालय तथा कार्यालय के लिए अपना भवन 1640 से 1651 तक नि:शुल्क चलाने दिया था। इसी तरह दूसरे लक्ष्मीपुत्र श्री गंगा प्रसाद चौधरी ने नटवर जी के कहने पर सरैयागंज स्थित अपने में समिति का वाचनालय सह पुस्तकालय 1651 से 1656 तक नि:शुल्क चलाने दिया।

नटवर जी संवेदनशील व्यक्ति थे। दूसरों के दु:ख में सहयोगी बनना, रोगी तथा असहाय की सेवा करना, निराश्रित शवों को कंधा देकर उनका दाह-संस्कार कराना उनकी संवेदनशीलता का उदाहरण है जो उनको उच्चकोटि का मनुष्य प्रमाणित करता है। वे स्वभाव से फकीर थे। विवाह नहीं किया। माता-पिता के निधन के उपरान्त कहने भर के लिए उनके पास एक घर था। वह भी देशभक्ति, समाजसेवा और साहित्य साधना की वेदी पर बिक गया। वे "रहने को घर नहीं है सारा जहाँ हमारा" के उदाहरण थे।नटवर जी ने

किशोरावस्था से ही श्रेष्ठजनों का स्नेह पाया। बड़े होने पर हम उम्र साथियों का प्यार पाया और शिष्यों से गुरुजी का आदर पाया। इस तरह तीन पीढ़ियों में फैला उनका व्यक्तित्व कालातीत होकर शिव का प्रतीक बन गया था। उन्हें नगर के सभी रईसों, जमींदारों, बुद्धिजीवियों, समाजसेवियों, लक्ष्मीपतियों और सामान्य जनों का स्नेह सम्मान प्राप्त था जो एक अनुपम बात थी। उनकी मित्र पीढ़ी में समिति के पूर्व मंत्री शंभुनाथ गुप्त के पिता बाबू बद्रीनारायण साह तथा नगर के प्रसिद्ध रईस बाबू उमाशंकर प्रसाद जैसे जमींदार, पं. रामदेव ओझा और पंडित रामेश्वर शर्मा जैसे प्रख्यात वैद्य तथा ईश्वरदास जालान जैसे लक्ष्मीपति थे जो उस समय समाज की धुरी थे। मैं नटवर जी के शिष्यों में से दो के नाम विशेष रूप से लेना चाहता हूँ। एक मोहनलाल गुप्त का जिनके घर में उन्होंने अंतिम साँस ली और दूसरे श्री ज्ञानमोहन दास का जिन्होंने अपनी सारी सम्पति लगाकर नवयुवक समिति के भवन को वर्तमान रूप देकर आदर्श गुरुदक्षिणा, दी। गुरु के साथ ऐसे शिष्य भी अमर हैं।

गुलाल के सर्मपण में नटवर जी ने लिखा है – "मेरे भी सब कुछ तुम्ही हो। तुम विश्व-ब्रह्माण्ड रंगशाला के नटवर हो तो मैं भी सांसारिक रंगशाला का नटवर हूँ द्यतुम मुरली बजाते हो तो मैं उसकी ध्वनियों को पद्य-बद्ध करता हूँ। इसलिए लो यह थोड़ा सा जैसा-तैसा गुलाल तुम्हारे श्री चरणों में अर्पित है। बड़े प्रेम से, बड़ी भक्ति से और बड़े स्नेह से यह तुच्छ भेंट लाया हूँ।" इस कथन से तथा उनकी कुछ कविताओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे कृष्ण की भक्ति में सरावोर सहृदय थे। आज वे नहीं हैं लेकिन जब तक नवयुवक समिति रहेगी, समाज में राष्ट्रीयता, साहित्य, नाट्यकला, अभिनय, सेवा, मनुष्यता, संवेदनशीलता और सहृदयता का सम्मान करने वाले लोग रहेंगे तब तक नटवर जी याद किये जायेंगे।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी ललित कुमार सिंह नटवर की कविताओं में प्रक्रति के मानव जीवन के विविध रूपों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने होली का संदेश, स्वागत वसंत, पवित्र होली, आज की होली, आधुनिक ब्रज की होली, आनंदमय होली, नकली उपदेशक, नकली कवि, नकली लीडर, शुभ दिन, विनती, याचना, आशा, अनुरोध, परीक्षा, पूजा, जिज्ञासा, सुखद समीर, सावधान, पावस की कोयल, पावस की दुखिया, सावन सुहावना, विश्वास, सहित अनेक शीर्षकों में अपनी भावनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने स्वागत वसंत नामक कविता में बसंत के आगमन के पूर्व जो व्यक्ति में शारीरिक और मानसिक परिवर्तन होते हैं, साथ ही ठंड आने पर अंगों में जो शिथिलता आती है उसकी अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियो मे कवि ने बड़ा ही मनोरम ढंग से किया है:-

ढीली सी, हो रही नसें थीं, हृदय चूर था।
वह आशा उत्साह बहुत हो रहा दूर था।
सूख गया था रक्त, मुखों छाई पियराई।
असमय में ही हाय, झुर्रियाँ - सी पड़ आई।
ठढ़क ऐसी छा गई, अंग शिथिल से हो गये।
अवयव - संचालन - नियम, मानो थे सब खो गये।(1)

'स्वागत बसंत' कविता की अन्य पंक्तियो मे उन्होंने ठंड के मौसम मे उष्ण विहीन हुए वृक्ष, लतीकाओ के बारे मे वर्णन करते हुए लिखा है:-

होकर उष्ण - विहीन, दुखित थी वृक्ष -लताएँ
बनी हुई थीं मूक विहंगम वर वनितायें।
इसी तरह से अन्य जीव -गण भी आकुल हो।
शीत-त्रास से छिपे हुए से थे व्याकुल हो।
पर, इस काल-कुनाट्य का दृश्य हो रहा अन्त है।
जड़-चेतन में, जीव में, छाया पुनः वसन्त है।(2)

'स्वागत वसंत' शीर्षक कविता मे उन्होने वसंत के आगमन पर और जाड़ा के चले जाने पर मनुष्य के अंदर और बाहर जो परिवर्तन होते हैं उसका उन्होंने बड़ा ही सहजता से वर्णन किया है। वह कहते हैं कि गर्मी आने वाली है, और ठंड का समापन होने

वाला है। मुख से पीलापन मीट रहा है, रक्त का संचार जो धीमा पड़ गया था, वसंत के आगमन के साथ भी अब तेजी आने लगी है। मन में नव उत्साह और नव उमंग एक बार फिर से भर आया है। उदाहरण स्वरुप निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है:-

रक्त खलबला उठा, नसों में बिजुली छाई।
पीलापन मिट रहा, मुखों पर लाली आई।
नव उत्साह, उमंग हृदय में फिर है छाई।
जभी वसन्ती सुछवि मोहिनी पुनः लिखाई।
रे वसन्त, बस अन्त कर घड़ी हेमन्त - कुराज की।
सुखद छटा छिटका यहाँ अपने सरस स्वराज्य की।[3]

होली के आगमन को लेकर सर्वत्र खुशी का माहौल है। ऐसा लग रहा है जैसे वर्षो की अरमान पूरी होने वाली है। होली को लेकर जो वातावरण समाज मे व्याप्त है उसका बड़ा ही मनोरम वर्णन उन्होंने किया है। होली के आगमन की तैयारी में सभी लोग जुट जाते हैं। लोग बेसब्री से होली का इंतजार करते हैं। होली मिलन का त्यौहार है। सभी एक दूसरे के गले मिलते हैं। होली का बड़ा ही सुंदर विवेचन उन्होंने निम्न पंक्तियों में किया है:-

आ जाव अहा, आज होली है, आ जाव प्यारे।
बरस दिन के अरमाँ पुरा जाव प्यारे।।
भुजाएँ फड़की, हृदय भी उमँगता।
जिया से हिया को मिला जाव प्यारे।।
न घर में छिपो, रीत अच्छी नहीं यह।
रंगो मुझको, खुद भी रँगा जाव प्यारे।।[4]

उन्होंने 'पवित्र होली' शीर्षक में सभी को मिलजुल कर होली मनाने की बात कही है। उन्होंने कहा है कि बहुत दिन बाद सब को एकजुट होकर होली में मिलने का अवसर प्राप्त होता है। इसमें सभी को भेदभाव मिटाकर एक हो जाना चाहिए।सभी को एक दूसरे से गले मिलकर भाईचारे का परिचय देना चाहिए।उदाहरण स्वरुप निम्न पंक्तियां प्रस्तुत है:-

चलो भाई सभी मिल कर, सुघर होली मनाने को।
बरस दिन का यह अरमाँ है, चलो इसके पुराने को।।
चिता-साहस सजा कर के, ज्वलित कर ज्ञान-ज्वाला को।
सामाजिक-दोष का सम्बत चलो उस में जलाने को।।
बहुत दिन पर मिला अवसर, जुटें इक ठौर सब भाई।
विचारे बात उन्नति की,अवन्नति के भागने को।।
अहा! है आज शुभ दिन यह, मिलें सब एक हो कर के।[5]

'पवित्र होली' शीर्षक कविता में उन्होंने कहा है कि इस पवित्र होली में आइए।हम सब मिलकर ऊंच-नीच के भेदभाव को मिटा दें, बयार, कपट, छल सब का त्याग कर आपस में एक दूसरे के साथ मिलकर होली खेले।वे आग्रह करते हैं कि नेह और प्रेम से एक दूसरे पर पिचकारी डालें जिसमें कहीं से द्वेष का कोई रंग ना हो। अर्थात वह होली के अवसर पर सबको मिलकर रहने का आग्रह करते हैं। निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है:-

अहा, होली पहुँची है आई। खेलहु सब मिलि भाई।
नीच-ऊँच अरु भेद - भाव को देवहु आज भुलाई।
बैर, कपट, छल, त्यागहु हिय सों, फूट को कूट हटाई।
द्वेष को मार भगाई द्य। खेलहु.।।

नेह सुधा - जल, प्रेम - रंग से मन-पिचकारि चलाई।
मारहु एक एक को तकि तकि, सब तन देहु भिंजाई।
कोई जन छूट न जाई।। खेलहु.।।
दै गलबाँहि लगाबहु गल सों, अरु मृदु वचन सुनाई।
प्रेमालिंगन करहु परस्पर, वैरिन मीत बनाई।
सभी पिछली बिसराई।। खेलहु.।।
गाबहु राग - सुधार, एक्यता -ढोलक सुघर बजाई।
जुटि एक ठौर विचारहु सब मिलि, उन्नत बात सुहाई।
कवन बिधि अवनति जाई। खेलहु सब मिल भाई।[6]

'आज कि होली' की पंक्ति में कहते हैं कि आइए हम सब मिलकर लाज का त्याग करें और एक दूसरे को प्रेम से गुलाल लगाएं। पिछली बातों को भुला दे और जितने भी समाज में गंदगी फैली हैं सबको हटा दें और प्रेम, भाईचारे से एक दूसरे को रंग और गुलाल लगाएं।इसकी बड़ी ही सुंदर अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियो मे हुई है:-

अजी! आज होली है आओ सभी।
रंगो खुद भी, सब को रँगाओ सभी।।
बिना रंग में बोरे किसी को न छोड़ोय।
खुशी मन से गावो बजावो सभी। यही आज अवसर है आपस में मिल कर।

हृदय की बुराई नशाओ सभी। भिन्नता दोस्त - दुश्मन में मानोय गले एक एक को लगाओ सभी। पिओ प्रेम-प्याला, नशा इस तरह हो।[7]

दुखिया किसान की होली कैसे मनती है,किसान कैसे होली मनाते हैं इसका उन्होंने बड़ा सुंदर मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। अगर अच्छी फसल हुई तो किसान उत्साह पूर्वक उमंग पूर्वक होली मनाते हैं। लेकिन अगर अच्छी फसल नहीं हुई उनके घर में अनाज का अभाव हुआ, बीमारी की मार और भूख की वेबसी मे होली का रंग भी फीका हो जाता है। इसलिए किसान भगवान से प्रार्थना करता है कि हे भगवान हमारी सुध लीजिए और और हमें भी खुशी दे, अनाज दे जिससे हम सब भाई मिलकर खुशीपूर्वक होली माना सके:-

ढंग बिन कइसे होली खेलब एमकी सब भाइन के संग।
भूखल पेट, न तन पर कपड़ा आउर दु:ख से तंग।
प्लेग-अकाल के मारल मन में कइसे उठे उमंग।
आग लगाऊँ केकरा घर में? के ई मचौलक जंग?
कार बार सब चौपट हो गेल, आउर मँहगा भेल रंग।
एक त पानी भेल न एमकी जे से होइत खूब अन्न।
जे कुछ भेल सेहु छिन लेलक की खाएब भगवन्त?
न दी तेपर मारे हमरा कोठरी में करे बन्द।
घर दुआर भी छीन निठुर कर देलक बेअवलम्ब। बेगारी में कराबे पूरा देबे न बन्न।
करइत करइत काम बाप रे! टूट गेल छन बन्द।
की गाऊ आउर कथी बजाऊ न ढोलक न चंग।[8]

'नकली कवि' शीर्षक के माध्यम से उन्होंने तुकबंदी करने वाले नकली कवियों पर व्यंग करते हुए लिखा है:-

इधर उधर की देख भाल के, तुक पर तुक बैठाय।

काट छाँट कुछ कर थोड़ी-सी कविता लेहु बनाय।।
सुकवि की पदवी पावो। जगत नामी हो जावो।।(9)

'नकली लीडर' शीर्षक मे उन्होने नकली लीडरों पर व्यंग करते हुए लिखा है:-

चूल्हे में जनता और भाड़ में समाज जाय,
देश को जहन्नुम में पड़ा घिघियाने दे।
असहयोगी, सहयोगी औ प्रतिसहयोगी,
समयानुसार रीत नीत को बनाने दे।
चन्दे के फन्दे से बन्दे का धन्धा हो,
मेम्बरी से बोर्ड की नाम यश पाने दे।
यहाँ तो,बस यारों की पाँचों सदा घी में रहे,
ऐसी जादूगरी भरी लीडरी आ जाने दे।(10)

'नकली देशभक्त' शीर्षक मे उन्होंने नकली देशभक्त लोगों पर वह व्यंग करते हुए लिखा है:-

मुँह में राम बगल में छूरी, कर चरितार्थ दिखाऊँ।
देशभक्ति के पवित्र नाम पर भी कालिख लगवाऊँ।।
भोले भाले अनजानों को गहरा फाँस फँसाऊ।
सुनी, रटी, लेक्चर से उन पर खूब ही असर जमाऊँ।।
दिखलावा है जोश हमारा पर सच्चा जतलाऊँ।
अपने को है माफ सभी कुछ, पर को ज्ञान सिखाऊँ।।
करूँ पाप व्यभिचार छिपा कर कोई पता नहिं पावे।
कर सब के सम्मुख अपने को ब्रह्मचारी बतलावे।
लिखना पढ़ना तेरही बाईस बातें खूब बनाऊँ।
कर करके चाटुक्ति, सबों से बस रुपया ठग लाऊँ।।(11)

'विनती' शीर्षक कविता के माध्यम से वे भगवान से विनती करते हुए कहते हैं की 'हे दयामय तुम दयालु हो, मेरी विनती सुनो और मेरी सारी विपत्तियों को हर लो:-

हे नाथ! हे दयामय! विनती सुनो हमारी।
होकर दयालु, मेरी हर लो विपत्ति सारी।
तेरे सिवा जगत में किसका करें सहारा।
पितु, मात, भ्रात तू ही, साथी व मित्र प्यारा।(12)

'याचना' शीर्षक मे उन्होने प्रभु से याचना करते हुए कहा है कि हे प्रभु तुम्हारी कृपा के बिना कुछ भी संभव नहीं, इसलिए शिल्प कृषि, वाणिज्य, व्यापार सब कुछ चमके ऐसा मुझे वरदान दो। हम स्वार्थ, फुट दुर्व्यसन आदि का त्याग कर दें :-

यही वर दो हे जगदाधार!
हमारा हो जावे उद्धार।
शिल्प, ?षि, वाणिज्य बढ़े, चमके उद्यम, व्यापार।
सद्विचार से भावुक हों हम, हो विद्या आधार।।1।।
यही वर दो हे जगदाधार!

स्वार्थ, फूट, दुर्व्यसन आदि आदि को, देवें अब फटकार।
दया, धर्म की सजग मूर्ति हो करें सदा उपकार।।2।।
यही वर दो हे जगदाधार![13]

संदर्भ

1. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 21
2. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 21
3. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 21
4. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 21
5. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 22
6. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 23
7. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 23
8. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 26
9. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 32
10. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 34
11. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 35
12. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 39
13. ललित कुमार सिह नटवर रचनावली-सं. डॉ. अवधेश्वर अरुण, पृ. 40

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान मुजफ्फरपुर जिला में सुनीति देवी की गतिविधियां एवं उनका योगदान

डॉ० अंगुरी बेगम

पी-एच0डी0, इतिहास विभाग, बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भी पर्याप्त हिस्सेदारी रही है। भारत का पुरूष वर्ग जहां साम्राज्यवादी शक्तियों से लोहा ले रहा था, वहीं स्त्रियों दोहरे मोर्चे पर लड़ रही थी। एक मोर्चा साम्राज्यवादी शक्तियों के विरूद्ध तो था ही, उनका दूसरा मोर्चा भारतीय समाज की पितृसत्ता भी थी जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों का स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पा रहा था। इस दोहरी लड़ाई लड़ने वाली भारत की असंख्य महिलाओं में एक महत्वपूर्ण नाम सुनीति देवी का भी है। सुनीति देवी की पहचान मुजफ्फरपुर जिले के स्थानीय स्त्री नेतृत्व के रूप में की जा सकती है।

वस्तुतः इस जिले के महान क्रांतिकारी एवं ख्यात समाजवादी श्री किशोरी प्रसन्न सिंह की पत्नी होने के कारण जहां एक ओर सुनीति देवी, स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान विभिन्न गतिविधियों में परी तल्लीनता से शामिल रही वहीं दूसरी ओर यह विडम्बना भी रही की इतिहास में अब तक स्वतंत्र रूप से उनके कार्यो का आकलन अध्ययन नहीं किया जा सका है। श्रीमती सुनीति देवी के सम्बंधों में जानकारी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं एकमात्र स्रोत उनके पति एवं प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी श्री किशोरी प्रसन्न सिंह द्वारा लिखित आत्मकथा 'राह की खोज में' उनके सम्बंध में वर्णित उद्द्दरण है। इन्हीं सम्बद्ध उद्द्दरणों के आलोक में श्रीमती सुनीति देवी के योगदानों का एक प्राथमिक प्रारूप खींचा जा सकता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान मुजफ्फरपुर जिले की गतिविधियों में सुनीति देवी की भूमिका का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी: साम्राज्यवादी शक्ति, स्त्री नेतृत्व, आत्मकथा, सामाजिक मसला, संस्कृति, छूआछुत।

परिचर्चा

सुनीति देवी का स्थान सब-अल्टर्न नेत्री के रूप में, मुजफ्फरपुर जिला के संदर्भ में की जा सकती है। इनकी गतिविधियों के बारे में जानकारी का सर्वाधिक सहज व प्रमाणिक स्रोत श्री किशोरी प्रसन्न सिंह (पति) की आत्मकथा **'राह की खोज में'** है। इस के अनुसार लेखक सुनीति देवी के संदर्भ में निम्न विचार व्यक्त करते है–

गांव से निकलने के पहले एक दूसरा झगड़ा सामने आ गया। नन्हा सिंह ने एक दिन अपने दरवाजे पर अपनी 'पनभरनी' की बड़ी फजीहत की, बहुत बुरे और अभद्र शब्दों में। यह 'पनभरनी' पानी भरने वाली–नन्हा सिंह की ही जमीन में बसती थी, उसके यहां पानी भरने का काम करती थी। जात की धानुक थी, इसके पति का नाम बैंजू महतो था। मेरी उम्र के उसके दो बेटे थे। चूंकि वह पनभरनी थी इसलिए छोटी-छोटी उम्र के बाभन भी उसकों बैजू ही कहकर पुकारा करते थे। यद्यपि मैं भी उस समय बाभनों में से ही एक था, फिर भी उस दिन बैजू बहू पर जितनी गालियां पड़ी, मैं उन्हें बर्दाश्त न कर सका। बैजू बहू के बेटे ने मालिक

को जवाब देने की धृष्टता की थी, इसी अपराध में बैजू बहू दरवाजे पर बुलवायी गयी थी।

मैं बैजू-बहू को बैजू बहू ही कहकर पुकारता था, परंतु वह मुझे 'बउआ' कहकर पुकारती। 'बउआ' के दो पहलू थे-एक तो मैं भी बाभन मालिकों में से एक था और दूसरे मां के मरने के बाद बैजू बहू ने भी दो एक बार अपनी छाती से लगाकर मुझे दूध पिलाया था। बैजू बहू नन्हा सिंह के दरवाजे पर चुपचाप मुंह नीचा किये बैठी थी। नन्हा सिंह ने कहा- मेरे सभी रूपये आज अदा कर दो, तब यहां से उठकर जाओ। नहीं अदा करोगी तो आज तुम्हारे साथ.....। मुझसे न रहा यगा। मैंने कहा- हो, इसके सब रूपये मैं भरूंगा। और इतना कहने क बाद बैजू बहू का हाथ पकड़ कर मैंने उसे उठाया और कहा, तू घर जा, रूपये अब हम अदा करेंगे। मेरे गावं में पहले-पहल बाभन ने बाभन के खिलाफ धानुक का साथ दिया। यह एक नई बात थी। सब हक्का-बक्का रह गये। बैजू बहू स्वयं जाने से हिचक रही थी, परंतु मैंने गुस्से में उसे धकेल कर घर की ओर रवाना किया। उस दिन तो बात यहीं रह गयी, पर उस गांव में इस प्रकार के झगड़े की नींव पड़ गयी।

इसके बाद बैजू बहू का झगड़ा मैंने अपने माथे ले लिया। जब कभी कोई बात होती, मैं अपनी लाठी लिये पहूंच जाता। एक दिन उसके खेत का सरसो नन्हा सिंह और उसके चाचा, भाई, सब मिलकर उखाड़ रहे थे। मैंने जैसे ही सुना, अपनी तलवार लिये दौड़ा। खैरियत हुई कि सभी ने भाग कर किवाड़ बंद कर लिये। उसके बाद जब तक मैं गांव में रहा, ऐसी हरकतों से नन्हा सिंह परहेज करने लगा। उसके बाद बैजू बहू के घर वाले थोड़ा मजबूत हूए और सलाह-मशविरा के बाद कच्ची रसीद देने के लिए नन्हा सिंह पर कचहरी में मुकदमा दायर किया गया। मजिस्ट्रेट की कचहरी जल्दी में हुई-कैंप कचहरी। मैं भी गवाहों में एक था। मैंने तो समझा कि बच्चू अबकी बार पकड़े जायेंगे। परंतु नन्हा सिंह ने पक्की रसदी की अधकट्टी पेश कर दी और मुकदमें से वह बरी हो गया। मुझे पहली बार यह देखने को मिला कि हम कई लोगों ने गवाही दी, वह झूठी हो गयी और जमींदार की एक ही गवाही सच्ची हो गयी। मैंने आजिज होकर उस समय कहा-यहां कभी नहीं आना चाहिए, न्याय यहां हो ही नहीं सकता।

तरह-तरह के कामों से हाजीपुर आना ही पड़ता। यों तो हिन्दू समाज में छुआछूत पर मेरे विचार कलकत्ते में ही बहुत ढीले पड़ गये थे, परंतु कलकते में छुआछूत न मानना, जहां पर और समाज वाले देखते न हो और गांव-घर में छुआछूत न मानना, दोनों में बहुत का अंतर आ जाता है। उस समय राजनीतिक मसलो पर घर से बगावत करना आसान होता, पर सामाजिक मसलों पर कठिन। इसके कई कारण थे। उस समय पढ़ने-लिखने का प्रधान उद्देश्य था नौकरी पेशा के जरिये अपना भविष्य बनाना। वैसी हालत में यदि कोई युवक पढ़ना छोड़कर किसी ऐसी राजनीति में पड़ता, जिससे भविष्य खतरे में दीख पड़ता तो फिक्र केवल परिवार वालों को अथवा निकटतम संबंधियों को होती। अड़ोस-पड़ोस के लोगों को इससे बहुत कम मतलब होता, क्योंकि भविष्य जिसका बनता, उसका बनता। उसी प्रकार जिसका बिगड़ेगा, उसका दूसरों को इससे क्या मतलब बिगड़ेगा परंतु सामाजिक मसलों पर बगावत की दूसरी बात होती। सारा समाज समझता कि यह बगावत उस पर चोट कर रही है, इसलिए सारा समाज अपनी पुरानी प्रथा, रिवाज, सभ्यता, परंपरा और संस्कृति की हिफाजत में एक साथ खड़ा हो जाता। यह विरोध अधिक व्यापक, तीव्र और गहरा होता।

हाजीपुर से लौटते समय, सराय के गंगा चौधरी के घर में अक्सर खाता। चौधरी जी जात के कलवार थे, जिनके हाथों जल-ग्रहण करना हिन्दू समाज के उच्च वर्णो में निषेध था। परंतु वह आर्य समाजी थे, इसलिए उनकी सहानुभूति, उस समय के सामाजिक मसालों-विधवा विवाह, बाल विवाह, छुआछूत आदि पर मेरे साथ और मेरी सहानुभूति उस समय की स्थिति से उनके साथ। मेरे उनके यहां खाने-पीने का गांव में बवंडर उठा। बवंडर उठाने वालों में अधिक हाथ नन्हा सिंह और उनके जैसे आदमियों का था। पिताजी और भाई जी ने भी मेरे इस आचरण को बहुत बुरा लिया, परंतु इस हद तक नहीं कि मेरा घर में रहना उन्हें असह्यह हो। परंतु बात उसी ओर जा रही थी, क्योंकि गांव वालों ने यह सवाल करना शुरू कर दिया था कि भला यह कैसे संभव हो सकता है कि जो सब जात का छुआ खाता पिता है, उसक साथ हम लोग खाते-पीते रहे? मैंने इन बातों की परवाह कम की, परंतु मैं अब घर पर कम रहने लगा, अधिक समय हाजीपुर आश्रम में व्यतीत करता।

शादी की फिक्र के साथ-साथ अब यह फिक्र भी होने लगी कि आखिर काम क्या किया जाए। कलकत्ते से तो आया था यह सोचकर कि राजेन्द्र बाबू से मिलूंगा,और उसके बाद ही तय करूंगा कि क्या किया जाए। परंतु यहां आकर तो गांव के सामाजिक पचड़े में पड़ गया और काम क्या करना है यह पीछे पड़ गया। परंतु गांव के पचड़े से अलग होते ही यह सवाल फिर सामने आ गया।

दो काम मेरे सामने आये। पहला, शिवहर के बाबू रत्नेश्वरी नंदन सिंह के यहां प्राइवेट ट्यूटर का वहां उनके बेटे को पढ़ाना था। दूसरा, चरखा संघ में काम करने का, जिसका स्थापना अभी एक साल पहले हुई थी। शिवहर में प्राइवेट ट्यूटर के काम के अलावा

मुझसे यह भी कहा गया कि इस बीच यदि हमने जमींदारी चलाने का काम सीख लिया तो आगे चलकर मैं मैनेजर भी बन सकता हूं। मैंने कुछ शर्ते रखी। रहूंगा अलग मकान में, खद्दर का काम करने की मुझे सुविधा रहेगी और चुनाव आदि में मैं कांग्रेस का साथ दूंगा। इसमें शर्त मैंने इसलिए रखी थी कि उस समय यही वर्ग कांग्रेस का विरोध करता था और मैं कांग्रेस भक्त था। रत्नेश्वरी बाबू ने आखिरी दो शर्ते मान ली, पर पहली शर्त के मानने में उन्हें कठिनाई हुई। भला लड़के का मास्टर उनके साथ न रहाकर, अलग कैसे रहेगा। मैंने कहा- मेरे लिए सबसे बड़ी दिक्कत यही हैं। मैं सबकुछ सह सकता हूं, पर यही नहीं सह सकता कि मैं पाखाने से आउं और चौकी पर इस इंतजार में बैठा रहूं कि नौकर झारी में पानी लावेगा, मिट्टी हाथ में रगड़ेगा और तब मेरा हाथ धुलेगा, क्योंकि बाबू साहेब की शिकायत होगी। सो तो होगी ही, सबसे बड़ा खतरा बेटे के बिगड़ जाने का है। सोनपुर स्टेशन पर चंद्रशेखर प्र0 ना0 सिंह ने जिनसे जान-पहचान कलकत्ते से ही थी- मुझसे कहा कि मेरी यह शर्त तो पागलों की शर्त है। मैंने उनसे यही कहा कि पागल बनकर रहना लाख दर्जे बेहतर है, बनिस्पत इसके कि चौकी पर बैठ कर झारी के पानी का इंतजार करूं।

मैने चरखा संघ में जाना तय किया। रत्नेश्वरी बाबू के यहां पैसे मिलते, जो चरखा संघ में नहीं था। परंतु मेरी जान बच गयी, मेरी धर्म बचा और बचा मेरा भविष्य। जिन कारणों से मैंने यह फैसला किया, उनके लिए कुछ तो मैं दीप बाबू का आभारी हूं, जिन्होंने मुझको यह सलाह दी और कुछ अपने सनकीपन का, जिसके कारण मुझे यह समझने में देर न लगी कि रत्नेश्वरी बाबू के यहां जाकर मैं क्या बन जाता। काम तो ठीक कर लिया परंतु जिसकी फिक्र में घर से निकला था-पत्नी ढुंढ़ने के लिए वह तो अभी बाकी ही था।

शादी की प्रथा समाज में कुछ अजीब थी और आज भी है ही। शादी लड़के और लड़कियों में नहीं होती है बल्कि दो परिवारों के बीच। बेटे-बेटी की शादी कहां होगी, किसके साथ इस बात का निश्चय बेटे-बेटियां स्वयं नहीं करती-मैं समझता हूं, अप्रत्यक्ष ढंग से भी नहीं। जो कुछ करते है, उनके मां-बाप करते है। संबंध हो सकता है कि नहीं, यह सबसे अधिक इस बात से निर्णय होता है कि दोनों परिवारों की स्थिति क्या है, उनके पास कितनी संपत्ति, कितना खेत और इस प्रकार के दूसरे धन कितने है? संक्षेप में, यही कहा जा सकता है कि शादी वर-वधु में नहीं, घर-बार खेत-व्यवसाय के बीच होती है। किसी लड़का अथवा लड़की की ओर से यह आवाज निकलना कि वह अमुल के साथ शादी नहीं करेगा, अथवा अमुक जगह ही करेगा, उपहास का विषय बन जाता है। किसी विशेष कारण से प्रेरित होकर मैं अब शादी जरूर करना चाहता था पर इस प्रकार की शादी के लिए मैं कभी भी राजी होने को तैयार न था। इसलिए स्वयं इस बात की तलाश में निकला कि किससे मेरी शादी होगी।

उस समय के समाज में यह काम आसान न था। परंतु जगत बाबू ने मेरी मदद की। वह उन दिनों सीवान में स्कूलों के निरीक्षक थे-डिप्टी इंस्पेक्टर। उनहोंने मुझकों कई स्कूलों का पता दिया जहां लड़कियां पढ़ती थी और साथ ही परिचय पत्र भी। परिचय पत्र में वह यह नहीं लिखते कि मैं किस उद्देश्य से वहां जा रहा हूं, किसी-न-किसी बहाने केवल इतनी सुविधायं दिलवाते जिससे मैं यह देख और जान सकता कि कहां कौन लड़की कैसी है? सीवान क इलाके में कई स्थानों में गया पर कहीं पटरी नहीं बैठी।

गांव में लड़कियों के लिए अपर-प्राइमरी स्कूल था। मैं वहां ले जाया गया। स्कूल में जितनी लड़कियां थी, उनके अलावे जो मिड्ल कक्षा में पढ़ रही थी, वह भी आई। ऐसी लड़कियां की तादाद भी छः या सात से कम न थी। मैंने लड़कियों से तरह-तरह के सवाल किये, जिनमें कुछ के उत्तर, गलत या सही मिले, कुछ के नहीं, क्योंकि जबाव देने में वे सकुचा, शरमा जाती थी। इनमें एक लड़की ऐसी थी जो मुझे बहुत तीक्ष्ण बुद्धि और गंभीर स्वभाव की दीख पड़ी। पूछने पर पता चला कि वह महंथ जी की नतिनी है, मां की मृत्यु के बाद से ममहर में ही रहती है और मिड्ल स्कूल की दूसरी कक्षा की परीक्षा में इस साल बैठेगी।

चुनाव में दीप बाबू कांग्रेसी उम्मीदवार खड़े हुए। उस समय समूचे सवडिवीजन में एक ही जगह थी और मताधिकार बड़ा ही संकुचित था। प्रांतीय कौंसिलों के लिए अड़तालिस रूपये से अधिक मालगूजारी देनेवाला और बड़ी असेम्बली में 96 रू0 से अधिक मालगुजारी देने वाला मत दे सकता था। एक ही साथ दोनों असेम्बलियों का चुनाव हुआ था। इस चुनाव में भी कांग्रेसी लोगों में ही दो दल हो गये थे एक शुद्ध कांग्रेसी और दूसरे कांग्रेस नेशनलिस्ट। कांग्रेस दल के नेता पं0 मोतीलाल नेहरू थे और नेशनलिस्ट पार्टी के लाला जी तथा मालवीय जी। मुझे ठीक-ठाक याद नहीं है कि नेशनलिस्ट पार्टी में अधिक सामंती स्वार्थ था और कांग्रेसी दल नये पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहा था। मुझको लालगंज थाने का चार्ज दिया गया। मुझको पैदल ही घुमना भी था। पैदल ही मैं सारे थाने में कई बाद घूम गया और नतीजा भी अच्छा निकला। दोनों जगहों के लिए प्रांतीय कौंसिल के लिए बाबू दीप नारायण सिंह और बड़ी राम दयालू सिंह एक योग्य लड़के की तलाश कर रहे है। लड़की बहुत अच्छी है और राम दयालू बाबू चाहते है कि तुम्हारी शादी उस लड़की से हो जाये। तुम चाहो तो पीतांबर शर्मा, जो दिघरा मि0 स्कूल के हेडमास्टर है को लिखकर और बातें

जान सकते हो। आखिरी बात उन्होंने इसलिए कही, क्योंकि वह जानते थे कि बीच-बचाव की बात पर ही मैं शादी नहीं कर लूंगा। मैंने तुरंत हाजीपुर आश्रम से भी पीतांबर शर्मा को एक पत्र लिखा।पत्र में मैंने उन्हें साफ कर दिया कि मैं स्वयं ही क्यों उन्हें पत्र लिख रहा हूं और मैं क्या चाहता था, वह तो मैंने पूरा का पूरा लिख ही दिया। आम तौर से समाज में जिस प्रकार ऐसे मसले तय किये जाते है उससे मुझको डर भी ही हो रहा था कि शायद कहीं शर्मा जी मुझको गलत न समझ ले। परंतु शर्मा जी ने मुझे निराश नहीं किया। जिस रोशनी में किसी भलेमानस को मेरे पत्र को लेना था, उसी रोशनी में उन्होंने लिया। उनका उत्तर मेरे लिये उत्साहवर्द्धक साबित हुआ। मैंने फिर उनको लिखा कि अमुक तिथि को वह मुझसे मुजफ्फरपुर -सरैयागंज, खादी भंडार में मिले, बही और बातें होंगी। नियत तिथि और समय पर शर्मा जी से भेंट हूई। जब शर्मा जी ने मुझसे पूछा कि मेरे घर पर जमीन आदि कितनी है तो उसके उत्तर में मैंने उनको यही कहा कि समझ ले कि मेरे घर पर कोई जमीन नहीं है और यदि है भी तो मुझको उससे कोई मतलब नहीं रहेगा। मैं शादी अपने बल पर करना चाहता हूं, जमीन के भरोसे नहीं, पर सबसे आश्चर्य और साथ ही साथ खुशी का ठिकाना न रहा, जब मुझे पता चला कि जिस लड़की के लिए वह मुझसे बातें करने आये है वह वही लड़की है जिसको मैं दिघरा में देखा था और जो मुझको बहुत ही गंभीर और तीक्ष्ण बुद्धि की जान पड़ी थी इसके बाद मुझे तो उस लड़की से बातें करनी ही नहीं थी। परंतु तब शर्मा जी से मैने कहा कि वह सुनीति से पूछ लें कि उसकी राय क्या होगी? मैंने शर्मा जी से यह प्रार्थना की कि मेरी सारी बातें, वह सुनीति को साफ-साफ बता दें। दिघरा से शर्मा जी ने लिखा- मेरी भगिनी ने अपनी स्वीकृति दे दी है। यह संबंध हो जाना चाहिए। उन्होने लिखा कि हमारी बहन, सुनीति जब बच्ची ही थी, संसार से विदा हो गयीद्य। तब से हमारे यहां ही रही। बड़ लाड़-प्यार से भांजी को पाला है। सुनिति को आपको दूंगा-दे रहा हूं, आपके घर को नहीं। अब आप जाइये।

अब इसके बाद सामाजिक विधियां पालन करनी थी। फलदान देने महंथ जी और उनके दामाद राम उदार मिश्र आये। मिश्र जी गवैया थे। गंजेड़ी थे और बैरागियों के हेर में रहा करते थे। महंथ जी बाबू सतार सिंह और पं0 मदन मोहन मालवीय को नजदीकी मित्रों में थे। पत्नी के देहांत के बाद वह घर से बिल्कुल अलग ही अलग थे। परंतु अपनी लड़कियों की शादी अपने ही हाथों करना चाहते थे और कुछ करते अथवा नहीं, कन्या दान तो अपने हाथों करना ही था। परंतु मित्र जी को किसी ने कह दिया कि मैं पर्दा-प्रथा के खिलाफ हूं, छुआछूत नहीं मानता, गुरू-ब्राह्मण आदि नहीं मानता। इसलिए वह घबड़ा गये। पर उनसे अधिक घबड़हट तो मुझकों हुई कि इसी पचड़े पर कहीं बखेड़ा न पैदा हो जाय। सब बाते जानने के बाद मिश्र जी ने मुझको पूछ ही दिया कि मैं किस मत को मानने वाला हूं, सनातन धर्म को मानता हूं कि नहीं। मेरे लिए बड़ी परेशनी हुई कि मैं उन्हें क्या उत्तर दूं। उत्तर ऐसा होना चाहिए कि जिसमें झूठ भी नहीं बोलना पड़े और मिश्र जी भड़क कर चले भी न जायें।

मैनें मन में सोचा, सनातन शब्द तो सापेक्ष है, संभव है जिसे मैं सनातन समझूं उसे वह सनातन न समझे और जिसे वह सनातन समझे उसे मैं सनातन न समझू। इसलिए मैंने उनसे कहा, मैं तो सनातन धर्म को माननेवाला हूं। स्त्रियों को कैसा होना चाहिए, इस प्रश्न पर मैं सीता और सवित्री को आदर्श मानता हुं। मरे इस जवाब से मिश्र जी फूले न समाये। उन्होंने कहां, मुझे गलत खबर दी गयी थी, वही तो मैं कह रहा था, भला आपकी तरह का साधु पुरूष सनातन का विरोधी कैसे हो सकता है, परंतु मिश्र जी ने यह समझा कि जिस दृष्टिकोण से सीता-सावित्री को मैंने आदर्श इसलिए माना हुं कि सीता और सावित्री किसी भी बात में पुरूषों से पीछे रहना नहीं चाहती।

मिश्र जी के जो विचार थे, उससे तो यही जाहिर होता है कि मिश्र जी को मेरी बातों से धोखा हुआ। पर जिस फरेब से बहुतों का कल्याण होने को हो, वह फरेब फरेब नहीं रह जाता। महंथ जी और मिश्र जी ने फलदान दिया। दोनों ने मुझे आशीर्वाद दिया और घर गये।

कानून भंग करने का आंदोलन आने ही वाला था, इसलिए मैंने जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए पदयात्रा करने का निर्णय किया। सुनीति बलिगांव से हाजीपुर आ गयी थी। यद्यपि इसको आना नहीं चाहिए था। प्रसव के समय उसको धक्का लगा था। बच्ची जनमने के साथ ही जाती रही थी। काफी कमजोर थी पर उसने लिखा कि तबीयत यहां लग नहीं रही है। सुनीति के साथ ही हम पदयात्रा क`लिए निकले। लालगंज थाने से ही शुरू किया। लालगंज से ही इसलिए कि लालगंज थाने के लोगों से मेरा अच्छा परिचय था। 1925 में जब काउंसिल का चुनाव हो रहा था। लालगंज में प्रचार और सभा को स्थापित करने का काम मुझको ही दिया गया था।

कई गावों में घूमते हुए, हमलोग मथुरापुर पहुंचे। मथुरापुर लालगंज से आधे ही मील पश्चिम पड़ता है। यहां पर हमारे एक परिचित स्व. राजनारायण शुक्ल मिले। शुक्ल जी खदरधारी तो थे ही, राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे कामों में भी हाथ बंटाते थे। हमसब शुक्ल

जी के ही अतिथि बने। शुक्ल जी के दरवाजे पर अमर शहीद स्व. बैकुंठ शुक्ल रहते थे। बैकुंठ जी का घर मथुरापुर से लगभग आधा मील पश्चिम जलालपुर गांव में था। मथुरापुर लोअर प्राइमरी पाठशाला के वह शिक्षक थे। शुक्ल जी के दरवाजे पर ही बैकुंठ जी का डेरा रहा करता। बैकुंठ शुक्ल को उस समय का रहन-सहन, पहनावा-ओढ़ावा देख कर कौन कहता कि यहीं बैकुंठ शुक्ल एक दिन अमर शहीद बनेंगे। और इनके नाम पर स्मारक बनाये जायेंगे। उनकी टीक मुट्ठी पर होने लायक, शुक्ल जी त्रिमुंड रमाये रहते। हमसे तो बात उन्होंने की ही, काम की बातें तो उन्होंने सुनीति के साथ की। अपनी इच्छा सुनीति से कही और उससे आग्रह किया कि यदि व उनकी पत्नी श्रीमती राधिका को घर से निकाल सके तो वह गुरूआई देंगे।

एक दिन बैकुंठ जी को हाजीपुर बुलाया गया। योजना बनायी गयी। बैकुंठ जी अपनी पत्नी को घड़ी देखना सीखा देंगे। समय और दिन नियत किया जायेगा। श्रीमती राधिका को कहा जायेगा कि अमुक समय वह तैयार रहेगी। जब कोई गाड़ी उसके दरवाजे पर आकर रूके, वह झट से निकल कर गाड़ी में बैठ जायेगी। गाड़ी में एक महिला रहेगी। गाड़ी का इंजन बंद नहीं होगा, क्योंकि हमलोग जानते थे कि सामाजिक दृष्टिकोण से वह गांव कितना पिछड़ा हुआ था। इसलिए जो करना था, बहुत संभल के। हमारी दो मजबूरियां भी थी। हमारे गांव के ही अपने बहुत समीपी नागेन्द्र सिंह का ससुराल जलालपुर में पड़ता था। शीतल शुक्ल नागेन्द्र सिंह के ददिया ससूर होते। नागेन्द्र जी के अपने ससुर का नाम भी बैकुंठ शुक्ल ही था। दूसरी बात यह कि स्व. योगेन्द्र शुक्ल और हम अनन्यतम साथी बन चुके थे। योगेन्द्र भाई के गांव हम कई बार उनके घर से भी हो आये थे। योजना सफल हो गयी। श्रीमती राधिका गांधी आश्रम में आकर हमारे परिवार की एक सदस्या बन गयी और बैकुंठ जी गुरूआई छोड़ कर हमारे परिवार के एक सदस्य।

सुनीति ने राष्ट्रीय परिवार की जो स्थापना की दो महिलाओं उसमें और बढ़ी। महनार थाने के मढ़ोलिया गांव के स्व. विशेश्वर प्रसाद कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ताओं में एक थे। उनकी बहन कुमारी शारदा और बेटी कुमारी कृष्णा आ गयी। यद्यपि इस परिवार में शामिल होने वाले दूसरे मित्र भी थे, उस समय यह परिवार इतने ही लोगों तक सीमित था।

नमक कानून तोड़ने के लिए स्वयं सेवकों का जमाव हुआ। सबसे अधिक नवजवान घटारों गांव से आये। भोजन बनाना, बर्तन मांजना, छुआछूत आदि के सवाल पर बखेरा उठा।महिलाओं ने इस मोर्चे को संभाल कर संकट हल किया। कई दिनों में ही महिलाये ऐसी बन गयी कि कोई काम इनके लिए छोटा नहीं रह गया। इसके बाद तो विदेशी कपड़े की दूकानों पर पिकेटींग के लिए गांव-गाव से अनकों महिलायें आई।

अब हमलोगों को बड़ी लड़ाई की तैयारी करनी थी। कांग्रेस नेतृत्व का यह आम आदेश हुआ कि जहां-जहां संभव हो टैक्स देना भी बंद भी किया जाय। मुजफ्फरपुर की जिला कमिटी ने हम पर इलाका चुनने की जवाबदेही दी। बात बहुत साफ थी। टैक्स देने से इन्कार करना सरकार को चुनौती देनी थी। इसलिए इलाके का चुनाव बहुत सोच-समझ कर, देख-सुन कर करता था। इस सिलसिले में ही हम सुनीति के साथ बरंटी गांव पहुंचे। बरांटी गांव में ही रेलवे स्टेशन है पर उसका नाम बिदूपुर है, क्योंकि तीन मील पर ही बिदुपुर बाजार है।

एक महिला एक पुरूष के साथ टमटम से आये है, यह तो रास्ते में गांव के लोगों ने देखा ही था,खबर भी फैली। महिला ऐसे समाज से आई दिखी जिस समाज में महिलायें आम तरह से पर्दे के अंदर रहती है। यह और सनसनी की बात थी। गांव में जिस प्रकार मदारी द्वारा लाये गये भालू को देखने के लिए बच्चे दौर परते थे, उसी प्रकार सुनीति को देखने के लिए गांव के स्त्री, पुरूष, बच्चे सब इकट्ठे होने लगे। हमलोगों को किसी के घर पर बैठने के लिये किसी ने आग्रह नहीं किया, न कहा ही। हमलोग बाबू लालबिहारी ठाकुर के बंगला के पूरब एक बगीचा के हत्ता पर बैठ गये। लाल बिहारी ठाकुर बीर के प्रेसीडेंट थे। उन दिनों चौकीदारी टैक्स वसूलने का काम बीर प्रेसिडेन्ट ही करता था। कुद देर मैं बोला, फिर सुनीति जी बोलने लगी। खड़े होकर बोलने की जरूरत न थी, हत्ता तो जमीन से उंचा होता ही है। हम दोनों का बोलना खत्म हुआ कि हमारे सामने जो लोग खड़े थे, एक दूसरे की ओर कुछ आश्चर्य से देखने लगे।

उस दिन मैं वहीं रूक गया। सुनीति हाजीपुर लौट आई। मैं स्टेशन जाकर ट्रेन में छोड़ आया। स्व. लाल बिहारी ठाकुर के ही सबसे छोटे भाई स्व. राम लगन ठाकुर ने हमको रात्रि भोजन कराया। रात्रि में बंगले पर ही एक और बैठक हो गयी।

शुरू में तो सुनीति आती जाती रहीं, मैं जम गया। जिला कांग्रेस कमिटी को रिपोर्ट किया कि चौकीदारी टैक्स बंदी का आंदोलन यहां चलेगा जो आगे चलकर अजमतपुर, अंधरावारा, बरारी, उंची डीह, चकबीबी और मंझौली गांवो में फैल गया। क्यों काम करने

वालों को भी। छोटी-बड़ी बैठके होने लगी। मर्दो की भी और धीरे-धीरे औरतों की भी। शायद ही काई घर बचा होगा। इन गांवों में जहा चौकीदारी टैक्स बंदी का महत्व हमलोगों ने बताया न हो।

गांव-गांव में पंचायते बनायी गयी। वे पंचायते आम तरह से आये दिन गांवों में होने वाले झगड़े झंझटों को गांवो में ही सुलझा देती, कचहरी में या पुलिस के यहा नहीं जाने देती। इन पंचायतों को लेकर पूरे इलाके का एक संगठन बनाया गया। पूरे इलाके का संगठन ऐसा कसा नहीं नहीं था, जैसा गांव की पंचायते थी। स्वयंसेवक भर्ती किये गये। उनके जत्थे बनाये गये।

उस समय बिहार में जो स्वयंसेवक संगठन था, वह तीन आदमियों की एक कमिटी संचालित करती थी। इस कमिटी के सदस्य थे : प्रो0 ज्ञान साहा, रणेन्द्र नाथ राय चौधरी और मैं। इस प्रकार इन गांवों में जो स्वयंसेवक बने वे दस्तों और जत्थों में संगठित किये गये। छ5 गांवों में ही 1300 स्वयंसेवक संगठित थे। इन सबको पूरी पोशाक देना संभव नहीं हुआ, पर लाल टोपियां सबको दी गयी। टोपियां सुनीति ने सिल दी।

इसी समय में मौलनिया में राजनीतिक डकैती हुई। पुलिस को मेरे उपर भी संदेह हुआ। हाजीपुर गांधी आश्रम में जो हमारे कमरे थे और जिसमें सुनीति, राधिका आदि रहती थी, पुलिस ने उसकी पूरी तलाशी ली। यह खबर लेकर सुनीति और राधिका ट्रेन से वहां पहुंची। यह भी कहा कि बड़ी मुश्तैदी से मेरी तलाश की जा रही है। सुनीति और राधिका आई तो थी मुझको यह कहने के लिए कि मुझको अब हिसाब-किताब से रहना चाहिए, पर बरांटी में मुझसे बात करने के बाद यह तय पाया कि हम को हाजीपुर में जुलूस के साथ चलना चाहिए। हाजीपुर में यदि यह पता चले कि हम पर डकैती का वारंट है तो हमको गिरफ्तारी से भागना नहीं चाहिए, पुलिस को नाहक संदेह बढ़ेगा। नहीं यदि वारंट हमारे उपर चौकीदारी टैक्स बंदी के आंदोलन का है तो हमको गिरफ्तार नहीं होना चाहिए। यह कैसे होगा, यह हाजीपुर चलकर तय करेंगे।

1930 के अगस्त में मैं गिरफ्तार हुआ। 5-7 दिन के लिए तो कुछ लोगों ने किसी प्रकार संभाला कुछ दिनों के बाद ही सुनीति को मेरी जगह लेनी पड़ी। शुरू में तो सुनीति बरांटी में रहती नहीं थी पर एक सप्ताह में ही उसको लड़ाई के मैदान में चला जाना पड़ा। वहां की लड़ाई अब टैक्स वसूलने की लड़ाई नहीं रह गयी थी। किसी तरह देश की आजादी के लिए, बरांटी इलाके की जनता को देश की जनता के सामने साहस, त्याग और बगावत का उदाहरण रखना था, उसी प्रकार प्रशासन को अब इस चुनौती का जवाब देना था। अब वहां पल्टन आ गयी। पल्टन ने आकर चौकीदारी टैक्स नहीं वसूली, आतंक पैदा किया।

जब इलाके में पल्टन आ गयी, मैं पटना कैम्प जेल में था, इलाके की ओर से कुछ लोग मुझसे कहने आये कि सुनीति को मैं अब उस इलाके से हटा लूं। उन दिनों, जब कहीं पल्टन आ जाती तो वह वहां पर क्या-क्या करेगी, खास तरह से महिलाओं के साथ कैसा व्यवहार करेगी, यह आशंका थी। इस सम्बंध में जो समझदारी मेरी तब थी, वह अब भी है, उसमें रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं हुआ है। किसी महिला का सतीत्व उसके स्वयं किये जाता है, पाशविक बलात्कार से नहीं। यद्यपि मेरी राय भी यही थी, पर सुनीति अब इलाके की जनता को छोड़ने के पक्ष में न थी। जो होना होगा, वह होगा। सुनीति अब बरांटी में ही झोपड़ी बना कर रहने लगी, पर झोपड़े में रहने का समय कहां था।

मिलीटरी का काम चौकीदारी वसूलने का नहीं था। चौकीदारी वसूलने के नाम पर वह इलाके को तोड़ देती थी। संघर्ष में पड़े गांवों को तवाहकर वह दुनिया को बताना चाहता थी कि सरकार को टैक्स देने से इंकार करने का क्या-क्या नतीजा होता है। महिलाये तो घरों में रह नहीं गयी थी। मिलीटरी के आते ही सुनीति ने इलाके की महिलाओं से है, वे मैके चली जाए, जो मैके में है, वे ससुराल चली जाए। गांव का गांव महिलाओं से खाली हो गया।

किरानी के साथ मिलीटरी की एक टुकड़ी घर पर जाकर चौकीदारी टैक्स मांगती। इंकार करने पर चौकट उखाड़ते, किवाड़ निकालते, चौकी-खटिया उछा लेते। वह इलाका तम्बाकू का है। एकड़ के एकड़ तम्बाकू के खेत घोड़ों से रौंदवाते। केले की खेती भी अच्छी होती है, जहां तम्बाकू नहीं है, केले के पेड़ ही दर्जनों में काट कर गिरा देते। छप्पड़ के खपड़ बांस से पिटवाते। सब हुआ, पर चौकीदारी टैक्स नहीं मिला। इस इलाके के चौकीदारों ने इस्तीफा दे दिया, दफादार ने इसतीफा दिया औश्र जो प्रेसीडेन्ट थे उनको इस्तीफा देने को मजबूर कर दिया गया।

सुनीति भी पकड़ी गयी। मैंने सुना उसको कैम्प में रखने के सवाल पर अधिकारियों में, सिपाहियों में मतभेद हो गया। इसलिए वह तुरंत मुजफ्फरपुर जिला जेल में पहुंचा दी गयी। जनता का आंदोलन यदि सही है वह दमन से नहीं दबाया जा सकता। मिलीटरी से आमने सामने टकरा कर गिरफ्तार होनेवाली सुनीति पहली महिला थी। उसकी गिरफ्तारी ने जनता में साहस और उत्साह दिया।

पूरे प्रांत में तीन ऐसी जगहें थी, जहां पर चौकीदारी टैक्स बंदी का आंदोलन चलाना था। चंपारण जिला में ढ़ाका थाना में, मुंगे जिला में तारापुर थाने में और मुजफ्फरपुर जिला में हाजीपुर थाना। पर सफलता यहीं मिली। आखिर-आखिर तक टिका रहने वाला यही इलाका हुआ। जब गाधी-इरवीन समझौता हुआ और सभी सत्याग्रही कैदी छूट गये, गांधी जी ने राजेन्द्र बाबू को लिखा कि वह सुनीति को उनके पास भेज दें।

इसी समय कांग्रेस का सांगठनिक चुनाव आ गया। गवर्मेन्ट के साथ लड़ाई में जीत के बाद यह चुनाव हो रहा था। इसलिए उत्साह तो कांग्रेस कार्यकर्ताओं में था ही, तैयारी बड़ी की गयी थी। चुनाव में, मुजफ्फरपुर जिला से प्रांत के प्रतिनिधियों के चुनाव में सबसे अधिक मत प्राप्त किये। सुनीति के बाद ही और काई आया। इस समय राजनीतिक चेतना का जो असर था, उसमें किसी महिला का बड़े-बड़े दिग्गजों के सामने प्रथम स्थान पाना प्रांत की राजनीति में साधारण घटना न थी।

चौकीदारी टैक्स-बंदी आंदोलन के सिलसिले में उस इलाके (हाजीपुर) का मैं एक लोकप्रिय कार्यकर्ता बन गया था। सुनीति जिसकी पत्नी होती थी। गांधी-इरविन समझौतेकी अवधि को मैं आगे आने वाली लड़ाई की तैयारियों में लगाना चाहता था। पूरा सबडिवीजन में इसी विचार और संदेश को लेकर मैं पूरे जत्थे के साथ घूम आया था। जिला कांग्रेस कमिटी की बैठक हाजीपुर गांधी आश्रम में ही बुलाई गई। जिला कांग्रेस के एक प्रस्ताव के जरिये राजेन्द्र बाबू से अनुरोध किया गया कि वह इस प्रश्न को उठाये। कमिटी की राय थी कि चूंकि मैं बहुत सक्रिय हूं, पुलिस इसको पसंद नहीं करती है। इसी कारण मुझको इस केस में फंसाया है। यह मामला शीर्षस्थ स्तर पर सरदार बल्लभ भाई ने लार्ड इरविन के सामने इस प्रश्न को उठाया। सब मिल कर स्थिति यही हुई कि हमलोग इस केस से बरी हो गये।

निष्कर्ष

सुनीति देवी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान मुजफ्फापुर जिला के अंतर्गत संचालित सभी प्रमुख आंदोलनों में एक नेत्री के रूप में शामिल रही। दुर्भाग्यवश उनके द्वारा संचालित गतिविधियों का विस्तृत व्योरा अभी तक हमारे पास अप्राप्त है। श्री किशोरी प्रसन्न सिंह की आत्मकथा 'राह की खोज में' इस संदर्भ में एक प्रमाणिक स्रोत माना जा सकता है एवं इसके सहारे इस दिशा में नवीन शोध को दिशा दी जा सकती है।

संदर्भ

1. सिंह, किशोरी प्रसन्न; राह की खोज में; आत्मकथा; अन्वेषा प्रकाशन, मैत्री शांति भवन, बी.एम. दास रोड, पटना; पृ. सं. 127-128
2. वही, पृ. सं. 131-138
3. वही, पृ. सं. 140-143, 147
4. बिहार (हिन्दी मासिक), भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार का योगदान विशेषांक (अगस्त-अक्टुबर 98)
5. शर्मा, डॉ. राधाकृष्ण एवं मिश्रा, गुलाब; बिहार का इतिहास, जेनरल बुक एजेन्सी, पटना, पृ. सं. 249
6. चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत; बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 95
7. राउत, सुरेन्द्र; बिहार समग्र : नैनो पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 26
8. चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत; बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं. 98-99
9. पाण्डेय, बी.एन.; विचार की संस्कृति; अभिधा प्रकाशन मुजफ्फरपुर, पृ. सं. 295

झारखण्ड में जनजातीय साक्षरता एक भौगोलिक अध्ययन

निरुपमा सुरभि लकड़ा

शोध छात्रा, भूगोल विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

साक्षरता शिक्षा का आधारशिला है। जिसके बिना जनजातीय समाज में सामाजिक विकास की कल्पना करना भी असंभव है। जनजातीय समाज में औपचारिक शिक्षा अपेक्षाकृत एक आधुनिक अवधारणा है, किन्तु अनौपचारिक शिक्षा एक महत्वपूर्ण संस्थागत प्रक्रिया के रुप में साक्षरता पूर्व जनजातीय जीवन को विविध रुपों में प्रभावित करते रही है। सामान्यत: साक्षरता अपनी मातृभाषा में पढ़ने लिखने तथा समझने की दक्षता है।

प्रस्तुत लेख अनुसूचित जनजाति बाहुल्य झारखण्ड राज्य में जनजातियों की साक्षरता में वृद्धि प्रारुप पर ध्यान आकृष्ट किया गया है। झारखण्ड के विभिन्न भागों में जनजातीय बाहुल्य क्षेत्रों में खासकर जहाँ औद्योगिक एवं नगरीय विकास नगण्य हुआ है वहाँ साक्षरता कम है, ठीक इसके विपरित जहाँ नगरीय एवं औद्योगिक विकास अधिक हुआ है, वहाँ साक्षरता दर में वृद्धि तेजी से हुई है। इसके अतिरिक्तझारखण्ड के जनजातीय बाहुल्य क्षेत्रों में राज्य तथा केन्द्र सरकार के द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न योजनाओं व विभिन्न सामाजिक संगठनों खासकर ईसाई मिशिनरियों के द्वारा चलाये जा रहे शिक्षण संस्थानों से भी जनजातीय साक्षरता में सुधार हुआ है। इस लेख का मुख्य उद्देश्य जनजातियों में साक्षरता वृद्धि दर, प्रादेशिक शिक्षा प्रारुप तथा जनजातीय पुरुषों तथा महिलाओं में साक्षरता दर तथा दशकीय साक्षरता वृद्धि दर को वर्णन करना है। प्रस्तुत लेख द्वितीयक आँकड़ों तथा साहित्यिक अवलोकन पर आधारित है।

इस अध्ययन में निम्न परिकल्पनाओं के सत्यापन पर ध्यान आकृष्ट किया गया है-

1. झारखण्ड के जनजातीय महिलाओं में पुरुषों की तुलना में साक्षरता वृद्धि दर में अत्यधिक वृद्धि हुई।
2. नगरीय आबादी की तीव्र वृद्धि वाले क्षेत्रों के जनजातियों में साक्षरता में तीव्र गति से वृद्धि हुई है।
3. सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं के द्वारा जिन क्षेत्रों में शिक्षा का अधिक विकास किया गया है, वहाँ की जनजातीय महिलाओं में अधिक परिर्वतन देखने को मिला है।

तालिका-1 में झारखण्ड राज्य के सभी जनजातियों के साक्षरता दर को दर्शाया गया है। अविभाजित बिहार में सबसे अधिक साक्षरता दर खड़िया जनजाति की 30 प्रतिशत थी, इसके बाद क्रमश: उराँव (28.82), बिंझिया (27.26), मुण्डा (26.84), तथा चीक बड़ाईक (24.29) आदि की थी। विभाजन के पश्चात झारखण्ड राज्य में सबसे अधिक साक्षरता दर खोंद जनजाति में देखने को मिली इनमें साक्षरता दर 48.98 प्रतिशत थी। इसके बाद उराँव की 42.74, खड़िया की 42.19 तथा चीक बड़ाईक की 40.23 प्रतिशत थी।

तालिका-1: साक्षरता के स्थानिक प्रतिरुप

	झारखण्ड की अनुसूचित जनजातियों के बीच साक्षरता दर	झारखण्ड की अनुसूचित जनजातियाँ	साक्षरता दर (प्रतिशत में)
	1991 (अविभाजित बिहार)	2001	
1.	असुर	14.00	22.82
2.	बैगा	10.53	13.60
3.	बंजारा	8.95	19.52
4.	बथुडी	15.89	28.00
5.	बेदीया	14.26	30.79
6.	भूमिज	22.19	34.17
7.	बिंझिया	27.26	32.25

8.	बिरहोर	14.88	14.04
9.	बिरजिया	10.82	24.27
10.	चेरो	20.30	31.06
11.	चीक बड़ाईक	24.29	40.23
12.	गोंड	22.03	36.06
13.	गोड़ैत	23.12	36.97
14.	हो	22.04	31.15
15.	करमाली	20.68	35.87
16.	खड़िया	30.00	42.19
17.	खरवार	16.20	22.81
18.	खोन्द	20.58	48.98
19.	किसान	15.74	22.93
20.	कोरा	13.41	28.64
21.	कोरवा	7.39	10.94
22.	लोहरा	17.44	31.18
23.	महली	17.26	29.62
24.	माल पहाड़िया	14.69	16.35
25.	मुंडा	26.84	39.22
26.	उराँव	28.82	42.74
27.	परहिया	17.99	9.85
28.	संथाल	16.75	27.31
29.	सौरिया पहाड़िया	13.29	16.61
30.	सवर	9.92	14.82
31.	कोल	-	-
32.	कंवर	-	-
33.	अन्य	24.48	34.99

स्त्रोतः 1991 तथा 2001 की जनगणना

कोल एवं कंवर जनजाति की जनगणना 2001 के दौरान नहीं की गई थी।

विभाजन पूर्व 1991 में झारखण्ड राज्य में जनजातीय के साक्षरता दर मात्रा 27.52% देखने को मिली। इसका मुख्य कारण यहाँ जनजातीय के मध्य सांस्कृतिक तथा पम्परागत सोच के साथ-साथ प्रशासनिक तथा राजनीतिक स्तर पर जनजातीय साक्षरता के लिए कम प्रयास किए गए। इसके अतरिक्त जनजातीयों पर नगरीकरण तथा औद्योगीकरण का भी कम प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जिससे जनजातियों में शिक्षा के प्रति कम जागरुकता तथा ज्ञान का आभाव भी कम साक्षरता दर का प्रमुख कारण है।

तालिका-2: जनजातीय साक्षरता दर (1991-2011)

	1991					2001					2011				
राज्य/जिला	**व्यक्ति**	**पुरुष**	**स्त्री**	**ग्रामीण**	**नगरीय**	**व्यक्ति**	**पुरुष**	**स्त्री**	**ग्रामीण**	**नगरीय**	**व्यक्ति**	**पुरुष**	**स्त्री**	**ग्रामीण**	**नगरीय**
झारखण्ड	27.52	39.28	15.41	25.52	52.25	40.67	53.98	27.21	38.08	67.8	57.13	68.17	46.2	55.22	75.44
पलामू	21.45	31.83	10.53	21.17	41.26	34.46	48.23	20.17	34.06	71.22	55.77	67.06	43.95	55.31	78.14
गढ़वा	–	–	–	–	–	25.87	38.29	12.61	25.52	56.47	52.14	62.73	41.2	52.02	63.85
लातेहार	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	57.4	68.07	46.68	57.13	69.51
हजारीबाग	23.65	34.81	11.52	19.48	42.18	41.26	54.69	27.3	36.21	60.3	58.74	68.68	48.9	55.61	80.63
चतरा	–	–	–	–	–	37.25	48.36	25.39	36.87	86.41	57.17	65.64	48.43	56.55	77.28
कोडरमा	–	–	–	–	–	29.56	38.61	19.22	24.98	61.73	39.43	49.36	28.33	36.1	65.4
रामगढ़	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	60.36	71	49.45	57.38	67.79
गिरिडीह	16.59	26.68	5.75	14.92	45.29	24.71	36.99	11.89	24.29	87.88	46.06	58.52	33.28	45.73	69.96
बोकारो	–	–	–	–	–	37.44	52.11	21.85	29.21	60.6	56.27	68.08	44.2	51.08	68.64
धानबाद	23.88	36.33	10.62	19.05	40.55	39.61	56.32	22.22	36.4	56.2	56.16	69.4	42.78	54.08	67.43
देवघर	19.95	33.63	5.4	19.25	48.16	30.48	46.03	14.15	29.72	61.6	48.29	61.94	34.41	47.82	64.7
गोड्डा	20.94	31.76	9.74	20.79	49.41	28.73	41.31	15.95	28.39	75.52	43.67	55.31	32.29	43.38	75.45
साहेबगंज	16.66	24.46	8.61	16.38	59.89	24.44	33.39	15.53	23.77	63.76	39.95	48.82	31.22	39.24	71.89
पाकुड़	–	–	–	–	–	22.28	31.31	13.13	21.99	58.45	41.71	51.43	32.34	41.49	70.44
दुमका	22.4	34.84	9.59	22.18	49.16	35.67	49.58	21.67	35.4	63.01	52.87	64.61	41.51	52.66	73.46
जामताड़ा	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	55.13	67.92	42.44	54.79	77
राँची	34.61	46.57	22.19	30.44	55.71	52.72	65.77	39.56	47.89	74.62	67.91	77.52	58.37	63.61	80.76
खूँटी	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	61.28	71.56	51.19	60.06	84.92

लोहरदगा	32.45	44.47	20.08	30.86	76.98	45.77	59.61	32.03	43.82	77.8	63.01	73.35	52.83	61.81	83.1
गुमला	37.33	47.62	27.07	36.43	72.79	50.46	61.27	39.76	49.48	81.24	63.81	73.44	54.31	62.96	86.79
सिमडेगा	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	68.76	76.03	61.57	67.93	84.82
पू. सिंहभूम	32.14	46.9	16.97	27.85	53.3	46.83	62.12	31.34	42.04	65	59.66	71.89	47.58	56.08	72.6
प. सिंहभूम	27.9	42.2	13.62	26.35	52.71	39.29	55.1	23.68	37.64	63.14	53.43	66.37	40.81	52.06	74.47
सरायकेला खरसावाँ	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	57.29	70.92	43.6	56.85	62.5

तालिका-2 के अनुसार झारखण्ड राज्य में सबसे अधिक साक्षरता दर गुमला (37.33) जिला में दर्ज की गई, इसके बाद क्रमशः राँची (34.61), लोहरदगा (32.45), पूर्वी सिंहभूम (32.14) तथा पश्चिमी सिंहभूम (27.9) जिलो में थी। यहाँ अधिक साक्षरता दर का मुख्य कारण सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं के द्वारा जनजातियों को शिक्षित करने के लिए किया गया प्रयास है। यहाँ सबसे कम जनजातीय साक्षरता दर गिरिडीह (16.59), साहेबगंज (16.66), देवघर (19.95) तथा गोड्डा (20.94) में देखने को मिली। यहाँ कम साक्षरता दर का कारण जनजातियों के मध्य शिक्षा के प्रति उदासीनता है।

1991 ई० में झारखण्ड राज्य में जनजातीय पुरुष साक्षरता दर 39.28% थी। जिसमें सबसे अधिक गुमला जिला में 47.62% देखने को मिली इसके बाद क्रमशः पूर्वी सिंहभूम (46.9), राँची (46.57), लोहरदगा (44.46), तथा पश्चिमी सिंहभूम (42.2) आदि जिलों में पाई गई। इसके अतिरिक्त सबसे कम जनजातीय पुरुष साक्षरता दर साहेबगंज में 24.46 प्रतिशत थी। इसका मुख्य कारण यहाँ नगरीकरण और औद्योगिकरण का धीमी गति से विकास होना है। इसके बाद क्रमशः गिरिडीह (26.68), गोड्डा (31.76), पलामू (31.83) तथा देवघर (33.63) आदि जिले हैं।

झारखण्ड राज्य में जनजातीय महिला साक्षरता दर 1991 में बहुत कम देखने को मिली। यहाँ जनजातीय महिला साक्षरता दर मात्रा 15.41% थी। संयुक्त बिहार तथा झारखण्ड राज्य में जनजातीय महिलाओं की शिक्षा पर सरकार के द्वारा कम ध्यान दिया गया तथा जनजातीय महिलाओं में भी शिक्षा के प्रति कम जागरुकता देखने को मिली। इन कारणों से यहाँ 1991 में जनजातीय महिलाओं में साक्षरता दर में कमी दर्ज की गई। इनमें सबसे अधिक जनजातीय महिला साक्षरता दर वाला जिला गुमला (27.07) था। इसके बाद क्रमशः राँची (22.19), लोहरदगा (20.08) तथा पूर्वी सिंहभूम (16.97) राज्य की औसत से अधिक था, इसके अतिरिक्त सबसे कम जनजातीय महिला साक्षरता दर वाले जिलों में देवघर (5.4), गिरिडीह (5.75), साहेबगंज (8.61), गोड्डा (9.73) तथा दुमका (9.59) आदि जिलों में जनजातीय महिलाओं की शिक्षा पर कम ध्यान दिया गया। यहाँ अधिकांश जनजातीय महिलाएँ घरेलु कार्यों में ही संलग्न रहती थी।

ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातीय साक्षरता दर राज्य के औसत से कम देखने को मिला। यहाँ ग्रामीण जनजातीय साक्षरता दर मात्रा 25.52% थी, जिसमें सबसे अधिक ग्रामीण जनजातीय साक्षरता दर गुमला में 36.43% थी, यहाँ मुख्यतः मिशिनरी क्रियाकलापों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातियों को शिक्षित करने के लिए प्रयास किया गया था। इसके बाद क्रमशः लोहरदगा (30.86), राँची (30.44), पूर्वी सिंहभूम (27.85) तथा पश्चिमी सिंहभूम (26.35) आदि जिले थे, जहाँ मुख्यतः नगरीकरण तथा औद्योगिकरण के साथ-साथ मिशिनरीयों के द्वारा हो रहे शिक्षा के प्रचार का प्रभाव देखने को मिला। यहाँ सबसे कम ग्रामीण जनजातीय साक्षरता दर वाले जिलों में गिरिडीह (14.92), साहेबगंज (16.38), धानबाद (19.05), देवघर (19.25) तथा हजारीबाग (19.49) आदि थे।

झारखण्ड में नगरीय जनजातीय साक्षरता दर 52.25% दर्ज की गई जिसमें सबसे अधिक साक्षरता दर लोहरदगा में 76.98% थी, इसके बाद क्रमशः गुमला (72.79), साहेबगंज (59.89), राँची (55.71) तथा पूर्वी सिंहभूम (53.3) आदि जिलों में राज्य के औसत से अधिक थे। इसके अतिरिक्त सबसे कम नगरीय जनजातीय साक्षरता दर वाले जिलों में धानबाद (40.55), पलामू (41.26), हजारीबाग (42.18) तथा गिरिडीह (45.29) आदि है।

सन् 2000 में झारखण्ड के अलग राज्य बनने के बाद यहाँ प्रशासनिक कार्य सुचारु रुप से चलने लगे, सभी राज्यों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा, रोजगार के नए अवसर उपलब्ध होने लगे। इस कारण प्रवासी जनजातियों का पुनः झारखण्ड राज्य की ओर आगमन होना शुरु हुआ। इसके साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्रों में भी प्रगति होने लगी। इसके फलस्वरुप जनगणना 2001 में झारखण्ड राज्य में जनजातियों की साक्षरता दर 1991 में 27.52% से बढ़कर 2001 में 40.67% तक पहुँच गई। जिसमें पुरुषों की 53.98% तथा महिलाओं की 27.21% थी।

जनगणना 2001 में सबसे अधिक जनजातीय साक्षरता दर वाला जिला राँची (52.72) था, इसके बाद क्रमशः गुमला (50.46), पूर्वी सिंहभूम (46.83), लोहरदगा (45.77) तथा हजारीबाग (41.26) आदि ऐसे जिले थे, जो राज्य की औसत से अधिक थे। इसके अतिरिक्त सबसे कम जनजातीय साक्षरता दर वाले जिलों में पाकुड़ (22.28), साहेबगंज (24.44), गिरिडीह (24.71), गढ़वा (25.87) तथा गोड्डा (28.73) आदि जिले है।

जनजातीय पुरुष साक्षरता दर 2001 में झारखण्ड राज्य में 53.98% थी, जो राज्य के औसत से अधिक थी। जिसमें सबसे अधिक जनजातीय पुरुष साक्षरता दर वाला जिला राँची (65.77) था। इसके बाद क्रमशः पूर्वी सिंहभूम (62.12), गुमला (61.27), लोहरदगा (59.61), धानबाद (56.32) तथा पश्चिमि सिंहभूम (55.1) आदि जिलों में जनजातीय पुरुष साक्षरता दर अधिक थी इसके अतिरिक्त सबसे कम जनजातीय पुरुष साक्षरता दर वाले जिलों में क्रमशः थी, पाकुड़ (31.31), साहेबगंज (33.39), गिरिडीह (36.99), गढ़वा (38.29) तथा कोडरमा (38.61)।

जनजातीय महिला साक्षरता दर जनगणना 2001 में झारखण्ड राज्य में 27.21% थी। 1991 की तलुना में 2001 में जनजातीय महिला साक्षरता दर में काफी अधिक वृद्धि देखने को मिली। यहाँ सबसे अधिक जनजातीय महिला साक्षरता दर गुमला की 39.76% थी, इसके बाद क्रमशः राँची (39.56), लोहरदगा (32.03), पूर्वी सिंहभूम (31.34) तथा हजारीबाग (27.3) की थी। सबसे कम

जनजातीय महिला साक्षरता दर गिरिडीह (11.89) थी। इसके बाद क्रमशः गढ़वा (12.61), पाकुड़ (13.13), देवघर (14.15) तथा साहेबगंज (15.53) की थी।

ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातीय साक्षरता दर 2001 में झारखण्ड राज्य में 38.08 प्रतिशत थी। जिसमें सबसे अधिक गुमला में 49. 48 प्रतिशत, इसके बाद क्रमशः राँची (47.89), लोहरदगा (43.82), पूर्वी सिंहभूम (42.04) तथा पश्चिमी सिंहभूम (37.64) जिलों में थी। इसके अतिरिक्त सबसे कम जनजातीय ग्रामीण साक्षरता दर वाले जिलों में पाकुड़ (21.99), साहेबगंज (23.77), गिरिडीह (24.29), कोडरमा (24.98) तथा गढ़वा (25.52) थी।

2001 में झारखण्ड में नगरीय जनजातीय साक्षरता दर 67.8% थी, इसमें सबसे प्रथम स्थान पर गिरिडीह जिला में (87.88) था, इसके बाद क्रमशः चतरा (86.41), गुमला (81.24), लोहरदगा (77.81) तथा गोड्डा (75.52) जिलों की थी। यहाँ नगरों में रोजगार के विकास के कारण अधिकतर शिक्षित जनजातियाँ नगरों में निवास करने लगी। इसके अतिरिक्त सबसे कम नगरीय जनजातीय साक्षरता दर गढ़वा (56.47), धानबाद (56.2), पाकुड़ (58.45), हजारीबाग (60.3) तथा बोकारो (60.6) आदि जिलों में थी।

2011 में झारखण्ड राज्य में जनजातियों के साझरता दर में भी वृद्धि देखने की मिला यह वृद्धि क्षेत्रीय आधार पर अलग-अलग रुप में सामने आया। झारखण्ड में 2011 में साक्षरता दर 57.13% देखने को मिली यहाँ सबसे अधिक साक्षरता दर सिमडेमा जिला में दर्ज की गई। यहाँ साक्षरता दर 68.76% देखने को मिली इसके बाद क्रमशः राँची (67.91), गुमला (63.81), लोहरदगा (63. 01), खूँटी (61.28) तथा रामगढ़ (60.36) में दर्ज की गई। इन जिलों में जनजातीय साक्षरता दर में वृद्धि का मुख्य कारण लोगों का शिक्षा के प्रति जागरुकता के साथ-साथ केन्द्र तथा राज्य सरकार के शिक्षा संबंधी योजनाओं का भी योगदान है। इसके अतिरिक्त सबसे कम साक्षरता दर कोडरमा (39.43) में दर्ज की गई इसके बाद क्रमशः साहेबगंज (39.95), पाकुड़ (41.71), गोड्डा (43. 67) तथा गिरिडीह (46.06) में देखने को मिली। इन जिलों में साक्षरता दर में कमी का मुख्य कारण यहाँ के जनजातियों पर नगरीकरण तथा आधुनिकीकरण के कम प्रभाव के साथ-साथ जनजातियों का सांस्कृतिक स्वरुप में परिवर्तन नहीं होना है।

झारखण्ड में 2011 में जनजातीय पुरुष साक्षरता दर 68.17% दर्ज की गई। यहाँ सर्वाधिक जनजातीय पुरुष साक्षरता दर राँची (77. 52) जिला में दर्ज की गई इसके बाद राज्य के औसत से अधिक जिला क्रमशः सिमडेगा (76.03), गुमला (73.44), लोहरदगा (73.35), पूर्वी सिंहभूम (71.89), खूँटी (71.56), रामगढ़ (71.00), सरायकेला (70.92), धानबाद (69.4) तथा हजारीबाग (68.68) का स्थान है। यहाँ सबसे कम जनजातीय पुरुष साक्षरता दर साहेबगंज (48.82) में दर्ज की गई इसके बाद क्रमशः कोडरमा (49.36), पाकुड़ (51.43), गोड्डा (55.31) तथा गिरिडीह (58.52) में देखने को मिली।

जनगणना 2011 के अनुसार झारखण्ड राज्य में जनजातीय महिला साक्षरता दर 46.62 है। यहाँ सबसे अधिक जनजातीय महिला साक्षरता दर सिमडेगा (61.57) में दर्ज की गई इसके क्रमशः राँची (58.37), गुमला (54.31), लोहरदगा (52.83), खूँटी (51. 19) तथा रामगढ़ (49.45) में देखने को मिली। यहाँ सबसे कम जनजातीय महिला साक्षरता दर कोडरमा (28.33) का है। इसके बाद क्रमशः साहेबगंज (31.22), गोड्डा (32.29), पाकुड़ (32.34) तथा गिरिडीह (33.28) में देखने को मिली।

जनगणना 2011 के अनुसार झारखण्ड राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातीय साक्षरता दर 55.22% है। यहाँ सबसे अधिक ग्रामीण जनजातीय साक्षरता दर सिमडेगा (69.93) में दर्ज की गई इसके बाद क्रमशः राँची (63.61), गुमला (62.96), लोहरदगा (61. 81) तथा खूँटी (60.6) में देखने को मिली। यहाँ के ग्रामीण जनजातियों में अधिक साक्षरता दर का मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का प्रतिदिन नियमित रुप से शहर की ओर स्थानांतरण तथा ग्रामीण जनजातियों का शिक्षा के प्रति जागरुक होना है। यहाँ सबसे कम ग्रामीण जनजातीय साक्षरता दर कोडरमा (33.61) में दर्ज की गई इसके बाद क्रमशः साहेबगंज (39.24), पाकुड़ (41.49), गोड्डा (43.38), गिरिडीह (45.73) तथा देवघर (47.82) में देखने को मिली। यहाँ अभी भी साक्षरता दर में कमी का प्रमुख कारण ग्रामीण क्षेत्रों के जनजातियों में शिक्षा के प्रति कम जागरुकता तथा शिक्षण संस्थानों का कम होना है।

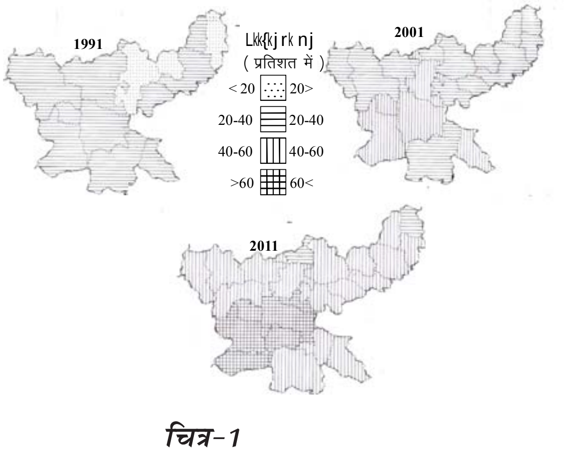

चित्र-1

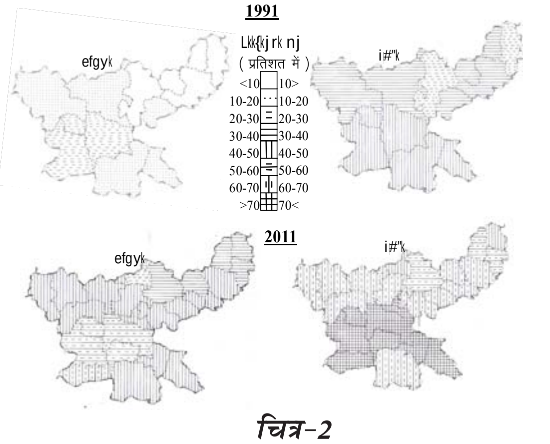

चित्र-2

2011 के जनगणनानुसार झारखण्ड में नगरीय जनजातीय साक्षरता दर 76.44% है। यहाँ सबसे अधिक नगरीय जनजातीय साक्षरता दर गुमला (86.79) में दर्ज की गई, इसके बाद क्रमश: खूँटी (84.92), सिमडेगा (84.82), लोहरदगा (83.1), राँची (80.76) तथा हजारीबाग (80.63) में देखने को मिली, यहाँ नगरीय जनजातीय साक्षरता दर अधिक होने का मुख्य कारण नगरीकरण, औद्योगिकरण का प्रभाव के साथ-साथ शिक्षण संस्थानों का अधिक संख्या में होना है। इसके अतिरिक्त यहाँ के जनजातीय लोगों में शिक्षा के प्रति जागरुकता भी मुख्य कारण है। यहाँ सबसे कम नगरीय जनजातीय साक्षरता दर सरायकेला (62.51) में देखने को मिली, इसके बाद क्रमश: गढ़वा (63.85), देवघर (64.7), कोडरमा (65.4), धानबाद (67.43) तथा रामगढ़ (67.79) में पाई गई। यहाँ कम नगरीय जनजातीय साक्षरता दर का मुख्य कारण जनजातीय लोगों में शिक्षा के प्रति कम जागरुकता होना तथा लोगों पर जनजातीय संस्कृति का अधिक प्रभाव होना है। इसे चित्र 1 और 2 में दर्शाया गया है।

झारखण्ड की जनजातियों में साक्षरता वृद्धि दर का प्रतिरुप

झारखण्ड के जनजातियों में दशकीय साक्षरता वृद्धि दर 1991 से 2001 के बीच काफी अधिक देखी गई। सन् 2000 में झारखण्ड के विभाजन के पश्चात् देश के विभिन्न भागों में रोजगार की तलाश में गए हुए जनजातियों का पुन: झारखण्ड राज्य की ओर आगमन हुआ, क्योंकि विभाजन के पश्चात्झारखण्ड राज्य में रोजगार के नए अवसर खोले जाने लगे, जिससे लोगों को विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध होने लगा विशेषकर जनजातियों की आय में वृद्धि से वे अपने बच्चों को विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए नामांकन करवाँने लगे जिससे जनजातियों में साक्षरता वृद्धि दर में तेजी से वृद्धि देखने को मिली।

तालिका-3 के अनुसार, 1991 से 2001 के बीच गिरिडीह जिला में सबसे अधिक दशकीय साक्षरता वृद्धि दर 191.93 प्रतिशत देखने को मिली। यहाँ शिक्षा के प्रति जागरुकता, शिक्षण संस्थाओं की उपलब्धता तथा सरकार की शिक्षा संबंधी नीतियों के कारण जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर में तेजी से वृद्धि देखने को मिली है। इसके बाद क्रमश: हजारीबाग (116.78), राँची (87.90), पलामू (87.34) तथा देवघर (87.01) जिले है, जहाँ जनजातियों में दशकीय साक्षरता वृद्धि दर अत्यधिक हुआ है। यहाँ साक्षरता वृद्धि का मुख्य कारण औद्योगिकरण तथा नगरीकरण पर आधारित जनजातियों का जीवन तथा संवैधानिक संरक्षण के साथ-साथ सरकार के विभिन्न योजनाओं व ईसाई मिशिनरियों द्वारा चलाए जा रहे शिक्षण संस्थानों का योगदान है। इसके अतिरिक्त झारखण्ड राज्य में सबसे कम जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर धानबाद (52.35) जिला की थी इसके बाद क्रमश: गुमला (53.82), गोस्रा (58.69), साहेबगंज (59.94) तथा पश्चिमी सिंहभूम (62.08) जिले है। यहाँ निम्न जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर का मुख्य कारण धानबाद, गुमला तथा पश्चिमी सिंहभूम जिलों के जनजातियों में पहले से ही साक्षर होना है, इन जिलों में औद्योगिकरण तथा ईसाई मिशनरियों के द्वारा शिक्षा के प्रसार काफी तेजी से हुआ था, जिस कारण यहाँ के जनजाति 1991 से 2001 के पहले ही काफी साक्षर होने लगे थे। इसके अतिरिक्त गोस्रा तथा साहेबगंज आदि संथाल परगना जिलों में जनजातियों का विकास कम हुआ है, इसके कारण शिक्षा के प्रति वे कम जागरुक हुए है।

तालिका-3: जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर

राज्य/जिला	1991.2001					2001.2011				
	कुल	पुरुष	स्त्री	ग्रामीण	नगरीय	कुल	पुरुष	स्त्री	ग्रामीण	नगरीय
झारखण्ड	75.84	62.00	112.2	75.25	79.38	75.35	56.08	114	79.57	50.51
गढ़वा	–	–	–	–	–	172.3	117.9	348.4	175.7	35.47
पलामू	87.34	78.36	115.9	88.22	56.05	122.09	87.43	208.1	121	168.5
लातेहार	–	–	–	–	–	–	–	–	–	.
चतरा	–	–	–	–	–	136.45	105.77	198.8	131	437.1
कोडरमा	–	–	–	–	–	117.23	106.69	141.2	137.55	58.8
हजारीबाग	116.8	90.9	201.7	132	85.51	80.08	57.4	127.4	90.48	56.6
रामगढ़	–	–	–	–	–	–	–	–	–	.
गिरिडीह	191.9	156.9	366.5	145.4	455.4	145.2	106.31	271.68	145.87	118.10
बोकारो	–	–	–	–	–	80.1	53.61	147.17	100.02	53.04
धानबाद	52.35	40.78	94.52	89.57	.8.08	67.51	43.45	130.98	76.92	36.0
देवघर	87.01	66.53	222.5	89.07	53.96	102.88	69.59	216.7	105.34	54.55
गोड्डा	58.69	49.01	91.39	57.66	140.26	74.34	50.66	136.6	74.88	46.357
साहेबगंज	59.94	49.10	91.70	58.52	118.76	92.06	70.75	137.71	93.10	69.52
पाकुड़	–	–	–	–	–	128.02	94.97	207.94	129.97	37.03
दुमका	82.73	61.39	162.59	82.93	72.18	75.98	52.72	129.49	76.14	66.97
जामताड़ा	–	–	–	–	–	–	–	–	–	.
राँची	87.90	71.68	123.25	90.55	80.58	59.08	45.03	82.63	62.16	50.10
खूँटी	–	–	–	–	–	–	–	–	–	.
लोहरदगा	77.22	65.38	104.23	74.26	110.42	84.76	64.466	122.24	89.39	41.67

गुमला	53.82	45.86	67.77	53.62	57.78	63.75	52.62	80.70	63.05	77.20
सिमडेगा	–	–	–	–	–	–	–	–	–	.
पूर्वी सिंहभूम	75.74	58.58	124.50	73.28	82.06	53.99	38.10	85.90	59.72	39.94
पश्चिमी सिंहभूम	62.08	49.39	101.39	63.42	51.42	76.39	55.48	124.4	80.09	44.42
सरायकेला खरसावाँ	–	–	–	–	–	–	–	–	–	.

1991 से 2001 के बीच झारखण्ड राज्य के जनजातियों में पुरुष साक्षरता वृद्धि दर 62% देखने के मिली। यहाँ सबसे अधिक पुरुष साक्षरता वृद्धि दर गिरिडीह जिला में ही 156.97% देखने को मिली। यहाँ अन्य जिलों की तुलना में जनजातीय पुरुषों में अत्यधिक साक्षरता वृद्धि हुई है, इसके बाद क्रमश: हजारीबाग (90.95), पलामू (78.36), राँची (71.68) तथा देवघर (66.53) जिला की थी। इसके अतिरिक्त सबसे कम जनजातीय पुरुष साक्षरता वृद्धि दर धानबाद (40.78) जिला की थी। इसके बाद क्रमश: गुमला (45.86), गोस्त्रा (49.01), साहेबगंज (49.10) तथा पश्चिमी सिंहभूम (49.39) जिला की थी। यहाँ जनजातीय पुरुषों की तुलना में जनजातीय महिलाओं में काफी अधिक साक्षरता वृद्धि दर दर्ज की गई इसका मुख्य कारण जनजातीय महिलाओं में सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानों के द्वारा महिलाओं के विकास के लिए अत्यधिक कार्य किया जाना है।

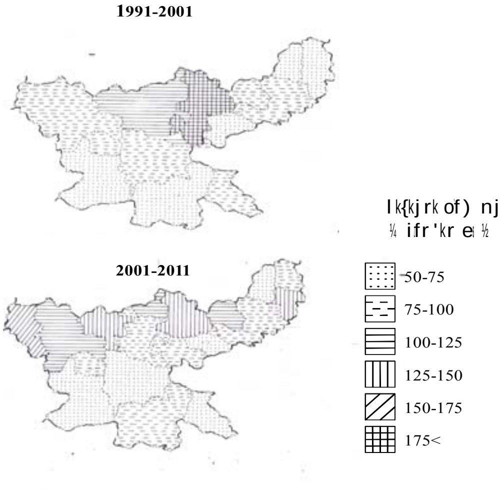

चित्र-3

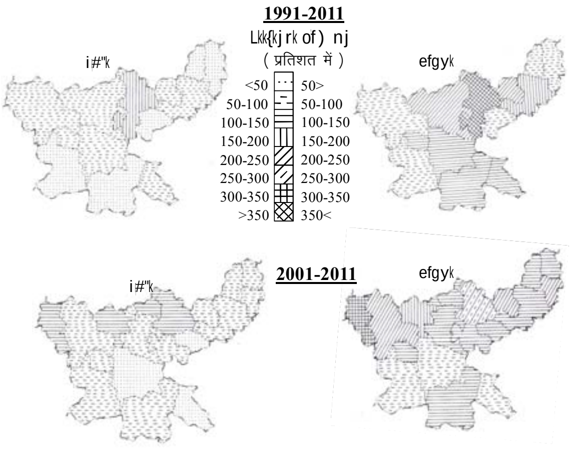

चित्र-4

1991 से 2001 के दशकीय जनजातीय महिला साक्षरता वृद्धि दर झारखण्ड राज्य में 112.17% देखने को मिली। यहाँ सबसे अधिक जनजातीय महिला साक्षरता वृद्धि दर वाला जिला गिरिडीह (366.52) था, इसका मुख्य कारण गिरिडीह जिला में जनजातीय महिलाओं का शिक्षा के प्रति जागरुकता होना है। इसके बाद क्रमश: सबसे अधिक महिला साक्षरता वृद्धि दर वाले जिलों में देवघर (222.57), हजारीबाग (201.67), दुमका (162.59), पूर्वी सिंहभूम (124.50) तथा राँची (123.25) थी, इसके अतिरिक्त सबसे कम साक्षरता वृद्धि दर गुमला जिला की 67.77% थी, यहाँ निम्न दशकीय साक्षरता वृद्धि दर का मुख्य कारण पहले से अधिकांश जनजातीय महिलाओं का साक्षर होना है। इसके बाद क्रमश: गोस्त्रा (91.39), साहेबगंज (91.70), धानबाद (94.52) तथा पश्चिमी सिंहभूम (101.39) जिलों की थी।

झारखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर 1991 से 2001 के बीच 75.25% देखने को मिली। यहाँ सबसे अधिक ग्रामीण जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर गिरिडीह जिला की 145.44% थी। इसके बाद क्रमश: हजारीबाग (132.03), राँची (90.55), धानबाद (89.57), देवघर (89.07) तथा पलामू (88.22) थी। इन सभी जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी से शिक्षा का प्रसार किया गया, जिससे ग्रामीण जनजातियाँ भी शिक्षित होने लगी। सबसे कम साक्षरता वृद्धि दर वाले जिलों में सबसे कम गुमला 53.62% है। 1991 तथा 2001 में यह जिला सबसे अधिक जनजातीय साक्षरता दर वाला जिला था। यहाँ की जनजातियों में शिक्षा का पहले से ही अधिक विकास तथा साक्षर जनजातियाँ होने के कारण 1991 से 2001 के बीच दशकीय साक्षरता वृद्धि दर में कमी देखने को मिली। इसके बाद क्रमश: गोस्त्रा (57.66), साहेबगंज (58.52), पश्चिमी सिंहभूम (63.42) तथा लोहरदगा (74.26) की थी।

नगरीय क्षेत्रों में सबसे अधिक जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर 1991 से 2001 के बीच गिरिडीह जिला की 455.41 थी, इसका मुख्य कारण जनजातियों का अधिकतर द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों के कार्यों में संलग्न होना है। इसके बाद क्रमश: गोस्त्रा (140.26), साहेबगंज (118.76) तथा लोहरदगा (110.42) की थी तथा सबसे कम नगरीय साक्षरता वृद्धि दर धानबाद की (–8.08)

थी। यहाँ सबसे कम जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर का मुख्य कारण औद्योगिकण तथा नगरीकरण है, क्योंकि यहाँ अधिकतर जनजातियाँ द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में कार्यरत है और यहाँ पहले से ही अधिकतर शिक्षित जनजातीय समुदाय निवास करती है। इसकारण दशकीय वृद्धि दर ऋणात्मक देखने को मिला। इसके बाद क्रमश: पश्चिमी सिंहभूम (51.42), देवघर (53.96) तथा पलामू (56.05) की थी।

झारखण्ड के अलग राज्य बनने के बाद यहाँ सभी क्षेत्रों में तेजी से विकास देखने को मिला सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षण संस्थान खोले जाने लगे तथा विशेष रुप से जनजातियों की शिक्षा पर ध्यान दिया जाने लगा सरकार के द्वारा अनेक सुविधाएँ उपलब्ध होने लगे शिक्षा के साथ-साथ रोजगार के लिए भी कई तरह के प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाने लगे, जिसकारण ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों के जनजातीय पुरुष तथा महिलाओं में साक्षरता वृद्धि दर काफी अधिक रही।

2001-2011 के बीच झारखण्ड राज्य की वृद्धि दर 75.35% थी। जिसमें सबसे अधिक साक्षरता वृद्धि दर गढ़वा जिला की 172. 3 प्रतिशत थी। इसके बाद क्रमश: गिरिडीह (145.2), चतरा (136.4), पलामू (122.1) तथा देवघर (102.9) की थी। ये सभी जिले 2001 के पहले सबसे कम साक्षरता दर वाले जिलों में से थे, परन्तु 2001 तथा 2011 में इन सभी जिलों की जनजातीय जनसंख्या में साक्षरता दर में काफी वृद्धि देखने को मिली तथा यहाँ के जनजातियों में प्राथमिक शिक्षा तथा आधुनिक शिक्षा के प्रति में झुकाव देखने को मिला इसके अतिरिक्त सबसे कम साक्षरता वृद्धि दर वाले जिलों में पूर्वी सिंहभूम (53.99), राँची (59.08), गुमला (63.75) तथा धानबाद (67.51) में है, ये सभी जिले झारखण्ड राज्य और औद्योगिकृत तथा नगरीकृत राज्य है यहाँ की जनजातियों में शिक्षा के प्रति जागरुकता काफी पहले ही आ गई थी और अधिकांश जनजातीय जनसंख्या साक्षर है। अत: 2001 से 2011 में दशकीय वृद्धि दर सबसे कम है।

जनजातीय पुरुषों में सबसे अधिक साक्षरता वृद्धि दर गढ़वा जिला की 117.9 प्रतिशत इसके बाद क्रमश: कोडरमा (106.7), गिरिडीह (106.3), चतरा (105.8) तथा पाकुड़ (94.97) जिला की है। सबसे कम जनजातीय पुरुष साक्षरता वृद्धि दर पूर्वी सिंहभूम (38.1) की थी, इसके बाद क्रमश: धानबाद (43.54), राँची (45.03), गोस्रा (50.66) तथा गुमला (52.62) की है।

जनजातीय महिलाओं में सबसे अधिक साक्षरता वृद्धि दर 2001 से 2011 के बीच गढ़वा जिला की 348.4 प्रतिशत पाई गई, इसके बाद क्रमश: गिरिडीह (271.7), देवघर (216.7), पलामू (208.1) तथा पाकुड़ (207.9) में पाई गई, इसके अतिरिक्त सबसे कम जनजातीय महिला साक्षरता वृद्धि दर गुमला (80.71) जिला की इसके बाद राँची (82.63), पूर्वी सिंहभूम (85.9) तथा लोहरदगा (122.2) में पाई गई है।

2001 तथा 2011 के दशकीय साक्षरता वृद्धि दर में जनजातीय पुरुषों की तुलना में जनजातीय महिला साक्षरता वृद्धि दर में सभी जिलों में दुगुनी से अधिक वृद्धि देखने को मिली है। इसका मुख्य कारण सरकारी तथा गैर सरकारी शिक्षण संस्थानों के द्वारा जनजातीय महिलाओं में शिक्षा के प्रचार प्रसार में अधिक प्रयासरत होना है।

झारखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर 2001 से 2011 में 79.57 प्रतिशत पाई गई है। जिसमें सबसे अधिक साक्षरता वृद्धि दर ग्रामीण क्षेत्रों के जनजातियों में गढ़वा जिला की 175.7 प्रतिशत देखने को मिली इसके बाद क्रमश: गिरिडीह (145.9), कोडरमा (137.6), चतरा (131) तथा पाकुड़ (130) की हैं, इसके अतिरिक्त सबसे कम साक्षरता वृद्धि दर क्रमश: पूर्वी सिंहभूम (59.72), राँची (62.16), गुमला (63.05), गोस्रा (74.88) तथा दुमका (76.14) जिलों की है।

नगरीय क्षेत्रों में जनजातीय साक्षरता वृद्धि दर झारखण्ड राज्य में 50.51 प्रतिशत है, जिसमें सबसे अधिक चतरा में 437.1 प्रतिशत रही। यहाँ नगरीय क्षेत्रों के जनजातियों में सबसे अधिक दशकीय साक्षरता वृद्धि दर का मुख्य कारण झारखण्ड के अलग राज्य बनने के बाद राजनीतिक और प्रशासनिक कार्यों में तीव्र गति से वृद्धि हुई जिसके फलस्वरुप जनजातियों के साक्षरता दर में भी वृद्धि देखने को मिली। चतरा के बाद क्रमश: पलामू (168.5), गिरिडीह (118.1), गुमला (77.2) तथा साहेबगंज (69.52) की देखने को मिली, इसके अतिरिक्त सबसे कम साक्षरता वृद्धि दर नगरीय क्षेत्रों के जनजातियों में गढ़वा जिला में 35.47 प्रतिशत है। इसके बाद क्रमश: धानबाद (36), पाकुड़ (37.04), पूर्वी सिंहभूम (39.94) तथा लोहरदगा (41.67) की है। इसे चित्र 3 तथा 4 में दर्शाया गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि जनजाति बाहुल्य झारखण्ड राज्य में जनजातियों में साक्षरता वृद्धि दर पहले की अपेक्षा वर्त्तमान समय में अत्यधिक वृद्धि दर्ज हुई, परन्तु यह वृद्धि विभिन्न भागों में जनजातीय समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चेतना भिन्न होने के कारण साक्षरता वृद्धि दर में भी भिन्नता देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त औद्योगिकरण तथा नगरीकरण भी एक महत्वपूर्ण कारण है। जिसका प्रभाव जनजातीय समाज में साक्षरता वृद्धि के रुप में देखी जा सकती है। जहाँ इस पर आध ारित जनजातीय समुदाय है। वहाँ साक्षरता में वृद्धि तीव्र गति से हुई है, परन्तु जहाँ पर औद्योगिक तथा नगरीय विकास कम हुआ है। वहाँ साक्षरता वृद्धि दर भी कम है। इसके अतिरिक्त झारखण्ड में जनजातीय साक्षरता वृद्धि में केन्द्र तथा राज्य सरकार के द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रम और संवैधानिक संरक्षण के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक संगठन खासकर ईसाई मिशनरीयों के योगदान से भी जनजातियों की साक्षरता में तीव्र गति से वृद्धि हुई है, जो एक सकारात्मक संकेत है।

संदर्भ

1. सिन्हा, वी.एन.पी., शंकर उर्विजा, सिन्हा, एस.पी., (1997) : बिहार का भूगोल, तृतीय संस्करण, नई दिल्ली, राजेश पब्लिकेशन।
2. तिवारी, राम कुमार (2010) : झारखण्ड की रुपरेखा, तृतीय संस्करण, राँची, शिवांगन पब्लिकेशन।
3. तिवारी, राम कुमार, (2002) : झारखण्ड का भूगोल, द्वितीय संस्करण, नई दिल्ली, राजेश पब्लिकेशन।
4. वर्मा, उमेश कुमार, (2009) : झारखण्ड का जनजातीय समाज, प्रथम संस्करण, राँची, सुबोध ग्रन्थमाला।
5. http://www.censusindia.com

राष्ट्रभाषा की अवधारणा एवं इस रूप में हिन्दी का प्रश्न : एक अध्ययन

डॉ० सुधीर कुमार

पी-एच.डी., राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

काफी सारे लोग हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा कहते है तथा ऐसे लोग भी है जो हिन्दी को भारत की राजभाषा कहते है। हालाकि एक तीसरा वर्ग ऐसे लोगों का भी है जो हिन्दी को न तो राष्ट्रभाषा मानते है, न राजभाषा। वे कहते है कि हिन्दी, बांग्ला, मराठी, गुजराती आदि बहुत सी भारत की राजभाषाएं है तथा राजभाषा की समस्या अभी अन्तिम रूप से तय नही हुई है और फिलहाल प्रयोग को देखते हुए, अंग्रेजी कहीं अधिक भारत की राजभाषा है। स्वतंत्रता से पहले पूरा भारत हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहता था या फिर पुरानी पीढ़की के अन्य भाषी वस्तुतः पुरानी परंपरा क्या कहती रही है, यह सार्थक नहीं है। अब सार्थक यह है कि स्वतंत्रता के बाद स्वतंत्र भारत के संविधान में हिन्दी को राजभाषा ही घोषित किया गया है, राष्ट्रभाषा नहीं। ऐसी स्थिति में अब उचित यही है कि हिन्दी को राजभाषा कहा जाए न कि राष्ट्रभाषा। राजभाषा तो वह भाषा है, जिसका प्रयोग राजकाज में हो। तत्वतः राजकाज के लिए ही हिन्दी को स्वीकृति दी गयी है। राष्ट्रभाषा वह भाषा है जिसका प्रयोग पूरा राष्ट्र करे। निश्चय ही हिन्दी के संबंध में यह स्थिति नहीं आई है। कभी आएगी भी यह कहना कठिन है। इस तरह अब हिन्दी को राष्ट्रभाषा न कह कर राजभाषा कहा जाए तो अधिक व्यावहारिक, उचित तथा संविधान सम्मत होगा।

राष्ट्रभाषा के साथ-साथ कभी-कभी हिन्दी के संपर्क भाषा होने की बात भी की जाती है। किन्तु राष्ट्रभाषा तो वह है जिसका प्रयोग पूरा राष्ट्र करे। इसको दूसरे रूप में हम कह सकते है की जब तमिल-भाषी, बांग्ला-भाषी से, या पंजाबी-भाषी से, असमी-भाषी से हिन्दी में बात करने लगे, किन्तु वह दिन निश्चय ही बहुत निकट नहीं है। संपर्क भाषा को तीन स्तरों पर पारिभाषित किया जा सकता है। एक तो वह भाषा को तीन स्तरों पर पारिभाषित किया जा सकता हैं एक तो वह भाषा जो एक राज्य (जैसे बंगाल या गुजरात) से दूसरे राज्य जैसे महाराष्ट्र या असम के राजकीय पत्र-व्यवहार में काम आए। दूसरी वह भाषा जो केन्द्र और राज्यों के बीच पत्र-व्यवहारों का माध्यम हो। तीसरे वह भाषा जिसका प्रयोग एक क्षेत्र, प्रदेश का व्यक्ति दूसरे क्षेत्र-प्रदेश का व्यक्ति से अपने निजी कामों में करे। सम्पर्क भाषा का हिन्दी के लिए प्रयोग सामान्यतः प्रथम और द्वितीय, दो दृष्टियों से ही किया जाता है। यों उसका एक तीसरा पक्ष भी अवश्य, जो ऊपर कहा गया है, किन्तु सामान्यतः जिसकी ओर हिन्दी को सम्पर्क भाषा कहने और मानने वालों का ध्यान नहीं जाता। काफी लोग यह कहते है कि राष्ट्रभाषा एक नहीं है। वे सभी राष्ट्र भाषाएं है जो राष्ट्र में बोली जाती है, जैसे तमिल, तेलगू, मराठी, गुजराती, बांग्ला आदि। अंततः हम यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा न कहकर राजभाषा कहें तो सभी दृष्टियों से यह अधिक उचित होगा। जहां तक हिन्दी को राजभाषा न मानने का प्रश्न है। तो यह बहुत थोड़े लोगों का मत है जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। जब संविधान ने हिन्दी को राजभाषा माना है तो उससे यह नाम छीना नहीं जा सकता।

प्रस्तुत अध्ययन में राष्ट्रभाषा की मूल अवधारणा एवं इसकी कसौटियों का विवेचन करते हुए राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी भाषा का आग्रह जैसे प्रश्न का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी: राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, राजभाषा, भाषाई व्यापक्ता, लिपि, त्रिभाषा सूत्र।

परिचय

हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का प्रश्न मूलत: इस बात पर टिका है कि हम किसी भाषा के राष्ट्रभाषा होने के लिए कौन सी कसौटियां स्वीकारते है। विभिन्न भाषाविदों के विचारों को संश्लेषण करें तो किसी भाषा के राष्ट्रभाषा होने की निम्नलिखित कसौटियां मानी जा सकती है–

1. वह भाषा देश के सभी या अधिकतम व्यक्तियों द्वारा बोली जा सकती हो।
2. उसे बोलने वाले देश के किसी एक हिस्से में नहीं बल्कि विभिन्न हिस्सों में हो ताकि वह भाषा पूरे देश में सम्पर्क सूत्र स्थापित करने में सक्षम हो सके।
3. वह भाषा राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत को धारण करने में सक्षम हो अर्थात देश के विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों की अभिव्यक्ति उसमें हो पाती हो।
4. उसका शब्द भंडार इतना व्यापक हो कि देश के विभिन्न हिस्सो में प्रचलित शब्दावली उसमें शामिल हो सके। उसमें यह प्रवृत्ति भी होनी चाहिए कि देश की भाषाओं के अन्य शब्दों को वह सहजतापूर्वक शामिल करे, न कि उनसे परहेज करे।
5. उस भाषा का व्याकरण सरल होना चाहिए ताकि देश के अन्य हिस्सों के निवासी यदि उसे सीखना चाहे तो सीखनी की प्रक्रिया कठिन न हो।
6. उसकी ध्वनि संरचना व्यापक तथा लचीली होनी चाहिए। यदि अन्य भाषाओं की कुछ ध्वनियां उसमें प्रयुक्त न होती हो तो उन्हें स्वीकारने की क्षमता उसमें होनी चाहिए।
7. उसकी लिपि भी राष्ट्रीय लिपि होनी चाहिए अर्थात ऐसी लिपि जिसमें देश की सभी भाषाओं में प्रयुक्त होने वाले ध्वनि संकेत लिखे जा सकते है।
8. उस भाषा में सहित्य की रचना व्यापक तौर पर हुई हो तथा साहित्य देश के विभिन्न क्षेत्रों में रचा गया हो।
9. उस भाषा ने राष्ट्र के प्रमुख आंदोलनों में सक्रिय सहभागिता की हो अर्थात सामाजिक विकास की प्रक्रिया में सक्रिया भूमिका निभाई हो।

हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के तर्क

अब प्रश्न है कि क्या हिन्दी इस कसौटियों पर खड़ी उतरती है? ध्यानपूर्वक देखे तो प्राय: सभी कसौटियों पर हिन्दी की स्थिति मजबूत है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते है-

सबसे पला तर्क लोकतांत्रिक तर्क है। हिन्दी भारत में सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा प्रयुक्त होने वाली भाषा है। यह दस राज्यों में प्रथम भाषा है जो लगभग 42 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते है। कुछ ऐसे राज्य है जहां अन्य आर्य भाषाएं प्रचलित है जैसे-बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, गुजरात आदि। इन राज्यों की भाषाएं हिन्दी की तरह संस्कृत से ही व्युत्पन्न हुई है इसलिए इन राज्यों के निवासी हिन्दी समझने में समस्या महसूस नहीं करते है। ऐसे लोगों की संख्या भारत की जनसंख्या में लगभग 30 प्रतिशत है। इन 70-72 प्रतिशत व्यक्तियों के अतिरिक्त शेष भारत में टूटी-फूटी हिन्दी बोली और समझी जाती है। उदाहरण के लिए कनार्टक, आंध्र प्रदेश और केरल जैसे राज्यों में हिन्दी कम से कम काम चलाऊ भाषा के तौर पर सहजता से प्रयुक्त होती है। भारत की कोई भी अन्य भाषा इस दृष्टि से हिन्दी से काफी पीछे है। बांग्ला और तेलुगू के प्रयोक्ताओं की संख्या हिन्दी के तुरंत बाद सर्वाधिक है पर दोनों में से किसी के प्रयोक्ता भारत की जनसंख्या में 10 प्रतिशत भी नहीं है। इनका क्षेत्रगत विस्तार भी सीमित ही है। स्पष्ट है कि संख्या और क्षेत्रगत व्यापकता दोनों दृष्टियों से हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा का दर्जा मिल सकता है।

हिन्दी आरंभ से ही देश की राष्ट्रभाषा रही है। इसका मूल कारण यह है कि देश की लगभग सभी प्रमुख भाषाएं या तो आर्यभाषा संस्कृत से विकसित हुई है या व्याकरण अथवा शब्दावली के स्तर पर संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित है। विकास की इस प्रक्रिया में हिन्दी उस स्थान पर बोली गई जो हमेशा से भारतीय इतिहास के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिवर्तनों का केन्द्र बिन्दु रहा। चाहे पाटलिपुत्र हो, दिल्ली हो या आगरा- ये प्रमुख स्थान हिन्दी भाषी क्षेत्र ही रहे। इतना ही नहीं, जब दक्षिण की ओर राजनीतिक अभियान होने लगे तो हिन्दी भाषा भी दक्खिनी हिन्दी बनकर दक्षिण भारत में पहुंच गई। 20वी सदी में हिन्दी फिल्मों तथा हिन्दी साहित्य ने पूरे देश में भाषा का जबर्दस्त प्रचार-प्रसार किया है। 20वीं सदी के आरंभ में देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास 'चंद्रकांता'

और मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'भारत भारती' ने पूरे देश में हिन्दी का डंका बजाया तो आजादी के बार के दौर में हिन्दी फिल्मों ने दक्षिण भारत को अपनी गिरफ्त में ले लिया। अत: आरंभ से लेकर आज तक हिन्दी देश की सम्पर्क भाषा रही है।

हमारे देश के सबसे बड़े दो सामाजिक आंदोलन-भक्ति आंदोलन तथा स्वतंत्रता आंदोलन हिन्दी भाषा के दम पर ही सफल हो सके। भक्ति की परंपरा उत्पन्न चाहे दक्षिण में हई हो और महाराष्ट्र, गुजरात होते हुए उत्तर भारत पहुंची हो, किंतु भक्ति ने आंदोलन का रूप उत्तर भारत में ही लिया जिसमें भाषा की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संत नामदेव और तुकाराम ने महाराष्ट्र में, नरसी मेहता ने गुजरात में, चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में, गुरूनानक तथा अन्य गुरूओं ने पंजाब में और मीराबाई ने राजस्थान में भक्ति की जो धार बहाई, वह अपने स्वरूप में हिन्दी को राष्ट्रभाषा ही साबित करती थी। स्वाधीनता संग्राम में तो औपचारिक रूप से हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहा गया। केशवचंद्र सेन और बंकिमचंद्र चटर्जी ने नवजागरण आंदोलन में भी कहा कि "देश की एकता हिन्दी भाषा के माध्यम से ही सम्भव है।" आगे चलकर 1918 में महात्मा गांधी ने घोषणा की कि "हिन्दी ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा हो सकती है और होनी चाहिए। हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है।" इसके बाद सम्पूर्ण नवजागरण तथा स्वाधीनता आंदोलन में गैर हिन्दी भाषी राज्यों के नेताओं ने हिन्दी के प्रचार प्रसार को एक नीति ही बना लिया। पंजाब में लाला लाजपतराय और यशपाल जैसे क्रांतिकारियों ने महाराष्ट्र में सावरकर, तिलक व कालेलकर ने, गुजरात में दयानन्द सरस्वती, गांधी तथा पटेल ने, बंगाल में केशवचंद्र सेन, राजेन्द्र लाल मित्र, बंकिमचंद्र चटर्जी, सुभाषचंद्र बोस तथा क्षितिमोहन सेन ने, और दक्षिण भारत में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, मोटूरि सत्यनारायण तथा टी0 विजय राघवाचार्य जैसे नेताओं ने हिन्दी के पक्ष में खुलकर अपनी राय व्यक्त की।

निष्कर्ष

हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का एक अन्य आधार है- उसमें रचित साहित्य की क्षेत्रगत व्यापकता। प्राचीन काल से हिन्दीतर प्रदेशों में कइ रचनाकारों ने हिन्दी साहित्य की रचना की। पंजाब में गुरूनानक, गुरू अर्जुनदेव, गुरू गोविंद सिंह, श्रद्धाराम फिल्लौरी तथा यशपाल जैसे रचनाकारी हुए; महाराष्ट्र में प्रभाकर माचवे तथा गजानन माधव मुक्तिबोध ने रचनाएं की; तमिलनाडु मेंवी0 राजू जैसे साहित्यकार हुए; बिहार-बंगाल के क्षेत्र में विद्यापति ने लिखा; आंध्र प्रदेश में मोटूरि सत्यनारायण का हिन्दी साहित्य अत्यंत प्रसिद्ध हुआ; असम में शंकरदेव तथा केरल में श्रीराम वर्मा तथा शाह जी महाराज जैसे कवियों ने हिन्दी में ही लिखा। स्पष्ट है कि देश के लगभग सभी क्षेत्रों में हिन्दी साहित्य की रचना हर काल में होती रही है जो उसके राष्ट्रभाषा होने का एक प्रमुख आधार बनता है।

जहां तक राष्ट्रभाषा की अन्य कसौटियोंका प्रश्न है उन पर भी हिन्दी भाषा खरी उतरती है। सबसे पहली बात यह है कि इसका व्याकरण पूर्णत: वैज्ञानिक है जिसे अनुभव से तो सीखा ही जा सकता है, वैज्ञानिक पद्धति से भी सीखने में समस्या नहीं होती। इसकी ध्वनि संरचना में वे सभी ध्वनियां शामिल कर ली गई है जो भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त होती है ताकि यह राष्ट्र के सभी व्यक्तियों के व्यवहारों के लिए पर्याप्त भाषा बन सके। ऐसी प्रमुख ध्वनियां है- (मराठी से); क़ ख़ ग़ ज़ फ़ (फारसी से)। इतना ही नहीं, संस्कृत और अपभ्रंश में जो ध्वनियां मिलती थी तथा जिनका प्रयोग आज होता है, वे भी इसमें समाहित है। जैसे- ऋ, विसर्ग (संस्कृत से) ऋड़ और ढ़ (अपभ्रंश से)। वर्तमान भूमंडलीकृत समय में अंग्रेजी के शब्दों की संख्या तथा महत्व बढ़ने के कारण कुछ अंग्रेजी ध्वनियां जैसे 'ऑ' ध्वनि भी इसमें शामिल कर ली गई है जिसका प्रयोग डॉक्टर, हॉस्पिटल इत्यादि शब्दों में होता है।

हिन्दी की लिपि देवनागरी भी सामानांतर रूप से राष्ट्रलिपि के रूप में परिवर्द्धित होती है। वे सभी संकेत जो भारतीय भाषाओं की ध्वनियां के लिए चाहिए किंतु इसमें नहीं थे, अब स्वीकार किए जा चुके है।

दरअसल, हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने का अर्थ यह नहीं है कि देश की अन्य भाषाएं राष्ट्रेतर, अराष्ट्रीय या राष्ट्र-विरोधी भाषाएं है। जिस तरह हिन्दी इस राष्ट्र की भाषा है वैसे ही वे भी राष्ट्रीय भाषाएं है। हिन्दी पूरे देश की सम्पर्क भाषा रही है-इसी आधार पर उसे राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिए। यह दर्जा सिर्फ एक प्रतिकात्मक दर्जा है। जिस प्रकार 'हॉकी' राष्ट्रीय खेल है और 'जन गण मन' राष्ट्रीय गान है, किन्तु इसका यह अर्थ यह नहीं कि शेष खेल और गीत अराष्ट्रीय या राष्ट्र-विरोधी है; उसी प्रकार हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने को बाकी भाषाओं के विरोध में नहीं देखा जाना चाहिए। होना तो यह चाहिए कि त्रिभाषा सूत्र का क्रियान्वयन पूरी ईमानदारी तथा प्रतिबद्धता से हो ताकि सभी भाषाओं का विकास संतुलित व समन्वित तरीके से हो सके तथा भाषा के आधार पर कोई भी क्षेत्र तुलनात्मक वंचन महसूस न करे।

संदर्भ

1. बाहरी, डॉ. हरदेव; हिन्दी भाषा, अभिव्यक्ति प्रकाशन, लखनऊ, 2000, पृ. सं. 151-167
2. नागेन्द्र, डॉ.; हिन्दी साहित्य का इतिहास (संपादित), भूमिका, पृ. सं. 1-6
3. कुमार, कृष्ण; भारतीयों की सार्वभौमिक अखंडता : परिकल्पना एवं विचार, सृजन संवाद, लखनऊ, पृ. सं. 10-11
4. डांगे, ले. श्रीपाद अमृत; हिन्दी ही भारत की संपर्क भाषा, शब्दपीठ पुस्तिका इलाहाबाद,
5. लोहिया, डॉ. राममनोहर; धरती माता-भारत माता, पृ. सं. 98
6. तिवारी, ले. कनक; संविधान का सच, राष्ट्रभाषा का सवाल।

हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृष्य

डॉ० कविता राजन

एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हरिशंकर परसाई अपने समय और समाज के जागरूक रचनाकार हैं जिनकी दृष्टि विश्व में घटित घटनाओं पर केन्द्रित थी। उन्होंनें विश्व की महत्वपूर्ण घटनाओं पर न सिर्फ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की अपितु राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों के मध्य में खड़े होकरं वे अपनी राय भी बनाते हैं उनकी रचनाओं का यह दायरा, परसाई जी को हिन्दी साहित्य के इतिहास में बहुत ऊँचा खड़ा करता है।

1945 में द्वितीय विश्व युद्ध में फासीवादी ताकतों के पराजित होने के साथ ही साम्राज्यावद के पतन की गति भी तेज हो गई। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष तेज हो गया और पराधीन देश साम्राज्यावादी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए कटिबद्ध हो गये। उधर जैसे-जैसे संघर्ष तेज हुआ साम्राजवाद ने भी अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए दमन और अत्याचार को बढ़ा दिया। परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर मानव हत्या हुई। परन्तु इसके बावजूद भारत सहित अधिकांश देश साम्राज्यावादी शासन को मात देकर अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हुए। द्वितीय विश्व युद्ध ने महाशक्तियों को भी आर्थिक रूप से खोखला बना दिया। इग्लैण्ड, फ्रांस आदि आर्थिक रूप से इतने कमजोर हो गये कि उन्हें पूर्ण रूप से अमेरिका जैसी महाशक्ति पर निर्भर हो जाना पड़ा। इससे विश्व स्तर पर अमेरिका का वर्चस्व बढ़ा ओर वह एक महाशक्ति के रूप में उभरा।

1917 में रूस में साम्यवादी क्रान्ति होने से विश्व में मार्क्सवादी विचारधारा का तेजी से प्रसार हुआ और समाजवाद ने विश्व को पूंजीवाद का विकल्प प्रदान किया। चीन सहित पूर्वी यूरोप के अनेक देशों में समाजवादी शासन की स्थापना से पूंजीवाद के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद रूस का तेजी से विकास हुआ और वह दूसरी महाशक्ति के रूप में उभरा। इस प्रकार वैश्विक परिदृष्य पर दोनों महाशक्तियों-अमेरिका और रूस ने अपने-अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए प्रयास तेज कर दिया। दोनों अपनी-अपनी विचारधाराओं- पूंजीवाद और समाजवाद के प्रसार के लिए दुनिया के अन्य देशों को प्रभावित करने लगे। पूरा विश्व दो ध्रुवों में बंट गया। एक का नेतृत्व अमेरिका कर रहा था तो दूसरे का रूस। दो ध्रुवीय विश्व में शक्ति संतुलन के लिए हथियारों के निर्माण की अंधी दौड़ शुरू हुई जो अन्ततः पूरी मानवता के लिए विनाशकारी साबित हुई। "द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान विश्व धुरी राष्ट्र तथा मित्र राष्ट्र में बंटा था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इसने साम्यवादी तथा साम्यवाद विरोधी गुटों का रूप ले लिया। इसका एक नया स्वरूप शीत युद्ध के रूप में विकसित हुआ।"[1] शीत युद्ध के दौरान हमेशा युद्ध की आशंका बनी रहती थी और पूरा विश्व युद्ध की उसी आशंका में जीने को अभिशप्त था। हरिशंकर परसाई इस पूरे वैश्विक घटनाक्रम को करीब से देख रहे थे। और उन्होंने अपने व्यंग्य स्तंभों 'सुनो भाई साधो', 'यह माजरा क्या है?', 'कबिरा खड़ा बाजार में', 'अरस्तू की चिट्ठी' आदि में आदम, 'अरस्तू', 'कबीर' आदि छद्म नामों से महाशक्तियों के वर्चस्ववादी चरित्र और उनके आर्थिक , राजनीतिक निहितार्थ का उद्घाटन किया है।

अपने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यंग्यों के विषय में साहित्य अकादमी दिल्ली के 1983 के पुरस्कार वितरण पर पढ़े गये वक्तव्य 'मेरी कैफियत' में हरिशंकर परसाई ने कहा है, "उधर दुनिया में दूसरे महायुद्ध के बाद से ही शीतयुद्ध, हथियारों की होड़, एक से बढ़कर एक घातक परमाणु अस्त्रों के अम्बार। तीसरी दुनिया के नवस्वाधीन गरीब विकासशील देशों का नव-साम्राज्यावादियों द्वारा

शोषण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा लूट। विश्वव्यापी साम्राज्यवादी युद्धोन्मादी शक्तियों द्वारा लोकतंत्र का नाश, सरकारें पलटना, हत्याकाण्ड और व्यापक तौर पर अमानवीकरण। मजहब के नाम पर चलनेवाली बर्बर तानाशाही और राजशाही। मनुष्य की अस्मिता भंग हो रही है। मानव गरिमा का नाश हो रहा है। हर आदमी दुनिया में असुरक्षित महसूस करता है। हर आदमी डरा हुआ है। अरबों आदमी भूखे हैं, मगर उनकी रोटी का पैसा हथियारों में लग रहा है। किसी भी दिन जानकर, अनजानी भूल से अथवा अकस्मात् विश्वयुद्ध शुरू हो सकता है और तब चन्द घण्टों में न मनुष्य जाति रहेगी, न उसकी सभ्यता और संस्कृति। मेरी नजर अपने घर से लेकर वियतनाम, निकारागुआ, नामीबिया तक है। मैं सिर्फ दिल्ली नहीं वाशिंगटन, मास्को, बीजिंग के तेवर भी देखता हूँ।"[2] वास्तव में यह परसाई जी की विश्व दृष्टि और मानवातावादी दृष्टि ही है जो युद्धों और हथियारों के खतरनाक खेल में पूरी सभ्यता को झोंक देने वाली साम्राज्यिक शक्तियों की कलुषित मानसिकता को पकड़ने में सफल होती है।

हरिशंकर परसाई ने अमेरिकी राष्ट्रपति, अरब देशों के तानाशाहों और शासनाध्यक्षों से काल्पनिक साक्षात्कार और भेंट के द्वारा उनकी नीतियों की आलोचना की है और उनके छद्म का उद्घाटन किया है। "दूसरे महायुद्ध के बाद से आज तक जितने अमेरिकी राष्ट्रपति, ब्रिटिश प्रधानमंत्री, सोवियत राष्ट्रपति और पार्टी सचिव या प्रधानमंत्री हुए हैं, उन सबके बारे में परसाई ने लिखा है। उन्होंने गुट-निपेक्ष आन्दोलन के कार्यरत तीसरे विश्व के राजनेताओं के चरित्रांकन और विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में साम्राज्यवाद के विरूद्ध जूझनेवाले व्यक्तियों के साथ ही उस अमानवीय रीति-नीति का भी पर्दाफाश किया है, जो विश्व मानवीयता को युद्ध की मानव-संहारक विभीषिका में झोंकती है। यह लेखन मात्र विवरणमूलक चित्रण नहीं है, अपितु, कलात्मक चित्रांकन है, जहाँ इनसे संबद्ध व्यक्तित्व और शक्तियाँ अपनी चरित्र-गत वर्गीय विशिष्टताओं के साथ रचना में आकार ग्रहण करती हैं, रचनाकार के व्यंग्यात्मक सामर्थ्य के माध्यम से पात्र बनती हैं, और फलतः पाठक की समझ गहरे बैठती है।"[3]

परसाई जी के लेखन की राजनीति का आधार है पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ, पूंजीवादी मूल्यों के खिलाफ संघर्ष और यह संघर्ष-चेतना ठोस एवं यथार्थ अनुभूति से प्रेरित है। पूंजीवाद के शोषणकारी और साम्राज्यावादी चरित्र के खिलाफ उनका साहित्य निरंतर संघर्ष करता है। उन्होंने अमेरिका के साम्राज्यवादी चरित्र पर तीव्र प्रहार किया है। अमेरिका दुनिया भर में पूंजीवाद की स्थापना करके अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है। इसके लिए वह आर्थिक सहायता, आक्रमण की धमकी और आर्थिक प्रतिबंध के द्वारा दुनिया के देशों को डराकर उनकी विदेश नीति पर अपना नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास करता है। अपने हथियारों की बिक्री के लिए वह दूसरे देशों की असुरक्षा का प्रचार करता है। उनकी सुरक्षा का आश्वासन देकर उन्हें अपने अनुसार संचालित करता है। 'अमेरिकी छत्ता'- नामक निबंध में परसाई जी ने लिखा है, "साधो, पिछले महायुद्ध के बाद से दुनिया में एक खास किस्म के छत्ते बिक रहे हैं। ये अमेरिकी छत्ते या नाटो के छत्ते या सीटो के छत्ते कहलाते हैं। ये सब छत्ते असल में अमेरिकी कारखाने में बनते हैं। ...... साधो, इस छत्ते से धूप वर्षा से बचाव नहीं होता, हवाई हमले से बचाव होता है।"[4]

अमेरिका अपने हथियारों की सप्लाई के लिए दूसरे देशों को लड़ने के लिए उकसाता है। और उन पर झूठे हमले का डर पैदा करता है। हथियार उसकी अर्थव्यवस्था के बहुत बड़े अंश की पूर्ति करते हैं। अगर देश आपस में लड़ेंगे नहीं तो उसके हथियारों की बिक्री नहीं होगी जो उसकी अर्थव्यवस्था के लिए हितकर नहीं होगा। 'जनरल जिया-उल-हक से भेंट' नामक व्यंग्य में आदम तथा जिया की काल्पनिक वार्ता के माध्यम से हरिशंकर परसाई ने यह दिखाया है कि किस प्रकार अमेरिका जबरन अपने मित्र देशों को हथियार खरीदने के लिए बाध्य करता है।

"आदम - तो क्या आप पर हमला हुआ है?

जिया- हम पर तो कोई हमला नहीं हुआ। मगर वे कहते हैं कि हमें खतरा है। देखो, हिन्दुकुश के उस पार से हवा आयी कमरे में घुस आती है और हड्डी कँपा जाती है।

आदम - तो ले लीजिए गोला-बारूद। आप पर हमला हुआ है, यह आप तय नहीं करेंगे, अमेरिका तय करेगा। अमेरिका का अपने दोस्तों से यही रिश्ता है। अमेरिका अपने मित्र देश से कहता है - तुम पर हमला हुआ है। वह देश कहता है कि-हुजूर, हम पर हमला नहीं हुआ। अमेरिका कहता है - अबे बेवकूफ, तू क्या जानता है। हम कहते हैं, तुझ पर हमला हुआ है। ले हथियार और लड़।"[5]

लोकतंत्र और शान्ति की स्थापना के नाम पर अमेरिका दूसरे देशों पर हमला करता है जबकि वह वास्तव में शान्ति चाहता ही नहीं है। वह चिली की निर्वाचित सरकार को हटाकर वहाँ पर तानाशाही की स्थापना कर देता है। वियतनाम में साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए 18 साल तक बमबारी करके लाखों लोगों की हत्या करता है। वास्तव में उसकी शान्ति स्थापना का ढोंग विश्व राजनीति पर अपनी शक्ति की स्थापना का एक जरिया है। उसके इस ढोंग का पर्दाफाश परसाई जी ने 'किसिंगर साहब से भेंट' नामक व्यंग्य में किया है जहाँ वे 'कबीर' के छद्म नाम से किसिंगर से काल्पनिक बातचीत करते हैं।

"किसिंगर ने कहा – समझौता कराने कौन बेवकूफ जाता है? मैं तो झगड़े बढ़ाने जाता हूँ। अगर दुनिया में समझौते हो गये और शान्ति हो गयी, तो महान अमरीका को कौन पूछेगा? कबीर ने कहा – इसीलिए तुमने चिली में जनतंत्र को नष्ट किया। श्रीमती एलेण्डे तो साफ कहती हैं कि किसिंगर ने चिली की निर्वाचित सरकार को खत्म करके फौजी तानाशाही लाद दी। किसिंगर ने कहा – औरतों की बातों का क्या? भई चिली की सरकार कम्यूनिस्टों की सरकार थी उसे गिराना तो हमारा फर्ज था।"[6]

इसी प्रकार 'राष्ट्रपति निक्सन से भेंट' में भी उन्होंने अमेरिका के शान्ति और लोकतंत्र की स्थापना के ढोंग का उद्घाटन किया है। अमेरिका अपने को महाशक्ति मानता है और चाहता है कि अन्य देश भी उसे महाशक्ति के रूप में स्वीकार करें और उसके प्रभाव को मानें। इसीलिए उसका प्रयास रहता है कि कहीं न कहीं दो देश आपस में जरूर लडते रहें। अगर वे नहीं लड़ते हैं तो वह उन्हें हथियार इत्यादि देकर लड़वाने का प्रयास करता है।

"मैंने कहा – एशिया में आपका क्या स्वार्थ है?

निक्सन ने कहा – 'बिग पावर' का यह कर्त्तव्य है कि वह कहीं शान्ति न रहने दे। सब डर के साये में जिन्दा रहें। इसीलिए कहीं हमारा सातवां बेड़ा है, कहीं हमारा छठवाँ बेड़ा है। शान्ति ही रही तो हमें 'महाशक्ति' कौन मानेगा? फिर इतना पैसा, इतने हथियार, इनका भी तो कुछ करना पड़ेगा।"[7]

हरिशंकर परसाई ने अमेरिका के उस चरित्र की भी आलोचना की है जिसके तहत मानवाधिकार की रक्षा के नाम पर वह दूसरे देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करता है और उनके खिलाफ दुष्प्रचार करता है। जबकि अपने देश में मानव अधिकारों के मुद्दे पर शान्त रहता है। जब उसके हितों को किसी प्रकार का खतरा पैदा होता है तब वह मानवाधिकार की बात करता है। "पाताल से लेकर अन्तरिक्ष तक और समस्त चराचर सृष्टि के कण-कण में व्याप्त अमेरिकी हितों को जब वास्तविक या कल्पित खतरा पैदा होता है, तब स्वतंत्रता और मानव-अधिकारों के तथाकथित रखवाले दुनिया-भर में झूठ, फरेब और छल के हूटर बजाकर मानव-आत्मा को जगाने लगते हैं।

आधी नींद में डूबी आँखें मलती मानव-आत्मा पूछती है-क्या हुआ? जवाब मिलता है – उठो। अमेरिकी हित खतरे में पड़ गये हैं। स्वतंत्रता खतरे में है। मानव-अधिकारों का हनन हो रहा है। मानव-गरिमा धूल में मिल रही है।"[8] तेल के भंडार पर कब्जा करने के लिए अमेरिका अरब देशों के खिलाफ अनेक प्रकार के हथकंडे अपनाता है। ईरान पर हर संभव प्रतिबंध लगाता है।

'यासिर अराफात बेरूत से विदा' नामक व्यंग्य में हरिशंकर परसाई की सहानुभूति फिलिस्तीनियों और यासिर अराफात के पक्ष में है। उन्होंने लिखा है, "दुनिया के न्यायप्रिय और स्वाधीनता समर्थक लोग फिलिस्तीनियों के लिए दुखी हैं। हर न्यायप्रिय और स्वाधीनता प्रेमी को उन्हें समर्थन देना चाहिए। उन्हें उनकी भूमि दिलानी चाहिए। वे फिर लड़ेंगे। दृढ़ निश्चयी हैं। यासिर अराफात की बेरूत से विदाई इतिहास की दुर्घटना है। दुखद दुर्घटना है।"[9] 'राष्ट्रपति कार्टर के नाम', 'अंकल सैम की टॉफी' और 'पूंजीवादी अमेरिकी नैतिक पूंजी का दिवाला' में उन्होंने अमेरिका और पूंजीवादी व्यवस्था की प्रखर आलोचना की है। 'भारत-रूस संबंधों का विकास' में भारत और रूस के दीर्घकालीन संबंधों की समीक्षा की गई है तो 'गुटनिरपेक्ष सम्मेलन: कुछ प्रश्न' में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के महत्व और उसकी प्रासंगिकता पर विचार किया गया है। हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्यों में तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियों पर बेबाक तरीके से अपना विचार व्यक्त किया है। शीत युद्ध के दौरान नव-उपनिवेशवादी आर्थिक शोषण और वर्चस्ववादी प्रवृत्ति को उद्घाटित करके लोगों को उसके प्रति हर तरह से सचेत किया है। मैं श्री खगेन्द्र ठाकुर के कथन से सहमत हूँ कि "परसाई का राजनीतिक लेखन अपने पाठकों की चेतना को माँजता है जिससे उनके लेखन को खुले दिमाग से पढ़ने वाला प्रश्नों को समझने की बेहतर दृष्टि पा सकता है।"[10] परसाई जी की व्यवस्था को समझने की पैनी दृष्टि साहित्य के इतिहास का

एक सबल प्रयास है जो बिरले देखा जाता है, और इनका अभिव्यक्ति-कौशल वह गुण है जिससे रचना शैली में एक ताषगी आती है जो सिर्फ हरिशंकर परसाई की है।

सन्दर्भ

1. के.के. मिश्रा एंड सुभाष शुकला, 'अन्तर्राष्ट्री राजनीति के सिद्धान्त', अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, 2010, पृ. 26
2. परसाई रचनावली-6, (सं.) मण्डल- कमलाप्रसाद, धनंजय वर्मा, श्यामसुन्दर मिश्र, मलय, श्याम कश्यप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: जनवरी 2005, पृ. 221
3. परसाई रचनावली-4, पृ. 3
4. परसाई रचनावली-5, पृ. 57
5. परसाई रचनावली-5, पृ. 371
6. परसाई रचनावली-6, पृ. 103
7. वही, पृ. 85
8. परसाई रचनावली-4, पृ. 170
9. परसाई रचनावली-6, पृ. 387
10. कमला प्रसाद (सं.), 'आँखन देखी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 372

दलित आंदोलन और उसकी चुनौतियाँ

चन्द्रमौली कुमार

एम.ए. (इतिहास) ए नेट/जे.आर.एफ, हिन्दू कॉलेज दिल्ली, विश्वविद्यालय दिल्ली

दलित आंदोलन का प्रारंभ डॉ. भीमराव अंबेदकर निधन (1956) के बाद से माना जाता है। यद्यपि दलित साहित्य और उससे जुड़े आंदोलन को विधिवत स्वरूप अंबेदकर के चिंतन से जुड़ता है, किंतु इसके पहले ज्योतिबा फूले ने अंबेदकर के लिए पोख्ता जमीन तैयार कर रखी थी। दक्षिण में पेरियार और नारायण गुरू का भी नाम इस आंदोलन से जुड़ता है। उत्तर भारत में अछूतानंद और पंजाब के शूद्रानंद अंबेदकर के समकालीन क्रांति छुआछूत और अस्पृष्यता जैसे घातक रोग से लड़ने का प्रयास किया किंतु अस्पृष्यता से विधिसम्मत में लड़ाई अंबेदकर का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। डॉ. अंबेदकर के दलित चिंतन को 'दलित साहित्य' के रूप में रचनात्मक आधार मिला, किंतु अंबेदकर ने कभी 'दलित साहित्य' जैसे पदबंध का प्रयोग नहीं किया था। दलित शब्द का व्यापक प्रयोग उत्तर अंबेदकर काल में हुआ। अंबेदकर ने दलित शब्द के लिए 'ब्रोकेन मैन' का प्रयोग किया था, जिसका सामान्य अर्थ होता है, जिसको तोड़ा गया हो, दबाया गया हो, दलन किया गया हो, मर्दित किया गया हो, अपमानित किया गया हो-आदि आदि। और इसी से इस साहित्य का अर्थ निकलता है जो लेखन या चिंतन या उससे जुड़ा हुआ साहित्य इस दलन, दमन, अपमान के विरोध में लिखा गया हो जिसमें जाति, वर्ण का नकार हो, और जो समता, न्याय, स्वतंत्रता का पक्ष लेता हो और स्वयं दलित द्वारा लिया गया हो। और इसी के साथ स्वानुभूति और सहानुभूति जैसे पदबंध इस आंदोलन के बीच उभरकर आए। ये दोनों पदबंध एक प्रकार की लड़ाइ ही है, जिसमें दलितों ने यह कहकर सवर्ण लेखकों को ठुकराया कि हम भी रखतें हैं अपनी मुँह जबान।

आंदोलन के रूप में दलित साहित्य का प्रारंभ 1958 से माना जाता है। इसी वर्ष महाराष्ट्रदलित साहित्य संध ने प्रथम दलित साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया था। इस सम्मेलन में 'दलित साहित्य' और 'दलित आंदोलन' दोनों को जोड़कर देखा गया। यानी 'दलित आंदोलन' और 'दलित साहित्य' दोनों एक-दूसरे का पर्याय मान लिया गया। वैसे भी साहित्य का अर्थ सिर्फ रचनात्मक साहित्य ही नहीं होता, अपितु ज्ञान के संपूर्ण वाङ्मय को साहित्य की सीमा में समेटा जा सकता है। अस्तु दलित साहित्य सृजन की क्रांतिकारी भूमिका का नामांतर बन गया। आंदोलनधर्मी साहित्य रचने के आहवान के साथ सम्मेलन कई प्रस्ताव पारित किए। प्रस्ताव संख्या 5 में कहा गया कि मराठी में दलितों द्वारा और गैर दलितों द्वारा दलितों पर लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य के नाम से स्वतंत्र मान्यता दी जाए। और इसके सांस्कृतिक महत्व को समझते हुए विश्व साहित्यिक संगठनों द्वारा इसे उचित स्थान दिया जाए। अस्तू दलित आंदोलन की बुनियाद पड़ी फलस्वरूप दलित बुद्धिजीवी बंधुमाधव ने 'प्रबुध भारत' के 15 फरवरी 1958 के अंक में अपनी क्रंतिकारी चेतना का उद्घोश किया। "जिस तरह रूसी लेखकों ने लेनिन की क्रांतिकारी विचारधारा को प्रभावित कर रूसी क्रांति में सहयोग दिया। उसी तरह हमारे लेखकों को भी अंबेदकर के दर्षन को गाँवों तक फैलाना चाहिए। सबकुछ राजनीति के जिम्मे नहीं छोड़ना है।"

फलत: दलित आंदोलन में दलित राजनीति से अलग रास्ता आख्तियार किया-सामाजिक आंदोलन का। वैष्वीकरण के दौर में मूल्यों का क्षरण तेजी से होता जा रहा है, इतिहास के अंत की घोशणाएँ की जा रही हैं, स्मृतियों के ध्वंस का नारा तेज होता जा रहा है, सामाजिक सरोकारों का विखंडन तेजी से होता जा रहा है-ऐसी स्थिति में दलित साहित्य अपनी धूरी से डिगता जा रहा है, तो बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर के आदर्शो की दुनिया का क्या होगा, जिसे उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल पर एक प्रारूप तैयार किया था।

आज अम्बेदकर के सपनों की दुनिया में प्रवेश-निशेध की सारी बंदिशों के बीच को घत्ता बताते हुए प्रवेश का निशेध होता जा रहा है निशेध प्रवेश करता जा रहा है। बाबा साहेब जिस मिथकीय दुनिया के चमत्कार से अपने अष्पृष्य समाज को सावधान कराया

था, आज वही समाज अपने बुनियादी सरोकारों को भूलकर ब्राह्मणवादी व्यवस्था का गुलाम बन गया है। अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य:नई चुनौतियाँ' में रामशंकर कठोरिया लिखते हैं, दलित साहित्य का ने केवल अपनी सर्जनात्मक क्षमता को वैश्विक स्तर पर सिद्ध करना होगा, बल्कि सम्पूर्ण दलित एवं शोशित समाज को दूसरे दलित एवं शोशितों को नवजागरण के लिए प्रेरित करना होगा।"

निश्चित तौर पर देखा जाए तो डॉ. भीमराव अम्बेकर के समय की चुनौतियों की तुलना मेंऔर आज की चुनौतियाँ निश्चयात्मक रूप से जटिल हैं। स्वार्थ-संबंधों के दायरे कुछ इतने संकीर्ण हुए हैं कि इन्हीं संकीर्णताओं ने वैश्विक स्वार्थ को जन्म दे डाला है और इसकी जटिलताएँ भी बढ़ी हैं।

दलित आंदोलन का दलितवादी विमर्श और नारी मुक्ति आंदोलन का नारीवादी विमर्श लगभग आठ के दशक में अपने आकार ग्रहण करते हैं। दलितवादी चिन्तकों ने इस तथ्य को रेखांकित किया कि दलित वर्ग से सम्बद्ध लेखक ही दलित की पीड़ा और आक्रोश का प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर सकता है। यह कार्य गैरदलित या सवर्ण लेखक द्वारा संभव नहीं है। ठीक इसी प्रकार नारी-विमर्श में सक्रिय लेखिकाओं ने भी इस तथ्य को रेखांकित किया कि नारी-जीवन की पीड़ा, उसकी आशा-आकांक्षाओं और उसकी मुक्ति के उपायों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति सिर्फ नारी लेखक ही प्रस्तुत कर सकती हैं। जिन प्रामाणिकताओं के साथ भोगनेवाला प्राणी अपनी पीड़ा और उसके मुक्ति का बयान कर सकता है - कोई दूसरा नहीं। सवर्ण वर्चस्व वाले समाज में एक प्रश्न उठाया जाता है कि आरक्षण के बावजूद 'आखिर दलित चाहते क्या हैं? नस्ल, जाति, वर्ण, लिंग आदि को लेकर भारत ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में यह समस्या रही है। अपने मानस में भी गोस्वामी तुलसीदास ने नारी और शूद्र को एक कोटि में रखा है -

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी।
ये सब है ताड़न के अधिकारी।।[1]*- मानस*

वर्त्तमान राजनीति में इस सच्चाई को स्वीकार किया गया है और दलित, पिछड़ी जातियों के साथ स्त्रियों को भी आरक्षण की बात सामने आयी है। स्पष्टत: दलितवादी और नारीवादी विमर्ष राष्ट्र के पटल पर एक मुख्य विशय बनकर उभरा है।

इन विषयों के उभरने के साथ दलित साहित्य की सैद्धांतिकी का प्रश्न भी सामने आया है। देश-विदेश के परम्परागत प्रतिमानों के बरक्स एक नया प्रतिमान गढ़ा जाने लगा है। इसकी पूर्ति न 'परम्परा का मूल्यांकन' पूरी कर पाता है और न ही 'दूसरी परम्परा की खोज' के द्वारा ही उसके सही प्रतिमान की तलाश संभव हो पा रहा है। बावजूद इसके दलित साहित्य की सैद्धांतिकी से मुँह मोड़ पाना भी आसान नहीं है। दलित साहित्य के सामने अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए हैं, उन प्रश्नों को रेखांकित करते हुए डॉ. कृशणदत्त पालीवाल लिखते हैं, जो दलित साहित्य की सैद्धांतिकी को नापसंद करते हैं या सौंदर्यशास्त्र या दलित अर्थशास्त्र की राजनीति करते हैं, वे भी नये सिद्धांत से बच नहीं सकते। क्योंकि समस्या दलित साहित्य के गंभीर 'पाठ' की है, पाठ की अनेकार्थता की अर्थ-व्यंजना की है। दलित साहित्य के 'टेक्स्ट की अर्थमीमांसा से निकला ध्वन्यर्थ हर तरफ घेरकर खड़े हैं।[2]

उत्तर साफ है दलित साहित्य की परम्परा अपनी है, उसके प्रतिमान भी अपने हैं वह किसी परमुखापेक्षिता का कायल नहीं, किन्हीं रूढ़ियों का गुलाम नहीं। दलित ज्यादा कारगर साहित्य लिखता है। वह जानता है कि रचना की जरूरत सुंदरता नहीं, उसका कारगर होना होता है। जो रचना विचारों से मुक्त होती है, उसमें जटिलताएँ ही जटिलताएँ होती हैं। यही कारण है कि कबीरादि संतों की रचनाएँ रीति का तिरस्कार करती हैं और कबीर को धोखने वाले बाबा नागार्जन की रचनाएँ किसी रीति की गुलाम नहीं। कबीर को समझाने के लिए कभी नये सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता पर डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं - "कविता का कोई सौंदर्यशास्त्र नहीं होता, जो युग के साथ बदलता रहे।" मुद्राराक्षस का उत्तर कितना समीचीन है। हैरानी की बात है कि 'तार सप्तक' में नये सौंदर्य शास्त्र की जरूरतों के साथ उन्होंने सहर्श दिया था।[3]

'वक्रोक्तिजीक्तिम्', 'रीतिरात्मा काव्यस्य', परमानंद सहोदर आदि से दलित साहित्य को एतराज है। दलित साहित्य उसका नंगा गुस्सा होता है, बदले की कार्यवाही होती है और वह अपशब्द भी हो सकता है। हर्टर्ब मार्क्यूस ने लिखा था, शालीनता, शील, संस्कार, नैतिक आचरण और अहिंसा आततायियों और अत्याचारियों की हिंसा का मुखौटा होती है। उत्पीड़ित लोगों को अहिंसा की नैतिकता इसलिए सिखायी जाती है कि वे उत्पीड़कों की हिंसा का हिंसा से जवाब न दे, हिंसा को चुपचाप शांतिपूर्वक झेलते रहे।[4]

समस्या यहाँ खड़ी हो गयी है कि गाँधी के नाम पर सिर तुड़वाने वाले दलित यूँ ही नहीं निराला और प्रेमचंद को खारिज करता है। - "यह आलोचना उनकी हिंसा का नमूना है। वह जानता है कि निराला और प्रेमचंद और हजारीप्रसाद द्विवेदी को दलित द्वारा

खारिज किए जाने पर सवर्ण अस्मिता को मरणांतक चोट पहुँचती है। उच्च वर्ण के ब्राह्मण-क्षत्रिय आलोचक मर्माहत होते हैं। और दलित रचनाकार द्वारा सवर्ण को चोट पहुँचाने की यह कोशिश रचनात्मक और आलंकारिक है या नहीं, दलित के लिए यह चिंता बेमानी है।[5]

दलित का साहित्य अपमान-अन्याय, यातना-वेदना की उपज है। यह सोलह आने खरी है, फिर भी वर्चस्ववादी लेखकों के गले के नीचे यह नहीं उतर पाती। इसमें प्रपंचवादी बुद्धि के घमंड की हेठी नहीं है। स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद हिंदी-पट्टी में कोई बड़ा आंदोलन नहीं पनपा। कुछ दिनों तक यहाँ समाजवाद-मार्क्सवाद-साम्यवाद की हवा चली, फिर उसकी हवा में धुँआ ही धुँआ भर गया। एक नयी उपभोक्ता संस्कृति ने सब कुछ को निगल लिया। इसी बीच राम मंदिर आंदोलन उभरे, इसी में राम मंदिर के प्रतीक मिथक धर्म, दर्शन हिंदुत्व के हाशिए उभरे और राजनीतिक स्वार्थ में ध्वस्त होते चले। इसमें उस समय के सत्तासीनों को बाहवाहियाँ बटोरने के काफी मौके भी मिले और गद्दारी भत्ता का परिणाम - एम.एल.सी. का राजसी सुख भोगने के कई-कई चांस भी प्राप्त होते रहे। परिणामत: 'दलित साहित्य के जन्म के साथ हिन्दी में राजनीति के मरूस्थल भी फैलते गए। गांधी-लोहिया का सवर्णवादी चिंतन अम्बेदकर के गले कभी नहीं उतरा।[6]- अब साहित्य का नया सौंदर्यशास्त्र गढ़ा जाने लगाा। दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र पर अनेक किताबें प्रकाश में आने लगीं। इसके अपने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तंत्र और परिभाशाएँ भी थी। इन परिभाशाओं में दलितवाद में एक नया ब्राह्मणवाद बल्कि इसी में पुन: दलितों में भी कई दलित स्पृश्यता-अस्पृश्यकता की जकड़बंदी में भी कैद होते गये। कदाचित् ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी में एक ऐसे दलित की चर्चा की गयी है, जिसमें एक राजनीतिक हैसियत प्राप्त दलित एक राजनीति द्वारा हाशिए पर फेंक दिये गये - दो दलित चरित्रों के चाल और चरित्र को बड़े ही सुन्दर ढंग से रेखांकित किया है।

आज ज्यादातर दलित रचनाकारों की रचनाओं को मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र में गतार्थ करने की कोशिश की जा रही है। किन्तु उन्हें जानना चाहिए कि अम्बेदकर ने कभी भी मार्क्सवाद के सर्वहारा दर्शन को स्वीकारोक्ति न लोहिया को दी थी और न ही गाँधी के वर्णवाद और सवर्णवाद को। अम्बेदकर को हिन्दु घर में जन्म लेने की मजबूरी हो सकती थी पर उन्हें हिन्दू बने रहने की मजबूरी नहीं थी। फलत: डॉ. अम्बेदकर बौद्ध चिंतन की ओर मुड़े और नारायण गुरू, ज्योतिबा फूले, पेरियार से प्रभावित हुए। इतिहास की वह धारा जिसमें बोल्सेविक क्रांति से प्रभावित होकर देश के अनेकानेक युवा लेखक, कहानीकार, पत्रकार हिन्दुस्तान की सनातन या राश्ट्रवादी मान्यताओं के विपरीत समानता-बंधुता-स्वतंत्रता के विचार-दर्शन से प्रभावित होकर भारत की जड़वादी परम्परा के विरूद्ध नवजागरण का संदेश दिया था। अम्बेदकर फ्रांस की राज्यक्रांति के विचार-दर्शन से प्रभावित हुए। उन्होंने अपने ढ़ग से भारत की वर्ण-व्यवस्था, जाति-प्रथा से उपजी दलित-समस्या पर मौलिक चिंतन किया।

अम्बेदकर ने अपने शोध का ज्वलंत विशय का चयन किया, वह था-'भारत में जाति-प्रथा, संरचना, उत्पत्ति और विकास'। अम्बेदकर का यह चिंतनपरक दस्तावेज हमारी आँखों पर पड़ी पट्टी को खोलकर रख देता है। जाति जैसी जटिल समस्या जो वेदों से चलकर आज तक भारतीय समाज का जातीय रहस्य छिपा है - उसे बड़े ही सुनियोजित ढ़ंग से डॉ. अम्बेदकर ने खोलकर रख दिया है। जाति जैसी जटिलताओं से जुड़े प्रश्न का परिणाम ही दलित चिंतन है। इसके सैद्धांतिक पक्ष का इंद्रजाल जाति-समस्या से नाभिनालबद्ध है। इस देश में न जाने कितनी जातियाँ आयीं और यहीं की संस्कृति के साथ मिलकर सामासिक संस्कृति के निर्माण में अपनी भूमिका का निर्वाह किया। भारतीय समाज में शक आये, हूण आये, द्रविड़ आये और सभी ने इसके निर्माण में अपना योग दिये। ये सभी अपनी मूल विरासत के साथ यहीं बस गयीं और यहीं की होकर रह गयीं। बाबा साहेब इस बात को स्वीकार करते हैं, कवींद्र रवीन्द्र भी स्वीकार करते हैं। और हजारी प्रसाद द्विवेदी भी इसे स्वीकार करते हैं। बाबा साहेब स्वीकार करते हैं कि - इसी आधार पर मेरा कहना है कि इस प्रायद्वीप को छोड़कर संसार का कोई ऐसा देश नहीं है जिसमें इतनी सांस्कृतिक समरसता हो। हम केवल भौगोलिक दृष्टि से सुगठित नहीं हैं, बल्कि हमारी सुनिश्चित सांस्कृतिक एकता भी अविच्छिन्न और अटूट है, जो पूरे देश में चारों दिशाओं में व्याप्त है। इसी सांस्कृतिक एकता के कारण जाति-प्रथा इतनी बिकराल बन गयी है कि उसकी व्याख्या करना कठिन कार्य है। [7]

यह देखना काफी दिलचस्प होगा कि देश न तो सामंती और पूँजीवादी शोशण से मुक्त हुआ और न ही शूद्र जातियाँ नस्लवादी भेदभाव, अत्याचार और अपमानजनक व्यवहार से मुक्त हो सकीं। डॉ.अम्बेदकर की यह शंका बराबर से बनी रही थी कि शूद्र समाज को हिंदू पंथ के अत्याचार से छुटकारा नहीं मिलेगा। वह बराबर कहा करते थे कि शूद्र समाज को अँग्रेजों की आजादी से पहले हिंदुओं से मुक्ति मिले। वे एक सम्मानजनक जीवन जी सकने लायक बन जाएँ उसके बाद अँग्रेजी शासन से मुक्ति की बात की जाए। अँग्रेज में चाहे कितनी और जैसी बुराइयाँ रही हों, वह गैर बराबरी को गलत मानता था - यह अनुभव शूद्र समाज का था ह तीस के दशक

में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे तमाम बुद्धिजीवियों ने अँग्रेजों के विरूद्ध सबसे बड़ी आपत्तियाँ उठायी थीं कि अँग्रेज अपवित्र चांडाल और पवित्र ब्राह्मणों को अदालतों में समान न्याय क्यों दे रहे है? एक साथ स्कूलों में क्यों पढ़ा रहें हैं। [8]ह्

दलित चिंतन पाठ के लिए हमें भारतीय परम्परा - उस भारतीय जो हिन्दुओं की धार्मिक परम्परा के समातान्तर अन्य परम्पराओं की ओर भी ध्यान देना होगा, तभी हम उसका सम्यक् मूल्यांकन कर सकते हैं। आजादी के बाद भी डॉ. नामवर सिंह और डॉ. रामविलास शर्मा दलित प्रश्न और नारीवदी आंदोलन को खारिज करते रहे। 'परम्परा का मूल्यांकन के नाम पर और 'दूसरी परम्परा की खोज' में दोनों एक ही तरह की खिचड़ी क्यों और कैसे पकाते रहे। अपनी मृत्यु से कुछ साल पहले तक नामवर जी को क्यों भरतीय जनता पार्टी पर एक भी टिप्पणी देना गवारा नहीं हुआ। दलित प्रश्न की गुत्थी को दलित समाज के पुरोधा ही क्यों उलझाते रहे? ये कुछ प्रश्न हैं जिनपर बारीकी के साथ अभी आगे और सोचने की आवश्यकता है।

और इसी आंदोलन ने 'दलित पैंथर' के रूप में अपनी ताकत और अपनी ऊर्जा विभ्राट घोशणा की। वैसे 'दलित पैंथर' को प्रेरणा मिली अमेरीका के 'ब्लैक पैंथर' से। महाराष्ट्र के युवकों ने मूल रूप से अंबेदकर और कुछ हद तक मार्क्स से प्रेरणा लेकर दलित पैंथर की स्थापना की। दलित पैंथर का घोशणा पत्र 1973 में आया। भारतीय दलित आंदोलन के इतिहास में इसका स्थान निर्णायक माना जाता है। दलित पैंथर के सभी कार्यकर्त्ता कवि और साहित्यकार थे। और इनके लेखन में एक क्रांतिकारी तेवर था। पैंथर के संस्थापक यह मानकर चलते थे कि 'समाजवादी समाज-व्यवस्था की स्थापना की चेतना से लैस होकर दलित आंदोलन में ईमानदारी और प्रतिबद्धता से काम किया जाए तो दलित सभी प्रकार के शोशण से मुक्त हो सकते हैं और उनका उद्धार होने से कोई रोक नहीं सकता है।"[9] दलित पैंथर का नेतृत्व करनेवालों में नामदेव दसाल, राजा दाले, ज०वि० पवार, अर्जुन डांगले आदि प्रमुख थे।

परिणाम स्वरूप पैंथर की सक्रियता ने देश के अन्य राज्यों में साहित्यकारों, आंदोलनकारियों के संगठन तैयार करने लगे। आंदोलन के दरम्यान दलित साहित्य का एक नया प्रतिमान गढ़ा गया। उसकी भाशा और उसका शिल्प पहले से आती किसी भी परंपरा का कायल नहीं। उसने साहित्य की समस्त रूढ़ियों को धत्ता बताते हुए अपनी अलग पहचान बनाई। गुजरात के दलित लेखकों ने रमेशचंद्र परमार की अगुआयी में 1975 में 'दलित पैंथर' की स्थापना की और इसी के कुछ वर्शो के बाद गुजरात दलित साहित्य अकादमी का निर्माण हुआ। कर्नाटक में दलित पैंथर की भांति 1975 में दलित संधर्श समिति का गठन हुआ, किंतु हिंदी में दलित साहित्य की अनुगूँज डेढ़ दशक बाद सुनाई पड़ी। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में इसकी गूँज सुनाई पड़ती है। फलत: हिंदी में भी ओमप्रकाश वाल्मीकि, कँवल भारती, मलखान सिंह, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दभ जैसे लेखकों ने रचनात्मक क्षेत्र में काम किया तो वही चंदिका प्रसाद जिज्ञासु और डॉ. धर्मवीर ने आलोचना का एक नया ही प्रतिमान लेकर उपस्थित हुए। डॉ. चौथी राम यादव और मुद्राराक्षस ने वास्तविक रूप से दूसरी परंपरा यानी लोकधर्मी परंपरा की नींव रखी। हिंदी में प्रगतिशीलता के नाम पर जो पारम्परिकता थी उसकी सीमा-रेखा को चिन्हित करने का प्रयास इन लेखको ने किया। खासकर भाक्ति आंदोलन को डॉ. चौथीराम यादव और मुद्राराक्षस ने पौराणिक धार्मिक ग्रंथों को नये सिरे से पुनर्पाठप्रस्तुत कर पाठको को ज्ञान की नयी दिशा की ओर उन्मुख किया।

संदर्भ

1. रामचरित मानस
2. कृष्णदत्त पालीवाल, दलित साहित्य विमर्श, प्रकाशक- सस्ता साहित्य मंडल, एन - 77, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस, नयी दिल्ली, पृ. 126
3. मुद्राराक्षस, आलोचना का समाजशास्त्र, प्रकाशन - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 292
4. आलोचना का समाज से उद्धृत, पृ. 93
5. वही, पृ. 294
6. कृश्णदत्त पालीवाल, दलित साहित्य विमर्श, प्रकाशक - सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली 1, पृ. 127
7. बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेदकर, सम्पूर्ण वाड्.मय, भाग 1, पृ. 18
8. मुद्राराक्षस, स्त्री, दलित और जातीय दंश, प्रकाशक - गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, पृ. 36
9. हिंदी साहित्य ज्ञानकोश भाग-4, प्रधान संपादक-शंभुनाथ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 1683

पंचायतीराज एवं 73वें संविधान संशोधन : बदलाव की क्रांति का आगाज

डॉ० विकास कुमार

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पंचायती राज में 73वें संविधान संशोधन, 1993 लागू होने के बाद सबसे पहले 2006 में बिहार ने पंचायती राज में 50 फीसदी आरक्षण देकर महिला सशक्तीकरण में सार्थक प्रयास किया, इसके बाद कुछ अन्य राज्यों ने भी इसे अपनाया। ऐसे में केन्द्र सरकार ने 27 अगस्त, 2009 को पंचायती राज में महिलाओं का आरक्षण कोटा 33 फीसदी से बढ़ाकर 50 फीसदी करने के प्रस्ताव को मंजूरी दे दी, साथ ही साथ कमजोर वर्गों को भी पंचायती राज में आरक्षण देकर इन्हें ग्रामीण समाज की मुख्य धारा में लाने का प्रयास आज सार्थक सिद्ध होता दिख रहा है। वर्तमान समय पंचायती राज के कारण स्थानीय स्वशासन सशक्त हुआ। शासन, रोजगार, आत्मनिर्भरता, स्वालंबन आदि की दिशा में पंचायती राज के कारण ग्रामीण विकास में साकारात्मक परिर्वतन प्रतित होता दिखाई दे रहा हैं।

भारत में पंचायतीराज का इतिहास, पंचायतीराज की परिकल्पना का स्वरूप तथा उसके माध्यम से ग्रामीण विकास की अवधारणा कोई नयी बात नहीं है। वैदिक काल में भी पंचायतें थी, मौर्यकाल में सामन्ती व्यवस्था के उदय के कारण पंचायतों का महत्व कुछ कम हुआ। कालान्तर में ब्रिटिश शासन व्यवस्था के अन्तर्गत पंचायतें स्थानीय स्वशासन की इकाई बनीं। स्वतंत्र भारत में पंचायतीराज व ग्रामीण विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये गये।

केन्द्र सरकार ने गाँवों के सर्वांगीण विकास के लिए विकेन्द्रीकरण की नीति के तहत देश के अन्तिम आदमी तक विकास का लाभ पहुँचाने के लिए 1993 में जिस नई पंचायतीराज व्यवस्था को लागू किया था उसका असर गाँवों में दिखाई पड़ने लगा है। गाँवों को अधिक सशक्त बनाने के लिए पंचायतीराज संस्थाओं को और अधिक अधिकार दिए गए हैं।

पंचायतीराज संस्थाओं को मजबूत बनाने और गाँवों को अपने विकास के लिए जिन राज्यों ने सबसे अधिक कार्य किया इनमें म0प्र0, कर्नाटक तथा केरल प्रमुख है। इन राज्यों ने बजट का लगभग 40 प्रतिशत हिस्सा पंचायतीराज संस्थाओं के मद में खर्च करने के कारण यहाँ गाँवों में पंचायतीराज ज्यादा मजबूत हुआ है। राजस्थान, म0प्र0, गोवा, कर्नाटक, केरल व तामिलनाडु द्वारा पंचायतीराज संस्थाअें के विकास कार्यो की सूचना जनता तक पहुंचाने के लिए ''सूचना का अधिकार अधिनियम 2005'' लागू कर दिया है।

केन्द्र सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगारों को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए महत्मा गाँधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना पूरे देश में लागू किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक गरीब परिवार के कम से कम एक सदस्य को 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जा रहा है। रोजगार के एक तिहाई अवसरों में महिलाओं को प्राथमिकता दी गई है। योजना का 90 प्रतिशत खर्च केन्द्र सरकार व 10 प्रतिशत राज्य सरकार उठायेगी। देश के ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धनों को राहत देने के लिए आज तक कभी इतनी बड़ी योजना नही बनाई गई है। यदि इसका सफल क्रियान्वयन किया गया तो गाँवों में विकास और खुशहाली का नया युग प्रारम्भ हो सकता है।

महात्मा गाँधी ने भारतीय गाँव का विकास करने के लिए ग्राम स्वराज्य का सपना देखा था, जिसमें ग्रामीण व्यवस्था को ग्रामीण जनों के नेतृत्व के माध्यम से आत्मनिर्भर एवं गाँवों को पूर्णत: स्वायत्त बनाने की परिकल्पना निहित थी। भारतीय स्वाधीनता के पश्चात् जो संविधान निर्मित हुआ, वह एक ओर नये राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रबंधन का प्रतीक था। वही दूसरी तरफ इसका संबंध एक समावेशी व्यवस्था की स्थापना करना था, जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग को नेतृत्व का समान अवसर मिले। भारतीय संविधान

के 73वें संविधान संशोधन ने लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण का मार्ग प्रशस्त करके पंचायत नेतृत्व में एक नवीन आयाम जोड़ दिया। लोकतंत्र एवं सच्चे समाजवाद की स्थापना करना हमारे नीति-निर्माताओं का उद्देश्य रहा है, अंर शक्ति एवं सत्ता संस्तरण का नया स्वरूप प्रदान किया। जिसमें एक समतावादी समाज की स्थापना विकास के साथ-साथ हो एवं कमजोर वर्गों का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी पक्षों से सशक्तिकरण हो। इस संशोधन के द्वारा पंचायतों के अन्तर्गत समाज के उपेक्षित वर्ग को आरक्षण का प्रावधान दिया गया है, जिसके अन्तर्गत अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ, पिछड़े वर्ग एवं महिलाओं को सशक्त करने हेतु शक्तियाँ प्रदान की गई। इस संवैधानिक संशोधन के माध्यम से पंचायतों का गंरवशाली अतीत पुन: प्रतिशित हो गया। त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में महत्वपूर्ण कार्यकारी अंगों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विकास, जिला पर जिला परिषद् के सहयोग से, प्रखण्ड स्तर पर पंचायत समीति के सहयोग से तथा गाँव स्तर पर ग्राम पंचायत के समन्वय एवं मार्गदर्शन के माध्यम से विकास किया जा रहा है।

स्वतन्त्रता के बाद ग्राम पंचायत का गठन

ब्रिटिश शासनकाल में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को संगठन एवं कार्यप्रणाली की दृष्टि से व्यवस्थित रूप प्रदान किया गया, स्थानीय स्वशासन इकाईयाँ को निर्वाचित स्वरूप देना, उसे करारोपण की विस्तृत शक्तियाँ देना व प्रजातंत्र की पाठशाला के रूप में विकसित करने का कार्य ब्रिटिश काल में ही हुआ। स्वतंत्रता के बाद पंचायती राज (22 नवम्बर 1948) को संविधान सभा में राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों पर विचार विनिमय करते हुए के0 संथानम ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि इन तत्वों में एक तत्व यह भी होना चाहिए कि राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करें, अंर उनको ऐसे अधिकार प्रदान करे कि वे स्वायत्त शासन प्रबंध सुचारू रूप से कर सके। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप ही संविधान के भाग 4 अनुच्छेद 40 में राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत कहाँ गया कि- ''राज्य ग्राम पंचायतों के गठन के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसे शक्तियाँ अंर अधिकार प्रदान करेगा, जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाईयाँ के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।'' स्वतंत्र भारत में पंचायतों के महत्व का ज्ञान इसी से हो जाता है कि ग्राम पंचायत का विरोध करते हुए अम्बेडकर तक इसके स्थायीत्व से इन्कार नहह्व कर सकें। लोकतंत्रत्मक शासन की सफलता के लिए ग्राम पंचायतों की सफलता का होना भी आवश्यक है। स्वतंत्र भारत में लोकतंत्रत्मक शासन प्रणाली होने के कारण ग्राम पंचायतों की सफलता के लिए अनेक मार्ग खुले ताकि वे सामाजिक अंर आर्थिक संगठन के रूप में भारतीय प्रजातंत्र को सफल बनाने में उपयोगी सिद्ध हो सके। बलवंतराय मेहता समीति (1957) की सिफारिश आने के बाद 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागंर में तत्कालिन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने आधुनिक त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का शुभारंभ किया, इसके बाद ृेष राज्यों ने पंचायती राज को अपनाया आज स्थिति यह है कि राज्य सूची का विषय होने तथा भारत सरकार द्वारा राज्यों को छूट मिलने के कारण राज्यों में पंचायतीराज का विविधतापूर्ण स्वरूप विकसित होने लगा है।

संविधान का 64वां संशोधन व संस्थागत मजबूती

पंचायती राज सम्मेलन के माध्यम से प्रधानमंत्री राजीव गाँधी लगभग आठ हजार अनुभवशील व्यक्तियों के चर्चा के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पंचायती राज संस्थाओं में नियमित चुनाव हो, इसके लिए जरूरी हो कि पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा मिले। इस आशय से तत्कालिन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने 15 मई, 1989 को लोकसभा में संविधान का 64वाँ संशोधन विधेयक प्रस्तुत किया। विधेयक का उद्देश्य पंचायतों का चुनाव नियमित कराने अंर पाँच वर्ष तक उन्हें भंग न करना। यदि किसी कारणवश उन्हें भंग किया जाएगा, अथवा निलंबित किया जाऐगा, तो छ: माह के भीतर उसके चुनाव कराने की व्यवस्था की जाऐगी। 64वाँ संविधान- संशोधन विधेयक पंचायती राज संस्थाओं के नियमित निर्वाचन के संबंध में राजीव गाँधी का कथन है कि ''अब हम पंचायतों में लोकतंत्र को वही पवित्रता प्रदान करेंगे, जो संसद एवं विधान मंडलों को प्राप्त है, तो हम लोकतांत्रिक संस्थाओं में भाग लेने हेतु करीब 7 लाख चुने हुए प्रतिनिधियों के लिए दरवाजा खुलेंगे। लोकतंत्र में लोगों की भागीदारी करीब 125 गुना बढ़ जाएगी।'' इस व्यवस्था से नि:सन्देह भारतीय लोकतंत्र का आधार अंर अधिक सुदृढ़ होगा अंर लोकतांत्रिक परम्पराओं के अंर अधिक समीप होंगे। साथ ही साथ, राज्य सरकारों को सलाह दी गई है कि संविधान के अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत ऐसा वित्त आयोग गठित करें जो पंचायती राज संस्थाओं के लिए वित्तीय स्त्रोत उपलब्ध कराने की व्यवस्था करे। प्रस्तावित संशोधन का उद्देश्य है कि ग्राम पंचायतों द्वारा गाँव के उपेक्षित, उत्पीड़ित, शोषित लोगों की आर्थिक विपक्ता को समाप्त करके उन्हें 'गरीबी हटाओ' अंर उन्हें

आर्थिक-सामाजिक विकास की प्रक्रिया में शामिल करने का प्रयास किया जाए। राजीव गाँधी ने ग्रामीण जीवन के कठोर तथा कष्टमय जीवन का उल्लेख करते हुए कहाँ कि- ''सत्ता के दलालो को सत्ता के ठिकानों से निकाल बाहर करने अंर पंचायतों को जनता के हाथो में संपने के लिए हमें जन-प्रतिनिधियों पर गंभीर दायित्व डालते हैं कि वे सबसे पहले तथा सबसे ज्यादा ध्यान सबसे गरीब, वंचित अंर सबसे अधिक जरूरत मंद लोगों पर दे।''

संविधान का 73वाँ संशोधन : बदलाव की क्रांति का आगमन

73वें संशोधन ने पंचायत के संरचनात्मक परिवर्तन व सत्ता के हस्तांतरण द्वारा गाँव में बहुमुखी बदलाव की एक अभूतपूर्व लहर फैला दी है। इससे ग्रामीण जनता में अपने विकास कार्यो के प्रति चेतना जागृत होने लगी है। वे अपनी सुख-सुविधाओं व कल्याणकारी कार्यक्रमों के प्रति सजग होने लगे है। पंचायत संस्थाओं में सदस्यता तथा पद के आरक्षण से उनमें स्वशासन करने तथा विकास कार्यो में सक्रिय रूप से आदि से अंत तक भागीदारी के अधिकार ने उनमें आत्मविश्वास व आत्मनिर्भरता का अहसास कराया है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में सभी को यथोचित नियमानुसार पंचायती राज में नेतृत्व करने का अवसर प्राप्त हो रहा है। उनको अपनी महत्ता का अनुभव होगा जिसके आधार पर वे आगे चलकर देश तथा राज्य स्तर पर देश-प्रदेश के नेता उभरकर आएँगे। इस संशोधन ने समाज के विशेष वर्गों के लिए आरक्षण के अधिकार ने समता की भावना में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, गरीब-अमीर व जात-पात का भेदभाव मिटाने का प्रयास किया है। इससे समाज में कमजोर एवं पिछड़े समझे जाने वाले लोगों में हीनता, अलगाव व अवहेलना की मानसिकता धीरे-धीरे मिट रहीं है।

पंचायत में महिलाओं की भूमिका

भारत की ग्रामीण महिलाओं को विकास की मुख्य धारा में लाना है, उनके नेतृत्व को प्रभावी बनाने के लिए उन्हें प्रशिक्षण द्वारा उकसाना अंर आगे ले जाना है, ताकि पुरूषों की तरह अपने अधिकारों व शक्तियों का उपयोग कर सके। आवश्यक निर्णय ले सके तथा पंचायतों के स्वशासन में पुरूषों के समान भाग ले सके। 73वें संवैधानिक परिवर्तन ने नवीन पंचायत व्यवस्था में महिलाओं के लिए सभी स्थानों एवं पदों में एक-तिहाई आरक्षण को सुनिश्चित कर उनकी भूमिका को सक्रिय एवं महत्वपूर्ण कर दिया है, इससे उपेक्षित ग्रामीण महिलाओं को पंचायत में साझेदारी का नया अवसर मिला है। यह एक क्रांतिकारी पहल है कि 2006 में इस दिशा में बिहार ने पंचायती राज अधिनियम 2006 में तीनो स्तरों के सदस्यों अंर अध्यक्षों हेतु महिलाओं के लिए 50फीसदी स्थान आरक्षित कर दिया है अंर इस आधार पर बिहार में दस चरण में 11 जून 2006 को चुनाव सम्पक हो गया। सामाजिक बदलाव की दिशा में बिहार पहला राज्य है जिसमें तीनों स्तरों पर लोकतंत्र में महिलाओं को पुरूषों के बराबर स्थान दिया, इसके बाद मध्य प्रदेश, हिमांचल प्रदेश तथा उत्तराखण्ड आदि राज्यों में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण पंचायती राज में दिया गया। भारत सरकार ने 27 अगस्त, 2009 को ग्राम स्तर पर महिलाओं की सशक्तिकरण की दिशा में ऐतिहासिक पहल करते हुए पंचायतों में महिलाओं का आरक्षण कोटा 33 से बढ़ाकर 50 फीसदी करने का प्रस्ताव को भी मजूरी दे दी है।

पंचायतों में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्गों की भूमिका

अब अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ अंर पिछड़े वर्गो को जनसंख्या के अनुपात में स्थानों अंर पदो का आरक्षण सुनिश्चित कर दिया है। यानि पंचायतों के कार्यकलापों में सदस्य व पदाधिकारी की हैसियत से उनकी भागीदारी अपरिहार्य कर दी गई है, इनमें वे अपनी स्वयं की समस्याएँ तथा आवश्यकताएँ भी प्रजातांत्रिक ढंग से गाँव, प्रखण्ड तथा जिला तीनों स्तरों पर प्रस्तुत कर सकते है। यदि जरूरी होता है तो वे राज्य तथा केन्द्र सरकार के उच्च पदाधिकारियों को भी आवश्यक कार्यवाही के लिए निवेदन कर सकता है।

इस प्रकार, 73वें संविधान संशोधन, 1993 पारित हो जाने के बाद सभी राज्यों ने पंचायती राज में महिलाओं, अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गो को आरक्षण प्रदान किया, लेकिन इस आरक्षण का नवीन प्रतिफल भी उभरकर सामने आया है, जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर अवलोकित किया जा सकता है-

(1) नेतृत्व का परम्परात्मक स्वरूप अंर रूढ़िवादी ढ़ाँचा अब प्रभावशाली नहीं रहा है अर्थात् उच्च जातियों का नेतृत्व पर वर्चस्व नहीं रहा है अंर कमजोर वर्ग का व्यक्ति भी नेतृत्व कर रहा है।

(2) अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़ी और महिलाओं में नेता बनने की प्रतिस्पर्धा आरम्भ हो गई है।

(3) नेता बनने के लिए ग्रामीण नेता अपने को जातिगत भावना तथा संकीर्ण मानसिकता से ऊपर दिखाने का प्रयास करता है।

(4) नई पीढ़ी के व्यक्ति में नेता बनने की प्रतिस्पर्धा अधिक है। पुरानी पीढ़ी के हाथों से नेतृत्व अब नयी पीढ़ी के हाथों में आ रहा है।

(5) राजनैतिक जागरूकता में निरंतर वृ(हो रही है।

(6) ग्रामीण व्यक्ति अपने अधिकार और कर्तव्यों से जहाँ परिचित हो रहा है, वही वह इस तथ्य से भी परिचित हो रहा है कि किस प्रकार सरकार पर दबाव डाला जाए, जिससे उनकी मांगे पूर्ण हो सके।

इस प्रकार, पंचायती राज में 73वें संविधान संशोधन द्वारा गाँधी तथा अम्बेदकर के पंचायत संबंधी विचारों को कार्यरूप देने से अनुभाविश्रत समन्वय का सार्थक प्रयास निरूपित किया जा सकता है, इसके लागू होने के साथ ही गाँधी के सपनों के अनुरूप पंचायत के माध्यम से जहाँ लोकतंत्र जमीनी स्तर तक प्रभावी तथा मजबूत हुआ और ग्रामवासियों को अपने विकास के बारे में निर्णय लेने और अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए स्वयं पहल करने का अवसर प्राप्त हुआ। वही कमजोर वर्गों की ग्राम स्तर पर सत्ता में भागीदारी न हो पाने की संभावना की वजह से पंचायत से उन्हें होने वाली संभावित क्षति संबंधी डॉ. अम्बेडकर की शंका का समाधान भी हो गया। इस प्रकार, संविधान में उक्त संशोधन के लिए पहल कर कमजोर वर्गों के अधिकार सम्पन्न, सशक्त एवं समर्थ बनाया गया है, जिससे जहाँ वे अपने हितों की रक्षा में समर्थ हुए है, वही वे ग्रामीण विकास में सार्थक भागीदारी के काबिल भी बने है। हम सामाजिक समावेशन के जरिये किसी भी नीति और कार्यक्रम को अधिक सफल बनाया जा सकता है। लेकिन, भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव एवं पक्षपात के चलते सामाजिक समावेशन के लक्ष्य पर सावधानी से अमल बेहद जरूरी है। 73वें संविधान संशोधन के तहत पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जातियों के लोगों को आरक्षण अनिवार्य किया गया, इसलिए पंचायतों से अपेक्षा की गई कि वे लोकतंत्र की मजबूती के लिए समावेशन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएँ ताकि नीति निर्धारण में वंचित जातियों की भागीदारी से उनका सशक्तीकरण हो। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर नीरजा गोपाल जयाल के अनुसार-''भागीदारी की वास्तविक क्षमता के मायने में विभिन्न कमियों के बावजूद आरक्षित सीटों पर चुनाव के जरिये वंचित तबको-महिलाओं, दलितों और आदिवासियों को प्रतिनिधित्व देना एक महत्वपूर्ण कदम था। चुनाव और वंचित तबको के आवाज के जरिये हमारा लोकतंत्र निश्चित ही आगे बढ़ा है।''

पंचायती राज संस्थाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति व महिलाओं के आरक्षण के बावजूद जाति व्यवस्था के भीतर सामाजिक बहिष्करण उनकी असरदार एवं समुचित भागीदारी में बाधक बन रहा है। भागीदारी के प्रति सच्चा सामाजिक समावेशन और सशक्तीकरण तभी संभव है, जब गरिमापूर्ण दृष्टिकोण के जरिये अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलायें तथा पिछड़े वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए। अतः यह मुद्दा अकेले पीड़ित होने का नहीं है, बल्कि साधन, परिवर्तन व अस्तित्व का है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

* कुमार, विकाष (2020), ''ग्रामिण दलित महिलाओं का सामाजिक अंतरण" यश पब्लिकेशन, नई दिल्ली
* शेखर, हिमांषु, (2014) ''पंचायती राज संस्थाओ में महिलाओं की बढती भागीदारी" कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली
* डोगरा, भारत, (2012) ''पंचायतों का सषक्तिकरण की राह में नई चुनौतियाँ" पंचायती राज अपडेट, नई दिल्ली
* डोगरा, भारत, (2012), ''कमजोर वर्ग के प्रधान से गाँव मे नई उम्मीद" पंचायती राज अपडेट, नई दिल्ली
* सिह, अनुराधा (2009) ''किसान महिलाओं की राजनीतिक जागरूकता एवं सहभागिता'', इण्डियन पीसेन्ट्री एण्ड सोशल पावर, नेशनल सेमीनार, फरवरी 18-19, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
* हसन, जोया (2009), ''पालिटिक्स ऑफ इन्क्लूजन कास्ट माइनोरिटीज एण्ड अफरमेटिव एक्शन'', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली
* फारूकी, उमर (2010), ''महिला सषक्तिकरण में पंचायती राज की भूमिका" कुरूक्षेत्र, नई दिल्ली
* बाटलीवाला, लाथा (1994), ''द मिनिंग आफ विमेन्स इम्पावरमेन्ट : न्यू कान्सेप्ट फाम एक्शन इनसेल'', गीता एण्ड अदर्स, पापुलेशन पालिसीज, री वनसीडार्ड, हेरार्ल्ड सिरीज आफ पापुलेशन एण्ड इन्टरनेशनल हेल्थ, कैम्बिज मास

दूसरा सप्तकः एक सामान्य अध्ययन

ध्रुव कुमार शुक्ल

शोधार्थी-बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी (उत्तर प्रदेश), ग्राम-चौकी कला, पोस्ट-बभनियाव, जिला-जौनपुर (उत्तर प्रदेश)

हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद का आरंभ तार सप्तक के प्रकाशन से माना जाता है। प्रयोगवाद से हिंदी साहित्य में नवीन काव्य परंपरा का शुभारंभ हुआ। जहां मुक्त छंद का अधिकाधिक प्रयोग किया गया वहीं नवीन वर्ण विषय नवीन उपमान वह नवीन बिंब आदि का प्रयोग हुआ। जिससे साहित्य में नवीन परंपरा का आरंभ देखा गया। सप्तक परंपरा में उन प्रयोगशील कवियों की कविताएं रखी गई। जो काव्य सत्य के शोधन में पाए गए एवं जिनकी कविताए अभी प्रकाशित नहीं हुई थी। जिससे उनके काव्य प्रतिभा का सम्मान नहीं हो सका था। संयुक्त पुस्तक इसका सहज विकल्प बना। सप्तक परंपरा की अगली कड़ी के रूप में दूसरा सप्तक का प्रकाशन हुआ।

जिसमें दूसरा सप्तकः तार सप्तक की अपेक्षा अधिक परिपक्त अवस्था में प्रस्तुत हुआ। इस पर रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में ''दूसरा सप्तक के कवियों और संपादक का आत्मविश्वास तार सप्तक की तुलना में निखारा है। और प्रतीक के साथ साथ वह नए साहित्य प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों को काफी समर्थ भाव से स्पष्ट करता है।''[1]

दूसरा सप्तक 'तारसप्तक' कि भांति सात नए प्रयोग शील कवियों की प्रगतिशील कविता संग्रह है। जिसे मर्मज्ञ काव्य शिल्पी अज्ञेय के संपादन में सन् 1951 ईस्वी में प्रकाशित हुआ। दूसरा सप्तक में भवानी प्रसाद मिश्र, शकुंत माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती कवियों की कविताओं का संकलन हुआ। जिस का सामान्य परिचय इस तरह से है।

सातों कवियों में पहले कवि भवानी प्रसाद मिश्र हैं। इन्होंने अपने दूसरा सप्तक की कविताओं में प्रकृति की विहंगम चित्र खींचा है। इसमें उनका सुकोमल कल्पना देखी गई। जिसमें नवीन भाव बोध का प्रभावी वर्णन हुआ है। जिसमें उनकी कविता कमल के फूल, सतपुड़ा के जंगल, सन्नाटा, मंगल वर्षा देखा जा सकता है।

सतपुरा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए से से,
उघते अनमने जंगल।
झाड़ ऊंचे और नीचे
चुप खड़े हैं आंख मीचे
घास चुप है, काश चुप है
मुंक शाल, पलाश चुप है[(2)]

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताएं नीतिपरक संदेश से युक्त सहज भाव से युक्त हैं। इस तरह की कविताओं में स्नेह शपथ व असाधारण को देखा जा सकता है।

लहरों के आने पर
काई सा फटे नहीं

रोटी के लालच में

तोते सा रटे नहीं

प्राणी वही प्राणी है (3)

मिश्र जी की कविता सामान्य जन के सुख – दुख की अभिव्यक्ति है। वह कविता का वर्ण्य विषय जनसाधारण की संवेदना को प्रमुखता दी है। सामान्य जन के मनोभाव को व्यक्त करने के लिए देशज शब्द का प्रचुरता से प्रयोग किया है।

और सखी सुन मोर। विजन बन घर सा री।

पीके फूटे आज प्यार के, पानी बरसा री।

फूर – फूर उडी अलक हल मोती छाये री,

खड़ी खेतकिसानिन कजरी गाये री

झर झर झरना झरे, आज मन प्राण सिहाये री,

कौन जन्म के पूर्ण कि, ऐसे शुभ दिन आए री (4)

भवानी प्रसाद मिश्र के कविता के संदर्भ में अश्वनी कुमार शुक्ल के शब्दों में, ''मुक्तिबोध की तरह अभिजात वर्ग की मृत्यु की आशंका व्यक्त करती ऐ कविताएं भोगे यथार्थ के साथ व्यंगात्मक भी हैं और विभिन्न वर्ण छटाएं बिखेरते हैं (5)

शक्त माथुर ने कविता द्वारा अपने अभिव्यक्ति को व्यक्त करने का एक लंबा प्रयोग पाती हैं। वह स्वयं को गृहस्थ जीवन में तल्लीन रहने से अपने काव्य में किसी साहित्यिक वाद, विचारधारा, परंपरा या टेकनिक आदि का विचार ना करते हुए स्वयं के अकूलाहट को शांत करने के लिए हृदय की भावोत्कर्ष को काव्य का रूप दिया। इस तरह की कविताओं में जानबूझकर नजानती, डर लगता है, जिंदगी का बोझ जैसी कविताएं देखी जा सकती है।

तन गरमाया दुख लपटो से

धीरे धीरे जला जा रहा

अभी बहुत बाकी जलने को

घट में मेरी पड़ी दरारें

साहस आज दूर भागता है

मधु से भरे हुए मणि घट को (6)

शकुंत माथुर की कविताओं में सामान्य जन के सुख-दुख की गहरी अनुभूति है। जिसका प्रभाव भी वर्णन राजा उनकी कविताओं में देखा जा सकता है ग्रामीण व्यक्ति अभावग्रस्त व्यवस्था में किस तरह से समय व्यतीत करता है उसका प्रभावी वर्णन दोपहरी नामक कविता में व्यक्त करती है।

कभी एक ग्रामीण धारे कंधे पर लाठी

सुख – दुख की मोटी सी गठरी

लिए पीठ पर

भारी जूते फटे हुए

जिनमें से झांक रही गावों की आत्मा

जिंदा रहने के कठिन जतन में

पाव बढाए आगे जाता (7)

वही ये हरे वक्ष केसर रंग रंग के आंगन नामक कविता दवारा प्रकृति का मनमोहक चित्रण है जिसकी भाषा बेहद सरल है। इन कविताओं में प्रक्र्ति को परोपकारी रूप में प्रस्तुत किया है।

ये हरे वृक्ष
यह नई लता
खुलती कोपल
यह बंद फलों की कलियां सब
खुलने को खिलने को झुकने को होती
स्वयं धरा पर (8)

माथुर जी ने काव्य वर्णन में आगत शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। जिससे कविता में तत्कालीन प्रचलन आगत शब्दों से भरी पड़ी है। उनकी कविता लीडर का निर्माता नामक कविता दृष्टव्य है।

सजा है
रेशम के पर्दों से ड्राइंग रूम
शोडे से फिनील से
और गर्म पानी से
धूल रहे बाथरूम
टावेल रुए का हाथ में
लांड्री -शुलागोरा -
कोठी से निकल रहा बैरा (9)

हरिनारायण व्यास ने व्यक्तिक चेतना का प्रबल समर्थन कर उसे तत्कालिक समाज में परम आवश्यक माना हैं। एक भावना व मुक्ति के अभाव नामक कविताओं में मनोभावनाओं को अभिव्यक्त किया है। जिसमें नवीन मानस बिंब का प्रभावी वर्णन हुआ है। वह भावना का सूक्ष्म दर्शन करते हैं। एवं उसे कविता का रूप देते हैं। जिसमें वह जटिल समस्याओं से मुक्ति का मार्ग खोजते है।

आजकर पीले नयन में ज्योति का धूधला सपन
जल रही प्राचिनताऐ बाध छाती पर भरण का एक क्षण
इस अधेरे की पुरानी ओढनी को वेध कर
आ रही ऊपर नए युग की किरण (10)

व्यास जी प्रकृति के कुशल चितेरे हैं। वे अपनी कविताओं में प्रकृति की मनमोहक चित्र खींचे हैं। उन्होंने कविताओं में नवीन भाव को समचित स्थान देकर प्रयोग की परंपरा को आगे बढ़ाया है। दूसरा सप्तक की कविता शिशिरान्त, उठे बादल झुके बादल, नशीला चांद, वर्षा के बाद में प्रकृति का लाक्षणिक रूप प्रस्तुत किया है।

हर पन्ने पर है बूद नई
हर बूंद लिए प्रतिबिंब नया
प्रतिबिंब तुम्हारे अंतर का
अंकुर के उर में उतर गया
भर गई स्नेह की मघ गगरी, गगरी के बादल बिखर गए (11)

इनकी कविताओं में तत्कालीन घटनाओं का मर्म भी प्राप्त होता है। वह कविता में राज भक्ति भी प्रस्तुत किया है। वह प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू की मृत्यु पर दुःख व्यक्त करते हुए उन्हें श्रद्धांजलि के लिए नेहरू के प्रति नामक कविता लिखा जिनमें उन्होंने पंडित नेहरू को हुए राष्ट्र क्षति देखते हैं। युगपुरुष बताते हुए राष्ट्र क्षति देखते है।

तम सा कंदरा में मुंह कर निश्चिंत सोता

तुम स्वयं नीज देश की शुभ भावना का है।
हिमालय (12)

शरणार्थी नामक कविता माध्यम से युद्ध विभीषिका या किसी अनिष्ट की स्थिति से अपदस्थ आर्तजन की करूणा भरी पीडा को व्यक्तकर जन का ध्यानाकर्षण किहै। जिसमें वे समाज बिठूरे जन की दशा का वर्णन किया है। उनके अंधकार मय जीवन को उजागर किया।

दूर तक तंबू तने हैं
खेलते बाहर
कटे कर जाक, टूटी टांग वाले
दिन बच्चे बात उजली पटियां (13)

शमशेर बहादुर सिंह विचारों पर मार्क्सवादी थे। उनकी कविताओं में हिंदी अंग्रेजी कवियों व उर्दू गजलों की स्पष्ट प्रभाव है। इनकी कविताओं में कविता की बहु भाषा जान से उलझी हुई चित्रतक व बातचीत की शैली में कविताएं पाई गई। इस तरह से शमशेर ने भाषा शैली को विशेष लाइन में बिना बांधे भावना व जज्बात को अभिव्यक्त किया है। समय साम्यवादी कविता का अंश दर्शनीय है।

भारत का आत्मराग
भूत और भविष्य का बितान लिए
कॅल मान विज्ञ
माक्स मान में तुला हुआ
बाम बाम धाम दिसा -
समय साम्यवादी (14)

ए रुबाई व शेरो शायरी से सजी कविताओं के शौकीन कवि हैं। इनका पहचान शेर शायरी विधा में सम्मान से लिया जाता है। मार्क्सवादी बिचार एवं उर्दू की स्मानियत में सनि अभिव्यक्ति छटा विखेरती है। जिसका वर्णन उनकी कविताओं में देखा जा सकता है।

अपनी मिटी को छिपाए आसमानों में कहां
इस गली में भी जब अपना ठिकाना हो सका
हकीकत को लाए तखैयुत के बाहर
मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाए (15)

शमशेर की कविताए नवचेतना से भरी पड़ी हैं। उसमें उत्साह व उमंग का समावेश है। तत्कालीन घटनाओं को जानने का अच्छा स्रोत है। उनकी कविताएं नवीन भाव बोध राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित विचार को स्वतंत्रता दिवस पर 1940, भारत की आरती बसत पंचमी की शाम कविताएं में देखी जा सकती है।

भारत की आरती
देश- देश की स्वतंत्रता देवी
आज अमित प्रेम से उतारती
निकट पूर्व, पूर्व, पूर्व दक्षिण में
जन गण मन इस अपूर्व शुभ क्षण में
गाते हैं घर में हो या रण में
भारत की तंत्र लोकतंत्र -भारत (16)

नरेश कुमार मेहता ने स्वयं को संक्रमण काल (छायावाद व प्रयोगवाद) का कवि मानते हुए अपनी कविताओं में विभिन्न मत से प्रभावित देखा। उन्होंने साहित्य में नवीन भाषा शैली विचार आदि को परम आवश्यक मानकर इनकी बढ़ती आवश्यकता पर बल दिया। नवीन भाव से सुसज्जित कविताएं लिखा है। सामान्य जन हर्ष-विशाद आशा-निराशा को कविताओं का अंश बनाया है। अहं का वर्णन करते हुए स्वयं को उस में घिरा देखते हैं। और कहते हैं कि -

मेरी अहं की मीनार की ही नीव में
इस पत्थर हिचकियां है ले रहा?
एक हिचकी
प्रतिध्वनित हो चाहती इतिहास होना
आह मै ऊंचा गगन
औ नीव का पाताल, आंसू की नदी में (17)

किरण धेनुऐ, उषस-1 उपस-2 उपस-3 उषस 4 कविताओं में सामान्य जन के क्रियाकलापों द्वारा प्रभावी बिंब विधान का वर्णन किया है। जिसमें सामान्य जन की क्रिया कलाप का भाव विभोर वर्णन किया है। जहां उन्होंने प्रकृति का अद्भुत ख्रश्य दिए हैं। किरण धेनुऐ कविता का दर्शनीय है। जिसमें सायंकाल के समय में गोचरण संबंधित बिंव देखिए

उदयाचल से किरण धेनुऐ
हाक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला
पूछ उठाएं चली आ रही
क्षितिज जंगलों से टोली
दिखा रहे पथ इस भूमिका
सारसुना- सुना बोली (18)

समय देवता लंबी कविता है। जिसमें संपूर्ण विश्व की रेखा चित्र खींचा गया है। विश्व की विशेषताओं और वहां की प्रमुख घटनाओं को वयं विषय बनाया है।

जाओ कालिदास के बादल, चीनी धरती बुला रही है
जाओ हे सतरंगी सूरज, चीन देश में भोर हुई है।
दक्षिण दिशी में देव, दिखते हैं वह धरती की सिकुड़न सी लंबी रेखा
राजनीति की फसल सरीखी की खड़ी हुई दीवार चीन की (19)

इस तरह से समय देवता कविता में विभिन्न संस्कृतियों से परिचय कराया गया है। ग्रामीण जीवन का मनमोहक वर्णन उषस कविताओं में मिलता है। जहां तत्कालीन समाज का भाव परक वर्णन मिलता है। जिसमें ग्रामीण जन की दिनचर्या के साथ-साथ उनके मधुर गीतों की फुहार प्रकृति की मनमोहक छटा आदि का वर्णन है।

भिनसारे में चक्की के संग
फैल रही गीतों की किरणे
पास हृदय छाया लेती है
देख रही मोती के सपने
गीत न टूटे जीवन का यह कंगन बोल रहे हैं (20)

नरेश मेहता की कविताओं में परिवेश का बड़ी सादगी से भाव विभोर वर्णन देखा जा सकता है। ओम निश्चल के शब्दों में, नरेश मेहता में वैदिक अनुगूज दिखती है जैसे कविता के किसी लीपे पुते आगन में आ गए हो एक मंदिर की सी सुचिता और पवित्रता का बोध होता है नरेश में कविता के साथ गदय की ऊचाइयां भीहुई है।(21)

रघवीर सहाय बच्चन से प्रेरित ही मजेय और शमशेर शमशेर का सानिध्य पाकर काव्य रचना में अगसारित हुए है ये प्रयोग सील कवि है। जिनकी कविताओं में सामान्य बोलचाल से लेकर उईकी शैली तक देखी जा सकती है। बसंत, पहला पानी, प्रभाती, सायंकाल नामक कविता में प्रकृति का मनमोहक वर्णन किया गया है।

हिली सुनहरी सुघर बलिया

उत्सुकता सिहरा जाता बदन

कि इतने निकट प्राण धन

नवल कपोलो से रस गीले होंठ खिले हैं

मधु पराग कीअधिकाईकंठ रुधा है

तड़प रही है वर्ष-वर्ष पर मिलने की अभिलाषा (22)

रघुवीर सहाय ने कविताओं में बोलचाल की भाषा का सुंदर समावेश किया है। उनकी भाषा सहज व सतह से जुड़ी हुई हैं भला नमक कविता का उदाहरण दर्शनीय है।

मैं कभी - कभी कमरे के कोने में जाकर

एकांत जहां पर होता है

चुपके से एक पुराना कागज पढ़ता हूँ (23)

वही याचना, संशय कोशिश, अनिश्चय लापरवाही समझोता मुंह अंधेरे आदि नवीन काव्य शीर्षक लेकर बहु आयामी प्रयोग किया। वह इन कविताओं में गहरी समझ के साथ बहुआयामी सोच व्यक्त किया है जिसमें कवि ने आपबीती को व्यक्त व्यक्त किया है जिसमें उसने सामान्य बोलचाल की भाषा का बहुतायत प्रयोग किया है।

और कभी जब कभी गौरया सा मन

घर के आंगन में खेलते का हुआ

मैं ने थामा है उसे कह के बचपना ना करो

बाग में धूप खाते - खाते जैसे मैं गरमा

उठ के छाया में बरम्दे की, चला आया हूँ

अपने में लौट गया था मेरा मन ऐसे ही (24)

दूसरा सप्तक में धर्मवीर भारती ने समाज में समरसता की प्रेरणा के साथ नवीन भाव बोध से युक्त कविताएं लिखी है। वे पाश्चात्य के भोग वादी प्रवृत्ति को सस्वर स्वीकारते हैं। वे सिंगारी भाव के लिए कविता लिखते हैं। उनकी कविताएं तत्कालीन समय वह समाज की अनूठी झांकी है। थके हुए कलाकार से कवि व कल्पना, कविता में समाज की नवीन आशा के संचार पर बल दिया। वह ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि अधकार से उतारकर उजाले की तरफ ले चलें।

तिमिर मय नयन में डगर भूल कर

कहीं खो गई रोशनी की किरण

बादलों में कहीं खो गया

नई सृष्टि का सप्तरंगी सपन (25)

गुनाह गीत, गुनाह का दूसरा गीत, उदास तुम, चुंबन जैसी कविताओं में उन्होंने रोमांटिक भाव को समाहित किया है। इस इन वर्णन में पाश्चात्य भाव से प्रेरित है। वे यौवन काल में प्रणय भावना को अनिवार्य समझते हैं। उनके अनुसार किसी दूसरे हृदय की प्यास बुझाने के लिए प्रणव भावना उचित है।

किसी की गोद में सिर धर

घटा घनघोर बिखरा कर

अगर बिश्वाश सो जाये
धडकते वक्ष पर मेरा अगर व्यक्तित्व खो जाये
न हो यह वासना
तो जिंदगी की माप कैसे हो
किसी के रुप का सम्मान मुझ को पाप कैसे हो
नसों का रेशमी तूफान मुझे को पाप कैसे हो (26)

वही 'सुभाष की मृत्यु पर' नामक कविता में सुभाष चंद्र बोस को याद कर श्रद्धांजलि दिया है। इस कविता द्वारा देश के अमर सपूतों के बलिदान से प्रेरणा लेने का भाव दर्शाया गया है।

किंतु स्वर्ग से असंतुष्ट तुम, यह स्वागत का शोर
धीरे - धीरे जब कि पड़ गया होगा बिल्कुल शांत
और रह गया होगा जब वह स्वर्ग देश
खोल कफन ताका होगा तुमने भारत का भोर (27)

दूसरा सप्तक के कवियों ने काव्य सत्य की खोज में अनवरत लगे रहे। आत्म विस्तार के बजाय आत्मसात पर बल दिया। नामवर सिंह के शब्दों में, 'दूसरा सप्तक में व्यक्ति सत्य को वस्तु सत्य की दिशा में विस्तार करने की अपेक्षा रागात्मकतता के द्वारा तथ्य को सत्य बनाने पर बल दिया। यहां आत्म विस्तार के स्थान पर आत्मसात् करने पर विशेष बल है।'[28]

संदर्भ

1. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या पृष्ठ 136, भारतीय ज्ञानपीठ 18 लोधी रोड नई दिल्ली 110003 छठा संस्करण 2011
2. संपादक अजेय दूसरा सप्तक पृष्ठ 23 भारतीय ज्ञानपीठ 18 इन्सयुशनल एरिया लोधी रोड नई दिल्ली 110003 चौथा संस्करण 2012
3. वही पृष्ठ 33
4. वही पृष्ठ 29
5. संपादक प्रोफेसर सुरेंद्र दुबे रू बुंदेलखंड में साहित्य परंपरा पेज 191 अनामिका पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स 4697/3,21। अंसारी रोड दिल्ली
6. सं. अजेय दूसरा सप्तक पृष्ठ 53
7. वही पृष्ठ 46
8. वही पृष्ठ 45
9. वही पृष्ठ 56
10. वहीं पृष्ठ 67
11. वही पृष्ठ 75
12. वही पृष्ठ 70
13. वही पृष्ठ 77
14. वही पृष्ठ 103
15. वही पृष्ठ 95
16. वही पृष्ठ 99
17. वही पृष्ठ 113
18. वही पृष्ठ 114
19. वही पृष्ठ 119

20. वही पष्ठ 115
21. आजकल: जनवरी - फरवरी (संयुक्ताक) 2020 पृष्ठ 21 सी.जी.ओ. कंपलेक्स लोधी रोड नई दिल्ली 110003
22. संपादक अज्ञेय दूसरा सप्तक पृष्ठ 140
23. वही पृष्ठ 123
24. वही पृष्ठ 148
25. वही पृष्ठ 162
26. वही पृष्ठ 166
27. वही पृष्ठ 170
28. नामवर सिंह रू कविता के नए प्रतिमान पृष्ठ 89 राजकमल प्रकाशन (18 वां संस्करण 2018 प्राइवेट लिमिटेड 16 नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज नई दिल्ली 110002

इतिहास की अवधारणा, स्वरूप, विषय क्षेत्र, अध्ययन का महत्व

डॉ० मंजुली कुमारी

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, सी.एन. कॉलेज, साहेब गंज, मुजफ्फरपुर (बिहार)

परिचय

'हिस्ट्री' (भ्पेजवतल) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'हिस्टोरिया' (भ्पेजवतपं) से हुई है जिसका अर्थ 'खोजना या जानना' है। यह शब्द अतीत की घटनाओं की ओर संकेत करता है। 'हिस्ट्री' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ग्रीक लेखक हेरोडोटस ने किया था। इसीलिए उसे 'इतिहास का पिता' कहा जाता है। हिस्ट्री का भारतीय शब्द 'इतिहास' है। इतिहास शब्द 'इति+ह+हास' शब्दो के मिलने से बनता है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'ऐसा ही हुआ था'। यहाँ 'इति' से आशय है–'बीता हुआ युग'। 'ह' निश्चय वाचक है और 'आस' था को कहते हैं अर्थात् जो निश्चय करके बीत गया है, उसे इतिहास कहते हैं। इतिहास शब्द का प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेद के व्रात्यकाण्ड में व्यवहार में आया है। हिस्ट्री के लिए इरानी प्रत्यय सूचक शब्द 'तवारीख' का भी प्रयोग किया जाता है, लेकिन यह शब्द तारीख का बहुवचन मात्र है। इतिहास केवल तारीखो और तिथियों का संग्रह ही नहीं इन सबसे बहुत अधिक है।

इतिहास न केवल भूतकाल से सम्बन्धित है अपितु वर्तमान और भविष्य से भी इसका सम्बन्धा है। अतीत (भूतकाल) की घटनाओ से हम वर्तमान में प्रेरणा लेकर भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करते हंइ या भविष्य के प्रति सजग रहते हैं। इतिहास पृथ्वी के धरातल पर घटित सभी घटनाओं का द्योतक है जो चाहे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक अथवा सांस्कृतिक हो। यह सभी इतिहास की सीमा में आता है। इस प्रकार इतिहास समय सीमा में मानव विकास की प्रक्रिया का आलेख है अर्थात् समय अनुकूल मानव के क्रमिक विकास की कहानी ही इतिहास है। अन्य विषयों की भॉति मानव रूचि को ध्यान में रखते हुए इतिहास भी अपनी विषय वस्तु के प्रति रचनात्मक रहा है। प्रारंभ में इतिहास तत्कालीन समाज के उच्च वर्ग की परम्पराओ एवं राजाओं तथा सेनापतियों की विजयगाथाओ से काफी हद तक प्रभावित रहा। यह संभवत: श्रेष्ठ शक्तियों एवं व्यक्तिओं में तादात्म्य स्थापित हो और वीरतापूर्ण कार्यो की प्रोत्साहन देने हेतु था। इससे तत्कालीन समाज के जीवन में महत्व रखने वाले कुछ ही लोगो की उपलब्ध्यिों और उससे सम्बन्धित बीती घटनाओं का वर्णन ही इतिहास बना।

इतिहास का स्वरूप

इतिहास की प्रकृति या स्वरूप क्या है? इतिहास अपने प्राकृतिक स्वरूप में विज्ञान है अथवा कला? इंगलैण्ड में सर्वप्रथम इस प्रश्न को उठाने वाले विद्वान प्रो0 जे0वी0 व्युरो थे। उन्होनें 1903ई0 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में एक उद्घाटन समारोह के अवसर पर अपने अभिभाषण में कहा कि इतिहास एक विज्ञान है, न कम और न अधिक (भ्पेजवतल पे ैबपमदबम दव समे ंदक दव उवतम)।

इतिहास के विषय-क्षेत्र

इतिहास के स्वरूप विचार करने के पश्चात् इसके विषय-क्षेत्र की चर्चा की जाती है। इतिहास का विषय-क्षेत्र अधिक व्यापक है। हर युग के इतिहासकार ने इतिहास की आवश्यकता का अनुभव किया है। अत:, इतिहाकार अपने युग की आवश्यकता और

सामाजिक मूल्यों के अनुसार इतिहास लिखता है। मानव समाज निरन्तर विकास की ओर बढ़ता रहा है। इस विकास के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकता भी बढ़ती गई। इन्हीं को हर युग का इतिहास-लेखक प्रस्तुत करता गया। आदिकाल से ही मनुष्य संघर्ष करता आया है। उसका उत्थान-पतन ही इतिहास है। इतिहास में इतिहाकार किसी घटना का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत करते समय तीन बातों को ध्यान में रखता है– (प) घटना क्या है? (पप) वह कैसे घटी? (पपप) क्यो घटी? इसी के विश्लेषण को इतिहास कहते हैं जिसे कि इतिहासकार प्रस्तुत करता है। वैसे इतिहासकार के दो मुख्य कार्य हैं- (प) तथ्यों को संकलित करना और (पप) उनका विश्लेषण करना। प्रथम का स्वरूप विषयनिष्ठ तथा मानवतावादी है और दूसरे का वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ। अत: इतिहास के क्षेत्र में आदमी के साधरण कार्यो से लेकर उसकी सभी प्रकार की उपलब्धियो का वर्णन है। डॉ0 झारखण्ड चौबे ने ठीक ही लिखा है–'जैसे प्रत्येक कवि अपने युग का कवि होता है, उसी प्रकार प्रत्येक इतिहासकार अपने युग का इतिहासकार होता है। कवि की ही भॉति इतिहासकार की वाणी अपने युग की वाणी होती है'।

1. समाज के सभी पक्षों का चित्रण करता है

बीते समय के समाज का पूरा चित्रण इतिहास में किया गया है। उस समाज का सम्पूर्ण चित्रण, जैसे-भौगोलिक वातावरण, आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, संवैधानिक, कानून, न्याय-व्यवस्था आदि, प्रस्तुत करना इतिहास का कार्य है। इतिहासकार का परम कर्तव्य है कि वह अतीत के उपरोक्त सभी पक्षो को समाज के सामने प्रस्तुत करें।

इतिहास के अध्ययन का महत्व

इतिहास का अध्ययन हमारे वर्तमान को तो सुसम्पन्न बनाता ही है, साथ ही वह सुखमय भविष्य का भी निर्धारण करता है। इसके महत्व को देखते हुए ही भारत में हमारे महर्षियों ने इसे पंचमवेद माना है। मानव समाज के लिये इसकी उपयोगिता तभी संभव है; जब यह सही ढ़ंग से, दुराग्रह को छोड़ निष्पक्ष होकर लिखा जाय। इतिहास की उपेक्षा नहीं की जा सकती। क्योंकि इतिहास की उपेक्षा करने वाले राष्ट्र का कोई भविष्य नहीं होता है। इसलिए किसी राष्ट्र के सुन्दर भविष्य के लिए इसका विशेष उपयोग है।

1. इतिहास मानव समाज का ज्ञान देता है–

समाज का प्रारंभ, उद्‌भव तथा विकास कैसे हुआ? समाज में मनुष्य जीवन के प्रारंभ और उसके बाद का समय कैसे बीता आदि प्रश्नों के उत्तर हमको इतिहास में ही मिलते हैं।

2. व्यावसायिक दृष्टि से इतिहास का महत्व

व्यावसायिक दृष्टि से भी इतिहास का महत्व कम नहीं है। इतिहास के विद्यार्थी प्रशासनिक सेवाओं से लेकर समाज का नेतृत्व करने वाले कार्यों में अधिक सफल और लोक कल्याण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त इतिहास का ज्ञाता युवक पुस्तकालीय संग्रहालय तथा पुरातत्व विभाग में उच्च पदों पर सेवा करने का अवसर पाता है। पत्रकारिता के लिए तो इतिहास और भी महत्वपूर्ण विषय है।

सन्दर्भ

- Tosh] John_ The Pursuit of History (2006)] ISBN 1&4058&2351&8-
- Carr] E-H-] with a new introduction by Richard J- Evans- What is History\ Basingstoke% Palgrave Macmillan] 2001] ISBN 0&333&97701&7-
- Lerner] Gerda (1997)- Why History Matters% Life and Thought- New York% Oñford University Press- pp- 199&211- ISBN 0195046447-
- Arnold] John H- (2000)- History%A Very Short Introduction- New York% Oñford University Press- ISBN 019285352X-

भारत में जमींदारी प्रथा का इतिहास

बासुदेव शाह

इतिहास विभाग, बी.आर.ए. विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

परिचय

जमींदारी प्रथा भारत में मुगल काल एवं ब्रिटिश काल में प्रचलित एक राजनैतिक-सामाजिक प्रथा थी जिसमें भूमि का स्वामित्व उस पर काम करने वालों का न होकर किसी और (जमींदार) का होता था, जो खेती करने वालों से कर वसूलते थे। भारत के स्वतंत्र होने के बाद यह प्रथा समाप्त कर दी गयी।

भारत मे सबसे ज्यादा जमींदारियाँ अगर किसी की रही है तो वो मुगलों और अंग्रेजो के चापलूस थे। भारत की प्राचीन विचारधारा के अनुसार भूमि सार्वजनिक संपत्ति थी, इसलिये यह व्यक्ति की संपत्ति नहीं हो सकती थी। भूमि भी वायु, जल एवं प्रकाश की तरह प्रकृतिप्रदत्त उपहार मानी जाती थी। महर्षि जैमिनि के मतानुसार "राजा भूमि का समर्पण नहीं कर सकता था क्योंकि यह उसकी संपत्ति नहीं वरन् मानव समाज की सम्मिलित संपत्ति है। इसलिये इसपर सबका समान रूप से अधिकार है"। मनु का भी स्पष्ट कथन है कि "ऋषियों के मतानुसार भूमिस्वामित्व का प्रथम अधिकार उसे है जिसने जंगल काटकर उसे साफ किया था जोता" (मनुस्मृति, 8.237-239)। अतएव प्राचीन भारत के काफी बड़े भाग में भूमि पर ग्राम के प्रधान का निर्वाचन ग्रामसमुदाय करता था तथा उसकी नियुक्ति राज्य की सम्मति से होती थी। राज्य उसे भूमिकर न देने पर हटा सकता था, यद्यपि यह पद वंशानुगत था तथा इसकी प्राप्ति के लिये जनमत तथा राज्यस्वीकृति आवश्यक थी। अतएव वर्तमान समय के जमींदारों से, जो निर्वाचित नहीं होते वे भिन्न थे।

प्राचीन भारत में भूमि का संपत्ति के रूप में क्रयविक्रय संभव नहीं था। इस तथ्य की पुष्टि पाश्चात्य विद्वान बेडेन पावेल तथा सर जार्ज कैंपबेल ने भी की है। कैंपबेल का कथन है कि भूमि जोतने का अधिकार एक अधिकार मात्र ही था और हिंदू व्यवस्था के अनुसार भूमि नहीं माना गया था। आधुनिक अनुसंधनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि प्राचीन भारत में सामंत, उपरिक, भोगिक, प्रतिहर तथा दंडनायक विद्यमान थे। ये लोग न्यूनाधिक सामंतप्रथा के अनुकूल थे। किंतु हमें इनके अधिकारों तथा कर्तव्यों का पता निश्चय रूप से नहीं हो सका है, सिवाय इसके कि ये लोग अपने स्वामियों को आवश्यकता पड़ने पर सैनिक भेजते थे। इन अधिकारियों को पारिश्रमिक के रूप में भूमि प्रदान की जाती थी। भूमिव्यस्था के संबंध में याज्ञवल्क्य के मतानुसार चार वर्ग, महीपति, क्षेत्रस्वामी, कृषक और शिकमी थे (याज्ञवल्क्य 2.158)। आचार्य बृहस्पति ने क्षेत्रस्वामी के स्थान में केवल स्वामी शब्द का ही प्रयोग किया है परंतु इसका स्पष्टीकरण कर दिया है कि स्वामी, राजा और खेतिहर के मध्य का वर्ग था। उपर्युक्त वर्णन केवल भूधृति के वर्गीकरण को इंगित करता है, न कि कृषक को एक आंग्ल दास के स्तर पर पहुँचा देता है।

मुख्य प्रश्न तो यह है कि भूमि पर स्वत्व अधिकार किसको-राज्य को, कृषक को अथवा किसी मध्यवर्ती वर्ग को? विद्वानों के मतानुसार प्राचीन भारत में यह अधिकार (ैमतअपजने) ही था जो स्वत्व अधिकार नहीं कहा जा सकता।

मध्यकाल

यवन शासनकाल में हम इस प्राचीन भूमिव्यस्था में कोई रूपांतर नहीं पाते और न भूमि-स्वत्व-अधिकारों के मूल सिद्धांतों में परिवर्तन ही। यवन शासक भूमिकर गाँव के मुखिया द्वारा ही वसूल करते थे और कभी-कभी स्थानीय सरदारों वा राजाओं द्वारा, जो अपना स्तर गाँव के मुखिया से ऊँचा होने का दावा करते थे। इन राजाओं के दावे में राज्य और कृषक के बीच में एक मध्यवर्ती वर्ग का जन्म प्रतीत होता है। परंतु सामंतवाद पद अवरोध स्थायी रखा गया था क्योंकि राज्य सर्वदा इन राजाओं को कर्मचारी ही मानते

थे। यद्यपि ये राजा वंशानुगत होने लगे थे तथापि राज्य को इनके पद को देने तथा वापस लेने का अधिकार सदैव प्राप्त था। एक राजा के उत्तराधिकारी को राजा की सनद प्राप्त करने के लिये प्रार्थनापत्र देना पड़ता था और सनद की प्राप्ति के पश्चात् ही वह राजा होता था। आईनेअकबरी में कृषक तथा राज्य के बीच में किसी मध्यवर्ती वर्ग को मान्यता नहीं दी गई है। तथाकथित राजा और जमींदार सैद्धांतिक और वास्तविक रूप में केवल कर वसूल करनेवाले कर्मचारी ही थे।

यह उल्लेखनीय है कि यवन शासकों ने भूमि-स्वामित्व-अधिकार का कभी दावा नहीं किया था। यह बात इन ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट है कि औरंगजेब ने हुंडी, पालम तथा अन्य स्थानों पर कृषकों से भूमि खरीदी थी, जैसा अकबर ने अकबराबाद और इलाहाबाद में किले बनाने के लिए किया था। ऐसा ही शाहजहाँ ने भी किया उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यवन शासक केवल कर वसूल करने में ही संपत्ति अधिकार मानते थे, न कि भूमि में। उनके शासनकाल में कृषक के अधिकारों को उच्चतम मान्यता दी गई थी। कृषक अपना कर राजा तथा गाँव के मुखिया द्वारा ही देता था और राजा तथा मुखिया को राज्य द्वारा इस कार्य का पारिश्रमिक मिलता था।

ब्रिटिश काल

सन् 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब केंद्रीय सत्ता शिथिल पड़ने लगी, कृषकों के अधिकारों का लोप आरंभ हो गया। इस आराजकता के समय में अर्धसामंतवादी स्वार्थो की मनोभावना का प्रादुर्भाव हुआ। जब राज्य की सत्ता शिथिल पड़ने लगी, राज्य के कर्मचारी प्रजा के जानमाल की रक्षा करने में असमर्थ होने लगे। फलस्वरूप ग्रामनिवासी रक्षा के लिये शक्तिशाली कर्मचारी एवं राजा या मुखिया लोगों का सहारा लेने लगे। इन लोगों ने स्वभावतः शरणार्थी कृषकों के भूमिधिकारों पर आक्रमण किया। इन परिस्थितियों में जमींदारी प्रथा के अंकुर पाए जाते हैं। परंतु इस संकटकाल में भी कृषकों के भूमि अधिकारों का पूर्ण समर्पण नहीं हुआ था।

भारत में अंग्रेजों के आगमनकाल से ही जमींदारी प्रथा का उदय होने लगा। अंग्रेज शासकों का विश्वास था कि वे भूमि के स्वामी हैं और कृषक उनकी प्रजा हैं इसलिये उन्होंने स्थायी तथा अस्थायी बंदोबस्त बड़े कृषकों तथा राजाओं और जमींदारों से किए। यद्यपि राजनीतिक औचित्य से प्रभावित होकर उसने एक एक परगना हर कर वसूल करनेवाले इजारेदार को पाँच वर्ष के लिये पट्टे पर दे दिया। इस प्रकार जमींदारी प्रथा को अंग्रजों ने मान्यता प्रदान की यद्यपि आरंभ में उनका विचार कृषकों को उनके अधिकारों से वंचित करने का नहीं था सन् 1786 ई0 में लार्ड कार्न वालिस, वारेन हेस्टिगज के बाद गर्वनर जनरल हुआ। लार्ड कार्नवालिस भी जमींदारी प्रथा के पक्ष में था। उसने सन् 1790 ई0 बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में दस वर्षीय बंदोबस्त की आज्ञा दी। दो वर्ष पश्चात् बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स ने इस दस वर्षीय योजना को स्थायी बंदोबस्त (चमतउंमदज `मजजसमउमदज) बना देने की अनुमति दे दी।

मद्रास में जमींदारी प्रथा का उदय अंग्रेज शासकों की नीलाम नीति द्वारा हुआ। गाँवों की भूमि का विभाजन कर उन्हें नीलाम कर दिया जाता था और अधिकतम मूल्य देनेवाले को विक्रय कर दिया जाता था। प्रारंभ में अवध में बंदोबस्त कृषक से ही किया गया था परंतु बाद में राजनीतिक कारणों से यह बंदोबस्त जमींदारों से किया गया। महान इतिहासकार सर विंसेंट ए. स्मिथ, अलीगढ़ की बंदोबस्त रिपोर्ट में, यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि प्रचलित भूमि अधिकारों की उपेक्षा करते हुए केवल उपयोगिता को लक्ष्य में रखकर बंदोबस्त इजारदारों (तमअमदनम तिउमते) से किए गए। अन्यायपूर्ण कर राशि इकट्ठा करने का यह सबसे सरल उपाय है तथा यह राजनीति के दृष्टिकोण से भी उपयोगी है क्योंकि इसके फलस्वरूप सरकार का एक शक्तिशाली तथा धनी वर्ग की सहायता मिलती रहेगी।

इस प्रकार भारतवर्ष के इतिहास में सर्वप्रथम इन बंदोबस्तों द्वारा राज्य और कृषकों के बीच में जमींदारों का वर्ग अंग्रेजों की नीति द्वारा स्थापित हुआ जिसके फल स्वरूप कृषकों के भू-संपत्ति अधिकार, जो अनादि काल से चले आ रहे थे, छिन गए। यह मध्यवर्ती वर्ग दिन प्रति दिन धनी होता गया क्योंकि अंग्रेज शासक अपनी करराशि में से अधिक से अधिक हिस्सा उन्हें प्रलोभन के रूप में देते रहे।

जमींदारी प्रथा के अस्त होने की दिशा में कदम

इन बंदोबस्तों में कृषकों के हितों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप उनका दुःख, अपमान एवं दारिद्रय् दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। कई बार अंग्रेज शासकों ने भी इस ओर ध्यान दिलाया कि कृषकों की भूअधिकार की रक्षा की जाय एवं

उनका लगान बंदोबस्त के समय तक निर्धारित कर दिया जाय। फिर भी कुछ नहीं किया गया। इसका कारण यह था कि अंग्रेज शासकों की धरणा थी कि जमींदारों के साथ व्यवहार में उदारता दिखाने पर जब वे संपन्न एवं संतुष्ट रहेंगे तो वे अपने आसामियों को नहीं सताएँगे जिसके फलस्वरूप वे भी खुशहाल रहेंगे। परंतु यह उनकी महान भूल थी क्योंकि जमींदारों ने हमेशा ही अपने कर्तव्य के साथ विश्वासघात किया। अत: अंग्रेज शासक यह महसूस करने लगे कि इस भूल का सुधार किया जाए। फलस्वरूप उन्होंने कृषकों की दशा सुधारने के लिए भूमि संबंधी विधनों की व्यवस्था की। यह कदम जमींदारी प्रथा के अस्त की दिशा में प्रथम चरण कहा जा सकता है।

इस प्रथम चरण में, जो सन् 1859 ई0 से 1929 ई0 तक रहा, जो कानून बने उनसे जमींदारों के लगान बढ़ाने के अधिकारों पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए और उच्च श्रेणी के कृषकों को लाभ भी हुए। किंतु इन कानूनों का मुख्य उद्देश्य जमींदारों को लगान वसूल करने में सहूलियत देने का था जिससे वे राज्य को राजस्व ठीक समय पर दे सकें। सन् 1859 ई0 में भूमि संबंधी पहला अधिनियम पास हुआ। यह अधिनियम समस्त ब्रिटिश भारत के लिये एक आदर्श भूमि-अधिनियम था जिसके अनुरूप अधिनियम भारत के सभी भागों में पास हुए और समय समय पर उनमें संशोधन भी किए गए ताकि असंतुष्ट कृषकों को शांत किया जा सके। किंतु जमींदार फिर भी कृषकों को अपने न्यायपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण करों को वसूलने के लिये निचोड़ते रहे जिससे किसानों में घोर असंतोष तथा बेचौनी फैलने लगी।

जमींदारी प्रथा के अस्त के क्रम में दूसरा चरण सन् 1930 ई0 से 1944 ई0 तक रहा। इस समय में सारे देश में किसान आंदोलन होने लगे। इन आंदोलनों का बीज एक किसान सभा ने बोया था जो अखिल भारतीय कांग्रेस की इलाहाबाद बैठक में तारीख 11 फरवरी सन् 1918 ई0 को हुई थी। तत्पश्चात् कांग्रेस किसानों के हितों को आगे बढ़ाने लगी। परिणाम स्वरूप ग्रामीण जनता में काफी जाग्रति पैदा हो गई। पं0 जवाहरलाल ने यू. पी. कांग्रेस कमेटी में तारीख 27 अक्टूबर 1928 को घोषणा की कि जब तक किसानों को शोषण से मुक्ति न प्राप्त हो, राजनीतिक स्वतंत्रता निरर्थक है। धीरे-धीरे किसानों की जागरूकता बढ़ी और साथ ही उनकी व्याकुलता भी। किसान वर्ग अब अधिक मुखर हो गया और भूधृति की स्थिरता एवं लगान में कमी की मांग करने लगा। किसान आंदोलनों से प्रभावित होकर रैय्यतवाड़ी क्षेत्रों में नए अधिनियम बनाए गए जिनसे कृषकों के हितों की रक्षा हो सके। मालाबार टेनेंसी ऐक्ट (1930 ई) इस संबंध में सीमाबद्ध है। इसके बाद भोपाल लैंड रेवेन्यू ऐक्ट 1935 तथा आसाम टेनेंसी ऐक्ट 1935 पास हुए। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1935, के अर्न्तगत जब 'प्राविंशल आटोनोमी' का उद्‌ाटन हुआ तो प्रातीय सरकारों ने भूमिसुधार अधिनियमों की व्यवस्था की जिनमें कृषकों को और अधिकार प्रदान किए गए तथा जमींदारों के अधिकारों की कटौती की गई। यू0 पी0 टेनेंसी ऐक्ट 1939, तथा बंबई टेनेंसी ऐक्ट 1939 ऐसे व्यापक अधिनियमों के विशिष्ट उदाहरण हैं जिनके द्वारा कृषकों को मौरूसी (पैतृक) अधिकार दिए गए एवं कृषकों के हित में जमींदारों के कतिपय अधिकार छीन लिए गए।

इन भूमि सुधार अधिनियमों के बनने पर भी जमींदारी प्रथा की बुराइयाँ विद्यमान रहीं, यद्यपि काफी हद तक जमींदारों को पंगु बना दिया गया था। इन जमींदारों को नेहरु जी 'ब्रिटिश सरकार की अतिलालित संतान (ैचवपसज बीपसक)' कहा करते थे। जमींदार भूतकालीन सामंतवादी प्रथा के प्रतीक थे जो कि आधुनिक परिस्थतियों के बिल्कुल प्रतिकूल हो गई थी। इसलिए इंडियन नेशनल कांग्रेस ने कई बार इस बात की घोषणा की कि जमींदारी उन्मूलन को कांग्रेस के कार्यक्रम में प्रमुख स्थान देना चाहिए। एक किसान कांफ्रेंस तारीख 27, 28 अप्रैल सन् 1935 ई. को सरदार पटेल के सभापतित्व में इलाहाबाद में हुई थी। उसमें जमींदारी उन्मूलन को प्रस्ताव पास करके यह घोषणा की गई थी कि 'ग्रामकल्याण के दृष्टिकोण से वर्तमान जमींदारी प्रथा बिल्कुल विपरीत है। यह प्रथा ब्रिटिश शासन के आगमन में लाई गई और इससे ग्रामीण जीवन पूर्णतया तहस नहस हो गया है'। परंतु सन् 1939 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो जाने के कारण भूमि सुधार का सारा कार्यक्रम रूक गया।

युद्ध की समाप्ति के बाद जमींदारी प्रथा के अंत का अंतिम चरण आरंभ हुआ जो सन् 1945 से 1955 तक चला। युद्ध समाप्त होते ही ब्रिटिश सरकार ने 1945 ई0 में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1935 ई. के अंतर्गत प्रातीय सदनों के चुनाव करने का फैसला किया। कांग्रेस ने चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया और दिसंबर 1945 में चुनाव घोषणापत्र निकाला। इस घोषणापत्र में जमींदारी उन्मूलन के विषय में स्पष्टतया कहा गया कि 'भूमि व्यवस्था का सुधार, जिसकी भारत में अति आवश्यकता है, कृषकों तथा राज्यके बीच मध्यवर्ती वर्ग को हटाने से संबंधित है। इसलिए इस मध्यवर्ती वर्ग के अधिकारों का उचित प्रतिकर देकर प्राप्त कर लिया जाना चाहिए'। इस घोषणा पत्र से अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ तथा पत्रकार सभी सहमत थे। जमींदारी प्रथा भारतीय आर्थिक विकास में रूकावट डालती थी क्योंकि बड़े जमींदार हमेशा प्रतिक्रियावाद के समर्थक थे। 'लंदन इकोनोमिस्ट' ने इनके विषय में लिखा था कि 'इनमें

से अधिकतर 'थैकरसे' के पात्र 'लार्ड स्टीन' की तरह दुश्चरित्र, 'जेन आस्टीन' के 'मिस्टर बेनेट' की तरह आलसी, 'सुर्तीजस्क्वायर' की तरह शराबी थे (प्दकपंद संदक चवतइसमउ, ळ.क. च्ंजमस)। बंगाल लैंड कमीशन (सन् 1940 ई.) भी इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि 'सन् 1793 ई. का स्थायी बंदोबस्त उस समय जिन भी कारणों से उचित समझा गया हो, आज की परिस्थिति में अनुपयुक्त है और जमींदारी प्रथा में इतनी बुराइयाँ उपज चुकी है कि यह अब राष्ट्र के हित में किसी भी प्रकार उपयोगी नहीं रह गई है।' भारतीय तथा पाश्चात्य अर्थवेत्ताओं की राय में जमींदारी उन्मूलन अधिक कृषि उत्पादन के लिए अत्यावश्यक है। इसके अतिरिक्त यह प्रथा संसार के हर भाग में समयानुकूल न होने के कारण समाप्त हो चुकी है। साथ ही यह प्रथा राज्य के लिये अधिक खर्चीली है। सर्वोपरि, यह प्रथा इस समय ऐसी स्थिति पर पहुँच चुकी थी कि यदि इसका उन्मूलन न किया गया होता तो इसके कारण ने केवल राष्ट्रीय आर्थिक समस्या पर ही वरन् समाज सुरक्षा पर भी विपत्ति आ पड़ती।

समाप्ति

अत: सन् 1946 ई0 में चुनाव में सफलता के फलस्वरूप जब हर प्रांत में कांग्रेस मंत्रिमंडल बने तो चुनाव प्रतिज्ञा के अनुसार जमींदारी प्रथा को समाप्त करने के लिये विध्येक प्रस्तुत किए गए। ये विध्येक सन् 1950 ई0 से 1955 ई0 तक अधिनियम बनकर चालू हो गए जिनके परिणामस्वरूप जमींदारी प्रथा का भारत में उन्मूलन हो गया और कृषकों एवं राज्य के बीच पुन: सीध संबंध स्थापित हो गया। भूमि के स्वत्वाधिकार अब कृषकों को वापस मिल गए जिनका उपयोग वे पारंपरिक रूप से अनादि काल से करते चले आए थे।

इस प्रकार जिस जमींदारी प्रथा का उदय हमारे देश में अंग्रेजों के आगमन से हुआ था उसका अंत भी उनके शासन के समाप्त होते ही हो गया। इस प्रथा की समाप्ति पर किसी ने तनिक भी शोक प्रकट नहीं किया, क्योंकि इसका विनाश होते ही पुराने सिद्धांत की पुनरावृति हुई जिसके अनुसार भूमि का स्वामी कृषक होता था। दिनांक 02/10/1951 को जमीदारी प्रथा की समाप्ति हुई थी मध्य् प्रदेश में भी ग्वानलियर रियासत में जमीदारी की व्य वस्थाई थी जहाँ आगर सुसनेर आदि मालवा के अधिकांश हिस्सृे ग्वांलियर रियासत के आधीन थें।

सन्दर्भ

- Sharif M. Shuja, Feudalism% root cause of Pakistan,s malaise¸ National Civic Council (NCC) News Weekly (Australia) (25 ekpZ 2000)-
- Asian Human Rights Commission, Pakistan human rights impeded by military, feudal leaders¸ Press Release A HRC&PL&108&Pakistan&2004
- Zamindar Newspaper by Maulana ZafarA li khan
- https://web-archive-org/web/20050206060640@http%@@www-uq-net-au@~zzhsoszy@ips@main-html eñclusively devoted to Indian princely states and domains
- https://web-archive-org@web@20100910100004@http%@@4dw-net@royalark@India@zamindar-htm Landholding families

संस्कृत नाट्य परम्परा में ऐतिहासिक और राजनीतिक नाटक

डॉ० इंदु कुमारी

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत), बी.आर.ए. विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (विश्वविद्यालय परिसर)

संस्कृत नाट्य साहित्य अत्यन्त विकसित एवं प्रौढ़ है। इसकी अविच्छिन्न परम्परा भास से लेकर आधुनिक युग तक चलती रही है। भरत के अनुसार ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प विद्या, योग एवं कर्म नहीं हैं जो नाटक में दिखाई न पड़े।

"नानाभावोपसम्पन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्"।।[1]
न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।[2]

नाटक भिन्न रूचि के व्यक्तियों के लिए समान रूप से मनोरंजन का साधन होता है। नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य वहुधात्येकं समाराधनम्।।[3]

संस्कृत साहित्य में नाटकों का प्रणयन बहुत प्राचीन काल से होता रहा है और इसके सूत्र वेदों में भी प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के अनेक संवाद सूक्तों में नाटक के तत्व मिलते हैं। पुरूरवा-उर्वशी-संवाद[4], यम-यमी[5], इन्द्र-इन्द्राणि, वृषा-कपि[6], सरमा-पणि[7] आदि संवादों में नाट्यकला का यथेष्ट रूप देखा जा सकता है। रामायण एवं महाभारत में भी नाटक के कई उपकरणों का उल्लेख है। इस प्रकार वैदिक काल से लेकर ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक नाटकों के प्रचलन एवं नाटकों की शिक्षा के लिए रचे गए ग्रन्थों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिससे भारतीय नाट्य साहित्य की प्राचीनता ज्ञात होता है। ई० पू० प्रथम शताब्दी में कालिदास ने नाटकों की रचना की थी।[8]

संस्कृत नाटकों की अखण्ड परम्परा विक्रम की प्रथम शताब्दी से प्राप्त होती है। कालिदास ने मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में कविपुत्र, भास एवं सौमिल्ल नामक नाटककारों का उल्लेख किया है[9] किन्तु इनमें केवल भास की ही रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। भास का समय ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के आस-पास है। इनकी तेरह नाट्य कृतियाँ उपलब्ध हैं, जिसका श्रेय म०म० गणपति शास्त्री को है।[10]

भास के पश्चात् संस्कृत नाटककार के रूप में कालिदास को ख्याति प्राप्त है। इन्होंने संस्कृत नाटक की समृद्ध हो रही परम्परा को अपनी प्रतिभा के संस्पर्श से आलोकित कर उसे प्रौढ़ता प्रदान की है। उनके तीन प्रसिद्ध नाटक हैं-

1. मालविकाग्निमित्रम्
2. विक्रमोर्वशीयम्
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

संस्कृत के तृतीय प्रसिद्ध नाटककार हैं 'शूद्रक', जिन्होंने 'मृच्छकटिक' नामक यथार्थवादी नाटक की रचना की है। इन्होंने भासकृत 'चारूदत्त' के आधार पर अपने 'प्रकरण' का निर्माण किया है। मृच्छकटिक में दस अंक हैं और ब्राह्मण चारूदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना की प्रेम कहानी वर्णित हैं। इसका प्रतिनायक राजा का साला शकार है। इस प्रकरण में साथ-साथ दो प्रधान घटनाएँ चलती हैं जिनमें एक का सम्बन्ध वसन्तसेना तथा 'चारूदत्त' से है तथा दूसरी आर्यक की राज्य प्राप्ति से सम्बद्ध है। नाटककार प्रेम की

कथा को राजनैतिक घटनाओं के साथ सम्बद्ध कर अनूठी चातुरी का परिचय दिया है और दो घटनाओं को इस प्रकार अनुस्यूत किया है कि वे पृथक् नहीं होती।

महाकवि अश्वघोष कृत तीन नाटक उपलब्ध हुए हैं जिन्हें डॉ० लूडर्स ने 1910 ई० में मध्य एशिया के तुफान नामक स्थान में प्राप्त किया था।

संस्कृत के प्रमुख नाटककारों में हर्षवर्धन का नाम आता है। महाराज हर्षवर्द्धन की तीन रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें दो नाटिकाएँ प्रियदर्शिका एवं रत्नावली है तथा एक रूपक है-नागानन्द।

भट्टनारायण के नाटक

भट्टनारायण कृत 'वेणीसंहार' संस्कृत का वीररस प्रधान नाटक है। इसकी रचना छः अंकों में हुई है और नाटक के शास्त्रीय नियमों का कठोरतापूर्वक नियोजन किया गया है। इसीलिए इसे नाट्यशास्त्रीय एवं काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इसकी कथा पौराणिक है और महाभारत की एक प्रसिद्ध घटना को कथा का आधार बनाया गया है, और वह है दुर्योधन के रक्त से रंजित हाथों से भीमसेन का द्रौपदी के केशों को बाँधना। इसकी शैली ओजगुण से युक्त है तथा कई ओजपूर्ण संवादों का नियोजन किया गया है।

विशाखदत्तकृत मुद्राराक्षस

विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस नामक महान् नाट्यकृति की रचना की है जिसमें राजनैतिक दाँव-पेंच एवं कूटनीति की प्रधानता है। इसमें चाणक्य और राक्षस की कूटनीतिक चालों का रसात्मक वर्णन है, जिसे आचार्यों ने नाटकीय प्रविधि की सफलता के कारण शाकुन्तल के समकक्ष माना है। इसमें शृंगार रस एवं स्त्री पात्रों सहित तथा हास्य का अभाव है जो कवि की अनूठी कल्पना के रूप में प्रतिष्ठित है। कवि ने विषय के अनुरूप शैली का गठन किया है।[11]

संस्कृत नाटककारों में कालिदास के बाद महाकवि भवभूति का स्थान सर्वथा गौरवास्पद है। इनके तीन नाटक हैं - (1) मालतीमाधव (2) महावीरचरितम् एवं (3) उत्तररामचरितम्।

संस्कृत के अन्य नाटककारों में अनेक व्यक्ति आते हैं। परवर्ती नाटककारों की प्रवृत्ति अनावश्यक वर्णनों एवं काव्यशैली के चाकचिक्य की ओर गयी, फलतः संस्कृत में नाटकों की बाढ़ सी आ गई है। ऐसे नाटकों को ऐतिहासिकों ने ह्रासोन्मुखी काव्यशैली का नाटक कहा है। ऐसे नाटककारों में मुरारि आते हैं जिन्होंने 'अनर्घराघव' नामक नाटक की रचना की है। इसमें रामचरित को नाटकीय विषय बनाया गया है तथा कवि का ध्यान विविध शास्त्रों के पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा पदलालित्य की ओर अधिक है। इसमें नाटकीय वर्णनों एवं ललित पदों के भार से बोझिल हो उठा है। इसी शताब्दी के अन्य नाटककारों में 'हनुमन्नाटक' के रचयिता दामोदर मिश्र एवं राजशेखर हुए। राजशेखर ने तीन नाटक एवं एक सट्टक-'कर्पूरमंजरी' लिखा हैं। तीन नाटक हैं - 'विद्धशालभंजिका', 'बालरामायण' एवं 'बालमहाभारत'। विद्धशालभंजिका चार अंकों की नाटिका है तथा 'बालरामायण' दस अंकों का 'महानाटक' है, जिसमें रामायण की कथा वर्णित है। 'बालमहाभारत' के दो ही अंक उपलब्ध हुए हैं। राजशेखर ने अपने नाटकों में लम्बे-लम्बे वर्णनों का समावेश किया है जो नाट्यकला की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। 'हनुमन्नाटक' 14 अंकों का महानाटक है, जिसमें प्रकृति प्राकृत का प्रयोग नहीं है और गद्य से अधिक पद्यों की संख्या है। बौद्ध आचार्य दिङ्नाग (1000 ई०) ने 'कुन्दमाला' नामक नाटक में 'उत्तररामचरित' की कथा का वर्णन किया है जो 6 अंकों में समाप्त हुआ है। इन पर भवभूति की शैली का अधिक प्रभाव देखा जा सकता है।

संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक

ऐतिहासिक इतिवृत्त को आधार बनाकर लिखित नाटक ऐतिहासिक नाटक की श्रेणी में आते हैं। संस्कृत साहित्य में पुराणों, रामायण और महाभारत से कथानक लेकर अनेक नाटक प्रणीत हुए हैं। पुराणों में भी इतिहास का स्वरूप मुखरित है। अतः रामायण और महाभारत को उपजीव्य बनाकर जिन नाटकों की रचना हुई है, वे सभी संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक मान्य है। संस्कृत में रामायण को उपजीव्य बनाकर रचित नाटक निम्नलिखित हैं -

(1) प्रतिमानाटक - भास - लगभग 400 ई०पू०
(2) अभिषेक - भास - लगभग 400 ई०पू०
(3) यज्ञफल - भास - लगभग 400 ई०पू०
(4) महावीरचरित - भवभूति - 700 ई० के लगभग
(5) उत्तरामचरित - भवभूति - 700 ई० के लगभग
(6) अनर्घराघव - मुरारि - 800 ई० के आप-पास
(7) आश्चर्यचूडामणि - शक्तिभद्र - 800 ई०
(8) हनुमन्नाटक - दामोदर मिश्र - 850 ई० के पूर्व
(9) बालरामायण - राजशेखर - 900 ई० के लगभग
(10) कुन्दमाला - 1000 ई० के लगभग -
(11) प्रसन्नराघव - जयदेव - 11वीं शताब्दी
(12) उन्मत्त राघव - 'भास्कर' - 1350 ई०
(13) उन्मत्त राघव - विरूपाक्ष - 1350 ई०
(14) आनन्दराघव - 1620 ई०
(15) अद्भूत दर्पण - महादेव - 1650 ई०
(16) जानकी परिणय - रामचन्द्र - 1700 ई०

उपर्युक्त विवेचन से संस्कृत के ऐतिहासिक नाटकों की अपेक्षित जानकारी प्राप्त होती है।

संस्कृत के राजनीतिक नाटक

नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाटक के कथानक के सम्बन्ध में उल्लेख है कि उसे ख्यात अर्थात् इतिहास प्रसिद्ध होना चाहिए। उसका नायक राजा प्रतापी और गुणवान होना चाहिए। इस दृष्टि से विचार करने पर ऐतिहासिक नाटकों में राजनीतिक तत्त्व का समावेश होने पर वह राजनीतिक नाटक का रूप धारण कर लेता है। आचार्य विश्वनाथ ने नाटक के लक्षण का उल्लेख करते हुए साहित्यदर्पण में लिखा है -

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पत्र्संधिसमन्वितम्। विलासहृदयादिगुणवर्द्धकं नानाविभूतिभिः सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्। पञ्चादिकादशपरास्तत्ताङ्काः परिकीर्तिताः॥ प्रख्यातवंशो राजर्षिः धीरोदात्तः प्रतापवान्। दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः।[12]

राजनीति प्रधान काव्यों या नाटकों में छः गुणों, चार उपायों और त्रिवर्ग वाली राजनीति का निरूपण और उनका उपयोग होता है। राजनीति के छः गुण निम्नलिखित है- (1) सन्धि (2) विग्रह (3) यान (4) आसन (5) संश्रय (6) द्वैधीभाव।

राजनीति में वर्णित चार उपाय-साम, दाम, दण्ड और भेद।

राजनीति में निरूपित त्रिवर्गवाली राजनीति निम्नलिखित है- धर्म, अर्थ और काम। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और शुक्रनीति आदि में इनका स्पष्ट उल्लेख है-

''सन्धिविग्रहासयानसंश्रयद्वैधीभावाः वाडगुणयामित्याचार्यः सन्धिं च विग्रहं यानव्यासं न च समाश्रयम्। द्वैधीभावं च संविधान्मन्त्रस्यैतांस्तु षड्गुणान्॥[14]

'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीति का सम्यक् निरूपण हुआ है। अतः उपर्युक्त दोनों ऐतिहासिक काव्यों को उपजीव्य बनाकर रचित नाटक ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से विचार करने पर भास प्रणीत प्रतिज्ञायौगन्धरायण, दूतवाक्य एवं भवभूति प्रणीत महावीरचरित, भट्टनारायण कृत 'वेणीसंहार' और विशाखदत्त प्रणीत 'मुद्राराक्षस' विशेष उल्लेखनीय है। राजनीतिक सिद्धान्तों का तो यह नाटक आकर है।

उपर्युक्त विवेचन से संस्कृत नाट्य-परम्परा में ऐतिहासिक और राजनीतिक नाटकों की कथावस्तु, घटनाओं एवं विशेषताओं, रसाभिव्यक्ति आदि का पता चलता है।

संदर्भ संकेतः

(1) भरत - नाट्यशास्त्र - 1/109
(2) भरत - नाट्यशास्त्र - 1/114
(3) कालिदास - मालविकाग्निमित्रम्
(4) ऋग्वेद - 10/95
(5) ऋग्वेद - 10/10
(6) ऋग्वेद - 10/86
(7) ऋग्वेद - 10/108
(8)डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
(9)कालिदास - मालविकाग्निमित्रम् (प्रस्तावना)
(10) डॉ० कपिलदेव द्विवेदी - संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास पृ0 275-76
(11) डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा' - संस्कृत साहित्य कोश पृ० 621
(12) विश्वनाथ - साहित्यदर्पण - 6/7, 8, 9
(13) चाणक्य - कौटिल्य अर्थशास्त्र - 7:1 पृ० 460
(14)शुक्राचार्य - शुक्रनीति - 4-7-23

दिनकर की संस्मरणधर्मी कविताओं का अध्ययन

डॉ० महेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल कॉलेज, सुरसण्ड

छायावादोत्तर काल के कवियों में सर्वाधिक लोकप्रिय युगचारण कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय भावनाओं के अग्रदूत और राष्ट्रकवि हैं। उनके काव्य में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हुई हैं। राष्ट्र की आत्मा की प्रतिध्वनि, मानवीय संवेदना के स्पन्दन और दु:खी पीड़ित शोषित वर्ग की व्यथा उनकी कविताओं में प्रखर व्यंजना हुई है। राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम उनकी प्रथम काव्यकृति 'रेणुका' में दिखायी देती है। कवि की यह प्रवृत्ति आगे चलकर अपेक्षाकृत अधिक प्रखर हुई है। इस दृष्टि से 'हुँकार' तथा 'सामधेनी' के नाम उल्लेखनीय हैं। आधुनिक हिन्दी कविता में भारतेन्दु युग से लेकर आजतक अभिव्यक्त होने वाली राष्ट्रीयता का स्वरूप क्रमिक रूप से विकसित हुआ है। हिन्दी युगीन कवियों द्वारा व्यंजित अतीतकालीन भारतीय इतिहास का गौरव तो दिनकर के काव्य में मूर्त्त हुआ ही हैं, प्रगतिवादी क्रान्ति का स्वर, ध्वंस, युद्ध आदि को भी उनकी राष्ट्रीय भाव व्यंजना में स्वर मिला है। अतीत स्मरण के रूप में लक्षित होने वाली दिनकर की संस्मरणधर्मी कविताओं में अतीत के गौरवगान, इतिहास के पृष्ठ-प्रदर्शन, वर्तमान दुस्वस्था के चित्रण, नवोत्थान के उत्प्रेरण, युवा वर्ग के दृगोन्मेश के द्वारा उनकी राष्ट्रीय भावना की ही अभिव्यक्ति हुई है।

आधुनिक हिन्दी काव्य साहित्य के अन्तगर्त द्विवेदीयुगीन और छायावादी सजीवता को एक साथ संवेष्ठित कर आगे बढ़नेवाली 'राष्ट्रीय विचारधारा' में जिसकी गर्जनामय हुँकार से प्रलयकारी ज्वार तटबन्ध तोड़ डालने को मचलता दिखायी देने लगा उसे सदैव के लिए हिन्दी साहित्य स्मरण रखेगा।'[1] ऐसे ही कवियों में 'रेणुका' और 'रसवन्ती' के साथ-साथ 'हुंकार' लेकर जो सर्वप्रधान कवि हिन्दी काव्य में दिनकर की भाँति उदित हुआ वह था रामधारी सिंह 'दिनकर'। दिनकर का अर्विभाव छायावाद की पीठिका पर हुआ। उन्हें विरासत रूप में द्विवेदीयुगीन और छायावादी युगीन अनेक प्रवृतियाँ भी मिली थी। मार्क्स तथा गाँधी आदि की विचारधारा को उन्होंने युग-धर्म के कारण कवच धारण किया था। यही कारण हैं कि दिनकर की कृतियों में एक ओर यदि दिनकरयुग की स्पष्टता, अतीत के प्रति मोह और राष्ट्रप्रेम की भावनाएँ निहित है वही दुसरी ओर छायावादी कवियों का सौदर्य-प्रेम एवं प्रकृति-प्रेम और प्रगतिवादी काव्य का मानव समर्थन, शोशक के प्रति विरक्ति, रूढ़ि विरोध श्रमिक वर्ग से सहानभूति, क्रांति, प्रेम तथा यथार्थप्रियता आदि भी मिलती है।[2]

दिनकर जी की काव्य चेतना सदैव युग के स्पंदनो के साथ ताल-मेल रखकर अभिव्यंजित हुई है। वे न तो किसी वाद विषेश के बंधनो में आवद्ध हुए और न किसी धारा विशेष में ही बह चलें। वे वास्तविक अर्थो में युग चाारण तथा युग कवि रहे। प्रमुखत: वे पौरूश और ओज के गायक है। राष्ट्रीयता के उदघोशक तथ समर्थ मानवीयता के पोशक है। दिनकर की सबसे बड़ी विषेशता है अपने देश और युग सत्य के प्रति जागरूकता। सभी देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिंतन दोनो स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालीक घटनाओं यातनाओं विशमताओं आदि के ही रूप में ही नहीं बल्कि उसकी संश्लिष्ट, सांस्कृतिक परंपरा के रूप मे ही पहचाना है और उसके प्रचीन मूल्यों का नये जीवन संदर्भो के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवन्तता प्रदान की है वही दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्व देते हुए उन्हें अपने प्राचीन किंतु जीवन्त मूल्यों से जोड़ना चाहा है। दिनकर ने राष्ट्रीयता की पहचान को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उबरकर चिंतन परीक्षण तथा आत्मालोचन का स्वस्थ रूप देने का प्रयत्न किया साथ ही इस राष्ट्रीयता को सार्वभौम मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा।[3]

स्वतंत्रता पूर्व भारत को जागरण का मंत्र देने वाले कवि दिनकर अपने काव्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद चिंतक के रूप में उभरे वस्तुत: जो लक्ष्य लेकर वे चले उसकी सिद्धि के बाद उनके अंतस की भावधारा की दिशा बदल गयी। युगीन आवश्यकता के अनुरूप कवि दिनकर ने युगधर्म का निर्वाह करते हुए विविध समस्याओं के चिंतन में स्वयं को प्रवणचित्त कर दिये फलस्वरूप उनके काव्य में युद्ध की महत्ता, हिंसा के साथ ही अहिंसा के स्वरूप और वरेण्यता काम और उसकी अपरिहार्यता, आध्यत्मिकता, पुरुषार्थ आदि की ओर संकेत मिलता है। दिनकर अपनी काव्य कल्पना, उमंग और सामाजिक चेतना की तीव्रता के लिए प्रसिद्ध है। भारतीय राष्ट्रीयता की पूरी छाप उनपर है किंतु राष्ट्रीय नवनिर्माण की स्पष्ट रूप रेखा सामने न होने के कारण उनमें विप्लव की भावना प्रधान हो गयी है। समाज में शोषण नीति के प्रचार के कारण इन्हें व्यथा हुई। उनकी प्रलयंकारी भावनाओं के पीछे मंगल की आकांक्षा सदैव सन्निहित रही है। वास्तव में दिनकर जी सामाजिक चेतना सम्पन्न मानवतावादी एवं व्यक्ति वादी कवि है।[4]

आधुनिक हिन्दी काव्य में ओज और तेज की जो अनुगुज दिनकर जी ने मुखर की वह अत्यंन्त प्रखर और अपूर्व मानी जाती है। यह काव्य प्रवृति उनकी संस्मरण धर्मी कविताओं में स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है। राष्ट्रीयता अतीत की गौरव गााथा तथा युगीन ज्वलंत परिस्थितियां उनकी संस्मरण धर्मी कविताओं में अनेक स्थलो पर चित्रित हुई है-

झकझोरो, झकझोरो महान सुप्तो को,
टेरो-टेरो चाणक्य चन्द्रगुप्तों को
विक्रमी तेज, असी की उद्दाम प्रभा को
राणा प्रताप गोविन्द शिवा, सर्जा को,
वैराग्य वीर बन्दा फकीर भाई को,
टेरो-टेरो माता लक्ष्मी बाई को[5]

अतीत की वीर स्मृतिओं में कवि डुबता उतरता हुआ कही हिमालय से प्रश्न करता है तो कही हिमालय को युग की बदली हुई परिस्थितियों में करवट बदलने का परामर्श देता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए देश की सुरक्षा में सदियों से खड़ा हिमालय को मौन त्याग करने के लिए कवि कहता है कि-

तुम मौन त्याग, कर सिंह नाद,
रे, तपि आज तप का न काल
नवयुग-शंख ध्वनि जगा रही,
तू जाग जाग मेरे विशाल[6]

अपनी राष्ट्रीय कविताओं में भारतवर्ष के महान अतीत का स्मरण करते हुए ही राम, कृष्ण, कर्ण, अशोक, चंद्रगुप्त जैसे व्यक्तित्वों की खोज के क्रम में मानव के व्यापक हित हेतु बापू को अद्वितीय अहिंसक योद्धा मानकर कवि उनके व्यापक व्यक्तित्व को मापता हुआ उनकी अहिसा नीति के प्रति पूर्णत: समर्पित होकर बापू काव्य कृति में बापू की महानता का भी प्रतिपादन करता है–

अंगार हार उनका, जिनकी सुन हॉक समय रूक जाता है,
आदेश जिधर का देते है, इतिहास उधर झुक जाता है।
आते जो युग-युग में मिटी का चमत्कार दिखलाने को,
ठोकने पीठ भूमण्डल की नभ-मंडल से टकाराने को[7]

राष्ट्रीय भाव अभिव्यक्ति कि दृष्टि से हिमालय कवि दिनकर की प्रमुख कविता है जिसमें कवि को जब देश काल और परिस्थितियों के अनुरूप गाँधी वाद अव्वहारिक प्रतीत होता है तब तो युद्धिष्ठीर के स्वर्ग गमन को अनिवार्य मानकर कहता है–

रे, रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीवगदा
लौटा दे अर्जुन भीम वीर

कह दे शंकर से, आज करें
वे प्रलय नृत्य फिर एक बार
सारे भारत में गूँज उठे,
हर-हर-बम का फिर महोच्चार [8]

निश्चित रूप से कवि रामधारी सिंह दिनकर की अधिकांश कवितायें एक ओर जहां राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति की दृष्टि से महत्व रखती है वहीं दूसरी ओर अतीत कालीन स्मृति चित्रों के समावेश के कारण संस्मरण धर्मी कविताओं के रूप में भी पहचानी जा सकती है।

संदर्भ सूचि

1. हिन्दी राष्ट्रीय काव्य धारा एक समग्र अनुशीलन, देवराज शर्मा, पाक्षिक, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन पृष्ठ सं. 259-260
2. आधुनिक कवियों पर आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ. देवी शरण रस्तोगी पृष्ठ सं. 3-4
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र पृ. सं. 604
4. हिन्दी सहित्य का इतिहास डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय पृ. सं. 324
5. परशुराम की प्रतीक्षा, लोक भारती प्रकाशन पृ. 17
6. हिमालय, हुकार, दिनकर लोक भारती प्रकाशन पृ. सं. 73
7. बापू लोक भारती प्रकाशन पृ. सं. 03
8. हिमालय, हुंकार, लोक भारती प्रकाशन पृ. 03 पृ. सं. 72

महाकवि जयशंकर प्रसाद की कविताओं में प्रतीक योजना

डॉ० उपेन्द्र प्रसाद

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बी.बी.एन. कॉलेज, बगहा-2

महाकवि जयशंकर प्रसाद हिन्दी काव्य में छायावादी काव्य धारा के प्रवर्तक है। छायावाद की सभी काव्यगत विशेषताएँ उनकी कविताओं में मिलती है। उन्होंने अपनी कविताओं में भावों की तीव्रता और मूर्तता प्रदान करने के लिए प्रतीको का सटीक प्रयोग किया है। उनका काव्य मानव जीवन को पुरुषार्थ और आशा का संदेश देता है। उनकी कविताओं में मानवता के समग्र उत्थान और चेतना का स्वर है।

छायावाद की संवेदनीयता, रागात्मकता और रहस्यात्मकता में प्रतीक के प्रयोग के लिए एक आदर्श भूमि तैयार की और प्रसाद ने अपनी कविताओं में प्रतीक को एक नया आयाम दिया। छायावाद आधुनिक प्रतीकवादी कविता के प्रारम्भ का युग है। इस काल के सभी कवियो ने प्रतीको का अत्यन्त सुन्दर और सार्थक प्रयोग किया है। प्रसाद ने स्वयं लिखा है "सौंदर्य बांध की दृष्टि से ही प्रतीक महत्पूर्ण नहीं है अपितु उनका उपयोतिावादी पक्ष भी है।"[1]

छायावाद के प्रर्वतक कवि जयशंकर प्रसाद के काव्य में प्रयुक्त किये गये प्रतीकों को दृष्टि से प्रतीक के जितने प्रकार निश्चित किये जा सकते है, वे निम्नांकित है-

प्रकृतिपरक प्रतीक, अध्यात्मपरक प्रतीक, व्यक्तिपरक नव्य प्रतीक, भावपरक प्रतीक, रहस्यपरक प्रतीक, साम्प्रदायिक प्रतीक, कलापरक प्रतीक, परंपरापरक या परंपरागत प्रतीक, अन्य प्रतीक।

प्रसाद के काव्य में प्रतीको का प्रयोग प्राय: मनो-दशाओ की व्यंजना के लिए अधिक किया गया है। प्रतीको के प्रयोग प्रसाद के झरना काव्य की कविताओं से विशेष रूप से दृष्टिगत होती है जो अन्यतम कृति कामायनी में अपने चरर्मोत्कर्ष को प्राप्त होता है। झरना में शामिल इनकी इक्कीस रचनाओं को प्रौढ़ रचनाओं की श्रेणी में आलोचको ने रखा है।

झरना को प्रेम विषयक काव्य भी कहा गया है। इस आधार पर प्रेम की धारा के लिए प्रयुक्त झरना प्रतीक से अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। कवि की स्वीकारोक्ति है-

कर गई प्लावित तन मन सारा
एक दिन तक आपका की धारा?
हृदय से झरना-
बह चला जैसे दृगजल ढ़रना
प्रणय वन्याने दिया पसारा[2]

यद्यपि 'झरना' में अभिव्यक्त प्रेम लौकिक रहा है किन्तु वह प्रेम अलौकिकता की एक आभा लिये होने के कारण रहस्य में परिण होता दृष्टिगत होता है जो 'आँसू' काव्य में प्रसार पाता है जहाँ प्रेम अपेक्षाकृत अधिक मुखर और स्पष्ट हुआ है।

'आँसू' को विरह विरह-वेदना का काव्य माना गया है जो वेदना एक ही साथ व्यक्तिगत, आध्यात्मिक और जागतिक तीनों रूपों का समन्वित रूप है पर कवि की वेदना को प्रधानता विशेष रूप से मिलती हैं। यहाँ कवि ने चमत्कारिक वांग्भगिमा के लिए प्रतीकों

की सुदर योजना की है जो कवि की भावभिव्यंजना में पूर्णतया धूल, चन्द्र, प्रभात, मणिदीप, नाविक, जलनिधि, शरद आदि के प्रयोग नवीन अर्थो से संवलित कर किये हैं।

'लहर प्रसाद जी का एक विरह काव्य है जिसमें कई प्रकार की रचनाएँ संग्रहित हैं, यथा प्रेमपरक, ऐतिहासिक, बौद्ध दर्शन से प्रभावित, प्रकृतिपरक आदि। इनमें से कवि के प्रेमपरक गीतों में रहस्य का संस्पर्श कतिपय स्थलों पर पूर्णतया स्पष्ट है यहाँ कवि द्वारा प्रकृतिपरक, भावपरक, रहस्यपरक, ऐतिहासिक आदि कई प्रकार के प्रतीकां की सफल योजना की गई है। लहर काव्य की निम्न पंक्तियों मे भावपरक प्रतीक दर्शनीय है-

धमनियों में आलिंगनमयी,
वेदना लिए व्यथा नयी
टूटते जिससे सब बंधन
सरस सीकर से जीवन कन
विखर भर देते अखिल भुवन
वही पागल अधीर यौवन[3]
अथवा
वे कुछ दिन कितने सुंदर थे
जब सावन सघन बरसते
इन आँखों की छाया भर थे
चित्र खींचती थी जब चपला
नील मेघ पट पर वह बिरला
मेरी जीवन-स्मृति जिसमें
खिल उठते वे रूप मधुर थे।[4]

प्रसाद के काव्य में जो प्रतीक प्रयोग हुए है वे अधिकाधिक प्रकृति परक हैं जिनमें से अनेक ऐसे हैं जो उपमान के रूप में प्रयोग हुए है-यथा,

"मधुप गुन गुनाकर कह जाता कौन कहानी अपनी,
मुरझाकर गिर रही पत्तियाँ देखो कितनी आज बनी।"[5]
अथवा
"अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये-
तू अब तक सोयी है आली,
आँखों में भरे विहाग री।"[6]

इनके अतिरिक्त उनके द्वारा पौराणिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक प्रतीकों का भी प्रयोग किया गया है। ऐतिहासिक प्रतीक का उदाहरण द्रष्टव्य है।

"ले लो यह शस्त्र है
गौरव ग्रहण करने का रहा कर में
अब तो लेश मात्र
लालसिंह जीवित कलुश पंचनद का

देख, दिये देता हूँ

सिहों का समूह नखदंत आज अपना"।[7]

प्रसाद ने अपनी कविताओं में छायावादी काव्य धारा की प्रमुख प्रवृति रहस्यवाद के अनुकूल रहस्यपरक प्रतीकों की योजना की है-

"तुम हो कौन और मैं क्या हूँ, इसमें क्या धरा सुनो

मनस जलधि रहे चिर चुंबित मेरे क्षितिज उदार बनो"।[8]

प्रसाद के काव्य में प्रतीकों का प्रयोग प्रायः मनोदशाओं की व्यंजना के लिए अधिक किया गया है। इस दृष्टि से यह देखा जाये तो 'कामायनी' उनका न केवल आधुनिक महाकाव्य का गौरव– प्राप्त काव्य है बल्कि प्रतीक-विधान की दृष्टि से उनका एक अपूर्व और अद्वितीय काव्य है जिसमें उनके द्वारा जीवन-दर्शन की स्पष्ट अभिव्यक्ति के उद्देश्य से अपनायी गयी भाव– प्रकाशन की शैली के साथ ही उन प्रकृतिपरक प्रतीकों के प्रयोग अधिक किये गये हैं जिनसे मनोदशाओं के साथ-साथ अन्य अभीष्ट स्थितियों की व्यंजना स्पष्टतया होती है।

प्रतीकों में मनोभावों का प्रवेश प्रसाद की प्रमुख विशेषता है। अतः उनके प्रतीक केवल बाह्य स्थूल वर्णन के लिए ही नहीं है, वे अन्तराम की मनोदशा पर प्रकाश डालते हैं।'

इसी प्रकार 'आँसू' आदि काव्यों को भी प्रतीक-विधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता है जिनमें प्रकृतिपरक प्रतीकों के साथ-साथ अन्य प्रकार के भी प्रतीक लगे हुये हैं।

इनके अतिरिक्त प्रतीकों के प्रयोग प्रसाद की कहानियों एवं नाट्य-कृतियों में भी खूब हुये हैं जिनके प्रयोग प्रायः पात्रों के संवादो में हुये हैं। अपनी कहानियों के नामकरण तक में प्रसाद जी ने प्रतीको का आधार-ग्रहण किया है।

प्रसाद ने कामायनी महाकाव्य में अध्यात्मिक और व्यक्तिपरक प्रतीकों की भी रचना है-

अध्यात्मिक प्रतीक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"समरस थे जड़ था चेतन

सुंदर आकार बना था

चेतना एक विलसती

आनंद अखंड घना था"[9]

व्यक्तिपरक प्रतीको में कवि ने अपने मनोभावों को प्रवेश कराया है-

"हृदय की अनुकृति बाह्य उदार

एक लंबी काया, उन्मुक्त

मधु-पवन, क्रीड़ित ज्यों शिशुसाल

सुशोभित हो सौरभ संयुक्त"[10]

प्रसाद के काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों में कुछ यहाँ द्रष्टव्य हैं, यथा-मनु (मन), श्रद्धा (हृदय), इड़ा (बृद्धि), देवगण (इन्द्रियाँ), मनुपुत्र मानव (नव मानव), मानसरोवर (समरसता की अवस्था), वृशभ (धर्म), असुर (आसुरीवृति), झंझा झकोर (भावों का उमड़-घुमड़), नीरदमाला (उदासी का आलम), हिमालय (मानव-शरीर), दीपक (जीवन), सोमलता (भोग), आनन्द (ब्रह्म), सागर (सांसारिकता), त्रिलोक (भावलोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक) प्रमुख हैं।

उन्होंने अरूण विभा, कनक किरण, चकोर, चातक, हंस, नीरद आदि जैसे अनेक प्रतीकों के प्रयोग किये गये हैं जिनमें लाक्षणिक और परंपरागत प्रतीक मिलते हैं। यहाँ तक कि उनके काव्य में अन्य प्रकार के प्रतीक भी प्रयुक्त हुए हैं, यथा-प्याली मदिरा आदि।

अतः कहा जा सकता है कि प्रतीक विधान की दृष्टि से प्रसाद के काव्य मे वैविध्य प्रतीको की भरमार है। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों में अधिकांशतः प्रकृति क्षेत्र से लिए गये हैं। हिन्दी कविता के क्षेत्र में उनके प्रतीकों की अपनी अलग विशेषता है।

संदर्भ

1. जशंकर प्रसाद– काव्य और कला तथा अन्य निबंध पृ. सं. 51
2. कामायनी प्रसाद ग्रंथावली पृ. सं. 162
3. प्रसाद ग्रंथावली लहर पृ. सं. 237
4. प्रसाद ग्रंथावली लहर पृ. सं. 241
5. प्रसाद ग्रंथावली लहर पृ. सं. 231
6. प्रसाद ग्रंथावली लहर पृ. सं. 236
7. प्रसाद ग्रंथावली लहर पृ. सं. 255
8. प्रसाद ग्रंथावली लहर पृ. सं. 239
9. प्रसाद ग्रंथावली कामायनी पृ. सं. 379
10. प्रसाद ग्रंथावली कामायनी पृ. सं. 388

स्वतंत्रता काल मे बिहार के राजनितिक विकास में अनुग्रह नारायण सिंह की भूमिका

बिपिन कुमार सिंह

शोध छात्र, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

तत्कालीन समाज के समस्त क्षेत्रों में व्याप्त समस्याओं से अनुग्रह नारायण सिंह अत्यन्त दुखी थे। वे समाज में व्याप्त विशमता, अन्याय, घोर शोषण के विरोधी थे, जिसे वे अप्रत्यख व छिपी हिंसा की संज्ञा देते थे, और उसे जड़ से समाप्त करने के लिए वे समाज के स्वरूप को बदलना चाहते थे तथा सच्चे अर्थ में जनता का राज कायम करना चाहते थे। इस हेतु अनुग्रह नारायण सिंह ने समाज में एक नैतिक परिवर्तन की बात उठायी जो समाज के समस्त क्षेत्रों व सभी पक्षों में परिवर्तन उत्पन्न कर जनता को शक्ति प्रदान करेगा। जनता का राज स्थापित करने के लिए ही अनुग्रह नारायण सिंह ने राजनैतिक क्रान्ति को साधन के रूप में अपनाया। अनुग्रह नारायण सिंह के अनुसार यह क्रान्ति यह कोई सामान्य क्रान्ति नहीं है। शोषण व विशमता को जन्म देने वाली का उद्देश्य है। समाज की नव-रचना के लिए व्यक्ति व समाज दोनों में सर्वागीण परिवर्तन लाने की शक्ति इस सम्पुर्ण क्रान्ति में होनी चाहिए। अनुग्रह नारायण सिंह के ही शब्दों में– “समाज और व्यक्ति के जीवन के हर पहलू में क्रान्तिकारी परवर्तिन हो तथा व्यक्ति के जीवन के हर पहलू में क्रान्ति कारी परवर्तिन हो तथा व्यक्ति का व समाज का विकास हो, दोनों ऊँचे उठे, केवल शासन बदले इतना ही नहीं व्यक्ति व समाज भी बदले। इसलिए मैने राजनैतिक क्रान्ति कहा है। आप इसे समग्र क्रान्ति भी कह सकते है।”

अनुग्रह नारायण सिंह के की सकारात्मक व रचनात्मक सोच, समाज की पुनर्रचना, मानवतावादी मूल्य उनके राजनैतिक क्रान्ति की अवधारणा की पृष्ठ भूमि में थी। उन्होंने स्वयं लिखा है कि– “कमजोर वर्गो का उत्थान, कल्याण व मुक्ति तब तक सम्भव नहीं, जब तक भारतीय सरकार के सभी पहलुओं को शामिल करते हुए एक व्यापक अहिंसक क्रान्ति न हो।” इस प्रकार अनुग्रह नारायण सिंह की क्रान्ति की अवधारणा उनकी गतिशीलता का परिचायक रही है।

अनुग्रह नारायण सिंह गांधीवादी विचारधारा से विशेष प्रभावित थे। अनुग्रह नरायण सिंह का अडिग विश्वास था कि “राजनैतिक क्रान्ति में व्यवस्था भी बदलेगी और व्यक्ति, इनमें कोई आगे पीछे नहीं, साथ-साथ होगा। यह मानवीय क्रान्ति होगी, ऐसी क्रान्ति जिसमें भारत का आध्यात्म व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में उतर जायेगा। राजनैतिक क्रान्ति के सारे परिवर्तन मोटे तौर पर महात्मा गांधी की विचारधारा के अनुरूप होगें। सर्वोदय इस क्रान्ति का दूसरा नाम है।” इस प्रकार अनुग्रह नारायण सिंह समाजवाद से होते हुए गांधीवाद व अन्त में सर्वोदय की ओर उन्मुख हो गये।

अनुग्रह नारायण सिंह के अनुसार लोकतंत्र की सफलता के लिए लोगों में नैतिकता की भावना का विकास व अच्छे आचार-विचार आवश्यक है। अतः राजनैतिक क्रान्ति, जिसके सात आयाम हैं, उसमें आध्यात्मिकता का विशेष महत्व है।

3 राजनैतिक क्रान्ति-अनुग्रह नारायण सिंह लोक नेता थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन वास्तविक लोकतंत्र को स्थापित करने में समर्पित कर दिया। अनुग्रह नारायण सिंह के विचार में राजनैतिक सत्ता सदैव ही कुछ विशिष्ट हाथों में केन्द्रित रही है, जनता के हाथों में नहीं। वास्तविक लोकतंत्र को स्थापित करने के लिए इस राजनैतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। सत्ता का हस्तान्तरण कुछ विशिष्ट हाथों में सम्पूर्ण जनता में करना ही अनुग्रह नारायण सिंह की राजनैतिक क्रान्ति का उद्देश्य है।

अनुग्रह नारायण सिंह ने वर्तमान लोकतंत्र के विकल्प के रूप में लोक स्वराज्य की स्थापना पर अधिक जोर दिया है। उनका मत था कि लोकस्वराज्य में जनसाधारण को शासन में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो जाता है। लोक स्वराज्य में सत्ता सूत्र नीचे से

ऊपर की ओर चलते है। जिसमें निचले स्तर पर लोगों को अधिकतम सत्ता प्राप्त होनी चाहिए, व गाँवों को बुनियादी इकाई बनाना चाहिए। इस ग्राम-स्वराज्य के आधार पर ही लोकतंत्र मजबूत बनाया जा सकेगा। इसके माध्यम से ही जनता का राज लाने की दिशा में हम आगे बढ़ सकेंगे। सत्ता जनता के हाथों मे जाए गाँव-गाँव में जाए, यही सही अर्थ में राजनैतिक क्रान्ति होगी।

अनुग्रह नारायण सिंह की राजनैतिक क्रान्ति में लोकतंत्र की एक सर्वथा नये स्वरूप की कल्पना है। जब लोक, समाज-जीवन के कार्यो में प्रत्यक्ष रूप से हिस्सा ले सकें और "तंत्र" "लोक" की अनुमति व सहमति से काम करे, सच्चा लोकतंत्र तो तभी सम्भव है। इस हेतु लोक चेतना को जागृत करना होगा। लोक चेतना जागृत करने के लिए व्यापक लोक सम्पर्क व लोक-शिक्षण करना होगा। यह लोक-शिक्षण का कार्य सर्वोदय कार्य कर्ताओं को ही करना होगा। कार्यकर्ताओं को लोगों के पास जा कर उनमें स्वतंत्रता, अधिकार व कर्तवयों के प्रति चेतना जागृत करनी होगी। तभी लोकतंत्र मजबूत बनेगा। अतः अनुग्रह नारायण सिंह की मान्यता है कि जनता इस लोकतंत्र की प्रहरी बने तथा ऐसी परिस्थिति का निर्माण हो, कि जनता नीचे के कर्मचारी से लेकर मुख्यमंत्री व प्रधानमंत्री तक सबके कामकाज पर निगरानी रख सके।

अनुग्रह नारायण सिंह का कथन है कि हमारे संविधान तथा लोकतंत्रीय संस्थाओं में जनप्रतिनिधियों को अपने निर्वाचन क्षेत्र के प्रति जवाबदेह बनाए रखने की कोई व्यवस्था नहीं है। मतदाताओं का चुनाव के पश्चात् अपने प्रतिनिधियों पर कोई अंकुश नहीं रह जाता। उन्हें मात्र मतदान का ही अधिकार प्राप्त है। अतः अपने लोकतंत्र में हमें संगठित जनशक्ति को शामिल करना होगा, इसी जनशक्ति के द्वारा राज्य सत्ता पर अंकुश रखा जा सकेगा। इसके लिए गाँव से लेकर ऊपर तक लोक समितियाँ का गठन करना होगा। ये लोक समितियाँ दो रूपों मे कार्य करेंगी।

1. उमीदवारों के चयन के समय संकेत-परिषद् या परामर्श मण्डल के रूप में।
2. अपने स्थानीय प्रतिनिधि के ऊपर और शासन की सम्पूर्ण कार्य पद्धति पर प्रहरी के रूप में तथा दायित्व प्रेरक के रूप में कार्य करना।

इस प्रकार लोकसमितियाँ, जन-शक्ति का एक माध्यम बनेंगी और वे चुनाव के पश्चात् भी एक स्थायी शक्ति बनी रहेंगी। इन लोकसमितियों का कार्य समाज की प्रत्येक अनीति के विरूद्ध संघर्ष करने का होगा व इन्हीं के माध्यम से निर्वाचित प्रतिनिधियों की जनता के प्रति जवाबदेही होगी। लोकसमितियों को अनुग्रह नारायण सिंह के अनुसार राजनैतिक क्रान्ति का वाहक बनना होगा। इन समितियों को अनुग्रह नारायण सिंह के अनूसार सम्पूर्ण क्रान्ति का वाहक बनना होगा। इन समितियों मे वे लोग हों जो राजनैतिक क्रान्ति के विचारों में निष्ठा रखते हुए, लोकतंत्र को अधिक प्रभावकारी बनाने में एक स्थायी भूमिका निभाती रहेंगी। आज हमारे लोकतंत्र में केवल "तंत्र है "लोक" नहीं। हमारा प्रयास उसमें "लोक" को सम्मिलित करना है। इस प्रकार अनुग्रह नारायण सिंह की राजनैतिक क्रान्ति सरकारी शक्ति से नहीं, वरन् जनता की शक्ति से पूर्ण होगी।

संदर्भ-सूची

1. अनुग्रह नारायण सिंह : माई टोटल रिवोल्यूशन, एवरी मेंस, दि-22 पृ. 74
2. अनुग्रह नारायण सिंह: राजनैतिक क्रान्ति के लिए आहवान, पृ.-41
3. वी0एन0 सिंह: भारतीय सामाजिक चिन्तन, पृ.-316
4. अनुग्रह नारायण सिंह उद्धृत, अनुग्रह नारायण सिंह पृष्ठ-103
5. पूर्वोक्त पृ.-585
6. लोक दृष्टि में जय प्रकाश, में उद्धृत, पृष्ठ-85
7. अनुग्रह नारायण सिंह हमारी नजरों मे" द रेडिकल ह्सूमेनिस्ट, मार्च, 1978, पृ.-10
8. अनुग्रह नारायण सिंह, लोक-स्वराज्य, (सर्व सेवा संघ, वाराणसी) जुलाई, 1999, पृ.-10
9. अनुग्रह नारायण सिंह, राजनैतिक क्रान्ति, (सर्व सेवा संघ, वाराणसी) सितम्बर, 1999
10. पूर्वोक्त, पृ.-27

भारत में जनवितरण प्रणाली में कार्यान्वयन तंत्र

मनीष कुमार

शोध छात्र अर्थशास्त्र, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारत में आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति को उचित कीमतों पर तथा उचित समय पर उपलब्ध कराने तथा जनता के पोशण को उचित स्तर पर बनाए रखने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को एक मुख्य उपकरण के रूप में उपयोग किया जाता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली न केवल खुले बाजार में आवश्यक वस्तुओं की कीमतों को नियंत्रण में रखती है बल्कि उनके सामाजिक वितरण को सुनिश्चित करने में भी मदद करती है।

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली समवर्ती सूची के अन्तर्गत आती है इसीलिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली का संचालन केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा सामूहिक रूप से किया जाता है। इन सन्दर्भ में वितरण, भण्डारण तथा बड़ी मात्रा में वितरण की होती है जबकि राज्य सरकारों की भूमिका आवश्यक वस्तुओं को उठाने उन्हें उचित दर दुकान तक पहुँचाने तथा उपभोताओं को वितरित करने की होती हैं।

सर्वजनिक विरण प्रणाली में चावल, गेहूं, चीनी, और केरोसिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तुएं है। कुल वितरण में इनकी भूमिका 86 प्रतिशत पाई हैं। मोटे अनाज की भूमिका 1 प्रतिशत तथा दालों की भूमिका 0.3 प्रतिशत पाई गई हैं। इससे स्पष्ट हैं की सार्वजनिक वितरण प्रणाली लोगों को प्रयाप्त रूप से पोशण की सुरक्षा नही दे पा रही हैं।

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मुख्य कमजोरियां

भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली विभिन्न कमजोरियों से ग्रासित रही हैं जिस सन्दर्भ में निम्न बिंदु विचारणीय हैं।

* भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की लोकप्रियता को लेकर प्रादेशित असंतुलन देखने को मिलते हैं। उत्तरी भारत की तुलना में यह दक्षिणी भारत में अधिक लोकप्रिय हैं।
* यह देखा गया हैं कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली से निर्धन लोगों को सीमित मात्रा में लाभ मिलता हैं। भारत के निर्धनों के लिए आवंटित खाद्यानों का एक भाग ए0 पी0 एल0 परिवारों की ओर मुड़ जाता हैं, जिसके कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली में प्रतिगामिता उत्पान्न हो जाती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के केवल 46 प्रतिशत परिवार ही सार्वजनिक विरतण प्रणाली से लाभान्वित हो रही हैं।
* सार्वजनिक वितरण प्रणाली में खाद्यान्नों के रिसाव की समस्याएं देखने को मिलती हैं। एक अध्ययन में यह पाया गया हैं कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली में आपूर्ति किए जा रहे चावल का 21 प्रतिशत भाग तथा गेहूं का 26 प्रतिशत भाग खुले बाजार में रिस जाता हैं।
* भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत आपूर्ति किए जाने वाले खाद्यानों की गुणवत्ता भी सही नही पाई गई है, जिसका मुख्य कारन खाद्यानों को खरीदते समय निर्धारित उचित औसत गुणवंकता को ध्यान में नही रखना, भण्डारण में असावधानी बरतना आदि हैं।
* एफ.सी.आई. की कार्यप्रणाली में भी विभिन्न प्रकार की कमियां देखने को मिलती है। इसके काम करने की लागतें बढ़ती जा रही है, इन लागतों के बढ़ने का मुख्य कारण लगाातार बढ़ने का मुख्य कारण लगाातार बढ़ता हुआ एम एस पी, बैंको की ऊँची ब्याज दर, राज्य सरकार द्वारा खाद्यानों पर लगाए जाने वाले कर और उपकर आदि हैं। एक अध्ययन के अनुसार एफ.सी.आई. अपनी लागतों के 80 प्रतिशत भाग पर कोई नियंत्रण नहीं कर सकता।

* यह कहा गया है कि पी.डी.एस. के संचालन से भारत के खाद्यानों के निजी बाजार पर असर पड़ता है। इससे निर्धन लोगों को हानि हो रही है। इडियण कॉसलिंग ऑफ मेडिकल रिसर्च के अनुसार एक व्यक्ति को पर्याप्त ऊर्जा ग्रहण करने के लिए एक महीने में 11 किलोग्राम अनाज कि ज़रूरत होती है। इस प्रकार पाँच सदस्यों को 55 किलोग्राम अनाज कि आवश्यकता होगी जबकि पी.डी.एस. में अधिकतम 35 किलोग्राम अनाज ही दिया जाता है। स्पष्ट है कि एक परिवार को खाद्यानों के लिए निजी बाज़ारों पर भी निर्भर रहना पड़ेगा। यदि निजी बजार में खाद्यानों की कीमत ऊँची रहेगी तो पी.डी.एस. से मिले लाभ समाप्त हो जायेंगे। इस प्रकार वितरण की दोहरी प्रणाली निर्धन के हितों के विरुद्ध कार्य करती है।
* आई.इ.ओ. द्वारा किए गए अध्ययन में यह पाया गया है पी.डी.एस. में एक रुपया का अनाज वितरण करने में लागत 3.65 रुपया आती हैं।

पी.डी.एस. के पुनर्संगठन के प्रयास-

भारत मे पी.डी.एस. की कार्यप्रणाली से सुधार करने के लिए इसके ढांचे में कुछ सुधार किए गए है-

आर.पी.डी.एस. बेहतर सार्वजनिक वितरण प्रणाली: इसे 1992 में लागू किया गया। इसका मुख्य लक्ष्य दुर्गम स्थानों (जैसे पहाड़ी, रेगिस्तानों) में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को पर्याप्त रूप में विस्तार करना था। इसके अन्तर्गत दुर्गम स्थानों में खाद्यानों की कीमत अन्य स्थानों की तुलना में 50 रुपए प्रति क्विंटल कम रखा जाता है। यह एक प्रकार से क्षेत्रीय दृष्टिकोण को उजागर करती हैं।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली: इसे 1997 में ुरु किया गया। इसके अन्तर्गत बी0 पी0 एल0 परिवारों को केन्द्रीयें भुगतान राशि की तुलना में 50 प्रतिशत कम कीमत पर 1 महीने में 35 किलोग्राम अनाज उपलब्ध कराया जाता है। इसे लागु करते समय यह सोचा गया कि ए0 पी0 एल0 परिवारों से अनाज कि आर्थिक लागत वसूली जाए और सी0 आई0 पी0 को उसके बराबर रखा जाए। दूसरे शब्दों में ए0 पी0 एल0 परिवारों को कोई भी सब्सिडी नही दी जाए।

अंत्योदय अन्न योजना: इसे वर्ष 2000 से लागू किया गया। इसके अन्तर्गत निर्धनों में निर्धन परिवारों की पहचान की जाती है और उन्हें 35 किलोग्राम अनाज प्रति माह उपलब्ध कराई जाती है।

विकेन्द्रीकृत सार्वजनिक वितरण प्रणाली: इसे 1997 में लागू किया गया। इसके अन्तर्गत केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को निर्धारित कीमतों पर खाद्यानों के अधिग्रहण, भण्डारण और वितरण आदि का कार्य विकेन्द्रित कर दिया। केंद्र सरकार द्वारा यह कहा गया कि इस प्रक्रिया में राज्यों को होने वाली घाटे कि भरपाई केंद्र सरकार करेगी।

पी.डी.एस. को प्रभावी बनाने के अन्य उपाए-

नागरिक अधिकार पत्र

भारत में सार्वजनिक सेवाओं में पारदर्शिता और जवाबदेही लाने के लिए इसे लाया गया। इसमें पी.डी.एस. को भी सम्मिलित किया गया।

पंचायती राज संसथान को पी.डी.एस. से जोड़ना: 1999 में केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों को यह निर्देश दिया गया कि वे बी0 पी0 एल0 परिवारों की पहचान करने तथा पी.डी.एस. के संचालन पर निगरानी रखने के लिए पंचायती राज संसथान की भूमिका को सुनिश्चित करे।

पी.डी.एस. सेंट्रल आर्डर 2011: इसके माध्यम से केंन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों को इस बात के दिशा निर्देश दिए कि वे लगातार बी0 पी0 एल0 परिवारों से जुड़े हुए आंकडों में आवश्यक संसोधन करती रहे।

क्षेत्राधिकारी योजना

इसे वर्ष 2000 में लागू किया गया। इसके अन्तर्गत केंद्र सरकार राज्यों को अलग अलग क्षेत्रों में बाँट देती है और प्रत्येक क्षेत्र पर निगरानी रहने के लिए एक क्षेत्राधिकारी को 3 महीने में कम से कम एक बार अपने क्षेत्र का निरिक्षण करना होता है। इसके द्वारा सौपी गई रिपोर्ट को केंद्र सरकार द्वारा आवश्यक कार्यवाही के लिए राज्य सरकारों को अग्रेशित कर दिया जाता है।

सन्दर्भ

1. दैनिक जागरण, लखनऊ, 7 जनवरी, 2011, पृष्ठ–18 एवं प्रतियोगित दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था–2012, आगरा, पृष्ठ–78.
2. प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था–2012, आगरा, पृष्ठ–24.
3. अरिहन्त, समसायिकी महासागर, फरवरी–2013, पृष्ठ–30.
4. प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था–2012, आगरा, पृष्ठ–210.
5. वही, पृष्ठ–78.
6. दैनिक जागरण, लखनऊ, 7 जनवरी, 2011, पृष्ठ–18 एवं प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था–2012, आगरा, पृष्ठ–78.
7. प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था–2012, अगरा, पृष्ठ–79.
8. वही, पृष्ठ–80.
9. कुरुक्षेत्र, दिसम्बर–2009, पृष्ठ–2.
10. भारत–2010, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, पृष्ठ–894.

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की सफलता का प्रमुख आधार : एक राजनीतिक विश्लेशण

डॉ० रुपक कुमार

राजनीति विज्ञान, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की सफलता का मूल आधार उचित एवं प्रभावशाली नेतृत्व रहा है। यदि यह कहें कि नेता का व्यक्तित्व एवं कृतित्व ही राज्य स्तरीय राजनीतिक दलों को मजबूत बनाता है और उन्हें सुव्यवस्थित तथा संगठित रखकर क्षेत्रीय मुद्दों पर प्रभावी राजनीति करता है, तो अतिशयोक्ति नही होगी। भारत के दक्षिणी राज्य तमिलनाडु में 'डी0एम0के0 एक ऐसा दल है जो तमिल क्षेत्रीयता को आधार बिन्दु मानकर बढ़ा है। दल के नाम से यह क्षेत्रीय नही है क्योंकि उनकी दृष्टि में एक समय द्रविड़ संस्कृति पूरे भारत में फैली थी।[1] केरल राज्य भौगोलिक आधार पर तमिलनाडु के समीप होने के बावजूद भी अपने को द्रविड़ मानने से इन्कार करते हैं। जबकि केरल में तमिलभाशियों की संख्या काफी हैं। उसके पश्चात भी तमिलनाडु के दो बड़े क्षेत्रीय दल डी0एम0के0 तथा अन्ना डी0एम0के0 केरल की राजनीति में कोई प्रभाव नही जमा सके हैं। यदि इन राज्य स्तरीय दलों का इतिहास देखा जाए तो इनकी सफलता के दो प्रमुख तत्व उभर कर सामने आते हैं। एक निजी पहचान कायम रखने या इस निमित्त अपने राज्य के विशेष व्यवहार उपलब्ध कराने का आग्रह तथा एक नेता विशेष की छवि। उदाहरण के रूप में द्रविड़ कड़गम का विचार रामास्वामी नायकर ने दिया था, पर इस कल्पना को राजनीतिक पहचान व शक्ति अन्ना दुरै की थी। भारतीय प्रजातन्त्र की राजनीतिक व्यवस्था के तहत् सन् 1967 के चुनावों के समय वहाँ चुनाव का बड़ा आकर्षक अन्ना का त्यागी तेजस्वी नेतृत्व था।[3] जिसने कामराज के नेतृत्व को भी असफल कर दिया। अन्ना की मृत्यु के बाद उनका दल विभाजित हो गया और उनके अनुयायी एम0जी0 रामचन्द्रन ने भी अन्ना की लोकप्रियता का लाभ उठाने के लिए अपने पार्टी का नाम "अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम" रखा।

इसी तरह का आधार अन्य क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के विकास का भी रहा है। जैसे उत्कल कांग्रेस का आधार बीजू पटनायक का व्यक्तित्व, बांग्ला कांग्रेस का आधार अजय मुखर्जी की लोकप्रियता, भारतीय क्रांतिदल हो या लोक दल उनके आगे बारखण्ड मुक्ति मोर्चा का आधार शिबुसोरेन, शिरोमणि अकाली दल का संरक्षक प्रकाश सिंह बादल, शिरोमणि अकालीदल (मान) का आधार सिमरनजीत सिंह मान, सिक्किम डेमोक्रेटिक फंट का आधार पवन कुमार चामलिंग, तेलगू देशम पार्टी का आधार चन्द्रबाबू नायडू, नेशनल कांग्रेस का आधार शेख अव्दुल्ला रहे हैं। वहीं डॉ0 फारूख अब्दुल्ला की सफलता शेख अब्दुला की कीर्ति एवं संघर्ष का परिणाम रहा है। यधपि इस सत्य को भी नही भूलाया जा सकता कि उसमें कश्मीर घाटी की क्षेत्रीयता व साम्प्रदायिकता भी भागीदार रही। समाजवादी पार्टी का मुलायम सिंह यादव, पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी का मुफ्ती मोहम्मद सईद व महबूबा मुफ्ती, एआईएडीएमके का जयललिता, असम गण परिषद का प्रफुल्ल कुमार महन्त, बीजू जनता दल का नवीन पटनायक, डीएमके का एम0 करूणानिधि, हिल स्टेट पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी का एच.एस. लिंगदोह, फेडरल पार्टी ऑफ मणिपुर का गंगमुनी कमई, जम्मू-कश्मीर नेशनल पेंथर्स पार्टी का भीम सिंह, जनता दल-एस का एचडी देवगौड़ा, जनपक्षीय समरक्षणा समिमि का केआर ग्वारी अम्मा, महाराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी का शशिकला काकोदकर, नागालैंड पीपुल्स फंड का एन रियो, राष्ट्रीय लोक दल का अजित सिंह, तेलंगाना राष्ट्रीय समिति का के0 चन्द्रशेखर राव, राजद का लालू प्रसाद यादव, जनता दल-यू का नीतीश कुमार व शरद यादव, शिवसेना का पहले बाल ठाकरे अब उद्धव ठाकरे, मनसे का राज ठाकरे, राकांपा का शरद पंवार, एलजेपी का राम विलास पासवान, उक्रान्द का काशी सिंह ऐरी सरीखे अनेक क्षेत्रीय दलों के संस्थापकों अथवा सम्वर्द्धकों का नेतृत्व करिश्माई रहा है।

भारत में क्षेत्रीय दलों को तीन वर्गो में रख कर अध्ययन किया जा सकता है। वर्तमान में, पहली वे क्षेत्रीय दल जो भारत की संघात्मक व्यवस्था के तहत् विभिन्न राज्यों में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर सरकार चला रहें है जैसे तमिलनाडु में एआईएडीएमके, तेलंगाना में तेलंगाना राष्ट्रीय समिति, आन्धप्रदेश में तेलुगुदेशम पार्टी, उड़ीसा में बीजू जनता दल, पश्चिम बंगाल में एआईटीएमसी, सिक्किम में सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट, उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी, पंजाब में अकाली दल। दूसरी वे क्षेत्रीय दल जिनके सहयोग देने व लेने से वर्तमान में कुछेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों व राष्ट्रीय दलों द्वारा सरकार बनायी गयी है जैसे विहार में जनता दल-यू, जम्मू-कश्मीर में पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, महाराष्ट्र में भाजपा, कर्नाटक में कांग्रेस आदि। तीसरी वे क्षेत्रीय दल जो विभिन्न राज्यों के विधानसभाओं में मुख्य विपक्ष की भूमिका निभा रहे हैं और सामान्य तौर पर विपक्ष में है। जैसे नेशनल कांफ्रेंश जम्मू कश्मीर, डीएमके तमिलनाडु, सिक्किम क्रान्तिकारी मोर्चा सिक्किम, तृणमूल कांग्रेस मणिपुर आदि। भारत निर्वाचन आयोग की वेबसाईट में अंकित दिनांक 16 सितम्बर, 2014 के अनुसार पंजीकृत एवं गैर पंजीकृत राज्य स्तरीय (क्षेत्रीय) दलों की सूची निम्न प्रकार है, 14 जिसमें दल का नाम, संक्षेपित नाम, चुनाव चिन्ह व नाम, स्थापना वर्श, वर्तमान नेता तथा प्रभावी राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशो के नामों का उल्लेख किया गया है।

अतएव जनता दल में "राजनीतिक महत्वाकांक्षा एवं समझौतावादी नीति के अभाव के कारण अनेकों बार इसका विघटन हुआ।" विहार में लालू प्रसाद यादव ने भी जनता दल से अपने को अलग रखते हुए "1997 में राष्ट्रीय जनता दल" का गठन किया। दल के नेतृत्व कर रहे लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में दो बार विहार विधानसभा में सफलता प्राप्त की। लोकसभा चुनाव 2004 में दल के 24 सांसद चुने गये और केन्द्र में गठित मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली केन्द्र की संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार में शामिल हुए और लालू प्रसाद यादव को रेलमंत्री बनाया गया। लोकसभा चुनाव 2009 में दल के 4 सांसद चुने गये। केन्द्र में पुन: मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यू0पी0ए0 की समझौतावाली (गठबन्धन) सरकार को बाहर से सहयोग दिया, वहीं विधानसभा चुनाव 2005 व 2010 में दल को हार का मुंह देखना पड़ा है। बिहार विधानसभा चुनाव 2010 में दल को केवल 22 सीटों पर जीत हासिल हुई।

इसकी विचारधारा लोकतान्त्रिक व्यवस्था, धर्मरिपेक्ष समाज, गाँधीवादी सामाजिक दृष्टिकोण के साथ साथ राजनीतिक व आर्थिक विकेन्द्रीकरण के पक्षधर रही है। दल सदैव सामाजिक व आर्थिक तौर पर वंचित वर्गो के उत्थान के लिए प्रयासरत रहा है। 15वीं विहार विधानसभा चुनाव 2010 में दल को 115 सीटें मिली थी। इससे पूर्व दल लगभग डेढ दशक तक राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक गठबन्धन में रही है और केन्द्र की अटल सरकार में नीतीश कुमार रेल मंत्री बने थे। सोलहवीं लोकसभा चुनाव में जनता दल (यू) के बेहद निराशाजनक प्रदर्शन की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए नीतीश कुमार ने मुख्यमंत्री का पद त्याग दिया। उनके पहल पर जीतन राम मांझी को बिहार का मुख्यमंत्री चुना गया, लेकिन मांझी के कार्यशैली से असन्तुष्ट होकर पुन: नीतीश कुमार ने मुख्यमंत्री का पद सम्भाल लिया है।

नीतीश कुमार के सामने ये मौका ऐसे दौर में आया है जब वो बीजेपी के साथ कभी नरम तो कभी गरम वाले खेल खले रहे हैं। शिवानंद तिवारी की नजहर में भले ही राष्ट्रीय राजनीति में नीतीश कुमार महत्वपूर्ण हो सकते है। लेकिन फिलहाल तो उनके सामने आने वाली चुनौती बिहार विधान सभा का चुनाव है। समझने वाली बात ये हैं कि नीतीश कुमार अगर भी एडीए छोड़ कर महागठबंधन की तरह जाने की सोचते हैं तो क्या फायदा और नुकसान हो सकता है? अभी तो ऐसा लग रहा है कि महागठबंधन मे गये बगैर ही नीतीश कुमार इस ऑफर का ज्यादा फायदा उठा सकते हैं। वैसे बहुत कुछ बिहार चुनाव से पहले होने जा रहे विधानसभा चुनावों के नतीजे वैसे बहुत कुछ बिहार चुनाव से पहले होने जा रहे विधानसभा चुनावों के नतीजे आने के बाद मालूम होगा। नतीजे ही बताएंगे कि नीतीश कुमार और बीजेपी दोनों ही आगे की रणनीति किस तरीके से तैयार करे हैं? अभी तो ऐसा ही लगा रहा है जैसे नीतीश कुमार के दोनों हाथों में लड्डू आया हुआ है और वो ज्यादा फायदे के हिसाब से फैसला कर सकते हैं। राजनीतिक सहभागिता राजनीतिक संस्कृति, राजनीतिक समाजीकरण और राजनीतिक भर्ती से संबंधित प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण आयाम है जिसके माध्यम से व्यक्ति राजनीति में प्रवेश कर राजनीतिक मूल्यों एवं मान्यताओं से परिचित होता है। राजनीतिक संस्कृति की परिकल्पना का प्रणालीबद्ध उपयोग 1950 के दशक से आरंभ हुआ। इसमें राजनीतिक संस्कृति को राजनैतिक प्रणाली की मान्यताओं के संक्षिप्त अभिव्यक्ति के रूप में लिया जाता है। यह राज्य के सार्वजनिक विचारों तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व के गुणों के कहीं बीच स्थित है। गैब्रियल आमण्ड के अनुसार यह उन राजनीतिक उद्देश्यों के प्रति "अभिविन्यास का विशिष्ट पैटर्न" है जिनसे राजनीतिक प्रणाली बनी है। अभिविन्यास राजनैतिक कार्य से पूर्व की स्थिति है तथा परम्परा, ऐतिहासिक स्मरणों, उद्देश्यों, मापदण्डों, भावनाओं व प्रतीकों द्वारा निर्धारित होने के कारण संस्कृति सहजप्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। इन विन्यासों को संज्ञात्मक विन्यास

(राजनैतिक प्रभावों का ज्ञान तथा जानकारी), प्रभावकारी विन्यास (लक्ष्यों से संबंधित भावनाएं) तथा मूल्यांकन विन्यास (उनके संबंध में निर्णय) में वर्गीकृत किया जा सकता है। आमण्ड बाद में (वरबा के साथ) आदर्श संस्कृति अथवा नागरिक प्रकार का प्ररूपविज्ञान विकसित किया हैं जहां पर अधिकांश जनता आरंभिक प्रक्रियाओं में अभिमुख होती है तथा स्वयं को नीतियों के निर्माण में अपेक्षित तथा सहायक मानती है तो राजनीतिक संस्कृति सहभागी मानी जाएगी।[2]

निष्कर्ष

इसी प्रकार से व्यक्ति के कार्यकलापों के संदर्भ बिन्दु के तौर पर सरकार कार्यकलाप के ही रूप में राजनैतिक सहभागिता की विशेषता बन जाती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए बिर्च ने लिखा है कि "राजनीतिक सहभागिता सरकार की प्रक्रिया में सहभागिता है तथा राजनीति सहभागिता का मामला अनिवार्य रूप से कई निजी नागरिकों (सार्वजनिक अधिकारियों अथवा चुने हुए राजनेताओं से भिन्न) का मामला है जिससे वह नेताओं के चुनने की प्रक्रिया और सरकारी नीतियों को तैयार करने तथा कार्यान्वयन की प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभा सके।

सन्दर्भ सूची

1. बी0एल0 फड़िया, भारतीय राजव्यवस्था एवं भारत का संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2007, पृ.-149,
2. एम0एस0 सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेन्टर लखनऊ-2009, पृ.-292
3. बी0एल0 फड़िया, भारतीय राजव्यवस्था एवं भारत का संविधान, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2007, पृ.-150,
4. दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान एक परिचय, वाधवा एण्ड कम्पनी विधि प्रकाशक नागपुर, सातवॉ संस्करण -1999, पृ. सं.-66,
5. दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान एक परिचय, वाधवा एण्ड कम्पनी विधि प्रकाशक नागपुर, सातवॉ संस्करण -1999, पृ. सं.-63
6. भारत निर्वाचन आयोग की वेबसाइट में दिनांक 16 सितम्बर, 2014 के अनुसार।
7. भारत निर्वाचन आयोग की वेबसाइट में अंकित दिनांक 23 जून, 2015 के अनुसार।
8. संजीव चौधरी-भारतीय राजनीति, एल0बी0 प्रकाशन कानपुर-2011 पृ.-131,
9. के0एन0 श्रीवास्तव-भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद, कामथ बुक डिपो आगरा-2007, पृ.-213.
10. अप्रैल, 2015 प्रतियोगिता दर्पण।
11. एम0एस0 सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, भारत बुक सेन्टर लखनऊ-2009, पृ.-504

आर्थिक विकासः एक आलोचनात्मक विश्लेषण

डॉ० राकेश कुमार

सहायक शिक्षक, चनवे उच्च विद्यालय, मनियापुर, बांका

सारांश

देशों, क्षेत्रों या व्यक्तियों की आर्थिक स्तर के बढ़ने को आर्थिक विकास कहते हैं। नीति निर्माण की दृष्टि से आर्थिक विकास उन सभी प्रयत्नों को कहते हैं जिनका लक्ष्य किसी जन-समुदाय की आर्थिक स्थिति व जीवन-स्तर के सुधार के लिये अपनाये जाते हैं। वर्तमान युग की सबसे महत्वपूर्ण समस्या 'आर्थिक विकास' की समस्या है। आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना राजनैतिक स्वतन्त्रता का कोई महत्व/उपयोग नहीं है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने 'आर्थिक विकास' (इकनॉमिक डेवलपमेन्ट), 'आर्थिक प्रगति' (इकनॉमिक ग्रोथ) और दीर्घकालीन परिवर्तन (सेक्युलर डेवलपमेन्ट) की अलग-अलग परिभाषाएँ की हैं। किन्तु मायर और बोल्डविन ने इन तीनों शब्द-समूहों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है तथा अलग-अलग अर्थ निकालने को 'बाल की खाल निकालना' कहा है। उनके अनुसार आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकालिक वृद्धि होती है

विकास का अर्थ एवं माप

विकास के अर्थ और माप को लेकर अर्थशास्त्र में एक बहस और विवाद चला आ रहा है। किन्तु इतनी लंबी बहस के बावजूद भी विकास का अर्थ ही स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। जब कोई अर्थशास्त्री विकास के बारे में अपना मंतव्य प्रकट करना चाहे तो वह विकास का अर्थ बताता है एवं उसकी परिभाषा देता है। किन्तु कुछ समय बाद वह स्वयं ही अपनी परिभाषा से असंतुष्ट दिखाई देता है। वह महसूस करता है कि वह जो कुछ चाहता था, वह कह नहीं पा रहा है, वह जहां जाना चाहता था, जा नहीं पा रहा है। यह एक अजीब स्थिति है कि विकास का अर्थ स्पष्ट हुए बिना ही विकास योजनाएं, विकास माडल, विकास नीति एवं रणनीति तैयार हो रहीं है, और विकास के नाम पर प्रत्येक देश में अनेक प्रकार की गतिविधियां भी चल रही हैं। यह एक ऐसी ही स्थिति हुई जैसे किसी व्यक्ति को जिस स्थान पर जाना हो उसे उस स्थान का नाम और दिशा ही स्पष्ट न हो, किन्तु फिर भी वह चल पड़े।

आर्थिक समृद्धि या आर्थिक विकास?

आर्थिक समृद्धि कहें या आर्थिक विकास?-इन दोनों में से कौन-सी शब्दावली का प्रयोग करें- इसको लेकर भी अर्थशास्त्री दुविध ा में हैं। साधारण बोलचाल की भाषा में तो आर्थिक समृद्धि और आर्थिक विकास इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता रहा है। प्रो. किन्डलबर्जर के अनुसार, आर्थिक समृद्धि से तात्पर्य है अधिक उत्पादन, जबकि आर्थिक विकास में दोनों बातें शामिल होती हैं- अधिक उत्पादक तथा तकनीकी एवं संस्थागत व्यवस्थाओं में परिवर्तन। इस प्रकार आर्थिक समृद्धि की तुलना में आर्थिक विकास एक विस्तृत अवधारणा है।

तकनीकी दृष्टि से समृद्धि एवं विकास की धारणाओं में अंतर मानते हुए भी ज्यादातर अर्थशास्त्रियों ने व्यावहारिक दृष्टि से समृद्धि और विकास को एक ही अर्थ में परिभाषित किया है। वे विकास को 'आय में वृद्धि' और 'उत्पादन वृद्धि' से आगे की चीज मानते

हुए भी उसे आय और उत्पादन वृद्धि के रूप में ही परिभाषित करते हैं। विकास को केवल प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में वृद्धि के रूप में न मानते हुए भी वे विश्व के विकसित, विकासशील और अविकसित देशों के बीच विभाजन प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. के आधार पर ही करते हैं। यह विडम्बना ही है कि एक ओर वे कहते हैं कि विकास यह नहीं है, किन्तु दूसरी ओर जो नहीं है उसी को विकास स्वीकार कर लेते हैं।

आर्थिक विकास के माप तथा विकास के सूचक

विकास-अर्थशास्त्र में विकास के अर्थ एवं परिभाषा से भी बड़ा विवाद और भ्रम विकास के माप एवं सूचकों (संकेतों) को लेकर है। यह भी कह सकते हैं कि विकास के माप या सूचकों के विवाद में से ही विकास का अर्थ व परिभाषा का विवाद उत्पन्न हुआ है। प्रश्न यह है कि क्या विकास को संख्यात्मक रूप से मापा जा सकता है? पश्चिमी अर्थशास्त्र ने यह माना है कि विकास को संख्यात्मक रूप से मापा जा सकता है। यह मान लेने के बाद दूसरा सवाल यह उत्पन्न होता है कि विकास को कैसे और किन मापदंडों से मापा जा सकता है कि किसी देश का विकास हुआ है या नहीं और कितना हुआ है। समय-समय पर विकास को मापने के लिए अनेक सूचकों का सुझाव दिया जाता रहा है।

विकास के विभिन्न सूचकों को हम मुख्यत: दो भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं- आर्थिक सूचक एवं गैर-आर्थिक सूचक।

आर्थिक सूचक

सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.)

कुछ अर्थशास्त्री जैसे कुजनेट्स, मेयर एवं बाल्डविन, मीड आदि वास्तविक जी.डी.पी. को ही विकास का सर्वोत्तम सूचक मानते हैं। उनके अनुसार वास्तविक जी.डी.पी. में वृद्धि दर के आधार पर हम विकास की दर को माप सकते हैं। कुछ सीमा तक जी.डी.पी. को विकास का उपयोगी मापदंड होते हुए भी इसे समुचित मापदंड नहीं माना जा सकता है। इसकी प्रमुख कमियां इस प्रकार हैं-

(क) यदि किसी देश में जी.डी.पी. में हुई वृद्धि की तुलना में जनसंख्या में अधिक तीव्र दर से वृद्धि हो जाए, तब प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. एवं वस्तुओं व सेवाओं की उपलब्धि पहले की तुलना में घट जाएगी। ऐसी स्थिति होने पर यदि हम यह घोषणा करें कि उस देश का विकास हुआ है तो यह हास्यास्पद बात ही होगी।

(ख) यह संभव है कि जी.डी.पी. में वृद्धि केवल अमीरों की आय में वृद्धि के कारण ही हो। इस प्रकार जी.डी.पी. से आय-वितरण के बारे में कोई जानकारी नहीं मिल पाती।

(ग) यदि जी.डी.पी. की वृद्धि केवल युद्ध सामग्री के उत्पादन में वृद्धि के कारण हुई है तो भी इस स्थिति को विकास नहीं माना जा सकता।

प्रति व्यक्ति जी.डी.पी.

अधिकांश अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति वास्तविक जी.डी.पी. में वृद्धि को ही विकास का सर्वोत्तम, व्यावहारिक एवं सुविधाजनक मापदंड मानते हैं। किंडलबर्जर, मेयर, हिगीन्स, हार्वे लेबेन्स्टीन, डब्ल्यू.ए. लेविस, जेकब वाइनर आदि अर्थशास्त्री इसी मत के हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी इसी माप को स्वीकार किया है। प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. को विकास का मापदंड स्वीकार कर लेने पर जनसंख्या की वृद्धि के प्रभाव का भी विचार हो जाता है, क्योंकि कुल जी.डी.पी. में कुल जनसंख्या का भाग देने पर ही प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. की गणना होती है। किन्तु विकास के मापदंड के रूप में प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. भी अधूरा मापदंड है और इसके भी कई दोष हैं। इनमें से प्रमुख हैं-

(क) यदि किसी देश की जी.डी.पी. और जनसंख्या में समान दर से वृद्धि हो तब भी हमें यह कहना पड़ेगा कि उस देश का विकास नहीं हुआ है। इसी प्रकार यदि किसी कारण से किसी देश की जनसंख्या घट जाए किन्तु जी.डी.पी. स्थिर रहे तो कहना पड़ेगा कि उस देश का विकास हुआ है।

(ख) चूंकि प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. एक औसत माप है, अत: प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. में वृद्धि होने पर भी यह संभव है कि अमीर अधिक अमीर और गरीब अधिक गरीब हो जाए। यदि प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. में वृद्धि अमीरों की आय में वृद्धि के

परिणामस्वरूप ही हुई है तब तो देश के आम आदमी के उपभोग व रहन-सहन स्तर में कोई वृद्धि नहीं होगी। अतः प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. में वृद्धि को आर्थिक विकास का मापदंड स्वीकार करने से भ्रम उत्पन्न हो सकता है।

(ग) प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. में वृद्धि होने पर भी प्रति व्यक्ति उपभोग की मात्रा में वृद्धि होना आवश्यक नहीं है। हो सकता है कि लोग पहले की तुलना में अधिक बचत करने लग जाएं अथवा सरकार बढ़ी हुई आय को सैनिक उद्देश्यों में खर्च कर दे।

(घ) प्रति व्यक्ति वास्तविक जी.डी.पी. में वृद्धि होने पर भी यह संभव है कि देश में गरीबी की रेखा के नीचे गुजर करने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि हो जाए।

जी.डी.पी. एवं प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. को विकास के मापदंड रूप में स्वीकार किए जाने के कुछ दोष हैं जो निम्नलिखित हैं-

(क) जी.डी.पी. की अभी तक कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं बन सकी है। इसकी गणना में क्या शामिल किया जाए और क्या नहीं- अभी तक इस प्रश्न का कोई संतोषजनक हल नहीं निकल पाया है।

(ख) विभिन्न देशों की जी.डी.पी. की गणना करते समय अमौद्रिक क्षेत्र की बहुत-सी वस्तुएं गणना से छूट जाती है। स्व-उपभोग तथा बाजार में विनिमय के लिए न लाई जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं की राष्ट्रीय आय में ठीक से गणना नहीं हो पाती। उदाहरण के लिए, भारत जैसे देशों के गांवों में आज भी बहुत सारा लेन-देन मुद्रा के बिना ही होता है। किसान अनाज के बदले कपड़ा, बर्तन, लकड़ी का सामान व अन्य सेवाएं प्राप्त कर लेता है। इसी तरह किसान अपनी उपज का एक बड़ा भाग स्व-उपभोग के लिए भी रख लेते हैं। ये सब वस्तुएं बाजार में बिक्री के लिए प्रस्तुत ही नहीं की जाती। इसी प्रकार अवैतनिक सेवाओं की गणना भी राष्ट्रीय आय में नहीं हो पाती। उदाहरण के लिए: खाना बनाने, कपड़ा धोने, सफाई करने आदि का काम जब कोई नौकरानी वेतन लेकर करती है, तब तो ये सेवाएं राष्ट्रीय आय का अंग बन जाती हैं। किन्तु यही सेवाएं गृहणियों द्वारा की जाने पर वे राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं हो पाती।

(ग) विभिन्न देशों की जी.डी.पी. की गणना उन देशों की मुद्रा में होती है। अतः विभिन्न देशों की जी.डी.पी. की तुलना करते समय उन्हें किसी एक मुद्रा में व्यक्त करना पड़ता है और इसके लिए विदेशी विनिमय दर का सहारा लिया जाता है। किन्तु कोई भी विदेशी विनिमय दर यह काम ठीक से नहीं कर पाती।

(घ) अल्पविकसित देशों में जी.डी.पी. के आंकड़े अपर्याप्त, अपूर्ण एवं अविष्ठवसनीय होते हैं। अतः ऐसे आंकड़ों के आधार पर विकास का सही माप हो ही नहीं सकता।

प्रति व्यक्ति उपभोग

कुछ विद्वानों का मत है कि विकास का अंतिम लक्ष्य लोगों के रहन-सहन व जीवन स्तर में वृद्धि करना होता है और रहन-सहन का स्तर उपभोग के लिए उपलब्ध वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा पर निर्भर करता है। अतः प्रति व्यक्ति उपभोग का स्तर आर्थिक विकास का सर्वोत्तम मापदंड है। किन्तु इस माप की भी अपनी एक कठिनाई है। प्रत्येक देश को भविष्य में अधिक उत्पादन करने के लिए पूंजी-संचय व बचत की आवश्यकता होती है और इसके लिए उपभोग को कम करना पड़ता है। यदि कोई देश अपने उपभोग को कम करके बचत व पूंजी निर्माण में वृद्धि कर रहा होगा तो प्रति व्यक्ति उपभोग स्तर को विकास का मापदंड मान लेने पर उस देश का आर्थिक विकास नहीं माना जाएगा। दूसरी ओर, यदि कोई देश वर्तमान में अपने उपभोग स्तर में तो काफी वृद्धि कर लेता है किन्तु उसकी बचत व पूंजी निर्माण कम हो जाता है, तो इससे भविष्य में उसके कुल उत्पादन में कमी आने की संभावना उत्पन्न हो जाएगी। किन्तु प्रति व्यक्ति उपभोग स्तर के मापदंड के अनुसार उस देश का आर्थिक विकास हुआ है, यह कहा जाएगा।

आर्थिक कल्याण

कुछ विद्वानों के अनुसार आर्थिक कल्याण ही आर्थिक विकास का सर्वोत्तम मापदंड हो सकता है। आर्थिक कल्याण का विचार करते समय हम केवल यह नहीं देखेंगे कि क्या और कितना उत्पादन किया जा रहा यह किस प्रकार पैदा किया जा रहा है और इसका बंटवारा किस प्रकार हो रहा है। आर्थिक कल्याण में यह भी ध्यान में रखना होगा कि देश में जिन-जिन वस्तुओं का उत्पादन किया जा रहा है उनका तुलनात्मक महत्व कितना है? इस प्रकार इसमें हमें मूल्यात्मक निर्णय (वेल्यू जजमेंट) लेने होंगे। इसी तरह उत्पादन की सामाजिक लागत का भी विचार करना होगा। यद्यपि आर्थिक कल्याण का मापदंड विकास का अधिक उपयुक्त मापदंड है किन्तु फिर भी अभी तक अर्थशास्त्रियों ने इसका व्यवहार में प्रयोग नहीं किया है। इसका कारण उन्होंने यह बताया है कि

मूल्यात्मक निर्णयों, न्यायपूर्ण वितरण, सामाजिक लागत आदि ऐसी बातें हैं जिनकी व्यवहार में गणना करना बहुत कठिन है, अतः आर्थिक कल्याण को अव्यावहारिक मानकर छोड़ दिया गया है।

समायोजित सकल राष्ट्रीय उत्पाद माप

विभिन्न देशों के बीच तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से कुछ अर्थशास्त्रियों ने समायोजित सकल राष्ट्रीय उत्पाद को विकास के मापदंड के रूप में स्वीकार करने का सुझाव दिया है। इस माप के माध्यम से राष्ट्रीय आय के लेखों को समायोजित करने के लिए क्रयशक्ति समता की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। किन्तु इस मापदंड में भी राष्ट्रीय आय के माप की सभी सीमाएं तो हैं ही, उसके अलावा राष्ट्रीय आय का समायोजन करना ही कोई सरल काम नहीं है, उसकी अपनी कठिनाइयां व सीमाएं हैं।

अन्य मापदण्ड

उपर्युक्त मापदंडों के अलावा कुछ विद्वानों ने विकास के और भी कई मापदंडों के प्रयोग का सुझाव दिया है। उदाहरण के लिए, कुल जनसंख्या में निर्धन वर्ग का प्रतिशत कम होना आर्थिक विकास का एक अच्छा मापदंड हो सकता है। पर ये सभी मापदंड एकपक्षीय हैं।

गैर आर्थिक (सामाजिक) सूचक

सामाजिक सूचकों में मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं के रूप में बताया गया है। मुख्य सामाजिक सूचकों में ये शामिल हैं- जीवन प्रत्याशा, केलौरी-पान, शिशु मृत्यु दर, विद्यालयों में प्राथमिक कक्षाओं में भर्ती संख्या, आवास, पोषण, स्वास्थ्य तथा ऐसी ही अन्य वे सब चीजें जो मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं से सम्बंध रखती हैं।

सामाजिक लेखा प्रणाली

इस प्रणाली को स्टोन एवं सीयर्स ने दिया था। इसी क्रम में पियट्ट एवं राउंड ने भी सोशल एकाउंटिंग मैट्रिक्स के नाम से एक सूचक दिया था। किन्तु इस प्रकार की प्रणाली की सबसे बड़ी कमी विश्वसनीय एवं उपयोगी आंकड़ों का न मिल पाना है। इसके अलावा इसमें सामाजिक विकास के सब पहलुओं को सम्मिलित कर पाना भी कठिन रहता है।

संयुक्त सामाजिक विकास सूचक

इस सूचक का विकास सामाजिक विकास पर संयुक्त राष्ट्र के शोध संस्थान द्वारा किया गया था। प्रारंभ में 73 सूचकों को जांचा गया जिनमें से अंत में 16 सूचकों का चयन किया गया। ये सूचक हैं-

- जन्म के समय जीवन प्रत्याशा
- 20,000 या उससे अधिक के क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि का प्रतिशत
- प्रति व्यक्ति, प्रतिदिन पशु प्रोटीन का उपभोग
- प्राथमिक एवं द्वितीयक स्तर पर कुल मिलाकर भर्ती विद्यार्थियों की संख्या
- व्यावसायिक भर्ती अनुपात
- प्रति कमरा औसत व्यक्तियों की संख्या
- प्रति 1000 जनसंख्या पर समाचार पत्र
- बिजली, गैस, पानी आदि से युक्त आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या का प्रतिशत
- प्रति पुरुष कृषि-श्रमिक कृषि उत्पादन
- कृषि में वयस्क पुरुष श्रमिकों का प्रतिशत
- प्रति व्यक्ति कितने किलोवाट बिजली उपभोग होता है
- प्रति व्यक्ति कितने किलोग्राम स्टील उपभोग होता है
- प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग
- विनिर्माण कार्यो से प्राप्त सकल घरेलू उत्पाद (प्रतिशत में)
- प्रति व्यक्ति विदेशी व्यापार
- आर्थिक दृष्टि से सक्रिय कुल जनसंख्या में वेतन एवं मजदूरी पर कार्य करने वालों का प्रतिशत।

उपरोक्त सूचकों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये भी विकास के उपयुक्त मापदंड नहीं बन सकते।

भौतिक गुणवत्ता का जीवन सूचक

विकास के इस सूचक को 1979 में मोरिस डी. मोरिस ने दिया था। इसके अंतर्गत तीन सूचकों का प्रयोग करने की बात कही गई थी-

(क) एक वर्ष की आयु पर जीवन प्रत्याशा

(ख) शिशु मृत्यु

(ग) साक्षरता।

यह सूचक भी अधूरा है। क्योंकि इसमें अनेक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक सूचकों को शामिल ही नहीं किया गया है- जैसे सुरक्षा, न्याय, मानव अधिकार आदि।

आधुनिक आर्थिक संवृद्धि की विशेषताओं के बारे में कुटनेट्स का विश्लेषण

कुटनेट्स ने आधुनिक आर्थिक संवृद्धि की सात मुख्य विशेषताएं बताई हैं-

(1) प्रति व्यक्ति उत्पादन में तीव्र दर से वृद्धि

(2) उत्पादकता की ऊंची वृद्धि दर

(3) संरचनात्मक परिवर्तन की ऊंची दर

(4) शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण

(5) तीव्र सामाजिक एवं वैचारिक परिवर्तन

(6) आधुनिक देशों का बाहर की ओर देखने का दृष्टिकोण

(7) भौतिक एवं मानवीय पूंजी का अंतरराष्ट्रीय प्रवाह।

निष्कर्ष

विश्व के समस्त देशों में आर्थिक वृद्धि हुई है परन्तु उनकी वृद्धि दरें एक दूसरे से भिन्न रहती हैं। वृद्धि दरों में असमानताएं उनकी विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, तकनीकी एवं अन्य स्थितियों के कारण पाई जाती है। यहीं स्थितियां आर्थिक वृद्धि के कारक हैं। परन्तु इन कारकों का निश्चित रूप से उल्लेख करना भी एक समस्या है क्योंकि विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अपने अपने ढंग से इनको बताया है।

विभिन्न देशों में यह प्रवृत्ति भी होती है कि आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से आर्थिक विकास की परिभाषा दी जाये। ऐसी प्रक्रिया को आर्थिक विकास माना जाये जिससे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि होती है और उसके साथ साथ असमानताओं का अंतर कम होता है तथा समस्त जनसाधारण के अधिमान संतुष्ट होते हैं। इसके अनुसार आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों के वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग में वृद्धि होती है।

सन्दर्भ

1. क्या हों आर्थिक विकास के मापदण्ड? Archived 26 अक्टूबर 2012 at the oscSd मशीन. - डॉ. बजरंग लाल गुप्त

2. *Jaffee, David (1998). Levels of Socio-economic Development Theory. Westport and London: Praeger. p. 3. ISBN 9780275956585.*

2. *Seidman, Karl F. (2005). Economic Development Finance. Thousand Oaks: Sage Publications. p. 5. ISBN 9780765628176.*

3. *Greenwood, Daphne T.; Holt, Richard P. F. (2010). Local Economic Development in the 21st Century. Armonk and London: M. E. Sharpe. pp. 3–4. ISBN 9780765628176.*

4. Ethan Bueno de Mesquita (2016), *Political Economy for Public Policy*, Princenton University Press, chapter 11.

वृद्धावस्था में जरुरी पोषक तत्व और आहार आयोजन

डॉ० प्रज्ञा कुमारी

सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग, पी.वाई.के.जे. महाविद्यालय, बंगाहीं,
बीआरए बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

जैविक पोषक तत्वों में कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन (अमिनो अम्ल) और विटामिन शामिल हैं। अकार्बनिक रासायनिक यौगिकों, जैसे खनिज लवण, पानी और ऑक्सीजन को भी पोषक तत्व माना जा सकता हैं। किसी जीव को एक पोषक तत्व किसी बाहरी स्रोत से लेने की आवश्यकता तब पड़ती है जब उसका शरीर इनकी पर्याप्त मात्रा का संश्लेषण स्वयं उसके शरीर में नहीं कर पाता। जिन पोषक तत्वों की आवश्यकता अधिक मात्रा में पड़ती है उन्हें स्थूल पोषक तत्व कहते हैं; इसी तरह सूक्ष्म पोषक तत्व कम मात्रा में जरूरी होते हैं।

परिचय

जैविक पोषक तत्वों में कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन (अमिनो अम्ल) और विटामिन शामिल हैं। अकार्बनिक रासायनिक यौगिकों, जैसे खनिज लवण, पानी और ऑक्सीजन को भी पोषक तत्व माना जा सकता हैं। किसी जीव को एक पोषक तत्व किसी बाहरी स्रोत से लेने की आवश्यकता तब पड़ती है जब उसका शरीर इनकी पर्याप्त मात्रा का संश्लेषण स्वयं उसके शरीर में नहीं कर पाता। जिन पोषक तत्वों की आवश्यकता अधिक मात्रा में पड़ती है उन्हें स्थूल पोषक तत्व कहते हैं; इसी तरह सूक्ष्म पोषक तत्व कम मात्रा में जरूरी होते हैं।

पोषकों को कई तरह से वर्गीकृत किया जाता है–

(१) मनुष्य द्वारा अधिक मात्रा में उपभोग किये जाने वाले रासायनिक तत्त्व - कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, आक्सीजन, फॉस्फोरस, तथा गंधक (संक्षेप में, CHNOPS)

(२) मनुष्य के भोजन में ऊर्जा प्रदान करने वाले रासायनिक यौगिक हैं- कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा वसा। बहुत अधिक मात्रा में जल तथा आक्सीजन भी आवश्यक होता है, किन्तु इनको प्रायः श्पोषकश की श्रेणी में नहीं रखा जाता।

(३) खनिज लवण - कैल्सियम, सोडियम, क्लोराइड, मैग्नीशियम और पोटैशियम भी काफी मात्रा में लगते हैं। इन्हे स्थूल पोषक या बृहत् पोषक कहते हैं। इसके अलावा अल्प मात्रा में विटामिन और कुछ अन्य खनिज आवशयक होते हैं।

माइक्रो पोषक तत्व–माइक्रो पोषक तत्व वे पोषक तत्व होते है जो हमें एनर्जी नही देते है, और जिन्हें हमें कम मात्रा (10 ग्राम से कम) में लेने की जरुरत होती है। हमें इनको मिलीग्राम और माइक्रोग्राम में लेने जरुरत होती है। ये हमें एनर्जी नही देते है लेकिन ये हमारे शरीर के लिए बहुत जरुरी होते है क्योकि इनके बिना मैक्रो पोषक तत्व (कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, फैट) सही से काम नहीं कर पाते है। यह भी हमें भोजन से मिलते है।

बुजुर्ग और उनका भोजन सम्बन्धी जरुरत

आयु के बढ़ने के साथ-साथ कई शारीरिक परिवर्तन होते हैं तथा रोगों से लड़ने की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जिसके कारण पौष्टिक आहार की आवश्यकता अधिक या कम हो सकती है। शरीर में पानी की मात्रा कम हो जाती है और वसा का प्रतिशत बढ़ जाता है। अनुमान है कि 80 वर्ष की आयु में मांस पेशियों की कोशिकाएं आधी रह जाती हैं। शरीर की सक्रिय कोशिकाओं की संख्या में कमी हो जाती है। इस प्रकार के परिवर्तन विशेष रूप से ऊतकों में दिखाई पड़ते हैं। मस्तिष्क, हड्डियों, हृदय, गुर्दे और ढांचे की मांस-पेशियों में नए ऊतक उत्पन्न करने की क्षमता क्षीण हो जाती है। सक्रिय कोशिकाओं के स्थान पर वसा और मांस पेशियों को जोड़ने वाले ऊतक बन जाता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ विभिन्न अंगों की सक्रिय कोशिकाओं की संख्या में कमी हो जाती है और अंगों की क्रियाशीलता घट जाती है। बहुधा वृद्धों में यह देखा गया है कि उनकी हडिडयों में खनिज तत्व समाप्त हो जाते हैं। इस दशा को ओस्टीयोपोरोसिस की संज्ञा दी जाती है इसमें हडिडयां कुरकुरी हो जाती हैं जिससे हल्का-सा आघात लगने पर उनके टूट जाने की शंका बढ़ जाती है।

वृद्धावस्था में स्वाद और गंध की अनुभूति उतनी तीव्र नहीं होती, जितनी कि युवावस्था में होती है और इस कारण भोजन का आनन्द कम हो जाता है। वृद्धों में बहुधा दंतक्षय पाया गया है उनके मसूढ़े भी ठीक से काम नहीं करते। परिणाम यह होता है वृद्ध नरम भोजन करते हैं और ऐसी वस्तुएं खाते हैं, जिनमें कार्बोहाइड्रेटस की मात्रा अधिक होती है। उस भोजन से उनके शरीर में कैलिशयम, प्रोटीन और विटामिन जैसे पौष्टिक तत्व नहीं पहुंच पाते। लार कम आने लगता है और पाचन शक्ति घट जाती है। वृद्धों में बहुधा यह पाया गया है कि वे मांड को नहीं पचा सकते। अधिकतर वृद्धों में आमाशय में अम्ल स्त्राव कम हो जाता है। आमाशय में विभिन्न प्रकार के पाचक रसों की मात्रा भी कम हो जाती है, जिनके आमाशय में अम्ल की कमी होती है उनका पेट तेजी से खाली हो जाता है। आमाशय और अंतडिघ्यों में निष्क्रियता आ जाती है और इस बात की अधिक संभावना रहती है कि कुछ प्रकार के भोजन से उनका पेट फूलने लगे। हृदय की सक्रियता कम हो जाती है, और उसके साथ ही पाचन शक्ति के क्षय से शरीर की पौष्टिक तत्त्वों को अवशोषित करने की शकित का ह्रास होने लगता है।

पौष्टिक तत्वों की आवश्यकताएं

25 वर्ष की आयु के बाद चयापचय की सक्रियता प्रति दस वर्ष में दो प्रतिशत घट जाती है। यह ह्रास उन व्यकितया में कम होता है जो स्वस्थ रहते हैं और कठोर परिश्रम करते रहते हैं। चयापचय की घटी हुई दर और कार्यकलाप में कमी होने के कारण वृद्धों में ऊर्जा की आवश्यकता कम हो जाती हैं। ऊर्जा की जरुरत का अनुमान लगाने के लिए भारत की चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने यह सिफारिश की है कि बढ़ती हुई आयु के साथ-साथ ऊर्जा की आवश्यकता निम्न प्रकार से कम हो जाती है :

आयु	आवश्यकता में प्रतिशत कमी
20-30	वर्ष 0
40-49	वर्ष 5
50-59	वर्ष 10
60-69	वर्ष 20
70	वर्ष और उससे अधिक 30

जिन वृद्धों का वजन सामान्य हो, उनके लिए ऊर्जा (कैलोरी) का हिसाब इस प्रकार लगाना चाहिए कि उनका वजन वैसा ही बना रहे। उनके भोजन में इतनी कमी कर दी जानी चाहिए, जिससे कि यदि उनका वजन अधिक हो तो घट कर सामान्य हो जाए।

60 वर्ष के ऊपर वृद्ध पुरुष व स्त्री की दैनिक ऊर्जा की आवश्यकता नीचे की तालिका में दी गई है।

तालिका-शारीरिक वजन के अनुसार वृद्ध स्त्री-पुरुष की दैनिक ऊर्जा की आवश्यकता

शारीरिक वजन (कि.ग्रा.)	60 वर्ष के ऊपर हल्का श्रम करने वाले वृद्ध	
	पुरुष	महिला
40	–	1544
45	1664	1624
50	1768	1704
55	1872	1784
60	1976	1864
65	2072	1944
70	2176	2024
75	2280	–

वृद्धों के लिए आहार आयोजन

वृद्धावस्था में भूख कम लगती है और पाचन शक्ति हो जाती है जिससे वृद्धों के शरीर मं प्रोटीन की कमी हो जाती है। इस कारण इस बात की व्यवस्था करनी चाहिए कि शरीर में प्रोटीन की कमी न हो। दूध में प्रोटीन के साथ-साथ विटामिन और खनिज पदार्थ भी होते हैं, इस कारण दूध समुचित मात्रा में देना चाहिए। प्रतिदिन शरीर के वजन के हिसाब से एक किलोग्राम के पीछे 1.0 से 1.4 ग्राम तक प्रोटीन देनी चाहिए।

- वृद्धों के भोजन में कम से कम 50 ग्राम घी अथवा तेल रहना चाहिए, क्योंकि वह ऊर्जा का जरुरी स्रोत है। कम से कम इस मात्रा का पचास प्रतिशत शाक-भाजी के तेलों के रूप में होना चाहिए, जिनमें आवश्यक वसा-अम्ल रहते हैं।
- वृद्धों में सामान्यतया कैलिशयम और लौह तत्व भी कम हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि वयस्कों की तुलना में वृद्धों में इन तत्वों को पचाने की सामर्थ्य कम हो जाती है। कैलिशयम कम से कम आधा ग्राम प्रतिदिन और लौह 28 मिलिग्राम प्रतिदिन होना चाहिए। वृद्धों में रक्त का संचार अधिक नहीं होता और रक्त में लौह तत्वों की थोड़ी-सी कमी से भी उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। उसे रोकने के लिए लौह की मात्रा समुचित होनी चाहिए।
- वृद्धों में बहुधा कई प्रकार के विटामिनों की थोड़ी कमी हो जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि उनके भोजन में सभी आवश्यक विटामिनों की समुचित मात्रा रहे। यदि उनके भोजन में सभी विटामिनों की समुचित मात्रा न हो तो उन्हें मल्टी विटामिन गोली प्रतिदिन देनी चाहिए, जिससे कि विभिन्न विटामिन उनके शरीर में पहुंच जाएं। थायमीन, रिबोफ्लेविन और नियासिन की आवश्यकता ऊर्जा की आवश्यकता के अनुसार तय की जाती है। एस्कोर्बिक एसिड (विटामिन सी) प्रतिदिन 40 मिलिग्राम, फोलिक एसिड, विटामिन बी 12 और विटामिन बी 6 लगभग सौ माइक्रोग्राम, एक माइक्रोग्राम और दो मिलिग्राम देना चाहिए। यह आवश्यक है कि प्रति दिन विटामिन डी की 400 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई दिए जाएं, जिससे शरीर में कैलिशयम अवशोषित होने लगेगा और हड्डियों की रक्षा की जा सकेगी।
- आमतौर पर इस बात को नहीं समझा जाता कि वृद्धों को जल तथा अन्य तरल पदार्थ समुचित मात्रा में देने चाहिए, जिससे कि वे प्रति दिन डेढ़ लीटर पेशाब करें। पानी के साथ-साथ छाछ, फलों का रस, सूप आदि देना चाहिए।
- इस बात की व्यवस्था करनी चाहिए कि वृद्धों को हरी शाक-भाजी और फल समुचित मात्रा में दिए जाएं जिससे कि उनके भोजन में रेशे की मात्रा समुचित रहे और उन्हें कब्ज न होने पाए। वृद्धावस्था में अंतडिघ्यां ऐसी हो जाती हैं कि पकी सब्जियों का रेशा और अनाज का चोकर भली-भांति पच नहीं पाता।

भोजन की योजना बनाते समय ध्यान देने योग्य बातें

वृद्धों के लिए भोजन की योजना बनाते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(1) भोजन ऐसा हो कि यह पौष्टिक तत्त्वों की दृष्टि से संतुलित रहे। इस बात पर बल देना चाहिए कि प्रोटीन, कैलिशयम, विटामिन और रेशे की समुचित मात्रा रहे, क्योंकि अधिकतर वृद्धों में इन तत्वों की कमी हो जाती है।

(2) वृद्धों के लिए भोजन को चबाने में कठिनाई हो सकती है इसलिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भोजन नरम हो और उसमें सूप, दाल या दलिए जैसे तरल पदार्थ हों, जिन्हें निगलने में कठिनाई न हो। वृद्धों को सलाद कस करके दिया जा सकता है। भोजन पूरी तरह पका हुआ होना चाहिए। रोटी मोटी बनायी जा सकती है जिससे कि उसे चबाने में कष्ट न हो। अगर आवश्यकता हो तो रोटी को दूध या दाल में भिगो कर खाया जा सकता है।

(3) कैलिशयम की आवश्यकता का विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि हडिडयों में धीरे-धीरे खनिज लवण निकलने शुरू हो जाते हैं।

(4) यदि एक समय में व्यक्ति पूरा आहार नहीं ले पाता है, तब छोटे आहार कम समय अन्तराल में देने चाहिए।

(5) इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिसके लिए भोजन की योजना बनायी जा रही है उसे कौन-सा व्यंजन पसन्द है।

(6) कार्बोहाइड्रेटस की जो मात्रा भोजन में हो वह नरम होनी चाहिए, जिससे कि खाने वाले को कब्ज न हो।

(7) मीठे पदार्थ कम कर देने चाहिए, क्योंकि उनसे भूख मारी जाती है और केवल कैलोरी ही मिलती है।

(8) भोजन में कैलोरी की मात्रा इतनी होनी चाहिए कि शरीर का वजन न बढ़ने पाए।

(9) यदि भूख कम लगती हो तो ऐसा भोजन होना चाहिए जिसकी मात्रा कम हो परन्तु जिसमें कैलोरियों की मात्रा पूरी रहे साथ ही भोजन को सुस्वाद बनाना चाहिए। वृद्धों को नाश्ते और दोपहर के भोजन के बीच और तीसरे प्रहर भी कुछ खाने के लिए दिया जा सकता है।

(10) इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उनकी आर्थिक स्थिति कैसी है। आहार योजना आर्थिक स्थिति के अनुरूप बनानी चाहिए।

तालिका : वृद्धों के लिए कुछ प्रस्तावित व्यंजन सूची

नाश्ता	दोपहर का भोजन	रात का भोजन
आटे या सूजी का हलवा	चपाती	चपाती या चावल
दूध	दाल और पालक	सब्जी या कढ़ी
दही	पपीता	
उपमा जिसमें मूंगफली हो	चावल	खिचड़ी
केला	अंकुरित चना	दूध या दही
	गाजर की सब्जी	टमाटर का सलाद
चावल व मूंग दाल	चपाती	चावल
का दलिया, दूध के साथ	चने की दाल	सांभर
	गाजर (कसी हुइ)	गाजर
पाव रोटी या टोस्ट	सब्जी वाला पुलाव	चावल
अंडे की भुर्जी	धनिए की चटनी	अंडे की सब्जी
दूध	दही	दही

यदि भोजन के समय भूख कम हो तो दो समय के भोजन के बीच पौष्टिक आहार दिया जा सकता है। दो व्यंजनों के बीच खाने के लिए दिए जाने वाले व्यंजनों का सुझाव:

- दूध और बिस्कुट/रस्क/टोस्ट
- लस्सी और फलों की चाट
- दही और केला
- कोर्नफ्लेक्स और दूध
- अंडे के सैंडविच
- टमाटर और पनीर के सैंडविच

भोज्य पदार्थों का चुनाव सामाजिक-आर्थिक स्तर के अनुसार कर सकते हैं। मौसम व उपलब्धता के अनुसार सब्जियों व फलों में प्रतिस्थापन व परिवर्तन ला सकते हैं। मध्यान्तर के अल्पाहार व दोपहर के भोजन का चुनाव स्कूल समय के अनुसार कर सकते हैं।

निष्कर्ष

एक पोषक तत्व या पोषकतत्व वह रसायन होता है, जिसकी आवश्यकता किसी जीव के पोषक तत्व वह पदार्थ हैं जो शरीर को समृद्ध करते हैं। यह ऊतकों का निर्माण और उनकी मरम्मत करते हैं, यह शरीर को उष्मा और ऊर्जा प्रदान करते हैं और यही ऊर्जा शरीर की सभी क्रियाओं को चलाने के लिए आवश्यक होती है। पोषक तत्वों के प्रभाव उनकी ली गयी खुराक पर निर्भर करते हैं।

सन्दर्भ

1. शिशु एवं बच्चों का पोषण व संभरण, डा. शांति घोष
2. खाध एवं पोषण विज्ञान, उच्चतर कक्षाओं के लिए, एजुकेशन प्लेनिंग ग्रुप द्वारा; आर्या पबिलशिंग हाउस
3. पोषण एवं आहार विज्ञान के मूल सिद्धांत; एस.पी. सुखिया; शिवलाल अग्रवाल एंड कं.
4. Fundamentals of Foods and Nutrition; Mudambi and Rajagopal; Viley Eastern Limited.
5. Recommended Allowances to Indians : ICMR; Publications, 1989.

भवभूति के नाटकों में चित्रित नारी जीवन

डॉ० शोभा रानी सहाय

शिक्षिका, छपरा सेंट्रल स्कूल, सारण (बिहार)

सन्दर्भ

भवभूति, संस्कृत के महान कवि एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उनके नाटक, कालिदास के नाटकों के समतुल्य माने जाते हैं। भवभूति ने अपने संबंध में महावीरचरित्र की प्रस्तावना में लिखा है। ये विदर्भ देश के 'पद्मपुर' नामक स्थान के निवासी श्री भट्टगोपाल के पोते थे। इनके पिता का नाम नीलकंठ और माता का नाम जतुकर्णी था। इन्होंने अपना उल्लेख 'भट्टश्रीकंठ पछलांछनी भवभूतिर्नामश से किया है। इनके गुरु का नाम 'ज्ञाननिधि' था। मालतीमाधव की पुरातन प्रति में प्राप्त 'भट्ट श्री कुमारिल शिष्येण विरचित मिंद प्रकरणम्' तथा 'भट्ट श्री कुमारिल प्रसादात्प्राप्त वाग्वैभवस्य उम्बेकाचार्यस्येयं कृति' इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि श्रीकंठ के गुरु कुमारिल थे जिनका 'ज्ञाननिधि' भी नाम था और भवभूति ही मीमांसक उम्बेकाचार्य थे जिनका उल्लेख दर्शन ग्रंथों में प्राप्त होता है और इन्होंने कुमारिल के 'लोकवार्तिक की टीका भी की थी। संस्कृत साहित्य में महान् दार्शनिक और नाटककार होने के नाते ये अद्वितीय हैं। पांडित्य और विदग्धता का यह अनुपम योग संस्कृत साहित्य में दुर्लभ है।

रचनाएँ

भवभूति अपने तीन नाटकों के लिए विशेष रुप से प्रसिद्ध थे–

1. महावीरचरित- (महानायक के पराक्रम), जिसमें रामायण के रावणख्रवध से लेकर राम के राजतिलक तक की मुख्य घटनाएँ सात अंको में वर्णित हैं।
2. मालती माधव- दस अंकों का पारिवारिक नाटक है, जिसमें भावोत्तेजक, किंतु कहीं-कहीं असंभव सी घटनाएँ हैं।
3. उत्तररामचरित- उत्तर रामचरित में राम कथा, उनके राजतिलक से लेकर सीता वनवास और अंत में दोनों के अंतिम मिलन तक की कथा हैं। इस अंतिम नाटक में हालांकि शेष दो नाटकों की अपेक्षा घटनाक्रम काफी कम है। पर इसमें भवभूति की चरित्र चित्रण की प्रतिभा और रहस्य व नाटकीय उत्कर्ष की क्षमता अपने चरम सीमा पर है।

महावीरचरित्

जिसमें रामविवाह से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा निबद्ध की गई है। कवि ने कथा में कई काल्पनिक परिवर्तन किए हैं जिनसे चिरपरिचित रामकथा में रोचकता आ गई है। यह वीररसप्रधान नाटक है।

उत्तररामचरित्

संस्कृत साहित्य में करुण रस की मार्मिक अभिव्यंजना में यह नाटक सर्वोत्कृष्ट है। इसमें सात अंकों में राम के उत्तर जीवन को, जो अभिषेक के बाद आरंभ होता है, चित्रित किया गया है जिसमें सीतानिर्वासन की कथा मुख्य है। अंतर यह है कि रामायण में जहाँ इस कथा का पर्यवसान (सीता का अंतर्धान) शोकपूर्ण है, वहाँ इस नाटक की समाप्ति राम सीता के सुखद मिलन से की गई है।

मालतीमाधव

यह 10 अंकों का प्रकरण है जिसमें मालती और माधव की कल्पनाप्रसूत प्रेमकथा है। युवावस्था के उन्मादक प्रेम का इसमें उत्कृष्ट वर्णन है। इसमें स्थान स्थान पर प्रकृति का विशेष वर्णनचित्र प्राप्त होता है।

भाषा-शैली

भाषा और शैली के प्रयोग में इनकी विचक्षणता अद्वितीय है। सरल और क्लिष्ट, समाससंकुल गाढ़बंध और समासरहित दोनों प्रकार की शैलियों का इन्होंने उत्कृष्ट प्रयोग किया है-कहीं मधुर पदावली और कहीं विकट गाढ़बंध। साथ ही उनकी भाषा अवसर ओर व्यक्ति के अनुरूप होती है। उनकी शैली में वाच्यार्थ की प्रधानता है किंतु व्यर्थ का वागाडंबर नहीं। प्रकृति के घोर और प्रचंड रूप की ओर कवि का ध्यान अधिक है। साथ ही अर्थ के अनुरूप ध्वनि उत्पन्न करने में कवि का नैपुण्य पदे-पदे व्यंजित होता है।

यह एक नाटक ही कवि की प्रतिमा और पांडित्य की अभिव्यक्ति के लिए अलंकृत है। इन्होंने कहा है - 'एको रस: करुण एवश (करूणरस ही एकमात्र रस है)। इस नाटक में अनेक रसों का रूप धारण करके करुण रस सहृदयों के हृदय पर अपना प्रभाव छोड़ जाता है। अपने नाटक में प्रेम के जिस उच्च और आदर्श रूप की कवि ने प्रतिष्ठा की है वह अवस्था के साथ ढलता नहीं और भी पूर्ण तथा उदात्त रूप प्राप्त करता है। संभवत: यही कारण है कि कवि ने नारी के बाह्य सौंदर्य के वर्णन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है और उसके अंत:सौंदर्य को ही उद्घाटित किया है। प्रेम की इस पवित्रता के साथ विश्वास की महिमा, हृदय की महत्ता, भाषा क गंभीरता और भावों के तरंगायित क्रीड़ाविलास में यह नाटक साहित्य में 'एको रस: करुण एवश के समान एक ही है।

पांडित्य और प्रतिभा के घनी भवभूति के नाटकों में शास्त्रों का व्यापक ज्ञान, भाषा की प्रौढ़ता, भाव की गरिमा और निरीक्षण की सूक्ष्मता के कारण सरसता के स्थान पर गांभीर्य और उदात्तता विशेष प्राप्त होती है। संभवत: इन कारणों से उस समय कवि की रचनाएँ अधिक लोकप्रिय न हो सकीं और उनके नाटकों का उस समय किसी राजसभा में अभिनय न हो सका। उज्जयिनी में के अवसर पर एकत्र पुरवासियों के समक्ष की उनके नाटकों का अभिनय हुआ और तदनंतर वे यशोवर्मा के राज्य में समादृत हुए। मालतीमाधव की प्रस्तावना में उनकी गर्वोक्ति 'ये नाम केचिदिह न: प्रथयन्त्यवज्ञाम्ध्श (जो कुछ लोग मेरी अवज्ञा कर रहे हैं।..) संभवत: उन्हीं दुरालोचकों के प्रति है जिनसे ये निरादृत होते रहे।

निष्कर्ष

भवभूति की रचनाओं पर कालिदास का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भवभूति ने केवल तीन नाटक लिखे, लेकिन उनमें से उत्तररामचरितम्ध के बारे में कहा गयाख्रउत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते (उत्तररामचरित में भवभूति कालिदास से विशिष्ट हो गए हैं)।

साहित्य-शास्त्र के नौ रसों में करुण रस एक है। भवभूति ने उत्तररामचरितम्ध में करण रस को अपूर्व प्रतिष्ठा दिलाकर उसे सभी रसों का मूल स्रोत बना दिया।

भवभूति में राजा राम के निर्णय से मनुष्य राम पर थोपी गई सीता-निर्वासन की वियोग-वेदना भीतर ही भीतर घनीभूत होकर भले ही मर्म को भेद दे, बाहर आकर व्यक्त नहीं हो सकती, क्योंकि तब वह राजा राम को स्खलित कर देगी। और उसी वेदना को भवभूति ने नाम दिया है साक्षात् "करुण रस" नाटक मालती-माधव, एक किशोर लड़की के द्वंद्व और बदलते पारिवारिक, सामाजिक संदर्भों की कहानी है।

भवभूति यह मानते थे कि जिस नाटक में प्रवृत्तियों का अंतर्द्वंद्व दिखाया जाता है, वही नाटक उच्च श्रेणी का होता है।

जिस नाटक में बाहरी घटकों के साथ के विरोध का वर्णन होता है वो नाटक नहीं इतिहास है। भाषा और भाव दोनों स्तर पर भावभूति द्वन्द सृजन में निपुण थे।

सन्दर्भ

- *Vidyakara; Daniel H.H. Ingalls, An Anthology of Sanskrit Court Poetry, Harvard Oriental Series Volume 44, p. 75*
- Indian Historical Quarterly Vol XXV, part 2
- 'Bhavabhuti's Indebtedness to Kautilya' Journal of the Ganganath Jha Research Institute Vol VIII, part 3, May 1951
- The *Uttara Rama Charita* of Bhavabhuti. With Sanskrit commentary by Pandit Bhatji Shastri Ghate of Nagpur and a close English translation by Vinayak Sadashiv Patvardhan. The Nyaya Sudha Press, Nagpur 1895
- Rama's later history or *Uttara-Ram-Charita* of Bhavabhuti. Critically edited with notes and an English transltation by Shripad Krishna Belvalkar. Harvard University Press 1915

बिहार में नगर पालिका-कर्मिकी पद्धति : रिविलगंज नगर पालिका का दृष्टातत्मक अध्ययन

डॉ० विद्या भूषण श्रीवास्तव

जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (सारण)

सारांश

प्रशासनिक सुविधा के लिए बिहार राज्य को 9 प्रमंडल तथा 38 मंडल (जिला) में बाँटा गया है। जिलों को क्रमश: 101 अनुमंडल, 534 प्रखंड (अंचल), 8,471 पंचायत, 45,103 गाँव में बाँटा गया है। राज्य का मुख्य सचिव नौकरशाही का प्रमुख होता है जिसे श्रेणीक्रम में आयुक्त, जिलाधिकारी, अनुमंडलाधिकारी, प्रखंड विकास पदाधिकारी या अंचलाधिकारी तथा इनके साथ जुड़े अन्य अधिकारी एवं कर्मचारीगण रिपोर्ट करते हैं। पंचायत तथा गाँवों का कामकाज सीधेतौर पर चुनाव कराकर मुखिया, सरपंच तथा वार्ड सदस्यों के अधीन संचालित किया जाता है। नगरपालिका आम निर्वाचन 2017 के बाद बिहार में नगर निगमों की संख्या 12, नगर परिषदों की संख्या 49 और नगर पंचायतों की संख्या 80 है।

परिचय

नगर पालिका एक प्रशासनिक इकाई होती है, जिसमें स्पष्ट रूप से परिभाषित क्षेत्र होता है और इसकी जनसंख्या भी अंकित होती है। आमतौर पर यह एक शहर, कस्बे या गांव, या उनमें से छोटे समूह रूप में होता है। एक नगरपालिका में प्राय: एक महापौर प्रशासनिक अधिकारी होता है, व इसके ऊपर नगर परिषद या नगरपालिका परिषद का नियंत्रण होता है। प्राय: नगरपालिका अध्यक्ष ही प्रशासनिक अध्यक्ष होता है।

भारत में, एक नगर पालिका अक्सर एक शहर के रूप में जाना जाता है। यह न तो एक ग्राम और न ही बड़े शहर के बराबर होता है, वरन उनके बीच का होता है। एक नगर पालिका 20,000 या उससे अधिक लोगों को मिलाकर बनता है, लेकिन अगर यह 5 लाख से अधिक जनसंख्या वाला हो जाता है तब एक नगर निगम बन जाता है।

इतिहास

भारत में नगर प्रशासन वर्ष 1687 के बाद से ही अस्तित्व में है। मद्रास नगर निगम के 1687 गठन के साथ और फिर 1726 में कलकत्ता और बॉम्बे नगर निगम। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक भाग में भारत में लगभग सभी शहरों में नगर निगम प्रशासन की मौजूदगी हो गयी थी। तब भारत के वाइसराय, लार्ड रिप्प ने नगरपालिका शासन की नींव रखी थी 1919 में, भारत सरकार 1919 कानून ने लोकतांत्रिक रूप से चुने हुए नगरपालिका सरकार की शक्तियां तैयार कीं। 1935 में भारत सरकार ने राज्य सरकार और प्रांतीय सरकार के अधिकार के तहत नगरपालिका सरकार लायी और विशिष्ट शक्तियां दी गई।

नगर पालिका अध्यक्ष

नगरपालिका अध्यक्ष शहर का एक प्रमुख स्रोत होता है। नगर में सभी सुविधाएं की देखरेख नगरपालिका अध्यक्ष के माध्यम से होती है। नगर कि किसी भी प्रकार कि गतिविधि हो या कोई भी सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा कार्य नगरपालिका के माध्यम से ही होता है। नगर में मकान का कार्य हो या किसी चल अचल संपत्ति से संबंधित कार्य हो लीज पट्टा नजूल आबादी इससे जुड़े हुए सारे आवश्यक कार्य नगरपालिका के अंतर्गत आते हैं। और वह उसका संचालन करती है। व्यवस्थाओं में नगर में जल व्यवस्था स्वच्छता बिजली पहुंचाना और समस्त नगर की देखभाल करना नगरपालिका और नगरपालिका अध्यक्ष की जिम्मेदारी होती है। शहर में लोगों की आम व्यवस्थाएं चाहे वह किसी भी शासकीय अशासकीय संपत्ति रोजमर्रा की जीवन यापन से जुड़ी समस्याएं व्यवस्थाएं नगरपालिका ही संपन्न कराती है। जिसका सर्वेसर्वा नगरपालिका अध्यक्ष होता है। जिसे इससे जुड़ी सभी शक्तियां प्राप्त होती हैं।

नई नगरपालिकाओं का गठन

नगर विकास एवं आवास विभाग द्वारा राज्य में नये नगरपालिकाओं के गठन और उसके उत्क्रमण की कार्रवाई की जा रही है। इससे राज्य में नगर निगमों, नगर परिषदों और नगर पंचायतों की संख्या में वृद्धि हो जायेगी। नगरपालिका आम निर्वाचन 2017 के पहले नगर निगमों की संख्या 11, नगर परिषदों की संख्या 42 और नगर पंचायतों की संख्या 87 थी। नये नगर पंचायतों के गठन के बाद इनकी संख्या बढ़ेगी तो कई नगर पंचायतों के उत्क्रमण कर नगर परिषद बनाने से परिषद की संख्या में सबसे अधिक वृद्धि हो जायेगी। राज्य में नगर निगम की संख्या में एक की बढ़ोत्तरी हुई है। नगर विकास एवं आवास विभाग द्वारा छपरा को अब नगर निगम का दर्जा दे दिया गया है। छपरा के नगर निगम क्षेत्र होने से राज्य में नगर निगमों की कुल संख्या अब 12 हो गयी है। इसी तरह से सरकार द्वारा कई नगर पंचायतों को नगर परिषद बनाने की घोषणा की गयी है।

कुछ का पुनर्गठन कर उनको नगर परिषद करने की प्रक्रिया की जा रही है।

निष्कर्ष

नगर निगम निगम और नगर पालिकायें पूरी तरह से प्रतिनिधि निकाय हैं, जबकि अधिसूचित क्षेत्र समितियां और शहर क्षेत्र समितियां या तो पूरी तरह या आंशिक रूप से निकाय हैं। बिहार में जितने भी म्युनिसिपल हैं, उनके पास कोई पॉवर नहीं है।

नगर विकास एवं आवास विभाग द्वारा राज्य में नये नगरपालिकाओं के गठन और उसके उत्क्रमण की कार्रवाई की जा रही है। इससे राज्य में नगर निगमों, नगर परिषदों और नगर पंचायतों की संख्या में वृद्धि हो जायेगी।

सन्दर्भ

- "Nagrika - What is a Municipal Act?". Nagrika. Retrieved 8 October 2020.
- *"Nagrika - The Constitution and the 74th Constitutional Amendment Act". Nagrika. Retrieved 24 August 2020.*
- *"Good municipal governance key to improve quality of life | Pune News - Times of India". The Times of India. Retrieved 19 December 2019.*
- *Singh, Vijandra (2003). "Chapter 5: Panchayati Raj and Gandhi". Panchayati Raj and Village Development: Volume 3, Perspectives on Panchayati Raj Administration. Studies in public administration. New Delhi: Sarup & Sons. pp. 84–90. ISBN 978-81-7625-392-5.*

महावीर चरित : एक काव्य शास्त्रीय समीक्षा

डॉ० अंजलि सहाय

(शिक्षिका) होली मिशन सीनिअर सेकेंडरी स्कूल, पटना (बिहार)

सारांश

महावीरचरितम् भवभूति द्वारा रचित संस्कृत नाटक है जिसमें राम के पूर्वार्ध जीवन का वर्णन है। संस्कृत के नाटककारों में कालिदास की बराबरी करने की क्षमता भवभूति में ही दिखाई देती है। वाल्मीकि के पश्चात करुण रस को मानवीय करुणा को साहित्य और समाज के सोच के केन्द्र में प्रतिष्ठित कर देने वाले संभवत: भवभूति हैं। कवि ने इस नाटक के माध्यम से राजा का वह आदर्श रूप प्रस्तुत किया है जो स्वार्थ और त्याग की मूर्ति है तथा प्रजारंजन ही जिसका प्रधान धर्म है। प्रजा सुख के लिये प्राणप्रिया पत्नी का भी त्याग करने में जिसे कोई हिचक नहीं है।

परिचय

उत्तररामचरितम् महाकवि भवभूति का प्रसिद्ध संस्कृत नाटक है, जिसके सात अंकों में राम के उत्तर जीवन की कथा है। भवभूति एक सफल नाटककार हैं। उत्तररामचरितम् में उन्होने ऐसे नायक से संबंधित इतिवृत्त का चयन किया है जो भारतीय संस्कृति की आत्मा है। इस कथानक का आकर्षण भारत के साथ साथ विदेशी जनमानस में भी सदा से रहा है और रहेगा। अपनी लेखनी चातुर्य से कवि ने राम के पत्नी परित्याग रूपी चरित्र के दोष को सदा के लिये दूर करदिया। साथ ही सीता को वनवास देने वाले राम का रुदन दिखाकर कवि ने सीता के अपमानित तथा दु:ख भरे हृदय को बहुत शान्त किया हैं। साहित्य शास्त्र में जहाँ नाटकों में श्रृंगार अथवा वीर रस की प्रधानता का विधान है वही भवभूति ने उसके विपरीत करुण रस प्रधान नाटक लिखकर नाट्यजगत में एक अपूर्व क्रान्ति ला दी। भवभूति तो यहाँ तक कहते हैं कि करुण ही एकमात्र रस है। वही करुण निमित्त भेद से अन्य रूपों में व्यक्त हुआ है। विवाह से पूर्व नायक नायिका का श्रृंगार वर्णन तो प्राय: सभी कवियों ने सफलता के साथ किया है परन्तु भवभूति ने दाम्पत्य प्रेम का जैसा उज्जवल एवं विशद चित्र खींचा है वैसा अन्यत्र दुलर्भ है।

सात अंकों में निबद्ध उत्तररामचरितम भवभूति की सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति है। इसमें रामराज्यमिषेक के पश्चात् जीवन का लोकोत्तर चरित वर्णित है जो महावीरचरित का ही उत्तर भाग माना जाता है।। संस्कृत नाट्यसाहित्य में मर्यादापुरषोत्तम श्री रामचन्द्र के पावन चरित्र से सम्बद्ध अनेक नाटक है किन्तु उनमें भवभूति का उत्तरराम चरितम् अपना एक अलग ही वैशिष्ट्य रखता है। काव्य शास्त्र में जहाँ नाटकों में श्रृंगार अथवा वीर रस की प्रधानता का विधान है वहीं भवभूति ने उसके विपरीत करुण रस प्रधान नाटक रचकर नाट्यजगत में एक अपूर्व क्रान्तिला दी है। उत्तररामचरितम् में प्रेम का जैसा शुद्ध रूप देखने को मिलता है वैसा अन्य कवियों की कृत्तियों में दुर्लभ है। कवि ने इस नाटक के माध्यम से राजा का वह आदर्श रूप प्रस्तुत किया है जो स्वार्थ और त्याग की मूर्ति है तथा प्रजारंजन ही जिसका प्रधान धर्म है। प्रजा सुख के लिये प्राणप्रिया पत्नी का भी त्याग करने में जिसे कोई हिचक नहीं है। इस नाटक में प्रकृति के कोमल तथा मधुर रूप के वर्णन की अपेक्षा उसके गम्भीर तथा विकट रूप का अधिक वर्णन हुआ है जो अद्वितीय एवं श्लाघनीय हैं। वास्तव में यह नाटक अन्य नाटकों की तुलना में निराला ही है। इसी कारण संस्कृत नाट्य जगत में इसका विशेष

स्थान है। सार रूप में यही कहा जा सकता है कि विश्वास की महिमा में, प्रेम की पवित्रता में, भावनाओं की तरंगक्रीड़ा में, भाषा के गम्भीर्य में और हृदय के माहात्म्य में उत्तररामचरितम् श्रेष्ठ एवं अतुलनीय नाटक है।

कथा

जनापवाद के कारण राम न चाहते हुए भी सीता का परित्याग कर देते हैं। सीतात्याग के बाद विरही राम की दशा का तृतीय अंक में करुण चित्र प्रस्तुत किया गया है, जो काव्य की दृष्टि से इस नाटक की जान है। भवभूति ने इस दृश्यकाव्य में दांपत्य प्रणय के आदर्श रूप को अंकित किया है। कोमल एवं कठोर भावों की रुचिर व्यंजना, रमणीय और भयावह प्रकृति चित्रों का कुशल अंकन इस नाटक की विशेषताएँ हैं। उत्तररामचरित में नाटकीय व्यापार की गतिमत्ता अवश्य शिथिल है और यह कृति नाटकत्व की अपेक्षा काव्यतत्व और गीति नाट्यत्व की अधिक परिचायक है। भवभूति की भावुकता और पांडित्यपूर्ण शैली का चरम परिपाक इस कृति में पूर्णत: लक्षित होता है।

टीकाएँ

उत्तररामचरित पर अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं जिनमें घनश्याम, वीरराघव, नारायण और रामचंद्र बुधेंद्र की टीकाएँ प्रसिद्ध हैं। इसके अनेक भारतीय संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अधिक प्रचलित निर्णयसागर संस्करण है, जिसका प्रथम संस्करण सन् 1899 में मुंबई से प्रकाशित हुआ था। इसके और भी अनेक संपादन निकल चुके हैं। इनमें प्रसिद्ध संस्करण ये हैं : सी.एच. टॉनी द्वारा अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित (कलकत्ता, 1871), फ्रेंच अनुवाद सहित फेलीनेव द्वारा ब्रूसेल्स तथा पॉरिस से 1880 में प्रकाशित, डॉ. बेलवलकर द्वारा केवल अंग्रेजी अनुवाद तथा भूमिका के रूप में हॉर्वर्ड ओरिएंटल् सीरीज में संपादित (1915 ई.)।

दया और करुणा

सन् 738 में श्री भवभूति रचित महावीर चरित में एक प्रसंग है। महावीर चरित एक रामायण है जो मुनि भवभूति ने लिखा था अपनी सिद्धियों के माध्यम से भूतकाल में प्रवेश कर के। उसमें बताया है; राम जब बड़े ही हुए थे तब असुरों का आक्रमण बढ़ गया था जंगलों में तब ताड़का का बड़ा प्रकोप था। वह बड़ी मायावी थी। ताड़का अपने दोनो पुत्रों मारीच और सुबाहु कि सहायता से आतंक फैला रही थी। राम जी का अयोध्या में जन्मदिन का उत्सव चल रहा था तभी एक मनुष्य जंगल से भागते हुए आता है और बताता है राम को कि कैसे मारीच और सुबाहु ने कई लोगों की हत्या कर दी और कई लोगों को बंदी बना लिया। वह सहायता मांगने आया था। तब महाराज एवम् अपने पिता दशरथ की आज्ञा ले कर राम और लक्ष्मण दोनो बंदी मनुष्यो को छुड़ाने के लिए जंगल में जाते है और छुड़ा कर वापस आते है। तब दशरथ जी ने महर्षि वशिष्ठ से आज्ञा ले कर अश्वमेघ यज्ञ की इच्छा जताई। किन्तु राम जी उदास हो गए यह बात जानकर! किन्तु पिता की इच्छा थी तो बोले कुछ नहीं पर अपने गुरु से बात की। तब वशिष्ठ जी ने पूछा, "पुत्र राम, क्या बात है और तुम इतने निराश क्यो दिख रहे हो?" राम ने उत्तर दिया, "गुरुदेव, अश्वमेघ यज्ञ में तो अश्व कि बली दी जाती है तो क्या यह उचित है?" तब मुनि ने समझाते हुए बोला, "राम, यह एक प्रथा है। और यह बली एक प्रतीक है जब अश्व सभी जगह अपना और अपने अयोध्या का वर्चस्व स्थापित कर के जब वापस आएगा तब राजा उस अश्व की बलि दे कर अपने अहंकार की ही बली देता है।"

राम जी को तब भी संतुष्टि नहीं हुई। बोले, "गुरुदेव, बली दे कर तो राजा स्वयं अहंकार हो तो प्रदर्शित करता है। यह प्रथा भाग होनी आवश्यक है।" तब गुरु ने समझाया कि वह इतना सरण नहीं होता किसी भी प्रथा को बदलने के लिए योग्य तर्क होने चाहिए। तब राम जी ने स्वर्ण का एक अश्व बनवाया। जब वह अश्व सभी प्रांत घूम कर वापस आया तो बली के स्थान पर जब स्वर्ण के अश्व को रखा तो सभी लोगो में हड़कंप मच गया। तब राम जी ने बताया, "मै जैसा कहूं वहीं होना चाहिए यह नहीं कह रहा किन्तु अगर मेरी बात आप लोगो को सही लगे तो मेरे पक्ष में बोलना। कोई भी यज्ञ हो पर किसी भी शास्त्र में हिंसा की छूट नहीं है। यह अश्व जो हमारे सम्मान के लिए साल भर दौड़ता रहा और हम उस पारितोषिक देने के बजाय बली दे रहे है? यह कैसा न्याय है? कोई भी पूर्ण हो शास्त्र हो किसी में भी यह नहीं बताया गया कि किसी की भी बली दी जाए! अहिंसा परमो धर्म यही सिखाया गया है। अगर हम इस अश्व की बलि देते है तो यह इसके साथ अन्याय होगा। हम लोग शास्त्र के गूढ़ अर्थ को ना समझ

कर गलत मार्ग प्रशस्त करते है जो कि गलत है। इस स्वर्ण के अश्व की प्रतीकात्मक बली दे कर इस स्वर्ण से सभी लोगो का कल्याण हो इससे ईश्वर प्रसन्न रहते है।"

निष्कर्ष

भवभूति अपने युग एक कुशल कल्पनाकार, समाजशिल्पी, प्रयोगधर्मी रंगकर्मी एवं उत्कृष्ट नाटककार हैं। अपने समय के एक क्रान्तधर्मी युगदृष्टा की तरह उन्होंने एक सम्पूर्ण युग जिया। राजाश्रय परम्परा में उनका विश्वास न था, उन्होंने अपने नाटकों का सृजन एवं उनका मंचन जनता के बीच शुरू किया। जनहृदय के साथ अपनी पीड़ा का तादात्म्य स्थापित कर उन्होंने करुणरस को जो ऊँचाईयाँ प्रदान की, उसकी अनुकृति साहित्य-जगत् में अन्यत्र कम ही देखने को मिलती है।

सार्ववर्णिक वेद नाटक को भवभूति सर्वसंवेदना सहानुभूति से करुण बनाते हुए भावात्मक एवं शिल्प शैली के स्तर पर भी नई पम्परा का प्रवर्तन करते हैं। लव और चन्द्रकेतु के बीच अश्वमेघ के घोड़े को रोक लेने के कारण जो संवाद हैं, वह सामंती व्यवस्था पर कड़ा प्रहार है।

सन्दर्भ

- *Mirashi, V. V. (1996). "The Mahavira-charita". Bhavabhûti. Motilal Banarsidass Publishers. ISBN 81-208-1180-1.*
- "Mahavira Charita". Dictionary Of Indology. Pustak Mahal. 2009. p. 134.
- Bhatt, C.Panduranga (1997). "Uttararamacharita". In George, K. M. (ed.). Masterpieces of Indian Literature. **2**. New Delhi: National Book Trust. p. 1227–1229. ISBN 81-237-1978-7.
- Sankalia, H.D., Kundamala and Uttararâmacarita. St. Xavier's College Magazine: 22: 63 - 76. (1930)

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन पर समाजवादी विचारों का प्रभाव : "गाँधी, नेहरु, जे.पी., कृपलानी एवं लोहिया के विशेष सन्दर्भ में (1921-1947)

डॉ० अलका सहाय

(शिक्षिका) राजकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, छपरा (बिहार)

सारांश

आदिकालीन साम्यवादी समाज में मनुष्य पारस्परिक सहयोग द्वारा आवश्यक चीजों की प्राप्ति और प्रत्येक सदस्य के आवश्यकतानुसार उनका आपस में बँटवारा करते थे। परंतु यह साम्यवाद प्राकृतिक था; मनुष्य की सचेत कल्पना पर आधारित नहीं था। समाजवाद की राजनीतिक विचारधारा उन्नीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशकों के दौरान इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनी जैसे युरोपीय देशों में लोकप्रिय होने लगी थी। भारत में समाजवाद औपनिवेशिक ब्रिटिश राज के खिलाफ व्यापक भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक हिस्से के रूप में, 20 वीं शताब्दी के आरंभ में स्थापित एक राजनीतिक आंदोलन है। यह तेजी से लोकप्रियता में बढ़ गया क्योंकि यह भारत के किसानों और मजदूरों के कारणों को जमीनदारों, रियासतों और उतरा सज्जनों के खिलाफ प्रेरित करता था। समाजवाद ने स्वतंत्रता के बाद 1990 के दशक तक स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार की सिद्धांतिक आर्थिक और सामाजिक नीतियों को आकार दिया, जब भारत एक और बाजार आधारित अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ गया। हालांकि, इसका भारतीय राजनीति पर एक प्रभावशाली प्रभाव बना हुआ है, जिसमें बड़ी संख्या में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीतिक दल लोकतांत्रिक समाजवाद का समर्थन करते हैं।

परिचय

भारतीय समाजवादी विचारधारा के अनुसार नि:स्वार्थ सेवा, त्याग और आध्यात्मिक प्रवृत्ति - इनमें शोषक और शोषित के लिए कोई स्थान नहीं। यदि किसी के पास कोई संपत्ति है तो वह समाज की धरोहर मात्र है, देखा जाये तो इसके अनुसार सभी लोग एक समान स्थिति में होने चाहिए। सबके लिए समानता। किन्तु इस स्थिति में जब कि सभी एक समान हैं कोई भी व्यक्ति किसी भी कार्य को करना ही नहीं चाहेगा और समाज में अराजकता फैल जाएगी, अत: यह विचारधारा एक विचारधारा के रूप में ही ठीक हो सकती है।

औपनिवेशिक स्वाधीनता आंदोलन के संबंध में मानवेंद्रनाथ राय के अपने विचार थे। उनका मत था कि भावी समाजवादी क्रांति में औपनिवेशिक क्रांतियों का प्रमुख स्थान होगा। चीनी साम्यवादियों का भी आज यही मत है, परंतु सोवियत विचारकों ने इसको कभी स्वीकार नहीं किया। राय की यह भी धारणा थी कि औपनिवेशिक पूँजीवाद ने साम्राज्यशाही से गठबंधन कर लिया है अत: वह प्रतिक्रियावादी है और क्रांतिकारी दल उसके साथ संयुक्त मोर्चा नहीं बना सकते। यद्यपि साम्यवादी अंतरराष्ट्रीय ने इस विचार को भी स्वीकार नहीं किया, तथापि भारतीय साम्यवादियों ने अधिकांशत: इस नीति का अनुसरण किया और बहुधा राष्ट्रीय कांग्रेस से अलग रहे।

बोल्शेविक क्रांति के बाद शीघ्र ही भारत के बड़े नगरों में साम्यवादियों के स्वतंत्र संगठन बने, एक किसान मजदूर पार्टी की स्थापना हुई और सन् 1924 तक एक अखिल भारतीय साम्यवादी दल का संगठन भी हुआ, परंतु यह दल शीघ्र ही अवैध घोषित कर दिया गया। इसके बाद सन् 1936 से इसकी शक्ति बढ़ी और इस समय यह भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों में से है। दूसरा समाजवादी दल कांग्रेस समाजवादी पार्टी थी। इसकी स्थापना सन् 1934 में हुई।

गाँधी

भारतवर्ष में आधुनिक काल के प्रथम प्रमुख समाजवादी महात्मा गांधी हैं, परंतु उनका समाजवाद एक विशेष प्रकार का है। गांधी जी के विचारों पर हिंदू, जैन, ईसाई आदि धर्म और रस्किन, टाल्सटाय और थोरो जैसे दार्शनिकों का प्रभाव स्पष्ट है। वे औद्योगीकरण के विरोधी थे क्योंकि वे उसको आर्थिक समानता, शोषण, बेकारी, राजनीतिक तानाशाही आदि का कारण समझते थे। मोक्षप्राप्ति के इच्छुक महात्मा गांधी इंद्रियों और इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर त्याग द्वारा एक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता स्थापित करना चाहते थे जो हो न सका। प्राचीन भारत के स्वतंत्र और स्वपर्याप्त ग्रामीण गणराज्य गांधी जी के आदर्श थे। ध्येय की प्राप्ति के लिए गांधी जी नैतिक साधनों - सत्य, अंहिसा, सत्याग्रह - पर जोर देते हैं हिंसात्मक क्रांति पर नहीं। गाँधी जी प्रेम द्वारा शत्रु का हृदयपरिवर्तन करना चाहते थे, हिंसा और द्वेष द्वारा उसका विनाश नहीं। गांधीवाद धार्मिक अराजकतावाद है। इस समय विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण गांधीवाद की व्याख्या और उसका प्रचार कर रहे हैं। उन्होंने श्रम, भू, ग्राम, संपत्ति आदि के दान द्वारा अहिंसात्मक ढंग से समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का प्रयत्न किया है।

नेहरु का समाजवाद

उच्चकोटी के विचारक तथा लोकतांत्रिक समाजवाद के समर्थक जवाहरलाल नेहरु महान मानवतावादी थे। नेहरु जी समाजवादी समाज के प्रबल समर्थक थे, वे लोकतंत्र को एक शासन प्रणाली ही नही अपितु जीवन पद्धति मानते थे। राष्ट्रीय आनंदोलन के दौरान ही नेहरु जी ने बार-बार कहा था कि स्वतंत्र भारत लोकतांत्रिक भारत होगा। वे संसदीय लोकतंत्र को अधिक महत्व देते थे तथा आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र में विश्वास रखते थे। नेहरु जी के अनुसार, "शासन के अन्य प्रकारों की तुलना में लोकतंत्र जनता से अधिक उच्च प्रतिमानों की अपेक्षा करता है। यदि जनता उस मापदण्ड तक नही पहुँच पाई तो लोकतांत्रिक यन्त्र असफल हो जायेगा।"

एक राजनीतिक विचारक के रूप में श्री नेहरु जी के तीन मुख्य आदर्श थे- लेकतंत्र, समाजवाद और धर्म-निरपेक्षता। संविधान सभा के महत्वपूर्ण सदस्य के नाते नेहरु जी ने इस बात का आग्रह किया था कि, भारतीय संविधान द्वारा इस देश में धर्म-निरपेक्ष सरकार की स्थापना की जाये।

जे.पी.

जयप्रकाश नारायण (संक्षेप में जेपी) भारतीय स्वतंत्रता सेनानी और राजनेता थे। 1948 में उन्होंने कांग्रेस के समाजवादी दल का नेतृत्व किया और बाद में गांधीवादी दल के साथ मिलकर समाजवादी सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की। 19 अप्रील, 1954 में गया, बिहार में उन्होंने विनोबा भावे के सर्वोदय आन्दोलन के लिए जीवन समर्पित करने की घोषणा की।

लोकनायक जयप्रकाश नारायण एक राजनीतिक दार्शनिक की अपेक्षा एक सामाजिक दार्शनिक अधिक थे। उन्होंने जीवन भर साधारण जनता के कल्याण के लिए अपना सघर्ष किया।

अपने अमेरिकी प्रवास के दौरान जयप्रकाश नारायण ने लेनिन तथा मार्क्स के साम्यवादी साहित्य का अध्ययन किया और भारत आने पर उनकी सोच मार्क्सवादी बन गई। उन्होंने 1936 में 'Why Sociaism' पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक के माध्यम से उन्होंने समाजवाद की भारतीय सन्दर्भ में व्याख्या की तथा भारत में इसकी उपयोगिता पर बल दिया। उन्होंने समाजवाद को लोकप्रिय बनाने के लिए जीवनभर संघर्ष किया। उनका मानना था कि आर्थिक असमानता और उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व ही सब समस्याओं की जड़ है। यदि ये साधन प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध करा दिए जाएं तो वर्तमान आर्थिक विषमताएं स्वत: ही समाप्त हो जाएंगी। उन्होंने समाजवादी समाज की स्थापना पर अपनी पुस्तक 'Why Socialism' में विस्तारपूर्वक वर्णन किया और उद्योग

एवं कृषि के क्षेत्र में उन उपायों का सुझाव दिया, जिनसे उत्पादन के साधनों का पुनः वितरण कर आर्थिक समानता स्थापित की जा सके। उनका विचार था कि उद्योगों के राष्ट्रीयकरण मात्र से ही समाजवाद की स्थापना सम्भव नहीं है। इससे नौकरशाही के हाथ मजबूत होते हैं तथा केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति बढ़ती है। इसी तरह बड़े स्तर के उद्योग की आर्थिक विषमता को बढ़ावा देते हैं, कम नहीं करते। इसलिए उन्होंने विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया और छोटे-छोटे उद्योगों की आर्थिक विषमता दूर करने में सहायक बताया, उन्होंने कृषि के क्षेत्र में भी समाजवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए बताया कि भूमि का स्वामित्व जोतने वालों के हाथ में में हो, जमींदारी प्रथा को समाप्त किया जाए तथा सहकारी कृषि को बढ़ावा दिया जाए। इसके अतिरिक्त सहकारी ऋण तथा बाजार व्यवस्था आदि के माध्यम से किसानों को साहूकारों व व्यापारियों के शोषण से मुक्त किया जाए।

इस तरह उन्होंने कृषि तथा उद्योग दोनों में ही उत्पादन के साधनों के विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। उन्होंने कृषि उद्योगों के समाजीकरण के लिए नैतिक व लोकतांत्रिक साधनों का सुझाव दिया।

कृपलानी

जीवटराम भगवानदास कृपलानी (11 नवम्बर 1888 - 19 मार्च 1982) भारत के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, गांधीवादी समाजवादी, पर्यावरणवादी तथा राजनेता थे।

उन्हें सम्मान से आचार्य कृपलानी कहा जाता था। वे सन् 1947 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष रहे जब भारत को आजादी मिली। जब भावी प्रधानमंत्री के लिये कांग्रेस में मतदान हुआ तो तो सरदार पटेल के बाद सबसे अधिक मत उनको ही मिले थे। किन्तु गांधीजी के कहने पर सरदार पटेल और आचार्य कृपलानी ने अपना नाम वापस ले लिया और जवाहर लाल नेहरू को प्रधानमंत्री बनाया गया।

1951 में उन्होंने कांग्रेस को अपना इस्तीफा प्रवृत कर दिया तथा अन्य लोगों के सहयोग से किसान मजदूर प्रजा पार्टी बनायी। यह दल आगे चलकर प्रजा समाजवादी पार्टी में विलीन हो गया। उन्होंने श्विजिल' नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया था। वे सन १९५२, १९५७, १९६३ और १९६७ में प्रजा सोसलिस्ट पार्टी से लोकसभा चुनाव जीते। अपना बाद का जीवन उन्होने सामाजिक एवं पर्यावरण के हित के लिए लगाया। चुनावी राजनीति में बने रहते हुए भी वे धीरे-धीरे समाजवादियों के श्आध्यात्मिक नेता' जैसे बन गए। विशेष रूप से वे और विनोबा भावे, श्गांधीवादी धड़े' के नेता माने जाते थे। विनोबा के साथ-साथ आचार्य कृपलानी भी १९७० के दशक के अन्त तक पर्यावरण एवं अन्य संरक्षणों में लगे रहे।

लोहिया का समाजवादी आन्दोलन

लोहिया के समाजवादी आंदोलन की संकल्पना के मूल में अनिवार्यतः विचार और कर्म की उभय उपस्थिति थी- जिसके मूर्तिमंत स्वरूप स्वयं डॉ. लोहिया थे और आजन्म उन्होंने 'कर्म और विचार' की इस संयुक्ति को अपने आचरण से जीवन्त उदाहरण भी प्रस्तत किया।

अंग्रेजों के खिलाफ भारत के स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने वाले तमाम व्यक्तित्वों की भांति लोहिया प्रभावित भी थे। वे जेल भी गए और ऐसी यातनाएं भी सहीं। आजादी से पूर्व ही कांग्रेस के भीतर उनका सोशलिस्ट ग्रुप था, लेकिन पंद्रह अगस्त सैंतालिस को अंग्रेजों से मुक्ति पाने पर वे उल्लसित तो थे लेकिन विभाजन की कीमत पर पाई गई इस स्वतंत्रता के कारण नेहरू और नेहरू की कांग्रेस से उनका रास्ता हमेशा के लिए अलग हो गया। स्वतंत्रता के नाम पर सत्ता की लिप्सा का यह खुला खेल लोहिया ने अपनी नंगी आंखों से देखा था और इसीलिए स्वतंत्रता के बाद की कांग्रेस पार्टी और कांग्रेसियों के प्रति उनमें इतना रोष और क्षोभ था कि उन्हें धुर दक्षिणपंथी और वामपंथियों दोनों को साथ लेना भी उन्हें बेहतर विकल्प ही प्रतीत हुआ।

देश में गैर-कांग्रेसवाद की अलख जगाने वाले महान स्वतंत्रता सेनानी और समाजवादी नेता राम मनोहर लोहिया चाहते थे कि दुनियाभर के सोशलिस्ट एकजुट होकर मजबूत मंच बनाए। लोहिया भारतीय राजनीति में गैर कांग्रेसवाद के शिल्पी थे और उनके अथक प्रयासों का फल था कि 1967 में कई राज्यों में कांग्रेस की पराजय हुई, हालांकि केंद्र में कांग्रेस जैसे-तैसे सत्ता पर काबिज हो पायी। हालांकि लोहिया 1967 में ही चल बसे लेकिन उन्होंने गैर कांग्रेसवाद की जो विचारधारा चलायी उसी की वजह से आगे चलकर 1977 में पहली बार केंद्र में गैर कांग्रेसी सरकारी बनी। लोहिया मानते थे कि अधिक समय तक सत्ता में रहकर कांग्रेस अधिनायकवादी हो गयी थी और वह उसके खिलाफ संघर्ष करते रहे।

लोहिया अनेक सिद्धान्तों, कार्यक्रमों और क्रांतियों के जनक हैं। वे सभी अन्यायों के विरुद्ध एक साथ जेहाद बोलने के पक्षपाती थे। उन्होंने एक साथ सात क्रांतियों का आह्वान किया।

वे सात क्रान्तियां थी ये थीं-

(१) नर-नारी की समानता के लिए क्रान्ति,

(२) चमड़ी के रंग पर रची राजकीय, आर्थिक और दिमागी असमानता के खिलाफ क्रान्ति,

(३) संस्कारगत, जन्मजात जातिप्रथा के खिलाफ और पिछड़ों को विशेष अवसर के लिए क्रान्ति,

(४) परदेसी गुलामी के खिलाफ और स्वतन्त्रता तथा विश्व लोक-राज के लिए क्रान्ति,

(५) निजी पूँजी की विषमताओं के खिलाफ और आर्थिक समानता के लिए तथा योजना द्वारा पैदावार बढ़ाने के लिए क्रान्ति,

(६) निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ और लोकतंत्री पद्धति के लिए क्रान्ति,

(७) अस्त्र-शस्त्र के खिलाफ और सत्याग्रह के लिये क्रान्ति।

निष्कर्ष

समाजवाद (Socialism) एक आर्थिक-सामाजिक दर्शन है। समाजवादी व्यवस्था में धन-सम्पत्ति का स्वामित्व और वितरण समाज के नियन्त्रण के अधीन रहते हैं। आर्थिक, सामाजिक और वैचारिक प्रत्यय के तौर पर समाजवाद निजी सम्पत्ति पर आधारित अधिकारों का विरोध करता है।

1947 में भारत की आजादी के बाद प्रधान मंत्री नेहरू और इंदिरा गांधी के तहत भारत सरकार ने भूमि सुधार और प्रमुख उद्योगों और बैंकिंग क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण पर नजर डाली। स्वतंत्र रूप से, कार्यकर्ता विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण ने सर्वोदय आंदोलन के तहत शांतिपूर्ण भूमि पुनर्वितरण के लिए काम किया, जहां मकान मालिकों ने कृषि मजदूरों को अपनी स्वतंत्र इच्छा से जमीन प्रदान की।

1980 और 1990 के उत्तरार्ध में, भारत की सरकार ने विदेशी निवेश को आकर्षित करने के उद्देश्य से निजीकरण का पीछा करके भारतीय अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित रूप से उदार बनाना शुरू कर दिया। फिर भी, कांग्रेस पार्टी कुछ समाजवादी कारणों का पालन करती रही है, और कम्युनिस्टों और कई अन्य प्रमुख दलों जैसे खुले तौर पर समाजवाद का समर्थन करते हैं।

सन्दर्भ

- गोयल, एसआर (1955)। नेताजी और सीपीआई। कलकत्ता: सोसाइटी फॉर डिफेंस ऑफ डिफेंस इन एशिया।
- स्वरुप, राम (1954)। साम्यवाद और किसान: एशियाई देशों के लिए सामूहिक कृषि के प्रभाव। कलकत्ता: प्राची प्रकाशन।
- स्वरुप, राम (1955)। गांधीवाद और साम्यवाद: सिद्धांत और तकनीक। नई दिल्ली: जे प्रकाशन।
- *Dr. Ram Manohar Lohia, his Life and Philosophy*, by Indumati Kelkar. Published for Samajwadi Sahitya Sansthan, Delhi by Anamika Publishers & Distributors (2009) ISBN 978-81-7975-286-9

बिहार के रोहतास जिले का आर्थिक और भौगोलिक अध्ययन

डॉ० मुकेश कुमार

पूर्व शोध छात्र, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

सारांश

रोहतास जिला बिहार के ३८ जिलों में से एक है। रोहतास जिला का गठन १९७२ में शाहाबाद जिले के विघटन के उपरांत हुआ। इसका मुख्यालय सासाराम है। इस जिले में ३ अनुमंडल हैं। जिनमे सासाराम, डेहरी-ऑन-सोन और बिक्रमगंज हैं। रोहतास जिला पटना प्रमंडल का हिस्सा है। इसका छेत्रफल ३८५० वर्ग किलोमीटर में है। प्रमुख फसल धान, गेहूं और दाल एवं उद्योग सीमेंट, पत्थर खनन इत्यादी हैं।

सन 2011 की जनगणना के समय बिहार का रोहतास जिला, सर्वाधिक साक्षरता दर वाला जिला था। उस समय रोहतास जिले की साक्षरता दर 73.37% थी।

परिचय

रोहतास जिला भारत के बिहार राज्य का एक जिला है। जिले का मुख्यालय सासाराम है। जिले में तीन अनुमंडल हैं, जिनमें डेहरी आन सोन, बिक्रमगंज और सासाराम है। रोहतास जिला पटना डिवीजन का एक हिस्सा है और यह ३८५० वर्ग किलोमीटर का एक क्षेत्र है, २४,४८, ७६२ (२००१ जनगणना) की आबादी और किमी प्रति ६३६ व्यक्तियों की आबादी के घनत्व। इस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा भोजपुरी है। जिले के प्रशासनिक मुख्यालय, सासाराम ऐतिहासिक महत्व की एक जगह है। राष्ट्रीय गौरव का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रतीक सोन पुल, सोन नदी के ऊपर बना हुआ है वहाँ दो समानांतर पुलों, सड़क के लिए एक और रेलवे के लिए एक और कर रहे हैं। सड़क पुल (जवाहर सेतु १९६३-६५ में गैमन इंडिया द्वारा निर्मित) सोन पर लंबे समय तक एशिया में (३०६१ मी) था जब तक यह पटना में गंगा नदी के ऊपर महात्मा गांधी सेतु (5475 मीटर) द्वारा को पार कर गया था। रेलवे पुल अभी भी सबसे लंबे समय तक एशिया में रेलवे पुल है।

इतिहास

रोहतास एक जिले का नहीं, एक इतिहास का नाम है, जो बिहार में आर्यो के प्रसार के साथ बढ़ा। सतयुगी सूर्यवंसी राजा सत्यहरिश्चंद्र के पुत्र रोहिताश्व द्वारा स्थापित रोहतासगढ़ के नाम पर इस क्षेत्र का नामकरण रोहतास हुआ। प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड ने लिखा है कि रोहतास कघिला का निर्माण कुशवंशी (कुशवाहा) लोगों ने करवाया है। 1582 ई. यानि मुगल बादशाह अकबर के समय रोहतास, सासाराम, चौनपुर सहित सोन के दक्षिण-पूर्वी भाग के परगनों- जपला, बेलौंजा, सिरिस और कुटुंबा शामिल थे। 1784 ई. में तीन परगनों- रोहतास, सासाराम और चौनपुर को मिलाकर रोहतास जिला बना और फिर 1787 ई. में यह जिला शाहाबाद जिले का अंग हो गया। 10 नवम्बर 1972 को शाहाबाद से अलग होकर रोहतास जिला पुनः अस्तित्व में आ गया। अंग्रेजों के जमाने में यह क्षेत्र पुरातात्विक महत्व का रहा। 1861 ई. में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना के साथ अलेक्जेंडर कनिंघम पुरातात्विक सर्वेयर नियुक्त हुए। उन्होंने गया जिले से लेकर पश्चिम में सिंध तक के पुरास्थलों का सर्वे किया इस क्रम में रोहतास भी अछूता

न था बाद में 1871 ई. में कनिंघम को भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण का महानिदेशक नियुक्त किया गया तो उसी समय 1882 ई. में सासाराम स्थित शेरशाह रौजे का जीर्णोद्धार हुआ।

रोहतास में रोहतास के किले, मकबरे, मंदिर, और मस्जिदों के अतिरिक्त यहाँ के प्रपात,बराज एवम बांध आदि पर्यटकों को आकर्षित करने के भरपूर संभावना रखते है।

भूगोल

उप प्रभागों: सासाराम, डेहरी, बिक्रमगन्ज

ब्लॉक: नौहट्टा, चेनारी, नासरीगन्ज, रोहतास, नोखा, डेहरी, बिक्रमगन्ज,दावथ, दिनारा, राजपुर, शिवसागर, तिलौथु, करगहर

रोहतास जिले का भौगोलिक स्थिति

बाउंड्री (चौहद्दी)

उत्तर में – बक्सर, भोजपुर और अरवल जिला

दक्षिण में – झारखंड का गढ़वा और पलामू जिला

पूर्व में – औरंगाबाद जिला

पश्चिम में- कैमूर जिला

समुद्र तल से ऊंचाई : 107.78 मीटर

क्षेत्रफल : बक्सर जिले का भौगोलिक क्षेत्रफल 3848 वर्ग किलोमीटर है।

प्रमुख नदियां : सोन और काव

अर्थव्यवस्था- कृषि, उद्योग और उत्पाद

कृषि

इस जिले की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है। जिले में उगाए जाने वाले प्रमुख फसल हैं: धान, गेहूं, मक्का और दाल। रोहतास जिले को बिहार का धान का कटोरा भी कहा जाता है।

उद्योग

जिले में बड़े उद्योगों का अभाव है। सीमेंट, पत्थर माइंस चीनी कागज के मध्यम और लघु उद्योग यहाँ स्थित हैं।

रोहतास आकर्षक स्थल

मां तारा चंडी का मंदिर: मां तारा चंडी मंदिर इस जिले का एक प्रसिद्ध दुर्गा मंदिर है। यह भारत के 52 शक्तिपीठों में से एक है। ऐसी मान्यता है कि यहां पर मां सती की दाहिनी आंख गिरी थी।

गुप्ता धाम: गुप्तेश्वर धाम स्थित शिवलिंग की गिनती बिहार के प्राचीनतम शिवलिंगों में की जाती है। पहाड़ी पर स्थित इस पवित्र गुफा का द्वार 18 फीट चौड़ा एवं 12 फीट ऊंचा है। गुफा में लगभग 363 फीट अंदर जाने पर एक बहुत बड़ा गड्ढ़ा है जिसमें साल भर पानी रहता है। ऐसी मान्यता है कि इस गुफा में जलाभिषेक करने से सारे मान्यताएं पूरी होती है।

शेरशाह सूरी का मकबरा: शेरशाह सूरी का मकबरा जिले का प्रमुख पर्यटन आकर्षण है। यह मकबरा शेरशाह के जीवन काल के साथ-साथ उसके बेटे इस्लाम शाह के शासन काल में बनाया गया था। इसका निर्माण शेर शाह की मृत्यु के 3 महीने बाद 16 अगस्त 1545 में पूरा हुआ। सासाराम में स्थित यह मकबरा कृत्रिम झील के बीच बना हुआ है। यह मकबरा इस्लामी वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना है।

रोहतासगढ़ का किला: रोहतासगढ़ किला कैमूर पर्वत श्रेणी पर, डेहरी से लगभग 40 किलोमीटर दूरी पर दक्षिण में स्थित है। इस किले की गिनती भारत के प्राचीन किलों की जाती है। कहा जाता है कि रोहतास गढ़ शहर की स्थापना महान राजा हरिश्चंद्र के बेटे रोहताश्व ने किया था।

इंद्रपुरी डैमः 1407 मीटर लंबा इंद्रपुरी बराज सोन नदी पर स्थित है। यह दुनिया का चौथा सबसे लंबा बांध है।

कैमूर की पहाड़ीः कैमूर की पहाड़ी प्राकृतिक सुंदरता से भरपूर एक रोमांचक स्थल है। कैमूर की गुफाओं में हजारों वर्ष पुराने शैल चित्र मौजूद हैं।

मझार कुंडः मंझार कुंड झरना रोहतास जिले के मुख्यालय सासाराम के पास स्थित है। इसकी गिनती भारत के बेहतरीन वाटर फॉल्स में की जाती है।

धुआं कुंडः यह झरना मीलों की ऊंचाई से गिर कर नदी में मिल जाता है। यहां पर पानी का प्रभाव काफी तीव्र गति से होता है।

निष्कर्ष

जिले की अर्थवयवस्था कृषि आधारित है। धान, गेहूं और दाल प्रमुख फसलें हैं। रोहतास जिले को बिहार का धन का कटोरा कहा जाता है। जिले में बड़े उद्योंगों का अभाव है। सीमेंट, पत्थर माइंस चीनी कागज के मध्यम और लघु उद्योग यहाँ स्थित हैं। डालमियानगर में रोहतास जिले का औद्योगिक केंद्र है।

सन्दर्भ

- *"Census of India 2011: Bihar District Census Handbook - Rohtas, Part B (Village and Town Wise Primary Census Abstract)". Census 2011 India. p. 13. Retrieved 8 July 2020.*
- *"Economy | District Rohtas, Government of Bihar | India". Retrieved 2020-05-01.*
- *"District Rohtas, Government of Bihar | Rice bowl of Bihar | India". Retrieved 2020-05-01.*

कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व

डॉ० बिमलेश कुमार पाण्डेय

अर्थशास्त्र विभाग, एल.बी.टी. कॉलेज, बक्सर

सारांश

कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी (Corporate Social Responsibility या "CSR") एक प्रकार का अंतरराष्ट्रीय निजी कार्यक्रम है जो स्व-नियमन है। जैसा कि हमें पता है कि कम्पनियाँ किसी उत्पाद को बनाने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करती हैं, प्रदूषण को बढ़ावा देती हैं और अपनी जेबें भरतीं हैं।

इन कंपनियों की उत्पादक गतिविधियों के कारण हुए प्रदूषण की वजह से समाज में रहने वाले लोगों को नुकसान उठाना पड़ता है। उन्हें इन के कारण खराब पानी और हवा का इस्तेमाल करना पड़ता है। इससे कंपनी और कारखानों के आसपास के लोगों को कई तरह की बीमारियों और अन्य परेशानियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन कंपनियां इसके लिए कुछ भी नहीं करती हैं। इस कारण भारत सहित पूरे विश्व में कंपनियों के लिए यह अनिवार्य बना दिया गया है कि, वह अपनी कमाई का कुछ भाग उन लोगों के कल्याण पर लगाए जिन्हें असुविधा हुई है।

परिचय

कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी या कॉर्पोरेट आत्म नियमन, व्यापार मॉडल का एक संशोधित एकीकृत रूप है। यह एक स्व-नियामक तंत्र है जिसके तहत एक व्यापार कानून, नैतिक मानकों और राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय मानदंडों की भावना के साथ अपनी सक्रिय सहभागिता का अनुपालन सुनिश्चित करता है। सीएसआर का उद्देश्य सकारात्मक सार्वजनिक संबंध और उच्च नैतिक मानकों के माध्यम से लंबी अवधि के लाभ तथा शेयरधारक विश्वास बढ़ाने के साथ व्यापार और कानूनी जोखिम को कम करना है। सीएसआर की रणनीतियां, पर्यावरण उपभोक्ताओं, कर्मचारियों, निवेशकों, समुदायों, और अन्य हितधारकों पर सकारात्मक प्रभाव बनाने के लिए कंपनी को प्रोत्साहित करती हैं।

सीएसआर के नजरिए के साथ काम करने से लंबी अवधि के मुनाफे में वृद्धि होती है। भारत में C-S-R- के दायरे में कौन-कौन आता है? भारत में कारपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (Corporate Social Responsibility, CSR) के नियम 1 अप्रैल 2014 को लागू हुए थे। भारत सीएसआर के नियमों के अनुसार जिन कंपनियों की सालाना सालाना नेटवर्थ 500 करोड़ रुपए या सालाना आय 1000 करोड रुपए की या सालाना लाभ 5 करोड़ का हो।

निम्न कंपनियों को सीएसआर पर खर्च करना पड़ता है, जिनकी

- सालाना सालाना नेटवर्थ 500 करोड़ रुपए हो।
- सालाना आमदनी 1000 करोड रुपए हो।
- और सारा नाला 5 करोड रुपए हो।

ऐसी कंपनियों का CSR पर खर्च करना जरूरी होता है। साथ ही यह खर्च कंपनियों के 3 साल के औसत लाभ का कम से कम 2% होना चाहिए। CSR नियमों के अनुसार, सीएसआर के प्रावधान केवल भारतीय कंपनियों पर ही लागू नहीं होते है, बल्कि ये भारत में विदेशी कंपनियों, विदेशी कंपनियों की शाखा और विदेशी कंपनियों के परियोजना कार्यालय के लिए भी लागू होते हैं।

भारत में CSR पर कितना खर्च होता है?

मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार, 2015-16 में सीएसआर गतिविधियों में 9822 करोड रुपए खर्च किए गए थे। यह पिछले वर्ष की तुलना में 11.5% ज्यादा था। साल 2015-16 की रिपोर्ट में 5097 कंपनियां शामिल है। जिसमें से सिर्फ 2690 कंपनियों ने CSR पर खर्च किया था। मैसेज शीर्ष 10 कंपनियों ने 3207 करोड रुपए खर्च किए जो की कुल खर्च का 33% है।

किस क्षेत्र में कितना खर्च हुआ है?

1. स्वास्थ्य एवं चिकित्सा: 3117 करोड रुपए
2. शिक्षा: 3073 करोड रुपए
3. ग्रामीण विकास: 1051 करोड रुपए
4. पर्यावरण: 923 करोड रुपए
5. स्वच्छ भारत कोष: 355 करोड़ रुपए

हाल ही में किए गए एक सर्वे के मुताबिक वर्ष 2016 में भारत की 99% कंपनियों ने सीएसआर नियमों का पालन किया है।

सीएसआर में क्या-क्या गतिविधि की जाती है?

कॉरपोरेट सोशल रेस्पोंसिबिलिटी के अंतर्गत कंपनियों को उन गतिविधियों में हिस्सा लेना पड़ता है, जो समाज के पिछड़े या वंचित वर्ग के लोगों के कल्याण के लिए जरूरी हो।

उदाहरण के लिए,

1. भूख, गरीबी और कुपोषण को खत्म करना।
2. मातृ एवं शिशु का स्वास्थ्य सुधारना।
3. शिक्षा को बढ़ावा देना।
4. स्कूलों में शौचालय का निर्माण करना।
5. पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करना।
6. खेल गतिविधियों को बढ़ावा देना।
7. सशस्त्र बलों के लाभ के लिए उपाय।
8. राष्ट्रीय विरासत का संरक्षण।
9. स्लम क्षेत्र का विकास करना।
10. प्रधानमंत्री की राष्ट्रीय राहत में योगदान करना।

इनके अलावा और भी कई तरीके हैं, जिनमें खर्च करके लोगों की मदद और पर्यावरण प्रदूषण को कम करने की कोशिश की जाती है।

आलोचनाएँ और चिंताएँ

एक निगम के उद्देश्य अपने शेयरधारकों को और न्यायालय के भीतर जो इसे संचालित के नियमों का पालन सामाजिक रूप से जिम्मेदार व्यवहार का गठन किया है कि रिटर्न को अधिकतम है। जबकि कुछ सीएसआर समर्थकों का दावा है कि कंपनियों को सीएसआर अभ्यास, विशेष रूप से विकासशील देशों में कम श्रमिकों और समुदायों, आलोचकों का दावा है कि सीएसआर खुद अप्रत्याशित परिणामों के साथ स्थानीय समुदायों पर बाहर मूल्यों लगाता का फायदा उठाने की संभावना है। बेहतर सरकारी विनियमन और प्रवर्तन, बजाय स्वैच्छिक उपायों कि जनता से चलता निर्णय लेने और संसाधनों के आवंटन निजी निकायों को सीएसआर के लिए एक विकल्प हैं। हालांकि, आलोचकों का दावा है कि प्रभावी सीएसआर स्वैच्छिक अनिवार्य सामाजिक जिम्मेदारी के कार्यक्रमों

विनियमित रूप से सरकार लोगों की अपनी योजनाओं और प्राथमिकताओं के साथ हस्तक्षेप संसाधनों के आवंटन को विकृत, और गैर जिम्मेदार निर्णयों की संभावना बढ़ जाती होना चाहिए। कुछ आलोचकों का मानना है कि सीएसआर कार्यक्रमों कंपनियों द्वारा किए जाते हैं उनकी मुख्य कार्यों से उत्पन्न नैतिक सवालों से जनता का ध्यान भंग करने के लिए। उनका तर्क है कि प्रतिष्ठा लाभ है कि सीएसआर कंपनियों प्राप्त दृष्टिकोण के पाखंड का प्रदर्शन। एक और चिंता यह है कि कभी कभी कंपनियों को सीएसआर का उपयोग सार्वजनिक ध्यान प्रत्यक्ष अन्य हानिकारक व्यवसाय प्रथाओं से दूर करने के लिए है। इस तरह के तंबाकू, शराब या लड़ाई के सामान कंपनियों के रूप में उद्योगों के उत्पादों है कि अपने उपभोक्ताओं और / या पर्यावरण को नुकसान पहुंचा सकते हैं। इस तरह की कंपनियों के अन्य उद्योगों में उन लोगों के रूप में एक ही परोपकारी गतिविधियों में संलग्न कर सकते हैं। इस द्वंद्व सीएसआर के संबंध में ऐसी कंपनियों के आकलन पेचीदा हो। कॉर्पोरेट के लोग मे कम या कोई विवेक या देखभाल या सहानुभूति न है, यह तार्किक इस प्रकार है कि वे कर्मचारियों के लिए या व्यापक जनता के लिए सामाजिक जिम्मेदारी और प्रतिबद्धता की किसी भी धारणा से प्रेरित नहीं कर रहे हैं।

निष्कर्ष

कॉर्पोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी नामक पहल की शुरुआत पर्यावरण तथा सामाजिक कल्याण कार्यों में कंपनियों के स्वेच्छिक योगदान के लिए की गयी थी। इसका मुख्य सिद्धांत यह है कि कंपनियां समाज से ही आय प्राप्त करती हैं अतः उन्हें भी समाज के लिए कुछ योगदान देना चाहिए।

कंपनी अधिनियम, 2013 के सेक्शन 135 में CSR की व्यवस्था की गयी है। मौजूदा नियम के तहत CSR के बारे में निर्णय लेने की शक्ति कंपनी के बोर्ड को दी गयी है। इस नियम के अनुसार 500 करोड़ रुपये शुद्ध मूल्य अथवा 1000 करोड़ रुपये से अधिक टर्नओवर अथवा 5 करोड़ से अधिक शुद्ध लाभ करने वाली कंपनी को पिछले तीन वर्षों के शुद्ध लाभ के औसत का 2% CSR सम्बन्धी कार्यों के लिए खर्च करना पड़ता है। CSR गतिविधियों का वर्णन सातवीं अनुसूची में है।

अगस्त, 2019 में भारत की संसद ने कारोबारी जगत् के अग्रणी नेताओं को चेतावनी दी थी कि वे अगर 2013 में कॉर्पोरेट जगत् के लिए अपेक्षित सामाजिक दायित्व (CSR) संबंधी प्रावधानों का पालन करने में असफल रहे तो उन्हें तीन साल तक का कारावास का दंड दिया जा सकता है.

भारत की कंपनियों द्वारा समाज के निचले तबके के कल्याण को बढ़ावा देना कंपनियों और सरकार दोनों के लिए दोनों हाथों में लड्डू होने जैसा है. CSR में खर्च होने के जहाँ एक तरफ लोगों के कल्याण के लिए होने वाले खर्च से सरकर को कुछ राहत मिलती है वहीँ दूसरी तरफ लोगों की नजर में कंपनियों की इमेज भी एक अच्छी कंपनी की बनती है जिससे कि कंपनी को अपने उत्पादों को बेचने में आसानी होती है.

सन्दर्भ

- *Bhattacharya, CB; Sen, Sankar; Korschun, Daniel (2011). Leveraging Corporate Social Responsibility: The Stakeholder Route to Business and Social Value. Cambridge: Cambridge University Press.*
- *10 key things to know about CSR. Brand Strategy. London. 2007. p. 47.*
- *Carroll, Archie B. (2000). "The Four Faces of Corporate Citizenship". In Richardson, J. E. (ed.). Business Ethics 00/01. Dushkin/McGraw-Hill. pp. 187–191. ISBN 978-0072365238. OCLC 65519999.*
- *De George, Richard T. (2011). Business Ethics. Dorling Kindersley, licensees of Pearson Education in South Asia. ISBN 978-81-317-6335-3.*
- *Diamond, Jared (2011). "Big businesses and the environment: different conditions, different outcomes". Collapse: how societies choose to fail or survive (Second reprinted ed.). Penguin. pp. 441–485. ISBN 978-0241958681.*
- *Visser, W.; Matten, D.; Pohl, M.; Tolhurst, Nick (2008). The A to Z of Corporate Social Responsibility. Wiley. ISBN 978-0-470-72395-1.*

इतिहास के अध्ययन में सहायक विज्ञान का उपयोग

डॉ० पंकज कुमार पांडेय

पूर्व शोध छात्र, स्नातकोत्तर विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, भोजपुर (बिहार)

परिचय

इतिहास और इसकी घटनाओं को तथ्यात्मक रूप देने के लिए कई अन्य विधएँ हैं। एक इतिहासकार को मानव ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में हुई खोजों द्वारा प्राप्त परिणामों का उपयोग करना चाहिए।

वे सहायक विषय या सहायक विज्ञान कहलाते हैं, जैसे- कालक्रम, पैलॉजी, ग्राफोलॉजी, सिगिलोग्राफी, डिप्लोमैटिक, एपिग्राफी, न्यूमिजमाटिक्स और पुरातत्व, इसके अलावा सामाजिक विज्ञानों की संख्या जो पहले से ही पूर्वगामी पैराग्राफ में जांच की गई है।

ये सभी विषय मुख्य रूप से व्यावहारिक अनुभव के बढ़ाने वाले हैं। इन विषयों के साथ परिचित होने का सबसे अच्छा तरीका इनका अभ्यास और उपयोग करना है। इनकी आवश्यकता अंतर-संबंधित है।

यहां तक कि दवा के लिए इतिहास की आवश्यकता होती है क्योंकि मामले की उचित पृष्ठभूमि के बिना निदान असंभव है।

कालक्रम

काल को ठीक करने के लिए कालक्रम तय करने में कालक्रम हमें मदद करता है। समय तत्व इतिहास की अवधरणा के लिए केंद्रीय है जिसके बिना इसका वास्तविक परिप्रेक्ष्य खो जाएगा। अंतरिक्ष, समय और कारण किसी भी घटना या अनुभव के लिए मौलिक हैं और ये तीन पहलू समझ और व्याख्या के तरीके हैं।

इतिहास में यह उन महत्वपूर्ण घटनाओं को व्यवस्थित करता है जो अतीत में उनके कालानुक्रमिक क्रम में हुई थीं। यह शायद दो समान रूप से उपयोगितावादी उद्देश्यों के लिए प्रारंभिक युग में आविष्कार किया गया था, धार्मिक कार्यो के लिए तारीखों का निर्धारण। इतिहास के छात्र के लिए कालक्रम का ज्ञान अपरिहार्य हो गया है क्योंकि तारीखों और युगों के रिकॉर्ड में इतना भ्रम है कि कई राजवंशों के संबंध में सही कालक्रम का निर्धारण, खुद महान शोध बन जाता है।

प्राचीन शिलालेखों का अध्ययन

"पेलोग्राफी" प्राचीन हस्तलिपियों का व्यवस्थित अध्ययन है। अक्षर की आकृति समय-समय पर और क्षेत्र से क्षेत्र तक भिन्न होती है। यह समय और कालखंड में प्रत्येक अक्षर के विकास का वर्णन करता है। एक पैलियोग्राफर समय और घटना में फर्क नहीं कर सकता है।

एक चित्रकार न केवल पुरानी पांडुलिपियों या शिलालेखों को पढ़ सकता है, बल्कि उन्हें तारीख भी दे सकता है और वह हमें इन पात्रों के इतिहास और यह बता सकता है कि वे एक अवधि में कैसे बदल गए हैं। अतीत की शिक्षा में भी आज की तरह संस्कृति के प्रत्येक केंद्र में उपयोग किए जाने वाले अक्षरों के आकार को समझने का प्रभाव था। उदाहरण के लिए भारत में आज भी बहुत कई प्राचीन लिपियों के अक्षरों को समझा नहीं जा सका है।

पेलोग्राफी उन लिपियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले संक्षिप्तीकरण से भी संबंधित है जो मुद्रण के आविष्कार से पहले मांग में अधिक थे। ऐसे शब्दकोष हैं जो पांडुलिपियों में प्रयुक्त संक्षिप्त नाम को सूचीबद्ध करते हैं। यह मानसिक सतर्कता और अनुभवजन्य क्षमताओं के विकास के लिए गुंजाइश देता है। यह कठिनाइयों का सामना करने की क्षमता विकसित करता है क्योंकि वे पहेली और समस्याओं को हल करने में खुद को प्रस्तुत करते हैं। विद्वानों का एक दल कंप्यूटर साइंस के माध्यम से सिंधु घाटी सभ्यता की लिपि को समझने का प्रयास कर रहा है।

हस्तलेख विज्ञान

ष्ग्राफोलॉजी" में किसी व्यक्ति के चरित्र का मूल्यांकन हस्तलिपि के अध्ययन से होता है। अनुसंधन से पता चला है कि एक व्यक्ति के चरित्र और उसके हस्तलिपि के बीच एक सुनिश्चित संबंध मौजूद है, जो यह बताता है कि वह किस तरह का व्यक्ति है। ग्राफोलॉजिस्ट को कुछ कारकों पर नजर रखनी चाहिए जैसे कि लेखन के लिए उपयोग की जाने वाली सामग्री, स्थान, लेखक की स्थिति और वो परिस्थितियां जिनके बीच लेखन कार्य किया गया था।

उदाहरण के लिए, आप एक चलती बस या ट्रेन में यात्रा कर रहे हैं जहाँ ठीक से नहीं लिखा जा सकता। इसी तरह, उत्तेजित मूड, पर्याप्त प्रकाश या कलम या बीमार स्वास्थ्य लिखावट को प्रभावित करने के लिए बाध्य हैं। यह आलस्य, अनावश्यक जल्दबाजी, लापरवाही और आत्म भोग के साथ विश्वासघात कर सकता है।

डिप्लोमैटिक

डिप्लोमैटिक व्यवहार और लेखन के आधिकारिक पैटर्न के रूप का व्यवस्थित अध्ययन है। शब्द "डिप्लोमा" का मतलब था कि डबल डबल लिखने का एक समय पासपोर्ट या पत्र या प्रांत में यात्रा करने वाले व्यक्तियों को दी गई सिफारिश के लिए इस्तेमाल किया जाता था। इसका अर्थ और भी बदल गया, क्योंकि यह कानूनी या ऐतिहासिक या साहित्यिक मूल्य के किसी भी पांडुलिपि या दस्तावेज को संदर्भित करता है और अंत में किसी भी प्रकार के आधिकारिक लेखन को इंगित करता है।

यह देखा गया है कि ऐसे दस्तावेज सरकारी अधिकारियों की मदद से तैयार किए गए थे। हालांकि इन दस्तावेजों की रचना एक विशेष आदेश के तहत की गई थी, लेकिन जब पेलोग्राफी और राजनयिक के निष्कर्ष इसके मूल्यों को बढ़ाते हैं। संक्षिप्त में राजनयिक एक दस्तावेज के वास्तविक अर्थ का पता लगाने की कोशिश में इतिहास के लिए एक उपयोगी सहायता है।

सिबिलोग्राफी

षसिबिलोग्राफी" शब्द "सिगिल" से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है "सील" या हस्ताक्षर। इसका अर्थ "मार्क" भी है या मनोगत शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। विशेष रूप से, इतिहास में यह मुहरों के अध्ययन को दर्शाता है और कूटनीतिक विभाग के रूप में देखा जा सकता है।

यह भी पता चलता है कि "स्फटिकवादी" का अर्थ है कि उनकी प्रामाणिकता, आयु, इतिहास, सामग्री आदि सहित उत्कीर्ण मुहरों का अध्ययन, सिंधु घाटी सभ्यता की मुहरों का उपयोग इस लिपि के कारण अनिर्दिष्ट रहा है।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास की मुहरों के दौरान प्रशासन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसके बिना कोई भी दस्तावेज मान्य नहीं था। वे हमें शासक के नाम, उनके शीर्षक, उनके साम्राज्य की सीमा, दस्तावेज की तारीख, धर्म या वंश के बारे में बहुत सारी जानकारी देने में हमारी मदद करते हैं और साथ ही वे मुद्दे की तारीख और युग से भी संबंधित हैं। ये मुहर उस अवधि के सांस्कृतिक विकास के स्तर को भी इंगित करती हैं।

पुरातत्व, एपिग्राफी, न्यूमिजमाटिक्स

पुरातत्व, एपिग्राफी और न्यूमिजमाटिक्स इतिहास के हाथ से काम करते हैं। ये अनुशासन चरित्र में वैज्ञानिक हैं और उनकी कार्यप्रणाली में सटीक हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास अपने कई अध्याय के पुनर्निर्माण के लिए इन तीन शाखाओं का श्रेय देता है। शिलालेखों की खोज, नकल और पढ़ना, सिक्कों का अध्ययन और जल्द ही दुनिया के इतिहास में कई अध्यायों को प्रकाश में लाया गया है।

भौतिकी संभव पुरातात्विक स्थलों के निर्धारण में सहायक है। इंजीनियरिंग केमिस्ट्री और फोटोग्राफी को पुरातत्वविद की मदद से बुलाया जाता है। वैज्ञानिक रूप से खुदाई करना किसका व्यवसाय है? यह अतीत के अवशेषों का वैज्ञानिक अध्ययन है। प्राचीन

स्थल, अवशेष, स्मारक, गिनती, शिलालेख और अन्य कलाकृतियाँ सभी एक पुरातात्विक विशेषज्ञ को सबसे प्रशंसनीय तरीके से इतिहास का पुनर्निर्माण करने में सक्षम बनाती हैं।

एपिग्राफी भूमि के अनुदान के शीर्षक कर्म के रूप में स्मारकों पर रखी गई शिलालेखों की शिलालेख और कूटनीति है या तांबे की प्लेटों पर व्यक्तियों को दी जाती है। इतिहासकार के पास इन अभिलेखों को पढ़ने की क्षमता होनी चाहिए या उन्हें उन लोगों के द्वारा समझने और अनुवादित करने की क्षमता होनी चाहिए जो भाषा जानते हैं।

तमिलनाडु और कर्नाटक में इस तरह के हजारों शिलालेख हैं जैसे कि एक इतिहासकार लुईस राइस ने कर्नाटक के एक हिस्से में दस हजार शिलालेखों के रूप में एकत्र किया था जो तब मैसूर राज्य के रूप में जाना जाता था। वे राजनीति, साहित्य, युद्ध, धर्म सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक विवरण आदि पर जानकारी के मूल्यवान तथ्यात्मक स्रोत हैं।

फिलोलॉजी, एंथ्रोपोलॉजी आदि

षफिजियोलॉजी" या भाषाओं के अध्ययन ने अपने अतीत और वर्तमान दोनों स्थितियों में इतिहास पर बहुत सारे फायदे दिए हैं। "मानवविज्ञानी" मानव दौड़ और उनकी विशेषताओं से संबंधित है, यह विशेष रूप से उनके प्रारंभिक चरण में मानव संस्थानों का अध्ययन करता है। पैलियो-बॉटनी जीवाश्मों और मृत-लकड़ी की उम्र तय कर सकती है जहां चिकित्सा विज्ञान प्रकृति का निर्धारण करने में सहायक है और संभवत: कंकाल की आयु बनी हुई है। यहां तक कि प्राकृतिक विज्ञान भी ऐतिहासिक शोध में बेहद उपयोगी हो सकते हैं।

निष्कर्ष

शोध ज्ञान के आयाम का विस्तार करने और कुछ मूल विचार का योगदान करने के लिए कुछ नया लाने के लिए की गई गतिविधि है। लंबे समय तक शब्दकोश के अनुसार इसे "एक विषय का गंभीर और विस्तृत अध्ययन, जो नए तथ्यों, वैज्ञानिक कानूनों, परीक्षण विचारों आदि को सीखने के उद्देश्य से है" के रूप में वर्णित करता है।

इसमें किसी विशेष क्षेत्र में शोधकर्ता की रुचि के कुछ प्रकार शामिल हैं। यह नई व्यवस्था, एक नया दृष्टिकोण, एक नया प्रमाण और आगे भी बढ़ा सकता है। तथ्यों की खोज करने या ज्ञात तथ्यों को संशोधित करने या तथ्यों को सिद्धांतों में ढालने के लिए किसी विषय में एक मेहनती और व्यवस्थित जांच या जांच करने का प्रयास है।

अनुसंधन केवल एक अछूते विषय से निपटने में शामिल नहीं होता है, इसमें कुछ विषय के उपचार को भी शामिल किया जाता है, जिसे पहले एक मूल तरीके से खोजा गया है।

एक इतिहासकार को मानव ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में हुई खोजों द्वारा प्राप्त परिणामों का उपयोग करना चाहिए।

सन्दर्भ

- Ibn Khaldun] Franz Rosenthal] N-J- Dawood (1967)] The Muqaddimah%A n Introduction to History] p- ñ] Princeton University Press] ISBN 0&691&01754&9-
- Carr] E-H-] with a new introduction by Richard J- Evans- What is History\ Basingstoke% Palgrave Macmillan] 2001] ISBN 0&333&97701&7-
- Evans] Richard J- In Defence of History- W-W- Norton&Company (2000)] ISBN 0&393&31959&8-
- Tosh] John_ The Pursuit of History (2006)] ISBN 1&4058&2351&8-
- Lucas] Gavin (2005)- TheA rchaeology of Time- Oñon% Routledge- p- 50- ISBN 0&415&31197&7-
- •A rnoldussen] Stijn (2007)-A Living Landscape% BronzeA ge Settlement Sites in the Dutch RiverA rea (c- 2000&800 BC)- Leiden% Sidestone Press- p- 468- ISBN 978&90&8890&010&5-
- Darby] Henry Clifford (2002)- The Relations of History and Geography% Studies in England] France and the United States- Eñeter% University of Eñeter Press- p- 14- ISBN 0&85989&699&4-
- Fasolt] Constantin (2004)- The Limits of History- Chicago% University of Chicago Press- pp- ñiii&ññi- ISBN 0226239101-
- Lerner] Gerda (1997)- Why History Matters% Life and Thought- New York% Oñford University Press- pp- 199&211- ISBN 0195046447-

  Michael C- Lemon (1995)- The Discipline of History and the History of Thought- Routledge- p- 201- ISBN 0&415&12346&1

नालंदा महाविहार से संबद्ध प्राचीन गाँवों की खोज

डॉ० रवि शंकर गुप्ता

संग्रहालीय सहायक, बिहार संग्रहालय, पटना

प्राचीन पालि साहित्यों एवं बौद्ध तथा संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन से विदित होता है कि नालंदा महाविहार की समृद्धि में प्राचीन गाँवों का भी प्रमुख स्थान रहा है। इसकी पुष्टि-विदेशी, चीनी, तिब्बती, बौद्ध यात्रियों के वृत्तांतों से भी होता है। उत्तर-पूर्व एवं मध्य एशियाई बौद्ध स्रोतों से भी अनेक तथ्यों की जानकारी होती है। 'चुलवग्ग' एवं 'महवग्ग' जैसे बौद्ध स्त्रोतों में महाविहार की संपदा के बारे में विस्तृत चर्चा है। नालंदा से प्राप्त मुहरों, मुद्रांकों, सिक्कों, ताम्रपत्रों आदि से गाँवों के बारे में तथ्यपरक जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार हम देखते है कि नालंदा महाविहार के समुचित प्रबंधन के लिए गाँवों से प्राप्त आर्थिक स्त्रोतों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

आधुनिक विद्वानों के शोध-निबंधों एवं शोध-ग्रंथों में इन बातों का विस्तृत उल्लेख है। नालंदा पर शोध करने वाले प्रसिद्ध इतिहासकारों में सर अलक्जेन्डर कनिंघम, म०म० हीरानंद शास्त्री, प्रो० एच० डी० संकालिया, डॉ० अमलानंद घोष, श्री कृष्णेदव, डॉ० जी० सी० चौले, भिक्षु जगदीश कश्यप, डॉ० सतकड़ी मुखर्जी, डॉ० सी० एम० उपासक, डॉ० महेश तिवारी, डॉ० उमाशंकर व्यास, डॉ० डी० के० बरूआ, डॉ० योगेन्द्र मिश्र, डॉ० उपेन्द्र ठाकुर, डॉ० राजेन्द्र राम, डॉ० जयदेव मिश्र आदि विद्वानों के शोधकार्यों से विस्तृत जानकारी मिलती है। पालि एवं बौद्ध शास्त्रों के विद्वान उल्लेख करते हैं कि नालंदा की अर्थव्यवस्था विभिन्न गाँवों के राजस्व से ही संपादित होती थी। गुप्त शासकों, हर्षवर्द्धन, पाल राजाओं और दक्षिणपूर्व एशिया के राजाओं के नाम इन बिन्दू पर पुरातात्त्विक साक्ष्यों में पाये जाते हैं। इन राजवंशों के शासकों ने नालंदा महाविहार के कार्यकलापों को सूचारू रूप से चलाने के लिए गाँवों का दान दिया था। प्रस्तुत शोध पत्र में नालंदा महाविहार के आर्थिक प्रबंधन में जिन गाँवों का योगदान रहा है, उन गाँवों को चिह्नित करने का प्रयास किया गया है।

अभिलेख शिलाओं, मूर्तियों, ताम्रपत्रों, मुद्राओं आदि पर अंकित होते हैं। नालन्दा के प्रायः सभी अभिलेख संस्कृत भाषा में ब्राह्मी लिपि में है। इनमें सर्वाधिक प्राचीन अभिलेख गुप्त वंशीय शासक समुद्रगुप्त का ताम्रपत्र अभिलेख हैं।[1] यह एक ही तरफ 12 पंक्तियों में उत्कीर्ण हैं। सभी गद्य में है। यह एक दान पत्र है जो यह बतलाता है कि जयभट्ट स्वामी नामक ब्राह्मण को समुद्रगुप्त ने आनंदपुर जयस्कंधवार से क्रिमिला विषय का पूर्णनाग ग्राम या तार्विगुण्य विषय से भ्रद्रपुष्पक ग्राम दान में दिये थे। हीरानन्द शास्त्री ने आनंदपुर की पहचान नालंदा से दो किलोमीटर पश्चिम दिशा में स्थित नुपूर ग्राम से की है।[2] नालंदा से क्रिमिला विषय का उल्लेख करने वाली मुद्रछाप मिली है जिसपर '*क्रिमिला विषये कवालग्रामे विषय महत्तम नरस्वामिनः*' लेख मिला है। पूर्णग्राम की स्थिति स्पष्ट नहीं है।[3] समुद्रगुप्त के ताम्रलेख के साथ ही पालवंशीय धर्मपाल का भी अभिलेख मिला है जिससे पता चलता है कि पालशासक धर्मपाल ने एक ग्राम दान में दिया था। दान में दिये गये ग्राम, दान ग्रहण करने वाले व्यक्ति का नाम स्पष्ट नहीं है।

पाल शासक देवपाल के नालंदा ताम्रपत्र से भी नालंदा महाविहार के सम्वर्द्धन हेतु गाँवों के दान देने की जानकारी मिलती है। यह अभिलेख एक महत्वपूर्ण अभिलेख है क्योंकि यह नालंदा महाविहार एवं गावों के बीच संबंध को स्पष्टता से दर्शाता है। यह अभिलेख देवपाल के उन्नचालिसवें राज्य वर्ष कार्तिक मास की इक्कीसवीं तिथि की मुदगगिरी (मुंगेर) सें जारी किया गया था।[4] पाल शासक देवपाल का यह ताम्रपत्र अभिलेख 1921 ई। में नालंदा के विहार स्थल संख्या- 1 के उत्खनन के दौरान हीरानन्द शास्त्री को प्राप्त हुआ था। वर्तमान में यह अभिलेख इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में संग्रहीत है।[5] इससे यह जानकारी मिलती है कि सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) के शैलन्द्रवंशी शासक बालपुत्रदेव के दूत के द्वारा प्रार्थना पत्र पर देवपाल ने श्रीनगर भुक्ति (पटना डिवीजन) के अंतर्गत राजगृह एवं गया विषय के पाँच गाँवों के दान में दिया था। यह दान सुमात्रा के शासक बालपुत्रदेव द्वारा नालंदा में बनवाए

गए विहारों में रहने वाले भिक्षुओं के भरण-पोषण तथा हस्तलिखित बौद्धधर्म के संवर्द्धन के लिए दिया गया था।[6] नालंदा से प्राप्त पाल शासक देवपाल के ताम्रपत्र में नालंदा महाविहार को दिये गये उक्त पाँचों गाँव का उल्लेख किया गया है[7]-

क। चण्डालपर्यर्नतान समाज्ञपयति विदितमस्तु भवतां यथोपरिलिखितस्वसम्ब

(म्ब) द्धाविच्छिन्नतलोपेतनन्दिवनाकग्राम। मणिवाट-[8]

क ग्राम। नटिकाग्राम। हस्तिग्राम। पालामकग्रामः स्वसीमातश्णयूतिगोचरपर्यन्ताः

सतलाः सोदशाः साभ्रमधूकाः सजलस्थ-[9]

लाः सोपा रिका सदशापराधाः सचौरोद्धरणाः परिहृतसर्व्वपीडाः।

अचाटमटप्रवेशा अकिञ्चित्प्रग्रा (ह्य) राजकुलीय[10]

दानपत्र में राजगृह के चार ग्रामों क्रमशः नन्दिवनाक, मणिवाटक, नाटिका हस्तिग्राम और गया विषय का एक ग्राम पालामक उल्लेखित है।[11] हीरानंद शास्त्री ने इस ताम्रपत्र अभिलेख में गाँव की पहचान करने का प्रयास किया। अभिलेखों में नन्दिवनाटक एवं मणिवाटक ग्राम को अजयपुर नये (प्रखंड) में अवस्थित बताया और आधुनिक बिहार शरीफ थानान्तर्गत स्थित अजय छहारम मौजा जिसे अजयपुर के नाम से भी जाना जाता है। उन्होंने नंदिवनाक की पहचान राजगीर प्रखंड में अवस्थित नालंदा थानान्र्तगत मणियामा से की है। इसी तरह शास्त्री ने नाटिका ग्राम की पहचान पिपिलिका प्रखंड के पिलखी मौजा में स्थित नये पोखर से हत्थिग्राम को अंचला प्रखंड हथियाग्राम मानते हैं। वे पालमक ग्राम की पहचान वर्तमान कतुलपुर के अंतर्गगत स्थित पंचलख ग्राम से करते हैं।[12] इस दान पत्र से यह भी पता चलता है कि गाँव के चारागाह आग्रवन, जलाशय, आदि से प्राप्त राजस्व सुवर्णद्विप के शासक बालपुत्र देव द्वारा नालंदा में बनवाए गए विहार में निवास करने वाले भिक्षुक निमित था।

ताम्रपत्र लेख में उल्लिखित साक्ष्यों से पता चलता है कि पाल शाकस देवपाल देव ने दान के सम्बन्ध में उद्घोषणा राज्यराणक, राज्यपुत्रक, राजामात्य, महाकार्ताकृतिक, महादण्डनायक, महाप्रतिहार, महासामन्त, महादौसाधसाधनिक, महाकुमारामात्य, प्रभातृ, शरभंग, राजस्थानीयोपरिक, विषयपति, दाशापरजिक, चौरोद्धरणिक, दाण्डिक, दण्डपाशिका, शौल्किक, गुल्मिक, क्षेत्रफाल, कोटपाल, खण्डरक्ष, तदायुक्तक, विनियुक्तक, हस्तयश्वोष्ट्रानौ, वलल्यापृतक, किशोरोवड़वागोमहिष्यधिकृत, दूत, प्रैषणिक, गमा-गमिक, अभित्वरमाणक, तरिक, तरपतिक आदि की सम्मिलित सभा में की थी। दानपत्र में यह भी वर्णित है कि उपर्युक्त ग्रामों के चारागाह, आम्रवन, जलाशय आदि से प्राप्त राजस्व भी सुवर्णद्वीप के शासक बालापुत्रदेव द्वारा नालन्दा में बनवाये गये विहार में निवास करने वाले भिक्षुओं के निमित्त होगा।[13] ताम्रपत्र अभिलेख में वर्णित भूक्ति, विषय, वीथी तथा नय सम्भवतः क्रमशः आधुनिक मण्डल, जिले तथा उपखण्ड के समान थे। साधारणतः वीथी का प्रयोग बाजार या मार्ग के रूप में होता है, परन्तु इस ताम्रपत्र अभिलेख में वीथी का प्रयोग विषय (जिला) से छोटी इकाई उपखण्ड के रूप में हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार नय शब्द का प्रयोग भी एक उपखण्ड के समतुल्य है। इस प्रकार दानपत्र में उल्लिखित स्थान भुक्ति (मण्डल) विषयों (जिलों में, विषय (जिला) वीथी या नय (उपखण्ड) में विभाजित हुए जान पड़ते हैं।

नालन्दा से बड़ी संख्या में मिट्टी की मुहरें एवं मुद्राएं/मुद्राछापें (Seals and Sealings) प्राप्त हुए हैं। यह मुद्राएं या मुद्राछापें विभिन्न प्रकार की है एवं इनपर विभिन्न लेख उत्कीर्ण हैं।[14] बहुत सी मुद्राएं नालन्दा महाविहार के भिक्षु संघ या धार्मिक परिषद द्वारा जारी की गयी हैं जिन पर निम्न लेख उत्कीर्ण हैं[15]

'श्री नालन्दा-महाविरीया-र्य-भिक्षु-संघस्य'

चित्र-01: श्री नालन्दा महाविरीया-र्य-भिक्षु-संघस्य, नालन्दा से प्राप्त लेखयुक्त मुहर

जिसका अर्थ 'नालन्दा महाविहार के आर्य भिक्षु संघ की' है। लेख के ऊपर धर्मचक्र बना होता था तथा उसके दोनों तरफ एक-एक मृग की आकृतियां अंकित होती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मुद्रा नालन्दा विश्वविद्यालय की छाप (मुहर) थी, जो ज्ञान प्रचार की प्रतीक है तथा प्रमाणपत्रों या अन्य वस्तुओं पर अंकित की जाती रही होंगी।[16] ऐसी मुद्राएं अधिक संख्या में प्राप्त हुई हैं जिससे ऐसा लगता है कि नालन्दा में पठन-पाठन के दौरान बड़ी संख्या में कार्यालयी कार्यवाही का संचार होता रहा होगा।

नालन्दा बौद्ध संघ के अन्तर्गत आने वाले विहारों से सम्बन्धित मुद्राएं भी विभिन्न प्रकार की हैं। ये अलग-अलग विहारों द्वारा जारी की गयी हैं, जैसे[17]-

1. गन्धकुटी वासिक भिक्षुसंघ।
2. मूलनवकर्म्मवारिक भिक्षुसंघ।
3. एक वारिक / वारिक भिक्षुसंघ।
4. चतुर्दिशार्थ भिक्षुसंघ।

नालन्दा महाविहार की लगभग 775 ऐसी मुद्राछापें प्राप्त हुई हैं जिन पर धर्म चक्र, हिरण की आकृतियों के साथ-साथ 'श्री नालन्दा महाविहारीया-र्य-भिक्षु-संघस्य' लेख या इसी तरह के अन्य लेख उत्कीर्ण हैं, जिनमें से कुछ लेख निम्नलिखित हैं[18]-

1. श्री नालन्दामलनवकर्म्मवारिक भिक्षुणाम्।
2. श्रीकर (ज्ञ) महावि (हा) रे भिक्षुसंघस्य।
3. तिलकाण्डविकाय (लबुद्धभिक्षुसंघस्य)।
4. श्री नालन्दाच (व) क्रारे वारिकाभिक्षूणाम्।
5. श्री नालन्दा महाविहार (गुणाकर) बौद्धभिक्षूणाम।
6. (न्दा) या श्री शक्रादित्यकारितहारे चातुर्दिशीयार्यमा (म)-हाभिक्षुसंघस्य।
7. श्री नालन्दाभिक्षुसंघस्य।
8. श्री नालन्दा चतुर्भागवताम् सन्वारिकाभिक्षूण (म्)।
9. श्री नालन्दा (चा आ) बालादित्यगन्धकुदयावारिकाभिक्षू (णाम्)
10. श्री नालन्दा चातु (र्दिशिकसमवारि) के भिक्षुसंघस्य।
11. श्री नालन्दा सत्रक समवारिकाभिक्षूणाम्।
12. श्री नालन्दा महाविहारे चातुर्दिशार्चभिक्षुसंघस्य।
13. श्री नालन्दा महाविहारिक आर्यभिक्षुसंघस्य।
14. श्री देवपालगंधाकुड्या (ट्या)
15. श्री नालन्दामहाविहारीय (चतुर्दिश) वृद्धाभिक्षूणाम्।
16. श्री नालन्दाचीवरका (ज्य) (पाना) र्य भिक्षुसंघस्य।
17. श्री हरिवर्म्मा महाविहारीय आर्यभिक्षुसंघस्य।
18. श्रीमद् उदण्डपुर (श्री) बोधिसत्वागममहाविहारीयार्यभिक्षुसंघस्य।
19. श्री नालन्दामहाविहारे चातुर्दिशार्य भिक्षुसंघस्य।
20. श्री धर्मपालदेवगन्धकुटीवासिक भिक्ष्नुणाम्।
21. श्री सोमपालका- (-रित) (क-ध) म्मयिका-विहारीय भिक्षुसंघस्य।
22. श्री प्रथमशिवपुरमहाविहारीयार्य भिक्षुसंघ।
23. श्री नालन्दामहाविहारीयवर (वृद्ध) भिक्षूणाम्।

नालन्दा से जानपद नामान्त ग्राम की लगभग सोलह मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। जानपद सम्भवतः आजकल के पंचायतों के समान थे तथा उनकी अपनी अलग-अलग मुद्राए थी।[19] इन मुद्राओं से अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का स्पष्टीकरण होता है। मुद्राओं में उल्लिखित कुछ ग्राम जानपद नालन्दा महाविहार हेतु दान से सम्बन्धित रहे हैं।[20] ग्राम जानपद की मुद्राओं का मूलपाठ निम्नलिखित है।[21]

1. पुरिकाग्रामजानपदस्य।
2. वारकीयग्राम (जा) नपदस्य।
3. ब्राह्मणीग्रामजा (न) पदस्य।
4. उद्रद्वारस्थाने ग्रामजानपदस्य।
5. नवका (घ) ग्राम (जा) नपदस्य।
6. धनंजनग्रामजानपदस्य।
7. कलिकाग्रामकीयजानपद।
8. दण्था (दंग्धा) ग्रामीयजानपदस्य।
9. ममनाविकाग्रामजनपदस्य।
10. चन्देकयग्रामज (जा) नपदस्य।
11. अलीक पृष्ठ ग्रामजानपदस्य।
12. जक्कुरका (स्थान) सुजाग्रा) (म) जानपदस्य।
13. अंगामीग्रामजनपदस्य।

मुहरों तथा मुद्राओं में वर्णित उपर्युक्त ग्रामों में से कुछ ग्रामों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पहचान करने का प्रयास किया गया है जो अग्रलिखित है।[22]-

मुहर / मुद्राओं में वर्णित गाँव	अधुनिक पहचान
1. पुरिका	पुरि, जिला-नवादा, बिहार
2. वारकीय	वराकर, शिलाव के पास, जिला नालन्दा, बिहार
3. उद्द्वारस्थाने	उदेवथाने, नालन्दा से 30 मील दूर, जिला - जहानाबाद, बिहार
4. नवका	नैपोखर, राजगीर के पास, जिला-नालन्दा, बिहार
5. मनयिका	मनियामा, नालन्दा से 3 मील दूर, जिला-नालन्दा, बिहार
6. धनञ्जन	धन्जन, जिला-गया, बिहार
7. चन्देकय	चन्दी, हिल्सा सब डिवीजन, जिला-नालन्दा बिहार
8. जक्कुरका	जाकून, नालन्दा से 30 मील दूर, जिला-गया,

बिहार

नालन्दा से प्राप्त बहुत सी मुद्राओं में से कुछ कार्यालय की मुद्राएं भी हैं जिनका वर्गीकरण हीरानन्द शास्त्री ने किया है। ये 23 की संख्या में हैं। इनका मूलपाठ निम्नलिखित है।[23]-

1. राजगृहे विषयाधिकरणस्य।
2. संघनयप्रतिष्ठितराजगृहहविषयस्य।
3. राजगृहविषये पिलिपिंकानयस्य।

4. गायाविषयाधिकरणस्य।
5. गया विषयस्य।
6. गयाधिष्ठानस्य।
7. सोणान्तरात्मविषये अधिकरणस्य।
8. मगधभुक्तौ कुमारमात्याधिकरणस्य।
9. श्रावस्तिभुक्तौ नयाधिकरणस्य।
10. नगरभुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य। (फलक-36)
11. धर्म्माधिकरणस्य।
12. श्रीशीलादित्यधर्म्माधिकरणस्य।
13. दक्षिणमोरो: पश्चिमस्कन्धे सप्रधानविषयस्य।
14. कृमिलाविषये कावा (चा) लग्रामे विषयमहत्तमनरस्वामिन:
15. कृमिलाविषये सप्रधानस्य।
16. बल्लादिहीय हट्टमहाजन्स्य।
17. वल्लादिहीय ग्रामस्य।
18. वल्लादिहीयब्रहमणानाम।
19. वल्लादिहीय अग्रहारस्य।
20. वल्लादिहीय राजवैश्यानाम्।
21. श्रीमान् नवकर्मठानाम् (?) त्रैविदयस्य।
22. वण्टाग्रहार वटकाग्रामाग्रहार त्रैविद्यस्य।
23. राजगृहे चातुवैद्य।

कार्यालय की उपर्युक्त मुद्राओं में अधिकरण, विषयाधिकरण, नयाधिकरण आदि नामों का उल्लेख हुआ है। अधिकरण शब्द कार्यालय का द्योतक है। विषयाधिकरण जिले का कार्यालय तथा नयाधिकरण नय का कार्यालय प्रतीत होते हैं। नय को विषय (जिला) की एक छोटी इकाई माना जाता था, जैसा कि देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख में वर्णित है।[24] कार्यालय की कुछ मुद्राओं में कार्यालय के नामों के साथ-साथ उनके उधिकारियों का भी उल्लेख हुआ है, जैसे-कुमारामात्याधिकरण। गुप्तकाल में कुमारामात्य प्रान्तीय पदाधिकारी होते थे, जो स्थानीय प्रशासन तथा केन्द्र के बीच कड़ी का कार्य करते थे।[25] सम्भवत: कुमारामात्य का पृथक कार्यालय होता था जिसे कुमारामात्यधिकरण कहा जाता था। मुद्राओं में अंकित कुछ प्रमुख पदों जैसे-ब्राह्मणानाम्, त्रैविद्यस्य, चातुवैद्य, अग्रहारस्य आदि से किसी व्यक्ति विशेष की मुद्रा होने की नहीं बल्कि सामुदायिक कार्यकारिणी सम्बन्धी संस्थागत मुद्रा होने का संकेत मिलता है। त्रैविद्यस्य तीनों वेदों तथा चातुवैद्य चारों वेदों का बोध कराने वाला शब्द है। अग्रहार शब्द का प्रयोग मन्दिरों या ब्राह्मणों को दिये जाने वाले भूमिदान हेतु होता था। ये सारे शब्द शैक्षणिक क्रियाओं से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। मुद्राओं में उल्लिखित कार्यालयों के नामों से प्रतीत होता है कि उस समय नालन्दा महाविहार की प्रशासनिक व्यवस्था में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। ग्राम, नय तथा विषय राज्य की ईकाई प्रतीत होते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन भारत में ये इकाइयों राजस्व संग्रह हेतु गठित की गयी होंगी।

विदित है कि नालंदा महाविहार के प्रबंधन में समकालीन राजाओं के द्वारा गाँव के दान का उल्लेख चीनी एवं तिब्बती यात्रा वश्तातों में भी मिलता है। प्रसिद्ध चीनी, बौद्ध धर्मावलंबी, तीर्थयात्री ह्वेनसांग के अनुसार एक के बाद एक मगध के छह राजाओं ने नालंदा महाविहार के निर्माण में सहयोग दिया। लगभग 100 गाँवों के राजस्व विद्यालय के धर्मस्व को प्रदान किए गए।[26] नालंदा मठ के पास हर्ष ने एक विहार बनवाया जो पीतल की चादर से मढ़ा गया था। ख्याति प्राप्त चीनी बौद्ध धर्मावलम्बी तीर्थयात्री इत्सिंग ने लिखा है कि नालंदा महाविहार के पास बहुत धन था। दो सौ से अधिक ग्रामों का राजस्व उसे मिलता था।[27] नालंदा महाविहार एक ऐसा धर्मस्व था जिसके लिए मठ अनेक पीढ़ियों के राजाओं की दानशीलता का जीवांत प्रतीत था। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि सब राजकीय संरक्षण बिना किसी शर्त्त का था। शिक्षण संस्थाओं पर कोई अंकुश नहीं था। गुप्त राजवंश का सम्राट

नरसिंहबालादित्य ने जब नालंदा महाविहार के परंपरागत नियमों में संशोधन करना चाहा तो भिक्षुओं ने उसकी माँग अस्वीकार कर दी। राजा की आज्ञा न पालन करने पर संस्था के राजकीय संरक्षण को कोई खतरा नहीं था। राज्य अनुशासन के बारे में पड़ सकता था, लेकिन वह सदैव उदारता के पक्ष में ही रहता था। यह कहा जा सकता है कि इन अनुदानित गाँवों की खोज नहीं हो सकी है परंतु यह संभव हो सकता है कि सामान्यता ये गाँव महाविहार के पास ही रहें होंगे ताकि गाँवों से राजस्व की प्राप्ति उचित समय पर महाविहार को उपलब्ध हो सके।

इस संदर्भ में ह्वेनसांग के अनुसार - 100 गाँवों के 200 घर प्रत्येक दिन महाविहार को कई सौ पिकल (एक पिकल = 133 पौंड) दूध, घी, मक्खन को आपूर्ति करते थे।[28] ह्वेनसांग को स्वयं नौकर-चाकर तथा सवारी के लिए हाथी उपलब्ध था वह बालादित्य द्वारा बनवाये गये बिहार में राजाओं की भांति रहता था,[29] उसे प्रतिदिन 120 जम्बीर, 20 सुपारियां, आधा छटांक कपुर, साढ़े तीन छटांक बारीक बासमती चावल एवं उचित मात्रा मैं तेल तथा मक्खन के अतिरिक्त अन्य विविध वस्तुएं मिलती थी।[30] वह लिखता है कि विधार्थियों को भी राजाओं को मिलने वाले भोजन के समान को मिलने वाले भोजन के समान भोजन दिया जाता था।[31] यहाँ ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि 200 घर पुरे गाँव का राजस्व इकटठा करते थे, संमवत: वे ग्राम जनपदों के सदस्य होगे या अपने फायदे के लिए नालन्दा महाविहार के हित में बिचौलिये का कार्य करते होगे। राजस्व को समय से एकत्र करने की पूरी जिम्मेदारी उनकी ही थी। यह दोनों दल के लिए फायदे का कार्य था। महाविहार को रोज की जरूरत की वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थी और बिचौलियों राजस्व एकत्रित करने से फायदा कमा लेते थें।

यह प्रतीत होता है कि पास के कुछ गाँव संभवत: महाविहार द्वारा देखे जाते रहे होगें। दूसरा चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार भारत में ऐसे बहुत विहार थे, जहां कृषि कार्य भिक्षुओं के देख-रेख में होता था।[32] संभव है कि इस का कार्य नालन्दा महाविहार में भी प्रचलन में होगा। इत्सिंग के अनुसार नालन्दा के विद्यार्थी एवं आचार्य दोनों को एक ही प्रकार का भोजन दिया जाता था तथा दोनों में कोई भेद-भाव नही था। दिन में तीन बार भोजन देने की व्यवस्था थी। नास्ते में चावल का माण्ड (प्रातारष) दिया जाता था। आचार्य के भोजन के उपरांत ही विद्यार्थी भोजन ग्रहण करते थे।[33] इसके बाद दोपहर के भोजन के रूप में चावल, मक्खन, दूध, मीठा तरबूज आदि उपलब्ध होता था।[34] रात्रि का भोजन सायंकाल में ही दिया जाता था। इत्सिंग के विवरण से पता चलता है कि गाँवों द्वारा दान दिए गए वास्तुओं में चावल, मक्खन, घी, दूध आदि की बहुलता थी।

विद्यार्थियों को वस्त्र भी विश्वविद्यालय की तरफ से नि:शुल्क मिलता था।[35] नालन्दा का अपना वस्त्र उद्योग था।[36] महाविहार में हिन्दू एवं बौद्ध विद्यार्थियों के लिए अलग-अलग वस्त्रों का निर्धारण किया गया था।[37] हिन्दूओं के लिए गौतम धर्म सूत्र में उल्लिखित ब्रह्मदत्यों हेतु स्थापित वस्त्रों को पहनने का प्रावधान था। जबकि बौद्ध भिक्षु दीवर धारण करते थे। दीवर सूती, क्षोम, कायसिक तथा कौशेय सन के बने होत थे।[38] यहाँ नि:सदेह कहा जा सकता है कि वस्त्र बनाने के लिए कच्चे माल (Raw Matrial) जैसे- रूई, जूट, कपास आदि के मुख्य स्त्रोत भी उन्हीं समकालीन राजाओं द्वारा अनुदानित गाँव रहा होगा।[39]

इस प्रकार हम देखते हैं, कि नालन्दा महाविहार के प्रबंधन में गाँवों का बहुत योगदान रहा है। अनुदानित गाँव के राजस्व से ही महाविहार के रख-रखाव एवं भिक्षुओं के दैनिक आवश्यकताएं, भोजनादि की व्यवस्था की जाती थी। दैनिक कार्य हेतु गाँव में बने वस्तुओं का महाविहार में सदुपयोग होता था। बौद्धधर्म के पुजा-पाठ से लेकर आचार्यो एवं अन्तेवासियों के आवश्यकताओं के पूर्ति भी गाँवों के या तो सामग्रियों से होती थी। संभवत: समकालीन राजाओं द्वारा दान में दिये गये गाँव महाविहार के आस-पास ही थे। विभिन्न साधन स्त्रोतों से जो गाँव का उल्लेख है उसमें बहुत से गाँव का नाम कुछ परिवर्तन के साथ वर्तमान में भी महाविहार पुरास्थल के आस-पास स्थित हैं। नि:संदेह ये गाँव प्राचीन समय में नालंदा महाविहार से संबद्ध रहे होंगे।

संदर्भ

1. गोयल, श्रीराम (1984), गुप्तकालीन अभिलेख, कुसुमांजली प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ 63
2. शास्त्री, हीरानन्द (1942), नालंदा एण्ड इट्स एपिग्राफिक मेटेरियल, मेमोआयर ऑफ दी आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, नं. 66, पृ. 77 - 78.
3. गोयल, श्रीराम, पूर्वोक्त, पृष्ठ 66
4. घोष, ए. (1963), नालंदा, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, पृष्ठ 12-13

5. इपीग्राफिया, इण्डिका, भाग- 17, 1923 - 24, पृष्ठ 310
6. घोष, ए. (1963), पूर्वोक्त, पृष्ठ 13
7. शास्त्री, हीरानन्दः पूर्वोक्त, पृ. 97
8. वही
9. वही
10. वही
11. उपासक, सी.एस. (1977), नालंदा-पास्ट एण्ड प्रजेण्ट, नव नालंदा महाविहार, पृष्ठ 61.
12. शास्त्री, हीरानन्दः पूर्वोक्त, पृ. 87.
13. वही
14. शास्त्री, हीरानन्द, पूर्वोक्त, पृ. 36
15. वही
16. वही, पृष्ठ 12
17. उपासक, पूर्वोक्त, पृष्ठ 56
18. वही
19. वही, पृष्ठ 58
20. शास्त्री, हीरानन्द, पूर्वोक्त, पृ. 33
21. वही
22. वही, पृष्ठ 32-33
23. वही, पृष्ठ 33
24. देवपाल देव का नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख, पंक्ति संख्या- 26-27, उपासक, सी.एस., वही, पृष्ठ 174
25. थापर, रोमिला, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 12वां संशोधित संस्करण, 1989, पृष्ठ 131
26. ह्वी-ली, शमन (1974) दी लाइफ ऑफ ह्वेनसांग, अनु. एस.बील, दिल्ली, पृ. 112
27. इत्सिंग, (1896) ए रेकार्ड ऑफ दी बुद्धिस्ट रेलिजन, अनु. जे. तकाकुसू, ऑक्सफोर्ड दी क्लैरेन्डन प्रेस, पृष्ठ 70
28. ह्वी-ली, पूर्वोक्त पृष्ठ 112-113
29. वही, पृष्ठ 109-110
30. शास्त्री, चतुरसेन, (1940) बुद्ध और बौद्ध धर्म, हिन्दी साहित्य मंडल, दिल्ली, वही, पृ. 302, मिश्रा बी.एन.,(1998) नालंदा, बी.आर. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, दिल्ली, भाग-1, पृ. 242
31. पन्त आर, (2000), हेरिटेज ऑफ नालंदा, नव नालंदा महाविहार, नालंदा, पृष्ठ 333
32. इत्सिंग, पूर्वोक्त पृष्ठ 117
33. वही, पृष्ठ 26
34. वही, पृष्ठ 43-44
35. पन्त आर, वही, पृष्ठ 333
36. त्रिपाठी, हवलदार, (1960) बौद्ध धर्म और बिहार, पटना, पृष्ठ 199
37. श्रीवास्तव, (1983-84) ए.पी., नालंदा की स्थापत्य कला, दी जर्नल ऑफ दी बिहार पुराविद् परिषद्, वालूम-7, एवं 8, पार्ट-2 पृष्ठ 225-261
38. पन्त, आर., वही, पृष्ठ 333
39. यादव, विनोद कुमार, (2009) नालन्दा के पुरावशेषों का अध्ययन, कला प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 51-52

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा इतिहास

गिरीश कुमार राय

शोध छात्र, स्नातकोत्तर, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (भोजपुर), बिहार

सारांश

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 'कांग्रेसश शब्द की उत्पत्ति उत्तरी अमेरिका के राजनीतिक इतिहास कीदेन है, जिसका अर्थ है, 'व्यक्तियां का समूह'। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का श्रेय एक सेवा निर्वित्त ब्रिटिश अधिकारी ए. ओ. ह्यूम को जाता है।

1885 ई. तक भारतीयों में राजनीतिक चेतना का उद्भव हो चुका था और सब राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने हेतु एक राष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। 1876 में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इंडियन एसोसियेशन नामक संस्था की स्थापना की। 28 से 30 सितंबर, 1883 में कलकत्ता के अल्बर्ट हॉल (Albert Hall) में इस संस्था का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, जिसमें उन सभी प्रश्नों पर विचार किया गया जो आगे चलकर आंदोलन की पृष्ठभूमि बन गये।

1884 में कलकत्ता में एक अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी हुई, जहाँ एकत्र हुए भारतीय नेताओं ने एक अखिल राष्ट्रीय आंदोलन ठोस आध ार पर संगठित करने पर बल दिया।तत्पश्चात् विभिन्न प्रांतों में क्षेत्रीय संस्थाओं का निर्माण हुआ।

1884 में बंगाल में नेशनल लीग की स्थापना हुई। इसी वर्ष मद्रास महाजन सभा की स्थापना हुई।

जनवरी,1885 में बंबई प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन की स्थापना की गई। इन समस्त संस्थाओं का कार्यक्षेत्र प्रांतों तक सीमित था, किन्तु इन संस्थाओं ने कांग्रेस की स्थापना की पृष्ठभूमि तैयार कर दी। दिसंबर,1884 में अड्यार नगर में थियोसॉफिकल सोसायटी के वार्षिक अधिवेशन के उपरांत 17 व्यक्ति, जो देश के विभिन्न भागों से आये थे, दीवान बहादुर रघुनाथ राव के निवास स्थान पर एकत्र हुए।

इस बैठक में एक देशव्यापी संगठन स्थापित करने का निश्चय किया गया, जिसके फलस्वरूप इंडियन नेशनल यूनियन नामक एक संस्था की स्थापना की गई।

परिचय

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस भारत का सबसे प्राचीन राजनीतिक दल है। इस दल की वर्तमान अध्यक्ष सोनिया गांधी है। कांग्रेस दल का युवा संगठन 'भारतीय युवा कांग्रेस' है। 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना 28 दिसम्बर, 1885 ई. में दोपहर बारह बजे बम्बई में 'गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज' के भवन में की गई थी। इसके संस्थापक 'ए.ओ. ह्यूम' थे और प्रथम अध्यक्ष व्योमेश चन्द्र बनर्जी बनाये गए थे। 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' में कुल 72 सदस्य थे, जिनमें महत्त्वपूर्ण थे- दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, दीनशा एदलजी वाचा, काशीनाथा तैलंग, वी. राघवाचार्य, एन.जी. चन्द्रावरकर, एस.सुब्रमण्यम आदि। इसी सम्मेलन में दादाभाई नौरोजी के सुझाव पर 'भारतीय राष्ट्रीय संघ' का नाम बदलकर 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' रख दिया गया था। 'भारतीय राष्ट्रीय संघ' (कांग्रेस की पूर्वगामी संस्था) की स्थापना का विचार सर्वप्रथम लॉर्ड डफरिन के दिमाग में आया था। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ

बनर्जी ने हिस्सा नहीं लिया। 1916 ई. में लाला लाजपत राय ने 'यंग इण्डिया' में एक लेख में लिखा, 'कांग्रेस लॉर्ड डफरिन के दिमाग की उपज है।'

उद्देश्य

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में कुछ निम्नलिखित थे-

- देशहित की दिशा में प्रयत्नशील भारतीयों में परस्पर सम्पर्क एवं मित्रता को प्रोत्साहन देना।
- देश के अन्दर धर्म, वंश एवं प्रांत सम्बन्धी विवादों को खत्म कर राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रोत्साहित करना।
- शिक्षित वर्ग की पूर्ण सहमति से महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक सामाजिक विषयों पर विचार विमर्श करना।
- यह निश्चित करना कि आने वाले वर्षों में भारतीय जन-कल्याण के लिए किस दिशा में किस आधार पर कार्य किया जाय।

इतिहास

'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' नामक संगठन का आरंभ भारत के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों द्वारा किया गया, और यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इसके पहले बाद के कुछ ऐसे अध्यक्ष भी हुये, जिन्होंने विलायत में अपनी शिक्षा प्राप्त की थी। पहले तीन अध्यक्ष, व्योमेश चन्द्र बैनर्जी, दादा भाई नौरोजी तथा बदरुद्दीन तैयबजी, ब्रिटेन से ही बैरिस्टरी पढ़कर आये थे। जॉर्ज युल तथा सर विलियम बैडरवर्न तो अंग्रेज ही थे और यही बात उनके कुछ अन्य अनुयायियों, जैसे कि एलफर्ड बेब तथा सर हेनरी काटन के बारे में भी कही जा सकती है। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के उस दौर में शिक्षा प्राप्त की, जबकि इंग्लैंड में लोकतांत्रिक मूल्यों तथा स्वाधीनता का बोलबाला था। कांग्रेस के आरंभिक नेताओं का ब्रिटेन के सुधारवादी (रेडिकल) तथा उदारवादी (लिबरल) नेताओं में पूरा विश्वास था। भारतीय कांग्रेस के संस्थापक भी एक अंग्रेज ही थे, जो 15 वर्षों तक कांग्रेस के महासचिव रहे। ऐ. ओ. ह्यूम ब्रिटिश संस्कृति की ही देन थे। इसलिए कांग्रेस का आरंभ से ही प्रयास रहा कि ब्रिटेन के जनमत को प्रभावित करने वाले नेताओं से सदा सम्पर्क बनाये रखा जाये, ताकि भारतीय लोगों के हित के लिए अपेक्षित सुधार कर उन्हें उनके राजनीतिक अधिकार दिलवाने में सहायता मिल सके। यहाँ तक कि वह नेता, जिन्होंने इंग्लैंड में शिक्षा नहीं पाई थी, उनकी भी मान्यता थी कि अंग्रेज लोकतंत्र को बहुत चाहते हैं।

मदन मोहन मालवीय ने अपने पहले भाषण में, जो कि उन्होंने 1886 ई. में कलकत्ता में हुये दूसरे कांग्रेस अधिवेशन में दिया था, कहा- 'प्रतिनिधिक संस्थाओं के बिना अंग्रेज से भला क्या होगा। प्रतिनिधिक संस्थान ब्रिटेन का उतना ही अनिवार्य अंग है, जितना कि उसकी भाषा तथा साहित्य।' कांग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में जॉर्ज युल की अध्यक्षता में हुआ, जिसमें मांग की गई कि एक संसदीय समिति की नियुक्ति की जाये, जो कांग्रेस की 1858 ई. की उद्घोषणा को लागू करने तथा राजनीतिक सुधार स्वीकार करने की मांगों पर विचार करे। यह निर्णय भी किया गया कि संसद के सदस्य ब्रैडला से अनुरोध किया जाये कि वह इसके लिए उन्हें अपना समर्थन दें।

चार्ल्स ब्रैडला ने 1889 ई. में 'बम्बई कांग्रेस अधिवेशन' में भाग लिया तथा सर विलियम बेडरवर्न को अध्यक्ष चुना गया। इस अधिवेशन में ब्रैडला को एक मानपत्र भेंट किया गया, जिसे सर विलियम रेडरवर्न ने पढ़ा। इसी अधिवेशन में वह संकल्प स्वीकार किया गया, जिसमें कहा गया है, षकि यह अधिवेशन सर विलियम बेडरवर्न, बार्ट तथा मैसर्ज डब्ल्यू एस. केनी, एम. पी., डब्ल्यू. एस. ब्राईट मैकलारिन एम.पी., जे.ई. इलियस एम.पी., दादाभाई नौरोजी तथा जॉर्ज युल की समिति, जिसके पास अपनी संस्था बढ़ाने की शक्ति होगी, के रूप में नियुक्ति की पुष्टि करता है तथा यह समिति नेशनल कांग्रेस एजेंसी के कार्य संचालन तथा नियंत्रण के बारे में दिशा-निर्देश देती रहेगी तथा उन महानुभावों का धन्यवाद करती है तथा उनके साथ ही डब्ल्यू. दिग्बे, सी.आई.सी. सचिव का भारत को दी जाने वाली सेवा के लिए धन्यवाद करती है।'

इस संकल्प से पता चलता है कि समिति कांग्रेस के पांचवे अधिवेशन से पहले भी कार्यरत रही होगी और यह 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक तक कार्यरत रही, जब तक कि महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में कलकत्ता में 1920 ई. के विशेष अधिवेशन में अपना असहयोग आंदोलन का संकप पारित करवाने में सफल नहीं हो गये। यह समिति इतनी सशक्त होती चली गई कि दादाभाई नौरोजी ने, 1906 ई. में कलकत्ता में होने वाले अपने अध्यक्षीय भाषण में इस तथ्य का उल्लेख करते हुये कहा कि

'भारतीय संसदीय कमेटी के सदस्यों की संख्या 200 तक पहुंच गई है।' लेबर सदस्यों, आयरिश नेशनल सदस्यों तथा रेडीकल सदस्यों की हमारे साथ पूर्ण सहानुभूति है। हम इसे भारत का एक सशक्त अंग बनाना चाहते हैं। हमने देखा है कि सभी दलों के लोग चाहे वह लेबर पार्टी के हरें सर छेमरेक्रेटिक पार्टी के हों, ब्रिटिश नेशनल पार्टी के, या फिर उग्र-सुधारवादी (रेडिकल) या उदारबादी (लिबरल) सभी भारत के मामलों में गहरी दिलचस्पी लेते हैं।'

1838 में कलकत्ता में स्थापित लैंड होल्डर्स सोसाइटी भारत की प्रथम राजनीतिक संस्था थी जो द्वारकानाथ टैगोर के प्रयासों से स्थापित हुई। संस्था का उद्देश्य जमींदारों के हितों की रक्षा करना था। संस्था के अन्य मुख्य नेता प्रसन्न कुमार ठाकुर, राजा राधाकान्त देव आदि थे।

बंगाल ब्रिटिश एसोसिएशन

इसकी स्थापना कलकत्ता में हुई थी। इसकी स्थापना में द्वारकानाथ टैगोर की भूमिका अग्रणी थी। इस संस्था के सदस्य अंग्रेज भी थे। अंग्रेज जार्ज थाम्पसन ने संस्था की अध्यक्षता की थी।

गरम दल और नरम दल

भारत की आजादी से पूर्व 1941 तक कांग्रेस पार्टी थोड़ी उभर चुकी थी। लेकिन वह दो खेमों में विभाजित हो गई। जिसमें एक खेमे के समर्थक बाल गंगाधर तिलक थे और दुसरे खेमे में मोती लाल नेहरू थे। मतभेद था सरकार बनाने को लेकर। मोती लाल नेहरू चाहते थे कि स्वतंत्र भारत की सरकार अंग्रेजों के साथ कोई संयोजक सरकार बने। जबकि गंगाधर तिलक कहते थे कि अंग्रेजों के साथ मिलकर सरकार बनाना तो भारत के लोगों को धोखा देना है। इस मतभेद के कारण लोकमान्य तिलक कांग्रेस से निकल गए और उन्होंने गरम दल बनाया। और इस तरह कांग्रेस के दो हिस्से हो गए एक नरम दल और एक गरम दल। गरम दल के नेता थे लोकमान्य तिलक जैसे क्रन्तिकारी। वे हर जगह वन्दे मातरम गाया करते थे। और नरम दल के नेता थे मोती लाल नेहरू। लेकिन नरम दल वाले ज्यादातर अंग्रेजों के साथ रहते थे। उनके साथ रहना, उनको सुनना, उनकी बैठकों में शामिल होना। हर समय अंग्रेजों से समझौते में रहते थे। वन्दे मातरम से अंग्रेजों को बहुत चिढ़ होती थी। नरम दल वाले गरम दल को चिढ़ाने के लिए 1911 में लिखा गया गीत 'जन गण मन' गाया करते थे और गरम दल वाले 'वन्दे मातरम'। नरम दल वाले अंग्रेजों के समर्थक थे और अंग्रेजों को ये गीत पसंद नहीं था तो अंग्रेजों के कहने पर नरम दल वालों ने उस समय एक हवा उड़ा दी कि मुसलमानों को वन्दे मातरम नहीं गाना चाहिए क्यों कि इसमें बुतपरस्ती (मूर्ति पूजा) है। मुसलमान मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी है। उस समय मुस्लिम लीग भी बन गई थी जिसके प्रमुख मोहम्मद अली जिन्ना थे।

स्थापना दिवस

भारतीयों के सबसे बड़े इस राजनीतिक संगठन की स्थापना 28 दिसम्बर, 1885 ई. को की गयी। इसका पहला अधिवेशन बम्बई में कलकत्ता हाईकोर्ट के बैरेस्टर उमेशचन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में हुआ। कहा जाता है कि वाइसराय लॉर्ड डफरिन (1884-88 ई.) ने कांग्रेस की स्थापना का अप्रत्यक्ष रीति से समर्थन किया। यह सही है कि एक अवकाश प्राप्त अंग्रेज अधिकारी एनल आक्टेवियन ह्यूम कांग्रेस का जन्मदाता था और 1912 ई. में उसकी मृत्यु हो जाने पर कांग्रेस ने उसे अपना 'जन्मदाता और संस्थापक' घोषित किया था। गोखले के अनुसार 1885 ई. में ह्यूम के सिवा और कोई व्यक्ति कांग्रेस की स्थापना नहीं कर सकता था। परन्तु वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है, जैसा कि सी.वाई. चिन्तामणि का मत है, राजनीतिक उद्देश्यों से राष्ट्रीय सम्मेलन का विचार कई व्यक्तियों के मन में उठा था और वह 1885 ई. में चरितार्थ हुआ।

प्रस्ताव

सम्मेलन में लाये गये कुल 9 प्रस्तावों के द्वारा संगठन ने अपनी मांगे सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की। ये प्रस्ताव निम्नलिखित थे-

1. भारतीय शासन विधान की जांच के लिए एक शरायल कमीशनश को नियुक्त किया जाय।
2. इंग्लैड में कार्यरत 'इण्डिया कौंसिल' को समाप्त किया जाय।

3. प्रान्तीय तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका का विस्तार किया जाय।
4. 'इण्डियन सिविल सर्विस' (भारतीय प्रशासनिक सेवा) परीक्षा का आयोजन भारत एवं इंग्लैण्ड दोनों स्थानों पर किया जाय।
5. इस परीक्षा की उम्र सीमा अधिकतम 19 से बढ़ाकर 23 वर्ष की जाय।
6. सैन्य व्यय में कटौती की जाय।
7. बर्मा, जिस पर अधिकार कर लेने की आलोचना की गई थी, को अलग किया जाय।
8. समस्त प्रस्तावों को सभी प्रदेशों की सभी राजनीतिक संस्थाओं को भेजा जाय, जिससे वे इनके क्रियान्वयन की मांग कर सकें।
9. कांग्रेस का अगला सम्मलेन कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में बुलाया जाय।

निष्कर्ष

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 28 दिसंबर 1885 को हुई थी। इसकी स्थापना अवकाश प्राप्त आईसीएस अधिकारी स्कॉटलैंड निवासी ऐलन ओक्टोवियन ह्यूम (Allan Octavian Hume) ने थियोसोफिकल सोसायटी के मात्र 72 राजनीतिक कार्यकर्ताओं के सहयोग से की थी। इसमें सामाजिक कार्याकर्ता, पत्रकार और वकीलों का दल भी शामिल था। 28 दिसंबर 1885 को कांग्रेस का पहला चार दिवसीय अधिवेशन मुंबई (तब बॉम्बे) के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज में हुआ था, जिसके अध्यक्ष तब के बैरिस्टर व्योमेश चंद्र बनर्जी थे।

19वीं सदी के आखिर में और शुरूआत से लेकर मध्य 20वीं सदी में, काँग्रेस भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में, अपने 1.5 करोड़ से अधिक सदस्यों और 7 करोड़ से अधिक प्रतिभागियों के साथ, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विरोध में एक केन्द्रीय भागीदार बनी।

सन्दर्भ

- *Bevir, Mark (1मार्च 2003). "Theosophy and the Origins of the Indian National Congress". 7: 99–115. मूल से 2 .मई 2019 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 1 मार्च, 2019-वाया escholarship.org.*
- *John F. Riddick (2006), The history of British India: a chronology, Greenwood Publishing Group, आई. एस. बी.एन 0313322805*
- *Gavit, Manikrao Hodlya; Chand, Attar (1 मार्च 1989). "Indian National Congress: A Select Bibliography". U.D.H. Publishing House. मूल से 2 मार्च 2019 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 1 मार्च, 2019-वाया Google Books.*
- *A Century of Indian National Congress, 1885–1985*, by Pran Nath Chopra, Ram Gopal, Moti Lal Bhargava. Published by Agam Prakashan, 1986.
- *The Congress Ideology and Programme, 1920–1985*, by Pitambar Datt Kaushik. Published by Gitanjali Pub. House, 1986. ISBN 81-85060-16-9.

मौर्यकालीन बिहार में कृषि और कृषि प्रबन्धन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० नीता कुमारी

अतिथि व्याख्याता, बी.एन. कॉलेज, बड़हिया

डॉ० रंजीत कुमार राय

अतिथि व्याख्याता, जी.बी. कॉलेज, नवगछिया

बिहार के इतिहास में लगभग चौथी शताब्दी ई.पू. के अंतिम भाग में एक बड़ा परिवर्तन हुआ। उस समय से लगभग एक सौ चालीस वर्षो तक मौर्य वंश के शासकों का प्रबल राजनीतिक आधिात्य भारतीय उपमहाद्वीप के बहुत बड़े भाग पर बना रहा। भारतीय इतिहास के एक सार्थक काल की दृष्टि से मौर्यकाल का विशेष महत्व है।

विश्व सभ्यता के इतिहास में जब से मानव नव पाषाण युग में प्रवेश किया तब से कृषि करना भी प्रारम्भ किया। अब तक फल तथा शिकार से प्राप्त मांस ही उसके जीवित रहने का एक मात्र साधान था। तब सम्भवत: वृक्षों से गिरने वाले बीजो को, जो घूमने वाले जानवरों के पैरों से भूमि में दब जाते थे, उगते देख तथा उनसे पुन: फल निकलते देख उनके मन में दलदली भूमि पर बीजों को बिखरे कर अधिक अन्न पैदा करने की बात आई हो, जिससे कृषि का विकास हुआ। लगभग इसी क्रम में बिहार के उपजाऊ भूमि में भी कृषि का विकास सम्भव हुआ होगा।

अर्थशास्त्र में वार्ता[1] के क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य को सम्मिलित किया गया है। किन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह तथ्य भी उद्घाटित होता है कि मौर्य शासकों द्वारा प्रतिष्ठापित राष्ट्रनीति में कृषि को ही वरीयता दी गयी। वास्तव में मौर्य साम्राज्य की स्थापना से पहले ही भारत कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो चुका था। किन्तु मौर्य शासन ने जिस आर्थिक नीति का अनुसरण किया उसके परिणामस्वरूप इतनी प्रगति हुयी कि उसने न केवल आत्मनिर्भरता के युग से निकलकर अतिरिक्त उत्पादन के युग में प्रवेश कर लिया अपितु राजकीय आय का प्रमुख स्रोत बन गयी। ईसा से लगभग ढाई सौ वर्ष पहले मौर्य काल में कृषि को उद्योग का दर्जा मिला जो उसे पुन: आज तक प्राप्त नहीं हो सका।

कृषि केवल खाद्यान्न प्राप्ति का ही स्रोत नहीं थी। राज्य के अनेक उद्योगों के लिये कच्चा माल भी कृषि के माध्यम से सुलभ होता था। गन्ना, चावल, आम आदि फलों से शराब बनाने, सिरका तैयार कराने का कार्य तथा उसके विक्रय से राज्य को आय की प्राप्ति होती थी, जिसकी पूरी व्यवस्था सुराधयक्ष को करनी पड़ती थी, उसके निर्देशन और निरीक्षण में शराब बनाई और बेची जाती थी।[2] कृषिजनित कच्चे माल में वृक्षों की छाल, कपास, रेशम, सन, क्षौम आदि से धागे बनवाने, वस्त्र एवं रस्सी तैयार कराने तथा उनके विक्रय आदि का प्रबन्ध करने का उत्तरदायित्व सूत्रधयक्ष का होता था।[3] कृषि शब्द से अभिप्राय मात्र कर्षण क्रिया ही नहीं था। इसके अन्तर्गत बीज प्रबन्धन, कृषि सम्बन्धी उपकरण, पशु आदि भी सम्मिलित थे।[4] यद्यपि वार्ता के तीन अंग थे तथापि इनमें कृषि को ही वरीयता दी गयी थी। सैनिक अभियान प्रस्तुत करने से पहले शासन को यह विचार कर लेना चाहिये कि वह जिस राज्य पर विजय करने जा रहा है, वह खनिज प्रधान है या कृषि प्रधान। इन दोनों में उसे प्राथमिकता ऐसे राज्य पर विजय करने के लिय

देनी चाहिये जहाँ अन्नोत्पादन की प्रचुरता हो, क्योंकि खनिजों की प्रधानता से मात्र कोश की वृद्धि होती है जबकि कृषि की प्रध नता से कोश एवं कोष्ठागार दोनों ही परिपूर्ण होते हैं।[5] अच्छा जनपद वह है जहाँ पंक, पाषाण, ऊज़र भूमि, विषम भूमि, कटीली झाड़ियाँ, वन्य पशु आदि न हों, जो सुरम्य, कृषि योग्य भूमि, खनिज पदार्थ, द्रव्य वन, हस्तिवन पशुओं के लिये अनुकूल, सुरक्षित पशुचर, पशुओं से भरा पूरा, कृषि के लिये वर्षा के जल पर ही निर्भर नहीं हो परिश्रमी कृषक वर्ग तथा निम्न वर्ण बहुल हो।[6]

कृषि नीति के निर्धारण में इसका भी ध्यान रखना पड़ता कि विस्तृत किन्तु जलविहीन जनपद की अपेक्षा छोटा किन्तु ऐसा जनपद लाभकारी होता है जहाँ प्रचूर मात्र में जल सुलभ हो क्योंकि इसमें पूरे वर्ष अन्न का उत्पादन होता रहता है। जलयुक्त दो जनपदों में श्रेयस्कर वह जनपद होता है जहां विभिन्न प्रकार के कृषि का बीज वपन सुगमता से होता हो।[7] राजकीय आय की वृद्धि तभी सम्भव है जबकि अन्य उपायों के साथ-साथ प्रचूर मात्र में अन्न का उत्पादन हो और कर में छूट कम से कम हो[8] आधुनिक शब्दावली में सब्सिडी न्यूनतम होनी चाहिये।

कृषि को राजकीय आय का प्रमुख स्रोत बनाने के उद्देश्य से ही ग्रामीण क्षेत्र के कुशल प्रबन्धन पर कौटिल्य का विशेष ध्यान था।[9] इस उद्देश्य से समाहर्ता तो राजकीय आय का लेखा जोखा रखने वाला सर्वोच्च अधिकारी था जनपद अथवा ग्रामीण क्षेत्र को चार वर्गो में विभक्त करता था और इन ग्रामों का उत्तम मध्यम एवं कनिष्ठ की तीन कोटियों में सूचीवद्ध करता था।[10] इस सूची में इसका उल्लेख किया गया है कि कौन सा ग्राम कर-मुक्त है। किस कोटि के ग्राम से धन्य, पशु, नकद, वन-सम्पदा, बेगार, प्रतिकर के रूप में राज्य को कितनी आय होती है। किस ग्राम में कितनी भूमि परती रहती है, कितना सूखा मैदान है, कितना जल युक्त है, बाग, बगीचा, सब्जी के खेत, वन, सिंचाई की व्यवस्था, पशुओं के लिये चारागाह, इत्यादि के अतिरिक्त प्रत्येक ग्राम के प्रत्येक घर की सूची, कौन से घर करदायी हैं और कौन कर-मुक्त, गांव में विभिन्न जातियों की कितनी आबादी हैं, उसमें कितने कृषक, कितने ग्वाला, द्विपद एवं चंतुष्पदों की संख्या तथा अन्य अनेक प्रकार की सूचना समाहतो गोप नामक कर्मचारी के माध्यम से रजिस्टर में सूचीवद्ध कर अपने कार्यालय में सुरक्षित रखता था। गोप के अतिरिक्त स्थानिक नामका कर्मचारी होता था जो जनपद के चौथे भाग का लेखा-जोखा रखता था।[11]

निश्चय ही ग्रामीण क्षेत्र के लिये शासन ने एक विशिष्ट आर्थिक योजना तैयार की थी। इस क्षेत्र से होने वाली आय पर राज्य का सर्वाधिक ध्यान था, अन्यथा यह कार्य समाहर्ता नामक सर्वोच्च अधिकारी को नहीं दिया जाता। ग्रामीण क्षेत्र की भू-सम्पदा, कृष्ट एवं अकृष्ट भूमि, कितने लोग खेती करते हैं और कितने नहीं, पशु, जलप्रबन्धन आदि के विषय में सूचना एकत्र करने का उद्देश्य ग्रामीण अंचल से राजस्व की प्राप्ति ही था। इसीलिये यह कार्य रेवेन्यू कलेक्टर को दिया गया था।

राज्य इतने से ही सन्तुष्ट नहीं था। भू-सम्पदा से अधिक से अधिक राजस्व की प्राप्ति के लिये शासन ने अपनी कृषि नीति में सर्वथा नवीन प्रयोग किये जिसके अन्तर्गत अब तक बंजर पड़ी हुयी भूमि पर खेती करने के लिये योजना तैयार की। निश्चय ही इस प्रकार की भूमि बड़ी मात्र में विद्यमान थी। उत्तर में मिथिला, दक्षिण में विस्तृत विशाल भू-खण्ड, इसमें कई प्रकार की भूमि थी जैसे वन्य भूमि, ग्राम्य भूमि, पर्वतीय भूमि, दलदली भूमि सूखी भूमि, समतल भूमि एवं असमतल भूमि।[12] बिहार का एक बड़ा भाग बहुत बाद तक वनाच्छादित था। गुप्त काल के ताम्रपत्र अभिलेखों से पता चलता है।[13] समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति अभिलेख में भी महाकान्तार अथवा विशाल जंगली राज्य का नाम मिलता है जहां व्याध्राज का शासन था।[14] बराहमिहिर ने वृहत्संहिता में जिन वन-राष्ट्र एवं वन-राज्य का उल्लेख किया है वह "लीट के अनुसार भारत के बिहार के पर्वतीय क्षेत्र में स्थित थे।[15] कुल मिलाकर ऐसा प्रतीत होता है कि विशाल मौर्य साम्राज्य में जलवायु और भूमि की विविधता बहुत अधिाक थी। बहुत बड़ा क्षेत्र पथरीला तथा वनाच्छादित जन-शून्य या बिरल आबादी वाला था। इस क्षेत्र में रहने वालों का जीवन मुख्य रूप से आखेट पर निर्भर था। जनपद निवेश के प्रसंग में कौटिल्य ने वागुरिक, शबर, पुलिन्द, चण्डाल आदि जंगल में रहने वाले जनों का उल्लेख किया है। एरियन, डायोडोरस सिक्युलस, स्ट्रैबो आदि यूनानी इतिहासकारों के अनुसार तृतीय वर्ग उन लोगों का था जो भेड़ या अन्य पशुओं का पालन करते थे, इनका कोई स्थायी निवास नहीं था, जीवन खानाबदोशों का था। ये नगर या गांव से दूर दक्षिण बिहार की पहाड़ियों या जंगलों में खेमा गाड़कर उसी में रहते थे। इनका जीवन आखेट पर ही निर्भर था। इनकी उपयोगिता यह थी कि ऐसे जानवरों को यह मारते थे जो खेतो की नुकसान पहुंचाते थे।[16] राजकीय आय में वृद्धि तभी सम्भव थी जब साम्राज्य के अन्तर्गत विद्यमान इस प्रकार के विरल एवं परती पड़े क्षेत्र को आबाद किया जाय और वहां की भूमि पर खेती की जाये।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अशोक के अभिलेख के अनुसार इन क्षेत्रों में राजकीय स्तर पर नवीन जनसन्निवेश बनाये गये। इस प्रकार के सन्निवेशों की स्थापना का उद्देश्य मात्र यही था कि वहां कृषि कार्य आरम्भ किया जाय जिससे राजकीय आय की वृद्धि;

हो। अर्थशास्त्र के अनुसार दूसरे जगहों से लोगों को लाकर बसाने चाहिये।[17] किन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्त में प्रधानता उत्पादक वर्ग को दी गयी थी, उपभोक्ता वर्ग को नहीं। अर्थशास्त्र का लेखक इस तथ्य से अवगत था कि राष्ट्रीय उत्पादन में, ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दो उच्च वर्णो का कोई विशेष योगदान नहीं होता है। यह वर्ग सामान्यतया उपभोक्ता ही रहा है। नवीन जनसन्निवेश की स्थापना शूद्रवर्ण के कृषकों द्वारा की जानी चाहिये जिनके परिवार की संख्या कम से कम एक सौ और अधिक से अाकि पाँच सौ रहे।[18] अन्यत्र वह अच्छा जनपद उसे कहता है जहाँ के कृषक परिश्रमी हो और जो निम्न जाति बहुल हो।[19] चार जातियों के सन्निवेश में श्रेयस्कर निम्नवर्णो की बहुलता वाला सन्निवेश ही होता है क्योंकि यह अनेक प्रकार से लाभदायक होता है।[20] अशोक के शिलालेख संख्या तेरह में कलिंग युद्ध में डेढ़ लाख लोगों को वन्दी बनाकर बिहार के क्षेत्रों में लाने का उल्लेख मिलता है। इसी अभिलेख में अशोक यह भी कहता है कि जब भी अविजित देश पर विजय प्राप्त की जाती है तो पराजित जनों को बन्दी बनाकर अन्यत्र ले जाया जाता है कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी दूसरे देशों से लोगों को लाकर जनसन्निवेश बनाने का उल्लेख किया है।

इससे यह ज्ञात होता है कि अन्य स्थानों से लोगों को लाकर नवीन जनसन्निवेश स्थापित करना मौर्यकालीन शासन की राजस्व विषयक नीति का अंग था। यह ज्ञातव्य है कि ऐसे जनसन्निवेश साम्राज्य के अन्तर्गत उन क्षेत्रों में स्थापित किये जाते थे जहां अब तक खेती नहीं होती थी। इस प्रकार की भूमि पर स्वामित्व राजा का होता था। अब तक परती पड़े हुये बंजर क्षेत्र में खेती का कार्य आरम्भ करना कठिन था। इसीलिये कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कर्मशील एवं उद्यमी लोगों को बसाने की बात कही है। इस प्रकार की भूमि पर स्वामित्व राजा का होता था अत: इस क्षेत्र पर की जाने वाली खेती राज्य के निरीक्षण में ही होती थी। राज्य ऐसे कृषकों को अनेक प्रकार का प्रोत्साहन छूट एवं सहायता प्रदान करता था। स्पष्ट कर दिया गया था कि राज्य उन लोगों को वेदखल नहीं करेगा जो अपने परिश्रम से बंजर भूमि को खेती लायक बनायेंगे।[22] जो खेती न कर रहे हो उनसे जमीन लेकर दूसरों को दे देनी चाहिये।[27] ऐसे सन्निवेश में बसने वाले कृषक परिश्रमी होते हुये भी साधनविहीन और निर्धन हो सकते थे। राज्य का कर्तव्य था कि इनको अन्न, पशु और द्रव्य से सहायता की जाये।[24] इस प्रकार की सहायता ऋण या तकाबी के रूप में ही दी जाती थी जिसे कृषक अपनी सुविधनुसार लौटा सकता था।[25] कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य द्वारा प्रदत्त इस प्रकार की सुविधा से किसान उत्साह के साथ खेती के कार्य में लगे रहेंगे और इससे राजस्व की ही वृद्धि होती है। किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मौर्य शासन ने जिस कृषि नीति का प्रतिपादन किया है, उसमें मुख्य उद्देश्य राजस्व की वृद्धि था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यह स्पष्ट रूप से व्यवस्था देता है कि राज्य द्वारा कृषकों को ऐसे अनुग्रह और ऐसी छूट देनी चाहिये जिससे कोश की वृद्धि हो ऐसे अनुग्रह या छूट नहीं देना चाहिये जिससे कोश की हानि हो।[26] बार-बार छूट एवं अनुग्रह देने का परिणाम भी बहुत अच्छा नहीं होता है। इससे कृषक वर्ग सुविधभोगी हो सकता था। इसीलिये कौटिल्य ने यह व्यवस्था भी दी कि छूट सन्निवेश की स्थापना के समय अथवा विशेष अवसर पर ही देनी चाहिये।[27] कर में छूट का काल समाप्त हो जाने के पश्चात् कृषक करदायी बन जाते थे। ऐसे कृषकों के प्रति शासक को पितृवत व्यवहार करना चाहिये।[28]

कृषि प्रबन्धन के अन्तर्गत सिंचाई अथवा जल संसाधान का विशेक्रा महत्व था।[29] जल की उचित व्यवस्था के अभाव में खेती तथा अन्नोत्पादन सम्बन्धी सभी प्रयास निश्फल जलप्रबन्धन: हो जाते। राज्य को चाहिये कि बांधा या तालाब आदि का निर्माण कराये और यदि कोई व्यक्ति स्वयं इस प्रकार का निर्माण करा रहा हो तो उसे आवश्यकतानुसार भूमि, मार्ग या उपकरण आदि सुलभ करावे।[30] कौटिल्य के अनुसार सर्वोत्तम जनपद वह है, जो खेती के लिये वर्षा के जल पर निर्भर न रहता हो तथा जहाँ नदी, झील, ताल आदि प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों। ऐसे जनसन्निवेशों में जो देवमातृक हैं, जहां खेती के लिये नदी आदि का जल सुलभ न हो एवं जहाँ के किसान खेती के लिये वर्षा पर ही निर्भर रहते हों, वहाँ राज्य या व्यक्ति विशेष द्वारा जल प्रबन्धन सेतु का महत्व बहुत बढ़ जाता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में इन कृत्रिम जल संसाधानों का कितना अधिक महत्व था, यह इस सम्बन्ध में कौटिल्य द्वारा दी गयी व्यवस्था से ज्ञात हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति नया तड़ाग या बान्ध निर्मित कराता है तो उसे पाँच वर्ष तक कर में छूट दी जाती थी; यदि किसी व्यक्ति द्वारा भग्न तड़ाग का जीर्णोद्धार करता हो तो चार वर्ष की; यदि बहुत काल तक उपेक्षा के कारण कोई तड़ाग घास एवं झाड़ियों से ढक गया हो तो उसकी स्फाई करायी गई तो तीन वर्ष की और यदि कोई सूखी एवं परती पड़ी हुयी भूमि को खेती योग्य बनाता है तो दो वर्ष तक कर में छूट राज्य द्वारा दी जाती थी।[31] पुण्य कार्य मानते हुये यदि कभी किसी व्यक्ति ने ध र्मसेतु या तड़ाग को बनवाया हो और बाद में कोई अन्य व्यक्ति ऐसे तड़ाग का बन्धक रख दे या उसका विक्रय कर दे तो ऐसे व्यक्ति पर मध्यम कोटि का जुर्माना लगाया जाता था।[32] किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी जल से भरे हुये तड़ाग का वान्धा तोड़ देता है तो

ऐसे व्यक्ति को उसी स्थान पर जल में डुबो कर मार डालना चाहिये, यदि सूखे तड़ाग का बान्धा तोड़ता है तो प्रथम कोटि का और यदि पहले से ही भग्न तड़ाग का बान्धा तोड़ता है तो मध्यम कोटि के जुर्माने से ऐसे व्यक्ति को दण्डित करना चाहिये।[33] जल संसाधान सम्बन्धी इस प्रकार की व्यवस्था जिसमें तड़ागादि के निर्माण में कर-छूट और उसे विनष्ट करने में मृत्यु दंड का निर्धारण था ख्रषि को समृद्ध करने में अवश्य ही सहायक हुयी होगी। राज्य स्तर पर भी इस काल में सिंचाई की व्यवस्था की जाती थी जैसा कि महाक्षत्रप रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है। यह अभिलेख सूचित करता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में उसके राष्ट्रीय वैश्य पुष्यगुप्त ने सुदर्शन झील का निर्माण कराया था और पुन: अशोक के शासन काल में उसके अधीनस्थ यवनराज तुषारू ने इस झील से छोटी-छोटी अनेक नालियाँ बनवाई थी। सिंचाई के लिये किये गये इस प्रकार के कार्य जो व्यतिगत और राजकीय दोनों स्तर पर थे, मौर्य शासकों की कृषि नीति के ही अनुभाग थे।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राजा साम्राज्य की सम्पूर्ण भूमि का ही नहीं अपितु उसके अन्तर्गत विद्यमान जल का भी स्वामी था। अत: यदि कोई व्यक्ति अपने साधनों से भी अपने खेत में सिंचाई करता था तो उसे कर देना पड़ता था। यह कर साधान की विविधता के अनुसार कम या अधिक हो सकता था। यदि किसान अपने जल संसाधन से और अपने हाथ से खेत की सिंचाई करता था तो 1/5 उदक भाग; यदि कन्धो से जल लाकर (बैल के कन्धो से) सिंचाई करता है तो 1/4; यदि किसी यन्त्र के माध्यम से अपने खेत में नालियों द्वारा पानी ले जाकर सिंचाई करता है तो 1/3 और यदि नदी, तालाब, ताल, कूआ आदि से जल को ऊपर उठाकर खेत तक ले जाता है तो 1/4 उदक भाग राज्य लेता था।[34] यह उदक भाग जो कृषक से प्राप्त किया जाता था, षडभाग के अतिरिक्त था जो प्रत्येक कृषक अपनी उपज के 1/6 के रूप में देता था।

कृषि से राज्य को अन्य अनेक प्रकार के लाभ होते थे।[35] अर्थशास्त्र कृषि से प्राप्त राजस्व का उल्लेख राष्ट्र के अन्तर्गत करता है।[36] यह राजस्व दोनों प्रकार की कृषि से प्राप्त होता था। राजकीय स्वामित्व के अन्तर्गत विद्यमान भूमि पर की जाने वाली कृषि से प्राप्त होने वाला राजस्व सीता कहलाता था; जबकि व्यक्गित स्वामित्व की भूमि से भाग नामक राजस्व की प्राप्ति होती थी।[37] इसके अतिरिक्त भी ग्रामीण क्षेत्र में विविध प्रकार के कराधन लिये जाते थे।[38]

कृषि से अधिकतम आय की प्राप्ति तभी सम्भव थी जब कृषक वर्ग बिना किसी बाधा के खेती के कार्य में लगे रहे। इस उद्देश्य से कौटिल्य ने यह व्यवस्था भी दी है कि ग्रामीण क्षेत्र में किसी भी प्रकार के आमोद-प्रमोद मनोरंजन या बिहार के स्थान नहीं होने चाहिये। नाटक, नर्तक अथवा गायकों की मण्डली या कथावाचक आदि के ग्राम में प्रवेश पर रोक होनी चाहिये क्योंकि इनसे ग्रामीणों को अपना कार्य करने में विघ्न उपस्थित होता है। जब पूरी तरह निर्विघ्न होकर ये अपने खेत में कार्य करेंगे तभी कोश, श्रम, धान, अन्न आदि की वृद्धि होगी[39] ऋणादान प्रकरण में कौटिल्य ने यह व्यवस्था भी दी है कि काम करते समय कृषक को बन्दी नहीं बनाया जा सकता है।[40] मौर्य शासन में राज्य स्वयं उत्पादक एवं वितरक के रूप में दिखायी देता है। यह बिहार ही नहीं विश्व के इतिहास में सर्वथा नवीन प्रयोग था।

कृषि भूमि दो कौटियों में विभक्त थी। प्रथम कोटि में वह भूमि थी जिस पर स्वामित्व राज्य का था एवं दूसरी कोटि में व्यक्तिगत स्वामित्व की भूमि थी। प्रथम कोटि की भूमि का सर्वोच्च अधिकारी सीताध्यक्ष था, जिसके कार्यक्षेत्र एवं उत्तरदायित्व का उल्लेख अर्थशास्त्र के 2.24 में हुआ है। यह अधिकारी राजकीय भूमि पर दास, श्रमिक तथा न्यायालय द्वारा आर्थिक दण्ड पाये हुये ऐसे व्यक्ति से जो श्रम के माध्यम से अपने आर्थिक दण्ड को चुकाते थे कर्षण, बीज वपन आदि का कार्य करवाता था।[41] राजकीय भूमि के उत्पाद को सीता कहा जाता था। सीताध्यक्ष इस उत्पाद को कोष्ठागाराध्यक्ष के यहाँ जमा करता था।[42]

किन्तु मौर्यकालनी बिहार में राजकीय स्वामित्व के अन्तर्गत भूमि का क्षेत्र बहुत विस्तृत था। शासन के लिये सम्पूर्ण भूमि पर दासों, श्रमिकों आदि के माध्यम से खेती करा लेना संभव नहीं रहा होगा। अत: जो भूमि सीताध्यक्ष के प्रबन्धा के बाद भी बच जाती थी उसे वह या तो आधा पर दे देता था अथवा ऐसे लोगों को जो अपने श्रम से जीविकोपार्जन करते थे, ऐसी भूमि दे दी जाती थी और इस भूमि का पैदावार का 1/4 अथवा 1/5 उन्हें दे दिया जाता था।[43]

ऐसी अपरिहार्य परिस्थितियाँ आ सकती हैं जबकि राज्य को अपनी कृषि नीति में अल्पकालिक परिवर्तन करना पड़े। उदाहरण के लिये युद्ध के कारण अथवा सार्वजनिक उपक्रमों आदि के फलस्वरूप शासन पर व्यय-भार बढ़ जाये और राजकीय कोश रिक्त हो जाये। ऐसी स्थिति में राज्य कृषक वर्ग से अतिरिक्त मांग कर सकता था। कौशाभिसंहरणम् (5.2) के अन्तर्गत कौटिल्य ने यह व्यवस्था दी है कि यदि कोश रिक्त हो जाय तो ऐसे जनपदों से जो अन्नोत्पादन के लिये वर्षा के जल पर निर्भर न रहते हों और

जहाँ प्रचूर मात्र में धन्य का उत्पादन होता हो शासक कृषकों से उनके उत्पादन के 1/3 या 1/4 अंश की याचना कर सकता है।[44] यदि जनपद मध्यम या निम्न कोटि का है तो वहाँ के उत्पादन के अनुसार यह माँग की जानी चाहिये। यदि इसके बाद भी राजकीय कोष्ठागार में आवश्यकतानुसार अन्नसंग्रह न हो सका हो तो कृषकों से ग्रीष्म ऋतु में भी खेती करवानी चाहिये।[45] ऐसी स्थिति में अन्न का 1/4 अंश राज्य द्वारा ग्रहण कर लेना चाहिये।[46]

इसी प्रकार की कठिन परिस्थिति शासन के लिये उस समय उत्पन्न हो सकती थी जब राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा हो। इसके दुष्प्रभाव से पूरा देश पीड़ित होता है और जीविका का साधन नष्ट हो जाता है।[47] शासन को इस प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं के लिये पहले से ही सावधान रहना चाहिये। दुर्भिक्ष में अन्न तथा बीज से सहायता प्रदान करना एवं भोजन का आवंटन करना शासन का कर्त्तव्य है।[48] कोष्ठागाराध्यक्ष के कार्यो के प्रसंग में कौटिल्य यह व्यवस्था भी देता है कि कोष्ठागार में जो अन्न आदि संग्रहीत किया जाता है उसका आधा आपद्काल के लिये संरक्षित रखना चाहिये और आधो का ही उपयोग करना चाहिये। संरक्षित खाद्यान्न का भी यथा समय नवीनीकरण करते रहना चाहिये।[49] संग्रहण के सम्बन्ध में उसने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि भण्डारगृह की क्षमता इतनी होनी चाहिये कि जिसमें अनेक वर्ष तक के लिये तेल, अन्न, चीनी, नमक, सूखी सब्जी, भूसा आदि को सुरक्षित रखा जा सके। समय-समय पर पुरानी संग्रहीत वस्तुओं को देकर उनके स्थान पर नवीन को रख लेना चाहिये।[50]

इस प्रकार मौर्य-शुंग कालीन बिहार का कृषि कार्य की उन्नति के कारण की उसकी आर्थिक अवस्था समुन्नत हुई और बहु आय की संस्कृति का विकास संभव हुआ। वास्तव में मौर्यकालीन बिहार का इतिहास ही भारत का इतिहास था। इसलिए, हम कह सकते है कि कृषि और कृषि प्रबन्धन की उन्नति में ही मौर्यो को समृद्धि प्रदान की।

संदर्भ सूची

1. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, आर.पी. कागले, बम्बई, 1965, खण्ड-1.4.1
2. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, 2.25
3. वही, 2.23
4. पतंजलि का महामाष्य, प्रदीप एण्ड उद्योता कॉमेन्ट्री, गवर्मेंट आर्फ इण्डिया, पब्लिकेशन, दिल्ली, 1967, भाग-3.1.26, 2.33
5. वही, 7.11.10
6. वही, 6.1.9(7.11.21
7. वही, 7.11.3.5
8. वही, 2.9.3
9. श्रीमूला - सर्वेभ्य आयस्थानेभ्यो दुर्ग राष्ट्रखनिसेतुवनब्रज वणिक्पथ लक्षणेभ्यो राजार्थाना सम्यग्राहर्ता समाहर्ता।
10. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, 2.35.1
11. वही, 2.35.2-6
12. वही, 9.1.17-18, देश: पृथिवी। तस्या हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीन योजनसहस्रपरिमाण तिर्यक चक्रवर्ति क्षेत्र्म्। तत्ररण्यो ग्राम्य: पार्वत औदको भौम: समौ विषय इति
    विशेषा:।
13. कॉपर्स इन्स्क्रीपशंस इंडिकेरम, जिल्द 3, संख्या 25, पं. 8
14. वही, सं. 1, पं. 19
15. वही, पृ. 13, पादटिप्पणी - 7
16. क्लासिकल एकाउण्ट्स, आर.सी.मजूमदार, एरियन, 11 पृ. 225, डायोडोरस सिक्युलस 40, पृ. 237, स्ट्रैबो 41, पृ. 264
17. वही, 2.1.1
18. वही, 2.1.2
19. वही, 9.1.8
20. वही, 7.11.21

21. डी.सी. सरकार, सेलेक्ट इन्सक्रिप्संस, जिल्द 1, संख्या 18
22. वही, 2.1.9, अकृतानि कर्तृभ्यो नादेयानि।
23. वही, 2.1.10
24. वही, 2.1.13; 5.2.4
25. वही, 2.1.14
26. वही, 2.1.15 - अनुग्रहपरिहारौ चैतेभ्य: कोशवृद्धिकरो दद्यात्, कोशोपघातको वर्जयेत्।
27. मनुस्मृति सं. जी बुलहर, दिल्ली, 1964, पृ. 9.174
28. ललन जी गोपाल, आस्पेक्ट्स ऑफ हिस्ट्री एग्रीकल्चरल इन ऐंशियेंट इण्डिया, वाराणसी, 1965, पृ. 152-153
29. एन.एन. खेर, एग्रेरियन एण्ड फिजिकल इकोनामी इन दि मौर्या एण्ड पोस्ट मौर्या एज, दिल्ली, 1973, पृ. 156
30. महाभारत, सं. रामनारायण दत्ता शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत-2020-21, आदि पर्व, 69.21
31. महाभारत शान्ति पर्व, 15. 13-19
32. नारद स्मृति, सं.- जे. जॉल, दिल्ली, 1965, पृ. XI-19
33. एस. के दास, दि इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ ऐंशियेंट इण्डिया, इलाहाबाद, 1980, पृ0 93
34. यू.एन. घोपाल, दि एग्रेरियन सिस्टम इन ऐंशियेंट इण्डिया, कलकत्ता, 1930, पृ.46
35. बी.डी. चटोपाध्याय, स्टेट एण्ड इकोनोमी इन नार्थ इण्डिया, बम्बई, 1980, पृ.56
36. एम.ए. बूथ, इकोनोमिक लाईफ इन ऐंशियेंट इण्डिया, इलाहाबाद, 1979, भाग-एक, पृ. 96
37. एस.के. दास, दि इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ ऐंशियेंट इण्डिया, इलाहाबाद, 1980, पृ. 103
38. वही,
39. महाभात, शांति पर्व, 65.13-19
40. वही
41. वही
42. वही
43. एन.एन. खेर, पृ. 157
44. ललन जी गोपाल, पृ. 139
45. एस.के. दास, पृ. 23
46. कौटिल्य का अर्थशास्त्र, 3.10-2
47. महाभारत, समापर्व, 5.78
48. बी.बी. निराशी, संख्या, 95 पंक्ति-24-25
49. वही
50. विहुला दूबे, प्राचीन भारत में पूर्त्त धर्म का महत्व, वासुदेव शरण उपाध्याय स्मृति ग्रंथ, बनास हिन्दु विश्वविद्यालय, बनास, 1994, पृ. 17-30

नक्सल आन्दोलनः कारण और समाधान

डॉ० गीतांजलि

अलकापुरी, मुजफ्फरपुर

सारांश

आज से कुछ एक साल पहले प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने नक्सलवाद को देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए एक बहुत बड़ा खतरा बताया था। अगले दिन अखबारों ने उनकी चिंता को सुर्खियों में पेश भी किया। प्रधानमंत्री कुछ नया नहीं बोल गये थे। यह काफी विलंब से स्वीकार किया गया ऐसा सच था जिसकी पूर्ववर्ती सरकारों ने हमेशा अनदेखा किया।

आज हमें इस सत्य को स्वीकार करना ही होगा कि नक्सलवाद अपने मूल में कानून और व्यवस्था की समस्या नहीं, बल्कि राजनीतिक और आर्थिक समस्या के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक समस्या भी है। इसका समाधान राजनीतिक तरीकों, आर्थिक-सामाजिक विकास और सांस्कृतिक समायोजन द्वारा ही हो सकता है।

परिचय

नक्सलवाद उस अनौपचारिक आंदोलन का नाम है, जो भारतीय कम्युनिस्ट के फलस्वरूप उत्पन हुआ था द्य नक्सल शब्द की उत्पत्ति वेस्ट बंगाल के एक गाँव नक्सलबारी से हुई थी, जहाँ भारतीय कम्युनिस्ट के नेता चारु मजूमदार और कानू सायनल ने 1968 में शुरुआत की थी चारु मजूमदार चीन के नेत्ता किम योंग के प्रशंसकों में से एक थे द्य उनका मानना था किसानो की दुर्दशा की जिम्मेवार सरकारी नीतियां थी द्य जिस वजह से ऊँची जातियों का किसानो पर वर्चस्वा हो चूका था। अमीर आदमी गरीब आदमी का शोषण करता है। इसलिए उनका मानना था इस वर्चस्व को सशक्त सशस्त्र क्रन्ति से खत्म किया जा सकता है। उन्होंने एक कम्युनिटी बनाई और सरकार के खिलाफ भूमिगत लड़ाई छेड़ दी।

यद्यपि कानू सान्याल और चारू मजुमदार के द्वारा प्रारंभ किये गये इस आंदोलन को तत्कालीन मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर रे ने प्रवलता से दबा दिया। लेकिन आंदोलन की चिंगारी आंध्र प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में पहुंच चुकी थी।

आज 45 साल बाद नक्सलियों को सशस्त्र आंदोलन के चपेट में देश के 14000 पुलिस थानों में से कम से कम 2000 हैं। यह आंकड़े केन्द्रीय गृह मंत्रालय के हैं। देश के छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड और महाराष्ट्र के कुछ भाग नक्सलियों अर्थात माओवादियों के रणनीति का हिस्सा हैं जिसे लाल गलियारा कहा जाता है और यह लाल गलियारा ऐसा सुरक्षित मार्ग बनता चला जा रहा है जो माओवादियों को आंध्रप्रदेश से नेपाल तक जोड़ता है। लेकिन पिछले डेढ़ दशकों में माओवादियों ने जिस गति से अपने संगठन, सर्मथन और क्षेत्र का विस्तार किया वह काफी खतरनाक सा है। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य सशस्त्र आंदोलन के द्वारा प्रजातांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकार को अपदस्थ कर सर्वहारा और मजदूरों के सरकार का स्थापना करना है।

शासन और व्यवस्था की निरंतर अनदेखी के कारण उपेक्षित क्षेत्रों में नक्सली अपनी गतिविधियों को खतरनाक ढंग से बढ़ाते जा रहे है। नक्सली शोषित आदिवासियों और ग्रामीणों को हिंसक संघर्ष के लिए उकसा रहे हैं। उन्हें बाकायदा ट्रेनिंग भी दे रहे है। देशभर में ऐसे क्षेत्र बढ़ते जा रहे हैं जहाँ नक्सलियों का दबदबा है। एक अनुमान के अनुसार देश के 20 राज्यों के लगभग 170 जिलों में नक्सली अपने संगठन का विस्तार कर चुके हैं।

अपने प्रभाव वाले क्षेत्रों में नक्सली सत्ता प्रतिष्ठानों को भी चुनौती देने लगे हैं। वे लोगों से लेवी वसूल करते एवं समानान्तर अदालतें लगाते हैं। उनके अदालत में दी जाने वाली सजाएँ घोर उत्पीड़क एवं अमानवीय होती है। सत्ता का संरक्षण एवं प्रशासन तक

पहुँच न हो पाने के कारण स्थानीय लोग अब नक्सलियों पर ही विश्वास करने लगे हैं। अशिक्षा और विकास कार्य की उपेक्षा ने स्थानीय लोगों एवं नक्सलियों के बीच के गठबंधन को और भी मजबूत बना दिया है।

नक्सली आंतरिक सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती बन चुके हैं। रेल पटरियाँ उड़ाना, सुरक्षा बलों पर हमला एवं बैंक लूट में भी नक्सली शामिल हो गए हैं। हद तो तब हो गई जब नक्सलियों ने बिहार के जहानाबाद जेल पर हमला कर उसमें बंद अपने साथियों को छुड़ा लिया।

ग्रामीण क्षेत्र में नक्सलवाद ने सामाजिक तनाव का रूप ले लिया है। समृद्ध भूमिपतियों का शहरों की ओर पलायन हो रहा है। इससे खेती चौपट हो रही है। जमीन पर अधिकार को लेकर जातीय संघर्ष भी बड़े हैं साथ ही हिंसक संघर्ष भी देखने को मिल रहे है।

माओवाद के उदय

माओवाद का प्रभाव खासकर आदिवासी बहुल और अविकसित इलाकों में सबसे अधिक है। खनिज संपदा और प्राकृतिक संसाध नों से भरपूर इन इलाकों पर पहले से ही औद्योगिक घरानों और भ्रष्ट पदाधिकारियों की नजर रही। फलतः इन इलाकों से खनिज संसाधनों का दोहन औद्गियोगीक प्रगति के नाम पर होता रहा। आदिवासियों की जमीन लुटती रही और अगर पिछले साठ सालों में किसी वर्ग को विस्थापन का दर्द सबसे अधिक झेलना पड़ा तो वह आदिवासी और कृषक समाज ही रहा। ये इलाके पिछड़ते चले गये। ये इलाके भारत के उन इलाकों के लिये तरक्की का सामान जुटाते रहे हैं जिसे प्रगतिशील भारत कहते हैं।

आदिवासियों के वन्य भूमि पर अधिकार समाप्त कर दिये गये। ऐसे में माओवाद का प्रभावी तौर पर उमड़ना स्वाभाविक ही था। ऐसा उस समय भी स्वाभाविक था जब माओवादियों ने जमींदारों के विरूद्ध श्रीकाकुलम में आंदोलन का नेतृत्व संभाला था। तेलंगाना प्रक्षेत्र में जब भ्रष्ट वन पदाधिकारियों ने आदिवासियों को वन्यभूमि के अधिकार से वंचित कर दिया तो माओवाद ने उन इलाकों में पैर पसारना प्रारंभ कर दिया। अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने के लिये माओवादियों ने वह सब करना शुरू किया जो काम सरकार का होता है। श्रम कानून लागू करना, जमीन का बंटवारा, भ्रष्ट पदाधिकारियों को दंडित करना आदि

नक्सलवाद के चरण

- प्रथम चरण- वर्ष 1967 से 1980 तक का समय नक्सलवादी गतिविधियों का प्रथम चरण था। इसका प्रथम चरण मार्क्सवादी-लेनिनवादी-माओवाद पर आधारित था, अर्थात यह 'वैचारिक और आदर्शवादी' आंदोलन का चरण रहा है। इस चरण में नक्सलवादियों को 'जमीनी अनुभव तथा अनुमान की कमी' देखने को मिली। इस चरण में नक्सलियों को ''राष्ट्रीय पहचान'' अवश्य मिली।
- द्वितीय चरण- वर्ष 1980 से 2004 तक का समय जमीनी अनुभव, जरुरत और आवश्यकता के आधार पर चलने वाला क्षेत्रीय नक्सली गतिविधियों का दौर था। इस चरण में नक्सलवाद का व्यवहारिक विकास हुआ।
- तृतीय चरण- वर्ष 2004 से वर्तमान में जारी इस चरण में नक्सलियों का 'राष्ट्रीय स्वरूप' उभरा और 'विदेशी संपर्क' बढ़े, जिससे अब नक्सलवाद राष्ट्र की 'सबसे बड़ी आंतरिक चुनौती' बनकर उभरा।

नक्सलवाद विस्तार के कारण

नक्सलियों का विस्तार इसलिए हो रहा है क्योंकि आदिवासियों की समस्याओं को आज तक ठीक से समझा ही नहीं गया और उन्हें विभिन्न सुविधाओं एवं योजनाओं का लाभ मिल ही नहीं पाया। यदि आज नक्सलवाद का पानी सर से ऊपर निकल चुका है, तो उसके पीछे आदिवासियों की शक्ति है।

नक्सली क्षेत्रों में विकास की अविरल धारा अवश्य बहनी चाहिए, यह एक सकारात्मक सोच है। लेकिन क्या यह भी सच नहीं कि सरकार को विकास के लिए बाध्य इसलिए होना पड़ा, क्योंकि आदिवासियों एवं युवाओं ने अपने हाथ में बंदूकें ले ली हैं।

यदि पहले ही उन्हें रोजगार और जीवनयापन करने के लिए साधन उपलब्ध कराए जाते, तो वे बंदूक उठाते ही क्यों? नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में शिक्षा व्यवस्था पर भी जोर दिया जाना चाहिए, बिहार के जहानाबाद का सिकरिया गांव इसका उदाहरण है कि ग्रामीणों की समस्याओं का समाधान करके नक्सलियों से मुक्ति पाई जा सकती है।

नक्सलवाद से निपटने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को समन्वय स्थापित करके ही काम करना होगा।

सरकार और व्यवस्था विरोधी हिंसक जनाक्रोश के पीछे पहचान का संकट और आत्म-सम्मान का प्रश्न भी शामिल है। इस दृष्टिकोण से सभी राज्य सरकारों को सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अल्पसंख्यकों की समुचित भागीदारी सुनिश्चित करने में व्यक्तिगत रूप से ध्यान देना चाहिए। सरकारी एजेंसियों, विशेषकर कानून लागू कराने वाली एजेंसियों को समुदाय के नेताओं के साथ आत्मीय सम्बन्ध रखने चाहिए और उनकी चिंताओं पर समुचित संवेदनशीलता दिखानी चाहिए।

नक्सल समस्या के समाधान में आने वाली चुनौतियाँ

- दरअसल नक्सलवाद सामाजिक-आर्थिक कारणों से उपजा था। आदिवासी गरीबी और बेरोजगारी के कारण एक निचले स्तर की जीवनशैली जीने को मजबूर हैं। स्वास्थ्य-सुविधा के अभाव में गंभीर बीमारियों से जूझते इन क्षेत्रों में असामयिक मौत कोई आश्चर्य की बात नहीं।
- आदिवासियों का विकास करने के बजाय, उन्हें शिक्षा, चिकित्सा सेवा और रोजगार देने के बजाय उन्हें परेशान करने के नए-नए कानून बनाए जाते हैं।
- आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार, खेती की दुर्दशा अभी भी जस की तस बनी हुई है। यकीनन इस तरह की समस्यायों में हमेशा असंतोष के बीज होते हैं, जिनमें विद्रोह करने की क्षमता होती है।
- इन्हीं असंतोषों की वजह से ही नक्सलवादी सोच को बढ़ावा मिल रहा है। इससे बड़ी विडंबना ये है कि हमारी सरकारें शायद इस समस्या के सभी संभावित पहलुओं पर विचार नहीं कर रही।
- इसके साथ ही बुनियादी ढाँचे का अभाव तथा प्रशिक्षित मानव संसाधनों और संचार सुविधाओं की कमी है।

निष्कर्ष

चाहे हिंसा नक्सलियों द्वारा हो अथवा सरकार द्वारा, उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। इनकी हिंसा का शिकार अन्ततः वही आमजन होते हैं जिनके लिए ये कुछ प्राप्त करना चाह रहे है। यह सार्वभौमिक सत्य है कि हिंसा से प्राप्त की हुई व्यवस्था ज्यादा दिन तक चल नहीं पाती और अन्ततः टूट जाती है।

नक्सली विचारधारा से प्रभावित गरीब एवं मजदूर जनता को राष्ट्र की मुख्य-धारा से जोड़ने के लिए हमारे लोकतांत्रिक अंगों-केन्द्र एवं राज्य सरकारों, मीडिया और गैर-सरकारी संगठनों सभी को मिलकर सामूहिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

- *The Naxalite Movement in India*, by Prakash Singh. Published by Rupa, 1995. ISBN 81-7167-294-9.
- V. R. Raghavan ed. The Naxal Threat : Causes, State Responses and Consequences, Publisher Vij Books India Pvt Ltd, ISBN 978-93-80177-77-9
- *Naxalite Politics in India*, by J. C. Johari, Institute of Constitutional and Parliamentary Studies, New Delhi, . Published by Research Publications, 1972.
- *The Naxalite Movement*, by Biplab Dasgupta. 1974.
- *The Naxalite Movement:A Maoist Experiment*, by Sankar Ghosh. Published by Firma K.L. Mukhopadhyay, 1975. ISBN 0-88386-568-8.
- *The Naxalite Movement in India: Origin and Failure of the Maoist Revolutionary Strategy in West Bengal, 1967–1971*, by Sohail Jawaid. Published byAssociated Pub. House, 1979.
- *In the Wake of Naxalbari:A History of the Naxalite Movement in India*, by Sumanta Banerjee. Published by Subarnarekha, 1980.

भारत में शिक्षा का इतिहास

डॉ० मनोज कुमार

इतिहास विभाग (प्राचीन भारत), बैकुंठपुर, सुल्तानगंज

सारांश

बिहार का प्राचीन नाम 'विहार' था, जिसका मतलब मठ होता है। यह भारत के पूर्वी भाग में स्थित है। यह राज्य भाषाई तौर पर प्रभावकारी है क्योंकि यहां कई भाषाएं बोली जाती हैं, जैसे भोजपुरी, मैथिली, मगही, बज्जिका और अंगिका। बिहार की राजध ानी पटना है, जिसका नाम पहले पाटलीपुत्र था। भारत के कुछ महान राजाओं जैसे समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त मौर्य, विक्रमादित्य और अशोक के शासन में बिहार शक्ति, संस्कृति और शिक्षा का केन्द्र बन गया। यहां उस समय के दो महान शिक्षा केन्द्र भी थे, विक्रमशिला और नालंदा विश्वविद्यालय।

प्राचीन बिहार (जिसका एक नाम मगध भी था) ने 1,000 सालों तक सत्ता, शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में निर्णायक भूमिका निभाई।

परिचय

विकास के लिए शिक्षित दिमाग की आवश्यकता होती है, इसलिए शिक्षा किसी भी देश या राज्य की वर्तमान परिदृश्य को दर्शाती है। बिहार इस क्षेत्र में आगे तो बढ़ रहा है लेकिन यह अभी भी बस एक शुरुआत से ज्यादा कुछ नहीं है। आधुनिक बिहार में शिक्षा के बुनियादी ढांचे की बहुत कमी है जो मांग और आपूर्ति के बीच बहुत अंतर पैदा करती है। बिहार में शिक्षक अनुपस्थिति दर 37. 8 प्रतिशत है और इसका शिक्षक-छात्र अनुपात और छात्र-कक्षा अनुपात सबसे अधिक है। बिहार में लगभग 10 प्रतिशत प्राथमिक स्कूलों में पीने हेतु साफ पानी भी नहीं है।

बिहार की 'आउट आफ स्कूल' दर भी बहुत प्रभावशाली नहीं है। हालांकि धीरे-धीरे ही सही लेकिन स्थिति बेहतर हो रही है।

प्राचीन काल

भारत की प्राचीन शिक्षा आध्यात्मिमकता पर आधारित थी। शिक्षा, मुक्ति एवं आत्मबोध के साधन के रूप में थी। यह व्यक्ति के लिये नहीं बल्कि धर्म के लिये थी। भारत की शैक्षिक एवं सांस्कृतिक परम्परा विश्व इतिहास में प्राचीनतम है।

विद्यालय श्गुरुकुलश, श्आचार्यकुलश, श्गुरुगृहश इत्यादि नामों से विदित थे। आचार्य के कुल में निवास करता हुआ, गुरुसेवा और ब्रह्मचर्य व्रतधारी विद्यार्थी षडंग वेद का अध्ययन करता था। शिक्षक को श्आचार्यश और श्गुरुश कहा जाता था और विद्यार्थी को ब्रह्मचारी, व्रतधारी, अंतेवासी, आचार्यकुलवासी। मंत्रों के द्रष्टा अर्थात्‌ साक्षात्कार करनेवाले ऋषि अपनी अनुभूति और उसकी व्याख्या और प्रयोग को ब्रह्मचारी, अंतेवासी को देते थे।

यज्ञों का अनुष्ठान विधि से हो, इसलिए होता, उद्‌गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा को आवश्यक शिक्षा दी जाती थी। वेद, शिक्षा, कल्प, व्यकरण, छंद, ज्योतिष और निरुक्त उनके पाठ्य होते थे। पाँच वर्ष के बालक की प्राथमिक शिक्षा आरंभ कर दी जाती थी। गुरुगृह में रहकर गुरुकुल की शिक्षा प्राप्त करने की योग्यता उपनयन संस्कार से प्राप्त होती थी।

ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्यार्थी गुरुगृह में 12 वर्ष वेदाध्ययन करते थे। तब वे स्नातक कहलाते थे। समावर्तन के अवसर पर गुरुदक्षिणा देन की प्रथा थी। समावर्तन के पश्चात्य भी स्नातक स्वाध्याय करते रहते थे।

अध्यापक, छात्रों का चरित्रनिर्माण, उनके लिए भोजनवस्त्र का प्रबंध, रुग्ण छात्रों की चिकित्सा, शुश्रूषा करते थे।

विद्यार्थी गुरु का सम्मान और उनकी आज्ञा का पालन करते थे। आचार्य का चरणस्पर्श कर दिनचर्या के लिए प्रात:काल ही प्रस्तुत हो जाते थे। गुरु के आसन के नीचे आसन ग्रहण करा, सुसंयत वेश में रहना, गुरु के लिए दातौन इत्यादि की व्यवस्था करना, उनके आसन को उठाना और बिछाना, स्नान के लिए जल ला देना, समय पर वस्त्र और भोजन के पात्र को साफ करना, ईधंन संग्रह करना, पशुओं को चराना इत्यादि छात्रों के कर्तव्य माने जाते थे।

काशी, तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वलभी, ओदंतपुरी, जगद्दल, नदिया, मिथिला, प्रयाग, अयोध्या आदि शिक्षा के केंद्र थे।

मध्यकाल

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना होते ही इस्लामी शिक्षा का प्रसार होने लगा। फारसी जाननेवाले ही सरकारी कार्य के योग्य समझे जाने लगे। हिंदू अरबी और फारसी पढ़ने लगे। बादशाहों और अन्य शासकों की व्यक्तिगत रुचि के अनुसार इस्लामी आधार पर शिक्षा दी जाने लगी। इस्लाम के संरक्षण और प्रचार के लिए मस्जिदें बनती गई, साथ ही मकतबों, मदरसों और पुस्तकालयों की स्थापना होने लगी। मकतब प्रारंभिक शिक्षा के केंद्र होते थे और मदरसे उच्च शिक्षा के। मकतबों की शिक्षा धार्मिक होती थी। विद्यार्थी कुरान के कुछ अंशों का कंठस्थ करते थे। वे पढ़ना, लिखना, गणित, अर्जीनवीसी और चिट्ठीपत्री भी सीखते थे। इनमें हिंदू बालक भी पढ़ते थे।

मकतबों में शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी मदरसों में प्रविष्ट होते थे। यहाँ प्रधानता धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। साथ साथ इतिहास, साहित्य, व्याकरण, तर्कशास्त्र, गणित, कानून इत्यादि की पढ़ाई होती थी। सरकार शिक्षकों को नियुक्त करती थी। कहीं कहीं प्रभावशाली व्यक्तियों के द्वारा भी उनकी नियुक्ति होती थी। अध्यापन फारसी के माध्यम से होता था। अरबी मुसलमानों के लिए अनिवार्य पाठ्य विषय था। छात्रावास का प्रबंध किसी किसी मदरसे में होता था। दरिद्र विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति मिलती थी। अनाथालयों का संचालन होता था। शिक्षा नि:शुल्क थी। हस्तलिखित पुस्तकें पढ़ी और पढ़ाई जाती थीं।

राजकुमारों के लिए महलों के भीतर शिक्षा का प्रबंध था। राज्यव्यवस्था, सैनिक संगठन, युद्धसंचालन, साहित्य, इतिहास, व्याकरण, कानून आदि का ज्ञान गृहशिक्षक से प्राप्त होता था।

सादगी, सदाचार, विद्याप्रेम और धर्माचरण पर जोर दिया जाता था। कंठस्थ करने की परंपरा थी। प्रश्नोत्तर, व्याख्या और उदाहरणों द्वारा पाठ पढ़ाए जाते थे। कोई परीक्षा नहीं थी।

आधुनिक काल

भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव यूरोपीय ईसाई धर्मप्रचारक तथा व्यापारियों के हाथों से डाली गई। उन्होंने कई विद्यालय स्थापित किए। प्रारंभ में मद्रास ही उनका कार्यक्षेत्र रहा। धीरे धीरे कार्यक्षेत्र का विस्तार बंगाल में भी होने लगा। इन विद्यालयों में ईसाई ध र्म की शिक्षा के साथ साथ इतिहास, भूगोल, व्याकरण, गणित, साहित्य आदि विषय भी पढ़ाए जाते थे। रविवार को विद्यालय बंद रहता था। अनेक शिक्षक छात्रों की पढ़ाई अनेक श्रेणियों में कराते थे। अध्यापन का समय नियत था। साल भर में छोटी बड़ी अनेक छुट्टियाँ हुआ करती थीं।

प्राय: 150 वर्षों के बीतते बीतते व्यापारी ईस्ट इंडिया कंपनी राज्य करने लगी। विस्तार में बाधा पड़ने के डर से कंपनी शिक्षा के विषय में उदासीन रही। फिर भी विशेष कारण और उद्देश्य से 1781 में कलकत्ते में श्कलकत्ता मदरसाश कंपनी द्वारा और 1792 में बनारस में श्संस्कृत कालेजश जोनाथन डंकन द्वारा स्थापित किए गए।

1835 ई. में लार्ड बेंटिक ने निश्चय किया कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य और यूरोपीय इतिहास, विज्ञान, इत्यादि की पढ़ाई हो और इसी में 1813 के आज्ञापत्र में अनुमोदित धन का व्यय हो। प्राच्य शिक्षा चलती चले, परंतु अंग्रेजी और पश्चिमी विषयों के अध्ययन और अध्यापन पर जोर दिया जाए।

पाश्चात्य रीति से शिक्षित भारतीयों की आर्थिक स्थिति सुधरते देख जनता इधर झुकने लगी। अंग्रेजी विद्यालयों में अधिक संख्या में विद्यार्थी प्रविष्ट होने लगे क्योंकि अंग्रेजी पढ़े भारतीयों को सरकारी पदों पर नियुक्त करने की नीति की सरकारी घोषणा हो गई थी। सरकारी प्रोत्साहन के साथ साथ अंग्रेजी शिक्षा को पर्याप्त मात्रा में व्यक्तिगत सहयोग भी मिलता गया। अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार

के साथ साथ अधिक कर्मचारियों की और चिकित्सकों, इंजिनियरों और कानून जाननेवालों की आवश्यकता पड़ने लगी। उपयोगी शिक्षा की ओर सरकार की दृष्टि गई।

ब्रिटिश शासनकाल में बिहार में पाश्चात्य शिक्षा का विकास

आधुनिक भारत के शिक्षा के क्षेत्र में 1835 एक महत्वपूर्ण वर्ष था। लॉर्ड विलियम बेंटिक ने घोषणा की कि शिक्षा के लिए जो कुछ भी कोश मंजूर हो उसे केवल अंग्रेजी शिक्षा के लिए ही खर्च करना सर्वोत्तम है। परिणामस्वरूप अंग्रेजी शिक्षा के लिए पूर्णिया, बिहारशरीफ, भागलपुर, पटना, आरा, छपरा आदि में जिला स्कूल स्थापित हुए. मुजफ्फरपुर जिला स्कूल 1845 में स्थापित हुआ। संथाल परगना के पाकुड़ का उच्च विद्यालय 1859 में स्थापित हुआ था।

1854 के चार्ल्स वुड डिस्पैच के अनुसार 1858 में कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। वुड डिस्पैच में व्यावसायिक शिक्षा के महत्व और तकनीकी विद्यालयों की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया गया था। 1863 में पटना कॉलेज की स्थापना हुई। 1917 में पटना विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। पटना कॉलेज के कला विभाग के स्नातकोत्तर विभाग 1917 ई. में और भौतिकी तथा रसायन विज्ञान के विभाग 1919 ई. में खोले गए। विज्ञान संबंधित उच्च शिक्षा देने के लिए 1928 में एक स्वतंत्र विद्यालय की हैसियत से पटना साइंस कॉलेज स्थापित किया गया। 1925 में पटना मेडिकल कॉलेज की स्थापना की गई तथा 1947 में दरभंगा मेडिकल कॉलेज की स्थापना की गई।

सैडलर आयोग ने व्यावहारिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी डिप्लोमा एवं डिग्री की उपाधि का प्रबंध करने की बात की तथा व्यावसायिक कॉलेज खोलने की बात कही। पूसा में 1902 में कृषि संबंधी शोध एवं प्रयोग का केंद्र स्थापित किया गया। पशुधन के विकास के लिए पटना में पशु चिकित्सा कॉलेज की स्थापना की गई। खनिज संसाधनों के उचित दोहन के लिए 1926 में इंडियन स्कूल ऑफ माइंस, धनबाद की स्थापना की गई।

शिक्षा के प्रचार प्रसार में स्वयंसेवी संस्थाओं तथा प्रमुख व्यक्तियों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आर्य समाज, ब्रह्म समाज तथा ईसाई मिशनरियों का इस में महत्वपूर्ण योगदान रहा. आर्य समाज के द्वारा वैदिक शिक्षा के पुनरुत्थान के लिए डीएवी स्कूल की श्रृंखला स्थापित की गयी। ब्रह्म समाज के तत्वाधन में पटना में राम मोहन रॉय सेमिनरी की स्थापना की गई।

मुसलमानों के बीच शिक्षा प्रसार के कई संगठन बने। इनकी प्रेरणा का स्रोत अलीगढ़ आंदोलन था जिसके नेता सर सैयद अहमद खान मुस्लिम समाज में जागृति का संचार कर रहे थे। मुजफ्फरपुर में 'बिहार साइंटिफिक सोसायटी' की स्थापना इमदाद अली खान के द्वारा की गई। पटना में मोहम्मडन एजुकेशन सोसाइटी का गठन हुआ।

महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कटक तथा बांकीपुर में कन्या विद्यालय (इंटरमीडिएट श्रेणी) खोले गए। और यह सिफारिश की गई कि प्रत्येक कमिश्नरी में कम से कम एक कन्या महाविद्यालय खोला जाए।

स्वतंत्रता के बाद

आजादी के बाद राधाकृष्ण आयोग (1948-49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर आयोग) 1953, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (1953), कोठारी शिक्षा आयोग (1964), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) एवं नवीन शिक्षा नीति (1986) आदि के द्वारा भारतीय शिक्षा व्यवस्था को समय-समय पर सही दिशा देनें की गंभीर कोशिश की गयी।

1948-49 में विश्वविद्यालयों के सुधार के लिए भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति हुई।

1952-53 में माध्यमिक शिक्षा आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की उन्नति के लिए अनेक सुझाव दिए। माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन से शिक्षा में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई।

निष्कर्ष

शिक्षा के क्षेत्र में बिहार की विरासत गौरवशाली रही हैं। प्राचीन काल से ही शिक्षा में बिहार को एक विशिष्ट पहचान मिली हुई थी। आधुनिक काल में पाश्चात्य शिक्षा का विकास निर्णायक तरीके से हुआ। इस काल में 19 वीं सदी के दूसरे दशक से बिहार में पाश्चात्य शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति हुई और शिक्षा के तमाम केंद्र खुलते चले गए। पाश्चात्य शिक्षा का उद्देश्य अंग्रेजी भाषा में ज्ञान विज्ञान एवं साहित्य की शिक्षा प्रदान करना था।

सन्दर्भ

- Swarup, Ram (2000). *" Educational System During Pre-British Days"* In: On Hinduism: Reviews and reflections. New Delhi: Voice of India.
- Leitner, G.W. *History of Indigenous Education in the Punjab sinceAnnexation and in 1882* 1883, Reprinted by Languages Department, Punjab, Patiala, 1971.
- Dharampal, . (2000). The beautiful tree: Indigenous Indian education in the eighteenth century. Biblia Impex Private Limited, New Delhi 1983; reprinted by Keerthi Publishing House Pvt Ltd., Coimbatore 1995.
- Ellis, Catriona. (2009) "Education forAll: Reassessing the Historiography of Education in Colonial India," *History Compass,* (March 2009), 7#2 pp 363–375,
- Jayapalan N. (2005) *History Of Education In India* excerpt and text search
- Kumar, Deepak (2003), "India", *The Cambridge History of Science vol 4: Eighteenth-Century Science* edited by Roy Porter, pp. 669–687, Cambridge University Press, ISBN 0-521-57243-6.
- Kumar, Deepak (1984), "Science in Higher Education:A Study in Victorian India", *Indian Journal of History of Science*, 19#3 pp: 253–260, Indian National ScienceAcademy.

मुजफ्फरपुर जिला में महिलाओं की सामाजिक परिस्थिति एवं कामकाजी महिलाओं का उत्पीड़न

डॉ० रीना कुमारी

गेस्ट लेक्चरर, गृहविज्ञान विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर

प्रस्तुत शोध पत्र मुजफ्फरपुर जनपद की महिलाओं के सामाजिक परिस्थिति एवं कामकाजी महिलाओं के उत्पीड़न पर केन्द्रित है। आज आजादी के 70 साल बाद भी भारत में महिलाओं की स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। आधुनिकता के विस्तार के साथ-साथ देश में दिन-प्रतिदिन बढ़ते महिलाओं के प्रति अपराधों की संख्या के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। उन्हें आज भी कई प्रकार के धार्मिक रीति-रिवाजों, कुत्सित रूढ़ियों, यौन अपराधों, लैंगिक भेदभावों, घरेलू हिंसा, निम्नस्तरीय जीवन शैली, अशिक्षा, कुपोषण, दहेज उत्पीड़न, कन्या भ्रुण हत्या, सामाजिक असुरक्षा तथा उपेक्षा का शिकार होना पड़ रहा है। आज भी हमारा समाज औरत को पैर की धूल ही समझता है। एक सशक्त समाज का निर्माण करने के लिए महिलाओं का सशक्त व स्वस्थ बनना बेहद जरूरी है, तभी एक सभ्य समाज का निर्माण हो पाता है। भारतीय समाज में महिलाएँ आज भी कमजोर वर्गों में शामिल है। ऐसा समाज जहाँ खुल के साँस लेने के लिए भी मुखौटों की जरूरत होती है।

सैद्धांतिक रूप से भले ही महिला को समाज में ऊँचा स्थान दिया गया था पर व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो यह मात्र एक औपचारिकता से ज्यादा कुछ न था। महिलाओं को सामाजिक स्तर पर काम करने की मनाही थी। किसी भी कार्य को शुरू करने से पहले उनकी राय लेना जरूरी नहीं माना जाता था। महिलाओं की सामाजिक स्थिति कालक्रमानुसार परिवर्तित होती रही है। अतः इसके लिए कोई ठोस सर्वमान्य कारक सिद्धान्त का निर्माण नहीं करके संबन्धित सामाजिक व्यवस्था में अंतर्निहित सामाजिक कारकों के बीच उपाय ढूँढे जाने की आवश्यकता है। अपने अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर इस संदर्भ में सेन गुप्त ने ठीक ही लिखा है कि ष्आर्थिक स्वतन्त्रता महिलाओं में निस्संदेह बढ़ रही है फिर भी उसके आधार पर यह कहना कठिन है कि महिलाएँ आसानी से और तेजी से मुक्त हो रही हैं"।

पिछले कुछ दशकों से महिलाओं की सामाजिक स्थिति से संबन्धित उनके प्रति दृष्टिकोणों में होने वाले परिवर्तनों की दिशाओं में तरह-तरह के अनुमान लगाए जा रहे हैं। इसलिए ऐसे अनुमानों पर विश्वास कर सामान्य निष्कर्ष निकालने की अवैज्ञानिक प्रवृत्ति की गुंजाइश कम करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि महिलाओं की सामाजिक स्थिति का समकालीन संदर्भ तथा उसके प्रति सोचने के तरीके में होने वाले परिवर्तन का सुव्यवस्थित अध्ययन हो।

महिला एवं पुरुष को समान अधिकार व दायित्व प्रदान न करने वाले सामाजिक व्यवस्था ने ही महिलाओं की सामाजिक स्थिति के पृथक अध्ययन की आवश्यकता उत्पन्न की। इनमें "मनु" जैसे स्मृतिकारों का नाम प्रमुख रूप से सामने आता है जिनके पुरुष पक्षीय विधान सदियों से महिलाओं के दिमाग में बैठाये गए हैं। नतीजा यह है कि अनेक व्यवसायों में प्रवेश व कुछ स्वतंत्र अधिकारों में वृद्धि भी महिलाओं को सामाजिक मापदंड में पुरुषों के समकक्ष नहीं पहुँच सकी।

इतिहास की मानें तो महिलाओं का पतन स्मृतियों (मनु स्मृति) के साथ शुरू हुआ। धीरे-धीरे भारत में इस्लामी और इसाइयों के आगमन से महिलाओं से उनके हक छिनते चले गए। महिलाएँ अनेक सामाजिक बेड़ियों में बंधकर रहने लगीं जिनमें प्रमुख

थीं-सती प्रथा, बाल-विवाह, बाल-श्रम, विधवा पुनर्विवाह पर रोक आदि। अगर हम वेदों का अध्ययन करें तो हमें साफ देखने को मिलता है कि उस वक्त की औरतों को अपनी शिक्षा पूरी करने की छुट थी तथा उनका विवाह भी उनकी रजामंदी से होता था। पर्दा प्रथा की शुरुआत भारत में मुस्लिम धर्म के आने के बाद हुई। राजस्थान के राजपूत समाज द्वारा जौहर नाम के रिवाज का अनुगमन किया गया था। मंदिर में जो महिलाएँ थीं उनका अमीर तथा प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा यौन शोषण किया जाता था। पर यदि आज के समय की बात की जाए तो महिलाएँ हर क्षेत्र (जैसे राजनीति, सामाजिक कार्य, तकनीकी विभाग, खेल-कूद आदि) में अपना योगदान बिना किसी डर के दे रही हैं। महिलाएँ हर जगह नेतृत्व करती दिख रही हैं। बल्कि दूसरे शब्दों में कहा जाए तो महिलाएँ आज पुरुषों से दो कदम आगे हैं। हम यह तो नहीं कह सकते कि महिलाओं की स्थिति में सौ फीसदी बदलाव आया है पर इतना जरूर कह सकते हैं कि महिलाएँ अब अपने अधिकारों के लिए और भी अधिक जागरूक हो गयी हैं। भारत के आजाद होने के बाद महिलाओं की सामाजिक दशा में काफी सुधार हुआ है। महिलाओं को अब पुरुषों के समान अधिकार मिलने लगे हैं। महिलाएँ अब वे सब काम आजादी से कर सकती हैं जिन्हें वे पहले करने में अपने आप को असमर्थ महसूस करती थीं।

सामाजिक परिस्थिति की अवधारणा

समाज शास्त्रियों ने समाज विभिन्निकरण और स्तरीकरण को समझने और उसकी व्याख्या करने के लिए सामाजिक परिस्थिति की अवधारणा का प्रयोग किया है। मानव समाज में असमानता एक सर्वव्यापी तथ्य है और इसलिए प्रत्येक समाज में परिस्थिति विभिन्निकरण और उससे संबन्धित अनेक श्रेणियों में हम पाते हैं, चाहे वह आदिवासी समाज हो या परंपरागत समाज हो या आधुनिक जटिल समाज हो। इन सब समाजों में किसी न किसी प्रकार की परिस्थिति विभिन्नताएँ और उनका वर्गीकरण हमें मिलता है। प्रत्येक समाज अपने व्यक्ति अथवा समूहों को विभिन्न प्रकार की सामाजिक परिस्थितियाँ प्रदान करता है और इसी आधार पर एक समाज दूसरे समाज से भिन्न होते हैं। लेकिन महिलाओं के उत्पीड़न में लगभग सभी सभी सामाजिक परिस्थितियाँ सामान्य ही होती हैं। मुजफ्फरपुर शहरी क्षेत्र में किए गए सर्वेक्षण से पता चला कि यहाँ के महिलाओं के उत्पीड़न का मूल कारण महिला पुरुष के बीच सामाजिक भेद-भाव है। यदि हमें महिलाओं की सामाजिक परिस्थिति को सुधारना है तो एक स्वच्छंद विचार वाला समाज बनाएँ जहां महिला एवं पुरुष दोनों को समान भाव से देखा जाए और हर परिस्थिति को संभाल कर एक अच्छे समाज का निर्माण किया जाए जहाँ महिला एवं पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त हो।

"धीरज, धर्म, मित्र, अरु नारी।
आपदकाल परखिये चार"।।

अर्थात धीरज, धर्म, मित्र और औरत की परीक्षा अत्यंत विपत्ति के समय ही की जा सकती है। इंसान के अच्छे समय में तो उसका हर कोई साथ देता है पर जो बुरे समय में आपका साथ दे वही सच्चा साथी है, उसी के ऊपर आपको सबसे अधिक भरोसा करना चाहिए।

अक्सर कार्यस्थल पर महिलाओं को यौन शोषण और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है और ऐसी स्थिति में उनको समझ नहीं आता कि वे दोषी के खिलाफ क्या और कैसे कदम उठाएँ। इस तरह का व्यवहार कानूनन अपराध तो है लेकिन रोजमर्रा की बात को थाने ले जाना कई महिलाओं के लिए संभव नहीं है। इस परेशानी को देखते हुए, 1997 में उच्चतम न्यायालय ने 'विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान सरकार और अन्य' मामले में कुछ महत्वपूर्ण निर्देश दिये। इसके अनुसार यौन उत्पीड़न है-

- शारीरिक स्पर्श या यौन मित्रता की कोशिश या मांग
- यौन संबंध स्थापित करने की मांग या अनुरोध
- यौन संबंधी टिप्पणी या मजाक
- अश्लील पुस्तक या चित्र दिखाना
- किसी भी तरह का यौन संबंधी अनचाहा व्यवहार

यौन उत्पीड़न की रोकथाम के लिए :

- यौन उत्पीड़न की मनाही यथोचित तरीकों से प्रकाशित, सूचित व वितरित की जाएगी।
- सरकारी व पब्लिक क्षेत्र के कर्मचारियों पर लागू होने वाले नीति-नियमों और निर्देशों में यौन उत्पीड़न की मनाही और उसके लिए दंड के प्रावधान दिये जाएंगे।
- निजी संस्थानों के स्थायी आदेश (स्टैंडिंग ऑर्डर) में भी ऐसा प्रावधान होना चाहिए।
- महिलाओं के लिए उपयुक्त सुविधाएं देनी आवश्यक हैं जिससे उन्हें अपनी परिस्थिति में कोई कमी महसूस न हो।
- यदि किया गया व्यवहार भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य कानून में अपराध हो तो मालिक का दायित्व है कि उचित कार्यवाही की जाए। यह भी दायित्व है कि कार्यवाही के दौरान पीड़ित व्यक्ति या गवाहों पर किसी तरह का दबाव या असमान व्यवहार न हो।
- पीड़ित व्यक्ति यौन शोषण करने वाले की या अपने स्थानांतरण (ट्रान्सफर) की मांग कर सके।
- जहाँ ऐसा व्यवहार नीति-निर्देशों या नियमों के विरुद्ध हो, वहाँ उचित कार्यवाही करनी होगी।
- कोई नीति-निर्देश या नियम ना भी हों तो भी शिकायतों की जांच के लिए कोई व्यवस्था करनी जरूरी है। ऐसी व्यवस्था जहाँ संभव हो एक शिकायत समिति गठित करके की जाएगी। इस शिकायत समिति की मुखिया एक महिला होनी चाहिए और कम से कम आधे सदस्य महिलाएँ होनी चाहिए। इसके अलावा किसी तीसरे पक्ष को इसमें शामिल करना जरूरी है। यह किसी गैर सरकारी संस्था का सदस्य या यौन उत्पीड़न के विषय से परिचित व्यक्ति होना चाहिए।
- यह शिकायत समिति संबन्धित सरकारी विभाग को सालाना रिपोर्ट देगी जिसमें शिकायतें और उन पर उठाए गए कदमों का ब्यौरा होगा।
- कर्मचारियों को अपनी बैठकों व अन्य मंचों पर यौन उत्पीड़न के विषय पर चर्चा करने की छुट होगी।
- इस विषय में महिला कर्मचारियों की जानकारी बढ़ाने के लिए उपयुक्त कदम उठाए जाने चाहिए।
- यदि किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कार्यस्थल पर यौन हिंसा की जाए तो मालिक उसकी रोकथाम के लिए उचित कदम उठाएंगे।

यह सभी निर्देश सरकारी, अर्धसरकारी तथा निजी कार्यस्थल पर भी पूरी तरह लागू हैं।

सुझाव

कामकाजी महिलाओं को अपना बचाव कार्यस्थल पर किस प्रकार करना चाहिए, इस बात का भी ख्याल रखना चाहिए।

अक्सर कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन शोषण और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है और ऐसी स्थिति में उनको समझ नहीं आता कि वे दोषी के खिलाफ क्या और कैसे कदम उठाएँ। इस तरह का व्यवहार कानूनन अपराध तो है लेकिन रोजमर्रा की बात को थाने ले जाना कई महिलाओं के लिए संभव नही है। इस परेशानी को देखते हुए ही 1997 में उच्चतम न्यायालय ने विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान सरकार और अन्य मामले में उपर्युक्त महत्वपूर्ण निर्देश दिये।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रमिला कपूर -चेंजिंग स्टेटस ऑफ वर्किंग वुमन इन इंडिया 1974
2. एस.सी. दूबे-मेन एंड विमेन्स रोल इन इंडिया 1963 पृष्ठ-202
3. डॉ. राज कुमार ख्र नारी के बदले आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस 2005
4. गुप्ता कमलेश कुमार ख्र महिला सशक्तिकरण बुक एंक्लेव, जयपुर
5. गौतम हरेन्द्र राज – महिला अधिकार संरक्षण, कुरुक्षेत्र मार्च 2006
6. डॉ. राजनारायण- स्त्री विमर्श और सामाजिक आंदोलन

गुप्तकाल में नारियों की स्थितिः आर्थिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में

डॉ० रेखा चौधरी

अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग, नीतीश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। हिन्दू समाज में उनका सम्मान और आदर प्राचीन काल से आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था। उनकी अवस्था पुरुषों के सदृश थी। वे अपना मनोनुकूल आत्मविकास और उत्थान कर सकती थी। उन्हें विवाह, शिक्षा सम्पत्ति आदि में अधिकार प्राप्त थे। कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में तथा माँ के रूप में वे हिन्दू परिवार और समाज की स्वाभाविक निष्ठा और श्रद्धा रही है। परिवार और समुदाय में उनके द्वारा कन्या, पत्नी, वधू और माँ के रूप में किये जानेवाले योगदान का सर्वदा महत्व और गौरव रहा है। भारतीय धर्मशास्त्र में नारी सर्व-शक्ति-सम्पन्ना मानी गई तथा विद्या, शील, ममता, यश और सम्पति की प्रतीक समझी गई। गृह की सामग्री के रूप में उसे प्रतिष्ठापित किया गया तथा धार के अन्य सदस्यों के उसके शासन में रहने के लिए निर्देशित किया गया।[1] शनैः शनैः समाज में उसका महत्व इतना अधिक बढ़ा कि उसके बिना अकेला पुरुष अपूर्ण और अधूरा समझा गया।[2] पुरुष शब्द की निर्मिति स्त्री, सन्तान और व्यक्ति की समष्टि से मानी गई। शास्त्रकारों का कथन है कि केवल पुरुष कोई वस्तु नहीं, अर्थात् वह अपूर्ण ही रहता है, किन्तु स्त्री, स्नेह, सन्तान, ये तीनों मिलकर ही पुरुष (पूर्ण) होता है और जो पति है, वह स्त्री है, अतएव उस स्त्री से उत्पन्न उस स्त्री के पति की होती है।3 इस प्रकार स्त्री पुरुष की शरीराद्ध और अर्द्धांगिनी मानी गई तथा श्री और लक्ष्मी के रूप में कही गई।[4] उसका आगमन पुरुष के लिए शुभ, सौरभमय और सम्मान-जनक था जिसके सम्पर्क से उसका व्यक्तित्व मुखर और सन्निविष्ट हो उठता था। जब तक मनुष्य विवाहोपरांत भार्या की प्राप्ति नहीं कर लेता था तब तक वह आधा ही कहा जाता था। आधा शरीर सब कुछ नहीं कर पाता था और प्रजोत्पति भी पूरा शरीर होने पर ही हो सकती थी तथा पूरा शरीर अर्थात् शरीर की पूर्णता विवाहिता पत्नी से ही सम्भव थी।

स्त्रियों की दशा में युग के अनुरूप परिवर्तन होता रहा है। उसकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर पूर्वमध्ययुग तक अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे तथा उनके अधिकारों में तदनुरूप परिवर्तन भी होते रहे हैं। यह सही है कि वैदिक युग में उनकी अवस्था अत्यन्त अन्नत और परिष्कृत थी। किन्तु परवर्ती काल से उनकी स्थिति में परिवर्तन प्रारम्भन हो गया जो अवनति के रूप में बाद के समयों तक चलता रहा। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को समाज में श्रेयकर स्थान नहीं मिला, बल्कि अपेक्षाकृत निम्न स्थान ही प्राप्त हुआ जिसके प्रमुख कारण राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक संकीर्णता ही थे। साथ ही जैविकीय और मानसिक दोष की भी चर्चा की गई, जो पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक रहा है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने स्त्रियों में ऐसे जन्मजात दोष माने जिनके कारण वे पुरुषों की तुलना में हीन रही। उनके व्यक्तित्व में अस्थिरता का दोष प्रधान रूप से स्वीकार किया गया है।[5] साथ ही यह भी मत व्यक्त किया गया है कि उनमें न्याय की भावना अत्यल्प होती है, क्योंकि उनके व्यक्तिगत में ईर्ष्या की मात्रा अधिकाधिक है।[6] किन्तु भारतीय समाज में इस प्रकार की कोई भ्रान्ति नहीं। भारतीय विचारकों ने स्त्रियों के प्रति आदर ही व्यक्त किया है तथा इनहें 'देवी' और श्री का प्रतीक माना है।

हिन्दू जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समान रूप से आदृत और प्रतिष्ठित थी। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महान योगदान था। वह स्वतंत्रतापूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थी और स्वच्छन्दतापूर्वक विचारण करती थी। पुरुषों की तुलना में वह किसी प्रकार से निम्न और अनुन्त नहीं थी। नववधू श्वसुर-गृह की साम्राज्ञी होती थी।[7]

युग के अनुरूप स्त्रियों की दशा में परिवर्तन होते रहे। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर पूर्वमध्य युग तक अनेक उतार-चढ़ाव आये पूर्व वैदिक युग में उनकी अत्यन्त उन्नत और परिष्कृत थी, लेकिन उत्तरवैदिक काल में तप और वैराग्य की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण स्त्रियों को अनादर की दृष्टि से देखा जाने लगा था। मैत्रायणी-संहिता[8] के समय स्त्रियों का भाग कम हो गया था। विवाह में आंशिक स्वतन्त्रता थी। परिपक्व अवस्था होने पर ही विवाह होता था।[9] विधवा विवाह तत्कालीन समाज में मान्य था।[10]

सामान्यवर्ग की स्त्रियाँ वस्त्र रंगने, कढ़ाई, डलिया बनाने आदि के व्यवसायों में सहायता देती थी। कुछ स्त्रियाँ यज्ञों में भाग लेती थी। रूद्र यज्ञ और सीता-यज्ञ के केवल स्त्रियों द्वारा सम्पादित होते थे संस्कृत व कुलीन परिवारों में स्त्रियाँ प्रातः और सायं मंत्रों की प्रार्थनाओं का पाठ करती थीं।[11]

उपनिषद् काल में भी समाज में नारी को समादरणीय स्थान प्राप्त था, उसे पुरुष की समानता प्राप्त थी। विवाह में उसे पति के चुनाव की स्वतंत्रता थी। बाल-विवाह का प्रचलन नहीं था। बौद्धिकता में वह पुरुषों से किसी भी प्रकार से कम नहीं थी।[12]

यह सब होने पर भी इस युग में उसकी अवस्था में क्रमिक ह्रास होने लगा था। फलतः कन्या का जन्म दु:ख का कारण समझा जाने लगा था। नारी का पतन का आरम्भ उत्तर वैदिक युग से ही माना जाय तो अनुचित न होगा।

उपनिषद् काल के पश्चात् सूत्रयुग में नारी की स्थिति में उत्तरवैदिक युग से भी अधिक उत्कर्ष हुआ। इसका कारण सम्भवतः यह रहा होगा कि राजनीतिक शान्ति और आर्थिक निश्चिन्तता के इस युग में आर्यो का ध्यान साहित्य के परिष्करण की ओर गया। वैदिक कर्मकाण्डों की जटिलता भी बढ़ गयी थी। वैदिक काल में सरल कर्मकाण्ड का अध्ययन स्त्रियाँ सोलह-सत्रह वर्ष की आयु अर्थात् विवाह के आयु तक कर लेती थीं।[13]

सूत्रयुग के विस्तृत कर्मकाण्ड के बृहद् साहित्य का अध्ययन तभी सम्भव था जब स्त्री 22 या 24 वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहती। देश की समृद्धि और आर्थिक उन्नति के साथ विलासिता की प्रवृत्ति बलवती हो रही थी। अतः स्त्रियों के उपनयन और शिक्षा पर आघात पहुंचा। इस काल में अनुलोम विवाह प्रचलित हो गये थे। इस असंसकृत तथा अनार्य स्त्रियों की विधमानता ने नारी के पतन में योगदान किया।

महाकाव्य में नारी के अधिकार पहले से भी अपेक्षाकृत कम हो गये थे। अब वह पुरुष की सम्पत्ति माने जाने लगी थी। यज्ञादि में उसकी उपस्थिति अनिवार्य नहीं रह गयी थी।[14]

रामायण और महाभारत काल में नारी की स्थिति सर्वत्र एक सी नहीं रह गयी थी। महाभारत में नारी को एक ओर सम्मान का पात्र कहा गया तो दूसरी ओर सब पापों की जननी तथा व्यभिचारिणी भी बताया गया। वैदिक युग की सम्मानित नारी इस काल तक आते-आते पूर्ण सामग्री बन चुकी थी। परिव्रत्य का उसके लिए सर्वाधिक महत्व हो गया था।[15]

स्त्री-चरित्र के प्रति दुर्भावना के कारण महाभारत में उसे माया, पापिनी, चंचला, सर्पिणी, आग व विष आदि की संज्ञाएँ देकर उसे घातक सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया।[16] इतना ही नहीं एक ओर जहां स्वयंवर प्रथा मान्य थीं, दूसरी ओर नारी का अपहरण का भी उदाहरण मिलता है। अर्जुन द्वारा सुभद्रा का अपहरण इसका एक प्रमाण है। इस काल में नियोग प्रथा के प्रचलन के भी वर्णन मिलते हैं।[17]

एक ओर जहां इस काल में नारी की दुर्दशा थी, वहीं दूसरी ओर महाभारतकार माता के श्रेष्ठगुरु तथा मातृवध को महापाप बताया है। यहाँ तक की कन्या के लिए महाभारत में कन्या को लक्ष्मी का निवास बताया गया है–

"नित्यं निसते लक्ष्मीः कन्यकासु प्रतिष्ठिता।"[18]

स्मृति ग्रन्थों में नारी जीवन का सम्पूर्ण चित्र उपलब्ध होता है। इनमें नारी का गौवगान भी है और उसके प्रति कटुक्तियाँ भी हैं। इन ग्रन्थों में स्त्रियों के अधिकारों की भी विशेष चर्चा है। स्मृतिकारों ने नारी के क्रय-विक्रय को अपराध घोषित किया है। कन्या को बेचने वाला और कन्याशुलक लेने वाला पिता व भाई आदि को नरक को जाता है। उसका क्रय करने वाला पति और उसे वैधानिक रूप में पत्नी नहीं बना सकता।[19] अत्रि ने बताया कि क्रीत कन्या से उत्पन्न सन्तान पितृ-तर्पण का अधिकारी नहीं होती–

"क्रयक्रीता च या कन्या न सा पत्नी निर्धयते।
तस्यां जाताः सुतास्तेषां पितृ पिण्डो न विद्यते।।"[20]

मनु के अनुसार प्रथम पत्नी के अनुमोदन से ही पति द्वितीय विवाह कर सकता था, उसका अपमान करके नहीं।[21] नारी गृहिणी के रूप में घर की सम्पूर्ण सम्पत्ति की एकाधिकारिणी होती थी।[22]

मौर्य शासन काल में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक अधिकार प्राप्त थे। यद्यपि स्त्रियों को पुरुषों की भाँति पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था, किन्तु बहुत कम था। मेगस्थनीज ने लिखा है कि मौर्यकाल में कुछ स्त्रियों को सन्तान के लिए और अन्य को शारीरिक सुख के रखा जाता था।[23] उसने आगे लिखा है कि स्त्रियों के स्थिति को बहुत उन्नत नहीं कहा जा सकता। उन्हें बाहर जाने की स्वतंत्रता नहीं थी और वे पति के इच्छा के विरूद्ध काम नहीं कर सकती थी। स्त्रियाँ प्राय: घर के अन्दर ही रहती थीं।[24]

गुप्तकाल में मौर्यकाल की अपेक्षा स्त्रियों की दशा कुछ उन्नत प्रतीत होती है। गुप्तकाल में नारियों के शिक्षा ग्रहण करने और आश्रमों में रहने का उल्लेख मिलता है। कन्याओं की शिक्षा के लिए नियमित शिक्षण संस्थाएँ थी। अमरकोश के अनुसार तत्कालीन भारतीय समाज में स्त्रियाँ अध्यापिकाएँ और वैदिक मंत्रों की आचार्याएँ भी थीं।[25]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उत्तरवैदिक काल से ही भारत में आर्य-अनर्या, यवन, शक, कुषाण, हुण आदि अनेक जातियों के लोग भारतीय समाज समाहित होने लगे थे और वे सभी हिन्दू धर्म में समा गये। जिससे भारतीय संसकृति में अपमिश्रण हुआ और विकृतियाँ आयीं। अनुलोम विवाह और बहुविवाह के कारण अनार्या स्त्रियाँ भी आर्य परिवारों में प्रतिष्ठ हुई। इन अनर्या स्त्रियों ने अपने संस्कार तथा संस्कृति के अनुसार स्वच्छन्द आचरण किया जिससे सम्पूर्ण स्त्री जाति बदनाम हुई। धर्मशास्त्रों में स्त्री-निन्दा इसी का परिणाम प्रतीत होता है।

गुप्तवंश कालीन साहित्य से ज्ञात होता है कि ऊँचे परिवारों की तथा आश्रमों में रहने वाली कन्याएँ प्राचीन इतिहास तथा परम्परा का अध्ययन करती थीं। उन्हें इतनी उच्च शिक्षा दी जाती थी कि वे न केवल श्लोक समझ सकती थी। बल्कि उनकी रचना भी कर लेती थीं। ऊँचे परिवारों की कन्याएं प्राय: गायन व नृत्य आदि में शिक्षा लिया करती थीं। कन्याओं की शिक्षा के लिए सम्भवत: नियमित संस्थाएँ नहीं होंगी, ऐसा प्रतीत होता है। अमरकोश में कई ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ है—अध्यापिकाएँ तथा वैदिक मंत्रों की आचार्याएँ।[26]

गुप्तयुग के पूर्व मौर्य शासन काल में नारी शिक्षा का वर्णन मिलता है। मौर्य कालीन भारतीय समाज में कई स्त्रियाँ ऐसी भी थीं जो बौद्धिक जीवन व्यतीत करती थीं। वे अपना प्रभु-चिन्तन में लगाती थीं। जो स्त्रियाँ सारा जीवन धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन में लगाती थीं, उन्हें ब्रह्मादिनी कहा जाता था। कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी थीं जो अध्ययन का काम विवाह के बाद छोड़ देती थीं।[27] मौर्य शासन के इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि महिला शिक्षिकाओं की संख्या समाज में अधिक थी। बौद्ध और जैन धर्मों में ऐसी महिलाओं का बार-बार वर्णन आया है।[28]

वैदिक युग में स्त्री शिक्षा अपनी उच्चतम सीमा पर थी। वह पुरुषों के समकक्ष बिना भेद-भाव के शिक्षा प्राप्त करती थी। वह बुद्धि और ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी थी। उस युग में बौद्धिक योगदान करने वाली ऐसी बीस कवियित्रयाँ थीं—रोमशा, अपाला, उर्वशी, विश्ववारा, सिकता, निबावरी, घोषा, लोपामुद्रा आदि पंडिता स्त्रियाँ इनमें अधिक प्रसिद्ध थीं। पति के साथ समान रूप से वे यज्ञ में सहयाग करती थीं।

सूत्रकाल तक स्त्रियाँ यज्ञ सम्पादित किया करती थीं। राम के युवराज पद पर अभिषेक के समय तक कौसल्या ने यज्ञ किया था। उत्तरवैदिक काल में भी स्त्री ब्रह्मचर्य में रहकर शिक्षा ग्रहण करती थीं। वैदिक गान के अतिरिक्त वे ललित कलाओं में भी परांगत थीं। महाभारत से ज्ञात होता है कि पांडवों की माता कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत थीं।

मनु ने कन्याओं के लिए उपनयन संस्कार का विधान किया है। उपनयन संस्कार का अधिकार होने के निर्बाध रूप से वेदों का अध्ययन कर सकती थी। वैदिक युगीन छात्राओं के दो वर्ग थे—सद्योवधू और ब्राह्मवादिनी। सद्योवधू वे छात्राएँ थीं जो विवाह के पूर्व तक कुछ वेद-मंत्रों और याज्ञिक प्रार्थनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं। ब्रह्मवादिनी वे छात्राएँ थीं जो अपनी शिक्षा पूर्ण करने में अपना जीवन लगा देती थीं। ऋषि कुशध्वज की कन्या वेदवती ऐसा ही ब्रह्मवादिनी स्त्री थीं।

"कुशध्वजो नाम पिता ब्रह्मर्षिरमितप्रभ:।
बृहस्पति सुत: श्रीमान बुद्धया तुल्योबृहस्पते।।"

ऐसी स्त्रियाँ बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न होती थी, जो ज्ञान और बुद्धि में पारंगत ही नहीं बल्कि अनेक मंत्रों की उद्‌गात्री होती थीं। वे दर्शन, तर्कशास्त्र, मीमांसा और साहित्य आदि विभिन्न विषयों की विदुषी होती थीं। काशकृतनी नामक स्त्री ने मीमांसा जैसे क्लिष्ट और गूढ़ विषय पर अत्यधिक बहुचर्चित पुस्तक की रचना की थी। जो बाद में उसी के नाम पर विख्यात हुई। इस वर्ग के अधयेता शकृत्स्नी ही कहे जाते हैं।

याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रोयी विख्यात दार्शनिक थीं, जिसकी रुचि सांसारिक वस्तुओं में न होकर दर्शनशास्त्र में थीं। जनक की राजसभा में होने वाली विद्वद् गोष्ठी में गार्गी ने अपनी अद्‌भूत तर्कशक्ति से याज्ञवल्क्य जैसे महर्षि को चौंका दिया तथा अपनी पृच्छाओं से उन्हें ही नहीं, बल्कि पूरे विद्वद् समाज को स्तब्ध कर दिया।

बौद्धयुग में भी स्त्रियाँ प्रायः शिक्षित और विद्वान होती थीं। विद्या, धर्म और दर्शन के प्रति उनकी अगाध रूचि होती थी। बौद्ध आगमों की शिक्षिकाओं के रूप में भी उन्होंने ख्याति प्राप्त की थी। थेरीगाथा की कवियित्रयों में 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी और अठारह विवाहित भिक्षुणियाँ थीं। उनमें शुभा, सुमेध और अनोपमा उचच वंश की कन्याएँ थीं, जिनसे विवाह करने के लिए राजकुमार और सम्पत्तिशाली श्रेष्ठिों के पुत्र उत्सुक थे।

ऋग्वेद काल को यदि नारी जाति का स्वर्णयुग कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। इस काल के ऋषियों ने प्रकृति की आश्चर्यजनक शक्तियों को दैवी शक्ति का प्रतीक काल के ऋषियों ने प्रकृति की आश्चर्यजनक शक्तियों को दैवी शक्ति का प्रतीक मानकर उनमें देवत्व का आरोप किया। उषा, सूर्या, इन्द्राणी, वाक्, इला, शची, उर्वशी आदि वैदिक देवियों में अधिकांश प्राकृतिक शक्तियों की प्रतीक थीं।

आर्यों के दारासर्जित और पूजित इन देवियों में अदिति स्वाधीनता का साकार प्रतिमा है। वह अनादि जननी हैं और मनुष्यों को बन्धन मुक्त करती है। इन्द्राणी एक ओर अपने त्याग और बलिदान से इन्द्र को बलवान बनाती है, दूसरी आदर्श पत्नीव्रत की प्रतिष्ठा करती है। सूर्या आदर्श आर्य वधू के रूप में आज भी समाज में समादृत है। एक ओर ललित कलाओं एवं ज्ञान की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती की वीणा की स्वर- लहरियों का अमर संगीत है तो दूसरी ओर परम लावण्यमयी, सौन्दर्य और रूप की खान देवी उषा है। जो अपनी कान्ति-किरणों से ऋषियों के सहज भावुक मन को आकर्षित कर लेती हैं।

नारी के यथार्थ रूप से अभिप्राय उस युग के नारी के वास्तविक जीवन से है, जो दुहिता, पत्नी और माता के रूप में दिखाई देता है।

किन्तु परवर्ती काल में नारी के प्रति समाज का व्यवहार दिनों-दिन कठोर होता गया। उत्तर-वैदिक काल से उसके प्रति पुरुष का आत्मविश्वास बढ़ता गया। उसे हीन-भावना से देखा जाने लगा। महाभारत में कहा गया कि यदि कोई व्यक्ति स्त्री के दोषों को अपने सौ वर्ष के जीवन भर सौ जिह्वाओं से गिनता रहे तो भी वह उसके दोषों का बखान पूरा किये बिना ही मर जायेगा।

बौद्धयुग में स्त्रियों की दशा समाज में अच्छी नहीं थी। उनके प्रति तत्कालीन समाज की भावना ग्रान्थियुक्त थी। स्वयं महात्मा बुद्ध ने अपने प्रारम्भिक काल में स्त्रियों का संघ-प्रवेश की अनुमति नहीं दी थीं। पुराणों में भी उनके प्रति ऐसी भावना व्यक्त की है। पद्मपुराण का कथन है—उन्हें स्थान व अवसर नहीं मिल पाता, नहीं तो वे साध्वी नहीं रह सकती है।

मनु ने बड़े विस्तार से अपना विचार प्रकट किया। उनका कथन है कि स्त्रियाँ सुन्दर रूप की प्रतीक्षा नहीं करती, नहीं युवावस्था का ध्यान रखती हैं, अपितु पुरुष है, चाहे सुन्दर या कुरूप, उसके साथ संभोग करती है। नारी के प्रति ये कतिपय विचार उसके दोष पक्ष को ही उजागर करते हैं, किन्तु उसमें दोषों के साथ अनेकानेक गुण भी थे।

संदर्भ सूची

1. प्राचीन भारत का इति. विद्याधर महाजन, पृ. 559
2. अथर्ववेद-14/14
3. शतपथ ब्रा. 5/2/1/10, मनु.-9/45
4. महाभारत आदिपर्व-74/40
5. बृहत् संहिता 74/5, 5/11

6. ऋग्वेद 10/85/46/2
7. मैत्रायणि संहिता
8. ऋग्वेद 10/27/12
9. ऋग्वेद में नारी
10. Hindu civilizaton-Radha Kumud M. Mukherji, p. 97
11. Hindu civilization-RadhaKumad Mukherji, p. 97
12. The position of woman in Hindu civilization. A.S. Altakar, p. 234
13. The camridge History of India- A.B. Kieth, p. 247
14. महाभारत, अनुशासन पर्व-14/90/50
15. वही 12/19/21
16. प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इति.-वृ. 118
17. म.भा. 13/11/14
18. बौ. ध. सूत्र 1/11/20
19. अत्रि 384
20. वही 9/192
21. ।दबपमदज प्दकपं ें कमेबतपइमक इल डमहेंजीमतमे डण्ब्ध ब्तपदकसम
22. वही
23. प्राचीन भारत का इति. पृ. 447, पृ. 557
24. प्राचीन भारत का इति. महाजन पृ. 557
25. Mauryan India-G.M. Bongard heving Sterling Pub. New Delhi, 1985
26. प्राचीन भारत का इति. पृ. 329
27. Ancient India as described by Megasthenses and Arrian M.C. Crindle
28. ऋग्वेद 8/31
29. पा. गृ. स 10-2/20

स्वामी विवेकानंद: जाति-पुरोहितवाद से लड़ने वाले क्रांतिकारी

डॉ० संतोष कुमार राय

दर्शन शास्त्र विभाग, एल.बी.टी. कॉलेज, बक्सर, बिहार

सारांश

हर दौर में दुनिया में ऐसी कई ऐतिहासिक शख्सियतें हुई हैं, जिन्होंने अपेक्षाकृत कम उम्र में ही समाज में हलचलें पैदा कर दीं।

स्वाभाविक है कि यदि छोटे से जीवन में बड़े काम हुए हैं, तो उनका जीवन भी नाटकीय घटनाओं से भरा रहा होगा। उनके व्यक्तित्व का कोई ऐसा अनोखा पहलू रहा होगा, जो उन्हें अपने समकालीनों से अलग करता होगा। यह सब कुछ मिलकर उनके जीवन को किंवदंती बनाता होगा।

स्वामी विवेकानंद देश और दुनिया को मानवता के कल्याण का मार्ग दिखाने वाले महान विभूतियों में से एक थे। स्वामी जी कहते है कि, हर व्यक्ति अव्यक्त ब्रह्म हैं। बाहरी और आंतरिक प्रकृति को वशीभूत कर, ब्रह्म के भाव को व्यक्त करना ही मानव जन्म का, और जीवन का मूल उद्देश्य हैं।

परिचय

बाद की पीढ़ियों में ऐसे लोगों की 'लार्जर दैन लाइफ' छवियां लोकमन में बनने लगती हैं। उनकी वैचारिक विरासतों को समझने, सहेजने और आगे बढ़ाने का सिलसिला भी चल पड़ता है। उनके सूत्र वाक्यों को उद्धरणों के रूप में बार-बार पेश किया जाता है. समाज को इसका थोड़ा फायदा भी मिल जाता है। लेकिन ऐसी शख्सियतों का दोहन जब सियासी प्रतीकों के रूप में होने लगता है, तो उनके जीवन का तटस्थ मूल्यांकन नहीं हो पाता। इससे नए अध्येताओं के लिए भी भटकाव की पूरी संभावना बन जाती है। हमारे यहां के कई अन्य ऐतिहासिक व्यक्तित्वों की तरह स्वामी विवेकानंद के साथ भी ऐसा ही होता दिख रहा है।

39 वर्ष के उनके जीवनकाल के अंतिम दस वर्ष लगातार भ्रमण और सार्वजनिक उद्बोधन वाले रहे। लेकिन लगभग नास्तिकता के कगार पर पहुंच चुके नरेंद्र के आध्यात्मिक विवेकानंद बनने की प्रक्रिया को समझे बिना हमें उनकी सच्ची थाह नहीं मिल सकती। एक भावुक, जिद्दी और जोशीले, लेकिन आजीवन तनावग्रस्त रहने वाले युवक को गेरुआधारी स्वामी या अष्ट-सिद्धियां प्राप्त कर लेने वाले चमत्कारी महामानव के रूप में ही देखने से हम अभिभूत भले हो जाएं, लेकिन उनके व्यक्तिगत, सामाजिक और आध्यात्मिक अनुभवों का लाभ हम नहीं ले पाएंगे।

पश्चिमी दर्शनशास्त्र को खूब चाव से चाटकर पढ़ जानेवाले नरेंद्र को उसमें भी कोई समाधान नजर नहीं आ रहा था. वह थक-हार कर बार-बार रामकृष्ण देव के पास पहुंच तो जाता, लेकिन उनके तौर-तरीकों पर उसको श्रद्धा नहीं बन पाती।

पिता की मृत्यु बेरोजगारी के प्रारम्भिक दिन

पिता की अचानक मृत्यु के बाद एक बीए पास बेरोजगार नरेंद्र पर पारिवारिक जिम्मेदारियों का पहाड़ टूट पड़ता है। खर्चीले ठाट-बाट में रहने वाले पिता एक मकान के अलावा कुछ भी संपत्ति छोड़कर नहीं जाते हैं. घर का खर्च, दो छोटे भाई और एक बहिन की परवरिश और फिर अपना सामाजिक स्टेटस बनाए रखने का दबाव उसे बेचैन कर देता है. रही-सही कसर तब पूरी हो

जाती है जब खानदान ही एक व्यक्ति उसके परिवार को बेघर करने के लिए मुकदमा दायर कर देता है. उसे और उसके परिवार को कई बार भूखा तक रहना पड़ता है. नरेंद्र तो कई बार भूख के मारे बेहोश तक हो जाता. वह नंगे सिर और नंगे पैर दिन भर कलकत्ते में नौकरी के लिए दर-दर भटकता और शाम को खाली हाथ टूटे मन से घर लौट आता है।

ये दुष्कर परिस्थितियां कभी-कभी तो नरेंद्रनाथ में इतना द्रोहभाव भर देतीं कि वह बिल्कुल ही नास्तिक हो जाता. और जब विपत्ति में कुछ नहीं सूझता तो तर्कवादी नरेंद्र एक सामान्य आस्तिक की भांति रामकृष्ण देव के पास जाकर हाथ जोड़कर कहता-'गुरुदेव! कालीजी से निवेदन कर दीजिए कि हमारे मां, बहिन, भाई को दो दाने खाने को मिलने लगें।'

कुछ लोग मानते हैं कि बचपन में घर के गाड़ीवान ने बालक नरेंद्र के सामने वैवाहिक जीवन के पचड़ों का दु:खपूर्ण और घृणास्पद चित्रण किया था, जिसकी वजह से उसने विवाहित सीता और राम की पूजा तक करनी छोड़ दी थी. लेकिन घर-गृहस्थी और कुल-खानदान का दु:खद अनुभव नरेंद्र को स्वयं भी हो चुका था और यहीं से अब वास्तविक वितृष्णा की धारा फूट पड़ी. पहले तो अटॉर्नी ऑफिस में काम करके, फिर कुछ अनुवाद का काम और स्कूल में पढ़ाकर घर की स्थिति थोड़ी पटरी पर लाई, लेकिन आगे अपने लिए कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था. पश्चिमी दर्शनशास्त्र को खूब चाव से चाटकर पढ़ जानेवाले नरेंद्र को उसमें भी कोई समाधान नजर नहीं आ रहा था. वह थक-हार कर बार-बार रामकृष्ण देव के पास पहुंच तो जाता, लेकिन उनके तौर-तरीकों पर उसको श्रद्धा नहीं बन पाती।

रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव

फिर भी रामकृष्ण में जो बात उसे आकर्षित करती थी, वह था उनका सरल लेकिन रहस्यमयी व्यक्तित्व, भयानक शारीरिक कष्ट में भी रामकृष्ण के मस्तमौला बने रहने की अदा भी उसको खूब भाती, धन और सांसारिक जीवन को पूरी तरह त्यागकर जिस किसी भांति आम लोगों की सेवा में जुट जाने की रामकृष्ण की धुन से वह प्रभावित हुए बिना नहीं रहता, और ऊपर से रामकृष्ण उसे बार-बार कहते रहते कि तेरे हाथों कुछ और होना है, तू इस कंचन और कामिनी के चक्कर में न पड़, लेकिन स्वयं भावुक होने के बावजूद नरेंद्र को यह सब भावातिरेक में कही गई बातें ही लगती।

अपने जीते-जी तो रामकृष्ण उसके लिए एक सहानुभूति और सामान्य मार्गदर्शन का बहाना बने रहे। लेकिन नरेंद्र को असली धक्का तब पहुंचा जब अनमने ढंग से ही सही लेकिन गुरु मान लिया गया यह बाबा जल्दी ही संसार छोड़कर चला गया. इससे एक तरफ तो उसे अनाथ होने जैसा बोध होने लगा और दूसरी ओर रामकृष्ण की जिम्मेदारियां अपने ऊपर उठा लेने का साहस भी पैदा हो गया. सांसारिक ऊहापोह में फंसे नरेंद्र के आध्यात्मिक विवेकानंद में कायांतरित हो जाने की वास्तविक घड़ी यही थी।

सन्यास और भारत भ्रमण

भारतीय समाज की तत्कालीन दुर्दशा देखर उनपर प्राय: एक बेचौनी और अधीरता हावी रहती, इसलिए उनकी आध्यात्मिक साध ना भी तत्कालीन भारत की सामाजिक जरूरतों के हिसाब से ढल गयी।

यह एक अजीब बात थी कि जिस व्यक्ति से उन्हें शास्त्रीय ज्ञान या योगविद्या इत्यादि सीखने को न मिले, उसे ही उन्होंने आजीवन अपना गुरु माना. बाद में जिस किसी से भी उन्होंने अष्टाध्यायी (संस्कृत व्याकरण), उपनिषद् और योगविद्या इत्यादि सीखी, उसे वे अपने गुरु का दर्जा न दे सके। 1890 में एक बार गाजीपुर के एक योगी संत पवहारी बाबा से योग की दीक्षा लेने की बात उनके मन में आई, तो उन्हें तुरंत ही बहुत ग्लानि भी महसूस होने लगी। उन्हें याद आ गया था कि वे पहले ही रामकृष्ण को अपना गुरु मान चुके हैं।

भारत भ्रमण पर निकलने के बाद जब विवेकानंद ने एक तरफ धार्मिक मठों और मंदिरों की अन्यायकारी व्यवस्था देखी, और दूसरी ओर देश के गरीबों और दबे-कुचलों की दयनीय स्थिति देखी, तो उनका हृदय करुणा से भर गया। लेकिन स्वयं अपने जीवन में जिस ताप से उनका रोम-रोम जल चुका था, वह उनके हृदय में कहीं न कहीं गड़ा हुआ था। इसलिए यथास्थिति पर जब भी उनका मुंह खुलता, तो कठोर भाषा ही निकलती, अप्रिय परिस्थितियां पैदा करने वाले लोगों और संगठनों के लिए उनके मुंह से 'कीड़ों', 'कायरों', 'मूर्ख' और 'सड़े-गले मुर्दो' जैसे शब्द ही आम तौर पर निकला करते।

भारतीय समाज की तत्कालीन दुर्दशा देखर उनपर प्राय: एक बेचौनी और अधीरता हावी रहती। इसलिए उनकी आध्यात्मिक साध ना भी तत्कालीन भारत की सामाजिक जरूरतों के हिसाब से ढल गयी। यह एक बात उन्हें उस समय के सारे आध्यात्मिक और

सांस्कृतिक आंदोलनों से अलग करती थी। चाहे वह ब्रह्म समाज हो, आर्य समाज हो या थियोसोफिकल सोसायटी हो। पाठ करते-करते वे अचानक गीता को बंद करके एक ओर रख देते और कहते – 'क्या होगा गीता पाठ करके'. 'गीता' का विलोम 'त्याग' चाहिए।

विवेकानन्द का हिन्दुवाद

आज भले ही कुछ लोगों को विवेकानंद ठेठ हिंदूवादी प्रतीत होते हों, लेकिन यह हिंदूवाद उनके अपने तरह का था जिसे शायद आज का राजनीतिक हिंदूवाद भुनाना चाहता है, वास्तव में, सार्वजनिक जीवन में आने के बाद विवेकानंद को एक ओर आध्यात्मिक वेदांत की विराटता अपनी ओर खींचती तो दूसरी ओर सामाजिक परिस्थितियां उन्हें उद्वेलित और विचलित कर देती थीं, और जैसे ही उन्हें इसके लिए जिम्मेदार कुछ दिखाई देता, वे तैश और प्रतिक्रिया से भर उठते. कलकत्ता जो ब्रह्म समाजियों का गढ़ था, वहां इस संस्था ने 'हिंदू' शब्द और हिंदू समाज को लगातार कोसने का रवैया अपना लिया था. दूसरी ओर ईसाई मिशनरी भी सांप्रदायिकतावश हिंदू समाज की कटु आलोचना बारंबार करते रहते थे। इसी से क्षुब्ध होकर विवेकानंद ने समसामयिक समाज में थोड़ा आत्मविश्वास भरने के लिए हिंदू शब्द का सहारा लेना शुरू किया।

लेकिन इस पर अपनी स्थिति को अच्छी तरह से स्पष्ट करने के लिए एक बार उन्होंने कहा था–'मुझे जो कुछ कहना है, मैं उसे अपने ही भावों में कहूंगा। मैं अपने वाक्यों को न तो हिंदू ढांचे में ढालूंगा, न ईसाई ढांचे में और न किसी दूसरे ढांचे में ही।' दुनिया भर की सभ्यताओं और ज्ञान-विज्ञान के प्रति उनका आकर्षण जगजाहिर था। उन्होंने भारत के लोगों को अरब के मुसलमानों से साफ-सफाई और स्वच्छता सीखने को कहा था जो रेगिस्तानी कारवां में भी अपने खाने पर धूल नहीं पड़ने देते।

किसी समय में वर्णाश्रम की वैज्ञानिक व्यवस्था को अंशत: स्वीकारते हुए भी उन्होंने जाति-व्यवस्था की इतनी कटु भाषा में आलोचना की है, जितना उनके समकालीनों में महात्मा जोतिबा फुले के अलावा और शायद किसी ने नहीं की है।

विवेकानंद के साहित्य का सबसे बड़ा हिस्सा जातिवाद और पुरोहितवाद के खिलाफ ही है. समाजवाद ने भी उन्हें सहज ही आकर्षित किया था. नवंबर, 1894 में न्यूयॉर्क से अलासिंगा पेरुमल को वे चिट्ठी में लिखते हैं- 'अन्न! अन्न! मुझे इस बात का विश्वास नहीं है कि वह भगवान जो मुझे यहां पर अन्न नहीं दे सकता, वह स्वर्ग में मुझे अनंत सुख देगा। राम कहो! भारत को उठाना होगा, गरीबों को खिलाना होगा, शिक्षा का विस्तार करना होगा और पौरोहित्य की बुराइयों को ऐसा धक्का देना होगा कि वे चकराती हुई एकदम अटलांटिक महासागर में जाकर गिरें।'

जापान से अपने मद्रासी मित्रों को लिखे एक पत्र में वे कहते हैं – 'आओ मनुष्य बनो. उन पाखंडी पुरोहितों को जो सदैव उन्नति में बाधक होते हैं, बाहर निकाल दो, क्योंकि उनका सुधार कभी न होगा। उनके हृदय कभी विशाल न होंगे। उनकी उत्पत्ति तो सैकड़ों वर्षों के अंधविश्वासों और अत्याचारों के फलस्वरूप हुई है। पहले इनको जड़मूल से निकाल फेंको।'

किसी समय में वर्णाश्रम की वैज्ञानिक व्यवस्था को अंशत: स्वीकारते हुए भी उन्होंने जाति-व्यवस्था की इतनी कटु भाषा में आलोचना की है, जितना उनके समकालीनों में महात्मा जोतिबा फुले के अलावा और शायद किसी ने नहीं की है. जाति से ब्राह्मण नहीं होने की वजह से स्वयं विवेकानंद को भयंकर भेदभाव का शिकार होना पड़ा। इतना कि कलकत्ते में उनके लिए सार्वजनिक सभा तक करना मुश्किल हो गया और कुछ समय के लिए उन्होंने प्रण किया कि वे केवल व्यक्तिगत प्रवचन ही करेंगे।

एक स्थान पर वे कहते हैं- 'स्मृति और पुराण सीमित बुद्धिवाले व्यक्तियों की रचनाएं हैं और भ्रम, त्रुटि, प्रमाद, भेदभाव और द्वेषभाव से परिपूर्ण हैं।...राम, कृष्ण, बुद्ध, चौतन्य, नानक, कबीर आदि सच्चे अवतार हैं, क्योंकि उनके हृदय आकाश के समान विशाल थे. ...पुरोहितों की लिखी हुई पुस्तकों में ही जाति जैसे पागल विचार पाए जाते हैं.' लेकिन बाद में चालाकी से कुछ लोगों ने उनकी एक ऐसी छवि गढ़ी जिससे वे भी भगवा-वस्त्रधारी हिंदूवादी साबित हो जाएं. यही कारण है कि न तो प्रगतिशीलों ने उन्हें अपनाया, न समाजवादियों ने और न ही जाति-विरोधी आंदोलनों ने. उनको हड़पा भी तो किसने – राजनीतिक हिंदूवादियों ने. असली विवेकानंद को जानने पर यह एक बहुत बड़ा विरोधाभास नजर आता है।

जीवन के एक पड़ाव पर आकर वे वेदांत की विराटता के अनंत आनंद को महसूस करने लगे थे और उसके सामने कई बार बाकी सब कुछ उन्हें तुच्छ और छोटा नजर आने लगता. इस समय उनकी भाषा में एक अभिभावकपना भर जाता, मानो वे बाकी सबको अपना बच्चा समझ रहे हों. 'बच्चे', 'मेरे पुत्रो' 'वत्स' जैसे संबोधन का इस्तेमाल तो वे अक्सर ही करते थे, और ऐसा सहज होता हुआ दिखता था।

विवेकानंद किसी भी प्रकार की कट्टरता के खिलाफ थे. जीवन-चर्या को लेकर भी वे किसी कठोर अनुशासन के पक्षधर नहीं थे। उन्हें स्वयं भी मांसाहार और धूम्रपान से परहेज नहीं था।

विवेकानंद लगातार सीखते रहे और बदलते रहे. उन्हें जब जो सही लगा उसे बिना लाग-लपेट के और जोरदार तरीके से कहा. इसलिए कई बार वे अपने निर्णय और विचारों को तुरंत ही पलट देते थे।

कट्टरता और उंच नीच से परहेज

विवेकानंद किसी भी प्रकार की कट्टरता के खिलाफ थे. जीवन-चर्या को लेकर भी वे किसी कठोर अनुशासन के पक्षधर नहीं थे। उन्हें स्वयं भी मांसाहार और धूम्रपान से परहेज नहीं था। हालांकि उन्होंने इन सब चीजों का कभी महिमांडन भी नहीं किया। जातिभेद के प्रसंग में उन्होंने अपने धूम्रपान से जुड़ी एक घटना का जिक्र अवश्य किया। आगरा और वृंदावन के बीच के रास्ते में उन्होंने तंबाकू पीने के लिए किसी से चिलम मांगी. उस आदमी ने कहा - 'महाराज, मैं मेहतर हूं.' विवेकानंद एकबार को तो आगे बढ़ गए, लेकिन तभी उनके मन में विचार उठने लगे कि मैंने तो जाति, कुल, मान सब त्यागकर संन्यास लिया है, तो मेहतर को नीच क्यों समझूं. वे वापस लौटे और मेहतर के हाथों से चिलम लेकर धूम्रपान किया।

महिलाओं की आजादी

महिलाओं के कल्याण के बारे में विवेकानंद के विचार अपने समय के नारीवादियों से कहीं आगे के थे. चीन, जापान अमेरिका और यूरोप जहां कहीं भी वे गए, उन्होंने वहां की महिलाओं की स्थिति का खासतौर पर अध्ययन और विश्लेषण किया। सिस्टर निवेदिता से संगति और लगातार बहस ने भी उन्हें महिलाओं की स्थिति समझने में मदद की। इसलिए उन्होंने भारत की महिलाओं के उत्थान के बारे में जोरदार तरीके से अपनी बात रखी।

एक संन्यासी शिष्य को फटकारते हुए उन्होंने कहा था- 'तुम लोग स्त्रियों की निंदा ही करते रहते हो, परंतु उनकी उन्नति के लिए तुमने क्या किया, बताओ तो? स्मृति आदि लिखकर, नियम-नीति में बांधकर इस देश के पुरुषों ने स्त्रियों को एकदम बच्चा पैदा करने की मशीन बना डाला है. ...सबसे पहले महिलाओं को सुशिक्षत बनाओ, फिर वे स्वयं कहेंगी कि उन्हें किन सुधारों की आवश्यकता है. तुम्हें उनके प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है? ...उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है. ...महिलाओं के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़ने वाले तुम हो कौन? अलग हट जाओ. अपनी समस्याओं की पूर्ति वे स्वयं कर लेंगी।'

उनकी भावुकता का एक अंतिम और अविश्वसनीय उदाहरण यह है कि संन्यास ग्रहण करने के बाद भी उन्हें अपने परिवार का आर्थिक सहयोग करने की चिंता रही. इसके लिए उन्होंने कई बार प्रयास भी किया।

मानवता के प्रति करुणा

विवेकानंद के हृदय में समूची मानवता के प्रति अगाध प्रेम और दया थी. लेकिन अपनी भावुकता में वे बात करते-करते उग्र हो जाते थे. आंसू भी बहाने लगते थे. सब कुछ बदल डालने की धुन और जल्दी उनपर सवार थी. एकबार तो उनके मन में आया कि वे अमेरिका से बहुत सारा पैसा कमाकर लाएंगे और भारत का उद्धार कर देंगे. मोटिवेशनल स्पीच की एक कंपनी ने देखा कि विवेकानंद के भाषण को सुनने के लिए अमरीकी टूट पड़ते हैं. विवेकानंद ने भी पैसे कमाकर भारत का कल्याण करने की धुन में उस कंपनी से पैसों के एवज में भाषण देने का करार कर लिया. उनके भाषणों से उस कंपनी ने तो खूब डॉलर कमाए, लेकिन विवेकानंद को तय रुपये नहीं दिए. विवेकानंद को भी ग्लानि हुई और उन्होंने फिर से नि:शुल्क भाषण देना शुरू किया. हालांकि रामकृष्ण मिशन के रूप में उनका प्रयास यही रहा कि खोखले भाषण नहीं, बल्कि वास्तविक सेवा का कार्य कर वे देश की स्थिति में ठोस सुधार लाएं।

अत्यधिक भावुकता की वजह से ही अपने अंतिम दिनों में वे बहुत अकेलेपन और निराशा के भी शिकार हुए. इससे उनके स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा असर पड़ा और दमे ने उन्हें बहुत परेशान कर दिया. उनकी भावुकता का एक अंतिम और अविश्वसनीय उदाहरण यह है कि संन्यास ग्रहण करने के बाद भी उन्हें अपने परिवार का आर्थिक सहयोग करने की चिंता रही. इसके लिए उन्होंने कई बार प्रयास भी किया।

विवेकानंद जब अंतिम बार बीमार पड़े तो मां ने कहा कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि बचपन में विवेकानंद के स्वास्थ्य के लिए मानी गई एक मनौती उन्होंने पूरी नहीं की थी। मनौती थी कि 'यदि मेरा बच्चा अच्छा हो जाए तो कालीघाट के काली मंदिर में विशेष पूजा करवाऊंगी और श्री मंदिर में बच्चे को लोटपोट कराऊंगी।' पर यह बात माताजी भूल गई थीं। आजीवन टोने-टोटकों और अंधविश्वास का विरोध करनेवाले विवेकानंद भावनावश अपनी मां की बात काट नहीं सके। उन्होंने कालीघाट की आदि गंगा में स्नान करके गीले कपड़ों में ही काली-मंदिर में तीन बार लोट-पोट किया और फिर होम भी किया।

कुछ लोग मानते हैं कि विवेकानंद की यही भावुक क्रांतिकारिता उन्हें एक अलग प्रकार का उग्रपंथी विद्रोही तक बना सकती थी. लेकिन रामकृष्ण परमहंस ने उनके भीतर जल रही अनियंत्रित आग पर भक्ति और धर्म से भरी करुणा का जल छिड़क दिया।

निष्कर्ष

स्वामी विवेकानंद के बारे में कहा जाता है कि वे स्वयं खुद भूखे रहकर अतिथियों को खाना खिलाते थे और बाहर ठंड में सो जाते थे। मानवता के वे कितने बड़े हितैषी थे, यह उनके इस वक्तव्य से समझा जा सकता है कि भारत के 33 करोड़ भूखे, दरिद्र और कुपोषण के शिकार लोगों को देवी-देवताओं की भांति मंदिरों में स्थापित कर दिया जाए और मंदिरों से देवी-देवताओं की मूर्तियों को हटा दिया जाए।

स्वामी विवेकानंद का राजनीतिक प्रतीक की तरह इस्तेमाल उनके जीवन और विचारों के तटस्थ मूल्यांकन में एक बड़ी बाध ा है।

सन्दर्भ

- शुक्ल, पंडित विद्याभास्कर. ष्स्वामी विवेकानंद का जीवन परिचयष् मूल से 19 अगस्त 2019 को पुरालेखित.
- Dutt, Harshavardhan (2005), Immortal Speeches, (नई दिल्ली: Unicorn Books, p. 121, ISBN 978-81-7806-093-4
- क्रान्त (2006). / स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी साहित्य का इतिहास. 2. नई दिल्ली: प्रवीण प्रकाशन. पृ. 390. आई.एस.बी.एन. 81-7783-119-4. मूल से 14 अक्तूबर 2013 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 4 जुलाई 2013.
- VIVEKANANDA-A Biography in Pictures, Edition: 2005, Publishers: Advaita Ashrama (Publication Department) 5, Dehi Entally Road, Kolkata 700014, Page: 118, ISBN 81-7505-080-02

नादयोग

डॉ० कामेश्वर कुमार

पूर्व शोध छात्र, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

संगीत की सृष्टि नाद से होती है। जिस तरह मिट्टी या पत्थर से मूर्ति, रंग से चित्रा और ईट, पत्थरों से महल तैयार होता है उसी तरह नाद से संगीत प्रस्फुटित होता है। मिट्टी आदि की तरह ही नाद संगीत का उपादान मात्रा है। कोई नाद चाहे जितना भी श्रुति मधुर हो अकेला संगीत का रूप नही ले सकता, क्योंकि ऐसे नाद में संगीत का रूप देखना वैसा ही है जैसा किसी पत्थर के ढ़ोकें में बुद्ध की मुर्ति या रंग के ढ़ेर में रम्भा मदलसा का चित्रा देखना। किसी भी कलाकृति के लिए अच्छे उपादान को ग्रहण करना उचित है और इस दृष्टि से संगीत के लिए कर्णप्रिय नाद भी आवश्यक है। संगीत के आचार्यो के अनुसार आकाशस्य अग्नि और मरूत के संयोग से नाद की उत्पत्ति हुई है। जहाँ प्राण (वायु) की स्थिति रहती है उसे ब्रह्मग्रंथि कहते है। संगीत दर्पण में लिखा है कि आत्मा के द्वारा प्रेरित होकर चित्त देहज अग्नि पर आघात है और अग्नि ब्रह्मग्रंध्कित प्राण को प्रेरित करती है। अग्नि द्वारा प्रेरित प्राण फिर उपर चढ़ने लगता हैं। नाभि में पहुँचकर वह अति सूक्ष्म हृदय में सूक्ष्म, गलेदेश में पुष्ट, शीर्ष में अपुष्ट और मुख में कृत्रिम नाद उत्पन्न करता है। संगीत दामोदर में नाद तीन प्रकार का माना गया है-प्राणिभव, अप्राणिभव और उभयसंभव। जो सुख आदि रंगो से उत्पन्न किया जाता है, वह प्राणिभव, जो वीणा आदि से उत्पन्न होता है या निकलता है वह अप्राणिभव और जो बाँसुरी से निकाला जाता है वह उभय-संभव है। नाद के बिना गीत, स्वर, राग, ताल आदि कुछ भी संभव नहीं है। ज्ञान भी इसके बिना नही हो सकता। अत: नाद परज्योति व ब्रह्मरूप है। और सारा जगत नादात्मक है।

‘नाद’ शब्द की व्युत्पत्ति एवं निरूक्ति:-

‘नद्’ धातु से ‘नाद’ शब्द निष्पन्न हुआ है। हमारे आचार्यो ने नाद को ब्रह्म के साथ स्वीकृत करके ‘नादब्रह्म’ के रूप में प्रस्तुत किया है। नाद अद्वितीय और आन्नदस्वरूप है। शारंगदेव के अनुसार नाद शब्द के दो अक्षर ‘नकार’ प्राणवायु और ‘दकार’ अग्नि वाचक है। इन दोनों अर्थात प्राणवायु एवं अग्नि के संयोग से ‘नाद’ उत्पन्न हुआ है।

नकारं प्राणनामानं दकामनलं विदु: ।
जात: प्राणग्निसंयोगत्तेन नादोऽभिधीयते।।[1]

पाणिनी के अनुसार नादोत्पति इस प्रकार है- ‘‘आत्मा बुद्धि से योग करती है, मन विवक्षाधीन अर्थो के साथ युक्त होता है। वह व्यापारित मन शरीर स्थित अग्नि पर आधत करता है, अग्नि वायु को प्रेरणा देती है, इस प्रकार प्राण, शरीर के विभिन्न भागों में संचरण कर मन्द्र, तथा तार इन स्थानों से विभिन्न स्वर उत्पन्न होते है।

‘‘आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनी युड्क्ते विवक्षया।
मन: कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयित मारूतम्।।
मारूतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्।’’ [2]

नाद की उत्पति का वर्णन करते हुए ‘शारदातिलक’ में कहा गया है कि सत्, चित, आनन्द विभूतित्रायी से सम्पन्न प्रजापति से सर्वप्रथम शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। वह शक्ति नाद को उत्पन्न करती है और नाद से बिन्दु की उत्पत्ति होती है।

‘‘सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्
आसीच्छाक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भव: ।’’ [3]

संगीतशास्त्र के अनुसार स्वर, गीत, वाद्य और ताल चारों नाद के बिना सिद्ध नही होते। अत: जगत् नादात्मक है। संगीताचार्यो का कथन है कि नाद की उत्पत्ति ब्रह्मग्रन्थि से होती है। भगवान शंकर को नादतनु माना गया है क्योंकि वे नाद के प्रवक्ता है।

''ब्रह्मग्रन्थिज्मारूतानुगतिना चित्तेन हृत्पंकजे
सूरीणामनुरञ्जक: श्रुतिपदं योऽयं स्वयं राजते।
यस्माद ग्रामविभागवर्णनरचनालंकारजातिक्रमो
वन्दे नादतनुं तमुद्दुरजगद्गीतं मुदे शंकरम्।। [4]

मतंगमुनि कहते है कि नाद के बिना न गीत है, न स्वर है, और न नृत्य है। नादतत्व गीत, वाद्य,नृत्य सभी में व्याप्त है। अत: सम्पूर्ण जगत ही नादात्मक है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के समान पराशक्ति भी नाद स्वरूप ही है।

''न नादेन बिना गीतं न नादेन बिना स्वरा:।
न नादेन बिना नृत्य तस्मान्नदात्मकं जगत।।
नाद रूपों स्मृतोब्रह्मा नाद रूपों जनार्दन:।
नाद रूपा पराशक्ति नार्दरूपो महेश्वर:।। [5]

पं. लोचन के अनुसार-प्राणसंज्ञक वायु नाभि स्थान के उपर की ओर हृदयादि स्थान से होते हुए ब्रह्मारन्ध्र में ध्वनित (नादितद्ध होता है। अत: अग्नि और वायु के संयोग से उत्पन्न नाभि से उर्ध्व रूप में उच्चारित एवं मुख द्वारा व्यक्त ध्वनि को नाद कहा जाता है।

नाद के भेद:

संगीत शास्त्रों में नाद के दो भेद आहत एवं अनाहत बताये गए हैं। अनाहत नाद बिना आघात या घर्षण से उत्पन्न होता है, जबकि आहत नाद आघात या घर्षण से उत्पन्न होता है। आहत नाद की साध्ना संगीतज्ञ तथा अनाहत नाद की साध्ना योगीजन करते हैं।

संगीत ईश्वर प्राप्ति का सर्वोतम माध्यम है, क्योंकि रसात्कमता मानव हृदय या साध्क के चित्त को बाँधे रहती है, जिससे इनकी चित्तवृत्तियाँ स्वत: ही शांत एवं लुप्त हो जाती है। अत: संगीत में लीन भक्त अपने परिवेश से मुक्त होकर ईश्वर से एकाकार हो उससे नादात्म्य स्थापित करता है और मोक्ष को प्राप्त करता हैं।

अनाहत नाद की साध्ना से योगीजन ब्रह्मानंद को प्राप्त करते हैं। यह दिव्य नाद हर पल, हर क्षण, हर दिशा में अर्थात सृष्टि के कण-कण में सदैव रहता है। इसके अनुभव योगीजन अपने कानों को बंद करके करते है तथा ब्रह्मानंद के साथ-साथ भक्ति-मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं। अत: अनाहत एवं आहत नाद मुक्तिदायक एवं ब्रह्मानंद का अनुभव कराते है। दोनो प्रकार के नाद के उपासना से साध्क को एकाग्रता, निराकुलता, और शांति का अनुभव होता है। इससे पाप का क्षय होता है, क्योंकि पाप की सम्प्राप्ति (आस्त्रावद्ध चंचल मन के योग से होती है। वह मन नादासक्त होने पर स्वत: स्थिर हो जाता है। हठ योगियो का तो अनुभव है कि उस अवस्था में चित निरंजन में लीन हो जाता है।

'नाद' शब्द योग एवं तंत्रा में विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जो ध्वनि स्वत: अंदर से प्रकट होती है, उसे विद्वतजन नाद 'अंत: ध्वनि' 'अंत: संगीत', 'अंतमाधुर्य' आदि के नाम से उल्लेखित करते है, स्वत: अंत: करण से प्रकट ध्वनि जो अनुभव के स्तर पर सुनाई देती है यही 'नादयोग' कहलाती है।

नाद की विभिन्न व्याख्या के अंतर्गत हठयोग प्रदीपिका में ही कहा गया है कि जो साध्क नादानुसंधान का अभ्यास करते हैं उन्हे प्रारम्भ में तो अनेक प्रकार के शब्दों के श्रवण का अनुभव होता है, फिर सूक्ष्मतातिसूक्ष्म शब्द सुनने की क्षमता आ जाती है। पहले समुद्र गर्जन, मेघास्तनि और भेरीरव आदि जैसे शब्द सुनाई पड़ते है। मध्य में मर्दल, शंख, घण्टा और काहल से उत्पन्न ध्वनि के नाद सुनाई देते है। लेकिन अंत में वंशी, वीणा, इत्यादि के नाद सुनाई पड़ते है।

''आदौ जलध्जिीभूत भेरी झर्झरसम्भवा:।
मध्ये मर्दलशंखोत्था घण्टाकाहलजास्तथा।।

अन्ते तु किंकिणीवंशवीणाभ्रमरनिः स्वनाः।

इति नानविद्याः शब्दाः श्रूयन्ते देहमध्यगाः।।'' [6]

यहाँ स्पष्ट है कि साध्क स्थूल नाद से आगे बढ़ते हुए सुक्ष्म नाद की ओर अग्रसर होकर चित्त का परमानंद प्राप्त करता है। योग साध्ना में नाद की इस परममहत्ता का संगीतशास्त्र से प्रगाढ़ संबंध है। व्यापक दृष्टि से दृष्टिगत होता है कि यह नाद अनाहत की उपासना है, परन्तु संगीत में आहत नाद की ही उपासना होती है। योगशास्त्र का कथन है कि –

''तत्रानादे यदाचित्तं योगितो रमते भश्शम्।

विस्मृत्य सकलं वाद्य नादेन सह शाम्यति।।'' [7]

अर्थात जब साध्क का चित नाद में स्थित हो क्रिड़ा करने लगता है, तब सब बाहरी विषयों की विस्मृति होकर नाद के साथ वे शांत हो जाते है, यही लय योग है, यही समाधि है, यही नाद योग है।

नाद–साध्ना में नाद की महत्ता का संगीत और योग से प्रगाढ़ संबंध है। व्यापक दृष्टि से देखने पर यह अनाहत नाद की उपासना है, परन्तु संगीत में आहत नाद का उपयोग होता है। यही साध्य नाद 'प्रणव' या 'ओंकार' कहलाता है। संत महात्माओं ने इसे 'सोऽह' भी कहा है। इसी 'प्रणव' या 'सोऽह' की साध्ना से कुण्डलिनी जाग्रत किया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि संगीत और योग दोनो ही नादात्मक विद्या है। दोनों की साध्ना लौकिक, आनंददायक तथा अनंत फलदायक है। इसीलिए नाद की उपासना से ब्रह्मलाभ होता है। मणि और उसकी प्रभा में जिस प्रकार का पारस्परिक संबंध है, प्रभा की खोज करने पर जिस प्रकार मणि की प्राप्ति होती है, ब्रह्म और नाद का भी वैसा ही संबंध है।

संदर्भ सूची

1. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, श्लोक–6,पृष्ठ–113
2. महतो दामोदर, पाणिनीय शिक्षा, पृ0–6–8
3. मालवीय डॉ0 सुधकर, शारदातिलक, पृ–117
4. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, पृ0–11
5. मुनी मतंग, वृहद्देशी–श्लोक–6,पृ0–17
6. हठयोगी प्रदीपिका, 4/104
7. मिश्रा डॉ0 नीता, संगीता में नादरूप व ध्वनिपक्ष के विभिन्न आयाम, पृ0–29

भारतीय संगीत का ऐतिहासिक स्वरूप

डॉ० चन्देश्वर प्रसाद कुशवाहा

शोध छात्र, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परम्परा की अनन्य ध्रोहर, संस्कृति एवं सभ्यता का परिचायक, धर्मिक आध्यात्म की सशक्त बुनियाद, हमारा भारतीय संगीत सृष्टि के प्रादुर्भाव के समय से ही अखिल विश्व की प्रत्येक सजीव गतिविधि में व्याप्त रहा है। प्राचीन काल से ही यह हमारे आध्यात्मिक एवं भावात्मक जीवन का एक अभिन्न अंग माना जाता रहा है। क्योंकि मानवमात्रा की प्रत्येक क्रिया ही संगीतमय है। मानवमात्रा की कौन कहे, स्वयं जगत् के पालक परम-पिता परमेश्वर ने भी संगीत का गुणगान किया है।

नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदयं न च।

मद्भक्ता यत्रा गायन्ति तत्रा तिष्ठामि नारद[1]*।।*

यह अद्वैत वेदान्तियों का ऐसा मत है कि ज्ञान समेत छः वस्तुएं अनादि हैं। जिसका विवरण इस प्रकार वर्णित है-

''जीव ईशो विशुद्ध-चित्त तथा जीवेशर्योर्भिदा।

अविद्यातत्यितोर्योगः षडस्माकमनादयः।। -सुरेश्वराचार्य

अर्थात जीव, ईश्वर, विशुद्ध चिंतन, ज्ञान, जीव और ईश्वर का भेद, अविद्या तथा स्त्रोत-विद्या एवं चित्त, ज्ञान, का संबंध है, ये छः अनादि हैं। संगीत ईश्वरीय वाणी है, अतः यह स्वंय ब्रह्म ही है, शास्त्रों से ज्ञात होता है कि ब्रह्म ही है, शास्त्रों से ज्ञात होता है कि ब्रह्म अखंड एवं अद्वैत होते हुए भी परब्रह्म और शब्दब्रह्म- इन दो रूपों में कल्पित होता है शब्द-ब्रह्म को भली भांति जान लेने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है-

"शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति[2]*।*

- ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, श्लोक[22]

संगीत मानव की एक कलात्मक उपलब्धि है, यह लयकारी सांस्कृतिक परम्पराओं का एक मूर्तिमान प्रतीक है और भावना की उत्कृष्ट कृति है, अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देने का माध्यम है, इसमें हृदय स्पर्शिता है और यह मानव, सृष्टि तथा प्रकृति के रोम-रोम एवं कण-कण में व्याप्त है। संगीत, अखंड, असीमित तथा अनन्त है। संगीत को म्यूशिक या मौसिकी3 भी कहते हैं। वर्तमान संगीत का जो स्वरूप हमारे सामने है, वह एक लम्बी यात्रा का परिणाम है। प्राणी मात्रा के रूदन, चीत्कार तथा हंसने आदि क्रियाओं से जनित ध्वनियां एक समूहवाची शब्द है। जिसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों कलाएं अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्रा होते हुए भी एक समष्टि में समाहित है। संगीत में इन तीनों ही कलाओं का अपना-अपना महत्व है तथा अतुलनीय हैं। फिर भी गीत इन विविध कलाओं में प्रमुख एवं सर्व प्रधान माना गया हैं क्योंकि यह शब्दों पर आधरित होने के कारण जन-साधरण से लेकर संगीत के ज्ञाता तक प्रख्यात एवं व्यवहारित है। वाद्य, गीत का अनुयायी है तथा नृत्य, वाद्य का अनुगामी माना गया है, इसी कारण इसे - **''सवाद्यं" या ''सनृत्यं"** उद्बोध्न न देकर संगीत नाम से अभिहीत किया गया है। ''संगीत रत्नाकर" में शारंगदेव ने संगीत को इस तरह से परिभाषित किया है- **''गीतंवाद्यं तथा नृत्यं त्रायं संगीतमुच्यते"**[4]**।**

अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य ये तीनों मिलकर संगीत कहलाते है। इन्होंने भी इन तीनों में गीत को प्रधानता दी है, क्योंकि गीत मानव कंठ की सहज विभूति है। संगीत का पारिभाषिक अर्थ थोड़ा व्यापक है

'सम' का अर्थ है, 'सह' यानी साथ-साथ अथवा मिलकर। कोष के अनुसार संगीत का अर्थ है, वह गायन जो नृत्य और वाद्ययंत्रा

के साथ गाया जाए। संगीत को परिभाषित करते हुए वाणी भाई रामजी ''ग्लिमफिसस ऑफ इण्डियन म्यूजिक" में लिखते हैं- "Sangeet is a technical term generally used far vocal, instrumental and dance music and all these arts are known as "Sangeet". The has coming down from generation to generation and ws very much appreciatied and enjoyed by one and all throughout the universe alike"[5]. संगीत हृदय से निकलने वाली वह भाषा है, जिसके भाव कभी असत्य नहीं हो सकते हैं। मानव की जिह्वा झूठ बोल सकती है, उसकी लेखनी मिथ्या हो सकती है, लेकिन भाव नहीं, क्योंकि संगीत का मानव जीवन से भी ज्यादा उसकी आत्मा से संबंध हैं। संगीत वस्तुत: ईश्वरीय वाणी है, इसका स्वरूप अखण्ड तथा अद्वैत है। संगीत एक ऐसी कला मानी जाती है, जो सूक्ष्मतम होकर भी सर्वाधिक प्रभावशाली है, सौन्दर्यपूर्ण होते हुए मधुर हैं, लालित्य से ओत-प्रोत होकर भी वैचित्रायता लिए है। संगीत का ऐसा माध्यम है जो न केवल मानसिकता को प्रशिक्षित करता है वरन् मनोभावों को भी प्रशिक्षित करके उन्हें विशुद्ध रूप प्रदान करता है जिससे व्यक्तिगत दुर्गुण दूर हो जाते हैं।

"Music is the best sense, does not require novelty, many the older it is and the more one are accustomed to it. The greater its effect-Goethe".

संगीत मनोरंजन का उतना ही विशाल माध्यम है, जितना यह आध्यात्मिक जीवन में। संगीत एक रसदायक ललित कला है। इसके बिना मानव जीवन नीरस एवं फींका हैं। यह किसी भी संस्कृति को जीवंत रखने से सबसे अहम् भूमिका निभाता है। संगीत को मात्रा श्रवणेन्द्रिय विषय कहा जाना उचित ना होगा अपितु यह श्रोताओं को अपने दैनिक जीवन की कठिनाईयों से पीड़ित चित्त को शान्ति एवं संतुष्टि देने वाली अमूल्य औषधि है। संगीत मनोरंजन का एक साध्न होने के साथ-साथ मानव के मन तथा मस्तिष्क को एक असधरण उंचे स्तर पर ले जाने की क्षमता रखता है। इसीलिए इसे आत्मा का भोजन कहा जाता है। संगीत सारे विश्व में प्रचलित है तथा ऐसा कोई स्थान या देश नहीं जहां संगीत ना हो। श्री अनेस्ट हंट ने अपनी पुस्तक 'स्पिरिट ऑफ म्यूजिक' में लिखा है संगीत केवल सामान्य ध्वनि नहीं हैं। अपितु यह सूक्ष्म अन्त:वृत्तियों के उद्घाटन का सरल साध्न है[6]। वस्तुत: स्वरों का कोई रंग या आकार नहीं है। स्थूल रूप से स्वरों का चयन साहित्य या भाषा के सात अक्षरों को लेकर ही प्रस्पुफटित हुआ है, परन्तु इन सात अक्षरों से असंख्य रागों की उत्पति ही संगीत की सूक्ष्मता को प्रदर्शित करती है। इसलिए संगीत ही एक ऐसी कला है, जो हमारी आंतरिक भावनाओं को संयमित एवं स्वस्थ बनाकर सामन्जस्यपूर्ण सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिए यथोचित प्रेरणा प्रदान करती है। संगीत हमारी अस्वाभाविक एवं अमानुषिक प्रवृतियों को दूर कर सुखमय जीवन बिताने के लिए सही दिशा प्रदान करती है तथा इसक साथ-साथ संगीत का मंच प्रदर्शन देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखने के लिए आपसी बैर एवं कटुता, एकरसता एवं शुष्कता, संकीर्णता एवं क्षुद्रता को पूरा कर आलौकिक आनन्द को प्रदान कर लौकि जीवन को सरस बनाने का माध्यम बनता है। संगीत को आत्मा का संतोष प्रदान करने वाला भोजन कहा गया है, कहा गया है तथा इसे समस्त विश्व की भाषा भी कहा गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत के लिए भाषा, प्रदेश या समय का बंधन नहीं है संगीत स्वंय एक भाषा है। उसे समझने के लिए गीत की भाषा आना आवश्यक नहीं है। स्वरों के नाम अलग-अलग होने पर भी उसका यथार्थ स्वरूप एक ही है सात स्वर ही सर्वत्रा प्रयोग होते हैं। विकृतियां भले ही अनगिनत हों परन्तु आधार सप्तक या अष्टक एक समान ही होता है। यह तथ्य हारमोनियम, पियानों आरगन इत्यादि द्वारा सिद्ध होता है। यह सत्य है कि इनमें स्वरों का सूक्ष्म स्वरूप जो श्रुत्यांतर से प्राप्त होता है वह पूर्णतया नहीं मिल पाता। संगीत अर्न्तरात्मा की बाह्य अभिव्यक्ति है, मन में सुप्त भावनाओं का साकार रूप ही संगीत है। इसमें कोई संदेह नहीं। प्रत्येक देश का अपना एक संगीत अथवा विशिष्ट शैली होती है। संगीत एक ऐसी कला है जो नाद पर आधरित है। यह एक श्रवणेन्द्रिय विषय है। कानों के द्वारा गृहित स्वर समूह, अर्न्तरात्मा, मन, मस्तिष्क तथा हृदय इत्यादि सबकों प्रभावित करने की शक्ति रखता है। स्वर या संगीत यद्यपि दृष्टिगोचर नहीं होते, परन्तु इसक प्रयोक्ता गायक तथा श्रोताओं के सम्मुख संगीत एक स्वरूप बनकर छा जाता है।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. नाहर, साहित्य कुमार, भारतीय शास्त्रीय संगीत: मनोवैज्ञानिक आयाम, पृष्ठ संख्या-1
2. वही, पृष्ठ संख्या -2
3. कपूर तृप्त, उत्तर भारत में संगीत शिक्षा, पृष्ठ संख्या-1
4. वसंत, संगीत विशारद, पृष्ठ संख्या-48
5. कपूर तृप्त, उत्तर भारत में संगीत शिक्षा, पृष्ठ संख्या-2
6. वहीं, पृष्ठ संख्या-1

शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत में आंतरिक संबंध

डॉ० सुरेन्द्र कुमार राम

पूर्व शोध छात्र, संगीत एवं नाट्य विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

लोक गीत किसी जाति, वर्ग-समूह और देश की लोक संस्कृतियों के परिचायक एवं समग्र संवाहक है। इसमें जीवन के प्रत्येक ध्ड़कनों का अहसास दृष्टिगत होता है। मानव के समस्त संस्कार, पर्व-त्योहार, हर्ष, हास्य-परिहास, सुख-दुख, आचार-विचार, रीति-रिवाज, धर्म-कर्म आदि के दिग्दर्शन इसमें सहज रूप से मिलता है। यह जीवन का स्फूट काव्य है। यह किसी एक व्यक्ति के द्वारा रचित न होकर समूहगत रचनाशीलता का परिणाम है। यह लोक कंठ की ध्रोहर है जो एक कंठ, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचरण होती है। यह पीढ़ियों के कठीन अनुभव से तप कर बनता है। इसलिए इसकी मार्मिकता, काव्यात्मकता, रसोद्रेकता, संगीतात्मकता आदि अध्कि सरल और व्यापक होती है।

लोकगीतों में लोक स्वर बसता है जो लोक संगीत को जन्म देता है। लोक धुनें लोक संगीत का स्वरूप निर्धरित करती है। यह धुन किसी भी क्षेत्र की सांगीतिक पहचान है जैसे बंगाल का भटियाली और बाउफल, राजस्थान का माँड, ब्रज का रास, भोजपुरी क्षेत्र के पूरबी और कजरी, मिथिला के नचारी, बज्जिका के चैता इत्यादि। इन धुनों की स्वर रचना प्रसंगानुरूप होती है। धुन सुनने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सोहर, चैती, कजरी, जससार, सोहनी आदि के गीत है। इस संगीत की प्रकृति और प्रवृति सहज है जैसे घटा को देख कर मोर नाचने लगता है, मधुमास के आते ही कोयल गाने लगती है, वैसे ही जन्म-विवाह, पर्व त्योहर, उत्सव आते ही आमजन गाने लगते हैं।

लोक-स्वर प्राकृतिक जन्य है। नदियों की सरसराहट, झरनों की झर-झर, बादलों की गड़गड़ाहट, गाय के रभाने, बकरी के मिमियाने, कोयल की कुहूक, हाथी के चिंग्घाड़ने, घोड़े के हिनहिनाने आदि मूल स्वरों से इसकी उत्पति हुई है। माण्डुकि शिक्षा[1] के अनुसार

षड्ज वदति मयूरो गायो रम्भन्ति चर्षमे ।
अजा वदति गान्धरे क्रौञ्चनादस्तु मध्यमे ।।
पुष्पसाधरणे काले कोकिलः पंचमे स्वरे ।
अश्वस्तु ध्रैवते प्राह कुंजरस्तु निषाद्वान ।।

अर्थात् मोर षडज बोलता है, गौ ऋषभ में रंभाती है, बकरी गांधर में बोलती है, क्रौंच पक्षी मध्यम में बोलता है। वसंत में कोयला पंचम स्वर में बोलती है, घोड़ा ध्वैत में बोलता है और हाथी निषाद में ।

प्रकृति में विराजमान स्वरों से लोकगीत या लोकधुनों का जन्म होता है। लोक धुनें लोक संगीत के निश्चित किये गये स्वर समूह है, जिसकी सत्ता व्यापक जन समूहों के कंठों में होती है। इस संगीत में पारस्परिक दक्षता का बड़ा महत्व है। कोई स्त्री या पुरूष बचपन से अपने पूर्वजों की संगत में यह संगीत सीखता है तथा किशोरावस्था तक पारंगत हो जाता है। यह परम्परा निरंतर जारी रहती है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को यह उतरदायित्व सौंपती चली जाती है और इसकी परम्परा आगे बढ़ती रहती है। नयी पीढ़ी अपनी तरफ बुद्धि और प्रतिभा से इसमें कुछ जोड़ती घटाती है। जिससे इसमें समयानुसार परिवर्तन-परिर्व(न होते रहते हैं जो इस कला की जीवंतता को बनाए रखता है।

इन्हीं लोक संगीत में प्रयुक्त स्वरों से हमारे वैदिक मनीषियों ने वैदिक स्वर समूह की रचना की।[2]

प्रारंभ में दो-तीन स्वरों में ही वेद मंत्रों का गान होता था, जो कालांमर में सप्त स्वरों के आधार से होता था। ठाकुर जयदेव सिंह के पाणिनी के अष्टाध्यायी के आधार पर यह बताया है कि उदात्तादि लोक और वेद में स्वर वर्ण के विशेष धर्म हैं। जो स्वर उँचा उपलब्ध होता है उसकी उदात्त संज्ञा होती है। उँचा का अर्थ यह नहीं कि सुनने में उँचा लगे। इसका अर्थ स्थानकृत उच्चत्व। तालू आदि समान स्थान में उर्ध्व भाग से जो स्वर निष्पन्न होता है, उसकी उदात्त संज्ञा होती है। समान स्थान के नीचे के भाग से निकला हुआ स्वर अनुदात्त होता है। जिसके उच्चारण में गात्रों में ढीलापन आता है। उदात्त और अनुदात्त का जिस स्वर में समाहार होता है, वह स्वरित कहलाता है।[3] स्पष्ट है कि वैदिक और लौकिक स्वर की एक विशेष उच्चारण विधि थी, जिसे उदात्त, अनुदात्त और स्वरवित कहते थे।

साम-गान करते समय गायक अपनी ओर से उद्‌गार वाचक (स्तोभद्ध ए, ई, अहोबा, आहोयि, हाउ इत्यादि अक्षरों को मिला कर गान करते थे।[4] ये उद्‌गार वाचक शब्द अथवा अक्षर लोक में प्रयुक्त गान के री, अरी, हे, हारी, अरे, हां आदि के रूपांतरित शब्द हैं।

वेदकाल में संगीत की दो धराओं का समान रूप से विकास हुआ है। जिन्हें मार्गी और देशी संगीत कहा गया। मार्गी संगीत अनादि, अपौरफषेय अत्यंत पवित्रा तथा अपरिवर्तनीय संगीत था, जो पूर्णरूपेण नियमबद्ध था। ऋग्वेद की ऋचाओं का सस्वर पाठ इसका मूल विषय था। बाद में इन मंत्रों को लेकर जब स्वर आदि में आबद्ध किया गया तो इसे सामगान कहा गया। जिसे मार्गी संगीत के रूप में वर्गीकृत किया गया। इस संगीत का मुख्य उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति था। मंत्रों का गान विधि-विधान पूर्वक किया जाता था। तत्कालीन आचार्यो का विश्वास था कि मंत्रों का विध्पूिर्वक गायन ही शीघ्र लक्ष्य की ओर ले जाता है। जबकि देशी संगीत का मुख्य लक्ष्य जनमन रंजन था। इसलिए इस संगीत में लोगों की रफचियों और पसन्द के अनुरूप बदलाव आने लगा। यही लौकिक लोक रंजक संगीत को भरत काल में 'गान्धर्व' नाम दिया गया। डॉ परांजपे के अनुसार – ''मार्ग तथा देशी दोनों परस्पर सापेक्ष संज्ञाएँ हैं। प्रत्येक कला जन जीवन में संबद्ध होने के कारण उसका देशी तत्व निर्विकार है। कालक्रम से जब उसका अपना व्याकरण बन जाता है, वही कला 'मार्ग' कहलाती है। साम तथा गान्धर्व दोनों का मूलाधर लोक संगीत रहा है और इस दृष्टिकोण से दोनों मूलत: देशी संगीत का प्रतिनिध्त्वि करते हैं। संस्कार एवं परिष्कार से संयुक्त होने पर इसी का अंतर्भाव 'मार्ग' में किया जाता रहा है।''[5] अत: स्पष्ट है कि वर्तमान में प्रचलित शास्त्रीय अथवा लोक संगीत के विकसित स्वरूप हैं।

महाकाव्य काल में हमें, 'जाति गान' की परंपरा दृष्टिगत होती है। विद्वानों के अनुसार- ''जातियों वे धुन थीं, जिसका उद्‌गम लोक संगीत से हुआ।[6] अर्थात् लोकप्रिय धुन ही जातियों का आधार रहा है। इसका आवश्यक संस्कार और परिष्कार करने के बाद ही उन्हें शास्त्रीय संगीत के 'जाति गान' की संज्ञा दी गयी। भरत के अनुसार, ''लोक में जो कुछ गाया जाता है, वह सब कुछ जातियों में स्थिति है।''[7] आचार्य बृहस्पति के अनुसार कालांतर में जातियों में विकार होने से 'रागों' का जन्म हुआ।[8] इसलिए पंडित शारंगदेव ने प्राचीन जातिगान से संबंध्ति राग को 'ग्राम राग' कहा तथा लोक में प्रचलित धुनों के आधार पर नितिर्मत राग को 'देशी राग'।[9]

भरत ने नाट्यशास्त्र में संगीत की लोकमूलकता का स्पष्ट संकेत दृष्टिगोचर होता है। भरत के संगीत का आधार तत्कालीन संगीत शैली तथा लोक अभिरुचि रहा है। भरतकालीन मागधी, अर्(मागधी आदि गीतियाँ भारत के विशिष्ट प्रदेशों में तथा बोलियों में प्रचलित गान परंपरा पर आधरित है।[10] अत: कहा जा सकता है कि भरतकालीन संगीत का जड़ लोक संगीत में ही था।

वर्तमान में शास्त्रीय संगीत का आधार 'राग' है। रंजन के कारण ही राग की संज्ञा 'राग' है, यही राग की व्युत्पति है।

इत्येवं रागशब्दस्य व्युत्पत्रिरभिधेयते।

रज्जानाज्जायते रागो व्युत्पति: समुदाहृता।।[11]

आम जनों का अर्थात् समस्त लोक का रंजन राग के द्वारा होता है। मतंग के अनुसार

'स्वरवर्ग विशेषेण ध्वनि भेदेन वा पुन:।

रज्यते येन य: कश्चित् स रागा: सम्मत: सताम् ।।''[12]

शुभंकर ने कहा है कि ''जिसके द्वारा तीनों लोकों में विद्यमान प्राणियों के हृदय का रंजन होता है, भरत इत्यादि मुनियों ने उन्हें राग कहा है।''[13] अत: राग में रंजकत्व की भावना लोक से आयी है, साथ ही साथ इसकी स्वरावली भी लोक में विद्यमान धुनों से ही आयी है।

लोक धुन जब किसी संगीतज्ञ के हृदय को छूती है तो वह इस धुन को परिष्कृत कर 'राग' के रूप में प्रस्तुत करता है। लोक धुन समान्यत: आधे सप्तक में ही होते हैं। इन्हें पर्याप्त चिंतन-मनन करके शेष स्वर जोड़ कर सप्तक पूर्ण किया जाता है तथा इन स्वर समूहों को नियमबद्ध करके राग के रूप में रूपांतरित किया जाता है। यह प्रक्रिया हर काल में चलती रही है। वर्तमान में प्रचलित राग मालवी, भटियारी, मुलतानी, सोरठ, बिहारी, माँड आदि राग मालवा, बंगाल, सिंध, सौराष्ट्र, बिहार, राजस्थान, के मूल लोक संगीत हैं। प्रसिद्ध गायक पंडित कुमार गंधर्व ने मालवा प्रांत के लोक धुनों से सहेली तोड़ी, बीहड़ भैरव, मध्सुरजा, निंदियारी, मालवती इत्यादि रागों का निर्माण कर प्रचलित किया।[14] वर्तमान में प्रचलित रागों के अवलोकनों से यह स्पष्ट होता है कि भैरवी खमाज, पीलू, काफी, गारा, झिंझोटी देश, पहाड़ी, जंगला, बरवा, कलिंगड़ा जोगिया आदि प्रसिद्ध राग लोक संगीत के धुन हैं जो विकसित होकर राग संज्ञा प्राप्त किये हैं। अत: राग का निर्माण लोक स्वर से ही होता आ रहा है।

अत: यह कहने में कोई संकोच नहीं कि लोक स्वर ही हमारे शास्त्रीय संगीत के आधारभूत तत्व हैं। शास्त्रीय संगीत लोक संगीत से ही अपना आकार और संजीवनी प्राप्त कर उफर्जावान बनती है। इस कला का पल्लवन जन-जीवन के माध्यम से निरंतर होता आया है। शास्त्रीय संगीत को आगे बढ़ जाने और लोक संगीत की ओर लौटने की अनवरत प्रक्रिया लोक संगीत की विराट् क्षमता और शक्ति का सूचक है। जब तक शास्त्रीय संगीत लोक संगीत से जुड़ा रहता है तब तक वह लोकप्रियता के शिखर को छूता रहता है और जब उससे दूर हो जाता है तो वह लोक से भी दूर चला जाता है। शास्त्रीय संगीत की कठोर नियमबद्धता के कारण जब उसकी लोकप्रियता घटने लगती है तो वह फिर लोक की ओर मुड़ कर उससे सामग्री ग्रहण कर फिर अपने को लोक के बीच स्थापित कर आगे बढ़ता रहता है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है, चलती रहती है............

संदर्भ सूचि

1. सिंह डॉ0 ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.-99
2. वही, पृ. 70 और परांजपे डॉ.शरच्चद्र श्रीध्र, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.-6
3. सिंह डॉ0 ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.-17,18
4. संगीत, वैदिक संगीत संग, जनवरी-2009, पृ.-49
5. परांजपे, डॉ शरच्चद्र श्रीध्र, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.-6
6. शर्मा डॉ रामविलास, संगीत का इतिहास और भारतीय नवजागरण की समस्याएँ, पृ.-181
7. आचार्य बृहस्पति, भरत का संगीत सिद्धांत, पृ-199
8. वही, पृ.-201,
9. शर्मा डॉ महारानी, संगीतमणि, पृ.-63
10. परांजपे, डॉ शरच्चद्र श्रीध्र, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.-9
11. मतंग, भरतकोष, पृ.-922
12. वही, पृ.-921
13. शुभंकर, भरतकोष, पृ.-922
14. कुमार गंधर्व, अनूप राग विलास, धुन उगम राग

संस्कृत साहित्य में तन्त्र साधना

तरूण कुमार

तदर्थ प्रधानाध्यापक, राजाराम इंटर कॉलेज, हरदो, फतेहपुर

संस्कृत साहित्य में तन्त्रागम- साहित्य की महत्ता सर्वोपरी मान्य है। इस साहित्य की सृद्दिट को अपौरूद्वोय माना गया है। राष्ट्र के समुज्जवल भविद्वय की भावना के साथ हीं परस्पर प्रेम, सहज उदारता, सात्विक विचार एवं विशुद्ध आचार की आज अत्यन्त आवश्यकता है, जिसे प्राप्त करने में तन्त्रागम पुरी तरह से समर्थ है। भौतिक विपदाओं से मुक्त रह कर ही कुछ उत्तम कार्य किये जा सकते हैं। मानसिक शांति, वैचारिक स्थिरता और लौकिक अपेक्षाओं में संतोद्वा रहने पर किये जाने वाले सत्प्रयास मुख्य लक्ष्य तक पहुंचाने में वस्तुतः सहायक होते हैं। तंत्र के मार्ग निर्देशन में ऐसे तथ्य निर्दिष्ट हैं जिनके अनुपालन से शांति स्थिरता एवं संतोष की प्राप्ती हो जाती है। भारतीय विधाओं का लक्ष्य सत्य, शिव और सुन्दर हीं रहा है। शिव की प्रतिष्ठा और अशिव-अकल्याण की निवृति मानव जीवन का परम लक्ष्य है। इसकी पूर्ति तन्त्र साहित्य से संभव है-

''यद्य गृहे निवसेत् तन्त्रम तत्र लक्ष्मीः स्थिरायते'' तन्त्र आध्यात्मिक दृष्टी प्रदान करते हैं, आधिदैविक ज्ञान से सम्पन्न बनाते हैं तथा आधिभौतिक संकटों से छूटने का सरलतम मार्ग बतलाते है। तन्त्रों के अनुसार की जाने वाली साधना, सिद्धि के बहुत निकट रहती है। 'तन्त्र' शब्द व्याकरण के विस्तारारर्थक 'तन्' धातु से बना है। तन् धातु से सर्वधातुम्यः ट्रन इस अनादि सूत्र से ट्रन प्रत्यय होने से तन्त्र शब्द बन जाता है। व्युत्पत्ती की दृष्टि से 'तन्यते विस्तीर्यते ज्ञानं अनेन इति तन्त्रम' अर्थात जिस क्रिया से ज्ञान का विस्तार किया जाता है वह तन्त्र है। परम कारूणिक परमात्मा ने जगत के कल्याण के लिए 'तन्त्र शास्त्र' का प्रर्वतन किया-यह सर्वशास्त्र सिद्ध है। गौतमीय तन्त्र में तन्त्रावतार का प्रयोजन बतलाते हुए कहा गया है कि-ब्रम्हा जी ने शिव से प्रार्थना पूर्वक कहा कि-हे प्रभो! आपने भोग और मोक्ष प्रदान करने हेतु तंत्र शास्त्रों का कथन किया है, जिसे जानकर देव, दानव और नर सिद्ध बन जाएगें तो वे प्रभु का स्मरण कैसे करेंगे? तब शिवजी ने मंदर पर्वत पर अनेक ऋषि मुनियों को बुलाकर उनके साथ दैत्यों को मोदित करने के लिए विविध शास्त्रों का कथन किया। सर्वप्रथम 'शैव तन्त्र' एवं 'पाशुपत तन्त्र' आदि का कथन किया और उसकी साधना से वे मुनी गण ज्ञान विज्ञान संपन्न होकर तन्त्र शास्त्रों के विभिन्न संप्रदायों का प्रर्वतन करने में सशक्त हुए। उन्हीं में चारवार्क जैमिनी आदि ने निरीश्वरवाद का भी प्रचार किया तब-

तत्रैयवाहम् महामंत्रान् संदुष्य दोषविस्तरैः।
कृतवान् तन्त्रविस्तारम् ससंदेह पदान्वितम्।।

अर्थात 'ईश्वर को नहीं मानने वाले वाद का जब प्रचार होने लगा तो ब्रम्हा जी के वचनों का स्मरण करके भगवान शिव ने तंत्र शास्त्रों को उलट पुलट करके दोषों का विस्तार कर दिया और तन्त्रों का भी इतना विस्तार कर दिया जिससे लोगों में संदेह उत्पन्न हो जाए।' यही कारण है कि तन्त्र शास्त्रों के मर्म का ज्ञान गुरूकृपा के बिना सुलभ नहीं होता। तन्त्रों में प्रत्येक विषय इतनी विविधता से बतलाया गया है कि उसे देखते ही सामान्य व्यक्ति उसे करने के लिए उतावला हो जाता है। किन्तु इसके बीच में कुछ ऐसी क्रियाओं के निर्देश गुप्त रहते हैं कि जिन पर गंभीरता से विचार करने पर कुछ भी समझ में नहीं आता।

तन्त्रों के रचना काल में ईश्वर, धर्म-दर्शन, उपासना, आर्युवेद, ज्योतिषयोग आदि विषयों का प्रवाह पर्याप्त प्रगति पर था, इसीलिए इन विषयों को हीं प्रधानता देकर सर्व साधारण के कल्याण का पथ इनमें प्रशस्त किया गया है। तन्त्र साधना में 'आभयन्तर' और

'वाह्य' दोनो हीं प्रकारों से पात्रता प्राप्त की जाती है। पहले बाहरी सोपानों को पार करने के लिए श्रद्धा, विश्वास एवं ज्ञान की अपेक्षा रहती है। जिस साधना को हम करना चाहते हैं उस पर हमारी पूर्ण 'श्रद्धा' होनी आवश्यक है। ''तन्त्र साधना के बारे में संस्कृत साहित्य में उल्लेख मिलता है कि यह मार्ग उत्तम है, शास्त्र विहित है, यह विधिवत है, इस पर प्रयास करना व्यक्ति के हित में है।'' इस प्रकार के विचारों से मन, चल-विचल नहीं होगा और किसी के बहकावे में नहीं आएगा तथा कठिनाई का सामना करने से हिचकेगा नहीं। 'विश्वास' ही फल देता है। 'विश्वास: फलदायक:' यह उक्ति प्रसिद्ध ही है। ''यह जो मैं करना चाहता हूँ, यह सच्चा मार्ग है, मेरे द्वारा किया गया प्रयास अवश्य हीं सफल होगा, पूर्व महर्षियों ने इस विद्या के बिना किसी छल अथवा स्वार्थ के इसका मार्ग प्रकाशित किया है, यह प्रभु इष्ट देव की आराधना से परिपूर्ण है तथा कल्याण का मार्ग है।' इस प्रकार के दृढ़ विश्वास हो जाने पर निर्भिकता आती है, विध्न बाधाओं से मन विचलित नहीं होता और कर्म करने में शिथिलता भी नहीं आती। तीसरी बात है 'ज्ञान' की। जिस क्रिया को करना है उसके पूर्व विषयों की जानकारी होना बहुत आवश्यक है। अज्ञानावस्था में किये जाने वाले प्रयास 'अंधेरे में हाथ फैलाने जैसा' है।

प्रारम्भ में तन्त्र विद्या को गुप्त रखने का ही निर्देश था। गुरूजन शिष्य की अनेक प्रकार से परीक्षाएं लेकर क्रमश: अपने पास रखकर ही इस विद्या का ज्ञान देते थे। शिष्य में धैर्य, साहस, शक्ति, परम्परा का ज्ञान आदि को परख कर आत्म कल्याण और लोककल्याण के लिए तन्त्र साधना के रहस्य बतलाये जाते थे। परिस्थिति और उसकी आवश्यकता को देखकर, बहुत आवश्यक होने पर हीं शिष्य गुरू की आज्ञानुसार प्रयोग करते थे। असमय में छोटी-सी बात पर उग्र हो जाने अथवा प्रतिपक्षी के सामर्थ्य का ज्ञान किये बिना उतावले में प्रयोग करना शास्त्रों में पूर्णत: निषिद्ध है। इसलिए बहुत सोच समझ कर तन्त्र के प्रयोग करने चाहिए। 'यद्यंकडे मधु विन्देत तत् कथं पर्वतं व्रर्जेत्'-यदि अपने पास में ही मधु- शहद मिल जाए तो फिर पर्वत पर चढ़कर मधुमक्खियों के छते को छेड़ना कोई आवश्यक नहीं होता। इस न्याय-वाक्य को ध्यान में रखकर ही जहां तक बने ऐसे हानिकारक और पुण्य को क्षय करने वाले प्रयोग नहीं करना चाहिए। ऐसे बाहरी पात्रता के और भी प्रकार हो सकते हैं, जिन्हे हमें अपने विवेक से पहचानना और उस पर विचार करना चाहिए।

आभ्यंतर प्रकारों से पात्रता प्राप्त करने के लिए साधना करने मे प्रवृत्त होने से पहले हमें उस धारा में करने योग्य कर्म करते रहना चाहिए। तन्त्र शास्त्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि - नित्य नैमित्तिकयो: पूर्तो काम्य कर्म विधीयते। अर्थात् नित्य कर्म और नैमित्तिक कर्मो की पूर्णता होने पर ही काम्य कर्म करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि-जो नित्य कर्म नियमित करता है, उसे नैमित्तिक कर्म करने का अधिकार मिलता है तथा जो नित्य एवं नैमित्तिक कर्म नियमित करता है उसे काम्य कर्म सम्पादन का अधिकार होता है। यह अधिकार निश्चित ही सबको सरलता से नहीं मिल जाता। इसके पीछे बहुत से और भी कारण रहते हैं जिनमें कुछ तो मुख्य हैं और कुछ गौण हैं। मुख्यत: तन्त्र-साधना करने वाले साधक को नित्य कर्म की दृष्टि से आचार और विचारों से पवित्र रहते हुए अपनी परंपरा के अनुसार पवित्रता से स्नान, संध्या, देवपूजन, स्तुतीपाठ आदि करते रहना आवश्यक है। अपनी मर्यादा में रहते हुए शास्त्रों की आज्ञा का पालन करना धर्म मार्ग की पहली सीढ़ी है। इसमें प्रात: शैय्या से उठते हीं गुरू-स्मरण, इष्ट देव- स्मरण, भूमी-वंदन, करतल-दर्शन करके भूमि पर दाहिना पैर रखना चाहिए। तत्पश्चात् दैनिक क्रिया करना चाहिए। शौचादि के समय शुद्धता हेतु हाथों को शुद्ध करने दंत मंजन आदि करना चाहिए और इष्ट मंत्र से अभिमंत्रित जल से स्नान करना चाहिए। शुद्ध धुले हुए किन्तु बिना सिले हुए, यथा संभव रेशमी वस्त्र धारण करके पूजा गृह में जाना चाहिए। प्रवेश से पूर्व द्वार के दोनों ओर तथा ऊपर स्थित देवताओं की पूजा करके प्रवेश करना, आसन्न की भूमि को पवित्र करके वहां जल से त्रिकोण बनाकर प्रणाम करना और आसन विछाकर संध्या करना तथा गायत्री जप द्धनिश्चित संख्या मेंत्र्, तत्पश्चात् तांत्रिक संध्या और इष्टमंत्र का जप करना चाहिए। हजारों वर्षो से चली आयी इन क्रियाओं में बहुत संकोच एवं विस्तार होते रहे हैं। सम्प्रदाय-विशेष के आधार पर बहुत से परिवर्तन भी होते रहे हैं। अब तो ऐसी स्थिति आ पहुंची है कि वास्तविक करणीय कर्म उपेक्षित हो गये हैं और गौण कर्मो की प्रधानता हो गयी है। इनसे बचने का एक मात्र उपाय रह गया है, और वह है 'गुरू की आज्ञा'। यह भी विचारणीय है कि परिवारों के विखराव तथा नास्तिकता के व्यापक प्रभाव से आजकल की मार्यादाएं, परंपराएं भी लुप्त होती जा रही है। जाति, गोत्र आदि भूल रहे हैं और

कर्म-साधना का प्रमुख आधार यज्ञोपवीत एवं शिखा धारण भी छोड़ रहे हैं। साधना करने वाले के लिए धोती पहनना, शिखा रखना, यज्ञोपवित धारण करना, भस्म-तिलकादि से अंग-विभूषित रखना आदि आवश्यक है।

समस्त तन्त्र की साधनाओं के मूल्य में गुरू के प्रति पूर्ण निष्ठा, भक्ति और कृतज्ञता भाव के बिना कितना हीं प्रयास करें, सफलता दूर हीं रह जाती है। गुरू का महत्व सर्वोपरी है जब भी साधना, पूजा, तप आदि आरंभ कर रहे हों, तब गुरू वंदन इस पद्य से करना चाहिए।

आनंदमानन्दकरं प्रसन्नं, ज्ञान-स्वकं निज-बोधकम्।

योगिन्द्रमीउचं भवरोगवैद्यं, श्रीमद् गुरूं नित्यमहं स्मरामि।।

प्रत्येक मंत्र जप से पूर्व 108 बार 'ओम् गुं गुरूभ्यो नमः' इस मंत्र का जप करना चाहिए। इससे गुरू, परम गुरू और परमेष्ठी गुरू प्रसन्न होते हैं और आशीर्वाद देते हैं जिससे साधना का मार्ग प्रशस्त हो पाता है।

साधना में विध्न भी बहुत आते हैं। कहा भी गया है कि-'श्रेयस्सु बहु विध्नानी' अर्थात् कल्याणमय कार्यों में बहुत विध्न आते हैं। अतः विधन-विनाशक भगवान् गणपति का स्मरण भी 108 बार अवश्य करना चाहिए। इसके 'ओम गण गणपतये नमः' यह वह मंत्र है-जिस साधक को गुरू द्धारा मंत्र की दीक्षा नही मिली हो, उसके लिए यह सरलतम सोपान है। गुरू और गणपति के स्मरण से मूल मंत्र में चेतना आ जाती है तथा कोई साधना में त्रुटि रह जाती है तो उसका परिमार्जन भी इनकी कृपा से हो जाता है। जिस कार्य की साधना करनी हो, उसके मंत्र का ग्रहण वस्तुतः गुरू द्वारा ही किया जाना उचित माना गया है। यदि उचित समय पर गुरू की प्राप्ति नहीं हो, तो भगवान शिव की पूजा करके उनके समक्ष वह मंत्र एक पान पर शहद अथवा केसर चंदन से लिखकर अर्पित करना चाहिए। तब भगवान से प्रार्थना करना चाहिए-"हे प्रभु! आप समस्त आगम-निगमों के प्रकाशक परम गुरू हैं। मैं अपने कार्य की सिद्धि के लिए इस मंत्र का जाप करना चाहता हूँ। मुझे अपना शिष्य बनाकर यह मंत्र प्रदान किजीए।" और-

*कार्पण्यदोषोपह त स्वभावों, याचे*हं त्वाम् धर्मसम्मूढ़चेताः।*

*यच्द्रेयः स्मान्निश्चितं ब्रूही तन्में शिष्यस्ते*हं शाध्रि मां त्वां प्रपन्नं।।*

यह बोलकर भगवान भोलेनाथ मंत्र दे रहे हैं इस भावना के साथ वह मंत्र लिखा हुआ पान लेकर और प्रणाम करके उसे खा जाना चाहिए। यह 'शाम्भव- दीक्षा' का लघुक्रम है। तत्पश्चात् आचमन और प्राणायाम करके एक माला उस मंत्र का जप करना चाहिए। इससे जप का अधिकार प्राप्त हो जाता है, ऐसी शास्त्राज्ञा है।

तंत्रों में विधि की प्रधानता पर बहुत बल दिया गया है। विधि की अपूर्णता, सम-विसमता, न्यूनाधिकता अथवा क्रम-विपर्यता आदि से दोष हो जाता है। कार्य सफल नहीं होते तथा शरीर और मन में विकार आने लगते हैं। अतः पूरी विधि समझकर कर्म करना चाहिए। उस काल में जिन-जिन कर्मों का निषेध किया गया है उनका भी पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए।

यह कदापी नहीं भूलना चाहिए कि-जिस विधि ग्रन्थ के आदेशानुसार फल प्राप्ति के लिए जपादि कर्म किया जा रहा है वह हमें मिल जाए किन्तु उनकी उपेक्षा अथवा परित्याग से निषिद्ध कर्म करने पर हमें उनका फल न भोगना पड़े। क्योंकि जो शास्त्र हमें अच्छे फल के प्रति उत्सुक करते हैं वे ही उनके साथ नहीं करने योग्य बातों को भी बताते हैं। तब लाभ वाला भाग मेरा और नुकसान वाला मेरा नहीं यह कभी नहीं होगा। अतः आज्ञाओं का पूरा पालन करना चाहिए।

तन्त्र विद्या अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक विद्या है। चारों वेदों में कर्म साधक मंत्रों का विस्तार है। उनमें भी 'अथर्ववेद', ऐहीक और पारलौकिक पुरूषार्थों की सिद्धि के लिए अनेक विद्या तांत्रिक कर्मों का निर्देश करता है, किन्तु इन कर्मों के निर्देश का कारण किसी का उपकार करना नहीं था अपितु 'यज्ञ-यागदी कर्मों में भूत-पिशाचादि के द्वारा होने वाले उपद्रवों से रक्षा के लिए ये कर्म होते थे। अथर्ववेद के, 1-कौशिक, 2-वैतानस, 3-नक्षत्र, 4-आंगीरस-कल्प और 5- शांतिकल्प गोपथ ब्राम्हण के अनुसार तंत्र के भी मार्ग दर्शक हैं।

दृष्टिकोण

भारतीय तंत्र विद्या का स्वतंत्र चिन्तन सिद्धर्षियों ने बड़ी सूक्ष्मता से किया है। उदाहरणार्थ, अगस्त्य महर्षि का 1. शक्तितंत्र, जिसमें 32 प्रकार की प्रकृति से प्राप्त होने वाली शक्तियों का निरूपण था। 2. अंशुबोधिनी-महर्षि भारद्वाज रचित, इसमें ग्रह तथा सूर्य किरणों के द्वारा विभिन्न शक्तियों के उत्पादन का निर्देश था। 3. सौदामिनी कला-मातंग महर्षि का यह ग्रंथ नादलहरी तथा प्रकाश लहरी, अदृश्य दर्शन आदि का वर्णन करता है। 4. वैश्वानर तंत्र नारद कृत। 5. वायु तंत्र-शाकटायन कृत। 6. दिव्यसृष्टि-दलादन ऋषि कृत। 7. धूम्र प्रकरण (नारद)। 8. लोहतंत्र (शाकतयन)। 9. यंत्र सर्वस्व (भारद्वाज)। 10. धातुवाद (बौधायन)। 11. मेघोत्पत्ति (आंगिरस)। 12. परकास प्रवेश (बालखिल्य) आदि अनेक ग्रंथ लिखे गये थे जो आज अनुपलब्ध है।

संदर्भ

1. दतात्रेय तन्त्र-योगीराग यशपाल जी
2. दतात्रेय तन्त्रम्-आचार्य पंडित शिवदत मिश्र शास्त्री
3. दतात्रेय तापिनी उपनिषद्
4. श्री गुरू चरित्र-सरस्वती गंगाधर

हिंदी साहित्य में लोक जीवन का चित्रण

राकेश कुमार तिवारी

पीएच-डी, वी.के.एस.यू., आरा

सारांश

हिन्दी साहित्य हिन्दी भाषा का रचना संसार है। हिन्दी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है।

समाज कल्याण की भावना से लिखा गया अर्थपूर्ण विचार साहित्य कहलाता है। साहित्य समाज और व्यक्ति की आत्माभिव्यक्ति है।

साहित्य हमेशा समाज के प्रति प्रेम, संस्कृति एवं इतिहास के प्रति सम्मान दर्शाये ये जरूरी नहीं है। साहित्य ने हमेशा सत्य को जिया है। समाज की बुराइयों की आलोचना की है और अच्छाइयों को सराहा है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है तो शिक्षा समाज की रीढ़। वर्तमान जीवन में आयी असमानता, आत्मकेंद्रित अकेलापन समाज, शिक्षा और साहित्य तीनो को प्रभावित कर रहे हैं।

परिचय

साहित्य और समाज का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। साहित्य का सृजन जन-जीवन के धरातल पर ही होता है। समाज की समस्त शोभा, उसकी श्रीसम्पन्नता और मान-मर्यादा साहित्य पर ही अवलम्बित है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशान्ति या निर्जीवता एवं सामाजिक सभ्यता या असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य ही है।

कवि एवं समाज एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं; अतः साहित्य समाज से भिन्न नहीं है। यदि समाज शरीर है तो साहित्य उसका मस्तिष्क। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, "प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है।"

विश्व का सबसे पुराना वाचिक साहित्य आदिवासी भाषाओं में मिलता है। इस दृष्टि से आदिवासी साहित्य सभी साहित्य का मूल स्रोत है।

सामाजिक परिवर्तन और साहित्य-

साहित्य और समाज के इस अटूट सम्बन्ध को हम विश्व-इतिहास के पृष्ठों में भी पाते हैं। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के जन्मदाता वहाँ के साहित्यकार रूसो और वाल्टेयर हैं। इटली में मैजिनी के लेखों ने देश को प्रगति की ओर अग्रसर किया। हमारे देश में प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में भारतीय ग्रामों की आँसुओं-भरी व्यथा-कथा को मार्मिक रूप में व्यक्त किया। उन्होंने किसानों पर जमींदारों द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों का चित्रण कर जमींदारी-प्रथा के उन्मूलन का जोरदार समर्थन किया।

स्वतन्त्रता के पश्चात् जमींदारी उन्मूलन और भूमि-सुधार की दृष्टि से जो प्रयत्न किए गए हैं; वे प्रेमचन्द आदि साहित्यकारों की रचनाओं में निहित प्रेरणाओं के ही परिणाम हैं।

साहित्य पर समाज का प्रभाव-

सत्य तो यह है कि साहित्य और समाज दोनों कदम-से-कदम मिलाकर चलते हैं। भारतीय साहित्य का उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि की जा सकती है। भारतीय दर्शन सुखान्तवादी है। इस दर्शन के अनुसार मृत्यु और जीवन अनन्त हैं तथा इस जन्म में बिछुड़े

प्राणी दूसरे जन्म में अवश्य मिलते हैं। यहाँ तक कि भारतीय दर्शन में ईश्वर का स्वरूप भी आनन्दमय ही दर्शाया गया है।

यहाँ के नाटक भी सुखान्त ही रहे हैं। इन्हीं सब कारणों से भारतीय साहित्य आदर्शवादी भावों से परिपूर्ण और सुखान्तवादी दृष्टिकोण पर आधारित रहा है।

यथार्थवादी साहित्य

आदर्शवाद के समानान्तर यथार्थवाद का विकास हुआ। समाज की वास्तविकता का चित्रण यथार्थवादी कहानियों में किया जाने लगा। सामाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, पूँजीपतियों के शोषण, भ्रष्टाचार, राजनीति के खोखलेपन आदि को कहानी में चित्रित किया जाने लगा।

प्रेमचन्द ने ग्रामीण व शहरी समाज की अनेक विषमताओं और ज्वलन्त समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया। उनका यथार्थवाद आदर्श की तरफ झुका हुआ था। समाज की आर्थिक व राजनीतिक विषमताओं का यथार्थ एवं प्रभावकारी चित्रण यशपाल की कहानियों में सर्वाधिक मिलता है।

हिंदी कहानियों की प्रमुख शैलियाँ

जिस प्रकार कहानी की भाषा के कई रूप हो सकते हैं, उसी प्रकार कहानी की शैली के भी कई रूप हो सकते हैं। वर्तमान आलोच्य युग में अनेक प्रकार की कहानी शैलीयाँ प्रचलित हैं-

वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, संवादात्मक शैली, नाटक शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, काव्यात्मक शैली, लोक कथात्मक शैली, स्मृतिपरक शैली, स्वप्न शैली तथा मनोविश्लेषणात्मक शैली इत्यादि।

निष्कर्ष

भारतीय साहित्य में मिथक हमेशा नये नये रूप में साहित्यकारों द्वारा प्रयुक्त किये गये हैं। आधुनिक काल तक आते-आते वह बहुआयामी मन:स्थितियो का आलंबन बन गया। नारी की महत्ता जाति-पाति अभेद, नैतिकता की रक्षा, वीरता निमित वह बिम्ब और प्रतीक के रूप में उभरा है। प्रयोगवादी विचारधारा के साहित्यकारों ने पुरानी लीक से हटकर नए मिथकों की सर्जना की जिससे पात्रों का स्वरुप ही बदल गया। हिंदी साहित्य के आदिकाल से आधुनिक कल साहित्य तक कोई भी अंश मिथकीय साहचर्य से दूर नहीं रह पाया। हृदय व बुद्धि का कोई भी आयाम ऐसा नहीं है, जहाँ मिथक कथाओं की पहुँच न हो।

अन्त में हम कह सकते हैं कि समाज और साहित्य में आत्मा और शरीर जैसा सम्बन्ध है। समाज और साहित्य एकख्रदूसरे के पूरक हैं, इन्हें एकख्रदूसरे से अलग करना सम्भव नहीं है; अत: आवश्यकता इस बात की है कि साहित्यकार सामाजिक कल्याण को ही अपना लक्ष्य बनाकर साहित्य का सृजन करते रहें।

सन्दर्भ

- आचार्य रामचन्द्र, शुक्ल (2013). हिंदी साहित्य का इतिहास. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 54.
- साहित्य और सांस्कृतिक एकतासाहित्य और सांस्कृतिक एकता (बालशौरी रेड्डी)
- साहित्यानुशीलन (गूगल पुस्तक ; लेखक - डॉ. दयाशंकर शुक्ल)
- साहित्य क्या है? - आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल'
- साहित्य, संस्कृति और भाषा अंतराष्ट्रीय मंच सृजनगाथा
- हिन्दी काव्य
- हिन्दी साहित्य प्रश्नोत्तरी (गूगल पुस्तक ; लेखिका - विभा देवसरे)
- साहित्य में मूल्यबोध - डॉ. हरेकृष्ण मेहेर

औपनिवेशिक भारत में उभरते राज्य और औद्योगिकरणः एक अध्ययन

डॉ० कल्पना कुमारी

ग्राम-अरगा (पश्चिम), पो.-अरगा, भाया-बहेड़ी, जिला-दरभंगा, बिहार

सार-संक्षेप

1980 के दशक में आर्थिक उदारीकरण की ओर एक स्पष्ट बदलाव के बाद, भारतीय अर्थव्यवस्था उल्लेखनीय रूप से बढ़ी है। संचालकों में से एक निजी औद्योगिक उद्यमों की गतिविधियों में तीन दशक का लंबा विस्तार है, जिसकी उत्पत्ति औपनिवेशिक युग से पहले की है। कुछ गतिविधियाँ उत्पादन और रोजगार के मामले में वैश्विक मानकों पर भी पहुँच गई हैं, हालाँकि कुल मिलाकर औद्योगिकीकरण का स्तर पर्याप्त नहीं था। भारत मूलतः कृषि एवं गांव-प्रधान देश है। इस वजह से यहाँ औद्योगीकरण की प्रक्रियाएं शीघ्र प्रारम्भ नहीं हुई थीं। इस देश में औद्योगीकरण वास्तव में 19वीं शताब्दी के उतरार्ध में ही प्रारम्भ हुआ। सन् 1856 के उपरांत देश में अंग्रेजी शासन-व्यवस्था स्थापित हुई और आधुनिक उद्योगों, यातायात तथा अर्थव्यवस्था का विकास होना प्रारम्भ हो गया। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे मुम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, कानपुर, मद्रास और जमशेदपुर जैसे औद्योगिक नगरों का विकास हुआ। कालान्तर में औद्योगीकरण को राष्ट्र विशेष की भौतिक उन्नति का पर्यायवाची माना जाने लगा। औद्योगीकरण के चलते अर्थ-व्यवस्था एवं सामाजिक संरचना में भारी परिवर्तन आया है। इसका प्रभाव मात्र सामाजिक जीवन तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि इसने संस्कृति के क्षेत्र को भी प्रभावित किया है। औद्योगीकरण के प्रभाव औद्योगीकरण से एक ऐसे औद्योगिक समाज की अवधारणा को बताया गया था कि जिसमें आर्थिक उत्पादन प्रचूर मात्रा में होगा और योग्यता को प्राथमिक स्थान मिलेगा तथा शारीरिक श्रम एवं बौद्धिक श्रम से उत्पन्न असमानताएं औद्योगिक विकास के साथ समाप्त हो जाऐगी, परन्तु अब यह महसूस किया जा रहा है कि अभूतपूर्व भौतिक प्रगति की शताब्दी निर्धनता एवं अभावों की वृद्धि में भी अभूतपूर्व रही है। इससे न सिर्फ सामाजिक, आर्थिक असमानताएं गहरी हुई हैं, बल्कि व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों का अनुपात भी बेरोजगार वर्ग में बढ़ रही है।

परिचय

1980 के दशक की शुरुआत में आर्थिक नीति में आर्थिक उदारीकरण की दिशा में एक स्पष्ट बदलाव के बाद, भारत की आर्थिक विकास दर 3 प्रतिशत से बढ़कर 6 प्रतिशत हो गई, जिससे एक अरब से अधिक आबादी के कल्याण मानक में सुधार हुआ। उच्च विकास दर के परिणामस्वरूप भारत का जागरण हुआ है, जिसने दुनिया भर के उद्योगपतियों का ध्यान आकर्षित किया है। उच्च विकास दर की कंपनीयों में से एक निजी औद्योगिक उद्यमों की गतिविधियों में तीन दशकों के लिए विस्तार है, जिनकी उत्पत्ति औपनिवेशिक युग से पहले की है। स्वतंत्रता के समय तक, भारत में पहले से ही विभिन्न आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र थे, जिनमें खनन, कपड़ा, लोहा और इस्पात और रसायन शामिल थे। कुछ लोग उत्पादन और रोजगार के मामले में वैश्विक मानकों पर भी पहुँच गए थे, हालाँकि कुल मिलाकर औद्योगीकरण का स्तर पर्याप्त था। सक्रिय निजी औद्योगिक उद्यम के इतिहास ने 1980 के दशक की शुरुआत से भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान उच्च विकास दर की महत्वपूर्ण नींव में से एक का गठन किया है।

एम.डी. मॉरिस का तर्क है कि औद्योगिकीकरण में भारत की सीमित प्रगति को इसके श्रम प्रचुरता और कारक बंदोबस्तों के पूंजी मिश्रण द्वारा समझा जा सकता है। ए.के. बागची, के अनुसार औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश शासन के निर्णायक ढांचे का हिस्सा था, आर्थिक नीतियों को अपनाना, औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने वाली समझ के आधार पर स्थिर औद्योगिक विकास को समझा सकता है।

औपनिवेशिक भारत में औद्योगिकीकरण

औपनिवेशिक भारत में 'आधुनिक' औद्योगिक उद्यम 19वीं शताब्दी के मध्य में विकसित होने लगे थे। 19वीं शताब्दी की शुरुआत में ईस्ट इंडिया कंपनी की एकाधिकार स्थिति की व्युत्पत्ति ने भारत में निजी आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया, जहां आधुनिक औद्योगिक उद्यमों ने ब्रिटिश और भारतीय पूंजी दोनों को वित्तपोषित किया। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में कपास मिलिंग का कारोबार लगातार बढ़ा, 19वीं सदी के अंत तक उच्च अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा हासिल हुआ। रस्सियों और अन्य उत्पादों की बढ़ती वैश्विक मांग के कारण कलकत्ता में जूट मिलों का भी तेजी से विस्तार हुआ। 19वीं सदी के अंत तक अंतर्राष्ट्रीय बाजार में एक बड़ी हिस्सेदारी पर कब्जा। इसके अलावा, शराब पीना, पेपर-मिलिंग, चमड़ा बनाना, माचिस, और चावल-मिलिंग उद्योग भी सदी के दौरान विकसित हुए, जबकि लोहे के उद्योग जैसे भारी उद्योग भी 1814 की शुरुआत में ब्रिटिश राजधानी द्वारा स्थापित किए गए थे।

आधुनिक औद्योगिक उद्यमों में प्रगति के कारण कुछ उद्योग 20वीं शताब्दी की शुरुआत तक वैश्विक मानकों तक पहुंच गए। भारत में कॉटन मिल उद्योग के पास 1930 के दशक में 9 मिलियन स्पिंडल थे, जिसने स्पिंडल की संख्या के मामले में भारत को विश्व स्तर पर पांचवें स्थान पर रखा गया था। 19वीं शताब्दी के अंत में उत्पादन के लिए खपत होने वाले कच्चे जूट की मात्रा के मामले में भारतीय जूट मिल उद्योग दुनिया में सबसे बड़ा था। 1930 में उत्पादन के मामले में भारत का लौह उद्योग दुनिया में आठवें स्थान पर था। महामंदी से ठीक पहले, भारत को विनिर्माण उत्पादों के मूल्य से मापा जाने वाले बारहवें सबसे बड़े औद्योगिक देश के रूप में स्थान दिया गया था

औपनिवेशिक भारत में औद्योगिक उत्पादन की यह तुलनात्मक रूप से स्थिर प्रगति अपने आर्थिक ढांचे में एक सामान्य परिवर्तन के साथ नहीं थी, जो कि, कुजनेट्स के अनुसार, सकल घरेलू उत्पाद/एनडीपी के खिलाफ विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी में वृद्धि का प्रतिनिधित्व करता है। कुजनेट्स के अनुसार ब्रिटेन में उद्योग का हिस्सा 1841 में 34 प्रतिशत से बढ़कर 1901 में 40 प्रतिशत हो गया। अमेरिका में, जो औद्योगिकीकरण के लिए देर से था, 1839 में शेयर 31 प्रतिशत से बढ़कर 1879 में 51 प्रतिशत हो गया। भारत की औद्योगिक वृद्धि अपने आर्थिक ढांचे में इस तरह के सामान्य परिवर्तन लाने के लिए अपर्याप्त थी, और विनिर्माण क्षेत्र (छोटे पैमाने पर और कुटीर उद्योगों को छोड़कर) के शुद्ध घरेलू उत्पाद (एनडीपी) का हिस्सा 1946 में भी मुश्किल से 7 प्रतिशत तक पहुंच गया था। भारत की धीमी प्रगति सुसंगत है एशिया, जापान में एक और प्रारंभिक औद्योगिक देश की आश्चर्यजनक प्रगति की तुलना में। अंजीर। कुल जी.डी.पी. में भारत में विनिर्माण क्षेत्र (विनिर्माण और लघु और कुटीर उद्योगों का कुल) की हिस्सेदारी 20 वीं सदी की शुरुआत में लगभग 10 प्रतिशत से बढ़कर 1960 के दशक में 20 प्रतिशत हो गई। दूसरी ओर, जापान का विनिर्माण क्षेत्र का हिस्सा, जिसमें बड़े और छोटे पैमाने के औद्योगिक विनिर्माण उद्यमों के शेयर भी शामिल हैं, 1930 के दशक की तुलना में 30 प्रतिशत तक पहुँच गए। इसकी धीमी प्रगति को देखते हुए, भारत में कारखाना रोजगार का हिस्सा भी छोटा था (अर्थात 1900 में कुल जनसंख्या का 0.4 प्रतिशत और 1941 में 1.4 प्रतिशत)। आर्थिक संरचना के धीमे परिवर्तन ने लंबे समय से चली आ रही इस समझ की नींव तैयार की कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के तहत भारत का औद्योगीकरण रुक गया।

कपास मिल उद्योग ने अपने औद्योगिकीकरण के प्रारंभिक चरण में भारत और जापान दोनों में औद्योगिक विकास का नेतृत्व किया। भारत में, पहली भाप से चलने वाली कपास मिल की स्थापना कलकत्ता के पास 1817-18 में एक अंग्रेज द्वारा की गई थी, हालांकि विदेशी पूंजी के नेतृत्व वाली यह कोशिश स्थिर वृद्धि हासिल करने में विफल रही। पहला सफल प्रयास 1850 में बॉम्बे में सी.एन. देवर, एक अमीर पारसी व्यापारी और उसके सहयोगी। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कपास मिलिंग व्यवसाय लगातार बढ़ता गया, विशेष रूप से 1870 के दशक से, 19वीं शताब्दी के अंत तक उच्च अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा प्राप्त करना। चीन को भारत के मोटे यार्न निर्यात में भारी वृद्धि को देखा जा सकता है। मोटे सूत का भारतीय निर्यात 1876 में 6 मिलियन पाउंड से बढ़कर 1878

में 18 मिलियन पाउंड, 1894 में 141 मिलियन पाउंड और 1899 में 254 मिलियन पाउंड हो गया। यह देखते हुए कि 1899 का आंकड़ा भारतीय महीन-गिनती के धागे का लगभग पांच गुना था। 20वीं शताब्दी की शुरुआत में चीनी बाजार में चमत्कारिक वृद्धि अचानक समाप्त हो गई। चीन को निर्यात 1905 में 243 मिलियन पाउंड से 1910 में 172 मिलियन पाउंड और 1913 में 87 मिलियन पाउंड से हुआ। जापानी कपास मिलों ने 1910 के दशक में भारतीय निर्यात की जगह चीन से मोटे यार्न की आपूर्ति की। जबकि पहली आधुनिक सूती मिल की स्थापना जापान में 1867 में सत्सुमा-हान के नेतृत्व में की गई थी, जो कि टोकुगावा शोगुनेट के तहत सबसे शक्तिशाली सामंती भार में से एक था, यह 1880 के दशक के बाद से ही जापानी कपास मिल उद्योगों ने संकेत देना शुरू कर दिया था। 'जापानी पूंजीवाद के पितामह' के रूप में पहचाने जाने वाले इइची शिबुसावा के नेतृत्व में, जापानी कपास मिलें 19 वीं सदी के अंत तक जापान के औद्योगिक विकास की नींव बनाने के लिए तेजी से और तेजी से बढ़ीं। ओत्सुका एट अल। (1988) इंगित करता है कि चीन और हांगकांग में जापानी यार्न का निर्यात 1895 में 15.3 मिलियन पाउंड से बढ़कर 1910 में 102.4 मिलियन एलबीएस और 1915 में 170.3 मिलियन एलबीएस हो गया। 1910 के बाद जापानी मोटे धागे का भारत में भी अपना बाजार मिला। ओत्सुका एट अल। (1988) से पता चलता है कि भारत में जापानी यार्न का निर्यात 1905 में शून्य से बढ़कर 1915 में 1.4 मिलियन पाउंड, 1920 में 13.7 मिलियन पाउंड और 1925 में 26.0 मिलियन पाउंड हो गया। भारत और जापान में कपास मिल उद्योग के विकास में गिरावट जारी रही। 1920 के दशक की शुरुआत के बाद भारत के कपास मिल उद्योग ने घरेलू बाजार तक अपनी पहुंच बनाई, जबकि जापान ने पूर्वी, दक्षिणपूर्व और दक्षिण एशिया के देशों तक अपनी पहुंच बढ़ा दी।

कियोकावा और ओत्सुका एट. अल. के अनुसार, दोनों देशों में कपास मिल उद्योगों के विकास के पैटर्न को अलग करने वाला एक प्रमुख कारक स्पिंडल अनुभाग में तकनीकी अनुकूलन और नवाचार के प्रति उनका ख्रष्टिकोण था। स्पिंडल अनुभाग, जो यार्न उत्पादन की अंतिम प्रक्रिया बनाता है, कॉटन मिल की संपूर्ण उत्पादन सुविधा का 30 प्रतिशत से अधिक भाग लेता है। इसलिए, कियोकावा लिखते हैं, कताई फ्रेम में तकनीकी प्रगति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, और यहां तक कि उनमें थोड़ा सा भी सुधार उत्पादकता में बहुत वृद्धि की ओर जाता है। भारत और जापान में कपास मिल उद्योगों में दो प्रकार के स्पिंडल, खच्चर और रिंग स्पिंडल होते थे। खच्चर स्पिंडल उच्च गुणवत्ता वाले यार्न का उत्पादन कर सकते हैं और लंबे समय तक यूके में उच्च गुणवत्ता वाले यार्न के लिए इसकी मजबूत वरीयता के कारण उपयोग किया गया था। दूसरी ओर, रिंग स्पिंडल मोटे यार्न का उत्पादन कर सकते हैं जो लंबे समय तक दोनों देशों में प्रमुख रूप से खपत थे। 1870 से पहले कपास यार्न उत्पादन के प्रारंभिक चरण में, खच्चर स्पिंडल दोनों देशों में यार्न उत्पादन पर हावी थे क्योंकि वे दोनों ब्रिटेन से स्पिंडल आयात करते थे। हालांकि, समय के साथ, दोनों एशियाई देशों में लागत दक्षता के कारण रिंग स्पिंडल ने खच्चर के स्पिंडल को बदल दिया, जहां यूके में कारक बंदोबस्ती संरचना की तुलना में पूंजी दुर्लभ और श्रम प्रचुर मात्रा में थी। ओत्सुका एट अल। निम्नानुसार रिंग स्पिंडल के लाभ को सारांशित करता है, कि कम कुशल श्रम की आवश्यकता में खच्चरों पर रिंग मशीनरी का स्पष्ट लाभ था। इसके अलावा, टूटे हुए साल को बांधने के लिए श्रमिकों को जोड़कर, छल्ले को उच्च गति पर चलाया जा सकता है। नतीजतन, किसी भी दिए गए यार्न की गिनती के लिए कम से कम 40 के दशक के छल्ले खच्चरों की तुलना में बहुत अधिक श्रम-गहन हैं।

निष्कर्ष

औपनिवेशिक भारत में आधुनिक आर्थिक विकास, आपूर्ति पक्ष पर बहुत गंभीर अवरोधन थे ... उत्पादन के अधिकांश कारक महंगे थे ... केवल कच्चे श्रम सस्ते थे और अवसर पर - जूट और कपास उद्योगों में - यह एक औद्योगिक लाभ प्रदान करता था। लेकिन सस्ते श्रम ने आमतौर पर मशीनीकरण के खिलाफ काम किया। किसी उत्पाद की मांग के विस्तार ने जरूरी नहीं कि श्रम आपूर्ति पर या अन्य लागतों के सापेक्ष श्रम लागत पर दबाव डाला। इसके विपरीत, व्यवसायी को उन तकनीकों को स्थानांतरित करने के बजाय मौजूदा संगठन का विस्तार करने के लिए प्रोत्साहित किया गया जहां पूंजी आवश्यकताएं अपेक्षाकृत अधिक थीं। और यहां तक कि जहां मैकेनाइज्ड उद्योग बड़े हुए, उन्होंने पश्चिम में प्रति यूनिट पूंजी के मुकाबले अधिक सस्ते श्रम का इस्तेमाल किया। यह सब रिश्तेदार कारक मूल्य संबंधों के लिए एक तर्कसंगत प्रतिक्रिया थी लेकिन इसने कारखाना संगठन (मॉरिस 1983) के विस्तार को धीमा कर दिया।

संदर्भ सूची

1. बागची, ए. : भारत में निजी निवेश, 1900-1939, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1972, पृष्ठ 116
2. गुप्ता, बी. : औपनिवेशिक भारत में आधुनिक उद्योग का उदय, ओरियेंट लौंगमैन, मद्रास, 2016, पृष्ठ 88
3. एल. चौधरी, बी. गुप्ता, टी. रॉय और ए. स्वामी: उपनिवेशवादी भारत का एक नया इतिहास, मैकमिलन, कलकत्ता, 2001, पृष्ठ 117. 19
4. Roy, T. : The economic history of India 1857–1947 (2nd ed.), Oxford University Press, New Delhi, 2006
5. Sivasubramonian, S. : The national income of India in the twentieth century, Oxford University Press, New Delhi 2000

आजादी बाद दलितोद्धार के लिए किये कार्यों का विश्लेषण

डॉ० शैलेन्द्र कुमार सिंह

जुलाई, 1949 में हरिजन उत्थान के लिए पंचवर्षीय योजना तैयार करने के उद्देश्य से बिहार सरकार ने एक हरिजन जाँच समिति का गठन किया था। इस समिति के अध्यक्ष थे ए. वी. ठक्कर और इसके सदस्य थे – अर्थशास्त्र के पूर्व प्रोफेसर और पब्लिक इंस्ट्रक्शन के निदेशक गोरखनाथ सिन्हा, पुराने पटना विश्वविद्यालय के कुलपति सारंगधर सिंह, प्रो. बलदेव नारायण, बिहार हरिजन सेवक संघ के एन. एन. सिन्हा, महावीर दास और विधायकगण चंद्रिका राम, जमुना प्रसाद सिन्हा, भागवत प्रसाद और जयदेव प्रसाद। समिति ने नवंबर, 1952 में अपनी रिपोर्ट सौंपी थी।[1]

समिति ने अपनी जाँच-पड़ताल के क्रम में पटना, मुजफ्फरपुर, आरा, बेतिया, भागलपुर, पुरुलिया, रांची, दरभंगा, छपरा और डाल्टनगंज का दौरा किया। वे सुदूर गाँवों में गए। एक प्रश्नावली की 5000 प्रतियाँ वितरित की, हालाँकि मात्र 85 लोगों ने उनका जवाब देना मुनासिब समझा। समिति ने हरिजनों की वास्तविक जरूरतों और उनको पूरा करने के उपायों पर विचार करते हुए अपनी अनुशंसाओं को आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक और राजनीतिक श्रेणियों में वर्गीकृत किया। समिति की रिपोर्ट के कुछ महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार थे**:**

(1) हरिजनों की आर्थिक दुर्दशा में कोई खास फर्क नहीं आया था। गाँवों में अधिकांश हरिजन कमिया थे। उनसे बेगार श्रम लिया जाता था। 1920 के बिहार एंड उड़ीसा कमियौती एग्रीमेंट एक्ट से उन्हें कोई राहत नहीं मिली थी। वे कर्ज में डूबे थे और सूद की दर सालाना 20 से 75 फीसदी तक थी। समिति ने कमियौती एक्ट के बारे में लोगों की जागरूक करने और बेगार तथा कमियौती को दंडनीय अपराध घोषित करने की सिफारिश की थी।

(2) समिति ने पाया कि हरिजनों के पास प्राय: अपना घर नहीं था। गाँवों में वे अलग-अलग टोलों में रहते थे, जहाँ मामूली सुविधाएँ भी नहीं थीं। शहरों में भी वे काफी गंदी बस्तियों में बसे थे, जहाँ मामूली सुविधाएँ भी नहीं थीं। शहरों में भी वे काफी गंदी बस्तियों में बसे थे और मैला ढोने से लेकर कपड़े साफ करने जैसे कामों में लगे थे। समिति ने गाँवों में परती जमीन हरिजनों को बंदोबस्त करने, हर साल उनके लिए लगभग 200 घर बनवाने और इन घरों में सस्ते दर पर बिजली उपलब्ध कराने का सुझाव दिया था। साथ ही, दो सौ परिवारों को एक साझा कुटीर उद्योग के साथ सामुदायिक रूप से बसाने का भी प्रस्ताव था। नगरपालिका के भंगियों के लिए समिति ने समान काम के लिए पुरुष और महिलाओं को समान वेतन देने, स्थायी रोजगार की व्यवस्था करने, साप्ताहिक पगार देने और मान्यता प्राप्त एजेंसियों से नकद ऋण देने का सुझाव रखा था।

(3) शिक्षा के क्षेत्र में स्थिति यह थी कि 1951 में मैट्रिक की परीक्षा देने वाले कुल 37,721 छात्रों में हरिजन छात्रों की संख्या मात्र 392 थी। समिति ने मुफ्त ट्यूशन, आम और तकनीकी संस्थानों में भर्ती, स्कूल तथा कॉलेज लाइब्रेरी की सुविधा, पुस्तक अनुदान, छात्रवृत्ति तथा छात्रावासों के प्रबंध का सुझाव रखा था।

(4) समिति ने क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट कमिटी की सिफारिशों का भी समर्थन किया था। हालाँकि रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक यह एक्ट रद्द किया जा चुका था।

(5) समिति ने पाया कि स्थानीय निकायों और अन्य प्रतिनिधि संस्थाओं में दलितों का प्रतिनिधित्व नाम मात्र ही था। यही हाल सरकारी नौकरियों में भी था। समिति की नजर में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण इस सिलसिले में नीतियों का कार्यान्वयन नहीं हो पाया था। निर्देशों का पालन करने के बजाए उनका उल्लंघन ज्यादा हुआ था। समिति ने सिफारिश

की थी कि सरकारी सेवाओं में जब तक हरिजनों की संख्या प्रदेश में उनकी आबादी के अनुपात के बराबर नहीं हो जाती, तब तक तमाम पदों पर उन्हें बीस प्रतिशत आरक्षण दिया जाए।

सिर्फ विधान सभा और संसद में उनका प्रतिनिधित्व (पूना समझौते के कारण) ठीक-ठाक था। (भारतीय संविधान के तहत बिहार विधानसभा में उनके लिए 1952 में 46 सीटें आरक्षित थीं। इन 46 हरिजन विधायकों में कांग्रेस के 38, सोशलिस्ट पार्टी के 3, झारखंड पार्टी के 2, और अन्य 3 विधायक थे।)

प्रसंगवश, विधान सभा में उन दिनों दलितों का प्रतिनिधित्व पिछड़ी जातियों की तुलना में काफी ज्यादा था। 1946 में जब (भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत) दलितों के लिए 15 सीटें आरक्षित थीं, तब करीब 42 लाख आबादी वाले यादव समुदाय के मात्र 2 विधायक थे और कुर्मी तथा कोईरी समुदाय के 7।[2] (कायस्थ विधायक थे 20, भूमिहार ब्राह्मण 16 और राजपूत थे 18)।

हरिजन उत्थान के नाम पर किए जाने वाले खर्च की बावत विधानसभा में (मार्च, 1949) काफी गर्मागर्म चर्चा हुई थी। कटौती प्रस्ताव के जरिए मामला उठाते हुए मुहम्मद अब्दुल गनी ने यह तथ्य पेश किया कि अनुसूचित जाति के मुतल्लिक एस्टेब्लिशमेंट पर/नौकराने पर 2,07,573 रुपये खर्च किए जाते हैं, जबकि अनुसूचित जातियों पर मात्र 68,713 रुपए![3] इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए राम गुलाम चौधरी ने कहा कि 16 जिलों के लिए चार प्रमंडलीय कल्याण अधिकारियों पर करीब 59,360 रु. खर्च हुए। 'अगर उसे हरिजन लड़कों की शिक्षा पर खर्च किया जाता तो कहीं ज्यादा अच्छा होता। इस प्रांत में हरिजनों की संख्या 43,40,369 है। उसमें करीब दस लाख लड़कों को शिक्षा दिलानी है। पंजाब ने हरिजनों के लिए 20 लाख रुपया दिया है और भूमिहीन हरिजनों को 2-3 एकड़ जमीन दिया गया है। मद्रास ने भी हरिजनों के उत्थान के लिए करीब-करीब 20 लाख रूपया दिया है। बिहार सरकार को भी इस मद में कम-से-कम 20 लाख रुपया देना चाहिए।' उन्होंने आगे कहा कि इस मद में जो रुपया खर्च होता है, उसका बहुत बड़ा हिस्सा केंद्र सरकार देती है। '1947-48 में 80,000 रुपए हरिजन छात्रवृत्ति के वास्ते केन्द्र सरकार ने दिए थे। हमारे प्रांत से बहुत कम रुपए मिले हैं। पटना में मेहतर, मुसहर वगैरह जातियों से 950 दरख्वास्तें आई थीं, जिनमें केवल 20 लड़कों को छात्रवृत्ति दी गई। 47-48 में इस मद में जितने रुपए रखे गये थे, सन् 49 में कम कर दिए गए हैं। लड़कों के रहने के मकान की तरफ सरकार का उतना ध्यान नहीं है जितना ऑफिस का खर्च बढ़ाने की तरफ। सारे प्रांत में सिर्फ 100 लड़कों को छात्रवृत्ति मिली है। नतीजन बहुत से लड़के पढ़ाई छोड़कर चले गए। एक हरिजन जो बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का विशारद है, जिसका नाम महंगीराम डोम है, सरकार के कल्याण विभाग के लिए उम्मीदवार था, लेकिन उसको बहाल नहीं किया गया। मुजफ्फरपुर कॉलेज के एक इंटर फेल उम्मीदवार की बहाली की गई। क्या विशारद पास हरिजन से इंटर फेल उच्च वर्ग का हिंदू अच्छा होता है ?' इस बहस में शक्ति कुमार ने भी हिस्सा लिया और इस बात पर क्षोभ व्यक्त किया कि पिछले वर्ष की तुलना में उस साल (1949 में) बहुत कम लड़कों को छात्रवृत्ति दी गई।

कल्याण विभाग में (जिस विभाग का उद्देश्य ही हरिजन-आदिवासी उत्थान था) हरिजनों की नियुक्ति का मामला इसी समय उठा था। इस विभाग में प्रमंडलीय हरिजन कल्याण अधिकारी ती थे (पटना, तिरहुत और भागलपुर में)। इन उच्च पदों पर दो ब्राह्मण और एक कायस्थ थे। जिला कल्याण पदाधिकारियों के पदों पर (जिसके लिए योग्यता मैट्रिकुलेट और हरिजन-सेवा की प्रवृत्ति थी) कई हरिजनों की नियुक्ति की गई थी–18 जिला कल्याण पदाधिकारियों में 10 हरिजन थे (पाँच कायस्थ और एक-एक ब्राह्मण, राजपूत और भूमिहार थे। छः के छः जिला आदिवासी कल्याण पदाधिकारी कायस्थ थे)।[4] लेकिन दिलचस्प मामला तो निम्न पदों-किरानियों तथा चपरासियों में की गई बहाली का था। 1948 से 1949 के अप्रैल तक कुल 16 नियुक्तियाँ की गई। लेकिन इनमें सिर्फ एक हरिजन चपरासी पद पर बहाल हुआ। चपरासी के पद पर एक ब्राह्मण की भी बहाली हुई थी।[5] इसको लेकर भी विधान सभा में काफी बहस हुई जिसमें चेतू राम, सुंदर पासी, भागवत प्रसाद, सरदार हरिहर सिंह, शक्ति कुमार, जगन्नाथ सिंह आदि ने भाग लिया था। सरकार का कहना था कि योग्य हरिजन नहीं मिले। जगलाल चौधरी ने स्पष्टीकरण दिया, 'हाँ, योग्य हरिजन कल्याण विभाग और सचिवालय के अन्य विभागों में लिए जा सकते हैं। एक हरिजन की बहाली भी हुई है। इसके लिए उचित आदेश तो पहले से ही दिए जा चुके हैं। यदि अफसरान उन आदेशों के पालन में ढीले पाए जाएँगे तो फिर से चेतावनी दी जाएगी अन्यथा विशेष आदेश की आवश्यकता नहीं है।' यह था हरिजन कल्याण विभाग का हाल।

पुलिस विभाग में हरिजनों की बहाली की बावत जो बवाल हुआ था, उसकी चर्चा हम कर चुके हैं। 1954 तक बिहार के पुलिस विभाग में मात्र 5 हरिजन जमादार थे जिनमें से एक को छोड़कर सभी आजादी के पहले नियुक्त हुए थे (एक ही नियुक्ति 1950 में हुई थी)। आबकारी विभाग में एक भी सुपरिटेंडेंट या इंस्पेक्टर हरिजन नहीं था। उस विभाग में कुल 335 दारोगाओं में 19 और 1,235 सिपाहियों में 56 हरिजन थे।[6]

बहरहाल, आजादी के तुरंत बाद, 7 फरवरी, 1948 को ही बिहार सरकार ने प्रदेश सरकार के अधीन पदों और सेवाओं में हरिजनों के लिए आरक्षण का आदेश जारी कर दिया था। बाद में 31 जुलाई, 1951 को नियुक्ति विभाग की ओर से नए निर्देश जारी किए गए। 1953 में इस नीति की समीक्षा करते हुए सरकार ने प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के पदों में दलितों के लिए साढ़े बारह फीसदी आरक्षण लागू किया (1951 की जनगणना में प्रदेश की कुल आबादी में दलित जातियों का यही अनुपात था)। उन चतुर्थ वर्गीय सेवाओं और पदों में जिनमें राज्य की ओर से सीधी भर्ती की जाती थी, दलितों के लिए पच्चीस फीसदी सीटों का आरक्षण किया गया था। प्रमंडलों, जिलों और अंचलों में जहाँ स्थानीय अधिकारियों द्वारा बहाली की जाती थी, वहाँ के लिए भी एक फार्मूला बनाया गया जिसकी मूल बात आबादी के अनुपात में दलितों का आरक्षण थी। विधान सभा में विधायकगण उपर्युक्त आदेशों और नियमों की रोशनी में ही सरकार द्वारा की गई नियुक्तियों पर सवाल उठा रहे थे।

यह थी आजादी के आसपास हरिजनों की स्थिति की एक झाँकी।

बिहार हरिजन बिल, 1949

1920 और 1930 के दशक में चले अस्पृश्यता-निवारण आंदोलन की स्वाभाविक परिणति के रूप में आजाद भारत की बिहार सभा में फरवरी, 1949 में जगलाल चौधरी ने बिहार हरिजन (रिमूलवल ऑफ सिविल डिजेबिलिटीज) बिल, 1949 में पेश किया। इस बिल के तहत अस्पश्यृता को दंडनीय अपराध घोषित करते हुए, उसके लिए छः महीने की सजा और पाँच सौ रुपये के जुर्माने का प्रावधान था। बिल पर काफी जोरदार बहस हुई जिसमें राम बसावन राम, प्रभुनाथ सिंह, लतीफुर्रहमान, ललित मोहन सिंह, कालिका प्रसाद सिंह, चेतू राम, यमुना राम, शक्ति कुमार, राम गुलाम चौधरी, जीतू राम, लंबोदर मुखर्जी, आदि विधायकों ने हिस्सा लिया। इसी चर्चा के बहाने बिहार में हरिजनों की स्थिति और सवर्ण समाज के रवैये पर अच्छी-खासी बहस भी हो गई। प्रस्ताव पेश करते हुए जगलाल चौधरी ने इस बहस का आगाज किया, 'इस बिल का मकसद है कि हरिजनों के खिलाफ कुछ चलन... जैसे कुओं से पानी न निकालने देना, मंदिरों में न जाने देना, औरों के सामने सवारी पर न बैठने देना, या सवारी वालों द्वारा उन्हें सवारी पर बैठाने से इनकार कर देना, होटलों में भोजन न करने देना, स्कूलों में और लड़कों के साथ न बैठने देना, इत्यादि...दूर किया जाए...आज तीस वर्षों से इंडियन नेशनल कांग्रेस तथा स्वर्गीय महात्मा गांधी के अथक परिश्रम के बाद और महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद से अभी तक भी ये रिवाज अधिकांश लोगों में प्रचलित हैं...यहाँ तक कि कहीं-कहीं तो ऐसा हुआ कि कोई हरिजन अपने दरवाजे पर खाट पर बैठा है और सामने से कोई उच्च वर्ग के आदमी जाते हैं तो उस हरिजन को खाट से उठ खड़ा होने के लिए बाध्य करते हैं...इन्हीं बाधाओं को दूर करने के लिए यह कानून आपके सामने लाया गया है...' इस बिल पर हुई बहस का एक संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत करना यहाँ समीचीन प्रतीत होता है:

बसावन राम -........ हरिजन अभी तक होस्टलों या धर्मशालाओं में या सभा सोसायटियों में अच्छी तहर खा-पी नहीं सकते हैं। उनके लिए देहातों में हिंदुओं के कुओं पर पानी भरने की सुविधा नहीं है चाहे बेचारे हरिजन उन लोगों के बैल को खिलाने के लिए उनके कुओं से पानी भर लेवें, और कामों के लिए पानी भर लेवें, मगर वे अपने पीने का पानी नहीं भर सकतें... धर्मशालाओं में जाइए, मंदिरों में जाइए और चुपके से वहाँ बैठ जाइए, शिवजी की परसादी उड़ेल दीजिए, या सबकुछ कर आइए, मगर वहाँ के अधिकारियों को पता न चले। यदि किसी तरह उन्हें मालूम हो गया तो खैर नहीं हैं, लाठियों की बौछार होने लगती है... होस्टलों को ही ले लीजिए, जहाँ लड़के खाते-पीते हैं, वहाँ हरिजन लड़के अपने ही हाथ से थाली माँजते हैं और बाबाजी के पास जाकर थाली रख देते हैं और बाबाजी उन्हें ऊपर से ही थाली में खान डाल देते हैं... हम लोग भी हिंदू हैं। हमलोगों की इच्छा रहते हुए भी हम बरियाती में पालकी का इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं। यह हाल ही की बात है कि लोग लाठी लेकर हरिजन को मारने के लिए तैयार हो गए थे, जो पालकी पर चढ़े हुए थे... यदि एक हरिजन को आराम करना पड़े तो वह खटिया पर नहीं सो सकता है, वे खड़ाऊँ नहीं पहन सकते हैं। यदि अंधियाले में साँप भी काट दे तो भी जमीन पर ही सोना पड़ता है...नौकरी के विषय में भी उन्हें काफी बाधा पहुँचती है। वे सिर्फ स्वीपर या मेहतर की जगह पर काम कर सकते हैं। चपरासी का काम हरिजनों को नहीं मिलता है, क्योंकि उससे छुआ जाने का डर बना रहता है...

ललित मोहन सिंह-......अपराध को संज्ञेय बना देने से उनको कचहरी नहीं जाना पड़ेगा और थाने के अफसर अगर संज्ञान ले लें तो उनका बहुत उपकार होगा, कानून द्वारा इसका प्रबंध होना चाहिए।....

चेतू राम-......जो देहातों में रहने वाले हैं उनका हृदय साफ नहीं हुआ है। मैं अपने थाने की बात कहता हूँ। हमारे थाने में जो कांग्रेस कमिटी के सभापति और सेक्रेटरी हैं, वे आज तक हरिजनों को छूते नहीं, न साथ खाते हैं। उनका नाम गोविंद घोष है। (छि: छि:) ..... वहाँ हरिजनों के टोले में पानी पीने के लिए कुआँ नहीं है...रोजना 3-4 आने का पानी कुएं से खरीदना पड़ता है। इस बावत थाना और जिला कांग्रेस कमिटी के सदस्यों से और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन इत्यादि से कहा कि उनके अलग कुआँ बनवा दिया जाए मगर आज तक न कुआँ बना और न उनकी कठिनाई लिए दूर हुई.....

यमुना राम-...... जिस राज में अगर अछूत के मुँह से एक छोटा शब्द निकला कि जीभ काट ली गई, अगर कोई आसन पर बैठा कि उसका पैर काट लिया गया, (मैं) यह साफ तौर पर कह देना चाहता हूँ कि अभी भी इस मनोवृत्ति के कुछ थोड़े से लोग हमारे बिहार प्रांत में वर्तमान हैं जो इस प्रकार के राज का स्वप्न देखा करते हैं। हमारी कांग्रेस के जरिए तथा हमारे पूज्य स्वर्गीय महात्माजी के जरिए 1920 और 1949 में बहुत अंतर हो गया है, परंतु अभी भी उपरोक्त मनोवृत्ति के लोगों की धारणा बदली नहीं है।...

शक्ति कुमार-.....मुझे इस बिल से उतनी खुशी नहीं है जितनी होनी चाहिए.... माननीय चौधरी जी यह समझते होंगे कि इस बिल के द्वारा हरिजनों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, वे खत्म हो जाएँगे। लेकिन जब तक हिंदू समाज और सभ्य समाज के लोग अपने दिल का दरवाजा नहीं खोलेंगे तब तक यह दूर नहीं हो सकता है। कानून के जरिए आप मंदिरों को भले खोल दें, लेकिन हरिजनों की उन्नति नहीं हो सकती जब तक वहाँ का सभ्य समाज जिनके हाथों में सत्ता है, वह अपने दिल का दरवाजा नहीं खोलेगा .. .अभी हमारे वर्ग के एक मेंबर ने पाँच सौ रुपए तथा छ: महीने की सजा है, उसके बारे में बयान किया है.... मैं सरकार को यह बतला देना चाहता हूँ कि ऐसा करके आप हमें लड़ाना चाहते हैं। तो जो कुछ भी टूटी-फूटी थाली हमारे पास है, उसे भी कानून के जरिए बेचवा दीजिए.....यही होगा कि हमें मंदिर में जाने या पानी पीने से कोई रोकेगा तो आप कहेंगे कि गवाह ठीक करो, वकील रखो, बैरिस्ट रखो। जिनके पास पैसे हैं, सबडिविजनल अफसर से लेकर हाईकोर्ट तक लड़ेंगे। क्या आप समझते हैं कि हमारे अंदर हाईकोर्ट तक लड़ने की शक्ति है ?.... (सजा के) मुतल्लिक मैं सरकार से यह कह देना चाहता हूँ कि अगर वह गुंजाइश समझे तो इसमें समरी ट्राइल करे....इसमें अपनी वकील या मोख्तार नहीं रखना पड़ेगा और जल्द से जल्द, 24 घंटे के अंदर सजा हो जाएगी। इस ट्रायल में हरिजनों की ओर से वकील, मोख्तार या गवाह नहीं रखना पड़ेगा, बल्कि मैं कहूँगा कि सरकार को खुद चाहिए कि वकील, बैरिस्टर या जो भी मुनासिब समझे, स्टेट की तरफ से रखे ....जहाँ तक हम समझते हैं, हमारी जो उन्नति हुई है, वह किसी कानून के जरिए नहीं, किसी सरकारी आज्ञा के जरिए नहीं, बल्कि महात्मा गांधी के हृदय के भाव, त्याग और तपस्या से हुई है। हिंदू समाज में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है, उनकी संख्या बहुत अधिक है, अगर हम कहें कि सैकड़े 75 से कम ऐसे लोगों की संख्या नहीं है तो गलत नहीं होगा... (गांधीजी की भूमिका का वर्णन)....समरी ट्राइल हो... ऐसा करने से न ढाई रूपए के स्टांप की जरूरत रहेगी... न वकील, न गवाह की ही जरूरत पड़ेगी.... अगर दारोगाजी को जाँच करने के लिए मिले तो वे हमारे भाइयों को ही कहेंगे कि इन्हीं की बदमाशी है और इन्हीं लोगों ने रेकार-तोकार कहा होगा और उल्टे 211 का मामला चलावेंगे। अगर 211 नहीं चलावेंगे तो फाइनल रिपोर्ट ही नहीं देंगे और कहेंगे कि इसके लिए कोई गवाही नहीं मिलती। गवाही की हालत तो आप लोगा जानते हैं, जिधर पाँच रूपया मिला उधर ही गवाह हो जाते हैं। इसीलिए जाँच करने की बात दारोगा के हाथ में नहीं रहनी चाहिए।. ...

लंबोदर मुखर्जी-....मैं यह जानता हूं कि जब 1929 में मैंने मंदिर प्रवेश सत्याग्रह किया - सारे सूबे में राजमहल का मंदिर प्रवेश सत्याग्रह सबसे बड़ा था-उस वक्त कानून के जरिए कोई जबर्दस्त पावर नहीं रहने की वजह से काम आसानी से नहीं ले सका।.. .(मामले को संज्ञेय बनाने और समरी ट्रायल का समर्थन)...

शक्ति कुमार-.....मैं एक चीज और कह देना चाहता हूँ। अगर इस बिल को प्राइम मिनिस्टर साहब या पंडित विनोदानंद झा लाए होते तो ज्यादा सुशोभित होता बनिस्पत के एक हरिजन मिनिस्टर के हाथ से। लेकिन यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि जितनी बातें हरिजनों के बारे में होती हैं, उनको हरिजन मिनिस्टर पेश करते हैं। दूसरे लोग उनके लिए जिम्मेवारी नहीं लेना चाहते...[7]

विधेयक पर विधानसभा में हुई इस दिलचस्प बहस की प्रस्तुति के बाद किसी टिप्पणी की जरूरत नहीं रह जाती। यह बिल शीघ्र ही अधिनियम बन गया। बाद में इस अधिनियम को और सख्त बनाते हुए 'दि बिहार हरिजन (रिमूवल ऑफ डिजेबिलिटीज) एमेंडमेंट एक्ट, 1951' पारित किया गया।

इस संशोधित अधिनियम के पारित होने के करीब दो साल बाद इसकी धज्जियाँ उड़ाते हुए संत विनोबा और उनके दल पर बैद्यनाथधाम (देवघर) मंदिर के सामने हमला हुआ–महात्मा गांधी पर हुए हमले के करीब 19 साल बाद।

दलित उत्थान की योजना

स्वतंत्रता के बाद, सरकारी और गैर-सरकारी दोनों स्तरों पर दलित वर्गों के उत्थान के लिए दीर्घकालिक तथा फौरी योजनाओं पर भी काफी चर्चा चली। अनेक कार्यक्रमों और योजनाओं के प्रारूपों पर बहस-मुबाहसे के बीच सर्वानुमति के कई मुद्दे उभरे और उन्हें कानून तथा आधिकारिक कार्यक्रम का हिस्सा भी बनाया गया। ऊपर के विवरणों को देखने से भी हम दलित उत्थान के ऐसे कार्यक्रमों का अंदाजा लगा सकते हैं। यहाँ हम उन सभी कार्यक्रमों और योजनाओं की समीक्षा तो नहीं करेंगे, लेकिन एक योजना की चर्चा अवश्य करना चाहेंगे। 1951 में भारतीय दलित वर्ग संघ[8] के महासचिव और बिहार के सांसद चंद्रिका राम ने हरिजनों के लिए एक सामग्रिक योजना तैयार की थी जिसमें करीब-करीब सभी पहलुओं – सामाजिक मुक्ति, शैक्षणिक सुविधाएँ, सार्वजनिक सेवाओं में नौकरी, नशाबंदी, जाँच आयोग की स्थापना, सामाजिक तथा धार्मिक अयोग्यताओं की समाप्ति, आर्थिक न्याय, सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रशासनिक और वित्तीय उपायों को समेटने की कोशिश की गई थी। इस योजना में संविधान के प्रावधानों, राज्य द्वारा पारित कानूनों तथा विभिन्न समितियों तथा आयोगों के सुझावों को भी ध्यान में रखा गया था।[9] इसकी आर्थिक योजना के कुछ प्रमुख बिंदु इस प्रकार थे:

1. तमाम जमीन का राष्ट्रीयकरण और ऐसे लोगों के साथ जमीन की बंदोबस्ती जिनका कोई धार्मिक तथा सामाजिक पूर्वाग्रह न हो और जो जमीन जोतने की इच्छा रखते हों। जब तक ऐसा नहीं हो पाता, तब तक –
   (क) कृषि योग्य तथा कृषि योग्य किंतु परती पड़ी सारी जमीन की सिर्फ अनुसूचित जाति के सदस्यों के साथ बंदोबस्ती; और
   (ख) 1948 के न्यूनतम मजदूरी कानून के प्रावधानों के अनुरूप कृषि के क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी का शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वयन।
2. एक बंदोबस्ती आयोग का गठन। यह आयोग विभिन्न राज्यों में खेती न की जानेवाली सारी जमीन अपने हाथ में ले लेगा या खरीद लेगा और फिर राज्यों में अनुसूचित जातियों और भूमिहीन लोगों के बीच उसका वितरण करेगा तथा खेती के उद्देश्य से उसका इस्तेमाल करेगा।
3. सभी आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीयकरण।
4. शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कोऑपरेटिव आधार पर लघु उद्योगों, खासकर कुटीर उद्योगों की राज्य स्थापना करे और उन्हें सहायता प्रदान करे।
5. संबंधित राज्य सरकारों की मदद से अनुसूचित जातियों के सभी वंशानुगत उद्योगों को (जैसे जूता, बांस, बेंत उद्योग, आदि) कोऑपरेटिव आधार पर संगठित किया जाए और इस काम के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किए जाएँ।
6. अपने परंपरागत पेशों वाले लघु उद्योगों में लगे सभी अनुसूचित जाति के लोगों को इन उद्योगों को समुचित तथा सक्षम ढंग से चलाने के लिए सहायता दी जाए; उन्हें देश के विभिन्न राज्यों द्वारा पारित विभिन्न राजकीय सहायता कार्यक्रमों के तहत सहायता अथवा ऋण प्रदान किया जाएँ।
7. हमारे संविधान की धारा 23 का पालन करते हुए किसी भी रूप में बंधुआ तथा बेगार श्रम को संज्ञेय अपराध माना जाए।
8. सभी राज्य सरकार कानून बनाकर, बिहार गवर्नमेंट होमस्टीड एक्ट की तर्ज पर अनुसूचित जाति के लोगों को ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में आवास की सुविधा प्रदान करे।
9. जहां तक संभव हो सके, अत्यंत गंदगी की स्थितियों में रहनेवालों को अलग कॉलोनियों अथवा हरिजन बस्तियों में बसाया जाए ताकि उन्हें स्वच्छ हवा और स्वस्थ वातावरण मिल सके।
10. इन वर्गों को लघु ऋण प्रदान करने के लिए हाउसिंग कोऑपरेटिव सोसाइटी संगठित की जानी चाहिए।
11. उन्हें सहायक रोजगार प्रदान करने के लिए सूअर-पालन केन्द्र, मुर्गी-पालन केन्द्र, कृषि उद्योग, वन आधारित उद्योग, लकड़ी उद्योग, आदि शुरू किया जाना चाहिए।

12. चमड़ा-उद्योग में रोजगार के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जाने चाहिए:
    (क) इन मजदूरों की मजदूरी 1948 के न्यूनतम मजदूरी कानून के प्रावधानों के आधार पर तय की जानी चाहिए;
    (ख) लेदर कोऑपरेटिव सोसाइटी गठित की जानी चाहिए और उसे राजकीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए;
    (ग) ग्रामीण और शहरी इलाकों में चर्मशोधन की सुविधा प्रदान करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए; और
    (घ) प्रत्येक गाँव में अथवा कुछ गाँवों के समूह में, मृत जानवरों का चमड़ा उतारने के लिए कुछ जमीन मुहैय्या की जानी चाहिए।
13. स्थानीय निकायों के कामगारों के लिए निम्नलिखित कदम उठाने चाहिए:
    (क) इनकी मजदूरी 1948 के न्यूनतम मजदूरी कानून के प्रावधानों के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिए;
    (ख) उनकी सेवा नियमित की जानी चाहिए; उन्हें मातृत्व अवकाश, भविष्य निधि कोष और साल में कम-से-कम 15 दिनों के सवैतनिक अवकाश की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए;
    (ग) उन्हें आवास, रोशनी तथा पीने के पानी की सुविधा उपलब्ध कराई जानी चाहिए; और
    (घ) उन्हें कर्ज से मुक्ति दिलाने के लिए कोऑपरेटिव सोसाइटी शुरू की जानी चाहिए (उन्हें कहीं-कहीं महाजनों को सौ फीसदी से भी ज्यादा ब्याज देना पड़ता है)।
14. कर्ज के कारण वंशानुगत रूप से बंधुआ बन गए। अनुसूचित जाति के लोगों को राहत देने और उनकी कर्ज माफी के लिए ग्रामीण इलाकों में कदम उठाना चाहिए।
15. केन्द्र सरकार की ओर से तमाम राज्य सरकारों को यह निर्देश जारी करना चाहिए कि वे अपने-अपने अंचलों की स्थितियों के अनुरूप अनुसूचित जातियों के सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान के लिए एक पंचवर्षीय योजना तैयार करें।

संदर्भ:

1. दि इंडियन नेशन; 2 दिसंबर, 1952।
2. विधान सभा वाद विवाद; 3 फरवरी, 1947, पृ. 205। तजामुल हुसैन के प्रश्न के जवाब में प्रधानमंत्री श्रीकृष्ण सिंह का वक्तव्य। 11 अप्रैल, 1947 को राय साहब जयदेव प्रसाद के प्रश्न के जवाब में अनुग्रह नारायण सिंह ने बताया कि कुल नौ मंत्रियों के 13 स्टेनोग्राफर्स में 9 कायस्थ थे और 4 मुस्लिम।
3. वही; 17 मार्च, 1949।
4. विधान सभा वाद विवाद; 26 अप्रैल, 1949। महादेव प्रसाद के प्रश्न के जवाब में कृष्णबल्लभ सहाय।
5. वही; 5 दिसंबर, 1949। चेतू राम के प्रश्न के जवाब में जगलाल चौधरी। साथ ही जगन्नाथ सिंह के प्रश्न का अबुल मुहम्मद नूर द्वारा दिया गया जवाब। 24 किरानियों और चपरासियों की जाति संरचना इस प्रकार थी: कायस्थ-9; ब्राह्मण-5; भूमिहार ब्राह्मण-2; कहार-4; सिख, तमोली, मुंडा, पासी एक-एक। (1 ब्राह्मण, 1 पासी और 1 कहार चपरासी थे।)
6. वही; 23 अगस्त, 1954। सुखदेव मांझी के प्रश्न के जवाब में श्रीकृष्ण सिंह और विलियम हेंब्रम के प्रश्न के जवाब में कृष्ण बल्लभ सहाय।
7. विधान सभा वाद विवाद, खंड 6, संख्या 8; 22 और 23 फरवरी, 1949।
8. भारतीय दलित वर्ग संघ का लक्ष्य और उद्देश्य था-1.दलित वर्गों के सभी तबकों को एक इकाई में संगठित और सुदृढ़ करना; 2. दलित वर्गों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अधिकारों तथा हितों को हासिल करना और उन्हें सुरक्षा प्रदान करना; 3. जो दलित अपने पूर्वजों का पंथ छोड़ चुके हैं, उन्हें वापस अपनी पांत में लाना; 4. दलित तथा अन्य पिछड़े वर्गों में शिक्षा को प्रोत्साहन देना; और दलित वर्गों, सवर्णों और अन्य समुदायों के बीच सद्‌भावना बढ़ाना।
9. राम, चन्द्रिका; 'ए प्लान फॉर हरिजन्स एंड अदर बैकवर्ड क्लासेस', नई दिल्ली, 1951।

कोसी-क्षेत्र का बदलता यथार्थ और रेणु की कहानियाँ

डॉ० बेबी कुमारी

उ0 मा0 शि0 (हिन्दी), देवी पद चौधरी शहीद स्मारक (मिलर), उ0 मा0 विद्यालय, पटना, बिहार-800001

स्वतंत्रोत्तर हिन्दी कथा-साहित्य को नई दिशा और दशा देने वाले कथाकारों में रेणु का नाम अग्रगण्य है। प्रेमचंद के बाद भारतीय ग्रामीण परिवेश को समग्रता में समेटने वाले वे सबसे बड़े लेखक हैं। रेणु ने प्रेमचंद की परंपरा को सिर्फ आगे ही नहीं बढ़ाया, वरन् बदलते परिवेश के अनुकूल उसके स्वरूप में अपेक्षित परिवर्तन कर उसे नई दिशा भी दी। रेणु की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने प्रेमचंद के कुरुप यथार्थ को लोकजीवन की सरसता और सांगीतिक मधुरता के साथ प्रस्तुत किया। प्रेमचंद जहाँ शोषण, गरीबी, बदहाली, असमानता आदि को अपनी कहानियों का वर्ण्य-विषय बनाते हैं, वहीं रेणु शोषण और गरीबी की मार से टूटे ग्रामीणों के भीतर की लोक-संस्कृति, लोकगीत एवं कलाओं के सूखते स्रोतों को सूक्ष्मता से रेखांकित करते हैं।

रेणु संक्रांति-काल के कथाकार हैं। कथा-जगत में जिस समय उनका पदार्पण हुआ, उस समय एक तरफ पूरे देश में जनतांत्रिक-प्रणाली स्थापित हो चुकी थी। समाज के दलितों, पीड़ितों और स्त्रियों को पहली बार मतदान का अधिकार मिला था। समाज से जमींदारों एवं साहूकारों का भय समाप्त हो रहा था। विकास के नाम पर पंचवर्षीय योजनाएँ बन रही थीं और लोगों की आँखों में उन्नति, प्रगति एवं अमन-चैन के सपने सज रहे थे, तो दूसरी तरफ भोली-भाली ग्रामीण जनता राजनीतिक दॉव-पेंच का शिकार हो रही थीं। शहरीकरण के दवाब के कारण पारंपरिक संरचनाएँ एवं मान्यताएँ टूटने लगी थीं। कुल मिलाकर यह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक उथल-पुथल का दौर था, जिसे रेणु ने अपनी रचनाओं में बारीकी से कलमबंद करने का प्रयास किया है।

आमतौर पर रेणु को आंचलिक कथाकार माना जाता है। 'अंचल' शब्द का प्रयोग देश के किसी विशेष भू-भाग या क्षेत्र के लिए किया जाता है। किन्तु, रेणु जब कोसी-क्षेत्र को केन्द्रित कर उसकी कहानियाँ लिखते हैं, उसकी समस्याओं, विद्रुपताओं विषमताओं और बदलावों को रेखांकित करते हैं, तो वह अपनी व्यापकता में पूरे देश का प्रतिनिधित्व करने लगती हैं। डॉ नामवर सिंह लिखते हैं–''जो कहानी जितनी लोकल, स्थानीय, रचनाबद्ध, देशकालबद्ध होती है, उसमें उतनी ही व्यापकता भी होती है। पिंड में ब्रह्मांड होता है, खंड में अखंड होता है।''[1] नामवर सिंह का यह कथन रेणु की कहानियों के संदर्भ में अक्षरशः सत्य है। सहरसा, पूर्णिया और सुपौल जिलों से जुड़ी उनकी कहानियों में सम्पूर्ण भारत समाया हुआ है।

रेणु के मुख्यतः चार कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं-

1. 'ठुमरी' (1959 ई0)
2. 'आदिम रात्रि की महक' (1967 ई0)
3. 'अगिनखोर' (1973 ई0)
4. 'मेरी प्रिय कहानियाँ' (1973 ई0)

'मेरी प्रिय कहानियाँ' में 'संवादिया' कहानी छोड़कर शेष कहानियाँ प्रथम तीन संग्रहों की कहानियाँ हैं। 'ठुमरी' रेणु का प्रथम कहानी-संग्रह है, जिसमें कुल नौ कहानियाँ हैं–'रसप्रिया', 'तीर्थोदक', 'ठेस', 'नित्य-लीला', 'पंचलाइट', 'सिरपंचमी का सगुन', 'तीसरी कसम' अर्थात् मारे गए गुलफाम 'लाल पान की बेगम', और 'तीन बिन्दियाँ'। इन कहानियों को स्वंय लेखक ने 'ठुमरीध

र्मा' कहा है–''इस संग्रह में ठुमरी नाम की कोई कहानी नहीं, सभी संयोजित कहानियाँ ठुमरी धर्मा हैं। अन्तमार्ग एक ही है सभी कथाओं का।---गीत के अन्तर्भाग में, बीच-बीच में विभिन्न स्वरों के प्रयोग से जो वैचित्र्य और कारू-कार्य सम्पादित होता है, अन्तमार्ग कहते हैं।''[2] इस संग्रह की कहानियों में परंपरागत कहानी की-सी अन्विति एवं एकता का अभाव अवश्य है, किन्तु शवों की तरलता, लोकगीतों की सरसता, आंतरिक संवेदनशीलता एवं प्रभावकारी बिम्बों की बेधकता पाठकों को तन्मय एवं भावविभोर कर देती हैं। 'ठुमरी' की कहानियों की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए कमलेश्वर लिखते हैं- 'ठुमरी' की कहानियों ने ''ग्रामांचल पर लिखी जा रही कहानियों की भंगिमा ही बदल दी और नयी दृष्टि से सम्पन्न नयी कलात्मक अभिव्यक्ति के धरातल पर इन कहानियों ने एक नई लीक डाली।''[3] इस संग्रह की कहानियों में रेणु ग्राम्य–यथार्थ के चित्रण के साथ-साथ ग्राम्य-जीवन में आ रहे बदलावों को भी सूक्ष्मता से पकड़ने का प्रयास करते हैं।

'रसप्रिया' इस कहानी संग्रह की पहली कहानी है, जिसमें कथाकार ने जातिविभाजन और वर्गभेद को दिखाने का सार्थक प्रयास किया है। मिरदंगिया मोहना को बेटा कहते-कहते इसलिए रूक जाता है क्योंकि ''परमानपुर में उस बार एक ब्राह्मण के लड़के को उसने प्यार से 'बेटा' कह दिया था। सारे गाँव के लड़कों ने उसे घेरकर मारपीट की तैयारी की थी– 'बहरदार' होकर ब्राह्मण के बच्चे को बेटा कहेगा ? मारो साले बुड्ढ़े को घेरकर।---मृदंग फोड़ दो।''[4] और जान बचाने के लिए उसे एक-दो-ढाई साल के नंग-धड़ंग बच्चे की ठुड्डी पकड़कर कहना पड़ा 'बापजी मुझे माफ कर दो।' रेणु देख रहे थे कि जाति प्रथा हमारे समाज की ध मनियों में रक्त की भाँति संचरित हो रही है। एक 'जेनेटिक रोग' की भाँति यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ती जा रही है। लोगों की पहचान उसकी कला या हुनर से नहीं जाति से होती है। मिरदंगिया कितना भी बड़ा कलाकार क्यों न रहा हो, था तो आखिर बहरदार ही। फिर, ब्राह्मण समाज का नंग-धड़ंग बच्चा भी उसे बेटा कहने का अधिकार कैसे दे सकता है ! यहाँ लेखक ने मिरदंगिया से दो-ढ़ाई साल के बच्चे को बाप कहलवाकर सामाजिक-व्यवस्था पर तीक्ष्ण व्यंग किया है, जो पाठकों को भीतर तक तिलमिला देता है। मिरदंगिया के प्रेम की असफलता के पीछे का कारण भी जाति ही है। मूलगैनी सीखते समय उसने जोधन गुरुजी से अपनी जात छिपा ली थी, क्योंकि वह जानता था कि यदि उसने गुरुजी को अपनी जात बता दी, तो वे उसे मूलगैनी नहीं सीखाएंगे। महाभारत काल में अपनी जात छिपाकर जो अपराध कर्ण ने किया था, वही अपराध 20वीं सदी में मिरदंगिया ने कर दिया। जात छिपाने की सजा कर्ण को भी मिली थी और मिरदंगिया को भी मिली। रातों-रात उसे अपना प्यार छोड़कर भागना पड़ा।

'पंचलाइट' शीर्षक कहानी में रेणु जाति आधारित राजनीति की बात करते हैं। वे लिखते हैं–''गाँव में सब मिलाकर आठ पंचायतें हैं। हरेक जाति की अलग-अलग 'सभाचट्टी' है।''[5] कहने का अभिप्राय यह है कि अब वर्ग विभाजन ही जाति आधारित नहीं है, अपितु राजनीति भी जाति आधारित हो गई है। समय के साथ यह और भी गहराता ही जा रहा है। वर्त्तमान समय में सम्पूर्ण देश जाति आधारित वोट बैंक बन गया है, जिसे अपनी आवश्यकता के अनुसार राजनेता भँजाते रहते हैं।

'ठुमरी' की कहानियों में रेणु ने कलाकारों की पीड़ा की भी अभिव्यंजना की है। रेणु इस बात को शिद्दत से महसूस कर रहे थे कि अंग्रेजों द्वारा लघु एवं कुटीर उद्योगों के नष्ट किये जाने के बाद क्षेत्रीय एवं ग्रामीण कलाकार बेरोजगार हो गए हैं। ग्रामीणों के प्रेम के बल पर वे अपनी कला को जीवित रखे हुए हैं, किन्तु समय के साथ समाज में उसकी पूछ कम होती जा रही है। नई पीढ़ी न तो उनकी कला का कद्र करती है और न ही उनकी भावनाओं का सम्मान। फलतः कदम-कदम पर कलाकारों की भावना को ठेस पहुँचती है और वे कला को छोड़ने पर मजबूर हो जाते हैं। इस संदर्भ में 'रसप्रिया', 'ठेस', एवं 'तीन बिन्दियाँ' कहानी उल्लेखनीय हैं। एक जमाना था जब ''शादी-ब्याह, यज्ञ-उपनैन, मुंडन-छेदन आदि शुभ कार्यों में विदपतिया मंडली की बुलाहट होती थी।''[6] विदापद नाच कोसी-क्षेत्र के लोगों के मनोरंजन का प्रमुख साधन था। पंचकौड़ी मिरदंगिया की भी समाज में पूछ थी, किन्तु आज इलाके में न तो विदापद नाच रहा और न ही मिरदंगिया की मंडली। कला की उपेक्षा ने मिरदंगिया को अधपगला, भीखमंगा एवं दस दुआरी बना दिया। कभी लोगों को एक ताल पर झुमाने वाला मृदंग आज उसके लिए पेट भरने का साधन मात्र बनकर रह गया है।

'रसप्रिया' की ही भाँति 'ठेस' कलाकार सिरचन के स्वाभिमान के आहत होने की कथा है। सिरचन कुश की शीतलपाटी, चिक और आसनी बनाने वाला ऐसा सिद्धहस्त कलाकार है, जिसकी ऐसी कारीगरी पूरे इलाके में नहीं मिलती। ''एक समय था, जबकि मड़ैया के पास बड़े-बड़े लोगों की सवारियाँ बँधी रहती थीं। उसे लोग पूछते भी नहीं थे, उसकी खुशामद भी करते थे।''[7] किन्तु आज की पीढ़ी उसे मुफ्तखोर, कामचोर और चटोर समझती है। गाँव भर में एक ही घर है, जहाँ उसकी कला की कद्र होती थी।

जब वहाँ भी वह अपमानित होता है, तो एक कलाकार के दिल को ठेस लगती है और वह प्रण लेता है-''इस शीतलपाटी को छूकर कहता हूँ, अब यह काम नहीं करूँगा।''[8] इस कहानी के माध्यम से रेणु यह दिखाना चाहते हैं कि सामाजिक उपेक्षा के कारण लोक-कलाएँ दम तोड़ रही हैं। वैश्वीकरण और बाजारवाद के कारण इन मृत कलाओं के पुनर्जीवित होने की आशा मन में बँधने जरूर लगी हैं, किन्तु सिरचन और मिरदंगिया का खोया हुआ आत्मसम्मान पुनः उसे प्राप्त हो सकेगा, इसमें संदेह है।

'तीसरी कसम' रेणु की बहुचर्चित प्रेम-कथा है। इसमें गाड़ीवान हीरामन और नौटंकी वाली हीराबाई की असफल प्रेम-कथा को लेखक ने बड़े ही मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है। यह 'लैला मजनूँ' या 'शिरीफरहाद' वाली प्रेम कहानी नहीं, अपितु रोमांस रहित प्रेम-कहानी है। गाँव का गाड़ीवान रोमांस क्या जाने ! वह तो सिर्फ दिल लगाना जानता है। एकबार जिससे दिल लगा लिया, उसे दुनियां की नजरों से बचाकर रखना चाहता है। हीरामन दिल तो लगाया, किन्तु भावुकतावश गलत जगह। उसने जिस हीराबाई से दिल लगाया, वह कंपनी की औरत है। कंपनी की दुनिया में प्रेम एक सौदा है, व्यवसाय है और जब प्रेम व्यवसाय से जुड़ता है, तो वह टूट जाता है। हीराबाई कंपनी की औरत थी, अंततः कंपनी में चली गयी। हीरामन का दिल टूट गया। इसी टूटे हुए दिल से वह तीसरी कसम खाता है कि वह कभी कंपनी की औरत की लदनी नहीं करेगा।[9] इस कहानी में लेखक ने हीराबाई के प्रसंग के माध्यम से कंपनी की दुनियां यानि पूँजीवादी दुनियां के यथार्थ को सामने लाया है।

'आदिमरात्रि की महक' रेणु का दूसरा कहानी-संग्रह है, जिसमें कुल चौदह कहानियाँ हैं। इन कहानियों में गाँव से शहर की ओर पलायन, टूटन, उदासी, भ्रष्टाचार, नगरोन्मुखता आदि स्थितियों को जीवंतता से प्रस्तुत किया गया है। इसमें कथाकार ने बदलते ग्रामीण जीवन की आंतरिक सच्चाइयों को उभार कर सामने लाया है।

'विघटन के क्षण' इस संग्रह की पहली कहानी है, जिसमें नगराकर्षण की चपेट में उजड़ते, बेकारी और अर्थाभाव से जूझते गाँव की अभिशप्त कथा कही गयी है। 'बायस्कोप', 'सरकस' और 'सलीमा' वाले शहर की ओर दौड़ते ग्रामीणों को देखकर रेणु के मन में ग्रामीण जीवन तथा गाँवों के अस्तित्व के प्रति जो शंका पैदा हुई, वह प्रस्तुत कहानी में आठ-नौ साल की चुरमुनियाँ के माध्यम से व्यक्त हुई है। ''सभी एक-एक कर गाँव छोड़कर जा रहे हैं। सच्चिदा भी चला जाएगा, तो गाँव की 'कबड्डी' में अकेले पाँच जन को मारकर दाँव अब कौन जीतेगा ? आकाश को छूनेवाले भुतहा-जामुन के पेड़ पर चढ़कर शहद का छत्ता अब कौन काट सकेगा ?''[10] 'जवान-जहान' लड़के गाँव छोड़कर भाग रहे हैं। एम.एल.ए. रामेश्वर बाबू भी घर-जमीन बेचकर सदा-सदा के लिए गाँव छोड़ना चाहते हैं। प्रश्न यह उठता है कि आखिर वह कौन सी मजबूरी है, जो 'जवान-जहान' लड़के और रामेश्वर बाबू को गाँव छोड़ने को मजबूर कर रहा है ? वह मजबूरी है पेट भरने की मजबूरी, ऐशो-आराम के संसाधनों को जुटाने की मजबूरी, झूठी आन-बान और शान दिखाने की मजबूरी। इसी मजबूरी के कारण 20वीं सदी में गाँव से जो पलायन का दौर चला था वह आज भी बदस्तूर जारी है।

'उच्चाटन' कहानी का भी मूल स्वर नगर के आकर्षण में विघटित होते गाँव की बिलखती नियति को संवेदित करना है। इस कहानी में लेखक पलायन की नियति को सामाजिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित करता है। सदियों से ऊँची जाति एवं पैसे वाले लोग गरीबों का शोषण करते रहे हैं, किन्तु जब इसी शोषित परिवार का एक नवयुवक शहर से पैसा कमाकर गाँव लौटता है, तो उसका विद्रोहात्मक तेवर ऊँची जाति वालों को बदलने पर मजबूर कर देता है। हलवाहा बिलसिया जब 'रिक्शा-डिलेबरी' से जेब गरम करके गाँव लौटता है तो उसकी शहरी अदा 'मिसिर' को 'डाउन' कर देती है। हमेशा गालियों से बात करने वाले मिसिर जी बिलसिया को रामबिलास बबुआ कहने को विवश हो जाते हैं। कहने का अश्प्रिाय यह है कि शहर की ओर पलायन करने का कारण आर्थिक सुदृढ़ता के साथ-साथ सामाजिक समृद्धता भी है। रामविलास की सामाजिक प्रतिष्ठा देखकर और उसके मुँह से चटकदार 'पटनिया किस्सा' सुनकर पूरे गाँव की मति का उच्चाटन हो जाता है और वे शहर की ओर पलायन करने की योजना बनाने लगते हैं।

'उच्चाटन' कहानी में रेणु यह भी दिखाते हैं कि रामबिलास जैसे नवयुवक जब शहर से रिक्शा-ठेला चलाकर कुली और वेटरों का काम कर गाँव लौटते हैं, तो अपने साथ झूठी शान-शौकत के साथ शहर की बुराइयाँ भी गाँव ले आते हैं, जिससे गाँव का वातावरण भी दूषित हो रहा है।

'पुरानी कहानीः नया पाठ' में रेणु कोसी-क्षेत्र के जलप्लावन की पुरानी कहानी को भ्रष्टाचारी जनसेवियों, नेताओं, मंत्रियों एवं व्यापारियों के नए पाठ से जोड़कर देखते हैं। लेखक इस कहानी में दिखाता है कि पुरानी कहानी की विभीषिका से नया पाठ ज्यादा

भयावह है। पुरानी कहानी के लोग आपदा के समय एक-दूसरे का ढाढस बँधाते थे, संबल बनते थे और विपत्ति से लड़ने की सामुहिक योजना बनाते थे जिससे दुख कम हो या न हो किन्तु दुख का अहसास अवश्य कम हो जाता था। किन्तु, नया पाठ अपने साथ अवसरवादिता एवं स्वार्थपरता जैसी संक्रामक बीमारी साथ लाया, जिसने मानवीय संवेदना को हिलाकर रख दिया। कल तक बाढ़ की विभीषिका से बचने के लिए जो लोग कोसी मैया की मुनहार करते थे, टाँगी-कुदाली और बाँस की बल्लियों से मचान बनाते थे, आज ''तीस-बत्तीस दिन तक अपनी-अपनी जान के लिए वे आपस में लड़ते रहे, रिलिफ कार्यकर्त्ताओं की खुशामद करते रहे। स्वार्थ सिद्धि के लिए उन्होंने एक-दूसरे की गर्दन पर हाथ रखे, दूसरे का हिस्सा हड़पा, चोरी की, झगड़ा किया।--सभी के दिल में शैतान का डेरा था।''[11] यह कहानी रिलीफ के नाम पर जनसेवकों, नेताओं, मंत्रियों की लूट-खसोट, मुख्यमंत्री का 'आसमानी दौरा' रिलिफ के नाम पर चुनाव का प्रचार-प्रसार, पत्रकारों की चोंचलेबाजी, जनसेवकों का भ्रष्टाचार आदि की पोल खोल कर रख दी है।

'जलवा' शीर्षक कहानी जनसेवा से स्वार्थसेवा की ओर पलायन करती राजनीतिक को सामने लाती है। 'आत्मसाक्षी' भी नए बदलते गार्हित राजनीतिक मूल्यों को ही केन्द्र में रखकर लिखी गयी कहानी है। इस कहानी में लेखक ने राजनीति के वीभत्स रूप को दिखाने का प्रयास किया है। राजनीति आज मुट्ठी भर लोगों की स्वार्थपूर्ति का साधन बन गया है। बलराम, चंद्रिका, रामलगन शर्मा जैसे लोग तुच्छ स्वार्थ के लिए आपस में नोंच-खसोट मचाए रहते हैं और सच्चा ईमानदार एवं भोला-भाला गनपत इनके काले कारनामों की भेंट चढ़ जाता है। यह कहानी दुहरे-तिहरे चरित्र जीने वाले राजनेताओं के असली चेहरे को बेनकाब करती है।

'अगिनखोर' रेणु का तीसरा कहानी-संग्रह है, जिसमें वे अपने द्वारा स्थापित प्रतिमानों को स्वंय ही तोड़ते हैं। 'अगिनखोर' तक आते-आते रेणु की कथा-भूमि कोसी-क्षेत्र से विस्तृत होकर शहरों तक व्याप्त हो जाती है। इस संग्रह में ग्यारह कहानियाँ हैं। अधि कांश कहानी शहरी सभ्यता की विकृतियों एवं व्यक्तिपरक सेक्स कुंठाओं से जुड़ी हैं।

'रेखाएँ: वृतचक्र' में द्वन्द्वग्रस्त एवं संघर्षरत आधुनिक मानव की आंतरिक पीड़ा को वाणी मिली है। 'अगिनखोर' इस संग्रह की शीर्षक कहानी है। इस कहानी में लेखक ने छद्म आधुनिकता के गर्भ से निकलने वाली पीढ़ी के लुंज-पुंज व्यक्तिव को सामने लाने का प्रयास किया है। आज की युवा पीढ़ी अस्तित्वहीनता के दौर से गुजर रही है। अपनी अलग पहचान बनाने के लिए वह चीखती है, चिल्लाती है, अजीबों-गरीब गालियाँ देती हैं। फिर मान्यता न मिलने पर स्वंय को टूटा हुआ, हारा हुआ महसूस करने लगती है। कथानायक सूतपुत्र भी साहित्यकार सूर्यनाथ से 'पिता' का संबंध जोड़ने की फूहड़ चेष्टा करता है, और जब सफल नहीं हो पाता है, तब फूट-फूट कर रोने लगता है।

'भित्तिचित्र की मयूरी' शीर्षक कहानी में कला पर बाजार के बढ़ते दवाब को दिखाने का प्रयास किया गया है। आज बाजार में जिस चीज की माँग अधिक होती है, पूँजीपति वर्ग उसपर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है, ताकि वे निश्चित मेहनताना पर अधिक-से-अधिक लाश् कमा सके। बाजार में भित्तिचित्र की बढ़ती माँग को देखते हुए सनातन बाबू फुलपतिया की माँ को सदा-सदा के लिए पटना ले जाना चाहते हैं। किन्तु रेणु को लगता है कि बाजार की गिरफ्त में आते ही कला मुट्ठी भर लोगों के हाथों का खिलौना बनकर रह जाएगी। मूल से कटकर वह सिर्फ और सिर्फ व्यवसायिक हो जाएगी। इसलिए रेणु फुलपतिया की माँ को पटना जाने नहीं देते और गाँव में ही 'मधुबनी आर्ट सेंटर' खुलवा देते हैं, ताकि नवीन पीढ़ी में यह परंपरा जीवित रह सके। जब ''पटना, दिल्ली और कलकत्ता से चुनी हुई लड़कियाँ तीन महीने की ट्रेनिंग लेने आएँगी यहाँ''[12] तब उससे कई लाभ होंगे। पहला तो यह कि जिले और गाँव की लड़कियाँ भी मुफ्त में सीखेंगी, दूसरा बाहर के लोगों के आने के कारण गाँव वालों को रोजगार मिलेगा और तीसरा इससे गाँव का नाम अखबार में आएगा। इस प्रकार रेणु गाँव को शहर से जोड़ना चाहते हैं।

'लफड़ा' कहानी में कहानीकार एकतरफ 'दि डायना गेस्ट हाउस' के माध्यम से बम्बई के होटलों के कटु यथार्थ का चित्रण करता है, तो दूसरी ओर गाँव से हीरो-हीरोइन बनने का ख्वाब लेकर आने वाले युवक-युवतियों के जीवन की त्रासदी का मार्मिक वर्णन भी करता है। बम्बई की मायावी दुनियां का आकर्षण गाँव की नवीन पीढ़ी को अपनी ओर आकर्षित करती है। परिणामस्वरूप वे गाँव से भागकर बम्बई आ जाते हैं और जब अपने ख्वाब को पूरा नहीं कर पाते हैं तब वे डायना गेस्ट हाउस में 'बैरा' का काम करने लग जाते हैं। 'गफूर', 'रामदास', 'दासगुप्ता' ऐसे ही पात्र हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेणु की कहानियों में कोसी के बदलते यथार्थ का सूक्ष्म, सजीव और विश्वसनीय अंकन हुआ है। उनकी कहानियों का कोसी-क्षेत्र पूरे भारतवर्ष की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं को अपने में समाहित किए हुए है।

रेणु अपने अंचल से इस कदर जुड़े हैं, कि उसकी समस्याओं एवं घटनाओं का उद्घाटन करते समय वे तटस्थ नहीं रह पाते हैं, अपितु स्वंय भोक्ता बन जाते हैं। इसलिए उनकी कहानियों का यथार्थ हमारी संवेदनाओं को झंकृत करती है और सोचने को विवश कर देती है।

संदर्भ सूचीः

1. साहित्य की पहचान, नामवर सिंह, सं0- आशीष त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2012, पृ0-212
2. ठुमरी, फणीश्वरनाथ रेणु, स्वरलिपि, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, आठवाँ संस्करण-2017, पृ0-6
3. नयी कहानी की भूमिका, कमलेश्वर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली-1969, पृ0-28
4. ठुमरी, फणीश्वरनाथ रेणु, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, आठवाँ संस्करण-2017, पृ0-10
5. उपर्युक्त, पृ0-76
6. उपर्युक्त, पृ0-11
7. उपर्युक्त, पृ0-51
8. उपर्युक्त, पृ0-55
9. उपर्युक्त, पृ0-139
10. रेणु रचनावली, खण्ड-1, सं0- शरत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2007, पृ0-453
11. उपर्युक्त, पृ0-482
12. उपर्युक्त, पृ0-576

भारतीय संघवाद का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ० सुनील कुमार

व्याख्याता, बी. डी. डिग्री कॉलेज, जलालपुर, छपरा (सारण)

भारतीय संविधान के किसी अन्य विषय पर शायद ही इतना अधिक वाद-विवाद रहा हो और इतने अधिक विरोधी मत व्यक्त किए गए हों जितने मत भारत के संघीय स्वरूप के संबंध में प्रतिपादित किए हैं। स्वयं संविधान निर्मात्री सभा में इस बात पर मतभेद था कि भारतीय संविधान को संघात्मक संविधान की श्रेणी में रखा जाए या उसे एकात्मक संविधान की संज्ञा दी जाए। भारत का संविधान संघात्मक है अथवा एकात्मक, इस संबंध में मुख्य रूप से दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोण पाए जाते हैं। संविधान निर्मात्री सभा के कुछ सदस्यों ने जोरदार शब्दों में संविधान के एकात्मक होने का दावा किया था। सभा के एक सदस्य पी. सी. चाको ने कहा था कि 'संविधान निर्मात्री सभा ने जिस संविधान की रचना की है वह देखने में तो संघात्मक है लेकिन यथार्थ में वह एकात्मक है।'1 एक अन्य सदस्य ने भारत को एक 'विकेंद्रित एकात्मक राज्य' की संज्ञा दी थी।2 संविधान निर्मात्री सभा के एक और सदस्य का कहना था कि संविधान ने एक प्रकार के 'फैड्रो यूनिटरी सिस्टम' को जन्म दिया है जिसका अत्यधिक झुकाव एकात्मक शासन व्यवस्था की ओर है और जिसमें घटक इकाइयां सदैव केन्द्र पर आश्रित रहेंगी।3

उपरोक्त दृष्टिकोण के विपरीत संविधान निर्मात्री सभा के काफी सदस्यों का यह मत था कि भारत का संविधान संघात्मक है। संविधान प्रारूप समिति के अध्याय डा. बी. आर. अम्बेडकर ने इस विषय पर विचार करते हुए कहा था कि 'यह एक संघीय संविधान है क्योंकि यह दोहरे शासन तंत्र की स्थापना करता है, जिसमें केंद्र में संघीय सरकार तथा उसके चारों ओर परिधि में राज्य सरकार हैं जो (सरकारें) संविधान द्वारा निर्धारित निश्चित क्षेत्रों में सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग करती है।'4 संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य ने इस बात पर बल दिया था कि 'यह निस्संदेह एक संघीय संविधान है।'5 एक अन्य सदस्य के. संथानम ने यह कहा था कि 'हमारा संविधान संघात्मक है और इसकी संघीयता न्यायपालिका द्वारा इतनी अच्छी तरह सुरक्षित है कि इसे सांविधानिक संशोधन के अतिरिक्त भंग नहीं किया जा सकता।'6

संविधान में अंगीकृत होने के बाद भी यह वाद-विवाद समाप्त न हुआ और विभिन्न संविधानविज्ञ तथा राजनीतिशास्त्री उपरोक्त दोनों दृष्टिकोणों के पक्ष और विपक्ष में अपने-अपने मत व्यक्त करते रहे हैं। प्रसिद्ध लेखक के. सी. व्हेअर का कहना है कि भारतीय संविधान मूलत: एकात्मक संविधान है जिसमें गौण रूप से कुछ संघीय विशेषताएं भी पाई जाती हैं। उन्होंने भारतीय संविधान को 'अर्द्धसंघात्मक संविधान' कहा है।7 इसी मत का समर्थन करते हुए जेनिंग्स ने लिखा है कि 'भारत एक ऐसा संघ है जिसमें केंद्रीकरण की तीव प्रवृत्ति पाई जाती है।'8 एलेन ग्लेडहिल ने भी इसी दृष्टिकोण से सहमति प्रकट की है।9

विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो भारतीय संविधान को संघात्मक मानता है उदाहरण के लिए एलेक्जेंड्रोविकज का कहना है कि 'भारत निस्संदेह एक ऐसा संघ है जिसमें सर्वोच्च सत्ता के गुणों में केंद्र और राज्य सरकारें साझेदार हैं।'10 पाल. एच. ऐपलबी ने भारतीय संविधा को 'अत्यधिक संघात्मक' माना है।'11 भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भी अनेक निर्णयों में प्रासंगिक रूप से भारतीय संविधान के संघात्मक होने की पुष्टि की है।

भारतीय संविधान की संघीयता के प्रश्न का संतोषजनक उत्तर देने के लिए पहले यह देखना आवश्यक है कि एक संघ प्रणाली के आवश्यक लक्षण क्या हैं और भारतीय संविधान में वे तत्व कहां तक पाए जाते हैं। विचारकों के अनुसार संघीय व्यवस्था के निम्नलिखित तत्व होते हैं।

1. दोहरी सरकार अर्थात केंद्र और राज्य सरकारों का सह-अस्तित्व
2. केंद्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन
3. लिखित तथा कठोर संविधान
4. स्वतंत्र तथा निष्पक्ष न्यायपालिका

संसार के वर्तमान संघों में कुछ का निर्माण स्वतंत्र राज्यों के पारस्परिक समझौते के परिणामस्वरूप हुआ। उदाहरण के लिए अमरीकी संघ का निर्माण 13 स्वतंत्र राज्यों द्वारा अपनी सामान्य सुरक्षा के उद्देश्य से एक समझौते के परिणामस्वरूप हुआ था। इस प्रकार बनने वाले संघों को केंद्राभिमुखी शक्तियों द्वारा निर्मित संघ कहा जाता है। आस्ट्रेलिया और कनाडा भी इसी तरह निर्मित संघों का उदाहरण हैं। अमरीका के विपरीत भारतीय संघ की स्थापना केंद्र विमुख शक्तियों द्वारा हुई हैं। भारत में संविधान निर्मात्री सभा ने संघीय व्यवस्था की स्थापना करते हुए संसद को नए राज्यों के निर्माण, उनकी सीमाओं में परिवर्तन आदि का अनन्य अधिकार प्रदान किया है।12 संविधान लागू होने के पश्चात से अब तक भारत में अनेक नए नए राज्यों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार भारत में इकाई राज्यों का निर्माण केंद्रीय सरकार द्वारा किया गया है। केंद्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के अपने-अपने अलग-अलग शासन संगठन हैं अर्थात प्रत्येक राज्य का अपना विधानमंडल कार्यकारिणी न्याय व्यवस्था और प्रशासकीय व्यवस्था है जो संविधान द्वारा निर्धारित क्षेत्राधिकार में रहते हुए अपने कार्यों का संपादन करते हैं।

संघ सरकार की दूसरी आवश्यकता केंद्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन होना है। यही वह मूल लक्षण है जो संघात्मक सरकार को एकात्मक सरकार से भिन्न करता हैं। भारत के संविधान ने बड़े ही विस्तृत रूप में केंद्र तथा राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन किया है। इस प्रकार भारत का संविधान संघ सरकार की दूसरी आवश्यकता को भी पूरा करता है।

संघीय शासन व्यवस्था में केंद्र तथा राज्य सरकारों को जो शक्तियां प्राप्त होती हैं वह एक दूसरे की दया अथवा इच्छा पर निर्भर नहीं करतीं वरन उन दोनों ही शक्तियों का मूल स्रोत संविधान होता है। इसीलिए संघ की स्थापना के लिए संविधान का लिखित होना अत्यधिक आवश्यक समझा जाता है। संविधान ही वह स्रोत है जिससे केंद्र तथा राज्य सरकारें शासन संबंधी शक्तियां प्राप्त करती हैं और जो इन दोनों सरकारों का स्वरूप निश्चित करता है। यह भी कहा जाता है कि संघीय व्यवस्था में संविधान में संशोधन करने की पद्धति ऐसी जटिल होनी चाहिए जिससे केंद्र सरकार अथवा राज्य सरकारें सांविधानिक संशोधनों के माध्यम से एक दूसरे की शक्तियों का अतिक्रमण न कर सकें। सारांश में संघात्मक सरकार की स्थापना के लिए संविधान का लिखित तथा कठोर होना आवश्यक समझा जाता है।

संघीय शासन व्यवस्था का एक अन्य लक्षण न्यायपालिका का स्वतंत्र तथा निष्पक्ष होना है। केंद्र तथा राज्यों के बीच संविधान द्वारा शक्तियों का विभाजन चाहे जितने स्पष्ट रूप से क्यों न किया जाए उनके बीच क्षेत्राधिकार संबंधी झगड़ों का उत्पन्न होना और संविधान की व्यवस्था पर प्रश्न उठना स्वाभाविक है। केंद्र तथा राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले ऐसे झगड़ों का निपटारा निष्पक्ष रूप से करने के लिए एक स्वतंत्र तथा निष्पक्ष न्यायपालिका की आवश्यकता होती है। भारत का संविधान न्यायपालिका को संविधान का संरक्षक बनाता है और संविधान की अंतिम रूप से व्याख्या करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान करता है। यही नहीं न्यायपालिका को संसद तथा राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाए गए कानूनों की सांविधानिकता का परीक्षण करने का भी अधिकार दिया गया है। जिसका प्रयोग करके न्यायपालिका केंद्र तथा राज्य सरकारों को अपनी-अपनी सांविधानिक सीमाओं में रहते हुए कार्य करने के लिए बाध्य करती है इस बात की प्रतिभूति देती है कि केंद्र सरकार अथवा राज्य सरकारें एक दूसरे के क्षेत्राधिकार में कोई हस्तक्षेप न करेंगी और इस तरह संघीय व्यवस्था सुचारू रूप से कार्य करती रहेगी।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारत का संविधान सैद्धांतिक रूप से उन सभी शर्तों को पूरा करता है जो एक संघात्मक सरकार के लिए आवश्यक बताई गई हैं। अत: सैद्धांतिक रूप से भारतीय संविधान को संघीय संविधान कहने में कोई संकोच न होना चाहिए, लेकिन संविधान में कुछ ऐसे तत्व भी दिखाई देते हैं जो एकात्मक सरकार के लक्षण माने गए हैं। साधारणतया एक संघ में राज्यों के अपने अलग संविधान होते हैं। लेकिन भारत में राज्यों का अपना पृथक संविधान नहीं है। जहां तक संविधान के दुष्परिवर्तनीय होने का प्रश्न है भारत के संविधान के अधिकांश भागों में संशोधन करने का अनन्य अधिकार संसद को प्रदान किया गया है और इस संबंध में राज्य सरकारों को अत्यधिक सीमित अधिकार प्राप्त है। इसका मूल कारण यह है कि संविधान में संशोधन करने में पहल करने का अधिकार किसी भी दशा में राज्यों की नहीं दिया गया है। यह ठीक है कि संविधान के कुछ भागों में संशोधन

करने के लिए कम से कम आधे राज्य विधानमंडलों की स्वीकृति आवश्यक मानी गई है13 लेकिन किसी भी दशा में राज्यों की ओर से संशोधन करने का प्रस्ताव औपचारिक रूप से नहीं लाया जा सकता। इसका अर्थ यह है कि संविधान में संशोधन करने का एक मात्र अधिकार केंद्र सरकार को है और इस प्रकार संविधान केंद्र की संपत्ति बन जाता है। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि अमरीका के संविधान केंद्र की संपत्ति बन जाता है। यहां राज्यों की ओर से की जा सकती है। राज्यों की ओर से इस प्रकार की मांग किए जाने पर वहां का केंद्रीय विधानमंडल (कांग्रेस) एक सम्मेलन बुलाता है जिसमें वह संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है। भारत के संविधान में संशोधन की तीन विधियां बताई गई हैं। संविधान का कुछ भाग संसद साधारण विधि-निर्माण प्रक्रिया से संशोधित कर सकती है(14 कुछ भागों में संशोधन करने के लिए आधे राज्यों के विधानमंडलों का अनुमोदन आवश्यक है15 जबकि संविधान के एक बड़े भाग की संसद 2/3 बहुमत से संशोधित कर सकती है।16 इसका अर्थ यह हुआ कि व्यावहारिक रूप से संविधान का केवल वह भाग जिसका संबंध प्रत्यक्ष रूप से राज्य सरकारों के संगठन आदि से है तथा कुछ अन्य विषयों के अतिरिक्त शेष पूरे संविधान में संशोधन करने का एकमात्र अधिकार संसद को प्राप्त है। संविधान के 24वें तथा 42वें संशोधनों ने संसद की संशोधन संबंधी शक्तियों को और भी विस्तृत कर दिया है। 42वें सांविधनिक संशोधन के अनुसार संसद को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह संविधान के किभी भी भाग में अनुच्छेद 368 द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संशोधन कर सकती है और किसी भी सांविधानिक संशोधन को किसी भी न्यायालय में किसी भी आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती।

संविधान के जिन अनुच्छेदों में साधारण विधि-निर्माण की प्रक्रिया द्वारा संशोधन करने का अधिकार संसद को दिया जाता है उनमें कुछ ऐसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं जो व्यावहारिक रूप से संपूर्ण संधीय ढांचे को ही परिवर्तित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद दो और तीन के अनुसार संघ में नए राज्यों के प्रवेश करने, नए राज्यों के निर्माण करने, उनके क्षेत्र को घटाने अथवा बढ़ाने और उनके नामों को परिवर्तित करने का अधिकार संसद को दिया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि केंद्रीय सरकार जब भी चाहे राज्यों की संख्या घटा-बढ़ा सकती है और इस प्रकार संघीय स्वरूप को बहुत कुछ बदल सकती है। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि अमरीका में संघ में नए राज्यों का प्रवेश कांग्रेस के द्वारा किया जा सकता है17 लेकिन एक राज्य में किसी नए राज्य का निर्माण अथवा दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक राज्य का निर्माण करना संबंधित राज्य-विधानमंडलों की स्वीकृति के बिना संभव नहीं है।18 इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अमरीका में केन्द्रीय सरकार राज्यों के अस्तित्व को खत्म नहीं कर सकती जबकि भारत में इकाई राज्यों का अस्तित्व संसद की दया पर निर्भर करता है। यह कहना गलत न होगा कि भारतीय संघ भले ही विनाशयोग्य न हो लेकिन राज्य विनाशयोग्य हैं, अर्थात राज्यों को बनाना या मिटाना संसद की इच्छा पर निर्भर करता है। इसीलिए के. संथानम ने कहा है 'ऐसा लगता है कि इस मौलिक सिद्धांत को कि एक संघ, राज्यों की भौगोलिक अखंडता पर निर्भर करता है (भारत में) भुला दिया गया है।'19

जहां तक केंद्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन का प्रश्न है, भारत के संविधान में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि दोनों ही प्रकार की सरकारों के कार्य-क्षेत्र को सुस्पष्ट तथा सुनिश्चित बना दिया जाए। इस उद्देश्य से केंद्र और राज्य सरकारों की शक्तियों को तीन सूचियों (संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची) में विभक्त किया गया है। लेकिन शक्तियों का विभाजन जिस प्रकार किया गया है उससे स्वयं यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान बनाने वाले राज्य सरकारों को अपेक्षाकृत कम शक्तिशाली बनाना चाहते थे। संघ सूची और राज्य सूची के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संघ सरकार को दी गई शक्तियों की संख्या ही अधिक नहीं है वरन जितने भी महत्वपूर्ण विषय हैं वे सब संघ सूची में सम्मिलित हैं और राज्य सरकारों को दिए जाने वाले विषय अपेक्षाकृत साधारण महत्व के हैं। सैद्धांतिक रूप से समवर्ती सूची में वर्णित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केंद्र तथा राज्य सरकारों दोनों ही को प्राप्त है। लेकिन व्यावहारिक रूप से समवर्ती सूची भी संघीय सरकार के नियंत्रण में है, क्योंकि संविधान के अनुसार यदि समवर्ती सूची में दिए गए किसी विषय पर केंद्र और कोई राज्य सरकार कानून बनाएं तो केंद्र सरकार द्वारा बनाया गया कानून मान्य होगा।20 इसका अर्थ यह है कि सीमावर्ती सूची पर राज्य सरकारों का अधिकार केवल उसी सीमा तक है जहां तक केंद्र सरकार उसका प्रयोग न करे।

अमरीका के विपरीत जहां अवशिष्ट शक्तियां (कुछ प्रतिबंधों के साथ) राज्यों को दी गई हैं, भारत के संविधान ने ये शक्तियां संघ सरकार को दी हैं जिसका अर्थ यह है कि देश की प्रगति और नई खोजों तथा आविष्कारों के परिणामस्वरूप केंद्र सरकार का कार्यक्षेत्र तथा शक्तियां निरंतर विस्तृत होती रहेंगी और सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक प्रगति के साथ राज्य सरकारों की स्थिति कमजोर होती जाएगी।

जहां तक राज्य सूची का संबंध है उसमें भी केंद्र सरकार कुछ परिस्थितियों में हस्तक्षेप करने का अधिकार रखती है। संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार यदि राज्य सभा 2/3 बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि राज्य सूची में दिए गए किसी विषय पर संसद के लिए कानून बनाना राष्ट्रीय हित में आवश्यक है तो संसद राज्य सूची में दिए गए किसी विषय पर कानून बना सकती है। सैद्धांतिक रूप से भले ही यह अनुच्छेद अधिक महत्वपूर्ण न लगता हो लेकिन व्यावहारिक रूप से इस अनुच्छेद के माध्यम से संसद राज्यों के क्षेत्राधिकार में बिना किसी कठिनाई के हस्तक्षेप कर सकती है। कारण यह है कि एक जनतंत्रीय सरकार मूलत: दलीय सरकार होती है और राज्य सभा में साधारणतया उसी दल का बहुमत होता है जिसका लोकसभा में है। अत: यदि किसी समय लोकसभा राज्य सूची में दिए गए किसी विषय पर कानून बनाने की इच्छुक है या होगी तो उसके लिए यह असंभव न होगा कि वह राज्य सभा से इस प्रकार का प्रस्ताव पारित करा ले।

संविधान के अनुच्छेद 252 में यह कहा गया है कि यदि दो या दो से अधिक राज्य यह प्रस्ताव पारित कर दें कि राज्य सूची में दिए गए किसी विषय पर संसद कानून बनाए तो संसद उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त कर लेगी। इस प्रकार बनाए गए कानून उन्हीं राज्यों में लागू किए जा सकेंगे जिन्होंने इसकी प्रार्थना की थी या जो राज्य बाद में उक्त कानून को एक संकल्प के द्वारा अंगीकार कर लें। गत 29 वर्षों की राजनीतिक परिस्थितियों को सामने रखते हुए यह कहा जा सकता है कि संघ सरकार के लिए अधिकांश राज्यों के द्वारा इस प्रकार के प्रस्ताव को पारित करा लेना कठिन कार्य न था। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि केंद्र सरकार उन सभी राज्यों से इस प्रकार का प्रस्ताव पारित करा सकती है जिन राज्यों में उसी दल की सरकार है जिस दल की सरकार केंद्र में सत्तारूढ़ है।

संविधान का अनुच्छेद 253 एक अन्य तरीके से राज्यसूची में हस्तक्षेप करनेका अधिकार संसद को प्रदान करता है। अनुच्छेद के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय संधियों तथा समझौतों को लागू करने के उद्देश्य से संसद किसी भी विषय पर कानून बना सकती है, भले ही वह राज्य सूची के अंतर्गत क्यों न आते हों।

संविधान के अनुसार राज्य विधानमंडलों द्वारा पारित किए जाने वाले विधेयकों को राज्यपाल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज सकता है।21 चूंकि राज्यपाल केंद्रीय सरकार का अभिकर्ता होता है अत: वह केंद्र सरकार में सत्तारूढ़ दल के निर्देशानुसार अपनी वीटो शक्ति का प्रयोग करके राज्य विधानमंडल को दी गई विधायिनी शक्तियों के प्रयोग करने में हस्तक्षेप कर सकता है और इस प्रकार राज्य सरकार को केंद्र की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने से बड़ी हद तक रोक सकता है।

संविधान के उपरोक्त उपबंधों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संविधान द्वारा किया जाने वाला शक्तियों का विभाजन उतना कठोर नहीं है जितना देखने में प्रतीत होता है और संसद राज्यों के क्षेत्राधिकार में काफी हद हस्तक्षेप कर सकती है।

केवल विधायिनी क्षेत्र में ही नहीं बल्कि प्रशासकीय क्षेत्र में भी केंद्र सरकार का राज्यों पर नियंत्रण दिखाई देता है। प्रत्येक राज्य का प्रधान राज्यपाल होता है। संविधान द्वारा उसे विस्तृत विधायिनी तथा कार्यकारिणी शक्तियां दी गई हैं।22 राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह उसी के प्रसाद पर्यंत अपने पद पर कार्य करता है।23 राज्य विधानमंडलों को किसी भी दशा में राज्यपाल को उसके पद से हटाने का अधिकार नहीं दिया गया है, जबकि राज्यपाल को कुछ ऐसी विधायिनी शक्तियां प्राप्त हैं जिनका प्रयोग करके वह राज्य विधानमंडलों के कार्यो को नियंत्रित कर सकता है। राज्यपाल की शक्तियों में विधानसभा का आह्वान, स्थगन तथा विघटन करने का शर्तहीन अधिकार भी शामिल है।24 सैद्धांतिक रूप से राज्यपाल किसी भी समय विधानसभा के विघटन की घोषणा कर सकता है लेकिन राज्य विधानमंडल किसी भी दशा में राज्यपाल को न उसके पद से हटा सकते हैं न उसके विरुद्ध कोई अन्य कार्यवाही कर सकते हैं। यह स्थिति केन्द्रीय सरकार से भिन्न है जहां राष्ट्रपति और संसद एक दूसरे को प्रतिबंधित करते हैं। यदि एक ओर लोकसभा को विघटित करने अधिकार राष्ट्रपति की है तो दूसरी ओर राष्ट्रपति को महाभियोग द्वारा हटाए जाने का अधिकार लोकसभा को प्राप्त है।25 यह उल्लेखनीय है कि संविधान के 42वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 74 में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति के लिए मंत्रिमंडल द्वारा दिए गए परामर्श को मानना आवश्यक होगा लेकिन राज्यपाल के लिए इस प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। इसका अर्थ यह है कि राज्यपाल को राज्य-विधान मंडल तथा मंत्रिमंडल के नियंत्रण से मुक्त रखा गया है।

संविधान के अनुच्छेद 256-257 के अनुसार केंद्रीय सरकार को राज्य सरकारों को कार्यकारिणी निर्देश देने का अधिकार दिया गया है और उन पर यह प्रतिबंध लगाया गया है कि अपनी कार्य कारिणी शक्ति का प्रयोग इस तरह से करें कि केंद्र सरकार की

कार्यकारिणी शक्ति के प्रयोग करने में कोई अड़चन न हो। इस अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए अनुच्छेद 356 यह घोषणा करता है कि यदि कोई राज्य केंद्र सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन नहीं करता है तो राष्ट्रपति को यह अधिकार होगा कि वह उस राज्य में सांविधानिक तंत्र की विफलता की घोषणा कर दे। केंद्र सरकार का यह अधिकार इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि वह बिना किसी कठिनाई के किसी राज्य को अपने निर्देशों के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य कर सकती है और कुछ परिस्थितियों में यह प्रावधान राज्यों की स्वायत्तता के लिए घातक हो सकता है।

आर्थिक क्षेत्र में राज्य सरकारें और भी अधिक शक्तिहीन दिखाई देती है जिसका मूल कारण यह है कि राज्य सरकारों के आर्थिक शक्तिहीन दिखाई देती हैं जिसका मूल कारण यह है कि राज्य सरकारों के आर्थिक साधन तथा आय के स्रोत अत्यधिक सीमित हैं। राज्य सरकारों को अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए समय पर केंद्र सरकार से आर्थिक सहायता लेनी पड़ती है और उसके लिए उन्हें केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित की गई शर्तों को मानना पड़ता है। दूसरे यह कि नियोजन आयोग की स्थापना के पश्चात संपूर्ण देश की अर्थव्यवस्था का स्वरूप केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित होता है। गत वर्षों में नियोजन आयोग ने इतना अधिक महत्व प्राप्त कर लिया है कि कुछ विचारकों ने उसे 'सर्वोपरि मंत्रिमंडल' की संज्ञा दी है।26 राज्यों की केंद्र सरकार पर इस आर्थिक निर्भरता के कारण राज्यों की स्थिति का कमजोर होना स्वाभाविक है।

संविधान के अनुच्छेद 352-360 में आपातकालीन उपबंधों का उल्लेख किया गया है। आपातकालीन घोषणा के पश्चात देश का संघीय ढांचा पूर्णतया एकात्मक सरकार में परिवर्तित हो जाता है। इस घोषणा के परिणामस्वरूप केंद्र सरकार राज्य सूची में दिए गए किसी विषय पर कानून बना सकती है; वह राज्य सरकारों को यह निर्देश दे सकती है कि वे अपनी कार्यकारिणी शक्ति का प्रयोग किस प्रकार करें, वह किसी भी पदाधिकारी को कोई विशेष सत्ता या अधिकार सौंप सकती है; तथा वह संविधान के आर्थिक उपबंधों को स्थगित कर सकती है। केंद्र सरकार के पास इतनी विस्तृत शक्तियों के होने से देश की संघीय व्यवस्था के एकात्मक शासन में परिवर्तित हो जाने का भय उत्पन्न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधारण परिस्थितियों में भी केंद्र सरकार को राज्य सरकार केंद्र की शक्तियों में हस्तक्षेप करने का पूरा अवसर रहता है और आपात उद्घोषणा के बाद तो एक प्रकार से राज्यों का अस्तित्व ही खत्म हो जाता है क्योंकि संपूर्ण विधायनी तथा कार्यकारिणी शक्तियां केंद्र में हस्तांतरित हो जाती हैं। ऐसा लगता है कि आपातकालीन स्थिति में केंद्र को अधिक शक्तिशाली बनाना स्वयं संविधान निर्माताओं का भी ध्येय था। डा. अंबेडकर ने संविधान के प्रारूप पर विचार व्यक्त करते हुए यह कहा था कि हमारा संविधान आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार संघात्मक और एकात्मक दोनों ही हो सकता है साधारण परिस्थितियों में वह एक संघ के रूप में कार्य करता है लेकिन संकट की अवस्था में वह एक एकात्मक सरकार के रूप में कार्य करेगा।

किसी भी संविधान की प्रकृति का निर्धारण असाधारण परि- स्थितियों के संदर्भ में न किया जाना चाहिए इसलिए केवल इस कारण कि भारत का संविधान आपातकाल में केंद्र सरकार को अत्यधिक शक्तियां प्रदान करने की व्यवस्था करता है भारतीय संविधान को एकात्मक सरकार की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। प्रश्न यह है कि फिर भारतीय संविधान को संघात्मक अथवा एकात्मक में से किस श्रेणी में रखा जाए ? प्रो. डायसी के अनुसार एकात्मक सरकार उस राज्य को कहते हैं जिसमें राज्य की संपूर्ण सत्ता एक संस्था अथवा व्यक्ति में केंद्रित हो, जबकि संघात्मक सरकार में राज्य की शक्तियां अनेक इकाइयों में विभाजित होती हैं जिनका वितरण संविधान द्वारा किया जाता है। इंग्लैंड एकात्मक संविधान का एक ज्वलंत उदाहरण है और अमरीका एक संघीय संविधान का। यदि सैद्धांतिक रूप से देखा जाय तो भारत का संविधान उन समस्त शर्तों को पूरा करता है जो एक संघीय सरकार के लिए आवश्यक मानी गई हैं। इसलिए सैद्धांतिक रूप से इस बात का कोई औचित्य नहीं है कि भारत के संविधान को एकात्मक संविधान की संज्ञा दी जाए, लेकिन व्यावहारिक रूप से भारत की संघीय योजना में केंद्र सरकार का राज्य सरकारों पर अत्यधिक नियंत्रण दिखाई देता है और संविधान में शक्तियों का विभाजन जिस प्रकार किया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान बनाने वालों ने केंद्र सरकार को अत्यधिक शक्तियां प्रदान की हैं। संविधान द्वारा किए गए शक्तियों के विभाजन के अनुसार भारत में सत्ता का केंद्रीकरण सा दिखाई देता है लेकिन किसी संघ में केंद्र अथवा राज्यों में किसी न किसी का अधिक शक्तिशाली होना स्वाभाविक सी बात है, और यह बात उन परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिनमें संघीय व्यवस्था की स्थापना की जाती है। साधारणतया अमरीकी संघ को एक मॉडल मानते हुए भारतीय संविधान के स्वरूप को जांचा जाता है और उस संदर्भ में यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि चूंकि भारत का संविधान अमरीका की संघीय योजना से भिन्न है अत: उसे एक शुद्ध संघ सरकार नहीं माना जा सकता। अमरीका के संविधान ने केंद्र सरकार की शक्तियों का उल्लेख करके शेष शक्तियां (कुछ प्रतिबंधों के साथ) राज्य सरकारों को दी है। इसका

यह अर्थ है कि अमरीका के संविधान में केंद्र के मुकाबले में राज्य सरकारों को ज्यादा शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया गया था। इसके विपरीत भारतीय संविधान की संघीय योजना से यह परिलक्षित होता है कि संविधान बनाने वाले जानबूझ कर केंद्र सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाना चाहते थे। भारत और अमरीका में केंद्र तथा राज्यों की शक्तियों में इस अन्तर का मूल कारण वे परिस्थितियां थीं जिसमें इन देशों में संविधान की रचना की गई थी। जैसा कि कहा जा चुका है, अमरीकी संघ केंद्राभिमुखी शक्तियों का परिणाम है अर्थात अमरीका में संघीय सरकार का निर्माण कुछ स्वतंत्र राज्यों के द्वारा किया गया था। अत: राज्यों के लिए यह स्वाभाविक था कि वह केंद्र सरकार को, जिसे वह स्वयं जन्म दे रहे थे, न्यूनतम शक्तियां दें, और ज्यादा से ज्यादा शक्तियां अपने पास ही सुरक्षित रखें। इस स्थिति के विपरीत भारत में संघ सरकार की स्थापना केंद्र विमुखी शक्तियों द्वारा हुई, इसलिए केंद्र सरकार के लिए अपने पास अधिक शक्तियां रखना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त भारत के सामने एक और समस्या राष्ट्रीय एकता बनाए रखने की थी। भारत को पहली बार पूर्ण स्वाधीनता और जनतंत्रीय सरकार की स्थापना करने का अवसर प्राप्त हुआ था और देश की राजनीतिक परिस्थितियां ऐसी थीं जिनमें विखंडन का भय था, इसलिए संविधान निर्माताओं ने यह आवश्यक समझा कि भविष्य में उत्पन्न होने वाली असाधारण परिस्थितियों से निपटने के लिए केंद्र के पास पर्याप्त शक्तियां होनी चाहिए। यही कारण है कि संविधान ने राज्य सरकारों पर ऐसे प्रतिबंध लगाने का प्रावधान किया है जो देश की एकता को बनाए रखने के लिए समय-समय पर आवश्यक समझे जाएं। संविधान निर्मात्री सभा में व्यक्त किए जाने वाले विचारों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि संविधान बनाने वाले एक शक्तिशाली केंद्र की स्थापना करना चाहते थे। सैद्धांतिक रूप से संघीय सरकार के लिए यह कोई मौलिक शर्त नहीं है कि उसमें राज्य सरकारों के पास अधिक शक्तियां होनी चाहिए। मौलिक बात यह है कि केंद्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण संविधान द्वारा किया जाना चाहिए और कोई भी सरकार एक दूसरे के क्षेत्राधिकार में असांविधानिक ढंग से हस्तक्षेप न करे। संघात्मक और एकात्मक सरकार के बीच भेद करने का एकमात्र आधार यह नहीं हो क्योंकि यह बात बहुत कुछ उन परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिनमें किसी देश में संघीय व्यवस्था की स्थापना की जाती है।

भारत की संविधान निर्मात्री सभा में इस विषय पर होने वाले वादविवाद को देखने से ऐसा पता चलता है कि संविधान बनाने वाले भारत में अमरीकी नमूने की संघ सरकार की स्थापना करना नहीं चाहते थे। संविधान निर्मात्री सभा में इस विषय पर चर्चा करते समय एक सदस्य ने यह कहा था कि 'इस सदन में पिछले दो दिनों में कुछ लोगों के द्वारा यह कहा गया है कि यह संविधान एकात्मक है और कुछ लोगों ने इसे संघात्मक कहा है। मेरा विचार यह है कि यह इनमें से कोई भी नहीं है, यह न तो एकात्मक है न संघात्मक। यह ऐसा संविधान है जो हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल है.हमारी आवश्यकताएं क्या हैं? हमारी आवश्यकताएं यह हैं कि एक ऐसा राजनीतिक संगठन हो जिसमें केंद्र के पास पर्याप्त शक्तियां हों ताकि कोई राजनीतिक अथवा आर्थिक अतिशिथिलता न आने पाए। इसी के साथ ही यह इकाइयों को पहल करने का अवसर प्रदान करता है।'26 संविधान निर्मात्री सभा के एक अन्य सदस्य ने यह कहा था कि 'इतिहास निस्संदेह यह सिद्ध करता है कि जब भी इस देश में सत्ता का केंद्रीयकरण नहीं रहा है तो यह देश विदेशियों द्वारा पराजित हुआ है।' एक दूसरे सदस्य ने इसी विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि 'एक मजबूत केंद्रीय सरकार समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है, एक एकात्मक अथवा अत्यधिक केंद्रित प्रकार की शासन व्यवस्था ही हमारे देश की आवश्यकताओं के संदर्भ में सबसे अधिक उपयुक्त है।'27

संविधान निर्मात्री सभा में दिए गए भाषणों के उपरोक्त उद्धरणों से यह संकेत मिलता है कि संविधान निमात्री सभा एक केंद्रित सरकार का निर्माण का निर्माण करना चाहती पर केंद्र के अत्यधिक नियंत्रण स्थापित करने का एक कारण यह भी था कि भारत का संविधान किसी भी दशा में राज्यों को संघ से संबंध विच्छेद करने का अधिकार नहीं देना चाहता था और इसलिए भारतीय संघ को 'यूनियन' कहा गया है। डॉ. अंबेडकर ने यह कहा था कि 'यूनियन' शब्द का प्रयोग जानबूझ कर किया गया है जिससे यह सिद्ध करना है कि राज्यों का यह संघ अवलोपनीय है।

कुछ विचारकों के अनुसार भारत के संविधान में संघात्मक तथा एकात्मक दोनों ही सरकारों के गुणों को मिलाने का प्रयत्न किया गया और उनमें पाए जाने वाले अवगुणों का बहिष्कार किया गया है। प्रो. व्हेअर का कहना है कि संघात्मक सरकार प्रत्येक स्थान और प्रत्येक काल में एक अच्छी सरकार नहीं होती, यह एक अच्छी शासन-व्यवस्था के लिए एक साधन मात्र है, स्वयं में कोई अच्छी व्यवस्था नहीं है। अत: किसी देश में संघीय सरकार की स्थापना की जानी चाहिए अथवा नहीं, और यदि की भी जाए तो केंद्र की शक्तियां अधिक हों या राज्य की, ऐसे प्रश्नों का उत्तर देश की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। भारत के संविधान में केंद्र के पास अत्यधिक शक्तियां होने पर आश्चर्य भी नहीं होना चाहिए क्योंकि संविधान बनाने वालों के सामने दूसरे संघों के अनुभव भी थे। अमरीका जिसे संघात्मक संविधानों में प्रतिनिधि संविधान माना जाता है, वहां भी संविधान निर्माण के बाद से ही केंद्र सरकार की शक्तियों में निरंतर विस्तार होता रहा है। अमरीका के संविधान बनाने वालों की यह इच्छा थी कि राज्य सरकारों के पास अधिक

से अधिक शक्तियां हों और केंद्र को राज्यों के क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करने का अवसर न दिया जाए, लेकिन संविधान लागू होने के बाद विभिन्न कारणों से केंद्र सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने व्यावहारिक समस्याओं और देश की मांगों को दृष्टि में रखते हुए संविधान की इस प्रकार व्याख्या की जिससे केंद्र सरकार की शक्तियों में निरंतर विस्तार हुआ। मुख्य न्यायाधीश मार्शल ने 'अंतर्निहित 'अधिकारों' के सिद्धांत का प्रतिपादन करके यह बताया कि संविधान द्वारा केंद्र को दिए जाने वाले प्रत्येक अधिकार में अनेक अधिकार निहित हैं। वहां राज्य के कार्य-क्षेत्र में निरंतर विस्तार तथा राज्य सरकारों का नई सामाजिक मांगों को पूरा करने में असमर्थ होना केंद्र सरकर की शक्तियों को बढ़ाने का एक प्रमुख कारण था। अमरीका के संविधान में किए गए अधिकांश संशोधनों का उद्देश्य भी केंद्र की शक्तियों को बढ़ाना रहा है। इस प्रकार 1789 से लेकर आज तक अमरीका में जिस तेजी से केंद्र सरकार की शक्तियों में वृद्धि हुई है संविधान निर्माता उसकी कल्पना भी न कर सकते थे। अमरीका के इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यावहारिक रूप से किसी भी संघीय व्यवस्था में केंद्र सरकार की शक्तियां बहुत सीमित नहीं रखी जा सकतीं। इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए यह कहना गलत न होगा कि भारत के संविधान निर्माताओं ने केंद्र को शक्तिशाली बनाकर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है।

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि भारतीय संविधान का झुकाव केंद्रीकरण की ओर ज्यादा है। देश की तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियों को सामने रखते हुए संविधान निर्माताओं का मंतव्य भी शायद यही था कि केंद्र सरकार सशक्त हो, लेकिन केंद्र सरकार के पास अधिक शक्तियां होने से किसी संविधान की संघीयता का अंत नहीं हो जाता। के. सी. व्हेअर द्वारा प्रतिपादित इस दृष्टिकोण से कि भारत का संविधान 'अर्द्ध संघात्मक' है अनेक विद्वानों ने असहमति प्रकट की है। सी.एम. एलेक्जेंड्रोविक्ज ने लिखा है कि 'भारत को अर्द्ध संघात्मक राज्यों के वर्ग में रखना किसी भी तरह न्याय-संगत नहीं है।28 एक अन्य लेखक ए. के. चंदा ने लिखा है कि 'अनेक अधिकारी विद्वानों ने भारतीय संविधान को अर्द्ध संघात्मक कह तो दिया है किंतु उसका तात्पर्य समझने का प्रयास नहीं किया है; संविधान या तो संघात्मक होता है या फिर एकात्मक।29 ग्रैनविल आस्टिन का कहना है कि 'अर्द्ध-संघात्मक और वैधानिक विकेंद्रीयकरण दिलचस्प नामकरण हैं, किंतु यह विशिष्ट रूप से महत्वपूर्ण नहीं है।'30

उपरोक्त वादविवाद से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय संविधान की संघीयता के संबंध में विचारकों में मतैक्य नहीं है और कुछ विचारक भारतीय संविधान को संघात्मक मानने पर तैयार नहीं हैं।

भारतीय संविधान के लागू होने के बाद से भारतीय संविधान की संघीयता के संबंध में जो संदेह प्रकट किया जाता रहा है वह संदेह 42वें सांविधानिक संशोधन के बाद और ज्यादा प्रबल हो गया है। 42वें सांविधानिक संशोधन ने संविधान में कुछ ऐसे परिवर्तन किए हैं जिनसे केंद्रीकरण की प्रवृत्तियों को और अधिक बल मिला है।

संविधान के 24वें संशोधन के द्वारा संसद को संविधान ने किसी भी भाग में संशोधन करने का अधिकार प्रदान किया था लेकिन इस शक्ति पर सबसे बड़ा प्रतिबंध यह था कि किसी भी सांविधानिक संशोधन को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती थी और उस संशोधन की सांविधानिक वैधता का निर्धारण न्यायालय करता था। संसद की संविधान में संशोधन करने की शक्ति पर यह एक महत्वपूर्ण प्रतिबंध था। केशवानंद भारती के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्ति पर यह प्रतिबंध लगाया था कि संसद संविधान के मूल ढांचे को परिवर्तित नहीं कर सकती। संविधान के 42वें संविधान ने यह व्यवस्था की है कि संसद द्वारा किए गए किसी भी सांविधानिक संशोधन को किसी आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। इसका अर्थ यह है कि संविधान का स्वरूप बहुत कुछ सत्तारूढ़ दल की इच्छा पर निर्भर करेगा और यदि कोई ऐसा राजनीतिक दल सत्ता में आता है जो संघात्मक शासन व्यवस्था को अच्छा नहीं समझता तो वह संविधान में संशोधन करके वर्तमान संघीय व्यवस्था का ही अंत कर देगा या राज्य सरकारों की शक्तियों में इतनी कटौती कर देगा जिससे उनका मूल स्वरूप ही बदल जाए। इसका अर्थ यह है कि भारत का संघीय स्वरूप सत्तारूढ़ दल की दया का पात्र बन जाएगा।

42वें संशोधन के द्वारा संसद की सर्वोच्चता को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है और न्यायपालिका की सर्वोच्चता का अंत हो गया है। सैद्धांतिक रूप से एक संघीय व्यवस्था में संविधान का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे कि केंद्र सरकार मनमाने ढंग से संविधान में संशोधन न कर सके। न्यायपालिका की सर्वोच्चता संघ सरकार की दूसरी मौलिक आवश्यकता होती है। भारतीय संविधान का 42वां संशोधन मूल संविधान की इन दोनों विशेषताओं का अंत कर देता है अत: अपने संशोधित रूप में भारतीय संविधान की संघीयता पहले से कहीं अधिक संदेह का विषय बन गई है।

संविधान के 42वें संविधान ने कुछ अन्य तरीकों से भी राज्यों को शक्तिहीन और केंद्र सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाया है। इस संशोधन के द्वारा राज्य सूची के कुछ विषयों को समवर्ती सूची में हस्तांतरित कर दिया गया है जिससे राज्यों की शक्तियों में कटौती हुई है। संविधान में एक नया अनुच्छेद 257ए जोड़कर संघ सरकार को आंतरिक अव्यवस्था की दशा में राज्यों में सेना भेजने का अधिकार प्रदान किया गया था। अनुच्छेद 31डी का पुनःस्थापना करके भारतीय संसद को यह अधिकार दिया गया था कि वह राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को रोकने और राष्ट्र विरोधी संस्थाओं के बनने आदि के विरुद्ध कानून बनाकर प्रतिबंध लगा सकती है। यह अधिकार राज्य विधानमंडलों को नहीं दिया गया था। 44वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 31डी और 257ए को संविधान से निकाल दिया गया है।

फिर भी उपरोक्त वादविवाद से यह निष्कर्ष निकलता है कि सांविधानिक दृष्टि से भारतीय संविधान ने अत्यधिक केंद्रित संघीय व्यवस्था की स्थापना की थी। व्यावहारिक दृष्टि से एकदलीय आधिपत्य और कठोर दलीय अनुशासन के कारण भारतीय संघ में राज्य सरकारें केंद्रीय सरकार के कठोर नियंत्रण में रही हैं और अपने सांविधानिक क्षेत्र में भी उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने का समुचित अवसर नहीं मिल सका है।

संदर्भ :

1. CAD XI, p.745
2. CAD XI, p.844.
3. CAD XI, p.788.
4. CAD VII, p.31.
5. CAD VII, p.1132.
6. CAD XI, p.718.
7. के. सी. व्हेयर : फेडरल गवर्नमेंट' (आक्सफोर्ड यूर्निव. प्रेस, लंदन, 1963), पृ. 28।
8. सर आइवर जेनिंग्स : 'सम कैरेक्टरिस्टिक्स आफ इंडियन कांस्टिट्यूशन' (आक्सफोर्ड यूर्निव. प्रेस, लंदन, 1953), पृ. 1।
9. एलेन ग्लैडहिल : 'दि रिपब्लिक आफ इंडिया' (स्टीवेंस ऐंड संस, लंदन, 1951), पृ. 92।
10. सी. एच. अलेक्सेंप्रोविच : 'कांस्टिट्यूशनल डेवलपमेंट इन इंडिया' (आक्सफोर्ड यूर्निव. प्रेस, लंदन, 1957), पृ. 169।
11. पाल ऐपलबी : 'पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया रिपोर्ट आफ ए सर्वे' (गवर्नमेंट आफ इंडिया)।
12. अनुच्छेद 3।
13. अनुच्छेद 368।
14. Footnote No. 29 of Chapter 2 ¼ewy vf/kdkj½A
15. Footnote No. 30 of Chapter 2 ¼ewy vf/kdkj½A
16. Footnote No. 31 of Chapter 2 ¼ewy vf/kdkj½A
17. Constitution of U.S.A. Art. 4; Section 3.
18. वही।
19. के. संथानम : 'यूनियन स्टेट रिलेशंस इन इंडिया' (एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई 1963), पृ. 7।
20. अनुच्छेद 254।
21. अनुच्छेद 200।
22. अनुच्छेद 154, 161, 164, 165, 174, 175, 176, आदि।
23. अनुच्छेद 156।
24. अनुच्छेद 174, 175, 176।
25. अनुच्छेद 61।
26. CAD XI, p.7160.
27. वही, पृ. 920।
28. सी. एच. एलेक्सेंडोविच : पूर्वोक्त, पृ. 169।
29. अशोक चंदा : 'फेडरलिज्म इन इंडिया' (जार्ज एलेन ऐंड अनविन, 1965), पृ. 41।
30. ग्रैनविल आस्टिन : 'दि इंडियन कांस्टिट्यूशन, कार्नरस्टोन ऑफ ए नेशन' (आक्सफोर्ड यूर्निव. प्रेस, 1966), पृ. 186।

प्रेमचंद की गद्य विधाओं में दलित विमर्श

डॉ० अखिलेश कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, डी.बी.एस.डी. डिग्री कॉलेज रामपुर (कदना) सारण (जेपीयू)

साहित्य के बदलते प्रतिमानों के तहत आज भारतीय साहित्य – विशेषकर हिन्दी साहित्य, जिस मुकाम पर पहुँच गया है, वहाँ उसकी सार्थकता, श्रेष्ठता आदि को जाँचने का एकमात्र प्रतिमान बन गया है 'दलित चेतना' की उपस्थिति। यह प्रतिमान गलत नहीं है, गलत है 'दलित चेतना' को कुतरते हुए उसे केवल अछूत जाति के लोगों तक सीमित कर देना। दलित चेतना के इस अधूरे, एकांगी साँचे में तमाम साहित्यकारों को 'फिट'-'मिसफिट' करने की मुहिम सी चल पड़ी है। असंदिग्ध रुप से सामाजिक यथार्थ-चित्रण के लिए विख्यात प्रेमचंद जैसे साहित्यकार भी इस उठापटक से अछूते नहीं हैं।

वस्तुत: आज 'दलित' शब्द को जिस प्रकार केवल अछूत जाति की समस्याओं तक सीमित कर उस परिप्रेक्ष्य में साहित्यकारों का मूल्यन-अवमूल्यन किया जा रहा है वह सरासर गलत है। दलित और अछूत दो शब्द हैं जो दो प्रकार की स्थितियों की व्यंजना करते हैं। 'दलित' शब्द पूरी मानवीय व्यवस्था में अंतर्निहित एम अन्यायमूलक उत्पीड़क, यातनादायक स्थिति का बोध कराता है जबकि 'अछूत' शब्द एक विशेष प्रकार की सामाजिक व्यवस्था में अंतर्निहित असंगति का। साफ शब्दों में कहें, तो अछूत या अस्पृश्य शब्द का चलन हिन्दू समाज के अन्तर्गत रहा है जिसके तहत गंदगी, मल-मूत्र आदि की सफाई का कर्म करने वाले जनों को शामिल कर उन्हें समाज की मुख्यधारा से काट कर अलग रखा गया।

इसके विपरीत 'दलित' शब्द का संबंध धर्म, देश, लिंग, वर्ण, वर्ग आदि के भेदों से परे उन समस्त जनों से रहा है जो किसी-न-किसी कारण अन्याय, उत्पीड़न, दलन, दमन के शिकार हो यातनापूर्ण जीवन जीते रहे हैं। इसके मुताबिक चाहे महलों में रहने वाले स्त्री-पुरुष हों या झोपड़े में रहने वाले मेहनतकश स्त्री-पुरूष, अगर वे हक, इंसाफ, मनुष्योचित जीवन की सुविधाओं से वंचित होकर जुल्म, यातना का जीवन जीने को बाध्य हैं, तो वे दलित ही माने जायेंगे। इस प्रकार 'दलित' शब्द एक सार्वभौम अमानवीय स्थिति का बोधक बनकर सम्पूर्ण विश्व साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता रहा है।

इस दृष्टि से देखा जाए तो जो भी श्रेष्ठ साहित्यकार हुए है, उन्होंने दलित-संवेदना को अपनी रचनाशीलता में महत्वपूर्ण स्थान दिया है, लेकिन दुर्भाग्यवश अपने देश में कुछेक दशकों से शोर मचाकर 'हुआँ-हुआँ' की शैली में, दलित शब्द की अर्थ-व्याप्ति में जबर्दस्त कटौती करते हुए इसे केवल अछूत जाति तक सीमित कर दिया गया है। आज प्रेमचंद का मूल्यांकन करते समय 'दलित' चेतना के इस संकीर्ण अर्थ को ही ध्यान में रखा जाता है, फलस्वरूप उनके साहित्य में दलित चेतना के अभाव का रोना रोया जाता है। मेरा विनम्र निवेदन है कि प्रेमचंद हों या कोई अन्य महत्वपूर्ण साहित्यकार, उनके मूल्यांकन में 'दलित' शब्द के व्यापक आयाम को ध्यान में रखकर ही उनके साथ न्याय किया जा सकता है। जहाँ तक प्रेमचंद का सवाल है, उनके साहित्य में दलित चेतना, सामान्य तौर पर, उपस्थित दिखाई देती है।

वास्तव में, 'दलित' शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण करने के कारण प्रेमचंद अपने उपन्यासों, कहानियों में समाज विभिन्न प्रकार की उत्पीड़क, दमनकारी दशाओं का चित्रण करते हुए उनसे त्रस्त पात्रों को साहित्य-संसार में अमर कर गये। उनके उपन्यासों पर दृष्टिपात करें, तो 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला', 'रंगभूमि', 'गोदान', – ये सभी दलित समस्याओं को लेकर लिखे गये उपन्यास हैं। इनमें अछूत समस्या भले न हो, दलित समस्या अवश्य है।

'सेवासदन' हमारे समाज के सदियों से दलित रहे स्त्री-वर्ग के दलन-दमन की मार्मिक दास्तान है। ''जन-जन का मन राखती वेश्या रह गई बाँझ'' या ''सतवंती को गजी नहीं मिले, वेश्या पहिने खासा है'' जैसी व्यंग्योक्तियों से वेश्या-जीवन का उपहास करने

के बजाय प्रेमचंद ने उसे पैदा करने वाली, पालनेवाली, विडम्बनापूर्ण सामाजिक स्थिति को सामने रखा। सुमन जैसी सुशील, शिष्ट लड़की के सपने चूर-चूर हो जाते हैं जब दहेज जैसी कुप्रथा के कारण उसका विवाह अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। सुमन के पति को देखकर उसकी माँ फफककर रो पड़ती है और उसे लगता है – ''मानो किसी ने सुमन को कुएँ में डाल दिया हो।''[1] इस दहेज या माता-पिता के अर्थाभाव के कारण आये कितनी लड़कियाँ कुएँ में ढकेल दी जाती थीं, बूढ़ों के हाथों बेच दी जाती थीं। 'सेवासदन' की पूरी कथा की आवृत्ति की आवश्यकता नहीं, इतना साफ है कि सुमन के माध्यम से प्रेमचंद ने भारतीय समाज में स्त्री-दलन की उस प्रक्रिया को सामने रखा है जिसके तहत सुमन जैसी सुशील लड़कियाँ घर छोड़कर कोठे पर जा बैठती हैं। दहेज, उसके कारण अनमेल विवाह, फिर पति के साथ तनावपूर्ण रिश्ते, आदि मिलकर कैसे किसी लड़की को वेश्या की देहरी पर पहुँचा देते हैं, इसके बेबाक चित्रण का नाम है 'सेवासदन'। स्त्री के दलन के प्रति सभ्य समाज के योगदान की तस्वीर प्रेमचंद ने इस उपन्यास के पात्र कुँवर अनिरुद्ध सिंह के जरिये इस प्रकार प्रस्तुत की है – ''हमारे शिक्षित भाइयों ही की बदौलत दालमण्डी आबाद है, चौक में चहल-पहल है, चकलों में रौनक है। यह मीना बाजार हम लोगों ने ही सजाया है, ये चिड़ियाँ हम लोगों ने ही फँसाई है। जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु आदर और सम्मान के पात्र हों, वहाँ दालमण्डी क्यों न आबाद हो ?''[2] इस प्रकार प्रेमचंद ने स्त्री को भोग्या से वेश्या तक बनाने में समाज की जिन कुरीतियों एवं सफेदपोश लोगों की भूमिका रही है, उसे बेनकाब करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

फिर 'निर्मला' उपन्यास स्त्रीख्रउत्पीड़न, दमन के एक दूसरे पक्ष से हमारा सामना कराता है। सुमन की तरह निर्मला की शादी भी दहेज के कारण मुंशी तोताराम के साथ होती है जो खुद जवान बेटे का बाप है। कायदे से निर्मला को मुंशी तोताराम की बहु बनकर उस घर में आना चाहिए था, लेकिन पुरुष वर्ग में 'साठा पर पाठा' का कुतर्क गढ़कर बुढ़ापे में भी स्त्री-देह को भोगने की हवस ने उसे बाप की उम्र वाले व्यक्ति के आगोश में ला पटका। सुमन की तरह निर्मला का जीवन भी वसंत आने से पहले ही पतझड़ का शिकार हो जाता है। ठीक है कि वह सुमन की तरह विद्रोह कर कोठे पर नहीं जा बैठती, लेकिन घर में ही रहते हुए वह पति द्वारा अविश्वास की नजरों से देखी जाती हुई, निरंतर तनाव एवं मानसिक यातना की जो घुटन भरी जिंदगी जीती है, वह हमारे परिवारों में स्त्री के यौवन-दलन का दारुण पक्ष प्रस्तुत करता है। निर्मला की व्यथा को डॉ. रामविलास शर्मा ने सही लक्ष्य किया है – ''जिस विवाह प्रथा का आधार रुपये-पैसे का लेन-देन था, निर्मला उसी की वेदी पर उस पशु की तरह छटपटाया करती थी जिसका सिर पूरी तरह थड़ से जुदा न हुआ हो।''[3] निस्संदेह, 'सेवासदन' समाज में स्त्री के दलित होने की कथा है, तो 'निर्मला' परिवार में उसके दलित होने की कथा।

'सेवासदन' एवं 'निर्मला' सदियों से मुख्यत: स्त्रियों के दलित होते रहने की दर्दनाक प्रक्रिया की मार्मिक दास्तान हैं, तो 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'गोदान', जैसे उपन्यास 'दलित' के अन्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आयामों को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास हैं। 'प्रेमाश्रम' की मुख्य समस्या किसानों और जमींदारों के आपसी संघर्ष की है। जब यह उपन्यास लिखा जा रहा था (1918-20) जमींदारी प्रथा के कारण किसानों की बड़ी दयनीय हालत थी। इसी के दो-तीन वर्षो बाद निराला ने 'बादल-राग' में शोषित किसानों का यह चित्र प्रस्तुत किया था – ''जीर्ण बाहु है शीर्ण शरीर, तुझे बुलाता कृषक अधीर, ऐ विप्लव के वीर: चूस लिया है उसका सार, हाड़ मात्र ही हैं आधार।''[4] भारत के किसान कैसे अंग्रेजों एवं जमींदारों के आपसी साँठ-गाँठ के कारण दिन-रात शोषित, दलित होते हुए 'जीर्ण बाहु एवं शीर्ण शरीर' वाले हो गये थे, यह सब 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने बहुत विस्तार से दिखाया है – अर्थात् 'प्रेमाश्रम' में पूरा कृषक वर्ग ही अंग्रेजों एवं जमींदारों के द्वारा दलित, दमित होते हुए दिखाया गया है। इस उपन्यास में मनोहर, बलराज, कादिर, दुखरन जैसे बेगार करने वाले, हल जोतने वाले, प्लेग और सरकारी दमन का मुकाबला करने वाले किसानों को ही प्रेमचंद ने नायकत्व की गरिमा प्रदान की है। इस उपन्यास में समस्त कृषक समुदाय ही दलित वर्ग के रूप में चित्रित है।

दलित का एक दूसरा रूप सामने आता है। 1924 ई. में प्रकाशित उपन्यास 'रंगभूमि' में। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने केवल किसानों को ही नहीं, अपितु पूरे भारतीय ग्राम-जीवन को औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की आँधी से ध्वस्त होते हुए दिखाया है। दिलचस्प बात यह है कि उपन्यास का नायक सूरदास चमार जाति का यानी अछूत जाति का है और वही पाण्डेपुर गाँव को तबाह करने, उजाड़ने वाली औद्योगिक एवं शहरी शक्तियोंं के विरुद्ध लड़ाई का नेतृत्व करता है । सूरदास को अछूत जाति से सम्बद्ध जाति के हित के लिए लड़ने वाले के रूप में नहीं पेश किया। यह प्रमाण है कि प्रेमचंद की दृष्टि में दलित केवल अछूत जातियों तक सीमित नहीं थे। पाण्डेपुर गाँव के भैरों, बजरंगी, जगधर ठाकुरदीन आदि अछूत जाति के नहीं हैं। उनमें कोई ताड़ी बेचता है, तो कोई पान, कोई दूध का धंधा करता है, तो कोई खोमचे लगाता है। लेकिन जॉन सेवक द्वारा पैदा की गई औद्योगीकरण की आँधी में उनके घर भी

उसी तरह उजड़ते हैं जिस तरह अछूतों के। सूरदास छूत-अछूत, सवर्ण-अवर्ण सभी को दलित होते देखकर सबकी लड़ाई लड़ता है और इस क्रम में वह शहीद हो जाता है। तभी तो सामंती युवक विनय सूरदास की कुटिया को 'जातीय मंदिर' कहता है और उसकी माता रानी जाह्नवी सूरदास के पैरों पर माथा टेक कर रो पड़ती है। स्पष्टत: प्रेमचंद ने सूरदास को न केवल अछूतों की, बल्कि सभी उत्पीड़ित, दमितजनों की लड़ाई का नायक बनाकर 'दलित चेतना' की व्यापकता को सार्थकता प्रदान की है।

जहां तक गोदान का सवाल है, उसका नायक होरी भी उसी कृषक वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है जो राय साहब जैसे जागीरदार से लेकर पं. दातादीन, झिंगुरी सिंह, लाला पटेश्वरी, नोखेराम जैसे गंवई जोकों से दिन-रात चूसे जाने का शिकार है। 1936 में प्रकाशित 'गोदान' के होरी को भारत के जिस कृषक वर्ग का प्रतिनिधि-चरित्र माना गया है, वह उस समय सरकार, जमींदार, थानेदार, पटवारी, सूदखोर आदि के चंगुल में पड़ा हुआ इस कहावत को चरितार्थ करता था कि ''भारतीय किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज में ही बड़ा होता है और कर्ज में ही मर जाता है।'' होरी और उसकी पत्नी धनिया का अभाव, दैन्य, कर्ज आदि से उत्पीड़ित जीवन दलित कृषक वर्ग की करुण कथा है। ध्यान दें इन शब्दों में व्यक्त धनिया की मन:स्थिति पर ''यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो, मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है। .... उसकी भी उम्र अभी क्या थी ? छत्तीसवाँ ही साल तो था, पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। सारी देह ढल गई थी, वह सुन्दर गेहुँआँ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो।'' भूख अभाव की यह मर्मान्तक पीड़ा ही तो दलित आत्मा की पहचान है जिसे 'गोदान' में पूरी तरह से विन्यस्त किया गया है।

इस प्रकार देखा जाए तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि दलित चेतना को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए प्रेमचंद ने अपने इन उपन्यासों को सामान्य दलितजन की पीड़ा, वेदना की महागाथा बना दिया। इस दृष्टि से यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं कि यूरोप में जो उपन्यास मध्य वर्ग-बुर्जुआ वर्ग के महाकाव्य के रूप में (जर्मन दार्शनिक हीगेल के अनुसार) अवतरित हुआ, उसे प्रेमचंद ने भारतीय संदर्भ में सामान्य दलित वर्ग की वेदना के महाकाव्य के रूप में रूपान्तरित कर दिया। ऐसी ही दलित चेतना को प्रेमचंद ने अपनी 'कफन', 'पूस की रात', 'सवा सेर गेहूँ', जैसी कहानियों में प्रस्तुत किया।

'कफन' में घीसू, माधव और बुधिया के चमार जाति से सम्बद्ध होने के कारण यह नहीं समझ लेना चाहिए कि यह अछूत समस्या को लेकर लिखी गई कहानी है। इस कहानी में समस्या अस्पृश्यता की नहीं है, बल्कि घीसू-माधव जैसे शारीरिक श्रम करके जीवन निर्वाह करने वालों के निरंतर शोषित, दलित होते रहने का पराकाष्ठा स्वरूप संवेदन शून्य हो जाने की है। यह कहानी उस सामाजिक व्यवस्था की निर्मम आलोचना है जिसमें दिन-रात हाड़ तोड़ मेहनत करने वाले भूखे रहने, चीथड़ों से तन ढँकने को मजबूर हैं। ऐसे में मेहनत-मजदूरी से भाग्य-रेखा बदलने में आस्था का समाप्त हो जाना – हर चीज के प्रति अनास्थावादी हो जाना स्वाभाविक है। कहानीकार ने स्वयं उस परिस्थिति का खुलासा कर दिया है –''जिस समय में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।''[5] जाहिर है यह कहानी सामंती समाज में मेहनतकश वर्ग के निरंतर दलित, शोषित होते हुए संवेदनशून्य, अमानवीय होते जाने की प्रक्रिया को बेनकाब करके रख देती है।

इसी प्रकार 'पूस की रात' सूदखोरों के उस तंत्र को बेनकाब करने वाली कहानी है जिसके खूनी पंजों में पड़ा हल्कू जैसा किसान कठोर मेहनत से खेती करने के बावजूद कड़ाके की ठंड से बचने के लिए पर्याप्त कपड़े नहीं खरीद सकता। ऐसे हालत में किसी को खेती करने में क्यों दिलचस्पी रहेगी ? कम्बल खरीदने के लिए बचाकर रखे हुए तीन रुपये जब सूदखोर सहना को देने पड़ते हैं, तब हल्कू की पत्नी मुन्नी कहती है – ''मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते। मर-मर कर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दें, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये।'' यही कारण है कि कड़ाके की ठंड सहकर उस फसल को बचाने में हल्कू को कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती जो खलिहान में आने के बाद 'बाकी चुकाने' में ही खत्म हो जायेगी। नतीजतन वह अपनी फसल को नीलगायों से बचाने का कोई उपक्रम नहीं करता। निर्मम सूदखोरी से हल्कू जैसे किसान के दलित होने की कहानी 'पूस की रात' है, तो 'सवा सेर गेहूँ' सवर्णवाद द्वारा गढ़े गये उस मकड़जाल को तार-तार करती है जिसमें परलोकवाद का मिथक गढ़कर शंकर जैसे गरीब का 'सवा सेर गेहूँ' उधार लेने के एवज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी शोषण-दमन होता है।

इन तथ्यों के आलोक में स्पष्ट है कि प्रेमचंद ने समाज के उन सभी जनों को दलित के रूप में अपनी रचनाओं में स्थान दिया जो दहेज या अनमेल विवाह के कारण या सरकारी, जमींदारी, महाजनी शोषण के कारण निरंतर उत्पीड़ित, दलित हो रहे थे। स्पष्टत: यह उनके द्वारा दलित चेतना को व्यापक दायरे में देखने-समझने का प्रमाण है। इस व्यापक दलित चेतना के ही एक अभिन्न अंग के रूप में अछूतपन की समस्या को उनके रचना-संसार में स्थान मिला है।

सर्वविदित है कि अछूतपन या अस्पृश्यता वर्णाश्रम-आधारित हिन्दू समाज की सामाजिक व्यवस्था के अंदर एक गर्हित चलन रहा है। मल-मूत्र, मृत पशु आदि से जुड़े अनिवार्य कार्य करने वालों को अस्पृश्य घोषित कर हिन्दू समाज ने सदियों से अपनी उदारता के दामन पर कलंक लगा रखा था। प्रेमचंद जैसे समाज-चेतन लेखक की दृष्टि से समाज का यह गर्हित पक्ष कैसे ओझल रह सकता था ? उन्होंने हिन्दू सवर्णवाद की नाक के नीचे पलते अछूतपन की अमानवीयता को अपनी कई रचनाओं में बेनकाब किया। 'ठाकुर का कुआँ' 'सद्गति', 'दूध का दाम' जैसी कुछेक कहानियों में प्रेमचंद ने सामाजिक स्तर पर घोर अपमान, यातना का जीवन जीने वाले इन अछूतों का बड़ा बेबाक चित्रण किया है।

गौरतलब है कि 'ठाकुर का कुआँ' का जोखू चामार है जिसे पीने के लिए स्वच्छ पानी की आवश्यकता है। चमारों के कुएँ में कोई मवेशी गिर कर मर गया है जिससे उसका पानी बीमार जोखू के लिए निरापद नहीं है। स्वच्छ पानी ठाकुर के कुएँ से मिल सकता है, लेकिन वहाँ चमारों का जाना वर्जित है। वर्णाश्रम के अनुसार वे अछूत जो ठहरे जिनकी छाया से भी कुएँ का पानी अपवित्र हो जाए। उसकी पत्नी रात के अँधेरे में ठाकुर के कुएँ से पानी लाने का दु:साहस करती तो है, लेकिन विफल होती है। घर लौटकर देखती है कि जोखू उसी कुएँ का गंदा पानी पी रहा है। इस कहानी में कहीं इस बात का जिक्र नहीं है कि ठाकुर साहब जोखू से बेगार कराकर उसका शोषण कर रहे हैं। ध्यान देने की बात है कि जोखू स्वच्छ पानी न मिल पाने की यातना का शिकार है और जाहिर है इस यातना का कारण उसका निर्धन होना नहीं, बल्कि अछूत जाति का होना है। इसी तरह 'सद्गति' कहानी का दुखी जाति से चमार है जो अपनी बिटिया की सगाई के लिए 'साइत-सगुन' बिचरवाने के लिए पंडित घासीराम के पास जाता है। पंडित घासीराम को दुखी से बैठक लीपवाने, लकड़ी चीरवाने से कोई परहेज नहीं है, लेकिन वह दुखी लकड़ी चीरते हुए जब मर जाता है, जब चमार होने के कारण उसकी लाश उनके लिए अस्पृश्य हो जाती है। अन्तत: दुखी की लाश के साथ पंडित-परिवार का जो सलूक होता है, वह वर्ण-संस्कारों की बीभत्सता का चरम रूप है। ये दोनों कहानियाँ हिन्दू समाज में अस्पृश्यता के रूप में विद्यमान अमानुषिकता का 'पोस्टमार्टम' हैं।

अछूत समस्या का सर्वाधिक आक्रामक रुख प्रेमचंद 'गोदान' के सिलिया मातादीन के प्रणय-प्रसंग में प्रस्तुत करते हैं। सदियों से सवर्ण समाज ने अछूत जाति की बहू-बेटियों को अपने मन वहलाव का साधन समझ रखा था। इसी मानसिकता के तहत विप्र-पुत्र मातादीन चमार जाति की लड़की सिलिया को अपने प्रेमपाश में फँसा लेता है। मातादीन वैसे बिगड़ैल सवर्ण युवकों को प्रतिनिधि चरित्र है जो सिलिया जैसी लड़कियों से अल्पकालिक प्रेम का नाटक कर यौन-तृप्ति प्राप्त करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे, लेकिन उन्हें कभी गृहिणी का दर्जा क्या, घर में पैर भी नहीं रखने दे सकते थे ? प्रेमचंद अछूतों के साथ वर्षों से सवर्णों द्वारा होने वाले इस स्वेच्छाचार के खिलाफ कठोर रुख अपनाते हुए अछूतों में आक्रामक तेवर ला देते हैं। फलत: हम देखते हैं कि एक दिन सिलिया के घर वाले मातादीन को पकड़ कर सिलिया से विवाह करने को बाध्य करते हैं और उसके इन्कार करने पर उसके मुँह में हड्डी ठूँसकर धर्म भ्रष्ट कर डालते हैं। इसे बहुतों ने दलित चेतना के आक्रामक तेवर के रूप में देखा है जबकि यह उन दिनों अछूत जातियों में उभर रही सामाजिक जागरुकता का प्रमाण है। यहाँ एक बात ध्यान में रहनी चाहिए कि जिस तरह 'रंगभूमि' का सूरदास अछूत जाति का होते हुए केवल अछूतों के लिए नहीं, बल्कि सभी उत्पीड़ित लोगों के लिए लड़ता है, उस तरह 'गोदान' के ये अछूत जाति वाले नहीं करते। सिलिया के घरवालों की लड़ाई सिर्फ अपनी अछूत जाति के प्रति होने वाले अन्याय के विरुद्ध है, इसलिए इसे अछूत-चेतना के अन्तर्गत देखना ज्यादा सही होगा।

प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि आजकल काफी बहस इस बात को लेकर हो रही है कि प्रेमचंद में अछूत समस्या को लेकर जो जागरूकता दिखाई पड़ती है, वह डॉ. अम्बेडकर के दलित आंदोलन के कारण संभव हो पाई, तो कुछेक के अनुसार महात्मा गाँध ी के अछूतोद्धार आंदोलन के कारण। सबसे बड़ा सत्य यह है कि प्रेमचंद खुद युग-चेतन समाज-चेतन साहित्यकार थे, अतएव जैसे समाज की अन्य समस्याओं का उनकी रचनाओं में समावेश हुआ, वैसे ही अछूत-समस्या का ही हुआ। एक जागरूक रचनाकार अपने समय के बाद या आंदोलन से अवश्य प्रभावित होता है, लेकिन वह उसका अनुवादक मात्र नहीं होता–उसकी अपनी सृजनात्मक चेतना की नियामक भूमिका होती है। प्रेमचंद की दलित या अछूत चेतना को इसी दृष्टि से देखना चाहिए।

फिर भी, जहाँ तक गाँधी और अम्बेडकर के विचारों या आंदोलनों का, प्रेमचंद के संदर्भ में प्रभाव का सवाल है, तो यही मानना पड़ता है कि दलित एवं अछूत के संबंध में गाँधी और प्रेमचंद के विचारों में ज्यादा साम्य है। ध्यातव्य है गाँधी के लिए केवल अछूत जन ही दलित नहीं थे, अपितु वह हर आदमी दलित था जो चाहे दक्षिण अफ्रीका में गिरमिटिया प्रथा या रंगभेद के कारण अमानुषिक यातना, उत्पीड़न का शिकार था, या फिर नीलहे अंग्रेजों के अत्याचार से चम्पारण में किसान के रूप में दलित हो रहा था या फिर औपनिवेशिक दासता के अधीन शोषित हो रहा था। इसलिए गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारत तक इस दलित आम आदमी की मुक्ति की लड़ाई लड़ी। अस्पृश्यता चूँकि हिन्दू समाज की एक आन्तरिक विसंगति थी, इसलिए उसके उन्मूलन के लिए उन्होंने अलग से राष्ट्रव्यापी आंदोलन चलाया। ठीक इसी प्रकार प्रेमचंद के साहित्य में, जैसा कि हमने पूर्व विवेचन में देखा, केवल अछूत जाति वाले ही दलित नहीं हैं। प्रेमचंद के साहित्य-संसार में अछूत-समस्या अलग से जरूर विन्यस्त हुई है, लेकिन वहाँ दलित वह हर इंसान है, चाहे वह जमींदारों, सूदखोरों के हाथों शोषित होने वाला मनोहर, होरी या हल्कू हो या सामाजिक कुरीतियों के कारण यातना भोगने वाली सुमन, निर्मला जैसी स्त्रियों हों या अंध औद्योगीकरण की आँधी से विस्थापित होते पाण्डेपुर गाँव के सूरदास, भैरों बजरंगी जैसे लोग हों।

जाहिर है, गाँधी और प्रेमचंद की दृष्टि में अछूतों के साथ-साथ वे जन भी दलित हैं जो किसी-न-किसी कारण अपने हक से वंचित हो, शोषण, जुल्म, यातना भोगने को अभिशप्त हैं, जबकि डॉ. अम्बेडकर एवं अम्बेडकरवादियों के लिए केवल अछूत जाति वाले ही दलित हैं। यही बुनियादी फर्क है गाँधी-प्रेमचंद और अम्बेडकरवादियों के दलित-चिंतन में।

प्रेमचंद दलितों की समस्याओं का जिक्र बिल्कुल दलितों में मिलकर करते हैं। फलतः ये उनकी सामाजिक यातना, जेहालत और मजलूमिय की बेहद तल्खी से प्रस्तुत करते हैं। 'सदगति' कहानी का दुखी चमार घासीराम पंडित का बेगार करते-करते दम तोड़ देता है। पंडिताने के लोगों के आचरण पर क्रोध नहीं। समस्या बेगार के विरुद्ध विद्रोह की नहीं बल्कि चमार की लाश के पास होकर पानी भरने कैसे जाया जाये, इसकी है। इससे बढ़कर समस्या लाश से उठती दुर्गन्ध की है जिससे उसके आसपास रहनेवालों को मुश्किल हो रही है कि वे कैसे रहें। जब पंडिताइन लाश से उठती दुर्गन्ध का जिक्र करती हैं तब पंडित कहते हैं 'चमार था ससुरा कि नहीं। साध-असाध किसी का विचार है इन सबको।

लाश का अन्तिम क्रिया एक समस्या बन जाती है। गोंड चमरौना आकर कहता है, खबरदार मुर्दा उठाने नहीं जाना। अभी पुलिस की तहकीकात होगी, दिलग्गी है कि एक गरीब की जान ले ली। पंडित होंगे तो अपने घर के होंगे।''

प्रेमचंद इन पंक्तियों के मार्फत दलित के विरोध को परोक्ष रूप में रेखांकित करते हैं।

आखिरकार पंडित घासीराम को यह काम खुद करना पड़ता है। अभी कुछ-कुछ धुँधलका था। पंडितजी ने मुर्दे के पैर में फंदा डाला। फिर रस्सी को पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गाँव के बाहर ले गये। वहाँ से आकर तुरन्त स्नान किया, दुर्गा पाठ किया और घर में गंगाजल छिड़का।

पंडित जी और उनका समाज अपने कुकर्मों पर कभी ध्यान नहीं देता, उलटे उनपर मुग्ध होता है। प्रेमचंद इस कहानी में सवर्णों की अमानवीयता और शूद्रों की निरीहता एवं विवशता की ओर इशारा करते हुए स्वतः विद्रोह करने के लिए चिंगारी फेंकते हैं। साहित्यकार का दायित्व इससे बढ़कर दूसरा हो ही क्या सकता है ?

संदर्भ :

1. गोदान प्रेमचंद, पृ. 257
2. दलित समस्या की राजनीति, पृ. 124
3. दलित समस्या की राजनीति, ले. व्रजकुमार पांडेय।
4. प्रेमचन्द और उनका युग, पृ. 141.
5. हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ, पृ. 128.

बौद्ध-जैन धर्म में पर्यावरण चिंतन

डॉ० कुमारी स्मृति चन्द्र

माध्यमिक शिक्षिका, राजकीय जीवनी उच्च विद्यालय, पटोरी बाजार, समस्तीपुर

बुद्ध ने वृक्षों के संरक्षण पर बहुत बल दिया था। उन्होंने कहा था कि वृक्षों में भी जीवन है (जीव संञ्जिनो)[1]। वे मूर्ख लोग हैं, जो पेड़-पौधे को काटते हैं (मोधपुरिसा तालवरुणे छेदापेत्वा ताणेयंत)[2]। लोग नए ताड़ वृक्षों को काटकर उसके पत्तों से पादुकाएँ बनाते थे। उसे बुद्ध ने रोका और उसे दूषित कृत्य बतलाया, क्योंकि वृक्ष काटने से जीव की हिंसा होती है (जीव विहेठेन्ति)[3]। इस प्रकार बुद्ध ने वृक्ष में मानव के भाँति ही जीवन माना।[4]

पर्यावरण का अर्थ जलवायु, भूमि के साथ-साथ उन सभी अंत:संबंधों से लिया जाता है जो जलवायु, भूमि, मनुष्य, अन्य जीवित प्राणियों, वृक्षों और सूक्ष्म जीव जगत के बीच विद्यमान है। अत: यह सभी पर्यावरण को स्वस्थ रखता है। *'करणीमेत्त सुत्त'* में भगवान बुद्ध ने इस बात पर बल दिया है कि छोटे-बड़े, दीर्घ या महान, मध्यम या ह्रस्व, अणु के समान छोटे, दृष्ट अथवा अनुत्पन्न, दुरस्थ अथवा निकटस्थ, उत्पन्न अथवा अनुत्पन्न, सभी प्राणी सुखपूर्वक रहे, एक-दूसरे की वंचना ना करें, कभी किसी का अपमान न करें, मनुष्य सभी प्राणियों के प्रति उसी प्रकार करुणा एवं दया का भाव रखे जैसे एक माता अपने इकलौते पुत्र के कल्याण के लिए दया भावना रखती है।[5]

पशु-पक्षी और कीड़े-मकोड़े भी पर्यावरण और पारिस्थितिकीय का एक अभिन्न अंग है। *पाली त्रिपिटक* से यह स्पष्ट होता है कि भगवान बुद्ध ने पशु-पक्षियों का बराबर ध्यान रखा। वे विहार आदि बनाने में इस बात का बराबर ध्यान रखते थे कि उस स्थान पर किसी से हिंसा ना होने पाए। लोग सिंह, व्याघ्र और चीते को मारकर उसकी खाल को प्रयोग में लाते थे। उसका आसन बनाते थे। भगवान बुद्ध ने इन पशुओं के चर्म के प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया और उसके प्रयोग को दुष्कृत्य कहकर दंडनीय भी बतलाया।

सीहं चम्मं, व्यग्धचम्मं, दीपिचम्मं यो धारेय्य।

ञनापति दुक्कटस्सा।[6]

भगवान बुद्ध ने यह भी कहा कि यदि जंगल में भिक्षुओं की ध्यान-भावना से पशु-पक्षियों को कष्ट होता हो, तो वे उस स्थान से अन्यत्र चले जाएँ।[7] राजगृह के वेणुवन के **'कलंदकनिवाप विहार'** में गिलहरियों की अधिकता का उल्लेख मिलता है। जिन्हें नित्य-प्रतिदिन भोजन दिया जाता था।[8]

पारलेट्टाक वनखंड में विहार करते हुए बुद्ध ने वहाँ के पशु-पक्षियों से इतना अधिक सौहार्द बढ़ा लिया कि एक हाथी उन्हें सूँड से पानी लाकर पिलाता था।[9] बंदर ने उन्हें वैशाली में मधु प्रदान किया था।[10] नागों से बुद्ध का अटूट संबंध *विनय पिटक* में वर्णित है।[11]

जल जीवों की हिंसा का भी बुद्ध ने बराबर विरोध किया है। उन्हें मारना वे पाप मानते थे।[12] वे पानी ऐसी किसी भी वस्तु के डालने का निषेध मानते थे जिसके डालने से कीड़े-मकोड़े एवं वनस्पति नष्ट होते थे। चुल्लवग्ग में कीड़े-मकोड़ों (अपादुक), दो पैरोंवाले (द्विपादकों), चार पैरोंवाले चौपायों (चतुप्पदहि), बहुते पैरोवाले (बहुप्पदेही) आदि सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भावना करना बुद्ध ने बतलाया है और साथ में यह भी कहा कि यह सभी प्राणी उनसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं पाते।[13] साथ ही उन्होंने यह भी नियम बना दिया कि विहार ऐसे स्थान पर बनाए जाएँ जहाँ जीव पर हिंसा न हो साथ ही लोग आसानी से वहाँ पहुँच सके।

विनय पिटक में वन के लिए वन[14] और अरण्य[15] शब्द प्रयुक्त हुए हैं। विस्तत भूभागों में फैले हुए अरण्यों के भागों को वनखंड कहते हैं।[16] पर्यावरण में वनों का सदैव ही महत्त्व रहा है। वन्य पशु-पक्षियों के शरण-स्थल होने के साथ-साथ वन औषधियों के लिए भी उपयोगी थे। बहुमूल्य लकड़ी इन्हीं वनों से ही मिलती थी। गौतम बुद्ध का इन वनों से जीवनपर्यंत घनिष्ठ संबंध बना रहा। संसार में यदि कोई ऐसा पर्यावरण ज्ञानी महापुरुष हुआ है जिसका जन्म वन में हुआ हो, जिसकी साधना स्थली वन ही रही हो, जिसने अपने लोक सुखमय ज्ञान का प्रसारण भी वन से ही प्रारंभ किया हो और जीवन के अंतिम क्षण भी जिसने वन में ही बिताएँ हो तो वह भगवान गौतम बुद्ध ही थे।[17]

उनका जन्म लुंबिनी वन में हुआ। ज्ञान प्राप्ति निरंजन नदी के किनारे ऊरूवेला वन के पीपल वृक्ष के नीचे हुई। प्रथम धर्मोपदेश सारनाथ के मृगदाव वन में दिया और महापरिनिर्वाण कुशीनगर के शाल वन में हुआ था।[18]

बुद्ध सदैव ही वनोद्यान में ही ठहरते थे। चाहे वह राजगृह का वेणुवन या आम्रवन हो, चाहे वैशाली का आम्रवन हो या महावन हो अथवा श्रावस्ती का जैतवनराम अथवा कपिलवस्तु का न्यग्रोधाराम।

बौद्ध धर्म में 'धम्म' का आशय पवित्र एवं नैतिक नियमों का पालन एवं भगवान बद्ध की शिक्षाओं से है। इसके अंतर्गत प्रकृति के तत्त्वों के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाता है। बौद्ध-धर्म को पारिस्थितिकीय धर्म के रूप में जाना जाता है।

बुद्ध स्वयं पारिस्थितिकीय चेतना के प्रति जागरूक रहते थे। उन्होंने सरिपुत्र से एक स्थान पर स्वयं कहा कि भ्रमण के समय हमें स्पष्ट रूप से छोटे जीव-जंतुओं के विषय में सोचना चाहिए कि कहीं हम अनजाने में भी उन्हें हानि नहीं पहुँचाएँ। भगवान बुद्ध ने अपने अनुयायियों को यह उपदेश दिया था कि वह जल और घास को हानि ना पहुँचाएँ। इसके साथ-ही-साथ बौद्ध संन्यासियों को प्राकृतिक वनस्पति को काटने तथा कीटों से युक्त भूमि को खोदना मना था। बुद्ध ने बौद्ध भिक्षुओं को वनों की रक्षा करने का उपदेश दिया था।

पारिस्थितिकीय के मुख्यत: दो आयाम होते हैं-बाह्य एवं आंतरिक। बौद्ध धर्म में इन दोनों के मध्य संतुलन स्थापित किया गया है। आष्टांगिक मार्ग, पंचशील इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं। *विनय पिटक* में पारिस्थितिकीय चिंतन और सजीव एवं निर्जीव के मध्य संतुलन की बात की गई है तथा बाह्य एवं आंतरिक पर्यावरण की परस्पर निर्भरता को स्पष्ट किया है तथा अंग सुत्त में पर्यावरण को नैतिकता के साथ जोड़कर व्याख्यायित किया गया है।[19]

बौद्ध धर्म का उदय ही यज्ञों के विरोध में हुआ था जिसे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के रूप में देखा जाता था। अत: बौद्ध धर्म के मूल में ही प्राकृतिक तत्त्वों के संरक्षण का विचार था।

बौद्ध दर्शन के अनुसार प्रकृति दो धातुओं से निर्मित है-रूप धातु और अरूप धातु। रूप धातु के अंतर्गत पृथ्वी, आग, तेज और वन आते हैं। सभी प्रकार की भावनाएँ, विचार एवं चेतना अरूप धातु के रूप में जानी जाती हैं।[20] सभी सजीव वस्तुएँ इन्हीं दोनों तत्त्वों से निर्मित हैं। बौद्ध दर्शन के अनुसार किसी भी वस्तु को सजीव तभी मानते हैं जब उसका एक निश्चित आकार हो, उसमें जीवन हो और चेतना हो। इनमें से कोई भी लक्षण का अभाव उसे मृत बना देता है।[21] इस प्रकार बौद्ध दर्शन में उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर प्रकृति एवं मनुष्य में सामान्यताएँ हैं जो मनुष्य का प्रकृति के प्रति व्यवहार को नियंत्रित करती है।

बौद्ध धर्म में पर्यावरण को पूर्णतावादी एवं नैतिक रूप में व्याख्यायित किया जाता है।[22] यह उद्देश्य की शुद्धता और चरित्र की पवित्रता पर बल देता है। बौद्ध धर्म में प्रकृति को एक शिक्षक एवं आध्यात्मिक शक्ति और जीवन दर्शन के रूप में देखा गया है। प्रकृति से उतना ही लिया जाए जितनी आवश्यकता है (अपरिग्रह)।

बौद्ध धर्म में दोनों के संरक्षण पर बहत बल दिया गया है। जंगलों की निगरानी का काम वन संरक्षक का होता था जिसे वनपाल कहते थे। वन विभाग में वृक्षों के गुणों तथा उनके हर भाग के आर्थिक महत्त्व की विशेष जानकारी रखते थे।[23] बौद्ध धर्म में वृक्षों को काटने से मना किया गया है तथा वृक्षों की उपयोगिता को भी बताया गया है।[24] इसके अतिरिक्त *सुत्त पिटक* में लिखा है कि वृक्ष की टहनियों को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए।[25] पूर्वजन्म के सिद्धांत ने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और बौद्ध अनुयायी अपने दूसरे जन्म के लिए उन संसाधनों के संरक्षण की बात करने लगे।[26]

इस प्रकार बौद्ध धर्म की आत्मा में पर्यावरण के प्रति संरक्षण का भाव है। यह प्रकृति के साथ अनावश्यक दोहन और हस्तक्षेप का विरोधी है तथा प्रकृति को श्रेष्ठ मानकर उसके संरक्षण पर बल देनेवाला है।

जैन धर्म एवं पर्यावरण संरक्षण

जैनागमों में पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए अनेक सिद्धांतों का उपदेश दिया है। इन सिद्धांतों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि युग के प्रारंभ से ही जैन धर्म में मनुष्यों के साथ-साथ प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति भी कल्याणकारी दृष्टिकोण रखा गया है। जिन समस्याओं के प्रति हम आज जागरूक हुए हैं, उनके समाधान जैन धर्म ने हमें हजारों साल पहले प्रदान कर दिए थे। प्रकृति एवं पर्यावरण की रक्षा एवं उसके संतुलन के संबंध में जैन धर्म में जिन सिद्धांतों का उपदेश दिया गया है, वे वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं। पर्यावरण संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धांत-अवधारणाएँ जैन धर्म में निम्न प्रकार प्राप्त होती हैं –

पंचस्थावरों की मान्यता

पर्यावरण के मूल घटकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–जीव एवं अजीव। जिसमें जीवन एवं प्राण है वह जीव है, जिसमें जीवन एवं प्राण नहीं है वह अजीव है। जैन धर्म में इन्हें चेतन एवं अचेतन नाम दिया गया है। जिसमें आत्मा विद्यमान होता है उसे चेतन या जीवधारी माना गया है। जैन धर्म में स्पर्श, रसना, ध्राण, चक्ष एवं कर्ण इन पाँच इंद्रियों के आधार पर जीवों का विभाजन किया गया है। इनमें जिन जीवधारियों की केवल एक इंद्रिय से पाँच इंद्रियाँ अर्थात् स्पर्शन है, उन्हें स्थावर जीव माना गया है। शेष दो इंद्रियों से पाँच इंद्रियों वाले जीवों को त्रस कहा गया है। मनुष्य को पाँच इंद्रियोंवाला त्रस जीव माना गया है। स्थावर जीवा म पथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति जीवों की गणना की गई हैं।[27] इसका आशय यह है कि जैन धर्म पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति में भी जीवन स्वीकार करता है एवं यही पंच तत्त्व पर्यावरण के मूल घटक भी हैं।

इन स्थावरों को प्राण एवं चेतना से युगल मानने के कारण जैन धर्म यह भी मानता है कि इन्हें भी सुख एवं दु:ख की अनुभूति होती है क्योंकि सभी प्राणधारी सुख एवं दु:ख की अनभूति करते हैं, परंतु कुछ जीव उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर पाते हैं।

अनर्थदंड-विरतिव्रत

प्राकृतिक संसाधनो पर मनुष्य की निर्भरता आदिकाल से ही रही हैं इसलिए मनुष्य ने इनका दोहन प्रारंभ से ही किया है। जब तक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अन्य भाषा में किया जाता रहा तब तक प्रकृति में एक संतुलन बना रहा क्योंकि जीवन में होनेवाली क्षति-पूर्ति स्वयमेव हो जाती थी। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अत्यधिक मात्रा में होने से प्रकृति में एक असंतुलन पैदा होने लगा एवं इनके अभाव में जीवन के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। अत: जीवन की रक्षा के लिए प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों का सीमित उपयोग करने की शिक्षा जैन धर्म में दी गई है। जैन धर्म में बिना किसी प्रयोजन के किए जानेवाले कार्यों को अनर्थ बतलाकर उन्हें पाप क्रिया माना गया है।[28] बिना प्रयोजन भूमि खोदना, वृक्षादि को उखाड़ना, दूब आदि हरी घास को खोदना एवं रौंदना, पानी खींचना, फल-फूल, पत्रादि को तोड़ना, इन क्रियाओं को जैन धर्म में प्रमादचर्या नामक अनर्थदंड कहा है।

अहिंसा की सर्वव्यापकता

अहिंसा जैन धर्म का आधारभूत सिद्धांत है। जैन धर्म में अहिंसा की परिधि इतनी व्यापक है कि इसमें मनुष्य, पशु-पक्षियों के साथ-साथ संपूर्ण पर्यावरण भी समाहित है। अहिंसा धर्म की महानता का वर्णन करते हुए जैन धर्म में कहा गया है-"इस जगत् में अणु से छोटी दूसरी वस्तु नहीं है और आकाश से बड़ी कोई चीज नहीं है। इसी प्रकार अहिंसा व्रत से बड़ा कोई दूसरा व्रत नहीं है। यह अहिंसा सभी आश्रमों का हृदय है, सर्व शास्त्रों का मर्म है, और सभी व्रतों का सार है।''[30]

आध्यात्मिक दृष्टि से जैन धर्म में अहिंसा को संसार से मुक्ति का कारण माना गया है।[31] लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से अहिंसा के द्वारा पर्यावरण की भी रक्षा होती है। जैन धर्म में पर्यावरण के मूल तत्त्व जैसे जल, वायु, वनस्पति, भूमि, अग्नि को स्थावर जीवों की श्रेणी में रखा गया है एवं पारिस्थितिकी तंत्र के दूसरे जीव, जैसे - पशु, पक्षी, कीट-पतंग, सरीसृप एवं मनुष्यों को त्रस जीवों की श्रेणी में रखा गया है। जैन धर्म में स्थावर जीवों (जल-वायु) आदि की अनावश्यक हिंसा के निषेध के साथ ही पशु-पक्षी आदि त्रस जीवों को मारने का पूर्ण निषेध है।

जैन धर्म में पशु-पक्षियों के शिकार को महापाप कहा गया है एवं उन्हें व्यसन की श्रेणी में रखकर किसी भी सभ्य मनुष्य के लिए इसका पूर्ण निषेध किया गया है। इससे प्रकृति में पारिस्थितिक संतुलन बना रहेगा।[32]

जल गालन सिद्धांत

जल गालन अर्थात् पानी प्रयोग करने का सिद्धांत जैन धर्म का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। जल गालन युक्ति में जल प्रदूषण से मुक्ति का रहस्य छिपा हुआ है। जैन धर्म में पानी को कपड़े से छानने के बाद पीने एवं अन्य कार्यों में प्रयोग करने का निर्देश दिया गया है।[33] जैन धर्म में पानी छानने की सरल क्रिया भी अतिविशिष्ट मानी जाती है क्योंकि पानी छानने के बाद कपड़े के ऊपर बचनेवाले सूक्ष्म जीवों को उसी जलस्रोत में प्रवाहित किया जाता है, जहाँ से जल ग्रहण किया जाता है जिससे जल के उन सूक्ष्म जीवों की प्राण रक्षा हो सके। इसके अलावा इस छने हुए जल को पीने से हमारे स्वास्थ्य की रक्षा भी होती है। जल गालन विधि का जैन सिद्धांतों में निर्देश दिया है कि जल के स्रोत के एक सूक्ष्म जीवों को उसी दूसरे स्रोतों में नहीं छोड़ना चाहिए।[34] इस सिद्धांत से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में जैन विद्वान भी अपने विशेष ज्ञान के द्वारा इस तथ्य को समझते थे कि भिन्न-भिन्न स्रोतों के जल की रासायनिक गुणवत्ता भिन्न-भिन्न होती है, इस कारण एक जल स्रोत के जीव दूसरे जल स्रोत में जीवित नहीं रह सकते।

खरकर्म (हिंसक व्यवसाय) निषेध सिद्धांत

सामाजिक संरचना में व्यक्ति की आजीविका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रारंभिक काल में व्यक्ति की आजीविका का उद्देश्य स्वयं एवं परिवार के भरण-पोषण तक ही सीमित थी इसलिए जैनधर्मानुसार युग के प्रारंभ में भगवान ऋषभ देव (जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर) ने मनुष्यों को आजीविका हेतु असि, मगि, कृषि, विद्या, वाणिज्य एवं शिल्प की शिक्षा अपनी प्रजा को दी थी।[35] उन्होंने मनुष्य को प्रधान कर्म व्यवस्था का उपदेश दिया था। सामाजिक ढाँचे में मनुष्यों के एक-दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु असि, मसि, विद्या, वाणिज्य एवं शिल्प जैसे कार्यों को भी आजीविका का साधन बनाया लेकिन धीरे-धीरे मनुष्यों की प्रवृत्ति अपने अनिवार्य आवश्यकता से ऊपर उठकर धनार्जन एवं विलासी वस्तुओं की पूर्ति की ओर जाने लगी तब जीविका के साधन व्यावसायिक एवं औद्योगिक रूप में विकसित होने लगे, इसस मनष्य एवं प्रकृति के मध्य संतुलन बिगड़ने लगा।

अति भोगवादी प्रवृत्ति एवं असीमित आकांक्षाओं के कारण मनुष्य प्रकृति का तीव्र दोहन करके अपने अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है। इस अति भोगवादी एवं असीमित इच्छाओं की प्रवृत्ति को रोकने के लिए जैन धर्म में परिग्रहपरिमाणव्रत (इच्छा परिमाणव्रत) का उपदेश दिया गया है। इसके द्वारा मनुष्यों को निर्देश दिया गया है कि उन्हें अपनी वास्तविक आवश्यकताओं से अधिक अन्न, धन-वैभव, भूमि-भवन आदि का संचयन न करने का संकल्प ग्रहण करना चाहिए।[36] इस व्रत से जहाँ एक ओर प्रकृति एवं पर्यावरण का हित होगा वहीं दूसरी ओर प्रकृति के सीमित संसाधनों का लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग को समान रूप से प्राप्त हो सकेगा।

शाकाहार का सिद्धांत

जैन धर्म में आहार को शारीरिक शक्ति के साथ-साथ वैचारिक शक्ति का भी स्रोत माना गया है। मांसाहार के लिए पशु-पक्षियों, जलचर जीवों एवं अंडजों की हत्या करनी पड़ती है, इसलिए जैन धर्म में इसका पूर्ण निषेध है।[37] प्रकृति में वनस्पतियों एवं अनाजों में सभी पौष्टिक तत्त्व प्रदान किए गए हैं इसलिए यह मनुष्यों के लिए उपयुक्त आहार है। शाकाहार का सिद्धांत मानवीय एवं पर्यावरणीय दोनों दृष्टियों से उपयुक्त है एवं विश्व का खाद्यान्न संकट भी शाकाहार से ही दूर हो सकता है, क्योंकि एक किलोग्राम जंतु प्रोटीन (मांस) हेतु लगभग 8 किलोग्राम वनस्पति प्रोटीन की आवश्यकता होती है। यदि वनस्पति उत्पादों का सीधा प्रयोग किया जाए तो मांसाहार की तुलना में सात गुना अधिक व्यक्तियों को आहार मिल सकता है।[38]

सहअस्तित्त्व का सिद्धांत

जैन धर्म में सहअस्तित्व के सिद्धांत के माध्यम से अहिंसा के सिद्धांत की आधारशिला रखी गई है। जैन धर्म समस्त जीवों के अस्तित्व एवं विकास में आस्था रखता है। परस्पर में सभी जीवन एक-दूसरे के उपकारी है एवं एक-दूसरे के उपकार-प्रति-उपकार से ही उनके अस्तित्व की रक्षा होती है, यही जैन धर्म का सह-अस्तित्व का सिद्धांत है।[39] प्रकृति जैव-विविधता से परिपूर्ण है। यदि जीवों की इस विविधता में से एक भी प्राणी का पूर्ण विनाश होता है तो इसका प्रभाव सभी प्राणियों पर पड़ता है।

अम्प्रथिव्या:। अप्रसन्नों विनशाय प्रसन्न: सर्वसिद्धये।''[40] *यजुर्वेद* में निर्देश है कि भूमि की हिंसा न की जाए-*''पृथ्वी मातर्मा हिंसा मा अहं त्वाम्।''*[41] भारतीय परंपरा में पर्यावरण संरक्षण की दिशा में वृक्षों, वनस्पतियों, नदियों, सूर्य, चंद्र आदि को देवतुल्य माना गया है। *''औषधया वै पशुपति:''* अर्थात औषधियाँ शिव रूप हैं।[42] *शतपथ ब्राह्मण* में उल्लेख है कि वृक्ष, वनस्पतियाँ (औषधियाँ) पशुपति

अर्थात् शिव के रूप हैं, यह भगवान शिव का शिवत्व है, वे विष को पीते और अमृत प्रदान करते हैं। वृक्ष-वनस्पति शिव के रूप में है, ये कार्बन डाईऑक्साइड (Co_2) रूपी विष पीकर ऑक्सीजन (O_2) रूपी अमृत (प्राणवायु) देते हैं। यह इनका शिवरूप है। शिव का दूसरा रूप रुद्र है, यह संसार का नाशक है। यदि वृक्षों को काटा जाता है और प्रदूषण का नियंत्रण नहीं होता, विश्व का संहार अवश्यंभावी है।

संदर्भ सूचीः

1. *महावग्ग,* भिक्षु जे, कस्सप, पाली पब्लिकेशन, 1958 208/9
2. *महावग्ग,* भिक्षु जे, कस्सप, पाली पब्लिकेशन, 1958 208/9
3. *महावग्ग,* भिक्षु जे, कस्सप, पाली पब्लिकेशन, 1958 202/5
4. *महावग्ग,* भिक्षु जे, कस्सप, पाली पब्लिकेशन, 1958 202/7
5. *करणीमेत सुत्त गाथा* 4-76 आनंद बोधि प्रकाशन, श्रावस्ती, 1998
6. *महावग्ग,* 211/23
7. *विनय पिटक,* 178
8. *महावग्ग,* पृ 257
9. *महावग्ग,* पृ. 257
10. *विनय पिटक,* पृ 421
11. *विनय पिटक,* पृ. 62
12. *चुल्ल वग्ग,* पृ 198/18-25
13. *महवग्ग,* पृ. 389
14. *चुल्लवग्ग,* 321/18
15. *महावग्व,* 26/21
16. *राज राहुल,* बौद्ध पर्यावरण एवं सामाजिक जीवन, सम्यक प्रकाशन, 2009, पृ. 55
17. *विनय पिटक,* महाभाग, 1, 78
18. *सुत्त पिटक,* 149
19. *अंगसुत्त,* दीर्घनिकाय, 3, 84-93
20. Pandey K.C. (ed.), *Ecological Perspective in Buddhism,* 2008, Read Worth Publication, New Delhi, p. 44
21. वासुबन्धु अभिधम्मकोश, 249
22. Pandey K.C. (ed.), *Ecological Perspective in Buddhism,* 2008, Read Worth Publication, New Delhi, p. 44
23. *विनय पिटक,* 11.17
24. Chinta Karan, M. G. *Encyclopedia of Buddhism : A World Faith, Buddhism and Envirnmental,* Volume - iv, A.P.H., Publishing Corporation, New Delhi, 2000, p. 133
25. **सुत्त पिटक,** 296-297
26. वही, पृ. 178
27. **पृभित्यप्त जोवा युवनस्पतय,** आचार्य उमा स्वामी, तत्वार्थ सूत्र 13
28. स्वामिकुमार, का.नु 343
29. आचार्य अमृतचन्द, *पुरुषार्थसिद्ध्युपाय,* पृ. 142
30. आयार्य शिवकोटि, *भगवती अराधना,* 784-790
31. यन्मुक्तयंगमहिंसैय, पं आशाधर, सागारधर्मा, 4/11
32. पं. आशाधर सा. धर्मा, 2/17
33. पं. आशाधर सा. धर्मा, 3/18

34. पं. आशाधर सा. धर्मा, 3/18
35. आचार्य जिनसेन, *आदिपुराण,* 16/179-180
36. आचार्य ससंतभद्र, *रत्नकरण्डश्रावकाचार,* 61
37. आचार्य अमृतचन्द, *पुरुषार्थ सिद्धयुपाय,* 65-68
38. *इनवेंशन इन्टेलिजेंस,* फरवरी 95/पृ.73
39. परस्परोपग्रहोजीवानाम, आचार्य उमा स्वामी, तत्वार्थ सूत्र 5/21
40. *अथर्ववेद,* 12,1,26
41. *यजुर्वेद,* 10,23
42. *शतपथ ब्राह्मण,* 6,1,3,12

आरसी प्रसाद सिंह का काव्य सौंदर्य

विवेक चंद्र

प्राध्यापक, हिंदी विभाग, देवशरण वीमेन्स इवनिंग कॉलेज, सोहसराय, नालंदा

बिहार के कवियों में आरसी प्रसाद सिंह का ऊँचा स्थान है और वे प्रतिष्ठा एवं सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। माधुरी नामक साहित्यिक पत्र में इनकी रचनाएँ बहुत सम्मान के साथ छपती रही हैं। अपनी अंत:क्षमता एवं साहित्य-शक्ति के कारण इन्होंने छायावाद के तृतीय उत्थान के कवियों में ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है। इनकी कविताएँ, भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से उत्तम हैं। विभिन्न विषयों पर ये सुदंरता एवं सफलता के साथ लिखते आ रहे हैं। इनका प्रकृति वर्णन आकर्षक होता है। प्रकृति चित्रण में मानवीकरण शैली की प्रधानता है। राष्ट्रीयता और प्रगतिशील भावना भी इनकी कविताओं में वर्त्तमान है। इनकी काव्यगत विशेषताओं पर इन दृष्टियों से विचार किया जा सकता है – (क) प्रेम और वेदना (ख) राष्ट्रीय भावना (ग) प्रकृति प्रेम और (घ) प्रगतिशीलता।

(क) प्रेम और वेदना

आरसी प्रसाद सिंह मूलत: रसवादी कवि हैं। साहित्यिक वादों और आंदोलनों से अपने को आग्रहपूर्वक अलग रहकर काव्यसाध ना में लीन रहने वाले आरसी जी ने भारतीय लोक जीवन के नैतिक मूल्यों, आदर्शों, परंपराओं और काव्यगत संस्कारों को अभिव्यक्ति देने की चेष्टा की है। इनके काव्य में आदर्श और लोकोत्तर प्रेम की कल्पना नि:संदेह, रुढ़िवादिता की निशानी होकर भी अपने आपमें एक साहसपूर्ण प्रयास है। प्रबंधकाव्य नंददास का नायक नंददास लोकोत्तर प्रेम, उत्कट भक्ति की भावना और मानव मन की वासनाओं के उत्थान-पतन का प्रतीक है।

नंददास प्रेमदर्शन का काव्य है। वणिक वघू का सौंदर्य राधा का विराट सौंदर्य है और नंददास द्वारा अतृप्त भाव से उस सौंदर्य की अभिव्यक्ति इस प्रेमदर्शन के परिपोषक तत्व हैं। कवि की दृष्टि में प्रेम एक स्वर्गीय सुमन है जो धरती पर नहीं खिलता है। कवि का कथन है-

> प्रेम एक स्वर्गीय सुमन है,
> जो खिलता है नंदन वन में,
> प्रेम नहीं प्रण में मिलता है
> प्रेम हिमालय-सा निष्चल है,
> तुलसीदल सा यह पवित्र, गंगाजल है।[1]

स्पष्ट है, प्रेम का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रेम अविनाशी है, अमृत का सरोवर है, आनंद का पर्याय है।

प्रेम दर्शन के पूरक के रूप में कवि आत्मदर्शन का विश्लेषण करता है और इंद्रिय गोचर जगत् में सत्यं, शिवं, सुंदरम के रूप में प्रतिष्ठित सच्चिदानंद का दर्शन करता है। जगत् का सौंदर्य आत्मा के सौंदर्य का ही प्रतिबिंब है–

> आत्मा रूप है जगत, न कुछ भी आत्मशून्य है।
> जो है, सब चौतन्य, जीव-जड़, पाप-पुण्य है।
> आत्मा की सुंदरता से ही जंग भी सुंदर
> अंतर की सुंगधि ही देती निखिल जगत् भर।[2]

स्पष्ट है कवि आत्मदर्शन के सहारे ईश्वर दर्शन तक पहुँचता है और संपूर्ण विश्व के निर्माता परमात्मा कृष्ण को आत्मा की आँखों से देखने में ही जीवन की सार्थकता मानता है। लौकिक से अलौकिक प्रेम की ओर ध्यान आकर्षित करना कवि का अभीष्ट है।

(ख) राष्ट्रीय भावना -

आज हमारा देश स्वतंत्र है। फिर भी हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए प्रतिक्षण कटिबद्ध हैं। हमारे शत्रु हमारी राष्ट्रीय अखंडता को खंडित कर देना चाहते हैं। ऐसी परिस्थिति में अपने प्राचीन इतिहास से प्रेरणा लेकर कर्त्तव्य करने में ही हमारा कल्याण है। प्राचीनकाल में विलासिता के मद में चूर जब देवतागण दानवों को पराजित करने में असमर्थ थे, तब देवताओं के गुरू वृहस्पति के योग्यपुत्र कच अपनी जिंदगी को खतरे में डालकर राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीखकर आया। तत्पश्चात् संजीवनी विद्या के द्वारा देवताओं ने दानवों पर विजय प्राप्त की। इसका वर्णन आरसी प्रसाद सिंह ने अपने काव्य संजीवनी में की है। इस पौराणिक कथा के माध्यम से भारत की तत्कालीन अकर्मण्यता पर प्रहार कर उसे सतेज बनाने की कोशिश इन्होंने की है। कवि विशेष रूप से भारत के नवयुवकों का आह्वान करता है। स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाने के लिए हमें बहुत त्याग करना पड़ता है –

दीवानों को फागुन का हर मस्त महीना पड़ता है।
सिर को काट, हथेली पर धर जग में जीना पड़ता है।
आजादी के लिए बहाना लहू पसीना पड़ता है।
नीलकंठ को उग्र हलाहल विष भी पीना पड़ता है।[3]

नायककचसंजीवनी काव्य का नायक कच अपनी जाति और राष्ट्र को विजयी बनाने के लिए अपने जीवन को बलिदान करने से नहीं हिचकिचाता। कच के माध्यम से कवि का कथन है –

जन्मभूमि के लिए स्वर्ग सुख, जीवनदान करूँगा मैं।
सुर-सेवा के कारण अर्पण अपने प्राण करूँगा मैं।
ध्येय और पथ से मैं विचलित कभी नहीं होऊँगा।
जहाँ रहूँगा मैं स्वदेश का गौरव कभी न खोऊँगा।[4]

स्पष्ट है, बल, वीर्य, शौर्य, उत्साह आदि रचनात्मक सद्गुणों के साथ त्याग, निष्ठा, सत्य, प्रेम, सामूहिक इच्छा शक्ति की भावना को अपनाकर ही हम देश का नाम ऊँचा रख सकते हैं। आज की भाषा में संजीवनी विद्या की यदि इनकी सार्थकता सिद्ध हो जाय तो भारत अपने पुरातन युग के गौरवशाली इतिहास को प्राप्त कर संसार का पथ प्रदर्शक बन सकता है।

इतिहास में अनेक महापुरुषों का उल्लेख है। वे अपने राष्ट्र की सेवा करके, अपना जीवन बलिदान करके इतिहास पुरुष बन गये। ऐसे महापुरुषों में बाबू कुँअर सिंह का नाम महत्वपूर्ण है। स्वाधीनता संग्राम का गौरवपूर्ण इतिहास कुँअर सिंह की वीरता से मंडित होता है। कवि का कथन है –

श्वेत केष हो गये, किंतु मन अभी रंगा था,
रग-रग में अत्यंत जवानी उछल रही थी।
मुख पर वयः चिह्न थे अंकित, कुटिल काल के
किंतु रक्त में क्रांति भवानी उबल रही थी।[5]

बहादुर सैनिक अपना बलिदान देकर इतिहास के पन्नों में अपना नाम अंकित करते हैं। दुश्मन के सामने नहीं अपितु धरती माता के सम्मान में अपना मस्तक झुकाना ही इनके जीवन की सार्थकता होती है।

(ग) प्रकृति प्रेम

प्रकृति सौंदर्य ईश्वरीय सृष्टि की अलौकिक, अद्भुत, असीम एवं विलक्षण कला का समूह है। आरसी प्रसाद सिंह का प्रकृति-वर्णन सूक्ष्मतापूर्वक, चित्रात्मक और कलात्मक होता है। कवि का जीवन ही प्राकृतिक सौंदर्य की विविधता से भरा-पूरा यानी रुचियों और गुणों की सुखद संगति से क्रियाशील है। कवि इंद्रधनुष की सतरंगी आभा से प्रभावित है। कलापी काव्य संकलन की प्रारंभिक पंक्तियाँ इस संदर्भ में यहाँ प्रस्तुत है –

मेरा जीवन
इंद्रधनुष का कानन
सात रंग घुले प्राणों में उन्मद, उन्मन।
सुमनों का आकर्षण,
कुंज-कुंज में शिली मुखों का
पुंज-पुंज गुंजन।[6]

स्पष्ट है, इंद्रधनुष, अपने सात रंगों में सूर्य के बिंबों की प्राकृतिक रचना है, इसका प्रभाव कवि के जीवन पर विविध रूपों में पड़ता है। जीवन में रुचि रंगों के विकास क्रम में सुमनों का आर्कषण भी प्रगट होता है।

आरसी प्रसाद सिंह के प्रकृति चित्र मूक एवं जड़ आलंबन मात्र नहीं हैं बल्कि जीते-जागते, हँसते-बोलते और संजीवन, संजीव साकार जीवन साथी हैं। वे अपनी आत्मा के प्रतिबिंब है, अपनी चेतना के समय ही सुख-दु:ख के सहचर है। कवि का कथन है–

आज धान के खेतों में
यह किसके संकेतों से
उमड़ पड़ा सागर सौरभ का
अवनि-गगन को कर प्लावित
ओत-प्रोत अलि, जग-जीवन।[7]

जीवन और प्रकृति के बिखरे चित्र चाहे किसी संदर्भ में अंकित किये गये हों, इनमें मस्ती और आत्मीयता का स्वर गूँजता रहता है। कवि के संपूर्ण काव्य रूपी सरगम में प्रकृति का यह अनुराग मानो मूल स्वर के समान है। प्रकृति के प्रति पूर्ण तन्मयता के बाद कवि का ध्यान प्रेम, सौंदर्य और आनंद की ओर उन्मुख होता है।

(घ) प्रगतिशीलता-

आरसी प्रसाद सिंह की प्रगतिशील विचारधारा की स्पष्ट छाप इनकी कविताओं में प्रतिबिंबित है। इनकी काव्यकला में जीवंत तत्वों की प्रमुखता है। उदाहरण के रूप में 1940 के पूर्व लिखित जीवन का झरना शीर्षक कविता पर विचार किया जा सकता है जिसकी आज भी सार्थकता बनी हुई है। झरने की तरह ही हमारा जीवन है। प्रगति के पथ पर अनेक बाधाएँ आती हैं लेकिन दृढ़ निश्चयी व्यक्ति सदैव गतिशील रहता है। कवि का कथन है –

निर्झर कहता है बढ़े चलो, तुम पीछे मत देखो मुड़कर
यौवन कहता है बढ़े चलो, सोचो मत होगा क्या चलकर
चलना है केवल चलना है, जीवन चलता ही रहता है
मर जाना है रुक जाना ही निर्झर यह झरकर कहता है।[8]

स्पष्ट है, प्रकृति मानव को नैसर्गिक सत्य से अवगत कराती है और कर्मठता की प्रेरणा देती है। इसे अस्वीकार करना कठिन है। रुकना तो मृत्यु का घोतक ही। यह भी ध्यातव्य है कि जबतक मानव जीवित रहता है उसे कर्त्तव्य करना अनिवार्य होता है। युग और जीवन-समाज से कटकर वह अपना अस्तित्व समाप्त कर लेता है।

हिंदी साहित्य जगत् के एक विचारक डॉ0 धीरेंद्र नाथ मिश्र का कथन है कि आरसी के जीवन का झरना ही वस्तुत: सोने का झरना है जो स्वर्ण सदृश चमकता, जन-जन में संजीवनी झरता, इस जीवन संग्राम में मानव-दानव, आशा-निराशा, हर्ष-विवाद, उचित-अनुचित में सम्यक अंतर स्पष्ट करना इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के मूलपक्ष को उभारता है। कर्त्तव्यपरायणता और आशावादिता की परिधि में पड़ा मानव ही इस भवसागर में जीवन नैया को ठीक से किनारा लगा सकता है किंतु इसके विपरीत विवेकहीन, बुद्धिहीन एवं कर्त्तव्यहीन मानव इस वसुंधा पर भार-स्वरूप मात्र ही है और इस भवसागर में उसकी नाव की स्थिति ऐसी हो जाती है जिसका कोई और ठिकाना नहीं। आरसी प्रसाद सिंह अनास्था और कुंठा के इस युग में उत्साह, प्रेम एवं प्रेरणा देनेवाले

विशुद्ध साहित्य मनीषी हैं। बिहार सरकार ने दिनकर पुरस्कार से इन्हें सम्मानित करके इनकी साधना को सम्मानित किया है।

संदर्भ :–

(1) नंददास (काव्य, आरसी प्रसाद सिंह), द्वितीय सर्ग, पृ. 40
(2) नंददास (काव्य, आरसी प्रसाद सिंह), द्वितीय सर्ग, पृ. 42
(3) संजीवनी (काव्य, आरसी प्रसाद सिंह), पृ. 19
(4) संजीवनी (काव्य, आरसी प्रसाद सिंह), पृ. 29
(5) कुँअर सिंह (काव्य, आरसी प्रसाद सिंह), पृ. 04
(6) कालपी (काव्य, आरसी प्रसाद सिंह), प्रारंभिक पंक्तियाँ
(7) महाकवि आरसी अभिनंदन ग्रंथ, पृ. 159
(8) जीवन का झरना (कविता), पृ. 20

दलित समस्या पर गाँधी और अम्बेडकर के बीच मतभेद के बिन्दु

डॉ० नरेन्द्र राज

सामाजिक विज्ञान, एम. जे. के. राजकीय कन्या इन्टर कॉलेज, मोतिहारी (पूर्वी चम्पारण)

सन् 1936 ई. में जाति-पाति तोड़क मंडल के सभापति पद से बोलने के लिये अम्बेडकर ने जिस भाषण को तैयार किया था, उसे जाति-भेद का उच्छेद शीर्षक से स्वयं छपवाया, उस पर गाँधी द्वारा की गई टिप्पणी अम्बेडकर तथा गाँधी के विचारों से जो मूल प्रश्न लेकर अपनी असहमति टिप्पणी दी, वे थे :-

1. धर्म-ग्रंथ क्या है ?
2. क्या जो ग्रन्थ छपे हैं, वे सम्पूर्ण मूल-ग्रंथ समझे जाते हैं, अथवा उनका कोई भाग अप्रमाणिक क्षेपकों की भाँति अस्वीकार किया जा सकता है ?
3. ऐसे मान्य एवं स्वीकृति के विशुद्ध धर्म-ग्रन्थों का अस्पृश्यता, जातिभेद, असमानता, असहयोग और असवर्ण या अन्तर्जातीय विवाहों के संबंध में क्या उत्तर है ?''[1]

इन प्रश्नों के प्रसंग में गाँधी के विचारों को अगर ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाय तो वे इस प्रकार हैं :-

वेद, उपनिषद, सूत्र और पुराण, जिनमें रामायण और महाभारत भी सम्मिलित हैं, धर्मशास्त्र कहलाते हैं। यह कोई पूरी सूची नहीं है। प्रत्येक युग या वंश ने इस सूची में अभिवृद्धि की है। इसलिए यह मानना चाहिए कि प्रत्येक छपा हुआ अथवा प्राप्त हस्तलिपि लेख धर्मग्रंथ नहीं होता। उदाहरण के लिए, स्मृतियों में बहुत कुछ है, परन्तु यह सब कभी भी ईश्वर की वाणी नहीं माना जा सकता। इस तरह बहुत से वचन, जिन्हें डा. अम्बेडकर ने स्मृतियों से उद्धृत किया है, प्रमाण नहीं माने जा सकते। धर्मग्रन्थ, विशेषत: वही कहलाते हैं, जो अविनाशी सत्य से संबंधित हैं तथा जो किसी के हृदय को परिवर्तित कर देते हैं, किसी ऐसे हृदय को जिसकी समझ की आँखें खुली हुई हैं। ऐसी भी चीज ईश्वर की वाणी के रूप में नहीं मानी जा सकती, जो तर्क की कसौटी पर कसी नहीं जा सकती अथवा जिसकी धार्मिक अनुभूति नहीं हो सकती, और जब आपको इन धर्म ग्रन्थों का कोई विशुद्ध संस्करण मिल जाता है, तब आपको उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता होगी। सर्वोत्तम व्याख्याकार कौन है ? निश्चय ही कोई विद्वान नहीं हो सकता। विद्वता अवश्य होनी चाहिए। लेकिन धर्म उसके साथ नहीं रह सकता। धर्म रहता है संतों और सिद्धों की अनुभूतियों में, उनके जीवन और उनकी वाणियों में। जब धर्मग्रन्थों के सभी चोटी के विद्वान टीकाकार पूर्ण रूप से भूला दिये जाते हैं, तब साधु-संतों का संचय किया हुआ अनुभव स्थिर रहता है और आनेवाले युगों के लिए ईश्वरीय प्रेरणा होता है।

धर्म के साथ जाति का कोई प्रयोजन नहीं है। जाति एक रिवाज है, जिसकी उत्पत्ति मैं नहीं जानता और अपनी आध्यात्मिक भूख की तुष्टि के लिए बनाने की आवश्यकता भी नहीं है। किन्तु मैं यह जानता हूँ कि यह आत्मिक और राष्ट्रीय दोनों की उन्नति के लिए हानिकारक है। वर्ण और आश्रम संस्थाएँ हैं, जिन्हें जातियों के साथ कुछ करना नहीं है। वर्ण-व्यवस्था हमें सीखाती है कि हममें से प्रत्येक को अपनी खानदानी पेशे के द्वारा अपनी रोजी कमाना चाहिए। यह हमारे अधिकारों की नहीं, वरन् हमारे कर्तव्यों की परिभाषा करती है। यह आवश्यक रूप से उन व्यवसायों का हवाला देती है, जो मानवता के कल्याण की वृद्धि करने वाले हैं, इसके सिवा कुछ नहीं। यह भी बतलाती है कि न कोई व्यवसाय बहुत नीचा है और न बहुत ऊँचा। सभी अच्छे हैं, सभी वैधानिक हैं और सभी प्रतिष्ठा में बिल्कुल समान हैं। एक ब्राह्मण का व्यवसाय, एक धर्मोपदेशक का व्यवसाय तथा एक भंगी का व्यवसाय सब बराबर है और उनके निर्धारित कर्म ईश्वर के सामने समान महत्व के हैं और एक बार में मनुष्य के आगे एक ही प्रकार का पुरस्कार ले

जाते हुए देखे जाते हैं। दोनों अपनी-अपनी जीविका प्राप्त करने के अधिकारी होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। गाँवों में अब भी इस व्यवस्था की स्वस्थ परंपरा की धुँधली लकीर कहीं-कहीं देखी जाती है। बहुत से गाँव में छः सौ आबादी के साथ रहते हुए विभिन्न व्यवसायियों के बीच, जिनमें ब्राह्मण भी हैं, में अधिक असमानता नहीं पाता। इन पतन के दिनों में भी ऐसे सच्चे ब्राह्मण पाये जाते हैं, जो उस भिक्षा पर जीवन-यापन करते हैं, जो स्वतंत्रतापूर्वक उनलोगों को दी जाती है, और वे योग्यतापूर्वक धर्मोपदेश करते हैं। मानव जीवन में वर्ण-व्यवस्था विधान के बिगड़े हुए रूप को देखकर वर्ण-व्यवस्था के सिद्धांत का निर्णय करना गलत और अनुचित होगा, क्योंकि मनुष्य प्रायः उसके सिद्धांत की त्रुटियों को अपनाते हैं। किसी वर्ण द्वारा अपने वर्ण के दूसरे वर्ण से उत्तम होने का अभिमान करना इसके विधान का विरोध करना है, और वर्ण-व्यवस्था के विधान में अस्पृश्यता की बात को प्रमाणित करने के लिए कुछ नहीं है। हिन्दू धर्म का सार तत्व इस विज्ञापन में निहित है कि वह एक है और केवल ईश्वर ही सत्य है और इसकी वीरतापूर्ण स्वीकृति है मानव परिवार में अहिंसा के नियम।

मैं जानता हूँ कि मेरी हिन्दू धर्म की इस व्याख्या पर डॉ. अम्बेडकर को छोड़कर बहुत लोग आपत्ति करेंगे। किन्तु उसका मेरी परिस्थिति पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। यही एक व्याख्या है जिसके द्वारा मैं लगभग आधी शताब्दी से जीवित रह चुका हूँ, और इसी के अनुसार मैं अपने जीवन को संयमित रखने के लिए पूरी योग्यता से प्रयत्न कर चुका हूँ।

मेरे विचार में डॉ. अम्बेडकर ने अपने भाषण में जो गहरी भूल की है, वह है संदिग्ध प्रमाणों का चयन करना, तथा अपमानित हिन्दू अपनी व्यवस्था का जो वर्णन शोकपूर्ण भाव से करते हैं, वह विश्वास के अनुरूप नहीं है, उसे मिथ्या रूप में पेश किया गया है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा कसौटी पर कसने से प्रायः प्रत्येक प्रचलित विश्वास खोटा निकलेगा।

अपने योग्यतापूर्ण भाषण में विद्वान अम्बेडकर ने मामले को बहुत बढ़ाकर सिद्ध किया है। क्या एक धर्म जो चैतन्य, ज्ञानदेव, तुका राम, रामकृष्ण परमहंस, राजा राम मोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, विवेकानन्द और दूसरे महामानवों द्वारा अपनाया गया है, इतनी आसानी से इतना महत्व-शून्य बतलाया जा सकता है, जैसे कि डॉ. अम्बेडकर के व्याख्यान में समझाया गया है। कोई भी ध र्म उसके सबसे खराब नमूनों की कसौटी पर कस कर नहीं जाँचा जा सकता, अपितु उसके सबसे अच्छे नमूनों की कसौटी पर कसने से जाँचा जा सकता है। यदि उसे समुन्नत नहीं बनाना है, तभी केवल उसके सबसे खराब नमूनों को कसौटी पर कसकर पेश किया जा सकता है।

गाँधी की उपर्युक्त स्थापना का अम्बेडकर ही नहीं, जात-पात तोड़क मंडल लाहौर के श्री शांताराम जी ने प्रायः अनुपयोगी एवं काल्पनिक चीज करार दिया। उन्होंने लिखा – ''इसके अतिरिक्त मैं आपकी सूचना में यह बात लाना चाहता हूँ कि आपका वर्ण और जाति के बीच का दार्शनिक अन्तर इतना सूक्ष्म है कि यह सामान्य रूप से जनता द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। क्योंकि हिन्दू समाज के सभी व्यावहारिक कामों में जाति और वर्ण एक हैं और एक ही चीज है, क्योंकि दोनों के उत्सव एक और एक ही चीज होता है, दोनों ही अन्तरजातीय विवाह और अन्तरजातीय भोज को रोकते हैं। आपका वर्ण-व्यवस्था का सिद्धांत इस युग में अव्यावहारिक है और निकट भविष्य में इसके पुनर्जीवन की आशा भी नहीं है। क्योंकि हिन्दू लोग जाति के गुलाम हैं और उसे मिटाना नहीं चाहते। इसलिये जब आप अपने आदर्श या काल्पनिक वर्ण की वकालत करते हैं, तो वे यही पाते हैं कि जाति से चिपके रहना ही ठीक है। इस प्रकार आप वर्ण के विभाजन की काल्पनिक उपयोगिता की वकालत करके समाज-सुधार का एक बड़ा अनहित कर रहे हैं, क्योंकि यह हमलोगों के मार्ग में एक रोड़ा उपस्थित करता है। वर्ण-व्यवस्था के मूल को उखाड़े बिना अस्पृश्यता का अन्त करने का प्रयास रोग के केवल बाहरी लक्षणों का इलाज करना है अथवा पानी की सतह पर लकीर खींचना है, क्योंकि उसके हृदय में द्विज लोग, जो वर्ण-व्यवस्था के हृदय हैं, कथित अछूत शूद्रों को सामाजिक समता देना नहीं चाहते। अतः वे जाति तोड़ने से इंकार करते हैं और अस्पृश्यता मिटाने के लिए निःस्वार्थ दान देना नहीं चाहते। वे सिर्फ परिणाम से बचे रहना चाहते हैं। अस्पृश्यता और जाति मिटाने के लिए शास्त्रों को सहायता खोजना केवल कीचड़ को धोने के सिवा और कुछ नहीं है।''[2]

श्री शांताराम शास्त्रों को कीचड़ मानते हैं। किन्तु डॉ. अम्बेडकर ने, जहाँ तक मुझे स्मरण हैं, अपने भाषण में शास्त्रों को ऐसा कोई विलक्षण नाम नहीं दिया है। मेरा यह निश्चित मत होता है जब मैं कह देता हूँ कि यदि शास्त्र वर्तमान छुआछूत का समर्थन करते हैं, तो मैं अपने आपको हिन्दू कहना छोड़ दूँगा। इसी तरह, यदि शास्त्र जाति का समर्थन करते हैं, जैसा कि हमलोग आज उसकी सारी भयानकता को जानते हैं, तो मैं अपने आपको न हिन्दू कह सकता हूँ और न हिन्दू रह सकता हूँ, क्योंकि मुझे अन्तरजातीय विवाह और अन्तरजातीय सहभोज से संबंधित होने में कोई संदेह नहीं है। मुझे शास्त्रों तथा उनकी व्याख्या से संबंधि

त होने में कोई संदेह नहीं है। मुझे शास्त्रों तथा उनकी व्याख्या के संबंध में अपनी परिस्थिति को दोहराने की आवश्यकता नहीं। मैं श्री शांतराम से सहमत होने की हिम्मत करता हूँ, क्योंकि यही केवल एक बौद्धिक और ठीक एवं नैतिक सुरक्षा योग्य स्थिति है, और हिन्दू-पुराणों में इसके ढेरों प्रमाण मौजूद है।''[3]

मगर अम्बेडकर की राय में गाँधी ने उनके द्वारा उठाये प्रश्नों को छुआ तक नहीं। अम्बेडकर गाँधी की टिप्पणी का जवाब देते हुए कहते हैं कि – किन्तु मैंने अपने भाषण में जिन मुख्य बातों को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, वे इस प्रकार हैं[4] :-

1. जाति भेद हिन्दुओं के विनाश का उत्तरदायी है।
2. हिन्दू समाज का पुनर्गठन चार वर्णो के आधार पर करना संभव नहीं है। क्योंकि यह ठीक एक छिद्र-युक्त वर्त्तन या दूसरे के कंधे पर चढ़कर बंदूक चलाने वाले उस मनुष्य के समान है जो अपने ही अवगुणों से अपने को संभालने में असमर्थ है । वर्ण-व्यवस्था में यह प्रवृत्ति पायी जाती है कि इसे यदि यों ही छोड़ दिया जाय और वर्ण उल्लंघन करने वाले के विरुद्ध कानूनी व्यवस्था न हो, तो वर्ण-विभाजन बदलकर जाति-विभाजन का रूप धारण कर लेगा।
3. हिन्दू समाज का पुनर्गठन चार वर्णो के आधार पर करना अहितकर है। वर्ण-व्यवस्था में हर व्यक्ति को विद्या का अधिकार न होने से उसकी अधोगत होती है। दूसरे हर व्यक्ति को अस्त्र-शस्त्र धारण करने का अधिकार न देने से वह वीरत्व हीन बन जाता है।
4. हिन्दू समाज की स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के आधार पर बनी धार्मिक भावना के सहारे फिर से संगठित करना चाहिये।
5. इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये वर्ण-व्यवस्था और जाति-भेद के कारण जो धार्मिक बंधन है उन्हें समाप्त कर देना चाहिये।
6. वर्ण और जाति-भेद का बंधन समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि शास्त्रों की भगवत्-वाक्य मानना छोड़ दिया जाय।

इन बातों को ध्यान में रखने से पाठक समझ सकेंगे कि महात्मा जी के उठाये गये सब प्रश्न अप्रांसगिक हैं और इससे यह स्पष्ट होता है कि मेरे भाषण की जो मुख्य उक्तियाँ हैं, उनको उन्होंने छुआ तक नहीं।[5]

वास्तविकता यह है कि दलित-समस्या के प्रति गाँधी तथा अम्बेडकर के दृष्टिकोणों में बुनियादी दार्शनिक मतान्तर है, गाँधी एक सनातनी हिन्दू की तरह देखते हैं, तो अम्बेडकर एक विद्रोही हिन्दू, जो अपने भाषण को हिन्दू की हैसियत से अंतिम कहते हैं, की तरह। अत: दोनों का दृष्टिकोण किसी-न-किसी दबाव के तहत निर्मित एकांगी दृष्टिकोण है।

गाँधी और अम्बेडकर के बीच के मतभेद के इन बिन्दुओं को भी देखें :

गाँधी की दृष्टि में असली समस्या अस्पृश्यता की कुरीति थी। बाबा साहेब की दृष्टि में असली समस्या जाति व्यवस्था थी। गाँधीजी इसे हिन्दू समाज की एक बीमारी की तरह देखते थे। बाबासाहेब के अनुसार यह हिन्दू समाज की बुनावट का स्वाभाविक परिणाम था। समस्या के समाधान के लिए गाँधीजी समाज सुधार और धार्मिक की राह अपनाना चाहते थे। बाबासाहेब संवैधानिक अधिकार और राजनीतिक संघर्ष में यकीन करते थे। गाँधीजी सवर्ण हिन्दू समाज की आत्मशुद्धि चाहते थे।

गाँधी-अम्बेडकर द्वंद्व एक ऐतिहासिक अनिवार्यता थी। अगर इस कड़वी हकीकत से मुंह चुराना गलत है, तो इसे पूरा सच मान लेना भी एक ऐतिहासिक भूल होगी। सच से साक्षात्कार करने का दूसरा अनिवार्य कदम यह स्वीकारोक्ति होगी कि गाँधीजी और बाबासाहेब अम्बेडकर दोनों का वैचारिक विकास 1932 में रुक नहीं गया था। इन युगपुरुषों के द्वंद्व ने दोनों की सोच को बुनियादी रूप से बदला। शायद दोनों ने अपने-अपने तरीके से एक दूसरे से सीखा। सच के इस पहलू से इंकार करना गाँधी बनाम अम्बेडकर की राजनीति करनेवालों की मजबूरी है, लेकिन इस पहलू को उजागर करना परिवर्तन की राजनीति की ऐतिहासिक मांग है। 'हरिजन' समाज को हिन्दू समाज से अलग मतदाता समूह मानने के अपने विरोध पर गाँधीजी टस से मस नहीं हुए। लेकिन जाति व्यवस्था के बुनियादी सवाल पर गाँधी की राय बिल्कुल बदल गयी। पूना करार के बाद के दशक में गाँधीजी ने वर्णाश्रम व्यवस्था के पक्ष में बोलना बंद कर दिया। एक जमाने में अंतर्जातीय भोज को आजादी के आन्दोलन का अंग न माननेवाले और अंतर्जातीय विवाह का विरोध करनेवाले गाँधीजी इन दोनों के हिमायती बन गये। गाँधीजी ने संकल्प लिया कि वे केवल 'हरिजन' और 'गैर हरिजन'' वर-वधू की शादी में ही शामिल होंगे। जाति-व्यवस्था के उन्मूलन की बात किये बिना गाँधीजी इस व्यवस्था पर प्रहार करने के लिए तैयार हो गये थे। उधर बाबासाहेब की राजनीति में भी कुछ बदलाव आये। पृथक मतदान की मांग को छोड़े बिना उन्होंने इस मांग

को दोहराना बंद कर दिया। संविधान का मसौदा बनाते समय बाबासाहेब ने न तो पृथक मतदान का प्रावधान किया न ही इसके बाद बाबासाहेब की राजनीति में अपने विरोधियों से संवाद और समन्वय की प्रवृत्ति बढ़ी जिसके चलते उन्होंने संविधान सभा और आजाद भारत के पहले मंत्रिमंडल में महती भूमिका निभायी। बेशक महात्मा और बाबासाहेब का यह संवाद अधूरा था, अविश्वास और गलतफहमियों से भरा था। उनके अपने जीवनकाल में फल-फूल नहीं सका, शायद संभव भी नहीं था। लेकिन आज इतिहास एक बार फिर इस संवाद की संभावना खोल रहा है। गाँधी और अम्बेडकर के भक्तों को युगपुरुषों के विचारों से प्रेरणा लेना चाहती है, जो आज भी 1932 में अटकी हुई नहीं है। बल्कि भविष्य देख रही है।

अछूतों के प्रति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दृष्टिकोण के प्रति अम्बेडकरः

अछूतों के प्रति गाँधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस के दृष्टिकोण की अम्बेडकर न सिर्फ आलोचना करते हैं, बल्कि उसे एक धूर्त की चाल समझते हैं। कांग्रेस के सुधार कार्यक्रमों की आलोचना करते हुए उनका कहना है कि वे आर्य थे यह समझाने के लिये कि अगर तुम्हारा उद्धार हो सकता है तो सिर्फ एक ही तरीका है, वह यह कि तुम अपने को हिन्दू के सिवा कुछ न बताओ। आदमी अपने को अछूत बनाता है। अगर तुम अपने को हिन्दू ही घोषित कर दोगे, तो अस्पृश्यता अपने आप मिट जायेगी। इसमें हिन्दुओं की संख्या बढ़ेगी। इस कूटनीतिक चाल को बेचारे भोले-भाले अछूत क्या समझते। वे समझने लगे कि उनके उद्धार के द्वार खुले। अब वे तरक्की की राह पर चलेंगे, अब वे भी इन्सान कहलायेंगे।

कांग्रेस की इस नीति की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि इससे उनके दो काम सिद्ध हुए। पहला यह कि अछूत का नाम अखबारी दुनिया से मिट जाने से ब्राह्मण धर्म को सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म बताने का उन्हें मौका मिला, दूसरा यह कि अछूत के नाम मिटाने से वे जो सरकारी नौकरियों के हकदार थे और वे जो भारत की धरती के असली मालिक होने का दम भरते और दावा कर रहे थे, वे सब हिन्दू के पेट में समा गये, और उनका प्रभुत्व वैसे का वैसा अक्षुण्ण बना रहा। आबादी के ख्याल से ब्राह्मण-बनिया तीन या चार प्रतिशत होते हुए भी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मामलों में अग्रगण्य ही बने रहे। यही काम था जिसके लिये इन सुधारकों का जन्म हुआ था।

गाँधीवादी हृदय-परिवर्तन के सिद्धांत के प्रति अम्बेडकर की आलोचना है कि पीढ़ियों पुरानी इस दलित-समस्या का निदान अगर नहीं हो सका तो आज कैसे होगा ? राज सत्ता की प्राप्ति के ही बाद अगर कांग्रेस दलित-समस्या का हल कर सकती है तो अछूत कैसे समझें कि बिना उनके हाथों राज-सत्ता आये उनका अस्पृश्यता दूर होगी ? सवर्ण हिन्दुओं को अम्बेडकर अंग्रेजों से भी ज्यादा हानिकारक अछूतों के लिए मानते हैं, क्योंकि किसी अंग्रेज ने अछूतों के साथ कभी दुर्व्यवहार नहीं किया, उनकी जीविका से उन्हें कभी वंचित नहीं किया गया तथा उनके अधिकारों पर कभी पाबंदी नहीं लगाई। ऐसी अवधारणा के पीछे जो निहित स्वार्थ काम कर रहा था, उसका आकलन यह नहीं बताता की अंग्रेजों का व्यवहार अछूतों के प्रति सहृदयता पूर्वक था। वास्तविकता यही है कि साम्राज्यवादी शासन में विकास की नीतियों ने भारतीय समाज में आर्थिक-सामाजिक अन्तर्विरोध को ज्यादा तीव्र किया, जिसे अम्बेडकर नजरअंदाज करते हैं।

वास्तव में दलित-समस्या, समस्या के प्रति अम्बेडकर का दृष्टिकोण, सदियों से उत्पीड़ित अछूतों की दुर्दशा के कारण तथा उनके जीवन के स्वयं के अनुभव-जन्य कारणों से उत्पन्न प्रतिक्रिया का परिणाम है, जिससे वे हमेशा सवर्णों के प्रति उग्र रहे। दूसरी तरफ सवर्ण-हिन्दुओं, जिनमें गाँधी का नाम विशेष उल्लेखनीय है, द्वारा अपनाये गये सुधार कार्यक्रमों की असफलता ने उनके चिंतन को और ज्यादा उग्र बना दिया। गाँधी ने जिस हरिजन सेवक संघ की स्थापना की, उसके कर्त्ता प्रायः सवर्ण लोग रहे और उन्होंने दलित आन्दोलन को मंदिर-प्रवेश जैसे कर्मकांड में बदल दिया। पूना समझौते के अन्तर्गत दलितों की विशेष सुविधाओं (आरक्षणों) को स्वीकार किया गया, लेकिन ईमानदारी के साथ उसे लागू नहीं किया गया। ध्यान देने वाली बात है कि गाँधीजी आरक्षणों की व्यवस्था को केवल पाँच साल के लिए रखना चाहते थे, किन्तु कांग्रेस के अन्य नेताओं के अनुरोध पर इस अवधि को दस साल करने के लिए तैयार हुए थे। गाँधीजी की शर्त थी कि इस अवधि में छुआछूत को हिन्दू समाज से खत्म किया जाय और दलितों को सवर्णों के बराबर सम्मान दिया जाय। गाँधी जी की यह शर्त बहुत क्रांतिकारी थी, लेकिन उसे मानता कौन ?

भारतीय संविधान का मूल उद्देश्य समतामूलक समाज का निर्माण है। संविधान में समता के विभिन्न पहलुओं का विस्तार से उल्लेख करने के बाद निर्देशक सिद्धांतों में कहा गया कि जो सदियों से पिछड़े हुए हैं, उन्हें विशेष अवसर देकर बराबरी में लाये बिना समता का सपना पूरा नहीं होगा।

मगर सामाजिक व्यवस्था में राज्य के अवयव किस तरह वर्गीय स्वार्थों का संरक्षण करते हैं, इसका उदाहरण 1951 में ही प्रकट हो गया। सन् 1951 में संपकम् दोराइ राजन के केस में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया कि विशेष अवसरों की व्यवस्था समान अवसरों के सिद्धान्त के विरुद्ध है। अत: गैर-कानूनी है। इसके परिणामस्वरुप संविधान की 15 और 16 धारा में संशोधन करना पड़ा।

न्यायालयों के फैसलों का अध्ययन बताता है कि उनके फैसले वर्ग-आधारित रहे हैं, संविधान निहित वर्गों के पक्ष में है। जमीन्दारी कानून की न्यायालयों के हाथों में जो दुर्गति हुई, सर्वविदित है। सम्पत्ति और यथास्थिति के हक में इतने फैसले हुए हैं कि न्यायालयों से आस्था ही उठने लगी है। सम्पकम् दोराइ राजन के केस के बाद और संविधान में संशोधन होने के बाद भी, आरक्षणों का मामला बार-बार न्यायालयों के सम्मुख आता रहा है, लेकिन न्यायालयों ने भ्रांतियों को दूर करने के बजाय और भ्रांतियां पैदा कर दीं, जिनके कारण आज कुछ सवर्ण जातियाँ आरक्षण-विरोधी आन्दोलन चलाने का दुस्साहस करती रही है। और सबसे दुखद बात यह है कि यह सारा काम उस संविधान के तहत होता है, जिसके निर्माता अम्बेडकर ही थे। वास्तविकता यही है कि अछूतों की दुर्दशा का मूल कारण संम्पत्तिवान वर्ग के द्वारा उनके शोषण की प्रक्रिया को बनाये रखने के कारण हुआ, न कि उच्च और नीच जाति के कारण। भारत में सम्पत्ति का संचय इत्तफाक से ऊँची जातियों के हाथों में है और समता का उद्देश्य सम्पत्ति के अधिकारों तथा संयम बरतने सम्बन्धी व्यवस्थाओं को समाप्त कर ही किया जा सकता है। डॉ. अम्बेडकर ने इसे नहीं देखा और सतही तौर पर जाति में इसका समाधान ढूंढते रहे और असफल हो गये।

संदर्भ :-

1. हरिजन, 15 अगस्त 1936 ।
2. उपरोद्धृत।
3. उपरोद्धृत।
4. पूर्ण विवरण के लिये देखा जा सकता है :- डॉ. अम्बेडकर, जाति-भेद का उच्छेद, पृ. 113-132 ।
5. वही।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में हिन्दी रंगचेतना का विकास

डॉ० राजगीर साहु

नर नारायण सिन्हा + 2 विद्यालय, मंसूरचक, बेगूसराय

'अभिनय' का अर्थ ही है सम्मुख ले जाना। जिन प्रक्रियाओं द्वारा नाटक के आशय का प्रेषण अथवा प्रत्यक्षीकरण सामाजिकों के सम्मुख होता है उसे अभिनय कहा जाता है। संस्कृत-साहित्य में अभिनय की परिभाषा यों दी गयी है-'अभिनयति हृद्‌गत भावान् प्रकाशयते।'

मन के क्रोधादि भाव को प्रकट करनेवाली आंगिक चेष्टाओं द्वारा किसी विषय अथवा व्यक्ति का प्रकृत अनुकरण करके प्रदर्शित करने को अभिनय कहते हैं। किन्तु अभिनय में बाह्य कार्य प्रदर्शित करना उतना अभिप्रेत नहीं होता, प्रत्युत् प्रकृत मन का भाव व्यक्त करना ही इसका प्रधान उद्देश्य होता है। 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार अभिनय चार प्रकार से सम्पन्न किया जाता है - आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक।

भरतमुनि के अनुसार अभिनेय नाटक के विशेष गुण ये हैं – जिस नाटक की पद-रचना मृदुल और ललित हो, उसमें गूढ़ शब्दों का अभाव हो, जो सामाजिक को बोधगम्य हो सके, जिसमें युक्ति के साथ नृत्य-संगीत का नियोजन हो। विविध रसों का समावेश हो और कथावस्तु संधि समन्वित हो, वह अवश्य ही प्रेक्षकों को रमणीय प्रतीत होगा।

> ''मृदुललित - पदाढ्यंगूढ शब्दार्थ हीनं,
> जनपदसुख बोध्य युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।
> बहुकृत रसमार्ग संधि सन्धानयुक्तं,
> भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्।।'

तात्पर्य यह है कि जो नाटक सामाजिक के जीवन से संबंध रखनेवाला, मनोरम पदावलीवाला, नृत्य-संगीत से समन्वित विविध काव्यरसों से ओत-प्रोत होगा वह अवश्य ही अभिनेय होगा।

रंगमंच के अभाव की ओर प्रारम्भ से ही नाटककारों ने अधिक ध्यान नहीं दिया। प्रेमीजी ने इस अभाव को लक्षित करके अपने नाटकों के रंगमंच के लिए उपयोगी बनाने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है। उनके द्वारा लिखे गये सभी पूर्ण नाटक एवं एकांकी-नाटक प्राय: अभिनय की विशेषताओं से पुष्ट रहे हैं और उनमें से अनेक का समय-समय पर भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में सफल अभिनय भी हो चुका है। यद्यपि यह सत्य है कि उनके 'शिवा-साधना' शीर्षक नाटक में पात्राधिक्य होने के कारण अभिनय में कठिनाई का सामना करना पड़ेगा और इसी प्रकार उनके नाटकों में दृश्यों के शीघ्रतापूर्ण परिवर्तन ने भी अभिनेयता में बाधा पहुँचाई है, तथापि समष्टि रूप में यह कहा जा सकता है कि उनके नाटकों में हिन्दी के इतर नाट्य-साहित्य की अपेक्षा रंगमंच-सम्बन्धी सुविधाओं को कहीं अधिक स्थान प्राप्त हुआ है।

वास्तव में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद, हिन्दी में प्रेमीजी ही दूसरे बड़े नाटककार हैं जिन्हें नाटक खेलने या नाटक उत्पादन का रंगमंचीय अनुभव था, यही कारण है कि प्रेमीजी के नाटक रंगमंच के उपयुक्त हैं। इसी कारण पं0 रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेमीजी की नाट्य-कला की प्रशंसा अपने इतिहास में की थी, यद्यपि उस समय तक प्रेमीजी के केवल दो ही नाटक ('रक्षाबंधन', 'शिवा-साध ना') प्रकाशित हुए थे।

प्रेमीजी के नाटकों की रंगमंचीयता के विषय में विवेचन करते समय दो आरोप प्रेमीजी पर लगाये जाते हैं:

(अ) उनके नाटकों में गीत अधिक हैं, (ब) उनके नाटकों की दृश्य-योजना में शिथिलता है।

प्रथम आरोप का उत्तर देते हुए प्रेमीजी ने कहा था; ''इस युग के कलाकार चाहते हैं कि नाटकों में गीत न दिये जाएँ। यदि रंगमंच या सवाक्-चित्रपट का ध्यान न हो तो नाटकों से गीतों को निर्वासित किया जा सकता है। इस दृष्टि से संगीत बहुत सहायक है।''

बात यह है कि पाश्चात्य (अमरीकी) नाट्य् कला तथा रंगशिल्प की विशेषता यह है कि 'शीर्षगान' के अतिरिक्त नाटकों या फिल्मों में गीत नहीं रखे जाते, जबतक कि कोई गीत कथा का भाग न हो; क्योंकि उनके यहाँ गीत नाटक की कथावस्तु के विकास में तथा नाटकीयता में बाधा डालते माने जाते हैं।

दृश्य-परिवर्तन के प्रश्न पर डॉ0 जयनाथ नलिन का मत है ''सभी नाटकों का दृश्य-विधान बहुत ही सरल और नाटकोचित है। 'रक्षाबन्धन' के प्रथम अंक का दृश्य विधान है - (1) चित्तौड़ के महाराणा विक्रमादित्य का भवन, (2) मेवाड़ के वन की पगडण्डी, (3) राज-भवन की वाटिका, (4) माण्डु का राजमहल-बहादुर शाह और मुल्लू खाँ, (5) महाराणा विक्रमादित्य का राजभवन तथा (6) चित्तौड़ का भीतरी भाग। इन दृश्यों में चौथा तथा पाँचवाँ ही बड़े दृश्य हैं जो आगे पीछे हैं। चौथे दृश्य का थोड़ा-सा सामान हटाकर तुरन्त पाँचवाँ बनाया जा सकता है या एक साथ ही चौथे के पीछे पाँचवाँ बनाया जा सकता है और चौथा समाप्त होते ही उसका सामान हटाकर पाँचवें दृश्य का पर्दा उठा दिया जा सकता है।

दूसरा तथा तीसरा अंक अत्यंत सरल है। तीसरे अंक का पाँचवाँ तथा सातवाँ दृश्य बड़े हैं और प्रभावशाली भी। वे दोनों एक ही दृश्य हैं। पाँचवें से ही सातवें का काम लिया जा सकता है। 'छाया' तथा 'बन्धन' के दृश्य-विधान तो रंगमंच की सरलता और सादगी के आदर्श उदाहरण हैं। दो सेट्स में नाटक पूरा हो जाता है। एक मध्यवर्गीय गृहस्थ का मकान तथा दूसरा एक गाँव की झोंपड़ी। शेष सभी दृश्य नदी, बाग, जंगल आदि के हैं, जिनके निर्माण की आवश्यकता नहीं, परदों से ही काम चल सकता है। 'बन्ध न' में भी दो सेट चाहिए-एक 'धनी का गोष्ठी-भवन' तथा दूसरा 'गरीब किसान का मकान'। शेष सभी दृश्य बाहरी हैं।

इस कथन के मूल में उनका यह प्रयत्न रहा है: ''मैंने इन नाटकों में भाव दिये हैं। कला दी है या नहीं यह कलाविद देखें . ... हाँ, इतना प्रयत्न तो मैं करता ही हूँ कि नाटक रंगमंच के उपयुक्त रहे, जन-साधारण की पहुँच के बाहर न हों और उनमें रसानुभूति का अभाव न हो।''

पात्र-योजना की दृष्टि से भी प्रेमीजी, जैसे-जैसे नाटक रचना में आगे बढ़ते गये, सीखते गये हैं, नये-नये प्रयोग करते गये हैं। आरम्भ में उनके 'शिवा-साधना' नाटक में 43 पात्र थे, सैनिक, सेविकाओं को छोड़कर। इतने पात्र नाटक के मंचन में अनेक बाध एँ उपस्थित करते हैं। यही कारण है कि इस नाटक का दृश्य-विधान भी सदोष हो गया है। धीरे-धीरे ये दोष प्रेमीजी के नाटकों से निकल गया था।

नाटक के मंचन में एक बात विशेष महत्त्व रखती है। वह है नाटक का प्रथम दृश्य (ओपिनिंग सीन) तथा अन्तिम दृश्य है। प्रेमीजी ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है। उनके सब नाटकों का अन्तिम दृश्य बहुत ही नाटकीय तथा दर्शक के स्मृति-पटल पर अंकित हो जाने वाला है।

यह बात उनके ऐतिहासिक तथा सामाजिक नाटकों, एकांकी नाटकों तथा गीत नाट्यों (रेडियो-रूपकों) सबके विषय में लागू होती है। मंच की दृष्टि से इतने नाटकीय एवं चोट करनेवाले अंतिम दृश्य अन्य किसी नाटककार के नाटकों में नहीं पाये जाते। प्रथम दृश्य के विषय में भी यही बात है। 'उद्धार', 'रक्षाबन्धन' (सहसा बाघसिंह का प्रवेश और धनदास की कमर पर लात मारना), 'छाया', 'बन्धन', 'स्वप्न-भंग', 'मित्र' आदि नाटकों में यह गुण विशेष रूप से पाया जाता है।

रंगमंच की दृष्टि से प्रेमीजी के नाटकों में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं:

(अ) उन्होंने आरंभ में (जबकि अपने नाटकों का फिल्मीकरण उनके ध्यान में नहीं था) उन घटनाओं तथा दृश्यों को सूच्य रखा है, जिनका मंचन भारतीय रंग-मंच नहीं कर सकता है, जैसे युद्ध, तोपों के गोले गिरना, ('मातृभूमि का मान' एकांकी) इत्यादि। 'स्वप्न-भंग' की अधिकांश घटनाएँ इसी कारण दोष की सीमा तक 'सूच्य' हो गयी हैं। आगे चलकर उन्हें नेपथ्य में रखा है। इस विषय में कहा जा सकता है कि प्रेमीजी ने रंगमंच का ध्यान रखा है। प्रसाद के समान बाढ़, युद्ध, नौकाओं का चित्रण उन्होंने नहीं किया।

(ब) प्रेमीजी ने अपने नाटकों में कहीं भी अति गम्भीर (दार्शनिक), जटिल भावों को सम्वादों में नहीं रखा है। इस कारण 'साधारणीकरण' में कोई बाधा नहीं होती। प्रसाद के चाणक्य, स्कन्दगुप्त, दाण्ड्यायन, देवसेना जैसे पात्रों के गूढ़ार्थ-गर्भित वाक्य रंगमंच पर उनके नाटकों की असफलता के विशेष कारण हैं।

(स) इसी प्रकार भाषा के क्षेत्र में प्रेमीजी ने क्लिष्ट तत्सम-बहुला भाषा से अपने नाटकों को बचाया है। उनके आरम्भिक नाटकों के मुसलमान पात्र थोड़ी कठिन उर्दू बोलते हैं परन्तु आगे चलकर उन्होंने इस दोष का परिहार कर दिया था। प्रेमीजी के सामने शिक्षा लेने के लिए प्रसाद की तत्सम-बहुला भाषा थी, जिसने प्रसाद के नाटकों को 'मात्र पठनीय नाटक' के क्षेत्र में धकेल दिया था। यह बात प्रेमीजी के सम्पूर्ण रंगमंचीय साहित्य पर लागू होती है, जिसमें उनके नाटक, एकांकी नाटक तथा गीति नाटिकाएँ हैं।

ऐसा नहीं है कि प्रेमीजी के नाटकों में रंगमंच की दृष्टि से कोई दोष नहीं है। द्रष्टव्य बात यह है कि आरंभ में जो दोष थे, उन्हें अनुभव पथ पर आगे बढ़ते-बढ़ते प्रेमीजी ने क्रमश: दूर कर दिया था। 'शिवा-साधना' में पात्रों का बाहुल्य तथा दृश्य-विधान दोषपूर्ण है। अभिनय की दृष्टि से 'स्वप्न-भंग' तथा 'रक्त-रेखा' भी दुर्बल हैं। इनकी अधिकांश मार्मिक सामग्री सूच्य है। कार्य-व्यापार की दृष्टि से भी ये कमजोर हैं। निष्कर्ष यह है कि प्रेमीजी के नाटक सामान्यत: रंगमंच की दृष्टि से निर्दोष है, जो दोष आरंभ में थे उनको प्रेमीजी ने बाद के नाटकों में से निकाल दिया था। इस विषय में डॉ0 जयनाथ नलिन का मत है–

''प्रेमीजी के नाटकों में साहित्य और अभिनय कला, दोनों का प्रशंसनीय सामंजस्य है। हिन्दी के अन्य प्रतिभाशाली विख्यात नाटककारों की अपेक्षा प्रेमीजी ने अपने नाटकों में अभिनय का अधिक ध्यान रखा है। प्रेमीजी के सभी श्रेष्ठ नाटकों का अनेक स्थानों पर अव्यवसायी नाट्य-मण्डलों द्वारा सफलतापूर्वक अभिनय हो चुका है। 'रक्षाबन्धन', 'स्वप्न-भंग', 'छाया', 'बन्धन' और 'उद्धार' अभिनय की दृष्टि से उतने ही श्रेष्ठ हैं जितने वे साहित्यिक दृष्टि से। 'रक्षाबन्धन', 'छाया', 'स्वप्न-भंग', 'बन्धन', 'मित्र' तथा 'उद्धार' सभी में तीन-तीन अंक हैं। केवल 'शिवा-साधना' चार अंकों का है। कोई भी नाटक अधिक लम्बा नहीं, किसी का भी अभिनय ढाई घण्टे से अधिक देर तक नहीं जा सकता है।''

''साधारणतया अभिनय योग्य नाटक में देखना होता है कि उसका दृश्य-विधान कहाँ तक रंगमंचोपयोगी है, उसका यथावत् अभिनय हो सकता है कि नहीं, नाटक का कलेवर सीमित है या नहीं, रंग संकेतों का उपयुक्त प्रयोग किया गया है कि नहीं ? प्रेमीजी के नाटक प्राय: इन गुणों से पूर्ण हैं। साहित्य और रंगमंच दोनों की ही निधि उन्हें कहा जा सकता है।''

संदर्भ :

1. प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच: डॉ0 सुषमापाल मल्होत्रा, राजपाल एण्ड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1974, पृ0-168
2. जयशंकर प्रसाद: नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1976, पृ0-102
3. प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच: डॉ0 सुषमापाल मल्होत्रा, पृ0-170
4. साहित्य विवेचन: क्षेमचन्द्र 'सुमन', योगेन्द्र कुमार मलिक, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, 1990, पृ0-256
5. हरिकृष्ण प्रेमी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ0 विमला कुमारी मुंशी, आर्य बुक डिपो, 30 नाईवाला करौलबाग, नई दिल्ली-110005, 1980, पृ0-163
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास: रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2035 वि0, पृ0-201
7. भारतीय नाट्य साहित्य (सेठ गोविन्ददास अभिनंदन ग्रंथ) - सं0 डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1984, पृ0-251
8. 'विषपान' की भूमिका ('पुकार')-हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-10
9. वही
10. हरिकृष्ण प्रेमी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ0 विमला कुमारी मुंशी, पृ0-165
11. हिन्दी नाटककार: डॉ0 जयनाथ नलिन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, पृ0-132-133
12. 'प्रकाश-स्तंभ' की भूमिका (संकेत) - हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-ग
13. 'स्वप्न-भंग' की भूमिका (कुछ बातें) - हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-क
14. हिन्दी नाटककार: डॉ0 जयनाथ नलिन, पृ0-133

15. उद्धार (हरिकृष्ण प्रेमी), अंक-1, दृश्य-3, पृष्ठ-19
16. हिन्दी नाटककार: डॉ0 जयनाथ नलिन, पृ0-132
17. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी: विश्व प्रकाश दीक्षित बटुक, पृ0-54
18. 'बादलों के पार' की भूमिका (दो शब्द)-हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-2
19. 'विजेता' (भूमिका): रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, जुलाई, 1971, पृ0-6
20. रामवृक्ष बेनीपुरी और उनका साहित्य: डॉ0 गजानन चव्हाण, साहित्य भवन (प्रा0) लिमिटेड, इलाहाबाद, 1984, पृ0-286-287
21. अम्बपाली: रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 1976, पृ0-135
22. रामवृक्ष बेनीपुरी और उनका साहित्य: गजानन चव्हान, पृ0-288-289
23. वही, पृ0-290-291
24. विजेता: एक समीक्षा-डॉ0 सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, सुबोध ग्रंथमाला, कार्यालय राँची, पृ0-66-67
25. प्रसाद और बेनीपुरी के ऐतिहासिक नाटक: डॉ0 राजेन्द्र साह, जागृति संस्थान, प्रकाशन प्रभाग, मुजफ्फरपुर, 2007, पृ0-256
26. जगदीशचन्द्र माथुर स्मृति ग्रंथ: प्रधान संपादक-श्री जगन्नाथ प्रसाद साह, संपादक-डॉ0 सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, वैशाली संघ, वैशाली, 1994, पृ0-150-151
27. वही, पृ0-151
28. पहला राजा: जगदीशचन्द्र माथुर, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-6, 1969, पृ0-41
29. भरत और भारतीय नाट्यकला: डॉ0 सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ल्ली, 1989, पृ0-334
30. जगदीशचन्द्र माथुर स्मृति ग्रंथ: प्रधान संपादक श्री जगन्नाथ प्रसाद साह, पृ0-157
31. वही
32. वही, पृ0-163-164
33. हिन्दी साहित्य का इतिहास: सं0 डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-2, 1978, पृ0-665
34. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास: रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, 2002, पृ0-217

बेनीपुरी के नाटकों की अभिनेयता

डॉ० पूनम कुमारी

बाघा, वार्ड नं0-24, बेगूसराय (बिहार)

नाटक दृश्यकाव्य है। अतः उसकी सार्थकता उसके अभिनीत होने में ही मानी जाती है। 'अभिनय' का अर्थ ही है सम्मुख ले जाना। जिन प्रक्रियाओं द्वारा नाटक के आशय का प्रेषण अथवा प्रत्यक्षीकरण सामाजिकों के सम्मुख होता है उसे अभिनय कहा जाता है। संस्कृत-साहित्य में अभिनय की परिभाषा यों दी गयी है–'अभिनयति हृद्गत भावान् प्रकाशयति।'

मन के क्रोधादि भाव को प्रकट करनेवाली आंगिक चेष्टाओं द्वारा किसी विषय अथवा व्यक्ति का प्रकृत अनुकरण करके प्रदर्शित करने को अभिनय कहते हैं। किन्तु अभिनय में बाह्यकार्य प्रदर्शित करना उतना अभिप्रेत नहीं होता, प्रत्युत् प्रकृत मन का भाव व्यक्त करना ही इसका प्रधान उद्देश्य होता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय चार प्रकार से सम्पन्न किया जाता है-आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक। नेत्र और मुख के हाव-भाव तथा हस्तपादादि अंगों के संचालन द्वारा किसी प्रकृत विषय के अनुकरण करने को आंगिक कहते हैं। जैसे-चलना, उठना, दौड़ना, हँसना आदि। इसमें शारीरिक चेष्टाओं द्वारा भावों को व्यक्त किया जाता है तथा विभिन्न मुद्राओं द्वारा ही भाषा व्यक्त होती है। बीभत्स, करुण, रौद्र प्रभृति रसयुक्त वाक्य द्वारा मानसिक भावों के अनुकरण को वाचिक कहते हैं। इसमें भाषा, स्वर, छंद, काकु आदि के द्वारा भावों को व्यक्त किया जाता है। वस्त्राभरण आदि रचना द्वारा प्रकृत मूर्ति के अनुकरण को आहार्य कहते हैं। अभिनय में वेश-भूषा, साज-सज्जा, आभूषण, रंगों आदि का सहारा भावाभिव्यक्ति के लिए लिया जाता है। सात्त्विक भावों को प्रदर्शित करनेवाले अभिनय को सात्त्विक कहते हैं। स्तंभ, स्वेद, रोमांच आदि को सात्त्विक भाव कहते हैं। मुख, हस्त, पाद आदि के विशेष हाव-भाव द्वारा रोमांच, स्तंभ, स्वेद आदि भावों का अभिनय सात्त्विक है।

नाट्यशास्त्र में उत्कृष्ट अभिनय के अनेक आवश्यक गुण माने गये हैं। जैसे-अनुकरण-कुशलता, दृष्टि-सौष्ठव, श्रुति-माधुर्य एवं परिहास इत्यादि। नाटक के सफलतापूर्वक मंचन के लिए आचार्यों ने इन निर्देशों का अनुपालन आवश्यक माना है। परन्तु आधुनिक नाटककारों ने अभिनय के लिए नूतन अवस्थाओं एवं परिवेशों का सृजन किया है। इनकी प्रयोग-धर्मिता के कारण आज पौरस्त्य तथा पाश्चात्य अभिनय-कला के बीच से नयी सम्भावनाएँ अभिव्यक्त हो रही हैं।

नाटक के प्रस्तुतीकरण में नाटककार, निर्देशक तथा अभिनेता का योग रहता है। भावों को मूर्त रूप देने के लिए नाटक में चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला एवं संगीतकला (नृत्य-गान सहित) आदि ललित कलाओं का सन्निवेश होता है। प्रकाश-व्यवस्था का भी आवश्यकतानुसार उपयोग किया जाता है। परिवेश के निर्माण में प्रमुखतः छह साधनों की आवश्यकता पड़ती है– दृश्य-बंध , दृश्यसामग्री, मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणी, प्रकाश, ध्वनियाँ तथा पार्श्वगीत। आज रंगमंच के क्षेत्र में 'मूविंग स्टेज' द्वारा एक ही नाटक के विभिन्न दृश्यों को एक साथ सजाकर आवश्यकतानुसार मंच को प्रेक्षक के सम्मुख घुमाकर उनका उपयोग किया जाता है।

अभिनेय नाटक के गुणः किसी भी नाट्यकृति की रंगमंचीय सफलता अनेक बातों पर निर्भर है। वह नाट्यकृति यथासम्भव संक्षिप्त हो, जिसे एक ही बैठक में या चार से छह घंटों में देखा जा सके। दूसरे शब्दों में, नाटक के रंगमंचीकरण में इतना अधिक समय न लगे जिससे प्रेक्षकों में ऊब पैदा हो जाय। नाटक का कथानक संक्षिप्त, सुगठित एवं सुलझा हुआ हो। उसमें घटना का बाहुल्य न हो। नाटक के अति विस्तार से बचने के लिए छोटे-छोटे तथा कम अंकों एवं दृश्यों की योजना हो। एक अंक या दृश्य में एक घटना का अभिनय सुविधाजनक एवं रसोत्पादक होता है। बारम्बार दृश्य-परिवर्तन से दर्शकों को तादात्म्य स्थापित करने में, वस्तु को समझने में असुविधा होती है। नाटक में ऐसे दृश्यों और घटनाओं की योजना न हो, जिनकी अवतारणा साधारणतया रंगमंच पर सम्भव न हो। अर्थात् नाटक का विस्तार संतुलित, दृश्य योजना तथा घटनाओं का आकलन स्वाभाविक और रंगमंच की सीमाओं के अनुकूल हो। सीमित पात्र-योजना हो। पात्रों की अधिकता कथात्मक जटिलता को उत्पन्न करती है। प्रवाहपूर्ण, संक्षिप्त,

मनोवैज्ञानिक, अभिव्यंजनापूर्ण, दार्शनिकता-पुट-विहीन, कवित्वहीन एवं व्यावहारिक संवाद हो। गीतों की सीमितता एवं नगण्यता हो। गीतों की अधिकता अप्रासंगिक, अनुपयुक्त तथा ऊब पैदा करनेवाली होती है। सहज, सुबोध, व्यावहारिक एवं हृदयग्राही, पात्रानुकूल एवं परिस्थिति-सापेक्ष भाषा हो। इस प्रकार की भाषा सामाजिकों के साधारणीकरण में सर्वथा सक्षम होती है। तत्समनिष्ठ भाषा बहुत हद तक बाधा उपस्थित करती है।

डॉ. दशरथ ओझा ने कुशल कलाकारों के मतानुसार अभिनेय नाटक के निम्नलिखित गुण उपस्थित किये हैं–

(1) दृश्य संख्या इतनी सीमित हो कि प्रबंधक दृश्यों के अनुसार रंगमंच पर साज-सज्जा की व्यवस्था इतने अल्पकाल में कर सके कि दृश्य-परिवर्तन के समय दर्शकों को प्रतीक्षा न करनी पड़े। एक दृश्य के उपरान्त दूसरा दृश्य सद्यः उपस्थित रहे।

(2) पात्रों की संख्या इतनी अधिक न हो कि दर्शक उन्हें पहचान ही न सकें, क्योंकि बिना पहचाने पात्रों की भूमिका स्मरण ही नहीं रह सकती और कथावस्तु अगम्य बन जाती है।

(3) कथावस्तु सुनियोजित और इतनी ही विस्तृत हो कि तीन घंटे में अभिनय किया जा सके। आज के युग में तीन घंटे से अधिक समय निकालना सामाजिक के लिए कठिन हो जाता है।

(4) पात्रों का चरित्र-चित्रण इस रूप में किया गया हो कि सामाजिक उससे अपना निजी सम्बन्ध जोड़ सकें।

(5) कथावस्तु इतनी मनोरम और जीवन के निकट होनी चाहिए, जिससे प्रत्येक दर्शक, उसमें अपने निजी व्यवहारों का संकेत प्राप्त करने में समर्थ हो सके। अर्थात् कथावस्तु केवल कल्पना पर निर्मित न होकर यथार्थ की भूमि पर आधृत हो।

(6) भरतमुनि के अनुसार अभिनेय नाटक के विशेष गुण ये हैं–

जिस नाटक की पद-रचना मृदुल और ललित हो, जिसमें गूढ़ शब्दों का अभाव हो, जो सामाजिक को बोधगम्य हो सके। जिसमें युक्ति के साथ नृत्य-संगीत का नियोजन हो। विविध रसों का समावेश हो और कथावस्तु संधि समन्वित हो। वह अवश्य ही प्रेक्षकों को रमणीय प्रतीत होगा।[1]

''मृदुललित पदाढ्यंगूढ शब्दार्थ हीनं,
जनपदसुख बोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।
बहुकृत रसमार्ग संधि सन्धानयुक्तं,
भवति जगति योग्यं नाटकं प्रेक्षकाणाम्।।''[2]

तात्पर्य यह है कि जो नाटक सामाजिक के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाला, मनोरम पदावलीवाला, नृत्य-संगीत से समन्वित विविध काव्यरसों से ओत-प्रोत होगा वह अवश्य ही अभिनेय होगा।

अभिनेयता-सम्बन्धी जो विवाद प्रसाद के नाटकों को लेकर चल रहा था, या है, उससे बेनीपुरी पूर्णतः अवगत थे। अतः उन्होंने उन त्रुटियों का परिमार्जन करने का प्रयास किया, जिन त्रुटियों के कारण प्रसाद के नाटक अनभिनेय थे। साथ ही बेनीपुरी ने हिन्दी-रंगमंच के नये विकासों का भी पूरा उपयोग किया। प्रसाद की अपेक्षा छोटे कथानक, सरल दृश्य-योजना, रंग-संकेत, पात्रों की कम संख्या आदि उपादानों ने उनके नाटकों को अभिनेयता प्रदान की है!

बेनीपुरी ने अपने नाटकों की रचना में रंगमंच तथा अभिनय की सुविधाओं का विशेष ध्यान रखा है, क्योंकि वे नाटक-सम्बन्धी 'युग की माँग' से परिचित हैं–''नाटक छोटे हों, जो दो-ढाई घंटे में खेल लिये जाएँ। उतने ही दृश्य हों कि 'इंटरवल' के समय 'फीट' कर लिये जायँ। पात्र-पात्रियों की संख्या ऐसी हो कि कुछेक प्रतिभाशाली व्यक्तियों को ही लेकर अभिनय कर लिया जा सके।''[3]

किन्तु, इस प्रकार के रंगमंचीय दृष्टिकोण के निर्वाह में बेनीपुरी को सिर्फ 'विजेता' नाटक और कुछ हद तक 'तथागत' में ही सफलता मिली है। इसका कारण भी है कि उपर्युक्त बेनीपुरी का मंतव्य भी तो 'विजेता' की भूमिका का है, जो उनका अंतिम नाटक है। 'अम्बपाली' नाटक तो सवा सौ पृष्ठों का तथा 'तथागत' भी सौ पृष्ठों का है, जिन्हें निश्चय ही दो-ढाई घंटों में नहीं खेला जा सकता। 'विजेता' लगभग पचास पृष्ठों का नाटक है, जिसे ही दो-ढाई घंटे में खेला जा सकता है।

दृश्यों की संख्या भी 'अम्बपाली' में अधिक है। उसमें 18 दृश्य हैं। 'तथागत' में भी छोटे-छोटे 29 दृश्य हैं, जिन्हें इंटरवल के समय निश्चय ही 'फिट' नहीं किये जा सकते। 'विजेता' में बड़े-बड़े चार अंक ही हैं। उनमें दृश्य नहीं है। अतः उन्हें इंटरवल के समय अवश्य 'फिट' किया जा सकता है।

पात्रों की संख्या भी 'अम्बपाली' में कम नहीं है। उसमें 14 पात्र हैं तथा 'तथागत' में तो पात्रों की संख्या और भी अधिक है। उसमें बीस से भी अधिक पात्र हैं। इन दोनों नाटकों को निश्चित रूप से कुछ प्रतिभाशालियों द्वारा नहीं खेला जा सकता। 'विजेता' में पाँच ही पात्र हैं। इस प्रकार, बेनीपुरी की रंगमंचीय मान्यता के अनुरूप सिर्फ 'विजेता' ही सफल है। अन्य दो नाटक उतने सफल नहीं हैं।

बेनीपुरी के नाटकों की यह विशेषता है कि उनमें पर्याप्त रंग-निर्देश हैं, जिनके माध्यम से विगत घटनाओं की भी वे सूचना देते चलते हैं। इन रंग-संकेतों से भी नाटक की अभिनेयता सरल बन गयी है। उन्होंने अपने नाटकों में प्रकाश एवं पर्दों की भी व्यवस्था की है।

अम्बपाली नाटक की अभिनेयता : अभिनय की दृष्टि से नाटक की सफलता अंक तथा दृश्य-योजना, पात्र- संख्या, रंग-संकेत, रंग-सज्जा, संवाद, प्रभावपूर्ण दृश्य आदि अनेक बातों पर निर्भर करती है। 'अम्बपाली' में अंक-योजना साफ और अंक-विभाजन उपयुक्त स्थान पर हुआ है। प्रत्येक अंक को दृश्यों में विभाजित किया गया है। इस नाटक में कुल 18 दृश्य हैं जो अलग-अलग 17 स्थानों के हैं। अभिनय की दृष्टि से यह संख्या अधिक है। प्रत्येक दृश्य की रंग-सज्जा भिन्न है। इनमें से कुछ दृश्य तो ऐसे हैं जिन्हें रंगमंच पर दिखाना अत्यन्त कठिन है। उदाहरणार्थ, प्रथम अंक का दूसरा दृश्य वेगवती नदी के तट का है, जिसकी ओर पानी भरने जाती हुई स्त्रियों को दिखाया गया है। एक दृश्य में तालाब और उसके इर्द-गिर्द पशु आदि भी दिखाये गये हैं। ऐसे दृश्यों को दिखाना कष्टसाध्य है। केवल पर्दों की सहायता से वातावरण की निर्मिति की जा सकती है। कुछ दृश्य ऐसे हैं जो भारतीय नाट्य-परम्परा में वर्ज्य माने गये हैं। जैसे-तीसरे अंक में चौथा दृश्य युद्ध-भूमि का है। चौथे अंक में पहले ही दृश्य में अरुणध्वज की रंगमंच पर मृत्यु दिखायी गयी है। इन दृश्यों के अभिनय की अशोभनता के साथ निश्चय ही व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी हैं। इस प्रकार, इस नाटक के नदी, तालाब, उपवन और पशु-पक्षीवाले दृश्यों के लिए कम-से-कम 15-16 चित्रवाले विशिष्ट पर्दों की आवश्यकता होगी।[4]

इस नाटक की पूरी सफलता के लिए 'मूविंग स्टेज' सहायक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि वैशाली के मैदान से एकाएक मगध का राजप्रासाद खड़ा करने में जो आपाधापी करनी पड़ेगी, उससे राहत तो मिलेगी ही।

दृश्य-योजना को प्रभावशाली बनाने के लिए नाटककार ने चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला तथा नृत्य एवं संगीत कला का उपयोग किया है। पात्रों की वेश-भूषा, साज-सज्जा के लिए पर्याप्त रंग-निर्देश दिये गये हैं। अम्बपाली, बुद्ध, अजातशत्रु आदि पात्रों को उनके अनुकूल विशिष्ट वस्त्रों और आभूषणों से सजाया गया है, जो अभिनेयता की प्रभावान्विति में सहायक होंगे।

'अम्बपाली' में पात्रों की संख्या चौदह है, किन्तु भीड़ वाले दृश्यों की संख्या कम ही है। एकाध स्थल को छोड़कर कथोपकथन संक्षिप्त ही हैं। जहाँ संवाद लम्बे हैं, वहाँ भी उनमें अभिनय-सापेक्षता विद्यमान है। इस नाटक में गीतों का आधिक्य भी नहीं है। कुल पाँच गीत हैं और वे पात्र एवं वातावरण के अनुकूल हैं। गीत-योजना के साथ संगीत एवं नृत्य की भी योजना नाटककार ने की है जो कथ्य एवं वातावरण को उभारने में सहायक सिद्ध होंगे। भाषा भी पात्रानुकूल, परिस्थितिसापेक्ष एवं रंगमंचीय है। प्रकाश-योजना की भी व्यवस्था नाटककार ने की है। प्रकाश-योजना द्वारा सिर्फ दृश्य को ही साकार रूप नहीं दिया गया है, अपितु कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए भी उसका प्रयोग किया गया है-"अब वह मंडली बिल्कुल निकट आ चुकी-इधर आसमान में लाली-ही-लाली है, अन्धकार धीरे-धीरे दूर हो चुका है-उदित होनेवाले सूरज की प्रभा के कारण या सामने आनेवाली कलकंठियों की शांत मुखाभा के कारण?"[5] क्षुद्र स्वार्थ, विलासिता और मदान्धता के गर्त से निकलकर बौद्धधर्म के मानवतावादी चिंतन को ग्रहण करने का लक्ष्य नाटककार ने यहाँ सिर्फ प्रकाश-योजना द्वारा प्राप्त कर लिया है।

अपनी कतिपय त्रुटियों के बावजूद 'अम्बपाली' को अभिनेयता की दृष्टि से सफल कहा जा सकता है। परिष्कृत रंगमंच पर कुशल अभिनेताओं द्वारा इसे सफलतापूर्वक अभिनीत किया जा सकता है। इसमें न तो कथात्मक असम्बद्धता है, न चारित्रिक गहन अन्तर्द्वन्द्व, न दृश्यों की विशृंखलता है, न कथोपकथन की अस्वाभाविकता। इसमें न तो पात्रों की भीड़ है, न गीतों की भरमार और न क्लिष्टमयी भाषा।

तथागत नाटक की अभिनेयता : तथागत में कुल 29 दृश्य हैं। बुद्ध के जीवन की जो घटनाएँ इन दृश्यों में दी गयी हैं, वे अलग-अलग 20 स्थानों पर घटित होती हैं। स्थान की एकता का अभाव इसमें भी है। अत: अभिनय की सुगमता इसमें नहीं आ पायी है। कम-से-कम 20 पर्दों के होने पर ही उसे सजीव पृष्ठभूमि देकर खेला जा सकता है। इसी तरह से उपवन, नदी तट,

प्राकृतिक अंचल, बोधिवृक्ष, पर्वत-शिखर, विहार, आम्रवन आदि के जो दृश्य हैं, उन्हें भी अल्प-परिवर्तन के साथ कम पर्दों की सहायता से दिखाया जा सकता है, परन्तु यह कार्य सचमुच कठिन और खर्चीला है।

इस नाटक में कुल 25 पात्र हैं। भिक्षुओं और नागरिकों से सम्बद्ध कथा-प्रसंगों को ध्यान में रखने से यह संख्या और भी बढ़ जाती है। पात्रों की इतनी भीड़ अभिनेयता के लिए बाधक है।

इसमें गौतम बुद्ध के जन्म से लेकर उनके महापरिनिर्वाण तक की कुल 80 वर्षों की घटनाएँ ली गयी हैं। एक व्यक्ति के 80 वर्षों के काल को मंचित करना भी कठिन है। ऐसी स्थिति में बार-बार 'मेकअप' का आधार लेना पड़ेगा और इसमें समय, शक्ति और व्यय अधिक होगा। 'अम्बपाली' और 'विजेता' में विस्तृत रंग-निर्देश दिये गये हैं, किन्तु 'तथागत' में इसका अभाव है। अतः अभिनेताओं को रंग-सज्जा और पात्रों की वेश-भूषादि के सम्बन्ध में अन्य इतिहास-ग्रंथों तथा स्रोतों से सहारा लेना पड़ेगा।[6]

उपर्युक्त रंगमंचीय त्रुटियों के बावजूद इसमें रंगमंच-सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ भी हैं। इस नाटक में गीत नहीं है। अभिनय की दृष्टि से वर्जित दृश्य भी इसमें नहीं है। इस नाटक में आये तथागत के कथा-प्रसंग कौतूहल और प्रभाव की दृष्टि से अत्यंत सुन्दर और वैविध्य लिए हुए हैं। अतः आवश्यक परिवर्तन के साथ श्रम एवं साधन के द्वारा इसे अभिनेय बनाया जा सकता है।

विजेता नाटक की अभिनेयताः 'विजेता' बेनीपुरी के नाटकों में सर्वाधिक अभिनेय है। इसके रचनाकाल तक आते-आते नाटककार का रंगमंचीय दृष्टिकोण अत्यन्त परिष्कृत हो गया था। चूँकि इस नाट्यकृति की रचना अभिनेयता को दृष्टि-पथ में रखकर की गयी थी, इसलिए नाटक के आकार, दृश्यों की योजना, पात्रों की संख्या, गीतों का अभाव, पर्याप्त रंग-निर्देश आदि हर दृष्टि से यह नाटक अभिनेय है।

'विजेता' में अंकों की योजना अत्यन्त स्पष्ट है। इसमें चार अंक हैं। अंक ही दृश्य हैं। प्रत्येक अंक का विस्तार दस से चौदह पृष्ठों से अधिक नहीं है। चारों अंक कुल चार स्थानों से सम्बद्ध हैं। अतः केवल चार प्रकार की रंग-सज्जा से इसे आसानी से खेला जा सकता है। इसे कम-से-कम समय में, दो-ढाई घंटों में खेल लिया जा सकता है।

इस नाटक में एक पात्र श्वेतकेतु कवि है। फिर भी उसके मुख से गीत नहीं गवाया गया है। लेखक ने ऐसा अभिनय को ध्यान में रखकर ही किया है। 'अम्बपाली' की तरह 'विजेता' में भी अभिनयोपयुक्त रंग-निर्देश दिये गये हैं। ये संकेत पात्रों के शरीर-सौष्ठव, कद, वर्ण, वेश-भूषा तथा रंग-सज्जा से सम्बद्ध हैं।

रंगमंच पर उपर्युक्त चार दृश्यों की अवतारणा आदि के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हो सकती। चार अंकों के आरम्भ में रंगमंच पर जिन दृश्यों की अवतारणा की गयी है उन्हें बड़ी सरलता से रूप दिया जा सकता है। छोटी-सी पहाड़ी, नीचे घनघोर जंगल, इसी पृष्ठभूमि पर प्रथम अंक की घटनाएँ परिपल्लवित हुई हैं। दूसरे अंक की घटनाएँ राजप्रासाद में हैं, तो तीसरा अंक सिंधु तट पर शिविरों के बीच विकसित हुआ है। चौथा अंक दक्षिण भारत के नीलांचल की छाया में खड़ी एक झोपड़ी में है। नाटककार ने दृश्य-योजना के चयन में पूर्ण कौशल का परिचय दिया है। ऐसी एक भी दृश्य-योजना नहीं है, जिसको सरलता से रंगमंच पर रूप नहीं दिया जा सके।

इस नाटक में केवल पाँच पात्र हैं। उसमें भी नायक चन्द्रगुप्त के जीवन की सारी घटनाओं को मंच पर प्रत्यक्ष कराने का नाटककार का आग्रह नहीं है। चन्द्रगुप्त का युद्धाभ्यास, चाणक्य से प्रेरणा पाना, चन्द्रगुप्त का पाटलिपुत्र का राज्याधिकारी बनना, चन्द्रगुप्त-चन्द्रा का परिणय और चन्द्रगुप्त द्वारा मृत्यु के भय को जीतकर मृत्यु को वरण करना—इन्हीं दृश्यों को मंच पर दिखाया गया है। अन्य घटनाओं-चन्द्रगुप्त का जन्म तथा उसके वंश-सम्बन्धी इतिहास, बालक चन्द्रगुप्त को चाणक्य द्वारा चुनना, नंद से हुई लड़ाई में चन्द्रगुप्त की विजय, सिल्यूकस की पराजय, चन्द्रगुप्त के राज्य में अकाल पड़ना इत्यादि घटनाओं की नाटककार ने प्रमुख पात्रों के कथोपकथन द्वारा केवल सूचनाएँ ही दी हैं। इस नाटक में पात्र तब मंच पर आते हैं जब अधिकतर घटनाएँ व्यतीत हो चुकी होती हैं। इसी से 'विजेता' का अभिनय सरलता से हो सकता है। इसमें पात्रों का कार्य-व्यापार मंच पर कम दिखाया गया है।[7]

घटनाओं की योजना में नाटककार ने अभिनय-सम्बन्धी कठिनाइयों को ध्यान में रखकर ही 'सूच्य' की योजना सर्वत्र की है। ऐसी घटनाएँ, जिनका अभिनय एवं प्रदर्शन रंगमंच पर सम्भव न होता या अत्यन्त श्रमसाध्य होता, उन्हें 'दृश्य' में स्थान नहीं दिया है। विशेषकर चन्द्रगुप्त के जीवन की दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं—'नंद का नाश' तथा 'सिल्यूकस की पराजय' को नाटककार ने दृश्य के अन्तर्गत नहीं रखा, क्योंकि उनसे नाटक का विस्तार होता और युद्ध एवं इसी प्रकार के कठिन दृश्यों की अवतारणा उतनी सहज भी नहीं होती। इन दो घटनाओं के न रहने से नाटक का कलेवर भी नहीं बढ़ सका है और अभिनेयता सरल हुई है तथा प्राचीन

नाट्य-प्रणाली का पूर्ण निर्वाह भी हुआ है।[8] किन्तु, कार्य-व्यापार के अभाव में दर्शक पात्रों के वार्तालाप तथा घटनाओं का विवरण सुनते-सुनते ऊबने-सा लगता है। रंग-संकेतों में कथावस्तु का भी संकेत कर एक प्रकार से रंग-निर्देशों का दुरुपयोग किया गया है। इससे नाटक की प्रकृत स्वाभाविकता नष्ट होने लगती है। फिर भी, सानुबंध दृश्य-योजना, दृश्यों की कम संख्या, सीमित पात्र, सरल भाषा, पर्याप्त रंग-निर्देश, रंगमंच की दृष्टि से वर्जित दृश्यों का अभाव आदि विशेषताओं के कारण विजेता नाटक सर्वथा अभिनेय है।

संदर्भ :

1. डॉ. दशरथ ओझा: नाट्य निबन्ध, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972, पृष्ठ 39-40
2. आचार्य भरत: नाट्यशास्त्र, संपा. एवं अनु. डॉ. रघुवंश, 7/35
3. बेनीपुरी: विजेता, भूमिका, सुबोध ग्रंथमाला कार्यालय, राँची, पृष्ठ-6
4. डॉ. गजानन चव्हाण: रामवृक्ष बेनीपुरी और उनका साहित्य, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1984, पृष्ठ 286-287
5. बेनीपुरी: अम्बपाली, पृष्ठ-135
6. डॉ. गजानन चव्हाण: रामवृक्ष बेनीपुरी और उनका साहित्य, पृष्ठ 288-289
7. उपरिवत्, पृष्ठ 290-291
8. डॉ. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित: विजेता-एक समीक्षा, पृष्ठ 66-67

भारत छोड़ों आंदोलन एवं बिहार की भूमिकाः एक संक्षिप्त अध्ययन

डॉ० संजीव कुमार

एम0 ए0, पी.एच-डी., बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

''भारत छोड़ों' और ''करो या मरो'' 1942 के आंदोलन के प्रमुख नारे थे, परंतु आंदोलन के प्रति जनता ने कई रूपों में अपनी सक्रियता दिखलाई। श्रमिक वर्गो ने कई औद्योगिक केन्द्रों में हड़तालें की जिसे बंबई, अहमदाबाद, कानपुर, जमशेदपुर और पुना आदि केन्द्र शामिल है। बिहार में व्यापक जन कार्रवाईयां के परिणामस्वरूप पटना शेष इलाके से कट गया। ग्रामीण जनता ने भी बढ़चढ़कर आंदोलन में अपनी हिस्सेदारी दी।

व्यापक जन कार्रवाई के अलावा आंदोलन में एक और प्रवृति उभर कर आयी। वह प्रवृति भूमिगत क्रांतिकारी कार्रवाई की थी। 9 नव0 1942 को जयप्रकाश नारायण और रामानंद मिश्रा हजारीबाग जेल से भाग निकले। उन्होंने नेपाल सीमा से लगे क्षेत्रों से भूमिगत आंदोलन का संचालन किया।

इसी प्रकार, अरूणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी, अच्यूत पटवर्धन जैसी नेताओं के नेतृत्व में समाजवादी नेताओं ने अपनी भूमिगत गतिविधियां जारी रखी। भूमिगत आंदोलन की सबसे साहसपूर्ण कार्रवाई कांग्रेस रेडियो की स्थापना थी, जिसकी उद्घोषिका उषा मेहता थी। यह रेडियों लम्बे समय तक सक्रिय रहा। सुभाषचंद्र बोस ने इस बर्लिन रेडियों से बोलते हुए इस आंदोलन को 'अहिंसक गुरिल्ला युद्ध' कहा।

आंदोलन में छात्रों ने व्यापक रूप से भाग लिया। उन्होंने ग्रामीणों को दिशा निर्देश देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। आंदोलन को व्यापारी वर्ग का ज्यादा समर्थन नहीं मिला। वस्तुतः युद्ध के दौरान अधिकांश पूंजीपतियों और व्यापारियों ने भारी मुनाफा कमाया था। वे चिंतित थे कि अगर इसी तरह से सार्वजनिक संपत्ति पर हमले होते रहे तो वे जल्दी ही निजी संपत्ति पर हमले के रूप में बदल सकते है। मुस्लिम लीग ने स्वयं को इस आंदोलन से दूर रखा चूंकि इस दौरान सांप्रदायिक दंगों की कोई घटना प्रकाश में नहीं आयी। हिन्दू महासभा ने आंदोलन की आलोचना की। भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी ने अपनी जनयुद्ध की नीति के कारण इस आंदोलन का समर्थन नही किया। राजा और जमींदारों की भी इस आंदोलन से कोई सहानुभूति नहीं थी। राजगोपालाचारी जैसे कुछ कांग्रेसी नेता ने भी आंदोलन में भाग नहीं लिया और युद्ध प्रयासों का समर्थन किया।

शब्द कुंजी- जन कार्रवाई, स्वतः स्फूर्त, सरकारी दमन, भूमिगत आंदोलन, राजनीतिक गिरफ्तारी, विध्वंसक कार्यवाही।

परिचर्चा

1942 ई0 का आंदोलन बिहार में इस तरह संगठित हुआ कि सभी वर्गो के लोगों ने इस आंदोलन में समान उत्साह तथा निश्चय के साथ भाग लिया। राजेन्द्र प्रसाद, फूलन प्रसाद वर्मा, मथुरा प्रसाद, श्रीकृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह की गिरफ्तारी के खिलाफ पटना के विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में पूरी हड़ताल रही और राष्ट्रीय झंडे फहराये गये। यहां हाउस मैन, नर्स, कुली, मेहतर हड़ताल पर चले गये। राजेन्द्र बाबू के अनुरोध पर मरीजों के हित में अस्पताल में हड़ताल बंद कर दी गयी और गाँधी मैदान में शिवनंदन मंडल की अध्यक्षता में आम सभा हुई। महिलाओं ने जुलूस निकालकर कांग्रेस मैदान में भगवती देवी की अध्यक्षता में एक सभा

आयोजित की और इस सभा में सुन्दरी देवी तथा रामप्यारी देवी ने वकीलों से वकालत छोड़ने का अनुरोध किया। पटना सचिवालय पर झंडा फहराने के कारण 11 अगस्त 1942 ई0 को सात छात्र शहीद हुए जिनमें राममोहन राय सेमिनरी के छात्र रामानन्द सिंह, पटना कॉलेजिएट के छात्र सतीश प्रसाद झा, बी0 एन0, कॉलेज के छात्र जगपति कुमार, मिलर स्कूल के छात्र राजन्द्र सिंह, पुनपुन स्कूल के छात्र रामगोविन्द सिंह तथा राममोहन राय सेमिनरी के छात्र उमाकांत प्रसाद सिन्हा थे और मिलर स्कूल के दवीपद चौधरी थे। डॉ0 कालिकिंकर दत्त का कथन है कि दन छात्रों के आत्म बलिदान ने भारत के आत्म निर्भर काद अधिकार हासिल करने के मार्ग में जो भी बाधाएँ थी, उन्हें समाप्त कर दिया। सारण जिले में जगलाल चौधरी ने यह आंदोलन चलाया। सीवान थाने पर झंडा फहराने के क्रम में एक पुराने कांग्रेसी फुलेना प्रसार श्रीवास्तव पुलिस की गोली से मारे गये। पुलिस ने जगलाल चौधरी के दो वर्ष के बच्चे को मार डाला। चंपारण जिले के गोविन्दपुर थाने में ऋषिजी, सहदेव प्रसाद, जगन्नाथ प्रसाद तिवारी ने एक समानान्तर सरकार बनायी थी और वे मुखबिरों को सजा देते थे। मुजफ्फरपुर जिले तें सरकार का दमन चक्र चला और लालचंद मदन गोपाल फर्म को लूटा गया तथा सेठजी के पुत्र देवकी प्रसाद को मार दिया गया। पुपरी के लोगो को गाँव छोड़कर भागना पड़ा। लोगों ने मीनापुर के थानेदार को जिंदा जला दिया। बेलसंड थाने पर गोली चली, जिसमें जयमंगल सिंह, सुखदेव सिंह, भूपन सिंह, नौजाद सिंह, बंशी तत्मा, सरसात शाह, सुंदर महरा, छटू साह, बदलेव सुहरी तथा सूखु लोहर मारे गये। 25 अगस्त को बिदुपुर बाजार में लोंगो पर गोली चलायी गयी जिसमें रामावतार राय, हरिवंश राय, बुधन दुसाध, रौशन राय, दोधानी राय, रामदास तथा हेमराज राय मारे गये। शाहाबाद में पुलिस की गोली से राजेन्द्र, निखु साह, रामश्वर पांडे, शिवपूजन राम, दुलार लोहार, छोगल बहीर, साधु अहीर तथा रामाधार अहीर मारे गये। 16 अगस्त को कपिल मुनी को गोली मारी गयी। उसके बाद झंडा फहराने का प्रयास करने पर रामदास लोहार तथा रामगोपाल को गोली मारी गयी। गया के कुरथा थाने में कांग्रेसी कार्यकर्त्ता श्याम बिहारी लाल शहीद हुए। दुसाध सिंह को अरवल थाने के अधिकारियों ने पीटते-पीटते मार दिया। पूर्णियॉ में अगस्त क्रांति शानदार रही। 13 अगस्त को कटिहार थाने पर झंडा फहराते समय 13 वर्षीय बालक ध्रुव कुमार को पुलिस ने गोली मार दी। तत्पश्चात रामाशीष सिंह, रामाधार सिंह, कलानन्द मंडल, गिरि दामोदर साह तथा बिहारी लाल साह भी मारे गये। अगस्तक के दूसरे सप्ताह में मुंगेर जिले में गोली चलने में भिन्न-भिन्न जगहों पर बलदेव पंडित, दलन गोप, कारू मिश्र, कलार पोद्दार, सुखदेव कुवर, वैद्यनाथ सिंह, गुजा सिंह, दारो साह, केवल सिंह, चंचल मिश्र, भोला मंडल, चमक लाल पासवान, कारेलाल वर्मा, लाल जी गोप, लगरू गोप, जागो गोप, हुंकेरी तेलिन, उसकी 3 साल की एक लड़की और सात साल का एक लड़का, सुरनी देवी तथा उसका एक बच्चा, डोमन ठाकुर, संपतिया तथा तूरी शहीद हुए। इसके अतिरिक्त सुरेश मिश्र, नन्द कुमार सिंह, श्यामा प्रसाद सिंह, रामचरित्र सिंह, ब्रह्मदेव नारायण सिंह गिरफ्तार किये गये। 29 अगस्त को सहरसा में गोली चालन में पुलकित कांत, हरिकांत झा, कमलेश्वर मंडल, भोला ठाकुर तथा केदार नाथ तिवारी मारे गये। 13 और 14 सितम्बर को सुपौल थाना पर कब्जा करने के सिलसिले में शत्रुघ्न प्रसाद, लहटन चौधरी, रामचंद मिश्र, गंगा प्रसाद सिंह अच्युतानन्द झा, रामश्वर खां तथा शिवनन्दन झा गिरफ्तार किये गये और इनकी खुब पिटाई हुई। भागलपुर में अगस्त क्रांति का नेतृत्व छात्रों ने किया। वहॉ शिवधारी सिंह, सुखदेव चौधरी, कैलाश बिहारी लाल गिरफ्तार हुए। राजेन्द्र मिश्र, मेवा लाल झा, अच्युतानन्द सिंह, कमलेश्वरी प्रसाद यादव, रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, ठाकुर भगवती प्रसाद सिंह, निर्मलचंद राय, श्री हरेकृष्ण प्रसाद तथा योगेन्द्र नारायण सिंह गिरफ्तार हुए। संथाल परगना भी क्रांति की पहली कतार में रहा। 26 अगस्त को गोली चालन मे अर्फ़ी लाल देवघर में मारे गये। रामजीवन झा, रामेश्वर लाल सर्राफ़, मोती लाल केजरीवाल, रामजीवन हिम्मत सिंह, अशोक कुमार बोस, उषा रानी मुखर्जी, भादो हेम्ब्रम, बुद्धिनाथ झा, सागर मोहन पाठक, ब्रिजलाल डोकानिया, बहुमूल्य दत्त, कृपानाथ पांडे, पंजन जी मिश्र, हरिराम गुटगुटिया, लालचंद धाम, रजलाल पुजारी तथा शारदा देवी को पुलिस ने गिरफ्तार कर अपनी हिरासत में लिया। जामवन्ती देवी तथा प्रेमा देवी को गिरफ्तार करने के बाद पुलिस ने छोड़ दिया तथा बिराजी मदियाइन पुलिस की गोली से शहीद हो गयी। मानभूम जिले में क्रांति देर से शुरू हुई, किन्तु जब शुरू हुई तो भयावह हो गयी। बड़ा बाजार तथा बॉधवान थाने में आग लगा दी गयी तथा लालपुर और लघुरमा के सैनिक कैम्पो में आग लगाने की कोशिश हुई जिसके कारण जरगॉव, कबराजगढ़ तथा मानवसार मे गोलियां चलीं। हजारीबाग में मजदूर वाले इलाके में क्रांति ने अपने रंग दिखाया। डोमचांच तथा कोडरमा में आंदोलन जोरों पर था। डोमचांच में दो व्यक्ति गोली चालन में शहीद हुए। पलामू तथा सिंहभूम में भी आंदोलन चला। जमशेदपुर के सिपाहियों ने भी इस आंदोलन में अभूतपूर्व काम किया। तिरहुत प्रमंडल में दो महीने तक जनता का शासन रहा। हाजीपुर, मुजफरपुर, सीतामढ़ी तथा दरभंगा के बहुत से स्थानों में जनता का प्रतिवर्ती या समानान्तर शासन चलता रहा।

मन्मथानाथ गुप्त की पुस्तक भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास तथा डॉ0 कालिकिंकर दत्त की पुस्तक 'बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास' को आधार ग्रंथ मानते हुए इन विवनणों को देने का अर्थ केवल इस झलक को दर्शाना है कि आजादी की लड़ाई में समाज के सभी वर्गो के सदस्यों ने आत्माहुति दी थी और इस आत्माहुति का लक्ष्य देश के लिए संपूर्ण स्वतंत्रता को प्राप्त करना था। क्या औरत, क्या मर्द, क्या अगड़े, क्या पिछड़े, क्या हरिजन, क्या गिरिजन-सबों ने अपने प्राणों की बाजी लगायी थी। उन दिनों साहित्य का यही संदेश था-

मुट्ठी में लिये भविष्य देश का, वाणी में हुंकार लिए,
मन से उतार कर हाथों में निज स्वप्नों का संसार लिए,
सेनानी करो प्रयाण अभय, भावी इतिहास तुम्हारा है,
ये नखत अमा के डूब रहे, सारा आकाश तुम्हारा है।
जो कुछ थ निर्गुण, निराकार, तुम उस द्युति के आकार हुए
पीकर जो आग पचा डाली, तुम स्वयं एक अंगार हुए।
सांसो का पीकार वेग देश की हवा तभी सी जाती है
गंगा के पानी में देखो, परछाई आग लगाती है
विप्लव ने उगला तुम्हें महामणि उगले ज्यों नागिन कोई,
माता ने पाया तुम्हें यथा मणि पाए बड़भागिन कोई।

अब परतंत्रता की बेड़ियों को जला देने वाला अंगार और पानी में आग लगाने वाली परछाई कहॉ है? भारत की स्वतंत्रता और उसके लोकतंत्र के अस्तित्व पर सवालिया निशान लगाने की कल्पना भी उन दिनों संभव नहीं थी।

जिया लाल आर्य ने अपनी पुस्तक 'स्वतंत्रता संग्राम: बुद्धि जीवियों की भूमिका' में लिखा है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महायज्ञ में इस महान् देश के अनेक सपूतो ने तन मन धन से आहुति दी है। इस संयुक्त आहुति केक महाताप का सामना विदेशी शासन नही कर सका और अंतत: हमारे देश को आजादी में सांस लेने का गौरवशाली अवसर प्राप्त हुआ। आज के आजाद भारत के प्रत्येक नागरिक का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह देश के उन सपूतो के बलिदान का स्मरण कर उन्हें नमन करे जिन्होंने देश को स्वतंत्रता दिलाने के लिए सर्वोच्च बलिदान दिया।

1942 के आंदोलन के बाद छिपकर काम करने का चरण आजादी की प्राप्ति के लिये आरम्भ हुआ। बिहार के अनेक फरार कार्यकर्त्ता नेपाल-तराई की ओर चले गये थे। वहॉ उन्हें कुछ लोगो की सहानुभूति तथा आश्रय मिला। राष्ट्रीय संग्राम के नये चरण की रूपरेखा एवं योजनाएं विकसित की जाने लगी थी, बंबई कांग्रेस बुलेटिन, 9 जुलाई 1943 के एक अवतरण में यह उल्लेख मिलता है: हमारे संघर्ष की वर्त्तमान स्थिति में अभी शीघ्र किसी परिणाम की आशा नहीं की जा सकती। यह संघर्ष कठिन एवं दीर्घकालीन होने जा रहा है। फिर पिछले पांच महीनो की हमारी उपलब्धियों से अंतिम सफलता की कुछ आशा बंधती है, यद्यपि जन- प्रदर्शन अब नहीं हो रहे है, किंतु व्यक्तिगत रूप से छिटपुट कार्यो में जो वीरता एवं साधन संपन्नता प्रकट होती है उसके रूप में हमे अपरिमित लाभ हुआ है। आंदोलन अब गुप्त रूप में चलाया जा रहा है और धीरे-धीरे बिखरे हुए सशक्त एवं प्रभावकारी केन्द्रो में प्रकट हो रहा है। इसकी पुरानी गति संभवत: कायम नही रही है। फिर भी प्रतिरोध और प्रदर्शन नये रूप ले रहे है। उनमें विस्तार एवं प्रतिरोधात्मकता दोनों ही आयी है। असंगठित जन- प्रदर्शनो के स्थान पर बहादूर एवं साहसी तथा साधन संपन्न कार्यकर्त्ताओं के दल सामने आ रहे है। इसके साथ ही सामाजिक एवं आर्थिक क्रूरावस्थाएं एवं तज्जन्य असंतोष, जिन पर इस तरह की क्रांतियां आधारित होती है, प्रकट हो रही है। अकल्पनीय गरीबी, भुखमरी और दिन-दिन बढ़तर अन्नाभाव चरम बिंदु पर पहुँच रहे है, इस प्रकार एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो रही है जहां सभी विप्लव की तहर एक साथ होकर विदेशी सत्ता पर टूट पड़ेगे और उससे जो अस्तव्यस्तता एवं अराजकता फैलेगी और भीषण उथल-पुथल होगी उनसे क्रान्ति को बल मिलेगा, क्रान्ति कामयाब होगी और एक नयी संभवत: अच्छी दुनिया का उदय होगा। श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा अनुबंधित क्रान्ति के नये चरण का संदेश जनवरी, 1943 ई0 के अंत मे सभी स्वतंत्र सेनानी को शीर्षक एक परिपत्र में परिचारित किया गया। विदेशी आधिपत्य को पूर्णत: खत्म करने के साधन के रूप में हिंसा के उपयोग पर प्रकाश डालने के उपरांत श्री नारायण ने लिखा थाह हमें अपने सहकर्मियों को तैयार करना

है। उन्हें संगठित एवं अनुशासित करना है। हम जो भी करते हो उससे हमें यह बात हमेशा ध्यान में रखनी होगी कि हमारा काम मात्र शडयंत्रात्मक कारवाई नहीं। हमारा लक्ष्य व्यापक एवं पूर्ण जनविद्रोह है। इस उद्‌देश्य से श्री नारायण ने गाँव में कृषक जनता तथा कारखानों, खाद्यानों, रेलवे और अन्य भारतीय सेना और सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के बीच गहन कार्य करने पर बल दिया। इस कार्य के लिए छात्रो से विशेष रूप से अपील की गयी।

निष्कर्ष

व्यापक जन आंदोलन को कुचलने के लिए सरकार ने अपनी कार्यालयों को आग लगाना आदि तरीके सरकार द्वारा अपनाए गए।

1943 अंत तक गिरफ्तारियों का सरकारी आंकड़ा 91,836 था। पुलिस की गोली से मृत व्यक्तियों की संख्या 1060 हो गयी थी। बलात्कार के 74 मामले प्रकाश में आए। गिरियक, भागलपुर, मुंगेर, रामाधार एवं तलचर में लोगों पर गोली चलाने के लिए हवाई जहाजों का प्रयोग किया गया। इसके साथ लाठी चार्ज, कोड़े मारने एवं बंदी बनाने की अनगिनत घटनाएं हुई। आंदोलन प्रभावित क्षेत्रों के निवासियों से सामुहिक जुर्माना भी वसुल किया गया।

भारत छोड़ो आंदोलन में जनता ने बड़े साहस और उत्साह से काम किया। प्रारंभ में इसे स्कलता प्राप्त हुयी, किन्तु अंत में सरकार के कठोर दमनचक्र के कारण तथा नेताओं के अभाव में आंदोलन स्कल नहीं हो सका और अपने दमनकारी तरीको से ही अंग्रेज खुद को फिर से जमाने में स्कल हो गए। युद्ध की स्थिति ने दो तरह से उनकी मदद की। एकतरु, उनके हाथ में विशाल सैन्य शक्ति थी जो भारत में जापानी हमले कमे मुकाबले के लिए रखी गयी थी, परंतु इस शक्ति का उपयोग आंदोलन को कुचलने के लिए किया गया। दूसरी तरु, युद्धकालीन सेन्सर का लाभ उठाकर उन्होंने आंदोलन को निर्मम ढ़ंग से दबा दिया। उन्हें न तो इस दमनकारी आंदोलन के लिए किसी आंतरिक आलोचनाओं की चिंता करनी थी और न विश्व जनमत की। मित्र राष्ट्र, धुरी राष्ट्रों के साथ युद्ध में उलझे थें, उन्हें इस बात की चिंता करने का समय नहीं था कि अंग्रेज भारत में क्या कर रहे थे। आंदोलन कमे अस्कल होने का एक अन्य प्रमुख कारण था- विद्रोहियों के बीच समन्वय संगठन और किसी निश्चित कार्य प्रणाली का अभाव। और यही कारण था कि आंदोलन की गति शिथिल पड़ गयी और अंतत: अस्कल हो गयी।

इसमें संदेह नहीं की इस आंदोलन को कुचल दिया गया, लेकिन इसने अंग्रेजी राज से छुटकारा पाने के लिए जनता के दृढ़ इरादे को बखूबी जाहिर कर दिया। इस ऐतिहासिक आंदोलन की एक बड़ी खूबी यह रही कि इसके द्वारा आजादी की मांग राष्ट्रीय आंदोलन की पहली मांग बन गयी। 'भारत छोड़ो' के बाद अब पीछे नहीं मुड़ा जा सकता था। ब्रिटिश सरकार से भविष्य में जो भी बातचीत होनी थी उसमे सत्ता के हस्तांतरण का सवाल आना ही था और इस सवाल पर कोई मोलभाव नहीं किया जा सकता था, जैसा कि युद्ध के बाद स्पष्ट भी हो गया।

संदर्भ

1. काश्यप, डॉ0 सुभाष; स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 सं0 73-99
2. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ0 सं0 408-419
3. दत्त, डॉ0 के0 के0; बिहार में स्वातंत्रता आंदोलन का इतिहास (भाग-3), बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 सं0 28-125
4. बिहार (हिन्दी मासिक), भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार का योगदान विशेषांक (अगस्त-अक्टुबर 98)
5. गुप्त, मन्मथानाथ, भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास,

बच्चों के शैशवाकालीन सामान्य बीमारियां एवं उसके उपचार

डॉ० अस्मिता सिंह

पी-एच0 डी0 (गृहविज्ञान विभाग), जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सार-संक्षेप

हमारे देश में आज भी लगभग 75 प्रतिशत बच्चे एवं लोग अपर्याप्त पोषण की स्थिति में है। 1-5 वर्ष के बच्चा में तो यह स्थिति अधिक चिंताजनक बनी हुई है। इस उम्र के बच्चों को जबकि उनके सर्वांगीण विकास के लिए अधिक पोषण की आवश्यकता होती है। वहां उन्हें पर्याप्त पोषण प्राप्त नहीं हो पाता। लगभग 30 से 40 प्रतिशत बच्चे पौष्टिक तत्व-प्रोटीन-कैलोरीज का अभाव प्रदर्शित रिते है जिससे उन का शारीरिक व मानसिक विकास वांछित स्तर का हो नहीं पाता। आयरन के अभाव में और विटामिन 'सी' तथा 'बी-वर्ग' फोलासिन व कोबालामिन के अभाव में लगभग 60 प्रतिशत बच्चे अरक्तता के शिकार बने रहते है और विटामिन 'ए' के अभाव में हजारों बच्चें प्रतिवर्ष केरेटोमलेशिया से पीड़ित होकर अंधे हो जाते है। एक आई0 सी0 एम0 आर0 के सर्वेक्षण से यह पता चला है कि पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल में प्रतिवर्ष लगभग 12000 से 14000 बच्चे केरेटोमलेशिया के कारण दृष्टिहीन होते है। सारे देश में यह संख्या लगभग 25000 की है। संरक्षक पोषक तत्वों के अभाव में इनकी शारीरिक क्षमता पनप नहीं पाती जिस कारण वह प्रचलित संक्रामक रोगों के शिकार होते है और लगभग 40 प्रतिशत मृत्यु के ग्रास बनते है जबकि अन्य विकसित देशों में ऐसे रोगों से मरने वाले बच्चों की वार्षिक दर केवल 6 से 8 प्रतिशत ही है।

प्रस्तुत अध्ययन में बच्चों के शैशवाकालीन अवस्था में उत्पन्न होने वाली सामान्य बीमारियों के कारण, लक्षण एवं उपचार का वर्णन किया गया है।

शब्द कुंजी- पोषक तत्व, बाल्यावस्था, असामान्य स्थिति, वर्णान्धता, स्तनपोषित, अपर्याप्तता।

परिचर्चा

बच्चों में पोषक तत्व की कमी/अपर्याप्त पोषण के निम्नलिखित कारण हो सकते है -

1. खाद्यान्नों के अभाव
2. दैवी प्रकोप
3. गरीबी, बेरोजगीर और बढ़ती आबादी
4. अज्ञानता
5. भोजन संबंधी आदतें
6. मिथ्या धारणाएं
7. खाद्य-सामग्री में मिलावट
8. शारीरिक परिस्थितियां और रोग विशेष के कारण अपर्याप्त पोषण

पोषण तत्व की कमी से असामान्य स्थिति-

पोषण तत्व की कमी के लक्षण बच्चों में जल्दी ही प्रकट होने लगती है क्योंकि उनके शरीर का वांछित विकास और मानसिक एवं शारीरिक परिवर्तन सही ढंग से समयानुसार नहीं हो पाता है। शरीर के मांग के अनुरूप पोषण प्राप्त नहीं होने पर बच्चा में अल्प-पोषण के चिन्ह् प्रकट होने लगते है।

अपर्याप्त पोषण में शारीरिक गठन में ढीलापन, मांस-पेशियों में शिथिलता, उम्र व उंचाई के अनुपात में वनज की कमी, दुबला-पतला कृश शरीर, सुस्ती, कमजोरी, निरूत्साह और निस्तेपता की झलक प्रमुख रूप से नजर आने लगती है।

चमड़ी पर दाने, दाद, खुजली, फोड़े-फुन्सी और एक्जीमा इत्यादि होने लगते है। अत्यधिक अपर्याप्त पोषण की स्थिति में आंखे सुखी, निस्तेज व धंसी हुई दिखाई देने लगती है। नेत्र-श्लेष्मला पर सुखी पपड़ी जमने लगती है। एक्सरोसिस एक और बीटॉट्स दाने उभरने लगते है। कॉर्निया पर शोथ व ब्रण होने लगते है और केरेटोमलेशिया की स्थिति पैदा हो जाती है। यह सब विटामिलन 'ए' की कमी से होता है।

मुंह पर चकत्ते, होंठ कटे-फटे, मुंह में छाले, दांत ढीले, दांतों में कोचर, हड्डियां कमजोर व मुड़ी हुई पेट फूला हुआ, पसलियां निकली हुई, यकश्त बढ़ा हुआ, बाल सूखे व मुर्झाये हुए से, कंघी करने पर अधिक टूटते रहते है और पोषक तत्वो की कमियों के कारण।

रक्तहीनता के कारण पलके वर्णहीन, रक्तदान की कमी, नाखून सफेद व सूखा सा दिखता है। अधिक अपर्याप्तता में हाथ-पावों पर जलजमाव तथा विस्तृत चकते दिखाई देने लगते है और भुखमरी की स्थिति पैदा हो सकती है।

बाल्यावस्था में बच्चों में पोषण तत्व की कमी से हुए असमान्य स्थिति का उपचार-

सर्वप्रथम उस कारण का पता लगाना होगा जिनके कारण पोषण तत्व की कमी से असमान्य स्थिति पैदा हुई है। उन कारणों के उचित उपाय, द्वारा निवारण करना आवश्यक होगा।

बच्चों में भोजन संबंधी आदतों में सुधार लाना होगा। मानसिक विकास व अवसार के कारणों का निवारण करना होगा और व्यर्थ की भ्रांतियों को मिटाना होगा। पोषण संबंधी शिक्षा और प्रचार का सम्यक् प्रबंध करना होगा। सस्ते से सस्ते तरीका से संतुलित आहार कैसे तैयार किया जाए ताकि बच्चों को पौष्टिक तत्व प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो सके। इस संबंधस में विस्तृत प्रशिक्षण देना आवश्यक है। बच्चों, स्कूलगामी बालको प्रसूति व छात्री माताओं के लिए-विशेषकर गांवों में सस्ते संतुलित आहार संस्थानों की स्थापना करनी होगी और ग्रामीण लोगों को विश्वास दिलाकर उनका अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करना होगा।

भुखमरी- प्रमुख रोगः पोषण संबंधी कमी से होने वाले भुखमरी-

यह अवस्था तभी उत्पन्न होती है जब लम्बे समय तक पोषण प्राप्त नहीं हो पाता है जेसा कि अकाल, युद्ध, सूखा आदि के कारण उत्पन्न हुए परिस्थितियों में या भूख-हड़ताल आदि की स्थिति में। भुखमरी से पीड़ित बच्चों या व्यक्ति की पाचन-शक्ति अत्यंत ही क्षीण हो जाती है। वह सहसा पूर्ण आहार पचा नहीं पाता।

उसे प्रारंभ में केवल फलों का रस, शरबत या ग्लूकोज-जल थोड़े-थोड़े समय के अंतराल पर दिया जाना चाहिए। लगभग 12 घण्टे बाद मलाई निकले दूध थोड़ी-थोड़ी मात्रा में 2 से 4 औंस देना चाहिए। जब दूध पचने लगे तब सब्जियों का सूप, दाल-पानी, पतली दाल इत्यादि थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देना चाहिए। दही, छाछ, मट्ठा आदि का प्रयोग भी करते रहना चाहिए।

तत्पश्चात्, हल्का मिर्च मसाले रहित साग-सब्जी, दलिया दिया जाना चाहिए। उसके बाद यथासंभव भोजन देना प्रारंभ करना चाहिए।

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण-

हमारे देश में यह एक अभावजन्य रोग है। कुपोषण का पहला लक्षण यह होता है कि बच्चे का वजन बढ़ना रूक जाता है या उसका वनज घटने लगता है। बच्चे की वृद्धि चार्ट बनाकर इस बात का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

कुपोषण के लक्षण-

1. मांसपेशियां दुर्बल दिखती है और बच्चा दुबला-पलता दिखता है।
2. पेट उभर आता है।
3. बच्चा उदासीन हो जाता है।
4. बच्चाा अपनी उम्र से कम का दिखाई पड़ता है।
5. बाल का रंग काला दिखने के बजाय हल्का लाल दिखाई देने लगता है।

हर महने वनज का न बढ़ना कुपोषण का आरंभिक और प्रमुख लक्षण है।

सुखा रोग-आरंभिक कुपोषण का इलाज न किए जाने पर बच्चे को सूखा रोग, क्वाशियोरकोर हो जाता है।

लक्षण

1. विकास का रूक जाना।
2. वृद्धि चार्ट में वनज तीसरी या चौथी रेखा से भी कम होना
3. त्वचा के भीतर वसा का कम रहना। त्वचा ढीली रहती है और बच्चा अधिक उम्र का दिखाई देने लगता है।

सूखा रोग अधिकतर 1 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को होता है। इसका कारण भोजन कम मात्रा में करना तथा पौष्टिक खाद्य-पदार्थो की कमी है।

क्वाशियोरकोर-

इस रोग के लक्षण

1. विकास की गति मंद पड़ जाना।
2. एड़ी और पांव में हमेशा सूजन रहना। सुजे हुए हिस्सों खासकर एड़ी और पैर के निचले भाग में अंगूठा दबाने पर अंगूठा हटा लेने के बाद भी गहरा निशान बना रह जाता है। उसे अपनी स्वाभाविक स्थिति में आने में कुछ समय लग जाता है।
3. बच्चा विक्षप्त दिखता हैं
4. बच्चें की भूख खत्म हो जाती है।

यह रोग अधिकांशत: बच्चे में एक साल के आयु के बाद होता है। इसका कारण कम प्राटीन वाले भोजन करना तथा असंतुलित आहार लेना है।

विटामिन 'ए' की कमी-आंखों के सामान्य कार्यो के लिए विटामीन ए की नितान्त आवश्यकता है। विटामीन ए की कमी से आंखों से दिखाई देना बंद हो जाता है और अंतत: अंधापन आ जाता है।

लक्षण

1. चमकदार रोशनी को नापसंद करना इस रोग का आरंभिक लक्षण है।
2. रतौंधी में बच्चा गंदा रौशनी में देख नहीं पाता है।
3. रतौंधी का सही इलाज समय पर नहीं किया जाता है तो बच्चे की आंख का सफेद हिस्सा शुष्क और रूखा हो जाात है तथा भूरे फेनिल धब्बे आ जाता है।
4. बाद में आंख का मध्य परदर्शक हिस्सा धुंधला पड़ जाता है।,
5. इसे उचित रूप से समय पर इलाज के द्वारा ठीक किया जा सकता है।

उपचार: बच्चे को विटामीन ए युक्त भरपूर स्थानीय रूप से उपलब्ध खाद्य-पदार्थ देना चाहिए। दूध और दूध से बनी वस्तुओं, मक्खन, घी, अण्डा, हरी पत्तीदार सब्जियां, पालक, पूदीना, सहिजन, करी पत्तियां आदि पीले रंगवाले और फल जैसे-आम, पपीता, गाजर आदि में विटामीन ए प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था के कुछ सामान्य रोग/कष्ट--

बच्चों को होने वाली सामान्य रोगों को सामान्यत: दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

1. शिशुओं या शैशवावस्था के सामान्य रोग तथा
2. बालकों अथवा बाल्यावस्था के सामान्य रोग।

शिशुओं को होने वाले सामान्य रोग-अतिसार-इस रोग से ग्रसित शिशु को दस्त होने लगता है। रोग की प्रारंभिक अवस्था में मल जलयुक्त एवं पतला होता है। रोग बढ़ने के साथ मल का परिणाम तथा मलत्याग की संख्या बढ़ती जाती है। यह संख्या 24 घंटे में 15-20 या इससे भी अधिक हो सकती है। मल दुर्गन्धयुक्त, बदरंग एवं पूर्णत: पनीला होने लगता है। शरीर में निर्जलीकरण होने लगता है। इससे बच्चे की हालत बिगड़ने लगती है।

कारण: शिशु में सामान्यत: यह रोग माता के आहार में गड़बडत्री होने जैसे- उसके आहार में मृदुरेचकमुण युक्त अथवा अधिक मिर्च मसाला एवं वसायुक्त पदार्थो का अधिक होना इत्यादि के कारण होता है। बोतल से दूध पीने वाले शिशुओं का इस रोग से ग्रसित होने के मुख्य कारण है- दूध में चीनी की मात्रा अधिक होना, दूध या दूध पिलाने वाला पात्र का सर्वमित होना तथा शिशु को ठंड लग जाना इत्यादि।

रोकथाम एवं उपचार-यदि स्तनपोषित शिशु अतिसार से पीड़ित हो तब सबसे पहले उसकी माता को अपना आहार ठीक करना चाहिए। अधिक से अधिक जल ग्रहण करना चाािए,गरिष्ठ आहार लेना पूर्णत: छोड़ देना चाहिए। साथ ही साथ रोग का उपचार किया जाना चाहिए। बोतल से दूध पीने वाले शिशु को दूध में चीनी की मात्रा अधिक दिया जाना चाहिए। रोग की तीव्रता की स्थिति में दूध पिलाया जाना बंद कर देना चाहिए, एक चुटकमी नमक एवं एक चम्मच चीनी या शक्कर एक ग्लास जल में मिलाकर या ओ0 आर0 एस0 घोल बनाकर बच्चों को पिलाते रहना चाहिए तथा अविलम्ब चिकित्सक की राय लेनी चाहिए।

पेट फूलना तथा पेट में दर्द-स्तनपोषित अथवा कृत्रिम आहार पर पोषित दोनों ही प्रकार के शिशु बहुधा पेट फूलने तथा पेट दर्द से पीड़ी होकर रोने-चीखने लगते है

कारण: सामान्य स्थिति में पेट फूलने का कारण पेट में वायु भर जाना होता है। तेजी से दूध घोटने, खाली बोतल के निपल को चूसते रहना इत्यादि शिशु के पेट में वायु भरने के कारण हो सकते है। पेट में वायु भरने से पेट फुल जाता है जिससे उसकी मांस-पेशियों में तनाव आ जाता है। फलत: शिशु को कष्ट होता है।

बाहरी दूध पीने वाले शिशु के दूध में प्रोटीन एवं शक्कर की मात्रा अधिक होना उसे पेट में दर्द होने का कारण बनता है। अधिक प्रोटीन शक्करयुक्त दूध से शिशु के अमाश्य में बननेवाला छेना पचने में गरिष्ठ होता है। यह छेना कड़ा होता है तथा यह शिशु के पेट की प्राकृतिक आंत गति को बाधित करता है। ∓लत: उसके पेट में दर्द हो जाता है। इस कारण पेट में गैस भी बनने लगता है। जिससे पेट ∓ूल जाता है तथा शिशु को दर्द भी होता है।

रोकथाम व उपचार-पेट ∓ूलना या पेट में दर्द दूध पीने या पीलाने में हुई गड़बड़ी के कारण हो तब निम्नांकित उपचार करना चाहिए--1. बोतल का दूध जैसे ही समाप्त हो जाए उसे तुरंत शिशु के मुख से हटा देना चाहिए। तथा 2. शिशु के बोतल के निपल में इतना छेद होना चाहिए जिससे शिशु के मुख में उतना ही दूध जा पाये जितना शिशु सहजता से निगल सके।

अगर पेट फूलना या पेट दर्द अधिक प्रोटीन शर्करायुक्त दूध के कारण हो तो दूध को आवश्यकतानुसार जल मिलाकर पतला कर लेना चाहिए। चूना या बार्ली का पानी मिलाकर भी दूध को पतला बनाया जा सकता है। इस प्रकार तैयार किए गए दूध से अमाश्य में बनने वाला छेना सुपाच्य हो जाता है।

बाल्यावस्था के सामान्य रोग-बाल्यावस्था में मुख्यत: सूखा रोग, रतौंधी, खसरा, डिप्थिरिया तथा काली खांसी आदि प्रमुख है।

सूखा रोग विटामीन डी, रतौंधी विटामीन ए तथा क्वाशिओरकोर प्रोटीन के अभाव में होता है। इन्हें पोषणाात्मक अभावजनित रोग कहा जाता है। इनाक उपचार सामान्यत: इनसे संबंधित तत्वों की अतिरिक्त मात्रा की आपूर्ति शरीर को किया जाता है। खसरा, डिप्थिरिया, काली खांसी आदि संक्रामक रोग है।

बीमार बच्चों का आहार-बीमार बच्चे को अपने रोग से लड़ने के लिए पोषक तत्वों की आवशकयता होती है। ग्रामीण माताओं की यह गलत धारणा होती है कि जब बच्चाा बीमार हो तो उसे भोजन नहीं दिया जाना चाहिए। बीमार बच्चों को उनके रोग एवं डाक्टर के परामर्श के अनुसार समय-समय पर दवा के साथ-साथ पोषक आहार देते रहना चाहिए ताकि बच्चा जल्द से जल्द स्वस्थ हो जाए। निम्नांकित आहार बच्चे को देना चाहिए।

1. अगर बच्चाा मां का दूध पीता हो तो उसे स्तनपान कराना जारी रखना चाहिए
2. बच्चे को काफी मात्रा में तरल पर्दाथ दिया जाना चाहिए। उबला हुआ पानी, नारियल पानी या ताजे फल का रस आदि दिया जाना चाहिए। यदि उसे दस्त आ रहे हो तो काफी मात्रा में नमक, चीनी और पानी का घोल, चावल का मांड, दाल का पानी आदि तरल पदार्थ देना चाहिए।
3. अनाज का दलिया जैसे नरम पकाये हुए खाद्य पदार्थ फल, दूध आदि समय-समय पर दिए जाने चाहिए।
4. जब बच्चा ठीक हो रहा हो तो उसे र्प्याप्त ऊर्जा, प्रोटीन और अन्य पोषक तत्वों वाला भोजन दिया जाना चाहिए ताकि वह जल्दी स्वस्थ हो सके। बीमारी के दौरान वजन कम हो जाने पर उसे पूरा किया जा सके।
5. एक समय में ढेर सारा खाद्य-पदार्थ नहीं देना चाहिए।
6. बच्चे को स्वस्छ व सुरक्षित भोजन देना चाहिए। भोजन बनाते समय बच्चों की रूचि का खास ध्यान रखना चाहिए।
7. बच्चों के लिए भोजन तैयार करते समय स्थानीय रूप से उपलब्ध और सस्ते खाद्य-पदार्थ का प्रयोग किया जाना चाहिए।

संदर्भ

1. नारायण, प्रो0 श्रीमति सुधा, आहार विज्ञान, रिसर्च पब्लिकेशन, पृ0 45
2. बेन्जामीन, मिस0 शकुन जे0, मातृकला एवं शिशु पालन, स्वास्तिक प्रकाशन, अस्पताल मार्ग, आगरा, 1981, पृ0 32
3. मिश्रा, श्रीमती उषा एवं सिंघल सरिता, आहार एवं पोषण विज्ञान, साहित्य प्रकाशन आगरा, 1987, पृ0 33
4. वर्मा, प्रो0 डॉ0 उषा, मातृकला, बाल विकास एवं बाल मनोविज्ञान, भारती भवन पटना, पृ0 32
5. वर्मा, डॉ0 प्रमिला एवं पाण्डेय कांति, आधुनिक गृह विज्ञान आहार एवं पोषण, सांइटिफिक बुक कम्पनी अशोक राजपथ, पटना, पृ0 44।
6. विनायक, प्रो0 जे0 एस0, आहार एवं पोषक विज्ञान, संजीव प्रकाशन मेरठ, पृ0 28
7. स्वाभिमाथन, एस0, आहार एवं पोषण विज्ञान, एन0 आर0 ब्रदर्स मेडिकल डिविजन, इंदौर, पृ0 33
8. सिंह, डॉ0 केचरिन एस0, पोषण एवं आहार के सिद्धांत, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, पृ0 65

बिहार में किसान आंदोलन के चरण एवं उसका सांगठनिक प्रतिरूपः एक अध्ययन

रजनीश कुमार

शोध छात्र, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय

सार-संक्षेप

20 वीं शताब्दी का आरंभिक दशक बिहार में राष्ट्रीय चेतना के विकास का काल था। दूसरे दशक के आरंभ में ही एक पृथक प्रांत के रूप में बिहार में गछन होने से जहां एक ओर एक नवीन प्रांतीय अस्मिता के भाव का जागरण हुआ वहीं दूसरी ओर पहले से चली आ रही समस्याएं भी मुखर हो गयी। कृषक समस्या इन्हीं समस्याओं में से एक थी। इस समस्या के समाधान के लिए सबसे पहला संगठित प्रयास चंपारण सत्याग्रह था, जो 1917 में गांधी जी द्वारा चलाया गया। लेकिन कृषक समस्या का यह स्थायी निदान साबित नहीं हो पाया। अतः कालान्तर में इस दिशा में नवीन नेतृत्व में कई आंदोलनों का सूत्रपात हुआ।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में 20 वीं शताब्दी में बिहार में हुए कृषक आंदोलन एवं उसके सांगठनिक प्रतिरूप का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

शब्द कुंजी- रैयत, जमींदार, जागीर, भू-बंदोबस्ती, राजस्व, बेगार।

परिचर्चा

भारत में ब्रिटिश शासन एवं भारतीय शोषकों के विरुद्ध 19 वीं सदी में किसान काफी त्रस्त हो गए। कृषक वर्ग ने कई विद्रोह और आंदोलन किए। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में हुए किसान आंदोलन ने भी राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष को काफी प्रभावित किया। बिहार के किसानों द्वारा भी जमींदारों के आर्थिक शोषण एवं ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अनेक विद्रोह किए। चंपारण में नील किसान एवं मजदूरों ने भी राजकुमार शुक्ल के नेतृत्व में 1916 में विद्रोह किया। राजकुमार शुक्ल के आमंत्रण पर 1917 में गांधी जी चंपारण आए और यहां के किसानों को अपना हक दिलाने के लिए सत्याग्रह आंदोलन का सूत्रपात किया। यह बिहार के चंपारण जिला का प्रथम आंदोलन था। गांधीजी के चंपारण सत्याग्रह को फलीभूत करने में डॉ राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद, गौरव प्रसाद, धरनीधर, रामनौमी प्रसाद, जनकधारी प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिन्हा आदि ने अपने अपूर्व सहयोग से इस आंदोलन में सक्रिया भूमिका अदा की । गांधीजी ब्रिटिश सरकार ने बातचीत करके एक कानून बनवाकर तीनकठिया प्रथा को समाप्त करके समस्त रैयतों का लगान भी कम कर दिया। इस सफलता ने गांधी जी के मनोबल को बढ़ाया।

तत्कालिन बिहार की अर्थव्यवस्था का रीढ़ कृषि ही था और भू राजस्व आय का बड़ा स्रोत था सम्पूर्ण बिहार लगभग एक लाख जागीरों में विभक्त था। 1912-13 ई0 में भू-राजस्व के स्वरूप में एक करोड़ सत्तावन लाख उनचालीस हजार रूपये उगाही किए गए थे।

तत्कालिन जागीरें तीन श्रेणियों में विभक्त थी- स्थायी बंदोबस्त वाली, अस्थाई बंदोबस्त वाली और सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रणवालरी। 19 वीं सदी के प्रारंभ में बिहार की लगभग तीन करोड़ की कुल जनसंख्या में जमींदारों और उनपर आश्रित लोगों की जनसंख्या करीब साढ़े छह लाख थी। 20000 एकड़ से अधिक की जागीरवाली रियासतों की संक्ष्या सिर्फ 474 थी, जबकि 90 प्रतिशत जागीर 500 एकड़ से कम की थी। दरभंगा महाराज की सबसे बड़ी रियासत थी। इनकी रियासत पांच जिलों में 2400 वर्गमील

में विस्तृत थी। जिसकी आय लगभग एक करोड़ रूपये थी तथा सबसे छोटी डेढ़ एकड़ की एक जमींदारी पटना जिले के भरतपुरा गांव में थी जिसकी आय सिर्फ चार आने की थी।

नीलहे यूरोपीय ठीकेदार बड़े जमींदार से जागीर का कुछ भी ठीके या पट्टे पर लेते थे। इसके बाद ये ठीकेदार ठीके पर लिए गए जमीन के एक-तिहाई या एक चौथाई भाग पर नील की खेती के लिए किसानों को विवश करते थे। बेतिया महाराज जो चंपारण के बड़े जमींदार थे; इन्होंने अपने जमींदारी से बड़ भू-भाग एक निश्चित सलाना लगान पर नीलहे ठीकेदारों को दे दिया था। ये ठीकेदार रैयतों को बीज और कुछ अग्रिम राशि देते थे। फसल काटकर कारखाना तक पहुंचाना इन रैयतों की जवाबदेही थी। फसल के लिए दी गई अग्रिम राशि को घटाकर शेष राशि भुगतान कर दिया जाता था। ठीकेदार फसल की कीमत तय करने में काफी मनमानी करते थे।

तात्कालीन बिहार में सर्वे सेटलमेंट का कार्य युद्ध स्तर पर जारी था। 1892 ई0 में पुराने बंगाल प्रांत से प्रारंभ होकर यह काम 1925-26 ई0 तक जारी रहा। इसी क्रम में समस्त रैयतों ने अपने अधिकार के प्रति तत्परता दिखाई। रैयत संगठन में परिवर्तित होने लगे। लेकिन ये संगठन आगे चलकर धाराशायी हो गए। उस समय बिहार में अनेक रैयतों में ज्वलंत मुद्दे थे। जिसका हल आसानी से निकलना कठिन था। यथा-बनैली एस्टेट द्वारा कायमी जोतों की बिक्री पर जमीन का मूल्य 25 प्रतिशत लेवी के रूप में लेने के खिलाफ भी रैयतों ने आंदोलन कर दिया था। चौथम के जमींदार लगान लेने की प्राप्ति रसीद ही नहीं देते थे। आगे चलकर कानूनी लगान से 100 से 800 प्रतिशत अधिक लगान उगाहते थे। सीतामढ़ी में खिस्ता (सादे कागज) की रसीद देने की प्रथा थी। हुंडा या बटाई लगान की प्राप्ति रसीद तो दी ही नहीं जाती थी।

1919-20 में उत्तर बिहार के अनेक जिलों में मुख्यत: राज दरभंगा के क्षेत्रों में स्वामी विद्यानंद रैयतों को अपने अधिकार के संबंध में सचेत कर रहे थे। स्वामी विद्यानंद की अभियान मधुबनी के नरार गांव से प्रारंभ हुए। इस अभियान का मुख्य मांग था, लगान के वृद्धि पर रोक, लगभग समस्त गांवों में चारागाह की व्यवस्था, अपनी जोत के पेड़ों पर रैयतों का पूर्ण अधिकार, जमीन विक्रय पर जमीन के मूल्य का 25 प्रतिशत अग्रिम के तौर पर लेने का विरोध, बिना मजदूरी दिए किसी को मुफ्त में काम कराने का विरोध, रैयतों को अपनी कायमी भूमि पर, जमींदारों को बिना किसी पूर्वानुमति के घर बनाने या कुआं खोदने का अधिकार, अंबवाबों का समापन आदि। स्वामी विद्यानं के अभियान को रैयतों का पूरजोर समर्थन मिला वही दूसरी ओर दरभंगा राज की तरफ से विरोध मिला। नवम्बर 1920 के परिषद् चुनाव में उत्तर दरभंगा और उत्तरी भागलपुर के निर्वाचन क्षेत्रों में उन्होंने किसान सभा के नाम पर प्रत्याशी खड़े किए और स्वयं भी प्रत्याशी बनकर खड़े हुए। कायमी रैयतों के अनेकानेक लोगों ने उनके पक्ष में पत्र दिया और वे तथा उनके तीन अन्य रैयत प्रतिनिधि चुनाव जीते।

पटना जिले में नकदी जोतों को मावली दानाबंदी जोतों में बदलने की जमींदारों की पहल के खिलाफ रैयतों ने विरोध कर दिया। तत्कालीन समय में गांवों में रैयतों ने एकत्र होकर न सिर्फ जमींदारों की इन कोशिशों का विराध किया, बल्कि वे दानाबंदी भावली जमीन को भी सस्ती दरों पर नकदी जमीन में परिवर्तित करने का दावा पेश करने लगे। क्योंकि बंगाल काश्तकारी अधिनियम 1885 के तहत सर्वप्रथम इस तथ्य की आज्ञा दी गई थी कि किसान अगर चाहे तो उनकी भावली भूमि को नकदी भूमि में परिवर्तित किया जा सकता है। इस मसले में स्थानीय अधिकारियों का इस बदलाव की प्रक्रिया तय करने का निर्देश दिया गया था। जवाबी तौर पर जब जमींदार अपने रैयतों के कायमी अधिकारों को ही समाप्त करके अत्यधिक भूमि को खुदकाश्त जमीन बनाने की कोशिश करने लगे तो तनाव अधिक बढ़ गया। रैयतों ने यह दावा प्रस्तुत किया कि जमींदारों की खुदाकाश्त जमीन तो उनके पूर्वजों की कायमी सम्पति ही है। जिसके परिणाम स्वरूप कई विद्रोह और हिंसा हुए।

नीलहो के अत्याचार के खिलाफ कई विद्रोह हुए। 1908 में राजकुमार शुक्ल के दिश-निर्देश में चंपारण के रैयतों का एक मजबूत आंदोलन का सूत्रपात हुआ। पीर मोहम्मद मूनीस प्रताप के संपादक थे। संगठित आंदोलन के अलावे छिट-पुट आक्रमणों के द्वारा भी रैयत इन नीलहे मालिको के विरूद्ध क्रोध उतारते। गांधीजी के द्वारा चंपारण सत्याग्रह 1917 में किया गया जिस कारण चंपारण के किसानों के लगान में कमी आई साथ ही तीन कठिया प्रथा भी समाप्त हुई।

1914 ई0 रांची, पलामू, हजारीबाग के उरांव लोगों के मध्य जतरा उरांव के नेतृत्व में ताना भगत आंदोलन शुरू हुआ। जतरा उरांव ने रैयतों से लगान न देने का आह्वान किया था। जिस कारण जतरा उरांव पर अंग्रेजी सरकार द्वारा मुकद्दमा हुआ और उसे जेल भेज दिया गया। 1915 में संवैधानिक उपायोंसे आदिवासियों के सर्वागीण विकास के लिए छोटानागपुर उन्नति समाज की स्थापना की।

रैयतों के साथ-साथ प्रांत के अनेक भागों में अच्छे मजदूरी के लिए खेतिहर मजदूर सक्रिय थे। तत्कालीन प्रमंडलों की स्थितियां भिन्न-भिन्न थी। तिरहुत में मजदूरी के बदले अनाज देने की परंपरा थी तो पटना प्रमंडल में नगद मजदूरी दी जाती थी। अनाज की कीमतें बढ़ने घटने से दोनों स्थानों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता था।

स्वामी सहजानंद सरस्वती किसानों के अग्रणी नेता थे। बिहार में जमींदार का एक बड़ा भाग बाभनद्धभूमिहार, ब्राह्मणऋ जाति से सम्बद्ध था। टिकरी, हथुआ, बेतिया सरीखे बड़े-बड़े रियासतों के मालिक इसी जाति से थे। पटना, मुंगेर, गया, मुजफ्फरपुर, चंपारण आदि जिलो में कायमी रैयतों का बड़ा भाग भी इसी जाति का था। प्रधान भूमिहार सभा को राजे-रजबाड़े का सीधा संरक्षण मिला था। वाराणसी से महाराजा तो अध्यक्ष थे, हथुआ, शिवहर और अमावां के राजा इसके संयुक्त अध्यक्ष थे। जाति की इस अंदरूनी संरचना के कारण भूमिहारों का जातीय आंदोलन धीरे-धीरे दो दिशाओं में आगे बढ़ने लगा। एक धारा शिक्षा और संवैधानिक उपायों के द्वारा प्रांतीय उत्थान में लगी थी और इसका प्रतिनिधित्व गणेश दत्त जैसे नेता करते थे। दूसरी धारा आप भूमिहारों को उत्थान करने के क्रम में रैयतों के साथ अत्यधिक सम्बद्ध हुई और बिहार में रैयतों के संगठित आंदोलन की संस्थापना धारा बन गई। इसका प्रतिनिधित्व स्वामी सहजानंद जी करते थे। सहजानंद जी 4 मार्च 1928 को किसान सभा का गठन किया। भूमिहार ब्राह्मण रैयतों और भूमिहार ब्राह्मण जमींदारो के मध्य मतभेद खुलकर सामने आया। तात्कालीन समय के किसान सभा अपने प्रचार में जमींदारों के सामाजिक-आर्थिक उत्पीड़न का उद्भेदन करती थी। लेकिन उसका आंदोलन मुख्यत: 1929 के महामंदी तक लगान कम करने, जमीन की क्रय-विक्रय में जमींदारों द्वारा लिए जाने वाले शुल्क को कम करने या समाप्त करने तथा प्रस्तावित काश्तकारी अधिनियम के विरूद्ध गोलबंदी पर केन्द्रित था। ये मांगे सवर्ण जाति के कायमी रैयतों के हक में थी।

1889 में स्वामी सहजानंद सरस्वती का जन्म उत्तर प्रदेश के एक गांव के किसान परिवार में हुआ था। ये छोटी उम्र में ही संयासी बन गए। उन्होंने संस्कृत भाषा और भारतीय वाड्मय का विस्तृत अध्ययन किया था। इसके पश्चात आत्मा-परमात्मा के सब्जवाग से बाहर आकर समाज सुधार और किसान आंदोलन से अपने को जोड़ लिया था। स्वतंत्रता संग्राम और किसान आंदोलन कर नेतृत्व करते हुए वे एक वामपंथी जननेता के रूप में उभरे थे। खेत श्रमिक और झारखंड के कृषक पुस्तक की रचना 1940-42 के क्रम में की गई थी। इस पुस्तक के माध्यम से किसान समस्या के सम्बंध में सहजानंद जी के विचार में काफी बदलाव नजर आता है। सहजानंद जी मध्यम कोटि के किसानों और सम्पन्न पट्टेदारों के उलट खेतिहर श्रमिकों और निम्न पूंजी वाले खेतिहरों पर विश्वास करने लगते है। यह तथ्य उनके समझ में आने लगती है कि किसान सभा और किसान आंदोलन का अगला चरण ग्रामीण सर्वहारा के जागरण पर आश्रित है। इसके पूर्व वाले चरण को वे मध्यमवर्गी किसानों का आंदोलन मानते है। सहजानंद जी को यह चिंता सता रहा था कि किसान सभा का लाभ बड़े किसान उठा रहे है। तत्पश्चात सहजानंद जी ने झारखंड के किसानों की समस्या पर शांतिपूर्वक विचार किया जिनकी मुसीबतें बन और भूमि की थी; बंधुआ मजदूरी की थी और सूदखोरी की पीड़ा झेलनेवाले की थी। इनकी विभिन्न समस्याओं से किसान सभा विस्मृत थी। सहजानंद जी ने उनकी समस्याओं की तरह लोगों का ध्यानाकर्षण कराया।

डुमरावं के स्थानीय लोगों ने डुमराव राज द्वारा बेआयी वसूली के विरोध में संघर्ष जारी कर दिया था। बेआयी एक तरह से बिक्री कर था; जो डुमरांव शहर की दुकानों से क्रय किए गए सामानों पर क्रेता-विक्रेता से वसूला जाता था। डुमरांव के व्यापारी वर्ग महाराजा बहादुर कर को हटाने की प्रार्थना 1940 में की थी। किन्तु अपनी आशाओं पर निराशा का बादल मंडराता देखकर अनुग्रह नारायण सिंह, जगत नारायण लाल और राजेन्द्र प्रसाद के समक्ष व्यापारियों ने अपने बातों को रखा। दूसरी तरु व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधिमंडल तत्कालीन शाहाबाद के जिलाधिकारियों से मिला लेकिन परिणाम वही रहा।

इस संघर्ष के क्रम में स्थानीय लोगों ने प्रजा मंडल नामक एक संगठन की स्थापना की। इसी क्रम में यमुना कार्यी बिहार प्रांतीय किसान सभा के अध्यक्ष निर्वाचित हुए और उन्होंने बेआयी कर के विरोध में चलने वाले संघर्ष का नेतृत्व किया। तत्कालीन किसानों की कुल 17 मांगें थी; जिनमें बेआयी की वापसी, जंगल का रास्ता खोलना वैर महरूआ, केसर-ए-हिन्द तथा मिल्क लखीराज जमीनों की बंदोबस्ती, लगान की बकाया रकम पर ब्याज लिए जाने का विरोध आदि मुख्य था। कार्यी ने डुमरांव का दौरा किया। बिहार प्रांतीय जमींदार सभा के महामंत्री राय बहादुर श्याम नंदन सहाय को पंच बनाया गया। मार्च 1942 के पटना प्रमंडल के आयुक्त मारवुड ने बेआयी कर के समापन पर अपना फैसला सुनाया। इस किए गए फैसले के डुमराव राज ने तोड़-मरोड़ कर प्रकाशित किया और आंदोलन में सक्रिय लोगों करो सबक सिखाने की कार्रवाई प्रारंभ की।

इस अवधि में किसान नेता सहजानंद जी जेल में बंद थे। जेल से छूटने पर 23 मार्च 1642 को आयोजित सभा में उन्होंने बेआयी कर के विरूद्ध संघर्ष में विजयी प्राप्त करने पर डुमराव के किसानों तथा अन्य लोगों को बधाई संदेश दिया।

किसान सभा पर भूमिहार ब्राह्मण जाति के सुविधा-सम्पन्न रैयतों का दबदबा था। नीचे से उपर तक लगभग सभी नेता भूमिहार जाति के थे। इस किसान सभा में अन्य जातियों की भागीदारी नगण्य थी। 8 मई 1947 से 17 मई 1947 तक बिहटा आश्रम में बिहार प्रांतीय किसान प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया था। इस शिविर में 101 किसान कैडर सम्मिलित हुए थे। इन कैडरों में पिछड़ी जाति की संख्या नगण्य थी। 1950 में शाहाबाद यूनाइटेड किसान सभा की जिला कमिटी का यही रवैया था। वाल्टर हाउजर के शब्दों में सामाजिक दृष्टिकोण से किसान सभा के नेतृत्व में भूमिहार का वर्चस्व था।

निष्कर्ष

किसान सभा आंदोलन के मुख्य मुद्दे लगान की कमी, काश्तकारी विधेयक थे। निम्न जातियों के कायमी रैयतों से जमींदारों सवर्ण रैयतों की तुलना में ज्यादा लगान लेते थे। भिन्न-भिन्न के जाति अबवाव वसूलते थे उनको बेइज्जत करके सताते थे। निम्न और पिछड़ी जातियो के रैयतों के मन में सहजानंद जी के प्रति श्रद्धा थी। लेकिन किसान सभा रैयतों के आर्थिक और सामाजिक संघर्ष का समन्वय नहीं कर पाई। भूमिहारों की सामाजिक स्थिति के प्रति उन्हें ब्राह्मण प्रमाणित करने को लेकर सहजानंद जी ने तत्परता दिखाई थी। निम्न जातियों के सामाजिक स्थिति के प्रति सहजानंद जी ने कोई कार्य नहीं किया। इसका मतलब यह हुआ कि सहजानंद जी ने उच्च जाति तथा पिछड़ी जाति रैयतों के मध्य कोई सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके।

तत्कालीन राजनीतिक पार्टी कांग्रेस और किसान सभा की नेतृत्वकारी समितियों में पिछड़ी जातियों की उपस्थिति शून्य थी। नगरपालिका जिला बोर्ड और कौंसिल में इन जातियों के कम ही लोग थे। इस परिस्थिति में निम्न व पिछड़ी जातियों के लोग को यह एहसास हो गया कि हमलोग लामबंद होकर साझा बनाए ताकि इन उच्च जाति के जमींदारों से लोहा ले सके। साथ ही सत्ता संगठन में अपनी शक्ति का एहसास करा सके। दलित और पिछड़े वर्ग के जातियो ने 30 मई 1933 को शाहाबाद जिले के करगहर में त्रिवेणी संघ की स्थापना की। इस संघ के संस्थापक यदुनंद प्रसाद मेहता, जगदेव सिंह यादव और शिवपूजन सिंह प्रमुख है।

त्रिवेणी संघ की स्थापना के लिए सहजानंद जी कांग्रेजी नेतागण को दोषी मान रहे थे तथा दूसरी तरु राहुल सांकृत्यायन इसे जमींदार वर्ग का कारगुजारी मान रहे थें बिहार में किसान आंदोलन ने जब रफ्तार पकड़ा तब से जमींदार श्रेणी किसानों की शक्ति जर्जर हो गई। किसान सभा का जब गठन हो रहा था तो उस समय कांग्रेसी ने विरोध किया था और कहा था कि कांग्रेस की एक शाखा के रूप में किसानों का एक संगठन बनाया जाए। इस सुझाव का डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने विरोध किया तथा चेन्नई में किसानों के एक शिष्ट मंडल से कहा था कि कांग्रेस तो सभी वर्गो की सभा है। अत: वह कोशिश करेगी कि सभी वर्गो के स्वार्थो का वह समन्वय करती चले। यह तो किसानों पर निर्भर करता है कि वे कांग्रेस को अपनी मांग मनवाने के लिए कितना मजबूर करते है। अत: किसान सभा को कांग्रेस से अलग रखना ही पड़ेगा। दोनों का अच्छाई इसी में है कि किसान सभा तथा कांग्रेस अलग-अलग रहे।

संदर्भ

1. शर्मा, डॉ0 राधाकृष्ण एवं मिश्रा, गुलाब; बिहार का इतिहास, जेनरल बुक एजेन्सी, पटना, पृ0 सं0 249
2. वही, पृ0 सं0 249
3. वही, पृ0 सं0 250
4. वही, पृ0 सं0 252
5. वही, पृ0 सं0 252
6. वही, पृ0 सं0 252
7. चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत(बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 सं0 95
8. वही, पृ0 सं0 96
9. राउत, सुरेन्द्र; बिहार समग्र : नैनो पब्लिकेशन,दिल्ली, पृ0 26
10. वही, पृ0 सं0 26
11. वही, पृ0 सं0 27
12. चौधरी, प्रसन्न कुमार एवं श्रीकांत(बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 सं0 98-99
13. पाण्डेय, बी0 एन0(विचार की संस्कृति(अभिधा प्रकाशन मुजफ्फरपुर, पृ0 सं0 295

भारत में दक्षिणपंथी राजनीति का उद्भव की पृष्ठभूमि एवं प्रभावः एक अध्ययन

राकेश कुमार रंजन

शोधार्थी, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटनां

सार-संक्षेंप

दुनिया के प्रत्येक देश की एक विशिष्ट भौगोलिक संरचना, सामाजिक स्तरीकरण और राजनीतिक-आर्थिक संरचना होती है। यही विशिष्टता उस देश की पहचान होती है। प्रत्ये परिस्थिति या काल में देश की गतिशीलता का बनाए रखने के लिए देश में विद्यमान संसाधन व परिस्थितियों का बेहतर समायोजन जरूरी होता है। परंतु राष्ट्र की विशिष्टता का संरक्षण सबसे अधिक आवशकय होता है। राष्ट्र की विशिष्ट पहचान ही उसे विश्व के मानचित्र पर स्वतंत्र अस्तिव प्रदान करती है।

दक्षिण पंथ की अवधारणा का निहितार्थ परंपरागत सांस्कृतिक आधारों एवं मान्यताओं पर स्थित संरचना से है। वस्तुतः पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित राजनीति ही दक्षिण पंथी राजनीति कहलाती है। भारत में दक्षिणपंथ का आग्रह 19 वीं- 20 वीं सदी के समाज सुधार आंदोलनों की देन है। कालांतर में यह आग्रह केवल सामाजिक नहीं बल्कि राजनीतिक भी हो गयज्ञ प्रस्तुत अध्ययन में भारत में दक्षिण पंथी राजनीति का उदभव एवं प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजी--राष्ट्रवाद, स्वदेशी, अपसंस्कृति, पुनरूत्थानवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, पुनर्जागरण, आध्यात्मिक राष्ट्रवाद।

परिचर्चा

19 वीं सदी भारतीय इतिहास का वह काल है, जब ब्रिटीश शासक भारत की विशिष्टता को समाप्त करने को प्रयास कर रहे थे ताकि वे अपनी शासन व्यवस्था की वैद्यता सिद्ध कर सके। उनके इस कार्य में यूरोपीय इसाई मिशनरी व समकालीन समाज सुधारक भी परोक्ष रूप से मददकर रहे थे। समाज के शिक्षित वर्ग में भारतीय संस्कृति को रूढ़िवादी व पश्चिमी संस्कृति को आधुनिकता का पर्याय मानने की प्रवृति तेजी से बढ़ रही थी। फलतः भारतीय समाज में आत्म गौरव का भाव समाप्त हो रहा था। इस परिस्थिति में बंकिमचंद्र चटर्जी, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, वीडी सावरकर जैसे प्रखर राष्ट्रवादी चिंतको ने भारत की सांस्कृतिक विशिष्टता की सांदर्भिकता को स्पष्ट किया। उनके प्रयास से भारतीयों में आत्म सम्मान का भाव पैदा हुआ। उन्होंने ब्रिटिश शासकों के समक्ष भारतीय संस्कृति की वैज्ञानिकता को स्पष्ट करके उनके भारत के यूरोपीयकरण के प्रयास को बाधा भी पहुंचायी। राष्ट्रवादी चिंतको ने इस तथ्य को प्रतिष्ठापित किया कि भारतीय आध्यात्मिक दर्शन से भी स्वराज प्राप्ति संभव है। इन चिंतको ने अपनी व्यक्तिगत कृति सभा संगठनों के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास के स्वदेशी मॉडल का सफलतम प्रयोग भी किया। इनके प्रयासो का ही परिणाम है कि भारत को मॉडल का सफलतम प्रयोग भी किया। इनके प्रयासो का ही परिणाम है कि भारत को स्वतंत्रता भी मिली और उसकी राष्ट्रीय अस्मिता भी अक्षुण्ण बनी रही। स्वतंत्र भारत में भी माधवराव सदाशिव गोलवलकर के नेतृत्व में राष्ट्रीय अस्मिता के संरक्षण का प्रयास हुआ। जिसने भारत में पश्चिमी नकल करने की प्रबल प्रवृति पर अंकुश लगाने का कार्य किया।

कांग्रेस के आरंभिक नेताओं ने पश्चिमी राजनीतिक मूल्यों में अटूट विश्वास दिखाया था। वे पश्चिमी राजव्यवस्था को हिन्दु राजव्यवस्था से श्रेष्ठ मानते थे तथा अंग्रेजी चरित्र व संस्था को भारत में स्थापित करना चाहते थे। भारत में ब्रिटिश विजय उनकी

दृष्टि में विपत्ती नहीं थी, बल्कि वे इसे लाभ का अवसर मानते थे। इसका सबसे महत्वपूर्ण कारण उनकी उच्च सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि थी। कांग्रेस के आरंभिक अधिकांश प्रतिनिधि भूस्वामी अथवा व्यापारी थे। कांग्रेस के प्रथम 16 अध्यक्षों में 11 बैरिस्टर थे। कांग्रेस के अध्यक्ष बदरूद्दीन तैयबजी की वकालत से होने वाली आय 1,22,000 थी जो आई0 सी0 एस0 के वेतन से चार गुणा थी। जस्टिस राणाडे के सेवा-टहल में 21 नौकर लगे रहते थे। मोतीलाल नेहरू के पास बड़ी हवेली व कार थी । समाजिक श्रेणीबद्धता के हिसाब से भी इनमें अधिकांश ब्राह्मण थे। अत: इनकी राष्ट्रभक्ति की कल्पना ही अलग थी। अगर हम कांग्रेस का आरंभिक लक्ष्य को देखे तो इससे इसका अंदाजा लगाया जा सकता है, जिसमें सरकारी पदों पर भारतीयों की बहाली, तकनीकी शिक्षा, मद्यशुल्क की समाप्ति आदि प्रमुख रूप से शामिल थे। इसमें नमक कर की समाप्ति, वन अधिनियम समाप्ति जैसे कुछ मुद्दे आम जनता से सरोकार दिखाने के लिए शामिल किये गये थे। लेकिन व्यापक कृषि हित का कोई कार्यक्रम इसमें शामिल नहीं था।

वही कांग्रेस में स्वावलंबन का विचार डालने वाले तथा अंग्रेजी शासन को दुर्भाग्यपूर्ण बताने वाले एवं भारत की समृद्ध विरासत की जगह पश्चिमी संस्कृति के अंधनुकरण को भावनात्मक दिवालियापन मानने वाले अधिकांश नेता निम्न-मध्यमवर्गीय आर्थिक पृष्ठभूमि वाले व ग्रामीण परिवेश से थे। हालांकि सामाजिक श्रेणीबद्धता की दृष्टि से वे भी उच्च वर्ग के ही थे। विपिन चंद्रपाल, विवेकानंद, लाला लाजपत राय, अथवा तिलक में से अधिकांश उस परिवार से आते थे, जिन्होंने नवीन भूबंदोवस्त व्यवस्था में अपनी भूमि खोयी थी। अत: ग्रामीण ताने-बाने के टुटने के प्रभाव का आकलन इनके पास था। इन्होंने राष्ट्रभक्ति की कल्पना आरंभिक नेताओं से भिन्न थी। ब्रिटिश साम्राज्य के दुष्प्रभावों के भुक्त-भोगी होने के कारण ब्रिटिश साम्राज्य के कुटिल चालों व उनकी व्यवस्थागत कमियों को इन्होंने जल्द ही समझ लिया था।

अत: इन्होंने परंपरागत भारतीय समाज के तीन मुख्य घटक--

(1) जाति प्रथा

(2) ग्रामीण समुदाय एवं

(3) हिन्दू धर्म में विद्यमान वैज्ञानिकता को समझाने तथा इसमें आयी अपसंस्कृति को दूर करने का प्रयास किया। इन्होंने इस विषय में जागरूकता पैदा की कि अंग्रेजो ने भारत की आंतरिक विभाजन का किस प्रकार फायदा उठाया है। वस्तुत: ब्रिटिश शासन भारत पर आयी एक विपत्ति है। इससे मुक्ति पाए बिना भारत का उत्थान संभव नहीं है।

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समाज में विद्यमान वर्जनकारी सिद्धांतों का पूर्वाग्रहयुक्त अध्ययन किया। सामाजिक श्रेणीबद्धता को भारत के पिछड़ेपन के सबुत के तौर पर प्रस्तुत किया। लेकिन स्वयं ब्रिटिश अधिकारियों ने भी तो अपना आवास भारतीयों से अलग बनाया ताकि अपनी श्रेष्ठता साबित कर सके।

पर्यावरण संरक्षण के नाम पर आदिवासी समूहो द्वारा किए जाने वाले झूम की खेती व शिकार को प्रतिबंधित किया लेकिन नौकरशाही और सेना को शिकार की अनुमति दी। अपनी नस्लीय श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए दिल्ली दरबार का आयोजन किया। इतना ही नहीं आश्रित समूहों को कारखाने में मजदूर का कार्य ही दिया। इस प्रकार इसने जाति व्यवस्था में विद्यमान लचीलेपन को समाप्त कर दिया।

ब्रिटिश साम्राज्य ने जमींदारी व्यवस्था व कृषि स्तरीकरण दोनों को अपने नवीन भू-व्यवस्था के द्वारा पतनोनमुख कर दिया। ग्रामीण उद्योग व वन अर्थव्यवस्था भी पूर्णतया ध्वस्त हो गयी थी, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी व बेरोजगारी बढ़ी थी। 1783-1900 के बीच लगभव 118 विद्रोह हुए जो ब्रिटिश पूर्व की राजनीतिक व आर्थिक संरचना को बहाल करना चाहते थे।

अपनी इन कमियों को ढ़ांकने व भारत के अंदर समर्थक वर्ग तैयार करने के उद्देश्य से ब्रिटिश शासन ने भारत में 'शिक्षा' प्रसार का कार्य शुरू किया। लेकिन यह समाज के उन्ही वर्गो तक सीमित थी, जिन्हें पहले भी शिक्षा का अधिकार एवं सुविधा प्राप्त था। 1865-85 के मध्य कलकत्ता, बंबई एवं मद्रास के विश्वविद्यालयों के प्रवेश परीक्षाओं में 50,000 विद्यार्थियों ने सफलता पायी। इनमें से 18,000 विद्यार्थियों का डिग्री मिली। जिनमें 14,000 वकील थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये शिक्षा के द्वारा केवल प्रशासनिक कौशल पैदा करना चाहते थे। मैंकाले ने अपने प्रेसनोट में घोषणा की थी कि भारतीय प्राचीन ग्रंथ व देशी शिक्षा पर कोई खर्च नहीं किया जाएगा। अत: शिक्षा शहरी क्षेत्र एवं ऊंची जाति तक ही सीमित रहा। यदि धार्मिक रूप से देखा जाय तो उच्च शिक्षित वर्ग में अल्पसंख्यक अधिक थे और हिन्दुओं की साक्षरता मात्र 84 व्यक्ति प्रति मील थी। शिक्षा का भी इन्होंने राजनीतिक इस्तेमाल किया। निम्न जातियों को शिक्षा व राजनीति में तब स्थान दिया जब उन्नत वर्ग ब्रिटिश साम्राज्य के आलोचक हो गए। निम्न वर्ग के समक्ष

पश्चिमी ज्ञान व शासन की सर्वश्रेष्ठता स्थापित करने के लिए भारत में 'जाति व्यवस्था' के कठोरतम स्वरूप को दिखाया, जिससे भारत में प्रतिक्रियावादी आंदोलन का जन्म हुआ। उच्च एवं निम्न जातियों के बीच के आर्थिक तनाव को भी इन्होंने हिन्दु धर्म के विकृति के रूप में ही प्रस्तुत किया जिससे भारत की एकता भंग हुयी तथा जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर अपना दुष्प्रभाव डाला। इसके अलावे समय-समय पर ब्रिटिश शासकों द्वारा उठाये गये कुछ कदमों से भी उनके भेदभाव की प्रवृति स्पष्ट दिखी। जैसे-

- 1904 विश्वविद्यालय एक्ट
- 1899 कोलकत्ता एक्ट
- 1905 बंगाल विभाजन एक्ट
- 1909/1919 के एक्ट

ब्रिटिश सरकार की पूर्वाग्रहपूर्ण प्रकृति को समझने का कार्य स्वाभाविक रूप से उस वर्ग ने किया, जिसके पास भारत की ऐतिहासिक धरोहर का ज्ञान था तथा जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा भी अर्जित की थी।

स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, दयानंद सरस्वती आदि ने भारत के उत्थान एवं भारत में राजनीतिक परिवर्तन का भारतीय प्रतिमान प्रस्तुत किया। इन प्रतिमानों को कांग्रेस में प्रतिस्थापित करने का कार्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय व विपिन चंद्र पाल ने किया। जिसे बाद में महात्मा गांधी, सुभाषचंद्र बोस, पंडित जवाहर लाल नेहरू आदि ने कांग्रेस का मुख्य ऐजेंडा बनाया, तब कहीं जाकर कांग्रेस का स्वरूप जनवादी व राष्ट्रवादी हो सका।

बाल गंगाधर तिलक ने सर्वप्रथम 'स्वराज' का नारा दिया था। देश के शैक्षणिक विकास, औद्योगिक विकास व राष्ट्रीय जीवन के विकास के लिए स्वराज की आवश्यकता को दर्शाया था। उन्होंने बहिष्कार की बात भी कही थी। उनका मानना था कि यदि ब्रिटिश अफसरशाही से भारतीय लोग हट जाए तो उनकी मशीनरी स्वत: ध्वस्त हो जाएगी। अत: उन्होंने लोगों से सरकारी पद त्यागने का आह्वान भी किया था। इतना ही नहीं उन्होंने आत्म बलिदान का भी समर्थन किया था। क्योंकि इससे शासक के मन में आतंक पैदा होता है।

बकिमचंद्र चटर्जी के लेखन ने भी इस कार्य में सहयोगी भूमिका निभायी। आनंठमठ में उन्हों ने भारत माता का चित्रण किया। वही विवेकानंद ने भी राष्ट्रीय पुनरूत्थान के क्षेत्रें में हिन्दू परिकल्पनाओं को स्थापित किया।

भारत में राष्ट्रवादी चिंतन को प्रखरता के साथ स्थापित करने की प्रक्रिया स्वामी विवेकानंद के द्वारा आरंभ की गयी थी। इन्होंने वेदांत दर्शन की व्याख्या राष्ट्रवाद के संदभ्र मे की थी। वेदांत दर्शन में छिपे सेवा-सक्रियता व स्वतंत्रता के संदेश को सरल रूप में जन-जन तक पहुंचाया। उन्होंने भारतीयों को इस तथ्य से अवगत कराया कि भारतीय अध्यात्मवाद वैज्ञानिक है। इसमें गर्व करने लायके बहुत कुछ है। इन्होंने सेवा को समाजसुधार के विकल्प के रूप में अपनाया था। इनके प्रभाव से भारतीय युवावर्ग नि:स्वार्थ कर्म की ओर उन्मुख हुए तथा उनमें धर्म को रूढ़िवादी मानकर छोड़ने की जगह समय के अनुसार उसे परिमार्जित करने की प्रेरणाा का विकास हुआ।

स्वामी विवेकानंद ने भारत में विविधता के बीच विद्यमान साझी धार्मिक परंपरा को भारत की एकता व अखंडता का आधार बताया था। उनके इन विचारों का प्रभाव बंगाल के शिक्षित वर्ग पर हुआ। बंगाल में कई राष्ट्रवादी चिंतको का उदय हुआ। उनमें महर्षि अरविंद घोष प्रमुख थे। जिन्होंने राष्ट्रवादी आध्यात्मिक चिंतन को आक्रामक और उपनिवेश विरोधी बनाया। 1907 में भारत में हुए स्वदेशी आंदोलन को मजबुत बनाने में भी इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। वेदांत दर्शन के आधार पर चल रहे,हिन्दू धर्म के पुनर्जागरण की प्रक्रिया को इन्होंने आगे बढ़ाया तथा आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का प्रसार किया। भारत के राष्ट्रीय जागरण में इन्होंने दो स्तर पर कार्य किया। अपने जीवन के प्रथम चरण में उन्होंने क्रांतिकारी के रूप में कार्य किया । किंतु क्रांतिकारी आंदोलन की अपनी कुछ सीमाएं थी। इसे सर्वप्रथम इन्होंने चिन्हित किया। साथ ही साथ आध्यात्म के सहारे साम्राज्यवाद के अंत की एक विस्तृत योजना बनायी।

जिस विज्ञान को आधार बनाकर ब्रिटिश सरकार भारत में अपने शासने को वैद्य बनाने का प्रयास कर रही थी। उस विज्ञान और अध्यात्म का तुलनात्मक अध्ययन महर्षि अरविन्द ने प्रस्तुत किया। जिस में उन्होंने विज्ञान को प्रकाश का सीमित कक्ष और अध्यात्म रूढ़िवाद का पर्याय नहीं बल्कि विज्ञान की जननी है। उनके उस वैचारिक परिवर्तन के प्रयास से ब्रिटिश सरकार की सर्वोच्चता स्थापित करने के प्रयासों को गहरा धक्का लगा। इसके पश्चात महर्षि अरविंद ने ब्रिटिश सरकार के अच्छी शासन व्यवस्था देने के वायदो पर प्रहार किया। उन्होंने तार्किक ढंग से यह साबित किया कि ब्रिटिश शासन ने भारत को एक भीड़ बना दिया है। जिस भीड़

का ना तो कोई शक्ति केन्द्र है और ना ही उनके पास प्रतिरोध को कोई तरीका है। इस परिस्थिति में यह मानना मुश्किल है कि अंग्रेजो के पास उदाहरण दिया। जिसका केन्द्र गांव होता था। ग्रामीण शासन व्यवहारिक विवेक व साझा निर्णय से चलती थी। इस प्रकार भारतीय राजनीतिक व्यवस्था सृजनात्मक शक्ति पर निर्भर थी। जब कभी इसकी उपेक्षा हुयी राजनीतिक अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। ब्रिटिश शासनकाल में तो व्यवस्था को मशीन के तरह इस्तेमाल किया गया। अतः जनता मानव संसाधन की जगह भीड़ बन गयी। इस प्रकार उन्होंने राजनीति के भारतीयकरण का प्रयास किया।

महर्षि अरविंद ने 'स्वराज; प्राप्ति व प्रतिरोध का स्वदेशी मॉडल दिया। उन्होंने स्वराज, स्वदेशी व राष्ट्रीय शिक्षा व बहिष्कार की बात कही। स्वराज का अर्थ यहां पूर्ण स्वतंत्रता से , स्वदेशी का अर्थ देश में बनी वस्तु के प्रयोग से, राष्ट्रीय शिक्षा से तात्पर्य भारतीय संस्कृति के अनुकूल शिक्षा से तथा बहिष्कार का मतलब इंग्लैण्ड में बनी वस्तु के बहिष्कार से था।

भारत में राष्ट्रीयता के विकास के लिए वो इन चार चीजो का पालन आवश्यक मानते थे। इन्होने भारतीय स्वतंत्रता का उद्देश्य एशिया व विश्व के सभी परतंत्र देश को स्वतंत्र करवाना माना था। इस प्रकार से इन्होंने भारत के नेतृत्व में साम्राज्यवाद के पूर्ण विनाश का एक खाका खींच दिया। जिससे भारतीयों के आत्म विश्वास का स्तर बढ़ा।

महर्षि अरविंद व स्वामी विवेकानंद के चिंतन का प्रभाव भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ भारत के संवैधानिक विकास व कांग्रेस के संघटन पर भी पड़ा। इसके साथ-साथ समाज सुधार का जो पश्चिमी मॉडल था, उसकी जगह संस्कृति संरक्षण के साथ सामाजिक सुधार की प्रवृति बढ़ी। राजनीतिक व्यवस्था में भारतीय प्रणामी को स्थान मिलना शुरू हुआ। कांग्रेस का मध्यवर्गीय स्वरूप का अंत होने लगा, इसके अंदर राष्ट्रवादी प्रवृतियां प्रबल होने लगी। जिसे कांग्रेस में उग्रपंथ का आरंभ माना जाता है। बंगाल विभाजन के पश्चात स्वदेशी की अवधारणा ने आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया। जिसने भारत के भौतिक विकास को गति प्रदान की।

स्वदेशी आंदोलनके दरम्यान कोलकाता पैटरीज, बंगाल कैमिकल, ऑयल मिल्स व कई स्वदेशी बैंक व स्टीम नेविगेशन कंपनीयां बनी। स्वदेशी शिक्षा संस्थानों की स्थापना भी की गयी। जिसमें बंगाल टेक्नीकल इंस्टीट्यूट, बंगाल नेशनल कॉलेज आदि प्रमुख थे। स्वदेशी का संदेश प्रकाशित करने वाली कई पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ था तथा कई स्वैच्छिक संस्थाएं बनी। स्वदेशी के प्रचार से बहिष्कार का दायरा भी बढ़ा। ब्रिटिश सरकार के अधीन कार्य करने वाले कर्मचारी, ब्रिटिश शासन के अधीन कार्य करने वाली एक धारा भी बन गयी। जिसे क्रांतिकारी आंदोलन कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहे तो भारतीय जनता के बीच शक्ति केन्द्र का विकास हुआ तथा प्रतिरोध के भी कई तरीके विकसित होने लगे।

भारतीय जनता व सरकार के बीच संपर्क सूत्र के रूप में कार्य करने वाली कांग्रेस में भी जनसाधारण का प्रभाव दिखने लगा था। राष्ट्रवादी चिंतकों के सामूहिक प्रयास से युवाओं में संगठित होने की प्रेरणा जगी। इन युवाओं का विश्वास अंग्रेजों की चापलूसी करने में नहीं था। वे समाज सुधार के नाम पर भारत की पारंपरिकता को भंग करने के प्रयासों की आलोचक थी। बाल गंगाधर तिलक इन युवाओं को नेतृत्वकर्ता थे। बंगाल में विपिन चंद्रपाल और पंजाव में लाला लाजपत राय ने उग्र राष्ट्रवादी युवाओं का नेतृत्व किया। इनके नेतृत्व में युवाओं ने कई सरकारी कानूनों के विरूद्ध आंदोलन चलाया तथा प्राचीन भारतीय स्थानीय शासन व्यवस्था को पुनर्जीवित करने हेतु व्यापक अभियान भी चलाया।

इस प्रकार हिंदू धर्म के पुनर्जागरण के आधार बनाकर, राष्ट्रवाद के प्रसार का जो अभियान चला। वह बहुत अधिक सफल हुआ। किंतु असहयोग आंदोलन की असफलता के बाद हिंदू धर्म पुनः उत्थान अभियान का स्वरूप थोड़ा नाकारात्मक हुआ। जो भारत में उत्पन्न सांप्रदायिकता की समस्या का एक कारक भी बना।

वी0 डी0 सावरकर के नेतृत्व में हिन्दू धर्म से भिन्न 'हिन्दूत्व' की अवधारणा का प्रचार किया गया। हिंदूत्व की अपनी विशेष राजनीतिक कार्य सूची थी। जो भारत में हिंदूराष्ट्र की स्थापना करना चाहती थी। असहयोग आंदोलन में मुस्लिम नेताओ का जो रूख था, उससे भारत के हित को नुकसान पहुंचा था। अतः राष्ट्रवादियों के मन में एक विद्वेष पैदा हो गया था जो भारत के संदर्भ में मुसलमान का अलग करके ही कोई योजना बनाना उचित समझने लगे थे। हिंदूत्व के समर्थक हिंदूओं को एकता की भावना का संखर कर रहे थे। वे हिंदूओं का राजनीतिक संरक्षण भी चाहते थे। ऐसा इसलिए क्योंकि ब्रिटिश सरकार पंथ निरपेक्षता की गलत अवधारणा को प्रचारित कर निरंतर हिंदूओं के साथ विश्वासघात कर रही थी।

वी0 डी0 सावरकर ने एक ओर हिन्दू धर्म की पारलौलिकता व अंधविश्वास पूर्ण प्रथाओं की आलोचना की थी। वही दूसरी ओर 'हिन्दूत्व का व्यवस्थित प्रचार भी किया था। वे हिंदू को भारत की पहचान मानते थे। हालांकि उन्होंने साझा जीवन व साझी परंपरा

के महत्व को भी स्वीकार किया था। वे राजनीतिक व प्रशासनिक स्तर पर धर्म के आधार पर किसी भेदभाव के विरोधी थे। लेकिन उस समय भारतीय राष्ट्र-राज्य की कोई परिकल्पना नहीं थी, इसलिए इनके विचारो का सांप्रदायिकता माना गया। इस तथ्य से भी मुंह नहीं मोड़ा जा सकता है कि इनके विचरों में उपस्थिति अस्पष्टता ने हिंदू-मुस्मिल पृथक्तावदी विचार को बढ़ावा दिया।

'हिंदूत्व' के विचार के प्रसार के लिए डॉ0 हेडगेवार ने 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का गठन किया। सन् 1940 से माधव राव सदाशिव गोलवलकर के नेतृतव में इस संगठन ने भारत में हिंदूराष्ट्रवाद का व्यवहारिक व निष्पक्ष प्रचार किया। उनके प्रयास से 'हिन्दू राष्ट्र' का विचार युवाओं में 'प्रतिज्ञा' के रूप में लोकप्रिय हुआ।

माधवराव सदाशिव गोलवलकर भारतीय अध्यात्मवाद को पश्चिमी भौतिकवाद से श्रेष्ठ मानते थे। उन्होने भारत में निवास करने वाले सभी पंथ के लोगों की संस्कृति व आर्थिक हित को एक समान बताया था। उनके अनुसार राष्ट्र का अभिप्राय ही साझा संस्कृति थी। इसके अभाव में देश धर्मशाला हो जाएगा, जहा विभाजन की प्रवृतियां जन्मेगी।

इन्होंने भारत में रहने वाले सभी पंथ के लोगों को 'आर्य' कहा था। उनके अनुसार भारत में रहने वाले मुसलमान, इसाई अथवा पारसी सभी ने परिस्थितिवश धर्म परिवर्तित कर लिया था। अत: भारत में रहने वाले सभी पंथ के लोगों का ऐतिहासिक नायक एक ही है। वे सभी राष्ट्रीय परंपरा के अंग है। अत: देश की मजबुती के लिए यह आवश्यक है कि गैर हिंदू नागरिक बिना अपनी पहचान खोये भारत की राष्ट्रीय परंपरा का अंग बने।

इन्होंने हिंदू अध्यात्मवाद को विश्वशांति तथा विश्व के पुनरूत्थान के लिए भी उपयोगी बताया था। हिंदू अध्यात्मवाद व्यक्ति परिवर्तन पर जोर देती है। अत: व्यवस्था परिवर्तन दीर्घजीवी हो पाएगा और समाज व संस्कृति अगर मजबुत होती है तभी राजनीतिक स्वच्छता की स्थापना संभव हो पाती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है किय आधुनिक भारतीय इतिहास में इन चार प्रमुख चिंतकों में भारतीयों में आत्मगौरव का भाव भरने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। स्वामी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, महर्षि अरविंद ने समाज सुधार व राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन के नाम पर बढ़ रहे पश्चिमी प्रभाव के विरूद्ध एक प्रबल प्रतिरोध खड़ा किया। हिंदू धर्म में सुधार करते हुए धर्म, समाजसेवा व राष्ट्रवाद का एकीकरण भी किया। महर्षि अरविंद ने राजनीतिक राष्ट्रवाद की व्याख्या की थी। माधवराव सदाशिव गोलवलकर ने हिन्दुत्व की साकारात्मक व्याख्या की। उसमें सभी धर्मो का समावेशन करके उसे महान भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से जोड़ा। इन सभी के सामूहिक प्रयास से भारत की अपनी मूल पारंपरिक सांस्कृतिक, विशिष्टता का संरक्षण हुआ तथा राष्ट्र के विकास का स्वदेशी मॉडल वैचारिक क्रांति के रूप में देश के अंदर स्थापित हो सका। वस्तुत: यह भारत में दक्षिण पंथी राजनीति का उद्‌भव एवं प्रभाव रहा है।

संदर्भ

1. डब्लू, एण्डरसन एंड दामले, एम., दी ब्रदरहुड इन सेफ्रॉन : दी आर. एस. एस. हिन्दू रिवाइवलिज्म, पृ0 सं0 30
2. चंदा, विपिन, नेशनल एंड कालोनिलिज्म इन माडर्न, पृ0 सं0 42
3. चार्ल्स, ए0 हीमसेठ, इंडियन नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू सोशल रिफ़ॉर्म, पृ सं0 45
4. देसाइ, ए0 आर0, सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ़ इंडियन नेशनलिज्म, पृ0 सं0 20
5. दी बंच ऑफ़ थाट्स- माधवराव सदाशिव गोलवलकर
6. थॉमसब्लोम, हानसेन, दी सफ्रोन वेव: डेमोक्रेसी एण्ड हिन्दू नेशनलिज्म इन माडर्न इंडिया, पृ0 सं0 22
7. झा, एम0 एन0, माडर्न इंडियन पॉलिटिकल थॉट, पृ0 सं0 23
8. पाण्डेय, धनपति; आधुनिक भारत का इतिहास; मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, पृ0 सं0 211-213
9. रहबर, हंसराज; योद्धा सन्यासी विवेकानंद; राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ0 सं0 54-112, 178-198
10. निखिलानंद, स्वामी; विवेकानंद: एक जीवनी; अद्वैत आश्रम (प्रकाशन विभाग) कोलकाता, पृ0सं0 73-123,
11. अर्पणा वासु- दी ग्रोथ ऑफ एजुकेशन एंड पोलिटिकल डिवलेपमेंट इन इंडियाद्ध1829-1920ऋ, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 1974, पृ0 सं0 50-72
12. अर्पणा वासु- एस्सेज इन दि हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन एजुकेशन, कॉनसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी नई दिल्ली 1982, पृ0 सं0 14-16

समकालीन कहानीकारों में भीष्म साहनी

सुशील कुमार मंडल

ग्राम- हनुमाननगर, पो.-सिकटियाही, वाया- खुटौना, जिला-मधुबनी, बिहार-847227

आजादी यदि हमारे निकटतम इतिहास की सबसे बड़ी घटना है तो समकालीनता के लिए उसे आधार के रूप में चुना जा सकता है। वैसे भारत में अन्तरिक्षयात्री से लेकर हिरामन जैसे तमाम लोग हैं, जिनकी यात्रा बैलों से जूड़ी हुई है। पर उन्हें समकालीन मानने की एक तथ्यात्मक विवशता है। इसे अगर थोडा खींचा जाय तो समाजिक संरचनाओं में तमाम रूप समकालीन हो जाते है-आदिम अवशेष से तकनीकी सम्भावनाओं तक। इस अन्तर्विरोध में तीसरी दुनिया की एक लाक्षणिक विशेषता अन्तर्निहित हैं। वैसे हर युग अपनी समकालीनता के अर्थ और यथार्थ को बदलता चलता है अगर समाज जड़ न हो।

भारतीय समाज तेजी से बदल रहा है, शायद अपनी मनोभूमि में इतनी तेजी से कि सामाजिक यर्थाथ कभी-कभी आँखों से ओझल हो जाता है हर कोई इसे अपनी रक्षा पसन्द करेगा। भीष्म साहनी की कहानियाँ अपनी मनोभूमि पर अलग-अलग होकर भी अपने समाजिक यर्थाथ में इसीलिए समकालीन है। कतिपय गतिरूद्ध अन्तर्विरोधों को भी शामिल कर लिया जाए तो समकालीनता की जटिलता को समझने में और भी मदद मिलेगी।

जर्मन ऐतिहासिक उपन्यासकार फयुख्ट बैंगनर ने लिखा है, काल के अनन्त प्रवाह में डूबने से मार्क्स का इतिहास-बोध हमारी रक्षा करता है। भीष्म जी को भी आधुनिकता -बोध से इतिहास-बोध शायद अपनी कहानियों की परीक्षा के लिए ज्यादा संगत दिखता है। वस्तुत: यहाँ नेहरू का वह कथन याद करने लायक है। जिसमें उन्होंने कहा है। "मार्क्स और लेनिन की रचनाओं को पढ़ने का मेरे मस्तिष्क पर बडा प्रबल प्रभाव पड़ा है और उनसे मुझे इतिहास को नई रोशनी में देखने में सहायता मिली है।" यह आकस्मिक नहीं कि दो समकालीन लेखकों को इतिहास की राह देने में मार्क्सवाद के इतिहास-बोध ने अपनी अभूतपूर्व भूमिका सम्पन्न की है।

औपनिवेशिक शासन से मुक्ति का काल इस बोध की परीक्षा का काल बन जाता है भीष्म जी के साहित्य-सर्जन में इनकी भूमिका की परीक्षा के लिए भीष्म जी की कहानियाँ चुनौती भी बनती हैं और अन्तप्रवेश का कार्य भी करती है। जिस आजादी और जनतंत्र की स्थापना की गई थी। उसमें कटाव के खतरे तो थे ही। मूल्यों के संकट से उसका खतरा दुहरा होने की सम्भावनाएँ निरन्तर बढ़ रही थीं, हमारे सहित्यकारों ने इस अवधि में घटनाक्रमों से भी परीक्षा नहीं की है, ऐसी बात नहीं है। बौद्धिक और सर्जनात्मक घटनाक्रमों से भी हमारा एकदम अलगाव हो गया, ऐसा नहीं माना जाना चाहिए। अवश्य ही शारीरिक यातना से भी हमारी मानसिक यातनाएँ बड़ी थी। शारीरिक यातनाएँ तो हम सदियों से सहते हुए जड़ हो गए थे, पर जब यह जड़ता टूटी, तब मानसिक यातनाओं का एक अत्यन्त ही विवशतापूर्ण संकट हमारे सामने आया। भीष्म जी की कहानियाँ इस परिख्रश्य के भीतर की कहानियों है। मगर यातना के संसार में डूब जाना रचनाधर्म का संघर्ष नहीं है और न उसके लिए किसी परोक्ष स्थिति का समर्थन करना ही रचनाधर्मिता है।

हमारे अधिकांश रचनाकार इस पूरे दौर में काल से निरन्तर टकराते हुए पूरी जातीय उर्जा की उत्सर्जना करते है। गाँव-शहर की सीमाएँ टूटती हैं और राष्ट्र जाति की जीवन-धारा का प्रवाह सामने आता है। भीष्म साहनी और उनके साथ उभरने वाली एक पूरी युवा पीढी की कहानियों इसका साक्ष्य उपस्थित करती है। नामों की सीमा नहीं है पर इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि युवा पीढी के कथाकारों का नामोल्लेख महत्त्वपूर्ण नहीं है। वस्तुत: नामोल्लेख किए बिना भी उनकी कहानियों से इसका समर्थन हो जाता है। अवश्य ही आन्दोलनों की तीव्रता के उतार के बाद बहुत से नाम प्राय: विस्मृत हो गए हैं। इस सम्पूर्ण धारा ने मूल रूप से विषय-वस्तु को विस्तारित करके अपने समय और देश में जीने वाले चरित्र और उनकी परिस्थितियों से सीधे साक्षात्कार की चेष्टा की। चरित्रों के विकास के अवसर की अवस्थाओं का इससे विस्तार हुआ।

यहाँ इतिहास की वाचकता का एक और नया कथाचक्र प्रारम्भ होता है। उसमें भीष्म जी की कहानियों का महत्त्व अलग से पहचाना जा सकता है। इस कथाचक्र में उपनिवेशवाद से और साम्रज्यवाद से मुक्ति का सहज सन्तोष तो है, पर राष्ट्रीय बुर्जुआ की भूमिकाओं के प्रति एक आन्दोलनात्मक रूख भी है। सामन्तवाद, साम्राज्यवाद और लोकतंत्र के अन्तर्विरोधों के प्रति कहानीकारों की सचेत दृष्टि हमें बार-बार उस दुनिया में ले जाती हैं, जिसमें विडम्बनाओं के साथ-साथ सम्भावनाएँ समाप्त नहीं हो जाती। इस अन्तर्विरोध का बड़ा अच्छा उदाहरण निर्मल वर्मा की कहानियों में और दूसरे कथाकारों में मिल जाता है। निर्मल वर्मा अन्तर्राष्ट्रीय पीड़ा के कथालेखक तो हैं ही, अपने अतीत से पीड़ित लेखक भी हैं। पीड़ा का उनका यह संसार सरोकारों से नहीं बनता, यह मैं नहीं कहता, पर उनकी तुलना में यदि भीष्म साहनी और नवतर पीढ़ी के कहानीकारों की कहानियाँ रखी जाएँ तो वे अधिक आस-पास की दुनिया का आभास देती हुई मालूम पड़ेगी।

हिन्दी कहानी के आन्दोलन ने जहाँ एक ओर पुरानी जड़ता को तोड़कर नई जमीन तैयार की, वहीं उसमें कभी पार्वतापर्ण और कभी शड़यन्त्रपूर्ण चयनवाद भी उभरा। हिन्दी के कई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहानी लेखक इस चयनवादी आलोचना भी की थी जो अपने को प्रगतिशील और जनवादी सिद्ध करने के लिए कुछ भी कर रहे थे। इस चयनवाद के शिकार भीष्म साहनी जी अकेले नहीं हुए। कई दूसरे महत्त्वपूर्ण हिन्दी कथा लेखक और कवि या तो पीढ़ियों के अन्तराल के नाम पर आधुनिक न रहे या फिर उनके सामाजिक संघर्ष को क्रान्तिकारी तत्त्वों में शामिल न किया गया। यह अवश्य ही एक दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति थी जिसके विरूद्ध आज भी संघर्ष करने की आवश्यकता बनी हुई है। खासकर तब, जबकि क्रान्तिकारिता की व्याख्या सामाजिक परिवर्तन के छोर पर जा रही है।

कुछ लोग तो इनके साथ ऐसा भी कहने लगे थे कि जाने भीष्म जी राष्ट्रीय विभाजन की पीड़ा से कब तक परेशान रहेंगे और करते रहेंगे। वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति में हम उनकी समझ पर तरस खा सकते हैं। उनकी अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिक पीड़ा का हाल भी बेहतर नहीं हैं, वहाँ भी यह विभाजन उतना ही ऐतिहासिक है। स्थिति में भीष्म जी की कहानियों की भूमिका पर एक बार फिर से विचार करना ईमानदारी का तकाजा है। जो भी कहानी लेखक आधुनिकता को प्रत्यय की तरह जानते हैं और उसकी इतिहास-सापेक्ष स्थिति को नजरअन्दाज करते हैं। यह लेख मुख्यत: उनके ख्रष्टिकोण की सीमाओं को ध्यान में रखकर लिखा गया है।

आज के लेखक जब एक ही कथ्य को अनेक कथानकों में विभाजित कर रहे हैं तब भीष्म जी के कथ्य की विविधता का सही-सही अन्दाज हमें मिलता है। परिवार समाज को चाहे हम उसकी केन्द्रीय स्थिति में कहानी उपन्यासों के मार्मिक कथानकों की सृष्टि हुई है, इससे आज भी इनकार नहीं किया जा सकता।

फिट्गेराल्ड ने कभी कहा था, मैं अपने समकालीनों के साथ नहीं होना चाहता, क्योकि मेरी नियति भविष्य के कूड़ेदान में नहीं होगी। भीष्म साहनी अपने समय के साथ हो सकते हैं, अपने समकालीन लेखकों के साथ नहीं। यह अन्तर्विरोध उन्हें राकेश, कमलेश्वर एवं राजेन्द्र यादव से अलग करता है। यही अन्तर्विरोध उन्हें अपने दूसरे समकालीन कहानीकारों से भी अलग करता है।

भीष्म साहनी के रचना-संसार की जटिलताएँ अपने से बाहर जाकर ढूँढनी नहीं पड़ती। उसका साहित्यिक स्रोत भी ऐसा नहीं है कि जिसे आप इस या उस लेखक की प्रतिछाया कह कर अलग कर दें। वैसी कहानियों में भी जहाँ ऐसी गुंजाइश थी, भीष्म जी अपने से बाहर नहीं आते। 'वा्चू' 'ओ हरामजादे' 'मेड इन इटली' जैसी कहानियों में इसकी काफी कुछ गुंजाइश थी। फैशनेबल अमूर्तताएँ, शील-सम्बन्धी ऐसी विचित्रताएँ जिनकी सम्बन्ध जीवन से अधिक परिवेश की भावनात्मक प्रतिक्रियाओं से हो एकान्त सम्बन्धी स्थिर या प्राय: जड़ भावानात्मक नाटकीयता और रूप-रचना का अतिरिक्त आग्रह जिससे कहानी फिर अपना औजार खो देने के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं करती-भीष्म जी की कहानियों में नहीं मिलेगा। उनकी कहानियों में घटनाएँ मात्र प्रतिवेशी नहीं होती, इसे मैंने रूप से लक्षित किया है। रेणु जब भी कहानी को सिचुएट करते हैं, घटनाएँ स्वत: प्रतिवेशी हो जाती हैं। प्रनिवेशी नाटकीयता के भीतर चरित्र की अपनी परिस्थितियाँ या तो आवेग के साथ फूट पड़ती हैं या भीतर ही कहीं दब जाया करती हैं। अपनी कहानियों को ऐसी नाटकीयता के दबाव से बचा पाना आज के लेखक की रचनात्मक लड़ाई का एक हिस्सा है, जिसके कारण उसके रूपवाद की तमाम कमजोरियाँ उघड़ जाया करती है या फिर यथार्थ एक रूप-रचना में बदल कर भी रूपगति खो देती है। ऐसी आत्ममुग्धता किन दूसरे लेखकों को अपनी वाजिब जगह तक ले जा चुकी है, इसकी चर्चा मैं यहा नहीं करूँगा।

ऐसा नहीं है कि भीष्म जी अपनी कहानियों के कलात्मक रूपगठन के प्रति असचेष्ठ हों। वे इस दिशा में यशपाल की उस शैली का थोड़ा अभ्यास किया मालूम पड़ते हैं जो प्रतिमुखता का एक नाटकीय चरम बिन्दु पूरे घटनाक्रम के भीतर से खड़ा कर लेती है

और हमें अभिभूत करती है। 'जख्म' 'पहला पाठ' 'खिलौने सरदारनी' और 'मालिक का बन्दा' जैसी कुछ कहानियाँ इसी रूप-रचना का आभास देती है। पर इनमें घटनाओं से तर्क का आकार सिद्ध नहीं किया जाता, गो कि कहानी की एक जानी-मानी भौली रहीं है और हिन्दी में भी उसका स्रोत यशपाल से पहले जाता है। जहाँ छोटी-बड़ी घटनाएँ निरन्तर घटित हो रही हों, आसपास की और दूरदराज की सीमाओं को छूने लगी हो, वहाँ अपने भीतर की टुकड़ा-टुकड़ा स्थितियों से कहानी लिखना अपना अर्थ सीमित कर लेता है। मैं यह नहीं कहता कि ऐसी रचना अर्थहीन होती है। व्यक्ति के सन्दर्भ में ऐसी स्थितियाँ भी घटनाओं की सरहदों से आगे जा सकती हैं। 'वा्चू' को पढ़ते हुए मुझे बराबर ऐसा अनुभव हुआ है। मेरी प्रिय कहानियाँ की भूमिका में भीष्म जी लिखक यथार्थ का दामन नहीं छोड़ता, और साथ ही साथ उसका काया पलट भी करने लगता है, ताकि वह मात्र घटना का ब्यौरा न रहकर कहानी बन जाए कला की श्रेणी में आ जाए। इसी प्रक्रिया से गुजरते हुए वह कभी-कभी ऐसे बिन्दु पर पहुँचता है...... वह विन्दु लेखक की सबसे कठिन घड़ी और सबसे बड़ी चुनौती होती है,। इस बिन्दु से निवटने की भीष्म जी की भौली अपनी है। वे रेणु की तरह बिन्दुओं कीशृंखला नहीं गढ़ सकते-यशपाल की तरह एकात्मक ढाँचे भी तैयार नहीं करते जिनसे केवल कहानी का परिवेश तो सजीव हाता है पर वह भीतर से जीवन्त भी हो, ऐसा कतई आवश्यक नहीं है।

भीष्म जी की कहानियों में चरित्रों का भरा-पूरा शील-संसार है। ये चरित्र अगर हमें अपने से अलग और थोड़े से विचित्र लगते हैं तो इससे हमारी अपनी ही सीमाएँ प्रकट होती है, इनमें वा्चू जैसा अकेला प्राय: देशहीन पर अन्त: संधातों से भरा हुआ चरित्र भी है जिसकी हर संम्वेदना का पीछा नहीं किया जा सकता।

उसमें रतन सिंह हवलदार भी है जो मालिक का बन्दा है और अपनी पूरी निष्ठा से मालिक की सेवा करता। है-मंदिर बनवा कर। इस चरित्र को आप केवल व्यंग्य के स्तर पर नहीं ले सकते-इसके लिए एक पूरी सांस्ख्रतिक पद्धति की विडम्बना को पहचानना होगा, एक पूरी जीवन-पद्धति के चुक जाने से उत्पन्न जड़ता से आमना- सामना करना होगा। रतन सिंह पर व्यंग्य पूरी व्यवस्था और संस्कार से अलग हट कर किया ही नहीं जा सकता।

संदर्भ ग्रन्थ

1. हिन्दी कहानी रचना और परिस्थिति लेखक सुरेन्द्र चौधरी, संपादक- उदयशंकर पृष्ठ 240
2. वही, पृष्ठ 241
3. वही, पृष्ठ 142
4. वही, पृष्ठ 143
5. कहानी स्वरूप और संवेदना-राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2002

उदय प्रकाश की कहानियों में नगरीय जीवन

सरस्वती पाण्डेय

शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

जीवन जीवन है। जैसा चित्र, मन, दिल, विचार, संकल्प होता है, वैसा ही जीवन होता है। सभी प्राणियों में सर्वाधिक भावुक जानवर मनुष्य ही होता है, लेकिन उत्कृष्ट विचारों और उन विचारों पर आधारित व्यवहारों के कारण मनुज अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ कहलाता है। वस्तुतः मनुष्य विचाराधारित ही होता है। अगर उसका विचार स्वार्थी होता है, तब वह मनुष्य का भी भक्षण करता है। दबंग मनुज कमजोर का शारीरिक-मानसिक मंथन करता है। जैसा विचार, वैसा ही कार्य-व्यापार विचारों की उत्पत्ति परिवार और सामाजिक परिवेश से होता है। यही कारण है कि ग्रामीण-जीवन के सामाजिक यथार्थ ही हू-ब-हू नगरीय जीवन का यथार्थ नहीं होता है। दोनों में जमीन-आसमान जैसा तो नहीं, लेकिन कुछ फर्क तो प्रतीत होते ही हैं। कुछेक अपवादों को छोड़कर नगरीय जीवन का सामाजिक यथार्थ गाँव से अलग तरह का होता है।

नगरीय जीवन के सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत में उदय प्रकाश प्रणीत 'आचार्य की रजाई' कहानी भी अपना खास असर रखती है, जिसमें आधुनिक ज्ञानी की परिवार सहित दुर्दशा को दिखाया गया है। इस कहानी के भी नायक विनायक दत्तात्रेय ही हैं, जो सुप्रसिद्ध नाटककार और चित्रकार है। बदहाली और फाकाकशी के दिनों में ही मुहब्बत कर उन्होंने विवाह कर लिया और दो बच्चों के पिता भी हो गए- "दिल्ली, बेरसराय नानक मुहल्ला में 10×8 फीट के एक कमरे में, जहाँ उनके आगमन पूर्व मकान मालिक मंगत राम की दो भैंसें बँधती थीं, सपरिवार रहते थे। उसी कमरे में खाना, सोना, दरवाजे पर नहाना, पेशाब करना। दिशा-फरागत के लिए वे सपरिवार बोतल-शीशी लेकर दिल्ली की सत्तर प्रतिशत जनता की तरह ही सड़क की पटरियों पर या भारतीय तकनीकी संस्थान के प्रांगण में हो आते थे, जबकि उस समय वे विश्वविद्यालय में रिसर्च स्कॉलर थे, लेकिन प्रख्यात और दरिद्र। जाड़ा में शीत से उन्हें बचाने के ख्याल से उनके रजाई-विक्रेता मित्र ने सौ रूपए की पैंतालीस रूपए की बता उन्हें दे दी। उन्होंने ज्यों ही इस बात की जानकारी अपने विभाग के आचार्य प्रवर करकट को दी, कि उस घूर्त ने झट से पचास रूपए बढ़ा दिए, यह कहते हुए कि उन्हें भी ऐसी ला दे। जब दुकानदार मित्र सुना तो सिर पीटकर रह गया और उन्होंने जो दूसरी रजाई दी, वह विभागीय आचार्य को पसन्द नहीं आयी और भारी फेर में पकड़कर दत्तात्रेय जी नौकरी नहीं प्राप्त कर सके। उनके एक नहीं, दो-दो आचार्यो महा आचार्य कौटिल्य केसरी और आचार्य करकट ने आगे बढ़ने ही नहीं दिया। कहानीकार ने इस शैक्षिक जगत के घिनौने यथार्थ को गहराई से चित्रित किया है- "महा आचार्य कौटिल्य केसरी और आचार्य करकट यद्यपि एक-दूसरे के विरूद्ध जड़-काटू शडडन्त्र और पृष्ठभूमि निन्दा आदि करते रहते थे, किन्तु विनायक दत्तात्रेय को नौकरी न मिलने देने के मामले में दोनों के बीच अमेरिका और इंग्लैंड या भारत और भूटान जैसी एकता थी। दोनों कहते थे- "साला फटीचर पगलेट, बैंचो जीनियस बना फिरता है। घुटने टिकवाकर महरौली रोड की गिट्टी में जब तक नाक नहीं रगड़वा लेंगे, नौकरी नहीं मिलने देंगे।"[5]

दोनों ने नौकरी तो नहीं होने दी, लेकिन विनायक दत्तात्रेय झुके नहीं। इस कहानी के माध्यम से नगरीय शिक्षाजगत के सामाजिक यथार्थ के उस घिनौने सच को बेनकाब किया गया है, जिसके कारण शैक्षिक भाल कलंकित होता ही रहता है- "सुप्रसिद्ध नाटककार और चित्रकार विनायक दत्तात्रेय जब आचार्य करकट के फ्लैट में पहुंचे और रजाई को फर्श पर रखकर अपनी नजरें ऊपर उठाई, तो उस समय लुंगी लपेटे हुए अधेड़-आचार्य करकट एक गँवार और नाबालिग लगती शिष्या को ख्ररूप और अन्तर्वस्तु एवम् 'विडम्बना तथा विरोधाभास' समझाते हुए पटाने में निमग्न थे।"[6]

नगरीय शिक्षालयी जीवन का उद्धृत सामाजिक यथार्थ ग्रामीण शिक्षालयी जीवन का भी सामाजिक यथार्थ बन गया है। आचार्य तक की शिक्षा-प्राप्त शिक्षक भी यौन-विकृतियों को बढ़ावा देते रहते हैं और किसी भी विनायक दत्तात्रेय को प्रताड़ित करते ही रहते

हैं। उदय प्रकाश का यह यथार्थ सभ्यता-संस्कृति के भव्य भाल पर कलंक की तरह है, जिसकी प्रस्तुति का अंदाज भी निराला है। छात्रा के यौवन से खेलते आचार्य ने विनायक दत्तात्रेय को बैठने के लिए भी नहीं कहा, जबकि विनायक उन्हीं के आदेश पर कम कीमत में रजाई तैयार कर माथे पर ढोकर लाए थे, लेकिन वह रजाई उन्हें पसन्द नहीं आयी। हद तो तब हो गयी, जब वह छात्रा भी उसका उपहास उड़ाने लगी- "ख...खी.........खी......खिख्खी! अचानक आचार्य करकट की वह नाबालिग रूप और घाघ अन्तर्वस्तु वाली शिष्या हँसी। 'मेरे को तो सर! सच्ची बोलूँ? ये रजाई नहीं, लिफाफा लगती है। खी.........खी......खिख्खी।' विनायक दत्तात्रेय ने निरीह, पराजित और पीड़ा भरी आँखों से उस छात्रा को देखा, लेकिन उसपर उनकी इस ख्रष्टि का कोई असर नहीं हुआ।"[7]

'दिल्ली की दीवार' शीर्षक कहानी में उदय प्रकाश ने उस नगरीय जीवन के सामाजिक यथार्थ को रेखांकित किया है, जो रोजगार की तलाश में दिल्ली में आकर बदतर जिन्दगी जी रहे लोगों से सम्बन्धित है। इसके माध्यम से बाजारवाद को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सर्वप्रथम इस कहानी में जिस संजय चौरसिया का नाम आया है, वह कहानीकार के फ्लैट से आधे किलोमीटर की दूरी से भी कम जगह पर अपने ठेले को लगाता है, और उसी के बगल में रतन लाल चायवाला ठेला लगाता है। चौरसिया बीसीपुर गाँव से आया है, जबकि रतनलाल सासाराम से। लेखक ने लिखा है- "दोनों की दुकानें ठेले पर इसलिए थी कि अगर कभी म्युनिसिपैलिटी वाले इधर आसपास दिखें, तो फौरन ठेला घसीटते हुए यहाँ से रफूचक्कर हो लिया जाए, हालाँकि मोटरसाइकिल पर गश्त लगाते पुलिस वाले अक्सर उधर से निकलते रहते थे, लेकिन उनसे खतरा कम था, क्योंकि उनका हफ्ता बँधा हुआ था।"[8]

नगरीय जीवन का ऐसा सामाजिक यथार्थ दिल्ली ही नहीं छोटे-बड़े तमाम नगरों और ग्रामीण हाट-बाजारों में भी देखा जा रहा है, लेकिन इस व्यवस्था विकृत्ति की ओर कोई भी सरकार खास ध्यान देती ही नहीं है, और ठेलेवाले भी इस यथार्थ को यह कहते हुए सहते हैं कि चैन है। कहीं पक्की दुकान लेते, तब भी किराया देना ही पड़ता। है कि नहीं? जब आदमी दाल-खाता है, तो चार गस्से (कौर) कुत्तों को भी तो डालता है। है कि नहीं? संजय मुस्कुराते हुए कहता, लेकिन जीवन किसका कुत्ते जैसा है? यह कहानीकार सोचने लगता है। इस प्रश्न के उत्तर में पुलिस और म्युनिसिपैलिटी वाले सीधे आ जाते हैं।

वस्तुत: नगरों-महानगरों में गाँव से रोजगार की तलाश में जानेवाले मजदूरी नहीं मिलने पर ठेले और रिक्शे आदि को ही जिन्दगी का आधार बनाकर किसी प्रकार जीने का प्रयास करने लगते। अधिकांश तो ठेले और रिक्शे को ही सड़क किनारे लगाकर सपरिवार रात्रि-आराम का घर भी बना लेते हैं और रोड-एक्सीडेंट का शिकार होकर अज्ञात लाश में भी तब्दील हो जाते हैं।

नगरीय जीवन के सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट करने के लिए उदय प्रकाश ने इस कहानी में फैंटेसी के रूप में 'दिल्ली की दीवार' को देखा है। इस दीवार के सम्पर्क में उस रामनिवास पसिया को दिखाया गया है, जो इलाहाबाद के हंडिया तहसील के एक गाँव शाहीपुर से बीस साल पहले अपने पिता बबुल्ला पसिया के साथ दिल्ली आया था और उत्तर-पश्चिम दिल्ली के समयपुर बादली गाँव की झुग्गी बस्ती मे अपनी एक झुग्गी बनाकर दिल्लीवासी बन गया था। वह सुषमा से फँस जाता है। बाल-बच्चेदार रामनिवास और 17 साल की, घरों में काम करनेवाली, सुषमा के सम्बन्ध को सभी जानते हैं, लेकिन रामनिवास अचानक नुक्कड़ से गायब हो गया। कहानीकार ने उसके गायब होने के यथार्थ को भी स्पष्ट करते हुए लिखा है- "रामनिवास कई महीने से नुक्कड़ पर नहीं दिखा। अब वह कहीं नहीं दिखेगा। सुषमा भी उसका जिक नहीं करती। मैंने पहले ही बताया था कि यह एक ऐसा जीवन है, जिसमें कभी भी, हर रोज दिखाई देने वाला आदमी, एक दिन अचानक अनुपस्थित हो जाता है। फिर वह कभी नहीं दिखता। बाद में उसकी स्मृति भी बाकी नहीं बचती। अगर आप उसे खोजना भी चाहें, तो उस जमीन पर, जहाँ कभी उसका अस्तित्व हुआ करता था, वहाँ पर थोड़ा-सा गीलापन, जरा-सी नमी भर आपको मुश्किल से मिलेगी, जो इस तथ्य का प्रमाण होगी, कि इस जगह पर कभी न कभी एक मनुष्य का जीवन अवश्य हुआ करता था, जो अब नहीं रहा। जो अब कभी नहीं होगा।"[9]

नगरीय जीवन का यह सामाजिक यथार्थ भयानक है। शहर नुक्कड़ पर जीने बालों को देखता जरूर है, उससे नाजायाज वसूली भी करता है, लेकिन उसकी हिफाजत में खड़ा नहीं होता है। रामनिवास भी अचानक गायब हो गया। वही रामनिवास जो सुषमा पर तो जान छिड़कता था, लेकिन अपनी पत्नी को पीटता था। उसकी पत्नी बबिया से हर रोज चखचख होती थी। बेचारी किसी तरह दोनों बच्चों का पालन-पोषण कर रही थी, जो अक्सरहाँ बीमार रहते थे बबिया को रामनिवास की तनख्वाह भी कभी पूरी नहीं पड़ती थी, लेकिन रामनिवास को उसपर तरस भी आता था। दूसरी ओर रामनिवास बीबी की बीमारी का बहाना बनाकर अपने कार्यालय से छुट्टी लेकर सुषमा के साथ मौज-मस्ती में तल्लीन रहता था।

इस कहानी के अन्तराल में उदय प्रकाश ने शहरी मसाज-सेंटर की आड़ में चलनेवाले जिस्मफरोसी को भी रेखांकित किया है, जिमखाने को भी देखा है और सुनीला, जो मसाज-सेंटर से बाहर जाने पर पाँच हजार रूपये लेती थी, के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि गाँवों से शहरों में आनेवाले देह-व्यापार का भी हिस्सा बन जाते हैं। नगरीय अमीरी-गरीबी की दूरी और मजबूरी को भी दिखाया है।

'पीली छतरीवाली लड़की' के माध्यम से भी नगरीय जीवन का यथार्थ गहराई से उभरकर सामने आया है। विश्वविद्यालय परिसर केन्द्रित इस कहानी के माध्यम से उदय प्रकाश ने स्पष्ट किया है कि नगर की गुण्डागर्दी से विश्वविद्यालय तक महफूज नहीं है- "इस विश्वविद्यालय का सारा स्वरूप तेजी से बदल रहा है...... विदेशी छात्रों ने यहाँ एडमिशन लेना बन्द कर दिया है।......... पिछले साल मारीशस से आयी एक छात्रा को कुछ लोकल गुण्डे उठाकर ले गये थे और बलात्कार करने के बाद उसको मारकर उसकी लाश तलहटी के एक पुलिया के नीचे फेंक दी।........... "यहाँ बहुत सावधानी और होशियारी से रहना है। शहर की ओर जाओ, तो वहाँ किसी से पंगा लेने की कोशिश मत करो। अगर किसी सिनेमा हॉल में टिकट भी खरीदी, तो सौ या पाँच सौ के नोट जेब से मत निकालो। वहाँ बुकिंग विंडो पर बैठनेवाला आदमी ही नहीं, पनवाड़ी और चाटवाले तक अपराधियों के एजेंट हैं। अगर शक हुआ कि तुम किसी पैसे वाले आसामी के लड़के हो, तो किसी भी दिन हॉस्टल आकर तुम्हें उठाकर ले जाएँगे। हर साल दर्जनों एब्डक्शन के केस यहाँ होते रहते हैं।"[11]

इस उदारण से भी ऐसा प्रतीत होता है कि नगरीय जीवन का सामाजिक यथार्थ आपराधिक अंधकार में और भी भयानक रूप से उभरा है-पीली छतरी वाली लड़की में। प्रकृति सहित मानवीय संवेदनहीनता मानिन्द नगरीय यथार्थ का आईना प्रतीत होती है-उदय प्रकाश की कहानी 'आवरण'। नगरीय सामाजिक यथार्थ-दिन दहाड़े कांतिकारी जनवादी कवि की ठेकेदार द्वारा नगर के चौराहे पर हत्या- "कवि का हत्यारा कोई ठेकेदार था। उसने कवि को उसके दफ्तर से दिन-दहाड़े, भरी दोपहर खींचकर बाहर निकाला था और उसे सारे शहर की सड़क पर कई घंटों तक घुमाता रहा। पूरा शहर देख रहा था, जब वह ठेकेदार या हत्यारा उस कवि की उँगलियाँ, कलाइयाँ बाँहें, टखने, पैर, जंघाएँ एक-एक कर काट रहा था। उस कवि के शरीर के कटे अंग उस शहर की सड़कों पर बिखड़े हुए थे, जिस शहर में रहने वाले एक बूढ़े आदमी के अलावा किसी और ने उस कवि की एक भी कविता नहीं पढ़ी थी। उस शहर के सात हजार लोग कवि की हत्या को फिल्म या टी. वी. सिरियल की सूटिंग की तरह देख रहे थे। सबसे अंत में ठेकेदार ने कवि का सिर उसके घड़ से अलग किया और चिल्लाया- 'देख लो तुम लोग! वक्त बदल चुका है। जो कोई भी अब ठेकों का विरोध करेगा, उसका ये हाल होगा।"[12]

उक्त उद्धरण भी आज के यथार्थ को ही आलोकित कर रहा है। नगरीय जीवन का सामाजिक यथार्थ बेखौफ अपराधियों की वृद्धि भी है और ठेकेदारी संस्कृति भी, इन दोनों चक्कियों के बीच में पिस रही है मानवता। डर का आलम मनुष्य को शान्त होने ही नहीं दे रहा है। सबसे बड़ा सामाजिक यथार्थ मनुष्य का हिंसक होना और असंवेदनशील होना भी है। कवि की नृशंस हत्या आज का सबसे बड़ा सामाजिक जीवन- यथार्थ 'बाजारवाद' है। इसने मानवीय संवेदना को ही ध्वस्त कर दिया है। बाजारवाद के कारण ही परीक्षा में बैठता कोई और, जबकि उत्तीर्ण होता कोई और, शोध-प्रबंध लिखता कोई और तथा 'डॉक्टरयेट' की उपाधि लेता कोई और। उदय प्रकाश ने इस बाजारवाद को सबसे क्रूर यथार्थ माना है। यही कारण है कि 'आवरण' कहानी के गर्भ में ऐसी विकृतियाँ भी निकलकर सामने आती हैं, जो हृदय को हिलाकर रखती है। उदय प्रकाश कहते हैं कि ऐसी घटनाएँ भी इन दिनों घटने लगी थीं। जिनके बारे में पहले सोचना तक मुमकिन नहीं था। जहाँ मैं रहता था, उससे बस दो-ढाई किलोमीटर दूर, एक बड़ी कोठी में रहनेवाला एक अमीर-ऐ"यास अपने नौकर के साथ मिलकर आसपास की झुग्गियों में रहने वाले गरीबों के बच्चों और बच्चियों का अपहरण करता था और बलात्कार करने के बाद उसके गोश्त का कबाब बनाकर खाने लगा था। शहर के दक्षिणी हिस्से में एक ऐसा अस्पताल था, जिसमें लोगों को, जिसमें ज्यादातर गरीब होते थे, बेहोश करके उनके गुर्दे निकालकर अमीरों को लगा दिया जाता था।

उदय प्रकाश ने मनुष्य द्वारा मनुष्य के मंथन, ग्रंथन और भक्षण का जो यथार्थ दिखलाया है, वैसा वर्णन उन्होंने 'एक पागल की डायरी' कहानी के कहानीकार लू शुन के हवाले से लिखा है- "भैया! शायद सभी आदिम लोग थोड़ा-बहुत मानव-माँस जरूर खाते थे। बाद में जब उनके विचार बदले तो उनमें से कुछ ने मानव-माँस खाना बन्द कर दिया और सभ्य मनुष्य बनने की कोशिश की। सभ्यता का प्रारम्भ ऐसे ही लोगों से हुआ होगा, लेकिन कुछ लोग मानव-माँस अभी खाए चले जा रहे हैं- मगरमच्छों की तरह। कुछ

जीव विकास करके मछली बन गए, पक्षी बन गए, बन्दर बन गए और अंततः मनुष्य बन गए, लेकिन जिन्होंने अच्छाई को विकसित करने का प्रयत्न नहीं किया, वे रेंगनेवाले हिंसक जन्तु ही बने रहे। नर-माँस खाने वाले लोग न खाने वालों की तुलना में कितना असभ्य महसूस करते होंगे? उनसे भी अधिक लज्जा, जितनी रेंगनेवाले जीव बन्दरों के सामने महसूस करते हैं।"[16]

इस उद्धरण से भी प्रतीत ऐसा होता है, कि मनुष्य द्वारा मनुष्य का भक्षण आज भी जारी है। हर दबंग कमजोर को खा रहा है, खाकर पचा रहा है, न कहीं कारगर व्यवस्था है, न कहीं मानवतावादी सरकार।

अस्तु, हम कह सकते हैं कि उदय प्रकाश की कहानियों में नगरीय जीवन का सामाजिक यथार्थ अपने वास्तविक स्वरूप में विस्थापन है। यहाँ महज यथार्थ ही नहीं है, उसका मनोविज्ञान भी है। सिर्फ समस्या ही नहीं, उसका समाधान भी है।

संदर्भ-सूची

1. हिन्दी शब्द-कोश-प्रधान सम्पादक-रामप्रकाश सक्सेना भारतीय ज्ञानपीठ-वर्धा 2015, पृष्ठ सं.- 470।
2. 'अपनी-उनकी बात'-उदय प्रकाश-वाणी प्रकाश, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ सं.-13
3. 'दत्तात्रेय के दुःख'- उदय प्रकाश-वाणी प्रकाश, नयी दिल्ली, 2009, पृ. सं.-18
4. 'दत्तात्रेय के दुःख'- उदय प्रकाश-वाणी प्रकाश, नयी दिल्ली, 2009, पृ. सं.-18-19
5. 'दत्तात्रेय के दुःख'- उदय प्रकाश-वाणी प्रकाश, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ सं.-51
6. 'दत्तात्रेय के दुःख'- उदय प्रकाश-वाणी प्रकाश, नयी दिल्ली, 2009, पृ.सं.-52
7. 'दत्तात्रेय के दुःख'- उदय प्रकाश-वाणी प्रकाश, नयी दिल्ली, 2009, पृ.सं.- 53
8. 'दत्तात्रेय के दुःख'- उदय प्रकाश-वाणी प्रकाश, नयी दिल्ली, 2009, पृ.सं.-55
9. 'दत्तात्रेय के दुःख'- उदय प्रकाश-वाणी प्रकाश, नयी दिल्ली, 2009, पृ.सं.-65
10. 'मोहन दास'-उदय प्रकाश-वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006-08-09, पृ.सं.- 90
11. 'पीली छतरी वाली लड़की' -उदय प्रकाश-वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005, 09, 11, पृ.सं.- 18
12. 'पूर्वाग्रह'-सम्पादक-प्रभाकर श्रोत्रिय- अंक- 125 पृ.सं.- 16
13. 'वही'- 'आवरण' - उदय प्रकाश-अंक- 125, पृ.सं.- 18
14. 'वही', पृ.सं.- 18
15. वही, पृ.सं.- 19
16. 'दत्तात्रेय के दुःख' उदय प्रकाश- वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.सं.-07

विद्यापति-पदावली में चित्रात्मकता

डॉ० शोभा कुमारी

पूर्व शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

काव्य और चित्र अभिव्यक्ति के दो माध्यम हैं। दोनों की अभिव्यक्ति का मूल उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है। दोनों एक-दूसरे के पूरक कहे जाएँ तो उचित होगा। काव्य की अभिव्यक्ति में दो तत्त्व निहित होते हैं- (1) नाद-तत्त्व, (2) चित्र-तत्त्व

चित्र-तत्त्व काव्य का प्राण-तत्त्व माना गया है। इस ख्रष्टि से प्रत्येक कविता अपने-आप में हाव-भाव एवं विचारों की प्रतिमूर्ति है।

अधिकतर भारतीय आचार्यों ने काव्य को शब्द और अर्थ का सुन्दर संयोजन ही माना है। इसी प्रकार चित्रकारों के लिए रेखा और रंग विशेष महत्त्व रखते हैं। कवि अपने मन की सम्पूर्ण झाँकी शब्द और अर्थों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। अत: भारतीय आचार्यों ने काव्य के स्वरूप पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। आचार्य केशव मिश्र ने सुनने में सुखद वाक्य को ही काव्य माना है।[2] आचार्य भोज ने दोष-रहित, गुण-सहित और अलंकारों से युक्त रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है, तथा उसके रचयिता को ही कीर्ति और प्रीति मिलती है।[3] इससे मिलते-जुलते जयदेव ने अनेक छन्दों से सजी वाणी को काव्य कहा है।[4] आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है।[5] पंडितराज जगन्नाथ ने भी शब्दों में रमणीय अर्थों के प्रतिपादन को काव्य माना है।[6] उपर्युक्त सारे आचार्यों ने शब्द में ही काव्यत्त्व माना है।

चित्रकला भी अन्य शिल्प कलाओं से उत्तम है।[7] अत: इसकी महत्ता भी सभी कलाओं से अधिक है। चित्रकला के सम्बन्ध में कहा गया है- 'चरियते इति चित्रम्'।[8] अत: चित्रकार अन्तर्जगत् एवं वहिर्जगत् दोनों का चित्रण करता है। कामसूत्र के अन्तर्गत वात्स्यायन ने चित्रकला के छह अंग माने हैं।[9] यही छह अंग चयन की प्रवृत्ति को चित्र का रूप देने में सहायक होते हैं। कविता के विभिन्न गुण-आधारित रूप हैं-

कविता

कथात्मक वर्णनात्मक विचारात्मक भावात्मक चित्रात्मक

कविता का एक गुण चित्रात्मकता भी है। अत: काव्य उससे अप्रभावित कैसे रहता? परिणामस्वरूप प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ पुस्तकों की रचनाओं के आधार पर चित्र बनाए जाते रहे हैं। चित्र-वर्ग एवं काव्य-वर्ग दोनों लगभग बराबर माने जाते हैं। भारतीय ही नहीं, बल्कि पाश्चात्य लेखकों ने भी काव्य का सम्बन्ध चित्र से बताया है। काव्य के अन्दर जिन भावों की अभिव्यक्ति होती हैं, वे भाव के मन में चित्र रूप में ही आते हैं, जिन्हें वह भाषा और छन्द के सहारे स्वरूप प्रदान करता है। भाषा एवं छन्द के विधायक तत्त्व अक्षर अथवा शब्द स्वयं भावमय चित्र है।[10] प्रसिद्ध विद्वान् हॉरेस और जोन्स ने चित्र और काव्य के सम्बन्ध में लिखा है कि कविता मुखर चित्र और चित्र मौन कविता है।[11] हॉरेस का यह मत 16वीं से 18वीं शताब्दी तक यूरोप में मान्य रहा। उन्होंने "जैसे चित्र में वैसे कविता में" उक्ति का प्रयोग कर काव्य और चित्र की एकात्मकता पर प्रकाश डाला है। जैसे चित्र में वैसे कविता में भी विस्तृत सूक्ष्मताएँ होनी चाहिए, जिसके लिए कवि की ख्रष्टि अत्यन्त सूक्ष्म और शैली ऐसी विस्तृत प्रभावशाली होनी चाहिए कि दूर से देखने पर भी वह आनन्द प्रदान करे। कवि ऐसा चित्रकार माना गया है, जो अपनी योग्यता से बाह्य संसार के बिम्ब को उसी सजीवता से चित्रित करता है, जैसे चित्रकार वस्त्र पर करता है।[12]

कोई भी भाव कला के सृजन से पूर्व कलाकार के मस्तिष्क पर उसके अन्तर्मन की भावनाएँ आकृति पाने के लिए विवश हो जाती हैं। इन्हें वास्तुकार, वास्तुकला, चित्रकार चित्रकला, संगीतकार व संगीतकला तथा कवि उसे काव्यकला के रूप में व्यक्त करता

है। रविन्द्रनाथ ठाकुर ने भी स्वीकार किया है कि आनन्ददायक अमूर्त भावों को पूर्ण रूप प्रदान करना अनुभव करने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है। जब तक वह उन भावों को स्वरूप नहीं दे पाता वह चैन से एक क्षण बैठ नहीं सकता। कुशल चित्रकार की कूँची, चतुर शिल्पी की छेनी, प्रसिद्ध गायक के मधुर कंठ तथा सिद्धहस्त कवि की कविताएँ ऐसे ही मोहक भावों की अभिव्यक्ति करती है।[13]

ऐतिहासिक ख़्रष्टि से चित्रकला प्राचीन कला है, क्योंकि सर्वप्रथम जब मानव ने अपनी आँखें खोली होगीं तब उसने देखा होगा प्रकृति का विशाल सुरम्य ख़्रश्य, उसने देखा होगा रंगों का अपूर्व सुरम्य संयोजन और तब सभ्यता के विकास के साथ चित्रकला का विकास हुआ होगा। तब कला प्रस्तुति के अनेक साधनों का प्रादुर्भाव हुआ होगा। काव्य-कला उसी की एक कड़ी कही जा सकती है, जिसे उत्तम कोटि की कला की उपाधि प्रदान की गई है, लेकिन उसे चित्रकला से विलग रखकर देखना-परखना सम्भव नहीं। जिन भावों के संकेत हमें चित्रों को इस प्रकार देखने से प्राप्त होते थे, वे ही भाव काव्यों द्वारा कानों से सुनकर हम जानने लगे चित्र और काव्य-कला ने मिलकर आँखों और कानों की दूरी तय की है और यदि हम चाहे तो यह कह सकते हैं कि चित्र की मूकता को काव्य ने वाणी दी है।[14]

सृजन-प्रक्रिया के ख़्रष्टिकोण से चित्र और काव्य-कला दोनों एक ही प्रतीत होती है। चित्रकार और कवि के मन में एक-सी भावना उमड़ती है। अन्तर सिर्फ माध्यम का होता है। चित्र का माध्यम रेखा और रंग है, तथा कविता का माध्यम शब्द अर्थ आदि। अर्थात् यह मानसिक अभिव्यक्ति अलग-अलग माध्यमों से काव्य और चित्रकला का रूप ग्रहण करता है। इस प्रकार देखा जाय तो सृजन-प्रक्रिया के समय समस्त कलाएँ एक-दूसरे को प्रभावित करती है। कवि अपने सृजन क्षण में काव्य के प्राण चित्र-तत्त्व को साथ लेकर चलता है, क्योंकि प्रतिभा सर्वप्रथम बिम्ब के माध्यम से बोलती है। उपमान प्रतीक और बिम्ब के विधान से कवि अपने मानस चित्रों को शब्द चित्रों में स्थापित कर उत्कृष्ट काव्य की रचना करता है।

काव्य और चित्र की ऐसी सृजनात्मक एकता के कारण मध्यकाल (रीतिकाल) की रचनाएँ भी इससे अप्रभावित नहीं रही हैं, बल्कि उसमें भी पराभूत चित्रात्मकता ख़्रष्टिगोचर होती है, क्योंकि उस समय बनाए गए लघु आलेखन इसका प्रमाण है कि चित्रकला से काव्य-कला विलग नहीं थी। किसी कविता को देखकर चित्रों का सृजन तो मामूली बात थी, क्योंकि कविता में जिन भावों की अभिव्यक्ति होती थी, चित्रकार उन्हीं भावों को पकड़कर उस विषय-वस्तु पर चित्र बनाते थे, लेकिन ऐसी बातें नहीं कि केवल कविताओं के आधार पर ही चित्र बनाए जाते थे, बल्कि चित्रकार अपनी कल्पना आदि अपनी-अपनी प्रतिभा के बल पर भी चित्रों का निर्माण करते थे। हाँ ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि किसी चित्रकार की चित्रित रचना पर किसी कविता का निर्माण किया गया हो। हाँ, इतना तो अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि किसी चित्र को देखकर काव्यानुभूति होती हो और किसी कविता को देखकर चित्रानुभूति एक-दूसरे की एकात्मकता का बोधक हो जाता है। दोनों की एकतात्मकता भी अक्षुण्ण कही जा सकती है।

बोध-प्रक्रिया के ख़्रष्टिकोण से भी काव्य और चित्र दोनों की एकात्मकता पहचानी जा सकती है। दोनों को एक-दूसरे के माध्यम से जाना-पहचाना जा सकता है। वैसे तो काव्य और चित्र की बोध-प्रक्रिया अलग-अलग है, अर्थात् कविता सुनने एवं सुनाने की वस्तु है, परन्तु चित्र देखने की वस्तु है। कविता को सुनने अथवा पढ़ने से ही मस्तिष्क पर एक प्रकार का बिम्ब उभरने लगता है, जिसका सीधा सम्पर्क चित्र-भावना से होता है। चित्र को देखने से मन के अन्तःकरण में काव्यात्मक भावना का उदय होता है। इस पर किसी-किसी को आपत्ति हो सकती है, क्योंकि किसी को चित्र देखकर मन के भीतर काव्य-भावना का उदय कैसे हो सकता है, क्योंकि अब तक वैसे उदाहरणों का अभाव ही है कि चित्र को देखकर काव्य की रचना हो सके, परंतु काव्य-भावना का उदय तो चित्रों को देखकर ही उत्पन्न होती है, क्योंकि प्रकृति के इस विशाल चित्रपट से ही प्रेरणा ग्रहण कर कोई कवि काव्य-रचना में प्रवृत्त हो सकता है। अन्यथा-प्रेरणा विहीन होकर काव्य-सृजन नहीं हो सकता।

बोधगम्यता के लिए यह आवश्यक है कि कलात्मक रचना सुबोध और सुगम हो। यह कविता और चित्र दोनों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में कविता के सम्बन्ध में महाकवि तुलसीदास ने कहा है कि किसी कविता की यह निशानी है कि जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक बैर भुलाकर उसकी बड़ाई करने लगे। बोधगम्यता से तात्पर्य यह है कि कला सहज ही समझ में आ जाय। शब्दों और अर्थों के प्रयोग से काव्य-प्रक्रिया को इतना बोझिल न बना दिया जाय कि किसी को समझ में ही न आवे। यही बात चित्रकला के सम्बन्ध में कही जा सकती है। आज की नयी कविता और आज का 'मॉडर्न आर्ट' इस बात की गवाही है। दोनों में विषय वस्तु को बोझिल बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। आज का युग अति व्यस्त युग है। इस परिस्थिति में

किसी कला को जितना बोधगम्य बनाया जा सके, उसे उतना बनाना चाहिए, कविता के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

कलाओं का बार-बार अध्ययन और दर्शन करने से उसमें नवीनता ख्रष्टिगोचर होने लगती है। परिणामस्वरूप उसके सार्थक अर्थ तक हम अवश्य पहुँच सकते हैं। अत: बोध-प्रक्रिया के ख्रष्टिकोण से हम काव्य और चित्र को एक ही मानते हैं, क्योंकि दोनों के समझने का। ढंग एक ही है। 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' में काव्य की भाँति चित्रकला के भी नौ रस माने गये हैं-

श्रृंगार हास करुणवीर रौद्र भयानका:।

वीभत्स भुतान्तवाय नव चित्र रसास्मृता।।[16]

अत: कहा जा सकता है कि जहाँ काव्य में रस की प्रधानता दी जाती है, वहाँ चित्रकला में भी इस सिद्धान्त की प्रधानता है। अर्थात् काव्य और चित्र समान हैं।

चित्र मानव जीवन की मूक भाषा है, जबसे मानव में सभ्यता का विकास हुआ होगा, तभी से उसके मन में प्रकृति के स्वरूपों को मूर्त रूप प्रदान करने की इच्छा जागृत हुई होगी। तब से आज तक की कला यात्रा हम अपने इतिहास ग्रन्थों में पाते हैं। वैसे चित्रकला का व्यवस्थित इतिहास कब से प्रारम्भ हुआ यह कहना कठिन है। चित्रकला के अपरिचित इतिहास के सम्बन्ध में दिनकर ने लिखा है- "भारतीय जीवन चित्रों से सम्पृक्त है।" यद्यपि सामग्रियों के अभाव में प्रयत्न के आधार पर भारतीय चित्रों का इतिहास शृंखलामय रूप में नहीं रखा जा सकता फिर भी सिन्धु सभ्यता मे रंगों, भाण्डों और ठीकरों पर जो चित्रकारी हुई है, वह हमारे प्राय: पाँच हजार वर्ष पहले के पूर्वजों के चित्र प्रेम की साँस भरती है। इन भाण्डो और ठीकरों पर अनेक प्रकार की ज्यामीतिय आकृतियाँ मिलती हैं, जो मुख्यत: लाल और फिरोजी रंगों से बनी हैं। चित्रित आकृतियों में वृक्ष के साथ-साथ पशु-पक्षी के अंकन भी मिलते हैं। मानवाकृति चित्र का विकास भी यहीं से प्राप्त होता है।

इस प्रकार चित्रकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। फिर भी कुछ ऐसे काल आए, जिसमें चित्रकला का काफी विकास हुआ। प्राप्त चित्रों के आधार पर उस काल की कला मानसिकता एवं कला की बारीकियों तथा उसकी परम्परा से अवगत हो जाते हैं। जैसे अजन्ता की चित्रकला अपने आप में श्रेष्ठ चित्रकला के नमूने हैं। उसके बाद चित्रकला के अच्छे नमूने 16वीं से 19वीं शताब्दी के बीच मिलते हैं।

महाकवि विद्यापति का काव्य मिथिला-लोक-चित्रों से जुड़ा है। उनकी कृति "पदावली" चित्रकला के प्रभाव से रससिक्त है। साथ ही, उनकी कृति की आधारभूमि पर चित्रों का निर्माण करना इस बात का परिचायक है कि काव्य और चित्रकला का अनुपम मेल-जोल था, जिसकी परम्परा आज तक चली आ रही है। चूँकि मिथिला-चित्रकला में जितने भी चिह्न, प्रतीक या अलंकरण प्रयोग में हैं, उनका मूल स्रोत यद्यपि सिन्धु घाटी सभ्यता से ही है, किन्तु इस ऐतिहासिक रहस्य से अनजान शिल्पी इन चिह्नादि के प्रयोग में आज भी पारंगत हैं।

इसीलिए कहा जाता है कि मिथिला चित्र मात्र सौन्दर्यबोध या कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम ही नहीं है, अपितु इसकी जड़ें अतीत की अपरिमित सीमा तक फैली हैं, जिसकी एक-एक अभिव्यंजना किसी अनबुझे मन्त्र की तरह अन्तश्चेतना के अतल सागर से उठती ध्वनि की तरह प्रकम्पित है और यही निरन्तरता जीव-जगत् का सुख है।

विद्यापति का काव्य अपने युग की छवि प्रस्तुत करता है। अन्य कलाओं की तरह कवि के गीतों में चित्रकला के तत्त्व अन्तर्निहित हैं। मूल प्रेरणा के रूप में चित्रकला से उनकी कृति अत्यधिक प्रभावित हुई है। अत: उनके गीतों में चन्द शब्दों के संयोजन से बने चित्रों का दिग्दर्शन कराया जायेगा।

शब्द के तीन वर्ग माने गये हैं- (1) भाव-वर्ग, (2) चित्र-वर्ग और (3) संगीत -वर्ग। विद्यापति की रचनाओं में इन सभी वर्गों का सम्यक् निर्वाह हुआ है। चूँकि शोध का मुख्य अभिप्राय चित्रात्मकता से है, अत: इस पर ही विचार किया जा रहा है। पंचकलाओं कीशृंखला में काव्य-साहित्य को सर्वोच्य कला गया है, एवं चित्र को तृतीय स्थान पर रखा गया है। चूंकि दोनों, कलाओं की श्रेणी में आते हैं, अत: चित्र और काव्य को पूरक कहा जा सकता है। आगे विद्यापति के गीतों में चित्र कला के तत्त्वों के समायोजन की पुष्टि की जाएगी।

विद्यापति ने अपने मधुर गीतों में श्रीकृष्ण के विरह से आकुल राधा के माध्यम से व्यक्त किया है कि वसन्त काल में जब श्रीहरि पुन: वापस लौटेंगे, तब वह अलिपन की लिखिया करेगी। वसन्त का आगमन होते ही सभी वृक्ष, समस्त वनांचल नवीन पत्तों से लाल

हो जाते हैं। राधा कल्पना करती है कि किसलय परिधान में वेष्ठित वन वस्तुत: कृष्ण के ध्वज हैं, विरह के शीतकाल पर उनकी विजय के पताका है। ऐसे सुखद समय में चन्द्रमा भी अपनी धवल चाँदनी से घर की सभी दीवारों का (चूना से) पुचारा कर देगा। वह कामना करती है, कि कृष्ण के गोकुल आगमन पर वाद्य-यन्त्रादि के जयघोष से, नगर से सभी घर मुखरित हो उठेंगे, वह स्वयं धवल मोती की माला से 'अलिपन' देगी।

लता तरूअर मंडप दी। निरमल ससधर भिति धबलीय।

पऊअँ नाल अइपन भल भेल। रात पल्लव नव पहिरन देल।[17]

यह तो स्पष्ट हो चुका है कि काव्य और चित्र का धर्म एक ही है, बस दोनों की अभिव्यक्ति का माध्यम अलग-अलग है। विद्यापति का काव्य चित्रमय परिणति दे, अत: चित्र के तत्त्व की उसमें समाहित है। हिन्दी-साहित्य में ऐसे चित्रात्मक काव्य रचने वाले तो बहुत हुए, लेकिन विद्यापति का स्थान अन्यतम माना जा सकता है। वात्स्यान ने कामसूत्र की टीका में चित्रकला के छह भाग माने हैं-

रूप भेदा प्रमाणनि भावलावण्य योजवय्।

साख्रश्यं वर्णिका भंग इति चित्रषडगं कम्।।[18]

अर्थात् अंग-प्रत्यंग की योजना, अंग-सौष्ठव, भाव-व्यंजना, माधुर्य, वर्ण्य वस्तु की अनुरूपता एवं रंगों की विविधता चित्रकला के तत्त्व माने जाते हैं। इन्हीं तत्त्वों के आलोक में चित्रों की रचना हो पाती है। जिस तरह काव्य-रचना के लिए प्रमुख आधार नायक-नायिका होते है, उसी प्रकार चित्रों के लिए इन्हीं दोनों की प्रध्धानता रहती है। महाकवि विद्यापति ने नायक-नायिकाओं के रूप चित्रण के अन्तर्गत अंग-प्रत्यंग की योजना और वेशभूषा का चित्रण किया है। प्राय: मिथिला-लोकचित्र-शैली के चित्रकारों द्वारा नायिका के अंग-प्रत्यंग के चित्रण में कवि ने कविता के माध्यम से अपनी भावना, मधुरता अथवा लावण्यता भर दी है।

सन्दर्भ-संकेत-सूची :

1. राजस्थानी चित्र और हिन्दी कृष्ण काव्य - जयसिंह नीरज, पृष्ठ 5
2. "काव्यरसादिमद वाक्यं श्रुतं सुख विशेषकृत" - आचार्य केशव मिश्र।
3. "निर्दोश लक्षणवती सरीति गुर्णभूषिता।

सालंकार रसानेक वृत्तिाक काव्यनामयक्।। - सरस्वती कण्ठाभरण- भोज।

4. चन्द्रालोक - जयदेव।
5. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"-साहित्यदर्पण-आचार्य विश्वनाथ।
6. "रमणीयार्थ प्रतिपादक: शब्द: काव्यम्"- रसगंगाधर- पंडितराज जगन्नाथ।
7. चित्रहि सर्व शिल्पानां मुखं लोकस्य प्रियम्-
8. अमरकोश - 'चित्र' शब्द
9. कामसूत्र-1/3 वात्स्यायन।
10. समीक्षाशास्त्र - पंडित सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ 714
11. "पोएट्री इज एज स्पीकिंग पिक्चर एण्ड पिक्चर इज ए म्यूट पोएट्री' - हॉरेश।
12. समीक्षाशास्त्र - पंडित सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ 71
13. "द ज्वाई व्हिच इज विदाउट फ्रॉम मस्ट ट्रान्सलेट इट सेल्फ इन टू परफॉर्मस, द ज्वाई ऑफ द सिंगर इन एक्सप्रेस्ड इन दल फॉम ऑफ द पोएम, मैन इन हिज रोल ऑफ ए क्रियेटर इज इवर क्रियेरिंग, फॉर एण्ड दे कम आउट ऑफ हिज स्वाझिंग ज्वाई।"
14. दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक - डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ 22
15. रामचरितमानस (बालकाण्ड) - तुलसीदास
16. विष्णुधर्मोत्तर पुराण - चित्रसूत्रम् -43/1
17. विद्यापति पदावली - रामवृक्ष बेनीपुरी, पद सं.-177 पृष्ठ 210
18. कामसूत्र - वात्स्यायन, 1/13

मैत्रेयी के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

डॉ० कुमारी निश्चय

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग, ल.ना.मि.वि.वि., दरभंगा

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में व्यक्त सामाजिक चेतना का आकर्षण विहित प्रतीत होता है। 'समं अजति गच्छति इति समाज:' के रूप में समाज शब्द की व्युत्पत्ति प्रस्तुत की जाती है। सम्यक् रूप में गमन करने का नाम ही समाज है। समाज में संघटनात्मक प्रवृत्ति का प्राधान्य होता है। वैदिक वांमय में समाज तन्त्र का स्वरूप द्रष्टव्य है। "यजुर्वेद में रूयानी प्रथ सहा अन्नभाग: समान योक्ते।" आदि की घोषणा की गई है। अर्थात् समाज में जलाशय, अन्नभाग, भूमिभाग आदि की समानता अपेक्षित है। यहाँ यह विचारणीय है कि प्राणाग्नि को भारताग्नि कहा गया। वैसे भरत के नाम पर भी भारत नामकरण किया गया है। इस प्रकार प्राणाग्नि की चेतना से भरे हुए क्षेत्र को भारत कहा जाता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की आलोचना के क्रम में समाजतन्त्र का अवलोकन अनिवार्य हो जाता है।

प्राचीन भारतीय तंत्र में समाज को मातृसत्तात्मक कहा गया है। 'मातृ देवो भव' इस श्रुति से भी यह बात सिद्ध होती है। परिवार की शासिका के रूप में माता की प्रधानता थी। पुन: पारिवारिक और सामाजिक पदाधिकारियों के रूप में नन-तत का उल्लेख किया गया है। इन्हीं शब्दों से नाना और तात शब्दों का संबंध है। समाज-तंत्र में स्त्री-पुरुष का स्थान महत्त्व है। वेदान्त के अनुसार सृष्टि-क्रम में ब्रह्म की परिणति पति-पत्नी (स्त्री-पुरुष) के रूप में हुई-

"पतिश्चपत्नी-चाभवता।"

स्त्री-पुरुष परस्पर एक दूसरे के पूरक कहे गए हैं। श्रुति मन्त्रों के अनुसार समाज के एक ही परिवार में विभिन्न जीविका वाले प्राणियों की विद्यमानता थी। भारतीय समाज चार वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में विभक्त था। इनके अलग-अलग कार्य थे। इसी प्रकार चार आश्रमों-ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वाणप्रस्थ और संन्यास का भी वर्णन हुआ है।

इसी प्रकार कार्य-योजना के आधार पर भारतीय समाज वर्णो, जातियों और आश्रमों में विभक्त था। इस विभाजन की तात्त्विक मीमांसा विहित हो जाती है। भारतीय समाज में प्रेम तथा श्रेय, अभ्युदय तथा नि:श्रेयस की साधना के द्वारा परम तत्त्व की प्राप्ति की जाती थी। प्रेम से श्रेय तथा अभ्युदय से नि:श्रेयस की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास प्रेम के धरातल को सृष्ट करता है। भारत में आदिकाल से लेकर अद्यपर्यन्त विभिन्न शासनतंत्र भी परिलक्षित होते हैं। शासन-व्यवस्था के कारण सामाजिक मर्यादाओं में परिवर्तन के विविध रूप दृष्टिगत होते रहे। देश पर बहुत दिनों तक विदेशियों का शासन रहा। शासन-व्यवस्था ने भारतीय समाज-तंत्र को प्रभावित किया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् कई सामाजिक समस्याओं का आगमन हुआ। स्त्री-पुरुष-संबंध की समस्या भी उत्पन्न हुई और इसी क्रम में महिलाओं की समस्याओं का भी अवलोकन किया गया।

इन समस्याओं के आलोक में साहित्य की सृष्टि हुई। भारतीय समाज की झाँकी साहित्य के द्वारा प्रस्तुत होते हैं। समाज-तंत्र में स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंध की मीमांसा सर्वोपरि होती है। समाज की अभिवृद्धि के क्रम में नारी और पुरुष इन दोनों के कार्य क्षेत्र को देखना होगा। गृह से लेकर समाज तक नारी-पुरुष की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। पुरुष के कार्यक्षेत्रों की तुलना में यदि नारी के कार्य-क्षेत्र को महत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो उसके कार्यक्षेत्र पुरुष की उपेक्षा अधिक गंभीर हैं। पुरुष उपार्जन और व्यवस्था-संपादन का कार्य करता है, तो स्त्री के जिम्मे परिवार में संतानोत्पादन से लेकर उनके निर्माण, निर्वाह, व्यवस्था का नियोजन गृह-व्यवस्था और पारिवारिक संतुलन- जैसे अधिक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व जुड़े हुए हैं।

अस्तित्व-बोध जो किसी भी व्यक्ति तथा समाज के लिए प्रगति-यात्रा का पहला चरण है, मनुष्यता के जन्म के उत्स के रूप में नारी का उल्लेख किया जाता है। नारी को मातृ-शक्ति के पद पर प्रतिष्ठित रखने से श्रेष्ठ मानव रत्नों का आगमन होता है। पहले

जहाँ स्त्रियाँ समाज और राष्ट्र तक को प्रभावित करने वाले कार्यक्रमों और गतिविधियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं, उन्हें घरेलू कार्यों में परामर्श देने के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया। प्राचीन और दासता के मध्यवर्ती युग में स्त्रियों को मनोरंजन का साधन मानने उनका क्रय-विक्रय होने तथा सम्पत्ति के रूप में उसकी गणना करने की परिपाटी चल पड़ी थी। बहुविवाह की प्रथा इसी की देन है। नारी की मातृ-शक्ति के साथ किये गये बर्बरतापूर्ण अत्याचार का दुष्परिणाम कालान्तर में ही निकलकर सामने आने लगा। उन्हीं घड़ियों में आरंभ हुई, वह कालरात्रि, जिसका अंधकार डेढ़-हजार वर्ष तक छाया रहा और सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना से शून्य भारतीय केवल अपनी ही चिन्ता करते हुए, अपने स्वार्थ की पूर्ति ही पर्याप्त समझते हुए मृतप्राय जीवन जीता रहा।

समर्थ और सशक्त व्यक्तियों का उदय-आविर्भाव ही हमारे यहाँ अवरूद्ध हो गया इसलिए कि हमने मातृशक्ति की अपवंचना आरंभ कर दी। नारी-अस्मिता का हमने अनादर किया। इस प्रकार से महिलाओं को माता, गृहलक्ष्मी और गृह-स्वामिनी के रूप में पुनर्प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न आवश्यक है। आज सभी देशों में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं बचा है, जहाँ पर नारियों की प्रगति नहीं हो रही हो। भारत में भी स्त्री राजनीतिक, प्रशासनिक क्षेत्र से लेकर कला कौशल के क्षेत्र में काम कर रही है। स्कूल-कॉलेज से लेकर शिक्षा के क्षेत्र में भी अग्रणी है। आज के विकासशील देश में स्त्री कल-कारखाने से लेकर मजदूरी तथा कृषि के क्षेत्र में भी हाथ बँटा रही है।

आधुनिक हिन्दी-उपन्यासों में नारियों की इस प्रगति का भी चित्रण किया जा रहा है। भारत को यदि प्रतिष्ठा का उच्च सोपान प्राप्त करना है, तो उसे अपनी जननी, नारी-शक्ति को एक आध्यात्मिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना होगा। सम्प्रति, इन कृतियों में समता के अधिकार के आलोक में नारियों की अस्मिता की रक्षा के उपाय सुझाये गये हैं। अज्ञेय ने नारियों की बौद्धिक क्षमता को मनोवैज्ञानिक धरातल पर अवर्तीण करने की चेष्टा की। उन्होंने प्रेमचन्द के आदर्श को मनोवैज्ञानिक रूप प्रदान किया। जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ नारियों के चरित्रांकन के क्रम में सांस्कृतिक आदर्शों को प्रस्तुत करती हैं। निराला और महादेवी ने भी नारियों की अस्मिता को लेकर अपनी रचना-धर्मिता प्रकट की है। इन साहित्यकारों की रचना-धर्मिता के आलोक में विवेच्य कालावधि के कहानीकारों ने महिलाओं के सशक्तिकरण को लेकर कथा-विधान को विन्यास करने का प्रयास किया। राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, दिवाकर, अमरेन्द्र मिश्र आदि की कृतियाँ नारी मनोविज्ञान को प्रस्तुत करती हैं। महिलाओं की सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखलाते हुए, इन कहानीकारों ने मानवीय संवेदनाओं को उजागर करने का प्रयास किया है।

सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान होने के बाद भी नारी के पास कई गुण अधिक हैं, जैसे कोमलता, स्नेह, माधुरी, प्रेम और सौंदर्य नारी के ही हिस्से हैं, तो भी उसने कभी इसका अभिमान नहीं किया और पुरुष की विनम्रता सहचरी बनी रहने में ही अपना सुख-सौभाग्य समझा। समाज में प्रचलित इस विडम्बना और विकृत मान्यता को बदलने की आवश्यकता है कि नारी का दर्जा पुरुष के दर्जे से छोटा है। प्रकृति ने दोनों को पूरक बनाया है तथा दोनों का विकास परस्पर सहयोग पर निर्भर करता है।[4]

सामाजिक समस्याओं के कारण महिलाओं को अनुचित दबावों का सामना भी करना पड़ता है। शिक्षा-साक्षरता के अभाव में वह आगे बढ़ने की बात तो क्या सोच पायेगी, बल्कि सामान रूप से गार्हस्थ-संबंध भी नहीं निभा पायेगी, शिक्षित कन्या अपने माता-पिता का घर भी सँवारती है और अपनी ससुराल को भी सुसज्जित रखती है। अशिक्षित नारियाँ संतान, धन आदि के लिए रूढ़िवाद को अपनाती हुई टोने-टोटके के फेर में पड़ जाती हैं। इस सामाजिक समस्या पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

नारी विषयिणी सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु विद्वानों ने जो उपाय सुझायें हैं, उन्हें संक्षिप्त रूप से इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है-

1. नर और नारी के साथ व्यवहार गुण, योग्यता और सेवा के अनुरूप होनी चाहिए।
2. सम्पत्ति के ऊपर नारी का भी अधिकार होना चाहिए।
3. वर-पक्ष बड़ा है और कन्या-पक्ष छोटा है, यह दुर्भावना दिल से निकाल देनी चाहिए।
4. सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक पदों पर स्त्रियों का भी होना आवश्यक है।

जिस राष्ट्र या समाज के स्त्री और पुरुष बलवान होते हैं, वही अपना और जगत् का कल्याण कर सकते हैं। स्त्री की शक्ति का आधार यही हो सकता है कि वह शारीरिकता से ऊपर उठकर मानवता की दिशा में उन्नति करे। वह अपनी आन्तरिक, आध्यात्मिक शक्ति का महत्त्व समझे और उसे विकसित करे।

वह बुद्धिमति, वीर तथा तेजस्विनी बनने की कामना एवं साधना करे। स्नेह, उत्सर्ग, सहिष्णुता, संतुलन और धैर्य तो उसके स्वाभाविक गुण ही है, परन्तु इसके साथ ही वह साहस, शौर्य स्वाध्याय शीलता, बुद्धिमता ब्रह्मचर्य, विधाभ्यास आदि गुणों से संयुक्त है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी अनेक पुस्तकों की रचना की है। राजकीय कानून में स्त्रियों को समानता के अधिकार मिलते जा रहे हैं। नारी-युग-युगाान्तरों से मूक साधिका के रूप में संसार को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बनाती आयी है। आदिकाल से ही पुरुष-समाज पर नारी का ऋण चला आ रहा है और चलता रहेगा। इस दृष्टि से पुरुष-समाज नारी का कृतज्ञ है, वह उसके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता, किंतु नारी की दुर्दशा देखकर आज ऐसा लगता है- पुरुष आज उसके अनुदानों को भूल बैठा है, फलस्वरूप कृतघ्नता का परिचय दे रहा है।[5]

मैत्रेयी पुष्पा की कृतियों के माध्यम से यह कहा जा सकता है कि पद्दलित और प्रताड़ित करने पर नारियों की सुकुमारता का अन्त हो जाता है। वह सदा सर्वदा स्नेह और सौजन्य की साक्षात् देवी एवं संतप्त वृक्ष की शीतल छाया है। नारियों के शारीरिक मानसिक शोषण के कारण जागरण के भाव का आगमन स्वाभाविक ही है। असुरक्षा की भावना और संशय से ग्रस्त इन नारियों की रक्षा परमावश्यक है। विकास वादियों (जे0 डी0 लेमार्क) ने 'न्यूज एण्ड डिसयूज' का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त दिया है। इनके अनुसार जिस अंग का बराबर उपयोग होता रहता है, उसका विकासक्रम भी जारी रहता है और जो अंग काम करना बंद कर देता है या निष्क्रिय पड़े रहते हैं, उनका विकास रूक जाता है।

महिला जाति के साथ यही हुआ। मध्ययुग में जब उनके मस्तिष्क में यह कूट-कूटकर भर दिया गया कि वह हर प्रकार से निर्बल है और उनकी उपयोगिता घर-आँगन तक ही सीमित हैं, तो उनके अंग अवयव भी उसी चिन्तन के अनुरूप ढलने लगे। इसी क्रम में जुझारूपन के लिए जिम्मेदार 'नोरएपि ने 'फ्रीन' हारमोन का स्राव घटता गया, जबकि 'एपि ने फ्रीन का स्तर बढ़ता गया, जिससे नारी को बाहर के हर कार्य में भय एवं घबराहट का अनुभव होने लगा। नारियों की संवेदनाओं से संबद्ध रचनाओं की सृष्टि आवश्यक है। इस विषय में आचार्य श्रीराम शर्मा का निम्नांकित कथन विचारणीय है।

महिलाओं की सुरक्षा के लिए 1974 में अन्तर्राष्ट्रीय महिला-वर्ष मनाया गया। उस वर्ष राष्ट्र-संघ ने सभी देशों की सरकारों से तथा समाजसेवी संस्थाओं से अनुरोध किया कि वे महिला-जागरण के संबंध में कुछ अधिक सोचें और कुछ अधिक करें। संसार भर की देशों की सरकारें उसके बाद से अपेक्षाकृत नारी-समस्या पर अधिक ध्यान दे रही है। उनके मार्ग की अड़चने हटाने और सुविधाएँ बढ़ाने के लिए कुछ न कुछ किया जा रहा है। सामाजिक संस्थाएँ भी इस दिशा में कदम उठा रही हैं।

इस प्रकार अद्यतन हिन्दी-उपन्यासों में भी महिलाओं की सुरक्षा के लिए विमर्श का क्षेत्र प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक कहानियों, एवं उपन्यासों में नारियों की मनोदशा का चित्रण समय-सापेक्ष है।[6]

इस प्रकार भारतीय समाज की विशेषताओं के उद्घाटन के क्रम में स्त्री-पुरुष संबंध निरूपम की महती आवश्यकता प्रकट होती है। इस प्रकार जीवन और जगत् के रहस्य को जानने के लिए परिस्थितियों से परिचय आवश्यक हो जाता है, मैत्रेयी जी की कथाओं का यही केन्द्रीय भाव है। पुष्पा जी के उपन्यासों के माध्यम में व्यक्तिगत संघर्षशीलता जब अपना व्यापक रूप धारण करती है, तब उसका संबंध समाज से हो जाता है। परिस्थितियों के आलोक में संबंधों का निरूपण आवश्यक प्रतीत होता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कृतियों के माध्यम से समस्याओं को उजागर कर इनके निराकरण की ओर संकेत किया है। परिस्थितियाँ जीवन को परिचालित करती हैं और व्यक्तिवाद जाग्रत होकर तथ्यों की प्रस्तुति करता है। तथ्य-निरूपण के क्रम में जिन की रचना की जाती हैं, उनका मनोवैज्ञानिक धरातल पर विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। वर्णित मनोविज्ञान तथा मनोविश्लेषण मुक्त यथार्थ की सीमाओं को प्रकट करता है, जहाँ स्त्री-पुरुष-संबंध की द्वन्द्वशीलता भी परिलक्षित होती है। भाव-जगत् के इस रहस्य को जानना आवश्यक है।

पुष्पा जी के उपन्यासों के सिद्धान्त-निरूपण की पद्धति भी विचारणीय हो जाती है। आधुनिक कहानियों ने द्वन्द्वशीलता परिप्रेक्ष्य में ही सिद्धान्तों की प्रस्तुति विहित प्रतीत होती है। वस्तुत: अर्थतन्त्र पर आधारित यह जीवन-संबंधों के ताने-बाने में आबद्ध है। इन संबंधों के निरूपण के लिए हमें प्रयत्नशील होना पड़ेगा और जगत् के रहस्योद्घाटन के निमित्त मानसिक प्रयत्न करना पड़ेगा। जब मानसिकता के धरातल पर संबंधों की शाश्वतता अवतरित होती है, तब ही कहानियों के प्रतिपाद्य से परिचय प्राप्त होता है।

मैत्रेयी ने अपने उपन्यास के माध्यम से व्यक्तिवाद को समष्टि के प्रति समर्पित करने की चेष्टा की है। मनोविश्लेषणवाद की आलोचना-पद्धति पर, इनकी रचानाओं का मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिए समाजदर्शन को जानने की भी आवश्यकता है।

व्यक्ति और समाज के संबंधों की परिणति पर भी ध्यान देना होगा, जिसके द्वारा निराकरण का आधार दृष्टिगत होता है। मैत्रेयी पुष्पा हिन्दी के आधुनिक उपन्यासों में संवेदनशील उपन्यासकार मानी जाती हैं। जीवन की संवेदनाओं को जानना आवश्यक है। इन संवेदनाओं का साधारणीकरण और संप्रेषणीयता का वर्णन करना व्यापक हो जाता है। इस संप्रेषणीयता के आधार पर, रचनाओं की मूल्यवत्ता भी विवेचित होती है। आइ0 ए0 रिचर्डस ऐसे पाश्चात्य समीक्षक ने सहसंवेदनीयता के आधार पर, रचनाओं की मूल्यवत्ताओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। वे अधिनतम आवेगों की अधिकतम संतुष्टि के रूप में साहित्य के उद्देश्य को सिद्ध करना चाहते हैं।[7]

जीवन की परिस्थितियों का साक्षी साहित्यकार अपनी समस्त भावनाओं की परिणति साहित्य-साधना के द्वारा प्रकट करता है। जीवन के अवसाद और निराशा के आकलन के निमित्त रचना-धर्मिता का ज्ञान भी तो आवश्यक है। मन और मनुष्यता का शाश्वत संबंध है। मन को ही बंधन और मोक्ष का कारण कहा गया है।

"मन एवं मनुष्याणां
कारणं बन्धमोक्षयोः।"

इस प्रकार मन के धरातल पर, जिन विचारों का अवतरण होता है, उनका आकलन समीक्षकों के द्वारा किया जाता है। इसी क्रम में स्त्री-पुरुष-संबंधों की व्यापकता वर्णित होती है। पुष्पा जी के उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि परिस्थितियाँ मरनसिकता को प्रभावित करती है और उसी के अनुरूप जीवन को परिचालित करती है। अतएव संबंधों का स्वरूप भी विवेच्य हो जाता है। कामनाओं के आलोक में संबंध निरूपण की आवश्यकता प्रतीत होती है। जीवन-प्रबन्धन की परिस्थितियाँ साहित्यकारों को प्रभावित करती है।

इसीलिए श्रुति में कहा गया है कि वे पुरुष धन्य हैं, जिन्हें गुणवती, विदुषी और सुयोग्य सहचरी प्राप्त हो सकी।

"यूयं हि देवीस्मृत युग्मिरश्वैः
परिप्रयाथ भुवनानि सद्य
प्रबोधयन्ती रूपसः ससन्तं
द्वि पाच्य तुव्याच्चरथाय जीवम।"

अर्थात् ऋग्वेद के अनुसार कहा गया है कि यदि श्रेष्ठ सन्तान की इच्छा है, तो नारी को ज्ञानवान बनाने की आवश्यकता है। उन्हीं से संसार का गौरव बढ़ता है। उनका योगदान कामधेनु के समान है। इस प्रकार वैदिक वा्मय में भी नारी को इड़ा, रन्ता, हल्या, काम्पा, चन्द्रा, ज्योति, अदिति आदि नामों से अभिहित किया गया है। इस प्रकार मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में सामाजिक अध्ययन का विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. वेदार्थरहस्यम् -13
2. प्राणो भूत्वा विभर्ति इति भारतः। श0 प0 ब्रा0 -17
3. पुरुषार्थ -37
4. राइट्स ऑफ विमन -मेरी बोल्स्टन क्राफ्ट
5. इक्कीसवीं सदी नारी रूपी, नारी रूपी -46
7. अखण्ड ज्योति -1881 - जनवरी अंक -27
8. वेदान्तसार -57

बिहार की राजनीती में पिछड़ा वर्ग

मिन्टु कुमारी

पीएच.डी., बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

सामाजिक परिवर्तन, समाज के आधारभूत परिवर्तनों पर प्रकाश डालने वाला एक विस्तृत एवं कठिन विषय है। इस प्रक्रिया में समाज की संरचना एवं कार्यप्रणाली का एक नया जन्म होता है। इसके अन्तर्गत मूलतः प्रस्थिति, वर्ग, स्तर तथा व्यवहार के अनेकानेक प्रतिमान बनते एवं बिगड़ते हैं। समाज गतिशील है और समय के साथ परिवर्तन अवश्यंभावी है।

बुद्धिजीवियों और लेखकों ने गत शताब्दी के दो बड़े आंदोलनों की भारी उपेक्षा की है। यदि उन्हें समर्थन मिलता तो बात दूसरी होती। कदाचित वे समस्याएं न देखनी पड़तीं, जिनसे हम आज गुजर रहे हैं। उनमें पहले का नाम हैख्र'त्रिवेणी संघ'। दूसरा 'अर्जक संघ'। दोनों ही संगठन सामाजिक न्याय की भावना से अनुप्रेत थे। 'त्रिवेणी संघ' का गठन शाहाबाद, बिहार तथा 'अर्जक संघ' का गठन इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश में हुआ था। दोनों का उद्देश्य था, दबी-पिछड़ी जातियों में आत्मसम्मान का भाव जाग्रत करना.

परिचय

आधुनिक संसार में प्रत्येक क्षेत्र में विकास हुआ है तथा विभिन्न समाजों ने अपने तरीके से इन विकासों को समाहित किया है, उनका उत्तर दिया है, जो कि सामाजिक परिवर्तनों में परिलक्षित होता है। इन परिवर्तनों की गति कभी तीव्र रही है कभी मन्द। कभी-कभी ये परिवर्तन अति महत्वपूर्ण रहे हैं तो कभी बिल्कुल महत्वहीन। कुछ परिवर्तन आकस्मिक होते हैं, हमारी कल्पना से परे और कुछ ऐसे होते हैं जिसकी भविष्यवाणी संभव है। कुछ से तालमेल बिठाना सरल है, जब कि कुछ को सहज ही स्वीकारना कठिन है। कुछ सामाजिक परिवर्तन स्पष्ट है एवं दृष्टिगत हैं जब कि कुछ देखे नहीं जा सकते, उनका केवल अनुभव किया जा सकता है। हम अधिकतर परिवर्तनों की प्रक्रिया और परिणामों को जाने समझे बिना अवचेतन रूप से इनमें शामिल रहे हैं। जब कि कई बार इन परिवर्तनों को हमारी इच्छा के विरुद्ध हम पर थोपा गया है। कई बार हम परिवर्तनों के मूक साक्षी भी बने हैं। व्यवस्था के प्रति लगाव के कारण मानव मस्तिष्क इन परिवर्तनों के प्रति प्रारंभ में शंकालु रहता है, परन्तु शनैः उन्हें स्वीकार कर लेता है।

कर्पूरी फार्मूला की वजह से अतिपिछड़ों का नौकरियों में प्रतिनिधित्व तो थोड़ा बहुत आया है, थोड़ी आर्थिक स्थिति भी सुधरी थी। लेकिन वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण वर्तमान में ज्यादातर अतिपिछड़े समुदायों को बहुत ही बुरी आर्थिक-सामाजिक स्थिति से गुजरना पड़ रहा है। बिहार में अधिकतर अतिपिछड़ी जातियां भूमिहीन की श्रेणी में आती हैं और जीविका चलाने वाला इनका परम्परागत पेशा भी बर्बादी के कगार पर पहुंच गया है।

अतिपिछड़े समाज में सैकड़ो जातियां शामिल है। अलग-अलग जाति के हिसाब से देखा जाए तो जनसंख्या के लिहाज से इनकी संख्या बहुत कम है, लेकिन अतिपिछड़ों को एक समूह के तौर पर देखा जाए तो यह सबसे बड़ी आबादी वाला समूह है। लेकिन इनके अंदर से मजबूत राजनीतिक प्रतिनिधित्व नहीं होने तथा दयनीय आर्थिक-सामाजिक स्थिति होने के कारण इनपर सामंती हमला होना बहुत ही आसान हो जाता है।

शोषित समाज दल का युग

1970 के दशक में बिहार में पिछड़ी जातियां राजनीतिक सत्ता के लिए मुखर हो गईं। नेतृत्व तीन मध्यवर्ती कृषि जातियों कोइरी, कुर्मी और यादव द्वारा किया गया। दरोगा प्रसाद राय की मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्ति के बाद, पिछड़ों के बीच एक आशा की किरण दिखाई दी। लेकिन, कांग्रेस में उच्च जाति के गुट ने कांग्रेस के साथ पिछड़ों के बीच असंतोष पैदा करने के लिए उन्हें हटाने की साजिश रचनी शुरू कर दी। इस अवधि में एक प्रभावशाली नेता जगदेव प्रसाद के उदय को देखा गया, एक कोइरी नेता, जो अपने 'जाति' और अन्य पिछड़ों और दलितों के बीच बड़े पैमाने पर प्रभाव करते थे। एक राजनीतिक पार्टी ष्शोषित समाज दलष् बिहार के राजनीतिक परिदृश्य में उभरी, जो बाद में कांग्रेस के समर्थन से थोड़े समय के लिए सत्ता में भी रही। सतीश प्रसाद सिंह जो जगदेव प्रसाद के रिश्तेदार थे, बिहार के पहले षपिछड़ी जातिष के मुख्यमंत्री थे जिन्होंने केवल एक सप्ताह के लिए शासन किया। एक आंदोलन का नेतृत्व करते हुए बिहार आंदोलन के दौरान जगदेव प्रसाद के मारे जाने के बाद, उनकी मृत्यु के संबंध में विभिन्न संदेह बढ़ गए क्योंकि पिछड़ों के बीच संदेह था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भूमिहार मंत्री के कहने पर जगदेव प्रसाद की हत्या की गई है।

बिहार की राजनीति में जाति की भूमिका

बिहार की राजनीति में जाति हमेशा से एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है। श्रीकृष्ण सिंह के कार्यकाल में भूमिहारों और राजपूतों के बीच जातिगत संघर्ष देखा गया, क्योंकि दोनों ही राजनीतिक रूप से सबसे प्रमुख जाति थे। उस समय पिछड़ों की उपेक्षा की गई और किसी भी दल ने उन्हें निर्वाचित होने और चुनावी राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के योग्य नहीं समझा प्रारंभ में सवर्ण जाति सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, और मतदाता स्वतंत्रता आंदोलन के साथ समकालीन उच्च जाति के नेताओं की संबद्धता के कारण, उन्हें गांधी और नेहरू के समान देखते थे

यह वह समय था जब पूरा देश खाद्यान्न की कमी और व्यापक गरीबी की व्यापकता जैसी समस्याओं का सामना कर रहा था। बिहार जैसे राज्य बुरी तरह प्रभावित थे और उन्हें बीमारू राज्य के रूप में इंगित किया गया था। आजादी के पूर्व से ही पिछड़ी जातियां अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ रही थीं। 1930 के दशक में यदुनंदन प्रसाद मेहता, जगदेव सिंह यादव और शिवपूजन सिंह द्वारा 'त्रिवेणी संघ' की स्थापना उच्च पिछड़ी जातियों में बढ़ती जागरूकता के संकेत थे। कांग्रेस के बेहतर संगठनात्मक ढांचे और आम जनता पर स्वतंत्रता सेनानियों के प्रभाव के कारण षत्रिवेणी संघष कांग्रेस के खिलाफ बुरी तरह से हार गई थी।

बिहार आंदोलन से पहले के दशक में कृषि जातियों में मुख्य रूप से कोइरी और यादव जाति के बीच राजनीतिक उग्रवाद का उदय हुआ था। जगदेव प्रसाद जैसे नेता बिहार की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए उभरे। ऐसा कहा जाता है कि उन्हें पिछड़ों के बीच सर्वोच्च नेता के रूप में पहचाना जाता था। जगदेव प्रसाद की हत्या पिछड़ी जाति के लिए कांग्रेस से प्रस्थान थी। इसे कांग्रेस में उच्च जाति के गुट द्वारा करवाया गया राजनीति से प्रेरित हत्या के रूप में देखा गया था।। इस ऊंची जाति के धड़े ने बाद में सतीश प्रसाद सिंह के असामयिक इस्तीफे में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जो बिहार के पहले पिछड़ी जाति के मुख्यमंत्री थे।चौथे और पांचवें विधानसभा चुनावों में राजनीतिक सत्ता के लिए उच्च जातियों और उच्च पिछड़ी जातियों के बीच खींचतान देखा गया, जब एक छोटी सी अवधि में आधा दर्जन मुख्यमंत्री आए और गए।

पिछले कई दशकों में बिहार की राजनीति में अगड़ी जातियों की हिस्सेदारी कम हुई है जबकि पिछड़ों ने सबसे ज्यादा अपनी पैठ बनाई है। राजनीति की इस रस्साकशी में अब पिछड़ी जातियों ने वो जगह हथिया ली है जो कभी अगड़ों के पास हुआ करती थी। 1952 में जिन अगड़ी जातियों की हिस्सेदारी 46 प्रतिशत थी 2015 के चुनाव में वो घटकर 20 प्रतिशत के पास पहुंच गई। वहीं इस दौर में पिछड़ी जातियों की लोकतांत्रिक संस्थाओं में हिस्सेदारी तेजी से बढ़कर 9 प्रतिशत की जगह 46 प्रतिशत तक पहुंच गई है।

बिहार में साम्यवादी उग्रवाद

पिछड़े न केवल राजनीति में स्थान पाने के इच्छुक थे, बल्कि वे अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए भी इच्छुक थे, जो उच्च जाति के जमींदारों के वर्चस्व वाले बिहार के सामंती समाज में अनिश्चित थे क्योंकि ये जमींदार यथास्थिति के समर्थक थे।इस दौरान कई कम्युनिस्ट संगठन बिहार में स्थापित हुए, कम्युनिस्ट पार्टियों ने भूमिहीन दलितों और गरीब किसान जातियों का समर्थन

उच्च जातियों और ष्उच्च पिछड़ी जातिष् के जमींदारों के खिलाफ किया। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कोइरी, कुर्मी और यादव जातियों का एक बड़ा हिस्सा भी जमींदारों का था, लेकिन इन जातियों की महत्वपूर्ण आबादी मध्यवर्ती किसान थे, जो अपनी जमीन पर काम करते थे और दूसरों की भूमि पर काम करना अपनी गरिमा से नीचे मानते थे।

इन तीनों किसान जातियों के इस तबके ने दलितों, विशेषकर चमारों, मुसहरों और पासवानों, जिन्हें 'दुसाध' भी कहा जाता था, के करीबी सहयोग में जमींदारों के विरुद्ध हिंसक कम्युनिस्ट विद्रोह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस तरह के विद्रोह में सबसे उल्लेखनीय भोजपुर विद्रोह है। भोजपुर जो भूतपूर्व रियासतों का गढ़ था, वहां कामरेड जगदीश महतो, ष्कामरेड रामेश्वर अहीरष् और ष्कामरेड रामनरेश पासवानष् के नेतृत्व में हिंसक कम्युनिस्ट आंदोलन देखने को मिला। दूसरी ओर कुर्मी, कोइरी और यादवों के जमींदार गुट ने नक्सली दबाव को नाकाम करने और अपनी भूमि को सीपीआई समर्थित भूमिहीन किसान और दलितों के कब्जे से बचाने के लिए भूमिहारों और राजपूतों जैसी जातिय सेनाओं का गठन किया।इस प्रकार कोइरी और कुर्मियों की निजी सेना, ष्भूमि सेनाष् और यादवों की निजी सेना जैसे ष्लोरिक सेनाष् का गठन किया गया।

बिहार की राजनीति में 1980 का दशक

बिहार के राजनीतिक परिदृश्य में असली मोड़ 1980 के दशक में आया जब पिछड़ी जाति के विधायकों की संख्या में वृद्धि हुई और यह वृद्धि पिछले दिनों की तुलना में सबसे महत्वपूर्ण वृद्धि थी बाद के वर्षों में, जनता दल जो कांग्रेस के प्रभुत्व के खिलाफ एक दुर्जेय शक्ति के रूप में उभरी, उसे बिहार में दो धड़ों में बांट दिया गया। एक राष्ट्रीय जनता दल बन गई और दूसरी जनता दल (यूनाइटेड) बनी।

निष्कर्ष

18वीं शताब्दी में यूरोप में एक नवीन बौद्धिक लहर चली, जिसके फलस्वरूप जागृति के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। तर्कवाद तथा अन्वेषणा की भावना ने यूरोपीय समाज को प्रगति प्रदान की। भारत का एक नवीन पाश्चात्य शिक्षित वर्ग भी तर्कवाद, विज्ञानवाद तथा मानववाद से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सका। इन पाश्चात्य शिक्षित भारतीयों ने इस नवज्ञान से प्रभावित होकर सामाजिक एवं धार्मिक सुधार का कार्य प्रारंभ किया।

ब्रिटिश शासन के तले भारतीय समाज एवं संस्कृति में व्यापक परिवर्तन आया तथा वह अपनी परंपरागत छवि से दूर हो गया।

सामाजिक सुधार आंदोलनों में मानवीय हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी। इस बात को प्रमुखता से इंगित किया गया कि कोई भी परिवर्तन तभी उपयोगी है, जब उससे मानवीय कल्याण के उद्देश्यों की पूर्ति होती हो।

मोटे तौर पर समाज सुधार अभियान के दो मुख्य उद्देश्य थे। पहला, समाज में स्त्रियों की दशा में सुधार लाना तथा दूसरा, समाज से जातिगत भेदभाव को दूर करना।

सन्दर्भ

- Kumar, Sanjay (2019-06-09)- Bihar Ki Chunavi Rajniti: Jati-Varg ka Samikaran(1990-2015)- SAGE Publishing India- आई.एस.बी.एन. 9353286174.
- Kunnath, George (2018)- Rebels From the Mud Houses: Dalits and the Making of the Maoist Revolutionµ New york: Taylor and Francis group- प. 31। आई.एस.बी.एन. 978-1-138-09955-5। अभिगमन तिथि 2020-05-29.
- जे. एच. हटन : कास्ट इन इंडिया, इटस नेचर, फंकशंस ऐंड ओरिजिंस, कैंब्रिज, 1946;
- नर्मदेश्वरप्रसाद उपाध्याय : द मिथ ऑव द कास्ट सिस्टम, पटना, 1957;
- क्षितिमोहन सेन : श्भारतवर्ष में जातिभेद' अभिनव भारतीय ग्रंथमाला, कलकत्ता, 1940;
- डॉ. मंगलदेव शास्त्री: भारतीय संस्कृति - वैदिक धारा, समाजविज्ञान परिषद्, वाराणसी, 1955

भारत की विदेश नीति और सैन्य संघर्ष

डॉ० सुनील कुमार

(पीएचडी), बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

प्रत्येक देश अन्य देशो से सम्बन्धो की स्थापना एक विशेष नीति के अनुसार करता है इसी नीति को उस देश की विदेश नीति कहते है।

भारत ने भी बाकि सभी देशो से सम्बन्ध बनाने की एक नीति का निर्माण किया इसे ही भारत की विदेश नीति कहा जाता है। भारत की विदेश नीति में देश के विवेकपूर्ण स्वू-हित की रक्षा करने पर बल दिया जाता है।

संकेत शब्द : विदेश नीति, सैन्य संघर्ष, पंचशील

परिचय

किसी भी देश की विदेश नीति इतिहास से गहरा सम्बन्ध रखती है। भारत की विदेश नीति भी इतिहास और स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बन्ध रखती है। ऐतिहासिक विरासत के रूप में भारत की विदेश नीति आज उन अनेक तथ्यों को समेटे हुए है जो कभी भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से उपजे थे। शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व व विश्वशान्ति का विचार हजारों वर्ष पुराने उस चिन्तन का परिणाम है जिसे महात्मा बुद्ध व महात्मा गांधी जैसे विचारकों ने प्रस्तुत किया था। इसी तरह भारत की विदेश नीति में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व रंगभेद की नीति का विरोध महान राष्ट्रीय आन्दोलन की उपज है।

भारत के अधिकतर देशों के साथ औपचारिक राजनयिक सम्बन्ध हैं। जनसंख्या की दृष्टि से यह दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्रात्मक व्यवस्था वाला देश भी है और इसकी अर्थव्यवस्था विश्व की बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है।

1947 में अपनी स्वतंत्रता के बाद से, भारत ने अधिकांश देशों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखा है। वैश्विक मंचों पर भारत सदा सक्रिय रहा है। 1990 के बाद आर्थिक तौर पर भी भारत ने विश्व को प्रभावित किया है।

पाकिस्तान व चीन के साथ भारत के संबंध कुछ तनावपूर्ण अवश्य हैं किन्तु रूस के साथ सामरिक संबंधों के अलावा, भारत का इजरायल और फ्रांस के साथ विस्तृत रक्षा संबंध है।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन

1950 के दशक में, भारत ने पुरजोर रूप से अफ्रीका और एशिया में यूरोपीय उपनिवेशों की स्वतंत्रता का समर्थन किया और गुट निरपेक्ष आंदोलन में एक अग्रणी की भूमिका निभाई।

1990 के बाद

हाल के वर्षों में, भारत ने क्षेत्रीय सहयोग और विश्व व्यापार संगठन के लिए एक दक्षिण एशियाई एसोसिएशन में प्रभावशाली भूमिका निभाई है। भारत ने विभिन्न बहुपक्षीय मंचों, सबसे खासकर पूर्वी एशिया के शिखर बैठक और जी-8 5 में एक सक्रिय भागीदारी निभाई है। आर्थिक क्षेत्र में भारत का दक्षिण अमेरिका, एशिया, और अफ्रीका के विकासशील देशों के साथ घनिष्ठ संबंध है।

ब्रिक्स

भारत ने ब्राजील, रूस, चीन और दक्षिण अफ्रीका के साथ मिलकर ब्रिक्स समूह की स्थापना की है। यह विकसित देशों के समूह G-8, G-20 के विश्व पर प्रभाव को संतुलित करने का प्रयास है। ब्रिक्स के सभी सदस्य विकासशील या नव औद्योगीकृत देश हैं जिनकी अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ रही है। ये राष्ट्र क्षेत्रीय और वैश्विक मामलों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

सैन्य संघर्ष

भारत पाकिस्तान युद्धः भारत और पाकिस्तान के बीच चार युद्ध हुए हैं। 1948, 1965, 1971 और 1999।

1948

1947 का भारत-पाक युद्ध, जिसे प्रथम कश्मीर युद्ध भी कहा जाता है, अक्टूबर 1947 में शुरू हुआ। पाकिस्तान की सेना के समर्थन के साथ हजारों की संख्या में जनजातीय लड़ाकुओं ने कश्मीर में प्रवेश कर राज्य के कुछ हिस्सों पर हमला कर उन पर कब्जा कर लिया, जिसके फलस्वरूप भारत से सैन्य सहायता प्राप्त करने के लिए कश्मीर के महाराजा को इंस्ट्रूमेंट ऑफ अक्सेशन पर हस्ताक्षर करने पड़े। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने 22 अप्रैल 1948 को रेसोलुशन 47 पारित किया। इसके बाद तत्कालीन मोर्चों को ही धीरे धीरे ठोस बना दिया गया, जिसे अब नियंत्रण रेखा कहा जाता है। 1 जनवरी 1949 की रात को 23:59 बजे एक औपचारिक संघर्ष-विराम घोषित किया गया था। इस युद्ध में भारत को कश्मीर के कुल भौगोलिक क्षेत्र के लगभग दो तिहाई हिस्से (कश्मीर घाटी, जम्मू और लद्दाख) पर नियंत्रण प्राप्त हुआ, जबकि पाकिस्तान को लगभग एक तिहाई हिस्से पर (पाकिस्तानी गुलाम कश्मीर और गिलगिट-बाल्टिस्तान)।

1965

यह युद्ध पाकिस्तान के ऑपरेशन जिब्रॉल्टर के साथ शुरू हुआ, जिसके अनुसार पाकिस्तान की योजना जम्मू कश्मीर में सेना भेजकर वहां भारतीय शासन के विरुद्ध विद्रोह शुरू करने की थी। इसके जवाब में भारत ने भी पश्चिमी पाकिस्तान पर बड़े पैमाने पर सैन्य हमले शुरू कर दिए। सत्रह दिनों तक चले इस युद्ध में हजारों की संख्या में जनहानि हुई थी। आखिरकार सोवियत संघ और संयुक्त राज्य द्वारा राजनयिक हस्तक्षेप करने के बाद युद्धविराम घोषित किया गया। 1966 में भारत और पाकिस्तान के प्रध नमंत्रियों ने ताशकन्द समझौते पर हस्ताक्षर किये। कई स्त्रोतों के अनुसार युद्धविराम की घोषणा के समय भारत पाकिस्तान की अपेक्षा मजबूत स्थिति में था।

1971

भारत पाकिस्तान के बीच यह तीसरा युद्ध हुआ। इस युद्ध में 94000 से ज्यादा पाकिस्तानी सैनिकों को बंदी बनाया गया और इस युद्ध मे पाक कि हार देखते हुए सयुक्त राष्ट्र अमेरिका और कई मित्र देशो को साथ लेकर जिसमें ब्रिटेन, चीन, पाक, फ्रांस मुख्य थे, कुछ और देशों के साथ भारत की ओर बढ़ चले। इसकी सूचना सोवियत संघ रूस को मिली और 1948 में रूस और भारत के एक दूसरे की मदद करने के लिए समझौता हुआ। जिसके बाद सोवियत संघ ने अपनी पूरी ताकत भारत की मदद के लिये भेज दी। रूस की मदद से इन्दिरा गांधी जी ने पूरी दुनिया को सन्देश दिया भारत को कमजोर समझने की भूल न करें और तब बांग्लादेश के उदय हुआ एक नया देश ष्बांग्लादेश की स्थापना हुई।

1999 : कारगिल युद्ध

1999 में भारत पाकिस्तान का तीसरा युद्ध हुआ जिसे कारगिल युद्ध के नाम से जाना जाता है यह युद्ध कारगिल जगह पर हुआ जिससे इसे कारगिल युद्ध कहते है। यह बहुत ठंडा इलाका था जिसमे पाकिस्तान ने कब्जा कर लिया था जब भारत की सेना को पता चला तो उन्होंने इसका मुहतोड़ जवाब दिया और पाकिस्तान पर विजय प्राप्त करी।

भारत-चीन युद्ध

भारत-चीन युद्ध जो भारत चीन सीमा विवाद के रूप में भी जाना जाता है, चीन और भारत के बीच 1962 में हुआ एक युद्ध था। विवादित हिमालय सीमा युद्ध के लिए एक मुख्य बहाना था, लेकिन अन्य मुद्दों ने भी भूमिका निभाई। चीन में 1959 के तिब्बती विद्रोह के बाद जब भारत ने दलाई लामा को शरण दी तो भारत चीन सीमा पर हिंसक घटनाओं की एक श्रृंखला शुरू हो गयी। भारत ने फॉरवर्ड नीति के तहत मैकमोहन रेखा से लगी सीमा पर अपनी सैनिक चौकियाँ रखी जो 1959 में चीनी प्रीमियर झोउ एनलाई के द्वारा घोषित वास्तविक नियंत्रण रेखा के पूर्वी भाग के उत्तर में थी।

चीनी सेना ने 20 अक्टूबर 1962 को लद्दाख में और मैकमोहन रेखा के पार एक साथ हमले शुरू किये। चीनी सेना दोनों मोर्चे में भारतीय बलों पर उन्नत साबित हुई और पश्चिमी क्षेत्र में चुशूल में रेजांग-ला एवं पूर्व में तवांग पर अवैध कब्जा कर लिया। चीन ने 20 नवम्बर 1962 को युद्ध विराम की घोषणा कर दी और साथ ही विवादित दो क्षेत्रों में से एक से अपनी वापसी की घोषणा भी की, हलाकिं अक्साई चिन से भारतीय पोस्ट और गश्ती दल हटा दिए गए थे, जो संघर्ष के अंत के बाद प्रत्यक्ष रूप से चीनी नियंत्रण में चला गया। 1962 के भारत-चीन युद्ध के दौरान, अरुणाचल प्रदेश के आधे से भी ज़्यादा हिस्से पर चीनी पीपल्स लिबरेशन आर्मी ने अस्थायी रूप से कब्जा कर लिया था। फिर चीन ने एकतरफा युद्ध विराम घोषित कर दिया और उसकी सेना मैकमहोन रेखा के पीछे लौट गई।

भारत-चीन युद्ध कठोर परिस्थितियों में हुई लड़ाई के लिए उल्लेखनीय है। इस युद्ध में चीनी और भारतीय दोनों पक्ष द्वारा नौसेना या वायु सेना का उपयोग नहीं किया गया था।

निष्कर्ष

भारत की विदेश नीति में मैत्री, शांति एवं समानता के सिद्धांतों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। भारत ने सभी के साथ सहयोग एवं सद्भाव रखते हुए सुद्रढ़ एवं सुस्पष्ट नीति का निरूपण किया है। भारत की विदेश नीति के तीन आधार स्तम्भ है- शान्ति, मित्रता और समानता।

प्रारम्भ में पंचशील को विश्व में भारत की विदेश नीति की महान उपलब्धी माना जाता था परन्तु 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण कर यह सिद्ध कर दिया कि पंचशील एक भ्रान्ति है।

इस आक्रमण से भारत की विदेश नीति व वैश्विक प्रतिष्ठा को भारी अघात लगा।

सन्दर्भ

- Jain, B. M. *Global Power: India's Foreign Policy, 1947–2006* (2009)
- Singh, Sangeeta. "Trends in India's Foreign Policy: 1991–2009." (PhD dissertation, Aligarh Muslim University, 2016) online, bibliography pp 270–86.
- *Lyon, Peter (2008). Conflict between India and Pakistan: an encyclopedia. ABC-CLIO. p. 82. ISBN 978-1-57607-712-2. Retrieved 30 October 2011.*
- *War at the Top of the World: The Struggle for Afghanistan, Kashmir, and Tibet* by Eric S. Margolis, p. 234.
- Lintner, Bertil (2018). *China's India War: Collision Course on the Roof of the World*. Oxford University Press.
- Malone, David *Does the Elephant Dance?: Contemporary Indian Foreign Policy* – Oxford University Press, 2011 – 425 p. – ISBN 9780199552023
- *MacDonald, Myra (2017). Defeat is an Orphan: How Pakistan Lost the Great South Asian War. Oxford University Press. pp. 27, 53, 64, 66. ISBN 978-1-84904-858-3*

पश्चात्य संदर्भ में समाजवाद एवं साम्यवाद की व्याख्या

अंकिता कुमारी

शोधार्थी, कला संकाय हिन्दी विभाग, कुमाऊ विश्व विद्यालय (नैनीताल)

स्माजवाद के लिए अंग्रेजी में 'सोशलिज्म' शब्द की उत्पति लैटिन शब्द 'सोशयालिस' से हुई है। जिसका अर्थ समाजिक अथवा मिलनसार है। इस शब्द का संबंध लैटिन भाषा के शब्दों 'सोसायटास' (समाज) और साशियस (किसी समाज अथवा मंडल का सदश्य) से है। शुरु-शुरु मे इस शब्द का प्रयोग व्यक्तिवाद का विपरित अर्थ प्रयुक्त करने के लिए किया जाता था। व्यक्तिवाद से तात्पर्य अकेले एक व्यक्ति, उसके अधिकारों, उसकी संपति आदि से है जबकि सोशलिज्म शब्द लोगो के समाजिक स्वभाव, उनके पारस्परिक संबंधों पर जोर देता है।

समाजवाद का प्रारंभ एक राजनितिक विचारधारा के रूप मे युरोप मे 18वी और 19वी सदी में उभरे औद्योगिकरण की अन्योन्य क्रिया में विकसित हुआ है। किसी भी नयी विचारधारा का प्रारंभ तत्कालिन व्यवस्था से उत्पन्न असंतोष से उसके लिए बनाये गये सिद्धांत एवं नियम समाज के प्रत्येक मनुष्य के जीवन की आवश्यकताओं को पुरा करने तथा विकास के अवसर प्रदान करने में असमर्थ होते है तब मनुष्यों के बीच असंतोष की भावना व्याप्त होने लगती है। पाश्चात्य देशों में समांतयुग के पश्चात जब औद्योगिक क्रांति हुई तो पूंजीपतियों का महत्व और शक्ति बढ़ गई। जिसके परिणाम स्वरूप समाज दो वर्ग स्पष्ट रूप से दो वर्ग उभर कर सामने आये पहला शोषक वर्ग अर्थाथ मजदूर वर्ग एक वर्ग जिसे तुच्छ जिविका कमाने के लिए दिन-रात जितोड़ श्रम करना पड़ता था दूसरी ओर पूजीपति वर्ग जो श्रमिको के श्रम का लाभ उठाकर दिन दुनी रात चौगुनी दौलत बटोर रहे थे और ऐशों आरम के जिंदगी बिताते थे।

यदि हम पूजीवादी सभ्यता और औद्योगिकरण के आरंभ की चर्चा करे तो सबसे पहले हमें श्रृष्टि के आरंभ में मनुष्य के अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डालना होगा हम विलकुल शुरू की अवस्था से चले तो उस समय मनुष्य को जिस चिज की जरूरत होती थी वह स्वयं था अपने परिवार कि मदद से प्रकृति के भण्डार से प्राप्त कर लेता था जो आदमी जो चीजे पैदा करता था उसका स्वामी वह स्वयं होता था तथा उपयोग वह स्वयं होता था थोड़े बहुत जो औजार बनाते थे उनको बनाने वाले ही उनका मालिक होता था जबतक ये औजार बिना अधिक कठिनायी के बनाना संभव था और कच्चे माल के स्त्रोत (जैसे जंगलों से लकड़ी) आसानी से मिल जाते थे तब तक उत्पादन के साधनों पर निजि स्वामित्व से उत्पादन करने वाले को अपने श्रम का ल मिलने का आश्वासन था। ज्यों-ज्यों तकनिकि विकास होता गया छोटी-छोटी औजारे मशीनों में बदलने लगी छोटे- छोटे कारोबार बड़े-बड़े उद्योगों मे बदलते गए अब किसी भी उत्पादक के लिए यह संभव नही रह गया कि वह अपने उत्पादन के लिए आवश्यक साधन अपने बल-बुते बना ले। साथ ही उत्पान के लिए आवश्यक कच्चा माल (जंगल, खेत, पत्थर, लोहा, जमीन, मिट्टी अब सार्वजनिक न रहकर व्यक्तिगत आर्थिक संपति बन चुके थे लोगों के उत्पादन के आवश्यक साधन नही थे उन्हे मजबुर होकर अपनी श्रम-शक्ति उन लोगों के हाथों बेचनी पड़ती जिनके पास उत्पादन के साधन प्राप्त करने के लिए आवश्यक संसाधन है अब वे अपने श्रम के बल-बुते जो कुछ उत्पादित करते उन पर उनका हक विल्कुल भी नही रहता वह उन मालिको की संपति बन जाती जिनके पास उत्पादन के साधनों की इजारेदारी थी और जिनके हाथों ये अपना श्रम बचने को मजबुर रहते वह चीजों का इस्तेमाल वे ही लोग कर पाते जो इसे खरीदते है इस तरह उत्पादन के साधन पूंजी बन गये और उनके मालिक पूँजीपति जिसके कारण आज दुनिया में वर्गो के बीच इतनी बड़ी खाई पैदा हो गई। एक तरफ पूजीपति वर्ग जो दूसरो के श्रम का लाभ उठाकर अपार दौलत बटोर रहे थे जिसका खर्च केवल

व्यवसायिक लाभ के लिए होता था दूसरी और श्रमिक वर्ग के पास दिन-रात मेहनत करने के बाद भी जरूरी अर्थ का अभाव रहता था पश्चात सभ्यता और पूजीवाद की इन्ही बुराईयों को दूर करने के लिए समाजवाद का जन्म हुआ समाजवाद का उदेश्य पूजीवाद से उत्पन्न बुराईयों को दूर करना था। चूकि फ्रांस और इंगलैड में औद्योगिक विकास सबसे पहले हुआ इसलिए समाजवादी विचारधारा का आरंभ सबसे पहले इन्ही देशों मे हुआ समाजवाद का सर्वप्रथम प्रयोग ईटली में 1803 ई0 में हुआ परंतु वहा इस शब्द का संदर्भ नही था जो आज है इसके पश्चात फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, व युरोप के अन्य देशों मे तथा अमेरिका में भी समाजवाद का प्रयोग होने लगा। समाजवाद शब्द का प्रयोग कफी समय तक सिमित अर्थो में ही होता रहा समाजवादी विचारों का आरंभिक रूप साम्यवाद के रूप में इंगलैड के विचारों में मिलता है। समाजवाद के भाव विकास में फ्रांसीसी विचारक सेन्ट साईमन के विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका है। सेन्ट साइमन ने ही समाज की विषमता को दूर करने के लिए सबसे पहले आवाज उठायी।साइमन के अनुसार वर्ग संघर्ष काउ मुख्य कारण संपति है जो श्रम के शोषण द्वारा पूंजीपतियों के पास एकत्रित हाती है। साइमन का उदेश्य समाजिक व्यवस्था को विकसित करके मनुष्य को विकास के समान अवसर प्रदान करना था समाजवादी विचारको मे फ्रांस के प्रोधों के विचारों का भी महत्वपूर्ण स्थान है उनके विचारों में हम मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांतो का पतला संकेत देख सकते है संपतिद के अन्तर्गत प्रोधों ने स्पष्ट किया है कि साधनहीन होने के कारण किसान मजदूरों को अनपे परिश्रम का पुरा मुल्य नही मिलता है और बिना परिश्रम के साधनों का मालिक परिश्रम का फल प्राप्त कर लेता है। फ्रांस की भौति इंगलैड में समाजवादी विचारों का प्रारंभ साम्यवाद के रूप मे हुआ इंगलैड का पहला साम्यवादी विचारक रोबर्ट ओवन था वह ब्रिटिश कल्पनावाद समाजवादी चिन्तन का जनक माना जाता था 19वी सदी में फ्रांस और इंगलैड में जो सभ्यवादी विचारधारा व्याप्त थी आगे चलकर इसी विचारधारा का विकास रूस और जर्मनी में पुन: जागृत हुआ जर्मनी के समाजवादी विचारकों में कलर मार्क्स फ्रेडरिक ऐंग्लेस लास्साल और रार्डबटर्स के नाम विशेष उल्लेखनीय है। लास्साल यहुदी जाति का उग्र क्रांतिकारी था लास्साल अपने पुर्व में दिये गये समाजवादी विचारकों के विचारों से सहमत नही था। वह समाज की सहानुभुति सरकारी कानून और सहयोग की संस्थाओं द्वारा मजदूरो, किसानों की अवस्था सुधारने की बजाय चाहता था राजनैतिक शक्ति मजदूरों के हाथ में हो जर्मनी के समाजवादी विचारों में रार्डबटर्स एक विचित्र प्रकार का समाजवादी था। वह एक ऐसा आदर्श समाज की कल्पना करता था, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान्य अवसर हो तथा पैदावार के साधन भुमि और पूँजी समाजिक संपति हो प्रत्येक व्यक्ति शक्तिभर परिश्रम करे। और उसे उसके परिश्रम के अनुसार फल मिले उनके विचारों के आधार पर हम उन्हे मार्क्स से पुर्व वैज्ञानिक समाजवाद का जन्मदाता कह सकते है। इस तरह हम देखते है कि समाजिक व्यवस्था के स्वरूप को लेकर विचारकों में कोई मतभेद नही है किन्तु समाजवादी व्यवस्था लायी कैसे जाय पूँजीपतियों का अन्त किन साधनों के द्वारा हो इसमे मतभेद है जिसके कारण समाजवाद के अनेक रूप और विभिन्न धारायें निर्मित हुई जिसको हम इस प्रकार वर्णित कर सकते है

आदर्शवादी समाजवाद-मनुष्य प्रत्येक युग में आर्थीक एवं समाजिक समानता का पक्षधर रहा है। यही कारण है कि समाजवादी विचार लगभग प्रत्येक युग में प्रचलित रहे है। इस संदर्भ में अगर विचारको कि बात करे तो प्लोटो सर्वप्रथम ऐसे दार्शनिक है, जिन्होने इस विचारों को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है उनका कथन है कि शासक के ऊपर धन का बुरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार मध्यकाल और आधुनिक काल में भी समाजवादी धाराये मिलती है। आधुनिक काल में टामस मूर के ''यूहोपिया'' नामक ग्रथ में समाजवादी विचारकों का जिक्र है। अगर हम देखे तो प्रारंभिक काल से 17वीं शताब्दी के अंत तक आदर्शवादी शिक्षा से परिपूर्ण अनेक रचनाओं मे साम्यवाद के कई उदाहरण मिलते है।

काल्पनिक समाजवाद- तत्कालीन समय में समाज में व्याप्त बुराईयो बेरोजगारी, अशिक्षा, निशवादी परिस्थितियो के कारण फ्रांस की क्रांति से जनता में जागृति आयी इस काल का प्रथम समाजवादी विचारक फ्रांस बैब्यु था। वह भुमि के राष्ट्रीय करण के पक्ष मे था तथा अपनी ध्यैच की प्राप्ति क्रांति द्वारा करना चाहता था। 18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी के प्रारंभ मे अन्य प्रमूख फ्रांसीसी विचारक वैले, सैण्ट, साइमन और कोरिये है इन विचारको का प्रभाव ब्रिटेन और अमेरिका पर भी पड़ा लार्क मार्क्स एवं ऐंगिस्स ने उपर्युक्त समाजवादी विचारो को काल्पनिक समाजवाद का नाम दिया मार्क्स के अनुसार ये विचारक अपने उदेश्य की प्राप्ति के लिए सुधारवादी साधनों मे विश्वास रखते है और भावी समाज की विस्तृत परंन्तु अवस्थायिक कल्पना करते है।

वैज्ञानिक समाजवाद-वैज्ञानिक समाजवाद का जनक कार्ल मार्क्स को माना जाता है समाजवादी चिंतन के इतिहास में कार्ल मार्क्स का महत्वपूर्ण स्थान है। क्याकि मार्क्स के पूर्व समाजवादी चिंतन की अनेक धाराये विकसित तो थी किन्तु उनकी कोई निश्चित आधारभुमि नही थी और ना ही विचारों के विकास का क्रमिक रूप समाजवादी चुितन के विकास में मार्क्स का महत्वपूर्ण योगदान

है। 1848 में मार्क्स और उनके मित्र फ्रेडरिक ऐंग्लेस ने मिलकर क्मयुनिष्ट पार्टी का घोषणा पत्र प्रकाशित किया इस घोषणा पत्र के अंतिम शब्द है कम्युनिष्ट क्रांति के डर से शासक वर्गो को कापने दो, मजदूरों के पास होने के लिए अपनी बेड़ियों के शिवा कुछ नही है जितने के लिए उनके सामने सारी दुनिया है दुनिया के मजदूरों एक हो। मार्क्स और ऐंग्लेस के प्रायसों से उसमे समाजवादी विचारधारा अपने पर पहुच गई मार्क्स का दस कैपिटल नामक ग्रथ समाजवादियों का बायबिल कहा जाता है जिसमे समाजवाद और मार्क्सवाद की विस्तृत और वैज्ञानिक व्याख्या की गई हैं। उन्होने केवल आदर्श जगत का वर्णन ही नही किया अपितु यह भी बताया कि उस आदर्श जगत का किन-किन पिढ़ियों द्वारा विकास होगा। कार्ल मार्क्स ने अपने चिंतन मे निम्न सिद्धांतों कि व्याख्या की।

1 इतिहास की आर्थीक व्याख्या-मार्क्स कक विचारों की पहली विशेषता उसका ऐतिहासिक भौतिकवाद है। मार्क्सवाद समाज का आधार श्रम तथा भौतिक मूल्य को मानता है उसके अनुसार भौतिक परिस्थियों के अनुसार ही मानव के विचार बनते और परिवर्तित होते है। अपने इस विश्वास के कारण ही वह अपने विचार का नही अपितु भौतिक स्थिति के परिवर्तन का प्रयास करता है।

2 (द्धात्मक भौतिकवाद-संपूर्ण मार्क्सवादी चिंतन द्विन्द पर आधारित है। मार्क्स भौतिक जगत को प्रधांता देते हुए कहता है कि संसार भौतिक और वस्तुगत है तथा निस्तर निकासमान तथा परिवर्तनशील है उसका विचार है कि प्रत्येक पदार्थ का विकास होता है। इस विकासक्रम में कुछ तत्व नष्ट हो जाते है। और कुछ नये तत्व विकसित होते है। यह क्रम बराबर चलता रहता है। (द्धात्मक भौतिकवादी सिद्धांत को मार्क्स ने समाजिक विकास की प्रक्रिया पर लागु किया है और बताया है कि किस प्रकार पूँजीपति अपने विरोधी श्रमिक वर्ग का शोषण करता है। उन्हे एकत्रित करता है। क्रांति के लिए समस्त साधन देता है और अंत मे उसके द्वारा स्वयं विनष्ट हो जाता है।

वर्ग संघर्ष का सिद्धांत-मार्क्स ने विश्व इतिहास को वर्ग संघर्ष का इतिहास माना है। उसका मानना कि प्रत्येक युग में अर्थोपाजन का कोई ना कोई साधन होता है इन साधनों पर जिस वर्ग का अधिपथ्य होता है वही शक्तिशील होता है। दूसरे साधनहीन वर्ग उसके अधिन होते है उसी के आधार पर प्रत्येक युग्म में दो वर्ग होते है प्राचीनकाल में स्वामी और दास मध्यकाल में सामन्त और किसान आधुनिक युग में पूँजीपति और सर्वहारा जैसे दो विरोधी वर्ग संघर्षरत है।

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत- इस सिद्धांत का प्रतिपादन मार्क्स ने अपनी पुस्तक दास कैपिटल में किया है इस पुस्तक मे माक्स ने बताया है कि पूजीवादी व्यवस्था मे पूँजीपति किस तरह श्रमिको के श्रम का शोषण करते है मार्क्स का विचार है कि किसी वस्तु का मूल्य उसके श्रम के अनुसार निर्धारित होना चाहिए मार्क्स इसको समझाते हुए कहता है जैसे एक श्रमिक मेज बनाता है उसे दस रू0 परिश्रम के मिलते है तथा 50 रू0 का माल उसमें लगाता है यदि वह मेज 80रू0 मे बिकता है तो 20 रू0 अतिरिक्त मूल्य का लाभ हुआ मार्क्स का मानना है कि इस अतिरिक्त लाभ मे से श्रमिकों का हिस्सा होना चाहिए। जबकि पूँजीपति बिना मेहनत के अतिरिक्त लाभ प्राप्त करते है। और श्रमिक उस लाभ से वंचित रह जाता है।

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व- जैसा कि ऊपर देख चुके है पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति श्रमिको का बराबर शोषण करते है उत्पादन का अंतरिक लाभ मे स्वयं प्राप्त करते है और श्रमिको को इस लाभों से वंचित रखा जाता है। अत: मार्क्स की स्पष्ट धारणा है कि सर्वहारा का कर्तव्य है कि वह पूँजीवादी व्यवस्था का अंत करके वर्गवहिन समाज की स्थापना करे जो कि क्रांति के द्वारा ही संभव है अत: स्पष्ट है कि समाजवाद की स्थापना के लिए मार्क्स क्रांति का अवश्य मानते है। क्रांति के द्वारा ही पूँजीपतियों का शासन समाप्त कर सर्वहारा का शासन कायम किया जा सकता है। जिससे सर्वहारा का अधिनायक कहा गया है। मार्क्स ने पहली समाजवाद को जन आंदोलन का रूप दिया मार्क्स के पश्चात समाजवादी विचारकों में जिस विचारक का नाम प्रमुखता से लिया जाता है उनमे रूस के विचारक लैनिन प्रमुख है। लैनिन का समाजवादी विचार मार्क्सवादी का विकास है लैनिन न केवल समाजवाद की स्थापना के लिए क्रांति को आवश्यक मानते थे बलकि वे स्वयं क्रांतिकारी के रूप मे प्रसिद्ध है। लैनिनवाद का मुख्य मुद्दा पूँजीवाद विरोध है पूँजीवाद से वर्ग संघर्ष के परिणाम स्वरूप सर्वहारा वर्ग की विजय होती है वही से समाजवाद-सभ्यवाद का आरंभ माना जाता है। लैनिन ने समाजवादी वर्ग का विवेचन करते हुए कहा है कि श्रम के आधार पर वर्गो में समानता होती है। और यही विश्व बंधुत्व का आधार है। उन्होने जुझार भौतिकवाद के सिद्धांत पर बल दिया, रूस के क्रांति से प्रभावित होकर चीन के नेता माओत्से तुंग ने चीन की परिस्थितियों के अनुसार मार्क्सवादी सभ्यवादी सिद्धांतो मे किंचित परिवर्तन कर साम्यवादी राज्य की स्थापना की। माओ का भी स्पष्ट मत था कि पूँजीवाद के विनाश के लिए युद्ध अनिवार्य है।

ज्ञातव्य है कि समाजवाद का स्वरूप देश काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। परंतु वास्तव में देखा जाय तो मार्क्स ही समाजवाद की जन्मदाता है। फ्रांस, जर्मनी, रूस, चीन, अमेरिका आदि अनेक देशों में पूँजीवाद के विरोध मे समाजवाद अपने व्यापक रूप में विकसित हुआ था। सफलता असफलता के विभिन्न सोपानों को पार करता हुआ पाश्चात्य समाजवाद अंतराष्ट्रीय संगठन के रूप मे सर्वमान्य एवं सर्व-स्वीकृत रहा। ि़र भारत के परतंत्र लोकमानस को भी समाजवाद से प्रभावित होना ही था।

समाजवाद और साम्यवाद

स्माजवाद और साम्यवाद दोनो ही चीजों को एक दूसरे का यर्थाथ माना जाता है परंतु वास्तव में वैसा नही है। मार्क्सवाद या मार्क्स का वैज्ञानिक विचार साम्यवाद का विचारात्मक आधार है। मार्क्स के अनुसार जब क्रांति के द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था का अंत हो जायेगा। सारी साधनों पर सर्वहारा का अधिकार हो जायेगा ि़र सबको सब मे बराबर बॉट दिया जायेगा और किसी के पास कोई कमी नही रह जायगी तो दुनिया फिर खुशहाल हो जायेगी अभी हमारी सभ्यता जो पूँजीवाद है क्रांति आने के बाद साम्यवादी सभ्यता बनने के लिए समाजवाद से गुजरना पड़ेगा। साम्यवाद की स्थापना के लिए समाजवाद की पूर्ण स्थापना आवश्यक है। समाजवाद के अन्तर्गत मुक्त की गई और पूर्णरूपेण काम मे लाई जाने वाली शक्तियों और प्रवृतियों के बिना और विकसित हुए साम्यवाद की कल्पना नही की जा सकती। साम्यवाद के सैद्धांतिक आयाम का प्रारंभिक संबंध सीधे-सीधे कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंग्लेस के विचारों से है। तो इसके व्यवहारिक आयामक ा प्रारंभिक संबंध सीधे-सीधे लेनिन से है। जिसने 1919 ई0 में रूस की स्थितियों में लागू किया था। चीन में माओ ने साम्यवाद के विस्तार एवं स्थिरता में योगदान दिया।

संदर्भ सूची-

1. सोशलिस्ट ट्रेडिशन-एलेक्जेंडर ग्रे
2. आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन-डॉ0 शोभा शेकर
3. मार्क्सवाद- यशपाल

भारत में मानवाधिकार के संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन

दीपक कुमार दास

शोध प्रज्ञ, एम.ए. (राजनीति विज्ञान), यू.जी.सी. नेट (राजनीति विज्ञान),
सि.का. मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, झारखण्ड

शोध आलेख का सार तत्व

मानवाधिकार की अवधारणा ने वर्तमान समय में अधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया है, फिर भी इसे नवीन नहीं, प्राचीन अवधारणा कहा जाएगा। वस्तुतः इसका सम्बन्ध मानव-अस्तित्व से है, इसलिए यह प्राचीन अवधारणा है तथा व्यक्ति व समाज के लिए व्यापक महत्व रखता है। साधारण शब्दों में, मानवाधिकार मानव के अस्तित्व से जुड़े हुए वैसे अधिकार जो प्राकृतिक न्याय से सम्बद्ध है तथा जिनके प्रावधान व प्रयोग से व्यक्ति के साथ-साथ सम्पूर्ण समाज का विकास होता है, को मानवाधिकार कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, वैसे अधिकार जो मानव के अस्तित्व व विकास के लिए अनिवार्य है, को मानवाधिकार कहा जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि मानवाधिकार प्राचीन काल से प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित है, जबकि भारत में वर्तमान समय में इसे सामाजिक न्याय के सिद्धान्त का आधार मिला हुआ है। आज तो मौलिक अधिकारों को मानवाधिकार का पर्यायवाची समझा जा रहा है। यदि मौलिक अधिकार मानवाधिकार का पर्यायवाची है, तो इसकी विशेषताएँ, विशिष्टता, मूल विधि या संविधान में प्रमुख स्थान, निषेधात्मक प्रकृति तथा न्याय होने से सम्बन्धित हैं। भारतीय संविधान के भाग-3 व भाग-4 को प्राथमिक रूप में मानवाधिकार से सम्बद्ध किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर विभिन्न नियमों का निर्धारण होता है तथा सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया जाता है, उसे भी मानवाधिकार की अवधारणा से सम्बद्ध किया जा सकता है। सार रूप में, मानवाधिकार की अवधारणा व्यापक है।

मूल शब्दः प्राकृतिक न्याय, प्राकृतिक अधिकार, मानवाधिकार, समतामूलक, प्रत्यक्षीकरण, लोकतांत्कि समाजवाद, लोक कल्याण, साम्यवादी सिद्धान्त, राष्ट्रीयकरण, संविदावाद आदि।

प्रस्तावना

भारत में मानवाधिकार सम्बन्धी प्रावधान एवं प्रयोग के विवेचन से पूर्व मानवाधिकार के आधुनिक इतिहास व सिद्धान्तों की साधरण समझ आवश्यक है। आधुनिक इतिहास में मानवाधिकार की शुरूआत सैद्धान्तिक एवं संस्थागत रूप में अलग-अलग कालक्रम में होता है। अंग्रेज संविदावादी विचारक जॉन लॉक ने अपने प्राकितिक अधिकार के सिद्धान्त में जवीन, स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति के अधिकार को महत्वपूर्ण माना है। यही 'जीवन का अधिकार' मानवाधिकार के केन्द्र में स्थापित है। फ्रांसीसी संविदावादी विचारक रूसो ने भी सामान्य इच्छा के सिद्धान्त को प्रतिपादित करके शासन व्यवस्था में आम जनों की सद्इच्छा को महत्व प्रदान किया है। आगे चलकर मांटेस्क्यू तथा डायसी के साथ-साथ अनेक उदारवादी एवं मार्क्सवादी विचारकों के विचारों से भी मानवाधिकार को बल मिला। यदि मानवाधिकार के संस्थागत आधुनिक विकास की बात करें तो मैग्नाकार्टा, (1215 ई.), पेटीशन ऑफ राइट (1628 ई.), बिल ऑफ राइट (1689 ई.), अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम (1776 ई.), फ्रांसीसी राज्य क्रांति (1789 ई.) की भूमिका मानवाधिकार के विकास में महत्वपूर्ण रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा मानवाधिकार पर घोषणा पत्र, 1948 ई. को मानवाधिकार के विकास में 'मील का पत्थर' माना जा सकता है।

मानवाधिकार, मानव के अस्तित्व व विकास से सम्बन्धित है, जिसका उदारवादी तथा मार्क्सवादी सिद्धान्त विपरीत मान्यताओं पर आधारित है। उदारवादी विचारधारा के जनक जॉन लॉक ने प्राकृतिक अधिकार (जीवन, स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति का अधिकार) के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है, जो उदारवादी मानवाधिकार के सिद्धान्त का मुख्य आधार है। उदारवादी मानवाधिकार का सिद्धान्त का मुख्य आधार है। उदारवादी मानवाधिकार का सिद्धान्त सम्पत्ति के अधिकार को महत्वपूर्ण मानता है तथा सभी प्रकार की स्वतंत्रता को समानता से सम्बद्ध करता है, परन्तु वह आर्थिक समानता को वास्तविक रूप में स्वीकार न करके सापेक्षिक रूप में स्वीकार करता है। मानवाधिकार का मार्क्सवादी सिद्धान्त समानता की अवधारणा को महत्वपूर्ण मानता है तथा वास्तविक आर्थिक समानता पर अधिकाधिक बल देता है। इतना ही नहीं, मार्क्सवादी सिद्धान्त समतामूलक, सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना से सम्बन्धित है, जहाँ सबको काम का अधिकार (Right to Work) मिलेगा तथा किसी के साथ किसी भी रूप में विभेद नहीं किया जाएगा।

भारत में मानवाधिकार का प्रावधान संविधान के अन्तर्गत प्रमुखत: मौलिक अधिकार के रूप में किया गया है। यही कारण है कि यहाँ मौलिक अधिकार मौलिक मानवाधिकार को एक-दूसरे का पर्यायवाची मान लिया जाता है। भारतीय संविधान के भाग-4 के अन्तर्गत भी मानवाधिकार को देखा जा सकता है।

भारतीय संविधान के भाग-3, अनुच्छेद-2 से 35 तक मौलिक अधिकारों को उपबंधित किया गया है। इन इन मौलिक अधिकारों में अनुच्छेद-14 से 18 समानता के अधिकार से सम्बन्धित हैं। समानता का अधिकार जिसे भारतीय संविधान प्रथम व प्राथमिक महत्व प्रदान करता है, उसे मानवाधिकार माना जा सकता है। समानता का अधिकार समाजवादी विचारधारा के अनुसार महत्वपूर्ण मानवाधिकार है, हालांकि इसे भारतीय संविधान के अन्तर्गत उदारवादी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार किया गया है।

भारतीय संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद-19 से 22 तक स्वतंत्रता का अधिकार वर्णित हैं, जिसे भी मानवाधिकार कहा जा सकता है। स्वतंत्रता के अधिकार के अन्तर्गत ही 'जीवन का अधिकार' है, जिसे मानवाधिकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार है। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 जीवन के अधिकार की बात करता है, जिसे विधायी तथा न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा व्यापक बनाया गया है। मानवाधिकार का तात्पर्य इन अनुच्छेदों के परिप्रेक्ष्य में केवल यह नहीं होता है कि किसी प्रकार जीवन को व्यतीत किया जाए अथवा उसे सुरक्षित रखा जाए, बल्कि इसका तात्पर्य बहुत व्यापक है। जीवन के अधिकार का तात्पर्य गरिमामय, प्रदूषणमुक्त, भयमुक्त, समता व स्वतंत्रता से परिपूर्ण वातावरण में सुखद जीवन व्यतीत करना है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-23 तथा 24 क्रमश: बंधुआ मजदूरी, मानव के अवैध व्यापार तथा बाल श्रम के निषेध व उन्मूलन से सम्बन्धित हैं। इन अनुच्छेदों को प्रभावी बनाने के लिए विगत दिनों बालश्रम उन्मुलन अधिनियम अस्तित्व में आया है। इन अनुच्छेदों तथा अधिनियमों के माध्यम से समाजवादी मान्यताओं को स्वीकार किया गया है, जो भी मानवाधिकार विषय है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-25 से 30 तक धार्मिक स्वतंत्रता तथा शिक्षा-संस्कृति सम्बन्धी अधिकार प्रदान किए गए हैं, उन्हें भी मानवाधिकार के श्रेणी में रखा जा सकता है। इन अनुच्छेदों के माध्यम से न केवल धार्मिक मामलों को हस्तक्षेप से बचाने का प्रयास किया गया है, बल्कि धार्मिक आधार पर अल्पसंख्यकों को शिक्षा तथा संस्कृति के सन्दर्भ में विशेष सुरक्षा भी प्रदान की गई है। आज तो भारत में यह मानवाधिकार का महत्वपूर्ण विषय है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद-32 संविधान सभा के प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ॰ अम्बेदकर के शब्दों में, ह्संविधान की आत्माह है। यह अनुच्छेद प्रत्यक्ष रूप से मौलिक अधिकार तथा मानवाधिकार न होकर इनकी सुरक्षा से सम्बन्धित है, इसलिए इन्हें भी मानवाधिकार माना जा सकता है। अनुच्छेद-32 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों को अतिक्रमण से बचाने के लिए पाँच प्रकार के रिट को अग्रसारित करने का अधिकार संविधान द्वारा प्रदत्त हैं, बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, उत्प्रेषण तथा अधिकार पृच्छा। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद-226 के अनुसार उच्च न्यायालयों को सर्वोच्च न्यायालय के समान ही मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के साथ-साथ अन्य अधिकरों के रथार्थ हेतु पाँच प्रकार की रिट अग्रसारित करने का प्राधिकार है। इनसे भी मानवाधिकार को बल मिलता है।

भारतीय संविधान का भाग-3 तो मानवाधिकार को पर्यायवाची है ही, भाग-4 के कुछ प्रमुख अनुच्छेदों से भी मानवाधिकार को बल मिल रहा है। संविधान के अनुच्छेद-38 तथा 39 किसी-न-किसी रूप में मानव अधिकारों के सम्बर्द्धन से सम्बन्धित हैं। इन अनुच्छेदों से लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को बल मिलता है। लोक कल्याणकारी राज्य लोगों के कल्याण से सम्बन्धित

है तथा इसकी पहुँच व्यक्ति-व्यक्ति तक है, जो मानवाधिकार के विकास में कार्य करती है। अनुच्छेद-40 के अन्तर्गत पंचायती राज व्यवस्था को स्थापित करने सम्बन्धी प्रावधान हैं, जिससे व्यापक व स्थानीय स्तर पर सहभागिता व राजनीतिक स्वतंत्रता को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। यह राजनीतिक स्वतंत्रता, मानवाधिकार का विषय है। अनुच्छेद-41 के अन्तर्गत का के अधिकार सम्बन्धी प्रावधान है। यह अधिकार समाजवादी अधिकार है तथा मानवाधिकार से सम्बन्धित है। संविधान का अनुच्छेदों-42, 43, 44, 45, 46 भी मानवाधिकार से सम्बन्धित हैं अथवा मानवाधिकार की अवधारणा को मजबूत बनाता है। संविधान के अनुच्छेद-50 के अन्तर्गत न्यायपालिका का कार्यपालिका से पृथक् करने सम्बन्धी प्रावधान है, जिससे भी मानवाधिकार पर बल मिलता है।

संविधान के चतुर्थ भाग में राज्य के नीति-निदेशक तत्वों को चार वर्गों में विभाजित सकते हैं- आर्थिक नीति से सम्बद्ध तत्व, सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी, शासन सम्बन्धी तत्व तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा सम्बन्धी तत्व। इनमें मानवाधिकर को स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। आर्थिक नीति से सम्बद्ध निदेशक तत्वों का सार है-समाजवादी प्रजातंत्र राज्यों की स्थापना; यद्यपि कहीं भी 'समाजवाद' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। धारा 39, 41, 42, 43, 46, 47 और 48 में कहा गया है कि राज्य ऐसी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की चेष्टा करेगा कि सभी नागरिकों की आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी हों और उनका आर्थिक शोषण न हो। इसके अन्तर्गत अग्रलिखित प्रावधान है : (क) राज्य के सभी नागरिकों (नर-नारियों) को जीविका के साधन प्राप्त करने का समान अधिकार है। अर्थात् राज्य का यह कर्तव्य होगा कि वह भुखमरी को बन्द करने की चेष्टा करें। समाज में आर्थिक वितरण इस प्रकार हो कि समस्त समाज का कल्याण हो। देश का सम्पत्ति कुछ ही पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित न हो। (ख) समाज की आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार हो कि देश के धन और उत्पादन के साधनों का अहितकर केन्द्रीकरण न होकर सर्वसाधारण का कल्याण हो। (ग) पुरुषों तथा स्त्रियों को समान कार्यों के लिए समान वेतन मिले। (घ) पुरुषों तथा स्त्रियों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बच्चों की सुकुमारावस्था का दुरूपयोग न हो। (ङ) बालकों तथा नवयुवकों की शोषण और अनैतिकता से रक्षा हो। (च) राज्य ग्राम पंचायतों का समुचित संगठन करे और अपनी आर्थिक सामर्थ्य तथा विकास की सीमाओं के अन्तर्गत राज्य य व्यवस्था करे कि सभी व्यक्ति योग्यतानुसार कार्य तथा शिक्षा प्राप्त कर सकें। (छ) राज्य ऐसी व्यवस्था करे जिसमें नागरिकों को मानवोचित रूप से कार्य करने का अवसर मिले तथा प्रसूति के समय नारियों को सहायता मिल सके। (ज) कानून अथवा आर्थिक संगठन द्वारा राज्य ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करे जिससे कृषि, उद्योगों तथा अन्य क्षेत्रों में श्रमिकों के कार्य तथा निर्वाह योग्य मजदूरी मिले। उन्हें जीवन-स्तर को ऊँचा करने, अवकाश काल का पूर्ण उपयोग करने और सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास का सुअवसर प्राप्त हो। राज्य ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहित कर ग्रामों की आर्थिक दशा में सुधार लाये। (झ) राज्य कृषि, पशुपालन आदि के क्षेत्र में आधुनिक तथा वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग कर उनकी दशा में सुधार करे तथा दूध देने वाले पशुओं की वध से रक्षा करे।

सामाजिक तथा शिक्षा जिन तत्वों का प्रतिपादन किया गया है, जिनका भी मानवाधिकार से सम्बन्ध है। उनमें प्रमुख हैं: (क) राज्य समस्त देश के नागरिकों के लिए एक व्यवहार-संहिता बनाने का प्रयत्न करे, जिससे समस्त देश में एक ही वैयक्तिक कानून हो, जिसका आधार धर्म न हो। न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् कर राज्य निष्पक्ष न्याय की समुचित व्यवस्था करे। (ख) राज्य संविधान के आरम्भ होने से 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष की उम्र तक के बालकों के लिए नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करे। अर्थात् राज्य का यह कर्तव्य है कि वह निरक्षरता को दूर करने की चेष्टा करे। (ग) राज्य अपने क्षेत्र के अन्तर्गत सभी की शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की रक्षा की व्यवस्था करे। वह जनता के दुर्बलतर वर्गों, जैसे-अछूतों एवं अनुसूचित वर्ग के लोगों तथा अनुसूचित आदिम जातियों की शिक्षा की व्यवस्था करें। उनके अर्थ सम्बन्धी हितों की रक्षा की व्यवस्था विशेष सावधानी से करे ताकि वे उन्नति के पथ पर अग्रसर हों तथा सामाजिक अन्याय एवं आर्थिक शोषण से उनकी रक्षा हो सके। (घ) राज्य ऐसी व्यवस्था करे कि नागरिकों का स्वास्थ्य सुधार हो। वह अपना कर्तव्य समझे कि लोगों का आहार पुष्टिकर और जीवन-स्तर ऊँचा हो। इस उद्देश्य से राज्य हानिकारक मादक पेयों तथा मादक वस्तुओं के सेवन पर प्रतिबन्ध लगाये और ऐसा प्रबन्ध करें कि केवल चिकित्सा के उद्देश्य से उनका उपयोग हो। (ङ) राज्य का यह दायित्व या कर्तव्य होगा कि वह ऐतिहासिक अथवा कलात्मक महत्व के प्रत्येक स्मारक या वस्तु की, जिसे संसद राष्ट्रीय महत्व का घोषित करे, दूषित होने, नष्ट होने, स्थानान्तरित किये जाने अथवा बाहर भेजे जाने से रक्षा करे।

भारत में मानवाधिकार विषयक देश के प्रशासन संबंधी नीति का अनुसरण में भी कतिपय तत्वों का प्रतिपादन किया गया है। इस वर्ग के अन्तर्गत दो उपबन्ध हैं, जिनका उद्देश्य देश के शासन-स्तर को ऊँचा उठाना है। ये दो उपबन्ध है : (क) राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करे, जिन्हें ऐसी शक्तियाँ तथा अधिकार दिये जायें कि वे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।

इस उपबन्ध का उद्देश्य है रचनात्मक कार्य द्वारा ग्राम सुधार करना जिससे ग्राम अपने कार्य क्षेत्र में आत्म निर्भर हो सकें। द्धखऋ राज्य न्यायपालिका के प्रबन्ध को कार्यकारिणी से अलग रखने का प्रयत्न करे जिससे निष्पक्ष न्याय हो सके।

विश्व में शान्ति स्थापना तथा मानव का कल्याण ही इस उपबन्ध का प्रधान उद्देश्य है, जो महात्मा गाँधी की विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित है। महात्मा गाँधी विश्व-कल्याण तथा विश्व-बन्धुत्व ही अपने जीवन का लक्ष्य मानते थे। इसीलिए संविधान के निर्माताओं ने राज्य की अन्तर्राष्ट्रीय नीति के लिए अग्रलिखित आदर्श प्रस्तुत किये और कहा है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिए उन्हें अपनाने की चेष्टा करें : (क) राज्य राष्ट्रों के बीच न्याय तथा सम्मानपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करें। (ख) राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा सन्धि-बन्धनों के प्रति आदर का निर्माण करे। तथा (ग) राज्य अन्तराष्ट्रीय विवादों की मध्यस्थता द्वारा हल करने का प्रयत्न करे। इन सभी बातों को मानवाधिकार से सम्बद्ध किया जा सकता है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारत में मानवाधिकार का संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन से है। भारत में मानवाधिकार की भूमिका दिनों-दिन प्रभावकारी दिखता गया है, जिनका प्रभाव सामाजिक न्याय, प्राकृतिक न्याय, मौलिक अधिकार, आर्थिक समानता जैसे ज्वलनशील मुद्दों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो मानव को न्याय और अधिकार दिलाने का विश्वास जागृत करता है। इस आलेख का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक विभेद को समाप्त करने की पृष्ठभूमि तैयार करना भी है।

शोध आलेख की पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख की पद्धति ऐतिहासिक, वस्तु-विश्लेषणातमक तथा तुलनात्मक है।

परिकल्पना

प्रस्तुत आलेख के सम्बन्ध में निम्नलिखित परिकल्पना अभिनिर्धारित की जा सकती है:

1. मानवाधिकार की अवधारणा का परिक्षेत्र व्यापक और गतिशील है। भविष्य में भी इसका स्वरूप परिवर्तित एवं व्यापक होगा।
2. मानवाधिकार का भारतीय परिप्रेक्ष्य लोकतांत्रिक मूल्यों के साथ-साथ सामाजिक न्याय से सम्बन्धित हो गया है तथा भविष्य में इसकी सम्बद्धता अधिकाधिक बढ़ जायेगी।
3. मानवाधिकार का परिप्रेक्ष्य संवैधानिक, वैधानिक ही नहीं, भविष्य में सामाजिक मूल्यों एवं संस्कृति से भी प्रभावित होंगी। प्रस्तुत आलेख में इस बात की परिकल्पना की जा सकती है।

साहित्य सर्वेक्षण

प्रस्तुत शोध आलेख का विषय ह्भारत में मानवाधिकार के संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययनह है। भारत का संविधान मौलिक अधिकार प्रदान करता है, जिसमें धर्म की स्वतंत्रता भी निहित है। इन्हीं स्वतंत्रताओं का ायदा उठाते हुए आए दिन सांप्रदायिक दंगे होते रहते हैं। इससे किसी एक धर्म के मौलिक अधिकारों का हनन नहीं होता है, बल्कि उन सभी लोगों के मानवाधिकार आहत होते हैं जो इस घटना के शिकार होते हैं तथा जिनका घटना से कोई संबंध नहीं होता जैसे- मासूम बच्चे, गरीब पुरुष-महिलाएँ, वृद्धजन इत्यादि। लिहाजा यहाँ सवाल उठता है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी भारत में मानवाधिकार पल-पल किसी-न-किसी तरह की प्रताड़ना का दंश झेल रहा है। ऐसे में यह जानना जरूरी हो जाता है कि ऐसी कौन-सी चुनौतियाँ हैं, जिनके कारण छभ्ऌ मानवाधिकारों की रक्षा करने में खुद को लाचार पा रहा है। इसी अनिवार्यता के कारण शोध आलेख की तैयारी में हमने निम्नलिखित प्रमुख साहित्य का सर्वेक्षण किया है:

1. सुभाष कश्यप : हूमैन राईट्स एंड पार्लियामेंट, 1997
2. सुमन कुल्हरी : महिला एवं मानवाधिकार : संवैधानिक स्वरूप, 1997
3. अरुण कुमार पलाई : भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, 1999

4. प्रदीप त्रिपाठी : मानवाधिकार और भारतीय संविधान, 2002
5. अरुण राय : भारत में जनहित याचिका और मानवाधिकार, 2003

निष्कर्ष

भारत में मानवाधिकार सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधानों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ व्यापक रूप में मानवाधिकार को स्वीकार किया गया है, जो उदारवादी तथा समाजवादी मान्यताओं से प्रभावित है। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या इन संवैधानिक प्रावधानों के प्रभाव में भारत में मानवाधिकार की स्थिति सही है? इसका उत्तर यह होगा कि भारत में मानवाधिकार की स्थिति असंतोषजनक तो नहीं, परन्तु बहुत हद तक संतोषजनक भी नहीं है। यदि भारतीय समाज के सम्पूर्ण आयामों का वैज्ञानिक अवलोकन किया जाए तो यहाँ आवश्यकता इस बात की है कि ईमानदारी से संवैधानिक प्रावधानों के प्रयोग की जाये तथा इसके लिए प्रत्येक स्तर पर सुधार की भी आवश्यकता है।

सन्दर्भ-सूची

1. सुभाष कश्यप : ए प्रस्पेक्टिव ऑफ़ हयूमैन राइट्स : इंडिया एंड हयूमैन राइट्स रेफ्लेक्शन, कन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2005
2. कल्पना निरंजन : बुंदेलखंड प्रखंड में बाल श्रम एक अभिशाप, प्रकाशित शोध ग्रंथ, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, 2015
3. कुमार रविशंकर : बाल श्रम चुनौतियाँ, सुजीत इंटरप्राइजेज, नई दिल्ली
4. डॉ० अशोक कुमार : लोक प्रशासन, यू.पी.एस.सी. एड पी.सी.एस. मुख्य परीक्षा, नवीनसंस्करण, प्रतियोगिता संदर्भ पब्लिकेशन
5. गिरधारी सिंह कुम्पावत : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, 2005, भारत में मानवाधिकार, पंचशील प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर
6. सतीश चतुर्वेदी : मानवाधिकार और संयुक्त राष्ट्र संघ, पोइन्टर पब्लिशर्स, 2003, जयपुर
7. जी.के. पाठक : भारत में बाल श्रम की दशा और दिशा, जनवरी अंक, प्रतियोगिता दर्पण, 2017
8. प्रकाश नारायण नाटाणी : मानवाधिकार और कर्त्तव्य, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2008
9. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993
10. पूरणमल : मानवाधिकार सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, 2003
11. हेमलता तलसेरा एवं नलिनी पंचौली : मानव अधिकार एवं शिक्षा, 2003
12. मजेरी अगोवसीन : जेन्डर एंड हूमैन राईट्स, 2003
13. उपेन्द्र बक्क्षी : दि फ्यूचर ऑफ हूमैन राइट्स, 2003
14. एन. जयपालन : वूमैन एंड हूमैन राइट्स, 2003
15. दिलीप जाखड़ : मानवाधिकार और पुलिस संगठन, 2004
16. विभिन्न पत्र, पत्रिकाएँ एवं शोध जर्नल।
17. बेवसाइट का अवलोकन।

किसान क्रेडिट कार्ड की कृषि विकास में भूमिका: कमालपुर (गया) के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ० मनोज कुमार निराला

भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया।

शोध आलेख का सार तत्व

सभ्यता के प्रारंभ से ही कृषि का मानव के विकास में योगदान रहा है। प्रगति के अनके सोपानों का निर्माण करते हुए कृषि मानव को आदिम गुफाओं की स्थिति से बाहर निकाल चन्द्रमा तक पहुँचाया है। प्रारम्भ से ही कृषि मानव जीवन का अभिन्न अंग रहा है मानव प्रयासों से कृषि क्षेत्र में निरंतर वृद्धि हुई है हरित क्रांति से इसमें अभूतपूर्व वृद्धि हुई है, लेकिन देश के सभी हिस्सें को इसका लाभ बराबर नहीं मिला है। आजादी के लगभग 63 वर्ष बाद भी कृषि में जितनी प्रगति होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हुई है। खासकर बिहार के किसान अभी भी परम्परागत तरीके से खेती करने को विवश हैं यहाँ के लगभग 9० प्रतिशत किसान पूँजी के अभाव में वैज्ञानिक पद्धति को नहीं अपना पाए हैं, जो किसान महाजनी सूद से पूँजी खेती में लगाते हैं और उनकी फसल यदि मारी जाती है तो वे और गरीबी के दुष्चक्र में फँस जाते हैं। फलत: वे कृषि विकास में पिछड़ जाते हैं। इस मुद्दे का ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने 2००० में किसानों के लिए किसान क्रेडिट कार्ड योजना बनाई है।

मूल शब्द : के०सी०सी०, एल०पी०सी० जमाबंदी बटाईदारी बैंक, अंचलाधिकारी, प्रबंधक, डीमांड, मालगुजारी, महाजनी सूद, हल बैल, रासायनिक खाद, ट्रैक्टर, थ्रेसर, बोरिंग, पम्प सेट।

प्रस्तावना

गया जिले के ग्राम-कमालपुर में किसा क्रेडिट कार्ड की कृषि विकास की भूमिका को परखने हेतु तथा इनसे जुड़ी समस्याओं को प्रकाश में लाकर उनको दूर करने का नियोजनात्मक सुझाव प्रस्तुत करना ही इस अध्ययन का उद्देश्य है ताकि इन योजनाओं के सार्थक पहलुओं का क्रियान्वित कर अध्ययन क्षेत्र में कृषि का समुचित विकास कर ग्रामीण विकास की दिशा को सुनिश्चित किया जा सके।

किसान क्रेडिट कार्ड की व्याख्या

किसान क्रेडिट कार्ड-2000 से भारत सरकार द्वारा लागू एक योजना है, जो सभी राज्यों में कार्यरत है। इसके द्वारा किसानों की दयनीय आर्थिक हालत सुधारने हेतु एक अच्छा प्रयास किया गया है। इसके लिए क्या-क्या शर्त्ते है, इस शोध पत्र के माध्यम से यहाँ जानने का प्रयास किया जा रहा है। उसका उल्लेख नीचे दिया जा रहा है।

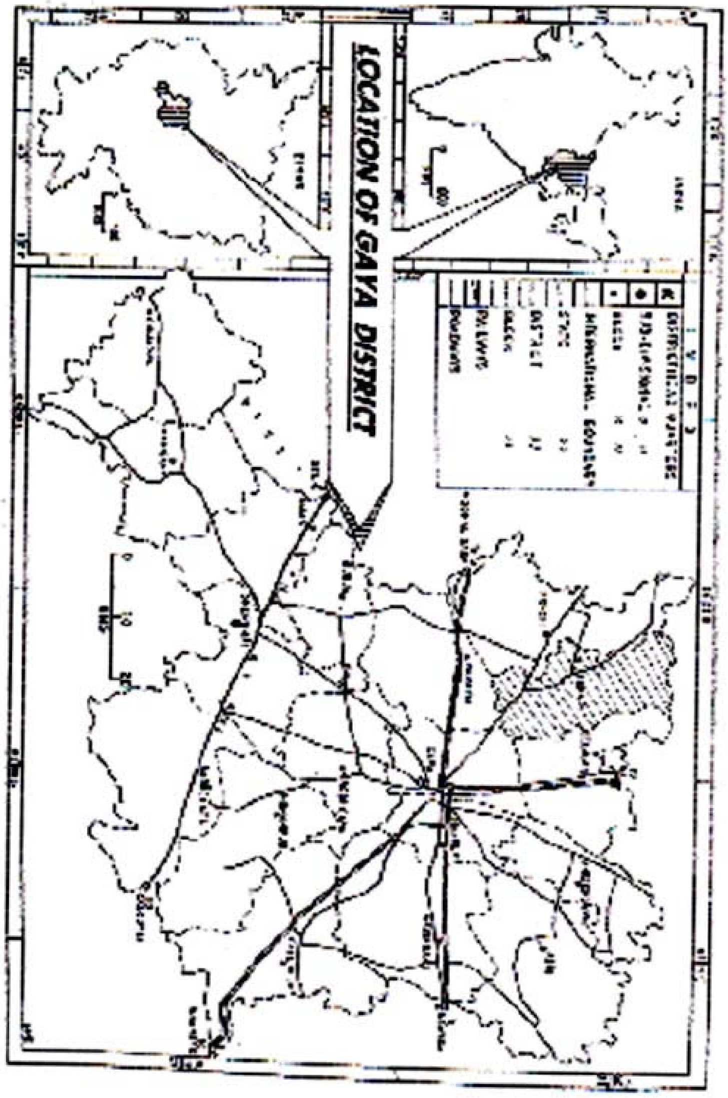

1. इसके लिए किसान को स्वयं के नाम से जमीन का जमाबंदी होना चाहिए यानी आवेदक को डिमाडधारी होना अवश्यक है।
2. जमीन रैयति खाते की होनी चाहिए रैयति यानी बटाई खेती करने वालों को के०सी०सी० नहीं बनता है।
3. जमीन लगान मुक्त होनी चाहिए।
4. आवेदक को पहले की ऋणी नहीं होना चाहिए। उपरोक्त बातों को संबंधित पंचायत का राजस्व कर्मचारी एल.पी.सी. पर अंकित करते हुए अंचलाधिकारी के पास आवेदन को अग्रसारित करता है। प्राप्त आवेदन को प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी एवं प्रखण्ड विकास पदाधिकारी भली-भाँति जाँच कर संबंधित क्षेत्रीय बैंक के पास भेज देते हैं। बैंक प्रबंधक, प्राप्त आवेदन के आधार पर किसानों को विहित प्रपत्र पर एकारनामा करातें हुए किसानों को एल.पी.सी. पर अंकित जमीन को किसान क्रेडिट कार्ड सौंपतें है।

स्वीकृत राशि का निर्धारण बैंक प्रबंधक एल०पी०सी० पर उदृत जमीन के आधार पर करता है छोटे किसान (05-एकड़) को अधिकतम 50,000 रूपये तथा एक एकड़ से कम को 15,000 रूपये स्वीकृत होता है। बड़े किसान को जमीन जमाबंदी के अनुसार एक लाख, दो लाख एवं अधिकतम तीन लाख की राशि स्वीकृत की जाती है। स्वीकृत की गई राशि की निकासी सिद्धान्त: फसल बोते समय करनी चाहिए तथा फसल उपज के बाद बैंक से ली गई राशि पुन: लौटा देनी चाहिए।

फसल बीमा

फसल बीम योजना और किसान क्रेडिट कार्ड एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, क्योंकि के०सी०सी० बननें के बाद ही इसके तहत स्वीकृत एवं निकाली गई राशि पर लागू होता है। इस योजना के लागू होने के पहले किसानों को जो कृषि ऋण दी जाती थी वह बीमीत नहीं होता था, लेकिन इस योजन में स्वीकृत की गई राशि मे से हीं फसल को बीमा कर प्रीमियम की राशि संबंधित बीमा कंपनी को भेज दी जाती है। सिद्धांत: इसके तहत ली गई उस वित्तीय वर्ष के फसल के लिए बीमीत हो जाता है। शाखा प्रबधंक प्रीमियम का भुगतान स्वयं किसान के कार्ड से बीमा कंपनी को भेज देते हैं और अगर बाढ़ सुखाड़ एवं अन्य कारणों से फसल मारी जाती हैं तो किसानों को मारी गई फसल के एवज में मुआवजा दी जाती है। (साक्षात्कार शाखा प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक संडा के आधार पर) प्रस्तुत शोध पत्र कमालपुर गाँव के संर्दभ में किसान क्रेडिट कार्ड को सही ढंग से जानने का प्रयास किया गया है। यहाँ विगत तीन वर्षो के दौरान किसान क्रेडिट कार्ड कार्यो की समीक्षा की गई है।

तालिक नं. 1: कमालपुर में किसान क्रेडिट कार्ड की संख्यात्मक स्थिति (वर्षवार)

वितीय वर्ष	2003.04	2004.05	2005.06	2006.07	2007.08	2008.09
संख्या	00	00	05	14	49	56

उपरोक्त तालिक के अवालोकन से स्पष्ट है कि इस बैंक द्वारा सर्वप्रथम वितीय वर्ष 2005-06 से के०सी०सी० बनना प्रारम्भ हुआ और उसके बाद से बनना जारी है। 2005-06 एवं 2006-07 में इस गाँव की किसानों की फसल बीमा के तहत मुआवजा का लाभ भी प्राप्त हुआ है। आकड़ों को देखेन से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2005-06 में फसल बीमा के तहत 5 किसानों को 86,000-00 की राशि मुआबजे में दी गई वही 2006-07 में 14 किसनों को मुआबजे के रूप में 3,11,791-00 प्राप्त हुयी 2007-09 में 49 किसानों में 22,06,890-00 रू. की राशि की माफी दी गई। यह राशि कुल बैंक द्वारा स्वीकृत राशि का लगभग 80: या उससे अधिक था, यह नीचे की तालिक के स्पष्ट है:-

तालिक नं. 2: के0सी0सी0 से ली गयी राशि की माफी/फसल के नुकसान का मुआवजा

वर्ष	*किसानों की संख्या*	*स्वीकृत राशि (रूपए में)*	*माफ की गयी राशि (रूपए में)*
2005.06	5	98,000	86,000
2006.07	14	3,50,000	3,11,791
2007.08	49	24,50,000	22,06,890

तालिका के अवलोकन स्पष्ट है कि कमालपुर गाँव के किसानें को मारे गए फसल के एवज में मुआवजे की राशि दी गई है। 2007-08 केन्द्र सरकार नें अपने बजट में घोषणा के अनुरूप पूरे देश में किसानों द्वारा ली गई ऋण को पूर्णत: माफ किया। इसमें लगभग 70 हजार करोड़ रूपये का बजट आया। इस योजना के तहत हरियाणा पंजाब एवं आन्ध्र प्रदेश जैसे राज्यों के किसान को लाभ अन्य राज्यों की तुलना में अधिक हुआ, क्योंकि वहाँ के किसान अधिक जागरूक थे। वहाँ के बैंको एव सरकार की भूमिका भी अच्छी थी। इस गाँव में भी इस योजना का लाभ हुआ है। 31 दिसम्बर 2007 तक बैंकों से ली गई कृषि ऋण को इस योजना में शमिल किया गया है।

उपरोक्त तालिक से स्पष्ट है कि 200-08 में कमालपुर गॉव में कुल 49 किसानों को कुल 22 लाख छ: हजार 890 रूपये की माफी हुई है और सभी छोटे किसानों के लिए यह मफी बहुत मायने रखती हैं। पुन: इन्हीं सभी किसानों का वित्तीय वर्ष 2008-09 के फसल के लिए ऋण दी गई है। इस वर्ष भी वर्षा अच्छी नहीं हुई और लगभग 50% फसल मारी गई है। ऐसी स्थिति में निश्चित ही इस अधिक वर्ष मुआवजा मिलनें कि संभावना है।

ताकिल नं. 3: कमलापुर गाँव मे कृषि विकास की स्थिति (वर्षवार)

1. खरीफ फसल का उत्पादनः-

क्रम सं.	*वितीय वर्ष*	*उत्पादन प्रति एकड़ (किग्रा में)*
1	2003.04	2000
2	2004.05	2400
3	2005.06	2800
4	2007.08	3200

उपरोक्त तालिक से स्पष्ट है कि जब से यहाॅ के किसानों को के०सी०सी० लाभ मिला है वे अपनी फसल के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि है।

2. वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोगः 2003-04 के बाद किसानों वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करन शुरू किया हैं उन्होंने ने अनेकों उपकरणों की खरीद की है तथा स्वयं उनका उपयोग करने के पश्चात उसे उपलब्ध कराते हैं (1) टैक्टर की संख्या-06 (2) राईस मिल-02 (3) थ्रेसर (बडा बाल)-02 (पावर टिलर-01

वर्ष 2000 तक यहाँ के लगभग 80 प्रतिशत किसान हल-बैल से खेती करते थे लेकन के.सी.सी. योजना के बाद खेती करने लगे हैं सिंचाई में पहले किसान परम्परागत सिंचाई के साधनों के प्रयोग एवं वर्ष पर आश्रित रहते थे लेकिन अब किसाना पम्पिंग सेट, नलकूप एवं बोरिंग इत्यादि के प्रयोग करने लगे है।

कमालपुर गाँव में सिंचाई के साधनों का प्रयोग (वर्षवार)

क्रम सं.	*वित्तीय वर्ष*	*पम्पिंग सेट*	*बोरिंग*
1	2003.04	05	09
2	2004.05	08	11
3	2005.06	11	14
4	2007.08	18	16
5	2008.09	24	31

उपरोक्त तालिक से स्पष्ट है कि इस गाँव में आधुनिक सिंचाई साधनों के प्रयोग में निरंतर वृद्धि हुयी है।

1. रासायनिक खाद का प्रयोग-इस गाँव के किसानों का रसायनिक खाद का प्रयोग करने की प्रवृत्ति को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

तालिक नं.-4: कमालपुर गाँव में रासायनिक खाद के प्रयोग की प्रवृत्ति (प्रवृत्ति)

वर्ष	*रासायनिक खाद प्रति कठ्ठा*
2003	1 कि०ग्रा० (युरिया, डी०ए०पी०)
2004	1 कि०ग्रा० (युरिया, डी०ए०पी०)
2005	1.5 कि०ग्रा० (युरिया, डी०ए०पी० पोटास)
2006	3 कि०ग्रा० (युरिया, डी०ए०पी०)
2007	3 कि.ग्रा. (युरिया, डी०ए०पी०)
2008	3 कि.ग्रा. (युरिया, डी०ए०पी०)

इसके आलावे फसल समय पर बढ़ानें के लिए किसान जिंक ग्रोथ, खरपतवार नाशी एवं किटनाशी दवा का भी प्रयोग करने लगे हैं और इसके परिणाम भी अच्छे हुए हैं।

कमालपुर गाँव के किसानों से शोधकर्त्ता स्वंय द्वारा पूछे जाने पर कि-

- किसान क्रेडिट कार्ड के बारे में उन्हें कितने दिनों से जानकारी है?
- किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने के बाद उन्होंने कृषि में क्या-क्या विकास किया?
- इसके तहत फसल बीमा का लाभ उन्हें मिला या नहीं?
- केन्द्र सरकार द्वारा ऋण माफी योजना में उन्हें लाभ मिला या नहीं?
- किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने में आपको क्या क्या दिक्कतें हुई है?
- इसके बनने के बाद भी उन्हें महाजनी सूद पर पैसे लेनें पड़तें है?
- बटाई खेती करने वाले किसान को के०सी०सी० बनता है अथवा नहीं?

उपरोक्त बातों के उत्तर में अधिकत्तर किसानों का जबाव था कि विगत तीन वर्षों से इसके बारे में जानकारी मुखिया जी के द्वारा मिली उसके कारण के कृषि में विकास के लिए सक्षम हो सके तथा फसल बीमा का लाभ भी मिला है। के०सी०सी० बनानें में प्रशासनिक दिक्कतों का है। उन्हें सामना करना पड़ा है और के०सी०सी० बनने के बाद यहाँ की कृषि में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं, इस संबंध में शोधकर्त्ता का अनुभव निम्न है:-

1. पहले यहाँ के किसान परम्परागत ढंग से हल-बैल से खेती करते थे, लेकिन के०सी०सी० बनने के बाद अब वे ट्रैक्टर का प्रयोग करने लगे हैं।
2. पहले खेतों में रसायानिक खाद का प्रयोग कम करते थे पर अब रासायिनक खाद के साथ-साथ खरपतवार नाशी एवं किटनाशी दवाओं का प्रयोग भी करने लगे हैं।
3. पहले शंकर बीज या नये बीज का प्रयोग पूँजी की कमी के कारण नहीं कर पाते थे, लेकिन अब इसका उपयोग करें लगें हैं।
4. पहले वे सिंचाई हेतु वर्षा पर आश्रित थे, लेकिन अब डिजल पंम्पिंग सेट डिलीवरी पाईप, बोरिंग इत्यादि का उपयोग करनें लगे।
5. अब खाद्यान्न फसलों के आलावे नगदी फसले एवं सब्जी उत्पादन भी करने लगें हैं।

उपरोक्त कारणों से अव यहाँ के किसान बड़े ही आत्मविश्वास के साथ खेती कर रहें हैं जो कृषि विकास के लिए अच्छी बात है।

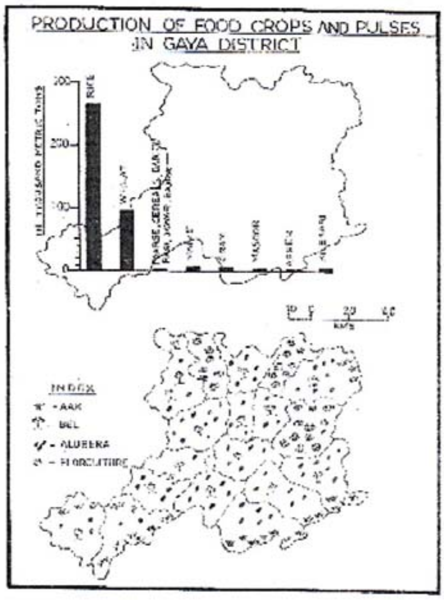

किसान क्रेडिट कार्ड से लाभः

1. किसानों के लिए यह आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करता है।
2. इसके तहत ली गई रूपये साधारण ब्याज पर होता है। इसलिए किसाने निर्भीक होकर बैंको से ऋण लेता है।
3. किसान महाजनों से ऊँचे सूद दिया है पर पैसा लेना छोड़ दिये।
4. कि०सी०सी० का प्रयोग चुँकि चालू खाता की तरफ किया जाता है। अतः इस पैसे का प्रयोग किसान, शादी विवहा, श्राद्ध कम, इत्यादि अन्य सामाजिक कार्यों में भी करते है।

सरकार की अपेक्षित भूमिकाः

1. सरकार को चाहिए की के०सी०सी० सभी किसोनों को बनाने की व्यवस्था करें।
2. इसके लिए प्रखण्ड कर्मियों अंचल कर्मियों एवं बैंक पदाधिकारियों को जबावदेह बनाना चाहिए।
3. सरकार को इसका प्रचार-प्रसार करवाना चाहिए।
4. भूमि का रिकार्ड अद्यतन करवाना चाहिए, क्योंकि बहुत किसानों की जमीन का बँटवारा तो हो गया है, लेकिन कागजी बटबारा नहीं होने के कारण बहुत से किसान के०सी०सी० बनाने से बंचित रह जाते है।
5. प्रखण्ड में शिविर लगारक के०सी०सी० बनाना चाहिए।
6. पंचायत प्रतिनिधियों को भी इसके प्रति जागरूक बनाना चाहिए।
7. बैंक की भूमिका सही होनी चाहिए।
8. बटाई खेती करनें वाले को भी के०सी०सी० बनाना चाहिए।
9. गैर सरकार संगठन के लोगों को इसमें कार्य करना चाहिए।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन में अवलोकनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधि तंत्रों को प्रयोग करते हुए विश्लेषण एवं व्याख्या हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। कृषि से संबंधित विभिन्न प्रकर के आँकडों को अध्ययन क्षेत्र में भ्रमण कर एकत्रित किया गया है, जबकि द्वितीयक आँकड़ो की प्राप्ति प्रखण्ड/अंचल कार्यालय एवं बैंक से की गई है। सर्वेक्षण के दौरान ही कृषि से संबंधित समस्याओं को अवलोकन कर उसे प्रकाश में लानें का प्रयास किया गया है। साथ ही समस्याओं के समाधान हेतु विश्लेषण एवं व्याख्या कर इस योजना को ग्रामीण विकास हेतु सर्वमान्य रूप देने पर बल दिया गया है। इस तरह केन्द्रीय सरकार की यह योजना ग्रासरूट लेवेल की मान्यता को प्रदान कर गाँव के विकास से देश के विकास की संकल्प को सम्पुष्ट करता है।

साहित्य सर्वेक्षण

भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय बोध गया के अन्तर्गत कुछ पी०एच०डी० शोध कार्य गया जिला के संदर्भ में किए गये हैं इनमें प्रसाद (1996) गोस्वामी (2000) प्रसाद (2003) शर्मा (2004) निराला (2006) का कार्य महत्वूपर्ण एवं उल्लेखनीय है। वर्तमान शोधपत्र इसी उद्देश्य से किया जा रहा है। कि किसान क्रेडिट कार्ड की कृषि के विकास में भूमिका को उजागर किया जा सके।

परिकल्पना

कमालपुर गॉव गया जिले के उतरी पश्चिमी भाग गया मुख्यालय से लगभग 35 कि०मी० दूर टिकारी-कुर्था मुख्य सकड़ पर बसा है। इसका क्षेत्रल लगभग 1 वर्ग कि०मी० है। कृषि इस गाँव की मुख्य आर्थिक पेशा है जहाँ 175 एकड़ भूमि पर खेती की जाती है। 2001 की जनगणना के अनुसार यहाँ की जनसंख्या 854 तथा साक्षरता की दर 36% रही है। इस तरह यह एक छोटा गाँव है जिसे अध्ययन की छोटी इकाई के रूप में इसका प्रस्तुत किया गया है।

सारांश एव निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र किसानों क्रेडिट कार्ड की कृषि विकास में भूमिका कमालपुर (गया) के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन शीर्षक के अर्न्तगत पुरा किया गया है। इसका संदर्भ आर्थिक है, जो आर्थिक क्रियाकलापों से जुड़ा हुआ है और कृषि के विकास से सम्बन्धित है। अत: यह अध्ययन को विश्लेषणात्मक रूप दिया गया है और विभिन्न प्रकरणों में बाँटकर अध्ययन किया गया है। प्रथम प्रकरण अध्ययन की संकल्पना से है, जिसमें शीर्षक की सार्थकता और महत्व को उजागर किया है। इसके बाद अध्ययन का उद्देश्य अध्ययन का विधितंत्र अध्ययन क्षेत्र, विश्लेषण एवं व्याख्या की गई है। कमालपुर के किसानों को उदाहरण के रूप में पेशा किया गया है जिससे कितना लाभ हुआ है, यह जाना गया है।

इस कार्यक्रम को कैसे और बेहतर बनाया जाय यह सचमुच शोध का विषय है, क्योंकि यदि इस कार्यक्रम की व्यापक प्रगति होती है तो यहाँ की कृषि उन्नति के साथ-साथ लोगों का जीवन स्तर में सुधार आयेगा, जो क्षेत्रीय विकास में एक कारगर कदम तो होगा। साथ-ही-साथ यहाँ के बेकार पड़े नवयुवकों में जो अग्रवाद की भावना से प्रभावित हो रहे हैं उसको समाप्त किया जा सकेगा (निराला 2006)। अत: सरकार को चाहिए कि इस कार्यक्रम के विकास पर उचित पहल करें ताकि इसका रूप व्यापक हो सकें।

संदर्भ सूची

1. प्रसाद, ए०के० (2003), "गया डिस्ट्रीक्ट इन बिहार : ए स्टडी इन इकोनोमिक ज्याग्राफी", अप्रकाशित पी०एच०डी० थेसिस मगध विश्वविद्यालय, बोध गया।
2. शर्मा आर० (2004), "टेक्नोजिकल इनोभेंशन इन एग्रीकल्चर एण्ड इट्स इम्पैक्ट ऑन क्वालिटी ऑफ लाई : ए केस स्टडी ऑफ गया डिस्ट्रीक्ट", अप्रकाशित पी०एच०डी० थेसिस, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया।
3. निराला, एम०के० (2006), "बिहार की कृषि समस्याएँ एवं उनसे जुड़ी सामाजिक अशांन्तियाँ जहानाबाद जिले के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन"। अप्रकाशित पी०एच०डी० थेसिस, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया।
4. प्रखण्ड सांख्यिकी कार्यालय, टिकारी
5. प्राईमरी सेन्सस एक्सट्रेक्ट गया डिस्ट्रीक्ट, 2001
6. हिन्दुस्तान (दैनिक समाचार) पटना 29 मार्च 2008 पृ०-01
7. प्रखण्ड कृषि पदाधिकारी, श्री सुरेन्द्र पाठक से दिनांक 25.11.2008 को साक्षात्कार
8. अरूण कुमार, शाखा प्रबंधक मध्य ग्रामीण बैंक म से दिनांक-25.11.2008 को साक्षात्कार

ग्रामीण उद्योग:
ग्रामीण विकास की एक आवश्यकता

डॉ० कृष्ण कुमार सिंह

ग्राम-सोनपुरा खुर्द, जिला-बलिया, उत्तर प्रदेश-277001

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ 70 प्रतिशत आबादी कृषि पर आधारित है। अत: देश की अर्थव्यवस्था में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की बहुत बड़ी भूमिका है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के साथ-साथ कृषेत्तर क्षेत्र भी आते हैं। इसलिए कृषि और कृषेत्तर क्षेत्र पर आधारित उद्योगों के विकास से ही गाँव एवं ग्रामीणों का विकास संभव है। अर्थात् ग्रामीण उद्योगों का विकास जहाँ एक ओर कृषकों के लिए रोजगार के नये अवसर उत्पन्न करता है वही दूसरी ओर आय बढ़ने से कृषक उन फसलों का उत्पादन करना शुरू कर देते हैं जो उद्योग हेतु कच्चे माल होते हैं। इससे कृषकों की आय में गुणात्मक वृद्धि होती है तथा उनका विकास भी संभव हो पाता है। भारत सरकार ने आजादी के बाद से ही इस ओर ध्यान देना प्रारंभ कर दिया था, परंतु भारतीय ग्रामीण उद्योगों को आज जिस स्तर पर होना चाहिए, उस स्तर पर नहीं पहुँच पाया है। असल में ग्रामीण उद्योगों की परिभाषा में समय के साथ-साथ परिवर्तन होते रहे हैं, इसलिए इन उद्योगों की दीर्घावधि में प्रगति का अध्ययन करना संभव नहीं हो पाया है। ग्रामीण लघु इकाइयों की संख्या 2002-03 में 109.5 लाख थी जो 2006-07 में बढ़कर 128.4 लाख हो गई। जहाँ तक लघु क्षेत्र के उत्पादन का प्रश्न है, यह 2002-03 में 3,06,771 करोड़ रुपये था जो 2006-07 में बढ़कर 4,71,633 करोड़ रुपये हो गया। (2001-02 की कीमतों पर) 2005-06 तथा 2006-07 में उत्पादन संवृद्धि की दर 13 प्रतिशत से अधिक रही है। देश के विनिर्माण उत्पादन में लघु उद्योग का हिस्सा लगभग 39 प्रतिशत है।

ग्रामीण उद्योगों में 2002-03 में 263.7 लाख लोग कार्यरत थे। 2006-07 में इनकी संख्या बढ़कर 312.5 लाख अर्थात् 3 करोड़ 13 लाख हो गई। वस्तुत: भारत में कृषि के बाद रोजगार प्रदान करने वाला दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र ग्रामीण लघु व कुटीर उद्योगों का है। भारत की गम्भीर बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए ग्रामीण उद्योगों का महत्व स्वत: सिद्ध है। यह इसी बात से सिद्ध होता है कि जहाँ 1972 से 1987-88 के बीच सारे फैक्ट्री क्षेत्र (जिसमें बड़े आकार, मझोले आकार तथा लघु आकार की इकाइयाँ शामिल हैं, में रोजगार वृद्धि की दर 2.21 प्रतिशत प्रति वर्ष थी वहां लघु क्षेत्र की इकाइयों में रोजगार वृद्धि की दर 5.45 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। 1972 से 1987-88 के दौरान लघु क्षेत्र 20 लाख लोगों के लिए अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने में सफल रहा। जहां तक भविष्य में रोजगार संभावनाओं का प्रश्न है, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार अवसरों का और विस्तार बहुत कुछ ग्रामीण गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार प्रसार पर निर्भर करेगा। (ग्रामीण गैर कृषि क्षेत्र फिलहाल 22 प्रतिशत ग्रामीण रोजगार उपलब्ध कराता है) इस गैर-कृषि क्षेत्र का एक प्रमुख अंश विनिर्माण क्षेत्र है जिसमें ग्रामीण उद्योग, वस्त्र उद्योग, वस्त्र तथा निर्माण पदार्थों में लगे उद्योग शामिल हैं। शहरी क्षेत्रों में बड़े पैमाने के उद्योगों में अधिक रोजगार प्रसार की सभावनाएँ नजर आती है, परन्तु ग्रामीण लघु क्षेत्र में रोजगार अवसर पैदा करने की बहुत संभावनाएँ हैं।

सारणी
वर्शवार ग्रामीण लघु उद्योगों का निष्पादन[1]

वर्ष	उत्पादन इकाइया लाख में		कुल	उत्पादन ¼करोड़ रु0½ 2001-02 की कीमतों पर	रोजगार ¼लाख में½	निर्यात ¼करोड़ में½
	पंजीकृत	अपंजीकृत				
2002-03	16.03	93.46	109.49 (4.1)	3,06,771 (8.7)	263.68 (4.5)	86,013 (20.7)
2003-04	17.12	96.83	113.95 (4.1)	3,36,344 (9.6)	275.30 (4.4)	97,644 (13.5)
2004-05	18.24	100.35	118.35 (4.1)	3,72,938 (10.9)	287.55 (4.5)	1,24,417 (27.4)
2005-06	19.30	104.12	123.42 (4.1)	4,18.884 (12.3)	299.85 (4.3)	1,50,242 (20.5)
2006-07	20.32	108.12	128.44 (4.1)	4,71,663 (12.6)	312.52 (4.2)	NA

ग्रामीण तथा बड़े उद्योगों में से अधिक कार्यकुशल कौन है इस बारे में विवाद है। कुछ अर्थशास्त्रियों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि लघु उद्योग अधिक कार्यकुशल है जबकि कुछ अर्थशास्त्रियों के अध्ययन इससे ठीक उल्टा निष्कर्ष देते हैं। इस सम्बन्ध में सबसे पहला अध्ययन धर तथा लाइडाल का था। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि आधुनिक लघु उद्योग काफी पूंजी प्रधान हैं। अर्थात् वे बड़े पैमाने के उद्योगों की तुलना में प्रति इकाई पूंजी अधिक रोजगार का सृजन नहीं करते। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि ग्रामीण लघु उद्योग बडे उद्योगों की तुलना में श्रमिकों को कम वेतन देते हैं और अक्सर बड़े शहरों में केन्द्रित होते हैं। उनके अनुसार ग्रामीण लघु उद्योग बड़े उद्योगों की तुलना में कम दक्ष है, इसलिए उन्हें बड़े उद्योगों की अपेक्षा कोई प्राथमिकता देने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार के निष्कर्ष कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अध्ययन से भी प्राप्त हुए। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण अध्ययन विश्वनाथ गोल्डर का है। जिसमें 1976-77 के लिए 37 उद्योगों को लिया गया।

गोल्डार ने सापेक्षिक अम उत्पादकता, सापेक्षिक पूजी उत्पादकता तथा सापेक्षिक कुल कारक उत्पादकता (जिसे सापेक्षिक दक्षता भी कहा जा सकता है।) की गणना की और पाया कि बड़े उद्योगों की तुलना में लघु उद्योगों में कम श्रम उत्पादकता, उच्च पूंजी उत्पादकता, कम पूंजी गहनता तथा कम कुल साधन उत्पादकता है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि आधुनिक लघु क्षेत्र बहुत से उद्योगों में बड़े क्षेत्र की तुलना में कम कार्यकुशल हैं।[2]

इस क्रम में यह कहा जा सकता हैं कि बड़े उद्योग ग्रामीण लघु उद्योगों की तुलना में अधिक कार्यकुशल है। परन्तु कई अध्ययनों से इससे ठीक उल्टा निष्कर्ष प्राप्त होता है। 1960, 1963, 1964 तथा 1965 के उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण से आकड़े लेकर रामसिंह के0 अशर ने यह सिद्ध किया है कि लघु क्षेत्र अधिक कार्यकुशल हैं। उनका अध्ययन सिद्ध करता है कि स्थिर पूंजी के एक रुपये के निवेश पर लघु उद्योग सबसे अधिक श्रमिकों को रोजगार प्रदान करता है। स्थिर परिसम्पत्ति में एक रुपये के निवेश के बदले कृषि आधारित लघु क्षेत्र में बड़े क्षेत्र की सात गुणा उत्पादन होता है तथा ग्रामीण लघु उद्योगों में एक रुपये का निवेश बड़े उद्योगों की तुलनामें तीन गुणा से अधिक वर्द्धित मूल्य का सृजन करता है।[3]

इस संदर्भ में दूसरा महत्त्वपूर्ण अध्ययन भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक द्वारा नेशनल काँसिल आफ अप्लाईड इकोनोमिक रिसर्च की सहायता से किया गया अध्ययन है। इसमें 1980 से 1994 तक वे आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन के अनुसार, कुल विर्निमाण क्षेत्र की पूंजी में केवल 7 से 15 प्रतिशत हिस्सा होने पर भी लघु उद्योगों ने कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग एक-पांचवां हिस्सा (लगभग 20 प्रतिशत) तथा कुल वर्द्धित मूल्य का 13 से 27 प्रतिशत हिस्सा प्रदान किया। जहां तक रोजगार का सम्बन्ध है, ग्रामीण लघु उद्योग पूरे औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार का लगभग 35-40 प्रतिशत प्रदान करते हैं। जहाँ तक उत्पादकता का प्रश्न है, इस अध्ययन में यह पाया गया कि जहाँ बड़े उद्योगों में श्रम उत्पादकता लघु उद्योगों की तुलना में थोड़ा अधिक थी, वहाँ पूंजी उत्पादकता लघु उद्योगों में बड़े उद्योगों की तुलना में थोड़ा अधिक थी, (विचाराधीन अवधि 1980-81 से 1994-95) परन्तु इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है कुल साधन उत्पादकता की तुलना। 1980-81 से 1994-95 की पूरी अवधि में (1987-88 के वर्ष को छोड़कर) लघु उद्योगों की अनुमानित सापेक्षित कुल साधन उत्पादकता एक से अधिक रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि, राष्ट्रीय स्तर पर लघु उद्योग क्षेत्र, बड़े उद्योग क्षेत्र की तुलना में, अधिक कार्यकुशल है। ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र की सापेक्षित लाभप्रदता को लघु उद्योग क्षेत्र की लाभप्रदता के बड़े उद्योग क्षेत्र की लाभप्रदता से अनुपात के रूप में परिभाषित किया गया है। 1980-81 से1994-95 की पूरी अवधि में (वर्ष 1989-90 को छोड़कर) लघु उद्योग क्षेत्र की सापेक्षित लाभप्रदता एक से अधिक रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि बड़े उद्योग क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण लघु उद्योग क्षेत्र में लाभप्रदता अधिक है।[4]

भारत जैसे श्रम-आधिक्य वाले देश में कार्यकुशलता की चर्चा करते समय रोजगार संभावना पर नजर रखना आवश्यक है। 2001-02 में की गई लघु क्षेत्र की तीसरी जनगणना में यही किया गया। 2001-02 के लिए लघु उद्योग क्षेत्र तथा बड़े उद्योगों की तुलना करने पर यह पाया गया कि एक लाख रुपये के निवेश द्वारा जहाँ बड़े उद्योगों में मात्र 0.20 रोजगार सृजन होता है, वहाँ इतने ही निवेश द्वारा ग्रामीणलघु उद्योगों ने 1.39 रोजगार सृजन होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि बड़े उद्योगों में एक व्यक्ति को रोजगार देने के लिए 5 लाख रुपये का निदेश जरूरी है जबकि ग्रामीण लघु क्षेत्र में इतने ही निवेश द्वारा 7 लोगों को रोजगार दिया जा सकता है। निवेश-उत्पादन अनुपात के दृष्टिकोण से देखा जाए तो लघु क्षेत्र बड़े उद्योगों से लगभग तुलनीय है। उदाहरण के लिए, जहाँ बड़े औद्योगिक क्षेत्र में एक लाख रुपये का उत्पादन पाने के लिए 43,000 रुपये का निवेश चाहिए, वहाँ लघु औद्योगिक क्षेत्र में एक लाख रुपये का उत्पादन पाने के लिए 48,000 रुपये का निवेश चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ निवेश-उत्पादन अनुपात के दृष्टिकोण से लघु औद्योगिक क्षेत्र बड़े औद्योगिक क्षेत्र की तुलना में बहुत पीछे नहीं है, वहीं यह रोजगार सृजन में बहुत आगे है।[5]

ग्रामीण उद्योगों के समर्थन में एक महत्वपूर्ण तर्क यह दिया जाता है कि उनकी सहायता से राष्ट्रीय आय का बेहतर न्यायोचित विवरण हो सकता है। ऐसा दो कारणों से है:-एक तो ग्रामीण लघु उद्योगों का स्वामित्व बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक विस्तृत व बिखरा हुआ है तथा दूसरे, लघु उद्योगों की रोजगार सृजन की सामर्थ्य बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक हैं लघु उद्योगों के श्रमिक प्राय असंगठित होते हैं और अपने अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकते, इसलिए उद्योगपति इन श्रमिकों को कम मजदूरी देते हैं। भारत में ग्रामीण लघु उद्योगों में मजदूरी की दर बड़े उद्योगों में मजदूरी का दर से लगभग आधी है। इंग्लैण्ड, अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, जापान तथाभारत सभी देशों में लघु उद्योग आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीयकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं, परन्तु यह तर्क इस बात को अनदेखा करता है कि ग्रामीण उद्योगों में बड़े उद्योगों की तुलना में बहुत ज्यादा रोजगार सामर्थ्य है। इसलिए ग्रामीण लघु उद्योग बहुत सारे लोगों को आर्थिक विकास के फल प्राप्त करने में सहायता प्रदान करते हैं। इनकी अनुपस्थिति में ये लोग या तो बेरोजगार रहते हैं या फिर कम आय वाले रोजगार में लगे रहते हैं।

औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति पर विचार करते हुए हम स्पष्ट कर आए हैं कि भारत में बड़े उद्योगों का केन्द्रीकरण महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु तथा गुजरात में बढ़ा है। इससे देश में औद्योगिक दृष्टि से क्षेत्रीय असमानताओं में और अधिक वृद्धि की हुई है। उद्योगों के केन्द्रीकरण से नगरों में भीड तथा आवास की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। ग्रामीण लघु उद्योगों की स्थापना प्राय: स्थानीय माग को पूरा करने के लिए की जाती है। अत इन्हें सभी राज्यों में सुविधापूर्वक स्थापित किया जा सकता है। आधुनिक ग्रामीण लघु उद्योग, क्षेत्र विशेष की अर्थव्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन करने में भी समर्थ होते हैं। इसका प्रमाण पंजाब की अर्थव्यवस्था है जहाँ औद्योगिक दृष्टि से समृद्ध महाराष्ट्र से भी ज्यादा लघु औद्योगिक इकाइयाँ है। देश के विभिन्न भागों में ऐसे बहुत सारे साधन उपलब्ध होते हैं। जिनकी मांग बडे उद्योगों द्वारा नहीं की जाती। इसके अलावा कुछ साधन बड़े उद्योगों को पहुँच में नहीं होते। ग्रामीण लघु उद्योग इन साधनों को सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण की दृष्टि से समृद्ध महाराष्ट्र से भी ज्यादा लघु औद्योगिक इकाइयाँ हैं। देश के विभिन्न भागों में ऐसे बहुत सारे साधन उपलब्ध होते हैं। जिनकी मांग बड़े उद्योगों द्वारा नहीं की जाती। इसके अलावा

कुछ साधन बड़े उद्योगों की पहुँच में नहीं होते। ग्रामीण लघु उद्योग इन साधनों को सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ-कस्बों के उद्यमियों की क्षमता का उपयोग लघु उद्योगों ही हो सकता है। इसी प्रकार, बड़े शहरों से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में की जाने वाली बचतों को बड़े उद्योगों के लिए संचित कर पाना संभव नहीं होता, परन्तु उनकी सहायता से घरेलू अथवा लघु द्योगों की स्थापना की जा सकती है। आजादी के बाद भारी संख्या में ग्रामीण लघु उद्योगों की स्थापना इस बात का प्रमाण है कि बिजली, तकनीकी ज्ञान तथा साख आदि की सुविधाएँ मिल जाने पर अनेक निष्क्रिय साधनों का उत्पादन कार्यों के लिए उपयोग होने लगता है। आजादी के बाद बड़े पैमाने पर ग्रामीण लघु उद्योगों की स्थापना के कारण निर्यात में इनका योगदान काफी बढ़ा है। बहुत सारे उद्योगों जैसे तैयार वस्त्र, खेल का सामान, चमड़ा व चमड़े से निर्मित सामान, ऊनी कपड़ों, रसायनों व सहायक पदार्थों तथा इन्जीनियरिंग वस्तुओं इत्यादि में लघु उद्योगों के निर्यातों में काफी वृद्धि हुई है। ग्रामीण लघु उद्योगों के कुल निर्यात 1971-72 में 155 करोड़ रुपये थे जो 2005-06 में बढ़कर 1,50,242 करोड़ रुपये हो गए। इस प्रकार निर्यात आय में लघु उद्योगों का हिस्सा 1971-72 में 9.6 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में 32.9 प्रतिशत होगया।[6]

ग्रामीण उद्योगों के विकास में कई कारण बाधक रहे हैं। जैसे-पुरानी तकनीक, कच्चे माल की अपर्याप्त व अनियमित पूर्ति, संगठित बाजार प्रणाली का अभाव, बाजार स्थिति के बारे में अपूर्ण जानकारी, कामकाज का असंगठित व अव्यवस्थित स्वरूप, साख की अपर्याप्त उपलब्धि, बिजली व अन्य आधारिक सुविधाओं की कमी, प्रबन्धकीय व तकनीकी कौशल की कमी इत्यादि। इन उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए जो विभिन्न एजेन्सियां बनाई गई हैं उनमें परस्पर सहयोग वह तालमेल का अभाव है। सतत प्रयासों के बावजूद गुण तथा श्रेणी में सुधार लाने व एकरूपता बनाए रखने के बारे में जागृति नहीं लाई जा सकी है। कुछ राजकोषीय नीतियों के परिणामस्वरूप इन उद्योगों की क्षमता का विखण्डन होकर अनार्थिक रूप से उत्पादन होने लगा है। इन सब कारकों की वजह से लागतें बढ़ी हैं जिससे घरेलू बाजार और निर्यात बाजारों में इन उद्योगों को बड़े उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में कठिनाई हो रही है।[7]

संदर्भ

1. भारत (2009-2010). प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ सं0-796
2. विश्वनाथ गोल्डर : इम्प्लायमेण्ट ग्रोथ इन मार्डन स्माल स्केल इन्डस्ट्री इन इण्डिया जर्नल ऑफ इण्डियन स्कूल ऑफ पलिटिकल इकोनॉमी 1993 पृष्ठ स.-96
3. रामसिंह के0 अशर, स्माल स्केल एण्ड कांटेज इन्डस्ट्रीज् इन इण्डिया इन जे0एस0 उप्पल, इण्डीयाज इकोनॉमिक प्राब्लम (नई दिल्ली 1997) पृष्ठ सं0-127
4. उपरिवत्, पृष्ठ सं0
5. स्माल इन्डस्ट्रीस डेवलपमेन्ट बैंक ऑफ इण्डिया, सिडबी रिपोर्ट आन स्माल स्केल इन्डस्ट्रीज सेक्टर, 1999 (लखनऊ) पृष्ठ सं0-9
6. गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया रू थर्ड आल इण्डिया कैसस् ऑफ स्माल स्केल इन्डस्ट्रीज 2008-09 (नई दिल्ली-2004) पृष्ठ सं0-23
7. राकेश मोहन, स्माल-स्केल इन्डस्ट्री पॉलिसी इन इण्डिया रू ए क्रिटिकल एव्युलुएशन, नई दिल्ली 2002, पृष्ठ सं0-214

जीवन और लेखन : राजेन्द्र यादव

भोला प्रसाद यादव

नेट, शोध-छात्र (हिन्दी), बी.आर.ए. बिहार विश्व विद्यालय, मुजफ्फरपुर

एक उद्भट विद्वान, महान लेखक, अत्यन्त कुशल सम्पादक, समीक्षक, आलोचक और 'नई कहानी' के जन्मदाता राजेन्द्र यादव का जन्म 28 अगस्त 1929 को आगरा उत्तर प्रदेश में एक चिकित्सक पिता-मिश्रीलाल यादव एवं तारा देवी के घर चार भईयों में सबसे बड़े, साथ ही छः बहनों वाला लम्बा-चौड़ा परिवार में हुआ था। दादा गोकुल सिंह यादव जमींदार, झांसी की रानी से सम्बन्धि त कलेक्टरी में थे। प्रारम्भिक शिक्षा सुसीर, आगरा से मैट्रिक, झांसी से (1946), स्नातक आगरा कॉलेज (उ0प्र0) से (1949) तथा आगरा विश्वविद्यालय से ही एम0ए0 हिन्दी साहित्य में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किये। स्कूली दिनों से लेखन कार्य। स्वभाव से चंचल, निडर, उत्सुक एवं साहित्य प्रेमी। सबसे मुख्य शौक था लेखन और वो भी निर्भीकता एवं साहस के साथ।

धारा के विपरीत तैरने का साहस बहुत कम लोगों के पास होता है। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि धारा के विपरीत तैरने के प्रयास में डुबते-छटपटाते के साथ ही इतिहास लिखने-रचने में कामयाब होते हैं। कोई कुछ भी कहे, 'दलित विमर्श' और 'स्त्री-विमर्श' को साहित्य में पूरी मजबूती के साथ स्थापित करने का श्रेय राजेन्द्र यादव को जाता है। जो काम राजनीति में विश्वनाथ प्रताप सिंह ने किया, कमोबेश वही काम साहित्य में राजेन्द्र यादव ने किया। बदनामी दोनों को झेलनी पड़ी। लेकिन इतिहास तो रच ही गये। जमाने की परवाह किये बिना, कबीर के अन्दाज में सच कहा। सवाल खड़ा किया। सच और सवाल सत्ताएं बर्दाशत नहीं कर पाती। चाहे वह किसी भी किस्म की धार्मिक, जातिगत, सामाजिक या राजनीतिक सत्ताएं क्यों न हो? सवाल और संशय के कारण ही नचिकेता को यम के हवाले उनके अपने ही पिता वाजश्रवा ने किया था।

राजेन्द्र यादव के शब्दों में - "अब समय आ गया है कि हम अपने साहित्य में मूर्दों - पण्डों का ही साहित्य बनाएँ रखे और ईमानदारी से जो महसूस होता है, उसे सच्चाई से लिखें।...................... जिन्दगी और साहित्य के दोहरे मानदंडों को हम और कितने दिनों तक ढोयेंगे।"[1]

नामवर सिंह और सुधीर पचौरी ने राजेन्द्र यादव को हिन्दी साहित्य का अमिताभ बच्चन बताया जबकि प्रेम भारद्वाज ने 'मेरा नाम जोकर' फिल्म का राजू यानि राजकपूर माना है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी साहित्य में गुणात्मक परिवर्त्तन की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी, राजेन्द्र यादव ने एक ओर तो कहानी को साहित्य की केन्द्रीय विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया और दूसरी ओर उसके वाह्य तथा आन्तरिक संरचना को इतना बदल दिया कि उसकी अलग पहचान के लिये उसे 'नई कहानी' कहना जरूरी समझा गया। 'नई कहानी' का रुपाकार समसामयिक जीवन के यथार्थ से रू-ब-रू होने पर कहानीकार के मन में उत्पन्न संवेदनाओं और विचार तत्त्वों के संघात से नये ढाँचे में ढल रहा था। उसका सबसे अधिक जीवन्त उदाहरण राजेन्द्र यादव की कहानियों में मिलता है। जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों में निहित अन्तर्विरोध को उजागर करने की चेष्टा में रूपात्मकता के पुराने ढाँचे को तोड़कर शिल्प के जितने नये प्रयोग उन्होंने किये हैं, उतने शायद ही किसी अन्य कहानीकार ने किये हों। जिस मध्य वर्ग का चित्रण राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों में किया है, उस दौर में वह न केवल एकदम नये, बल्कि बहुआयामी और उलझे हुए संश्लिष्ट बाहरी-भतरी दबावों को झेल रहा था।

संक्षेप में कहा जाए तो राजेन्द्र यादव की कहानियाँ आजादी के बाद तेजी से विघटित हो रहे मानव मूल्यों, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध ों, बदलती हुई सामाजिक और नैतिक परिस्थितियों तथा पैदा हो रही एक नई विचार दृष्टि को रेखांकित करती हैं। उन्होंने व्यक्ति के माध्यम से समाज को समझने की लगातार कोशिश की है।

यथार्थ बोध के सम्बन्ध में उनकी पुरानी मान्यता है। मोहन गुप्त के शब्दों में – "जो कुछ हमारे संवेदन के वृत में आ गया है, वही हमारा यथार्थ है .... लेकिन इस यथार्थ को कलात्मक और प्रमाणिक रूप से सम्प्रेषणीय बनाने के लिये जरूरी है कि हम इसे अपने से हटकर या उठकर देख सकें, उसे माध्यम के तरह इस्तेमाल कर सकें।[2]

वैसे तो स्कूली दिनों में ही वे लेखन शुरू कर दिये थे, परन्तु 1945-46 तक की लिखी कवितायें एवं रचनाएं नष्ट कर दी। राजेन्द्र यादव की पहली कहानी 'प्रतिहिंसा' (1947), कर्मयोगी मासिक पत्रिका में छपी थी। उनका पहला कहानी संग्रह 'रेखाऐं, लहरें और परछाईयाँ' आगरा के एक प्रकाशन से प्रकाशित हुआ जिसका आवरण रांगेय राघव ने बनाया था। उनका पहला उपन्यास 'प्रेत बोलते हैं' (1951) में प्रकाशित हुआ, जो राजेन्द्र यादव के खास मित्र रामप्रकाश दीक्षित के जीवन पर आधारित था। यही उपन्यास 1959 में 'सारा आकाश' नाम से राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। बासु चटर्जी द्वारा इस उपन्यास पर फिल्म भी बनी (1972)। राजेन्द्र यादव के शब्दों में – "मेरे लिये यह तीसरा उपन्यास भी है और पहला भी। इसकी मूल कहानी को जब मैंने रफ्-रूप में लिखा था तो नाम दिया था 'प्रेत बोलते हैं'। उस कहानी ने प्रेस के दर्शन भी किये और पुस्तक का रूप भी पाया, कुछ स्नेहियों ने उसे जाना और पढ़ा भी, लेकिन वास्तविकता यह है कि यह पुस्तक बाजार में नहीं आई और न आयेगी। लगभग दस वर्ष बाद मैंने जब उसी कहानी को लगभग परिवेश और प्रभाव देने के लिये एकदम नये सिरे से लिख डाला है, नये अर्थ और अभिप्राय दिये हैं तो नाम भी नया ही दे दिया है। शायद यह नया रूप और नाम ही अधिक व्यापक है।

"सेनानी करो प्रयाण अभय, भावी इतिहास तुम्हारा है,
ये नखत अमा के बूझते हैं, सारा आकाश तुम्हारा है।"

तेरह-चौदह वर्ष पहले (1959) में किशोर मन में गूंजती दिनकर विरचित सामधेनी (1946) की ये दो पंक्तियाँ उपन्यास की नाम की प्रेरणा है। इन्हीं के सन्दर्भ में प्रस्तुत कथा अपनी सार्थकता भी खोजती हैं। अपनी पीढ़ी की ओर से बोलूँ तो कहूँ – "इस कहानी के ब्याज इन पंक्तियों को पूनः विद्रोही कवि को लौटा रहा हूं कि आज से हमें इसका अर्थ भी चाहिये। ये कहानी की पृष्ठभूमि पहले आम चुनाव से पहले की है, लेकिन वास्तविकता आज सन् (1960) या (नए संस्करण) के साथ सन् 1986 में भी बदली नहीं है।"[3]

मध्यवर्ग की अन्तर्कथा जिसे दिनकर, अपने शब्दों में कहते हैं – "आपने निम्न वर्ग की वेदना का इतिहास लिखा है, जिसे हममें से अधिक लोगों ने भूगता होगा। ....यह आग कितनी भयानक है और किस बेबसी से हम उसे पाले जा रहे हैं। कानून संसद और योजना सब बेकार हैं, सब असमर्थ हैं। .... आपने एक ऐसी समस्या के मुख पर से पर्दा खिंच दिया है जो सर्वानुभूत होने पर भी अधिकतर उपेक्षित चली आ रही है।"[4]

कलम की ताकत की सराहना करते हुए अज्ञेय ने लिखा है – "इस जोरदार और प्रभावशाली कृति के लिये बहुत-बहुत बध ाई। जिस वर्ग के और जिन लोगों के चित्र आपने खींचे हैं, उनके और उसके प्रति सच्चाई और अनासक्त ढंग की सहानुभूति का आपने अच्छा निर्वाह किया है। .... इस जोरदार और स्मरणीय कृति रचने में मेरी बधाई स्वीकार करें।"[5]

मध्यवर्गीय जीवन को राजेन्द्र यादव ने इतनी बारीकी से वर्णन करते हैं, लगता है वह जीवन स्वयं जीये हैं। अनुभवी लेखक यह प्रकट ही नहीं होने देते हैं कि लेखन की दशा अमुख पात्र का है या स्वयं का। 'सारा आकाश' उपन्यास का नायक समर नौ साल तक अपनी पत्नी प्रभा के साथ रहते हुए आपस मे बात-चीत नहीं किया। राजेन्द्र यादव के शब्दों में – "वास्तविक जीवन में वे लोग नौ साल तक इसी तरह रहे, आपस में बिल्कुल नहीं बोले। उपन्यास लिखते हुए मुझे भी लगा इसकी नौ साल वाली बात कोई मानेगा नहीं, इसलिये वह समय घटाकर एक साल भर कर दिया गया।"[6]

उनका रचना संसार इतना व्यापक है कि सभी रचनाओं को पढ़ पाना मेरे लिये सम्भव नहीं हो सका। उनक जीवन काल में ही मैंने उन पर शोध के लिए विचार बना लिया था तथा कार्य भी शुरू कर दिया था परन्तु दुर्भाग्य रहा कि उनका दर्शन नहीं कर सका।

उपन्यास

1. 'प्रेत बोलते हैं' (1951) प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, यही उपन्यास (1959) में भी 'सारा आकाश' के नाम से राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली। (अपने खास मित्र 'रामप्रकाश दीक्षित' के जीवन पर।
2. 'उखड़े हुए लोग' (195), राजकमल प्र0, नई दिल्ली।

3. 'कुलटा' (1958) मसिजीवी पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
4. 'शह और मात' (1959), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
5. 'अनदेखे अनजाने पुल' (1963), राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
6. 'एक इन्च मुस्कान' (1963), मनू भंडारी के साथ, नई दिल्ली।
   (यह उपन्यास अद्वितीय प्रयोग जो हिन्दी साहित्य में पहली बार सफलता प्राप्त किया।
7. 'मंत्र सिद्ध' (1967) अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. 'एक था शैलेन्द्र' (2006), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

कहानी संग्रह

1. 'देवताओं की मूर्त्तियाँ (1951), आलोक प्रकाशन, बीकानेरी।
2. 'खेल-खिलौने' (1953), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
3. 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' (1957), राजकमल प्र0, नई दिल्ली।
4. 'अभिमन्यु की आत्मकथा' (1959)
5. 'छोटे-छोटे ताजमहल' (1961) राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
6. 'किनारे से किनारे तक' (1962), राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
7. 'टूटना' (1966), 8. 'ढोल और अपने पार' (1986), राधाकृष्ण प्रसाद, नई दिल्ली, 9. 'चौखट तोड़ते त्रिकोण' (1987), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 10. 'वहां तक पहुँच की दौड़' राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 11. हासिल तथा अन्य कहानियाँ, (2006), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

कविता संग्रह : आवाज तेरी है (1960), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

समीक्षा निबंध : 'कहानी : स्वरूप और सम्वेदना (1968), नेशनल प्रकाशन नई दिल्ली, फिर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

प्रेमचन्द विरासत (1978), अट्ठारह उपन्यास (1981), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली औरों के बहाने (1981), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

'कहानी : अनुभव और अभिव्यक्ति' (1996), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

'आदमी की निगाह में औरत' (2001), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

'वे देवता नहीं हैं' (2001), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

'मुड़-मुड़ के देखता हूं' (आत्मकथ्य, 2001) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

'काश मैं राष्ट्रद्रोही होता' (2009), अरू पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

'कांटे की बात' (बारह खंड)

'न लिखने का कारण, अनपढ़ बनाए रखने की साजिश', गुलामी का आनन्द और स्तंत्रता के खतरे', आगे रास्ता बन्द है', 'खामोश चिन्तन चालू आहें', 'स्थगित यात्राएँ', अन्धेरों से उठती गुहार', 'खंड-खंड पाखंड', 'शब्द का भविष्य', 'प्रेत मुक्ति', सांस्कृतिक मोर्चाबन्दी का इतिहास', "मैं हंस नहीं पढ़ता", (2006 तक बारह खंड), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

सम्पादित किताबें : 'कथा यात्रा' (1965), अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।

'एक दुनिया समानान्तर' (1967), अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।

'कथा दशक' : 'हिन्दी कहानियाँ' (1981-90) 'हिन्दी अकादमी' दिल्ली।

'आत्मतर्पण (1994), प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली।

'अभी दिल्ली दूर है' (1995), प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली।

'काली सुर्खियाँ (1995), प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली।

'अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य' (2000), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

'औरत : उत्तर कथा' (2001), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

'देहरी भई विदेश' (2005), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।

'कथाजगत की बागी मुस्लिम औरतें' (2006) राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

मेरी प्रिय सम्पादित कहानियां (2007), रे माधव प्रकाशन, गाजियाबाद।

मेरी चयनित कहानियाँ (2007) नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

बाल साहित्य : घर की तलाश, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

परी नहीं मरती, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

ढोल और अन्य कहानियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

अनुवाद :

उपन्यास : हमारे युग का एक नायक (लर्मन्तोवा)

प्रथम प्रेम (तुर्गनेव)

बसंत-प्लावन (तुर्गनेव)

टक्कर (एत्तोन चेखव)

एक मछुआ एक मोती (स्टाईन बैक)

अजनबी (अल्बेर कामू)

(1994 मे से सभी उपन्यास 'कथा शिखर' के नाम से दो खंडों में प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुए)

कहानी : "नरक ले जाने वाली लिफ्ट (2002) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

नाटक : 'चेखव के तीन नाटक' 'हंसनी', 'तीन बहने', चेरी का बगीचा' राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

राजेन्द्र यादव पर सम्पादित पुस्तकें : "हमारे युग का खलनायक" राजेन्द्र यादव : (सम्पादन - भारत भारद्वाज, साधना अग्रवाल), (2005) शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, '23 लेखिकाएं' और राजेन्द्र यादव (सम्पादन-गीताश्री (2009) किताबघर), नई दिल्ली।

दिल्ली में 29 अक्टूबर 2013 रात 12:00 बजे अस्पताल ले जाते समय, लगभग 84 वर्ष की अवस्था में उन्होंने अन्तिम सांस ली। मरने के उपरान्त प्रभात-खबर दैनिक पत्र ने लिखा- राजेन्द्र यादव यानि हिन्दी साहित्य का एकमात्र सुपरस्टार, नायक-खलनायक विवाद खड़ा करने वाला शख्स, पब्लिक इन्टेलैक्चुअल, अड्डेबाज, वर्जनाओं को ध्वस्त करने वाला उत्तर आधुनिक .... राजेन्द्र यादव हमारे बीच नहीं रहे।

उनकी रचनाओं का सिलसिला जब से शुरू हुआ तब से न कहीं पड़ाव लिया, न कहीं सोंचने का समय। वे ताउम्र अपने मनोनुकूल कलम को नचाते रहे और कबीर के अन्दाज में पाठाकों को चौंकाते रहे।

हनुमान को भारत का पहला आतंकवादी राजेन्द्र यादव ही कह सकते हैं थे। निठल्ले साधु-सन्तों को ए0के0-47 से उड़ाने की बात कहने का साहस भी राजेन्द्र यादव ही कर सकते थे। वह राजेन्द्र यादव ही थे जिन्होंने दलित साहित्य को सबसे पहले मान्यता दी थी। ओमप्रकाश बाल्मीकि की दलित रचनाधर्मिता से हिन्दी लोक को परिचित कराने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है। उनकी इसी प्रतिबद्धता का परिणाम था - 'हंस' का दलित साहित्य विशेषांक। क्रांतिकारी ढंग सोचने के कारण ही उन्होंने भारतीय मुस्लिम समाज के भीतर चल रहे विमर्श को बहस के केन्द्र में लाने के लिये 'हंस' का 'भारतीय मुसलमान' विशेषांक निकाला था। इस अंक पर भी बहुत आलोचना हुई थी और ये आलोचनाएँ उनकी ओर से आई थी, जो सुधार नहीं चाहते थे। उन्होंने दोस्ती भी निभाई और दुश्मनी भी, पर अपनी विचारधारा से कभी समझौता नहीं किया।

मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में – "राजेन्द्र यादव विचार में ही नहीं व्यवहार में भी लोकतांत्रिक आदमी थे। मतभेदों से न वे डरते थे, न वे हड़बड़ाते थे और न बुरा मानते थे। मैं पीछले बीस साल से 'हंस' के लिये लिख रहा हूं। कई मुद्दों पर मतभेद के बाद भी उनसे मेरा सम्बन्ध अत्मीय बना रहा, कभी उसमें खटास नहीं आयी। उनका जाना हिन्दी साहित्य के लिये अपूर्णीय क्षति है।"[7]

मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में – "मैं इतना उपन्यास लिख गई, सचमुच अगर वे नहीं होते, तो न जाने हम जैसी कितनी स्त्रियाँ घर के बाहर नहीं निकल पाती। हमलोगों से छोटापन कभी हो भी सकता, लेकिन उन्होंने हमें हमेशा सिखाया कि कैसे व्यापक सन्दर्भ में चीजों को देखा जाता है। राजेन्द्र यादव की इस कमी को कौन पूरा करेगा? कोई पूरा नहीं करेगा।"[8]

उन्होंने युवा लेखकों की हुजुम खड़ा कर दी। कई महिला लेखिकाएँ अस्तित्व में आ गई। मन्नू भंडारी मैत्रेयी पुष्पा, मित, अर्चना वर्मा इत्यादि उनके समय की उपज हैं। मन्नू भंडारी से उनकी शादी 22 नवम्बर 1959 को कलकत्ता में हुई। उनके साथ राजेन्द्र यादव जी का 'एक इन्च मुस्कान' उपन्यास भी हैं जिसके बारे में स्वयं मन्नू भंडारी जी अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में कहती हैं – एक उपन्यास लिखकर मैंने राजेन्द्र को देखने के लिए दी, तब वह उपन्यास मेरा नहीं हमारा हो गया।'

राजेन्द्र यादव के जीवन और व्यक्तित्व को गहराई से देखने पर उनके जीवन और व्यक्तित्व के केन्द्र में लेखन दिखाई पड़ता है। सिर्फ लेखन उसे सिवा कुछ नहीं। स्वयं राजेन्द्र यादव के शब्दों में – "अगर मैं लेखक न हुआ होता तो, या तो पागल हो गया होता या आत्महत्या कर लेता।" उनके बारे में भी मन्नू भंडारी की भी टिप्पणी है कि "लिखना इनके जीवन का मार्ग भी है और मंजिल भी। इसके लिये इन्होंने जीवन में बड़े-बड़े सुख और आकर्षण छोड़े हैं और भविष्य में भी नि:संकोच छोड़ेंगे।"

प्रेमचन्द द्वारा अप्रैल 1930 में स्थापित एवं सम्पादित 'हंस' मासिक पत्रिका का अगस्त 1986 से प्रकाशन एवं सम्पादन राजेन्द्र यादव जी द्वारा जीवनपर्यन्त होता रहा। इस पत्रिका के माध्यम से ही विभिन्न विमर्शों को साहित्य की मुख्य धारा मे स्थापित किये। राजेन्द्र यादव के जीवन और व्यक्तित्व को गहराई से देखने पर उनके जीवन और व्यक्तित्व के केन्द्र में लेखन दिखाई पड़ता है। सिर्फ लेखन, उसके सिवा कुछ नहीं। स्वयं राजेन्द्र यादव के शब्दों में :

"अगर मैं लेखक न हुआ होता तो या तो पागल हो गया होता या आत्म हत्या कर लेता।"

उनके बारे में मन्नू भंडारी की भी यह टिप्पणी है – "लिखना उनके जीवन का मार्ग भी है और मंजिल भी। इसके लिये इन्होंने जीवन में बड़े-बड़े सुख और आकर्षण छोड़े हैं और भविष्य में भी नि:संकोच भाव से छोड़ेंगे।"[9]

'हंस' के स्त्री दलित औ अल्पसंख्यक केन्द्रित : विशेषांकों का प्रकाशन करके उन्होंने हाशिये के विमर्शों को जो केन्द्रीयता प्रदान की, वह स्वाधीन भारत में साहित्य, पत्रकारिता के लिये एक नई शुरूआत थी। वर्ष 1927 में 'चाँद' पत्रिका के अछूत अंक के प्रकाशन के बाद यह पहली बार था कि मुख्य धारा की किसी साहित्यिक पत्रिका का 'दलित अंक' कि 'हंस' के 'मेरी तेरी उसकी बात' सरीखे सम्पादकीय स्तम्भ के माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति के मुद्दों पर जो वैचारिक हस्तक्षेप किया, उसने साहित्यकार की भूमिका को नया आधार भी प्रदान किया। 'हंस' के पृष्टों पर प्रगतिशील लेखन आन्दोलन और उर्दू भाषा सम्बन्ध ी बहसों ने हिन्दी साहित्य संसार को उसके सरोकारों और साझी संस्कृति की जमीन की भी याद दिलायी। "दरअसल राजेन्द्र यादव अपने समुचे व्यक्तित्व और लेखन में परम्परा भंजक और विद्रोही थे। इसलिये उन्होंने अपने व्यक्तित्व और लेखन द्वारा लगातार नई बहसों और विवादों को जन्म दिया।

"स्त्री पराधीनता, पितृसत्ता के कठघरे और हिन्दू धर्म की वर्णावामी जातिगत संरचना उनके निशाने पर रही।"[10]

उनके पहले उपन्यास 'सारा आकाश' का शहरी पृष्ठभूमि की युवा मानसिकता पर केन्द्रित होना उनके अपने परिवेश के वातावरण के अनुकूल ही था। यह भी उल्लेखनीय है कि बीस वर्ष की युवावस्था में लिखे सात दशकों पूर्व प्रकाशित उनके इस उपन्यास ने उन्हें सर्वाधिक ख्याति और लोकप्रियता प्रदान की। यह स्वीकार करना होगा कि राजेन्द्र यादव ने 'हंस' के माध्यम से साहित्यिक कुलीनतावाद और कलावाद को सशक्त चुनौती दी थी। जब समूचा हिन्दी पट्टी में साम्प्रदायिकता और धार्मिक कट्टरवाद की आंध ी चल रही थी तब ऐसे दौर में उन्होंने धर्मनिरपेक्षता के पक्ष में ही नहीं बल्कि धार्मिक कूढ़मगजता के विरूद्ध भी अभियान छेड़ा था। परिणाम स्वरूप उन्हें मुकदमों, अदालतों और जमानत आदि के खतरों और झंझटों से भी गुजरना पड़ा था। सही अर्थो में राजेन्द्र यादव एक ऐसे 'पब्लिक इन्टैलेक्चुअल' थे जो राजनीति, संस्कृति और समाज पर प्रगतिशील दृष्टिकोण रखते थे। नि:सन्देह लेखन से अलग करके राजेन्द्र यादव की कल्पना नहीं की जा सकती। उनका सारा जीवन एवं व्यक्तित्व उन्हीं के इर्द-गिर्द टिका है।

सन्दर्भ

1. 'पाखी' सितम्बर 2011, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ संख्या 302
2. 'भूमिका' प्रतिनिधि कहानियाँ, मोहन गुप्त, पृष्ठ संख्या 06
3. 'सारा आकाश' भूमिका, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ संख्या 05
4. 'सारा आकाश' दो शब्द, दिनकर, पृष्ठ संख्या 02
5. 'सारा आकाश' दो शब्द, अज्ञेय, पृष्ठ संख्या 02
6. 'सारा आकाश' एक अन्तरंग, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ संख्या 06
7. 'प्रभात खबर' मैनेजर पाण्डेय, 30 अक्टूबर 2013, पृष्ठ संख्या 13
8. 'प्रभात खबर' मैत्रेयी पुष्पा, 30 अक्टूबर 2013, पृष्ठ संख्या 13
9. 'पाखी' रमेश ऋतम्भर, सितम्बर 2011, पृष्ठ संख्या 96
10. 'प्रभात खबर' वीरेन्द्र यादव, 30 अक्टूबर 2013, पृष्ठ संख्या 13

उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) का तुलनात्मक अध्ययन

अजय सिंह यादव

(शोधार्थी), शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर (उ0प्र0)

डॉ० आशाराम

(एसोसिएट प्रोफेसर), शिक्षा संकाय, राजा श्रीकृष्ण दत्त पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का अनुसरण किया गया एवं शून्य परिकल्पना के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मूल्यों के संदर्भ में शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर की जाँच की गई। प्रस्तुत शोध अध्ययन में महात्मा ज्योतिबा फूले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली (उ0प्र0) से सम्बद्ध एवं जनपद रामपुर में अवस्थित ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों से 100-100 विद्यार्थियों का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि से किया गया है। शोधार्थी द्वारा डॉ. आर.के. ओझा एवं डॉ. महेश भार्गव द्वारा निर्मित मूल्य परीक्षण का प्रयोग कर विद्यार्थियों की मूल्यों का अध्ययन किया गया है। सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन व टी-परीक्षण का अनुसरण किया गया है। निष्कर्ष के रूप में दर्शाया गया है सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य के संदर्भ में ग्रामीण एवं शहरी परिवेश के विद्यार्थियों में सार्थक अन्तर पाया गया। जिसमें सैद्धान्तिक, आर्थिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्यों में शहरी परिवेश के विद्यार्थी प्रबल पाये गये। जबकि सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक मूल्यों में ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थी प्रबल पाये गये।

1.1 प्रस्तावना

व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आकंलन उसके मूल्यों से किया जाता है। मूल्य सफलता के लिए जरूरी हैं। वैदिक काल से होते हुए, गौतम बुद्ध और महात्मा गाँधी तक अनेक महापुरुष मूल्यों के कारण इतिहास में अमर हो गए।याद रखें, जो व्यक्ति मूल्यहीन जीवन जीते हैं वे समाज में व्यर्थ माने जाते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज के लिए बोझ माने जाते हैं। मूल्यहीन व्यक्ति की जिन्दगी पंगु मानी जाती है, जिसमें कोई गति और निरन्तरता नहीं होती और सिद्धान्तों के अभाव में ऐसे लोग महत्वहीन, अनुपयोगी और परिवार के लिए

बोझ स्वरूप होते हैं। सिद्धान्त और मूल्य जीवन को ऊर्जा देते हैं। समाज हो चाहे परिवार, सबका संचालन कुछ आदर्शों और सिद्धान्तों से होता है। यदि जीवन में इनका अभाव हो जाए तो समाज का ढाँचा गड़बड़ाने लगता है। नियम जीवन को अनुशासित करते हैं। ये जीवन के आधारभूत तत्व हैं। अनियमित व्यक्ति जीवन के किसी क्षेत्र में सफल नहीं माना जाता। जीवन अनेक सत्यों, आदर्शों और नियमों के द्वारा संचालित होता है। इन्हीं के द्वारा जीवन मूल्य स्थापित होते हैं। संसार के सभी महापुरुष या सफलतम व्यक्ति अपने ऊँचे आदर्शों और मान्यताओं के कारण ही समाज में गाथा बनकर अपना नाम रोशन करते हैं। समाज सर्वदा ऐसे लोगों का अनुकरण करता है। रीढ़विहीन या लिजलिजे व्यक्ति का समाज में कभी आदर नहीं होता। ऐसे लोग सदैव आलोचना और निंदा के पात्र होते हैं।

सिंह (2017) ने अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया कि धार्मिक मूल्य के सन्दर्भ में आवासीय व गैर आवासीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। जबकि सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक व राजनैतिक मूल्यों के सन्दर्भ में आवासीय व गैर आवासीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया।

उदयवीर (2016) ने अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया कि सैद्धान्तिक मूल्य के सन्दर्भ में विज्ञान व कला वर्ग के बी0टी0सी प्रशिक्षणार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया। जबकि अन्य मूल्य जैसे- सामाजिक, सौन्दर्यात्मक, धार्मिक व आर्थिक मूल्यों के सन्दर्भ में विज्ञान व कला वर्ग के बी0टी0सी प्रशिक्षणार्थियों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

गुप्ता (2016) ने अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया कि धार्मिक, सामाजिक, प्रजातांत्रिक, सुखद व शक्ति मूल्य के सन्दर्भ में महिला व पुरुष शिक्षकों के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया है।

कुमार (2013) ने अध्ययन में निष्कर्ष के रूप में दर्शाया कि महिला तथा पुरुष शिक्षकों के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य मूल्यों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। प्रजातात्रिंक, सौन्दर्यात्मक, शक्ति तथा परिवार सम्मान मूल्यों में सार्थक अंतर पाया गया।

शोधार्थी द्वारा विद्यार्थियों के मूल्यों पर आधारित पूर्व में हुए शोध अध्ययनों का गहन विश्लेषण किया गया जिसमें विश्लेषण से यह विधित होता है कि पूर्व में हुए शोध अध्ययन अधिकांश: प्राथमिक व माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों, शिक्षकों के मूल्यों पर आधारित पाये गये जबकि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों के मूल्यों पर बहुत कम शोध अध्ययन पाये गये है जबकि मूल्य विद्यार्थी के चरित्र निर्माण के लिए एक प्रकाश की भाँति है एवं देश एवं समाज के विकास के लिए युवाओं में संतुलित मूल्य, एक आधारशीला रूप में कार्य करती है अत: शोध की महत्ता को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी व ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों का अध्ययन को शोध विषय के रूप में चयनित किया गया है।

1.2 अध्ययन के उद्देश्य

1. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) का अध्ययन करना।
2. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) का अध्ययन करना।
3. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) का तुलनात्मक अध्ययन करना।

1.3 अध्ययन की परिकल्पना

उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

1.4 न्यादर्श प्रारूप

शोधार्थी द्वारा महात्मा ज्योतिबा फूले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली (उ0प्र0) से सम्बद्ध एवं जनपद रामपुर में अवस्थित ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों से 100-100 विद्यार्थियों का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्श विधि से किया गया है।

1.5 अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए डॉ. आर.के. ओझा एवं डॉ. महेश भार्गव द्वारा निर्मित मूल्य परीक्षण का प्रयोग कर विद्यार्थियों की मूल्यों का अध्ययन किया गया है।

1.6 सांख्यिकीय प्रविधियाँ

सांख्यिकीय प्रविधि के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा मध्यमान, मानक विचलन व क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी।

1.7 अध्ययन की उपलब्धियाँ

1. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) का अध्ययन करना।

शहरी परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व वरीयता क्रम) किया गया है जिसे निम्नलिखित तालिका 01 में दर्शाया गया है।

तालिका 01: उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व मूल्यों का वरीयता क्रम)

क्र.स.	मूल्य का नाम	मध्यमान	मानक-विचलन	वरीयता क्रम
1	**सैद्धान्तिक मूल्य**	44.31	5.19	1
2	**आर्थिक मूल्य**	41.38	5.07	2
3	**सौन्दर्यात्मक मूल्य**	39.87	4.89	3
4	**सामाजिक मूल्य**	39.28	5.31	4
5	**राजनैतिक मूल्य**	37.91	5.22	5
6	**धार्मिक मूल्य**	37.25	4.16	6

तालिका 01 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा सैद्धान्तिक मूल्य प्रथम वरीयता के रूप में प्रदर्शित किया गया। जिसके लिए मध्यमान व मानक-विचलन का मान क्रमशः 44.31 व 5.19 पाया गया है। इसी प्रकार शहरी परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा आर्थिक मूल्य को द्वितीय वरीयता क्रम के रूप में प्रदर्शित किया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन का मान क्रमशः 41.38 व 5.07 पाया गया है। तृतीय वरीयता क्रम के रूप में शहरी परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा सौन्दर्यात्मक मूल्य को स्थान दिया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 39.87 व 4.89 पाया गया है। जबकि शहरी परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा सामाजिक मूल्य को चतुर्थ वरीयता (M =k 39.28, SD =k 5.31) राजनैतिक मूल्य को पंचम वरीयता (M =k 37.91, SD =k 5.22) एवं धार्मिक मूल्य को अन्तिम वरीयता (M=k 37.25, SD =k 4.16) के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि शहरी परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा सैद्धान्तिक, आर्थिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्यों को प्रथम तीन वरीयता क्रमों के रूप में अपने व्यक्तित्व में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। जबकि सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक मूल्यों को अन्तिम क्रम के रूप में वरीयता दी गयी है। सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को निम्नांकित दण्डारेख 01 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

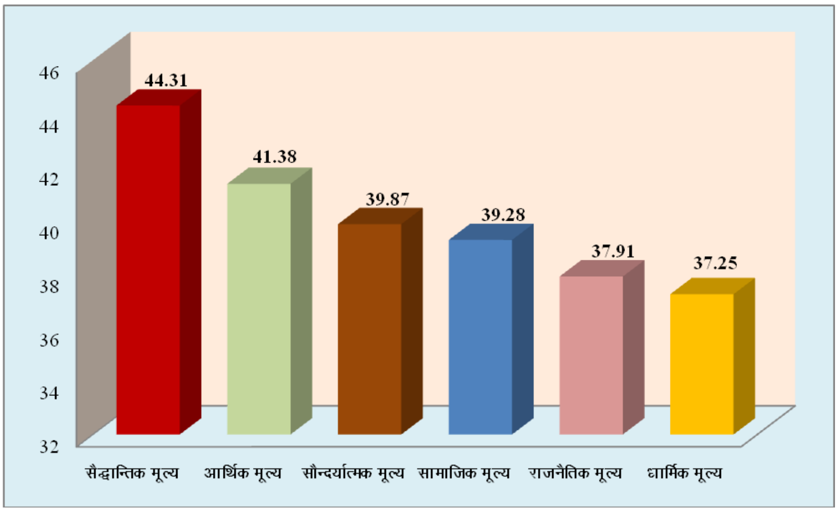

दण्डारेख 01 उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों का मध्यमान

2. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) का अध्ययन करना।

ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व वरीयता क्रम) किया गया है जिसे निम्नलिखित तालिका 02 में दर्शाया गया है।

तालिका 02: उच्च शिक्षा में अध्ययनरत ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व मूल्यों का वरीयता क्रम)

क्र.स.	मूल्य का नाम	मध्यमान	मानक-विचलन	वरीयता क्रम
1	**सैद्धान्तिक मूल्य**	42.16	5.11	1
2	**आर्थिक मूल्य**	39.01	4.89	4
3	**सौन्दर्यात्मक मूल्य**	37.89	5.19	6
4	**सामाजिक मूल्य**	41.66	5.23	2
5	**राजनैतिक मूल्य**	38.82	4.81	5
6	**धार्मिक मूल्य**	40.46	4.72	3

उपरोक्त तालिका 02 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा सैद्धान्तिक मूल्य प्रथम वरीयता के रूप में प्रदर्शित किया गया। जिसके लिए मध्यमान व मानक-विचलन का मान क्रमशः 42.16 व 5.11 पाया गया है। इसी प्रकार ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा सामाजिक मूल्य को द्वितीय वरीयता क्रम के रूप में प्रदर्शित किया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन का मान क्रमशः 41.66 व 5.23 पाया गया है। तृतीय वरीयता क्रम के रूप में ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा धार्मिक मूल्य को स्थान दिया गया है। जिसके लिये मध्यमान व मानक-विचलन क्रमशः 40. 46 व 4.72 पाया गया है। जबकि ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा आर्थिक मूल्य को चतुर्थ वरीयता (M = k 39.01, SD = k

4.89) राजनैतिक मूल्य को पंचम वरीयता (M =k 38.82, SD =k 4.81) एवं सौन्दर्यात्मक मूल्य को अन्तिम वरीयता (M=k 37.89, SD =k 5.19) के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा सैद्धान्तिक, सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों को प्रथम तीन वरीयता क्रमों के रूप में अपने व्यक्तित्व में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। जबकि आर्थिक, राजनैतिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्यों को अन्तिम क्रम के रूप में वरीयता दी गयी है। सम्बन्धित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को निम्नांकित दण्डारेख 02 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

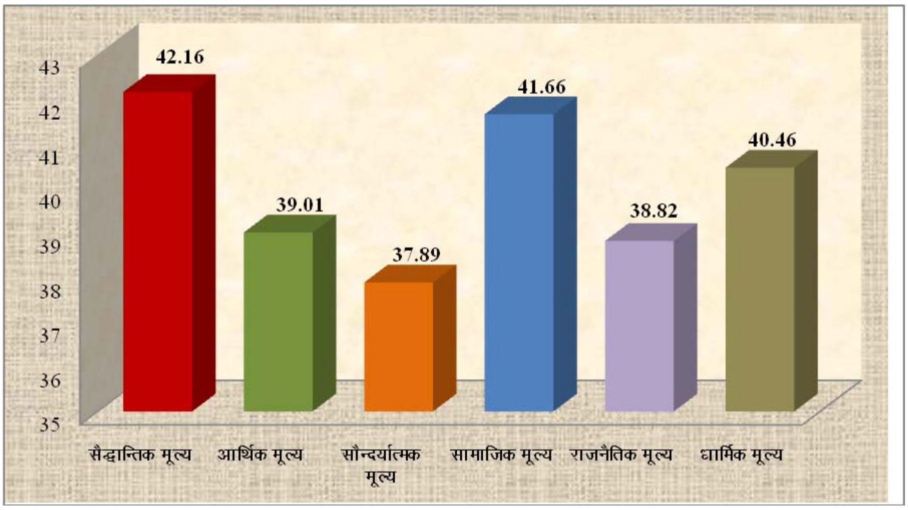

दण्डारेख 02 उच्च शिक्षा में अध्ययनरत ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों का मध्यमान

3. उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) का तुलनात्मक अध्ययन करना।

मूल्यों (सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य) के संदर्भ में उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों के मध्य सार्थक अंतर के लिये क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी एवं आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक विलचन व क्रान्तिक अनुपात) को तालिका सं. 03 में दर्शाया गया है।

तालिका 03: उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण (मध्यमान, मानक-विचलन व मूल्यों का वरीयता क्रम)

क्र.स.	मूल्य का नाम	परिवेश	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	क्रान्तिक अनुपात	मुक्तांश	सार्थकतास्तर
1	**सैद्धान्तिक मूल्य**	शहरी	100	44.31	5.19	**2.95**	198	0.01 पर सार्थक
		ग्रामीण	100	42.16	5.11			
2	**आर्थिक मूल्य**	शहरी	100	41.38	5.07	**3.36**	198	0.01 पर सार्थक
		ग्रामीण	100	39.01	4.89			

3	**सौन्दर्यात्मक मूल्य**	शहरी	100	39.87	4.89	**2.77**	198	0.01 पर सार्थक
		ग्रामीण	100	37.89	5.19			
4	**सामाजिक मूल्य**	शहरी	100	39.28	5.31	**3.19**	198	0.01 पर सार्थक
		ग्रामीण	100	41.66	5.23			
5	**राजनैतिक मूल्य**	शहरी	100	37.91	5.22	1.28	198	0.05 पर असार्थक
		ग्रामीण	100	38.82	4.81			
6	**धार्मिक मूल्य**	शहरी	100	37.25	4.16	**5.10**	198	0.01 पर सार्थक
		ग्रामीण	100	40.46	4.72			

उपरोक्त तालिका सं. 03 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों के मध्य सार्थक अन्तर हेतु क्रान्तिक अनुपात का मान क्रमशः 2.95, 3.36 व 2.77, 3.19 एवं 5.10 पाया गया। जो कि 0.01 विश्वसनीय स्तर व 198 स्वतन्त्रता अंश पर सार्थक मान है। जबकि राजनैतिक मूल्य के संदर्भ में शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों के मध्य असार्थक अन्तर (CR=k 1.28, $p<0.05$) पाया गया। अतः शून्य परिकल्पना को सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, सामाजिक एवं धार्मिक मूल्यों के संदर्भ में अस्वीकृत किया जाता है। जबकि राजनैतिक मूल्य के संदर्भ में शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। तालिका सं. 03 में दिये गये शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की मूल्यों से सम्बन्धित सांख्यिकीय मानों (मध्यमान) को निम्नांकित दण्डारेख 02 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

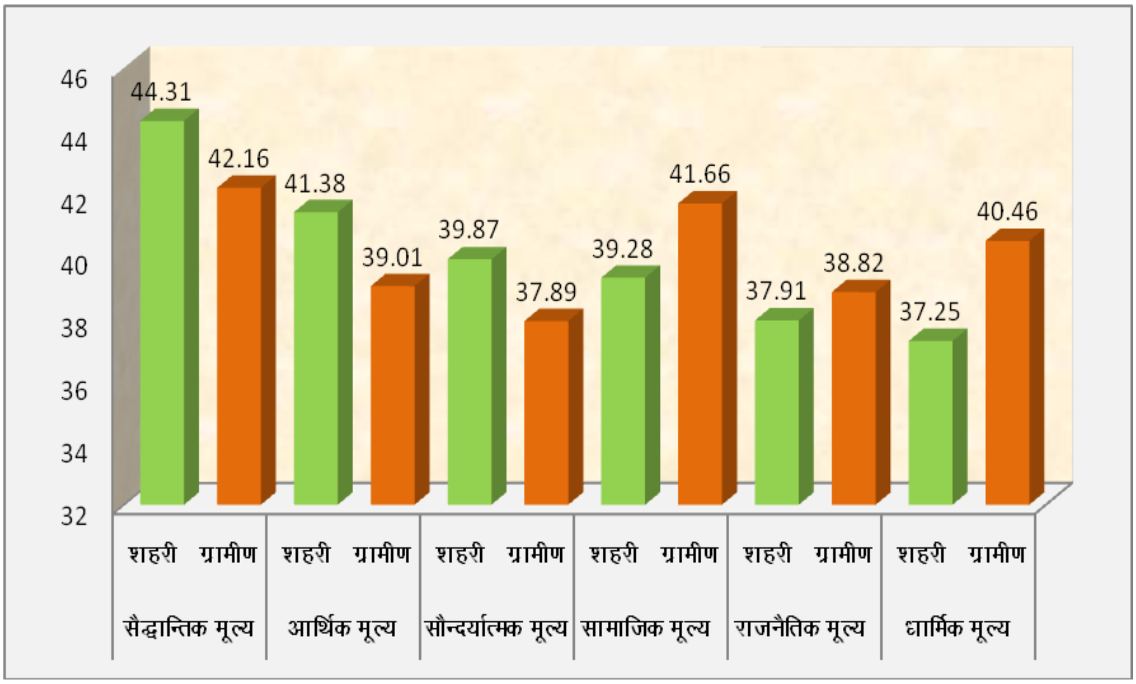

दण्डारेख 03 उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की जीवन मूल्यों का मध्यमान

1.8 निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में जीवन मूल्यों से सम्बन्धित उपलब्धियों के अध्ययन से यह पाया गया कि उच्च शिक्षा में अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों द्वारा सैद्धान्तिक मूल्य को प्रथम वरीयता दी गयी है। इसका कारण यह हो सकता है कि उच्च शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों का बौद्धिक स्तर उच्च होता है। जो प्रत्येक वस्तु को सत्य एवं तर्क की कसौटी पर मापते है। सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौन्दर्यात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य के संदर्भ में ग्रामीण एवं शहरी परिवेश के विद्यार्थियों में सार्थक अन्तर पाया गया। जिसमें सैद्धान्तिक, आर्थिक एवं सौन्दर्यात्मक मूल्यों में शहरी परिवेश के विद्यार्थी प्रबल पाये गये। जबकि सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक मूल्यों में ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थी प्रबल पाये गये। इसका कारण यह हो सकता है कि शहरी परिवेश के विद्यार्थियों का सामाजिक, आर्थिक स्तर ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों से उच्च होता है। जबकि सामाजिक परिवेश के विद्यार्थियों में सहयोग एवं धार्मिकता की भावना अधिक प्रबल पायी जाती है।

संदर्भ सूची

- कुमार, पवन (2013) "वैल्यूज ऑफ सीनियर सैकेण्डरी स्कूल टीचर्स" जरनल ऑफ एजुकेशनल एण्ड साइक्लोजिकल रिसर्च, वोल्यूम-3 (1) पृष्ठ 8-10
- सिंह, मोहन (2017) आवासीय व गैर आवासीय माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की जीवन मूल्य पर एक तुलनात्मक अध्ययन किया। पी-एच.डी. शोध ग्रन्थ दयालबाग एजूकेशनल इंस्टीट्यूट आगरा
- उदयवीर (2016) आगरा जनपद के विज्ञान व कला वर्ग के बी0टी0सी0 प्रशिक्षणार्थियों की जीवन मूल्यों में तुलनात्मक अध्ययन इंटरनेशनल जनरल ऑफ एपलाइड रिसर्च वोल्यूम-2 (10) पृष्ठ सं. 174-177
- गुप्ता, गोल्डी (2016) ए कम्पैरेटिव स्टडी ऑफ पर्सनल वैल्यूज ऑफ मेल एण्ड फीमेल सैकेण्डरी टीचर ऑफ रेवाड़ी डिस्ट्रिक्ट, इंटरनेशनल जनरल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी वोल्यूम-3 (3) पृष्ठ सं. 96-103

websites

http://repository.up.ac.za/bitstream/handle
http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/
http://web.stclair.k12.il.us/splashd/Experimt.htm.
http://www.eduresearch.duuniv.ac.in
http://www.dei.agra

कौटिल्यकालीन न्याय प्रणालीः एक अध्ययन

शिव कुमार सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सार

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कानून और न्याय-व्यवस्था को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है चूँकि राज्य की उन्नति तथा शांति इन्हीं पर निर्भर है। कौटिल्य ने इस दिशा में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया है। इसमें कोई संदेह नहीं है कौटिल्य ने अर्थशास्त्रा की रचना राजतंत्र को ध्यान में रखकर किया था। अतः कौटिल्य ने कानून और न्याय को भी राजा के अधीन कर दिया। उसने लोकतांत्रिक पद्धति के अनुसार दंड में समता के सिद्धांत को न अपनाकर जाति, लिंग तथा क्षमता के अनुसार दंड देने का प्रावधान किया है। वस्तुतः कौटिल्य ने भारतीय वर्णव्यवस्था तथा स्त्रियों के प्रति विशेष आदरभाव से प्रभावित होकर यह दृष्टिकोण अपनाया। कौटिल्य एक ओर दंड विधान को सुधारवारदी दृष्टिकोण पर आधारित होने की बात करता है तो दूसरी ओर कठोर एवं अमानुशिक दंड का प्रावधान करता है। अनेक दोषों और विशमताओं के बावजूद कौटिल्य के न्याय प्रशासन संबंधी विचार और अनुशंसाएँ महत्वपूर्ण है। न्याय प्रणाली की मुख्य उपलब्धि कौटिल्य का व्यावहारिक दृष्टिकोण है।

संकेताक्षरः दंड, न्याय, वर्णव्यवस्था, कौटिल्य, अर्थशास्त्र, जाति, लिंग।

मानव सभ्यता उद्भव के साथ ही यह जुड़ी हुई है चूँकि सभ्य समाज हम उसे ही कहेंगे जिसमें समाज के प्रत्येक सदस्य को अपनी सम्पत्ति तथा व्यक्तिगत अधिकारों को भोगने का अधिकार हो। अगर सदस्यों के बीच कोई दूसरों को अपने अधिकारों तथा सम्पत्ति को भोगने में बाधा पहुँचाता हो तो ऐसी सदस्य को उचित रास्ते पर लाने के लिए तथा पीड़ित सदस्य को राहत पहुँचाने के लिए न्याय की आवश्यकता होती है। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था में न्याय-व्यवस्था एक महत्वपूर्ण अंग होती है।

कौटिल्य के कानून के चार आधारों का वर्णन किया है- 1. धर्म,, 2. व्यवहार, 3. चरित्र, 4. राजशासन।[1] धर्म के अन्तर्गत शास्त्रों की सूक्तियाँ आती है। व्यवहार के अंतर्गत साक्ष्य, पद्धतियाँ और पारस्परिक समझौते आते हैं। चरित्र के अंतर्गत इतिहास, अभिसमय और लम्बे समय से पालन किए जाने वाली वृत्तियाँ आती हैं। राजशासन के अंतर्गत राजाज्ञाएँ तथा राज्य के आदेश या राज्य द्वारा परिगणित कानून आते हैं। कौटिल्य के अनुसार न्याय और कानून एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। न्याय का अर्थ है अच्छे-बुरे के बीच अंतर बरतना तथा व्यक्तियों के बीच उत्पन्न विवादों को निपटारा करना। कौटिल्य ने राजा को कानून का स्त्रोत तथा संरक्षक माना है परन्तु उसे मनमानी करने की छूट नहीं दी है।

कानून के दोनों प्रकार- दीवानी तथा फौजदारी का उल्लेख कौटिल्य ने भी किया है। प्राचीन भारतीय समाज वर्ण-व्यवस्था पर आधारित था जिसमें तीन उच्च वर्ण थे तथा चौथा निम्न वर्ण। तीन उच्च वर्णो में भी ब्राह्मणों को विशेषाधिकार प्राप्त था। चूँकि सामाजिक व्यवस्था असामान्य थी, अतः सभी प्रकार के नागरिक के बीच भी एक ही प्रकार का नागरिक कानून लागू नहीं किया गया था। सभी लोगों के लिए समान कानून का सिद्धांत सामान्यतः बहुत ही हाल के वर्षो का है और अभी भी पूर्ण रूप से लागू नहीं है।

कौटिल्य ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। उसके अनुसार राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह वर्ण-व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए नागरिक कानून को लागू करे। परन्तु केवल ऐसी परम्पराएँ एवं अभिसमयों को लागू करे जो प्रजाजनों के लिए हितकर हों।[2]

कौटिल्य असंगत तथा अनुचित परम्पराओं को नहीं लागू करने का अनुदेश देता है। इस संदर्भ में कौटिल्य ने साधन से अधिक साध्य पर बल दिया है। उनके अनुसार यदि किसी कार्य का परिणाम अच्छा हो तो उसके लिए अपनाये जाने वाले साधन या रूप एक प्रकार से गौण हो जाते हैं।[3]

कानून और न्याय की व्याख्या करने में कौटिल्य ने व्यावहारिक एवं तात्विक दोनों पक्षों का सहारा लिया है। उसने धर्म, नीति एवं परम्पराओं को समुचित आदर देते हुए राजाज्ञा को प्रधानता दी है। इस प्रकार उसके द्वारा कानून की दी गई व्याख्या अधिक लौकिक है। ऐसी व्याख्या कौटिल्य के पूर्व नहीं मिलती। उसने कानून को न केवल राज्य के हितों के उन्नयन का बल्कि प्रजाजनों के जानमाल की रक्षा का एक सशक्त उपकरण माना है अर्थात् यह राज्य एवं प्रजाजनों के लिए आवश्यक एवं उपयोगी है। कौटिल्य ने न केवल वैधानिक और राजनीतिक कानूनों का उल्लेख किया है, बल्कि सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक कानूनों का भी उल्लेख किया है।[4] कौटिल्य ने दो प्रकार के न्यायालयों का उल्लेख किया है- धर्मस्थीय तथा कंटकशोधन। ये दोनों न्यायालय अलग-अलग प्रकार के मुकदमें देखा करते थे। इन मुकदमें को मुख्य रूप से दो वर्गों में बाँटा गया है। प्रथम वर्ग के अंतर्गत ऐसे मामले आते हैं जिनमें राजाज्ञाओं को उल्लंघन किया गया हो, जैसे राजद्रोह आदि तथा दूसरे वर्ग के अंतर्गत मारपीट आदि। जिनका उल्लेख धर्मशास्त्रों में हुआ है। कंटकशोधन न्यायालय प्रथम वर्ग के मुकदमों पर विचार करता था तथा धर्मस्थीय न्यायालय दूसरे वर्ग के मुकदमें का।[5] धर्मस्थीय न्यायालय दीवानी मामलों के साथ-साथ फौजदारी मुकदमों की भी सुनवाई करता था। यह एक प्रकार से प्रशासकीय न्यायालय जैसा था। भ्रष्ट सरकारी पदाधिकारी अथवा कर्त्तव्य से चूकने वाले अधिकारियों की सुनवाई इसी न्यायालय द्वारा होती थी।

अर्थशास्त्र के तृतीय अधिकरण में कौटिल्य ने अनेक प्रकार के कानूनों का उल्लेख किया है, जैसे- विवाह संबंधी कानून, उत्तराधिकार से संबंधित कानून, सम्पत्ति और उससे संबंधित विवादों के लिए कानून, सामाजिक दायित्वों की उपेक्षा से उत्पन्न विवादों से संबंधित कानून, मार्ग अवरोध, गाँवों के बंदोबस्ती तथा चारागाहों से संबंधित कानून, गृह-निर्माण से उत्पन्न विवादों से संबंधित कानून, खेती और गाँव की सीमा के विवादों से उत्पन्न कानून, मकान अथवा अन्य सम्पदा के क्रय-विक्रय से संबंधित कानून, ऋण-संबंधी कानून, धरोहर संबंधी कानून, दास और श्रमिक संबंधी कानून, साझेदारी संबंधी कानून, प्रतिज्ञात वस्तु का अप्रदान संबंधी कानून, स्वामित्व से संबंधित कानून, बलात्कार तथा अपहरण संबंधी कानून, गाली-गलौज, जिन्दा एवं धमकी संबंधी कानून, मार-पीट संबंधी कानून, पशु-पक्षियों को चोट पहुँचाने, चोरी से पेड़ काटने, फल-फूल चुराने से संबंधित कानून, जुआ संबंधी कानून आदि।[6] इस प्रकार कौटिल्य ने कानून की एक लम्बी सूची दी है। उसने प्रत्येक विषय के लगभग सभी महत्वपूर्ण पक्षों को कानून के दायरे में रखा है। ये सभी कानून धर्मस्थीय न्यायालय के दायरे में आते हैं।

कण्टकशोधन न्यायालय के अंतर्गत जो विषयों पर विचार किया जाता था। ये इस प्रकार हैं- कारीगरों से प्रजा की रक्षा, व्यापारियों से रक्षा, राष्ट्रीय संकट का हल, गतल ढंग से जीवन यापन करने वालों का दमन, अपराधी प्रवृत्ति के युवकों का पता लगाना, अपराधियों को शक के आधार पर पकड़ना, आकस्मिक मृत्यु का परीक्षण, स्वीकारोक्ति के लिए उत्पीड़न, सभी राजकीय विभागों की रक्षा, अंगभंग करने पर जुर्माना, नाबालिगों के साथ यौन-संबंध, न्याय की अवहेलना करने पर दंड आदि। इस सूची को देखने से ऐसा लगता है कि धर्मस्थीय न्यायालय के क्षेत्र में आने वाली विषय पर भी कण्टकशोधन न्यायायल विचार कर सकता था। धर्मस्थीय न्यायालय प्रत्येक संग्रहण, द्रोणमुख, स्थानीय तथा जिला, जहाँ जिलों की सीमा मिलती थी-स्थापित किए जाते थे। कण्टकशोधन न्यायालय का कार्य था कि शांति व्यवस्था को भंग न होने दे। कौटिल्य के अनुसार मनुष्य में जन्मजात अपराधी प्रवृत्ति होती है जो एक बीमारी की तरह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को संक्रमित करती है। इसलिए कौटिल्य अपराधी प्रवृत्ति को ही समाप्त करना चाहता था। उसके अनुसार जब अपराध से मुक्ति मिलती है तो कोई अपराधी नहीं रहता परन्तु जब अपराधी से मुक्ति पाया जाता है तो वह दूसरों को संक्रमित करता है।

कौटिल्य के अनुसार कानून और न्याय के बीच गहरा संबंध है, इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। न्याय का आधार ही कानून है। कानून प्रजाजनों के हितों की रक्षा के लिए होता है और न्याय इनके अनुपालन की गारंटी देता है। कौटिल्य के अनुसार

दंडनीति व्यक्ति के जीवन की सुरक्षा तथा निर्भयता के लिए आवश्यक है। राजा का कर्त्तव्य है कि न्याय का वितरण कर प्रजा के हितों की रक्षा करें।

कौटिल्य ने कानून के चार अंगो (धतुश्पद) का वर्णन किया है जिसमें 'व्यवहार' एक है। नागरिकों के पारस्परिक संपर्को के फलस्वरूप होने वाले कलह के मूल कारणों की खोजकर उनकी विवेचना करना और दोशियों को उसके अनुसार दंडित करने की कौटिल्य तथा अन्य भारतीय आचार्यो ने व्यवहार की संज्ञा दी है। कौटिल्य ने व्यवहार के विषयों को सूचीबद्ध न करके उनका अलग-अलग वर्णन किया है। उसने उनके लिए अलग-अलग दंड का भी विधान किया है।

कौटिल्य ने धर्मस्थीय न्यायालय में तीन धर्मस्थों की नियुक्ति का उल्लेख किया है जो अमात्य श्रेणी के होते थे। न्याय पाने के इच्छुक नागरिकों की सुविधा के लिए सीमावर्ती क्षेत्र, संग्रहण, द्रोणमुख तथा स्थानीयों में होना चाहिए ताकि वहीं वे न्याय कर सकें। इन न्यायालयों के न्यायाधीशों की धर्म का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक था। कण्टकशोधन न्यायालयों के न्यायाधीश, जो उच्च प्रशासनिक अधिकारी हुआ करते थे, से भी धर्म (कानून तथा न्याय) के ज्ञान की अपेक्षा की गई है।[7] न्यायपालिका तथा प्रशासन में पूर्ण अलगाव नहीं था और प्रशासनिक अधिकारी कण्टकशोधन न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करते थे।[8] न्यायालय के संबंध में कौटिल्य ने जो दूसरी महत्वपूर्ण व्यवस्था दी है वह यह एक मुख्य न्यायाधीश के बदले उसने कई न्यायाधीशों को संयुक्त रूप से न्याय वितरण की जिम्मेदारी सौंपी है।[9] कौटिल्य संग्रहण, द्रोणमुख, स्थानीय आदि में न्यायालयों की स्थापना का उल्लेख तो करता है परन्तु न्यायालयों की विभिन्न श्रेणियाँ थी या नहीं इसका उल्लेख नहीं करता। राजा के समक्ष अपील तो सर्वमान्य था परन्तु निचली अदालत के निर्णय के विरूद्ध उसके बड़ी अदालत में अपील की संभावना थी या नहीं इसकी जानकारी नहीं मिलती है।[10]

धर्मस्थीय तथा कणटकशोधन न्यायालयों के अतिक्ति गाँवों में ग्राम वृद्धों तथा सामंतों द्वारा न्याय कार्य सम्पादित करने की अनुशंसा कौटिल्य ने की है। उसके अनुसार स्थानीय महत्व के विवादों के निपटारें के लिए अर्थात् इस संबंध में न्यायोचित निर्णय लेने के लिए स्थानीय न्यायालयों की स्थापना की जानी चाहिए। यदि किसी विषय पर ग्राम वृद्ध अथवा सामंत किसी विवाद के निर्णय देने में एकमत नहीं होते थे तो वहाँ की जनता की अनुमति लेकर धार्मिक पुरुषों से न्याय करने का आग्रह करने का प्रावधान था।[11] यह कहा गया था कि अगर मामला गाँव की सीमा से संबंधित हो तो दोनों के सामंतों अथवा आस-पास के पाँच-पाँच अथवा दस गाँवों के मुख्य अधिकारियों को निर्णय लेने की जिम्मेदारी सौंपनी चाहिए।

कौटिल्य ने न्यायिक प्रक्रिया पर सम्यक् प्रकाश डाला है। यहाँ हम धर्मस्थीय न्यायालय में अपनाई जाने वाली न्यायिक प्रक्रिया का विशेष रूप से उल्लेख करेंगे। किसी विषय पर विवाद उत्पन्न होने पर वादी अपनी शिकायत अदालत में दर्ज करते थे। न्यायालय का लेखक इस शिकायत को पुस्तिका में दर्ज करता था। लेखक इस संबंध में अपेक्षित जानकारियाँ दर्ज करता था, जैसे शिकायत दर्ज करने का समय, दिन, महीना, साल, स्थान तथा वादी एवं प्रतिवादी से प्राप्त जानकारियाँ, न्यायाधीश शिकायत की समीक्षा करता था। फिर शिकायत की सुनवाई की प्रक्रिया प्रारंभ होती थी। वादी एवं प्रतिवादी अपना बयान दर्ज कराते थे तथा न्यायाधीश द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते थे। न्यायालय का लेखक इन सभी को अपनी पुस्तिका में दर्ज करता था। न्यायालय को गवाह आदि को बुलाने में तथा अन्य छिटपुट मद में व्यय करना पड़ता था, इसलिए वादी एवं प्रतिवादी दोनों को कुछ धन न्यायालय में जमा करना पड़ता था। अगर वादी अथवा प्रतिवादी अपनी प्रथम बयान में हेरफेर करता था तो वह हार जाता था। वह केवल मुकदमा ही नहीं हारता था बल्कि उसे बाद में जितने धन पर विवाद हो उसका पाँचवा भाग जुर्माने के तौर पर देना पड़ता था। मुकदमा हारने वालों को न्यायालय में काम करने वाले सेवक को दैनिक भत्ता देना पड़ता था जिन्हें पण का आठवाँ भाग मुकदमें में संवादक के कार्य के लिए मिलता था।[12] मुकदमें में गवाह की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी।[13] अचल सम्पत्ति के संबंध में निर्णय पड़ोसी की गवाही पर लिया जाता था। दो गाँवों का सीमा-विवाद, आस-पास के पाँच गाँवों के कुछ लोगों के द्वारा सुलझाया जाता था।[14]

कौटिल्य के तीन प्रकार के प्रमाणों का उल्लेख किया हैं, जैसे-लिखित प्रमाण,साक्ष्य प्रमाण और युक्ति प्रमाण। लिखित प्रमाण को सर्वाधिक महत्व दिया गया है।[15] परन्तु ऐसे लिखित प्रमाणों को महत्व नहीं दिया गया है जो गुप्त रीति से घर के अंदर रात में, जंगल में छल-कपट से और एकांत में किए गए व्यवहार संबंधी लेख। कौटिल्य साक्ष्य प्रमाण को द्वितीय कोटि का प्रमाण मानता

है। कौटिल्य के अनुसार साक्षी के चरित्र, घटना के संबंध में उसकी जानकारी पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। कौटिल्य ने साक्ष्य देने के संबंध में अयोग्यों की सूची प्रस्तुत की है। ऋण, सम्पत्ति आदि से संबंधित दीवानी मुकदमों में दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते थे। कम से कम तीन विश्वसनीय साक्षियों का होना आवश्यक है। परन्तु पत्नी का भाई, सहयोगी, कर्जदार, शत्रु, विकलांग, कारावास की सजा प्राप्त अथवा किसी से लेन-देन करने में अयोग्य साक्षी नहीं हो सकता था। राजा, श्रोतिव, ग्राम सेवक, कुष्ठ रोगी, घायल, भ्रष्ट पुरुष, चाण्डाल, गलत धंधा करने वाले, अंधा, बहरा, गूंगा, आत्म प्रशंसक, स्त्री, राज्याधिकारी आदि को मुकदमा में दोनों पक्षों में से कोई भी साक्षी के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकता था। दीवानी मालमों के संबंध में कौटिल्य ने साक्ष्य के लिए अयोग्य व्यक्तियों की लम्बी सूची दी है, परन्तु गहरा घाव देने, चोरी तथा यौन संबंध के संबंध में केवल शत्रु, पत्नी के भाई तथा सहयोगी का उल्लेख कौटिल्य ने अयोग्य साक्ष्य की श्रेणी में किया है।

साक्ष्य देने वाले को शपथ लेनी पड़ती थी। विभिन्न वर्णो के लिए विभिन्न प्रकार के शपथ थे। अगर यह ज्ञात होता था साक्षी ने गलत साक्ष्य दिया है तो उसे जुर्माना देना पड़ता था। जब दोनों पक्षों की ओर से साक्षियों द्वारा साक्ष्य दे दिया जाता था तो न्यायाधीश बहुमत का ध्यान रखते हुए निर्णय लेता था अथवा मध्यम मार्ग अपनाता था। अगर साक्ष्य एक-दूसरे के विरूद्ध है तो विवादास्पद धन राजकोश में जमा कर दिया जाता था। कौटिल्य के अनुसार जो सही साक्ष्य नहीं देते थे उन्हें 24 पण 47 और जो साक्ष्य देना अस्वीकार करते थे उन्हें 12 पण जुर्माना देना पड़ता था। अगर किसी मामले में कोई साक्षी उपलब्ध नहीं होता था तो न्यायाधीश स्वयं उस स्थान पर जाकर अन्वेशण करते थे।

कौटिल्य ने लिखित और साक्ष्यों प्रमाणों के अतिरिक्त युक्ति प्रमाणों का उल्लेख किया है। इस संबंध में उसने कहा है कि अगर कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति द्वारा दस वर्शो तक अपनी सम्पत्ति को भोगते देखकर भी कुछ नहीं करता तो उस सम्पत्ति पर उसका अधिकार वस्तुतः समाप्त समझा जायेगा।

दंड अवस्था पर भी कौटिल्य ने प्रकाश डाला है। उसने विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिए विभिन्न प्रकार के दंडों का उल्लेख किया है। उसने यातना के चार प्रकारों का उल्लेख किया है- छड़ी से छः बार मारना, कोड़े से सात बार मारना, दो बार उल्टा लटकाना और नाक के छेद में नली डालकर पानी डालना। अधिक जघन्य अपराध के लिए इससे भी अधिक उत्पीड़क यातनाओं का कौटिल्य ने उल्लेख किया है। संदिग्ध अपराधी से अपराध की स्वीकृति के लिए यातना दी जाती थी। कभी-कभी यातना का भय चोरी नहीं करने पर भी चोरी स्वीकार करने को बाध्य करता था। कौटिल्य ने इस संदर्भ में अहि-माण्डक्य का उल्लेख किया है जिसने चोरी नहीं करने पर भी चोरी करना इसलिए स्वीकार किया कि वह यातना से भयभीत था। इसलिए कौटिल्य ने इस संबंध में सावधानी बरतने को कहा है। उसने ऐसे निम्नलिखित व्यक्तियों को यातना नहीं देने का निर्देश दिया है जैसे- छोटे-मोटे अपराध करने वाले, नाबालिग, वृद्ध, बीमाार, नशा में धुत, पागल, भूखा, प्यासा, अधिक भोजन किये हुए, जिसे अजीर्ण हो, कमजोर आदि। गर्भवती अथवा एक माह पूर्व बच्चें को जन्म देने वाली को दोषी होने पर यातना नहीं देनी चाहिए। अन्य स्त्रियों को पुरुषों के लिए निर्दिष्ट यातना का आधा ही दिया जाना चाहिए। ब्राह्मणों को यातना से मुक्त रखा गया है। यातना एक दिन बीच देकर देना चाहिए और एक दिन में केवल एक ही प्रकार की यातना देनी चाहिए। इस प्रकार यातना देने में भी दया का भाव दिखाई पड़ता है। अर्थात् कौटिल्य यातना के प्रयोग को केवल सच्चाई जानने का माध्यम मानता है न कि यातना देकर अधिक दर्द देना अथवा मृत्यु देना। परन्तु ऐसे संदिग्ध व्यक्ति जो पहले भी जघन्य अपराध को दोषी पाया गया हो, ऐसा व्यक्ति जो पहले दिए गए स्वीकृति से पलट जाए, जिसके पास से चोरी हुए धन प्राप्त हों, जो अपराध करते हुए रंगे हाथ पकड़ा जाए अथवा जो राजकोष से गबन करे, उसे अधिक तथा बार-बार यातना दी जा सकती है।

कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार के दंडों का उल्लेख किया है। जुर्माना, अंग-भंग, कारागार, मृत्युदंड यातना के साथ अपना यातना के बिना का उल्लेख दंड के रूप में किया गया है। सामान्यतया जुर्माना के रूप दंड दिया जाता था परन्तु जघन्य अपराध के लिए कारागार के साथ जुर्माना भी लिया जाता था। अगर कोई बुनकर स्त्री बुनकर के चेहरा को देखता था तो उसे जुर्माना देना पड़ता था। अगर कोई गृहस्थ अपने आरक्षितों के लिए कोई व्यवस्था किए बिना सन्यास लेता था तो उसे जुर्माना देना पड़ता था। अगर कोई गण्किा राजाज्ञा के बावजूद किसी पुरुष को स्वीकार नहीं करती थी तो उसे 5000 पण दंड देना पड़ता था। इसी तरह अगर व्यापारी नियम विरूद्ध कार्य करता था तो उसे जुर्माना देना पड़ता था। निम्नतम जुर्माना 54 अथवा 96 पण होता था।[16]

अगर स्त्री बुनकर स्वीकार किए गए काम को पूरा नहीं करे तो उसका अंगूठा अथवा मध्य अँगुली का ऊपरी पोर काट दिया जाता था। वस्तुतः एक सम्पूर्ण अध्याय अंग-भंग पर अर्थशास्त्र में दिया गया है। मुर्गा, कुत्ता आदि की चोरी जैसे छोटे अपराध पर भी अंग-भंग की सजा दी जाती थी। बंदीगृह में भी अपराधियों को भेजा जाता था। यह दंड तो दिया जाता था परन्तु जुर्माना अदा कर अथवा शारीरिकश्रम के द्वारा बंदीगृह से मुक्ति मिल सकती थी। मृत्युदंड सबसे बड़ा दंड था जो व्यक्ति आग लगाने का दोषी पाया जाता था उसे आग में झोंक दिया जाता था। राजकीय मुहर अथवा कागजात का नकल करने, मनुष्य का मांस बेचने वाला, मंदिर की सम्पत्ति चुराने वाला, किसी को जान से मारने वाला, राजकीय सम्पत्ति चुराने वाला, बाँध को नुकसान पहुँचाने वाला आदि मृत्युदंड का भागी होता था अर्थात् कौटिल्य अपराधियों को अपराध करने की प्रवृत्ति अर्थात् अपराधिक प्रवृत्ति को समाप्त करने के सिद्धांत पर विश्वास करता था। उसने इस बात का उल्लेख किया है कि बंदीगृह में रहने वाले अपराधियों के आचरण का समय-समय पर निरीक्षण करना चाहिए। कौटिल्य अपराधियों के सुधार में विश्वास करता था।

संदर्भ

1. अर्थशास्त्र, 3/13/39
2. डॉ. मणिशंकर प्रसाद, कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार पृष्ठ संख्या 81
3. वही
4. अर्थशास्त्र, 3/1/38
5. वही
6. डॉ. मणिशंकर प्रसाद, पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ संख्या 82
7. अर्थशास्त्र, 1/10/3
8. वही
9. वही
10. वही
11. डॉ. मणिशंकर प्रसाद पूर्वोक्त, ग्रंथ, पृष्ठ संख्या 84
12. अर्थशास्त्र, 3/1/17-36
13. अर्थशास्त्र, 3/8/1
14. अर्थशास्त्र, 3/8/9-10
15. डॉ. मणिशंकर प्रसाद, पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ संख्या 85
16. अर्थशास्त्र, 4/8/26

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास : "आपका बंटी" (एक संक्षिप्त विवेचन)

डॉ० मनीषा मिश्रा

17/61, शिब्ली मंजिल रोड़ आराजी बाग, आजमगढ़

साठ के दशक में काव्य के क्षेत्र में जिस प्रकार परिवेशजन्य कुण्ठा संत्रास, हताशा, निराशा, संबंधों में टकराहट, अजनबीपन आदि की अभिव्यक्ति हो रही थी कुछ इसी प्रकार के विषय कथा साहित्य में भी स्थान ले चुके थे। परस्पर विचारों की टकराहट तद्जन्य तनाव अलगाव, विद्वेष, कुंठा आदि जैसे भावों की अभिव्यक्ति आधुनिक कथा साहित्य में देखने को मिलती है। कुछ ऐसे तत्वों से युक्त विषय को ही मन्नू भण्डारी ने अपने उपन्यास 'आपका बंटी' का आधार बनाया है। लेखिका का मानना है कि आज के युग में बंटी की समस्या किसी परिवार विशेष की न रहकर बल्कि आम समस्या बन गई है। पति-पत्नी के अहम की टकराहट के बीच पिसता बच्चा स्नेह, ममता से वंचित होकर किसी अवांछनीय वस्तु की भाँति घर के किसी कोने में पड़ा रहता है। समाज में तेजी के साथ फैल रही तलाक की समस्या परिणामस्वरूप तमाम मनोवैज्ञानिक रोगो का शिकार होते बच्चे एक भयानक सच के रुप में उभर रहे हैं। लेखिका का मानना है कि ऐसी समस्या एक परिवार मात्र को ही अथवा पीढ़ी को ही नहीं बल्कि कई परिवार, पीढ़ी को प्रभावित करती हैं। मनोविज्ञानिक कुंठा के शिकार बच्चे भय, आतंक, असुरक्षा, हीन भावना आदिके शिकार हो जाते है जो भविष्य में आपराधिक मनोवृत्ति को जन्म देते है। माता-पिता की व्यक्तिगत आकांक्षाओ अहम असंतुष्टि तनाव की दोतरफा मार झेल रहे बच्चे का मन्नू भण्डारी ने अपने उपन्यास ४आपका बंटी' में अत्यन्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है।

परस्पर दांपत्य के टकराहट, तनाव और विखण्डन का कारण चाहे कुछ भी हो, उसकी त्रासदी को सबसे अधिक झेलता वह बच्चा है जो हर प्रकार से बेकसूर है। शकुन और अजय जो बंटी के माता-पिता हैं अपने अहम और विचारों की टकराहटों के बीच एक दूसरे को गलत सिद्ध करने में लगे रहते हैं और निर्दोष बंटी उनकी उपेक्षा का शिकार हो कर तनाव के दंश का सहता रहता है। बंटी के माता-पिता अपनी इच्छाओं की तृप्ति और परस्पर बंधन से मुक्ति तथा स्वतंत्र जीवन जीने की आकांक्षा मे बंटी के प्रति दायित्व से दूर होते जाते हैं और एक स्थिति यह भी आती है कि बंटी अब 'हमारा' न रहकर आपका हो जाता है। दोनों ही उसे अपनी स्वतंत्र जीवन शैली में बाधक समझ उसकी जिम्मेदारी एक दूसरे पर डालकर परस्पर एक दूसरे को दायित्व बोध कराना चाहते हैं।

बंटी एक ऐसे माता-पिता का इकलौता बेटा है जिनमें अलगाव हो चुका है। बंटी माँ शकुन के साथ रहता है जो एक कॉलेज में प्रिंसिपल है और स्वभाव से बहुत सख्त अनुशासनप्रिय और महत्वाकांक्षी महिला हैं। बंटी के पिता भी अहम से पूर्ण स्व को प्रधानता देने वाले पुरुष हैं और उन्होंने कलकत्ते में दूसरा विवाह भी कर लिया है। शकुन घरेलू महिला की भाँति बंटी को वह स्नेह, विश्वास, ममता नहीं दे पाती जो अपेक्षित है बल्कि भौतिक सुख-सुविधा से उसे संतुष्ट करना चाहती है जबकि बंटी माँ से वही प्यार दुलार और अधिकार चाहता है जो उसके हमउम्र अन्य बच्चों को मिलता है। मायूस बंटी हमेशा गुमसुम अपनी कल्पनाओं में खोया रहता है। माता-पिता के अहम की टकराहट और अलगाव के दंश को झेलता बंटी मात्र एक परिवार की ही त्रासदी को नहीं दर्शाता बल्कि आज यह सैकड़ों परिवार की त्रासदी बन गया है। माता-पिता के इस विलगाव बाल सुलभ क्रिया कलाप कहीं खो जाते है और उनका स्थान ले लेती है - तमाम आशंकाएँ, चिन्ताएं और ढ़ेरों प्रश्नङ्क पर मम्मी-पापा की लड़ाई क्यों हुई? मम्मी कभी पापा की बात नहीं

करती। पापा आते हैं तो सर्किट हाऊस में क्यों ठहरते? मम्मी को बुलाते भी नहीं, मम्मी की बात भी नहीं करते। क्या इतने बड़े लोग भी लड़ते हैं? ऐसी लड़ाई जिसमें कभी दोस्ती न हो! क्या मम्मी को पापा की याद नहीं आती होगी?

पारिवारिक कलह के परिणामस्वरूप घर का विषाक्त माहौल कड़ुवाहट तथा घुटन के वातावरण ने न सिर्फ बड़ों को प्रभावित किया है बल्कि बच्चों की भी सोचने समझने की दिशा को बदल दिया है। बच्चा समय से पहले वयस्क हो उठता है। जैसे बंटी के मन में उठते ये सवाल– मम्मी उसे पापा की बात बताती क्यों नहीं है? कितनी ही बार उसने मम्मी से बात करनी चाही पर जब भी वह ऐसी बात करता है मम्मी का चेहरा जाने कैसा कैसा हो जाता है। अहम की टकराहट संबंध में कैसी तीव्र कड़ुवाहट उत्पन्न करती है यह इन अंशों मे स्पष्ट होता है। समझौते का प्रयत्न भी दोनो में एक अंडरस्टैडिंग पैदा करने की इच्छा से नहीं होता था वरन् एक दूसरे को पराजित करके अपने अनुकूल बना लेने की आकांक्षा से तर्कों और बहसों में दिन बीतते थे और ठंडी लाशों की तरह लेटे-लेटे एक दूसरे को दुखी, बेचौन और छटपटाते हुए देखने की आकांक्षा में रातें।

माता पिता के बीच का तनाव बच्चों के कोमल मन पर, भावनाओं पर कैसा आघात करता है इसका सूक्ष्म निरीक्षण लेखिका ने बंटी के विभिन्न क्रिया-कलापों में किया है। बंटी पापा के साथ तांगे में बैठा तो मन एकदम हल्का होकर दूसरी ओर दौड़ गया। पापा को देखकर मम्मी को कैसा लगेगा? एकदम खुश हो जाएगी। वह खींचकर पापा को अन्दर ले जायेगा और मम्मी का हाथ पापा का हाथ मिला देगा चलो कुट्टी खत्म फिर मम्मी और वह मिलकर पापा को जाने ही न देंगे।

विघटित परिवार का बच्चा हर पल किस प्रकार तमाम आशंकाओं एवं भय के बीच जीता है इसे लेखिका ने कई जगह चित्रित किया है- "मम्मी नहीं बोलेगी तो कैसे रहेगा वह? इम्तहान भी तो शुरू होने वाले हैं कौन पढ़ायेगा उसे?" एकाएक बंटी का मन रोने का हो आया।

जिज्ञासा जो बालक का स्वाभाविक गुण है वह भी विघटित परिवार में बाल सुलभ नहीं रह जाती बल्कि आशंका मिश्रित तमाम प्रश्नों के रूप में उभरती है और बंटी का बाल मन स्वयं ही उन प्रश्नों द्वारा समस्याओ का हल ढूँढ़ने की चेष्टा करता है- "पर वह भी किसी की चीज है क्या? है तो किसकी? मम्मी की या पापा की?" अजय और शकुन के स्वतंत्र रूप से अपनी इच्छानुसार जीने की आकांक्षा के बीच बंटी एक अवांछित तत्व के रूप में दिखाई पड़ने लगता है और अन्त में उसे हास्टल भेजने का निर्णय लेकर दोनों परोक्ष रूप से उससे छुटकारा पाने का उपाय ढूँढ़ लेते हैं। नि:सन्देह मन्नू भण्डारी ने महात्वाकांक्षी पति-पत्नी और उनके तनाव और टकराहट के बीच पिसते मासूम बच्चे 'बंटी' के मनोविज्ञान का बड़ा ही सूक्ष्म और प्रभावात्मक चित्रण किया है। संक्षिप्त संवादों के माध्यम से उन्होंने हर पात्र के अंतर्मन को जिस प्रकार उद्घाटित किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

भारत की स्वतंत्रता संग्राम में चंपारण सत्याग्रह का महत्व

उषा कुमारी

पी.एच.डी. राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय

चम्पारण सत्याग्रह की शुरुवात

भारत की स्वतंत्रता हमारे इतिहास में एक बड़ी जीत रही है, यह महत्वपूर्ण स्वंतत्रता सैनानियों द्वारा एक नहीं बल्कि विभिन्न आंदोलनों के माध्यम से प्राप्त किया गया था। एक ऐसा महत्वपूर्ण आंदोलन जिसने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक प्रमुख भूमिका निभाई, वह था "चंपारण सत्याग्रह", जिसे आमतौर पर भारत के पहले सविनय अवज्ञा आंदोलन के रूप में भी जाना जाता है। इस आंदोलन का नेतृत्व बिहार के चंपारण जिले में महात्मा गांधी ने किया था। इस आंदोलन ने महात्मा गांधी के विरोध के सत्याग्रह मोड को लागू करने के पहले प्रयास को चिह्नित किया। "सत्याग्रह" का मतलब था, ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के खिलाफ सामूहिक जनसंख्या द्वारा एक निष्क्रिय, अहिंसक, नागरिक प्रतिरोध। यह आंदोलन विशेष रूप से चंपारण के किसानों की स्थिति पर केंद्रित था। अंग्रेजों ने चंपारण के किरायेदार किसानों को बड़े पैमाने पर इंडिगो की फसल उगाने का आदेश दिया था। महात्मा गांधी ने चंपारण जिले के लोगों को अपनी महान वकीलों की मदद से उन्हें शिक्षित करने के साथ-साथ उन्हें आत्मनिर्भर होने और जीविकोपार्जन के विभिन्न तरीकों को सिखाकर आर्थिक रूप से स्थापित करने में सक्रिय भूमिका निभाई। यह आंदोलन मूल रूप से ब्रिटिश द्वारा बलपूर्वक लगाए गए प्रतिबंधों की अवहेलना करने के बारे में था, और यह ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा इंडिगो की खेती के इस जबरदस्त क्रम को हटाने के संदर्भ में एक उल्लेखनीय सफलता थी और यह भी चिह्नित था, एक नए युग की शुरुआत हुई, यह भारत का पहला सविनय अवज्ञा आंदोलन था। ब्रिटिशों को अपने आदेश वापस लेने के लिए मजबूर किया गया था, और यह भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करने के करीब एक कदम था। इसलिए, इसे भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है।

महात्मा गाँधी का आगमन

इस आंदोलन ने अविश्वसनीय सफलता के इस मोड़ को कैसे लिया यह अपने आप में एक कहानी है। महात्मा गांधी एक दूरदर्शी व्यक्ति थे, और उनके व्यक्तित्व में वह चुंबकीय आभा थी, उनके भाषणों में सभी लोगों को एक साथ लाने का आकर्षण था। अप्रैल 1917 में, बिहार के पूर्वी चंपारण जिले के मोतिहारी रेलवे स्टेशन पर, वहां जमा हुए लोगों ने मोहनदास करमचंद गांधी की एक झलक देखी। चंपारण में उनके आगमन से न केवल उस क्षेत्र के लोगों के जीवन में बदलाव आया, बल्कि इसने भारत की स्वतंत्रता संग्राम की शुरुआत की एक नई क्रांति की शुरुआत भी की। वर्षों की यातना से आजादी पाने के लिए एक नया जोश और जुनून मिला। ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के लिए चंपारण के किसान इंडिगो की फसल उगाने के लिए मजबूर थे। इंडिगो, एक फसल जो डाई बनाने के लिए इस्तेमाल की जाती है, वह अंग्रेजो के लिए पैसा बनाने वाली फसल बन गई। प्रथम विश्व युद्ध में उनकी भारी हार के कारण जर्मनों द्वारा किए गए सिंथेटिक डाई की मंदी के बाद इंडिगो की मांग तेजी से बढ़ी। यह प्राथमिक कारण था, ब्रिटिशर्स

जो इंडिगो की खेती के साथ कमा सकते थे, उच्च स्तर ने नए भूमि कानूनों के निर्माण को मजबूर किया, जो इंडिगो उत्पादन को अधिकतम करने पर ध्यान केंद्रित करते थे जो किसानों की भलाई के लिए कोई विचार नहीं करते थे।इसने किसानों को बहुत दुख और पीड़ा दी, महात्मा गांधी इन किसानों की परिस्थितियों में सुधार करना चाहता था, और उन्हें बेहतर आत्मनिर्भर जीवन जीने में मदद करना चाहता था।

चम्पारण सत्याग्रह के उद्देश्य

चंपारण सत्याग्रह के दो प्रमुख उद्देश्य थे, एक तो किसानों की दुर्दशा को बदलना था, जिनका लगातार शोषण हो रहा था। महात्मा गांधी ने न केवल औपनिवेशिक अधिकारियों के खिलाफ असंतोष करके, बल्कि चंपारण के गांवों के किसानों और जनता को शिक्षित करके और उन्हें विभिन्न शिल्प सिखाकर, जहां वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो सकते थे और खुद को बनाए रख सकते थे, को पूरा किया।महात्मा गांधी के लिए इस आंदोलन का दूसरा उद्देश्य अपने सत्याग्रह को औपचारिक रूप से अमल में लाना था; आम जनता को शामिल करके अहिंसक तरीकों से ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार के प्रति निष्क्रिय प्रतिरोध। इस आंदोलन ने इन दोनों उद्देश्यों को प्राप्त करने के संदर्भ में महान लाभ देखा और अंग्रेजों के खिलाफ भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक नए अध्याय की शुरुआत हुई।

शोषण से मुक्ति और पहला सफल सविनय अवज्ञा आंदोलन

चंपारण सत्याग्रह का महत्व शोषणकारी और अनैतिक प्रथाओं के उन्मूलन से परे है, जिसने इंडिगो वृक्षारोपण को मजबूर किया और चंपारण में लोगों के जीवन को उनकी शैक्षिक और आर्थिक स्थिरता के मामले में बेहतर बनाया। लेकिन, इस तरह के सभी मील के पत्थर के अलावा, इस आंदोलन ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम के महात्मा गांधी के नए रोडमैप की शुरुआत को भी चिह्नित किया, जहां निष्क्रिय, अहिंसक और नागरिक प्रतिरोध होना ब्रिटिशों के विरोध का प्रमुख तरीका था। इस आंदोलन ने अहिंसा और एकता की शक्ति दिखाई। इसने भारतीय समुदाय को ब्रितानियों से लड़ने के लिए मजबूत किया, इसने उनमें एक उत्साह भर दिया, कि साथ मिलकर हम मजबूत होते हैं। यह महात्मा गांधी की जबरदस्त प्रतीकात्मक जीत थी। यह भारत का पहला सविनय अवज्ञा आंदोलन था, जिसने महात्मा गांधी के नेतृत्व में कई अन्य आंदोलनों का मार्ग प्रशस्त किया। जैसे कहा जाता है, हमें प्रज्वलित होने के लिए ईंधन की आवश्यकता होती है, और फिर आग जलती रहती है। यह आंदोलन ईंधन था जिसने एक क्रांति शुरू की। एक क्रांति जिसने हमें स्वतंत्रता के करीब ला दिया।

References

1. The story of Gandhi by Rajkumari Shanker (Chapter 15 : Champaran Satyagraha)
2. Champaran Satyagraha : A Socio Political Crucible (Chapter : The Political Economy of Indigo farming in India and Champaran Satyagraha) Mahatma Gandhi Central University in association with Shree Publishers by Prof (Dr) Arvind Agrawal
3. Satyagraha in Champaran by Dr. Rajendra Prasad
4. Jab Neel Ka Daag Mita : Champaran &1917 by Pushyamitra

उत्तरवैदिक काल (1000-600 ई० पू०) की भौगौलिक व राजनीतिक व्यवस्था

नूतन कुमारी

अस्टिटेंट प्रोफेसर, (अतिथि संकाय), इतिहास विभाग, पूर्णियां विश्वविद्यालय पूर्णियां

सम्पूर्ण भारत उत्तरवैदिक काल में जीवन के विभिन्न पक्षों में एक निश्चित दिशा की ओर परिवर्तन के साथ आगे बढ़ी। उत्तर वैदिक काल के इस युग में राजनीतिक, सामाजिक, एवं आर्थिक दृष्टि से एक ऐसे ढ़ाचे का अर्विभाव हुआ जो सामान्य परिवत्तनों के साथ लम्बे समय तक चलता रहा। इस युग के प्रमुख विशेशताएँ थी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था ,कलायमी संरचना में विघटन वर्णव्यवस्था का जन्म और क्षेत्रगत साम्राज्यों का उदभव हुआ। उत्तर वैदिक समय में आर्यो के सामाजिक जीवन में स्थायित्व ही नहीं देखा जाता है बल्कि पूर्वकाल की तुलना में महत्वपूर्ण परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते हैं। आर्य यद्यपि ग्रामों में रहते थे , किन्तु इस युग में बडे बडे नगरों का विकास हुआ। इस काल के आते आते वर्ण का अभिप्राय भी बदल गया था। शाुद्र को सम्मिलित करते हुए चार वर्णो की परिकल्पना हुई।

भौगोलिक और राजनीतिक स्थिति

भारतीय इतिहास में 1000 से 600 ई0 पू0 के वैदिक काल में जिसमें सामवेद, यर्जुवेद एवं अर्थववेद तथा ब्राह्मण ग्रंथों आरण्यकों एवं उपनिशदों की रचना हुई उत्तर वैदिक काल कहा जाता है। चित्रित धूसर मृदभाण्ड इस काल की विशिष्टता थी क्योंकि यहाँ के निवासी मित्र्ाी के चित्रित और भूरे रंग के कटोरों तथा थालियों का प्रयोग करते थे। वे लोहे के हथियारों का भी प्रयोग करते थे। 1000 ई0 पू0 पाकिस्तान के गांधार में लोहे के उपकरण प्राप्त हुए हैं वहॉ कब्र में मृतकों के साथ लोहे के उपकरण प्राप्त हुए हैं। 800 ई0 पू0 के आस-पास इसका उपयोग गंगा-यमुना दोआब में होने लगा था उत्तरी दोआब में चित्रित धूसर मृद्भाण्ड के 700 स्थल मिले हैं जिसमें चार की खुदाई हुई है अतरंजीखेड़ा हस्तिनापुर और नोह। अभीर तक उत्खनन में केवल अंतरजीखेड़ा से ही लौह उपकरण के साक्ष्य मिले हैं। उत्तर वैदिक ग्रंथों में लोहे के लिए लौह अयस एवं कृष्ण शब्द का प्रयोग हुआ है। अंतरजीखेड़ा में पहली बार कृषि से संबंधित लौह उपकरण प्राप्त हुए हैं।

उत्तरवैदिक काल में आर्यों ने यमुना गंगा एवं सदानीरा (गण्डक) नदियों के मैदानों को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। दक्षिण में आर्यों का फैलाव विदर्भ तक हुआ। उत्तर वैदिककालीन सभ्यता का मुख्य केन्द्र मध्य प्रदेश था जिसका प्रसार सरस्वती से लेकर गंगा दोआब तक था। वहीं पर कुरू एवं पांचाल जैसे विशाल राज्य थें यहीं से आर्य संस्कृति की पूर्वी ओर प्रस्थान कर कौशल काशी एवं विदेह तक फैली। मगध एवं अंग प्रदेश आर्य सभ्यता के क्षेत्र के बाहर थे। मगध में निवास करने वाले लोगों को अर्थववेद में ब्रात्य कहा गया है। ये प्राकृत भाषा बोलते थे। इसके बाद आर्यो का विस्तार वरूणा-काशी नदी तक हुआ और काशी राज्य की स्थापना हुई। शातपंथ ब्राह्मण में यह उल्लेख मिलता है कि विदेध माधव ने अपने गुरू शाहुगण की सहायता से अग्नि के द्वारा इस क्षेत्र का सफाया किया था। अजात शात्रु एक दार्शनिक राजा माना जाता था। वह बनारस से संबंध था। सिन्धु नदी के दोनों तटों पर गांधार जनपद था। गांधार और व्यास नदी के बीच कैकय देश स्थित था छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार उसने दावा किया कि मेरे राज्य मुें चोर मद्यसेवी क्रियाहीन व्यभिचारी और अविद्यान नहीं हैं। मद्र देश पंजाब में सियालकोट और उसके आस पास स्थित था मत्स्य राज्य के अंतर्गत राजस्थान के जयपुर अलवर, भरतपुर थे। आर्यो में विन्ध्याचक तक अपना विस्तार किया। गंगा यमुना दोआब एवं उसके आस-पास का क्षेत्र ब्रह्मर्षि देश कहलाता था। उपनिषद काल में विदेह ने पंचाल का स्थान ग्रहण कर लिया। विदेह के राजा जनक प्रसिद्ध दार्शनिक थे।

उत्तरवैदिक काल में छोटे कबीले एक दूसरे में विलीन होकर बड़े क्षेत्रगत जनपदों को जन्म दे रहे थे। उत्तर वैदिक काल में पुरू और भरत कबीला मिलकर कुरू तथा वुदंश और क्रिवि कबीला मिलकर पांचाल कहलाये। आरम्भ में कुरूओं की राजधानी असनदिवन्त में थी जिसके अन्तर्गत कुरू क्षेत्र (सरस्वती और दृषद्वती के बीच भूमि) सम्मिलित था। शाीघ्र ही कुरूओं ने दिल्ली एवं उत्तरी दोआब पर अधिकार कर लिया। अब उनकी राजधानी हस्तिनापुर हो गयी। बलिहव प्रजाप्रिय राजा परीक्षित का नाम अर्थववेद में मिलता है। जनमेजय के बारे में माना जाता है कि उसने सर्पसत्र एवं दो अश्वमेध यज्ञ करवाया था। कुरू वंश का अन्तिम शाासक निचक्षु था वह हस्तिनापुर से राजधानी कौशाम्बी ले आया क्योंकि हस्तिनापुर बाढ़ में नष्ट हो गया था। अथर्ववेद में गुरू राज्य की समृद्धि का चित्रण हैं परीक्षित और जनमेजय यहाँ के प्रमुख राजा था। परीक्षित को मृत्यु लोक का देवता कहा गया है। अथर्ववेद के छान्दोग्योपनिषद में कहा गया है कि कुरू जनपद में कभी-कभी भी ओले नहीं पड़े और न ही टिस्त्रियों के उपद्रव के कारण अकाल पड़ा। कुरू कुल का इतिहास महाभारत युद्ध के नाम से विख्यात है। पंचाल क्षेत्र के अंतर्गत आधुनिक बरेली बदायूँ एवं फर्रूखाबाद आता है इनकी राजधानी कामित्य थी। पंचालों के एक महत्वपूर्ण शाासक प्रवाहण जैवलि थे। जो विद्वानों के संरक्षक थे। पंचाल दार्शनिक राजाओं के लिए भी जाना जाता था आरूणि श्रवेतकेतु पंचाल क्षेत्र के ही थे। इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में कुरू पांचाल काशी का विदेह प्रमुख राज्य थे। इस काल में पंचाल सर्वाधिक विकसित राज्य था। शातपथ ब्राह्मण में इन्हें वैदिक सभ्यता का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कहा गया है। उत्तर वैदिक काल में आर्यो का विस्तार अधिक क्षेत्र पर इसलिए हो गया क्योंकि अब वे लोहे के हथियार एवं अश्वचालित रथ का उपयोग जान गए थे। उत्तर वैदिक काल में त्रिककुद, कंज तथा मैनाम हिमालय क्षेत्र में स्थित पर्वतों का उल्लेख भी मिलता है।

उत्तरवेदिक काल में राजतंत्र ही शाासन तंत्र का आधार था पर कहीं कहीं पर गणराज्यों के उदाहरण भी मिले हैं सर्वप्रथम ऐतरेय ब्राह्मण में ही राजा की उत्पत्ति का सिद्धान्त मिलता है। इस काल में राजा का अधिकार ऋग्वेद काल की अपेक्षा कुछ बढ़ा। अब उसे बड़ी बडी उपाधियां मिलने लगी जैसे अधिराज सम्राट, एकराटई ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार प्रात्य पूर्व का शाासक सम्राट की उपाधि धारण करते थे। पश्चिम के स्वराट उत्तर के विराट दक्षिण के भोज तथा मध्य देश के राजा होते थे। प्रदेश का संकेत करने वाला शाब्द राष्ट्र सर्वप्रथम उत्तर वैदिक काल में ही प्रयोग किया गया। इस काल के उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि शाायद राजा का चुनाव पहले जनता विश द्वारा एवं कलान्तर में जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होता था। पर अन्ततः राजा का पद वंशानुगत हो गया। शातपथ ब्राह्मण में राजा के निर्वाचन की चर्चा है और ऐसे राजा विशपति कहलाते थे। अत्याचारी शाासक को जनता पदच्युत भी कर देती थी। उदाहरण के लिए सृज्यों ने दूष्ट ऋतु से पौशायन को बाहर निकाल दिया था। ताण्डय ब्राह्मण प्रजा के द्वारा राजा के विनाश के लिए एक विशेष यज्ञ किए जाने का भी उल्लेख्व है। वैराज्य का अर्थ उस राज्य से है जहॉ राजा नहीं होता था। शातपथ ब्राह्मण में उस राज्य के लिए राष्ट्री शाब्द का प्रयोग किया गया है। जो निरंकुशता पूर्वक जनता की सम्पति का उपभोग करता था। अथर्ववेद म राजा को (जनता का भक्षक ˙ कहा गया ऋअथर्ववेद में कहा गया है कि समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का शाासक एकराट होता है। ऐतरेय ब्राह्मण तथा शातपथ ब्राह्मण में ऐसे राजाओं की सूची मिलती है।

अथर्ववेद के एक परिच्छेद में कहा गया है कि राजा राष्ट्र क्षेत्र का स्वामी होता है और राजा को वरूण, वृहस्पति इन्द्र तथा अग्नि देवता दृढ़ता प्रदान करते है। राजा के राज्याभिषेक के समय राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता था। जिसमें राजा द्वारा राज्य के रत्नियों को हवि प्रदान की जाती थी यहाँ हवि से मतलब है कि राज्य प्रत्येक रत्नी के धर जाकर उनका समर्थन एवं सहयोग प्राप्त करता था। राजसूय यज्ञ के अनुष्ठान से यह समझा जाता था कि राजा को दिव्य शाक्ति मिल गयी है। राजसूय यज्ञ का दर्शन शातपथ ब्राह्मण से मिलता है। यह दो दिन तक चलता था। राजसूय यज्ञ में वरूण देवता पार्थिव शारीर में प्रकट होते थे। राजा की शाक्ति में अग्निवृद्वय के लिए अश्वमेघ और वाजपेय यज्ञों का भी विधान किया गया। अश्वमेघ यज्ञ से समझा जाता था। राजा द्वारा इस यज्ञ में छोड़ा गया घोड़ा जिन जिन क्षेत्रों से बेरोक गुजरेगा। उन सारे क्षेत्रों पर राजा का एक छत्र अधिपत्य हो जायेगा शातपथ ब्राह्मण में भरतों के दो राजाओं भरत दौशयन्ति और शातनिक सत्रजित द्वारा अश्वमेघ यज्ञ कराने का उल्लेख है। वाजपेयी खदौड़ यज्ञ में राजा का रथ अन्य सभी बन्धुओं के रथों से आगे निकल जाता था इन सभी अनुष्ठानों से प्रजा के चित्त पर राजा बढ़ती शाक्ति और महिमा गहरी दाप पड़ती थी गोपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा को राजसूय यज्ञ सम्राट को वाजपेय स्वराट को अश्वमेध विराट की पुरूष मेघ और स्वराष्ट्र को सर्वमेघ करना चाहिए। किन्तु आपस्तभ्भ श्रोत सुत्र के अनुसान अश्वमेघ यज्ञ केवल सर्वभौम ही कर सकता है। वाजपेय यज्ञ शाक्ति प्राप्त करने वाला एक सोम यज्ञ था जो साल में 17 दिन तक चलता था। राज सूय यज्ञ करने पुरोहिताध्यक्ष को दक्षिणा के रूप में 240000 गायें दी जाती थी।

उत्तरवेदिक काल में सर्वप्रथम समाप्त होने वाली संस्था विंध थी इस काल में राजा अलग अलग उपाधि धारण करने लगे। उदाहरणार्थ मध्यदेश के राजा को राजन पूर्व देश के राजा को सम्राट पश्चिम के राजा को स्वराट और उत्तर के राजा को विराट एंव दक्षिण के राजा को भोज कहा गया जो राजा इन चारों दिशाओं के राजाओं को जीत लेता था उन्हें एकराट कहा जाता था। अथर्ववेद से पता चलता है कि सभा और समिति का महत्व अभी भी था क्योंकि उसे अथर्ववेद में प्रजापति की दो पुत्रियां कहा गया है। वस्तुत: इस काल में राजनैतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टि गोचर होते हैं। राजतंत्र सशक्त ही नहीं हुआ बल्कि बडे प्रादेशिक राज्यों की स्थापना भी हुई एवं प्रशासनिक व्यवस्था में भी एक निश्चित पद्धति का अविर्भाव हुआ। पूर्व काल में विभिन्न जन किसी निश्चित प्रदेश से सम्बद्ध नहीं थे किन्तु इस काल मुें जनों का स्थान बड़े जनपदों ने ले लिया था। ऋग्वेद काल में राजा का प्रभुत्व विश अथवा एक जन के लोगों तक सीमित था। किन्तु अब उसका स्वामित्व एक राष्ट्र तक विस्तृत हो गया। ऐतरिय ब्राह्मण के अनुसार समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का शाासक एकराट कहलाता था। अथर्ववेद के अनुसार एकराट सर्वोपरि शाासक को कहते हैं जैसे देश के अधिपति थे। राजा का पद भी अधिक स्थाई और वंशानुगत हो गया था। इस काल के साहित्य में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें राजा के निर्वाचित होने का संकेत मिलता है। युद्ध अब गायों के लिए न होकर क्षेत्रों के लिए होने लगे। राजा के देवी अधिकारी की घोषणा ऋग्वेद में तब हुई जब एक जगह राजा पुरू यह घोषणा करता है मैं इन्द्र हूॅं मैं वरूण हूॅं।

वैदिक काल में राजत्व के विकास के संबंध में ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि देवों एवं दानवों के मध्य युद्ध हुआ एवं देवगण परास्त हुए। अंत में देवताओं ने निश्चय किया कि चूंकि हमारा कोई राजा नहीं है। दानव हमें हरा देते हैं फलत: हमें अपने एक राजा का चयन करना चाहिए। उन्होंने अपना एक राजा निर्वाचित किया और उसके निर्देशन में दानवों पर विजय प्राप्त की। इसी ब्राह्मण में अन्यत्र विवेचन मिलता है कि देवताओं ने इन्द्र को अपना राजा निर्वाचित किया क्योंकि परस्पर विचार विमर्श के पश्चात वे इस निर्णय पर पहूॅंचे कि देवताओं में वे सबसे पराक्रमी अधिक शाक्तिशाली वीर और सबसे पूर्ण तथा किसी भी कार्य को अच्छी तरह सम्पादित करते हैं। इस ब्राह्मण से यह जानकारी मिलती है कि राजा का चयन सबकी सहमति से होता था जो समान्यत: युद्ध आदि का संचालन करने में समर्थ हो तथा जो राजकीय कार्यो का सम्पादन कर सके। प्रारंभ म्रें प्रकृति की एक ऐसी अवस्था थी जिसमें जिसकी लाठी उसी की भैंस की कहावत चरितार्थ होती थी। अत: शाान्ति एंव व्यवस्था स्थापित करने के लिए उन्होंने एक राजा चुना और उसने लोगों के धन जन की रक्षा करने का वचन इस शार्त पर दिया कि लोग उसे कर (बलि) देंगे। इस सिद्धान्त का उल्लेख शातपथ ब्राह्मण के एक रहस्यवादी पद में मिलता है।

शातपथ ब्राह्मण एवं ऐतरेव ब्राह्मण में एक राजवंश की दस पीढियों तक के उत्तराधिकार का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि राजत्व वंशानुगत था। राजत्व की स्थायी तथा वंशानुगत होने से राजा के पद की प्रतिष्ठा में वृद्धि होना स्वाभाविक था। राजा को प्रजापति का प्रतिनिधि कहा गया। अत: वह एक होने पर भी समूह पर शाासन करता है। इस प्रकार राजत्व के दैवीय विकासक के सिद्धान्त का अविर्भाव हुआ। वैदिक देवता इन्द्र वरूण एवं सोम की उत्पत्ति के संबंध में भी अने क आख्यायिकाएं हैं जिनमें से कुछ राजा की दैवी उत्पत्ति तथा कुछ उसके लोकप्रिय निर्वाचन पर प्रकाश डालती है। कहा जा सकता है कि एक ओर अराजकता की स्थिति में राजा के निर्वाचन का विचार चल रहा था तो दूसरी ओर राजा की दैवीय उत्पत्ति का सिद्धान्त भी समाज में प्रचलित होने लगा था तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रसंग है कि इन्द्र की स्थिति देवताओं में बहुत निम्न थी। किन्तु प्रजापति ने उसे देवताओं का राजा नियुक्त किया। इसमें यह भी उल्लेखख मिलता है कि राजसूय एवं वाजपेय यज्ञों के सम्पादन द्वारा राजा प्रजापति के समान प्रमुख सम्पन्न हो जाता है तथा पित राजत्व प्रतिष्ठा का आधार जनमत था अथर्ववेद में राजा को पदमुक्त किये जाने एवं राज्य से बहिष्कृत होकर दूसरे क्षेत्र में विचरण करने का विवरण मिलता है। एक निष्कासित राजा का अपनी प्रजा एवं विरोधियों द्वारा पुन: वरण किये जाने का भी उल्लेख आया है। पंचविश ब्राह्मण में एक विशेष सरकार का उल्लेख है जिसके द्वारा पदच्युत राजा पुन: राज्य कर सकता था अथवा राज्यारूढ होने की स्थिति में अपनी प्रजा का पुन: समर्थन प्राप्त करता था। कहा जा सकता है कि राजा के मानवीय स्वरूप को भुलाया नहीं गया था। राजा के वंशानुगत होने से यह स्वच्छन्द रूप से कार्य करता था परनतु उसे निरंकुश नहीं माना जा सकता है।

साधारण नरेश के लिए राजा बड़े राज्यों के शाासक अधिराज राजाधिराज विराट सार्वभौम सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा आदि का प्रयोग किया जाने लगा। राजा लोग इन उपधियों की सार्थकता सिद्ध करने के लिए विविध प्रकार का यज्ञ अपने पद के अनुरूप सम्पादित करते थे। ऐतरेय ब्राह्मण प्राच्य देश के शाासकों के साम्राज्य पद के लिए अभिषिक्त किये जाने का उल्लेख करता है। प्रत्येक राजा बड़े भूप्रदेश पर अपने प्रभुत्व स्थापना की कामना रखता था जिसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति राजसूय यज्ञ के अवसर पर दिखाई देती

है। जिसमुं यह धनुष बाण लेकर चारो दिशाओं की विजय का उल्लेख करता था। राज्यारोहण के समय राजा के अभिषेक तथा उसके द्वारा ली जाने वाली शापथ का विस्तृत विवरण ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है। शातपथ ब्राह्मण के अनुसार मनोमित राजा मातृभूमि से अनुमति इन शाब्दों में प्राप्त करता था मातृभूमि। तुम मेरी हिसा न करों और मैं तुम्हारी हिंसा न करूँ। सम्भवत: ऐसा करना इसलिए आवश्यक था कि शाासक मातृभूमि के प्रति निष्ठावान हो। कहा जाता है कि राजा एवं राष्ट्र एक दूसरे के हितैशी हो जैसे माता और पुत्र। इस अवसर पर विभिन्न देवताओं को आहुंतियाँ दी जाती थी। सबसे अन्त में धर्म या विधि के स्वामी वरूण को आहुति दी जाती थी क्योंकि वैदिक राजनीति में विधि धर्म को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। एवं राजा को दंड या शाासन का प्रतिरूप माना गया जो धर्म की रक्षा एवं स्थापना करता था। राजा द्वारा की जाने वाली शापथ का उल्लेख मिलता है। जिस रात्रि को मेरा जन्म हुआ है और जिस रात्रि को मेरी मृत्यु होगी उन दोनों के बीच में जो मेरा यज्ञ फल और दानादि पुण्य है जो लोक में धर्मे आयु और प्रजाएं है वे सब नष्ट हो जाए यदि मैं तुझ से द्रोह करूँ। यह कथन उल्लेखनीय है जिसमें राज्यारोहण के दौरान राजा को कहा जाता था कि तुम्हें यह राष्ट्र दिया जाता है कृषि के लिए जनता के क्षेम और सर्वाधिक पोषण के लिए एवं उन्नति के लिए। इससे पता चलता है कि राजा को राज्य एक धरोहर के रूप में सौंपा जाता था। एवं राजा के उस पर अधिकृत रहने की कसौटी जनता की प्रगति एंव कुशलता थी। इस अभिषेक द्वारा अदण्डय कर दिया जाता था अर्थात उसे दण्उ से परे मान लिया जाता था। आर के मुखर्जी ने लिखा है कि इससे इस मत का अभिप्राय होती है कि राजा स्वयं दंड से अतीत रहते हुए उस दंड को धारण करता है जो एक धर्म का रक्षक है। राजा धर्म का विधाता या स्रोत नहीं वह उसको धारण करने वाला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा की स्थति पर्याप्त शाक्तिशाली हो गई थी। किन्तु पूर्ववत जनशक्ति का राजा पर नियंत्रण एवं प्रभाव बना हुआ था ताण्डय महाब्राह्मण में एक कथानाक मिलता है। जिसमें पुरोहित द्वारा राजा के विनाश के लिए प्रजा को सहयोग प्रदान करने का उल्लेख हुआ है। कुल मिलाकर राजपद की प्रतिष्ठा बढी क्योंकि इससे कुछ संस्कार जुड गए। कुछ महत्वपूर्ण संस्कार इस प्रकार थे यथा-

राज्यभिषेक :- राज्याभिषेक संस्कार सबसे महत्वपूर्ण था ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार इसका उद्देश्य परम शाक्ति की प्राप्ति था। कभी कभी दो राज्याभिषेक भी होते थे जैसे युधिष्ठिर के दो राज्याभिषेक हुए। राज्य के कुछ विशेष मंत्रियों के भी अभिषेक होते थे। राज पुरोहित का भी एक विशेष संस्कार हुआ करता था। अभिषेक 17 प्रकार के जलों से होता था अभिषेक संस्कार के समय रत्नियों की एक रानी की एक हाथी की एक सफेद घोडे की एवं एक सफेद बैल की तथा एक शवेत क्षेत्र इत्यादि की उपस्थिति आवश्यक थी।

राजसूय यज्ञ :- यह अपेक्षाकृत एक बड़ा यज्ञ था इसका वर्णन शातपथ ब्राह्मण से मिलता है। जहाँ राज्यभिषेक एक आवष्यक कृत था वहीं राजसूय एक ऐच्छिक धार्मिक अनुष्ठान था। राजसूय यज्ञ में वरूण देवता पार्थिव शारीर में प्रकट होते थे। यह दो दिन चलता था। शातपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा के लिए ही राजसूय यज्ञ है।

अश्वमेध यज्ञ-यह एक विस्तृत समारोह था। इसका उद्देष्य राजा के राज्य का विस्तार करना और राज्य के लोगों को सुख और समृद्धि प्रदान करना था। शातपथ ब्राह्मण में भरतों के दो राजाओं भरत दोषयन्ति और शातनिक सत्रहित द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का उल्लेख है। सार्वभौमिक और चक्रवर्ती का स्तर प्राप्त करने के लिए अश्वमेघ यज्ञ का विधान था।

वाजपेय यज्ञ (शक्ति का पान) इसका उद्देष्य राजा को नव यौवन प्रदान करना और उसकी शाारीरिक एंव आत्मिक शाक्ति को बढ़ाना था। इसी से जुड़ा हुआ समारोह रथ दौउ होती थी। जिसमें राजा का रथ सबसे आगे निकलता था। शातपथ ब्राह्मण के अनुसार जो राजा सम्राट का स्तर प्राप्त करना चाहता था उसके लिए वाजपेय का विधान अनिवार्य था।

अथर्ववेद में कहा गया है कि राष्ट्र के हाथ में हो और इसे इन्द्र वृहस्पति आदि देव सुदृढ बनाए। शातपथ ब्राह्मण एवं तैतरीय उपनिषद में कहा गया है कि राजा राष्ट्र का पोषक होता है। करारोपण प्रणाली नियमित हो गई थी और बली के अतिरिक्त शाुल्क और भाग भी लिया जाने लगा था। अब बलि स्वेच्छा से दिया जाने वाला कर नही था वरन यह लोगों पर आवश्यक रूप से लाद दिया गया था। संभवत: आय का 16 वॉ भाग कर के रूप म्रें लिखा जाता था। कर की अदायगी अन्न एवं पशु दोनो रूपों में होती थी। शातपथ ब्राह्मण में उल्लेखित बलिकृत से संकेत मिलता है कि कर का बोझ वैश्य वर्ग पर था।

प्रशासन

जब कर की प्रणाली नियमित हो गई तो ऋग्वैदिक प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन हो गया। अधिकारियों की संख्या में वृद्धि हुई। कुछ -एक अधिकारियों की शाक्ति में कटौती भी हुई। उदाहरण के लिए ग्रामणी नामक अधिकारी की शाक्ति में वृद्धि हुई एंव

विशपति नामक अधिकारी की शाक्ति में कटौती हुई। उत्तर वैदिक काल में भी शातपथ ब्राह्मण में रत्निनों की चर्चा है। जिसकी संख्या रत्नियों की संख्या 12 थी। पंचविश ब्राह्मण में रत्निनों को वीर कहा गया है इससे उनके महत्व को बोध होता है इनके अतिरिक्त कुछ अन्य अधिकारियों को भी चर्चा मिलती है।

कर्मार :- उद्योग का अधिकारी

स्थपित: संभवत: यह सौ गाँवों का शाासन देखता था। ऋग्वेद में जीवग्रीभ एवं उपनिषद में उग्र की चर्चा मिलती है इनमें हम पुलिस अधिकारी के आभास पाते हैं राजा का प्रमुख सलाहकार पुरोहित था जो राजनैतिक मामलों में परामर्श देने के साथ धार्मिक अनुष्ठानों का सम्पादन भी करता था। ब्राह्मण ग्रंथों में उसके लिए राष्ट्र की सुरक्षा होती है। रत्नियों में राजा को महिषी प्रधान रानी भी सम्मिलित कर ली गई। उसे तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था सैन्य संचालन का कार्य सेनापति सम्पादित करता था। सेनानी को राजा द्वारा हिरण्य भेंट स्वरूप दिये जाने का उल्लेख आया है। राजा के रथ चालक को सूत कहा गया। कीथ की धारणा है कि स्थानीय लेखक इसे रथ चालक मानते हैं। किन्तु सम्भवत: वह उद्घोषक या राजा की स्तुति करने वाला था। ग्रामणी ग्राम प्रमुख था और भागदुध कर संग्रह करता एवं राज्य के राजस्व का हिसाब रखता था। अक्षवाप सम्भवत: लेखाकार का कार्य करता था एवं गोविकर्ता राज्य के गौधन का अधिकारी रहा होगा। जबकि क्षमता राज्य के दुर्ग तथा महल का अधिकारी कहा गया है। मैत्रयाणी सहिंता में तक्षन अथक बढ़ई तथा रथकार अथवा रथ निर्माता को भी रत्नियों की सूची में सम्मिलित किया गया है। शातपथ ब्राह्मण में पालागल का नाम भी मिलता है जो सम्भवत: सन्देशवाहक का कार्य करता था। डॉ0 पुरी ने जिक्र किया है कि रत्नियों को राज निर्माता के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए क्योंकि प्रशासनिक व्यवस्था में इनका विशेष योगदान रहता था। इस काल में भी गुप्तचर व्यवस्था आपेक्षित थी। तैतरीय संहिता में दूत एवं ग्रहिता का उल्लेख आया है। ऋग्वेद में दूत को सन्देशवाहक अथवा राजदूत कहा है किन्तु वाद में इसका उपयोग आलंकारिक रूप में होने लगा। यह भी कहा गया है कि सूत आगे जाकर दूत का कार्य सम्पादित करने लगा। सायणाचार्य ने स्पष्ट किया हे कि दूत नियमित राज्यप्रतिनिधि था जबकि प्रहिता का मात्र जासूत कहा जा सकता है।

सभा

सभा सम्भवत: सदस्यों की छोटी संस्था थी जो न्याय संबंधी कार्यो का सम्पादन करती थी। अथर्ववेद में एक जगह सभा के सदस्यों को नरिष्ठा कहा गया है। इसका आशय होता है कि सामूहिक वाद विवाद। इस काल में यह ग्राम संस्था न होकर राज संस्था के रूप में प्रतिष्ठित थी। अत: इससे सामुहिक वाद विवाद द्वारा ही निर्णय लिया जाता था। मैत्रयणि संहिता में सभा को ग्राम के न्यायिक कार्यालय के रूप में व्याख्यायित किया है। जिसमें ग्राम्य वादिन न्यायिक कार्य सम्पादन करता था। सभाचर शाब्द इंगित करता है कि सम्भवत: इसका न्यायिक कार्य में सहयोग रहता था। स्पष्ट है कि सभा में राजनैतिक मामलों के साथ न्यायिक कार्य भी सम्पादित किये जाते थे। ग्राम प्रशासन पर किसी एक व्यक्ति का प्रभुत्व नहीं था। उसके समस्त विषय सभा के अधीन थे और सभा में राजा भी उपस्थित रहता था। इसके सदस्य अत्यन्त सम्मानीय व्यक्ति माने जाते थें अथर्ववेद में विवरण मिलता है कि यम देवता की सभा के सदस्य यम को प्राप्त होने वाले पुण्य के सोलहवे भाग के अधिकारी थे। इस तथ्य से परिलक्षित होता है कि ये संस्थायें कार्य संचालन हेतु राजकर का कुछ भाग प्राप्त करती रही होगी। कहा गया है कि प्रजापति सभा की सहमति के बिना कार्य नहीं कर करते थे। सम्भवत: राजा भी प्रत्येक निर्णय के लिए सभा की सहमति प्राप्त करता होगा। वैदिक साहित्य में सभापति एवं सभासद शाब्द आयें हैं। अर्थात सभा की कार्यवाही का संचालन करने के लिए सभापति रहा करता था।

समिति

समिति अपेक्षाकृत बड़ी संस्था प्रतीत होती है जो सम्भवत: राज्य की विशाल जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली केद्रीय संस्था थी। राजा के निर्वाचन में यह संस्था जन या जनपद का प्रतिनिधित्व करती थी। अथर्ववेद में विवरण मिलता है कि ब्राह्मण सम्पति का अपहरण करने वाले राजा को समिति का सहयोग नहीं मिलना चाहिए। शात्रुओं पर विजय प्राप्त करने क लिए वह प्रशासनिक स्थिति सुदृढ़ करने हेतु राजा को समिति के समर्थन की आवश्यकता होती थी। इसमें भी किसी भी निर्णय पर पहूँचने से पूर्व पर्याप्त वाद विवाद अपेक्षित था। अनेक उपनिषदों में भी राजा की अध्यक्षता मे हुए वाद विवाद अपेक्षित था। अनेक उपनिषदों में भी राजा की अध्यक्षता में हुए बाद विवाद की सूचना मिलती है। उपनिषद काल के प्श्चात सभा समितियों के अस्तित्व का उल्लेख नहीं

मिलता। फिर भी इस काल में राजा की शाक्ति पर कतिप सीमाएं थी। राजा की शाक्ति असीमित नहीं थी। क्योंकि करारोपण पद्धति नियमित होने के बावजूद उत्पादन प्रणाली विकसित नहीं हो पाई थी इसलिए राजा के खजाने में अपेक्षित धन नहीं पहुँच पाता था। स्थायी सेना का अभाव था शातपथ ब्राह्मण में सूत एंव ग्रामीणी को अराजनोराकृत कहा गया है और मंत्री को राजनोराजकृत कहा गया है। राजसूय यज्ञ में एक परंपरा थी जिसमें राजा द्वारा राज्य के रत्नियों को हवि प्रदान की जाती थी यहाँ राजा उनके घर जाकर उनका समर्थन एंव सहयोग प्राप्त करता था। राजा की स्वेच्छाचारिता पर रीति एवं परंपरा का अंकुश भी था। इसक अतिरिक्त वेदिक राजनीति में ब्रह्म का वाहक ब्राह्मण क्षत्रिय माना जाता था। ब्राह्मण अपना राजा सोम को मानता था कुछ हद तक सभा एंव समिति भी राजा की शाक्ति पर नियंत्रण करती थी। यद्यपि उत्तर वैदिक काल में समिति की तुलना में सभा अधिक महत्वपूर्ण हो गई।

उत्तरवेदिक काल में राजा की सम्प्रभुता में वृद्धि हुई तथापित उसे भूस्वामित्व नहीं मिला क्योंकि राजा को कृषक से केवल भूराजस्व वसूल करने का ही अधिकार था। ऋग्वेद काल से ही राजा को अपने दायित्व निर्वाह के बदले में प्रजा से बलि या कर पाने का अधिकारी माना जाता था। यह राजा को स्वेच्छापूर्वक दिया गया उपहार होता था। किन्तु इस काल में प्रजा से नियमित कर वसुलने का प्रावधान हो चला था। राजा के लिए विशमता अथवा विश का भक्षक पद का प्रयोग इसका स्पष्ट निर्देश करता है। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि कर क मुख्य भार वैश्यों पर था क्योंकि वैश्य वर्ग पशुपालन कृषि वाणिज्य व्यापार एवं विविध शिल्प कर्म द्वारा धनार्जन करता था। राज्य का भाग अन्न पशुओं के रूप में दिया जा सकता था। राजा को विश का भक्षण करने वाला कहे जाने के संदर्भ में हाप्किन्स की मान्यता है कि राजा जनता का शाोषण करते थे। किन्तु विशमता शाब्द के प्रयोग मात्र से आर्थिक शाोषण की परिकल्पना नहीं की जा सकती। इसका अभिप्राय विशमता भोगी भी होता है। कहा जा सकता है कि राजा प्रजा के करों का एवं उपहारों का उपभोग करता था। वैदिक साहित्य में ऐसे कोई साक्ष्य नहीं मिलते जिनके आधार पर कहा जा सक कि राजकर अत्यधिक थे। सभा और समिति का भी इस युग में पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता था। शातपथ ब्राह्मण में एक अनुष्ठान में राजा को यह सलाह दी गई कि वह अपने भाई बन्धुओं के साथ एक ही बरतन में भोजन करें।

संदर्भ सूची

1 चटोपध्याय क0 स्टडीज इन वैदिक एण्ड हरानीयन रीलियन लीटरेचर भौ0 2 पृ0 63

2. पाण्डेय गोविन्द चन्द्र फाउन्डेशन आफ इंडियन कल्चर भो0 -1 मोती लाल बनारसी दास दिल्ली 1995 पृ0 13

3. उपरोत पृ-22

4. उपरोक्त पृ0 22

5. पाण्डेय गोविन्द चन्द्र, रीलिजन हिस्टोरी सिटी मथन 1978 वी एम अग्रवाल (सपा) स्पार्क फॉम द वैदिक फायर पृ-51

6. पांडेय जी0 सी0 उपरोक्त पृ0 -'23

7. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाकि इतिहास हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली 1992 पृ0 28

8. मलिक स डिसेन्ट प्रोटोस्ट एण्ड रिुर्म इन इंडियन सिविलाइजेशन पृ0 93

9. रामशरण शार्मा ˙ इंडियन सोसाइटी हिस्टोरिकल प्रोर्विव्स पृ0 98

10. दामोदर धर्मानंद कोसवी प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, अनु गुणाकार मुव्वे राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 23016 पृ0 98

11. वही पृ0 99

12. वेद कथांक सं0 राधेश्याम खेमका गीता प्रेस गोरखपुर पृ0157

13. वही

14. ऋग्वेद 1.31.13 अथर्ववेद, 15.2.1 तथा तैत्तिरीय संहिता 1.'.5.4.1

प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी : वर्तमान में भी प्रासंगिक

डॉ० कंचन गुप्ता

प्रवक्ता (हिन्दी विभाग), बिहारीलाल डिग्री कॉलेज, एण्ड प्रोफेशनल स्टडीज, बाराबंकी (उ०प्र०)

जयशंकर प्रसाद मानवीय चेतना और संवेदना के रचनाकार हैं। उन्होंने मनुष्य को सर्वाधिक महत्व दिया है और उसकी के सन्दर्भ में सृष्टि, कर्मविधान, चेतना और सौन्दर्य का तलस्पर्शी चिंतन किया है। प्रसाद जी मनुष्य की शक्ति और चेतना के व्याख्याता हैं।

जयशंकर प्रसाद ऐतिहासिक नाटककार हैं। उनके नाटकों में ऐतिहासिक कथानकों को लिया गया है, परन्तु उनको वर्तमान समस्याओं के आधार पर ढाल कर प्रस्तुत किया गया है। प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में जहां रचनापद्धति की नवीनता का उपयोग कर उसे अभिनेय बनाने की पूरी चेष्टा की है, वहीं बड़े कौशल के साथ उसमें समस्या का समावेश भी किया है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में प्रधानतः नारी समस्या है। यह विषय सार्वभौम एवं सार्वकालिक है। समाज, कुटुंब और कर्मकाण्ड एवं धर्मशास्त्र में स्त्री का क्या स्थान हैं, सिद्धान्त तथा व्यवहार में कहाँ ओर क्यों अंतर आ जाता है; इस अन्तर के कारण लोकमंगल-विधान में क्या व्याघात पड़ जाता है-इत्यादि अनेक प्रश्न इसी प्रसंग पर खड़े होते हैं। उन्हीं प्रश्नों का उत्तर है-विवाह पद्धति, पति-पत्नी सम्बन्ध, दोनों पर व्यक्तिगत एवं पारस्परिक धर्म। नाटक में इन्हीं प्रश्नों को लेकर कथा चलती है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की नायिका 'ध्रुवस्वामिनी' नारी वर्ग की समस्याओं को लेकर उपस्थित होती है। समस्याओं से विद्रोह भी करती है और अन्ततः सफल भी होती है। नारी की समस्या को प्रसाद जी ने नाटक में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किया है-स्त्रियों के बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलम्ब खोजने वाले हाथो से यह पुरुषों के चरणों को पकड़ती है और वह सदैव ही इसको तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है तब भी यह बावली मानती है?''

'ध्रुवस्वामिनी' वस्तुतः ऐसी ही नारी है। रामगुप्त उसको शकराज के शिविर में जाने की आज्ञा देता है, परन्तु फिर भी वह अपनी मर्यादा की रक्षा के लए रामगुप्त के समक्ष प्रार्थना करती है।-''मेरी रक्षा करो। मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ।''

रामगुप्त 'ध्रुवस्वामिनी' की इस प्रार्थना को अस्वीकार करता हुआ कहता है-''नहीं-नहीं। जाओ तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति है?''

समस्त व्यापार इसी नारी समस्या से सम्बन्ध जोड़कर चलते हैं। केवल राजकुल की नीति से प्रभावित होकर वर और कन्या की प्रख्रति, योग्यता एवं रूचि इत्यादि का बिना विचार किए जो 'ध्रुवस्वामिनी' को रामगुप्त के साथ विवाह बन्धन में बांध दिया गया है, वह उचित है कि नहीं यह विचार का विषय है। यदि सब प्रकार से यह प्रमाणित हो कि यह धर्म तथा व्यवहार की दृष्टि में अनुचित हो गया तो फिर क्या व्यवस्था दी जानी चाहिए-यही प्रश्न है-यही समस्या है।

बेमेल-विवाह की समस्या 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की मुख्य समस्या है। ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त का जो बेमेल विवाह हुआ है, उसका परिणाम व्यष्टि और समष्टि दोनों के लिए अमंगलकारी सिद्ध होता है। आरम्भ से ही दोनों में विरोध दिखाई पड़ता है। रामगुप्त

सब प्रकार से स्वयं को अयोग्य एवं दुर्बल प्रमाणित करता है। यहां तक कि अपने पति-पद के अस्तित्व को भी अस्वीकार कर देता है-''मैने ऐसी कोइ प्रतिज्ञा न की होगी। मैं तो उस दिन द्राक्षा-सरोवर में डुबकी लगा रहा था। पुरोहितों ने जाने क्या-क्या पढ़ा दिया होगा। उन सब बातों का बोझ मेरे सिर पर कदापि नहीं।''

किसी भी प्रकार की आज्ञा देने के लिए अपने को अनाधिकारी प्रमाणित कर देता है। फिर भी अपना पशुत्वपूर्ण हुक्म ध्रुवदेवी पर लगाना चाहता है-''जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को दे देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्या आपत्ति है?''

प्रत्युत्तर में ध्रुवस्वामिनी का आर्तस्वर में प्रश्न-''मेरे पिता ने उपहार स्वरूप कन्या दान किया था। किन्तु गुप्त-सम्राट क्या अपनी पत्नी शत्रु को उपहार में देंगे? मेरा स्त्रीत्व, क्या इतने का भी अधिकारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके।'' इन परिस्थितियों में पति-पत्नी सम्बन्ध कैसा? ध्रुवस्वामिनी अपने इस बेमेल विवाह पर व्यथित होते हुए कहती है-''इतना बड़ा उपहास-धर्म के नाम पर स्त्री की आज्ञाकारिता की यह पैशचिक परीक्षा, मुझसे बलपूर्वक ली गयी है। पुरोहित! तुमने जो मेरा राक्षस-विवाह कराया है, उसका उत्सव भी कितना सुन्दर है।'' मन्दाकिनी पुरोहित से इस भ्रान्तिपूर्ण विवाह के सम्बन्ध में प्रश्न करती है कि-''जिन स्त्रियों को धर्म बन्धन में बाँधकर उनकी सम्मति के बिना आप सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते?''

'ध्रुवस्वामिनी' के पति रामगुप्त अपने दायित्व का निर्वाह नहीं करते हैं। वह प्रत्येक परिस्थिति में अयोग्य एवं कायर सिद्ध होते है। पुरोहित इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि रामगुप्त गौरव से नष्ट और आचरण से पतित है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं है।

''विवाह की विधि ने देवी 'ध्रुवस्वामिनी' और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बन्धन में बाँध दिया है। धर्म का उद्‌देश्य इस तरह पद्‌दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म-विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते। परन्तु यह सम्बन्ध इन प्रमाणों से भी विहीन है। यह रामगुप्त जिसे अपनी स्त्री को दूसरे की अंकगामिनी बनने के लिए भेजने में संकोच नहीं वह क्लीव नहीं, तो और क्या है। मैं स्पष्ट कहता हूँ कि धर्मशास्त्र, रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।''

ध्रुवस्वामिनी नाटक की एक अन्य समस्या भी है वह है, अयोग्य शासक की। यदि राज्य का राजा रामगुप्त के समान अयोग्य सिद्ध हो तो प्रजा क्या करे?

यदि राजा दुर्बल, अक्षम और अत्याचारी हो तो राज्य के कल्याण के विचार से उसके स्थान पर योग्य व्यक्ति की स्थापना का भार सदैव प्रजा के प्रतिनिधियों पर ही होना चाहिए। रामगुप्त राजनीतिक शणयन्त्र के कारण सच्चे उत्तराधिकारी के स्थान पर शासक बना; परन्तु अपने दायित्व का निर्वाह करने में असमर्थ होने से सर्वथा अयोग्य सिद्ध होता है। इसीलिए साम्राज्य के सामंत कुमार उसे पदच्युत करने का निर्णय लेते हैं।-''अनार्य, पतित और क्लीव रामगुप्त, गुप्त साम्राज्य के पवित्र राज सिंहासन पर बैठने का अधिकारी नहीं।''

अतएव वे रामगुप्त जैसे अयोग्य राजा के स्थान पर सब प्रकार से योग्य व्यक्ति चन्द्रगुप्त को राजाधिराज के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं।

निष्कर्ष

अन्त में निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समस्या नाटककारों की भाँति 'प्रसाद' ने ध्रुवस्वामिनी नाटक में केवल समस्या ही खड़ी नहीं की है वरन् उनके उत्तर की भी व्यवस्था की है। प्रसाद ने प्रथम समस्या का उत्तर दिया-मोक्ष और दूसरी समस्या का परिवर्तन।

इस मोक्ष और परिवर्तन से जिस फल की अन्विति उत्पन्न हुई है, उसी में भारतीयता का सच्चा स्वरूप दिखाई पड़ता है।

नि:सन्देह 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद जी की श्रेष्ठ नाट्यकृति है। ''शम्भुनाथ बहुगुणा'' इसे प्रसाद जी के समग्र-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं-''प्रसाद की रचनाओं में अपनी मर्मस्पर्शिता, सरलपन और क्रान्तिदर्शिता तथा सुलझे हुए कथानक के लिए सम्भवत: ध्रुवस्वामिनी सर्वश्रेष्ठ है।''

'डॉ0 गोविन्द चातक' का मानना है कि-''जहाँ तक नयी दृष्टि, नयी संरचना का प्रश्न है निश्चय ही यह उनकी सर्वश्रेष्ठ नाट्य ख्रति है।''

निष्कर्ष :- हम कह सकते हैं कि प्रसाद जी की ध्रुवस्वामिनी नाटक की नायिका जितनी गुप्तकाल में प्रासंगिक थी, उतनी ही वर्तमान काल में भी है। आज भी नारी की स्थिति कोई बहुत अच्छी या सन्तोषजनक नहीं है। वर्तमान मे ंसमय-समय पर नारियों के ऊपर अनेक प्रकार के अन्याय एवं अत्याचार होते रहते हैं। फिर वह चाहे एसिड अटैक की घटना हो या लवजेहाद अथवा सामूहिक बलात्कार की। नारी का मन शरीर, आत्मा पहले भी पीड़ित, शोषित होकर लहुलूहान होती थी और आज भी होती है।

इसका समाधान यही है कि नारी को तब भी सबला बनना पड़ा था और अपने अधिकार के लिए पुरजोर आवाज, उठानी पड़ी थी और आज भी नारी को यही करना है क्योंकि खुद की रक्षा खुद ही करनी पड़ेगी, काली बनना पड़ेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास-डॉ0 दशरथ ओझा
2. प्रसाद के नाटक-सिद्धनाथ कुमार
3. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन-जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

बिहार में कृषि सांख्यिकी की उभरती प्रवृतियाँ: बिहार के संदर्भ में एक भौगोलिक अध्ययन

अमिता चन्दन

नेट, शोध छात्रा, भूगोल विभाग, बी.आर.ए.बी.यू. मुजफ्फरपुर, (बिहार)

सार-संक्षेप

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है, यहाँ पर 80 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है। जनसंख्या में लगातार हो रही वृद्धि एवं जलवायु परिवर्तन के कारण, कृषि में सुधार के लिए वृहद आँकड़ो की उपयोगिता बढ़ गयी है। वृहद आँकड़े बड़े एवं जटिल आँकड़ो का एक संग्रह होता है, जिनकी मानवीय गणना या पारंपरिक आँकड़ा प्रसंस्करण तकनीक से आँकड़ो का प्रबंधन कठिन हो जाता है। वृहद आँकड़ो का भण्डारण एवं विश्लेषण के लिए गणनात्मक प्रणाली में उच्च निष्पादन संगणना की आवश्यकता होती है। वृहद आँकड़ो का उपयोग अच्छी योजना एवं कृषि विकास के लिए योजना बनाने में होता है। कृषि विकास में सबसे बड़ी बाधा, पुराने ढ़ंग अथवा परंपरागत कृषि प्रणाली है, जिसके कारण हम वैज्ञानिक रूप से विकसित कृषि पद्धति का उपयोग मृदा निर्माण, फसलों की समय से बुआई, सिंचाई एवं फसल कटाई में नहीं कर पाते हैं। मौसम, मृदा एवं फसल विकास के विभिन्न स्तर पर वास्तविक काल श्रंखला आँकड़ों को इकट्ठा कर खेती के लिए एक अच्छा निर्णय लेने में वृहद आँकड़ों का इस्तेमाल किया जा सकता है। उन्नत सांख्यिकीय अनुसंधान से एक बेहतर प्रारूप की संरचना कर सकते हैं जिससे हम आने वाली परिस्थितियों का पूर्वानुमान कर किसानों के लिए एक बेहतर निर्णय लेने में मदद कर सकते हैं।

परिचय

बिहार की कृषि सांख्यिकी प्रणाली राष्ट्र की प्रमुख प्रणाली है, किन्तु कालक्रम में अनेकानेक कारणों से समर्थहीन अवस्था में है। यह स्थिति राज्य के विकास की मानसिकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। किन्तु राज्य सरकार ने विगत दो-तीन वर्षों में जहाँ भारत सरकार के पहल का भरपूर उपयोग किया है, वहीं उसके सर्वांगीण विकास हेतु राज्य स्तर पर समग्र सांख्यिकी विकास योजना क्रियान्वित करने पर विचार कर रही है। डिजिटल भारत प्रोग्राम के अंतर्गत हम मोबाइल एप्लीकेशन का उपयोग कर सटीक तिथि, समय एवं वर्षा की अग्रिम जानकारी ज्ञात कर मृदा में सूखे या उच्च नमी की मात्र, जो बीज को नुकसान पहुँचा सकती है, की जानकारी से बीजों को बचाया जा सकता है एवं फसल की सही समय पर कटाई व भण्डारण किया जा सकता है। दुनिया की आबादी वर्ष 2050 के अंत तक 9 अरब को पार कर जाने की संभावना है। इतनी बड़ी आबादी के भरण पोषण के लिए अधिक खाद्यान्न की आवश्यकता होगी। वैज्ञानिक इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए वृहद कृषि सांख्यिकी आँकड़ो का प्रयोग कर मौसम की भविष्यवाणी, कृषि मशीनरी का समयानुकूल उपयोग, बाजार मुल्य का निगरानी, स्वचालित सिंचाई प्रणाली, मोबाइल आधारित सूचना प्रणाली इत्यादि के माध्यम से उत्पादकता में सुधार ला सकते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में क्लाउड आधारित कृषि सूचना प्रणाली पर कार्य हो रहा है जिससे वो अगले सात दिनों के मौसम का पूर्वानुमान करने में सक्षम है। उदाहरणत: भारत में भी कई संगठन कृषि उपज की गुणवत्ता एवं स्थिरता बनाये रखने के लिये, प्रणाली विकसित करने में योगदान कर रहे हैं।[1]

आधुनिक समाज के लिए वृहद आँकड़े, कृषि सांख्यिकी के क्षेत्र में नये अवसरों को लाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कृषि सलाह एवं कृषि सेवा प्रदाताओं द्वारा दिये गये सुझावों को अपनाकर किसान फसल उत्पादन के बारे में जानकारीपूर्ण निर्णय ले सकते हैं, एवं कम लागत में अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। औद्योगिक खेती, अनुबन्धित खेती, कृषि आधारित उद्योगों का विकास एवं कृषि व्यापार में अवसरों का विकास वृहद आँकड़ो के उपयोग से किया जा सकता है। कुछ महत्वपूर्ण उपकरण जैसे कि, क्लाउड कम्प्यूटिंग एनालिटिक्स, R-सॉफ्टवेयर एवं HARVIST विश्लेषण के तरीकों का प्रयोग कर वृहद आँकड़ो का विश्लेषण कर कृषि का विकास कर सकते हैं। वैज्ञानिक नई कम्प्यूटिंग तकनीक का प्रयोग करके एवं कृषि द्वारा प्राप्त आँकड़ों में उन्नत विश्लेषक उपकरण के प्रयोग द्वारा तीव्र गति से कृषि के विकास के साथ-साथ खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

पंचायत स्तर तक सांख्यिकी तंत्र का विकेन्द्रीकरण

राज्य के सांख्यिकी प्रणाली की एक कमजोरी यह है कि राज्य में स्थानीय स्तर पर सांख्यिकी कार्य करने के लिए कर्मियों का नितान्त अभाव है। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि पहले की अपेक्षा अब सांख्यिकी कार्यों में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। पंचायत स्तर तक कृषि सांख्यिकी का विकेन्द्रीकरण किया जा रहा है। वर्णित परिस्थिति में पर्याप्त मानव बल के अभाव में आंकड़ों को प्राप्त करने में कठिनाई संभावित है। अतः प्रयास है कि प्रत्येक जिले में स्थानीय स्तर पर आंकड़ों के संग्रहण के लिए स्थानीय लोगों को प्रशिक्षित किया जाय तथा विभिन्न सांख्यिकी कार्यो के लिए उन्हें समय-समय पर मानदेय के आधार पर आंकड़ा संग्रह का कार्य कराया जाय। इसके तहत प्रत्येक पंचायत से तीन शिक्षित युवकों को (10+2 उत्तीर्ण) को प्रशिक्षित किया जायेगा एवं उनमें से एक का चयन कर उसके माध्यम से सांख्यिकी संबंधी आंकड़ों प्राप्त किये जायेंगे। ऐसे कर्मियों को मान्यता प्राप्त सांख्यिकी स्वयंसेवक के रूप में जाना जायेगा। इनके प्रमुख कार्य निम्न होंगे:-

1. सभी फसलों का क्षेत्रफल, प्रमुख फसलों (धान गेहूँ) का उपज दर एवं किसानों को उनके फसल प्राप्त मूल्य के आंकड़े ससमय प्राप्त करना।
2. जन्म-मृत्यु रजिस्ट्रीकरण में पंचायत स्तर के आंकड़े एकत्रित कर प्रखण्ड स्तर पर ससमय पहुँचाने में मदद करना।
3. शत-प्रतिशत जन्म-मृत्यु रजिस्ट्रीकरण में पंचायत स्तर पर नियुक्त रजिस्ट्रार/सब रजिस्ट्रार की मदद करना।
4. सकल घरेलू उत्पाद आकलन में छूट रहे अंशों यथा स्थानीय सरकारी तथा गैर-सरकारी निकायों यथा पंचायत/नगर निगम/मुनीसपल्टी, गैर-सरकारी संगठन (NGO) सहकारी समितियाँ/स्वयं सहायता समूहों द्वारा सकल घरेलू उत्पाद में उनके योगदान संबंधी लेखा प्राप्त करना।

प्रखण्ड स्तर पर (Automatic Weather Station) की स्थापना कर वर्षापात, तापमान एवं मौसम के अन्य सूचकों का प्रतिदिन संग्रहण:-

मौसम से संबंधित आंकड़े कृषि से संबंधित योजना के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण आंकड़े है। इन आंकड़ों की महत्ता बिहार राज्य में और भी बढ़ जाती है, क्योंकि बहुधा राज्य के कई क्षेत्र बाढ़ एवं सुखाड़ से प्रभावित होते रहते हैं। इन क्षेत्रों के मौसम से संबंधित आंकड़े बिना किसी विलम्ब के राज्य स्तर पर पहुँचाना आपदा प्रबंधन के दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण कार्य है। समय से इन आंकड़ों के उपलब्ध न होने से आपदा प्रभावित क्षेत्रों के संबंध में निर्णय लेने में कठिनाई होती है तथा इससे कृषि के वैकल्पिक योजना निरूपित करने में भी कठिनाई होती है। सप्रति विभिन्न प्रखण्ड मुख्यालयों में वर्षापात उपकरण स्थापित किया गया है, जिसके माध्यम से मौसम संबंधित जानकारियाँ प्रतिदिन संकलित की जाती है तथा निर्धारित अवधि पर उसे एक प्रतिवेदन के रूप में जिला स्तर पर, जिला स्तर से राज्य स्तर पर सूचनाएँ संकलित की जाती है। इसमें काफी विलम्ब हो जाता है। अतः राज्य के सभी प्रखण्ड मुख्यालय से मौसम की सूचना (जिसमें वर्षापात, तापमान, हवा का वेग इत्यादि) प्राप्त करने हेतु (Automatic Weather Station) स्थापित कर निदेशायल मुख्यालय में स्थापित Server के माध्यम से मौसम के आंकड़े प्रत्येक प्रखण्ड मुख्यालय से प्रतिदिन पूर्वाह्न में राज्य मुख्यालय को उपलब्ध हो सकेगा।[2]

सकल घरेलू उत्पाद के आकलन को पूर्ण करना:- राज्य केवल सकल घरेलू उत्पाद में कई ऐसे क्षेत्र है, जिसका पूर्णरूपेण समावेशन प्रामाणिक आधार के अभाव में नहीं हो रहा है। सम्प्रति सकल घरेलू उत्पाद के आकलन में स्थानीय सरकार व गैर-सरकारी निकायों यथा पंचायत/नगर निकाय, स्वयंसेवी संगठन, सहकारी समितियाँ एवं स्वयं सहायता समूहों का योगदान की गणना नहीं की जा रही है। अत: केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा निरूपित मापदण्डों का अनुगमन करते हुए इन स्थानीय सकरारी एवं गैर-सरकारी निकायों के सकल घरेलू उत्पाद के आकलन में योगदान की गणना इनका लेखा प्राप्त कर किया जायेगा।[3]

इसके कार्यान्वियन से राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में वास्तविकता होगी, जिससे राज्य की छवियों में सुधार होगा ही साथ ही राज्य सरकार की ऋण ग्राह्यता में भी वृद्धि होगी।

पूँजी निर्माण एवं बचत का आकलन:- राज्य में विकास के लिए पूँजी निर्माण एवं भविष्य में इस निमित विनिवेश का आकलन अनिवार्य है। अभी यह आकलन आंशिक रूप से राज्य सरकार तक सीमित है, जिसे क्रमिक रूप से राज्य के सभी खण्डों के लिए किया जायेगा। इससे भविष्य में बेहतर विनिवेश हेतु सम्यक ICQR की गणना की जा सकेगी।

आँकड़ा संकलन, संग्रहन एवं विश्लेषण प्रक्रिया का सुदृढ़ीकरण:- अर्थ एवं सांख्यिकी निदेशालय एवं जिला सांख्यिकी कार्यालयों को आधुनिक एवं सक्षम बनाने हेतु प्रशाखाओं का आधुनिकीकरण तथा कम्प्यूटरीकरण अर्थ एवं सांख्यिकी निदेशालय एवं जिला सांख्यिकी कार्यालयों का आधुनिकीकरण एवं कम्प्यूटरीकरण किया गया हैं। जिसके द्वारा कृषि सांख्यिकी, जीवनांक सांख्यिकी एवं अर्थ सांख्यिकी से संबंधित आँकड़ों का संग्रहण, संकलन एवं विश्लेषण की पद्धति से सूचना प्रौद्योगिकी का बेहतर उपयोग किया जा सकेगा। साथ बिहार राज्य के नगर निगमों/नगर परिषद्/नगर पंचायत एवं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में ऑन-लाइन रजिस्ट्रेशन की प्रणाली प्रतिपादित की जायेगी।[4]

बिहार सरकार द्वारा संचालित कृषि विकास हेतु प्रमुख योजनाएँ

योजना का नाम एवं विवरण: वित्तीय वर्ष 2017-18 में मुख्यमंत्री गन्ना विकास योजनांतर्गत चलायी जा रही योजनाएँ:-

बीज परीक्षण प्रयोगशाला की स्थापना:- निजी बीज उत्पादक कम्पनियों के माध्यम से भी बीज का उत्पादन किया जाएगा। 'बिहार राज्य बीज निगम' बीज उत्पादक किसानों के खेतों से धान की कटाई, जो नवम्बर-दिसम्बर में होती है, के बाद प्राप्त रॉ बीज में नमी 17 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक रहती है। इस समस्या के समाधान के लिए निगम वांछित संख्या में मोबाइल सीड ड्रायर की व्यवस्था की जायेगी। निगम अपने गोदामों में बीजों की आर्द्रता नियंत्रण हेतु संयंत्र की स्थापना करेगी। कुदरा, हाजीपुर, भागलपुर, बेगूसराय, बिहटा इत्यादि प्रसंस्करण इकाइयों में निगम के स्तर पर विभिन्न चरणों में बीजों की गुणवत्ता की जाँच हेतु बीज विश्लेषण प्रयोगशाला की स्थापना की जायेगी।

उल्लेखनीय है कि आगामी 5 वर्षो में 514884 क्विंटल बीज से 1067661 क्विंटल बीज उत्पादन तथा वर्ष 2017-18 में 3500 हेक्टेयर में बीज उत्पादन को बढ़ाकर 2021-22 में 72576 हेक्टेयर में बीज उत्पादन का लक्ष्य है। साथ ही 7 जिलों में बीज परीक्षण प्रयोगशाला कार्यरत है। शेष 31 जिलों के लिए प्रयोगशाला की स्वीकृति प्राप्त की गई है। जिलों में स्वीकृत बीज परीक्षण प्रयोगशालाओं को चालू किया जायेगा। बीजों के सम्बन्ध में आ रही शिकायतों के निराकरण हेतु बीज अधिनियम 1966, बीज नियंत्रण आदेश 1983, को प्रभावी ढंग से लागू करने हेतु नियमावली तैयार किया जायेगा।

राजकीय बीज गुणन प्रक्षेत्रों में बीज उत्पादन: राजकीय बीज गुणन प्रक्षेत्र पर खरीफ में धान, बाजरा, महुआ, अरहर, जूट, लोबिया, मूँगफली तथा सोयाबीन, रबी में गेहूँ, जई, चना, मसूर, राई/सरसों और तीसी एवं गरमा मौसम में मूँग, उरद और तिल के बीज उत्पादन हेतु राशि आबंटित की गई है। प्रक्षेत्रों के स्थानीय उपयुक्तता एवं परिस्थिति के अनुसार फसलवार अच्छादन लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

मुख्यमंत्री तीव्र बीज विस्तार कार्यक्रम: योजना का उद्देश्य राज्य के सभी राजस्व गाँवों में एक साथ उन्नत प्रभेदों के बीज उपलब्ध कराकर बीज उत्पादन हेतु किसानों को प्रोत्साहित करना है। आधार बीज का वितरण सभी जिला एवं प्रखण्ड मुख्यालयों

में शिविर आयोजित कर किया जाता है। बीज वितरण के समय ही सभी वयनित किसानों को प्रखण्ड स्तर पर बीजोत्पादन का प्रशिक्षण दिया जाता है।[5]

बीज ग्राम योजना: इस योजना का कार्यान्वयन वर्ष 2007-08 से किया जा रहा है। योजनान्तर्गत किसानों को धान एवं गेहूँ फसल हेतु 50 प्रतिशत अनुदान पर आधार /प्रमाणित बीज उपलब्ध कराया जाता है। किसानों को बीज उत्पादन हेतु तीन स्तरों पर (बोआई से पूर्व, फसल के मध्य अवस्था में एवं कटाई से पूर्व) प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रत्येक बीज ग्राम हेतु अधिकतम 100 किसानों का चयन किया जाता है। चयनित किसानों को एक एकड़ क्षेत्र के लिए चिन्हित फसलों के बीज उपलब्ध कराया जाता है।[6]

एकीकृत बीज ग्राम योजना: एकीकृत बीज ग्राम की स्थापना हेतु गया, नालन्दा, बक्सर, रोहतास, कैमूर, औरंगाबाद, कटिहार एवं पूर्णिया जिले को चिन्हित गाँव में किया जाना है, जिसमें किसानों को 60 प्रतिशत अनुदान पर दलहन एवं तेलहन फसलों के आधार/प्रमाणित बीज तथा अन्य फसलों के बीज 50 प्रतिशत अनुदान पर उपलब्ध कराया जाता हैं। स्थापित एकीकृत बीज ग्राम को पाँच वर्षों तक सहायता प्रदान की जाती है।

धान की मिनीकीट योजना: बिहार सरकार द्वारा प्रायोजित योजनान्तर्गत मिनीकीट बीज चयनित कृषकों के बीच 80 प्रतिशत अनुदान पर उपलब्ध कराया जाता है। इसके अन्तर्गत 5 से 10 वर्षो के विकसित प्रभेदों को राज्य के चयनित क्षेत्रों में वितरित कर उसके फलाफल को देखा जाता है कि यह प्रभेद किस क्षेत्र के लिए उपयुक्त है। इसमें आधे एकड़ के लिए बाढ़ एवं सुखाड़ रोधी धान के प्रभेद क्रमश: स्वर्णा सब-1 तथा सहभागी/सम्पदा प्रभेद के 6 किलो प्रमाणित बीज पैकेट कृषकों को उपलब्ध कराया जाता है।[7]

मिट्टी बीज एवं उर्वरक प्रयोगशाला के उन्नयन कार्यक्रम: सभी प्रयोगशालाओं स्थायी/चलन्त प्रयोगशाला के संचालन एवं क्रियाशीलन हेतु आवश्यक वस्तुओं एवं सामग्रियों के क्रय एवं नव चलन्त मिट्टी प्रयोगशाला के वाहन के मानदेय एवं दैनिक मजदूरी के लिए व्यय तथा पटना एवं सहरसा में चलन्त मिट्टी जाँच प्रयोगशाला के निबन्धन एवं बीमा मद हेतु राशि आबंटित की गई है।

कृषि यांत्रिकरण: कृषि यंत्रिकरण योजना में अनुदान प्राप्ति से लेकर यंत्र वितरण तक की ऑन-लाइन व्यवस्था हेतु मैकेनाइजेशन साफ्टवेयर का उपयोग किया जा रहा है। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के किसानों के लिए सभी प्रकार के कृषि यत्रों के अनुदान दर में वृद्धि की गई है। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के किसानों के हित में ट्रेक्टर के लिए न्यूनतम भू-आधारित 1 एकड़ एवं पावर टीलर के लिए 0.5 एकड़ की गई है। 44 विभिन्न प्रकार के कृषि यंत्रों पर अनुदान की व्यवस्था है, इन यंत्रों में से पावर टिलर, रोटावेटर, जिरोटिल/सीड ड्रील, कम्बाईड हार्वेस्टर, सेल्फ प्रोपेल्डरीपर/बाईडर, पावर थ्रेसर/मेज सेलर, स्टॉ रीपर यंत्रों की माँग आधारित किया गया है। किसान मेला के अतिरिक्त मेला के बाहर क्रय किये गये कृषि यंत्रों पर भी अनुदान देने का प्रावधान है।[8]

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सेकात है कि कृषि विकास में सबसे बड़ी बाधा पुराने ढ़ंग अथवा परंपरागत कृषि प्रणाली है, जिसके कारण हम वैज्ञानिक रूप से विकसित कृषि पद्धति का उपयोग मृदा निर्माण, फसलों की समय से बुआई, सिंचाई एवं फसल कटाई में नहीं कर पाते हैं। मौसम, मृदा एवं फसल विकास के विभिन्न स्तर पर वास्तविक काल श्रंखला आँकड़ों को इकट्‌ठा कर खेती के लिए एक अच्छा निर्णय लेने में वृहद आँकड़ों का इस्तेमाल किया जा सकता है। उन्नत सांख्यिकीय अनुसंधान से एक बेहतर प्रारूप की संरचना कर सकते हैं जिससे हम आने वाली परिस्थितियों का पूर्वानुमान कर किसानों के लिए एक बेहतर निर्णय लेने में मदद कर सकते हैं।

संदर्भ स्रोतः-

1. आर0 एल0 कौड़ा, (2015), ''एग्रीकल्चर डेवलपमेंट इन द उत्तर प्रदेश, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, पृ 12
2. एल0 एस0 एस कुमार, आदि (2016), ''एग्रीकल्चर इन इण्डिया'', खण्ड तीन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, आगरा., पृ 15
3. एस0 एस0 खोट, (2015), ''शीप एण्ड वूल इन इण्डिया'', इंडियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, नई दिल्ली, फार्म बुलेटिन नं0 16, पृ 30
4. नार्मन0 सी0 राइट, (2016), ''रिपोर्ट आन द डैवलपमेंट ऑफ एग्रीकल्चर इंडस्ट्रीज इन इण्डिया'', मैनेजर ऑफ पब्लिकेशंस भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ 49
5. हरबंस सिंह, (2016), ''ए सर्वे ऑफ एग्रीकल्चर इन इंडिया'', लाहौर बुक शाप, लुधियाना, पृ 25
6. हरबंश सिंह और वाई0एम0 पारनेकर (2015), ''बेसिक फक्ट्स अबाउट एग्रीकल्चर एण्ड इट्स मेटर्स'', सेंट्रल कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चर, नई दिल्ली, पृ 14
7. आर0 एन0 सोनी (2015), ''कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय'', विशाल पब्लिशिंग कारपोरेशन जयपुर., पृ 21
8. एम0 एस0 रंधावा, (2015), ''एग्रीकल्चर इन इण्डिया'', इण्डियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, नई दिल्ली, पृ 154

नूर मोहम्मद के काव्य पर भारतीय सूफी चिंतन का प्रभाव

डॉ० प्रदीप कुमार सिंह

अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, साठये महाविद्यालय (मुंबई विद्यापीठ), मुंबई-महाराष्ट्र

नूर मोहम्मद के काव्य पर प्रचुर मात्रा में भारतीय सूफी चिंतन का प्रभाव दिखाई पड़ता है। नूर मोहम्मद के काव्य पर सिर्फ भारतीय सूफी चिंतन का प्रभाव ही नहीं अपितु भारतीय योग आदि का भी प्रभाव है। नूर मोहम्मद ने अपने काव्य में समन्वयात्मक ख्रष्टिकोण अपनाया है। उन्होंने इस्लाम धर्म के दार्शनिक सिद्धांतों को ग्रहण करने के साथ-साथ भारतीय चिंतन प्रणाली को भी अपनाया है। नूर मोहम्मद के काव्य में यह तीनों स्थितियाँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

ज्ञान साधना : परमसत्ता को जानने की जिज्ञासा सदैव मानव मन में बनी रही है। वह क्या है? कैसा है? ईश्वर का होना निर्विशेष ज्ञान है और वह कैसा है? इसे निर्धारित करना प्रत्यक्ष ज्ञान है। सूफी साधक ज्ञान साधना के माध्यम से प्रत्यक्ष ज्ञान तक की यात्रा तय करते हैं। ज्ञान की प्रारंभिक अवस्था बुद्धि के बिना सभव नहीं है। बुद्धिमान व्यक्ति ही गुणी और ज्ञानी हो सकता है। नूर मोहम्मद ने ज्ञान की महिमा को अत्यधिक महत्त्व दिया है। जीव निर्गुणी और अज्ञानी है और परमसत्ता ज्ञान रूप है। अत: उसको जानने के लिए ज्ञान का होना आवश्यक है।

हौ अज्ञान और निगुनी।
ज्ञान रूप वह पीउ।।
हाथ छूछ गुरू ज्ञान सो।
सखी सोच महं जीउ।।
जेहि गुन बुद्धि हाथ महं होई।
तापर प्यार करै सब कोई।।
गुन सौ मानुष होत पियारा।
गुन कर गाहक है संसारा।।
विष कहं अमिय करत है।
है ज्ञानी जो कोई।।
मूरख जन के हाथ सों।
अमृत विष सम होई।।[1]

नूर मोहम्मद मन को बुद्धि की जन्म भूमि स्वीकार करते हैं :

बुद्धसेन रहु ताको नाउँ।
जन्मभूमि तेहि मन पुर ठाउऊँ।।[2]

इद्रावती में कुँवर जब स्वप्न देखता है तो वह बुद्धि नामक अपने मंत्री से मंत्रणा लेता किंतु जिस समय बुद्धि उससे कहती है:

सपन रूप पर का बिसवासू।

तज मन चिंतबढ़ाव हुलासू्य।[3]

कुँवर सहज ही उसका विश्वास नहीं करता। बुद्धिरूपी मंत्री अपने साथ दस ज्ञानी मनुष्यों को लेकर कुँवर के पास आता है जो अपने ज्ञान के आधार पर रूप और सौंदर्य को विस्तारपूर्वक बखान करते हैं। किंतु राजा के मन को कोई भी वर्णन स्पर्श नहीं करता–

अपना बुद्ध मनुष्य दस ज्ञानी।

राजा नियरे कहै कहानी।।

रूप बखान करे बहुतेरा।

होड़ फिर मन राजा केरा।।

राजा के मन बोध न होई।

सपन कहानी कहेउ न कोड़।।[4]

इसके बाद राज कुँवर गुरूनाथ नामक एक तपस्वी की शरण लेता है जो उसे सत्य ज्ञान से परिचित कराता है। स्पष्ट है कि नूर मोहम्मद की ख्रष्टि में मात्र कोरे ज्ञान से सत्य की अनुभूति नहीं की जा सकती। अनुभूति ज्ञान केवल सदगुरु के पास होता है। जो उसे तपए्चर्या से प्राप्त करता है :

तपी भेस में मानुष।

नाम मोर गुरूनाथ।।

तब गुरूनाथ कहा वउं।

जब आनउं ताप हाथ।।[5]

अनुराग बाँसूरी में भी इसी प्रकार नूर मोहम्मद ने अंत:करण के दो मित्रों की चर्चा की है जिनमें एक का नाम बुद्धि है और दूसरे का चित्त। नूर मोहम्मद बुद्धि की महत्ता स्वीकार करतेहुए कहते हैं :

बुद्धि के मतें चलै जो कोई।

ताके काज सिरेयस होई।।

मंत्री बुद्धि समां जेहि पासां।

काहें बक्र चले सुख आसां।।[6]

ज्ञाता और ज्ञेय के मध्य अभिन्न स्थिति की अनुभूति ही सत्य ज्ञान है। इस अवस्था में पहुँचकर साधक आत्मज्ञानी कहलाता है और साधना में परिपूर्ण हो जाता है। यह अवस्था सदगुरु की ख्रपा से प्राप्त हो सकती है। सद्‌गुरु के प्रति नूर मोहम्मद की अपार श्रद्धा है। किंतु नूर मोहम्मद का साधक गुरु के उपदेशों को स्वानुभूति की कसौटी पर कसने के बाद ही स्वीकारता है। इसलिए नूर मोहम्मद की रचनाओं में ऐसे ही तपस्वी ब्रह्मज्ञानी को गुरु रूप में स्वीकार किया गया है जो साधना मार्ग की विषमताओं में पूरी तरह तपकर खरा सिद्ध हुआ है। नूर मोहम्मद का विश्वास है–

गुरू बिन पंथ न पावै कोई।

केतिकौ ज्ञानी ध्यानी होई।।

गुरू ऐसो मीठी किछु नाहीं।

जहं गुरू तहं तिकत मिटि जाहीं।।

कामयाब को गुरू अति भावै।

से हित जो गुरू ताहि जिवाबै।।[7]

नूर मोहम्मद शास्त्रीय तर्कों के आधार पर परमसत्ता को जानने का प्रयास नहीं करते। उनकी सत्यानुभूति साधक के हृदय में गुरू के माध्यम से स्फुरित होती हुई सहज आलोक की किरणें बिखेरती है। ज्ञान, प्रेम, भक्ति, प्रथम चरण है जिससे गुजरकर ही जीवात्मा में ब्रह्म मिलन की जिज्ञासा तीब्रतर होती है।

योग साधना : सूफियों की ख्रष्टि में जीवात्मा अपने मूल से पृथक हो जाने के कारण उस तक पहुँचने के लिए सदैव लालायित रहती है। मूल के प्रति समर्पण की व्याकुलता ही वास्तव में योग है। नूर मोहम्मद ने इस स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया है-

यह सरीर पिंजर मों, रहत बुखारी प्रान।[8]

नूर मोहम्मद में सैद्धांतिक स्तर पर योग साधना का विधिवत निरूपण नहीं किया है। किंतु उनकी रचनाओं में योग साधना की यह तीनों स्थितियाँ विद्यमान हैं। पहली स्थिति में ब्रह्मज्ञान का बोध होते ही साधक माया से मुक्ति पाने के लिए बैराग्य की दिशा में अग्रसर होता है। यह अवस्था स्वप्नावस्था से जागृतावस्था में आने की है। इंद्रावती और अनुराग बाँसूरी में क्रमशः राजकुँवर और अंत:करण इसी वैराग्य की ओर प्रेरित होते हैं। वैराग्य की यह प्रेरणा तपस्वी एवं विवेकी गुरू से मिलती है। इस स्थिति में माता-पिता का प्रेम, राज- वैभव, भोग-विलास तथा अन्य सभी सुख-साधनों के प्रति सहज रूप से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। दूसरी स्थिति में राजकुँवर और अंत:करण योगी का वेश धारण करते हैं। नूर मोहम्मद की ख्रष्टि में बैराग्य की सिद्धि प्रत्येक मनुष्य को नहीं हो सकती। परमात्मा के प्रति सच्चा प्रेम जिस समय होता है। साधक के लिए सहज ही वैराग्य मार्ग प्रिय बन जाता है। अध्यात्म पथ में गर्वित शरीर एवं राजसी वेश के लिए कोई स्थान नहीं है। वस्तुत: वैराग्य प्रेम भक्ति का पहला चरण है। जिस पर चलने से साधक को कोई रोक नहीं सकता-

प्रेम पंथ वैराग पियारा।

होड़ न कोउ रोकनहारा।।

राज भेस कत छाजै जहा सनेह।

लहत न नेह पंथ मो गरवित देह।।[9]

नूर मोहम्मद ने ईश्वरज्ञ होने का दावा करनेवाले मुल्लाओं पर गहरी चोट करते हुए इस तथ्य का संकेत किया है कि वैराग्य मार्ग अत्यधिक विषम है और चेहरे पर दाढ़ी रखनेवाले बड़े-बड़े मौलवी जिनके हाथों में तस्बीह रहती है इस मार्ग पर नहीं चल सकते। केवल तपस्वी का वेश धारण कर लेने से और कंधे पर दुकूल धारण करके हाथ में माला लेने तथा उज्ज्वल वसन के मध्य शरीर को छिपा लेने से कोई व्यक्ति वैरागी नहीं कहला सकता। बैरागी होने के लिए आवश्यक है कि दिन-रात प्रत्येक पल परम सत्ता का स्मरण और ध्यान किया जाए। इसके बिना साधक की तपस्या पूर्ण नहीं होती। यथा-

है वैराग-पंथ अति गाढ़ी।

चलि न सके जिनके मुख दाढ़ी।।

प्रेम अधीर नैन वैरागी।

माला बांध कहां अनुरागी।।

पी न होहि भेस के किहें।

रंग दुकूल माला के लिहें।।

उज्जल बास बीच भल जोगू।

रहे छिपान न चीन्हे लोगू।।

सुमिरन ध्यान रात दिन चाहे।

इहै तपस्या पूरन आहै।।[10]

नूर मोहम्मद प्राणायाम, उद्दीपन, घटचक्र, भेदन तथा अनहद नाद की यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से पूर्णतः परिचित थे। नूर मोहम्मद ने शरीर रूपी मंदिर में सात हीरों की कल्पना की है। जिनसे मंदिर में प्रकाश फैला हुआ है। इस मंदिर में 248 रत्न जड़े हुए हैं। मंदिर में प्रवेश के 13 द्वार हैं जिनमें से 9 द्वार खुले रहते हैं-

हीरा सात-सात जस तारे।
हैं मंदिर भीतर उजियारे।।
द्वइ से और अड़तालिस करी।
लागै रतन पदारथ भरी।।
है मंदिर मो तेरह द्वारा।
नौ द्वारा नित रहत उघारा।।[11]

इस मंदिर के दो द्वारों से होकर एवाँस रूपी पवन आता जाता रहता है। इसका दसवां द्वार वही खोल सकता है जिसने सत्य का मार्ग जान लिया है। इस मंदिर में 10 दासियाँ हैं जो गुणों से संपन्न हैं और सेवा करने के लिए निरंतर खड़ी रहती है। इनमें से पाँच दासियां मंदिर के बाहर रहती हैं और पाँच मंदिर के भीतर। एक दासी पाँच दासियों से निरंतर समाचार प्राप्त करती रहती है और उसे अन्य चार दासियों तक पहुँचाती है-

आवै जाइ पवन दुड़ द्वारे।
संगी सोहु न सबद संवारे।।
दसई द्वार न खोलत कोई।
तब खोले जब धरमी होई।।
दस चेरीधन की गुन भरो।
सेवा बीच रहे नित खरी।।
पांच मंदिर के बाहर रहई।
पांच मंदिर भीतर गुन गहई।।
इक सुधै पांचों सो नित लेई।
सुध चारों चेरिन कहं देई।।[12]

नूर मोहम्मद की खृष्टि में योग की पहचान इस प्रकार है :

जोगिह आपन उदर न भर्ई।
मन मो जोग अंस तब परई।।
उदर भरे घट जोत न होई।
खाय मनाक जो नेसर सोई।।[13]

योगी की योग के माध्यम से राज्य की प्राप्ति होती है और वह एक रत्ती के बदले में भी योग त्याग कर दोनों संसार का वैभव लेने के पक्ष में नहीं है-

कहा राज आवइ केहि काजू।
जेग बीच दाएउं मैं राजू।।
छोठ जगत देड़ जस कोऊ।
एक रती पर लेउं न दोऊ।।[14]

प्रेम भक्ति साधना : ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर सूफी साधना का प्रारंभ ही भक्ति भावना से होती है। प्रसिद्ध सूफी महिला राबिया बसरी की प्रार्थना सूफी चिंतकों की ख़ष्टि में विशेष महत्त्व रखती है। वह प्रार्थना इस प्रकार थी-ऐ मालिक इहलोक का सुख अपने शत्रुओं को प्रदान कर, परलोक का सुख अपने मित्रों को दे। मेरे लिए तो तू ही पर्याप्त है। यदि मैं नरक के भय से तेरी इबादत करूँ तो मुझे स्वर्ग से वंचित कर दे। यदि मैं तेरी उपासना तेरे लिए ही कर रही हूँ तो अपने सौंदर्य का वह शेष अंश जो तूने मुझे अभी तक प्रदान नहीं किया है उसे भी प्रदान कर दे।80 स्पष्ट है कि राबिया बसरी की ईश्वर के प्रति प्रेम भावना निष्काम थी। कबीर ने इसी ख़ष्टि से अनन्य भाव से समस्त इंद्रियों और मन के द्वारा परमात्मा में तल्लीन होने को भक्ति माना है :

जब लग भगति सकामता।
तब लग निर्फल सेव।।
कह कबीर वै क्यूं मिलै।
निहकामी निज देव।।[15]

कुरआन मजीद में अपने नफ्स को समाप्त करके अल्लाह की रजामंदी प्राप्त करलेनेवाले व्यक्ति को श्रेष्ठ बताया गया है। वस्तुत: सूफी चिंतकों ने इस समर्पण भावना को ईश्वर प्रेम के मार्ग में आवश्यक माना है। इस दृष्टि से सूफियों की भक्ति भावना में आत्म समर्पण और रजा (ईश्वर की इच्छा को अपनी इच्छा बना लेना) को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। भारतीय सूफी चिंतकों ने भक्ति के इस मूल तत्त्व को पकड़कर अपनी प्रेम भावना का विकास किया। इस ख़ष्टि से देखने पर सूफियों की परमात्मा के प्रति परमानुरक्ति कुरआन एवं भारतीय भक्ति भावना के सर्वथा अनुकूल है। नूर मोहम्मद के काव्य पर इसकी स्पष्ट छाप देखी जा सकती है और निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नूर मोहम्मद के काव्य पर भारतीय सूफी चिंतन के प्रभाव के साथ-साथ नाथों एवं सिद्धों का भी प्रभाव है।

संदर्भ

- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, स्वप्न खण्ड, पृष्ठ 166, छंद 3-7
- वही, पृष्ठ 12, छंद 3-9
- वही, पृष्ठ 13, छंद 3-12
- वही, पृष्ठ 14-20
- वही, पृष्ठ 20, छंद 3-35
- नूर मोहम्मद : अनुराग-बाँसुरी, सं. रामचंद्र शुक्ल, चंद्रबली पाण्डेय : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2007 वि., पृष्ठ 95, छंद-10
- नूर मोहम्मद : अनुराग-बाँसुरी, सं. रामचंद्र शुक्ल, चंद्रबली पाण्डेय : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2007 वि. बैरागी खण्ड, पृष्ठ 120, छंद 31
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, सुवा खण्ड, पृष्ठ 86, छंद 4
- नूर मोहम्मद : अनुराग-बाँसुरी, सं. रामचंद्र शुक्ल, चंद्रबली पाण्डेय : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2007, वि. बैरागी खण्ड, पृष्ठ 119, छंद 29
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, स्वप्न खण्ड, पृष्ठ 15, छंद 19
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, मालिन खण्ड, पृष्ठ 46, छंद 14
- नूर मोहम्मद : अनुराग-बाँसुरी, सं. रामचंद्र शुक्ल, चंद्रबली पाण्डेय : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2007 वि, मनभावनी खण्ड, पृष्ठ 137, छंद 12
- नूर मोहम्मद : इंद्रावती, जोगी खण्ड, पृष्ठ 26, छंद 4-5
- ख्वाजा फरूदुद्दीन अत्तार : तजकिसुल औलिया (उर्दू तर्जुमा), बंबई, पृष्ठ 39 15, सं. श्याम सुंदर दास : कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी, वाराणसी, 17वां-सं, साखी-11, पृष्ठ 19

खादी विकास और ग्रामोद्योग आयोग : ग्रामीण विकास में साझीदार

डॉ० नवीन कुमार

एम.कॉम, पीएचडी. (कॉमर्स फैकल्टी), बी.आर. आंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

खादी और ग्रामोद्योग आयोग (केवीआईसी), संसद के 'खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग अधिनियम 1956' के तहत भारत सरकार द्वारा निर्मित एक वैधानिक निकाय है। यह भारत में खादी और ग्रामोद्योग से संबंधित सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग मंत्रालय (भारत सरकार) के अन्दर आने वाली एक शीर्ष संस्था है, जिसका मुख्य उद्देश्य है– 'ग्रामीण इलाकों में खादी एवं ग्रामोद्योगों की स्थापना और विकास करने के लिए योजना बनाना, प्रचार करना, सुविधाएं और सहायता प्रदान करना है, जिसमें वह आवश्यकतानुसार ग्रामीण विकास के क्षेत्र में कार्यरत अन्य एजेंसियों की सहायता भी ले सकती है।'। अप्रैल 1957 में, पूर्व के अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामीण उद्योग बोर्ड का पूरा कार्यभार इसने संभाल लिया।

इसका मुख्यालय मुंबई में है, जबकि अन्य संभागीय कार्यालय दिल्ली, भोपाल, बंगलोर, कोलकाता, मुंबई और गुवाहाटी में स्थित हैं। संभागीय कार्यालयों के अलावा, अपने विभिन्न कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करने के लिए 29 राज्यों में भी इसके कार्यालय हैं।

परिचय

खादी, हाथ से काते गए और बुने गए कपड़े को कहते हैं। कच्चे माल के रूप में कपास, रेशम या ऊन का प्रयोग किया जा सकता है, जिन्हें चरखे (एक पारंपरिक कताई यन्त्र) पर कातकर धागा बनाया जाता है।

खादी का 1920 में महात्मा गाँधी के स्वदेशी आन्दोलन में एक राजनैतिक हथियार के रूप में उपयोग किया गया था।

खादी को कच्चे माल के आधार पर भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त किया जाता है - पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा और उत्तर पूर्वी राज्यों से रेशमी माल प्राप्त किया जाता है, जबकि कपास की प्राप्ति आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल से होती है। पॉली खादी को गुजरात और राजस्थान में काता जाता है जबकि हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर को ऊनी खादी के लिए जाना जाता है।

ग्रामीण उद्योग

कोई भी उद्योग जो ग्रामीण क्षेत्र के अन्दर स्थित होता है और जहाँ प्रति कारीगर (जुलाहा) निश्चित मुद्रा निवेश एक लाख रुपये से अधिक नहीं होता है। निश्चित मुद्रा निवेश को आवश्यकतानुसार भारत की केंद्रीय सरकार द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।

खादी और ग्रामोद्योग की प्रासंगिकता

खादी और ग्रामोद्योग, दोनों में ही अत्यधिक श्रम (श्रमिकों) की आवश्यकता होती है। औद्योगीकरण के मद्देनजर और लगभग सभी प्रक्रियाओं का मशीनीकरण होने के कारण भारत जैसे श्रम अधिशेष देश के लिए खादी और ग्रामोद्योग की महत्ता और अधिक बढ़ जाती है।

खादी और ग्रामीण उद्योग का एक अन्य लाभ यह भी है कि इन्हें स्थापित करने के लिए पूँजी की आवश्यकता नहीं (या बिलकुल कम) के बराबर होती है, जो इन्हें ग्रामीण गरीबों के लिए एक आर्थिक रूप से व्यवहार्य विकल्प बनाता है। कम आय, एवं क्षेत्रीय और ग्रामीण/नगरीय असमानताओं के मद्देनजर भारत के संदर्भ में इसका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है।

आयोग के उद्देश्य

आयोग के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं जो इसके कार्यों को निर्देशित करते हैं। ये इस प्रकार हैं–

- सामाजिक उद्देश्य - ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार उपलब्ध कराना।
- आर्थिक उद्देश्य - बेचने योग्य सामग्री प्रदान करना
- व्यापक उद्देश्य - लोगों को आत्मनिर्भर बनाना और एक सुदृढ़ ग्रामीण सामाजिक भावना का निर्माण करना।

आयोग विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और नियंत्रण द्वारा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

योजनाओं और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन

योजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की प्रक्रिया सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग मंत्रालय से आरम्भ होती है, जो इन कार्यक्रमों का प्रशासनिक प्रमुख होता है। मंत्रालय भारतीय केन्द्र सरकार से धन प्राप्त करता है और खादी और ग्रामोद्योग से संबंधित कार्यक्रमों और योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग को पहुंचाता है।

खादी और ग्रामोद्योग आयोग इसके बाद इस धनकोष का प्रयोग अपने कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करने के लिए करता है। आयोग इस काम को प्रत्यक्ष तौर पर अपने 29 राज्य कार्यालयों के माध्यम से सीधे खादी और ग्राम संस्थाओं एवं सहकारी संस्थाओं में निवेश करके; या अप्रत्यक्ष तौर पर 33 खादी और ग्रामोद्योग बोर्डों के माध्यम से करता है, जो कि भारत में राज्य सरकारों द्वारा संबंधित राज्य में खादी और ग्रामोद्योग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से निर्मित वैधानिक निकाय हैं। तत्पश्चात, खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड खादी और ग्राम संस्थानों/सहकारिताओं/व्यवसाइयों को धन मुहैया कराते हैं।

वर्तमान में आयोग के विकासात्मक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन 5600 पंजीकृत संस्थाओं, 30,138 सहकारी संस्थाओं और करीब 94.85 लाख लोगों के माध्यम से किया जा रहा है।

आयोग की योजनायें और कार्यक्रम

प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पीएमईजीपी): प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पीएमईजीपी) दो योजनाओं के विलय का परिणाम है - प्रधानमंत्री रोजगार योजना (पीएमआरवाई) और ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (आरईजीपी)।

इस योजना के तहत, लाभार्थी को परियोजना की लागत के 10 प्रतिशत का निवेश स्वयं के योगदान के रूप में करना होता है। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य कमजोर वर्गों से लाभार्थी के लिए यह योगदान परियोजना की कुल लागत का 5 प्रतिशत होता है। शेष 90 या 95% प्रतिशत (जो भी उपयुक्त हो), इस योजना के तहत निर्दिष्ट बैंकों द्वारा प्रदान किया जाता है। इस योजना के तहत लाभार्थी को ऋण की एक निश्चित रकम वापस दी जाती है (सामान्य के लिए 25%, ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्गों के लिए 35%), जो कि ऋण प्राप्त करने की तिथि के दो वर्षों के बाद उसके खाते में आती है।

ब्याज अनुवृत्ति पात्रता प्रमाणपत्र योजना (आईएसईसी): ब्याज अनुवृत्ति पात्रता प्रमाणपत्र (ISEC) योजना, खादी कार्यक्रम के लिए धन का प्रमुख स्रोत है। इसे मई 1977 में, धन की वास्तविक आवश्यकता और बजटीय स्रोतों से उपलब्ध धन के अंतर को भरने हेतु बैंकिंग संस्थानों से धन को एकत्र करने के लिए शुरू किया गया था।

इस योजना के तहत, बैंक द्वारा सदस्यों को उनकी कार्यात्मक/निश्चित राशि की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए ऋण प्रदान किया जाता है। ये ऋण 4% प्रतिवर्ष की रियायती ब्याज दर पर उपलब्ध कराये जाते हैं। वास्तविक ब्याज दर और रियायती दर के बीच के अंतर को आयोग द्वारा अपने बजट के 'अनुदान' मद के तहत वहन किया जाता है। हालांकि, केवल खादी या पॉलीवस्त्र (एक प्रकार की खादी) का निर्माण करने वाले सदस्य ही इस योजना के लिए योग्य होते हैं।

छूट योजना

सरकार द्वारा खादी और खादी उत्पादों की बिक्री पर छूट उपलब्ध कराई जाती है ताकि अन्य कपड़ों की तुलना में इनके मूल्यों को सस्ता रखा जा सके। ग्राहकों को पूरे वर्ष सामान्य छूट (10 प्रतिशत) और साल में 108 दिन अतिरिक्त विशेष छूट (10 प्रतिशत) दी जाती है।

छूट केवल आयोग/राज्य बोर्ड द्वारा संचालित संस्थाओं/केन्द्रों द्वारा की गई बिक्री और साथ ही खादी और पॉलीवस्त्र के निर्माण में संलग्न पंजीकृत संस्थाओं द्वारा संचालित बिक्री केन्द्रों पर ही दी जाती है।

हाल ही में, वित्त मंत्रालय ने सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग मंत्रालय से खादी और ग्रामोद्योग के लिए अपनी छूट योजनाओं को पुनः बनाने के लिए कहा है। उनका दृष्टिकोण यह है कि 'मंत्रालय द्वारा इस योजना को साल-दर-साल बढ़वाने की चेष्टा करने की बजाय योजना आयोग के समक्ष जाना चाहिए। इसके अलावा, इसने एमएसएमई मंत्रालय से योजना का इस प्रकार पुनः निर्माण करने के लिए कहा है जिससे यह विक्रेता की बजाय कारीगरों को फायदा पहुंचाए'। इस संबंध में, आयोग का एक प्रस्ताव जिसमें बिक्री पर छूट के संभावित विकल्प के रूप में बाजार विकास सहयोग शुरू करने की बात कही गयी है, भारत सरकार द्वारा विचाराधीन है।

आयोग को बजटीय समर्थन

केंद्र सरकार आयोग को सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग मंत्रालय के माध्यम से दो मदों के तहत धन प्रदान करती है: योजनाकृत और गैर-योजनाकृत। आयोग द्वारा 'योजनाकृत' मद के तहत प्रदान किये गए धन का आवंटन कार्यान्वयन एजेंसियों को किया जाता है। 'गैर-योजनाकृत' मद के तहत प्रदान किया गया धन मुख्य रूप से आयोग के प्रशासनिक व्यय के लिए होता है। धन मुख्य रूप से अनुदान और ऋण के माध्यम से प्रदान किया जाता है।

अनुदान

खादी अनुदान का एक बड़ा भाग बिक्री छूट के भुगतान के लिए प्रयोग किया जाता है, जिसे प्रचार व्यय माना जाता है। इस मद के तहत अन्य व्यय हैं: प्रशिक्षण, प्रचार, विपणन, आईएसईसी योजना के तहत बैंक ऋणों पर ब्याज अनुवृत्ति।

ऋण

इस मद के अंतर्गत व्यय में शामिल हैं: कार्यकारी पूंजी व्यय और निश्चित पूंजी व्यय। निश्चित पूंजी व्यय में निम्न व्यय शामिल हैं–

क. मशीनरी 1000000

ख. सामग्री 50000

ग. कार्य स्थल 25000

घ. बिक्री स्थल आदि। 25000

खादी और ग्रामीण उद्योग के उत्पादों की बिक्री

संस्थाओं द्वारा निर्मित उत्पाद उनके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से फुटकर विक्रेता और थोक विक्रेता के माध्यम से बेचे जाते हैं; या अप्रत्यक्ष रूप से 'खादी भंडार' (सरकार द्वारा संचालित खादी बिक्री केंद्र) के माध्यम से।

कुल मिलाकर 15431 बिक्री केंद्र हैं, जिनमें से 7,050 आयोग के अधीन हैं। ये पूरे भारत में फैले हुए हैं।

इन उत्पादों को आयोग द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों के माध्यम से विदेशों में भी बेचा जाता है।

निष्कर्ष

खादी ग्रामोद्योग भारतवर्ष की अस्मिता की पहचान है। विश्ववंद्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस देश में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण और ग्रामीण स्तर पर रोजगार सृजन के उद्देश्य से ही वर्षों पूर्व 'खादी ग्रामोद्योग संघ' की स्थापना की थी। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण स्तर से लेकर नगरों, महानगरों और राष्ट्रीय स्तर पर सभी वर्ग लाभान्वित और उपकृत हुए थे। संपूर्ण देश में इसके लघु इकाई से लेकर बड़े स्तर तक कई केंद्र चलते थे और साथ ही कई लाख लोगों को अपनी रोजी-रोटी की शुभ अवसर प्राप्त हुए थे। यह बात सभी आर्थिक चिंतक विश्लेषक जानते होंगे, इस सच्चाई को स्वीकार करने में किसी को हिचक भी शायद ना होगी। गांधीजी के द्वारा यह बड़े साहसिक और महान कदम आजादी से पूर्व उठाए गए थे और उसके कार्यरूप में परिणति के फलस्वरुप स्वदेशी और स्वावलंबन का भाव भी सभी भारतीयों में जग गया था। निष्कर्षत: कहना अतिरंजित ना होगा कि भारतीय आर्थिक अभ्युन्नति के लिए, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए, अधिकाधिक जनता को रोजगार प्रदान करने में खादी और सिल्क उद्योग को प्रक्षय देना सहायक सिद्ध होगी रोजगार सृजन के इस प्रकाश किरणों से सभी खुशहाल होंगे।

सन्दर्भ

1. A study on Khadi and Village Industries Sector Dr. K. Balasubramanyam, Asst. Prof. in Commerce, Govt. Degree College Cherial, Warangal(dist). International Journal of Academic Research ISSN: 2348-7666 Vol.2, Issue-2(5), April-June, 2015
2. REVIVAL OF KHADI – AN ANALYSIS OF THE STATE OF KHADI IN INDIA WITH SUPPLY AND DEMAND SIDE PROBLEMS Nitish Goel. Kshitij Jain, Department of Chemical Engineering, Indian Institute of Technology Delhi, New Delhi, India 110016. Innovative Journal of Business and Management 4:5, September – October (2015) 100 – 103.
3. Pesala Peter ISECA Amarender A. Reddy Indian Agricultural Research Institute (IARI) Khadi & Village Industry: A Case Study of Khadi Institutions in India Journal of Rural Development, Vol. 30, No. 3, pp. 273-289, 2011117 Pages Posted: 9 Dec 2011 Last revised: 21 Oct 2017
4. Lekshmi R Nair and D. Dhanuraj Centre for Public Policy Research Evaluation of Government Interventions in Khadi Sector January 2016 Centre for Public Policy Research 5.Annual Reports from the Ministry of Micro, Small and Medium Industries.
5. Gopinath, P. (2010). Wages, working conditions and socio-economic mobility of spinners and weavers in the unorganized khadi industry: Findings from a survey in India. Indian Journal of Labour Economics,53(2).

दत्तवती महाकाव्यमे प्रकृति-चित्रण

दीपक कुमार पटेल

सहायक शिक्षक, रामहंस उच्च विद्यालय, चतरा, मधेपुरा, बिहार

स्वातंत्र्योत्तर भारतक दू टा महत्वपूर्ण घटना जे एहिठाम ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक भावनाकेँ झकझोड़ि कऽ राखि देने छलैक चीनी ओ पाकिस्तानी सेना द्वारा भारतक भू-खंडकेँ प्रत्यक्ष-परोक्ष रूपेँ हथिआयब-शासन करब। प्रतिरोध-बचावमे भारतक अपार धन-जन-बलक संग उपरोक्त विविध क्षेत्रहुमे न्यूनाधिक क्षति भेलैक तकर कारणेँ दृष्टिमे राखि समुचित समाधान ओ तकर पुनरावृति नहि होअय, एहि परिप्रेक्ष्यमे भारतक विभिन्न भाषा-साहित्यक विविध साहित्यकारलोकनि अपन कृतिक माध्यमसँ देशवासीकेँ सजग-सचेत ओ एकत्वक भाव-प्रेरणा प्रदान कयलनि। एहि परिप्रेक्ष्यमे मैथिलीक मनीषी आचार्य सुरेन्द्र झा 'सुमन' सेहो दत्तवती महाकाव्यक प्रणयन कयलनि।

दत्तवती महाकाव्य काव्यशास्त्रीय कसौटीपर कसल अछि, जकर फलक-विस्तार सम्पूर्ण भारतवर्ष छैक। महाकाव्यक कथा-प्रवाहमे गतिशीलता अनबाक लेल वर्णन-वैशिष्ट्य महत्वपूर्ण तत्व होइछ। एहि वर्णन-वैशिष्ट्यक अन्तर्गत आन-आन वस्तुक अतिरिक्त अबैछ-घटनाक परिवेशमे आयल प्राकृतिक वातावरणक चित्रण अर्थात् प्रकृति-चित्रण।

दत्तवती महाकाव्यमे प्रकृति-वर्णन काव्यशास्त्रक आदेशानुपालन हेतु मात्र नहि कयल गेल छैक, प्रत्युत घटना ओ कथानकक प्रसंगानुकूल आयल छैक। स्वाभाविक रूपेँ प्रकृति थिकै- सूर्य-चन्द्र, राति-दिन, भोर-साँझ-दुपहर, गाछ-वृक्ष, नदी-पहाड़, ऋतृ, मेघ ओ वर्षा आदि।

प्रकृतिमे दिन ओ राति चक्रानुक्रममे चलैत रहैछ। जेना- उषः काल-भोर-दिन-मध्याह्न-साँझ-प्रदोष ओ राति आ उषा-भोर ख्रख्र क्रमानुसारेँ अबैत-जाइत रहैछ। सभ कालक अपन महत्व छैक। प्रकृतिक कोरमे घटाटोप मेघक झिस्सी, बुन्नी, मुसलाधार वृष्टि, जीव-जन्तु, गाछ-वृक्ष, नदी-पहाड़, वन-उपवन ओ जंगलक अनादिकाल सँ उपस्थिति बनल छैक। ओ सभ धरतीक श्रृंगार थिक, शोभा थिक, तऽ जनजीवनक सम्पति ओ धनक माध्यम सेहो।

भोरूपहरक ललौन क्षितिज, चिड़ै-चुनमुनक चुहचुही, रंग-विरंगक फूल-पात, मंद-गति सँ बहैत शीतल-सुगन्धित वायुक सन्चरण सँ वातावरण मनकेँ मोहि लैत अछि। जड़स्थ प्रकृतिकेँ सुगबुगा दैछ। दत्तवतीमे उषः काल ओ भोरेक चित्र चारिम सर्गक पहिल सँ छठम पद धरि अंकित छैक। एहिठाम दूटा पद अवलोकन लेल प्रस्तुत अछि-

भोररूकबा धोबी उठि ऊस लगाय।
शीत शलिलमे रहि-रहि सम्हरि भिजाय।।
खग-कल छल गल-स्वरसँ श्रम बिरमाय।
प्राची-दारू उपर पटकल छटिआय।।[1]

पुनश्च -

यद्यपि पुरानो अंबर शुचि रूचि भव्य।
बुझि पड़ैछ जनु सद्यः प्रस्तुत नव्य।।

चिक्कन चुनमुन सरस परस नवरंग।

ककरा नहि मन हो लगबी दृग अंग।।[2]

ग्रीष्म ऋतुमे दिनकरक प्रचण्ड रौदक धाह सँ जखन धरती, आकाश ओ वायुमण्डल पर्यन्त तबि जाइछ तऽ जीव-जन्तु वर्षाकेँ स्मरण करैछ। एहि महाकाव्यक पाँचम सर्गक पहिल सँ पाँचम पद धरि वर्षाकालीन वातावरणक सरस चित्रण अछि, चारिम पदक आकर्षक वर्णन देखल जाय -

जकर प्रतीक्षा करैत छल संसार।

तृषित नयन, उमड़ल नव जलद उदार।।

बिन्दु-बिन्दुसँ प्रकृतिक जीवन धन्य।

जनु पौलक म्रियमाण प्राण-चैतन्य।।[3]

एहिमे वर्षाक लेल जेहने व्याकुलता, उत्कंठाक वर्णन छैक, तेहने वर्षा भेलाक पश्चात प्रकृतिक तृप्तिवाचक मनोरम चित्रण दृष्टिगत होइछ। शरदकालीन वातावरण गर्म कम शीतल अधिक होइछ। पोखरि-झाँखड़ि जल सँ भरल, नदीमे प्रवाह सँ बेसी स्थिरता, बाध-वनमे लहलाइत धान, जतऽ-ततऽ पोखरि-डबरा सभमे फुलाएल भेंट-कुमुदिनी, झहरैत सिङरहार, मनोहर चन्द्रकिरण आ बाट-घाटमे थाल-कीच नहि। महाकवि शरदऋतुक पूर्णिमा रातिकेँ नायिकाक रूपमे प्रस्तुत करैत संसारक आङनमे उपस्थितिक सुन्दर अभिव्यंजना कयलनि अछि-

सरिता-रशना, सकैत-वसना। पंकज-चरणा, हंसी-गमना।।

खंजन-नयना, शशिधर-वन्दना। शरदक ललना, जगतक अङना।।[4]

पुनः

निर्मल अकाश, शीतल बतास। कासक विकास, खंजनक लास

शेफालिकाक मह-मह सुवास। चानक प्रकाश शरदक हुलास।।[5]

पूर्वमे जेना कहल अछि जे आचार्य 'सुमन' प्रकृति-वर्णन घटना ओ कथानकक प्रसंगानुकूल कयलनि अछि। कथामे अयोध्या नरेशक शौर्य-पराक्रम क्रमशः न्यून होइत गेलैक, शासन-प्रबन्ध अस्थिर भऽ गेलैक। अन्ततः निर्वासनक स्थिति सेहो अयलैक, ताहि समय राज परिवार दु:स्थिति-जन्य विषयक चित्रण आचार्य 'सुमन' प्रकृतिक सहयोग सँ क्रमशः सूर्यास्त-साँझ ओ अन्हरिया रातिक चित्रणक संग कयलनि अछि, जे नवम सर्गक पहिल सँ छठम पदमे दृष्टिगत होइछ।

सूर्यास्तक समय नायक सूर्यक प्रखरता शेष भऽ जाइछ आ हुनक आगमन-प्रस्तुतीकरण पश्चिमा नायिकाक आंङनमे होयबा सँ नायिकाक लजकोटरि स्वभावेँ सर्वाङ ललौन भऽ जाइछ। मुदा नायिका हुनक स्वागतमे अपन लाल रंगक आँचरकेँ पूर्णतः पसारि निज-साध्य सैह करैछ। जँ एक दिस नायक सूर्य लाल रंगक वस्त्र धारण कयल तऽ दोसर दिस हुनक पश्चिमा नायिका सेहो सर्वाङ रक्तवर्णा। दुहू एकात्म भावेँ आसक्त भऽ एक-दोसरकेँ आत्मसात कऽ कौतुक-गृहमे प्रस्तुत सन बुझना जाइछ। सूर्यास्तक एकटा एहने चित्र दृष्टिगोचर होइछ-

अंगना पयिचमा लाज लाल मुख रोचित,

अंचल पसारि आरक्त ठाढ़ि स्वागत हित।

अनुरक्त भानु, प्रियतमा प्रतीची रक्ता,

क्षितिजक कौतुक गृह विदा भेलि संसकता।।[6]

सांयकालीन बेलामे घरमुहाँ सहचर-सहचरी एक-दोसर सँ अगुअयबाक जुगुतमे रहैछ। चिड़ै-चुनमुनीक खोंतामे अयबाकालक किलोल बटगवनीक स्मरण करबैछ, आभास करबैछ। एहि क्षण प्रियतमाक सौन्दर्यमे भेल वृद्धि तहिना देखल जाइछ जेना वयः सन्धिमे मादकता। क्रोध-विरह भावकेँ बिसरि मधुर-मिलनक आकांक्षी प्रेयसी अनुरंजित चित्र निम्न पदमे एहिना दृष्टिगोचर होइछ-

सन्ध्या सुमुखी सहचरी संग अगुआबय,
विहगक कल-कूजन बटगवनी धुनि गाबय।
सजनिक सौन्दर्य, वयस-सन्धिक मादकता,
प्रणयक माधुर्य, मान-मिलन रंजकता।।[7]

रातुक समय समस्त जीव-जन्तुमे काजक प्रति असामर्थ्य-असोथकित भाव व्याप्त रहैछ। ओ विश्रामक लेल प्रवृति होइछ। सम्पूर्ण वातावरणमे अन्हारक साम्राज्य पसरि जाइछ। राति शान्त-क्लान्त लगैछ। बाध-वन, बाट-घाट सभ किछु उदार-विरान। समस्त जीव-जन्तु अपन-अपन वासामे निशभेर भऽ जाइछ। घर सँ बहरयबाक ओकरामे साहस नहि रहैछ। रतिचरक हिंसाक शिकार होयबाक भय सँ सभ अपन-अपन खोपमे सम्हरल-सर्तक दृष्टिगोचर होइछ। महाकाव्यमे एहने अन्हरिया-रातिक चित्र अंकित अछि–

पुनि छनहि साँझ बीतल, नभ तल तम व्यापल,
निशि अंधकार जगतक दृग-दीपक झाँपल।
काँपल समीर, चुप कीर नीड़ बिच निद्रित,
संचर द्विजीह्व, रव धूक, चेतना मुद्रित।।[8]

प्रकृति-चित्रणमे ऋतु विशेषक चित्र सद्यः भेटैछ, ताहिमे 'वसन्त'क चित्रण-वर्णन सँ काव्यक मनोहरता शतांस बढ़ि जाइछ। वसन्तक आगमन सँ समस्त धरती नव-नव फूल-पात सँ, फल सँ सजि-लदि जाइछ। चर-चाँचर, बाध-वन, घर-आंगन, बाट-घाट सभ ठाम रंग-विरंगक फूल-फल सँ मंद गतियाँ बहैत शीतल सुगन्धित वायु सँ वातावरण महमह करैछ। भ्रमरक आवगमन ओ मधुकरक गुंजित स्वरगान वातावरणकँ झंकृत कऽ दैछ। वसन्तमे कोइलीक मधुर स्वर सँ नायक-नायिका पर्यन्त आकर्षित-मोहित भऽ जाइछ। दत्तवतीमे वसन्त-वर्णनक अंकित पदमे मनोरम चित्रक अवलोकन कयल जाय-

कोकिल कूजन कुंज बिच, गुंजन अलिक अमन्द।
शीत-ताप सन्तुलित वन, दछिन पवन वह मन्द।।[9]

पुनः

कली-कली विकसित हसित यौवन मधु मकरन्द।
गुन-गुन सुनबय गीत-धुनि प्रेमी तरूण मिलिन्द।।[10]

'वन' विविध प्रकारक छोट-पैघ गाछ-वृक्ष-लत्ती, जड़ी-बुटी सँ निमज्जित स्थल होइछ, जे फल-पात ओ फलक संयोग सँ, मिश्रित वायुक सुगन्ध सँ कोनो रसिक, प्रेमी-प्रेमिकाकँ आकृष्ट करबामे समर्थ होइछ। महाकाव्यमे उद्धृत 'वन'क वर्णन एकैसम सर्गक उन्नैस सँ छतीसम पद धरि भेल अछि। एहिठाम दूटा पद प्रस्तुत अछि-

स्वर्ण कनैल कुन्द करबीर, चलबय रसिक उपर जनु तीर।
सूर्यमुखी दुपहिया मधुरी, दिनकरक परस हेतुएँ मधुरी।।[11]

दोसर,

लंकेश्वरक गुलदावरि पुंज, चतरि-पसरि कत फुलल निकुंज
माधवि मालति लता वितान, भमय जत करइत गान।।[12]

भू-मण्डलक रचनाक मूल ओ अनिवार्य तत्व होइछ-क्षति, जल, पावक, गगन आ समीर। एहि पंच-तत्वक संयोग सँ प्रकृति एवं आन-आन वस्तुक निर्माण सम्भव भेल अछि। ताहिमे 'जल'क अनिवार्यता ओ मूलभूत केन्द्रीय तत्व होयबाक कारणेँ ई धरा स्वर्ग बनल अछि। जीवनक लेल पंचतत्वमे जलक सर्वाधिक महत्व अछि, तँ जलकँ जीवन आ जीवनकँ जल सेहो कहल जाइत अछि। जलीय जीव सेहों प्रकृतिक सुषमाकँ मनोहारी बना दैछ। दत्तवतीमे वर्णित जलीय-जीव-जन्तुक चित्र एहि रूपक अछि–

माछ काछु जल जन्तु उछलय, वक तट निःसंग।
कुचरय हंस लालसर सारस हरियर रंग-विरंग।।[13]

उपर्युक्त संक्षिप्त वर्ण्य-विषयक अवलोकनक उपरान्त ई कहल जा सकैछ जे प्रकृति-चित्रण सँ महाकाव्यक कथा-प्रवाहमे गतिशीलता अबैछ। महाकाव्यमे मधुर-कोमल ओ सरस भावक चित्रण प्रकृतिक विविध अंगक चित्रण सँ होइछ, जे कविक दृष्टिक व्यापकता, सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि ओ हुनक रचनाकेँ महाकाव्यत्व सिद्ध करबामे सहयोगी होइछ।

अतः दत्तवती महाकाव्यकेँ आचार्य 'सुमन'क कवित्व अलौकिक चमत्कार कहल जा सकैछ। एकर अवलोकन सँ एहिमे कोनो कृत्रिमताक आभास नहि, प्रत्युत् अनायासहि हुनक प्रखर-प्रतिभाक चमत्कारक प्रतिफल दृष्टिगत होइछ आ 'प्रकृति-चित्रण'क अनिवार्यता-सार्थकता स्वतः सिद्ध भऽ जाइछ।

संदर्भ सूची

1. दत्तवती-सुरेन्द्र झा 'सुमन'; मैथिली अकादमी,पटना-1987, सर्ग-4/पद-2; पृष्ठ 30
2. वैह, 4/6ए पृष्ठ 31
3. वैह, 5/4ए पृष्ठ 45
4. वैह, 5/24ए पृष्ठ 50
5. वैह, 5/26ए पृष्ठ 50
6. वैह, 9/4ए पृष्ठ 97
7. वैह, 9/5ए पृष्ठ 98
8. वैह, 9/6ए पृष्ठ 98
9. वैह, 21/12ए पृष्ठ 254
10. वैह, 21/13ए पृष्ठ 254
11. वैह, 21/21ए पृष्ठ 255
12. वैह, 21/22ए पृष्ठ 255
13. वैह, 21/39ए पृष्ठ 258

जनसंख्या वृद्धि और मानव संसाधन विकास

अर्चना शंकर

पीएच.डी., ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

मानव संसाधन (HUMAN RESOURCES) वह अवधारणा है जो जनसंख्या को अर्थव्यवस्था पर दायित्व से अधिक परिसंपत्ति के रूप में देखती है। शिक्षा, प्रशिक्षण और चिकित्सा सेवाओं में निवेश के परिणामस्वरूप जनसंख्या मानव संसाधन के रूप में बदल जाती है।

मानव संसाधन विश्लेषण आर्थिक विकास की प्रक्रिया में जनशक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करता है। यह उपलब्ध मानव संसाधनों के द्वारा वर्तमान एवं भविष्य की जनशक्ति आवश्यकताओं व संभावनाओं का परीक्षण करता है।

मानव संसाधन विश्लेषण के द्वारा जनशक्ति में किए विनियोग के लिए नीति निर्धारण की जाती है जिसके द्वारा विकासशील राष्ट्रों के सीमित संसाधनों का कुशलता के साथ उपयोग हो सके। इसके द्वारा मानवसंसाधन का बेहतर उपयोग करने के मार्ग में आने वाली बाधाओं का निर्दिष्टीकरण संभव होता है।

परिचय

किसी भी देश में जब जनसंख्या विस्फोटक स्थिति में पहुँच जाती है तो संसाधनों के साथ उसकी गैर-अनुपातित वृद्धि होने लगती है, इसलिये इसमें स्थिरता लाना जरूरी होता है। संसाधन एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटक है। भारत में विकास की गति की अपेक्षा जनसंख्या वृद्धि दर अधिक है। संसाधनों के साथ क्षेत्रीय असंतुलन भी तेजी से बढ़ रहा है।

मानव संसाधन उत्पादन में प्रयुक्त हो सकने वाली पूँजी है। यह मानव पूँजी कौशल और उन्में निहित उत्पादन के ज्ञान का भंडार है। यह प्रतिभाशाली और काम पर लगे हुए लोगों और संगठनात्मक सफलता के बीच की कड़ी को पहचानने का सूत्र है। यह उद्योग/संगठनात्मक मनोविज्ञान और सिद्धांत प्रणाली संबंधित अवधारणाओं से संबद्ध है।

उत्पादन एवं उत्पादकता के स्तर में अभिनव सुधार हेतु मानव संसाधन विकास का विशिष्ट योगदान होता है। मानव पूँजी एक ऐसा घटक है जिससे उत्पादन की क्षमता बढ़ती हैं तथा विनियोग के नवीन अवसर प्राप्त होते हैं।

आर्थिक रूप से जनशक्ति नियोजन में प्रबंधकीय, वैज्ञानिक अभियंत्रण व अन्य तकनीकी कुशलताओं का विकास एवं समर्थ उपयोग सम्मिलित है जिससे संगठनों का सृजन, विस्तार एवं विकास संभव हो सके। उत्पादक सेवाओं, उपक्रम व आर्थिक संस्थाओं की क्रियाशीलता में वृद्धि हो।

आकस्मिक समस्याओं को सुलझानें के लिए बोकेशनल एवं तकनीकी स्कूली पाठ्यक्रम को प्राथमिकता दी जाती है लेकिन दीर्घ अवधि नियोजन के लिए आधारभूत शिक्षा का न्यूनतम स्तर प्रदान करना आवश्यक माना जाता है। यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप संशोधित होते रहें। यह भी आवश्यक नहीं कि प्रशिक्षण कार्यक्रम पूर्णकालिक हों।

भविष्य में चाही जाने वाली मानव संसाधन की आवश्यकताएँ वस्तुत: कई कारकों पर निर्भर करती है जैसे जनसंख्या वृद्धि की दर, नवप्रवर्तन की दर, भौतिक पूँजी विनियोग का परिमाण एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ। इन कारकों का पूर्वानुमान कठिन है। इस कारण भविष्य हेतु मानव संसाधन आवश्यकताओं का स्पष्ट निरूपण नहीं हो पाता।

मानव पूंजी निर्माण शिक्षा, स्वास्थ्य, कार्यस्थल प्रशिक्षण प्रवासन और सूचना निवेश का परिणाम है। इनमें शिक्षा और स्वास्थ्य मानव पूंजी निर्माण के दो सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

किसी देश में युवा तथा कार्यशील जनसंख्या की अधिकता तथा उससे होने वाले आर्थिक लाभ को जनसांख्यिकीय लाभांश के रूप में देखा जाता है। भारत में मौजूदा समय में विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या युवाओं की है यदि इस आबादी का उपयोग भारत की अर्थव्यवस्था को गति देने में किया जाए तो यह भारत को जनसांख्यिकीय लाभांश प्रदान करेगा। किंतु यदि शिक्षा गुणवत्ता परक न हो, रोजगार के अवसर सीमित हों, स्वास्थ्य एवं आर्थिक सुरक्षा के साधन उपलब्ध न हों तो बड़ी कार्यशील आबादी एक अभिशाप का रूप धारण कर सकती है। अत: विभिन्न देश अपने संसाधनों के अनुपात में ही जनसंख्या वृद्धि पर बल देते हैं। भारत में वर्तमान स्थिति में युवा एवं कार्यशील जनसंख्या अत्यधिक है किंतु उसके लिये रोजगार के सीमित अवसर ही उपलब्ध हैं। ऐसे में यदि जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित न किया गया तो स्थिति भयावह हो सकती है।

निष्कर्ष

यदि मानवीय संसाधनों पर अल्प विनियोग किया जाये तो श्रम की कुशलताएँ न्यून होंगी, उपक्रमशीलता का अभाव होगा तथा सामाजिक संस्थाएँ एक न्यून स्तर पर ही कार्य कर पाएँगी।

कम विकसित देशों में यह देखा जाता है कि भौतिक पूँजी की अवशोषण क्षमता अल्प होती है, क्योंकि तकनीकी रूप से कुशल व्यक्तियों, प्रशिक्षण श्रम एवं प्रशासनिक कुशलताओं का अभाव होता है। इन दुर्बलताओं को दूर करने के लिए जनशक्ति नियोजन किया जाना आवश्यक माना जाता है।

जनशक्ति नियोजन उस प्रक्रिया को सूचित करता है जो आर्थिक एवं अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मान शक्ति के उपयोग एवं वितरण के उद्देश्यों, नीतियों व कार्यक्रमों को ध्यान में रखती है। संगठनों एवं संस्थाओं का विकास भी सम्मिलित है जो मानव शक्ति कार्यक्रमों को संचालित करें।

मानवशक्ति नियोजन वस्तुत: आर्थिक नियोजन से भिन्न है। आर्थिक नियोजन में पदार्थ व आर्थिक संसाधनों के उपयोग में अनुकूलतम विकास को ध्यान में रखा जाता है जबकि जनशक्ति नियोजन में व्यक्तियों की योग्यता, कुशलता, ज्ञान एवं प्रेरणाओं के विकास को ध्यान में रखा जाता है।

भारत ने जनसंख्या को किसी समस्या और उस पर नियंत्रण के संदर्भ में नहीं देखा है बल्कि एक संपन्न संसाधन के रूप में देखा है जो एक विकास करती अर्थव्यवस्था की जीवन शक्ति है। इसे समस्या और नियंत्रण की शब्दावली में देखना और इस दृष्टिकोण से कार्रवाई करना राष्ट्र के लिये अनुकूल कदम नहीं होगा।

भारत में कानून का सहारा लेने के बजाय जागरूकता अभियान, शिक्षा के स्तर को बढ़ाकर तथा गरीबी को समाप्त करने जैसे उपाय करके जनसंख्या नियंत्रण के लिये प्रयास करने चाहिये।

सन्दर्भ

- Mathis, R.L; Jackson, J.H (2003). Human Resource Management. Thomson.
- Radhakrishna, A., and R. Satya Raju. "A Study On The Effect Of Human Resource Development On Employment Relations." IUP Journal of Management Research 14.3 (2015): 28-42. Business Source Complete. Web. 25 Sept. 2015.

ख *"What Is the Difference Between Human Resource Management & Human Resource Planning?". Small Business - Chron.com. Retrieved 2015-10-08.*

- Sami Mahroum (2007). Assessing human resources for science and technology: the 3Ds framework. Science and Public Policy 34 (7), 489–499. [2]
- Sherwin Rosen (1987). "Human capital," The New Palgrave: A Dictionary of Economics, v.2, pp. 681–90.
- Seymour W. Itzkoff (2003). *Intellectual Capital in Twenty-First-Century Politics*. Ashfield, MA: Paideia, ISBN 0-913993-20-4
- Brian Keeley (2007). *OECD Insights; Human Capital*. ISBN 92-64-02908-7 [3]
- *Sen, Sushmita (2018). Talent Management. Society Publishing. pp. 14, 15. ISBN 9781774075333.*

गंगा के मैदानों में जनसँख्या के कारकों की आर्थिक संरचना : एक अध्ययन

वंदना शंकर

पीएच.डी., ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

गंगा भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण नदी है। यह भारत और बांग्लादेश में कुल मिलाकर 2525 किलोमीटर (कि.मी.) की दूरी तय करती हुई उत्तराखण्ड में हिमालय से लेकर बंगाल की खाड़ी के सुन्दरवन तक विशाल

भूभाग को सींचती है। देश की प्राकृतिक सम्पदा ही नहीं, जन-जन की भावनात्मक आस्था का आधार भी है। 2,071 कि.मी. तक भारत तथा उसके बाद बांग्लादेश में अपनी लंबी यात्रा करते हुए यह सहायक नदियों के साथ दस लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल के अति विशाल उपजाऊ मैदान की रचना करती है। सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गंगा का यह मैदान अपनी घनी जनसंख्या के कारण भी जाना जाता है।

भारत के कुल गरीबों में से करीब आधे गरीब यानी 19.6 करोड़ गरीब लोग देश के चार राज्यों, जो गंगा के मैदानी भूभाग स्थित बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में रहते हैं।

परिचय

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में मध्य गंगा के मैदानों में नगरीकरण की शुरुआत हुई। ईसा पूर्व 1900 के आसपास हड़प्पा नगरों के अवसान के पश्चात् सीधे लगभग इस समय में ही नगरों के प्रकटीकरण के कारण इसे द्वितीय नगरीकरण कहा जाता है। इस समय कौशांबी, श्रावस्ती, अयोध्या, कपिलवस्तु, वाराणसी, वैशाली, राजगीर और पाटलिपुत्र महत्त्वपूर्ण थे।

गौर कीजिए कि भारत, आबादी के मामले में नम्बर दो है; किन्तु भारत में जनसंख्या वृद्धि दर, चीन से ज्यादा है। कारण कि भारत में प्रजनन दर, चीन के दोगुने के आसपास है। भारत के भीतर ही देखिए। सतलुज, गंगा, गोदावरी के मैदान, प्राकृतिक रूप से काफी समृद्ध हैं। जाहिर है कि कभी इसी समृद्धि के कारण, इन मैदानों में सर्वाधिक आबादी बसी।

आज भी भारत की 50 प्रतिशत आबादी, इन्हीं मैदानों में रहती है। अकेले उत्तर प्रदेश की आबादी, ब्राजील के बराबर है और बिहार की आबादी, जर्मनी से ज्यादा है। मध्य प्रदेश और राजस्थान भी जनसंख्या विस्फोटक प्रदेश माने जाते हैं। इन मैदानों पर आबादी के दबाव का नतीजा भी अब सामने आने लगा है।

भारत विश्व जनसंख्या वृद्धि का एक महत्वपूर्ण इंजन है। अन्य जगहों के मुकाबले उत्तर भारत का उत्तरप्रदेश राज्य सबसे ज्यादा भीड़-भाड़ वाला है।

गंगा का आर्थिक महत्त्व

गंगा भारत के आर्थिक तंत्र का एक महत्वपूर्ण भाग है। उसके द्वारा सींची गई खेती, उसके वनों में आश्रित पशुपक्षी, उसके जल में पलने वाले मीन मगर, उसके ऊपर बने बाँधों से प्राप्त बिजली और पानी, उस पर ताने गए पुलों से बढ़ता यातायात और उसके जलमार्ग से होता आवागमन और व्यापार तथा पर्यटन उसे भारत की अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण साधन साबित करते हैं।

गंगा अपनी उपत्यकाओं से भारत और बांग्लादेश की कृषि आधारित अर्थ में भारी सहयोग तो करती ही है, यह अपनी सहायक नदियों सहित बहुत बड़े क्षेत्र के लिए सिंचाई के बारहमासी स्रोत भी हैं। इन क्षेत्रों में उगाई जाने वाली प्रधान उपज में मुख्यत: ध ान, गन्ना, दाल, तिलहन, आलू एवं गेहूँ हैं। जो भारत की कृषि आज का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। गंगा के तटीय क्षेत्रों में दलदल एवं झीलों के कारण यहां लेग्यूम, मिर्चे, सरसों, तिल, गन्ने और जूट की अच्छी फसल होती है।

नदी में मत्स्य उद्योग भी बहुत जोरों पर चलता है। गंगा नदी प्रणाली भारत की सबसे बड़ी नदी प्रणाली है। इसमें लगभग 375 मत्स्य प्रजातियाँ उपलब्ध हैं। वैज्ञानिकों द्वारा उत्तर प्रदेश व बिहार में 111 मत्स्य प्रजातियों की उपलब्धता बतायी गयी है। फरक्का बांध बन जाने से गंगा नदी में हिल्सा मछली के बीजोत्पादन में सहायता मिली है।

गंगा का महत्व पर्यटन पर आधारित आय के कारण भी है। इसके तट पर ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा प्राकृति सौंदर्य से भरपूर कई पर्यटन स्थल है जो राष्ट्रीय आय का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। गंगा नदी पर रैफ्टिंग के शिविरों का आयोजन किया जाता है। जो साहसिक खेलों और पर्यावरण द्वारा भारत के आर्थिक सहयोग में सहयोग करते हैं। गंगा तट के तीन बड़े शहर हरिद्वार, इलाहाबाद एवं वाराणसी जो तीर्थ स्थलों में विशेष स्थान रखते हैं। इस कारण यहाँ श्रद्धालुओं की संख्या में निरंतर बनी रहता है और धार्मिक पर्यटन में महत्वपूर्म योगदान करती है। गर्मी के मौसम में जब पहाड़ों से बर्फ पिघलती है, तब नदी में पानी की मात्रा व बहाव अच्छा होता है, इस समय उत्तराखंड में ऋषिकेश – बद्रीनाथ मार्ग पर कौडियाला से ऋषिकेश के मध्य रैफ्टिंग के शिविरों का आयोजन किया जाता है, जो साहसिक खोलों के शौकीनों और पर्यटकों को विशेष रूप से आकर्षित कर के भारत के आर्थिक सहयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

गंगा कृषि, पर्यटन, साहसिक खेलों तथा उद्योगों के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है तथा अपने तट पर बसे शहरों की जलापूर्ति भी करती है। इसके तट पर विकसित धार्मिक स्थल और तीर्थ भारतीय सामाजिक व्यवस्था के विशेष अंग हैं। इसके ऊपर बने पुल, बांध और नदी परियोजनाएँ भारत की बिजली, पानी और कृषि से सम्बन्धित जरूरतों को पूरा करती हैं।

निष्कर्ष

1980 में आर्थिक स्थिति का उल्लेख करते हुए बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के माथे पर बीमारू राज्य का ठप्पा लगा था। हाल के वर्षों में इन राज्यों ने कई मानव विकास संकेतकों पर प्रगति दर्ज की गयी; लेकिन देश को वैश्विक स्तर पर योगदान दिलाने में इन प्रदेशों से ज़्यादा मदद नहीं मिली।

गंगा के मैदान के दो बड़े राज्य – उत्तर प्रदेश और बिहार की प्रति व्यक्ति आय, संसाधनों की मारामारी और अपराध के आँकड़ें खुद ही अपनी कहानी कह देते हैं। खाली होते गाँव और शहरों में बढ़ता जनसंख्या घनत्व! पानी और पारिस्थितिकी पर भी इसका दुष्प्रभाव दिखने लगा है।

सरकार गंगा के उपजाऊ, परंतु आर्थिक रूप से गरीब मैदानों के गांवों और शहरों में आधारभूत सरंचनाओं और पर्यावरण संबंधी समस्याओं से जूझ रही है। यहां की स्वास्थ्य सेवाएं और शिक्षा लगातार बढ़ रही मांग के अनुरूप तालमेल बनाने में नाकामयाब रही हैं।

जलवायु परिवर्तन इस दुष्प्रभाव को घटाए, इससे पहले जरूरी है कि हम जनसंख्या और जनसंख्या वितरण में सन्तुलन लाने की कोशिश तेज करें।

सन्दर्भ

- *Bowden, Rob (2003). The Ganges. A River Journey. Chicago: Heinemann-Raintree Library. ISBN 978-0739860700.*
- *Merriam-Webster's Geographical Dictionary. Springfield, Mass.: Merriam-Webster. 1997. ISBN 978-0-87779-546-9. Retrieved 23 April 2011.*
- *"Water Resources in the Ganges River Basin". Louisiana School for Math, Science, and the Arts. Archived from the original on 26 October 2005.*
- *Bagchi, Kanangopal (1944). The Ganges Delta. Calcutta: University of Calcutta.*
- *"BIMARU towns fuelling India's economic resurgence". economictimes. September* 24, 2010. मूल से 5 मार्च 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 13 मार्च 2018.
- *Bharadwaj, Krishna (1991). "Regional differentiation in India". In Sathyamurthy, T.V. (ed.). Industry & agriculture in India since independence. Oxford University Press. pp. 189–199. ISBN 0-19-564394-1.*

हिंदी नवजागरण के आर्थिक सवाल

अशोक कुमार यादव

शोध छात्र, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

प्रस्तावना- उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान भारतीय समाज में एक 'नई बौद्धिक' चेतना देखने को मिलती है। इस चेतना ने भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक ढांचे में परिवर्तन की एक हलचल पैदा की। यह जो 'नई बौद्धिक चेतना' थी वह कई संश्लिष्ट प्रभावों के योग से पैदा हुई थी। कई संश्लिष्ट प्रभाव इसलिए क्योंकि एक तो तत्कालीन भारतीय समाज के अंदरुनी संघर्ष-जकड़न की पहचान, छानबीन दूसरे यूरोपीय शत्तिफयों के आने से यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान तक पहुँच, यूरोपीय रेनेसां व प्रबोध न के युग के विचारकों के अवदान का संज्ञान में आना, भारतीय संस्कृति एव प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन-मनन, भारतवर्ष का पराध ीन होना इत्यादि। यही संश्लिष्ट प्रभाव ही 19 वीं सदी के 'नई बौद्धिक चेतना' के पैदा होने में अपनी महती भूमिका निभाता है। इस 19 वीं सदी की 'नई बौद्धिक चेतना' को नवजारण कहा गया है, जिसने भारतीय समाज और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुध ार या बदलाव की प्रकिया शुरू की।

सबसे पहले सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधार देखने को मिलता है। जो आगे चलकर अपने संश्लिष्ट प्रभावों के चलते तत्कालीन भारत के अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों को अपनें में समाहित कर लेता है। मसलन-राजनीतिक स्वाधीनता, सामाजिक-धार्मिक सुधार औपनिवेशिक सत्ता के चरित्र का पर्दाफाश, आर्थिक शोषण आदि के सवाल उठने शुरू हो जाते है। इसी क्रम में किसान-मजदूर के हालात, कृषि, दस्तकारी, स्त्री, दलित, भाषा, साहित्य आदि पर संजीदगी से विचार होने लगता है। राष्ट्रीय साहित्य, और पत्र-पत्रिकाओं के जरिए भारतीय समाज में जागरूकता और चेतना का प्रवाह शुरू हो जाता है। यह सारी प्रक्रिया, 19 वीं सदी के 'नई बौद्धिक चेतना' के चलते ही शुरू हुई जिसे साहित्य और समाजविज्ञान के चिंतकों ने 'नवजागरण' कहा है।

हिंदी में इस नवजागरण की पहचान सबसे पहले रामविलास शर्मा करते हैं। उन्होंने लिखा कि "हिंदी प्रदेश में नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है"।[1] फिर वे इस नवजागरण की प्रक्रिया को 'भारतेंदु युग', 'महावीरप्रसाद द्विवेदी युग', 'निराला', 'प्रेमचन्द' आदि के साहित्य में कई चरणों में घटित होता हुआ दिखाते हैं। हिंदी के ये साहित्यकार, पत्रकार अपने तरीके से नवजागरण के तहत तत्कालीन भारत के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामुदायिक, राष्ट्रीय, भाषायी तथा आर्थिक सवालों को उठाते हैं। ये साहित्यकार जितना जोर तत्कालीन भारत के सामाजिक सवालों पर देते थे, उतनी ही संजीदगी से आर्थिक सवालों को भी उठाते थे। चाहे वह अंग्रेजों की किसान विरोधी खतरनाक कर-नीतियां हो, भारतीय हस्त- शिल्प, लघु-उद्योग का अंग्रेजों द्वारा विनाश किया जाना, भारतीय बाजार को विलायती मॉल से भर देना और भारत के विनिर्मित माल को योरोपीय बाजार में जाने से रोकना, भारत को एक निर्यातक अर्थव्यवस्था के बदले एक आयातक अर्थव्यवस्था में बदल देना, किसान- मजदूर के सवाल, स्वदेशीकरण, देशी उद्योग-धंधों का विकास, आद्योगिक शिक्षा और तकनीक का सवाल। इन सभी सवालों के जरिये ये लेखक आर्थिक नवजागरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए भारत के राष्ट्रीय मुत्तिफ-संघर्ष को मजबूती देने का काम कर रहे थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र 'कविवचन सुधा' पत्रिका के सम्पादकीय और अपने नाटकों में, बलिया वाले भाषण 'भारतवर्षोन्नती कैसे हो सकती है' इत्यादि में भारतीय कारखानों को लगाने, भारतीयों को उद्यमी बनने, अपनी जरूरत की छोटी-छोटी चीजों को विलायत से मँगाने के बजाय भारत में ही उत्पादित करने की वकालत करते हैं। "भारतेंदु 1874 में अपनी पत्रिका 'कविवचन सुधा' में स्वदेशी अपनाने के लिए एक घोषणापत्र प्रकाशित करते हैं"[2]। इस घोषणा में वे जनता से अपील करते हैं कि विलायती चीजों का बहिष्कार करें, स्वदेशी अपनाएं, देशी उद्योग धंधों को लगायें, ऐसा हरेक उपाय करें जिससे भारतीय धन विदेश ना जाने पावे। वे अपने नाटक 'भारत दुर्दशा' में-

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।"[3]

की चिंता भी व्यत्तफ करते हैं। भारतेंदु अंग्रजी राज में पड़ने वाले देश व्यापी अकाल के लिए भी अंग्रेजों की भारत विरोधी नीतियों को ही जिम्मेदार मानते हैं। आप देखेंगे कि देश की बर्बाद हो रही अर्थव्यवस्था पर समाज विज्ञान के चिंतक और राष्ट्रीय स्तर के नेता जैसे, दादाभाई नौरोजी, आर। सी। मजुमदार, दिनशा वाचा, पृथ्वीशचन्द्र राय इत्यादि 19 वीं सदी से ही आम भारतीय जनता को जागरूक करना शुरू कर दिया था। बिलकुल यही काम हिंदी के साहित्यकार, पत्रकार भी कर रहे थे।

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 1908 में 'सम्पतिशास्त्र' नाम की किताब लिखी। इस किताब में भारतीय कृषि, हस्त-शिल्प, लघु-उद्योग आदि के बर्बादी के कारणों की पहचान की गयी है। किस तरह अंग्रेजों ने भारतीय व्यापार पर, आयात- निर्यात पर इजारा कायम किया और भारतीय माल पर कड़ा महसूल (सीमा शुल्क) लगाकर विदेशी बाजार में उसके प्रवेश को बंद कर दिया है। इस किताब में भारतीय अर्थव्यवस्था की अंग्रेजों द्वारा की तबाही और उससे बचने के उपायों पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है। इसके अलावा 'सरस्वती' में भी द्विवेदी जी भारत के आर्थिक सवालों से सम्बन्धित लेखों को छापते रहते थे। जैसे - ईश्वरदास मारवाड़ी का लेख 'भारतीय किसानों के उद्धार का उपाय', कृष्णानंद जोशी का लेख 'भारतीय किसान', गंगाधर पन्त का लेख 'अवध के जमींदार और काश्तकार'। ये सभी लेख 1910 से 1920 के बीच के हैं। इन लेखों में तत्कालीन भारत के किसानों, कृषि तथा उन पर जबरन थोपी गयी जानलेवा कर-नीतिओं की विस्तृत विवेचना की गयी है। खुद द्विवेदी जी ने भी 'भारतवर्ष का कर्ज' नाम का एक लेख लिखा और बताते हैं कि "अंग्रेज हिंदुस्तान का शासन इस तरह चलाते हैं कि साल दर साल उस पर कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है"[4]। और इस कर्ज की भरपाई किसानों पर भारी कर-नीतियाँ लगाकर की जाती है। "राजकाज का पूरा खर्च, सरकारी अफसरों की तनख्वाह से लेकर फौजें रखने और रेल बनाने तक का खर्च भारत के किसानों से वसूल किया जाता है।"[5] महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सम्पतिशास्त्र' में एक अध्याय 'माल-गुजारी' पर लिखा है। इसमें उन्होंने दिखाया है कि अंग्रेज भारतीय किसानों पर अनुचित मालगुजारी लगाते हैं और जमींदारों द्वारा उसकी वसूली इतनी दर्दनाक होती है कि किसानों के यहाँ भूखमरी की नौबत आ जाती है। किसानों से इस लूट की वजह से अंग्रेजी- राज में दुर्भिक्ष (अकाल) की बारम्बारता बढ़ने लगी। द्विवेदी जी ने लिखा है कि " शायद इसी वजह से 1891 और 1901 के बीच मध्यप्रदेश में कोई दस लाख से भी अधिक आदमी भूखों मर गए"।[6] भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1874 में ही कविवचन सुधा में लिखा कि "अब तो प्रति वर्ष कहीं ना कहीं दुष्काल पड़ा ही रहता है , मुख्य करके अंग्रेजीराज में इसका घर है।"[7] इस तरह आप देखेंगे कि हिंदी के ये लेखक भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ 'कृषि और किसानों' के सवालों को लेकर लगातार मुखर रहे और जनता को जागरूक करते रहे।

हिंदी में अर्थशास्त्र संबंधित लेखन तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में भी छपते रहे हैं। ऊपर हमने 'कविवचन सुधा', 'सरस्वती' पत्रिका का जिक्र किया है। इसके अलावा 'हिंदी प्रदीप' 'प्रताप' इत्यादि में भी इससे सम्बन्धित लेख छपते रहे। "सारसुधानिधि (1889) में प्रकाशित मदन मोहन भट्ट के 'अर्थशास्त्र', सदानंद मिश्र का 'वाणिज्य' और सरयू प्रसाद मिश्र के 'धन'"8 जैसे लेखों में तत्कालीन भारत की आर्थिक दशा का वर्णन मिलता है। बालमुकुंद गुप्त ने भी 'शिव शंभू के चिट्ठे' के हवाले से कर्जन की नीतियों के आलोक में भारत के आर्थिक शोषण का विश्लेषण किया है।

इसी कड़ी में आते हैं राधामोहन गोकुल आते। इनका लेखन सन 1882 से शुरू होकर 1936 तक चलता है। राधामोहन गोकुल तथाकथित हिंदी के खालिस साहित्यकार नहीं थे। बल्कि ये एक सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यकर्ता भी थे। राधामोहन गोकुल को भारतेंदु युग के साहित्यकारों की सोहबत प्राप्त थी। वे गणेश शंकर विद्यार्थी, शिवपूजन सहाय, निराला जैसे साहित्यकार, लाला लाजपत राय, हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के नेता और कार्यकर्ता तथा नागपुर झंडा आंदोलन इत्यादि कई तरह की गतिविधियों के संपर्क में रहे। किसानों, मजदूरों के बीच कई वर्षो तक काम किया। आर्य समाज से भी प्रभावित रहे। हिंदी नवजागरण के दौर में राधामोहन गोकुल का लेखन और उनकी विविध कार्यशैली हमें चकित कर देती है। उन्होंने तत्कालीन भारत के सामाजिक, धार्मिक ,आर्थिक, राजनीतिक, किसानी, मजदूरी, शिक्षा, भारत के आधुनिकीकरण इत्यादि के सवालों पर जमकर लिखा।

वैश्विक पूंजीवाद, उपनिवेशवाद, वैश्विक व्यापार पर भी खूब लिखा। यहाँ हम उनके आर्थिक-लेखन संबंधी मसलों पर चर्चा करेंगे। इस विषय पर उनकी दो किताबें हैं-'देश का धन (1908)' और 'कम्युनिज्म क्या है(1927)'। इसके अलावा इस विषय पर उनके कुछ स्वतंत्र लेख हैं। इस तरह हम देखते हैं कि हिंदी नवजागरण में अर्थशास्त्र संबंधी लेखन प्रचुर मात्रा में हुआ है। फिर भी हिंदी आलोचना में सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्र मुत्तिफ संबंधी सवालों पर ज्यादा लिखा-पढ़ा गया है। आर्थिक नवजागरण के सवाल एक तरह से उपेक्षा के शिकार रहे हैं। इस लेख को लिखने के पीछे एक कारण यह भी रहा है कि हिंदी नवजागरण के आर्थिक लेखन संबंधी पहलुओ को उजागर किया जाये।

उनके लेखन में भारतीय आर्थिक अवस्था के अधिकांश पहलू पर विश्लेषण मिलता है। भारतेंदु और महावीर प्रसाद द्विवेदी की अगली कड़ी कहीं-कहीं उससे आगे बढ़ा हुआ आर्थिक लेखन राधामोहन गोकुल के यहां मिलता है। उनके लेखन में भारतीय उद्योग-धंधों, व्यापार, कारीगरी, हस्तशिल्प, आयात-निर्यात की दुर्दशा, आर्थिक पूजी की उपयोगिता, ब्रिटिश या कहे की वैश्विक उपनिवेशवाद के द्वारा किया गया शोषण, कृषि-किसानी, मजदूरी के विनाशकारी रूप, ब्रिटिश सरकार की विभेदकारी कर-नीतिकारी,ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत की स्वास्थ्य, कौशल क्षेत्र की अनदेखी, उनके द्वारा सेना पर भारी खर्च इत्यादि का विश्लेषण मिलता है। उन्होंने अंग्रेजों की भारत के साथ मुत्तफ व्यापार नीति की आलोचना की। उस दौर में सरप्लस वैल्यू, सहकारी खेती, उत्पादन व विपणन व्यापार के लिए समितियों की भूमिका को सामने रखा। उन्होंने कच्चा माल को भारत में ही खपाने स्वदेशीकरण, जनसंख्या एवम बाजार के अंतर्संबंध, आविष्कार एवं तकनीक से उत्पादन एवं कारीगरी को उन्नत करने जैसे मसलों पर खूब लिखा है।

राधामोहन गोकुल ने उत्पादन में तकनीक, मशीन के प्रयोग को बढ़ाने पर जोर दिया है। उनका मानना है कि "इससे मजदूरों के श्रम की उत्पादकता व मूल्य बढ़ेगा, जिससे वह अपने जीवन के अन्य क्षेत्रों यथा-स्वास्थ्य, बच्चों की अच्छी शिक्षा इत्यादि पर खर्च कर सकेगा"।[9] और इससे मानव संसाधन की कुशलता बढ़ेगी जो किसी भी अर्थव्यवस्था को मजबूती देने के लिए जरुरी है।

राधामोहन गोकुल का मानना है कि किसी देश की उन्नति एवं धन समृद्धि के लिए तीन बातें जरूरी है। पहला संपत्ति की पूर्ण रक्षा, दूसरा कामों का ठीक विभाग यानी अलग अलग उद्योगों के लिए अलग-अलग संगठन होना चाहिए। तीसरा पूंजी का एकत्रीकरण और फिर उसको विभिन्न व्यवसायों में लगाना। पूंजी या धन-संपत्ति को घर में रखने या गाड़ कर रखने की राधामोहन गोकुल तीव्र भर्त्सना करते हैं। उनका मानना है कि बेकार पड़ी हुई पूंजी को कार्यशील होना चाहिए। उसे उद्योगों एवं नवीन कौशल के विकास में लगाना चाहिए। यह सच भी है जब पूंजी को ऐसे विशिष्ट प्रयोजनों में लगाते हैं तो उत्पादन एवं श्रम का मूल्य बढ़ता है। राष्ट्र मजबूत एवं संपन्न होता है। इसीलिए आज पूरी दुनिया खोज एवं अनुसंधान पर इतना पैसा खर्च करती है।

राधामोहन गोकुल ठीक पहचान करते हैं कि वर्तमान शासन-शत्तिफ(ब्रिटिश सरकार) भारतवर्ष के अवनति, दुख-दरिद्रता, निध ंनता, यहां के उद्योग-धंधों के विनाश के मूल कारणों में से एक कारण है। अंग्रेजों ने करों की कठोरता, छल-कपट, विभेद-कारी व्यापारिक नीतियों, दलालों, न्यायालयों , पुलिस आदि का सहारा लेकर भारत के व्यापार एवं समृद्धि को नष्ट कर दिया। अंग्रेजों ने एक समृद्ध, सुखी एवं विनिर्माता, स्वावलंबी भारत को कंगाल एवं भुखमरी का देश बना दिया। एक अमेरिकी विद्वान जे। टी। सैंडरलैंड ने विनिर्माता भारत की समृद्धि को बहुत ही शानदार ढंग से प्रस्तुत किया है। वह लिखता है "लगभग प्रत्येक प्रकार का निर्माण/ उत्पाद जिसे सभ्य विश्व जानता है-मानव मस्तिष्क और हाथों को प्रत्येक प्रकार की, कहीं भी मौजूद रचना को अपनी उपयोगिता/ सुंदरता के कारण कीमती थी- को भारत में लंबे समय से बनाया जा रहा था। यूरोप अथवा एशिया के किसी भी अन्य राष्ट्र की तुलना में भारत कहीं अधिक औद्योगिक एवं विनिर्माता राष्ट्र था। उसके कपड़े से बनी वस्तुएं बढ़िया, सूती, ऊनी, लिनन, रेशमी। करघा उत्पाद सभ्य विश्व में प्रसिद्ध थी"।10 आप देख सकते हैं कि जब भारत दुनिया भर में विनिर्माण एवं विशिष्ट कारीगरी में सिरमौर था तब इंग्लैंड में अभी औद्योगीकरण शुरू हो रहा था। फिर व्यापार के बहाने आए हुए ब्रितानिओं ने भारत को अपना उपनिवेश बना डाला और वैध-अवैध कब्जे व लूट का सिलसिला चला कर भारत को बर्बाद कर दिया। जो भारत "18 वीं सदी में विश्व-अर्थव्यवस्था में 23% की हिस्सेदारी रखता था"।11 अंग्रेजों के आने के बाद यह हिस्सेदारी धीरे-धीरे कम होती गई। और जब अंग्रेज 1947 में यहां से गए तब 'वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत की हिस्सेदारी महज 2% से कुछ अधिक था।'[12]

इसी व्यापारिक लूट के खिलाफ, उपनिवेशवादी, शोषणकारी नीतियों के खिलाफ भारतेंदु, राधामोहन गोकुल, महावीर प्रसाद द्विवेदी इत्यादि हिंदी के साहित्यकार व दादा भाई नौरोजी, रानाडे, रमेश चंद्र दत्त, पृथ्वीश चंद्र राय, जी। सुब्रमण्यम जैसे लोग लगातार लिखते रहे, भारतीयों को जागरूक करते रहे।

राधामोहन गोकुल भारत की अर्थव्यवस्था को मजबूती देने के लिए स्वदेशीकरण, देशी उद्योग-धंधों को लगाने, भारतीयों के नियंत्रण वाली सहकारी समिति के द्वारा व्यापार करने, लघु कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने, हस्त-शिल्प और औद्योगिक शिक्षा को बढ़ावा देने की वकालत करते हैं। राधामोहन गोकुल ने ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के साथ किए जाने वाले श्मुत्तफ व्यापारश की नीति का विरोध किया। यह सच भी है। असमान क्षमता वाले राष्ट्र के साथ श्फ्री ट्रेडश करना न्याय नहीं है। इससे एक जाति, राष्ट्र संपन्न होता है, दूसरी कंगाल। उन्होंने लिखा "भारत से फ्री ट्रेड मात्र उन जातियों को, जो मोटी हो गई हैं और मोटा करने वाली है। परंतु देश को वर्तमान में बहुत हानिकर हैं। जितना फ्री ट्रेड का विरोध करके दूसरी जातियां बढ़ी , उतना ही पहले भारत भी बढ़ ले।तब यह भी उनके साथ फ्री ट्रेड में जीत सकता है"[13]। राधामोहन गोकुल तत्कालीन विश्व-व्यापार की संरचना को अच्छी तरह से समझ रहे थे। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा जबरन थोपी गई एकतरफा व्यापारिक नीतियों का विरोध किया। उन्होंने भारतीय उत्पाद, उद्योग को संरक्षण देने की वकालत की।

राधामोहन गोकुल उत्पादन की तरक्की तो चाहते हैं, लेकिन उत्पादन इतना ना हो जाए उसको खपाने के लिए गदर मच जाए, यह वे नहीं चाहते। वे इस गदर को महासमर में देख चुके थे। राधामोहन गोकुल वैश्विक उपनिवेशवाद के पीछे इसी उत्पादन के गदर को एक कारण मानते हैं। जरूरत के लिए ही उत्पादन हो बाजार में चढ़ा-ऊपरी के लिए उत्पादन ना हो- यह विचार राधामोहन गोकुल को महात्मा गांधी के विचारों के करीब लाता है। शहिंद स्वराजश में गांधीजी इसी विचार का समर्थन करते हैं। उनका मानना था कि जरूरत भर के लिए ही उत्पादन करें। छोटे-छोटे कुटीर उद्योग लगाए जाएं। लोगों को उनके श्रम, कुटीर उद्योग से जोड़ कर रखा जाए। ना बड़े कारखाने लगेंगे, ना अतिशय माल का उत्पादन होगा, ना खपाने के लिए बाजार की चाहत में मारकाट मचेगी। ना मजदूरों, छोटे सौदागरों का शोषण होगा। महात्मा गांधी का स्वराज इन्हीं रास्तों से होकर (स्वावलंबी गांव से होकर) जाता है।

राधामोहन गोकुल अपने समय से बहुत आगे सोच रहे थे। यह उस जमाने में 'सरप्लस वैल्यू' की बात करते हैं। जहां अधिक से अधिक लाभ के लिए मजदूरों से कम मजदूरी पर अधिक काम लिया जाता था। आप देखेंगे कि भारत में 19वीं और 20वीं सदी के शुरुआती तीन दशकों में मजदूरों के लिए, उनके अधिकारों के लिए कितनी हड़तालें हुई। राधामोहन गोकुल यह दिखाते हैं कि पूंजीपति सब ट्रस्ट बनाकर, संगठन खड़ा करके, शासन शत्तिफ से गठजोड़ करके मजदूरों का कितना शोषण करते हैं। मजदूरों से जी तोड़ मेहनत करवाने के बाद भी उनको उचित मजदूरी नहीं देते। अतिरित्तफ काम करने के बाद भी उनको 'लाभ' में हिस्सा नहीं दिया जाता। राधामोहन गोकुल इस बात की वकालत करते हैं कि कंपनी के लाभ के अंश में से मजदूरों को भी हिस्सा दिया जाए, जिससे मजदूर भी अपना जीवन निर्वाह अच्छी तरह कर सके। वे महिलाओं, मजदूरों, बच्चों के काम करने के घंटे को निश्चित की जोरदार पैरवी करते हैं। गोकुल जी पशुपालन और खेती को भी सहकारिता के तहत करने की वकालत करते हैं।

इस तरह हम देखें तो हिंदी नवजागरण में जितना लेखन और चिंता सामाजिक सवालों को लेकर मिलती है उतनी ही संजीदगी भारत के आर्थिक सवालों को लेकर भी मिलती है। जिस तरह बंगाल प्रान्त में नवजागरण की प्रक्रिया के तहत वहाँ के मशहूर लेखक सखाराम गणेश देउस्कर ने अपनी किताब 'देसेर-कथा' में भारत के आर्थिक सवालों को उठाया उसी तरह हिंदी के साहित्यकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, राधामोहन गोकुल, प्रेमचंद, 'निराला', इत्यादि ने भारत के आर्थिक सवालों को उठाया और हिंदी प्रदेश की जनता को जागरूक किया।

सन्दर्भ सूची

1. पृष्ठ सं. 9, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण : रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. 2015
2. पृष्ठ सं. 74, भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं : रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. 2014
3. पृष्ठ सं. 18, भारतेंदु हरिश्चंद्र : भारत दुर्दशा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली. 2012
4. पृष्ठ सं. 29, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण
5. पृष्ठ सं. 28, वही
6. पृष्ठ सं. 25, वही
7. पृष्ठ सं. 26, वही
8. पृष्ठ सं. 281-282, कर्मेंदु शिशिर : राधामोहन गोकुल समग्र-2, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली. 2009
9. पृष्ठ सं. 342 वही
10. पृष्ठ सं. 36-37, शशि थरूर, अन्धकारकाल : भारत में ब्रिटिश साम्राज्य वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली. 2018
11. पृष्ठ सं. 37 वही
12. पृष्ठ सं. 44 वही
13. पृष्ठ सं. 334, कर्मेंदु शिशिर : राधामोहन गोकुल समग्र-2

बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओः समीक्षात्मक अध्ययन

कुमारी रीमा

"हम जो चाहते हैं समाज भी वही चाहता है। हम चाहते हैं कि बहू पढी लिखी मिले, लेकिन बेटियों को पढाने के लिए तैयार नहीं होते। आखिर यह दोहरापन कब तक चलेगा? यदि हम बेटी को पढ़ा नहीं सकते तो शिक्षित बहू की उम्मीद करना बेईमानी है। जिस धरती पर मानवता का सन्देश दिया गया हो, वहाँ बेटियों की हत्या दुख देती है। यह अल्ताफ हुसैन हाली की धरती है। हाली ने कहा था, "माओ, बहनों, बेटियों, दुनिया की जन्नत तुमसे है।"

उद्‌गार है भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के हैं, जो 22 जनवरी, 2015 को हरियाणा के पानीपत से "बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ" अभियान की शुरुआत पर व्यक्त कर रहे थे। यह अभियान केन्द्र सरकार के महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों में से एक है।

अब प्रश्न उठता है कि इस अभियान की जरूरत क्यों पड़ी। जाहिर है इसके पीछे कन्या भ्रूण-हत्या के कारण देश में लिंगानुपात में निरन्तर कमी आती जा रहीं हैं, जिसके कारण अनेक सामाजिक समस्याएँ समाज में उत्पन्न हो रही है। आखिर कन्या भ्रूण-हत्या क्यों की जाती है? इसके पीछे छुपी मानसिकता क्या है?

इसके क्या खतरे हैं, इसका समाज पर क्या प्रभाव पड रहा है तथा कैसे इस समस्या का निदान किया जा सकता है? बेटी और बेटियों की शिक्षा की आवश्यकता के संबंध में इन्हीं सब प्रश्नों का सूक्ष्मता से अध्ययन कर ही किया जा सकता है। कन्या भ्रूण-हत्या लड़कों को प्राथमिकता देने तथा कन्या-जन्म से जुड़े निम्न सामाजिक मूल्य के कारण जानबूझकर की गई हत्या होती है।

कन्या भ्रूण-हत्या उन क्षेत्रों में अधिक होती हैं जहाँ के सांस्कृतिक मूल्य लड़के को कन्या की तुलना में अधिक महत्व देते है। भारत में यह प्रथा कोई नई नहीं है। मध्यकाल से इस प्रथा के अस्तित्व में आने के प्रमाण मिले है जब मुस्लिम आक्रमणकारियों तथा शासक वर्ग के द्वारा लडकियों का शोषण किया जाता था। इनसे बचने के लिए कन्या शिशु को मारने की परम्परा प्रारम्भ हुई।

इन्हें हम निम्न प्रकार से समझ सकते है:

1. अध्ययनो से ज्ञात होता है कि आर्थिक उपयोगिता के बारे में यह इंगित करते है कि पुत्रियों की तुलना में पुत्रों 8 m पुश्तैनी सम्पत्ति पर काम करने या पारिवारिक व्यवसाय, आय अर्जन या वृद्धावस्था में माता-पिता को सहारा देने की मानसिकता के कारण पुत्रों को प्राथमिकता दी जाती है।
2. विवाह होने पर लड़का एक पुत्रवधू लाकर घर की लक्ष्मी में वृद्धि करता है जो घरेलू कार्य में अतिरिक्त सहायता करती है एवं दहेज के रुप में आर्थिक लाभ भी पहुंचाती है जबकि पुत्रियाँ विवाहित होकर चली जाती है तथा दहेज के रुप में आर्थिक बोझ का कारण भी बनती हैं।
3. चीन आदि देशों की तरह भारत में भी पुरुष संतति एवं पुरुष प्रधान परिवारों की यह प्रथा है कि वंश चलाने के लिए कम-से-कम एक पुत्र का होना अनिवार्य है एवं कई पुत्र होना परिवार के ओहदे को अतिरिक्त रूप से बढ़ा देता है।
4. कई धार्मिक अवसरों पर परम्पराओं के अनुसार केवल पुत्र ही भाग ले सकते हैं, जैसे अन्तिम संस्कार एवं श्राद्ध कर्म इत्यादि।

संयुक्त राष्ट्र ने चेतावनी दी है कि भारत में कन्या भ्रूण हत्या जनसंख्या से जुड़े संकट उत्पन्न कर सकती है। वर्ष 1981 में 0-6 साल के बच्चों का लिंग अनुपात 962 था, जो 1991 में घटकर 945 तथा 2001 में 927 तथा 2011 में और अधिक घटकर 914 रह गया है।

इस आयु वर्ग में सर्वाधिक चिन्ताजनक स्थिति हरियाणा (830), पंजाब (846) जम्मू कश्मीर (859), राजस्थान (888), तथा उत्तराखण्ड (890) राज्यों में है। घटते लिंगानुपात के कारण इन राज्यों में अविवाहित युवकों की संख्या बढ़ रही है।

हरियाणा एवं पंजाब में तो नौबत यहाँ तक आ गई है कि विवाह के लिए लड़कियों को गरीब राज्यों अथवा आदिवासी क्षेत्रों से खरीद कर लाया जा रहा है। हरियाणा में तो अनेक क्षेत्र ऐसे है जहाँ एक ही स्त्री से एक से अधिक पुरुष विवाह कर रहे है।

यह तो सामाजिक प्रभाव है, यदि हम एक दूसरे नजरिए से देखें तो कन्या भ्रूण-हत्या से भारत की उस मेधा शक्ति का भी नाश हो रहा है, जो वर्तमान में भारत को आर्थिक सामाजिक रुप से समृद्ध कर सकती। इसी कारण भारत सरकार लम्बे समय से बेटियों को बचाने के लिए प्रयत्नशील रही है।

इस कुरीति को समाप्त करने तथा लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिए सरकार ने कई कदम उठाए है। सरकार द्वारा देश में कन्या पूरा हत्या रोकने के लिए अपनाई गई बहुआयामी रणनीति इसमें जागरूकता पैदा करने और विधायी उपाय करने के साथ-साथ महिलाओं को सामाजिक-आर्थिक रुप से अधिकार सम्पन्न बनाने के कार्यक्रम शामिल है।

इनमें से कुछ उपाय निम्न हैं:

1. गर्भधारण करने से पहले और बाद में लिंग चयन रोकने और प्रसवपूर्व निदान तकनीक नियमित करने के लिए सरकार ने व्यापक कानून, गर्भधारण से पूर्व और प्रसव पूर्व निदान (लिंग चयन पर रोक) कानून 1994 में लागू किया। इसमें वर्ष 2003 में संशोधन किया गया।
2. सरकार इस कानून को प्रभावकारी तरीके से लागू करने में तेजी लाई और उसने विभिन्न नियमों में संशोधन किए जिसमें गैर-पंजीकृत मशीनों को सील करने और उन्हें जब्त करने तथा गैर-पंजीकृत क्लीनिकों को दण्डित करने का प्रावधान है।
3. पोर्टेबल अल्ट्रासाउण्ड उपकरण के इस्तेमाल का नियमन केवल पंजीकृत परिसर के भीतर अधिसूचित किया गया। इसके तहत कोई भी मेडिकल प्रैक्टिशनर एक जिले के भीतर अधिकतम दो अल्ट्रासाउण्ड केन्द्रों पर ही अल्ट्रा सोनोग्राफी कर सकता है। साथ ही पंजीकरण शुल्क भी बढ़ाया गया।
4. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मन्त्रालय द्वारा सभी राज्यों से आग्रह किया गया है कि वे अधिनियम को मजबूती से कार्यान्वित करें और गैर-कानूनी रुप से लिंग पता लगाने के तरीकों रोकने के लिए कदम उठाएँ।
5. सभी राज्यों के मुख्यमन्त्रियों से आग्रह किया कि वे लिंग अनुपात की प्रवृत्ति को उलट दे और शिक्षा पर जोर देकर बालिकाओं की अनदेखी की प्रवृत्ति पर रोक लगाएँ।
6. स्वास्थ्य परिवार कल्याण मन्त्रालय ने राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से कहा है कि बे इस कानून को गम्भीरता से करने पर अधिकतम ध्यान दें
7. वेबसाइटों पर लिंग चयन के विज्ञापन रोकने के लिए यह मामला संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मन्त्रालय के समक्ष उठाया गया। हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सर्च इंजन फाल को लिंग जाँच से सम्बन्धित सभी विज्ञापन हटाने का निर्देश दिया है।
8. राष्ट्रीय निरीक्षण और निगरानी समिति का पुनर्गठन किया गया और अल्ट्रासाउण्ड संबंधी सेवाओं के निरीक्षण में तेजी लाई गई। बिहार, छत्तीसगढ़, दिल्ली, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, उत्तराखण्ड, राजस्थान, गुजरात और उत्तर प्रदेश में निगरानी का कार्य किया गया।
9. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत कानून के कार्यान्वयन के लिए सरकार सूचना, शिक्षा और संचार अभियान के लिए राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को वित्तीय सहायता दे रही है।
10. राज्यों को सलाह दी गई है कि कन्या भ्रूण-हत्या के कारणों का पता लगाने के लिए कम लिंग अनुपात बाले जिलों/ब्लाकों/गाँवों पर विशेष ध्यान दें, उपयुक्त व्यवहार परिवर्तन सम्पर्क अभियान तैयार करे और पीसी एवं पीएनडीटी कानून के प्रावधानों को प्रभावकारी तरीके से लागू करें।
11. धार्मिक नेता और महिलाएँ लिंग अनुपात और लड़कियों के साथ भेदभाव के खिलाफ चलाए जा रहे अभियान में शामिल हों।
12. इसके साथ ही इस विषय को अधिक व्यापक बनाने के लिए इसे शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना आवश्यक है। आने वाली पूरी पीढ़ी तभी इस विषय के प्रति संवेदनशील हो पाएगी, जब बचपन से ही उसे यही शिक्षा दी जाए।

'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ' इस कार्यक्रम के तहत भारत सरकार ने लडकियों को बचाने, उनकी सुरक्षा करने और उन्हें शिक्षा देने के लिए निम्न बाल लिंग अनुपात वाले 100 जिलों में इस कुरीति को समाप्त करने का लक्ष्य रखा है। यह कार्यक्रम महिला एवं बाल बिकास मन्त्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय और मानव संसाधन विकास मन्त्रालय की संयुक्त पहल है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियाकलाप शामिल किए गए हैं:

1. महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय: आँगनवाडी केन्द्रों पर गर्भावस्था के पंजीकरण को प्रोत्साहित करना, भागीदारों को प्रशिक्षित करना, सामुदायिक लामबन्दी और संवेदीकरण, लैंगिक चौम्पियनों को शामिल करना, अग्रिम मोर्चे पर काम कर रहे कार्यकर्ताओं एवं संस्थानों को मान्यता और पुरस्कार देना।
2. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय: गर्भधारण पूर्व और जन्म पूर्व जाँच तकनीकों का निगरानी क्रियान्वयन कानून 1994, अस्पतालों में प्रसव को बढ़ोतरी, जन्म पंजीकरण, पीएनडीटी सेल को मंजूर करना, निगरानी समितियों का गठन।
3. मानव संसाधन विकास मन्त्रालय: लड़कियों का सर्वजनीय पंजीकरण, ड्रॉप आउट दर में कमी लाना, विद्यालयों में लडकियों की आवश्यकतानुसार सुविधाएं उपलब्ध कराना, शिक्षा के अधिकार अधिनियम का सख्ती से क्रियान्वयन करना, लडकियों के लिए शौचालयों का निर्माण करना।

बेटी को बचाने एवं उसे पड़ा-लिखाकर योग्य बनाने के लिए जब तक हम संवेदनशील नहीं होंगे, हम अपना ही नहीं आने वाली सादियों तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक भयानक संकट को निमन्त्रण दे रहे हैं। बेटियाँ देश का भविष्य हैं। इतिहास साक्षी है कि जब भी स्त्रियों को अवसर मिले है उन्होंने अपनी उपलब्धियों के कीर्तिमान स्थापित किए है।

आज शिक्षा के क्षेत्र में 70-75% और चिकित्सा क्षेत्र में 60% से अधिक महिलाएँ हैं। भारतीय मूल की प्रथम महिला अन्तरिक्ष यात्री कल्पना चावला हो या सुनीता विलियम्स, इन्दिरा नूयी हो या साइना नेहबाल, सभी ने अपने-अपने क्षेत्रों में भारत का नाम गौरवान्वित किया है लेकिन यह सब तभी हो सका, जब इन्हें बचाया एवं पढ़ाया गया। एक बेटी के शब्दों से हम बेटियों को पढाने एवं बचाने की भावना को शायद आसानी से समझ सकेंगे।

"हर लडाई जीत कर दिखाऊंगी, मैं अग्नि में जलकरभी जी जाऊँगी।
बंजर भूमि से स्वर्ण उपजाऊगी।
बस आप हमे दुनिया में आने का मौका दे दो!
खाना पका दी, बर्तन माँज दी, अब कलम उठाने का मौका दे दो!"

सन्दर्भ सूची

1. अक्षय रमन लाल देसाई, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र
2. योजना पत्रिका, महिला विशेषांक, 2016
3. प्रतियोगिता दर्पण, मार्च 2016
4. हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र, 8 मार्च 2018
5. मनोरमा ईयर बुक, 2017
6. राम आहूजा, सामाजिक संस्कृति
7. राम आहूजा, समाजशास्त्र विवेचन एवं परिपेक्ष्य

जग लाल चौधरी : एक संक्षिप्त परिचय

डॉ० नमिता कुमारी

जगलाल चौधरी जी का जीवन किसी परिचय का मोहताज नहीं हैं। बाबजूद इसके, आधुनिक भारत (खास कर बिहार) के इतिहास में इन्हें वह स्थान नहीं मिल पाया, जिसके ये हकदार है। जगलाल चौधरी का पूरा जीवन हम भारतीय के लिए प्रेरणा का श्रोत रहा है। उन्होंने अपना पूरा जीवन राष्ट्र भक्ति व समाज की सेवा में समर्पित कर दिया। स्वास्थ्य मंत्री रहने के बावजूद जिस सादगी से वे रहा करते थे, इससे आधुनिक मंत्री एवं राजनेताओं को प्रेरणा लेनी चाहिए।

जग लाल चौधरी जी का जन्म 5 फरवरी 1895 इसवी को वर्तमान सारण जिले में हुआ था। कहते हैं कि "होनहार वीरवान के होत, चिकने पात।" यह लोकोक्ति जग लाल बाबु पर पूरी तरह से चरितार्थ होता था। देश प्रेम और मानव सेवा की भावना उनमें बचपन से विद्यमान थी। जब उनका जन्म हुआ था, भारत अंग्रेजी दास्ताँ से त्रस्त थी। बचपन से ही इनमें राष्ट्र के प्रति कुछ कर गुजरने की अभिलाशा थी। अत:, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में ये भी एक समर्पित योद्धा की तरह अपना तन मन धन सब कुछ झोंक दिया।

1952 में बिहार नशाबंदी परिषद का सदस्य बनाया गया तथा 1953 में खादी ग्रामोद्योग के अध्यक्ष नियुक्त किए गए हैं। जगलाल चौधरी राजनीति के साथ-साथ साधना में भी रुचि रखते थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति के उत्कृष्ट ग्रंथ रामचरितमानस पर बहुत है स्टार सटीक टीका लिखा था। माननीय चौधरी जी के द्वारा रचित प्रमुख पुस्तकों में 'संसार की आश्चर्यजनक वस्तुएं' एवं "ए प्लान टो रिकंस्ट्रक्ट भारत" प्रमुख है। जगलाल बाबू सत्य, अहिंसा और ईमानदारी के बेमिसाल प्रतीक थे। उनका देहांत 9 मई 1975 ईस्वी को हुआ तथा 10 मई को 1975 को पूरे राजकीय सम्मान के साथ पटना में गंगा किनारे स्थित बांस घाट पर उनका अंतिम संस्कार किया गया।

चिकित्सा के क्षेत्र में सीधे राजनीति के क्षेत्र में आने वाले भारत के अनेक डॉक्टर से राजनेता हुए हैं जिनमें डॉक्टर जीवराज मेहता, डॉ विद्या चंद्र राय, डॉक्टर सुशीला नैयर, डॉक्टर फारूक अब्दुल्ला आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मगर डॉक्टरी की पढ़ाई को अधूरी छोड़कर डॉ. आजहानि जगलाल चौधरी जिस प्रकार जनता की नब्ज को अपनी सेवा सदाकत भरी अंगुलियों की जादुई स्पर्श से राहत और सुकून देने में कामयाब हो सके थे, वैसी अनोखी कामयाबी का सेहरा किसी और के सर पर बनता नहीं दिखता है। वे चाहते तो डॉक्टर बनकर अपना जीवन ऐसो आराम से गुजार सकते थे, किंतु व्यक्तिगत ऐसो आराम को त्याग कर उन्होंने राष्ट्रहित को चुना। उन्होंने ब्रिटिश दास्तां के क्रूरता को देखा था। उनकी आंखों के सामने अंग्रेजों ने उनके पुत्र को गोलियों से भून दिया था। तभी उन्होंने यह प्रण लिया था कि 'ऐसा दुख अन्य भारतीयों को ना उठाना पड़े, इसके लिए अंग्रेजों को भारत से भगा कर ही दम लूंगा।' स्वतंत्रता संग्राम में उन्हें कठोर यातनाएं सहनी पड़ी। किंतु अथक, अपराजित अपना तन, मन, धन सब कुछ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में लगाते रहे।

जगलाल बाबु को कभी ना कुर्सी की लालसा रही ना ही कभी सत्ता की कामना किया। सदा सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए, आजीवन रचनात्मक कार्यो में लगे रहे। दिखावा और छलावा से दूर रहकर निरंतर जगलाल चौधरी ने राष्ट्र का निर्माण करने वाले सच्चे राष्ट्रभक्ति करते रहे। उन्हें जो भी राजनीतिक पदभार दिया गया उन्हें भी बखूबी निभाया अपने मंत्री पद के लंबे कार्यकाल में सभी प्रकार के घपले घोटाले से दूर रहकर जनता की सेवा करते रहें।

जग लाल बाबू विशुद्ध गांधीवादी थे आजीवन उन्होंने इस गांधीवादी सादगी सेवा इमानदारी सत्य और अहिंसा को बरकरार रखा एक अद्‌भुत मिसाल बनकर बिहार और भारत को प्रेरित किया।

जग लाल चौधरी को “बिहार का गाँधी” कह कर भी संबोधित किया जाता है। स्वाधीनता संग्राम में उन्होंने गाँधी के विचारों से प्रभावित होकर उनके पद चिन्हों पर चलना प्रारंभ किया। सत्य, अहिंसा एवं दलितों की सेवा के साथ साथ राष्ट्रीय चेतना का प्रसार को उन्होंने अपना धर्म समझ कर ताउम्र इसका वरन करते रहे।

वास्तव में जग लाल चौधरी बिहार के गौरव, दलितों के मसीहा, सच्चे गांधीवादी, परम राष्ट्र भक्त और संवेदनशील इंसान थे। इनके योगदानों और समर्पण बिहार के साथ-साथ भारत के निवासियों, राजनेताओं और पथ प्रदर्शक के लिए हमेशा एक प्रेरणा स्रोत हैं और बने रहेंगे।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ प्रमोदनंद दास, बिहार का गांधी : जगलाल चौधरी हिस्ट्री पास्ट एंड प्रेजेंट, राजेंद्र राम द्वारा संपादित, मार्च 2007
2. एन एम पी श्रीवास्तव, पासी समाज के गौरव : महान स्वतंत्रता सेनानी जगलाल चौधरी, प्रगतिशील पत्रिका, लखनऊ 2002
3. डॉ प्रमोदनंद दास एवं कुमार अमरेंद्र, जगलाल चौधरी, स्मारिका, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, बिहार सरकार, 22 मार्च 2010
4. महादेव चौधरी, जगलाल चौधरी एक परिचय
5. एम पी श्रीवास्तव, बिहार में राष्ट्रीयता का विकास
6. इम्तियाज अहमद, बिहार: एक परिचय

बौद्ध धर्म और प्राचीन भारतीय महिलाएं

डॉ० उमा पिथौरा

समाज एवं धार्मिक गतिविधियों में महिलाओं की प्रारंभ से ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रहीं है। किंतु प्राचीन भारतीय महिलाओ की स्थिति की ऐतिहासिकता समय, शासक, स्थान के अनुसार बदलती रही है। यो तो भारतीय महिलाये सब क्षेत्र में विश्व प्रसिद्ध रही है। ज्ञान विज्ञान में तो थी ही साथ-साथ बौद्ध धर्म के बारे में ज्यादा प्रसिद्ध रही है, वैदिक काल में बे पुरुसो के साथ बराबर की स्थिति में होती थी पर यह स्तर उत्तर वैदिक काल में उनका नहीं रहा। उनको पुरुषो के समक्ष भगीदारी नहीं मिलने लगी। महिलाओ की गिरी हुई स्थिति का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है की उनकी तुलना विसेले सर्प से की जाने लगी अर्थात उनसे दूरिया बनाके रखने की सलाह तक दी जाने लगी। बौद्ध धर्म ने महिलाओ को इस स्थिति से बाहर निकाल कर पुनः उचित स्थान दिलाया आनंद के कहने पर भगवान बुद्ध ने महिलाओ के लिए मोक्ष प्राप्ति के दरवाजे खोल दिए। बौद्ध धर्म में महिलाये निर्वाण प्राप्त कर सकती थी, बौद्ध मठो में निवास कर सकती, बौद्ध भिक्षुणिया बन सकती थी। बौद्ध काल में महिलाओ को बौद्ध धर्म के साथ साथ विज्ञान की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। उनके गीतों को थेरीगा था में संकलन किया गया ताकि, नई आने बाली बौद्ध भिक्षुणियो के लिए ये ज्ञान मिल सके। कई महिलाओ को निर्वाण मिलने की बात भी विनय पिटक जैसे पाली बौद्ध ग्रंथो में बताई गयी है।

प्राचीनकाल से ही भारतीय महिलाओं की स्थिति में उतार चढ़ाव आता रहा है। अन्य प्राचीन धर्मों जैसे वैदिक धर्म, जैन धर्म आदि से बौद्ध धर्म में महिलाओं की स्थिति बहुत भिन्न थी। शुरूआती काल में वैदिक धर्म में अर्थात् ऋग्वेद काल में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी थी और पुरुषों के समान धार्मिक क्रियाकलापों में विद्यार्जन में सहभागी रही। पर उत्तर वेदिक काल में महिलाओं की स्थिति बदल गयी उन्हें धार्मिक क्रिया कलापों में सीमित भाग लेने की अनुमति ही मिलने लगी आगे चलकर धार्मिक क्रिया कलापों में भाग लेने से वंचित ही रहना पड़ा।पर बौद्ध धर्म में महिलाओं को लेकर दो स्तरों पर सहभागिता सुनिश्चित की प्रथम महिलाएँ भी निर्वाण प्राप्ति के लिए प्रयास कर सकती है द्वितीय ऐसी बौद्ध महिलाएँ जो बौद्ध धर्म की दीक्षा लेना चाहती थी उनके लिए अलग से बौद्ध संघ बनाए गये।

शुरूआती बौद्ध काल में या बौद्ध धर्म के आगमन से कुछ दशकों पूर्व महिलाएँ प्रथम काल में पिता के अधीन रहती अर्थात् वाल्यकाल में पिता पर आश्रित, दूसरे अर्थात् यौवन काल में पति पर आश्रितपति की आज्ञाकारिणी बनकर, तृतीय काल अर्थात् वृद्धावस्था में पुत्र पर आश्रित या अधीन रहती थी। पिता, पति, पुत्र, ये स्त्री के संरक्षक थे। पर यह भी सत्य है कि बौद्ध धर्म में आज्ञाकारिणी महिला की स्थिति को स्वीकार किया गया है महिलाएँ वासना अर्थात् सेक्स की एक वस्तु से ज्यादा कुछ नहीं थी जो पुरुष की भक्ति मे व्यवधान डालने वाली अर्थात् बाधाएँ उत्पन्न करने वाली एक काया मानीजाती रही। जो सांप की तरह डसने वाली औरतपती, धधकती अग्नि की भांति थी। ये महिलाएँ ब्रह्मचर्य जीवन को भंग करने वाली होती थी।

शायद इन सांकेतिक रूपों द्वारा ब्रह्मचर्य जीवन को बचाने के लिए प्रयास किया गया होगा और ब्रह्मचर्य जीवन भंग होने का खतरा नारी से था। बौद्ध भिक्षु महिलाओं से दूर रहते ठीक उसी तरह बौद्ध भिक्षुणियाँ भी अपने नियम कायदों से बंधी रहती और पुरुषों से दूरियाँ बनाकर रखती थी। ऐसे आचरण बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों पर समान रूप से लागू होते थे और इनका पालन होता भी था। ये नियम आचरण की पवित्रता अर्थात् ब्रह्मचर्य को कठोरता से निभाने के लिए थे।[1]

यह भी सत्य है कि अपने प्रिय शिष्य आनंद के कहने पर ही भगवान बुद्ध ने स्त्रियों को बौद्ध धर्मअपनाने, बौद्ध भिक्षुणियाँ बनने की बात मान लिया।

हालांकि शुरुआती समय में भगवान बुद्ध महिलाओं के बौद्ध संघ में प्रवेश और भिक्षणी संघ की स्थापना के प्रति अनिच्छुक थे। महाप्रजापति गौतमी जो रिश्ते में भगवान बुद्ध की मौसी लगती थी उन्होंने भी आग्रह किया कि स्त्रियों को और स्वयं महाप्रजापति

गौतमी को संघ में प्रवेश दे। अंतत: भगवान बुद्ध इन दोनों की बात ज्यादा दिनों तक टाल नहीं पाये और बौद्ध संघ बौद्ध मठ स्त्रियों के लिए भी खोल दिये गये। पर शतों के साथ ही उन्हें बौद्ध संघ में प्रवेश मिलता था।

बौद्ध ग्रन्थ विनयपिटक भगवान बुद्ध की महिलाओं के बौद्ध संघ में प्रवेश की अनुमति को भगवान बुद्ध की अनिच्छा पूर्वक दी गई अनुमति मानता है। बौद्ध ग्रन्थ विनयपिटक में लिखा है कि भगवानबुद्ध बौद्ध संघ में महिलाओं के प्रवेश दे देने पर शिष्य आनंद को बुलाकर कहते हैं कि अब जब बौद्ध संघ में स्त्रियों को प्रवेश मिल गया है तब ये धर्म 50 वर्ष ही चलेगा, यदि बौद्ध संघ में महिलाओं को प्रवेश नहीं दिया जाता तो यह धर्म 1000 (एक हजार) वर्ष से अधिक चलता। पर अब स्त्रियों के संप प्रवेश से बौद्ध धर्म पाँच सौ वर्षों में ही पतन के कगार पर पहुँच जायेगा।

महिलाओं के औद्ध संघ में प्रवेश से पहले वे गर्भवती (प्रग्नेंट) नहीं होनी चाहिए क्योंकि ऐसी महिलाओं को घर से भाग कर आयी महिला माना जाता था जो संघ पर भी कलंक का कारण बन सकती थी। आने वाली महिलाओं को अपने माता-पिता, पति, पुत्र की आज्ञा लेकर आकर जरूरी समझा जाता था। बौद्ध संघ में महिला भत्तों अर्थात् भिवणियों को संघ के नियम कानून, कायदों को माननना अनिवार्थ था महिला भक्तों अर्थात् बौद्ध भिक्षुणियों को निशुणियों के नियम कायदे मानने के साथ-साथ यौद्ध भिक्षुओं के नियम भी मानने पड़ते थे। इस तरह से बौद्ध महिला भक्तों को दोहरे नियमों का पालन करना पड़ता था।

महिला बौद्ध भिक्षुगियों को बौद्ध संघ के वातावरण में अलने के लिए नियमों का अनुसरण करना जरूरी था। ये आठ (8) नियम भगवान बुद्ध की मृत्यु के बाद बनाए गये होंगे। ऐसी मान्यताएँ बौद्ध ग्रंथ विनय पिटक में बताई गई है। साथ ही महिलमें भी निर्वाण प्राप्त करने की क्षमता थी पर इससे बढ़कर यदबुद्धत्य प्राप्त करना चाहती है तो पहले उसे पुरुष के रूप में जन्मसे गुजरना जरूरी समझा गया।

बौद्ध भिक्षुणियों अर्थात् बौद्ध महिला भक्तों के लिए 8 नियम थेयो नियम बौद्ध ग्रंथ विनय पिटक में दिये गये हैं। बौद्ध संघ की महिला भक्तों को सम्पूर्ण बौद्ध संघ के जीवन काल में इन नियम को अनिवार्यत: पालन करना होता था। ये नियम निम्नलिखित थे–

1. महिला बौद्ध भक्त को अपने समकक्ष या अपने से जूनियया अपने से दृष्टि हो, कोई भी बौद्ध भिक्षु हो किसी भी स्तर का हो अर्थात् यह यौद्ध भिक्षु महिला बौद्ध भिक्षुणियों से जूनियर, समकक्ष, सीनियर (वरिष्ठ) किसी भी स्तर की श्रेणी का हो, और महिला बौद्ध भिक्षुणी कितनी भी बरिष्ठ हो, फिर भी उसे उस बौद्ध भिक्षु को सरलता पूर्वक अभिवादन अर्थात् प्रणाम करना होगा ऐसा करते समय महिला बौद्ध भिक्षुणी को हाथ जोड़कर खड़े रहना होगा जब तक की चौद्ध मिनु वहाँ उपस्थित रहता था अर्थात् उस जगह से बौद्ध भिक्षु शला नहीं जाता तब तक संघ की महिला बौद्र भक्त हाथ जोड़कर नमन करते हुए प्रणाम करती रहनी चाहिए।
2. बौद्ध महिला भक्त को हर महीने के प्रत्येक पक्ष में यौद्ध संघ के निक्षुओं से 2 बारों सीखनी चाहिए ये दो बाते हैं उपोसथकी तिथि कौन सी है साथ ही महिला भक्त को बौद्ध संघ के मिशु से किस बौद्ध सिद्धांत का उपदेश लेकर उसका अनुसरण करना चाहिए।
3. बौद्ध संघ की महिला भक्त किसी दुर्वष्यवहार में संलिपा पाई जाती है तो उसे दोनों संघों के समदिन मगन्ता अनुशासन की परीक्षा देनी होगी। अनुशासनहीनता दिखाई देने पर भिक्षुणी को गहन परीक्षण का दौर पास कर संघ में वापिसी करनी चाहिए।
4. खासकर वर्षा काल में महिला बौद्ध भिक्षुणियों को एकान्तवास से बचकर रहना होगा ऐसे स्थान जहाँ वर्षा ऋतु शुरू होत े ही बौद्ध भिक्षु पलायन कर गये हो वहाँ से बौद्ध भिक्षुओं के साथ-साथ बौद्ध भिक्षुणियों को भी चले जाना चाहिए। न कि उन्हें अकेले वहीं पर ठहरना चाहिए। क्योंकि यदि बौद्ध भिक्षुणियों ऐसा नहीं करती तो उनके व्यभिचारग्रही होने की सम्भावना बढ़ जायेगी और राहगीरों की हवस का शिकारबन जाय ऐसी भी सम्भावना बन सकती है।
5. त्रिपठनीय निमंत्रण अर्थात् मिअपियों का भिक्षुणियों द्वारा निमंत्रण तथा भिक्षुणियों को निशुओं द्वारा नियंत्रण और भिक्षुओं द्वारा भिक्षुओं को निमंत्रण जिसमें सभी को संयुक्त रूप से आहूत किया गया हो को बौद्ध भिक्षुणियों को स्वीकार करना चाहिए।

6. दोपहर में भोजन का प्रत अर्थात दोपहर के बाद भोजन करने का प्रा अतिरिक्या रूप से महिला बौद्ध भिक्षुपियों को करना होगा ये व्रत पाँच व्रतों के अतिरिक्त होगा। ऐसा महिला बौद्ध भिक्षुणियों को प्रारम्भ के दो वर्षों तक करना होगा।
7. महिला बौद्ध भिक्षुणियों को हमेशा इस बात का ध्यान रखना होगा कि चाहते हुए और न चाहते हुए भी बौद्ध संघ के किसी भी भिक्षु की बुराई से बचना चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि बौद्ध भिक्षुणियाँ पूरी तरह आचरण की अनुशीलता पररह रही है अर्थात् अपनी नैतिकता को उच्च कोटि का प्रदर्शित करना चाहिए न कि निम्न कोटि का।
8. बौद्ध संघ का निक्षु स्वतंत्र है कि आचरण की पवित्रता परखरी नहीं उतरने वाली बौद्ध महिला भिक्षुणी को बौद्ध भिक्षुलताड़ लगा सकता था पर बौद्ध भिक्षु को चाहे उसका आचरण किसी भी स्तर का क्यों न हो, बौद्ध भिक्षुणियाँ, बौद्धभिक्षु को लताड नहीं लगा सकती थी उन्हें लताड़ नहीं लगानी चाहिए, यदि उन्हें किसी बौद्ध भिक्षु के आचरण से कोई असुविध ा हो रही है तो वो संबंधित संघ के वरिष्ठ भिक्षुको सूचित कर सकती है वह भी विनम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर प्रार्थना करनी चाहिए।

जिस प्रकार वेदों में बहुत सी महिला विद्वान का उल्लेख आया है, वैसे ही बौद्ध ग्रंथों में भी बहुत सी महिला विद्वानों जैसे संयुक्त निकाय में खेमा नाम की विदुषी महिला, खेमा का प्रवचन सम्मान पूर्वक प्रसेनजित ने सुना और समापन पर खेमा नामक विदूषी को सम्मानित किया बौद्ध ग्रन्थ अग्गुत्तर निकाय में विशाखा, भिक्षुणी धम्मदीना प्रसिद्ध विद्वान बौद्ध महिला का वर्णन आया है जिसकी विद्वता का सम्मान स्वयं भगवान बुद्ध ने कियाथा और कहा कि विशाखा ज्ञान-वान गुणी महिला विद्वान है जिससे सबको शान-सीखना चाहिए और विशाखा बौद्ध महिला का सम्मान सहित सत्कार करना चाहिए। विशाखा ने धम्मदीना से कुछ प्रश्नोत्तर किये और ध म्मदीना ने सहजतापूर्वक शालीनतापूर्वक उत्तर दिये उनको सुनकर स्वयं भगवान बुद्ध ने विशाखा की प्रसंसा विद्वान बौद्ध महिला के रूप में की। धम्मदीना थेरी विशाखा सच में विद्वान बौद्ध महिलाएं रही जिनके वार्तालाप और प्रश्नोत्तरी की बुद्ध ने प्रसंसा की इन दोनों का यह प्रसंग बौद्ध ग्रंथ अग्गुत्तर निकाय में वर्णित है।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि, भारत के उन ग्रन्थों में से एक है जो पूरी तरह महिलाओं को समर्पित है। तेविज्जा में कई महिला बौद्ध भिक्षुणियों निपुण थी, जिसमें अरहतही निपुण माने जाते थे या कहें इस तेविज्जा पर अरहत्तों का एकाधिकार था उस तेविज्जा में भी कई महिला बौद्ध भिक्षुणियों महारत हासिल करती गई। इन गीतो के अर्थ से पता चलता है कि कई बौद्ध महिला विदूधियों को भी निय्यान मिला और इन्हें नियान की अनुभूति अन्य अरहतों की भांति हुई।[2] थेरीगाथा मेंएक कहानी चंदा नामक ग्राहाण कन्या की भी है जो किती विपदा में अपने नाता-पिता की असहाय मृत्यु में अकेली पड़ गई। बाद में एक बौद्ध भिक्षुणी जिसका नाम पतचारा था ने उसे संघ में प्रवेश दिलाया। ये सब महिला कथा कहानियां बौद्ध ग्रंथथेरीगाथा में वर्णित है जो प्राचीन भारत में बौद्ध महिलाओं के लिए समर्पित ग्रन्थ है।

सन्दर्भ सूची

1. सराओ के.टी.एस. (1990) अर्बन सेंटर एंड अरबीनेजेसन एज रेपलेक्टेड इन द पाली विनय एंड सुत्त पिटक सेकंद रिवाइज एडिटेड दिल्ली: डिपार्टमेंट ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, 2007।
2. उपेन्द्र सिंह, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पाषाणकाल से 12वीं शताब्दी तक दिल्ली, 2008, पृष्ठ 330।
3. उपेन्द्र सिंह, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पाषाणकाल से 12वीं शताब्दी तक दिल्ली, 2008, पृष्ठ 331।
4. उपिन्दर सिंह, 2008 पूर्वोयतपू. 331।
5. द थेरीगाथा एडिटेड के.आर. गार्मन एंड आल. अल्स्दोर्फलंदन पी.टी.एस. 1966.
6. सराओ के.टी.एस. (1980) अर्चन सेंटर एंट अर्बनिजशनएज रेपलेक्टेड इन द पाली विनय एंड सुत्त पिटक सेकंडरिवाइज एडिटेड दिल्ली: दिपार्टमेंट ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली, 2007।
7. सराओ के.टी.एस. (1980) 2007 अपेंडिक्स 1.

राष्ट्रवाद और सामान्य जातीय या रक्त संबंधः एक विवेचन

डॉ० कुमार रंजीत

घोघरडीहा, मधुबनी (बिहार)

सामान्य जाति या रक्त-संबंध के घटक से लोग सरलतापूर्वक एक दूसरे से बंध जाते हैं। जिम्मर्न और ब्राइस राष्ट्रीय एकता के लिए प्रजाति को एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं। मैजिनी का कहना है, कि राष्ट्रीयता के लिए प्रजाति अनिवार्य नहीं। टेनन का कहना है, "प्रजाति एक ऐसी चीज है जो स्वयं ही बनती-बिगड़ती रहती है और राजनीति में इसका कोई प्रयोजन नहीं है।" अथवा "कोई नस्ल शुद्ध नहीं है।" जे. एच रोज का कहना है, कि राष्ट्रीयता बहुत भद्दे रूप में ही प्रजाति पर निर्भर रहती है। हेज कहते हैं, "शुद्धता यदि कहीं है तो आजकल असभ्य कबायली लोगों में ही है।" पिल्जबरी के अनुसार, "साधारणतया राष्ट्रीयता के निर्माण में प्रजाति का अब कोई महत्त्व नहीं है। किसी भी राष्ट्र में कोई भी शुद्ध प्रजाति नहीं हैं मनुष्य सब कहीं वर्णसंकर है।" गारनर ने कहा, "यदि जातियों (नस्लों) को भली-भाँति विलीन कर दिया जाए तथा उनके बीच मुक्त मिलन-जुलन हो तो उत्पत्ति के भेद अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाते। किन्तु यदि कोई नस्ल बौद्धिक या सांस्कृतिक दृष्टि से अन्य नस्लों पर अपनी श्रेष्ठता का दावा करे तो उनमें राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना कठिन काम हो जाएगा।" मुसोलिनी का कहना था, "प्रजाति एक भावना है, वास्तविकता नहीं। कोई भी बात मुझे विश्वास नहीं दिला सकती कि जीव विज्ञान की दृष्टि से आज कहीं भी कोई शुद्ध प्रजाति है। स्विट्जरलैण्ड और कनाडा ऐसे देश है जहाँ विभिन्न जाति के लोग एक साथ रहते हैं और एक सुदृढ़ राष्ट्रीयता का निर्माण कर चुके हैं। प्रजाति और राष्ट्रीयता कहीं भी एकरूप नहीं हैं। जोसेफ का कहना है, "राष्ट्रीयता वास्तव में प्रजातियों के आरपार निकल जाती है।"

सामान्य विरासत और संस्कृति

समान मनोवैज्ञानिक चिंतन शैली लोगों के साथ-साथ रहने, साथ-साथ सोचने, साथ-साथ काम करने, साथ-साथ कष्ट सहने, सुख तथा दुख का साथ-साथ अनुभव करने के तथ्य से भी प्रभावित होती है। लोग अपने महान नायकों तथा नायिकाओं के कार्यों की स्मृति में स्मारक बनाने में गर्व का अनुभव करते हैं। अपने इतिहास तथा संस्कृति की परमपराओं को अमर बनाने के लिए वे उत्सवों व त्यौहारों का आयोजन करते हैं। इसलिए गारनर विरासत और संस्कृति को राष्ट्रीयत एकता बढ़ाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानता है। अपनी विरासत और संस्कृति से लोग एक दूसरे से जुड़ते है, उदाहरण के लिए जर्मनवासी नेपोलियन के अत्याचारों से देशभक्ति की भावना को प्रज्वलित करते थे, यहूदी ज्यांबाद के सूत्रों का आशय लेते हैं, स्विटजरलैण्डवासी विलियम टेल को याद करके एकता के सूत्र में बंध जाते हैं, स्कॉटलैण्ड के लोग बैनक बर्न की स्मृतियों को अपनी धरोहर मानते हैं।

राजनीति आकांक्षा

किसी राष्ट्रीयता के लोग हर प्रकार के विदेशी नियंत्रण अािवा वर्चस्व से मुक्त होना चाहते हैं अर्थात राष्ट्रीयता के सदस्य अपने राज्य में रहना चाहते हैं तथा वे विदेशियों द्वारा उन्हें अपनी दासता में रखे जाने के सभी प्रयासों का प्रतिरोध करते हैं। गारनर का कहना है, कि "राष्ट्रवाद यह राजनीतिक विश्वास है कि लोगों का कोई समूह राष्ट्रीय समुदाय का द्योतक है जिसे एक राजनीतिक व्यवस्था के अधीन रहना चाहिए, अन्यों से मुक्त होना चाहिए, और उसे प्राय: अन्यों के साथ विश्व व्यवस्था में समान स्तर की माँग करने का अधिकार होना चाहिए।" इसमें कोई दो राय नहीं कि आधुनिक राज्यों के स्थाई रूप धारण करने के पहले राष्ट्रीयता का अस्तित्व रहा है फिर भी राजनीतिक संप्रभुता ने विकासशील राष्ट्रीयता को सुदृढ़ बनाने में सहायता दी है। स्विटजरलैण्ड ऐसा देश है जहाँ सम्भवत: राजनीतिक संप्रभुता ने राष्ट्रीयता राष्ट्रीय एकता को जन्म दिया है।

सार्वजनिक इच्छा

प्रसिद्ध राजनीतिक दाशनिको टाएन्बी, मैसिनों आदि ने सार्वजनिक इच्छा को राष्ट्रीयता का आधार माना है। लोगों के बीच सहयोग की आकांक्षा और एक राष्ट्र बनने की इच्छा राष्ट्रीयता के मूल में शामिल रही है। टाएन्बी, 'एक राष्ट्र बनने की इच्छा को' राष्ट्रीयता का प्रधान तत्त्व मानते हैं। मैजिनी सार्वजनिक इच्छाओं को राष्ट्रीयता का आधार मानते हैं।

सामान्य कष्ट

यदि इतिहास का अवलोकन करें तो स्पष्ट हो जाता है कि अत्याचारों ने राष्ट्रीयता को सुदृढ़ कर दिया है। जिमर्न का कहना है, "यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना राजनीतिक अत्याचारों के फलस्वरूप निर्दयतापूर्वक सजग हो उठी है।" 1870 में फ्रांस और प्रशा के बीच हुए युद्ध ने फ्रांसीसियों में राष्ट्रीयता की भावना को उद्वेलित किया। किन्तु कभी-कभी सामान्य कष्ट राष्ट्र को विभाजित कर देता है क्योंकि मनुष्य स्वार्थी होता है। जोसफ का कहना है, "किसी एक वर्ग पर किया गया अत्याचार स्वत: उस वर्ग को राष्ट्रिक जाति नहीं बना देता।"

सामान्य अधीनता

कभी-कभी मजबूत और सुव्यवस्थित सरकार की अधीनता भी राष्ट्रीयता को बढ़ावा देती है। सुदृढ़ सरकार भी राष्ट्रीयता पैदा नहीं कर सकती। रैम्जेम्योर का कहना है कि, "शासन की एकता मात्र, वह चाहे जितनी सुन्दर ढंग की हो, कभी स्वत: राष्ट्रीयता की उत्पत्ति नहीं कर सकती।"

सामान्य आर्थिक हित

समान आर्थिक हित बहुत से देश के निवासियों को एक सूत्र में बांधने में सहायक रहे हैं। आर्थिक उद्देश्य अन्य तत्त्वों के साथ जाति में एकता की भावना पैदा करता है। जापान और आस्ट्रेलिया की राष्ट्रीय एकता का सबसे बड़ा कारण उनका सामान्य आर्थिक हित है। आस्ट्रेलिया में 'व्हाइट आस्ट्रेलियन पॉलिसी' का उद्देश्य भारतीयों और मंगोलों को आस्ट्रेलिया आने से रोकना था ताकि आस्ट्रेलियनों का आर्थिक हित बाधित न हो। लेकिन केवल आर्थिक हित ही राष्ट्रीयता का निर्माण नहीं कर सकते। यदि केवल आर्थिक हित ही राष्ट्रीयता का निर्माण करते होते तो मजदूरों के हित और पूँजीपतियों के हित भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयता का विकास कर लेते। रेनन का कहना है, "आर्थिक हितों की एकता एक 'सीमा शुल्क संघ' का निर्माण कर सकती है, एक राष्ट्र का नहीं।

राष्ट्रीय आत्मनिर्धारण का सिद्धांत

आत्म निर्धारण के सिद्धांत का राष्ट्रीय राज्यों के सिद्धांत में एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह सिद्धांत अनेक राष्ट्रो के निर्माण में सहायक रहा है। इस सिद्धांत से आशय है, कि "प्रत्येक राज्य का एक स्वतंत्र राजनीतिक इकाई के रूप में गठन होना चाहिए।" इस सिद्धांत के समर्थकों का कहना है कि विभिन्न राष्ट्रिक-जाति के लोगों के एक साथ एक राज्य में रहने से देश भक्ति की भावना नष्ट हो जाती है और आंतरिक झगड़े पैदा हो जाते हैं। पक्षधरों का यह भी कहना है कि यदि एक राष्ट्रिक-जाति विभिन्न राज्यों में बिखरी हो तो वह कदापि सुखी और संपन्न नहीं रह सकती और ऐसी राष्ट्रिक जाति एक विकलांग सामाजिक संगठन (Dismemberet Socid Organism) के समान है। और यदि भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयताओं वाले लोगों को एक ही राज्य में समूहबद्ध किया जाए तो उसका परिणाम होगा देशभक्ति की भावनाओं का अभाव तथा आंतरिक मतभेद। अत: इस सिद्धांत के अनुसार राज्य की सीमा का निर्धारण राष्ट्रीयता की सीमा के अनुसार होना चाहिए। इस सिद्धांत के प्रबल पक्षधर जे.एस. मिल ने अपनी पुस्तक 'प्रतिनिधि सरकार' में लिखा है, "सामान्यत: स्वतंत्रता के हित में यह जरूरी है कि सरकार की सीमाएँ और राष्ट्रिक जाति की सीमाएँ एक ही हो।" इसका अर्थ है कि शासन के प्रश्न का निर्धारण शासितों द्वारा होना चाहिए।

यह सिद्धांत किसी राष्ट्रीयता के लोगों का यह प्राकृतिक अधिकार मानता है कि वे अपने राजनीतिक भाग्य का निर्धारण स्वयं करें। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय आत्म निर्णय का अर्थ है कि भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयताओं वाले लोगों को संबंधित राज्य की अधीनता छोड़ने तथा उसके स्थान पर अपना अलग राज्य बनाने का अधिकार है। इसी प्रकार यह सिद्धांत स्वीकार करता है कि किसी बहु-राष्ट्रीय राज्य के विखण्डन को एक स्वाभाविक तथा तर्क सम्मत परिणाम मानना चाहिए। विल्सन के अनुसार, "आम निर्धारण वाक्य मात्र नहीं है, यह कार्यवाही का एक आवश्यक सिद्धांत है जिसकी उपेक्षा भविष्य में राजनेता अपने विनाश के मूल्यों पर ही कर सकेंगे।" 1924 के लेनिन संविधान ने स्पष्ट रूप में हर राष्ट्रीयता के सोवियत संघ से अलग होने के अधिकार को मान्यता दी। स्टालिन ने

कहा कि यदि कोई राष्ट्रीयता सोवियत संघ में सुखपूर्वक रहती है तो यह उसकी इच्छा का परिणाम होगा। **स्टालिन** का कथन है, "यह उतना ही अच्छा है तथा कुछ परिस्थितियों में बेहतर भी हो सकता है यदि राष्ट्र मिल जाते हैं और वे पूर्ण राष्ट्रीय समानता, प्रजातंत्र तथा भेदभाव रहित आधार पर एक बहुराष्ट्रीय राज्य का गठन करते हैं।" गम्पलोविज का कहना है कि 'इतिहास या समाजशास्त्र इस बात का कोई प्रमाण नहीं देता कि राष्ट्र या एक राज्य में बहुराष्ट्रीयता वाले राज्य से अधिक गुण होते हैं।

राष्ट्रीय आत्म-निर्धारण सिद्धांत की आलोचना

आज के सार्वभौम व्यवस्था वाली दुनिया में इस सिद्धांत की बहुत आलोचना होती रही है क्योंकि कई राष्ट्रों में अलग-अलग जातीय, धार्मिक और भाषाई समूह रहते हैं और अगर इस सिद्धांत को मान लिया जाए तो इनमें से अधिकांश का नामोनिशान मिट जाएगा। जैसा कि गारनर का कहना है कि यदि यह मान लिया जाए कि प्रत्येक समूह, चाहे वह कितना भी छोटा हो, जो धार्मिक अथवा भाषाई दृष्टि से शेष जनसंख्या से भिन्न है, उसे अलग होने तथा स्वयं को एक नए राज्य में संगठित करने का अधिकार है और इसे व्यवहार में लागू किया जाए तो इसमें अव्यवस्था तथा अराजकता पैदा होगी।" लार्ड एक्टन ने कहा कि आत्म-निर्धारण का यह सिद्धांत 'मानवीय इतिहास में एक प्रतिगामी कदम' है। लार्ड एक्टन का कहना है, "राष्ट्रीयता का सिद्धांत" समाजवाद के सिद्धांत से भी अधिक अर्थहीन और अपराधमूलक है। लार्ड एक्टन ने कहा, "जहाँ राजनीतिक तथा राष्ट्रीय सीमाएँ मिली होती है, समाज की उन्नति रुक जाती है तथा राष्ट्र पिछड़कर ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं जैसे कोई व्यक्ति अपने साथ रहने वाले व्यक्तियों से वार्तालाप का ही त्याग कर दे।" जिम्मर्न ने लिखा, "अंततः राष्ट्रीय राज्य के सिद्धांत की वही गति होगी जो आठवें हेनरी और लूथर के राष्ट्रीय धर्म संस्थान वाले सिद्धांत की हुई थी।" बर्नार्ड जोसफ का कहना है, "एक राष्ट्र एक राज्य" का सिद्धांत एक खतरनाक सिद्धांत है और विश्व की प्रगति में प्रधान बाधा है। क्योंकि राष्ट्रिक जाति और राज्य दो भिन्न धारणाएँ है और राज्य के समाप्त हो जाने पर भी राष्ट्रिक जाति बनी रह जाती है। बर्नार्ड जोजेफ के अनुसार, राष्ट्रीय निष्ठा और राज्य निष्ठा दो भिन्न वस्तुयें है। प्रो. हॉकिंग के अनुसार, "किसी भी राष्ट्रिक जाति को एक राज्य बनने का जन्म सिद्ध अधिकार नहीं हैं। हमारे सभी अधिकार शर्तों सहित अथवा आनुमानिक होते हैं। रैम्जेम्योर के अनुसार, "मोटे तौर पर ही यह बात सही है कि हर राष्ट्र को स्वाधीनता और एकता का अधिकार होता है। व्यक्तियों की भाँति राष्ट्रों को भी अपने अधिकारों का सर्जन करना होता है।" "किसी राष्ट्र को तभी जीवित रहने का अधिकार है जब इस अधिकार के उपयोग से स्वयं उसका और समाज का लाभ हो।"

राष्ट्रवाद की विशेषताएँ

राष्ट्रवाद ने एक विशेष प्रकार की जाति वाले लोगों की एकताबद्ध करने में अत्यधिक रचनात्मक भूमिका निभाई है। इसके फलस्वरूप शक्तिशाली राष्ट्र-राज्यों का उदय हुआ है। इसने लोगों को पोपशाही तथा विदेशी दासता के अन्य रूपों के अवांछनीय जुए से मुक्त किया है। बंधुत्व और सहयोग की भावना राष्ट्रवाद के साथ जुड़ जाने से राष्ट्रवाद व उदारवाद समरूपी आंदोलन बन गए। राष्ट्रवाद में स्वशासन की भावना समाहित है जिसने लोकतंत्र को जन्म दिया। हेलोवेल का कहना है, राष्ट्रवाद तथा उदारवाद समानान्तर रूप में विकसित हुए–'समानता' व 'स्वतंत्रता' की तरह बंधुत्व भी उदारवादी मंच का अभिन्न अंग बन गया तथा लोगों के 'आत्म-निर्धारण का सिद्धांत' जनता की प्रभुसत्ता के उदारवादी मत का तर्क सम्मत विस्तार ही था।" कार्ल डायश ने लिखा है, "सीमाओं के आधुनिकीकरण की समस्याएँ अपने समाधान के लिए विशेष रूप में राष्ट्रवाद की भावना की कामना करती हैं। यह इन समाजों के वाणिज्यक-पूर्व तथा औद्योगिक-पूर्व किसानों को गतिशील बनाने में बहुत बड़ी सकारात्मक भूमिका निभा सकती हैं। उन राष्ट्रों में इसकी तीव्रता के कम होने की तब तक संभावना नहीं है जब तक कि वे अधिक सामाजिक गतिशीलता प्राप्त नहीं कर लेते तथा आधुनिकतावाद की विशालतम बाधाओं पर उन्हें अन्यथा विजय प्राप्त नहीं होती।" तीसरी दुनिया के देशों में फैले हुए साम्राज्यवाद को नष्ट करने में राष्ट्रवाद की अहम भूमिका रही है। जी.सी. फील्ड राष्ट्रीय भावना को एक प्रबल शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। राष्ट्रवाद मौलिक मानव प्रकृति के साथ इतना समस्वर तथा आधुनिक राज्य के लिए इतना अनन्य हो गया है कि इसकी समाप्ति की बात निरर्थक साबित होगी। अंतर्राष्ट्रवाद के समर्थक नेहरू का मानना है कि अंतर्राष्ट्रवाद का जन्म राष्ट्रवादी संस्कृति में ही हो सकता है। उनका कहना है, "वास्तविक अंतर्राष्ट्रवाद अपनी जड़ों या आश्रय-स्थल के बिना कोई हवाई वस्तु नहीं है। इसे राष्ट्रीय संस्कृति में से उत्पन्न होना है तथा अब यह केवल स्वतंत्रता, समानता तथा सच्चे अंतर्राष्ट्रवाद के आधार पर ही फल-फूल सकता है।" इस तरह राष्ट्रवाद की विजय विभिन्न राष्ट्रीयताओं के लोगों की विस्मित करने वाली प्रगति की सूचक है।

राष्ट्रवाद की आलोचना

राष्ट्रवाद का सबसे बुरा तथा भयानक पक्ष इसके आश्रमक तथा लड़ाकू रूपों में देखा जा सकता है। जिस ढंग से हिटलर तथा मुसोलिनी ने राष्ट्रीय संवेगों का अनुचित लाभ उठाया तथा विश्व को दूसरे महायुद्ध में धकेला, इससे राष्ट्रवाद को एक भयानक अभिशाप मानने हेतु आलोचकों को पर्याप्त सामग्री पेश की है। उनके अनुसार यदि राष्ट्रवाद किसी एक जाति को आपस में बाँधता है तो उस जाति को दूसरी जाति से अलग भी करता है। अत: जाति विशेष में अलगाव की भावना आ जाती है। यह विश्व समुदाय की स्थापना में बाधक है। टैगोर का कहना है, "राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति विश्व के लोगों को खण्ड-खण्ड करने के लिए संकुचित घरेलू दीवारें खड़ी करती है। यह बहुत बड़ा खतरा है।" हेयर्स का कहना है, "राष्ट्रवाद दया या न्याय की प्रेरणा नहीं देता, यह अहंकारी है, नम्र नहीं तथा यह स्पष्ट रूप में मानवीय लक्ष्यों को सर्वजनीन बनाने में असफल रहता है..।" राष्ट्रवाद, राष्ट्र हित के लिए व्यक्ति को बलिदान कर देता है, और राष्ट्रहित मात्र सत्ताधारी लोगों का हित होता है। इसमें मानव की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए कोई स्थान नहीं है। हेलोवेल का कहना है, "आवेश की वस्तु के रूप में राष्ट्र को अधिकाधिक ईश्वर का स्थान दिया जाता है तथा वह भक्ति व पूजा जिसे पहले ईश्वर के योग्य माना जाता था अब उसे अधिकाधिक राष्ट्र राज्य की दिशा में मोड़ दिया गया है।" पिन्नाक व स्मिथ ने कहा है, "प्रेम नहीं बल्कि घृणा से राष्ट्रवाद का पोषण होता है, इसमें विश्वास नहीं बल्कि भय सम्मिलित है, तथा अपनी भयपूर्ण असुरक्षा में इसे ऐसे अतिश्योक्तिपूर्ण दावों तथा दु:साहसों में धकेल दिया जाता है जहाँ से उसका निकल पाना संभव नहीं होता। इटली के फासीवाद तथा जर्मनी के राष्ट्रवादी समाजवाद में राष्ट्रवाद ने अपना अधिकतम बर्बर तथा निर्मम रूप देखा है, परन्तु अब यह साम्यवादी रूस तथा प्रजातांत्रिक अमरीका में मौजूद है।" रवीन्द्रनाथ ठाकुर, राष्ट्रवाद को 'समूची जाति का सामूहिक और संगठित स्वार्थ, आत्मपूजा, स्वार्थी उद्देश्यों के लिए राजनीति और व्यवसाय का संगठन, शोषण के लिए संगठित शक्ति, आदि कहते है। हेज–ऐसी राष्ट्रीयता की निन्दा करता है जिसमें अपने राष्ट्र पर अभिमान और गर्व किया जाता है और दूसरे राष्ट्रों से द्वेष किया जाता है। शिलिटो के शब्दों में, राष्ट्रीयता, 'धर्म का दूसरा धर्म' बन गई है। यह भावनात्मक संवेगात्मक और प्रेरणामूलक है। सैनिकवादी जापान, फासीवादी इटली और नाजीवादी जर्मनी की राष्ट्रीयता को 'भेडियों सी आक्रामक राष्ट्रीयता' का दर्जा दिया जाता है। पामर एवं पार्किन्स का कहना है, "राष्ट्रवाद किसी राष्ट्र के सदस्यों को, राजनीतिक व प्रादेशिक दृष्टि से, राज्य के संगठन में एकीकृत करने का प्रयास करता है। जब यह कार्य संपन्न हो जाता है, धरती पर कब्जा करने का संघर्ष छिड़ जाता है।....इसके बाद साम्राज्यवाद दलित लोगों अथवा उनके भागों में राष्ट्रवाद की ज्वाला भड़का देता है।"

इसमें संदेह नहीं कि उग्र राष्ट्रवाद के भयानक आयाम हैं परंतु तथ्य यह है कि इसे समाप्त नहीं किया जा सकता। आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रवाद के भयानक पक्षों को निकाल दिया जाए।

संदर्भ

1. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
2. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
3. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
4. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
5. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
6. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
7. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
8. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
9. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
10. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
11. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
12. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
13. भारतीय प्रशासन: विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद

14. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन: सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
15. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
16. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
17. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
18. Imagined Communities: Reflections on the Origin and Spread of Nationalism - Anderson, Benedict
19. The Sage Handbook of Nations and Nationalism - Kumar, Krishan.
20. The Historical Evolution of Modern Nationalism - Hayes, Carlton J.
21. Nations and Nationalism Since 1780: Programme, Myth, Reality - Hobsbawm, Eric J.
22. Nation Formation: Towards a Theory of Abstract Community- James, Paul.

श्रमिक आंदोलन के विभिन्न आयाम

डॉ० सत्येन्द्र कुमार श्रीवास्तव

बेली रोड, शेखपुरा, पटना (बिहार)

ब्रिटिश शासन का भारत के मजदूर वर्ग बहुत ही दुष्प्रभाव पड़ा। नवीन ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापार और अन्य व्यवस्था चरमरा कर धराशायी हो गई। 19वीं सदी का भारत औपनिवेशिक शासन के शिंकजे में जकड़ चुका था। अंग्रेजों के भारत आगमन से पूर्व भारत का इतिहास आत्मनिर्भर ग्राम समाज के रूप में देखा जा सकता है। हस्तशिल्प उद्योग व कृषि उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में सक्षम थे, लेकिन औपनिवेशिक शासन के उपरांत आधुनिक उद्योगों की स्थापना से हस्तशिल्प उद्योग व कृषि की स्थिति खराब होने लगी। भारतीय मजदूर बड़ी संख्या में आधुनिक उद्योगों में नौकरी करने के लिए बाध्य हुए। यहीं से शुरू होती है उन पर शोषण व उनके संघर्ष की कहानी। वास्तव में औद्योगिक मजदूरों का जन्म 1850 से 55 के बीच हुआ, जब देश में पहली कपड़ा मिल, पहली चटकल खुली, पहली रेल चली तथा खानों से काफी कोयला निकाला गया। 1890 तक मजदूरों की संख्या लगभग 3 लाख थी जो 1922 तक बढ़कर 13.5 लाख तक पहुँच गई। इसी तरह भारतीय उद्योगों की संख्या 1894 में 815 थी जो 1922 में बढ़कर 5,144 तक पहुँच गई। आधुनिक उद्योगों के विकास में रेलवे के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। रेलवे के विकास से उद्योगों की स्थापना में आमूलचूल वृद्धि की गई ताकि इससे कच्चे माल को उद्योगों तक आसानी से पहुँचाया जा सके। कार्ल मार्क्स ने टिप्पणी की कि, "रेलवे का प्रादुर्भाव भारत में आधुनिक उद्योगों के आगमन का पूर्व सूचक है।" आधुनिक उद्योगों को दो श्रेणियों में देखा जा सकता है। एक स्वदेशी पूंजी पर निर्भर उद्योग तथा दूसरी विदेशी पूंजी पर निर्भर उद्योग। स्वदेशी पूंजीपति वर्ग में एक साहूकार वर्ग था तथा एक वर्ग वह था जो विदेशी वर्चस्व के बाद भी अन्तर्राज्यीय व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सक्रिय रूप से करता था। भारतीय आधुनिक उद्योगों को आरंभ करने का श्रेय पारसी समुदाय को जाता है जिसने खुलकर व प्रगतिशील विचारों के साथ उद्योगों की स्थापना की। इसमें कावसजी नानाजी दाभार का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने भारत में पहली सूती मिल 1854 में स्थापित की। 1895 में देश में 144 सूती मिल, 29 जूट मिल तथा 129 कोयला खाने काम कर रहे थे। 20वीं सदी के आरंभ में स्वदेशी आंदोलन के कारण भारतीय पूंजीपतियों को संरक्षण व प्रोत्साहन मिलना शुरू हुआ। परिणामत: 1914 तक 264 सूती मिल, 641 जूट मिलें कार्य करने लगीं तथा कोयला खनन का क्षेत्र भी अधिक विस्तृत हो गया। अत: भारतीय उद्योगों व ब्रिटेन पोषित उद्योगों में प्रतिस्पर्धा होना स्वभाविक था। ब्रिटिश शासक प्रथम विश्व युद्ध तक भारतीय उद्योगों की वृद्धि और समृद्धि को बाधित करने का प्रयास करने लगे फिर भी भारतीय उद्योग आगे बढ़ते रहे। ब्रिटिश उद्योगों को आगे बढ़ाने के लिए ब्रिटिश शासकों ने 1857 में आयात शुल्क घटाकर 5% कर दिए तथा 1879 में भारतीयों के कड़े विरोध के बावजूद ब्रिटेन से भारत आने वाले सूती कपड़े पर आयात शुल्क हटा दिया गया। लेकिन 1894 में आयात शुल्क दुबारा लगाया गया, इसका कारण सरकारी खजाना खाली हो जाना था, इस तरह ब्रिटिश माल पर भी आयात शुल्क लगाना जरूरी हो गया था। लेकिन उन्होंने सूत व सूती कपड़े पर आयात शुल्क नहीं लगाया। भारतीय पूंजीपतियों व ब्रिटिश पूंजीपतियों के बीच टक्कर का यही सबसे बड़ा कारण था।

ब्रिटिश शासकों की यह नीति भारतीय कपड़ा मिलों को कंगाल बनाकर ब्रिटेन की कपड़ा मिलों को मालामाल बनाने की थी। उधर मजदूर वर्ग दोनों वर्गों (भारतीय व विदेशी पूंजीपतियों) के साथ-साथ साम्राज्यवादी नीतियों से परेशान था। उसे कम मजदूरी, लम्बे कार्य के घंटे, मिलों में अस्वस्थ वातावरण, बालकों से काम लेना तथा सुविधाओं आदि के अभाव में सभी शोषकों से निबटना पड़ता था। परन्तु इससे श्रमिक वर्ग में एक विशेषता आ गई। इससे श्रमिक आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन का हिस्सा बन गया। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में श्रमिक वर्ग की भूमिका को पहचानने का श्रेय सर्वप्रथम लेनिन को दिया जाता है। 1906 में उन्होंने टिप्पणी की थी, "भारतीय मजदूर वर्ग अब इतना परिपक्व हो चुका है कि वह वर्ग चेतना से पूर्व और राजनीतिक जनसंघर्ष चला सकता

है।" इस टिप्पणी के लगभग 30 वर्ष बाद रजनी पाम दत्त ने लिखा है कि, "आज घटनाओं के वेग ने लेनिन की इस अन्तर्दृष्टि को सही साबित कर दिया। भारत के राष्ट्रीय संघर्ष के इतिहास में अपनी एक के बाद एक नई मंजिल ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि मजदूर वर्ग की भूमिका और उसका महत्व तेजी से बढ़ रहा है।" मजदूर वर्ग की इस भूमिका का सही आकलन करने के लिए उसके इतिहास को तीन कालों विभक्त किया जा सकता हैं :

(i) प्रथम विश्व युद्ध तक श्रमिक आंदोलन,

(ii) प्रथम विश्व युद्ध के बाद व स्वतंत्रतापूर्व तक श्रमिक आंदोलन,

(iii) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद श्रमिक आंदोलन।

(i) **प्रथम विश्व युद्ध तक श्रमिक आंदोलन :** आधुनिक उद्योगों की स्थापना के साथ 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में मजदूर वर्ग व उसकी समस्याओं का जन्म हुआ। इन समस्याओं के निदान हेतु मजदूर वर्ग संघर्ष करने को तैयार हुआ। मजदूर संघ की आरंभिक अवस्था में श्रमिकों ने औद्योगिक जीवन की कठिनाइयों को दूर करने के लिए अपनी मांगे प्रस्तुत की। 1877 में एंप्रेस मिल के कामगारों ने अपने वेतन की दरों के विरोध में हड़ताल की थी। इसी तरह नागपुर में हड़ताले हुईं तथा 19वीं सदी के अंतिम दशक में मद्रास व बंबई में लगभग 25 हड़ताले हुईं। लेकिन अभी भी मजदूर संघ का गठन नहीं हुआ था। इसी बीच 'प्रथम कारखाना कानून' 1881 पारित हुआ। इस कानून के अंतर्गत 7 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखाने में नहीं लगाया जा सकता था और 12 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए काम करने के घंटों को सीमित किया गया। इसी प्रकार 'द्वितीय कारखाना कानून 1891' पारित हुआ, इसके अंतर्गत स्त्रियों के काम करने का समय 11 घंटे कर दिया गया जिसमें 1 से 1.30 घंटे तक के मध्यावकाश का प्रावधान था। इसके साथ-साथ बच्चों के काम करने के लिए न्यूनतम आयु 7 और 12 से बढ़ाकर 9 और 14 वर्ष कर दी गई। सामान्यत: मजदूर संगठन उस समय उभर कर सामने आता है जब 1884 में एम.एम. लोखंडे ने बंबई मिल मजदूरों की सभा की। इसकी परणति 1890 में 'बंबई मिल एसोसिएशन' के रूप में दिखाई देती हैं। इस संगठन की मुख्य मांगों में काम के घंटों में कमी, साप्ताहिक अवकाश, लंच टाइम तथा घायलों को मुआवजा देना आदि मुख्य रूप से थी। लोखंडे ने मजदूरों की पत्रिका 'दीनबंधु' का प्रकाशन किया। वैसे लोखंडे मजदूरों के शुभचिंतक अवश्य थे लेकिन जैसा कि रजनीपामदत्त का मत है कि वह मजदूरों के संगठन या संघर्ष के अग्रदूत नहीं थे। इसी तरह का काम कलकत्ता में शशिपद बनर्जी ने पटसन मजदूरों के बीच किया। उन्होंने 'भारत श्रमजीवी' पत्रिका भी निकाली। बाद के वर्षों में 1897 में 'अमलगेमेटेड सोसाइटी ऑफ रेलवे सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया एंड वर्मा' का पंजीकरण हुआ। इसे प्रथम श्रमिक संगठन कहा जाता है। लेकिन इन संगठनों में बुनियादी कमजोरी झलकती है।

इसी समय बंगाल में अश्विनी कुमार बनर्जी, प्रभात कुसुमराय चौधरी, ऐथेनेसिएस अपूर्व कुमार घोष तथा प्रेमतोष बोस जैसे मजदूर नेता उभर कर आए, इसमें पहले तीन वकील थे तथा अंतिम एक छापाखाना के मालिक। 1905 में बंगाल में सरकारी छापेखानों में हड़ताल हुई तथा 21 अक्टूबर 1905 को ही 'प्रिन्टस यूनियन' की स्थापना हुई जिसे सुमित सरकार ने पहला वास्तविक श्रमिक संघ माना है। बाद के वर्षों में रेलवेमेन्स युनियन (1906), 'कामगार हितवर्धक सभा (1909), सामाजिक सेवा संघ (1911) आदि की स्थापना हुई। 1908 तक श्रमिकों की आर्थिक मांगे या हड़ताल 'राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष' से पूरी तरह अलग नहीं थी। लेकिन 1908 के बाद श्रमिक आंदोलन में राष्ट्रवादियों की रूचि अचानक कम हो गई। महाराष्ट्र में रानाडे व तिलक ने श्रमिक आंदोलन को आगे अवश्य बढ़ाया लेकिन उनका प्रयास उन्हें राजनीतिक आंदोलन से जोड़ने के लिए नहीं था। तिलक इस मामले में कुछ सफल अवश्य रहे। जुलाई 1908 में उनकी गिरफ्तारी के समय मजदूर वर्ग हरकत में आ गया था तथा उन पर छ: साल सजा की सुनवाई के बाद मजदूरों की व्यापक हड़ताल भी हुई। वैसे बीसवीं सदी के आरंभ में राष्ट्रीय आंदोलन व श्रमिक संघर्ष में घनिष्ठ संपर्क स्थापित हुआ। लेकिन राष्ट्रवादियों ने अपना निशाना मात्र विदेशी पूंजी को बनाया न कि स्वदेशी पूंजी को, जबकि मजदूरों का शोषण दोनों से होता था। 1914 तक मजदूर आंदोलन के चरित्र का विश्लेषण करते हुए रजनीपामदत्त ने लिखा है कि "1914 से पहले के वर्षों में मजदूर वर्ग की यह भूमिका पृष्ठभूमि में पड़ी हुई थी। उस समय तक मजदूर वर्ग राष्ट्रीय आंदोलन के आगे चलने के बजाय उसके पीछे-पीछे चलता था।"

प्रथम विश्व युद्ध के बाद व स्वतंत्रतापूर्व तक श्रमिक आंदोलन

भारत में प्रथम विश्व युद्ध के बाद श्रमिक आंदोलन का विशेष महत्व हैं। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीय जनता फौज में भर्ती होकर विदेश में युद्ध लड़ी। इससे भारतीय मजदूर वर्ग में चेतना का विकास हुआ। इसके साथ-साथ रूस की समाजवादी क्रांति

ने भी मजदूरों की चेतना के विकास में मदद की। इस बीच भारतीय कारखानों की संख्या बढ़ रही थी और साथ ही मजदूरों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई। विश्व युद्ध के कारण कीमतों में वृद्धि से गरीब श्रमिक वर्ग पर अतिरिक्त बोझ पड़ रहा था। यही स्थिति संगठित मजदूर संघ आंदोलन के लिए आधार बनी। वी.पी वाडिया द्वारा गठित 'मद्रास लेबर यूनियन' 1917 में भारत का प्रथम आधुनिक श्रम संघ था। बकिंघम और कर्नाटिका कपड़ा मिलों के मजदूर ही इस संगठन में शामिल थे। इसके बाद 1919 तक लगभग 17 श्रम संगठनों की स्थापना हुई। गांधी जी के आगमन से भी मजदूर आंदोलनों को प्रोत्साहन मिला। उनके नेतृत्व में मार्च 1918 में अहमदाबाद में मजदूरों के वेतन वृद्धि के लिए हड़ताल हुई, जो कि सफल रही जिसमें 35% वेतन वृद्धि की मांग मालिकों ने स्वीकार की। इसके परिणाम स्वरूप गांधी जी द्वारा 1920 में 'अहमदाबाद टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन' की गई। 1919 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के बनने तथा उसमें भारत की सदस्यता से श्रमिक संघ आंदोलन को काफी प्रोत्साहन मिला। इसके परिणामस्वरूप 1920 में 'अखिल भारतीय ट्रेड युनियन कांग्रेस' (एटक) की स्थापना हुई। इसका पहला अधिवेशन बंबई में 1920 में लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस अधिवेशन में जोसेफ बेप्टिस्ट को अध्यक्ष तथा दीवान चमनलाल को सचिव चुना गया। एटक 1920-1922 के मध्य कांग्रेस से संबद्ध रही। कांग्रेस से सहानुभूति रखने वालों संघों की संख्या 107 थी जबकि 1924-25 तक मजदूर संघों की कुल संख्या 167 थी। इस अवधि के दौरान कई हड़तालें हुई जिसमें 1925 की बंबई कपड़ा मिल की हड़ताल महत्वपूर्ण है जो कि सफल रही थी। 1921-25 तक हड़तालों की संख्या 1,150 से भी अधिक थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने यह संकल्प लिया कि "कांग्रेस भारतीय मजदूरों को मजदूर संघों का गठन करके अपने न्याय संगत अधिकारों को प्राप्त करने के लिए उनके संघर्ष में अपनी पूरी सहानुभूति प्रकट करती है। भारतीय श्रमिकों का संगठन इस दृष्टि से किया जाना चाहिए कि उनका कल्याण हो सके और उन्हें अपने न्यायोचित अधिकार मिल सकें।"

भारतीय मजदूर संघ अधिनियम 1926 में पारित हुआ जिसने मजदूर संघों को कानूनी दर्जा प्रदान किया। इसका स्वरूप ब्रिटिश मजदूर संघ अधिनियम 1906 के ही समान था। इससे मजदूर संघों और उनके कार्यकर्ताओं को मजदूर संघ की गतिविधियों के लिए दीवानी या फौजदारी कार्यवाही से संरक्षण प्राप्त हुआ। अब मजदूर संघर्ष का राजनीतिक चरित्र उभर कर सामने आने लगा।

1 मई, 1927 को बंबई में प्रथम मजदूर दिवस बनाया गया। फरवरी 1928 में साइमन कमीशन के विरूद्ध देशव्यापी हड़ताल व तालाबंदी तथा प्रदर्शन हुआ। मजदूर वर्ग की इस राजनीतिक जागृति से चिंतित होकर 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने अगस्त 1929 में टिप्पणी की कि "पिछले दो वर्षों के अनुभव ने यह बता दिया है कि कम्युनिस्टो के चक्कर में बड़े-बड़े केंद्रों के औद्योगिक मजदूर बहुत जल्दी आ जाते हैं।" मजदूरों में कम्युनिस्ट प्रभाव से एटक के गैरकांग्रेसी नेताओं ने भी चिंता जाहिर की। यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि मजदूर संघों में वामपंथियों (साम्यवादियों) की घुसपैठ कैसे हुई ? 1923 के बाद साम्यवादी प्रभुत्व वाले मजदूर संघों की स्थापना शुरू हुई। देश के कई वामपंथी नेताओं जिसमें बंबई के एस.ए. डांगे तथा कलकत्ता के मुजफ्फर अहमद आदि ने श्रम संघ आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया तथा 'सोशलिस्ट' व 'जनवाणी' नामक पत्रिकाओं का संपादन भी किया। साम्यवादियों ने बंबई में मजदूर संघ आंदोलन को नियंत्रण और अधिकार में रखने के लिए एक नियमित अभियान शुरू किया। 1925 तक एटक पर साम्यवादी प्रभाव परिलक्षित होने लगा। 1928 में बंबई में लगभग 7 महीनें तक हड़ताल चली, अंतत: बंबई सरकार द्वारा 'फॉसेट कमेटी' की नियुक्ति हुई और हड़ताल समाप्त हुई।

साम्यवादियों के प्रभाव से मजदूर संघों पर उत्पन्न परिदृश्य के परिणामस्वरूप मजदूर संघों में मतभेद परिलक्षित होने लगा। 1928 में एटक के कार्यकारणी के अध्यक्ष शिवराज ने कम्युनिस्टों को ट्रेड युनियन आंदोलन से पूर्णत: निकालने का आह्वान किया।

1928 का वर्ष कुल मिलाकर भयंकर औद्योगिक अशांति का वर्ष रहा।" 1928 में ही 'सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक' तथा 'ट्रेड युनियन डिस्प्यूट एक्ट' बनाया गया। सरकार द्वारा 33 साम्यवादी नेताओं को 'मेरठ षड्यंत्र' में गिरफ्तार कर साम्यवादियों पर अंकुश लगाया गया तथा परिणामत: अधिकांश अनुभवी कार्यकर्ताओं की गतिविधियाँ समाप्त हो गईं। मजदूर आंदोलन में बढ़ते मतभेद के चलते 1929 में एन.एम. जोशी, वी.वी. गिरि, शिवराज आदि ने 'एटक' से संबंध तोड़कर 'आल इण्डिया ट्रेड यूनियन फेडरेशन' (एटफ) की स्थापना की तथा बाद में कम्युनिस्ट नेताओं ने लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना की। 1933 में एटफ ने केंद्रीय मजदूर संघ के संगठनों को एक करने के लिए 'नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन' (NTUF) की स्थापना की।

मजदूर वर्ग पर 1933-34 के दौरान सरकारी दमन ने कहर ढा रखा था, इससे मजदूर वर्ग में एकता को पुर्नस्थापित करने की प्रेरणा मिली। 1935 में एटक व लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस पुन: एक हो गई तथा 1938 में 'एटफ' भी आ मिला। इन सब में एकता

के बावजूद 'अहमदाबाद लेबर एसोसिएशन' अब भी अलग रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व श्रमिक संगठनों की एकता में वृद्धि में कांग्रेस सरकारों के गठन से सहायता तो मिली लेकिन ये सरकारें श्रमिकों से सहानुभूति रखने वाली नहीं थी।

कांग्रेस पर पूंजीपतियों का प्रभाव अधिक था। 'बाम्बे ट्रेडस डिस्ट्रब्यूट एक्ट-1938' में कांग्रेस का श्रमिक विरोधी चरित्र पूरी तरह उभर कर सामने आ गया तथा सभी ट्रेड यूनियनों द्वारा इस एक्ट की जमकर आलोचना हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद श्रमिकों पर अत्यधिक दबाव पड़ा। कीमतों में भारी वृद्धि तथा आवश्यक वस्तुओं के अभाव से औद्योगिक क्रियाकलाप में अत्यधिक वृद्धि हुई। श्रमिकों ने महंगाई भत्ता तथा बोनस की मांग की लेकिन सरकार ने भारत सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत सभी प्रकार की हड़तालों पर प्रतिबंध लगा दिया। इससे उत्पन्न स्थितियों से मजदूर संघ पुनः मुखरित हो गया। नवम्बर 1941 में लाहौर में मजदूर संघों का विशाल सम्मेलन आयोजित हुआ। इस अवसर पर 'इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर' नाम से नए केंद्रीय मजदूर संघ के गठन का निर्णय हुआ। "व्यवस्थित कार्य व्यापार, स्थिर तथा सामूहिक मजदूर संघ पर आधारित" एक स्वतंत्र मजदूर संघ आंदोलन खड़ा करना इसका उद्देश्य था। वैसे द्वितीय विश्व युद्ध व स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व तक मजदूर संघ की गतिविधियाँ धीमी रहीं। उधर साम्यवादी युद्ध प्रयासों का समर्थन कर रहे थे तथा हड़ताल के पक्ष में नहीं थे, साथ ही अधिकांश मजदूर नेता 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में गिरफ्तार हो चुके थे। वैसे मजदूर संघ आंदोलन में एक घटना और युगांतरकारी थी और वह थी मई 1944 में 'भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड युनियन कांग्रेस' की स्थापना। इसका उद्देश्य श्रमिक आंदोलन को गांधीवादी आदर्शों पर चलाना था। इसी तरह नौसेना विद्रोह के समर्थन में मजदूर संघर्ष के योगदान को भूलाया नहीं जा सकता।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद श्रमिक आंदोलन

भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिलोरे मारने लगीं वहीं सामान्य जन की तमाम आकांक्षाएँ मुखरित होने लगीं। मजदूर वर्ग भी अब अपनी मांगे अपनी ही सरकार के सामने लाने में संकोच नहीं कर सकता थी। एक तरफ श्रमिक संघ सरकार का सहयोग करने लगे तो वहीं दूसरी तरफ सरकार ने भी श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिए नियोजकों के साथ मिलकर उनका भरपूर साथ दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नियोजन की शर्तों एवं दशाओं के निर्धारक तथा श्रम-मानकों की स्थापना में सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण होती गई। श्रम संघों द्वारा नियोजकों व सरकार पर श्रमिकों की स्थिति में सुधार के लिए दबाव पड़ने लगे। श्रमिकों की स्थिति में सुधार के लिए जो मांगे श्रम संघों द्वारा की गई वह निम्नलिखित हैं : (i) श्रमिकों के हित में कानून बनाना, (ii) श्रम-विरोधी कानूनों को वापस लेना, (iii) मजदूरी, बोनस, महंगाई भत्ता आदि विषयों पर आयोग गठित करना, (iv) समितियों का बोर्ड नियुक्ति करना, (v) औद्योगिक विवाद के निपटारे के लिए सरकार के रवैये में परिवर्तन लाना, (vi) श्रमिकों के शोषण को रोकना, आदि। आज देश में 6 हजार 5 सौ से भी अधिक श्रमिक संघ काम कर रहे हैं जो सीधे केंद्रीय महासंघों से जुड़े हुए है। केंद्रीय महासंघों में मुख्यतः इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस (INTUC), सेंटर ऑफ इण्डियन ट्रेड यूनियन (CITU), भारतीय मजदूर संघ (BMS), हिंद मजदूर सभा (HMS), ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC), नेशनल लेबर आर्गेनाइजेशन (NLO) तथा यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (UTUC)आदि उल्लेखनीय है। इनमें अधिकांश संगठन विचारधारा के आधार पर किसी न किसी राजनीतिक दल से जुड़े हुए हैं।

संदर्भ

1. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
2. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
3. भारतीय प्रशासनः विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
4. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
5. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
6. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
7. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
8. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
9. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत

10. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
11. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति–अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
12. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन: सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
13. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
14. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
15. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
16. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
17. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
18. Globalization and Economy -James, Paul; O'Brien, Robert
19. Forces of Labor. Worker's Movements and Globalization since 1870 - Beverly Silver
20. IWW: A Documentary History - Lenny Flank
21. Working Stiffs, Union Maids, Reds, and Riffraff: An Expanded Guide to Films about Labor - Tom Zaniello
22. New Forms of Worker Organization: The Syndicalist and Autonomist Restoration of Class-Struggle Unionism - Ness, Immanuel

सातवाहनों का काल एवं प्रायद्वीप में राज्य निर्माण

श्रीमती अंजू कुमारी

शोध छात्रा, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में उत्तरी दक्कन का योगदान पहली बार शताब्दी ई.पू. में सातवाहन वंश के उदय के रूप में रहा। दक्षिण भारत सातवाहन वंश का उद्‌भव है। आन्ध्र से संबंधित होने के नाते इन्हें 'आन्ध्र' या 'आन्ध्र सातवाहन' भी कहा जाता है। 'सातवाहन' शब्द 'कुल' या 'वंश' का बोधक है, जबकि 'आन्ध्र एक विशेष क्षेत्र में रहने वाले समान भाषा और परंपराओं से जुड़े लोगों का। सातवाहन राजवंश की स्थापना पहली शताब्दी ई. में हुयी थी।

दक्षिण भारत के पश्चिम और दक्षिण में अपने राज्य की स्थापना सातवाहन ने की थी। 'सातवाहन' कौन थे ? उनका मूल स्थान कहां था ? उनकी शासन तिथि क्या थी ? जैसे प्रश्नों पर इतिहासकारों में मत-भेद है। 'सातवाहन वंश' के राजाओं के लिए पुराणों में 'आन्ध्र' शब्द का प्रयोग किया गया है। गोदावरी और कृष्णा नदी के मध्य भाग में रहने वाले क्षेत्र को आन्ध्र कहा जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सातवाहन लोग द्रविड़ थे। कुछ विद्वानों के अनुसार 'सातवाहन' लोग मूलतया द्रविड़ नहीं थे, किंतु अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार सातवाहन द्रविड़ थे। अधिकांश इतिहासकारों के अनुसार सात वाहन लोगों का आदि स्थान महाराष्ट्र था, क्योंकि उनके बहुसंख्यक लेख महाराष्ट्र में मिले हैं। इससे ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वे पहले महाराष्ट्र में शासन करते थे और बाद में शकों द्वारा पराजित होने पर वे आन्ध्र आ गये। इसीलिये उन्हें आन्ध्र-सातवाहन कहा गया है। उनके मूल निवास-स्थान की भांति उनकी जाति के विषय में भी इतिहासकारों में मत-भेद है। डॉ. के. गोपालाचार्य ने उन्हें क्षत्रिय कहा है।

डॉ. हेमचन्द्र रायचौधरी ने उन्हें ब्राह्मण कहा है। जिनके रक्त में कुछ नागा-जाति के रक्त का समावेश था। इस तथ्य की पुष्टि 'द्वात्तिशल्युत्तलिका' से होती है। डॉ. भंडारकर ने सातवाहनवंश को ब्राह्मणेतर माना है, किंतु नासिक अभिलेख में गौतमी पुत्र शातकर्णि को ''क्षत्रियों के गर्व और मान को मर्दन करने वाला'' ब्राह्मण कहा गया है। अतएव उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि सातवाहन राजवंश ब्राह्मण था।

मत्स्यपुराण में कहा गया है कि आन्ध्रों ने 450 वर्षों तक राज्य किया। वायुपुराण में सातवाहनों का शासनकाल 300 वर्ष बतलाया गया और उनके 19 राजाओं का उल्लेख है। यह मत सर्वमान्य है कि 'कण्ववंश' के शासन का अंत 27 ई.पू. और उसके बाद सातवाहन शासन का प्रारंभ हुआ। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार सातवाहनों ने 30 ई.पू. से 250 ई. तक शासन किया। सातवाहन वंश का संस्थापक सिमुक को माना जाता है। शातकर्णी के नानाघाट गुहा (चित्रफलक) लेख में सिमुक का चित्र प्रथम तथा राजमहिषी नायायिका और उसके पति शातकर्णी दोनों को अष्टम फलक में द्वितीय स्थान पर दर्शाया गया है। पुराणों में वर्णन आया है कि आन्ध्र वंश का सिमुक काण्वायन सुशर्मा को नष्ट कर भूमि प्राप्त करेगा। सिमुक का समय 60-37 ई.पू. है। उसने शुंगों और कण्वों की शक्ति का विनाश कर सातवाहन वंश की स्थापना की। उसकी राजधानी 'प्रतिष्ठान' या 'पैठन' थी, जो गोदावरी तट पर स्थित थी।

सिमुक के बाद उसका छोटा भाई कान्ह (कृष्णा) शासक बना।

शातकर्णी : पुराणों से जानकारी मिलती है कि कृष्ण (कान्ह) के बाद शातकर्णी (27-17 ईसा पूर्व) गद्दी पर बैठा। इसका उल्लेख सांची के स्तूप, तोरण लेख, गुम्फा नानाघाट गुहालेख एवं नानाघाट गुहा चित्र-फलक लेख में आया है। हाथीगुफा अभिलेख से ज्ञात होता है कि, उसकी पूर्वी सीमा कलिंग शासक खारवेल की पश्चिमी सीमा से लगी हुयी थी। अलग-अलग ढंग से अभिलेख के उक्त अनुच्छेद की व्याख्या की गयी है, किंतु अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि उसके खारवेल से मैत्रीपूर्ण संबंध थे। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि कृष्णा नदी के दक्षिणी भाग पर जो शातकर्णी के राजत्व में था, खारवेल ने आक्रमण किया था। शातकर्णी को सिमुक वंश की वृद्धि करने वाला कहा है 'सिमुक सातवाहनस् वंश वधनस।' उसने महाराष्ट्र के महारथी त्रण कियरो की कन्या का नागयिका के साथ विवाह किया।

शातकर्णी के दो पुत्र थे 'शक्तिश्री' एवं 'वेदश्री'। उसकी मृत्यु के बाद नागयिका ने इनकी अभिभाविका के रूप में शासन संचालित किया था। इन दो पुत्रों में वेदश्री की मृत्यु हो गयी और शक्ति श्री ने कुछ समय तक शासन किया। शातकर्णी विशाल साम्राज्य का स्वामी था। अपने गौरव के अनुरूप उसने दो अश्वमेध यज्ञ किये। हाल का कथन है कि एक-शासनकाल के प्रारंभ में तथा दूसरा अपने जीवन के अंतिम समय में। शातकर्णी के बाद कुछ समय के लिए इस वंश का पराभव हो गया। पुराणों में शातकर्णी एवं गौतमीपुत्र शातकर्णी के मध्य अनेक शासकों का उल्लेख आया है। अपलक, कुंतल शातकर्णी तथा हाल का नाम अनेक साक्ष्यों में मिलता है। संभवत: ये मुख्य शाखा से सम्बद्ध नहीं थे। हाल ने लगभग पांच वर्ष (20-24 ई.) तक शासन किया। यह उच्च कोटि का कवि और साहित्यकार था। हाल ने स्वयं 'गाथा सप्तशती' की रचना की थी। उसी के शासन-काल में गुणाढ्य ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'तेहत्कथा' का प्रणयन किया था। शातकर्णी ने 'दक्षिणापथपति' तथा 'अप्रतिहतचक्र' की उपाधि ली थी।

गौतमीपुत्र शातकर्णी : गौतमीपुत्र शातकर्णी सातवाहन वंश का महानतम शासक था। प्रारंभिक राजाओं द्वारा महाराष्ट्र में स्थापित राज्य दूसरी सदी के आरंभ में शक वंश के क्षहरात नरेश नहपान के उद्भव के साथ कुछ समय के लिए समाप्त हो गया था। नहपान का समय 119 ई. से 125 ई. के मध्य माना जाता है। इसके अधिकार क्षेत्र में उत्तरी महाराष्ट्र, मालवा, काठियावाड़, राजपूताना थे। महाराष्ट्र सातवाहनों का मूल प्रदेश था, किंतु उन्हें क्षहरातों के दबाव से दक्षिण में विस्थापित होना पड़ा। लेकिन क्षहरातों द्वारा सातवाहनों का पराभव अस्थायी सिद्ध हुआ। गौतमीपुत्र शातकर्णी के नासिक गुहा अभिलेख से जानकारी मिलती है कि महाराष्ट्र गौतमीपुत्र शातकर्णी के अधीन था। अभिलेख में आया है कि उसने क्षहरातों को निकाल बाहर किया। इस तथ्य की पुष्टि अन्य प्रमाणों से भी होती है। जोगलथंभी (नासिक) से प्राप्त सिक्कों की निधि (13,250)से नहपान की चांदी की मुद्राएं और उसके अन्य सिक्के जिन्हें, गौतमीपुत्र शातकर्णी ने दुबारा ढलवाया था, मिले हैं। अत: कहा जा सकता है कि सातवाहनों का महाराष्ट्र क्षेत्र पर पुन: प्रभाव स्थापित हो गया। सातवाहन शक्ति को उसके राज्यारोहण से पूर्व शक क्षत्रपों ने आघात पहुंचाया तथा उन्हें अपनी शक्ति के विस्तार से रोका। गौतमीपुत्र शातकर्णी ने ही संभवत: क्षहरात शासक नहपान की शक्ति को नष्ट किया।

कुछ ऐसे प्रदेशों को नासिक प्रशस्ति में शामिल किया गया है जो पूर्व में नहपान राज्य के भाग थे-अपरांत, अनूप, अकरावंति, सुराष्ट्र, कुकुर एवं अवंति। उसके साम्राज्य विस्तार का विवरण पुलुमावी के नासिक अभिलेख में आया है। अभिलेख में विवेचित 'असिक' (ऋषिक) का तादात्म्य कृष्ण नदी के निकट ऋषिक नगर से किया जा सकता है। 'असक' (अस्मक) हैदराबाद क्षेत्र के पोदन्य (बोधन) का समीपवर्ती प्रदेश था। 'मूलक' का समीकरण आधुनिक औरंगाबाद जिले में गोदावरी के निकट पैठान (या पैथन) से किया है। 'सुरठ-कुकुर' पूर्वी राजपूतानों का एक भाग था। 'अपरांत' से तात्पर्य पश्चिमीघाट से है। 'अनूप' ऊपरी नर्मदा के किनारे का प्रदेश था। 'विदर्भ' से अभिप्राय बरार प्रदेश से है तथा अकरावंती पूर्वी एवं पश्चिमी मालवा को कहा है। कहा जा सकता है कि गुजरात, सौराष्ट्र क्षेत्र, मालवा, बरार, उत्तरी कोंकण, पुणे एवं नासिक के आस-पास के प्रदेश उसके साम्राज्य के अभिन्न अंग थे।

प्रसिद्ध विद्वान नीलकण्ठ शास्त्री की मान्यता है कि इसका कोई सबूत नहीं कि उसका राज्य आन्ध्र प्रदेश में भी था, यद्यपि हो सकता है कि वह कलिंग को स्पर्श करता हो। नहपान का उन्मूलन संभवत: अपने शासन के 18वें वर्ष में किया अथवा यह कहा जा सकता है कि 124-125 ई. नहपान की अंतिम तिथि है। गौतमीपुत्र शातकर्णी के राज्यकाल के 18वें वर्ष नासिक दानपत्र अभिलेख में कुछ भूमि को दान देने का उल्लेख हुआ है। उक्त भूमि पूर्व में ऋषभदत्त (उषवदात) के अधिकार में थी। ऋषभदत्त निश्चित रूप से शक गवर्नर था। जिसके अधिकार में नासिक एवं पुणे जिले थे और वह नहपान का दामाद था।

यह उल्लेखनीय है कि भू-आवंटन की कार्यवाही सैनिक कैम्प के दौरान की गयी, जो उस समय सफलता के पथ पर थी। गौतमीपुत्र के लेख में आवंटित क्षेत्र को गोवर्धन (नासिक) जिले में स्थित बेणाकटक नामक विजय स्कंधावर से संबंधित बताया है। स्पष्ट है कि इस प्रदेश में गौतमीपुत्र शातकर्णी की उपस्थित सेना का मुख्य अधिपति भी था, क्षहरातों के विरुद्ध अभियान का द्योतक है। इस अभियान द्वारा ऊपरी दक्कन, पश्चिमी तथा मध्यभारत को स्वतंत्र करवाया। इसी तरह एक ग्राम 'करजिका' मामल आहार (पुणे जिले में स्थित), जिसे मूलत: ऋषभदत्त ने दान किया था, को पुन: सातवाहन शासक गौतमीपुत्र द्वारा दान किया जाना उत्तरी महाराष्ट्र से सत्ता हस्तांतरण को इंगित करता है। उसने राज्यारोहण के 24वें वर्ष में कुछ साधुओं को भूमिदान की जिसकी जानकारी एक अभिलेख के उत्कीर्ण करवाये जाने से मिलती है। नहपान को परास्त करने से गौतमीपुत्र शातकर्णी की साम्राज्य सीमा बहुत विस्तृत हो गयी थी। दक्षिण में कृष्णा नदी से, उत्तर में मालवा एवं काठियावाड़ तथा पूर्व में बरार से पश्चिम में, कोंकण के मध्य समस्त प्रदेश सातवाहन साम्राज्य के अंग थे।

अपने वंश का गौतमी पुत्र शातकनी सबसे प्रतापी और पराक्रमी राजा था। उसकी माता गौतमी बलश्री के नासिक गुहालेख से उसकी विजयों, उसके शासन, उसकी सफलताओं तथा उसके प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व के प्रशंसनीय गुणों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। नासिक गुहा-लेख में गौतमी पुत्र की दिग्विजयों का वर्णन मिलता है। इसमें कहा गया है कि 'उसके वाहनों ने तीन समुद्रों (पूर्व पयोधि, पश्चिम सागर और दक्षिण में हिंद महासागर) का जल पिया। नासिक अभिलेख में उसके व्यक्तिगत गुणों का भी अच्छा उल्लेख किया गया है।' इसमें कहा गया है कि गौतमी पुत्र का मुखमंडल दीप्तवान तथा प्रभावशाली था। उसके बाल सुंदर तथा भुजाएं बलिष्ठ थीं। उसका स्वभाव अत्यंत मृदुल तथा कारुणिक था। सभी की रक्षा करने को वह सदैव तत्पर रहता था। अपनी माता का वह एक आज्ञाकारी पुत्र था और अपने दुर्धर्ष शत्रु पर भी प्रहार करने में संकोच करता था। गौतमी पुत्र एक प्रजावत्सल शासक था और अपनी प्रजा के सुख-दु:ख को अपना सुख दु:ख समझता था। वह अपनी प्रजा पर आवश्यकता से अधिक कर नहीं लगाता था। ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान का श्रेय उसी को है। धार्मिक दृष्टि से वह एक सहिष्णु शासक था। वह एक महान निर्माता भी था। उसने नासिक जिले में 'वेकटक' नामक नगर का निर्माण कराया था। गौतमी पुत्र को 'क्षत्रियदर्पमान मर्दन' कहा गया है, जिसने वर्ण संकरता को रोका।

वशिष्ठीपुत्र पुलुमावी-गौतमी पुत्र की मृत्यु के पश्चात् वशिष्ठी पुत्र पुलुमावी राजा हुआ। उसने भी लगभग 24 वर्ष (130-54) तक शासन किया। पुराणों में उसे 'पुकोमा' कहा गया है। शासनकाल के 19वें वर्ष के वशिष्ठीपुत्र पुलुमावी के नासिक गुहालेख में 'बलश्री' अपने को वर्तमान नरेश की दादी एवं भूतपूर्व सम्राट की माता कहती है। इस विवरण को पुलुमावी का अपने पूर्वज गौतमीपुत्र साातकर्णी के साथ संबंध असन्दिग्ध रूप से निश्चित हो जाता है, जिसके पुत्र रूप में उसने लगभग 130 ई. में उत्तराधिकार प्राप्त किया। टॉलमी द्वारा उल्लिखित सिरोपोलेमेउ से उसका तादात्म्य किया जाता है, जिसकी राजधानी गोदावरी के किनारे स्थित पैठन (प्रतिष्ठान) थी। उसे (पुलुमावी) नवसार का नरेश भी कहा जाता है। नवनगर (नयानगर या नवनोर) से अभिप्राय भंडारकर पैठन से ही लेते हैं। पूर्व की भांति पुलुमावी का दक्षिण पर अधिकार बरकरार रहा।

उसके अभिलेख एवं प्राप्त मुद्राओं से स्पष्ट होता है कि कृष्णा नदी का क्षेत्र उसके साम्राज्य का अंग था। आन्ध्र को उसी ने सातवाहन साम्राज्य में सम्मिलित किया था। जैसा विदित है कि, गौतमीपुत्र सातकर्णी के साम्राज्य में कृष्णा नदी क्षेत्र शामिल नहीं था। नासिक एवं कार्ले गुहा लेखों से ज्ञात होता है कि महाराष्ट्र भी उसके अधिकार में था। उसे संबोधित किया गया कार्ले गुहा लेख अंतिम है। इसमें अंकित तिथि उसके राज्य का 24वां वर्ष है। उसका राज्यारोहण 130 ई. में स्वीकार किये जाने के आधार पर कहा जा सकता है कि उसने 154 ई. तक शासन किया

चष्टन को टॉलेमी ने अपने भूगोल में पश्चिमी मालवा तथा उज्जैन का स्वामी कहा है। चष्टन की मुद्राएं गुजरात में काठियावाड़ से मिली हैं, किंतु चष्टन के पुत्र जयदामन की मुद्राएं पुष्कर से भी प्राप्त हुयी है। यह प्रदेश पूर्व में सातवाहनों के अधिकार में था। अत: अनुमान किया जा सकता है कि पुलुमावी को पराजित करके ही शकों ने इस पर अधिकार जमाया होगा। चष्टन ने अपने कुछ सिक्कों पर सातवाहनों के मुद्रा चिह्न चैत्य को अंकित करवाया था। यज्ञश्री शातकर्णी पुलुमावी के बाद अंतिम शक्तिशाली सम्राट था, जिसने 165 ई. से 195 ई. तक शासन किया। कृष्णा जिले के चिन्न नामक स्थान से शासन के 27वें वर्ष का अभिलेख प्राप्त हुआ है तथा कन्हेरी एवं पांडुलेण (नासिक) में उसके लेख उपलब्ध हुये हैं।

यज्ञ श्री शातकर्णी–यज्ञ श्री शातकर्णी सातवाहन वंश का अंतिम पराक्रमी सम्राट था। उसने 27 वर्षों (165- 192 ई.) तक शासन किया। उसका शासन महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश दोनों पर था। उसने रूद्रदामन के उत्तराधिकारियों से उत्तरी कोंकण को अपने आधिपत्य में कर लिया था। थाना और नासिक के जनपदों में जो अभिलेख मिले हैं, उनसे यह सिद्ध हो जाता है कि यज्ञ श्रीशातकर्णी का राज्य काफी दूर तक फैला था। उसके समय में व्यापार की बड़ी उन्नति हुई। उसने अपने पूर्वजों के लुप्त गौरव को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। उसका प्रशासन भी काफी संगठित था।

संदर्भ

1. प्राचीन भारत (कथा -11)-एन. सी. ई. आर .टी.
2. प्राचीन भारत का इतिहास -डा. सत्यनारायण।
3. प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास -डा. शिवस्वरूप सहाय।
4. प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था -डा. ओम प्रकाश प्रसाद।
5. प्राचीन भारत–एन.सी.ई.आर.टी.
6. प्राचीन भारत का इतिहास–द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली
7. अद्‌भुत भारत–ए.एल. बाशम
8. प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति–के.सी. श्रीवास्तव
9. प्राचीन भारत का इतिहास–रोमिला थापर
10. प्राचीन भारत–डी.एन. झा
11. प्राचीन भारत का इतिहास–वी.डी. महाजन
12. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास–डॉ. जय शंकर मिश्रा

भारत में क्षेत्रवाद की राजनीतिः एक मूल्यांकन

डॉ० सीता कुमारी

पति-लखेन्द्र दास, ग्राम+पोस्ट-पानापुर लंगा, जिला-वैशाली

भारत के राष्ट्र निर्माण में जो चुनौतियाँ मौजूद हैं उनमें क्षेत्रवाद भी एक है। भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् राजनीति में जो नए प्रश्न उभरे हैं, उनमें क्षेत्रीयवाद का प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। क्षेत्रीयवाद से अभिप्राय किसी देश के उस छोटे-से क्षेत्र से है जो आर्थिक, सामाजिक आदि कारणों से अपने पृथक् अस्तित्व के लिए जागृत है। भारत की राजनीति को क्षेत्रीयवाद ने भी बहुत अधिक प्रभावित किया है और यह भारत के लिए एक जटिल समस्या बनी रही है और आज भी विद्यमान है। आज यदि किसी व्यक्ति से पूछा जाए कि वह कौन है तो वह भारतीय कहलाने के स्थान पर बंगाली, बिहारी, पंजाबी, हरियाणवी आदि कहलाना पसन्द करेगा। यद्यपि संविधानानुसार प्रत्येक नागरिक को भारत की ही नागरिकता दी गई है, तथापि लोगों में क्षेत्रीयता व प्रान्तीयता की भावनाएँ इतनी पाई जाती हैं कि वे अपने क्षेत्र या प्रान्त के हित के लिए राष्ट्र हित को बलिदान करने के लिए तत्पर रहते हैं। 1950 से लेकर आज तक क्षेत्रीयवाद की समस्या भारत सरकार को घेरे हुए है और विभिन्न क्षेत्रों में आन्दोलन चलते हैं। इन आन्दोलन को मुख्यतः पांच प्रकार की माँगों के आधार पर संगठित किया गया है:

(क) **भारतीय संघ से पृथक् होने की मांगः** कई बार क्षेत्रीय आन्दोलन संघ से अलग होने के लिए किए जाते रहे हैं।

(1) **तमिलनाडु में आन्दोलनः** संघ से अलग होने की आवाज सर्वप्रथम तमिलनाडु (मद्रास) राज्य के लोगों ने उठाई। 1960 में द्रमुक तथा अन्य तमिल दलों ने इस मांग को पूरा करवाने लिए व्यापक आन्दोलन किया। 1962 के चुनाव में द्रमुक दल को तमिलनाडु विधानसभा में पचास स्थान प्राप्त हुए, जबकि 1957 के चुनाव में इस दल को 15 स्थान प्राप्त हुए थे। द्रमुक के नेता अन्नादुराई ने संघ से अलग होने की माँग को दोहराया तो स्वर्गीय प्रधानमन्त्री नेहरू ने इस माँग को अनुचित बताया। चेन्नई (मद्रास) के वातावरण को देखते हुए संसद ने 1963 में संविधान में 16वां संशोधन पास किया। इस सशोधन के अनुसार संसद् को अधिकार दिया गया कि वह भारत की प्रभुसत्ता को ललकारने वाले व्यक्ति को सजा देने के लिए कानून बनाए। इस संशोधन के अनुसार संसद् तथा अन्य राज्य विधानसभा के चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को संविधान के प्रति और राष्ट्र की प्रभुसत्ता व एकता को बनाए रखने के लिए शपथ लेनी होगी। इस संशोधन के फलस्वरूप द्रमुक ने भारत से अलग होने की मांग को छोड़ दिया, परन्तु 1971 में तमिलनाडु (मद्रास) के मुख्यमंत्री करुणानिधि ने कहा कि तमिलनाडु का भारत से अलग होना निश्चित एवं अनिवार्य है।

(2) **पंजाब आन्दोलनः** तमिलनाडु (मद्रास) राज्य की तरह पंजाब में मास्टर तारा सिंह ने पंजाब को एक अलग सिक्ख राज्य बनाने की मांग रखी। 1950 से लेकर 1966 तक अकाली दल ने पंजाबी सूबा बनाने के लिए कई आन्दोलन चलाए। नवम्बर, 1966 में पंजाब का पुनर्गठन करके पंजाब और हरियाणा दो राज्यों की स्थापना की गई। 1971 में डॉ. जगजीत सिंह ने खालिस्तान की माँग को दोहराया जिसकी पंजाब के नेताओं ने कड़ी आलोचना की। 1973 में पास किए गए आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव के आधार पर अकाली दल ने भारत के भीतर ऐसे सिक्ख राज्य की स्थापना की माँग की जिसमें चार विषयों-प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, मुद्रा और यातायात व संचार साधनों को छोड़कर अन्य सभी विषय राज्य सरकार को सौंप देने चाहिए। अपनी इस माँग को पूरा करवाने के लिए अकाली दल के एक धड़े ने जत्थेदार जगदेव सिंह के नेतृत्व में आन्दोलन चलाया। इस आंदोलन के अतिरिक्त 8 अगस्त, 1982 को एक अन्य आन्दोलन अमृतसर से अकाली दल ने आरम्भ किया। इस आन्दोलन में दमदमी टकसाल के मुखिया संत जरनैल सिंह

भिंडरावाला और उनके समर्थक भी सम्मिलित थे। जून, 1984 में सरकार को विवश होकर आतंकवादियों को पकड़ने के लिए स्वर्ण मन्दिर परिसर में तथा अन्य स्थानों पर सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी। जुलाई, 1985 में शिरोमणि अकाली दल के प्रधान संत हरचंद सिंह लौंगोवाल और प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी में एक समझौता हुआ जिसको पंजाब समझौता कहा जाता है।

(3) **मिजो आन्दोलन:** असम में मिजो हिल जिले के लोगों ने भारत से अलग होने की मांग की और इस मांग को पूरा करवाने के लिए उन्होंने मिजो नेशनल फ्रंट (MNF) की स्थापना की। चीन के आक्रमण के समय मि. ने. फ्रं को अवैध घोषित कर दिया गया और मिजो हिल को संघीय क्षेत्र बना दिया गया। इस संघीय क्षेत्र को मिजोरम का नाम दिया गया और इसका उद्घाटन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने 21 जनवरी, 1972 को किया। मिजो नेशनल फ्रन्ट ने लालडेंगा के नेतृत्व में स्वतन्त्र मिजोरम के लिए अपनी आतंकवादी गतिविधियाँ जारी रखीं। 1972 में लालडेंगा इंग्लैंड भाग गए और वहाँ से मिजो नेशनल फ्रन्ट को निर्देश देते रहे। 1976 और 1980 में लालडेंगा से समझौते के लिए बातचीत हुई जो विफल रही। तीसरी बार बातचीत अक्तूबर, 1984 में आरम्भ हुई और 25 जून, 1986 को केन्द्रीय सरकार और मिजो नेशलन फ्रन्ट में समझौता हुआ और लालडेंगा को मुख्यमन्त्री बनाया गया और 1987 में मिजोरम को पूर्ण राज्य बनाया गया।

(4) **नागालैण्ड आन्दोलन:** मिजो लोगों की तरह असम के नागा पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने स्वतन्त्र नागा राज्य की मांग की। उन्होंने नागा राज्य की मांग को मनवाने के लिए 'नागा नेशनल कौंसिल' (Naga National Council) की स्थापना की। नागाओं ने अपनी मांगों को पूरा करवाने के लिए हिंसक तथा अराजकता का मार्ग अपनाया, जिससे सेना को तैनात करना पड़ा। 1962 में 13वें संशोधन द्वारा नागालैंड को भारतीय संघ का 16वां राज्य बनाया गया। इसके बाद भी नागालैंड में कई विद्रोही नागाओं ने अपना आन्दोलन जारी रखा।

(5) **आजाद कश्मीर की मांग:** जम्मू-कश्मीर में अलगाववाद की जड़ें बड़ी गहरी हैं। 1947 में शेख अब्दुल्ला जम्मू-कश्मीर के शासक बने और उन्होंने 1951 से स्वतन्त्र कश्मीर का सपना देखना शुरू कर दिया। इसीलिए, अगस्त, 1953 में शेख अब्दुल्ला को बंदी बनाया गया। कश्मीर में अलगाववाद का एक महत्त्वपूर्ण कारण भारतीय संविधान का अनुच्छेद 370 है जिसने कश्मीर को विशेष दर्जा दे रखा है। 1987-88 से अलगाववादी गतिविधियाँ तेज हो गई। इन अलगाववादियों को पाकिस्तान का पूर्ण समर्थन प्राप्त है जिस कारण ये कश्मीर के विभिन्न स्थानों पर आतंकवादी गतिविधियाँ कर रहे हैं। उन्हें पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षण, सहायता और प्रोत्साहन मिल रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय विरोधी तत्व विदेशी पर्यटकों का अपहरण करके उनकी हत्या कर देते हैं। उन अलगाववादियों से निपटने के लिए प्रशासन बड़े पैमाने पर कार्यवाही कर रहा है। उनकी मुख्य मांग कश्मीरियों को आत्मनिर्णय का अधिकार देना और आजाद कश्मीर की है। इस मांग की पूर्ति के लिए ये अलगाववादी तत्व पाकिस्तान की उकसाहट के कारण खूनी संघर्ष का रास्ता अपनाए हुए हैं।

(ख) **पृथक् राज्यत्व को प्राप्त करने की मांग:** कई बार क्षेत्रीयता आन्दोलन अलग राज्य की स्थापना के लिए किया जाता रहा है। 1956 के राज्यों के पुनर्गठन के बाद प्रत्येक राज्य सन्तुष्ट नहीं था। मुम्बई (बम्बई) राज्य के लोगों ने पहले अलग राज्य की मांग की, जिसके फलस्वरूप दो नए राज्यों-महाराष्ट्र व गुजरात की स्थापना हुई। पंजाब में अकाली दल ने पंजाबी सूबा की मांग की। 1966 में अकाली दल की मांग को स्वीकार किया गया और पंजाब को दो राज्यों में विभक्त कर दिया गया-पंजाब और हरियाणा। पंजाब के पहाड़ी इलाके हिमाचल प्रदेश में मिला दिए गए।

(1) **गोरखालैंड आन्दोलन:** 1985 ई. में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग पर्वतीय क्षेत्र के निवासियों ने सुभाष घीसिंग के नेतृत्व में गोरखालैंड राज्य बनाए जाने की मांग की। गोरखा नेशनल लिब्रेशन फ्रन्ट ने गोरखा राज्य के लिए व्यापक आन्दोलन चलाया और अन्त में अगस्त, 1988 में एक समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत दार्जिलिंग पर्वतीय गोरखा परिषद् की मांग को स्वीकार कर लिया गया। दार्जिलिंग पर्वतीय गोरखा परिषद् के चुनाव दिसम्बर, 1988 में हुए जिसमें राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे को 28 स्थान प्राप्त हुए।

(2) **बोडो आन्दोलन:** 1987 में असम में बसे बोडो कबीले के लोगों ने 'बोडोलैंड' की मांग को लेकर 'आल बोडो-स्टूडेंट्स यूनियन' (All Bodo Students Union) के नेतृत्व में आन्दोलन शुरू किया। आल बोडो स्टूडेंट्स यूनियन ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी किनारे पर बसे बोडो कबीले के लोगों के लिए अलग राज्य की मांग कर रही है ताकि वे अपनी संस्कृति एवं भाषा की रक्षा कर सकें और अपना सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास कर सकें। 15 अगस्त, 1989 को अखिल बोडो छात्र संघ ने 'एक हजार घण्टे' के असम बन्द का आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलन में बोडो और गैर-बोडो समुदायों में हिंसक घटनाएं हुईं। 28 अगस्त, 1989 को नई दिल्ली में त्रिपक्षीय वार्ता हुई और बोडो आन्दोलनकारी बातचीत के लिए उचित वातावरण बनाने के उद्देश्य से अपना आन्दोलन स्थगित करने तथा हिंसक गतिविधियां रोकने पर सहमत हो गए। बोडोलैंड आन्दोलन, 20 फरवरी को आन्दोलन के नेताओं, केन्द्र और राज्य सरकार के बीच हुए एक समझौते के साथ ही समाप्त हो गया। समझौते के अनुसार असम राज्य में बोडो लोगों की आशाओं को पूरा करने और सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए एक 40 सदस्दीय स्वायत्तशासी परिषद् बनाई गई। इस परिषद् के 35 सदस्य निर्वाचित होंगे तथा 5 सदस्यों को राज्यपाल मनोनीत करेगा। 19 मई, 1993 को बोडोलैण्ड अन्तरिम परिषद् की स्थापना की गई। अन्तरिम परिषद् का गठन बोडो समझौते के पालन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

(3) **झारखण्ड आन्दोलन:** झारखण्ड मुक्ति मोर्चा बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और मध्य प्रदेश के 21 जिलों को मिलाकर झारखण्ड राज्य की मांग कर रहा था। झारखण्ड मुक्ति मोर्चा ने पिछले 50 वर्षों में कई बार जोरों से आन्दोलन चलाए। झारखण्ड नेताओं ने 15 सितम्बर, 1992 को झारखण्ड बन्द और 18 से 30 सितम्बर तक बिहार में आर्थिक नाकेबन्दी का आह्वान किया। 15 मार्च, 1993 को झारखण्ड बन्द किया गया और 16 मार्च से आर्थिक नाकेबन्दी कार्यक्रम शुरू किया गया। इस आर्थिक नाकेबन्दी को 20 अप्रैल को प्रधानमन्त्री नरसिम्हा राव के समस्या के निदान हेतु द्विपक्षीय बैठक बुलाने के आश्वासन के बाद स्थगित कर दिया गया। वार्ता के कई दौर चले, पर झारखण्ड समस्या का कोई हल नहीं निकला। 17 मार्च, 1994 को अखिल झारखण्ड विद्यार्थी संघ व झारखण्ड पीपुल्स पार्टी के आह्वान पर 48 घंटे के बन्द के दौरान कई जगहों पर हिंसक वारदातें भी हुईं। 22 सितम्बर, 1994 को केन्द्र सरकार ने बिहार सरकार व झारखण्ड मुक्ति मोर्चे के साथ मिल कर एक समझौता किया, जिसके अन्तर्गत झारखण्ड के विकास के लिए एक स्वायत्तशासी विकास परिषद् की स्थापना की जाएगी जिसमें 100 सदस्य होगें जिनमें से 90 सदस्य निर्वाचित और 10 मनोनीत होंगे। परन्तु इन व्यवस्थाओं के बावजूद झारखण्ड आन्दोलन चलता रहा। अन्ततः केन्द्र सरकार ने झारखण्ड वालों की बात मानते हुए, नवम्बर, 2005 में झारखण्ड नाम का एक नया राज्य बना दिया।

(4) **उत्तरांचल राज्य की मांग:** पिछले कुछ वर्षों से उत्तर प्रदेश में उत्तरांचल राज्य की मांग चलती रही। जनवरी, 1990 में भारतीय जनता पार्टी के महासचिव डॉ. मुरैली मनोहर जोशी के नेतृत्व में एक उत्तरांचल राज्य संघर्ष सीमित का प्रतिनिधिमण्डल गृहमन्त्री से मिला और उनसे उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों को मिला कर उत्तरांचल राज्य की स्थापना की मांग की। दिसम्बर, 1993 में उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री मुलायम सिंह यादव ने भी उत्तरांचल राज्य की मांग का समर्थन किया। 1994 में उत्तरांचल आन्दोलन तीव्र गति से चला। 2 अक्तूबर, 1994 को तब उत्तराखण्ड के आन्दोलनकारी बसों में दिल्ली आ रहे थे जब मुजफ्फरनगर में पुलिस ने उन पर हर तरह के अत्याचार किए। मई, 1998 में भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने उत्तरांचल को राज्य बनाने की घोषणा की। केन्द्र सरकार ने उत्तरांचलवासियों की मांग को मानते हुए नवम्बर, 2000 में उत्तरांचल नामक नया राज्य बना दिया।

(ग) **पूर्ण राज्यत्व को प्राप्त करने की मांग:** क्षेत्रीयता की समस्या का तीसरा रूप पूर्ण राज्यत्व की मांग है। संविधान में 14वां संशोधन 1962 में किया गया था, जिसके अनुसार हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, पाण्डिचेरी तथा गोवा में विधानमण्डल की स्थापना की गई। हिमाचल प्रदेश के लोग बड़ी देर से हिमाचल को पूर्ण राज्य बनाने की मांग कर रहे थे, अतः 31 जुलाई, 1970 को हिमाचल को पूर्ण राज्य घोषित कर दिया गया। 1970 में दिल्ली की मेट्रोपोलिटन परिषद् (Metropolitan Council) ने दिल्ली को पूर्ण राज्य बनाए जाने की मांग की, परन्तु केन्द्रीय सरकार ने इस मांग को दृष्टिगत करते हुए संविधान में 69वें संशोधन अधिनियम द्वारा दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र घोषित किया जिसमें एक विधानसभा की व्यवस्था की गई है। नवम्बर, 1993 में इसके चुनाव हुए और मदन लाल खुराना पहले मुख्यमंत्री बने। 1972 में मणिपुर तथा त्रिपुरा भी पूर्ण राज्य बना दिए गए। दिसम्बर, 1986 में गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा देने के लिए आन्दोलन शुरू हुआ

और संसद् ने मई, 1987 में गोवा के पूर्ण राज्य का दर्जा का बिल पास किया। गोवा भारत का 25वां राज्य है। 69वें संवैधानिक संशोधन द्वारा संघीय क्षेत्र दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (National Capital Territory) बनाया गया है।

(घ) **अन्तर्राज्यीय विवाद:** क्षेत्रीयता की समस्या का एक अन्य रूप राज्यों के बीच पारस्परिक विवाद है। इस तरह का पहला विवाद कर्नाटक और महाराष्ट्र में हुआ। पंजाब और हरियाणा के बीच 1966 में विवाद चला आ रहा है। आज भी चण्डीगढ़ दोनों प्रान्तों में विवाद का मुख्य कारण बना हुआ है। असम-नागालैंड सीमा विवाद बहुत समय से चल रहा है और नवम्बर, 1987 में इस विवाद ने पुन: उग्र रूप धारण कर लिया और नदियों के पानी के इस्तेमाल के लिए राज्यों में विवाद होते रहते हैं। नर्मदा नदी के पानी पर मध्य प्रदेश, राजस्थान गुजरात और महाराष्ट्र में काफी समय तक विवाद चलता रहा और इसका हल मार्च, 1975 में हुआ। महाराष्ट्र, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी के पानी के लिए काफी दिनों से विवाद चलता रहा है। पंजाब और हरियाणा में पानी का बंटवारा विवाद का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। कावेरी जल विवाद कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों में तनाव का मुख्य कारण है। 29 जुलाई, 1991 को केन्द्रीय श्रममन्त्री के. राममूर्ति ने कावेरी जल विवाद के मसले पर मन्त्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दिया। कावेरी जल विवाद का मामला अगस्त, 1991 में सर्वोच्च न्यायालय के पास ले जाया गया। 22 नवम्बर, 1991 के अपने फैसले के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने कर्नाटक सरकार का अध्यादेश असंवैधानिक घोषित कर दिया। जुलाई, 1998 में अन्ना डी.एम.के. की नेता सुश्री जयललिता ने केन्द्र सरकार से आग्रह किया कि कावेरी जल विवाद को शीघ्रता से निपटाया जाए। आजकल यह मामला दोनों राज्यों के मध्य संघर्ष का कारण बना हुआ है।

(ड.) **राज्य के लोगों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन:** कई बार क्षेत्रीय राज्य के लोगों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन किए जाते हैं। असम आन्दोलन इस तरह का ही था। असम आन्दोलन 1979 से लेकर 1985 तक चला। यह आन्दोलन असम में विदेशियों की समस्या को लेकर चलाया गया, क्योंकि असमिया मूल के लोगों में यह आशंका घर कर चुकी थी कि वे अल्पसंख्यक बन जाएंगे, क्योंकि बंगला देश से आकर लाखों लोग असम में बसते जा रहे थे। इस आन्दोलन को छात्रों ने आल असम स्टूडेण्ट्स यूनियन नामक संगठन के अंतर्गत चलाया। आन्दोनकारियों ने मांग की कि चुनाव करवाने से पहले विदेशियों की समस्या को हल किया जाए और विदेशियों के नाम मतदाता सूची से निकाले जाएं। केन्द्र सरकार ने आन्दोलनकारियों के साथ कई बार बातचीत की, पर विवाद को लटकाए रखा। फरवरी, 1983 में असम में चुनाव करवाने का प्रयास किया गया जिसमें व्यापक हिंसक वारदातें हुईं। दिसम्बर, 1984 के लोकसभा चुनाव असम में नहीं हुए। राजीव गांधी ने सत्ता में आने पर असम समस्या को हल करने के लिए प्रयास किए और अन्त में 15 अगस्त, 1985 को असम समझौता हुआ। दिसम्बर, 1985 में असम विधानसभा के चुनाव हुए। चुनाव लड़ने के लिए छात्रों और अन्य आन्दोलकारियों ने असम गण परिषद् की स्थापना की। असम गण परिषद् को चुनाव में बहुमत प्राप्त हुआ और प्रफुल्ल कुमार महंत मुख्यमन्त्री बने। असम आन्दोलन इन्हीं के नेतृत्व में चलाया गया था। असम गण परिषद् की सरकार समझौते को लागू करने के लिए वचनबद्ध रही। इस समझौते की मुख्य बातें हैं: ''सन् 1966 से 1971 के बीच आए विदेशियों की पहचान और उनके नाम मतदाता सूची से 10 वर्ष के लिए हटवाना तथा 1971 के बाद आए विदेशियों को बाहर निकालना।'' इनमें कोई बात पूरी नहीं हो सकी।

क्षेत्रीयवाद को जन्म देने वाले कारण

क्षेत्रीयवाद की भावना की उत्पत्ति एक कारण से न होकर अनेक कारणों से होती है, जिनमें मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

(1) **भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कारण:** स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब राज्यों का पुनर्गठन किया गया तब राज्यों की पुरानी सीमाओं को भुलाकर नहीं किया गया, बल्कि उनको पुनर्गठन का आधार बनाया गया। इसी कारण एक राज्य में रहने वाले लोगों में एकता की भावना नहीं आ पाई। प्राय: भाषा और संस्कृति क्षेत्रीयवाद की भावनाओं को उत्पन्न करने में बहुत सहयोग देते हैं। तमिलनाडु के निवासी अपनी भाषा और संस्कृति को भारतीय संस्कृति से श्रेष्ठ मानते हैं। वे राम और रामायण की कड़ी आलोचना करते हैं। 1975 में उन्होंने तमिलनाडु में कई स्थानों पर राम-लक्ष्मण के पुतले जलाए। 1960 में इसी आधार पर उन्होंने भारत से अलग होने के लिए व्यापक आन्दोलन चलाया।

(2) **ऐतिहासिक कारण:** क्षेत्रीयवाद की उत्पत्ति में इतिहास का दोहरा सहयोग रहा है-सकारात्मक और नकारात्मक। सकारात्मक योगदान के अन्तर्गत शिव सेना का उदाहरण दिया जा सकता है और नकारात्मक के अन्तर्गत द्रविड़ मुनेत्र कड़गम का कहना है कि प्राचीन काल से ही उत्तरी राज्य दक्षिणी राज्यों पर शासन करते आए हैं।

(3) **भाषा:** नार्मन डी. पामर का कहना है कि भारत की अधिकांश राजनीति क्षेत्रीयवाद और भाषावाद के बहुत-से प्रश्नों के चारों ओर घूमती है। इनका विचार है कि क्षेत्रीयवाद की समस्याएं स्पष्ट रूप से भाषा से सम्बन्धित हैं। भारत में सदैव ही अनेक भाषाएँ रही हैं और विभिन्न भाषाएँ बोलने वालों ने कई बार अलग राज्य के निर्माण के लिए व्यापक आन्दोलन किए हैं। भारत सरकार ने भाषा के आधार पर राज्यों का गठन करके एक ऐसी समस्या उत्पन्न कर दी है, जिसका अन्तिम समाधान निकालना बड़ा कठिन है।

(4) **जाति:** जाति ने भी क्षेत्रीयवाद की उत्पत्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। जिन क्षेत्रों में किसी एक जाति की प्रधानता रही, वहीं पर क्षेत्रीयवाद का उग्र रूप देखने को मिला है। जहाँ किसी एक जाति की प्रधानता नहीं रही, वहाँ पर एक जाति ने दूसरी जाति को रोके रखा है और क्षेत्रीयता की भावना इतनी नहीं उभरी। यही कारण है कि महाराष्ट्र और हरियाणा में क्षेत्रीयवाद का उग्र स्वरूप देखने को मिलता है, जबकि उत्तर प्रदेश में नहीं मिलता है।

(5) **धार्मिक कारण:** धर्म भी कई बार क्षेत्रीयवाद की भावनाओं को बढ़ाने में सहायता करता है। पंजाब में अकालियों की पंजाबी सूबा की मांग कुछ हद तक धर्म के प्रभाव का परिणाम थी। यही हाल कश्मीर का है।

(6) **आर्थिक कारण:** क्षेत्रीयवाद की उत्पत्ति में आर्थिक कारण महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। भारत में जो थोड़ा-बहुत आर्थिक विकास हुआ, उसमें बहुत असमानता रही है। कुछ प्रदेशों का अधिक विकास हुआ है और कुछ क्षेत्रों का विकास बहुत कम हुआ है। इसका कारण यह है कि जिन व्यक्तियों के हाथों में सत्ता रही है, उन्होंने अपने क्षेत्रों के विकास की ओर ही अधिक ध्यान दिया। उदाहरणस्वरूप 1966 से पूर्व पंजाब में सत्ता पंजाबियों के हाथों में रही, जिस कारण हिसार, गुड़गांव, महेन्द्रगढ़, जींद आदि क्षेत्रों का विकास न हो पाया। आंध्र प्रदेश में सत्ता मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश के नेताओं के पास रही, जिस कारण तेलंगाना पिछड़ा रह गया। उत्तर प्रदेश में पूर्वी उत्तर प्रदेश पिछड़ा रह गया, राजस्थान में पूर्वी राजस्थान अविकसित रह गया और इसी प्रकार महाराष्ट्र में विदर्भ का विकास नहीं हो पाया। अत: पिछड़े क्षेत्रों में यह भावना उभरी कि यदि सत्ता उनके पास होती तो उनके क्षेत्र पिछड़े न रह जाते। इसीलिए इन क्षेत्रों के लोगों में क्षेत्रीयवाद की भावना उभरी और उन्होंने अलग राज्य की मांग की।

(7) **राजनीतिक कारण:** क्षेत्रीयवाद की भावनाओं को भड़काने में राजनीतिज्ञों का भी हाथ रहा है। कई राजनीतिज्ञ यह सोचते हैं कि यदि उनके क्षेत्र को अलग राज्य बना दिया जाएगा तो इससे उनकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हो जाएगी अर्थात् उनके हाथ भी सत्ता लग जाएगी।

(8) **राजनीतिक दल:** चाहे क्षेत्रीय दल क्षेत्रवाद की उत्पत्ति हैं, परन्तु क्षेत्रीयवाद अपने अस्तित्व को बनाए रखने एवं अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए क्षेत्रवाद का प्रसार करते हैं। क्षेत्रीयवाद के विकास में अनेक राजनीतिक दलों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन दलों में डी.एक.के., अन्ना डी.एम.के., अकाली दल, तेलुगु देशम, असम गण परिषद्, नेशनल कांफ्रेंस आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

(9) **संचार के साधनों में कमी:** क्षेत्रीयवाद की उत्पत्ति का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण संचार के साधनों की कमी है। भारत के अनेक क्षेत्र संचार के साधनों की कमी के कारण अन्य भागों से अलग रहे और इन क्षेत्रों के लोग देश की अपेक्षा अपने क्षेत्र को ज्यादा प्यार करने लगे और वे अपने को भारत से अलग समझने लगे।

रजनी कोठारी ने क्षेत्रीयवाद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा, ''पृथकता की भावना उनमें अधिक शक्तिशाली और खतरनाक है, जहाँ ऐसी आर्येतर जातियाँ हैं, जो भारतीय संस्कृति की धरा में पूर्ण रूप से मिल नहीं पाई हैं (जैसे उत्तर-पूर्व की आदिम जातियों का क्षेत्र), यहाँ भी भारतीय लोकतन्त्रीय व्यवस्था और सरकारी विकास कार्यक्रमों का प्रभाव पड़ा है और धीरे-धीरे इन क्षेत्रों के लोग भी देश की राजनीति में भाग लेने लगे हैं, परन्तु राजनीतिकरण की यह प्रवृत्ति अभी शुरू हुई है। दूसरी ओर आधुनिकता के प्रसार से अपने पृथक् अस्तित्व की भावना भी उभरती है। इसलिए इसको सम्भालने के लिए विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है। ...राजनीतिक

गतिविधि बढ़ने और शिक्षा तथा आर्थिक विकास के फलस्वरूप छोटे समूहों में, जो अब तक दबे या पिछड़े हुए थे, अधिकार और स्वायत्तता की आकांक्षाओं का उठना स्वाभाविक है।''

क्षेत्रीयवाद का राजनीति में योगदान: राजनीति में क्षेत्रीयवाद के योगदान को इस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है:

(1) क्षेत्रीयवाद के आधार पर राज्य केन्द्रीय सरकार से सौदेबाजी करते हैं। यह सौदेबाजी न केवल आर्थिक विकास के लिए होती है, बल्कि कई बार कई महत्त्वपूर्ण समस्याओं के समाधान के लिए भी होती है। इसी प्रकार के दबावों में हरियाणा राज्य का निर्माण हुआ।

(2) राजनीतिक दल अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए क्षेत्रीयता का सहारा लेते हैं। पंजाब में अकाली दल ने और तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम दल ने आपने आपको शक्तिशाली बनाने के लिए क्षेत्रीयता का सहारा लिया।

(3) मन्त्रिपरिषद् के सदस्य अपने-अपने क्षेत्रों का अधिक विकास करते हैं, ताकि अपनी स्थिति को पक्का किया जा सके। श्री बंसीलाल ने भिवानी के क्षेत्र को चमका दिया और श्री सुखाड़िया ने उदयपुर क्षेत्र का बहुत विकास किया।

(4) चुनावों के समय भी क्षेत्रीयवाद का सहारा लिया जाता है। क्षेत्रीयता के आधार पर राजनीतिक दल उम्मीदवारों का चुनाव करते हैं और क्षेत्रीयता की भावनाओं को भड़का कर वोट प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है।

(5) क्षेत्रीयता ने कुछ हद तक भारतीय राजनीति में हिंसक गतिविधियों को भी उभारा है। कुछ राजनीतिक दल इसे अपनी लोकप्रियता का साधन बना लेते हैं।

(6) मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते समय क्षेत्रीयवाद की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। मन्त्रिमण्डल में प्राय: सभी मुख्य क्षेत्रों के प्रतिनिधियों को लिया जाता है। साधारणतया यह शिकायत की जाती रही है कि अब तक कोई भी प्रधानमन्त्री दक्षिणी राज्यों से नहीं बना है। प्रधानमन्त्री को अपने मन्त्रिमण्डल में प्रत्येक क्षेत्र को उसके महत्त्व के आधार पर प्रतिनिधित्व देना पड़ता है। प्रधानमन्त्री व्यक्ति चुनने में स्वतन्त्र है; परन्तु क्षेत्र चुनने में नहीं।

क्षेत्रीयवाद की समम्या का समाधान: क्षेत्रीयवाद राजनीति की आधुनिक शैली है। क्षेत्रीयवाद उस समय तक कोई जटिल समस्या उत्पन्न नहीं करता, जब तक एक सीमा के अन्दर रहता है, परन्तु जब यह भावना उग्र रूप धारण कर लेती है तब राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ जाती है।

सेलिग एस. हेरिसन ने इस सम्बन्ध में कहा,''यदि क्षेत्रीयवाद की भावना या किसी विशेष क्षेत्र के लिए अधिकार या स्वायत्तता की मांग बढ़ती चली गई, तो इससे या तो देश अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में बंट जाएगा या तानाशाही कायम हो जाएगी।'' अत: क्षेत्रीयवाद की समस्या को सुलझाना अत्यावश्यक है। कुछ विद्वानों ने क्षेत्रीयवाद की समस्या को सुलझाने के लिए राज्यों के पुनर्गठन की बात कही है। रजनी कोठारी का कहना है कि राज्यों को पुनर्गठित करते समय भाषा को ही एकमात्र आधार न माना जाए।

राज्य की रचना के लिए भाषा के अतिरिक्त और भी कई सिद्धान्त हैं; जैसे कि आकार, विकास की स्थिति, शासन की सुविधाएँ, सामाजिक एकता तथा राजनीतिक व्यवहारिकता। इसकी उपेक्षा का परिणाम है, उत्तर प्रदेश जैसा लगभग 14 करोड़ की जनसंख्या का विशाल राज्य, जिसका ठीक से प्रबन्ध करना कठिन है; मध्य प्रदेश जैसा विस्तीर्ण राज्य, जिसमें ऐतिहासिक दृष्टि से चार अलग-अलग प्रदेश हैं; आन्ध्र प्रदेश, जिसमें एक ओर तेलंगाना जैसा पिछड़ा इलाका है और दूसरी ओर सम्पन्न तटवर्ती प्रदेश, जिससे तेलंगाना को शिकायत होती है कि उसकी उपेक्षा की जा रही है। इससे पृथकता और फूट की प्रवृत्ति पैदा होती है, जो कर्नाटक व महाराष्ट्र में दिखाई पड़ती है। इनमें से अनेक राज्यों को छोटे और ज्यादा टुकड़ों में बाँटा जा सकता है। इससे राज्यों की संख्या बढ़ जाएगी, इनमें झगड़े न रहेंगे और केन्द्र को भी इससे व्यवहार में आसानी रहेगी। मुम्बई (बम्बई), कोलकाता जैसे महानगरीय क्षेत्रों में शासन और विकास को कभी स्वायत्त संस्थाएँ कायम करने और इनको राज्य के अंश से अलग साधन देने की ओर भी ध्यान नहीं दिया गया है, यद्यपि इन नगरों का आकार और समस्याएँ दिन-प्रति-दिन विकट होते जा रहे हैं।

साधारणतया राज्यों के पुनर्गठन के समर्थक तीन तर्क देते हैं: (1) छोटे-छोटे राज्यों के निर्माण से अधिक उत्तरदायी शासन की स्थापना होगी। प्रशासन और जनता में निकटता का सम्पर्क स्थापित होगा और शासन में कार्य-कुशलता आ जाएगी। (2) छोटे-छोटे राज्यों से उस क्षेत्र का आर्थिक विकास अधिक होगा। (3) यदि पहले ही राज्य पुनर्गठन आयोग की बातों को मान लिया जाता तो अलग राज्यों की स्थापना के लिए जो आन्दोलन हुए हैं, वे कभी न होते।

इन तीन तर्कों का आलोचनात्मक उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है:

(1) यह अनिवार्य नहीं है कि छोटे राज्यों में ही जनता और प्रशासन में निकटता का सम्पर्क स्थापित हो। यह तो इस बात पर निर्भर करता है कि सरकार इस ओर कितना ध्यान देती है। एक बड़े राज्य में यदि प्रशासक चाहे तो जनता से सम्पर्क बनाए रख सकते हैं। इसके अतिरिक्त एक अच्छी सरकार के लिए केवल सम्पर्क स्थापित करना इतना जरूरी नहीं होता, जितना कि भ्रष्टाचार को खत्म करना और जनता की भलाई के लिए अधिक से अधिक कार्य करना। छोटे-छोटे राज्यों में नियुक्तियाँ सिफारिशों पर की जाती हैं, क्योंकि आम व्यक्ति भी आसानी के साथ रिश्तेदारी निकाल लेता है। इससे प्रशासन में कार्यकुशलता नहीं रहती।

(2) यह कहना कि छोटे राज्यों के कारण आर्थिक विकास अधिक होता है, ठीक प्रतीत नहीं होता है। सारे देश की प्रगति का सम्बन्ध सभी राज्यों की उन्नति से जुड़ा होता है। अत: समस्त देश की उन्नति द्वारा ही राज्यों की प्रगति की जा सकती है न कि राज्यों को टुकड़ों में बांटने से। पिछड़े प्रदेशों की उन्नति करना केन्द्रीय सरकार की जिम्मेदारी है।

(3) यह कहना कि यदि राज्य पुनर्गठन आयोग की सभी सिफारिशों को मान लिया जाता तो अनेक आन्दोलन न होते, सही प्रतीत नहीं होता है। यदि राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों के अनुसार कुछ प्रदेशों को राज्य बना दिया जाता तो हो सकता था, अन्य प्रदेश आन्दोलन कर देते।

संक्षेप में क्षेत्रीयवाद की समस्या का हल छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना नहीं है, बल्कि पिछड़े क्षेत्रों का आर्थिक विकास, भ्रष्टाचार को समाप्त करना, जनता के कल्याण के लिए अधिक कार्य करना इत्यादि है।

संदर्भ

1. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
2. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
3. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
4. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
5. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
6. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
7. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
8. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
9. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन: सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
10. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
11. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
12. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
13. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
14. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
15. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांत – अजय कुमार
16. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
17. भारत की विदेश नीति – वी एन. खन्ना
18. भारतीय प्रशासन: विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
19. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे

समायोजन

सोनल कुमारी

शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

व्यक्ति के जीवन में अनेक बार ऐसी परिस्थितियां आती हैं जिसमें व्यक्ति कठिनाई का अनुभव करता हैं तथा अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं व अभिलाषाओं की पूर्ति वह तत्काल नहीं कर पाता हैं और ना ही वह संतुष्ट हो पाता हैं। उदाहरण के तौर पर कई छात्र अपनी कक्षा की वार्षिक परीक्षा में प्रथम आने का लक्ष्य लेकर चलता हैं और दूसरे छात्रों की प्रतियोगिता के कारण वह अपनी कम योग्यता के कारण वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल होता है तो वह निराश तो होता ही हैं परन्तु अपने इस मौलिक लक्ष्य को ध्यान में रखकर आगे आने वाली परीक्षा में अपने पूर्व के लक्ष्य को प्राप्त करने की वह चेष्टा करता हैं और वह उसे प्राप्त भी कर लेता हैं। अतः यह उस बालक का अपनी परिवेश व परिस्थितियों के साथ इस प्रकार का समायोजन हैं।

परिचय

समायोजन दो शब्दों से मिलकर बना है।- सम+आयोजन। सम् का अर्थ हैं- भली -भांति अच्छी तरह या समान रूप से और आयोजन का अर्थ हैं व्यवस्था। अर्थात अच्छी तरह व्यवस्था करना । अतएव समायोजन का अर्थ हुआ -सुव्यवस्था या अच्छे ढंग से परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की प्रक्रिया। जिसमें कि व्यक्ति की आवश्यकताएं पूरी हो जाए मानसिक द्वन्द न उत्पन्न हो पाएं।

गेट्स एवं अन्य विद्वानों ने लिखा है कि ''समायोजन शब्द के दो अर्थ हैं एक अर्थ में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा व्यक्ति स्वंय और पर्यावरण के बीच अधिक सांमजस्यपूर्ण सम्बन्ध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तित कर देता हैं। दूसरे अर्थ में-समायोजन एक सन्तुलित दशा हैं जिस पर पहुचने पर हम उस व्यक्ति को सुसमायोजित कहते है।

बोरिंग तथा लैगफिल्ड यह मानते है कि समायोजन वह प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन रखता हैं।

एक अच्छे समायोजित व्यक्ति की विशेषताएँ

- सकारात्मक सोच का होना
- स्वतंत्र निर्णय क्षमता
- व्यवहार में लचीलापन या गतिशीलता
- सांवेगिक रुप से स्थिर
- सामाजिक कार्यो में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेना
- जिज्ञासा प्रवृत्ति
- आत्म सम्मान व दूसरों का सम्मान करना
- दूसरो की प्रशंसा करना

असमायोजित होने के उत्तरदायी कारक

1. वंशानुगत कारक – कई बार असमायोजन के पीछे व्यक्ति के वंश से जुड़े हुए घटक सीधे रूप में इस पर प्रभाव डालते हैं
2. कार्यभार की अधिकता होना – व्यक्ति को अपने दैनिक कार्यो के अलावा और भी कई कार्यों में लगाया जाता हैं जिसकी वजह से उसका का कार्यभार बढ़ जाता हैं।
3. राजनीति – व्यक्तियों में असमायोजित व्यवहार के पीछे एक प्रमुख कारण सहकर्मियों में बढ़ती हुई राजनीति का हैं आपसी गुटबंदी का हैं, आपसी द्वेषभावों का हैं।
4. गैर जिम्मेदार प्रतिवेदन तथा निरीक्षण – इसमें व्यक्ति का असमायोजित व्यवहार कई बार उभर कर सामने आता हैं। जब उसके उच्च अधिकारी द्वारा गैर जिम्मेदारी से निरीक्षण किया जाता हैं उसका प्रतिवेदन भी गैर जिम्मेदारी से प्रस्तुत किया जाता है।
5. बढ़ता मानसिक द्वंद- वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में अधिकांश लोगों का सामाजिक स्तर बहुत नगण्य हैं ओर दूसरी और समाज में उनके काम को किसी भी तरह से सार्वजनिक रूप से प्रतिष्ठा का न मानना।
6. नाखुश पारिवारिक जीवन ख्र कई बार नाखुश पारिवारिक जीवन भी असमायोजित व्यवहार का कारण होता हैं। अत: व्यक्ति के असमायोजित होने के पीछे दाम्पत्य जीवन में कड़वाहट व बिखराव एक महत्वपूर्ण कारक हैं।

व्यक्ति के समायोजन को बढ़ावा देने हेतु सुझाव

1. हर व्यक्ति में संतोष, आत्मबल की भावना को जाग्रत करना चाहिए ।
2. प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान देना चाहिए।
3. व्यक्ति को समाज में अपने स्तर को ऊँचा उठाना चाहिए।
4. व्यक्ति द्वारा परिस्थितियों तथा सामाजिक एवं अन्य चुनौतियो का सामना करना चाहिए।
5. सहकर्मियों व अधिकारियों के मध्य बढ़िया तालमेल को बनाये रखना चाहिए।

समायोजन एक यांत्रिकी के रूप में

समायोजन चूँकि एक प्रक्रिया हैं जिसको मनोवैज्ञानिक एक यांत्रिकी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। समायोजन के परिपेक्ष्य में मनोवैज्ञानिकों ने इस एक बचावात्मक यांत्रिकी की उपमा दी हैं जिसके मुख्य पक्ष इस प्रकार हैं –

1. यांत्रिकी के रूप में इसकी प्रत्यक्ष विधि ख्र समायोजन यद्यपि व्यक्ति या बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य, मानसिक संघर्ष को प्रभावित करता हैं। उस परिपेक्ष्य में इसको एक यांत्रिकी प्रस्तुत करते हुए इसकी प्रत्यक्ष विधि की चर्चा की गई हैं जिसके मुख्य आयाम इस प्रकार हैं ख्र
   - i) बाधा को नष्ट करना या दूर करना- जब किसी उद्देश्य की प्राप्ति में कोई बाधा उत्पन्न हो जाती हैं तो व्यक्ति उस बाधा को दूर कर सकता हैं या उसको समाप्त करके अपना रास्ता साफ कर लेता हैं और लक्ष्य की ओर बढ़ता हैं। जैसे -डिमेथियस यूनान के एक राजनीतिज्ञ थें उनमें कुछ शारीरिक दोष होने के कारण वे जनता में भाषण देने के योग्य नहीं थे। ऐसी स्थिति में उन्होनें अपने मुंह में कंकड़ रखकर बोलने का प्रयत्न किया और अपनी शारीरिक बाधाओं पर विजय प्राप्त की। बाधा को व्यक्तिगत या सामूहिक दोनो रूपों मे हल किया जा सकता हैं।
   - ii) कार्यविधि में परिवर्तन – जब व्यक्ति यह देखता हैं कि बाधा को सरलता से पार नही किया जा सकता हैं तब वह अपनी पहली योजना पर फिर से विचार करता हैं और लक्ष्य प्राप्ति के साधनों में परिवर्तन करता हैं। जैसे जब एक विद्यार्थी एक वर्ष परीक्षा में असफल रहता हैं तो अगले वर्ष वह अपनी पहले की विधि में (काम के घण्टों में) परिवर्तन करता हैं।
   - iii) प्रतिस्थापन – यदि व्यक्ति अपने लक्ष्य तक पहुँचने मे असफल रहता हैं तो वह उस लक्ष्य को छोड़कर दूसरा अपना लेता हैं, जैसे यदि कोई नौजवान मानसिक सीमाओं के कारण डाक्टर नहीं बन पाता तो अध्यापन को अपना लक्ष्य

बना लेता हैं। हमारे समाज में ऐसे बहुत व्यक्ति हैं जो स्थापन के द्वारा अपने आपको समाज में समायोजित कर रहे हैं।

iv) पलायन – बाधाओं से परेशान होकर व्यक्ति कार्य को छोड़ देता हैं। बार-बार फेल होने पर छात्र पढ़ना छोड़ देते हैं।

2. अप्रत्यक्ष- इन विधियों के अन्तर्गत मनुष्य मानसिक द्वंद, निराशा, असफलता से बचने के उपाय करते हैं। इन विधियों के अन्तर्गत ये उपाय प्रयोग में लाये जाते हैं-

i) आत्मीकरण- आत्मीकरण द्वारा व्यक्ति अपना सम्बन्ध दूसरे व्यक्तियों से स्थापित करता हैं। व्यक्ति समाज तथा समुदाय एवं संस्थानो के आदर्शो तथा मान्यताओं के अनुकूल स्वंय को ढालने का प्रयत्न करता है । आत्मीकरण के द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के विकास में प्रयत्न करता हैं।

ii) औचित्य स्थापन – अपनी असफलताओं का दोष दूसरो पर थोपकर अपनी बात के औचित्य की स्थापना करते हैं। परीक्षा में फेल हुआ छात्र परीक्षको, कठिन प्रश्न पत्र तथा अध्यापकों पर दोष मढ़ता हैं। औचित्य स्थापन दो प्रकार का होता हैं-

1) कोई व्यक्ति किसी कार्य असफल होने पर उस कार्य में ही दोष निकालने लगता हैं। इसे खट्टे अंगूर भी कहते हैं।

2) दूसरे प्रकार के औचित्य स्थापन में व्यक्ति अरूचि कार्य में फंसकर जब उससे बाहर नहीं निकल पाता, तब वह उसे ही अच्छा बताने लगता हैं। इसे मीठे नींबू कहते है।

iii) क्षतिपूर्ति – व्यक्ति जीवन के एक क्षेत्र की कमी को जीवन के दूसरे क्षेत्र में पूरा करता हैं। शारीरिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति व्यायाम द्वारा हृष्ट-पुष्ट और बलशाली बन जाता हैं। क्षतिपूर्ति दो प्रकार की होती हैं

(1) प्रत्यक्ष रूप से (2) अप्रत्यक्ष रूप से।

प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति जिस क्षेत्र मे कमजोर होता हैं उसी में सफलता प्राप्त करता हैं और अप्रत्यक्ष में व्यक्ति दूसरे क्षेत्र में ख्याति प्राप्त करता हैं।

iv) प्रक्षेपण – मानसिक चिन्ताओं से बचने के लिए व्यक्ति अपने कार्यो की सफलता को दूसरे व्यक्तियों की असफलता पर आरोपित करता हैं। जैसे एक खिलाड़ी जब खेल में हार जाता है तो दूसरे साथियों को हार के लिए दोषी ठहराता हैं। प्रक्षेपण से व्यक्ति चिन्तामुक्त हो जाता हैं।

v) दमन – अनेक कारणों से व्यक्ति अपनी बहुत सी इच्छाओं को व्यक्त नहीं कर पाता हैं। इच्छाओं का दमन किसी ना किसी रूप में प्रत्येक व्यक्ति करता हैं। दमन जानबुझकर नहीं किया जाता हैं वरन् स्वंय होता हैं कभी-कभी हमारे विचार अचेतन रूप में इतने गहरे पहुँच जाते हैं कि उनको फिर से याद करने के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों की आवश्यकता नहीं पड़ती हैं।

vi) प्रत्यावर्तन – जब व्यक्ति मानसिक कठिनाईयों से दुःखी हो जाता हैं तो वह अपने साधारण व्यवहार की ओर लौट जाता है । जैसे कि शोर से परेशान होकर वह जोर-जोर से रोने लगता हैं।

vii) प्रतिक्रिया निर्माण – तीव्र इच्छाओं और वृत्तियों का दमन कभी-कभी इनसे विपरीत प्रतिक्रियाओं के निर्माण में बदल जाता हैं जैसे-जिस व्यक्ति की काम सम्बन्धी इच्छाओं को दमन हो गया हो वह चेतन रूप में कामुकता के विपरीत हो जाता हैं और बड़े-बड़े आदर्शो को लोगो के सामने रखता हैं।

viii) पलायन – पलायन के द्वारा व्यक्ति अपने आपको मानसिक द्वंद की परिस्थिति से बचा लेता हैं। वह उस समस्या को हल करने का प्रयत्न ही नहीं करता हैं। व्यक्ति की जब वह प्रक्रिया अधिक हो जाती हैं तो वह एकान्तप्रिय हो जाता हैं और उसमें प्रत्येक कार्य के प्रति विपरीत दृष्टिकोण बन जाता हैं।

ix) मतरंग-यथार्थ जीवन की असफलताओं से परेशान होकर मनुष्य कल्पना का आश्रय लेता हैं। इस प्रकार वह दिवास्वप्न की स्थिति से स्वंय को मानसिक तनाव से बचाता हैं।

कुसमायोजन के तत्व

कुसमायोजन की प्रक्रिया में जब एक व्यक्ति अपने को जैविक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पाने मे असमर्थता का अनुभव करता हैं। इससे उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा सामाजिक अपेक्षाओं के बीच में असन्तुलन बन जाता हैं परिणामत: मनोवैज्ञानिक सन्तुलन में बाधा आती है जब व्यक्ति साम्यावस्था को प्राप्त नहीं करता है तो वह कुसमायोजित हो जाता हैं कुसमायोजन के तत्व निम्नलिखित हैं:-

1. तनाव – जब व्यक्ति वातावरण या समय की मांग के अनुरूप व्यवहार नहीं कर पाता हो तनाव का शिकार होता हैं। ऐसी स्थिति में अपनी क्षमताओं को कम पाता हैं।
2. दुश्चिन्ता – दुश्चिन्ता मे व्यक्ति व्यग्र हो जाता हैं । फ्रायड के अनुसार ''व्यक्ति की जो इच्छा अधूरी रह जाती हैं वह अचेतन मन में चली जाती हैं। लेकिन यह इच्छा फिर से चेतन स्तर में आना चाहती हैं। दुश्चिन्ता इसी आन्तरिक चेतन व अचेतन के बीच संघर्ष का लक्षण हैं। दुश्चिन्ता की मात्रा परिस्थिति व समय के अनुसार बदलती रहती हैं।
3. दबाव – व्यक्ति को दबाव प्रतियोगिता के कारण होता हैं। कभी-कभी अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए भी व्यक्ति दबाव महसूस करता हैं।

   मौरिस के अनुसार – दबाव एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक प्रतिबद्ध अवस्था हैं जिसमें व्यक्ति यह अनुभव करता हैं कि उसे एक विशिष्ट भावना के अनुसार रहना या पहुंचना या व्यवहार करना हैं अथवा उसे तीव्र गति से हो रहे परिवर्तनों के साथ अनुकूलन करना हैं।

   काफर तथा एपली के अनुसार – दबाव प्राणी की वह स्थिति हैं जब वह स्वंय को खतरे में पाता हैं और अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए समस्त उर्जा को लगा देता हैं।
4. भग्नाशा – जब व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति नहीं करता व कभी-कभी उद्देश्य प्राप्ति की राह में बाधाएं आती हैं। तब मनुष्य अपने आप से विश्वास खो बैठता है और असफल होने के भाव से उसमें भग्नाशा की स्थिति पैदा होती हैं।

   रोजेनविंग के अनुसार – ''जब जीव की जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओ की सन्तुष्टि में कुछ या अनेक अविजित बाधएं उत्पन्न होती हैं तब उसमें कुण्ठा उत्पन्न होती हैं''।

   कुण्ठा संवेगात्मक प्रतिबद्धता की वह अतिरंजित अवस्था हैं जिसमें व्यक्ति तनाव, परेशानी, क्रोध, क्लेश, चिन्ता और दबाव के मिलेजुले रूप को अनुभव करता हैं।
5. द्वंद – बोरिंग, लैगफील्ड तथा वेल्ड के अनुसार ''द्वंद व्यक्ति की वह अवस्था हैं जिसमें विरोधी तथा समान शक्तियां, प्रेरणाएं एक ही समय में कार्यरत होती हैं''। द्वंद दो परस्पर विरोधी कार्य-पद्धतियों की संक्रिया हैं। द्वंद की स्थिति में व्यक्ति को दो माँगो आवश्यकताओं, मूल्यों जैसी प्रवृतियों में से किसी एक का चयन करना होता हैं एक स्थिति का चयन करना बहुत कठिन होता हैं। द्वंद की इस स्थिति को इस उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। वनिता की दो दिन बाद परीक्षा हैं और आज उसकी अभिन्न मित्र के विवाह में भी सम्मिलित होना हैं। इस स्थिति में उसके मस्तिष्क में द्वन्द की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं।

निष्कर्ष

हम अपने जीवन मे बहुत से बदलाव देखते है। जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के बीच तालमेल बैठा लेता है उसे समायोजन कहा जाता है।

समायोजन एक सहयोगी सामाजिक प्रकिया है। समायोजन समाज में व्यक्ति या समूह को जोडने वाली प्रकिया है। यह संघर्ष से सहयोग की ओर बढने का प्रथम चरण है। जब भी दो विरोधी पक्ष प्रतिस्पर्धा या संघर्ष समाप्त करके सहयोग करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम वे एक दूसरे से समायोजन स्थापित करते हैं। व्यक्ति या समूह की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है कि वे संघर्ष को पसंद नहीं करते या हमेशा संघर्ष या प्रतियोगिता नहीं कर सकते हैं। इसी संघर्ष की स्थिति को टालने के लिए जो समझौता किया जाता है, उसे ही समायोजन कहते हैं। यह समायोजन संघर्षरत व्यक्तियों के बीच या तो स्वयं या किसी मध्यस्थ के द्वारा स्थापित किया जाता है।

समायोजन एक बार स्थापित हो जाने का मतलब यह कभी नहीं होता कि समायोजन करने वाले आगे कभी संघर्ष नहीं करेंगे और हमेशा सहयोग की ओर ही बढ़ेंगे। दरअसल समायोजन में संघर्ष के बीच अवश्य ही मौजूद रहते हैं। लेकिन समायोजन के द्वारा संघर्ष को कुछ समय के लिए टाला जा सकता है।

जब व्यक्ति आवश्यकता और परिस्थितियों में समायोजन स्थापित नहीं कर पाता तो कई प्रकार की मानसिक बीमारियों का शिकार हो जाता है:

जैसे- तनाव दबाब आदि।

सन्दर्भ

- Jerome H. Barkow; Leda Cosmides; & John Tooby (editors) (1992), The Adapted Mind: Evolutionary Psychology and the Generation of Culture, Oxford & New York: Oxford University Press, ISBN 978-0-19-510107-2
- “Adjustment disorders - Diagnosis and treatment - Mayo Clinic”. www.mayoclinic.org. Retrieved 2018-02-26.
- Ward, Colleen; Kennedy, Antony (1994-06-01). “Acculturation strategies, psychological adjustment, and sociocultural competence during cross-cultural transitions”. International Journal of Intercultural Relations. 18 (3): 329–343. doi:10.1016/0147-1767(94)90036-1. ISSN 0147-1767.
- Bisson, Jonathan I.; Sakhuja, Divya (2006-07-01). “Adjustment disorders”. Psychiatry. 5 (7): 240–242. doi:10.1053/j.mppsy.2006.04.004. ISSN 1476-1793.
- Hammond, Kenneth R.; O’Kelly, Lawrence I. (1955). “A note on adjustment as achievement”. The Journal of Abnormal and Social Psychology. 51 (2): 171–174. doi:10.1037/h0048667. PMID 13263025.
- Mangal, S. K. (2002). Advanced educational psychology (2nd ed.). New Delhi: Prentice-Hall of India. ISBN 9788120320383. OCLC 51858255.
- de Ridder, Denise; Geenen, Rinie; Kuijer, Roeline; van Middendorp, Henriët (2008-07-19). “Psychological adjustment to chronic disease”. Lancet. 372 (9634): 246–255. doi:10.1016/S0140-6736(08)61078-8. ISSN 1474-547X. PMID 18640461.

पर्यावरण को बचाने की कवायद

नरेन्द्र कुमार शर्मा

यू.जी.सी.-नेट, भूगोल, पूर्व छात्र, अवधेश प्रताप सिंह वि.वि., रीवा

कनाडा की राजधानी मांट्रियल में ग्यारहवें संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में हरित पर्यावरण समूहों के प्रेक्षक, वैज्ञानिक संगठन, कारोबारी एवं औद्योगिक समुदाय से जुड़े सदस्य, नगर निगमों एवं प्रांतीय व राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। जाहिर है फरवरी 2005 में जब से क्योटो प्रोटोकॉल को मान्यता मिली है तब से अब तक संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन से जुड़ा यह सबसे बड़ा सरकारी सम्मेलन रहा। यह सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र क्योटो संधि क्रियान्वयन पर सहमति बनाने के लिए बुलाया गया था। क्योटो प्रोटोकॉल अकेली पहली ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संधि है, जिसमें तेजी से असामान्य रूप से बदलती जलवायु तथा इससे उत्पन्न ग्लोबल वार्मिंग को नियंत्रित करने हेतु प्रयास किया जा रहा है। इसका मुख्य लक्ष्य औद्योगिक देशों में 2008 से 2012 तक ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को 1990 के स्तर पर अर्थात् 5.2 प्रतिशत तक लाना है। इसके अतिरिक्त इस सम्मेलन में क्योटो संधि के विधिक अनुपालन का स्वरूप, विकसित एवं विकासशील देशों की भूमिका तथा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन से जुड़े प्रतिबंधित लक्ष्य को प्राप्त करने जैसे मुद्दों को भी तरजीह दी गयी थी।

इस क्योटो संधि की वास्तविक स्थिति यह है कि अभी तक 157 देश इस पर अपनी सहमति जता चुके हैं तथा 37 देशों ने इसके विधिक अनुपालन में दिलचस्पी दिखायी है। अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया ने स्वयं को इस सम्मेलन से दूर ही रखा है। ये दोनों ही देश इस संधि के कानूनी दबाव की तुलना में स्वैच्छिक आधार पर ग्रीनहाउस गैसों को कम करने पर भी जोर दे रहे हैं। अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया के साथ अन्य विकसित देशों का तर्क यह है कि ग्रीनहाउस गैसों को कम करने के चक्कर में उनकी अर्थव्यवस्था ही चौपट नहीं होगी, बल्कि लाखों लोग बेरोजगारी की चपेट में आ जायेंगे। इसलिए विकास की राह में रोड़े अटकाने वाली संधि उन्हें मंजूर नहीं है। इन विकसित देशों की नाराजगी भारत और चीन को लेकर भी है। उनका तर्क है कि भारत और चीन भी ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए उतने ही दोषी हैं जितने कि अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया हैं। उल्लेखनीय है कि चीन अमेरिका के बाद सबसे बड़ा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन करने वाला देश है, जबकि भारत पांचवें स्थान पर आता है। अमेरिका के बुश प्रशासन ने स्पष्ट कह दिया है कि वह ग्लोबल वार्मिंग के प्रति गंभीर है तथा उन्होंने अपने यहां ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में एक प्रतिशत के आठवें-नवें भाग तक की कमी भी कर ली है। उन्होंने यह भी दावा किया है कि उनका देश पृथ्वी के वातावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए उससे जुड़े शोध और इको फ्रेंडली तकनीक पर पांच बिलियन डॉलर सालाना खर्च कर रहा है। उन्होंने तो 2012 तक अपने यहां ग्रीनहाउस गैसों में 18 प्रतिशत कमी करने की प्रतिबद्धता भी दोहरायी है।

क्योटो प्रोटोकॉल के क्रियान्वयन के प्रति अमेरिका की बेरुखी से इस सम्मेलन के तमाम प्रतिनिधियों ने अपनी नाराजगी जतायी है। सच यह है कि दूसरे विश्व युद्ध के बाद वायुमंडल में सबसे अधिक ग्रीनहाउस गैसें इन विकसित देशों ने ही उत्सर्जित की हैं। वर्तमान स्थिति यह है कि विश्व में इन देशों की संख्या मात्र 20 प्रतिशत है, जबकि ये देश 80 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन करते हैं। अमेरिका जो अपनी हठ के सामने क्योटो संधि को नकार रहा है, उसकी स्थिति यह है कि वह विश्व की जनसंख्या का मात्र 5 प्रतिशत है, मगर अन्य देशों के मुकाबले वायुमंडल में अकेला ही 25 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड छोड़ता है। आज बुश प्रशासन ने इस संधि को भले ही अपनी अर्थव्यवस्था के लिए घातक बताया हो, परंतु अमेरिका के वैज्ञानिकों ने अपने लेखों के जरिये ग्लोबल वार्मिंग से भविष्य में मलेरिया फैलने, त्वचा रोगों के बढ़ने तथा ग्रीनहाउस गैसों के अत्यधिक प्रभाव से ओजोन परत को भारी नुकसान होने की भविष्यवाणी की है। हाल ही में सैन फ्रैंसिस्को से जुड़े वैज्ञानिकों ने स्पष्ट कहा है कि ग्लोबल वार्मिंग

के चलते पिछले सौ सालों में समुद्री जल का स्तर 4 इंच से बढ़कर 8 इंच तक पहुंच गया है। उन वैज्ञानिकों ने इसके लिए जलवायु परिवर्तन और ग्रीनहाउस गैसों से होने वाली वैश्विक ताप वृद्धि को ही जिम्मेदार बताया है। अब यह स्पष्ट हो चला है कि सुनामी, कैटरीना, रीटा जैसी घटनाएं मात्र प्राकृतिक ही न होकर, प्रकृति से छेड़छाड़ का नतीजा भी हैं। आज भारत के ही नहीं, बल्कि विश्व के मौसम विज्ञानी भी जलवायु के इस तेजी से बदलते तेवर के प्रति चिंतित हैं।

पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की प्रकाशित वार्षिक रिपोर्ट में ओजोन परत के क्षरण होने के लिए औद्योगिक देशों को ही दोषी ठहराया था। निश्चित ही अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन व स्कैंडेनेवियाई देशों में पिछले दो-तीन दशक में त्वचा कैंसर के मामलों में 25 से 30 प्रतिशत की वृद्धि इसी वैश्विक ताप के लगातार बढ़ने का ही परिणाम रहा है। इस वैश्विक तापवृद्धि के लिए प्रमुख रूप से वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड का बढ़ना भी कम जिम्मेदार नहीं है। असल में वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड और ऑक्सीजन का एक निश्चित अनुपात रहता है, परंतु इस अनुपात के गड़बड़ाने से मानव और वनस्पतियां, दोनों ही प्रभावित होती हैं। एक ओर जहां बढ़ती आबादी के लिए खाद्यान्न में वृद्धि जरूरी है, वहीं दूसरी ओर सीमित भूमि में पैदावार बढ़ाने के लिए अत्यधिक उर्वरकों के प्रयोग से भारी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जित होती है। तरह-तरह की लकड़ियों से निकलने वाले धुएं, विद्युत तापघरों में कोयले के जलने तथा पेट्रोलियम पदार्थों के प्रयोग से लगभग 5 अरब टन जीवाश्म के जलने से हानिकारक गैसें वायुमंडल में पहुंच रही हैं। इन गैसों में कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, डाईफ्लोरो कार्बन, ओजोन तथा क्लोरो-फ्लोरो कार्बन की मात्रा में अधिकता के कारण पृथ्वी के वैश्विक ताप में वृद्धि हो रही है। तथ्य बताते हैं कि क्लोरीन, फ्लोरीन तथा कार्बन परमाणुओं के तालमेल से बना क्लोरो- फ्लारो कार्बन का एक अणु कार्बन डाइऑक्साइड के अणु की तुलना में 14 हजार गुना अधिक गर्मी पैदा करता है और धरती के तापमान को 25 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ा देता है।

मांट्रियल में डेढ़ सप्ताह तक क्योटो प्रोटोकॉल के विधिक अनुपालन के लिए जो बहस हुई वह दरअसल वर्तमान में पृथ्वी की बढ़ती गर्मी और उससे मानव जाति को होने वाले भारी खतरों को भांपते हुए उसके समाधान ढूंढने को लेकर थी। इसमें जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता और पेड़ों की सुरक्षा इत्यादि विषय पर सर्वसम्मति बनाने के प्रयास किये गये। इस सम्मेलन में क्योटो संधि संचालन हेतु 'मारकेश अकॉर्ड' नामक 'प्रोटोकॉल रूल बुक' पर भी सर्वसम्मति बन चुकी है। कनाडा के पर्यावरण मंत्री एवं इस सम्मेलन के अध्यक्ष स्टीफन डियान ने इस संधि को गतिशील अवस्था में बताते हुए इसे एक ऐतिहासिक कदम की भी संज्ञा दी है। यहां कटु सच्चाई यह है कि विकसित देशों, खासकर अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों द्वारा इस संधि को नकारना अथवा विकासशील देशों पर ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को लेकर दोषारोपण करना खुद अपनी गलती छिपाने का प्रयास है। यह भी सच है कि जो देश वायुमंडल में जितनी अधिक ग्रीनहाउस गैसें छोड़ता है उसकी उतनी ही बड़ी जिम्मेदारी उसे कम करने की भी है। अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया जैसे देश भले ही आज इस संधि को नकार रहे हैं, परंतु देर-सवेर उन्हें भी क्योटो प्रोटोकॉल का हिस्सा बनने को मजबूर होना पड़ेगा। वह इसलिए, क्योंकि यह सारी की सारी कवायद संपूर्ण वातावरण में पहुंच रही ग्रीनहाउस के प्रभाव को कम करने को लेकर है।

पर्यावरण परिवर्तन की चुनौती

इससे बेहतर कुछ और नहीं हो सकता कि जलवायु परिवर्तन के बढ़ते खतरे का सामना करने के लिए विश्व की आठ बड़ी शक्तियां गहन विचार-विमर्श करें और उन उपायों पर सहमति बनाने की चेष्टा हो जिनसे पर्यावरण को हर तरह से सुरक्षित रखा जा सके। जर्मनी में आयोजित किये जा रहे जी-8 शिखर सम्मेलन में जिस तरह जलवायु परिवर्तन पर विचार-विमर्श को एजेंडे में शीर्ष पर रखा गया है उससे पता चलता है कि भारी प्रदूषण और ग्रीन हाउस गैसों के अत्यधिक उत्सर्जन से पर्यावरण के समक्ष उत्पन्न हो रहे खतरे के प्रति विश्व के प्रमुख देशों की न केवल आंखें खुली हैं, बल्कि अब वे इस समस्या के समाधान की राह तलाशने के लिए भी तत्पर हैं। चूंकि इस खतरे को बढ़ाने का दोष विश्व के बड़े औद्योगिक देशों का ही है इसलिए यह मुख्य रूप से उनकी ही जिम्मेदारी है कि वे ग्लोबल वार्मिंग की चुनौती का सामना करने के लिए आगे आयें। यदि वे इस चुनौती का मिलकर सामना करने के लिए सहमति नहीं बना पायेंगे और पर्यावरण में उत्पन्न हो रहे असंतुलन का दोष एक-दूसरे के कंधे पर ही डालते रहेंगे तो उन खतरों को रोका नहीं जा सकेगा जो अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक समुदाय ने ग्लोबल वार्मिंग के संदर्भ में सामने रखे हैं। इन खतरों

में सबसे प्रमुख है समुद्र के जलस्तर में चिंताजनक वृद्धि की आशंका, जो केवल अफ्रीका प्रायद्वीप में लगभग 18 करोड़ लोगों के जीवन को संकट में डाल सकती है। ध्यान रहे, पिछले दिनों जलवायु परिवर्तन पर कार्य कर रहे विश्व भर के वैज्ञानिकों के एक समूह ने अपनी रिपोर्ट में उन खतरों को रेखांकित किया था जो प्रदूषण और ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन के कारण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होते जाने से मानव जीवन के समक्ष उत्पन्न होने वाले हैं। इस रिपोर्ट में भारत और आसपास के देशों की नदियों में भी भयानक बाढ़ आने की आशंका व्यक्त की गयी है।

यह ठीक है कि जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए अमेरिका के रूख की विश्व भर में हो रही आलोचना के बाद राष्ट्रपति बुश ने यह भरोसा दिलाने की कोशिश की है कि उनका देश इस वैश्विक चुनौती का सामना करने के लिए पर्याप्त गंभीर है और इस संदर्भ में उन्होंने प्रदूषण फैलाने वाले 15 प्रमुख देशों से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए सहमति बनाने का आग्रह किया, लेकिन यह पहल तभी सार्थक समझी जायेगी जब ऐसी कोई सहमति समय रहते कायम हो जाती है। अमेरिका के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन इसलिए भी स्वागत योग्य है, क्योंकि उसने उस महत्त्वपूर्ण क्योटो संधि को अपनी मंजूरी देने से इनकार कर दिया था जिसमें औद्योगिक देशों से 2012 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को 1990 के स्तर पर लाने की अपेक्षा की गयी थी। इस लिहाज से अमेरिकी प्रशासन के दृष्टिकोण में आये बदलाव को एक सकारात्मक संकेत के रूप में देखा जाना चाहिए। जहां तक भारत का संबंध है तो नयी दिल्ली ने बुश के सुझाव पर सहमति व्यक्त की है, यद्यपि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में उसकी हिस्सेदारी मात्र चार प्रतिशत है। नि:संदेह जलवायु परिवर्तन वह विषय है जिस पर प्रत्येक देश को अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए, क्योंकि संपूर्ण मानवता को प्रभावित करने वाले इस खतरे से कोई भी देश मात्र यह कहकर अपना पल्ला नहीं झाड़ सकता कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में उसका योगदान नगण्य है।

पर्यावरण सुरक्षा में पारंपरिक ज्ञान का महत्त्व

हर साल पांच जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। इसे मनाने का मुख्य उद्देय पूरी दुनिया में पर्यावरण की स्थिति सुधारने के संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्यक्रम को आगे बढ़ाना है। लेकिन पांच जून के प्रतीकात्मक सालाना आयोजन के बजाय यह देखना ज्यादा फलदायक होगा कि इस कार्यक्रम के जरिए कुछ ठोस हासिल हुआ है या यह सारा प्रयास कुछ सतही मसलों के ईद-गिर्द घूम रहा है और हमारे पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाली बुनियादी गलतियों को छुआ भी नहीं गया है। दो बेहद महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों राशेल कार्सन के 'साइलेंट स्प्रिंग' और क्लब ऑफ रोम के 'लिमिट्स टू ग्रोथ' के बाद अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के एक बड़े हिस्से में यह महसूस किया गया कि राष्ट्रों की कृषि, फैक्टिरियां और वाहन प्रदूषण फैलाने वाले मूल तत्व हैं और ये हीं सारी दुनिया में पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहे हैं।

इस मसले पर विचार करने के लिए 1972 में स्टॉकहोम में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक उच्च स्तरीय बैठक हुईं बहुत से राष्ट्र प्रमुखों ने इस बैठक में हिस्सा लिया। श्रीमती इंदिरा गांधी भी उसमें भाग लेने वालों में से एक थी। यहीं पर उन्होंने अपना यह मशहूर आकलन जाहिर किया था कि, 'गरीबी सबसे बड़ा प्रदूषक है', उनके इस आकलन से पर्यावरण क्षरण की समस्या में एक नया आयाम जुड़ गया।

स्टॉकहोम सम्मेलन के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम की स्थापना हुई और इस विषय पर सारी दुनिया में सैकड़ों सेमिनार, सम्मेलन और सिंपोजियम आयोजित हुए। 1983 में बंडलैंड आयोग का गठन हुआ। ऑवर कॉमन फ्यूचर नाम से प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में आयोग ने टिकाऊ विकास को अपनाने की सलाह दी। जून 1992 में रियो द जेनेरियो में आयोजित सम्मेलन इसमें भाग लेने वाले लोगों की संख्या और इसे मिले प्रचार के मामले में अभूतपूर्व रहा। इस सम्मेलन में महत्त्वपूर्ण मसलों पर सहमति बनी और टिकाऊ विकास के लिए एजेंडा 21 अस्तित्व में आया। इसके बाद वर्ल्ड सम्मिट ऑन सोशल डेवलपमेंट (1995), हैबिटेट-2 (1996) और पानी, स्वच्छता, मिट्टी, जंगल, जलवायु परिवर्तन आदि के मसलों पर अनेक सम्मेलन हुए। लेकिन इन तमाम सम्मेलनों से क्या हासिल हुआ? विरोधाभास यह है कि इन सम्मेलनों के आरम्भ होने के समय के मुकाबले आज ज्यादा लोग गरीबी में जी रहे हैं, ज्यादा लोग झुग्गियों में रह रहे हैं, जीवन रक्षक प्रणाली के ज्यादा तत्व दबाव में हैं, पारिस्थितिकी की प्रणालियों का ज्यादा

क्षरण हुआ है, ज्यादा प्रजातियों पर लुप्त होने का खतरा पैदा हो गया है और जलवायु परिवर्तन ज्यादा बड़े खतरे के रूप में हमारे सामने है। यही वजह है कि कुछ आलोचक संयुक्त राष्ट्र संघ के इन सम्मेलनों को दिखावे का समारोह कहते हैं। हकीकत यह है कि ये सम्मेलन उस मिथकीय सड़क की तरह हो सकते हैं, जिन पर चलने वाला दो कदम आगे बढ़ता है तो पाता है कि उसकी मंजिल चार कदम आगे बढ़ गयी है।

उदाहरण के लिए सातवें दशक के मध्य और आठवें दशक के जल व स्वच्छता दशक को देखा जा सकता है। इस दशक में राष्ट्रीय सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों ने संकल्प लिया था कि स्वच्छ पेयजल और शौचालय की सुविधा दुनिया के हर आदमी को 1990 तक उपलब्ध करा देनी है। लेकिन इस संकल्प की अंतिम सीमा खत्म होने के 17 साल बाद स्थिति यह है कि पूरी दुनिया में करीब 2.4 अरब लोगों को शौचालय की सुविधा और 1.7 अरब लोगों को स्वच्छ पेयजल की सुविधा हासिल नहीं है। इसी तरह से संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वैंकुवर में पर्यवास (हैबिटेट) पर आयोजित सम्मेलन को देखा जा सकता है। इस सम्मेलन के बाद से झुग्गियों को खत्म करने के अनेक संकल्प दोहराए गये, लेकिन हकीकत यह है कि सारी दुनिया में झुग्गियों और अवैध बस्तियों की संख्या में कई गुना इजाफा हो गया है। अभी करीब एक अरब आबादी झुग्गियों और अवैध बस्तियों में रहती है। यूएनयीपी की फरवरी 2007 में आई रिपोर्ट ने बताया है कि इंडोनेशिया और मलेशिया में रेन फारेस्ट जिस रफ्तार से काटे जा रहे हैं, उससे 15 सालों में 98 फीसदी रेन फारेस्ट खत्म हो जायेगा और इस वजह से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में 20 फीसदी तक की बढ़ोत्तरी हो सकती है। यह सब तब हो रहा है, जब अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां लगातार यह चेतावनी दे रही हैं कि वनों की कटाई से जलवायु परिवर्तन की रफ्तार तेज हो रही है। आज सारी दुनिया में पर्यावरण से जुड़े शरणार्थियों की संख्या पांच करोड़ पहुंच गयी है।

इस लगातार बिगड़ती हालत के कई कारण हैं। लेकिन दुखद बात यह है कि इसमें जो सबसे महत्त्वपूर्ण और मूल है, उसकी पूरी तरह के अनदेखी की गयी है। इसका मुख्य कारण पश्चिमी सभ्यता के चरित्र में छिपा हुआ है, जिसका आज की दुनिया पर वर्चस्व है और जो बुनियादी रूप से लालच पर आधारित है। यह प्रेरणा लोगों को सिर्फ समृद्धि हासिल करने की ओर धकेलती है, जिससे उनके भीतर पृथ्वी के प्रति किसी तरह की आंतरिक ईमानदारी का भाव नहीं जगता है और न संसाधनों के प्रति प्रकृति द्वारा निर्धारित सीमा के प्रति कोई सम्मान का भाव पैदा होता है।

कुल मिलाकर पश्चिम का आदमी सचेतन या अवचेतन रूप से पदार्थवाद और व्यक्तिवाद के दर्शन से बंधा हुआ है। यह दर्शन इस सच्चाई के प्रति एक समग्र दृष्टि नहीं अपनाता है कि शरीर, मस्तिष्क, ज्ञान और आत्मा की जरूरतें एक संतुलित व सद्भावपूर्ण विकास प्रणाली में एकीकृत होती हैं और मानव समाज अलग-थलग होकर काम नहीं करता है, बल्कि इसी ब्रह्मांड के पूरक के रूप में काम करता है। इसमें इस बात की अनदेखी की गयी है कि अगर व्यक्ति के एक या दो पहलू या मानव समाज के एक या दो हिस्से पर ध्यान दिया गया और संपूर्ण प्रणाली के साथ उसका तालमेल नहीं बिठाया गया तो उसके नकारात्मक प्रभाव होंगे। पश्चिम के इंसान और उसकी संस्थाओं ने एक ऐसी दुनिया बनाई है, जो तकनीकी और वैज्ञानिक रूप से बहुत आधुनिक है लेकिन नैतिक व सामाजिक रूप से काफी पिछड़ी है। आधुनिक इंसान और उसकी संस्थाओं दोनों को बेहतर बनाने के लिए संतुलन, सद्भाव और आध्यात्म की जरूरत है। क्या भारत का प्राचीन ज्ञान इसमें सुधार के लिए कुछ कर सकता है? मेरे विचार से कर सकता है।

प्राचीन काल से हमारे संत और दर्शन यह बताते आये हैं कि व्यक्ति और प्रकृति दो अलग-अलग इकाई नहीं हैं, बल्कि समान जैविक इकाई का हिस्सा हैं। उनका मानना था कि प्रकृति के बुनियादी तत्व इस ब्रह्मांड का निर्माण करते हैं, जिसमें पहाड़ इसकी हड्डियां हैं, धरती मांस है, समुद्र इसका रक्त है, वहां इसकी सांस और अग्नि इसकी ऊर्जा है। उन्होंने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि धरती हमारी माता है और हम इसकी संतान हैं। वैदिक ऋचाओं में चार हजार साल पहले जो संदेश दिया गया है, आज उसे टिकाऊ विकास का नाम दिया जा रहा है। असल में पेड़ लगाना और उनका संरक्षण करना एक पवित्र कर्तव्य माना गया था। वाराह पुराण में कहा गया है- जो व्यक्ति एक पीपल, एक नीम, एक बड़, फूल वाले दस पौधे और दो नासपाती के पेड़ लगाता है वह नर्क में नहीं जाता है। चरक संहिता में भी कहा गया है कि जंगल को नष्ट करना राज्य को नष्ट करने की तरह है और जंगल लगाना राज्य के निर्माण की तरह है।

आज के समय का भारत अपने प्राचीन चिंतन की तमाम अच्छी और लाभदायक बातें भूल चुका है। वह बातें, जिनके आधार पर दुनिया के मशहूर इतिहासकार आर्नोल्ड टॉयनबी ने लिखा -मानव इतिहास के इस सर्वाधिक खतरनाक समय में मानव जाति के मोक्ष का एक ही रास्ता है वह है भारतीय रास्ता। दुर्भाग्य से भारत इन सब चीजों को भूल कर आधुनिक पश्चिम के पीछे चल पड़ा है, जहां मुख्य प्रेरक तत्व सकल घरेलू उत्पाद है, जिसमें इस बात का कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि कितने शहर बरबाद हो गये, कितनी नदियां प्रदूषित हो गयी और कितने प्राकृतिक पर्यवास इस प्रक्रिया में उजड़ गये।

संदर्भ

आज का पर्यावरण–शिव गोपाल मिश्रा
आधुनिक जीवन और पर्यावरण–अर्जुन प्रसाद
भारतीय पर्यावरण कुटनीति–डॉ. विरेन्द्र सिंह बघेल
अद्यौगिक विकास और ग्लोबल वार्मिंग–जिज्ञेस व्यास
ग्लोबल वार्मिंग और पर्यावरण प्रदूषण–महेन्द्र शर्मा सूर्य
ग्लोबल वार्मिंग– समस्या और समाधान–मुकेश कुमार नादान
ग्लोबल वार्मिंग–एस.के. तिवारी
Eco-System and Global Warming : Vijay Mittal
Global Warming : A.K. Shrivastava
Climate Change : India in Focus: Mitigating Impacts of Global Warming : Pawan Sikka
Climate Change and Global Warming : Avinash Tyagi
Dawn of the Solar Age : An End to Global Warming and to Fear : Prem Shankar Jha

जैन दर्शन

डॉ० सुमित्रा कुमारी

अतिथि सहायक प्रोफेसर, एम.एस.के.बी. कॉलेज, मुजफ्फरपुर (बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)

सारांश

जैन दर्शन एक प्राचीन भारतीय दर्शन है। इसमें अहिंसा को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। जैन धर्म की मान्यता अनुसार 24 तीर्थकर समय-समय पर संसार चक्र में फसें जीवों के कल्याण के लिए उपदेश देने इस धरती पर आते है। लगभग छठी शताब्दी ई.पू. में अंतिम तीर्थकर, भगवान महावीर के द्वारा जैन दर्शन का पुनराव्रण हुआ। इसमें वेद की प्रामाणिकता को कर्मकाण्ड की अधिकता और जड़ता के कारण मिथ्या बताया गया। जैन दर्शन के अनुसार जीव और कर्मो का यह सम्बन्ध अनादि काल से है। जब जीव इन कर्मो को अपनी आत्मा से सम्पूर्ण रूप से मुक्त कर देता हैं तो वह स्वयं भगवान बन जाता है। लेकिन इसके लिए उसे सम्यक पुरुषार्थ करना पड़ता है। यह जैन धर्म की मौलिक मान्यता है।

सत्य का अनुसंधान करने वाले 'जैन' शब्द की व्युत्पत्ति 'जिन' से मानी गई है, जिसका अर्थ होता है- विजेता अर्थात् वह व्यक्ति जिसने इच्छाओं (कामनाओं) एवं मन पर विजय प्राप्त करके हमेशा के लिए संसार के आवागमन से मुक्ति प्राप्त कर ली है। इन्हीं जिनो के उपदेशों को मानने वाले जैन तथा उनके साम्प्रदायिक सिद्धान्त जैन दर्शन के रूप में प्रख्यात हुए। जैन दर्शन 'अर्हत दर्शन' के नाम से भी जाना जाता है। जैन धर्म में चौबीस तीर्थंकर (महापुरूष, जैनों के ईश्वर) हुए जिनमें प्रथम ऋषभदेव तथा अन्तिम महावीर (वर्धमान) हुए। इनके कुछ तीर्थकरों के नाम ऋग्वेद में भी मिलते हैं, जिससे इनकी प्राचीनता प्रमाणित होती है।

जैन दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ प्राकृत (मागधी) भाषा में लिखे गये हैं। बाद में कुछ जैन विद्वानों ने संस्कृत में भी ग्रन्थ लिखे। उनमें 100 ई. के आसपास आचार्य उमास्वामी द्वारा रचित तत्त्वार्थ सूत्र बड़ा महत्वपूर्ण है। वह पहला ग्रन्थ है जिसमें संस्कृत भाषा के माध्यम से जैन सिद्धान्तों के सभी अंगों का पूर्ण रूप से वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् अनेक जैन विद्वानों ने संस्कृत में व्याकरण, दर्शन, काव्य, नाटक आदि की रचना की।

परिचय

जैन धर्म विश्व के सबसे प्राचीन दर्शन या धर्मों में से एक है। यह भारत की श्रमण परम्परा से निकला तथा इसके प्रवर्तक हैं 24 तीर्थंकर, जिनमें प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव (आदिनाथ) तथा अंतिम व प्रमुख महावीर स्वामी हैं। जैन धर्म की अत्यंत प्राचीनता करने वाले अनेक उल्लेख साहित्य और विशेषकर पौराणिक साहित्यो में प्रचुर मात्रा में हैं। जैन धर्म की अत्यंत प्राचीनता करने वाले अनेक उल्लेख अ-जैन साहित्य और विशेषकर वैदिक साहित्य में प्रचुर मात्रा में हैं। श्वेतांबर व दिगंबर जैन धर्म के दो सम्प्रदाय हैं, तथा इनके धर्मग्रंथ समयसार व तत्वार्थ सूत्र हैं।

जैन दर्शन में भगवान से कण कण स्वतंत्र है इस सृष्टि का या किसी जीव का कोई कर्ताधर्ता नही है। सभी जीव अपने अपने कर्मों का फल भोगते है। जैन दर्शन के भगवान कर्ता और नही भोगता नही माने जाते। जैन दर्शन मे सृष्टिकर्ता को स्थान नहीं दिया गया है। जैन धर्म में अनेक शासन देवी-देवता हैं पर उनकी आराधना को कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता। जैन धर्म में तीर्थंकरों जिन्हें जिनदेव, जिनेंद्र या वीतराग भगवान कहा जाता है इनकी आराधना का ही विशेष महत्व है। इन्हीं तीर्थंकरों का अनुसरण कर आत्मबोध, ज्ञान और तन और मन पर विजय पाने का प्रयास किया जाता है।

द्रव्य

द्रव्य वह है, जिसमें गुण और पर्याय हो-'गुणपर्यायवद् द्रव्य्'। गुण स्वरूप धर्म है और पर्याय आगन्तुक धर्म। इन धर्मों के दो भेद हैं- (क) भावात्मक (ख) अभावात्मक। स्वरूपधर्मो के बिना द्रव्य का अस्तित्त्व सम्भव नहीं। यह जगत् द्रव्यों से बना है। द्रव्य सत्

हैं; क्योंकि उसमें सत्ता के तीनों लक्षण उत्पत्ति, व्यय (क्षय) और नित्यता मौजूद है। द्रव्य के दो रूप हैं- अस्तिकाय और अनस्तिकाय। अनस्तिकाय के अमूर्त होने से इसमें केवल काल की ही गणना होती है, जबकि अस्तिकाय में दो प्रकार के द्रव्य हैं- (क) जीव तथा (ख) अजीव। चेतन द्रव्य जीव अथवा आत्मा है। सांसारिक दशा में यही आत्मा जीव कहलाती है। जीव में प्राण तथा शारीरिक, मानसिक और ऐन्द्रिक शक्ति है, जिसमें कार्य के प्रभाव से औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदायिक तथा पारिमाणिक- ये पाँच भाव प्राण से संयुक्त, रहते हैं। द्रव्य के रूप बदलने पर यही 'भावदशापन्न प्राण' पुद्गल (Matter) कहलाता है। इस प्रकार पुद्गल युक्त जीव ही संसारी कहा जाता है। जैन दर्शनानुसार जीव नित्य एवं स्वयंप्रकाश है। 'अविद्या' के कारण वह बन्धन में बँधता है। इस प्रकार जीव के दो भेद हैं- संसारी एवं मुक्त। संसारी के पुन: दो भेद स्थावर और जंगम हैं, जिनमें जंगम-पृथ्वीकाय, अपकाय, वायुकाय तथा तेजकाय वाले हैं। अस्तिकाय द्रव्य का दूसरा तत्त्व 'अजीव' है, जिसके पाँच भेद हैं-धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल।

कर्म

जैन दर्शन में कर्म के मुख्य आठ भेद बताए गए हैं - ज्ञानवरण, दर्शनवरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

जैनियों के अनुसार कर्म पौद्गलिक (शारीरिक) अर्थात् धूल के कण के समान जड़ पदार्थ हैं। ये इच्छा, द्वेष और भ्रम से प्रेरित मन, शरीर और वाक् की क्रियाओं तथा वासनाओं से पैदा होते हैं। कर्म के मुख्य रूप से दो भेद हैं-

1. घातीय अथवा नाशवान् तथा
2. अघातीय जो कि नाशवान् नहीं हैं।

इनमें से घातीय कर्म के चार भेद हैं-

(अ) ज्ञानावरणीय, (ब) दर्शनावरणीय (स) अन्तराय (प्रगति में बाधक) और (द) मोहनीय।

इसी प्रकार अघातीय कर्म के भी चार भेद हैं-

(अ) आयुष कर्म (ब) नाम कर्म (स) गोत्र कर्म और (द) वेदनीय कर्म।

ये ही आठ तरह के कर्म बन्धन का कारण हैं।

तत्त्व

जैन ग्रंथों में सात तत्त्वों का वर्णन मिलता हैं। यह हैं-

1. जीव
2. अजीव
3. आस्रव

जैन दर्शन के अनुसार कर्म पुदगल का जीव सत्ता में प्रवेश करने को आस्त्रव कहते हैं आस्त्रव जीव के बंधन का कारण है।

1. बन्ध: कर्म परमाणुओं का जीव से बंध जाना।
2. संवर
3. निर्जरा
4. मोक्ष

बन्ध

जीव के बन्धन का मूल कारण दूषित मनोभाव हैं। कषायों के कारण जीव के पुद्गल (शरीर) से आक्रान्त हो जाने को बन्ध तत्त्व कहा गया है। जीव के पुद्गलों में प्रवेश से पहले 'भावास्रव' पैदा होता है, जो कि जीव का वास्तविक स्वरूप नष्ट कर देता है और जीव बन्धन में फँस जाता है।

मोक्ष

जीव का पुद्गल से मुक्त हो जाना ही 'मोक्ष' है। यह मोक्ष दो प्रकार का है- भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष। भावमोक्ष ही जीवमुक्ति है। यह वास्तविक मोक्ष से पहले की अवस्था है। इसमें चारों घातीय कर्मो का नाश हो जाता है। इसके बाद ही अघातीय कर्मों का नाश होने पर द्रव्य-मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है। जैनियों के अनुसार मोक्ष प्राप्त करने के लिए बारह अनुप्रेक्षाओं से युक्त रहना आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं- अनित्य, अषरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभत्व तथा धर्मानुप्रेक्षा।

जैनों की ज्ञानमीमांसा तत्त्वमीमांसा के समान ही स्वतन्त्र सत्ता रखती है। ज्ञानमीमांसा के प्रामाणिक स्रोत प्रमाणों की संख्या जैन दर्शन में तीन है- प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द। जैन दार्शनिक 'स्याद्वाद' अर्थात् 'सप्तभंगीनय' का प्रतिपादन करते हैं-

नयनामके तिष्ठानां प्रवृत्तेः श्रुतवर्त्मनि।

सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वाद श्रुतमुच्यतेष् (न्यायावतार, 30)

इसके अनुसार हमारा ज्ञान पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता। ज्ञान सदैव आपेक्षित सत्य ही होता है

अहिंसा

जैन दर्शन में इसका सूक्ष्म विवेचन हुआ है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि इसका प्ररूपण सर्वज्ञ-सर्वदर्शी (जिनके ज्ञान से संसार की कोई भी बात छुपी हुई नहीं है, अनादि भूतकाल और अनंत भविष्य के ज्ञाता-दृष्टा), वीतरागी (जिनको किसी पर भी राग-द्वेष नहीं है) प्राणी मात्र के हितेच्छुक, अनंत अनुकम्पा युक्त जिनेश्वर भगवंतों द्वारा हुआ है। जिनके बताये हुए मार्ग पर चल कर प्रत्येक आत्मा अपना कल्याण कर सकती है।

अपने सुख और दुःख का कारण जीव स्वयं है, कोई दूसरा उसे दुखी कर ही नहीं सकता.पुनर्जन्म, पूर्वजन्म, बंध-मोक्ष आदि जिनधर्म मानता है। अहिंसा, सत्य, तप ये इस धर्म का मूल है।

ब्रह्माण्ड विज्ञान

जैन दर्शन इस संसार को किसी ईश्वर द्वारा बनाया हुआ स्वीकार नहीं करता है, अपितु शाश्वत मानता है। जन्म मरण आदि जो भी होता है, उसे नियंत्रित करने वाली कोई सार्वभौमिक सत्ता नहीं है। जीव जैसे कर्म करता है, उन के परिणाम स्वरुप अच्छे या बुरे फलों को भुगतने के लिए वह मनुष्य, नरक, देव, एवं तिर्यंच (जानवर) योनियों में जन्म मरण करता रहता है।

निष्कर्ष

जैन धर्म भारत का एक अत्यन्त प्राचीन धर्म - दर्शन है। प्राचीन काल में यह 'श्रमण' धर्म के नाम से जाना जाता था। जैन ध र्म की प्राचीनता भारतीय सभ्यता के प्रागैतिहासिक काल तक प्राप्त होती है। भारतीय साहित्य के सबसे प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद और अथर्ववेद में 'व्रात्य' और 'अर्हतों' का वर्णन आता है, जिन्हें उपनिषदों में 'श्रमण' कहा जाता है। जैन तीर्थकर जैसे ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि का भी वर्णन हमें इनसे प्राप्त होता है।

जैन दर्शन या तत्त्वमीमांसा सात (कभी-कभी नौ, उपश्रेणियाँ मिलाकर) सत्य अथवा मौलिक सिद्धांतों पर आधारित है, जिन्हें तत्त्व कहा जाता है। यह मानव दुर्गति की प्रकृति और उसका निदान करने का प्रयास है। प्रथम दो सत्यों के अनुसार, यह स्वयंसिद्ध है कि जीव और अजीव का अस्तित्व है। तीसरा सत्य है कि दो पदार्थों, जीव और अजीव के मेल से, जो योग कहलाता है, कर्म द्रव्य जीव में प्रवाहित होता है। यह जीव से चिपक जाता है और कर्म में बदल जाता है। चौथा सत्य बंध का कारक है, जो चेतना (जो जीव के स्वभाव में है) की अभिव्यक्ति को सीमित करता है। पांचवां सत्य बताता है कि नए कर्मो की रोक (संवर), सही चारित्र (सम्यकचारित्र), सही दर्शन (सम्यकदर्शन) एवं सही ज्ञान (सम्यकज्ञान) के पालन के माध्यम से आत्मसंयम द्वारा संभव है। गहन आत्मसंयम द्वारा मौजूदा कर्मो को भी जलाया जा सकता, इस छटवें सत्य को षनिर्जराष शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है। अंतिम सत्य है कि जब जीव कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाता है, तो मोक्ष या निर्वाण को प्राप्त हो जाता है, जो जैन शिक्षा का लक्ष्य है।

सन्दर्भ

- जैन, विजय कुमार (2011), आचार्य उमास्वामी तत्तवार्थसूत्र, टपांसच च्तपदजमते, आई.एस.बी.एन. 978-81-903639-2-1, मूल से 22 दिसंबर 2015 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 17 दिसंबर 2015
- प्रमाणसागर, मुनि (2008), जैन तत्त्वविद्या, भारतीय ज्ञानपीठ, आई.एस.बी.एन. 978-81-263-1480-5, मूल से 25 सितंबर 2015 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 10 जनवरी 2016
- आचार्य नेमिचन्द्र (2013), द्रव्यसंग्रह, Vikalp Printers, आई.एस.बी.एन. 81-903639-5-6, मूल से 4 मार्च 2016 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 17 जनवरी 2016
- शास्त्री, प. कैलाशचन्द्र (2007), जैन धर्म, आचार्य शंतिसागर श्छाणीश स्मृति ग्रन्थमाला, आई.एस.बी.एन. 81-902683-8-4

भारत में किसान आन्दोलन का इतिहास

बिन्नी कुमारी

पीएच.डी., इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

कृषि नीति को बदलने के लिये किये गये आन्दोलन कृषक आन्दोलन (Peasant movement) कहलाते हैं।

कृषक आन्दोलन का इतिहास बहुत पुराना है और विश्व के सभी भागों में अलग-अलग समय पर किसानों ने कृषि नीति में परिवर्तन करने के लिये आन्दोलन किये हैं ताकि उनकी दशा सुधर सके। मोजुदा दौर में भारत में कृषक आंदोलन तेज गति से बढ़ रहे है इसका मुख्य कारण कृषक की आर्थिक हालत दिन प्रति दिन कमजोर हो रही है और वो कर्ज के मकड़ जाल में फंस रहा क्यों की मौजूद दौर में कृषि में लागत बढ़ रही है आमदनी घट रही है जिस कारण से किसानो में आत्म हत्या की घटनाए बढ़ रही है। दूसरी तरफ लोग कृषि निति बदलवाने के लिए संघर्ष कर रहे है। वर्ष 2017 में देश में छोटे बड़े सैकड़ो आंदोलन देश में हुए है सरकार को कृषि के सम्बन्ध में बोलने पर मजबूर किया है जिस में महारास्ट्र का जून 17 मेंगाँव बन्द हो चाहे नासिक से मुम्बई तक का मार्च हो राजस्थान में पानी व् बिजली के सवालो पर आंदोलन हरियाणा में 2015 में नरमें की फसल के खराबे पर मुअब्जे की मांग का आंदोलन हो तमिलनाडु के किसानो का महीनो तक संसद मार्ग पर धरना आदि मुख्यत रहे है।

भारत में वक्त-बे-वक्त होने वाली सामाजिक उथल-पुथल में किसानों की भूमिका भले ही गौण रही हो, लेकिन भारतीय इतिहास के झरोखे में नजर दौड़ाएंगे, तो आपको पता चलेगा कि अपने ही देश में आजादी के पहले और आजादी के बाद किसानों के कई ऐसे आंदोलन हुए, जिसने यहां के हुक्मरानों की चूलें तक हिला के रख दी।

परिचय

अंग्रेजों के राज में भी समय-समय पर किसानों आंदोलन हुए और उन्होंने न सिर्फ स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, बल्कि अंग्रेज सत्ता की चूलें भी हिलाकर रख दी थीं।

अंग्रेजो द्वारा भारतीय कृषि में व्यापक परिवर्तन किए जाने से देश के कृषि जगत में हलचल पैदा हो गई तथा भारतीय कृषक निर्धनता की बेड़ियों से जकड़ गए। उपनिवेशवाद के अधीन भारतीय कृषि की निर्धनता के निम्न प्रमुख कारण थे–

- उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियां।
- भारतीय हस्तशिल्प के विनाश से भूमि पर अत्यधिक दबाव।
- नयी भू-राजस्व व्यवस्था तथा उपनिवेशवादी प्रशासनिक एवं न्यायिक व्यवस्था।

भारतीय कृषक लगान की ऊंची दरों, अवैध करों, भेदभाव पूर्ण बेदखली एवं जमींदारी क्षेत्रों में बेगार जैसी बुराइयों से त्रस्त थे। रैयतवाड़ी क्षेत्रों में सरकार किसानों से लगभग 50% कर लेती थी। इन कठिनाइयों के बोझ से दबे किसान, अपनी जीविका के एकमात्र साधन को बचाने के लिए महाजनों से ऋण लेने हेतु विवश हो जाते थे। ये महाजन उन्हें अत्यंत ऊंची दरों पर ऋण देकर उन्हें ऋण के जाल में फांस लेते। अनेक अवसरों पर किसानों को अपनी भूमि एवं पशु भी गिरवी रखने पड़ते थे। कभी ख्र कभी ये सूदखोर या महाजन किसानों की गिरवी रखी गयी संपत्ति को भी जब्त कर लेते थे। इन सभी कारणों से कृषक धीरे धीरे निर्धन, लगानदाता व मजदूर बन कर रह गए। बहुत से कृषकों ने कृषि कार्य छोड़ दिया, कृषि भूमि रिक्त पड़ने लगी तथा कृषि उत्पादन कम होने लगा।

कृषकों पर किए जा रहे शोषण ने उन्हें उपनिवेशवादी ताकत के विरुद्ध विरोध करने के लिए मजबूर कर दिया।

हालांकि स्वतंत्रता से पहले किसान आंदोलनों पर गांधी जी का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता था, यही कारण था वे पूरी तरह अहिंसक होते थे।

सन 1857 के असफल विद्रोह के बाद विरोध का मोर्चा किसानों ने ही संभाला, क्योंकि अंग्रेजों और देशी रियासतों के सबसे बड़े आंदोलन उनके शोषण से ही उपजे थे। हकीकत में देखें तो जितने भी 'किसान आंदोलन' हुए, उनमें अधिकांश आंदोलन अंग्रेजों के खिलाफ थे। देश में नील पैदा करने वाले किसानों का आंदोलन, पाबना विद्रोह, तेभागा आंदोलन, चम्पारण का सत्याग्रह और बारदोली में प्रमुख से आंदोलन हुए। इनका नेतृत्व भी महात्मा गांधी और वल्लभभाई पटेल जैसे नेताओं ने किया।

दक्कन का विद्रोह : इस आंदोलन की शुरुआत दिसंबर 1874 में महाराष्ट्र के शिरूर तालुका के करडाह गांव से हुई। दरअसल, एक सूदखोर कालूराम ने किसान बाबा साहब देशमुख के खिलाफ अदालत से घर की नीलामी की डिक्री प्राप्त कर ली। इस पर किसानों ने साहूकारों के विरुद्ध आंदोलन शुरू कर दिया। खास बात यह है कि यह आंदोलन एक-दो स्थानों तक सीमित नहीं रहा वरन देश के विभिन्न भागों में फैला।

एका आंदोलन : यह आंदोलन उत्तर प्रदेश से शुरू हुआ। होमरूल लीग के कार्यकताओं के प्रयास तथा मदन मोहन मालवीय के मार्गदर्शन के परिणामस्वरूप फरवरी 1918 में उत्तर प्रदेश में 'किसान सभा' का गठन किया गया। 1919 के अंघतिम दिनों में किसानों का संगठित विद्रोह खुलकर सामने आया। इस संगठन को जवाहरलाल नेहरू ने अपने सहयोग प्रदान किया। उत्तर प्रदेश के हरदोई, बहराइच एवं सीतापुर जिलों में लगान में वृद्धि एवं उपज के रूप में लगान वसूली को लेकर यह आंदोलन चलाया गया।

मोपला विद्रोह : केरल के मालाबार क्षेत्र में मोपला किसानों द्वारा 1920 में विद्रोह किया गया। प्रारम्भ में यह विद्रोह अंग्रेज हुकूमत के खघ्लिाफ था। महात्मा गांधी, शौकत अली, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे नेताओं का सहयोग इस आंदोलन को प्राप्त था। हालांकि 1920 में इस आंदोलन ने हिन्दू-मुस्लिमों के मध्य सांप्रदायिक आंदोलन का रूप ले लिया और बाद में इसे कुचल दिया गया।

कूका विद्रोह : सन 1872 में पंजाब के कूका लोगों (नामधारी सिखों) द्वारा किया गया यह एक सशस्त्र विद्रोह था। कृषि संबंध ी समस्याओं तथा अंग्रेजों द्वारा गायों की हत्या को बढ़ावा देने के विरोध में यह विद्रोह किया गया था। बालक सिंह तथा उनके अनुयायी गुरु रामसिंह जी ने इसका नेतृत्व किया था। कूका विद्रोह के दौरान 66 नामधारी सिख शहीद हो गए थे।

रामोसी किसानों का विद्रोह : महाराष्ट्र में वासुदेव बलवंत फड़के के नेतृत्व में रामोसी किसानों ने जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल फूंका था। इसी तरह आंध्रप्रदेश में सीताराम राजू के नेतृत्व में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध यह विद्रोह हुआ, जो 1879 से लेकर 1920-22 तक छिटपुट ढंग से चलता रहा।

तेभागा आंदोलन : किसान आंदोलनों में 1946 का बंगाल का तेभागा आंदोलन सर्वाधिक सशक्त आंदोलन था, जिसमें किसानों ने 'फ्लाइड कमीशन' की सिफारिश के अनुरूप लगान की दर घटाकर एक तिहाई करने के लिए संघर्ष शुरू किया था। बंगाल का तेभागा आंदोलन फसल का दो-तिहाई हिस्सा उत्पीड़ित बटाईदार किसानों को दिलाने के लिए किया गया था। यह आंदोलन बंगाल के करीब 15 जिलों में फैला, विशेषकर उत्तरी और तटवर्ती सुंदरबन क्षेत्रों में। इस आंदोलन में लगभग 50 लाख किसानों ने भाग लिया। इसे खेतिहर मजदूरों का भी व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ।

ताना भगत आंदोलन : लगान की ऊंची दर तथा चौकीदारी कर के विरुद्ध ताना भगत आंदोलन की शुरुआत 1914 में बिहार में हुई। इस आंदोलन के प्रवर्तक 'जतरा भगत' थे। मुण्डा आंदोलन की समाप्ति के करीब 13 वर्ष बाद ताना भगत आंदोलन शुरू हुआ था।

तेलंगाना आंदोलन : आंध्रप्रदेश में यह आंदोलन जमींदारों एवं साहूकारों के शोषण के खिलाफ 1946 में शुरू किया गया था। 1858 के बाद हुए किसान आंदोलन का चरित्र पूर्व के आंदोलन से अलग था। अब किसान बगैर किसी मध्यस्थ के स्वयं ही अपनी लड़ाई लड़ने लगे। इनकी अधिकांश मांगें आर्थिक होती थीं।

बिजोलिया किसान आंदोलन : यह किसान आंदोलन भारत भर में प्रसिद्ध रहा जो मशहूर क्रांतिकारी विजय सिंह पथिक के नेतृत्व में चला था। बिजोलिया किसान आंदोलन 1847 से प्रारंभ होकर करीब अर्द्ध शताब्दी तक चलता रहा। किसानों ने जिस प्रकार निरंकुश नौकरशाही एवं स्वेच्छाचारी सामंतों का संगठित होकर मुकाबला किया वह इतिहास बन गया।

अखिल भारतीय किसान सभा : 1923 में स्वामी सहजानंद सरस्वती ने 'बिहार किसान सभा' का गठन किया था। 1928 में 'आंध्र प्रांतीय रैय्यत सभा' की स्थापना एनजी रंगा ने की। उड़ीसा में मालती चौधरी ने 'उत्क ल प्रान्तीय किसान सभा' की स्थापना की। बंगाल में 'टेनेसी एक्ट' को लेकर 1929 में 'कृषक प्रजा पार्टी' की स्थापना हुई। अप्रैल, 1935 में संयुक्त प्रांत में किसान संघ की स्थापना हुई। इसी वर्ष एनजी रंगा एवं अन्य किसान नेताओं ने सभी प्रांतीय किसान सभाओं को मिलाकर एक 'अखिल भारतीय किसान संगठन' बनाने की योजना बनाई।

नील विद्रोह (चंपारण सत्याग्रह) : नील विद्रोह की शुरुआत बंगाल के किसानों द्वारा सन 1859 में की गई थी। दूसरी ओर, बिहार के चंपारण में किसानों से अंग्रेज बागान मालिकों ने एक अनुबंध करा लिया था, जिसके अंतर्गत किसानों को जमीन के 3/20वें हिस्से पर नील की खेती करना अनिवार्य था। इसे 'तिनकठिया पद्धति' कहते थे। जब 1917 में गांधी जी इन विषम परिस्थितियों से अवगत हुए तो उन्होंने बिहार जाने का फैसला किया। गांधी जी मजरूल हक, नरहरि पारीख, राजेन्द्र प्रसाद एवं जेबी कृपलानी के साथ बिहार गए और ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ अपना पहला सत्याग्रह प्रदर्शन किया।

खेड़ा सत्याग्रह : चंपारण के बाद गांधीजी ने 1918 में खेड़ा किसानों की समस्याओं को लेकर आंदोलन शुरू किया। खेड़ा गुजरात में स्थित है। खेड़ा में गांधीजी ने अपने प्रथम वास्तविक 'किसान सत्याग्रह' की शुरुआत की। खेड़ा के कुनबी-पाटीदार किसानों ने सरकार से लगान में राहत की मांग की, लेकिन उन्हें कोई रियायत नहीं मिली। गांधीजी ने 22 मार्च, 1918 को खेड़ा आन्दोलन की बागडोर संभाली। अन्य सहयोगियों में सरदार वल्लभभाई पटेल और इन्दुलाल याज्ञनिक थे।

बारदोली सत्याग्रह : सूरत (गुजरात) के बारदोली तालुका में 1928 में किसानों द्वारा 'लगान' न अदायगी का आंदोलन चलाया गया। इस आंदोलन में केवल 'कुनबी-पाटीदार' जातियों के भू-स्वामी किसानों ने ही नहीं, बल्कि सभी जनजाति के लोगों ने हिस्सा लिया। इस आंदोलन का नेतृत्व सरदार पटेल ने किया था।

निष्कर्ष

आमतौर पर यह माना जाता है कि भारतीय समाज में समय-समय पर होने वाली उथल-पुथल में किसानों की कोई सार्थक भूमिका नहीं रही है, लेकिन ऐसा नहीं है क्योंकि भारत के स्वाधीनता आंदोलन में जिन लोगों ने शीर्ष स्तर पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई, उनमें आदिवासियों, जनजातियों और किसानों का अहम योगदान रहा है।

देश में नील पैदा करने वाले किसानों का आंदोलन, पाबना विद्रोह, तेभागा आंदोलन, चम्पारण का सत्याग्रह और बारदोली में जो आंदोलन हुए थे, इन आंदोलनों का नेतृत्व महात्मा गांधी, वल्लभभाई पटेल जैसे नेताओं ने किया। आमतौर पर किसानों के आंदोलन या उनके विद्रोह की शुरुआत सन् 1859 से हुई थी, लेकिन चूंकि अंग्रेजों की नीतियों पर सबसे ज्यादा किसान प्रभावित हुए, इसलिए आजादी के पहले भी इन नीतियों ने किसान आंदोलनों की नींव डाली।

सन् 1857 के असफल विद्रोह के बाद विरोध का मोर्चा किसानों ने ही संभाला, क्योंकि अंग्रेजों और देशी रियासतों के सबसे बड़े आंदोलन उनके शोषण से उपजे थे। वास्तव में जितने भी 'किसान आंदोलन' हुए, उनमें अधिकांश आंदोलन अंग्रेजों के खिलाफ थे।

स्वतंत्रता से पहले किसानों ने अपनी मांगों के समर्थन में जो आंदोलन किए वे गांधीजी के प्रभाव के कारण हिंसा और बरबादी से भरे नहीं होते थे, लेकिन अब स्वतंत्रता के बाद जो किसानों के नाम पर आंदोलन या उनके आंदोलन हुए वे हिंसक और राजनीति से ज्यादा प्रेरित थे।

सन्दर्भ

- Majumdar, R. C. The Government in 1860 enacted the Indigo Act, according to which no planter could be forced to cultivate indigo against his will. The History of Bengal ISBN 81-7646-237-3
- *Chaudhuri, Kalyan (2016). Madhyamik History And Environment. 56, Surya Sen Street, Kolkata-700009: Oriental Book Company Pvt. Ltd. p. 54.*
- *Ackerman, Peter; DuVall, Jack (2000). A Force More Powerful: A Century of Nonviolent Conflict. Palgrave Macmillan. ISBN 978-0-312-24050-9.*

- *Gross, David M. (2014). 99 Tactics of Successful Tax Resistance Campaigns. Picket Line Press. pp. 167–68. ISBN 978-1490572741.*
- *"Bardoli peasants campaign against the Government of Bombay, 1928 | Global Nonviolent Action Database". nvdatabase.swarthmore.edu. Retrieved 2017-12-21.*
- *Valiani, A. (2011-11-11). Militant Publics in India: Physical Culture and Violence in the Making of a Modern Polity. Springer. ISBN 9780230370630.*
- *Sarkar, Sumit (1 January 2019). Modern India 1886-1947. Pearson Education India. ISBN 9789332540859*
- *Peasant Nationalists of Gujarat : Kheda District, 1917-1934* by David Hardiman
- Mark I. Lichbach, *What makes Rational Peasants Revolutionary?: Dilemma, Paradox, and Irony in Peasant Collective Action*, World Politics, Vol. 46, No. 3 (Apr., 1994), pp. 383–418
- E. J. Hobsbawm, *Peasants and politics*, Journal of Peasant Studies, Volume 1, Issue 1 October 1973, pages 3 – 22
- Marcus J. Kurtz, *Understanding peasant revolution: From concept to theory and case*, Theory and Society, Volume 29, Number 1 / February, 2000
- Henry A Landsberger, *Rural protest: peasant movements and social change*, Barnes and Noble, 1973, ISBN 0-06-494029-2
- P. McMichael, *Reframing Development: Global Peasant Movements and the New Agrarian Question*, CANADIAN JOURNAL OF DEVELOPMENT STUDIES, 2006, VOL 27; NUMB 4, pages 471-486

भगवद्गीता में निहित दर्शन

डॉ० प्रमोद कुमार सिंह

ग्राम+पो0-आलापुर, जिला-सिवान

भगवदगीता भारतीय विचारधारा का एक अत्यंत लोकप्रिय दार्शनिक, धार्मिक एवं नैतिक काव्य है। यह महाभारत के भीष्म पर्व का एक ध्वज है। वेदान्त दर्शन की 'प्रस्थानत्रयी' में इसका समादरणीय स्थात प्राप्त है, यह वेदान्त दर्शन का 'स्मृति-प्रस्थान है। डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार ''यह भारतीय विचारधारा का सबसे प्रभावशाली ग्रन्थ है। ''पाश्चात्य विचारको ने इसकी प्रशंसा करते हुए इसे (मानव धर्म) का ग्रन्थ बताया है। गीता एक नैतिक समस्या पर विचार करती है। भारतीय परम्परा महाभारत के युद्ध को घर्मयुद्ध के रूप में देखती है और कुरूक्षेत्र के मैदान को घर्मक्षेत्र कहती है। अर्जून मानव मात्र का प्रतिनिधि है। कृष्ण ज्ञानी पुरूष है, जो अर्जून के माध्यम से मानव मात्र को सावधान करता है कि वह क्षणिक आवेश में आकर कर्तव्यच्यूत न हो जाए।

ईश्वर विचार- भवगवद्गीता के ईश्वर विचार पर उपनिषदों का ब्रह्मवाद और भागवत धर्म का ईश्वर वाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भगवद्गीता इन दोनों मंत्रों का समन्वय करती है। गीता ईश्वर के रूप में एक ऐसी असीम सता में विश्वास करती है जो सभी सीमित वस्तुओ का अधारभूत तत्व है। यह अनादि अनन्त, कूटस्थ, नित्य और सर्वगुण सम्पन है। गीता का ईश्वर एक सर्वोपरि सत्ता, सर्वोच्य आत्मा या परमात्मा है जो तीनों लोको में व्याप्त है और उसे धारण करता है :-

उत्तम: पुरूषस्त्वन्य: परमात्मेंत्युदाहत:।
यो लोकत्रयमतिश्य विभर्त्यत्यय ईश्वर:।।[1]

गीता ईश्वर के दो रूप मानती है। परा और अपरा। गीता एक अन्य दृष्टि से दो रूप व्यक्त और अव्यक्त मानती है। प्रकृति एवं पुरूष ईश्वर के व्यक्त रूप है। जगत प्रवृति का परिणाम ईश्वर की अध्यक्षता में प्रकृति सम्पूर्ण चराचर जगत को उत्पन्न करती है। (यथाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम्)[2], गीता का कथन है कि जीवात्म ये भी ईश्वर का अंश विद्यमान है (मयैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:)[3]। गीता ईश्वर की शुद्व निर्गुण अव्यक्त, अनादि एवं निरवयव मानती है, यह ईश्वर का अव्यक्त रूप है। गीता की मान्यता है कि ईश्वर को व्यक्त और अव्यक्त रूपों में अव्यक्त रूप श्रेष्ठ है। अव्यक्त ईश्वर गीता का निर्गुण ब्रह्म है और व्यक्त रूप सगुण ब्रह्म। गीता ईश्वर के अवतारों में भी विश्वास करती है। जब विश्व में नैतिक और धार्मिक मूल्यों पतन होता है। अनैतिक एवं अधार्मिक मूल्यों में वृद्दि होती है, तब प्रत्येक युग में धर्म की स्थापना के लिए ईश्वर अवतरित होते है। वह अकर्त्ता होकर भी कार्य करता है। कर्म की उसकी लीला या चरित्र कहा जाता है। गीता का ईश्वर धर्म का ईश्वर है, वह लोकसंग्रह करता है, सभी मनुष्यों को कर्तव्य पथ पर लगाता है। वह घोषित करता है कि 'सब धर्मो को छोड़कर केवल मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूॅगा। शोक मत करो'।

'सर्वर्धोन्परित्यग्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षार्यष्यामि मा शुच:।।[4]

गीता का ईश्वर सृष्टिकर्ता है। वह जगत की उत्पति, स्थिति और लय का अभिन्नतिमितोंपादान कारण है। गीता में ईश्वर के अनेक स्वरूप प्राप्त होता है। यघपि वे एक ही अखण्ड चैतन्य रूप ईश्वर की विभिन्न अभिव्यक्तिया है।

मोक्ष या ईश्वर साक्षात्कार एवं उनका साधन

गीता का मुख्य उपदेश आत्मलाभ या ईश्वर साक्षात्कार है। गीता के अनुसार योगमार्ग का अवलम्बन करके ईश्वर साक्षात्कार सम्भव है। गीता के अनुसार ''योग: कर्मसुकौशलम्" (कर्म में कुशलता योग है। ''समत्वं योग उच्यते" समत्व योग है)। गीता में मुख्य रूप से ज्ञानयोग भक्तियोग एवं कर्मयोग की विस्तृत चर्चा है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने प्रतिपादित किया कि गीता में कर्मयोग (निष्काम कमयोग) ही ईश्वर साक्षात्कार हेतु सर्वोत्तम साधन है।

गीता के अनुसार ज्ञानयोग ईश्वर साक्षात्कार के सुझाए मार्गो में से एक है। यह निवृति का मार्ग है। गीता की दृष्टि में ''ज्ञान के समान पवित्र अन्य कुछ भी नही है।''[5] (न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते)। गीता भक्तों में भी 'ज्ञानी भक्त' को ही श्रेष्ठ बताती है।[6] जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि ईधन को जलाकर राख के रूप में परिणत कर देती है उसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि सभी कर्मो को जला देती है।''[7] गीता तीन प्रकार के ज्ञान का विवेचन करती है।''[8] गीता तीन प्रकार के ज्ञान का विवेचन करती है।'' तामस, राजस और सात्विक। एक ही वस्तु को सब कुछ स्वीकार करता तामस ज्ञान है। विविध प्रकार की वस्तुओं की अलग-अलग समझना राजस ज्ञान है। सभी प्राणियों एवं नानाविध वस्तुओं में एक ही अविभक्त एवं अव्यय आत्मा का ज्ञान सात्विक ज्ञान है। गीता आत्मा की अजर-अमर, कूटस्थ एवं नित्य मानती है। शरीर के विनास का भी आत्मा पर कोई प्रभाव नही पड़ता। गीता के अनुसार यथार्थ ज्ञान (सात्विक ज्ञान) एक वैराग्य परक साधना पद्धति से प्राप्त होता है। इससे अज्ञान नष्ट होता है। गीता की नजर में अज्ञान के कारण काम और क्रोध उत्पन्न होता है इसका आश्रय शरीर इन्द्रिय, मन एवं बुद्वि है। अत: इन्द्रिय, मन एवं बुद्वि को वश में करके काम तथा क्रोध को दूर करके ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। गीता के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने के लिए श्रद्वा भी आवश्यक है। चंचल इन्द्रियों तो ज्ञानी व्यक्ति के मन को भी अस्थिर करती है।

अत: विषयाकांक्षा भी सर्वनाश का कारण बनती है।[9] ज्ञानी को विषयाकांक्षा, मन एवं इन्द्रियों का दमन करना चाहिए। इन्द्रियों के दमन का तात्पर्य इन्द्रियों को वश में रखना और भौतिक पदार्थो के आकर्षण के प्रति उपेक्षा का भाव रखना है। ज्ञानी व्यक्ति जीवन के कार्यो से विमुख नही होना, वह लोक संग्रह के लिए प्रयासरत रहता है।

गीता में भक्तिमार्ग को ईश्वर साक्षात्कार हेतु सर्वसुलभ मार्ग बताया गया है। इसका अर्थ है। 'ईश्वर की उपासना में स्वयं को लगाना। यह ईश्वर के प्रति अनन्य एवं निरतिशय प्रेम है, गीता के अनुसार जो भक्त अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हुए मेरी उपासना करते है, मैं उनकी भगवान प्राप्ति और साधना की रक्षा करता हूँ। ''जो मेरी भक्ति करता है। उसका कभी विनाश नही होता'' न मे भक्त: प्रणश्यति),[10] गीता के अनुसार एक आदर्श भक्त वह है जिसमें प्रेम के साथ ज्ञान का भी प्रकाश है और वह मानव कल्याण के लिए कष्ट उठाते के लिए तत्पर रहता है। तिलक ने विष्णु पुराण से एक श्लोक उदधृत करते हुए कहते है कि ''जो व्यक्ति अपने कर्तव्य कर्मो का परित्याग करके, 'कृष्ण' नाम का जाप करते हुए बैठे रहते है वे ईश्वर के शत्रु एवं पापी है। क्योंकि स्वयं भगवान जगत में धर्म की स्थापना के लिए जन्म लेते है। गीता के अनुसार भक्तिमार्ग से भी आसान विधि प्रपतिमार्ग या ईश्वर शरणागति का मार्ग है। गीता ने मानव जाति को भक्ति एवं प्रपत्ति के रूप में ईश्वर साक्षात्कार का एक सर्वसुलभ मार्ग दिखाया।

आधुनिक युग में लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी और श्रीमती एनी वेसेंट आदि विचारको ने कर्मयोग, विशेषत: निष्काम कर्मयोग को ही गीता का मुख्य मार्ग बताया है। यह आत्मलाभ के साथ लोकसंग्रह का भी सिद्वि का साधन है। गीता में कर्म का अर्थ ''स्वधर्म'' या 'वर्णधर्म' माना गया है। कर्मयोग का अर्थ है, 'निष्ठापूर्वक अपने सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करता।' गीता यह समझती है कि कर्म मनुष्य का सहज स्वभाव है। इसकी उपेक्षा करके कोई जीवन दर्शन कभी भी रूचिकर एवं सर्वप्रिय नही ही सकता है। गीता स्वीकार करती है कि मनुष्य क्षण भर के लिए भी कर्म का परित्याग नही कर सकता (न हि कश्चित् क्षणमपि जातु निष्ठत्य कर्मकृत्)।'' समस्त लोक कर्म से बॅधा है। (लोकोऽय कर्मबन्धन:) एवं प्रकृति के सत्व, रजस एवं तमस गुण समस्त प्राणियों को विवश करके कर्म कराती है। कर्म के अभाव में शरीर का निर्वाह असम्भव है। यदि सभी लोग कर्म करता बंद कर दे तो सृष्टिचक्र ही रूक जाएगी। यह अकर्म को वैसे ही निन्दित समझती है जैसे दुस्कर्म को 1 कर्मयोग कर्म सन्यास से श्रेष्ठ है।[12] गीता के अनुसार मुक्तात्माओं का परम कर्त्तव्य हैं कि वे अपने अन्दर स्थित दैवीय शक्ति की खोजने में दूसरे की सहायता करें। क्योंकि मानव जाति की सेवा ही ईश्वर की उपासना है।[13] गीता का कर्मयोग निष्काम कर्मयोग है। हम कर्म की सदैव साध्य के रूप में देखे उसे कभी भी साधन नही बनाए। कर्म तो करें, किन्तु कर्मफल में आसक्ति न रखे। सकाम होकर कर्म करने से कर्म में आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति से आकांक्षा जन्म लेती है। आकांक्षा से क्रोध और क्रोध से मोह उत्पन्न होता है। मोह से स्मृति नष्ट होती है। स्मृति-नाश से वुद्वि नष्ट होती है और बुद्वि नष्ट होने से सब कुछ नष्ट हो जाता है।[14] गीता के अनुसार ऐसे सभी कर्मो का त्याग जो फलाकांक्षा से किए जाते है, सन्यास है तथा कर्मो के फलो का परित्याग त्याग है :-

काम्यानां कर्माणां न्यासं सन्यास कवयो विदु:।
सर्व कर्म फल त्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणा:।।[15]

गीता के अनुसार निष्काम भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त करता है। कृष्ण ने अर्जून से स्पष्ट कहा है 'हे अर्जून! तुम्हारा अधिकार केवल कर्म में है, उसके फल में कदापि नही। तु कर्मफल का हेतु भी न बनो और अकर्म में तुम्हारी आसक्ति भी नही।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफल हेतुर्भूः या ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[16]

अतः स्पष्ट है कि गीता कर्म में त्योग का उपदेश देती है। कर्म के त्योग का नहीं" गीता के अनुसार आत्मलाभ एवं लोकसंग्रह हेतु किया कर्म सकाम नही होते। इन दोनो लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया गया और ईश्वर की समर्पित कर्म वैसे ही बन्धन कारी नही होते, जैसे कीचड़ में उत्पन्न कमल कीचड़ से प्रभावित नही होता। गीता के अनुसार निष्काम कर्मयोग में कर्म करने का आदेश प्रवृत्ति का आदर्श है। इस प्रकार निष्काम कर्म प्रवृति की फलाकांक्षा और निवृत्ति की अकर्मण्यता का परित्याग है। अतः गीता में प्रवृति में निवृत्ति और निवृत्ति में प्रवृत्ति का समावेश करके दोनो में समन्वय किया जो निष्काम कर्मयोग का आदर्श है। गीता की मुख्य शिक्षा निष्काम कर्मयोग का आदेश है। गीता विभिन्न योग मार्गो का तुलनात्मक अध्ययन करके निष्काम कर्मयोग की श्रेष्ठता को स्वीकार करती है।

गीता में स्वधर्म एवं लोक संग्रह की स्थिति

गीता मानव कल्याण की एक लोकप्रिय विचारधारा है। गीता का मुख्य लक्ष्य है - ईश्वर लाभ या आत्म साक्षात्कार और लोकसंग्रह प्रथम वैयक्तिक आदर्श एवं द्वितीय सामाजिक आदर्श। गीता सभी से आग्रह करती है कि वह जगत में शाश्वत नैतिक व्यवस्था को सुढ़ृढ करे जिससे लोक संग्रह या लोककल्याण में कोई व्यवधान न हो। इसलिए गीता जहॉ तत्वमीमांसीय एवं आचारमीमांसीय सिद्वान्तों का प्रतिपादन करती है। वही दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था के सिद्वान्त का भी प्रतिपादन करती है। वह सामाजिक आदर्श के रूप में लोकसंग्रह के सिद्वान्त को प्रस्तावित करती है और इसके साधन के रूप में स्वधर्म के सिद्वांत का विधान करती है। गीता के अनुसार मुक्त पुरूष कर्म करते हुए सिद्वि प्राप्त किए है। वे लोक संग्रह हेतु इस लोक का पथ प्रदर्शन करते है। गीता के अनुसार मुक्तात्मा यघपि सामाजिक कर्त्तव्यों से मुक्त है। तथापि वे भी लोकसंग्रह हेतु संवेदनशील बने रहते है। गीता का ईश्वर स्वयं लोकसंग्रह के लिए कार्य करता है। गीता में कर्मयोग का उपदेश भी लोकसंग्रह के लिए है। गीता का स्वधर्म का सिद्वान्त अत्यंत महत्वपूर्ण है।यह समाज की धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था से सम्बंधित एवं उसका आध्यात्मिक आधार है। भारतीय विचार में धर्म एक जीवन पद्वति है। यह दो तरह का है। सामान्य एवं विशेष सामान्य धर्म मानव धर्म है। जिसमें मानव के सामान्य आचार सम्बधि सिद्वान्त है। विशेष धर्म सामाजिक व्यवस्था से सम्बधित है। इस अर्थ में गीता का स्वधर्म 'विशिष्ट धर्म' है। गीता में ऐसे कर्त्तव्यों को जो समाज में एकता लाने के लिए तथा एकता को बनाए रखने के लिए साधन स्वरूप है। स्वधर्म कहा जाता है। गीता का स्वधर्म का सिद्वान्त वर्णव्यवस्था का सिद्वान्त है। जिसका आधार शक्ति पृथक्करण का आदर्श है। गीता में प्रतिपादित वर्णव्यवस्था गुण एवं कर्म के अधीन है। जन्म के अधीन नही। श्रीकृष्ण अर्जून से स्पष्ट कहते है कि मैंने चारो वर्णो की रचना गुण और कर्म के आधार पर किया है। चातुर्वर्ण्य मया सृष्ट गुणकर्मविभागश:)[17]। गीता के अनुसार वर्णानुकूल कर्त्तव्यपालन ही स्वधर्म हे। गीता के अनुसार कर्त्तव्य पालन ही सच्ची ईश्वर पूजा है। गीता की यह मान्यता कर्मजन्म ऊच-नीच के भेद-भाव को समाप्त करती है। समाज के प्रत्येक वर्ण का कर्म समाज के लिए उपयोगी एवं मूल्यवान है। गीता का स्वधर्म का प्रतिपादन का लक्ष्य यह था कि समाज व्यवस्था एवं सृष्टि की गति अवाध रूप से चलती रहे, लोक कल्याण होता रहे तथा समाज में अधिकारों के लिए कोई संघर्ष नही। गीता के अनुसार जब विश्व में नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का पतन होता है। अनैतिक एवं अधार्मिक मूल्यों में वृद्वि होती है। प्रत्येक युग में धर्म की स्थापना के लिए सज्जनों की सुरक्षा एवं दुर्जनों के संहार के लिए ईश्वर अवतरित होते हैं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मांनं सृजाम्यहम्।।

परित्राणाय साधूनाम्ः विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।[18]

अतः लोकसंग्रह गीता का लोक कल्याण का आदर्श है।

स्थित प्रज्ञ

गीता में आत्मसाक्षात्कार या ईश्वर लाभ करते वाले व्यक्ति की स्थितप्रज्ञ कहा गया है। इसका विवेचन गीता के द्वितीय अध्याय के श्लोक 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61 में विशेष रूप से हुआ है। गीता के अनुसार स्थित प्रज्ञ वह है जिसकी प्रज्ञा या बुद्वि स्थिर हो जाती है। वह अनासक्त कार्य करता है। वह सुख और दुःख में समभाव से आचरण करता है। यद्यपि मुक्तात्मा सामाजिक

कर्त्तव्य मुक्त होते है। तथापि ये जनसाधारण के प्रति संवदेनशील बने रहते है। स्थित प्रज्ञ जन साधारण के कल्याण के लिए कार्य तो करता है किन्तु वह अपने इन कार्यो से बन्धन में नही पड़ता। उनके सभी कार्य ईश्वर की समर्पित होते है। शरीर के रहते हुए भी शरीर के घर्मो से अलग रहता है। जगत के कल्याण के लिए कर्म करना उसका स्वभाव बन जाता है। निवृत्ति का यह परिवर्तित आदर्श है। जिसमें युक्त पुरूष भी लोकल्याण के लिए कार्य करता है। हिन्दू विचारधारा की गीता की महत्वपूर्ण देने है।

भगवद्गीता की प्रासंगिकता

भारतीय विचारधारा के निर्माण में गीता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसकी विचारधारा सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक रही है। गीता की सभी उपासना पद्धतियों के साथ सहानुभूति रही है। गीता के अनुसार 'जो भक्त जिस देवता को श्रद्धा से पूजता है, मैं उसकी श्रद्धा को उसी में दृढ़ करता हूँ और वह उसी से अपने इच्छित भागों को प्राप्त करता है। श्रद्धा से युक्त होकर जो अन्य देवताओं को पूजते है वे भी मुझे ही पूजते है यद्यपि उनकी यह पूजा विधिपूर्वक नही है।[19] वर्त्तमान भारतीय परिवेश में सर्वत्र भ्रष्टाचार और अत्याचार का बोलबाला है। निष्काम कर्मयोग की उपयोगिता और बढ़ गयी है। यदि कम से कम हमारा वर्त्तमान नेतृत्व और सेवा-संवर्ग ही निष्काम भाव से योजनाओं का निर्माण एवं कार्यान्वयन करे तो लोक सेवा का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

गीता का यह कहना आज भी प्रासंगिक है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति हर कार्य नही कर सकता। अतः उसे अपनी योग्यतानुसार समाज के उत्तरदायी सदस्य की हैसियत से सामाजिक कार्यो का सम्पादन करना चाहिए। वर्त्तमान में सेवा संवर्ग के प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ श्रेणियों में विभाजन पर गीता की चातुर्वर्ण्यवस्था की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। गीता द्वारा गुण और योग्यता के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा की पहचान का संदेश आज के युग की माँग है। आधुनिक युग में जबकि लोग अपने कर्त्तव्यों को भूलकर अधिकारो के लिए लड़ रहे है। गीता द्वारा अपने वर्णगत कर्मो (स्वधर्म) के पालन का आदेश और भी समीचीन हो जाता है। लोक संग्रह, स्वधर्म तथा निष्काम कर्मयोग के सिद्धान्तो द्वारा जो स्वार्थ और परार्थ के समन्वय पर बल दिया गया, उसे आज भी कौन सा नैतिक दर्शन अस्वीकार करने का दुस्साहस करेगा।

सन्दर्भ

1. भगवदगीता 15/7।
2. 9/10
3. 15/7
4. 18/66
5. 4/38
6. 7/17
7. 4/37
8. 8/20-22
9. 2/60, 62, 63
10. 9/31
11. 3/5, 8/11
12. 5/2
13. 3/20-28
14. 2/62-63
15. 18/2
16. 2/47
17. 4/13
18. 4/7/8
19. 9/22, 23
20. डॉ राधाकृष्णन भारतीय दर्शन भाग-1

दलीय व्यवस्था के सिद्धांत

चंद्र विजय प्रकाश यादव

पीएच.डी. राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश नारायण विश्वविधालय

राजनीतिक दल का अर्थ

आधुनिक लोकतंत्र ने अपने संचालन के एक अपरिहार्य घटक के रूप में राजनीतिक दलों को जन्म दिया है। राजनीतिक दल अपने नेतृत्व व सत्ता की वैधता को उचित सिद्ध करने के लिए यथा संभव अधिक से अधिक लोगोंको अपने साथ संलिप्त करते हैं। यह राजनीति आधुनिकीकरण के तथ्य की ओर भी संकेत करते हैं। राजनीतिक दल ऐसा संगठन है जो विशिष्ट राजनीतिक विचारों और कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के लिए बनाया जाता है। इसके सदस्य समाज की समस्त या विशिष्ट समस्याओं से सरोकार रखते हैं, और उनके बारे में न्यूनाधिक एक जैसा सोचते हैं। किंतु समाजों, कार्यों में आवश्यकताओं आदि को लेकर इतनी विविधता दृष्टिगोचर होती है कि सभी राज्यों में एक जैसे दलों का पाया जाना यदि असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। माइकल कर्टिस ने तो यहाँ तक कहा है कि राजनीतिक दलों को सही रूप में परिभाषित करना बहुत कठिन है। क्योंकि दलों के संबंध में उदारवादी तथा मार्क्सवादी विचारको में तीव्र मतभेद है यहाँ तक कि एक विचारधारा के अंदर ही दलों से संबंधित कई विचारधाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन भिन्नताओं के होते हुए भी प्रत्येक राजनीतिक दल के कुछ मान्य नेता अवश्य होते हैं जो अपने समर्थकों, मतदाताओं और जनसाधारण के हृदय में स्थान बनाकर सार्वजनिक, कार्यक्रमों में उनका सहयोग प्राप्त करते हैं। सार्वजनिक नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण और कार्यान्वयन में निर्णायक या प्रभावशाली भूमिका निभाने के लिए राजनीतिक दल राजनीतिक पदों के लिए चुनाव लड़ते हैं या अपनी पसंद के उम्मीदवारों की सहायता या समर्थन करते हैं। राजनीतिक दल के तीन अनिवार्य तत्व होते है : पहला दल उन व्यक्तियों का संगठन है जो न्यूनाधिक रूप में सार्वजनिक नीति के महत्वपूर्ण बिंदुओं पर सहमत होते है। दूसरा यह ऐसा संगठन है जिसका लक्ष्य सत्ता के लिए संघर्ष में भाग लेना है तथा तीसरा यह ऐसा निकाय है जिसके सदस्य संवैधानिक (प्रजातांत्रिक) साधनों से अपनी नीतियों और कार्यक्रमों को लागू करने का सामूहिक प्रयास करते हैं।

परिभाषाएँ

विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से राजनीतिक दल की परिभाषा देने का प्रयास कया हे। माइकेल कर्टेस के अनुसार, राजनीतिक दल की सही रूप में परिभाषा प्रस्तुत करना बहुत कठिन है। कारण यह है कि इस बिन्दु पर उदारवादी तथा मार्क्सवादी लेखको के दृष्टिकोणों में तीव्र अन्तर है। यही नहीं, इंग्लैण्ड के उदारवादियों का दृष्टिकोण अमेरिका के उदारवादियों से भिन्न है। बर्क के अनुसार–"राजनीतिक दल ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो किसी राष्ट्रीय हित की पूर्ति के लिए किसी एक विशिष्ट सिद्धांत को आधार मानकर अपना संगठन करते हैं।" (संगठन सिद्धांती परिभाषा) रैने तथा कैंडेल के अनुसार–"राजनीतिक दल संगठित स्वायत्त समूह है जो सरकार की नीतियों एवं कर्मचारियों पर अंतत: नियंत्रण प्राप्त करने की आशा में चुनाव में उम्मीदवारों का नामांकन करते हैं और चुनाव लड़ते हैं।" (कार्यात्मक परिभाषा) ऐल्डर्स वेस्ड के अनुसार–"राजनीतिक दल एक शासन तंत्र या राजनीति है। यह एक सूक्ष्म राजनीतिक व्यवस्था है। इसकी एक सत्ता संरचना होती है और शक्ति नियंत्रण के विशिष्ट प्रतिमान होते हैं। इसकी प्रतिनिध्यात्मक प्रक्रिया होती है, एक निर्वाचक प्रणाली रहती है। तथा आंतरिक व्यवस्था संघर्षो का समाधान करने, गंतव्यों की व्याख्या करने और नेताओं की भर्ती की एक उपप्रक्रिया होती है। कुल मिलाकर दल एक निर्णय प्रक्रिया है।" (व्यवहारवादी परिभाषा) राबर्ट सी. बोन के अनुसार–"राजनीतिक दल व्यक्तियों का एक ऐसा संगठन है जो अपने उद्देश्यों को सरकार पर औपचारिक नियंत्रण प्राप्त करके समाज में मूल्यों के अधिकारिक वितरण में प्राथमिकता के प्रकरण बनाने का प्रयत्न करता है।"

(संरचनात्मक परिभाषा) ला पालोंबारा के अनुसार–राजनीतिक दल एक औपचारिक संगठन है जिसका स्वचेतन व प्रमुख उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों को सार्वजनिक पदों पर पहुँचना व उन पर बनाए रखना है जो अकेले या किसी से मिलकर शासनतंत्र पर नियंत्रण रखेंगे।" (यथार्थवादी परिभाषा) मैकाइवर के अनुसार–"राजनीति दल वह समुदाय है जो किसी ऐसे सिद्धांत या नीति के समर्थन के लिए संगठित हुआ है जिसे वह संवैधानिक उपायों द्वारा शासन का निर्धारक बनाने का प्रयास करता है। डब्ल्यू. बी. मुनरो के अनुसार–"सार्वजनिक प्रश्नों पर समान रूप से सोचने वाले लोगों का समूह। यह राजनीतिक जीवन की वास्तविकताओं की अपेक्षा उसके आदर्श को अधिक अभिव्यक्त करता है।" डिजरैली के अनुसार–"कुछ निश्चित सिद्धांतों का अनुकरण करने के लिए एकीकृत व्यक्तियों का समूह।" वेंजामिन कांसटैंट के अनुसार–"समान राजनीतिक सिद्धांतों में आस्था रखने वाले व्यक्तियों का समूह।" डीन और शूमैन के अनुसार–"दल हितबद्ध समूहों के लक्ष्यों को लागू करने के लिए राजनीतिक संस्थाएँ बन गए हैं।" सिग्मंड न्यूमैन के अनुसार–"राजनीतिक दल समाज के उन क्रियाशील राजनीतिक लोगों का सुनियोजित संगठन है जो सरकार की शक्ति पर नियंत्रण करना चाहते हैं एवं विभिन्न विचारधाराओं पर आधारित तत्व संबंधी उद्देश्यों पर संगठित अन्य ऐसे ही समूह के साथ सरकारों की शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रतियोगितारत रहते हैं।" लीकॉक के अनुसार–"राजनीतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं जो एक साथ मिलकर एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं उनके विचार सार्वजनिक प्रश्नों पर एक जैसे होते हैं और एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार पर अपना कब्जा जमाना चाहते हैं।" गेटेल के अनुसार–"राजनीतिक दल नागरिकों का वह समुदाय है जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करता है और अपनी मतदान की शक्ति का प्रयोग करके सरकार को नियंत्रित करना तथा अपनी सामान्य नीति की पूर्ति करना चाहता है।" गिलक्राइस्ट के अनुसार–"एक राजनीतिक दल उन नागरिकों का संगठित समूह है जिसके राजनीतिक विचार एक से होते हैं तथा जो एक राजनीतिक इकाई की तरह काम करके सरकार पर नियंत्रण करने की चेष्टा करते हैं।" जे. ए. शुम्पीटर के अनुसार–"राजनीतिक दल एक ऐसा गुट अथवा समूह है जिसके सदस्य 'सत्ता' प्राप्त करने के लिए संघर्ष और होड़ में लगे हुए हैं।" हेनरीमैन के अनुसार–"दल मनुष्य की झगड़ालू प्रकृति का तार्किक परिणाम है जो संस्थागत रूप में प्रकट होता है।" क्रोटी के अनुसार–"राजनीतिक दल औपचारिक रूप से सुसंगठित समूह है जो जनता को शिक्षित करने का कार्य करता है....जो सार्वजनिक पद के लिए लोगों को भर्ती करता है तथा उन्हें ये पद प्राप्त करने को प्रोत्साहित करता है, और जो जनता व शासकीय निर्माताओं के बीच जोड़ने वाले व्यापक संबंधों का प्रावधान करता है।" हेराल्ड लासवेल के अनुसार–"....अपने नाम के अंतर्गत चुनावों में प्रत्याशियों तथा मुद्दों को प्रस्तुत करने के संदर्भ में विशेषज्ञता रखता है।" जीन ब्लोंडेल के अनुसार–"राजनीतिक दल समूहीकरण, परंतु विशेष प्रकार का समूहीकरण होते हैं ऐसा इसलिए है क्योंकि लक्ष्य सामान्य होते हैं तथा सदस्यता खुली होती है...।"

राजनीतिक दल की विशेषताएँ

ला पालोंबारा तथा माइरन वीनर ने अपनी पुस्तक में राजनीतिक दल की निम्न विशेषताएँ बताई है जिसके अनुसार पहला संगठन की निरंतरता अर्थात् ऐसा संगठन जिसका अस्तित्व उसके मौजूदा नेताओं के जीवन काल पर आश्रित नहीं हो अपितु वह निरंतर चलते रहने वाला संगठन हो। दूसरा स्थानीय स्तर पर प्रकट और संभवत: स्थाई रूप से संगठित हो तथा क्षेत्रीय और राष्ट्रीय निकायों के बीच नियमित संप्रेषण और अन्य संबंध हो। तीसरा क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय दोनों ही पर नेताओं का न केवल सत्ता को प्रभावित करने वरन् सत्ता प्राप्त करने और अकेले या किसी अन्य दल से मिलकर निर्णय करने की सत्ता बनाए रखने का स्वचेतन संकल्प हो। (यह एक ऐसा लक्षण है जिससे राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत अन्य गुटों से राजनीतिक दलों का भेद किया जा सकता है तथा चौथा संगठन चुनावों में अपना समर्थन जुटाने के लिए प्रयत्नशील हों।

राजनीतिक दलों के स्रोत और निर्धारक तत्व

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि राजनीतिक दलों की आवश्यकता क्यों पड़ती है ? उनका जन्म क्यों होता है ? तथा कौन सी घटनाएँ और क्रियाएँ आदि उनका चरित्र निर्धारित करती है ? इन सबको जानने के लिए हमें निम्न घटकों पर नजर डालनी होगी :

1. मानव प्रकृति : राजनीतिक दलों की उत्पति का पहला कारण मनोविज्ञान के क्षेत्र में खोजा जाना चाहिए। सबसे पहले हमें यह ध्यान देना चाहिए कि मानव का स्वभाव और उसकी प्रकृति कैसी है ? भिन्न-भिन्न मानव भिन्न-भिन्न स्वभाव और प्रकृति के होते हैं। परिणाम स्वरूप उनके द्वारा निर्मित दल भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। हेनरी मेन का मत है कि, "संभवत: जनभावना व्यक्तियों तथा व्यक्तियों के बीच बौद्धिक मतभेदों का परिणाम होने की अपेक्षा मानव जाति की आदि-कालीन संघर्ष पूर्ण प्रवृत्ति का कहीं अधिक जीवित रूप है।"

2. धर्म संप्रदाय संबंधी भावनाएँ : लोग अपनी धार्मिक या साम्प्रदायिक व्यवस्था से बहुत तीव्र लगाव रखते हैं। सभी मनुष्य अपनी धार्मिक तथा साम्प्रदायिक भावनाओं से ओत-प्रोत रहते हैं और संप्रदायों तथा धर्मों के भिन्न-भिन्न होने से राजनीतिक दल भी भिन्न प्रकार के उत्पन्न होते हैं – उदाहरण के लिए बौद्धों ने जापान में 'सौक्का अकाई' दल का निर्माण किया, स्विट्जरलैंड में क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक दल, भारत में हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, शिरोमणि अकाली दल आदि धार्मिक संप्रदायों की श्रेणी में आते हैं। इसी प्रकार द्रविड़ मुनेत्र कणगम (डी.एम.के.), मिजो नेशनल फ्रंट और झारखंड दल आदि सम्प्रदायी दलों की श्रेणी में रखे जाते है। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में धर्म तथा संप्रदाय पर आधारित दलों को विघटनकारी दलों की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि ये दल मानव कटुता और द्वेष की भावना को जन्म देते हैं। सी.ए.बीयर्ड ने कहा है कि "सभी प्रकार के नेताओं में सब से अधिक बुद्धिमानों ने राजनीतिक वाद-विवादों तथा अभियानों में धार्मिक विवादों को सम्मलित करने की निंदा की है।"
3. परिवेश : परिवेश संबंधी घटक भी लोगों को दल बनाने अथवा किसी विशेष दल में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करते हैं। जिस प्रकार धर्म और संप्रदाय का मानव मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार परिवेश भी उसे प्रभावित करता है। परिवेश का ही कारण है कि संयुक्त राज्य अमरीका में आयरिश मूल के लोग परंपरागत रूप से डेमोक्रेटिक पार्टी की ओर अपना लगाव रखते हैं, जबकि जर्मन मूल के लोग रिपब्लिक पार्टी की ओर। क्योंकि एलेन बॉल के शब्दों में "निःसंदेह समाज तथा राजनीतिक संस्कृति में विद्यमान अभिवृत्तियाँ व मूल्य उस समाज में उत्पन्न होने वाले राजनीतिक दलों का रूप निर्धारित करने में प्रबल महत्व रखती है।"
4. आर्थिक हित : आर्थिक हित इनमें सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण घटक है। जब से समाज का निर्माण हुआ तभी से व्यक्ति के साथ आर्थिक हित जुड़ गए। धीरे-धीरे मनुष्यों ने आर्थिक हितों के आधार पर ही दलों का निर्माण शुरू कर दिया। हेलकोंब ने कहा है कि "राष्ट्रीय दलों को क्षणिक आवेग या अस्थाई आवश्यकताएँ जीवित नहीं रख सकतीं। उन्हें स्थाई अनुभागीय हितों और सबसे बढ़कर आर्थिक स्वभाव के हितों पर आधारित होना चाहिए।"
5. विचारधारा : आर्थिक हितों के टकराव के यथार्थ का और अधिक अध्ययन विचारधारा के घटक के संदर्भ में किया जा सकता है। विचारधारा का राजनीतिक दलों के निर्माण तथा उनकी कार्यविधि पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है जैसे इटली और जर्मनी में फासी और नाजी विचारधारा के आधार पर दलों का निर्माण हुआ। आइवर जेनिग्स ने राजनीतिक दलों के लिए विचारधारा के महत्व को बताते हुए कहा कि, "जो घटक विचार के विषय नहीं है उन पर आधारित राजनीतिक दल बहुत बड़े खतरे है।"

राजनीतिक दलों के अध्ययन, उपागम

राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिए राजनीतिक दल, एक महत्वपूर्ण और आवश्यक लक्षण हैं। बीसवीं शताब्दी में राजनीतिक दलों की हर प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था में केंद्रीय भूमिका बन गई है। उदार लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में एक से अधिक राजनीतिक दल होते है और ये दल राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए एक-दूसरे के साथ स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। डब्ल्यू. बी. मुनरों ने कहा है, "स्वतंत्र राजनीतिक दलों का शासन लोकतंत्रीय शासन का ही दूसरा नाम है। जहाँ अनेक राजनीतिक दल नहीं रहे, वहाँ स्वतंत्र शासन कभी नहीं रहा।" अत: भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों के होने के कारण उनके अध्ययन के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टि कोणों की आवश्यकता पड़ती है। पहले कई विद्वानों ने राजनीतिक दलों का परंपरागत दृष्टिकोणों से अध्ययन करना शुरू किया किंतु बढ़ते हुए परिवर्तन और विविधताओं ने नए-नए दृष्टिकोण अपनाने के लिए विद्वानों को प्रेरित किया। आधुनिक काल में मुख्यत: दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं जिनके द्वारा राजनीतिक दलों का अध्ययन किया जा रहा है :

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम : राजनीतिक दल इस उपागम में किसी राजनीतिक व्यवस्था में जो कार्य करते हैं उन्हीं कार्यो के आधार पर दलों का वर्गीकरण किया जाता है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का मत है कि दलों की संरचनाओं व उनकी गतिविधियों में सावयवी संबंध होता है तथा यह सब राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति के साथ गठबंधित होता है। इस प्रकार यह दृष्टिकोण संरचनाओं को गतिविधियों में रूपांतरित मानकर ही दलों का अध्ययन करने पर जोर देता है। इसलिए दलों के इस अध्ययन दृष्टिकोण को यथार्थवादी या व्यवहारवादी कहा गया है।

व्यवस्था उपागम : राजनीतिक दलों को इस उपागम में व्यवस्था का अभिन्न अंग मानकर चला जाता है तथा इन्हें राजनीतिक व्यवस्था की प्रक्रियात्मक अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण प्रेरक माना जाता है। ईस्टन तथा आमंड ने जिन 'रूपांतर कार्यों' की चर्चा की है उन्हें करने का काम प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दल ही करते हैं। क्योंकि इन्हीं के द्वारा माँगों और समर्थनों का विशिष्ट सरकारी नीतियों में रूपांतरण होता है। इस दृष्टिकोण में राजनीतिक दलों की प्रकृति से कहीं अधिक राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति से नियमित होने के कारण राजनीतिक दलों के अध्ययन में इनकी राजनीतिक व्यवस्था से पारस्परिकता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

राजनीतिक दलों की उत्पत्ति

राजनीतिक व्यवस्था मं राजनीतिक दल ऐसे समूह हैं जिनकी उत्पत्ति आधुनिक और आधुनिकता की ओर उन्मुख राजनीतिक व्यवस्थाओं में छुपी है। इन्हें राजनीतिक आधुनिकता की संतान और उत्प्रेरक दोनों ही कहा जाता है। ला पालोंबारा और माइनस वीनर ने दलों की उत्पत्ति के बारे में कहा है कि, "जब राजनीतिक व्यवस्था की गतिविधियाँ अधिक जटिल अथवा पेचीदी हो जाती हैं या राजनीतिक सत्ता की धारणा में जब यह विचार भी सम्मिलित हो जाता है कि जनता उसमें सहभागी हो या उससे नियंत्रित की जाए तब राजनीतिक दल का उदय होता है।" ला पालोंबारा और बीनर ने दलों की उत्पत्ति के संबंध में तीन सिद्धांतों का उल्लेख किया है :

1. संस्थात्मक सिद्धांत : इस सिद्धांत के अनुसार राजनीतिक दल, राजनीतिक व्यवस्था के संस्थात्मक परिवेश से उत्पन्न होते है। पीटर मर्कल ने अपनी पुस्तक 'Modern Comparative Politics' में राजनीतिक दलों की उत्पत्ति के संस्थात्मक सिद्धांतों में तीन संरचनाओं का उल्लेख किया है तथा बताया हैं कि ये संरचनाएँ दलों की उत्पत्ति की प्रेरक और उनमें विविधता के लिए उत्तरदायी हैं। ये संरचनाएँ निम्न हैं :

   (i) संसद : निर्णय प्रक्रिया संसदों में बहुमत पर आधारित होती है। इस कारण यहाँ शीघ्र ही प्रतिनिधि दो गुटों में बंट जाते है और यही गुट धीरे-धीरे दलों का रूप ले लेते हे। डुवर्जर ने अपनी पुस्तक 'Political Parties' में दलों के इस प्रकार से उत्पन्न होने को 'आतरिक उत्पत्ति' कहा है तथा इन्हें बाहर से उत्पन्न होने वाले दलों की बजाय अधिक प्रचलित माना है। ब्रिटेन और फ्रांस में राजनीतिक दल, विस्तृत होते हुए मताधिकार के समय की गोद में जन्मे।

   (ii) संस्थात्मक सत्ता का बिखराव : संघात्मक शासन व्यवस्थाओं में राजनीतिक शक्ति का विभाजन या राजनीतिक शक्ति का पृथक्कत्व प्रादेशिक दलों की उत्पत्ति की प्रेरणा देता है। शक्तियों के पृथक्करण से कार्यपालिका और व्यवस्थापिकाओं में बहुमत बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा ये अपना कार्यकाल स्वतंत्रता पूर्वक पूरा कर लेती है। ऐसी स्थिति में दलों को अपनी विशेष प्रकृति विकसित करने में सहायता मिलती है। परिणाम स्वरूप दलों की उत्पत्ति व प्रकृति भिन्न-भिन्न हो जाती है। अमेरिका, फ्रांस, कनाडा, पश्चिम जर्मनी व भारत में दलों की प्रकृति में व्याप्त अंतर इसकी पुष्टि करते हैं।

   (iii) निर्वाचन प्रणालियाँ : निर्वाचन पद्धति तथा दल व्यवस्था में प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में घनिष्ठ संबंध होता है। निर्वाचन प्रणाली के परिवर्तित होने से दल व्यवस्था की प्रकृति में भी परिवर्तन हो जाता है। डुवर्जर ने अपनी पुस्तक 'Political Parties' में निर्वाचन प्रणालियों और दलीय पद्धति में घनिष्ठ संबंध दर्शाया है।

1. ऐतिहासिक संकट का सिद्धांत : राज्य जब में उथल-पुथल और संकट ग्रस्त परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं तो इनका सामना करने के लिए राजनीतिक दल उत्पन्न होते हैं। ला पालोंबारा, माइनर वीनर, लिप्सेट और रोकन का मानना है कि ऐतिहासिक संकटों ने राजनीतिक दलों की उत्पत्ति के लिए हमेशा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ला पालोंबारा एवं बीनर ने राजनीतिक दलों की उत्पत्ति के लिए तीन प्रकार के संकटों को प्रमुख माना है–(i) वैधता का संकट, (ii) सहभागिता का संकट, (iii) प्रादेशिक एकीकरण का संकट। ला पालोंबारा ने अपनी पुस्तक में इन संकटों को 'राष्ट्र निर्माण के संकट' कहा है।
2. विकासवादी सिद्धांत : औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप, आधुनिक युग में औद्योगीकरण का जन्म हुआ, जिससे शहरीकरण का विकास हुआ और जन आधारित संगठन बनकर जन सहभागिता की माँग करने लगे। यही जन संगठन सहभागिता की माँग पूरी करने के लिए दलों का रूप धारण कर लेते हैं। उदाहरण के लिए भारत में कांग्रेस, स्वतंत्र पार्टी और भारतीय साम्यवादी दल (CPI) का जन्म इसी प्रकार हुआ है।

संदर्भ

1. वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन: सिद्धांत और पद्धतियां – विद्युत चक्रवर्ती
2. भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि – किशन पटनायक
3. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति-अवधारणा, सिद्धांत तथा मुद्दे – रुमकी बसु
4. राजनीति विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत – स्त्रीप्रकाश मनी त्रिपाठी
5. संविधान एवं राजव्यवस्था – शीलवंत सिंह
6. समाज, राजनीति और धर्म दर्शन – राजेन्द्र
7. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति – डॉ. जे.सी. जोहरी
8. भारत में राज्य, लोकतंत्र और आतंक विरोधी कानून – उज्वल कुमार सिंह
9. भारतीय प्रशासन: विकास एवं पद्धति – विद्युत चक्रवर्ती/प्रकाश चंद
10. संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा – उमेद सिंह
11. 21वीं शताब्दी में लोक प्रशासक – अशोक कुमार दुबे
12. राजनीति विज्ञान के मूल सिद्धांत – राघुवीर सिंह
13. प्राचीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक अवधारणा – उपेन्द्र सिंह चौहान
14. भारत की राज्यव्यवस्था – लक्ष्मीकांत
15. पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास – विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
16. भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष – सी.वाई. चिंतामणि
17. राजनीति विज्ञान के संस्थागत आधार – राजेश कुमार चौहान
18. भारत की विदेश नीति – वी एन. खन्ना
19. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांत – अजय कुमार

अधीतकालीन अर्थ संयोजन (ई.पू. 600–ई.पू. 200 तक)

संतोष कुमार शर्मा

शोध छात्र, इतिहास विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

अधीतकालीन अर्थ संयोजन अपने द्रुतगामी लेकिन बुनियादी परिवर्तनों के लिहाज से तो विशिष्ट है ही उपयोगिता एवं व्यापकता के मद्देनजर भी इसके निर्णायक दखल को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। जहाँ एक ओर यह क्रान्तिकारी परिवर्तनों के साथ प्रयाण करती है वहीं दूसरी ओर कुछ नए आयाम, कुछ नए प्रश्न भी प्रक्षिप्त करती है। कुछ तो इतिहास के स्वाभाविक विकासक्रम के तहत और बहुत कुछ मानवीय मेधा के अमन्द उन्नयन के फलस्वरूप विशिष्ट बन बैठी आलोच्य कालावधि की अनोखी अर्थ संरचना के उत्प्रेरक तत्व कई हैं, मसलन–लौह तकनीक का कृषि में अनुप्रयोग, मध्य गंगाघाटी में शहरों का अभ्युदय एवं विकास, विविध हस्त शिल्पों का बड़े तफसील में सूक्ष्मतम विभाजन, व्यावसायिक संघो-श्रेणी संगठनों का विकास, मुद्रा अर्थ व्यवस्था, उद्योग धन्धे तथा व्यापार एवं वाणिज्य।

महान् मौर्यों का अभ्युद्य इस विशिष्ट कालावधि की अति विशिष्ट परिघटना थी। अर्थ व्यवस्था में एक नई चीज का अनुभव किया जाने लगा और वह था राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था और उसका सुचारू प्रशासनिक नियमन। विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में राजकीय समर्थन से एक उछाल सा आया। अर्थार्जन की हर संभावना को तालाश गया। लगभग सभी वस्तुओं पर कराधान राजस्व की वृद्धि में सहायक हुआ।

खानाबदोश चारागाही अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था में रूपान्तरित हो चली थी। महज निर्वाह वाली अर्थव्यवस्था, अधिशेष और उपभोग की अर्थव्यवस्था हो गई। लौह तकनीक ने विविध शिल्पकारों की दक्षता एवं कार्य क्षमता दोनों को बढ़ावा दिया। शिल्पियों की तकनीकी दक्षता से किसानों की पैदावार को बढ़ावा मिला। इस अधिशेष ने उपभोक्ता वर्ग को स्थापित कर दिया। कारीगरों को उनकी दक्षता एवं कला का मूल्य मिलने लगा था और वह भी मुद्रा के रूप में। मुद्राओं के प्रचलन ने लेन-देन को काफी सुगम बना दिया जिससे व्यापारिक गतिविधियों को बहुत बढ़ावा मिला। बड़े भू-भाग पर एक केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था से आवागमन सुगम हुआ होगा एवं आन्तरिक तथा वाह्य व्यापारिक सिलसिले शुरू हुए होंगे।

नगरीकरण के लिए एक आधारभूत संरचना विकसित हो चुकी थी और प्रो. रामशरण शर्मा ने अपने वैदुष्य विवेचन में पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों के तर्क पूर्ण समायोजन से आलोच्य कालावधि में नगरों के अस्तित्व को एक ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध कर दिया है।[1]

आर्थिक क्षेत्र में हुए इन परिवर्तनों ने तत्कालीन सामाजिक संगठन को भी कुछ सर्वथा नई भंगिमाओं से लैस कर दिया।[3] समृद्धि एवं ऐश्वर्य का ग्राफ जहाँ उच्चतम बिन्दुओं को दर्शा रहा था वहीं निर्धनता एवं गरीबी भी उसी ग्राफ में निम्नतम बिन्दुओं को प्रदर्शित कर रही थी।[4]

अधीत कालीन अर्थ संजोजन को अध्ययन की सुविधा के लिहाज से एवं अवश्य ही बेहतर समझ एवं उसकी तर्क संगत व्याख्या के लिए मौर्य पूर्व यानी 600 ई पू. से 322 ई. पू. एवं मौर्ययुगीन यानी 322 ई. पू. से 200 ई. पू. के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

इसके विभिन्न अवयवों की गहन गवेषणां एवं विस्तृत विवेचन के क्रम में सबसे पहले पड़ताल होगी कृषि एवं तत्सम्बन्धी विविध गतिविधियों की। आलोच्य कालावधि में लोगों की बहुसंख्या जीविकोपार्जन हेतु कृषि पर आश्रित थी। बौद्ध विनय में कृषि को उत्कृष्ट व्यवसायों में उत्कृष्टतम् माना गया है।[5] परन्तु यह उत्कृष्टतम व्यवसाय भी भूमि के बिना तो ही नहीं सकता था, अत: सबसे पहले तो भूमि स्वामित्व की प्रकृति पर विचार आवश्यक प्रतीत होता है कि आखिर भूमि किसके अधीन थी और उस पर स्वामित्व निर्धारण का मानक क्या था?

वस्तुत: यह विषय बड़ा विवादित है। कुछ विचारक राजा के स्वत्व को स्थापित करते हैं तो कुछ व्यक्ति के स्वत्व का महत्व देते प्रतीत होते हैं। वी.ए. स्मिथ[6] जे. एन. समद्दर[7] तथा व्यूलर[8] इत्यादि ने भू-स्वामित्व के प्रसंग पर विचार करते हुए भूमि पर राजा के स्वामित्व का अभिनिश्चयन किया है। परन्तु विद्वानों का एक बड़ा वर्ग[9] भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की अवधारणा के साथ खड़ा प्रतीत होता है, जो अध्येय युग में भी भू-अवधारणा की प्रचलित पद्धति प्रतीत होती है[10]। पालिमहावग्ग का एक उद्धरण तो बड़े स्पष्ट शब्दों में अभिव्यंजित करता है कि भूमि भी पशु अथवा धन की तरह व्यक्तिगत सम्पत्ति है एवं इसका स्वामी कोई भी स्त्री अथवा पुरुष हो सकता है[11] विनय पिटक से यह स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्य कालावधि में भूमि बेची या गिरवी रखी जा सकती थी।[12]

आम्रपाली ने अपनी वाटिका बौद्ध संघ को दान स्वरूप दे दिया था।[13] गौतम ने भी स्पष्ट किया है कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु का स्वामी क्रय-विक्रय, दाय स्वरूप प्राप्ति, बंटवारा, अभिग्रहण इत्यादि के आधार पर होता है।[14] राजकुमार जेत तथा राजगृह के श्रेष्ठी के मध्य उठा वह प्रसिद्ध विवाद जो जेतनवन के क्रय-विक्रय को लेकर उत्पन्न हुआ था, प्रकारान्तर से भूमि पर व्यक्ति के स्वत्व की कानूनी मुहर प्रतीत होता है।[15] उपरोक्त स्थितियों का अवलोकन इस तथ्य में संदेह की संभावना ही नहीं रहने देता कि बुद्धकालीन भारत या कहें मौर्य पूर्व उत्तरी भारत में भूमि पर व्यक्तिगत स्वत्व की अवधारणा एक आम हकीकत थी।

अब मौर्य युग में भू-स्वामित्व की संकल्पना की शल्य क्रिया के अन्तर्गत मेगस्थनीज के इस विवादस्पद कथन को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया है कि राजा भूमि का स्वामी होता था,[16] क्योंकि अन्य साक्ष्यों के आलोक में इतना भर ही अनुमित किया जा सका कि राजा भूमि का मालिक नहीं अपितु संरक्षक मात्र था[17] और वार्षिक कर के रूप में उपज का एक निश्चित भाग प्राप्त करता था।[18]

सच तो यह है कि मौर्य साम्राज्य इतना विस्तृत था कि भूमि पर मिल्कियत की कोई भी एक विधि सर्वत्र नहीं पाई जा सकती थी। फिर भी व्यक्तिगत स्वामित्व की अवधारणा बलवती एवं सुप्रचलित प्रतीत होती है। कौटिल्य ने भूमि की बिक्री से उत्पन्न विवादों के हवाले से भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की अभिव्यंजना की है। एक व्यक्ति द्वारा खेत के स्वामी की अनुमति के बिना उस खेत विशेष से पशु लेकर जाने का उद्धरण आया है।[19] सीमा निर्धारण को लेकर उपजे विवादों का अगर विवरण है[20] तो जबरन किसी के खेत के अधिग्रहण पर दण्ड का भी विधान है।[21] मनु महाराज भी खेत उसी का मानते हैं जिसने उसे खेती के योग्य बनाया।[22]

एक अवलोकन इस बात का भी उचित या कहें प्रसंगोचित प्रतीत होता है[23] कि कौटिल्य और मनु जैसे राजतंत्र के समर्थक और साम्राज्यवादी सिद्धान्तों के पोषक विचारक व्यक्ति के स्वत्व की बात कैसे करने लगे। जहां एक तरफ कौटिल्य ने[24] राजा के भूमि पर स्वामित्व की उद्घोषणाएं की हैं तो मनु ने भी कोई कोर कसर नहीं छोड़ी है।[25] परन्तु ये तथ्य कुछ विश्लेषण की मांग कर रहे हैं। कौटिल्य ने कहा है कि जो व्यक्ति खेती करने में अक्षम हो राजा को चाहिए कि उनके खेत जब्त कर लें।[26] इसमें भी प्रथम अधिकार व्यक्ति के स्वत्व का ही अवबोधक है। यदि वह अक्षम हैं, तब राजा का अधिकार बनता है। अन्यत्र भी कौटिल्य ने राजा को स्तत्व तभी प्रदान किया है जब या तो वाद-विवाद के चलते या वंशजों के न होने की स्थिति में कोई जमीन परती रह जाने की संभावना रहती रही हो।[27]

कौटिल्य की मंशा अधिकाधिक राजस्व की उगाही थी जिससे इतनी विशाल राजशाही निर्वाध चलती रहे। उसने भूमि पर व्यक्ति के स्तत्व को बढ़ावा दिया ताकि किसान अधिक उत्पादन के लिए उत्प्रेरित हों परन्तु किसी भी स्थिति में भूमि खाली न रहे इसलिए एक कृषि अधीक्षक के निरीक्षण में ऐसी भूमि पर भी खेती को बढ़ावा दिया जो राज्य द्वारा अधिग्रहीत की जाती थी। वस्तुत: यह अर्थ व्यवस्था में कृषि के महत्व का अभिद्योतन तो है ही, कृषि की अधिकतम संभावनाओं की खोज एवं उनके अधिकतम दोहान की सुचारू सुव्यवस्था भी है।

अब कृषि योग्य भूमि के वर्गीकरण की विवेचना वाजिब होगी क्योंकि जब कृषि की महत्ता इतनी अधिक बढ़ चुकी थी तो उसक वर्गीकरण एवं उसके प्रकारों पर भी ध्यान दिया जाता रहा होगा। पालिविनय के एक दृष्टान्त में 'जाता पथवी' और 'अजाता पथवी' यानी उपजाऊ और अनुपजाऊ भूमि के रूप में वर्गीकरण प्राप्त होता है।[28]

एक सुत्त में खेत के तीन प्रकारों की चर्चा है-1 उत्कृष्ट, 2. मध्यश्रेणी के 3. निम्न श्रेणी के, जो संभवत: जंगल या ऊसर रहा होगा। भिक्षुओं की तुलना उत्कृष्ट श्रेणी के खेत से, उपासकों की मध्यम श्रेणी से एवं अन्य धर्मानुयायियों की तुलना तीसरी श्रेणी यानी निम्नतम कोटि के खेत से की गई है।[29] खेत सुत्त में[30] आठ अच्छे प्रकार के खेतों का विवरण है तो आठ कम उपजाऊ श्रेणियां भी वर्णित हैं।[31]

वह भूमि जो पथरीली रेतीली न हो तथा जिसमें सिंचाई सुलभ हो, वह अच्छी एवं उपजाऊ भूमि मानी जाी थी।[32] एवं इसके विपरीत भूमि अनुपजाऊ मानी जाती रही होगी। खेतों के आकार प्रकार सुविधानुसार निर्धारित किए जाते रहे होंगे। उन पर मेड़ बांधी जाती थी। इससे जहां सीमांकन आसान हो जाता रहा होगा वही सिंचाई की सुविधा भी बढ़ जाती रही होगी। उपरोक्त तथ्यों के मद्देनजर यह अनुमानित होता है कि कृषि योग्य भूमि छोटे-छोटे खेतों में बंटी रहती होगी क्योंकि सुविधा इस तरह इस समय भी है और उस भी रही होगी।[33] हां, फसलों के आधार पर खेतों की पहचान की परम्परा दृष्टिगोचर होती है क्योंकि विनय में[34] 'यवखेत्त, (जिस खेत में यव बोया गया हो) एवं 'सालिखेत्त' (जिसमं सालि बोया गया हो) का उल्लेख तो आता ही है पाणिनि[35] ने भी व्रैहैय (एक तरह का चावल 'ब्रीहि' जिसमे बोया गया हो) शालेय, (शालि का खेत) यव्य इत्यादि का जिक्र किया है।

अब आलोच्य कालावधि में कृषि के स्वरूप उसकी प्रक्रिया, प्रविधि एवं उपकरणों का लेखा जोखा उपादेय ही नहीं अपितु आवश्यक भी प्रतीत होता है। ताकि यह पता चले कि कैसे प्राविधिक शक्तियों के विकास ने कृषि के स्वरूप को प्रभावित किया, उत्पादन बढ़ा कर अधिशेष एवं उपभोग की अर्थव्यवस्था का सूत्रपात किया।

अपने पूर्ववर्ती काल की तुलना में बुद्ध का काल यानी मौर्य पूर्व काल कृषि क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि का काल है। चुल्लवग्ग के हवाले से प्रो.जी.एस.पी मिश्र[36] कृषि प्रक्रिया के सिलसिले वार व्यौरा का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। पाणिनि ने भी कृषि कार्यों का काफी तफसील में जाकर विवरण प्रस्तुत किया है।[37] गृहय सूत्रों में कृषि तथा पंशुपालन की वृद्धि सुरक्षा तथा संरक्षा के निमित्त कई यज्ञों के प्रतिपादन का विधान दिया गया है।[38]

सर्वप्रथम खेतों की जुताई का विवरण आता है। पाणिनी खेतों के दो या तीन बार जोते जाने की बात कहते है और इस कार्य के लिए 'हल' को व्यवहृत बताते हैं[39]। हल के लिए 'लांगल' शब्द का प्रयोग हम वैदिक काल में देख-जान चुके हैं।[50] और पालि बौद्ध ग्रन्थों में हल के लिए 'हल' शब्द के अतिरिक्त 'सीर' का भी प्रयोग किया है[42]। हल की फाल निश्चित ही लोहे की बनी रहती होगी।[43] लोहे के हल के फाल के विकल्प के तौर पर 'कुद्याल' अथवा फावड़ा भी प्रयुक्त होता रहा होगा।[44] इन उदाहरणों से यह निष्कर्षित होता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में जुताई के प्रति विशेष सावधानी बरती जाती थी और जैसा कि डॉ.वी.एस. अग्रवाल ने पाणिनी मेगस्थनीज और कौटिल्य का हवाला देते हुए स्थापित भी किया है कि जुताई तीन बार, सात बार या इससे भी अधिक बार की जाती थी।[45]

हल खीचने के लिए बैलों का जोड़ा उपयोग में लाया जाता था।[46] आज भी कृषि-प्रौघोगिकी की इतनी प्रगति के बावजूद व्यापक रूप से बैलों द्वारा ही जुताई होती है और तब तो कृषि कार्यो में पशुओं का उपयोग अपने आप में उच्च तकनीक का प्रवर्तन था। खेत जोतने के क्रम में हल के द्वारा धरती पर पड़ी लकीरों 'हराई' के लिए 'सीता' शब्द का व्यवहार होता था।[47]

अच्छी तरह से जुताई के बाद तैयार खेत में बीज-बपन होता था। विनय की टीका करते हुए बुद्धघोष ने 'उदकवप्प' तथा 'थूलवप्प' नामक बोवाई की दो विधियाँ भी बताई है।[48] प्रथम प्रकार जलमग्न खेत में बोआई से तो दूसरा सूखे खेत में बोआई से सम्बद्ध प्रतीत होता है। बोवाई के काम में स्त्रियों की भी भागीदारी होती थी[49] जो सम्भवत: निम्न वर्णों की ही होती रही होगी जिनके पतियों को भी कृषि कार्य में नियोजित किया गया रहा होगा[50] बीजों की भी कम से कम पांच कोटिया निर्धारित पाये हैं,[51] 'मूल बीज', जड़ का बीच के रूप में प्रयोग, 'खंधबीज' या 'स्कन्ध' बीज जिसमें तना बोया जाता था, 'फलबीज' जिसमें जोड़ों को बोया जाता था, 'बीज बीज' जिसमें बीज का ही बपन होता था।

आलोच्य कालावधि में कृषि के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण विकास था धान रोपने की पद्धति का प्रर्वतन।[52] प्रारम्भिक पालिग्रन्थों के आधार पर धान की रोपाई को ई.पू. 500 के आस-पास प्रचलित हुआ माना जा सकता है, क्योंकि धान की रोपाई के सम्बद्ध कई

शब्द तत्कालीन पालि ग्रन्थों में खोजे जा सकते हैं।[53] एक और पालि शब्द 'बीजनि पतिट्ठापोत्ति' स्पष्टत: पौधों की रोपाई अभिव्यंजित करता है।[54]

वैदिक शब्द 'व्रीहि' और वैदिकोत्तर शब्द 'शालि' के मध्य अन्तर को स्पष्ट करते हुए[55] यह स्थापना उचित ही प्रतीत होती है कि 'व्रीहि' बिन रोपाई के तथा 'शालि' को रोपवा. पद्धति से उगाया जाता था।[56] इस तथ्य में संदेह तो नहीं ही प्रतीत होता कि आलोच्य कालावधि में रोपाई की विधि सुप्रचलित थी। केले की रोपाई के भी साक्ष्य मिलते हैं।[57] श्वेतांवर जैन ग्रंथ 'नायाधम्म कहाओं[58] में धान की रोपाई को प्रदर्शित करने वाला वाक्यांश 'उक्खायणिहये' जिसका शाब्दिक अर्थ है 'उखाड़ना और रोपना' के आधार पर प्रो. शर्मा[59] रोपवाँ पद्धति के प्रचलन में एक और मजबूत तर्क पेश करते हैं। चूंकि रोपवाँ पद्धति से उपज में गुणात्मक वृद्धि होती है अत: इस विधि के प्रर्वतक को काफी महत्व दिया गया।

कृषि उत्पादों में धान के अतिरिक्त हम जौ को एक प्रमुख फसल के रूप में चर्चित पाते हैं।[60] बाजरा, चना, मटर, मूँग, उर्द, शालि, व्रीहि, तण्डुल, ईख, नारियल इत्यादि भी उपजाया जाता था।[61] आम, सेब, जम्बूफल, अंजीर, अंगूर, केला, खजूर जैसे कई फल उगाए जाते थे।[62] मिर्च, अदरक, राई, लहसुन, जीरा इत्यादि की भी खेती प्रचलित थी।[63] हाँ, गोधूम अथवा गेहूँ इस समय तक कृषि उत्पादों में कोई महत्वपूर्ण स्थान रखता नहीं प्रतीत होता।[64]

फसलों के पक जाने पर उसे 'असिएहि'[65] से काटकर 'खलमण्डल'[66] यानी खलिहान में लाते थे एवं तत्पश्चात् 'सुप्पकत्त'[67] से साफ करते थे।

तिल का प्रयोग कई कामों में होता था। खाद्य व्यंजन बनाने एवं तिल का तेल निकालने में[68] तो जौ और चावल के साथ धार्मिक कार्यों में तिल का उपयोग[69] उसे एक महत्वपूर्ण फसल बना देता है।

प्रो. जी.एस.पी मिश्र तत्कालीन जन जीवन में सरसों एवं एरण्ड के तेलों का प्रयोग भी स्वीकार करते हैं एवं दीपक जलाने तथा भित्ति चित्रों के निर्माण में उसे उपयोगी भी बनाते हैं।[70]

चूँकि भारत के वस्त्र उद्योग की अपनी ख्याति रही है अत: तत्सम्बन्धी उत्पादन भी अवश्य होता रहा होगा जैसे कपास के अलावे 'खोम' जिसे अलसी भी कहा जाता था, साण (सान) एंव भंग (मांग) इत्यादि रूई प्रदान करने वाले अन्य पौधे भी थे जिनसे वस्त्रों के निर्माण में सहायता मिलती थी।[71] प्रो. मिश्रा स्पष्ट करते हैं कि पालि विनय में 'रूक्खतूल' का उल्लेख सेमल के वृक्ष से प्राप्त कपास से सन्दर्भित है।[72]

इस काल की एक और विशिष्टता नये पौधों एवं फलदायी वृक्षों के उपयोग में उभर कर सामने आती है। जंबु,[73] मधूक[74] तथा पलाश[75] का ज्ञान आर्थिक रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ होगा।

मौर्य युग यानी आलोच्य कालावधि के द्वितीय उपभाग (322 ई.पू. से 200 ई.पू.) को कृषि की अभूतपूर्व उन्नति एवं तकनीकी निवेश के लिए जाना जाता है। राज्य के द्वारा कृषि के प्रति प्रदर्शित उत्सुकता इसके विकास का सर्वप्रमुख कारण बनी। कौटिल्य परती भूमि[76] और बन[77] को भी खेती के लायक बनाने की सम्भावनाओं को टटोलते हैं उपज की बढ़ोत्तरी के लिए विविध किस्मों की खादों के प्रयोग पर भी बल देते हैं।[78] कौटिल्य तीन तरह की फसलों का व्यौरा देते हैं,[79] पहली कोटि की फसलें शालि, ब्रीहि, कोदों, तिल, ककुनी, दारद, वरक इत्यादि वर्षा के प्रारम्भ काल में दूसरी कोटि की फसलें मूँग, उड़द, और शिम्ब वर्षा के मध्य में, तथा तीसरी कोटि की फसलें कुशुम्भ, मसूर, कुलथी, जौ, गेहूँ, मटर, अलसी और सरसों वर्षा के अन्त में। बीजों के यथा समय बोए जाने पर कौटिल्य ने विशेष ध्यान दिया तथा कृषि कार्यों के निमित्त नियुक्त पदाधिकारी 'सीताध्यक्ष' से इसे सुनिश्चित करने को कहा जाता था।[80] आजकल गाँवों में खेती की समय सारिणी को लेकर एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'आगिल खेती आगे-आगे, पाछिल खेती पाछे-पाछे' इस तरह की समयबद्धता कृषि कार्यों में उस समय भी बरती जाती थी। तात्पर्य यह कि मौर्य युग कृषि के विस्तारीकरण का युग तो था ही, उसकी सम्भावनाओं की पहचान और उसके असीमित दोहन का काल भी था। कृषि अर्थव्यवस्था के लाभ पहली बार इतने स्पष्ट रूपों में सतह पर आते हैं।

मनु ने भी कृषि पर यथेष्ट ध्यान दिया है तथा इसकी विभिन्न प्रक्रियाओं का वर्णन करते हुए प्रमुख उत्पादों का विवरण भी दिया है।[81]

सिंचाई की व्यवस्था कृषि से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि शेष बातों का कोई मतलब नहीं रह जाता जब तक सिंचाई की उत्तम व्यवस्था नहीं हों। आलोच्य कालावधि में लोग न सिर्फ इसके महत्व से परिचित थे अपितु इसकी बेहतरी के लिए उद्यम भी करते थे।

गौतम बुद्ध के समय में नहरों और नालियों के निर्माण की जानकारी मिलती है।[82] इच्छित जगहों पर सिंचाई के लिए कई योजनाएँ बनायी गई एवं उनका सफल क्रियान्वयन भी हुआ।[83] जातकों में नहरों एवं तालाब निर्माण की चर्चा है।[84] अष्टाध्यायी से भी यह पता चलता है कि लोग सिंचाई के लिए प्राकृतिक वर्षा पर ही निर्भर नहीं थे अपितु स्वयं के उद्योगों से कुएँ एवं नहरें बनाकर सिंचाई की सुविधा बहाल करते थे।[85] धर्म सूत्रों में राजा और प्रजा दोनों से तालाब तथा कुएँ बनवाए जाने की अपेक्षा की गई है।[86]

जैन ग्रन्थ वृहत्कल्प भाष्य के विवरण के आधार पर ऐसा अनुमित होता है कि स्थान विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप सिंचाई की व्यवस्था बदलती रहती थी, जैसे लाट देश में वर्षा के जल से, सिन्धु देश में नदियों के द्वारा, द्रविण देश में तालाबों के द्वारा उत्तरापथ में कुओं से तो कहीं-कहीं बाढ़ के पानी से सिंचाई की व्यवस्था बहाल रखी जाती थी।[87] कुंओं से पानी निकालने के लिए विशेष प्रत्यन करने पड़ते थे। 'तुल', 'करकटक' तथा 'चक्कवट्टक' की सहायता से पानी निकाला जाता था।[88] आधुनिक सन्दर्भों में इन्हें क्रमशः 'ढेंकुल' 'पुर' तथा 'रहट' के द्वारा बेहतर समझा जा सकता है। मौर्य युग में खेती के विकास में जो सर्व प्रधान कारक सिद्ध हुआ वह था राज्य द्वारा सिंचाई सुविधाओं का सुचारू प्रबन्धन एवं किसानों के हित में निर्वाध जलापूर्ति का नियमन[89]। अर्थशास्त्र में अच्छा प्रशासन उसे बताया गया है जिसके अन्तर्गत किसान को फसलों की सिंचाई के लिए सिर्फ प्राकृतिक जलापूर्ति यानी वर्षा पर आश्रित न रहना पड़े[90]। कौटिल्य ने सिंचाई की सुचारू सुव्यवस्था हेतु जहाँ संसाधनों के समुचित संयोजन पर बल दिया है,[91] वहीं कई तरह की सावधानियाँ भी बताई है जिन पर अमल किया जाना चाहिए।[92]

परन्तु यदि कुछ अवांछित-असामाजिक तत्वों द्वारा सिंचाई सुविधाओं को नष्ट-भ्रष्ट किया जाता है तो उसके लिए पर्याप्त दण्ड की भी व्यवस्था, अर्थशास्त्र में पायी जाती है,[93] जैसे तालाब को क्षति पहुँचाने के आरोप प्रमाणित हो जाने पर दोषी व्यक्ति को तालाब में डुबो देने का विधान किया गया।[94] सिंचाई हेतु सरकारी प्रयासों की अभिलेखिक पुष्टि भी हो जाती है जब रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख के द्वारा यह तथ्य सामने आता है कि मौर्य शासकों द्वारा या कहें चन्द्रगुप्त और अशोक के राजत्वकाल में उनके प्रान्तीय प्रशासकों द्वारा सुदर्शन झील का निर्माण एवं मरम्मत करायी गयी थी एवं एतद् द्वारा सिंचाई व्यवस्था को दुरूस्त किया गया था।[95] मौर्य काल में सिंचाई की नालियों की देखरेख निर्माण एवं मरम्मती के लिए एक सरकारी कर्मचारी ही नियुक्त होता था।[96]

संदर्भ

1. प्रधानतया लोहे के फाल की खेती से आशय हैं।
   (क) एक परवर्ती पालि ग्रन्थ में 'अयंगल' अथवा लोहे के हल के फाल का विवरण प्राप्त होता है (पालि इंग्लिश डिक्सरी, पालिटेक्ट सोसायटी, लंदन 1921 में 'अयनंगल' शब्द के अन्तर्गत टी. डब्लू. राइज डेविड्स इत्यादि विद्वान)
   (ख) सुत्तनिपात के कोकालिक सुत्त में लौह फाल को दिन भर धूप में तपाए जाने का उल्लेख है।
   (ग) पाणिनि ने लोहे की फाल को 'अयोविकार कुशी' कहा है। पुनश्च पाणिनि एवं प्रारम्भिक पालिग्रन्थ 'अयोधन' की चर्चा भी करते हैं जो शायद 'हथौड़ा' को अभिव्यक्त करता है, उपरोक्त सन्दर्भों के लिए देखे रामशरण शर्मा की 'प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं' पृ.-138, एवं विवरण हेतु, वही, पृ.-137, 38, 39, 40, 41, 42, 43,
2. शर्मा आर.एस, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, राजकमल प्रकाशन, पृ.-156-57
   शर्मा आर.एस, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ.-146-47,
3. कौसाम्बी डी.डी, द कल्वर एण्ड सिविलाइजेशन आफ इण्डिया इन हिस्टारिकल, आउटलाइन, लन्दन 1965 पृ.-100.102।
4. जहां श्रेष्ठियों एवं गहपतियों के ऐश्वर्य पूर्ण जीवनचर्या के दृष्टान्त भरे पड़े हैं वहीं दरिद्रता के भी अनेकशः उद्धरण मिलते हैं, जैसे-महावग्ग, पृ.-230, 266 एवं पाराजिक पृ.-91
5. पाचितिय पृ.-11
6. स्मिथ, वी.ए., अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ.-173
7. समद्दर, जे.एन., लेक्चर्स आन दि इकानामिक कन्डीशन इन एन्श्येट इण्डिया, कलकत्ता 1922, पृ.-168।

8. द. सैक्रेड बुक्स आफ दि इस्ट, जि.-35 पृ.-259, मनु 8.39 पर टिप्पणी
9. द्र., के.पी जायसवाल, हिन्दू पालिटी, पृ.-330 के.आर. आयंगार, ऐन्श्येण्ट इण्डियन इकानामिक थाट, पृ.-104, अन्यानेक विद्वान भूमि पर वैयक्तिक स्वामित्व की पुष्टि के लिए वैदिक साक्ष्यों का हवाला देते है। जैसे श्रेडर, मैकडानेल और कीथ, वन्द्योपाध्याय तथा धोपाल इत्यादि। इनके विस्तृत विवरण के लिए ओम प्रकाश की पुस्तक 'प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, चतुर्थ संस्करण के आर्थिक इतिहास खण्ड के द्वितीय अध्याय की सन्दर्भ संख्याएं 1,2,3 और 4 देखी जा सकती है, अपरंच जी.एस.पी मिश्र की 'प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था' पृ.-148 भी द्रष्टव्य है।
10. यवरवेत्त सामी ब्राह्मणवत्थु, पाचितिय, पृ.362, वही पृ. 71 आचारंग सूत्र (जैन सूत्र भाग 1) पृ. 19, यहाँ स्पष्ट शब्दों में भूमि और गृह की चर्चा सम्पत्ति के व्यक्तिगत मद मे है। जातक, 3, 301 आगे(दीघ निकाय, 12.7।
11. महावग्ग, पृ. 156, द्र मिश्र जी.एस.पी., प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 184-''इधधन भिक्खवे....हिरण्यं वादे देमि, सुवण्णं वाते देमि खेत्त बाते देमि...चीवरं''
12. विनय पिटक 2, 158, 159
13. महावग्ग, पृ. 248, थेरी गाथा, 340
14. गौतम, 10, 39, 41
15. चुल्लवग्ग, पृ. 252-253
16. थापर रोमिला, अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन(पृ. 61
17. जायसवाल, के.पी., हिन्दू पालिटी, खण्ड 2, पृ.-137, 88
18. श्रीमती राइज डेक्ट्सि, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, जि. 1, अं. 8, पृ. 176।
19. अर्थशास्त्र 3.9.7
20. वही 3, 10, 26
21. अर्थशास्त्र, 3, 17, 8
22. मनुस्मृति, 9.44
''पृथोरपीमां पृथिवीं भार्या पूर्व विदो विदुः
स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम्।।''
23. मिश्र जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ.-599
24. अर्थशास्त्र 2.24, 2.1
भट्टस्वामी का भाष्य, अर्थशास्त्र 2.24
25. मनुस्मृति, 8.39 मेघातिथि, मनु 8.39
26. अर्थशास्त्र, 2.1.10
27. अर्थशास्त्र, 3.9
28. पाचित्तिय, पृ. 53, 'जाता पथवी' और 'अजाता पथवी' का अर्थ उपजाऊ और अनुपजाऊ भूमि ज्यादा तर्कसंगत प्रतीत होता है, जिसे जी. एस.पी. मिश्र ने अपनी पुस्तक 'दि एज आफ विनय' की पृ. सं. 243-44 पर टि. 24 के रूप में प्रस्तावित किया है। 'बुक आफ दि डिसिप्लिन' भाग-2 पृ. 233-24 पर आई. वी. हार्नर ने इसका अर्थ 'नेचुरल' तथा 'आर्टीफिसिलय' बताया है परन्तु बाद में उन्होंने भी प्रो. मिश्र के अनुवाद को ही संस्तुति प्रदान की है।
29. संयुक्त निकाय, 4, 314-17
30. अंगुत्तर निकाय, 4. 237-38
31. अंगुत्तर निकाय, 4.237
32. मिश्र, जी.एस.पी 'प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पृ.186।
33. विस्तृत विवरण के लिए देंखे, मिश्र जी.एस.पी 'प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थ व्यवस्था, पृ.-185-86
34. पाराजिक, पृ. 28
35. अष्टाध्यायी, 5.2.2

36. जी.एस.पी मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 186।
37. अग्रवाल, वी.एस., पाणिनि कालीन भारतवर्ष, हिन्दी, वाराणसी, 1996 पृ. 201।
38. रामगोपाल, इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्राज, अध्याय 19।
39. अग्रवाल, ऊपर उल्लिखित, पृ. 199।
40. द्र. वैदिक इंडेक्स, जि. 2, पृ. 31।
41. चुल्लवग्ग, पृ. 279।
    अत्यत्र, पालि इंग्लिश डिक्शनरी में 'नंगल' शब्द के अन्तर्गत्त यह बताया गया है कि प्रारम्भिक पालिग्रन्थों के यह शब्द बहुश: प्रयुक्त है।
42. अष्टाध्यायी, 3.2.183, 4.3.124; 4.4.81।
43. लोहे की फाल के प्रयोग से सम्बन्धित विवरण के लिए देखें इसी अध्याय की सन्दर्भ संख्या-10।
44. बौधायन धर्मसूत्र, 3.2.5.6।
45. अग्रवाल, पूर्वोद्धृ, पृ. 200।
46. सोमदत्त जातक, जातक, जि. 2. संख्या 211, पृ. 115।
47. जी.एस.पी मिश्र, दि एज आफ विनय, पृ. 245. सीता का कृषि की देवी के रूप में उल्लेख, ऋग्वेद तथा परवर्ती संहिताओं में और गृह्यसूत्रों में सीता का हराइयो की देवी के रूप में वर्णन जरूर एक ही तथ्य की ओर इशारा करते है कि इनका आपसी सह सम्बन्ध है। हराई से ही 'सीता' जनक की पुत्री का जन्म भी आकस्मिक नहीं प्रतीत होता।
48. आई.वी. हार्नर, द वुक आफ दि डिसिप्लिन भाग 1 पृ. 220. टि.1
49 पाराजिक पृ. 189।
50. विशेष विवरण के लिए देखें प्रस्तुत पुस्तक का आगामी अध्याय एवं उसकी संदर्भ सं. 28।
51. जी.एस.पी. मिश्र, दि एज आफ विनय, पृ. 245-46।
52. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ, पृ. 143।
53. पालि इंगलिश डिक्शनरी में 'रोपेति' शब्द के अन्तर्गत।
54. अंगुत्तरनिकाय, 1, पृ. 239-40 'पतिटठोपेत्ति' शब्दा को पालि इंग्लिश डिक्शनरी में भी देखा जा सकता है जिसकी इसका अर्थ, 'स्थापित करना' प्रतिष्टापित करना, में रख देना इत्यादि किया गया है।
55. वी.एस. अग्रवाल, ऊपर उल्लिखित पृ. 204, 'ब्रीहि' वर्षा ऋतु की फसल और शरद ऋतु की फसल के रूप में 'शा' को व्यवहृत बताया गया हैं। दोनों ही शब्द चावल को अभिव्यंजित करते है।
56. वही।
    रोपवाँ पद्धति के विकास, प्रवर्तन एवं बुद्ध के समय में इसके प्रचलन से सम्बन्धित विस्तृत विवरण के लिए देखें-रामशरण शर्मा की पुस्तक, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ पृ. 143-45।
57. पालि इंग्लिश डिक्शनरी में 'कदली' शब्द के अन्तर्गत पालिग्रन्थों में केले से सम्बन्धित उल्लेखों के सन्दर्भ में।
58. संपा.एन.सी. वैद्य पूना, 1940, 7, 68 पृ. 86।
59. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक एवं सामाजिक संरचनाएँ पृ. 145
60. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 576, रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचाएं पृ. 146।
61. जातक, 2, पृ. 74, 1, 429, 5.37, 1, 429, 2. 135, 3.383., 4.276, 5.405, 6.530, 2.240, 6.539, 4.364।
62. जातक 6.529
63. जातक, 1.244, 2.63, 3.225, 5.120, 6.536।
64. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं, पृ. 146
65. नायाधम्मकहा, 7.86 सूयगडम 4.7.12
66. जातक 2, 141, 6.197

67. नायाधम्मकहा 7.86 सूयगडम, 4, 7.12
68. जी.एस.पी मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 192।
69. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं पृ. 146
70. जी.एस.पी मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पृ. 192
71. वही
72. वही, जैन ग्रन्थों एवं पालि विनय में उल्लिखित कृषि उत्पादनों एव अन्नों की विस्तृत जानकारी के लिए द्र.जे.सी जैन, कैनन्स पृ. 90-92 एवं जी.एस.पी मिश्र की दि एज आफ विनय, पृ. 249-53।
73. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत मे भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएं पृ. 147
74. वही
75. वही
76. अर्थशास्त्र 2.1 (कर देम्यः कृत क्षेत्राणि....अकृतानि नादेयात्)
77. वही, (स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम्)
78. वही 2.24, जानवरों की अस्थियाँ एवं गोबर की मिश्रित खाद तथा मछलियों को भी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।
79. अर्थशास्त्र 2.24
80. अर्थशास्त्र, 2.24
81. मनुस्मृति 9.330, 9.38-39, 6.11, 10.84।
82. महावग्ग, 8.12.1-2
83. चुल्लवग्ग, 7.12, 5.17.2
84. जातक, 1. 199, 1. 336, 2.412
85. अष्टाध्यायी, 4.3.136, 3.3.51, 3.3.123
86. विष्णुधर्मसूत्र, 91.1, वशिष्ठ धर्मसूत, 17, 8
87. उद्घृत जे. सी. जैन, लाइफ इन ऐन्श्येष्ट इण्डिया एज डिपिक्टेड इन दि जैन कैनन्स भाग-1 पृ. 89
88. चुल्लवग्ग, पृ. 292, जैन वृहत्कल्प भाष्य में 'रहट' के लिए 'अरहट्ट' शब्द आता है। जे.सी. जैन पूर्वोक्त प्र. 89
89. प्रो. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास पृ. 154
90. अर्थशास्त्र 6.1
91. अर्थशास्त्र 2.24
92. अर्थशास्त्र 2.9
93. द्र. जी.एस.पी. मिश्र, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, पृ. 188-189
94. द्र. राजबलिपाण्डेय, हिस्टारिल एण्ड लिटेरेरी इन्सक्रिप्शंस पृ. 62-63
96. स्ट्रैवो, 15.1.50

फ्रायड और टैगोर की कामदृष्टिः एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

डॉ० रूमा कुमारी सिन्हा

असिस्टेंट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, एस.के.एम. कॉलेज बेगूसराय, एल. एन. एम. यू. दरभंगा

जिन लोगों को फ्रायड और टैगोर पूरब और पश्चिम की तरह विरोधी क्षितिज जान पड़ते हैं। उन्हें शायद इसमें शर्म होगा कि आकाश एक ही है। बाहरी संसार में आदमी कितने नाते और रिश्तों में बंटा रहता है। लेकिन मन के भीतर संसार में वह बंटवारा नहीं है। मन के संसार में बसने वाले अविभाजित मनुष्य की वास्तविकता की खोज फ्रायड को भी थी, रवीन्द्र को भी। फ्रायड में जिस मनुष्य के प्कए महव तथा ेनचमतमहव के विस्तार में ढूंढ़ा, उसे ही एक अर्थ में टैगोर भी ढूंढ़ना चाहते थे तो उन्होंने कहा "मनेर मानुष मक्ये अन्वेषण"- मन के मनुष्य को मन में खोजना है। इसलिए काम भावना और प्रेम जो मन के सूत्रधार हैं। दोनों के ही विषय बन गये। फ्रायड का काम-भावना जीवन की प्रेरणा-शक्ति के रूप में है तो टैगोर का प्रेम तत्व भी उतना ही व्यापक और शुद्ध है। सच्चे प्रेम की श्रेय उच्चता को फ्रायड जिस प्रकार आदमी के व्यक्ति का सबसे मग्ण हुआ प्रमाण मानता है उसी प्रकार उच्च कोटि के प्रेम का श्रेय टैगोर उस दृष्टि में मानते हैं जिसमें सौन्दर्य के प्रति भोग का भाव समाप्त हो हर दिव्य वासना का हो जाता है। प्रमाण में टैगोर की "विज्ञणिनी" शीर्षक कविता को याद करें जिसमें कामदेव वन देवी की अभी-अभी नहाई हुई और वस्त्रहीन रूपराशि को देखकर वासना के वाण उस पर छोड़ना चाहता है किन्तु देखते ही देखते उसके चरणों पर अपना धनुष वाण समर्पित कर देता है। मनुष्य के काम भाव की श्रेष्ठता का शायद यही प्रेम भरा स्वप्न फ्रायड ने भी देखा होगा जिसमें योग्य संसार के विरले ही आदमी सिद्ध हो सकते थे। अधिक तो उसके मनो विश्लेषण के विषय बनकर रह गये।

जोन ब्योर ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के सम्बन्ध में कहा था -"He is India bringing to Europe a new syumbol not the cross but the lotus." और वस्तुतः यह परिवर्तनकारी प्रतीक जो टैगोर द्वारा प्रस्तुत किया गया वह सार्वभौम महत्ता का अधिकारी भी हुआ है। वे सौन्दर्योपासक थे। अपने इस नवीन अनुसंधान के बल पर उन्होंने बौद्धिक पृथकता की दीवार को तोड़ने में सफलता प्राप्त की जो राष्ट्रों को पृथक-पृथक रखती थी। उन्होंने भारत के लिए सौन्दर्य की नई वाइबिल दी। जैसे-जैसे उनकी कृतियों को स्तवन बढ़ता गया वैसे-वैसे लोगों ने अनुभव किया कि वे अपने में अद्वितीय थे। वे वस्तुतः ज्ञान की विभिन्न शाखाओं की सम्मिलित भूमि थे और प्रमुखतः एक कलाकार थे। उन्होंने विचार के क्षेत्र में एक पूर्णतः नवीन युग का शुभारम्भ किया।

प्राथ्य के लिए टैगोर ने जितना किया फ्रायड ने बहुत अंशों में पाश्चात्य के लिए भी उतना ही किया। फ्रायड ने विज्ञान का तथा विचार के सभी अंगों का निर्देशन एक नई दिशा की ओर किया है और उसकी इस महत्ता के कारण ही मनोविज्ञान में फ्रायड का एक अलग युग ही मानते हैं। फ्रायड ने मन को Id के साथ ही Ego तथा Superego का सम्मिश्रन माना है और किसी भी प्रकार ही आधुनिक विचारधारा को पूर्णतः समझने के लिए उसकी बहुत ही आवश्यकता प्रतीत होती है। फ्रायड का यह संदेश जिस प्रकार सिद्धान्त के क्षेत्र में अत्यन्त ग्राह्य है वैसे ही व्यवहार के क्षेत्र में अत्यन्त क्रान्तिकारी भी। वास्तव में यह बहुत ही मनोरंजक है कि एक समय के इन दो महान विचारकों को करीब-करीब एक ही चीज कहती है- हाँ दोनों की अभिव्यक्ति का रूप अलग-अलग है दोनों ही अपने विचारों में क्रान्तिकारी हैं।

वास्तव में बहुत ही यांत्रिक प्रक्रिया होगी अगर यह बतलाया जाय कि फ्रायड तथा टैगोर दोनों किन-किन बातों पर एक दम एक प्रकार का विचार रखते हैं। टैगोर तथा फ्रायड का एक दूसरे से सम्बन्धित अध्ययन किया गया और यह देखने का प्रयास किया गया

कि उनके विचारों में समता है या नहीं। मगर क्या अपने इस दुस्साहस में पहली सीढ़ी पर ही हमें दिक्कत नहीं होगी। हाँ सचमुच किसी महान् कवि को तथा एक महान दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक को एक ही साँस में उल्लिखित करने में थोड़ा आश्चर्य अवश्यंभावी है।

टैगोर एक कवि है। कभी-कभी तो उन्होंने दार्शनिक की खिल्ली भी उड़ाई है। उनकी कविता "Cycle of Spring" में जब राजा कवि से पूछता है कि उसकी कला का क्या अर्थ है। तब कवि ईश्वर को धन्यवाद देते हुए उत्तर देता है कि उसकी कविता को कोई दार्शनिक शिक्षा नहीं देनी है। यह सिर्फ अपने अस्तित्व का सूचना देती है। टैगौर एक स्वपन द्रष्टा है मगर फ्रायड विचार के दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक हैं। एक वैज्ञानिक के नाते फ्रायड का कर्त्तव्य शृंगारिक की वहिस्मृति तथा विवेकशीलता तथा वास्तविकता की अभिव्यक्ति है। टैगोर एक कलाकार होने के कारण कहीं भी मनोभ्रमण कर सकते हैं। फ्रायड को वैज्ञानिक बन्धनों की रक्षा करनी है उसके पाँव कुछ नियमों में बंधे हुए हैं जिन्हें वह तोड़ नहीं सकता। तब फिर किसी भी प्रकार की समता की बात सोचें तो कैसे।

मगर वास्विकता वैसी नहीं। टैगोर एवं फ्रायड दोनों को ही एक सी चीज कहनी है। एक ही संगीत में दोनों गाते हैं एक राग, दोनों की आवाजें भिन्न-भिन्न है। दोनों की लयें भिन्न हैं। दोनों के ताल भिन्न है।

सिर्फ टैगोर के साथ ही नहीं बल्कि पूरे भारतीय विचार के साथ न तो कभी दर्शन तथा मनोविज्ञान में पूर्ण अन्तर रहा है और न सम्भव ही है भारतीय विचार का मौलिक सिद्धान्त यह है कि परमार्थ सत्ता एवं हमारी आन्तरिक सत्ता दोनों समान है और यह सत्य जिसका दिग्दर्शन टैगोर के द्वारा भी हुआ है, मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से समझा जा सकता है।

फ्रायड ने कला की एक अलग ही परिभाषा दी है। सर्वप्रथम वह कलाकार का विश्लेषण करता है और देखता है कि चूँकि कोई भी कलाकार कुछ सीमाओं का अनुभव करता है कुछ बन्धनों तथा व्यवधानों को मानता है और उसका अतिक्रमन करने में भी वह अपने को पूर्णत: असमर्थ पाता है, वह कल्पना लोक में चला जाता है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति की असंख्य सामाजिक तथा असामाजिक इच्छाएँ होती है। कुछ की पूर्ति में उस समाज के नियमों द्वारा बाधा पड़ती है वह वैसी इच्छाएँ दमित हो जाती है और अचतेन में चली जाती है। मगर यथा संभव वे अपनी संतुष्टि चाहती है और उसके लिए कोई कलाकार कल्पना लोक का सहारा लेता है। उनकी भावनाओं की पूर्ति कविताओं, कहानियों, उपन्यासों तथा कला के अन्य अंगों में होती है।

टैगोर में भी हम इसी तत्व को पाते हैं। वे भी इसी चीज का अनुभव करते हैं और कभी दूर तक इसे मानते हैं कि कला असंतुष्ट दमित इच्छाओं के कारण ही उत्पन्न होती है। उन्होंने अपनी पुस्तक personality में कहा है-"In our life we have one side which is finite where we exhaust ourselves at every step, and we have naother side where our asspirations enjoyments and sacrifices are finfinite. This infinite side of man must have its revealments and satisfactions in some symbols..... it builds for its dwelling a paradise where only those materials are used that have transa\cended that earth's morality." अत: उनके अनुसार भी कलाकृति के द्वारा ऐसे संसार की रचना की जाती है जहाँ हमारी बहुत सी आशओं इच्छाओं तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा संतुष्टि है। फ्रायड को भी करीब-करीब वही कहना है। फ्रायड के साथ टैगोर भी यह मानते हैं कि व्यक्ति की कुछ भावनाएँ असामाजिक होती है, और इसलिए उनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति संभव नहीं। टैगोर मानते हैं-There is another division in man.... it is the dualism in his conciousness of what is and what ought to be in man that conflict is between what is desired and what ought to be desired."

फ्रायड और टैगोर दोनों ही इस बात पर एक मत हैं कि समाज में आचार के नियम हैं जो हमारी इच्छाओं की जाँच करते हैं, क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए? यह सत्य है कि टैगोर उन आचार के नियमों का एक दूसरा ही रूप देते हैं उनके अनुसार हमारी जो इच्छा होती है वह हमारे प्राकृतिक जीवन के हृदय में निवास करती है, जिसके कारण हम पशुओं से समता रखते हैं और हमारी जो इच्छा होनी चाहिए वह हमारे जीवन के अभ्यन्तर पक्ष में तथा इस जीवन के परे की अवस्था में निवास करती है।

फ्रायड के अनुसार धर्म सम्पूर्ण मानव जाति का एक मानसिक बीमारी है। अत: इसे एक दिन अवश्य ही लुप्त हो जाना चाहिए। यह एक भ्रम है किन्तु यह भ्रम विश्व व्यापक भ्रम है। ऐसा कहा जाता है कि कोई स्वप्न जिसे सभी देखते हैं और निश्चित रूप से देखते हैं स्वप्न नहीं सत्य बन जाता है। अत: यह भ्रम ही यथार्थ या वास्तविक हो गया है। किन्तु इस धर्म का भविष्य क्या होगा? क्या उसका भी चरम लक्ष्य मुक्ति या मोक्ष ही रहेगा।

मुक्ति की अवस्था में न दु:ख रहता है न दर्द, न प्रेम रहता है, न घृणा। किसी भी तरह की इच्छा या मानसिक भावना नहीं रहती। मगर फ्रायड के लिए यह स्थिति मान्य नहीं हो सकती क्योंकि वह मानता है कि मानसिक अवस्थाएँ जैसे चेतन, उपचेतन, अचेतन फिर Id, ego vkSj suiperego कभी भी लुप्त नहीं होती। जीवन के साथ ही उसकी समाप्ति होती हैं दूसरी ओर जब हम टैगोर को देखते हैं वे भी उसी स्थिति को मानते हैं। वे भी ऐसी मुक्ति की आशा नहीं रखते जो किसी भी प्रकार की मानसिक अवस्था संवेग तथा भावना से परे हो। बल्कि वे ऐसी मुक्ति की कल्पना करते हैं जो मानव जीवन की असंख्य सीमाओं तथा मानसिक अवस्थाओं के अनगिनत व्यवधानों से घिरे होने पर किसे वे मानते हैं-

वैराग्य-साधन में मुक्ति से आभार नय,
असंख्य बन्धन माझे, महानन्दमय लभिवो मुक्ति स्वाद।

फ्रायड और टैगोर दोनों ही जीवन की सम्भावनाओं में कट्टर विश्वास रखते हैं फ्रायड अचेतन की कल्पना करता है। जो विश्व का संचालक है। टैगोर अपने सभी साहित्य को जीवन-देवता की वेदी पर चढ़ा देता है। दोनों के लिए जीवन रचनात्मक तथा शाश्वत है। फ्रायड के लिए भी वस्तुओं के पिछे अचेतन है जो सर्वशक्तिमान है और शास्वत: जीवन अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति उसे माध्यम से पाता है। टैगोर की सभी चीजें जीवन देवता पर आखिर निर्भर करती है जो सभी तरह के जीवन का जनक है।

फ्रायड पर एक सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि उसने योन मनोविज्ञान पर सर्वाधिक जोर दिया है मगर ऐसी बात नहीं। Sex शब्द फ्रायड के द्वारा उसी रूप में व्यहृत नहीं हुआ है जिस रूप में उसे हम अपने प्रतिदिन के जीवन में व्यवहृत करते हैं। फ्रायड उसका व्यवहार शुद्ध, श्रेष्ठतर क्षेत्र में करता है। Sex के सम्बन्ध में फ्रायड कहता है कि किसी भी प्रकार का आनन्द जो शारीरिक स्पर्श से मिलता है वही सेक्स कहलाता है। सुख, सिद्धान्त तथा यथार्थ सिद्धान्त से बने हुए उसके सपइपकव को प्राय: सभी प्राच्य तथा पाश्चात्य विचारकों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मान लिया है। टैगोर भी ऐसा मानते हैं कि वासना के प्रति सबको आकर्षण है और सभी व्यक्तियों का मार्ग उससे निर्धारित होता है। अपनी किसी कविताओं में ईश्वर से ऐसी शिकायत करते हैं कि संसार के दूसरे लोग मुझे वासना के आकर्षण से खींच रहे हैं।

"तब नर नारी सबे दिग्विदिके मोरे हेने निएजाय
कत वेदनगर डोरे वास नार होने"

और फ्रायड की तरह वे भी प्रेम की भावना पर आक्षेप नहीं करते और उसे मानव जीवन का एक आवश्यक अंग मानते हैं। टैगोर भी सभी तरह के प्रेम को सांसारिक या संसार से परे पवित्र मानते हैं।

अपने एक वर्णन में उन्होंने एक युवक की तस्वीर आंकी है। जिसका सारा जीवन अपनी प्रेयसी के प्रेम में ही बीत जाता है। न्याय के दिन देखता है कि उसका सारा प्रेम गुणों की पुस्तिका में लिखा हुआ है। वह आश्चर्यचकित रह जाता है किन्तु तभी चित्रगुप्त उसे समझाते हैं कि प्रेम और पूजा दोनों एक ही चीज है।

"साधु महारेंगे वसे यौवनेर पात
एत पुण्य केन लेखे देव पूज्य खाते?
चित्रगुप्त हेरे बले बड शकृ कू इस
यारे वले माल बांसा तारे बले पूज्य।"

इस तहर प्रेम और पूजा को समान मान कर टैगोर ने फ्रायड का समर्थन किया है।

टैगोर के समर्थक उनकी इन प्रेम कविताओं को किसी ऊँची तरह के प्रेम को बतलाने वाली कविता कहकर व्याख्या करेंगे। उसे विश्वस्तरीय प्रेम मानेंगे। इस स्थल पर टैगोर की कुछ ऐसी पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूँ जो शारीरिक प्रेम की आवश्यकता दिखलाती है।

आत्मा का आत्मा से प्रेम नहीं बल्कि शरीर का शरीर से प्रेम। अपनी कविता "दे हेर मिलन" में उन्होंने कहा है। मेरा प्रत्येक अंग तुम्हारे प्रत्येक अंग के निकट जाना चाहता है।... और अब आत्माओं की एकता शरीरों की एकता माँगती है। हृदय से आच्छल मेरा शरीर हृदय ही के भय से तुम्हारे शरीर पर मूर्छित होकर गिर जाना चाहता है।

"प्रति अंग काँपे, तब प्रति अंग तरे
प्रामेर मिलन माँगे दे हेर मिलन
हृदय आच्छन्न देह हृदयेर मयें
मूरूछि पड़िते चाय तब देह परे।"

अब यह कविता प्रेम के सिर्फ उसी रूप को दिखाना चाहते हैं जिसे फ्रायड ने आवश्यक माना है। इस प्रकार टैगोर फ्रायड के मत को बहुत दूर तक मानते हैं। और ।नकमद के साथ फ्रायड के बारे में हम भी यह कह सकते हैं कि "To us he is no more a person now but a whole climate of opinion."

यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि एक ही समय के दो प्रमुख विचारक पूर्णत: एक दूसरे से भिन्न विचार रखते हैं। मगर इससे अधिक समानता की हम आशा नहीं कर सकते हैं। कोई तो उसे काल्पनिक स्वप्न में देखता है और कोई उसे परीक्षण और प्रयोग में।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि सौन्दर्य का आकर्षण ही फ्रायड के काम और टैगोर के प्रेम का मूल है। वासना का विकास ही फ्रायड के व्यक्तित्व बल और टैगोर के मनोबल का कारण है। इसलिए फ्रायड की भाषा में जिसे मनोग्रन्थियों से मुक्ति कहेंगे। उसे ही बहुत अर्थों में टैगोर की भाषा में चेतना की मुक्ति कह सकते हैं। फ्रायड का मनुष्य यदि मन की लघुताओं के कारण छोटा है तो टैगोर का मनुष्य भी और यदि फ्रायड का मनुष्य मन की महत्ताओं के कारण बड़ा है तो टैगोर का भी। मृत्यु के सम्बन्ध में जिस प्रकार फ्रायड आदमी में मरण की प्रवृति (Death instinet) की विशेषता पर बल देता है कि वह मृत्यु से डर का भी उसके आकर्षण से खिंचता रहता है और कितने ही बहानों से इनकार कर के भी उसे स्वीकार करता है, वही बात टैगोर की भावना में भी मिल जाती है। टैगोर ने मेरम हे तुभि मोर श्याम समान। कृष्णा के समान मृत्यु को भी प्रिय कहकर या मरिते चाई ना आसि सुन्दर भुवने मानकर माझें आभि बाँचिवार चाई लिखकर संसार में जीने के लोभ और मरने के आकर्षण की विरोधाभास भरी व्यंजनों की है तो बहुत दूर तक माना जा सकता है कि काम-भाव वासना, प्रेम, मनोलोक, सौन्दर्य और मृत्यु को समान विषय मानकर मनोविज्ञान और साहित्य में मंजिलें बनाने वाले ये दो द्रष्टा एक ही सत्य का दो पहलुओं से महत्व सिद्ध करते हैं।

उपर्युक्त अध्ययन के संदर्भ में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इन दोनों ही विचारकों के विचार इस बिन्दु पर लगभग समानान्तर में पाये गये हैं।

संदर्भ

1. रविन्द्र नाथ टैगोर- उपन्यास - पोखरे वारणी (आँख की किरकिरी) - शेपेर कविता
   गीतिकाव्य- गीतान्जलि
   एक नक्षत्र की आत्महत्या फरे वाइरे (मनो वैज्ञानिक राजा)
   कहानी- कथा चतुष्टय 1894
   गल्प दशक 1895
2. Frend S. : The interpretation of dream, New York, Macmillan, 1992.
3. Frend S. : Introductory Lectures on Psychoanalysis, London, Allen 1929.
4. Frend S. : The Isychopathology of everyday life, in A.A. Brill (Ed.) the basis\c writings of Sigmund Frend, New York, Modern Library, 1938.
5. Frend S. : Outline of Psychoanalysis, New York, Norton, 1949 (Translated by J. Strachey).
6. Frend S. : Collected Papers London, Hogarth, 1924, Vol. II.

मुगल साम्राज्य का पतन और मुहम्मदशाह

डॉ० मनोज सिंह यादव

सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग, काशीनरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, उ०प्र०

मुगल साम्राज्य के पतन के लिए कई कारण उत्तरदायी थे इसलिए किसी विशेष कारण पर अत्यधिक जोर देना न्यायोचित नहीं होगा। वास्तव में यदि देखा जाय तो अवनति की प्रक्रिया औरंगजेब के समय से ही प्रारम्भ हो गयी थी। औरंगजेब की दक्षिण भारत के सुदूर क्षेत्रों तक साम्राज्य का विस्तार करने की नीति ने केन्द्र को कमजोर बना दिया। विशाल साम्राज्य की स्थापना का प्रयास करके उसने मुगल प्रशासन के लिए कई व्यावहारिक समस्यायें उत्पन्न कर दी। करीब 25 वर्षों तक वह दक्षिण में रहकर मराठों के विरुद्ध संघर्ष करता रहा। लम्बे समय तक दक्षिण में रहने से उत्तर भारत की राज्य-व्यवस्था शिथिल पड़ गई। औरंगजेब अपने पीछे ऐसा साम्राज्य छोड़ गया जो उत्तराधिकार के संघर्षों के चलते और भी शक्तिहीन होता गया। ''राजकुमारों के मध्य होने वाले उत्तराधिकार के संघर्ष अमीरों को तमाम प्रकार की रियायतें प्राप्त करने का अवसर प्रदान करते थे।''[1] वास्तव में विशाल साम्राज्य का संचालन करने के लिए जिस प्रकार के कुशल नेतृत्व की आवश्यकता थी, 1707 के पश्चात् के मुगल शासन उसे पूरा नहीं कर सके। ''औरंगजेब ने यदि प्रारम्भिक अवस्था में मराठों की प्रगति को जयसिंह की नीति पर अमल करके नियन्त्रित कर दिया होता तो उसे यह दुर्दिन न देखना पड़ता। अगर शिवाजी से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें मुगल सेवा का अंग बना लिया होता तो मराठे मुगलों के विरुद्ध नहीं जाते, जिससे दक्षिण को यह 25 वर्षीय युद्ध की आवश्यकता नहीं होती जिसने मुगल साम्राज्य को प्रत्येक दृष्टि से जर्जर बना दिया।''[2] इस स्थिति के लिए औरंगजेब के उत्तराधिकारियों को दोषी ठहराना उचित नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि से यद्यपि मुगल साम्राज्य काफी हद तक अपने सम्राट की योग्यता पर निर्भर करता था। चूँकि मुगल साम्राज्य की शासन पद्धति अत्यधिक केन्द्रीयकृत थी तथा बादशाह ही इसका सवेसर्वा होता था। अत: व्यक्ति-केन्द्रित शासन व्यवस्था के अन्तर्गत बादशाह की प्रशासनिक कुशलता पर शासन की सफलता निर्भर करती थी। ''वास्तव में मुगल शासकों के चारित्रिक पतन को साम्राज्य के विघटन के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी माना जाना चाहिए। औरंगजेब की अत्यधिक शंकालु निगरानी तथा उसके उत्तराधिकारियों के अत्यधिक स्नेह ने राजकुमारों को नकारा एवं निकम्मा बना दिया जिसका परिणााम यह हुआ कि उनमें सैन्य तथा प्रशासनिक क्षमता का विकास नहीं हो पाया। इसी कारण 18वीं शताब्दी में सिंहासन के उत्तराधिकारी असहाय एवं दूसरों पर निर्भर हो गये। उनके अन्दर स्वतंत्र निर्णय लेने, तत्काल कार्यवाही करने तथा अपने उत्तरदायित्वों के निर्वहन की क्षमता का अभाव हो गया। ऐसे राजकुमार जब सिंहासनरूढ़ हुए तो उनके सामने दो विकल्प थे- या तो वे सारा प्रशासन किसी वजीर को सौंप देते अथवा वे लगातार उमरावर्ग में से किसी न किसी शक्तिशाली नेता का चयन करते रहते अर्थात् एक के हाथ की कठपुतली से दूसरे के हाथ की कठपुतली बनते रहते।''[3] मुगल शासकों के चरित्र में आने वाली उत्तरोत्तर गिरावट का प्रतिफल यह हुआ कि मुगल उमरा वर्ग भी पतन की ओर अग्रसर हो चला।

जहाँ तक मुगल साम्राज्य के पतन में मुहम्मदशाह की भूमिका का प्रश्न है तो सतही जानकारी रखने वाले उसे अदूरदर्शी भोग-विलास में लिप्त तथा नेतृत्व क्षमता एवं निर्णय लेने का अभाव तथा शासकीय दायित्वों के प्रति उदासीन मानते हैं। यहाँ तक कुछ लोग उसे रंगीलाशाह भी कहते हैं। इन लोगों का मानना है कि मुगल साम्राज्य के पतन में मुहम्मदशाह की बहुत बड़ी भूमिका है। ऐसी सोच के पीछे नासिरशाह के आक्रमण कारक हैं। यह सही है कि मुहम्मदशाह में बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ एवं औरंगजेब जितनी दूरदर्शिता एवं प्रशासनिक क्षमता का अभाव था तथापि औरंगजेब के पश्चात् के उत्तराधिकारियों में बहादुरशाह प्रथम एवं मुहम्मदशाह ही मात्र ऐसे बादशाह थे जिन्होंने खोई हुई मुगल प्रतिष्ठा को पुर्नस्थापित करने का प्रयास किया। वास्तव में हमें मुगल साम्राज्य के पतन में मुहम्मदशाह की भूमिका को जाने के लिए उन तमाम परिस्थितियों एवं कारकों के साथ ही साथ

मुहम्मदशाह के व्यक्तित्व को भी जानना होगा जो इसके लिए उत्तरदायी थे। मुहम्मदशाह कला का बहुत बड़ा संरक्षक था वह स्वयं एक कवि एवं संगीत का जानकार था। मुहम्मदशाह एक धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था तथा ''प्रत्येक शुक्रवार को वह दरबार में धर्म गुरुओं की बैठक आहूत करता था तथा स्वयं परिचर्चा में शिरकत करता था। परन्तु उसने इन धर्मगुरुओं को राजनैतिक मसलों तथा सरकार की धर्मनिरपेक्ष नीतियों में हस्तक्षेप की इजाजत नहीं दी थी। हिन्दुओं के प्रति भी उसने उदार नीति का अनुसरण किया था और अपने शासनकाल में जजिया समाप्त कर दिया।''[4] हिन्दू साधु संतों एवं विद्वानों के प्रति उसका व्यवहार अत्यन्त सद्भावपूर्ण था।

मुहम्मदशाह की सबसे बड़ी कमी यह थी कि उसमें व्यक्तिगत रूप से सैन्य क्षमता का अभाव था तथा वह सैन्य नेतृत्व करने तथा अभियानों को चलाने में असमर्थ था। इसके मूल में कारण यह था कि उसको सिंहासन प्राप्त करने के लिए उत्तराधिकार का कोई युद्ध नहीं लड़ना पड़ा था बल्कि उसे सैय्यद बन्धुओं के गुट द्वारा सिंहासनरूढ़ कर दिया गया था। उसने न तो कोई सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त किया था और न ही स्वयं उसमें कोई रणकौशल ही था। ''1712 में अपने पिता जहाँशाह की मृत्यु के बाद से अपने सिंहासनारोहण (1719) तक का समय उसने दिल्ली के किले की चहारदीवारों के बीच बिताया था और अपने जीवन के सबसे महत्वपूर्ण वर्ष जो उसके आगे आने वाले जीवन के लिए तैयारी एवं प्रशिक्षण के वर्ष थे, उसने निराशा एवं बेचारगी के वातावरण में गुजार दिये। जब उसने सैय्यद बन्धुओं के खिलाफ विद्रोह किया तथा हुसैन अली की हत्या हो जाने के बाद जब सैय्यद बारहा तथा मुगलों के बीच लड़ाई प्रारम्भ हो गई तो मुहम्मदशाह इसमें सक्रिय भूमिका निभाने में असफल रहा तथा अपने खेमे के अंदर भयपूर्वक इस संघर्ष के परिणाम की प्रतीक्षा करता रहा।''[5] यह बात सही है कि मुहम्मदशाह एक योग्य सेनानायक नहीं था। यद्यपि इसमें उससे ज्यादा परिस्थितियों का दोष था। किन्तु उसकी असफलताओं के लिए इसी को उत्तरदायी ठहराना उचित नहीं होगा। मराठों के विरुद्ध उसने अभियान का नेतृत्व स्वयं नहीं किया किन्तु उसके खराब स्वास्थ्य तथा संदिग्ध सैन्य क्षमता को देखते हुए यदि उसने स्वयं भी अभियान का नेतृत्व किया होता तो भी मुगलों के भाग्य में कोई विशेष परिवर्तन की उम्मीद नहीं थी। मुहम्मदशाह ने अपनी क्षमतावश मुगल साम्राज्य को पतन से बचाने के लिए यथासंभव प्रयास किया। जहाँ तक स्वयं उसकी बात है उसने कभी भी अपने सेनानायकों की पराजय तथा जल्दबाजी में शत्रुओं के साथ की गई संधियों को स्वीकार नहीं किया। उसने स्वयं कभी हार नहीं मानी तथा लगातार मिलने वाली असफलताओं के बाद भी उसने प्रयास करना जारी रखा। उसके स्वभाव में एक बादशाह से अधिक एक कवि एवं कलाकार था। मुगल सत्ता को मिलने वाली चुनौतियों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया बहुधा पलायनवादी थी। इस बीच उसे जो भी अवकाश प्राप्त होता उसे वह शिकार, पिकनिक, संगीत आदि मनोरंजन में व्यतीत कर देता था। किन्तु इस आधार पर यह कहना कि वह अपने दायित्वों के प्रति सजग नहीं था पूरी तरह से सही नहीं है। उसके व्यक्तिगत दोषों के अतिरिक्त अन्य बहुत से महत्वपूर्ण कारकों ने मुगल साम्राज्य के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। लम्बे समय से चला आ रहा आर्थिक संकट, संसाधनों की कमी तथा मुगल उमरावर्ग के आपसी मतभेद ने मुगल साम्राज्य के विरोधियों के विरुद्ध सफल सैन्य अभियान को मुश्किल ही नहीं असंभव बना दिया।

दूसरा पक्ष यह भी है कि राजधानी में भी सदैव मुगल बादशाह के विरुद्ध तख्तापलट की आशंका बनी रहती थी। ऐसे में मुहम्मदशाह की अधिक समय तक दिल्ली में अनुपस्थिति स्वार्थी मुगल अमीरों को बादशाह को अपदस्थ करने का अवसर प्रदान करती। यहाँ तक कि शाह वलीउल्लाह जिन्होंने सदैव ही प्रशासन सम्बन्धी मामलों में सख्त एवं सजग रवैया अपनाने की वकालत की, उनका भी विचार था कि अभियानों का स्वयं बादशाह द्वारा नेतृत्व किया जाना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा। ''निजामुलमुल्क ने शाह वलीउल्लाह को लिखे पत्र में एक बार कहा था कि उमरा वर्ग के लिए बिना बादशाह की उपस्थिति के सैन्य अभियानों का सफलतापूर्वक संचालन संभव नहीं है। शाह वलीउल्लाह ने अपने जवाब में निजामुलमुल्क को समझाया कि ये अधिक उचित एवं बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होगा साथ ही सुझाव दिया कि सैन्य अभियानों में किसी शहजादे को मुगल अमीरों के साथ भेजा जाय तो उत्तम होगा।''[6] इस प्रकार से मुहम्मदशाह द्वारा सैन्य अभियानों का नेतृत्व न करने के पीछे दिये गये तर्क भी व्यावहारिक दिखाई देते हैं।

किसी साम्राज्य के पतन के लिए शासक की व्यक्तिगत कमजोरियों को बहुत अधिक महत्व देना एक प्रकार से उस संस्था की कार्यपद्धति के दोषों को नजरअंदाज करने के साथ ही साथ इसके लिए जिम्मेदार सामाजिक, आर्थिक शक्तियों तथा शासन वर्ग के विभिन्न सहयोगी वर्गों के समकालीन राजनीतिक संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव की भी उपेक्षा होगी। वास्तव में मुगल साम्राज्य के पतन के बीज मुगल प्रशासन तथा सैन्य ढ़ाँचे में निहित थे। ''मंत्री एवं सामंत भोग-विलास में डूबे हुए थे।''[7] प्रशासनिक समस्याएँ तथा आर्थिक संकट इतना जटिल हो गया था कि कोई और योग्य व्यक्ति भी होता तो वह भी इस व्यवस्था के साथ समायोजन कर

पाने में शायद ही सफल होता। मुगल साम्राज्य में प्रशासन में चलाने, साम्राज्य की सुरक्षा के लिए नीतियाँ बनाने से लेकर क्रियान्वयन तक समय की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप प्रशासनिक संस्थाओं का पुनर्गठन करने का दायित्व पूर्णतया शासक के ऊपर ही था, क्योंकि शासक वर्ग के पास उचित प्रशिक्षण, अनुभव तथा कौशल था जिससे वे प्रशासन के विभिन्न पहलुओं को सफलतापूर्वक संपादित कर सकें। ऐसा ही विचार महान वजीर सादुल्ला खान का था। ''किसी भी युग में योग्य एवं काबिल लोगों की कमी नहीं होती है। यह बुद्धिमान स्वामियों का दायित्व है कि ऐसे काबिल लोगों की खोज करें, उनको अपने विश्वास में लें तथा उनकी क्षमता, कौशल और योग्यता के माध्यम से वांछित लक्ष्यों की सिद्धि करे और साथ ही इन योग्य सेवकों के विषय में स्वार्थी तत्वों द्वारा कही गयी शिकायतों पर विशेष गौर न करे।''[8] परन्तु जैसा कि हम देखते हैं उत्तर मुगलकालीन अधिकारी वर्ग साम्राज्य की बेहतरी तथा आम जनता के कल्याण सम्बन्धी किसी भी उच्चादर्श से प्रभावित नहीं था। विभिन्न क्षेत्रीय तथा नस्लीय पृष्ठभूमि के अमीरों के बीच प्रतिद्वन्द्विता तथा गुटबाजी बढ़ती ही जा रही थी। ''यह संभव है कि इस बढ़ते हुए तनाव तथा गुटबाजी का कारण घटते हुए रोजगार के अवसर थे।''[9] मुगल उमरा वर्ग पूरी तरह से पारस्परिक उठापटक एवं क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति में लगा हुआ था। जिस समय साम्राज्य को उनके सहयोग की सर्वाधिक आवश्यकता थी उमरावर्ग ने प्रशासन में सुधार की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया। केन्द्रीय मंत्री तथा अधिकारीगण पारम्परिक तरीके से ही प्रशासनिक कार्यों का निपटारा करते रहे तथा लड़खड़ाते साम्राज्य को कोई संबल नहीं प्रदान कर सके। प्रान्तीय गर्वनरों ने भी केन्द्रीय सत्ता की अवमानना प्रारम्भ कर दिया था। जिसका कारण अमीरों के बीच बची हुई जागीरों के लिए कटु प्रतिद्वन्द्विता थी। केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने के कारण प्रभावशाली सामन्त अपने भरोसेमन्द अनुयायियों का दल तैयार करना चाहते थे। यह नहीं जागीरदारी संकट ने मुगल उमरा वर्ग की आपसी प्रतिद्वन्द्विता तथा गुटबाजी को और तेज कर दिया इसके लिए विभिन्न नस्लीय गुट बनाना शुरू कर दिया लेकिन मुगल दरबार में होने वाली गुटबाजी का आधार यह जातीय समूह (ईरानी-तूरानी आदि) ही थे यह सही नहीं है। ''इन समस्त गुटबाजियों का वास्तविक कारण जागीर तथा प्रशासन में अपने लिए उच्च एवं महत्वपूर्ण पदों की प्राप्ति था तथा मराठों, राजपूतों एवं जाटों के प्रति क्या रवैया अपनाया जाय यह भी मतवैभिव्य के लिए उत्तरदायी था।''[10] महत्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर कब्जा कर विरोधी गुट को सत्ता से मिलने वाले लाभों से वंचित कर देना चाहता था। ''बादशाह अपनी तरु से विरोधी गुटों के बीच संतुलन बनाये रखने का प्रयास करता था ताकि कोई भी गुट इतना प्रभावशाली न हो जाय कि उससे उसकी स्वयं की स्थिति खतरे में पड़ जाय। इस प्रकार के उपायों से बादशाह के सिंहासन की रक्षा तो हो गयी लेकिन यह उपाय साम्राज्य को विघटन से नहीं बचा सके।''[11] मुहम्मदशाह के अधीन एक दिवालिया एवं असंगठित प्रशासन के लिए विशाल मुगल सेवा का प्रबन्धन एक दुष्कर कार्य था। मुहम्मदशाह के शासनकाल में सेना के नागरिक क्षेत्र में उत्तरदायित्व काफी बढ़ गये थे ऐसे में सेवा की सभी शाखाओं पर नियंत्रण तथा सैन्य अभियानों के समय शासकीय आदेशों का पालन तथा सैन्य संचालन काफी मुश्किल कार्य हो गया था। ''सेना के साथ नागरिक प्रशासन सम्बन्धी विभागों को जोड़ देने से प्रबंधन की समस्या और भी जटिल हो गयी थी।''[12] मुहम्मदशाह यदि दूरदृष्टि का प्रयोग करता तो काफी हद तक इस समस्या से बचा जा सकता था। लेकिन वह ऐसा करने में असफल रहा। मराठों के साथ चलने वाले लम्बे संघर्ष के परिणामस्वरूप युद्ध व्यय में बेतहाशा वृद्धि हुई, जबकि राज्य की आय के स्रोत लगातार सिकुड़ते जा रहे थे। आर्थिक मजबूरियों के चलते मुगल सरकार न तो बढ़िया घुड़सवार दस्ते का और न ही सटीक मारक क्षमता वाले तोपखाने प्रबंध ही कर सकी। कुछ बड़े अमीरों जैसे वजीर, मीरबख्शी को छोड़कर दूसरे सामंतों तथा मनसबदारों ने अपने अधीन घुड़सवार दस्ते की देख-रेख के प्रति कोई ध्यान नहीं दिया। ''मुगल अमीर अपने सैनिकों के वेतन को बकाये में डाल देते थे जिससे सैनिकों को निर्वाह के संकट से गुजरना पड़ता था। इस प्रकार की आर्थिक असुरक्षा ने सैनिकों के मनोबल तथा अनुशासन दोनों का सत्यानाश कर दिया। बहुत सारे सैनिकों ने विवश होकर अपने घोड़ों को बेच दिया तथा स्वयं को अपने घरों तक सीमित कर लिया।''[13] यह समस्या मुहम्मदशाह के समय एक महत्वपूर्ण समस्या थी। उत्तर-पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र में मुगल गवर्नर नासिर खान लगातार आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहा था तथा उसे अपनी स्थिति को मजबूत बनाये रखने के लिए तत्काल धन की आवश्यकता थी। ''नासिर खान प्रायः मुहम्मदशाह को द्रव्य की कमी के विषय में लिखा करता था परन्तु उसकी किसी भी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया गया।''[14] मुगल सैन्य व्यवस्था पर शाहनामा-ए-डक्कन का लेखक लिखता है, ''कई सैनिकों ने मराठों, अफगानों, राजपूत राजाओं तथा प्रान्तीय गवर्नरों की सेवा ग्रहण कर ली। इस प्रकार की दयनीय दशा को मुगल साम्राज्य के पतन के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए।''[15] मुगल सेना की वास्तविक शक्ति इसके घुड़सवार दस्ते में निहित थी। सेना के दो अन्य भागों-पैदल एवं तोपखाने को अधिक महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था। मुगल काल में जो भी युद्ध लड़े गये थे उसमें घुड़सवार दस्तों ने केन्द्रीय भूमिका निभायी थी। ''18वीं सदी के मध्य तक पैदल सेना तथा कुशल बंदूकचियों

के साथ घुड़सवार दस्ता जो कि यूरोपीय मॉडल पर संगठित था, ने अपनी श्रेष्ठता रणक्षेत्र में सिद्ध कर दिया था। भारी-भरकम हथियारों से लैस घुड़सवार दस्ता जो तीरंदाजी एवं तलवारबाजी के लिए प्रसिद्ध था वो मराठों के द्रुतगामी घुड़सवार दस्ते के सम्मुख एकदम व्यर्थ सिद्ध हुआ। इसी प्रकार से मुगल दस्ता करनाल के युद्ध ने नादिरशाह की फौज की अचूक गोलाबारी के सामने भी नि:सहाय साबित हुआ।''[16] मुगल घुड़सवार दस्ते ने अपनी पुरानी वीरता, शौर्य एवं गति को खो दिया तथा वर्तमान परिदृश्य में शत्रु के सम्मुख किसी प्रकार के उपयोगी सिद्ध नहीं हुए।

युद्ध स्थल में मुगल खेमा तम्बुओं के एक शहर की भाँति प्रतीत हुआ करता था, जिसमें लड़ाकों से अधिक नागरिक रहा करते थे। इसके अतिरिक्त मुगल तोपखाना काफी भारी एवं विशाल हुआ करता था जिससे युद्ध स्थल में इन्हें फूर्ति के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना अत्यन्त दुष्कर कार्य होता था। ''इन तोपों द्वारा आधे घण्टे में केवल एक बार गोलाबारी हो पाती थी तथा पहले हमले के बाद ये कुछ समय के लिए निष्क्रिय हो जाती थी। इन तोपों को ढोने के लिए 250 बैलों तथा 5-6 हाथियों की सहायता लेनी पड़ती थी। उदाहरणस्वरूप करनाल के युद्ध में 500 से 1000 बैलगाड़ियों तथा 5 से 10 हाथियों की सहायता से ढोकर भारी बन्दूकों को युद्ध भूमि में लाया गया था, उनका युद्ध में कोई उपयोग नहीं किया गया।''[17] मराठी सेना मुख्य रूप से हल्के घुड़सवार दस्ते की बनी हुई थी जिसके चलते उन्होंने सीधे युद्ध करने के स्थान पर छापामार युद्ध प्रणाली का अनुसरण किया तथा इसमें अपार सफलता प्राप्त की। वहीं दूसरी तरफ मुगल घुड़सवार दस्ता अत्यधिक साजोसामान से लैस होने के कारण उसकी गति बहुत सीमित हो गई थी। मराठा सेना ने साल दर साल अपनी संख्या तथा युद्ध कौशल में वृद्धि की, इसने मुगलों की सैन्य स्थिति को और भी सोचनीय बना दिया।

मुगल सैन्य व्यवस्था जागीरदारी व्यवस्था की सफलता पर निर्भर करती थी। जागीरदारी व्यवस्था मुगल साम्राज्य की आर्थिक स्थिति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। मनसबदारों अथवा सेनापतियों को वेतन के रूप में निश्चित भू-राजस्व का आवंटन कर दिया जाता था जिससे वह अपनी घुड़सवार टुकड़ी की उचित देख-रेख कर सके। यही मनसबदारी व्यवस्था मुगल प्रशासन की रीढ़ थी, परन्तु 18वीं सदी में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मनसबदारी व्यवस्था की कमियाँ स्पष्ट रूप से सामने आने लगीं तथा इसमें तत्काल सुधार की आवश्यकता थी। लेकिन उत्तर मुगलकालीन शासक अपनी कमियों के चलते इस दिशा में कोई सुधार नहीं कर सके तथा मनसबदारी व्यवस्था बद से बदतर होती चली गयी। मनसबदारों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाने से खालसा भूमि पर भार काफी बढ़ गया था। इस कारण एक ओर मनसबदारों को दयनीय स्थिति का सामना करना पड़ा वहीं दूसरी ओर बादशाह को प्राप्त होने वाले राजस्व में भी काफी कमी आ गई। ''जागीरदारी संकट सम्पूर्ण राज्य का संकट बन गया। राज्य की ऐसी कोई भी गतिविधि नहीं थी, जो इस संकट से प्रभावित न हुई हो। इस संकट के कारण पूरी सेना का चरित्र बदल गया तथा सेना अपने कौशल एवं अनुशासन के निम्नतम स्तरों पर पहुँच गई। मनसबदार जिनके पास कोई जागीर नहीं थी उनके लिए अपनी सैन्य टुकड़ी बनाये रखना तथा उसकी देखभाल करना असंभव हो गया। इन स्थितियों में मनसबदारों ने निश्चित मानक से बहुत कम सेना औरा कभी-कभी वह भी नहीं रखनी प्रारम्भ कर दी।''[18] इन मनसबदारों ने सेना की साज-सज्जा की कोई व्यवस्था नहीं की और धीरे-धीरे राज्य की सैन्य गतिविधियों में दिलचस्पी लेना समाप्त कर दिया। ''मुहम्मदशाह के शासनकाल में मनसबदारों तथा सरकार की वित्तीय हालत सुधारने के लिए कोई संजीदा कोशिश नहीं की गई।''[19] कानून की व्यवस्था बिगड़ती हुई स्थितियों के कारण इजारे की प्रथा तेजी से जागीर भूमि में फैलने लगी तथा धीरे-धीरे इजारे की कुप्रथा खालसा भूमि में भी फैलने लगी। नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् यह प्रथा और भी तेजी से फैलने लगी और इजारेदारी की प्रथा ने कृषक समुदाय के जबरदस्त शोषण का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

जहाँ तक मुहम्मदशाह की बात है तो समकालीन ऐतिहासिक दस्तावेजों में सामान्य तौर पर मुहम्मदशाह की बुद्धिमत्ता एवं उदारता की प्रशंसा की गई है। वह एक उदार, दयालु, जनकल्याण के प्रति जागरूक तथा धर्म में आस्था रखने वाला शासक था। ''वह न तो जहाँदार शाह की तरह बेशर्म और व्यभिचारी था और न ही फर्रूखशियर की तरह डाँवाडोल होने वाला मूढ़ व्यक्ति था। उसने दरबार की गरिमा और शिष्टाचार को बनाये रखा तथा दरबार को खुलेआम सुखभोग का केन्द्र नहीं बनने दिया जैसा कि जहाँदार शाह के समय था।''[20] वह सैय्यद बन्धुओं की शक्ति को भी नियन्त्रित करने के सफल रहा जिन्होंने फर्रूखशियर को सिंहासनाच्युत किया था तथा नृपनिर्माता कहे जाने लगे थे। उसने मुगल राजवंश की प्रतिष्ठा को भी पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जो कि अपने निम्नतम स्तर पर पहुँच गयी थी। किन्तु बावजूद इसके इसमें कोई दो राय नहीं कि वह तत्काल और कठोर निर्णय लेने में समर्थ नहीं था। उसमें दूरदृष्टि का भी अभाव था तथा वह आवश्यकता से अधिक दूसरों की राय पर निर्भर करने वाला शासक था। यदि ऐसा न होता तो जब 22 अक्टूबर 1722 ई० को सफवी वंश के शासक को ईरान में अपदस्थ किया गया था तो उसे सतर्क हो जाना

चाहिए था। ''मुगल दरबार इन घटनाओं का मूकदर्शक बना रहा। काबुल को होने वाले संभावित खतरे का आंकलन करने में वह असफल रहा। जब निजामुलमुल्क दक्षिण से दरबार में पहुँचा तो उसने शाह तहमास्प को इसमहान में पुन: पदारूढ़ करने का प्रस्ताव रखा परन्तु मुगल सम्राट को न तो इस कार्य को करने की इच्छा थी और न ही सामर्थ्य।''[21] इतना ही नहीं काबुल के गवर्नर नासिर खान के बार-बार से ही पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य के पतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। नादिरशाह के आक्रमण का प्रभाव उसके प्रस्थान के लम्बे समय बाद तक महसूस किया जाता रहा। ''इस आक्रमण ने मुगल साम्राज्य की जर्जर स्थिति को समूचे विश्व के समक्ष उद्घाटित कर दिया। विशेषकर यूरोपियों के सामने जो अपनी व्यावसायिक गतिविधियों के साथ-साथ भारत की राजनैतिक स्थिति को भी बड़ी गंभीरता से देख रहे थे।''[22] इस प्रकार से यदि देखा जाय तो मुगल साम्राज्य के पतन के बहुत से कारण हैं। औरंगजेब की संकीर्णतावादी नीतियों को त्याग देने के बाद भी मुगल साम्राज्य को नया जीवन नहीं मिल सका जिसका मुख्य कारण मध्यकालीन सामाजिक विषमताएँ थीं। ''मूलरूप से मुगल साम्राज्य के पतन का कारण मध्ययुगीन सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था है, जिसके कारण भारत में उद्योग-धन्धों तथा व्यापार के विकास का क्रम बहुत धीमा रहा तथा विज्ञान एवं तकनीक की दृष्टि से भारत विश्व के विकासशील देशों से पीछे रह गया। इस संकट का प्रतिबिम्ब था जागीरदारी प्रथा का संकट जिसके कारण ग्रामीण समाज का संतुलन समाप्त हो गया और जमींदार तथा दूसरे शक्तिशाली तत्व सत्ता प्राप्त करने, और हर मुमकिन तरीके से अपने साधन बढ़ाने में संलग्न हो गये। बाहरी स्तर पर इसका परिणाम यह था कि शासन में शिथिलता, अमीर वर्ग में असंतोष तथा गुटबाजी, निम्नवर्गों में घूसखोरी इत्यादि।''[23] मुहम्मदशाह को यदि ध्यान से देखा जाय तो वह काफी कठिन परिस्थितियों में भी 30 वर्षों तक राजदण्ड धारण किये रहा। यही उसके राजनैतिक कौशल का परिचायक है। उसने मुगल सामंतों की महत्वाकांक्षाओं एवं उनके दुष्चक्रों पर यथासंभव नियंत्रण रखने का प्रयास किया। यद्यपि मुहम्मदशाह एक योग्य सेनानायक नहीं था किन्तु उसकी समस्त असफलताओं के लिए मात्र इसी को उत्तरदायी नादिरशाह के संभावित आक्रमण की तरु कोई ध्यान न देना मुहम्मदशाह को एक बड़ी भूल थी। दूसरी गलती तब हुई जब नासिर खान बार-बार अपने बकाये भुगतान की माँग मुगल सम्राट से करता रहा जिससे वह अपने सैनिकों की न्यूनतम आवश्यकतायें पूरी कर सके तथा क्षेत्र के कबायली जनजातियों का सहयोग प्राप्त कर सके जिससे सीमान्त क्षेत्र में मुगल हितों को बनाये रखा जा सके किन्तु मुहम्मदशाह ने दरबारी गुटबाजी के चलते खाने दौराँ के प्रभाव में आकर काबुल के गवर्नर के भुगतान को रोके रखा। मुहम्मदशाह न तो नासिर खान की वित्तीय आवश्यकताओं को ही समझ सका और न ही मुगल साम्राज्य की सुरक्षा को आसन्न गंभीर संकट का ही अनुमान लगा सका। ''गवर्नर नासिर खान ही संकटग्रस्त सीमान्त क्षेत्रों की रक्षा करने के लिए उत्तरदायी था।''[24] इतिहासकारों का मानना है कि कबीलाई लोगों को आक्रमणकारी के विरुद्ध संगठित किया जा सकता था। ''मुखलिस ने लिखा है कि यदि एक प्रशिक्षित सेना एक योग्य सेनानायक के नेतृत्व में पहाड़ी कबीलाई योद्धाओं की मदद के लिए भंज दी जाती तो इस बात की पर्याप्त संभावना थी कि हिन्दुस्तान को बचाया जा सकता था।''[25] नासिर खान को जब दिल्ली दरबार से कोई मदद की आशा नहीं रही तो वह पेशावर लौट गया, उसके सैनिकों तथा कबीलाई योद्धाओं ने भी अपने-अपने पदों को छोड़ दिया तथा राजमार्ग पर लूट-मार करने लगे। इस प्रकार से सामरिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील प्रान्त की सीमा की सुरक्षा की उपेक्षा करके एक विदेशी आक्रमणकारी को महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए खुला छोड़ दिया गया।''[26] मुहम्मदशाह की उत्तर-पश्चिम सीमान्त क्षेत्र को लेकर की गई यह भूलें अत्यन्त महँगी साबित हुई इसने आगे चलकर नादिरशाह के आक्रमण के लिए स्थितियाँ सुगम बना दिया। नादिरशाह के आक्रमण ने पहले ठहराना उचित नहीं होगा। ''उसके शासनकाल में जनता में अत्यधिक शांति थी, शासन का अब भी सम्मान था। राज्य का अपना स्थान था तथा ताज की प्रतिष्ठा विद्यमान थी।''[27] मुहम्मदशाह राज्य के विभिन्न मंत्रियों, अधिकारियों, गवर्नरों से व्यक्तिगत स्तर पर सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाने में भी सफल रहा, किन्तु मुगल दरबार की गुटबन्दी को रोक पाने में वह असफल रहा। ''इस गुटबन्दी के कारण आपसी वैमनस्य बढ़ता चला गया और अंत में योग्य तथा महत्वाकांक्षी अमीरों ने अपनी अलग-अलग रियासतें बनाना आरम्भ कर दिया। उसके पूर्व मराठों इत्यादि की महत्वाकांक्षाओं को समझने में मुगल शासक वर्ग असमर्थ रहा। उन सबका प्रभाव दरबारी नीति तथा उत्तर पश्चिमी सीमा की सुरक्षा पर पड़ा। उस समय के व्यक्तियों की नीतियाँ तथा चारित्रिक दुर्बलतायें मुगल साम्राज्य के पतन के विश्लेषण में अपना स्थान रखती हैं किन्तु उन्हें तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों तथा प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में परखना आवश्यक है। मुगल साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया को सामंती प्रथा के पुनरुत्थान की संज्ञा भी दी जा सकती है।''[28] सियरूल मुतैखरीब का लेखक लिखता है कि किस प्रकार से भ्रष्टाचार, अदूरदर्शिता तथा लगातार गंभीर चेतावनियों की अनदेखी ने उस त्रासदी को जन्म दिया जिसने मुगल बादशाह को एक विदेशी आक्रमणकारी के रहमो-करम पर छोड़ दिया। साम्राज्य को राजधानी अपने ही नागरिकों के रक्त में डूब गई और अपनी तमाम

धन, सम्पदा एवं वैभव से भी वंचित हो गई तथा उत्तर के तीन प्रान्त साम्राज्य के हाथों से निकल गये। इस घटना ने पहले से ही पतनशील साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया को गति प्रदान की। ''इन घटनाओं ने दिल्ली की उत्तर भारत के एक प्रमुख वाणिज्यिक केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुँचाया।''[29]

इस प्रकार से मुगल साम्राज्य के पतन के बहुत सारे कारण हैं तथा यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि यह दीर्घकाल से चली आ रही प्रक्रिया का ही परिणाम थी, जिसके लिए मुगल शासक की व्यक्तिगत कमजोरियों को प्रमुख कारण बताना उचित नहीं होगा। वास्तव में पतन के लिए साम्राज्य की कार्यपद्धति के जिम्मेदार तत्वों के साथ ही साथ सामाजिक-आर्थिक शक्तियों, शासक वर्ग के विभिन्न वर्गों का सम-सामयिक राजनैतिक संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव को देखे जाने की आवश्यकता है और सूक्ष्मता से देखने पर इसमें पतन के स्थान पर विकेन्द्रीकरण के लक्षण अधिक दिखाई पड़ते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

1 पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट- सतीश चन्द्र, पृ० 49

2 औरंगजेब का मराठों के प्रति दृष्टिकोण- जय प्रकाश नारायण झा, पृ० 132

3 नादिरशाह इन इण्डिया- जदुनाथ सरकार, पृ०6

4 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 408

5 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 408

6 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 410

7 मीरात-ए-वरीदात्, पृ० 682

8 रूक्काते आलमगीरी, पृ० 46; नादिरशाह इन इण्डिया- जदुनाथ सरकार, पृ० 6

9 पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट- सतीश चन्द्र, पृ० 281

10 पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट- सतीश चन्द्र, पृ० 283

11 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 417

12 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 410

13 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 411

14 तजकिरा- आनन्दराम मुखलिस, उद्धृत भारत का इतिहास, अंक VIII ईलियट एवं डाउसन, अनुवाद- डॉ० मधुरालाल शर्मा, पृ० 58

15 शाहनामा-ए-डक्कन, पृ० 264-65

16 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 411

17 दि आर्मी ऑफ दि इण्डियन मुगल्स- इरविन, पृ० 119-120

18 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 414

19 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 414

20 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 407

21 सियरूल मुतैखरीन-III, गुलाम हुसैन (अंग्रेजी अनुवाद), पृ० 475

22 हिस्ट्री ऑफ अफगानिस्तान- मैलसन, पृ० 269

23 दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह- जहीरूद्दीन मलिक, पृ० 163

24 सिपरूल मुतैखरीन-III, गुलाम हुसैन (अंग्रेजी अनुवाद), पृ० 479

25 पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट- सतीश चन्द्र, पृ० 291

26 उत्तर मुगलकालीन भारत, सतीश चन्द्र, पृ० 190-91

27 हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, Vol.I- एच०जी० कीन, पृ० 144

28 उत्तर मुगलकालीन भारत, सतीश चन्द्र, पृ० 191

29 ए स्टडी ऑफ एट्टीन्थ सेंचुरी इण्डिया, खण्ड-1, जगदीश नारायण सरकार, पृ० 121

ऋणग्रस्तता की समस्या का आदिवासी जीवन पर प्रभाव और हिन्दी उपन्यास

डॉ० उमेश कुमार पाण्डेय

असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी), शासकीय महाविद्यालय बलरामपुर, जिला-बलरामपुर-रामानुजगंज (छ०ग०)

शोध-सारांश

ऋणग्रस्तता की समस्या कदाचित् जनजातियों में पायी जाने वाली सबसे गंभीर समस्या है। हालांकि इस समस्या का संबंध भारत के संपूर्ण सामान्य जनजीवन से है, लेकिन जनजातियों में इसका रूप बहुत अधिक व्यापक और गंभीर है। व्यावहारिक रूप में अधिकांश जनजातियों को इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है। जिन जनजातियों की आर्थिक स्थिति कुछ संतोषप्रद है, उनमें भी एक बड़ी संख्या ऋणों के बोझ से दबी हुई है। इस समस्या का सबसे बड़ा दुष्परिणाम बँधुआ मजदूरी की प्रथा का बढ़ना है, जिसके अंतर्गत ऋण के भुगतान के बदले व्यक्ति को बिना किसी मजदूरी के ऋणदाता की कृषि भूमि अथवा आवास पर मजदूर के रूप में काम करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। जिन जनजातियों में स्त्रियों को तुलनात्मक रूप से अधिक स्वतंत्राता प्राप्त है, वहाँ ऋणग्रस्तता के फलस्वरूप अक्सर यौन शोषण होने की भी संभावना बढ़ जाती है। स्पष्ट है कि ऋणग्रस्तता की समस्या बहुआयामी है तथा इसके दुष्परिणाम बहुत गंभीर और व्यापक हैं।

Keywords : शोषण, अशिक्षा, बेगारी, बंधुआ मजदूर, सरकारी जटिलता, साहूकार, समस्या, बाहरी हस्तक्षेप, ऊंची व्याज दर आदि।

इक्कीसवीं सदी में विभिन्न अस्मितामूलक विमर्श साहित्य के केन्द्र में हैं। आदिवासी विमर्श इसमें प्रमुख रहा है। भारत में आदिवासियों की समस्या के विभिन्न पहलू रहे हैं। कुछ समस्याएं परंपरागत तौर पर आदिवासी समाज में रही हैं तो अनेक समस्याएं बाहरी हस्तक्षेप का परिणाम हैं। बाहरी हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप उपजी विभिन्न समस्याओं ने आदिवासी जनजीवन को बुरी तरह प्रभावित किया है। कहना ना होगा कि जनजातीय समाज भारतीय संस्कृति का बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। समृद्ध सांस्कृतिक विरासत होने के बावजूद न्यायपूर्ण व्यवस्था न होने के कारण आदिवासी समाज आज भी विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त है। इन समस्याओं का स्वरूप गंभीर होने के साथ-साथ आदिवासियों के लिए बहुत नुकसानदेह रहा है। भारत की अधिकांश जनजातियाँ विभिन्न आर्थिक समस्याओं से ग्रस्त हैं। आर्थिक विघटन और विखंडन लगभग सभी जनजातीय समुदायों में दिखाई देता है। कई स्थितियों में इन समस्याओं का रूप बड़ा गंभीर है। वर्तमान में अधिकतर जनजातियाँ प्राकृतिक आवास एवं भूमि से बेदखली के भय और काश्तकारी असुरक्षा के माहौल में जी रही हैं। साथ ही, गैर जनजातीय लोगों के साथ संपर्क के फलस्वरूप कर्ज, भूमि हस्तांतरण और भूमिहीनता जैसी समस्याएँ भी पैदा हुई हैं। जमींदार एवं सरकारी अधिकारी भी बेगारी के रूप में इनका शोषण करते रहे हैं। ऋणग्रस्तता की समस्या कदाचित् जनजातियों में पायी जाने वाली सबसे गंभीर समस्या है। हालांकि इस समस्या का संबंध भारत के संपूर्ण सामान्य जनजीवन से है, लेकिन जनजातियों में इसका रूप बहुत अधिक व्यापक और गंभीर है। व्यावहारिक रूप में अधिकांश जनजातियों को इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है। जिन जनजातियों की आर्थिक स्थिति कुछ संतोषप्रद है, उनमें भी एक बड़ी संख्या ऋणों के बोझ से दबी हुई है। ध्यान देने की बात है कि अधिकांश जनजातियाँ जब तक बाहरी समूहों के संपर्क से दूर थीं, उनका

आर्थिक जीवन बहुत कुछ आत्मनिर्भर था। एक परंपरागत संस्कृति में जीवन व्यतीत करने के कारण जनजातियों की आवश्यकताएँ इतनी कम थीं कि आय के साधन सीमित होने के बाद भी जनजातीय लोगों को किसी से ऋण नहीं लेना पड़ता था। परंपरागत रूप से जनजातियों द्वारा अपनी आवश्यकताओं को वस्तु-विनियम के द्वारा भी पूरा किया जाता था, लेकिन अब स्थितियाँ तेजी के साथ बदल रही हैं।

जनजातीय क्षेत्रों में जब बाहरी समूहों का प्रवेश प्रारंभ हुआ तो उनकी जीवन-शैली और अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं को अपनाने के कारण धीरे-धीरे जनजातीय लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं। जिन लोगों ने हिन्दुओं की जीवन शैली को ग्रहण किया उन्होंने तरह-तरह के अनुष्ठानों और उत्सवों पर अपने साधनों से बाहर जाकर अपव्यय करना आरंभ कर दिया। एक ओर बढ़ती हुयी आवश्यकताओं तथा दूसरी ओर वन सम्पत्ति के उपयोग पर लगने वाले प्रतिबन्धों के कारण जनजातियों की आर्थिक स्थिति लगातार कमजोर होने लगी। कुछ समय पूर्व तक जो जनजातियाँ बिना किसी बाधा के जंगली क्षेत्रों में खाली पड़ी हुई भूमि पर स्वतंत्रतापूर्वक खेती करके आजीविका उपार्जित कर लेती थीं, उन्हें भी अब ऐसी भूमियों के उपयोग से वंचित होना पड़ा है। इसके साथ ही बाहरी समूहों के संपन्न लोगों ने जनजातीय लोगों को अपने लाभ के लिए ऋण देना आरंभ कर दिया। एक बार ऋणी होने के पश्चात् उसका भुगतान करना अधिकांश जनजातीय लोगों के लिए संभव नहीं हो पाता है क्योंकि उनके आय के साधन अत्यंत सीमित होते हैं। ''ऋणग्रस्तता की समस्या आज इतनी गंभीर हो चुकी है कि विभिन्न जनजातियों के 60 प्रतिशत से भी अधिक परिवार किसी न किसी रूप में ऋणग्रस्त हैं।''[1] बिहार में 'मुण्डा' जनजाति पर किये गये एक सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हुआ है कि इसमें 46 प्रतिशत परिवार केवल स्थानीय महाजनों के ही ऋणी हैं तथा इसके फलस्वरूप ऐसे परिवारों में एक बड़ी संख्या में लोगों को बँधुआ श्रमिक के रूप में काम करने को बाध्य होना पड़ता है। मध्य प्रदेश में जिन जनजातीय लोगों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ है, अब उनमें से काफी लोग अपने क्षेत्र के ही जनजातीय लोगों को ऋण देने का काम करने लगे हैं। ऐसे लोगों को जनजातीय अभिजन (ट्राइबल एलीट) कहा जाता है।

सरल और अशिक्षित जीवन के कारण अधिकांश जनजातीय लोग ब्याज अथवा ब्याज दर का अर्थ ही नहीं जानते। इसके फलस्वरूप स्थानीय महाजन उनसे अधिक से अधिक ब्याज की वसूली करने का प्रयत्न करते हैं। कई बार तो यह ब्याज दर 60 प्रतिशत वार्षिक या उससे भी अधिक होती है। अनेक अवसरों पर ब्याज न दे पाने की दशा में इसकी राशि ऋण की मूल राशि में जुड़ जाती है और इस तरह ब्याज की रकम लगातार बढ़ती रहती है। विशेष बात यह है कि जनजातियों में ऋणग्रस्तता की समस्या का संबंध दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने से उतना नहीं है, जितना आकस्मिक व्यय की आवश्यकता को पूरा करने से है। जन्म, विवाह, मृत्यु और सामूहिक भोज जैसे अवसरों के लिए उन्हें प्रायः ऋण लेना पड़ता है। हालांकि सरकार द्वारा अनेक एजेन्सियों जैसे-आई. टी. डी. ए. (इन्टीग्रेटेड ट्राइबल डेवलपमेंट एजेंसी), सहकारी समितियों, बैंकों तथा जनजातीय कल्याण विभाग के माध्यम से जनजातीय लोगों को नाममात्र के ब्याज पर ऋण देने की सुविधायें उपलब्ध करायी गयी हैं, लेकिन निरक्षरता के कारण अधिकांश जनजातीय लोग अपनी जनजाति या बाहरी समूहों के महाजनों से ही ऋण लेना पसंद करते हैं। ऐसा अनुमान है कि सरकारी एजेन्सियों से ऋण प्राप्त करने वाले जनजातीय लोग 10 प्रतिशत से भी कम हैं।

ऋणग्रस्तता की समस्या तब और जटिल हो जाती है जब ऋण का भुगतान एक निश्चित समय के अंदर न कर पाने के कारण जनजातीय लोग केवल मौखिक रूप से अपनी कृषि भूमि ऋण देने वाले महाजन को सौंप देते हैं। नये कानूनों के द्वारा जनजातीय कृषि भूमि के विक्रय पर प्रतिबंध लग जाने के बाद भी अप्रत्यक्ष रूप से जनजातियों की कृषि भूमि का एक बड़ा हिस्सा गैर-जनजातीय लोगों के अधिकार में चला जाता है। इसके फलस्वरूप कृषि भूमि का स्वामी अपनी ही भूमि पर कृषि मजदूर के रूप में कार्य करने को विवश हो जाता है। ऋणग्रस्तता इतनी गंभीर समस्या है कि यह ऋण लेने वाले व्यक्ति के जीवन को ही विघटित नहीं करती बल्कि उसके परिवार और अगली पीढ़ी के सदस्य भी ऋण का ब्याज चुकाने में अपनी आय का अधिकांश हिस्सा लगा देते हैं। अपने सरल जीवन के कारण जनजातीय लोग स्वयं चाहे भूखे रहें, लेकिन ब्याज और ऋण की राशि का भुगतान करते रहने के कारण उनकी वैयक्तिक अर्थव्यवस्था पूरी तरह बिगड़ जाती है। समुचित भोजन के अभाव में विभिन्न प्रकार की

बीमारियाँ बढ़ने लगती हैं। धीरे-धीरे समस्या दर समस्या की वजह से उनकी कार्यकुशलता इतनी कम हो जाती है कि जीवन अपने आप में एक अभिशाप बन जाता है। इस समस्या का सबसे बड़ा दुष्परिणाम बँधुआ मजदूरी की प्रथा का बढ़ना है, जिसके अंतर्गत ऋण के भुगतान के बदले व्यक्ति को बिना किसी मजदूरी के ऋणदाता की कृषि भूमि अथवा आवास पर मजदूर के रूप में काम करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। जिन जनजातियों में स्त्रियों को तुलनात्मक रूप से अधिक स्वतंत्राता प्राप्त है, वहाँ ऋणग्रस्तता के फलस्वरूप अक्सर यौन शोषण होने की भी संभावना बढ़ जाती है। स्पष्ट है कि ऋणग्रस्तता की समस्या बहुआयामी है तथा इसके दुष्परिणाम बहुत गंभीर और व्यापक हैं।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा जनजातियों में ऋणग्रस्तता की समस्या का समाधान करने के लिए अनेक अधिनियम लागू किये गये हैं तथा विभिन्न विकास कार्यक्रमों के द्वारा बहुत कम ब्याज पर जनजातियों के लिए लम्बी अवधि के ऋण देने की व्यवस्था की गयी है। जनजातियों की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार ने सन् 2001 में 'राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम' की स्थापना भी की है। लेकिन जागरूकता के अभाव, निरक्षरता और प्रशासनिक प्रक्रियाओं की जटिलता की वजह से आदिवासी सरकारी योजनाओं का समुचित लाभ उठाने में नाकाम रहे हैं। इसके अलावा अधिकतर विकास कार्यक्रमों का लाभ जनजातियों के प्रभावशाली और संपन्न लोगों को ही मिल पाता है। निर्धनता की सीमा रेखा से नीचे रहने वाली जनजातियों के निरक्षर लोगों को विकास कार्यक्रमों की कोई जानकारी तक नहीं होती है। सरकारी आँकड़ों में जनजातियों को दिये जाने वाले ऋण की राशि करोड़ों रुपयों में होती है, लेकिन जनजातीय विकास खण्डों में जिन लाभार्थियों के नाम अंकित होते हैं उनमें से अधिकांश लोगों को यह खबर भी नहीं होती कि उन्हें पैसा कब मिला है। इन्हीं दशाओं के कारण ऋणग्रस्तता की समस्या में आज तक कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। सरकारी प्रक्रियाओं की जटिलताओं और बैंकिंग प्रणाली का कठिन और आम आदमी की पहुंच से दूर होना इस समस्या को और अधिक बढ़ा देता है। आदिवासियों के सरकारी दस्तावेज न होने के कारण उन्हें सरकारी तंत्र का समुचित लाभ नहीं मिल पाता जिसका दुष्परिणाम यह है कि व्यावहारिक स्तर पर यह समस्या अत्यधिक गंभीर रही है।

हिंदी के कई उपन्यासकारों ने ऋणग्रस्तता की समस्या के विभिन्न पहलुओं पर गहराई से प्रकाश डाला है। 'नदी के मोड़ पर' उपन्यास में लेखक ने पश्चिमी मध्य प्रदेश की भील जनजाति में व्याप्त ऋणग्रस्तता को मार्मिक अंदाज में प्रस्तुत किया है। उपन्यास में भद्दू सिंह भीलों की दुर्दशा पर सोचता है- ''.... गाँव-गाँव में बनिया जोंक की तरह फैला है राहत-कार्य में मजूरी का पैसा लेते वक्त भी वह ब्याज वसूलने के लिए हाजिर हो जाता है। गुल्ली – महुआ – औरत – बच्चे - सब तो इसके हाथों पर गिरवी हैं। गाँधी बाबा बोलते थे- जब तक एक भी हिन्दुस्तानी आदमी की आँखों में आँसू का एक कतरा भी रहेगा तब तक यह आजादी सच्ची नहीं है। क्या बताउँ बाबा, आप तो गोलोकवासी हो गये और हम नर्क में सड़ रहे हैं और सड़ते रहेंगे।''[2] यहाँ पर एक आम आदिवासी की विवशता कितनी पीड़ादायक है यह देखने की बात है। धार जिले में भीषण अकाल पड़ा है और लोग भुखमरी के शिकार हैं। इन दिनों जो कुछ सरकारी इमदाद दाना-पानी के लिए मयस्सर भी हुई है वह भी साहूकार की आँख की किरकरी बनी हुई है। उसे तो बस अपने सूद की चिंता लगी रहती है। उसका जनता के दु:ख-दर्द से कोई वास्ता नहीं है। देश को आजाद हुये वर्षो बीत चुके हैं लेकिन सच्चे अर्थों में आजादी आज भी नहीं मिली है। औपनिवेशिक काल से आज तक आदिवासी समाज शोषण से त्रस्त है। आज भी वह साहूकार के चंगुल में बुरी तरह जकड़ा हुआ है। अवसाद के क्षणों में भद्दू सिंह कहता है- ''और आज! ऐसा लगता है कि इन ब्याज खोरों की छाती पर चढ़ जाउँ और फिर अपने ही बाल नोचने लगूँ। इन बेइमानों से अंग्रेज बच्चा अच्छा था।''[3]

वस्तुत: ऋणग्रस्तता की समस्या ने कई रूपों में आम आदिवासी को जकड़ा हुआ है। जब तक आदिवासी एकांतवासी थे और बाहरी समाज का दखल उन पर नहीं था तब तक यह समस्या उनके जीवन में प्राय: नहीं थी, क्योंकि तब उनका जीवन एक तरीके से आत्मनिर्भर था और उनकी आवश्यकताएँ अत्यंत सीमित थीं। किंतु बाहरी समूहों के हस्तक्षेप ने उनकी जीवन शैली और सामाजिक-सांस्कृतिक क्रियाकलापों में विभिन्न परिवर्तन किये, जिससे उनकी आवश्यकताओं में वृद्धि हुई और चूँकि उनके स्वयं के संसाधन अत्यंत सीमित थे इसलिए ऋण लेकर उन्हें अपनी आवश्यकताएँ पूरी करनी पड़ीं। मसलन जिन लोगों ने हिन्दुओं की जीवन शैली को ग्रहण किया उन्होंने तरह-तरह के अनुष्ठानों और उत्सवों पर अपने साधनों से बाहर जाकर अपव्यय किया और

परिणामस्वरूप वे ऋणों के जाल में फँसते चले गये। साहूकारों ने भी इस स्थिति का जमकर लाभ उठाया और भोले-भाले आदिवासियों का निर्दयतापूर्वक शोषण किया। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास के मास्टर संजीव सोचते हैं-''साहू तो है ही व्यापारी। उसके सरोकार सीधे पूँजी और लाभ से जुड़ते हैं। भूखे आदिवासियों की हारी-बीमारी, उत्सव-अनुष्ठानों में धेला उधार देता है और ब्याज में अशर्फियाँ वसूल करता है। मूल अपनी जगह बना रहे, इसी में व्यापारी का भला।''[4]

यह समस्या तब अत्यधिक जटिल हो जाती है जब कर्ज पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने आप बढ़ता चला जाता है। समय की अधिकता और ब्याज की आसमान छूती दरों की बदौलत कर्ज की राशि इतनी अधिक हो जाती है कि साधारण आदमी के लिए उसका भुगतान करना संभव नहीं हो पाता। आमतौर पर मूलधन से कई गुना ज्यादा सूद की रकम हो जाती है। ऐसे में एक आम आदिवासी या तो जीवन भर ब्याज की राशि का ही भुगतान करता रहता है या फिर ताउम्र बँधुआ मजदूर बनकर खटता रहता है। 'वनतरी' उपन्यास में सुकुल परहिया मिथिल एवं वनतरी से कहता है कि -''मालिक कहते हैं कि मेरा बाप जब जिन्दा था, दो पसेरी धान उधार माँगकर लाया था। धान की क्या जरूरत थी, मैं समझ नहीं सका। फिर भी, मालिक के कहे अनुसार वह धान आज तक चुकता नही हुआ। मैंने भूखे पेट रहकर बेगारी की और उनके बराहिल खूँटे पर बँधी बकरियाँ भी लूट ले गए। फिर भी, सरकार कहते हैं कि दो पसेरी धान अभी बाकी है। न जाने लाला मुंशी ने कैसे जोड़कर पसेरी का धान पाँच मन बना दिया।''[5] यहाँ यह बात स्पष्ट होती है कि जीवन भर बेगारी करने के बावजूद जमींदार का कर्जा बढ़ता ही जाता है। यदि मजदूरी से ही उसकी भरपाई करने की कोशिश की जाये तो भी कर्ज मुक्ति प्राय: संभव नहीं होती क्योंकि मजदूरी की अत्यंत निम्न दर और कर्ज के ब्याज की अत्यंत उच्च दर का अंतर इतना अधिक होता है कि आम आदिवासी उसकी भरपाई नहीं कर पाता। निरक्षरता के कारण कर्जमुक्त होने के बाद भी निरीह आदिवासी साहूकारों के दुष्चक्र को समक्ष नहीं पाता। उसे हिसाब-किताब में उलझाकर रखा जाता है और उसका शोषण बदस्तूर जारी रहता है। कर्ज के पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरण की समस्या को 'सूरज किरन की छाँव' उपन्यास में भी उठाया गया है। उपन्यास की नायिका बंजारी जोसेफ के बारे में सोचती है कि -''कहते हैं यह करजा जोसेफ के खानदान में पाँच-छह पीढ़ियों से चला आ रहा है। हर पीढ़ी वह पट जाता है, पर साहूकार का खाता कभी नहीं कटता। मेरे यहाँ भी यही हाल था। मेरे तापे ने कभी करजा नहीं लिया, पर साहूकार के खाते में एक कोरी कल्दार नाम पड़े हैं। कहता है, मेरे आजा ने कभी लिए रहे हैं।''[6] स्पष्ट है कि जिस कर्ज का भुगतान आदिवासी कर चुका होता है, वह कर्ज तक साहूकार के बही खाते में जस का तस दर्ज बना रहता है। शोषण का यह नितांत व्यावहारिक पहलू है।

ब्याज की दरों का अत्यंत उच्च होना भी ऋण की समस्या को बहुत गंभीर बना देता है। प्राय: यह देखा जाता है कि ब्याज की रकम शीघ्र ही मूलधन से भी अधिक हो जाती है। चूँकि आदिवासियों के पास आय के साधन अत्यंत सीमित होते हैं इसलिए वे ऋणों का समय पर भुगतान नहीं कर पाते हैं, जिससे समस्या और जटिल हो जाती है। 'नदी के मोड़ पर' उपन्यास में लेखक दामोदर सदन साहूकारों के संबंध में लिखते हैं कि- ''हालांकि वे सूद में एक रुपये का हजार रुपया वसूल कर चुके थे, लेकिन असल और उसके सूद की वसूली फिर भी बाकी थी।''[7] यह बात सिद्ध करती है कि मूलधन पर ब्याज इतना तेजी से बढ़ता है कि चुकता करने पर भी रकम खत्म होने का नाम नहीं लेती है। 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास में जागो सेवकिया इस संबंध में अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कहता है कि -''मालिक से दू मन गोंदली और 60 रुपया में लइन रहूँ। इकर बाद में जे हो गइल कि नीं, सकलो दइलो। दू मन का तीन साल में बारह मन लौटाया। तबो से कटिए नइखे, बाकिए है। और माँग करते, 'ग्यारह मन तुम और देओ। – ग्यारह मन अनाज तुम नहीं दिया, सो चलो सेवकिया।' सो चल गइली।''[8] ऋण की समस्या के संदर्भ में एक बात और दृष्टिगोचर होती है कि महाजन सूद से इतना अधिक लाभ अर्जित करता है कि प्राय: वह मूलधन की वापसी को लेकर कोई खास रुचि प्रदर्शित नहीं करता। इसके पीछे मूलधन से ही अनवरत लाभ लेने की मानसिकता कार्य करती है। 'गगन घटा घहरानी' में ही सोनाराम टूना उराँव से कहता है कि -''रुपया-उपया की बात छोड़ो। महाजन रुपया वापस लेने के लिए नहीं देता, दादा! यह हम भी जानते हैं उसे तो देह निचोड़ने से मतलब है।''[9]

आदिवासियों की ऋणग्रस्तता का एक अन्य पहलू यह भी है कि उनकी अज्ञानता का फायदा उठाकर साहूकार लोग ऋण की राशि तो कम देते हैं जबकि लिखा-पढ़ी ज्यादा राशि की करते हैं। कई बार तो ऋणी इस बात से वाकिफ भी होता है लेकिन अपनी मजबूरीवश वह इस अन्याय का प्रतिकार नहीं कर पाता। 'नदी के मोड़ पर' उपन्यास का भद्दू सिंह रमनैया सेठ से कहता है -''यही कोई तीन सौ रुपया लगेगा।'' भद्दू सिंह ने सलाह-मशविरा करने के बाद कहा था। ''ऐसा करो, ले जाओ। लेकिन लिखा-पढ़ी सात सौ रुपये की करो और जब तक तुम ये रुपया वापस नहीं कर दोगे तब तक अमली के खेत की फसल मेरी रहेगी। –– बोलो, मंजूर?''[10]

ऋणग्रस्तता की समस्या का स्वरूप तब और गंभीर हो जाता है जब आदिवासी लोग ऋण के एवज में अपनी कृषि भूमि बगैर लिखा-पढ़ी साहूकार के पास गिरवी रख देते हैं। हालांकि जनजातीय कृषि भूमि की बिक्री पर प्रतिबंध है किन्तु ऐसा करने से अप्रत्यक्ष रूप से उनकी कृषि भूमि गैर आदिवासियों के अधिकार में चली जाती है और वे अपनी ही भूमि पर खेतिहर मजदूर के रूप में कार्य करने को विवश हो जाते हैं। 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास में टूना पहान कहता है- ''पर राय बहादुर के हाथ चढ़ा खेत भी कभी छूटा है। बाघ के मुँह से नुचे-चिथे जीतन के बाप को सब छुड़ा लाए थे। आकर 15 बरस जिया था बुढ़वा। पर रायबहादुर के मुँह लगा खेत या आदमी कोई नहीं छूटा।''[11] इसी उपन्यास में आगे टूना पहान चैतू से कहता है-

''क्यों रे चैतू, 'अपना खेत'! अब कैसा अपना खेत?''

''हम बेच थोड़े ही दिये हैं। रेहन ही तो रखे हैं गड़हवा वाले खेत।''

''तू ही क्यों, सभी ने तो रेहन ही रखा है। बरस पर बरस बीतते गए पर आज तक कौन छुड़ा पाया?''[12]

जमीन का वास्तविक मालिक होने के बावजूद आदिवासी व्यवस्था के सामने असहाय नजर आता है। उसकी रही-सही जिजीविषा भी धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगती है। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में जमीन के पराएपन से उपजी वेदना से व्यथित होकर हरमू मास्टर संजीव से कहता है- ''अपनी धरती के सहारे आदमीन आसमान को ललकारता है कोमनिस! कई मुण्डा तो बेजमीन ही हैं। जिनके पास है भी, साहू या बाबा गँउवाँ के पास रेहन है।''[13] हालाँकि धीरे-धीरे जैसे-जैसे जागरुकता फैल रही है आदिवासी लोगों में साहूकार और जमींदारों के प्रति असंतोष जाहिर हो रहा है। 'गगन घटा घहरानी' का हीरामनी राय बहादुर के प्रति असंतोष जाहिर करते हुए टूना पहान से कहता है- ''अपने खेत में इनका हक नहीं तो और किसका है? –– रुपया-पैसा कर्ज लिया तो कर्जा भर देगा रुपया पैसा से ही। फिर भरना क्या, किसको? वह तो हमारा रोआँ-रोआँ नोच ले रहा है। उसका पेट कभी नहीं भरेगा।''[14]

कहना न होगा कि आदिवासियों में ऋणग्रस्तता की समस्या वास्तव में अत्यंत गंभीर है। उनकी अज्ञानता और भोलेपन का फायदा उठाकर साहूकार और जमींदार तमाम तरीकों से उनका शोषण करते हैं और एक बार शोषण के जाल में फँसने के बाद आदमी ताउम्र उस दुश्चक्र से निकल नहीं पाता। ऋणों के जाल से मुक्त होने पर एक आम आदिवासी कैसा महसूस करता है, इसे राकेश कुमार सिंह ने अपने उपन्यास 'पठार पर कोहरा' में भली भाँति चित्रित किया है। उपन्यास के नायक मास्टर संजीव ने मुण्डा क्षेत्र में कर्ज मुक्ति का अभियान चलाया हुआ है। मात्र सौ रुपये के कर्ज के बोझ तले दबे सुगना मुण्डा की जब कर्ज से मुक्ति होती है तो लेखक लिखता है- सुगना मुण्डा के सिर पर से सौ रुपये का कर्ज एक झटके में उतर गया तो निहाल हो उठा सुगना मुण्डा। ''हे सिंगबोंगा ––।'' लगा, किसी पहाड़ के नीचे दबी थी देह और संजीदा ने अपनी कानी उंगली पर पहाड़ को टाँगकर सुगना को साफ बाहर खींच निकाला है।[15]

ऋणग्रस्तता अत्यंत गंभीर समस्या है जिसने आदिवासियों की रोजमर्रा की जिंदगी और उनके आत्मनिर्भर ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर दिया है। यह आदिवासियों के जीवन में प्रत्यक्षत: सेंध लगाती है और उन्हें ऋणों के मकड़जाल में उलझा देती है। इससे आम आदिवासी लगातार पिसता रहता है। हिन्दी उपन्यासों के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि किसी भी आदिवासी केन्द्रित उपन्यास में इस समस्या की समग्रता से पड़ताल नहीं की गई है। हाँ, यह जरूर है कि कई उपन्यासों को साथ लेने से इस समस्या के प्राय: सभी पहलुओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। आज ऋणग्रस्तता के निवारण के लिए संस्थागत प्रयास, सतत् निगरानी, सामाजिक भागीदारी और आदिवासियों की जागरूकता सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. कुरूक्षेत्र, दिसंबर 2008, पृष्ठ 3
2. नदी के मोड़ पर, दामोदर सदन, पृष्ठ 81, द्वितीय संस्करण 1979
3. वही, पृष्ठ 79
4. पठार पर कोहरा, राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ 192, द्वितीय संस्करण 2005
5. वनतरी, सुरेश चंद्र श्रीवास्तव, पृष्ठ 46, प्रथम संस्करण 1986
6. सूरज किरन की छांव, राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ 31, संस्करण 1979
7. नदी के मोड़ पर, दामोदर सदन, पृष्ठ 115, द्वितीय संस्करण 1979
8. गगन घटा घहरानी, मनमोहन पाठक, पृष्ठ 11, द्वितीय संस्करण 2000
9. वही, पृष्ठ 86
10. नदी के मोड़ पर, दामोदर सदन,पृ0 59, द्वितीय संस्करण 1979
11. गगन घटा घहरानी, मनमोहन पाठक, पृष्ठ 189, द्वितीय संस्करण 2000
12. वही, पृष्ठ 189
13. पठार पर कोहरा, राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ 195, द्वितीय संस्करण 2005
14. गगन घटा घहरानी, मनमोहन पाठक, पृष्ठ 191, द्वितीय संस्करण 2000
15. पठार पर कोहरा, राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ 220, द्वितीय संस्करण 2005

द्वितीय नगरीकरण के व्यवहारिक पक्ष (6ठीं शताब्दी ई0पू0)

कुलभूषण श्रीवास्तव

शोधार्थी (जे0आर0एफ0), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0

सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास में 6ठीं शताब्दी ई0पू0 का समय विशेष स्थान रखता है। इस दौरान लौह तकनीकि आधारित उत्पादन पद्धति, नवीन राज्य प्रणाली, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं का विकास हुआ। इस काल में मुख्य तत्व गंगा घाटी में हुआ नगरीकरण है। इस काल के नगरीय जीवन की नवीन दृष्टिकोणों से अध्ययन की आवश्यकता बनी है। तत्कालीन कृषि उत्पादन तकनीकि, शिल्प एवं लौह तकनीकि के प्रभाव को हम द्वितीय नगरीकरण पर देखते हैं। इसके अलावा पूर्ववर्ती कालीन संस्कृति का प्रभाव, तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक असंतोष का प्रभाव भी नगरीकरण पर देखने को मिलता है।

प्रस्तावना:- 6ठीं शताब्दी ई0पू0 का समय प्राचीन भारतीय इतिहास का संक्रमण काल है। इस दौरान लौह तकनीकि आधारित उत्पादन पद्धति, नवीन राज्य प्रणाली, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं का विकास हुआ। ये वे तत्व थे, जिनके आधार पर आगे चलकर मगध साम्राज्य जैसा अखिल भारतीय राज्य तैयार हुआ। 6ठीं शताब्दी ई0पू0 का विविध दृष्टिकोणों से व्यापक अध्ययन किया गया है। पाणिनी के आलोक में प्रो0 यू0एन0 राय ने ग्राम्य और नगरों के अन्तरों को स्पष्ट किया है। जयमल राय की पुस्तक ''द रूरल एंड अरबन इकोनामी'', ए0 एन0 बोस की ''सोशल एण्ड रूरल इकोनामी आफ नार्दन इण्डिया'' वी0 के0 ठाकुर ''अर्बनाइजेशन इन एंशियंट इण्डिया '' आदि आलेखों से तत्कालीन नगरों के राजनीतिक एवं आर्थिक पक्षों का विवेचन हुआ है। ये समस्त अध्ययन एक घटना तथा तथ्य विशेष के संदर्भ में हैं, इनके व्यावहारिक पक्षों की चर्चा कम है, इसीलिए इस काल के नगरीय जीवन की नवीन दृष्टिकोणों से अध्ययन की आवश्यकता बनी है। आज बढ़ते हुए नगरीकरण के युग में यह अध्ययन अत्यंत प्रभावी हो सकता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में निम्न तथ्यों के विश्लेषण का प्रयत्न किया गया है-

- किस प्रकार नगरीकरण पर तत्कालीन कृषि उत्पादन तकनीकि, शिल्प एवं लौह तकनीकि का प्रभाव पड़ा?
- गंगा घाटी के नगरीकरण में पूर्ववर्ती कालीन संस्कृति का प्रभाव कैसा था?
- नगरीकरण के उत्थान में तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक असंतोष का प्रभाव?
- 6ठीं शताब्दी ई0पू0 के नगरीकरण ने किस प्रकार तत्कालीन राजनीति, समाज और संस्कृति को एक वृहद साम्राज्य का स्वरूप देने में मदद की?

प्रस्तुत शोध-पत्र में प्राथमिक स्रोत के रूप में वैदिक साहित्य, वेदांग साहित्य, जैन एवं बौद्ध साहित्य, कौटिल्य की अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज की इंडिका आदि के भाष्यों का प्रयोग किया गया है। इनके अध्ययन से इतिहास की वस्तुनिष्ठता को समझने में सहायता मिली है। शोध में पुरातत्वविदों के सर्वेक्षणों को भी प्राथमिक स्रोत के रूप में प्रयोग किया गया है। इनमें श्रावस्ती, वैशाली, पाटलिपुत्र, हस्तिनापुर के उत्खननों में मिले पुरातात्विक साक्ष्य तत्कालीन एवं वर्तमान नगरों के तकनीकि पक्ष को तुलनात्मक ढ़ंग से समझने में

महत्वपूर्ण रहे हैं। इसके अलावा द्वितीयक स्रोत के रूप में विविध प्रसिद्ध इतिहासकारों जैसे यू0एन0 राय, रामशरण शर्मा, रोमिला थापर आदि के लेख इतिहास बोध कराने में सहायक रहे। प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक विकासवादी उपागम पर आधारित है। इस शोध-पत्र में उपाश्रयी उपागम का भी प्रयोग है। मानव सभ्यता के इतिहास में नगरों की स्थापना, विकास की एक उच्च अवस्था का परिचायक है। नगर और उसका विकास आज की एक महत्वपूर्ण सामयिक समस्या है। इससे 6ठीं शताब्दी ई0पू0 में हुए नगरीकरण की ऐतिहासिक प्रक्रिया को समझने तथा समाज के निचले वर्गों की भूमिका को रेखांकित करने में मदद मिली है। प्रस्तुत अध्ययन में अन्य विविध स्रोतों से प्राप्त निष्कर्षों के तुलनात्मक अध्ययन का भी प्रयोग है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में इतिहास की वस्तुनिष्ठता को सुरक्षित करने में मदद मिली है।

विश्लेषण-नगर एक विशेष प्रकार की मानव बसावट है। जहाँ दो-तिहाई से अधिक की जनसंख्या गैर कृषि कार्यों में संलग्न होती है।[1] जैसे-शिल्प, व्यापार, सेवाकर्म और ललित कला के माध्यम से अपनी जीविका अर्जन करने वाले लोग। गार्डन चाइल्ड ने नगरों के विकास के लिए दस अनिवार्य तत्वों की बात कही जो प्राचीन नगरों को तत्कालीन गावों से अलग करती है।[2] इन्होने शहरी केन्द्रों के अस्तित्व के लिए अधिशेष कृषि एवं शिल्प उद्योग पर बल दिया है। डी0 एन0 झा के अनुसार ईसा पू0 6 ठीं शताब्दी से तीसरी शताब्दी के बीच भारत में 60 नगरों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है।[3] बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार 6ठीं शताब्दी ई0पू0 की गंगा घाटी में 40 नगरों का प्रमाण है। इनमें से 6 की स्थिति महानगर (मेट्रोपोलिटन) जैसी है। ये निम्न हैं-चम्पा, राजगृह, वाराणसी, कौशाम्बी, साकेत, श्रावस्ती। वर्तमान में पुरातात्विक खुदाइयों से प्राप्त P.G.W.K. एवं N.K B.K P.W.K मृदभाण्ड संस्कृतियों से भी इन नगरीय संस्कृतियों के अवशेष मिलते हैं। नगरीय विकास सुनियोजित रूप में मिलता है।

दीघनिकाय में नगर मापन शब्द मिलता है।[4] नगर मापन का आशय है-नगर सन्निवेश। पुरनिवेश और दुर्गनिवेश जैसे शब्दों का प्रयोग भी नगर सन्निवेश के लिए प्रयोग किया गया है। प्राचीन युग में नगरों का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जाता था, जहाँ नागरिकों को भौतिक सुविधायें उपलब्ध हों। शहरों को बनाने के पूर्व एक ऐसा भूखण्ड देखा जाता था जो या तो पहाड़ों पर हो या सामान्य सतह से ऊँचा हो। एक विशाल देश होने के कारण भैगोलिक विषमता के दृष्टिगत् भारत के सभी भागों में नगरों की संवृद्धि समान रूप नही हो सकती थी। प्राचीन काल में नगर वहीं विकसित हुए जहाँ खनिजों के प्रचुर निक्षेप पाये जाते थे। इसीलिए 6ठीं शताब्दी ई0पू0 के समय गंगा घाटी में सर्वाधिक नगर बसे। कौटिल्य का अर्थशास्त्र यह बताता है कि राजा को नगर का निर्माण कहाँ कराना चाहिए।5 प्राचीन विश्व के अन्य देशों की भाँति भारत में भी सभी प्रारंभिक नगर-निर्माण सिद्धान्त संबंधी मान्यता के लिए ज्योतिषशास्त्र, धर्मशास्त्र, और प्राचीन पौराणिक आख्यानों का आश्रय लिया गया। प्राचीन ग्रन्थों में नगरों के सात प्रमाणिक आकार माने गये है-चौकोर, आयताकार, वृत्ताकार, समानान्तर चर्तुभुजाकार, अर्द्धचन्द्राकार, भुजंगाकार, त्रिभुजाकार। नगर विकास में जनसंख्या संतुलन, नगर-ग्राम संतुलन पर विशेष ध्यान दिया गया है।

6ठीं शताब्दी ई0पू0 में गंगा घाटी में नगरीकरण लौह तकनीकि और उत्पादन तकनीकि में परिवर्तन का सीधा परिणाम है। लौह तकनीकि ने एक ओर राज्य निर्माण की प्रक्रिया को तथा दूसरी ओर अधिशेष स्तर की कृषि का क्रमिक विकास किया। नगरीय जीवन एक परपोषी जीवन है। बिना उत्पादन अधिशेष के नगरों का बना रहना कठिन है।[6] यूँ गंगा घाटी का नगरीकरण कृषि प्रेरित नगरीकरण सिद्ध होता है। इसके अलावा उत्तरापथ जैसे राजमार्गों, सार्थवाह, जेठ्ठक जैसे व्यापारिक संगठनों ने आंतरिक व्यापार को संस्थागत रूप दिया। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सिंधु सभ्यता का नगरीकरण व्यापार प्रेरित नगरीकरण था, जिसका बना रहना बहुत कुछ विदेशी व्यापार पर निर्भर था। इसलिए ऐसा हो सकता है कि विदेशी व्यापार के अवरोध से सैन्धव नगर विघटित हुए। 6ठीं शताब्दी ई0पू0 का नगरीकरण कृषि प्रेरित नगरीकरण था, जो आंतरिक आर्थिक संक्रियाओं द्वारा पोषित था। इसलिए यह दीर्घजीवी रहा और इनमें सातत्यता बनी रही। कृषि विकास के सन्दर्भ में चावल की खेती में शालि, व्रीहि, ताण्डुल किस्मों का प्रयोग भी उल्लेखनीय है। 6ठीं शताब्दी ई0पू0 में चावल की खेती के लिए अनुकूल जलवायु एवं संसाधन उपलब्ध थे। चावल की खेती में अधिक जनसंख्या उत्पन्न करने की प्रेरणा तथा अधिक जनसंख्या को पोषण देने की क्षमता होती है, जो बढ़ते हुए नगरीकरण में श्रम की माँग एवं खाद्यान आपूर्ति में सक्षम थी।

वैदिक ग्रन्थों और जातक ग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि सभ्यता का प्रसार पश्चिम से पूर्व की ओर हुआ। अर्थात वैदिक आर्य धीरे-धीरे आर्येत्तर क्षेत्रों की ओर बढ़े। विदेह माधव, गौतम राहुगण तथा जीवक की कथा इसे प्रमाणित भी करती है।[7] पुरातात्विक

रूप से भी O.C.P.K और P.G.W.K एवं लाल गुलाबी मृदभाण्ड संस्कृतियों का गंगा घाटी में मिलना भी इसे सिद्ध करता है। N.B.P.W संस्कृति के मृदभाण्ड गंगा घाटी में मिले हैं। यह बर्तन विकसित अवस्था के प्रमाण हैं। आर्य जनों का गंगा घाटी की ओर प्रसार सामाजिक, आर्थिक तकनीकि रूप से बड़ा प्रभावकारी रहा है। वैदिक ग्रन्थों में कुरू, पांचाल, गांधार, केकैय, काशी, अयोध्या, मगध और बंग जैसे क्षेत्रों का उल्लेख इस बात को प्रमाणित करता है कि नगरीकरण का प्रारम्भ 6ठीं शताब्दी ई0पू0 से पहले ही हो गया था, जिसका प्रभाव 6ठीं शताब्दी ई0पू0 में गंगा घाटी में नगरीकरण में दिखा। यह आश्चर्य नही है कि चम्पा और राजगृह जैसे नगरों का वास्तुकार तक्षशिला में ही अध्ययन किया था। तक्षशिला का भेषज विज्ञान भी गंगा घाटी के नगरीकरण में सहायक रहा। तक्षशिला से प्रशिक्षित जीवक गंगा घाटी का महान वैद्य बना। ये सभी मिलकर 6ठीं शताब्दी ई0पू0 के गंगा घाटी में नगरीकरण में उत्प्रेरक का कार्य किये।

तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक असंतोष ने भी 6ठीं शताब्दी ई0पू0 में गंगा घाटी में नगरीकरण के लिए उत्प्रेरक का कार्य किया। बदली हुई उत्पादन पद्धति ने समाज में व्यापारी, शिल्पकार, बुद्धिजीवी, रंगकर्मी, वेश्याओं को समाज में अपरिहार्य बना दिया था, किंतु वैदिक सामाजिक संरचना की वर्णाश्रम व्यवस्था में इनके लिए कोई सम्मान जनक स्थान नही था। नगरीय जीवन में सारे सम्बन्ध मुख्यत: अर्थ से जुड़े होते हैं इसलिए ये उपेक्षित वर्ग नगरों में सहजता से बसने लगे। वैदिक कालीन धार्मिक यज्ञीय कर्मकाण्डों का भी नवीन उत्पादन प्रणाली और सामाजिक संरचना में कोई बड़ा महत्व नही रह गया।[8] वैदिक परम्परा से विचलन उपनिषद् काल में ही दिखने लगा था, जब यज्ञ को टूटी नौका के समान मान लिया गया। नये धर्म प्रचारकों मक्खलिगोसाल, अजित केशकम्बलिन, संजय वेलिठपुत्त, निगण्ठनाथपुत्त (महावीर) और गौतम बुद्ध आदि के उपदेश मूलत: तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक असंतोष के परिणाम थे। आहत सिक्के पण, माषक, शतमान, कार्षापण के प्रचलन ने सम्पत्ति संकेन्द्रण को बढ़ाया।9 यही कारण है कि महावीर और गौतम के उपदेशों में सम्पत्ति और सामाजिक विभेद सम्बन्धी दु:ख को प्राथमिकता दी गयी। इनके उपदेश नगरीय जीवन की आर्थिक विषमता एवं मुद्रा प्रवाह जैसी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक सार्थक सिद्ध हुए।

6ठीं शताब्दी ई0पू0 का राजनीतिक तंत्र भी नगरीकरण में सहायक रहा। यह काल 16 महाजनपदों का काल है। महाजनपदों की राजधानियाँ आगे चलकर एक बड़ा नगरीय विन्यास विकसित कीं। महाजनपदों और नगरों की सघनता गंगा घाटी में अधिक रही। इस काल में चम्पा, राजगृह और पाटलिपुत्र जैसे नगरों का निर्माण मूलत: राजनीति प्रेरित था।[10] यह नगरीकरण और राजनीति का गंगा घाटी में संकेन्द्रण धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत का राजनीतिक केन्द्र बनता चला गया, जिसने आगे चलकर मगध साम्राज्य जैसे एक अखिल भारतीय साम्राज्य की पृष्ठभूमि तैयार की।

6ठीं शताब्दी ई0पू0 का नगरीकरण निश्चित जनसंख्या अनुपात, नगर-मापन तथा तत्कालीन पारिस्थितिकी को ध्यान में रखकर किया गया था। अर्थशास्त्र में प्रमाण मिलता है कि प्राचीन कालीन नगरों में प्रत्येक दिन नगर में आने वाले शिल्पी, व्यापारी आदि के विवरण लिखे जाते थे। इससे नगर की सुरक्षा, आपात-प्रबंधन, कार्यशील-आश्रित जनसंख्या अनुपात को नियन्त्रित करने में सहायता मिलती थी। नगरों में वेश्याओं, रंगशालाओं को स्वीकृति थी, इससे नागरिकों की यौनिक वासनाओं एवं सांस्कृतिक प्रवृत्ति का संयोजन होता था।[11] ये साधन निश्चित रूप से आपराधिक गतिविधियों को नियन्त्रित करने में सहायक थे। प्राचीन कालीन नगरों में इस प्रकार एक सांस्कृतिक संतुलन देखने को मिलता है। 6ठीं शताब्दी ई0पू0 में गंगा घाटी में बसाये गये नगरों को बस्तियाँ उजाड़ कर बसाने की अपेक्षा नये स्थानों जैसे पहाड़ो, ऊंचे टीलों, नदी तटों पर बसाया गया। इसके साथ ही नयी पारिस्थितिकी का सृजन भी किया गया। वर्तमान नगरीकरण में भी ये सभी तथ्य महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसलिए 6ठीं शताब्दी ई0पू0 के नगरों के ऐतिहासिक अध्ययन को आधुनिक नगर प्रणाली से संयोजित कर नगरीय जीवन को और सुखद बनाया जा सकता है।

उपसंहार:- 6ठीं शताब्दी ई0पू0 में गंगा घाटी का नगरीकरण न तो एकलौती प्रक्रिया थी और न ही एकायक प्रक्रिया थी। नई आर्थिक उत्पादन प्रणाली ने नई सामाजिक संरचना को जन्म दिया, नई सामाजिक संरचना ने नये बसाव क्षेत्रों, नगरो को जन्म दिया। जहाँ एक ओर उत्पादन अधिशेष ने नगरों को पोषण दिया वहीं दूसरी ओर नगरों की तकनीकि एवं शिल्प ने उत्पादन वृद्धि में सहायता की। नये धार्मिक, सामाजिक विधानों ने नगरीय जीवन को मान्यता प्रदान की, तो नगरीय जीवन ने उन्हें बड़े पैमाने पर अनुयायी दिये। राजनीतिक और प्रशासनिक प्रणाली ने नगरों को सुरक्षा और स्थायित्व दिया। इस प्रकार 6ठीं शताब्दी ई0पू0 की प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक संक्रियाओं ने नगरीकरण की वृद्धि की। 6ठीं शताब्दी ई0पू0 का काल नगरीय क्रान्ति का काल बन गया। नगरों

के विकास की व्यावहारिकता के अध्ययन ने वर्तमान समय में नगरों के निरन्तर विकास के फलस्वरूप उत्पन्न विविध समस्याओं जैसे आर्थिक विषमता, पर्यावरण विनाशन, पुनर्वास आदि के निराकरण के सम्बन्ध में एक नये शोध का विषय बन सकती है। 6ठीं शताब्दी ई0 पू0 के नगरीकरण का व्यावहारिक अध्ययन वर्तमान के नगरीय जीवन को और सुखद बनाने में नई समझ का विकास कर सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. राय, उदयनाराणः प्राचीन भारत में नगर तथा नगर-जीवन, इलाहाबाद, 1965।
2. चाइल्ड, गार्डनः अर्बन रिवोल्यूशन पृ0 12-17
3. झा, डी0एन0: एन्शेंट इण्डिया, एन इन्टोडक्टरी आउटलाइन, पृ029
4. दीघनिकाय
5. कौटिल्यः अर्थशास्त्र
6. शर्मा, आर0 एस0: भारत के प्राचीन नगरों का पतन, पृ0 65
7. शतपथ ब्राळमण 1.4.1.10
8. झा, सत्येन्द्र कुमारः बिगिनिंग आफ अर्बनाइजेशन इन अर्ली हिस्टारिक इण्डिया, 1998।
9. थापर, रोमिलाः पूर्वकालीन भारत, दिल्ली, 2004, पृ0 113.119।
10. झा, सत्येन्द्र कुमारः बिगिनिंग आफ अर्बनाइजेशन इन अर्ली हिस्टारिक इण्डिया, 1998।
11. पाण्डेय, डा0 जयनारायणः भारत की प्रारंभिक संस्कृतियॉ तथा सभ्यतायें, इलाहाबाद, 2002।

अन्य सहायक ग्रन्थ-

- कुमार, मनोजः भारत का आर्थिक इतिहास, वाराणसी, 2005।
- शर्मा, रामशरणः अर्बन डिके इन इण्डिया, दिल्ली, 1989।
- बासम, ए.एल.: अद्‌भुत भारत, आगरा, 2007।
- मिश्र, डॉ0 जयशंकरः प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 2012।
- शर्मा, रामशरणः प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ, दिल्ली, 1992।
- सिंह, सतीश कुमारः 6ठी शताब्दी ई0पू0 में सामाजिक गतिकी 74जी इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 2013।
- घोष, ए0: द सिटि इन अर्ली हिस्टारिकल इण्डिया, शिमला, 1973।
- ठाकुर, वी0 के0: अर्बनाइजेशन इन एंशियंट इण्डिया, नई दिल्ली, 1981।
- प्राचीन भारत के अभिलेख, परमेश्वरी लाल गुप्ताः 1999, चौखम्भा बनारस।
- मनुस्मृति, चौखम्भा बनारस।
- www.indianhistorycongress.org.in

व्यवसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन

प्रज्ञा सिंह

एम0एड्0, शिक्षा संकाय, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर

संक्षिप्त सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र सर्वेक्षणात्मक विधि द्वारा किया गया अनुसंधान है। जौनपुर जनपद के समष्टि पर यादृच्छिक न्यादर्श चयन पद्धति द्वारा कुल 200 अध्यापकों का चयन किया गया जिसमें 125 पुरुष तथा 75 महिला अध्यापक थे। व्यवसायिक प्रतिबद्धता का उपकरण कुल 40 कथनों का रवि सिंह द्वारा निर्मित मानकीकृत उपयोग में लाया गया था ऑकड़ों का विश्लेषण प्रसरण अनुपात द्वारा किया गया था परिणाम पाया गया कि व्यवसायिक प्रतिबद्धता पर पुरुष व महिला अध्यापकों में समानता थी।

मुख्य शब्दः सर्वेक्षण, यादृच्छिक, समष्टि, प्रतिबद्धता, प्रसरण अनुपात।

प्रस्तावना

सन् 1757 में प्लासी युद्ध के विजय के बाद कम्पनी का शासन प्रभावशाली बना तब उच्च शिक्षा महसूस की गयी जिसके फलस्वरुप वारेन हेस्टिग्स सन् 1780 में कलकत्ता मदरसा की स्थापना मुसलमानों को खुश करने के लिये किया 1791 में बनारस संस्कृत कालेज खोला गया 1800 में फोर्ट विलियम कालेज 1837 में एलिफिस्टन संस्था, 1851 में पूना कालेज 1852 में सटें जान्स कालेज आगरा स्थापित हुआ। वुड के घोषणा पत्र के बाद कलकत्ता, बम्बई व मद्रास में विश्वविद्यालय की स्थापना 1857 में हुयी, 1854 में 23 कालेज थे। 1882 में 62 हुयी। 1882 में पंजाब विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षा के लिये पहला आयोग 1882 में सर विलियम हंटर की अध्यक्षता में बनी अर्थात् कहना है कि भारत की प्राचीन काल की शिक्षा भी उच्च शिक्षा से वंचित नही रहीं है वैदिक काल के गुरुकुल, बौद्धकाल के मठ व विहार उच्च शिक्षा के ही केन्द्र थे। बौद्ध व गुप्त काल के नालन्दा, तक्षशिक्षा व विक्रमशिला विश्वविद्यालय सुविख्यात थे आज हमारी नयी शिक्षा नीति इन्हीं के तर्ज पर चलने की राह बना रही है। मध्यकाल में मदरसों में उच्च शिक्षा दी जाती रही है। हाँ आधुनिक उच्च शिक्षा प्रणाली भारत में अंग्रेजी की देन है। इसकी लिये शिक्षा की चुनौती नामक दस्तावेज की निम्न पंक्तियों पर ध्यान देना है-

"व्यापक रुप से विश्वास किया जाता है कि किसी देशी की उच्च शिक्षा की स्थिति को ही उसके भविष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संकेत कहा जा सकता है भारत के पूर्व प्रथम प्रधान मंत्री पण्डित जवाहरलाल लाल नेहरु ने निन्होने भारत के आधुनिकीकरण की नींव डाली थी वह घोषणा किये थे कि यदि विश्वविद्यालय ठीक होगें तो राष्ट्र भी ठीक होगा। लेकिन इसके बावजूद भी उच्च शिक्षा को मुख्य भूमिका प्रदान की गयी परन्तु प्रगति कम हुयी हलाँकि कुछ विद्वानों ने भूमिका निभाई है फिर भी विश्वविद्यलयों की वर्तमान स्थिति चिन्ता का विषय है।" इसके लिये शिक्षकों में संचेतना लानी पड़ेगी और उन्हें उनका दायित्वबोध समझना होगा। इसी प्रेरणा से प्रस्तुत अध्ययन शोधकर्त्ता करने का कार्य किया है।

अध्ययन का औचित्य

प्रस्तुत अध्ययन में व्यवसायिक प्रतिबद्धता का तात्पर्य शिक्षक का अपने व्यवसाय के प्रति जबाब देह होना है। इस पर सिंह जे. डी. (2018) ने बताया कि शिक्षक अपने व्यवसाय में अनुकूलता तथा जबाबदेही सुनिश्चित करता है जो उसे अपने पेशे के प्रति जरुर तैयार करता है। सिंधू (2015) का अध्ययन व्यवसायिक प्रतिबद्धता पर बी0एड्0 कर रहे विद्यार्थियों से जुड़ा था जो उच्च

शैक्षिक अभिक्षमता के थे वे नियमित रहा करते थे। गोंडी (2015) ने पाया कि शिक्षक का व्यक्तित्व उसकी व्यवसायिक प्रतिबद्धता से घनिष्ट रुप से सम्बन्धित होता है। सिंह (2001) ने अपने अध्ययन पाया कि स्ववित्तपोषी संस्थाओं में शिक्षणरत् अध्यापकों में व्यवसायिक प्रतिबद्धता कमी होती हैं शाहिल (2016) ने अध्ययन से पाया कि शिक्षकों के व्यवसायिक प्रतिबद्धता का समायोजन के साथ सहसम्बन्ध पाया जाता है। रवि (2021) ने अपने अध्ययन में दायित्वबोध तथा व्यवसायिक प्रतिबद्धता में सकारात्मक सहसमबन्ध पाया और शारदा प्रसाद सिंह (2021) ने शिक्षण अभिक्षमता और व्यवसायिक प्रतिबद्धता में सकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया।

अध्ययन का उद्देश्यः प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य था कि "शिक्षकों के व्यवसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन करना"

परिकल्पनायेंः प्रस्तुत अध्ययन में शून्य परिकल्पना परीक्षण हेतु बनायी थी कि "पुरुष शिक्षक तथा महिला शिक्षिकाओं के व्यावसायिक प्रतिबद्धता में सार्थक अन्तर नहीं है।"

शोध के प्रकारः प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अनुसंधान था।

शोध विधिः प्रस्तुत अध्ययन सर्वेक्षणात्मक विधि द्वारा किया गया था।

समष्टिः प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि जौनपुर जनपद के समस्त माध्यमिक स्तर के शिक्षक थे।

न्यादर्शः स्मयिट से कुल 200 शिक्षकों का चयन किया गया था जिसमें 125 पुरुष शिक्षक तथा 75 महिला शिक्षिकायें थी।

न्यादर्शजः यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि की लाटरी रीति द्वारा चयन किया गया था।

शोध उपकरणः रवि सिंह द्वारा निर्मित व्यवसायिक प्रतिबद्धता मापनी मानकीकृत उपयोग में लायी गयी थी जो उच्च विश्वसनीय तथा वैध है।

सांख्यकीय तकनीकिः आँकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रसरण अनुपात की गणना की गयी थी।

विश्लेषण तथा व्याख्याः प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषण का आधार उद्देश्य बनाया गया था जिसके लिये निर्मित शून्य परिकल्पना के परीक्षण हेतु अधोलिखित विश्लेषण तालिका बनायी गयी थी।

तालिका-1: पुरुष शिक्षक तथा महिला शिक्षिकाओं की व्यावसायिक प्रतिबद्धता सम्बन्धी प्रसरण विश्लेषण तालिका

विचरण के स्रोत	df	s.s.	m.s.s.	Fk~ ratio	P
समूह के मध्य	1	258.36	258.36	3.44	असार्थक
समूह के अन्दर	198	14842.21	74.96		
योग	199				

df (1,198) .05 = k 3.86

.01 = k 6.70

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि पुरुष तथा महिला शिक्षकों के बीच व्यवसायिक प्रतिबद्धता प्रसरण वर्ग 258.36 और प्रसरण अनुपात 3.44 आया जो df (1,198) के .05 सार्थकता स्तर पर 3.89 से कम है जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष तथा महिला शिक्षक की व्यवसायिक प्रतिबद्धता एक जैसी होती है।

शोध निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि माध्यमिक स्तर पर पुरुष शिक्षक तथा महिला शिक्षिकाओं की व्यवसायिक प्रतिबद्धता समान होती है। अर्थात् व्यावसायिक प्रतिबद्धता पर लिंग का कोई प्रभाव नहीं होता है।

शैक्षिक निहितार्थ

शिक्षण व्यवसाय केवल व्यवसाय ही नहीं बल्कि एक सेवा है जो समाज को भविष्योन्मुख करती है। विद्यार्थियों में नैतिकता व अनुशासन का रोपण किया जाता है जिससे बच्चे में नागरिकीकरण होता है। बच्चों में संवेगात्मक समायोजन शिक्षक के माध्यम से ही आता है क्योंकि उसके व्यवहार आचरणीय होते है, वंदनीय होते है। यदि राजगीर गड़बड़ होता है तो मकान विरह होगा ठीक उसी तरह शिक्षक यदि गड़बड़ होगा तो राष्ट्र गड़बड़ हो जायेगा। व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता अध्यापकों में प्रेरणा देती है और उनका व्यक्तित्व साधित होता है जिससे उनमें समायोजन आता है और वे अच्छा प्रर्दशन करते है, अद्यतन ज्ञान वाले होते है। प्रस्तुत शोधपत्र इस दिशा को आलोकित करता रहेगा। इक्कीसवी सदी की आवश्यकताओं को देखते हुए, गुणवत्तापूर्ण उच्चतर शिक्षा का जरुरी उद्देश्य अच्छे, चिन्तनशील, बहुमुखी प्रतिभा वाले रचनात्मक व्यक्तियों का विकास करना चाहिए। यह एक व्यक्ति को एक या एक से अधिक विशिष्ट क्षेत्रों में गहन स्तर पर अध्ययन करने में सक्षम बनाती है और साथ ही चरित्र, नैतिक और संवैधानिक मूल्यों, बौद्धिक जिज्ञासा वैज्ञानिक स्वभाव, रचनात्मकता, सेवा की भावना और और विज्ञान, कला, मानविकी, भाषा साथ ही व्यवसायिक तकनीकी और व्यवसायिक विषयों सहित विभिन्न विषयों में इक्कीसवी सदी की क्षमताओं को विकसित करती है। उच्चतर गुणवत्ता वाली शिक्षा द्वारा व्यक्तिगत उपलब्धि और ज्ञान, रचनात्मक सार्वजनिक सहभागिता और समाज में उत्पादक योगदान को सक्षम करना चाहिये। इसे छात्रों को अधिक सार्थक, संतोष जनक जीवन और कार्य भूमिकाओं के लिये तैयार होना चाहिये। और आर्थिक स्वतंत्रता को सक्षम करना चाहिये। व्यक्तियों के समग्र विकास के उद्देश्य के लिये यह आवश्यक है कि पूर्व विद्यालय से उच्चतर शिक्षा तक, सीखने के प्रत्येक चरण में कौशल और मूल्यों का एक निर्धारित सेट शामिल किया जाना चाहिये।

सामाजिक स्तर पर उच्चतर शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र को प्रबुद्ध, सामाजिक रुप से जागरुक, जानकार व सक्षम बनाना है। जो अपने नागरिकों का उत्थान कर सके। उच्चतर शिक्षा देश में ज्ञान निर्माण और नवाचार का आधार भी बनाती है और इसके चलते राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसीलिये उच्चतर शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत रोजगार के अवसरों का सृजन करना ही नहीं बल्कि अधिक जीवन्त तथा सामाजिक रुप से जुड़े हुये सहकारी समुदायों के साथ मिलकर एक अधिक खुशनुमा सामजंस्यपूर्ण, सुसंस्कृत, उत्पादक, अनुभव, प्रगतिशील और समृद्ध राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। वर्तमान में भारत में उच्चतर शिक्षा प्रणाली की कुछ के प्रमुख समस्याओं में निम्नलिखित शामिल है।

- गम्भीर रुप से खंडित उच्चतर शैक्षिक परिस्थितिकी तंत्र।
- संज्ञानात्मक कौशल के विकास और सीखने के परिणामों पर कम बल।
- विषयों का एक कठोर विभाजन, विद्यार्थियों को बहुत पहले ही विशेषज्ञ और अध्ययन के संकीर्ण क्षेत्रों की और धकेल देना।
- सीमित पहुँच विशेष रुप से सामाजिक आर्थिक रुप से वंचित क्षेत्रों में जहाँ कुछ एक ही ऐसे विश्वविद्यालय और महाविद्यालय जो स्थानीय भाषा में पढ़ाते हो।
- सीमित शिक्षक और संस्थागत् स्वायत्तता
- योग्यता आधारित कैरियर प्रबन्धन और संकाय और संकाय के लीडरो की प्रगति के लिये अपर्याप्त तंत्र।
- अधिकांश विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शोध पर कम बल और विषयक अनुशासनों में पारदर्शी और प्रतिस्पध र्ी-समीक्षा शोध नियमों की कमी।
- उच्चतर शिक्षा संस्थानों में गवर्नेस और नेतृत्व क्षमता का अभाव
- एक अप्रभावी विनियामक प्रणाली और-
- बहुत सारे सम्बद्ध विश्वविद्यालय जिनके परिणाम स्वरुप अवर स्नातक शिक्षा के निम्न मानक।

यह शिक्षा नीति उच्चतर शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल बदलाव और नये जोश के संचार के लिये उपयुक्त चुनौतियों को दूर करने के लिये कहती है। जिससे सभी युवा लोगों को उनकी आकांक्षा के अनुरुप गुणवत्तापूर्ण समान अवसर देने वाली एवं समावेशी उच्चतर शिक्षा मिले इस नीति की दृष्टि में वर्तमान उच्चतर शिक्षा प्रणाली में निम्नलिखित प्रमुख परिवर्तन शामिल है।

- ऐसी उच्चतर शिक्षा व्यवस्था की ओर बढ़ना जिसमें विशाल बहुविषयक विश्वविद्यालय और महाविद्यालय हो जहाँ प्रत्येक जिले या उसके पास कम से कम एक और पूरे भारत में अधिकतर उच्च संस्थान ऐसे ही हो जो स्थानीय/भारतीय भाषाओं में शिक्षा या कार्यक्रमों का माध्यम प्रदान करते है।
- और अधिक बहुविषयक स्नातक शिक्षा की ओर बढ़ना।
- संकाय और संस्थागत स्वयत्तता की ओर बढ़ना।
- विद्यार्थियों के अनुभव में वृद्धि के लिये पाठ्यचर्या शिक्षणशास्त्र, मूल्यांकन औा विद्यार्थियों को दिये जाने वाले सहयोग में आमूल चूक परिवर्तन करना।
- शिक्षण, अनुसंधान और सेवा के आधार पर योग्यता नियुक्तियाँ और कैरियर के प्रगति माध्यम से संकाय और संस्थागत नेतृत्व की स्थिति की अखंडता की पुष्टि करना।
- सहकर्मी द्वारा समीक्षा की गयी उत्तम अनुसंधान विश्वविद्यालयों और कालेजों में सक्रिय रुप से अनुसंधान की नींव रखने के लिये राष्ट्रीय अनुसंधान फउंडेशन की स्थापना।
- शैक्षणिक व प्रशासनिक स्वायत्ता वाले उच्चतर योग्य स्वतंत्र बोर्डो द्वारा उच्च संस्थानों का गवर्नेस
- व्यवसायिक शिक्षा सहित उच्चतर शिक्षा के सभी एकल नियामक द्वारा लचीला लेकिन स्थायित्व करने वाला नियमन।
- उपायों की एक श्रृंखला के माध्यम से पहुँच, समता व समावेशन में वृद्धि इसके साथ ही उत्कृष्ट, सार्वजनिक शिक्षा के लिये अधिक अवसर, वंचित और निर्धन छात्रों के लिये निजी/परोपकारी विश्वविद्यालयों द्वारा छात्रवृत्ति में पर्याप्त वृद्धि, ओपेन स्कूलिंग, ऑनलाइन शिक्षा और मुक्त दूरस्थ शिक्षा और दिव्यांग शिक्षार्थियों के लिये सभी बुनियादी ढ़ाचे और शिक्षण सामग्री की उपलब्धता और उस तक उनकी पहुँच।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह जे.डी. (2018); "व्यवसायिक प्रतिबद्धता का अध्ययन" जर्नल ऑफ एज्यूकेशन - साइकोलोजिकल रिसर्च वाल. 8, नं. 1, 2018.
2. सिंधु पूनम (2015); "बी. एड. छात्रों की शिक्षण योग्यता का अध्ययन" शोधगंगा।
3. गोंडी साधना (2015); "शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि व व्यवसायिक प्रतिबद्धता" शोधगंगा।
4. सिंह यू.पी. (2001); "स्वावित्तपोषी अध्यापकों की व्यवसायिक प्रतिबद्धता" ICFAL.
5. शाहिल अहमद खान (2016); "शिक्षण अभिक्षमता तथा व्यवसायिक प्रतिबद्धता" आर्मटी इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ टीचर एज्यूकेशन अप्रैल 2016.
6. रवि (2021); "दायित्वबोध व व्यवसायिक प्रतिबद्धता" शोध प्रबन्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर.
7. सिंह शारदा (2021); "शिक्षण अभिक्षमता व व्यवसायिक प्रतिबद्धता" शोध प्रबन्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर.

कथाकार अमरकांत के उपन्यासों में मध्यवर्ग का जीवन संघर्ष

संतोष कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस0आर0के0 (पी0जी0) कॉलेज, फिरोजाबाद

शोध सारांश

नई पीढ़ी के कालजयी रचनाकार अमरकांत जी मुंशी प्रेमचन्द परम्परा के सामाजिक उपन्यासकार के रूप में जाने जाते हैं। अमरकांत जी का जन्म बलिया जिले के भगमलपुर (नगरा) में 1 जुलाई 1925 ई0 को हुआ था। अमरकांत जी का बचपन गाँव में बीता। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में पूरी हुई। जिससे कि अमरकांत जी ग्रामीण समाज से भी परिचित रहे। हाईस्कूल तक की पढ़ाई अमरकांत जी ने गाँव से प्राप्त की। उसके पश्चात् इण्टरमीडिएट की शिक्षा बलिया के सतीश चंद्र इण्टर कालेज से पूरी कर प्रयाग विश्वविद्यालय से बी0 ए0 किया। अमरकांत ने ग्रामीण एवं कस्बाई जीवन को नजदीक से देखा और अपने उपन्यासों का विषय बनाया। कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध कथाकार अमरकांत जी के उपन्यासों में जिस समाज का चित्रण हुआ है, वह है भारतीय मध्यवर्गीय जीवन। मध्यवर्ग की आशाओं, इच्छाओं, भावनाओं एवं संघर्षों को अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। मध्यवर्ग के यथार्थ बोध का चित्रण कर उपन्यासों को एक नवीन आयाम दिया है। अपने उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन की समस्याएँ, परम्पराएँ, रूढिय्यों, आडम्बर एवं प्रदर्शनप्रियता को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। भारतीय मध्यवर्ग के स्त्री-पुरूषों के मन की कुण्ठा एवं छटपटाहट को चित्रित कर अस्तित्व बोध, असफल दाम्पत्य प्रेम, विवाह समस्या, ऊब, टूटन, घुटन, अलगाव एवं एकाकीपन को प्रस्तुत करने वाले उपन्यासकार हैं।

प्रमुख शब्द- मध्यवर्गीय जीवन की समस्याएँ, आडम्बर एवं प्रदर्शनप्रियता, स्त्री-पुरूषों के मन की कुण्ठा आदि।

कथाकार अमरकांत जी को ज्यादा प्रसिद्धि कहानियों के क्षेत्र में मिली है। कहानीकार के रूप में प्रख्यात अमरकांत जी ने कई उपन्यास लिखें हैं- 'सूखा पत्ता', ':ग्रामसेविका', 'इन्ही हथियारों से', 'आकाश पक्षी', 'काले-उजले दिन', 'कँटीली राह के फूल', 'सुखजीवी', 'बीच की दीवार', 'सुन्नर पाण्डे की पतोह', 'लहरें' एवं 'विदा की रात' आदि। इन उपन्यासों के अतिरिक्त कहानियाँ, संस्मरण एवं बाल साहित्य भी लिखा। समय-समय पर साहित्य जगत की विभिन्न संस्थाओं ने अमरकांत जी को सम्मानित भी किया।

मानवीय संवेदनाओं के कथाकार अमरकांत जी ने जो रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, उसमें मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ का द्वंद्युक्त, संवेदनात्मक, व्यापक मानवीय सहानुभूति का चित्र उपस्थित रहता है। अमरकांत जी का उपन्यास साहित्य मध्यवर्ग की विशिष्ट अहमियत को प्रस्तुत करने वाला है। उनके साहित्य में जीवन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म साधारण अनुभवों को बड़ी ही सजीवता के साथ प्रस्तुत किया गया है। अमरकांत जी के उपन्यास के स्वरूप का अध्ययन करने पर हम जिस वर्ग को पाते है वह है मध्य वर्ग। अमरकांत जी ने मध्यवर्गीय समाज को अपने उपन्यास साहित्य का विषय बनाया है। उपन्यास साहित्य के माध्यम से साहित्यकार सामाजिक यथार्थ एवं मानवीय संवेदनाओं को व्यक्त करने में सक्षम होता है। उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से किसी वर्ग विशेष को सम्पूर्णता में चित्रित किया जा सकता है। उपन्यास साहित्य आज जिस मुकाम पर पहुँचा है वहाँ तक उसे पहुँचने के लिए अनेक पड़ाव तय करने पड़े हैं। उपन्यासों के माध्यम से अमरकांत जी ने मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं, अंतर्विरोधों, सपनों, इच्छाओं, आकांक्षाओं का खाका खींचकर नई संवेदनात्मक भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। अमरकांत जी के पात्र अपने निकट परिवेश से भलीभाँति परिचित हैं। उन्होंने मध्यवर्गीय समाज के उपेक्षित लोगों के दुख दर्द को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

अमरकांत जी अपने उपन्यासों में मध्यवर्गीय पात्रों से साक्षात्कार करते हैं। वह अपने पात्रों की बेबसी और करूणा को छिपाते एवं दूसरों के लिए संघर्ष करते दिखाई देते हैं। मध्यवर्ग के लोगों के दुख-दर्द का चित्रण अपने उपन्यासों में करते हैं। इस संबंध में मार्कण्डेय जी लिखते हैं कि ''अमरकांत टूटते हुए मध्यवर्गीय पात्रों के दुख-दर्द का सजीव चित्रण प्रस्तुत करने में अपना सानी नहीं रखते। परिस्थितियों के व्यंग्य को उभार कर वे अपने कथानक को ऐसा मोड़ देने में समर्थ है जो पाठक को तिलमिला देता है।''[1]

मध्यवर्गीय समाज अपने मान-सम्मान को सब कुछ समझता है। वह अपनी प्रतिष्ठा के लिए हर सम्भव प्रयास करता है। अमरकांत जी ने अपने उपन्यास 'सूखा पत्ता' में इस समस्या को बार-बार उठाया है। 'सूखा पत्ता' उपन्यास में जब पुलिस वाले कृष्ण कांत को पकड़ने के लिए आते हैं तो इस बात पर कृष्णकांत के पिता अपने आप को गौरवान्वित महसूस करते हैं क्योंकि उस समय यह फक्र की बात थी कि उनका लड़का देश को स्वतंत्र कराने के लिए कुछ कर रहा है। अतः कृष्णकांत के पिता घर की महिलाओं से कहते हैं कि '' क्या शोर मचा रखा है ? कोई गमी हुई है जो कि इस तरह से रो रही हो तुम लोग ? लड़का है रोना-धोना बंद करो। उठो बेटा, हाथ मुँह धो लो और कपड़े बदल लो।''[2]

परन्तु जब वही लड़का कृष्णकांत अपनी जाति के बाहर की लड़की से विवाह करने के लिए कहता है तो इस बात पर कृष्णकांत के पिता नाराज होते हुए कहते हैं कि ''अच्छे लड़के मिले हो। तुम्हारी वजह से तुम्हारे बाप का पूरा नाम उजागर हो रहा है। तुमको पाल-पोस कर बड़ा किया गया, तुम ऐसा न करोगे तो कौन करेगा ? उम्मीद तो यही थी कि पढ़-लिख कर आदमी बनोगे, पर तुम्हारी रहन बनती जा रही है। बेटा गले को रेत डालो।''[3]

मध्यवर्ग में जाति की समस्या एक गम्भीर समस्या है। मध्यवर्गीय समाज अन्य जाति में विवाह करना पसंद नहीं करता है। वह उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा के विरूद्ध है। अमरकांत जी ने इस समस्या को खण्डित करने का प्रयास किया है। 'आकाश पक्षी' उपन्यास में रवि के माध्यम से इस समस्या का निराकरण करने का संकेत करते है। 'आकाश पक्षी' उपन्यास का कथानायक जो कि जाति-पाँति को नहीं मानता है वह हेमा की माँ से कहता है कि ''मैं जाति, धर्म वगैरह का बंधन नहीं मानता, न मैं यही मानता कि ऊँचे खान-दान में जन्म लेने से कोई ऊँचा हो जाता है और नीचे खान-दान में जन्म लेने से नीचा। मनुष्य का कर्म ही मनुष्य को ऊँचा या नीचा बनाता है, जैसे उसकी मेहनत, उसकी समझदारी, उसकी हिम्मत, उसका त्याग। जिनमें ये गुण नहीं है, वे तथाकथित ऊँचे खानदान में जन्म लेने पर भी घटिया है।''[4]

मध्यवर्गीय परिवार में स्त्रियाँ सामान्यतः अपने पतियों के प्रति ज्यादा भावुक होती हैं तथा ईमानदारी के साथ अपने पतियों के साथ अच्छा व्यवहार करती हैं। पति भले ही उनकी इज्जत न करता हो। मध्यवर्गीय समाज की स्त्रियाँ अपने पति को अपना सर्वस्व समझती है। वह उनके सामने आत्म समर्पण कर देती है, अपने अस्तित्व को ही मिटा देती हैं। 'काले-उजले दिन' उपन्यास में कथानायक का विवाह उसके माता-पिता कांति से करा देते है। कांति अपने को उसके समक्ष समर्पित कर देती है। जबकि कथानायक अपने दफ्तर में काम करने वाली लड़की से प्यार करता है। कांति के साथ अच्छा व्यवहार भी नहीं करता है। उसका शोषण करता है। फिर भी कांति उसे अपना सर्वस्व मानती है। इस बात को कथानायक स्वयं स्वीकार करता है कि ''प्यार, समर्पण एवं विश्वास ही कांति का जीवन था। वह मेरे प्रति या किसी और के प्रति कोई दुर्भावना रख ही नहीं सकती थी। लेकिन मेरे मन में एक घोर निराशा दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी।.........मेरा मन प्यार के लिए छटपटाता रहता था। मैं कांति की कद्र करता था, लेकिन मैं उसको प्यार नहीं कर सकता था।............कांति से मैं क्यों संबंध नहीं तोड़ लेता ? मेरे साथ किसी ने एहसान नहीं किया है।''[5]

मध्यवर्गीय लोगों में दिखावा अन्य वर्ग के लोगो से अधिक होता है। कभी-कभी मध्यवर्ग में दिखावा इतना बढ़ जाता है कि वह बोझ लगने लगता है। 'आकाश पक्षी' उपन्यास में हेमा की माँ अत्यधिक दिखावा करती है क्यूँकि जब रवि की माँ हेमा के घर आती है तो हेमा की माँ अत्यधिक कीमती साड़ी और गहने पहन लेती है जिससे कि रवि की माँ वहाँ पर अपने-आप को असहज महसूस करती है। हेमा की माँ अपने बड़प्पन को दिखाने के लिए ही बेशकीमती साड़ी पहनती है। जिसका वर्णन हेमा स्वयं करती है कि ''माँ ने अपनी सबसे बेशकीमती साड़ी और गहने निकाल लिए। उनके आने के पहले वे खूब सज-धज गईं थीं। नख से शिख तक वे गहनों से लद गयीं थीं। निःसंदेह अपनी शान और शौकत, अपनी उच्चता एवं प्रतिष्ठा के लिए वह अपने पूर्ण वैभव का प्रदर्शन करना चाहती थी। इस प्रदर्शन द्वारा वह अपनी उपेक्षा भी प्रकट करना चाहतीं थीं।''[6]

इसी प्रकार 'पराई डाल का पक्षी' या 'सुखजीवी' उपन्यास में टंडन साहब जब दीपक के घर आते हैं तो वह शर्मिंदा हो जाता है क्योंकि उसका घर बेढ़ंगा-सा दिखाई दे रहा था। सामान इधर-उधर बिखरा हुआ तथा जहाँ-तहाँ ठूँसा हुआ था। उसके बच्चे बहुत

गंदे तरीके से दरी पर बैठे खाना खा रहे थे। उनके कपड़े गंदे थे। उसकी पत्नी चूल्हे पर खाना बना रही थी। इन बातों को लेकर वह टंडन जी के सामने अफरा-तफरी मचा देता है। अपनी पत्नी पर क्रोधित होने लगता है क्यूँकि वह जानता है कि टंडन जी के घर में बच्चे और पत्नी बहुत ही सलीके से रहते हैं। दीपक के इस क्रोध से पता चलता है कि मध्यवर्गीय समाज में युवक अपने घर को कितना अव्यवस्थित रखते है।

मध्यवर्गीय समाज में जिस तरह लोगों के जीवन पर आर्थिक प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार मध्यवर्ग पर राजनीतिक प्रभाव पड़ता है। आज एक सामान्य आदमी राजनीति की कठपुतली बना हुआ है। आज का समाज इतना विकृत हो गया है, राजनीति उस पर हावी हो गयी है। स्वार्थपरता एवं भ्रष्टाचार से आज का समाज परिपूर्ण है। अमरकांत जी ने अपने उपन्यास 'इंहीं हथियारों से' एवं 'सूखा पत्ता' में देश की राजनीति का जिक्र किया है। जिसमें नीलेश और कृष्णकांत जैसे नवयुवक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। 'इंहीं हथियारों से' उपन्यास में नीलेश और नीलेश के साथी सभी मध्यवर्गीय परिवार से हैं जो देश की आजादी के लिए अपने कदम आगे बढ़ाते हैं। वे लोग जान-बूझ कर औपनिवेशिक चंगुल में फँसने के लिए तत्पर रहते हैं। लोगों का मानना है कि गुलामी एक भयंकर अभिशाप है। कोई भी पशु-पक्षी गुलामी को स्वीकार नहीं करता है। भले ही उसे कितनी परेशानियों का सामना करना पड़े। देश में भयानक भ्रष्टाचार फैला हुआ है जिससे मध्यवर्गीय जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। इस उपन्यास में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को लाने के साथ-ही-साथ समाज के व्यक्तियों के स्वार्थ को उजागर किया गया है। मध्यवर्ग के व्यक्तियों की करनी एवं कथनी में अंतर होता है। मध्यवर्गीय समाज के दुहरे व्यक्तित्व का पता गोपाल के गुस्से से चलता है। गोपाल का कहना है कि '' मैं हर पार्टी में आता जाता हूँ। बड़ी-बड़ी ऊँची बातें करने वालों के मुँह लटक जाते हैं और जब मेरे हाथ से पानी पीने की मजबूरी आ जाती है। साथ में खाने-पीने के मामले में और ही निकट स्थिति हो जाती है। तब ज्ञात होता है कि बहाने बाजी के तक्र प्रस्तुत करने में हमारे देश के लोग सर्वोपरि है।''[7]

इसी प्रकार 'सूखा पत्ता' उपन्यास में कृष्णकांत एवं उसके साथी देश की आजादी के लिए अपने कर्तव्यों का दिखावा करते हैं। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेके महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। 1942 ई0 की क्रांति में बलिया जनपद सबसे अग्रणी रहा है, भारतीय इतिहास में यह बड़े गर्व की बात रही है। 1942 ई0 के आंदोलन में भारतीय मध्यवर्गीय समाज का नवयुवक बढ़- चढ़ कर भाग लिया था। देश के क्रांतिकारियों की वीरगाथा को पढ़-पढ़ कर नवयुवकों का यौवन सोए हुए शेर की तरह जाग उठता है। 'सूखा पत्ता' उपन्यास में कृष्णकांत और उसके तीन मित्र मनोहर, दीनानाथ और दीनेश्वर मिलकर देश को स्वतंत्र कराने के लिए संकल्प लेते है तथा तरह-तरह की योजनाएँ बनाते हैं।

अमरकांत जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया है। सामाजिक ढ़ाँचे की विसंगतियों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इसे उपन्यासकार ने बखूबी चित्रित किया है। मध्यवर्ग के यथार्थ परिवेश की विसंगतियों से जूझता हुआ मनुष्य पशुता की ओर खिंचता चला जा रहा है। मनुष्य अपनी स्वार्थपरता, वैमनस्यता एवं कटुता में जिस तरह जी रहा है, उस संबंध में डॉ0 संजय लिखते हैं कि ''मध्यवर्गीय समाज में किस तरह मनुष्य वैमनस्यता, कटुता, स्वार्थपरता, भौतिकता, निजता तथा बाजार के चकाचौंध को भरता है जिसके कारण मध्यवर्गीय समाज का युवक अपने वास्तविक मूल्य को खो देता है, को दिखाया गया है। यह वर्ग सामाजिक, पारिवारिक और वास्तव में व्यक्तिगत जिम्मेदारी से मुँह मोड़ लेता है।''[8]

अमरकांत के कथा साहित्य में मध्यवर्गीय समाज की पारिवारिक स्थिति विसंगतियों एवं विकृतियों से भरी हुई है जिससे समाज के युवक गुजरते हैं। मध्यवर्गीय परिवार कहीं तो आर्थिक परेशानियों से गुजरता है तो कहीं सामाजिक असुरक्षा के अभाव से। 'काले-उजले दिन' उपन्यास में कथानायक मानसिक हीनता एवं आत्मविश्वास की कमी से भरा हुआ है जिससे वह अपने माता-पिता को दोषी बताता है। उसके बचपन का जीवन अभावों से भरा रहा। उसके अंदर समाज के प्रति घृणा की भावना भर आयी थी और वह मानसिक यातना को जीवन भर ढोता रहा। कथानायक सम्पूर्ण जीवन में किसी से भी अच्छे संबंध नहीं बना सका। बचपन से ही हीनत्व बोध का शिकार हो गया जो आज के युवा की गम्भीर समस्या है। कथानायक की पत्नी मध्यवर्गीय समाज में पली हुई थी जो समाज की परम्पराओं एवं मान्यताओं को मानती थी।

अमरकांत जी ने अपने उपन्यास 'कँटीली राह के फूल' के माध्यम से समाज के मध्यवर्ग के नवयुवकों के अंतर्द्वंद को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास का कथानायक अनूप पढ़ाई करने के लिए शहर जाता है वहाँ पर अपनी दुर्बलताओं के कारण अपने मार्ग से भटक जाता है। वह एक ऐसे मोड़ पर आकर खड़ा होता है जहाँ वह निर्णय लेने में सक्षम नहीं रहता है कि उसे किस मार्ग पर

चलना है उसके अंदर-ही-अंदर द्वंद चलता रहता है उसका परिचय कामिनी से होता है और वह कामिनी से प्यार करने लग जाता है। रचनाकार ने मध्यवर्गीय नवयुवकों के अंदर जो भावनात्मक लगाव बढ़ता है उसका जिक्र बखूबी किया है।

यथार्थ की भावभूमि पर लिखे गए उपन्यास 'सुन्नर पाण्डे की पतोह' एक सशक्त औपन्यासिक रचना है। जिसमें कथाकार ने भारतीय मध्यवर्गीय ग्रामीण नारी की करूण गाथा को मार्मिक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं, विसंगतियों एवं विरूपताओं को हू-ब-हू प्रस्तुत किया गया है। मध्यवर्ग के पति द्वारा परित्यक्ता नारी सुन्नर पाण्डे की पतोह उर्फ राजलक्ष्मी के जीवन की कथा व्यथा को प्रस्तुत किया गया है। अमरकांत जी ने स्त्री जीवन की समस्याओं के साथ-ही-साथ मध्यवर्गीय सामाजिक यथार्थ को भी प्रस्तुत करते हैं। यथा- '' मन्नी लाल अपने को अभी बूढ़ा नहीं समझते थे। खिघ्जाब लगाना अभी जारी था। औरत में त्याग, कुर्बानी, आदर्श हो सकता है, यह वह कभी नहीं मानते थे। उनकी नजर में पैसे से सब कुछ खरीदना संभव था। ......ऐसी औरत प्रभावशाली लोगों पर जान दे सकती है। एक-से-एक खूबसूरत औरतें उनके चरणों में गिरी है। यह कब्जे में आ जाय तो मजा आ जाए। ऐसी बहादुर औरत को कब्जे में करने का आनंद है.......और अचानक उनको एहसास हो गया कि सुन्नर पाण्डे की पतोह को उनके सहारे की जरूरत है। शायद ईश्वर को भी यही मंजूर है कि दुखिया औरत का जीवन वह पार घाट लगा दे।''[9]

भारतीय मध्यवर्गीय परिवार की एक प्रमुख विसंगति दहेज प्रथा है। दहेज प्रथा के कारण न जाने कितनी लड़कियों को मानसिक यातनाओं को सहन करना पड़ता है। न जाने कितने संबंध टूटते है। दहेज मध्य वर्ग की प्रमुख समस्या है। 'ग्राम सेविका' उपन्यास में अमरकांत जी ने दहेज की समस्या को उठाया है। दम्यंती अतुल से प्रेम करती है परन्तु दहेज के कारण दम्यन्ती का विवाह अतुल से नहीं हो पाता है। जब वह यह सुनती है कि अतुल को दहेज में दस हजार रूपये मिलेगें तो जैसे उसके पैरों के नीचे की जमीन खिसक जाती है, ऐसा उसे महसूस होता है। उपन्यासकार ने लिखा है कि ''उस दिन मुन्नी ने आकर बताया था कि अतुल की शादी तय हो गयी है। लड़की बहुत सुंदर है और उसके बाप बहुत धनी हैं, जो तिलक में दस हजार रूपये देंगे। यह सुनकर दम्यन्ती का शरीर सुन्न हो गया था, जैसे देह का सारा खून बाहर निकल गया हो परन्तु उसको विश्वास न हुआ। जिसने उसके शरीर को आलिंगन में बाँध कर कसमें खाई थी। जो उसको अच्छी-अच्छी रायें देता रहा और उसकी भलाई के लिए सदा सोचता रहा, वह ऐसा नहीं कर सकता।''[10] इसी प्रकार उपन्यासकार ने दहेज की समस्या का जिक्र 'काले-उजले दिन' उपन्यास में करता है। इस उपन्यास में कथानायक के माता-पिता दहेज के लिए उसका विवाह कांति से करवा देते है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि अमरकांत जी ने मध्यवर्गीय जीवन को अपने उपन्यासों में विस्तृत फलक पर प्रस्तुत किया है जो उपन्यासकार के परिवेश से जुड़ा हुआ था। मनुष्य के जीवन की अनेक समस्याएँ हैं, जिन्हें अमरकांत जी ने सामाजिक बदलावों के साथ सहज ही रेखांकित किया है तथा अपने सभी उपन्यासों में प्रमुखतया मध्यवर्ग के जीवन संघर्ष को चित्रित किया है।

संदर्भ सूचीः

1. सं0- मार्कण्डेय, मानक कहानियाँ, पृष्ठ-29
2. अमरकांत, सूखा पत्ता, पृष्ठ-102
3. अमरकांत, सूखा पत्ता, पृष्ठ-174
4. अमरकांत, आकाश पक्षी, पृष्ठ-78
5. अमरकांत, काले-उजले दिन, पृष्ठ 70-71
6. अमरकांत, आकाश पक्षी पृष्ठ-140
7. अमरकांत, इन्हीं हथियारों से, पृष्ठ-84
8. डॉ0 संजय कुमार, अमरकांत के कथा साहित्य में मध्य वर्ग, पृष्ठ-108
9. अमरकांत, सुन्नर पाण्डे की पतोह, पृष्ठ 131-132
10. अमरकांत, ग्राम सेविका, पृष्ठ-18

भारत में महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा

सुबोध कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, एस.आर.के. (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद

कितने आश्चर्य की बात है कि एक तरफ तो हम कम्प्यूटर और सूचना क्रान्ति की बात करते हैं, चाँद पर जाने के बाद अब मंगल ग्रह तक पर बसने की सोचते हैं तो दूसरी ओर महिलाओं पर वही मध्ययुगीन बर्बरता जारी है। दुर्भाग्य से महिलाओं की स्थिति हमारे जैसे विकासशील और परम्परागत भारतीय समाज में ही नहीं है अपितु दुनिया भर की महिलाएँ कमोवेश एक ही नाव में सवार हैं।

जैसे-जैसे मानव-सभ्यता विकास की ओर बढ़ती जा रहीं है, वैसे-वैसे महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों की संख्या तथा उनकी गंभीरता में भी वृद्धि होती जा रही है। चिंताजनक तथ्य यह है कि महिलाओं के साथ-साथ मासूम, निरीह और अबोध बच्चियाँ तक भी पुरुषों का यौन उत्पीड़न झेलने को अभिशप्त हैं। बलात्कार अपने आप में एक घृणित कृत्य है लेकिन जब किशोरियों को स्वयं अपने पिता या चचेरे भाइयों की हवस का शिकार बनना पड़ता है तो स्थिति की गंभीरता को समझा जा सकता है।

चाहे दहेज की खातिर किसी नवविवाहिता को अग्नि की लपटों में झोंक देने का मामला हो या किसी महिला का यौन-शोषण करके उसे देह व्यापार की मंडी में बेच देने का मामला हो, बात चाहे मध्ययुगीन बर्बरता की प्रतीक सती-प्रथा की हो या फिर धर्म की छांव में देवदासियों के रूप में किशोरियों के दैहिक शोषण की बात हो, सभी प्रकार के 'महिला अपराध' लाख कोशिशों के बावजूद आज भी बदस्तूर जारी है। वस्तुत: किसी भी महिला का सबसे बड़ा शत्रु है उसका महिला होना। अपने शरीर के कारण ही महिलाओं को विभिन्न प्रकार के शोषण, दुर्व्यवहार और उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। महिलाओं को आज अगर अपराध की अजगरी बाहों में अपनी अस्मिता, अस्तित्व और आत्मसम्मान गिरवी रखना पड़ रहा है तो उसका एक कारण हमारी सामाजिक परम्पराएँ और पुरुष मानसिकता भी है। आज महिलाओं को पुरुषों के समान शैक्षणिक माहौल, आगे बढ़ने के अवसर और कानूनी अधिकार दिए जाने की बात जितने जोर-शोर से की जा रही है, उतनी ही तेजी से महिलाओं को पुरुषों की कुत्सित पाशविकता का शिकार बनना पड़ रहा है। महिलाएँ चाहे घर पर हों या बाहर, सभी जगह उन्हें पुरुषों की कामुकता और पाशविकता को झेलना पड़ता है। वर्तमान समय में महिलाओं के प्रति हिंसा में प्रतिदिन, प्रतिपल बढ़ोळारी हुई है। महिलाओं के लिये आज कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं हैं। घर हो या सड़क, स्कूल हो या कॉलेज, अस्पताल हो या पार्क, कामकाज की जगह हो या दफ्तर, हर जगह नारी को घूरती, उसके शरीर का अवलोकन करती हुई आँखें विद्यमान रहती है। कल तक परिवार, महिलाओं के लिये सुरक्षा उपलब्ध कराते थे, आज वही घर उनके लिए आतंक के अड्डे, शोषण के केन्द्र बन गये हैं। कल तक जो विद्यालय शिक्षा के मन्दिर थे, आज वहाँ वासना के पुजारी, गुरू व सहपाठी दोनों ही रूपों में हैं। जो डाक्टर भगवान समान थे, आज वही अपने मरीजों की बीमारी में कम, उसके शरीर के कटावों तथा उभारों में ध्यान ज्यादा देते हैं। राह जाती लड़कियों पर अश्लील टिप्पणियाँ, भद्दी-भद्दी गालियाँ, छेड़छाड़ आम बात हो गई है। शहर हों या कस्बे, महानगर हों या गाँव, हर जगह एक सी स्थिति है। कोई भी आवाज नहीं उठाता कि यह गलत हो रहा है। इलेक्ट्रानिक मीडिया ने नारी को नंगा खिलौना तथा नारी देह को बिकाऊ माल बना दिया है।

हिंसा, महिला की जिन्दगी का अभिन्न हिस्सा बन चुकी है। यदि महिला है, तो निश्चित तौर पर वह किसी प्रकार की हिंसा की शिकार अवश्य हुई होगी, यह एक सच्चाई है। जन्म से लेकर मृत्यु तक, अब तो गर्भ में आते ही, हर औरत अपने जीवन में हिंसा के विभिन्न रूपों (कन्या भ्रूण हत्या, विकास के अवसर न मिलना, सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त न होना, गाली गलौज, ताने मारना, छींटाकशी करना, छेड़खानी, मारपीट, यौनिक हिंसा, बलात्कार, दहेज प्रताड़ना, दहेज हत्या आदि) को झेलती है, उसकी अपनी कहीं कोई पहचान नहीं है।

हर महिला, चाहे वह स्कूली छात्रा हो या अध्यापिका, मजदूरन हो या नौकरी पेशा महिला, वकील हो या डाक्टर, पुलिसकर्मी हो या अधिकारी, गाँव की आँगनवाड़ी केन्द्र की महिला हो या अन्य कोई समाजसेविका, सभी कभी न कभी यौन उत्पीड़न की शिकार रही हैं, वह चाहे किसी के द्वारा उसका दैहिक शोषण स्पर्श के द्वारा ही क्यों न किया गया हो? जिस समाज की व्यवस्था में महिलाओं को बराबरी देने की बात तो दूर, बच्ची को जन्मते ही गला घोंटकर, अफीम सुँघाकर मार डालने की परम्परा हो, जहाँ अल्ट्रासाउण्डों का प्रयोग कन्या भ्रूण जाँचों में होता हो, जहाँ बच्चियों का उपयोग देह व्यापार हेतु होता है, उस समाज की क्या कोई बुद्धिजीवी या संवेदनशील व्यक्ति भूरि-भूरि प्रशंसा करेगा। आज महिला पराया धन है, चेक है, बिकाऊ माल है, तरक्की का साधन है, ग्राण्ट/प्रमोशन दिलाने की गारण्टी है। खाने की थाली और बिस्तर की चादर की तरह औरत की देह जानी जा रही है। पुरुषों के लिए महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता या भावनात्मक संबंध कोई मायने नहीं रखते। समाज की पितृसत्तात्मक मानसिकता में महिलायें जन्मती ही हैं, अपमान सहने व गुलामी करने के लिए।

महिलाओं के विरुद्ध घरेलू हिंसा की समस्या कोई नई नहीं है। पाषाणकाल से लेकर आज तक 21 वीं सदी में भी महिलायें घरेलू हिंसा की शिकार है। भारतीय समाज में महिलायें इतने लम्बे काल से अवमानना, यातनायें व शोषण की शिकार रही हैं, जितने काल के हमारे पास सामाजिक संगठन व पारिवारिक जीवन के लिखित प्रमाण उपलब्ध है। प्राचीन भारत में भी महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा व अपराध पूरी शानशौकत के साथ होते आये हैं। महाभारत काल में युद्धिष्ठिर ने अपनी पत्नी द्रौपदी को जुऐ में दाँव में लगा दिया था तथा दुर्योधन ने भरी सभा में उसका चीरहरण कराकर अपमानित किया था। रामायण काल में रावण ने सीता का हरण किया था। सती प्रथा के नाम पर जवान महिलाओं को चिता पर जलने को मजबूर किया जाता रहा। देवदासी प्रथा के नाम पर किशोरियों का बलात्कार होता रहा तथा हमारा समाज व धर्म कोने में खड़ा अपने नाम पर, अपने अनुयायियों द्वारा की जा रही नाइंसाफियों को चुपचाप देखता रहा।

वर्तमान समय में महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा एक व्यापक और गंभीर रूप में हमारे समाज के सामने उत्पन्न हुई है। वैसे तो घरेलू हिंसा के मामले हमारे समाज के लिए कोई नई बात नहीं है। यह हमारे पितृसत्तात्मक समाज की ही व्यवस्था है, जिसमें जन्म से लेकर मृत्यु तक लड़की जीती है। सामाजिक मर्यादाओं के कारण स्त्री चुपचाप घरेलू हिंसा को सहती रही है।

वास्तव में घरेलू हिंसा एक सामाजिक बुराई हैं, जो कि समाज में तेजी के साथ फैली है। आज करोड़ों महिलाओं के लिए घर आतंक के अड्डे बन गये हैं, जबकि महिलाओं को गृहलक्ष्मी की उपाधि दी गई है। भारत में परिवार, समाज की सबसे छोटी इकाई व इसका आधार स्तम्भ माने गये हैं, जहाँ शान्ति, सद्भाव व प्रेम का अद्भुत अमृत बरसता है। परिवार ही महिलाओं, बच्चों, वृद्धों को सुरक्षित स्थान मुहैया कराता था, किन्तु आज महिलाओं को परिवार में ही घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है। विभिन्न आँकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि लगभग प्रत्येक महिला, घरेलू हिंसा व उत्पीड़न की शिकार किसी न किसी रूप में होती है। लोग इन घटनाओं को दबाना चाहते हैं। महिलायें भी आर्थिक-सामाजिक कारणों, बच्चों के प्रति अपने दायित्वों एवं सामाजिक निन्दा से बचने आदि कारणों के चलते सब कुछ शान्तभाव से सहन करती रहती हैं व चुपचाप अपमान के घूंट सहकर कुंठित, तनाव व अवसादग्रस्त हो जाती है तथा सिसकते हुए प्राण त्याग देती हैं।

परिवार समाज रूपी भवन के कोने का पत्थर है। परिवार के अभाव में मानव समाज के संचालन की कल्पना भी करना कठिन प्रतीत होता है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य रहा है या है। समाज में परिवार ही अत्यधिक महत्वपूर्ण समूह है। मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत एवं सर्वव्यापी संस्था है।

भारतीय सामाजिक विकास में परिवार की सुदृढ़ता पर अत्यधिक जोर दिया गया है। परिवार यदि सुदृढ़ है तो समाज स्वत: सुदृढ़ होता है। इस जीवन प्रणाली से भारतीय जनजीवन में शान्ति, सद्भाव, प्रेम का अद्भुत अमृत बरसता रहा है, जो कि पश्चिमी सभ्यता में दुर्लभ है। परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है और यही समाज का मुख्य आधार है। परिवार की आधारशिला है – नारी। नारी के बिना परिवार नहीं होता है, यह नारी के अस्तित्व का ही प्रमाण है। अपने सपनों को साकार रूप देने के लिए परिवार का जन्म नारी की सोच है। नारी परिवार की जन्मदात्री ही नही, बल्कि परिवार से सम्बन्धित सभी मान्यतायें, परम्परायें यहाँ तक की रूढ़िवादितायें आदि भी स्वयं नारी की ही स्थापित की हुई है। इस तरह संसार का पूर्ण सामाजिक ढांचा नारी रूपी आधारशिला पर ही टिका हुआ है। नारी अपनी सोच के इस परिवार को साकार रूप देने, संगठनात्मक रूप से स्थापित करने के लिए ही पुरुष से समझौता करती है।

शिक्षित होने के साथ ही आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होने के बाद भी घर की चहारदीवारी के अन्दर महिलाओं पर होने वाले अत्याचार में कमी नहीं आयी है। सामाजिक मर्यादाओं के कारण स्त्री घरेलू हिंसा को चुपचाप सह रही है। लेकिन समाज के हर क्षेत्र में नया आयाम देने वाली महिलाएँ धीरे-धीरे अब इसके विरुद्ध आवाज उठा रही है। इसे अपराध तथा उत्पीड़न करने वाले व्यक्ति को अपराधी करार दिया जा रहा है।

आमतौर पर घरेलू उत्पीड़न को पति-पत्नी के बीच का निजी मामला समझ लिया जाता है और उसमें आम लोगों को कोई दिलचस्पी नहीं होती, जो कि उचित नहीं है। यह सिर्फ पति-पत्नी के बीच का मामला नहीं है, समाज में व्याप्त एक विरूपता है, जो हर तरह के समाज और राष्ट्र को हानि पहुँचाती है। पारिवारिक उत्पीड़न देश को आर्थिक रूप से भी क्षति पहुँचाता है। स्वास्थ्य सम्बन्धी रखरखाव, व्यक्तिगत आय में कमी, न्यायिक प्रक्रिया का खर्च, उपचार का खर्च, यहाँ अतिरिक्त खर्चों के रूप में शामिल होता है। सामाजिक रूप में इससे होने वाली हानि मनोवैज्ञानिक ह्रास और बच्चों की प्रगति की धीमी दर के रूप में दृष्टिगोचर होती है। घरेलू हिंसा के प्रत्यक्षदर्शी बच्चे शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर होते जाते हैं। वे डरे हुए रहते हैं। घरेलू हिंसा जायज है, यह धारणा प्राचीन समय के लोगों के लिए सत्य हो सकती थी, परन्तु वर्तमान समय में यह सामाजिक विघटन के रूप में गंभीरतम स्थिति के रूप में सामने है, जो कि उचित नहीं है।

घरेलू हिंसा हमारे कथित सभ्य समाज के लिए कलंक तथा अभिशाप है, जो कलियाँ समय के बाग में पलकर फूल बनने वाली होती है, घरेलू हिंसा उन्हें समय के पूर्व ही मुर्झाने के लिए बाध्य कर देती है। कोमल मन-मस्तिष्क को पारिवारिक हिंसा के द्वारा सुषुप्त कर दिया जाता है।

आज शनैः-शनैः महिलाओं को पुरुषों के जीवन में महत्वपूर्ण, प्रभावशाली व पूर्ण सहयोगी माना जाने लगा है। परन्तु कुछ दशक पहले तक उनकी स्थिति दयनीय थी, विचारधाराओं, संस्थागत नियमों और समाज में प्रचलित प्रतिमानों ने उनके उत्पीड़न में काफी योगदान दिया है। इनमें कुछ व्यवहारिक रिवाज आज भी पनप रहे हैं। स्वाधीनता के पश्चात हमारे समाज में महिलाओं के समर्थन में बनाये गये कानूनों, महिलाओं में शिक्षा के फैलाव और महिलाओं की धीरे-धीरे बढ़ती हुई आर्थिक स्वतंत्रता के बावजूद असंख्य महिलाऐं अभी भी हिंसा की शिकार हैं। उनको पीटा जाता है, जला दिया जाता है या उनकी हत्या कर दी जाती है।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा विवाह के संदर्भ में अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। पति, जिसके लिये यह समझा जाता है कि वह अपनी पत्नी से प्रेम करेगा और उसे सुरक्षा प्रदान करेगा, उसे पीटता है। एक स्त्री के लिए, उस आदमी द्वारा पीटा जाना, जिस पर वह सर्वाधिक विश्वास करती है, एक छिन्न-भिन्न करने वाला अनुभव होता है। हिंसा, चाँटें और लात मारने से लेकर हड्डी तोड़ना, यातना देना, मार डालने की कोशिश और हत्या तक हो सकती है। हिंसा कभी-कभी नशे के कारण भी हो सकती है, परन्तु हमेशा नहीं। आधुनिक समय में हम भले ही पत्नी द्वारा पुलिस से पीटने के मामले की शिकायत करने की बात सुनते हैं, किन्तु अधिकांशतयः वह मौन रहकर अपमान सहती है और उसे अपना भाग्य मानती है। यदि वह विरोध करना भी चाहती है तो नहीं कर सकतीं, क्योंकि उसे डर होता है कि पति उसे अपने घर में स्थाई रूप से रखने को मना कर देंगे।

घरेलू हिंसा की शिकार महिलायें असहाय व अवसादग्रस्त होती है। उनकी आत्मछवि खराब होती है, वे आत्म उन्मूलन से ग्रस्त होती हैं। अपराधकर्ताओं द्वारा की गई हिंसा के फलस्वरूप वे भावात्मक रूप से समाप्त हो चुकी होती हैं या कुछ परार्थवादी विवशता से ग्रस्त होती हैं। घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलायें दबावपूर्ण स्थितियों में रहती है या ऐसे परिवार में रहती है, जिन्हें समाजशास्त्रीय शब्दावली में, सामान्य परिवार नहीं कहा जा सकता। सामान्य परिवार वे हैं, जो संरचनात्मक रूप से पूर्ण होते हैं, दोनों माता-पिता जीवित हैं और साथ-साथ रह रहे हैं, आर्थिक रूप से निश्चित हैं, सदस्यों की मूल और पूरक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, प्रक्रियात्मक रूप से उपयुक्त हैं।

घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं में सामाजिक परिपक्वता की या सामाजिक अन्तरवैयक्तिक प्रवीणताओं की कमी होती है, जिसके कारण उन्हें व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को 'एक व्यक्ति द्वारा एक व्यक्ति के विरुद्ध हिंसा' समझा जाना चाहिए। स्त्री का आत्मबल ही उसे निराशा, कुण्ठा, हीनभावना से बचा सकता है। उसके अलावा आर्थिक स्वतन्त्रता भी उसके लिए जरूरी है।

यह बात हर स्त्री को अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि उसका भी अपना कोई वजूद है, व्यक्तित्व है, जिसको वह जब तक सम्मान देना नहीं सीखेगी, तब तक दूसरों खासकर पति से भी उसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती, पति का घर जेल या अखाड़े

का मैदान नहीं है, जो उसे टार्चर करता रहे या उस पर दबाव आजमाये या हिंसा करे। हिंसा के लिए उठे हाथ रोकने की शक्ति उसमें है।

स्त्री समाज, एक ऐसा समाज है, जो वर्ग, नस्ल, राष्ट्र आदि संकुचित सीमाओं के पार जाता है और जहाँ कहीं दमन है- चाहे जिस वर्ग, जिस नस्ल की स्त्री त्रस्त है, वह उसे अपने परचम के नीचे लेता है। भारतीय समाज की यह विडम्बना ही कही जाएगी कि पाषाण काल से लेकर वर्तमान इक्कीसवीं सदीं में भी स्त्री हिंसा की शिकार है।

प्रख्यात लेखिका तसलीमा नसरीन ने भी लिखा है- 'स्त्री व पेड़ में बड़ी समानता है, दोनों को अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए बेहद मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।'

निष्कर्षत: जिस समाज में आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक व राजनैतिक क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका तेजी से बढ़ती हुई बताई जा रही है, उसी समाज में उनके तिरस्कार, शोषण व अपमान के साथ घरेलू हिंसा का स्तर भी बढ़ता ही जा रहा है। प्रश्न उठता है कि आखिर क्यों ? क्या अधिक से अधिक कानून बनाकर ऐसी समस्याओं पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। भारत में आज भी महिलाओं का शोषण किसी न किसी रूप में बढ़ता ही जा रहा है। चाहे उसका रूप व कारण कुछ भी हो, लेकिन उसपर नियंत्रण करने की जरूरत हैं।

संदर्भ सूची

1. सुधारानी व आशा श्रीवास्तव - महिलाओं के प्रति अपराध, अर्जुन पब्लिशर्स हाऊस, नई दिल्ली, 2003।
2. बहोरा आशारानी - नारी शोषण: आईने और आयाम, नेशनल पब्लिशर्स हाऊस, नई दिल्ली-1994।
3. प्रज्ञा शर्मा - महिलाओं के प्रति अपराध, पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर, 2006।
4. सुधारानी व आशा श्रीवास्तव - महिलाओं के प्रति अपराध, अर्जुन पब्लिशर्स हाऊस, नई दिल्ली, 2003।
5. नारी शोषण: समस्या और समाधान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2005।
6. डॉ0 निशान्त सिंह - औरत, अस्मिता और अपराध, राजभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002।
7. भारतीय नारी: कितनी जीती कितनी हारी, अनिल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999।
8. तिवारी एवं शुक्ला - भारतीय नारी: वर्तमान समस्याएं और भावी समाधान, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली, 1999।

भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने में दंड की भूमिका

त्रिकालज्ञ तिवारी

शोधछात्र, विधि विभाग, इलाहबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

ऐसे भ्रष्टाचार और अभियोजन की प्रकृति से निपटने के लिए कानूनों को विशेष बनाया जाना चाहिए और सजा इसमें बहुत महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका निभाती है। भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने के लिए प्रतिरोध एक कारगर हथियार साबित हो सकता है। यदि भ्रष्टाचार को कम लाभ वाली उच्च पीड़ा वाली गतिविधि बनाना है तो कानून अवश्य प्रदान करें और न्यायालय को भ्रष्टाचार के अपराधियों को भारी सजा देने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस संदर्भ में सिंगापुर का उदाहरण यहां उल्लेखनीय है। दूसरी तरफ, श्री कौशिक बसु जी के सुझाव, की कुछ प्रकार की रिश्वत देने के कर्म को सजामुक्त बना देना चाहिए, भी अपने आप में एक तर्क सम्मत बात दिखती है ।

उद्द्येश्य

इस लेख के माध्यम से, मैं भ्रष्टाचार निरोध में दंड की भूमिका का, सिंगापुर और श्री कौशिक बसु जी के सुझाव के तुलना करते हुए, एक विश्लेषण करूँगा।

भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने में सिंगापुर का अनुभव

ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल द्वारा जारी उसी भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक (Corruption Perception Index) 2020 में, जहां भारत बहुत खराब 40 सीपीआई स्कोर के साथ 180 देशों में 86 वें स्थान पर है, सिंगापुर को 85 के एक महान सीपीआई स्कोर के साथ, दुनिया भर में तीसरा स्थान मिला और न्यूजीलैंड के बाद एशिया-प्रशांत क्षेत्र में दूसरा स्थान मिला। सिंगापुर को दो औपनिवेशिक शक्तियों ब्रिटेन और जापान द्वारा उपनिवेशवाद के बदतर क्रोध का सामना करना पड़ा। भारत की तरह, कम वेतन, उच्च अवसर के कारण भ्रष्टाचार जीवन का एक तरीका था और जैसा कि जनता द्वारा इसे कम जोखिम, उच्च इनाम गतिविधि के रूप में माना जाता था क्योंकि भ्रष्ट अधिकारी शायद ही कभी पकड़े जाते थे, और भले ही वे पकड़े गए हों, वे गंभीर रूप से दंडीत नहीं नहीं किये जाते थे। सफलता 1960 में मिली, जब पीपुल्स एक्शन पार्टी (पीएपी) सरकार ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (पीओसीए) अधिनियमित किया, जिसने भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए भ्रष्ट आचरण जांच ब्यूरो (सीपीआईबी) को व्यापक शक्तियां दीं। च्ब्। में कुछ अनूठी विशेषताएं थीं जो अन्य देशों के कानून प्रदान करने में विफल हैं। च्ब्। के निवारक प्रभाव को बढ़ाने के लिए, भ्रष्टाचार के लिए दंड को पांच साल के कारावास और/या S$10,000 के जुर्माने से बढ़ा दिया गया था। 1989 में जुर्माने को बढ़ाकर S$100,000 कर दिया गया था। इसके अलावा, यदि कोई व्यक्ति अवैध परितोषण स्वीकार करने का दोषी पाया जाता है, तो उसे अदालत द्वारा लगाए गए किसी भी अन्य दंड के अलावा रिश्वत के रूप में ली गई राशि का भुगतान करना पड़ता है। इसके अलावा, POCA की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसने CPIB को अधिक शक्तियाँ और जीवन का एक नया पट्टा दिया। यह अधिनियम सीपीआईबी को सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की जांच करने की अनुमति देता है और यह दाता और रिसीवर दोनों से निपट सकता है। भारत के विपरीत, भ्रष्टाचार विरोधी एजेंसियां निजी क्षेत्र में भ्रष्टाचार से निपटती नहीं हैं। सिंगापुर में भ्रष्टाचार के खिलाफ

राजनीतिक इच्छाशक्ति ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद के वर्षों में और संशोधनों द्वारा अधिनियम को और भी कठोर बना दिया गया-एक व्यक्ति को भ्रष्टाचार का दोषी पाया जा सकता है, भले ही उसने वास्तव में रिश्वत प्राप्त नहीं की थी, क्योंकि अपराध करने का उसका इरादा उसकी सजा के लिए पर्याप्त आधार था। 1981 में एक प्रावधान बनाकर निवारक प्रभाव को बढ़ाया गया था, जिसमें यह प्रावधान था कि जो लोग रिश्वत के रूप में ली गई राशि की पूरी भरपाई करने में असमर्थ थे, उन्हें भारी अदालती सजा दी जाएगी। कानून इतने प्रतिरोधी बन गए और तंत्र इतना मजबूत हो गया कि राष्ट्रीय विकास मंत्री तेह चेंग वान ने भी न्याय से बचने की कोशिश करने के बजाय आत्महत्या करने का फैसला किया, जब उन्हें भ्रष्ट आचरण में शामिल पाया गया। आश्चर्यजनक रूप से इस घटना के कारण 1989 में एक और संशोधन हुआ जिसमें यह प्रावधान था कि यदि एक प्रतिवादी की मृत्यु हो जाती है, तो अदालत उसकी संपत्ति के खिलाफ जब्ती का आदेश जारी करेगी। वास्तव में यही जीरो टॉलरेंस है। इस तरह के परिणामों ने जनता को सिंगापुर को स्वच्छ रखने के सरकार के संकल्प को प्रदर्शित किया। और इसने भ्रष्टाचार के खिलाफ चल रही लड़ाई में जनता का समर्थन हासिल किया है।

इसके अलावा, इसकी व्यापक भ्रष्टाचार विरोधी रणनीति का दूसरा हिस्सा था-सिंगापुर सिविल सर्विसेज में वेतन और काम करने की स्थिति में सुधार के माध्यम से भ्रष्टाचार के लिए प्रोत्साहन में कमी। भ्रष्टाचार के लिए प्रोत्साहन को कम करने के अलावा, सिंगापुर सरकार को सार्वजनिक और निजी के बीच की खाई को कम करने के लिए प्रतिस्पर्धी वेतन और फ्रिंज लाभों की पेशकश करके सक्षम वरिष्ठ सिविल सेवकों के दिमागी पलायन को रोकने के लिए उन दो मोर्चों पर भी सुधार करना पड़ा।

हम सिंगापुर के अनुभव से निम्नलिखित महत्वपूर्ण सबक सीख सकते हैं:

- भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए एक मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति और एक प्रतिबद्ध नेतृत्व एक अनिवार्य शर्त है।
- कानून का राज स्थापित होना चाहिए। भ्रष्टाचार के दोषी पाए जाने वाले किसी भी व्यक्ति को दंडित किया जाना चाहिए, चाहे उसकी स्थिति या समाज में स्थिति कुछ भी हो। यदि शक्तिशाली लोगों को भ्रष्टाचार के लिए मुकदमा चलाने से बचाया जाता है, और केवल आम लोगों को पकड़ा जाता है या दोषी ठहराया जाता है, तो भ्रष्टाचार विरोधी रणनीति में विश्वसनीयता की कमी होगी और सफल होने की संभावना नहीं है।
- जीरो टॉलरेंस और कानूनों को इतना सख्त होना चाहिए कि गलत करने वालों पर लगाम लगाई जा सके।
- भ्रष्टाचार विरोधी एजेंसी को मजबूत और सरकारी प्रभाव से स्वतंत्र बनाया जाना चाहिए। साथ ही यह स्वयं भ्रष्टाचार रहित होना चाहिए। योग्यता को बनाए रखा जाना चाहिए और ओवरस्टाफिंग से बचा जाना चाहिए।
- सिविल सेवकों और राजनीतिक नेताओं के बीच भ्रष्टाचार के प्रोत्साहन को यह सुनिश्चित करके कम किया जा सकता है कि उनका वेतन और अनुषंगी लाभ निजी क्षेत्र के साथ प्रतिस्पर्धी हैं। भारत में, सातवें वेतन आयोग की सिफारिश का कार्यान्वयन इस दिशा में एक सफलता साबित होने की संभावना है।

यह सच है कि शहर-राज्य के अद्वितीय ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक, जनसांख्यिकीय और राजनीतिक संदर्भ के कारण अन्य देशों के लिए सिंगापुर की व्यापक भ्रष्टाचार विरोधी रणनीति का अनुकरण करना संभव नहीं हो सकता है। भारत, विशेष रूप से, विभिन्न संदर्भों में सिंगापुर से अलग है। इसका विशाल भौगोलिक क्षेत्र है, दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी आबादी, विभिन्न धर्मों वाला एक बहुसांस्कृतिक देश, भाषाई अंतर, जातिगत अंतर और सबसे बढ़कर, इसमें सत्रह सौ से अधिक पंजीकृत राजनीतिक दल हैं। लेकिन ये कारक उतनी बड़ी बाधा नहीं हैं, जितनी उन्हें होने का अनुमान है। हम सिंगापुर से यह भी सीख सकते हैं कि भ्रष्टाचार पर हमेशा अंकुश लगाया जा सकता है; आवश्यकता केवल राजनीतिक इच्छाशक्ति और सामाजिक आंदोलन की है।

उत्पीड़न रिश्वत को सजामुक्त करने का सुझावः-

भारत में लोक सेवा विभिन्न रूपों में भ्रष्टाचार से त्रस्त है। आइए पहले रिश्वत के मुद्दे को उठाते हैं; यह दो प्रकार का हो सकता है-सुविधाजनक और मिलीभगत। सुविधाजनक रिश्वत को उत्पीड़न रिश्वत भी कहा जा सकता है क्योंकि इसमें लोगों को वह देना पड़ता है जिसके वे कानूनी रूप से हकदार होते हैं। एक निर्यातक के मामले पर विचार करें, जिसने सभी औपचारिकताओं को पूरा कर लिया है, उसे सीमा शुल्क निकासी प्राप्त करने से पहले एक अवैध भुगतान करने के लिए कहा जाता है। वर्तमान कानून में,

एक बार रिश्वत देने के बाद, रिश्वत देने वाला और रिश्वत लेने वाला अपराध में भागीदार बन जाता है। इस तथ्य को अधिकारियों से छिपाकर रखना और कानून से भगोड़ा होना उनके संयुक्त हित में है, क्योंकि पकड़े जाने पर दोनों को दंडित किए जाने की उम्मीद है। बसु का कहना है कि रिश्वतखोरी की घटनाओं को कम करने की दिशा में हम एक कदम कैसे उठा सकते हैं, इसका एक छोटा लेकिन काफी क्रांतिकारी विचार है। उनका सुझाव है कि कानून के माध्यम से, एक बार रिश्वत देने के बाद, रिश्वत लेने वाले और रिश्वत देने वाले के हित एक दूसरे के लिए पूरी तरह से रूढ़िवादी हो जाने चाहिए। यह संभव है यदि कानून एक नए प्रावधान के माध्यम से या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 24 से अस्पष्टता को दूर करके एक तंत्र प्रदान करता है, जहां एक (उत्पीड़न) रिश्वत देने वाला रिश्वत के सबूत के साथ कानून के साथ सहयोग करता है, तो वह जाएगा मुक्त हो जाएगा और अपनी रिश्वत के पैसे वापस लेने में सक्षम होगा और दूसरी ओर रिश्वत लेने वाला, रिश्वत की लूट को खो देता है और भारी सजा का सामना करता है। इससे उत्पीड़न रिश्वतखोरी की घटनाओं में अच्छी गिरावट आएगी।

इसी तरह, मिलीभगत या गैर-उत्पीड़न रिश्वतखोरी में भी रिश्वत लेने वाले और देने वाले के बीच एक असममित व्यवहार होना चाहिए ताकि उनके बीच के बंधन को कमजोर किया जा सके। चूंकि, रिश्वतखोरी बिल्कुल चोरी नहीं है बल्कि यह दो लोगों के बीच का सहयोग है। इसलिए, यदि कानून रिश्वत देने वाले और लेने वाले के बीच रिश्वतखोरी के बाद की स्थिति में अविश्वास पैदा कर सकता है, तो इसका मतलब है कि आज की दुनिया में जिस आराम क्षेत्र में रिश्वतखोरी होती है, उसका अस्तित्व समाप्त हो जाएगा और इसका नतीजा यह होगा कि घटनाओं में गिरावट आएगी। रिश्वतखोरी मिलीभगत भ्रष्टाचार में अधिकारियों को रिश्वत देने वालों को लाभ पहुंचाने के लिए नियमों को तोड़ना या मोड़ना शामिल है, और इसका पता लगाना विशेष रूप से कठिन है क्योंकि किसी भी पार्टी के पास अपराध की रिपोर्ट करने के लिए प्रोत्साहन नहीं है। अभिनेताओं के बीच एक विषमता पैदा करके, मिलीभगत बंधन को कमजोर बनाने के उपरोक्त सुझाए गए तंत्र से भ्रष्टाचार पर काफी हद तक अंकुश लगाने में मदद मिलेगी।

उपसंहारः-

इस प्रकार यह बात तो स्पष्ट है की भ्रष्टाचार की रोक थम एवं निवारण में दंड एक बोहोत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सिंगापुर के उदहारण से यह सिद्ध होता है की राजनीतिक इच्छाशक्तिके होने पर, विधि के सहयोग से कोई भी समाजिक एवं आर्थिक बदलाव लाये जा सकते हैं और इस प्रक्रिया में दंड के प्रावधान नितांत आवश्यक हैं। लेकिन दूसरी तरफ यह बात भी तर्क सम्मत है की उत्पीड़न रिश्वत के मामलों रिश्वत देने वाले को सजा मुक्त कर देने के भी अपने अलग लाभ हैं। अत: भ्रष्टाचार से निवारण के दंड एक मात्रा उपाय नहीं मन जा सकता है अपितु हमें एक समग्र नीति की आवश्यकता है जिसमें दंड के साथ साथ सामाजिक चेतना के विकास का भी प्रावधान हो।

सन्दर्भः-

1. Transparency International, Source URL: https://www.transparency.org/en/cpi/2020/index/nzl
2. Quah Jon S.T., *Combating Corruption in Singapore: What Can Be Learned?;* Source URL: https://pdfs.semanticscholar.org/6417/99bf55a5f33fc224a563710b799b2eb4f871.pdf
3. Hin Koh Teck, *CORRUPTION CONTROL IN SINGAPORE*, Source URL: http://www.unafei.or.jp/english/pdf/RS_No83/No83_17VE_Koh1.pdf
4. Kaushik Basu, (Former Chief Economic Advisor, Ministry of Finance, Govt. of India), *Why, for a Class of Bribes, the Act of Giving a Bribe should be Treated as Legal;* Source URL: http://www.kaushikbasu.org/Act_Giving_Bribe_Legal.pdf

मूल्यांकन-गुणवत्ता उन्नयन का सबल साधन

डॉ० अनिल कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर (शिक्षा शास्त्र विभाग), बी०एस०एन०वी०पी०जी० कॉलेज, लखनऊ

विभिन्न शोधों द्वारा सिद्ध सिद्धान्त पुरस्कार एवं दण्ड मनोविज्ञान का एक ऐसा स्थापित सत्य है जिससे मानव ही नहीं अपितु प्रकृति के अन्य जीव भी र्प्रभावित होते है। सीखने के परिप्रेक्ष्य में कोहलर, पावलोव, स्किनर, थार्नडाईक आदि के प्रयोग एवं सिद्धान्त इसके प्रयत्क्ष प्रमाण है कर्मफल के ज्ञान की आकांक्षा व्यक्ति का स्वाभाविक एवं नैसर्गिक प्रकृतिप्रदत्त जन्मजात गुण है। सकारात्मक परिणाम को व्यक्ति जहाँ किए गए श्रम के पारितोषिक के रूप में स्वीकार करता है वहीं पर इसके परिणामी प्रभाव भविष्य के लिए र्प्रेरक तथ्य हो जाते है और नकारात्मक परिणाम को पुनर्प्रयास हेतु अभिर्प्रेरणा एवं पुनर्वलन मानता है; साथ ही अपने श्रम, प्रयास और साधन का पुनरावलोकन कर उत्पन्न न्यूनता से निजात पाने की कोशिश भीकरता है। यही सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणाम पुरस्कार एवं दण्ड के रूप में हम सब के भविष्य की दिशा का निर्धारण करते है।

यद्यपि श्रीमद्भागवत गीता में कर्मफल के चिन्तन को निषिद्ध किया गया है परन्तु कर्मफल के परिणामों की प्रेरणा से जीव या व्यक्ति को वंचित नहीं किया गया है-(गीता अध्याय-2, श्लोक-47)

औपचारिक रूप से वैज्ञानिक रीतियों से सीखने की क्रिया का औपचारिक केन्द्र प्रारम्भिक काल से ही विविध रूपों में भिन्न-भिन्न प्रकार के विद्यालय ही रहे है। विद्यालयों का केन्द्रीय एवं मौलिक कृत्य विद्यार्थी की अभिक्षमताओं के सापेक्ष पाठ्यक्रमानुसार प्रभावी अधिगम है। अधिगम अपने उद्देश्यों में कितना सफल व प्रभावी रहा इसके अवबोध के अभाव में कदाचित प्रस्तुत प्रक्रिया गुणात्मक उन्नयन के संकल्पमें सक्षम नही होगी क्योंकि शिक्षक व शिक्षार्थी दोनों ही अपनी क्षमताओं के प्रति मिथ्या व्यामोह से ग्रसित हो सत्यस्थिति को जानने में असफल ही रहेंगे। निश्चित समय में किए गए समस्त प्रयासों को परिणामों के अवबोध द्वारा ही हम गुणात्मक क्रियान्यवयन की कसौटी पर अपने को परख सकते है जिसके लिए अग्रिम पद या चरण परीक्षा ही होगा। परीक्षा प्रविधि की रीति एवं नियम कुछ भी हो सकता है लेकिन हम परीक्षा, अंकन या मूल्यांकन के पक्ष को त्याग नहीं सकते; चाहे वह प्रयोगों, आचरण, अनुप्रयोग, व्यवहार परिवर्तन आदि की कसौटी ही क्यों न हो।

लिखित, मौखिक, सत्त परीक्षा, वस्तुनिष्ठ एवं व्यक्तिनिष्ठ परीक्षा, साक्षात्कार, निरीक्षण, परीक्षण इत्यादि के माध्यम से मानकीकृत व गैर-मानकीकृत पैमानों पर किसी भी विधिक रीति से परीक्षण या अंकन ही मूल्यांकन की क्रिया का आंशिक अथवा पूर्ण हिस्सा होता है। मूल्यांकन अंकन, परीक्षा, प्रयोग, साक्षात्कार, अनुप्रयोग, अभिव्यक्ति इत्यादि का सम्मिलित स्वरूप है जो वैज्ञानिक कसौटियों पर विश्वसनीय एवं वैध होता है। मूल्यांकन का तात्पर्य छात्रों के व्यवहार में उद्देश्यों के सापेक्ष विद्यालय द्वारा लाए गए समस्त परिवर्तनों एवं क्रियाओं के विषय में प्रमाणों के संकलन एवं उसकी व्याख्या करने की प्रक्रिया से है।मूल्यांकन द्वारा ही विद्यार्थी के ज्ञान, उसकी अभिक्षमता, शिक्षक के शिक्षण में गुणात्मक अभिवृद्धि, शिक्षार्थी की अन्तर्निहित क्षमताओं का शिक्षक में अवबोध, पाठ्यक्रम, शिक्षण कला एवं प्रवृत्ति के तकनीकी की वैज्ञानिक प्रभाविकता इत्यादि का अवबोध इन सबको सम्भव हो पाता है।

मूल्यांकन के द्वारा औपचारिक रूप से पाठ्यक्रम, शिक्षण प्रविधि, शिक्षण उपकरण, छात्रों की रुचि व कुशलता, दृष्टिकोण, व्यवहार का ज्ञान, पाठ्ययोजना का निर्धारण, शिक्षण सामग्री की प्रभावशीलता, प्रशासक एवं नीति नियन्ताओं के नियोजन में सहजता एवं उपयुक्तता, व्यक्तित्व विकास, सामर्थ्य, न्यूनता, ऊर्जा व सक्षमता आदि का अवबोध सम्भव हो पाता है।

मूल्यांकन के द्वारा ही शिक्षक अपने शिक्षण कौशल, भाषा, बाल मनोविज्ञान, स्वयं के ज्ञान, दायित्व बोध, आचरण, अनुशासन इत्यादि में सुधार कर पाता है। मूल्यांकन के अभाव में उसे यथास्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता है परिणामत: गुणात्मक सुधार की

सम्भावना क्रमशः कम हो जाती है वहीं पर शिक्षार्थी मूल्यांकन परिणामों की जानकारी से स्वयं में उद्देश्य के प्रति सजगता, दृढ़ता, श्रम एवं प्रयास में अभिवृद्धि करता है तथा असफलता के लिए उत्तरदायी कारकों के अभिज्ञान के पश्चात युक्तिसंगत रीति से उसके समाधान का संकल्प ले प्रयासरत हो जाता है साथ ही न्यूनता के परिक्षेत्र की जानकारी हो जाने के पश्चात समाधान सहज एवं भटकाव रहित हो जाता है।

मूल्यांकन प्रविधि के द्वारा शिक्षण प्रविधि में शिक्षार्थी की अभिक्षमता एवं पाठ्यक्रमानुरूप परिवर्तन एवं परिमार्जन सहज हो जाता है अथवा यह कहा जा सकता है कि मूल्यांकन के परिणाम शिक्षण कौशल को प्रभावी ढंग से गुणात्मक सन्दर्भों में सकारात्मक रूप से बढाने में प्रबल साधक अस्त्र सिद्ध होते है। विद्यार्थी या सीखने वाले की अपनी एक क्षमताहोती है यदि उससे मेल खाती हुई शिक्षण प्रक्रिया सम्पन्न होती है तो उसे सहजता से विषय वस्तु समक्ष आ जाती है परन्तु यदि समक्ष से मेल खाती हुई प्रक्रिया का अभाव होता है तो शिक्षण में सहायक सामग्री की उपयोगिता अपरिहार्य हो जाती है तथा शिक्षण उपकरण शिक्षण प्रक्रिया को और अधिक प्रभावी, सार्थक एवं ग्राह्य बना देते है। मूल्यांकन के माध्यम से विद्यालय प्रशासन शिक्षण अभिकरण एवं उनके अनुप्रयोग को समक्ष हाथों में उपलब्ध करा पाता है और साथ ही यह भी प्रयास करता है कि इन संसाधनों की उपलब्धता के कारण उत्पन्न व्ययभार न्यूनतम रूप से विद्यार्थियों पर पड़े और इसे गुणात्मक परिवर्तन हेतु भावी निवेश के रूप में स्वीकार कर लेता है। नीति-नियन्ताओं हेतु पाठ्यक्रम विनिर्माण से लेकर परीक्षा प्रविधि के निर्धारण तक मूल्यांकन से प्राप्त परिणाम प्रभावी दिशा निर्देश का कार्य करते है। राष्ट्रीय संकल्पों के आलोक में शिक्षा नीति का विनिर्माण एवं क्रियान्ववयन में मूल्यांकन सर्वाधिक महात्वपूर्ण अस्त्र सिद्ध होता है क्योंकि मूल्यांकन परिणाम नीति निर्धारकों को नीतिगत न्यूनता का अवबोध कराने हेतु आधारभूत तथ्य प्रदाता होते है। मूल्यांकन से र्प्राप्त प्रदत्त ही हम सबको यथास्थिति का अवबोध कराते है, जिससे शिक्षो के विभिन्न आयामों से जुड़े लोग अपने-अपने स्तर पर भविष्य की आवश्यकताओं के सापेक्ष सुधार करने में सक्षम होते है; इसके अभाव में शैक्षिक नीतियों का मानवीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों के अनुरूप परिवर्तन करना सम्भव ही नही हो पाएगा। संवैधानिक संकल्पों, राष्ट्रीय एकता, मानवीय मूल्यों एवं बाजार की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा में परिवर्तन हेतु मूल्यांकन आधारभूत र्प्रदत्त उपलब्ध कराता है इसके अभाव में हम वैश्विक नूतन परिवर्तनों के सापेक्ष अपनी कुशलता का निर्धारण कर ही नहीं सकते। वैश्विक गुणवत्ता के सापेक्ष अपने को खड़ा करने के लिए मूल्यांकन अत्यधिक आवश्यक एवं उपयोगी है क्योंकि इसी के माध्यम से हम अपने बुद्धि, कौशल एवं हस्तकुशलता का अवबोध कर पाते है; साथ ही यह भी जान पाते है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में हमारी हिस्सेदारी और योग्यता का मूल्य क्या और कितना है। उपरोक्त तथ्यों के संज्ञान के बाद यह भी आवश्यक हो जाता है कि भारत में प्रचालित मूल्यांकन की वर्तमान स्थिति का एक सूक्ष्मावलोकन अवश्य कर लिया जाए।भारतीय शैक्षणिक संस्थानों में मूल्यांकन की वर्तमान स्थिति का अवलोकन करने पर अग्रांकित न्यूनता परिलक्षित होती है:-

- वर्षभर में एक या दो परीक्षाओं को हम विद्यार्थी के गुणवत्ता की कसौटी मान कर परीक्षा सम्पादित करते है; यह एक तथ्यात्मक त्रुटि है।
- वर्ष में एक या दो बारहोने वाली निबंधत्मक परीक्षाओं में पाठ्यक्रम के कुछ हिस्से अथवा चयनित प्रश्नों का अध्ययन करके अच्छे अंक पाने की गुंजाइस बनी रहती है जबकि ऐसे प्रश्नपत्र सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधत्व करने वाले प्रश्न होते ही नहीं है, ऐसी दशा में मूल्यांकन मूल्य हीन एवं अवैध हो जाता है।
- वर्तमान परीक्षा पद्धति में प्रश्नों के प्रकार की कुछ चुनिन्दा श्रेणियों को ही मूल्यांकन में सम्मलित किया जाता है जबकि ज्ञान, बोध, कौशल एवं उसके अनुप्रयोग के मापन हेतु प्रश्न श्रृंखला की समस्त श्रेणियों यथा-वस्तुनिष्ठ, भाषा, प्रवाह, संप्रेषण, अवबोध एवं अनुप्रयोग आदि से सम्बद्ध सभी श्रेणियों के प्रश्नों का होना आवश्यक होता है।
- मापन की प्रक्रिया सत्त चलती रहनी चाहिए जिसका भारतीय शिक्षा पद्धति के मूल्यांकन प्रविधि में श्रम एवं व्यय-साध्य होने के कारण सर्वथा अभाव है। विगत कुछ वर्षों में कतिपय परिवर्तनों के बावजूद अंकन की सत्त प्रक्रिया अभी तक मात्रऔपचारिक बनी हुई है।
- विद्यार्थी के अवबोध का मापन नित्य प्रति होना आवश्यक है क्योंकि इसी के आधार पर पाठ्यक्रम आगे बढ़ता है परन्तु ऐसा न होने से अग्रिम पाठ्यवस्तु की समझ विद्यार्थी के लिए क्रमशः दुरूह से दुरूहतम होती जाती है। परिणामतः विद्यार्थी या

तो फेल हो जाता है अथवा कम अंक पाकर कुंठित महसूस करते हुए अंततः पढाई छोड़ देता है या फिर किसी अन्य सुविधापूर्ण परिक्षेत्र में पलायन कर जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर किए गये तमाम प्रयासों के बावजूद प्राथमिक स्तर पर ही विद्यार्थी के अपव्यय एवं अवरोधन के आंकडे़ इसके गवाह बने हुए हैं।

- राष्ट्रीय स्तर पर मूल्यांकन पद्धति का समरूप न होने से प्राप्त परिणामों की विश्वसनीयता प्रभावित होती है जो हमारे मूल्यांकन पद्धति की एक प्रबल नीतिगत न्यूनता है।
- पाठ्यक्रम में राजनैतिक इकाईयों के आधार पर भेद होने के कारण मूल्यांकन की वैधता पर सदैव प्रश्न चिन्ह लगा रहता है। यही कारण है कि आज के वैश्विक जगत में भी अन्य देशों के संस्थान भारतीय प्रमाणपत्रों को अपनी कसौटी पर पुनः जाँचने के बाद ही प्रवेश एवं सेवा का अवसर प्रदान करते हैं।
- अधिकतर भारतीय संस्थाओं द्वारा सम्पादित परीक्षा कार्यक्रम मूल्यांकन न होकर मात्र अंकन ही है जिसका उद्देश्य नौकरी हेतु प्रमाण-पत्र उपलब्ध कराना मात्र ही है न कि सक्षमता का मापन।
- मूल्यांकन का निरपेक्ष न होना भी एक हतोत्साहित करने वाली स्थिति उत्पन्न करने का कारण बन गया है जिससे प्रत्येक स्तर पर ऐन केन प्रकारेण अधिकाधिक प्रभावी प्रमाण-पत्र प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है जिसकी अंतिम परिणति भ्रष्टाचार होता है।
- परीक्षाओं का मूल्यांकन की वैज्ञानिक कसौटी पर खरा न उतरना।
- मापन की शुचिता का न होना भी सत्यस्थिति के अवबोध में बाधक है।
- परीक्षाओं का राष्ट्रीय स्तर पर मानकीकरण न किया जाना। यद्यपि विगत कुछ वर्षो से इसके लिये प्रयास जारी है लेकिन संस्थागत स्वतंत्रता का बहाना बना कर सक्षम लोग अपने सुविधा परिक्षेत्र से बाहर नहीं आना चाह रहे हैं जिससे ऐसे सार्थक प्रयासों की स्वीकार्यता बहुत धीमी बनी हुई है।
- सामाजिक एवं राजनैतिक विभेदकारी संप्रत्यय मूल्यांकन पर ही प्रश्न खड़ा कर देते हैं क्योंकि उपलब्धि के पैमानों में सुविध ानुसार विभेद बनाए रखा गया है।
- परीक्षाओं में अवबोध के मापन हेतु प्रयोग एवं अनुप्रयोग के अंकन में शुचिता का अभाव मूल्यांकन का एक अन्य प्रमुख दोष है।
- मूल्यांकन वर्तमान में धर्नाजन का माध्यम बन गया है जिससे इसके नकारात्मक परिणाम सर्वत्र दिखाई देने लगे है।
- मूल्यांकन का ध्येय मात्र प्रमाण-पत्र उपलब्ध कराना रह गया है वास्तविक स्थिति (ज्ञान, बोध एवं कौशल) के आंकलन के लिए मूल्यांकन कम ही हो रहा है।
- मूल्यांकन से जुडे़ हुए सभी पक्ष इसे कर्तव्य निर्वहन से अधिक कुछ नहीं स्वीकार कर रहें हैं यह एक गंभीर एवं राष्ट्रीय सक्षमता एवं विकास से जुड़ा हुआ प्रश्न है इसका अवबोध कराते हुए ऐसा कदापि न होने दिया जाए।
- शैक्षिक संस्थान प्रवेश परीक्षा और प्रमाण-पत्र वितरण को ही अपना दायित्व स्वीकार करने लगे हैं जबकि मूल कार्य अध्यापन एवं मूल्यांकन है जो अब गौण उद्देश्य बनकर रह गया है। प्रमाण-पत्र देना धर्नाजन का एक माध्यम है ऐसी सामाजिक व संस्थागत स्वीकारोक्ति को प्रारम्भ से ही समाप्त किया जाए।

उक्त तथ्यों के आलोक में शैक्षिक उन्नयन एवं गुणात्मक सुधार हेतु कतिपय सुझाव अग्रांकित है -

- परीक्षा सम्पूर्ण पाठ्यक्रम से लिए गए प्रश्नपत्रों द्वारा हो न कि चयनित कुछ अंशों से।
- परीक्षा सत्त एवं व्यापक हो, जिसमें नित्य प्रतिदिन का अवलोकन सम्मिलित किया जाये।
- परीक्षा या मापन का निरपेक्ष एवं शुचितापूर्ण होना आवश्यक ही नहीं अपितु अपरिहार्य भी है।
- प्रश्नपत्रों में व्यक्तिनिष्ठता की गुंजाइस को यथासम्भव कम किया जाए।
- प्रश्नों का मानकीकरण किया जाय, जिसमें दुरूहता स्तर, विश्वसनीयता एवं वैधता का विशेष ध्यान रखा जाय।
- परीक्षा के सभी आयामों मौखिक, लिखित, वस्तुनिष्ठ, अति लघु उत्तरीय, लघु उत्तरीय एवं निबन्धात्मक सभी पक्षों को मूल्यांकन में सम्मिलित किया जाय।

- मूल्यांकन हेतु वर्ष में एक या दो परीक्षा न कराकर साप्ताहिक, अर्द्धमासिक, मासिक, त्रैमासिक, षट्मासिक एवं वार्षिक आध ारों पर किया जाए।
- शिक्षक विद्यार्थी के अनुपात को वैज्ञानिक मानदण्डों के परिप्रेक्ष्य में सुनिश्चित किया जाए; शिक्षा भीड़ तन्त्र कदापि न बनने पाये इसका ध्यान अवश्य रखा जाये।
- परीक्षा को बाह्य प्रभाव यथा-राजनीति, अफसरशाही, जातीय एवं क्षेत्रीय आग्रह से मुक्त रखा जाए।
- शिक्षक या मूल्यांकन कर्ता को मूल्यांकन प्रविधि एवं इसके महत्व का अवबोध कराया जाए। उन्हें यह भी अवबोध कराया जाए कि मूल्यांकन शिक्षा का आधार है इसके अभाव में व्यवस्था धीरे-धीरे लड़खड़ाकर गिर जाएगी और राष्ट्रीय एवं संवैध ानिक संकल्प लम्बे समय तक अधूरे रह जाएंगे।
- मूल्यांकन की पवित्रता एवं महत्व को इससे जुड़े हुए सभी जिम्मेदार लोगों को बताया और समझाया जाए।
- मूल्यांकन को धनार्जन का अवसर न बनने दिया जाए अन्यथा मूल्यांकन प्रमाण-पत्र वितरण की औपचारिकता मात्र बनकर रह जायेगा और प्रमाण-पत्र धन, शक्ति, बल एवं राजनीतिक सक्षमता का प्रतीक बन कर रह जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

- सिंह बी0पी0; एम्स ऑफ इलिमेन्ट्री एजूकेशन, एनालिटिक ओवर व्यू, नई दिल्ली-2011
- रजा मुनीश; ''हायर एजूकेशन इन इंडिया, रेट्रोस्पेक्ट एण्ड प्रास्पेक्ट, प्रास्पेक्ट,'' ए आई यू, नई दिल्ली-1991
- ह्यूमन डेवलपमेण्ट रिपोर्ट रिट्राइव्ड फ्रॉम https:/hrd.undp.org/en/reports
- शुक्ला एस0सी0 एवं कौल आर0; ''एजूकेशन डेवलपमेण्ट एण्ड अन्डर डेवलपमेण्ट स्टेज'', नई दिल्ली-1998
- माथुर एस0एस0; शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा-1986
- मंजूर जे0ई0; ''लर्निंग एण्ड विहेवियर, इगलवूड क्लीफ, प्रेन्टिस हाल, न्यूजर्सी-1994
- हरलाक ई0बी0; ''डेवलपमेण्टल साइकोलाजी: ए लाइफ स्पैन एप्रोच, टाटा मैकग्रेव हिल पब्लिशिंग कं0लि0, नई दिल्ली-2004
- विगे, मारिस एल0; ''लर्निंग थियरीज फॉर टीचर्स'', हार्पर एण्ड रो, न्यूयार्क-1971
- हिलगैण्ड ई0आर0 एण्ड बाबर एस0एच0; ''थियरीज ऑफ लर्निंग'', इगलवुड क्लीफ, प्रेन्टिस हाल, न्यूजर्सी-1975
- नोरिस एन0; ''अण्डर स्टैण्डिग एजूकेशनल इवैलुवेशन, कोगन पेज लि0-1990
- एनसीईआरटी, ''क्यूरीकुलम एण्ड इवैलुवेशन'', नई दिल्ली-1990
- सेकोल्स्की सी0; ''हैण्डबुक ऑफ मेजरमेण्ट एण्ड इवैलुवेशन'', इस्टरलिंग पब्लिकेशन नई दिल्ली-2007
- गैरेट एच0ई0; ''स्टैटिक्स इन साइकोलाजी एण्ड एजूकेशन'', पैरागन इण्टरनेशनल पब्लिशर्स इण्डिया प्रा0लि0 नोएडा उ0प्र0-2005
- अग्रवाल जे0सी0; ''थियरी एण्ड प्रिन्सिपल ऑफ एजूकेशन'', विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2010
- घोष एस0सी0; ''द हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन इन मार्डन इण्डिया'', ओरिएन्ट ब्लैक्सवान प्रा0लि0 हैदराबाद, तृतीय संस्करण-2009
- रामचन्द्रन पी0 एवं रामकुमार वी0; ''एजूकेशन इन इण्डिया'', एन0वी0टी0, नई दिल्ली-2014
- प्रभात कुमार; ''भारत का संविधान'', प्रभात पेपर डेस्क, नई दिल्ली

भारतीय इतिहास में नन्द राजवंशः एक व्यावहारिक पक्ष

विजय कुमार

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विजय कुमार

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मगध राज्य से मगध साम्राज्य के विकास की कहानी हर्यकवंशी नरेश बिम्बिसार एवं उसके पुत्र अजातशत्रु के काल से प्रारम्भ होकर नन्द वंश एवं मौर्य शासन काल में विकास के उत्स तक पहुंचती है। फिर भी मगध साम्राज्य के वास्तविक उत्कर्ष का श्रेय यदि नन्द शासक महापद्मनन्द को दिया जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिसके शासन काल में पहली बार मगध साम्राज्य की सीमाएं विन्ध्यपार पहुँची एवं संगठित सेना की स्थापना के साथ-साथ सुगठित एवं सुव्यवस्थित शासन प्रणाली का जन्म हुआ। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि नन्दों के नेतृत्व में मगध साम्राज्य अपने उत्कर्ष पर पहुँच गया और भारत की एकता की नींव यहीं पड़ी। पाटलिपुत्र न केवल अखिल भारतीय साम्राज्य का बल्कि उच्च शिक्षा एवं संस्कृति का भी केन्द्र बना।[1] नन्द वंश के परिचय एवं उपलब्धियों के सन्दर्भ विशेष रूप से बौद्ध, जैन, पुराण, विशाखदत्त की मुद्राराक्षस एवं यूनानी लेखकों के विवरण के साथ-साथ कलिंगराज खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख एवं मैसूर से प्राप्त पूर्व मध्यकालीन अभिलेखों से भी प्राप्त होता है। ट्राउटमैन के विचार को अस्वीकार न करते हुए भी सामान्य रूप से यही माना जाता है कि अर्थशास्त्र मौर्यकालीन रचना है। अर्थशास्त्र को नन्द-मौर्य कालीन ग्रन्थ मानने के बावजूद भी हमें इस ग्रन्थ में नन्द-मौर्य शासकों का प्रत्यक्ष विवरण नहीं मिलता है।[2]

नन्द वंश का अध्ययन करते समय इस बात की चर्चा करना यहाँ प्रासंगिक लगता है कि नन्द कौन थे और इनका वंश क्या था? यद्यपि, किसी सम्राट के मूल्यांकन का आधार उसका व्यक्तित्व, उसकी सामरिक उपलब्धियाँ, सैनिक, संगठन एवं प्रशासकीय क्षमता होनी चाहिए, लेकिन अफसोस है कि नन्द वंश के संस्थापक एवं महत्वाकांक्षी सम्राट महापद्मनन्द की उपलब्धियों को भारतीय इतिहास में कुछ विद्वानों द्वारा महत्व न देकर उसकी जाति एवं वंश को अधिक महत्व देते हुए उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उपेक्षित करने का भरसक प्रयास बौद्ध, जैन, पुराण, एवं यूनानी लेखकों के उपलब्ध विवरणों को आधार मानकर किया गया है।[3] कहीं-कहीं कुछ विद्वानों द्वारा अनुमान को भी आधार रूप देने का भरसक प्रयास किया गया है। यह सर्वविदित है कि छठीं शताब्दी ईसा पूर्व का काल भारतीय इतिहास में परिवर्तन का काल रहा है। बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण धर्म के पारस्परिक टकराव को आधार बनाकर हर धर्म से सम्बन्धित लोगों ने शासकों को भी अपने-अपने पक्ष में घसीटने का कार्य किया है। भारतीय समाज में वर्ण के स्तरीकरण को लेकर बौद्ध व जैन ग्रन्थों में जो सन्दर्भ मिलते है उससे ऐसा कहा जा सकता है कि ब्राह्मण वर्ण के समर्थ सदस्यों द्वारा शिशुनाग वंश के सम्राट की हत्या से उत्पन्न राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाते हुए मगध के घोषित सम्राट महापद्मनन्द को अपनी सामाजिक स्वीकृति प्रदान की होगी ओर इसी से उत्साहित होकर महापद्मनन्द ने गंगा घाटी में विद्यमान क्षत्रिय राजवंशो का अगर उन्मूलन किया होगा तो कोई आश्चर्यजनक नहीं है जिनकी पुष्टि पुराण आदि ग्रन्थों में उल्लिखित उसकी सर्वक्षत्रान्तक, एकराट् आदि उपाधियों से व्यक्त होती है।[4] क्षत्रियों को अपना परम्परागत शत्रु मानने वाले परशुराम से उसकी तुलना का आधार भी उसका शौर्य ही रहा होगा। पुराणों में उसके लिए अखिलक्षत्रान्तकारी और क्षत्रविनाशकृता शब्दों का उल्लखित होना निश्चित रूप से यह स्पष्ट

करता है कि प्रथम नन्द नरेश शिशुनागवंशी नरेशों के समकालीन राजवंशों जैसे इक्ष्वाकु, पॉचाल, काशेय, हैहेय, कलिंग, अश्मक, कुरू, मैथिल, शूरसेन और वीतिहोत्र को उन्मूलित किया था।[5]

यह भी यहाँ उल्लेखनीय लगता है कि इतने राजवंशों को उन्मूलित कर मगध साम्राज्य को विस्तार देने में उसके अदम्य साहस एवं सुसंगठित सेना का विशेष योगदान रहा। कर्टियस के विवरण से स्पष्ट होता है कि महापद्मनन्द के उत्तराधिकारी धननन्द ने अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए 20 हजार अश्वारोही, 2 लाख पैदल सेना 2 हजार रथ तथा 3 हजार लड़ाकू हाथियों की विशाल सेना संगठित की थी। जबकि प्लूटार्क ने अश्वो की संख्या 80 हजार, रथों की 8 हजार तथा हाथियों की संख्या 6 हजार बताई है। मिलिन्दपन्हों में आये सन्दर्भ से भी नन्दों की विशाल सेना का बोध होता है।[6] उपलब्ध सन्दर्भो के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि इतनी बड़ी सैन्य शक्ति के साथ नन्द नरेशों ने जिस विशाल साम्राज्य कि स्थापना की वह साम्राज्य पश्चिम में व्यास नदी से लेकर पूर्व में बंगाल तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में गोदावरी तक विस्तृत था। पूर्व में कलिंग जनपद पर नन्दों के आधिपत्य की पुष्टि कलिंग के चेदिराज खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से होती है। हाथीगुम्फा अभिलेख के अनुसार नन्दराज ने कलिंग की विजय कर वहाँ से न केवल एक जैन तीर्थकर की मूर्ति अपनी राजधानी लाया बल्कि प्रजा के हित को ध्यान में रखते हुए कलिंग राज्य में एक नहर का भी निर्माण कराया था। गोदावरी तट पर स्थित नवनन्द-देहरा (नान्देड़) नामक स्थान से भी इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि इस स्थान के निर्माता भी नन्द नरेश ही रहे होंगे।[7] इन विवरणों से यह स्पष्ट है कि आर्यावर्त ही नहीं, दक्षिणापथ के कुछ भू-भाग भी नन्द साम्राज्य के अंग रहे थे। पश्चिम में नन्द राजवंश की सीमा व्यास नदी तक थी। जिसके विवरण यूनानी इतिहासकार के सन्दर्भो से प्राप्त होते है।[8] सिकन्दर के व्यास नदी के तट पर पहुंचने पर भगल नामक एक सरदार ने नन्द सम्राज्य की सीमा और विस्तार का वर्णन किया जिसका समर्थन पोरस ने भी किया था।[9] ऐसी सूचना थी कि व्यास के उस पार एक अत्यन्त उर्वर भूमि वाला राज्य था जहाँ उत्कृष्ट शासन प्रणाली थी और जहाँ समृद्धशाली वीर कृषक निवास करते थे। सिकंदर के समकालीन नन्द साम्राज्य के विषय में इस कथन ने सिकन्दर की इच्छा और अभिलाषा को और भी जागृत किया। लेकिन सिकन्दर के सैनिको ने व्यास नदी के पूरब आक्रमण करने से मना कर दिया। जैन ग्रन्थ परिशिष्टपर्वण[10] में भी नन्दों को आसमुद्र समस्त भारत का शासक कहा गया है। महापद्मनन्द के शासन काल में कलिंग के साथ-साथ सौराष्ट्र प्रान्त की भी विजय की गयी होगी। निश्चित रूप से ऐसा कहा जा सकता है कि आगे चलकर चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक के काल में दक्षिण-पश्चिमी एवं दक्षिण भारत की विजय का आधार नन्दों का यही विस्तृत साम्राज्य रहा होगा जिसके सन्दर्भ जूनागढ़ अभिलेख के साथ-साथ कर्नाटक प्रान्त से मिलने वाले अशोक के शिलालेखों से पुष्ट होते है। मैसूर से प्राप्त मध्ययुगीन अभिलेखों में (12वीं सदीं ई0) कुन्तल देश पर नन्दों का अधिकार बताया गया है।[11]

अत: इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि नन्दों ने एक सुसंगठित सैन्य बल के आधार पर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और एक मजबूत शासन प्रणाली की नींव डालकर लम्बे समय तक शासन किया। जिसकी चर्चा विदेशी विद्वानों के विवरणों से भी प्राप्त होती है। बौद्ध ग्रन्थ महावंश में इस बात का विवरण मिलता है कि नन्द वंश के अन्तिम शासक ने छोटी-छोटी वस्तुओं के अलावा पशुचर्म, गोन्द, पेड़ों तथा पाषाणों पर भी कर लगाये। यह सत्य है कि विस्तृत साम्राज्य एवं सुगठित एवं सफल शासन प्रणाली के लिए राजस्व संग्रह एवं राजकोष का समृद्ध होना व्यावहारिक सत्य है और इतने बड़े साम्राज्य पर सफल शासक के रूप में प्रजा के प्रति अपने दायित्वों को पूरे करने हेतु धन की आवश्यकता रहती है और इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर शासन के सफल संचालन हेतु अगर उसने जनता पर कर लगाया तो वह शासन प्रणाली का आवश्यक कदम था जिस पर उसकी आलोचना प्रासंगिक नही है। सामरिक, प्रशासकीय एवं तत्कालीन प्रजा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन की आवश्यकता स्वभाविक होती है और बगैर धन के लोककल्याणकारी कार्यो का सम्पन्न होना सम्भव नहीं था जिसके लिए उन्होंने माप-तौल की एक मानक प्रणाली भी शुरू की थी।[12] वस्तुत: पहली बार भारतीय इतिहास में नन्दों के नेतृत्व में एक ऐसे साम्राज्य का उद्भव हुआ जिसमे व्यवस्थित कर प्रणाली विद्यमान थी। आगे चलकर कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कर को कोष की वृद्धि का न्यायसंगत आधार बताया जिसके बिना राज्य एवं सेना का अस्तित्व संभव नही था। कौटिल्य ने सप्तांग सिद्धांत में भी कोष एवं दंड को राज्य का आधार बताया है। भागवत पुराण की टीका का कथन है कि नन्द नरेश के पास दस पद्मसेना अथवा इतनी ही सम्पत्ति थी इसी कारण उसका नाम महापद्म पड़ा। मुद्राराक्षस में नन्दों के लिए अर्थरूचि ओर नवनवतिशद्रव्यकोटीशवरा: शब्द का उल्लेख हुआ है। कथासरित्सागर के अनुसार नन्दों के

पास 1100 हजार स्वर्ण मुद्राए थी। महावंश एवं दीपवंश का कथन है कि गंगा के गर्भ में उसने एक शिलाखण्ड के नीचे चालीस कोटि मुद्राएं छिपा रखी थी। तमिल ग्रन्थो में भी उसकी सम्पन्नता के इसी प्रकार सन्दर्भ मिलतें है। सम्राट के रूप में महापद्मनन्द ने कल्पक एवं शक्टाल जैसे योग्य मंत्रियों एवं सेनापति के रूप में भद्दसाल को नियुक्त कर जिस विशाल साम्राज्य की स्थापना की वह प्रशासनिक दृष्टीकोण से उन्नत एवं समृद्ध था। यही कारण था कि इस काल में पाटलिपुत्र वैभव एवं विद्वता का केन्द्र बन गया जहाँ लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनो का वास होता था। जहाँ ज्ञानार्जन हेतु दूर-दूर से लोग आते थे। वर्ष, उपवर्ष, पाणिनी, कात्यायन एवं वररूचि आदि विद्वान नन्दों की राजधानी की शोभा थे। मुद्राराक्षस में भी नन्द नरेश के गुणों को उद्घृत किया गया है ''इसमें एक स्थान पर वर्णन है कि चन्दनदास से बात करते समय चाणक्य चिन्ता प्रकट करते हैं कि चन्द्रगुप्त की त्रुटियों से प्रजा को पिछले राजा (धननन्द) के गुण तो याद नहीं आते'' अत: ऐसी स्थिति में किसी प्रतिद्वंदी भारतीय शासक द्वारा उसको दुष्ट एवं शोषक कहना हास्यास्पद लगता है। उपलब्ध सन्दर्भ इस बात को स्पष्ट करते है कि नन्द नरेशों के प्रशासनिक विभागों में एक दान विभाग भी था और नन्द नरेश हर कार्तिक पूर्णिमा को पाटलिपुत्र में दान दिया करते थे।[13] एक अन्य बौद्ध ग्रन्थ 'वसन्थपत्थकासिनी' के अनुसार यह दान प्रतिदिन दिया जाता था और दान दिये जाने वाले धन की व्यवस्था (जो प्रतिवर्ष 1 करोड़ मुद्राएं) दान विभाग से की जाती थी। जिसका संचालन एक संघ करता था और जिसके सदस्य विद्वान ब्राह्मण ही हो सकते थे तथा उनमें सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण को अध्यक्ष चुना जाता था। इस विषय में नन्द नरेश की ख्याति सुनकर ही ब्राम्हण चाणक्य उत्तरापथ से चलकर पाटलिपुत्र आया था।

यह भी कहा जा सकता है कि 6वीं शताब्दी ई0पू0 में बौद्ध-जैन धर्म के उदय के साथ वर्ण के स्तरीकरण को लेकर जो परिवर्तन के साक्ष्य बौद्ध-जैन ग्रन्थों में मिलते है उसे चुनौती मानकर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से ब्राह्मणों ने महापद्मनन्द को सम्राट के रूप में स्वीकार करते हुए सामाजिक स्वीकृति प्रदान की होगी तो कोई आश्चर्य नहीं। सम्राट एवं शासक के रूप में किये गये उनके कार्य का ही परिणाम था कि उनके शासनकाल में किसी भी प्रकार का राजनीतिक एवं प्रशासकीय तथा सामाजिक विरोध के स्वर नहीं सुनाई दिये। जो अपने आप में उनकी विलक्षण प्रतिभा को भी स्पष्ट करते है। नन्द नरेशों के अदम्य साहस और सैनिक कौशल का ही परिणाम था कि उत्तर से दक्षिण तक विस्तृत इतने बड़े भू-भाग पर उन्होंने एक लम्बे समय तक बिना किसी विद्रोह एवं अशांति के शासन का सफल संचालन किया और इसका महत्त्व तब समझ में आता है जब हम पाते है कि आज से 2400 वर्ष पूर्व देश में यातायात और संचार के सुविकसित साधन नहीं रहे होंगे।

संदर्भ सूची-

1. झा, श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ 169.
2. राय, शशि कान्त, प्राचीन भारत में व्यवसायिक समुदाय, पृष्ठ 12 एवं लल्लन जी गोपाल, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार धारा, पृष्ठ 119.
3. पाण्डेय, विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ, 247.
4. पांथरी, भगवती प्रसाद, मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 16.
5. पार्जिटर, डाईनैस्तीज ऑफ कलि ऐज, पृष्ठ 29.
6. क्लासिकल एकाउंट्स ऑफ इंडिया, पृष्ठ 128.
7. द ऐज ऑफ नंदाज एंड मौर्याज, पृष्ठ 18.
8. क्लासिकल एकाउंट्स ऑफ इंडिया, पृष्ठ 198.
9. पाण्डेय, विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 237.
10. परिशिष्ट पर्वण (7, 81).
11. जे0डी0एल0, 2.1920, पृष्ठ 67.
12. चौधरी, राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 87.
13. सुखबोधा और आवश्यकसूत्र।

सत्याग्रहः एक अध्ययन

दीक्षा

दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सत्याग्रह का मूल अर्थ है 'सत्य का आग्रह या सत्य का बल और सत्यबल ही धर्मबल भी है। गाँधी का यह विश्वास था कि सर्वोदय सत्य की खोज में ही संभव है। सत्याग्रह के लिए सत्य भी चाहिए और प्रेम भी। सत्य इसलिए कि सत्य के अतिरिक्त किसी का अस्तित्व नहीं है। पुनः गाँधी कहते हैं कि अन्याय का प्रतिकार तो करना ही है, यह केवल हमारा जन्मसिद्ध अधिकार ही नहीं, वरन् हमारा धर्म एवं कर्तव्य भी है। परन्तु प्रश्न यह है कि प्रतिकार का स्वरूप क्या होगा? मानवीय सभ्यता के इतिहास में प्रतिकार की पाँच अवस्थाओं का वर्णन मिलता है।[1] यथा–

1. बुराई का बदला अधिक बुराई से अर्थात् हिंसा का बदला अधिक हिंसा से।
2. बुराई के बदले समान बुराई अर्थात् हिंसा के बदले हिंसा।
3. बुराई के बदले भलाई अर्थात् हिंसा के बदले अधिक अहिंसा।
4. बुराई की उपेक्षा अर्थात् हिंसा की उपेक्षा।
5. सद्विचार के लिए सहकार अर्थात सात्विकतम अहिंसा।

संक्षेप में प्रतिकार के प्रश्न पर इतिहास में जनता के दो रूप देखने को मिले हैं: गाय या शेर। ''या तो वह गाय बन जालिम के जुल्म को बर्दाश्त करती है या शेर की तरह हिंसक बन जाती है।'' लेकिन इन दोनों रास्तों से क्रान्ति संभव नहीं है। एक से दब जायेगें दूसरे से दमन हो जायेगा। ''षड्यन्त्र और हथियार से निरंतर क्रांति आनंगत बात है।''[2]

इसलिए गाँधी ने अन्याय से लड़ने के लिए नीतिबल पर आधारित अहिंसक युद्ध-प्रणाली का आविष्कार किया, जिसे 'सत्याग्रह' कहा है। सत्याग्रह 'निष्क्रिय प्रतिकार'[3] का कोई निर्जीव कामचलाऊ राजनैतिक उपकरण नही है, इसका आधार शरीरबल की अपेक्षा आत्मबल की शाश्वत श्रेष्ठता है। इसलिए 'निष्क्रिय प्रतिकार' की तरह दुर्बलों का अस्त्र नहीं, बल्कि वीरों का आभूषण है।

सत्याग्रह आत्मपीड़न है, न कि परपीड़न। अपने विरोधी को पीड़ा न पहुँचाकर सत्य को प्रतिष्ठित करने का दृढ़ व्रत लेना है। मनसा-वाचा-कर्मणा किसी को हानि पहुँचाए बगैर विनम्रता, प्रेम व न्याय के अनुकूल सत्याचरण करना है। सत्याग्रह वह अहिंसक शास्त्र है, जो शील द्वारा बुराई और आत्मबल द्वारा पशुबल (हिंसा) को जीतने में मदद करता है। सत्याग्रह के दो पक्ष हैं: निषेधात्मक व विधेयात्मक। कुरीतियों, कुप्रथाओं, अंधविश्वासों एवं अनर्गल मान्यताओं, जिनके द्वारा सत्य एवं न्याय की हानि होती है, के विरूद्ध सत्याग्रह का निषेधात्मक पक्ष है। सत्याग्रह में सत्य के विरोधी से भी द्वेष की स्वीकृति नहीं है। सत्याग्रह का उद्देश्य विरोध का अन्त करना है, न कि विरोधी का। पाप से घृणा करनी चाहिए न कि पापी से। सारी बुराइयों को त्यागकर सत्य एवं न्याय का पक्ष लेते हुए तथा नैतिक नियमों का पालन करते हुए बिना किसी को पीड़ा पहुँचाए सच्चाई के पक्ष को सुदृढ़ करने हेतु उचित साधनों का उपयोग करते रहना ही सत्याग्रह का निधेयात्मक पक्ष है। गाँधी ने सत्य के लिए गोली खायी और अन्यायियों के सामने झुकना कबूल नहीं किया, इन सबको हम गर्व के साथ सत्याग्रही कह सकते हैं। गाँधी ने सत्याग्रही के आठ लक्षणों की चर्चा की है–

(1) ईश्वरास्था (2) विपत्ति में धैर्य (3) निर्भीकता (4) सर्वत्याग का भाव (5) दुराग्रह का त्याग (6) आत्मोत्सर्ग (7) हठात् किसी को अपने मत का अनुयायी न बनाना (8) विरोधी के प्रति भी प्रेम, शिष्टाचार की भावना।

कष्ट को सहते रहना सत्याग्रही का चरित्र है। सत्याग्रही स्वाथ या द्वेष से प्रेरित होकर प्रतिपक्षी का विरोध नहीं करता, अपितु शुद्ध मन से निर्वैर भाव के सहारे उसका हृदय जीत लेता है। गांधी ने सत्याग्रह की सात प्रमुख विधियों का भी उल्लेख किया है–

(1) असहयोग (2) सविनय अवज्ञा (3) हिजरत (4) उपवास (5) घटना (6) हड़ताल (7) बहिष्कार। यह प्रमुख विधियाँ हैं जिससे सत्याग्रह को अमलीजामा पहनाया जा सकता है। क्रोध को अक्रोध और दुष्टता को साधुता से जीतना ही सत्याग्रह है। 'अक्रोधेन जिने क्रोधं, असाधुं साधुवा जिनें।'' जो मानव-समाज खूनी क्रान्ति की कोख से जन्म लेता है, वह अनन्त प्रतिक्रियाओं के भयंकर अग्निदाह में जलने के लिए मजबूर है। शस्त्र और नृशंसता के स्थान पर तर्क और माधुर्य का वर्चस्व ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह के तीन प्रमुख अंग माने गये हैं-सत्य, अहिंसा और प्रेम। इनमें से सत्य साध्य हैं तथा अहिंसा और प्रेम इसके साधन है। किन्तु गांधी दर्शन में साधन का महत्व साध्य से कम नहीं माना गया है। अत: यह नहीं समझना चाहिए कि अहिंसा एवं प्रेम का महत्व सत्य से कम है। गाँधी यह मानते थे कि साध्य का औचित्य साधन के औचित्य से निर्धारित होता है। इस सूत्र वाक्य के अनुसार सत्य का निर्धारण अहिंसा एवं प्रेम के द्वारा ही संभव है। वास्तविकता यह है कि तीनों परस्पर इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि एक के विषय में विचार करने के लिए दूसरे की आवश्यकता पड़ती है। गाँधी दर्शन में इनका विशिष्ट स्वरूप मिलता है। इसलिए इनकी विस्तृत चर्चा आवश्यक है।

सत्य

'सत्य' दर्शन जगत का चिरपरिचित शब्द है। इनका प्रयोग तर्कशास्त्र एवं ज्ञान मीमांसा में अनेक प्रसंगों में मिलता है। भारतीय परम्परा में सत्य को नैतिक सद्गुण के रूप में अनेकश: प्रयुक्त किया गया है। पंचव्रतों में सत्य का स्थान प्रथम है। सत्य की सर्वमान्य प्रतिष्ठा उसके त्रैकालिक अस्तित्व के कारण है। ऋषियों ने सत्य को धर्म के रूप में देखा है- ''सत्यं धर्माय दृष्टये।''[4] सत्य ही धर्म की सच्ची प्रतिष्ठा है- 'धर्म प्रतिष्ठित:।'' इसलिए सत्य से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है- ''सत्यान्नास्ति परोधर्म:।''[5] ''सत्यमूल सब सुकृत सुहाई।'' तथा धरमु न दूसर सत्य समाना।''[6] भागवत ने तो धर्म के चतुष्पाद में इस कलियुग में केवल एक पाद को ही शेष माना है-वह है सत्य। अत: सत्य ही धर्म का पर्याय है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं, कोई नीति, कोई तप नहीं, कोई बल नहीं। ''सत्यं ही परमं बलम्''[7] सत्य को ईश्वरीय आत्मा माना गया है। प्रभु ईसा ने शिक्षा दी है- ''तुम सत्य को जानोगे और सत्य तुमको मुक्त कर देगा।[8] हम सत्यवीर सुकरात के शब्दों में कह सकते हैं- ''सत्य से बढ़कर कोई सत्य नहीं है।'' पुन: शंकराचार्य ने वास्तविक सत् की परिभाषा करते हुए कहा है:-

''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत्:।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तृत्व दर्शिभि:।।''9

ऐसा प्रतीत होता है कि ''हमारा अस्तित्व'' और परमेश्वर या 'सत्य का अस्तित्व' दो प्रकार का अस्तित्व गांधी को मान्य था, लेकिन यह हमारा अस्तित्व उस ''सत्य या परमेश्वर के अस्तित्व' के लिए ही है। सत्य से अलग कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हो सकता है क्योंकि सृष्टि में एकमात्र सत्य की ही सत्ता है और उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है।[10]

सत्य का त्रैकालिक अस्तित्व होने के कारण सत्य को शाश्वत कहा गया है। गाँधी ने सत्य को विशाल अर्थ में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार 'विचार' में बाकी और आचार में सत्य का होना ही सत्य है। सत्य की यह अवधारणा 'मार्कण्डेय पुराण' और 'मनुस्मृति' में भी मिलती है। इसलिए इसे नवीन नहीं माना जा सकता है। इसकी नवीनता यही मानी जा सकती है कि गांधी ने इसका आजीवन प्रयोग किया और अपने अनुभवों के आधार पर अन्य सभी के लिए व्यवहार की संभावना को स्थिर किया।

अहिंसा

सत्य के साक्षात्कार की एकमात्र विधि अहिंसा है। अहिंसा पद 'अ' लगा होने के कारण निषेधात्मक प्रतीत होता है। किन्तु तत्वत: यह पद भावात्मक है। हिंसा वह क्रिया है, जिसमें मन वाली अथवा कर्म के द्वारा किसी को कष्ट पहुँचाया जाता है अथवा उसके अधिकार का हनन किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि हिंसा स्वयं निषेधात्मक है। मानसिक, वाचिक, कार्मिक हिंसा किसी न किसी रूप में अधिकार का निषेध अवश्य करती है। इस निषेधमूल हिंसा का निषेध करने वाला अहिंसा पद निषेध का निशेषण करने के कारण भावात्मक बन जाता है। अहिंसा के भी तीन प्रकार होते हैं। मन, वाणी कर्म से किसी को कष्ट न देना या किसी के अधिकार का हनन न करना अहिंसा है। अहिंसा का महत्व इसी से सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन के प्रत्येक सम्प्रदाय में इसे किसी न किसी रूप में मान्यता मिली है। गाँधी दर्शन में अहिंसा केन्द्रीय सिद्धान्त है क्योंकि इन दार्शनिक प्रणाली का कोई ऐसा बिन्दु नहीं जिसका अहिंसा से सम्बन्ध न हो।[11]

अहिंसा मन, वाणी और कर्म से सम्बद्ध होने के कारण त्रिविध है। इसकी अभिव्यक्ति के भी अनेक रूप हैं। जब कोई कायर व्यक्ति किसी अन्याय का विरोध नहीं करता तो वह भी हिंसा ही है। कायरता में कर्म की हिंसा तो नहीं होती, किन्तु मानसिक हिंसा विद्यमान होती है। कायरता अव्यक्त हिंसा है। गाँधी दर्शन में इसे निकृष्ट अहिंसा माना गया है।

अहिंसा अभिव्यक्ति का द्वितीय स्वरूप 'प्रतिहिंसा' है। किसी अन्यायपूर्ण हिंसा का विरोध हिंसा के द्वारा करना प्रतिहिंसा कहलाता है। प्रतिहिंसा कायरता की तुलना में उत्कृष्ट है। इस हिंसा में व्यक्ति प्रत्युत्तर देते हुए केवल कर्म में हिंसा करता है, किन्तु मन एवं वाणी से वह हिंसक नहीं होता है।

अहिंसा अभिव्यक्ति का तीसरा रूप है, जिसमें इनका पालन इसलिए किया जाता है क्योंकि अहिंसा सर्वोत्तम विधि है। इसे नियम के रूप में अहिंसा कहा जाता है। नियम के रूप में अहिंसा उपर्युक्त दोनों रूपों से उत्कृष्ट है, क्योंकि इसमें व्यक्ति मन, वाणी एवं कर्म तीनों प्रकार से अहिंसक होता है फिर भी इस अवस्था को भी पूर्ण अहिंसा नहीं कहा जा सकता है। इस अहिंसा में व्यक्ति इसका पालन इसलिए करता है क्योंकि अहिंसा सभी विधियों में से सर्वोत्तम है, किन्तु भविष्य में जैसे ही इससे अच्छी कोई विधि मिल गयी तो इससे वह तत्काल मुक्त कर लेगा अपने आपको। अतः अहिंसा की पूर्णता तभी संभव है, जब एकात्मबोध संभव हो जाय। अर्थात् व्यक्ति स्वयं ही अहिंसा का पालन करने लगे बिना मानसिक, वाचिक एवं कायिक।

प्रेम

अहिंसा की पूर्णता वैश्विक रूप में अभिव्यक्त होती है। इसीलिए गाँधी के सत्याग्रह का तीसरा महत्वपूर्ण तत्व प्रेम है। जगत की समस्त वस्तुओं एवं प्राणियों में आत्मभाव की अनुभूति से सहज प्रेम उत्पन्न होता है। यही सहज या सरल अहिंसा का आधार है। सहज अहिंसा ही पूर्ण अहिंसा है। इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि प्रेम अहिंसा की पराकाष्ठा है।

आज जब व्यक्ति, धर्म, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर आदि वर्गीकरण कर थक चुका है, तो समाज को बांटने के लिए एक नया वर्ग बना लिया है- ''भाषा का वर्ग'' और इसके लिए भी हिंसा हो रही है। यह वर्गीकरण इतना बढ़ गया है कि साधारण आदमी सोच नहीं पाता कि ''मैं इसमें कहाँ हूँ?'' क्या प्रेम का कोई आधार होता है इसे समझने की कोई भाषा होती है? इसका भी कोई वर्ग होता है? नहीं! बिल्कुल नहीं, प्रेम की कोई सीमा नहीं होती, भाषा की कोई सीमा नहीं होती, ना ही कोई वर्ग और कोई हो भी नहीं सकता है क्योंकि इसकी भाषा तो एक ही है और वह है 'प्रेम की भाषा' जो तोड़ने का नहीं जोड़ने का काम करती है, प्यार एवं सौहार्द से प्राणियों का विकास होता है, सभी प्राणियों के समग्र रूप से विकसित होने का सन्देश देती है। इसका एक ही आधार है वह है 'प्रेम' जिसके लिए न तो भारी-भरकम शब्द की आवश्यकता है और नहीं किसी किताब या पोथी की। हमें अगर किसी की जरूरत है तो बस प्रेम की।

गाँधी कहते हैं कि ''बात यह है कि अहिंसा का पुजारी, अपरिग्रह का भी पुजारी स्वयमेव हो जाता है। वह तो 'सर्वभूतहिताय' यानी सबके अधिकतम हित के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में वह मर जायेगा। इस प्रकार वह इसलिए मरना चाहेगा कि दूसरे जी सकें। दूसरों के साथ-साथ वह अपनी सेवा भी स्वयं मरकर करेगा।''[12] गांधी ने कहा है कि प्रेम में वह त्याग की भावना निहित है जिससे सर्वोदयी समाज का निर्माण होगा और सत्य की सच्चा आग्रह इसके बिना संभव नहीं है। प्रेम मार्ग में विद्वेष, ईर्ष्या का कोई स्थान नहीं हैं। अगर आप कुछ पाने की चाह रखते हैं तो उसकी प्राप्ति का मार्ग सिर्फ 'प्रेम' ही है जो उसको सफल बनाने का सामर्थ्य रखती है। कबीरदास ने भी कहा कि-

''प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हार विकाय।
राजा प्रजा जेहि रूचे सीस देई ले जाय।।''

सर्वोदय की सिद्ध के लिए महात्मा गाँधी ने एकादश व्रत का प्रतिपादन किया है। इन व्रतों में से सत्य, अहिंसा का विवेचन हो गया है, आगे इनका उल्लेख उचित प्रतीत नहीं होता है।

संदर्भ सूची

1 आत्रेय T.N., लेख 'सत्याग्रह: प्रतिकार से सहकार तक', भूदान यज्ञ', सत्याग्रह अंक-30 जनवरी, 1968
2 लोहिया डा0 राममनोहर, सच, कर्म, प्रतिकार और चरित्र-निर्माण, पृ0 19-20
3 गाँधी ने हिन्दस्वराज्य सेवा संस्करण में सत्याग्रह को ही 'निष्क्रिय प्रतिकार' कहा (पृ0 65)। किन्तु बाद में दोनों में स्पष्ट भेद करने के लिए
यंग-इण्डिया 25/8/20; 25/5/21; 29/9/21, 19/3/25, 31/12रु31
हरिजन - 15/5/38, 25/3/39, 8/6रु39, 20/7/47
इथिकल रिजिजन, पृ0 46
4 ईशावास्योपनिषद-15
5 महाभारत आदिपर्व तुलनाकीजिए-आहु: सत्यं परमधर्म-अ 192
6 दास तुलसी, रामचरित मानस, अयोध्या काण्ड
7 महाभारत शान्तिपूर्व 1:2:61
8 गाधी एम0के0, प्रार्थना प्रवचन, भाग 1, 20 सित0 1947, पृ0 328
9 छान्दोग्योपनिषद, 6.2.1, 6.8.7
10 सुमन, गाँधी वाणी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, पृ0 19-20
11 गाँधी एम0के0, मंगल प्रभात, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 6, 7
12 विनोबा, 'भूदान यज्ञ' सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी, पृ0 192-93

संस्कृत रूपकों में प्रहसन की विवेचना (प्रासंगिकता)

डॉ० श्रीमती अर्चना

एसोसिएट प्रोफेसर- संस्कृत, डॉ० अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऊँचाहार, रायबरेली

हास्य का मानव जीवन में विशिष्ट स्थान है, क्रोध और प्रेम आदि अनेक मनोभावों का अस्तित्व मानव के साथ-साथ पशु पक्षियों आदि जीवों में भी देखने को मिलता है, परन्तु हास्य का सीधा सम्बन्ध मानव जीवन से ही है।

साहित्यिक दृष्टिकोण में हास्य का अपना एक विशिष्ट साधन है, जिसके द्वारा साहित्यकार समाज में बुराई का प्रचार करने वाले व्यक्तियों को मीठी निन्दा के साथ-साथ बिना किसी से संघर्ष किये हुए विरोध जताते हुए अपना उद्देश्य (प्रयोजन) सिद्ध कर लेता है।

हास्य की लेखनी को तलवार से भी अधिक तीक्ष्ण और घातक हथियार माना गया है जिसका प्रहार बाहर से नहीं दिखता परन्तु वह व्यक्ति के मर्म को विद्ध कर देता है और अपनी अभीष्ट की सिद्धि में सिद्ध हो जाता है।[1]

अगर प्रहसन की उत्पत्ति की विधा की बात की जाये तो इस कला की उत्पत्ति यजुर्वेद काल में हो चुकी थी और यह संभव भी है कि यजुर्वेदियों ने ही अभिनय कला का विस्तृत रूप दिया हो, आज भी एक ही व्यक्ति नाना रूपों को धारण कर बहुरूपिया कहलाता है। अपने हास्य अभिनय का प्रदर्शन कर नागरिकों का मनोविनोद करता है। यह भी संभव है कि ऐसे बहुरुपियों को वैदिक काल में विश्वरूप कहा जाता हो जिसकी पुष्टि रुद्राध्याय के चतुर्थ अनुवाद में नमो विरूपेभ्यो, विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः के इस मंत्र से विश्वरूप की उपाधि से मान सकते हैं।[2]

संस्कृत नाटकों की प्रसिद्धि इस बात पर निर्भर थी कि उसमें जनभावना की प्रधानता थी। अधिक से अधिक अर्जित करने के लिए जनरुचि को स्थान दिया गया। नाटककारों ने अपने नाटकों की कथावस्तु धर्मग्रन्थों, पुराणों या काव्यों से लेकर उसे प्रहसन में बाँधकर जनता की रुचि और देशकाल और परिस्थितियों के अनुसार मनोरंजन के साथ-साथ समाज में उसकी उपयोगिता सिद्ध हो सके।

संस्कृत नाटकों में प्रहसन को संस्कृत साहित्य में स्वतंत्र विधा के रूप में लिखा गया है। ''प्रहसन'' शब्द से ही हमें हास्य भाव की अनुभूति एवं सूचना मिलती है। हास्य एवं व्यंग्य के कारण ही प्रहसन जनमानस में लोकप्रिय है। प्रहसन को हास्य प्रधान एकांकी माना गया है। इसमें हास्य रस को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है।

आज के वातावरण में प्रसन्न और स्वस्थचित्त रहना बहुत दुष्कर कार्य है। साहित्यकार अपने युग का समाज का मनोवैज्ञानिक चिकित्सक होता है तथा वह एक ऐसे काव्य का सृजन करता है कि समाज में जहाँ लोगों को मनोरंजन मिले, वहीं समाज में फली हुई कुरीतियाँ, कुप्रथायें समाज के सामने उजागर हो सकें।[3]

संस्कृत साहित्य में प्रहसन की उपलब्धता में काव्य को मुख्यत: दो वर्गों में विभक्त किया जाता है श्रव्य और दृश्य काव्य।

श्रव्य काव्य के अंतर्गत साहित्य की उन सभी विधाओं को सम्मिलित किया जाता है, जो श्रवण के माध्यम से रसानुभूति कराती हैं। जबकि दृश्य काव्य का वास्तविक आनन्द नेत्रों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। अर्थात् अभिनय उसका व्यावर्तक धर्म है।

नाट्याचार्य भरतमुनि ने दृश्य काव्य को 'नाट्य' शब्द से व्यवहारित किया है। आचार्यों ने 'नाट्य' के दो रूप माने हैं - 1. रूपक 2. उपरूपक। इन दोनों के पुनः अनेक उपभेद किये गये हैं द्य दशरूपककार के अनुसार इसके 10 भेद हैं।

नाटकं सप्रकरणं भाण: प्रहसनं डिम:
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।[4]

इन्हीं रूपक के 10 भेदों में प्रहसन आता है। भारतीय काव्यशास्त्र में प्रहसन को भरतमुनि ने दो भेद किये हैं - 1. शुद्ध प्रहसन, 2. सकीर्ण प्रहसन ।

रूपक का वह भेद जिसमें तापस, सन्यासी, पुरोहित भिक्षु, श्रोत्रिय आदि नायकों और निम्न प्रकृति के अन्य व्यक्तियों के मध्य परिहास चर्चा को प्रहसन कहा जाता है। निकृष्ट श्रेणी के पात्रों का परिहास पूर्ण अभिनय सकीर्ण प्रहसन के अन्तर्गत आता है।

दशरूपककार ने भी इसी आधार पर पहसन के तीन भेद माने हैं - 1. शुद्ध, 2. वैकृत (विकृत), 3. संकर।

तद्वत्प्रहसनं त्रेधा शुद्धवैकृतसंकरे:।[5]

प्रहसन का मुख्य विषय हास्य माना गया है।

प्रकृष्ट हसत्यनेनेति प्रहसनम्।[6]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार- जहाँ नायक धृष्ट होता है, वह हास्य विषयक शुद्ध प्रहसन कहलाता है।

एको यत्र भवेद, धृष्टो हास्यं तच्छुद्धमुच्यते।[7]

अर्थात् शुद्ध प्रहसन में सन्यासी, तपस्वी, नाट्य श्रेणी के पात्र में से किसी एक श्रेणी के व्यक्ति को दुष्ट नायक के रूप में चित्रित करने पर हास्य रस को मुख्य माना गया है।

विकृत प्रहसन -

कामुकादिवचोवेबै: षष्ठकंचुकि तापसै: विकृतम्।[8]

अर्थात् विकृत प्रहसन वह है जिसमें कामुक आदि की भाषा और वेषभूषा को धारण करने वाले नपुंसक कांचुकी आदि के पात्रों से संयुक्त होता है, इसे विकृत प्रहसन कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसमें कामुक आदि पात्र विभाव हैं, वे अपने अर्थात् (नपुंसक) आदि स्वरूप का परित्याग करके विकृत नकली रूप में इन कामुक आदि विभावों के रूप में मंच पर आते हैं । अर्थात् वे पात्र पुरुषों, योद्धा, वीरों जैसी होती है, नपुंसक आदि के रूप में उपस्थित होते हैं परन्तु उनकी चेष्टायें कामुक होती हैं।[9]

संकीर्ण प्रहसन-

विकृतं सङ्कराद वीथ्या संकीर्ण धूर्त सङकुलम् अर्थात् संकीर्ण प्रहसन वीथी के अंकों से मिश्रित तथा धूर्तो से भरा हुआ होता है। जहाँ कुछ आचार्य प्रहसन के तीन भेद मानते हैं, वहीं भरतमुनि नाट्यदर्पणकार, अभिनव गुप्त आदि प्रमुख आचार्य प्रहसन के दो भेद मानते हैं।

इदं (विकृत) तु संकीर्णनेव गतार्थमिति मुनिना पृथङ्नोक्तम। अर्थात् विकृत नामक प्रहसन को संकीर्ण में ही अन्तर्भाव मान लिया जाता है।

संस्कृत साहित्य की विधा में प्रहसन की कथावस्तु कविकल्पित होती है, एक या दो अंक होते हैं। धूत, पाखण्डी, विप्र, कामुक इसके पात्र होते हैं। इसमें विष्कम्भक और प्रवेशक नहीं होते हैं । वृत्तियों में इसमें भारतीवृत्ति का प्रयोग होता है।

प्राचीन प्रहसनों में प्रमुख कन्दर्पकेलि, सागर कौमुदी केलि केलि हास्यर्णव, धूर्त चरितम, सैरन्ध्रिका लटकमेलकम, भववदज्जुकीयम् मंत्रविलास, डमरूक और कौतुक सर्वस्व आदि को प्रहसन की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। परन्तु इनमें से कुछ प्रहसन अंशत: या पूर्णत: ही उपलब्ध है।

इन प्रहसनों में मत्तविलास प्रहसन संस्कृत साहित्य का प्राचीन प्रहसन है। इसके प्रणेता महेन्द्र विक्रम वर्मा थे जो पल्लव नरेश विष्णुवर्मा (565-600 ई०) के पुत्र थे। इस राजा के विषय में अनेकों शिलालेख मिलते हैं जिन्हें गुणभर, मत्तविलास, अवनिभाजन, शत्रुमुल्ल आदि संज्ञायें मिलती हैं। नामों में प्रहसन का यदा कदा नाम मिलता है। यह एकाकी प्रहसन छोटा होने पर भी तत्कालीन सामाजिक दशा का द्योतक है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है, कोई युवती के साथ कापलिका सुरापान करता है। मांसपिण्ड से युक्त होने के कारण कपाल को कोई कुत्ता ले भागता है परन्तु शराब के नशे के कारण वह एक बौद्ध भिक्षु को कपाल का चोर समझ लेता है तथा दोनो में झगड़ा होने पर दोनों पाशुपात का आश्रय लेते हैं परन्तु उस कपाल की प्राप्ति एक विक्षिप्त के पास मिलती है। जो कुत्ते से छीन कर अपने पास रख लेता है।

इतनी ही लघु कथा हास्य से संपुटित होकर बड़े ढंग से वर्णित की गई है।[10]

पेयासुरा प्रियतमामुखमीक्षितत्यं ग्राह्यं स्वभावललितो विकृतश्च वेषः।

भास ने अपने 13 नाटकों और मत्तविलास प्रहसन में संस्कृत के अन्य सभी नाटकों के विपरीत मंगलाचरण श्लोक के पहले नान्द्यते ततः प्रविशति सूत्रधार इस वाक्य का प्रयोग किया है, अर्थात् शास्त्रीय विधान के विपरीत मंगलाचरण किये बिना ही नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश बताया गया है।

संस्कृत के प्रहसनों में एक मार्मिक व्यंग्य होने के कारण इसकी बड़ी ख्याति और लोकप्रियता रहती है। कभी-कभी अश्लीलता भी दिखाई देती है। परन्तु मत्तविलास में चर्वाक जैन बौद्ध कपालिका आदि वेद विरोधी धर्मानुयायी के प्रति इसमें जो आक्षेप किये गये हैं, वे बड़े ही मार्मिक हैं।[11]

सन्दर्भ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास वल्देवापाध्याय
2. दशरूपक (भूमिका)
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास वल्देवापाध्याय
4. दशरूपक
5. वही से
6. वही
7. साहित्यदर्पण विश्वनाथ
8. दशरूपकम् 3:55
9. दशरूपकम् 3:55-56
10. मत्तविलास प्रहसन श्लोक 7
11. संस्कृत साहित्य का इतिहास वाचस्पति गैरोला

ग्रामीण समाज में जातियों के सामाजिक सांस्कृतिक सम्बन्धों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

प्रियंका दीक्षित

असिस्टेंट प्रोफेसर-समाजशास्त्र, श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़।

डॉ. राकेश प्रताप सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर-समाजशास्त्र, बापू पी0जी0 कॉलेज, पीपीगंज, गोरखपुर

गांव ग्रामीण समाज की इकाई है। किसी भी सामाजिक प्रघटना के समान ही गांव भी एक ऐतिहासिक श्रेणी है। गांव की संरचना को कई संघटक निर्धारित करते हैं। इन संघटकों में जाति व्यवस्था की अग्रणी भूमिका है। जाति संरचना भारतीय सामाजिक संरचना का प्रमुख अंग है। भारतीय सामाजिक संरचना जाति की संरचना से जानी जाती है।

वर्तमान समय मे जाति व्यवस्था की जो स्थिति है वह अनेक शताब्दियों में विकसित हुई है। जाति व्यवस्था के विकास को अध्ययन के दृष्टिकोण से तीन अवधियों में विभाजित किया जा सकता है:-

1. 4000 ई0पू0 से 700 ई0 (वैदिक काल, मौर्य काल मौर्यत्तर काल, गुप्त काल, गुप्तोत्तर काल)।
2. 700 ईस्वी से 1707 ईस्वी (राजपूत, मुस्लिम काल)
3. 1757 ईस्वी से 1947 (ब्रिटिश काल)

उपर्युक्त इन तीनों अवधियों से गुजरते हुए आज जाति व्यवस्था ने अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण किया है। जाति भारतीय ग्रामीण समुदाय को संगठित करने वाला एकमात्र महत्वपूर्ण तत्व है।

जाति की अवधारणा:-जाति विभाजन को दैवीय प्रबन्धन के रूप में माना जाता है। यह सोपानिक रूप से श्रेणीबद्ध है। जाति अर्न्तसमूह सम्बन्धों में कुछ नियमो एंव सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करती है विवाह, सहभोज एंव शारीरिक सम्बन्ध विशेष रूप से कठिन नियमों से निर्देशित है। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि जाति अर्न्त विवाही है विभिन्न जातियों में दिन प्रतिदिन के जीवन मे होने वाली अन्त: क्रिया भी जाति के नियमो से निर्देशित है। कुछ जातियों के व्यक्ति कभी स्पर्श नहीं किये जाते हैं। इसके साथ-साथ प्रत्येक जाति का एक आनुवांशिक व्यवसाय होता है। जिसमें परिवर्तन करना कठिन कार्य है। इस संस्तरित जाति व्यवस्था में विभिन्न जातियों के लिए कठिन कार्य है इस संस्तरित जाति व्यवस्था में विभिन्न जातियों के लिए अलग-अलग आचरण के प्रदत्त प्रतिमान होते है।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन:-एम0एन0 श्रीनिवास ने मैसूर में रामपुरा गांव का अध्ययन किया। श्रीनिवास के अनुसार जाति का आशय वर्ण व्यवस्था से न होकर छोटे-छोटे स्थानीय और अर्न्तविवाही समूह से है। इस गांव में प्रत्येक जाति का अपना परम्परागत व्यवसाय है। इसलिए हर जाति एक दूसरे पर निर्भर है जातियों के बीच ऊँच नीच के विचार, अर्न्तविवाह, सहभोज प्रतिबन्ध आपसी अलगाव बढ़ाने पर जोर देते हैं। सोपान व्यवस्था एवं भूमि व्यवस्था में समानता है। जातियों के बीच सामाजिक दूरी बनाये रखने के लिए कुछ प्रतिबन्धों का सहारा लिया जाता है। हरिजन जातियों को मन्दिरों में पूजा एवं कुओं से पानी लेना वर्जित है।

एस0सी0 दुबे ने आन्ध्र प्रदेश के शमीर पेठ गांव का अध्ययन किया। दुबे के अनुसार हिन्दु सामाजिक व्यवस्था जो जातीय विभाजन के आधार पर बनी है जटिल सामाजिक संरचना का उदाहरण है, गांव मे जाति के आधार पर व्यवसाय का विशेषीकरण हैं जातियों के बीच सहभोज के प्रतिमान एवं उनके बीच दूरी के प्रतिमान मौजूद है। निम्न जाति के लोग सामाजिक संस्तरण में ऊंचा उठने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन जाति अभी भी अर्न्तविवाही है।

जी0एस0 घूर्ये ने जाति व्यवस्था का अध्ययन किया। आपके अनुसार जाति व्यवस्था में संस्तरण पाया जाता है। यह समाज का खण्डात्मक विभाजन है। प्रत्येक जाति अर्न्तविवाही है। इन जातियों के मध्य खानपान के प्रतिबन्ध पाये जाते हैं। प्रत्येक जाति का अपना अनुवांशिक होता है। लेकिन घूर्ये ने इस बात पर बल दिया हैं कि अब जाति व्यक्ति के पेशे को निर्धारित नही करती है। विभिन्न जातियों को विभिन्न अवसरों एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है लेकिन जातियों में विवाह की प्रकृति अभी भी अर्न्तविवाही है। व्यक्ति पर इसकी पकड़ कम नहीं हुई हैं व्यक्ति आज भी जाति की राय से नियत्रित होते हैं।

लुई डुमो ने दक्षिण भारत में प्रमालाइकल्लार का अध्ययन किया। डुमों के अनुसार जाति व्यवस्था सम्पूर्ण भारत में पायी जाती है। इस जाति व्यवस्था में कई श्रेणियां है जो पहले से निर्धारित है। और श्रेणिक्रम का आधार शुद्धता एवं अशुद्धता है।

उपर्युक्त साहित्य के अध्ययन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि जाति व्यवस्था संस्तरण से जुड़र हुई भारतीय समाज की आधार भूत संस्था है जो स्वयं में स्थिर एवं कठोर है परन्तु समय के साथ-साथ वृहद समाज मे हुए परिवर्तनां के अनुरूप इनमे परिवर्तन भी आया है।

अध्ययन का उदेश्यः-

1. ग्रामीण समाज में जाति व्यवस्था के बदलते आयामो का विवरण प्रस्तुत करना।
2. विभिन्न जातियों के मध्य सम्बन्धों के धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षो का अध्ययन करना।

शोध पद्धतिः-प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक शोध प्रारूप को बनाया गया है क्योंकि गांव के सम्बन्ध में यथार्थ एवं विस्तृत तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना है। अध्ययन हेतु 50 जातिगत इकाइयों का चयन किया गया है इन इकाइयों का चयन स्तरी कृत देव निर्देशन के माध्यम से किया गया। अध्ययन हेतु लखनऊ में स्थित अरम्बा गांव का चयन किया गया है जो कि एक बहुजातीय गांव है। आंकड़ो का संकलन प्राथमिक स्त्रोत अर्थात साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है साथ में द्वितीयक स्त्रोतों जैसे इन्टरनेट आदि का प्रयोग किया है।

आंकड़ो का विश्लेषणः-प्रस्तुत अध्ययन में गांव कई खण्ड़ो या जातियों में विभाजित है जिसमें कभी संस्तरण पाया गया है। इस संस्तरण के अर्न्तगत विभिन्न जातियां उच्चता एवं निम्नता की श्रेणी पर स्थित है। इस संस्तरण में ब्राहमण सर्वोच्च एवं नट जाति निम्नतन स्थिति पर है। गांव में जातियों का सोपान क्रम निम्नवत हैः-

ब्राहमण	-	उच्च
ठाकुर	-	
कास्य	-	
यादव	-	मध्यस्तीय
मौर्य	-	
कहार	-	
गडरिया	-	
नाई	-	
धोबी	-	
रावत	-	
रैदास	-	

बसखोर -

बाल्मीकि -

नट -

प्रस्तुत शोध प्रपत्र उपर्युक्त सोपान क्रम में विभिन्न जातियों के मध्य सामाजिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक संबधों के स्वरूप पर प्रकाश डालता है जो कि निम्नवत है:-

जातियों के मध्य सामाजिक सम्बन्ध-शोध में जातियों के मध्य सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन कई दृष्टिकोण से किया है जैसे - आवास के दृष्टिकोण से, खानपान, अर्न्तविवाह एवं स्पर्शता के दृष्टिकोण से। अध्ययनरत गांव एक केन्द्रित गांव है जिसमें कुछ जातियां एंव एक ही स्थन पर निवास करती हैं। जबकि कुछ जातियां बिखरी हुई हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण, ठाकुर एवं कायस्थ सोपान क्रम में शीर्ष स्थान पर होने के कारण अस्पृश्य जातियों से अलग निवास करते हैं। जबकि ये सोपान के मध्य में स्थित मौर्य, यादव, लोहार, गडरिया जैसी जातियों के साथ रहते है जो कि स्पर्श करने योग्य है।

मध्यस्तरीय जातियां स्वयं से उच्च जाति ब्राह्मण, मौर्य, लोहार, भुर्जी, गड़रिया, परन्तु ये निम्न जातियों में धोबी एवं रावत के साथ भी रहती है।

निम्न जातियां उच्च जातियां के साथ निवास नहीं करती हैं। अर्थात (सोपान में उच्च एवं मध्यस्तरीय जातियों के साथ) प्रत्येक निम्न जाति का अपना एक निवास स्थान है जो अन्य जातियों से अलग है जिसके अन्तर्गत उसी जाति के लोग रहते हैं।

जाति व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह है कि जातियों के मध्य खानपान को लेकर कुछ निषेध पाये जाते हैं जिनका पालन करना सभी जातियों के लिए अनिवार्य है। अध्ययनरत गांव में भी विभिन्न जातियों के मध्य खानपान सम्बन्धी निषेध पाये जाते है। गांव में मुख्यतया दो प्रकार (कच्चा भोजन/पक्का भोजन) प्रचलित है। इन दोनों भोजनों के आधार पर ही विभिन्न जातियों के मध्य निकटता एवं दूरी के सम्बन्ध में पता लगाया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि गांव में खानपान सम्बन्धी निषेध एक महत्वपूर्ण तथ्य है। गांव के संस्तरण में सबसे उच्च जाति ब्राह्मण किसी भी जाति के यहां कच्चा भोजन ग्रहण नहीं करती है जबकि अन्य जातियां ब्राह्मण जाति के यहां कच्चा एवं पक्का दोनों प्रकार का भोजन ग्रहण करती हैं। इस गांव में प्रत्येक जाति स्वयं से उच्च जाति के यहां कच्चा एवं पक्का दोनों प्रकार का भोजन ग्रहण करती है लेकिन स्वयं से निम्न जातियां के यहां मात्र पक्का भोजन ही लेती है। इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि निम्न जाति के अन्तर्गत रावत, रैदास एवं मंगा जाति, नट बसखोर, एवं वाल्मीकि जाति के यहां किसी भी प्रकार का भोजन नहीं लेती है। इसके साथ बसखोर वाल्मीकि नवं नट जाति भी किसी भी उच्च जाति एवं मध्यस्तरीय जाति के यहां भोजन ग्रहण नहीं करती है।

गांव की उच्च स्तरीय एवं मध्यम जातियां निम्न जातियों से केवल भोजन ही नहीं लेती बल्कि पानी भी नहीं लेती है। लेकिन यहां तक जलस्त्रोतों का प्रश्न है उसमें वह दूसरी नहीं दिखायी पड़ती है। गांव की सभी जातियां के लोग एक ही कुएं या हैण्ड पम्प का पानी लेते हैं। जिसके लिए किसी भी जाति के व्यक्ति को रोका नहीं जाता है।

जाति व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता अन्त: विवाह भी इस गांव की प्रमुख विशेषता है। अध्ययन के मध्य विभिन्न जातियों ने यह स्वीकार किया कि वे केवल अपनी ही जाति एवं बिरादरी में विवाह करते हैं। यदि कोई अच्छा लड़का या लड़की कोई जाति अन्य किसी जाति में विवाह करती है तो लोग स्वयं ही उस जाति के यहां आना-जाना छोड़ देते हैं। इस प्रकार वह जाति गांव में पूर्ण रूप से अलगावित हो जाती है।

इस प्रकार यहां एक तरफ गांव में जातियों के मध्य शारीरिक सम्बन्धों को रोकने का प्रयास किया जाना है वहीं दूसरी ओर गांव में लोगों के मध्य छुआछूत की भावना में कमी आयी है। गांव की विभिन्न जातियां कुछ विशिष्ट जातियों को ही स्पर्श नहीं करते हैं।

अत: स्पष्ट है कि छूआछूत के बन्धन ढीले पड़ रहे हैं। निम्न जाति के व्यक्तियों में केवल बसखोर, बाल्मीकि एवं नट जाति के लोगों को स्पर्श करने में लोग अभी संकोच करते हैं। लेकिन रावत एंव रैदास (चमार) की ऐसी स्थिति नहीं है। गांव में केवल ब्राह्मण एवं ठाकुर जाति के लोग ही उनसे दूरी बरतते हैं।

इस प्रकार गांव की विभिन्न जातियों के मध्य जहां एक ओर सहभोज एवं विवाह को लेकर उनमें दूरी दिखायी पड़ती है। वही दूसरी ओर गांव में अस्पृश्यता जैसे तत्तव आंशिक रूप से विद्यमान हैं। अध्ययन के मध्य ग्रामीण व्यक्तियों से अनौपचारिक वार्तालाप के बीच यह पाया गया कि उच्च जातियां निम्न जातियों के साथ सामान्य (अच्छा से कम) व्यवहार करती हैं और जरूरत पड़ने पर उनकी सहायता करती है।

जातियों के मध्य सांस्कृतिक सम्बन्ध:-गांव की जातियों में सामाजिक सम्बन्धों की अपेक्षा सांस्कृतिक सम्बन्धों में लचीलापन पाया जाता है। ग्रामीण लोग अलग-अलग जाति के होने के बावजूद एक दूसरे के घरों में होने वाले उत्सवों एवं समारोह में भागीदारी करते हैं।

गांव की होली, दीपावली जैसे सभी धार्मिक उत्सव सभी जाति के लोग उत्साहपूर्वक मानते हैं। इन उत्सवों के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि गांव की उच्च जाति ब्राह्मण किसी भी मध्यस्तरीय एवं निम्न जाति के यहां नहीं जाती है। जबकि गांव की सभी मध्यस्तरीय एवं निम्न जातियों ब्राह्मण जाति के घर आती हैं। यही स्वरूप ठाकुर एवं कायस्थ जाति के भी देखने को मिलता हैं

गांव में मध्यस्तरीय जातियों एवं निम्न जातियों में धार्मिक उत्सवों में आना-जान होता है किन्तु मध्यस्तरीय जाति संस्तरण में निम्न स्थान पर बसखोर, बाल्मीकि एवं नट जाति के यहां नहीं जाती हैं। जातियां भी बसखोर को छोड़कर बाल्मीकि एवं नट जाति के यहां नहीं जाती हैं।

जहां तक वैवाहिक उत्सवों का प्रश्न है प्रत्यंक जाति चाहे वह उच्च हो या मध्यस्तरीय या निम्न जाति आमंत्रण की दशा में किसी भी जाति के वैवाहिक समारोह में भाग लेती है। यद्यपि यह सत्य है कि उच्च एवं मध्यस्तरीय जातियों निम्न जाति के यहां मात्र औपचारिकता का पालन करती है।

इन औपचारिकताओं के बावजूद ग्रामीण जातियाों में एक ऐसा सम्बन्ध है जो न केवल सांस्कृतिक है बल्कि आर्थिक भी है। यह सम्बन्ध जजमानी सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत जातियां विभिन्न में एक दूसरे को अपनी सेवाये प्रदान करती हैं।

निष्कर्ष: अध्ययन के आधार पर उद्घाटित हुआ कि वर्तमान में भी उच्च जाति एवं निम्न जाति के मध्य दूरी दृष्टिगोचर होती है। पूर्व की भांति अब भी ग्रामीण सामाजिक संस्तरण में ब्राह्मण को सर्वोच्च एवं अस्पृश्य जाति को निम्न स्थान प्राप्त है। यदि निम्न जाति के व्यक्ति धन एवं शक्ति को प्राप्त कर लें। फिर भी ग्रामीण सामाजिक संस्तरण में उनकी स्थिति को कोई परिवर्तन नहीं होती है।

जाति की अन्तर्विवाही विशेषता वर्तमान समय में भी विद्यमान है तथा इसका अत्यधिक कठोरता से पालन किया जाता है।

गांव में अभी भी सहभोज प्रतिबन्धों की उपस्थिति है। उच्च एवं मध्यम जाति, निम्न जातियों के यहां पानी भी ग्रहण नहीं करती है। उच्च जाति एवं निम्न जाति में की केवल खानपान निषेध नहीं है बल्कि स्वयं निम्न जातियां धोबी, रावत, रैदास, स्वयं से निम्न बसखोर एवं नट जाति के यहां भोजन ग्रहण नहीं करती हैं।

गावों में जजमानी व्यवस्था विवाह, मृत्यु जैसे संस्कारों तक ही सीमित रह गयी है। जजमानी व्यवस्था का आर्थिक स्वरूप, शिक्षा अन्य पूरक व्यवसायों की उपलब्धता तकनीकी सुविधा एवं बाजार व्यवस्था के कारण काफी क्षीण चुका है। इसके अतिरिक्त वर्तमान जजमानी व्यवस्था एक मौद्रिक रूप धारण कर रही है।

ग्रामीण निम्न जातियां मात्र धार्मिक परिस्थिति के कारण ही स्वयं को निम्न नहीं समझते हैं बल्कि आर्थिक परिस्थिति के कारण भी मानते हैं उच्च एवं मध्य जातियां आर्थिक रूप से निम्न जातियों से श्रेष्ठ है। यही कारण है कि उच्च एवं मध्य जाति में अधिक घनिष्ठा एवं उच्च एवं निम्न जाति के मध्य एक दूरी परिलक्षित होती है। यही दूरी कभी-कभ प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष को जन्म देती है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण जातियों के मध्य सम्बन्धों की प्रकृति सहकारी, प्रतिस्पर्धात्मक एवं संर्घर्षात्मक है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. आहूजा, राम, 2005, इण्डियान सोसायटी, रावत पब्लिकेशन-जयपुर
2. दुबे, एस0सी0, 2000, इण्डियन विलेज, वाणी पब्लिकेशन-दिल्ली
3. घूर्ये, जी0एस0, 1961 कास्ट, क्लास एण्ड आक्यूपेशन, पापुलर बुक डिपों-बाम्बे
4. डुमो, लुई, 2000, होमो हाइरारकिकस, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस-शिकागो
5. श्री निवास, एम0एन0, 2004 रिमेम्बर्ड विलेज, राजकमल पब्लिकेशन-न्यू दिल्ली

प्राचीन भारतीय मुद्रा परम्परा में स्कन्द-कार्त्तिकेय

डॉ० अर्चना मिश्रा

एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, कालीचरण पी0जी0 कालेज, लखनऊ (उ0प्र0)

स्कन्द-कार्त्तिकेय भारतीय देवपरम्परा के सर्वाधिक मोहक देवता हैं। भारत में कार्त्तिकेय का पूजन अत्यन्त प्राचीन काल से दिखने लगता है।[1] बौधायन धर्मसूत्र में स्कन्द, जयन्त, षण्मुख, विशाख, सुब्रह्मण्य, महासेन आदि नाम मिलते हैं।[2] परवर्तीकाल में ये सभी नाम स्कन्द-कार्त्तिकेय से संयुक्त किये गये। पतंजलि के काल तक इनमें से स्कन्द तथा विशाख पृथक-पृथक देवता के रूप में दिखायी देते हैं। अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य में शिव, स्कन्द तथा विशाख की प्रतिमाओं के विक्रय का उल्लेख मिलता है।[3] भण्डारकर के अनुसार यदि स्कन्द तथा विशाख एक-दूसरे से अभिन्न हैं तो पतंजलि ने इनका अलग-अलग उल्लेख न किया होता।[4] कुषाणकाल में हुविष्क की मुद्राओं पर स्कन्द तथा विशाख का अंकन पृथक-पृथक देवों के रूप में हुआ है। हुविष्क की कुछ स्वर्णमुद्राओं पर पृष्ठभाग पर इन दोनों का एक साथ अंकन मिलता है एवं लेख है - स्कैण्डो-कोमारो (स्कन्द कुमार) एवं विजागो (विशाख)।[5] हुविष्क की कुछ मुद्राओं पर तीन आकृतियों का अंकन स्कन्दकुमार, विशाख तथा महासेन नाम के साथ मिलता है।[6] परवर्ती काल में इन सभी का समन्वय स्कन्द के साथ हुआ। अमरकोश में स्कन्द के विभिन्न नाम मिलते हैं - कार्त्तिकेय, महासेन, शरजन्मा, षडानन, पार्वतीनन्दन, स्कन्द, सेनानी, अग्निभू, गुह, बहुलेय, तारकाजित, विशाख, शिखिवाहन, शक्तिधर तथा कुमार।[7]

ऋग्वेद में कुमार शब्द का अनेकत्र उल्लेख मिलता है।[8] इसका तात्पर्य बालक, युवा, पुत्र एवं कुछ स्थानों पर अग्नि से है। देवासुर संग्राम में देवताओं की पराजय के पश्चात् देवराज इन्द्र को देवसेना हेतु एक कुशल नायक की आवश्यकता का अनुभव हुआ। वायुपुराण[9] तथा विष्णुपुराण[10] में उन्हें सुरसेनापति तथा देवसेनापति कहा गया है। वेदांग साहित्य से स्कन्द एक महत्वपूर्ण देवता ज्ञात होते हैं। छान्दोग्य उपनिषद में स्कन्द का तादात्म्य सनत्कुमार से किया गया है।[11] शतपथ ब्राह्मण में कुमार को युद्ध का देवता कहा गया है।[12] यहीं पर उन्हें अग्नि अथवा रूद्र का नवां रूप कहा गया है।[13]

महाकाव्यों में स्कन्द के जन्म की कथाओं का वर्णन मिलता है। रामायण में उन्हें अग्नि तथा गंगा का पुत्र बताया गया है।[14] महाभारत में एक स्थान पर कहा गया है कि उनका पालन-पोषण कृत्तिकाओं ने किया, इसी कारण वे कार्त्तिकेय कहलाये। महाभारत में कई स्थानों पर स्कन्द का वर्णन मिलता है। वनपर्व में उनके जन्म की कथा का वर्णन है। वहाँ उन्हें देवताओं का परित्राण करने वाला तथा देवसेनापति कहा गया है।[17] अनुशासन पर्व में उनके द्वारा तारक वध वर्णन है।[18] आरण्यकपर्व में स्कन्द तथा इन्द्र के संघर्ष में स्कन्द की विजय तथा देवसेनापति नियुक्त होने का वर्णन है। देवसेनापति के रूप में कार्त्तिकेय ने महिष[19], तारक, त्रिपाद तथा क्रौंच पर्वत की गुफाओं में छिपे अनेक असुरों का संहार किया तथा क्रौंचभेळ्ळा नाम से अभिहित हुये।[20]

गुप्तकाल में स्कन्द का महत्त्व तथा प्रभाव क्षेत्र बढ़ गया। उनको राष्ट्रीय देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। कालिदास के कुम्मारसम्भव में अनेक अध्यायों में शिव-पार्वतीसुत कार्त्तिकेय के जन्म की कथा का वर्णन मिलता है। शूद्रक के मृच्छकटिक में चोरों तथा धूर्तों को स्कन्दपुत्र कहा गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अथर्ववेद के परिशिष्ट के रूप में धूर्त्तकल्प या स्कन्दयाग में स्कन्द को भगवान देवो धूर्त्तः कहा गया है।[21] वाणभट्ट के हर्षचरित[22] तथा कादम्बरी[23] में मयूरासीन कार्त्तिकेय का वर्णन है। सोमदेव के कथासरित्सागर में दक्षिण भारत में कार्त्तिकेय के मंदिरों का उल्लेख है।[24] कल्हण ने उत्तर बंगाल का लोकप्रिय देवता कार्त्तिकेय को बताया है। उसने पुण्ड्रवर्धन में स्थित एक कार्त्तिकेय-शिव मंदिर का वर्णन किया है।[25] गरुड़पुराण में पुण्ड्रवर्धन को कार्त्तिकेय

का क्षेत्र कहा गया है।[26] वर्तमान में कार्त्तिकेय उत्तर भारत के लोकप्रिय देवता नहीं हैं परन्तु प्राचीन साहित्य, अभिलेखों, मुद्राओं तथा कलापरम्परा से ईसवी सन् के प्रारम्भ से लेकर पूर्वमध्य युग तक वे उत्तर भारत के लोकप्रिय देवता ज्ञात होते हैं।[27]

स्कन्द प्रतिमा के निर्माण का उल्लेख वराहमिहिर की बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तरपुराण तथा मत्स्यपुराण में मिलता है। बृहत्संहिता में कहा गया है कि स्कन्दमूर्ति को कुमार रूप में हाथ में शक्ति लिए हुए तथा मयूरकेतु लिए हुये बनाना चाहिए।[28] कूर्मपुराण में भी स्कन्द को शक्तिधर कहा गया है।[29] मत्स्यपुराण के अनुसार द्विभुज स्कन्द की एक भुजा कुक्कुट के ऊपर रखी होनी चाहिए।[30] मत्स्यपुराण में यह भी कहा गया है कि कार्त्तिकेय की द्विभुजमूर्ति वन अथवा ग्राम में एवं चतुर्भुजी मूर्ति को पहाड़ी ग्राम में स्थापित करना चाहिए।[31] चतुर्भुजी मूर्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसके वामकरों में शक्ति तथा पाश, दक्षिणकरों में से एक में खड्ग एवं दूसरा अभय अथवा वरदमुद्रा में होना चाहिए।[32] अग्निपुराण में स्कन्द को एकमुख अथवा षड्मुख बनाने का वर्णन है। षड्मुखी रूप में उनके द्वादशकरों में शक्ति, वाण, खड्ग, अंकुश, मयूरपुच्छ, धनुष, खेट, पताका आदि धारण करने का उल्लेख मिलता है।[33] विष्णुधर्मोत्तरपुराण में उन्हें षड्मुखी, रक्तपरिधान धारण किये हुए तथा मयूरासीन बताया गया है। उनका किरीट मयूरपुच्छ द्वारा निर्मित बताया गया है तथा उनके करों में कुक्कुट, घण्टा, पताका तथा शक्ति का विधान किया गया है।[34] इसी वर्णन में कहा गया है कि स्कन्दमूर्ति को चार रूपों में बनाया जाता है - कुमार, स्कन्द, विशाख तथा गुह जिनमें कुमार मूर्ति को छोड़कर शेष तीन को षड्मुखी तथा मयूरासन पर दिखाने का निषेध किया गया है। महाभारत में भी स्कन्द के चतुर्रूपों का उल्लेख है। उनके स्कन्द, शाख, विशाख तथा नैगमेय चार स्वरूप बताये गये हैं। रूद्र के साथ स्कन्द, उमा के साथ शाख, वायु के साथ विशाख एवं अग्नि के साथ नैगमेय रूप का वर्णन किया गया है।[35] इस ग्रन्थ में उनहें देवसेनापति[36], द्वादशभुजायुक्त, अग्नि के समान तेजस्वी तथा ब्रह्मण्यदेव कहा गया है।[37] महाभारत में ही वर्णन है कि गरुड़ ने कार्त्तिकेय को मयूर प्रदान किया था।[38] कार्त्तिकेय की गुप्तकालीन सभी मूर्तियों में उन्हें मयूर के साथ प्रदर्शित किया गया है। मयूर को कार्त्तिकेय के वाहन के रूप में मान्यता प्राप्त हुई परन्तु मयूर के एकाकी अंकन को कार्त्तिकेय का प्रतीक स्वीकार किया जाये इस सम्बंध में स्पष्ट प्रमाणों का अभाव है। कतिपय मुद्राओं तथा मुहरों पर मयूर का अंकन एवं लेख उनका सम्बन्ध स्कन्द से स्थापित करते हैं।

स्कन्द-कार्त्तिकेय का प्रथम स्पष्ट अंकन यौधेय मुद्राओं पर मिलता है। रोहतक के क्षेत्र में निवास करने वाले यौधेय के उपास्य देवता कार्त्तिकेय थे, ऐसा उल्लेख महाभारत में मिलता है।[39] यौधेय जाति को भारत में युद्धप्रिय जाति के रूप में जाना जाता है। अतः सेनानी कार्त्तिकेय उनके उपास्य देवता थे, यह स्वाभाविक लगता है। सिक्कों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कार्त्तिकेय यौधेयों के प्रिय देवता थे।[40] यौधेय सिक्कों पर इस देवता का अंकन दो रूपों में मिलता है। द्वितीय सदी ईसवी के यौधेय सिक्कों पर कार्ळिकेय को षड्मुखी प्रदर्शित किया गया हैं। उनके मुखों को दो पंक्तियों में प्रदर्शित किया गया है। उनके दक्षिण कर में शक्ति तथा वामकर कट्यविन्यस्त है। इन सिक्कों पर लेख है - भगवत् स्वामिनो ब्रह्मण्य देवस्य कुमारस्य।[41] यौधेयों के परवर्ती पक्ष के सिक्के जिनको तृतीय-चतुर्थ सदी ईसवी का माना जाता है, उनमें भी उनका वामकर कटि पर स्थित है एवं दक्षिणकर में शक्ति है।[42] इन मुद्राओं पर देवता के वामपार्श्व में मयूर अथवा कुक्कुट का अंकन है। कुषाण शासक हुविष्क[43] की मुद्राओं पर स्कन्द का अंकन कुमार, विशाख, महासेन, स्कन्द आदि विभिन्न नामों से हुआ है। इस शासक की एक प्रकार की मुद्रा पर स्कन्द तथा विशाख को आमने-सामने दिखाया गया है।[44] एक अन्य अंकन में तीन आकृतियों का प्रदर्शन है। इसमें मध्य आकृति सम्मुखमुखी है एवं दोनों भुजायें कटि पर हैं, वाम आकृति का मुख दक्षिण दिशा की ओर है, दक्षिण में स्थित आकृति का मुख वामदिशा में है। इनके हेतु स्कन्दकुमार, विशाख तथा महासेन लेख हैं। सिक्कों से ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में उपरोक्त सभी अलग-अलग देवता के रूप में जाने जाते थे। मत्स्यपुराण में कार्त्तिकेय के चार भ्राताओं कुमार, शाख, विशाख तथा नैगमेय का नामोल्लेख मिलता है।[45] गोपीनाथ राव ने स्कन्द परिवार के आठ देवों के नाम बताये हैं - षडमुख, शक्तिपाणि, कार्त्तिकेय, गुह, स्कन्द, मयूरवाहन, सेनानी तथा शक्तिहस्तवन।[46] यहाँ सेनानी संभवतः महासेन का पर्याय प्रतीत होता है। उपरोक्त परिस्थितियों में ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व कुषाणकाल में कार्त्तिकेय से संयुक्त चारों देवताओं का पृथक-पृथक अस्तित्व था। कुषाणकाल में स्कन्द तथा कुमार एकीकृत होकर स्कन्दकुमार नाम से जाने गये तथा विशाख एवं महासेन स्वतन्त्र देवता बने रहे।

गुप्तकाल में प्रथम कुमारगुप्त स्कन्द के उपासक उनके स्वर्ण सिक्के थे, उनके पृष्ठभाग पर मयूरपीठ पर स्थित एक देवता का अंकन मिलता है। यहाँ देवता के वामकर में शक्ति तथा दक्षिणकर वरदमुद्रा में हैं। यह सहज ही कार्त्तिकेय का अंकन लगता है।[47] बयाना निधि से प्राप्त कुमारगुप्त के 628 सिक्कों में से 13 सिक्कों पर कार्त्तिकेय का अंकन है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि कुमारगुप्त के शासन के अंतिम पक्ष में मुद्रा पर स्कन्द को स्थान दिया गया होगा।[48] बनर्जी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि लगातार

हूण आक्रमण के कारण कुमारगुप्त ने कार्त्तिकेय को प्रमुख स्थान प्रदान किया।[49] प्रथम कुमारगुप्त के साम्राज्य के पूर्वी प्रदेश में चलाये गये रजतमुद्राओं पर नृत्यरत मयूर का अंकन मिलता है।[50] स्वर्णसिक्कों की पृष्ठभूमि में यह अंकन कार्त्तिकेय का वाहन प्रतीत होता है। इसी अनुकरण पर स्कन्दगुप्त[51] तथा बुधगुप्त[52] ने भी रजतमुद्राओं पर नृत्यरत मयूर को स्थान दिया।

मुद्राओं तथा मुहरों पर मयूर का एकाकी अंकन भी मिलता है। इसको सामान्य कलात्मक अभिप्राय माना जाय अथवा कार्त्तिकेय का प्रतीक यह विचारणीय प्रश्न है ? जिन स्थानों पर मयूर के अंकन के साथ लेख भी उपलबध है वहाँ समीकरण स्पष्ट हो जाता है। सिक्कों पर तो कार्त्तिकेय का मूर्तिमान अंकन मिलता है परन्तु मुहरों पर मात्र उनके प्रतीक चिह्न ही प्राप्त होते हैं। मुहरों पर प्राप्त लेख के आधार पर सम्बंधित मुहरों का सम्बंध कार्ळिकेय से जोड़ा जा सकता है। ऐसी मुहरें भी मात्र बसाढ़, भीटा तथा राजघाट से प्राप्त होती हैं।

पंख प्रसरित मयूर का जैसा अंकन प्रथम कुमारगुप्त तथा उसके कुछ उत्तराधिकारियों के सिक्कों पर मिलता है, वैसा ही अंकन बसाढ़ की एक मुहर पर प्राप्त है।[53] इसपर लेख है - व्याघ्रबलस्य। प्रथम कुमारगुप्त ने व्याघ्रनिहन्ता प्रकार की मुद्राओं पर व्याघ्रबलस्य पराक्रमः विरुद धारण किया है। यदि इस मुहर पर अंकित लेख को कुमार कार्ळिकेय से समीकृत किया जाय तो यहाँ अंकित मयूर निश्चित ही उनका प्रतीक ज्ञात होता है। अन्य कई मुहरों पर भी मयूर के अंकन के साथ कार्त्तिकेय से सम्बंधित लेख प्राप्त होते हैं। भीटा से स्कन्द-कार्त्तिकेय के मंदिर से सम्बंधित एक मुहर प्राप्त हुई है।[54] इस मुहर पर वामदिशा में पंख प्रसरित मयूर का अंकन है एवं लेख है - स्कन्दशूरस्य। यह लेख अतिशौर्यवान स्कन्द के लिए माना जा सकता है। भीटा से ही अमात्य धर्मदेव की मुहर भी प्राप्त हुई है[55], जिस पर समान अंकन प्राप्त है। भीटा से प्राप्त एक व्यक्तिगत मुहर पर भी समान अंकन प्राप्त हुआ है।[56] सम्भव है उपरोक्त मुहरों को जारी करने वाले कार्त्तिकेय के उपासक रहे हों। इसी कारण उन्होंने कार्त्तिकेय के प्रतीक मयूर को अपनी मुहरों में स्थान दिया हो।

राजघाट से भी उपरोक्त विशेषताएं रखने वाली कुछ मुहरें प्राप्त हुई हैं। यहाँ से प्राप्त एक मृदा ठप्पे पर पंख प्रसरित मयूर का अंकन है तथा लेख है - शूरगुप्त।[57] राजघाट से ही प्राप्त एक हाथीदाँत की मुहर पर समान अंकन तथा समान लेख प्राप्त है।[58] यह मुहर सम्प्रति भारत कलाभवन में है। दण्डनायक स्कन्द की एक कलात्मक मुहर भी राजघाट से प्राप्त है। इस पर पंख प्रसरित मयूर का सुन्दर अंकन है।[59] राजघाट से प्राप्त कुछ मुहरों पर नृत्यमुद्रा में मयूर का अंकन मिलता है। ऐसी ही एक मुहर पर नृत्यरत मयूर का अंकन है तथा लेख है - महेन्द्र।[60] ऐसी ही एक अन्य मुहर पर कोई लेख नही है।[61] एक मुहर पर नृत्यमुद्रा में मयूर का अंकन है तथा लेख है - विमलस्य।[62] एक मुहर अपने अंकन के आधार पर किंचित भिन्न प्रकार की है। इसमें दक्षिणकर में भाला लिए हुए दो योद्धाओं का अंकन है। उनके वामकर कटि पर हैं। इस पर लेख हैं - महाशूरस्य।[63] बनर्जी ने इस अंकन को मुद्राओं पर प्राप्त स्कन्द एवं विशाख के अंकन से तुलनीय बताया है।[64] राजघाट से प्राप्त अनेक मुद्राओं पर विशाखदत्त, सुविशाखदत्त आदि लेख प्राप्त होते हैं जिससे इस अनुमान को बल मिलता है कि इस क्षेत्र में कार्त्तिकेय लोकप्रिय देव थे और जिन मुहरों पर मयूर प्रतीक है उनका सम्बन्ध स्कन्द- कार्त्तिकेय की उपासना से रहा होगा। मुहरों पर प्राप्त होने वाले लेख इस संभावना को पुष्ट करते हैं।

उपरोक्त विमर्श के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि स्कन्द प्राचीन भारतीय मुद्रा परम्परा में एक लोकप्रिय देवता हैं।

सन्दर्भः-

1. गोयल, श्रीराम, ए रिलीजियस हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट इण्डिया, खण्ड-।।, पृ0 360.
2. बौधायन धर्मसूत्र, ।।, 5-8.
3. अष्टाध्यायी, 5, 3 99; महाभाष्य, V, 3.99
4. भण्डारकर, आर0जी0, वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजियस सिस्टम्स, पृ0 215.
5. प्रोसीडिंग्ज ऑफ इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस, 1981, पृ0 164.
6. वही.
7. अमरकोश, 1, 1, 39-40.
8. ऋग्वेद, 2, 33, 12; 4, 15, 7; 8, 9, 10; 5, 2, 1; 2; 5, 78, 9; 6, 75, 17; 8, 30, 1; 8, 31, 8; 8 69, 14; 10, 34, 7.
9. वायुपुराण, 53, 31 - सुरसेनापतिः स्कन्दः --------।

10. विष्णुपुराण, 18, 28.
11. छान्दोग्य उपनिषद्, 7, 26, 2.
12. शतपथ ब्राह्मण, 6, 2, 1, 5.
13. वही, 5, 1, 13, 18.
14. रामायण, 1, 37, 14.
15. महाभारत, वनपर्व, 219.
16. वही, 229, 15-17.
17. वही, 223, 231.
18. वही, अनुशासन पर्व, 85, 86.
19. वही, 3, 221, 63-66.
20. वही, 9, 45, 86-91.
21. अग्रवाल, पी0के0 स्कन्द-कार्त्तिकेय, पृ0 104-7.
22. हर्षचरित, अध्याय 4, पृ0 129.
23. कादम्बरी, अंक 64.
24. कथासरित्सागर, 1, 244, 61.
25. राजतरंगिणी, 4, 421.
26. गरुड़पुराण, 81.
27. जोशी, नीलकण्ड पुरुषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, पृ0 148.
28. बृहत्संहिता, 57, 41, - स्कन्दः कुमाररूपः शक्तिधारी - - - - केतुश्च।
29. कूर्मपुराण, 2, 39.
30. मत्स्यपुराण, 259, 50.
31. वही, 259, 47.
32. वही 259, 51.
33. अग्निपुराण, 50, 28.
34. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 3, 71, 3-6.
35. महाभारत, शल्यपर्व, 44, 39-41.
36. वही, 44, 43-50.
37. वही, अनुशासनपर्व, 86, 18-19.
38. वही, 9, 46, 51.
39. महाभारत, सभापर्व, 32, 4.
40. जर्नल न्यूमिस्मैटिक, सोसाइटी इण्डिया, पृ0 200-02.
41. एलन, बी0एम0सी0ए0आई0, पृ0 270. फलक 39(21).
42. वही, पृ0 272, फलक 39(22).
43. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मुद्रायें, पृ0 83-84.
44. डी0एच0आई0, पृ0 144.
45. मत्स्यपुराण, 159, 1-3.
46. राव, गोपीनाथ, एलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी, ।।, 2.
47. एलन, बी0एम0सी0जी0डी0, पृ0 82-84.
48. डी0एच0आई0, पृ0 133.

49. वही, पृ0 200.
50. एलन, बी0एम0सी0जी0डी0, पृ0 107, फलक 18(2).
51. वही पृ0 129, फलक 21(13).
52. अलतेकर, क्वायनेज ऑफ गुप्त अम्पायर, पृ0 258.
53. ए0एस0आई0ए0आर0, 1913-14, पृ0 125, फलक XLVII, 271
54. वही, 1911-'12, पृ0 58, सं0 83, फलक XX, 83
55. वही, पृ0 53, फलक 19, सं0 37.
56. वही, पृ0 58, सं0 83.
57. इलाहाबाद संग्रहालय, सं0 144.
58. भारत कलाभवन, वाराणसी, सं0 6396.
59. थपल्याल, के0के0, स्टडीज इन एनशिएन्ट इण्डियन सील्स, पृ0 195; डी0एच0आई0, पृ0 200.
60. मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, पृ0 98.
61. जर्नल, न्यूमिस्मैटिक, सोसाइटी इण्डिया, ।।।, पृ0 75, फलक 5(8).
62. अग्रवाल, वा0श0 एवं पी0के0 अग्रवाल, वाराणसी सील्स एण्ड सीलिंग्स, ।।, पृ0 14. चि0 295.
63. डी0एच0आई0, पृ0 200.
64. वही.

प्रशासकीय संगठन एवं कार्य संस्कृति

डॉ० दीपशिखा चतुर्वेदी

विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, डी0 ए-वी0 कॉलेज, कानपुर

'संगठन' को लोक प्रशासन की आधारशिला माना गया है। किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए सहयोग की भावना से अनेक व्यक्तियों द्वारा किया गया कार्य 'संगठन' है। जे0 डी0 मूने के अनुसार, '' संगठन वह मानवीय संस्था है जो साझा उद्देश्यों की प्राप्ति में व्यक्त होती है।''[1]

'संगठन' को और अधिक स्पष्ट करते हुये जॉन. एस. गॉस. ने लिखा है, ''संगठन का अर्थ कर्मचारियों की ऐसी व्यवस्था करना है जिसमें कार्यो और उत्तरदायित्वों के उचित विभाजन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को सरलतापूर्वक पूरा किया जा सके।''[2]

एल. डी. व्हाइट भी मानते है कि '' संगठन कर्मचारियों की वह व्यवस्था है जो कार्यो एवं दायित्वों के विभाजन के माध्यम से स्वीकृत उद्देश्य की प्राप्ति में सुविधा प्रदान करती है।

अतः संगठन एक ढ़ाँचा है जिसमें तीन मुख्य तत्व व्यक्ति, सामूहिक उद्देश्य और साम्भा उद्देश्य है। यह प्रशासन का एक ऐसा यंत्र है जिसके अभाव में प्रशासन अपना कार्य सुचारू रूप से नही कर सकता है। संगठन में मानवीय सम्बन्धों की प्रधानता रहती है।

लोक प्रशासन के संदर्भ में संगठन का अर्थ है प्रशासकीय संगठन। संगठन और प्रशासन एक-दूसरे पर इतने निर्भर है कि संगठन के अभाव में कोई भी प्रशासनिक कार्य नही किया जा सकता है। सरकारे जब भी कोई नयी योजना प्रारम्भ करती है तो उन्हें सबसे पहले 'संगठन' की आवश्यकता होती है।

राज्य प्रशासन के संचालन हेतु प्रत्येक देश को एक निश्चित समय में एक निश्चित प्रकार की राजनीतिक प्रशासनिक संरचना की आवश्यकता होती है। प्रशासन प्रणाली उसी संरचना के अर्न्तगत कार्य करती है अतः प्रत्येक देश व राज्य की आर्थिक, सामाजिक, संवैधानिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ न केवल प्रशासन को प्रभावित करती है अपितु उसकी कार्यप्रणाली एवं ढ़ाचे को भी प्रभावित करती है। किसी देश के प्रशासनिक संगठन तथा कार्यसंस्कृति के विश्लेषण करने से पूर्व संस्कृति को समझना आवश्यक है। संस्कृति का तात्पर्य किसी समुदाय की जीवनशैली से है जिसमें उस समुदाय के रहन-सहन, खान पान, पहनावा भाषा, जीवनशैली पर विशेष प्रभाव पड़ता है। समाज की संस्कृति अपने नागरिको, प्रशासनिक संगठनो संस्थानो को अनेक आदर्श मूल्य एवं व्यवहार प्रदान करती है। प्रशासन के संगठनो पर संस्कार, संस्कृति एवं मूल्यों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश की प्रशासनिक व्यवस्था, संगठन एवं कानून दूसरे देश को प्रशासनिक व्यवस्था, संगठन और कानून से भिन्न होते है। लोक प्रशारण और सांस्कृतिक परिवेश के सम्बन्धों के विषय में जी0 ई0 ग्लैडन कहते है, ''यदि प्रशासनिक संस्कृति रूपान्तरण के कारण हुई प्रगति से सामंजस्य स्थापित नहीं करती, तो सामाजिक असंतोष और हिंसा से सामाजिक ढ़ाँचा अनंतः ध्वस्त हो जायेगा। सामाजिक संस्कृति की अनुकूल क्षमता ही प्रशासन में लोक सामंजस्य और व्यवस्था बनाने में प्रमुख भूमिका निभाती है।[4]

'कार्य संस्कृति से तात्पर्य उस सम्पूर्ण वातावरण से है जो किसी कार्यालय तथा प्रशासनिक संगठन में कार्य के अनुकूल या प्रतिकूल कर्मचारियो की मनोवृत्ति निर्धारित करता है। प्रायः प्रत्येक संगठन को एक विशिष्ट कार्य संस्कृति होती है। यद्यपि संगठन का आकार बहुत बड़ा है तो उसके विभिन्न भागों एवं क्षेत्रो में अधिक कार्य संस्कृतियाँ भी हो सकती है जैसे बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ। संगठन संस्कृति निगम संस्कृति या कम्पनी संस्कृति भी कार्य संस्कृति के पर्याप्त है।

अत: किसी संगठन की कार्य संस्कृति में उसकी मान्यताओं और सिद्धान्तों, कार्य स्थल पर माहौल, कर्मचारियो के विश्वास एवं दृष्टिकोण एवं आपसी व्यवहार वरिष्ठों की नेतृत्व शैली आदि का मिश्रण होता है। कार्य संस्कृति ही इस बात से निर्धारित होती है कि किसी प्रशासनिक संगठन की कार्यशैली क्या होगी तथा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये वह संगठन अपने कार्यो का निस्पादन किस प्रकार करेगा।

कार्य संस्कृति किसी संगठन के विभिन्न आयामों में अभिव्यक्त होती है। यथा- संगठन के उद्देश्य क्या है, अपनी सामाजिक भूमिका के प्रति क्या सोच है, कर्मचारियो पर कैसी आचरण संहिता एवं नियमावलियाँ लागू होती है तथा उनकी सामान्य आदतें किस प्रकार की है इत्यादि।

जिस प्रकार किसी भी समाज में राजनीतिक, आर्थिक सांस्कृति परिवेश एवं घटनायें प्रशासनिक व्यवस्था को प्रभावित करती है। उसी प्रकार किसी संगठन की कार्य संस्कृति काफी हद तक उस देश एवं समाज की मूल संस्कृति से प्रभावित होती है। जहाँ पर वह संगठन कार्यरत है। हॉफ्सटेड द्वारा प्रस्तुत 'सांस्कृतिक आयाम का सिद्धान्त में यही स्थापित करने का प्रयास किया है कि संस्कृति 'कार्य संस्कृति' को व्यापक स्तर पर प्रभावित करती है। यथा: यदि किसी समाज की संस्कृति में व्यक्तिवाद प्रबल है तो वहाँ के संगठन के कर्मचारियो में भी व्यक्तिवाद हावी होगा। वे अपने संगठन पर आर्थिक एवं भावात्मक रूप से कम निर्भर होंगे तथा व्यक्तिगत पहचान को वरीयता देगे। दूसरी तरफ यदि संस्कृति में सामूहिक ढ़ाँचो का अधिक महत्व है तो कर्मचारी अपने संगठन पर अधिक निर्भर होगे तथा सामाजिक पहचान को अधिक महत्व मिलेगा।

यदि समाज में सांस्कृतिक विविधता है तथा विविधता के प्रति लचीलापन एवं सम्मान का भाव है तो कार्य संस्कृति में भी विभिन्न वर्गो का बेहतर अनुपात होगा तथा समावेशी विकास होगा। उदाहरणार्थ अमेरिकी प्रशासन की तथाकथित संरक्षणवादी नीति के वावजूद वहाँ की दिग्गज कम्पनियों यथा फेसबुक माइक्रोसाफ्ट गूगल आदि ने अपने संगठनो की कार्य संस्कृति भी प्रतिभाओं के साथ क्षेत्रीय आधार पर भेदभाव नहीं करती है क्योकि अमेरिकी संस्कृति विविधता' को सम्मान देती है।

प्रशासनिक संगठनों, कार्यालयों, विभागों में कार्य संस्कृति सहज और लचीली है या औपचारिक एवं कार्य प्रणाली नियमो में अधिक बल देने वाली यह वहाँ के माहौल में परलक्षित हो जाता है।

प्रशासनिक संगठनो में कर्मचारियो को कार्य के लिये प्रतिबद्ध एवं निष्ठा बढ़ाने वाली, संगठन की कार्यक्षमता को बढ़ाने वाली एवं संगठन के मूल्यों एवं परम्पराओं का पालन करने वाली कार्य संस्कृति ही श्रेष्ठ कार्यसंस्कृति होती है। एक अच्छी एवं सफल कार्यसंस्कृति से संगठनो को कई लाभ प्राप्त होते है:

- आर्थिक लाभ: एक अच्छी कार्यसंस्कृति से कार्यस्थल पर उत्पादकता और प्रदर्शन में वृद्धि होता है। कार्य निष्पादन समय पर होता है और संगठन अपनी गुणवत्तापूर्ण उत्पादों के माध्यम से आर्थिक लाभ अर्जित कर सकता है।
- मनोबल में वृद्धि: ऊँचा मनोबल सफलता की कुंजी है। एल. डी. व्हाइट कहते है, ''मनोबल एक व्यक्ति एवं समूह की अर्न्त निहित सम्पति है'[5]

  एक अच्छी कार्यसंस्कृति वाले संगठन में कर्मचारियों का मनोबल सदैव ऊँचा रहता है तथा वे दिये गये दायित्वो का निर्वहन प्रतिबद्धता के साथ करते है।'
- मानव पूँजी में गुणात्मक वृद्धि: अच्छे संगठन की श्रेष्ट कार्यसंस्कृति कर्मचारियों को कार्य में आनन्द लेने, रचनात्मकता के लिये व्यापक अवसर देने, कार्य माहौल को खुला सहभागिता पूर्ण बनाने तथा ऊर्जावान तथा क्षमता युक्त योग्य कर्मचारियों को संगठन से जुड़ने के लिये प्रेरित करते है।
- बदलाव के लिये तत्पर: एक अच्छी कार्यसंस्कृति बदलावों के लिये सदैव उत्सुक एवं तत्पर रहती हैं ऐसे संगठनो में कार्यरत कर्मचारी वाँछित परिवर्तनों को सक्रियता से अपनाकर अपने संगठन को ज्यादा प्रतिस्पर्धी, सफल और उपयोगी बनाते है।
- सहयोग व समन्वय: एक अच्छी कार्यसंस्कृति कर्मचारियों में आपकी सहयोग एवं समन्वय को बढ़ावा देती है, टीमवर्क को प्रेरित करती है। यह संचार कौशल में वृद्धि करके संगठन एवं कार्य के प्रति जिम्मेदारी का भाव उत्पन्न करती है।
- संतुष्टि का भाव: एक बेहतर कार्यसंस्कृति संगठन में लोगो में संतुष्टि का अनुभव देती है। प्रशासनिक संगठनो के लिये कर्मचारियों को संतुष्टि एक महत्वपूर्ण कारण होता है जो प्रशासनिक संगठन को उद्देश्यो की प्राप्ति में सहायक होता है।

एफ डब्ल यू रिंग्स[6] ने अपनी पुस्तक Ecology of Public Admonition में स्पष्ट किया है कि किसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानो, संस्थागत नमूनो, वर्ग, जाति सम्बन्धों, ऐतिहासिक वसीयत, परम्पराओं, धर्म मूल्यो की व्यवस्था विश्वास आदर्श आदि पर आधारित होती हैं ये सभी तत्व प्रशासन पर गहरा प्रभाव डालते है। प्रशासन में मानवीय तत्व का विशेष प्रभाव होता है इसलिये लोकप्रशासन, संगठन का मानवीय तत्व समाज विशेष की उपज होता हैं, विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक संस्थायें एवं व्यवस्थायें लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती है तथा प्रशासनिक संगठनों की कार्यसंस्कृति पर प्रभाव डालती है।

भारतीय समाज और संस्कृति का स्वरूप बहुलवादी है। संस्कृति उदात्त जीवनमूल्यों, नैतिक मूल्यों एवं श्रेष्ठ जीवन पद्धति की संवाहक रहा है। विभिन्न संस्कृतियों से आये प्रशासको की प्रशासनिक शैली तथा प्रशासनिक कदमों में विभिन्नतायें नजर आती है ये प्रशासन का स्वरूप निर्धारित करते है। ये तत्व सांस्कृतिक पर्यावरण के रूप में प्रशासकीय संगठनों की कार्यसंस्कृति पर विविध प्रभाव डालते है।

चूँकि किसी भी देश का प्रशासन संवैधानिक व्यवस्था के अनुरूप ही होता है। प्रत्येक देश अपनी परिस्थितियों और आवश्यकताओ के अनुकूल जीवन मार्ग चुनता है। यह जीवन मार्ग संविधान होता है। भारतीय संविधान के मूल सिद्धान्त एवं प्रस्तावना, मौलिक अधिकारो सम्बन्धी उपबन्धों तथा नीति निर्देशक तत्वो में विशेष रूप से देखने को मिलते है।[7]

अतः देश के प्रशासकीय ढ़ाँचो, संस्थाओं एवं संगठनों पर इन तत्वों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होना चाहिए ताकि प्रशासकीय संगठनों की कार्यप्रणाली एवं कार्यसंस्कृति संविधान के मूल्यों और आदर्शो तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की संवाहक बन सके। लोक प्रशासन राज्य एवं समाज की आवश्यकताओ के अनुरूप सफल हो सके। डा0 सच्चिदानन्द मिश्र ने अपनी पुस्तक भारत के पूर्वकालिक प्रधानमन्त्रियो को राजनीतिक सोच एवं कार्यसंस्कृति[8] में देश लोकप्रिय राजनीतिक नेतृत्व के प्रशासन पर प्रभाव तथा उनकी कार्यसंस्कृति का देश के प्रशासन एवं संस्थाओं के प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण किया है। वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की कार्यशैली का देश के प्रशासन एवं सरकारों के सभी स्तरों पर व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अपेक्षा है कि वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व के सकारात्मक एवं राष्ट्रीय सोच एवं कार्यशैली भारत के प्रशासनिक संस्थानों, संगठनों एवं सरकारों के विभिन्न स्तरों की कार्यसंस्कृति में नवीन परिवर्तन लायेगी ताकि परम्परागत नौकरशाही एवं प्रशासन की कमियों यथा लालफीताशाही, अनुदारवादी दृष्टिकोण, भ्रष्टाचार राजनीतिक संलिप्तता आदि में कमी लाकर प्रशासन को अधिक पारदर्शी जिम्मेदार एवं जनकल्याणकारी एवं तत्पर बनायेगी।

References :

1. Mooney J.D., Principle of Organization ; Harper and Bothers Publishers, 1947, P. 1.
2. John m Goss ; The Frontiers of Public Administration (P.P. 66 67.) University of Chicago Press 1936.
3. White L.D. ; Elements of Public Administration ; P. 40
4. Gloden G. E :Dynamics of Public Administration ; London, frank Cass.
5. Riggs Fred W , the Ecology of Public Administration Asia Public House Bombey 1961.
6. Dube R. K. Adhunik Lok Prakashan : Laxmi Naryan Agrwal Publiction, Agra : 2003.
7. Awasthi and Awasthi :Bharty Prakashan : Agrawal Publication Agra 1997.
8. Bharat ke Purnakalik Pradhanmantriniyon ki Rajnitik Soch EvamKarya Sanskriti ; Janki Prakashan : Patna.
9. Mahershwari S.R. ; Indian Administration : Orient Longmens 1990.
10. I. I. P.A; Journel of in Indian Institute of Public Administration.
11. Journal of Constitional and Parliamentary Studies.
12. Lok Prashan ; A Quarterly in Hindi (Associate Publication of J.J. P.A)

सतत व्यापक मूल्यांकन पर एक झलक

शेर सिंह

शोध छात्र, मेरठ कॉलिज, मेरठ

डॉ० संजय कुमार

एसो0 प्रोफेसर, मेरठ कॉलिज, मेरठ

सारांश

मूल्यांकन एक व्यापक और सतत प्रक्रिया है, इसलिए नई परीक्षा प्रणाली में तथाकथित व्यापक और सतत मूल्यांकन प्रणाली को अपनाया गया है। विस्तृत बहसों और शोधों के बाद यह महसूस किया गया है कि मूल्यांकन का उपयोग केवल शैक्षिक विषयों में उपलब्धि को प्रमाणित करने के लिए ही नहीं बल्कि सह-शैक्षिक विषयों में भी किया जाना चाहिए। रटकर सीखने को रोकने, तनाव को कम करने और सर्वांगीण विकास को बढ़ावा देने के लिए कक्षा के अंदर और बाहर सीखने का लगातार और उद्देश्यपूर्ण मूल्यांकन आवश्यक है। मूल्यांकन निरंतर चलता रहता है और विद्यार्थियों का सामर्थ्य और कमियों को बार-बार प्रकट करता है, ताकि विद्यार्थियों को स्वयं को समझने और सुधार करने का अवसर मिल सके। अब जब हम निरंतर व्यापक मूल्यांकन को शिक्षा के एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में स्वीकार करते हैं, तो हमारे लिए यह प्रश्न पूछना अनिवार्य और उचित है कि क्यों और कैसे? सतत और व्यापक मूल्यांकन को बढ़ावा दिया जा सकता है- ब्लू प्रिंट विकसित करना; प्रत्येक छात्र के प्रोफाइल को बनाए रखना; दक्षताओं के निरंतर मूल्यांकन और योजना उपचारात्मक निर्देश के रिकॉर्ड बनाए रखना; ग्रेडिंग प्रणाली का परिचय; और अन्य प्रश्न पूछने की उचित तकनीकों का उपयोग करना।

मुख्य शब्द- सतत, व्यापक, मूल्यांकन, कार्य अनुभव, गैर-संज्ञानात्मक डोमेन, संचयी रिकॉर्ड।

हाल के वर्षों में, प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर सभी शिक्षार्थियों की उपलब्धि की गुणवत्ता में सुधार के लिए चिंता बढ़ रही है। लेकिन शिक्षार्थियों की गुणवत्ता में सुधार लाने और बेहतर गुणवत्ता को सार्वभौमिक बनाने का यह उद्देश्य अपूर्ण शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं और अनुचित मूल्यांकन प्रथाओं के कारण पूरी तरह से महसूस नहीं किया जा रहा है जो उनके दायरे में पारंपरिक और संकीर्ण हैं। परीक्षाएं शैक्षिक प्रक्रिया का एक अनिवार्य हिस्सा हैं क्योंकि शिक्षण अधिगम प्रक्रियाओं की प्रभावशीलता और शिक्षार्थियों द्वारा उनके आंतरिककरण को निर्धारित करने के लिए मूल्यांकन अति आवश्यक है। विभिन्न आयोगों और समितियों ने परीक्षा में सुधारों की आवश्यकता महसूस की है। हंटर आयोग (1882), कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग या सैडलर आयोग (1917-19), हर्टोग समिति की रिपोर्ट (1929), केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट/सार्जेंट योजना (1944), माध्यमिक शिक्षा आयोग/मुदालियर आयोग (1952-53) आदि सभी ने बाहरी परीक्षा पर जोर कम करने और सतत और व्यापक मूल्यांकन के माध्यम से आंतरिक मूल्यांकन को प्रोत्साहित करने के संबंध में सिफारिशें की हैं। सतत और व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) छात्रों के स्कूल आधारित मूल्यांकन की एक प्रणाली को संदर्भित करता है जो छात्रों के विकास के सभी पहलुओं को शामिल करता है। यह मूल्यांकन की एक विकासात्मक प्रक्रिया है जो दो प्रकार के उद्देश्यों पर जोर देती है। ये उद्देश्य व्यापक आधार पर सीखने और दूसरे पर व्यवहारिक परिणामों के मूल्यांकन और मूल्यांकन में निरंतरता लाने के प्रयास कर रहे हैं। इस योजना में 'निरंतर' शब्द का

अर्थ इस बात पर जोर देना है कि छात्रों के 'वृद्धि और विकास' के पहचाने गए पहलुओं का मूल्यांकन एक घटना के बजाय एक सतत प्रक्रिया है, जिसे कुल शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में बनाया गया है और पूरे शैक्षणिक सत्र में देखने को मिलता है। इसका अर्थ है मूल्यांकन की अनियमितत, इकाई परीक्षण की आवृत्ति, सीखने की कमियों का निदान, सुधारात्मक उपायों का उपयोग, शिक्षकों और छात्रों को उनके आत्म मूल्यांकन के लिए साक्ष्य की पुन: जांच और प्रतिक्रिया। दूसरे शब्द 'व्यापक' का अर्थ है कि यह योजना छात्रों की वृद्धि और विकास के शैक्षिक और सह-शैक्षिक दोनों पहलुओं को कवर करने का प्रयास करती है। चूँकि योग्यताएं और अभिवृत्तियाँ स्वयं को लिखित शब्द के अलावा अन्य रूपों में प्रकट कर सकती हैं, यह शब्द विभिन्न प्रकार के उपकरणों और तकनीकों (परीक्षण और गैर-परीक्षण दोनों) के अनुप्रयोग को संदर्भित करता है और इसका उद्देश्य सीखने के क्षेत्रों में एक शिक्षार्थी के विकास का आकलन करना है जैसे- ज्ञान, समझ, आवेदन करना, विश्लेषण करना, मूल्यांकन करना आदि।

अब, जब हम निरंतर व्यापक मूल्यांकन को शिक्षा के एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में स्वीकार करते हैं, तो हमारे लिए यह प्रश्न पूछना अनिवार्य और उचित हैं कि क्यों और कैसे? निम्नलिखित कुछ तरीके हैं जिनसे हम शिक्षा में सतत व्यापक मूल्यांकन को बढ़ावा दे सकते हैं।

- प्रधान शिक्षक और समन्वयकों और अन्वेषक के साथ बैठक में ब्लू प्रिंट विकसित करें, प्रश्न प्रत्र की योजना बनाएं, उन पर चर्चा करें और उन्हें अंतिम रूप दें। शिक्षकों को उनकी व्यावहारिक मूल्यांकन समस्याओं में मार्गदर्शन करने के लिए हर हफ्ते दौरे की योजना बनाई जानी चाहिए।
- शिक्षकों को कक्षा में सतत और व्यापक मूल्यांकन के क्रियान्वयन और आने वाली समस्याओं के बारे में डायरी लिखनी चाहिए।
- छात्रों के व्यक्तिगत और सामाजिक गुणों (स्वच्छता, सच्चाई, परिश्रम, सहयोग, नियमितता, समय की पाबंदी, अनुशासन, पहल, समाज सेवा की भावना, जिम्मेदारी की भावना, भावनात्मक, स्थिरता, आज्ञाकारिता, रूचियों, दृष्टिकोण और मूल्यों) को रेटिंग पैमानों का उपयोग करके व्यक्तिगत रजिस्टर की टिप्पणियों को रिकॉर्ड रखना चाहिए।
- दक्षताओं के निरंतर मूल्यांकन के रिकॉर्ड बनाए रखें और उन लोगों के लिए उपचारात्मक निर्देश की योजना बनाएं जो दक्षताओं में महारत हासिल नहीं करते हैं। यह संचयी रिकॉर्ड बनाए रखकर आसानी से किया जा सकता है।

संचयी अभिलेख- चूंकि मूल्यांकन के परिणाम छात्रों के शैक्षिक और व्यावसायिक भाग्य के बारे में निर्णय लेने के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं, इसलिए परीक्षण के परिणाम को एक संगठित रूप में दर्ज किया जाना चाहिए। परीक्षण का यह रिकॉर्ड विभिन्न उपयोगकर्ताओं के लिए आसानी से उपलब्ध होना चाहिए। संचयी अभिलेखों में शैक्षिक परीक्षा परिणाम और विद्यार्थियों पर अन्य प्रकार जानकारी जैसे गैर-शैक्षिक उपलब्धि, अनिवार्य या उनके व्यक्तित्व का वर्णन, मार्गदर्शन आदि शामिल हैं।

विभिन्न शैक्षिक और गैर-शैक्षिक शिक्षण गतिविधियों में परीक्षण कार्यक्रम और उनकी रिकॉर्डिंग के तरीके एक स्थानीय मामला है और स्कूल-स्कूल से भिन्न होता है या एक स्कूल क्षेत्र दूसरे स्कूल क्षेत्र से भिन्न होता है। अभिलेखों के बारे में महत्वपूर्ण बात यह नहीं है कि उनमें क्या डाला जाता है बल्कि उनमें से कितना निकाला जाता है, यह महत्व रखता है। बच्चों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए अभिलेखों का उपयोग किस प्रकार किया जा रहा है? यह अत्यंक आवश्यक है, रिकॉर्ड में क्या डाला जाना है? रिकॉर्ड में व्यवस्थित रूप से शामिल करने के लिए कई प्रकार की जानकारी है, जैसे: (i) व्यक्तिगत बायोडाटा (ii) शैक्षिक उपलब्धियां (iii) शारीरिक स्वास्थ्य (iv) पाठ्य सहगामी गतिविधियाँ और चरित्र निर्माण मूल्य (v) आदतें, रूचियां और दृष्टिकोण या अभिवृत्ति।

- विषयों में गैर-संज्ञानात्मक आयामों की पहचान करें और दी गई गतिविधियों को और मानदंड के विनिर्देश के साथ रेटिंग पैमाने का उपयोग करके उनका मूल्यांकन करें।
- बच्चों की प्रगति के बारे में माता-पिता के साथ चर्चा करें और व्यक्तिगत और सामाजिक गुणों के आकलन में सहयोग मांगे और मूल्यांकन के बारे में सूचित करें।
- निर्देश के दौरान कक्षा में प्रश्न पूछने की उचित तकनीकों का उपयोग रचनात्मक मूल्यांकन के रूप में करें।
- संज्ञानात्मक और गैर-संज्ञानात्मक क्षेत्रों में छात्रों की ग्रेड प्रणाली को निश्चित करें।
- शैक्षिक और सह-शैक्षिक क्षमताओं को शामिल करते हुए रचनात्मक और योगात्मक मूल्यांकन दोनों पर पर्याप्त जोर दिया जाये।

- शिक्षकों को एक छात्र के प्रदर्शन की तुलना उसके स्वयं के संदर्भ में, शिक्षक द्वारा निर्धारित मानदंड और उसके समकक्ष समूह के प्रदर्शन के साथ करनी चाहिए।
- कमजोर छात्रों के लिए निदान और उपचार का उपयोग करके और उज्ज्वल लोगों के लिए संवर्धन कार्यक्रम का उपयोग करके महारत हासिल करने के दृष्टिकोण पर जोर देता है।
- शिक्षक को शैक्षिक और सह-शैक्षिक क्षेत्रों में ग्रेडिंग की विभिन्न पद्धतियों का उपयोग करना चाहिए और साथ ही स्कूल-आधारित और सार्वजनिक परीक्षाओं के लिए ग्रेडिंग पद्धतियों का उपयोग भी करना चाहिए।
- शिक्षक विभिन्न उपकरणों, तकनीकों और मूल्यांकन के तरीकों जैसे पेपर-पेंसिल टेस्ट, मौखिक परीक्षण, रेटिंग स्केल, साक्षात्कार, अवलोकनात्मक रिकॉर्ड, व्यक्तिगत और समूह मूल्यांकन विधियों का विभिन्न चरणों में उपयोग कर सकते हैं। अवलोकन और स्थितिजन्य परीक्षणों के आधार पर व्यापक छात्र पोर्टफोलियों बनाए रखें।
- रिकॉर्ड रखने और रिपोर्टिंग के लिए पोर्टफोलियों के उपयोग को प्रोत्साहित करता है।
- उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ट्यूटोरियल की शुरूआत के पक्षधर हैं।
- सह-शैक्षिक क्षेत्रों जैसे कार्य अनुभव, कला और शिक्षा और शारीरिक शिक्षा से संबंधित क्रियात्मक कौशल के संबंध में साक्ष्य की रिकॉर्डिंग की जानी चाहिए।
- माध्यमिक स्तर पर सेमेस्टर प्रणाली और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर क्रेडिट के साथ सेमेस्टर प्रणाली की शुरूआत का प्रस्ताव है।
- सभी को विशेष आवश्यकता वाले शिक्षार्थियों के लिए वैकल्पिक मूल्यांकन प्रक्रियाओं के उपयोग को महत्व देना चाहिए।
- सह-शैक्षिक क्षेत्रों में मूल्यांकन पहचान किए गए मानदंडों के आधार पर कई तकनीकों का उपयोग करके किया जाना चाहिए, जबकि जीवन कौशल में आकलन और चौकलिस्ट संकेतकों के आधार पर किया जाना चाहिए।
- शिक्षकों को दक्षताओं का आकलन करने के लिए उपयुक्त मानदंड आधारित मूल्यांकन उपकरणों के निर्माण के ज्ञान और क्षमता के साथ प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
- दक्षताओं के साथ-साथ व्यक्तित्व लक्षणों और दृष्टिकोणों का व्यापक मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
- शिक्षक को उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करने के लिए मूल्यांकन, प्रतिबद्धता और सहायता के ज्ञान और कौशल की आवश्यकता को समझना चाहिए।
- शैक्षिक क्षेत्रों में मूल्यांकन अनौपचारिक और औपचारिक रूप से मूल्यांकन की कई तकनीकों का लगातार और समय-समय पर उपयोग किया जाना चाहिए। नैदानिक मूल्यांकन यूनिट/टर्म यूनिट के अंत में होता है। कुछ इकाईयों में खराब प्रदर्शन के कारणों का निदान नैदानिक परीक्षणों का उपयोग करके किया जाता है। इनका पालन उचित हस्तक्षेप के साथ किया जाता है और शिक्षक बनने के लिए विभिन्न तकनीकों का प्रयोग किया जाना चाहिए-
- यूनिट आकलन- यूनिट असेसमेंट का उद्देश्य मूल्यांकन को रचनात्मक, सतत प्रक्रिया के रूप में निर्देश, सीखने, शिक्षण-अधिगम, विद्यार्थियों की उपलब्धि में सुधार के लिए नियोजित करना है।
  - यह सामग्री के छोटे ब्लॉकों पर आधारित होना चाहिए।
  - यह औपचारिक, अनौपचारिक, लिखित या मौखिक हो सकता हैं जिसमें छात्रों को पूर्व तैयारी करने के लिए पहले से सूचित किया जा सकता है।
  - इससे कक्षा कार्य प्रभावित नहीं होना चाहिए। इसे शिक्षण अवधि के दौरान अनौपचारिक तरीके से प्रशासित किया जाना चाहिए।
  - यह भय पैदा नहीं करता है।
  - यह प्रकृति में नैदानिक होना चाहिए और निर्देशात्मक प्रक्रिया के रूप में छात्रों की ताकत और कमजोरियों को अच्छी तरह से प्रकट करना चाहिए।
  - यह उपचारात्मक शिक्षण लेने का आधार होना चाहिए।

- सकारात्मक तरीके से परिणामों का संचार होता है। इसी तरह से फीडबैक प्रदान करें, जिससे सकारात्मक कार्यवाही करने में शिक्षार्थी को बेहतर मदद मिलें।

- असाइनमेंट और प्रोजेक्ट कार्य-
  - असाइनमेंट में आमतौर पर किताबों, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों आदि से प्रासंगिक जानकारी एकत्र करने के लिए विद्यार्थियों की गतिविधियों शामिल होती हैं, इसी श्रृंखला में रिपोर्टों में चार्ट, मॉडल आदि द्वारा सहायता प्राप्त की जाती है।
  - इससे पुस्तकों, पत्रिकाओं को पढ़ने की आदत विकसित होगी।
  - वे विभिन्न स्रोतों से डेटा/सूचना एकत्र करने और रिकॉर्ड करने का कौशल हासिल कर सकते हैं।
  - छात्र चर्चा शुरू करने और विचार व्यक्त करने की क्षमता हासिल कर सकते हैं।
  - इससे उनमें व्यक्तिगत और सामाजिक गुण पैदा होगें।

- कार्य अनुभव- शिक्षा में काम की शैक्षणिक भूमिका का पता लगाने और संस्थागत बनाने की आवश्यकता है ताकि स्कूल प्रणाली में समृद्ध ज्ञान आधार, सामाजिक अंर्तदृष्टि और कौशल के प्रभावहीन बच्चों के संबंध में उनकी आदतों, प्राकृतिक संसाधनों को उनकी गरिमा और ताकत के स्रोत में बदला जा सके। इस दृष्टिकोण के अनुसार, वास्तविक जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल परिस्थितियों में उत्पादक कार्यों में भागीदारी शैक्षणिक रूप से सीखने से जुड़ी होती है और साथ ही ज्ञान, अधिग्रहण, कौशल और मूल्यों के विकास का माध्यम बन जाती है। संज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पक्ष में बहु-आयामी विशेषताओं को समग्र रूप से बढ़ावा देगा जो कि सिर, हृदय और हाथ को एकीकृत करके काम के साथ जुडाव पैदा करते हैं।

- आवधिक और वार्षिक परीक्षण- परीक्षण- एक परीक्षण छात्रों को उनकी उपलब्धि और क्षमताओं को प्रदर्शित करने के लिए एक विशेष तरीके से प्रदर्शन करने के लिए एक स्थिति या श्रृंखला की स्थिति प्रदान करता है। हम शैक्षिक या गैर-शैक्षिक क्षेत्र में उनकी उपलब्धि का परीक्षण कर सकते हैं। ऐसा परीक्षण मानकीकृत परीक्षण या शिक्षक-निर्मित परीक्षण हो सकता है। हम यूनिट परीक्षण, डायग्नोस्टिक परीक्षण, संयुक्त यूनिट परीक्षण, आवधिक परीक्षण और वार्षिक परीक्षण जैसे कई प्रकार के परीक्षणों का उपयोग करते हैं।

  हम कैसे जान सकते हैं कि बच्चे ने कुछ सीखा है या उसने जो सीखा है वह सही है या गलत? इसके लिए हमें उसकी सीख को मापना होगा। यह आवधिक परीक्षणों की मदद से किया जा सकता है।

  आवधिक परीक्षण- जब एक शिक्षक यह आकलन करना चाहता है कि क्या छात्रों ने सीखा है? उन्हें एक पाठ या एक इकाई में क्या पढ़ाया गया है? और उन्हें अभी भी किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, इस उपकरण को आवधिक परीक्षण कहा जाता है।

  जब प्रत्येक विषय/इकाई के बाद समय-समय पर परीक्षण किए जाते हैं, तो हम स्पष्ट तस्वीर के बारे में जान सकते हैं कि छात्र कहाँ है और कैसे प्रगति कर रहा है। विद्यार्थियों की ताकत और कमजोरी का ज्ञान शिक्षकों द्वारा प्रभावी शिक्षण की योजना बनाने और विद्यार्थियों द्वारा प्रभावी सीखने में सहायक होता है।

  निरंतर मूल्यांकन आवधिक परीक्षण द्वारा किया जाता है, कभी-कभी जब अधिकारी माता-पिता को विद्यार्थियों की रिपोर्ट करने पर जोर देते हैं, तो निर्दिष्ट अंतराल पर परीक्षण यांत्रिक रूप से आयोजित किए जाते हैं ताकि माता-पिता को परीक्षा-परिणामों को संप्रेषित करने की औपचारिकता का पालन किया जा सके। ऐसे मामलों में, यह विद्यार्थियों के व्यवहार में संशोधन के बजाय कक्षा की गतिविधियों को परीक्षण लिखने की दिशा में निर्देशित करने की संभावना को बढ़ा सकता है। केवल परीक्षण के लिए शिक्षण की ऐसी प्रथाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

  सामान्य तौर पर बच्चे को यह समझना चाहिए कि मूल्यांकन के परिणामों का उपयोग कैसे किया जाना है। यदि वह नहीं जानता है, तो वह एक प्रकार की चिंता या परीक्षणों और मूल्यांकन के अन्य रूपों का भय विकसित कर सकता है। आवधिक परीक्षणों पर प्रदर्शन को व्यवस्थित रूप से दर्ज किया जाना चाहिए। आवधिक परीक्षण पर व्यक्ति के प्रदर्शन को अंतिम मूल्यांकन के लिए वार्षिक परीक्षण प्रदर्शन के साथ-साथ देय क्रेडिट दिया जाना चाहिए।

- वार्षिक परीक्षण- बच्चे ने क्या सीखा? और जो कुछ उसने सीखा है वह सही है या गलत? इसे सत्र की समाप्ति के बाद वार्षिक परीक्षा आयोजित करके भी जाना जा सकता है। इस परिणाम का उपयोग रैंकिंग, पुरस्कार देने, पदोन्नति और मार्गदर्शन के लिए किया जा सकता है। चूंकि वार्षिक परीक्षा सत्र के अंत में आयोजित की जाती है, इस परीक्षा के परिणाम कक्षा शिक्षण की प्रभावी योजना बनाने या विद्यार्थियों द्वारा प्रभावी सीखने के लिए उपयोगी नहीं होते हैं।

निष्कर्ष- शिक्षा का उद्देश्य सीखने के स्तर का आकलन करना ही नहीं, बल्कि उसमें सुधार करना भी होना चाहिए। यह ताकत और कमजोरियों के निदान और उपचारात्मक या संवर्धन निर्देश के प्रावधान के लिए वर्गीकरण, प्रमाणन और वर्ग पदोन्नति से जोर देकर किया जा सकता है। तदनुसार, किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम के अपेक्षित सीखने के परिणाम केवल शैक्षिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होने चाहिए बल्कि इसमें गैर-शैक्षिक डोमेन भी शामिल होना चाहिए। यह सतत व्यापक मूल्यांकन (सीसीई) का उपयोग करके किया जा सकता है। सीसीई का प्रमुख जोर छात्रों के बौद्धिक, भावनात्मक, शारीरिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विकास को सुनिश्चित करने के निरंतर विकास पर है और इसलिए यह केवल शिक्षार्थी की शैक्षिक उपलब्धियों के आकलन तक सीमित नहीं होगा। यह मूल्यांकन को आगे के कार्यक्रमों में शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित करने के एक साधन के रूप में उपयोग करता है ताकि प्रतिक्रिया की व्यवस्था करने के लिए जानकारी प्रदान की जा सके और कक्षा में सीखने में सुधार के लिए अनुवर्ती कार्य किया जा सके। इसके लिए शिक्षकों को मूल्यांकन के आवश्यक कौशल और दक्षताओं से लैस करना आवश्यक है ताकि वे अपनी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के साथ मूल्यांकन को अच्छी तरह से एकीकृत कर सकें, उचित मार्गदर्शन, प्रतिक्रिया और उपचार के माध्यम से आवश्यक मानकों की प्राप्ति में छात्रों की सहायता कर सकें।

संदर्भ

1. कैरी, आर.जी. एण्ड जोसेफ ए., 2010. एजूट्रैक, नीलकमल पब्लिकेशन, 9(11),5-8.
2- http://wikieducator.org.CONTINUOUS _AND_COMPREHENSIVE_EVALUATION-Article.
3. Continuous and Comprehensive Evalution (n.d.) Retrieved from CBSE, Delhi :http://www.cbse.nic.in/cce/CCE%20FLYER.pdf-CBSE.
4- http://www.brandbharat.com/english/up/districts
5- http://cie.du.ac.in/scholors/med_abst2013_01.pdf
6- http://nkrc.niscair.res.in
7- http://www.ncert.nic.in/publication/journals/pdf_files/indian_education_abstracts/july_20 08_ IEA.pdf
8- http://shodhganga.inflibnet.ac.in
9- http://shodhganga.inflibnet.ac.in/handls/10603/12279
10- http://shodhganga.inflibnet.ac.in/handls/10603/178408
11- http://www.eurojournals.com/ajsr.htm
12- http://hdl.handle.net/10603/72423
13- http://www.indianjournals.com/ijor.aspx
14- http://techwelkin.com/tools/english-to-hindi-typing-online-tool-unicode-converter/

बाल मुकुन्द गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय-भावना

डॉ० आर०पी० वर्मा

एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा, उन्नाव, उ०प्र०

राष्ट्रीय भावना का आविर्भाव राष्ट्र के प्रति उत्कट प्रेम से होता है। यह एक ऐसी भावना है जिसका संबंध मनुष्य की अन्तर्चेतना से होता है। जब व्यक्ति संकीर्ण एवं साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठकर समग्र राष्ट्र तक प्रसारित हो जाता है, तब राष्ट्रीय चेतना का जन्म होता है। इस प्रकार राष्ट्र के पति अगाध ममत्व एवं अपनत्व की उत्कृष्ट भावना ही राष्ट्रीयता है। इसी भावना के कारण किसी भी देश के निवासी अपने देश पर बलिदान हो सकते है।

देश का स्वस्थ साहित्य वहां की संस्कृति, मानवता और राष्ट्रीय गौरव की प्रेरणा प्रदान करने का प्रमुख कारण होता है। कवि की प्रभावशालिनी काव्य चेतना समय समय पर जनमानस को सजग एवं सचेत करती रहती है। यही कारण है कि भारतीय इतिहास के पराभव काल में भी हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का अभाव नहीं रहा। यह दूसरी बात है कि उसका स्वरूप सदैव एक-सा नहीं रहा। इसके लिए समकालीन परिस्थितियों उत्तरदायी होती हैं।

देश-प्रेम की कविता में देश-भक्ति और राष्ट्रीय भावना अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार के काव्य में पहले तो अतीत के गौरव के प्रति कवि की विशेष आस्था होती है, जिसके द्वारा वह आत्महीनता का परिहार करता है। दूसरे, देश की वर्तमान दयनीय दशा का चित्रण करके देशवासियों का ध्यान उसकी ओर दिलाता है और उस पर आंसू बहाता हुआ गहरी चिंता व्यक्त करता है। तीसरे, शासन की देश विरोधी नीति का उद्घाटन करते हुए उसका विरोध करता है तथा सधर्माज्य के पोषक जमींदार, पूंजीपति वर्ग और अन्य पीड़ा देने वाले तत्वों की कड़ी आलोचना करता है। चौथे, देश के नवयुवक और शिक्षित वर्ग का देश कल्याण के लिए आह्वान करता हुआ उनमें उज्ज्वल भविष्य के प्रति चेतना जाग्रत करता है।

बाल मुकुन्द गुप्त के काव्य में देशभक्ति की अभिव्यंजना के ये सभी रूप पाए जाते है। उन्होने प्राचीन गौरव का गान करके परम्परागत दासता एवं आत्महीनता की भावना का निवारण किया तथा प्राचीन वीरत्व, शौर्य और पराक्रम के चित्र अंकित किए है:-

जिनके क्षत्रन पर रही तरिवान करि छांह
अभय सवन को करत ही, जिनकी लम्बी बांह।।

कवि प्राचीन काल की सुख-समृद्धि का स्मरण करता है, जब भारतीय हाथी, घोड़ा, छत्र और सभी राजपाट रखते थे, किन्तु आज पेट भरने के लिए तरसते हैं।

गजरथ तुरंग विहीन भये ताको डर नाहीं।
चंवर छत्र को चाव नाहिं हमरे डर माहि।
सिंहासन अरू राजपाट को नाहिं उन हनों।
ना हम चाहत अस्त्र वस्त्र पट गहनो।
ये हाथ जोरि हम आज यह, रोम रोम विनती करें।
या भूखे पापी पेट कहं मात कहों कैसे भरैं।

वस्तुत: कवि की चिंता स्वाभाविक है, क्योकि अंग्रेजो की शोषणकारी नीति ने भारतीयों के पास भेट के लिए अन्न तक भी शेष नहीं छोड़ा था।

कवि ने प्राचीन भारत के परम शान्ति और सुखप्रद वातावरण सत्याचरण, पारस्परिक प्रेम व्यवहार तथा जातीय एकता का चित्र इस प्रकार अंकित किया है:-

कहां गए वह गांव मनोहर परम सुहाने।
सबके प्यारे शान्तिदायक मन माने।
कपट और क्रूरता पाप और मद से निर्मल।
सीधे सादे लोग बसै जिनमें नहिं छल बल।।

....

एक भाव से जाति छतीसों मिलकर रहतीं।
एक दूसरे का दुख सुख मिल-जुलकर छल बल।।

कवि यथार्थ को देखकर दुखी होता है। वर्तमान जीवन महत् कष्ट एवं दरिद्रता से भरा हुआ है और वह सुनहरा अतीत अब स्वप्न बनकर रह गया है। चारों ओर वैमनस्य, असत्य, अज्ञान, दुराचार और शोक का आतंक छाया हुआ है।

अतीत का गौरव गान गाकर कवि द्वारा आज की गिरी हुई दशा की ओर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट करना स्वाभाविक है। कवि ने देश की आर्थिक दुरवस्था, जनता के आलस्य और प्रमाद, अकाल और प्लेग तथा भारत के दरिद्मय जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। दुख दारिद्रय से भारतीय अपना धैर्य गंवा चुके थे। वे उस दारूण दुखमय जीवन का अन्त ही कर देना अच्छा समझते थे। आत्मग्लानि से उनका हृदय भर उठा था। मानवजीवन कीड़े-मकौडे़ से कहीं बदतर हो गया था। गुप्तजी ने उस दशा का यथार्थ चित्रण किया है:-

बार-बार मारी परत बारहिं बार अकाल।
काल फिरत नित सीस पैं, खोले गाल कराल।।
बार-बार जिय में उठत उच्च तो यह विचार।
ऐसे जीवन ख्वार पै लाख लाख धिक्कारं।।

विदेशी शासकों ने भारतीय जनता को दाने-दाने से मोहताज कर दिया था। भूखे मर-मरकर, शिक्षा आदि द्वारा जो कुछ अन्न कृषक गण इकट्ठा करते थे, उसे सरकारी पयोद, मुखिया, चौकीदार, जमींदार के सिपाही और कारिंदे छीन ले जाते थे। उन बेचारों के लिए पेट भरना भी दुष्कर हो जाता था। इन्हीं लोगों के लिए कवि आक्रोश भरे शब्दों में 'असुर' या 'दानव-दल' का प्रयोग करता है। इसी प्रसंग में कवि का कथन है:-

असुरन के डर निकस निकस जिजाय।
भिक्षा अरून मलिन बसन, सब गात है।
पेट भरन हित द्वार-द्वार विडरत है।
जो कुछ जोराहिं भीख मात दुख पायकै।
तुरत लेत हैलूट असुर तेहि आय कै।।

कवि के सम्मुख एक ओर तो सधम्राज्यवादी शासन तथा उसकी आधारशिला के रूप में जमींदार पूंजीपति, चाटुकार, राजे-महाराजे हैं तो दूसरी ओर देश का अभावग्रस्त दलित वर्ग है। कवि शोषक वर्ग को धिक्कारते हुए कहता है:-

हे रानियों! क्या दीन जनों की नहिं सुनते हो हाहाकार।
जिसका मरे पडौसी भूखा उसके भोजन को धिक्कार।।

गुप्तजी सत्ता शासकों एवं धनिकों की साधन सम्पन्नता एवं वैभव विलास-प्रियता को भली दुष्टि से नहीं देखते। वे उन्हें पड़ोसी धर्म की शिक्षा देते हैं। उनकी सहानुभूति दीन-हीन किसानों के साथ है।

अंग्रेजो द्वारा किए गए राजनीतिक सुधार तथा वैज्ञानिक सुविधाओं का भारत विरोधी मर्म कवि ने भली-भाति समझ लिया था। यही कारण है कि अंग्रेजो के पिट्ठू सर सैयद अहमद खां को संबोधित करते हुए वे लिखते हैं:-

प्रजा तुम्हारी दीन दुखी है रक्षा किसकी करते हो।
इससे क्या कुछ भी होता है नाहक पच पच करते हो।।

कवि ने अंग्रेजो के साम्राज्य सुरक्षा के भाव को समझ लिया था। साथ ही उसने इंग्लैंड के उदार तथ अनुदार दलों की वास्तविकता को भी अच्छी तरह जान लिया था। तथा भारत के लिए उन दोनों दलों की एक नीति थी - साम्राज्य संरक्षण। यह बात कवि ने 'पॉलिटिकल होली' नामक कविता में स्पष्ट रूप से अभियक्त की है -

जैसे मिन्टो वैसे कर्जन होली है भई होती है।

'कर्जन' अनुदार दल तथा 'मिन्टो' उदार दलीय नेता था, किन्तु भारत में दोनों का रूप शोषक का था। गुप्त जी ने इस तथ्य को जनता के समक्ष बड़ी कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है। वस्तुत: भारतीय जनता की दीनता तथा अंग्रेजों के शोषण के चित्र अंकित करने में गुप्तजी पूर्ण समर्थ रहे हैं।

राष्ट्रीय चेतना के चौथे रूप के दर्शन वहाॅ होतते हैं जहाॅ कवि ने देश के युवावर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग को देश हित के लिए प्रोत्साहित किया हैं तथा उनके सामने देश के उत्कृष्ट रूप व भविष्य की आशा के लिए प्रोत्साहित किया है तथा उनके सामने देश के उत्कृष्ट रूप व भविष्य की आशा तथा संभावनाओं को उपस्थित किया है।

बालमुकुन्द गुप्त की विचारधारा मानवतावादी थी। उन जीवन का कष्ट और विदेशी शासकों का नृशंस अत्याचार देखकर उनमें सामूहिक हित-चेतना का अधिक प्रसार हुआ है। उन्होने अपनी लेखनी की साधना से जनता में राष्ट्रीय विचारों का प्रसार कर जनता में आशातीत जागृति का श्री गणेश किया। देश के नवयुवक वर्ग को संगठित होकर देश पर बलिदान होने के लिए प्रेरित किया तथा उसके सम्मुख आत्मनिर्भरता स्वतंत्रता और स्वत्व प्राप्ति का एक मार्ग निर्दिष्ट किया। वे देश के नवयुवकों को एक होकर जीवन मरण की प्रतिज्ञा कराते हैं:-

आओ एक प्रतिज्ञा करें, एक साथ सब जीवें मरें।
भोग विलास सभी दो छोड़, बाबूपन से मुंह लो मोड़।
छोड़ो सभी विदेशी माल, अपने घर का करो ख्याल।
अपनी चीजें आप बनाओं, उनसे अपना अंग सजाओं।।

देश का आर्थिक शोषण रोकने के लिए गुप्तजी ने जनता के सम्मुख स्वदेशी वस्तुओं के उपभोग और निजी व्यापार पर बल दिया है:-

अपना बोया आप ही खावें, अपना कपड़ा आप बनावें
बड़े सदा अपना व्यापार, चारों दिस हो मौज बहार।
माल विदेशी दूर भगावें, अपना चरखा आप चलावें।।

बाल मुकुन्द गुप्त ने देश की शापित जनता को आशा और धैर्य दिलाने के लिए भविष्य के सुख स्वप्नों का भी चित्र उपस्थित किया है तथा उनके सम्मुख एक मनोरम राज्य की रूप रेखा प्रस्तुत की है। भविष्य के इन सुखद चित्रों की पृष्ठिभूमि में केवल यह भावना अन्तनिर्हित थी कि भारतीय शीघ्रातिशीघ उन चित्रों की ओर आकृष्ट हों, जिससे देश को शीघ्र स्वतंत्रता प्राप्त हो। उन्होंने राम राज्य का सुखद चित्र अंकित कर जनता को उसे प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया:-

सुखी रहे सब लोग रह्यो नित आनन्द छायो।
रह्यो तुम्हारे राज सदा प्रभु सब विधिसुन्दर।।

रामराज्य का यह सुखद चित्र था जिसकी कामना गुप्तजी भारतवर्ष के लिए करते थे। उनकी उत्कृष्ट अभिलाषा थी कि भारत में ऐसे राज्य की स्थापना हो:-

जहाॅ मारी को डर नहीं अरू अकाल का त्रास।
जहाॅ करै सुख सम्पदा, बारह मास निरास।

जहाँ प्रबल को बल नहीं, अरू निबलन की हाय।

एक बार सो दृश्य पुनि आंखिन देंहु दिखाय।

इस प्रकार गुप्तजी की कविता में हृदय चेतना का विविध रूपों में प्रस्फुटन हुआ है। बाल मुकुन्द गुप्त ने प्रकृति का वर्णन भी राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत होकर किया है। उन्होने रीतिकालीन परम्परा से हटकर प्रकृति को स्वतंत्र रूप में ग्रहण किया है। उन्होने प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण करते समय केवल वृक्ष, फूल पत्ते, नदी, निर्झर तथा सरोवर आदि के नामों का परिगणन नहीं किया, अपितु प्राकृतिक सौंदर्य का निरीक्षण करने के उपरान्त होने वाली अनुभूति की अभियंजना की है।

बसंत के आ जाने पर प्रकृति में क्या परिवर्तन होते है? उसकी बदलती हुई परिस्थिति का गुप्तजी ने सचित्र वर्णन किया है:-

फिर सेमर पलास बन फूले, फिर फूले कचनार।

बौरे आम कोइलिया कूकी, आई बहुरि बहार।।

चटकत बहु गुलाब की कलिका, सौरभ बिखरी जाय।

मधुलम्पट मधुपनता ऊपर राखी लूट मचाय।

निरमल चंद चांदनी चारहूं ओर दई छिटकाय।

रैन दिवस समभये शीत को कोमल भयो सुभाय।।

इसी प्रकार गुप्तजी ने प्रकृति का बहु-आयामी चित्रण किया है। उन्होने जहां बसंत का चित्रण किया है वहीं अनावृष्टि के कारण शुष्क वनस्पति और झुलसी हुई प्रकृति का अंक भी किया है। उनका ग्रीष्म वर्णन दृष्टव्य है:-

सूखे वन उपवन परवत झुरि जरि गई घास।

डोलत खग मृग जीह निकासे निपट उदास।।

गुप्तजी ने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही रूपों का चित्रण किया है, किन्तु आधिक्य आलम्बन रूप का ही रहा है। उद्दीपन रूप से प्रकृति को मुक्त करने, जीवन अनुभव और भाव को ही मुक्त करने की प्रक्रिया है नई चेतना के कारण ही प्रकृति के प्रति ऐसास रूख अपनाया जा सकता है। नदी, नाले, पर्वत, पेड़, पौधे आदि से प्रेम करना और इनमें सौंदर्य की अनुभूति करना प्रकारान्तर से सबमें राष्ट्रीय भावना ही निहित है।

वस्तुत: गुप्तजी ने प्रकृति का वर्णन देश-प्रेम के भावों से पूर्ण होकर किया है। अतीत के प्रति गौरव की भावना प्राय: कालों के साहित्य मे मिलती है। गुप्तजी ने अतीत की स्मृति और वर्तमान की गिरी हुई दशा का भी चित्रण किया है। उनकी चेतना वर्तमान को स्वीकार करने और सुधारने के पक्ष में निर्मित हुई है। इसीलिए उनका उद्देश्य अतीत का गौरव गान करके वर्तमान की अद्योगति के कारणों को उघाड़ने और उसे बदलने के लिए संघर्ष करना है। उन्होंने जनता को इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों का स्मरण कराते हुए परम्परागत दासतानुभूति एवं आत्महीनता की भावना का निवारण किया है।

इस प्रकार गुप्तजी की कविता में राष्ट्रीय भावना विविध रूपों में प्रस्फुटित हुई है। उनकी कविता वर्तमान यथार्थ को स्वीकार करने और सुधारने के पक्ष में निर्मित हुई है। उनकी कविता में अतीत का गौरवगान और वर्तमान की दुर्दशा पर चिन्ता, शासन की साम्राज्यवादी तथा देश विरोधी नीति का उद्घाटन हुआ है। उन्होने देश के नवयुवकों और शिक्षित वर्ग को देशहित के लिए प्रोत्साहित किया है।

स्पष्टत: बालमुकुन्द गुप्त भारतीय संस्कृति तथा आदर्श के प्रबल समर्थक थे। वे पतित साम्राज्यवादी संस्कृति के कृत्रिम आवरण के उन्मूलन पर बल देते थे। उन्होंने भारतीयों को सचेत करते हुए अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम और श्रद्धा रखने का आह्वान किया है। यही नही उनकी राष्ट्रीय चेतना का आधार है।

संदर्भः-

1. बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली (प्रथम भाग) श्री राम स्त्रोत, पृ0 582
2. वहीं, जय लक्ष्मी पृ0 616
3. वहीं, बसन्तोत्सव, पृ0 638
4. वहीं, हे राम, पृ0 587
5. वहीं, आगवानी, पृ0 598
6. वही, (प्रथम भाग), सैय्यद का बुढ़ापा, पृ0 623
7. वही, पृ0 629
8. वहीं, पॉलिटिकल होली, पृ0 718
9. वही, स्वदेशी आन्दोलन, पृ0 712
10. वही, आशीर्वाद, पृ0 712
11. वही, रामभरोसा, पृ0 585
12. वही, पृ0 586
13. वही, बसन्त, पृ0 659
14. वही, मेघमनावनि, पृ0 645

भारतीय इतिहास में सबाल्टर्नवादी विचारधारा

डॉ० आशा रानी

विभागाध्यक्षा इतिहास विभाग, कु0 मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर गौतमबुद्ध नगर

प्रस्तावना- भारतीय इतिहास लेखन की प्रारम्भ में अनेक धाराएं थी, यथा- प्राच्यविद्याविद, साम्राज्यवादी, राष्ट्रवादी, इतिहास लेखन, मार्क्सवादी इतिहास लेखन और कैम्ब्रिजवादी विचारधारा। बींसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतिहासलेखन में वैज्ञानिक अध्ययन के साथ-साथ एक नवीन संप्रदाय उभरकर आया जिसे उपाश्रयी विचारधारा कहते है।[1] इस धारा ने भारत के राष्ट्रवादी आन्दोलन के पूर्ववर्ती इतिहास लेखन को अभिजनवादी इतिहास कहते हुए, इतिहास में उपाश्रयी वर्गो (किसानों, मजदूरों, आदिवासियों आदि) की अपनी स्वतंत्र भूमिका पर प्रकाश डालने वाले, इतिहास लेखन पर जोर दिया, इसलिये इसे निम्नवर्गीय अध्ययन भी कहते हैं इतिहास के अध्ययन का यह दृष्टिकोण History from Below के नाम से जाना जाता है।

सबाल्टर्न शब्द का प्रयोग इसके पूर्व मध्यकाल में इंग्लैंड में कृषि दासों और कृषकों के लिए किया गया। 1700 से बाद में सेना में छोटे पदों के लिए इसका प्रयोग होने लगा।[2] इतावली मार्क्सवादी और साम्यवादी दल के नेता एंटोनियो ग्रामशी (1891-1937) ने अपनी कृतियों में इसका व्यापक संदर्भ में उपयोग किया इसके बाद इसका तेजी से इस्तेमाल होने लगा। ग्रामशी ने इस शब्द का प्रयोग समाज के निम्नवर्गीय समूह के लिए किया। रणजीत गुहा ने इस दिशा में ग्रामशी को अपना प्रेरणा स्त्रोत माना है उन्होंने कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में दिये गये अर्थ के अनुसार इसे परिभाषित किया है- ''सबाल्टर्न (निम्नवर्गीय) शब्द का अर्थ कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी से लिया गया गया है जिसका अर्थ है 'छोटा पद'। हम इसका उपयोग दक्षिण एशियाई समाज के मातहत वर्ग के लिए कर रहे हैं जहां यह वर्ग, जाति, उम्र, लैंगिक भेदभाव (जेंडर) और पद या दूसरे रूप में सामने आता है।' आगे इस खंड के आरम्भिक लेख के अंत में उन्होंने फिर इस शब्द को स्पष्ट किया है: 'इस लेख में 'जन' और 'निम्नवर्गीय' का एक दूसरे के पर्याय के रूप में इस्तेमाल किया गया है। इस श्रेणी में शामिल समूह और तत्व संभ्रात समाज और समूह से बिल्कुल अलग हैं।[3]'

सबाल्टर्न इतिहासकारों ने इस शब्द का प्रयोग ग्रामशी से भिन्न अर्थो में किया है। निम्नवर्गीय समूहों की अधिनस्थता को स्वीकार करते हुए भी वे इस बात पर बल देते हैं कि उनका इतिहास प्रभुत्वशाली वर्ग से अलग और स्वायत्त है।[4]

सबाल्टर्नवाद(आमजन-दलितवाद)- सबाल्टर्नवाद इतिहास लेखन की एक नवीन विचारधारा है। यह विचारधारा सामान्यत: उन दलितजनों के इतिहास-लेखन पर बल देता है, जिनका इतिहास नहीं लिखा गया है। वास्तव में समाज के बहुजन दलितों का इतिहास अभी प्रकाश में नहीं आया हैं। उल्लेखनीय है कि अनेक दलित जन, जो कभी शासित ही नहीं शासक भी थे, उन्हें उपेक्षित किया गया और उनका इतिहास नहीं लिखा गया। यहॉ तक कि उनके इतिहास संबंधी स्त्रोतों को नजरअन्दाज कर उन्हें उपेक्षित किया गया, जो अब धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं ऐसे ही विन्ध्य क्षेत्र के एक दलित जन हैं व जिनके वंशज वनों में निवास करते हैं, उनके इतिहास पर कभी ध्यान नहीं दिया गया। हम जब मानव मात्र के इतिहास लेखन का दावा करते हैं तो हमें उन दलितो का भी इतिहास लिखना चाहिए। अत: अब इस विचारधारा के अनुरूप इतिहास लेखन पर बल दिया जाने लगा है। सबाल्टर्न इतिहासकारों के अनुसार बड़े-बड़े विद्रोहों में भाग लेने वाले लोगों की सोच हमेशा उनके तथाकथित कुलीन वर्ग के नेताओं से पूरी तरह विपरित होती है बल्कि उनके अपने अनुभवों पर आधारित होती है एवं उनकी अपनी परम्पराओं, संस्कृतियों से जुड़ी होती है। अत: हमें उनके अनुरूप निम्नवर्ग का इतिहास लिखना चाहिए। अमेरिका में जन्मा सबाल्टर्नवाद अब धीरे-धीरे प्रगति की और है और दलित जनों का इतिहास बड़ी संख्या में लिखा जाने लगा है।[5]

उपाश्रयी या निम्नवर्गीय इतिहासलेखन में इस 'पुराने' ''संकुचित दृष्टि वाले'' तथा ''अभिजनवादी'' इतिहासलेखन के स्थान पर उस इतिहास लेखन को स्थापित करने का प्रयास किया गया है जो 'सबाल्टर्न' 'उपाश्रयवादी' या 'जनता का इतिहास लेखन' कहा जाता है।[6]

इस ''विशिष्ट एवं तीक्ष्ण रूप से विवादास्पद'' धारा को पश्चिमी जगत में जॉर्ज रूड,जार्जेस लेफेयर, ई0जे0 हॉब्सबाम और ई0पी0 थॉम्सन जैसे इतिहासकारों ने लोकप्रिय बनाया।[7] सबाल्टर्न अध्येता कार्ल मार्क्स के विवेचनशील अध्ययनकर्ता हैं, उन पर ग्राम्शी के विशेष प्रभाव के साथ ही डेरिडो, फूको, रोनाल्ड बार्थेस, लुई अल्थूसर आदि संरचनावादी व उत्तर संरचनावादियों का तथा ई0पी0 थॉम्पसन, इरिक हाब्सबॉम आदि का भी प्रभाव दिखाई देता है।

भारत में उपाश्रयी धारा का आरम्भ 1982 से हुआ जिसके अन्तर्गत 1999 तक ''सबाल्टर्न स्टडीज'' शीर्षक के अन्तर्गत 10 खंड प्रकाशित हो चुके थे। इस धारा के प्रमुख विद्वान है-रणजीत गुहा, पार्थ चटर्जी, ज्ञान पाण्डेय, सुमित सरकार, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, शाहिद अमीन, दीपेश चक्रवर्ती, अशोक सेन, गायत्री चक्रवर्ती, स्पीवाक, डेविड हार्डीमैन, डेविड अर्नाल्ड, स्टीफेन, हेनिघंम, गौतम भद्र, स्वपन दासगुप्ता आदि। सुमित सरकार ने सबाल्टर्नवाद की विभिन्न अभिव्यक्तियों और दो राजनीतिक क्षेत्रों (अभिजन व उपाश्रयी) के बीच अन्तक्रिया को, शाहिद अमीन डेविड आर्नाल्ड और डेविड हार्डीमैन ने कृषक चेतना कार्यवाही को, पार्थ चटर्जी ने भारतीय राष्ट्रवाद की प्रकृति का विशेष रूप कृषक वर्ग के संदर्भ में महात्मा गांधी की वैचारिकी का विश्लेषित/विवेचित किया है।[8]

डेविड आर्नल्ड आन्ध्र के गुडेम और रम्पा पर्वतीय क्षेत्रों में 1839-1924 के दौरान पहाड़ी जनजातियों के विप्लवों तथा बगावतों की एक लंबी ऋंखला को प्रस्तुत करते हैं। (एस एस 1) 1876-78 में मद्रास के अकाल का अध्ययन करते हुए डेविड आर्नल्ड संपोषणीयता और उत्तरजीविता के संकटो के दौरान किसानों की चेतना एवं क्रियाकलाप के बारे में लिखते हैं। आर्नल्ड की यह शिकायत है कि भारतीय अकाल पर विशाल परिणाम में उपलब्ध लिखित सामग्री उस प्रघटना को मानवीय अनुभव के आधार पर वर्णित नहीं करती है और वंचना एवं अकाल की वीभीषिका राज्य की नीति तथा प्रशासन के वर्णनों के सामने बिल्कुल गौण होकर रह गई है।[9]

ज्ञान पांडे 1919-22 के दौरान अवध के किसान विद्रोहों तथा भारतीय राष्ट्रवाद पर इनके प्रभाव का एक विस्त्रत विवरण प्रस्तुत करते हैं (एस एस 1)। स्टीफन हेनिंगहैम यह दर्शाते हैं कि किस प्रकार बिहार और उत्तर प्रदेश में 1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन एक दोहरा आंदोलन था जिसमें एक अभिजात्य राष्ट्रवादी विद्रोह एक 'सबाल्टर्न' विद्रोह के साथ संयोजित था (एस एस 2)। इस संयोजन को बनाये रखने के लिए समाज के एक व्यापाक अंश के जोश एवं सहभागिता की आवश्यकता थी। अपनी तमाम नाटकीयता और तीव्रता के बावजूद 'भारत छोड़ो' आंदोलन पर विद्वानों ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है और इसका कारण स्पष्ट करते हुए हेनिंगहैम यह कहते हैं कि अभिजात्य इतिहास लेख की सीमाओं के अन्दर कार्यरत इतिहासकारों के लिए ''1942 के आंदोलन की मूल संवेदना को समझ पाना कठिन एवं पचा पाना असंभव है।''[10]

अरविंद दास यह दर्शाते है कि 1947-48 के दौरान बिहार में कृषि संबंधी परिवर्तनों को अभिजात वर्गों द्वारा प्रवर्तित भूमि सुधारों से संबद्ध मानना कितना असंगत है (एस एस 2) 'ऊपर से कृषि संबंधी परिवर्तनों' के दो मुख्य प्रयास, जो जमींदारी उन्मूलन और भूदान आंदोलन के माध्यम से दृष्टिगोचर हुए। अभिजात्य वर्गीय नहीं थे बल्कि किसानों के असंतोष की अनुक्रियाएं थे। इनमें प्रथम नाम स्वामी सहजानंद सरस्वती तथा सशक्त किसान सभा द्वारा आंदोलन के कई वर्षो बाद हुआ और दूसरा उग्र साम्यवादी नेतृत्व तेलंगाना में कृषक उत्थान के पश्चात। दोनों बिहार के देहाती इलाके में वर्ग संघर्ष को पूर्व में निर्देशित करने के उपाय थे। लेखक कहते है कि-''अत: मूलत: अभिजात वर्ग द्वारा निर्देशित प्रायोजित भूमि सुधार के रूप में कृषि संबंधी परिवर्तनों की एक व्याख्या सत्व को पकड़ने का प्रयत्न किए बिना परछाई के पीछे भागना है।''[11]

''एग्रीकल्चर वर्कर्स दन वर्दवान'' (एस एस 2) में एन. के. चंद्रा पारिश्रमिक या दिहाड़ी और कमाई, अल्प रोजगार तथा निर्धनता के आधार पर कृषि मजदूरों तथा गरीब किसानों के समूह की भीषण गरीबी का प्रकाश डालते हैं।[12]

दीपेश चक्रवर्ती 1890 और 1940 के मध्य कोलकाता के जूट मिल कामगारों की दशा का अध्ययन करते हैं (एस एस 2) 1920-50 के दौरान जूट मिल मजदूरों पर एक अन्य निबंध (एस एस 3) में, चक्रवर्ती दर्शाते हें कि कैसे अभिजात प्रवृत्ति समाजवादी और साम्यवादी श्रेणियों में घुस गई है जिस कारण नेता यूनियनों को अपनी जमींदारी समझने लगे हैं और मजदूरों के साथ उनके संपर्क बाबू-कुली संबंध के श्रेणी क्रम आधारित पदों के क्षुद्र दायरे में सिमट रह गये हैं।[13]

गांधी पर अपने लेख में शाहिद अमीन (एस एस 3) यह समझने के लिए व्यग्र हैं कि किस प्रकार महात्मा गांधी के करिश्मों ने किसानों की चेतना में स्वयं को दर्ज किया। वे कहते हैं कि उस करिश्मे का एक महत्वपूर्ण अंश अंधविश्वास और चमत्कार में किसानो की आस्था थी। दक्षिण गुजरात की जनजातियों देवी सुधारवादी आंदोलन पर डेविड हार्डीमैन का लेख (एस एस 3) जनजातीय चेतना में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है और समाजशास्त्रीयों का ध्यान आकृष्ट करने में निश्चित तौर पर समर्थ है।[14]

सुमित सरकार ने अपनी पुस्तक ''पॉपुलर मूवमेण्ट्स एण्ड मिडिल क्लास लीडरशिप इन लेट कॉलोनियल इण्डिया: पर्सपेक्टिव एण्ड प्राब्लेम्स ऑफ ए हिस्ट्री फ्राम बिलो'' और 'मार्डन इण्डिया 1885-1947' में इस बात की संभावना को व्यक्त किया है कि निम्नवर्गीय इतिहास लिखा जा सकता है और काफी बड़ी संख्या में बिखरी हुई सामग्री के आधार पर निम्नवर्ग की पहल पर प्रकाश डाला जा सकता है। 'द कण्डीशन्स एण्ड नेचर ऑफ सबाल्टर्न मिलिटेन्सी बंगाल फ्राम स्वदेशी टू नॉन कोआपरेशन 1905-22' में सुमित सरकार ने बताया है कि ''1919 तक संघर्ष के विविध रूप 'भद्रलोक' के राष्ट्रवाद से भिन्न और यदाकदा विपरीत भी रहे हैं। उनकी सम्मति में बंगाल में 1905 के स्वदेशी आन्दोलन को उतनी लोकप्रियता नहीं मिली जितनी 1921-22 के असहयोग आन्दोलन को। स्वदेशी आन्दोलन हिन्दू भद्रलोक तक सीमित रह गया जब कि असहयोग आन्दोलन में जन सामान्य की पहल या रूख ने नेतृत्व को चिन्तित कर दिया, जिस कारण आन्दोलन को वापस लेना पड़ा।[15]

रामचंद्र गुहा का निबंध ''फॉरेस्ट्री एंड सोशल प्रोटेस्ट इन ब्रिटिश इन कुमाऊँ, 1893-1921''(एस एस 4) दर्शाता है कि कुमाऊँ में वनों व्यवसायिक दोहन, जिसके विरूद्ध 1973 से चिपको आंदोलन आरंभ हुआ, वस्तुत: उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में ही शुरू हो गया था और बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक चलता रहा था। 1911-17 में कुमाऊँ के वनों के आरक्षण के विरूद्ध पारंपरिक रूप से सीधे-सादे तथा कानून का पालन करने वाले पहाड़ी लोगों ने हिंसक तथा लगातार आंदोलन किया जो 1921 के विद्रोह के रूप में व्यक्त हुआ जब कुछ ही महीनों के अन्दर पूरा प्रशासन पंगु हो गया। इस दौरान पहले वैध श्रम के विरूद्ध हड़ताल हुई और फिर एक योजनाबद्ध अभियान के तहत हिमालय क्षेत्र में स्थित देवदार के वनों में लगभग एक छोर से दूसरे छोर तक लगी आग में सब कुछ भस्मीभूत हो गया।[16]

मालदा, उत्तर पश्चिमी बंगाल में जीतू संथाल के आंदोलन जैसा जनजातीय प्रतिरोध (1924-32) सबॉल्टर्न इतिहास लेख के लिए एक प्रिय विषय हैं (एस एस 4)। 1924 में जीतू के नेतृत्व में एक जमींदार विरोधी रैयत आंदोलन का आरंभ हुआ जो 1932 तक चलता रहा जब उस नेता को गोली मार दी गई। अमृत बाजार पत्रिका में भद्रलोक द्वारा भी जीतू के विद्रोह के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई किंतु जैसा कि तनिका सरकार दर्शाती हैं, ठेठ अभिजात्य दृष्टिकोण के साथ विद्रोह के लिए आदिवासी नेता की बजाय बाहर के स्वराजी आंदोलनकारी को जिम्मेदार माना गया।[17]

अपने लेख 'फोर रीबेल्स ऑफ 1857'(एस एस 4) में गौतम भद्रा यह अवलोकन करते हैं कि 1857 के महाविद्रोह पर इतिहास लेखन की सभी कोटियों ने, चाहे एस. बी. चौधरी के लेखों में व्यक्त राष्ट्रवादी विचारधारा पर आधारित इतिहास हो या प्रोमोद सेनगुप्ता और दत्ता कट्टर साम्यवादी दृष्टिकोण के अनुरूप रचित कृतियां हो, उक्त महान घटना को एक अभिजात्यवादी रोमांचक घटना के रूप में चित्रित किया है। सामान्य विप्लवी उसकी भूमिका और विदेशी शासन एवं समकालीन संकट की उसकी समझ-यह सब कुछ महाविद्रोह के ऐतिहासिक साहित्य में स्थान नहीं पा सके हैं। भद्रा के लेख में 1857 के चार ऐसे ही विप्लवी या विद्रोही चरित्रों को पुर्नजीवित किया गया है। ये निम्न हैं- शाहमल, देवी सिंह, गोनू और मौलवी अहमदुल्ला शाह। उनकी कहानियां 1857 में उस घटना के अस्तित्व को इंगित करती है जिसे ग्रामशी 'सजग नेतृत्व के बहुतत्व' कहते हैं।[18]

सबाल्टर्न इतिहास लेखन की शुरूआत और पक्ष पोषण करने वाले रणजीत गुहा मानते हैं कि इतिहास लेखन का कार्य ''विश्व को बदलने में सहायता के निमित्त चेतना के मूलगामी रूपान्तरण के द्वारा अतीत की व्याख्या है'' इस प्रयास में गुहा और उनके सहयोगी पूर्ववर्ती इतिहास लेखन की इसलिए भी आलोचना करते हैं कि, 'वे यह सम्भ्रम फैलाते हैं कि पूंजीवाद में यह क्षमता है कि, पुरानी या सामंती व्यवस्था द्वारा उपस्थित किये गये अवरोधों के विरूद्ध प्रकृति व समाज को मुक्त कर उन्हें रूपान्तरित कर सकती हैं। सबाल्टर्न इतिहास लेखन मिथ्या या विचारात्मक चौतन्य के इन रूपों का मूलगामी रूपान्तरण और सबाल्टर्न वर्गों के द्वारा ''सत्ता हस्तगत'' करने के लिए मार्ग प्रशस्त करना अपना उद्येश्य मानता है।[19]

''डामिनेन्स विदाउट हेजीमनी एण्ड इट्स हिस्टोरियोग्राफी'' (सबाल्टर्न स्टडीज, वाल्यूम 6) में अपने लेख में गुहा ने लिखा है कि, औपनिवेशिक/उत्तर-औपनिवेशिक परिस्थिति में, प्रभुत्वशाली वर्गो का शासन उदार अथवा बुर्जुआ या आधुनिक राजनीतिक

संस्कृति पर आधारित या अवलंबित नही रहा है, इस स्थिति में, जिसे वे ''पूंजीवाद के इतिहास का गतिरूद्ध चरण'' मानते हैं, बुर्जुआईजी को पूंजी की अजेय परिसीमाओं का अनुभव हुआ। गुहा इसमें 1848 की प्रशा की क्रांति से साम्य देखते हैं जिस पर मार्क्स ने भी मार्मिक टिप्पणी की थी। गुहा कहते है कि जबकि मार्क्स ने 1688 की आंग्ल क्रांति और 1789 की फ्रांसीसी क्रांति में सामंतवाद की शक्तियों के विरूद्ध बुर्जुआइजी की भूमिका को मुक्ति दायक एवं रूपान्तरणकारी बताया था, वहीं 1848 की प्रशा की क्रांति को जनता के हितों के विरूद्ध बुर्जुआइजी को सामंतवाद की शक्तियों के साथ समझौता करने वाला पाया था। गुहा स्मरण दिलाते हैं कि मार्क्स ने बड़ी दूरदर्शिता के साथ, ''दासों के स्वामित्व वाली सामंती संस्कृति के विनाश की सार्वभौम प्रकृति के वायदे'' और 19वीं शताब्दी से, इस प्रवृत्ति की ऐतिहासिक विफलता के बीच पूंजीवाद के आधारभूत विरोधाभास को इंगित किया था। उसी समय से सार्वभौमीकरण की प्रकृति, 'उदार इतिहास लेखन तथा चिंतन की भ्रांति तथा ढोंग मात्र रह गयी, गुहा और उनके सहयोगियों का कहना है कि, इसके विपरीत, सबाल्टर्न इतिहास लेखन व राजनीतिक सिद्धान्त मार्क्स की दूरदर्शिता से प्रेरणा ग्रहण करते हैं जो पूंजी की सार्वभैमवादी प्रकृति के उस चरण तक विकास को कल्पित करती है, जहां से वह अपने निलम्बन की ओर अग्रसर होगी।[20] गुहा लिखते हैं कि 'पूंजीवाद का सामना उन परिसीमाओं से होता है जिस पर पूंजी कदापि विजय नहीं पा सकती। अतएव इसकी विफलता पूर्व निश्चित है।'

औपनिवेशिक शासन का विश्लेषण गुहा ने 'वर्चस्व विहीन प्रभुत्व' के रूप में किया है। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला है, कि ''बुर्जुआ संस्कृति उपनिवेशवाद में अपनी ऐतिहासिक सीमा तक पहुँच जाती है।''उपनिवेशवाद की व्याख्या उन्होंने पूँजी के 'सार्वभौम (वादी) ध्येय या प्रोजेक्ट से 'प्रगत' बुर्जुआइजी के प्रतिगमन' के रूप में की है, क्योंकि 'वह (पूँजी)-औपनिवेशिक राज्यके माध्यम से पूर्व पूँजीवादी अनुदारता, अनन्यता से समझौता' कर लेती है। उनका निष्कष्र है कि 'बुर्जुआ या उदार संसकृति की कोई भी उदात्त उपलब्धि-उदारवाद, लोकतंत्र, स्वातंत्र्य, विधि का शासन आदि-पूँजीवादी प्रसार की व क्षेत्रातीत-औपनिवेशिक प्रभुत्व की राजनीति के समक्ष टिक नहीं पाती।[21] अतएव वे उदार इतिहास लेखन तथा चिंतन का विरोध करते है जो 'पूँजी के सार्वभौम मिश्न का भ्रम कायम रखते हैं। उनका आग्रह है कि, ऐसे आदर्शों, मूल्यों तथा विश्व की विवेचना के ऐसे तरीकों से अनुप्राणित, 'ऐतिहासिक' विरोध द्वारा इनकी आलोचना की जानी चाहिए और उन पर प्रहार किया जाना चाहिए, जो उदारवाद के समक्ष चुनौती रखने वाले हों। वे लिखते हैं कि 'ऐसी आलोचना-जो बुर्जुआ प्रभुत्व और तदनुरूप् सामाजिक व राजनीतिक संरचनाओं के भौतिक आधार को ध्वस्त करने वाली हो-वह बुर्जुआ प्रभुत्व के दायरे के बाहर से आनी चाहिए अर्थात् किसी अन्य, 'ऐतिहासिक रूप से विरोधात्मक जगत से'। दूसरे शब्दों में, उनकी सम्मति उदार राजनीतिक संस्कृति या वैचारिकी की अलोचना केवल उस वैचारिकी द्वारा संभव है जो (उदारवाद की) प्रभुत्वशाली या प्रबल संस्कृति की विरोधी हो और उस पर प्रहार करे इससे पहले कि वह वर्ग जिसकी यह प्रवक्ता है वह अपना शासन स्थापित कर ले।[22] गुहा मानते है कि यह समालोचना ''गतिरूद्ध परन्तु अभी भी प्रभुत्वधारी'' वर्ग से उदीयमान वर्ग द्वारा सत्ता हस्तगत करने की पूर्वापेक्षा रखती है।

अशोक सेन सबाल्टर्न इतिहास लेखन को गैर-पूँजीवादी संक्रमण की अपेक्षाकृत विस्तृत रूपरेखा में मार्क्सवादी चिंतन का एक रूप मानते है। उनका मत है कि सबाल्टर्न अध्ययन का विषय क्रांतिकारी है। इस क्रान्तिकारी विषय का सच्चा ''स्व:'' या प्रतीक, उनकी सम्मति से सबाल्टर्न विद्रोही है जो सामुदायिक जीवन के उस 'स्वप्न' के लिए लड़ता है जिसका साम्राज्य के जीवन से तथा ''भारत में इंग्लैण्ड के कार्य की रक्षा तथा स्थायित्व के लिए आवश्यक नीतियों से तालमेल नहीं बैठता। इसके अतिरिक्त सबाल्टर्न का मूलभूत विरोध, बुर्जुवा वर्ग के नेतृत्व में चलने वाले उदारवादी-राष्ट्रवादी आन्दोलन से-जो ''निष्क्रिय क्रांति'' मात्र था और जिसका उद्येश्य ''श्रमिक वर्ग की व्यक्तिनिष्ठा की ऐसी आम सहमती में विलीन करना था जो पूँजी के समक्ष श्रम की अधीनता को पूर्ण स्थाई बनाती है।[23]

ज्ञान प्रकाश ने भी सबाल्टर्न इतिहासकारों द्वारा पूर्व प्रदत्त सार तत्व के रूप में नहीं बल्कि रक्त संबन्धों के प्रभाव या परिणाम के रूप में उपाश्रित विद्रोही की पात्रता की पुनस्थापना की सराहना की है। यह लुई आल्थूसर के इस मत का भी खण्डन है कि 'इतिहासकर्त्ता' विहीन प्रक्रिया है', क्योंकि रणजीत गुहा ने कृषक विद्रोही की चेतनता पर ध्यान केन्द्रित करने पर जोर दिया है। गुहा ने लिखा है कि 'पात्रविहीन घटनाओं' के इतिहास के रूप में, बगावत के अनुभव से कोई अर्थ निकालना संभव नहीं है।[24]

आलोचनाः दीपशंकर गुप्ता, रोजेलिन हेनलॉन, प्रो0 इरफान हबीब और मृदुला मुखर्जी आदि ने सबाल्टर्न इतिहास लेखन की आलोचना की है। दीपशंकर ने लिखा है कि गुहा ने सबाल्टर्न वर्गो/कृषकों व आदिवासियों की पृथक मानसिकता पर जोर देकर

वस्तुत: उनकी पहचान को व इतिहास को उपजातीय स्वरूप प्रदान कर दिया है, गुहा ने विप्लवी कृषकों को ऐसा उपजातीय समुदाय बताया कि जिसका अपनी स्वायत्त संस्कृति है, अपनी चेतनता है। इन वर्गों के वर्णन में गुहा ने उनके लिए कठोर विशेषणों तथा कटु पंक्तियों का प्रयोग किया है। जैसे ''अल्प परिष्कृत'', अप्रतिष्ठि, असम्बद्ध आदि। अर्थात् कृषक पिछड़ी हुई थी। और उसे क्रमिक विकास द्वारा प्रगति की सिढिय्यॉ चढ़नी थीं। इस प्रकार, वास्तव में गुहा के इतिहास लेखन ने अभिजनवादियों के हाथों उससे अधिक क्षेत्र गंवाया है जितना ''अभिजनवादी'' इतिहासकारों ने नही किया होगा। इस प्रकार से गुहा ने 'मानसिक तथा बौद्धिक धरातल अथवा आधार पर' कृषक वर्ग व आदिवासियों को शेष जनता से पृथक करके अभिजात्यवाद को अपेक्षाकृत ठोस आधार पर खड़ा किया है।[25]

सबाल्टर्न विचाधारा की व्यापक तौर पर आलोचना हुई है। इस परियोजना के आरम्भ से ही मार्क्सवादी, राष्ट्रवादी और कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकारों के अलावा किसी भी स्कूल से असंबद्ध इतिहासकारों ने भी इसकी आलोचना की। इसके सभी दृष्टिकोण, चाहे वे स्वायत्त निम्नवर्गीय क्षेत्र की बात हो या विमर्श विश्लेषण की, निरीक्षण और आलोचना के दायरे में आ गये।

सोशल साइंटिस्ट में कई आलोचनाए प्रकाशित हुई। इसी में प्रकाशित एक आलोचना में जावेद आलम ने निम्नवर्गीय प्रसंग के इस दावे की आलोचना की कि निम्नवर्ग स्वायत्त विद्रोही कार्यवाही की निरंतरता को आधार बनाकर की गई इस प्रतिरोध की एक लगातार चलनेवाली प्रवृत्ति कृषकों के नजरिए से विद्रोह की प्रवृत्ति पर आधारित है। इस स्वायत्त कार्य का परिणाम चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक इसमें सबाल्टर्न इतिहासकारों की की कोई रूचि नहीं है:

''उग्रवाद की ऐतिहासिक दिशा............... का महत्व दोयम दर्जे का है। यहां महत्वपूर्ण इसकी स्वत: स्फूर्तता और आन्तरिक रूप् से इसके अन्दर पैदा होने वाली ऊर्जा और गति हैं। इस प्रकार के सैद्धांतिक ढ़ाचे के अन्तर्गत तर्क के परिणाम को अगर हम आगे बढ़कर देखें तो इसका मतलब यह हुआ कि इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि इसका रूख साम्प्रदायिक दंगे की ओर हैं या फिर सामंत विरोधी क्रिया की ओर।[26]''

इस परियोजना से जुड़े एक इतिहासकार सुमित सरकार ने उत्तर उपनिवेशवाद की ओर इसके बढ़ते कदम की आलोचना की है। अपने दो लेखों, 'द डिकलाइन ऑफ सबाल्टर्न इन सबाल्टर्न स्टडीज' और 'ओरिएन्टलिज्म रिवीजिटेड' में उन्होंने लिखा है कि इस परिवर्तन के पीछे के कई कारण रहे हैं पर बौद्धिक रूप से यह दोनों हाथ में लडडू रखने का प्रयास हैं जिसमें दूसरों की मूलवाद, प्रयोजनमूलकता और अन्य कमजोरियों के लिए आलोचना की जाती हैं जबकि स्वयं उन्हीं गलतियों को दोहराया जाता है। इसके अलावा इस प्रकार के कार्य्रों से भारतीय इतिहास को कोई खास लाभ नहीं हुआ। वस्तुत: इसमें मौलिकता का ढोल खूब पीटा गया परन्तु उपनिवेशवादी विमर्श की आलोचना पुराने राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से तनिक भी अलग नहीं था। पुराने शब्दों को नई शब्दावली में दोहराया गया और वह भी इतनी कुशलता से नहीं। बाद की सबाल्टर्न परियोजना एक प्रकार की तीसरी दुनिया के राष्ट्रवाद के रूप् में सामने आई और बाद में उत्तर आधुनिकता और विखंडीकरण की ओर बढ़ी। सरकार कहते हैं कि सबाल्टर्न इतिहासकारों द्वारा लिखे इतिहास समस्याओं से परिपूर्ण हैं और ऐसा उनके सीमित विश्लेषणात्मक ढ़ाचे के कारण हुआ क्योंकि निम्नवर्गीय प्रसंग निम्नवर्गीय स्वायत्ता की साधारण अभिधारणा से पश्चिमी उपनिवेशवादी सांस्कृतिक वर्चस्व की उतनी ही सामान्यीकृत अवधारणा की ओर बढ़ गया।[27]

मूल्यांकन: समस्त आलोचनाओं के बावजूद आमूल परिवर्तनवादी विद्वता श्रेष्ठ उदाहरणों के रूप में मार्क्सवादी एवं सबाल्टर्न इतिहास-लेख ऐतिहासिक शोध या पड़ताल को भारतीय समाज के मूल आधारों तक ले जा रहे हैं। कामगारों, किसानों तथा आदिवासियों के संघर्षों को आलोकित-उद्घाटित करने की व्यग्रता में सबाल्टर्न इतिहास-लेख ने न केवल पारंपरिक बल्कि मार्क्यवादी दृष्टिकोण के लिए भी चुनौती पैदा कर दी है। मूल रूप से सबाल्टर्न इतिहास लेख उप-इतिहास या स्थानीय आख्यान हैं जो मुख्य धारा के ऐतिहासिक विवरणों को संपूरित और समृद्ध करने के साथ-साथ उनकी त्रुटियों का निवारण करते हैं। एक बेतरतीब, नकारात्मक अभिजात्य-अवर द्वैध पर आधारित इस इतिहास लेख का मूल विषय लोकप्रिय उपग्रंथ और चेतना से अधि व्यापक नहीं है। सबाल्टर्न इतिहास-लेख उन अनगिनत लिपिबद्ध विवरणों को अंधेरे और सीलन भरे कमरों में रखी धूल भरी अलमारियों से बाहर निकालकर दुनिया के सामने ला रहा है, जो आस्था और संघर्ष की अनेक कथाओं के साक्षी रहे हैं। इसने एतिहासिक शोध के समक्ष उन प्रश्नों को पुन: खड़ा कर दिया है जिनके बारे में लंबे ससमय से विश्वास किया जाता रहा है उनके समाधान ढूढ लिए गए हैं।

इसने अभिजात्यवर्गीय ऐतिहासिक बोध कार्य के लिए टब तक अत्यंत निम्न-निकृष्ठ मनुष्यों एवं समूहों को पुर्नस्थापित किया है। सबाल्टर्न इतिहास लेख के इन क्षत-विक्षत अंगो को-संघर्ष की इन गाथाओं को परस्पर संयोजित किया जा सकता है और मुख्य धारा के इतिहास-लेख में पिरोया जा सकता है जिससे वह समृद्ध और परिपुष्ट हो सके।[28]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- प्रो0 शैलेन्द्र प्रसाद पांथरी-उपाश्रयी (सबाल्टर्न) इतिहास लेखन 2011, विश्वविद्यालय प्रेस महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।
- इग्न नोट्स- आधुनिक काल में इतिहास -लेखन की दृष्टियाँ-2 MHI-03
- ई श्रीधरन, इतिहास-लेख, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड 1/24 आसफ अली रोड नई दिल्ली, 2012।
- रंजित दास गुप्ता, द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, वाल्यूम 12 सं01-2
- मृदुला मुखर्जी, औपनिवेशिक भारत में कृषक प्रतिरोध और कृषक चेतना, उपाश्रयवाद और उसके बाद, ''इतिहास'' अंक 3.1994।
- बुद्धप्रकाश-इतिहास दर्शन, हिन्दी समिति प्रकाशन वोल-3 वाराणसी, 1963।
- एलीमेण्ट्री आस्पेक्ट्स ऑफ पीजेण्ट इनसर्जेसी-इन कॉलोनियल इण्डिया, 1983।
- सबाल्टर्न स्टडीज, वाल्यूम 6, सबाल्टर्न स्टडीज, वाल्यूम 5।
- प्रो0राधेशरण-इतिहास और इतिहास लेखन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2003।
- कोलेश्वर राय-इतिहास-दर्शन, किताब महल, बिहार 2003।
- डॉ0 के. एल. खुराना एवं बंसल-इतिहास-लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियाँ,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, 2008।

संदर्भ सूचीः

1 प्रो0 शैलेन्द्र प्रसाद पांथरी-उपाश्रयी (सबाल्टर्न) इतिहास लेखन 2011, विश्वविद्यालय प्रेस महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, पृ0 1

2 इग्नूनोट्स- आधुनिक काल में इतिहास-लेखन की दृष्टियाँ-2 MHI-03 पृ0 19

3 सबाल्टर्न स्टडीज, खंड 11 (1982-2000) पृ0 19

4 इग्नू- आधुनिक काल में इतिहास -लेखन की दृष्टियाँ-2 MHI-03 पृ0 19

5 बुद्धप्रकाश-इतिहास दर्शन, हिन्दी समिति प्रकाशन वोल-3 वाराणसी,1963, पृ0 61-62

6 मृदुला मुखर्जी, औपनिवेशिक भारत में कृषक प्रतिरोध और कृषक चेतना, उपाश्रयवाद और उसके बाद, ''इतिहास'' अंक 3.1994, पृ0 163

7 प्रो0 शैलेन्द्र प्रसाद पांथरी-उपाश्रयी (सबाल्टर्न) इतिहास लेखन 2011, विश्वविद्यालय प्रेस महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, पृ012

8 रंजित दास गुप्ता, द इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू, वाल्यूम 12 सं01-2 पृ0 385

9 ई श्रीधरन, इतिहास-लेख, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड 1/24 आसफ अली रोड नई दिल्ली, 2012, पृ0 450

10 Henningham, 'Quit India in Bihar and the Eastern United Provinces: the DualRevolt', in Guha, ed.,Subaltern Studies, voll 2,136.

11 Das, Agrarian change fromAbove Below: Bihar, in Guha, ed., Subaltern Studies, Vol.2,227.

12 ई श्रीधरन, इतिहास-लेख, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड 1/24 आसफ अली रोड नई दिल्ली, 2012, पृ0 451

13 वहीं

14 वहीं

15 प्रो0 शैलेन्द्र प्रसाद पांथरी-उपाश्रयी (सबाल्टर्न) इतिहास लेखन 2011, विश्वविद्यालय प्रेस महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, पृ016

16 ई श्रीधरन, इतिहास-लेख, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड 1/24 आसफ अली रोड नई दिल्ली,2012, पृ0 451

17 वहीं पृ0 -451-52

18 वहीं पृ0 452
19 एलीमेण्ट्री आस्पेक्ट्स ऑफ पीजेण्ट इनसर्जेसी-इन कॉलोनियल इण्डिया, 1983, पृ0-336,
20 सबाल्टर्न स्टडीज, 6 पृ0 225,
21 सबाल्टर्न स्टडीज, वाल्यूम 6, पृ0 277
22 सबाल्टर्न स्टडीज, वाल्यूम 6, पृ0 222.
23 सबाल्टर्न स्टडीज, वाल्यूम 5, पृ0 230-31.
24 प्रो0 शैलेन्द्र प्रसाद पांथरी-उपाश्रयी (सबाल्टर्न) इतिहास लेखन 2011, विश्वविद्यालय प्रेस महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, पृ030
25 वही, पृ0 30
26 इग्नू- आधुनिक काल में इतिहास -लेखन की दृष्टियाँ-2 MHI-03 पृ0 25
27 वही पृ0 26
28 ई श्रीधरन, इतिहास-लेख, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड 1/24 आसफ अली रोड नई दिल्ली, 2012, पृ0 452

छत्तीस वर्ष और स्वयं प्रकाशः एक विवेचन

डॉ० रश्मि कुमारी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कुमारी मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर

'धूप में नंगे पाँव स्वयं प्रकाश का आत्मकथात्मक संस्मरण है जिसमें स्वयं प्रकाश ने अपने उन तमाम साथियों को जोड़ा है जो उनकी कहानियों और उपन्यासों से या तो छूट गये या उनमें अधिक जगह न बना पाये। इसमें स्वयं प्रकाश के जीवन के उन छत्तीस वर्षों की जद्दोजहद है जो उन्होंने घर से दूर अलग-अलग स्थानों पर रहकर आजीविका के लिए घोर संघर्ष के बीच व्यतीत किये। इन्हीं संघर्षों के बीच खूबसूरत और यादगार लम्हों के बारे में भी बताते चलते हैं। उन्हें अपने प्रति लोगों का प्रेम याद आता है। यूँ ही रंगीन शामों के बीच दोस्तों की महफिलें याद आती हैं। अपना संघर्ष याद आता है। साथियों की छेड़छाड़ याद आती है। कभी दोस्तों का सताना याद आता है तो कभी खुद का दोस्तों को सताना। अक्सर तरह-तरह के व्यंजनों का स्वाद याद आता है। अलग-अलग स्थानों पर नौकरी करते हुए लोगों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की कोशिशें याद आती हैं। परायों में अपनापन तलाशना याद आता है तो कभी बिछड़ने की टीस हृदय को झकझोर देती है। कशमकश में पड़े मन का कसमसाना याद आता है तो कभी हँसी-खुशी साथियों के बोझ को खुद पर लाद लेना याद करते हैं। इतने लोगों से मिलने की खुशी और फिर बिछड़ने का गम ,जाने किस-किस बात ने स्वयं प्रकाश रूपी हीरे को तराशकर हिंदी साहित्य जगत में अपनी चमक बिखेरने के गूँथ दिया।

अपने जीवन के छत्तीस कीमती सालों की छोटी-बड़ी घटनाओं को स्वयं प्रकाश ने बिना किसी संकोच और बिना कम या ज्यादा किये पूरी ईमानदारी के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। सपाट बयानी बेतकल्लुफी और शानदार लहजे ने उनकी किताब को बेहद मकबूल बना दिया है। पुस्तक के पहले अध्याय समन्दर छूने की चाह में के अंतर्गत उन्होंने नौसेना में इंजीनियर के तौर पर नौकरी करते हुए अपने अनुभवों को साझा किया है। नौसेना की नौकरी छूटने के बाद फिल्म इंडस्ट्री में काम करने के दिनों की कहानी पेश की है। सन 1966 में जावरा पॉलिटेक्निक कॉलेज से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा करने के बाद उन्हें नौकरी की तलाश थी किंतु सन 1965 में पाकिस्तान से युद्ध छिड़ने के बाद सरकारी विभागों में नई रिक्तियां निकलना बंद हो गई थी। रक्षा उपकरणों के लिए पूंजी की आवश्यकता थी और देश की रक्षा सरकार की प्राथमिकता होती है। ऐसे में स्वयं प्रकाश पढ़े-लिखे बेरोजगार हो गए और किसी भी काम को करने के लिए तैयार हो गए। वे लिखते हैं- 'पढ़े-लिखे की बेरोजगारी बहुत मारक होती है। उन्हीं दिनों भारतीय नौसेना में इंजीनियरों की भर्ती निकली और स्वयं प्रकाश बिना सोचे समझे उस में भर्ती हो गए किंतु वे लिखते हैं कि बाद में उन्हें इसके लिए बहुत पछताना पड़ा।

नौसेना की नौकरी के सुखद अनुभव भी कम नहीं रहे वहाँ का शानदार अनुशासित वातावरण उन्हें बहुत पसंद आया। सेना के जवानों की देखकर गदगद हो गए। वे लिखते हैं- ''वहाँ एक बहुत शानदार जिम था जिसमें बहुत सारे हट्टे-कट्टे, गोरे- चिट्टे नौसैनिक तरह-तरह के दर्शनीय व्यायाम करते थे। उन दिनों मेरे हाथ- पैर सूखी लकड़ी की तरह और चेहरा छुआरे की मानिंद था। मेरे लिए व्यायाम करते सुडोल सूचिकन्न नौसैनिक ईर्ष्या का नहीं स्पृहा का विषय थे । काश कभी मैं ऐसा हो पाऊँ। ''वह अपने पीछे अपनी प्रेमिका को छोड़ आए थे। एक तरफ नौकरी थी तो दूसरी तरफ प्रेमिका। आजाद के पत्र को पढ़कर भावुक हो जाते हैं। नौसेना में खाने के मीनू के बारे में लिखते हैं-''बुधवार को लंच में मटन बिरयानी बनती थी और इतनी लाजवाब बनती थी कि खाते रह जाओ। शुक्रवार को डिनर में मछली बनती थी। शनिवार को डिनर में पराठे और रविवार को लंच में चिकन। बाकी दिन ब्रेड और मूंग की छिलके वाली दाल। ''स्वयं प्रकाश को सिनेमा देखने का बहुत शौक था। उन्होंने जगह-जगह सिनेमा का जिक्र किया है। यहाँ के सिनेमा के बारे में लिखते हैं- ''सिनेमा हॉल में ज्यादातर अंग्रेजी पिक्चरें आती थीं। सिनेमा देखने के लिए चूँकि ऑफिसर्स के परिवार

भी आते थे इसलिए हमें सेलर्स के साथ नीचे बैठना पड़ता था और ऑफिसर ऊपर बालकनी में बैठे थे जहाँ हमारा प्रवेश वर्जित था।"

स्वयं प्रकाश के परिवार वालों को उनकी सेना की नौकरी के बारे में ज्ञात नहीं था। वे कहते हैं- ''नेवी में भर्ती के लिए आते समय मैं घर वालों को कुछ बता कर नहीं आया था इसलिए जैसे ही मेरी चिट्ठी और नेवी की वर्दी वाली तस्वीर मिली मेरी माँ तो फूट-फूट कर रोने लगी। ''स्वयं प्रकाश के घर वालों ने उन्हें सेना की नौकरी से वापस बुलाने के लिए उनके पिता के मरने का तार भेज दिया। स्वयं प्रकाश समझ गए कि झूठा तार है और उन्हें बहुत गुस्सा भी आया। सेना के भारी-भरकम प्रशिक्षण और कठोर अनुशासन के बारे में उन्होंने पुस्तक में सविस्तार चर्चा की है। क्योंकि उनकी भर्ती एक इंजीनियर के रूप में हुए थे इसलिए उन्हें तरह-तरह के प्रशिक्षण और टास्क दिए जाते थे । वहाँ के मौसम के बारे में भी उन्होंने पुस्तक में लिखा है- ''शिवाजी में अटूट वर्षा थी। हफ्तों सूरज नजर नहीं आता था ऐसे मौसम में वहाँ महफिले जमती थीं। शेरो-शायरी चलती थी। लतीफे, पुरानी फिल्मों के गाने और जहाजों के पुराने किस्से शेयर किए जाते थे। ''वह लिखते हैं- ''मैं हैरान रह गया जब बार में मैंने कुछ बंदों के मुंह से गालिब और मीर का ही नहीं जोक, मोमिन और जफर का कलाम भी सुना। मैं सोचता कि कहाँ-कहाँ से, कैसे-कैसे लोग क्या-क्या छोड़कर फौज में आए हैं। क्या आजीविका सचमुच कितनी बड़ी चीज होती है।"

जब उनके दोस्त आजाद का पत्र आया और उन्हें पता चला कि उनकी प्रेमिका की सगाई हो रही है तो उनका हँसना बोलना बंद हो गया। वे इस कदर डिप्रेशन में आ गए कि उनका मन उखड़ गया और वे तरह-तरह से वहाँ से निकलने के उपाय सोचने लगे और इस तरह उन्हें सेना की अच्छी खासी नौकरी से निकाल दिया गया। नौकरी छोड़कर जब इंदौर पहुंचे तो पता चला उनकी प्रेमिका की सगाई नासा में काम करने वाले एक प्रवासी भारतीय के साथ उनकी प्रेमिका की रजामंदी से हो चुकी थी फिर वह अपने एक दोस्त मदन के साथ रहने लगे जिसकी फिल्म इंडस्ट्री में अच्छी जान-पहचान थी। उन्होंने सात रुपये रोज पर फिल्म इंडस्ट्री में काम भी किया। दस्तक, पाकीजा, खिलौना, गौरी, फागुन, मदर इंडिया और मुगल-ए-आजम वगैरह फिल्मों का जिक्र उन्होंने अपनी इस किताब में किया है। संजीव कुमार, धर्मेंद्र, दारा सिंह, फिरोज खान आदि नायकों और मीना कुमारी, रेहाना सुल्तान, वहीदा रहमान आदि नायिकाओं का जिक्र भी स्वयं प्रकाश ने किया है। फरीदा जलाल के बारे में वे लिखते हैं- ''फरीदा जलाल भी बहुत सुंदर थीं। उनका रंग एकदम दूध जैसा था। इतनी गोरी लड़की मैंने जिंदगी में दूसरी नहीं देखी।'' कमाल अमरोही, राजेंद्र सिंह बेदी आदि फिल्म डायरेक्टर भी उनकी किताब का हिस्सा बने हैं। फिल्म इंडस्ट्री में काम के दौरान कई परेशानियों का सामना करना पड़ा तो लाइफ को एंजॉय भी खूब किया फिर बीमार पड़ गए। हालत इतनी बिगड़ी के दोस्तों ने उठाकर अजमेर वाली गाड़ी में बिठा दिया ताकि घर पहुँच जाएं।

अजमेर से जोधपुर वाया मद्रास के अंतर्गत उन्होंने अपनी टेलीकम्युनिकेशन इंजीनियरिंग की छः महीने की ट्रेनिंग का जिक्र किया है जो उन्होंने दक्षिण भारत में तमिल भाषियों के बीच रहते हुए प्राप्त की और कई बार हिंदी भाषी होने के नाते भेदभाव का सामना करना पड़ा। वहाँ उनके दोस्त थे सोनी, जे पी और शिवराम जिनके साथ में रूम पार्टनर बन कर रहे। मद्रास उनके लिए बिल्कुल भिन्न स्थान था। भोजन, रहन-सहन, भाषा मौसम आदि सब कुछ अलग था। वहाँ खाने के बारे में वे लिखते हैं -खाने-पीने के मामले में मद्रास काफी सस्ता था। दस पैसे में चाय मिल जाती थे और एक रुपए में सापड़-यानी खाना। खाने का मतलब दाल-चावल, रोटी-सब्जी नहीं था। पचास पैसे में पांच बड़ी-बड़ी इडली मिल जाती थीं। गरीब लोग तो चटनी के साथ पाँच इडली खाकर ही दिन निकाल देते थे। स्वयं प्रकाश खाने के शौकीन थे और यहाँ उनके मित्रों ने बड़े-बड़े स्वादिष्ट भोजन बनाये जिसमें लौकी के कोफ्ते, बैंगन का भर्ता, गाजर का हलवा, चावल की खीर, गट्टे का पुलाव और दाल बाटी चूरमा का जिक्र प्रमुखता से किया गया है। वहाँ स्वयं प्रकाश को 100 रूपये मासिक वृत्ति मिलती थी जिसमें काम चल जाता था और कुछ बचा भी लेते थे। एक बार होली पर कसी चेट्टी स्ट्रीट वाले गए जहाँ होली खेलते हिंदी भाषियों पर तमिल गुंडों ने खूब लाठियां भांजी एक लाठी उनके के बाएं हाथ पर भी पड़ी।

महाकवि माघ की जन्म स्थली के अंतर्गत स्वयं प्रकाश ने राजस्थान के जालौर जिले में स्थित कस्बे भीनमाल के डाक तार विभाग में अपनी पहली तैनाती के दिलचस्प अनुभवों को साझा किया है। यह वही स्थान है जिसने तराश कर स्वयं प्रकाश को महान कथाकार बनाया। उनकी कहानियों और उपन्यासों के अधिकाँश पात्र उन्हें यहीं मिले और उनकी कलम का साथ पाकर साहित्य जगत में अमर हो गए। लगभग 15000 की आबादी वाले भीनमाल कस्बे का जिक्र लेखक ने इस प्रकार किया है कि आप भीनमाल को देखने के लिए लालायित हो उठें। उनके वर्णन से स्पष्ट होता है कि भीनमाल आर्थिक दृष्टि से एक संपन्न कस्बा है जहाँ सड़कों

से लेकर इमारतें तक सब चकाचक हैं। यहाँ स्वयं प्रकाश को साहित्य साधना के लिए खूब समय मिला। वे लिखते हैं- ''मेरा न कोई ऑफिस था, न कोई आफिस टाइम। आप मजे से घर पर रहिए। जो करते हैं करते रहिये। दिक्कत आयी तो टेलीफोन करके या आदमी भेज कर आप को बुलवा लिया जायेगा । हाँ बगैर बताए कस्बा छोड़कर बाहर मत जाइयेगा और एक तारीख को तनख्वाह लेने जरूर आ जाइयेगा। स्वयं प्रकाश के साहित्य में उर्दू शब्दों की भरमार है। वे इन शब्दों का इस्तेमाल बड़ी नजाकत और सलाहियत के साथ करते हैं। यहाँ रहकर स्वयं प्रकाश ने खूब यश कमाया। जिंदगी को दिल खोलकर जिया। वे लिखते हैं- ''अब ऐसी नौकरी हो तो आदमी क्या ना डाले ? सो मैंने भी किया। खूब पढ़ा लिखा । सांस्कृतिक कार्यक्रम, कवि -सम्मेलन, मुशायरा गोष्ठियाँ करवाये। गरीब बच्चों के लिए फ्री कोचिंग क्लासेज चलायीं। राजनीति की, जनसभाएं कीं, अखबार निकाला, खूब घूमा और बेशक थोड़ी बहुत मोहब्बत किस्म की बदमाशी भी की। ''स्वयं प्रकाश को भीनमाल खूब रास आया। उन्होंने बड़े खूबसूरत अंदाज में भीनमाल का खाका खींचा है। मानो यहाँ की आबोहवा का भी बड़ी बारीकी से अध्ययन कर लिया हो।

स्वयं प्रकाश घर से बाहर रहते हुए भी अभी तक खाना बनाना नहीं सीख पाए थे। यहीं रहते हुए उन्होंने खाना बनाना सीखा -''आखिर एक दिन मैंने आत्मसमर्पण कर दिया। सामान -वामान खरीदा और खाना बनाना शुरू कर दिया।'' खाना बनाना हर किसी को अवश्य आना चाहिए। इस बात को वे अच्छी तरह महसूस कर चुके थे। तभी तो उन्होंने लिखा -''मुझे तब भी लगता था और अब भी लगता है कि नौवीं और दसवीं कक्षा में गृह विज्ञान लड़कों के लिए अनिवार्य विषय होना चाहिए।''भीनमाल में स्वयं प्रकाश को पुष्पकांत और कुर्बान भाई जैसे दोस्त मिले जिनके बारे में उन्होंने बहुत लिखा है। स्वयं प्रकाश ने मुक्तवाणी नाम से एक साप्ताहिक अखबार निकाला जिसमें बिजली विभाग के खिलाफ लिखने के कारण उनका तबादला करवा दिया गया। वहाँ उनकी मुलाकात मोहन श्रोत्रिय और सदाशिव श्रोत्रिय से हुई जिनकी दोस्ती के उन्होंने काफी चर्चे किए हैं। उन्होंने 'क्यों नामक पत्रिका निकाली जो सिर्फ 9 महीने निकल सकी सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रति उनका बेहद लगाव था इसलिए वे जहाँ भी रहे लोगों को संस्कृति से प्रेम करने के लिए जागरूक करते रहे। उनके द्वारा संपादित सांस्कृतिक कार्यक्रमों के चर्चे थे।

सपनों में आता है सोने का किला के अंतर्गत स्वयं प्रकाश ने जैसलमेर के टेलीफोन एक्सचेंज में नौकरी करते हुए न सिर्फ जैसलमेर के खूबसूरत नजारों बल्कि यहाँ के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, जलवायु, आवागमन, व्यवसाय यहाँ तक कि रीति-रिवाजों, धारणाओं को भी बड़े खूबसूरत अंदाज में सहज भाव से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। जैसलमेर रेगिस्तानी क्षेत्र है यहाँ की आबोहवा बिल्कुल भिन्न है। इसलिए यहाँ के रहन-सहन, खान-पान भी लेखक को बड़े विचित्र महसूस होते हैं। एक-एक बात को बड़ी बारीकी से बयान करते चलते हैं। जैसलमेर भी स्वयं प्रकाश को बेहद प्रिय रहा । वहाँ के सहकर्मियों से उनकी तुरंत मित्रता हो गई। वे लिखते हैं-''टेलिफोन एक्सचेंज में कुल मिलाकर पच्चीस लोगों का स्टाफ था। आर. एस. ए. यानी रिपीटर स्टेशन असिस्टेंट हम पाँच थे। मेरे सिवा सब शादीशुदा थे। उन्हें नाइट ड्यूटी करने में बहुत कष्ट होता था। मैंने सबकी नाइट ड्यूटी ले ली। मुझे कोई कष्ट नहीं था नाइट ड्यूटी में। मैं स्थाई रूप से नाइटवॉचमैन बन गया। इससे फायदा यह होता था कि मटरगश्ती करने के लिए पूरा दिन मिल जाता था और साथी वर्मा जी और उनके विद्यार्थियों के रूप में मिल ही गये थे। ''स्वयं प्रकाश ने न सिर्फ जैसलमेर बल्कि उसके आसपास के तकरीबन सभी क्षेत्रों का भ्रमण किया। एक-एक जगह की रोमांटिकता और प्रत्येक स्थान के विषय में किस्से-कहानियों, धारणाओं और लतीफों का जिक्र करते चलते हैं। स्वयं प्रकाश को शेरो -शायरी के साथ-साथ चुटकुले यानी लतीफे सुनाने का भी बहुत शौक था। इस कारण उनके साथ रहने वाला व्यक्ति कभी बोरियत महसूस नहीं कर सकता था। जैसलमेर के किले की खूबसूरती उनके हृदय में बैठ गई थी। लिखते हैं-''शहर का मुख्य आकर्षण था किला जो शहर के बीचोंबीच एक पहाड़ी पर बसा हुआ था। किला काफी लंबे चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ था और लगभग पाँच सौ परिवार किले में रहते थे। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सूर्य की किरणें सीधी किले की फसीलों पर पड़ती हैं और वह बहुत सुंदर और जादुई लगता है। ''जैसलमेर आने वाले प्रवासी पक्षियों का जिक्र भी उन्होंने किया है ।आसपास के छोटे-मोटे किलों, तालाबों, रेगिस्तान में पत्थरों, इमारतों, पेड़ -पौधों, बाजारों, समितियों, मंदिरों, दरगाह और पंचायतों का जिक्र भी उनकी किताब में मिलता है। यहाँ के प्रमुख दोस्तों में मोहन वर्मा, मनोहर महेचा, श्री वल्लभ, नाथू सिंह, गणपत भाटिया और प्रेमाराम का उल्लेख मिलता है। स्वयं प्रकाश ने जैसलमेर से फिल्म इंडस्ट्री के गहरे रिश्ते का जिक्र भी किया है-''वहाँ की हर चीज फिल्म वालों के लिए जबरदस्त आकर्षण रखती थी। सबसे पहले ख्वाजा अहमद अब्बास ने यहाँ अपनी फिल्म 'दो बूंद पानी की शूटिंग की थी। के0 आसिफ 'लव एंड गॉड़ के लिए यहाँ आए थे सुनील दत्त की फिल्म 'रेशमा और शेरा की शूटिंग तो महीनों यहां पड़ी रही। यश चोपड़ा ने अपनी फिल्म' लम्हे की यहाँ शूटिंग की और सत्यजीत राय की फिल्म सोनार केल्ला की शूटिंग का तो मैं खुद गवाह हूँ। फिल्म और डॉक्यूमेंट्री की

संख्या इससे भी कहीं ज्यादा है। ''सत्यजीत राय से मुलाकात का जिक्र लेखक ने सविस्तार किया है। बेल्जियम की दो टूरिस्ट लड़कियों कैथरीन और हिल्डा से अपनी दोस्ती का जिक्र भी खूबसूरत अंदाज में किया है। अपनी यात्रा के दौरान स्वयं प्रकाश रामगढ़ गए और यहाँ के बारे में विचित्र बात लिखते हैं –''रामगढ़ गए तो वहाँ मैंने हिंदुओं की कब्रें देखीं। जाहिर सी बात है जब लकड़ी है ही नहीं तो मुर्दे को जलायेंगे कैसे ? पूरे गाँव में किसी भी तरह का एक भी पेड़ नहीं था। मुझे वहीं पता चला कि राजपूत कोई जाति नहीं होती। वहाँ अनेक मुसलमान थे जो राजपूत थे। 'राजपुत्र' ही राजपूत बन गया और यदि राजा कोई भी हो सकता है तो राजपूत भी कोई भी हो सकता है। ''इसी क्रम में स्वयं प्रकाश पाकिस्तान के बॉर्डर तक पहुँच गए और वहाँ जब उन्होंने दूरबीन से देखा तो लिखते हैं –''काहे का पाकिस्तान ? कौन सा पाकिस्तान ? कौन सा हिंदुस्तान ? यहाँ तो धोरे ही धोरे हैं। इधर और उधर जैसी कोई चीज ही नहीं है। रेत के टीलों का अंतहीन सिलसिला है जिसमें दो बूंद पानी नहीं है। वहाँ हमने कुछ जवान बैठा रखे हैं कि हमारा देश, हमारी सीमा और हमारी सीमा के रक्षक और कुछ दूर उन्होंने भी कुछ जवान बैठा रखे हैं कि उनका देश, उनकी सीमा और उनकी सीमा के रक्षक। शुद्ध और शास्त्रीय मूर्खता, प्रचंड और दूर्धर्ष। प्रणम्य और धिक्कार योग्य, जैसे अंतरिक्ष में दो उपग्रह अपने बीच एक काल्पनिक सीमा रेखा खींचे बैठे हों।''स्वयं प्रकाश ने भाषा संबंधी विवादों के बारे में भी लिखा ।वहाँ के साहित्य और साहित्य प्रेमियों के विषय में भी लिखा है ।उन्होंने वहाँ लोगों और धर्मों के बीच अजीब तालमेल देखा –''लेकिन भीतर जाकर मैं हैरान रह गया। मंदिर में एक कब्र थी और बस कब्र ही थी। उस पर हरा कपड़ा ढँका हुआ था। पास ही एक पुजारी बैठा था उसके हाथ में मोर के पंखों वाला झाड़ू था जिससे वह हवा कर रहा था। अगरबत्तियाँ जल रही थीं। पीछे शीशे में जड़ी बाबा रामदेव पीर की एक बहुत बड़ी तस्वीर थी। यह तस्वीर बहुत लोकप्रिय थी जिसमें बाबा रामदेव अपने ख्यात नीले घोड़े पर सवार दिखाए गये थे और .....और बस।'' ये खजाने तुझे मुमकिन है खराबों में मिले के अंतर्गत स्वयं प्रकाश ने सुमेरपुर के टेलीफोन एक्सचेंज में नौकरी के दौरान अपनी बी0 ए0, एम0 ए0 और पीएचडी की उपाधि प्राप्त करने के संघर्षों को पाठकों के साथ साझा किया है । मित्रों की प्रेरणा और स्वयं प्रकाश की लगन, आत्मविश्वास और कठिन परिस्थितियों के बीच नौकरी करते हुए उनका पढ़ाई जारी रखना प्रेमचंद्र की याद दिला देता है। सुमेरपुर में रहने के मकान को लेकर उन्हें बड़ी मशक्कत का सामना करना पड़ा। वहाँ स्वयं प्रकाश को एक से बढ़कर एक परेशानियों का सामना करना पड़ा। बीमार पड़े और मुश्किल से स्वस्थ हुए । वहाँ रहकर भी स्वयं प्रकाश ने लोगों को संस्कृति और साहित्य से जोड़ने का अपना प्रयास जारी रखा। इसी क्रम में एक्सचेंज में शाम को एक कार्यक्रम होना था परंतु एक्सचेंज की एकमात्र लैट्रिन चोक हो गई थी और उसे खोलने के लिए उन लोगों और स्वयं प्रकाश को किन मुश्किलों का सामना करना पड़ा इस बारे में बड़ा दिलचस्प किस्सा किताब में दर्ज है। इसी क्रम में सिरोही के डिग्री कॉलेज के व्याख्याता दुर्गा प्रसाद अग्रवाल जी से उनकी दोस्ती हुई। उनके बारे में लिखते हैं –''दुर्गा प्रसाद जी की मेहमान नवाजी भी बेमिसाल थी और सिर्फ मेरे लिए नहीं। दोस्त बनाने और दोस्ती निभाने में उनसे अधिक निपुण व्यक्ति मैंने नहीं देखा। ''गीत –संगीत और यहां तक कि शास्त्रीय संगीत में उनकी रुचि के बारे में उन्होंने चर्चा की है। वे उनके परिवार से शीघ्र ही घुल मिल गए और दुर्गा प्रसाद जी ने साथ ही पीएचडी की अपने पीएचडी करने के अनुभव को भी स्वयं प्रकाश ने साझा किया है।

माटी मटाल की दुनिया के अंतर्गत स्वयं प्रकाश ने ओडिशा के सर्गीपल्ली की माइंस में अहिंदी भाषियों को हिंदी पढ़ाने के लिए हुई अपनी नियुक्ति के अनुभवों को साझा किया है। वहाँ भी उन्हें बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ा। सफर दिलचस्प रहा और लोगों का विरोध भी खूब झेलना पड़ा। अहिंदी भाषी लोगों को हिंदी भाषा के राष्ट्रभाषा बनाए जाने पर घोर एतराज था जो उनके विरोध का कारण बना–''अच्छी चतुराई है अपनी भाषा को राष्ट्रभाषा बना लिया आप और आपके बच्चे तो फायदे में ही रहे फिर। ''यहाँ वे परिवार को लेकर गए थे और जाते हुए ही पानी में डूबने के कगार पर थे। वे किस प्रकार बचे इसके पीछे की कहानी रोंगटे खड़े करने वाली है। यहाँ उनके मित्र बने हालदार, शिवराम और अशोक अग्रवाल। स्वयं प्रकाश ने उड़ीसा के सर्गीपल्ली का बड़ा मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है। वहाँ रहते हुए उन्होंने खूब भ्रमण किया। वहाँ के रीति–रिवाजों, धार्मिक कर्मकांडों, खान–पान, रहन–सहन, कला संस्कृति आदि का भी वर्णन किया है। वहाँ की महिलाओं की मेहनत के कारण और पुरुषों की अकर्मण्यता की तरफ लोगों का ध्यान खींचने की कोशिश की गई है। छोटी –छोटी बातों की ओर भी लेखक ने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है और वे इसमें सफल भी हुए हैं। वहाँ भी उन्होंने धार्मिक गठजोड़ के दर्शन किए यथा–''माता मरियम और प्रभु यीशु चुपचाप देवताओं की कतार में लाकर बैठा दिए गये थे। किसी ने कोई विरोध नहीं किया था। ''वहाँ की संस्कृति और लोक नृत्य का जिक्र भी पुस्तक में किया गया है। पर्यावरण संरक्षण, आपदा नियंत्रण आदि के बारे में भी ओडिशा के लोग जागरूक थे। भ्रष्टाचार और शोषण के चलते जिस माइंस में वे थे आखिर बेच दी गई और इस तरह छः साल तक वहाँ काम करने के बाद स्वयं प्रकाश का तबादला राजस्थान हो गया।

खदान में 'क ख ग' के अंतर्गत स्वयं प्रकाश ने राजस्थान के उदयपुर से चालीस किलोमीटर दूर जावर माइंस में हिंदी अधिकारी के रूप में अपने काम के दौरान कटु अनुभवों को उकेरने का प्रयास किया है। यहाँ ठेकेदारों और कर्मचारियों के भ्रष्टाचार को उन्होंने प्रमुखता से लिया है। हिंदी के प्रति वहाँ के लोगों में भी उपेक्षा और नफरत का भाव उन्हें देखने को मिला। वे लिखते हैं -''उन्हें लगता था कि वे मर-पचकर, जान जोखिम में डालकर जो मुनाफा कमाते हैं हिंदी अधिकारी मुफ्त में उसमें हिस्सा बाँटने आ गये हैं। किस बात का ऑफिस मिलना चाहिए इन्हें? किस बात का क्वार्टर? दो दिन अंडरग्राउंड जाना पड़े तो घुस जाए उनका 'क क्षेत्र'। ऐसे उद्‌गार अक्सर सुनने को मिल जाते थे। ''स्वयं प्रकाश द्वारा किए गए हिंदी के आयोजनों में यूनियन के नेता तो कभी आते ही नहीं थे साथ ही कर्मचारियों को बुलाने के लिए भी कड़ी मशक्कत करनी पड़ती थी। उन्हें वहाँ तीन महीने तक क्वाटर नहीं दिया गया और वे परिवार सहित ट्रांजिट में रहने को मजबूर हुए। आखिर तंग आकर उन्होंने इस नौकरी के बजाय विजिलेंस विभाग में सतर्कता अधिकारी की पोस्ट पर जाना बेहतर समझा। कुछ परीक्षाओं के बाद उनका काम बन गया और उनकी पहली तैनाती राजपुरा दरीबा माइंस में हुई। उन्होंने यहाँ भी खदान में काम करने वाले लोगों, खदान में मिलने वाली धातुओं, प्राचीन औजारों सिक्कों आदि के बारे में लिखा है। मजदूरों की समस्याओं को पाठकों के साथ साझा किया है। यहाँ उन्हें रहने के लिए अपेक्षा से अधिक सुविधाएं प्रदान की गयीं। लोगों को मालूम था कि वे एक कहानीकार हैं। तब तक वे कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। लिखते हैं -''मैं किसी के भी दफ्तर में कभी भी छापा मारकर कागज पत्तर जप्त कर सकता था। ''लोग उनसे डरने लगे और कटे-कटे रहने लगे। स्वयं प्रकाश बिना मित्रों के नहीं रह सकते थे। वे बेचौन रहने लगे लिखते हैं- ''मैं बुझा-बुझा सा रहने लगा। दोस्तों को लंबे-लंबे पत्र लिखने लगा और अकेले में बड़बड़ाने लगा। ''फिर उन्होंने नौकरी से इस्तीफा देना चाहा लेकिन स्वीकार नहीं किया गया। आखिर उन्होंने फिर सांस्कृतिक कार्यक्रमों की तरफ रुख किया। बच्चों से नाटक करवाये और इस प्रकार उनके बेचौन दिल को थोड़ा करारा आया। फिर एक दिन खदान की एक दीवार धंस गयी और काफी मजदूर खदान में दब गए। बड़ी दुर्घटना हुई और कई लोग मारे गए किंतु यह सब स्वयं प्रकाश के वहाँ से चित्तौड़ जाने के तुरंत बाद हुआ।

पुस्तक के अंतिम अध्याय वह जो मेरा चित तोड़ हुआ के अंतर्गत स्वयं प्रकाश ने चित्तौड़ में चंदेरिया कंपनी के एक कारखाने में विजिलेंस अधिकारी के रूप में अपनी आखरी नियुक्ति के अनुभवों को पाठकों के समक्ष साझा किया है। यहाँ के अनुभव भी कम दिलचस्प नहीं रहे यहाँ अपेक्षाकृत परेशानियों का सामना तो बहुत कम करना पड़ा किंतु कंपनी के बिक जाने पर उनके हृदय को बहुत आघात लगा। कंपनी के कई अधिकारियों, कर्मचारियों के फर्जीवाडो का स्वयं प्रकाश ने पर्दाफाश किया। कुछ मामले उनकी पकड़ में आने से बच भी गये। वहाँ यूनियन के महासचिव राणावत जी से उनकी जान पहचान हो गयी जो बाद में उन्हें और उनके परिवार को भी एलटीसी के ग्रुप के साथ धार्मिक यात्रा पर ले गये। यात्रा के दौरान स्वयं प्रकाश नैसर्गिक स्थलों को देखना चाहते थे तो बाकी लोग सिर्फ मंदिरों को देखना चाहते थे। स्वयं प्रकाश खुद को नास्तिक बताते हैं । इस कारण वे अक्सर मंदिर के बाहर ही रुक जाते। इससे उनके साथी उन्हें नास्तिक के बजाय विधर्मी समझते हैं- 'वैष्णो देवी में नहीं जाने और माता रानी के दर्शन के बिना लौट जाने ने मुझे एक ही झटके में उन सब से काटकर अलग कर दिया। वे मुझे नास्तिक से भी ज्यादा विधर्मी समझने लगे थे। इसी अध्याय में स्वयं प्रकाश ने अपने को खुलकर कम्युनिस्ट और वामपंथी बताया है। चित्तौड़ में मीरा महोत्सव और उससे जुड़े कई प्रसंगों की भी स्वयं प्रकाश ने चर्चा की है। वे श्रमिकों से सांस्कृतिक कार्यक्रम करवाने और उनके बच्चों को भी साथ लेकर साहित्यिक संस्कार देने के शौकीन थे। सो वे जहाँ भी गये अपने इस कार्य को कर्तव्य समझकर करते रहे किंतु यहाँ चित्तौड़ में उनका यह प्रयास अंतिम सिद्ध दुआ। शिव-पार्वती विवाह का मंचन किया गया और वे लिखते हैं- ''कार्यक्रम के चार दिन बाद शिव-पार्वती दोनों घर से भागकर अजमेर चले गए और वहाँ उन्होंने शादी कर ली।'' चित्तौड़ के इतिहास और वहाँ के झूठे किस्सों की चर्चा भी की गयी है। महाराणा प्रताप और उनके द्वारा लड़े गए युद्धों के बारे में वे कहते हैं कि महाराणा प्रताप ने अपने जीवन में सिर्फ डेढ़ युद्ध लड़े। राजपूतों की वीरता के मिथक के बारे में वे कहते हैं-''और राजपूतों की वीरता की तो बात ही क्या की जाये। सारे राजस्थान के सामंत तो अकबर को बेटियाँ दे रहे थे ......''राजपूतों की वीरता की मिथक को भी तार-तार कर दिया। चित्तौड़ के बारे में लिखते है- ''चित्तौड़ का किला देशी-विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र था और उसके बगैर चित्तौड़ की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।''

कारखानों के द्वारा किए जाने वाले प्रदूषण और उसकी रोकथाम का जिक्र भी यहां किया गया है इसमें लगने वाली मशीनों की प्रक्रिया को बड़ी बारीकी से समझाने का प्रयास किया गया है। कारखानों के द्वारा स्थानीय लोगों को रोजगार मुहैया कराया जाता है। स्थानीय लोगों का मुआवजे को लेकर धरना प्रदर्शन भी होता है। इसी प्रकार के प्रदर्शन में स्वयं प्रकाश को जान बचानी मुश्किल

पड़ जाती है। कारखानों के आसपास के क्षेत्र में प्रदूषण की भयावहता की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया है। इसी क्रम में स्वयं प्रकाश की बाइक के आगे एक गाय आ जाती है जिसे बचाने के चक्कर में स्वयं प्रकाश डिवाइडर से टकरा जाते हैं और उनकी बाहों में गंभीर चोटें आती हैं। काफी दिनों में स्वस्थ होते हैं। इसी क्रम में वे गांधीजी को याद करते हैं कि किस प्रकार वे साबरमती आश्रम में परिचारक का काम करते थे । उन्हें ठीक होने में छः महीने लग गये। फिर एक दिन कंपनी को बेच दिया गया। वे लिखते हैं- ''एक दिन अनेक प्रदेशों में फैली अरबों रुपए की संपत्ति वाली इस नवरत्न कंपनी को मिट्टी के मोल बेच दिया गया। ''संभवतः निजी-करण की जो आग आज चारों ओर फैल रही है वह उस समय शुरू हो रही थी। वे लिखते हैं -''केंद्र में पहली बार भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार बनी थी । उन लोगों का कहना था कि सार्वजनिक क्षेत्र बिल्कुल खत्म कर देने चाहिये.... वैसे भी सरकार का काम व्यापार करना या उद्योग चलाना नहीं है।'' निजी करण के विरुद्ध स्वयं प्रकाश का क्रोध स्पष्ट दिखाई पड़ता है। लिखते हैं- ''स्वार्थों की खातिर आँकड़ों की बाजीगरी की गयी और सब के सब तमाशा देखते रहे। क्षेत्र की सांसद गिरिजा व्यास चुप रहीं। क्षेत्र के एक और सांसद भेरूलाल मीणा तो स्वयं कभी कंपनी के कर्मचारी रह चुके थे उन्होंने भी संसद के भीतर या बाहर इस विनिवेश के विरुद्ध एक शब्द नहीं कहा । कंपनी के कर्मचारियों को तरह-तरह के प्रलोभन दिए गए ताकि ज्यादा शोर-शराबा न कर सकें। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की योजनाएं चलाई गयीं। चारों और निजी करण किया जा रहा था। इसी संघर्ष के बीच में लिखते हैं- ''जिस दिन हिंदुस्तान की ट्रेड यूनियनें नाल्को का संघर्ष हारीं हमारी कॉलोनी में कई घरों में शाम को न खाना बना न किसी ने बिजली जलायी। कम्पनी के निजीकरण के साथ ही मेरा तो महकमा ही खत्म हो गया। इस प्रकार स्वयं प्रकाश के जीवन के छत्तीस वर्षों के संघर्ष को विराम लग गया।

युवाओं को संघर्ष सिखाती, प्रोढ़ों को बीते दिनों की याद दिलाती स्वयं प्रकाश की यह पुस्तक पाठकों के लिए नायाब तोहफा है। जो लोग स्वयं प्रकाश के बारे में जानना चाहते हैं उन्हें पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। शोधार्थियों के लिए तो यह पुस्तक स्वयं प्रकाश को जानने का सर्वोत्तम साधन है। स्वयं प्रकाश का शब्द चयन अनूठा है। वे यथार्थवादी कहानीकार हैं। उन्होंने तथ्यों को उनके वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया है। कभी डायरी, कभी आत्मकथा, कभी संस्मरण, कभी यात्रावृत्त तो कभी कहानी लगती है ये किताब। इतना सब कुछ अपने में समेटे हुए बेमिसाल है 'धूप में नंगे पाँव।

सन्दर्भ-

1. धूप में नंगे पांव, स्वयं प्रकाश, राजपाल एण्ड संस, संस्करण 2019

हिन्दी उपन्यासों में भूमंडलीकरण का युवाओं पर प्रभाव एवं परिणाम

सरिता भारती

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, वी.एस.एस.डी. कॉलेज, कानपुर

शोध सार

भूमंडलीकरण सम्पूर्ण विश्व को एक करने की अवधारणा है अथवा भूमंडलीकरण राष्ट्रीयता के स्थान पर अंतर्राष्ट्रीयता की अवधारणा है जिसके कारण वस्तुओं, सेवाओं, शिक्षा, चिकित्सा, तकनीकी, प्रौद्योगिकी आदि का आदान-प्रदान एक देश से दूसरे देश में सम्भव हो पाया है। भूमंडलीकरण का प्रभाव देश, समाज और समाज के समस्त वर्ग पर पड़ा परन्तु इसका सर्वाधिक प्रभाव युवाओं पर पड़ा। भूमंडलीकरण ने युवा पीढ़ी की शिक्षा, रोजगार, रहन-सहन, खान-पान, बात व्यवहार, सपना, संस्कार, आदर्श आदि सभी प्रभावित करने के साथ परिवर्तित भी किया है। भूमंडलीकरण के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों का प्रभाव युवा पीढ़ी पर देखने को मिलता है। यदि आर्थिक उन्नति, औद्योगिकीकरण, उत्पादकता और रोजगार इसके सकारात्मक प्रभाव हैं तो सांस्कृतिक पतन, अपसंस्कृति का उत्थान और आधुनिकता के नाम पर शोषण आदि नकारात्मक प्रभाव भी हैं।

प्रमुख शब्दावली- भूमण्डलीकरण, बाजारवाद, बहुर्राष्ट्रीय उपक्रम, अंतर्राष्ट्रीयता।

सम्पूर्ण विश्व को एक करने की विचारधारा को भूमंडलीकरण कहा जाता है। इसकी पूर्ति हेतु राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर ऐतिहासिक और साहसिक निर्णय लिए गए हैं जिसके कारण भूमंडलीकरण का स्वप्न साकार हुआ है। भूमंडलीकरण के कारण राष्ट्रीय सीमाओं को अन्य देश के साथ व्यापार, शिक्षा, संचार, तकनीकी के आदान-प्रदान एवं विकास हेतु खोल दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप व्यापार, शिक्षा, संचार एवं प्रौद्योगिकी के प्रवेश के साथ एक देश की सभ्यता एवं संस्कृति का प्रवेश अन्य देश में हुआ जिसने सबको प्रभावित करने के साथ युवाओं को सर्वाधिक प्रभावित किया।

भूमंडलीकरण का प्रभाव समस्त विश्व पर विभिन्न स्तरों पर पड़ा है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक आदि समस्त क्षेत्र भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में परिवर्तित हुए क्योंकि भूमंडलीकरण अन्य समस्त कारणों से अधिक आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया है इसलिए बहुधा बाजारवाद भूमण्डलीकरण के समस्त उद्देश्यों को प्रभावित और निर्धारित करता है जिसके परिणामस्वरूप हम ऐसे समय और परिस्थितियों के अधीन हो चुके हैं जिसमें प्रतिस्पर्धा, चमक-दमक का हिस्सा होना प्रगतिशीलता का परिचायक है। बाजारवाद के चलन और स्वरूप को प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री एवं भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री डॉ0 मनमोहन सिंह के कथन द्वारा समझा जा सकता है ''एक अभूतपूर्व युग का उदय हो रहा है, जिसमें बाजार कभी बंद नहीं होते। चौबीसों घंटे बाजार काम करते रहते हैं। ये रोमांचक क्षण है इतिहास के मनोवैज्ञानिक जानते हैं कि जो कभी नहीं सोता है, उसके शरीर को कभी विश्राम नहीं मिलता है। .... वह पागल हो जाता है तो क्या हम एक और पागल बाजार की ओर बढ़ रहे हैं जो कभी नहीं सोता, जिसके सोचने की क्षमता ही नहीं है, जो मुनाफा और अधिक मुनाफा कमाने की ओर बढ़ रहे हैं।''[1]

इस प्रकार भूमंडलीकरण से बाजारवाद को सम्पूर्ण भूमंडल पर वर्चस्व जमाने का अवसर प्राप्त हुआ। इसका सर्वाधिक प्रभाव एवं परिणाम युवाओं पर पड़ा है।

भूमंडलीकरण के कारण युवा शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति कर रहे हैं। युवाओं हेतु देश एवं विदेश के विभिन्न शिक्षा संस्थानों में तकनीकी और व्यवसायिक शिक्षा के साथ विदेशों के उच्च शिक्षा संस्थान में प्रवेश लेकर शिक्षा प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध

हुआ है। युवाओं को अपनी शिक्षा, संस्कृति के साथ अन्य देश की शिक्षा, संस्कृति सीखने और परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ। हिन्दी के कई उपन्यास भूमंडलीकरण का युवाओं पर प्रभाव एवं परिणाम को स्पष्ट करते हुए लिखे गये है जिसमें मधु कांकरिया का उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप युवा जीवन में आए प्रभाव एवं परिणाम को कई स्थानों पर उजागर करता है। उपन्यास की पात्र संघमित्रा युवा है। वह कम्प्यूटर की शिक्षा लेकर एक उभरती हुई साफ्टवेयर कम्पनी में पार्ट टाइम जॉब करती है। भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप नयी तकनीक का आदान-प्रदान और विकास हुआ जिससे शिक्षा के साथ बाजार में व्यापक बदलाव हुआ है। पश्चिमी शिक्षा के आगमन से जहां युवा नवीन तकनीक और ज्ञान से परिचित हुआ वहीं बाजार में नए नए उत्पाद के आने से पारम्परिक उद्योग ध्वस्त हो गए परिणामस्वरूप युवाओं को उनके पारम्परिक उद्योग से जुड़ने और उसे बढ़ाने का अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ परन्तु साथ ही तकनीकी ज्ञान से सम्पन्न युवाओं को अन्तर्राष्ट्रीय उपक्रम में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। उपन्यास के निम्न कथनों से यह स्पष्ट होता है- ''भारत साफ्टवेयर में आगे बढ़ने लगा था बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों के बाद मझले प्रतिष्ठान भी अपने यहाॅ कम्प्यूटर बैठाने लगे थे। वेतन अब मुनीम जी की कलम से नहीं कम्प्यूटर से निकलने लगा था। बैंक और रेलवे में भी कम्प्यूटर दमकने लगे थे। युवा शक्ति प्रेयसी की बजाय कम्प्यूटर प्रोग्रामर, कम्प्यूटर इंजीनियर बनने का स्वप्न सजोने लगे थे।[2]'' भूमंडलीकरण तकनीकी के माध्यम से सम्पूर्ण भूमंडल को विश्वग्राम में परिवर्तित कर चुका है ऐसे में युवा तकनीकी शिक्षा की उपयोगिता से भलीभांति परिचित है। संघमित्रा का यह कथन इसकी पुष्टि करता है कि ''सभ्यता और बाजार की नई वर्णमाला में ज्ञानी वही था जो कम्प्यूटर पर हाथ-पैर मार सके।''[3] युवा विचारधारा में यह परिवर्तन भूमंडलीकरण का प्रभाव है जिसमें युवा शिक्षा एवं उद्योगों की पारम्परिक पद्धति में हुए परिवर्तन के साथ आधुनिक शिक्षा एवं व्यवसायगत परिवर्तन को स्वीकार कर वर्तमान समय के अनुसार स्वयं को ढालते हैं।

रोजगार की दृष्टि से भूमंडलीकरण युवाओं के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। देश-विदेश के उच्च संस्थानों से उन्नत शिक्षा प्राप्त युवाओं हेतु बहुराष्ट्रीय-राष्ट्रीय उपक्रमों में, उनकी योग्यता के अनुसार ढेरों अवसर उपलब्ध हैं। अलका सारावगी के उपन्यास 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' का मुख्य पात्र जयदीप है जो अमेरिका से शिक्षा प्राप्त कर वापस भारत में रहने लगता है। शिक्षा ही जयदीप की पहचान है। उसकी शिक्षा के कारण ही कलकत्ते के सबसे पुराने रईस और बड़े उद्योगपति राजाराम बाबू, जयदीप को अपनी कम्पनी का काम सम्भालने का आग्रह करते हुए कहते हैं कि ''हमने एक जूट की मिल खरीदी है और हम उसे बंगाल की सबसे आधुनिक मिल बनाना चाहते हैं। आप अमेरिका से कम्प्यूटर की पढ़ाई करके आए हैं और हिन्दुस्तान मोटर में काम करने का आपको तजुर्बा भी है।''[4] इस प्रकार राजाराम बाबू युवा ज्ञान को उचित मूल्य एवं सम्मान देना जानते हैं। युवा भी ज्ञान एवं कौशल के बल पर सम्मान अर्जित करते हैं। भूमंडलीकरण से युवाओं के समक्ष रोजगार के बेहतर विकल्प उपलब्ध हुए हैं। बड़े-बड़े बहुराष्ट्रीय उपक्रम छाटे-बड़े सभी देशों में अपनी शाखाएं खोलते हैं। पेप्सी, कोकाकोला, हुंडई, सैमसंग, एप्पल, एमाजॉन, टेस्ला आदि बहुराष्ट्रीय उपक्रमों ने बेरोजगार युवाओं को उनके अपने देश में रोजगार उपलब्ध किया है। जयदीप के मित्र ने विदेश में तकनीकी शिक्षा प्राप्त किया था और उसकी पढ़ाई के अनुकूल ही उसे बहुराष्ट्रीय उपक्रम में रोजगार प्राप्त हुआ। उपन्यास का यह कथन कि ''जयन्त भाई को गाड़ी बनाने वाली ब्रिटिश कम्पनी 'जैगुअर' में अमेरिका से इंजीनियरिंग पढ़कर लौटते ही नौकरी मिल गयी थी।''[5] भूमंडलीकरण के प्रभाव एवं परिणाम को स्पष्ट करता है कि एक देश की कम्पनी दूसरे देश में सफलतापूर्वक व्यवसाय करती है। वहां अपने उत्पाद को निर्मित कर बेचती है जिसके लिए उसे कुशल युवाओं की आवश्यकता होती है। ऐसे में तकनीकी ज्ञान से सम्पन्न युवाओं के समक्ष रोजगार के व्यापक अवसर उपलब्ध होते हैं। वहीं बहुराष्ट्रीय उपक्रम रोजगार प्रदान करने के साथ युवाओं के ऊर्जा एवं कौशल का उपयोग कर लाभ अर्जित करते हैं। भारतीय युवक जयन्त भाई की पढ़ाई अमेरिका में होती है और ब्रिटिश कम्पनी में उसे नौकरी मिलती है। यह भूमंडलीकरण द्वारा ही सम्भव हुआ है। वरना राष्ट्रीयता की सीमा में बंधा युवा स्थानीय शिक्षा और व्यवसाय तक ही सीमित था। भूमंडलीकरण से युवाओं में अर्न्राष्ट्रीयता की भावना मजबूत हुई है। वास्तव में भूमंडलीकरण का लक्ष्य भी यही है कि सम्पूर्ण भूमंडल पर वह सब उपलब्ध हो जो कभी एक स्थान विशेष पर ही उपलब्ध होता था। वह शिक्षा, कला, तकनीकी, रहन-सहन, खान-पान आदि कुछ भी हो। गिरिश मिश्र का कथन इसे स्पष्ट करता है कि ''वर्तमान भूमंडलीकरण के समर्थकों का प्रमुख लक्ष्य है सारी दुनिया को एक रंग में रंगना यानी सब प्रकार की विविधता मिटाकर समरूपता लाना।''[6] भूमंडलीकरण की इस विचारधारा को युवाओं ने आत्मसात किया है युवा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अर्न्राष्ट्रीयता को प्राथमिकता देता है अर्थात युवा शिक्षा, रोजगार, रहन-सहन, खान-पान जीवन में उपयोग एवं उपभोग में आने वाले उत्पाद में भी अर्न्राष्ट्रीय उत्पाद, शिक्षा, सुविधा एवं विचाराधारा को प्राथमिकता देता है। युवा अन्तर्राष्ट्रीय जगत से आकृष्ट है परन्तु साथ ही यह वर्तमान समय की

आवश्यकता भी है। अन्तर्राष्ट्रीय उत्पाद से परिचय भूमंडलीकरण की देना है। अन्तर्राष्ट्रीय उत्पाद अथवा ब्राण्ड के प्रति युवाओं का बढ़ता आकर्षण भूमंडलीयकरण का परिणाम है जिसने सम्पूर्ण भूमंडल पर सब उपलब्ध कराने की विचारधारा को साकार किया है। युवाओं की वस्तुओं और सुविधाओं के लिए दिवानगी को रजनी गुप्त के उपन्यास 'कुल जमा बीस' के मुख्य पत्र आशू के कथन से स्पष्ट समझा जा सकता है। जब वह अपनी सफलता प्राप्ति के फलस्वरूपर अपनी दादी से कहता है कि ''मैंने 18 साल पूरे कर लिए और इंटर भी पास कर लिया। अब तो दिला दो पल्सर बाइक। हां, लेनी पल्सर ही है मुझे, हां कहे देता हूँ।''[7]

इसी प्रकार प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' की मुख्य युवा पात्र मुन्नी घर-घर काम करने वाली महिला है। वह दीवाली के अवसर पर अपने मालिक से उपहार स्वरूप मोबाइल की मांग करती है और मोबाइल प्राप्त होते ही प्रसन्नता से कहती है ''नोकिया का है न।''[8] यह दोनों कथन युवाओं में अन्तर्राष्ट्रीय ब्राण्ड के प्रति आकर्षण को व्यक्त करते हैं।

भूमंडलीकरण से शिक्षा, तकनीकी, व्यापार, संचार का सम्पूर्ण भूमंडल पर विस्तार हुआ है जिससे मुख्य रूप से युवाओं को लाभ प्राप्त हुआ है परन्तु इसकी मार घरेलू और पारम्परिक उद्योगों को झेलनी पड़ी। मधु कांकरिया का उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' का यह कथन इस पर प्रकाश डालता है ''देखते-देखते कई बस्तियां उजड़ गई थी। सिल्क गया, इत्र गया। मूर्तिकारों का टोला भी उजड़ने लगा था। अब मेरे साबुन की बारी।''[9] उपन्यास की मुख्य पत्र संघमित्रा की इस उक्ति से उसके घरेलू उद्योग की दुर्दशा के साथ उसकी चिन्ता व्यक्त होती है। इसी उपन्यास का एक अन्य कथन घरेलू उद्योग पर भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप आए बहुराष्ट्रीय उपक्रमों के उत्पाद के वर्चस्व और घरेलू उद्योग की दुर्दशा दर्शाता है ''अब माटी के दीये नहीं जगमगाते, लट्टू और मोमबत्ती, प्लास्टिक की बोतलें, थर्माकोल के गिलास, स्टील की थालियां बाजार में आ गए हैं।''[10] भूमंडलीकरण के प्रभाव से आए इन बदलाव को युवा स्वीकार करते हैं। वह भूमंडलीकरण के कारण रोजगार, शिक्षा, विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करने के साथ ही इसकी मार को झेलने के लिए भी तैयार है। युवा भूमंडलीकरण की चुनौतियों को स्वीकार करता है। वह भूमंडलीकरण के कारण रोजगार शिक्षा, विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करता है। युवा भूमंडलीकरण की चुनौतियों को स्वीकार करता है। वह स्वयं को इसके द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थितियों हेतु तैयार करता है। संघमित्रा ऐसे युवाओं का ही उदाहरण है। वह इस प्रतिस्पर्धा के अनुरूप स्वयं के उत्पाद को निर्मित करती है। वह विभिन्न माध्यम से ज्ञान अर्जित कर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के उत्पाद की भांति अपने उत्पाद को भी बनाती है और उसके विषय में कहती है कि ''न सिर्फ बट्टी वरन् बोतल बंद लिक्विड साबुन भी बनाया है। उम्दा कोटि का कॉस्टिक सोडा, यूरिया और सालरी डाला है। दाम भी काफी आकर्षक रखा है। मात्र 40 रूपए की एक आधा किलो की बोतल। पूरी उम्मीद है कि इस बार मैं बाजार जीत लूंगी।''[11] संघमित्रा का यह कथन भूमंडलीकरण से आए समाज में परिवर्तन के प्रभाव एवं परिणाम दोनों को व्यक्त करता है। युवा इस परिवार्तन के अनुसार स्वयं को ढालते हैं और प्रतिस्पर्धा कर उसे जीत लेने की भावना से युक्त भी रहते हैं।

भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप शिक्षा, रोजगार, व्यापार, तकनीकी में विस्तार और परिवर्तन होने के साथ समाज की सभ्यता, संस्कृति में भी परिवर्तन हुआ है। इसमें युवाओं में उन समस्त त्यौहारों, उत्सवों को मनाने का प्रचलन तेजी से बढ़ा है जो भूमंडलीकरण के कारण युवाओं में मुख्य रूप से प्रचलित हैं। इनमें वैलेंटाइन डे, चॉकलेट डे, टैडी डे, मदर्स डे, फादर्स डे, सिस्टर्स डे आदि हैं। लता शर्मा का उपन्यास 'सही नाम के जूते' की मुख्य पात्र उर्वशी अपनी सहेलियों को वैलेंटाइन डे मनाते देखती है और उनके बॉयफ्रेंड के व्यवहार को देख जो कहती है वह युवा मन की भावना को अभिव्यक्त करने के साथ युवाओं के मध्य इसकी घटती परम्परा को भी दर्शाती है। उर्वर्शी कहती है कि ''मनोज्ञा, कमला, इषिता, रंजू, नेहा और प्रियंका के भी बॉयफ्रेंड हैं उन्हें बस के पीछे भगाने या स्कूल गेट पर खड़े रहने की कोई जरूरत नहीं है। वो उनके घर आते-जाते रहते हैं। साथ घूमते हैं। भेल, बड़ा पाव, आइस्क्रीम खाते हैं। और वैलेंनटाइन डे पर गुलाब, चॉकलेट और वैलेंनटाइन गिफ्ट करते हैं।''[12]

युवाओं को पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति, जीवन शैली, विचारधारा से परिचित कराने का श्रेय भूमंडलीकरण को जाता है। भूमंडलीकरण से फैशन जगत, सिने जगत की ऐसी दुनिया आगमन हुआ है जिसने युवाओं को शीघ्र अति शीघ्र करोड़ों दिलों पर राज करने का सपना दिखाया है। मिस इंडिया, मिस वर्ल्ड, मिस यूनीवर्स आदि ऐसी ही प्रतिस्पर्धाएं हैं जो युवाओं को फैषन जगत से जोड़ती हैं। इसे जीतकर युवा रातोंरात सफलता के शिखर पर पहुँचना चाहता है। उर्वशी ऐसे युवाओं का प्रतिनिधित्व करती है। इन प्रतियोगिता के आयोजन का मूल उद्देश्य युवाओं को भिन्न-भिन्न उत्पादों के साथ जोड़ना होता है। उपन्यास का यह कथन इसकी पुश्टि करता है कि ''भारतीय लड़कियों के लिए एक नया द्वारा खुल गया। नई दुनिया की झलक मिली।

फैशन उद्योग।''[13]

भूमंडलीकरण का प्रभाव युवा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर स्पष्ट दिखायी देता है। शिक्षा, रोजगार युवाओं की मूल आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा सम्पन्न युवाओं हेतु भूमंडलीकरण ने रोजगार के बेहतर और बृहद अवसर उपलब्ध किए हैं। तो वहीं अन्तर्राष्ट्रीय उपक्रमों से जुड़कर युवा जीवन के रहन-सहन, खान-पान, बात-व्यवहार में बदलाव आने के साथ रोजगार एवं प्रगति की चाह में पलायन की तीव्र प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। जहां भूमंडलीकरण के फलस्वरूप बहुराष्ट्रीय उपक्रम युवाओं की ऊर्जा और प्रतिभा का उपयोग कर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर रहे वहीं युवा भी इससे लाभान्वित हुए हैं। इसे अभय कुमार दुबे का यह कथन स्पष्ट करता है कि ''भूमंडलीकरण बिना किसी लाग लपेट के एक ऐसी सभ्यता मूलक एकता का नाम बनकर उभरा जिसके गर्भ में पश्चिमी सभ्यता से उपजे प्रतिमान थे रहन-सहन और खान-पान की कसौटी भी पश्चिमी थी और पहनावे के मानक भी पश्चिमी था।''[14]

इस प्रकार भूमंडलीकरण का प्रभाव युवा जीवन के सभी क्षेत्र को प्रभावित करता है। युवा स्वयं में भूमंडलीकरण के कारण आए परिवर्तन के अनुसार बदलाव करता है। यह बदलाव युवाओं को प्रगति का अवसर प्रदान करते हैं परन्तु साथ ही भूमंडलीकरण के कारण आयी पश्चिमी सभ्यता की चमक-दमक और आकर्षण से आकृष्ट युवा पथभ्रष्ट हो अपसंस्कृति को आधुनिकता समझ कर उसका अनुसरण करता है। इस प्रकार भूमंडलीकरण का युवाओं पर सकारात्मक-नकारात्मक प्रभाव एवं परिणाम देखने को मिलता है।

संदर्भ-ग्रन्थ

1. मृणाल पाण्डेय का लेख गूगल द्वारा, अक्षर पर्व पत्रिका, मार्च 2004
2. मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010 पृ0 152
3. वही पृ0 152
4. अलका सारावगी, जानकीदास तेजपाल मैनशन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृ0 151
5. वही पृ0 89
6. आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक 14, 2003, पृ0 165
7. रजनी गुप्त, कुल जमा बीस, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ0 139
8. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ0 11
9. मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010 पृ0 69
10. वही पृ0 44
11. वही पृ0 10
12. लता शर्मा, सही नाम के जूते, भारतीय मुद्रा परिषद प्रकाशक, द्वितीय संस्करण, 2012 पृ0 41
13. वही, पृ0 85
14. अभय कुमार दुबे, भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2007, पृ0 34

मध्यकालीन उर्दू-साहित्य

डॉ० रियाजुल हसन

कुमाऊँ, विश्वविद्यालय नैनीताल

मध्यकाल में तुर्की, फारसी, हिन्दी साहित्य के बाद सबसे अधिक प्रगति उर्दू साहित्य में देखने को मिलती हैं। सल्तनत काल या उससे थोड़घ पहले विदेशी मध्य एशियन तुर्कों और हिन्दुओं के आपसी संम्पर्क के फलस्वरूप जिस बोलचाल की भाषा का विकास हुआ वही उर्दू या ''छावनियों और बाजारों की भाषा'' के नाम से जानी जाने लगी, लेकिन 200 वर्षो तक यह केवल बोलचाल की ही भाषा रही।[1] इसने लिखित भाषा का रूप 14वीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में ही ग्रहण किया इसका प्रारम्भिक नाम जबान-ए-हिन्दवीं था। इसका नाम उर्दू बाद में पड़घ। इसका जन्म कैसे हुआ इस पर केवल अनुमान लगाये गये है। आधुनिक विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति के बारे में कई मत प्रकट किये हैं। मुहम्मद हुसैन आजाद का मत हैं कि ''जब तुर्को द्वारा भारत लायी गयी फारसी भाषा का संम्पर्क पश्चिमी हिन्दी से हुआ तो ब्रजभाषा से उर्दू की उत्पत्ति हुई''।

महमूद शेरानी नामक एक पाकिस्तानी विद्वान का इससे भिन्न मत यह है। कि ''उर्दू का विकास एक और पंजाबी तथा सिन्धी और दूसरी और फारसी के सम्पर्क से हुआ वे कहते है। कि उर्दू का जन्म पश्चिमी हिन्दी या ब्रजभाषा से नही बल्कि पंजाबी से हुआ''।[2] अलीगढ़ के डॉ0 मसूद हुसैन ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि ''सल्तनत काल के प्रारम्भ में दिल्ली की बोलचाल की भाषा हरियानी थी। वे लिखते है, कि जब फारसी का हरियानी पर रोपण हुआ तो उसके परिणामस्वरूप उर्दू भाषा का जन्म हुआ। कालान्तर में हरियानी में फारसी शब्द और मुहावरे ऐसे घुल-मिल गये कि भाषा का दोहरा स्वरूप जाता रहा। इन व्याख्याओं पर शोध की छापे लगी हुई है। इसीलिए उन पर सावधनी से विचार किया जाना चाहिए। यद्यपि श्री शेरानी के मत को यों ही नही टाला जा सकता फिर भी ऐसा प्रतीत होता है, कि जैसे यह दिखाने का प्रयत्न सा किया गया है कि उर्दू दिल्ली की अपेक्षा पंजाब सिन्ध और मुल्तान यहा तक कि भारत के पहले के उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त से अधिक धनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। और इसीलिए पाकिस्तान के नवीन राज्य के कम से कम पश्चिमी भाग के लिए तो नयी नहीं है''।[3]

इस मत में शायद इस आलोचना को शान्त करने का प्रयन्त किया गया है। कि पाकिस्तान ने एक ऐसी भाषा अपनायी है, जो कि न तो लोगों की मातृभाषा ही है, और न देष में कही बोली जाती है। तृतीय मत के सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है, कि हरियानी और दिल्ली की खड़ी बोली में आपस में बहुत फर्क नहीं है। सभी तरह से एक ही हैं। फिर उर्दू को बहुत समय तक देहलवीं कहा जाता रहा, क्योंकि यह पंजाबी से नही बल्कि उस बोलचाल की भाषा से सम्बन्धित थी, जो कि दिल्ली के आस-पास बोली जाती है।

यह भी नही भूलना चाहिए कि कई-सौ वर्षो 1200 से 1700 ई0 तक उर्दू और पश्चिमी हिन्दी लगभग एक-सी रही थीं। इस कथन की पुष्टि अमीर खुसरों की और शुरू के सूफी सन्तों की काव्य रचनाओं में विशेषकर दोहों और गजलों में प्रयुक्त की गयी भाषा से सहज ही हो जाती है। कहा जाता हैं कि अमीर खुसरों केवल उर्दू के ही नही बल्कि हिन्दी के भी सबसे पहले कवियों में से है।[4] इस काल में उनके शब्द-भण्डार भी लगभग एक से रहे हैं, और उनका व्याकरण तो अब भी लगभग एक सा ही है। इसके विपरीत उर्दू को भारतीय इतिहास के किसी भी युग में सिन्धवी, पंजाबी, लाहौरी या मुल्तानी नही कहा जाता रहा है। इसे कम से कम 16वीं सदी तक तो हिन्दवीं या देहलवीं बराबर ही कहा जाता रहा। अबुल फजल इसका नाम देहलवीं देता है,[5] और यह उचित भी था। कि दिल्ली ही में इस सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा का जो कि बाद में उर्दू के नाम से जानी जाने लगी जन्म क्रमिक विकास के रूप में होता हैं। दिल्ली, उत्तरी-पश्चिमी, एशिया की विदेशी मुसलमान जातियों और मध्य तथा उत्तरी पश्चिमी भारत के हिन्दुओं की मिलन भूमि थी, इसी प्रदेश में हिन्दी का प्रथम ग्रन्थ चन्दवरदाई का पृथ्वीराज रासों लिखा गया था।

इस ग्रथं में न केवल खड़ीबोली, हरियानी, ब्रजभाषा, और राजस्थानी के ही बल्कि अरबी और फारसी के भी शब्द मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, कि ये शब्द इस प्रदेश की साहित्यिक भाषा के शब्द-कोष में प्रवेश पा चुके थे। जनसाधारण की इस नवीन भाषा उर्दू को विचारों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त भाषा बनने में काफी समय कम से कम 100 वर्ष अवश्य ही लग गये होगें। अमीर खुसरो के समय तक यह काफी उन्नति कर गयी थीं। अमीर खुसरो ने जिस सुगमता और खूबी से उर्दू का इस्तेमाल किया वह आश्चर्यजनक है। 16वीं सदी तक खुसरो और उसके बाद के लेखक जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, उसे हिन्दी विद्वान और उर्दू के विद्वान उर्दू होने का दावा करते रहे हैं। कभी किसी पंजाबी या सिन्धी लेखक ने इसके पंजाबी या सिन्धी होने का दावा नही किया।

अमीर खुसरो पर यह यह सन्देह भी प्रकट किया गया कि हिन्दी के शब्दों का प्रयोग करने वाला और हिन्दी के पद और पहेलियां लिखने वाला खुसरो क्या वही खुसरो था जो कि फारसी का कवि था, और जिसने कि फारसी में अनेक मसनवियां और ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे थे। लेकिन अमीर खुसरो ने अपने सुप्रसिद्ध 'गुर्रत-उल-कमाल' नामक दीवान की भूमिका में जो कुछ लिखा है, उसका ध्यान रखने पर इस बात में शक की कोई गुंजाइश नही रह जाती है, कि हिन्दी के पदों का रचयिता और अपने काव्य में हिन्दी के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग करने वाला खुसरो यही अमीर खुसरों था। ''वह अपने इस काव्य में एक जगह कहता है, चूंकि में हिन्द का तोता हूँ इसलिए हिन्दवी में मुझसे कुछ पूछो ताकि मै मीठी बात कर सकू अपने तृतीय दीवान की भूमिका में खुसरो लिखता है, कि मैने अनेक मित्रों में हिन्दवीं कविता के कुछ अध्याय वितरित कर दिये है''।[6]

सत्रहवीं सदी की प्रथम शताब्दी तक खुसरो के इतने बाद भी मुसलमान विद्वान खुसरो को ही हिन्दी में काव्य रचना करने का श्रेय देते रहे हैं। 'अरफात-उल-आशिकीन' का ''लेखक तकी औहादी'' जो कि सन 1606ई0 में जहाँगीर के दरबार में आया था, खुसरों की हिन्दी कविताओं का उल्लेख करता है। अपने 'निकातुश-शुरा' में सुप्रसिद्ध उर्दू कवि मीर तकी मीर लिखता है, कि उसके समय में भी अमीर खुसरो के हिन्दी गीत दिल्ली में बहुत ही जनप्रिय थे। एक परम्परा के अनुसार कहा जाता है, कि अपने आध्यात्मिक गुरू शेख निजामुद्दीन औलिया के निधन पर अमीर खुसरो ने निम्नलिखित हिन्दी पद पढ़ा था।

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डाले केश।
चल खुसरों घर आपने रैन भई चहुं देश।।[7]

तेहरवीं और चौदहवीं सदी में जो मुसलमान सूफी सन्त हिन्दुओं में और विशेषकर समाज के निम्न वर्गों में इस्लाम का प्रचार करने को उत्सुक थे। जिन्होंने अपने उपदेषों में जानबूझ कर जन भाषा का ही प्रयोग किया 13वीं और 14वीं सदी की यह भाषा जवान-ए-हिन्दवीं ही थीं। और वे दिल्ली तथा दिल्ली के आस-पास के जिलों में बोली जाती थी। हिन्दी लेखकों ने इस भाषा को हिन्दी कहा है, और उर्दू के आधुनिक लेखक इसे उर्दू बताते है। इनमें फर्क केवल लिपि का है। मुसलमान इसे फारसी लिपि में लिखते है, और हिन्दू देवनागरी में। अमीर खुसरों अपने नूहसिपर में लिखता है, ''अब हिन्द के हर सूबे की एक अपनी बोली है। उदाहरण के लिए यहा सिन्धी, लाहौरी, काश्मीरी, कनाड़ी, धुर, समुद्री, तिलन्दी, गुजारी, माबारी, गौरी, बंगाली और अवधी है, लेकिन दिल्ली और उसके चारों और प्रचलित भाषा वही हिन्दवीं है, जो कि प्राचीन काल से हिन्द में इस्तेमाल होती है, और जो सभी तरह की बातों में उपयोग की जाती है।[8]

जब किसी लेखक ने संस्कृत शब्दों और मुहावरों का प्रयोग अधिकता से किया तो वह भाषा हिन्दी कही जाने लगी, और जब फारसी तथा अरबी का अधिक प्रयोग हुआ तो वह उर्दू हो गयी। अधिकांश सूफी सन्त अपने षिष्यों से वार्तालाप करने में हिन्दवीं शब्दों का इस्तेमाल करते थे। कहा जाता है, ''कि शेख फरीदुद्दीन गंज शकर ने जिक्र (खुदा के नामों की आवृति) के लिए हिन्दवीं शब्द संकलित किये थे''।[9] बहुत से मुसलमान सूफियों ने कुछ ज्ञानप्रिय अपभ्रंष प्रेम कथाअें को भी इसी मिली-जुली भाषा में लिखा था। इन रचनाओं मे मुल्ला दाऊद की चन्दायन, कुबन की मृगावती, मन्झन की मधुमालती और मलिक मुहम्मद जायसी की पदमावत विषेष प्रसिद्ध हैं। मुल्ला दाऊद ने चन्दायन 14वीं सदी के अन्तिम चतुर्थांश में जूनाशाह खानेजहाँ के संरक्षण में लिखी थी। जूनाशाह फीरोज तुगलक के प्रसिद्ध वजीर खानेजहाँ मकबूल का पुत्र था। मृगावती पन्द्रहवीं सदी में लिखी गयी थी। ये सभी ग्रन्थ हिन्दी भाषा-भाषी आधुनिक उत्तर-प्रदेश में ही लिखे गये थे। इनमें से कुछ ग्रन्थों का सूफी पाठ किया करते थे। और लोगों को उपदेश देने में उन्हें उद्धत किया करते थे। हिन्दु श्रोताओं को इसी प्रकार संकलित कर लेते थे। उदाहरण के लिए शाहबू अली कलन्दर नामक एक सूफी सन्त ने निम्नलिखित सुन्दर दोहा लिखा था। जिसे कि वह और दूसरे सूफी सन्त अक्सर ही दुहराते रहते थे।

सजन सकारे जायगें, और नैन मरेगें रोय।
बिधना ऐसी कीजियों, कि भोर कबहुँ न होय।।[10]

कालान्तर में उर्दू और हिन्दी अलग-अलग हो गयी। मुसलमान लेखक और कवि धीरे-धीरे फारसी और अरबी शब्दों तथा फारसी रूपों एंव विषयों का अधिकाधिक प्रयोग करने लगे। जिसका नतीजा यह हुआ कि 300 वर्ष के हिन्दी के साथ सह-अस्तित्व के बाद उर्दू एक अलग भाषा बन गयी, लेकिन फिर भी पूरे सल्तनत काल में दिल्ली के सुल्तानों ने उर्दू को बिल्कुल ही प्राश्रय नही दिया, और न मुगलकाल में बादशाह मुहम्मद शाह के समय तक इसे कोई दरबारी संरक्षण ही मिला। इस पूरे मध्ययुग में देष की दरबारी भाषा फारसी ही रही। यही कारण है, कि फारसी ही सांस्कृतिक और बौद्धिक आदान-प्रदानों की भाषा बनी रही, लेकिन भारतीय मुसलमान फारसी को अपनी मातृभाषा के रूप में नही रख सके, और 18वीं सदी के प्रारम्भ ही में अपने घरों और दरबारों में जबाने हिन्दवीं बोंलने लगें ।

सन्दर्भ

1. श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ट सं0- 121
2. महमूद शेरानी- पजांब में उर्दू, पृष्ट सं0-21
3. मसूद, हुसैन- मुकदमा-ए-तारीखे जबान उर्दू, पृष्ट सं0-138
4. रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ट सं0-56
5. श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ट सं0- 122
6. अहमद, लईक- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ट सं0-61
7. वही, पृष्ट सं0-61
8. श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ट सं0- 124
9. निजाम- दि लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ शेख फरीदुद्दीन गंज-ए- शकर, पृष्ट सं0-103
10. अहमद, लईक- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ट सं0-61

प्रयोजनमूलक हिन्दी : अवधारणा एवं वर्गीकरण

डॉ० सुधा

एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी, रमाबाई राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकरनगर।

प्रयोजनमूलक हिन्दी शब्द अंग्रेजी के "फंक्शनल हिन्दी" के पर्याय स्वरूप स्वीकृत है। इस प्रकार यदि शब्दार्थ की दृष्टि से देखा जाए तो प्रयोजनमूलक हिन्दी ऐसी भाषा है जो विशिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होती है जो प्रशासन एवं राजनीति, विधि और न्याय, बैंकिंग एवं वाणिज्य, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, सूचना एवं जनसंचार, उद्योग जगत एवं अर्थशास्त्र, शोध, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में चिन्तन और अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर अपनी सार्थकता सिद्ध करती है। अधिकाधिक क्षेत्रों में प्रयुक्त होने एवं अपने अनुभव और सम्प्रेषण के अनेकानेक प्रयोजनों को सिद्ध करने में सक्षम यह भाषा अपनी विशिष्ट सोद्देश्यता के कारण प्रयोजनमूलक बनी। इस तरह प्रयोजनमूलक भाषा बेगवती नदी की धारा की भाँति अपना मार्ग स्वयं बनाती है। अपनी प्रयोग क्षमता का निरन्तर विकास करती है। प्रयोजन मूलक भाषा का सम्बन्ध जीवनयापन के विविध क्षेत्रों से होता है। इसे हिन्दी तथा अंग्रेजी में व्यावहारिक हिन्दी, कामकाजी हिन्दी, प्रयोजनी हिन्दी, प्रयोजनपरक हिन्दी, प्रयोगपरक हिन्दी, प्रायोगिक हिन्दी, फंक्शनल हिन्दी तथा अप्लाइड हिन्दी कहा जाता है, किन्तु इन सभी नामों को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है। उनकी दृष्टि में प्रयोजनमूलक भाषा से संकेत मिलता है कि इसका कुछ अंश निष्प्रयोज्य भी है। इस वजह से डॉ0 रमाप्रसन्न नायक आदि विद्वान इसे प्रयोजनमूलक के बजाय व्यावहारिक हिन्दी कहना उचित समझते हैं।[1] इसके अतिरिक्त भाषा चिंतक एवं ललित निबन्धकार डॉ0 विद्या निवास मिश्र "व्यावहारिक हिन्दी" नाम के हिमायती है। "केन्द्रीय हिन्दी संस्थान में प्रयोजनमूलक हिन्दी का प्रश्न तो ठीक उठाया है, शब्द कुछ भ्रामक चाहे हों। वस्तुत: 'फंक्शनल' के पर्याय के रूप में इसका मौजू नहीं है, 'फंक्शनल' के व्यावहारिक अधिक समीप होता है"।[2] हिन्दी की विदुषी डॉ0 श्रीमती टी0 दासवानी का मानना है कि "प्रयोजनमूलक हिन्दी की प्रयोजन सिद्धि स्वयं पर स्पष्ट नहीं है प्रयोजन से वस्तुत: तात्पर्य क्या है? भाषा प्रयोजन के अतिरिक्त होती ही क्या है? अगर प्रयोजन से मतलब किसी व्यवसाय-सिद्धि में प्रयुक्त होने वाली भाषा से है तब बात कुछ समझ में आती है।[3] "इसके विपरीत विद्वानों का एक वर्ग व्यावहारिक हिन्दी नाम की धारणा को अस्वीकार कर प्रयोजनमूलक विशेषण को सांकेतिक एवं सारगर्भित मानता है इस सन्दर्भ में डॉ0 नगेन्द्र का मन्तव्य है कि वस्तुत: प्रयोजनमूलक हिन्दी के विपरीत अगर कोई हिन्दी है तो वह निष्प्रयोजनमूलक नहीं वरन आनन्द मूलक हिन्दी है।

आनन्द व्यक्ति सापेक्ष प्रयोजन समाज सापेक्ष। आनन्द स्वकेंद्रित होता है और प्रयोजन समाज की ओर इशारा करता है। हम आनन्द मूलक हिन्दी के विरोधी नहीं है। इसलिए आनन्दमूलक साहित्य के हम हिमायती हैं।[4] डॉ0 बृजेश वर्मा प्रयोजनमूलक विशेषण में निहित संकेत को स्पष्ट करते हुए कहते हैं: निष्प्रयोजन हिन्दी कोई चीज नहीं है, लेकिन प्रयोजनमूलक विशेषण उसके व्यवहारिक पक्ष को अधिक उजागर करने के लिए प्रयुक्त किया गया है।[5] "प्रयोजनमूलक हिन्दी" का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए मोटूरी सत्यनारायण कहते हैं कि "जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लायी जाने वाली हिन्दी ही प्रयोजनमूलक हिन्दी है"।[6] डॉ0 विनोद गोदरे "व्यावहारिक हिन्दी" नाम से असहमति जताते हए प्रकट करते हैं "व्यापारिक हिन्दी के नामकरण साथ एक भ्रम यह भी जुड़ जाता है कि व्यावहारिक हिन्दी का अर्थ ऐसी हिन्दी से है-जिसमें व्याकरण एवं सामाजिक आचरण के बजाय व्यावहारिक उपयोग पर अधिक बल दिया जाता है। व्यावहारिक हिन्दी से तात्पर्य है-दैनिक जीवन में कार्य-साधन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली हिन्दी। ऐसी भाषा जिसकी संरचना में व्याकरण की अनिवार्यता के बजाय व्यावहारिक उपयोगिता अधिक हो। इसके विपरीत प्रयोजनमूलक भाषा में प्रशासन सम्पर्क तथा सम्प्रेषण आवश्यक होता है और उसमे उच्चारित वाक्य प्रयोग से लेकर लिखित

वाक्य तक व्याकरण सम्मत शुद्धता और सामाजिक भद्रता का आग्रह होता है। अतः व्यावहारिक हिन्दी की तुलना में प्रयोजनमूलक हिन्दी सम्बोधन अधिक सन्दर्भसंगत, अर्थगर्भित, लक्ष्यभेदी, स्पष्ट तथा सरल है।[7] इस नामकरण के विवादों से परे जाकर यदि तटस्थ रूप में देखा जाय तो आज प्रयोजनमूलक हिन्दी शब्द अंग्रेजी के "फंक्शनल लैंग्वेज" के पर्याय के रूप में प्रचलित एवं स्वीकृत किया जा चुका है। प्रयोजनमूलक का शाब्दिक अर्थ यदि देखा जाए तो कहा जा सकता है कि किसी निश्चित लक्ष्य को ध्यान में रखकर प्रयुक्त की गई भाषा। "वस्तुतः प्रयोजनमूलक भाषा, भाषा का वह तथ्यपरक अर्जित संविशेष रूप है जिसका प्रयोग किसी प्रयोजन विशेष अथवा कार्य विशेष के सन्दर्भ में होता है"।[8] इसके स्वरूप को परिभाषित करते हुए डॉ0 रघुवीर सहाय स्वीकार करते हैं "प्रयोजनमूलक हिन्दी की परिकल्पना यह मानकर चलती है कि वह ऐसी शब्दावली होगी जो ज्ञान के संप्रेषण में काम आएगी और इसीलिए बाकी शब्दावली से भिन्न होगी या उसपर आश्रित नहीं होगी"।[9] प्रयोग के आधार पर भाषा के दो रूप माने जा सकते हैं– पहला जिसका प्रयोग हम दैनिक व्यवहार, क्रियाकलाप में सहज उपयोग करते हैं। इसकी कोई परिभाषिक शब्दावली नहीं होती। इस भाषा का कोई मानक रूप नहीं होता। इसमें भावुकता, कलात्मकता का निषेध नहीं होता, जिसका अभ्यास व ज्ञान व्यक्ति अपने परिवेश के सहज रूप में प्राप्त कर लेता है। दूसरा रूप है–जिसका प्रयोग सामान्य जीवन के सन्दर्भों से भिन्न किन्ही विशेष कार्यों के संदर्भों में होता है और जिसे अभ्यास या ज्ञान विशेष द्वारा प्राप्त किया जाता है। यही दूसरा रूप प्रयोजनमूलक भाषा है, इसमें विशिष्ट ज्ञान और अनुभव के साथ प्रयुक्ति का समन्वय अपेक्षित होता है इसका अपना अलग विधान होता है। यह अपने प्रयोजनों के अनुकूल परिभाषिक शब्दावली का निर्माण करती है यह भाषा अपनी मानक संरचना के प्रति सजग होती है। यह व्यक्ति परक होने के साथ ही समाज सापेक्ष होती है जिसके मूल में जीविका विद्यमान होती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी इस नए सन्दर्भ में विस्तार के कारण रोजी–रोटी के नए अवसर प्रदान किए हैं। "हिन्दी की सामाजिक राष्ट्रीय प्रयोजनमूलक छवि ने हिन्दी को भाषा और साहित्य के पूर्व प्रयोजनों से पूरी तरह विमुक्त किया है और यह भाषा अब अधिक जीवनोपयोगी बनी है। यह परिवर्तन ही इंगित करता है कि हिन्दी का स्वरूप अपरंपरागत हो गया है और इसकी प्रकार्यात्मक कुशलता में वृद्धि हुई है। इसी नई हिन्दी को प्रयोजनमूलक हिन्दी कहा जा रहा है"।[10] यही प्रयोजनमूलक हिन्दी ही आज इस देश में बहुत बड़े फलक पर प्रयुक्त हो रही है। केंद्र व राज्य सरकारों के बीच संवाद स्थापित करने के अतिरिक्त एक ओर तो यह कम्प्यूटर, तार, टेलीप्रिंटर, दूरदर्शन, रेडियो, डाक, अखबार, फिल्म, विज्ञापन एवं जन संचार के माध्यमों को अपनाए हुए है तो दूसरी ओर शेयर बाजार, उद्योग बैंक, वाणिज्यिक उपक्रमों, विविध संस्थानों, विश्वविद्यालयों, कार्यालयों के पत्रों में आसानी से प्रयुक्त की जा रही है वहीं देश के तीर्थस्थलों, पर्यटन स्थलों में अपने शिष्ट रूप में प्रयोग में लायी जा रही है।

इस प्रकार विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न सामाजिक वर्गों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा विशेष प्रयोजनमूलक भाषा कहलाती है। अतः विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त प्रयोजनमूलक हिन्दी के रूप विभिन्न होंगे। ब्रजेश वर्मा ने प्रयोजनमूलक हिन्दी के दो मुख्य भेद किए हैं।

1. Core Hindi इसके चार उपभेद हैं।
   १. Official Hindi for Office Administration (कार्यालयी हिन्दी कार्यालय प्रशासन के लिए प्रयुक्त)
   २. Commercial Hindi for Commercial Administration (व्यवसायिक हिन्दी वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए)
   ३. Technical Hindi for Technical Vocational including Legal Profession (तकनीकी तथा विधिव्यवसाय में प्रयुक्त)
   ४. Socialised Hindi for Corriers in Public Relations (समाजी हिन्दी)
2. Advanced Hindi को उपर्युक्त चार उपभेदों से संबंधित ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के उच्चतर अध्ययन तथा साहित्यिक कर्म के लिए।

डॉ0 भोलानाथ तिवारी ने प्रयोजनमूलक हिन्दी के मुख्य रूप से निम्न भेद बताए हैं। उनमें उपर्युक्त सभी भेदों उपभेदों का समावेश हो जाता है।

१. बोलचालीय हिन्दी
२. व्यापारी हिन्दी (मंडियों की भाषा, दलालों की भाषा, सट्टा बाजार की भाषा)

३. कार्यालयी हिन्दी (कार्यालयों की विविधता के आधार पर भाषायी स्तर पर कुछ अंतर है)
४. शास्त्रीय हिन्दी (संगीत शास्त्र, काव्यशास्त्र, योगशास्त्र, दर्शनशास्त्र, राजनीति शास्त्र, विधिशास्त्र)
५. वैज्ञानिक तथा तकनीकी हिन्दी (बढ़ईगिरी, इंजीनियरिंग, प्रेस, फैक्ट्री, लुहारी, मिल आदि)
६. समाजी हिन्दी (सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा प्रयुक्त)
७. साहित्यिक हिन्दी (कविता, कला और साहित्य की विभिन्न विद्याओं की भाषा)
८. प्रशासनिक हिन्दी-प्रशासनिक कार्यो के लिए प्रयुक्त भाषा
९. जनसंचार माध्यम- पत्रकारिता, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि की भाषा ।

मोटूरी सत्यनारायण जो दक्षिण भारत के हिन्दी विद्वान है प्रयोजनमूलक हिन्दी के कुछ छः भेद माने हैं।

१. सामान्य संप्रेषण माध्यम (Simple Commnicative media)
२. सामाजिक (Socialise)
३. व्यावसायिक वाणिज्य (Commerciaise)
४. कार्यालयीय (Officiaise)
५. तकनीकी (Technicaise)
६. सामान्य साहित्य (General Literature)

प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी अपनी प्रयोजनीयता के विशेष गुण से अलंकृत है। जीवन में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इस भाषा का विशिष्ट रूप विशिष्ट प्रयोजन के अनुरूप प्रयुक्त होता है विश्व की बहुत सी ऐसी भाषाएं हैं। जिनका अस्तित्व साहित्य और बोलचाल के स्तर पर तो होता था किन्तु प्रशासन, राजकाज, विज्ञान-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अभिव्यक्त का माध्यम बनने का अवसर न प्राप्त होने के कारण कालांतर में लगभग समाप्त सी हो गई। अनुप्रयुक्तता की दृष्टि से हिन्दी के प्रयोजनमूलक रूपों में राजभाषा, कार्यालयीय, वाणिज्यक, व्यावसायिक, वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में प्रयुक्त हिन्दी का समावेश होता है। वैज्ञानिकता की दृष्टि प्रयोजनमूलक हिन्दी सम्बन्धित विषयवस्तु को विशिष्ट तर्क एवं कार्य-कारण संबंधों पर आश्रित नियमों के अनुसार विश्लेषित कर स्थापित करती है। इसका मुख्य आधार पारिभाषिक शब्दावली एवं तकनीकी प्रवृत्ति है। वैज्ञानिक भाषा एवं शब्दावली के अनुसार ही प्रयोजनमूलक हिन्दी की भाषा एवं शब्दावली में स्पष्टता, तटस्थता, विषय निष्ठता एवं तर्कसंगतता है। अपनी भाषिक विशिष्टता के चलते प्रयोजनमूलक हिन्दी अपने को सामान्य या साहित्यिक भाषा से अलग करती है। डॉ0 दंगल झाल्टे कहते हैं कि अपनी शब्द ग्रहण करने की अद्‌भुत शक्ति के कारण प्रयोजनमूलक हिन्दी ने अनेक भारतीय तथा पश्चिमी भाषाओं के शब्द-भंडार को आवश्यकतानुसार ग्रहण कर अपनी शब्द संपदा को वृद्धिगत किया है। प्रयोजनमूलक हिन्दी में तकनीकी एवं पारिभाषिक शब्दवली का प्रयोग अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है, जो उसकी भाषिक विशिष्टता को रेखांकित करता है प्रयोजनमूलक हिन्दी की भाषा सटीक, सुस्पष्ट गम्भीर, वाक्यार्थ प्रधान सरल तथा एकार्थक होती है और इसमें कहावतें, मुहावरे, अलंकार तथा उक्तियों का प्रयोग नहीं किया जाता है।[12]

प्रयोजनमूलक हिन्दी का अध्ययन एवं विश्लेषण की प्रक्रिया में उसके प्रयुक्तिगत, रूप भेद, भाषिक गठन तथा प्रचलन आदि सभी स्तरों पर समस्याएं व दोष वर्तमान है-प्रयोजनमूलक हिन्दी की प्रमुख बड़ी समस्या इसकी विज्ञान एवं तकनीकी, अर्थशास्त्र, भूगोल से संबंधित कठिन, पारिभाषिक शब्दावली। भौतिक, रसायन, गणित, विधि, कम्प्यूटर, अंतरिक्ष एवं मानविकी आदि विषयों पर पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण करते समय कई बार भार्वाभत्यजक शब्द नहीं मिल पाते जिससे उनकी आलोचना होती है। जिसके लिए आवश्यक है कि विज्ञान, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, सूचना प्रौद्योगिकी, कृषि, फिल्म, विज्ञापन, बैंक, बीमा, विधि, सम्बन्धित शब्दावली को बोधगम्य बनाया जाए।

इसकी दूसरी बड़ी समस्या इसके अनुवाद के स्वरूप उसकी संरचना की कठिनाई एवं अटपटापन। विदेशी शब्दों खासकर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित विज्ञान एवं तकनीक अपने देश की अपेक्षा पश्चिमी देशों में ज्यादा उन्नत एवं विकसित थी इसको जब अपने देश में लाया गया तो इन भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में अनुवाद करते समय जो शब्द गढ़े गए वे हिन्दी का प्रयोग करने वालों के लिए विज्ञान व तकनीक से भी ज्यादा कठिन हो गए, जिससे यह कहा जाने लगा कि हिन्दी में विशुद्ध वैज्ञानिक तथा

प्रौद्योगिकी के ज्ञान क्षेत्रों में अभिव्यक्त करने की क्षमता नहीं है। जबकि सच्चाई यह है कि अनुवादी रूप के कारण भाषा गठन एवं शब्दावली प्रयुक्ति में क्लिष्टता और अटपटापन आने की वजह से ऐसा होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अनुवाद एवं पारिभाषिक शब्दावली से सम्बन्धित शब्द बोधगम्य हो, जटिल न हो, बोल चाल की भाषा में प्रयुक्त हो सके। सहज संप्रेषणीय हो जिससे वह नित नई चुनौतियों का सामना कर सके।

आज हिन्दी के नए प्रयोगात्मक और प्रयोजनमूलक स्वरूप की क्षमता और संभावनाओं के बारे में संदेह की तनिक भी गुंजाइश नहीं है क्योंकि हिन्दी अब तीव्रता के साथ अपने पुराने साहित्यिक तथा समीक्षापरक पारंपरिक स्वरूप को छोड़कर कामकाज की भी भाषा बन गई है। आज हिन्दी पत्रकारिता, कानून, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, मीडिया, सूचना तकनीक की भाषा बनकर “Service Tool” बन गई है। आज यह कार्यालयी कामकाज के अतिरिक्त प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भाषा बनकर करोड़ों लोगों के जीविकोपार्जन का जरिया बन गई है। इसलिए हिन्दी ने परंपरागत सन्दर्भों से लेकर नई आवश्यकताओं तक देश-विदेश में अपनी संप्रेषणीयता को नया आयाम दिया है बस आवश्यकता है कि इसके व्यावहारिक एवं प्रयोजनमूलक क्षेत्रों के विषय को जनमानस तक पहुंचाने की सरकारी तंत्र को मन से स्वीकारने की।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. डॉ0 रमाप्रसन्न नायक, प्रयोजनमूलक हिन्दी, पृष्ठ-24
2. डॉ0 रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव, प्रयोजनमूलक हिन्दी, पृष्ठ-107
3. डॉ0 रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव, प्रयोजनमूलक हिन्दी, पृष्ठ-25
4. डॉ0 नगेन्द्र, प्रयोजनमूलक हिन्दी, पृष्ठ-69
5. डॉ0 बृजेश वर्मा?, प्रयोजनमूलक हिन्दी पृष्ठ-69
6. मोटूरी सत्यनारायण, प्रयोजनमूलक हिन्दी पृष्ठ-21
7. डॉ0 विनोद गोदरे, प्रयोजनमूलक हिन्दी, पृष्ठ-12
8. डॉ0 विनोद गोदरे, प्रयोजनमूलक हिन्दी, पृष्ठ-13
9. डॉ0 रघुवीर सहाय, प्रयोजनमूलक हिन्दी, पृष्ठ-17
10. डॉ0 बालेन्दु शेखर तिवारी, साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ-13
11. डॉ0 भोलानाथ तिवारी, अनुवाद विज्ञान, पृष्ठ-22
12. डॉ0 दंगल झाल्टे, प्रयोजनमूलक हिन्दीः सिद्धान्त और प्रयोग, पृष्ठ-43

सूफी मत का निर्गुणियाँ संतों पर प्रभाव

डॉ० विश्वनाथ द्विवेदी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, रमाबाई राजकीय महिला पी.जी. कॉलेज, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ.प्र.

हिन्दी साहित्येतिहास का भक्तिकाल अपनी कतिपय विशिष्टताओं के कारण स्वर्णयुग की संज्ञा से अभिहित है। शील, सदाचार, धर्म, कर्म, मनुष्यता आदि के शाश्वत् नैतिक एवं मानवीय मूल्यों से अलंकृत भक्ति युग कालजयी साहित्य लेकर उपस्थित हुआ। साधु-सन्तों, सूफियों, साधकों, हठयोगियों ने अपनी-अपनी तरह से आराध्य को रिझाने के मार्ग खोजे। संत मत का आविर्भाव हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अति महत्वपूर्ण घटना है। देश की विचित्र परिस्थितियों ने इस मत को जन्म दिया। संतों ने इन विचित्र परिस्थितियों का सामंजस्य करके देश का बड़ा उपकार किया। संतों ने ऐसे सामान्य भक्ति मार्ग की स्थापना की, जो हिन्दू और मुसलमान दोनों के बीच समान रूप से रखा जा सकता था। संत मत में केवल हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्म का ही समन्वय नहीं हुआ वरन् गोरखपंथियों के हठयोग, वेदान्तियों के ज्ञानमार्ग, सूफियों के प्रेमवाद तथा वैष्णवों के अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद का भी सुन्दर और सफल समन्वय हुआ। उसमें सामाजिक समन्वय का भी विशेष महत्त्व है। इस प्रकार के समन्वय द्वारा संत-मत ने हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषी प्रदेश दोनों को गौरवान्वित किया। संत लोग निर्गुणवादी होने के कारण प्रायः नामस्मरण उपासना करते थे। ये लोग मिथ्या आडम्बर और रूढ़िघ्यों के विरोधी थे। गुरु को ईश्वर के समकक्ष मानते थे।

''जाति पांति पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होईं' के अनुसार जाति-पाँति का कोई भेदभाव नहीं था। ऐसे संत साधारण धर्म तो मानते थे किन्तु साम्प्रदायिकता या वर्णाश्रम सम्बन्धी विशेष धर्म के पक्ष में नहीं थे। इन संतों ने वैयक्तिक साधना पर विशेष बल दिया है। महात्मा कबीरदास इस मत के प्रवर्तक थे। नानक, रैदास, दादूदयाल, मलूकदास एवं सुन्दरदास आदि इसके प्रबल पक्षधर थे।

संत मतावलंबी एकेश्वरवादी हैं। वे ब्रह्म के निराकार स्वरूप के उपासक हैं। उनका ईश्वर एक है जो हिन्दू, मुसलमान सबके लिए समान रूप से ग्राह्य है। वह संसार के प्रत्येक कण-कण में व्याप्त, ज्योतिस्वरूप, अलख और निरंजन है। उसकी प्राप्ति योग और निर्गुण भक्ति से सम्भव है। इस भक्ति में ज्ञान का प्राधान्य है। ऐसे ईश्वर की प्राप्ति में गुरु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सत्पुरुष से उत्पन्न माया ही सृष्टि की सृजन शक्ति है। वह सत्य भी है मिथ्या भी। संसार को भ्रम में डालने वाली मिथ्या माया का खण्डन किया गया है।

हठयोग- हठयोग का तात्पर्य बलपूर्वक ब्रह्म से मिलन है। यह मिलन शरीर के अंगों तथा सांस पर अधिकार प्राप्त कर उनका उचित संचालन करते हुए मन को एकाग्रकर परमात्मा के दिव्य स्वरूप का मनन करते हुए आत्मा के समाधिस्थ हो जाने पर होता है। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक परिश्रम के द्वारा ही ब्रह्म की अनुभूति करना हठयोग का आदर्श है।

गोरखनाथ द्वारा चलाए गए इस हठयोग का कबीर व अन्य कुछ निर्गुणियाँ संतों पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। नाथपंथ की अंतस्साधना में हृदय पक्ष शून्य था। उसमें प्रेमतत्त्व का अभाव था। कबीर को यह बात खटकती थी। निम्न पंक्तियों के माध्यम से कबीर ने इसकी व्यंग्यपूर्ण आलोचना की -

''झिलमिल झगरा झूलते बाकी रही न काहु।
गोरख अटके कालपुर कौन कहावै साहु।।
बहुत दिवस से हिंडिया सुन्नि समाधि लगाइ।
करहा पडिघ्या गाड़ में दूरि परा पछिताइ।।''

''सूफी मत का संत-साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध जो सूफी मत वाले मानते हैं तथा प्रेम की पीर का महत्त्व जो सूफियों में है प्रायः वही संत लोग भी स्वीकार करते हैं। सूफी मतानुसार आत्मा-परमात्मा के एकीकरण में शैतान बाधा डालता है और निर्गुण मत के अनुसार जीव और ब्रह्म के मिलन में माया बाधक है। ''माया महा ठगिनी हम जानी''। खुदा से मिलने के लिए बन्दे को अपनी आत्मा का परिष्कार करना पड़ता है। उसके लिए शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत-चार दशाएं मानी गई हैं। इस मत का प्रभाव यत्र-तत्र संत मत की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। संत का संतत्व सूफियों का सूफियाना भाव है। सन्तों का फक्कड़पन सूफियों का मस्तमौलापन और फकीरी है।

'सन्त हृदय नवनीत समाना' जैसा भाव ही सूफियाना अंदाज है। कबीर का रहस्यवाद अद्वैतवाद और सूफी मत के मिश्रण से बना है। इसमें आत्मा को स्त्री रूप में और परमात्मा को पुरुष रूप में मानकर दोनों का मिलन कराया है। जब तक ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती तब तक आत्मा विरहिणी के समान दुःखी रहती है। जब आत्मा-परमात्मा में एक्य होता है तो रहस्यवाद की आदर्शात्मक पूर्ति होती है। कबीर के अतिरिक्त संत-मत के अन्य कवियों ने भी इसी रहस्यवाद पर बल दिया है, पर उनमें कबीर जैसी आनुभूतिक तीव्रता नहीं है। संतों ने अपने गूढ़ और गम्भीर भावों को रूपक द्वारा प्रकट किया है। कहीं-कहीं ये रूपक बहुत ही अस्पष्ट हो गए हैं। कबीर ने भी इन रूपकों को उलटबांसी तथा आश्चर्यजनक घटनाओं की सृष्टि के लिए प्रयोग किया है। इन दोनों का सम्बन्ध रहस्यवाद से है। इन रूपकों के सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है कि ये भावना की अभिव्यक्ति में सहायक नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ –

'साईं के संग सासुर आई।
संग न सूती, स्वाद न माना,
गा जीवन सपने की नाई।।'

संतों के आध्यात्मिक, नैतिक एवं सामाजिक आदर्शों में बड़ी समानता थी, केवल उनकी प्राप्ति की विधि में अन्तर था।

संत जीवन की प्रयोगशाला में सत्य का अनुसंधान करते थे तथा साक्षात्कार किए हुए सत्यखण्डों ही अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में करते थे। संत-मत आध्यात्मिक एवं नैतिक आदर्शों में आत्मसंयम, अपरिग इन्द्रिय संयम, मानसिक संयम, आचार और व्यव सम्बन्धी संयम आदि का विशिष्ट महत्त्व था।

संतों की साधना केवल वैयक्तिक और एकान्तिक साधना नहीं थी। यह साधना समदृष्टि, अभेदमल सामाजिक समन्वय और सौहार्द की साधना थी। संदी के लिए ब्राह्मण-अब्राह्मण, हिन्दू-मुसलमान सब समान थे। सन्त विचारधारा प्राचीन भारत की विचारधारा का युगानुरूप प्रकाशन है। संतों ने जाति पांति के भेदभाव एवं ऊँच-नीच को समाप्त करके तथा कथित निम्न वर्णों को तथाकथित उच्चजातियों के अमानषिक अत्याचार से बचाकर उनमें आत्मबल का संचार किया। हिन्दू-मुस्लिम एक्य के प्रयास का श्रेय भी संतों को जाता है जो तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अपना महत्त्व रखता है। मध्यकाल में यह समस्या अत्यन्त विकट थी। भारतीय संस्कृति के अभ्युत्थान में इन संतों का योगदान अविस्मरणीय एवं स्तुत्य है। अधिकांश सूफी संतों ने हिन्दू-राजा-रानियों को अपने प्रेमाख्यानक काव्यों का आधार बनाया जिससे उनके प्रति संत-समाज कहीं अधिक अभिभूत हो उठा। समन्वय की इस विराट चेष्टा में सूफियों का योगदान एवं परवर्ती प्रभाव उल्लेखनीय है।

निर्गुण संत मन के सिद्धान्तों की विवेचना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उस पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और आचार्यों की अमिट छाप पड़ी है। उसका विशेष कारण यही है कि संत-मत का अविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब सामाजिक समन्वय की महती आवश्यकता थी। इन भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का संत मत में बड़ा ही सुन्दर तथा सफल समन्वय हुआ। सन्त मत पर इस्लामिक सूफी प्रभाव तीन रूपों में दृष्टिगत होता है।

1. संत-मत का आविर्भाव जिस युग में हुआ उस समय की राजनैतिक परिस्थितियां बड़ी विचित्र थीं। मुसलमानों का शासन उत्तर भारत में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने से हिन्दुओं के धर्म तथा संस्कृति पर आघात होने की प्रबल आशंका थी। उस समय एक ऐसे सामान्य धर्म की आवश्यकता थी जिसमें न तो हिन्दू धर्म का ही अस्तित्व मिटे और न उनका इस्लामी धर्म से ही कोई विरोध हो। इसके लिए संतों को कुछ इस्लामी प्रभावों को भी समयानुरूप ग्रहण करना पड़ा।
2. मूर्ति पूजा और बाह्य आडम्बरों का तिरस्कार सिद्धों और हठयोगियों दोनों ने किया। इन्हीं की परम्परा के कारण संत-मत में बाह्य-विधानों के प्रति घोर उपेक्षा-बुद्धि का पूर्ण प्रचार था। मुसलमानों के कारण संतों की इस प्रवृत्ति को बहुत प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार संत-मत पर मुसलमानी प्रभाव मूर्ति पूजा के खण्डन के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

3. सूफीमत के प्रेमवाद का प्रभाव भी संत-मत पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। सूफी-फकीर सन्तों से पहले भारतवर्ष में आकर बस गए थे। इन फकीरों का हिन्दू जनता पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। संतों ने भी सूफियों से 'प्रेमवाद' ग्रहण किया।

''जोगी जंगम से बड़ा, सन्यासी दरवेश।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुरलभ सतगुरु देश।।''

वास्तव में इस प्रेमवाद का संत-मत में विशेष महत्त्व है। इसका कारण यही है कि बिना प्रेम के संत-मत नाथपंथ की भांति शुष्क रह जाता। सूफियों के प्रेम-तत्त्व के ग्रहण से ही सन्त मत में रमणीयता आ गई और जनता का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ।

जाति-पांति के भेदभाव का विरोध भी सूफियों के प्रेम का आत्यंतिक प्रभाव है। प्रेम एकीकृत में विश्वास करता है उसके विभेद का स्थान नहीं है।

'कबिरा जाति न पूछिए, पूछ लीजिए ज्ञान' कहकर कबीर ने जाति-पांति की खाई को मिटाने का प्रशंसनीय कार्य किया। लगभग सभी संतों के वैयक्तिक जीवन भी सूफी मत से प्रभावित दिखते हैं।

संत जाति-पांति के नियमों के कट्टर विरोधी थे। इनकी दृष्टि में सब मनुष्य समान रूप से भगवद भक्ति के अधिकारी थे। ''जाति पांति पूछै नहि कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।' उक्ति इस सिद्धान्त का द्योतक है। इसका विशेष कारण यही है कि सन्त लोग न तो शास्त्रज्ञ विद्वान थे और न ही वेद जीवी। इसका एक कारण अधिकतर विद्वान यह भी मानते हैं कि अधिकांश संत निम्नवर्ण से थे। संतों ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की उद्‌भावना की थी। हिन्दू धर्म से जाति-पांति के भेदभाव को दूर करके ही इस्लाम के सम्पर्क में आने का मार्ग प्रशस्त हो सका।

दादूदयाल, रैदास, सहजोबाई, दयाबाई, रज्जोबाई जैसे निर्गुणियां संत इसीलिए भक्ति मार्ग से जुड़ सके। रैदास चमड़े का काम करते थे। इसीलिए सन्तकवियों ने कहीं भी कर्मण्यता को छोड़ने की बात नहीं कही है। उनमें लोक-संग्रह की भावना विद्यमान ऋ्रऋ थी। आत्मशुद्धि सन्तमत का मूल सिद्धान्त है। सन्तों ने वैयक्तिक साधना पर अधिक जोर दिया है। हिन्दू-मुसिलम एकता का सर्वाधिक श्रेय ज्ञानाश्रयी शाखा को है। सफियों के प्रेम को भक्ति मिश्रित ज्ञान के साथ मिलाकर संतों ने सामाजिक मंथन से एकता का नवनीत निकाला जो तयुगीन समाज के लिए वरदान सिद्ध हुआ।

यद्यपि संत-मत सूफियों से काफी प्रभावित रहा है फिर भी सन्त मत पर सिद्धों और हठयोगियों का प्रभाव भी कई रूपों में परिलक्षित होता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सिद्धों और हठयोगियों-दोनों ने ब्रह्म-पूजा, जाति पांति, तीर्थाटन इत्यादि की असारता बताई और शास्त्रज्ञ विद्वानों को फटकार लगाई। यही परम्परा आगे चलकर सन्तों ने भी अपने ढंग से जारी रखी। सिद्धों और हठयोगियों ने रहस्यदर्शी बनकर शास्त्रज्ञ विद्वानों का तिरस्कार करने और मनमाने रूपकों के द्वारा अटपटी बानी में पहेलियां बुझाने का मार्ग सन्तों को प्रदर्शित किया। उन्होंने सन्तों को घट के भीतर चक्र, नाडिघ्यां, शून्य देश आदि मानकर साधना करने की बात और नाद, बिन्दु, सुरति, निरति ऐसे शब्दों की उद्धरणी करना सिखाया -

'दीपक ग्यान सबद धुनि घंटा, परम पुरिख तहाँ देव अनन्ता।
परम प्रकाश सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा।।''

नाथों और हठयोगियों की साधना में प्रेम का नितान्त अभाव था, वे विरक्ति, त्यागी और हठी बनकर अपना साध्य प्राप्त करना चाहते थे। सन्तों की भाषा में जो सधुक्कड़ी और फक्कड़पन दिखायी देता है वह नाथों, सिद्धों और हठयोगियों की देन है। संतों की गुरु-महिमा पर भी सूफियों का प्रभाव दिखाई देता है। जायसी लिखते हैं-

''गुरु सुआ जे हि पंथ देखावा।
बिनु गुरुजगत को निरगुन पावा।''

इसी प्रकार कबीर जैसे संत भी गुरु को परमसत्ता से भी बड़ा मानते हैं।

संत-मत की रहस्यवादी प्रवृत्तियों में भी सूफियों की झलक मिलती है। विद्वानों ने सही कहा है- 'साध ना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है भक्ति के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। इस रहस्य का मूल आधार अद्वैतवादी चिन्तन है। कबीर कहते हैं -

'जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है,
बाहिर-भीतर पानी।

फूटा कुम्भ जल जलहि समाना,
यहु तथ कथहु गियानी।।'

सन्त कवियों ने आत्मा को स्त्री मानकर परमात्मा रूपी पुरुष से मिलन कराया है-

'दुलहिनि गावह मंगलाचार।
हम घर आये हो राजा राम भरतार।।''

संत श्रेष्ठ की उपरोक्त पंक्तियों में सूफी मत की रहस्यवादी चेतना के स्पष्ट दर्शन होते हैं। जिस प्रकार जायसी ने 'पद्मावत' में नागमती और पद्मावती के माध्यम से नारी के माया रूप और सत् रूप का बोध कराया है ठीक उसी प्रकार महात्मा कबीर ने भी स्त्री के दोनों स्वरूपों का वर्णन करते हुए माया से सावधान रहने को कहा है- नारी का कामिनी रूप माया है वह संसार में भरमाने वाला है अत: साधकों द्वारा विगर्हणीय है। कबीर कहते हैं -

''नारी की झाँई परत अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति जे नित नारी के संग।।।

नारी के सत्-पक्ष का निरूपण करते हुए कबीर ने लिखा है -

''पतिव्रता मैली भली काली, कुचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर वारौं कोटि सरूप।।''

इस प्रकार विषद विवेचन के उपरान्त हम इ निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि निर्गुणियां संतों के वैविध्यपर्ण साहित्य के लगभग सभी पक्षों पर सूफी-मत का प्रभाव प्रतिबिम्बित होता है। कबीर से लेकर दादूदयाल रज्जब, धुनिया पठान सन्त जगजीवन साहब तक की सम्पूर्ण संत परम्परा सूफियों के प्रभाव से आच्छादित है। यद्यपि संत-काव्य की वैविध्यता को देखते हरा उसमें वैष्णव नैतिक सिद्धान्त, वैष्णव भक्ति-भावना. औपनिषदिक निर्गुणवाद, बौद्ध साधकों और नाथपंथियों के पारिभाषिक शब्द आदि का भी मणिकांचन संयोग दिखायी देता है किन्तु सूफी-साधकों की साधना का अपूर्व सम्मिलन हुआ है। इनके अतिरिक्त मुसलमान एकेश्वरवादी पैगम्बर धर्म का मूर्ति-खण्डन और एकेश्वरवाद तथा हिन्दू-मुस्लिम भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के कारण जो विषम परिस्थितियां उत्पन्न हो गई थीं, उनका प्रभाव भी संत-मत पर स्पष्ट है। वास्तव में निर्गुण सन्त काव्यधारा अपने समय का पूरा प्रतिनिधित्व करती है। उसमें बहुत कुछ पुराना है, उस पुराने को नवीनता प्रदान कर प्रस्तुत किया गया है। यही उसकी विशेषता है। "सन्त काव्य ताजमहल की इमारत तो नहीं है पर वह शैल-शिखरों की भांति सहज सुन्दर एवं मनोरम है।"

संदर्भ सूची-

(1) सूफी संत रूमी - विश्वनाथ, राजपाल प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण।
(2) सूफी, शशिकान्त सदैव, डायमंड पॉकेट बुक्स।
(3) सूफी संत और उनकी कथाएं, शिव शर्मा, अतिन प्रकाशन।
(4) सूफी मत और हिन्दी सूफी काव्य, डॉ0 नरेश, वाणी प्रकाशन।
(5) चिश्तिया सूफी सम्प्रदाय, डॉ0 मोहन लाल गुप्ता, सुभद्रा प्रकाशन।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रवादः एक विश्लेषण

डॉ० अरविन्द कुमार वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकर नगर, उ०प्र०

शोध सारांश

यह प्रांत, भाषा, धर्म, जाति, संस्कृति, रीति-रिवाज, भौगोलिक स्थिति, रहन-सहन के तरीके आदि पर आधारित हो सकती है। क्षेत्रीयतावाद से आशय अपने क्षेत्र विशेष से ज्यादा लगाव रखना संघ या भारत राष्ट्र के प्रति कम। साधारण शब्दों में, क्षेत्रवाद से अभिप्रायः किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोगों की उस भावना एवं प्रयत्न से होता है, जो उन्हे अपने क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए प्रेरित करती है। भारतीय राजनीति के संदर्भ में क्षेत्रवाद एक अपभ्रंश प्रयोग है, जिसका अभिप्राय है-राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य की अपेक्षा किसी छोटे क्षेत्र के प्रति लगाव, भक्ति या विशेष आकर्षण। इस तरह क्षेत्रवाद राष्ट्रीयता की भावना का विलोम है, जिसका उद्देश्य है-संकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति। भारतीय राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में यह एक ऐसी धारणा है, जो राष्ट्रीय एकीकरण को समाप्त करते हुए पृथकतावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती है। आज अलगाववाद और क्षेत्रवाद दोनों देश के समक्ष एक सबसे बड़ी चुनौती है। अलगाववाद की समस्या पड़ोसी देशों के द्वारा एक कूटनीतिक रूप में इस्तेमाल की जा रही है। मिजोरम का मिजो नेशनल फ्रंट, आसाम का असम गण परिषद, बोडोलैंड, जम्मू कश्मीर में तमाम सक्रिय आतंकवादी एवं अलगाववादी संगठन के द्वारा चुनौतियां पेश की जाती रहती है। देश के आंतरिक भागों में अगर देखा जाए तो चरमपंथी जिसमें नक्सली, उल्फा उग्रवादी और एमसीसी उग्रवादी प्रमुख रूप से देश की एकता और अखंडता के लिए खतरा बन के उभरे हैं। क्षेत्रीयता ने सांस्कृतिक, भाषाई, धार्मिक विवादों को हवा दी है जिससे राजनीतिक दलों का तथा क्षेत्रीय दलों का उभार ज्यादा हुआ है। 2019 के आम चुनाव में भारत निर्वाचन आयोग की सूचना के अनुसार भारत में कुल पंजीकृत राजनीतिक पार्टियां 2293 हैं, जिसमें 59 प्रांतीय दल एवं 07 राष्ट्रीय पार्टियां हैं। यह हमारी विविधता एवं वैचारिक भिन्नता को दर्शाता है।

मुख्यशब्दः सांस्कृतिक, भाषायी, विभिन्नता में एकता, अलगाववाद, क्षेत्रीय अस्मिता, साम्प्रदायिकता, सामाजिक-आर्थिक विकास, क्षेत्रवाद, राष्ट्रीय एकीकरण, पृथकतावादी।

भारतीय राजनीति के समक्ष देश की एकता और अखंडता एक चुनौती बनकर रही है चाहे वह ब्रिटिश भारत में हो या आजाद भारत में। संविधान निर्माताओं एवं उस समय देश के एकीकरण में योगदान देने वाले उन तमाम राजनीतिज्ञों द्वारा इस बात को बखूबी से समझा गया। देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए संवैधानिक स्तर से, राजनीतिक स्तर से और प्रशासनिक स्तर से प्रयास किए गए। अफसर रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक-POLITICS IN INDIA 'में क्षेत्रीयतावाद पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला है और देश की एकता और अखंडता के समक्ष उपस्थित चुनौतियां को चिन्हित हैं।[1] देशके एकीकरण को बनाए रखने में जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, वीपी मेनन का योगदान विशेष रुप से उल्लेखनीय रहा। इन सभी के सद प्रयासों से ही आजाद भारत में उन 562 देसी रियासतों का विलय संभव हो पाया। बाद में भाषायी, क्षेत्रीय आधारों पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग उठी जिस पर केंद्रीय सरकारों ने संविधान के अनुसार निर्णय लिया। जिसमें पंजाब, हरियाणा, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़, झारखंड, तेलंगाना आदि का नाम लिया जा सकता है। लेकिन यह मांगे दिन-ब-दिन और जोर पकड़ती जा रही हैं तथा राज्यों के पुनर्गठन एवं पृथक क्षेत्र की मांग आकार ले रही हैं।

भारतीय राजनीति के संदर्भ में यह विषय आज के परिप्रेक्ष्य में भी समसामयिक लग रहा है क्योंकि आजकल विभिन्न राज्यों के निर्माण की मांग जोर पकड़ रही है। मैं आप सभी को क्षेत्रीयतावाद पर थोड़ी स्थिति स्पष्ट करना चाहता हूं।

जैसा कि क्षेत्रीयतावाद से तात्पर्य है-ऐसी अवस्था से जिसमें देश के किसी एक छोटेसे क्षेत्र के लोग आर्थिक, भौगोलिक, सामाजिक आदि कारणों से अपने को एक पृथक अस्तित्व के लिए जागरूक है।[2] इसमें राष्ट्र की अपेक्षा क्षेत्र विशेष से ज्यादा लगाव या आकर्षण दिखता है। यह आकर्षण-प्रांत, भाषा, जाति, धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाज, भौगोलिक स्थिति, रहन-सहन के तरीकों आदि पर हो सकता है।[3]

भारत में क्षेत्रीय आंदोलन दो प्रकार से चल रहे हैं-

पहला-क्षेत्र विशेष की अलग राज्य बनाने की मांग जैसे-गोरखालैंड, पूर्वांचल, बोडोलैंड, तेलंगाना, सौराष्ट्र, विदर्भ, हरित प्रदेश, बुंदेलखंड आदि।

द्वितीय-भारतीय संविधान के ढांचे के बाहर अलग राज्यों की मांग जैसे-खालिस्तान, द्रविड़िस्तान, उल्फा, स्वतंत्र कश्मीर आदि को लेकर आतंकवाद और कारगिल जैसे संकट झेले गए।[4]

क्षेत्रीयतावाद से प्रेरित मांगे-जहां तक क्षेत्रीयतावाद स्वायत्तता को लेकर चलता है, वहां एक सीमा तक उचित है क्योंकि इसकी जड़ में जहां भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषाई विभिन्नताएं हैं। वही सबसे मुख्य कारण आर्थिक असंतुलन या पिछड़ापन है। क्योंकि यह लोग मानते हैं कि यदि उन्हें अलग राज्य का दर्जा मिल जाएगा तो वे अपनी नीतियां एवं स्वयं बनाएंगे। केंद्र से ज्यादा से ज्यादा अनुदान लिया जा सकेगा और उस क्षेत्र विशेष की प्राकृतिक संपदा का दोहन वहां के लोगों के विकास के लिए अधिकतम किया जा सकेगा। औद्योगिक इकाइयों को उस क्षेत्र विशेष में पूंजी निवेश के लिए आकर्षित किया जा सकेगा जिससे क्षेत्र विशेष की कंगाली और दरिद्रता को दूर किया जा सकेगा। जैसा कि इन सभी मांगों को लेकर पृथक राज्यों की मांग निम्न जगहों पर हो रही है।

गोरखालैंड-1980 से सुभाष घीसिंग के नेतृत्व में 'गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट' इस मांग को चला रहा है। शुरू में यह स्वतंत्र राज्य की मांग की बाद में 1985 से स्वायत्तता की मांग कर रहा है। यह पश्चिमी बंगाल के पर्वतीय क्षेत्रों को मिलाकर अलग गोरखालैंड राज्य की मांग कर रहा है। इनकी गतिविधि का केंद्र मुख्यतः दार्जिलिंग, ड्मर्सऔर सिलीगुड़ी रहा है।

बोडोलैंडः बोडो असम के आदिवासी हैं, जो ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी मैदानी क्षेत्र के संपूर्ण भाग को अलग करके एक बोडो राज्य बनाना चाहते हैं। यह आंदोलन चार जिलों-कोकराझार, नलबाड़ी, रागुल एवं उत्तरी लमीमपुरमें मुख्य रूप से चल रहा है। इनके नेता उपेंद्र नाथ ब्रह्मा थे।यह मांग मार्च 1987 से प्रारंभ है। असम गण परिषद के अध्यक्ष प्रफुल्ल कुमार महंत इस आंदोलन को आगे बढ़ा रहे हैं। असम भारत का 70% कच्चा तेल, 60% चाय पैदा करता है। गुवाहाटी की अपेक्षा बोडो क्षेत्र का विकास नहीं हुआ है।

पूर्वांचलः पूर्वी उत्तर प्रदेश के 27 जिलों को मिलाकर एक पृथक पूर्वांचल राज्य बनाए जाने की मांग की जा रही है। इस क्षेत्र के लोगों का कहना है कि 4.3% आबादी वाला क्षेत्र उत्तराखंड राज्य बन सकता है तो 30% आबादी वाला पूर्वांचल राज्य क्यों नहीं बन सकता। इसके साथ पश्चिमी उत्तर प्रदेश की तुलना में पूर्वी उत्तर प्रदेश का विकास कम हुआ है। पूर्वांचल राज्य की मांग चार दशक से भी पुरानी है। औपचारिक रूप से 2 जून 1962 को स्वतंत्रता सेनानी और सांसद विश्वनाथ सिंह गहमरी पूर्वांचल राज्य की दयनीय दशा का लोकसभा में चित्रण किया जिसे सुनकर प्रधानमंत्री नेहरू की आंखें भर आई। 1930 के गोलमेज सम्मेलन में महात्मा गांधी और जिन्ना दोनों ने संयुक्त प्रांत को विभाजित कर आगरा और अवध में बांटने की बात की थी।पूर्वांचल ज्यादा छोटा राज्य भी नहीं होगा यह पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक, गुजरात से बड़ा होगा।

लेकिन आजाद भारत में इसे बाद में व्यापक समर्थन है। 1982 में लालगंज सीट आजमगढ़ के उपचुनाव में स्वर्गीय वीरेंद्र प्रताप शाही ने हर शंकर तिवारी के खिलाफ लड़ते हुए अलग पूर्वांचल राज्य की मांग को मुद्दा बनाया था। उत्तर प्रदेश की चार बार मुख्यमंत्री बनी सुश्री मायावती सरकार का इसे भरपूर समर्थन है और उन्होंने 2017 के विधानसभा चुनाव में इसका अहम मुद्दा बनाया था। समाजवादी पार्टी इस मांग का विरोध करती है।

हरित प्रदेश: इसकी मांग दिसंबर 1953 से ही की जा रही है जिसमें राज्य पुनर्गठन आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति फजल अली के समक्ष 16 जिलों के जनप्रतिनिधियों ने ज्ञापन देकर इन जिलों को मिलाकर अलग राज्य की मांग की। लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू और तत्कालीन मुख्यमंत्री गोविंद बल्लभ पंत ने इसे स्वीकार नहीं किया। लेकिन फिर भी आयोग के सदस्य के०एम०पणिकर ने 30 जून 1955 को राज्य के विभाजन पर रिपोर्ट दी। बाद में यह शांत हुआ। चौधरी चरण सिंह ने कांग्रेस से अलग होकर एक अलग दल 'भारतीय क्रांति दल' बनाया और विभाजन की मांग को जोर-शोर से आगे बढ़ाया। 1977 में वह भी शांत हो गए। वर्तमान में क्षेत्रीय दल 'लोकदल' के अजीत सिंह कि पार्टी इस मांग को आगे बढ़ा रही हैं। बसपा सुप्रीमो मायावती और बीजेपी का भी समर्थन इस मांग को है। सपा इसका भी विरोध करती हैं।

बुंदेलखंड: उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र को मिलाकर अलग राज्य के निर्माण की बात की जा रही है। 1996 में भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष ने विधानसभा चुनाव में घोषणा की कि यदि भाजपा सत्ता में आई तो वह इसे स्वायत्तता देगी। बसपा भी इस मांग की पक्षधर है। मायावती सरकार ने 'बुंदेलखंड विकास निगम' की घोषणा कर आर्थिक पैकेज की घोषणा की थी।[5]

विदर्भ: यह महाराष्ट्र में अलग राज्य की मांग है जो स्वयं महाराष्ट्र के अस्तित्व में आने के बाद से, 1960 से ही शुरू हो गई थी। यह नागपुर क्षेत्र के लोगों की मांग है।

मिथिलांचल: बिहार में मिथिलांचल राज्य की मांग झारखंड के निर्माण हो जाने पर जोर पकड़ रही है।

जम्मू कश्मीर: जम्मू कश्मीर को विभाजित करने की मांग 21वीं सदी में जोर पकड़ रही है जिसमें जम्मू, कठुआ, उधमपुर, डोडा, पुंछ और राजौरी जिले शामिल होंगे।इसके साथ कश्मीर को दो भागों में बांटने की बात-उत्तर-पूर्व क्षेत्र कश्मीरी पंडितों के लिए और लद्दाख को एक पृथक केंद्र शासित प्रदेश बनाए जाने की मांग है।

इसके अलावा सौराष्ट्र राज्य की मांग भी हैजो तत्कालीन भारतीय राजनीति के समक्ष एक चुनौती पेश कर रही है।

अलगाववाद से प्रेरित मांगे-भारतीय राजनीति में राजनीति से प्रेरित तथा पड़ोसी देशों द्वारा प्रायोजित अलगाववादीआंदोलन एक विकराल समस्या है। यह अलगाववादी संगठनों द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से देश की एकता और अखंडता के लिए चुनौती पेश कर रहा है। अलगाववाद से प्रेरित कुछ क्षेत्रों के मांगे अग्रलिखितहै-

खालिस्तान की मांग-यह 1980 के दौर में बहुत जोर से थी जिसे संत जरनैल सिंह भिंडरावाला ने आगे बढ़ाया था।इसे स्वर्ण मंदिर सैनिक कार्यवाही द्वारा समाप्त किया गया। लेकिन पंजाब की एक प्रमुख राजनीतिक दल-अकाली दल ने इसे हवा देना शुरू कर दिया। लेकिन 15 जून 1985 को अकाली दल के अध्यक्ष हरचंद सिंह लोंगोवाल ने आतंकवाद की कटु निंदा की और हिंदू सिक्ख एकता पर बल दिया, जो बाद में राजीव गांधी और लोंगोवाल के समझौते से समाप्त हुआ।

स्वतंत्र कश्मीर की मांग: स्वतंत्र कश्मीर की मांग जो कि भारत और पाकिस्तान के तनाव की जड़ बना रहा है। इसको लेकर दोनों देशों के बीच चार युद्ध प्रत्यक्ष और अपरोक्ष रूप से हो चुके हैं-1948, 1965, 1971 और 1999 का कारगिल युद्ध। यहां के कुछ क्षेत्रीय संगठन जिसमें हुरियंत कॉन्फ्रेंस, जम्मू कश्मीर लिबरेशन फ्रंट आदि अलगाववाद को हवा देते हैं। लेकिन कभी-कभी मुख्यधारा के राजनीतिक दलों द्वारा भी राजनीतिक बिबसता बस या राजनीति तुष्टिकरणमेंसह देते नजर आते हैं। जिसमें नेशनल कॉन्फ्रेंस और पीडीपी प्रमुख है।

उल्फा (यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट आफ असम): यह आंदोलनकारी असम को भारतीय संघ से अलग कर अलग राज्य बनाना चाहते हैं। असम में 126 विधानसभा क्षेत्र हैं जिसमें 40 से अधिक क्षेत्रों में यह आंदोलन सक्रिय है। उल्फा का कहना है कि प्राकृतिक संसाधनों के दृष्टिसे देखे तो असम प्राकृतिक संपदा का खजाना है। जंगली वस्तु तथा तेल के मामले में काफी धनी है। उत्तर पूर्वी रेलवे लाइन का 60% भाग इन्हीं क्षेत्र में है। लेकिन 10% ही यहां के कर्मचारी हैं। यह आंदोलन अप्रैल 1979 से चल रहा है। इन्हें वर्मा, चीन से सहायता मिल रही।

इसके अलावा दक्षिण में द्रविड़स्तान, नागालैंड में अलगाववाद, मणिपुर में अलगाववाद, त्रिपुरा में अलगाववाद, मेघालय में अशांति, अरुणाचल प्रदेश में अशांति, मिजोरम में अशांति आदि जगह पर अलगाववाद सक्रिय है।

क्षेत्रीयतावाद के कारण:

1- भौगोलिक कारण जिसमें विशाल राज्य

2- सांस्कृतिक कारण जिसमें सांस्कृतिक विविधता

3- आर्थिक असंतुलन-महाराष्ट्र का विधायक, उत्तर प्रदेश का पूर्वांचल और बुंदेलखंड का क्षेत्र, आंध्रा का तेलंगाना, बिहार का छत्तीसगढ़।6

4- भाषा संबंधी विविधता

5- सामाजिक संरचना-जाति धर्म संप्रदाय अमीर गरीब का भेद।

6- राजनीतिक कारण जिसमें विभिन्न दलों द्वारा क्षेत्रीयता को बढ़ावा।

7- जाति और सांस्कृतिक विभिन्नताएं।

क्षेत्रीयता का प्रभाव:

1- पृथक राज्यों की मांग जो की भाषाएं जाति सांस्कृतिक आदतों पर है। जैसे-हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, गोवा, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, दिल्ली, मेघालय, उत्तराखंड, झारखंड, छत्तीसगढ़ आदि।

2- स्वायत्तता की मांग।

3- केन्द्र राज्य संबंधों पर विवाद।

4- सीमा विवाद।

5- अंतरराज्यीय और भाषायी विवाद।

6- नदी जल बंटवारे का विवाद-कावेरी नदी जल विवाद, दिल्ली और उत्तर प्रदेश के बीच में नदी जल विवाद।

7- अलगाववादी प्रवृत्ति-मिजोरम, नागालैंड और जम्मू कश्मीर।

8- क्षेत्रीय दलों एवंसंगठनों का विकासजैसे-शिवसेना, महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना,असम गण परिषद, डी०एम०के०, अन्नाडी०एम०के०, अकालीदल, तेलगुदेशम, इण्डियन नेशनल लोकदल, नेशनल कांफ्रेंस आदि हैं।

9- समग्र आर्थिक विकास का निर्णय लेने में बाधा।

10- राष्ट्रवाद तथा एकीकरण को धक्का विशेषकर भूमि पुत्र सिद्धांत के तहत जो कि महाराष्ट्र दिल्ली तथा असम में आए दिन देखने को मिलता है।[7]

निदान-समान आर्थिक विकास, भाषा विवाद का हल निकाला जाए, हिंदीको संपर्क भाषा के रूप में विकसित किया जाए, सभी संस्कृतियों को महत्व, केंद्रीय मंत्रिमंडल का संतुलितनिर्माण, केन्द्र राज्य संबंधों का सुदृढ़ीकरण। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों से संपर्क, दक्षिण पूर्व एशियाई देशों से सड़क संपर्क, पूर्वोत्तर की बाढ़ समस्या का निदान, पूर्वोत्तर मंत्रालय का गठन, आर्थिक पैकेज की घोषणा, वर्तमान में सरकार 'पूरब चलो' की नीति अपना रही है, जिसके तहत केंद्रीय बजट में पूर्वोत्तर के लिए अधिकतम धन की व्यवस्था की जा रही है।राज्यों के पुनर्गठन में राज्य पुनर्गठन आयोग ने चार शर्ते रखी-1-प्रशासन की सुविधा, 2-विकास की आवश्यकताओं की समानता, 3-वित्तीय स्वायत्तता, 4-सांस्कृतिक समरूपता।

समीक्षा: भाषा के आधार पर राज्यों के निर्माण के बाद बहुत ही पुरानी है। नेहरू जी का वैसेतो 'भारतकी विविधता में एकता' का आनंद आता था। लेकिन भाषाई आधार पर राज्यों के गठन के खिलाफ थे। कांग्रेस ने 1917 में ही भाषा के आधार पर राज्यों के निर्माण का समर्थन किया। 1928 में नेहरू रिपोर्ट में भी इस बात को दोहराया गया था। 1948 में गांधी जी ने कहा था कि-''हमें भाषा को केंद्र रखकर राज्यों को बनाने में तत्परता दिखानी चाहिए।'' अर्थात जितनी भाषाएं उतने प्रांत। संविधान-निर्माण के दौरान ही भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की मांग जोर पकड़ने लगी थी। 1952 में तेलुगु भाषी लोगों के लिए अलग राज्य की मांग को लेकर पोट्टी श्रीरामुलु ने आमरण अनशन किया। 1952 को जब पोट्टि श्रीरामुलू जब अनशन पर बैठे तो नेहरू ने उन्हें पूरी तरह

नजरअंदाज किया। बाद में नेहरू कुछ कर पाते की पोट्टी श्रीरामुलू की 15 दिसंबर को मौत हो गई। 17 दिसंबर को नेहरू ने आंध्र को अलग राज्य बनाने की घोषणा की। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक क्षेत्रों से भाषा के आधार पर अलग राज्यों के गठन की मांगे आनी आरम्भ हो गई तथा इसके लिए आन्दोलन आरम्भ हो गए। इन आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप केंद्र सरकार ने राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन किया। इस आयोग के अध्यक्ष न्यायाधीश फजल अली तथा सदस्य के०एम० पाणिकर तथा एच०एन० कुंजरूथे। इस आयोग ने 1956 मे भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन करे स्वीकार करते हुए 14 राज्य तथा 6 केंद्र शासित क्षेत्रों के गठन की सिफारिश की। आयोग की सिफारिशों के परिणाम स्वरूप 1960 में बंबई राज्य का विभाजन करके महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्य स्थापित किए गए। इसी प्रकार 1966 में तत्कालीन पंजाब का विभाजन हुआ तथा पंजाब व हरियाणा नामक राज्य अस्तित्व में आए। यह आग मुंबई पहुंची और वहां भी मराठी और गुजराती के नाम पर प्रांत बन गए। पंजाब तीन राज्यों में बांटा-पंजाब, हरियाणा और हिमाचल।8 इधर झारखंड, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ राज्य बने। उत्तर पूर्व में कई राज्यों को आकार मिला। कांग्रेस सरकार ने 2013 में आंध्र प्रदेश से अलग तेलंगाना को राज्य का दर्जा दिया। के. चंद्रशेखर राव दूसरी बार 2020 में मुख्यमंत्री बने हैं। जम्मू कश्मीर से धारा 370 आर्टिकल 35 एको समाप्त कर उस का पुनर्गठन किया गया है जिसमें लद्दाख, जम्मू एवं कश्मीर को तीन केंद्र शासित क्षेत्रों में बांटनेकी योजना है।

निष्कर्षः इसकी जड़ में देखें तो भयंकर आर्थिक पिछड़ापन है तेलंगाना के किसानों की आत्महत्याएं, बुंदेलखंड के किसानों की आत्महत्याएं। ऐसा भी नहीं है कि छोटे राज्य विकास की गारंटी है। जैसा की आंकड़ों के आलोक में-छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड का उदाहरण लिया जा सकता है। झारखंड में 2014 से पहले पिछले 9 साल में 6 सरकारें बदली हैं। जिसमें शिबू सोरेन और मधु कोड़ा जैसे मुख्यमंत्री भी रहे।[9] नक्सल पांव पसार रहा है। छत्तीसगढ़ थोड़ा नसीब वाला है। रमन सिंह अच्छे मुख्यमंत्री हैं दोबारा जनादेश पाए हैं। वहां भी नक्सल पांव पसार रहा है लेकिन 80 प्रतिशत लोग किसी तरह पेट पालते हैं। वैसे तो छोटे राज्य बनाने के पक्ष में कई पार्टियां हैं। अमेरिका का 13 से 50 प्रांत बनना उसकी एकता और मजबूती की तरफ इशारा करता है। अमेरिका और मजबूत हुआ है ना कि कमजोर। उत्तराखंड, झारखंड, छत्तीसगढ़, तेलंगाना जो नए राज्यों का निर्माण हुआ है उनकी विकास दर को देखा जाए तो कहीं ना कहीं पहले की अपेक्षा उनके विकास के को गति मिली है। इनमें से बहुत से प्रदेश अपने मातृ प्रदेश से विकास में आगे निकल गए हैं।

संदर्भ ग्रंथावलीः

1- KOTHARI, RAJINI, POLITICS IN INDIA, pp-330&332
2. MAHESHWARI, DR- SHRI RAM, STATE GOVERNMENT IN INDIA, p-185
3- दहिया भीम सिंह 'हरियाणा में सत्ता की राजनीतिः जाति व धन का खेल' ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली 2009
4- कश्यप सुभाष 'दल-बदल व राज्य की राजनीति' श्रीवाली प्रकाशन, मेरठ 1970
5- सुरेन्द्र कटारिया, भारत में लोक प्रशासन, आरबीएसए पब्लिशर्स, जयपुर, पेज-221
6- जैन, डॉ. पुखराज, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा-2010 पृ० 249-260
7. A- G- NOORANI, THE SONS OF THE SOIL DOCTRINE, INDIAN EXPRESS, 20 APRIL, 1980, p&6-
8- कश्यप सुभाष, 'गठबन्धन की सरकार और भारत में राजनीति, प्रकाशन-एन०बी०डी०टी, नई दिल्ली, 1997
9- रजनी, कोठारी, 'भारत में राजनीति-कल और आज' वाणी प्रकाशन, हिंदी प्रस्तुति एवं संपादन अभय कुमार दुबे, पृ०-313

भारतीय संविधान सभाः समीक्षात्मक अध्ययन

चन्द्रभान

असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अकबरपुर, अंबेडकर नगर (उत्तर प्रदेश)

शोध सारांश

लोकतंत्र की एक विशेषता है कि वहां के लोगों को अपने अनुसार संविधान बनाने की स्वतंत्रता है। भारत में संविधान सभा की मांग का स्वतंत्रता आंदोलन से घनिष्ठ संबंध रहा है। 1857 की क्रांति के बाद ब्रिटिश सरकार भारत को संवैधानिक शासन में शामिल करने के लिए समय-समय पर अधिनियम और विधेयक लाती रही लेकिन इन सभी का लक्ष्य भारतीयों के आत्मीय और स्वशासन की मांग को पूरा करना ही नहीं था बल्कि इसका लक्ष्य ब्रिटिश शासन को परिस्थिति अनुसार ढालना था। एक और कारण संविधान सभा की मांग के पीछे यह रहा है कि भारतीयों के मन में कहीं न कहीं ये भावना थी कि ब्रिटिश सरकार द्वारा जितने सुधार लाए जा रहे हैं, वह थोपे जा रहे हैं। भारतीयों को अपनी वैधानिक स्थिति सुनिश्चित करने का अधिकार होना चाहिए। इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर भारतीयों के द्वारा समय-समय पर संविधान निर्माण एवं स्वयं संविधान निर्माण के प्रयास किए जाते रहे हैं। कैबिनेट मिशन इन्हीं सब मांगों को और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा लाया गया जिसके तहत संविधान सभा का चुनाव हुआ और उसी संविधान सभा ने संविधान निर्माण को अंतिम रूप दिया।

शब्दावली: संविधान, संविधान सभा, होमरूल लीग, संवैधानिक विकास, अधिनियम, नेहरू रिपोर्ट, उत्तरदायी सरकार, साइमन कमीशन, कैबिनेट मिशन, अंतरिम सरकार, स्वराज, ब्रिटिश सरकार, कांग्रेस अधिवेशन, डोमिनियन स्टेट, संविधान निर्माण, संविधान सभा पुनर्गठन।

संविधान सभा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-संविधान सभा के सिद्धांत का दर्शन सर्वप्रथम 1885 के तिलक के स्वराज विधेयक में देखने को मिलता है। 1916 में होमरूल लीग आंदोलन चलाया गया जिसमें घरेलू शासन संचालन की मांग अंग्रेजों से की गई। 1817 में ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि उसका भारत में अंतिम ध्येय उत्तरदायी शासन की स्थापना करना है लेकिन यह निर्णय विदेशी सरकार पर निर्भर करेगा कब और कितना करना है। 1919 के अधिनियम में इस बात को ज्यों का त्यों दोहराया गया। कांग्रेस के द्वारा इसे अपर्याप्त, असंतोषजनक और निराशाजनक कहा गया।[1] कांग्रेस ने 1918 के दिल्ली में अपने 33वें अधिवेशन में आत्म निर्णय और पूर्ण स्वराज की मांग रखी थी। संविधान सभा की स्पष्ट मांग महात्मा गांधी द्वारा 5 जनवरी 1922 को किया गया और कहा गया कि भारतीय संविधान भारतीयों की इच्छा अनुसार होगा। इसी वर्ष श्रीमती एनी बेसेंट के सुझाव पर केंद्रीय और प्रांतीय विधान मंडलों के सदस्यों की सभा बुलाई गई थी। इस सभा ने संविधान के आवश्यक तत्वों की रूपरेखा तैयार की इसी के आधार पर 1924 में भारतीय कामनवेल्थ विधेयक का प्रारूप राष्ट्रीय सम्मेलनों में तैयार किया गया। जनवरी 1925 में गांधी की अध्यक्षता में सर्वदलीय सम्मेलन में इस विधेयक को रखा गया और निर्णय हुआ कि इसे ब्रिटिश संसद में प्रस्तुत किया जाए। लेकिन प्रथम वाचन के बावजूद भी इस विधेयक का भाग्य श्रमिक दल की हार के साथ सो गया। लेकिन यह पहला प्रयास था।[2]

1924 में पंडित मोतीलाल नेहरू ने एक प्रयास प्रस्ताव पेश किया जिसे भारी बहुमत से स्वीकार किया गया। इसी प्रस्ताव पर 1919 के अधिनियम की कमियों की जांच के लिए एलेग्जेंडर मुंडी मेन की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की। समिति

ने विधेयक के कार्य संचालन पर संतोष व्यक्त किया। जिस पर भारतीय नेताओं में भारी प्रतिक्रिया हुई अंततः केंद्रीय विधान सभा ने ऐसे संविधान की मांग की जो भारतीयों द्वारा बनाया गया हो। 1927 में उत्तरदायी शासन की स्थिति का पता लगाने के लिए 7 सदस्यीय सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में साइमन आयोग नियुक्त किया गया। इसका भारतीयों ने विरोध किया क्योंकि यह पूर्णतः अंग्रेजों की समिति थी। इसमें एक भी भारतीय नहीं था भारतीय संविधान के सिद्धांतों पर एक रिपोर्ट 1928 में मोतीलाल नेहरू द्वारा पेश की गई जो नेहरू रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसका मुंबई में किया गया इसके अंतर्गत ब्रिटिश भारत का पहला लिखित संविधान बनाया गया जिसने मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों के अधिकारों तथा अखिल भारतीय संघ एवं डोमिनियन स्टेट के प्रावधान रखे गए। इसका सबसे प्रबल विरोध मुस्लिम लीग और रियासतों के राजाओं द्वारा किया गया। यह भारतीयों द्वारा संविधान निर्माण का प्रथम प्रयास था।

1929 में जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का लाहौर सम्मेलन हुआ। जिसमें पूर्ण स्वराज की मांग की गई 1936 में कांग्रेस का फैजलपुर सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें कांग्रेस के मंच से पहली बार चुनी हुई संविधान सभा द्वारा संविधान निर्माण की मांग की गई। 31 अक्टूबर 1929 को वायसराय लार्ड इरविन ने घोषणा की कि साइमन रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया जाएगा। इस सम्मेलन में संविधान के बारे में विभिन्न वर्गों का अधिकतम सहयोग का प्रयास किया जाएगा। 1930 से 1932 तक तीन गोलमेज सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों के परिणाम स्वरुप ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत पत्र जारी किया। इसमें संवैधानिक सुधारों को स्वीकार किया गया जिसके परिणाम स्वरुप 1935 का अधिनियम लाया गया। इस अधिनियम का विभिन्न संगठनों ने विरोध किया। 1934 में स्वराज पार्टी ने आत्म निर्णय के अधिकार की मांग की और विकल्प भारतीयों द्वारा संविधान निर्माण बताया। कांग्रेस ने भी श्वेत पत्र के विरोध में निर्वाचित प्रतिनिधियों की संविधान सभा की मांग की। इस मांग को कांग्रेस ने अपने दिसंबर 1936 के लखनऊ अधिवेशन में संविधान के अर्थ एवं महत्व पर प्रकाश डाला। आगे चलकर 1937 और 1938 के अधिवेशन में भी इस मांग को कांग्रेस ने दोहराया। महात्मा गांधी ने कहा था कि हम ऐसी संविधान सभा चाहते हैं जो भारतीय मस्तिष्क का वास्तविक दर्पण हो।''[3]

14 सितंबर 1939 के अधिवेशन में कांग्रेस ने अपनी मांग को पुनः दोहराया यद्यपि यह मांग डोमिनियन स्टेट तक ही सीमित थी। इसी बीच सांप्रदायिक समस्या ने नया मोड़ ले लिया मुस्लिम लीग ने कहा कि उसकी स्वीकृति के बिना कोई संवैधानिक विकास नहीं हो सकता। 1940 में ब्रिटिश सरकार द्वारा परोक्ष रूप से भारतीयों द्वारा संविधान सभा की मांग को पहली बार माना गया। मार्च 1942 को स्टेफर्ड क्रिप्स ने भारत की संवैधानिक समस्या के बारे में जो रिपोर्ट पेश की उसमें संविधान सभा की मांग को स्पष्टतः स्वीकार किया गया था। कृषि योजना में यह कहा गया कि संविधान सभा में ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। प्रांतीय विधानमंडल के निम्न शब्दों के सारे सदस्य निर्वाचक मंडल के रूप में संविधान सभा का निर्वाचन अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर करेंगे। संविधान सभा के सदस्य संख्या निर्वाचक मंडल के सदस्य संख्या का दशांश होगी। देसी राज अपने प्रतिनिधि जनसंख्या के आधार पर रखेंगे। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने इस पर दो प्रतिबंध लगाए। (1) कोई प्रांत यदि इस संवैधानिक स्थिति को स्वीकार ना करना चाहे तो ब्रिटिश सरकार को वर्तमान संवैधानिक स्थिति कायम रखने का अधिकार हो। संघ में रहने के लिए प्रांतीय विधानसभा की 60: बहुमत से स्वीकृति हो तथा संविधान में सम्मिलित ना होने वाले राज्यों को ब्रिटिश सरकार संविधान देने को तैयार होगी। (2) ब्रिटिश सरकार और संविधान सभा के बीच संधि हो। भारतीयों ने क्रिप्स प्रस्ताव द्वारा प्रस्तावित संविधान सभा को अस्वीकार कर दिया क्योंकि यह भारतीयों की नहीं बल्कि इसे भारतीयों की संविधान सभा मान ली गई थी।

1942 कांग्रेस के भारत छोड़ो आंदोलन में कांग्रेस ने घोषणा की कि वह स्वाधीनता के बाद स्थायी राष्ट्रीय सरकार और संविधान सभा का आयोजन करेगी। इसी बीच कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिए गए और भारतीय संवैधानिक समस्या का 1945 तक कोई हल नहीं निकला। 1945 में इंग्लैंड में चुनाव हुए और मिस्टर एटली प्रधानमंत्री बन कर आए। भारत में लार्ड लिनिलिथिगो के स्थान पर लॉर्ड वेवल वायसराय बनकर आये। उन्होंने घोषणा की कि सरकार संविधान सभा को यथाशीघ्र बुलाना चाहती है लेकिन इससे पहले केंद्रीय और प्रांतीय विधानसभा मंडलों के चुनाव हो जाने चाहिए। चुनाव में कांग्रेस को 8 प्रांतों में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुए उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत में बहुमत मिला तथा बंगाल, पंजाब, सिंध में बड़े दल के रूप में उभरी। कांग्रेस को प्रांतीय सभाओं के 492 स्थानों में से 428 पर विजय प्राप्त हुई।

कैबिनेट मिशन योजना एवं संविधान सभा गठन:-द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद जुलाई 1945 में ब्रिटेन में मिस्टर एटली की सरकार बनी। भारत की स्वतंत्रता के प्रश्न का हल निकालने के लिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने कैबिनेट के तीन मंत्री लॉरेंस, क्रिप्स, एलेग्जेंडर को भारत भेजा। मंत्रियों के इस दल को कैबिनेट मिशन के नाम से जाना जाता है। मार्च 1946 में कैबिनेट मिशन भारत आया जिसकी अध्यक्षता ''सर पैथिक लारेंस'' ने की तथा दो अन्य सदस्य स्टेफर्ड क्रिप्स और ए0वी0 एलेग्जेंडर थे। आयोग द्वारा तत्कालीन समय में शासन का सही निर्धारण करने का प्रयास किया गया। 24 मार्च 1946 को कैबिनेट मिशन दिल्ली पहुंचा। 16 मई को कैबिनेट ने अपनी योजना प्रकाशित की। योजना में संविधान निर्माण के सिद्धांतों और प्रक्रिया दोनों का विस्तार से उल्लेख किया गया था। मिशन ने संविधान निर्माण के प्रस्तावित संगठन के बारे में वयस्क मताधिकार की स्थिति को असंभव माना क्योंकि इससे ज्यादा देरी हो जाएगी। आत: प्रांतीय विधानसभाओं का निर्वाचन कार्य संस्था के रूप में प्रयोग किया जाए। विधानसभा में कुल 389 सदस्य (दिसंबर 1946-जून 1947) होंगे जिसमें 292 देशों के प्रतिनिधि, 04 चीफ कमिश्नर क्षेत्रों के प्रतिनिधि दिल्ली, कुर्ग, कर्नाटक, अजमेर-मेरवाड़ा, ब्रिटिश बलूचिस्तान-पाक) और 93 देसी रियासतों के प्रतिनिधि। इन प्रतिनिधियों का सांप्रदायिक आधार पर विभाजन 213 सामान्य, 79 मुसलमान और 4 सिक्ख था। इसके अतिरिक्त योजना में निम्न प्रावधान थे:-

1. प्रत्येक प्रांत द्वारा भेजे जाने वाले सदस्यों की संख्या उसकी जनसंख्या के आधार पर निश्चित की जाए और प्रत्येक 10 लाख पर एक प्रतिनिधि का नियम अपनाया जाए।
2. प्रांतों को इस आधार पर दिए गए स्थान, उन में निवास करने वाली प्रमुख जातियों की संख्या के अनुपात में बांट दिया जाए। प्रत्येक जाति के प्रतिनिधियों को उच्च जाति के द्वारा निर्वाचित किया जाए। मतदाताओं को तीन वर्गों साधारण, सिक्ख (केवल पंजाब), मुसलमान में बांटा जाए।
3. रियासतों को भी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधि देने का प्रावधान किया गया। उनका चुनाव संविधान सभा के लिए चुने गए समझौता समिति और देशी रियासतों की तरफ से बैठाई गई समिति की आपसी बातचीत से तय होना था।
4. प्रांतों के अलग संविधान की भी व्यवस्था की गई इसके लिए कहा गया कि संविधान सभा की प्रारंभिक बैठक के बाद सदस्य अपने आप को तीन भागों में बांट लेंगे।

   (क) हिंदू बहुमत वाले प्रांतों के प्रतिनिधि जैसे मद्रास, मुंबई, संयुक्त प्रांत बिहार और उड़ीसा।

   (ख) मुस्लिम बहुमत वाले उत्तर पश्चिमी प्रांतों के प्रतिनिधि पंजाब, बलूचिस्तान, उत्तर प्रदेश प्रांत।

   (ग) मुस्लिम बहुमत वाले उत्तर पूर्वी प्रांतों के प्रतिनिधि बंगाल, आसाम।

तीनों वर्गों द्वारा पहले अपने अपने प्रांतों और वर्गों के संविधान का निर्माण फिर संघीय संविधान का निर्माण किया जाएगा।

यद्यपि योजना के कई दोष हैं लेकिन मुस्लिम लीग के लिए भी इसी के अंदर एक ही संविधान सभा का प्रावधान होने के कारण कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया। कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार जुलाई 1946 में चुनाव हुए संविधान सभा के कुल 389 में से 296 के लिए चुनाव हुए। चुनाव के बाद जो दलीय स्थिति उभरी वह निम्न है:-

कांग्रेस 208, मुस्लिम लीग 73, यूनियनिस्ट पार्टी 1, यूनियनिस्ट मुस्लिम 1, यूनियनिस्ट शेड्यूल कास्ट 1, कृषक प्रजा पार्टी 1, अछूत जाति संघ 1, सिख (कांग्रेस अतिरिक्त) 1, साम्यवादी 1, निर्दलीय 8.

संविधान सभा में शुरू में कैबिनेट योजना को मुस्लिम लीग ने स्वीकारा लेकिन बाद में बहिष्कार करने लगी। 9 दिसंबर 1946 को संविधान सभा का विधिवत उद्घाटन हुआ इसमें मुस्लिम लीग ने भाग नहीं लिया। उसने पाकिस्तान के लिए प्रथक संविधान की मांग की। लीग को मनाने का हर प्रयास निष्फल रहा। अंतत: दो संविधान सभाओं की स्वीकृति के साथ संविधान सभा का पुनर्गठन किया गया। अब पाकिस्तान के लिए मुस्लिम लीग अपना अलग संविधान बना रही थी और भारतीय संविधान सभा भारत के लिए। इस प्रकार संविधान सभा का निर्माण तीन चरणों में हुआ:-

प्रथम चरण कैबिनेट मिशन के अनुसार संविधान सभा का गठन हुआ जिसकी सदस्य संख्या 389 रखी गई।

द्वितीय चरण 3 जून 1947 की विभाजन योजना के साथ संविधान सभा का पुनर्गठन हुआ और सदस्य संख्या 324 रखी गई जिसमें 235 स्थान ब्रिटिश प्रांतों के लिए और 89 स्थान देसी राज्यों के लिए रखा गया।

तृतीय चरण रियासतों के प्रतिनिधि समय-समय पर संविधान सभा में सम्मिलित अलग-अलग समय पर हुए हैदराबाद की रियासत के प्रतिनिधि शामिल नहीं हुए थे।

संविधान सभा के प्रमुख सदस्य:-जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, डॉक्टर भीमराव अंबेडकर, के0एम0 मुंशी, गोपाल स्वामी आयंगर, अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर, पट्टाभि सीतारामय्या, श्रीमती दुर्गाबाई, ठाकुरदास भार्गव, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद। संविधान सभा में नेहरू और पटेल शक्ति के केंद्र थे दोनों में विवाद होने पर बहस लंबी चलती थी नेहरू आदर्शवादी थे तो पटेल व्यावहारिक थे। अंबेडकर कानून के पंडित थे। गोपाल स्वामी अयंगर बहुत योग और अनुभव पुरुष थे। के0टी0 शाह और के0एम9 मुंशी मार्क्सवादी थे। देश विभाजन के बाद संविधान का पुनर्गठन 31 दिसंबर 1947 को किया गया। अब संविधान सभा की कुल सदस्यों 389 के स्थान पर 299 सदस्य जून 1943 जनवरी 1950 ही रह गई जिनमें 229 चुने हुए थे वही 70 मनोनीत थे। जिनमें कुल महिला सदस्यों की संख्या 15, अनुसूचित जाति के 26, अनुसूचित जनजाति के 33 सदस्य थे। प्रत्येक 10 लाख की जनसंख्या पर एक सदस्य को चुना जाएगा, सदस्यों को तीन भागों में बांटा जाएगा 1-सामान्य 2-मुस्लिम 3 (पंजाब)-4।

इसी के आधार पर अंतरिम सरकार का गठन 1946 में किया गया। जिसमें 2 सितंबर 1946 से कार्य करना प्रारंभ किया। जिसमें मुस्लिम लीग ने भाग नहीं लिया। इस सरकार का अध्यक्ष तत्कालीन वायसराय लॉर्ड वेवल था तथा उपाध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। इस सरकार में सदस्य संख्या नेहरू सहित 14 रखी गई। 26 अक्टूबर 1940 को इस सरकार का पुनर्गठन किया गया। मुस्लिम लीग ने 5 प्रतिनिधि इसमें शामिल किए।

मार्च 1947 में माउंटबेटन भारत के वायसराय बने। उन्होंने 3 जून 1947 को एक योजना प्रस्तुत की जिसे विभाजन/माउंटबेटन/जून योजना के नाम से जाना जाता है। इसे 18 जुलाई 1947 को ब्रिटेन के राजा ने पास कर दिया। इस योजना की क्रियान्विति 15 अगस्त 1947 के भारत स्वतंत्रता अधिनियम में हुई। इसके निम्न प्रावधान थे:-

1 भारत को दो-दो डोमिनियन स्टेटों में बांटा गया (1) भारत (2) पाकिस्तान

2 भारत से ब्रिटिश सम्राट के सभी अधिकार हटा लिए गए।

3 पूर्वी बंगाल, पश्चिम बंगाल, सिंधु, उत्तरी पश्चिमी सीमांत प्रदेश तथा असम का सिलहर जिला पाकिस्तान को दे दिया गया।

4. भारत का शासन जब तक संविधान का निर्माण पूर्ण ना हो, 1935 के भारत शासन अधिनियम से चलाना तय किया गया।

5 संविधान सभा को संप्रभु/संप्रभुता की स्थिति प्राप्त हो गई।

6 भारत का वायसराय माउंटबेटन बना रहा लेकिन पाकिस्तान में गवर्नर जनरल या वायसराय मोहम्मद अली जिन्ना बने।

संविधान निर्माण की कहानी:-9 दिसंबर 1946 को संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन संसद भवन के केंद्रीय कक्ष (आज का संसद भवन सेंट्रल हाल) में प्रारंभ हुआ। सच्चिदानंद सिन्हा को स्थाई अध्यक्ष बनाया गया। संविधान सभा में पहली बैठक के अंतर्गत 207 सदस्यों ने भाग लिया। बाद में 11 दिसंबर 1946 को डॉ0 राजेंद्र प्रसाद को स्थाई अध्यक्ष का विधानसभा का चुना गया। संविधान सभा को संबोधित करने वाले प्रथम व्यक्ति जेबी कृपलानी थे। स्वतंत्र देश की मांग करते हुए मुस्लिम लीग ने बैठक का बहिष्कार किया।[4] दूसरी बैठक 11 दिसंबर 1946 को हुई जिसमें स्थाई अध्यक्ष डॉ राजेंद्र प्रसाद को बनाया गया। इसी बैठक में उपाध्यक्ष एच0सी0 मुखर्जी तथा संवैधानिक सलाहकार बी0एन0 राव थे। तीसरी बैठक 13 दिसंबर 1946 को बुलाई गई जिसमें नेहरू जी द्वारा उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया गया। संविधान सभा में संविधान निर्माण की दिशा में पहला कदम जवाहरलाल नेहरू के उद्देश्य प्रस्ताव से शुरू हुआ। 13 से 19 दिसंबर 1946 तक के संविधान सभा में विचार विमर्श हुआ और अंतत: इसे संविधान सभा ने 22 जनवरी 1947 को अपना लिया। इन्हीं उद्देश्य प्रस्तावों के आधार पर भारतीय संविधान की प्रस्तावना निर्मित की गई इसके बाद विभिन्न समितियों का निर्माण हुआ। संघ संविधान समिति, प्रांतीय संविधान समिति, संघ शक्ति समिति, मूल अधिकारों, अल्पसंख्यकों आदि से संबंधित परामर्श समिति, प्रारूप समिति आदि।

इस प्रकार संविधान सभा ने 2 वर्ष 11 माह 18 दिन में संविधान का निर्माण किया। कुल खर्च 6.4 करोड़ रुपए हुआ। 29 अगस्त 1947 को संविधान सभा ने प्रारूप समिति की नियुक्ति जिसके अध्यक्ष डॉ बी0आर0 अंबेडकर बनाए गए। प्रारूप समिति ने भारतीय

संविधान का प्रारूप फरवरी 1948 को संविधान सभा में प्रस्तुत किया। 18 नवंबर 1948 से संविधान सभा में प्रारूप संविधान पर धारावार विचार शुरू हुआ। संविधान सभा में कुल 11 सत्र और 165 बैठकें हुई। 165 में से 114 दिन प्रारूप समिति पर विचार करने में लगे। प्रारूप समिति ने 141 बैठकों में भारतीय संविधान का निर्माण किया था। प्रारूप समिति 21 फरवरी 1948 को संविधान सभा का प्रारूप संविधान सभा के समक्ष रखा। संविधान सभा ने उस पर कुल 7635 संशोधन प्रस्ताव प्रस्तावित किए लेकिन उनमें से 2473 संशोधन प्रस्तावों पर ही बहस हो पाई। इस प्रकार संविधान सभा की कार्यवाही एवं वाद-विवाद के मूल अध्ययन से संविधान में प्रयुक्त शब्दावली का अर्थ स्पष्ट निकाला जा सकता है। अंतिम रूप से भारतीय संविधान 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियों के रूप में अस्तित्व में आया।5 अनुच्छेद अर्थात अनुच्छेद 5, 6, 7, 8, 9, 7, 324, 366, 367, 372, 380, 388, 391, 392, 393, (नागरिकता से संबंधित अंतरिम संसद तथा संक्रमण कालीन उपबंध) लागू उसी दिन लागू कर दिए गए लेकिन 26 जनवरी 1950 को इसे पूर्णत: लागू किया गया। संविधान सभा की अंतिम बैठक 24 जनवरी 1950 को बुलाई गई। 24 जनवरी 1950 को सदस्यों के हस्ताक्षर के साथ संविधान सभा का विसर्जन कर दिया गया। इसकी बैठक में पेश और जनता को भाग लेने की स्वतंत्रता थी भारत विभाजन से पूर्व चार अधिवेशन संपन्न किए गए संविधान सभा में तीन स्तर के वाचन हुए।

- प्रथम वाचन 4 नवंबर से 9 नवंबर 1948 को पूरा हुआ।
- द्वितीय वाचन 15 नवंबर 1948 से 17 अक्टूबर 1949 को पूरा हुआ।
- तृतीय वाचन 14 नवंबर 1949 से 26 नवंबर 1949 को पूर्ण हुआ।

संविधान सभा के सत्र

- पहला सत्र: 09-23 दिसम्बर, 1946
- दूसरा सत्र: 20-25 जनवरी, 1947
- तीसरा सत्र: 28 अप्रैल-2 मई, 1947
- चौथा सत्र: 14-31 जुलाई, 1947
- पांचवाँ सत्र: 14-30 अगस्त, 1947
- छठा सत्र: 27 जनवरी, 1948
- सातवां सत्र: 4 नवम्बर, 1948-8 जनवरी, 1949
- आठवां सत्र: 16 मई-16 जून, 1949
- नौंवा सत्र: 30 जुलाई-18 सितम्बर, 1949
- दसवां सत्र: 06-17 अक्टूबर, 1949
- ग्यारहवां सत्र: 14-26 नवम्बर, 1949

संविधान सभा की अंतिम बैठक

संविधान निर्माण हेतु 24 नवंबर 1949 को आयोजित की गई इस दिन 284 लोगों ने संविधान पर हस्ताक्षर किए। 24 जनवरी 1950 संविधान सभा की बैठक हुई जिसमें संविधान पर सभी ने अपने हस्ताक्षर करके उसे मान्यता दी। हस्ताक्षर करने वाले पहले व्यक्ति जवाहरलाल नेहरू थे। साथ में अधिवेशन में महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि अर्पित की गई। मई 1949 में भारत ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता ग्रहण करना सुनिश्चित किया। लेकिन लागू करने से पूर्व जिसमें डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद को भारत का राष्ट्रपति चुना गया तथा राष्ट्रीय गीत और राष्ट्रगान को अपनाया गया।

संविधान सभा कार्यकारिणी एवं समितियां

- अस्थाई अध्यक्ष सच्चिदानंद सिन्हा, कांग्रेस
- स्थाई अध्यक्ष डॉ राजेंद्र प्रसाद, कांग्रेस

- प्रारूप समिति के अध्यक्ष डा0 भीमराव अंबेडकर, एससीएफ
- संवैधानिक सलाहकार बी0एन0 राव
- उपाध्यक्ष हरेंद्र कुमार मुखर्जी, वी0टी0 कृष्णामचारी

संविधान सभा ने संविधान निर्माण के कार्य को त्वरित गति से पूरा करने के लिए 22 समितियों व समितियों का निर्माण किया था जिस का विवरण निम्नवत है

1 संघ शक्ति समिति-जवाहरलाल नेहरू
2 संविधान समिति-जवाहरलाल नेहरू
3 राज्यों के लिए समिति-जवाहरलाल नेहरू
4 राज्यों तथा रियासतों के लिए परामर्श समिति-सरदार पटेल
5 मूलभूत अधिकार, अल्पसंख्यक, आदिवासी और अपवर्जित क्षेत्रों की सलाहकार समिति-सरदार पटेल
6 प्रांतीय संविधान समिति-सरदार पटेल
7 प्रारूप समिति/ड्राफ्टिंग/मसौदा समिति-डॉक्टर भीमराव अंबेडकर
8 झंडा समिति अध्यक्ष-जे0बी0 कृपलानी
9 प्रक्रिया नियम समिति (संचालन)-राजेंद्र प्रसाद
10 सर्वोच्च न्यायालय से संबंधित समिति-एस0एच0वर्धाचारियर
11 प्रारूप संविधान का परीक्षण करने वाली समिति-अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर
12 मौलिक अधिकारों पर उप समिति-जे0बी0 कृपलानी
13 संविधान समीक्षा आयोग-एम0एन0 वेंकटचलिया
14 अल्पसंख्याकांची उप समिति-हरेंद्र कुमार मुखर्जी
15 उत्तर पूर्व सीमांत आदिवासी क्षेत्र उप समिति-गोपीनाथ बोर्दोलोई
16 राष्ट्रीय ध्वज तदर्थ समिति-राजेंद्र प्रसाद
17 संगठन कार्यसमिति की बैठक-गणेश वासुदेव मावलंकर
18 सभा समिति-पट्टाभि सीतारमैया
19 भाषा समिति-मोटूरि सत्यनारायण
20 व्यवसाय समिति के आदेश-कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
21 राज्य समिति-गणेश वासुदेव मावलंकर
22 वगळलेले आणि अंशत: वगळलेले क्षेत्र (आसाम के अतिरिक्त) उप समिति-ठक्कर बापा

प्रारूप समिति के 7 सदस्य थे डॉ0 बी0आर0 अंबेडकर, अल्लादी कृष्णस्वामी अयंगर, एन0 गोपालस्वामी आयंगर, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, एन0 माधवराज (यह बीएल मितल के स्थान पर आए थे), टी0टी0 कृष्णमाचारी (यह डीपी खेतान के स्थान पर आए थे), मोहम्मद सादुल्लाह।

संविधान सभा में क्षेत्रवार सदस्य-31 दिसम्बर, 1947 की स्थिति के अनुसार भारत की संविधान सभा के सदस्यों की राज्यवार 229 सदस्यों की संख्या इस प्रकार है:-

मद्रास-49, बम्बई-21, पश्चिम बंगाल-19, संयुक्त प्रांत-55, पूर्वी पंजाब-12, बिहार-36, मध्य प्रांत एवं बरार-17, असम-8, उड़ीसा-9, दिल्ली-1, अजमेर-मारवाड़-1, कूर्ग-1

भारतीय रियासतों के लिए कुल 70 प्रतिनिधियों का प्रतिनिधित्व इस तरह है-अलवर-1, बड़ौदा-3, भोपाल-1, बीकानेर-1, कोचीन-1, ग्वालियर-4, इंदौर-1, जयपुर-3, जोधपुर-2, कोल्हारपुर-1, कोटा-1, मयूरभंज-1, मैसूर-7, पटियाला-2, रीवा-2, ट्रावणकोर-6, उदयपुर-2, सिक्किम और कूच (बिहार समूह)-1, त्रिपुरा, मणिपुर और खासी रियासत समूह-1, यू0पी0 रियासत

समूह-1, पूर्व राजपुताना रियासत समूह-3, मध्य प्रांत रियासत समूह (बुंदेलखण्ड और मालवा समेत)-3, पश्चिमी भारत रियासत समूह-4, गुजरात रियासत समूह-2, दक्कन एवं मद्रास रियासत समूह-2, पंजाब रियासत समूह-3, पूर्वी रियासत समूह-4, पूर्वी रियासत समूह-3, शेष रियासत समूह-4, (कुल-229+70=299 सदस्य)

संविधान सभा की समीक्षाः-

1-क्या संविधान सभा को प्रभुत्व संपन्न माना जाए-संविधान सभा के गठन के बाद से इसकी स्थिति के संबंध में विवाद उठ खड़े हुए। विंस्टन चर्चिल में संविधान सभा की वैधता को चुनौती दी। एम0आर0 जयरकर ने इसे संप्रभु संस्था नहीं माना। इनका विचार था कि एक कैबिनेट योजना के अंतर्गत अस्तित्व में आई थी और ब्रिटिश संसद की सत्ता के ही अधीन थी। यह कैबिनेट योजना में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती थी और इस का आह्वान सम्राट की अनुमति से गवर्नर जनरल द्वारा किया गया था और यह आप अपेक्षित था कि संविधान को अनुमोदन के लिए ब्रिटिश संसद के पास भेजा जाता लेकिन यह सभी विचार मिथक मात्र थे संविधान सभा सर्वोच्च थी क्योंकि वह भारतीय जनता द्वारा चुनी गई थी यह सिद्ध दो बातों से होता है एक संविधान सभा ने प्रस्ताव पारित किया कि ब्रिटिश संसद या सरकार या अन्य किसी भी सत्ता के आदेश से संविधान सभा का गठन तब तक नहीं किया जाएगा जब तक स्वयं संविधान सभा दो तिहाई बहुमत से इस आशय का प्रस्ताव पारित ना कर दे।

(2) संविधान सभा ने सभा के संचालन की पूर्ण शक्ति अपने निर्वाचित सभापति को दे दी थी।

2-क्या संविधान सभा एक प्रतिनिधि संस्था थी-संविधान सभा एक समाज प्रतिनिधिक संस्था थी लेकिन उसने शुरू से ही अत्यंत उदार धरातल पर कार्य करना प्रारंभ किया। इसकी प्रतिनिधियात्मक स्थिति पर प्रश्न उठाए गए क्योंकि उनका मत था कि यह वयस्क मताधिकार द्वारा नहीं चुनी गई थी। लेकिन व्यवहार में परिस्थितियां सांप्रदायिक दंगे के कारण व्यस्क मताधिकार के पक्ष में नहीं थे और फिर भी यदि होता भी तो परिणाम लगभग एक सा ही आता। इस विचार को इस बात पर बल मिलता है कि 1952 के प्रथम चुनाव में अधिकांश सदस्यों ने चुनाव लड़ा और भारी बहुमत से विजय प्राप्त की। इसके साथ ही इसमें सभी वर्गों के सदस्य थे। कैबिनेट प्रस्ताव ने जिस परामर्श समिति का निर्माण किया था उसमें 50 में से 38 सदस्य विभिन्न अल्पसंख्यकों के थे उदाहरणार्थ प्रारूप समिति के 7 सदस्यों में से 02 कांग्रेस के, 01 मुस्लिम लीग के सदस्य थे। के0एम0 मुंशी, कृष्णमाचारी और मोहम्मद सादुल्ला, अंबेडकर अनुसूचित जाति के तथा माधवा राव और अय्यर निर्दलीय थे। इस प्रकार इसमें नेपाली टिक पारसी ईसाई आंग्ल भारतीय पिछड़ी जातियां अनुसूचित जाति मुस्लिम सभी का प्रतिनिधित्व था।

3-क्या संविधान सभा को लोकप्रिय अनुज्ञप्ति प्राप्त थी-क्योंकि यह संविधान सभा प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा नियुक्त नहीं थी इसलिए यह प्रश्न उठाया गया कि क्या इसके द्वारा बनाया गया संविधान को पारित करने के लिए जनमत संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाए क्योंकि ऐसा नहीं किया गया तो कहा जा सकता है कि इसे लोकप्रिय अनुज्ञप्ति प्राप्त नहीं थी लेकिन यह तर्क भी गलत है और आर्थिक और समय की कमी के कारण ऐसा किया गया।

4-क्या संविधान सभा में वकीलों का प्रभुत्व था-आलोचकों का कहना है कि संविधान सभा में किसानों और मजदूरों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला जबकि भारत एक कृषि प्रधान देश है इसमें वकीलों का वर्चस्व था लेकिन यह तर्क भी सही नहीं है क्योंकि संविधान कानून होता है और इसे वकीलों से ज्यादा योगदान कोई अन्य नहीं दे सकता।

संविधान सभा पर आस्टिन के विचारः-

ग्रेनविल ऑस्टिन ने भारतीय भारतीय संविधान सभा की प्रशंसा की है। इसकी श्रेष्ठता की प्रक्रिया में तीन बातें मानी जाती हैं। सहमति से निर्णय समायोजन का सिद्धांत और परिवर्तन के साथ चयन की कला।

1- सहमति से निर्णय-भारतीय राष्ट्रीय नेता जो कि जानते थे कि वह एक संविधान निर्माण का कार्य कर रहे हैं अत: इन्होंने बहुमत के महत्व पर अल्पमत की बलि नहीं चढ़ाई बल्कि आम सहमति को निर्णय का आधार बनाया। संविधान सभा में प्रत्येक धारा पर खुलकर विवाद होते थे। संविधान सभा में प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति को प्रतिनिधि दिया गया था और वाद-विवाद होने पर जब तक गतिरोध दूर नहीं होता था तब तक आगे नहीं बढ़ाया गया।

2- समायोजन का सिद्धांत-समायोजन का सिद्धांत का आशय ऐसे दो तत्वों के बीच समन्वय स्थापित करने से है जिन्हें अब तक परस्पर विरोधी माना जाता था। वास्तव में संविधान सभा ने सिद्धांतवादिता के स्थान पर व्यावहारिकता को अपनाया यह निम्न बिंदुओं पर देखने को मिलता है:-

(1) संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था के बीच समन्वय

(2) गणतंत्रीय व्यवस्था के साथ राष्ट्रमंडल की सदस्यता

(3) केंद्रीय शासन और पंचायत व्यवस्था के बीच समन्वय

3-परिवर्तन के साथ चयन की कला-अर्थात उस समय तक संवैधानिक सिद्धांतों का पर्याप्त विकास हो जाने के कारण एक पूर्ण रूप से मौलिक संविधान की रचना असंभव था लेकिन संविधान निर्माता अच्छे और व्यवहारिक संविधान का निर्माण करना चाहते थे जो संविधान परिस्थितियों में फिट बैठे। अतः उन्होंने विदेशी संविधान से उन धारणाओं और व्यवस्थाओं को ग्रहण किया जो उन देशों में सफल रही थी और भारत की परिस्थितियों के अनुकूल थी। उदाहरण स्वरूप अमेरिका के संविधान से संविधान की प्रस्तावना, मूल अधिकार संघीय व्यवस्था, न्यायपालिका का स्वरूप, न्यायिक पुनरावलोकन, न्यायाधीशों को हटाने की पद्धति, उपराष्ट्रपति का पद आदि। आयरलैंड से नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति का निर्वाचन, संसद का द्वितीय सदन में विशिष्ट वर्गों का नामांकन, कनाडा से संघीय व्यवस्था, इंग्लैंड से संसदात्मक व्यवस्था तथा अन्य महत्वपूर्ण सत्ताएँ।

निष्कर्ष-भारतीय संविधान सभा ने संविधान निर्माण में उन सभी पहलुओं और मुद्दों को ध्यान में रखा जिसमें राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखने में मदद मदद मिले साथ ही संविधान, सामाजिक, आर्थिक, सुधारों के लिए एक माध्यम बने। भारतीय संविधान सभा सहमति समायोजन एवं परिवर्तन के साथ चयन के सिद्धांतों पर कार्य किया। संविधान सभा में सभी वर्गों एवं विचारधारा को स्थान दिया गया। इसीलिए भारतीय संविधान को हम कह सकते हैं कि दुनिया का सबसे व्यापक एवं सुंदर संविधान है जिस पर हर भारतीय को गर्व होना चाहिए। इसलिए यदि संविधान द्वारा स्थापित आदर्श प्राप्त नहीं किए जा रहे हों तो इसमें संविधान को दोष नहीं दिया जा सकता बल्कि संविधान लागू करने वाली व्यवस्था दोषी है। भारतीय संविधान सभा ने दो प्रकार से कार्य किया (01) जब संविधान निर्माण का कार्य किया जाता तो इसकी अध्यक्षता डॉ0 राजेंद्र प्रसाद करते तथा (02) जब संविधान सभा विधायिका के रूप में कार्य करती तो अध्यक्षता गणेश वासुदेव मावलंकर द्वारा की जाती। संविधान सभा द्वारा अंतिम रूप से निर्मित संविधान का आकार मूल रूप में 8 अनुसूचियां और 395 अनुच्छेद था जो संविधान 22 भागों में विभक्त था। आज वर्तमान भारतीय संविधान 12 अनुसूचियों 444 अनुच्छेदों और 25 भागों में विभक्त है। साथ ही अब तक (सितंबर 2021) 127वां संविधान संशोधन हो चुका है।

संदर्भ ग्रंथावली:

1. फाडिया, बी0एल0, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2006
2. जैन, पुखराज, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2010
3. सईद, एस0एम0, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, सुलभ प्रकाशन, 2003
4. लक्ष्मीकांत, एम0, भारतीय की राजव्यवस्था, टाटा मैक्ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, न्यू दिल्ली, 2008
5. बसु, डी0डी0, भारत का संविधान-एक परिचय, वाधवा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2003, आठवां संस्करण
6. कश्यप, सुभाष, संसदीय प्रक्रिया, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2006
7. गेना, सी0बी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ, 2000
8. कश्यप, सुभाष, हमारा संविधान-भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, सातवां संस्करण-2002, (पृ0 संख्या 127, 128)
9. STRACHEY, JOHN - India, its administration and progress-Publication/Creation. London , 1903.(पृ0 5)
10. ग्रोवर, बी0एल0, मेहला अलका, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास: एक नवीन मूल्यांकन (36वां संस्करण-2018), यस चंद पब्लिशिंग, लखनऊ
11. रंजांण्पद, नई दिल्ली, 30 जुलाई 2014, भारतीय संविधान से जुड़े महत्वपूर्ण तथ्य में जानकारी।

बालिका कुपोषणः परिवार कुपोषण का काल चक्र

डॉ० दीप्ति खरे

राजकीय महाविद्यालय, गोसाईं खेड़ा, उन्नाव

भारत विविधाओं सेयुक्त देश है। यहां 5 वर्ष से कम आयु के लगभग 7.5 करोड़ बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। हमारे यहाँ पोषण सर्वेक्षणके व्यापाक पैमाने हैं –

1. नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे (NFHS) के सम्पूर्ण भारत के आंकड़े।
2. नेशनल न्यूट्रीशन मोनीटरिंग ब्यूरो (NNMB) के आठ राज्यों के आंकड़े।

NFHS के आंकड़े लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में ज्यादा मृत्युदर प्रदर्शित करते हैं। यद्यपिप्रसूतिकालीन समय लड़की शिशु के लिये अनुकूल होता है एवं प्रति 1000 जीवित जन्मे बच्चों में 57 लड़कों एवं 48 लड़कियों की मृत्यु होती है। ऐसा इसलिये होता है कि जैव वैज्ञानिक रूप से कन्या शिशु की अपेक्षा लड़का शिशु ज्यादा नाजुक होता है। प्रसव के उपरान्त लड़कियों की मृत्यु का प्रतिशत 13% ज्यादा है एवं लडकियों की मृत्युदर भी 43% अधिक है।

कुपोषण एक मौन आवाज है। इसके अदृश्य परिणाम होते हैं। यह शरीर को कमजोर करके अन्य संक्रामक बीमारियों की संभावना को बढ़ा देता है। चूंकि इलाज बीमारी का होता है। अतः कई बार कुपोषण कारक के रूप में बाहर नहीं निकल पाता। प्रत्यक्ष रूप से दस्तक देने वालाकपोषण बहुत देर में परिलक्षित होता है। यह एक आपदा इसलिये भी है क्योंकि 10 में से 4 परिवारों के बच्चे इससे प्रभावित है। परन्तु सही समय से पहचान न होने के कारण परिवार कुछ नहीं कर पाते हैं।

बालिकायें एवं किशोरियां प्रायः कुपोषण के मुख्य शिकार होते हैं एवं वह अपने को इस जाल से मुक्त नहीं कर पाते। वे मूक दर्शक की भांति इस समस्या को झेलती है, परन्तु वे शरीर का सुरक्षा चक्र नहीं बना पाती है। गरीब व पिछड़े वर्ग की किशोरियां इस समस्या की शिकार ज्यादाहोती है। इस वर्ग की बच्चियों के परिवार जानकारी के अभाव व आर्थिक अभावों के चलते बालिकाओं के पोषण को अनदेखा करते हैं।

यह अनदेखी समस्या जन्म देती है, जीवन चक्र के गिरते हुए स्वास्थ संपदा की। आखिर में यह बात समझनी होगी कि जीवन चक्र चलाने में मां का योगदान भारी है। जमीन स्वस्थ होने पर ही स्वस्थ व पोषण युक्त उपज दे पाती है। यही बात किशोरी स्वास्थ एवं पोषण पर लागू है। बच्चे का स्वास्थ्य सिर्फ गर्भावस्था में खान पान की खानापूर्ति पर निर्धारित नहीं है। मां की गर्भावस्था, प्रसव उपरान्त देखभाल, ठोस आहार की शुरूआत, किशोरावस्था में भोजन, स्वास्थ्य, व्यायाम आदि धटकमां के स्वस्थ शिशु जन्म को प्रभावित करने के महत्वपूर्ण कारक होते हैं।

कुपोषित बालिका का आने वाला स्वरूप कुपोषित किशोरी का होता है। अपने विवाह के उपरान्त वह एक कुपोषित मां बनती है। यह कुपोषित मां एक कुपोषित बच्चे को जन्म देती है और यदि यह नवजात एक कन्या शिशु है तो कुपोषण के इस चक्र को आगे बढ़ा देती है। बाल विवाह, कम अन्तर पर गर्भधारण, परिवार नियोजन की जानकारी का अभाव इस कुपोषण चक्र को और बढ़ावा देते हैं।

पोषण की खराब स्थिति से मृत्युदर का जोखिम भरा हुआ होता है इसलिए महत्वपूर्ण है कि सबसे पहले कुपोषण को रोका जाना चाहिए। भारत में मृत्युदर एवं रुग्णतादरकोएक साथ कुपोषण के कारण के रूप में देखना चाहिए। संक्रमण के कारण पोषण में भी कमी होती है। इस समय शरीर की पोषण की मांग बढ़ जाती है। यदि बच्चा बीमारी के दौरान पर्याप्त खाना नहीं खाता है तो कुपोषित हो जाएगा। ज्यादातर राज्यों में (PEM) बाल मृत्युदर एवं बाल पोषण के बीच सीधा संबंध बनता है। गरीब से गरीब घरों में भी पोषण पर पैसा खर्च किया जाता है कई बार सेब,मौसमी पर खर्च किया जाता है परंतु भुनी मूंगफली, चने, केले का उपयोग कम खर्च में किया जा सकता है। महत्वपूर्ण कार्य है कि बच्चे को नियमित रूप से घर की बनी वस्तुएं देनी चाहिए। अत: भोजन में कमी से अधिक समस्या, जानकारी का अभाव है।

स्वास्थ्य एवं पोषण की शिक्षा देने के पूर्व आवश्यकता है कि बालिकाओं/किशोरियों के कुपोषण के नुकसान के विषय में समझबना दी जाए। स्थानीय बोली व मान्यताओं का सम्मान करते हुए काम करना चाहिए ताकि लोगों का विश्वास बना रह सके। किशोरियों के स्वास्थ्य एवं पोषण कार्यक्रम की सफलता की मुख्य कुंजी समुदाय की भागीदारी है। कोई भी कार्यक्रम किसी पर थोपा नहीं जा सकता है। अनेक अध्ययनों से पता चला है कि लड़कियों में कुपोषण के मामले ज्यादा इसलिए होते हैं कि उन्हें भोजन देने में भेदभाव के साथ-साथ उन्हें मिलने वाली स्वास्थ्य सुविधाओं, गुणवत्ता एवं समय आदि में भेदभाव होता है।

इस दिशा में यह भी देखा गया है कि माता का शिक्षित होना बच्चों के बेहतर पोषण से जुड़ा हुआ होता है। एन.एफ.एच.एस. के अनुसार जो माताएं कम से कम हाई स्कूल पास थी उनकी शिशु मृत्युदर कम थी एवं बालिकाओं के प्रति उनका झुकाव था। बच्चों के बेहतर पोषण के साथ औरतों की स्वतंत्रता भी एक बदलाव के रूप में सामने थी।

स्कूल जाने वाली लड़कियों में कुपोषण की समस्या काफी व्यापक है परंतु किशोरावस्था आने पर बालिकाओं के शरीर में अनेक बदलाव आते हैं।

जन्म के बाद वृद्धि की गति की तीव्रता द्वितीय बार किशोरावस्था में ही होती है। लडकियों के लिये 11 से 14 वर्ष के बीच तथा लड़कों के लिये 13 से 16 वर्ष के बीच वृद्धि की गति काफी तीव्र रहती है। शारीरिक विकास के अन्तर्गत अस्थियों का बदला मांसपेशियों की मात्रा में वृद्धि, कोमल तंतुओं में वसा का संग्रहित होना, लडकों के कंधों का चौड़ा होना, लड़कियों के नितम्बों का बढ़ना आदि आते हैं। इसके पश्चात 2 या 3 सालों में ही बालक वयस्क स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

किशोरावस्था में भूख बढ़ जाती है, साथ ही उनकी पोषक तत्वों की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। किशोरों में संवेगात्मक परिवर्तन भी दिखाई देते हैं। वे अपने निर्णय स्वयं लेना, पसंद करने लगते हैं। वे बच्चों की तरह नहीं अपितु बड़ों की तरह व्यवहार करना पसंद करने लगते हैं। हार्मोन्स के परिवर्तन द्वितीयक लैंगिक गुणों का विकास करते हैं। लड़कियों में रजोधर्म का प्रारम्भ तथा स्त्री सुलभ कोमलता का विकास इस आयु की विशेषता माने जाते हैं। जबकि लड़कों में आवाज में भारीपन दाढ़ी-मूंछों का निकलना, पुरूषत्व की भावना का विकास माँसपेशियों की सुदृढ़ता आदि देखे जाते हैं। लड़कों में परिपक्वता लड़कियों की अपेक्षा देर से आती है।

तीव्र वृद्धि के कारण किशोरावस्था में अक्सर वसा की मात्रा घटकर 10% तक हो जाती है। बाद में यह मात्रा धीरे-धीरे बढ़ती है। 18-20 वर्ष के बीच यद्यपि वयस्क स्वरूप किशोर प्राप्त कर लेते हैं परन्तु उनकी अस्थियों का घनत्व 25 वर्ष तक बढ़ता रहता है। अत: पोषक तत्वों की आवश्यकता किशोरावस्था में बढ़ जाती है। बढ़ी हुई आवश्यकता के पूर्ण न होने पर शारीरिक वृद्धि प्रभावित होती है। किशोर लड़के अपने शरीर की आकृति को आकर्षक बनाने के लिये व्यायाम व खेल पर ज्यादा जोर देते हैं। जबकि लड़कियाँ अनावश्यक मोटापे से बचने के लिये ''डायटिंग'' पर अधिक ध्यान देती हैं।

पोषक तत्वों की आवश्यकता:

पोषक तत्वों की आवश्यकता को देखते हुए किशोरावस्था को दो आयु वर्गों में बाँटा जा सकता है-

(1) 13-15 वर्ष (2) 16-18 वर्ष।

दोनों वर्गों को पोषक तत्वों की आवश्यकता में कुछ अंतर रहता है।

(1) ऊर्जा-शारीरिक वृद्धि की तीव्रता को देखते हुए इस समय ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ जाती है। किशोर लड़के व लड़कियों की आवश्यकता में स्पष्ट अंतर इस समय दिखाई देने लगता है। 13-15 वर्ष के लड़कों की आवश्यकता 2450 कैलोरी व लड़कियों की 2060 कैलोरी रहती है। 16-18 वर्ष के लड़कों की आवश्यकता 2640 कैलोरी व लड़कियों की आवश्यकता 2060 कैलोरी ही रहती है। ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा करने के लिये कई बार किषोर वर्गके लोग फॉस्ट फूड का सेवन अधिक मात्रा में करते हैं जो वसा व कार्बोहाइड्रेट्स में तो भरपूर रहते हैं। परन्तु उनमें प्रोटीन की कमी होती है।

(2) प्रोटीन्स-किशोर वर्ग में प्रोटीन्स की आवश्यकता भी सामान्य से अधिक रहती है। तीव्र वृद्धि व विकास की दर को पूर्ण करने के लिये पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन्स की आवश्यकता रहती है। 13-15 वर्ष की उम्र की लड़कियों की आवश्यकता 65 ग्राम व लड़कों की आवश्यकता 70 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन रहती है। जबकि 16-18 वर्ष के लिये, लड़कियों के लिये 63 ग्राम व लड़कों के लिये 78 ग्राम प्रोटीन आवश्यक रहता है। लड़कों में माँसपेशियों के निर्माण के लिये अतिरिक्त मात्रा में प्रोटीन की आवश्यकता रहती है।

(3) खनिज लवण-कैल्शियम व लोह तत्व की आवश्यकता विशेष रूप से किषोर वर्गमें अधिक होती है। अस्थियों के विकास के लिये प्रतिदिन 150 मि.ग्राम. कैल्शियम की आवश्यकता इस उम्र में पड़ती है। रक्त के आयतन में वृद्धि के कारण हिमोग्लोबिन के निर्माण के लिये अतिरिक्त लौह तत्व की आवश्यकता पड़ती है। लड़कों में माँसपेशियों की मात्रा में वृद्धि के कारण मायोग्लोबिन का भी अधिक निर्माण होता है। इसके लिये भी लौह तत्व की आवश्यकता पड़ती है। लड़कियों में मासिक धर्म प्रारम्भ होने के कारण लौह तत्व की आवश्यकता बढ़ती है। 13-15 वर्ष के लड़के व लड़कियों के लिये 600 मि.ग्रा. तथा 16-18 वर्ष के लड़के व लड़कियों के लिये 500 म.ग्रा. कैल्शियम की आवश्यकता रहती है। लौह तत्व की आवश्यकता 13-15 वर्ष के लड़कों के लिये 41 मि.ग्रा. व लड़कियों के लिये 28 मि.ग्रा. प्रति दिन रहती है। 16-18 वर्ष में लड़कों केलिये यह मात्रा 50 मि.ग्रा. लड़कियों के लिये 30 मि.ग्रा. प्रतिदिन रहती है।

(4) विटामिन्स-विटामिन ''बी'' कॉम्पलेक्स विशेषकर थायमिन, राइबोफ्लोविन व नियासिन की आवश्यकता ऊर्जा से सीधा संबंध रखती है। किशोर वर्गमें अधिक कैलोरी वाला आहार लेने पर ''बी'' कॉम्पलेक्स की आवश्यकता बढ़ती है। जब षरीर की नई कोशिकाओं का अधिक निर्माण होता है तब फोलिक एसिड व विटामिन बी12की आवश्यकता बढ़ती है। अस्थियों के विकास के लिये विटामिन डी की आवश्यकता बढ़ती है। नई कोशिकाओं के उचित निर्माण व कार्य के लिये विटामिन। ए ब्व म् की भी पर्याप्त मात्रा में आवश्यकता पड़ती है।

भोजन संबंधी आदतें-शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व संवेगात्मक तनाव के चलते भोजन संबंधी आदतों पर प्रभाव दिखाई देता है। लड़कों की तो भूख बढ़ जाती है, अत: वे काफी मात्रा में भोजन लेने लगते है जिससे पोषक तत्वों की कमी उनमें दृष्टिगोचर नहीं होती है। लडकियों में कई कारणों से पोषक तत्वों की हीनता नजर आती है। एक तो वे अपने फीगर के लिये सतर्क होने के कारण कम भोजन लेती है। कुछ सामाजिक दबाव भी उसे अच्छा भोजन लेने से रोकते हैं। कई बार ''डाइटिंग'' लम्बे समय तक करते रहने के कारण लडकियों में ''एनोरेक्सिया नर्वोसा' (Anorexia nervosa) उत्पन्न हो जाता है व उनकी भूख समाप्त हो जाती है।

किशोरों को भोजन संबंधी आदतें वैसे भी संतुलित नहीं रहती हैं। चटपटे व्यंजन जो ऊर्जा वसा व काबोहाइड्रेट्स में तो भरपूर रहते हैं परन्तु प्रोटीन खनिज लवणों व विटामिन की मात्रा, जिनमें कम रहती है, उनके प्रिय खाद्य रहते हैं।

किशोरावस्था की पोषण संबंधी समस्याएँ-

(1) मोटापा करीब 10-20:किषोर वर्ग के लोग मोटापे से ग्रस्त रहते हैं। मोटापे का कारण हामोन्स का असंतुलन तनाव, पारिवारिक इतिहास या भोजन संबंधी गलत आदतें हो सकती हैं। शारीरिक श्रम व व्यायाम का अभाव, एक जगह बैठकर टी.वी. देखना या कम्प्यूटर का अत्यधिक उपयोग भी उनका वजन बढ़ाने में सहायक होता है।

(2) एनोरेक्सिया नर्वोसा-किशोर वर्गकी लड़कियां अक्सर स्वयं को भूखा रखकर एनोरेक्सिया नर्वोसा उत्पन्न कर लेती हैं। अपनी शारीरिक आकृति को दुबला-पतला रखने के लिये वे बहुत ही कम भोजन लेती हैं। परिणामस्वरूप वजन तो घटता है व पोषक तत्वों की भी कमी उत्पन्न हो जाती है। कई तरह के मनोवैज्ञानिक विकार भी उनमें साथ में उत्पन्न हो जाते हैं। यदि कई बार वे अधिक मात्रा में भोजन ले भी लेती है तो वमन करके उसे निकालने का प्रयास करती हैं।

(3) एनीमिया-किशोर वर्ग की लड़कियों में अक्सर खून की कमी या एनीमिया की स्थिति दिखाई देती है। न केवल निर्धन वर्ग में, वरन् उच्च व मध्यम आय वर्ग की बालिकाओं में भी एनीमिया एक सामान्य समस्या है। मासिक धर्म का प्रारम्भ होना; लौह तत्व का कम अवशोषण; लौह तत्व, फोलिक एसिड व प्रोटीन की कमी वाला आहार तथा आँतों में कृमि का होना ये सब एनिमिया के कारण हो सकते हैं। अत: यह आवश्यक है कि इस उम्र में लौह तत्व व फोलिक एसिड का उचित सप्लीमेंटेशन लेत रहें जिससे उनका हिमोग्लोबिन का स्तर उचित बना रहे।

(4) अल्पपोषण-राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद (NIN1990) के द्वारा किये गये, सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ है कि किशोर बालिकाओं का बाडी माँस इन्डेक्स (BMI) काफी कम रहता है। यह इस बात को सूचित करता है कि उनका वजन सामान्य से कम रहता है। इस उम्र में ऊर्जा की आवश्यकता तो बढ़ी हुई रहती है पर उसकी पूर्ति न हो पाने पर वजन निरंतर कम होता चला जाता है। लिंग भेद के कारण आज भी भारतीय समाज में लड़कों का भोजन लड़कियों से बेहतर रहता है। परिणामस्वरूप अल्पपोषण की समस्या इस वय की लड़कियों में उत्पन्न हो सकती है।

लड़कियों में कई बार अल्पपोषण कम उम्र में विवाह कर देने के कारण माना जाता है। कम उम्र में विवाह, शीघ्र, गर्भधारण, कम वजन के शिशुओं का जन्म ये भारतीय ग्रामीण समाज में पायाजाता हैं। शिशु मृत्युदर व मातृ-मृत्यु दर भी इसी वजह से हमारे देश में काफी ऊँची है।

आमतौर पर सामाजिक / सांस्कृतिक कारकों के चलते बालिकाओं में कुपोषण की संभावनायें अधिक होती है। निम्न कारकों को इस बिन्दु से जोड़ कर देखा जा सकता है -

- किशोरावस्था, मासिक धर्म, गर्भावस्था, स्तनपान के दौरान पोषण आवश्यकता सामान्य से अधिक होना। इस बढ़ी हुई आवश्यकता की भरपाई के लिये जागरूकता की कमी।
- सामाजिक सोच के चलते बालिकाओ के खान पान एवं पालन पोषण को बालकों से कम महत्व देना।
- बढती बालिकाओं, किशोरियों को घर व बच्चों की देख भाल कादायित्व देना। परन्तु संसाधनों के लिये पुरूष वर्ग की निर्भरता होना। अत: ऐसी स्थिति मे दायित्व पूरा करने में वे अपने हिस्से में से कटौती करना सीख जाती है व कुपोषण का शिकार बन कर परिवार को कुपोषण के चक्र में फंसा देती है।
- विष्व में किये गये सर्वेक्षणों से पता चलता है कि पोषण संबंधी कुछ व्यवहार यदि बिना भेद भाव के परिवारों द्वारा अपनाये जायें तो हम हर एक बच्चे को स्वस्थ रख कर एक पोषित समाज व सुरक्षित भविष्य की नीव रख सकते हैं। ध्यान देने वाली बात ये है कि कुपोषण का इलाज मंहगा है परन्तु इसका बचाव अत्यनत सस्ता है। एक और महत्वपूर्ण बात ये है कि गर्भावस्था से लेकर आरम्भिक दो वर्ष कुपोषण से निपटने के का सुनहरा अवसर होते हैं। यदि इस समय परिवार ने चूक कर दी तो यह कुचक्र बालिका को उससे उबरने नही देगा। भावी पीढ़ियां इस दुश्चक्र से प्रभावित होती रहेगी।

इस समय को "विंडों ऑफ अपॉर्चुनिटी'' भी कहते हैं। यदि इसका लाभ नहीं लिया तो स्वास्थ्य भविष्य के रास्ते भी बंद हो जाते हैं। कुपोषण कम करने के लिये अनूठे सुझाव:-

- मां को समझायें की पौष्टिक भोजन कुपोषण को ठीक करता है।
- गर्भावस्था के दौरान देख भाल, चिकित्सीय देख भाल, के अतिरिक्त अधिक कैलोरी एवं प्रोटीन युक्त भोजन जो बच्चे को पोषित करे।
- जन्म के एक घंटे के अन्दर मां का दूध, कॉलोस्ट्रम 6 माह तक पूरीतौर पर स्तन पान (पानी भी नहीं) एवं दो वर्ष तक ठोस आहार के साथ भी स्तन पान।
- 6 माह से प्रोटीन, ऊर्जा तथा लौह तत्व के लिये ठोस आहार की शुरूआत।
- प्रत्येक दिन सम्पूर्ण आहार, जिसमें सभी खाद्य समूहों के भोज्य पदार्थ शामिल हों, उचित मात्रा में विटामिन, खनिज पदार्थ का सेवन।
- प्रतिदिन आयोडीन युक्त नमक, विटामिन 'ए', जिंक लौह लवण का सेवन ताकि इनकी कमी न हो सके। इनकी कमी देर से चिन्हित होती है।

- कुपोषित बच्चों की पहचान कर उन्हें चिकित्सीय देखभाल हेतुपरामर्श देना। महिलाओं एवं किशोरियों को पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा।
- सरकारी कार्यक्रमों की मदद से स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच बनाना।
- स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था सुनिश्चित करना।
- गर्भधारण में नियमित्ता एवं उचित अंतराल।
- मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रमों का प्रभाव बढ़ाना।
- महिला साक्षरता के प्रयास।
- किशोरावस्था में बेहतर स्वास्थ्य एवं पोषण हेतु प्रयास।
- कम उम्र में विवाह को नामंजूरी।
- बेहतर पर्यावरण सुरक्षा का प्रयास।
- सामाजिक सहयोग, परिवार, सामाजिक संस्थाओं का एक जुट प्रयास।
- प्रयास यह भी हो कि भारत सरकार स्वास्थ्य नीतियों में, बालिकाओं, किशोरियों, गर्भावती महिलाओं को केन्द्रीय स्थान प्रदान करें।

यदि स्वस्थ भविष्य स्वस्थ समाज की स्थापना करनी है तो यही वक्त है जब स्वस्थ्य जीवन चक्र के आधार बालिका पोषण के क्षेत्र में कार्य किये जाये।

संदर्भः-

1. पोषण एवं बच्चों की देखभाल रू एक व्यवहारिक पुस्तिका, शांति घोष, जे0पी0 ब्रादर्स, (प्रा0) लि0 नई दिल्ली।
2. टाइम्स आफ चिल्ड्रेन अक्टूबर 11, 2013
3. बाल जागरण-अक्टूबर 4, 2013

डॉ० रामकुमार वर्मा के काव्य में भारतीय संस्कृति एवं भारतीयता

डॉ० प्रभुसेन

सहायक आचार्य, हिन्दी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग,
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मुक्तगंगोत्री, मैसूरु-570006

'भारतीयता' का तात्पर्य केवल भारत की भौगोलिक सीमाओं की सुरक्षा के साथ प्रतिबध्दता अथवा उसकी प्राकृतिक सुषमा के प्रति अनुराग ही नहीं है, वरन् भारतीय के चिंतन की सुदीर्घ परंपरा से आगत विधार एवं दर्शन से है। इसके द्वार न तो नवागत विचारों के लिए संकुचित हैं बल्कि वे आकाश और पृथ्वी की भाँति मुक्त हैं। भारतीयता सबका स्वागत करती है। इसीलिए उसका गुण सामंजस्य है। अंधानुकरण उसका गुण नहीं है। अन्यों की श्रेष्ठ बातों को अपनाकर अपना बना लेना उसकी विशेषता है। भारतीयों ने आर्य, आर्येतर जातियों के रीति-रिवाज तथा विश्वासों को स्वीकार किया। योरोप से आए पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों की रहन-सहन तथा सामाजिक पध्दतियों को अपनाया और इस सीमा तक उनको आत्मसात किया कि, वे भारतीय बनायी गई। यह समन्वयकारी प्रवृत्ति ही भारतीय संस्कृति की प्राणसत्ता है। यही सांस्कृतिक मूल्यवाची चेतना 'भारतीयता' है।

किसी राष्ट्र की पहचान उसकी भौगोलिक सीमा-परिधि से ही नहीं होती अपितु उसकी अस्मिता का बोध उस राष्ट्र की संस्कृति, साहित्य, धर्म, दर्शन और जनमानस में प्रच्छन्न रूप से व्याप्त विचारधारा से होता है। भारत विश्व का सबसे प्राचीनतम देश है। इस देश की पहचान अर्थात् भारतीयता की सही पहचान के लिए हमें वैचारिक स्तर पर उन प्रदेशों में प्रवेश करना होगा जो जनता से जनार्दन तक, गंगा से कावेरी तक, कश्मीर से कन्याकुमारी तक, अनपढ़ से विद्वान तक व्याप्त है।

डॉ. रामकुमार वर्मा की ऐतिहासिकता, परंपरा, पौराणिकता के प्रति मोह उनके साहित्य में सहज ही देखा जा सकता है। सांस्कृतिक आख्यानों के गौरवगान तथा राष्ट्रीय जागरण एवं चेतना की स्वर लहरियाँ भी उनके साहित्य में खूब गूँजती हैं। भारतीयता के प्रति उनका विशिष्ट लगाव रहा है। पुनरूत्थान की बलवती भावना, विराट, अज्ञात तथा सर्वशक्तिमान सत्ता के रहस्यात्मक रूप के प्रति उत्कट जिज्ञासा, उत्साह तथा वीरता के स्वरों का उद्घोष, मानव-मूल्यों के प्रति जागृति एवं समर्पण आदि अनेक गरिमामंडित भावों-विचारों का साहित्य-संस्कार डॉ.वर्मा की विशिष्ट प्रतिभा का परिचायक बनता है। डॉ.रामकुमार वर्मा समकालीन परिस्थितियों से भलि-भाँति परिचित थे। उन्होंने भारत की संस्कृति, सभ्यता का युग-युग का रूप, अपनी तरंगों, अबाध प्रवाह में छिपाये हुई गंगा नदी से जीवन का रस, जीवन-गति और जीवन-धारा प्राप्त की है। ऐसे महान कवि एवं संस्कृति के संरक्षक के काव्यों में भारतीयता को ढूँढ़ने का मेरा यह छोटा सा प्रयास को सार्थक समझूँगा जो सांदर्भिक भी है।

1. वर्णाश्रम धर्मः भारतीय संस्कृति की यह प्रधान विशेषता है। संपूर्ण समाज चार वर्णों में बँटा हुआ था, सभी वर्णो के कर्म निश्चित थे। धीरे-धीरे वर्ण व्यवस्था में जटिलता आ जाने के कारण एक वर्ण के लोग दूसरे वर्ण के लोगों का कार्य नहीं कर सकते थे। इन चारों वर्णों में से सबसे दयनीय स्थिति शूद्रों की थी। रामकुमार वर्मा ने इसकी ओर संकेत किया है। 'एकलव्य' में वर्ण व्यवस्था की विकट समस्या का चित्रण ही प्रमुख रूप से हुआ है-

राजपुत्र हीनता को निश्चय प्राप्त होंगे,
जब तुम भूमि-पुत्र उसके समीप हो,

एक पंक्ति में खड़े हो, लक्ष्य-बेध सीखोगे,
जाओ, हे निषाद पुत्र। तुम हो अस्वीकृत।

डॉ. वर्मा जी ने इन विचारों को युग के अनुकूल परिवर्तित कर दिया है। आधुनिक काल में हुए बापू के अछूतोध्दार आंदोलन से प्रभावित होकर ही वर्मा जी ने शूद्र एकलव्य को क्रांतिकारी बना दिया है-

हमने सहन की है वर्ग की विगर्हणा,
शूद्र कहलाते रहे सेवा-भाव मान के।
किंतु जब मानव को विद्या का निषेध हो,
बात क्या नहीं है क्रांतिकारी बन जाने की।

2. पुरूषार्थ चतुष्टय: डॉ.वर्मा जी पुरूषार्थ चतुष्टय पर विशेष ध्यान दिये हैं। आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का उचित सामंजस्य ही इसका प्राण है। जीवन को दुष्कर्मों से हटाकर सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त करनेवाली शक्ति ही धर्म है। सत्कर्मों की ओर प्रवृत्त करनेवाले पाँच साधन सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह हैं, जिनका वर्णन वर्मा जी अपने काव्य में किए हैं। 'उत्तरायण' में भी कवि ने श्री राम द्वारा सत्य का आचरण करने को कहा है-

पर सोचो अपने पिता हमारे कारण,
तज प्राण, कर सके संघ-सत्य-व्रत धारण।
जो दिये सत्य पर, मरे सत्य पर भाई,
वह सत्य कहाँ है? शपथ की जिसकी खाई।

'वीर हमीर' खंडकाव्य में राजा हमीर एक मंगोल सैनिक के शरण में आने पर उसको सात्वना देते हुए कहते हैं-

सत्य पर बलिदान होना ही हमारा कर्म है।
दीन दुखियों को बचाना ही हमारा धर्म है।।

3. मानवता, प्रेम तथा विश्व बंधुत्व की भावना: डॉ. वर्मा जी भारतीय संस्कृति का मूल तत्व मानवता-प्रेम को ही मानते हैं। वे विश्व बंधुत्व की भावना के संपोषक हैं। प्रेम को डॉ.वर्मा जी ने विश्व की शक्ति माना है-

प्रेम विश्व की आदि शक्ति
बलमय अपूर्व छविमय अनुपम।

मानव जीवन का मूलमंत्र है गतिशीलता। इसी मंत्र का स्मरण कराते हुए वे कहते हैं-

वे बुलाते हैं तुझे, तू वेग से उठ अरे,
साँस की दो शक्तियों के बीच है, तू डरे?
तू बनाये विश्व, तो क्या स्वयं भी न बने?
जीवन भी न दीन बने।

'एकलव्य' में मानव के लिए समान एवं उदार दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया गया है-

मानव की शक्ति तो महान तब होती है,
जब वह दानव को मानव बना सके।
और सब मानवों में हो साम्य की स्थापना,
हम हैं अछूत तो हमारे अंग स्पर्श से
आर्यों के सुअंग क्या कुअंग बन जाएँगे?

4. राष्ट्रीयता: वर्मा जी के आंतर्य में जो कवि हैं, वे राष्ट्रीयता की धरती का अंकुर हैं। सन् 1921 में महात्मा गाँधी के आह्वान पर शिक्षालय त्यागकर असहयोग-आंदोलन में कूदनेवाले वर्मा जी की सर्वप्रथम कविता का शीर्षक 'देशसेवा' ही था। उनकी उद्भोदन कविता ने हजारों नव युवकों को देशसेवा की ओर उन्मुख किया था-

नहीं डरेंगे, नहीं डरेंगे, तोपों से तलवारों से,
नहीं, पैने-पैने हथियारों की वारों से।
नहीं डरेंगे, दिल दहलाने वाले अत्याचारों से,
नहीं डरेंगे, लेशमात्र भी भीषण कारागारों से।

वह आजीवन देश-प्रेम की पवित्र-भाव-धारा से निमज्जित रहने की अभिलाषी हैं। वे 'कृत्तिका' में कहते हैं-

मरने की भी मुझे कभी परवाह नहीं है।
सांसारिक सब तुच्छ सुखों की चाह नहीं है।
हृद् स्थल पर देश की अटल भक्ति की धार हो।
मरने तक भी हृदय में प्रिय स्वदेश के प्रति प्यार हो।

5. समाज संबंधी मान्यताएँ: वर्मा जी के अनुसार समाज और व्यक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। समाज-विहीन व्यक्ति का कोई महत्व नहीं। वे अपनी संस्कृति और अपने समाज को कभी कहीं नहीं भूलते। वे समाज को शोषित समाज, किसान समाज, मजदूर समाज के नामों से विभाजित कर उन सबको प्रेरणा देते रहे तथा समस्याओं से मुक्त रखना चाहते थे। 'कृत्तिका' में अपने दु:ख भरे मन का आक्रोश इस तरह व्यक्त करते हैं-

यदि अछूत ये काम आज से अपना छोड़े,
अत्याचारी उच्च जनों के हाथ न जोड़े।
प्रतिदिन इनके सदन झाड़ना यदि वे त्यागें,
वे भी अपना जन्म-स्वत्व यदि निर्भय माँगे।
तो फिर न लगाने पायेंगे, तिलक विप्र जी माथ में,
बस, लेना ही पड़ जायेगी, डलिया-झाड़ हाथ में।

वर्मा जी किसान समाज को 'ग्राम देवता' कहते हैं और वे परिश्रमी भारतीय समाज की कल्पना करते हैं। वे लिखते हैं-

किसानों के परिश्रम से जो पसीने की बूँदें गिरती।
उन्हें आप देखें खेतों में अन्न और मोती बन उगती।।

6. परंपरागत मान्यताएँ: प्रत्येक प्रदेशों में प्रचलित विश्वासों एवं मान्यताओं से वहाँ की संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। वर्मा जी इन मान्यताओं के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं, यही कारण है कि उनके काव्य में ये मान्यताएँ यत्र-तत्र व्यक्त हुई हैं। 'चित्तौड़ की चिता' में 'रानी' दिन-रात ईश्वर की प्रार्थना में लीन रहती हैं कि स्वामी विजयी होकर लौटे।

जानते हो तुम सारे काज,
तुम्हें क्या समझाऊँ जगदीश,
झुकती बार-बार हूँ शीश,
शीघ्र रख लेना मेरी लाज।।

प्रारंभ से ही भारतीय संस्कृति में पर्दा प्रथा चलती आ रही है। इसकी झलक वर्मा जी के 'एकलव्य' में दृष्टिगोचर होती है-

एकलव्य जननी ने देख पति सामने,
न्यस्त शिरोवस्त्र फिर न्यस्त किया।

7. लोकाचार-शिष्टाचारः लोकाचार-शिष्टाचार से अभिप्राय उन सामान्य विचारधाराओं से है जो मानव के चरित्र को उत्तरोत्तर नैतिकता की ओर उठाने में सहायक होती हैं। डॉ. वर्मा 'एकलव्य' महाकाव्य में नायक एकलव्य के चारित्रिक विकास द्वारा भी कवि ने गुरु भक्ति का उज्वलतम रूप प्रस्तुत किया है। पार्थ के मुख से गुरु निन्दा सुनकर एकलव्य स्पष्ट शब्दों में कह देता है-

सावधान, आर्य! गुरु निन्दा एक क्षण भी,
सुन न सकूँगा आपके वाचाल मुख से।
गुरु ज्ञान-दान निष्पक्ष करते हैं सदा,
शिष्य है जो प्राप्त करने में असफल है।

8. ऐतिहासिकताः भारत-इतिहास का एक सुन्दर अवलोकन वर्मा जी अपने काव्य में प्रस्तुत करते हैं। 'वीर हमीर', 'चित्तौड़ की चिता', 'संत रैदास' ये तीनों उनके ऐतिहासिक काव्य हैं। 'वीर हमीर' में राजा 'हमीर' का धैर्य और साहस का वर्णन करते हैं। और 'चित्तौड़ की चिता' में 'राणा संग्राम" और रानी 'करुणा' की वीरगाथा सुनाते हैं। परंतु 'संत रैदास' में कवि इतिहास को आधार बनाकर उसमें अपनी कल्पना के सहारे 'रैदास' के जीवन की एक सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

'वीर हमीर' में वर्मा जी वीर-शूर रजपूत रणथंभौर के राजा 'हमीर' के माध्यम से दास्यत्व के प्रति उनका विरोध व्यक्त करते हैं-

राजपूती वीर होते साहसी बलवान हैं।
शक्ति से स्वाधीन रहना ही उन्हीं की बान है।
नरक पीड़ा से अधिक वे मानते दासत्व को।
फिर, कहो क्या छोड़ सकते हैं कभी निजस्वत्व को।

9. पौराणिकताः 'एकलव्य', 'उत्तरायण', 'ओ अहल्या', 'बालिवध' ये चारों उनके पौराणिक काव्य हैं। पुराणों के प्रति श्रद्धा होने के कारण वर्मा जी 'रामायण' तथा 'महाभारत' में चर्चित कुछ अवधारणाओं को लेकर पुराण पात्रों को न्याय दिलाना उनका लक्ष्य था।

रामराज्य वर्णन के पश्चात् सीता निर्वासन का प्रसंग वास्तव में वर्मा जी को कष्टकारी लगता है-

सीता-निर्वासन है असत्य,
फिर रामायण क्यों दे प्रमाण।
मैं कहता हूँ यह रामायण के,
कोमल उर में चुभा बाण।

वर्मा जी फिर राम से प्रश्न करते हैं कि-

ऐसी सीता पर क्यों विश्वास न आया?
जिनके शरीर की भी पवित्र है छाया।

10. नारी विषयक धारणाः वर्मा जी ने अपने कवि जीवन के आरंभ में नारी को सुगृहिणि बनाने के उद्देश्य से प्रेरित होकर 'कुल-ललना' नामक काव्य का सृजन किया था। तत्पश्चात् 'वीर हमीर', 'चित्तौड़ की चिता' जैसी कृतियों में सतीत्व की रक्षा हेतु रजपूत नारियों के अनुपमेय बलिदान, शौर्य व साहस का वर्णन किया है। 'उत्तरायण', 'ओ अहल्या' जैसी कृतियों में भारतीय नारी के पातिव्रत्य की चर्चा की है। नारी के प्रति उनके मन में श्रद्धा होना सहज व स्वाभाविक है-

नारी ही है शक्ति और नारी है अनुपम भक्ति,
नारी है तप रूप और नारी ही है अनुरक्ति।

11. प्रकृति सौंदर्यः प्रकृति के प्रति आराधना का भाव प्रत्येक भारतीय में है। इससे वर्मा जी कुछ अधिक निकट हैं। 'निशीथ', 'अभिशाप', 'रूपरेखा', 'चंद्रकिरण', 'ये गजरे तारों वाले' आदि उनके प्रकृतिमूलक काव्य हैं। वर्मा जी प्रकृति में सजीवता देखना चाहते थे, वे लिखते हैं-

उषे, बतला यह सीखा हास कहाँ?
इस नीरस नभ में पाया हैतूने यह मधुमास कहाँ?
अंधकार के भीतर सोता- था इतना उल्लास कहाँ
सूने नभ में छिपा हुआ थातेरा यहाँ अधिवास कहाँ?

12. विविधता में एकता: जिस प्रकार सूर्य, चंद्र, वायु और अग्नि आदि विभिन्न प्राकृतिक तत्व होते हुए भी संयम एवं सामंजस्य के सूत्र में बंधे हैं, ठीक उसी प्रकार भिन्नता में एकता का प्रदर्शन मानव कल्याणकारी है। अस्तु, मानव के हित की दिशा में सोचना और अपने सोच को आचरण का रूप देना ही भारत की सांस्कृतिक मूल्यवाची भारतीयता है। डॉ.वर्मा भारतीयों में भारतीयता जागृत करने के लिए बहुत कोशिश की किंतु हमेशा मन में विषाद की छाया मंड़राती थी। वे लिखते हैं-

देशवासियों में नहीं बंधुभाव दीखता है,
काटने को तत्पर हैं एक दूसरे का गला।
देश सेवा की पवित्र भावनाएँ भूल जाते,
क्यों न देश भारत रसातल में जावे चला।

उपसंहार: भारतीयता के विभिन्न रूपों का अनुशीलन डॉ.वर्मा के काव्याध्ययन द्वारा करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, डॉ.वर्मा ने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति की अधिकतर विशेषताओं को अंकित करने की चेष्टा किये हैं। भारतीय संस्कृति के प्रत्येक अंग में लेखक की पूर्णरूपेण आस्था है पर जीवन प्रवाह अवरूद्ध करनेवाली भारतीय संस्कृति का स्वाभाविक और जीवित रूप स्वयं स्वीकार करते हैं और भारतीयों को भी स्वीकार करने को आग्रह करते जैसे प्रतीत होते हैं। भारतीयता की सही पहचान भारतीय संस्कृति का पालन और पोषण में है वरन् कोई दूसरों के बोल-खिलाफ में नहीं। भारतीय संस्कृति के जड़ जब तक हट्ठे-कट्ठे नहीं होते तब तक भारतीयता का पुष्प-सौगंध नहीं फैलता। डॉ.वर्मा अपने काव्य के माध्यम से 'भारतीयता' तत्व की एहसास स्वानुभूति से होने की अपेक्षा करते हैं, जो आज भी हममें उस भावना की एहसास करने में कमीं नजर आती है। अत: डॉ.रामकुमार वर्मा में 'भारतीयता' शब्द के अर्थस्वरूप उनके पास एक ही कविता है जो उद्देश्य को पूर्ण प्रमाण से अभिव्यक्त करता है-

जिस भारत की धूल लगी है मेरे तन में
क्या मैं उसको कभी भूल सकता जीवन में?
चाहे घर में रहूँ, रहूँ अथवा मैं वन में।
पर मेरा मन लगा हुआ है इसी वतन में
सेवा करना देश की, बस मेरा उद्देश्य है।
मैं भारत का हूँ सदा, भारत मेरा देश है, भारतीयता मेरा धर्म है।

सहायक ग्रंथ :

1. एक दीपक किरण कण हूँ, संपादक: डॉ. चंद्रिका प्रसाद शर्मा, प्रथम संस्करण 1992।
2. डॉ. रामकुमार वर्मा की सृजन यात्रा, डॉ.विद्या दुबे, प्रथम संस्करण, 2003।
3. डॉ. रामकुमार वर्मा के काव्य का मूल्यांकन, डॉ. प्रभा भट्, 2002।
4. डॉ. रामकुमार वर्मा की साहित्य साधना, डॉ. चंद्रिका प्रसाद शर्मा, प्रथम संस्करण 1990।
5. डॉ. रामकुमार वर्मा गौरव ग्रंथ, संपादक: रामकिशोर शर्मा, डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा, प्रथम संस्करण 2005।

रामायण में ऋतुचर्या वर्णन

डॉ० प्रेरणा माथुर

सहायक आचार्य, प्राच्य संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मानव स्वास्थ्य के लिये आयुर्वेद में ऋतु के अनुकूल आचार, व्यवहार को अधिक महत्व दिया गया है। इसी को आयुर्वेद में ऋतुचर्या कहते हैं। महाकाव्य में भी परम्परा से ऋतु-वर्णन तथा तदनुसार आचार-व्यवहार को भी उतना ही महत्व मिला है। तात्पर्य यह है कि महाकाव्य में प्रसंगों का होना परम आवश्यक है और उसी के अन्तर्गत नायक-नायिका का आचरण या प्रतिक्रिया का वर्णन भी इतना ही महत्वपूर्ण तथा आवश्यक है। रामायण में भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है।

आयुर्वेद मतानुसार वर्ष के बारह महीने में सूर्य की गति के उत्तरायण तथा दक्षिणायन, दो अयन माने गये हैं। ये ही आयुर्वेद में आदान काल तथा विसर्ग काल के नाम से पुकारे गये हैं। इसी के अनुसार एक अयन में तीन ऋतुएँ हुआ करती हैं और वर्ष में छः ऋतुएँ होती हैं माघ-फागुन में शिशिर, चौत्र-वैशाख में बसन्त, ज्येष्ठ-आषाढ़ में ग्रीष्म, श्रावण-भाद्रपद में वर्षा, आश्विन-कार्तिक में शरद, मार्ग-शीर्ष-पौश में हेमन्त। इसी प्रकार पूर्व के तीन आदान-प्रदान काल तथा अन्त के तीन विसर्ग काल कहलाते हैं। विसर्ग मनुष्यों का बल-दाता है तथा आदान काल में अग्निमाँद्य आदि रहता है।

रामायण में ऋतुचर्या का उल्लेख संवाद शैली में किया गया है। राम तथा लक्ष्मण के संवाद प्रमुख हैं। काव्य-परम्परा के अनुसार श्री राम का विरह-वर्णन इसमें मुख्य है। ऋतु के अनुसार आचार व व्यवहार का वर्णन या विरहों के कारण ऋतुओं के प्रति असहिष्णुता ही इसमें मुख्य है। अपने प्रिय भरत या सीता का स्मरण करते हुए श्री राम या लक्ष्मण ऋतुओं के प्रति मनोभावों को व्यक्त करते हैं।

रामायण में प्राप्त षड्ऋतु वर्णन की समीक्षा निम्न प्रकार की जा रही है-

हेमन्तऋतुचर्या-चर्या शब्द चर्‌धातु से बनता है, चर्‌धातु का अर्थ है गति तथा भक्षण, इसलिये यहाँ चर्या शब्द से अभिप्रायः गति अर्थ में विहार तथा भक्षण अर्थ में आहार है। अन्य लोग शास्त्र नियमानुकूल आचार को चर्या कहते हैं। 'ऋतु' काल विभाग को कहते हैं। अतः ऋतुओं में अथवा ऋतुओं की चर्या ऋतुचर्या कही जाती है।[1]

हेमन्त ऋतु के लक्षण-हेमन्त ऋतु में दिशाएँ धूम के समान धूम्र (मलिन) रज (धूल) से मन्द हो जाती हैं। तुशार (कोहरे) से दिशाएँ एवं सूर्यमण्डल आविल (मलिन) हो जाता है। उत्तरी वायु शीतलता से रोम हर्ष उत्पन्न करती है। इस ऋतु में लोध्र, प्रिंयडंगु, पुन्नाग तथा लवली के सुंदर फूल खिलते हैं। हाथी, अज, महिश, वाजि, वायस तथा सूकर मदोन्मत हो जाते हैं। नदियाँ हिम से आच्छन्न हो जाती हैं। मछलियाँ तथा जलचर पक्षी छिप जाते हैं। नदियों के जलमें से वाष्प निकलता है। कूप का जल उष्ण हो जाता है।[2]

हेमन्त काल का शरीर पर प्रभाव

इस शीत ऋतु में शरीर की ऊष्मा शीतल वायु से आहत होकर शरीर के अन्दर प्रवेष करती है, जो जठर में पिण्डी भूत अग्नि को प्रबल कर देता है। प्रायः विसर्ग काल में बलवानों की जठराग्नि स्वभाव आदि में गुरू, आहार को पचाने में समर्थ होती है, उस समय अग्नि की युक्ति के लिये बृहण अन्न-पान का सेवन करना चाहिये। ऐसा न करने से ईंधन रूपी अन्नपान नहीं मिलने से

जठराग्नि नष्ट हो जाती है अथवा अधिक उदीर्ण (तीक्ष्ण) होने के कारण शरीर के धातुओं को भी पचाने लगती है, धातुओं का क्षय होने पर तेज के सहचर वायु शीतकाल में शीत से विशेष कुपित हो जाता है।[3]

हेमन्त ऋतु में आहार-बिहार-शीतकाल में स्निग्ध, मधुर, अम्ल, लवण रसों को सेवन करना चहिये। विलेषय (बिलों में रहने वाले गोधा आदि), औदक (कछुआ-मछली) आदि, आनूप (महिष आदि), प्रसह (बाज कौआ आदि) प्राणियों का भुना हुआ मांस, गुड़ एवं पीठी से बनाई वस्तु, नूतन मद्य, उड़द, गन्ने का रस, दुग्ध से बनाई वस्तुएँ, वसा तेल तथा नये चावलों का सेवन करना चाहिये। व्यायाम, उद्धर्तन, अभ्यड्घ्ग, स्वेदन, धूम्रपान, अंजन तथा आतप (धूप) का सेवन करना चाहिये।[4] शरीर शुद्धि में उष्मा जल का प्रयोग करना चाहिये। गर्भगृह (भीतरी हिस्से) में रहना चाहिये। शय्या के पास अंगीठी रखकर कुथ तथा कम्बल से सुंदर शय्या पर कुंकुम (केशर) अथवा अगरू का घना लेप करके हल्के किन्तु उष्ण धूप से धूपित वस्त्रों को ओढ़कर समय से सो जाना चाहिये। पुष्ट अड्घ्ग वाली स्त्री का संसर्ग शीतल वायु को निर्वारित (नष्ट) करता है।[5]''

महर्षि चरक ने कुछ आहार-विहार का इस ऋतु में निषेध किया है।[6]

वाल्मीकि रामायण में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है। कवि के शब्दों में शरद् ऋतु बीत गयी और प्रिय हेमन्त का प्रारम्भ हुआ। हेमन्त में श्री राम की चर्या का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-प्रात: श्री राम गोदावरी नदी के तट पर स्नान करने गये, हाथ में कलश लिये सीता व लक्ष्मण भी उनके साथ थे। इस प्रात: शब्द को स्पष्ट करते हुए आगे कवि ने लक्ष्मण के मुख से यह शब्द कहलवाये, ''निश्चय ही भरत भी इसी बेला में स्नान के लिये उद्यत हो मंत्री एवं प्रजाजनों के साथ प्रतिदिन सरयू नदी के तट पर जाते होंगें। अत्यन्त सुख में पले हुए सुकुमार भरत जाड़े का कष्ट सहते हुए रात के पिछले प्रहर में कैसे सरयू नदी के जल में डुबकी लगाते होंगे।''[7] ''इसके बाद ही जब सूर्योदय हुआ तब तीनों ही निरूपाय व्यक्ति भगवान सूर्य का उपस्थान करके अन्य देवताओं की स्तुति करने लगे। लक्ष्मण ने फिर कहा-भैया इस ऋतु मे अधिक ठंडक या पाले के कारण लोगों का शरीर रूखा हो जाता है। जल अधिक शीतल होने के कारण पीने योग्य भी नहीं रहता है। और आग बडी प्रिय लगती है।[9] इस ऋतु में प्राय: सभी जनपद के निवासियों की उन प्राप्ति-विषयक कामनाएँ प्रचुर रूप में पूर्ण हो जाती हैं। गो रस की भी बहुतायत होती है। सूर्य देव इन दिनों यम सेवित दक्षिण दिशा का दृढ़तापूर्ण सेवन करने लगते है।[10] कुहासों से फैलती हुई और ढकी हुई किरणों से उपलक्षित होने वाले दूरोदित सूर्य चन्द्रमा के समान दिखाई देते हैं। पूर्वान्ह में तो इनका बल जान ही नहीं पड़ता मध्यान्ह में इसके स्पर्श से सुख अनुभव होता है।'' मध्यान्ह काल में धूप का स्पर्श होने से हेमन्त के सुखमय दिन अत्यन्त सुख से इधर-उधर घूमने विचरने योग्य होते हैं इन दिनों सुसेव्य होने के कारण सूर्य-देव सौभाग्यशाली जान पड़ते हैं। परन्तु सेवन योग्य न होने के कारण छाँह तथा जल अभागे प्रतीत होते हैं।[12] आजकल के दिन ऐसे हैं कि सूर्य की किरणों का स्पर्श कोमल जान पड़ता है। कुहासे अधिक पड़ते हैं, सर्दी सबल होती है। कड़ाके का जाड़ा पड़ने लगता है, साथ ही ठंडी हवा भी चलती है।[13] चन्द्रमा का सौभग्य सूर्य देव में चला जाता है चन्द्रमण्डल हिमकरणों से ढककर धूमिल हो जाता है।[14] पूर्णिमा की चाँदनी रात कठिन बिन्दुओं से मलिन दिखाई देती है।[15] पछुआ पवन जिसका स्पर्श स्वभाव से ही शीतल है हिम कणों से व्याप्त हो जाने के कारण दुगनी सर्दी लेकर वेग से बढरही है।[16] ओस कण पड़ जाने से घास भीगी हुई सी जान पडती है। वह धूप का प्रवेश होने पर अद्‌भुत शोभा पा रही है।''[17]

इस ऋतु में रातें बडी होने लगती है इससे सर्दी बहुत बढ जाती है। खुले आकाश के नीचे कोई नहीं सोता। पौष की ये रातें हिमपात के कारण धूसर प्रतीत होती हैं।[18] हिमालय पर्वत तो स्वभाव से ही घनीभूत हिम के खजाने से भरा-पूरा होता है। परन्तु इस समय सूर्य देव भी दक्षिणायन में चले जाने के कारण उससे दूर हो गये हैं। अत: अब अधिक हिम संचय से सम्पन्न होकर हिमवान गिरि स्पष्ट ही अपने नाम को सार्थक कर रहा है।[19]

शिशिर ऋतु मे मेघ, वायु तथा वर्षा के कारण शीत अधिक होता है तथा आदान काल होने से रूक्षता उत्पन्न होती है इसलिये इस ऋतु में हेमन्त ऋतु की ऋतुचर्या का सेवन कुछ अधिक करना चाहिये।[20]

बसन्त ऋतुचर्या-बसन्त ऋतु का लक्षण बताते हुए वाग्भट ने कहा है-वसन्तु ऋतु में दक्षिण दिशा की वायु बहती है, सूर्य की किरणें लोहित लाल होती हैं, वृक्षों में नय प्रवाल तथा नई त्वचा आ जाते है। ककुभ दिशा अमला निर्मल हो जाती हैं। किंशुक आशोंक

तथा आम्र से वन पंकितयों शोभित होती है। अर्थात् उनमें पुष्प आने लगते है और दिशाएँ कोयल तथा भ्रमरों के आलापों के मधुर कोलाहल से व्याप्त हो जाते है इस ऋतु में शिशिर ऋतु में संचित श्लेष्मा सूर्य की किरणों से पिघलकर अग्नि को नष्ट करता हुआ बहुत से रोगों को उत्पन्न कर देता है।[21]

वसन्त ऋतु में अहार-विहार-इस ऋतु में तीक्ष्ण वमन, तीक्ष्ण धूम्रपान, तीक्ष्ण-गण्डूष तथा तीक्ष्ण नस्य का प्रयोग करना चहिये। व्यायाम, उद्धर्तन क्षौद्र, यव, गोधूम, तथा जंगल पशु पक्षियों का मांस सेवन करना चाहिये। सुहृदजनों की संगति, उद्यान गोष्ठी तथा मनोहर युवतियों (रति-क्रीड़ा) का सेवन करना चहिये। स्नान करके अलंकारों से शोभित होकर स्त्रग्वी फूलों की माला को धारण करना चाहिये।[22] चन्दन एवं अगरू का लेप शरीर पर करें। सहकार आम एवं उत्पल के चित्रों से अंकित विचित्र पात्रों में निर्गद आसव अरिष्ट सीधु (इक्षुरस सेबना मद्य), माद्वीक (द्राक्षासुरा) तथा माधव (महुआ की सुरा) का पान करें। पकाया हुआ जल या मोथा एवं हुण्डी का पका पानी या साराम्भ से परिपक्व जल या मधु मिश्रित जल पीवें।

अपथ्य-इस ऋतु में गुरू एवं शीतल पदार्थ, दिवा-स्पप्न, स्निग्ध पदार्थ और मधुर तथा अम्ल रस वाले पदार्थो का सेवन नहीं करना चाहिये।[23]''

वाल्मीकि ने वसन्त ऋतु का उल्लेख करते हुए-ऋतु श्रृंगार का वर्णन तो किया ही है साथ ही पक्षियों के कलरव, कूजन तथा रतिक्रीडा के पक्ष को भी स्पष्ट किया है। श्री राम इस-ऋतु में कामोदीप्पन वातावरण को देखकर अनंग वेदना को उद्दीप्पत अनुभव करने लगे।[24]'' वसन्त ऋतु में चलने वाला शीतल तथा सुगन्धित मलयानिल विरही-श्री राम को कामाग्नि में जला डालता रहा है।[25] इस सम्पूर्ण प्रसंग में चौत्रमास (पुष्प-मास) का वर्णन आया है। यह वसन्त अपने सभी उपायों से श्री राम की कामाग्नि को तो उद्दीपन करता ही है साथ ही श्री राम को यह भी शंका है कि जहाँ सीता है वहाँ भी यदि वसन्त गया हो तो उसकी क्या हालत होगी क्योंकि वह वहाँ परतन्त्र है।[26] वह सभी वातावरण जो श्री राम को सीता की उपस्थिति में अच्छा लगता था, वही आज कटु लग रहा है। वायु का प्रवहण, चन्दनों, कमलों, अन्य पुष्पों, वृक्षों, लताओं तथा पहाड़ी आदि के बीच में होकर चलता हुआ श्री राम के लिये आनन्ददायक नहीं है। कामोत्तोजक है जो कि सीता की अनुपस्थिति में कटु लगता है। यहाँ तक कि सीता के वियोग में श्री राम अपने प्राण त्याग करने तक के लिये तत्पर हो जाते हैं।

ग्रीष्मऋतु चर्या-इस ऋतु में सूर्य तेज किरणों वाला, अतसी (अलसी) के पुष्प के समान तथा दावाग्नि (वनाग्नि) की भाँति चमकता है। दिशाएँ और भूमि जलती है। नैऋत (दक्षिण-पश्चिम) कोण से बहने वाली वायु सुखदायक होती है। उष्ण वायु धूप एवं स्वेद के कारण प्राणी ज्वर की भाँति तप्त हो जाता है। ताप से पीड़ित तुंग मातुंग हाथी तथा महिषों द्वारा नदियाँ मैली कर दी जाती है। अंगारों के समान सूर्य की किरणों से नदियों का जल सुखा दिया जाता है। इसलिये नदियों के किनारे विस्तृत हो जाते हैं। वृक्ष गर्मी के कारण छायाहीन हो जाते हैं। इनके पत्ते जीर्ण होकर गिर जाते हैं, उनकी छाल सूख जाती है। एवं उन पर फैली लतायें भी सूख जाती हैं।[27]

ग्रीष्म ऋतु के आहार-विहार-क्योंकि इस ऋतु में सूर्य जगत के स्नेहों का आदान (ग्रहण) अधिक मात्रा में कर लेता है। इसलिये व्यायाम आतप धूप कटु, अम्ल, लवण रस वाले एवं उष्ण पदार्थो का सेवन त्याग देना चाहिये। रात्रि में आकाश के नीचे सुगन्धित पुष्पों की शय्या पर सोना चाहिये। कपूर तथा चन्दन के घोल से शरीर को आद्र करके कभी-कभी मैथुन करना चाहिये। प्रतिदिन नहीं।[28]

वाल्मीकि रामायण में भी ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया गया है। श्री राम पंपा सरोवर का निरूपण करते हुऐ लक्ष्मण से कहते हैं-सुमित्रा नन्दन! यह पंपा कैसी सोभा पा रही है। इसका जल वैदूर्यमणि के समान स्वच्छ एवं श्याम है। इसमें बहुत से पद्म और उत्पल खिले हुये है। तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकार के वृक्षों की शोभा और भी बढ़ गयी है।[29] तालाब में उत्पन्न कमल, मत्स्यों, तथा पास के वन में नाना प्रकार के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों का उल्लेख करते हुए कवि ने उसके सौन्दर्य का वर्णन किया है। श्री राम ने पुनः कहा-यद्यपि मैं शोक से पीड़ित हूँ तो भी मुझे यह पम्पा बडी सुहावनी लग रही है। इसके निकटवर्ती वन बडे विचित्र दिखाई देते है। यह नाना प्रकार के फूलों से व्याप्त है। इसका जल बहुत शीतल है। ओर वह बहुत सुखदायिनी प्रतीत होती है। नई-नई घासों

से ढ़का हुआ यह स्थान अपनी नीली-पीली आभा के कारण अधिक शोभा पा रहा है। यहाँ वृक्षों के नाना प्रकार के पुष्प सब ओर बिखरे हुए हैं। इससे ऐसा जान पडता है मानों यहाँ बहुत से गलीचे बिछा दिये गये है।[31] सुमित्रा नन्दन! इस समय मन्द-मन्द सुखदायिनी हवा चल रही है। जिससे कामना का उद्दीपन हो रहा है। यह चौत्र का महीना है। वृक्षों में फूल और फल लग गये हैं और सब ओर मनोहर सुगन्ध छा रही है।[32] मलय चन्दन का स्पर्श कर बहने वाली यह शीतल वायु शरीर से छू जाने पर कितनी सुखद जान पड़ती है। यह थकावट दूर करती हुई तथा सुगन्ध फैला रही है।[33]

इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में ग्रीष्म ऋतु का विस्तार से वर्णन किया गया है।

वर्षा ऋतु चर्या-वर्षा ऋतु का लक्षण बताते हुए अष्टांग हृदयकार ने कहा है-वर्षा ऋतु में वारूण वायु (मानसुन) बहने लगती है। जिससे सब प्रकार का शस्य उत्पन्न होता है आकाश तोडे हुए इन्द्रनील नामन रत्न के समान नीले बादलों के समूह से आच्छादित एवं मलिन होता है। वर्षा के नये जल के समूह से दीर्घिका में सीढ़ियों की पंक्ति डूब जाती है वर्षा के पानी के अत्यधिक आघात से कमल खिल जाते हैं, नदियाँ समुद्र के सदृश दिखाई पड़ती हैं। जीमूत (बादल) मन्द-मन्द गर्जने लगते है। इन्द्रगोप (वीर बहूटी कृमि) इन्द्र धनुष और विद्युत चमकने लगती है। भूमि पर चारों ओर श्यामल तृण (हरी।ास) शिलहिन (छत्रक) तथा कुटज के फूल खिलते है।[34]

वर्षा ऋतु के आहार-विहार-गत आदान काल के प्रभाव से शरीर दुर्बल एवं जठराग्नि मंद होती है। पुन: वृष्टि हो जाने से भूमि से वाष्प निकलने से पिये गये जल का अम्ल विपाक होने से तथा दूषित वातादि के प्रभाव से जठराग्नि और मन्द हो जाती है। वमन और विरेचन से शरीर का संशोधन करके बस्ति कर्म का सेवन करें। पुराने शालि चावल गेहूँ एवं यव को कृतयूष के साथ लेना चाहिये। प्र्घर्षण, उद्धर्तन, स्नान, धूम्रपान तथा सुगन्धित अगरू का लेप करें। यात्रा करनी हो तो अच्छे तरह की हाथी आदि की सवारी पर बैठकर करनी चाहिये। चित्र विचित्र पुष्पों की माला तथा सुन्दर वस्त्र से विभूषित होकर रहें।

निषेध-नदियों का जल, मन्थ (सत्तू) दिन में शयन, अति द्रव अधिक मैथुन, तुषार पैदल चलना व्यायाम तथा सूर्य की किरणों का सेवन त्याग देना चाहिये।[35]

प्राय: सभी अन्न-पान मधु मिश्रित करने का निर्देशकिया गया है। इस ऋतु में वायु का प्रकोप होता है। मधु का गुण भी रूक्ष, लघु, शीत, कषाय तथा अल्पवातल होता है। ऐसी स्थिति में इनका सेवन कैसा होगा इस विषय में चक्रपाणि ने कहा है-''क्षौद्रंच यद्यपिं वात प्रकोपि, तथापि वार्षिक क्लेद शमनार्थं स्वल्पमात्राया क्षौद्रान्वितपदेन विहितम्।''

वाल्मीकि रामायण में वर्षाऋतु का वर्णन अति विस्तार से प्राप्त होता है-श्री राम वर्षा का वर्णन करते हुए लक्ष्मण से कहते है-सुमित्रा नन्दन! अब यह जल की प्राप्ति कराने वाला यह प्रसिद्ध वर्षा काल आ गया है। देखो पर्वत के समान प्रतीत होने वाले मेघों से आकाश मण्डल आच्छन्न हो गया है।[36] यह आकाश स्वरूपा तरूणी सूर्य की किरणों द्वारा समुद्रों का रस पीकर कार्तिक आदि नौ मासों तक धारण किये हुए गर्भ के रूप में जल रूपी रसायन को जन्म दे रही है।[37]

रसायन सेवन से जिस प्रकार मानव पुष्ट होता है। उसी प्रकार पृथ्वी तथा वनस्पतियाँ वर्षा जल रूपी रसायन को प्राप्त कर पुष्ट होकर वृद्धि को प्राप्त होती हैं। विभिन्न प्रकार के पशु पक्षी कीट आदि पैदा होते हैं। मदमत होते हैं और आनन्द में विभोर होकर वन में बोलते तथा नाचते हैं। यह समय अधिकतर मानव के विश्राम का समय होता है। श्री राम ने यहाँ सुग्रीव के विश्राम की भी चर्चा की है।[38] आगे वायु की सुगन्ध बूंदों की गिरावट बादलों के रंग तथा गर्जन, नदियों के प्रवहरण, तालाब, कूप आदि के आप्लावन का भी कवि ने श्री राम के मुख से उल्लेख कराया है। इस ऋतु में जलाभिषेक, युद्ध, यात्राओं के स्थगन, प्रस्थित सेनाओं का पड़ाव आदि का उल्लेख करते हुए श्री राम ने इसे बल संग्रह काल बताया है। वेदों के स्वाध्याय की इच्छा रखने वाले ब्राह्मणों के लिये उपक्रम का समय उपस्थित हुआ है। साम गान करने वाले विद्वानों के स्वाध्याय का भी यही समय है।[39] इस चातुर्मास के आरम्भ होने से पूर्व आवश्यक वस्तुओं के संग्रह पर भी श्री राम ने जोर दिया है और भरत का उदाहरण देते हुए यह अनुमान लगाया है कि भरत ने चार महीने के लिये आवश्यक वस्तुओं का संग्रह कर गत आषाढ़ की पूर्णिमा को निश्चय ही किसी उत्तम व्रत की दीक्षा ली होगी।[40]

शरद ऋतु चर्या-शरद् ऋतु में आकाश सफेद बादलों वाला, पृथ्वी थोड़ा-थोड़ा पक्का वाली होती है। क्रास, सप्तपर्ण तथा कुमुद खिलने लगते हैं, शालि धान्य की खेती से पृथ्वी सुशोभित होती है। वभ्रु वर्ण का सूर्य होता है। दिशाएँ अत्यन्त निर्मल हो जाती हैं, उनमें क्रौंच उड़ते हैं। वर्षा एवं शीत का अनुभव करने वाले अग्ड़ो में सहसा की सूर्य की किरणों से तपने पर जो पित्त वर्षा एवं शीत से संचित था, वह अब कुपित हो जाता है।[41]

शरद् ऋतु के आहार-विहार-इस ऋतु में तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत, विरेचन तथा रक्त मोक्षण प्रशस्त है। प्रतिदिन शीतल, हल्का अन्न-पान तथा कृषाय मधुर और तिक्त रस वाले द्रव्यों का सेवन पथ्य है। भूख लगने पर शालि चावल, पष्टिक (साठी) चावल, गेहूँ, यव, मूंग, शर्करा, मधु, परवल, आमलकी, द्राक्षा, तथा जांगल प्राणियों का मांस सेवन करना चाहिये।

जल जो दिन में सूर्य की किरणों से सन्तप्त हो जाता हो रात्रि में चन्द्र किरणों से शीतल हो जाता हो, अगस्त नक्षत्र से निर्विष हो, निर्मल हो, पवित्र हो, तथा काल के प्रभाव से पक्व (शुद्ध) हो गया हो, वह जल पीने में अमृत के समान होता है।

जिन झीलों में हंस समूह पंखों को चलाते हुए तैर रहे हों भ्रमरों की पंक्तियाँ जहाँ मंडरा रही हों ऐसे कमल युक्त सेवनीय तालाबों में तैरना चाहिये। हल्के तथा शुद्धवस्त्रों को पहन कर तथा फूलों की माला गले में डालकर, शरीर पर उशीर का लेप लगाकर प्रदोषकाल में छत पर बैठकर चन्द्र किरणों को सेवन करें।

निषेध

तृप्ति, दधि, आतप, क्षार, वसा, तैल, पूर्वी-वायु, तीक्ष्ण मद्य, दिन में शयन तथा ओस का सेवन त्याग देना चाहिये।[42]

वाल्मीकि रामायण मे भी शरद् ऋतु का वर्णन कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है। श्री राम ने देखा आकाश श्वेत वर्ण का हो रहा है। चन्द्र मण्डल स्वच्छ दिखायी देता है तथा शरद ऋतु की रजनी के अंगों पर चाँदनी का अंगराग लगा हुआ है। यह सब देखकर वे सीता से मिलने के लिये व्याकुल हो उठे।[43] शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए कवि ने कहा सूर्य, चन्द्र, तारा, जलाशय तथा पृथ्वी स्वच्छ है और शुभ हैं श्री राम सुनहरे रंग की धातुओं से विभूषित पर्वत शिखर पर बैठे हुए शरद काल के स्वच्छ आकाश की ओर दृष्टि-पात कर रहे हैं।[44] लक्ष्मण के अनुसार यह ऋतु योग का सहारा लेते हुए मन को एकाग्र करने की है। इससे सभी चिंता दूर हो जाती हैं।[45] इस समय में कर्मो का अनुष्ठान करना चाहिये। मन को प्रसन्न रखना चाहिये तथा चित्त की एकाग्रता को कायम रखना चाहिये।इससे पराक्रम की वृद्धि होगी तथा शक्ति का गुणन होता है।[46] चन्द्र किरणों का पहाड़ों पर पड़ना, सूर्य प्रकाशित होना, कमलों को स्पर्श कर शीतल मंद वायु का सुगन्धित होकर बहना, धरती के कीचड़ का सूख जाना आदि से दैहिक तथा मानसिक स्वास्थ्यप्रद वातावरण का उल्लेख रामायण में है। शोभा शाली चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श ही से ओढेघ हुए शरद् काल की यह रात्रि श्वेत ढ़के हुए अंग वाली एक सुन्दरी नारी के समान शोभा पा रही है। उदित चन्द्रमा ही उनका सौम्य मुख है और तोर उनकी खुली हुई मनोहर ऑखे। इस ऋतु में जल स्वच्छ हो गया है। धान की खेती पर गयी है। वायु मंद गति से चल रही है और चन्द्रमा निर्मल दिखाई दे रहा है। इस ऋतु में विजय के इच्छुक राजाओं के द्वारा युद्ध के निर्मित उद्योग प्रारम्भ हो जाते हैं। अर्थात् कर्म करने का यह समय है। कूप तड़ागों का जल भी नितर कर 'हंसोदक' बन चुका है।

उपरोक्त सम्पूर्ण विवरण आयुर्वेद की ऋतुचर्या की कसौटी पर खरा उतरता है। रामायण में ऋतु चर्या का वर्णन इस प्रकार सर्वथा आयुर्वेदानुकूल है। अवश्य वह प्रसंगानुसार काव्य धर्म के अनुकुल लोक-व्यवहार के समीप, साहित्यिक रूप से चित्रित किया गया है। आयुर्वेदीय प्रथा के अनुरूप इसका विवरण नहीं किया गया फिर भी यह सब आयुर्वेद विरोधी नहीं है। निश्चय ही यह सब जो कुछ भी है वह आयुर्वेदीय दृष्टि से भी संतोषप्रद है तथा प्रशंसनीय है।

संदर्भ ग्रंथ

1. ऋतौ ऋतौ चर्या। ऋतुचर्या। ऋतुः काल विभागः।
   चरधार्तोर्गति भक्षणार्थस्य चर्यामिति रूपम्, तेन आहारो विहारष्च चर्य शब्देनोच्यते।
   अन्ये....................चर्या शास्त्र नियमित आचारः, ऋतुषु ऋतुनाम् वा चर्या ऋतुचर्या,
   ऋतुचर्यार्थोऽध्यायः ऋतुचर्या (डल्हड़) अ.सं.सू. अ. 4

2. धूम्रधूम्रा रजोमन्दास्तुषाराविलमण्डला:। दिगादित्या मरूच्छैत्यादुतरो रोमहर्षण:।।9।।
रोध्र प्रियडंगु पुन्नागलवल्य: कुसुमोज्जवला:। दृप्ता गजाजमहिष वाजि वायस सूकरा:।।10।।
हिमानी पटलछन्ना जल नमीन विहड्गमा:।
नद्य: सवाष्पा: सोष्माण: कूपापष्च हिमागमे।। 11।। अ.सं.सू. 4/9, 10, 11
3. देहोष्माणो विषन्तोऽन्त: शीते शीतानिलाहता:। 12।। जठरे पिण्डितोष्माणं प्रबलं कुर्वतेऽनलं।।
विसर्गे बलिनां प्राय: स्वभावादि गुरू क्षमम्। 13।। बृहंणान्यन्नपानानि योजयेत्तस्य युक्तये।।
अनिन्धनोऽन्यथा सीदेदत्युदीर्णतयाऽथवा। 14।। धातूनपि पचेदष्य ततस्तेषां क्षयान्मरूत्।।
4. अतो हिमे भजेत्स्निग्धान्स्वादम्ललवणान् रसान। 15।।
विलेशयौदकानूप्रसहानां भूतानि च।
मांसानि गुडपिष्टोत्थमद्यान्यभिनवानि च।। 16।।
माषेक्षुक्षीर विकृति वसा तैलनवोदनान्।
व्यायामोद्वर्तनाभ्यड्ग स्वेद धूमांजनातपान्।। 17।। अ.सं.सू. 4/15, 16, 17
5. सुखोदकम् शौचविधौ भूमि गर्भगृहाणि च।
सगांरयानां शय्या च कुथकम्बलसंस्कृताम्।। 18।।
कुंकुमेनानुदिग्धागोंऽगुरूणा गुरूणाऽपि वा।
लघूष्णै: प्रावृत: स्वप्यात्काले धूपाधिवासित:।। 19।।
पीनागंसंसर्ग निवारितहिमानिल:। अ.सं.सू. 4/18, 19, 20
6. वर्जयेत् अन्नपानानि वातलानि लघूनि च।
प्रवातं प्रमिताऽऽहारं उदमन्थं हिमागमे।। च.सू. 6/18, अ.सं.सू. 4
7. सोऽपि वेलामिमां नूनमभिषेकार्थमुद्यत:।
वृत: प्रकृतिभिनित्यं प्रयाति सरयूं नदीम्।। अर. 16/29
अत्यन्त सुखसंवृद्ध: सुकुमारो हिमार्दित:।
कथं त्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते।। अर. 16/30
8. तर्पयित्वाथ सलिलैस्तै: पितृन् दैवतानापि।
स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्य देवताष्च तथानद्या:।। अर. 16/42
9. नीहार परूषो लोक: पृथिवी सस्यमालिनी।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहन:।। अर. 16/5
10. प्राज्यकामा जनपद: सम्पन्नतरगोरसा:।
विचरन्ति महीपाला यात्रार्थ विजिगीषव:।। अर. 16/7
सेवमाने दृढंध सूर्ये दिषमन्तकसेविताम्।
विहीनतिलकेव स्त्री नोत्तरादिक्प्रकाषते।। अर. 16/8
11. मयूरवैरूपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतै:।
दूरमभ्युदित: सूर्य: शशांकइव लक्ष्यते। अर. 16/18
12 अत्यन्त......................................सलिलदुर्भगा:। अर. 16/10
13. मृदुसूर्या: सुनीहारा: ....साम्प्रतम्।। अर. 16/11
14. अर. 16/13
15. ज्योत्सना ....शोभते।। अर. 16/14
16. प्रकृत्या .... द्विगुणषीतल:।। अर. 16/15
17. अवष्याय ....भूमिनिर्विष्टतरूणातपा:।। अर. 16/20

18. निवृत्ताकाषयना: ....साम्प्रतम्।। अर. 16/12
19. प्रकृत्याहिमकोषाढदयो ....गिरि:।। अर. 16/9
20. षिषिरेषीतमधिकं .... विधि। अ.सं.सू. 4/20
21. बसन्ते दक्षिणो वायुराताम्र किरणो रवि:।। अ.सं.सू. 4/21
नवप्रवालत्वक्पत्रा: .... वनराजिविराजिता:।। अ.सं.सू. 4/22
कोकिला ....दिनकृद्भाभिरीरित:।। अ.सं.सू. 4/23
तदा प्रबाधमानोऽग्निं रोगान्प्रकुरूते बहून्।
22. अतोऽस्मिंस्तीक्ष्ण वमनधूमगण्डूषनावनम्।। अ.सं.सू. 4/24
व्यायमोद्वर्तनक्षौद्रयवगोधूमजाड्ंग लान।
स्वेत सुहृदुद्यानयुवतीष्च मनोरमा:।। अ.सं.सू. 4/25
स्नात: स्वलंकृत: स्रग्वी चन्दनागुरूषित:।
23. विचित्रामत्रविन्यस्तान् सहकारोत्पलाड्कितान्।। अ.सं.सू. 4/26
निर्गदांष्चासवारिष्ट सीधुमाद्वीकमाधवान्।
क्वथिंत मुस्तषुठयम्बु साराम्भ: क्षौद्रवारि वा।। अ.सं.सू. 4/27
24. मां हि शोक .... कोकिल:। कि. 1/23
अशोककस्तरबकाड्गर: षटपदस्वननि: स्वन:।। कि. 1/29
25. मन्मथायाससम्भूतो वसन्तगुणवर्धित:।। कि. 1/32
26. नूनं ....मया विना।। कि. 1/48
27. ग्रीष्मेऽतसीपुष्पनिमस्तीक्ष्णां शुर्दावदीपिता:।। अ.सं.सू. 4/28
दिशो ज्वलन्ति .... ज्वरिता इवं अ.सं.सू. 4/29
तापार्ततुड्गमातड्ग ....दिवाकरकराड्गरनिकरक्षपिताम्भस:।। अ.सं.सू. 4/30
प्रबृद्धरोधसो .... शुष्कबल्कलताड्किता:।। अ.सं.सू. 4/31
28. आदत्ते ....व्यजेदत:।। अ.सं.सू. 4/32
मद्यं न ....मोहान्करोति तत्।। 33
नवमृदभाजनस्थानि .... हिमानि च।। 34
स्वादु .... शालिक्षीरघृतद्राक्षारानिकेराम्बुषर्करा:।। 35
तलवृन्तानिलान्.............................कान्ताष्चन्दनरूषिता:।। 36
स्रांसिवापी: ....सुलघूनि च।। 37
निष्पतद्यन्त्र.............................कुसुमास्तृते।। 38
कर्पूरचन्दनाद्रड्गिो विरलानड्गसड्गम:। अ.सं.सू. 4/32, 33......39
29. सौमित्रे ....विवधैर्द्रुमै:।। कि. 1/3
30. शोकार्तस्यपि .... षिवा।। कि. 1/6
31. अधिकं ....परिस्तोमैरिवार्पितमं। कि. 1/8
32. सुखानिलोऽयं.............................जातपुष्पफलद्रुम:।। कि. 1/10
33. स एव .... श्रमापनयनोऽनिल:।। कि. 1/17
34. वर्षासुवारूणो वायु: सर्वसस्यसमुद्गम:। अ.सं.सू. 4/39
भिन्नेन्द्र ....नववायौघमग्नसोपानपड्क्तय:।। अ.सं.सू. 4/40
वारिधाराभृषाघातविकासित .... जल स्थला।। अ.सं.सू. 4/41
मन्द्रस्तनित ....खण्डविद्युदुद्योतदीपिता। अ.सं.सू. 4/42
परित: श्यामलतृणा षिलीन्ध्रकुटजोज्वला।

35. तदाऽऽदानाबले देहे मन्देऽग्नौ बाधिते पुन:।। अ.सं.सू. 4/43........50
36. अयं .... गिरिसंनिभै:।। कि. 28/2
37. नवमास धृतं ....रसायमन्।। कि. 28/3
38. एष फुल्लार्जुन: ....शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते। कि. 28/9
39. मासि ....सामगानामुपस्थित:।। कि. 28/54
40. वितृतकर्मायतनो ....कोसलाधिप।। कि. 28/55
41. शरदि .... शालिषालिनी।। अ.सं.सू. 4/50
    विक्षिप्त .... दिषा:।। अ.सं.सू. 4/51 53
42. शस्तं .... तिक्तकम्।। अ.सं.सू. 4/54
    शालिषाष्टिक .... भृषम्।। अ.सं.सू. 4/55
    दिवादिवाकर .... तोयमगस्तेनाविषीकृतम्।। 56।।
    निर्मलं ....भ्रमरपङ्क्तिषु।। 57।।
    सुसरोरूहसेव्यासु ....शीतोषीरविलेपन:।। 58।।
    सेवेत ....पुरोऽनिलान।। 59।।
43. पाण्डुरं ....ज्योत्स्नानुलेपनाम्।। कि. 30/2
44. आसीन:............................प्रियाम्।। कि. 30/6
45. अयं ....निवर्तते ने।। कि. 30/16
46. क्रिययाभियोगं ....कुरूष्व तात:।। कि. 30/17
47. रात्रि: ....शुक्लांषुक्रसंवृताङ्गी।। कि. 30/46
48. जलं प्रसन्नं ....वर्षव्यपनीतकालम्।। कि. 30/53

कबीर की वाणी में राष्ट्रीय-सामाजिक भावैक्य का दिग्दर्शन

डॉ० मनोज कुमार पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), कालीचरण पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

हिन्दी सन्त साहित्य में कबीर अखण्ड एवं अबाध प्रासंगिकता वाले सन्त कवि हुए हैं। अपनी जीवन्त व प्रासंगिक वाणी के कारण ये सदा-सर्वदा प्रसिद्ध रहे हैं। हिन्दी के प्रारम्भिक कवियों में इनका विशेष स्थान रहा है। कबीर अपनी वाणी तथा भाषा की दृष्टि से आज के पाठक समुदाय के लिए अत्यधिक प्रासंगिक, बोधगम्य व उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनकी वाणी को अमृतवाणी कहा गया है। दर्शन और ज्ञान के क्षेत्र में उनका अबाध प्रवेश, विचारों व विश्लेषण की उनकी सूक्ष्मता तथा स्थितियों के प्रति उनकी पैनी पकड़ उन्हें अपने समय के पण्डितों में विशेष स्थान दिलाता है। नए ढंग के भक्त और सन्त होकर ये जनसामान्य की मुक्ति एवं उद्धार के लिए सदैव ही क्रियाशील रहे हैं।

कबीर की वाणी अर्थात् इनकी रचनाओं को ग्रन्थावली में संग्रहीत करने की प्रवृत्ति को ही वाणी के रूप में सम्बोधित किया गया है। यह 'बानी' (वाणी) शब्दार्थक 'वण्' धातु से 'इण्' प्रत्यय होने पर 'वाणि' शब्द बना है तथा इसमें 'ङीप्' स्त्री प्रत्यय होने पर 'वाणी' शब्द की निष्पत्ति हुई। इसका अर्थ शब्द, सरस्वती, वाक्य इत्यादि है। वैसे 'वाणी' शब्द भाषा का वाचक रहा है परन्तु सन्त साहित्य में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा 'वाणी' शब्द का विकसित रूप 'बानी' है और यही 'बानी' शब्द सन्तों द्वारा कही गई महत्त्वपूर्ण बातों का वाचक बन गया है। सन्तों के पदों को 'वाणी' कहने की मान्यता स्वीकार की गई है।

सन्त साहित्य में गुरु के उपदेशपूर्ण वचनों के लिए ही 'बानी' शब्द का प्रयोग हुआ है। डॉ0 नजीर मुहम्मद ने 'वाणी' के विषय में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा कि सन्तों में गुरुओं की इन वाणियों को ही आदिकालीन माना गया है। वाणी का प्रयोग केवल पदों के लिए ही न होकर कहीं-कहीं गुरु की समस्त रचनाओं के लिए भी हुआ है। सन्त साहित्य में गुरु की रचनाओं के साथ-साथ सभी विशिष्ट व्यक्तियों की रचनाओं को भी (गुरु की हो या सम्प्रदाय के प्रवर्तक की) 'वाणी' की संज्ञा दी गई है।

वस्तुत: सन्तों की रचनाओं को वाणी कहने का मुख्य कारण यह भी रहा है कि ये सन्त लोग पढ़े-लिखे नहीं थे। उन्होंने 'मसि कागद' को हाथ भी नहीं लगाया था जैसा कि कबीर ने अपने लिए स्वयं भी स्वीकार किया था कि 'मसि कागद छुओ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।' अत: इन लोगों ने अपनी बातों को मौखिक रूप में कह दिया तथा इनके शिष्यों एवं अनुगामियों ने उसे संकलित कर लिया था, इसीलिए सन्तों की इन रचनाओं को 'बानी' कहा गया।[1]

कबीर की साधना, आत्मा, परमात्मा और जीवन की विविध अनुभूतियाँ जब कवित्वमय वाणी में उद्घोषित होने लगीं तो उनके सम्पर्क में रहने वाले सन्तों, श्रद्धालु भक्तों-शिष्यों एवं जनता ने उन्हें उपयोगी समझकर अपने मस्तिष्क में अंकित कर लिया और कुछ ने उन्हें आगे-पीछे लिपिबद्ध कर लिया। जिस प्रकार पहाड़ी घाटी में तीव्र आवाज से चिल्लाने पर कुछ देर तक वाणी की प्रतिध्वनि गूँजती रहती है ठीक उसी प्रकार महान् रचनाकार की वाणी भी जनता के हृदय-गुहा में ध्वनित-प्रतिध्वनित होती रहती है और यह सिलसिला शताब्दियों तक चलता रहता है। एक बड़ा रचनाकार सिर्फ रचता ही नहीं अपितु रचनात्मक क्षमता को उत्तेजित भी करता है। कबीरदास ने भी कुछ ऐसा ही किया। कबीर की वाणी को उनके अनुयायियों एवं श्रद्धालुओं ने अपनी-अपनी भाषा में प्रचलित किया, परिणामस्वरूप कबीर की वाणी का मूल पाठ निर्धारित करना कठिन हो गया। ऐसे प्रयासों से कबीर से सम्बन्धित अनेक प्रमाणिक, अप्रमाणिक पाठों पर आधारित विविध बीजक, पदावलियाँ और ग्रन्थावलियाँ सम्पादित व प्रकाशित हुईं।

कबीर वाणी की ग्रन्थावलियाँ प्रकाशित होने के पश्चात् इनके वैज्ञानिक पाठ को निर्धारित करने का कार्य किया गया। कबीर का सारा लेखन जनता के लिए व उनके सुधार के लिए रहा है। कबीर ने लिखने की दृष्टि से नहीं लिखा अपितु सहज लिखा। कबीर की कुछ प्रमाणित कृतियाँ सामने आई जिसमें 'आनन्द राम सागर', 'वलख की रमैनी', 'चाँचरा', 'हिंडोला', 'झूलना', 'कबीर पंजी', 'कहरा' व 'शब्दावली' सम्मिलित हैं। विद्वान् विल्सन ने अपने ग्रन्थ 'रेलिजस सेक्ट्स ऑफ दि हिन्दूज' (1846ई0) में इन कृतियों के बारे में जानकारी दी है।

कबीर की प्रमाणिक कृतियों के विषय में उनकी रचनाओं के प्रमाणिक संस्करण बनाने में गहन प्रयास किए गए, जिनमें कुछ महत्त्वपूर्ण सम्पादित कृतियाँ प्रकाशित हुई जैसे- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 1916ई0 में कबीर वचनावली (781 साखियाँ व 228 पद संग्रहीत), बाबू श्याम सुन्दर दास की 1928ई0 में कबीर ग्रन्थावली (809 साखियाँ, 400 पद एवं 7 रमैनियाँ संग्रहीत), डॉ0 रामकुमार वर्मा की स0 1943ई0 में सन्त कबीर (243 साखियाँ और 228 पद संकलित)[2], डॉ0 पारसनाथ तिवारी की सन् 1961ई0 में कबीर ग्रन्थावली (200 पद, 42 रमैनियाँ एवं 747 साखियाँ सम्मिलित)[3], डॉ0 माता प्रसाद गुप्त की सन् 1969ई0 में कबीर ग्रन्थावली (पुस्तक डॉ0 पारसनाथ तिवारी द्वारा सम्पादित ग्रन्थावली संस्करण के सम्बन्ध में पुनर्विचार व आधार बताने के साथ ही बाबू श्याम सुन्दर दास के संस्करण को नवीनता प्रदान करती है।), डॉ0 शुक्रदेव सिंह की सन् 1971ई0 में कबीर बीजक (84 रमैनियाँ, 115 शब्दों, 353 साखियाँ, 12 कहरों, 12 बसन्तों, 2 बेइलियाँ, 1 बिरहुली, 2 चाँचरियों, 3 हिंडोलों, 1 चौतीसी तथा 1 विप्रमतीसी सम्मिलित) तथा डॉ0 जयदेव सिंह, वासुदेव सिंह की सन् 1974ई0 में रमैनी (कबीर के सम्पूर्ण प्रमाणिक साहित्य की व्याख्या)।

कबीर वाणी में पाठ की मुख्य कुल तीन परम्पराएँ सम्मिलित हैं- राजस्थानी पाठ परम्परा, पंजाबी पाठ परम्परा एवं पूर्वी (अवधी) पाठ परम्परा। 'कबीर ग्रन्थावली' (स0 बाबू श्याम सुन्दर दास, डॉ0 पारसनाथ तिवारी व डॉ0 माता प्रसाद गुप्त) राजस्थानी पाठ परम्परा का प्रतिनिधि ग्रन्थ, 'सन्त कबीर' (स0 डॉ0 रामकुमार वर्मा) पंजाबी पाठ परम्परा तथा 'बीजक' (स0 डॉ0 शुक्रदेव सिंह) पूर्वी हिन्दी (अवधी) पाठ परम्परा के ग्रन्थ हैं।4 कबीर की वाणियों में 'बीजक' का मुद्रण सर्वप्रथम हुआ और कबीर पंथी 'बीजक' को सर्वाधिक प्रमाणिक व आदरणीय ग्रन्थ स्वीकार करते हैं। लोक में कबीर की जो वाणी मौखिक परम्परा से चली आ रही है उसको शत-प्रतिशत शुद्ध तो नहीं माना जा सकता किन्तु इतना अवश्य स्वीकार किया गया है कि उसकी मूल चेतना में कबीर की चेतना मौजूद है।

कबीर ने जो कुछ कहा, उसमें गहरी अनुभूति, सत्य व खोजी सत्य छिपे हैं। उनकी वाणी में आध्यात्मिक रस प्रधान रहा है। उनकी गुरु गम्भीर वाणी में उमड़ा कवित्व उनकी अभिव्यक्ति का उच्च रूप रहा है। कबीर की रचनाओं को मुख्यत: दो प्रकार के संग्रहों में विभाजित किया गया है- एक 'बानी' तथा दूसरा 'बीजक'। 'बानी' के भी 3 भाग हैं- (1) साखी, (2) सबद (पद), (3) रमैणी (रमैनी)। बीजक में उपर्युक्त तीनों भाग मिलते हैं लेकिन उनमें साखी व सबद कम सम्मिलित हैं।

कबीर के इन सभी संग्रहों में सिद्धान्तों तथा उपदेशों की अधिकता रही है। कबीर ने प्राय: गुरु महिमा, सतपुरुष महिमा, सन्त महिमा, सत्य वचन, भक्त महिमा, माया निरूपण, नाम महिमा, सत्यगतिलाभ, कुसंगति से हानि, साधु महिमा, ईश विनय इत्यादि पर अत्यधिक काव्य रचा है। अपनी कटु आलोचना पद्धति से इन्होंने मुल्ला, पण्डित, मौलवी, धर्माडम्बरों इत्यादि का विरोध किया है। अपनी स्पष्टवादिता तथा निष्पक्षता से कबीर के साहित्य ने जनसामान्य पर गहरा प्रभाव बनाया है। इनके साहित्य में समन्वयवाद, जनजीवन में व्याप्त कुरीतियों, वैमनस्यता को दूर करके उसके स्थान पर साम्यता एवं एकता की धारा प्रवाहित हुई है। हिन्दु-मुस्लिम में एकता लाकर जनसामान्य को सही मार्ग दिखाने व उन्हें जोड़ने का इन्होंने सराहनीय कार्य किया। कबीर का प्रतीक विधान दैनिक व्यवहार से लिया गया है, जो सजीवता व मार्मिकता के साथ व्यक्त हुआ है।

कबीर की रचनाओं, साखियों का अधिक महत्त्व रहा है। इनकी साखी 'ज्ञान की आँख' कहलाती है। कबीर का कथन है-

''साखी आँखी ज्ञान की, समुदि देखि मन माहिं।
बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं।।'' *-कबीर बीजक, 353*

इनकी साखियाँ शुद्ध आचरण व सदाचार की शिक्षा प्रदान करती हैं तथा ये कहते हैं कि मनुष्य को ऐसी बोली बोलनी चाहिए, जिसमें अहंकार लेशमात्र भी न हो-

''ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोइ।
अपना तन शीतल करै, औरन को सुख होइ।।''[5]

कबीर ने अपनी साखियों के द्वारा मानव को आत्म निरीक्षण, परोपकार, उदारता, सेवा, आध्यात्म, विनम्रता, ईश्वर विश्वास, वाणी सौन्दर्य से जोड़ने का सफल काम किया है।

कबीर बानी में उलटबाँसी को 'उलटवेद', 'उलटावेद' या 'उलटीवेद' कहा गया है। इनकी उलटबाँसियों में अर्थ की अनेक सम्भावनाएँ निहित हैं। एक विचार को काटने वाले दूसरे विचार वाले पद सहजता से उपलब्ध हो जाते हैं। इनकी उलटबाँसियों के विषयों में सांसारिक भ्रम, मायाजाल, विचार, प्रपंच, जिज्ञासा, लौकिक व्यवहार, विरह, सहानुभूति, ज्ञान, बोधवृत्ति, मौलिकता आदि सम्मिलित हैं। कबीर कहते हैं-

''कैसे नगरि करौं बुखारी। चंचल पुरिष बिचषन नारी।
बैल बियाइ गाइ भई बांझ। बछरा दूहै तीन्यूं सांझ।।
...मकड़ी घरि भाषी छछिहारी। मास पसारि चील्ह रखबारी।
मूसा खेवर नाव बिलइया। मींडक सोवै सांप पहरइया।।
नित उठि स्याल सूं झूझै। कहै कबीर कोई बिरला बूझै।।''

कबीर ने इन उलटिवेदों के द्वारा आडम्बरों, मान्यताओं, रूढ़ियों का घोर रूप में विरोध किया है-

''है कोई जगत गुरू ग्यानी उलटिवद बूझै।
पांणी में अगनि जरै, अंधेरे कौं सूझे।।'' (कबीर ग्रन्थावली, पद 160)

कबीर की कबीर ग्रन्थावली (सम्पादक बाबू श्याम सुन्दर दास) के साथ ही कबीर बीजक (सम्पादक विचारदास शास्त्री) भी प्रमाणिक कृति मानी गई है। 'कबीर ग्रन्थावली' के 'साखी भाग' में लगभग पचास साखियाँ, 'पदावली भाग' में लगभग नब्बे पद 'उलटबाँसी' शैली के रहे हैं। 'बीजक' में भी कई पद ग्रन्थावली के समान ही हैं। 'बीजक' में करीब छ: भाग 'रमैनी', लगभग पैंतीस 'सबद' तथा बीस के करीब 'साखियाँ' सम्मिलित हैं।[6]

इनकी सूक्तियाँ अमर रही हैं इसीलिए इन्हें अमर सूक्तियों के कवि कहा गया है। इन सूक्तियों के माध्यम से ये मानव को वर्गहीन समाज अपनाने (''साई इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय। मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाय।।''), कर्मशील बनने, वीरों को उच्च स्थान देने, कायर की निन्दा करने, कपट व कपटी से दूर रहने (''प्रेम प्रीति से जो मिले, ताको मिलिये धाय। कपट राखि के जो मिले, तासों मिले बलाय।।''), नशा करने से दूर रहने (''मांग तमाखू, सुरा पान ले घूंट। कहैं कबिरा ता जीव का, धर्मराय सिर कूट।।''), धर्मनिरपेक्षता व जातिविहीन समाज बनाने (''रज गुन ब्रह्म तम गुन शंकर, सत गुण हरि सोई। कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू-तुरूक न कोई।।''), पाखण्ड व लोभ को त्यागने (''गुरू लोभी सिष लालची, दोनों खेलें दांव। दोनों बूड़े बापुरे, चढिघ पाथर की नांव।।''), भगवद् प्रेम को अपनाने (''पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।''), काम, क्रोध, मद, लोभ को त्यागने, स्वार्थ-खुदगर्ज़ी को मिटाने (''आप सवारथ मेदनीं, भगत सवारथ दास। कबीरां रांम सवारथी, जिनि छांड़ी तनकी आस।।''), धन संचय न करने व तृष्णा को त्यागने की बात कही है। अन्धविश्वासों को ललकारते हुए इन्होंने कहा था- ''कहत कबीर चेत रे अंधा, सत्य राम झूठा सब धन्धा।''

कबीर समाज में नवजागरण के प्रणेता थे। इन्होंने कथनी-करनी के भेद को मिटाकर सभी के प्रति दयाभाव रखने का उपदेश दिया है, जिसकी उपादेयता आज के सन्दर्भ में अत्यधिक बढ़ गई है। धर्म के नाम पर पशुओं व मनुष्यों की हत्या करने वालों के लिए भी कबीर की वाणी में व्यंग्य की चोट व्यक्त हुई है। 'कबीर के काव्य में वाणी का उतार-चढ़ाव कई रूपों में व्यक्त हुआ है। कहीं वे अपने दैन्य व विनम्र भाव के कारण अत्यन्त करुण प्रकृति के, तो कहीं काजी मुल्ला के बाह्याचारों पर चोट करते हुए कठोर दिखाई दिए हैं।'[7] कबीर ने अपनी वाणी में व्यक्तिगत सुधार की पक्षधरता करते हुए सभी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राष्ट्रीय साम्यता पर बल दिया है।[8] इनका काव्य मुक्तक क्षेत्र के अन्तर्गत अधिक समाहित है। उसमें उन्होंने कुछ ज्ञान पर और कुछ नीति पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। उनके नीति काव्य की सफलता की कसौटी सर्वप्रिय रही है तथा रहस्यवादी कवियों में इन्हें सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है। इनकी भाषा में कहीं-कहीं बिलकुल गँवारूपन दिखाई दिया है लेकिन इसके पश्चात् भी इनकी बातों में खरेपन की मिठास व्याप्त है।[9]

कबीर की वाणी में नाथ, सिद्ध व योगियों के परम्परागत शब्दों यथा- अनहदनाद, शून्य, अवधू, षट् चक्र (मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञा चक्र तथा इसके अतिरिक्त एक अन्य चक्र सहस्त्रार चक्र), नाद और बिन्दु, उन्मनी, सहज, सुरति-निरति, अजपाजाप, इला (इडा) व पिंगला, कुण्डलिनी, भंवर गुफा व निरंजन इत्यादि का प्रयोग हुआ है।[10] इनके माध्यम से भी राष्ट्रीय व सामाजिक भावों की उत्पत्ति हुई है। ये सभी मनुष्य को आन्तरिक रूप से शुद्ध करके सत्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहे हैं। इनकी 'रमैनी' में कुछ ऐसे प्रयोग उपलब्ध हुए हैं जिनके आधार पर यह माना गया है कि इनकी रचना लोकोपचार की दृष्टि से भी की गई है। 'इन्होंने विश्वधर्म का मूलाधार हृदय की पवित्रता को स्वीकार किया है, जिसका चित्रण इनकी वाणियों में प्रकट हुआ है।'[11]

कबीर ने जनता में राष्ट्रीय-सामाजिक एकता हेतु आत्मबल व आत्म विश्वास को जाग्रत किया। भारतीय जनता को हताशा एवं निराशा के बदले एक संकल्प व शक्ति दी और उनके जीवन को एक स्पष्ट दिशा व संरचना प्रदान की। राष्ट्रीय-सामाजिक अखण्डता को बनाए रखने में इनकी प्रकृति सदैव क्रान्तिकारी व एक विद्रोही की रही है इसीलिए 'शुक्ल जी ने कबीर को डाँटने-फटकारने वाला कवि या समाज-सुधारक स्वीकार किया है।'[12] कबीर ने शान्ति, साधुता व श्रम की जो त्रिवेणी रची है, वह अकारण नहीं रही है। उन्होंने समाज के साथ ही मानव मन की सही परख करके ही ऐसी त्रिवेणी का निर्माण किया, जो अद्भुत है। इसीलिए कबीर कहते हैं- 'हस्ती चढ़िये ज्ञान का, सहज दुलीचा डारि।' ये समस्त जन को आजीवन नितान्त निरुद्वेग, शान्त, स्थिर व कर्ममय जीवन जीने का सन्देश देते रहे।[13]

निष्कर्षत: कबीर की वाणी आज भी अन्य सन्तों की तुलना में अत्यधिक मार्मिक, अमर, सहज, प्रासंगिक, धारदार व वजनदार है। यद्यपि कबीर की भाषा पंचमेल खिचड़ी है जिसमें पूर्वी (अवधी), खड़ी ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी के शब्द व बोलियाँ सम्मिलित हैं जिसने इनकी भाषा व वाणी को एक अलग रूप प्रदान किया है। क्योंकि कबीर घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के थे, इसी कारण इनकी भाषा में विभिन्न प्रान्तों की बोलियों का प्रभाव दिखाई दिया।

सामाजिक-राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार कवि, सन्त, क्रान्तिकारी, समाज-सुधारक कबीर मानव व मानवता के प्रणेता हैं। इनकी वाणी शताब्दियों से जनसामान्य को प्रेरणा देते हुए आज भी आने वाली पीढिय्यों को अजस्त्र प्रेरणा प्रदान करते हुए प्रचलित है। इनकी वाणियों ने समाज को सशक्त, निर्दोष व कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करने की चेष्टा की है। इनके साहित्य में धार्मिक पाखण्डों, सामाजिक कुरीतियों, आडम्बरों का विरोध चित्रित हुआ है। इनकी वाणी में समाज में क्रान्ति लाने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है। यह जनमानस की वृत्तियों को परिमार्जित करने तथा जन-जीवन को उन्नत बनाने में सक्षम व सशक्त है। यह मानवता का साहित्य, विश्वबन्धुत्व भावना जाग्रत करने, भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण में बढ़ते आपसी भेदभाव व वैमनस्यता को मिटाने, जनसाधारण में भ्रातृभाव बढ़ाने व वसुधैव कुटुम्बकम् का परिचायक है। लोगों को सही मार्ग दिखाने, उनका जीवन उन्नत बनाने, नैतिक, चारित्रिक मनोबल बढ़ाने में इनकी बानियाँ सराहनीय व उत्कृष्ट रही हैं। अत: कबीर की वाणी 'ग्लोबल हिंसा' तथा 'आतंकवाद' को शान्ति, सरलता, सहजता व सादगी का पाठ पढ़ाने में अत्यधिक उत्तम है।

सन्दर्भ:

1. सन्त साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ0 शशिकला पाण्डेय, पृष्ठ 207-209, संस्करण प्रथम 1981, अनामिका प्रकाशन इलाहाबाद।
2. कबीर जीवन और दर्शन, वन्दना सक्सेना, पृष्ठ 96-97, संस्करण प्रथम 2010, आकांक्षा प्रकाशन दिल्ली।
3. कबीर ग्रन्थावली (सटीक), रामकिशोर शर्मा, 'प्राक्कथन' शीर्षक के पृष्ठ 6 से, संस्करण तृतीय 2003, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।
4. कबीर जीवन और दर्शन, वन्दना सक्सेना, पृष्ठ 97-98, संस्करण प्रथम 2010, आकांक्षा प्रकाशन दिल्ली।
5. वही, पृष्ठ 19 ।
6. वही, पृष्ठ 91-92 ।
7. कबीर का सामाजिक दर्शन, डॉ0 प्रहलाद मौर्य, पृष्ठ 102, प्रकाशन पुस्तक संस्थान कानपुर।
8. भारत की सन्त परम्परा, डॉ0 राधा मोहन श्रीवास्तव, पृष्ठ 33, संस्करण प्रथम 2000ई0, विभोर प्रकाशन इलाहाबाद।
9. कबीर ग्रन्थावली, डॉ0 श्याम सुन्दर दास, पृष्ठ 50, संस्करण 2009, चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर।
10. कबीर चिन्तन, डॉ0 नारायण प्रसाद वाजपेयी 'करुणेश', पृष्ठ 127-135, संस्करण प्रथम 1979, भावना प्रकाशन दिल्ली।
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 हरदयाल, पृष्ठ 115, संस्करण चालीसवाँ 2012, मयूर पेपरबैक्स नोएडा।
12. कबीर एक और दृष्टि, डॉ0 श्याम सुन्दर घोष, पृष्ठ 4, संस्करण प्रथम 1999, उमेश प्रकाशन इलाहाबाद।
13. वही, पृष्ठ 89 ।

महजर की घोषणा एवं महत्व

डॉ. सुशील कुमार सिंह

एसोसियेट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुलतानपुर (उ.प्र.) - 228 118

शक्ति सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुलतानपुर (उ.प्र.) - 228 118

शोध सारांश

मुगल सत्ता की भारत मे ठोस बुनियाद रखने में अकबर का योगदान निर्विवाद है। इस संदर्भ में उसकी सुलह-ए-कुल के सिद्धांत पर आधारित धार्मिक सहिष्णुता की नीति के एक महत्वपूर्ण चरण महजर की उदघोषणा पर भी ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। प्रस्तुत आलेख में महजर की उदघोषणा और महत्व को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इबादत खाने के प्रयोग ने अकबर की इस्लाम धर्म की रूढ़वादिता एवम धर्मान्धता में आस्था को पूरी तरह समाप्त कर दिया। ये अनुभव अकबर को सुलह- ए -कुल या सर्वत्र शान्ति के विचार की ओर ले गए। सहिष्णुता की यह धारणा विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में अंतर नही करती अपितु इसका केन्द्रबिन्दु थी। नीति शास्त्र की एक व्यवस्था जो सर्वत्र लागू की जा सकती थी और जिसमे केवल सच्चाई, न्याय और शान्ति पर बल था।इस धार्मिक सम्मेलन से अकबर को दो लाभ हुए- प्रथम, उसने उलेमा वर्ग की धार्मिक कट्टरता तथा संकीर्णता को समझा फिर उससे आगे बढ़ गया, दूसरे, उसके आध्यात्मिक चिंतन के विकास में भी इबादत खाने की महत्वपूर्ण भूमिका रही उसकी एकेश्वरवादी दृष्टि का विकास हुआ। उसको यह ज्ञान हुआ कि सभी धर्मो का मर्म एवं अंतिम लक्ष्य एक है। अत: अकबर ने धर्म के क्षेत्र में सार्वभौमिक सहिष्णुता सुलह- ए-कुल की नीति का अनुसरण कर अपनी धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय और उदारता का परिचय दिया। 1579 ईसवी में अकबर ने दो महत्वपूर्ण निर्णय लिया जो अकबर के नवीन उद्देश्यों का प्रतीक बन कर आई।

कुंजी शब्द- महजर, एकेश्वरवाद, नीतिशास्त्र, सुलह-ए-कुल, धार्मिक सहिष्णुता।

अकबर प्रारंभ में औपचरिक शिक्षा से वंचित रहा था परन्तु वह स्वभाव से जिज्ञासु और सत्यान्वेषी प्रवृत्ति का था। ज्ञानियों और आध्यात्मिक व्यक्तियों के प्रति आरंभ से ही उसमे विशेष श्रद्धा थी। एक बार 1576 ईसवी में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की मजार पर उपस्थित हेतु पैदल चितौड़ से अजमेर गया। इस्लाम के सिद्धांतों को समझने की उसमे तीव्र आकांक्षा थी। इसी उद्देश्य से उसने 1575 में सीकरी में अब्दुल नियाजी नामक एक सूफी संत जो गुजरात चला गया था, की कोठरी के पास एक इबादत खाने (प्रार्थना कक्ष) की स्थापना की। प्रत्येक बृहस्पतिवार की रात में और कभी - कभी शुक्रवार के प्रात:काल मे अकबर वहां एकत्र धर्माचार्यो की चर्चा सुनता और उनसे वार्तालाप करता। शुरूआत में वाद-विवाद केवल सुन्नी मत के इर्द- गिर्द और उसके अनुयायियों तक सीमित था। प्रमुख सदर शेख अब्दुल नबी तथा सुल्तानपुर के मुल्ला अब्दुल नबी जिन्हें 'मखदमू-उल-मुल्क' की उपाधि मिली थी, इसमें प्रमुख रूप से भाग लेते थे, किंतु बाद में इसमें शिया मत के अनुयायियों को भी शामिल होने का मौका मिला। लेकिन मुस्लिम उलेमाओं की आपसी मतभिन्नता, झगड़ो, गाली-गलौज और अनुशासनहीनता ने अकबर को जता दिया कि इस्लाम दोषमुक्त नही है। फलत:

उसने इबादतखाने का दरवाजा अन्य धर्मों के अनुयायियों के लिए भी खोल दिया। हिन्दू, पारसी, जैन और ईसाई भी धार्मिक वाद-विवादों में भाग लेने लगे। इस वाद-विवाद का महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि अकबर का विश्वास इस्लाम के परंपरागतस्वरूप में नही रहा और उसने समझा कि सत्य किसी एक धर्म विशेष में नही है, बल्कि सभी धर्मों में है। उसका समकालीन इतिहासकार अबुल फजल लिखता है कि- अकबर को यह विश्वास होने लगा था कि ''सत्य सभी धर्मों में है सभी धर्मो के समझदार और स्वतन्त्र विचारक होते हैं। जब सत्य सभी धर्मों में है तो यह समझना भूल है कि सच्चाई केवल इस्लाम धर्म तक सीमित है।''[1] साथ ही वह राज्य के नीति संचालन में इस उलमा वर्ग के प्रभाव के बारे में भी वह सचेत हो गया। उसकी समझ बनी की जो विद्वान धार्मिक रीति और मतान्धता पर बल देते हैं, वे अक्सर कट्टर होते हैं। उनकी शिक्षायें प्रजा के बीच विभाजन और असामंजस्य उतपन्न करती है। सतीश चंद्र के शब्दों में -''इन बहसों के दो महत्वपूर्ण परिणाम निकले, एक तो उनसे अकबर को विश्वास हो गया कि सभी धर्मों में सत्य के तत्व हैं और सभी मनुष्य को एक ही परम यथार्थ तक ले जाते हैं। यह खुद अकबर के धार्मिक विचारों के विकास का एक महत्वपूर्ण चरण था और इस विकास- प्रक्रिया के फलस्वरूप वह सुलह-ए-कुल या सभी धर्मों के बीच शान्ति की अवधारणा तक पहुंचा। दूसरे, इन बहसों से दरबारी आलिमों के विचारों की संकीर्णता, धर्माधता और उदंडता खुल्लमखुल्ला सामने आ गयी और उनके साथ अकबर का सम्बंध विच्छिन्न हो गया।''[2]

इबादतखाने में बहस के दौरान उसने सुन रखा था कि प्रथम चार पवित्र खलीफा, तिमूर, मिर्जा उलुगबेग एवं अन्य कई शक्तिशाली शासक जुम्मे की नमाज के समय स्वयं खुतबा पढ़ते थे। अकबर ने भी इन पूर्व उदाहरणों से प्रेरित होकर वैसा ही करने का विचार किया। किंतु वास्तव में वह चाहता था कि प्रजा उसे उस युग का मुज्तहिद स्वीकार करे। 26 जून, 1579 ईसवी को अकबर ने फतेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद के मिम्बर (वेदी)से स्वयं खुतबा पढ़ा, जिसकी रचना फैजी ने की थी।

'' ईश्वर जिसने मुझे साम्राज्य प्रदान किया है,
जिसने हमे विवेकशील हृदय तथा सशक्त भुजाएं दी है,
जिसने धर्म और न्याय से मेरा मार्गदर्शन किया है,
जिसने धर्म को छोड़कर मेरे हृदय से सबकुछ निकाल दिया है,
जिसके सद्‌गुण मानव की बुद्धि से परे है,
उसके गौरव में वृद्धि हो,अल्लाहू अकबर।''[3]

जैसा कि तिमूरी इतिहास में यह कोई नई बात नही थी। मुगल तिमूर को अपना पूर्वज मानने में गर्व का अनुभव भी करते थे। किंतु बदली हुई परिस्थितियों में और भारत के संदर्भ में यह निश्चित रूप से एक नई बात थी। इस्लाम धर्म के कट्टरपंथी क्षेत्रों में यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन था। जिससे लोगो को बादशाह के मन्तव्य के सम्बंध में संदेह उत्पन्न हुआ। बी.एन. लूनिया के शब्दों में - ''अकबर ने खुतबे के अंत मे 'अल्ला- हु -अकबर'' शब्द पढ़े जिसका एक अर्थ है कि 'अल्लाह ही महान है' परन्तु उसके कुछ विरोधियों ने इसका दूसरा अर्थ यह निकला कि 'अकबर ही अल्लाह है' तथा इन्होंने कट्टर धर्मांध मुसलमानों को अकबर के विरुद्ध भड़काना प्रारम्भ कर दिया।'' यद्यपि अकबर द्वारा किसी अन्य अवशर पर खुतबा पढ़े जाने का कोई संदर्भ नही मिलता है। किंतु इस साहस का अति महत्व है क्योंकि इसके द्वारा बादशाह ने इस तथ्य पर बल दिया कि बादशाह ने अपनी सत्ता ईश्वर से प्राप्त किया है। राजत्व को उसने प्रत्यक्ष रूप से देवत्व से जोड़ दिया और संकुचित और संकीर्ण दृष्टिकोण वाले उलमा को अपनी शक्ति के अधीन करने का दृढ़ संकल्प प्रकट किया। इस्लाम धर्म के सर्वोच्च धार्मिक स्थलों के दैविक अधिकारों और दायित्वों को ग्रहण कर लिया।

दूसरे 'अकबर द्वारा धार्मिक व भौतिक सत्ता को अपने हाथों में केंद्रित करने का विधिवत कार्य अगस्त- सितंबर 1579 में महजर नामक दस्तावेज द्वारा हुआ।'[4] इस दस्तावेज द्वारा अकबर ने स्वयं को शरा या मुस्लिम कानूनों का प्रधान व्यख्याता और निर्णायक घोषित कर दिया। इस्लामी कानून की व्याख्या के सम्बंध में सबसे ऊंची ताकत अकबर ने अपने हाथों में ले ली। उसे इमामे आदिल (प्रधान व्यख्याकार) के रूप में स्वीकार किया गया। महजर जारी करने की प्रेरणा से उसे शेख मुबारक तथा उसके पुत्र फैजी व अबुल फजल द्वारा दी गई थी। इसका मजमून शेख मुबारक ने तैयार किया था। उलमा ने इन पर महदवी व शिया होने का आरोप लगाकर उनका उत्पीड़न किया था। वे उलमा की स्थिति में कटौती करने का मौका पाकर खुश थे। महजर ने अकबर को यह अधिकार दिया कि किसी महत्वपूर्ण विषय पर उलेमाओं के बीच मतभेद होने की दशा में अकबर बुद्धि, चातुर्य और नेक इरादों में

शेखों, सैयदों मुल्लाओं और मुजाहिदों से श्रेष्ठ, सर्वाधिक विवेकशील (इंसान-ए कामिल) होंने के नाते साम्राज्य की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए उनमे से किसी एक विचार को जिसे वो सर्वोत्तम समझे मान्यता दे सकता है। इतना ही नही अगर राज्यहित में वह उचित समझे तो रियाया (प्रजा) की भलाई के लिए कोई नया आदेश भी जारी कर सकता है। बशर्ते वह कुरान के कानूनों का उल्लंघन न हो। सभी व्यक्तियों को वह मानना होगा इनका विरोध करने वाले व्यक्तियों को इस लोक में धार्मिक अधिकार तथा धन संपदा से वंचित होना होगा तथा दूसरे लोक में उन्हें कष्ट मिलेगा। इस प्रकार वह अब अपनी प्रजा का राजनीतिक नेता के साथ-साथ धार्मिक नेता भी बन गया। 'बादशाह को सुल्तान-ए-आदिल (न्यायप्रिय शासक) की उपाधि देकर इन सभी कार्यवाहियों को वैधता प्रदान की गई। कुरान और हदीस के अनुसार सुल्तान-ए-अदल (न्यायी सुल्तान) का पद ईश्वर की दृष्टि में मुजाहिद (धार्मिक नेता) से ऊँचा होता है। अब उसकी स्थिति मुज्तहिद (जो शरअ की व्याख्या करने में सक्षम हो) से श्रेष्ठ थी।'[5] वह अब मुख्य मुजाहिद हो गया लेकिन यहाँ यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि इसके अनुसार वह कोई ऐसा आदेश नही जारी कर सकता था जो कुरान के विरुद्ध हो। इसे मुख्य सद्र अब्दुन्नवी, मुल्ला अब्दुल्ला मखदूम उल मुल्क, काजी जलालुद्दीन मुल्तानी, गाजी खां, बख्शी साम्राज्य के मुफ्ती और प्रधान काजी शेख मुबारक सहित सात प्रमुख प्रसिद्ध नेताओं ने स्वीकार करते हुये उस पर अगस्त -सितंबर 1579 में हस्ताक्षर किये। समकालीन इतिहासकार बदायूँनी के अनुसार -'प्रमुख उलेमा को महजर पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया गया। इसमें केवल शेख मुबारक ही अपवाद था जिसने सहर्ष इस दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए।'[6]

महजर की व्याख्या के संबंध में शुरू से ही विवाद रहा। यह कहा जाने लगा कि बादशाह स्वयं में देवत्व का दावा कर रहा है वह स्वयं पैगम्बर होना चाहता है। वह इस्लाम विरुद्ध कार्य कर रहा है। समकालीन इतिहासकार बदायूँनी लिखता है कि-'ज्यों ही बादशाह ने यह कानूनी साधन प्राप्त कर लिया, त्यों ही अपेक्षाकृत किसी भी धार्मिक प्रश्न को हल करने का मार्ग खुल गया। इमाम की बुद्धि सर्वोपरि मान ली गई और उसका विरोध करना असंभव हो गया। हमारे समस्त नियम जिसमें मान्यताएं एवं निषेध थे, रद्द हो गए। इमाम सर्वोपरि बुद्धि ही कानून बन गयी।'[7] महजर के संबंध में आधुनिक विद्वानों में भी व्यापक मतभेद दिखता है। विंसेंट स्मिथ के अनुसार- अकबर ने पश्चिमी यूरोप में पोप की स्थिति से प्रेरित होकर महजर जारी किया। वह लिखता है कि- 'यह कहना होगा कि मुस्लिम धर्म-विधान के अन्य किसी निर्णायक (मुज्तहिद) की अपेक्षा अकबर इमामे-ए-आदिल के रूप में विधिवत श्रेष्ठतर स्वीकार कर लिया गया और व्यवहार के रूप में वह अमोघत्व के विश्लेषण से विभूषित कर दिया गया था।'[8] परन्तु आर.पी. त्रिपाठी का मत है- 'सर्वोच्च उलेमा के हस्ताक्षर प्राप्त पत्र फतवे द्वारा अकबर ने मुगल सल्तनत की धार्मिक नीति का प्रकाशन अपनी प्रजा के लिए किया और तत्कालीन अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र के लिये भी। शहंशाह ने किसी मत का पक्ष लेने से इन्कार कर दिया तथा यह निर्णय लिया कि कुरान, हदीस और मान्य उलेमा की सर्वसम्मत नीति के अनुकूल मुगल सल्तनत की नीति अब से स्वतंत्र होकर धार्मिक सहिष्णुता के ही पक्ष में होगी।'[9] अर्थात अकबर न ही मुज्तहिद घोषित किया गया और ना ही वह अमोघ हो गया। राय चौधरी लिखते हैं कि- 'इस घोषणा पत्र का उद्देश्य अकबर द्वारा निरंकुश बनना नहीं था वरन भारत के साम्राज्य को आटोमन खलीफा तथा ईरान के शाह की धार्मिक एवं राजनीतिक प्रभुता से मुक्त कराना चाहता था।'[10] प्रोफेसर एस.आर. शर्मा के शब्दों में- 'अकबर को तब तक कोई अधिकार नहीं था जब तक कि धर्माचार्यों में मत भिन्नता न हो ।मतभेद होने पर उसे मुस्लिम कानून बनाने का नहीं बल्कि उसकी व्याख्या मात्र करने का अधिकार था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि अकबर ने अपने हाथों में वे ही अधिकार एवं कार्य लिए जो अभी तक एक अधीनस्थ अधिकारी सद्र के पास थे। उसने कोई नया पद निर्मित नहीं किया वरन एक पुराने पद को ही शाही नियंत्रण में ले लिया। उसने किसी आध्यात्मिक अर्थ में अमोघ का दावा नहीं किया।'[11] डॉ ए.एल. श्रीवास्तव के शब्दों में -इसने मुस्लिम कानून को स्थानापन्न करने का मार्ग प्रशस्त किया। इत्यादि।

वास्तव में ये आलोचनाएं अकबर की सहिष्णुता तथा सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार के कारण थी वास्तविक स्थिति यह थी कि किसी विषय पर धर्माचार्यो की मतभिन्नता की स्थिति में अकबर को निर्णय लेना था वह भी कुरान और हदीस की सीमा के भीतर। वस्तुत: इन विवादों से परे अगर महजरनामा की विषय वस्तु को विश्लेषण का आधार बनाया जाए तो इस विषय में जो तार्किक विचार उभभरते हैं उनसे निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं-

पहली- अकबर ने स्पष्ट रूप से स्वयं को मुज्तहिद के रूप में स्थापित किया जिसका अर्थ था कि वह धर्म की स्वतंत्र व्याख्या कर सकता है। साथ ही अकबर का निर्णय इस संबंध में अंतिम होगा। दूसरे शब्दों में कहें तो उसका उद्देश्य उन सभी विषयों को जो अकबर की हिंदू- मुस्लिम प्रजा से संबंधित थे उलेमाओं की परिधि से हटाकर राज्य की परिधि में लाना था। वस्तुत: अकबर सुलह-ए-कुल के जिन सिद्धान्तों को दृढ़तापूर्वक लागू करने का निश्चय कर लिया था। उसकी यह प्रथम पर प्रभावकारी घोषणा

थी और अकबर ने धर्म के क्षेत्र में इसका अनुसरण कर अपनी धार्मिक सहिष्णुता और उदारता का परिचय दिया। यहाँ उल्लेखनीय है कि गहराई से विश्लेषण करने पर यह कोई नयी बात नही थी एक दृष्टि से हमे इसकी झलक बलबन और अलाउद्दीन खलजी की नीति में भी दिखती है। अलाउद्दीन खलजी ने बहुत पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि मै नही जानता कि क्या शरीयत के अनकूल है और क्या नही है मै वही आदेश देता हूँ जो प्रजा के लिये आवश्यक और वांछनीय हैं।

दूसरी- महजरनामा के द्वारा वह स्वयं को सुल्तान-ए-आदिल (न्याय प्रिय राजा), सुल्तान-ए-इस्लाम (इस्लाम को बनाए रखने वाला), अमीर उल मोमिनीन (मोमीन अर्थात इस्लाम मे विश्वास रखने वालों के नायक) आदि के रूप में उसने स्वयं को स्थापित किया। जिसका अर्थ है वह खलीफा का प्रतिनिधि नहीं है। बल्कि आरंभिक खलीफाओं के समान ही वह भी सर्वोच्च आध्यात्मिक व भौतिक सत्ता है। अपने युग का खलीफा है। यहाँ उल्लेखनीय की अकबर द्वारा स्वयं को अपने युग का खलीफा घोषित करने में कोई विरोधाभास नही है क्योंकि तिमूरियों ने कभी भी किसी भी बाहरी शक्ति को खलीफा स्वीकार नही किया था।

तीसरी -फिर अकबर द्वारा घोषित महजरनामा का मुगलों की विदेश नीति के संदर्भ में भी महत्व था। इसके अंतरराष्ट्रीय फलितार्थ भी थे।इस घोषणा के द्वारा अकबर ऑटोमन खलीफा और ईरानी शाह के समकक्ष हो गया। दोनों से समानता का स्तर प्राप्त कर लिया और इस प्रयोजन से वह उस्मानियों तथा सफवियों के विपरीत भारत को सांप्रदायिक शांति (सुलह-ए-कुल) का देश घोषित करना चाहता था। इस प्रकार, इस दस्तावेज का आरंभ इन पंक्तियों से होता है। 'अब हिंदुस्तान सुरक्षा और शांति का केंद्र और अदलत (न्याय) तथा नेकी का देश बन गया है।' आगे कहा गया है कि- 'इसके फलस्वरूप बहुत बड़ी तादाद में लोग विशेषत: विद्वान आलिम और महान कानूनदा, जो मुक्ति के मार्गदर्शक और ज्ञान के रास्ते के रहनुमा हैं, अरब और अजम (इराक और ईरान) के देशों को छोड़कर इस देश की ओर मुड़ गए हैं और इसे अपना वतन मानकर यही बस गये।'[12] यहाँ उल्लेखनीय है कि इस दस्तावेज में न्याय की अवधारणा पर जो सुलह-ए-कुल का प्रमुख अंग थी पर विशेष बल देकर उसने उलमा वर्ग को यह याद दिलाया कि राज्य का पूरा तंत्र प्रजा की भलाई के लिये होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. फज्ल, अबुल, अनु0 बेवरिज, अकबरनामा, 1907-12 भाग -3, पृष्ठ 255-56
2. चन्द्र, सतीश, मुगलकालीन भारत, पृष्ठ 172
3. अहमद ,लईक, मुगलकालीन भारत, इलाहाबाद, 1992, पृष्ठ89
4. बदायूँनी, अब्दुल कादिर, मुन्तखब उत तवारीख, अनु0रैंकिंग, भाग-1, लोव, भाग-2, हेग, भाग -3, एसियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1889, 1899, 1925, भाग -2 पृष्ठ 271-72
5. स्मिथ, वी.ए., अकबर द ग्रेट मुगल (1542-1605), दिल्ली, 1962, पृष्ठ 128
6. बदायूँनी, अब्दुल कादिर, मुन्तखब उत तवारीख, अनु0रैंकिंग, भाग-1, लोव, भाग-2, हेग, भाग -3, एसियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1889, 1899, 1925, भाग -2 पृष्ठ 271-72
7. बदायूँनी, अब्दुल कादिर, मुन्तखब उत तवारीख, अनु0रैंकिंग, भाग-1, लोव, भाग-2, हेग, भाग -3, एसियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1889, 1899, 1925, भाग -2 पृष्ठ 271-72
8. स्मिथ, वी.ए., अकबर द ग्रेट मुगल (1542-1605), दिल्ली, 1962, पृष्ठ 128
9. त्रिपाठी, आर.पी.,राइज एंड फाल ऑफ द मुगल एम्पायर, इलाहाबाद, 1956, पृष्ठ 253
10. मजूमदार, राय चौधरी, दत्त, भारत का बृहद इतिहास, मैक मिलन इंडिया लिमिटेड, 1970, पृष्ठ 177-78
11. शर्मा,एस. आर.,रिलिजियस पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्पेरर्स,आगरा,1972,पृ0 33-43
12. चन्द्र, सतीश, मुगलकालीन भारत, पृष्ठ 175

प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर छात्राओं के ड्रॉपआउट में परिवार की भूमिका

रश्मि सिंह

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,महिला महाविद्यालय,कानपुर।

सारांश

वर्तमान समय में देश में लोकतन्त्र के विकास के लिए सर्वाधिक आवश्यकता शिक्षित स्त्रियों की है। समाज व देश के विकास का उत्तरदायित्व सर्वप्रथम परिवार पर आता है। परिवार शिक्षा का प्रथम केन्द्र बिन्दु है। परिवार में माता के द्वारा दी जाने वाली शिक्षा बच्चों के व्यक्तित्व को सर्वाधिक प्रभावित करती है। यदि समाज में प्रत्येक पुरूष की शिक्षा को स्वीकार किया जाता है तो प्रत्येक स्त्री की शिक्षा को भी स्वीकार किया जाना चाहिए। हमारे भारतीय समाज में बालक और बालिकाओं की शिक्षा में बहुत अन्तर है। बालकों की तुलना में बालिकाओं को शिक्षा के समान अवसर नहीं प्राप्त हो रहे हैं। जिसके कारण आज भी बालिका शिक्षा की स्थिति निम्न है। बालिका शिक्षा कि निम्न स्थिति का एक कारण बालिकाओं का अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण किये बिना विद्यालय छोड़ देना है, इसे ड्रॉपआउट कहते हैं। भारत में बालिकाओं के ड्रॉपआउट में परिवार की निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति, विद्यालय में समुचित सुविधाओं का अभाव व समाज का बालिका शिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण की महत्वपूर्ण भूमिका है। परिवार की अशिक्षा, गरीबी व लैंगिक भेदभाव आदि समस्याओं के कारण बालिकाएं प्राथमिक स्तर से ही विद्यालय से ड्रॉपआउट करने लगती हैं। ड्रॉपआउट की यह समस्या बालिका शिक्षा के विकास के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। अतः इस समस्या का समाजशास्त्रीय विश्लेषण आवश्यक है।

मुख्य शब्द-बालिका शिक्षा, ड्रॉपआउट, आर्थिक स्थिति।

प्रस्तावना-शिक्षा मानव जीवन के परिष्कार एवं विकास की प्रणाली है। किसी भी राष्ट्र का विकास वहॉ के नागरिकों की शिक्षा पर निर्भर करता है। मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक जो कुछ भी सीखता है या नवीन ज्ञान प्राप्त करता है, वह शिक्षा है। शिक्षा रचनात्मक, गतिशील तथा जीवन्त प्रक्रिया है यह ना केवल बदलाव का एक सशक्त माध्यम ही बनती है बल्कि उस बदलाव की दशा एवं दिशा भी निर्धारित करती है। शिक्षा का प्रथम सोपान प्रारम्भिक शिक्षा से प्रारम्भ होता हैं। कोई भी समाज शिक्षा के बिना आगे नहीं बढ सकता। यह हमें अन्धविश्वास, रुढियों व अज्ञान से मुक्ति दिखाती है। राष्ट्र-निर्माण एवं सतुलित सामाजिक-आर्थिक विकास के अपने दायित्व के चलते आज शिक्षा एक प्राथमिकता बनकर उभरी है। हमारे देश में एक बड़ा तबका शिक्षा से वंचित है जिससे पता चलता है कि मुख्य धारा की शिक्षा या हमारे पर्यावरण में कुछ न कुछ कमियाँ अवश्य हैं जिसके कारण विद्यालय से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या अधिक है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार द्वाराप्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए अनेक प्रयास किये गये परन्तु अभी भी बालक और बालिकाओं के नामांकन अनुपात में काफी असमानता है। बच्चों द्वारा अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण किये बिना विद्यालय छोड़ देना भी एक बड़ी समस्या है। यह समस्या छात्रों की अपेक्षा छात्राओं में अधिक है। सर्वप्रथम 1929 में हर्टाग कमीशन ने इस समस्या की ओर ध्यान दिया था। विद्यार्थियों का अपनी 5 वर्षीय प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण किये बिना विद्यालय छोड़ देने को अपव्यय या ड्रॉपआउट

कहा जाता है। हमारे समाज में आदिकाल से ही स्त्रियों की शिक्षा की स्थिति अत्यन्त निम्न है। यद्यपि वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है परन्तु वर्षो की अज्ञानता और अशिक्षा के बोझ से दबी नारी को अभी विकास और आत्मविश्वास का एक लम्बा रास्ता तय करना है। हमारी समाज व्यवस्था व परम्पराओं ने जन्म से ही लड़का व लड़की में भेद किया है। इसका कारण स्त्रियों में साक्षरता व जागरूकता का अभाव है। ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाएँ या तो विद्यालय में नामांकन ही नही कराती या फिर नामांकन के बाद ड्रॉपआउट कर जाती हैं। ड्रॉपआउट के अनेक कारण सामने आते हैं जो बालिका शिक्षा के मार्ग में बाधक हैं इसमें से पारिवारिक और शैक्षिक कारक प्रमुख हैं। ड्रॉपआउट करने वाली अधिकांश छात्राएँ निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवारों से सम्बन्धित होती हैं। आर्थिक रूप से कमजोर अधिकांश अभिभावक अपनी बालिकाओं से मजदूरी करवाते हैं क्योंकि उनके लिए भोजन शिक्षा से कहीं अधिक आवश्यक है। कुछ बालिकाएं घर पर रहकर अपने से छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती हैं जिसके कारण वे विद्यालय नहीं जातीं। उनके माता-पिता दोनों जीविकोपार्जन हेतु कार्य करते हैं। अधिकांश परिवारों में आर्थिक समस्याएं अधिक होने के कारण बालिकाओं की शिक्षा में बाधा पहुँचती हैं। इसके अतिरिक्त हमारे समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता के कारण भी कुछ अभिभावक अपनी बालिकाओं का विद्यालय में नामांकन नहीं कराते व कुछ उन्हें नियमित विद्यालय नहीं भेजते।

बालिकाओं के ड्रॉपआउट में कुछ अन्य कारकों जैसे सामाजिक असुरक्षा व विद्यालय के वातावरण की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। सरकार के अनेक प्रयासों के बाद भी प्राथमिक विद्यालयों में छात्राओं को समुचित सुविधाएं नहीं मिल पा रही है। अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों का विशेषकर महिला शिक्षकों का अभाव है। छात्राओं हेतु अलग से शौचालय की व्यवस्था नहीं है। विद्यालय में शिक्षणेत्तर गतिविधियों का अभाव है तथा वहॉ का वातावरण भी रूचिकर नहीं है। शिक्षक अधिकाधिक समय गैर शैक्षणिक कार्यो में संलग्न रहते हैं, जिसके कारण विद्यालय में शिक्षण कार्य प्रभावित होता है। प्राथमिक विद्यालयों की इन समस्याओं के कारण वहॉ शिक्षा की गुणवत्ता गिरती जा रही है। इसके कारण अभिभावक अपने बच्चों का नामांकन प्राथमिक विद्यालयों में नही कराना चाहते। इसके अतिरिक्त कई बार घर से विद्यालय की अधिक दूरी के कारण छात्राएँ विद्यालय नहीं जातीं तो कई बार भाषा की समस्या के कारण भी वे विद्यालय छोड़ देती हैं। प्रस्तुत अध्ययन में छात्राओं के ड्रापआउट में परिवार की भूमिका का विश्लेषण किया गया हैं।

परिवार समाज रूपी भवन की नींव का पत्थर है जिसकी उपस्थिति सार्वभौमिक है। मैकाइवर एव पेज ने कहा है -''परिवार एक ऐसा समूह है जो स्त्री-पुरूष के यौन सम्बन्ध पर आधारित है तथा इतना सुनिश्चित टिकाऊ होता है कि इसके माध्यम से प्रजनन क्रिया और बच्चों के पालन-पोषण की समुचित व्यवस्था होती है।'' बच्चों के विचार-व्यवहार व गुण उसके परिवार के अनुसार ही प्रतिबिम्बित होते हैं। परिवार को प्रथम पाठशाला माना जाता है क्योंकि सर्वप्रथम बच्चे अपने परिवार से ही सीखना प्रारम्भ करते हैं। जीवन की मूल प्रवृत्तियोंकी संतुष्टि तथा विकास घर के वातावरण में ही सम्भव है। परिवार ही बच्चों को संस्कार, रीति-रिवाज, परम्पराओं व सदाचरण की शिक्षा देता है। यह एक ऐसी संस्था है जिसके बिना मानव समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रत्येक समाज में परिवार का स्वरूप भिन्न-भिन्न हो सकता है। सामान्यत: पश्चिमी समाज में एकल परिवार व भारतीय समाज में संयुक्त परिवार पाये जाते हैं, परन्तु आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया ने भारतीय पारिवारिक संरचना को परिवर्तित कर दिया है। अब यहाँ भी परिवार बिखर रहे हैं और एकल परिवारों का चलन तेजी से बढ़ रहा है। परम्परागत भारतीय परिवारों में बालक और बालिकाओं में अत्यधिक भेदभाव किया जाता था। एक और जहाँ पुत्र प्राप्ति को अधिक महत्व दिया जाता था वहीं दूसरी और कन्या का जन्म अशुभ माना जाता था। रूढ़िवादिता अधिक होने के कारण सभी अधिकार भी पुरूषों को ही दिये गये। यदि शिक्षा की स्थिति को देखे तो हम पाते हैं कि अभिभावक बालकों की शिक्षा को अधिक महत्व देते थे जबकि बालिका शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं थे। बालिकाओं को घर पर ही रहकर गृहकार्य करना है तथा विवाह के उपरान्त उन्हें किसी अन्य घर में जाना है इसलिए बालिका शिक्षा पर समय और संसाधन नहीं लगाना चाहते थे।

वर्तमान समय में भारतीय समाज की परम्परागत सोच व रूढ़िवादिता में परिवर्तन आया है। अब परिवार में बालिकाओं को भी महत्व मिलने लगा है। उन्हें भी शिक्षा के अवसर प्रदान किये जाने लगे हैं। अब बालिकाओं को रोजगार के अवसर भी प्राप्त होने लगे हैं। परन्तु ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की मानसिकता में अभी अधिक परिवर्तन नहीं आया हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी लैंगिक भेदभाव

दिखाई पड़ता है। उत्तर प्रदेश में ग्रामीण क्षेत्रों में पुरूष साक्षरता 76.33 प्रतिशत व महिला साक्षरता 48.48 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्रों के अभिभावकों में अशिक्षा व जागरूकाता की कमी है जिसके कारण वे बालिका शिक्षा के महत्व से अनाभिज्ञ है। वहीं दूसरी ओर उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी अत्यन्त निम्न है इसलिए परिवार के सदस्य आजीविका हेतु कार्य करने जाते हैं और अपनी बालिकाओं को घर पर ही छोटे भाई बहनों की देखभाल के लिए छोड़ते हैं। सरकार द्वारा प्राथमिक विद्यालयों की छात्राओं को अनेक सुविधाएं प्रदान की जाती है जैसे नि:शुल्क प्रवेश, नि:शुल्क मध्यान्ह भोजन, यूनीफार्म, बैग, पुस्तकें व जूते आदि। इन वस्तुओं के लिए कई बार अभिभावक बालिकाओं का विद्यालय में नामांकन तो करा देते हैं परन्तु नियमित विद्यालय नहीं भेजते। इसके अतिरिक्त परिवार में माता-पिता में से किसी के द्वारा नशा करने या किसी की मृत्यु हो जाने के कारण भी बालिकाएं विद्यालय सें ड्रॉपआउट कर जाती हैं। घर से विद्यालय की दूरी भी बालिकाओं कें ड्रॉपआउट का एक कारण हैं। बालिकाओं को सामाजिक असुरक्षा के कारण भी उनका परिवार उन्हें उनकी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण नहीं करने देता। विद्यालय में शौचालय और महिला शिक्षकों के अभाव के कारण भी छात्राएं ड्रॉपआउट करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राथमिक विद्यालयों में छात्राओं के ड्रॉपआउट में विभिन्न कारक उत्तरदायी है जिसमें पारिवारिक कारकों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

शोध की समस्या-बालिका शिक्षा किसी भी समाज के विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भारतीय समाज में प्राचीन समय में बालिका शिक्षा की स्थिति सही थी परन्तु मध्यकाल तक आते-आते उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। ब्रिटिश काल में बालिका शिक्षा की आवश्यकता को समझा गया और इसके विकास के लिए योजनाएं बनायी गयी। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने बालिका शिक्षा हेतु अनेक समितियों का गठन किया तथा इस दिशा में सक्रिय प्रयास प्रारम्भ किए। वर्तमान में सरकार द्वारा बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक योजनाएं जैसे-सर्व शिक्षा अभियान, आपरेश्न ब्लैक बोर्ड,कस्तूरबा गांधी विद्यालय योजना, मध्यान्ह भोजन योजना, निशुल्क पाठ्यपुस्तकें, यूनीफार्म, बैग, जूते, आदि प्रारम्भ किए। इन योजनाओं में बालिका शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। भारतीय समाज में अभी भी परम्परागत मूल्यों की जड़ें बहुत गहरी हैं जो कि अभी भी बालिका शिक्षा को हीन दृष्टि से देखती हैं। यद्यापि समय के साथ-साथ लोगों में कुछ जागरूकता आई है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी जागरूकता की कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में अभिभावक अपनी बालिकाओं का विद्यालय में नामांकन नहीं कराते इसका कारण उनका स्वयं का अशिक्षित होना तथा निर्धन होना है। निर्धनता के कारण भी अधिकांश बालिकाएं विद्यालय नहीं जाती। इसके अतिरिक्त अन्य सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक व शैक्षिक कारक भी हैं जो बालिकाशिक्षा के मार्ग में बाधक है। यही वे कारक है जो बालिकाओं को विद्यालय से ड्रॉपआउट के लिए बाध्य करते है जिसके कारण बालिका शिक्षा के वांछित लक्ष्यों के प्राप्त करना कठिन हो गया है। अत: प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं के ड्रॉपआउट में पारिवारिक कारकों की भूमिका का समाजशास्त्रीय अध्ययन व विश्लेषण महत्वपूर्ण है।

साहित्य का अध्ययन-किसी भी शोध कार्य को दिशा देने में सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शर्मा, आर0, शर्मा, एस0 व नागर शिप्रा (2007) ने ''हिंमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले में बालिकाओं के ड्रॉपआउट का अध्ययन'' विषय पर शोध किया और पाया कि अपनी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने के पूर्व ही विद्यालय छोड़ने वाली लगभग 52.66 प्रतिशत छात्राएँ संयुक्त परिवार से हैं। इनके माता-पिता मजदूरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते हैं। इनकी आय 500-2500/-रूपये प्रतिमाह है। इन छात्राओं के अभिभावकों का शैक्षिक स्तर निम्न है। इनकी मातायें अधिकांशत: अशिक्षित होती हैं और पिता अधिकांशत: प्राथमिक शिक्षा प्राप्त होते हैं। गोविन्द, आर0 और एस0 वेंकटेशन (2010) ने ''ग्रामीण क्षेत्र में स्कूल ड्रॉपआउट'' विषय पर अध्ययन किया। यह अध्ययन कर्नाटक के चमराजनगर ग्रामीण क्षेत्र का है। उनहोंने अध्ययन के लिए 120 अभिभावकों, शिक्षकों व ड्रॉपआउट विद्यार्थियों का चयन किया। अपने अध्ययन में उन्होंने ड्रॉपआउट के लगभग 60 कारण बताए। उन्होंने छात्राओं के ड्रॉपआउट में माता-पिता से सम्बन्धित कुछ कारण स्पष्ट किये। ये कारण अभिभावकों की बालिका शिक्षा में कम रूचि, पिता द्वारा नशा करना, जुआं खेलना आदि बुराइयाँ, माता या पिता में से किसी की मृत्यु या अलगाव तथा अभिभावकों की अशिक्षा आदि हैं। पटेल भूपेश्वरी व गाँधी दुलारी (2016) ने ''ग्रामीण गुजरात में बालिकाओं के ड्रॉपआउट का अध्ययन'' विषय पर अपने शोध में 6-14 आयु वर्ग की 720 बालिकाओं का चयन किया। निष्कर्ष स्वरूप उन्होंने पाया कि सर्वाधिक 58.8 प्रतिशत छात्राएँ घर पर रहकर अपने से छोटे

भाई-बहनों की देखभाल करती हैं। इसलिए वे विद्यालय से ड्रॉपआउट कर जाती है। 11.7 प्रतिशत छात्राएँ घर से विद्यालय की अधिक दूरी के कारण, 5.8प्रतिशत छात्रायें आर्थिक क्रियाओं में संलग्नता के कारण तथा 8.8 प्रतिशत बालिकायें शिक्षा के प्रति अभिभावकों के नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण विद्यालय छोड़ देती हैं। भट्टी किरन, सराफ राधिका व गुप्ता वृंदा (2017) ने ''विद्यालय से बाहर बच्चे'' में राजस्थान के राजसमंद जिले का अध्ययन किया। निदर्श के रूप में उन्होंने 5-17 वर्ष के प्राथमिक विद्यालय के बच्चों को चुना। उन्होंने बालिकाओं की शिक्षा पर परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति जानने के लिए एक हाउसहोल्ड सर्वे भी किया। निपकर्षो में उन्होंने पाया कि 80 प्रतिशत माताओं व 33 प्रतिशत पिताओं ने कभी भी विद्यालयी शिक्षा नहीं ग्रहण की। अभिभावकों का मुख्य व्यवसाय कृषि और दैनिक मजदूरी था।

उद्देश्य-

1. ड्रॉपआउट छात्राओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन।
2. ड्रॉपआउट छात्राओं के अभिभावकों का बालिका शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन।
3. छात्राओं के ड्रॉपआउट के पारिवारिक कारणों का अध्ययन।

अध्ययन पद्धति-प्रस्तुत शोध में वर्णनात्मक व अन्वेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया जाता है। तथ्यों के संकलन के लिए प्राथमिक व द्वितीयक दोनों प्रकार के श्रोतों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से आकड़े प्राप्त किये गए हैं। अध्ययन हेतु ग्राम व ड्रॉपआउट छात्राओं के 50 परिवारों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया।

अध्ययन क्षेत्र- प्रस्तुत शोध कार्य के लिए उत्तर प्रदेश के हरदोई जिले के मल्लॉवा ब्लॉक के गोसवा गॉव का चयन किया गया है। गोसवा गॉव से ड्रॉपआउट छात्राओं के 50 परिवारों का चयन अध्ययन हेतु किया गया है।

वर्गीकरण और विश्लेषण

सारणी संख्या-1: उत्तरदाताओं के परिवार का स्वरूप

परिवार	आवृत्ति	प्रतिशत
एकल	21	42.00
संयुक्त	29	58.00
कुल	50	100.00

सारणी संख्या-1 में उत्तरदाताओ के परिवार के स्वरूप को सारणीबद्ध करके प्रदर्शित किया गया है। सारणी के अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कुल 50 (100) परिवारों में से 42.00 प्रतिशत परिवार एकल और 58.00 प्रतिशत परिवार संयुक्त हैं।

सारणी संख्या-2: उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्यों की संख्या

सदस्यसंख्या	आवृत्ति	प्रतिशत
0-4	06	12.00
4-8	15	30.00
8 से अधिक	29	58.00
कुल 50 100		

सारणी संख्या-2 में उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्यों की संख्या को सारणीबद्ध करके प्रदर्शित किया गया है। सारणी के विश्लेषण से पता चलता है कि कुल 50 परिवारों में से 12.00 प्रतिशत परिवारोंमें सदस्य संख्या 0-4, 30.00 प्रतिशत परिवारों में सदस्य संख्या 4-8 तथा 58.00 प्रतिशत परिवारों में सदस्य संख्या 8 से अधिक हैं।

सारणी संख्या-3: उत्तरदाताओं का व्यवसाय

व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत
कृषि	36	72.00
मजदूरी	13	26.00
नौकरी(सरकारी/प्राइवेट)	01	2.00
कुल	50	100

सारणी संख्या-3 में उत्तरदाताओं के व्यवसाय की स्थिति को सारणीबद्ध करके प्रदर्शित किया गया है। सारणी के विश्लेषण से पता चलता हैं कि कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से 72.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं (सर्वाधिक) का मुख्य व्यवसाय कृषि है। 26.00 प्रतिशत उत्तरदाता मजदूरी करते हैं तथा सबसे कम 2.00 प्रतिशत उत्तरदाता प्राइवेट नौकरी करते हैं।

सारणी संख्या-4 : उत्तरदाताओं की मासिक आय

आय (रूपये में)	आवृत्ति	प्रतिशत
0-500	10	20.00
501-1000	11	22.00
1001-1500	21	42.00
1500 से अधिक	08	16.00
कुल	50	100

सारणी संख्या-4में उत्तरदाताओं की मासिक आय को सारणीबद्ध करके प्रदर्शित किया गया है। सारणाी के विश्लेषण से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कुल 50 (100) उत्तरदाताओं में से 20.00 प्रतिशत उत्तरदाता 0-500 रू0 मासिक आय वर्ग के हैं। 22.00 र्प्रतिशत उत्तरदाता 501-1000 रू0 मासिक आय वर्ग, सर्वाधिक 42.00 प्रतिशत उत्तरदाता 1001-1500 रू0 मासिक आय वर्ग तथा 16.00 प्रतिशत उत्तरदाता 1500 में से अधिक मासिक आय वर्ग के हैं।

सारणी संख्या-5 : उत्तरदाताओं की शैक्षिक स्थिति

शिक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
अशिक्षित	19	38.00
शिक्षित	31	62.00
उच्च शिक्षित	-	-
कुल	50	100

सारणी संख्या-5 में उत्तरदाताओं की शैक्षिक स्थिति को सारणीबद्ध करके प्रदर्शित किया गया है। सारणी के विश्लेषण से पता चलता हैं कि कुल 50 (100) उत्तरदाताओं में से 38.00 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित तथा 62.00 प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षित है। कोई भी उत्तरदाता उच्च शिक्षित नहीं है।

सारणी संख्या-6 : बालक/बालिकाओं के प्रति उत्तरदाताओं का व्यवहार

व्यवहार	आवृत्ति	प्रतिशत
समान	28	56.00
बालकों को अधिक महत्व		22 44.00
बालिकाओं को अधिक महत्व		– –
कुल	50	100

सारणी संख्या-6में उत्तरदाताओं (अभिभावकों) का अपने बालक व बालिकाओं के प्रति व्यवहार की स्थिति को सारणीबद्ध करके प्रदर्शित किया गया है। सारणी के अध्ययन से पता चलता है कि कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से 56.00 प्रतिशत उत्तरदाता अपने बच्चों के साथ समान व्यवहार करते है। 44.00 प्रतिशत उत्तरदाता परिवार में बालकों को अधिक महत्व देते हैं। किसी भी परिवार में बालिकाओं को बालकों की अपेक्षा अधिक महत्व नहीं दिया जाता।

सारणी संख्या-7 : उत्तरदाताओं का बालिका शिक्षा पर विचार

बालिका शिक्षा	आवृत्ति	प्रतिशत
उचित	39	78.00
अनुचित	04	08.00
पता नहीं	07	14.00
कुल	50	100

सारणी संख्या-7 में बालिका शिक्षा पर उत्तरदाताओ के विचारों को सारणीबद्ध करके प्रदर्शित किया गया है। सारणी के विश्लेषण से पता चलता है कि कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 78.00 प्रतिशत उत्तरदाता बालिका शिक्षा को उचित मानते हैं। मात्र 8.00 प्रतिशत उत्तरदाता बालिका शिक्षा को अनुचित मानते हैं। 14.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस सम्बन्ध में जानकारी नहीं है।

सारणी संख्या-8 : उत्तरदाताओं का बालिका रोजगार पर विचार

बालिका रोजगार	आवृत्ति	प्रतिशत
उचित	29	58.00
अनुचित	09	18.00
पता नहीं	12	24.00
कुल	50	100

सारणी संख्या-8 में उत्तरदाताओं के बालिका रोजगार पर विचारों को सारणीबद्ध करके प्रदर्शित किया गया है। सारणी के अध्ययन से पता चलता है कि कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से 58.00 प्रतिशत उत्तरदाता बालिकाओं के रोजगार को अनुचित मानते हैं। 24.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं को इस सम्बन्ध में जानकारी नहीं है।

सारणी संख्या-9 : बालिकाओं के ड्रॉपआउट के पारिवारिक कारण

कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
जीविकोपार्जन हेतु कार्यो में संलग्न	12	24.00
छोटे भाई बहनों की देखभाल	15	30.00
छात्राओं की अध्ययन में रूचि नहीं	13	26.00
समाजिक असुरक्षा	10	20.00
कुल	50	100

सारणी संख्या-9 में ड्रॉपआउट के कारण (पारिवारिक) को सारणीबद्ध करके प्रदर्शित किया गया है। सारणी के अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त होता है कि कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से 24.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि उनकी बालिकाएं जीविकोपार्जन हेतु कार्यो में संलग्न होने के कारण विद्यालय से ड्रॉपआउट कर गई। सर्वाधिक 30.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि घर पर रहकर छोटे भाई-बहनों की देखभाल करने के कारण, 26.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बालिकाओं की अध्ययन में रूचि न होने के कारण व 20.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सामाजिक असुरक्षा के कारण बालिकायें विद्यालय से ड्रॉपआउट हो गयी है।

निष्कर्ष-प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर छात्राओं के ड्रॉपआउट में परिवार की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में उद्धृत सारणियों के विश्लेषण से पता चलता है कि कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 58.00 प्रतिशत उत्तरदाता संयुक्त परिवार के हैं। 42.00 प्रतिशत उत्तरदाता एकल परिवार के हैं। सारणी संख्या-2 के विश्लेषण से प्राप्त आकड़ों से पता चलता है कि कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 58.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्यों की संख्या 8 से अधिक है।सबसे कम 12.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्यों की संख्या 0-4 है। 30.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में सदस्य संख्या 4-8 है। निष्कर्ष स्परूप हम पाते है कि अधिकांश परिवारों में सदस्य संख्या अधिक है। सारणी संख्या-3 से प्राप्त निष्कर्षो के अनुसार कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 72.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं का व्यवसाय कृषि है। सबसे कम 2.00 प्रतिशत उत्तरदाता सरकारी/प्राइवेट नौकरी कर रहे हैं। 26.00 प्रतिशत उत्तरदाता मजदूरी करते हैं। सारणी संख्या-4 के अध्ययन से पता चलता है कि सर्वाधिक 42.00 प्रतिशत उत्तरदाता 1001-1500/-मासिक आय वर्ग के हैं। सबसे कम 16.00 प्रतिशत उत्तरदाता 1500/-से अधिक आय वर्ग के है। 20.00 प्रतिशत उत्तरदाता 501-1000/-मासिक आय वर्ग के हैं। सारणी संख्या-5 से प्राप्त निष्कर्षो के अनुसार 38.00 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित हैं। 62.00 प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षित हैं। कोई भी उत्तरदाता उच्च शिक्षित नहीं है। अर्थात गोसवा में शिक्षा का सतर बहुत अच्छा नही है। ड्रॉपआउट करने वाली छात्राओं में से किसी के भी अभिभावक उच्च शिक्षित नहीं है।

सारणी-संख्या-6 से प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार सर्वाधिक 56.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि वे अपने बालक-बालिकाओं के साथ एक समान व्यवहार करते हैं। 44.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बालकों को अधिक महत्व देने की बात की। कोई भी उत्तरदाता बालकों की अपेक्षा बालिकाओं को अधिक महत्व नहीं देता। समाज में लैंगिक भेदभाव की यह स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है। सारणी संख्या-7 से प्राप्त निष्कर्षो के अनुसार कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 78.00 प्रतिशत उत्तरदाता बालिका शिक्षा को उचित मानते है। 8.00 प्रतिशत उत्तरदाता इसे अनुचित मानते हैं। उनका मानना है कि बालिका शिक्षा का कोई औचित्य नहीं है। 14.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में कोई उत्तर नहीं दिया। सारणी संख्या-8 से प्राप्त निष्कर्षो के अनुसार कुल 50(100) उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 58.00 प्रतिशत उत्तरदाता बालिकाओं के रोजगार को उचित मानते हैं। सबसे कम 18.00 प्रतिशत उत्तरदाता बालिकाओं के रोजगार को उचित नहीं मानते। 24.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में अपने विचार नहीं व्यक्त किये। सारणी संख्या-9 से प्राप्त निष्कर्षो के अनुसार बालिकाओं के ड्रॉपआउट का प्रमुख कारण उनका घर पर रहकर अपने से छोटे भाई-बहनों

की देखभाल करना है। 30.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं का ऐसा मानना है। 26.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार बालिकाओं के अध्ययन में रूचि न होने के कारण वे विद्यालय से ड्रॉपआउट करती हैं। 24.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि आर्थिक क्रियाओं में संलग्नता के कारण बालिकाएँ ड्रॉपआउट करती हैं। 20.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सामाजिक असुरक्षा को ड्रॉपआउट का कारण माना।

सुझाव-प्रस्तुत शोध पत्र से प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर पता चलता है कि प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर छात्राओं के ड्रॉपआउट में परिवार की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परिवार की निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति, अशिक्षा, लैंगिक भेदभाव जागरूकता के अभाव के कारण ही छात्राएं अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण किये बिना ही विद्यालय छोड़ देती हैं। इन कारणों पर विशेष रूप से ध्यान देकर बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने हेतु लोगों को जागरूक किया जाना आवश्यक है। विभिन्न जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से अभिभावकों को बालिका शिक्षा के महत्व से परिचित कराना होगा। इसके साथ ही ड्रॉपआउट का एक अन्य प्रमुख कारण शिक्षा का रोजगारपरक न होना है। इस कारण परिवार को शिक्षा महत्वहीन प्रतीत होती है। उनका यह मानना है कि बालिकाएं पढ़-लिख कर क्या करेंगी, उन्हें तो गृहकार्य ही करने हैं, अत्यन्त घातक है इसलिए शिक्षा को रोजगार से जोड़कर उन्हें यह विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि बालिकाओं को शिक्षित करने से उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ होगी। समय-समय पर विद्यालय में अभिभावकों व शिक्षकों के मध्यवार्ता अवश्य होनी चाहिए ताकि ड्रॉपआउट की सम्भावनाओं को कम किया जा सकें। ड्रॉपआउट करने वाली लगभग 38.00 प्रतिशत छात्राएं प्रथम पीढ़ी शिक्षार्थी है। इसे भी ध्यान में रखना आवश्यक है। प्रथम पीढ़ी शिक्षार्थियों को समुचित प्रोत्साहन व निर्देशन प्रदान किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. जैन, अंजली, ''प्राथमिक शिक्षा,'' के0एस0के0 पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2009 पृ0सं0 22-24
2. Maclver and page, “Society:An IntroductoryAnalysis”, Macmillian India Limited, new Delhi, 1985, PP.238
3. Census of India, 2011, Registrar General and Census Commmissioner of India.
4. Sharma, R, Sharma S, and Nagar Shipra, “Extent of Female School Dropouts in Kangara District of Himanchal Pradesh,” Journal of Social Science 15(3) 2007, P.P. 201-204.
5. Govind R. and Venkatesan S., “A study on School Droputs in Rural Setting,” Journal of psychology, Vol.1, Issue 1, 2010, P.P. 47-53.
6. Patel Bhupeswari and Gandhi Dulari, “A study of Girls School Dropout in Rural Gujrat”, International Journal of scientific Research, Vol.5, Issue 5, 2016, P.P. 75-76
7. Bhatty Kiran, Saraf Radhika and Gupta Vrinda, “Out of School Children,” Economic and Political Weekly, Vol. 1.11 No. 49, 2017 P.P. 69-72

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के उपन्यास 'नदी के द्वीप' में नारी पात्र 'रेखा' का चरित्र चित्रण

डॉ० नीलम तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर 'हिन्दी', गनपत सहाय पी0जी0 कॉलेज, सुलतानपुर, उ0प्र0

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' द्वारा रचित द्वितीय उपन्यास 'नदी के द्वीप' पूर्णत: मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसे प्रणय मूलक उपन्यास भी कहा जा सकता है। इस उपन्यास में यौन-सम्बन्धों को केन्द्र में रखकर कथावस्तु का निर्माण हुआ है, जिसमें चरित्र-विश्लेषण की सूक्ष्मता तथा चारुता दृष्टिगत होती है। 'नदी के द्वीप' उपन्यास का प्रकाशन सन् 1951 ई0 में हुआ था। नन्द कुमार राय जी के अनुसार- ''प्रस्तुत औपन्यासिक कृति में उन्होंने अपने 'कथ्य' को मनोवैज्ञानिकता से तराश कर नये शिल्पों के सुनहरे आवरण में प्रस्तुत किया है।''[1]

'नदी के द्वीप' उपन्यास के पात्र बहुत ही संवेदनशील हैं। इन्हें बाहरी जिन्दगी की एक छुवन, भीतर के तारों को झनझना देती है। इनकी जिन्दगी एक दूसरे से तार द्वारा जुड़ी भी है। इसके पात्रों के भीतर की जिन्दगी सेक्स पर चक्कर काटती रहती है। 'नदी के द्वीप' उपन्यास के पुरुष पात्रों में प्रमुख रूप से भुवन, चन्द्रमाधव तथा स्त्री पात्रों में रेखा और गौरा हैं।

रेखा, 'नदी के द्वीप' उपन्यास की सर्वाधिक प्रभावशाली एवं आकर्षक पात्र है। सम्पूर्ण उपन्यास का केन्द्र बिन्दु रेखा ही है। नेमिचन्द्र जैन के अनुसार- ''रेखा का व्यक्तित्व अपने आप में तो प्रखर प्रभावशाली है ही, साथ ही वह उपन्यास के अन्य चारों पात्रों के ऊपर भी छाया रहता है। बाकी सारे पात्र आलोकित अथवा बुझे हुए दिखते हैं तो रेखा के व्यक्तित्व के आलोक को प्राप्त करके अथवा खोकर।''[2]

उपन्यास में रेखा के व्यक्तित्व की तुलना उस चन्द्रकांत मणि से की है जो बाहर से स्निग्ध सफेद तथा भीतर से इन्द्रधनुषी रंग से पूर्ण रहती है। रेखा उपन्यास की नायिका है। उसका प्रथम परिचय चन्द्रमाधव के घर में चाय पार्टी के दौरान होता है। वहाँ वह एक बुद्धिजीवी स्वतंत्र, प्रबुद्ध, विश्लेषणकर्त्री तथा आधुनिक नारी के रूप में सामने आती है। वहाँ 'सत्य' और 'तथ्य' को लेकर की गयी चर्चा में उसकी विलक्षण तार्किकता, बौद्धिक क्षमता, स्पष्टवादिता और प्रखर दृष्टि का परिचय मिलता है। प्रथम भेंट में ही प्रोफेसर भुवन उसे लक्ष्य करते हुए कहता है- ''रेखा के पास रूप भी है और बुद्धि भी किन्तु बुद्धि मानों तीव्र संवेदना के साथ गुँथी हुई है और रूप एक अदृश्य, अस्पृश्य कवच सा पहने हुए है।''[3] रेखा के वाक्पटुता तथा स्पष्टवादिता से उसके बौद्धिकता का परिचय मिलता है। चन्द्रमाधव भी रेखा के व्यक्तित्व के सामने नतमस्तक हो जाता है। वह उसे असाधारण नारी ही मानता है तथा उसका साँवला सौन्दर्य भुवन और चन्द्र दोनों को अभिभूत किये रहता है। रेखा के व्यक्तित्व की सादगी उसके श्वेत रेशमी साड़ी धारण करने से पूर्ण हो जाती है। चन्द्रमाधव की दृष्टि में- ''रेखा सुन्दर है ..... पर वैसे अत्यंत रूपवती है और उसका रूप एक सप्राण, तेजोमय पर्सवेलिटी के प्रकाश से भीतर से दीप्त है, भले ही एक कड़ा रिजर्व उस प्रकाश को भी घेरे है।''[4]

रेखा अभिजात्य परिवार से सम्बद्ध है। उसके पिता प्रसिद्ध डाक्टर तथा माँ भक्त थीं। इकलौती सन्तान होने के कारण वह भाई-बहन के प्रेम से वंचित रहती है। हेमेन्द्र के साथ उसका विवाह सफल नहीं रहा। उसे बहुत ही कटु अनुभवों से गुजरना पड़ा। बाद में उसे परित्यक्ता का दंश भी झेलना पड़ता है। वह अपने परिश्रम के बल पर अनेक स्थानों पर नौकरी करके अपने एकल जीवन का सफलतापूर्वक निर्वाह करती है। यह उसके स्वावलम्बन का परिचायक है। जैसा कि समाज, पति से अलग रहने वाली नारी को

चरित्रहीन मान लेता है, वैसे ही ओछे विचारों वाला चन्द्रमाधव भी उसे लालसाभरी दृष्टि से देखता है। वह उसकी नौकरी आदि दिलाने में मदद भी करता है परन्तु रेखा उसके ओछे विचारों से अनभिज्ञ रहती है। गोपाल राय के अनुसार- ''स्वयं चन्द्रमाधव रेखा को नौकरी लगाने का ही नहीं, उसकी नौकरी छुड़ाने का भी माध्यम बनता है ताकि वह फंदे में फँसी रह सके। पर रेखा तीव्र बुद्धि चरित्रवान युवती है, और विपरीत परिस्थितियों में भी पथभ्रष्ट नहीं होती है। चन्द्रमाधव की सारी चालें व्यर्थ सिद्ध होती हैं।''[5] चन्द्रमाधव द्वारा स्पष्ट रूप से प्रणय निवेदन करने पर रेखा उससे रूष्ट हो जाती है।

उपन्यास में रेखा अस्तित्ववादी जीवन दर्शन को मानती है। वह भुवन से कहती है- ''मैं सचमुच कहीं पहुँचना नहीं चाहती-चाहना ही नहीं चाहती। मेरे लिए काल का प्रवाह नहीं, केवल क्षण और क्षण का योग फल है- मानवता की तरह काल भी मेरे निकट एक युक्ति-सत्य है, वास्तविकता क्षण की ही है। क्षण सनातन है।''[6] जैसे काल-प्रवाह में क्षणा है और वे परस्पर असम्बद्ध होते हैं इसीलिए अद्वितीय होते हैं, उसी तरह नदी के प्रवाह में द्वीप की तरह मानवता के सागर में व्यक्ति होता है।

भुवन की प्रतिभा, बौद्धिकता तथा संवेदनशीलता से रेखा प्रभावित होती है। यही प्रभाव धीरे-धीरे आकर्षण में बदल जाता है। प्रथम भेंट में रेखा और भुवन दोनों रेलगाड़ी में प्रतापगढ़ तक साथ-साथ यात्रा करते हैं तथा अपने-अपने गन्तव्य पहुँचने पर दोनों में वैचारिक वार्ताएँ पत्राचार के माध्यम से होती रहती हैं। चन्द्रमाधव के प्रणय निवेदन की घटना भी रेखा पत्र के माध्यम से भुवन को अवगत कराती है। भुवन के दिल्ली पहुँचने पर रेखा उसके साथ दिल्ली के दर्शनीय स्थलों तथा सुरम्य प्राकृतिक वातावरण में घूमती है। विमल सहस्रबुद्धे के अनुसार- ''सुशिक्षित डॉक्टर भुवन में उसे अपने स्त्रीत्व के तृप्ति की सम्भावना दिखती है और वह उसके पीछे एक नदी की धारा के समान बहती जाती है। जहाँ-जहाँ मौका मिला वहाँ उसके साथ हो लेती है।''[7] भावुक होकर रेखा नौकुछिया में भुवन को अपना सर्वस्व अर्पण करने को उद्यत हो जाती है। वह निर्विकल्प भाव से समर्पित होती है। इस आमंत्रण से भुवन स्तब्ध रह जाता है। ऐसी स्थिति में भुवन किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर अश्रु प्रवाहित करने लगता है। स्नेहमयी रेखा भुवन के आँसू अपनी छाती और बालों से पोंछकर उसे अपने आँचल में ढक लेती है। तुलियन में भी दोनों साथ-साथ समय व्यतीत करते हैं। अन्ततः भुवन के माध्यम से रेखा को यौनतृप्ति प्राप्त होती है।

भुवन द्वारा विवाह प्रस्ताव को रेखा अस्वीकार कर देती है क्योंकि वह चाहती है कि भुवन से प्राप्त चरम सौन्दर्य उसके जीवन में विद्यमान रहे। रेखा प्रेम की सत्ता को सर्वोपरि मानती है। उसका प्रेम प्रत्येक वाणी, वस्तु, विचार तथा भावना से ऊपर है। उसकी समस्त आशा-आकांक्षा भुवन से आगे नहीं जाती है, उसके ऊपर सदैव, सर्वत्र भुवन की ही छाया रहती है। केदार शर्मा के अनुसार- ''वह बिना कोई प्रतिदान माँगे, सुरक्षाओं की सब संभावनाओं को लात मारकर निर्भय, निर्द्वन्द्व और निर्विकल्प भाव से भुवन को चाह सकी है। सब कुछ अर्पित कर सकी है। भुवन उसकी समस्त आशा-आकांक्षाओं का केन्द्र है, उसकी इज्जत है, उसका गर्व है। यानी मन के स्तर पर भुवन ही है, रेखा नहीं है।''[8] रेखा भुवन के प्रति अपने आकर्षण की अंतिम दु:खद परिणति से अवगत है। वह भली भाँति जानती है कि भुवन उसके जीवन से दूर हो जायेगा। वह कहती है- ''तुम चले जाओगे- मैं जानती हूँ कि तुम चले जाओगे। मैं आदी हूँ कि जीवन में कुछ आये और चला जाए- मैंने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ना-चाहना भी छोड़ दिया है- कौन पकड़कर रख सकता है ?''[9]

एक दिन कष्टसहिष्णु रेखा को उसके पूर्व पति हेमेन्द्र का धमकी भरा पत्र मिलता है। वह भुवन की अपयश की आशंका से, अपने गर्भ में पल रहे भुवन की सन्तान की हत्या के लिए बाध्य हो जाती है। इस घटना के परिणाम स्वरूप उसे असहनीय शारीरिक पीड़ा झेलनी पड़ती है। उसके प्राण संकट में पड़ जाते हैं। भुवन उसे अस्पताल में भर्ती कराता है। इस घटना से भुवन रेखा से तटस्थ हो जाता है। भुवन के इस व्यवहार से रेखा मर्माहत पीड़ा झेलते हुए अपनी कष्टसहिष्णुता का परिचय देती है। वह समझ जाती है कि भुवन उसके जीवन से दूर जाना चाहता है। वह अपनी शिष्या गौरा के प्रति अनुरक्त है तथा गौरा भी भुवन को सच्चे मन से चाहती है। रेखा उदार मनस्वी है अपने इसी 'चरित्रवान पहलू' के वशीभूत रेखा भुवन को पहचानने के पश्चात् भी अपने औदार्य से उसे क्षमा करते हुए कहती है- ''तुम सोओ, अपने स्वप्न के लिए तुम्हें नहीं जगाऊँगी। स्वप्न में मैंने तुम्हारे प्रिय किसी को देखा था .... वह तुम्हें बहुत प्रिय थी। उसे देखकर मेरे मन में स्नेह उमड़ आया-ईर्ष्या होनी चाहिए थी पर नहीं हुई। भुवन मैं तुम्हारे जीवन में आऊँगी और चली जाऊँगी।''[10]

रेखा के व्यक्तित्व में त्याग और बलिदान की पराकाष्ठा हैं। वह अपनी इच्छा को कभी भी भुवन के सामने प्रकट नहीं करती है। उसकी भावना यह रहती है कि प्रिय मिले या न मिले परन्तु जहाँ रहे प्रसन्न रहे। अत: वह स्वयं के भुवन तथा गौरा के बीच से हटा लेती है। वह गौरा से ईर्ष्या न करते हुए उसे छोटी बहन मानती है और अपनी अंगूठी उसे भेंट करती है। दोनों का विवाह

होने के पश्चात् भी रेखा के अन्दर भुवन के प्रति उसका प्यार, उसकी निष्ठा में कोई कमी नहीं आती है। भुवन को प्यार करते हुए भी वह उसे अपने लिए बाँधे नही रखना चाहती। रेखा के चरित्र में प्रेम बांधता नहीं, मुक्त करता है और यही रेखा के व्यक्तित्व का वास्तविक रूप है। अज्ञेय ने दान को रेखा का आदर्श माना है। रेखा की इस भावना के सम्बन्ध में चन्द्रकांत वादिवडेकर लिखते हैं- ''उस भुवन के प्रति अपने लोभ को गौरा के लिए काटकर फेंक देना कुछ ऐसा काम है जैसा कि कर्ण ने अपने कवच कुंडलों का दान करके किया था।''[11]

रेखा के व्यक्तित्व में अदम्य, निष्कम्प एवं अपराजेय आत्मविश्वास दिखाई देता है। अपने इसी आत्मविश्वास के कारण वह जीवन की वर्तमान परिस्थितियों से न तो प्रभावित होती है और न भविष्य जीवन में भी भयभीत और शशंकित होकर निराश होती है। प्यार के प्रति उत्कट निष्ठा रखते हुए भी तथा अलगाव और एकाकीपन की स्थिति में भी जीवन के प्रति उसकी आस्था बनी रहती है। वह डॉ0 रमेश चन्द्र के यहाँ नर्स तथा मिसेज ग्रीब्ज के यहाँ एकाउटेंट की नौकरी करती है। वह भुवन की पलायनवादिता, संकोच तथा अपराध भाव को दूर करके उसे गौरा का जीवन साथी बनने का परामर्श देती है। स्वयं वह डॉ0 रमेश चन्द्र से विवाह कर लेती है।

रेखा के चरित्र में अपनी भावनाओं के प्रति सबसे अधिक ईमानदारी और अपने प्रति निर्भयता भी है। इसी कारण वह अपने भूतपूर्व जीवन की सम्पूर्ण गाथा अपने पति से नि:संकोच कहती है। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार- ''रेखा इतनी असाधारण है कि लेखक एक सीमा के बाद स्वयं अपने द्वारा सृजित चरित्र के प्रकाश से उसके शक्तिम-व्यक्तित्व से चौंधिया उठता है, उसे संभाल नहीं पाता।''[12]

इस प्रकार उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि उपन्यास 'नदी के द्वीप' की नायिका रेखा एक असाधारण, आदर्श पात्र है। उसमें समस्त गुणों का समावेश है। उसका व्यक्तित्व त्याग, परोपकार, सहचर्य, प्रेरणा, बौद्धिकता, भावुकता तथा उदारता आदि गुणों का समन्वित रूप है। गोपाल राय के अनुसार वह- ''हिन्दी के अग्रिम, औपन्यासिक पात्रों की विशिष्ट अग्रिम पंक्ति में जाती है। उसकी प्रखर बौद्धिकता, आत्म बलिदान अपनी पीड़ा के प्रति तटस्थ द्रष्टा का भाव, अपनी भावनाओं के प्रति सम्पूर्ण ईमानदारी और समर्पण की भावना आदि उसके चरित्र को वह प्रखरता, तेज, परिपक्वता और संवेदनशीलता प्रदान करते हैं जो हिन्दी के किसी अन्य औपन्यासिक पात्र में दुर्लभ है।''[13] रेखा के चरित्र में स्पष्टता के साथ-साथ रहस्यता का पुट भी है। रेखा के चरित्र के सम्बन्ध में स्वयं अज्ञेय कहते हैं- ''वस्तुत: आधुनिक नारी के इतने विविध पक्ष इतनी गहराई और सूक्ष्मता के साथ अपने आगे प्रत्यक्ष कर सकना और फिर शब्दबद्ध कर सकना अपने आप में एक बड़ी साहित्यिक उपलब्धि है। अज्ञेय ने सचमुच उसे बड़ी ही सूक्ष्मता और तन्मयता के साथ अंकित किया है।''[14]

संदर्भ

1. अज्ञेय के उपन्यास: कथ्य और शिल्प, नंद कुमार राय, प्रथम संस्करण, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली 1973, पृ0 85
2. अधूरे साक्षात्कार, नेमिचन्द्र जैन, द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन दरियागंज दिल्ली-1989, पृ0 27
3. 'नदी के द्वीप', अज्ञेय, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद-2003, पृ0 16
4. वही, पृ0 52
5. अज्ञेय और उनके उपन्यास संसार, गोपाल राय, प्रथम संस्करण, भारती प्रिन्टर्स दिल्ली-1975, पृ0 130
6. 'नदी के द्वीप', अज्ञेय, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद-2003, पृ0 36
7. हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, विमल सहस्रबुद्धे, पुस्तक संस्थान 101/50ए नेहरू नगर कानपुर-1974, पृ0 560
8. अज्ञेय के उपन्यास: प्रकृति और प्रस्तुति, केदार शर्मा, प्रथम संस्करण पंचशील प्रकाशन, जयपुर-1981, पृ0 67
9. 'नदी के द्वीप', अज्ञेय, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद-2003, पृ0 145
10. वही, पृ0 146
11. उपन्यास स्थिति और गति, चन्द्रकांत वादिवडेकर, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली-1993, पृ0 75
12. समीक्षा के संदर्भ, भगवतशरण उपाध्याय, पृ0 94
13. अज्ञेय और उनके उपन्यास संसार, गोपाल राय, प्रथम संस्करण, भारती प्रिन्टर्स दिल्ली-1975, पृ0 131
14. अधूरे साक्षात्कार, नेमिचन्द्र जैन, द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली-1989, पृ0 26

भारत में लैंगिक भेदभाव एवं महिला उत्पीड़न

डॉ० अंजू सिंह

एसो0 प्रोफेसर अर्थशास्त्र, फ0अ0अ0राज0स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महमूदाबाद, सीतापुर

आज का दौर बराबरी का दौर कहा जाता है लेकिन हकीकतन कोई बराबरी नही आ पाई है। वैश्वीकरण तथा निजीकरण के साथ-साथ उपभोक्तावाद और स्वार्थी यौन कुंठा बढ़ने पर है। हमारे समाज की मानसिकता जो औरतो के प्रति है वह अब भी आदिम काल की है। हालांकि शहरो में औरते अपने हकों को पाने की कोशिश कर रही है। आज औरत मर्द दोनो काम कर रहे है लेकिन औरत का जो पारिवारिक काम है। उस जिम्मेदारी में किसी ने हाथ नही बटाया है। जिससे पारिवारिक तनाव बढ़ा है और आपसी रिश्तो में दरार आयी है। आज पत्नी के उपर कमा कर थी लाओं, घर भी देखों और खाना बनाकर भी परोसो और बच्चों को भी पालो जैसी तमाम जिम्मेदारी है। ऐसा इस लिए है कि पुरूषो की सोच नही बदली है। महिलाओं की मौजूदा निपदापूर्ण हालात का पता लैंगिक अजमानता सूचकांक से चलता है जिसके मुताविक 22 मार्च 2017 में 159 देशों में भारत 125वे पायदान पर है। महिलाओं के साथ बढ़ती हिंसा एवं यौन उत्पीड़न एक ऐसी भूमण्डलीय गंभीर समस्या है जो इसे शारीरिक, मानसिक, यौनाचार और आर्थिक रूप से उसकी हत्या कर अपंग बना देती है। पुलिस का रवैया थी इनके साथ उदासीनता का होता है। कुछ महिला नेताओं को लगता है कि जब औरते पढ़ लिख लेगी, हर क्षेत्र में तरक्की कर लेगी और आर्थिक रूप से स्वावलंबी बन जाएगी तो वह अधिक स्वतंत्र हो जायगी। पर समाज इस बात को झुठला रहा है। हमारा समाज औरतों की स्वतंत्रता देखना नही चाहता है। इस पर लगाम तभी लग सकती है जब हम परिवार से ही बच्चों में समानता का भाव लाएँ, उन्हे जागरूक करें। प्रबल सामाजिक सांस्कृतिक जवाबदेह, मजबूत न्याय व्यवस्था ही इसकी रोकथाम कर सकता है। प्रस्तुत लेख में इसके बारे में विस्तृत व्यवस्था की गयी है।

आधी दुनिया यानि भारतीय नारी हर क्षेत्र में अब पुरूषों के आधिपन्य को भंग कर चुकी है। इस लिए अब उसकी योग्यता, क्षमता पर प्रश्नचिन्ह नही लगाया जा सकता। वह राजनीति के क्षेत्र से लेकर न्यायपालिका तक मीडिया जगत में, बैंकिग व बीमा कम्पनियों में, सेना में, उच्च शिक्षा और व्यवसाय में, खेल कूद और पर्वतारोहण, साहित्य और संगीत से लेकर नौकरशाही तक में अव्वल दर्जा हासिल कर चुकी है। आज महिलाएँ राष्ट्रीय ही नही अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में प्रत्येक कार्यक्षेत्र में अपनी पहचान कायम कर अपना परचम लहरा रही है। लड़कियॉ लड़को की तुलना में अधिक संख्या में स्कूल पास ही नही कर रही है बल्कि टॉप भी कर रही है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में भी छात्राएँ बढ़चढ़ कर आगे आ रही है। आज मॉओ का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि ''आधा आसमान स्त्रियों ने सिर पर उठा रखा है।''

वैश्वीकरण के इस दौर में भारतीय महिलाओं की सोच और समाज के ताने बाने में घातक लचीलापन नजर आया है। नये युग की महिलाएँ पुरूष जैसे कपड़े पहनने, बाल कटाने, चलने-बोलने तथा शराब सिगरेट पीने आदि को ही अपनी आजादी समझने लगी है। अपना मुकाम पाने के लिए शादी करना जरूरी नही समझती। विज्ञापन और नारी का रिश्ता आज अटूट होता जा रहा है। बाजार के बनते बिगड़ते समीकरण में नारी एक अहम भूमिका निभा रही है। इस उपयोगतावादी संस्कृति में सभी अपने-अपने विज्ञापन के लिए महिला को ही चुनते है। इससे बाजार तो प्रभावित हो रहा है साथ ही हमारी संस्कृति भी प्रभावित हो रही है। विज्ञापनो एवं फिल्मों मे बढ़ते महिलाओं देह प्रदर्शन, आधुनिकता और ग्लैमर की चकाचौध इन्हे सही फैसला लेने का मौका नही मिल पा रहा है। दिन पर दिन वह इस माया जाल में फसती चली जा रही है।

भारत में जैसे-जैसे महिलाओं के कदम आगे बढ़ रहे है नई जटिलताएँ सामने आ रही है। औरतों को जघन्यतम अपराधों के जरिए संदेश दिया जा रहा है, मानों हिदायतें दी जा रही है बस करों, काबू में रहो वरना तुम्हारे बजूद को ही खत्म कर दिया जाएगा। जो लोग कहते है महिलाएँ गलत पोशाक पहनकर मर्दो को गलत काम करने के लिए उकसाती है, वे बताएंगे क्यों नाबालिगो को रौंदा जाता है ? हजारो नारी भ्रूण क्यों नष्ट किए जा रहे है ? दबंगो की पंचायतों मे बैठकर प्रेमियों के माता पिता उनकी हत्या में भागीदार क्यों बन रहे है ? लाखो बच्चियाँ क्यों दंरिदों के हाथो अगवा कर गायब कर दी जा रही है ? इसका उत्तर केवल महिला आन्दोलन को नही बल्कि संपूर्ण समाज को देना होगा।

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता प्राचीन काल से ही अपनी जड़े बनाए हुए है। समाज निर्माण के प्रारम्भिक दौर में भी लिंग भेद के आधार पर ही कार्य विभाजन था। कन्या का गर्भ में प्रवेश करने के कुछ समय बाद ही उसे लैंगिक भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। आमिर खान का टी0वी0 सीरियल ''सत्यमेव जयते'' ने लोगो की यह गलतफहमी दूर कर दी है कि कन्या भ्रूण हत्या सिर्फ अनपढ़ व गरीब परिवारों में ही नही चल रही है बल्कि अमीर और मशहूर लोगों के घर भी इस लांछन से मुक्त नही है। जाहिर है कि ऐसा करने वाले शिक्षा से प्रभावित नही है। ये लोग लड़कियों का पालन पोषण करना ही नही चाहते। पुत्र जन्म को जहाँ उत्सव के रूप में मनाया जाता है वही कही-कही पुत्री का जन्म मातम जैसा हो जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सर्वेक्षण के अनुसार ''हमारे देश में हर वर्ष डेढ़ करोड़ लड़किया जन्म लेती है जिनमें से 25 लाख 15 वर्ष की उम्र से पहले ही मर जाती है। इन लड़कियो की मौत का कारण समाज में महिलाओं के प्रति भेदभाव का व्यवहार है।'' स्वास्थ्य, शिक्षा भोजन तथा खेलकूद के मामले मे हमेशा से ही ग्रामीण समाज में भेदभाव देखा जाता है। जो स्पष्ट रूप से ही लैंगिक भेदभाव को दर्शाता है। लड़कियाँ सदैव वंचित, उपेक्षित अल्पपोषित रहती है जबकि वे लड़को के मुकाबले अत्यधिक काम करती है। इण्डियन काउन्सिल फार मेडिकल रिसर्च द्वारा यह तथ्य सामने आया है कि ''लड़को के मुकाबले में लड़कियो को कम पौष्टिक भोजन दिया जाता है और साथ ही उन्हे यह टोका भी जाता है कि अधिक भोजन उनके स्वास्थ्य तथा भविष्य के लिए ठीक नही है।''

अब प्रश्न यह उठता है कि लैगिंक भेदभाव वाली मानसिकता पनपती कैसे है ? इसका उत्तर सामाजीकरण की उस प्रक्रिया में छिपा है, जिससे हम गुजरते है। लड़कियों को जन्म से डरकर और दबकर रहना सिखाया जाता है, जबकि लड़को को मजबूत और हावी होना सिखाया जाता है। अनुसंधान बताते हुए कि टीकाकरण के मामले में लड़को की तुलना में लड़कियों को पूरे टीके लगने की संभावना बहुत कम है और लड़कियों को पोषक खुराक मिलना काफी हद तक इस पर निर्भर करता है कि उसकी माँ साक्षर है या नही। यदि माँ निरक्षर होती है तो लड़कियों को अपने भाईयों की अपेक्षा बेहतर भोजन मिलने की संभावना बहुत कम होती है और साक्षर पिता भी इस लिंगभेद को दूर करने के कुछ नही करता।

महिलाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा पर गौर करे तो पाएंगे कि उनका घरेलू और सार्वजनिक दोनो जगहों पर उत्पीड़न किया जा रहा है जो अनवरत जारी है। हम 21वी सदी में जी रहे है पर हमारी मानसिकता पाशविक है। महिलाओं के प्रति हमारा नजरिया पाषाण काल का ही दिखता है। चूँकि हमारा समान शुरू से ही पुरूष सत्तात्मक रहा है इस लिए अकसर यह देखा गया है कि महिलाओं के साथ पुलिस का रवैया बदसलूकी भरा होता है। बलात्कार या यौन हिंसा जैसे मामलों में पुलिस की पूछताछ पीडिघ्ता की मनोस्थिति के अनुकूल नही होती । इनका रवैया बदसलूकी भरा होता है। बयान दर्ज कराने से लेकर बदसलूकी भरा होता है। बयान दर्ज कराने से लेकर वैज्ञानिक साक्ष्य जुटाने तक की जॉच प्रक्रिया में ढेर सारी गलतियाँ होती है। आरोपियों के शिनाक्त का तरीका भी व्यवहारिक नही होता इस लिए आज हमारे देश की हर तीसरी लड़की यह स्वीकार करती है कि उसके साथ यौन हिंसा हुई है। इस लिए यह शिक्षा से की ज्यादा मानसिकता से जुड़ा मसला है। नेशनल क्राइम रिकार्डस व्यूरो (एन0सी0आर0बी0) के वर्ष 2015 के आकड़े कहते है कि पिछले 10 वर्षो में महिलाओं के खिलाफ अपराध दोगुने हुए है जिसे हम रेखाचित्र के द्वारा स्पष्ट कर सकते है:-

महिलाओं के खिलाफ अपराध 2005-14 देश में 10 वर्षो 909713 केस महिलाओं के विरूद्व दर्ज किए गये है जिसे हम दण्ड चित्र के माध्यम से दर्शा रहे है:- 1 पति एवं रिश्तेदारों द्वारा किए गए अपराध 2- महिलाओं के प्रति किया गया आक्रोशशील अपराध 3-बालात्कार एक सर्वेक्षण के द्वारा यह जानकारी सामने आयी है कि महिलाओं पर होने वाले अत्याचारो की जितनी भी रिपोटिंग होती है, वह सामान्यत:- निचले वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग की होती है, जबकि महिलाओं के प्रति अत्याचार हर तबके में समान है। लेकिन लोक-लाज के कारण मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग की महिलाएँ अपनी शिकायते लेकर पुलिस-प्रशासन के पास जाती ही नही है। महिला हितो की रक्षा और उनके संरक्षण को लेकर हमारे देश में कानूनी प्रावधानो की कोई कमी नही है पर कठोर

सच्चाई यही है कि देश में महिलाओं को वास्तविक अधिकार भाव देने के लिए जिस राजनीतिक सशक्तीकरण की जरूरत है, वहॉ आकर एक अटूट सी दिखने वाली दीवार खड़ी हो जाती है। तमाम राजनीतिक दलों में इस मुद्दे पर एक अधोषित आम सहमति नजर आने लगती है। इस पर लगाम तभी लग सकता है जब हम परिवार से ही बच्चों में समानता का भाव लाए, इन्हे जागरूक करें। साथ ही दोषियों को कड़ाई से दण्डित करे। हमारे यहॉ न्यायपालिका में जाकर न्याय पाना हर किसी के वश की बात नही है। यदि कोई महिलाओं के साथ छेड़छाड़ या बलात्कार जैसा कुकृत्य करता है तो स्त्रियों को नही बल्कि उस अपराधी को शर्मशार होने की आवश्यकता है। इस लिए यौन हिंसा की शिकार महिलाओं को सामाजिक कलक समझना बंद कीजिए। आखिर अपनी आधी आबादी को अनदेखी कर कोई देश कैस विकास कर सकता है।

संदर्भ ग्रंथः-

1. बुलबुल गार्गीः भूमण्डलीकरण और महिलाओं पर इसका प्रभाव, राधाकमल मुखर्जी, चिन्तन परम्परा जनवरी जून 2010
2. अवस्थी अनन्याः ''स्वस्थ बालिका ही बनेगी सशक्त बालिका'' योजना वर्ष 60 अंक 9 सितम्बर 2016 पृष्ठ 42
3. हस्तक्षेपः- ''महिलाओं के प्रति अपराधः सोच ही बदलेगी मौजूदा स्थिति राष्ट्रीय सहारा 28 जून 2014
4. कुमारी रंजनाः- ''सब सतही आधुनिकीकरण का कुपुल'' हस्तक्षेप पृष्ट 1
5. योजनाः नारी सशक्तिकरण सितम्बर 2016 एवं जून 2012
6. कुरूक्षेत्रः-ग्रामीण महिला सशक्तीकरण वर्ष 56 अंकि 7 जून 2010
7. भारतीय जनगणना वर्ष 2011 महापंजीयक, भारत सरकार

कृषि आयः आयकर अधिनियम-1961 के संदर्भ में

जितेन्द्र कुमार

सहायक प्रोफेसर वाणिज्य, राजकीय महाविद्यालय, गोसाईंखेड़ा, उन्नाव

भारत में कृषि आय पर आय-कर लगाने के दृष्टिकोण से कृषि आय का अर्थ समझना बहुत आवश्यक है। आय-कर अधिनियम की धारा 10(1) के अनुसार, कृषि आय को आय-कर से मुक्त रखा गया है। वित्त अधिनियम, 1973 (कर-निर्धारण वर्ष 1974-75) के अनुसार, एक व्यक्ति एवं हिन्दू अविभाजित परिवार द्वारा देय आय-कर की गणना करते समय कुल आय में शुद्ध कृषि आय को शामिल करके एक विशेष तरीके से आय-कर की गणना की जाती हैं।

जमीन पर उगने वाली प्रत्येक उपज को बेचने से प्राप्त आय कृषि आय नहीं होती है। अतः यहाँ यह जानना आवश्यक है कि कृषि आय किसे कहते है? कृषि आय की परिभाषा आय-कर अधिनियम की धारा 2 (1।) में दी गई है। इस परिभाषा के आधार पर

कृषि आय

क- (1) भूमि से प्राप्त किराया अथवा लगान।

(2) भूमि भारत में स्थित होनी चाहिए।

(3) भूमि का प्रयोग कृषि के कार्यों में होना चाहिए।

ख- (1) भूमि से आय कृषि क्रिया करने से प्राप्त हुई हो, अथवा

(2) आय की प्राप्ति, किसान या किराया प्राप्तकर्ता द्वारा अपनी उपज को विक्रय-योग्य बनाने वाली क्रिया करने से हुई हो, अथवा।

(3) आय की प्राप्ति किसान या किराया प्राप्तकर्ता द्वारा अपनी उपज को बेचने से हुई हो।

ग- (1) कुछ शर्तों के अन्तर्गत कृषि भवन से आय।

(क) कृषि भूमि का भारत में होना-अक्सर देखा जाता है कि एक व्यक्ति अपनी भूमि को खेती के कार्य में प्रयोग करने का अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति को दे देता है और वह इसके बदले में किराया अथवा लगान प्राप्त करता हैं यह लगान अथवा किराये की प्राप्ति कृषि आय होती है, किन्तु इसके लिये इस शर्त का पूरा होना आवश्यक है कि भूमि भारत में स्थित होनी चाहिए और भूमि का उपयोग कृषि के कार्यों में होना चाहिए।

(ख) कृषि क्रियाओं का होना- उपर्युक्त प्रकार की भूमि (अर्थात् ऐसी भूमि जो भारत में स्थित है तथा खेती के कार्यों में प्रयोग की जाती है) के सम्बन्ध में अग्रलिखित बिन्दु विचारणीय है: जैसे -

(1) भारत में स्थित भूमि से आय, कृषि आय तभी कहलायेगी जब कृषि की क्रियाएं की गई हो।

(2) किसी व्यक्ति या किसान को प्राप्त ऐसी आय जो उसके द्वारा उत्पादित या प्राप्त उपज को बाजार में बेचने योग्य बनाने के लिये किये गये परिश्रम के बदले में प्रतिफलस्वरूप मिलती है, कृषि आय होती है। जैसे, मिस्टर एक्स तम्बाकू के हरे पत्तों को सुखाकर तथा उनके बण्डल बनाकर बाजार में बेचने का कार्य करता है और इस कार्य के फलस्वरूप उसे रू0 4000 प्राप्त होते हैं तो यह आय कृषि आय होगी।

(3) यदि कोई व्यक्ति (किराया या लगान प्राप्तकर्ता) अथवा कृषक अपनी उपज को बाजार में बेचकर आय प्राप्त करता है या नियमित रूप से दुकान लेकर उस उपज की बिक्री करता है, तो ऐसी बिक्री से प्राप्त आय कृषि आय होगी। जैसे, एक कृषक अपना गेहूँ मण्डी में बेचकर रकम प्राप्त करता है तो यह कृषि आय होगी।

कृषि क्रिया का आशय-

उपर्युक्त (क) तथा (ख) में वाक्यांश 'कृषि कार्यों में प्रयोग किया जाना' आया है। इसका अर्थ है कि भूमि का उपयोग खेती के कार्यों में होना चाहिए अन्यथा प्राप्त आय कृषि आय नहीं कहलायेगी। एक कृषक को कृषि करने के लिये भूमि को तैयार करने से लेकर फसल को काटकर बेचने तक अनेक क्रियाएं करनी पड़ती हैं जिन्हें कृषि की क्रियाएं कहा जाता है। इस समस्त कृषि क्रियाओं को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित कर सकते है -

(1) प्राथमिक अथवा आधारभूत क्रियाएं।

(2) परावर्ती या बाद की क्रियाएं।

(1) प्राथमिक क्रियाए- इन क्रियाओं में वे कार्य शामिल किये जाते हैं जिन्हें किसान पौधा निकालने से पहले करता है। भूमि को जोतना, भूमि में पानी देना, भूमि में खाद डालना, भूमि में बीज बोना आदि क्रियाएं प्राथमिक या आधारभूत क्रियाएं है। इन क्रियाओं को न करने की दशा में, आय कृषि आय नहीं कही जा सकती। जैसे भूमि पर पेड़-पौधे, जंगली घास, बाँस स्वत: उग आते है। इन्हें बेचकर प्राप्त की गई आय कृषि आय नहीं कही जा सकती क्योंकि इन आय को प्राप्त करने हेतु कोई भी कृषि क्रिया नहीं की गई है।

(2) बाद की क्रियाएं- भूमि से पौधा निकलने के बाद जो क्रियाएं की जाती हैं उन्हें बाद की क्रियाएं कहते है। भूमि की निराई करना, पौधों के आस-पास की घास, झाड़-झखाड़ को हटाना, उपज के आस-पास खुदाई करना, सिंचाई करना, पौधों की कीड़ों व अन्य जानवरों से रक्षा करना, फसल काटना, साफ करना एवं सभी ऐसे कार्य जिनसे उपज में वृद्धि हो। ये सभी क्रियाएं बाद की क्रियाओं के अन्तर्गत आती हैं। ये क्रियाएं फसल को बाजार में बेचने के लिये आवश्यक है।

(ग) कुछ शर्तों के अन्तर्गत कृषि भवन से आय- एक मकान जो कृषि भूमि पर या कृषि भूमि के निकट स्थित है और इसका प्रयोग कृषक या किराया प्राप्तकर्ता द्वारा अपने रहने के लिये अथवा पशुओं को रखने के लिये अथवा भण्डार-घर के रूप में किया जाता है, तो ऐसे मकान को कृषि भवन, खेत का मकान या फार्म हाउस कहते हैं। ऐसे कृषि भवन से प्राप्त आय को भी अग्रलिखित शर्तो के पूरा होने पर कृषि आय कहा जायेगा: -

(1) यह कृषि भवन या फार्म हाउस उस कृषि भूमि पर अथवा उसके बिल्कुल निकट स्थापित होना चाहिए जो भारत में स्थित है तथा कृषि के कार्यों में प्रयोग की जाती है।

(2) यह फार्म हाउस कृषक या किराया प्राप्त करने वाले व्यक्ति के कब्जे में (अधिकार में) होना चाहिए।

(3) इस भूमि पर भू-राजस्व लगता हो या सरकार द्वारा स्थानीय कर वसूल किया जाता हो। यदि किसी भूमि पर भू-राजस्व या स्थानीय कर नहीं लगता है तो इसको गैर शहरी क्षेत्र में स्थित होना आवश्यक है। कोई भी ऐसी भूमि जो यद्यपि नगरपालिका, नगर निगम अथवा छावनी बोर्ड के क्षेत्र में स्थित है, निम्नांकित शर्तों के पूरा होने पर ही गैर-शहरी क्षेत्र में स्थित मानी जायेगी:

अ- उस क्षेत्र की आबादी 10000 से कम है अर्थात् उस भूमि को 10000 से कम आबादी वाले क्षेत्र में स्थित होना चाहिए अथवा

ब- ऐसी भूमि को ऐसे नगर निगम या छावनी बोर्ड की स्थानीय सीमाओं से अधिसचित दूरी से अधिक दूरी पर (8 किमी0 से अधिक दूरी पर) स्थित होना चाहिए अथवा भूमि को ऐसी दूरी के बाहर स्थित होना चाहिए जो दूरी केन्द्रीय सरकार ने सरकारी गजट से उस क्षेत्र के शहरीकरण के लिये प्रकाशित की हो।

(घ) नर्सरी में हुई पौधे से आय- किसी नर्सरी से उगाये गये पौधों एवं पौधे से हुई आय को कृषि आय के अन्तर्गत शामिल किया जायेगा।

कृषि आय के आवश्यक लक्षण या तत्व

कृषि आय की परिभाषा के आधार पर कृषि आय में पाये जाने वाले प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है:-

(1) कृषि आय प्रत्यक्ष रूप से भूमि से प्राप्त होनी चाहिए- जैसे, कृषि आय में से वितरित किया गया लाभांश अंशधारियों के लिये कृषि आय नहीं हैं क्योंकि इस आय का प्रत्यक्ष सम्बन्ध भूमि से नहीं है।

(2) भूमि भारत में स्थित होनी चाहिए- विदेश में स्थित कृषि भूमि से प्राप्त आय कृषि आय की श्रेणी में नहीं आती और इसीलिए करदाता के लिये कर मुक्त नहीं होती है।

(3) भूमि खेती के रूप में प्रयोग होनी चाहिए- अर्थात् भूमि पर खेती की आधारभूत क्रियाएं अवश्य की जानी चाहिए, तभी प्राप्त आय कृषि आय कहलायेगी।

(4) भूमि में हित- कृषि भूमि के मालिक अथवा भूमि के किरायेदार का भूमि में हित होना चाहिए।

(5) भूमि के साथ मात्र कुछ सम्बन्ध होना ही कृषि आय के लिये पर्याप्त नहीं है- किसी क्रिया को 'कृषि' के अन्तर्गत समाहित करने हेतु मात्र इतना ही पर्याप्त नहीं है कि उस व्यक्ति का भूमि के साथ सम्बन्ध है अथवा वह व्यक्ति किसी तरीके से उस पर आश्रित है। इसी आधार पर पशुधन का प्रजनन एवं उन्हें पालना, डेयरी फार्मिंग, मक्खन तैयार करना, मुर्गी पालना- ये सभी कार्य कृषि के उद्धेश्य हेतु नहीं है। अत: इन्हें कृषि क्रियाएं नहीं कहेंगे तथा इनसे प्राप्त आय कृषि आय नहीं होगी।

(6) नर्सरी से सम्बन्धित आय- कर-निर्धारण वर्ष 2009-10 से धारा 2;1।द्ध में संशोधन किया गया है कि नर्सरी से सम्बन्धित आय को कृषि आय माना जाये भले ही मूलभूत क्रियाएं की गई हों, अथवा नहीं। अत: किसी नर्सरी में उठाई गई पौध या पौधों से होने वाली आय कृषि आय मानी जायेगी।

कृषि आय के प्रकार

आय-कर अधिनियम की धारा 2 (1।) में दी गई परिभाषा के आधार पर निम्नलिखित प्रकार की सभी कृषि आय की श्रेणी में आती है:

(1) भूमि से प्राप्त किराया या लगान- किसी कृषि भूमि के मालिक ने अपनी भूमि दूसरे व्यक्ति को खेती करने के उद्धेश्य से सौंप दी है और इसके बदले में वह कोई किराया (नकद या उपज) लेता है, तो इस प्राप्त किराये या लगान को कृषि आय कहेंगे।

(2) कृषि भूमि पर खेती करने से प्राप्त आय- कृषि भूमि के स्वामी अथवा कृषि भूमि के किरायेदार को अथवा उस कृषि भूमि में हित रखने वाले व्यक्ति (भूमि बन्धककर्ता) को, भूमि पर कृषि क्रिया करने से जो आय प्राप्त होती है, वह कृषि आय कहलाती है।

(3) कृषि उपज को विक्रया- योग्य बनाने वाली क्रिया से आय- किसी कृषि भूमि के मालिक, किरायेदार अथवा भूमि में हित रखने वाले अन्य किसी व्यक्ति ने कोई इस प्रकार का कार्य किया है जो उपज को बाजार में बेचने-योग्य बनाने के लिये आवश्यक था, तो ऐसे कार्यों को करने से प्राप्त आय कृषि आय कहलाती है। उदाहरण के लिये, कृषक द्वारा गेहूँ, चना आदि फसलों को विक्रय-योग्य बनाने के लिये उनमें से भूसा आदि अलग करना, कपास में ओटकर रूई निकालना, खाद्यान्न की बालियों में से दाने निकालना, जूट के पौधों से रेशा निकालना एवं उसकी सफाई करना, आदि कुछ ऐसी क्रियाएं है जो उपज को बाजार में विक्रय-योग्य बनाने के लिये आवश्यक है। इन क्रियाओं को करने से उपज के मूल्य में वृद्धि होती है, परन्तु जब कोई व्यक्ति खरीदी हुई फसल पर उपर्युक्त क्रियाओं को करके कुछ आय प्राप्त करता है, तो यह कृषि आय नहीं होती है। जैसे, सरसों से तेल निकालने की क्रिया, गन्ने से गुड़ बनाने की क्रिया, कपास से बिनौला अलग करने की क्रिया, कृषि क्रिया के अन्तर्गत शामिल नहीं होती है।

(4) कृषि उपज को बेचने से प्राप्त आय- यदि कोई व्यक्ति कृषि क्रिया द्वारा प्राप्त अपनी उपज को बाजार में सीधे या नियमित रूप से दुकान लगाकर बेचने से आय प्राप्त करता है तो यह कृषि आय होगी। इसी प्रकार किसी भूमि के मालिक द्वारा किराये या लगान के रूप में प्राप्त उपज को बाजार में या स्वयं की दुकान लगाकर बेचा जाता है, तो इससे प्राप्त आय भी कृषि आय होगी, परन्तु कोई कृषक किसी अन्य व्यक्ति की फसल को बेचने से आय प्राप्त करता है, तो यह कृषि आय नहीं होगी।

(5) कृषि भवन से आय- यदि कोई मकान कृषि भूमि पर या उसके बिल्कुल निकट स्थित है, तो कुछ शर्तों के पूरा होने पर ऐसे मकान की आय कृषि आय होगी।

कृषि आय के कुछ उदाहरण -

1. बंधक रखने वाले व्यक्ति द्वारा उप-किरायेदार से कृषि भूमि के लिये प्राप्त किया गया किराया।
2. कृषि कार्यों में संलग्न फर्म से किसी साझेदार द्वारा पूंजी पर प्राप्त किया गया ब्याज।
3. तूफान में नष्ट हुई फसल के लिये बीमा कम्पनी से प्राप्त क्षतिपूर्ति।
4. फूल, पौधे एवं लतिकाएँ उगाने से होने वाली आय।

गैर कृषि आय के कुछ उदाहरण

अग्रिलिखित आयें यद्यपि कृषि आय जैसी प्रतीत होती है, किन्तु कृषि आय के आवश्यक लक्षणों को पूरा न करने के कारण कृषि आय नहीं मानी जाती:

1. कृषि भूमि के पिछले बकाया किराये पर प्राप्त ब्याज की रकम।
2. मुर्गी पालन से आय।
3. मछली पान से आय।
4. खानों की रॉयल्टी से आय।
5. मक्खन तथा पनीर की बिक्री से आय।
6. समुद्री जल से भूमि में पानी भरकर उत्पादित नमक से आय।

अंशतः कृषि आय

कभी-कभी कोई व्यक्ति या औद्योगिक संस्थान स्वयं के द्वारा उत्पादित कृषि उपज अथवा किराये के रूप में प्राप्त कृषि उपज को प्रयोग कच्चे माल के रूप में करते है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी निर्माता या व्यवसायी ने कृषि भूमि पर उत्पादित कृषि उत्पाद का प्रयोग कच्चे माल के रूप में करके कुछ माल निर्मित किया है और उसे बाजार में विक्रय करके आय प्राप्त की है, तो इस आय का एक भाग कृषि आय तथा शेष भाग गैर-कृषि आय मानी जायेगी। इस सम्पूर्ण आय में से कृषि तथा गैर-कृषि आय के भाग की अलग-अलग गणना करना आवश्यक है। इस सम्पूर्ण आय में शामिल कृषि आय के भाग को अंशतः कृषि आय कहते हैं।

उदाहरण - अधिकांश चीनी बनाने वाले कारखाने स्वयं के खेतों पर गन्ना उत्पन्न करके, इस गन्ने को कच्चे माल के रूप में प्रयोग करके एक प्रक्रिया के द्वारा चीनी बनाकर बाजार में बेचते हैं और आय कमाते है। इस सम्पूर्ण आय का एक भाग कृषि आय माना जाता है जिसे अंशतः कृषि आय कहते है। इस आय में गैर-कृषि आय का भाग कर-योग्य होता है।

कृषि आय तथा गैर-कृषि आय (व्यावसायिक आय) को पृथक् करना आवश्यक क्यों?

कुल आय में से कृषि आय के अंश को पृथक् करना इसलिये आवश्यक होता है क्योंकि -

(1) कृषि आय कर मुक्त होती है। कुछ दशाओं के अन्तर्गत कृषि आय को अन्य आय पर देय कर को ज्ञात करने के लिये विचार में रखा जाता है। यदि कृषि आय के अंश की गणना नहीं करेंगे तो अन्य आय पर देय कर की गणना में त्रुटि हो जायेंगी।

(2) सम्पूर्ण आय में शामिल गैर- कृषि आय का भाग 'व्यवसाय एवं पेशे के लाभ' शीर्षक के अन्तर्गत कर-योग्य होता है। यदि कृषि आय के अंश को पृथक् नहीं किया जायेगा, तो सम्पूर्ण आय 'व्यवसाय एवं पेशे के लाभ' शीर्षक में कर योग्य हो जायेगी और इस प्रकार कर की रकम की गणना भी त्रुटिपूर्ण हो जायेंगी।

अंशतः कृषि आय के भाग की रकम ज्ञान करने सम्बन्धी नियम

कुल आय में से कृषि आय का अंश ज्ञात करने सम्बन्धी नियम निम्नलिखित है:-

(1) चाय के अतिरिक्त कृषि उत्पादों को कच्चे माल के रूप में प्रयोग करने वाले निर्माणकर्ताओं की आय (नियम-7)- यह नियम चीनी के कारखानों, तेल, वनस्पति घी, आटा तथा ऐसे अन्य निर्माणकर्ताओं पर लागू होता है जो स्वयं के द्वारा उगाये गये कृषि उत्पादों को कच्चे माल के रूप में प्रयोग में लाकर माल निर्मित करते हैं और उनका विक्रय करते हैं ऐसे निर्माताओं की कुल आय में कुछ कृषि आय का तत्व विद्यमान रहता है तथा कुछ गैर-कृषि आय का। इस नियम के अनुसार कृषि उपज का बाजार मूल्य या विक्रय मूल्य कृषि आय होती है और इस बाजार मूल्य को कुल विक्रय मूल्य में से घटा देने पर गैर-कृषि आय (कर-योग्य आय) बचती है, परन्तु इस सम्बन्ध में कृषि करने का कोई भी खर्चा नहीं घटाया जायेगा संक्षेप में -

कृषि आय = कृषि आय का बाजार मूल्य (उपज को बाजार में न बेचने की दशा में निम्नलिखित तीन का योग ही उस उपज का बाजार मूल्य मानेंगे- (1) कृषि से सम्बन्धित व्यय, (2) भूमि का किराया, तथा (3) उचित लाभ का अंश)

गैर-कृषि आय = कुल विक्रय मूल्य - कृषि उपज का बाजार मूल्य

(2) कृषि उपज को लगान या किराये के रूप में प्राप्त करके उसे कच्चे माल में प्रयोग करने वाले निर्माणकर्ताओं की आय- इस दशा में उपरोक्त (1) में वर्णित गणना विधि प्रयोग में लाई जायेंगी।

(3) चाय के उत्पादन एवं निर्माण से आय (नियम-8)- भारत में उत्पादित एवं निर्मित चाय के विक्रय में भी कृषि आय का अंश शामिल होता है। इस आय का 60 प्रतिशत भाग कृषि आय माना जाता है तथा शेष 40 प्रतिशत भाग गैर-कृषि आय होती है जिसे व्यापार अथवा पेशे के लाभ शीर्षक में कर योग्य मानकर जोड़ते है। यदि कोई साझेदार चाय के उत्पादन में संलग्न व्यावसायिक फर्म से वेतन या लाभ के रूप में कुछ प्राप्त करता है, तो ऐसी प्राप्ति के 60 प्रतिशत भाग को उसकी कृषि आय माना जायेगा जो कर मुक्त होगी एवं शेष 40 प्रतिशत भाग उसकी गैर-कृषि आय या व्यावसायिक (कर-योग्य) होगी।

(4) रबर के उत्पादन से आय (नियम-7I)- रबर के उत्पादन व विक्रय से प्राप्त आय का 65 प्रतिशत भाग कृषि आय मानी जाती है तथा 35 प्रतिशत भाग गैर-कृषि आय मानी जाती है। मरे हुए पौधों के स्थान पर नये पौधे लगाने का व्यय लागत जोड़ा जायेगा। यदि कोई अनुदान रबर बोर्ड से प्राप्त होता है तो उसे उत्पादन लागत में से नहीं घटाया जायेगा।

(5) कॉफी के उत्पादन एवं निर्माण से आय (नियम-7ठ)- इसमें निम्नलिखित दो प्रकार के प्रावधान है:

अ- जो करदाता कॉफी का उत्पादन एवं निर्माण भारत में करके उसका विक्रय करते हैं और इससे जो आय प्राप्त होती है उसका 75 प्रतिशत भाग कृषि आय माना जाता है तथा शेष 25 प्रतिशत भाग गैर-कृषि आय मानी जायेगी जिसे व्यावसायिक आय कहेंगे और कर योग्य होगी।

ब- जो करदाता भारत में कॉफी का उत्पादन, निर्माण करके उसे भूनना या तपाना, पासना (इसमें कोई खुशबू लाने हेतु कोई तत्व मिलाये अथवा नहीं) आदि क्रियाये करके उसका विक्रय करते हैं तो इस आय का 60 प्रतिशत भाग कृषि आय होगी तथा शेष 40 प्रतिशत भाग गैर-कृषि आय कहलायेगी। इससे सम्बन्धित कुछ आय की गणना करते समय उन पौधों का व्यय लागत में शामिल करेगें जो मरे हुए पौधों के स्थान पर लगाये जाते हैं किन्तु कॉफी बोर्ड से कोई अनुदान या सहायता प्राप्त होती है तो उसे लागत में से घटाया नहीं जायेगा।

निष्कर्ष: कृषि आय आय-कर से पूर्णतया मुक्त है परन्तु कर दायित्व के निर्धारण के लिये इसे ध्यान में रखा जाता है जिसके कारण अंशत: (शून्य मात्र) कर कृषि आय पर पड़ ही जाता है। इसे आयकर निर्धारण हेतु कृषि आय को विचार में नहीं रखा जाना चाहिए तभी यह पूर्णतया कर मुक्त माना जा सकता है।

संदर्भ सूची-

1. आयकर अधिनियम 1961
2. इनकम टैक्स लॉ एण्ड प्रैक्टिस
3. डायरेक्ट टैक्स
4. दैनिक समाचार पत्र, अमर उजाला
5. ग्रामीण किसानों से संवाद

प्रगतिवादी कविता में नये बिम्ब

डॉ० (श्रीमती) प्रभा सिंह

एसो0 प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), सेण्ट एंड्रयूज कॉलेज, गोरखपुर

प्रगतिवादी कविता छायावादी रूमानी चेतना के विरोध में पैदा हुई। जीवन वास्तविकता की खुरदुरी जमीन पर टिक कर समाज और विश्व को देखने का ही फल था कि कविता में भी मसृणता और ललित चेतना का अभाव दिखायी देता है। प्रगतिवादी कविता की मानव चेतना साम्यवादी जीवन पद्धति के निकट दिखाई पड़ती है। इसीलिये सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विसंगतियों के प्रति इन कवियों के मन में तीव्र आक्रोश भरा है, जो समय-समय पर कविताओं में प्रकट हुआ है। प्रगतिवादी कविता को पढ़ने के बाद कविता के भीतर से ही जो प्रतिमान निकले हैं, उन्हें ही आधार बनाकर विवेचन आगे किया गया है। इनमें प्रमुख आधार निम्नांकित है-

1. वैषम्य चेतना के बिम्ब
2. क्रान्ति चेतना के बिम्ब
3. राजनैतिक बिम्ब
4. जन-शक्तिपरक बिम्ब
5. भविष्य कल्पना के बिम्ब

उपर्युक्त प्रतिमान आवश्यक नहीं कि सभी कवियों के यहाँ उपलब्ध ही हो, इसलिये जहाँ-जहाँ ये हैं, वहीं से उदाहरणों को चुना गया है।

1. वैषम्य चेतना के बिम्ब- आधुनिक समाज विभिन्न प्रकार की विषमताओं से ग्रस्त है। आर्थिक, सामाजिक, जातिगत आदि विषमताएं सामाजिक जीवन को खोखला बना रही है। प्रगतिवादी कवियों ने इस विषमता को काफी तीखेपन से महसूस किया था। यही कारण है, कि उनकी कविताओं में वैषम्य चेतना के बिम्बों की अधिकता है। वैषम्य चेतना में रचनाकार शोषक और शोषित के अन्तर को व्यक्त करने के लिये बिम्बों की योजना करता है। पूँजीवादी व्यवस्था और सर्वहारा के बीच की विवशता इस प्रकार के बिम्बों से प्रकट होती है। नयी कविता में समकालीन जीवन के बिम्ब अधिक प्रधान रहे हैं। शमशेर बहादुर सिंह अथवा मुक्ति बोध जैसे जनवादी प्रतिभा का संवहन करने वाले रचनाकारों में भी यह वैषम्य चेतना उतनी प्रखर नहीं है, जितना कि नागार्जुन में। उनके काव्य-संग्रह ''पत्रहीन नग्न गाछ'' के अन्तर्गत भी यह वैषम्य चेतना बिम्बों में बार-बार प्रकट होती है। रिक्शावाला अपनी पीठ पर फटी हुई बनियाइन पहने हुये है और उसके गुण-धर्म को प्रभावित करने वाला कवि का मन अपने बिम्ब में विज्ञान को भी सम्मिलित करके प्रगतिवादी वैषम्य चेतना के बिम्ब को और प्रखर बना देता है। ऐसी दशा में यहाँ मिश्रित बिम्ब की भी विशेषता थोड़ी-बहुत प्रकट होती है, लेकिन कुल मिलाकर वैषम्य चेतना का ही प्राधान्य है-

रिक्शावाले की पीठ पर फटी बनियाइन
पसीने के अधिकांश गुण-धर्म को
कर रही प्रभावित
विज्ञान के किसी छात्र से जाकर पूछूँ-
अधिक से अधिक क्या सब होता है?

पसीने का गुण-धर्म।
रिक्शावाले की पीठ की चमड़ी
और कितना शुष्क-श्याम होगा?

इस वैषम्य चेतना को अभिव्यक्त करने वाला एक ऐसा बिम्ब है, जो प्रत्येक पंक्ति में 'कंकाल' शब्द के प्रयोग से मूर्तित हो जाता है। यह नागार्जुन की घटनात्मक चेतना का जैसे प्रतिफल प्रतीत होता है। छोटे बच्चों, तरूणों, वृद्धों, तरूणियों, साफ चमड़ी वाले लोग, टहलते, लेटे आदि के कंकालों का उल्लेख करके कवि ने एक ऐसी चेतना के उद्‌भावक बिम्ब को प्रस्तुत किया, जो किसी भी प्रगतिशील या प्रगतिवादी कवि में दुर्लभ है। एक शब्द 'कंकाल' का प्रयोग करके कवि ने समस्त विश्व के सर्वहारा अथवा शोषित जनों की दुर्दशा को इस बिम्ब से व्यक्त किया है-

''शिशु कंकाल/तरूण कंकाल/वृद्ध कंकाल
कंकाल वृद्धाओं के/कंकाल तरूणियों के
कंकाल नन्हीं बच्चियों के/ साफ चमड़ी वाले कंकाल
काली चमड़ी वाले कंकाल/पाण्डु श्याम चमड़ी वाले कंकाल
घूमते-दहकते कंकाल/चलते-फिरते कंकाल
लेटे कंकाल/खड़े कंकाल/सोये कंकाल/जगे कंकाल
सूखे स्तन वाले कंकाल/छठे गर्म वाले कंकाल
मालगाड़ी वाली साइडिंग की ओर
लाइन के दोनों किनारे
अंजुरी-अंजुरी भर, मुट्ठी-मुट्ठी भर
दाना मिली धूल उगते कंकाल।''

इस पूरी कविता में प्रगतिवादी चेतना को विषमता के बिम्ब से उभारा गया है। कवि ने पहले 'कंकाल' शब्द के द्वारा बिम्ब की सृष्टि की है और उसके पश्चात् उन शोषकों और उत्पीडिघ्तों का रूप प्रत्यक्ष करता है, जो सप्लाई विभाग, प्लेट फार्म, आदि जगहों पर दिखाई पड़ते है। इसके प्रति लोगों के मन में रत्ती भर भी सहानुभूति नहीं होती। नीचे की पंक्तियों में बिम्ब क्रमशः अधिक प्रखर होता गया है, यह नागार्जुन की बिम्ब रचना की सार्थकता है।

'कवि नागार्जुन प्रगतिवाद के उन कवियों में है, जिन्हें देश और जनता से असीम प्रेम है। इसकी अभिव्यक्ति उक्त दोनों ही रूपों में उनकी रचनाओं में मिलती है। प्रथम रूप में वह अपने हृदय की कोमल मार्मिक अनुभूतियों को प्रगट करता है और अपने दूसरे रूप में वह व्यंग्य का अस्त्र-ग्रहण कर सामाजिकताओं विषयताओं, दैन्यों और विकृतियों को समाप्त करना चाहता है, कवि ने सामाजिक विकृतियों और विसंगतियों को यथार्थवादी दृष्टि से परखा है और वैषम्य के मूल कारणों से अवगत होने का भी प्रयास किया है। इन्होंने सामाजिक विषमता का मूल स्त्रोत पूँजीवादी सभ्यता और संस्कृति को माना है। पूँजी पतियाँ द्वारा कृषकों पर अत्याचारों से कवि का कोमल मन क्षुब्ध हो गया है और इसीलिये पूँजीपतियों के नृशंस अत्याचारों का बिम्ब इन शब्दों में प्रस्तुत किया है-

जमींदार हैं, साहूकार हैं, बनिया है, व्यापारी है
अन्दर-अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है।''

इसी तरह का भाव निम्नांकित पंक्तियों में भी प्रकट हुआ है- खादी ने मलमल से अपनी साँठ-गाँठ कर डाली है/ बिडला टाटा डालमिया भी तीसों दिन दीवाली है/ जोर जुनून की आँधी बोल नहीं कुछ सकते हो/ समझ नहीं पाता हूँ हुकूमत गोरी है या काली है।''

'धरती' के कवि त्रिलोचन प्रगतिशील कवियों के समानान्तर पहले कवि है, जिन्होंने गाँव की माटी की खुश्बू और बदबू को एक साथ उसकी सम्पूर्ण ताजगी में अभिव्यक्त किया है। गाँवों में नयी शिक्षा का देर से आगमन हुआ, किन्तु इस शिक्षा का एक गंबई लड़की के लिये क्या अर्थ था, इसे हम एक ग्रामीण बिम्ब के द्वारा स्पष्ट देख सकते हैं-

''चम्पा पढ़ लेना अच्छा है
ब्याह तुम्हारा होगा, तुम गौने जाओगी'
कुछ दिन बालम संग साथ रह चला जायेगा जब कलकत्ता
बड़ी दूर है वह कलकत्ता
कैसे उसे संदेशा दोगी
कैसे उसके पत्र पढ़ोगी
चम्पा पढ़ लेना अच्छा है।''

जिस शोषणवादी व्यवस्था के तहत मनुष्य स्वतन्त्रता के पूर्व बेहयायी के साथ जी रहा था, उसी अवस्था में आज भी जीवन को उसी बेहयायी के साथ जी रहा है। जिस समाज में तुम रहते हो' शीर्षक कविता के अन्तर्गत कवि विकासमूलक समाज का यथार्थ चित्र खीचता है, इसमें वैषम्य चेतनापरक बिम्ब बड़ी प्रखरता के साथ उभर कर सामने आता है-

जिस समाज में तुम रहते हो
यदि उसकी करूणा ही करूणा
तुमको यह जीवन देती है
तो यह जीवन की भाषा में
तिरस्कार से पूर्ण मरण है।''

''कॉलरिज का एक बहुत ही अर्थपूर्क कथन है- ''गहरी भावनायें गहरे विचार की कोख से जनमती है।'' प्रभाकर माचवे की कविताएं इस कथन पर पूर्णतया खरी उतरती है- 'गेहूँ की सोच' एक ऐसी ही कविता है। इसमें कवि ने वैषम्य चेतना का यथार्थ बिम्ब प्रस्तुत किया है-

''बहुत कुछ जायेगा लगान
कुछ जायेगी कर्ज-किश्त
बाकी रह जायेगी-
झोपडिघ्यों की उन भूखी
अँतड़ियों के लिये सूखी एक बेर रोटी-!

मुक्तिबोध के काव्य का प्रमुख स्वर आधुनिक काल की समस्त विषमता, जटिलता एवं क्लिष्टता है। वे यह मानते है कि आधुनिक जीवन अनेक विषमतापूर्ण तत्वों से भरा पड़ा है तथा इन विघटित तत्वों को बिम्बों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है। इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्ट्व्य है-

'' .... ये गरजती-गूँजती, आन्दोलित
गहराइयों से उठ रही ध्वनियाँ, अत:
उद्‌भ्रान्त शब्दों के नये आवर्त्त में
हर शब्द निज प्रति शब्द को भी काटता,
वह रूप अपने बिम्ब से ही जूझ
..........x............... x x
ध्वनि लड़ रही अपनी प्रतिध्वनि से यहाँ।''

प्रगतिवादी काव्य-धारा के इन कवियों के काव्य में वैषम्य चेतना के बिम्ब अधिक मिलते हैं। वैषम्य चेतना का एक बहुत ही प्रसिद्ध बिम्ब 'अकाल और उसके बाद' में है-' नागार्जुन के इस बिम्ब में अकाल के बाद क्षुधा-पीडिघ्त सामान्य जन के घर में अनाज को देखकर जो क्रिया प्रतिक्रिया होती है उसका चित्रण किया गया है। अकाल भी स्थिति में अन्न का अभाव होने के कारण बहुत

दिनों तक घर में चूल्हा-चक्की नहीं चली। वह शोषित जन और पूरा परिवार क्षुधाग्रस्त रहा, लेकिन यह सब शोषण कवि ने परिवेश के चित्रण मे व्यक्त किया है। व्यक्ति के साथ उसके परिवेश का जैसे चूल्हा-चक्की, कानी कुतिया, छिपकली, चूहा, घर-आंगन और यहाँ तक कि कौआ भी संदर्भ बन कर सामने आता है। आँगन के अन्दर उठता हुआ धुँआ और घर भर के अन्दर आयी हुई चमक से यह बिम्ब काफी संदर्भ-गर्मित हो गया है-

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया, सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों भी गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आये घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुँआ उठा आँगन के अन्दर कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।।

2. क्रान्ति-चेतना के बिम्ब- सम्पूर्ण प्रगतिवादी आन्दोलन का सैद्धान्तिक दृष्टि से यह उद्देश्य रहा है- एक ऐसे जनवादी साहित्य का निर्माण करना, जो अन्ततः शोषक एवं अत्याचारों के विरूद्ध एक व्यापक सामूहिक क्रान्ति को उद्घाटित करें। अतः सभी प्रगतिवादी कवियों में 'क्रान्ति' शब्द के प्रति एक अनोखा 'रोमैण्टिक' भाव है। मुक्ति बोध क्रान्ति को वैचारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करते है। उनकी दृष्टि में विनाश द्वारा ही नव-निर्माण की प्रक्रिया क्रियान्वित की जा सकती है, इसीलिये वे युग-क्रान्ति का संदेश देते हुये कहते हैं-

युग की क्रान्ति का सम्पूर्ण सर्जन-शक्ति
का संकल्प/
कवि संकल्प बना लहरा रहा है।
लोक मन की प्राकृतिक अनिवार सर्जन शक्ति में विश्वास बन
इतिहास की उद्दीप्त रक्तिम पंक्तियों में
छंद-गुंजन-पाश बन
युग क्रान्ति का विक्षोभ
कवि संकल्प बन लहरा रहा है।

मुक्तिबोध की अन्य पंक्तियाँ एक ओर तो जीवन की विसंगतियों को प्रकट करती है तथा दूसरी ओर क्रान्ति का संदेश देती है। स्वयं मुक्तिबोध के ही शब्दों में-

अंधेरे की जिन्दगी की धंसी हुई छाती की
पसलियों में गूंज जाय
जीवन की पुकार ज्यों कि
गगन के सुनहले इस्पाती/
अदृश्य तारों पर
थरथराता जीवन का रोम हर्ष
नवक्रान्ति मानव के प्राणों का संदेश
काँपती है सुरों की नयी लौ
गगन की किरणों की बीना के तारों पर।।

किन्तु मुक्तिबोध अपने को इस क्रान्ति युग के सामने छोटा समझते हैं। स्वयं कवि के शब्दों में-

''मैं हूँ क्रान्ति का एक छोटा कवि, तुम्हारा लोक।
मेरा ह्रदय भी जल रहा है रात-दिन
युग-क्रान्ति का विक्षोभ।''

मुक्तिबोध वर्ग रहित एवं शोषित समाज को उनका न्याय दिलाने के लिये क्रान्ति की अनिवार्यता पर जोर देते हैं। कवि एक ऐसी क्रान्ति का पक्ष-धर है, जो जन-मानस की मानवीय दृष्टि प्रदान कर सके, साथ ही जो अमानुषिक न हो और ध्वंसात्मक भी न हो, जो सृजनात्मक संकल्प से निर्मित हो, वही क्रान्ति है। इसीलिये मुक्तिबोध लिखते हैं-

''क्रान्ति का निर्माण का विजय का सेहरा एक
चाहे जिस देश-प्रान्त, पुर का हो
जन-जन का चेहरा एक।''

केदारनाथ अग्रवाल के प्रारम्भ के काव्य-संग्रहों में जहाँ मानवीय प्रेम तथा प्रकृति प्रेम की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है, वही बाद के काव्य-संग्रहों में कवि पूर्णतया प्रगतिशीलता का पक्षधर दिखलायी देता है। यही कारण है कि बाद भी रचनाओं में क्रान्ति का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। 'लोक और अलोक' नामक काव्य-संग्रह में क्रान्ति की चेतना से सम्पृक्त बिम्बों का प्राधान्य है। 'किसान' कविता में कवि ने किसान के प्रखर एवं क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का बिम्ब खीचा है- '

'आजादी की हर तड़पन को
बारम्बार जिलाये जा
अपने जिलाये जा
अपने कुटिया की चिनगारी से
सब में आग लगाये जा।''

3. राजनैतिक बिम्ब- नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन जैसे प्रगतिवादी कवि मार्क्सवादी चिन्तन के प्रतिबद्ध रचनाकार है। इन कवियों की कविताओं में तथा कथात्मक साहित्य में भी यह प्रतिबद्धता सर्वत्र व्याप्त ही नहीं है, वरन् उदग्र है। यह जनवादी प्रवृत्ति प्रगतिवादी कवियों की कविताओं में आर्थिक वैषम्य और मार्क्सवादी क्रान्ति-चेतना के रूप में जितना प्रकट होती है, उतना ही समसामायिक अन्तर्विरोधों और राजनीतिक अन्तर्विरोधों को भी प्रकट करने में सक्रिय दिखायी पड़ती है। इन कवियों की इस प्रकार की चेतना से परिचालित बिम्बों को मैंने इसीलिये राजनीतिक अन्तर्विरोधों के खण्ड में रखने का प्रयास किया है, जिससे इसकी अस्मिता अलग से सुरक्षित रह सके।

इन कवियों की रचनाओं का जब हम अनुशीलन करते हैं तो वहाँ पूर्व के संग्रहों को अपेक्षा पश्चात् के संग्रहों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखायी पड़ती है। 'तुमने कहा था' जो बाद का संग्रह है ये राजनीतिक विषमता का बिम्ब बहुत तीखे ढंग से प्रस्तुत हुआ है। 'शासन की बन्दूक' नामक कविता में राजनीतिज्ञों अथवा शासकों के हिटलरी अभिमान और उनके गर्व का जीवन्त राजनीतिक बिम्ब उपस्थित किया गया है। कवि ने दमन की भयानकता को एक संवेदनात्मक चित्र में रूपान्तरित कर दिया है-

''खड़ी हो गई चांप कर कंकालों की हूभ
नभ में विपुल विराटसी शासन की बन्दूक।
उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे है थूक
जिसमें कानी हो गया शासन भी बन्दूक।।

केदार जी की कविताओं में भी राजनीतिक वैषम्य का चित्र व्यंग्यात्मक होकर आया है। 'अपूर्वा' काव्य-संग्रह में 'चुनाव के पहले' शीर्षक कविता में कवि राजनेताओं पर बड़ा ही चुटीला व्यंग्य करता है। समकालीन राजनीति का अन्तर्विरोध प्रतीक के रूप में निम्नांकित पंक्तियों में उभरता है-

चुनाव के पहले
आम आदमी रहा वह
पाँव-पाँव चलने का आदी रहा वह
अब/इस साल/चुनाव के बाद
जीत की कुर्सी हुआ वह
आम आदमी के बजाय चौपाया हुआ वह।

4. जनशक्तिपरक बिम्ब- प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि में भविष्य में होने वाली क्रान्ति एक व्यापक जन-क्रान्ति होगी। इसलिये जन-शक्ति को अनेक कविताओं में तरल भावुकता के साथ व्यक्त करने की कोशिश की गयी है। इस वर्ग की कुछ एक कविताएं ही पूरी संवेदनात्मक प्रभाव के साथ पाठक को प्रभावित करती है-

धन गरजे, जन गरजे
बन्दी सागर को लख कातर
एक रोष से धन गरजे जन गरजे।

त्रिलोचन सामाजिक विषमता को नष्ट कर जन-शक्ति को जगाना चाहते हैं, जिससे समाज के उपेक्षित वर्गो को भी प्रगति और उन्नति का प्रोत्साहन प्राप्त हो। 'जिस समाज में तुम रहते हो', कविता की अन्तिम पंक्तियों में कवि जन-जन को उसकी शक्ति से अवगत कराते हुये कहता है-

जिस समाज में तुम रहते हो
यदि तुम उसकी एक शक्ति हो
उसकी ललकारों में से ललकार एक हो
उसकी अमित भुजाओं में दो भुजा तुम्हारी
तो निश्चय समाज-जीवन के तुम प्रतीक हो
निश्चय हो जीवन, चिर जीवन।''

जनता अब पूरी तरह जाग उठी है अब वह नयी सृष्टि रचने के लिये क्रान्ति का हुंकार कर रही है। त्रिलोचन भी सड़ी-व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिये जनता को ललकारते हैं-

''सड़ी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिए
मैं ललकार रहा हूँ उस सोची जनता को
जिसके नेता लूट रहे हैं, कहकर, ताको
मत, हम तो है ही, अत्यधिक विमों के लिये।''

6. भविष्य-कल्पना के बिम्ब- प्रगतिवादी कवि वर्तमान समय की विसंगतियों से असन्तुष्ट था और यही कारण है कि इन कवियों के लिये भविष्य एक मानसिक पड़ाव के समान था, जहाँ कवि की कल्पना निवास करती थी। निःसंदेह यह भविष्यवादी प्रवृत्ति प्रगतिवादी साहित्य की एक मूलभूत प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति प्रत्येक देश के साहित्य में किसी न किसी रूप में उपस्थित रही है। प्रगतिशील कवियों का यह मानना है कि आने वाले स्वर्णिम भविष्य की पूर्व छायाएँ वर्तमान के भीतर भी दिखाई दे सकती है। छायावादी कवियों के यहाँ यह उषा, विहान, बसन, मधु जैसे शब्दों से प्रकट होता है वही प्रगतिवादी काव्य में लाल सबेरा, लाल तारा, नव-प्रभात, हरियाली, सूर्योदय आदि ऐसे प्रतीक है, जो प्रगतिवादी काव्य के भीतर भावी सुख और सौन्दर्य को रूपायित करते है।

केदार नाथ अग्रवाल का दृढ़ विश्वास है कि 'युग की गंगा' के द्वारा सृष्टि में नवीन संस्कृति का जन्म होगा और अवरोध की समाप्ति होगी। इन्हीं भाव का एक बिम्ब द्रष्ट्व्य है-

''भूखी बासी
दुर्बल-निर्बल धरती को हरियायेगी ही
युग की गंगा
अवरोधों को भेटेगी ही।''

जनता आतंकवाद से ऊब गयी। चुनाव में जनता ने गोली बन्दूक की हुकूमत को ठुकरा दिया। जनता को अपनी शक्ति का नया बोध हुआ है। इसीलिये नागार्जुन लिखते हैं-

इस चुनाव के हवन-कुण्ड में
जन-मन की ज्वाला लपकी है
आने वाला है जो आगे
यह उस विप्लन की थपकी है।''

नया सबेरा, नव प्रभात या बसन्त आदि प्रतीकों के माध्यम से कवि भावी सुख-समृद्धि को रूपायित करता है। 'स्वर्ण सवेरा' कविता में भविष्य कल्पना का बिम्ब बड़ी कुशलता से उकेरा गया है।

स्वत्व मिला, बल आया
जन-जीवन मुस्काया।।
कर्म क्षेत्र में/ज्ञान क्षेत्र में
कहाँ नहीं है-
स्वर्ण सबेरा झलका।।
रक्त हमारा चमका।।

इस प्रकार प्रगतिवादी कविता में नये बिम्बों का सुन्दर एवं सफल प्रयोग किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. नागार्जुन का रचना संसार- विजय बहादुर सिंह, सम्भावना प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1982
2. काव्य बिम्ब- डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1967 ई0।
3. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान-डॉ0 केदारनाथ सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली-1987 ई0
4. हिन्दी कविता के प्रतिमान- डॉ0 लक्ष्मीकांत शर्मा, भारतीय प्रेस प्रकाशन, प्रकाशन, प्रथम संस्करण।
5. हजार-हजार बाँहों वाली- निकष अकादमी दिल्ली, 1981
6. खिचड़ी विप्लव देखा हमने-1980,
7. धरती-त्रिलोचन-नीलाम प्रकाशन इलाहाबाद-1977
8. मुक्तिबोध रचनावली- सं. नेमिचन्द्र जैन-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

नेहरूवादी आर्थिक विचाराधारा और वर्तमान भारत

डॉ० किरन सिंह

विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुलतानपुर, उ0 प्र0

सारांश

आज राजनैतिक भाषणों में एक शब्द बार-बार सुनने को प्राप्त होता है, ''60 साल का शासन बनाम 15 वर्ष का शासन''। इस औचित्य को यदि देखा जाय तो इस 60 साल के शासन में गाँधी-नेहरू परिवार ही शासन में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सक्रिया था। यदि उक्त अवधि के भारतीय शासन को देखा जाय तो केन्द्र बिन्दु में प्रथम प्रधानमंत्री स्व0 श्री पं0 जवाहर लाल नेहरू के द्वारा प्रारम्भ की गयी नीतियाँ ही इसकी दिशा और दशा दोनों को तय करती है। बाद के नेतृत्व, ने उसके कडिघ्यों को केवल जोड़ने का ही कार्य किया, ऐसा प्रतीत होता है। प्रस्तुत शोध पत्र नेहरू जी के इसी प्रशासकीय नीति के आर्थिक प्रभावों के अध्ययन के लिए लक्षित किया है। जिसका औचित्य यह जानना है कि आज वर्तमान नेतृत्व के द्वारा की जा रही आलोचनाएँ क्या वास्तव में नेहरूवादी आर्थिक विचाराधारा की भूल थी या यह एक संयोगमात्र है जो राजनैतिक भाषणों में महज सम्मिलित किया जा रहा है।

वर्तमान परिदृश्य में, नेहरू के आर्थिक विचारों की उत्पत्ति और विकास पर चर्चा करने का एक विनम्र प्रयास किया गया है। अब तक यह बिल्कुल स्पष्ट हो चुका है कि उनके विचारों को कई राष्ट्रीय और विदेशी घटनाओं, व्यक्तिगत संपर्कों, व्यापक पढ़ने और आत्मनिरीक्षण द्वारा आकार और वातानुकूलित किया गया था। जैसा कि पंडित जी ने कभी परिस्थितियों की ताकत में विश्वास किया था, उनके विचार व्यावहारिक, गतिशील और इतने सारे सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक प्रवृत्तियों का एक सुंदर मिश्रण होने के लिए नियत थे। भारतीय धरती के अनुकूल आर्थिक नियोजन, समाजवाद, औद्योगीकरण, कृषि, सामुदायिक विकास और सहयोग पर उनके विचार और सोच हमें आगे बढ़ाते हैं। एक बात के लिए कि वे स्वराज के अर्थ में एक आर्थिक सामग्री डालना चाहते थे। उनकी राय में, स्वतंत्रता भारतीय समाज के परिवर्तन का एक तात्कालिक लक्ष्य और प्रस्तावना थी। राजनीतिक स्वतंत्रता भारत के लाखों लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता या एक अच्छा जीवन सुनिश्चित करने का एक साधन था। उन्होंने 1929,1936 और 1946 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में अपने अध्यक्षीय भाषणों में, अपने लेखन और पूरे देश में असंख्य भाषणों में इस बात पर जोर दिया था। अगस्त 15, 1947 को जब देश को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त किया गया और बाद में कांग्रेस के चुनाव हुए तो पंडित जी ने भारतीय स्थिर अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण और आधुनिकीकरण के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने पर जोर दिया।[1] 1952, 1957 और 1962 के कांग्रेस चुनाव घोषणापत्र; संसद और योजना आयोग में उनके भाषणों में भी यही भावना दिखायी पड़ती है। लेकिन नेहरू के कुछ सहयोगी, सहकर्मी और आलोचक हैं, जो यह मानते हैं कि इतने सारे विचारा राजनैतिक रंग और प्रलोभन हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से संकेत करते हैं कि उनके आर्थिक विचार उस प्रभाव का उत्पादन नहीं कर सके जो उनसे अपेक्षित था। वे विकास दर, दुनिया के अन्य देशों पर भारतीय अर्थव्यवस्था की निर्भरता, रोजगार की स्थिति, आर्थिक समानता आदि के बारे में सवाल उठाते हैं।

नेहरू के आर्थिक विचारों के आलोचकों और भारतीय अर्थव्यवस्था पर उनके प्रभाव का मत था कि पहली योजना के दौरान राष्ट्रीय आय में लगभग 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि प्रति व्यक्ति आय में 12 प्रतिशत की लक्षित वृद्धि के मुकाबले 10.5

प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई। 10 प्रतिशत का लक्ष्य योजना अवधि में प्राप्त इन सफलताओं के कारण, पहली योजना काफी सफल रही। लेकिन दूसरी योजना इतनी सफल नहीं थी और कई मायनों में लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रही। दूसरी योजना अवधि के दौरान 25 प्रतिशत के लक्ष्य के मुकाबले राष्ट्रीय आय में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई।[2] इस अवधि के दौरान जैसे-जैसे जनसंख्या तेजी से बढ़ी, प्रति व्यक्ति आय में थोड़ी वृद्धि हुई। 1.5 प्रतिशत के लक्ष्य के मुकाबले इसमें 7.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। दूसरी योजना जो खराब फसल, विदेशी मुद्रा की कमी, खराब मौसम और औद्योगिक उत्पादन में कमी के कारण मुश्किलों में फंस गई, योजना लक्ष्यों और उपलब्धियों के बीच अंतर था। विकास दर जो पहली योजना में 3.8 प्रतिशत और दूसरी योजना में 4 प्रतिशत थी, 1961-62 में घटकर 2.0 प्रतिशत रह गई। 1962-63 में 7.7 प्रतिशत, 1963-64 में 4.9 प्रतिशत और 1964-65 में 7.6 प्रतिशत तीसरी योजना का अंतिम वर्ष बहुत खराब था और इस वर्ष के दौरान विकास दर 3.4 प्रतिशत थी। 1965 के मूल लक्ष्य के मुकाबले योजना अवधि में औसत विकास दर 4 प्रतिशत थी।[3] नेहरू की मृत्यु के समय तीसरी योजना अपने लक्ष्यों से काफी पीछे थी।

1951-1964 की अवधि के दौरान राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय में धीमी वृद्धि का परिणाम यह हुआ कि भारतीय अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर अवस्था प्राप्त करने के लक्ष्य की ओर बहुत धीमी गति से आगे बढ़ी। इस अवधि में इसकी विकास दर एशिया और अफ्रीका के अन्य विकासशील देशों की तुलना में कम थी। परिणामस्वरूप, भारतीय आर्थिक विकास भारतीय जनता को एक अच्छा जीवन जीने का अवसर प्रदान करने में विफल रहा। दूसरे शब्दों में, समीक्षाधीन अवधि के दौरान आर्थिक विकास का मूल उद्देश्य पूरी तरह से पूरा नहीं किया जा सका। इसके अलावा, भोजन की कमी, बाहरी सहायता पर निर्भरता, बेरोजगारी, आय और धन के वितरण में असमानता आदि की समस्याएं 179 देश को सताती रहीं।[4]

1950-51 में खाद्य उत्पादन 55.05 मिलियन टन था। 1963-64 में यह बढ़कर 79.4 मिलियन टन और 1964-65 में 88.4 मिलियन टन हो गया। इस अवधि के दौरान मृत्यु दर में गिरावट और जन्म दर में ठहराव के कारण जनसंख्या में भी वृद्धि खतरनाक दर से वृद्धि हुई। इसलिए, भोजन और भोजन की मांग और आपूर्ति के बीच एक असंतुलन था, मात्रा और गुणवत्ता दोनों में समस्या अनसुलझी रही। वी.एस. नायपॉल के शब्दों में, ''हमारे भोजन की मात्रा और गुणवत्ता के संबंध में हमारे द्वारा उपभोग की जाने वाली कैलोरी की बात नेहरू की विफलता का कहीं अधिक खुलासा करता है।'' वे लिखते हैं 'कनकचंद' (नेहरू जी पर कटाक्ष) की गरीबी निश्चित रूप से नाटकीय है। उनका दोपहर का भोजन एक काली रोटी, मिर्च और एक प्याज है, जो दिखावा है। ऐसा लगता था कि प्याज दिखाकर जनता की नाराजगी का इलाज तलाशा जा रहा है। जबकि मुख्य भोजन मूंगफली के तेल के साथ बाजरा या बाजरा की रोटी और अन्य कैलोरी युक्त पकवान तैयार होते है।''

यद्यपि प्रत्येक पंचवर्षीय योजना आर्थिक विकास के लिए आवश्यक विदेशी सहायता पर निर्भरता को कम करने के उद्देश्य से शुरू हुई, फिर भी सहायता का प्रतिशत बढ़ता गया। पहली योजना में विदेशी सहायता 380.3 करोड़ रुपये थी, लेकिन दूसरी योजना में यह बढ़कर 2713.3 करोड़ और सितंबर 1965 में 3937.8 करोड़ हो गई। पहली योजना में कुल निवेश में वास्तव में उपयोग की गई सहायता का अनुपात 5.9 प्रतिशत था, पहली योजना में 13.2 प्रतिशत था जो दूसरी योजना में 16.9 प्रतिशत हो गयी थी। विदेशी सहायता के इस बड़े प्रवाह के परिणामस्वरूप घरेलू प्रयासों की शिथिलता और भारत में समाजवादी विचारधारा की धीमी गति हुई।

आर्थिक नियोजन 1950-51 की तुलना में 1994-65 के बीच आंशिक रूप से रोजगार सृजन के मोर्चे पर सफल रहा। बेरोजगारी का बैकलॉग जो 1951 में 3.5 मिलियन था, 1956 में बढ़कर 5.3 मिलियन, 1961 में 7.1 मिलियन और 1966 में 9.6 मिलियन हो गया। हर पंचवर्षीय योजना में रोजगार के अवसरों का धीमा सृजन या विस्तार और श्रम बाजार में तेजी से वृद्धि इसके लिए जिम्मेदार थी, इस कारण यह कहा जा सकता है कि नेहरू जी की आर्थिक नितीयों का प्रदर्शन असंतोषजनक था। इसने हमारी भौतिक और नैतिक प्रगति के लिए एक गंभीर चुनौती पेश की।

आर्थिक नियोजन की विफलताओं का सबसे खराब पहलू 1951-1964 के बीच आर्थिक असमानता का तीव्र होना था। पीसी महालनोबिस समिति की रिपोर्ट (फरवरी 1964) इस निष्कर्ष पर पहुंची कि आर्थिक शक्ति पर एकाग्रता थी जो प्राप्त नहीं हो सकी और राय उस समय के नामचीन रिपोर्टो एकाधिकार जांच आयोग की रिपोर्ट (दिसंबर 1965) और डॉ. हजारी रिपोर्ट (दिसंबर 1966) में भी देखी गयी।[5]

तत्कालिक विद्वानों का मानना था कि नेहरू के राजनैतिक महत्वाकांक्षा के कारण संयुक्त भारत का दो राष्ट्रों विभाजित होना ही अनुचित था। इस स्थिति में समाजवादी विचारधारा में प्रगति नहीं हुई जबकि संसाधनों का विभाजन हो गया। जिस कारण समृद्ध भारत

के सपने पर आघात लगना तय था। डॉ. डी.के. रंगनेकर कहते हैं, 'बढ़ती कीमतें, विकास की गति में गिरावट, श्रम असंतोष, भोजन की गड़बड़ी का बढ़ना और योजना में मनोबल गिरना, इन सब को कोई भी सरकार खारिज नहीं कर सकती। नेहरू की महत्वाकांक्षा और व्यक्तित्व इसकी जिम्मेदारी से बचना चाहता था और केवल व्यक्तित्व के प्रभाव पर अधिक बल दिया जा रहा है, सोच वैश्विक नेतृत्व का विकास करना था। जो भारत के विकास के लिए सर्वथा अनुचित था।

आलोचकों द्वारा तैयार किए गए भारतीय आर्थिक नियोजन का डेबिट पक्ष इसके क्रेडिट पक्ष को काला करने में विफल रहा। यह विवाद से परे है कि आर्थिक नियोजन के प्रयोग से प्राप्त आर्थिक विकास की दर धीमी थी। भौतिक मानकों और प्रेरणा - समाज के पैटर्न दोनों में एक ऊपर की ओर परिवर्तन हुआ था लेकिन परिवर्तन व्यक्तित्व के रूप में चिह्नित किया गया था, यह परिस्थितियों और आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में होना चाहिए था। प्रो. गुन्नार मिर्डल, एक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री, जिन्होंने हमारी पहली, दूसरी और तीसरी पंचवर्षीय योजनाओं के प्रदर्शन टिप्पणियों का गहन अध्ययन किया, निश्चित रूप से, योजना पूर्ति की इन कमियों से यह अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए कि पंचवर्षीय योजनाएं बहुत कम हासिल किया है। इसके विपरीत, औद्योगिक उत्पादन का स्तर और विविधीकरण, खनिजों के दोहन की कार्रवाई, बिजली आपूर्ति का विकास, सिंचाई और भूमि सुधार योजनाओं से पता चलता है कि वास्तव में, बहुत कुछ पूरा किया गया है। लेकिन इसके खिलाफ मापा जाता है कि क्या जरूरत है गरीबी की समस्या में सेंध लगाने के लिए किया जाना चाहिए, जिसकी आबादी इतनी तेजी से बढ़ रही है, और अधिक से अधिक दुख को रोकने के लिए ये उपलब्धियां पर्याप्त प्रतीत होती हैं।

नेहरू स्वयं भारत को बहुत तेजी से आगे बढ़ते हुए देखने के लिए उत्सुक थे ताकि और सामाजिक- आर्थिक समस्याओं को समय पर समाप्त करना चाहतें थे। जब खंशी और बुलगनिंग 1955 में भारत आए और पूर्व ने रूसी अद्‌भुत उपलब्धियों का दावा करना जारी रखा, तब नेहरू जी का मत था कि भारत में भी यही विकास होना चाहिए, यह बात उन्होंने तब व्यक्त की जब उन्होंने एशिया और सुदूर पूर्व के लिए आर्थिक आयोग का 1956 सत्र खोला। उन्होंने कहा, 'हम अगले सौ साल धीरे-धीरे पहुंचने में खर्च नहीं करने जा रहे हैं, कदम कदम दर कदम विकास के उस पड़ाव पर जो आज विकसित देश पहुंच चुके हैं। हमारी गति और प्रगति की गति बहुत तेज होनी चाहिए। लेकिन इसके लिए रणनीति प्रयास नहीं किये गये जिस कारण भारत को उसके लिए तैयार होने में चालीस साल लग गए।

योजना के क्रेडिट और डेबिट पक्ष और नेहरू की तीव्र विकास की इच्छा को ध्यान में रखते हुए यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह अपने आर्थिक विचारों से पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे। जैसा कि वे भारतीय जनता के चेहरे पर 'आजादी की चमक' और उनके द्वारा आनंदित एक अच्छे जीवन को देखना चाहते थे। उनके सपनों को कविता को इस पंक्ति से स्पष्ट करना बहुत स्वाभाविक है,

'मुझे सोने से पहले मीलों चलना है।
और उठकर भी मीलों चलना है।''

पं0 नेहरू के प्रयासों के परिणामस्वरूप नीतियां और कार्यक्रम आर्थिक विकास की गति को तेज करने में कुछ हद तक विफल रहे। जिसके कुछ प्रमुख कारण थे-

- नेहरू का अपना व्यक्तित्व और जिस उम्र में वे रहते थे और काम करते थे।
- अपने आवेगी, काव्यात्मक और उदार स्वभाव के कारण वे एक कर्ता और प्रशासक से बेहतर दूरदर्शी विचारक थे।
- उन्होंने योजनाओं को अलग-अलग नजरों से क्रियान्वित करने की तुलना में उनके न्यूनतम सैद्धांतिक विवरण के साथ योजना तैयार करने में अधिक रुचि और पीड़ा ली।

जी.डी. बिड़ला, फ्रैंक मोराल्स, पी.एस. लोकनाथन, एम. ब्रेचर आदि इस बात पर एकमत हैं कि नेहरू अपने विचारों के कार्यान्वयन में कमजोर थे। मोरैस का मत है कि अपने राजनीतिक उपक्रमों के रूप में अपनी आर्थिक योजना में नेहरू विचारक के रूप में मजबूत लेकिन रणनीति में कमजोर थे, उनकी योजना इसकी अवधारणा के साथ-साथ इसकी सीमा में भी कल्पनाशील थी लेकिन अक्सर इसके निष्पादन में दोषपूर्ण थी।

प्रो. पी.एस. लोकनाथन का मत है, 'उन्होंने देश के लिए जो आर्थिक मार्ग निर्धारित किया और उसे लागू करने का प्रयास किया, वह संतुलन पर अच्छी तरह से कल्पना की गई थी, हालांकि इसे अच्छी तरह से लागू नहीं किया गया था।' आगे वे लिखते हैं 'यदि

केवल वे थोड़ें और मजबूत होते और क्रियान्वयन को और अधिक मजबूत करते तो भारत में नियोजन के परिणाम बहुत अलग होते और देश बहुत आगे बढ़ जाता।'

लेकिन एक दूसरा पहलू यह भी है कि नेहरू, 183 प्रकार के प्रतिनिधि जिन्होंने मानव जाति को जबरदस्ती नहीं बल्कि अनुनय और अनिवार्य रूप से एक कट्टर लोकतंत्र के रूप में प्रेरित किया, चीजों को लागू करने में हल्के या कमजोर होने के लिए बाध्य था। इसलिए नेहरू के प्रशासन के खराब परिणाम देखने को मिले। अगर वह छड़ी या अधिनायकवादी योजना द्वारा योजना बनाने के लिए खड़े होते तो परिणाम व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पहल की कीमत पर प्राणपोषक होते। अगर वह केवल रोटी उपलब्ध कराने की परवाह करते भारत के लाखों-करोड़ों की ताकत से वह योजना की बंपर फसल काटने के लिए सख्त, कठोर और निर्दयी प्रशासकीय नीति अपनातें तो भारत कई खण्ड़ों में टूट जाता। पंडित जी, जिन्हें उनके लोगों द्वारा एक विशाल शक्ति दी गई थी, वे इसका उपयोग अपने विशाल सपनों को पूरा करने के लिए कठोरता के प्रयोग नहीं कर सकते थे। क्योंकि वे व्यावहारिक रूप से जनता के नायक थे और तानाशाह बन कर शासन नहीं करना चाहते थे। कई वर्षो तक उन्होंने उन सभी चीजों का विरोध किया, जिन्होंने आर्थिक विकास को गति दी लेकिन लोकतांत्रिक आदर्शों नष्ट होने की आशंका के कारण उन्होंने उदार व्यक्तित्व को चुना जिस कारण भारत की विकास की दर के लक्ष्य एवं प्राप्ति के अन्तर के रूप में देखी जा रही है। उनके इसी पहलू के कारण आज नेतृत्व 60 वर्ष बनाम 15 बर्ष की बात करता है।

REFERENCES :

1 Daily News Analysis, New Report, “Azadi ka Amritotsav” 14, August, 2021
2 Economic Survey of India, 2011-12
3 Wikipedia
4 Daily News Analysis, New Report, “Azadi ka Amritotsav” 14, August, 2021
5 Dahama, O.P. 1993. Extension and Rural Welfare. Agra: Ram Prasad and Sons Publishers.

अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों का शिल्प सौन्दर्य

अनुपम यादव

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैसे तो सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय वाचिक परम्परा की परिणति है पर लोक साहित्य किसी न किसी रूप में अब भी वाचिक संस्कार ग्रहण किये हुए है। लोक साहित्य की भाषा साहित्यिक भाषा न होकर लोक भाषा होती है और विषयवस्तु भी लोकजनीय होती है। संस्कृत साहित्य में जिसे रीति कहा जाता है, वह शिल्प विधान का एक अंग है। शिल्प विधान वर्ण संघटना के साथ-साथ लय-ताल का मेल, बिम्ब विधान और संवाद शैली का विन्यास भी है। शिल्प विधान अभिव्यक्ति का मर्म है। ''शिल्प विधान का अर्थ ही यह है कि वह विषय-वस्तु के साथ ऐसा मेल खाए कि विषय-वस्तु उसी के भीतर आकर रहे उसके बाहर न जाए। अनुहार के लिए आभ्यान्तर प्रयत्न ही शिल्प विधान है।''[1] इस दृष्टिकोण से अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों में शिल्प विधान चरम उत्कर्ष पर दिखाई देता है। लोकनाट्यों में लोक गीतों का प्रयोग भरपूर होता है। शिल्प विधान लोकगीतों में ही अपने समग्र रूपों में उपस्थित होता है।

अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों के शिल्प सौन्दर्य को हमनें निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए विश्लेषित करने का प्रयास किया हैं -

1. भाषागत वैशिष्टय
2. प्रतीक विधान
3. चित्रात्मकता
4. ध्वन्यात्मकता
5. बिम्ब विधान
6. छन्द योजना

1. भाषागत वैशिष्टय:- अवधी एवं भोजपुरी दोनों लोक भाषाएँ हैं। यहाँ के लोकनाटकों के संकलनकर्ता प्राय: उन्हीं क्षेत्रों के रचनाकार है, जिनकी सहज अभिव्यक्तियाँ इन लोकनाट्यों का वर्ण्य-विषय है। यहाँ के ग्रामों में व्यवहरित की जाने वाली भाषा ठेठ और सरल है परन्तु साथ-साथ कुछ शब्द विदेशी भाषाओं के भी आ गये हैं, जो अवधी नौटंकी में प्रयुक्त होते हैं -

''अम्मा, बप्पा, भैय्या, भउजी, काका,
काकिउ, अब छूट रहे
हिन्दी अंगरियजी वाले केसि
अवधी का दिन दिन लूटि रहे।''[2]

यहाँ ठेठ अवधी के साथ भाषा को प्रवाह पूर्ण बनाने के लिए 'अंगरियजी' शब्द को भी प्रयुक्त किया गया है। अवधी एवं भोजपुरी क्षेत्रों पर सैकड़ों वर्षों तक विदेशियों ने शासन किया, जिसका प्रभाव यहाँ के लोकनाटकों पर देखा जा सकता है। हिन्दी भाषा के शब्द भण्डार में लगभग 45 प्रतिशत शब्द विदेशी भाषाओं के हैं। वे मूल भाषा के साथ ऐसे घुल-मिल गए है कि वे हिन्दी के ही लगते हैं। हिन्दी ने व्याकरण द्वारा उन्हें अनुशासित करके आत्मसात कर लिया है, किन्तु इसी के साथ भौड़े प्रयोगों द्वारा हिन्दी का विकृत हुआ रूप चिन्ता का विषय बना हुआ है। भोजपुरी नौटंकी में भी भोजपुरी के साथ-साथ अरबी, अंग्रेजी के शब्द भी सुनाई पड़ते हैं -

''सोने के खरउँआ राजा राम कोसिला से अरज करें हो
हुकुम ना दीं मोरी मइया मैं बन के सिधारीं हों।।''[3]

इस लोकगीत में 'हुकुम' शब्द की व्युत्पत्ति अरबी भाषा के 'हुक्म' शब्द से हुई है। अवधी एवं भोजपुरी के लोकनाट्यों में हिन्दुस्तानी बोली का भी सम्मिश्रण पाया जाता है। कभी-कभी तो पूरे संवाद में भाषायी सम्मिश्रण की स्थिति सुनायी पड़ती है। भाषायी सम्मिश्रण की प्रक्रिया से गाँव और कस्बे भी अछूते नहीं हैं, परन्तु शहरों में यह प्रवृत्ति अधिक मिलती है। किसी-किसी प्रसंग में तो इन लोकनाट्यों के संवादों में खड़ी बोली ही प्रयोग में लायी जाती है। अवधी एवं भोजपुरी के लोकनाट्यों में प्रसंगानुसार भाषा के तीनों गुणों माधुर्य, प्रसाद एवं ओज का समावेश हुआ है। लोक रचनाकार अपनी भावना की कमनीयता एवं उसके शब्द चयन के द्वारा अवधी लोकनाट्यों में माधुर्य गुण का समावेश करता है, 'प्रात: काल चिडिय्या बोलने लगीं' के स्थान पर - ''भिनसारे चिरइया बोलै लगीं''[4], का प्रयोग करता है।

इसी प्रकार भोजपुरी नौटंकी में ओज भाव मिलता है -

''करा इसारा जब माहिल ने भोगा कुंवर लिहिन अवतार
पडिघ्या हल्ला है फाटक पर, घेरा पहरौ परी पुकार
बढ़ै सिपाही नैना गढिघ के, मूँहसल मारि-मारि भगाय।''[5]

अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों शब्द शक्तियाँ व्यक्त होती हैं। प्राय: अभिधा का प्रयोग होता है लेकिन प्रसंगानुकूल लक्षणा एवं व्यंजना का भी प्रयोग होता है। इन लोक नाटकों में व्यंजना शब्द शक्ति भाषा को सर्वाधिक समृद्ध बनाती है। अवधी नौटंकी में लक्षणा शब्द शक्ति इस प्रकार चित्रित है -

''आल चमकै अरे गाल चमकैं
अंगिया के अंदर अनार चमकैं
लंहगा के नीचे चाँद चमकैं
बिनु बादर बिजुरी चमकै कहाँ।''[6]

उक्त लोक गीत में लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। साधारण अर्थ यह है कि ब्लाउज के अंदर अनार और लहँगा के नीचे चाँद चमक रहा है, परन्तु यहाँ इन लाक्षणिक शब्दों के द्वारा गुप्तांगों की ओर इंगित किया गया है।

भोजपुरी के बिदेसिया लोकनाट्य में सुन्दरी, बिदेसी को कलकत्ता जाने से मना करती है। वह कहती है कि मैं आपको अपनी आँखों के सामने से नहीं जाने दूँगी इसी क्रम में इस नाट्य में अभिधा शब्द शक्ति इस प्रकार है -

''दूनों एके साथे के परानी।
देस परदेश में असाम-मुलतानी
संगही में राख चरनो के दासी जानी। परानी।''[7]

सुंदरी अपने पति बिदेसी से एकनिष्ठ भाव से प्रेम करती है। वह कहती है कि आप मुझे अपनी दासी लो, लेकिन कलकत्ता मत जाओ।

2. प्रतीक विधान:- लोकनाट्यों में प्रतीकों का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रतीकों के माध्यम से भाषा तो सशक्त होती ही है इसके साथ-साथ उसके सौन्दर्य में भी बृद्धि होती है। भाषा के जन्म के पूर्व मनुष्य अपने भावों को 'प्रतीकों' के द्वारा व्यक्त करता आया है। इसीलिए हमारे पास यह मानने का पूर्ण औचित्य है कि भाषा स्वयं 'प्रतीक' है। लोक मानस का मन और शरीर ग्रामों में बसता है। उसका परिवेश कला, समाज, साहित्य, राजनीति, विज्ञान आदि अनेक क्षेत्रों से युक्त है। इन संदर्भों के प्रतीकों का प्रयोग अवधी लोक नाटक में इस प्रकार हुआ है -

''नाहक गौन दिहौ मोर बाबुल बालक कंत हमारे रे।
चीलर अस दुइ देवर हमरे बलमा मुझे अनुहार रे।''[8]

पुत्री अपने पिता से कहती है कि आपने मेरा गौना व्यर्थ में ही दिया। मेरे पति तो चूहे के समान अर्थात् बहुत छोटे हैं तथा दोनों देवर 'चीलर' जैसे छोटे-छोटे हैं। इन पंक्तियों में 'चूहा' और 'चीलर' शब्द प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

3. चित्रात्मकता:- रामलीला में दशरथ जी जब कोप भवन में कैकेयी के पास जाते है, तो वे काले वस्त्र को धारण कर लेटी हुई रहती हैं। यहाँ पर राजा दशरथ की चित्रात्मक भाषा कुछ इस प्रकार है -

''किया है क्यों रंग तनका मैला, बिगाड़ा सारा श्रृंगार अपना।
उतार डाले हैं सारे भूषण, बदल दिया है व्यवहार अपना।।''[9]

कैकेयी, मंथरा की बाँतों में आकर कोप भवन में जाकर अपने वस्त्र और आभूषण उतारकर काले वस्त्र को धारण करके अपना क्षोभ चित्रात्मक भाषा में व्यक्त करती हैं।

लोकनाट्यों का अभिनय दर्शक देखकर आनंदित होते हैं लेकिन इन लोकनाटकों की भाषा भी चित्रात्मक होती है। भावानुकूल प्रवाह के साथ ही चित्रात्मक भाषा का प्रयोग लोक नाटकों को जीवन्त बनाता है, जो अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों में पाया जाता है। भोजपुरी के बिदेसिया लोकनाट्य में चित्रात्मक भाव में सुन्दरी अपने पति की हुलिया बटोही से इस प्रकार बताती है -

''करिया ना गोर बाटे, लामा नाहीं हउवन नाटे,
मझिला जवान साम सुन्दर बटोहिया।।''[10]

उपर्युक्त पंक्तियों में चित्रात्मक भाषा के सभी गुण विद्यमान हैं। गीतों में चित्रात्मकता बढ़ाने के लिए बिम्बों का सहारा लिया जाता है। चित्रात्मक भाषा भाव सबलता को बढ़ा देती है, जिससे दर्शकों को सहज ग्राह्य हो जाती है। लोकनाट्यों में चित्रात्मक भाषा प्राण प्रतिष्ठा करती है। अत: भाषागत सौष्ठव में इनका महत्व है।

4. ध्वन्यात्मकता:- अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों में जहाँ भाषागत वैशिष्टय में तत्सम-तद्भव, देशज, विदेशी-शब्द प्रयुक्त हुए हैं तथा शब्द शक्तियों ने सौन्दर्य प्रदान किया है, वहीं अवधी एवं भोजपुरी के धवन्यात्मक शब्दों ने इन भाषाओं के सौन्दर्य को और निखार दिया है। ''समर्थ और कला-निष्णात् कवि की शब्द योजना इतनी मुखर होती है कि वह ध्वनि मात्र से ही अपना अर्थ स्पष्ट कर देती है। ध्वन्यात्मकता ऐसी ही शब्द योजना पर आधारित होती है।''[11] ध्वन्यात्मक शब्दों में संगीत और माधुर्य दोनों भाव होते हैं। लोकनाट्यों में इसके प्रयोग से संगीतात्मकता बढ़ जाती है, जो कि लोक नाटकों को रोचक बनाने का कार्य करती है। अवधी नौटंकी की पंक्तियों में ध्वन्यात्मक शब्द इस प्रकार हैं -

''रनिया गरम-गरम माँगे हलुआ
ठुनुकि ठुनुकि बोली राजा ते अपने
हमरे हलुआ की साध, साध मोरी पुरवो रनिया...........।।''[12]

यहाँ पर ठुनुकि -ठुनुकि जैसे धवन्यात्मक शब्दों के प्रयुक्त होने से भाषा में चित्रात्मकता आ जाती है। इसी प्रकार भोजपुरी लोक नाटक में झूमर गीत की ध्वन्यात्मकता उल्लेखनीय है-

''गोरिया चलेले नइहरवा, बलमु अँचरा धइके रोए।।
बाग में रोए, बगइचा में रोए, गुलरी के पेड़ तर रोए
बलमु सुसुकी धइ के रोए।।''[13]

यहाँ पत्नी के ससुराल से मायके जाने की तैयारी पर पति का 'सुसुकी' कर रोना में 'सुसुकी' ध्वन्यात्मक शब्द है।

5. बिम्ब योजना:- जब किसी लोक नाटक में किसी अंग, प्रत्यंग, आकृति तथा उसके आस-पास की परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वर्णन हो, तो उस विषय की मूर्ति उपस्थित हो जाती है। इसे 'बिम्ब' कहते हैं। अवधी लोकनाट्य में बिम्ब का स्वरूप इस प्रकार है -

''तेरी डलिया मा का महके बता दो मालिनियाँ
बेला चमेली मोरी डलिया मा महके
महकै फूल गुलाब, बता दो मालिनियाँ''[14]

यहाँ 'महके' शब्द उत्सुकता को प्रदर्शित करता हैं, इसी से यह अनुभूति हो रही है कि मालिन की डलिया में अवश्य कोई ऐसी चीज है, जो महक रही है।

6. छन्द योजना:- लोक नाट्यकार लोक मानस की सहज अभिव्यक्ति करता है। प्राय: वह रस, अलंकार, पिंगल और छंद का ज्ञाता नहीं होता। परन्तु फिर भी वह रसोद्रेक करने में सफल रहता है, क्योंकि उसके भाव, चित्र और लयों में घनिष्ट संबंध होता

है। लोक नाट्यकार अपने नाटकों में छन्दों और वर्णों के गणित में नहीं पड़ता है और न ही वह उन भाव-चित्रों को छन्दों में ढालने की प्रक्रिया में प्रयत्नशील रहता है। यही कारण है कि लोकनाट्यों में गीतों के भाव-चित्र के साथ-साथ धुनों का अद्‌भुत सामजस्य दिखाई पड़ता है। अशिक्षित लोक नाट्यकार अपने नाटक के गीतों में भाव, लय, टेक, धुन, तुक और यति पर ही बल देता है। गीतों की पंक्तियों में कहीं मात्रा कम तो कहीं अधिक होती है, इस कमी को लोक कलाकार लय के माध्यम से पूरी करता है। राम नरेश त्रिपाठी ने ठीक ही कहा है - ''इसमें छन्द नहीं केवल लय है।''[15] अवधी एवं भोजपुरी लोक साहित्य पिंगल शास्त्र के नियमों से नहीं बँधा है, उसमें लय है, गति है पर वह अपनी मर्यादा के अन्तर्गत स्वच्छन्द है। अत: अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों में प्रयुक्त लोक गीतों में छन्द योजना का अध्ययन पारम्परिक धुनों के आधार पर किया जा सकता है।

अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों में प्रमुख रूप से दोहा, चौपाई, सरिया, आल्हा, विवाह, सोरठा, सोहर, कजरी, बिरहा, चइता आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ प्रस्तुत है, अवधी रामलीला की चौपाई-

''सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई।
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलेहिं तुरत गृह काजु बिसारी।।''[16]

भोजपुरी रामलीला की चौपाई इस प्रकार है -

''मइया सुनहु अरजिया मोरी। तजबीज करिहऽ बात करेरी।।
इनिकर बात सकल बा साजल, तोरा जाने में हम हई पागल।।''[17]

अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों में प्रसंगानुसार सोहर गीत गाया जाता है। यह शिशु जन्म के बाद गाया जाने वाला गीत है। इस छन्द में मात्रा और तुक का समान होना आवश्यक नहीं है। स्त्रियाँ गाते समय अपने अनुसार पदों की खींचतान करके बराबर करती रहती हैं। भाव व्यापकता इस छंद की सबसे बड़ी विशेषता है। यहाँ अवधी का एक सोहर छंद प्रस्तुत है -

''आनन्दा भई यह नगरी आज आनन्दा भई
सासु आवें चरूवा चढ़ावें, देहयों हाँथ की पहुँची आज आनन्दा भई।''[18]

इसी प्रकार भोजपुरी का एक सोहर छंद दृष्टव्य है -

''सून लागे दिया बिनु मंदिर, माँग सेनुर बिनु हो
ललना, ओइसन सून गोद तिरिया, त एक रे ललन बिनु हो।।''[19]

सोहर गीतों की धुन में पारम्परिक धुनों के अतिरिक्त अन्य धुनें भी समाहित होती है। यहाँ पर प्रस्तुत सोहर गीत पारम्परिक धुन पर आधारित है, जिसमें शिशु जन्म पर आनन्द में मग्न होकर स्त्रियाँ ढोलक मंजीरे पर गाती हैं।

अवधी एवं भोजपुरी लोकनाट्यों में बहुत कुछ समानता होने के साथ-साथ कुछ विषमताएँ भी होती हैं। यदि हम छन्दों को ध्यान में रखकर उनका विश्लेषण करें तो यह ज्ञात होता है कि कुछ ऐसे भी छंद है जो या तो वे मूल रूप से अवधी के हैं या भोजपुरी के हैं या वे दोनों भाषाओं में घुल-मिल गये हैं। लोक नाटकों में प्रसंगानुकूल स्वत: ही गीतों में छंद की प्रवाह निकल पड़ती है इसके लिए लोक कलाकार को प्रयास नहीं करना पड़ता। अवधी और भोजपुरी के क्षेत्रों में कुछ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक भिन्नताएँ भी हैं। लोक कलाकार इन भिन्नताओं का सजग चितेरा होता है। कुछ अशिक्षित किन्तु ज्ञानी लोकधर्मी नाटककारों ने नये प्रकार की छंद रचना की। सरिया गीत अवधी का अत्यन्त लोक प्रचलित गीत है। इसको गाते समय उल्टी ढोलक बजायी जाती है, यहाँ सरिया छंद की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

''सरिया तो खेलें कवन रामा, रानी के कवन रामा,
कहाँ सरी खेलिए मेरे लाल
सरिया लो धरइ उठाय, तौ अम्बुआ बिछिया तरे
अम्बुआ बिरिछि तरे
तुम्हारी रानी बोलावती मेरे लाल।।''[20]

लोकनाट्यों में आल्हा छन्द अवधी का बहुप्रलित छंद है, हलांकि इस छंद का प्रयोग भोजपुरी में भी होता है। काव्यशास्त्रियों ने इसे 'छन्दवीर' कहा है। इसके प्रत्येक पंक्ति के अन्त में गुरु लघु का क्रम होता है लेकिन इसका निर्वाह पूरे गीत में हो, ऐसा संभव नहीं हो पाता। प्रस्तुत है अवधी आल्हा की कुछ पंक्तियाँ -

''करा इसारा जब माहिल ने भोगा कुँवर लिहिन अवतार
पडिग्घा हल्ला है फाटक पर, घेरा पहरौ परी पुकार।।''[21]

आल्हा एक प्रकार का बिरह गीत का छन्द है जिसमें वीरात्मकता का गुण समाहित रहता है। ऐसा माना जाता है कि कबीर के निर्गुण चिंतन, समाज सुधार और सामाजिक विद्रोह के उत्तर में उनके चिढ़ाने के क्रम में कबीर विरोधियों ने कबीरा या जोगीड़ा छंद की रचना की। कबीरा गाने का प्रचलन अवधी में भी है, किन्तु भोजपुरी में यह बहुप्रचलित है। भोजपुरी के शेक्सपियर ठाकुर एक लोकधर्मी कलाकार थे। उनके लोकनाट्यों में हास्य-व्यंग्य, नव चेतना, समाज-सुधार आदि की बहुलता है। भोजपुरी में बिदेशिया छन्द के जन्मदाता भिखारी ठाकुर जी हैं। भोजपुरी लोकनाट्य में प्रयुक्त बिदेसिया छन्द इस प्रकार है -

''तोहरे कारनवाँ परानवाँ दुखित बाटे,
दया क के दरसन दे दऽ हो बलमुआँ।''[22]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि लोकनाट्यों में काव्यशास्त्र के छन्दों का नहीं बल्कि उन्मुक्त छंदो का प्रवाह है। लोकनाट्यों में पिंगल शास्त्र की अपेक्षा लय एवं धुन का अधिक महत्व है। यदि लोकनाट्यों को काव्य-शास्त्रीय पैमाने पर मापा जायेगा तो इसकी मौलिकता नष्ट हो जायेगी और इनके स्वच्छन्द प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होगा। अत: लोकनाट्यों की पारंपरिक धुनें इसको एक अनोखा सौन्दर्य प्रदान करती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वाचिक कविता: भोजपुरी, सम्पादक विद्यानिवास मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ0सं0-9
2. अवध ज्योति, सम्पादक डॉ0 रामबहादुर मिश्र, सैप प्रिन्टर्स अमेठी, अक्टूबर-दिसम्बर, 2020, पृ0सं0-13
3. वाचिक कविता: भोजपुरी, सम्पादक विद्यानिवास मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ0सं0-76
4. अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ0 मधुरलता श्रीवास्तव, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण 2007, पृ0सं0-309
5. वही, पृ0सं0-344-345
6. वही, पृ0सं0-309
7. भिखारी ठाकुर रचनावली, प्रो0 वीरेन्द्र नारायण यादव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण 2005, पृ0सं0-29
8. अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ0 मधुरलता श्रीवास्तव, सुलभ प्रकाशन लखनऊ, संस्करण-2007, पृ0सं0-317
9. रामलीला नाटक, श्रीविश्वेश्वर दयाल गुप्त 'कुशल', देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली, पृ0सं0-154
10. भिखारी ठाकुर के लोक नाटक, डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ0सं0-27
11. अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ0 मधुरलता श्रीवास्तव, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण 2007, पृ0सं0-310
12. वही, पृ0सं0-310
13. वाचिक कविता: भोजपुरी, सम्पादक विद्यानिवास मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ0सं0-44
14. अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौन्दर्य, डा0 मधुरलता श्रीवास्तव, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण 2007, पृ0सं0-319
15. वही, पृ0सं0-336
16. श्रीरामचरितमानस 2/113/1
17. भिखारी ठाकुर रचनावली, प्रो0 वीरेन्द्र नारायण यादव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, संस्करण 2005, पृ0सं0-123
18. अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ0 मधुरलता श्रीवास्तव, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण 2007, पृ0सं0-338
19. वाचिक कविता: भोजपुरी, सम्पादक विद्यानिवास मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ0सं0-36
20. अवध के लोकगीत और उनका शिल्प सौन्दर्य, डॉ0 मधुरलता श्रीवास्तव, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण 2007, पृ0सं0-337
21. वही, पृ0सं0-344-345
22. भिखारी ठाकुर रचनावली, सम्पादक डॉ0 मिथिलेशकुमारी मिश्र, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण 2011, पृ0सं0-37

मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में यथार्थ बोध और स्त्री की स्थिति

डॉ० नम्रता जैन

सहा० प्राध्यापिका, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

लेखिका मृणाल पाण्डे अपने आप में एक बड़ी हस्ती है जो किसी परिचय की मोहताज नहीं है उनका जीवन खुद उनका परिचय है। मृणाल पाण्डे का परिचय हमें एक पत्रकार लेखक और भारतीय टेलीविजन की जानी मानी हस्ती के रूप में मिलता है। उनकी सम्पादन, लेखन और अध्यापन की महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं जिनका निर्वाह इन्होंने बड़े महत्वपूर्ण तरीके से किया है। समाज सेवा के क्षेत्र में भी मृणाल पाण्डे की महती भूमिका रही है। प्रयाग दिल्ली, भोपाल आदि विश्वविद्यालयों में अध्यापन के बाद इन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया हिन्दुस्तान भारत में सबसे ज्यादा पढ़ा जाने वाला अखदार है। हिन्दुस्तान टाइम्स के हिन्दी प्रकाशन समूह की संपादक भी रही है। इसके अलावा कार्यक्रम (दातों-बातों में का संचालन भी करती है। वे कुछ वर्षों तक सेल्फ इग्लाइड ब्रमेन कमीशन की सदस्या रही है। साप्ताहिक हिन्दुस्तान व बामा की सम्पादक रही तथा दैनिक हिन्दुस्तान को कार्यकारी सम्पादक भी रहीं। रान 1984-87 ई0 तक वे वामा की संपादक के रूप में लोकप्रिय महिला रही है। यह एक टेलीविजन पर प्रस्तुतकर्ता भी रही, स्तम्भकार और प्रसारक के रूप में भी उनकी पहचान है।) उनका लेखन हिन्दी व अंग्रेजी दोनों में मिलता है। कई साल इन्होंने महिलाओं के लिए सेवा में बिताए। स्टार न्यूज और दूरदर्शन के लिए हिन्दी समाचार बुलेटिन का सम्पादन किया। कादम्बिनी और नन्दन की प्रमुख सम्पादक भी रही है।

मृणाल पाण्डे के राजनीतिक लेख व टिप्पणियाँ भी ऑनलाइन है। 24 जनवरी 2010 को शनिवार के दिन पूर्व अरूण भटनागर के इस्तीफे के बाद इन्हें श्प्रसार भारती के अध्यक्ष के रूप में सूचना एवं प्रसारण मंत्रात्रय द्वारा नियुक्त किया किया गया। अप्रैल 2008 में इन्हें पी०टी०आई० की बोर्ड सदस्या बनाया गया। हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्व शास्त्रीय संगीत तथा ललित कला का भी कास्कोरन (पाशिंगटन डी०सी०) से गूढ ज्ञान किया।

साहित्य में स्थान

जहाँ हिन्दी साहित्य आज अपनी दृढ भूमि पर खड़ा है उसमें कई उपधाराओं ने भी प्रवेश किया है। इसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श जनजातीय विमर्श आदि की धाराओं का सतरोत्तर में साहित्य में प्रवेश हुआ और इन्हें लेकर नए-नए चिंतन शुरू हुए और नये-नये प्रश्नों एवं समस्याओं में सिर उठाया। स्त्रीवादी साहित्य में मन्नु भण्डारी के बाद एक बड़ा वर्ग स्त्री लेखिकाओं का खड़ा किया है। चित्रा मुदगल, मैत्रेयी पुष्पा अनामिका, मृणाले पाण्डे, प्रभा खेतान, शोमा के मृदुला गर्ग मृदुला सिन्हा, गीताजली श्री गीताश्री नाशिरा शर्मा, लता शर्मा, क्षमा शर्मा, कुमुद शर्मा, महरूनिशा परवेज, अलकासरावगी सजी रोठ, कृष्णा सोबती, मन्नु भण्डारी, सुशीला टाकमोरे आदि स्त्री विमर्श के बड़े नाम हैं। इनमें एक नाम है मृणाल पाण्डे का जो स्त्रीपायी प्रश्नों के जयाय नीयता है।

मृणाल पाण्डे का कथा साहित्य अध्यापन पत्रकारिता सम्पादन और कला ष्जगत सौन्दर्य जगत आदि के क्षेत्र में स्त्री की भूमिका और उसकी बदलती छवि का चित्रण करता है। उनके उपन्यासों में स्त्रीवादी प्रश्नों की पैरवी भी की गयी। उनका स्त्री-शि एक नए प्रकार सेवाददमुखका प्रतिकार करता है पर मटकते हुए, इनका दियो परदेस देवी मटरगपुर पुराण और अपनी गवाही उपन्यासों में स्त्री

और पुरुष सम्बन्ध बेटा-बेटी के प्रति व्यवहार का अन्तर खान-पान का अन्तर पत्रकारिता में पिसती स्त्री मीडिया के अन्त में कुठित स्त्री. गढ़वाल- कुमायूँ आदि की पीढ़ी रीति-रिवाज परम्परा आदि में परिवर्तन, स्त्री के देवी रूप तक का शोषण व समयातीत कथाओं से स्त्री के प्रति पुरुष समाज की सोच को दिखाया है। अपनी गवाही में भी लेखिका ने मीडिया में स्त्री उसके अन्तर्दन्छ, हिन्दी व अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में होड़ शिक्षा की लचर व्यवस्था पर व्यन्य आदि मिलता है। सौन्दर्य जगत में नारी को जहां औरत गढ़ी जाती है ने दिखाया है तो हाशिए पर पड़ी स्त्री के कामकाजी क्षेत्र से परिधि पर स्त्री निता में प्रकाश डाला गया है। स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक में स्त्री के घर परिवार फिल्म जगत व स्त्री द्वारा रूढ़ मानसिकता को तोड़ने की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है और उसक शोषण का विरोध किया है। बद गलियों के विरूद्ध महिला पत्रकारिता की यात्रा में क्षमा शर्मा के सहयोग से महिला स्त्री विमर्श के लेख सम्पादित है। ओबीरी, आलेख में भी स्त्री की स्थिति को दिखाया है। अपने अंग्रेजी साहित्य में भी ये महिलाओं की बेटा-बेटी के अन्तर की मानसिकता पर व्यंग्य करती है और स्त्री को भी एक स्तर पर स्त्री का शोषक मानती है।

मृणाल पाण्डे के उपन्यास नाटक लेख आलेख, कहानी, आदि उनके साहित्य को हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। पाण्डे जी के स्त्रीवादी प्रश्न साहित्य के माध्यम से कुछ अलग स्वरूप में आते हैं ये कहीं न कहीं स्त्री के शोषण के लिए स्त्री को जिम्मेदार मानती हैं। ये पुरुष का नहीं बल्कि उस पुरुषवादी अहन्मन्य मुखौरे का विरोध करती है जो स्त्री के विकास में बाधा बनता है। इस प्रकार गुणाल पाण्डे का उपन्यास साहित्य उनके स्त्री पात्रों के रोटी कपडा और मकान के बाद एक उदार स्तुलित व्यवहार से भरे विचारों की भी मांग का साहित्य है अत: स्त्री विमर्श की लेखिकाओं में उनका नाम पहली पंक्ति में उनका साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी कथा साहित्य को अविस्मरणीय योगदान है।

मृणाल पाण्डे का उपन्यास साहित्य एवं अन्य मुद्दे

मृणाल पाण्डे का उपन्यास साहित्य केवल स्त्री के किसी एक पक्ष से ही नहीं जुड़ा है बल्कि वह उसके जीवन के बहुत से पहलुओं पर प्रकाश डालता है उनके उपन्यासों में स्त्री के विभिन्न रूपों का शोषण उसके साथ भेदभात, लडका-लड़कियो के साथ व्यवहार में अन्तर खान-पान में अन्तर पहाड़ी संस्कृति के बदलते स्वरूप का ज्ञान पत्रकारिता में स्त्री का शोषण, मीडिया का अन्तर्द्वन्द्व, अनैतिक घटनाकम, घर में स्त्री के अधिकारों का हनन, स्त्री पर अत्याचार, यौन-शोषण यहाँ तक कि देवी रूप तक का भी शोषण, रामयातील कथाओं द्वारा शराब विरोधी आदोलन, वेश्या की समस्या हिन्दी अंग्रेजी का द्वन्तु मीडिया की विदूपताओं और शैक्षिक प्रणाली आदि पर प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार लेखिका मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में स्त्रीवादी प्रश्नों के साथ अन्य खमुददो शिक्षा प्रणाली, मीडिया संस्कृति, बेरोजगारी शराबखोरी आदि मुद्दों से भी अपना स्थान कब्जाया है। मृणाल पाण्डे का व्यक्तित्व और कृतित्व भी एक अलग पहचान रखता है। वह उनके अध्यापक पत्रकार व प्रसारक सम्पादक आदि की भूमिकाओं के कारण बना है। साहित्य में उनका स्थान भी महत्वपूर्ण है, जो वैश्विकरण के दौर में नारी मुद्दों को बड़ी शिद्दत के साथ उठा रहा है।

मीडिया जगत के अन्तर्द्वन्द्व और स्त्री

श्मीडियाश अर्थात अपनी बात को कहने का माध्यम समाज की तीसरी आंख कहे जाने वाले मीडिया में भी अन्तर्विरोध मिलते हैं वह श्रव्य-दृश्य माध्यम हो या पत्रकारिता सभी में अन्तर्विरोधों का पाया जाना लाजमी है प्रिंट मीडिया हो या इलैक्ट्रोनिक सभी में अर्थ को ध्यान में रखा जाता है तो दूसरी तरफ उन पर समाज में हो रहे अन्यायों, भ्रष्टाचारों आदि को उजागर करने का जिम्मा भी है। मीडिया में स्त्री की स्थिति एक गढ़े गए कृत्रिम चरित्र जैसी ही है। फिल्म जगत में छोटे व बड़े पर्दे पर उसे केवल लाभ की वस्तु के रूप में परोसा जा रहा है जब से दूर संचार की सेवा शुरू हुई है तब से दुनिया एक घर आँगन में सिमट गयी है फिल्म, साहित्य, बाजार, जनसंचार आदि के क्षेत्र में बड़े अहम परिवर्तन आए हैं। इण्टरनेट कम्प्यूटर टी०वी०, टेलीफोन, वीडियो, आदि ने इलैक्ट्रोनिक मीडिया को सशक्त कदम दिये। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी विभिन्न अखबार पत्र-पत्रिकार, पुस्तकें र आदि ने स्त्री के समाज में स्थापित होने को स्पेस भी दिया है। इण्टरनेट पत्रिकाए स्त्री की छवि का खुलकर प्रचार कर रही है। स्त्री आज प्रतियोगिताओं फिल्म जगत के विज्ञापनों के केन्द्र पर कब्जा किए है। निरोध जैसे विज्ञापन उसकी छवि को धूमिल कर रहे हैं। प्राइवेट चौनल्स के धारावाहिकों में उसे केवल घर तक सीमित करने की भी साजिश चल रही है। वह श्बालिका वधु की आनन्दी हो या स्वर्ग की सुहानी उसे घर तक ही सीमित रहना है व पुरानी मानसिकताओं को दोना है। पत्रकारिता के क्षेत्र में तो स्त्रियों को कमतर ही ऑफा जाता रहा है

मृणाल पाण्डे क्योंकि एक पत्रकार, सम्पादक आदि रही है इसी लिए उनके उपन्यासों में मीडिया में स्त्री की छपि को लेकर अन्त भी मिलता है। उनके उपन्यास हिन्दी व अंग्रेजी पत्रकारिता के द्वंद्व स्त्री-पुरुष के द्वंद्व नीडिया की आन्तरिक नीति उस स्त्री की स्थिति और पुरुष वर्चस्व को दिखाते हैं। रास्ता पर भटकते हुए में लेखिका अखबारों की विवशता और उसकी लीपा-पोती को उजागर करती है। लोकतन्त्र के चौथे खम्मे कहे जाने वाले अखबार भी अर्थ को ध्यान में रखते हुए खबर पर पॉलिश करते हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कहते हैं कि मीडिया ने स्त्री की अपनी राजनीतिक रोटियों रोकने के लिए उसका प्रयोग साधन रूप में किया है। यह टी०पी० के परदे साहित्य के केन्द्र में खबरों के बीच ठहरती है वह मीडिया में कटती- पिसती है कम वेतन पर अधिक काम करती है। आज स्त्री की स्थिति मीडिया में बदलती भी दिखाई दे रही है यह ऑफिस के साथ-साथ घर-परिवार मेमा पत्नी हटी आदि भूमिकाओ का भी साथ ही उत्तरदायित्व निभा रहीं है।

मीडिया द्वारा स्त्री का जिंसीकरण

जहाँ मीडिंगा समाज के गार्थ का अंकन करता है वही उसने यौन सम्बन्धों की सुचिता को भी कम किया है। प्रत्येक देश के उपनिवेश विस्तार की नीति बाजार का विस्तार और गुप्त उपभोक्तावादी प्रवृत्ति आदि में मीडिया की भूमिका को नगण्य को ही जाती है। साथ ही स्त्री की जगह भी उसने महत्वपूर्ण हुई है। व्यापार जगत में स्त्री ने पैर जमाए है और आर्थिक उदारवाद को बढ़ावा दिया है। अंतर्राष्ट्रीय सार ५२ जाय एक देश दूसरे देश से प्रभावित हुआ तो उसके समानों का स्वरूप भी बदला है। एक दूसरे के साथ संस्कृति सभ्यता परम्परा आदि का आवागमन भी होता है और (इसी में विर्मश चिंतनानन मुद्दे उत्पादों का लेन देन बढ़ता है जिससे स्त्री पुरुर सम्बन्ध का समाजशास्त्र प्रभावित होता है।

जिस प्रकार साहित्य विश्व पटल पर स्थापित हुआ ऐसे ही उसमें स्त्री भी स्थापित हुई और स्त्री के मुद्दे अब क्षेत्रीय, राष्ट्रीय ही नहीं रह गये ये अब विश्व स्तर पर समस्या की परवी करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीयता से प्रभावित होकर लिखे गये छठे सालय दशक के साहित्य में स्त्री की छवि दैविक कर दी है। प्रवासी साहित्यकार अर्चना पैन्यूली, आराजे सक्सेना, जया वर्मा, वसुधा की सम्पादक कनाडा में स्नेहा ठाकुर आदि जड़ की लात में विदेशों में लेखन कर रही है तो हमारे देश में भी स्त्री समस्याओं को लेकर लेखन करने वाले कुछ स्त्री नाम निम्न मृणाल पाण्डे ,मैत्रेयी पुष्पा ,अनामिका, चित्रा मद्गल कृष्णा सोबती, नाहर जर्म, क्षमा शर्मा आदि है।

मृणाल पाण्डे भी पाश का नाम की जिसने स्वयं पत्रकारिता जगत के अन्तर्विरोधी और नारी समस्या को उठाया है उनके उपन्यासों में मीडिया ने स्त्री का जिसीकरण किस रूप में किया इस पर अग्र प्रकार से प्रकाश डाला जा सकता है। मृणाल पाण्डे के पास रखपुर पुराण में गांगल का निलामत पढ़ना और वहाँ से डिप्टी कलक्टर बनकर लोटना और उसकी पत्नी बिन्दु बदलती प्रति दिखती है तो उसकी बेटी इन्दु की पुरानी पिंड को तोड़ती है ये पपी क्षेत्र से निकल कर और अपने बच्चों को अंग्रेजी दिलाकर चली आ रही पीढ़ी में परिवर्तन करते हैं अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मीडिया, साहित्य, बाजार, व्यापार आदि ने उसको अन्तर्राष्ट्रीय छवि के चलते उसके पुरुषों के साथ सम्बन्धों में भी शिथिलता भर दी है।

जन आंदोलन और स्त्री की हिस्सेदारी

भारत में स्त्री के हित और अधिकारों से जुड़े आंदोलन की शुरूआत उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में हुई तब न्याय, नैतिकता, आचार और परम्परा से सम्बन्धित विमर्श भी हुए। परन्तु इस सब पर कहीं न कहीं राष्ट्रीय गुलामी की छाया पड़ी रही बीसवी सदी के राष्ट्रीय जागरण काल में यद्यपि स्त्री मुक्ति की चिंता भी शामिल थी, लेकिन राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की तीव्रता के कारण यह चिंता कोई स्पष्ट आकार नहीं ले पायी। आकार की यह स्पष्टता कोई ढाई-तीन दशक पहले के स्त्रीवादी आंदोलनो में प्रकट होनी शुरू हुई जब वैचारिक स्तर पर स्त्री मुक्ति की नई लहर उठी।

वस्तुत केवल भारत में ही नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व में महिलाएँ भेदभाव असमानता दमन-शोषण आदि की शिकार रही है लम्बे समय तक स्वयं महिलाओं में की यह चेतना नहीं थी कि उन्हें इन स्थितियों का प्रतिकार करना चाहिए। पहली बार संगठित रूप से प्रतिकार उता अमेरिका में कल कारखानों में कार्यरत महिलाओं ने अपनी कार्य दशाओं में सुधार और समान वेतन तथा (स्वतन्त्रता) सुविधाओं के लिए आदोलन किया और सम्ये सघर्ष के बाद सफलता प्राप्त की उसकी मून अन्य देशों ने भी सुनाई दी और अमेरिकी महिलाओं की सफलता का दिन, आठ मार्च, अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस बन गया।

मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में भी कई जगह स्त्री की जन आंदोलनों में भूमिका को लेकर लेखनी चली है। जहाँ लेखिका स्त्री को लेकर उसके श्रम संगठित व असंगठित क्षेत्र में लेकर जिक्र करती है। स्त्रियों द्वारा समान वेतन आर्थिक समस्याओं के विरोध, शोषण के खिलाफ विरोध आदि को लेकर उनका विरोधी स्वर मिलता है। प्रस्तुत है देवी उपन्यास से ये पंक्तिया ष्1995 दुनिया का भूमण्डलीकरण हो रहा है। रामाराव को शराब पर रोक लगाए कुछ महीने हो गये हैं। शराब के ठेकेदार उत्पादक रोक के खिलाफ राज्य के हाई कोर्ट में चले गए हैं एक बार फिर गर्जना उठने लगती है। विद्यालय की दीवारे हिलने लगती है। स्त्रियों सर्जनी दिखा दिखाकर सब को याद दिला रही है कि कुछ ही महीने बाद सराद के सुनाव होने वाले है हमारे चोट लेकर सराद में जाना है तो अपने विलायतगामी नेता को वापस बुलावाकर अदालत के आदेश निरस्त करवाओं

शराब के खिलाफ स्त्रियों का एकजुट होकर विरोध करना उनकी बढ़ती चेतना से ही परिचय करता है। अन्यत्र भी एक उदाहरण दृष्टवय है ष्अपनी सफलता से उत्साहित और अपने पियक्कड काहिल औरतखोर मर्दो से परेशान औरतों ने अबैध दारू की दुकानों पर धाबा बोल दिया और शराब की भट्टी तोड डाली आज मिदनापुर जिले कोशयारी क्षेत्र के मर्दो को संदेश मिल चुका है दारू पीना बंद करो। अपनी पत्नियों को वापस ले जाओं या फिर नतीजा भुगतने के लिए तैयार रहो।ष इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्त्रियों ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आदोलनो, जन आंदोलनों में अनेक महापुरुषों के नेतृत्व में महत्ती हिस्सेदारी की है। मृणाल पाण्डे के देवी उपन्यास में तो यह कई जगह देखने को मिलती है।

स्त्री जीवन और मातृत्व से जुड़ी समस्याएँ

स्त्री के समस्त रूप पत्नी, बहन माँ बेटी में माँ का ही एक ऐसा रिश्ता है जो सभी रिश्तों की जड़ में है माँ के रिश्त के अभाव में परिवार के सभी रिश्ते अधूरे से दिखाई देते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि स्त्री जीवन की पूर्णता उसके मातृत्व में है। यह खुद होन होकर सारे परिवार का पालन–पोषण करती है। फखरु मेरटी की ये पंक्तियाँ माँ के उसी रूप की तरफ सकत करती है

“प्यार हो बेटों में तो कितना शकुन पाती है माँ,
घर में हो दीवार तो टुकड़ों में बट जाती है माँ।
इस कदर एहसास है उसको औलाद के दर्द का
चोट लगती है बच्चे को तो चिल्लाती है माँ ।।

“हम यह मानकर चलते हैं कि सृष्टि की रचना करना स्त्री का प्रकृति प्रदत गुण है और फिरली ही स्त्री इस अदभूत और समृद्ध अनुभव से न गुजरना चाहती होगा। दुनिया भर की सारी सभ्यताओं में मां का रूप ही वह है पहला देवीय आकाश था. जिसकी उपासना की गयी। वह माँ ही है जो एक–एक बच्चे को जन्म देने में मर–मर कर जीती है उसका जीवन दूसरों के लिए समर्पित रहा। वह खुद किसी को दोष नहीं देती बल्कि ज्यादा गुस्से में होने पर सिर्फ से देती है और अपने बच्चों के गुनाही सारी बलाओं को ले लेती हैं प्रस्तुत है कुछ पक्तिया–

इस तरह मेरे गुनाहों को वो धो देती है,
माँ बहुत गुस्से में होती है तो रो देती है।”

इस प्रकार माँ का प्रत्येक रूप सच्चा है यह बलिदान की प्रतिमूर्ति है। मातृत्व से जुड़ी समस्याओं में उसे ककेवल परश्रित रहना पड़ता है वह यौवनावस्था में प्रति के अधीन है और वृद्धावस्था में पुत्रों के अधीन है। वृद्धावस्था में मी की दो रोटी इतनी कठिन हो जाती है कि उसे अपने पास रखना कोई भी पुत्र पसंद नहीं करता इन पंक्तियों के माध्यम से उसे समझाया जा सकता है –

“जब हम छोटे बच्चे थे तो लड़ते थे माँ मेरी है, गाँ मेरी है, अब हम बड़े हो गये तो लड़ते हैं, माँ तेरी है माँ तेरी है।” – त्रिलोचन शर्मा

या माँ को अनमोल बताने और उसे अपने हिस्से में पाकर अपने आपको गौरवान्वित समझता है प्रस्तुत है मुनव्वर राना की ये पंक्तियाँ –

“किसी को घर मिला हिस्से में
या कोई दुका आई–
मैं घर में सबसे छोटा था मेरे हिस्से में माँ आई...

इन सब के बावजूद भी उसमें स्त्री होने और मातृत्व में द्वंद्व की स्थिति बनी रहती है। अपनी किताब में मृणाल पाण्डे लिखती है कि हमारे देश में मातृत्व के महत्व और गरिमा के निरन्तर गायन के बावजूद सचमुच की माँ के प्रति सहृदयता का यह हाल है कि आपको आज भी माता-पिता, सास-ससुर को हरिद्वार ले जाने या पाठ बिठाने या अखण्ड जागरण के लिए जिस आसानी से और सहृदया से छुट्टी मिल सकती है, बच्चे को जन्म देने या बीमार बच्चे की तीमारदारी के नाम पर नहीं।

घर और ऑफिस के बीच पिसती स्त्री

जब से स्त्री ने अपने अधिकारों की माग के साथ वचनों की चारदीवारी को लाघा है और उसने वंचना और लाछन का भय छोड़ा है तब से भारत ही नहीं बल्कि विश्व के आर्थिक स्तर में एक उभार आया है। जहाँ स्त्री का प्रयोग बाजार के विस्तार के लिए किया गया नही स्त्री बाजार के केन्द्र में भी स्थापित हुई है।

लेखिका मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में भी स्त्री परिवार और ऑफिस के जीवन में खंड महसूस करती है। जिससे वह लगातार शराब खोरी और सिगरत आदि की तरफ बढ़ती जा रही है। रास्तों पर भटकते हुए की पार्वती इसी कुंठित मन के कारण छेड़े जाने पर लड़ने को तैयार हो जाती है। वह बटी के बाद अकेली रहती है। ऑफिस (नौकरी) की भागदौड़ उसे देर रात तक रुकने और जागने को मजबूर करती थी। यह स्पष्ट है कि वह नौकरी में शाषिता श्री व राजनीतिज्ञों के झमले में फंस चुकी थी इसी कारण यह अपने अकेले पुत्र को भी समय नहीं दे पाती थी। अर्थ के अभाव में उसे पैसा प्राप्ति पर भागी व विलासी बना दिया था।

मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में नौकरी पैसे व घर-परिवार की भूमिका के निर्वाह को लेकर उनकी पात्र मन पर एक बोझ लिए जीती हैं। उन्हें यथार्थबोध है समाज की विडम्बनाओं को जान चुकी है। उनके स्त्री पात्रों ने परिवार की सीमाओं को लाधा है। और उनमें धीरे-धीरे परिवर्तन की लहर दिखाई देती है। इस प्रकार मृणाल पाण्डे का उपन्यास साहित्य पारिवारिक व नौकरी पेशे के नीचे दबने से जिन प्रश्नों ने सिर उठाया है। उनके आगे न तो झुकता और न दम तोड़ता है। यह साहित्य पहाडी अंचल के साथ साथ मैदानी क्षेत्र की स्त्री से जुड़ी समस्याओं की भी पड़ताल करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक भृणाल पाण्डे, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि० दरियागज नई दिल्ली दूसरा संस्करण 2002
- परिधि पर स्त्री मृणाल पाण्डे राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि० 7 / 31 असारी मार्ग, दरियागज नई दिल्ली दूसरी आवृत्ति- 2008
- जहां औरतें गढ़ी जाती है गुणाल पाण्डे प्रकाशन प्रा०लि० 7 / 231 अरारी मार्ग दरियागज नई दिल्ली दूसरी आवृत्ति-2008
- स्त्रियों की पराधीनता जॉन स्टुअर्ट मिल, राजकमल प्रकाशन 1-बी नेता जी सुभाष मार्ग नई दिल्ली पहली आवृत्ति 2003
- स्त्री के लिए जगह सं० राजकिशोर वाणी प्रकाशन दरियागज नईदिल्ली तृतीय सस्करण 2006.
- महिला और मानवधिकार एम०ए० असारी ज्योति प्रकाशन जयपुर- 187 बरकत नगर, टोक फाटक प्रथम संस्करण 2000
- नारी एक सफर सम्पादक दिनेश नंदिनी डालमिया, संतोष गोयल, ज्ञानभारती प्रकाशन 4/14 रूपकार दिल्ली 2008
- वसुधा- स्त्री मुक्ति का सपना स० प्रो० कमला प्रसाद अक्टूबर 2006 से मार्च 2004

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन एवं वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता

रत्नेश कुमार जैन

प्राचार्य, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद

प्रस्ताबना

आधुनिक भारत का निर्माण करने में जिन महापुरुषों का योगदान रहा है उनमें महात्मा गांधी एवं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन महापुरुषों ने भारतीय शिक्षा को अपने विचारों से प्रभावित किया है। महात्मा गांधी नवीन शिक्षा की योजना को राष्ट्र के लिए अपनी सर्वोत्तम देन समझते थे, वहीं टैगोर ने विश्व-भारती की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में एक नयी विचारधारा का सूत्रपात किया। प्रत्येक महापुरुषों के विचार कुछ अंशों में तात्कालिक परिस्थितियों से बंधे रहते हैं। और कुछ अंशों में वे तात्कालिक परिस्थितियों से मुक्त होकर जीवन की शाश्वत चिन्तन धारा में सदा-सदा के लिए प्रवाहित होते रहते हैं जितना अधिक जिस महापुरुष का विचार जीवन के शाश्वत मूल्यों से सम्बन्ध रखते है उतना ही यह महापुरुष महान और उसका व्यक्तित्व विश्वव्यापी स्वरूप धारण कर लेता है। वर्तमान संदर्भ में हमें इसी दृष्टि से देखना है और यह जानने का प्रयास करना है कि क्या गांधी जी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचार केवल तात्कालिक उपयोग के थे या उसमें ऐसे तत्व भी थे जो वर्तमान में वह अपना एक सार्थक प्रभाव रखते हैं। स्वाधीन भारत के इस नवजागरण काल में यदि भारतवासियों को अपनी संस्कृति के मूल योग के साथ घनिष्ठ परिचय हो जाय तो प्राचीन भारत को अध्यात्मिक आदर्श प्रत्येक घर में पुनः नई जागृति पैदा कर सकता है।

भारतवासियों के नस-नस में नई आशा, आकाक्षा व प्रेरणा प्रदान करने वाले महात्मा गाँधी एवं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने किसी नये धर्म का सूत्रपात नहीं किया बल्कि के प्राचीन सनातन धर्म को पुनः गौरवान्वि करते हुए भारत के अभ्युदय के लिए धर्म को शिक्षा का आधार बनाया। वर्तमान काल में प्रजातंत्र के बढ़ते हुए प्रभाव में व्यष्टि को बराबर महत्व दिया जा रहा है। आज उसी महापुरुष के विचार उपयोगी एवं सार्थक है जो व्यक्ति और समाज के बीच परस्पर सामंजस्य स्थापित करते हैं। जो धनी-निर्धन के बीच सहिष्णुता व सौहार्द का भाव रखते हैं, जो विश्व के सभी लोगों के प्रति विश्व-बच्चु कामाय रखते हैं। इन्हीं उद्देश्यों को लेकर गांधीजी एवं टैगोर विश्वबन्धुत्वव विश्व शान्ति का प्रयास करते रहे है।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षा दर्शन

गाँधी जी आधुनिक भारत के युग पुरुष थे। इन्होंने एक नये युग का प्रवर्तन किया। शिक्षा के सजग प्रहरी गाँधी जी प्रचलित शिक्षा प्रणाली से बहुत असन्तुष्ट थे उसे अभारतीय बताते हुए घोर विरोध किया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यह शिक्षा वास्तविक जीवन से बहुत दूर है। इसमें दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता नहीं है। शुद्ध बौद्धिक एवं साहित्यिक होने के कारण विद्यार्थी को कुशल सामाजिक प्राणी बनाने में असमर्थ है। वर्ग भेदाश्रित होने के कारण यह शोषण का माध्यम बनी है। माध्यम अंग्रेजी होने के कारण यह विद्यार्थी के सर्वागीण विकास बाचक है। गाँधी जी के मतानुसार, आधुनिक शिक्षा प्रणाली किसी भी रूप में राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं है। गाँधी जी का मानना था कि बच्चों के सर्वागीण विकास के लिए शारीरिक श्रगयुक्त हस्त-कौशल

केन्द्रित शिक्षा ही सर्वोत्तम है। हरत- कौशल के माध्यम से शिक्षा व्यवस्थित कर शिक्षा को स्वावलम्बी बनाना चाहते थे। उनकी अटूट आस्था थी कि शोषणहीन, वर्गहीन सर्वोदयी समाज की स्थापना के लिए शिक्षा में स्वावलम्बन अनिवार्य है। इसीलिए सन 1937 में उनके शैक्षिक विचारों का समन्वित रूप वर्धा शिक्षा योजना के रूप में सामने आया, जो उनके शिक्षा दर्शन का एक अभिन्न अंग है। यह योजना शीघ्र ही बेसिक शिक्षा के रूप में सबके सामने परिलक्षित हुई। भारत जैसे गरीब देश में सबके लिए शिक्षा सुलन बनाने का आत्म-निर्भर, समाजोपयोगी, अहिंसक एवं नैतिक सुझाव प्रस्तुत किया।

विश्व बन्धुत्व के प्रणेता तथा सत्यम शिवम और अद्वैतम के प्रतीक गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। वे कवि एवं कलाकार होने के साथ-साथ एक महान शिक्षाशास्त्री भी थे। टैगोर ने शिक्षा के सिद्धान्तों की खोज अपने अनुभव से की है। विश्व भारती के संस्थापक के रूप में वे एक व्यावहारिक शिक्षाशास्त्री होने का परिचय देते है।

टैगोर, प्रकृतिवादी, रहस्यवादी, आत्मवादी एवं उच्चकोटि के मानवतावादी थे। उनके हृदय में समाज के प्रति प्रेम व दया का भाव था। वे समाज का उन्नयन करना चाहते थे और अतीत भारत की आत्मा को आधुनिक भारत की आत्मा में देखना चाहते थे। बालकों में उदात्त नावनाओं को जाग्रत करके उन्हें आध्यात्मिक भूमि पर लाना चाहते थे। आध्यात्मिकता की बात करके टैगोर ने भारत के अतीत का सम्मान किया है और उसी पर वर्तमान को आधारित करना चाहा है। टैगोर अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के बहुत बड़े समर्थक थे और बालकों में अन्तर्राष्ट्रीय भावना जागृत करना चाहते थे।

गाँधी जी एवं टैगोर का शिक्षा दर्शन सामाजिक समरसता, समानता एवं न्याय पर आधारित है। शिक्षा मानव जीवन के सम्पूर्ण चित्र को प्रतिबिम्बित एवं आरेखित करता है। शैशवावस्था से लेकर मृत्यु पर्यन्त शिक्षा का परिक्षेत्र विस्तृत ही नहीं, अपितु व्यापक भी है। व्यापकता एवं विस्तार ही शिक्षा की जटिलता है। वर्तमान संदर्भ में शिक्षा जगत् की जटिलता को समझने के लिए गाँधी जी एवं टैगोर की शिक्षा चिन्तन की उपयोगिता पर विचार करना अति आवश्यक हो गया है। आज शिक्षा के क्षेत्र में घोर दुर्व्यवस्था फैली है, शिक्षा संस्थाएँ शिक्षा माफियाओं के चंगुल में फँसी है। शिक्षा समाजोपयोगी न होकर धनोपार्जन का एक माध्यम बन गयी है। शिक्षा संस्थाओं में अशान्ति का वातावरण है। शिक्षा व्यवस्था आज भी गुलामी के समय निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करती है। शिक्षा का स्तर गिर गया है तथा अध्ययन की प्रवृत्ति समाप्त हो रही है, दूषित शिक्षा व्यवस्था के कारण महँगाई, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, शोषण एवं अराजकता पुष्पित एवं पल्लवित हो रही है। छात्रों में घोर निराशा बढ़ती जा रही है तथा राष्ट्र के प्रति ईमानदारी, समर्पण एवं अनुशासन में दिन-प्रतिदिन गिरावट आ रही है। बच्चों के सर्वांगीण विकास की बात आज की शिक्षा प्रणाली में सोचनी ही नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में यह सर्वथा समीचीन है कि गाँधी जी एवं टैगोर के शिक्षा दर्शन का निष्पक्ष आलोचनात्मक विवेचन किया जाय।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक दर्शन का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्वरुप

ष्सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के अनुयायी कर्मवीर मोहन दास करमचन्द गांधी एक धर्मनिष्ठ राजपुरुष थे, जिन्होंने अपनी जीवन दृष्टि को गहन अध्ययन एवं कर्म द्वारा क्रमशः विकसित किया। अपनी इसी जीवन दृष्टि के अनुरूप उन्होंने भारतीय समाज को एक सम्यक और संतुलित रूप देने का संकल्प बनाया।

सत्यम् शिवम्, अद्वैतम के प्रणेता गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे, जिन्होंने अपनी शान्त आभा व कान्ति से सम्पूर्ण मानवता के पथ को आलोकित किया।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन-दृष्टि से स्पष्ट होता है कि दोनों की पृष्ठभूमि भिन्न थी तथापि दोनों का उद्देश्य एक ही था सामाजिक एवं आर्थिक असमानता की समाप्ति। लेकिन इस उद्देश्य को हासिल करने के तरीकों पर दोनों के विकास से मतभेद था। दोनों महापुरुषों की विचारधारा जिसे हम गांधीवाद एवं टैगोरवाद के नाम से जानते हैं, उनका केन्द्र बिन्दु ग्रामीण सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था थी। दोनों ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त साधन माना। गाँधीजी जहां शिक्षा के सामाजिक परिवर्तन का सशक्त साधन माना। गाँधीजी जहां शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में परिवर्तन कर सामाजिक परिवर्तन की बात करते हैं वहीं स्वीन्द्रनाथ टैगोर शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता का माध्यम मानते हैं।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों में जो मतभेद है वह उनकी पृष्ठभूमि आदर्श एवं आस्था के कारण है। अस्थाए प्रेरणा भरती है, गति, प्रदान करती है। बढ़ने के लिए गति और सोचने के लिए प्रकाश प्रस्तुत करती है। उत्कृष्टता की दिशा में बढ़ सकना आस्थाओं की उपस्थिति के बिना हो ही नहीं सकता। यह बात गांधी एवं टैगोर के चिन्तन प्रक्रिया पर भी लागू होती है।

मनुष्य अनादिकाल से सत्य-असत्य के द्वन्दों से गुजरता रहा है। अनेक महर्षियों एवं ज्ञानियों के द्वारा समस्याओं के समाधान दिये जाने के बावजूद मनुष्य फिर भी पहले की ही तरह संशयग्रस्त दिखाई देता है तथा अपने को सदैव पहले जैसा अधूरा महसूस करता है। संशय के इसी द्वन्द को निष्कर्षात्मक वाणी कोई युग पुरुष प्रदान करता है। हर युग का महापुरुष एक प्रकार से अपने युग को अभिव्यक्ति का सहज स्वर प्रदान करता है। बीसवीं सदी में यही स्वर महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी दिया जाता था।

महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के स्वभाव आस्थाओं, विचारों, सवादशैली और कार्यप्रणाली में भिन्नताएं रही है। इनकी प्राथमिकताएं एवं संघर्ष शैलिया भिन्न रही है। इस संदर्भ में उनके विचारों का तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों में एक सामाजिक संक्रान्ति है। दोनों महापुरुषों के चिन्तन प्रयोग एवं तरीकों में विभिन्नता है किन्तु उनका लक्ष्य शोषणविहीन एवं धर्म निरपेक्ष समाज की स्थापना करना था। रवीन्द्रनाथ टैगोर पूंजीवादी दृष्टिकोण से धार्मिक, सामाजिक एवं नागरिक नियोग्यताओं को समाप्त कर सामाजिक न्याय की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं वही महात्मा गांधी व्यक्ति की मानसिकता में परिवर्तन कर मानवीय समाज की रचना करना चाहते थे। महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार नानवीय गरिमा एवं सरोकार से युक्त है। अत: शिक्षा द्वारा उन मूल्यों को विकास किया जा सकता है। दोनों ही महापुरुषों के विचारों में परिवर्तन तथा जागरूकता के लिए शिक्षा को सशक्त साधन मानते थे। उपर्युक्त बिन्दुओं के दृष्टिकोण से महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के अध्ययन की प्रबल आवश्यकता है।

समकालीन भारतीय समाज एवं विश्व में शिक्षा विधि में क्रान्तिकारी बदलाव आया है। महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन वर्तमान समय में क्या दिशा एवं प्रेरणा दे सकते हैं प्रस्तुत अध्यय से हम अन्त: दृष्टि प्राप्त कर सकते है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक प्रशासन का स्वरूप बदला है शिक्षा का निजीकरण शैक्षिक नियोजन एवं प्रबन्ध नेतृत्व की नयी प्रवृत्तिया उमरकर सामने आयी है। इस संदर्भ में महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों के अध्ययन से सुगठित प्रशासनिक व्यवस्था का विकास कर सकते हैं।

किसी भी राष्ट्र की भाषा उसकी एकता, उसके अस्तित्व एवं उसी अस्मिता की पहचान होती है। राष्ट्रभाषा एवं शिक्षा के माध्यम के संदर्भ में महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों का अध्ययन करके हम भाषायी विवाद एवं भाषा नीति तथा शिक्षा के अन्य आयामों के लिए प्रस्तुत अध्ययन से एक दिशा प्राप्त कर सकते हैं।

वचित वर्ग की शिक्षा आज मानवीय सरोकार एवं विकास का प्रमुख मुद्दा है महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर दोनों महापुरुषों ने वंचित वर्ग लिए कार्य एवं विचार दृष्टि दी। नारी शिक्षा एवं दलित शिक्षा के विशेष शैक्षिक कार्यक्रम भी चलाये प्रस्तुत अध्ययन से हम बचित एवं दलित वर्ग के शैक्षिक समस्याओं एवं कार्यक्रमों के संदर्भ में एक व्यवस्थित कार्यप्रणाली विकसित कर सकते हैं।

इक्कीसवीं सदी की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं चुनौतियों की प्रवृत्ति बीसवीं सदी से भिन्न है। महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर दोनों महापुरुषों ने बीसवीं सदी को प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान किया किन्तु उनके विचारों की सार्थकता आने वाले समय में भी प्रासंगिक रहेगी। प्रस्तुत अध्ययन से समकालीन समय में महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों की प्रासंगिकता से दृष्टि ग्रहण कर सकते हैं।

इक्कीसवीं सदी की हमारी सबसे बड़ी चुनौती मूल्य शिक्षा का संकट, अपसंस्कृति एवं वंचित तथा दलित वर्गों को शिक्षा उपलब्ध कराने का है। इस संदर्भ में महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार एक दृष्टि प्रदान कर सकती है। शिक्षा की संकल्पना एवं उसकी भूमिका में आज के दौर में बदलाव आया है। पाठ्यक्रम शिक्षा का माध्यम, शैक्षिक प्रशासनिक व्यवस्था तथा समकालीन परिवर्तनों से समायोजित करने में असफल हो रही है ऐसे में महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार एक दिशा दे सकते है, इसलिए वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता है।

वर्तमान सन्दर्भ में महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा चिन्तन की उपयोगिता पर विचार करना और भी आवश्यक हो गया है कि द्य आज शिक्षा के क्षेत्र में घोर दुर्व्यव्यवस्था फैली है। शिक्षा संस्थाएं शिक्षा माफियाओं के चंगुल में फंसी है। शिक्षा संसान में अशान्ति का वातावरण है, शिक्षा व्यवस्था आज भी गुलामी के समय निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करती है। शिक्षा का स्तर गिर गया है, अध्ययन की प्रवृत्ति समाप्त हो रही है बच्चों के सर्वांगीण विकास की बात आज भी शिक्षा सोचनी ही नहीं है। नैतिक मूल्यों का दिन-प्रतिदिन हास होता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में यह सर्वथा समीचीन है कि महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन का निष्पक्ष आलोचनात्मक विवेचन किया जाय।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक विश्लेषण

जब से मनुष्य अस्तित्व में आया है तभी से यह अपने इर्द-गिर्द के यथार्थ को समझने का प्रयास करता रहा है। इस प्रक्रिया में उसने अज्ञात प्रघटनाओं को समझने की चेष्टा की है और जीवन में आने वाली समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया। मनुष्य की मूल प्रवृत्ति सामाजिक है और अपनी जन्मजात जिज्ञासावश सामाजिक यथार्थ को समझने का प्रयास स्वाभाविक है इस सामाजिक यथार्थ के समझने का स्वाभाविक प्रयास में वह अपने देश के समकालीन इतिहास, संस्कृति एवं उस समय के परिवेश से प्रभावित होता है। यह प्रभाव उसके विचारों एवं कार्यों में परिलक्षित होता है। इस जिज्ञासा की मूल प्रवृत्ति के कारण ही महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर दोनों ने अपने समय समाज, संस्कृति एवं शिक्षा को प्रभावित किया तथा अपने कार्यक्रमों द्वारा देश को एक नयी दिशा प्रदान किये। यद्यपि उनकी चिन्तन प्रक्रिया में समकालीन परिवेश के साथ परम्परा के तथ्य भी उभरकर सामने आये। महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर भारतीय इतिहास के उन विचारको में है जो न केवल अपने समकालीन समय को प्रभावित किया अपितु आने वाले समय को भी प्रभावित कर रहे हैं। इस दृष्टि से दोनों विचारकों का अध्ययन आवश्यक है।

ब्रिटिश शासन के प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय सामाजिक-आर्थिक संरचना में परिवर्तन हुए पाश्चात्य शिक्षा, मूल्य, दर्शन के प्रभाव के फलस्वरूप भारतवर्ष में एक शिक्षित वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ, उसने अपने समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अन्ध-विश्वासों एवं प्रथाओं में सुधार का प्रयत्न किया। राजाराम मोहन राय (ब्रह्म-समाज) दयानन्द सरस्वती (आर्य समाज) विवेकानन्द (रामकृष्ण मिशन) एनी बेसेण्ट (थियोसोफिकल सोसाइटी) महात्मा गाँधी, टैगोर आदि सामाजिक सुधार एवं पुनर्जागरण के अग्रदूत थे। इन सुधारों के घरिणाम स्वरूप समाज का मध्य युग से आधुनिक आधार पर जो रूपान्तरण हुआ उसके फलस्वरूप एक नयी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था विकसित हुई। उपर्युक्त परिवर्तनों से व्यक्ति एवं समाज की संकल्पना में क्रान्तिकारी बलदाद आया। जिसे महात्मा गांधी एवं स्वीन्द्रनाथ टैगोर का चिन्तन, नेतृत्व एवं कार्यक्रम प्रभावित किया।

शैक्षिक विचारों का विकास आवश्यकताओं व परिस्थितियों के अनुसार होता है। यह अपने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, समकालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दार्शनिक मान्यताओं एवं संदर्भो से प्रभावित होता है। महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर दोनों का दृष्टिकोण मानव का सर्वागीण विकास करना था। महात्मा गाँधी की शिक्षा व्यवस्था के संचालन प्रक्रिया के लिए प्राचीन, परम्परा एवं आध्यात्मिक मूल्यों द्वारा आदर्शवादी दृष्टिकोण रखते थे वहीं रवीन्द्रनाथ टैगोर पाश्चात्य प्रजातान्त्रिक मूल्यों के द्वारा प्रयोजनवादी दृष्टिकोण से प्राप्त करना चाहते थे महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा दर्शन सम्बन्धी दृष्टि के लक्ष्य (मानव विकास) में समानता है, लेकिन उपागम (प्राप्त होने के साधन) में विचार भिन्नता है। यह अन्तर दोनों चिन्तको के पृष्ठभूमि, जीवन दर्शन, अनुभूति एवं व्यवहार के कारण है।

महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर दोनों की शिक्षा संकल्पना द्य मानवीय मूल्यों पर आधारित महात्मा गाँधी का शिक्षा से अभिप्राय मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आला का विकास करना है। जिसने नैतिकता पर बल दिया गया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की शिक्षा संकल्पना प्रजातांत्रिक मूल्यों से युक्त व्यक्तित्व का विकास करना है। वह नैतिकता, सदाचार, मानवीय गरिमा, समानता, समरसता, स्वतंत्रता एवं विश्व बन्धुत्व जैसे मूल्यों के प्रति द्य विचार एवं व्यवहार प्रतिबद्ध है।

महात्मा गाँधी पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा चरित्र निर्माण को अधिक महत्व देते थे क्योंकि पुस्तकीय ज्ञान व्यक्ति को सीमित शुष्क बनाती है। शिक्षा का मूल्य उद्देश्य व्यक्ति का निर्माण करना है। वस्तुत: व्यक्ति को समाज में रहना पड़ता है। अत: मानवीय सम्वेदनाओं के संदर्भ में विकास होना चाहिए जिसमें सामाजिक मूल्यों का विकास आवश्यक है। इसके लिए मनुष्य को स्वावलम्बी परिश्रमी एवं चरित्रवान होना चाहिए। उपर्युक्त उद्देश्य रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन का भी है। उनके अनुसार एक अच्छा नागरिक बनने के लिए मानव का समुचित विकास तथा राष्ट्र के प्रति दायित्व जागना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। टैगोर भी व्यक्ति में नैतिक एवं मानवीय चरित्र का विकास करना चाहते थे। इसके लिए वे विनम्रता, आत्म-सम्मान, सदाचार, स्वतंत्रता एवं मानव कल्याण को महत्वपूर्ण माना है। टैगोर शिक्षा द्वारा सामाजिक समरसत्ता विश्व-बन्धुत्व, सौहार्द स्वतंत्रता आदि मूल्यों के विकास का लक्ष्य माना। वस्तुत: महात्मा गांधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षक उद्देश्यों के मूल भावना में व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास है। उनके शब्द एवं तथ्य भले ही भिन्न हो किन्तु लक्ष्य की भावना सम्मान थी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का पाठ्यक्रम साक्षरता का पर्याय नहीं था वह आचरण एवं व्यवहार की शिक्षा, अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की शिक्षा जो सामाजिक विषयों एवं तकनीकी शिक्षा के साथ-साथ नैतिक पक्षों के समन्वय पर बल देती है। पाठ्यक्रम एक समान होना

चाहिए जो व्यक्ति और समाज को आत्म-निर्भर बनाये। इस प्रकार महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार लगभग समान है।

शिक्षक के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर का दृष्टिकोण आदर्शवादी था, अध्यापन पवित्र कार्य है, जिनका स्वयं चरित्र अदूषित है, जो हमेशा सीखने के लिए प्रस्तुत रहते हैं तथा पूर्णता की दिशा में विकास करते हैं वह शिक्षक बनने के योग्य है। छात्रों के लिए उनका आचरण पाठ स्वरूप होना चाहिए।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन की संकल्पना उनके जीवन-दर्शन एवं लक्ष्य के कारण भिन्न अवश्य था किन्तु दोनों महापुरुषों का लक्ष्य एक पूर्ण मानव का निर्माण करना था।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा प्रबन्ध एवं प्रशासन सम्बन्धी विचारों में समानता है। दोनों महापुरुष प्राचीन गुरुकुल प्रणाली के पक्षधर थे। शिक्षा व्यवस्था पूर्णरूपेण गुरुकुल प्रणाली पर आधारित था। इसी दृष्टिकोण को दृष्टिगत रखकर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन में प्रकृति की सुरम्य वातावरण में उन्मुक्त होकर शिक्षा ग्रहण करने के लिए शान्ति-निकेतन में एक ब्रह्मचर्य आश्रम खोला जो आज विश्व-भारती के नाम से प्रसिद्ध है।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर का विचार था कि शिक्षा संस्था अपना खर्च स्वयं अर्जित करें जिसके लिए उद्योग केन्द्रित शिक्षा विचार प्रस्तुत किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन में विश्व-भारती की स्थापना करके उच्च शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया जब कि गांधीजी की शैक्षिक गतिविधियां स्कूली शिक्षा (बुनियादी शिक्षा) तक सीमित थी। दोनों महापुरुषों ने शिक्षण संस्थाओं का संचालन बालकों के सुधारात्मक विकाससात्मक दृष्टिकोण से संचालित किया था।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर दोनों ने दीन-दुखियों एवं नारी उत्थान के लिए विचार दिये। दोनों महापुरुषों का एक आदर्श नारी की निर्भिकता, सदचरित्रता एवं उसका आध्यात्मिक ज्ञान नारी शिक्षा का उद्देश्य था। स्त्रियों को भी मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए क्योंकि समाज में स्त्री की गृहस्थ-व्यवस्था, बच्चों की देखभाल तथा घर के भीतरी कार्य की प्रधानता का ज्ञान भारतीय नारी के शिक्षा के लिए बताया। दोनों महापुरुष सह-शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लड़कियों के लिए गृह विज्ञान की शिक्षा को अनिवार्य बताया।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर दीन-दुखियों एवं दलितों के उत्थान के लिए सदैव क्रियाशील रहे गांधीजी व्यक्ति की मानसिकता (ह्रदय परिवर्तन) में बदलाव लाकर दीन-दुखियों एवं दलितों का उत्थान करना द्य चाहते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर का मत था कि हर व्यक्ति की अपनी स्वतंत्र द्य प्रतिमा होती है वह अन्य लोगों की तरह एक ही मार्ग का अनुगामी नहीं हो सकता, हर व्यक्ति को यह पूर्ण अधिकार है कि वह अपनी प्रतिमा के अनुरूप अपना विकास करे राज्य को इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आचार सामाजिक एकरुपता नहीं बल्कि अनेकरूपता है। व्यक्ति की सृजनात्मक शक्ति, व्यक्तिगत रूप से विकसित होती है उसका क्रियात्मक स्वरूप सामाजिक हो ही नहीं सकता, दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि ये अनेकरूपता में एकता के समर्थक थे।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर दोनों ने ही नैतिक एवं मूल्यख्रशिक्षा को महत्व दिया। दोनों महापुरुषों का शिक्षा दर्शन नैतिकता, रूढ़िवादी पाखण्ड से मुक्त तथा मानवतावाद पर आधारित थी। व्यक्ति के आत्मिक एवं आध्यात्मिक विकास के द्वारा शक्ति एवं प्रज्ञा का विस्तार करने के पक्षधर थे. जिसमें करुणा, बन्धुत्व, सत्य, अहिंसा, सदीगव आदि गुर्गो का विकास हो सके। दोनों महापुरुष आत्म-स्वतंत्रता, आत्म-शक्ति के माध्यम से कर्तव्य पालन, नम्रता, शान्ति, सद्गुण एवं बन्धुत्व की भावना जागृत करना चाहते थे। शिक्षा को मूल्य शिक्षा एवं नैतिकता के विकास के संदर्भ में महत्वपूर्ण बताया। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का विवेक जाग्रत होता है। जिसके आलोक में अच्छे एवं बुरे के विभेद की क्षमता का विकास होता है। वस्तुत: वास्तविक नैतिकता लीक को पीटने में नहीं बल्कि अपने लिए सच्चे धर्म मार्ग को पाने में है तथा उसका निर्भीकतापूर्वक अनुकरण करने में है।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के मानवाधिकार एवं मानवीय सरोकार के लक्ष्य समान थे। दोनों ही शोषण मुक्त एवं मानववादी सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर थे। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु व्यक्ति एवं समाज की मानसिकता में परिवर्तन हेतु आदर्शवादी परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार व्यक्ति एवं समाज के लिए अधिक प्रासंगिक है। दोनों महापुरुषों का विचार था शोषण मुक्त मानवीय सरोकारों से युक्त समाज की रचना करना जिसने देश का सबसे कमजोर व्यक्ति भावात्मक एवं

मनोवैज्ञानिक रूप से जुड़ना महसूस करे। आज आजादी के पांच दशक बाद भी उन लोगों के आदर्शवादी विचार एवं कार्यक्रमों से भारत भटक गया है। आज गरीबी एवं अमीरी के बीच खाई बढ़ी है, हिंसा, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, अपसंस्कृति एवं पर्यावरण के संकट बढ़े है। दलित एवं नारी के संवैधानिक अधिकार होने के बावजूद भी उनकी स्थिति में क्रान्तिकारी सुधार नहीं हुए हैं।

आज व्यक्ति, समाज, संस्कृति में भ्रम की स्थिति है। जातीय कट्टरता, मानवीय हिंसा बढ़ी है। इन प्रवृत्तियों से छुटकारा हम गाँधी एवं टैगोर के विचार से प्राप्त कर सकते हैं। दोनों ने शिक्षा की संकल्पना मानवीय विकास के संदर्भ में दी। महात्मा गाँधी के द्वारा व्यक्ति के मस्तिष्क, हृदय एवं हाथ के सर्वागीण विकास के हिमायती थे वहीं रवीन्द्रनाथ टैगोर शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के आत्म-चेतना एवं आत्म-विश्लेषण का विस्तार करना चाहते थे। यह सच है कि कोई व्यक्ति एवं विचारधारा अपने आप में पूर्ण नहीं है !

उपसंहार

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों में परिवर्तनशीलता, देश भक्ति को प्राथमिकता, व्यक्ति के लिए धर्म की अनिवार्यता, कर्मण्यता, मानतवा आदि बिन्दुओं पर सामाजिक दृष्टिकोण व्यक्ति थे। महात्मा गाँधी के समान ही रवीन्द्रनाथ टैगोर उन सभी विश्वास परम्पराओं को आदर देने को कहते थे जिनमें लोक कल्याण की भावना निहित हो। टैगोर ने व्यक्ति की गरिमा, शान्ति, सत्य, सद्भावना, ईमानदारी, विश्व बन्धुत्व को महत्व देकर परोक्ष रूप से महात्मा गाँधी के एकादश महाव्रत का समर्थन किया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार मानवतावादी मूल्यों से परिपूरित थे। जिनमें एक ऐसे समाज की कल्पना की गयी है जो स्वतंत्रता, समरसता, निर्भीकता, वसुधैव कुटुम्बकम् पर आधारित होगा। प्रत्येक सुधारवादी के समान महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार मानवीय सरोकारों एवं लक्ष्यों पर आधारित है।

महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों में एक सामाजिक संक्रान्ति है। दोनों चिन्तकों के प्रयोग और तरीकों में भिन्नता है किन्तु उनका लक्ष्य शोषण-विहीन समाज की स्थापना करना था। इस संदर्भ में महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचार वर्तमान शैक्षिक समस्याओं एवं मानव-मूल्यों की स्थापना तथा इक्कीसवी सदी के चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में उनके विचारों का महत्व है। महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर के स्वराज्य की संकल्पना केवल राष्ट्र तक ही सीमित नहीं था अपितु अन्तर्राष्ट्रीय सरोकारों से युक्त थी। दोनों महापुरुषों के त्याग, सत्य, सेवा, प्रेम, विश्व बंधुत्व जैसे मूल्यों का जीवन, राष्ट्र तथा विश्व के लिए आज भी प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- कृपलानी, जे0बी0 महात्मा गाँधी जीवन और चिन्तन सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1979,
- कुमार, डॉ. जैनेन्द्र अकाल पुरुष गाँधी, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1972.
- एडवर्ड, थाम्पसन रवीन्द्रनाथ टैगोर, जीवनी एवं कृति ।
- पाण्डेय, सकल शिक्षा-दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1983.
- दूबे, रमाकान्त विश्व के कुछ महान शिक्षाशास्त्री मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ 1983,
- द्विवेदी, कमला गाँधीजी का शिक्षा दर्शन श्री पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1986.
- टण्डन, प्रेम नारायण अनुशासन समस्या एक सर्वागीण विवेचन, हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊ, 1971
- जैन, प्रतिमा गाँधी चिन्तन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जरूपुर, 1984,
- जायसवाल, सीताराम विश्व के कुछ महान शिक्षाशास्त्री, प्रकाशन केन्द्र अमीनाबाद, लखनऊ, 1971,
- चौबे, सरयू प्रसाद भारतीय शैक्षिक विचारधारा, सेण्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1973 क
- चौबे, सरयू प्रसाद - भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाशास्त्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- ओड़, एल.के. - शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जरूपुर, 1992.
- अल्तेकर प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति, मनोहर प्रकाशन, वाराणसी, 1979.
- पाण्डेय, रामसकल विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1986.

ग्रामीण विकास में कृषि की भूमिका एवं चुनौतियाँ

डॉ० रमाकान्त ठाकुर

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

डॉ० वीरेन्द्र सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

सारांश

भारत एक ग्राम प्रधान देश है, जहाँ की अधिकांश जनसंख्या का मूल व्यवसाय कृषि है। ग्राम व कृषि में इतना घनिष्ट संबंध है कि ग्रामीण और कृषक एक-दूसरे के पर्यायवाची समझे जाते हैं। यही कारण है कि कृषि का प्रभाव उसके जीवन के समस्त पक्षों पर पड़ता है। यदि यह कहा जाए कि कृषि, ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। औद्योगीकरण के बावजूद समकालीन भारत में विशेषकर ग्रामीण विकास में कृषि की भूमिका अतिमहत्वपूर्ण है। कृषि न केवल रोजगार, आय, खाद्यान्न आदि का आधार है बल्कि उनके बहुमुखी विकास का स्रोत भी है। लेकिन कतिपय कारणों से भारतीय कृषि के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी हैं। जिसे दूर किए बिना ग्रामीण विकास की गति तीव्र होना सम्भव नहीं है।

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान व विकासशील देश है। भारतीय संदर्भ में कृषक और ग्रामीण भारत को एक ही सिक्के के दो पहलू के तौर पर देखा जा सकता है। भारत में आज भी दो-तिहाई से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है तथा कृषि पर आधारित है। स्वतन्त्रता के पश्चात भारतवासियों को अंग्रेजो से पिछड़ी हुई कृषि अर्थव्यवस्था ही विरासत में मिली थी। महात्मा गाँधी भी कृषि को "भारत की आत्मा" मानते थे। नेहरू जी ने भी इसलिए कहा था कि "कृषि को सर्वाधिक प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।" डा0 वी0के0आर0वी0 राव ने कृषि के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा था, "यदि पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विकास के विशाल पहाड़ को लांघना है तो कृषि के लिए निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करना आवश्यक है।"

ग्रामीण जनसंख्या वर्तमान में भी शहरी आबादी की तुलना में कहीं अधिक है। वर्ष 2019 में विश्व बैंक द्वारा जारी अनुमान के अनुसार यह संख्या 85 करोड़ से भी अधिक बताई गई थी। इनमें अधिकांश लोगों की आजीविका के लिए कृषि पर प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप में निर्भरता किसी से छिपी हुई नही है। निकट भविष्य में बहुत अधिक बदलाव की सम्भावना भी दिखाई नहीं देती, बल्कि इसके विपरीत कोरोना काल में शहरों से बड़ी संख्या में लोगों का गाँवों की ओर पलायन होने से यह अनुपात और भी अधिक हो सकता है।

योजना आयोग ने ठीक ही कहा था कि, "योजनाओं की सफलता के लिए कृषि का विकास सबसे अधिक आवश्यक है। भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या भोजन के लिए कृषि पर निर्भर करती है तथा भारतीय कृषि पर ही देश के उद्योग, व्यवसाय, यातायात, विदेशी व्यापार आश्रित हैं।" भारत जैसे विशाल देश में अधिसंख्य किसान अभी भी परम्परागत खेती कर रहे हैं। खेती ही नहीं अधिकांश किसान आज के दौर में पशुपालन और कृषि से जुड़े अन्य बहुतायत व्यवसाय भी परम्परागत तरीके से ही कर रहे हैं। आधुनिक तकनीकों और कृषि उपकरणों की मौजूदगी के बावजूद खासतौर पर तंगहाल लघु व सीमान्त किसान उनका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। वे घाटे की खेती करते हुए ऐसे दुष्चक्र में उलझे हैं कि ज्ञान व कौशल से वंचित रह जाते हैं। कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित अन्य व्यवसायों को समेकित रूप से अधिक लाभकारी बनाने के लिए कौशल विकास पर सरकार संजीदा है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकारी योजनाओं व उनके लाभों की सही जानकारी उपलब्ध कराई जाये।

कृषि के सन्दर्भ में विद्वानों का मत है कि कृषि सभी संस्कृतियों की संस्कृति है अर्थात कृषि के विकास के बगैर ग्रामीण विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ग्रामीण विकास एवं आधुनिकीकरण दोनों ही विकासोन्मुखी परिवर्तन की प्रक्रियायें हैं। इसलिए ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक है कि कृषि का आधुनिकीकरण किया जाये। साधारणत: आधुनिकीकरण के आदर्श पाश्चात्य देश एवं उनमें होने वाले परिवर्तन ही रहे हैं। जैसा कि विभिन्न विद्वानों ने आधुनिकीकरण के विभिन्न सूचक बताये हैं जो इस प्रकार हैं- डेनियल लर्नर[1] के अनुसार, ''तदनुभूति, गतिशीलता, साक्षरता और संचार सम्बद्धता आदि को आधुनिकीकरण का सूचक बताया है।" एलमण्ड और कौलमैन[2] ने राजनीतिक दृष्टिकोण से आधुनिक समाज के लिए रूचि संधियोजन, रूचि एकत्रीकरण, संस्थागत राजनीति व्यवस्था आदि को बताया है। डेविड मैक्लीलैण्ड[3] ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से आधुनिक व्यक्ति के लिए 'स्व-आस्था' और उपलब्धि उन्मेष प्रमुख गुणों से युक्त होना बताया है। अन्य विद्वानों में कृषि भूगोलविद् सिंह जसवीर[4], तिवारी आर.सी.[5], हुसैन माजिद[6] के आनुभविक अध्ययन महत्वपूर्ण हैं।

अध्ययन उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण विकास में कृषि की भूमिका एवं मूलभूत चुनौतियों पर प्रकाश डालना है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से विश्लेषित किया जा सकता है।

राष्ट्रीय आय में योगदान

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कृषि की देश के सकल घरेलू उत्पादन में भागीदारी लगभग 51.9 प्रतिशत थी जो 2012-13 में घटकर 13.7 प्रतिशत पर जा पहुँची थी। वर्ष 2020-21 के आर्थिक सर्वेक्षण के आधार पर 17 वर्षों (वर्ष 2003-04 के बाद) में देश के सकल घरेलू उत्पादन में कृषि की भागीदारी बढकर 19.9 प्रतिशत पर जा पहुँची। इससे सम्पूर्ण देश में कृषि पर निर्भरता का अहसास होता है। कोरोना काल के संकट की अवधि में भी अन्य क्षेत्रों की विकास दर काफी नीचे रही जबकि कृषि की विकास दर का 3.4 प्रतिशत के स्तर पर बने रहना कृषि क्षेत्र के योगदान को इंगित करता है।

कृषि एवं रोजगार

भारतीय अर्थव्यवस्था में सबसे अधिक रोजगार के अवसर कृषि क्षेत्र द्वारा प्रदान किये जाते हैं। भारत में लगभग दो-तिहाई जनसंख्या रोजगार के लिए कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। इस प्रकार भारत में रोजगार का प्रमुख साधन कृषि क्षेत्र ही है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार भारत में उद्योगों विशेष रूप से बडे. उद्योगों में अधिक मात्रा में रोजगार प्राप्त होने की निकट भविष्य में कोई सम्भावना नहीं है। अतएव भारत में कृषि केवल वर्तमान समय में ही नहीं वरन् भविष्य में भी रोजगार प्रदान करने का मुख्य साधन बनी रहेगी। कृषि क्षेत्र में कुल रोजगार का अंश वर्ष 1972-73 में 73.9 प्रतिशत था जो गिरकर वर्ष 1993-94 में 64.8 प्रतिशत, 2011-12 में 48. 9 प्रतिशत तथा 2019 में 43 प्रतिशत रहा है।

जीवन निर्वाह का स्रोत

भारतीय किसानों के लिए कृषि उनकी जीविका का मुख्य साधन है। भारत में कृषि गैर-कृषक ग्रामीण परिवारों की आय का भी एक महत्वपूर्ण स्रोत है। ये परिवार एक महत्वपूर्ण सहायक व्यवसाय के रूप में कृषि पर निर्भर रहते है।

कृषि तथा विदेशी व्यापार

भारत के विदेशी व्यापार में कृषि का बहुत महत्व है। देश के कुल निर्यात में कृषि पदार्थों का योगदान बहुत अधिक है। भारत से चाय, काफी, तम्बाकू, मसाले, इत्यादि काफी मात्रा में निर्यात किये जाते है। विदेशी व्यापार में कृषि निर्यात का योगदान वर्ष 1960-61 में कुल निर्यात का 44.2 प्रतिशत, 1980-81 में 30.7 प्रतिशत तथा 2018-19 में 11.8 प्रतिशत रहा है।

खाद्य पदार्थों की पूर्ति का साधन

भारत जैसे श्रम आधिक्य वाले देशों में जनसंख्या के भारी दबाब के कारण, खाद्यानों की माँग में तेजी से वृद्धि होती जा रही है। इसके अलावा गरीबी के कारण खाद्य उपभोग का वर्तमान स्तर बहुत कम है। इसलिए प्रति व्यक्ति आय बढ़ने पर सर्वप्रथम खाद्यानों की माँग बढ़ती है। अत: यह आवश्यक है कि कृषि क्षेत्र में उत्पादन लगातार बढ़ता रहे वर्ना खाद्य संकट पैदा हो सकता है। भारत की करोड़ो जनसंख्या को भोजन एवं पशुओं को चारा कृषि से ही प्राप्त होता है। अत: कृषि, मनुष्य व पशुओं के लिए खाद्य पदार्थों की आपूर्ति का महत्वपूर्ण साधन है।

कृषि एवं उद्योग

भारत में औद्योगिक विकास की दृष्टि से कृषि का बहुत महत्व है। भारत में महत्वपूर्ण उद्योगों को जिनमें सूती वस्त्र, जूट, चीनी तथा वनस्पति उद्योग उल्लेखनीय है, कृषि से ही कच्चे पदार्थों की प्राप्ति होती है। औद्योगिक क्षेत्र में लगे हुए लोगों के लिए खाद्यानों के उत्पादन की जिम्मेवारी कृषि क्षेत्र पर ही है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र में विनिर्माण उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बाजार भी होता है। अभी भारतीय किसानों और खेतिहर मजदूरों की आय का स्तर काफी नीचा है, इसलिए इस क्षेत्र में तैयार वस्तुओं के लिए बाजार सीमित है। कृषि विकास से भारतीय उद्योगों के लिए ग्रामीण क्षेत्र में बाजार विस्तृत होना स्वाभाविक है। अत: देश के औद्योगिक विकास के लिए भी कृषि महत्वपूर्ण है।

कृषि और ग्रामीण विकास

प्राचीन काल में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की धुरी कृषि के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती थी तथा आज भी कमोवेश वही स्थिति बनी हुई है। आहार, आजीविका, पशुपालन आदि से लेकर अन्य सभी आवश्यक वस्तुओं की मांग कृषि से ही सम्बन्धित है। भारत में अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में ही रहती है तथा सरकार भी ग्रामीण विकास को ध्यान में रखते हुए योजनाएं बनाती है। किन्तु विकासशील देशों में सरकार संसाधनों के अभाव में समुचित सुविधाएं उपलब्ध नहीं करवा पाती है। ऐसे में कृषकों को व्यक्तिगत तौर पर प्रयास कर संसाधन जुटाने पड़ते हैं। इन संसाधनों का लाभ स्थानीय लोगों को मिलता है तथा रोजगार के अवसर, आय में बढ़ोत्तरी के साथ ही जीवन स्तर में भी बदलाव दिखाई देने लगता है।

कृषि एवं आय वृद्धि

कृषि एवं इससे जुड़े उद्योग (पशुपालन, मछली पालन आदि) ग्रामीण लोगों के लिए आजीविका के साथ-साथ रोजगार सृजन का महत्वपूर्ण स्रोत है। कुछ किसानों द्वारा परम्परागत खेती के स्थान पर कृषि की आधुनिक पद्धतियों के अपनाने के फलस्वरूप हाल के वर्षो में तमाम फसलों की उत्पादकता में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। कम निवेश से अधिक लाभ पाने के अवसरों से किसानों को एक नया अनुभव सिद्ध हो रहा है और उनकी इस सफलता को देखकर आस-पास के कुछ अन्य किसान भी आकर्षित होकर खेती की इन आधुनिक तकनीकों को अपना रहे हैं। विश्व बैंक द्वारा भी स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि कृषि एवं ग्रामीण विकास में उच्च दर होने से ग्रामीण निर्धनता को प्रभावी व समग्र रूप से दूर करने में महत्वपूर्ण मद्द मिलती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि किसानों की खुशहाली भारत की खुशहाली है। आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए भी कृषि का विकास आवश्यक है।

ग्रामीण विकास के समक्ष मूलभूत चुनौतियाँ

यद्यपि ग्रामीण विकास में कृषि की भूमिका अति विशिष्ट है तथापि इसके समक्ष कुछ मूलभूत चुनौतियाँ भी हैं जिसका उल्लेख निम्न बिन्दुओं द्वारा किया जा सकता है।

1. परम्परागत कृषि से जुड़ाव - अधिकांश ग्रामीण आबादी की आय का मूल स्रोत कृषि एवं इससे संबद्ध व्यवसाय है अर्थात बिना कृषि उन्नति के लोगों की आय में वृद्धि संभव नहीं है। अधिकांश कृषक विभिन्न परम्परागत कृषि को त्यागकर वैज्ञानिकों द्वारा सुझाई गई तकनीक को उपयोग करने को तैयार नहीं होते इससे उनकी आमदनी भी बाधित होती है।
2. संसाधनों का अभाव - अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में बीज, खाद, सिंचाई, विद्युत आपूर्ति, पूंजी एवं उत्पादों के विक्रय हेतु समुचित बाजार सुविधाओं आदि का अभाव बना हुआ है। सीमित संसाधनों के बूते किए गए सरकारों के विभिन्न प्रयासों के बावजूद स्थितियों में बहुत बदलाव नहीं हो सका है। सिंचाई साधनों की कमी और मानसून पर निर्भरता के कारण अधि कांश किसान ज्यादा जोखिम उठाने से डरते हैं और आधुनिक कृषि की तकनीकों को अपनाने से हिचकिचाते हैं।
3. अशिक्षा - ग्रामीण क्षेत्रों में निरक्षर आबादी आज भी कम नही है। यही कारण है कि ये समय रहते सही एवं उपयुक्त निर्णय करने में अक्सर असफल रहते है और गरीबी के साये से चाह कर भी बाहर निकल नहीं पाते।
4. जलवायु परिवर्तन - वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन के द्रष्प्रभावो को कृषि ही नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महसूस किया जा रहा है। विशेषज्ञों की दृष्टि में कृषि उत्पादन पर इसके प्रतिकूल प्रभावों के कारण फसल उत्पादन में बड़े पैमाने पर कमी आने की आशंका है। इसी कारणवश दुनियाभर में जलवायु परिवर्तन के अनुकूल फसल प्रणालियों और तकनीकों के विकास पर जोर दिया जा रहा है। ताकि फसलोत्पादन पर पड़ने वाले प्रतिकूल असर को कम-से-कम किया जा सके, अन्यथा मानव आबादी के लिए निकट भविष्य में खाद्य सुरक्षा का संकट खडा हो सकता है।
5. निम्न कृषि उत्पादकता - भारत द्वारा निरंतर कृषि उत्पादन का रिकार्ड बनाने के बावजूद यह कटू सत्य है कि विश्व के अधिकांश देशों की तुलना में कई महत्वपूर्ण फसलों और कृषि उत्पादों के मामले में देश की औसत उत्पादकता काफी कम है। समय रहते इसमें बढ़ोत्तरी करनी जरूरी है। ताकि कम-से-कम लागत में अधिकाधिक उत्पादन लिया जा सके। इससे किसानों की आमदनी में वृद्धि के साथ रोजगार के नए अवसर भी बढ़ेंगे।
6. जल की कमी - कृषि क्षेत्र जल का सबसे बड़ा उपभोगकर्ता है। बढ़ते जल संकट की वजह से जल का अत्यधिक इस्तेमाल करने वाली फसलों (धान, गन्ना आदि) का अस्तित्व संकट में आ सकता है वैज्ञानिक कम-से-कम जल के प्रयोग से उत्पादन की नई विधियाँ और ऐसी ही उपयुक्त किसमों के विकास पर निरन्तर कार्यरत हैं।
7. भण्डारण और परिवहन सुविधाओं का अभाव - अक्सर यह देखने में आता है कि बम्पर फसल उत्पादन की स्थिति में किसानों को मजबूरन इतनी कम कीमत पर अपनी फसलों (खासतौर पर सब्जियाँ और फल जैसे तुरंत खराब होने वाले उत्पादन) को बेचना पड़ जाता है कि उनकी लागत तक नहीं निकल पाती। ऐसा शीत भंडारण सुविधा तथा बाजार तक उत्पादों को पहुंचाने संबंधित समुचित परिवहन संसाधनों के अभाव में होता है।

इसके अतिरिक्त भी कई अन्य कारण हैं जिससे कृषि उत्पादन और किसानों की आमदनी बाधित होती है। इनमें ऋण सुविधा की अपर्याप्त व्यवस्था, बड़े बाजारों का स्थानीय स्तर पर अभाव, समय पर कृषि आदानों की अनुपलब्धता, छोटे कृषि जोत, वैज्ञानिक कृषि के तौर-तरीकों के प्रति उदासीनता, कृषि मशीनीकरण में पिछड़ापन इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि औद्योगीकरण के बावजूद समकालीन ग्रामीण भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार कृषि ही है, जो न केवल उसके व्यवसाय आय, रोजगार, खाद्यान्न को निर्धारित करती है बल्कि जीवन के समस्त आयामों को प्रभावित भी करती है। देश के आर्थिक विकास में योगदान के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली बहुसंख्यक आबादी की उन्नति में भी कृषि क्षेत्र की भूमिका महत्वपूर्ण है। सत्य तो यह है कि कृषि, भारतीय ग्रामीण समाज की

जीवनरेखा है लेकिन भारतीय कृषि व्यवस्था के समक्ष कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जिसे दूर किए बिना ग्रामीण विकास में गति प्रदान करना समभव नहीं है।

संदर्भ -

1. डेनियल लर्नर, मॉडर्नाइजेशन: सोशल आसपेक्टस इन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज, मैकमिलन कम्पनी न्यूयार्क उद्धृत: एम. एस. गोरे, एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली, 1967, पृ. 34
2. जी.एल. एलमण्ड एवं जे.एस. कॉलमैन-दी पालिटिक्स ऑफ डेवलपिंग एरिया- प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस प्रिंसटन, न्यूजर्सी, 1960, पृ0 87-88
3. डेविड मैक्लीलैण्ड- दी एचीविंग सोसाइटी, वान मास्ट्रैन्ड कम्पनी प्रिंसटन, न्यूजर्सी , 1961, पृ. 107
4. सिंह जसवीर, एग्रीकल्चर ज्योग्राफी, टाटा, मैक ग्रा कम्पनी, न्यू दिल्ली, 2004, पृ. 225
5. तिवारी आर.सी., कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 2004, पृ0 76
6. हुसैन माजिद, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, 2000, पृ. 181
7. कुरूक्षेत्र, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, जून 2021, पृ. 39
8. मिश्र पुरी, भारतीस अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2012, पृ. 250-51
9. एल.एन. कोली, भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2007, पृ. 154

कानपुर में चर्म उद्योग का विकास

डॉ० प्रीती त्रिवेदी

एसोसिएट प्रोफेसर, आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर

प्रस्तावना

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। लगभग 75 प्रतिशत जनता देहातों में रहती है और अपना जीविकोपार्जन कृषि उद्योग से करती है। मानव सभ्यता के आरम्भ काल से ही यह देश मशीनों की ओर प्राय: विमुख रहा है। वर्तमान मशील युग में भी बहुत पीछे है। अत: अतीत से ही यहाँ भौतिक साहाय शक्ति की उपयोगिता कार्य व्यापार में प्रधान रही है। यही कारण है कि यहाँ पालतू पशुओं की प्रचुरता रही है, जिसके फलस्वरुप यहाँ खालों का अभाव कभी नहीं हुआ। आज भी भारत में पालतू पशुओं की संख्या संसार के अन्य देशों की अपेक्षा बहुत अधिक है। परन्तु कच्चे माल की इतनी पर्याप्त सुविधा होते हुए-यहाँ चमड़े का कार्य व्यापार अधिक उन्नति-कर सका। यह एक विचारणीय समस्या है।

भारत वर्ष में चमड़े की प्रारम्भिक उत्पत्ति के विषय में अधिक जानकारी नहीं, पर हॉ, प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में ऋषि, महर्षियों द्वारा मृग चर्म (मृगछाला) के प्रयोग किये जाने का उल्लेख मिलता है। संसार में भारतीय सभ्यता बहुत पुरानी रही है और यह सिद्ध है कि प्राचीन निवासी अधिकतर जंगलों तथा गिरि कन्दराओं में रहते थे। वे जंगली पशुओं का शिकार करते थे और उनके मॉस से उदर तृप्ति करते थे, वह चमड़े का भी व्यवहारिक उपयोग अवश्य करते थे। परन्तु कला के उतरोत्तर विकास का अल्प कमबद्ध इतिहास उपलब्ध है।

मुगल सम्राट हुमायूं के समय में चमड़े की महानता का स्वरूप मदा रूप में केवल 24 घन्टे के लिए आता है जबकि अपनी जान बचाने के उपलक्ष्य में उसने भिश्ती को एक दिन के लिए उत्तरी भारत का समाट बना दिया था।

इसके अतिरिक्त भारतीय कृषकों के बीच सिंचाई के प्रयोग में चमड़े के चरसे का स्थान रहा है।

वैदिक काल में ही आर्यों और अनार्यों के वर्ण विभाजन के साथ-2 उनके कार्यों का भी विभाजन हो चला था। आगे चलकर कर्मों के ही नाम पर विभिन्न जातियों की उत्पत्ति हुई। चमड़े का कार्य जिस जाति के हाथ में आया, उसे ''चर्मकार'' के नाम से घोषित किया गया। अभी 20वीं शताब्दी के आरम्भ तक चमड़े का कारोबार चर्मकार कही जाने वाली जातियों के हाथ में था। उस समय तक इस कार्य को बहुत तुच्छ समझा जाता था और इसके सर्वाधिकारं चर्मकार ही थे, परन्तु आज परिस्थिति बहुत कुछ परिवर्तित दिखाई पड़ती है। जहाँ पर इस कार्य को अशिक्षित लोग ही करते थे, वहाँ अब इसमें शिक्षित लोग भी हाथ बढ़ाने लगे है। उच्च वर्ग के लोग भी व्यापारिक दृष्टि से इसकी उपयोगिता का मूल्य समझकर अपनाने लगे है। परन्तु इस समय अब वह पुरानी बात नहीं है कि चमड़े के काम करने वाले को चर्मकार ही कहा जाए और न यह सभी लोग इस कार्य को पूर्ण रूप से ही करते ही है। ''चर्मकार' शब्द तो उन्ही शोषित जनों के लिए प्रयुक्त होता है, जो इसके प्राचीन काल से कार्यकर्ता रह चुके है, और अब भी इसके प्रारम्भिक कार्य तथा जानवर की खाल उतारना, रंगना तथा अधिकतर सफाई करना आदि वहीं करते है। जब वही खाल स्वच्छ और दुर्गन्ध रहित हो जाती है तो अन्य लोग भी उपयोग में लाते है।

भारत वर्ष के उत्तर प्रदेश में कानपुर शहर चमड़ा उप्रोग में महत्वपूर्णस्थान रखता है। क्या आज से लगभग 700 वर्ष पूर्व गंगा स्नान के लिए आए हुए महाराज कान्हदेव के मन में उस छोटे से ''कान्हपुर' की करने के समय इसके इतने बड़े धन कुबेरों की नगरी होने की साधारण कल्पना भी उठी होगी? कौन जानता था कि इतनी शीघ्रता से यह छोटा सा गॉव भारत वर्ष के सबसे बड़े नगरों में हो जाएगा। परन्तु औद्योगिक नगरों का महत्त्व किसी राजा अथवा सम्राट की कृपा पर निर्भर न रहकर अपनी उपयोगी स्थिति पर निर्भर रहता है। पुण्य सलिला भगवती भागीरथी के दाहिने तट पर स्थिति कानपुर की एक विशेष स्थिति रही है।

कानपुर की उन्नति विशेष रूप से यहाँ अंग्रेजों के आगमन के पश्चात हुई। सन 1773 की जाजमऊ की सन्धि के पश्चात अंग्रेजों से कानपुर का सम्बन्ध स्थापित हुआ। सन 1765 की सन्धि के अनुसार समाट शाहआलम को इलाहाबाद में ही रहना चाहिये था। परन्तु समाट के वहाँ से चले आने के कारण कम्पनी सरकार ने उसे सन्धि भंग समझा तथा लार्ड क्लाइव ने सन 1773 ई० में ही अवध के नवाब शुजाऊद्दौला से हुई अस्थाई सन्धि को फैजाबाद में स्थाई रूप दिया। इसके साथ ही कानपुर से अंग्रेजों का सम्बन्ध स्थापित होना आरम्भ होता है। यद्यपि अवध के शासन काल से ही यहाँ व्यापारिक प्रसार प्रारम्भ हो गया था, फिर भी भारतीय व्यापारी कानपुर की महत्वपूर्ण स्थिति को न ऑक सके। वह जाति जो सात समुद्र पार करके केवल व्यापार करने के लिए ही इस देश में आई थी तथा व्यापार के द्वारा ही अपना सामाज्य स्थापित कर लिया। भला कैसे इसकी उपयोगिता से आंखे बन्द कर सकती थी। फलस्वरूप विदेशी व्यापारियों ने गंगा के किनारे इसकी महत्वपूर्ण स्थिति को समझा और और कम्पनी की एजेंसी सन 1776 ई० में यहाँ स्थापित हो गई। व्यापारिक प्रगति को देखकर कम्पनी के भाग्य विधाताओं, यूरोपियन व्यापारियों को अपनी दुकानों और गोदामों की रक्षा के लिए फौज रखने की अत्यधिक आवश्यकता प्रतीत हुई और फलस्वरूप सन 1778 में विलग्राम की फौजी छावनी हटकर कानपुर आ गई। छावनी के स्थान परिवर्तन का दूसरा कारण यह भी था कि कानपुर की व्यापारित प्रगति के साथ अंग्रेजों की राजनैतिक प्रगति भी हो चली।

कानपुर से अवध तथा दोआब पर भली प्रकार दृष्टि रखी जा सकती थी, इस कारण भी छावनी का कानपुर लाना आवश्यक था। परिणाम यह हुआ कि कानपुर की चहल-पहल बढ़ गई तथा जाजमऊ, इटावा, औरैया. फर्रुखाबाद कन्नौज, बिलग्राम, मिरजापुर, कालपी, हमीरपुर, बाँदा, खजुआ, जहानाबाद, फतेहपुर, लखनऊ, उन्नाव आदि के बहुत से परिवार गल्ला, किराना, कपड़ा तथा नील के व्यापार और फौज व कमसरियट की नौकरी-ठेकेदारी अथवा इसी प्रकार की अन्य सुविधाओं के कारण यहाँ आ बसे। सन 1801 ई में कानपुर पूर्णरूपेण अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

कानपुर शहर इस थोड़े स समय में, जिसे कठिनता से 100 वर्ष भी नहीं हुए, ऐसा विशाल चमड़ा उद्योग के उत्पादन का नगर बन गया। जबकि दूसरे शहर इस उद्योग में इतना विकास नहीं कर सके। कानपुर जिले के 100 वर्ष पुराने इतिहास की ओर नजर डालें तो पता चलेगा कि हमारे जिले में सभी तरह के उद्योग धन्धे किसी न किसी स्थान पर किसी न किसी रूप में मौजूद थे जो सर्वसाधारण की जरूरतों को पूरा कर रहे थे ओर जिनके आधार पर हमारे इन अर्वाचीन उद्योग धन्धों के विकास और प्रसार में मदद मिली है। कानपुर में अंग्रेजी शासन की प्रतिष्ठा होने तथा वहाँ सैनिक छावनी स्थापित होने पर मठ चमड़ा उद्योग नगर में केन्द्रित हो गया, जिसके फलस्वरूप कानपुर विशाल औद्योगिक नगर बन गया।

स्वतन्त्रता के पहले कानपुर में जिस उद्योग की उन्नति हुई वह चमड़े का उद्योग है।

प्राचीन काल में जाजमऊ से लेकर बिठूर तक घना जंगल था। ऊसर बंजर भी हमारे जिले में बहुत मिलता है। इसी कारण जानवर भी यहाँ बहुत बड़ी संख्या में पाले जाते रहे हैं जानवरों के पालने के बाद उनका मरना स्वभाविक ही है, हमारे जिले में चर्मकारों की सख्या अत्यधिक रही है। अतएव यहाँ के चर्मकारों ने उनके उपयोग करना आरम्भ किया।

चमड़े के उद्योग में कच्ची खालों का व्यापार बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। खालें दो प्रकार की होती है, एक तो ''मुर्दारी', अर्थात जानवरों की खालें जो अपनी मृत्यु से मरते है, और दूसरी ''हलाली, ये खाले जो जानवरों को मारकर तैयार की जाती है। यानपर प्रकार की खालों का काफी व्यापार होता है। इन खालों को उतार कमाना चर्मकारों का काम रहा है। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात चमड़े का व्यापार खूब चमका, छावनी के स्थापित हो जाने के का नगर की बस्ती बढ़ने लगी। आस पास के गांवों की छोटी जातियां जमीदारों के अत्याचारों से त्रस्त होकर शहर में जीविकोपार्जन के निमित्त आने लगी। फलस्वरूप फौज की आवश्यकता के लिए छोटे-2 ठेकेदार इन चर्मकारों से बूट तथा कारतूस की पेटियां, घोड़ों की साज सामान बनवाने लगे पहले यह उद्योग छोटे रूप में ही चलता रहा। परन्तु आगे चलकर इसे बढ़ाने की? आवश्यकता प्रतीत हुई और उसके लिए यहाँ पूरी सुविधा थी।

अर्थशास्त्र की दृष्टि से किसी भी क्षेत्र में उद्योग की उन्नति और प्रसार के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है-

1. कच्चा माल सरलता से पर्याप्त मात्रा में मिल जाना।
2. सस्ते श्रमिकों का मिलना।
3. बने हुए माल की खपत के लिए स्थानीय बाजार का होना।
4. यातायात साधनों का होना ताकि दूसरे स्थानों में भी उसका वितरण सरलता से हो सके।
5. उद्योग की उन्नति के लिए पूँजी का लगाना।

कानपुर और उसके आसपास क्षेत्र के हरा-भरा होने के कारण, जानवर बहुत बड़ी संख्या में पाले जाते रहे है। उन्नाव, फतेहपुर आदि में भी पशुपालन का पर्याप्त काम रहा है। अत: कच्चा माल प्राप्त होने की दृष्टि से चमड़ा खूब मिलता रहा है क्योंकि जानवरों के मरने से उनकी खाल चर्मकार लोग उपयोग में लाते रहे है। दूसरी ओर चमड़ा रंगने के लिए बबूल की छाल काम में आती है, जो कानपुर में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है।

बबूल की उपज के उच्च तापकम तथा ऊसर भूमि सबसे अधिक लाभप्रद है। ऊसर भूमि सबसे अधिक लाभप्रद है। ऊसर क्षार (अलकली), अधिक मात्रा में होता है। जो बबूल की उन्नति के लिए लाभप्रद है। ऊसर की क्षार भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए आरोपण की योजना भारत सरकार काम में लाने जा रही है। चूंकि बबल का खाद्य पदार्थ क्षार ही है। इस कारण बबूल की खेती से क्षार निकल जाता है और उपजाऊ भूमि रह जाती है। कृषि विभाग के खोल निकला है कि अपने आस पास के जिलों की भूमि विशेष रूप से उन्नाव की भूमि संसार भर में सबसे अधिक क्षार वाली भूमि है। चमड़े के उद्योग की उन्नति के लिए घबूल की छाल सबसे आवश्यक वस्तु है। जो कानपुर तथा आस पास के जिले उन्नाव आदि से बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त होती रही है। इस प्रकार प्रारम्भिक काल से ही चमड़े का व्यापार उत्तरोत्तर उन्नति करता गया और आज कानपुर नगर न केवल भारतवर्ष के ही वरन संसार के चमड़े के व्यापार में प्रमुख स्थान रखता है।

सस्ते श्रमिकों की दृष्टि से यहाँ चर्मकारों, जो चमड़े के काम में काफी...कुशल कारीगर थे, गाँवों के अत्याचारों ने उन्हे शहर में बसने के लिए बाध्य किया और दूसरे देशों की अपेक्षा थोड़ा पारिश्रमिक पाने पर भी वे योग्यता से काम करने लगे।

कानपुर में छावनी होने के कारण चमड़े के लिए बाजार खोजने की भी आवश्यकता नहीं पड़ी और बड़ी मात्रा में यहाँ की बनी हुई वस्तुओं की खपत होने लगी। आगे चलकर रेलवे और पक्की सड़क बन जाने पर यातायात की कोई असुविधा न रही और गंगा के किनारे होने के कारण पहले भी जिससे यहाँ के व्यापार को अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से सभी प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हो गई और किसी प्रकार की अड़चन सामने न रही।

कानपुर में दोनों प्रकार की खालों की आमदनी और रवानगी भी काफी होती है। कानपुर में मुर्दारी खालें गोरखपुर से पर्याप्त मात्रा में आती है, अन्य जिले जहाँ से खालें आती है-लखीमपुर, सीतापुर, उन्नाव, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद, बरेली, फतेहपुर. इलाहाबाद, (भरवारी के बाजार से) बांदा, हमीरपुर, मकनपुर, फर्रुखाबाट बहराइच, गोण्डा, बस्ती, आगरा। नेपाल की खाले भी बहराइच जिले से आती है।

''हलाली'' खालों का आयात रामपुर, मुरादाबाद, अम्बाला, झाँसी. ललितपुर, बरेली, बुलन्दशहर, खुर्जा, देहली, मथुरा, अली हमीरपुर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और फर्रुखाबाद से होता है। किसी समय ''हलाली'' खाले सागर से बहुत आया करती थी।

कानपुर के बाजार से खालों का निर्यात, बुदेलखण्ड, आगरा, जयपुर, जोधपुर, ग्वालियर, दिल्ली रेकड़ी और इलाहाबाद तथा पंजाब के कुछ नगरों को होता है। मदास और कलकत्ते के बन्दरगाओं को भी यहाँ से माल जाता है और वहाँ के जहाजों द्वारा विदेश भेजा जाता है। मुर्दारी खाले इटली और हलाली खालें जर्मनी भेजी जाती है। भैसों और बकरियों की खाले अमेरिका भेजी जाती है। कानपुर शहर के अनवरगंज और हीरामन के पुरवा में खालों के व्यापार का बड़ा बाजार है।

चर्म उद्योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सन 1859 में राष्ट्रीय आन्दोलन के पूर्णरूप से समाप्त हो जाने पर चमड़े का कारखाना खोला गया। 1860 में कैप्टन जॉन स्टीवर्ट की देखरेख में हार्नेस डिपो खोला गया। 1860 में मि0 विलयम अनशा कूपर तथा मि० जार्ज एलेन ने सन 1880 में कूपर एलेन एण्ड कम्पनी खोली 1892 में नार्थ वेस्ट टेनरी का निर्माण मि0 एडवर्ड फ्वाय ने मि0 टी0टी0 ब्रॉन्ड के सहयोग से किया। 1920 में यह कारखाना ''विटिश इण्डिया कारपोरेशन'' में मिला लिया गया। विश्व प्रसिद्ध ब्रान्ट फ्लेक्स इसी कम्पनी का उत्पादन था। सन 1900 में वान्डर वेन्स ने वेन्स टेनरी एण्ड लेदर इक्विपमेन्ट फैक्ट्री खोली जो बाद में कूपर एलेन में मिला ली गयी। इसके बाद में मि० शीवान ने जाजमऊ में अपनी निजी टेनरी खोली। जिसकी ख्याति दूर-2 तक फैली और सून साहब के चमड़े के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसके अतिरिक्त कानपुर टेनरी, इण्डियन नेशनल टेनरी, यूनाईटेड प्राविन्सेज टेनरी, एस०पी० टेनरी, यू0पी0 टैनरी भी है।

आज कानपुर में प्राइवेट क्षेत्र में चमड़ा उद्योग पनप रहा है। जाजमऊ में टेनरियाँ भी चल रही है और गंगा को प्रदूषित भी कर रही है। यहाँ छोटी बड़ी लगभग 300 टेनरियाँ है। मिर्जा टेनर्स (प्रा0) लिमिटेड कानपर की चर्म उद्योग की सबसे बड़ी कम्पनी है।

इसके मालिक इरशादपुर के प्रमुख उद्योगपति है। इनकी टैनरी और जूता बनाने की पाँच इकाईयाँ है। दूसरी चमड़े की बड़ी कम्पनी सुपर इण्डस्ट्रीज है जिसका मुख्यालय कानपुर में है और फैक्ट्री उन्नाव में है।

प्रशिक्षण केन्द्रों में कार्य

उत्तर प्रदेश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक रूप से मरे पशुओं की खाल के व्यवसाय का महत्व समझकर ही सरकार ने सर्वप्रथम अक्टूबर 1953 को खाद्य तथा कृषि विशेषज्ञ की देखरा में लखनऊ स्थित वक्शी के तालाब में खाल उतारने और कमाने का केन्द्र खोला। इस केन्द्र का मुख्य उद्देश्य खाल के व्यवसाय, अर्थात खाल उतारने और चमड़ा कमाने के लिए ग्रामीण चर्मकारों द्वारा काम में लाए जाने वाले उपायों में सुधार करने के लिए व्यवहारिक प्रदर्शन करना तथा धीरे-2 ग्रामीण क्षेत्रों में सुधरे हुए तरीकों का प्रचार करना था।

इस केन्द्र में व्यवहारिक प्रदर्शन करने की सुविधाए दी गयी है और 1953 के आरम्भ में ही मरे पशुओं की खाल का व्यवसाय करने वालों को दो महीने की ट्रेनिंग बराबर दी जा रही है।

इस विशेषज्ञ प्रशिक्षण केन्द्र ने सिफारिश की है कि चुने हुए क्षेत्रों में विशेषकर सामुदायिक योजना क्षेत्रों मे देहाती खाल उतारने तथा साफ करने वालों की सहकारी समितियाँ बनाई जाए, जो गाँवों में खाल उतारने के स्थान निर्मित करें, सुधरे तरीकों का प्रचार करें। खालों तथा अन्य वस्तुओं की हाट व्यवस्था करे ओर खालों तथा अस्थि पंजरों आदि के लाने ले जाने का प्रबन्ध करे। चमड़ा बनाने की देहाती मशीनों के निर्माण को बढ़ावा देना चाहिए और उनका मूल्य इतना कम होना चाहिए ताकि चमड़ा बनाने की सामग्री तैयार करने के लिए बबूल के पेड़ विशेषकर ऐसे देहाती क्षेत्रों में अधिकता से लगाए जाए जहाँ चमड़ा कमाने का उद्योग चल रहा हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरून भट्टाचार्य-हिस्ट्री आफ मार्डन इण्डिया
2. आई०पी० देसाई-हिस्ट्री आफ रूरल डेवलेपमेंट इन मार्डन इण्डिया
3. बसु-इण्डस्ट्रियल केडिट इन प्री वार एण्ड पोस्टवार
4. इकोनामी
5. चटेर्ट्टन-इण्डिस्ट्रियल इल्यूलुशन इन इण्डिया
6. अग्निहोत्री, विद्याधर-फैक्ट्री वर्कर इन कानपुर अ सोशो, इकोनामिक स्टडी
7. कुलकर्णी एम.आर.-औद्योगिक विकास .
8. शर्मा रामविलास-भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद
9. पाण्डेय विनयचन्द्र एवं-स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं उत्तर प्रदेश
10. सिंह, सुनीत
11. राईटस, पी0ई०-ब्रिटिश कालीन भारत का इतिहास
12. चर्तुवेदी, कैलाशनाथ-आधुनिक भारत का इतिहास
13. कुमार, विमल-चर्म उद्योग का इतिहास एवं वर्तमान स्थिति
14. दत्त सी०आर०-हिस्ट्री आफ एनसिएन्ट एण्ड मार्डन इण्डिया
15. मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद-आधुनिक भारत का इतिहास
16. म्योर, किशनलाल-चर्मकला भाग-एक
17. त्रिपाठी एण्ड अरोड़ा-कानपुर का इतिहास (भाग 2.30)

भारत में संस्कृतिकरण व ग्रामीण परिवर्तनः एक दृष्टि

डॉ० राजेश कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, शहीद स्मारक राजकीय महाविद्यालय, यूसुफपुर मुहम्मदाबाद, गाजीपुर, उ०प्र०

भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन एक महत्वपूर्ण विषय है। भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन की कई महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ कार्य करती रही हैं, जैसे- संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण, नगरीकरण, लौकिकीकरण, औद्योगिकीकरण आदि-आदि। भारतीय सामाजिक मानवशास्त्री एवं समाजशास्त्री मैसूर नरसिम्हाचार श्रीनिवास ने हिन्दू जाति-व्यवस्था एवं संरचना में परिवर्तन के अध्ययन के लिए संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण के सम्प्रत्ययों को 1952 में विकसित किया। आपने दक्षिण भारत में मैसूर के कुर्ग लोगों को अध्ययन करते समय पाया कि निम्न जातियों के समूहों ने ब्राह्मणों की प्रथाओं, कर्मकाण्डों, जीवन-पद्धतियों, भोजन सम्बन्धी शाकाहारी आदतों, वेशभूषा आदि का अनुकरण करके जाति-संस्तरण में एक-दो पीढ़ियों में उच्च स्थिति प्राप्त करने का प्रयास किया है। प्रारम्भ में श्रीनिवास ने निम्न जातियों द्वारा ब्राह्मणों की संस्कृति के अनुकरण की प्रक्रिया की व्याख्या करने के लिए ब्राह्मणीकरण सम्प्रत्यय (अवधारणा) का प्रयोग किया था। लेकिन बाद में आपने पाया कि निम्न जातियाँ ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य उच्च जातियों की संस्कृति का भी अनुकरण करती हैं, जिस प्रक्रिया की व्याख्या ब्राह्मणीकरण द्वारा स्पष्ट नहीं हो पाती है। इसलिए आपने ब्राह्मणीकरण के स्थान पर संस्कृतिकरण सम्प्रत्यय को अधिक विस्तृत एवं उपर्युक्त पाकर इसका प्रयोग करना प्रारम्भ किया।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्रीनिवास के अनुसार-'संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक 'निम्न' हिन्दू जाति या जनजाति या अन्य समूह अपनी प्रथाओं, कर्मकाण्डों, विचारधारा और जीवन के तरीके को उच्च और अधिकतर 'द्विज जाति' की दिशा में बदलती है। सामान्यतः ऐसे परिवर्तनों के बाद निम्न जाति, जातीय संस्तरण की प्रणाली में, स्थानीय समुदाय में उसे परम्परागत रूप से जो स्थिति प्राप्त है, उससे उच्च स्थिति का दावा करने लगती है। सामान्यतः बहुत दिनों तक, बल्कि वास्तव में एक-दो पीढ़ियों तक दावा किए जाने के बाद ही उसे स्वीकृति मिलती है।'

संस्कृतिकरण नवीन एवं अधिक उत्तम विचार, आदर्श, मूल्य, आदत तथा कर्मकाण्डों को अपनाकर अपनी जीवन-स्थिति को अधिक उन्नत व परिमार्जित बनाने का ही एक प्रक्रिया है क्योंकि संस्कृतिकरण वास्तव में 'संस्कृत' या 'संस्कृति' शब्द से सम्बन्धित है। 'संस्कृति' शब्द संस्कार का रूपान्तर है। एक हिन्दू को अपने जीवन को परिमार्जित करने के लिये अनेक प्रकार के संस्कारों को करना पड़ता है और उसके बाद कहीं वह 'संस्कृत' (परिमार्जित) कहा जाता है। इस प्रकार एक हिन्दू की जीवन-स्थिति को परिशुद्ध व परिमार्जित करने के लिए आवश्यक कृत्यों या संस्कारों की योजना को 'संस्कृति' मान लिया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से विवेचना करने पर भी यह स्पष्ट है कि संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा निम्न जाति या समूह के लोग अपनी जातीय या सामाजिक स्थिति को परिशुद्ध, परिमार्जित व उन्नत करने के उद्देश्य से उच्च जाति के आदर्शों, मूल्यों, विचारों, कृत्यों तथा संस्कारों को ग्रहण कर लेते हैं।

ग्रामीण भारत में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के द्वारा निम्न जातियों या अन्य समूहों की सामाजिक स्थिति, रीति-रिवाज, आदर्श, मूल्य, कर्मकाण्ड, विचार आदि में उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहा है।

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के माध्यम से कोई भी जाति या समूह अपने से उच्च (विशेषतः द्विज जाति) के रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और मूल्यों को अपनाने का प्रयत्न करता है, जिसके फलस्वरूप निम्न जाति, जनजाति या समूह के रीति-रिवाज आदि में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन हो जाते हैं।

संस्कृतिकरण के द्वारा निम्न स्तर की जाति या समूह सामाजिक सोपान में उतार-चढ़ाव के क्रम में अपनी वर्तमान स्थिति से उच्च स्थिति प्राप्त करने का प्रयास करता है। फलत: जातीय या सामाजिक संस्तरण और संरचना में भी उसी के अनुरूप परिवर्तन होता जाता है।

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया निम्न जाति या समूह द्वारा उच्च जाति का अनुकरण करने से चलती है। इसका परिणाम यह होता है कि उच्च जाति की विशिष्टता और प्रभुत्व धीरे-धीरे परिवर्तित होता जाता है। सामान्य रूप से संस्कृतिकरण एक जाति को जातीय संस्तरण में ऊँचा पद प्राप्त करने योग्य बनाता है और उस योग्यता के प्राप्त होने का अर्थ यही होता है कि उच्च जाति की अपनी विशिष्टतायें अपने पृथक् अस्तित्व को बनाये रखने में असफल रहती है। इसका सरल अभिप्राय यही है कि संस्कृतिकरण जातीय आधारों में खुलापन लाता है और जातीय गतिशीलता को सम्भव बनाता है। इसे एक उल्लेखनीय परिवर्तन कहा जा सकता है जो कि संस्कृतिकरण के कारण ही सामने आता है।

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया केवल जाति में ही नहीं अपितु अन्य समूहों में भी देखी जा सकती है। इससे यह बात स्पष्ट है कि संस्कृतिकरण केवल जातीय संरचना व संस्तरण में ही नहीं अपितु सामाजिक संरचना व संस्तरण में भी उल्लेखनीय परिवर्तन ला सकता है और लाता भी है। यह परिवर्तन जीवन के ढंग से लेकर सामाजिक स्थिति तक हो सकता है।

संस्कृतिकरण के द्वारा सामाजिक संरचना में ऊँचे पद या स्थिति का दावा किया जाता है, जिसके फलस्वरूप निम्न जाति या सामाजिक समूहों की नीचे से ऊपर की ओर गतिशीलता बढ़ जाती है। इस गतिशीलता का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन पर भी अवश्य ही पड़ता है। वास्तव में संस्कृतिकरण के अन्तर्गत मुख्यत: ब्राह्मण जाति को और सामान्य रूप में द्विज जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रीय व वैश्य) को निम्न जातियों तथा अन्य सामाजिक समूहों के सदस्य 'आदर्श' के रूप में मानते हैं और इसीलिये उनके साथ हर विषय में समरूपता स्थापित करने में गौरव का अनुभव करते हैं। डॉ0 निवास ने स्वीकार किया है कि ब्राह्मण आदर्श के अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र आदर्श भी संस्कृतिकरण के आदर्श हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, अनेक निम्न जाति के शूद्र अपने को कायस्थ होने का दावा करते हैं और कायस्थों के जीवन-प्रतिमान के साथ समरूपता स्थापित करके अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा व पद को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार के सभी प्रयत्नों का परिणाम अन्तत: सामाजिक परिवर्तन ही होता है।

आधुनिक समय में भारतीय ग्रामीण समाज में कुछ ऐसी अवस्थायें हैं, जिनके कारण संस्कृतिकरण की प्रक्रिया की क्रियाशीलता सरल हो जाती है। वे सहायक अवस्थायें- आधुनिक शिक्षा, धन का महत्व, यातायात और संचार के साधनों में उन्नति, राजनैतिक सत्ता, सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन, सामाजिक अधिनियम आदि हैं। जिनका विवरण निम्न है-

अंग्रेजों ने भारत में ऐसी शिक्षा का प्रचलन किया जो कि धर्म-निरपेक्ष थी और समानता के सिद्धान्तों पर आधारित थी। अत: 16वीं शताब्दी तक जो शिक्षा ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा कायस्थों तक ही सीमित थी वह आज सभी जातियों तक फैल चुकी है और लोगों को अपनी-अपनी स्थिति को उन्नत करने के लिए प्रेरित कर रही है। यह आधुनिक शिक्षा का ही परिणाम है कि गाँव के लोग भी यह जानते है कि समाज में ऊँचा पद या स्थान प्राप्त करने के लिए जातीय नियमों का पालन उतना आवश्यक नहीं है जितना कि शिक्षा के आधार पर व्यक्तिगत योग्यता को बढ़ाना। साथ ही, आधुनिक शिक्षा के आधार पर ही आज प्रजातन्त्रीय व समानता के सिद्धान्तों की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। ये सिद्धान्त इस बात पर बल देते हैं कि जन्म और परिवार के आधार पर ऊँच-नीच का विभाजन उचित नहीं और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत उपलब्धियों के आधार पर अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने का अधिकार है। अत: स्पष्ट है कि संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में आधुनिक शिक्षा का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है।

आधुनिक ग्रामीण भारत अपने परम्परागत आध्यात्मिक रास्ते से हटकर उत्तरोत्तर भौतिकवादी होता जा रहा है, जिसके कारण आज ग्रामीण समाज में धन का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। इसीलिये धन के बल पर सामाजिक सोपान में उच्च स्थिति को भी प्राप्त करना सरल हो गया है। एक धनी व्यक्ति से उसकी जाति के सम्बन्ध में भला आज कौन प्रश्न करता है? यही कारण है कि जिसके पास धन है उसके लिये उच्च जाति के रहन-सहन, रीति-रिवाजों, विचारों और मूल्यों को अपनाने में कोई परेशानी नहीं होती है। यह इसलिये सम्भव होता है क्योंकि नवीन अर्थव्यवस्था में धन कमाने के अवसर भी सभी जाति के सदस्यों के लिये समान रूप से उपलब्ध है। फलत: प्रत्येक जाति के सदस्य आज अपनी योग्यता, शिक्षा, कुशलता आदि के आधार पर अधिकाधिक धन कमाने का प्रयत्न करते है और उसी के बल पर अपनी सामाजिक या जातीय स्थिति को ऊँचा उठाते हैं।

आधुनिक ग्रामीण भारत में यातायात और संचार के साधनों में तेजी से उन्नति होती जा रही है, जिसके फलस्वरूप यहाँ एक ओर सामाजिक गतिशीलता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और दूसरी ओर नये-नये उद्योगों, व्यवसायों, कृषि के यंत्रीकरण आदि का भी विकास होता जा रहा है। परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के जाति, धर्म व प्रदेश के लोगों का पारस्परिक सम्पर्क और विचार-विनिमय का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। इससे संकुचित विचारधारा और दृष्टिकोण का अन्त होता है और उसी के साथ जाति-पाँति की कठोरता भी। इससे संस्कृतीकरण की प्रक्रिया को मदद मिलती है।

आधुनिक भारत ने प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया है। साथ ही, ग्रामीण समुदायों में पंचायती राज की स्थापना हो चुकी है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसकी सामाजिक या जातीय स्थिति कुछ भी हो, अपनी योग्यता, कार्य-कुशलता, राजनैतिक चतुरता व दलगत स्थिति के आधार पर राजनैतिक सत्ता या शासन की बागडोर को हथिया सकता है और एक बार शासन की बागडोर हाथ में आ जाने पर जातीय स्थिति को भला कौन पूछता है। ऐसी अवस्था में इन लोगों के लिये यह सम्भव होता है कि वह उच्च जाति के सांस्कृतिक प्रतिमान को सरलता से अपना लें और जातीय सोपान में अपनी स्थिति को भी ऊँचा उठा लें। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राजनैतिक सत्ता भी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में एक सहायक अवस्था है।

कुछ सामाजिक व धार्मिक आन्दोलनों ने भी ग्रामीण भारत में संस्कृतीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया। उदाहरणार्थ, भक्ति आन्दोलन के कारण निम्न जाति के कुछ व्यक्ति धार्मिक नेता बन सके। इनमें निम्नजाति के लोग भी थे। अनेक भक्त महिलायें भी सन्तों की कोटि में गिनी जाने लगीं। इस सम्बन्ध में गांधीजी द्वारा चलाया गया निम्न जातियों के लिए आन्दोलन भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस आन्दोलन के फलस्वरूप अब तक 'अछूत' कहलाने वाले लोगों को अपनी जातीय स्थिति को उन्नत करने और उच्च जाति के सांस्कृतिक प्रतिमान को अपनाने में अवश्य ही मदद मिली है। उसी प्रकार बंगाल में ब्रह्म समाज, बम्बई में प्रार्थना समाज तथा पंजाब व उत्तर प्रदेश में आर्य समाज द्वारा चलाये गये धार्मिक आन्दोलनों के अन्तर्गत जाति-पाँति के भेदभाव को दूर करने तथा निम्न जातियों के उत्थान के लिये उल्लेखनीय प्रयत्न किये गये। इन प्रयत्नों से निम्न जाति के अनेक लोगों ने लाभ उठाया और अपनी जातीय स्थिति को सुधारने की दिशा में कदम उठाया।

भारत में कुछ सामाजिक अधिनियम भी संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में सहायक सिद्ध हुए हैं। उदाहरणार्थ, 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955' के अन्तर्गत 'अस्पृश्यता' का अन्त कर दिया गया है और यह निर्देश दिया गया कि तथाकथित 'अछूत' जातियों के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव करना अपराध होगा जो कानून के अनुसार दण्डनीय होगा। इससे इन जातियों के लिये उच्च जाति के सांस्कृतिक प्रतिमान को अपनाने में मदद मिली है। उसी प्रकार सन् 1954 के 'विशेष विवाह अधिनियम' ने अन्तर्जातीय विवाहों की वैधानिक अड़चनों को दूर करके विवाह के माध्यम से निम्न जातियों के सदस्यों के लिए उच्च जातियों की 'दुनिया' में प्रवेश को सरल बना दिया है।

डॉ0 श्रीनिवास के अनुसार सामान्य रूप से संस्कृतीकरण एक जाति को जातीय संस्तरण में ऊँचा पद प्राप्त करने योग्य बनाता है। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत केवल उच्च जाति के रीति-रिवाजों और आदतों को ही नहीं बल्कि उनके विचारों, मूल्यों तथा आदर्शों को भी ग्रहण करना आता है। वंश-समूह के क्षेत्र में संस्कृतीकरण वंश के महत्व पर जोर देता है और इसीलिये उच्च वंश के साथ समरूपता स्थापित करना भी संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में आता है।

संस्कृतीकरण की प्रक्रिया को बहुधा निम्न जाति की ऊपर की ओर गतिशीलता के रूप में देखा जाता है। इस गतिशीलता के परिणामस्वरूप सामाजिक या जातीय व्यवस्था में स्थिति या पद-मूलक परिवर्तन होते हैं।

संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में एक जाति विशेष को 'आदर्श' मान लिया जाता है जो निम्न जाति या जनजाति उसे आदर्श मानती है, वह अपनी उस आदर्श जाति के ही रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा व जीवन-पद्धति को अपनाने का प्रयत्न करती है, बहुधा यह आदर्श जाति द्विज जातियाँ अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ही होते हैं, जिनका कि यज्ञोपवीत संस्कार होता है। इनमें ब्राह्मण आदर्श सबसे श्रेष्ठ होता है क्योंकि द्विजों में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु आधुनिक भारतीय समाज में ब्राह्मण आदर्श के अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदर्श भी संस्कृतीकरण के 'आदर्श' हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक निम्न जाति ब्राह्मण बनने का सपना न देखकर शूद्र आदर्श को ही अपना लक्ष्य मान सकता है।

संस्कृतीकरण की प्रक्रिया का एक स्थानीय स्वरूप हो सकता है। ब्राह्मणों की तुलना में क्षत्रिय, वैश्य व शूद्रों की संस्कृति में स्थानीय सांस्कृतिक तत्व अधिक देखने को मिलते हैं। इसीलिये देश के विभिन्न भागों में क्षत्रिय या वैश्य होने का दावा करने वाली

जातियों में परस्पर गहरी भिन्नतायें मौजूद हैं। यह बात शूद्रों के विषय में और भी स्पष्ट रूप में लागू होती है। इसलिये शूद्रों में कुछ उपजातियों की जीवन-पद्धति का अत्यधिक संस्कृतीकरण स्थानीय स्वरूप के अनुसार हुआ है।

भारतीय ग्रामीण समुदायों में संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में प्रभु जाति की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। प्रभु जाति होने के लिये किसी भी जाति में तीन विशेषतायें आवश्यक है- (1) स्थानीय समुदाय में उपलब्ध कृषि योग्य भूमि में से एक बड़े भाग पर उस जाति का स्वामित्व हो, (2) उस जाति की सदस्य-संख्या काफी हो; (3) स्थानीय सोपान में उस जाति को उच्च स्थान प्राप्त हो। भारतीय गांवों में प्रभुता स्थापित करने में भूमि का मालिक होना एक बड़ा निर्णायक तत्व है। भूमि पर स्वामित्व से केवल आर्थिक शक्ति ही नहीं अपितु सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ती है और इसीलिए वह प्रभु जाति के रूप में उभरता है और संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में एक आदर्श जाति के रूप में मान लिया जाता है, चाहे जातीय सोपान में उसकी स्थिति नीची ही क्यों न हो। उदाहरणार्थ, पंजाब में कुछ भागों में जाट भूस्वामी ब्राह्मणों को अपना सेवक समझते हैं और पूर्वी उत्तर प्रदेश के माधोपुर गाँव में किसी समय प्रभुता सम्पन्न ठाकुर अपने गुरुओं और पुरोहितों के अतिरिक्त अन्य किसी ब्राह्मण के हाथ का बना भोजन नहीं खाते थे। कुछ भी हो, प्रभु जाति की अपनी एक स्थानीय प्रतिष्ठा होती है और अन्य जाति के लोग उस प्रभु जाति के व्यवहार, जीवन के ढंग आदि का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार यदि स्थानीय प्रभु जाति ब्राह्मण है तो यहाँ संस्कृतीकरण की प्रवृत्ति ब्राह्मण आदर्श की ओर होगी और यदि वह प्रभु जाति राजपूत या बनिया हो तो क्षत्रिय या वैश्य आदर्श की ओर। प्रत्येक स्थानीय प्रभु जाति की ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य आदर्शों की अपनी-अपनी अलग धारणा होती है।

संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में ब्राह्मण आदर्श को प्रायः सभी लोग सर्वश्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि इसके साथ धार्मिक तथा शुद्धतावादी आदर्श की धारणा जुड़ी हुई है। यही कारण है कि क्षत्रिय तथा अन्य मदिरासेवी और मांसाहारी समूह भी इस आदर्श की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। अधिकतर क्षेत्रों में मांसाहारी व मदिरा सेवन निम्न जातियों के चिन्ह माने जाते हैं। ब्राह्मण पुरोहित शाकाहारी होते हैं। इस प्रकार शाकाहार और मदिरा-त्याग के शुद्धतावादी आदर्श को जाति व्यवस्था में सदैव ही अन्य आदर्शों से ऊँचा माना जाता रहा है। संस्कृतीकरण इसी ऊँचे आदर्श की ओर क्रियाशील होता है।

निष्कर्षतः संस्कृतीकरण के लिए किसी विशेष आर्थिक स्तर की आवश्यकता नहीं है और न उसका किसी समूह की आर्थिक स्थिति पर कोई अनिवार्य प्रभाव पड़ता है, यद्यपि यह सच है कि आर्थिक स्तर ऊँचा होने से संस्कृतीकरण में सहायता अवश्य ही मिलती है। इसके अलावा राजनैतिक सत्ता प्राप्त होने से, शिक्षा का स्तर बढ़ने से और नेतृत्व का अवसर मिलने से संस्कृतीकरण में सहायता मिलती है। यह जरूरी नहीं कि संस्कृतीकरण के माध्यम से किसी भी जाति को जातीय-संस्तरण में ऊँचा स्थान मिल ही जायेगा। किसी अस्पृश्य जाति का संस्कृतिकरण कितना ही पूर्ण क्यों न हो वह अस्पृश्यता की बाधा को पार करने में असमर्थ है और शायद इसीलिए एक निम्न जाति को क्षत्रिय, वैश्य या ब्राह्मण की स्थिति को प्राप्त करते हम नहीं देखते।

संदर्भः

1. भारतीय समाज की संरचना, श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव, प्रकाशक साहित्य भण्डार 50, चाहचन्द, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1989
2. भारतीय समाज और संस्कृति, प्रो0 सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण 1985।
3. भारतीय समाज, जगदीश प्रसाद मिश्र, सुधा मिश्रा, भारत प्रकाशन 17 अशोक मार्ग लखनऊ-226001, तृतीय संस्करण 2001।
4. ग्रामीण समाजशास्त्र, डॉ0 एम0एम0 लवानिया, शशी के. जैन, प्रकाशक- रिसर्च पब्लिकेशन, 89 त्रिपोलिया बाजार, जयपुर, संस्करण 2005
5. ग्रामीण समाजशास्त्र, वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, प्रकाशक-पंचशील प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण-1999।
6. भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, डॉ0 रवीन्द्र नाथ मुकर्जी, डॉ0 गिरीश चन्द्र कुलश्रेष्ठ, प्रकाशक-प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली, पंचम संस्करण-1985।
7. ग्रामीण-नगरीय समाजशास्त्र, राम गणेश यादव, प्रकाशक-ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड 1/24 आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण 2014
8. भारतीय समाज तथा संस्थाएं, गोपाल कृष्ण अग्रवाल, साहित्य भवन, आगरा, संस्करण 1972
9. भारतीय सामाजिक संगठन, आर0एस0 मुखर्जी, जे0के0 अग्रवाल, साहित्य भवन, इलाहाबाद, संस्करण 1972
10. कल्चर चेन्ज इन इण्डिया, योगेन्द्र सिंह, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, दिल्ली, संस्करण 2003

रमेश रंजक के गीतो का कलापक्ष

डॉ० राम सेवक

पूर्व शोधार्थी, बरकतउल्ला विष्वविद्यालय, भोपाल, म० प्र०

रमेश रंजक की कवि-प्रतिभा के उत्कर्ष में उतरते भाषा और शिल्प क्षमता की महत्वपूर्ण भूमिका है। वह जितने अनुभव और विचारधारा के प्रति सजग और सावधान थे, उतने ही उनको अभिव्यक्ति के रूपों की तलाश थी। एक प्रगतिशील जनवादी कवि के विचार अपनाकर संघर्ष का ही हिस्सा है। रंजक ने यह बात अपने व्यापक लोकसम्पर्क से ही सीखी। वह उस जनता को भी बखूबी से जानते थे, जिसके लिए वह लिख रहे थे। उस जनता के सांस्कृतिक और मानसिक स्तर से मेल खाती हुई भाषा की उन्हें तमीज थी। भाषा की लय और छंद भी उसी जनता से जीवंत सम्पर्क का नतीजा है।

सन् 1972-1973 के बाद साहित्य में एक नया मोड़ आया। एक सन्नाटा टूटा है, आवाजें उभरी है और प्रगतिशील विचारधारा का एक नये रूप में जन्म हुआ। कुछ गीतकार बड़ी तेजी से उछल कर आये, जिनमें ओम प्रभाकर, नईम, रमेश रंजक, शलभ आदि के नाम तो विशेष रूप से लिए जा सकते है। उनके बाद भी और कई कवि, गीतकार और लेखकों आदि की एक लम्बी कतार है, जिसमे उस समग्रता को तलाश करना, जिस समग्रता को हमने रंजक में पाया था। इस दृष्टि से हम देखते हैं कि किसी कवि में रूमानीपन ज्यादा है तो किसी में नगरबोध, किसी में माधुर्य तो किसी में सौदर्यवादी दृष्टि, किसी में टूटन है तो किसी में अकेलापन भी, किसी में जुझारूपन है तो माधुर्य गायब, किसी में बिम्ब विधान गायब। इस तमाम दृष्टि से जब रमेश रंजक के गीतों का अध्ययन करता हूँ तो आश्चर्य होता है। शिल्प और सादाबयानी दोनों में रंजक की गति बेजोड़ है।

एक तरह से देखा जाय तो साठ का दशक कविता के क्षेत्र में बगावतों का दौर रहा है। यह बगावत केवल विचार के स्तर पर ही नहीं थी, बल्कि विचार को सम्प्रेषित करने वाली भाषा, शिल्प और रूप विधान के प्रति भी थी। इससे ज्यादा अवैज्ञानिक बात यह होगी कि हम एक रचनाकार मसलन रमेश रंजक के बारे में यह मान ले कि उन्होंने इस दौर में एक नये शिल्प को ईजाद कर दिया। सच्चाई यह है कि रंजक भी विरासत में मिली शिल्प की अनेक परम्पराओं को आत्मसात करते हुए एक नये माध्यम की खोज के लिए संघर्षरत रहे और जब उनके गीतों ने आंखें खोली तब उनके सामने छायावादोत्तर गीत कवियों की दुनिया ही मौजूद थी।

रंजक के काव्य में रूमानी विचारधारा ''किरन के पांव' से होती हुई जब ''गीत विहग उतरा' के गीतों तक आती है, तब याद 'अमृत की बूंद' होकर वर्तमान को नया जीवन प्रदान करती है और कवि कहता है।

''अमृत की बूँद हुई याद एक पल की
याद एक पल की
धुँधली तस्वीरों को पोंछ दिया?
सतरीं सवेरे ने
पर्वतों गुहाओं में दम तोड़ा
'अजगरी अँधेरे ने
खामोषी चीर गई आरती कमल की
याद एक पल की।''[1]

रूमानी भावधारा में ऐसे अनेक गीत रंजक के लिए जा सकते है। किशोर भावुकता में षिल्प का साधव 'किरन के पांव' की मुख्य विषेषता हैं। 'माणिक अधर नीलमी आँखें', 'ये पुखराज बदन' इसी संकलन का गीत है। इसमे रंग साम्य के आधार पर एक सजी हुई नायिका के अंगो और परिधान को पत्थरों से रूपायित किया गया है। पत्थरों को जौहरी जिस लालच में देखता है, उसी लालच से किशोर भावुक मन रत्नों से सजी हुई उस नायिका को प्राप्त करने में विकल हैं। 'कोमल काया से क्यों बाँधा इतना पाहनपन, इस गीत की अन्तिम पंक्ति कितना भोला-सा प्रष्नचिन्ह लगा देती है। नायिका कच्चा यह नख-शिख वर्णन साहित्य की नख-शिख परम्परा में एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक अन्य उदाहरण में कवि सौन्दर्य को लम्बे बालों में न देखकर 'बाब कट' बालों में देखना कवि की आधुनिक दृष्टि को रेखांकित करता है।

''अलकों के उद्धरण-चिन्ह में
तुम थी नये शिल्प की रचना
सजल रूप की सरस त्रिवेणी
तुम अमिधा, लक्षणा, व्यंजना
बाँध गई आलोचक लोचन
अर्थ भरी मुस्कान तुम्हारी।''[2]

रंजक जी के यहाँ आम बोलचाल का मुहावरा भी एक ऊँचा विचारधारात्मक अर्थ से सम्पन्न रहता है। अर्थ की शक्ति से षिल्प का महत्व बढता हैं। इस नियम का निर्वाह रमेश रंजक जैसे कवियों में ही मिलेगा 'भौहें तनना' मुहावरे का अर्थ सब हिन्दी भाषी जानते हैं, लेकिन रंजक जैसे कृतिकार के हाथों आकर यह मुहावरा वैचारिक ऊँचाइयों को छू लेता है-

''गूँथ खुली वेणी में
हँसी किरण फूल की
हमने क्या भूल की
भौहें क्यो तन गई बबूल की।''[3]

सन् 1960 के बाद नवगीतों में जो आंचलिकता उभर के आई जो चित्रात्मकता की रंगीनी आई थी। उसकी बाकी रंगीनी हम 'किरण के पांव' के सुबह के गीत से ''हरापन नहीं टूटेगा' के सुबह के गीत तक देरवते हैं। रमेश रंजक का नाम आज के प्रगतिषील जनवादी आस्था वाले ऐसे ही गीतकारों में अग्रगण्य हैं, जिन्होंने आज के गद्यात्मक माहौल में भी गीत की विधा को न केवल उसकी पूरी सघनता तथा संरचनात्मक जरूरतों का ख्याल रखते हुए माँजा और निखारा हैं। उस मौजूदा जिन्दगी के यथार्थ तथा उसे जीने वाले साधारण जन की आशाओं-आकांक्षाओ के बीच से उठाते हुए उसे एक ऐसी ताकत दी हैं, जिसकी मिसाल समकालीन रचनाषीलता में कम ही मिलती है। उनके गीतों में लोकगीतों की मिठास, उनका दर्द, ठेठ आज की जीवन स्थितियों के संदर्भ में एक नये प्रभाव के साथ अभिव्यक्त हुआ है। अपनी बनावट षैली, ताल तथा लय में परम्परागत लीक पर रहते हुए भी अपनी अन्तर्वस्तु में जो नितान्त आधुनिक है।

रमेश रंजक की भाषा व्यवस्था के दुष्चक्र तथा उसे जारी रखने वालों पर वज्र प्रहार भी करती हैं। रमेश रंजक का काव्य षिल्प मिट्टी से जन्मा है। वो पूर्ववर्तियों ये यत्र-तत्र प्रभावित हैं, किन्तु वास्तविक अर्थो में मौलिक हैं। हमे यह जान लेना आवष्यक है कि कला में मौलिक होने का अर्थ सब कुछ अपना होना ही है, बल्कि चले आ रहे षिल्प विधान की जडता को तोड़ने के प्रयास को भी मौलिक कहा जाता है। जब कभी रंजक अपने संस्कार से अर्जित कलात्मक उपादानों की कसौटी पर प्रचलित गीतों को परखते है तो वहीं उनके मन में एक नये शिल्प की जरूरत का मन पैदा होता है। उनके गीतों के बीच में ऐसे कई स्थलों का चुनाव वे आसानी से कर लेते थे।

जिन लोगों ने रमेश रंजक को अपने गीतों को श्रोता वर्ग के समक्ष पेश करते हुए देखा है तथा श्रोता वर्ग की प्रतिक्रियाओं का अन्दाज लिया है। वे मेरे इस कथन की ताईद करेंगे कि आज के ढेरों तथाकथित गीतकारों की तुलना में रमेश रंजक एकदम भिन्न किस्म का प्रभाव श्रोता वर्ग पर छोड़ते है और इसीलिए प्रबुद्ध श्रोताओं के बीच वे तथा उनके गीत इतने लोकप्रिय हैं। सच्ची जन निष्ठा के बिना इस प्रकार का प्रभाव निष्पन्न हो सकता है। रमेश रंजक के गीत हमे या श्रोता वर्ग को इतने मुग्ध नही करते, जितने

बेचौन करते है और सबसे महत्वपुर्ण बात यह है कि वे महज सुनने-पढने के स्तर पर ही नहीं, सुनाने और सोचने के स्तर पर भी हमे अपनी सार्थकता से परिचित्त कराते है। रंजक जी की इस उपलब्धि का कारण यही हैं कि उन्होंने गीत और किसी दबाव के तहत नहीं, अपने मानवीय सरोकारों के तहत लिखे है और उनमें ताजगी, प्रभाव तथा हमें बेचौन कर देने का माद्दा इसीलिए है कि रंमेश रंजक ने जनजीवन को किताबो से पढ़कर या ऊपर-ऊपर से देख-सुनकर नही जाना, वे इस जनजीवन से ही उपजे हुए साधारण जन की जिन्दगी से जुडे रचनाकार है।

संदर्भ सूची

1. गीत विहग उत्तरा: रमेश रंजक - पृष्ठ- 41
2. गीत विहग उत्तरा: रमेश रंजक - पृष्ठ- 36.
3. गीत विहग उतरा: रमेश रंजक - पृष्ठ-09.

दूधनाथ सिंह कृत 'निष्कासन' उपन्यास में दलित स्त्री चेतना

डॉ० निकेता

एसोसिएट प्रोफसर, हिन्दी विभाग, सनातन धर्म महाविद्यालय मुजफ्फरनगर, उ०प्र०

दीक्षित कुमार

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर, उ०प्र०

शोध सार : दूधनाथ सिंह जी का पहला उपन्यास ष्निष्कासनष् सन् 2002 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक लम्बी कहानी के साथ आगे बढता है। इस उपन्यास में एक गरीब तथा दलित वर्ग की लड़की को उच्च शिक्षा लेते वक्त कौन-कौन से शारीरिक व मानसिक आघात झेलने पडते है। इसका ज्वलंत एव जीवंत चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत है, इस उपन्यास की कथा में राजनीतिक यथार्थ, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, सामाजिक यथार्थ साफ देखे जा सकते है। इस उपन्यास में दलित व स्त्री की कठिनाइयों को पाठको तक पहुँचाना मुख्य उद्देश्य रहा है। इसके अतिरिक्त आर्थिकता, जातीयता, भ्रष्टाचार तथा आत्महत्या जैसी भयावह समस्याओं से भी परिचित कराया है। इस शोध पत्र में 'निष्कासन' उपन्यास में दलित स्त्रियों के शोषण और संघर्ष को दिखाने का प्रयास किया गया है।

दूधनाथ सिंह समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के एक प्रमुख जनपक्षधरता का परिचय देते है। इन्होनें 'निष्कासन' उपन्यास में प्रमुख घटनाओं का निर्भीकता के साथ वर्णन करके इस उपन्यास को रूचिकर व जीवंत बनाया, दूधनाथ जी ने इस लघु उपन्यास में शिक्षण संस्थानों में व्याप्त जातिगत भेदभाव तथा सवर्ण समाज की रूढिगत मानसिकता का पर्दाफाश किया है। लोकतान्त्रिक देश में एक दलित लडकी का न्याय के लिए दर-दर भटकना समाज और व्यवस्था को प्रश्नों के कटघरे में खड़ा कर देता है। लेखक ने शैक्षणिक परिसर में हो रहे दलित स्त्री के शोषण और भेदभाव का पर्दाफाश किया है। दूधनाथ सिंह ने दलित को स्त्री से जोडा है। दलित और वह भी स्त्री हो तो उसकी यातना और भी बढ जाती है। वर्तमान समय भी जाति व्यवस्था में डूबा हुआ है। आज भी जातिगत भेदभाव सरकारी कार्यालयों, शिक्षण संस्थानों आदि में साफ देखा जा सकता है। आज भी सवर्ण समाज दलित को उच्च शिक्षा से वंचित रखना चाहते है। इस उपन्यास में शिक्षण संस्थान में जातिगत भेदभाव के साथ-साथ तमाम राजनैतिक पार्टियाँ, न्यायालय, मीडिया और भ्रष्ट सत्ता व्यवस्था की पोल खोलकर रख दी है। इस निष्कासन उपन्यास में दलित स्त्रियों पर हो रहे शोषण और उसके संघर्ष को दिखाने का प्रयास किया है।

भारतीय साहित्य में दलित साहित्य और स्त्री साहित्य सिर्फ आधुनिक काल में ही नहीं वरन् भारतीय साहित्य के आरम्भ से ही जीवन के इन पक्षों की अभिव्यक्ति होती रही है। संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि को दलित जीवन का अनुभव प्राप्त था मध्यकालीन संत व भक्त कवि कबीरदास, रविदास, तुकाराम, नामदेव आदि भी दलित जीवन की पीड़ाओं से परिचित थे। दलित और नारी जीवन पर केन्द्रित साहित्य ही सामाजिक समूहों के उत्पीडन की स्थिति को दर्शता है। स्त्री का उत्पीड़न वर्गगत सन्दर्भ में होता है और लिंग के आधार पर भी।

दलित चेतना ही अलगाववाद की जगह समता, एकता और भाईचारे का समर्थन करती है। आर्थिक क्षेत्र में पूँजीवाद का विरोध करती है। दलित चेतना अधिनायकवाद, सामंतवाद, ब्राह्मणवाद को मानव विरोधी मानती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चेतना के सन्दर्भ में लिखते है, ''उसे अधिकार, अवसर और सत्ता में भागीदारी चाहिए।''[1]

दलितों का उत्पीड़न वर्गगत स्तर पर भी है और जाति के आधार पर भी। दलित स्त्री के उत्पीडन के ढंग व तौर तरीके भिन्न हो सकते है। दलित स्त्री का उत्पीडन, वर्ग, जाति व लिंग तीनों स्तर पर होता आ रहा है। दलित एवं स्त्री दोनों उत्पीडित है। दलित स्त्री और उच्च वर्गीय नारी लिंग भेद के आधार पर समान रूप से उत्पीडित होते है। उनकी सामाजिक संरचनाएँ दलितों द्वारा ही दलितों के उत्पीडन की स्थितियाँ भी पैदा करती है।

गुजराती कवि जयंत परमार दलित चेतना के सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करते है कि ''अम्बेडकर दर्शन ने दलित कवियों के मन में आत्मसम्मान जागृत किया उसके फलस्वरूप जीवन अनुभव को देखने और पहचानने की उनकी भूमिका विद्रोह तथा नकार से भर उठी। उसका आवेग किसी तूफान की तरह है उसका सौन्दर्य उसकी सामर्थ्य उसकी वेदना में है।''[2]

हिन्दी कथा साहित्य में भी दलित जीवन को केन्द्र में रखकर अनेक रचनाएँ रची गयी है। प्रेमचंद की सद्‌गति, ठाकुर का कुआँ, कफन आदि कहानियों में दलित जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

आज का दलित साहित्य भारतीय साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाये हुआ है। ''जिस साहित्य में मनुष्य समाज की पीड़ा दर्द और उनकी कुछ न कर पाने की बेबसी का चित्रण मिलता है, वह सब दलित साहित्य है।''[3]

'निष्कासन' उपन्यास दलित स्त्री के दर्द को बयाँ करता है। संघर्ष और लोकतन्त्र की मर्यादा को शर्मसार करता यह उपन्यास भारतीय कार्यपालिका, न्यायपालिका पर सवाल खड़ा कर देता है। लड़की जो एक नये विश्वास के साथ आगे पढने के लिए बी0ए0 प्रथम श्रेणी से पास करती है परन्तु स्नातकोत्तर शिक्षा से वंछित हो जाती है। यह उपन्यास दलित स्त्री की चेतना को स्वर्ण व ब्राह्मणवाद विरोधी बना देता है। इस उपन्यास में लेखक ने इस स्वर्णवादी समाज की क्रूर मानसिकता की घोर भर्त्सना की है। लेखक द्वारा ब्राह्मणी व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए लिखते है कि, ''यह भारतीय ब्राह्मणी संस्कृति का असर है जो चुपके-चुपके वध करती है और उसके लिए एक खूबसूरत मंच और सही अभिनेता और विचारों की धुँधली रोशनी और तार्किक कुतर्क का संसार रचती है।''[4]

निष्कासन उपन्यास में विश्वविद्यालय के माहौल को दर्शाया गया है जोकि इतना बिगड़ चुका है कि यहाँ पर कोई भी दलित स्त्री अपने आप को सुरक्षित महसूस नहीं करती है। युनिवर्सिटी की हॉस्टल वार्डन जिसका नाम उपन्यास में मैम रखा है वह भी अपने अधिकारों का गलत प्रयोग करती नजर आती है। इस उपन्यास में सामाजिक यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया है। जहाँ लोकतंत्र सबको समान अधिकार प्रदान करता है वही उसको लोकतन्त्र को मारने का अधिकार भी दिया हुआ है। कुछ भ्रष्ट सरकारी तंत्र लोकतन्त्र को समाप्त करने में तुले है।

''जहाँ प्रजातन्त्र की धमक है, मानवाधिकारों की बडी चहल-पहल है, दबे-कुचले आदमी को बचाने और बढ़ाने के लिए जहाँ हर कदम पर कुकरमुत्तों की तरह अपना छोटा-बडा छाता पसारे गैर-सरकारी संगठन है, जहाँ मानवाधिकारी, अस्मिता और आत्मसम्मान की किलकती धौस के सौजन्य बिलस रहे है, ... जहाँ भारतीय स्त्री अपनी दमन की दरारों से बार-बार बाहर झाँकने के प्रयास में एक मीठी धूल फाँकती हुई नजर आती है।''[5]

वर्तमान समय में कालेज एवं विश्वविद्यालय स्तर पर राजनीति के व्यापक प्रसार ने इन संस्थाओं से इनके गौरवान्वित रूप को छीन लिया है। माँ-बाप तो बच्चों को यूनिवर्सिटी तक भेजने में हिचकते है। आज भी विश्वविद्यालय प्रशासन का सम्बन्ध गुण्डों और अपराधियों से है। इन लोकल गुण्डों को राजनैतिक आश्रय प्राप्त है। इसी आश्रय की छाया में गुण्डें छात्रों के साथ मनमाना व्यवहार करते है। 'निष्कासन' में यह स्पष्ट देखा जा सकता है। लडकी का किस तरह सत्ता के द्वारा ही उत्पीडन होता हैं। चाहे कोई भी पार्टी हो साम्यवादी, प्रगतिवादी या ब्राह्मणवादीय गुण्डे हर पार्टी में है।

आज यही सोच लोकतन्त्र के लिए खतरे की घण्टी साबित हो रही है। लड़की की बडी बहन मानसिक उत्पीडन व शारीरिक प्रताडना को झेलकर गोपेश्वर विवि0 में प्राध्यापक बन गई है, वही दलित लडकी, इस मानसिक व शारीरिक उत्पीडन को बर्दाश्त नहीं करती और उसके खिलाफ आवाज उठाती है।

'निष्कासन उपन्यास में लड़की यह दलित चेतना जाग्रत करती है कि अन्याय के प्रति अपनी आवाज उठाओय चाहे साथ में कोई

हो या न हो। आज वर्तमान समय में भी दलित उत्पीडन प्रत्येक कार्यालय विश्वविद्यालय कॉलेज में देखने को मिल जाता है।

'कोई दलित-उत्पीडन नहीं हो रहा।' मुख्यमंत्री जी हँसकर प्रेस वालों से कहते है।

और पाँच दलितों पर जो तेजाब फेंका गया सर?'

सब ठंडा हो जायेगा। मुख्यमंत्री जी जवाब में कहते है।[6]

दलित स्त्री के लिए न्याय जैसे बना ही नहीं है। निष्कासन में महामहिम मुख्यमंत्री, प्रशासन, कर्मचारी, गुरूजन सभी पार्टियाँ लड़की को न्याय नहीं दिला पाये। सभी पार्टियों के लोग वोट बैंक के लिए दलितों का प्रयोग करते है।

''मैं कहता हूँ इस उर्वर प्रदेश में आपको इसलिए भेजा गया कि हमारे वोट बैंक में जमा-पूँजी तेजी से बढ़े। इसीलिए कि आप आये तो दलितों में यह संदेश जायेगा कि हम सभी सवर्णो के नेता नहीं है और कहाँ है? है क्या?''[7]

साहित्य समाज से जुडा हुआ है। जो समाज में हो रहा है वह साहित्य में लिखा जाना अनिवार्य है। निष्कासन में समाज के नग्न यथार्थ को देखा जा सकता है। दूधनाथ सिंह दलित समाज से नहीं आते है फिर भी ष्निष्कासनष् में उन्हीं दलित समाज की पीड़ा को अनुभूत किया है। दूधनाथ सिंह प्रगति सोच के उपन्यासकार रहे है। निष्कासन के आरम्भ में प्रेमचन्द की पँक्ति लिखी है:-

''......जो कुछ असुन्दर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिए (साहित्यकार के लिए) असह्य हो जाता है। उस पर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है।...... जो दलित है, पीडिघ्त है, वंचित है- चाहे वह व्यक्ति हो या समूह उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है।''[8]

'निष्कासन' के संबंध में दूधनाथ सिंह कहते है कि ''यह कोई जरूरी नहीं है। यहाँ आत्मवध एक नैतिक प्रतिशोध है। यह कथा के अन्तरंग से निकलने वाली एक ऐसी निष्पत्ति है जिसका कोई और विकल्प नहीं। सारे आत्मघात; कायर निर्णय नहीं होते। अधिकांशतः वे इस समाज से एक जलता हुआ प्रतिशोध है। सारी लड़ाई लड़ चुकने और पस्त हो जाने के बाद आत्मवध एक पॉजिटिव तर्क है, जिसे लोग नहीं समझते। मेधा पाटकर ने एक बार जल-समाधि लेने का निर्णय लिया था, क्यों? सत्ता की शक्ति हमें थका सकती है, पराजित कर सकती है।''[9]

ब्राह्मणवादी व्यवस्था इस तरह फँसी हुई है कि उसे आत्महत्या करने पर विवश कर देती है। यद्यपि दलित लडकी पढने में होनहार थी, प्रथम श्रेणी से स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी फिर भी छात्रावास में रहने के लिए दस हजार रूपये मांगे जाते है और न देने पर कुछ और दो की मांग की जाती है, यह कहना गलत न होगा कि वर्तमान समय की शिक्षण व्यवस्था दुराचार और भद्दी सोच का अडड्ा बन गया है।

हमारे समाज को जातिवाद-वर्णवाद से बाहर आकर इस लड़ाई को गरीबी और अमीरी की लडाई में परिवर्तित करना होगा। दूसरा कोई भी रास्ता कारगर नहीं है। उससे प्रजातन्त्र और विकलांग होता चला जायेगा।[10]

जातिवाद भी एक तरह की साम्प्रदायिकता है। लोगो की समझ में अभी नहीं आया, शायद आगे आये।[11]

दलित के प्रति हमारा भारतीय समाज हमेशा सदियों से ही उदासीन रहा है। उसे उत्पीडित किया जाता है और एक पशु जैसा आचरण उसके साथ किया जाता है। दलित स्त्री की बात करें तो यह यातना दोहरी हो जाती है।

हिन्दी साहित्य में दलित स्त्री की पीड़ा पर आत्मकथा उपन्यास कहानी लिखी गई है। शिकंजे का दर्द में सुशीला टाकभौरे लिखती है ''एक तो नारी होने की अपने आपमें पूर्ण व्यथा की कथा है वहीं दूसरी ओर श्रम-संघर्ष, कष्ट और गरीबी से भी अधिक यातनापूर्ण है, अछूत होना, अस्पृश्य माना जाना, निर्बल, असहाय, चुपचाप, अपमान के साथ जीना, भुक्तभोगी ही इस यातना को समझ सकते है।''[12]

इस उपन्यास में स्वर्णवाद समाज का नग्न यथार्थ दिखाया है। बडे छोटे की लडाई में विश्वविद्यालय से निकलवाने के बाद भी उसे परेशान किया जाता है। उसे मानसिक रूप से परेशान किया जाता है। उसे आत्महत्या के लिए मजबूर किया जाता है। यह उपन्यास स्वर्णवादी व्यवस्था तथा विश्वविद्यालय परिसर के यथार्थ को बेनकाब करता है। छात्रावास की मैडम ने एम0एम0 ने छात्रावास के नियमों को अपने हाथों में लिया हुआ है। जहाँ प्रतिदिन मेहमान के आने पर दलित लड़की से संबंध बनाने को मजबूर किया जाता है।

''हॉस्टल में तो यह आम रिवाज है। शाम को कोई-न-कोई लडकी मैम की सेवा-टहल या उनके मेहमानों के स्वागत-सत्कार हेतु बुलाई ही जाती है और ऐसी संवासिनियों की गिनती सौभाग्यशालिनी लडकियों में की जाती है।''[13]

इसी स्वागत-सत्कार के लिए विश्वविद्यालय में यौन तृष्णा की पूर्ति के लिये लडकी बुलायी जाती है। लडकी आत्मसम्मान बेचने से इंकार कर देती है और यही से लडकी की आत्म संघर्ष की कथा शुरू हो जाती है। यह उपन्यास तमाम सवर्ण व्यवस्था पर प्रहार करता है। इस लघु उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समाज की व्यवस्था और सत्ता पर कडा प्रहार किया है। लडकी अपने अस्तित्व के लिए प्रजातान्त्रिक देश के हर दरवाजे तक जाती है लेकिन हर जगह उसे निराशा ही हाथ लगती है। महामहिम से लेकर अपनी जाति के नेताओं तक पहुँचने के बाद भी उसे न्याय नहीं मिलता। एक दलित स्त्री के साथ हमारा सबसे बडा लोकतान्त्रिक शब्द न्याय नहीं कर पाता है।

निष्कर्षत: यह ष्निष्कासनष् उपन्यास दलित चेतना का उपन्यास है। यह उपन्यास स्त्री चेतना से भरा हुआ है, साथ ही यह उपन्यास प्रतिशोध का भी है। वह प्रतिशोध जो आत्महत्या का प्रतिशोध हैए जो स्वर्ण ब्राह्मणवादी, प्रशासन और लोकतान्त्रिक देश से लिया गया है। इस उपन्यास को पढ़ने के बाद इससे अच्छा प्रतिशोध हो ही नहीं सकता। एक लडकी जो न्याय के लिए तरसती है जो अपनी अस्मिता को बचाने के लिए चारों स्तम्भ तक जाती है पर उसके साथ कोई भी न्याय नहीं करता। आत्महत्या एक तंज है। हमारे लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर इससे बडा कोई भी प्रतिशोध नहीं हो सकता। ष्निष्कासनष् उपन्यास दलित स्त्री के चेतना का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैष्य जो आने वाली पीढी को एक नया रास्ता प्रदान करने वाला और ताकतवर पर कमजोर का प्रहार हो सकता है। लड़की का यह आत्महत्या का प्रतिशोध ही दलित चेतना को उजागर करता है।

सन्दर्भ-सूची

1. हिन्दुस्तानी जबान, अप्रैल-जून, 1997, पृ0. 97
2. परमार, जयंत, हिन्दुस्तानी जबान, अप्रैल-जून, 1997, पृ0. 4
3. डा0. बैचेन, श्यौराज सिंह, चिन्तन की परम्परा और दलित साहित्य, पृ0. 193
4. सिंह, दूधनाथ, निष्कासन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली पहली आवृति 2012 पृ0. 26
5. वही पृ0. 51
6. वही पृ0. 69
7. वही, पृ0. 70
8. वही, पृ0. 5
9. सिंह, दूधनाथ, कहासुनी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली 2012 पृ0. 89
10. वही पृ0. 106
11. वही पृ0. 109

12 टाकभौरे सुशीला, अम्बेडकरवादी स्त्री -चिन्तन, स्वराज प्रकाशन दिल्ली पृ0. 93

13. सिंह, दूधनाथ, निष्कासन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली पहली आवृति 2012 पृ0 42

उत्तर-आधुनिकताः साहित्य, समाज और संस्कृति

डॉ० विश्वम्भर पाण्डेय

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर, उ0प्र0

निर्भय कुमार सिंह

शोध छात्र (हिंदी), सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर, उ0प्र0

शोध सारांश

साहित्य, समाज और संस्कृति वर्तमान-दौर में किस तरीके से उत्तर-आधुनिकता के वर्चस्ववादी मूल्यों से प्रभावित हो रहा है। इसकी व्याख्या, विश्लेषण शोधपत्र का मूल केन्द्रीय भाव है। उत्तर-आधुनिकता स्वायत्तता, विकेन्द्रीयता, महाआख्यानों के पतन, उत्तर-संरचनावाद और विखण्डनवाद के माध्यम से हाशिए कृत विमर्शों को केंद्रीकृत कर रहा है। इस केंद्रीकृत हाशिए के विमर्शात्मक स्वरूप का विश्लेषण भी शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है। साहित्य के क्षेत्र में संरचनावाद एक विशेष अवधारणा है, जिसके मूल में संरचना निहित है। यह संरचना सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक समस्त स्तर पर विद्यमान है। उत्तर आधुनिकतावाद ने संरचना को प्रत्येक स्तर पर ध्वस्त किया है। जो इस शोध पत्र का मुख्य विषय है।

बीज शब्दः महाआख्यान, विकेन्द्रीयता, विखण्डनवाद, स्वायत्तता, हाशिया, उत्तर-संरचनावाद, विमर्श।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उत्तर-आधुनिकता एवं उत्तर-आधुनिकतावाद का जन्म यूरोप में एक विचारधारा या मानसिक प्रवृत्ति के रूप में हुआ। साहित्य, समाज, संस्कृति तथा आमजीवन के तौर-तरीके भी उत्तर-आधुनिकतावादी चिन्तन से प्रभावित हो रहे हैं। पश्चिमी पूँजीवादी व्यवस्था तथा औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने आम आदमी की जीवन-शैली, सामाजिक गतिविधि, साहित्य तथा संस्कृति आदि के, जो परम्परावादी विशेष तत्व हैं, उनको बदलने का उनके स्वरूप में परिवर्तन करने को लेकर, व्यापक स्तर पर बहस को जारी रखा। इस परिवर्तनकारी दृष्टिकोण के माध्यम से बहुत बड़े स्तर पर आधुनिकतावादी विसंगति बोध उभरा, इस असंतुष्टि तथा विसंगतिबोध भरे वातावरण को दूर करना, शान्त करना, विसंगति से आगे निकलना, आधुनिकतावादी चिन्तनधारा की सीमा से बाहर था।

आधुनिकतावादी चिन्तन धारा ने इन सभी समस्याओं का जाल समस्त वैश्विक मानव समाज के सामने प्रस्तुत कर दिया, लेकिन अनेकों सारगर्भित प्रयासों के फलस्वरूप भी इनका हल आधुनिकतावादी चिन्तनधारा के पास नही था। इन्हीं समस्याओं को नवीन चिन्तन धारा के द्वारा हल करने का प्रयास शुरू हुआ, जिसको एक मानसिक वृत्ति के रूप में उत्तर-आधुनिकता कहा जाता है, जो आधुनिकता की ही नवीन शैलीगत व्याख्या एवं उसमें निहित अर्थ को अव्यक्त के स्थान पर व्यक्त करने का नवीनतम प्रयास रहा है।

उत्तर-आधुनिकता के बारे में लिखते हुए जानी वात्तीमों कहते हैं, ''प्रौद्योगिक प्रक्रियाओं तथा रिश्तों में जो महत्वपूर्ण बदलाव आया है, हमारी सोंच और कला उसका चित्रण करने में असमर्थ रही है। वर्तमान सभ्यता में ऐसे परिवर्तन आए हैं, कि 'मरूस्थल' फैलता

जा रहा है..... हम हमेशा एक नयी भूमिका का आविष्कार कर सकते हैं। मेरे सामने असीम सम्भावनाएं हैं। आधुनिकतावाद के निष्क्रिय 'एंग्स्ट' को उत्तर-आधुनिकतावाद के उल्लासपूर्ण कर्म में बदला जा सकता है।''[1]

साहित्य का सीधा सम्बन्ध समाज तथा संस्कृति से है। सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों में जब परम्परा और आधुनिक तत्वों के मध्य द्वन्द्व शुरू होता है, तो उस स्थिति में वहाँ पर ग्रहण एवं त्याग की समस्या जटिलता के साथ व्यक्ति के सामने उपस्थित होती है, लेकिन पाश्चात्य सांस्कृतिक मूल्य, जो भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के परस्पर विरोधी हैं। ये समस्त पाश्चात्य सांस्कृतिक मूल्य अपनी छाप भारतीय जनमानस एवं समाज के ऊपर स्थापित करने को उद्यत है। साहित्य धर्म दर्शन मनोविज्ञान सभी स्तरों पर नकल की जा रही है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए कृष्ण दत्त पालीवाल जी कहते हैं ''आधुनिक शिक्षा की वाहक है पश्चिमी शिक्षा। पूरा हिन्दुस्तान इस शिक्षा की गुलामी में घिरा हुआ है, और यह गुलामी आजाद भारत में दिन दूना रात चौगुनी बढीघ है। भारतीय चिन्तन और भारतीय साहित्य के प्रति आजाद भारत में इस तरह से उपेक्षा बढ़ी है, कि उसका एक दर्दनाक इतिहास है। अरविन्द, विवेकानन्द, तिलक और गाँधी के चिन्तन को आधुनिकतावादी एकांगी व अपर्याप्त कहकर हिकारत की निगाह से देखते रहे हैं।''[2]

उत्तर-आधुनिकता के इस वर्तमान दौर में साहित्य, समाज और संस्कृति किस तरीके से अपनी मूल अवधारणा, चेतना के प्रति क्रियाशील है। यह तथ्य सुधीश पचौरी के इस कथन से स्पष्ट है- ''केंद्रवादी, समग्रतावादी आधुनिकता के बरक्स विकेन्द्रवादी उत्तर-आधुनिकता हाशिए पर डाल दिये गये समाजों, अस्मिताओं को जगह देती है। जाहिर है यह क्रिया भी अनंत अन्तर्विरोधों से संचालित है, क्योंकि यह अंतर्विरोधग्रस्त पूँजीवाद नये पूँजीवाद से परिचालित है। हम कह दें: उत्तर-आधुनिकता में भी सामाजिक अंतर्विरोधों का लोप नहीं हो गया है, हाँ उन अंतर्विरोधों के किसी एक 'मूलवादी' और 'सारवादी', सिद्धान्त की सीमाएँ उजागर हो गयी हैं। इसीलिए तरह-तरह के विकेन्द्रवादी विमर्श मैदान में आ गये हैं, आ रहे हैं। हमारे यहाँ दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, धार्मिक विमर्श, विविध जाति विमर्श, मूलत: अस्मितामूलक विमर्श हैं, जो अपने भीतर-बाहर अनंत अंतर्विरोधों को, उपद्रवों को लिए-दिए व्यक्त होने लगें हैं। समाज को अपने ढंग से विभक्त और पुन: संगठित करने में लगे हैं।''[3]

उत्तर-आधुनिकता ने ज्ञान की समस्त धाराओं, तत्वों पर अपनी छाप छोड़ी है। उत्तर-आधुनिकता का ही परिणाम है, कि आज विश्व एक गाँव बन गया है। जहाँ पर विश्व के किसी कोने में कोई घटना क्यों न घटित हुयी हो, तुरन्त घटना का सम्यक प्रसारण प्रत्येक क्षेत्र में हो जाता है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इण्टरनेट, जनसंचार के साधनों आदि ने एक सामान्य स्तर पर छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, गाँव-नगर आदि का भेद-भाव सामान्यतया खत्म करने की ओर अग्रसर है। जनसंचार के क्षेत्र में इतनी बड़ी क्रान्ति आ गयी है, मानो संसार सिकुड़ कर प्रत्येक व्यक्ति के घर में निहित हो गया है।

साहित्य या पाठ की आलोचना पद्धति में उत्तर-आधुनिकता ने विखण्डनवाद एवं उत्तर-संरचनावाद जैसी विकासशील एवं समाजशास्त्रीय समीक्षा दृष्टि को जन्म दिया है। उत्तर-आधुनिक विचारधारा ने ही 'विखण्डनवाद' जैसी समीक्षा पद्धति को जन्म दिया है, जिसके माध्यम से पाठ को बार-बार तोड़ मरोड़कर उसके नये अर्थ की ओर, जो पाठ में निहित होता है। उस अर्थ से मानव समाज का परिचय कराता है, तथा नये तरीके से नवीन अर्थ को सामान्यीकृत करता है। विखण्डनवादी समीक्षा पद्धति ने 'महाआख्यानों' के नये वर्तमान सन्दर्भित अर्थ को समीक्षा के माध्यम से पाठक जगत को देने का कार्य किया है।

वर्तमान काल में उत्तर-आधुनिक विमर्श ने साहित्य, संस्कृति और समाज को प्रत्येक कोण पर अपने मूल्य प्रदान किए हैं, जिसके कारण साहित्य, समाज और संस्कृति की गतिशीलता, नवीनता में तेजी आई है। साहित्य का मापदण्ड बदल रहा है। यह उत्तर-आधुनिकता का ही परिणाम है, कि साहित्य का अन्तर्निहित तथ्य जो कभी कागज, कलम के माध्यम से सामान्यीकृत होता था। वर्तमान दौर में टेलीविजन, समाचार पत्र, फेशबुक, व्हाटसऐप आदि के माध्यम से विचार, दर्शन, साहित्य सभी मनोभाव द्रुतगति से प्रचारित एवं प्रसारित हो रहा है।

सुधीश पचौरी के अनुसार - ''उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता का विस्तार भी है और 'अन्तिम बिन्दु' भी है। वह 'अनुपस्थिति' की 'उपस्थिति' है। वह 'प्रतिनिधित्व' रहित की 'उपस्थिति' है।''[4] उत्तर-आधुनिकतावादी दृष्टिकोण के माध्यम से साहित्य, समाज, तथा संस्कृति के सभी केन्द्र ध्वस्त हो रहे हैं, जो बहुत दिनों से केन्द्र में थे। उनको केन्द्र से हटाने की चिन्तन प्रणाली शुरू हो गयी है। साहित्य के क्षेत्र में विकेन्द्रीयता, स्वायत्तता, बहुलतावादी सूत्रों का प्रभाव उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा का ही परिणाम है। इस बात को स्पष्ट करते हुए सुधीश पचौरी जी कहते हैं ''हमारे विकास के आधुनिक केंद्रीकृत तरीके बदल रहे हैं। कल्याणकारी राष्ट्र-राज्य अपनी जिम्मेदारियां छोड़ रहा है, और निजी पूँजी जीवन के हर क्षेत्र में प्रवेश कर रही है। 'ज्ञान' की जगह 'उपभोग'

विकास का औजार बन रहा है। विचारधारात्मक केंद्रवाद विश्रृंखलित हो रहा है। नये केन्द्र बन रहे हैं। कहीं वे धार्मिक रूपों के केन्द्र हैं, कहीं जाति रूपों के, कहीं स्त्री रूपों के, कहीं सांस्कृतिक पहचान के। वे पुराने आधुनिक शक्ति-संतुलन को अपने ढंग से बदलने को उद्यत है।''[5]

उत्तर-आधुनिकता ने समाज की मानसिक स्थिति को बिल्कुल परिवर्तित करने का प्रयास किया है। पूँजीवादी व्यवस्था ने जिस बाजारवादी व्यवस्था को जनसामान्य के बीच में स्थापित किया है। उससे मानव समाज विकास की ओर तो जा रहा है, लेकिन यह विकासगामी परिवर्तन दिक्काल् तक जाने में असमर्थ प्रतीत हो रहा है। यह असमर्थता ही साहित्य, समाज और संस्कृति को नवीन दृष्टि से परखने की शक्ति प्रदान करती है। साहित्य के सापेक्ष उत्तर-आधुनिक विचारधारा में स्वायत्तता शब्द निहित है, जो पाठक को, लेखक को स्वच्छन्द, स्वतन्त्र और उन्मुक्त छोड़ता है, जिसके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति का ज्ञान, विचार, उत्तेजना, नैराश्य, संवेदना आदि उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना संरचना के परिपाटी के लोगों का। स्वायत्तता और विकेन्द्रीयता ने समाज के समस्त वर्गों की आवाज को केन्द्रीकृत करने की उन्मुक्तता प्रदान की है। हाशिए की संस्कृति, समाज तथा साहित्य के वैश्विक उन्नयन में उत्तर-आधुनिकता का चिन्तन अपनी महत्वपूर्ण शब्दावलियों के शब्दों की अर्थगाम्भीर्यता, जिनमें स्वायत्तता, विकेन्द्रीयता बहुलता, स्थानीयता आदि उत्तर-आधुनिकता की प्रेरणा से पुष्पित, पल्लवित और जनसामान्य के मध्य सन्दर्भित हो रही है।

उत्तर-आधुनिकता और संस्कृति के बारे में 'ल्योतार' कहते है ''संस्कृति में उच्च मानव मूल्यों के प्रति उपेक्षा भाव बाजारवाद की देन है। यह बाजारवाद आर्थिक वृद्धि के लिए काले धन की उपयोगिता को बढ़ाता है। इस पूरी स्थिति-परिस्थिति में धर्म-नीति, न्याय, सदाचार-शील और नारी का पुराना संसार ही ध्वस्त हो गया है।''[6]

भूमण्डलीकृत बाजारवादी दृष्टिकोण ने मानव के सदाचार-शील, उत्तम आचरण, नारी के उत्तम गुणों आदि के स्वरूप में व्यापक स्तर पर परिवर्तन किया है। उपभोक्तावादी उत्पादन की आधुनिक तकनीक ने भी साहित्य, समाज और संस्कृति को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है।

'सुधीश पचौरी' 'ल्योतार' के इस कथन के माध्यम से कहते हैं कि '' उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता का आखिरी बिन्दु नहीं है, बल्कि उसमें मौजूद एक नया बिन्दु है, और यह दशा लगातार है। उत्तर आधुनिकता की यह सातत्य-मूलक छवि महत्वपूर्ण है।''[7]

'ल्योतार' जी का नया बिन्दु साहित्य, संस्कृति और समाज को एक नवीन दृष्टि प्रदान करती है, जिसके माध्यम से आधुनिकतावादी निष्क्रिय 'एंग्स्ट' को दूर किया जा सकता है।

साहित्य, समाज तथा संस्कृति स्त्री और पुरूष के अन्तर्सम्बन्ध का जाल है। उत्तर-आधुनिकता ने स्त्री और पुरूष दोनों को प्रभावित किया है। स्त्री विमर्श के मूल में उत्तर-आधुनिकता ही प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सक्रिय हैं। नारी वर्तमान दौर में जीवन के हर क्षेत्र में वर्चस्ववादी, पितृसत्तात्मक समाज के केन्द्रों को तोड़कर एक नये प्रकार का केंद्र गढ़ रही है, जिसमें स्त्रियों के लिए स्वच्छन्दता, स्वतन्त्रता, उन्मुक्त सेक्स की चेतना आदि में वर्चस्ववाद ऊपर से खारिज हो रहा है। स्त्री विमर्श के माध्यम से स्त्रियों को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्तर पर समानता मिल रही है, जो उत्तर आधुनिकता के माध्यम से भारतीय समाज में नारी पक्ष के लिए वरदान है।

नारीवाद पर देवेन्द्र इस्सर कहते हैं, ''नारीवाद एक ऐसी अतिचर्चित, प्रचलित प्रवृत्ति है..... दरअसल यह एक अनेकार्थी बहुआयामी तथा व्यापक आन्दोलन है, जिसमें विविध विचार एवं रवैये सक्रिय रहे हैं......... पुरूष प्रधान व्यवस्था तथा पितृ परिवार से लेकर आर्थिक शोषण और यौन उत्पीड़न, सामाजिक दमन और अधिकार हनन, कानूनी भेदभावों और दोहरे नैतिक मानदण्डों तथा पारिवारिक वैवाहिक सम्बन्धों, व्यवसाय, व्यापार, सत्ताधिकार तथा यौन व्यवहार तक सब कुछ इसमें सम्मिलित है, और इन सबके केंद्र में है, 'स्त्री अस्तित्व और अस्मिता का प्रश्न' जिसके गिर्द समस्त समस्याएं एवं असमानताएं मुसलसल मड़राती रहती हैं।[8]

समाज के निर्माण में स्वस्थ मानसिक चेतना का होना अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है, फिर चाहे वह स्त्री हो या पुरूष दोनों के लिए मानसिक रूप से सशक्त रहना अत्यन्त आवश्यक है। उत्तर-आधुनिकता ने खासतौर पर नारी समुदाय को सामाजिक समता, नारी समाज के साहित्य को केन्द्रीकृत करके नारी विमर्श के स्वरूप को उच्च स्तर पर सामाजिक गतिशीलता प्रदान कर रहा है। बहुत से सांस्कृतिक तत्वों की भूमिका को नारी विमर्श के माध्यम से उत्तर-आधुनिकता ने अभिव्यक्ति प्रदान की है, जिसके द्वारा वैश्विक स्तर एवं भारतीय स्तर पर महिलाओं को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में समानता मिलने की आवाज बुलंद हो रही है।

हेलेन फिशर के अनुसार ''आधुनिक युग में इक्कीसवीं शताब्दी पहली ऐसी शताब्दी होगी जिसमें स्त्री और पुरूष दोनों समान रूप से काम करेंगे और समान रूप से ही जिन्दगी बसर करेंगे। पुरूषों और स्त्रियों की जीवन विधि को इसी प्रकार संरचित किया गया है।''[9]

संस्कृति तथा समाज की रूपरेखा विविधता में निहित होती है। ये सामाजिक विविधताएं अपनी वेदना, सोच, विचार, तर्क आदि को अनेक प्रकार के विमर्शों के माध्यम से केन्द्र में लाने के लिए प्रयासरत है। यह समस्त प्रयास उत्तर-आधुनिकतावादी नयी सोंच, प्रणाली, जनसंचार, प्रौद्योगिकी के बल से सम्भव हुआ है। हाशिए कृत समाज साहित्य और संस्कृति के केंद्रीकृत होने के मूल में उत्तर-आधुनिकता ही है।

वर्तमान दौर में दलित विमर्श के माध्यम से पद्दलित, निरीह, वंचित लोगों को केन्द्र में लाकर उनके साथ पूर्ण समानता का व्यवहार यदि सम्भव हुआ है, तो उसके पीछे अनेकों वैज्ञानिक प्रणालियों, जनसंचार के साधनों, आधुनिक फेशबुक की दुनिया के वैश्विक परिदृश्य की भूमिका निहित रही है।

दलित साहित्य, समाज और संस्कृति पर 'रमणिका गुप्ता' का कहना है, कि ''दलित साहित्य उस दबी हुई अस्मिता को प्राणवान मानव अस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई लड़ रहा होता है, जब वह वर्णविहीन, वर्गविहीन, जातिविहीन समाज बनाकर एक मानवीय समाज बनाने की घोषणा करता है .... दलित साहित्य ने सामाजिक समानता और राजनीतिक भागीदारी को भी साहित्य का विषय बनाकर उनकी आर्थिक समानता की अधूरी मुहिम को पूर्णता दी। इन तीनों मुद्दों पर समानता प्राप्त किए बगैर मनुष्य पूर्ण समानता प्राप्त नहीं कर सकता। दलित साहित्य इस पूर्ण समानता के लिए संघर्षरत है।''[10]

वर्तमान काल में साहित्य, समाज तथा संस्कृतियों में बहुलतापन देखने को प्राप्त हो रहा है। साहित्य के क्षेत्र में अनेक प्रकार के साहित्य और समाज तथा बहुसंस्कृतियाँ पनप रही हैं, कहीं इनके मूल में भी उत्तर-आधुनिकतावादी वैश्विक चिन्तन की भूमिका तो नहीं कारगर हो रही है। वर्तमान काल का दलित साहित्य और समाज हाशिए पर था। उत्तर आधुनिकता ने वैश्विक स्तर पर दलितों की आत्मचेतना को स्थापित करते हुए उनकी भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की, जिससे ज्ञान की समस्त दिशाएं प्रकाशित हो रही हैं। उत्तर-आधुनिक विमर्श के इस दौर में आदिवासी विमर्श भी एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। आदिवासियों का साहित्य, समाज और संस्कृति सब हाशिए पर था, जो भारतीय एकतावादी अवधारणा की अस्मिता पर प्रश्न-चिन्ह है। उत्तर-आधुनिकता ने जल, जंगल, जमीन, बहुसंस्कृति, बहुसमाज तथा विशेष लोक साहित्य जो आदिवासियों का मूल आभूषण है, को केन्द्र में लाकर खड़ा करने की कवायद आदिवासी विमर्श के रूप में कर रहा है। अलबरूनी के अनुसार '' यह अप्रतिम संस्कृति है, जिसकी तुलना किसी और से नहीं कर सकते।''[11]

के0 सच्चिदानन्दन धरा के आदिमपुत्र नामक लेख में कहते हैं। ''इक्कीसवीं सदी आदिवासियों से सम्बन्धित है, और यह समूचे संसार में आदिवासी लोगों के महान आन्दोलनों की साक्षी बन चुकी है। वे धरा के आदिमपुत्र हैं, और पूरी पृथ्वी वस्तुतः उन्हीं से सम्बन्धित है। संस्कृति और सभ्यता भी उन्हीं से आरम्भ हुई है।''[12]

उत्तर-आधुनिक विमर्श के इस दौर में आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, किन्नर, स्त्री, सर्वहारा, वृद्ध, बालक अपने समाज, साहित्य और संस्कृति आदि के केंद्रीकृत धरातलीय स्वरूप को विमर्श के रूप में सामान्यीकृत कर रहें हैं। संक्षेप में उत्तर आधुनिकता ने साहित्य, समाज और संस्कृति को अपने परिवर्तनकारी मार्गों द्वारा नवीन धरातल, ऊँचाई तथा गरिमा प्रदान की है। साहित्य, समाज और संस्कृति पर उत्तर-आधुनिकता ने हर प्रकार से अपने पद्चिन्ह को चिन्हांकित करने का प्रयास किया है।

सन्दर्भः

1. देवेन्द्र इस्सर, 'उत्तर आधुनिकताः साहित्य और संस्कृति की नयी सोच', इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1996, पृ0 27
2. कृष्णदत्त पालीवाल, 'उत्तर आधुनिकता की ओर', आर्य प्रकाशन मंडल, नई दिल्ली, संस्करण-2016, पृ0 112
3. सुधीश पचौरी, 'उत्तर आधुनिक समय और मार्क्सवाद', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2019, पृ0 91
4. सम्पादकः देवशंकर नवीन, सुशान्त कुमार मिश्र, 'उत्तर आधुनिकता कुछ विचार', सुधीश पचौरी, उत्तर-आधुनिकता और मार्क्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2017 पृ0 17

5. वही, पृ0 18
6. कृष्णदत्त पालीवाल, 'उत्तर आधुनिकता की ओर', आर्य प्रकाशन मंडल, नई दिल्ली, संस्करण-2016, पृ0 112
7. सुधीश पचौरी, 'उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2010, पृ0 26, 27
8. देवेन्द्र इस्सर, 'स्त्री मुक्ति के प्रश्न', संवाद प्रकाशन, मेरठ, संस्करण-2009, पृ0 123
9. वही, पृ0 123
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि, 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र', राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-2018 पृ0 25
11. सम्पादकः रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी समाज और साहित्य', वामन शेलमाके, सबकी मंजिल एक है, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2016, पृ0 131
12. सम्पादकः रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी समाज और साहित्य', के0 सच्चिदानन्दन, धरा के आदिम पुत्र, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2016, पृ0 15

भक्तिकालीन कवियों के जीवन से सम्बन्धित जीवनीपरक उपन्यासः एक परिचय

रीनू यादव

शोध छात्रा, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

जीवनीपरक उपन्यास साहित्य की नूतन विधा हैं, जिसमें किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन को आधार बनाकर उपन्यास की रचना की जाती है। इनमें जीवनी और उपन्यास दोनों के तत्व समाहित होते हैं। जीवनीपरक उपन्यास हर क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन को आधार बनाकर लिखे जा रहे हैं। इसी तरह से भक्तिकालीन कवियों के जीवन को केंद्र में रखकर जीवनीपरक उपन्यास लिखे गए हैं, जो मुख्यतः इस प्रकार हैं- मानस का हंस, खंजन नयन, लोई का ताना, रत्ना की बात, पिताम्बर, देख कबीरा रोया, प्रणय गाथा, न गोपी न राधा, दलित संत, रंग राची, विरले दोस्त कबीर के आदि। भक्तिकालीन कवियों से सम्बन्धित उपन्यासों में भक्त व संत कवियों के कृतित्त्व और व्यक्तित्त्व के आधार पर उनके जीवन का चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों में लेखक ने तथ्य और सत्य के साथ-साथ अपनी कल्पना शक्ति का सहारा लेते हुए कथानक को आगे बढ़ाया है। भक्तिकालीन कवियों की संघर्ष गाथा को औपन्यासिक कृति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल को स्वर्ण युग कहा जाता है। भक्तिकाल का समय और उसके कवि दोनों ही महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी में भक्तिकालीन कवियों के जीवन पर आधारित महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे गए हैं और अब भी लिखे जा रहे हैं। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के जीवन को आधार बना कर उपन्यास लिखे जाने की परम्परा रही है। इन उपन्यासों में किसी ऐतिहासिक पात्र को मानवी धरातल पर चित्रित किया जाता है। साहित्य में उपन्यास एक गद्य विधा है, जिसमें कथानक के माध्यम से जीवन तथा समाज की व्याख्या की जाती है। किसी व्यक्ति विशेष के आधार पर लिखे गए जीवनीपरक उपन्यासों में जीवनी और उपन्यास दोनों के तत्त्व एक साथ मिलते हैं। इसमें लेखक अपने पात्रों, उनकी समस्याओं तथा उनके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करता है। किसी व्यक्ति के जीवन को आधार बनाकर उपन्यास लिखने की परम्परा ऐतिहासिक उपन्यास और जीवनी साहित्य से ही आई है। "जीवनीपरक उपन्यास, उपन्यास विधा का वह रूप है जो किसी व्यक्ति विशेष के वास्तविक जीवन चरित्र के आधार पर लिखा जाता है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, इस विधा में एक ओर जीवनी विधा संलग्न है, तो दूसरी ओर वह उपन्यास विधा का भी रूप है।"[1] हिन्दी साहित्य में जीवनीपरक उपन्यास लिखे जाते रहे हैं। इसी क्रम में हिन्दी में भक्तिकालीन कवियों के जीवन और समय को आधार बनाकर कई उपन्यास लिखे गए हैं। भक्तिकालीन कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज को एक नई दिशा प्रदान की है। इस युग के कवियों की कविता में तत्कालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थितियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। इनकी कविताएँ भारत में मुस्लिम आगमन और उसकी स्थापना को प्रतिबिम्बित करती हैं। इस काल में हमें भारत में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के संक्रमण का दौर देखने को मिलता है। भक्तिकालीन कवियों से सम्बन्धित उपन्यासों का उद्देश्य प्रसिद्ध कवि के जीवन-वृत्त के साथ-साथ समाज पर उसके काव्य का प्रभाव और आज के समय में उसकी प्रासंगिकता को भी जोड़कर दिखाया जाता रहा है। ऐसा करते समय उपन्यासकार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता हैं। ऐतिहासिक पात्र को आधार बनाकर उपन्यास लिखना अत्यंत कठिन कार्य माना जाता है। यहाँ उसे तथ्यों और सत्य में बंधे रहना होता है, क्योंकि इसमें इतिहास और कल्पना का द्वंद्व लगातार चलता रहता है। उपन्यास एक ऐसी रचना होती है जिसमें लेखक की कल्पना शक्ति का भरपूर प्रयोग किया जाता है, परन्तु जब किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के जीवन पर उपन्यास लिखा जाता है, तब लेखक अपनी कल्पना के सहारे ऐतिहासिक तथ्यों के विरुद्ध नहीं जा सकता हैं। इसलिए लेखक जीवनीपरक उपन्यास की रचना

करते समय इतिहास और कल्पना का प्रयोग बहुत अधिक सावधानी के साथ करते हैं। किसी विशेष व्यक्ति के जीवन को आधार बनाकर उपन्यास लिखते समय उपन्यासकार को औपन्यासिक प्रवाह बनाते हुए किसी अंत तक पहुँचना होता है। सत्य और तथ्य के ज्यादा से ज्यादा करीब पहुँचना जीवनीपरक उपन्यासकारों की रचनात्मक निष्ठा के लिए आवश्यक होता है। "जीवनीमूलक उपन्यास मानव जीवन को बहुआयामी अभिव्यक्ति देने वाले उपन्यास की एक महत्त्वपूर्ण उपविधा है। इस उपविधा का एक छोर जीवनी की ऐतिहासिकता, प्रामाणिकता और तथ्यपरकता से बंधा है, तो दूसरा छोर उपन्यास की कलात्मक सीमाओं को छूता है। इन जीवनीपरक उपन्यासों का इतिहास-बोध बहुत व्यापक होता है। इन उपन्यासों का नायक इतिहास निर्माण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।"[2]

जीवनीपरक उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यास के वर्ग में रखकर भी देखा जाता रहा है, परन्तु इनमें आपस में स्पष्ट भेद होते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में व्यक्ति विशेष होता है, जो कथा का नायक भी होता है, परन्तु उसका केंद्र बिन्दु तत्कालीन युग होता है। उस युग की सामाजिक घटनाएं होती हैं, समाज का वैचारिक दर्शन होता है। वही जीवनीपरक उपन्यासों में मुख्यत: कथानायक ही उपन्यास के केंद्र में होता है। "जीवनी प्रधान उपन्यासों में ये सारी विपत्तियाँ, यश, मान-अभिमान आदि सिर्फ लेखक की अपनी कल्पना द्वारा ही उधार नहीं लिए जाते, बल्कि यह सब उस कवि विशेष के साहित्यिक सृजन के अंग होते हैं।"[3] समाज व समसामयिक घटनाओं में नायक की भूमिका ही उसके चरित्र का निर्माण करती हैं। भक्तिकालीन कवियों के जीवन के आधार पर लिखें गए उपन्यासों में लेखक ने जिस ऐतिहासिक पात्र यानि कवि को केंद्र में रखा है। उसके जीवन से सम्बन्धित आख्यानों को ध्यान में रखकर ही उपन्यास की रचना की है। उपन्यास लिखते समय लेखक इतिहास और कवि विशेष की कविता के साथ-साथ अपनी सृजनात्मक शक्ति के सहारे इस कार्य को आगे बढ़ाने में सफल हुए हैं।

'रत्ना की बात' रांगेय राघव द्वारा लिखित यह उपन्यास गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर आधारित है, जिसमें तुलसी की लोक-मंगल की भावना को केंद्र में रखने के साथ-साथ तुलसीदास के घर-बार और उनके जीवन संघर्ष को फ्लैशबैक तकनीक से इस तरह उभारा है, कि उस समय का समूचा समाज, युगीन प्रश्न और उन सबके बीच कवि की सामजिक-सांस्कृतिक भूमिका का एक जीवंत चित्र पाठक के मानसपटल पर सजीव हो उठता है। उपन्यास के केंद्र में तुलसीदास तो हैं ही साथ ही उनकी पत्नी रत्नावली का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। इस उपन्यास में उन तथ्यों का सहारा लिया गया है जो तुलसी की अपनी कविताओं में भी मिलते हैं। "एक वे उद्धरण हैं जो कवि के जीवन के साथ-साथ यत्र-तत्र उनकी रचना का भी अल्पाभास देते हैं। दूसरे वे उद्धरण हैं जो यह प्रकट करते हैं कि वे केवल कवि नहीं थे, वे मूलत: भक्त थे।"[4] इस उपन्यास में लेखक ने पुरुष और प्रकृति का भी ठीक तरह से सन्तुलन दिखाया है। यह उपन्यास तुलसीदास और उनकी पत्नी रत्नावली के माध्यम से मध्यकालीन हिन्दी भक्ति काव्य का एक जीवन्त और हार्दिक चित्र प्रस्तुत करता है, जो पाठक को अन्त तक बांधे रहता है।

'लोई का ताना' यह उपन्यास भक्तिकालीन कवि कबीर के जीवन पर आधारित है। जिसकी रचना रांगेय राघव द्वारा की गयी है। यह एक ऐसा जीवनीपरक उपन्यास है, जिसमें कबीर के जीवन द्वारा उस युग की विद्रोहात्मक सामाजिक चेतना का चित्रण किया गया है। कबीर के जीवन-सम्बन्धी तथ्य अधिक नहीं मिलते, फिर भी उनके साहित्य को पढ़कर जिन निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। वह प्रशंसनीय है, इसमें उपन्यासकार ने जीवनी, इतिहास और आलोचना के त्रिभुज द्वारा कबीर के जीवन का चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास में कबीर के जीवन की झाँकी हैं। इसका नायक हिन्दी साहित्य के महान समाज सुधारक, कवि व दार्शनिक संत कबीर के जीवनी की कहानी है। इसका शीर्षक प्रतीकात्मक रूप में है जो कबीर के समय और समाज का वर्णन करता है। इस उपन्यास की कथा कबीर के बेटे कमाल के मुख से कहलवाई गई है। "तथ्यों के अभाव में कबीर के जीवन का पूरा चित्र देने में कमाल ने सहायता दी है। कबीर की मृत्यु के बाद गुरु की कविताओं को सुनकर आपस में लड़ने वाले चेलों का वर्णन है, कमाल ही बोलता है। अपने युग के बन्धनों में रहकर जो कमाल कह सकता है वह कहता है।"[5] कबीर के बारे में कमाल से कथा कहलाते हुए लेखक कबीर के विचारों का वर्णन करता है, कि कबीर ने जो राह दिखाई थी वो वह मानवतावाद के कल्याण की थी। वे भारतीय संस्कृति के नाम पर भेदभाव करने वाले ब्राह्मणवाद और इस्लाम दोनों का विरोध करते हैं।

'मानस का हंस' अमृतलाल नागर द्वारा लिखित 'मानस का हंस' जीवनीपरक उपन्यास परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसकी रचना कवि तुलसीदास के जीवन और व्यक्तित्त्व को आधार बनाकर की गई है। यह तुलसीदास पर क्लासिक उपन्यास हैं। इस उपन्यास में तुलसीदास और उनके निर्माण की गाथा है। तुलसीदास की कोई प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध न होने पर भी यह श्रम-साध्य कार्य नागर जी ने किया है। जिसमें उनकी सृजनात्मकता झलकती है। इतिहास और चमत्कारपूर्ण किंवदन्तियों से बचते

हुए नागर जी ने परम्परा और तुलसी की रचनाओं में उपलब्ध संकेतों के आधार पर इस उपन्यास में तुलसी का व्यक्तित्त्व गढ़ने का प्रयास किया है। "कवितावली, हनुमान बाहुक और विनयपत्रिका आदि रचनाओं में तुलसी के संघर्षों-भरे जीवन की ऐसी झलक मिलती है कि जिसे नजर-अंदाज नहीं किया जा सकता। किंवदंतियों में जहाँ अंधश्रद्धा-भरा झूठ मिलता वहाँ ही ऐसी हकीकतें भी नजर आती हैं जिनसे गोसाई जी की आत्मा-परक कवितओं का ताल-मेल बैठ जाता है।"[6] 'मानस का हंस' उपन्यास में तुलसीदास की कल्पित व यथार्थ जीवनी ही नहीं, बल्कि इसके साथ ही उस समय का सांस्कृतिक इतिहास भी इसमें मिलता है। इसके कथा संसार में यद्यपि कुछ राजनीतिक घटनाएँ भी घटित होते हुए दिखाई गई हैं, परन्तु यहाँ उपन्यासकार का उद्देश्य उनके माध्यम से सांस्कृतिक परिवेश को सजीव बनाना है न की उस घटना विशेष की व्याख्या करना है। काशी का सांस्कृतिक परिवेश उपन्यास में सजीव रूप में प्रस्तुत हुआ है। कट्टर ब्राह्मणवादी व्यवस्था से तुलसी का संघर्ष तत्कालीन सांस्कृतिक परिवेश के द्वंद्वात्मक रूप को सामने लाता है। "'मानस का हंस' उपन्यास तुलसी के समग्र उपलब्ध जीवनवृत्त को उनसे सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के साथ उसी क्रम एवं व्यवस्था में प्रस्तुत करता है। पार्वती-अम्मा की मृत्यु के बाद पालन कर्ता नरहरी बाबा, शिक्षा एवं गुरु शेष सनातन, मित्र नन्दास एवं टोडर, जीवनी लेखक शिष्य बेनीमाधव दास, पत्नी-गुरु रत्नावली सब प्रस्तुत उपन्यास में उपस्थित हैं।"[7] तुलसी के जीवन से सम्बन्धित किंवदन्तियों का प्रयोग लेखक ने सम्भावना की कसौटी पर कसने के बाद किया है। साथ ही उनकी लेखक ने निजी व्याखाएँ करके सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। सामाजिक विडम्बनाओं के विरुद्ध तुलसी का व्यक्तिगत प्रतिरोध तथा विदेशी शासन के अत्याचारों का सामना करने के लिए जनता को सजग और शक्तिशाली बनाने की तुलसीदास की योजना उपन्यासकार की मौलिक उपलब्धि है।[8] 'रामचरित मानस' के प्रतिष्ठापक गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर आधारित इस उपन्यास में लेखक ने उनके गौरवपूर्ण व्यक्तित्त्व को आधुनिक चेतना के साथ पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

'खंजन नयन' यह अमृतलाल नागर का ही दूसरा उपन्यास है, जो महाकवि सूरदास के जीवन पर आधारित है। इस उपन्यास में सूरदास के भक्त और कवि व्यक्तित्व को उभारना ही लेखक का मुख्य उद्देश्य है। इस रचना में प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए जन्मान्ध बालक सूर के चरित्र का विकास बहुत ही मार्मिक है। यह संघर्ष सामजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक-मनोविज्ञान के स्तर पर उसके जीवन पर्यन्त चलता रहता है, जिसकी आँच में तपकर सूर परम भक्त कवि सूरदास बनता है। सूरदास के व्यक्तित्व-निर्माण के क्रम में नागर जी ने तत्कालीन ऐतिहासिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी सजगता के साथ अंकन किया है। सूरदास के संदर्भ में लेखक ने साम्प्रदायिक सूचनाओं को तो लिया ही है, साथ ही उनके विषय में प्रचलित किंवदंतियों से भी उनके जीवन को आकार देने में जगह-जगह सहारा लिया है। "कुछेक तथ्यों को सृजन के अनुकूल बनाने के लिए परिवर्तित एवं पुर्नसर्जित भी कर लिया गया है। उपन्यास में सूरदास के जीवन वृत्त के साथ उस समय का युग एवं तत्कालीन समाज जीवंत हो उठा है। केवल सूरदास ही नहीं तत्कालीन जनजीवन के भास्वर चित्र भी उपन्यास में उपलब्ध हैं।"[9] इसमें केवल पात्र की ही अधिक संख्या नहीं है, बल्कि तत्कालीन जन-जीवन का भी भरपूर मात्रा में वर्णन हुआ है। लेखक ने सूरदास के जीवन का चित्रण करते समय इतिहास और कल्पना के साथ-साथ भागवत का भी सहारा लिया है। "सूर की कल्पना के महारास दृश्य को मैंने अपनी कल्पना का दृश्य बनाना उचित न समझकर भागवत के दशम स्कंध से प्राय: उद्धृत ही कर लिया है।"[10] इसमे सूरदास के जीवन से जुड़ी अनेक चमत्कारिक घटनाओं का अतिश्योक्ति चित्रण भी हुआ है, जो लेखक की विशेषता को भी दर्शाता है।

'पितांबरा' यह 'भगवतीशरण मिश्र' द्वारा रचित जीवनीपरक उपन्यास है, जो मीराबाई के जीवन पर आधारित है। लेखक द्वारा अपनी विशिष्ट शैली में रचित एक अत्यंत रोचक एवं प्रामाणिक उपन्यास है, जो जीवन बोध के संदर्भ में भी इस संत कवयित्री की प्रासंगिकता को गहराई से रेखांकित करता है। लेखक के अनुसार मीरा मात्र कृष्णोपासिका नहीं थी अपितु वह एक निर्भीक समाज सुधारिका भी थी जिसने आज से प्राय: पाँच सौ वर्ष पूर्व ही नारी जागरण का प्रथम शंखनाथ किया था। सड़ी-गली सामाजिक कुरीतियों को दृढ़ता से नकारने वाली कृष्णप्रिया मीरा विश्व की उन कुछेक नारियों में से हैं जो काल की शिला पर अपने अमिट हस्ताक्षर छोड़ जाने में सफल हुई है। इस ऐतिहासिक औपन्यासिक कृति में मीरा सम्बन्धी विविध भ्रांतियों को सफलतापूर्वक निरस्त कर तथा उसके जीवन से जुड़े चमत्कारों को विश्वसनीय रुप में रखने का प्रयास कर लेखक ने मीरा के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व को आधुनिक पाठकों के अत्यधिक समीप लाने का सफल प्रयास किया है। इसमें मीरा के जीवन के विविध रूपों और आयामों को अत्यन्त रोचकता से चित्रित किया गया है। यह भ्रांतियों का निवारण करने के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण तथ्यों का विवरण भी प्रस्तुत करता है। उपन्यास में इतिहास भी है, जिसमें चरित्रों एवं घटनाओं को यथासम्भव सही परिप्रेक्ष्य में रखा गया है। लेखक कहते हैं कि "इसमें मनगढंत किस्से को भी झुठलाता हूँ कि मीरा के पद नीची जातियों और आदिवासियों में ही अधिक लोकप्रिय है और संभ्रांत लोग

अब भी मीरा के प्रदेश में ही उसे सम्मानजनक दृष्टि से नहीं देखते बल्कि सत्य तो यह है कि चितौड़ के लोग मीरा को अपना गौरव मानते हैं।"[11] इस उपन्यास में मीरा से जुड़ी अनेक भ्रांतियों को दूर करने का प्रयास किया, साथ ही उन्हें सिद्ध करने के लिए उचित तर्क भी दिए हैं।

'देख कबीरा रोया' यह उपन्यास 'भगवतीशरण मिश्र' द्वारा रचित है, जिसकी कथा कबीरदास के जीवन पर आधारित है। यह कृति संत कबीर पर एक प्रमाणिक एवं रोचक पठनीय जीवनीपरक उपन्यास है। इसमें कबीर के कृतित्त्व और व्यक्तित्त्व का विस्तार से चित्रण किया गया है। इसमें कबीर की कविता और उनके जीवन के विविध आयामों का अत्यंत रोचक और जीवंत वर्णन किया गया है। उपन्यास में कबीर को एक संत होने के साथ समाज-सुधारक के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें जगह-जगह बहुत सारें ऐतिहासिक तथ्यों का भी वर्णन हुआ है, लेकिन फिर भी यह एक उपन्यास है न कि कोई इतिहास ग्रन्थ। लेखक का मत है कि "यह एक औपन्यासिक कृति है, ऐतिहासिक नहीं। ऐतिहासिकता चाहे इसमें जितनी उपलब्ध हो पर इसे इतिहास-ग्रन्थ की संज्ञा तो नहीं दे सकते। फिर भी कबीर के सन्दर्भ में जो कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य मिल सकता था, आधार-सामग्री के रूप में उसी का प्रयोग हुआ है।"[12] लेखक ने इस रचना में कबीर की कवि प्रतिभा को भी स्पष्ट रूप से उजागर किया है। कबीर के जीवन से सम्बन्धित भ्रांतियों को तर्कपूर्ण दूर व स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है। कबीर को चमत्कारों से दूर रखते हुए भी उन्हें नितान्त चमत्कारहीन नहीं माना है।

'प्रणय गाथा' 'राजेन्द्र मोहन भटनागर' द्वारा रचित मीरा के जीवन पर आधारित औपन्यासिक कृति है। इसमें मीरा के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व का वर्णन किया है। कृष्णमयी मीरा के उन क्षणांशों की अभिव्यक्ति इसमें हुई है जो मीरा की पदावली के माध्यम से हमारे सामने आते हैं। लेखक कहते हैं कि "वह पारवती ही थी। वह 'श्याम' थी। वह गोप थी। वही राधा थी। वही राम थी। वही शिव थी ना जाने उसके कितने रूप सामने आये थें।"[13] इन्ही सब रूपों में लेखक ने मीरा का वर्णन किया है। मीरा का समग्र जीवन स्त्री-विमर्श की अप्रतिम भूमिका निभाता है। आज के समूचे स्त्री-विमर्श पर मीरा अकेली भारी पडती हैं। लेखक ने मीरा की अंतर्कथा, उसका अपने समय-संघर्ष आदि का वर्णन करने के साथ ही भ्रांतिपूर्ण अवधारणा को भी दूर किया है।

'न गोपी न राधा' यह उपन्यास राजेन्द्र मोहन भटनागर ने कृष्ण-भक्त मीरा के जीवन पर आधारित लिखा है। इसके शीर्षक से ही स्पष्ट हो रहा है कि यहाँ मीरा न तो कोई गोपी है और न ही राधा है, वह तो मीरा ही है जो अपने आप में ही पूर्ण है। अपने आप में जो 'मीरा' होने का अर्थ है वह न तो गोपियों को मिला था और न ही कृष्ण प्रिय राधा को ही मिल सका था। इसमें मीरा का चरित्र एक वीर क्षत्राणी के रूप में दिखाया है। साथ ही वह कृष्ण की भक्तिन व समर्पिता भी है। उपन्यास की नायिका मीरा के चरित्र में कुरीतियों के प्रति विद्रोह व कृष्ण के प्रति समर्पण दोनों दिखाई देते है। लेखक मीरा के चरित्र के बारे में कहते हैं कि "मीरा प्रारम्भ से ही कृष्णा रही, गृहस्थिन होकर भी कृष्णा ही बनी रही और प्रौढ़ा होकर भी कृष्णा ही बनी रही। अन्ततोगत्वा वह कृष्णा ही रही और फिर स्वयं ही कृष्णा हो गई। कृष्ण रंग में रंगकर सदा के लिए रसराज में समां गई।"[14] इस रचना के माध्यम से उपन्यासकार अपने पाठकों को मीरामय करने में काफी हद तक सफल हुए हैं।

मीरा के ही जीवन पर भटनागर के जीवनीपरक उपन्यास और हैं- 'प्रेम दीवानी' और 'जोगिन' जिनमें मीरा के पदों और इतिहास के माध्यम से लेखक ने मीरा की संघर्ष-गाथा का वर्णन किया है। ये सभी उपन्यास एक-दूसरे से पूरी तरह भिन्न हैं। इनका कथानक, चरित्र-चित्रण, भाषा शैली सभी अपने आप में अलग तरह से प्रस्तुत किया गया है। 'दलित संत' नाम से इन्हीं लेखक का उपन्यास संत रविदास के जीवन पर आधारित है, जिसमें रैदास के जीवन का वर्णन है तथा अन्य उपन्यास 'सूरश्याम' जो कृष्ण भक्त कवि सूरदास के जीवन पर आधारित है।

'रंग राची' यह उपन्यास 'सुधाकर अदीब' द्वारा लिखा गया है। यह भक्तिकालीन कवयित्री मीराबाई के जीवन पर आधारित है। उपन्यास में मीरा के जीवन को अपनी लेखकीय दृष्टि से देखते है। मीरा को साधु-संतों, भक्तों और जनसाधारण में नारायण का वास दीखता था। वह एक ऐसी स्त्री थी जो कि एक राजकुल में जन्मीं और दूसरे राजकुल में व्याही गई, उन्होंने सामन्ती व्यवस्था का वैभव व तिरस्कार दोनों भोगा, सहा और त्याग दिया। उसने तत्कालीन सामन्ती प्रथा को खुली चुनौती दी। वह अपने अपूर्व धैर्य के साथ उन तमाम कुप्रथाओं का सामना करती रहीं जो स्त्रियों को लौह कपाटों के पीछे ढ़केलने और उसे पत्थर की दीवारों की बन्दिनी बनाकर रखने, पति के अवसान के बाद जीते जी जलाकर सती कर देने का विरोध करती है। मीरा ने स्त्रियों के संघर्ष के लिए जो

सिद्धांत निर्मित किए उन पर सबसे पहले वे ही चलीं। मीरा की महानता भक्तिकालीन अन्य सब भक्त व संतों कवियों से अलग है। इसी संदर्भ में लेखक कहते हैं कि "दूसरे भक्त-संत जनसमर्थक थे और जनसाधारण में से ही आए थे। अत: सामन्ती व्यवस्था के वैभव और विभेद के प्रति उनके मन में अरुचि होना नितान्त स्वाभाविक बात थी। जबकि मीरा तो स्वयं ही सामन्ती व्यवस्था का अंग थीं। यदि चाहती तो वह भोग-विलासमय जीवन अपना सकती थीं, पर नहीं, पुरुषप्रधान समाज में एक तथाकथित अबला स्त्री होकर भी उन्होंने उस निर्मम व्यवस्था का सात्त्विक विरोध किया।"[15] आज के समय में 'रंग-राची' उपन्यास की प्रासंगिकता कहीं अधिक है। आज हमारे सामने यह प्रश्न फिर से खड़ा होता है कि कब तक समाज में हर एक मीरा को यूँ ही कुप्रथाओं और सामंती बेडिघ्यों में जकड़ा जाएगा? कब तक उसे समाज की खातिर, कुल की रक्षा की खातिर जहर पीना पड़ेगा और भी अनेक प्रश्नों का जवाब भी इस उपन्यास में मीरा के माध्यम से दिया गया है।

'विरले दोस्त कबीर के' यह उपन्यास 'कैलाश नारायण तिवारी' द्वारा लिखा गया है, इस उपन्यास का कथानक कबीर के जीवन और उनके आत्मसंघर्ष पर आधारित है। यह उपन्यास कबीर सम्बन्धित विमर्श को एक नई दिशा प्रधान करता है। इस उपन्यास की ही भूमिका में लेखक कहते है कि "कबीर को किसी ने मध्यकाल का श्रेष्ट कवि बताया है, तो किसी ने महान से भी महान। किसी ने उन्हें दलित चिंतन का पहला प्रस्तोता सिद्ध किया है तो कोई उन्हें प्रेम का कवि सिद्ध करने की कोशिश करता है।"[16] इस जीवनीपरक उपन्यास में कबीर का व्यक्तित्त्व एक नए रूप में उजागर हुआ है। उसे एक साधारण मनुष्य के रूप में चित्रित किया है। वह अपने समय और समाज में व्याप्त विसंगतियों से किसी महान व्यक्ति की तरह नहीं बल्कि एक सामान्य व्यक्तित्त्व की तरह उनका सामना करते हैं। कबीर देवलोक में रहते हुए अपने जीवन के आत्म संघर्ष को याद करते हैं। लेखक ने कबीर के व्यक्तित्त्व को समझाने लिए उनकी कविताओं का सहारा लिया है। कबीर का अधिकतर मूल्यांकन उनके दोहों में निहित संवेदना के आधार पर ही किया गया है। उनकी कविता में आए हुए विचारों के आधार पर ही लेखक ने उनके जीवन का चित्रण किया हैं। इसमें तथ्यों के साथ-साथ लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति का भी प्रयोग किया है। "कल्पना के माध्यम से कबीर का यथार्थ रच दिया है। वैसे भी यथार्थ के करीब पहुँचने के लिए कल्पना का सहारा लिया जाता है। लेकिन यह उपन्यास निरा-कल्पना भी नहीं है। रचनाकार ने जो तर्क दिया है और उस बात को जिस सलीके से रखा है, वह कहीं भी भ्रमित नहीं करती है।"[17] इस उपन्यास में उन्हें एक समाज सुधारक के रूप में न देखकर एक सामान्य मनुष्य के रूप में दिखाया गया है, जिससे उनका आत्मसंघर्ष साहित्य में आ सका है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक को ऐसा लगता है कि जैसे वह खुद कबीर से रूबरू हो रहा है।

भक्तिकालीन कवियों के जीवन से सम्बन्धित जीवनीपरक उपन्यास आज के सन्दर्भ में और अधिक अपेक्षित हैं, क्योंकि आज के समय में भी इन कवियों का जीवन समाज के लिए प्रेरणादायक है। समाज को नई दिशा प्रदान करने वाले महान व्यक्तियों को कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। भक्तिकालीन कवियों का व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व दोनों ही आधुनिक युग में भी पूर्णत: प्रासंगिक है। इसलिए इनसे सम्बन्धित इतिहास और साहित्य दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण से इन भक्तिकालीन कवियों पर आधारित जीवनीपरक उपन्यासों की रचना और इन पर शोध कार्य करने की आवश्यकता इसलिए भी है, क्योंकि इन उपन्यासों में इस्लाम के आगमन से जनता पर जो निराशा छा गई थी। उसे दूर करने के लिए इन भक्त और संत कवियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और उन्हें जीवन जीने का एक नया संदेश दिया था, अत: इन भक्तिकालीन कवियों के जीवन पर आधारित जीवनीपरक उपन्यासों में लेखक की कल्पना शक्ति के साथ ही तत्कालीन इतिहास के सन्दर्भ में इनके आलोचनात्मक अध्ययन से मध्यकाल के इतिहास में नए तथ्यों के आधार पर उस काल का इतिहास भी नए रूप में हमारे सामने आ सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. अमृतलाल नागर के जीवनीपरक उपन्यास, डॉ. सुरेखा एम. झाडे, पृ. संख्या-21, अमन प्रकाशन, कानपुर संस्करण, 1996
2. हिन्दी के जीवनीपरक उपन्यास: एक अध्ययन, डॉ. संगीता सहजवानी, पृ. संख्या-222, अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण, 2009
3. वाड्मय हिन्दी पत्रिका, दिसम्बर 22, 2010, लेख- जीवनीपरक साहित्यकारों में, डॉ. रांगेय राघव, भीम सिंह के. राठौर
4. रत्ना की बात, रांगेय राघव, पृ. संख्या-5, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, संस्करण: 2015

5. लोई का ताना, रांगेय राघव, पृ. संख्या-7, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, संस्करणः 2016
6. मानस का हंस, अमृतलाल नागर, भूमिका, पृ. संख्या-7, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, संस्करण, 2017
7. अमृतलाल नागरः भारतीय उपन्यासकार, डॉ. पुष्पा बंसल, पृ. संख्या-40, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, संस्करण, 1987
8. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ. संख्या-455, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2001
9. उपन्यासकार अमृतलाल नागर, डॉ. सुमित्रा, पृ. संख्या-117, कमल प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण, 2008
10. खंजन नयन, अमृतलाल नागर, भूमिका पृ. संख्या-7, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, संस्करण, 2015
11. पीताम्बरा, भगवतीशरण मिश्र, पृ. संख्या-11, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, संस्करण, 2014
12. देख कबीरा रोया, भगवतीशरण मिश्र, पृ. संख्या-9, राजपाल एण्ड संज, दिल्ली, संस्करण, 2015
13. प्रणय गाथा, राजेन्द्र मोहन भटनागर, पृ. संख्या-8, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2014
14. न गोपी न राधा, राजेन्द्र मोहन भटनागर, पृ. संख्या-8, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2008
15. रंग राची, सुधाकर अदीब, पृ. संख्या-8, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण, 2015
16. विरले दोस्त कबीर के, कैलाश नारायण तिवारी, भूमिका से उद्धृत, पृ. संख्या-3, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, संस्करण, 2015
17. उपन्यास समीक्षाः नए कबीर की खोज में, डॉ. रमा, शब्दांकन डॉट कॉम, 2/7/2017, पृ. संख्या-4

भूमंडलीकरण के युग में राष्ट्र-राज्य का बदलता स्वरूप एवं सामाजिक न्यायः भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० तेलानी मीना होरो

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, मगध महिला महाविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध आलेख का सारः

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को अपनाना आज सम्पूर्ण विश्व के देशों के लिए जरूरी हो गया है। वर्तमान में भूमंडलीकरण की अवधारणा को 1980 के दशक में विशेष लोकप्रियता मिली। यह अवधारणा उदारीकरण और निजीकरण के तार्किक परिणाम को व्यक्त करती है। भारत भी वर्ष 1991 में इस वैश्विक प्रक्रिया के दौर में शामिल हो गया है। वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान निर्माताओं ने देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्थिति को देखते हुए संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों के अन्तर्गत सामाजिक न्याय के लक्ष्य को उपबंधित किया है। इस लक्ष्य को साकार करने की दिशा में राज्य ने लोक कल्याणकारी नीतियों, कार्यक्रमों और सेवाओं का व्यापक जाल भी बिछाया है। परन्तु भूमण्डलीकरण की प्रक्रियाओं और इससे जुड़ी उदारवादी एवं नवउदारवादी नीतियों ने राज्य की भूमिकाओं का रूख लोक कल्याण से बाजार अर्थव्यवस्था की ओर मोड़ दिया हैं। इससे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय का लक्ष्य, मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के लक्ष्य में बदल गया है। भारत जैसे विकासशील एवं पिछड़े देश में जहाँ बड़ें पैमाने पर दरिद्रता, बीमारी, कुपोषण, आश्रयहीनता व बेरोजगारी जैसे विकराल समस्याएँ मौजूद हैं, राज्य द्वारा कल्याणकारी भूमिकाओं से पलायन करना खतरनाक होगा। यह भारत जैसे विकासशील लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए अनुकूल नहीं हैं।

मूल शब्दः भूमंडलीकरण, नव-उदारवाद, सामाजिक न्याय, लोककल्याणकारी राज्य, आर्थिक नीति।

प्रस्तावनाः

आज संपूर्ण विश्व के देश भूमंडलीकरण की ओर अग्रसर है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे विश्व समाज एक 'वैश्विक ग्राम' में परिवर्तित हो गया है। यह प्रक्रिया नव-उदारवाद के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ी हुई है। नवउदारवाद, परम्परागत या शास्त्रीय उदारवाद का संशोधित रूप है, जिसकी मान्यताएं स्वेच्छातंत्रवाद से मिलती-जुलती है। 1980 के मध्य के पश्चात, वैश्विक व्यवस्था में सामान्य रूप से नव-दक्षिणपंथी तथा विशेषरूप से युनाइटेड किंगडम व संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था ने अपने लिए एक नवीन कार्यक्रम को व्यवहारिक रूप में प्रयोग किया, जो मुख्यरूप से राज्य शक्ति को सीमित करने पर केन्द्रित था। समकालीन विश्व में नव-उदारवाद की प्रेरणा से तीन नीतियों को अपनाया जा रहा है, जो एक दूसरे के साथ निकट से जुड़ी हुई है। यह है उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण। हालाँकि भूमंडलीकरण की संकल्पना नई नहीं है। भारत में चक्रवर्ती राजा की धारणा इसी ओर संकेत करती है। सिकन्दर महान की तथाकथित विश्वविजयी और रोमन साम्राज्य को विश्व साम्राज्य के रूप में संकल्पित करना भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के ही द्योतक हैं। परन्तु वर्तमान में भूमंडलीकरण की अवधारणा को 1980 के दशक में विशेष लोकप्रियता

मिली। यह अवधारणा उदारीकरण और निजीकरण के तार्किक परिणाम को व्यक्त करती है। भूमंडलीकरण के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधि की कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए अर्थव्यवस्था को विश्व के किसी भी क्षेत्र की आर्थिक गतिविधि के साथ जोड़ने की छूट दी जाती है, जिससे उत्पादन, विपणन और सेवाओं का जाल बिछाकर किसी भी कार्य को विश्व के किसी भी कोने में सम्पन्न किया जा सके। इससे उद्यमी वर्ग अपनी इच्छानुसार वहीं करोबार करता है, जहां उसकी लागत में कमी हो; उसकी गुणवत्ता उन्नत की जा सके; उससे मिलने वाले लाभ की अधिकतम प्राप्ति हो तथा वहां उसे सम्पन्न करने की अनुमति और सुविधाएं प्राप्त हो।

उदारीकरण वह नीति या कारवाई है जिसके अन्तर्गत आर्थिक गतिविधि की कार्यकुशलता और उनसे मिलने वाले लाभ की अधिकतम वृद्धि के लिए उस पर से सरकारी प्रतिबंध और नियंत्रण हटा दिए जाते हैं या उनमें ढ़ील दे दी जाती है, ताकि बाजार की शक्तियाँ बेरोकटोक अपना काम कर सके। इसके साथ यह विश्वास जुड़ा है कि मांग और पूर्ति तथा मुक्त प्रतिस्पर्द्धा के नियम व्यापारियों के लिए निजी लाभ, कामगारों के लिए सम्मानपूर्वक वेतन तथा आर्थिक गतिविधि में कार्य कुशलता बढ़ाने के सर्वोत्तम साधन है। इस नीति के अन्तर्गत व्यापारियों के कल्याण के लिए राज्य के उत्तरदायित्व को कम करने की कोशिश की जाती है। उदारीकरण के समर्थक मानते हैं कि राज्य की कल्याणकारी गतिविधियों को बढ़ाने से व्यक्ति स्वयं परिश्रम से विमुख हो जाते हैं और राज्य के संसाधनों पर जरूरत से अधिक बोझ पड़ता है। अत: सब तरह के लोगों को परिश्रम की ओर प्रेरित करने के लिए राज्य की कल्याणकारी सेवाओं को सीमित करना जरूरी है। इससे जुड़ी हुई एक और अवधारणा निजीकरण है। यह वह नीति है जिसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के किसी महत्वपूर्ण हिस्से को अर्थात किन्हीं विशेष वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन या वितरण को सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के स्वामित्व या नियंत्रण से हटा कर निजी या गैर-सरकारी क्षेत्र को उसका स्वामित्व या नियंत्रण प्राप्त करने की अनुमति दी जाती है, ताकि उसकी कार्य कुशलता बढ़ाई जा सके; उससे होने वाले वित्तीय हानि को रोका जा सके तथा उससे अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके।

समाजिक न्याय की अवधारणा आर्थिक क्षेत्र में राज्य द्वारा अधिकतम लोककल्याणकारी भूमिका निभाने का समर्थन करती है। सामाजिक न्याय का सामान्य अर्थ कि सामाजिक जीवन में सभी मनुष्यों की गरिमा स्वीकार की जाए, स्त्री-पुरूष, गोरे-काले, जाति-धर्म आदि के आधार पर किसी व्यक्ति को बड़ा-छोटा या ऊँचा-नीचा नहीं माना जाए। शिक्षा व उन्नति के अवसर सब लोगों को समान रूप से उपलब्ध हों। सभी मनुष्य के नाते मिल-जुल कर कला-साहित्य, संस्कृति व तकनीक साधनों का उपयोग कर सकें। 'सामाजिक न्याय' का विचार निर्बल व निर्धन पक्ष को विशेष सहायता व संरक्षण दिए जाने की वकालत करता है। विस्तृत अर्थ में 'सामाजिक न्याय' का अर्थ है कि संगठित सामाजिक जीवन में जो भी लाभ प्राप्त होते हैं, वे कुछ चुनिन्दा लोगों के हाथों में सिमट कर न रह जाएं, बल्कि आम आदमी को, विशेषकर निर्बल व निर्धन वर्गो को उनमें समुचित हिस्सा मिले, ताकि वे खुशहाल व सम्मानित जीवन निश्चिन्त होकर बसर कर सके। यह राज्य द्वारा सकारात्मक भूमिका की मांग करता है। सामाजिक न्याय की व्यवस्था की खातिर राज्य लोककल्याणकारी नीतियों व कार्यक्रमों का अवलंबन करता है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक सेवाओं का व्यापक जाल बिछा दिया जाता है। राज्य कई तरह के कायदे-कानून बनाकर लोगों व संस्थाओं की गतिविधियों को नियंत्रित करता है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता, व्यक्ति के गरिमा और राष्ट्र की एकता व अखण्डता को बढ़ाने वाली बन्धुता जैसे पावन शब्द-बन्धों का प्रयोग किया गया है। ये सभी विचार लोकतंत्र के बुनियादी मूल्य भी हैं। कोई भी समाज एक श्रृंखला के समान होता है। जैसे कोई श्रृंखला अपनी सबसे कमजोर कड़ियों से अधिक मजबूत नहीं हो सकती, उसी प्रकार कोई समाज भी अपनी सबसे कमजोर कड़ियों, अर्थात दीन-हीन, निर्बल-निर्धन, अशिक्षित, अस्वस्थ एवं वंचित-उपेक्षित लोगों से अधिक मजबूत नहीं हो सकता। भले ही उसकी सैन्य क्षमता अतिमारक हो और देश में बिखरे हुए समृद्धि के टापुओं से विकास की चकाचौंध नजर आती हो। साथ ही प्रस्तावना में 'समाजवाद' शब्द को भी जोड़ा गया, जिससे राज्य का उद्देश्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

भारतीय संविधान के भाग चार के अन्तर्गत नीति-निर्देशक तत्वों के द्वारा भी सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लक्ष्य को सामने रखा गया है। संविधान का यह भाग केवल नैतिक उपदेश नहीं है, बल्कि इन्हें कार्य रूप देने का राज्य के द्वारा लगातार प्रयास किया गया है। पंचवर्शीय योजनाएं, 20 सूत्री कार्यक्रम, प्रिविपर्स की समाप्ति, बैंको का राष्ट्रीयकरण, जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना, जनवितरण प्रणाली, पंचायती राज, मनरेगा, मध्याह्न भोजन योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना, उज्ज्वला योजना, शिक्षा का अधिकार योजना, खाद्य सुरक्षा कानून, सूचना का अधिकार, जनधन योजना, आयुष्मान योजना इत्यादि इसके उदाहरण है। स्थूल रूप से, भारतीय संविधान में राज्य के लिए जो सामाजिक-आर्थिक आदर्श है, उसका स्वरूप लोककल्याणकारी है। राज्य इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में लगातार प्रयत्नशील भी रहा है। परन्तु 1991 में भारत के तात्कालीन वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह

ने देश को आर्थिक संकट से उबारने के लिए जिस नयी आर्थिक नीति की शुरूआत की, उससे राज्य की नीतियों का रूख, लोककल्याणकारी अर्थव्यवस्था से मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की ओर मोड़ दिया। इसके साथ ही आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण की ऐसी प्रक्रिया शुरू हुई जो अनवरत जारी है। लेकिन इस प्रक्रिया ने सामाजिक-आर्थिक न्याय के लक्ष्य को मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के लक्ष्य में बदल दिया है। इससे जहां राज्य की लोककल्याणकारी भूमिका में कमी आयी है, वहीं भारतीय संविधान के आदर्शों और शासन की मौजूदा नीतियों के बीच एक गंभीर अन्तर्विरोध पैदा हो गया है।

20वीं सदी के पूर्वार्द्ध से ही प्राय: सभी जगह राज्य के कार्यक्षेत्र में विस्तार की प्रवृत्तियाँ देखी गयी। राज्य की कल्याणकारी भूमिका में निरंतर विस्तार से जहां आम लोगों में सामाजिक सुरक्षा की भावना बढ़ी, वहीं यह भी अनुभव किया गया कि इससे आर्थिक विकास की रफ्तार धीमी पड़ गयी है। अधिकतर लोग सार्वजनिक सेवाओं का लाभ उठाकर आराम से जीवन व्यतीत करने के लोभ में श्रम से विमुख होते दिखे। दूसरी ओर प्रतिभाशाली व उद्यमी लोगों पर करों का बोझ इतना बढ़ गया कि वे भी अत्यधिक परिश्रम से विमुख होने लगे। इन परिस्थितियों में कुशलता और आर्थिक विकास की गति को सही दिशा में कैसे मोड़ा जाए? इस प्रश्न का उत्तर नव-उदारवाद के रूप में सामने आया है। नव-उदारवाद के अन्तर्गत समकालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में उदारवाद की मूल मान्यताओं को दूहराने का प्रयत्न किया गया है। इसकी मूल मान्यता यह थी कि राज्य को लोगों के आर्थिक गतिविधियों में न्यूनतम हस्तक्षेप करना चाहिए। नव-उदारवाद समकालीन विश्व में अहस्तक्षेप की नीति (Laissez faire) को फिर से लागू करने की वकालत करता है। यह सामाजिक लक्षित न्याय व राज्य की कल्याणकारी भूमिका को समाज की आर्थिक तरक्की में बाधक मानता है। क्योंकि इसमें समाज के प्रतिभाशाली और उद्यमी वर्गो पर भारी कर लगाकर अकर्मण्य लोगों का पोषण किया जाता है। नव-उदारवाद के पक्षधर राज्य के दूर-दूर तक फैले कार्य क्षेत्र को पुन: समेटने या 'रॉल बैक' करने का समर्थन करते है। 1980 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में यह विचारधाारा उभर कर सामने आयी। इस दशक के अंतिम वर्षो में पूर्वी यूरोप की समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में जो संकट पैदा हुआ था, उसने इसे और बढ़ावा दिया। 1990 के दशक की शुरूआत में इन व्यवस्थाओं के पतन से यह सिद्ध हो गया कि अल्प विकसित क्षेत्र में राज्य प्रायोजित विकास के सहारे अर्थव्यवस्था को बहुत आगे तक नहीं ले जाया जा सकता है। उधर तीसरी दुनिया के देशों ने भी राज्य की आर्थिक अकुशलता का निकट से अनुभव किया। इन परिस्थितियों ने समूचे विश्व में इस विचार को बढ़ावा दिया कि उत्पादन क्षमता और अर्थव्यवस्था की कार्यकुशलता को बढ़ावा देने के लिए बाजारतंत्र को अपना कार्य स्वयं करने देना चाहिए।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 38, जो नीति निर्देशक सिद्धांतों का मर्म है, कहता है '' राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करे, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, प्रभावी रूप से स्थापना और संरक्षण कर लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा'' अनुच्छेद 39 के अनुसार राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से सभी पुरूषों और स्त्रियों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो, समुदाय की भौतिक सम्पदा का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो, जिसमें सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो, आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार से चले कि धन और उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो, पुरूष व स्त्रियों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन हो, उनके स्वास्थ्य और शक्ति, बच्चों के सुकुमारावस्था का दुरूपयोग न हो, आर्थिक अवस्था से विवश होकर लोगों को ऐसे रोजगार में न जाना पड़े, जो उनकी आयु व शक्ति के अनुकूल न हो और बच्चों व युवाओं को शोषण से बचाया जा सके। अनुच्छेद 41 में उपबंध किया गया है कि राज्य अपने आर्थिक सामर्थ्य एवं विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने, शिक्षा पाने, बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और नि:शक्ता की दशा में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा। भारतीय संविधान के 42वें संशोधन के माध्यम से इसकी प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द जोड़कर राज्य की कल्याणकारी भूमिका को और भी मुखर बनाने का प्रयास किया गया है। इसके विपरीत 1991 से भारत में शुरू की गयी नव-उदारवादी नीतियाँ मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था का समर्थन करती है। परन्तु मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था और सामाजवादी अर्थव्यवस्था साथ-साथ नहीं चल सकती है। इस प्रकार भारतीय संविधान के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के आदर्श और शासन की नव-उदारवादी नीतियों के बीच एक गंभीर अन्तर्विरोध उत्पन्न हो गया है। लोककल्याणकारी भारतीय राज्य-व्यवस्था पर मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था का स्पष्ट प्रभाव देखा जा रहा है।

ग्लोबल हंगर इंडेक्स 2019 की ताजा रैकिंग के अनुसार 117 देशों की सूची में भारत 102वें स्थान पर है, जबकि 2018 में 103वें नम्बर पर थी (जागरन जोश, 24 अक्टूबर, 2019)। किसी देश का ग्लोबल हंगर इंडेक्स का स्कोर ज्यादा होने का मतलब है कि उस देश में गरीबी, भूखमरी व कुपोषण की समस्या गंभीर है। जीएचआई रिपोर्ट के अनुसार भारत की स्थिति एशियाई देशों में सबसे खराब है। भारत में बच्चों में कुपोषण की स्थिति बहुत ही खराब है। देश में 20.8 प्रतिशत बच्चों का पूर्ण शारीरिक विकास नहीं

हो पाता, इसकी सबसे बड़ी वजह 'कुपोषण' है। भूख से मौतों और कुपोषण के लिए अभिशाप ओडिसा का कालाहांडी, मलकान गिरी हो, छत्तीसगढ़ का वस्तर और दांतेवाड़ा या फिर बिहार का मुजफ्फरपुर जिला, झारखंड, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र, देश के अधिकतर राज्यों में ऐसे क्षेत्र हैं, जहां भूख, कुपोषण, महामारी सार्वजनिक उपेक्षा का प्राय: निर्धन और आदिवासी-जनजातीय लोग शिकार हो रहे हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 के अनुसार राज्य अपने लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को उंचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्त्तव्यों में मानेगा। स्पष्ट है कि कुपोषण से लड़ने और नागरिकों को पोषाहार स्तर प्रदान करने में सरकारें विफल हो रही हैं। भारत जैसे विकासशील एवं पिछड़े देश में जहाँ बड़े पैमाने पर दरिद्रता, बीमारी, कुपोषण, आश्रयहीन्ता व बेरोजगारी जैसे विकराल समस्याएँ मौजूद हैं, राज्य द्वारा कल्याणकारी भूमिकाओं से पलायन करना खतरनाक होगा। भूमण्डलीकरण की प्रक्रियाओं ने भारतीय संविधान में स्थापित सामाजिक न्याय के आदर्श और शासन की वर्तमान नीतियों के मध्य गंभीर अन्तर्विरोध की स्थिति उत्पन्न कर दी है। यह भारत जैसे विकासशील लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए अनुकूल नहीं हैं।

साहित्य समीक्षा:

प्रस्तुत शोध के दौरान जिन साहित्यों का अध्ययन किया गया है, वे निम्नलिखित हैं-

नरेश भार्गव, की रचना 'वैश्वीकरण: समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य' 2014, रावत पब्लिशन के अन्तर्गत वैश्वीकरण का अध्ययन समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में किया गया है। यह पुस्तक भूमंडलीकरण की सैद्धान्तिक, अवधारणात्मक एवं व्यवहारिक विवेचन करती है। अभय कुमार दुबे, भारत का भूमंडलीकरण, 2007, वाणी प्रकाशन, के अन्तर्गत वैश्वीकरण का भारतीय परिप्रेक्ष्य में आर्थिक एवं तकनीकी बहस से निकालकर लोकतांत्रिक कसौटी पर केन्द्रित करने का प्रयास किया गया है। डॉ. कृष्ण चन्द्र प्रधान ने अपनी रचना 'वोमेन एण्ड सोशल चेन्ज' 2009 में लिखा है कि भूमण्डलीकरण ने भारत में महिलाओं के शैक्षणिक एवं रोजगार की स्थिति में वृद्धि की है। बबीता अग्रवाल एण्ड अनील अग्रवाल ने अपनी रचना, 'ग्लोबलाइजेशन एण्ड इण्यिन सोसाइटी' 2013 में वैश्वीकरण के प्रभाव को इंगित करते हुए लिखा है कि सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार के अभाव में विश्व का स्वरूप बहुत ही छोटा था, परन्तु वैश्वीकरण के प्रभाव में विस्तृत हो गया है। बाम्बी टर्नर ने 'ग्लोबलाइजेशन एण्ड कल्चरल चेन्ज' 2011 में कहा है कि भूमण्डलीकरण से आर्थिक अवसरों, मानवाधिकारों एवं खाद्य पदार्थो, परिधानों, फैशन, सबारी, कॉस्मेटिक का विकास हुआ हैं। सुमित राय, 'ग्लोबलाइजेशन आइ.सी.टी. एण्ड डेवलपिंग नेशन्स चैलेन्ज्स इन द इन्फॉर्मेशन एज' 2008 में लिखा है कि ग्लोबलाइजेशन ने सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी को बढ़ाया हैं, जिससे कार्यो में दक्षता एवं उत्पादन में वृद्धि हुई हैं। डॉ0 अरूण कुमार तिवारी, 'वैश्वीकरण एवं भारत में मानवाधिकार' शोध पत्र में कहा है कि वैश्वीकरण का व्यापक प्रभाव भारत की विधि व्यवस्था पर पड़ा है।

शोध का उद्देश्य:

प्रस्तावित शोध प्रस्ताव ''भूमण्डलीकरण के युग में राष्ट्र-राज्य का बदलता स्वरूप एवं सामाजिक न्याय: भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'' है, जिनके अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जाएगा:

- प्रस्तावित शोध के अन्तर्गत भारत में भूमण्डलीकरण और उससे जुड़ी नव-उदारवादी नीतियाँ- उदारीकरण एवं निजीकरण का अध्ययन अपेक्षित है।
- प्रस्तुत शोध का उद्देश्य भारतीय संविधान द्वारा घोषित सामाजवादी गाँधीवादी आदर्शों के अनुरूप सामाजिक न्याय के लक्ष्यों, शासन द्वारा चलाए जा रहे लोककल्याणकारी कार्यक्रमों एवं बनाए जा रहे नीतियों का अध्ययन करना।
- भूमंडलीकरण के प्रभाव में क्या राष्ट्र-राज्य की शक्तियों में कमी आयी है?
- भूमण्डलीकरण की नीति और प्रक्रियाओं ने क्या भारत जैसे विकासशील देश के सामाजिक न्याय के लक्ष्य और कल्याणकारी योजनाओं के प्रति शासन की प्रतिबद्धता को कम कर दिया है?
- सामाजिक न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था की स्थापना के मार्ग में भूमण्डलीकरण की नीतियाँ क्या बाधक बन रही हैं? इन्हीं प्रश्नों की पड़ताल करना इस शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य है।

शोध परिकल्पना:

- भारत ने वर्ष 1991 में नव-उदारीकरण की नीति को अपनाया, जिसके पश्चात राज्य की लोककल्याणकारी भूमिका में लगातार कमी आयी है।

- भारत एक लोक कल्याणकारी राज्य है, ऐसे में शासन के द्वारा लोगों को दरिद्रता, गरीबी, बेरोजगारी, भूखमरी, बीमारी, कुपोषण के कुचक्र से बचाने के लिए प्रतिबद्ध होना पड़ेगा, अन्यथा देश के लिए विनाशकारी साबित होगा।
- भूमण्डलीकरण और सामाजिक न्याय का विचार एक-दूसरे की विपरीत अवधारणा है, ऐसे में दोनों के बीच तालमेल बैठाकर शासन के द्वारा सामाजिक न्याय के लक्ष्य को पाना बहुत ही कठिन है।

अध्ययन की पद्धतिः

प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धति ऐतिहासिक, व्यावहारिक एवं विश्लेषणात्मक है। इसके अतिरिक्त शोध कार्य की आवश्यकता अनुरूप तुलनात्मक पद्धति का भी सहारा लिया गया है। प्रस्तुत शोध की अध्ययन पद्धति में विश्लेषण हेतु इतिहास से आधारभूत सामग्री प्राप्त किया गया है। यह शोध कार्य द्वितीयक स्रोत पर आधारित है। इस शोध कार्य हेतु भारत सरकार के विभिन्न संबंधित विभागों के अभिलेखों, राष्ट्रीय एवं राज्यस्तरीय पुस्तकालयों के पाण्डुलिपियों, इन्टरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध, समाचार पत्र-पत्रिकाएँ एवं अन्य प्रासंगिक सामग्रियों का अध्ययन किया गया है।

निष्कर्षः

- निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने संपूर्ण विश्व के साथ भारत को भी प्रभावित किया है। वर्ष 1991 के पश्चात् भारत वैश्वीकरण के प्रभाव में सामाजिक न्याय के लक्ष्यों एवं लोककल्याणकारी कार्यों से अपने को दूर कर रहा है और निजीकरण को तीव्र कर नव-उदारीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दे रहा है। यह भारत जैसे विकासशील एवं पिछड़े देश में जहाँ बड़ें पैमाने पर दरिद्रता, बीमारी, कुपोषण, आश्रयहीनता व बेरोजगारी जैसे विकराल समस्याएँ मौजूद हैं, राज्य द्वारा कल्याणकारी भूमिकाओं से पलायन करना खतरनाक होगा। यह भारत जैसे विकासशील लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए अनुकूल नहीं हैं। ऐसे में दोनों के बीच तालमेल बैठाकर सरकार के द्वारा आगे की राह तैयार करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भः

1. दास, डी० के०, ''फाइनेन्शियल ग्लोबलाइजेशनः पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट'' इकोनॉमिक अफेयर्स, 2011 31(2), पृ० 63-67।
2. श्रीनिवास, के०एम०, ''ग्लोबलाइजेशन ऑफ बिजनेस एण्ड द थर्ड वर्ल्डः चौलेन्ज ऑफ एक्सपैन्डिंग द माइन्डसेट'' जनरल ऑफ मैनेजमेन्ट डेवलनमेन्ट, 1995, 14(3), पृ० 26-49।
3. हर्टुन्गी, आर०, ''कुड डेवलपिंग कन्ट्रीज टेक द बेनिफिट ऑफ ग्लोबलाइजेशन?'' इन्टरनेशनल जनरल ऑफ सोशल इकोनॉमिक्स, 2006, 33(11), पृ० 728-743।
4. प्रीब्ले, जे० एफ०, ''टूवार्ड ए फ्रेमवर्क फॉर अचिविंग ए ससटेनेबल ग्लोबलाइजेशन'' बिजनेस एण्ड सोसाएटी रिव्यू, 2010, 115(3), पृ० 329-366।
5. रूगमैन, ए०, हॉडगेट आर०, ''द इन्ड ऑफ ग्लोबल स्ट्राटेजी'' यूरोपियन मैनेजमेन्ट जनरल, 2001, 19(4), पृ० 333-343।
6. एन० ए० पालकीवाल, आवर कॉन्स्टीट्यूशनः डीफेस्ड एंड डीफायड, पृष्ठ -214 ।
7. हरी चांद, द अमेण्डिंग प्रौसेस इन द इंडिया कॉन्स्टीट्यूशन, पृष्ठ 17-18 ।
8. मेगिन्सन और नेटर, राज्य से लेकर बाजार तकः निजीकरण पर प्रायोगिक अध्ययन के एक सर्वेक्षण, आर्थिक साहित्य 39(2) का पत्रिका, जून 2001, 321-89 ।
9. गाबा, ओ.पी., 'डायमेंशन ऑफ सोशल जस्टिस', नेशलन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1983, पृ. 26 ।
10. सिंह, आर. जी., 'भारतीय दलितों की समस्याएं एवं उनका समाधान', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1986 पृ. स. 77 ।
11. जाटव, डी. आर., 'सामाजिक न्याय का सिद्धांत', समता साहित्य सदन, जयपुर, 1993, पृ. सं. 63 ।

समकालीन कला में गणेश अंकन

डॉ० मंजू सिंह

अध्यक्ष, एसोसिएट प्रोफेसर, ललित कला विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

खुशहाली और समृद्धि को क्षण मात्र में ही प्रदान करने वाले भगवान गणेश की प्रतिमा ने कलाकारों को इतना फैशिनेट किया है कि हर माध्यम में गणपति विराजते हैं।

15वीं शताब्दी से यद्यपि भारतीय कला में श्री गणेश की अनेक चित्र रचनाएं देखने को मिल जाएगी। तथापि भारतीय चित्रकला की एक नई धारा का विकास समकालीन चित्रकार की कृतियों में स्पष्ट दिखाई देता है। इस नई दिश में रेडप्पा, के०एम० गोपाल, हुसैन, भैरों नाथ शुक्ल की गणेश चित्राकृतियों के संदर्भ में योगदान विशेष उल्लेखनीय रहा।

"साहित्य आचार्य पं० श्री रामनारायण दत्त जी शास्त्री श्रामश के अनुसार परमात्मा निराकार होने के साथ ही सगुण साकार भी हैं जैसे उनका निर्गुण निराकार रूप नित्य है उसी प्रकार सगुण साकार भी।" इसी प्रकार "जिनके हाथ में टूटे हुए अपने ही दांत का एक खण्ड दीप्तिमान दिखाई देता है जो समस्त देव समुदाय में सबसे प्रचण्ड शक्तिशाली है जिनका गण्डस्थल (कपोल) सिन्दूर से व्याप्त है, जिनके भाल देश में मनोहर अर्द्धचन्द्र प्रकट रूप से चमक रहा है जिनके गण्डस्थल के अन्त में ग्रीवा भाग में घण्टा बधां है, जो मदन-दहन शिव जी के सुपुत्र हैं जिन्होने अपन शुण्डदण्ड को कुण्डलाकार मोड़ लिया है, जो विध्न समूह का विध्वंस करने के लिए काल-दण्ड स्वरूप है, वे वक्रतण्ड भगवान गणेश आप लोगों का कल्याण करें।"

सौन्दर्य से प्रेम, प्रेम से आनन्द जाग्रत होता है भारतीय कला में इस आनन्द की प्रतीती ब्रह्मानन्द सहोदर मानी गयी है। अर्थात् आनन्द को ही भगवान का स्वरूप माना है भगवान का सत्य विशेषण सूक्ष्म भाव (निगुर्ण) का द्योतक तो है ही, उनका गुण धर्म भी है परन्तु सौन्दर्य तो प्रत्यक्ष होने से ही आनन्द दायक होता है। अत: कला में रंग रेखाओं से मुखरित आकार ही आनन्द के वाहक है चूंकि देवाकृतियाँ मानवीय कल्पना के चरमोत्कर्ष के द्योतक है अत: वे सुन्दर भी है और विकट स्वरूपा भी, चूंकि भगवान सुन्दर है अत: उन्हीं की रचना होने के कारण प्रकृति भी सुन्दर है। भारतीय वाड़मय में भगवान को शून्य तथा अखिल ब्रह्माण्ड को शून्य से उत्पन्न माना गया है। अत: एक ही देवाकृति में अखिल ब्रह्माण्ड की कल्पना इस बात की द्योतक है कि कला मानवीय संस्कृति की वाहक एवं समाज का दर्पण है। अत: समाज में होने वाला कोई भी परिवर्तन कलाकार की कल्पना के सहयोग से कलाकृतियों में तुरन्त ही परिलक्षित हो जाता है।

इसी सन्दर्भ में यदि आज गणेश की रूपाकृतियों में परिवर्तन हुआ है तो इसका मुख्य कारण बाजार वाद की भौतिक व्यवस्था है। आजकल सभी चीजों में डिजाइनिंग होने की प्रवृत्ति पाई जाती है, गणेश जी भी इससे अछूते नहीं है। अपने शानदार शिल्प, सौन्दर्यशाली उपस्थिति और इससे भी बढ़कर क्रय क्षमता की सीमा में होने के कारण बाजार में हाथों-हाथ बिकती गणेश आकृतियों ने डिजाइनरों को गणेश रूपाकृतियों में और अधिक विविधता तथा परिवर्तन लाने पर विवश किया है। अत: कला के बढ़ते बाजारवाद ने कलाकार को एक बेहतरीन सोच प्रदान की कि ग्राहकों को खरीद पर संतुष्टि और खुशी मिलनी चाहिए और गहन शोध ने समकालीन गणेश रूपाकारों को जो परिवर्तन प्रदान किया है उसमें परम्परा से हटकर गणेश को विभिन्न रंगों में, हाथों में बांसुरी लिए, डमरू धारण किये हुए, शंखधारी, वीणाधारी भी बनाया गया है। भगवान की लोकप्रियता का अन्दाजा इसी बात से लगाया जाता है कि लघु गणपति प्रतिमाएं करीब-करीब हर घर में मिल जाती हैं। प्रत्येक कार्यस्थल और हर उस वस्तु या सामग्री में उनका बिम्ब उकेरा गया है, जिसकी कल्पना की जा सकती है मिट्टी के बर्तनों से लेकर मोम व टेराकोटा तक, लकड़ी, शीशे, तांबे, पीतल, चांदी, सोने यहां तक कि सुपारी पर भी श्री गणेश विराजे मिलेंगे।

समकालीन कला मुख्य रूप से कलाकारों में कला सम्बन्धी दृष्टिकोण में हुए परिवर्तनों का दर्पण है जीवन मूल्यों में परिवर्तन होने पर उनका जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। अत: कला क्षेत्र भी इसमें अपवाद नहीं है। तब जो कुछ भी इस दर्पण पर बिम्बित होता है वह एक नई धारा को प्रवाह प्रदान करता है।

प्रत्येक कलाकार अपने व्यक्तित्व के अनुरूप कला को निर्मित करने लगा है, एवं चित्रकला में वैचित्रय आ गया। कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति एवं विशुद्ध सौन्दर्य की खोज के बीच द्वन्द शुरू हुआ और उसी द्वन्द्वात्मक अवस्था में आधुनिक कला गतिमान हो गई है। समकालीन चित्रकला के अन्तर्गत चित्रकारों का दृष्टिकोण विभिन्न प्रयोगात्मक और परिवर्तनशील चित्रों के निर्माण की ओर उन्मुख है जिसके अन्तर्गत उन्होंने अपने आन्तरिक संवेदनशील भावों की अभिव्यक्ति करके चित्रकला के क्षेत्र में नवीन उपलब्धियों को समाविष्ट किया तथा प्रयोगात्मक दृष्टि के साथ विभिन्न तत्वों का समावेश करके चित्रों में एक नवीन चेतना का प्रार्दुभाव किया और उनमें विभिन्न प्रभावों की उत्पत्ति करके अपनी विशिष्ट शैली को एक नवीन रूप प्रदान किया।

समकालीन चित्रकारों ने गणपति के दैवीय स्वरूपों के अंकन में उल्लासपूर्ण रूप से अधिक रूचि प्रदर्शित की है अतः इन चित्रों में वैभव और विलास विशेष रूप से परिलक्षित होते हैं तथा उनकी भावनात्मक प्रतिक्रियायें चित्रों में दृष्टिगोचर होती हैं। श्रेष्ठ कलाकार प्राचीन उपलब्धियों और सफलता के सार को आत्मसार करके उसे नवीन रूप देने का भी प्रयत्न करते हैं। ऐसे रूप ष्परम्परागत प्रतीकष् भी कहे जा सकते हैं जिनमें प्रयोगधर्मी कलाकार नये संयोजनों और नये अर्थों का भी समावेश करते हैं। भारतीय कला के ऐसे उदाहरण कला साहित्य में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलते हैं, ऐसे ही शाश्वत अभिप्राय के रूप में गणेश आज भी हमें प्रेरणा दे रहे हैं। गणेश की अनुकम्पा से हर संकट से छुटकारा मिल जाता है। यही कारण है कि मानव सभ्यता के विकास तथा सामाजिक एवं धार्मिक परिवेश में गणेश जी का चित्रण अनेक काल्पनिक और विरोधाभासी ढंगों से किया जा रहा है।

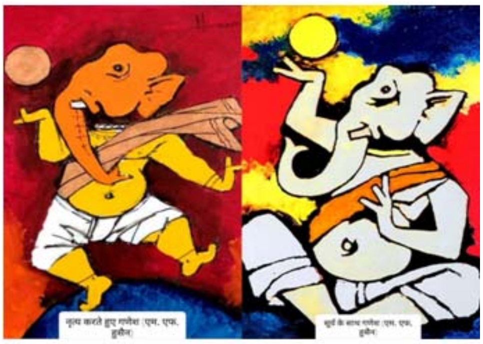

गणेश (यामिनी रॉय) गणेश (एम. रेड्डप्पा नायडू)

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. कल्याण पृष्ठ स०- 466
2. भारतीय साहित्य एवं कला में गणेश, अध्याय चतुर्थ पृष्ठ सं0- 48

भारत छोड़ो आंदोलन की पृष्ठभूमि एवं अपरिहार्यता: एक अवलोकन

रश्मि

शोधार्थिनी, इतिहास विभाग, एम0एम0एच0 कॉलेज, गाजियाबाद

डॉ० ईशा शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एम0एम0एच0 कॉलेज, गाजियाबाद

सारांश

भारत छोड़ो आन्दोलन स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में किये गये आन्दोलनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसने ब्रिटिश सरकार के ताबूत में आखिरी कील का काम किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारतीय जनमानस द्वारा किये गये संघर्ष का एक लम्बा इतिहास रहा है, इसके लिए उन्होंने कई आन्दोलन किये यथा- असहयोग आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन इत्यादि। किसी को ज्ञात नहीं था कि आखिरकार कब सफलता मिलेगी और इसके लिए कितनी कुर्बानी और कितना प्रयास करना पड़ेगा; फिर इसी क्रम में किया गया "भारत छोड़ो आन्दोलन" अत्यन्त प्रभावी एवं अंतिम प्रयास साबित हुआ, हालांकि इससे तुरंत स्वतन्त्रता की प्राप्ति तो नहीं हुई परन्तु इसने ब्रिटिश सरकार की नींव हिला दी और उन्हें यह अनुभव करा दिया कि भारत में अब वे अधिक दिनों तक नहीं टिक पाएँगे तथा अब भारतीय "पूर्ण स्वतंत्रता"/"पूर्ण स्वाधीनता" से कम में बिल्कुल भी राजी नहीं होंगे।

पृष्ठभूमि:

भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि को समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का अवलोकन आवश्यक है। यह आन्दोलन ऐसी विशम परिस्थितियों में छेड़ा गया जब कि समस्त संसार द्वितीय विश्व युद्ध के घातक प्रभावों को झेल रहा था। लगातार युद्ध खर्चों में बढ़ोत्तरी के कारण खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो गया था। खाद्यान्न आपूर्ति में कमी आई तथा कीमतें बढ़ गयी। ब्रिटिष सरकार युद्ध में भारतीय सहयोग व समर्थन चाहती थी, परन्तु इस मामले पर कांग्रेस के भीतर भिन्न-भिन्न मत थे। कांग्रेस के कुछ नेता युद्ध के विरोधी थे तो कुछ सहयोग भी करना चाहते थे। इधर जापानी सेना के भारतीय सीमा तक पहुँचने से युद्ध का संकट और गहरा गया। ऐसे में ब्रिटिष सरकार ने भारतीय सहयोग प्राप्त करने के लिए सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में कुछ प्रस्ताव भारत के लिए भेजे जो कि भारतीयों द्वारा नकार दिये गये। इस पूरी परिस्थिति को इस प्रकार से समझा जा सकता है-

1. **क्रिप्स मिशन की विफलता** - भारत पर जापानी आक्रमण का खतरा बढ़ जाने से ब्रिटिष सरकार द्वारा भारतीयों का सहयोग प्राप्त करना अनिवार्य हो गया था, दूसरी ओर अमेरिका व चीन ने भी ब्रिटेन पर दबाव बनाया कि युद्ध में भारतीय सहयोग प्राप्त करें। अत: भारतीय उपनिवेश को "डेमिनियन स्टेटस" देने के उद्‌देश्य से ब्रिटेन ने "क्रिप्स-मिशन" भारत भेजा।

क्रिप्स महोदय अपने साथ जो प्रस्ताव लेकर आये, उसे सभी भारतीय पार्टियों ने अस्वीकार कर दिया। इन प्रस्तावों में ज्यादातर बिन्दु ऐसे थे जिन पर भारतीय नेताओं को आपत्ति थी जैसे- पूर्ण स्वाधीनता के स्थान पर "डोमिनियन स्टेटस", प्रतिरक्षा ब्रिटेन के

पास रहना, संविधान सभा का निर्वाचन जनता द्वारा न होना आदि। ये सब प्रस्ताव भी युद्ध के पश्चात् ही लागू किये जाने थे और इस सबसे भी बढ़कर; भारत के शासन के लिए तैयार किए गये इस मसविदे पर भारतीयों की कोई राय नहीं ली गयी थी, यहाँ तक कि स्वयं क्रिप्स महोदय भी इन प्रस्तावों में कोई संशोधन या बदलाव नहीं कर सकते थे।

कांग्रेस कार्य समिति ने क्रिप्स प्रस्तावों को अस्वीकृत करते हुए कहा कि -"केवल भविष्य के वादों से संतुष्टि नहीं मिलेगी। हमें तो वास्तविक स्वतंत्रता से संतुष्टि प्राप्त हो सकती है।"

वस्तुत: ब्रिटिश सरकार युद्ध में भारत की अनिच्छुक भागीदारी को तो बरकरार रखना चाहती थी लेकिन किसी सम्मानजनक समझौते के लिए तैयार नहीं थी।[1]

"क्रिप्स-प्रस्ताव" के खोखले वादों से कांग्रेस को यह विश्वास हो गया कि अब और चुप रहने का मतलब यह मान लेना होगा कि अंग्रेज सरकार को भारतीय जनमत की राय लिए बिना भारत के भाग्य का निर्णय करने का अधिकार है। इस प्रकार पूर्ण गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई। कांग्रेस और ब्रिटिष सरकार के पक्षों में इतना अंतर था कि उसे पाटना असंभव था।[2]

विफल स्टैफोर्ड क्रिप्स मध्य अप्रैल में अपने देश लौट गए। इधर भारतीय जनता की निराशा और क्षोभ की सीमा न थी। यद्यपि अब भी उसे फासिस्ट विरोधी शक्तियों, खासकर चीन और सोवियत संघ से सहानुभूति थी लेकिन उसे देश की तत्कालीन स्थिति भी असह्य लग रही थी। उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि साम्राज्यवाद पर निर्णायक हमला करने का वक्त आ गया है।[3]

2. जापानी आक्रमण का खतरा- अभी तक कांग्रेस ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया था (सिवाय, संविधान सभी की मांग के) जिससे अंग्रेजों को परेशानी हो। परन्तु अब जबकि जापान लगभग देश के द्वार पर खड़ा था, कांग्रेस चुप नहीं रह सकती थी।[4] जापान सफलतापूर्वक सिंगापुर, बर्मा, मलाया पर कब्जा कर भारत की और बढ़ने लगा।[5]

जापानी आक्रमण के बारे में गांधीजी ने अपने पत्र "हरिजन" में लिखा कि -"भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति जापानियों को भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण है। उनके जाने से ये लोभ समाप्त हो जाएगा।" इसी पत्र में कुछ दिनों पश्चात उन्होंने लिखा कि-"भारत को ईश्वर के हाथों में अथवा अराजकता में छोड़ दो; तब सभी दल कुत्तों की भांति लड़ेंगे और जब वास्तविक उत्तरदायित्व सिर पर पड़ेगा तो स्वयं वास्तविक समझौता कर लेंगे।"

3. कांग्रेस के भीतर भिन्न-भिन्न मतों का होना- ब्रिटेन द्वारा भारत को बिना सहमति के युद्ध में शामिल करने से कांग्रेसी नेता काफी क्षुब्ध थे परन्तु वे इस असंमजस्य में थे कि फासीवाद के विरूद्ध मित्र देशों का सहयोग अर्थात् ब्रिटेन का युद्ध में सहयोग करें या फिर ब्रिटेन की मनमानी के विरूद्ध अपनी आजादी के लिए ब्रिटेन का विरोध करें।

कांग्रेस में राजगोपालाचारी जैसे कई नेता भी थे जो चाहते थे कि कांग्रेस युद्ध में ब्रिटेन का सहयोग करे। इधर नेहरू जी विषेश रूप से दुविधा में थे कि साम्राज्यवादी ब्रिटेन से संघर्ष करें अथवा फासीवाद के विरूद्ध युद्ध में सोवियत संघ व चीन का साथ दें।

गांधी जी जो आने वाले संघर्ष के बारे में चर्चा करते आ रहे थे, अब देर करना उन्हें गलत लगने लगा था। उन्होंने कांग्रेस को यह चुनौती भी दे डाली कि अगर उसने संघर्ष का उनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तो "मैं देश की बालू से ही कांग्रेस से भी बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दूंगा।"[6]

आखिरकार नेहरू और गांधी जैसे लोग, जो इस फासिस्ट विरोधी युद्ध को किसी भी तरह से कमजोर करना नहीं चाहते थे, इस निष्कर्ष पर पहुँच गए कि और अधिक चुप रहना यह स्वीकार कर लेना है कि ब्रिटिश सरकार को भारतीय जनता की इच्छा जाने बिना भारत का भाग्य तय करने का अधिकार है।[7] अत: आन्दोलन के पक्ष में कांग्रेस में सहमति बनी।

4. खाद्यान्न संकट- भारतीय जनता पहले से ही ब्रिटिश आर्थिक शोषण का शिकार थी जिस कारण से अभाव में जीवन काटना पड़ रहा था। ब्रिटिश उपनिवेश होने के कारण भारत को विश्व युद्ध में ब्रिटिश संलिप्तता के दुष्परिणामों का सामना करना पड़ा। युद्ध में अत्यधिक खर्च के कारण आवश्यक वस्तुओं व खाद्य सामग्री की कीमतें काफी बढ़ गयीं जिससे उन्हें प्राप्त करना कठिन हो रहा था। खाद्य आपूर्ति में कमी ने कीमतों को और अधिक ऊँचा कर दिया। यह स्थिति जनता के लिए अत्यंत असह्य थी।

अंग्रेज अपने देश में कड़े नियंत्रण के साथ "समान राशन व्यवस्था" लागू करके युद्धकालीन अर्थव्यवस्था कुशलतापूर्वक चला रहे थे। लेकिन अपने उपनिवेश में खाद्यान्न की कालाबाजारी और मुनाफाखोरी को रोकने के लिए उन्होंने विशेष प्रयास नहीं किया।

इसका सीधा परिणाम था 1943 का बंगाल का अकाल। बढ़ती कीमतों, वस्तुओं की कमी और भारी संख्या में मित्र देशों की सेनाओं की उपस्थिति को देखते हुए यह भय निर्मूल नहीं था कि देश के खाद्यान्न भंडार सेना का भरण पोषण करते-करते खाली होते जा रहे थे।[8]

अपरिहार्यता:

उपरोक्त तत्कालीन परिस्थितियों ने भारत छोड़ो आन्दोलन को अपरिहार्य बना दिया था, इसके अलावा इस दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा कुछ ऐसे कृत्य किये गये जिसने भारतीय जनता को आंदोलित कर दिया और फिर संघर्ष अपरिहार्य हो गया- बंगाल और उड़ीसा की नावों को जापानियों द्वारा उनके संभावित इस्तेमाल को रोकने के लिए सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था, जिससे लोगों को दिक्कत हो रही थी। सिंचाई की नहरों का कहीं जापानी जल-परिवहन के लिए इस्तेमाल न कर लें, यह सोचकर नहरों का पानी बहा दिया गया, जिससे खेत सूखने लगे। मकानों और मोटर गाड़ियों पर भी सेना ने कब्जा कर लिया था।[9]

भारतवासी अंग्रेजी राज से दिनों-दिन घृणा करने लगे थे। यही नहीं, उन्हें इस बात में भी संदेह था कि अंग्रेजों में जापानी हमले के खतरे से भारत की रक्षा करने की क्षमता है।[10]

एशियाई शक्ति विजय अभियान और दक्षिण-पूर्वी एशिया में मित्र-देशों की मात से न केवल गोरों की प्रतिष्ठा नष्ट हुई, बल्कि एक बार फिर भारत के शासकों का घोर नस्लवादी रूप सामने आया। मलाया, सिंगापुर और बर्मा में सभी प्रकार के यातायात को अपने नियंत्रण में लेकर यूरोपियनों ने "कायरतापूर्ण पलायन" किया और भारतीय प्रवासियों को उनके हाल पर छोड़ दिया। उन्हें घने जंगल और पहाड़ खतरनाक जापानियों के खतरे के बीच पैदल पार करने पड़े।[11]

यह जातीय भेदभाव इस सीमा तक बरता गया कि शरणार्थियों के लिए सड़के तक अलग कर दी गई थीं, एक सड़क अंग्रेज शरणार्थियों के यात्रा के लिए अलग कर दी गई थी और एक एशियावासियों के लिए। अंग्रेज शरणार्थियों के लिए जो सड़क अलग की गई थी वह पक्की थी और उस पर कुछ-कुछ मील के अन्तराल पर भोजन, विश्राम आदि का प्रबंध किया गया था। इसके विपरीत हजारों भारतीय शरणार्थियों के साथ जो दानवतापूर्ण तथा अपमानजनक व्यवहार किया गया, वह भारतियों में गहरा क्षोभ उत्पन्न कर रहा था।[12]

भारत पर जापान के काबिज हो जाने की स्थिति में क्या ब्रिटिश यही कहानी नहीं दोहराते? राष्ट्रवादी जिस बात को इतने दिनों से कहते आ रहे थे, उसे भारतियों ने अपनी आँखों के सामने घटते देख लिया था, कि यूरोपीय भारत को अपना देश न समझ कर सुख-सुविधापूर्ण रहने की जगह मात्र मानते हैं। उनका प्रशासन संकट की घड़ी में देश का नेतृत्व करने के लिए तैयार नहीं था।[13]

असुरक्षा की भावना एवं नैतिक आक्रोश के अतिरिक्त एक और निर्णायक लेकिन महत्वपूर्ण बात थी, 1937-39 के वर्षों में कांग्रेस संगठन का विस्तार। इसका भारत छोड़ो आन्दोलन के तेजी से फैलने में हाथ था। अधिक से अधिक सदस्य बनाने के अभियान और सामान्यत: 1937-39 के दौर की राजनीतिक गतिविधि ने आम जनता की राजनीतिक चेतना को सजग किया। कुल मिलाकर एक विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गई।[14]

इस प्रकार की परिस्थितियों में भारत छोड़ो आन्दोलन अत्यंत आवश्यक/अपरिहार्य हो गया। इस आन्दोलन के अनुमोदन हेतु गांधी जी ने एक प्रस्ताव कांग्रेस कार्यसमिति के समक्ष रखा, जिसे स्वीकृत कर लिया गया। इसके पश्चात अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में इस प्रस्ताव का अनुमोदन होना था।

यह ऐतिहासिक सभा बंबई के ग्वालिया टैंक में हुई। जनता का उत्साह देखते ही बनता था। अन्दर तो नेता विभिन्न मुद्दों पर विचार-विमर्श कर रहे थे और बाहर जनसमुद्र उमड़ रहा था। नेताओं का निर्णय जानने की उत्सुकता इतनी थी कि खुले अधिवेशन में जब भाषण होने लगे, तो हजारों-हजार की भीड़ होने के बावजूद सभा में पूरी शान्ति थी।[15]

आन्दोलन 9 अगस्त 1942 से शुरू होना था। 9 अगस्त के तड़के ही कांग्रेस के सभी बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें अज्ञात स्थानों पर भेज दिया गया।

कांग्रेस को अवैधानिक संस्था घोषित कर ब्रिटिश सरकार ने इस संस्था की सम्पत्ति को जब्त कर लिया और साथ में जुलूसों को प्रतिबंधित कर दिया। सरकार के इन कृत्यों से जनता भड़क उठी और नेतृत्व विहीन होकर तोड़-फोड़ में जुट गई।[16]

इसके बाद जो आन्दोलन शुरू हुआ, वह पिछले सभी आन्दोलनों से भिन्न था। जनता के मन में जो रोष उमड़ रहा था, वह फूट पड़ा। 9 अगस्त के कुछ दिन पहले कानाफूसी चल रही थी कि उपद्रव होंगे, ट्रेनों का चलना बंद हो जाएगा, आदि-आदि। और ऐसा ही हुआ। जैसे ही समाचारपत्रों से लोगों को नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार मिला, हजारों आदमी; मुख्य रूप से ग्रामीण अंचलों में; घरों से बाहर निकल आये और ब्रिटिश सत्ता के जो भी चिन्ह उन्हें नजर आये उन पर उन्होंने हमला बोल दिया।[17] जुलूस निकालना, हड़तालें करना, धरना-प्रदर्शन तथा सरकारी दफ्तरों व इमारतों पर भारतीय ध्वज फहराना आदि विरोध के आम तरीके थे।

गांधी जी ने हालांकि इस आन्दोलन का अंहिसात्मक रखने की बात कही थी और ग्वालिया टैंक मैदान में दिये अपने भाषण में विभिन्न वर्गों को साफ-साफ निर्देश दिए कि- सरकारी कर्मचारी नौकरी न छोड़े, लेकिन कांग्रेस के प्रति अपनी निष्ठा की घोषणा कर दें। सैनिक अपने देशवासियों पर गोली चलाने से इनकार कर दें। राजा-महाराजा भारतीय जनता की प्रभुसत्ता स्वीकार करें और उनकी रियासतों में रहने वाली जनता अपने को भारतीय राष्ट्र का अंग घोषित कर दें तथा राजाओं का नेतृत्व तभी मंजूर करें; जब वे अपना भविष्य जनता के साथ जोड़ लें। छात्र तभी पढ़ाई छोड़ें; जब आजादी हासिल हो जाने तक अपने इस निर्णय पर दृढ़ रह सकें। 7 अगस्त को गांधी जी ने अपने निर्देश कांग्रेस कार्यसमिति में रखे थे। आकस्मिक गिरफ्तारियों के कारण ये निर्देश जारी तो नहीं किये जा सकें, पर इनसे गांधी जी के अंहिसावादी इरादे स्पष्ट हो जाते हैं।[18] उन्होंने "करो या मरो" का मंत्र दिया और कहा कि-"या तो हम भारत को आजाद कराएंगे या इस कोशिश में अपनी जान दे देंगे। अपनी गुलामी का स्थायित्व देखने के लिए हम जिंदा नहीं रहेंगे।"

आन्दोलन के आरंभ में ही नेताओं की गिरफ्तारी से जनता नेतृत्वविहीन हो गई। ब्रिटिश सरकार ने अनुमान लगाया था कि नेताओं की गिरफ्तारी से आन्दोलन शिथिल पड़ जाएगा और प्रभावहीन रहेगा परन्तु उसका यह अनुमान गलत साबित हुआ और नेतृत्वविहीन जनता अधिक आक्रोश के साथ तोड-फोड़ में जुट गई। रेलों की पटरियाँ उखाड़ी गई, पुल तोड़े गए, पुलिस चौकियाँ जलाई गई, टेलीफोन तथा तार की लाइनें काट दी गयीं। नेताओं की अनुपस्थिति में जनता स्वयं की अगुआ बन गई और उसे जो तरीका समझ आया, उस तरीके से संघर्ष करने लगी जिससे आन्दोलन हिंसात्मक हो गया।

प्रांतीय तथा स्थानीय स्तर के नेता गिरफ्तार होने से बच गए थे, वे अपने-अपने इलाके में चले गए और प्रतिरोधात्मक गतिविधियों में लग गए।[19] स्थानीय नेताओं के नेतृत्व में देश के कुछ भागों में स्वतंत्र स्थानीय सरकारों (समानान्तर सरकारों) की स्थापना इस आन्दोलन की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता रही। ऐसी पहली सरकार चितू पाण्डेय के नेतृत्व में बलिया में बनी। इस प्रकार की सरकारें पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र तथा उड़ीसा में स्थापित की गई। ये सरकारें हालांकि कुछ समय के लिए ही स्थापित रह पायीं तथापि ये इस बात की द्योतक हैं कि भारतियों ने ब्रिटिश नियंत्रण से मुक्त होकर स्वयं की स्वतंत्र सरकारों की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की।

आन्दोलन में हुई भारी हानि और हिंसा के लिए ब्रिटिश सरकार ने गांधी जी तथा कांग्रेस को दोषी ठहराया और आरोप लगाया कि उन्हीं की प्रेरणा से यह हिंसात्मक आन्दोलन छिड़ा है।[20] गांधी जी ने इन बेबुनियाद दोशों को अस्वीकार करते हुए कहा कि- "मेरा वक्तव्य अहिंसा की सीमा में था।" उन्होंने कहा कि-"स्वतंत्रता संग्राम के प्रत्येक अहिंसक सिपाही को कागज या कपड़े के टुकड़े पर करो या मरो का नारा लिखकर चिपका लेना चाहिए जिससे यदि सत्याग्रह करते समय उसकी मृत्यु हो जाए तो उसे इस चिन्ह के आधार पर दूसरे लोगों से अलग किया जा सके जिनका अहिंसा में विश्वास नहीं।"

यद्यपि कांग्रेस के नेताओं ने इसके लिए कोई उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं किया परन्तु यह मानना कठिन है कि वे पूर्णतया अनभिज्ञ थे अथवा उनकी अनुमति के बिना यह सबकुछ हुआ।[21]

अंग्रेजी सरकार ने आन्दोलन को कुचलने के लिए पाशविक दमन-चक्र चलाया जिसमें सैंकड़ों लोग मारे गए तथा हजारों व्यक्तियों को जेल में डाल दिया गया। भले ही सरकार ने हिंसा द्वारा इनका दमन किया तथापि इस आन्दोलन ने भारत की राजनीतिक चेतना को पर्याप्त मात्रा में जागृत कर दिया। इससे पूर्व के आन्दोलनों में जनसाधारण का जो वर्ग स्वतंत्रता आन्दोलनों के प्रति उदासीन रहता था, वह भी अब इतना जागरूक हो गया कि वह उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा जब देष अंग्रेजी शासन से मुक्त हो जाए।[22]

निष्कर्ष:

कोई भी आन्दोलन रातों-रात शुरू नहीं होता, उसके पीछे लम्बे समय का जन असंतोश व तत्कालीन परिस्थितियां दोनों समान रूप से उत्तरदायी होती हैं। ब्रिटिश, पूर्व के सभी विदेषी शासकों से भिन्न थे। वे भारत में रहकर यहां के सभी संसाधनों का उपयोग अपने देश की प्रगति व हित के लिए कर रहे थे। इसके लिए उन्होंने भारतीय जनता की अनदेखी की और उसका भंयकर आर्थिक शोषण किया। ब्रिटिश स्वयं को भारतियों से प्रत्येक स्तर पर श्रेष्ठ समझते थे और उनके साथ जातिगत भेदभाव व रंगभेद की दृष्टि से बर्ताव करते थे। इस सब ने भारतियों के मन में गहरा असंतोष उत्पन्न किया।

इधर द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जो परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध भारतियों की स्वतत्रंता की मांग को और अधिक हवा दी। इस समय ब्रिटिश के विरूद्ध ऐसा माहौल तैयार हुआ जो भारत के स्वतत्रंता संग्राम के लिए एक अवसर के रूप में था क्योंकि - इस समय ब्रिटिश अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध में व्यस्त थे जिससे उनकी अधिकतर सैनिक शक्ति विश्वयुद्ध में लगी थी, हालांकि ब्रिटिश ने भारत को बिना भारतियों की सहमति के द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल कर दिया था फिर भी पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए भारतियों का समर्थन चाहिए था, जापान के आक्रमण का खतरा मंडरा रहा था, इधर भारत में सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज का गठन ब्रिटिश की चिंता बढ़ा रहा था - ऐसे माहौल में भारत की स्वतन्त्रता के लिए ब्रिटिश पर दबाव बनाना एक बुद्धिमतापूर्ण कदम साबित होने वाला था। अतः इसी मंतव्य के साथ छेड़ा गया "भारत छोड़ो आन्दोलन" मील का पत्थर साबित हुआ।

यद्यपि ब्रिटिश ने इस आन्दोलन को बलपूर्वक कुचल दिया तथापि इसका प्रभाव अत्यंत सकारात्मक रहा। इसने भारतियों की राजनीतिक चेतना को पर्याप्त रूप से जागृत कर दिया- आन्दोलन में विभिन्न वर्गों- छात्रों, महिलाओं, किसानों आदि ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इसमें अंग्रेजों की "बांटो और राज करो" की नीति भी विफल हो गयी- आन्दोलन को मुस्लिम लीग का समर्थन न मिलने के बाद भी हिन्दू-मुस्लिम विवाद उत्पन्न नहीं हुए। ब्रिटिश को पहले प्रायः जिन वर्गो का सहयोग प्राप्त रहता था, अब वे भी ब्रिटिश के विरूद्ध हो गए- कई जमींदारों ने ग्रामीणों के साथ मिलकर आन्दोलनकारियों की मदद की तथा उन्हें भोजन व पनाह दी, इसी तरह कई ब्रिटिश कर्मचारियों व पुलिस तक ने आन्दोलनकारियों के प्रति नरम रूख अपनाया व उनकी मदद की। भारत छोड़ो आन्दोलन को सभी राजनीतिक पार्टियों व गुटो का समर्थन नहीं मिला था फिर भी किसी ने आन्दोलन के दौरान रूकावट का काम नहीं किया क्योंकि भले ही भारत की विभिन्न पार्टियों का आपस में वैचारिक मतभेद था परंतु भारत की स्वाधीनता के मुद्दे पर सभी ब्रिटिश से छुटकारा चाहते थे। इस सब ने ब्रिटिश को यह स्पष्ट कर दिया कि अब अधिकांश भारतीय ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ हो चुके हैं और वे ऐसे माहौल में भारत में अधिक दिनों तक नहीं टिक पाएंगे। भारतियों के अलावा अब वैश्विक स्तर पर भी कई देश भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में आ गए। अमेरिका व चीन ने तो भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्ष में अपना खुला समर्थन दे दिया।

अतः इस प्रकार यह आन्दोलन तत्काल स्वतंत्रता प्राप्त करने में भले ही असफल रहा हो, परन्तु इसने भारतियों को स्वतंत्रता दिलाने में अभूतपूर्व योगदान दिया।

सन्दर्भ-सूची

1. चन्द्र, प्रो0 विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्श, दिल्लीः हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेषालय, दिल्ली वि0वि0, संस्करणः 2004, पृ0सं0-366
2. शुक्ल, रामलखन, आधुनिक भारत का इतिहास, दिल्लीः हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली वि0वि0, संस्करणः 1998, पृ0सं0-830
3. चन्द्र, प्रो0विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, उपरोक्त वही, पृ0सं0-365
4. ग्रोवर, बी0एल0, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्लीः एस0चन्द एण्ड कम्पनी लि0, संस्करणः 2005, पृ0सं0-411
5. पाण्डे, एस0के0, आधुनिक भारत, इलाहाबादः प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, संस्करणः 2014, पृ0सं0-376
6. चन्द्र, प्रो0 विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, उपरोक्त वही, पृ0सं0-367
7. वही, पृ0सं0-366

8. शुक्ल, रामलखन, आधुनिक भारत का इतिहास, उपरोक्त वही, पृ0सं0–831
9. चन्द्र, प्रो0विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्श, उपरोक्त वही, पृ0सं0–366
10. रामगोपाल, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, लखनऊः भारत बुक सेण्टर, संस्करणः 1996, पृ0सं0–418
11. शुक्ल, रामलखन, उपरोक्त वही, पृ0सं0–830
12. रामगोपाल, उपरोक्त वही, पृ0सं0–418
13. शुक्ल, रामलखन, उपरोक्त वही, पृ0सं0–830
14. वही, पृ0सं0–832
15. चन्द्र, प्रो0विपिन, उपरोक्त वही, पृ0सं0–367
16. पाण्डे, एस0के0, उपरोक्त वही, पृ0सं0–377
17. रामगोपाल, उपरोक्त वही, पृ0सं0–422
18. चन्द्र, प्रो0 विपिन, उपरोक्त वही, पृ0सं0–368
19. वही, पृ0सं0–369
20. चतुर्वेदी, डॉ0 दिनेश चन्द्र, भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, मेरठः मीनाक्षी प्रकाशन, 1988–89, पृ0सं0–175
21. ग्रोवर, बी0एल0, यषपाल, उपरोक्त वही, पृ0सं0–411
22. चतुर्वेदी, डॉ0 दिनेश चन्द्र, उपरोक्त वही, पृ0सं0–174

महिला सशक्तिकरण में उद्यमिता की भूमिका

डॉ० विजय ग्रेवाल

सहायक प्राध्यापक - वाणिज्य विभाग, शासकीय महाविद्यालय, राणापुर, जिला-झाबुआ

नीलम कुशवाह

शोधार्थी, वाणिज्य संकाय, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर

प्रस्तावना - मानव सभ्यता के उद्‌भव एवं विकास में स्त्री तथा पुरूष दोनों का ही समान सहयोग रहा है। परंतु समय के साथ समाज में महिलाओं के सामाजिक योगदान की उपेक्षा की जाने लगी और उन्हें मात्र घर की चार-दीवारी तक सीमित रखा जाने लगा तथा उनकी क्षमताओं को दबाया जाने लगा। भारत में महिलाओं को शक्ति का स्वरूप माना जाता है, जो कि पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन के साथ ही सामाजिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों का बेहतर प्रबंधन करने की योग्यता रखती है किन्तु उन्हें अपने द्वारा किए गए कार्य का पारिश्रमिक प्रदान नहीं किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार यदि महिलाओं को उनके घरेलू कार्य-काज के लिए वेतन प्रदान किया जाने लगे और इन कार्यो को सकल घरेलू उत्पाद में शामिल कर लिया जाए तो भारत की जीडीपी में 15: से 25: तक की वृद्धि संभव हो सकती है। भारतीय महिलाएँ स्वभाव से ही उद्यमी होती है, इसलिए उन्हें सशक्त करने में उद्यमिता की अहम् भूमिका होती है। उद्यमिता के माध्यम से अनेक चुनौतियों जैसे- गरीबी, क्षेत्रीय असमानता, मानवाधिकारों का हनन एवं लैगिंक असमानता का समाधान प्राप्त किया जा सकता है इसलिए महिला सशक्तिकरण का प्रमुख माध्यम महिला उद्यमिता को प्रोत्साहन देना है। महिला उद्यमिता के द्वारा महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार कर क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा दिया जा सकता है। महिलाओं को उद्यमिता के क्षेत्र से जोड़ने के लिए समय-समय पर अनेक प्रयास किए गए है। केंद्र सरकार, राज्य सरकारें एवं अनेक गैर-सरकारी संगठनों के द्वारा महिलाओं को सशक्त करने एवं उनकी स्थिति में सुधार करने हेतु अनेक सामाजिक एवं औद्योगिक कार्यक्रमों, योजनाओं का संचालन किया जा रहा है, जो कि महिलाओं के आत्मबल का सदुपयोग कर उन्हें न केवल स्वालंबन की दिशा की ओंर अग्रसर करती है अपितु उनमें उद्यमवृत्ति की भावना को भी जाग्रत करती है।

साहित्य समीक्षा - प्रस्तुत शोध हेतु निम्न साहित्यों का अध्ययन कर विषय चयन किया गया है-

- आनंद - इन्होंने महिला स्वालंबन विषय पर अपना शोध कार्य किया, जिसमें इन्होंने बताया कि समाज के विकास के लिए महिलाओं के सशक्तिकरण से बेहतर माध्यम कोई भी नहीं है। वर्तमान में प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह राजनीतिक हो, शैक्षणिक हो, व्यावसायिक, चिकित्सा, रोजगार, सेवा अथवा सेना आदि हो उनके अंतर्गत महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु सरकार द्वारा अनेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है।
- सिंह - ने महिला सशक्तिकरण एवं नई पीढ़ी विषय पर अपना शोध कार्य किया, जिसमें इन्होंने बताया कि महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए लैगिंक समानता बहुत आवश्यक है। महिलाओं के खिलाफ हो रहे अत्याचार को रोकने एवं उन्हें आर्थिक एवं सामाजिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने हेतु संसद द्वारा अनेक अधिनियम एवं योजनाओं जैसे- दहेज रोक अधिनियम 1961, अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम 1956, मेडिकल टर्मनेशल ऑफ प्रेग्नेंसी एक्ट 2006, लिंग परीक्षण तकनीक (नियंत्रक और गलत इस्तेमाल के रोकथाम एक्ट) 1994, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन शोषण एक्ट 2013 एवं सुकन्या समृद्धि खाता योजना आदि का निर्माण किया गया है।
- शेत्तर - ने भारत में महिला सशक्तिकरण के मार्ग में आने वाली बाधाओं एवं चुनौतियों का अध्ययन किया। अपने शोध में उन्होंने बताया कि महिला सशक्तिकरण महिला अथवा उनके समुदाय में आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक,

लैंगिक अथवा आर्थिक शक्ति में अभिवृद्धि को संदर्भित करता है। परंतु भारत में महिला सशक्तिकरण के मार्ग में शिक्षा, गरीबी, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा, कार्यस्थल पर असमानता, नैतिकता एवं भेदभाव तथा घरेलू असमानता जैसी अनेक समस्याएँ बाधा उत्पन्न करती है। महिलाओं को सशक्त करना न केवल राष्ट्रीय स्तर अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर हेतु नितांत आवश्यक है, जिसके लिए सरकार एवं समाज दोनों के ही द्वारा ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए जहाँ महिलाएँ बिना किसी संकोच के स्व-निर्णय ले सके ।

शोध के उद्देश्य - प्रस्तुत शोध पत्र निम्न उद्देश्यों पर आधारित रहा -

- महिला सशक्तिकरण में उद्यमिता की भूमिका का अध्ययन करना।
- उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी का अध्ययन करना।
- महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासों का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि - प्रस्तुत शोध पत्र पूर्णत: द्वितीयक समंकों पर आधारित रहा है तथा शोधपत्र की प्रकृति विवरणात्मक है। द्वितीयक समंकों के संग्रहण हेतु विषय से संबंधित शोध पत्रों, शोध आलेखों, पुस्तकों, समाचार पत्रों एवं विभिन्न वेबसाईटों से प्राप्त जानकारियों का प्रयोग किया गया है।

महिला सशक्तिकरण एवं उद्यमिता - भारत के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में महिलाओं की भागीदारी अग्रणी रही है। परंतु हमारा समाज पुरूष प्रधान समाज है जो कि महिलाओं की योग्यता एवं क्षमताओं का दोहन कर उनके विकास को अवरूद्ध करता है। भारतीय महिलाएँ स्वभाव से ही एक कुशल उद्यमी होती है जो कि घर तथा व्यवसाय दोनों का ही कुशलतापूर्वक संचालन करने का सामर्थ्य रखती है, परंतु महिलाओं को उद्यम क्षेत्र में अपना स्थान बनाने के लिए अनेक चुनौतियों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारत में आज भी महिलाओं की स्थिति दयनीय है उन्हें मात्र बच्चों के लालन-पालन एवं घरेलू दायित्वों के निर्वहन की वस्तु समझा जाता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि किसी भी राष्ट्र के विकास में महिला एवं पुरूष दोनों का समान योगदान अति आवश्यक है इसलिए महिलाओं को सशक्त करना राष्ट्रीय विकास की माँग है। भारत जिसकी आधी आबादी महिला वर्ग से संबंधित है ने इस बात की गहराई को समझकर ही महिला सशक्तिकरण हेतु अनेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों का निर्माण किया है। सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए विभिन्न प्रयासों में से एक प्रयास महिलाओं को उद्यम गतिविधियों में संलग्न करना है। सरकार द्वारा सुक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों हेतु संचालित विभिन्न योजनाओं जैसे स्टार्टअप इंडिया, मुद्रा, योजना, कौशल विकास योजना, प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम एवं विभिन्न राज्य स्तरीय स्वरोजगारमूलक योजनाओं आदि में महिलाओं को विशेष छुट एवं ऋण प्राप्ति हेतु प्राथमिकता प्रदान कर उन्हें उद्यम क्षेत्रों से जोड़ने का निरंतर प्रयास किया जा रहा है, ताकि वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो देश की अर्थव्यवस्था की प्रगति में समान सहयोग प्रदान कर सकें। महिलाओं के सशक्तिकरण में उद्यमिता की अहम् भूमिका है क्योंकि आत्मनिर्भर महिला स्व-विकास के साथ अन्य महिलाओं को भी रोजगार के अवसर प्रदान कर उन्हें भी आर्थिक रूप से सशक्त बनाती है। इसलिए महिला सशक्तिकरण का प्रमुख माध्यम महिला उद्यमिता है। महिला सशक्तिकरण की महत्ता को समझते हुए डॉ. अब्दुल कलाम ने कहा है कि ''महिलाओं के सशक्तिकरण से अच्छे परिवार, अच्छे समाज और अतंत: अच्छे राष्ट्र का विकास होता है''।

उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी - महिलाओं को सशक्त करने हेतु विभिन्न योजनाओं के संचालन के बावजूद वास्तव में अभी भी उद्यम क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी पुरूषों की अपेक्षा बहुत ही कम है। देश में एमएसएमई से संबंधित 608.41 लाख उद्यम स्वामित्व वाले उद्यम है जिनमें से 79.63: उद्यम पुरूष स्वामित्व वाले है जबकि महिला स्वामित्व वाले उद्यमों का प्रतिशत मात्र 20.37: ही है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के स्वामित्व वाले उद्यमों का प्रतिशत 22.24: है जबकि शहरी क्षेत्रों में यह प्रतिशत तुलनात्मक रूप से 18.42: ही है। महिला उद्यमियों की भागादारी सुक्ष्म उद्यमों में 20.4:, लद्यु उद्यमों में 5.25: तथा मध्यम उद्यमों में 2.67: है। वर्तमान में भारतीय कार्यबल में प्रत्यक्ष श्रमशक्ति में महिलाओं का योगदान 40: है, जबकि अप्रत्यक्ष श्रमशक्ति में महिलाओं का योगदान 90: है। विभिन्न उद्यम क्षेत्रों में महिलाओं महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाने हेतु भारत में लगभग 80.5 लाख महिलाओं के लिए औद्योगिक विकास कार्य किए जा रहे है जिनके अंतर्गत विभिन्न योजनाओं के माध्यम से महिला उद्यमियों को रियायती ब्याज दर पर ऋण मुहैया कराया जा रहा है।

महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए विभिन्न प्रयास - सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण एवं उनके अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों एवं योजनाओं का संचालन किया गया है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

सारणी क्रं.-1 केन्द्र सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाएँ

क्र.सं.	वर्ष	योजना का नाम	उद्देश्य
1.	1982	ड्वाकरा योजना	ग्रामीण महिलाओं को रोजगार उपलब्ध कराने एवं स्वास्थ्य शिक्षा स्वच्छता पोषाहार और देखभाल की सेवा प्रदान करने।
2.	1987	न्यू मॉडल चरखा योजना	ग्रामीण महिलाओं को रोजगार के अवसर दिलाने एवं प्रशिक्षण एवं अनुदान की व्यवस्था।
3.	1989	नौराक प्रशिक्षण योजना	महिलाओं को दरी कालीन, चिकन ब्लॉक प्रिंटिंग का प्रशिक्षण देकर आर्थिक गतिविधि में संलग्न करना।
4.	1989	महिला समाख्या योजना	ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को समानता व सजगता हेतु उचित शिक्षा।
5.	1992	मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम	शिशु एवं माताओं को पोषाहार उपलब्ध कराकर शिशु एवं मातृ मृत्यु दर पर रोक।
6.	1992	किशोरी बालिका योजना उचित	ग्रामीण गरीब परिवारों की बालिकाओं को शिक्षा।
7.	1993	महिला समृद्धि योजना ग्रामीण	महिलाओं में बचत की आदत डालना।
8.	1993	राष्ट्रीय महिला कोष की योजना	गरीबी रेखा के नीचे की महिलाओं को उत्पादन के लिए ऋण सुविधाएं देना।
9.	1994	राष्ट्रीय मातृत्व लाभ	गरीबी रेखा से नीचे की महिलाओं को प्रसूति हेतु आर्थिक सहायता।
10.	1995	इंदिरा महिला योजना	ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों की महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाना।
11.	1996	ग्रामीण महिला विकास परियोजना	ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि करना।
12.	1997	राज्य राजेश्वरी बीमा योजना	गरीबी रेखा से नीचे की बालिकाओं और महिलाओं को विकलांगता की स्थिति में एक मुश्त आर्थिक सहायता।
13	1997	स्वास्थ्य सखी योजना	अनुसूचित जाति/जनजाति की महिलाओं को प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य का प्रशिक्षण।
14.	1997	बालिका समृद्धि योजना	गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों में गर्भवती माँ को पौष्टिक आहार एवं बालिका को शिक्षण।
15.	1997	ड्वाकुआ योजना	कक्षा 10वीं तक शैक्षिक अनुदान देना।
16.	1998	महिला स्वशक्ति योजना	महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक व सामाजिक रूप से सशक्त बनाना।
17.	2000	किशोरी शक्ति योजना	किशोरियों को स्वास्थ्य व पोषण की उचित व्यवस्था का विकास करना।
18.	2000	स्त्री शक्ति पुरस्कार योजना	महिलाओं के अधिकारों के लिये संघर्ष करने वाली महिलाओं को राष्ट्रीय पुरस्कार व प्रोत्साहन की विशेष योजना।
19.	2001	महिला सशक्तिकरण वर्ष	महिलाओं के लिये विशेष योजनाएँ चालू की गई।

(स्त्रोत: महिला सशक्तिकरण, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल पेज न. 54, 55)

इसी तरह म.प्र. शासन द्वारा भी महिला सशक्तिकरण हेतु समय-समय पर विभिन्न प्रयास किए गए है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न सारणी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है –

सारणी क्र. – 2 मध्यप्रदेश शासन द्वारा महिला सशक्तिकरण हेतु किए गए प्रयास

क्र सं	योजना का नाम	उद्देश्य
1.	लाडली लक्ष्मी योजना	बेटियों के भविष्य को संवारने हेतु आर्थिक सहायता मुहैया कराना।
2.	मुख्यमंत्री कन्यादान योजना	निर्धन परिवार की बेटियों के विवाह में सहयोग करना।
3.	बालिकाओं के लिए साइकिल	ग्रामीण क्षेत्रों में कक्षा 6 और कक्षा 9 में प्रवेश लेने वाली लड़कियों को आवागमन हेतु साधन मुहैया कराना।
4.	गणवेश	कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की बालिकाओं को निःशुल्क गणवेश की व्यवस्था करना।
5.	आवागमन व्यय	शासकीय महाविद्यालय में अध्ययनरत् ऐसी छात्राएँ जो महाविद्यालय से 5 किलोमीटर से अधिक की दूरी पर रहती है उन्हें आवागमन व्यय की प्रतिपूर्ति करना।
6.	गाँव की बेटी योजना	12वीं कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्राओं को उच्च शिक्षा के अंतर्गत प्रतिमाह छात्रवृत्ति प्रदान करना।
7.	प्रतिभा किरण योजना	शहरी क्षेत्रों में निवासरत् गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली छात्राओं को उच्च शिक्षा हेतु आर्थिक सहायता प्रदान करना ।
8.	मंगल दिवस	प्रत्येक माह के चौथे मंगलवार को आँगनवाड़ी केन्द्रों में दर्ज बालिकाओं को संतुलित आहार प्राथमिक स्वास्थ्य की देखभाल तथा आर्थिक गतिविधियों से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान करना ।
9.	आरक्षण	ग्राम पंचायतों एवं नगरीय निकायों में महिलाओं हेतु 50% आरक्षण करना।
10.	जेंडर आधारित बजट	लोक व्यय में महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित करने हेतु जेंडर आधारित बजट का निर्धारण एवं क्रियान्वयन ।
11.	जागृति शिविर	विपत्तिग्रस्त एवं बेसहारा महिलाओं के पुनर्वास के साथ उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना।
12.	स्वाधार योजना	कठिन परिस्थितियों में जीवन यापन करने वाली महिलाओं को आवश्यक सुविधाएँ मुहैया कराना।
13	स्वरोजगार मूलक योजनाएँ	मुख्यमंत्री युवा उद्यमी योजना स्वरोजगार योजना, कृषम उद्यमी योजना आदि में महिलाओं को विशेष प्रथमिकता प्रदान कर उनमें उद्यमवृत्ति को प्रोत्साहन देना।

(स्त्रोतः शोधार्थी द्वारा संकलित)

निष्कर्ष - प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन के पश्चात् निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए-

- महिलाओं को आत्मनिर्भर एवं आर्थिक रूप से सशक्त करने में उद्यमिता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। महिला उद्यमिता महिला सशक्तिकरण हेतु प्रमुख माध्यम बनकर उभरा है।
- सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति में सुधार करने तथा उनमें उद्यमिवृत्ति की भावना को जाग्रत करने हेतु समय-समय पर विभिन्न प्रयास किए गए है जिनके परिणामस्वरूप महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है।
- विभिन्न उद्यम क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित किए जाने हेतु अनेक औद्योगिक विकास कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है जिनके अंतर्गत महिलाओ को प्रशिक्षण प्रदान करने से लेकर उद्यम की स्थापना के लिए रियायती ब्याज दर पर ऋण मुहैया कराना शामिल है।

उपसंहार - अंत में सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि महिलाओं में असीमित क्षमताएँ होती है जिनका सदुपयोग कर सामाजिक विकास के साथ ही देश के आर्थिक विकास में भी अभिवृद्धि की जा सकती है। महिलाओं को सशक्त करने के बहुआयामी परिणाम होते है क्योंकि आर्थिक रूप से सशक्त महिला अपने साथ अन्य महिलाओं की स्थिति में सुधार करने हेतु अनेक प्रयास किए गए है जिनके फलस्वरूप महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ है। परन्तु यदि हम उद्यम क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी का प्रतिशत पुरूषों की तुलना में बहुत ही कम है जिसका मुख्य कारण समाज का महिलाओं के प्रति नकारात्मक रवैया है। अतः महिलाओं को उद्यमिता के क्षेत्र में गतिशील करने हेतु और अधिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है ।

संदर्भ ग्रंथसूचीः -

- श्रीमति आनंद कीर्ति 2016, ''महिला स्वालंबन'', Review of Research International onine multidisciplinary Journal, Feb., Voi.5, Issue 5, Page No.1 – 4 .
- डॉ. सिंह, नरेन्द्र, 2018 ''महिला सष्ठाक्तिकरण और नई पीढ़ी'', PARIPEX-INDIAN JOURNAL OF RESEARCH , April, vol.7, Issue-4 Page No. 52.
- Dr. Shettar, Rajeshwari M, 2015, "A study on Issue and challenges of Women Empowerment in India", IOSR Journal Of Business and Management , Apr., vol.17, Issue - 4 Page NO. 13 – 19
- डॉ. जौहरी, ओजस्विनी, 2019, ''महिला सष्ठाक्तिकरण'', कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल.
- https://www.gyanodayaindia.com.
- https://Mea.gov.in.
- https://innovateindia.mygov.in.
- https://www.niti.gov.in.
- https://www.sidbi.in.
- https://www.upsciq.com.
- https://Wcd.nic.in.
  https://www.pashudhanpraharee.com.

पर्यावरण प्रदूषण एवं रोग निवारण में यज्ञ की महत्वपूर्ण भूमिका

सुभाष चन्द्र

सहायक प्रोफेसर (भूगोल), राजकीय महाविद्यालय बालसमन्द, हिसार

नीलम

सहायक प्रोफेसर (भूगोल), राजकीय महाविद्यालय बालसमन्द, हिसार

सारांशः-

यज्ञ एक व्यापक शब्द है, जिसकी उत्पत्ति यज् धातु + नङ् प्रत्यय से हुई है। इसका अर्थ संगतिकरण, दान या देव पूजा है। यज्ञ के तीन अंग हैं - द्रव्य, देवता एवं त्याग। त्याग की भावना से द्रव्य की आहुति ही यज्ञ है। हमारे दैनिक जीवन में धार्मिकता, नैतिकता एवं पर्यावरण संरक्षण में यज्ञ की महत्वपूर्ण भूमिका है। यज्ञ एवं पर्यावरण का घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसे हमारे ऋषि-मुनि भली भांति जानते थे। यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में यज्ञ के महत्व को बताया गया है। यजुर्वेद में यज्ञ के मंत्र में चार प्रकार के हविद्रव्यों का संकेत है -सुगन्धि युक्त, पुष्टिवर्धक, रोगनाशक एवं मिष्ट आदि। अथर्ववेद में कहा गया है- ''यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभि:'' अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी का केन्द्र बिन्दु यज्ञ है। बिश्नोई धर्म के संस्थापक गुरु जम्भेश्वर जी के 29 नियमों में से एक नियम प्रतिदिन यज्ञ करना है। गुरु महाराज कहते हैं -

गउ घृत लेवे छाण, हवन नित ही करे।

जाम्भोजी महाराज ने यज्ञ के महत्व को अपनी शब्दवाणी के रूप में प्रचार किया -

''जा दिन तेरे होम न जाप न तप न क्रिया
गुरु न चीन्हो पथ न पाया अहल गई जमवारू''

गुरु जाम्भोजी ने यज्ञ के महत्व को लोगों तक पहुँचाने का प्रयास किया। उनका कहना था कि वायु, जल, मृदा की शुद्धता यज्ञ से की जा सकती है। इस प्रकार गुरु महाराज ने यज्ञ के द्वारा पर्यावरण एवं मनुष्य को जोड़ने का प्रयास किया।

महर्षि दयानंद ने कहा था, ''यदि पर्यावरण की शुद्धि एवं सुखों की वृद्धि चाहते हो तो नित्य प्रात: सायं प्रत्येक घर में हवन-यज्ञ करो।'' आधुनिक समय में वैज्ञानिक भी सिद्ध कर चुके हैं कि यज्ञ और पर्यावरण का घनिष्ठ संबंध है। यज्ञ के द्वारा जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण एवं मृदा प्रदूषण को कम किया जा सकता है। मानव स्वास्थ्य के साथ भी इसका सीधा संबंध है। उदाहरण के तौर पर भोपाल गैस त्रासदी में नित्य हवन करने वाले परिवार का सुरक्षित रहना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हम अपने शोध के माध्यम से यज्ञ और पर्यावरण के संबंध का अध्ययन करेंगे।

सांकेतिक शब्द: यज्ञ, पर्यावरण, प्रदूषण, स्वास्थ्य, रोगनाशक, हविद्रव्य

पर्यावरण प्रदूषण के निवारण में यज्ञ का महत्व

पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने में यज्ञ का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे ऋषि मुनियों ने वैज्ञानिक आधार पर शोध करके यज्ञ के लिए सामग्री का चुनाव किया था। जैसे - पीपल, बड़, आम, बिल्व, पलाश, गूलर, अशोक, आंवला, शमी, पारिजात, मौलश्री, गोघृत, शहद, शक्कर, चन्दन, कस्तूरी, केसर, जायफल, इलायची, छुहारे, दाख, गेहूँ एवं चावल आदि। यज्ञ का वैदिक उद्देश्य भी पर्यावरण शुद्धि एवं पर्यावरण है। यज्ञ के द्वारा पर्यावरण प्रदूषण को कम किया जा सकता है जो आज शोध के माध्यम से वैज्ञानिक भी मान चुके हैं। यज्ञ को अग्निहोत्र की संज्ञा दी गई है। अग्निहोत्र वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा ऑक्सीजन तथा कार्बनडाइ ऑक्साइड गैसों का वायुमण्डल में सन्तुलन बनता है। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में वर्षा और ऋतु परिवर्तन का सम्बन्ध यज्ञ से बताया गया है। इसे मंत्र के रूप में भी वर्णित किया है।

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः।।

अथर्ववेद में भी नदी, तालाब आदि जल की शुद्धि के लिए प्रतिदिन यज्ञ करना बताया गया है। यज्ञ के द्वारा वायु शुद्ध होती है। वायु शुद्ध होने से जल शुद्ध होता है। वैज्ञानिक डॉ० मनोज गर्ग (डॉक्टरेट ऑफ इनविरामेण्टल एण्ड टेक्निकल कन्सल्टेन्ट्स) ने यह सिद्ध कर दिया कि यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिससे पर्यावरण शुद्ध होता है। डॉ0 मनोज गर्ग के अनुसार -

अवधि	सल्फर-डाइ-ऑक्साइड	नाइट्रस-ऑक्साइड
यज्ञ से पूर्व	3.36	1.16
यज्ञ की अवधि में	2.82	1.14
यज्ञ के पश्चात्	0.82	1.02

इस प्रकार डॉ0 मनोज गर्ग ने पाया कि यज्ञ के बाद यज्ञ स्थान पर वायुमण्डल में विषैली गैसों एवं जल में जीवाणुओं की मात्रा में भारी गिरावट आई।

अमेरिका के न्यूजर्सी प्रांत में 'अग्निहोत्र' नामक एक संस्थान है जो अमेरिका में प्रदूषण निवारण के लिए अग्निहोत्र का प्रयोग एवं प्रचार कर रहा है। भारत में कई यज्ञ रिसर्च सेंटर हैं, जहां समय-समय पर यज्ञ पर शोध किए जाते हैं जैसे - फिक्की रिसर्च एण्ड एनालिसिस सेंटर (दिल्ली), श्रीराम इंस्टीट्यूट फॉर इंडस्ट्रियल रिसर्च यूनिट, सिग्मा रिसर्च सेंटर, सी.एस.आई.आर. (नीरी)

दिल्ली में बढ़ते हुए प्रदूषण को लेकर सिग्मा रिसर्च सेंटर ने द्वारका के पास यज्ञ करके निष्कर्ष निकाला कि यज्ञ के द्वारा पर्यावरण में फैली विषैली गैसों की मात्रा को कम किया जा सकता है। इस सेंटर ने शोध के माध्यम से यज्ञ से पूर्व, यज्ञ के दौरान एवं यज्ञ के पश्चात् वायु की गुणवत्ता का मापन किया।

कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा पी.पी.एम. में (पार्ट पर मिलियन)कार्बनमोनोक्साइड की मात्रा पी.पी.एम. में (पार्ट पर मिलियन)

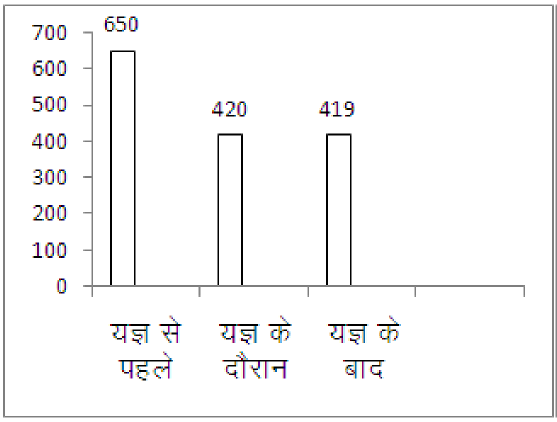

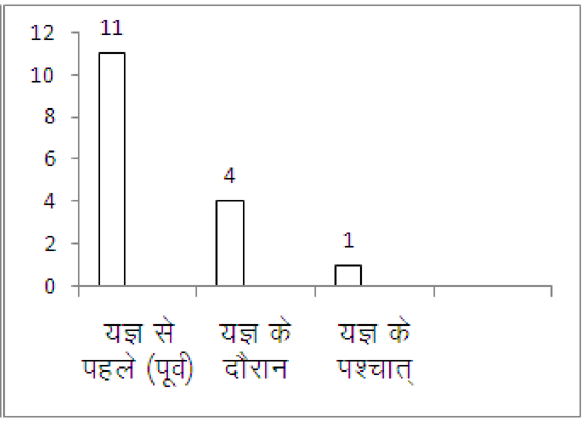

स्रोत- सिग्मा रिसर्च सेंटर (दिल्ली)

इस सेंटर ने पाया कि यज्ञ करने से विषैली गैसों के साथ बैक्टीरिया एवं फंगल की मात्रा कम हो जाती है।

वायु में बैक्टीरिया की मात्रा

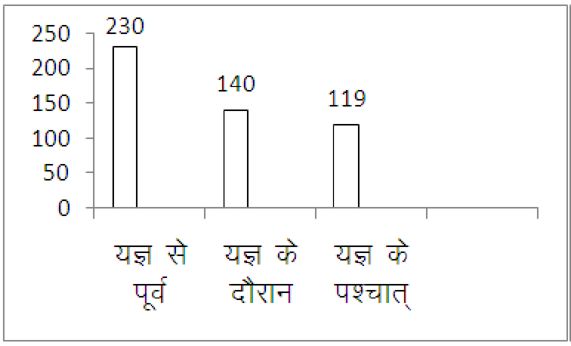

वायु में फंगल की मात्रा

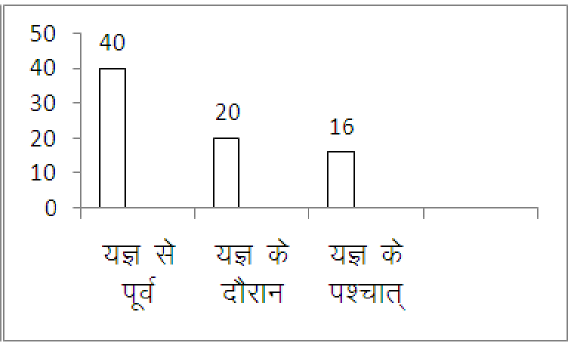

प्रसिद्ध रसायन शास्त्री डॉ0 स्वामी सत्यप्रकाश के अनुसार, अग्निहोत्र से फार्मेल्डीहाइड व ओजोन गैस उत्पन्न होती है। फार्मेल्डीहाइड बिना परिवर्तित हुए वायुमण्डल में फैल जाती है। यह कीटाणुनाशक शक्तिशाली गैस है, जो जलवाष्प के साथ सक्रिय होती है अन्यथा इसका कीटाणुनाशक प्रभाव नहीं होता। इसलिए यज्ञ कुण्ड के चारों ओर जल छिड़काव किया जाता है। ओजोन गैस ऑक्सीजन से भी अधिक लाभदायक गैस है। आधुनिक समय में औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण के कारण ओजोन परत का ह्रास होता जा रहा है। यज्ञ के द्वारा वर्तमान समय में होने वाले ओजोन ह्रास को कम किया जा सकता है। फ्रांसीसी वैज्ञानिक हैफकिन के अनुसार, यज्ञ में घी जलाने से रोगाणुओं का नाश होता है। मृदा की उपजाऊ क्षमता को बढ़ाने में यज्ञ का महत्वपूर्ण योगदान है।

विभिन्न यज्ञ कुण्डों से प्राप्त यज्ञ भस्म का प्रयोगशाला में रासायनिक विश्लेषण करने पर निम्नलिखित खनिज पाए गए हैं, जो मिट्टी की उपजाऊ क्षमता बढ़ाने में सहायक है –

कैल्शियम	7822 मि0ली0 प्रति कि0ग्रा0
मैग्नीशियम	6424 मि0ली0 प्रति कि0ग्रा0
फास्फोरस	4076 मि0ली0 प्रति कि0ग्रा0
पोटेशियम	3407 मि0ली0 प्रति कि0ग्रा0
नाइट्रोजन	32 मि0ली0 प्रति कि0ग्रा0
क्वाइस्पार	2 प्रतिशत डब्ल्यू डब्ल्यू

ध्वनि प्रदूषण को यज्ञ के दौरान प्रयोग किए गए मंत्रोच्चारण के द्वारा कम किया जाता है। मंत्रपाठ से उत्पन्न होने वाली ध्वनि तरगें भी ध्वनि प्रदूषण को बहुत मात्रा में कम करती हैं।

इसी सन्दर्भ में कवि कालिदास के ग्रन्थों का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि यज्ञ से पर्यावरण को संरक्षित किया जा सकता है।

कवि कालिदास के ग्रन्थों का निरीक्षण करने पर हमें पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी अनेक उपयोगी तथ्य प्राप्त होते हैं जिनका अनुपालन करने पर पर्यावरण को संरक्षित रखने में काफी हद तक सफलता प्राप्त किया जा सकता है। इनके ग्रन्थों में यज्ञों का यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होता है, जिससे तपोवन संस्कृति का स्पष्ट प्रमाण उनके ग्रन्थों में परिलक्षित होता है। यक्षों में प्रमुखत: अश्वमेघ यज्ञ, विश्वजीत, नदी, पर्वत आदि विकट तथा विषम मार्गों पर चलने की क्षमता है। कवि की दृष्टि में सामाजिक कल्याणार्थ साधनों में यज्ञ का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

कालिदास अकाल वसन्तागमन के कामदेव के प्रयास को जघन्य अपराध के रूप में चित्रित करते हैं। जिसे हम वर्तमान समय में (ए.सी.) एयरकण्डीशनर की संज्ञा दे सकते हैं जिसका प्रयोग कर हम प्रकृति के विपरीत वातावरण का निर्माण कर प्रकृति को ही क्षति पहुंचा रहे हैं। इसके प्रयोग से निकलने वाली प्रचुर मात्रा में सी.एफ.सी. गैस वायुमण्डल के सुरक्षा कवच या ओजोन मण्डल

को नष्ट करती है। अतः सूर्य की तीव्र किरणों द्वारा जीवमण्डल में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं। इसलिए इसके प्रयोग पर नियंत्रण किया जाना चाहिए।

इस प्रकार आधुनिक समय में वैज्ञानिकों ने शोध के द्वारा यह प्रमाणित कर दिया गया है कि भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में यज्ञ के द्वारा पर्यावरण प्रदूषण को बड़े पैमाने पर रोका जा सकता है।

यज्ञ और स्वास्थ्य - यज्ञ करने से विभिन्न मानवीय रोगों को दूर किया जा सकता है। भारतीय ऋषि-मुनियों की आयु व स्वास्थ्य पर यज्ञ के प्रत्यक्ष प्रभाव के प्रमाण मिलते हैं। पर्यावरण प्रदूषण से मानसिक एवं शारीरिक हानि होती है, जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य एवं आयु का ह्रास होता है। वर्तमान समय में इसका ज्वलंत उदाहरण कम आयु में हृदय रोग, कैंसर, श्वास एवं त्वचा संबंधी रोग बढ़ते जा रहे हैं। प्रदूषित पर्यावरण के कारण गर्भवती महिलाओं और भ्रूण पर भी नकारात्मक प्रभाव देखा जा सकता है। जैसे - प्रजनन क्षमता में ह्रास, प्रसव के दौरान महिलाओं की मृत्यु, समय से पहले संतान उत्पत्ति, बच्चों में शारीरिक एवं मानसिक कमजोरियां आदि। उपर्युक्त समस्याओं से बचने के लिए यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

मानसिक निर्बलता, कुविचारों का आना, दुर्व्यसनों में प्रवृत्ति, आत्महत्या जैसे दुर्विचारों की प्रवृत्ति तथा मानसिक तनाव आदि रोग बढ़ते जा रहे हैं। यज्ञ ही एक ऐसी प्रक्रिया है,जो सभी प्रकार के शारीरिक और मानसिक समस्याओं से निजात प्रदान कर सकता है। फ्रेंच, जर्मन एवं अमेरिकन विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने यज्ञ पर शोध के माध्यम से बताया कि यज्ञ के द्वारा मनुष्य के सभी रोगों को दूर किया जा सकता है। फ्रेंच वैज्ञानिक ट्रिलबर्ट का कथन है कि यज्ञ सामग्री में शक्कर आदि प्रयुक्त मीठे पदार्थों में वायु को शुद्ध करने की असाधारण शक्ति है। इसके धुएँ में क्षय, चेचक एवं हैजा जैसी बीमारियों के कीटाणुओं को नष्ट करने की क्षमता होती है। इसी प्रकार फ्रेंच वैज्ञानिक डॉ0 हैफकिन के अनुसार यज्ञ में घी जलाने से रोगाणुओं का नाश हो जाता है।

मद्रास के डॉ0 कर्नल किंग के कथनानुसार यज्ञ में घी और चावल के साथ केसर मिलाकर जलाने से रोगाणु नष्ट हो जाते हैं, जिससे वायु प्रदूषण दूर होता है एवं रोगों का निवारण होता है।

फ्रेंच वैज्ञानिक डॉ0 डेमोसी ने हिन्दू मैसेज में यज्ञ से क्षय रोग को दूर करने की विधि दी है। डॉ0 मनोज गर्ग (डॉक्टरेट ऑफ इनविरामेण्टल एण्ड टेक्निकल कन्सल्टेन्ट्स) तथा पाश्चात्य वैज्ञानिक हाले पामर एवं बुगे के अनुसार यज्ञ की अग्नि से गैस के रूप में विभिन्न पदार्थ निकलते हैं, जो वायु में मिलकर वायु प्रदूषण को दूर करते हैं।

रूसी वैज्ञानिक शिरोविकके अनुसार हम एक चम्मच गोघृत जलाकर एक टन ऑक्सीजन प्राप्त कर सकते हैं। यज्ञ करने से वनस्पति एवं फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले बैक्टीरिया का भी नाश होता है, जिससे फसलों का उत्पादन बढ़ता है। इस प्रकार यज्ञ एक महत्वपूर्ण औजार है, जो हमारे पर्यावरण को शुद्ध करता है जिससे हमारे पारिस्थितिक तंत्र में संतुलन बना रहता है। तपेदिक, हैजा, मलेरिया आदि का इलाज और बचाव यज्ञ के द्वारा ही संभव है। जिस घर में प्रतिदिन यज्ञ होता है वह घर बीमारियों से बचा रहता है। यज्ञ से मानव के भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत उद्देश्य भी पूर्ण होते हैं। यज्ञ से सुख-शांति एवं आनंद की प्राप्ति होती है। इस प्रकार जीवन का संबंध आरोग्यता से है और आरोग्यता का संबंध यज्ञ से है।

निष्कर्षः- भारतीय संस्कृति में यज्ञ, दान एवं तप को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वेदों में यज्ञ पर अधिक बल दिया गया है और सम्पूर्ण जगत के लिए अनिवार्य माना गया है। हमने अपने शोध में यज्ञ के पर्यावरण संरक्षण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है कि यज्ञभूमि सदा पवित्र रहती है। यज्ञ वह वैज्ञानिक विधि है, जिसके द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमण्डल की पवित्रता, शारीरिक एवं मानसिक विकास, दीर्घायु एवं रोग निवारण किया जा सकता है। प्राचीन समय में हमारे ऋषि-मुनियों ने यज्ञ की सामग्रियों का चुनाव पर्यावरण संरक्षण के लिए किया और वेदों के माध्यम से यज्ञ के महत्व का प्रचार-प्रसार किया। बिश्नोई धर्म के संस्थापक गुरु जम्भेश्वर भगवान ने उनतीस नियम बताए। इन उनतीस नियमों में से आठ नियम प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण संरक्षण से जुडे़ हुए हैं। जैसे - निष्ठा एवं प्रेमपूर्वक हवन करना, पानी, ईंधन व दूध को छानकर प्रयोग में लाना, हरा वृक्ष नहीं काटना, जीव दया पालणी, अमल नहीं खाना, तम्बाकू नहीं खाना, मद्यपान नहीं करना, मांस नहीं खाना आदि।

वर्तमान समय में हमारे देश के अतिरिक्त विदेशों में भी यज्ञ पर प्रयोग एवं इसका प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। आधुनिक समय में वैज्ञानिक भी मान चुके हैं कि यज्ञ एक वैज्ञानिक पद्धति है जिससे पर्यावरण की जहरीली गैसों का निपटारा, रोग निवारण, मृदा की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि, फसलों के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार यज्ञ करने से आध्यात्मिक, धार्मिक एवं पर्यावरणीय लाभ प्राप्त होता है। इसलिए हमें प्रतिदिन यज्ञ करने की शपथ लेनी चाहिए।

सन्दर्भ सूचि

1. वेदों में विज्ञान, डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी
2. पर्यावरणीय प्रदूषण, विष्णुदत्त शर्मा
3. हवन यज्ञ और विज्ञान, डॉ0 रामप्रकाश
4. यज्ञ एवं पर्यावरण, डॉ0 सुनीता मिश्रा
5. सिग्मा रिसर्च सेंटर, दिल्ली
6. अखण्ड ज्योति, डॉ0 प्रणवपाड्या
7. अमर ज्योति पर्यावरण अंक, जून 2015
8. अमर ज्योति पर्यावरण अंक, जून 2016
9. अमर ज्योति पर्यावरण अंक, अप्रैल, 2018
10. अमर ज्योति पर्यावरण अंक, जून 2018
11. ऋग्वेद एवं यजुर्वेद
12. अभिज्ञान शाकुन्तलम् कालिदास
13. शोधगंगा

कबीरदास का मानवतावाद

डॉ० वाचस्पति यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू कॉलेज, एटा (उ०प्र०)

सन्त कबीर का आविर्भाव मध्ययुगीन सामाजिक वैचितर्यों में एक क्रान्तिकारी घटना है। तत्कालीन रूढिबद्ध समाज यौगिक सिद्धियों, तान्त्रिक घटनाओं व मायावी चमत्कारों से भयाक्रान्त था। कबीर की गुरुता इसी बात में निहित है कि इस फक्कड़ कवि ने समाज को अनैतिकता के दलदल से मुक्त किया। कबीर का यह प्रयास उन्हें न केवल कवित्व की संज्ञा से पुरस्कृत करता है वरन् उन्हें एक चिन्तक, समाज-सुधारक और दार्शनिक के रूप में स्थापित भी करता है।

कबीर का समाज धार्मिकता, साम्प्रदायिकता, वैमनस्यता, रूढिघ्वादिता, अंधविश्वास और ऊँच-नीच की भावना से ग्रसित होकर पतनोन्मुख था। तत्कालीन समाज में इस तिमिराच्छादित मानवीय अचेतना को अपनी प्रखर वाणी के तेज से जगाने का श्रेय, निश्चय ही कबीर को जाता है। जिनकी भाषा की गहनता व्यंग्यात्मकता और समर्थता में खोखले समाज की चेतावनी का स्वर भी मिलता है, जागरण का अमर सन्देश भी। कबीर की विशिष्टता तो इस अर्थ में भी अंगीकृत है कि ज्ञान के जिस अखंडित विश्वास का प्रसार इस कवि ने किया है, उसके प्रकाश-पुंज से आधुनिक विश्व को भी एक मानवोचित विश्व निर्माण का चरित्र मिलता है।

कबीर की इस सामाजिक दर्शना की अभिव्यक्ति क्रमशः इन तत्वों की विश्लेषणात्मकता में सन्निहित है-

(1) साम्प्रदायिकता का विरोध

कबीर का समाज अधोगामी था। हिन्दू अपनी परम्परागत सामाजिक प्राण-प्रतिष्ठा में संलग्न थे तो मुसलमानों ने इस्लाम की स्थापना में संघर्ष यात्रा प्रारम्भ कर दी थी। रूढिघ्यों से ग्रस्त, परम्पराओं से च्युत और ढकोसलों के अधकारों से समाज साँस ले रहा था। एक तरफ पण्डितों, पुजारियों और मठाधीशों ने झूठा आकर्षण उत्पन्न कर रखा था तो दूसरी तरफ मौलवियों, मुल्लाओं, और फकीरों की शान थी। इसलिए साम्प्रदयिकता की इस लहर को कबीर ने आड़े हाथों लिया। जाति-पाति के विरुद्ध साम्प्रदायिकता को धिक्कारती कबीर की वाणी जनमानस को झकझोर गई-

''हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना,
आपस में दोऊ लड़े मरत है मरम कोई नहिं जाना।।''[1]

(2) कर्मकाण्डों का विरोध

कबीर ने अपनी भाषा में कर्मकाण्डियों, बाह्याडम्बरों का निषेध ही नहीं किया अपितु इन पर व्यंग्य का कुठाराघात भी किया। कबीर की दृष्टि में जप करना, माला पहनना, काबे जाना आदि व्यर्थ की बात है-

"पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजौ पहार,
ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार ।।''

हिन्दुओं की खोखली मानसिकता के प्रति व्यंग्य-वर्षा करके ही कबीर सन्तुष्ट नहीं थे, उन्हें तो सामाजिक साम्य के लिए मुसलमानों की भी खबर लेनी थी-

''कांकर पाथर जोरि करि, मसजिद लियो बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय ।।''

कबीर का जीवन और साहित्य सत्यान्वेषण और सत्योद्घाटन का जीवन्त उदाहरण है। यही कारण है कि कबीर ने दिन भर रोजा रखकर रात में गोहत्या करने वाले मुसलमानों की खिल्ली उड़ाई है–

''दिन भर रोजा रखत हैं रात हनत है गाय,
यह रोजा वह बंदगी कैसे खुदी खुदाय ।''[2]

दूसरी ओर हिन्दुओं को गाय के प्रति माता का स्वभाव रखकर भी बकरी खाने की लालसा के लिए धिक्कारा है–

''बकरी पाती खात है, ताको काढ़ी खाल
जे नर बकरी खात है, ताको कवन हवाल।।''[3]

इस प्रकार कबीर ने तत्कालीन समाज में व्याप्त रूढिय्यों, कुरीतियों, अधविश्वासों और अंधानुकरणों के खण्डन में यत्र-तत्र व्यंग्य, विद्रोह, संकेत तथा उपदेश के उपकरणों का व्यावहारिक प्रयोग किया है। अराजकता और अनुशासनहीनता, अशिष्टता और उदण्डता के आँगन में प्रेम का पौधा बोकर समाज सुधार का काम किसी कबीर के लिए ही संभव था।

(3) आचरण की शुद्धता

कबीर आचरण की शुद्धता के प्रबल समर्थक थे। वे थोथी बकवासों, खोखली दलीलों पर तनिक विश्वास नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि जब तक मनुष्य के आचरण में शुद्धता घर नहीं करती तब तक समाज कल्याण की बातें सोचना भी व्यर्थ है। आचरण की शुद्धता के साथ-साथ कबीर ने मधुर वाणी पर बल दिया–

''ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय
औरन को सीतल करे, आपहु सीतल होय।।''[4]

(4) भक्तिभावना पर बल

''कबीर भक्ति के बिना सारी साधनाओं को व्यर्थ मानते हैं। इसी प्रेम एवं भक्ति के बल पर वे अपने युग के सारे मिथ्याचार, कर्मकाण्ड, अमानवीयता, हिंसा, परपीड़ा को चुनौती देते हैं। वे बाह्य आडम्बर एवं पाखण्ड के प्रबल विरोधी थे। वे ऊँच-नीच, जात-पाँत, धर्म-सम्प्रदाय आदि की संकीर्णताओं का आजीवन विरोध करते रहे।''[5]

मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या के वशीभूत होकर ही अनैतिक कार्यो में सचेष्ट होता है, इसलिए सामाजिक विषमताओं को दूर करके कबीर ने भक्ति-भावना पर अत्यधिक बल दिया। उनकी दृष्टि में हरि-भक्त तो हरि का ही हो सकता है, किसी धर्म, सम्प्रदाय और जति विशेष का नहीं –

"जाति पाति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।''[5]

(5) विश्वबन्धुत्व की भावना

कबीर कालीन सामाजिक स्थितियों में जातिगत, वर्गगत, धर्मगत, सम्प्रदायगत भिन्नताओं का प्रभुत्व उत्कर्ष पर था। कबीर मध्ययुगीन कवि थे, फलतः उनकी दृष्टि मनुष्य के इन संकीर्ण और व्यर्थ की दकियानूसी बातों का खण्डन करने में ही तत्पर नहीं थी वरन् विश्व-मानव की स्थापना में भी सचेत थी। जिसके निर्माण के लिए कबीर ने व्यक्ति आह्वान का मंत्र फूंका है–

''कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ,
जो घर जारे आपना चलै हमारे साथ ।।'' [6]

उन्होंने समाज में प्रत्येक व्यक्ति की महत्ता का समर्थन किया। उनका आग्रह मानव और मानव के बीच सहानुभूतिपूर्ण हीन भावना रहित तालमेल की व्यवस्था है। इस असमानता की जड़ में उच्चवर्गीय मानसिकता की स्थिति पर व्यंग्य-करते हुए कबीर कहते हैं-

''ऊँचे कुल की जनमियाँ, करनी ऊँच न होय,
स्वर्ण कलस मदिरा भरा, साधु निंदै सोय।।''

(6) मानवता की स्थापना

तत्कालीन समाज संकीर्णताओं से घिरा हुआ स्वार्थवृत्ति के दलदल से पिसता हुआ समाज था। आत्मकल्याण की चिंता में आतुर वह समाज परहित की चिन्तना से दूर था। इन समस्त संकीर्ण मनोवृत्तियों के दायरों में घुटते समाज को कबीर ने प्रेम और भक्ति, सद्भाव और समन्विति के बल पर खींचकर मानवता की ओर अग्रसर किया। कबीर का व्यक्तिमानस विश्वमानस का प्रतिरूप बनकर जिस मानवतावाद को जन्म दे रहा था, उसमें पिसते जा रहे मूल्यों ने अपने घुटने टेकने शुरू किये और मानव जीवन की पृष्ठभूमि में मानवतावादी दृष्टि उभरकर सामने आयी।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहना असंगत नहीं जान पड़ता है कि भक्त कवि कबीर की साधना कविता रचना मात्र न होकर समाज सुधार भी था। कबीर एक साथ चिन्तक, सुधारक, दार्शनिक एवं व्यवहारवादी थे। उनका जीवन और साहित्य नव्य समाज निर्माण की प्रभात बेला में रवि किरणों की तरह दीप्त है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. कबीर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, छठा संस्करण, 1991, पृ० 248
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ना0 प्र0 सभा काशी, संवत् 2059 पृ० 43
3. वही, पृ0 43
4. कबीर वाङ्मय खण्ड-3, सम्पादक- डॉ0 जयदेव सिंह एवं डॉ0 वासुदेव सिंह
5. हिंदी साहित्य का इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी, जुलाई 2003, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, पृ० 17
6. हिंदी साहित्य और संवेदना का इतिहास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृ० 39

सर्वोदय का गाँधीवादी एवम मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य

डॉ० विन्नी जैन

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सेंट जोन्स कॉलेज आगरा, उत्तर प्रदेश

प्रस्तावना

सर्वोदय का दर्शन धर्म ग्रन्थों के उद्गारों में भी देखने को मिलता है। वेद सभी प्राणियों के उदय की बात करता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मा कश्चित दुःख भाग भवेत' में सर्वोदय का ही भाव छिपा है। ईशावास्योपनिषद के प्रथम श्लोक 'ईशावासमिदम सर्व यत किंचित जगत्यांजगत। तेन त्यक्तेन, भुंजीथाः मा ग्रीथः कश्चष्चिदधनम' तथा गीता के 'आत्मवत सर्वभूतेषु और सर्वभूत हितो रताः'' में सर्वोदय का ही भाव है।

अपने आध्यात्म वाद, आदर्शवाद और अराजकतावाद की पृष्ठभूमि तथा सत्य और अहिंसा के प्रभाव में गांधी जी ने पश्चिमी पूंजीवादी समाजवाद का परित्याग कर दिया। 30 मार्च, 1919 ई0 को गांधी जी ने मार्क्सवाद को खारिज कर दिया और कहा: ''आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता की परिणति बोल्वेशिकवाद के रूप में हुई है। इसकी कार्यक्षमताओं में केवल उत्पादन पर बल दिया जाता है। भौतिकता ने आध्यात्मिकता को भुला दिया है। मनुष्य आत्मविहीन हो गया है।''

सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ 'सब का उदय, ''सब प्रकार से उदय ''और ''सब तरह से उदय से लिया गया है। सबका उदय सर्वोदय का लक्ष्य है। सब प्रकार से उदय इसकी विशेषता है और सब के द्वारा उदय इसका साधन है। जब सब प्रकार से उदय की बात की जाती है तो वह धर्म की दृष्टि से की जाती है, जिसमें लौकिक और पारलौकिक उत्थान, शास्त्रीय भाषा में अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्धि दोनों का समावेश है। अतः सर्वोदय में लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के लक्ष्यों की सिद्धि का आदर्श है। सर्वोदय में सभी जीवन के साथ-साथ सम्पन्नता की बात है। जीवन का अर्थ विकास, अभ्युदय या उन्नति है। सबका विकास हो इसके लिए सर्वोदय है।

सर्वोदय मानव जाति का साध्य एवं साधन है। रस्किन की पुस्तक 'अंटू दि लास्ट' 1904 में पोलक ने जोहान्सबर्ग से डरबन की रेल यात्रा में गांधी जी को जाने से पहले पढ़ने को दी थी। आत्मकथा मे गांधी जी ने लिखा है कि इस पुस्तक को हाथ में लेने के बाद मैं छोड़ ही न सका। इसने मुझे जकड़ लिया। ट्रेन शाम को डरबन पहुंची। सारी रात मुझे नींद नही आई इसी क्रम में आगे इस पुस्तक के बारे में कहते हैं कि पहली बात मैं जानता था, दूसरी बात धुंधली रूप में मेरे सामने थी, पर तीसरी बात का तो मैनें विचार ही नहीं किया था। अनटू दि लास्ट पुस्तक ने सूर्य के प्रकाश की भॉति गांधी जी के समक्ष यह बात स्पष्ट कर दी कि पहली बात में ही दूसरी और तीसरी बातें में समायी हुई हैं। गांधी ने 1908 में इस पुस्तक का गुजराती में अनुवाद कर सर्वोदय नामक पुस्तक लिखी।

सर्वोदय का दर्शन धर्म ग्रन्थों के उदगारों में भी देखने को मिलता है। वेद सभी प्राणियों के उदय की बात करता है। सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मां कष्चित दुःख भाग भवेत में सर्वोदय का ही भाव छिपा है। इशावास्योपनिषद के प्रथम श्लोक ईशावास्यमिदम सर्व यत किंचित जगत्यांजगत। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा ग्रीधः कष्चष्चिदधनम' तथा गीता के आत्मवत सर्वभूतेषु और सर्वभूत हितों रताः में सर्वोदय का ही भाव है। स्पष्ट रूप से सर्वोदय का प्रयोग सर्वप्रथम जैनाचार्य समंत भ्रद ने सर्वोदय

तीर्थ के रूप में किया था। सचमुच में सर्वोदय का विचार नया नहीं लेकिन आधुनिक युग में सर्वोदय शब्द का व्यापक प्रयोग एवं सर्वोदय का कार्य गांधी जी द्वारा प्रारंभ किया गया। गांधी जी ने सर्वोदय को तीन वाक्यों मे सूत्रबद्ध करने का प्रयास किया है।

क. सबकी भलाई में अपनी भलाई है।

ख. नाई और वकील के काम का समान मूल्य है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को व्यवसाय द्वारा आजीविका चलाने का समान अधिकार है।

ग. किसान, कारीगर और मजदूर का जीवन ही सच्चा जीवन है।

गॉधी जी इन सिद्धान्तों पर अमल करते हुए कार्य करते रहें। गांधी जी का कहना है कि मैं अनटू दि लास्ट वाक्यांश के निहितार्थ का समर्थक हूँ। इस पुस्तक ने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी। हमें दुनिया से जो कुछ चाहिए, वह पहले, हम खुद दुनिया के दीनतम व्यक्ति को उपलब्ध कराएं। सभी व्यक्तियों को समान अवसर मिलना चाहिए। अवसर मिले तो प्रत्येक व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास की एक जैसी संभावना है। जबकि आज के संदर्भ में देखें तो कुछ ही लोग सर्वस्व पर वर्चस्व का एकाधिकारी है। सर्वोदय का दर्शन समग्र जीवन के लिए निरपेक्ष और सार्वभौम होता है।

सर्वोदय की दृष्टि से जीवन विज्ञान भी है, कला भी। प्राणिमात्र के लिए समादर एवं सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है। जीवमात्र के लिए सहानुभूति का यह अमृत जब जीवन में प्रवाहित होता है, तो सर्वोदय की लता में सुरभिपूर्ण सुमन खिल उठते हैं। सर्वोदय कहता है कि तुम दूसरों को जिलाने के लिए जियो। मैं तुम्हें जिलाने के लिए जीऊँ। तभी और केवल तभी सबका जीवन सम्पन्न होगा, दूसरों को अपना बनाने के लिए प्रेम का विस्तार करना पड़ता है, इसके लिए अहिंसा का विकास करना पड़ता है। सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन करना पड़ता है। सर्वोदय जीवन के शाष्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना चाहता है और बाधक मूल्यों का निराकरण। सर्वोदय वर्ग-विहीन, जाति-विहीन और शोषण विहीन समाज की स्थापना का ब्रह्मा है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति और समूह के सर्वागीण विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

गांधी जी को पूरा विश्वास था कि पश्चिमी समाजवाद या तो अधिनायकतंत्र के रूप में था या महज एक दर्शन के रूप में। यह भारतीयता के अनुकूल नहीं है। उन्होनें कहा, ''भारत की परिस्थितियों में समाजवाद का प्रयोग विचारणीय प्रश्न है। सिद्धान्त के रूप में हम लोग समाजवाद को जानते हैं। क्या विवादस्पद समाजवाद भारत के हालातों में उपयुक्त है, यह विचार का विषय है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जब गांधी जी के नेतृत्व में आई तो उसने गांधी जी के समाजवाद को अपने भविष्य की नीति के रूप में अपनाया। 'आत्मा पदार्थ नहीं' गांधी जी ने मार्क्स के इतिहास की भौतिकवादी या आर्थिक व्याख्या को नकार दिया। यह तो जड़ पदार्थ है। इसका आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। गांधी जी का पूरा विश्व दर्शन आध्यात्मवाद पर आधारित था। उन्होंने धन की अपेक्षा धर्म पर अधिक बल दिया। आत्मा के बिना शरीर अर्थहीन है। गांधी जी ने कहा, ''मैं इस विचार से सहमत नही हूँ कि भौतिकवाद को अध्यात्मवाद से जोड़ा जाए। ईश्वर की मौजूदगी को तो साबित नहीं किया जा सकता है। उसे हम देख नही सकते। वह अदृष्य, अगोचर है, किन्तु सर्वत्र विद्यमान है। इसे हम केवल आत्मानुभूति द्वारा महसूस कर सकते है। मेरे विचार में मानव जाति की प्रवृत्ति निश्चित रूप से ऊपर उठ रही है। उन्होनें मार्क्सवादी सिद्धान्त को खारिज कर दिया जो यह बताता है कि भौतिकवाद से आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तन हो रहे हैं। दूसरी और, ''आध्यात्मिकता से ही आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में प्रगति होती है। इतिहास की भौतिकवादी नहीं, आध्यात्मिक व्याख्या होनी चाहिए। गांधी जी ने मार्क्स के इतिहास की आर्थिक व्याख्या को एक सिरे से नकार दिया।

मार्क्स के अनुसार सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तन विचारों की अपेक्षा उत्पादन विधि और वितरण से संभव है। मार्क्स के अनुसार आविष्कार या निर्माण की प्रक्रिया मानसिक नहीं शारीरिक है जो परिस्थितियों और माहौल के अनुकूल होते रहते हैं। जाति विहीन, वर्ग विहीन व शोषण से मुक्त समाज का सपना महात्मा गांधी ने देखा था और उन्होनें सर्वोदय जैसा एक दर्शन उसके लिए विकसित किया। ऐसा ही एक प्रयास पश्चिम के समाज विज्ञानी कार्ल मार्क्स ने भी किया। मार्क्स ने समाज को शोषण से मुक्त करने के लिए एक क्रान्ति की प्रक्रिया का मत रखा। उन्होनें अपने इस मत को वैज्ञानिक समाजवाद का नाम दिया। हालांकि क्रांति की प्रक्रिया महात्मा गांधी ने भी दी, लेकिन उन्होनें स्वयं के संस्कारो के अनुरूप ही उसका स्वरूप प्रस्तुत किया। सत्य का अंश दोनों के ही दर्शन में है। समाज के लिए दोनों ही व्यवस्था को बदलना चाहते हैं, किन्तु मार्क्स ने क्रान्ति के लिए शस्त्रों की राह चुनी,

जबकि गांधी जी ने क्रांति का स्वरूप अहिंसा व सत्याग्रह के अंतर्गत रखा। मार्क्स ने पूंजीवाद के खात्मे के लिए शस्त्र क्रांति का सहारा लिया।

यह विचार व्यवस्था परिवर्तन में पीड़ितों की पीड़ा का उपयोग करता है मजदूर वर्ग उसके लिए केवल क्रांति का एक हथियार मात्र है। सर्वोदय के लिए कोई विरोधी पक्ष नहीं है, वह मानव की अच्छाई को आधार मानकर आगे बढ़ता है दूसरा ध्यान देने योग्य बिंदु यह है कि सर्वोदय केवल व्यवस्था परिवर्तन के पक्ष में नहीं, वह तो व्यवस्था को ही मिटाना चाहता है। समाज में किसी भी प्रकार की व्यवस्था के वे पक्ष में ही नहीं, जबकि मार्क्स केवल व्यवस्था का स्थानान्तरण करना चाहते हैं, सत्ता को पूंजीपतियों के हाथ से निकालकर मजदूरों के हाथ में सौंपना ही उनका मुख्य उद्देश्य है। ऐसा करने से समाज में व्याप्त शोषण समाप्त हो जायेगा यह अनिश्चित है। आवश्यक नहीं कि सत्ता प्राप्ति के बाद मजदूर वर्ग अन्यो का शोषण नहीं करेगा। प्रसिद्ध गांधीवाद व सर्वोदयी विचारक दादा धर्माधिकारी के अनुसार, ''समाजवादी क्रांति के बाद साहूकारी व शोषण की समाप्ति नहीं होगी, केवल एक व्यक्ति की साहूकारी के स्थान पर एक वर्ग की साहूकारी स्थापित हो जायेगी। ऐसे समाज का सपना सर्वोदय का नहीं।

''गांधी जी आध्यात्मिक समाजवाद के प्रतिपादक थे, इसलिए उन्होनें इतिहास की आध्यात्मिक व्याख्या की है। यह उतना ही पुराना है जितना पुराना व्यक्ति की चेतना में धर्म का उदय। उन्होनें केवल वाह्य कार्य-कलापों या भौतिकवाद को सभ्यता संस्कृति का वाहक नहीं माना।

उन्होनें गहन आंतरिक विकास पर बल दिया। उन्होने कांग्रेस में बराबर इसके नैतिक पक्ष का समर्थन किया तथा इसे आत्म शोधक संस्था माना न कि याचक संस्था। गांधी जी के अनुसार मानव जाति का इतिहास बराबर अहिंसा की ओर बढ़ रहा है उनका विश्वास था कि मानव जाति की ऊर्जा मानव को ऊपर उठा रही है यह सत्य, अहिंसा और प्रेम का परिणाम है। अतः उनका निष्कर्ष था कि मानव समाज अध्यात्मवाद से प्रभावित है। वर्ग-संघर्ष नहीं, वर्ग सहयोग। गांधी जी ने मार्क्स के वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त को भी खारिज किया। उनका कहना था कि इतिहास वर्ग-संघर्ष की जगह वर्ग सहयोग का अभिलेख है। मार्क्स ने आवश्यक रूप से पूंजीवादी और मजदूरों के बीच तल्खी पैदा किया है। पूंजी और श्रम के सहयोग से ही उत्पादन होता है संघर्ष से तो उत्पादन ही ठप पड़ जाएगा। गांधी जी संघर्ष को बढ़ाने की अपेक्षा घटाना चाहते थे तथा दोनों मे सहयोग की भावना पैदा करना चाहते थे। गांधी जी के शब्दों में, ''वर्ग-संघर्ष का विचार मुझे अच्छा नही लगता। यदि हम अहिंसा का अर्थ समझते हैं तो वर्ग-संघर्ष की जगह वर्ग सहयोग की बात करें। जो वर्ग संघर्ष को अवश्यंभावी समझते हैं, वे अहिंसा का अर्थ नहीं समझते।'' गांधी जी का कथन था कि पूंजी और श्रम एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

दोनों का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है। उन्होनें कहा, ''श्रमिक का कौशल उसकी पूंजी है। पूंजीपति अपनी पूंजी में श्रमिको के सहयोग के बिना वृद्धि नहीं कर सकते, इसी तरह श्रमिक अपने हुनर या कौशल का उपयोग पूंजीपति के सहयोग के बिना नहीं कर सकता। इसमें कोई संदेह नहीं कि वस्तुओं के उत्पादन में दोनों का सहयोग और सहभागिता अवश्यम्भावी है। उत्पादन में दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं सर्वोदय न कि सर्वहारा वर्ग का अधिनायक तंत्र। मार्क्स के लिए सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र आवश्यक था। इसके बिना समतावादी समाज की स्थापना नहीं की जा सकती, गांधी जी को यह पसंद न था। उन्होनें इसे सिरे से नकार दिया। उन्होंने कहा, ''मैं न तो प्रबुद्ध अधिनायकतंत्र और न ही किसी प्रकार के अधिनायकतंत्र में विश्वास करता हूँ। इससे न तो अमीरी दूर होगी और न गरीबी दूर होगी।'' साथ ही इसकी कोई गारन्टी नही कि अधिनायकतंत्र, निरंकुशतंत्र साम्राज्यवादी या कुचक्री बन जाय। रूस में जब जारशाही का जमाना था तो वहॉ पूंजीपतियों, कुलीनों और जार के बीच कुचक्र का दौर बना रहता था। लेकिन जब साम्यवाद आया तो मजदूरों का अधिनायकतंत्र कायम हुआ। गांधीजी के अनुसार अधिनायकतंत्र बराबर हिंसा को जन्म देता है। इससे हिंसा प्रतिहिंसा का दौर बना रहता है।

उन्होनें इसे बिल्कुल नकार दिया, क्योंकि यह मानव जाति को तथा व्यक्तित्व को नष्ट करके बड़ी हानि पहुॅचाता है।

गांधी जी का समाजवाद नैतिकता, हिन्दुत्व, ग्राम्य, मानवतावादी और प्रजातंत्र पर खड़ा था। गांधी जी एक नैतिक समाजवादी थे, इसीलिए उनका समाजवाद नैतिकता, आध्यात्मवाद और सत्य धर्म पर खड़ा था। इसे राजनीतिक संरक्षण प्राप्त कर कत्ल या रक्तपात से स्थापित नहीं किया जा सकता। यह व्यक्ति के भौतिक उद्धार से संभव है। हरिजन में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए उन्होनें लिखा था, ''समाजवाद एक व्यक्ति से शुरू होता है, धीरे-धीरे इसके अनुयायियों की संख्या बढ़ती जाती है। यदि कोई समाजवादी बनना नहीं चाहता तो व्यक्तियों को लाख समझाने-बुझाने पर भी कोई लाभ नहीं।'' गांधी जी के अनुसार, सच्चा समाजवाद, अनुग्रह,

सद्भावना और प्रेम पर आधारित होता है। भारत में सच्चा समाजवाद इशोपनिषद के प्रथम श्लोक में मिलता है। वैज्ञानिक समाजवाद के जन्म पर टिप्पणी करते हुए उन्होनें कहा, ''समाजवाद पूंजीवादी द्वारा पूंजी के दुरूपयोग से शुरू नहीं हुआ, जैसा कि मैनें कहा कि समाजवाद यहां तक कि साम्यवाद भी इशोपनिषद् के प्रथम श्लोक में स्पष्ट है। जो सत्य है वह यह है कि जब कुछ सुधारकों ने समाजवाद में विश्वास खो दिया, तो वैज्ञानिक समाजवाद की तकनीक का जन्म हुआ। मैं वैज्ञानिक समाजवादियों की समस्या के समाधान में लगा हूँ। फिर भी यह सत्य है कि मेरा समाजवाद अहिंसात्मक है। गांधी जी ने पश्चिमी समाजवाद और अपने समाजवाद में कही मेल नहीं देखा। गांधी जी ने कहा, पश्चिमी समाजवाद और साम्यवाद कुछ सिद्धान्तों पर आश्रित हैं, जो सिद्धान्तों से बिल्कुल भिन्न हैं। उनकी एक धारणा तो यह है कि मनुष्य बड़ा स्वार्थी होता है आत्मा की आवाज सुन सकता है, पशु ऐसा नहीं करता, मनुष्य कभी भी पशु की तरह हिंसक नही हो सकता। स्वार्थ और हिंसा पशुओं के गुण है।

दोनों का लक्ष्य एक है, किन्तु लक्ष्य प्राप्त करने के तरीके में मूलभूत अन्तर है। सर्वोदय दर्शन की आधारशिला अपने देश की संस्कृति के साथ गहरी जुड़ी हुई है। यही कारण है कि सर्वोदय ने समाज परिवर्तन के लिए अपनी प्राचीन परम्परा के अनुरूप अहिंसा की प्रक्रिया को चुना। यहॉ एक विशेष ध्यान रखने योग्य बिन्दु यह है कि कार्ल मार्क्स का दर्शन व्यवस्था का परिवर्तन करने पर टिका है, वहीं सर्वोदय का व्यक्ति परिवर्तन पर। महात्मा गांधी ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकारा कि जब तक व्यक्ति में आध्यात्मिक व सांसकृतिक परिवर्तन नहीं आता, तब तक समाज में परिवर्तन कत्तई नहीं होगा। केवल व्यवस्था परिवर्तन से समाज में व्याप्त असमानता का निराकरण नहीं हो सकता। उन्होनें वर्तमान में प्रचलित तीनों प्रकार की सत्ताओं से सर्वोदय को भिन्न माना। उन्होनें समाज को एक ऐसी स्थिति तक ले जाने की बात कहीं, जहॉ आध्यात्मिक सत्ता सर्वोच्च हो जहॉ धन, बल व शक्ति पर आधारित व्यवस्था से कहीं ज्यादा प्रभावी स्थान नैतिकता व कर्तव्य का हो।

सर्वोदय केवल अनुशासन की सत्ता का पक्षधर है। जब समाज प्रकृति के नियमों को कर्तव्य मानकर उनका पालन करेगा।, तब किसी भी प्रकार की सत्ता की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। व्यक्ति का यह अनुशासन ही सम्पूर्ण समाज की ताकत बनेगी। यह विचार अपने देश की प्राचीन परम्परा के बिल्कुल निकट है। अपने यहॉ मान्यता है कि संसार रीत के नियमों सेचलता है।श् ये रीति ही आदिकाल से संसार का संचालन कर रहा है। इसी को सर्वोदय दर्शन में आत्मानुशासन कहा गया।श् सर्वोदय ने इस प्राचीन सिद्वान्त की नवीन व्याख्या की है। आत्मानुशासन समाज को ऐसी दिशा में ले जायेगा, जहॉ पर नियंत्रण के स्थान पर संयम की प्रधानता होगी। किसी भी व्यक्ति पर किसी प्रकार की बाध्यता नहीं होगी, फिर भी नियमों का पालन होगा। उस स्थिति मे पहुँचकर समाज में अधिकारों के स्थान पर कर्तव्यो को ज्यादा मान्यता दी जायेगी। व्यक्ति मे समाज के प्रति कर्तव्य-पालन की भावना होगी, क्योंकि व्यक्ति किसी शासन के द्वारा नियमित होने के स्थान पर स्वानुशासन द्वारा प्रेरित होगा। इसी को उन्होनें राजनीति का विकल्प लोकनीति का नाम दिया।

तीसरा ध्यान देने योग्य बिन्दु है कि मार्क्स की भॉति सर्वोदय सीधे शासन को समाप्त करने के बजाय समाज के आध्यात्म व अनुशासन का दायरा बढ़ाने पर बल देता है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि अनुशासन की बढ़ोत्तरी शासन को अव्यवहारिक कर देगी और धीरे-धीरे शासन-व्यवस्था स्वत: ही समाप्त हो जायेगी। साथ ही इस प्रक्रिया को प्रारम्भ करने का दायित्व भी वह राज्य पर ही डालते हैं। सर्वोदय दर्शन के अनुसार ''राज्य धीरे-धीरे ऐसी स्थिति उत्पन्न करें कि समाज को राज्य व्यवस्था की आवश्यकता ही न रहें वह अव्यवहारिक हो जाये। ''यानी मार्क्स की भॉति वह राज्य को आवश्यक बुराई नहीं मानते। हां, अहिंसक क्रांति की पूर्णता की एक आवश्यक कड़ी अवश्यक मानते हैं। इसका उपर उल्लेख हुआ है। कुछ अर्थों में यह राज्य के होने का कारण भी है। यानी समाज को यदि ऐसी उच्चतम स्थिति पर ले जाना है तो राज्य का होना भी परिहार्य है।

सर्वोदय दर्शन मार्क्स की तरह मतभेद की बजाय मनभेद को सहारा मानकर नही चलता है। वह किसी भी प्रकार की व्यवस्था के प्रति रंचमात्र भी दुर्भावना नहीं रखता। इसलिए वह संघर्ष को अनिवार्य नहीं मानता हैं किन्तु मार्क्स, एक वर्ग के साथ घोर दुर्भावना रखता है। अत: उसकी समाप्ति के लिए संघर्ष को भी अनिवार्य मानते हैं और उस संघर्ष के परिणामस्वरूप स्थापित नवीन व्यवस्था को वे द्वन्दात्मक भौतिकवाद पर स्थापित गरीबों का लोकतंत्र कहते हैं। चूंकि संघर्ष भौतिक है तो स्थापित होने वाली व्यवस्था भी भौतिक ही होगी। फिर उसकी उन्नति का आधार भी भौतिक ही होगा। यहॉ पर सर्वोदय का मार्क्सवादी व्यवस्था के साथ एक और विरोध दिखाई देता है। सर्वोदय समाज की उन्नति का आधार आध्यात्म को मानता है, क्योंकि वह शाश्वत परिवर्तन की गवाही देता है। ऐसे परिवर्तन की नहीं, जिसका कुछ समय के उपरांत पुन: शुद्धिकरण करने की आवश्यकता पड़े। समाज केवल भौतिक उन्नति पर ही आश्रित हो जायेग, तो पुन: स्वार्थ व द्वेष का बोलबाला हो जायेगा। फिर वहीं स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। इसलिए वह लोक

को आध्यात्मिक उन्नति के लिए भूमि प्रदान करने का काम हाथ में लेता है, ताकि समाज मे किसी भी प्रकार की व्यवस्था व नीति के स्थान पर लोकनीति की प्रतिस्थापना हो जाये। यही सम्पूर्ण प्रक्रिया ही अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया कहलायेगी व इस पर आधारित राज्य रामराज्य होगा और उसकी नीति होगी लोकनीति। ऐसे समाज मे प्रत्येक व्यक्ति श्रम को समाज के प्रति अपना कर्तव्य मानेगा व प्रत्येक का सुख-दुख समाज का सुख-दुख होगा।

सर्वोदय दर्शन ही वर्तमान मे समाज की उन्नति का एक मात्र सही हल है, ऐसा गांधी जी ने माना और सही भी है। विद्वान जिस मार्क्सवाद विचारधारा की तुलना सर्वोदय (गांधीवाद) के साथ करते हैं, उस मार्क्सवाद की सर्वश्रेष्ठ कर्मभूमि रूस में व उन देशों में जहाॅ इस विचारधारा ने अपने पॉव पसारे, वर्गो के परस्पर विरोध को उभार कर क्रांति के नाम पर रक्त की होली खेली। आज सभी यह स्वीकार करते हैं कि उनकी सबसे बड़ी समस्या सांस्कृतिक है। वे समाज को भौतिक उन्नति के शिखर पर तो ले गये, किन्तु उनका नैतिक स्तर ऊँचा उठाने मे वे सर्वथा अक्षम रहे। इसलिए वे देश घोर विसंगतियों से जूझ रहे है।

संदर्भः-

1. हरिजन, 4 अगस्त, 1946 ई0।
2. फिशर, लुई, महात्मा गांधी, हिज लाइफ एंड मैसेज फॉर दि वर्ल्ड (भारतीय विद्या भवन, बंबई, 1964) भाग-1, पृ0-88
3. हरिजन, 4 अगस्त, 1946 ई0।
4. शुक्ला, सी.एस., गांधीजी विरू ऑफ लाइफ, (भारतीय विद्या भवन, बंबई, 1960) पृष्ठ-118
5. नायर, सुशीला, बापू की करून कहानी, (हिन्दी, न्यू) 3 सितम्बर, 192
6. यंग इण्डिया, 3 सितम्बर, 1925
7. गांधी एम.के. इण्डिया ऑफ माई ड्रीम्स (नवजीवन अहमदाबाद), 1962 पृ0सं0-34

8 हरिजन, 4 अगस्त, 1949 ई0।

9. R.K PRABHU AND U.R RAO, THE MIND OF MAHATMA GANDHI , OXFORD UNIVERSITY PRESS, LONDON 1945, P 44

10- COMPREHENSIVE SITE BY GANDHIAN INSTITUTE, BOMBAY SRVODAYA MANDAL AND GANDHI, ONLINE BOOK, http/www/mkgandhi.org/cwmg.htm

11- RAMJEE SINGH, GANDHI AND THE MODERN WORLD CLASSICAL PUBLISHING COMPANY, NEW DELHI 1988, P-312

12- HARIJAN 22 FEBRUARY,1942

शासन के तीन अंग–विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका के बीच शक्ति संतुलन का एक अध्ययन : भारतीय संविधान के संदर्भ में

डॉ० गालिब ईमाम

भारत के संविधान का मुख्य उद्देश्य सरकार के विभिन्न अंगों को सिर्फ अधिकार देना ही नहीं बल्कि उन अधिकारों को सीमित करना भी है। संविधानवाद अंकुशों और संतुलनों की परिकल्पना करते हुए विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों को सीमित करता है। संविधानवाद का सार ही यही है कि शासन का कोई भी अंग संविधान प्रदत्त शक्तियों से बाहर जाकर खुद के लिए शक्तियां नहीं हड़प सके।

किसी भी लोकतांत्रिक देश का संविधान शासन के बुनियादी अंगों की स्थापना करने के अलावा उनके लिए सुपरिभाषित दायित्वों और खास शक्तियों का निर्धारण भी करता है ताकि वे जनता के प्रति जवाबदेह हों। जवाबदेही को समय-समय पर होने वाले चुनावों तथा अंदरूनी अंकुशों और संतुलनों के जरिये सुनिश्चित किया जाता है। सरकार को अपनी शक्ति का दुरूपयो करने से रोकने के लिए उसकी संस्थाओं के अन्दर अंकुशों और संतुलनों का होना जरूरी है। लॉर्ड एक्टन के शब्दों में, "सत्ता भ्रष्ट करती है और निरंकुश सत्ता पूरी तरह भ्रष्ट बनाती है।" अरस्तू का दृढ़ विश्वास था कि अच्छी सरकार की शक्तियां सीमित होनी चाहिए। फ्रांसीसी चिन्तक मॉन्टेस्क्यू ने अंकुश और संतुलन बरकरार रखने के लिए शक्तियों के पृथक्कीकरण का जो सिद्धांत दिया था वह आधुनिक लोकतांत्रिक देशों के संविधानों का दिशा-निर्देशक तत्व बन गया है। शक्तियों के पृथक्करण का मतलब उनके बीच समान संतुलन भले ही नहीं हो मगर यह निस्संदेह एक-दूसरे पर लगाम लगाने का काम करता है।

शासन के क्षेत्रों को आम तौर पर व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में वर्गीकृत किया गया है। व्यवस्थापिका का काम कानून बनाना और कार्यपालिका का दायित्व उन्हें लागू करना है। न्यायपालिका कानूनों को बनाये और लागू किये जाने से संबंधित विवादों का निपटारा करती है। संविधान का मुख्य उद्देश्य सरकार के विभिन्न अंगों को सिर्फ अधिकार देना ही नहीं बल्कि उन अधिकारों को सीमत करना भी है। संविधानवाद अंकुशों और संतुलनों की परिकल्पना करते हुए विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों को सीमित करता है। संविधानवाद का सार ही है कि शासन का कोई भी अंग संविधान प्रदत्त शक्तियों से बाहर जाकर खुद के लिए शक्तियां नहीं हड़प सके। भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के०जी० बालाकृष्णन ने कहा था, "संविधान न्यायपालिका समेत शासन के सभी अंगों के ढांचों के अलावा उनकी सीमाओं को भी परिभाषित करता है। वह इन सभी अंगों की भूमिका और कामकाज को तय करने के अलावा उनके आपसी संबंधों, अंकुशों और संतुलनों के प्रतिमानों का निर्धारण करता है।"

भारतीय संविधान शक्तियों के पृथक्करण का एक तीसरा और अनूठा मॉडल पेश करता है। आम तौर पर जिन दो अन्य मॉडलों को अपनाया गया है वे अमेरिका और ब्रिटेन के संविधान हैं। अमेरिकी संविधान में शासन के तीनों अंगों के बीच शक्तियों के ठोस पृथक्कीकरण के साथ न्यायपालिका को एक विशिष्ट दर्जा दिया गया है। दूसरी और ब्रिटिश संविधान (वेस्टमिनिस्टर मॉडल) में संसद की सर्वोच्चता के सिद्धांत के आधार पर शासन के विभिन्न अंगों के बीच पृथक्कीकरण ढीला-ढाला रखा गया है। भारत में संविधान सर्वोच्च है। हमारे देश में अगर कोई व्यवस्था संविधान के प्रावधानों का अतिक्रमण करत है तो उसे स्वत: निरस्त और असंवैधानिक माना जायेगा। शासन के विभिन्न अंगों के बीच यह जागरूकता है कि उनकी शक्तियां बिना शर्त और स्थाई नहीं है।

भारत ने शासन की राष्ट्रपति प्रणाली के बजाय संसदीय व्यवस्था को चुना है। लेकिन भारतीय संसद को ब्रिटेन की पार्लियामेंट

की तरह सर्वोच्चता हासिल नहीं है। ब्रिटेन की पार्लियामेंट को संविधान को संशोधित या निरस्त करने की व्यापक शक्ति दी गयी है। लेकिन भारत में वैधानिक और संवैधानिक कानून में फर्क है। संविधान में संशोधन के लिये अनुच्छेद 368 के तहत विशेष प्रावधान किये गये हैं। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने केशवानंद भारती बनाम केरल सरकार (1973) मामले में कहा है कि संविधान के बुनियादी ढांचे के साथ छेड़छाड़ करने वाले किसी भी संशोधन को असंवैधानिक मानते हुए निरस्त कर दिया जायेगा। भारत में संसद को अपनी शक्तियां संविधान से मिलती है। उसके पास संविधान को नजरअंदाज करने का निरंकुश और मनमाना अधिकार नहीं है।

भारतीय संविधान शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धांत का अक्षरश: पालन नहीं करता। कार्यपालिका हमारे देश में विधायिका का हिस्सा होने के नाते उसके लिये जिम्मेदार भी है। सभी विधानों के लिये केन्द्र में राष्ट्रपति और राज्यों में राज्यपाल की मंजूरी की जरूरत पड़ती है।

राष्ट्रपति (अनुच्छेद 123) या राज्यपाल (अनुच्छेद 213) को विधायिका के दोनों सदनों के सत्र में नहीं होने की स्थिति में अध्यादेश जारी करने का अधिकार है। इस अध्यादेश का दर्जा विधायिका से निर्मित कानून के समान ही होता है। लिहाजा, ऐसे मौके भी आ सकते हैं जब कार्यपालिका विधान की सामान्य प्रक्रिया को दरकिनार करने के लिए अध्यादेश के जरिये शासन का सहारा ले रही हो।

अनुच्छेद 311 कार्यपालिका को केन्द या राज्य के तहत किसी असैनिक पद पर तैनात व्यक्ति के खिलाफ आरोपों की जांच करने और उसे सजा देने की इजाजत प्रदान करता है। राष्ट्रपति या राज्यपाल के पास किसी भी मुजरिम को माफी देने या उसकी सजा में बदलाव करने का अधिकार है। विधायिका के पास न्यायिक कामकाज का भी अधिकार है।

अनुच्छद 323 ए और 323 बी को बयालीसवें संशोधन (1976) के जरिये संविधान में शामिल किया गया है। इन अनुच्छेदों के जरिये संसद और विधानसभाओं को न्यायाधीकरण (Tribunal) बनाने के लिए अधिकृत किया गया है। इन न्यायाधीकरण को विभिन्न विषयों पर विवादों का निपटारा करने के अधिकार हस्तांतरित किये जा सकते हैं। इन विषयों को न्यायालयों के न्याय क्षेत्र से बाहर कर दिया जाता है। इन अनुच्छेदों ने अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के तहत समीक्षा की न्यायालय की शक्तियों को पूरी तरह खत्म करना और ये शक्तियां विधायी तौर पर न्यायाधीकरण को सौंपना संभव बना दिया है। संसद को उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के गठन, संगठन, अधिकार क्षेत्र और शक्तियों के बारे में कानून बनाने का अधिकार है। उसे न्यायाधीशों के खिलाफ महाभियोग चलाने का भी अधिकार है। बेशक इस प्रक्रिया का नतीजा संसदीय बहुमत पर निर्भर करता है। भारतीय संविधान के तहत कामकाज का अधिव्यापन कार्यपालिका को विधायिका और न्यायपालिका के प्रमुख काम करने की इजाजत भी देता है। संविधान के अंतर्गत उच्च न्यायालयों में नियुक्त किये जाने वाले न्यायाधीशों की संख्या के निर्धारण का अधिकार संसद को है। उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में न्यायाधीश किसे नियुक्त किया जाय इस बारे में अंतिम फैसला भी राष्ट्रपति ही करते हैं। संविधान के तहत कार्यपालिका को प्रदान की गयी विधायी शक्तियों के संभवत: सबसे असामान्य स्वरूप का जिक्र आपातकालीन प्रावधानों (अनुच्छेद 352, 356 और 360) के तहत किया गया है।

न्यायपालिका न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का इस्तेमाल कर निष्पक्षता के सिद्धांत के आधार पर संवैधानिक प्रावधानों और कानून के शासन के सुस्थापित सिद्धांतों के आलोक में विधायिका और कार्यपालिका की चूक और गड़बड़ी पर फैसला करती है। न्यायपालिका को दिया गया यह विशेष अधिकार उसकी इस जिम्मेदारी को भी बढ़ाता है कि वह न्यायिक समीक्षा के शक्ति का इस्तेमाल करते समय ज्यादा सावधान और सचेत रहे। उसे शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धांत का सम्मान करते हुए इसकी अवहेलना से बचना चाहिए।

किसी विधान या कार्यपालिका के फैसले की संवैधानिकता की जांच के लिए न्यायिक समीक्षा से कभी-कभार लेकतंत्र के तीनों स्तंभों के बीच टकराव भी पैदा होता है। उच्चतम न्यायालय संसद के बनाये कानूनों की संवैधानिक वैधता का फैसला करता है। इस तरह उसके जरिये संविधान मुखरित होता है। न्यायालय का फैसला विधायिका या कार्यपालिका के कानून या किसी अन्य फैसले की वैधता को बढ़ाता या घटाता है। संविधान का अनुच्छेद 32 उसे नागरिकों को दिये गये उन मौलिक अधिकारों का रखवाला बनाता है जिनका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। इन मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये वह आदेश जारी कर सकता है। यहाँ तक कि उच्च न्यायालयों को भी अनुच्छेद 226 के तहत मौलिक और अन्य कानूनी अधिकारों की रक्षा के लिए इस तरह का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 141 में कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित कानून भारत की सभी अदालतों के लिए बाध्यकारी

होगा। अनुच्छेद 142 के तहत वह अपने सामने आये किसी भी मामले में संपूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए जरूरी फरमान या आदेश जारी कर सकता है। अनुच्छेद 144 में कहा गया है कि सभी असैनिक और न्यायिक प्राधिकार उच्चतम न्यायालय के सहयोग के लिये काम करेंगे। ये तीन अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को देश का सबसे शक्तिशाली प्रतिष्ठान बनाते हैं। इससे संसद की शक्तियों पर यह पाबंदी लगती है कि संविधान के बुनियादी ढांचे में बदलाव नहीं किया जा सकता। उच्चतम न्यायालय की नौ सदस्यीय एक संविधान पीठ ने छह न्यायाधीशों के बहुमत से यह फैसला दिया था कि राज्य सरकारों को बर्खास्त करने के लिये राष्ट्रपति की निर्णय की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। वर्ष 2006 में बिहार विधानसभा को भंग किये जाने को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया था। उच्चतम न्यायालय ने यहाँ तक कहा है कि मौत की सजा पाने वाले व्यक्ति को माफी देने के मामलों में भी राष्ट्रपति या राज्यपाल का फैसला न्यायिक समीक्षा के अधीन होगा।

न्यायपालिका से उम्मीद की जाती है कि वह विधान के मामलों में विधायिका और कार्यकारी शासन के मामले में कार्यपालिका द्वारा छोड़ी गयी रिक्ति की भरपाई करेगी। न्यायपालिका जनता (जनहित याचिका) द्वारा या स्वत: भी सक्रिय हो सकती है। न्यायिक सक्रियतावाद वैसी स्थिति पर न्यायपालिका की प्रतिक्रिया है जिसमें समाधान के उपाय तुरंत किये जाने की जरूरत हो। यह एक समर्थनात्मक सिद्धांत है जिसमें मुस्तैदी, अध्यवसाय और सामंजस्य होना चाहिए। हाल के दशकों में न्यायपालिका पर कानूनों की एक खास ढंग से व्याख्या कर शासन के अन्य अंगों के अधिकार क्षेत्र में घुसपैठ करने के आरोप लगते रहे हैं। यह मामला ऐसी स्थिति तक पहुंच गया कि तीन दिसंबर, 2007 को लोकसभा में प्रक्रिया और कार्यवाही संचालन के नियम 193 के तहत इस पर गर्मागर्म चर्चा हुई। इस दौरान सदस्यों ने दलगत सीमाओं से ऊपर उठ कर विधायिका और कार्यपालिका के कामकाज में कथित दखलंदाजी पर न्यायपालिका की तीखी आलोचना की।

उच्चतम न्यायालय की विशेष शक्तियां भारत का संविधान अनुच्छेद 142 के जरिये उच्चतम न्यायालय को संपूर्ण न्याय करने के लिए एक विशेष शक्ति प्रदान करता है। उच्चतम न्यायालय ने 2 जी स्पेक्ट्रम घोटाला मामले में एक आदेश जारी किया कि कोई भी अदालत केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) और प्रवर्तन निदेशालय (ED) के जरिये जांच में रुकावट नहीं डालेगी।

इस प्रकार उच्चतम न्यायाल ने अनुच्छेद 142 का सहारा लेकर वैसे लोगों को सक्रियता से न्याय दिलाया जो विभिन्न सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक पृष्ठभूमियों के कारण इंसाफ से वंचित रहते हैं। उनसे गरीबों और बेजुबानों की आवाज बन कर भारत में न्यायिक प्रणाली के विकास में मुख्य भूमिका अदा की है।

सुशासन का तकाजा है कि शासन के तीनों स्तंभों–कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के बीच संतुलन हो और वे एक-दूसरे पर प्रभावी ढंग से अंकुश रखें। प्रधानमंत्री ने कहा है, 'वे एक ही परिवार के सदस्य हैं। हमें किसी को भी सही या गलत साबित नहीं करना है। हम अपनी ताकतों के साथ ही कमजोरियों को भी जानते हैं।' तीनों स्तंभों को इस बात पर विचार करना चाहिए कि बदले हुए परिवेश में 'मिनिमम गवर्नमेंट एंड मैक्सिमम गवर्नेंस' के मंत्र के जरिये 'सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास' के लक्ष्य को साकार करने के लिए किस तरह आगे बढ़ा जाये। यह समावेशन की उस भावना को मजबूत करता है जिसे महात्मा गांधी ने प्रतिपादित किया था। गांधीजी ने कहा था, 'मैं मानता हूँ कि लोकतंत्र कमजोर को मजबूत के बाबर मौका मुहैया कराता है।' यह डॉ० आंबेडकर की उस संवैधानिक दृष्टि को भी साकार करेगा जिसमें हर नागरिक को समुचित महत्व और गरिमा सुनिश्चित करने के लिए कानून के शासन और अवसर की समानता के सिद्धांतों का समर्थन किया गया है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचनों के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान ने शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धांत को उसकी संपूर्ण दृढ़ता के साथ स्वीकार नहीं किया है। लेकिन शासन के विभिन्न अंगों या शाखाओं के कामकाज में पर्याप्त भिन्नता रखी गयी है। सरकार के हर अंग को विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका से जुड़े काम करने होते हैं। इसके अलावा हर अंग कुछ हद तक दूसरे अंगों पर निर्भर है जिससे नियंत्रण और संतुलन कायम रहता है। इसका मतलब यह नहीं कि शक्तियों के पृथक्कीकरण के सिद्धांत को हमने पूरी तरह खारिज कर दिया है। इस सिद्धांत का पालन किया जाता है कि कोई अंग वैसा काम नहीं करेगा जो अनिवार्यत: दूसरे का है। इसका अपवाद सिर्फ वे मामले हैं जिनमें संविधान ने शक्ति किसी संस्था में निहित की हो। मसलन, अध्यादेश जारी करने की शक्ति राष्ट्रपति या राज्यपाल में निहित की गयी है।

शासन का प्रभावी ढंग से काम करना उसके तीनों स्तंभों न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका पर निर्भर करता है। वास्तविक लोक कल्याण हासिल करने और संवैधानिक तंत्र के सुचारू ढंग से कामकाज के लिये तीनों स्तंभों के बीच टकराव के बजाय संतुलन बहुत जरूरी है। भारत में संविधान की सर्वोच्चता को बरकरार रखा गया है। संसद की शक्तियां संविधान के तहत तय दायरे के भीतर ही होती हैं। सवाल संसदीय या न्यायिक सर्वोच्चता का नहीं है। वास्तव में सवाल विभिन्न स्तंभों के बीच एक-दूसरे के दायरे में दखलंदाजी के बिना संतुलन कायम करने और प्रभावी शासन मुहैया कराने का है जिससे लोकतांत्रिक ढांचा परिपुष्ट और मजबूत हो।

सन्दर्भ

1. आचार्य डॉ० दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान–एक परिचय
2. एस०एम० सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था
3. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति
4. धवन राजीव, 'द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया : मिरेकल, सरेंडर, होप', लेक्सिसनेक्सिस, गुड़गांव, 2017
5. रंजन सुधांशु, 'जस्टिस, जूडोक्रेसी एंड डेमोक्रेसी इन इंडिया', रूटलेज, नयी दिल्ली, 2012
6. साठे एस०पी०, 'एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ', लेक्सिसनेक्सिस, नयी दिल्ली, सातवां संस्करण, 2006
7. खुर्शीद सलमान, लूथरा सिद्धार्थ, मलिक लोकेन्द्र, बेदी श्रुति। 'जडिशियल रिव्यू प्रॉसेस, पॉवर्स एंड प्रॉबलम्स', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली
8. https://www.mkgandhi.org/articles/democracy.htm
9. चौधरी सुजीत, खोसला माधव, मेहता प्रताप भानु, 'द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ द इंडियन कांस्टीट्यूशन', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली, 2016

अर्थशास्त्री के रूप में डॉ० अंबेडकर

स्वदेश सिंह

सहायक प्राध्यापक, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ भीमराव अंबेडकर सिर्फ एक समाज सुधारक ही नहीं बल्कि एक प्रतिष्ठित वकील, पत्रकार, शिक्षाविद, सांसद, राजनेता, श्रमिक नेता और संविधानविद भी थे। हममें से कम लोगों को ही पता होगा कि वो भारत के पहली पीढ़ी के प्रशिक्षित अर्थशास्त्रियों में से एक थे। वो ऐसे पहले भारतीय नेता थे जिनका अर्थशास्त्र विषय में औपचारिक प्रशिक्षण हुआ था और प्रतिष्ठित अकादमिक शोध पत्रिकाओं में शोधपत्र प्रकाशित हुए थे। जब अमेरिका से पढ़ाई करके डॉ अंबेडकर भारत लौटे तो मुंबई के एक कॉलेज में तीन वर्षों तक अर्थशास्त्र के प्राध्यापक रहे। उन्होंने लंदन में भी शोधकार्य किया और वहां एडविन कनान के सानिध्य में लंदन स्कूल ऑफ इकॉनमिक्स में पढ़ाई की।

किसी भी व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विचार और उसका विकास काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि वह व्यक्ति किस परिवेश और वातावरण में पला-बढ़ा है। डॉ अंबेडकर का आर्थिक चिंतन भी उनके अपने प्रारंभिक जीवन की पीड़ाओं, अछूतों के प्रति व्यवहार और देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशाओं से प्रभावित था। अमेरिका, इंग्लैंड और जर्मनी की दशाओं ने भी उनके विचार को प्रभावित किया था। शायद इसीलिए, अस्पृश्यता तथा जातिवाद जैसी सामाजिक बुराइयों के आर्थिक पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले वे पहले विचारक थे। जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता जैसे सामाजिक रोगों के आर्थिक पहलुओं का मूलभूत निरीक्षण उन्होंने अपनी दो पुस्तकों -जातियों का निर्मूलन (एनहिलेशन ऑफ कास्ट) और कांग्रेस तथा गांधी ने अस्पृश्यों के साथ क्या किया (व्हाट गांधी एंड कांग्रेस डन टू अनटचेबल्स) - में किया है।

अन्य देशों की तुलना में भारतीय संविधान में आर्थिक तथा वित्तीय प्रावधानों के बाहुल्य का श्रेय भी डॉ अंबेडकर को जाता है। लेकिन हम कह सकते हैं कि डॉ अंबेडकर द्वारा अर्थशास्त्री के रूप में किए गए महत्वपूर्ण कार्यों की अनदेखी की गई। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक तो हम विदेशी विद्वानों से अभीभूत रहते हैं और अपने देश के विद्वानों को सराहने में कतराते हैं। लेकिन इस देश में दादाभाई नौरोजी और माधव गोविंद रानाडे जैसे नेताओं को देशसेवक होने के साथ-साथ महान अर्थशास्त्री होने का सम्मान भी मिला। दुर्भाग्य से डॉ अंबेडकर के साथ ऐसा ना हो सका। दूसरा कारण ये हो सकता है कि उनकी समाज सुधारक वाली छवि के सामने अर्थशास्त्री वाली छवि छिप सी गई हो। ऐसे में अगर आम लोगों के सामने डॉ अंबेडकर एक अर्थशास्त्री के रूप में उभर कर सामने ना आ पाए लेकिन कम से कम अर्थशास्त्र के विद्वानों को इस क्षेत्र में उनके काम का सही मूल्यांकन करना चाहिए था। लेकिन ऐसा भी नहीं हो पाया। यही कहा जा सकता है कि भारतीय समाज का उनके अर्थशास्त्रीय कार्य से वंचित रह जाना हमारा ही दुर्भाग्य है।

आर्थिक चिंतन के दो पड़ाव

डॉ अंबेडकर के आर्थिक चिंतन के दो पड़ाव माने जा सकते हैं। पहले पड़ाव में वो एक शोधकर्ता और अर्थशास्त्र के विद्वान के रूप में अपनी बात कहते हुए नजर आते हैं। जिस दौरान उन्होंने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में तीन किताबें प्रकाशित कीं जो कि उनके शोध अध्ययन का नतीजा थीं। ये किताबें हैं- ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रशासन और वित्त प्रबंध (एडमिनिस्ट्रेशन एंड फाइनेंस ऑफ द ईस्ट इंडिया कंपनी), रुपए की समस्या (द प्रॉब्लम ऑफ रूपी) और ब्रिटिश भारत में प्रादेशिक वित्त का विकास (द इवोल्यूशन ऑफ प्रॉविन्सियल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इंडिया)। बड़ौदा के महाराजा के सहयोग से डॉ अंबेडकर अपनी पोस्ट-ग्रेजुएट की पढ़ाई करने 1913 अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय गए। वहीं एमए की थीसिस के रूप में अर्थशास्त्र पर पहली किताब 1915 में पूरी हुई। एक शोधकर्ता के रूप में उन्होंने विभिन्न विषयों का गहन अध्ययन किया था और दिनभर पुस्तकालय में बैठे रहते थे। अपने

कोलंबिया विश्वविद्यालय के तीन वर्ष के अध्ययन के दौरान उन्होंने अर्थशास्त्र के 29 कोर्स लेकर उनका अध्ययन किया। 1917 में पीएचडी के लिए रजिस्ट्रेशन लिया लेकिन उन्हें छात्रवृत्ति का कार्यकाल खत्म होने की वजह से भारत वापस लौटना पड़ा। 1920 में वो दोबारा पढ़ाई के लिए लंदन स्कूल ऑफ इकॉनमिक्स, लंदन गए। वहां से पहले 1921 में एमएससी और 1923 में डीएससी की डिग्री पूरी की। उनकी दूसरी किताब इसी शोध का परिणाम थी। ये किताब 1925 में प्रकाशित भी हुई। तीसरी किताब कोलंबिया विश्वविद्यालय से की गई उनकी पीएचडी का परिणाम थी जो 1927 में पूरी हुई। इन पुस्तकों में उनके उदारवादी अर्थशास्त्री होने के साथ कीन्स के लोककल्याणकारी आर्थिक चिंतन की झलक दिखाई देती है। वैसे उन्होंने जहां जरूरत हुई कीन्स के साथ-साथ रानाडे, मिल जैसे अर्थशास्त्रियों की राय से अपनी तर्क संगत असहमित जताई थी। लेकिन अफसोस की बात ये है कि उनकी अर्थशास्त्र पर लिखी कोई भी किताब किसी विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं है और शायद ही किसी पुस्तकालय में उपलब्ध हो। दिल्ली में उनके अलीपुर वाले आवास पर जब अंबेडकर नेशनल मेमोरियल बनने लगा तो प्रॉब्लम ऑफ रूपी की प्रतिकृति लंदन से मंगानी पड़ी क्योंकि वहां भी एक ही कॉपी रखी हुई है।

अर्थशास्त्र में शोध

पहली दो पुस्तकों के माध्यम से उन्होंने अर्थशास्त्र की सार्वजनिक वित्त (पब्लिक फाइनेंस) शाखा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। पहली पुस्तक में उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के 1792 से 1858 तक के वित्तीय प्रबंध का विश्लेषण किया है तथा दूसरी पुस्तक में ब्रिटिश भारत में केंद्र और राज्य सरकार के 1833 से 1921 तक के वित्तीय संबंधों पर विस्तृत चर्चा की है। इस पुस्तक में उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर ब्रिटिश उत्पादकों के हित में काम करने की आलोचना की थी। उन्होने लिखा कि कृषि पर कर लगाकर अंग्रेजी सरकार किसानों की समृद्धि का रास्ता रोक दिया। उनके लेखन से पता लगता है कि वो अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका तो चाहते थे लेकिन बाजार की क्षमता के आधार पर व्यक्ति के विकास पर भी उनका विश्वास था।

तीसरी पुस्तक उनके लेखन का अत्यंत अनमोल मोती है। इस पुस्तक में उन्होंने भारतीय रुपए के विकास की ऐतिहासिक मीमांसा की है। सन 1800 से 1921 तक की अवधि में विनिमय के साधन के रूप में भारतीय रुपए का विकास किस तरीके से होता गया, इसका गहन विश्लेषण उन्होंने किया है तथा भविष्य में भारत के लिए आदर्श मुद्रा प्रणाली कौन सी हो, इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर अपने विचार दिए हैं। अपने इस ग्रंथ में उन्होने बताया कि रूपए का सीमित अवमूल्यन भारत के हित में है और इससे कामगारों और पूंजीपतियों-दोनों के हितों में संतुलन बना रहेगा। उनके इस ग्रंथ का मुख्य विषय था कि भारतीय मुद्रा को कैसे व्यवस्थित किया जाए। आर्थिक इतिहासकार एस अंबीराजन के अनुसार अर्थशास्त्र में उनके विचार सिर्फ सैद्धांतिक नहीं थे और वो अपने समय की आर्थिक समस्याओं पर विचार करते थे और ध्यान रखते थे कि उनके आर्थिक विचारों का लोकनीति पर कितना प्रभाव पड़ेगा।

आज के दौर में इन तीन महत्वपूर्ण पुस्तकों में दिए गए उनके आर्थिक विचारों तथा उसकी उपयोगिता पर काफी काम प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और शिक्षाविद डॉ. नरेंद्र जाधव ने किया है लेकिन इन शोध ग्रंथों पर और काम किये जाने की जरूरत है। 1992 में डॉ जाधव ने डॉ अंबेडकर के आर्थिक विचारों पर एख शोध ग्रंथ लिखा। वो साफ तौर पर लिखते हैं, 'भारतीय समाज ने डॉ अंबेडकर के आर्थिक विचारों की ओर दुर्लक्ष्य कर उन पर अन्याय किया है। डॉ अंबेडकर के विचार संकुचित नहीं थे। वे सदैव संपूर्ण देश के कल्याण का विचार करते थे। यह कहना कि कि वे केवल दलितों के नेता थे, एक महान देशभक्त का अपमान है।'

वैसे तो उनका प्रशिक्षण उदारवादी अर्थव्यवस्था में था लेकिन उन्होंने मार्क्सवाद का अध्ययन भी किया था। उनका साफ मानना था कि भारत में वर्ग से बड़ी समस्या जाति की है जिसके आधार पर यहां छुआछूत किया जाता है। हालांकि उन्होंने 1920 के दशक के मध्य से अर्थशास्त्र विषय से अपना सीधा नाता तोड़ लिया था और पूरी तरीके से समाज सुधार के काम में लग गए थे। लेकिन उनकी आगे के भी सभी भाषणों, लेखों और चिंतन में एक अर्थशास्त्री की झलक साफ दिखाई देती है।

दूसरा पड़ाव

दूसरे पड़ाव में डॉ अंबेडकर सामाजिक-राजनीतिक जीवन से जुड़ गए और समाज में व्याप्त असमानता और शोषण के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने स्वतंत्र मजदूर पक्ष (इंडीपेंडेंट लेबर पार्टी) का गठन किया और अछूत मजदूरों की समस्या को मजबूती से उठाया। ट्रेड यूनियन संगठन सिर्फ सिर्फ फैक्ट्री में काम कर रहे मजदूरों की समस्या उठाती थीं और उनके सामाजिक सरोकारों से अनभिज्ञ थीं। अंबेडकर ऐसे पहले नेता और चिंतक थे जिन्होंने जातिवाद और अस्पृश्यता के आर्थिक पक्ष को समझा और मजबूती से उठाया।

बॉम्बे प्रॉविन्सियल एसेंबली में सदस्य के रूप में डॉ अंबेडकर ने ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों की आवाज को हर स्तर पर उठाया। महाराष्ट्र में उस समय खोती नाम से प्रचलित कुप्रथा के खिलाफ उन्होंने संघर्ष किया और सफलता पाई जिससे हजारों लोगों को आर्थिक शोषण से मुक्ति मिली। महार वतन नाम की प्रथा के खिलाफ भी उन्होंने आवाज उठाई जिससे ग्रामीण क्षेत्र में रह रहे कमजोर तबके के लोगों को अप्रत्यक्ष गुलामी से आजादी मिली। उन्होंने राज्य विधानसभा में साहूकारी के खिलाफ एक विधेयक प्रस्तुत किया जो गरीबों के शोषण के खिलाफ था।

जहां महात्मा गांधी ने वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हुए श्रम के वर्गीकरण को सही ठहराया वहीं अंबेडकर ने अपनी पुस्तक जाति का निर्मूलन (एनहिलेशन ऑफ कास्ट) में इसकी तीखी आलोचना करते हुए कहा कि जाति व्यवस्था में श्रम का वर्गीकरण ही नहीं बल्कि श्रमिकों का वर्गीकरण भी परोक्ष रूप से निहित है।

डॉ अंबेडकर जब जाति व्यवस्था और छुआछूत पर कुठाराघात करते हैं तो वो सिर्फ अगड़ी जातियों के वर्चस्व को खत्म करने की बात नहीं कहते बल्कि इसके पीछे छिपे समाज के हाशिए पर पहुंचे हिस्से के आर्थिक पिछड़ेपन की तरफ भी इशारा करते हैं। उनके अनुसार जाति व्यवस्था की वजह से श्रम और पूंजी की गतिशीलता पर विराम लग गया है जिससे भारत के आर्थिक विकास पर गहरा असर पड़ रहा है।

अंबेडकर मजदूर और किसानों की एकता की बात की। उन्होंने माना कि मजदूरों और किसानों को पूंजीपतियों और जमींदारों के खिलाफ एक होकर संघर्ष करना चाहिए। इसी दौर में उन्होंने राज्य आधारित समाजवाद (स्टेट सोशलिज्म) का विचार दिया जिसका जिक्र ऑल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के एक दस्तावेज 'स्टेट और माइनॉरिटीज' में पहली बार किया गया जो उन्होंने संविधान सभा को 1946 में दिया था। हांलाकि उन्होंने मजदूर एकता की बात कही लेकिन कभी वर्ग संघर्ष की तरफ इशारा नहीं किया और समाज में व्याप्त असमानता और शोषण के अहिंसक समाधान की बात कही। यही बात उन्हें बुद्ध के करीब और मार्क्स से दूर ले जाती है। मजदूरों और किसानों की हित की बात करते हुए उन्होंने उद्योगों और कृषि से जुड़े सवालों का ना सिर्फ उठाया बल्कि उनके समाधान भी सुझाए।

बाद के अंबेडकर के आर्थिक चिंतन को बुद्धिस्ट अर्थव्यवस्था के नजदीक पाया जा सकता है। बुद्धिस्ट आर्थिक चिंतन को 'स्माल इज ब्यूटीफुल' के विचार के करीब माना जाता है जिसमें अपनी जरूरतों को कम करने पर जोर दिया जाता है। लेकिन अंबेडकर के विचार इससे भिन्न थे। अपने एक निबंध 'बुद्ध और कार्ल मार्क्स' में अंबेडकर संपत्ति के निजी रूप से संग्रह के समर्थक के रूप में सामने आते हैं। इस निबंध में वो कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति की ईमानदारी से अर्जित की हुई संपत्ति राज्य और अर्थव्यवस्था का आधार है और इससे अराजकता रुकेगी और लोगों का कल्याण होगा। अंबेडकर के अनुसार भिक्षु संघ आदर्श साम्यवादी समाज का प्रतिनिधित्व करते थे। गेल ऑमवेट का मानना है कि अंबेडकर के आर्थिक चिंतन में ये पड़ाव होने के बावजूद वो मूलत: एक उदारवादी अर्थशास्त्री थे जो व्यक्ति की स्वतंत्रता, तार्किकता और प्रबोधन के मूल्यों में विश्वास करते थे।

सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र

जब देश स्वतंत्र हुआ तो डॉ अंबेडकर को महात्मा गांधी के कहने पर पंडित नेहरू के मंत्रिमंडल में शामिल किया गया। अंबेडकर आर्थिक नियोजन का मंत्रालय चाहते थे लेकिन उन्हें विधि मंत्रालय दिया गया। संविधान निर्माण के समय भी डॉ अंबेडकर के अंदर का अर्थशास्त्री अपना काम कर रहा था। उन्होंने लोकतंत्र को भारत में शासन के सिद्धांत की संतुति तो की लेकिन साथ ही कहा कि समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के बिना लोकतंत्र अधूरा है और लोकतंत्र को सिर्फ एक राजनीतिक अधिकार के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। उन्होंने लोकतंत्र के सामाजिक और आर्थिक पक्ष की तरफ भी इशारा किया और कहा कि राजनीतिक लोकतंत्र के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र भी उतने ही आवश्यक है और इसके लिए हम सबको मिलकर काम करना होगा।

आर्थिक विकास में राज्य की भूमिका

अंबेडकर ने राज्य आधारित समाजवाद की बात कही जिसका मतलब है राजनीतिक लोकतंत्र के साथ उत्पादन के साधन का मालिकाना हक राज्य के पास हो। इसका मतलब है कि राज्य की भूमिका आर्थिक विकास के क्षेत्र में प्रमुख होगी। अंबेडकर ने राज्य की भूमिका की बात इसलिए कही क्योंकि बड़े-बड़े उद्योग-कारखाने लगा पाने की क्षमता सिर्फ राज्य के पास थी और असमानता और शोषण को समाप्त करने के लिए भूमि सुधार और संसाधनों का समान वितरण राज्य द्वारा ही सुनिश्चित किया जा सकता था। अंबेडकर के अनुसार बड़े उद्योगों का संचालन राज्य द्वारा किया जाए। कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे भूमि, बीमा आदि का राष्ट्रीयकरण किया जाए और राज्य की भूमिका बढाई जाए। राज्य नियोजन के द्वारा आर्थिक विकास की योजनाएं लाई जाएं।

कृषि क्षेत्र

डॉ अंबेडकर का मानना था कि दुनियाभर के देश कृषि से धीरे-धीरे उद्योगों की तरफ आए। भारत में कृषि और उद्योग दोनों होता था लेकिन हम कालांतर में पूरी तरीके से कृषि पर निर्भर हो गए। इसलिए उन्होंने अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कृषि की तरफ जोर देने की बात कही। उन्होंने कम कृषि उत्पादन के कारणों का पता लगाने की कोशिश भी की। 1918 में उनका एक शोधपत्र 'स्माल होल्डिंग एंड देयर रेमेडीज' जर्नल ऑफ द इंडियन इकॉनमिक्स सोसाइटी में प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने कम कृषि उत्पादन के दो कारण गिनाए। पहला कि किसानों को सही तरीके से बीज, खाद और संयंत्र की व्यवस्था नहीं थी जिसकी वजह से उनके उत्पादन पर फर्क पड़ता था। दूसरा, कृषि क्षेत्र में श्रमिकों की अधिकता, जिससे बेरोजगारी बढ़ती थी और प्रति श्रमिक उत्पादन कम होता था। इसीलिए अंबेडकर ने औद्योगिक क्षेत्र को बढ़ाने की बात कही जिससे अतिरिक्त श्रमिकों को उद्योगों में लगाया जा सके। उनका कहना था कि भारत की कृषि समस्या का सबसे कारगर समाधान देश का औद्योगिकीकरण करके ही किया जा सकता है।

इसके अलावा अंबेडकर ने भूमि सुधार की बात कही जिसमें भूमि कानूनों में बदलाव के साथ-साथ सामूहिक खेती, भूमि के वितरण और न्यायपूर्ण भूमि लगान नीति की बात थी। इसी आधार पर लैंड सीलिंग एक्ट आजादी के बाद पारित किया गया। उनका कहना था कि जमीन का अधिकार राज्य के पास होना चाहिए। यदि निजी भूमि के लिए मुआवजा देकर भी कृषि पर राज्य का अधिकार स्थापित करना पड़े तो ऐसा किया जाना चाहिए। उन्होंने भूमि प्रबंधन में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, भूमि परिसीमन कानूनों को लागू करना, वास्तविक किसानों को भूमिका अधिकार दिलाना आदि को आवश्यक बताया।

सामूहिक खेती

डॉ अंबेडकर का कहना था कि कम कृषि उत्पादन और किसानों की खराब हालत - विशेषकर भूमिहीन, सीमांत और छोटे किसान- का बड़ा कारण बिखरी हुई और छोटी जोतों का होना है। इसलिए उन्होने सामूहिक खेती करने और सहकारी समितियां बनाने की वकालत की।

ज्ञापन 'स्टेट एंड माइनॉरिटीज' में अंबेडकर कहते हैं, 'खेतों की चकबंदी और पट्टेदारी कानून किसी काम के नहीं हैं। ये कृषि क्षेत्र में समृद्धि नहीं ला पाएंगे। ये कानूनी व्यवस्थाएं देश के छह करोड़ भूमिहीन अछूतों के लिए किसी काम की नहीं हैं और उनकी समस्या का समाधान नही कर सकती। सिर्फ सामूहिक खेती द्वारा ही उनकी मदद की जा सकती है।' साथ ही वो भारत के आर्थिक विकास के लिए एक रणनीति भी बताते हैं, 'राज्य की ये जिम्मेदारी हो कि वो लोगों के आर्थिक जीवन का नियोजन करे जिसमें उत्पादकता अपने उच्चतम शिखर तक पहुंचे लेकिन निजी क्षेत्र के उद्यम के रास्ते बंद ना हों और संपत्ति का बराबर वितरण भी होता रहे।'

सामूहिक खेती में कई किसान अपनी छोटी-छोटी जोतों को साथ लाकर एक साथ खेती करते हैं। अंबेडकर ने सामूहिक खेती सामाजिक और आर्थिक लाभ भी बताए हैं। इससे नियोजित उत्पादन और खेती के लिए जरूरी सामान जैसे खाद, बीज, संयंत्र आदि की उपलब्धता होगी और उत्पादन बढ़ेगा। उपलब्ध भूमि का अधिकाधिक उपयोग हो सकेगा। आधुनिक तकनीकी और कृषि सुविधाएं मिल सकेंगी। सामाजिक समरसता बढ़ेगी और संघर्ष कम होंगे। सामूहिक खेती में उत्पादन के बाद उत्पाद का किसानों के बीच वितरण होगा और जो बचेगा उसे राज्य को उचित मूल्य पर बेच दिया जाएगा। राज्य जो उत्पाद खरीदेगा बाद में उसे जरूरतमंदों और गरीबों को कम दामों पर बांटेगा। अंबेडकर ने बिचौलियों पर लगाम लगाने को भी कहा जिससे किसी का शोषण ना हो।

औद्योगिक क्षेत्र

डॉ अंबेडकर का मानना था कि औद्योगिकीकरण भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने का एक प्रमुख कारक तत्व है। उद्योगों के विकास से भारी संख्या में रोजगार पैदा होंगे और भारी मात्रा में उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन होगा। कच्चे माल का अधिक से अधिक उपयोग हो सकेगा। देश आत्मनिर्भर बनेगा और विदेशी कंपनियों पर निर्भरता कम होगी और देश का आर्थिक विकास होगा। अंबेडकर के अनुसार, भारी और बड़े उद्योगों को स्थापित करने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से राज्य के पास ही होनी चाहिए क्योंकि इसमें बड़ा निवेश चाहिए होता है। राज्य द्वारा स्थापित संस्थाएं ही आधारभूत उद्योगों का संचालन करें। छोटे उद्योग निजी क्षेत्र के हाथ में रह सकते हैं। अंबेडकर ने ना सिर्फ औद्योगिकीकरण पर बल दिया बल्कि श्रमिकों को भी बहुत से अधिकार दिए।

डॉ अंबेडकर ग्रामीण दरिद्रता और बेरोजगारी को दूर करने का एक ही उपाय बताते हैं जो है - औद्योगिकीकरण। वे कहते हैं खेती जो अतिरिक्त मजदूर हैं वे अगर उद्योग में काम करेंगे तो खेती उतना ही बोझ कम होगा। ऐसा करने से लाभ होगा। जो मजदूर खेती छोड़कर अन्य उद्योगों में लग जाएंगे उन्हें उद्योग से कमाई होगी। इस कमाई का कुछ हिस्सा वे बचत करेंगे और उससे पूंजी का संचय होगा। यह पूंजी वे खेत के काम में लगा सकेंगे।

आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका

डॉ अंबेडकर सामाजिक दृष्टि से महिलाओं के उन्नयन के पक्षधर थे। उन्होंने भारत में महिलाओं की हालत खराब होने के ऐतिहासिक कारण बताए और इसे भारत के आर्थिक पराभव का भी एक कारण माना। उनका मानना था कि स्त्रियों की आर्तिक क्षेत्र में सहभागिता का विकास स्त्रियों को सामाजिक समानता दिए बिना नहीं हो सकता। डॉ अंबेडकर के अनुसार शिक्षा और आत्म विकास के द्वारा ही स्त्री की स्थिति बेहतर हो सकती है।

उपसंहार

डॉ अंबेडकर के बारे में डॉ एस वेंकटरमण कहते हैं, 'हम लोग डॉ अंबेडकर को एक विद्वान, भारत के संविधान निर्माता तथा गरीब शोषित जनता के उद्धारक के नाते जानते हैं। वास्तव में वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने भारतीय राजनीति व अर्थनीति के अनेक अंगों पर अपना प्रभाव डाला है। परंतु बहुत कम लोग उन्हें इस शताब्दी के प्रथमार्ध की आर्थिक गतिविधियों का अपनी कुशाग्र बुद्धि व तेजस्वी प्रतिभा से विश्लेषण करने वाले आर्थिक विशेषज्ञ व तत्वचिंतक के रूप में जानते हैं।'

डॉ. अंबेडकर की दृष्टि में वर्ण या जाति पर आधारित कोई भी अर्थव्यवस्था, आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की प्रतिरोधी है। उनकी मान्यता थी कि संपत्ति और उत्पादन के असमान वितरण के कारण ही भारतीय समाज में निर्धनता व्याप्त है।

डॉ अंबेडकर ने स्वतंत्र भारत के लिए एक वैकल्पिक आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की बात कही। भारतीय समाज में व्याप्त असमानता और शोषण को दूर करने के लिए उन्होंने अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में राज्य की भूमिका को सुनिश्चित किया हालांकि उन्होंने पूंजीवाद को सिरे से नहीं नकारा। राज्य के माध्यम से भूमि और अन्य संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण की बात उन्होंने कही। उनका मानना था कि इससे गरीबी कम होगी और एक समतामूलक समाज की स्थापना हो सकेगी।

वो पूरी तरीके से राज्य के नियत्रंण के पक्षधर नहीं थे और उन्होंने मूलभूत क्षेत्रों जैसे सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा को राज्य के अंतर्गत रखने की वकालत की और बाकी क्षेत्रों को निजी क्षेत्र के लिए खोल देने की बात कही। वो समाजवाद की वकालत तो करते थे लेकिन उसे संसदीय लोकतंत्र के दायरे में बांध कर रखते थे जिससे राज्य की भी जवाबदेही बनी रहे।

एक अर्थशास्त्री के रूप में डॉ अंबेडकर की समझ सिर्फ किताबों तक सीमित नहीं थी। वो अपने समय की समस्याओं को अपने आर्थिक चिंतन में साफ तौर पर उठाते हुए दिखाई देते हैं और कई मामलों में तो वे अपने से समय से बहुत आगे की सोच रहे थे।

संदर्भ -

नरेंद्र जाधव, डॉ अंबेडकर, आर्थिक विचार एवं दर्शन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

Gail Ombedt (2008) 'Phule-Remembering the Kingdom of Bali' in Seeking Begumpura, Navyana, Bangalore

BR Ambedkar (1947) Sate and Minorities in Vasant Moon (1979), Dr, Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches, Vol. 1, Education Department, Government of Maharastra, Mumbai

रमेश पतंगे, डॉ बाबासाहब अंबेडकर और राष्ट्र निर्माण, हिंदू प्रकाशन संस्था, मुंबई

डी आर जाटव, डॉ अंबेडकर का समाज दर्शन, आस्था प्रकाशन, नई दिल्ली

दत्तोपंत ठेंगड़ी, डॉ अंबेडकर और सामाजिक क्रांति की यात्रा, नई दिल्ली

Niranjan Mukhopadhyay, 'Ambedkar, rupee and our current troubles' https://www.livemint.com/Opinion/rMImvbuYNDk4RvWGfcMtQO/Ambedkar-rupee-and-our-current-troubles.html

Narendra Jadhav, Ambedkar, Awakening India's Social Conscience, Konark

BR Ambedkar, Annihilation of Caste, Arohi Publication

Badal Sarkar, Dr. B.R. Ambedkar's theory of State Socialism; International Research Journal of Social Sciences, http://www.isca.in/IJSS/Archive/v2/i8/6.ISCA-IRJSS-2013-113.pdf

सामुदायिक रेडियो की विधाओं का अंतर्वस्तु विश्लेषण (विशेष अध्ययन कुमाऊँ वाणी सामुदायिक रेडियो)

हर्षवर्धन पाण्डे

शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय

शोध सार प्रस्तुत शोध पत्र सामुदायिक रेडियो की विभिन्न विधाओं के अंतर्वस्तु विश्लेषण पर आधारित है। उत्तराखंड के नैनीताल जिले के मुक्तेश्वर स्थित सूपी गाँव में कुमाऊँ वाणी सामुदायिक रेडियो का प्रसारण बीते एक दशक से अधिक समय से किया जा रहा है। यहाँ के सभी कार्यक्रमों में ग्रामीण जनजीवन और लोक संस्कृति की झलक साफ दिखाई देती है। सामुदायिक केंद्र द्वारा शिक्षा, युवा, पर्यावरण, भक्ति, लोक संगीत, महिला, स्वास्थ्य, कृषि आदि विषयों पर विभिन्न कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा रहा है। इस अध्ययन में कुमाऊँ वाणी सामुदायिक रेडियो केंद्र द्वारा प्रति सप्ताह प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की समय अवधि और प्रस्तुति की विभिन्न विधाओं का अध्ययन किया गया है।

शब्द कुंजी सामुदायिक रेडियो, कार्यक्रम, विधाएं, अंतर्वस्तु विश्लेषण

प्रस्तावना

रेडियो जनसंचार का सशक्त और प्रभावशाली माध्यम है। रेडियो आज मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। इटली के वैज्ञानिक जी मार्कोनी ने बेतार का अविष्कार 1895 में विद्युत तरंगों से ही संचार की विधि अपनाई। इन्हें रेडियो तरंग कहा। रेडियो का अर्थ वास्तव में अद्वितीय तत्कालिकता का संचार है जो श्रवणीय तो है, पर दर्शनीय नहीं है। यह संचार आत्मीयता और क्षमतायुक्त सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का है। अपने प्रौद्योगिकी कौशल के कारण ही रेडियो सूचना को गतिमान करता है जो दूसरे माध्यमों से अधिक त्वरित है।

महात्मा गाँधी ने रेडियो को जहाँ अदभुत चमत्कार कहा वहीं लेनिन ने रेडियो को बिना कागज और बिना दूरी का समाचार पत्र कहा। रेडियो में पठित शब्द के स्थान पर श्रुत शब्द को महत्व दिया जाता है। संस्कृत में शब्द को ब्रह्म कहा जाता है। शब्द ध्वनि का ही एक साधक रूप है। अत: ध्वनि में ब्रह्माण्ड का विस्तार समाहित हो जाता है। इस शब्दमूलक ध्वनि के संप्रेषक रेडियो से वास्तव में वाणी का विकास हुआ है। इस शब्द और ध्वनि के लिए साक्षर होना आवश्यक नहीं, बल्कि उत्तम कोटि का श्रोता होना आवश्यक है।

सामाजिक जनसंचार शास्त्री डेनियल लर्नर तथा विल्बर श्राम ने रेडियो को जादुई गुणक के रूप में मान्यता दी है। तीसरी दुनिया के देशों में रेडियो विकास के गुणक यन्त्र के रूप में अपनी कई पारंपरिक विशेषताओं के कारण प्रभावशाली भूमिका निर्वाह कर सकता है। रेडियो न सिर्फ सर्वाधिक गतिशील व त्वरित माध्यम है बल्कि सरल और सस्ती तकनीक के साथ ख़साथ बिजलीविहीन क्षेत्रों में भी संदेशों का प्रसारण कर सकता है।

रेडियो ने अपने विकास से लेकर वर्तमान समय तक कई आयामों को छुआ और महसूस किया है। रेडियो प्रचार और प्रसार का सशक्त माध्यम बना हुआ है। मनोरंजन ज्ञान एवं सूचना का सबसे पुराना एवं पहला लोकप्रिय श्रव्य माध्यम रेडियो रहा है। रेडियो

ने न केवल सूचना जगत में अहम भूमिका निभाई है बल्कि ग्रामीण विकास, कृषि, स्वास्थ्य, पोषक आहार, शिक्षा तथा पंचायती राज जैसे मुद्दों के बारे में सूचनाएं प्रसारित कर विकास प्रक्रिया को आसान बनाया है। रेडियो चौनलों की बढ़ती मांग को देखते हुए मनोरंजन के साथ भरमार में सामुदायिक रेडियो स्टेशन पिछले एक दशक से स्थानीय संचार के रुप में एक बहुत सुदृढ़ बनकर उभरा है, जो विभिन्न समुदायों को अपने जीवन से सम्बन्धित मुद्दों के बारे में आवाज उठाने का कार्य करता है। रेडियो स्टेशन के जरिये समुदायों के लोग अपने समूहों की बात अपनी आवाज में रखते हैं।

सामुदायिक रेडियो का चलन आज पूरे भारत में जोरों पर है। वैकल्पिक माध्यमों की जरुरत और रेडियो की विशेषताओं ने कम्युनिटी रेडियो को जन्म दिया है। यह एक समुदाय विशेष में सुना जा सकने वाला रेडियो है। भारत सरकार इसे 5-10 किलोमीटर की परिधि में सुनाने का लाईसेन्स देती है। भारत में सामुदायिक रेडियो के चलन का अभियान 1990 के दशक से शुरू हो गया था। फरवरी 1995 में सुप्रीम कोर्ट ने ध्वनि तरंगे सार्वजनिक सम्पत्ति है। इस बात को मानते हुए सामुदायिक रेडियो स्टेशनों को मंजूरी दी थी। भारत में न्यायमूर्ति पी .वी सावंत और एस मोहन ने भारत सरकार बनाम बंगाल क्रिकेट एसोसियेशन के बीच चले एक केस में 9 फरवरी 1995 को अपना एक महत्वपूर्ण निर्णय देते हुए वायु तरंगों को सार्वजनिक संपत्ति घोषित किया था जिसके बाद प्रसारण में आकाशवाणी की ठसक नहीं रह पायी और निजी क्षेत्र के लिए रेडियो केन्द्रों की स्थापना को नए पंख लगे। चंदा कमेटी, बी. जी वर्गीज और पी. सी जोशी कमेटी की सिफारिशों और संविधान की धारा 19 ए के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सूचना के संवैधानिक अधिकार के तहत दशकों के प्रयास के बाद सरकार ने निजी व्यावसायिक संस्थानों के साथ गैर सरकारी संस्थानों को एफ.एम फ्रीक्वैंसी पर रेडियो स्टेशन खोलने के लिए अपनी अनुमति देनी पड़ी।

भारत में सामुदायिक रेडियो संकल्पना की शुरुवात हेतु पहला प्रयास बैंगलोर घोषणा पत्र में 1996 में हुआ जिसमें कानूनी वैधता प्रदान की गई। देश में स्वतंत्र सामुदायिक रेडियो केंद्र की स्थापना आन्ध्र के मेढ़क जिले के पस्तापुर में डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी ने यूनेस्को के सहयोग से की जिसके बाद भुज में 'कुंजल पाछे कच्छ जी' कोझिकोड में बैंगलोर की वायसेज और 2001 में 'नम्माध्वनि' की शुरुवात हुई।

यह सच है कि शुरूआती दौर में रेडियो समाज के लिए एक प्रेरणा बन कर उभरा था लेकिन इसका क्षेत्र काफी संकुचित था जिससे सिर्फ रेडियो स्टेशन पर केवल शिक्षा के प्रोग्राम चलाने की ही अनुमति मिल पाई थी। भारत का पहला सामुदायिक रेडियो स्टेशन अन्ना फरवरी 2004 को लांच हुआ जिसका संचालन एजुकेशन एंड मल्टीमीडिया रिसर्च सेंटर करता है और सारे कार्यक्रमों का निर्माण अन्ना विश्वविद्यालय के मीडिया विज्ञान के विद्यार्थियों द्वारा किया जाता है। गैर सरकारी संगठन और नागरिक समाज निकायों की लम्बी लड़ाई के बाद 16 फरवरी 2006 को सूचना और प्रसारण मंत्रालय एवं भारत सरकार ने सामुदायिक रेडियो स्टेशन के लिए दिशा निर्देश जारी किए जिसके अनुसार समुदाय आधारित संगठनों तथा नागरिक संस्थानों और स्वैच्छिक संगठनों, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् संस्थान, कृषि विज्ञान केन्द्रों, पंजीकृत सोसाइटियों, स्वायत्त निकायों, सोसायटी अधिनियम के तहत पंजीकृत सार्वजानिक ट्रस्टों को सामुदायिक रेडियो स्टेशन चलाने की अनुमति दी गई जिसके बाद सामुदायिक रेडियो ने गति पकड़ी और देश के विभिन्न हिस्सों में इसका संचालन होने लगा। यह तथ्य सिद्ध हो चुका है कि हमारे देश में हरित क्रांति की सफलता में रेडियो की भूमिका सराहनीय रही है। सामुदायिक रेडियो का जन्म ही इस अवधारणा के कारण हुआ है कि विकासशील सुमदायों की समाजिक और आर्थिक प्रगति में रेडियो आज की प्रासंगिकता है। इन अवधारणाओं की प्रतिपुष्टि शोध परियोजनाओं द्वारा ही संभव हो सकती है। संचार माध्यमों की सार्थकता तभी सिद् हो सकती है जब वे सामाजिक, आर्थिक विकास और राजनीतिक जागरुकता के क्षेत्र में अपना सकारात्मक सहयोग दें। इसी संदर्भ में भारत सरकार का सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय सामुदायिक रेडियो को अनुमति प्रदान करने में रुचि ले रहा है। सामुदायिक रेडियो एक लाभ प्रेरित व्यवसाय नहीं है बल्कि यह सच्चे अर्थों में जनसेवा प्रसारण है।

स्थानीय समस्या और जीवन को समृद् बनाने की दिशा में सामुदायिक रेडियो का अप्रतिम योगदान है। सामुदायिक रेडियो की पहचान सबसे कम लागत वाले प्रचार माध्यम के रुप में पहले ही की जा चुकी है जो दूरदराज के समुदायों ओर लोगों के उपेक्षित समूहों जैसे निरक्षरों, विकलांग व्यक्तियों, महिलाओं, युवाओं और निर्धनों तक पहुंच कायम करने के लिए विशेष रुप से उपयुक्त है। यह सार्वजनिक बहस के लिए एक मंच प्रदान करता है। भागीदारीपूर्ण संचार माध्यम होने के नाते सामुदायिक रेडियो समाज के उपेक्षित और सीमांत वर्गों की आवाज बुलंद कर सकता है। रेडियो द्वारा सामुदायिक जीवन को प्रगतिशील और समृद्ध बनाने का प्रयास

विकासशील देशों की नीतियों का एक महत्वपूर्ण भाग है। अतः सामुदायिक रेडियो की सार्थकता और उसकी प्रासंगिकता पर शोध करना और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। संसार के अनेक देशों में सामुदायिक रेडियो नए कलेवर के साथ उपस्थित हुआ है।

सामुदायिक रेडियो समुदाय विशेष की संस्कृति, सामुदायिक बोली, भाषा, सामुदायिक रहन ख़सहन को संरक्षित करने में सहायक साबित हुआ है। मनोरंजन के तमाम अत्याधुनिक साधन होने के बाद भी आज भी ग्रामीण इलाकों में सामुदायिक रेडियो की चमक कम नहीं हुई है। सामुदायिक रेडियो प्रसारण केन्द्रों ने देश की ग्रामीण जनता के जीवन स्तर में बदलाव लाने का काम किया है। सामुदायिक रेडियो केन्द्रों के माध्यम से विकास की नई राह खुलती है। सामुदायिक रेडियो दूरदराज के समुदायों और छोटे समूहों तक कम लागत में पहुँचने वाला संचार का सबसे आसान साधन है। वैकल्पिक माध्यमों की जरुरत और रेडियो की विशेषताओं ने सामुदायिक रेडियो को जन्म दिया है। यह एक समुदाय विशेष में सुना जा सकने वाला रेडियो है। विकास से वंचित, उपेक्षित लोगों को इन चीजों से मुक्ति देने का माध्यम बनाना, समुदाय में गुणात्मक परिवर्तन लाना, सृजनशीलता को बढ़ावा देना और लोककला व लोकहित को जिंदा रखने में इसकी भूमिका देखते ही बनती है। प्रत्येक देश के संस्कृति सम्बन्धी कानूनों में अन्तर होने के कारण देश और काल के साथ सामुदायिक रेडियो की परिभाषा बदल जाती है। स्थानीय स्तर पर बढ़ रहे सामुदायिक रेडियो केंद्र आज सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को एक नया आयाम प्रदान कर रहे हैं। अपने समुदाय की अलग पहचान स्थापित करने में यह कारगर साबित हुए हैं। इसमें समुदाय की आवश्यकतों के अनुरूप कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है।

सामान्यतः मीडिया के विभिन्न माध्यमों में एकतरफा संचार होता है। सामुदायिक रेडियो में जिस समुदाय द्वारा अथवा जिस समुदाय के लिए रेडियो संचालित किया जाता है उसकी संपूर्ण सहभागिता होती है। आयु, लिंग अथवा सामाजिक विकार समुदाय की सहभागिता में बाधक नहीं बनते। समुदाय विशेष अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र होता है। सामुदायिक रेडियो में समुदाय अपने सामुदायिक विषयों की प्रस्तुति हेतु स्वतंत्र होता है। यह ऐसा संचार मंच है, जहाँ सामुदायिक समस्याएँ, सामुदायिक तथ्य, सामुदायिक व्यवस्था, सामुदायिक विकास, इत्यादि पर विचार विमर्श होता है।

उत्तराखंड की बात करें तो यहाँ सामुदायिक रेडियो के माध्यम से ग्रामीण विकास की नई राह खुली है। यहाँ सामुदायिक रेडियो समुदाय विशेष की संस्कृति, बोली अथवा भाषा, सामुदायिक रहन-सहन को संरक्षित करने में सहायक सिद्ध हुआ है। साथ ही आपदा में भी यह कारगर साबित हुआ है। सामुदायिक रेडियो सिर्फ जनहित के और केन्द्र तथा राज्य सरकारों के प्रायोजित कार्यक्रमों का प्रसारण करने के लिए अधिकृत होते हैं। अन्य किसी प्रकार के प्रायोजित कार्यक्रम नहीं कर सकते हैं। स्थानीय घोषणा और विज्ञापन के संदर्भ में सरकारों के प्रायोजित कार्यक्रमों के अतिरिक्त स्थानीय समुदाय की घटनाओं स्थानीय कारोबार, स्थानीय महत्व की घोषणा और सेवाओं के साथ-साथ स्थानीय स्तर पर नौकरी की खबरों को सीमित तौर पर प्रसारित कर सकता है। ऐसी घोषणाओं और स्थानीय विज्ञापन की अवधि सरकार ने निश्चित कर दी है। यह है कि एक घंटे के प्रसारण में अधिकतम 5 मिनट के विज्ञापन प्रसारित करने की अनुमति सरकार ने प्रदान की है।

सामुदायिक रेडियो को प्राप्त धनराशि का उपयोग सामुदायिक रेडियो मे उपयोग और सहायता के साथ उपकरणों की देखरेख में उपयोग में आयेगा। उसके बाद शेष धनराशि का उपयोग सरकार से पूर्व अनुमति प्राप्त करने के बाद सामुदायिक रेडियो संचालक एन.जी.ओ या शैक्षणिक संस्थानों के उपयोग में लाया जा सकता है। परंतु धन का उपयोग समुदाय की सेवा में लगाया जाना चाहिए।

साहित्य पुनरावलोकन

किसी भी शोध की रूपरेखा बिना साहित्य पुनरावलोकन के संभव नहीं है। शोध के शुरू होने से पहले और शोध कार्य के दौरान शुरू होने वाला अध्ययन ही साहित्य पुनरावलोकन कहलाता है। बेस्ट जान डब्ल्यू के अनुसार हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं में प्राप्त ज्ञान हमें शोध अध्ययन करने व् ज्ञान प्राप्त करने का आधार प्रदान करता है। इस शोध पत्र में साहित्य पुनरावलोकन में हमने विभिन्न पुस्तकों, पत्र ख़पत्रिकाओं, जर्नल्स, शोध पत्रों का अध्ययन किया।

कोलिन फ्रेजर और रेस्ट्रेपो ख़एस्ट्राडा (2001) के अनुसार आर्थिक लाभ के बिना सेवा प्रदान करना सामुदायिक रेडियो को प्रसारण के अन्य दो माध्यमों लोक्प्रसरन और व्यवसायिक प्रसारण सेवा से अलग करता है।

बी के सिंह, राकेश कुमार, वी पी यादव, दान सिंह, एच एल सिंह (2010) ने नम्मा ध्वनि सामुदायिक रेडियो के सहयोग से कोझिकोड में किये गए शोध के माध्यम से इस निष्कर्ष में पहुंचें हैं। नम्मा ध्वनि के कार्यक्रमों से समुदाय में भागीदारी और जनजागरूकता में काफी वृद्धि हुई है। प्रसारित कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

लेविस (1989) के अनुसार सामुदायिक रेडियो न तो व्यावसायिक है और न ही लोक प्रसारण सेवा के आदेशात्मक और पारंपरिक रवैये की तरह कार्य करता है। जहाँ व्यवसायिक प्रसारण सेवा और लोक प्रसारक सेवा का मुख्य ध्येय श्रोताओं को सिर्फ एक श्रोता मानकर व्यवहार करना और अधिक से अधिक विज्ञापन प्राप्त करना या जनता को ज्यादा से ज्यादा सूचित करना है वहीँ सामुदायिक रेडियो अपने श्रोताओं को भागीदार मानते हैं।

कोलिन फ्रेजर (2001) के अनुसार सामुदायिक रेडियो स्थानीय बोली ख्रभाषा में स्थानीय मुद्दों को सामने लाना इसका प्रमुख कार्य है। इसका सम्बन्ध स्थानीय समस्याओं मुद्दों से है। इसका अंतिम ध्येय सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास करना है।

एरिल प्राइस और जे ताशी (2001) के अनुसार कम्युनिटी रेडियो केंद्र समुदाय की आवश्यकताओं से सम्बन्धित होना चाहिए, प्रारूप और भाषा में विविधता होने के साथ ही समुदाय की संस्कृति प्रतिबिम्बित होनी चाहिए।

यूनेस्को के अनुसार सामुदायिक रेडियो उनकी आवाज उठाता है जो स्वयं कुछ नहीं कह पाते। ये हाशिये पर पड़े लोगों का प्रवक्ता बनकर उभरा है। यह ऐसे लोगों के समूहों के लिए अधिक उपयोगी है जो एक समुदाय के रूप में रहते हैं। सामुदायिक रेडियो समुदाय के आपसी बातचीत करने और समान लक्ष्यों के लिए एक साथ मिलकर काम करने का एक सशक्त माध्यम है।

देवेश किशोर ने प्रज्ञान जर्नल में जून 2012, वाल्यूम 10 में प्रकाशित अपने शोध पत्र में दिल्ली एनसीआर के चार सामुदायिक रेडियो केन्द्रों डीयू, आईआईएमसी, जिम्स, जामिया को शामिल किया और पाया कि इन सभी सामुदायिक रेडियो स्टेशनों की प्रमुख वरीयता मनोरंजन, स्वास्थ्य, आर्थिक विकास और जनजागरूकता है जिसके प्रसार में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

आर.एन. रैना ने कम्युनिटी डेवलपमेंट एंड पीपल्स पार्टिसिपेशन पेज 20 में लिखा है सामुदायिक विकास एक ऐसा समन्वित कार्यक्रम है जो ग्रामीण जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्धित है जहाँ धर्म, जाति, सामाजिक, आर्थिक असमानताओं को बिना महत्व दिए यह पूरे समुदाय पर लागू होता है।

लक्ष्मेन्द्र चोपड़ा ने मीडिया और समाज पुस्तक, आधार प्रकाशन (2006) में लिखा है तीसरी दुनिया के देशों में मीडिया को जन सहभागी प्रविधियों को प्रोत्साहित कर स्थानीय भाषाओँ, बोलियों, संस्कृति, देशज ज्ञान के द्वारा निर्धनता, बेरोजगारी, निरक्षरता, लैंगिक पक्षपात, कुपोषण, बढ़ती जनसँख्या जैसी समस्याओं के हल खोजने चाहिए। इस क्षेत्र में रेडियो ने बहुत अच्छा काम भी किया है। रेडियो केन्द्रों द्वारा सहभागी प्रसारण तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है।

1955 में कैम्ब्रिज के टीम रिपोर्ट आन कम्युनिटी डेवलपमेंट प्रोग्राम इन इंडिया,पाक, फिलिपीन्स, इंटरनेशनल कारपोरेशन एडमिनिस्ट्रेशन के पेज 1 में सामुदायिक विकास को एक ऐसा आन्दोलन बताया गया है जिसका उद्देश्य सारे समुदाय के लिए एक उच्चतर जीवन स्तर की व्यवस्था करना है। प्रस्तुत कार्यक्रम में प्रेरणा शक्ति समुदाय की ओर से आनी चाहिए और जनता का सहयोग हर पल रहना चाहिए।

शोध के उद्देश्य

1. कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो के कार्यक्रमों का अध्ययन करना
2. कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो की प्रस्तुति की विधाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करना

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में अंतर्वस्तु विश्लेषण का प्रयास किया गया है। सामुदायिक रेडियो की विषय वस्तु का अध्ययन करने के लिए सामुदायिक रेडियो कुमाऊँ वाणी द्वारा प्रसारित कार्यक्रमों की सूची का प्रयोग किया गया है। इस शोध अध्ययन में कुमाऊँ वाणी द्वारा प्रति सप्ताह प्रसारित कार्यक्रमों की समयावधि और प्रस्तुति की विभिन्न विधाओं का अध्ययन किया गया है।

विश्लेषण और व्याख्या

कुमाऊँ वाणी सामुदायिक रेडियो द्वारा प्रति सप्ताह प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की विषयवस्तु

कार्यक्रम	समय (मिनट)	प्रतिशत
शिक्षा	3 घंटा 30 मिनट	10%
भक्ति	7 घंटा	20%
युवा	3 घंटा 30 मिनट	10%
पर्यावरण	3 घंटा 30 मिनट	10%
लोक संगीत	3 घंटा 30 मिनट	10%
कृषि	3 घंटा 30 मिनट	10%
मनोरंजन	3 घंटा 30 मिनट	10%
महिला	3 घंटा 30 मिनट	10%
स्वास्थ्य	3 घंटा 30 मिनट	10%
योग	**2100 मिनट**	**100%**

प्राप्त आंकड़ों और तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट दिख रहा है सामुदायिक रेडियो कुमाऊँ वाणी में प्रति सप्ताह कुल 2100 मिनट कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा रहा है।

शिक्षा पर 10 प्रतिशत, भक्ति पर 20 प्रतिशत, युवा पर 10 प्रतिशत, पर्यावरण पर 10 प्रतिशत, लोक संगीत पर 10 प्रतिशत, कृषि पर 10 प्रतिशत, मनोरंजन पर 10 प्रतिशत, महिला पर 10 प्रतिशत, स्वास्थ्य पर भी 10 प्रतिशत कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा रहा है। इस तरह से कह सकते हैं यह सामुदायिक रेडियो समुदाय से जुड़े सभी तरह के विषयों को छू रहा है।

सप्ताह में सामुदायिक रेडियो कुमाऊँवाणी में प्रस्तुति की विभिन्न विधाएँ

कार्यक्रम	समय (मिनट)	प्रतिशत
प्रस्तुति की विधाएँ	संख्या	प्रतिशत
लाइव शो	10	13.69%
सामुदायिक सहभागिता रिपोर्टिंग	10	13.69%
नाटक	4	5.47%
वार्ता	8	10.95%
फीचर	8	10.95%
फोन इन कार्यक्रम	10	13.69%
लोक संगीत	8	10.95%
डॉक्यूमेंट्री	5	6.84%
इंटरव्यू	8	10.95%
नरेशन	2	2.73%
कुल योग	**73**	**100%**

प्राप्त आंकड़ों और तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट दिख रहा है, सामुदायिक रेडियो कुमाऊँ वाणी में प्रति सप्ताह लाइव शो 13. 69 प्रतिशत, सामुदायिक सहभागिता और रिपोर्टिंग 13.69 प्रतिशत, नाटक 5.47 प्रतिशत, वार्ता 10.9 प्रतिशत, फीचर 10.9 प्रतिशत,

फोन इन 13.69 प्रतिशत, लोक संगीत 10.9 प्रतिशत, डॉक्यूमेंट्री 6.84 प्रतिशत, इंटरव्यू 10.95 प्रतिशत, नरेशन 2.73 प्रतिशत कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा रहा है।

निष्कर्ष

- सामुदायिक रेडियो कुमाऊँ वाणी में भक्ति संगीत आधारित कार्यक्रमों की संख्या और प्रतिशत सर्वाधिक है।
- सामुदायिक रेडियो कुमाऊँ वाणी में शिक्षा, युवा, पर्यावरण, लोक संगीत के साथ ही कृषि, स्वास्थ्य और महिलाओं से जुड़े कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा रहा है।
- सामुदायिक रेडियो कुमाऊँ वाणी में प्रति सप्ताह लाइव शो, सजीव प्रसारण, फोन इन कार्यक्रम और सामुदायिक सहभागिता, रिपोर्टिंग का प्रयोग सर्वाधिक किया जा रहा है।
- वार्ता,फीचर, लोकसंगीत, इंटरव्यू सामुदायिक रेडियो कुमाऊँ वाणी की दूसरी सर्वाधिक लोकप्रिय विधाएं हैं जिनका प्रयोग किया जा रहा है।
- नाटक, डॉक्यूमेंट्री जैसी विधाओं से युक्त कार्यक्रमों का भी कुमाऊँ वाणी सामुदायिक रेडियो केंद्र में प्रयोग हो रहा है। नरेशन का भी प्रयोग यहाँ के कार्यक्रमों में किया जा रहा है।
- कुमांऊ भाषा के संरक्षण और संवर्धन में कुमाऊँवाणी सामुदायिक रेडियो केंद्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। 'अपुण रेडियो आपुण बात' को सही मायनों में सार्थक करता हुआ यह सामुदायिक रेडियो लोकसंगीत को बढ़ावा देने के साथ ही पहाड़ की संस्कृति को संरक्षित रख रहा है।
- कुमाऊँ वाणी किसानों से जुड़े विषयों को प्रखरता के साथ प्रस्तुत कर रहा है। किसानों को पहाड़ में इस सामुदायिक केंद्र के माध्यम से कहती ख्किसानी से जुड़ी तमाम जानकारियाँ मिल रही हैं।

सन्दर्भ

- कुलश्रेष्ठ, प्रो विजय, जनसंचार और रेडियो, रेडियो पत्रकारिता, साहिल प्रकाशन, जयपुर, 2017, पेज 15- 16
- मैक्लीश, राबर्ट, रेडियो प्रोडक्शन टेक्नीक्स, फोकल प्रेस, फोर्थ एडिशन
- यूनेस्को, भारत में सामुदायिक रेडियो आन्दोलन, 2003
- ग्रामवाणी, सामुदायिक रेडियो : सामुदायिक रेडियो सामुदायिक रेडियो स्टेशन की स्थापना, वायस आफ बिहार, 2007
- श्रीमाली, इन्द्र प्रकाश, सामुदायिक रेडियो एक परिचय, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 2013
- आहूजा, राम, सामाजिक अनुसंधान, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली,2008
- दयाल,डॉ मनोज, मीडिया शोध, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2010
- सिंह, देवव्रत, भारतीय इलेक्ट्रानिक मीडिया, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2010
- सिंह, धर्मेन्द्र, लाल डॉ मनोहर, सूचा समाज और संचार, सामुदायिक विकास एवं सामुदायिक रेडियो, नेहा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2010, पेज 54-68
- नंदा, वर्तिका, सामुदायिक रेडियो के बीच विकास की गूँज, कम्युनिकेशन टुडे, वाल्यूम 18, जनवरी ख्रजून 2005, पेज 61-65
- अहमद, नवाज, सैयद, ग्रामीण विकास में सामुदायिक मीडिया की भूमिका, संचार श्री शोध पत्रिका, अक्तूबर ख्रदिसंबर 2007, पेज 34
- चोपड़ा, लक्ष्मेन्द्र, मीडिया और समाज, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2006
  शर्मा, राधेश्याम, जनसंचार, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला, 2012
- राजगढ़िया, विष्णु, जनसंचार सिद्दांत और अनुप्रयोग,राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- Kothari, CK , Research Methodology , NewAge International (P) Limited Publishers , 2004
- Kishore Devesh ,AnAnalytical Programme Content study of Community Radio functioning in National Capital Territory of Delhi , Pragyan Journal of Mass Communication , VOL 10 , ISSUE 1 JUNE , 2012
- Kumar J, Keval, Mass Communication in India, Jaico Publication House, Mumbai, 2011
- Melkote, Communication For Development in the world, Sage Publication,New Delhi

- K Malik ,Kanchan ,Pavrala Vinod , The Struggle for community radio in India ,Sage Publication Delhi , 2007
- Mass Media Research, Wimmer .D, Dominick. R (2005). ThomsonAsia Pte Ltd., Singapore
- Dube,S.C.(1976).Development changeAnd communication in India, W. SchramAnd D. Lerner (eds), CommunicationAnd Change : The Last Ten YearsAnd the Next. University Press of Haawii, Honolulu
- Wimmer .D, Dominick.R ,Mass Media Research ,ThomsonAsia Pte Ltd, Singapore, 2005
- Dunaway, Ph.D., David (2002). Jankowski, Nicholas W.; Prehn, Ole.eds, Community RadioAt the beginning of the 21st Century: Commercialism Community Power(pdf),Community Media in the InformationAge: PerspectivesAnd Prospects (Cresskill, NJ: Hampton Press)
  • Keninhowley,Understanding Community Media , Sage Publications, 2010
  • Nagendra, History of RadioAnd Programme Production, Kanishka Publication, New Delhi
  • Boyd,Andrew, Broadcasting Journalism: Techniques of RadioAnd Television News, 5th Edition, Focal Press, New Delhi, 2001
- सिंह, डॉ महावीर, कठेरिया, धरवेश, रेडियो माध्यम और तकनीकी, शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
- कुमार, डॉ प्रशांत, भारत में रेडियो प्रसारण, ए आर पब्लिशिंग कंपनी, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2015
- सिंह, डॉ महावीर, कठेरिया, धरवेश, रेडियो कार्यक्रम निर्माण और प्रस्तुति, नेहा प्रकाशन, दिल्ली, 2017
- उपाध्याय, ए. के, पत्रकारिता और विकास संचार, विजय प्रकाशन, वाराणसी, 2001
- सिंह, ए. एन, सामुदायिक विकास, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2000
- नंदा वर्तिका, रेडियो जर्नलिज्म इन इंडिया, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2017
- हरिमोहन, डॉ, रेडियो और दूरदर्शन पत्रकारिता, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
- सक्सेना, अम्बरीश, रेडियो इन न्यू अवतार, कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
- www.mib.nic.in
- www.allindiaradio.gov.in
- www.communityradioindia.org
- www.rrtd.nic.in
- www.edaa.in
- http://www.communityradioindia.org
- मीना, एम.एस, सिंह, एस के, सामुदायिक रेडियो :वर्तमान स्थिति एवं प्रासंगिकता, कृषि ज्ञान गंगा, जनवरी ख्रजून 2017 और जून ख्र दिसंबर 2017
- खान, फिरदौस, एफ. एम के जरिए रेडियो की वापसी, मीडिया विमर्श, जुलाई ख्रसितम्बर 2013
- https://www.gaonconnection.com/desh/climate-change-low-market-rates-covid-lockdown-impact-force-farmers-in-maharashtra-to-destroy-grapes-crop-50523?infinitescroll=1
- ढोंडियाल, राकेश,, https://www.thefeaturetimes.com/news-feature/how-did-the-community-radio-start/
- सिंह, धर्मेन्द्र, लाल डॉ मनोहर, सूचना समाज और संचार, सामुदायिक विकास एवं सामुदायिक रेडियो, नेहा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2010, पेज 54-68
- http://aajtak.intoday.in/story/changing-the-local-world-through-community-radios-1-824884.html
- http://mukulmedia.blogspot.in/2013_02_01_archive.html#.VqZoLPl97IX
- http://www.javnost-thepublic.org/media/datoteke/1998-2-dunaway.pdf
- मैक्लीश, राबर्ट, रेडियो प्रोडक्शन टेक्नीक्स, फोकल प्रेस, फोर्थ एडिशन
- जे सी वाकर, रेवेल्स आफ द एयर परसेंट एन अल्टरनेटिव हिस्ट्री आफ रेडियो, जिरार्ड ब्रूस, अ पैशन फार रेडियो :रेडियो वेव्स एंड कम्युनिटी, नई दिल्ली,2002

महाकवि भवभूति के साहित्य में दार्शनिक चिन्तन की पृष्ठभूमि

डॉ० शालिनी अग्रवाल

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर, उ०प्र०

साहित्य संस्कृति का साक्षात् वाहक होता है। साहित्य में देशकाल, समाज, व्यक्ति का सम्पूर्ण अस्तित्व स्पष्ट प्रतिबिम्बित होता है। किसी भी व्यक्ति का विचार एवं चिन्तन उसके समकालीन तथा पूर्वकालीन चिन्तन परिधि से अत्यन्त प्रभावित होता है। व्यक्ति के तत्कालीन युग की अपेक्षा से ही परिस्थितियों के अनुसार उसका मन, विचार, बुद्धि सभी प्रभावित हो जाता है। इसलिए किसी व्यक्ति की सैद्धान्तिक धारणा का मूल्यांकन करते समय उसके जीवन को प्रभावित करने वाली पृष्ठभूमि का विवेचन करना आवश्यक हो जाता है, पृष्ठभूमि के धरातल पर उसका समूचा चिन्तन-प्रासाद खड़ा होता है। महाकवि भवभूति यूँ तो रससिद्ध कवीश्वर हैं। उनकी कृतियाँ साहित्य के रसात्मक स्वरूप का अवगाहन कराती हैं किन्तु उन कृतियों में अनुस्यूत उनका चिन्तन उनके वैचारिक सिद्धान्तों को मूर्त रूप देने में पर्याप्त समर्थ है।

भारतीय दर्शन आर्य संस्कृति का प्राण तत्त्व है। अत: 'दर्शन' का मूल उत्स 'वेदों' में निहित है। 'वेद' भारतीय मनीषा का अनन्त स्रोत है। 'वेदों' में प्रकाशित दर्शन अनादि एवं शाश्वत तत्त्व है। वेदों के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, धर्मशास्त्रों, स्मृतियों एवं पुराणों में उपबृंहत दर्शन मणिमाला में सूत्र के समान सतत अनुवर्तित होता रहा है। साहित्य में 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' की अभिव्यक्ति के माध्यम से कान्तासम्मित उपदेश देते हुए साहित्यकार लोकमंगलकारक तथ्यों को ही जन समाज के सामने रखता है। महाकवि भवभूति के साहित्य में भी भारतीय दर्शन के तत्त्व इस तरह बिखरे पड़े हैं जो रस-प्रवाह को अविच्छिन्न रखते हुए विचार चिन्तन का स्पष्ट प्रकाशन करते हैं। महाकवि भवभूति का दार्शनिक चिन्तन प्रतिपादित करते समय यह जानना आवश्यक हो जाता है कि उनके दार्शनिक चिन्तन को प्रौढ़ि प्रदान करने में किन-किन दार्शनिक सिद्धान्तों का स्पष्ट साहाय्य रहा है। महाकवि भवभूति भारतीय दर्शन के किस सम्प्रदाय विशेष से प्रभावित हुए? उनके दार्शनिक सिद्धान्त का विकास किस दर्शन विशेष की तत्त्वमीमांसा को आधार बनाकर प्रस्फुटित हुआ? इस दृष्टि से विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय दर्शन निरन्तर विकास की प्रक्रिया है। ऐसा नहीं है कि किसी देशकाल में भारतीय दर्शन की विभिन्न विचारधारायें अस्तित्व में नहीं थीं, बल्कि यह कहना उचित होगा कि दर्शन की विभिन्न विचारधारायें अपने पूर्वकाल में अस्तित्व में थी परन्तु उत्तरकाल में ये विचारधारायें पूर्णरूप से परिपक्व होकर वैचारिक वर्गीकरण के साथ प्रकाश में आईं।

भारत में वैदिक साहित्य से प्राचीन अन्य कोई प्राचीन साहित्य उपलब्ध नहीं है। परवर्ती वैदिक वाड्.मय के कुछ सूक्तों में जो सम्भवत: ई0 पू0 1000 वर्ष के आसपास लिखे गए होंगे, दर्शनशास्त्र के कई ब्रह्माण्ड विषय रोचक प्रश्न, काव्यात्मकता और कल्पना से सम्पुटित प्राप्त होते हैं।[1] वैदिक वाड्.मय को चार भागों में बाँटा गया है- संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। यह समस्त साहित्य गद्य एवं पद्य रूप है। ब्राह्मणों ने अपने गुरुओं के मुख से ज्ञान प्राप्तकर इसे हृदयड्ग.म किया और अपने शिष्यों को प्रदान किया। मौखिक परम्परा से प्राप्त इस साहित्य को श्रुति नाम दिया गया, जिसका अर्थ है सुना हुआ वाड्.मय।[2] वेद का कोई रचयिता नहीं है इस कारण यह अपौरुषेय है। इसमें लौकिक- अलौकिक सभी विषयों का ज्ञान भरा हुआ है। डॉ0 राधाकृष्णन् के अनुसार ''वेद मनुष्य के धार्मिक और दार्शनिक विचारों का मानव भाषा में प्रथम परिचय प्रस्तुत करता है। प्राचीनतम् इतिहास, सामाजिक नियम, सदाचार, दर्शन, कला, धर्म आदि ज्ञान का आधार वेद है।''[3]

वैदिक मंत्रों के संग्रह को संहिता कहते हैं। संहिताएँ चार है- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद। ऋग्वेद ज्ञानकांड, सामवेद उपासना कांड, यजुर्वेद कर्मकांड तथा अथर्ववेद विज्ञानकांड से सम्बन्धित है। चारों ही वेद यज्ञ से सम्बन्धित हैं। यज्ञ हेतु होता, उद्गाता, अध्वर्यु तथा ब्रह्मा इन चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है। संहिताओं के मन्त्र प्रायः पद्य में वर्णित हैं जिनसे देवताओं की स्तुति की जाती है।[4]

ब्राह्मण ग्रन्थों का सृजन संहिताओं के पश्चात् हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में लिखे गये हैं। इन ग्रन्थों में वैदिक ग्रन्थों की सूत्रीय भाषा को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। ब्राह्मण काल ईसा से 500 वर्ष पूर्व का निश्चित किया गया है।[5]

ब्राह्मण ग्रन्थ के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थ प्रकाश में आये। आरण्यक ग्रन्थ का अर्थ है वन में लिखे हुए शास्त्र। इस ग्रन्थ में वेद (संहिता) और ब्राह्मण ग्रन्थों की व्याख्या की गई है। इसमें वृहद् कर्मकाण्ड, यज्ञ, मन्त्र, तन्त्र और योगादि पर प्रारम्भिक चिन्तन शुरू हुआ। इन ग्रन्थों में विशिष्ट प्रतीकों अथवा संकेतों पर ध्यान, मनन को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा गया, धीरे-धीरे योग, यज्ञ के स्थान पर अधिक उच्च स्तर का समझा जाने लगा।[6]

इसी समय बहुदेववाद, एकेश्वरवाद आदि विचारधाराओं का जन्म हुआ। तत्पश्चात् बहुदेववाद तथा एकेश्वरवाद के विचार के साथ ईश्वर की सत्ता पर गहन चिन्तन आरम्भ हुआ। जो कालान्तर में शृंखलाबद्ध, वर्गीकृत तथा परिपक्व होकर उपनिषदों में अभिव्यक्त हुआ जिसने हमारे भारतीय वाड्.मय को श्रीमद्भगवतगीतोपनिषद् जैसा अमर साहित्य प्रदान किया। यह ग्रन्थ आद्योपान्त सहिष्णुता की भावना से अनुप्राणित है, जो हिन्दू विचारधारा का एक प्रमुख लक्षण है।[7]

उपनिषद् शब्द 'सद्' धातु से बना है, जिसमें 'नि' प्रत्यय लगा हुआ है। ब्रह्मज्ञान के रहस्य को प्रगट करना अनुचित है, उपनिषद् ऐसा आदेश देता है। उसके अनुसार यह ज्ञान ऐसे पात्र को देना चाहिए जिसमें यम, नियम और संयम द्वारा अपने आपको योग्य पात्र के रूप में सिद्ध किया हो। प्रारम्भिक उपनिषदें ईसा से 500 वर्ष पूर्व लिखी गई थीं, नवीन उपनिषदें भी मुस्लिमकाल के प्रारम्भ होने के पश्चात् भी उसी प्रकार लिखी जाती रहीं।[8] उपनिषदों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, परम्परानुसार ये ब्राह्मण ग्रन्थों के भाग हैं। इनमें मुख्य बात ये है कि इनकी प्रवृत्ति कर्मकाण्ड से भिन्न और उसकी विरोधी है और विश्व के बारे में ये जो सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं वह ब्राह्मणों की यज्ञ प्रधान शिक्षा में निहित सिद्धान्त से बिलकुल अलग है। सभी प्राचीन उपनिषदों में यह विरोध एक या दूसरे रूप में प्रकट हुआ है और कुछ में तो यह विरोध बिलकुल खुले रूप में दिखाई देता है।[9] सर्वाधिक प्रमुख तथा प्रारम्भिक उपनिषद् की टीका 'शंकराचार्य' द्वारा की गई, उदाहरणार्थ बृहदारण्यक, छान्दोग्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक एवं माण्डूक्य। इनमें से कुछ उपनिषदें आत्मा के एकतत्त्ववाद के ऊपर विशेष बल देती है, कुछ योग, तप, शैव एवं वैष्णव दर्शन अथवा शरीर विज्ञान पर विशेष प्रकाश डालती हैं। जिस कारण से इन उपनिषदों को योगोपनिषद्, शैवोपनिषद्, विष्णूपनिषद् तथा शारीर उपनिषद् नाम दिए गए हैं। इन सभी उपनिषदों की संख्या मिलाकर 108 के लगभग है।[10]

भारत में मुख्य दार्शनिक प्रणालियाँ संभवतः प्रारम्भिक उपनिषदों के थोड़े समय पश्चात् ही उद्भूत हुई। भारतीय दर्शन की प्रणालियों को नास्तिक तथा आस्तिक दर्शन इन दो भागों में विभाजित किया गया है। चार्वाक, जैन तथा बौद्ध नास्तिक दर्शन की श्रेणी में तथा न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा एवं वेदान्त आस्तिक दर्शन की श्रेणी में आते हैं।

चार्वाक दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता है। यह दर्शन प्रत्यक्षीकरण को ज्ञान का एकमात्र साधन स्वीकारता है। ईश्वर का ज्ञान प्रत्यक्षीकरण से नहीं हो सकता है, इसलिए इसका अस्तित्व नहीं है। यह दर्शन संसार की सृष्टि के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं समझता है। इसके अनुसार संसार जड़-तत्त्वों का आकस्मिक संयोग है। प्राचीन भारतीय साहित्य में 'जड़वाद' के लिए प्रायः 'चार्वाक' शब्द का व्यवहार किया जाता था। 'जड़वाद' का उल्लेख वेदों में, बौद्ध ग्रन्थों में, पुराणों तथा दार्शनिक ग्रन्थों में भी पाया जाता है। जड़वाद पर कोई स्वतंत्र ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है। अन्य दर्शनों की तरह इसके समर्थकों का न तो कोई सुसंगठित सम्प्रदाय ही मिलता है और न ही कोई ग्रन्थ ही। तथापि प्रत्येक भारतीय दर्शन में चार्वाक-मत अर्थात् जड़वाद का खण्डन किया गया है। मुख्यतः इसी से चार्वाक-मत का परिचय मिलता है।[11]

बौद्ध-दर्शन में भी चार्वाक की भाँति ईश्वर का अस्तित्व नहीं माना गया है। उसके अनुसार प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम से ही संसार संचालित होता है। बौद्ध धर्म के पाली ग्रन्थों की तीन प्रकार के संग्रह- सुत्त (सिद्धान्त सम्बन्धी सूत्र), विनय (भिक्षुओं की चर्या एवं अनुशासन सम्बन्धी लेख), अभिधम्म (सूत्रों में वर्णित साधारण विषयों पर विशद एवं विद्वत्तापूर्ण धार्मिक व्याख्या) मिलते हैं। महात्मा बुद्ध द्वारा अपने धर्म का प्रचार मौखिक रूप से किया गया है। बुद्ध के शिष्यों ने भी अनेक काल तक उनके उपदेशों का मौखिक प्रचार किया। बुद्ध के उपदेशों का जो ज्ञान हमें आज कल प्राप्त है वह त्रिपिटकों से ही हुआ है।

जैन-दर्शन भी अनीश्वरवादी है। जैन दर्शन ईश्वर को संसार का स्रष्टा नहीं मानता है, उसके अनुसार यह भ्रांतिमूलक है। जैन दर्शन में तीर्थंकरों को ईश्वर के स्थान पर माना गया है। जैनों के अनुसार जैनमत के प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकर थे। 'ऋषभदेव' प्रथम तीर्थंकर माने जाते हैं।[12] वर्धमान या महावीर इसके चौबीसवें अथवा अंतिम तीर्थंकर थे। इनका जन्म ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में हुआ था। इनसे पहले तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे। इनका समय ईसा से लगभग नौ सौ वर्ष पूर्व माना जाता है। शेष बाईस तीर्थंकर प्रागैतिहासिक युग के हैं। तीर्थंकरों को 'जिन' नाम भी दिया गया है जिसका अर्थ है विजेता या जीतने वाला। इन्होंने राग-द्वेष को जीतकर निर्वाण प्राप्त किया है। प्राचीन जैन साहित्य प्राकृत भाषा में है। जैनों ने अपने मत संरक्षण के लिए संस्कृत भाषा को उस समय अपनाया जब अन्य दर्शनों ने जैनमत की आलोचना की। प्राचीनतम् जैन धर्म ग्रन्थों में चतुर्दशपूर्व और एकादश अंग गिनाए हैं। पूर्व ग्रन्थ अभी लुप्त हो गए हैं। तत्पश्चात् क्रम से उपांग, प्रकीर्ण, सूत्र इत्यादि नाना श्रेणी के ग्रन्थ लिखे गए हैं। संस्कृत में उमास्वामी का तत्त्वार्थाधिगम सूत्र, सिद्ध सेन दिवाकर का न्यायावतार, नेमिचंद का द्रव्यसंग्रह, मल्लिसेन का स्याद्वादमंजरी, प्रभाचंद का प्रमेय कमलमार्तड आदि प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ हैं।[13]

सांख्य के प्रणेता कपिलमुनि हैं। संभवतः इस विषय पर लिखे आदि ग्रन्थ विलुप्त हो गए हैं। महर्षि कपिल की शिष्य परम्परा में आसुरी और पंचशिखाचार्य के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने सांख्य-दर्शन पर अत्यन्त सरल ग्रन्थ लिखे थे, किन्तु काल के गर्भ में वे विलीन हो गए। उनके बाद सांख्य दर्शन का सबसे प्राचीन व प्रमाणिक ग्रन्थ 'ईश्वर कृष्ण' की सांख्य-कारिका है। इसके अतिरिक्त गौड़पाद का सांख्यकारिका भाष्य, वाचस्पति की तर्क कौमुदी, विज्ञान भिक्षु का सांख्य प्रवचन-भाष्य और सांख्यसार भी सांख्य दर्शन के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। सांख्य-कारिका जो कि ईश्वर कृष्ण द्वारा रचित है उसका समय 200 ई0 है।[14]

योग दर्शन महर्षि पतंजलि द्वारा निर्मित है। मान्यता यह है कि इस दर्शन के आदि सूत्रों को पातंजल सूत्र या योगसूत्र के नाम से पुकारा जाता है। योगसूत्र पर व्यासकृत भाष्य जो कि 'व्यास भाष्य' अथवा 'योगभाष्य' कहलाता है। व्यास के भाष्य पर वाचस्पति मिश्र की प्रामाणिक टीका 'तत्त्ववैशारदी' है। भोजराज की वृत्ति और योगमणि प्रभा योग-विषयक सुबोध और प्रचलित पुस्तकें हैं। योगदर्शन के उपयोगी ग्रन्थ योगवार्त्तिक और योगसार संग्रह भी विज्ञान-भिक्षु का है। पातंजल सूत्र चार पादों में विभक्त है। प्रथम पाद 'समाधि' इसमें योग का स्वरूप, उद्देश्य तथा लक्षण, चित्तवृत्ति निरोध के उपाय तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के योगों की विवेचना की गई है। द्वितीय पाद 'साधना' में क्रिया-योग, क्लेश, कर्मफल तथा उनका दुखात्मक स्वभाव दुखादि चतुष्टय का वर्णन किया गया है। तृतीय 'विभूतिपाद' में योग की अंतरंग अवस्थाओं तथा योगाभ्यास जात सिद्धियों की विवेचना है।[15] चतुर्थ पाद 'कैवल्य' के अन्तरगत्त मुक्ति के स्वरूप का वर्णन है। योग दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारता है। पतंजलि का योग 147 ई0 पू0 से पहले का नहीं हो सकता है। इस पर 400 ई0 में व्यास ने भाष्य लिखा था।[16]

मीमांसा दर्शन जैमिनी ऋषि द्वारा लिखा गया है। अन्य दार्शनिक सूत्रों की भाँति इसका रचना-काल भी अनिश्चित है, तथापि आजकल इसे उनमें सबसे प्राचीन तथा लगभग 200 ई0 का माना जाता है।[17] इस दर्शन का मूल ग्रन्थ 'जैमिनी सूत्र' है। 'जैमिनी सूत्र' पर शवर स्वामी का विशद भाष्य जिसे 'शावर भाष्य' कहते हैं। तत्पश्चात् अनेक टीकाकार तथा स्वतंत्र ग्रन्थकार हुए। 'कुमारिल भट्ट' तथा 'प्रभाकर' (गुरु) उनमें से मुख्य हैं। 'भाट मीमांसा तथा 'प्राभाकर मीमांसा' यह दो संप्रदाय इनके नाम पर प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार 'मीमांसा-दर्शन' का उत्तरोत्तर विकास होता गया।[18] मीमांसा शब्द का अर्थ समस्या या विचारणीय विषय का युक्तियों की समीक्षा द्वारा निर्णय करना है। मीमांसा को कर्म-मीमांसा कर्मकांड-विषयक होने के कारण कहते हैं। सुविधा की दृष्टि से मीमांसा दर्शन के तीन भाग किये गये हैं- 1. प्रमाण विचार 2. तत्त्व विचार तथा 3. धर्म विचार।

वेदान्त सूत्र जो कि उत्तर मीमांसा के नाम से भी प्रचलित है, बादरायण द्वारा रचा गया है। इसे ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। वेदान्त के सभी सम्प्रदाय उपनिषदों पर आधारित होने का दावा करते हैं। उनका ऐसा दावा करना पूरी तरह से उचित हो या न हो, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उनकी सामग्री का काफी बड़ा अंश उपनिषदों से लिया गया है। बादरायण के मूल ग्रन्थ की तिथि 400 ई0 के आस-पास मानी गई है।[19] वेदान्त का अर्थ है वेद का अन्त जिससे उपनिषद् और वेदान्त सूत्र अभिहित किए जाते हैं। इस प्रकार उपनिषदों के उपदेशों का संक्षिप्त वर्णन भी इसमें प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ चार अध्यायों में बँटा हुआ है। तथा इन अध्यायों में प्रत्येक के चार पाद हैं। ब्रह्मसूत्र की प्रथम टीका संभवतः बौधायन द्वारा रचित है परन्तु अब यह उपलब्ध नहीं है। सबसे प्रथम अधिकृत टीका शंकराचार्य के द्वारा लिखी हुई उपलब्ध होती है। ब्रह्मसूत्र की व्याख्या, टीका एवं अन्य ग्रन्थ जो तत्पश्चात् शंकराचार्य ने लिखे थे, वही साधारणतया वेदान्त दर्शन के रूप में माने जाते हैं।

न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम थे। महर्षि गौतम को अक्षपाद के नाम से भी जाना जाता था। अतः न्याय दर्शन को अक्षपाद-दर्शन भी कहते हैं। गौतम का 'न्याय सूत्र' न्याय दर्शन का मूल ग्रन्थ है। न्याय सूत्र में पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय दो अंकों में बँटा हुआ है। न्याय-भाष्य के अनेक ग्रन्थ न्याय सूत्र के बाद लिखे गये हैं, जैसे वात्स्यायन का 'न्याय-भाष्य', उद्योतकर का 'न्याय-वार्तिक', वाचस्पति की 'न्याय-वार्तिक- तात्पर्य-टीका, उदयन की न्याय-वार्तिक-तात्पर्य परिशुद्धि तथा कुसुमांजलि, जयंत की न्याय मंजरी, इत्यादि। इन ग्रन्थों में न्याय सूत्र के विचारों की विशद व्याख्या की गई है और न्याय-सूत्र के विरुद्ध जो आक्षेप किए गए हैं उनका खंडन किया गया है। प्राचीन समय के न्याय को प्राचीन न्याय कहते हैं।[20] आधुनिक समय का न्याय नव्य-न्याय है। संभवतः न्याय सूत्र की रचना 400 वर्ष पूर्व की होगी।[21]

वैशेषिक दर्शन के रचयिता कणाद ऋषि हैं। उनको उलूक नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इसीलिए वैशेषिक दर्शन 'कणाद' या 'औलूक्य' दर्शन भी कहलाता है। इस दर्शन में 'विशेष' नामक पदार्थ की विशद रूप से विवेचना की गई है। इसलिए यह 'वैशेषिक' कहलाता है। कणाद का वैशेषिक सूत्र इस दर्शन का प्रमाणिक प्रथम ग्रन्थ है। इसके दस अध्याय है तथा प्रत्येक अध्याय दो भागों में विभक्त है। इस पर प्रशस्तपाद का 'पदार्थ-धर्म संग्रह' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह मात्र कोरा भाष्य न होकर वैशेषिक दर्शन का एक स्वतन्त्र मूल ग्रन्थ सा है। शंकराचार्य के शारीरिक भाष्य पर लिखित दो टीका-ग्रन्थों से पता चलता है कि सिंहल देश के रावण नामक राजा ने वैशेषिक सूत्र पर टीका की थी परन्तु वह प्राप्य नहीं है। प्रशस्त पादभाष्य (पदार्थ-धर्मसंग्रह) पर दो उत्तम टीका ग्रन्थ हैं- 1. उदयनाचार्य की किरणावली और 2. श्रीधराचार्य की न्याय-कंदली। तत्पश्चात् वैशेषिक तथा न्याय इन दोनों ही दर्शनों का सम्मिश्रण है। जैसे 'सप्तपदार्थी' शिवादित्य की 'तर्ककौमुदी' लौगाक्षि भास्कर की, न्यायलीलावती वल्लभाचार्य की, तथा 'भाषापरिच्छेद' पंचानन का अग्रगण्य है।[22]

निष्कर्षतः दर्शनों के सम्बन्धों में ज्ञात होता है कि सभी दार्शनिक विवेचन चौथी शताब्दी से छठी शताब्दी तक अभिव्यक्त हो चुके थे।

महाकवि भवभूतिक का समय सातवीं शताब्दी का अंतिम भाग अथवा आठवीं का पूर्वार्ध निश्चित होता है। महाकवि से पूर्व प्रायः सभी दर्शन प्रकाश में आ चुके थे। भवभूति के साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भवभूति दर्शन शास्त्र से भी प्रभावित थे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि वे वेद तथा दर्शनों के अगाध पण्डित थे।[23] उनके नाटकों में वैदिक ज्ञान-गरिमा की झलक अनेक स्थलों पर स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। भगवती श्रुति के रहस्यों का उन्होंने खूब पता लगाया था।

'उत्तररामचरितम्' में 'सामांसो मधुपर्को भवति' की सूचना मिलती है।[24] 'महावीरचरितम्' में सूर्यवंश के कुल पुरोहित वसिष्ठ जी का वर्णन करते समय भवभूति ने ऐतरेय ब्राह्मण के अन्तिम (40वाँ) अध्याय में उल्लिखित पुरोहित-प्रशंसा के 'राष्ट्रगोपाः पुरोहित'[25] वाले गई पद्यों को ज्यों का त्यों अपने नाटक में रखा है। उपनिषद् तत्त्व के भी वे परमवेत्ता थे। 'उत्तररामचरितम्' में उन्होंने जनक के मुख से 'असुर्या नाम ते लोकाः' आदि प्रसिद्ध ईशावास्य श्रुति की व्याख्या कराई है। 'उत्तररामचरितम्' के छठे अंक के 'विद्याकल्पेन मरुताम्'[26] श्लोक द्वारा भवभूति ने अपने औपनिषद् अद्वैतवाद का संक्षेप में सुन्दर तात्त्विक वर्णन किया है। उनके योगशास्त्र का ज्ञान 'मालती-माधव' के पाँचवे अंक में मिलता है। 'षडधिकदशनाडीचक्रमध्यस्थितात्मा'[27] में भवभूति ने अपने योग तथा तन्त्र के ज्ञान का अनुपम मेल प्रदर्शित किया है। भवभूति के नाट्यसाहित्य में यत्र-तत्र आये हुए दार्शनिक पारिभाषिक शब्दों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि भवभूति सदैव दर्शनों के चिन्तन में संलग्न रहते थे।

अतः स्पष्ट होता है कि महाकवि भवभूति कवि ही नहीं थे, अपितु व्याकरणशास्त्र, मीमांसाशास्त्र तथा न्यायशास्त्र के विद्वान अर्थात् 'पदवाक्य' 'प्रमाणज्ञ' भी थे। इसके अतिरिक्त उन्हें वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग, साहित्यशास्त्र एवं तर्कशास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था। उनके साहित्य में उनके बहुमुखी ज्ञान का यत्र-तत्र स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।

संदर्भ सूची-

1. द्रष्टव्य भारतीय दर्शन का इतिहास- एस0 एन0 दास गुप्ता, पृ0 सं0-6
2. भारतीय दर्शन का इतिहास- एस0 एन0 दास गुप्ता, पृ0 सं0-12
3. भारतीय दर्शन- डॉ0 राधाकृष्णन,
4. भारतीय दर्शन- श्री सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय/श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0 सं0-23

5. भारतीय दर्शन का इतिहास- एस0 एन0 दास गुप्ता, पृ0 सं0-13
6. भारतीय दर्शन का इतिहास- एस0 एन0 दास गुप्ता, पृ0 सं0-13
7. भारतीय दर्शन की रूपरेखा- एम0 हिरियन्ना, पृ0 सं0 116
8. भारतीय दर्शन का इतिहास- एस0 एन0 दास गुप्ता, पृ0 सं0-38
9. भारतीय दर्शन की रूपरेखा- एम0 हिरियन्ना, पृ0 सं0 47
10. भारतीय दर्शन- श्री सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय/श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0 सं0-28
11. भारतीय दर्शन- श्री सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय/श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0 सं0-82
12. भारतीय दर्शन- श्री सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय/श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0 सं0-98
13. भारतीय दर्शन- श्री सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय/श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0 सं0-99
14. भारतीय दर्शन का इतिहास- एस0 एन0 दास गुप्ता, पृ0 सं0-202
15. भारतीय दर्शन- श्री सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय/श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0 सं0-280
16. भारतीय दर्शन का इतिहास- एस0 एन0 दास गुप्ता, पृ0 सं0-203
17. भारतीय दर्शन की रूपरेखा- एम0 हिरियन्ना, पृ0 सं0-300
18. भारतीय दर्शन- श्री सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय/श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0 सं0-296
19. भारतीय दर्शन की रूपरेखा- एम0 हिरियन्ना, पृ0 सं0 337
20. भारतीय दर्शन- श्री सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय/श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0 सं0-178
21. भारतीय दर्शन का इतिहास- एस0 एन0 दास गुप्ता, पृ0 सं0-264
22. भारतीय दर्शन- श्री सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय/श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0 सं0-229
23. यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च
ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके।
यत्प्रोढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययो।।
- मा0 मा0 1/8
24. 'उत्तररामचरितम्' चतुर्थ अध्याय, पृ0 सं0 323
25. महावीर चरितम्- 3/18- व्याख्याकार- आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र
26. उत्तररामचरितम्- 6/6
27. मालतीमाधवम्- 5/1

ग्रामीण भारत में कौशल विकास के द्वारा रोजगार में वृद्धि की सम्भावना: एक दृष्टि

डॉ० दीपा अग्रवाल

एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय रजा पी.जी. कॉलेज, रामपुर, उ०प्र०

अर्थव्यवस्था का विवेकीकरण करने, विकास प्रक्रिया को नव-प्रवर्तित करने, निर्माण और विनिर्माण की उत्पादकता बढ़ाने और उत्पादन की लागत घटाने के साथ विकास को अनवरत बनाए रखने के लिए हमेशा कौशलपूर्ण मानवशक्ति की आवश्यकता होती है। कौशल, किसी भी देश की आर्थिक संवृद्धि एवं सामाजिक विकास का स्वचालित इंजन है, क्योंकि कुशल व्यक्ति विकास का स्वप्रेरित साधन होता है जिसमें उद्यमीय योग्यता, प्रबंधकीय दक्षता, नेतृत्व की सामर्थ्य, समायोजन की शक्ति, कार्यकारिता की प्रवृत्ति और नवप्रवर्तन की अभिवृत्ति धारित करने की क्षमता होती है। कौशल विकास कार्यक्रम के द्वारा भारत अपने 95.3 प्रतिशत अकुशल श्रमबल को संपूर्ण तो नहीं पर अधिकांश को अत्याधुनिक और प्रतियोगिता के लायक बना सकता है।

विश्व की पहली औद्योगिक क्रांति में भाप के इंजन ने कई यांत्रिक उत्पादों का आविष्कार किया। जब दूसरी औद्योगिक क्रांति हुई, तब विद्युत के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव हो सका। जहां 1960 ई. के पश्चात आई तीसरी औद्योगिक क्रांति ने कम्प्यूटर, डिजिटल तकनीक और इंटरनेट के द्वार खोले, वहीं वर्तमान दौर आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस का है। इस चौथी औद्योगिक क्रांति से निर्माण के परंपरागत तरीकों एवं सेवा-आधारित उद्योगों में ऐसा परिवर्तन होने वाला है, जिसका अनुमान लगाना मुश्किल है, क्योंकि यह औद्योगिक क्रांति ऐसी तकनीकों से परिपूर्ण होगी, जो उत्पादन, निर्माण, विनिर्माण के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन करने वाली है। इसके चलते रोजगार पर गहन दुष्प्रभाव पड़ने की आशंका है। मैकिन्सकी की रिपोर्ट के अनुसार, 2030 तक विश्व में स्वचालन के कारण 40-80 करोड़ लोग अपने रोजगार गंवा देंगे। उन्हें कोई दूसरा काम ढूंढ़ने के लिए नए प्रकार के कौशल एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। इस परिपेक्ष्य में तकनीकी स्थिति, अनुकूल जनसांख्यिकीय उपलब्धता के संरचनात्मक लाभ को देखते हुए तकनीकी कौशल के क्षेत्र में भारत अग्रणी हो सकता है।

अभी कौशल विकास के मामले में भारत दुनिया के मानकों में बहुत निचले पायदान पर है। विकसित देशों में जहां कुशल कार्यबल, कुल कार्यबल का 60 से 90 प्रतिशत के बीच है, वह भारत में औपचारिक व्यावसायिक शिक्षा के साथ 4.69 प्रतिशत के निचले स्तर पर है। अमेरिका में 52 प्रतिशत, यूनाइटेड किंगडम में 69 प्रतिशत, जर्मनी में 75 प्रतिशत, जापान में 80 प्रतिशत और दक्षिण कोरिया में 96 प्रतिशत श्रमबल को औपचारिक कौशल-प्रशिक्षण प्राप्त है।

देश के संसाधनों के बहुआयामी सदुपयोग और आबादी के उचित समायोजन हेतु भी आज कौशल विकास अपरिहार्य हो गया है क्योंकि मानव संसाधन की दृष्टि से अब भारत दुनिया का सर्वाधिक धनी देश बन गया है। भारत आज दुनिया का सर्वाधिक युवा देश होने के बावजूद इसे कार्यशील आबादी में तब्दील करना एक बड़ी चुनौती है क्योंकि तकनीकी कौशल के अभाव के चलते देश में कार्यकारी आबादी की भागीदारी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है।

देश में हर साल कम से कम 1.70 करोड़ लोग श्रमबल में शामिल होते हैं जिन्हें कौशलयुक्त बनाए जाने की आवश्यकता है। साथ ही मौजूदा 30.7 करोड़ कृषि एवं गैर-कृषि कामगारों के कौशल-स्तर में वृद्धि करके उनकी उत्पादन दक्षता को सुधारने के लिए उन्हें नए सिरे से प्रशिक्षण प्रदान करना होगा।

दृष्टिकोण

यदि देश की ग्रामीण-शहरी संरचना पर गौर करें तो भविष्य में भारत को समग्र सामाजिक-आर्थिक तरक्की के नए सोपानों तक पहुंचाने में ग्रामीण भारत की ही सबसे निर्णायक भूमिका होगी क्योंकि आगामी कुछ दशकों में कार्यशील युवाओं का सबसे बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों से ही होगा, जिसकी संख्या वर्ष 2050 तक लगातार बढ़नी है। कुछ ग्रामीण आबादी में जहां 51.73 प्रतिशत आबादी 24 साल से कम है, वहीं शहरी आबादी में इसकी हिस्सेदारी 45.9 प्रतिशत है। यदि गांवों में उचित उद्यमीय शिक्षण-प्रशिक्षण एवं रोजगार की व्यवस्था करके कार्यशील आबादी के पलायन को रोका जाए तो अगले तीन-चार दशकों में ग्रामीण भारत ही सर्वाधिक जनांकिकीय लाभांश की स्थिति में होगा। अभी देश की कुल आबादी में 49.91 प्रतिशत हिस्सेदारी 24 साल से कम आयु वर्ग वालों की है और 47.2 करोड़ लोग 18 वर्ष से कम आयु वाले हैं।

आकलन बताते हैं कि वर्ष 2025 तक जब भारत के पास दुनिया की सर्वाधिक श्रमशक्ति होगी। उस दौरान दुनिया की अधिकांश बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के पास कुशल श्रमशक्ति में लगातार कमी होगी। वर्ष 2025 तक दुनिया भर में करीब 8.5 करोड़ कुशल कामगारों की कमी होगी और यदि इसको वैश्विक मानकों के अनुरूप अभी से उचित शिक्षण-प्रशिक्षण दिया जाए तो अगले एक-दो दशकों में भारत की कुशल श्रमशक्ति दुनिया भर में अपनी काबिलियत का परचम लहरा सकती है, क्योंकि वर्ष 2020 तक जहां भारतीय श्रम-शक्ति में 4.7 करोड़ कुशल कामगारों की संख्या और जुड़ जाएगी, वहीं इस दौरान अमेरिका में 1.7 करोड़, चीन में 1 करोड़, जापान में 90 लाख और रूस में 60 लाख कुशल कामगारों की कमी हो जाएगी।

अपनी कार्यशील जनसंख्या का गुणवत्तापूर्ण उपयोग करने के उद्देश्य से सरकार ने 'कौशल विकास एवं उद्यमिता विभाग' का 'कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय (एमएसडीई) के रूप में 9 नवम्बर, 2014 प्रोन्नयन कर दिया है, जो देश भर में विभिन्न योजनाओं और संगठनों के माध्यम से बड़े पैमाने पर कौशल विकास कार्यक्रम संचालित कर रहा है। देश के औद्योगिक विकास हेतु कुशल जनशक्ति की आवश्यकता की आपूर्ति हेतु विभिन्न व्यावसायिक ट्रेडों में कौशल प्रदान करने के लिए शिल्पकार प्रशिक्षण योजना चलाई जा रही है। यह योजना 14 वर्ष से अधिक अभ्यर्थियों के लिए देशभर में स्थित 13924 आईटीआई के नेटवर्क द्वारा संचालित है, इनमें 574 आईटीआई वर्ष 2017-18 में स्थापित किए गए हैं और इन सबकी जिसकी मौजूदा प्रशिक्षण क्षमता 126 ट्रेडों में 28.47 लाख अभ्यर्थियों की है। देशभर के व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदाता नेटवर्क द्वारा कुशल जनशक्ति तैयार करने हेतु व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से वर्ष 2017 से कौशल विकास पहल योजना (एसडीआईएस) शुरू की गई है जिसके तहत 70 क्षेत्रों में प्रशिक्षण हेतु 629 मॉडल तैयार किए गए हैं। इनमें से 129 मॉडल राष्ट्रीय कौशल ढांचा अर्हता के अनुरूप है।

राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी) 21 उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों और असंगठित क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित कर रहा है और इसका लक्ष्य वर्ष 2022 तक 15 करोड़ भारतीयों को कुशल बनाना है। वर्ष 2016-17 में इसके कार्य निष्पादन से 34 राज्यों एवं संघ क्षेत्रों के 540 जिलों में 2263 पाठ्यक्रमों के तहत 11 लाख अभ्यर्थियों को प्रशिक्षित किया गया है। एनएसडीसी, गृह मंत्रालय द्वारा वित्तपोषित जम्मू-कश्मीर के शिक्षित बेरोजगार युवाओं को कौशल और रोजगार के अवसर उपलब्ध करने के लिए उड़ान योजना चला रहा है। इसका लक्ष्य 5 वर्ष में राज्य के 40 हजार युवाओं को प्रशिक्षित करना है जिसके तहत अब तक 25 हजार युवाओं को कवर किया गया है जिसमें 17 हजार युवा प्रशिक्षित हो चुके हैं।

देश में दक्ष एवं कुशल श्रमशक्ति की कमी को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन के तहत वर्ष 2022 तक 40 करोड़ युवाओं को प्रशिक्षित करने हेतु क्षमताओं का सृजन किया जाएगा। इस मिशन का लक्ष्य भारत में कौशल विकास के प्रयासों में गति लाना है। 28 फरवरी, 2018 तक इस मिशन के तहत एनएसडीसी के शुल्क-आधारित मॉडल के तहत 90.43 लाख छात्रों को, जबकि मानक, प्रशिक्षण आकलन एवं पुरस्कार (स्टार) योजना के तहत 13.99 लाख छात्रों को प्रशिक्षित किया गया है। इस मिशन के तहत 20 केंद्रीय मंत्रालय और विभाग कौशल विकास कार्यक्रम और योजनाओं के कार्यान्वयन में लगे हैं जिन्होंने वर्ष 2015-16 और 2016-17 के कौशलीकरण के लक्ष्य क्रमशः 125.69 और 117.50 लाख की तुलना में क्रमशः 104.16 और 60. 32 लाख अभ्यर्थियों को प्रशिक्षित किया है। इसने निगमित सामाजिक दायित्व और उद्योग भागीदारी के तहत कौशल विकास पहलों के संवर्धन और प्रशिक्षण परियोजनाओं के लिए अब तक 9 निजी कंपनियों के साथ वित्तीय तथा 17 निजी कंपनियों के साथ गैर-वित्तीय एमओयू हस्ताक्षरित किए हैं। अधिकांश एमओयू राष्ट्रीय कौशल विकास निधि, एनएसडीसी तथा कंपनियों के बीच त्रिपक्षीय अनुबंध है। कौशल विकास के प्रयासों को गति प्रदान करने हेतु भारत सरकार ने 13 दिसंबर 2017 को विश्व बैंक (आईबीडीआई) के साथ 250 मिलियन डॉलर के ऋण समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं, जो 19 जनवरी 2018 से प्रभावी हुआ है।

इसके वित्तीयन से 6 वर्षों के लिए आजीविका उन्नयन हेतु कौशल अर्जन एवं ज्ञान जागरूकता (संकल्प) योजना शुरू की गई है, इस योजना में संस्थागत सुदृढ़ीकरण, गुणवत्ता आश्वासन, निवेशन तथा पीपीपी के द्वारा कौशल का विस्तार किया जाना है।

भारत के पास ऐसी विशाल जनशक्ति की चुनौती है जो अकुशल/अर्धकुशल है। इन्हें उपयुक्त रोजगार उपलब्ध कराना अपने आप में बड़ी चुनौती है। आज देश के सामने इन लोगों को अल्पावधि प्रमाणपत्र पाठ्यक्रमों के जरिए प्रशिक्षण देने और जो लोग पहले से रोजगार में हैं, उनके पहले के व्यावहारिक ज्ञान को मान्यता देने की चुनौती है। प्रधानमंत्री कौशल्य विकास योजना के अंतर्गत 1 फरवरी, 2018 तक करीब 44.13 लाख उम्मीदवारों को प्रशिक्षण दिया जा चुका था जिनमें से 29.91 लाख ने अल्पावधि प्रशिक्षण प्राप्त किया जबकि 7.82 लाख के पहले से प्राप्त ज्ञान को मान्यता प्रदान की गई। इसके अलावा 6.4 लाख लोगों को अल्पावधि पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण दिया जा रहा है या फिर उनके पहले से प्राप्त ज्ञान को मान्यता प्रदान की जा रही है। प्रधानमंत्री कौशल्य विकास योजना 2.0 के तहत 1 फरवरी, 2018 तक जिन 11.8 लाख लोगों को प्रशिक्षण दिया गया उनमें से 7.9 लाख को प्रमाण पत्र प्रदान किए गए और 2.8 लाख को रोजगार भी मिला।

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य विकास योजना (डीडीयूजीकेवाई) के तहत ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब युवाओं के लिए कौशल विकास कार्यक्रम से जोड़कर रोजगार उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाता है। वर्ष 2017-18 में 1.03 लाख युवाओं को 398 व्यवसायों में प्रशिक्षण प्रदान किया गया जिनमें से 64,967 को 31 दिसंबर, 2017 तक रोजगार उपलब्ध कराया जा चुका था। देशभर में फैले ग्रामीण स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थान कृषि, प्रसंस्करण, उत्पाद विनिर्माण जैसे 56 से अधिक व्यवसायों में स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थान कार्य कर रहे हैं। अप्रैल 2008 से नवंबर 2017 तक 25.24 लाख बेरोजगार युवाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया गया जिनमें से 16.64 लाख को आजीविका उपलब्ध कराई जा चुकी थी। इसके अलावा 2017-18 में ग्रामीण स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थान के माध्यम से 7897 उम्मीदवारों को लाइफ-मनरेगा परियोजना के तहत प्रशिक्षण दिया गया। इस परियोजना का उद्देश्य मनरेगा मजदूरों के कौशल के स्तर में सुधार करना है ताकि वे आंशिक रोजगार से उबर कर पूर्ण रोजगार प्राप्त कर सकें।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत दीनदयाल अंत्योदय योजना में कुल 56 लाख परिवारों को 4.84 लाख स्वसहायता समूहों के रूप में संगठित किया गया। वर्ष 2017-18 में अक्टूबर 2017 तक करीब 14.2 लाख स्वसहायता समूहों ने 18000 करोड़ रुपये के कर्ज लिए। इसके अलावा राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत दीनदयाल अंत्योदय योजना में निम्नलिखित उप-घटकों पर अमल के जरिए ग्रामीण जनता को आजीविका के अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं। महिला किसान सशक्तीकरण परियोजना (एमकेएसपी) के अंतर्गत 17 राज्यों में 33 लाख महिला किसानों को शामिल कर कृषि आधारित आजीविका उपलब्ध कराई गई। आजीविका ग्रामीण एक्सप्रेस योजना स्वसहायता समूहों के सदस्यों को आजीविका के वैकल्पिक स्रोत उपलब्ध कराए जाते हैं। इसके लिए उन्हें पिछड़े हुए ग्रामीण इलाकों में ई-रिक्शा, मोटरयुक्त तिपहिया या चौपहिया वाहन पर आधारित सार्वजनिक परिवहन सेवाएं संचालित करने की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है ताकि दूरदराज के गांवों के लोगों को बाजार तक पहुंच, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाएं उपलब्ध हो सकें।

दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना (डीडीयूजीकेवाई) राष्ट्रव्यापी रोजगार से जुड़ा मांग-आधारित कौशल ग्रामीण प्रशिक्षण कार्यक्रम है। जिसका वित्तपोषण और संचालन ग्रामीण विकास मंत्रालय करता है। इसका उद्देश्य रोजगार से जुड़ी आबादी में वैश्विक कमी के कारण उत्पन्न अंतर्राष्ट्रीय अवसरों का लाभ पाने के लिए गरीब ग्रामीण युवाओं को सक्षम बनाना है। इसमें 15-35 आयु के ग्रामीण युवकों के लिए पीपीपी मोड में बाजारोंन्मुख रोजगार से जुड़े 3, 6, 9 और 12 माह के प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं। इसमें प्रत्येक परियोजना कार्यान्वयन एजेंसी (पीआईए) के लिए यह अनिवार्य है कि वह प्रशिक्षित अभ्यर्थियों में से 75 प्रतिशत को रोजगार दिलाएं। इसके तहत पिछले 4 वर्षों में वर्ष 2014-15 में 0.86 लाख, वर्ष 2015-16 में 2.70 लाख, वर्ष 2016-17 में 1.63 लाख और 28 फरवरी तक वर्ष 2017-18 में 1.28 लाख अभ्यर्थियों को कौशल प्रशिक्षण दिया गया, जिनमें क्रमशः 54.1 हजार, 134.7 हजार, 84.9 हजार और 69.3 हजार अभ्यर्थियों को 390 से अधिक व्यवसायों में रोजगार दिया गया है। यह योजना अभी 24 राज्यों के 617 जिलों में कार्यान्वित है जिसमें 281 से अधिक पीआईए भागीदार हैं और इसमें 39 क्षेत्रों के 390 से अधिक व्यवसायों को शामिल किया गया है। इस योजना के साथ कई विशेषीकृत योजनाएं भी चलाई जा रही है।

मौजूदा सरकार रोजगार सृजन के लिए चार स्तरों पर काम कर रही है। पहला स्किल इंडिया, दूसरा मेक इन इंडिया, तीसरा स्टार्टअप और चौथा सीधे आजीविका उद्यमिता व रोजगार का सृजन शामिल है।

ग्रामीण युवाओं में उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए दीनदयाल अंत्योदय योजना के राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के तहत स्टार्टअप ग्रामीण उद्यमिता कार्यक्रम (एसवीईपी) लागू किया जा रहा है। 17 राज्यों में कुल 7800 उद्यमों को बढ़ावा दिया गया है और आशा है कि 2018-19 में 25000 अन्य उद्यमी इसके दायरे में आ जाएंगे। इस उपक्रम का उद्देश्य स्थानीय उद्यमियों के बीच संस्थागत ऋण उद्यमिता संपर्क कायम करना है।

स्टैंडअप इंडिया कार्यक्रम का उद्देश्य महिलाओं और अनुसूचित जातियों/जनजातियों में उद्यमिता को बढ़ावा देना है। इसके अंतर्गत प्रत्येक बैंक से अ.जा./अ.ज.जा. के कम से कम एक और कम से कम एक महिला उद्यमी को नया उद्यम स्थापित करने के लिए 10 लाख रुपये से लेकर 1 करोड़ रुपये तक के ऋण की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। इस कार्यक्रम के तहत 4747.95 करोड़ रुपये की राशि ऋण के रूप में उद्यमियों को दी गई जिसमें से अनुसूचित जातियों के उद्यमियों का हिस्सा 15.05 प्रतिशत, अ.ज.जा. उद्यमियों का 4.28 प्रतिशत और महिलाओं उद्यमियों का 80.67 प्रतिशत था। मुद्रा योजना से भी कर्ज की राशि में बढ़ोत्तरी हुई है। इसके अंतर्गत उधार लेने वाली आमतौर पर या तो महिलाएं होती हैं या फिर अ.जा., अ.ज.जा. और अन्य पिछड़ी जातियों के लोग होते हैं।

स्टार्टअप इंडिया कार्यक्रम 2016 में शुरू हुआ और इसका मकसद नवसृजन और उद्यमिता को बढ़ावा देने वाला माहौल तैयार कर रोजगार के अवसर जुटाना था। 4 जनवरी, 2018 को 6096 आवेदनों की पहचान स्टार्टअप के रूप में की गई और 74 स्टार्टअप को करों का फायदा देने के लिए मंजूरी दी गई। जिन प्रमुख क्षेत्रों में स्टार्टअप्स कार्य कर रहे हैं उनमें आईटी सेवाएं, स्वास्थ्य देखभाल, जैवविज्ञान, शिक्षा, व्यावसायिक और वाणिज्यिक सेवाएं और खाद्य व पेय पदार्थ शामिल हैं।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि ग्रामीण भारत में कौशल विकास के द्वारा रोजगार में वृद्धि की पूर्ण सम्भावना है, जिसके लिए वर्तमान सरकार यथासम्भव भरसक प्रयत्न कर रही है।

ग्रंथ सूची-

1. योजना, सितम्बर 2018
2. दत्त एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, नई दिल्ली-110055, 2012
3. कुरुक्षेत्र, अंक मार्च 2018
4. योजना, नवम्बर 2018
5. कुरुक्षेत्र, सितम्बर 2019
6. इंडियन इकोनामी - एस.के.मिश्रा, वी.के.पुरी, संस्करण 2004, पृ0 916
7. योजना, सितम्बर 2019

हिंदी भाषा में बाल साहित्य और लेखनः महत्व, परंपरा और आधुनिक संदर्भ

क्रमांक शुक्ला

प्रवक्ता, बेनीमाधव तिवारी इन्टर कॉलेज, आटा जालौन (उ. प्र.)

सारांश

बाल साहित्य लिखने की परंपरा बहुत प्राचीन है। पंचतंत्र नामक पुस्तक में नारायण पंडित ने कहानियों में कहानियों के माध्यम से बच्चों और जानवरों को बनाया। कहानियों के द्वारा शिक्षा ग्रहण करना बच्चों की सबसे प्यारी आदत है। हम कहानियों के माध्यम से बच्चों को शिक्षा प्रदान करते हैं। बचपन में हमारी नानी, दादी, हमारी मां हमें कहानियां सुनाती थीं। कहानियाँ सुनाते समय कभी वह हमें परियों की धरती पर ले जाती थी तो कभी सत्य जैसी यथार्थवादी बातें सिखाती थी। साहस, त्याग, त्याग और परिश्रम ऐसे गुण हैं जिनके आधार पर व्यक्ति उन्नति करता है और ये सभी गुण हमें अपनी माता के हाथों प्राप्त होते हैं। चूँकि बच्चे का ज्यादातर समय मां के साथ ही बीतता है, तो शुरुआत में मां ही उसकी गुरु और शिक्षक होती है जिससे उसे तमाम जानकारी और शिक्षा मिलती है।

दरअसल, बाल साहित्य का उद्देश्य न केवल बाल पाठकों का मनोरंजन करना है बल्कि उन्हें आज के जीवन की वास्तविकताओं से अवगत कराना भी है। आज के बच्चे आने वाले समाज, देश के भविष्य हैं। वे जो सीखते-पढ़ते हैं, उसके अनुसार उनका चरित्र और व्यवहार बनता है। कहानियों के माध्यम से हम बच्चों को शिक्षा देकर उनके चरित्र का निर्माण करते हुए उन्हें जीवन के संघर्षों का सामना करने योग्य बना सकते हैं। इन बच्चों को अंतरिक्ष में यात्रा करने, चंद्रमा पर जाने और शायद अन्य ग्रहों तक जाने के लिए बड़ा होना पड़ता है।

बाल साहित्य के लेखक को बाल मनोविज्ञान का पूरा ज्ञान होना चाहिए। तभी वह बाल मानस पर उतरकर बच्चों के लिए कहानी, कविता या बच्चों का उपन्यास लिख सकता है। बच्चों का मन मक्खन की तरह शुद्ध और मुलायम होता है। कहानियों और कविताओं के माध्यम से हम उनके कोमल मन को वह शक्ति दे सकते हैं, जो उनके दिमाग में जा सके और संस्कृति, समर्पण, सद्भावना और भारतीय संस्कृति के तत्व पैदा कर सके।

मूल शब्द : बाल-साहित्य, हिंदी, महत्व, परंपरा, आधुनिक, संदर्भ

परिचय

"आप उन्हें अपना प्यार दे सकते हैं, लेकिन अपने विचार नहीं। क्योंकि उनके अपने विचार हैं। आप उसके शरीर को बंद कर सकते हैं, लेकिन उसकी आत्मा को नहीं, क्योंकि उसकी आत्मा कल में रहती है। तुम उसे देख नहीं सकते, तुम उसे सपनों में भी नहीं देख सकते, परन्तु तुम उसके जैसा बनने की कोशिश कर सकते हो। लेकिन उन्हें अपने जैसा बनाने की ख्वाहिश मत करो। क्योंकि जीवन न पीछे जाता है और न अतीत के साथ रुकता है।"

बाल मनोविज्ञान को उजागर करने के साथ, बच्चों में आस्था दिखाने वाला यह कथन खलील जिब्रान का है। सदियों पहले कही गई यह बात आज भी उतनी ही सत्य और महत्वपूर्ण है, जितनी उन दिनों थी। यह मामूली सी लगने वाली बात, बच्चों के मनोविज्ञान

को पूरी तरह से समझा देती है। यह उन लेखकों पर एक प्रभावी टिप्पणी है जो बच्चों को 'नादान' मानते हैं और जादू या परियों की कहानियों जैसी अतार्किक रचनाओं के माध्यम से उन्हें बहकाने की कोशिश करते हैं।

बाल साहित्य के लाभ

- साहित्य बच्चों को मानव जीवन के उन पहलुओं के बारे में भी बताता है जिनसे उन्हें भविष्य में निपटना होगा। एक तरह से यह उन्हें भविष्य के लिए तैयार करता है।
- साहित्य के माध्यम से बच्चों को अपने परिवार के अलावा अन्य परिवारों/समाजों के बारे में पता चलता है। साथ ही यह उन्हें दूसरों के जीवन में झांकने का मौका देता है – उनके दुख, दर्द, सुख-दुख आदि को समझने का।
- साहित्य पढ़ने से बच्चों में कल्पनाशीलता के साथ-साथ रचनात्मकता का भी विकास होता है।
- इसके माध्यम से बच्चे अपने बारे में, जिस समाज में रहते हैं उसके बारे में, अपने और समाज के विश्वासों, मूल्यों आदि के बारे में तार्किक समझ विकसित करते हैं।

हिंदी बाल साहित्य की परंपरा

हिन्दी बाल साहित्य की बहुत समृद्ध परंपरा है। बाल साहित्य में वे सभी साहित्य सम्मिलित हैं, जो बच्चों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। बाल साहित्य में रोचक कहानियाँ और कविताएँ प्रमुख हैं।

'रवींद्रनाथ टैगोर की बाल साहित्य' नाम से बच्चों के लिए लिखी गई उनकी कुछ कविताएँ और कहानियाँ दो भागों में प्रकाशित हुई हैं। हिन्दी बाल साहित्य में मुख्यत: प्राचीन सामाजिक परम्परा की शिक्षा बच्चों को दी जाती है। हमारे समाज में कई कविताएँ बिखरी पड़ी हैं, जिनका संकलन और प्रकाशन अभी भी श्रुति परंपरा के माध्यम से किया जा रहा है। जैसे- बालो हम जगदानंद, नाम बाला सरस्वती। सते भवतु सुप्रीत देवी शिखर वासिनी आदि। ऐसी बाल सुलभ कविताएँ बच्चों के लिए सुलभ हैं। बच्चों के कोमल हृदय को माँ और प्रकृति से अधिक सानिध्य और ज्ञान प्राप्त होता है।

हिन्दी में बाल साहित्य का एक प्रमुख स्रोत पंचतंत्र की कहानियाँ हैं।

बाल गीतों की कविताओं में झांसी की रानी महाराणा प्रताप का घोड़ा बच्चों को प्रेरणा देता रहा है।

1957 में बाल साहित्य के संदर्भ में शंकर पिल्लई ने ''चिल्ड्रेन्स बुक ट्रस्ट'' की स्थापना की थी। इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य 5-16 वर्ष तक के बच्चों के लिए उचित डिजाइनिंग वाला बेहतरीन बाल साहित्य उपलब्ध कराना है। जैसा:

पौराणिक कथाएं: कृष्ण-सुदामा, पंचतंत्र की कहानियां, पौराणिक कथाएं, प्रह्लादी

ज्ञानवर्धक: उपयोगी आविष्कार, पहाड़ों की पुकार, रंगों की महिमा, मनोरंजक विज्ञान खेल

मिस्टिक एडवेंचर्स: अनोखा उपहार, जासूसों का जासूस, ननिहाल में दिन, पांच जासूस

उपन्यास/कहानियां: 24 कहानियां, मनुष्य का पुत्र, गुड्डी, मास्टर साहब

ग्रेट पर्सनैलिटी: ग्रेट पर्सनैलिटी पार्ट वन टू टेन

वन्यजीव: अम्मऊ का परिवार, कुछ भारतीय पक्षी, छोटा शेर, बड़ा शेर,

पर्यावरण: अद्वितीय रिश्ते

क्या और कैसे: कंप्यूटर, घड़ी, टेलीफोन, ट्रेन

चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट ने बच्चों के लिए असमिया, बंगाली, हिंदी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, पंजाबी, तमिल और तेलुगु भाषाओं में सचित्र पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इस ट्रस्ट के परिसर में डॉ. राय स्मृति चिल्ड्रन वाचनालय और पुस्तकालय की स्थापना की गई है। जो सिर्फ 16 साल तक के बच्चों के लिए हैं। इसमें हिंदी और अंग्रेजी भाषा में 30,000 से अधिक पुस्तकें हैं। इसी क्रम में वर्ष 1991 में शंकर कला अकादमी की स्थापना की गई है। जहां पुस्तकों, चित्रों, कला और ग्राफिक्स के कार्यक्रम चलाए जाते हैं। बच्चों में रचनात्मक रुचि विकसित करने के लिए पूरे देश में शंकर इंटरनेशनल पेंटिंग प्रतियोगिता भी आयोजित की जाती है।

पत्रिकाओं के स्तर पर, कई भारतीय भाषाओं में चंपक, पराग, बाल हंस, बाल भारती, नन्हे सम्राट, नंदन और युवाओं के लिए मुक्ता हिंदी में प्रकाशित होती रही हैं।

पंजाब केसरी, नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान समाचार पत्र भी बच्चों के लिए 'बलोक कार्नर' प्रकाशित करते हैं।

निष्कर्ष

बाल साहित्य में वह शैक्षिक साहित्य सम्मिलित है, जो बच्चों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर लिखा गया है। रोचक शिक्षाप्रद बाल कथाएँ, बाल गीत और कविताएँ बाल साहित्य में प्रमुख हैं। हिन्दी साहित्य में बाल साहित्य की परंपरा बहुत समृद्ध है। पंचतंत्र की कहानियाँ बाल साहित्य का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि, अन्य समाजों की तरह भारत में भी साहित्य श्रुति परंपरा से आया है। पहले बच्चों और वयस्कों के साहित्य के बीच कोई विशेष विभाजन नहीं था। पहले इसका स्वरूप लोक साहित्य का था। यह उस दौर में लोगों के मनोरंजन का जरिया बन गया। लोरी के रूप में मधुर और सहज लोक गीतों को बाल मनोरंजन के लिए अपनाया गया। कथा साहित्य के क्षेत्र में लंबे समय तक राजाओं और सम्राटों की जीवनी और पौराणिक विषयों को बाल साहित्य का पर्याय माना जाता था। आने वाले वर्षों में यदि हम पंचतंत्र और हितोपदेश को छोड़ दें, तो कोई अन्य कार्य नहीं है जिसे शुद्ध बाल साहित्य की श्रेणी में रखा जा सके।

आज यह आवश्यक है कि हिन्दी बाल साहित्य की परंपरा का निरंतर विस्तार किया जाए। ताकि वे बच्चे जो टेलीविजन और इंटरनेट के कारण साहित्य से कट गए हैं, उन्हें फिर से किताबों की दुनिया में लाया जाए। हमें यह समझना होगा कि पढ़ना एक विशिष्ट विशेषता है, जिसका धीरे-धीरे अभ्यास किया जाता है। बचपन से ही ज्ञान और संवेदनशीलता से भरपूर मूल सामग्री बच्चों को प्रदान की जानी चाहिए। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा प्रदान की गई सामग्री निश्चित रूप से बच्चों के ज्ञान और मनोरंजन की जरूरतों को पूरा कर रही है। लेकिन वह बच्चों को उनके समाज से काटकर एक निश्चित दायरे में शामिल करने की भूख भी पैदा कर रही है। यही सफल उपभोक्ता का दायरा है जो अपनी सुविधा के लिए सब कुछ खरीदने की क्षमता रखता है।

सन्दर्भ

1. भारतीय बालसाहित्य और विश्व-परिदृश्य (डॉ० श्यामसिंह शशि)
2. चुनी हुई बाल कहानियाँ ; भाग - १ (गूगल पुस्तक ; लेखक - रोहिताश्व अष्ठाना)
3. मैत्रे का पुल (गूगल पुस्तक ; लेखक - जयप्रकाश भारती)
4. मार्गदर्शन के लिये तरसते बच्चे (संजय द्विवेदी)
5. स्वातंत्रोत्तर बाल साहित्य (गूगल पुस्तक ; लेखक - कामना सिंह)
6. हिंदी का बाल-साहित्य : परंपरा, प्रगति और प्रयोग (गद्यकोश ; लेखक - दिविक रमेश)

भारतीय संघ में देशी रियासतों के विलय में सरदार पटेल का योगदान

डॉ० हर्षेन्द्र प्रताप सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, उन्नाव, उत्तर प्रदेश

सार

भारत की स्वतंत्रता की सुबह राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक जटिलताओं से भरी थी। देश के नेताओं ने खुद को विविध और भिन्न आलोचनाओं से भरे माहौल में पाया। यदि शीघ्रता से इनका समाधान नहीं किया गया होता, तो यह और भी जटिलताएं उत्पन्न कर सकता था। विभिन्न आयामों की विभिन्न समस्याओं से परेशान, नेताओं को स्थिति की वास्तविकता का सामना करने और देश के लिए लाभकारी समाधान पर पहुंचने के तरीके और साधन तलाशने पड़े। पांच सौ से अधिक और विषम रियासतों के प्रति ब्रिटिश नीति के कारण एक अधिक महत्वपूर्ण समस्या उत्पन्न हुई, अंग्रेजों के जाने के बाद उनकी सटीक स्थिति स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं की गई थी। देश की स्वतंत्रता का तत्काल परिणाम दो अलग-अलग राष्ट्रों, भारत और पाकिस्तान का निर्माण था। देशी राजकुमारों को उनकी पसंद के अनुसार दो प्रस्तावित देशों में से किसी एक में शामिल होने की अनुमति दी गई थी। इतनी बड़ी संख्या में स्वतंत्र राज्यों के साथ निवेश करने वाला देश ऐसे माहौल में राजनीतिक मजबूती का सपना नहीं देख सकता था। यह काफी संभावना थी कि वे राजकुमार एक तीसरी ताकत का गठन कर सकते थे और इसके आगे समेकन के बजाय इसके विघटन में योगदान दे सकते थे। ऐसी विकट और जटिल स्थिति का सामना करते हुए, कांग्रेस पार्टी ने विघटन से बचने की दृष्टि से समाधान खोजने का मंत्र राजनीतिक जागृति द्वारा पैदा की थी। सरदार का पटेल कार्य उन राज्यों के लोगों के मन में राजनीतिक चेतना पैदा करना और साथ ही साथ अपने राजकुमारों को भारत संघ में विलय करने के लिए राजी करना था ताकि अंग्रेजों के जाने के बाद एक मजबूत संयुक्त भारत का निर्माण किया जा सके। चातुर्यपूर्ण तरीके से, प्रिवी पर्स का वादा करके, अपनी मैत्रीपूर्ण सलाह के माध्यम से, और कभी-कभी कड़े और मजबूत प्रशासनिक उपायों के द्वारा, वह बिना किसी रक्तपात के सभी शासकों को अपने राज्यों को भारतीय संघ में विलय करने में सफल हो गए। इस प्रकार राष्ट्र निर्माण के अंतिम कार्य को सरदार पटेल के सक्षम और मजबूत हाथों में अपनी सफलता मिली।

मुख्य-शब्दः भारत गणराज्य, रियासतें, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947, भारतीय सेना, एकीकरण।

परिचय

भारत भाषाई, जातीय, सांस्कृतिक और धार्मिक के साथ-साथ कई अन्य विविधताओं का देश है। इसमें बड़ी संख्या में छोटे राज्यों का गठन हुआ है। जैसा कि गुरमुख निहाल सिंह ने देखाः ''प्रकृति ने भारत को कमोबेश आत्मनिर्भर इकाई बना दिया है, लेकिन ऐतिहासिक दुर्घटनाओं ने उसे बड़ी संख्या में अलग-अलग राजनीतिक संस्थाओं में विभाजित कर दिया है।''[1] सभ्यता के प्रारंभिक दौर में भी ऐसा कोई अवसर नहीं आया था जब पूरा देश पूरी तरह से एक ही सरकार के अधीन रहा हो। देश का राजनीतिक एकीकरण कभी संभव नहीं था। इसके अलावा, एक राष्ट्र की अवधारणा भी मौजूद नहीं थी। भारत एक राष्ट्र होने के स्थान पर अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। भारतीय राज्यों की समस्या ने विशेष रूप से ब्रिटिश शासन के दौरान अधिक गंभीर आयाम ग्रहण किया। जो राज्य पहले की अवधि में अस्तित्व में थे, उन्होंने औपनिवेशिक सरकार के तहत एक अलग स्थिति ग्रहण की।

भारत में ब्रिटिश आधिपत्य की शुरुआत मूल रूप से समय-समय पर देश के विभिन्न शासकों के साथ कई संधियों के माध्यम से हुई थी। सशस्त्र बलों को तैनात करने के बाद भी, ब्रिटिश सरकार पूरे देश में अपना नियंत्रण बढ़ाने में पूरी तरह से सफल नहीं हो पाई थी; इसे शक्तिशाली देशी राजाओं के साथ संधियों में प्रवेश करना पड़ा। ब्रिटिश शासन की शुरुआत में, विभिन्न देशी राज्य राजनीतिक स्वतंत्रता के उद्देश्य से एक साथ नहीं आ सके। प्रारंभ में, ईस्ट इंडिया कंपनी, जो एक व्यापारिक कंपनी थी, ने 1757 से 1813 में लॉर्ड मिंटो के गवर्नर-जनरलशिप तक देशी शासकों के साथ संधियों में प्रवेश किया। कंपनी भारत में एक पैर जमाना चाहती थी। वेलेस्ली के समय, यह निर्णय लिया गया था कि अंग्रेजों को भारत में स्थायी रूप से राजनीतिक सत्ता संभालनी चाहिए; साथ ही राजकुमारों को अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता को आत्मसमर्पण करके संप्रभुता के अपने व्यक्तिगत प्रतीक चिन्ह को बनाए रखने की अनुमति दी जानी चाहिए।

प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने तक, भारत में राष्ट्रवाद इस हद तक नहीं बढ़ा कि ब्रिटिश शासन के लिए खतरा पैदा हो जाए। देश में एक जिम्मेदार सरकार की स्थापना के लिए जन चेतना का कोई उभार नहीं था। 1914-1919 के महान युद्ध ने भारतीय राष्ट्रवाद के तेवर को तेज करने की दिशा में उत्प्रेरक का काम किया। सर्वोपरिता का सिद्धांत अंग्रेजों द्वारा राज्यों के साथ संबंधों को नियंत्रित करने के लिए विकसित एक अजीबोगरीब रणनीति थी। जैसा कि शंकर ने देखा ''सर्वोच्चता का मतलब था कि राज्यों ने भारत सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों को पूरा करने के लिए ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार की आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। सर्वोपरिता को परिभाषित करने से इंकार करना ब्रिटिश सरकार के लिए सुविधाजनक था।''[2] सर्वोच्चता ब्रिटिश सरकार के साथ राज्यों के संबंधों से संबंधित एक विशेष प्रणाली थी। रेलवे, पोस्ट और टेलीग्राफ और रक्षा के संबंध में अखिल भारतीय नीतियों के मामलों में राज्यों को सरकार के साथ सहयोग करना पड़ा। 16 मई, 1946 की कैबिनेट मिशन योजना ने स्वतंत्र भारत के नए ढांचे में सत्ता के हस्तांतरण और देशी राज्यों की स्थिति की स्पष्ट तस्वीर दी। नए संविधान में उनकी भागीदारी और उनकी रियासतों के भारतीय संघ में विलय के संबंध में राजकुमारों के निर्णय पर देश का भविष्य काफी हद तक निर्भर था। इस घटना ने स्वतंत्रता के बाद के युग में पटेल की लोकप्रियता की आधारशिला बनाई। आज भी उन्हें भारत को एकजुट करने वाले व्यक्ति के रूप में याद किया जाता है। इस संबंध में, उनकी तुलना जर्मनी के ओटो वॉन बिस्मार्क से की जाती है, जिन्होंने 1860 के दशक में ऐसा ही किया था। 3 जून की योजना के तहत, 562 से अधिक रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने या स्वतंत्रता चुनने का विकल्प दिया गया था।

पटेल की राजनीतिक दूरदर्शिता देशी रियासतों के शासक स्वतंत्र भारत में अपने क्षेत्र को एकीकृत करने के लिए समान रूप से उत्साहित नहीं थे। कुछ, जैसे कि बीकानेर और जवाहर के शासकों को वैचारिक और देशभक्ति के विचारों से भारत में शामिल होने के लिए प्रेरित किया गया था, लेकिन अन्य ने जोर देकर कहा कि उन्हें भारत या पाकिस्तान में शामिल होने, स्वतंत्र रहने या अपना स्वयं का संघ बनाने का अधिकार है। भोपाल, त्रावणकोर और हैदराबाद ने घोषणा की कि वे किसी भी अधिराज्य में शामिल होने का इरादा नहीं रखते हैं। हैदराबाद ने यूरोपीय देशों में व्यापार प्रतिनिधियों को नियुक्त करने और पुर्तगालियों के साथ बातचीत शुरू करने के लिए गोवा को समुद्र तक पहुंच प्रदान करने के लिए पट्टे या खरीदने के लिए बातचीत शुरू की, और त्रावणकोर ने मान्यता के लिए पूछते हुए अपने थोरियम भंडार के पश्चिमी देशों को रणनीतिक महत्व की ओर इशारा किया। कुछ राज्यों ने भारत और पाकिस्तान के अलावा एक तीसरी इकाई के रूप में रियासतों के एक उपमहाद्वीप-व्यापी संघ का प्रस्ताव रखा। भोपाल ने कांग्रेस द्वारा शासकों पर डाले जा रहे दबाव का मुकाबला करने के लिए रियासतों और मुस्लिम लीग के बीच गठबंधन बनाने का प्रयास किया। भारतीय राष्ट्रवादियों और जनता के बड़े हिस्से को डर था कि अगर इन राज्यों का विलय नहीं हुआ, तो अधिकांश लोग और क्षेत्र खंडित हो जाएंगे। कांग्रेस के साथ-साथ वरिष्ठ ब्रिटिश अधिकारियों ने पटेल को भारतीय प्रभुत्व के साथ रियासतों के एकीकरण को प्राप्त करने के कार्य के लिए सबसे अच्छा व्यक्ति माना। गांधी ने पटेल से कहा था, ''इन राज्यों की समस्या इतनी कठिन है कि आप अकेले इसे हल कर सकते हैं।''[3] पटेल को व्यावहारिक कौशल और एक महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने के संकल्प के साथ एक सत्यनिष्ठ राजनेता माना जाता था। उन्होंने वीपी मेनन, एक वरिष्ठ सिविल सेवक, जिसके साथ उन्होंने भारत के विभाजन पर काम किया था, को राज्य मंत्रालय के मुख्य सचिव के रूप में अपना दाहिना हाथ बनने के लिए कहा। 6 मई 1947 को, पटेल ने राजकुमारों की पैरवी करना शुरू कर दिया, उन्हें भविष्य की सरकार के साथ बातचीत के प्रति ग्रहणशील बनाने और संभावित संघर्षों को रोकने का प्रयास किया। पटेल ने अधिकांश राजाओं को शामिल करने के लिए सामाजिक बैठकों और अनौपचारिक परिवेश का इस्तेमाल किया, उन्हें दिल्ली में अपने घर पर दोपहर के भोजन और चाय पर आमंत्रित किया। इन बैठकों में, पटेल ने

समझाया कि कांग्रेस और रियासत के बीच कोई अंतर्निहित संघर्ष नहीं था। पटेल ने भारत के राजाओं की देशभक्ति का आह्वान किया, उन्हें अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता में शामिल होने और अपने लोगों के भविष्य की परवाह करने वाले जिम्मेदार शासकों के रूप में कार्य करने के लिए कहा। उन्होंने 565 राज्यों के राजकुमारों को भारतीय गणराज्य से स्वतंत्रता की असंभवता के लिए राजी किया, खासकर उनकी प्रजा के बढ़ते विरोध की उपस्थिति में।

कई राजकुमारों पर भी भारत के साथ एकीकरण के पक्ष में लोकप्रिय भावनाओं का दबाव था, जिसका अर्थ था कि स्वतंत्रता की उनकी योजनाओं को उनके विषयों से बहुत कम समर्थन मिला था। उदाहरण के लिए, त्रावणकोर के महाराजा ने अपने दीवान, सर सी.पी. रामास्वामी अय्यर। कुछ राज्यों में, मुख्यमंत्रियों या दीवानों ने राजकुमारों को भारत में शामिल होने के लिए मनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिन प्रमुख कारकों ने राज्यों को भारत में एकीकरण को स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया, वे थे, हालांकि, लॉर्ड माउंटबेटन, सरदार वल्लभभाई पटेल और वी.पी. मेनन के प्रयास थे। बाद के दो क्रमशः राज्य विभाग के राजनीतिक और प्रशासनिक प्रमुख थे, जो रियासतों के साथ संबंधों के प्रभारी थे। पटेल ने विलय के लिए अनुकूल शर्तों का प्रस्ताव रखा, जिसमें शासकों के वंशजों के लिए प्रिवी पर्स का निर्माण भी शामिल था। शासकों को देशभक्ति के कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए, पटेल ने बल प्रयोग से इंकार नहीं किया। इस बात पर जोर देते हुए कि राजकुमारों को सद्भाव में भारत में शामिल होने की आवश्यकता होगी, उन्होंने 15 अगस्त 1947 की समय सीमा तय की ताकि वे विलय दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर सकें। तीन राज्यों को छोड़कर सभी स्वेच्छा से भारतीय संघ में विलय हो गए; केवल जम्मू-कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद उसकी टोकरी में नहीं आए।

अब तक सबसे महत्वपूर्ण कारक जिसके कारण राजकुमारों के भारत में शामिल होने का निर्णय हुआ, वह कांग्रेस की नीति थी, विशेषकर पटेल और मेनन की। कांग्रेस की स्थिति यह थी कि रियासतें संप्रभु संस्थाएं नहीं थीं, और इसलिए सर्वोपरिता के अंत के बावजूद स्वतंत्र होने का विकल्प नहीं चुन सकती थीं। इसलिए रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होना चाहिए। जुलाई 1946 में, नेहरू ने स्पष्ट रूप से देखा कि कोई भी रियासत स्वतंत्र भारत की सेना के खिलाफ सैन्य रूप से प्रबल नहीं हो सकती है। जनवरी 1947 में, उन्होंने कहा कि स्वतंत्र भारत राजाओं के दैवीय अधिकार को स्वीकार नहीं करेगा, और मई 1947 में, उन्होंने घोषणा की कि कोई भी रियासत जो संविधान सभा में शामिल होने से इनकार करती है, उसे एक शत्रु राज्य माना जाएगा। सी. राजगोपालाचारी जैसे अन्य कांग्रेसी नेताओं ने तर्क दिया कि सर्वोच्चता ''सहमति से नहीं बल्कि एक तथ्य के रूप में अस्तित्व में आई''[4], यह अनिवार्य रूप से अंग्रेजों के उत्तराधिकारी के रूप में स्वतंत्र भारत की सरकार को पारित किया जाएगा।

कूटनीतिक सरलता

पटेल और मेनन, जिन पर राजकुमारों के साथ बातचीत करने का वास्तविक काम था, ने नेहरू की तुलना में अधिक समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाया। 5 जुलाई 1947 को पटेल द्वारा दिए गए भारत सरकार के आधिकारिक नीति वक्तव्य में कोई खतरा नहीं था। इसके बजाय, इसने भारत की एकता और राजकुमारों और स्वतंत्र भारत के सामान्य हितों पर जोर दिया, उन्हें कांग्रेस के इरादों के बारे में आश्वस्त किया, और उन्हें स्वतंत्र भारत में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया "विदेशियों के रूप में संधि करने के बजाय दोस्त के रूप में एक साथ बैठकर कानून बनाने के लिए"। उन्होंने दोहराया कि राज्य विभाग रियासतों पर प्रभुत्व का संबंध स्थापित करने का प्रयास नहीं करेगा। ब्रिटिश सरकार के राजनीतिक विभाग के विपरीत, यह सर्वोपरिता का एक साधन नहीं होगा, बल्कि एक ऐसा माध्यम होगा जिससे राज्यों और भारत के बीच समान रूप से व्यापार किया जा सकता है।[5]

परिग्रहण के उपकरण

पटेल और मेनन ने रियासतों के शासकों के लिए आकर्षक होने के लिए डिजाइन की गई संधियों का निर्माण करके अपने राजनयिक प्रयासों का समर्थन किया। दो अहम दस्तावेज पेश किए गए। पहला स्टैंडस्टिल समझौता था, जिसने पहले से मौजूद समझौतों और प्रशासनिक प्रथाओं की निरंतरता की पुष्टि की। दूसरा विलय का दस्तावेज था, जिसके द्वारा रियासत के शासक ने अपने राज्य के स्वतंत्र भारत में प्रवेश के लिए सहमति व्यक्त की, बाद में निर्दिष्ट विषय मामलों पर नियंत्रण प्रदान किया। विषय की प्रकृति अभिसरण अवस्था के आधार पर भिन्न होती है। जिन राज्यों को अंग्रेजों के अधीन आंतरिक स्वायत्तता प्राप्त थी, उन्होंने एक विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए, जिसने भारत सरकार को केवल तीन विषयों-रक्षा, विदेश मामलों और संचार को सौंप दिया,

प्रत्येक को भारत सरकार अधिनियम 1935 की सूची 1 से अनुसूची टप्प् के अनुसार परिभाषित किया गया। राज्यों के शासक जो प्रभावी सम्पदा या तालुका में थे, जहां क्राउन द्वारा पर्याप्त प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग किया गया था, ने एक अलग इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेसेशन पर हस्ताक्षर किए, जिसने भारत सरकार में सभी अवशिष्ट शक्तियां और अधिकार क्षेत्र निहित किए। मध्यवर्ती स्थिति वाले राज्यों के शासकों ने एक तीसरे प्रकार के उपकरण पर हस्ताक्षर किए, जिसने अंग्रेजों के अधीन उनकी शक्ति की डिग्री को संरक्षित किया।[6]

सीमावर्ती राज्य

जोधपुर के शासक, हनवंत सिंह, कांग्रेस के प्रति दयनीय थे, और उनके लिए भारत में बहुत अधिक भविष्य नहीं देखा या जिस जीवन शैली का वह नेतृत्व करना चाहते थे, जैसलमेर के शासक के साथ, उन्होंने मुहम्मद अली जिन्ना के साथ बातचीत की, जो थे पाकिस्तान के लिए राज्य के नामित प्रमुख जिन्ना कुछ बड़े सीमावर्ती राज्यों को आकर्षित करने के लिए उत्सुक थे, इस उम्मीद में कि अन्य राजपूत राज्यों को पाकिस्तान में आकर्षित करने और बंगाल और पंजाब के आधे हिस्से के नुकसान की भरपाई करने के लिए उन्होंने जोधपुर और जैसलमेर को पाकिस्तान में शामिल होने की अनुमति देने की पेशकश की।[7] उनके द्वारा चुने गए किसी भी शब्द, अपने शासकों को सादे कागज देकर और उनसे अपनी शर्तों को लिखने के लिए कहा, जिस पर वह हस्ताक्षर करेंगे, जैसलमेर ने इनकार कर दिया, यह तर्क देते हुए कि सांप्रदायिक समस्याओं की स्थिति में हिंदुओं के खिलाफ मुसलमानों के साथ रहना उनके लिए मुश्किल होगा। हालांकि, जोधपुर में माहौल पाकिस्तान में प्रवेश के लिए सामान्य रूप से प्रतिकूल था, माउंटबेटन ने यह भी बताया कि पाकिस्तान के लिए मुख्य रूप से हिंदू राज्य का परिग्रहण दो-राष्ट्र सिद्धांत के सिद्धांत का उल्लंघन करेगा जिस पर विभाजन आधारित था, और राज्य में सांप्रदायिक हिंसा का कारण बनने की संभावना थी, इन तर्कों से हनवंत सिंह राजी हो गए, और कुछ हद तक अनिच्छा से भारत में शामिल होने के लिए सहमत हुए।[8]

जूनागढ़

यद्यपि राज्य सैद्धांतिक रूप से यह चुनने के लिए स्वतंत्र थे कि वे भारत या पाकिस्तान में शामिल होना चाहते हैं या नहीं, माउंटबेटन ने कहा था कि "भौगोलिक मजबूरिया" का मतलब है कि उनमें से अधिकांश को भारत को चुनना होगा। पाकिस्तान के साथ सीमा इसे स्वीकार करने का विकल्प चुन सकती है जूनागढ़ के नवाब, गुजरात के दक्षिण-पश्चिमी छोर पर स्थित एक रियासत और पाकिस्तान के साथ कोई साझा सीमा नहीं होने के कारण, माउंटबेटन के विचारों की अनदेखी करते हुए पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला किया, यह तर्क देते हुए कि इसे यहां से पहुंचा जा सकता है। समुद्र के द्वारा पाकिस्तान दो राज्यों के शासक जो जूनागढ़-मंगरोल और बाबरियावाद की आधिपत्य के अधीन थे- ने जूनागढ़ से अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करके और भारत में शामिल होकर इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त की, जवाब में, जूनागढ़ के नवाब ने राज्यों पर सैन्य कब्जा कर लिया। पड़ोसी राज्यों के शासक जूनागढ़ सीमा पर अपने सैनिकों को भेजकर गुस्से में प्रतिक्रिया व्यक्त की और भारत सरकार से सहायता के लिए अपील की, जूनागढ़ी लोगों के एक समूह, समलदास के नेतृत्व में गांधी ने एक निर्वासित सरकार का गठन किया।[9]

भारत का मानना था कि यदि जूनागढ़ को पाकिस्तान जाने की अनुमति दी जाती है, तो गुजरात में पहले से चल रहे सांप्रदायिक तनाव और खराब हो जाएंगे, और सरकार ने विलय को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इसके साथ ही, उन्होंने जूनागढ़ को ईंधन और कोयले की आपूर्ति में कटौती की, हवाई और डाक लिंक को तोड़ दिया, सीमा पर सैनिकों को भेजा, और मांगरोल और बाबरियावाड़ की रियासतों पर फिर से कब्जा कर लिया, जो भारत में शामिल हो गए थे, पाकिस्तान एक जनमत संग्रह पर चर्चा करने के लिए सहमत हुआ, वापसी के अधीन भारतीय सैनिकों की, एक शर्त जिसे भारत ने खारिज कर दिया 26 अक्टूबर को, नवाब और उनका परिवार भारतीय सैनिकों के साथ संघर्ष के बाद पाकिस्तान भाग गया 7 नवंबर को, जूनागढ़ की अदालत ने, पतन का सामना करते हुए, भारत सरकार को राज्य के प्रशासन को संभालने के लिए आमंत्रित किया। भारत सरकार सहमत हुए फरवरी 1948 में एक जनमत संग्रह कराया गया, जो लगभग सर्वसम्मति से भारत में विलय के पक्ष में गया।[10]

हैदराबाद

हैदराबाद एक भू-आबद्ध राज्य था जो दक्षिणपूर्वी भारत में 82,000 वर्ग मील में फैला हुआ था, जबकि इसके 17 मिलियन लोगों में से 87 प्रतिशत हिंदू थे, इसके शासक निजाम उस्मान अली खान एक मुस्लिम थे, और इसकी राजनीति में एक मुस्लिम अभिजात

वर्ग का प्रभुत्व था। मुस्लिम बड़प्पन और इत्तेहाद-उल-मुस्लिमीन, एक शक्तिशाली निजाम समर्थक मुस्लिम पार्टी, ने हैदराबाद को स्वतंत्र रहने और भारत और पाकिस्तान के बराबर खड़े होने पर जोर दिया, तदनुसार, जून 1947 में निजाम ने एक फरमान जारी किया कि सत्ता के हस्तांतरण पर, उनका राज्य स्वतंत्रता को फिर से शुरू करेगा भारत सरकार ने इसे "संदिग्ध वैधता का कानूनी दावा" करार देते हुए फरमान को खारिज कर दिया, इसने तर्क दिया कि हैदराबाद की रणनीतिक स्थिति, जो उत्तरी और दक्षिणी भारत के बीच संचार की मुख्य लाइनों के किनारे स्थित है, का मतलब यह था आसानी से "विदेशी हितों" द्वारा भारत को धमकी देने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, और इसके परिणामस्वरूप, इस मुद्दे में राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी चिंताएं शामिल हैं। इतिहास और स्थान ने इसे निर्विवाद रूप से भारतीय बना दिया, और इसलिए इसके अपने "साझे हितों" ने भारत में इसके एकीकरण को अनिवार्य कर दिया।[11]

13 सितंबर 1948 को, भारतीय सेना को ऑपरेशन पोलो के तहत हैदराबाद में इस आधार पर भेजा गया था कि वहां की कानून और व्यवस्था की स्थिति ने दक्षिण भारत की शांति के लिए खतरा पैदा कर दिया था। राज्य ऑपरेशन ने बड़े पैमाने पर सांप्रदायिक हिंसा का नेतृत्व किया, जिसमें 27,000-40,000 के आधिकारिक लोगों से लेकर 200,000 या उससे अधिक के विद्वानों तक की मौतों का अनुमान लगाया गया था। इसके बाद संयुक्त राष्ट्र में की गई शिकायतों को अस्वीकार कर दिया और, पाकिस्तान के जोरदार विरोध और अन्य देशों की कड़ी आलोचना के बावजूद, सुरक्षा परिषद् ने इस सवाल से आगे नहीं निपटा, और हैदराबाद भारत में समा गया।[12]

निष्कर्ष

सरदार पटेल ने 600 से अधिक रियासतों को परिग्रहण की संधि को स्वीकार करने के लिए लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। हालांकि राज्यों को भारत के प्रभुत्व में विलय के समय, सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी और राज्यों के शासकों के बीच गलतफहमी और दुश्मनी जैसी कुछ जटिलताएं विकसित हुई, यह लंबे समय तक बनी नहीं रहीं, लेकिन आपसी सहमति के एक सुखद नोट में समाप्त हो गई। जैसे-जैसे सरदार विभिन्न राज्यों के लोगों के मन में विश्वास पैदा कर सके, एकीकृत राज्यों में सामान्य स्थिति और स्वस्थ प्रशासनिक व्यवस्था को वापस लाने का उनका काम आसान हो गया। राज्यों के एकीकरण का तंत्र इतना सरल निकला कि कुल पांच सौ और विषम राज्यों को एक छोटी सी अवधि में बिना खून की एक बूंद बहाए एकीकृत किया जा सकता था। एकीकरण प्रणाली का सरदार का समग्र प्रबंधन जर्मनी के महान एकीकरणकर्ता बिस्मार्क की सरलता को पार करते हुए दुनिया में किसी भी अन्य एकीकरण प्रक्रिया से कहीं बेहतर साबित हुआ है। देश के समरूपीकरण के निश्चित उद्देश्य के साथ उनका बहुआयामी हमला, उनके लेफ्टिनेंट वी.पी. मेनन, यूएन ढेबर, के.एम. मुंशी, जे.एन. चौधरी, वी. शंकर और अन्य एक बड़ी सफलता साबित हुए हैं, जैसा कि हम उन परिणामों से देख सकते हैं जो बाद के वर्षों में आए हैं। सरदार के प्रयासों ने एकीकरण के बाद की अवधि में उठाए गए आर्थिक कदमों के माध्यम से देश को लोकतंत्रीकरण और समृद्धि की ओर अग्रसर किया है।

संदर्भ

1. एश्टन, एस.आर. (1982), ब्रिटिश पॉलिसी टु द इंडियन स्टेट्स, 1905-1938, लंदन स्टडीज ऑन साउथ एशिया नं. 2, लंदन: कर्जन प्रेस, पृ. 72
2. भार्गव, आर.पी. (1991), द चौंबर ऑफ प्रिंसेस, इंडिया: नॉर्दर्न बुक सेंटर, पृ. 43
3. ब्राउन, जूडिथ एम. (1984), "द माउंटबेटन वायसरायल्टी। 3 जून योजना की घोषणा और स्वागत, 31 मई-7 जुलाई 1947", द इंग्लिश हिस्टोरिकल रिव्यू, 99 (392): 667-668
4. कोपलैंड, इयान (1987), "कांग्रेस पितृत्ववाद: द "हाई कमांड" एंड द स्ट्रगल फॉर फ्रीडम इन प्रिंसली इंडिया", मैसेलोस, जिम, स्ट्रगलिंग एंड रूलिंग में: द इंडियन नेशनल कांग्रेस 1885-1985, नई दिल्ली: स्टर्लिंग प्रकाशक, पृ. 121-140
5. कोपलैंड, इयान (1993), "लॉर्ड माउंटबेटन एंड द इंटीग्रेशन ऑफ द इंडियन स्टेट्स: ए रीअप्रेजल", द जर्नल ऑफ इम्पीरियल एंड कॉमनवेल्थ हिस्ट्री, 21 (2): 385-408,
6. कोपलैंड, इयान (1997), द प्रिंसेस ऑफ इंडिया इन द एंडगेम ऑफ एम्पायर, 1917-1947, कैम्ब्रिज, इंग्लैंड: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 79

7. ईगलटन, क्लाइड (1950), "द केस ऑफ हैदराबाद बिफोर द सिक्योरिटी काउंसिल", द अमेरिकन जर्नल ऑफ इंटरनेशनल लॉ, अमेरिकन सोसाइटी ऑफ इंटरनेशनल लॉ, 44 (2): 277-302
8. फिफिल्ड, रसेल एच. (1950), "द फ्यूचर ऑफ फ्रेंच इंडिया", फार ईस्टर्न रिव्यू, 19 (6): 62-64
9. फिघफिघ्ल्ड, रसेल एच. (1952), "न्यू स्टेट्स इन द इंडियन रियलम", द अमेरिकन जर्नल ऑफ इंटरनेशनल लॉ, अमेरिकन सोसाइटी ऑफ इंटरनेशनल लॉ, 46 (3): 450-463,
10. फिशर, मार्गरेट डब्ल्यू. (1962), "गोवा इन वाइडर पर्सपेक्टिव", एशियन सर्वे, 2 (2): 3-10
11. फिशर, माइकल एच. (1984), "इनडायरेक्ट रूल इन द ब्रिटिश एम्पायर: द फाउंडेशन ऑफ द रेजिडेंसी सिस्टम इन इंडिया (1764-1858), मॉडर्न एशियन स्टडीज, 18 (3): 393-428
12. फरबर, होल्डन (1951), "द यूनिफिकेशन ऑफ इंडिया, 1947-1951", पैसिफिक अफेयर्स, पैसिफिक अफेयर्स, यूनिवर्सिटी ऑफ ब्रिटिश कोलंबिया, 24 (4): 352-371

माओ त्से-तुंग और चे ग्वेरा के स्त्रातेजिक विचारों का समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ० राहुल कुमार

सहायक प्रोफेसर, रक्षा अध्ययन विभाग, एस0एस0वी0 (पी0जी0) कॉलिज, हापुड़

माओ त्से-तुंग और चे ग्वेरा दोनों ने 20वीं सदी के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को बहुत अधिक प्रभावित किया था। उन्होंने अनियमित युद्ध के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। अप्रशिक्षित सेना के युद्ध पर उनके विचारों में कई समानताएं हैं। दोनों प्रतिबद्ध कम्युनिस्ट थे जिन्होंने गुरिल्ला संघर्ष लड़ा और जीता भी। दोनों ने समझा कि विद्रोही कारण के लिए लोग, सुरक्षा, समर्थन और जीत की कुंजी हैं। दोनों ने अपनी किताब को एक ही शीर्षक ''ऑन गुरिल्ला वारफेयर'' दिया। फिर भी प्रत्येक को बारीकी से देखने के बाद, कई महत्वपूर्ण अंतर सामने आते हैं।

जब माओ ने 937 में ऑन गुरिल्ला वारफेयर पर लिखा तो चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सीसीपी) दुनिया के सबसे बड़े युद्धों में से एक युद्ध में थी। सबसे पहले, राष्ट्रवादी कुओमिन्तांग (केएमटी) के खिलाफ युद्ध छेड़ा गया था, जिन्होंने देश के अधिकांश हिस्सों पर शासन किया था। लेकिन 1937 में दोनों पार्टियों ने खुद को मजबूत जापानी सेना के खिलाफ असहज गठबंधन में जोड़ लिया। लगभग 8,000 मील के कठिन 'लॉन्ग मार्च' के दौरान माओ ने अनगिनत आपदाओं को देखा था। इन अनुभवों ने गुरिल्ला युद्ध की उनकी समझ को गहराई से आकार दिया। सामरिक धैर्य, राजनीतिक कार्रवाई और जानबूझकर की गई कार्यप्रणाली उनके सबसे बड़े हथियार हैं।

क्यूबा में अपनी और कास्त्रो की जीत के केवल एक साल बाद, ग्वेरा ने गुरिल्ला युद्ध का अपना संस्करण लिखा। जब उनकी पुस्तक 1960 में प्रकाशित हुई थी, तो उनके पास युद्धकाल के एक वर्ष से अधिक का मुश्किल से ही अनुभव था। माओ के दशकों के संघर्ष के विपरीत, क्यूबा की क्रांति एक बुजुर्ग, लड़खड़ाते तानाशाह के खिलाफ काफी तेज गति से चलने वाला मामला था। नतीजतन, युद्ध के बारे में उनके अनुभव और समझ उनके पूर्ववर्ती से अलग थी। जहां माओ की शैली को मापा और सूक्ष्म किया गया, ग्वेरा का लेखन एक निर्णायक युवा क्रांतिकारी का है जो अगली जीत के लिए उत्सुक है।

दोनों लोग बहुत कुछ पर सहमत हुए, लेकिन उनके अलग-अलग अनुभवों ने उनकी रणनीति में कई महत्वपूर्ण विसंगतियां पैदा कीं। इसके अतिरिक्त, ऐसे कुछ क्षेत्र हैं जिन पर केवल एक लेखक ने चर्चा की है। ग्वेरा ने एक अच्छे सेनानी के लक्षण, गुरिल्ला जीवन का विवरण और क्रांति में महित्राओं की भूमिका पर चर्चा की है। दूससी ओर माओ एक सफल गुरिल्ला नेता के लक्षणों और अनियमित युद्ध के इतिहास का वर्णन करते है।

ग्वेरा आदर्श क्रांतिकारी के व्यक्तित्व, व्यवहार और विश्व इष्टिकोण पर चर्चा करते हैं। वह एक गुरिल्ला सेनानी की नैतिकता के साथ शुरू करते हैं, जिसमें कहा गया है कि, 'उनके पास एक नैतिक आचरण होना चाहिए जो उन्हें सुधार के सच्चे पुजारी के रूप में दिखाता है'। गुरिल्ला भी शारीरिक रूप से स्वस्थ होना चाहिए।' मैदानों और पहाड़ों में हमले की जगह तक मार्च करने में सक्षम होना चाहिए।' ग्वेरा किसी ऐसे व्यक्ति का वर्णन करते हैं जो बुद्धिमान है, लोगों के बीच सहज है और शारीरिक तथा मानसिक दोनों तरह की कठिनाइयों को सहन करने में सक्षम है। जबकि माओ इस क्षेत्र में कुछ सलाह देते हैं, यह उनके मुख्य तर्को के लिए स्पर्शरेखा है और पुस्तक के विभिन्न अध्यायों के माध्यम से केवल छिटपुट रूप से उल्लेख किया गया है।

एक सफल सेनानी के गुणों के साथ-साथ, ग्वेरा गुरिल्ला जीवन की बारीकियों पर भी विस्तार से चर्चा करते हैं, जिससे संभवतः कई लोगों ने इस कार्य पर पुनर्विचार किया। वह गुरिल्ला के जीवन की तुलना एक 'शिकार किए गए जानवर' से करते हैं, जो लगातार चल रहे हैं और उनके बीच संभावित जासूसों से डरते हैं। बीमार और घायलों के लिए भोजन की कमी, भयानक स्वच्छता और खराब चिकित्सा देखभाल का भी वर्णन किया गया है। जबकि माओ युद्ध की कठिनाइयों की चर्चा करते हैं, वह एक अलग तरीके से ऐसा करते हैं जो संभावित गुरिल्ला को एकरसता और भयावहता का सामना करने के लिए बहुत कम करता है।

ग्वेरा द्वारा विशेष रूप से कवर किया गया एक अन्य विषय क्रांति में महिलाओं की भूमिका है। जबकि वह आंदोलन के लिए उनके महत्व के लिए एक अच्छा मामला बनाते हैं। ग्वेरा ने स्पष्ट रूप से उन्हें गुरिल्ला युद्ध में समान भागीदार के रूप में नहीं देखा। कुछ वाक्यों के बाद उनके 'असाधारण महत्व' और 'सबसे कठिन कार्यों को करने की क्षमता' की घोषणा करते हुए वह स्वीकार करता है कि वह मानता है, 'वह कमजोर है,' और उसकी सबसे अच्छी भूमिका है, 'उसके लिंग के लिए उपयुक्त गुण हैं। इसके बावजूद, वह बाद में न केवल रसोइया और साथी के रूप में, बल्कि जासूस, शिक्षक और नर्स के रूप में उनका महत्व बताते हैं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि वे 'कुछ अवसरों पर' एक आदमी के समान युद्ध कार्य कर सकती हैं जबकि ये इष्टिकोण आधुनिक विचारक को पूर्वाग्रह से ग्रसित लग सकते हैं, उन्हें उनके समय और स्थान के संदर्भ में समझना महत्वपूर्ण है।

जहां ग्वेरा ने एक अच्छे गुरिल्ला सेनानी के गुणों को शामिल किया, वहीं माओ ने एक अच्छे नेता के लक्षणों पर चर्चा की। नेताओं को 'अपनी नीतियों में अडिग, दृढ़, वफादार, ईमानदार और मजबूत' होने के साथ-साथ 'क्रांतिकारी तकनीक में अच्छी तरह से शिक्षित' होना चाहिए। माओ तब चर्चा करते हैं कि 'छात्रों, शिक्षकों, प्रोफेसरों, अन्य शिक्षकों, स्थानीय सैनिकों, पेशेवर पुरुषों और कारीगरों' के बीच इन गुणों को कहाँ पाया जा सकता है। हैरानी की बात यह है कि इन सात में से चार पेशे अकादमिक क्षेत्र से आते हैं। माओ ने स्पष्ट रूप से शिक्षित और जानकार नेताओं को महत्व दिया।

आठ केंद्रीय विषय माओ और ग्वेरा दोनों दवारा कवर किए गए हैं; वे चार पर सहमत हैं और चार अन्य पर असहमत हैं। जिन मामलों पर वे सहमत हैं वे हैं: जीत की कुंजी के रूप में जनसंख्या, राजनीतिक और सैन्य कार्रवाई का महत्व, सैन्य रणनीति, और रणनीति विकसित करते समय संदर्भ का महत्व इन योगदानों में सबसे महत्वपूर्ण जनसंख्या के समर्थन की आवश्यकता है। माओ का मानना है कि एक गुरिल्ला लोगों के बीच तैरता है जैसे समुद्र में मछली तैरती है। लोगों के समर्थन के बिना गुरिल्ला पानी से बाहर की मछली है, 'यह जीवित नहीं रह सकती'। ग्वेरा यह कहते हुए सहमत हैं कि, 'गुरिल्ला सेनानी को लोगों से पूरी मदद की जरूरत है और यह एक अनिवार्य शर्त है।' इसे प्राप्त करने के लिए, वे दोनों नागरिकों के साथ सम्मान के साथ व्यवहार करने के महत्व पर सहमत हैं।

माओ ने छापामार ताकतों का मार्गदर्शन करने के लिए तीन नियम और आठ टिप्पणियां दीं। कुछ व्यावहारिक हैं उदाहरण के लिए, 'लोगों से चोरी न करना,' 'घर से बाहर निकलने पर दरवाजा बदल देना,' और 'जो उधार लिया है उसे लौटा देना।' अन्य अधिक सारगर्भित हैं, जैसे न तो स्वार्थी हों और न ही अन्यायपूर्ण और अपने लेन-देन में ईमानदार रहें। इस पर ग्वेरा बस इतना कहते हैं कि लोगों के प्रति व्यवहार, क्षेत्र के लोगों के सभी नियमों और परंपराओं के लिए बड़े सम्मान से नियंत्रित होना चाहिए। दोनों ने युद्ध बंदियों के साथ दयापूर्वक व्यवहार करने के महत्व के बारे में भी लिखा। कुछ ऐसा जो वे मानते थे कि लोगों का समर्थन जीतने में मदद मिली और दुश्मन के दलबदल को प्रेरित किया।

समझौते का दूसरा बिंदु गुरिल्ला युद्ध की स्वाभाविक राजनीतिक प्रकृति है। दिलचस्प बात यह है कि माओ ने क्लॉजविट्ज की घोषणा को स्पष्ट रूप से पढ़ा था कि, युद्ध अन्य तरीकों से राजनीति की निरंतरता है, जबकि ग्वेरा ने शायद ऐसा नहीं किया। माओ इस विषय पर एक से अधिक अध्याय समर्पित करते हैं। यह घोषणा करते हुए कि युद्ध की रणनीतियों का पालन किया गया था, युद्ध केवल हमारे राजनीतिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हैं। वह आगे कहता है कि, सरल दिमाग वाले सैन्यवादियों को, राजनीति और सैन्य मामलों के बीच मौजूद संबंधों को महसूस करने के लिए बनाया जाना चाहिए। ग्वेरा ने इसे कभी भी माओ के रूप में स्पष्ट रूप से नहीं कहा है, फिर भी उनके विचारों से यह स्पष्ट है कि वे इस बिंदु की मूलभूत आवश्यकता से सहमत हैं। उदाहरण के लिए, वह किसानों और शहरी गरीबों दोनों के बीच वर्ग चेतना बढ़ाने के महत्व पर सहमत हैं। वह यह भी कहते हैं कि अधिक सैन्य कार्रवाइयों के बदले लोगों को क्रांति के कारणों में बदलने के प्रयासों पर ध्यान देना बेहतर होगा।

गुरिल्ला सैन्य रणनीति की मूल बातें दोनों के बीच समझौते का एक अन्य क्षेत्र है। माओ ने निम्नलिखित गूढ़ वाक्यांश का उपयोग करते हुए इन युक्तियों का प्रसिद्ध वर्णन किया। 'जब वह आगे बढ़े तो पीछे हटें, रुकने पर उसे परेशान करें, थके होने पर उस पर प्रहार करें और जब वह पीछे हट जाए तो उसका पीछा करें। वह सतर्कता, गतिशीलता और हमले के साथ-साथ दुश्मन की स्थिति में समायोजन को जीत के लिए महत्वपूर्ण मानता है। इसी तरह, ग्वेरा का कहना है कि गुरिल्ला बैंड को एक बेहतर ताकत के साथ निर्णायक लड़ाई में शामित्र होने के बजाय भाग जाना चाहिए। वह जीत के लिए महत्वपूर्ण के रूप में गतिशील्ता और दुश्मन की कार्रवाइयों के समायोजन को भी सूचीबद्ध करता है।

हर संघर्ष की स्थिति अलग होती है और दोनों विचारक इस बात से सहमत हैं कि प्रभावी रणनीति विकसित करने के लिए इस अद्वितीय संदर्भ को समझना महत्वपूर्ण है। इस पर माओ क्लॉजविट्ज के फैसले को उद्धत करते हैं कि, हर अवधि में युद्धों के स्वतंत्र रूप और स्वतंत्र स्थितियां होती हैं और इसलिए हर अवधि में युद्ध का अपना स्वतंत्र सिद्धांत होना चाहिए। वह पर्यावरण, अर्थव्यवस्था, रीति-रिवाजों और राष्ट्रीय चरित्र के महत्व पर चर्चा करता है। इस पर ग्वेरा कहते हैं, प्रत्येक देश में भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियाँ गुरिल्ला युद्ध के तरीके और विशेष रूपों को निर्धारित करती हैं और यह भी कहते हैं, हम एक रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं, बाइबिल नहीं।

ग्वेरा और माओ के बीच असहमति के चार प्रमुख बिंदु हैं। इन चारों को सीधे तौर पर उन युद्धों की अलग-अलत्रग परिस्थितियों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है जिनमें वे लड़े गए थे। ये उनके द्वारा वर्णित युद्ध का लक्ष्य, क्रांति के लिए आवश्यक शर्तें, गुरिल्ला युद्ध के चरण और उनके लेखन का सर्वर है। प्रत्येक मामले में, क्यूबा के अभियान ने ग्वेरा को उनके पूर्ववर्ती द्वारा तैयार किए गए निष्कर्षों की तुलना में अलग निष्कर्ष पर पहुँचाया।

अपने लेखन के समय, माओ की प्रमुख चिंता एक विदेशी आक्रमणकारी को हटाना था। दूसरी ओर, ग्वेरा सरकार की एक प्रणाली को हटाने से अधिक चिंतित थे। इसलिए जब माओ जीत के लिए आवश्यक सात चरणों को सूचीबद्ध करते है तो उनमें से दो (राष्ट्रीय ताकत को पुन: प्राप्त करना और खोए हुए क्षेत्रों को पुन: प्राप्त करना) केवल एक विदेशी आक्रमणकारी से जुड़ी स्थितियों में लागू होते हैं। इससे गुरिल्ला और नियमित बलों के बीच सहयोग के संबंध में मतभेद होता है। माओ स्पष्ट रूप से नियमित बलों को अभियान के एक महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में देखता है। यह घोषणा करते हुए कि युद्ध जीतने के लिए केवल अनियमित ताकतों का उपयोग करने का प्रयास, गुरिल्ला शत्रुता के महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करता है। वह आगे कहते हैं कि छापामार गतिविधियों को नियमित बलों की गतिविधियों से अलग नहीं किया जा सकता है जो अंतिम जीत की कुंजी हैं। ग्वेरा दो प्रकार के गुरिल्ला युद्ध की ओर इशारा करते हुए चर्चा का विस्तार और स्पष्टीकरण करते हैं, जिनमें से एक में नियमित सेनाएं शामिल हैं और जिनमें से एक नहीं है। चूंकि क्यूबा की क्रांति में युद्ध के अंत तक ऐसी ताकतों को शामिल नहीं किया गया था, इसलिए उनकी पुस्तक इस सहयोग पर चर्चा नहीं करती है। यह अवधारणा गुरिल्ला युद्ध के चरणों से निकटता से संबंधित है, जिसकी चर्चा नीचे की गई है।

दोनों के बीच दूसरी बड़ी असहमति क्रांति के लिए आवश्यक शर्तों से संबंधित है। माओ क्रांति के लिए विशिष्ट परिस्थितियों को सूचीबद्ध नहीं करता है, लेकिन यह बताता है कि इस प्रकार के युद्ध, उत्पीड़क और उत्पीडिघ्तों के बीच अपरिहार्य संघर्ष जब बाद में उनके धीरज की सीमा तक पहुंच जाते हैं'। माओ का मानना है कि छापामार कार्रवाई शुरू होने से पहले, लोगों को उनके उत्पीड़न के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए और दुश्मन से अपनी मर्जी से लड़ने के लिए तैयार होना चाहिए। ग्वेरा इससे असहमत होते हुए कहते हैं कि अंतिम जीत के लिए वर्ग चेतना जैसी कुछ शर्तें आवश्यक हैं, लेकिन गुरिल्ला कार्रवाई शुरू करने के लिए वे आवश्यक नहीं हैं। उनका तर्क है कि ये स्थितियां, बहुत कम ही अनायास ही अस्तित्व में आती हैं' और इसके बजाय सैन्य कार्रवाई के माध्यम से बनाई जा सकती हैं। इसे बाद में गुरिल्ला युद्ध के फोक्विस्मो या फोको सिद्धांत के रूप में जाना जाएगा। सीधे शब्दों में कहें, तो ग्वेरा का मानना था कि गुरिल्ला ताकतें क्रांति को स्वयं शुरू कर सकती हैं, जिससे वे आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण कर सकें।

दूसरी ओर, माओ ने तीन अलग-अलग चरणों में गुरिल्ला युद्ध के बारे में बताया हैं। इनमें से पहला है राजनीतिक कार्य, जमीनी स्तर पर आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण अगले दो हैं, गुरिल्ला युद्ध और मोबाइल युद्ध (ये हमेशा अनुक्रमिक या समान नहीं होते हैं, और प्रत्येक चरण के विभिन्न तत्व विभिन्न मोर्चों पर एक साथ मौजूद हो सकते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो राजनीतिक कार्य

लोगों में आवश्यक जागरूकता और प्रेरणा का निर्माण करते हैं। गुरिल्ला युद्ध राजनीतिक आधार का निर्माण करते हुए दुश्मन को कमजोर करने का प्रयास करता है। और मोबाइल युद्ध दुश्मन की सेना को नष्ट करने, उसके शहरों पर कब्जा करने और अंततः पुराने शासन के पतन की मांग करता है। माओ तीसरे चरण में जाने से पहले पूरी की जाने वाली हर चीज को सूचीबद्ध करने में काफी गहन है, जिसमें उपकरणों की गुणवत्ता, प्रशिक्षण के स्तर, आपूर्ति संरचनाएं, चिकित्सा और स्वच्छता इकाइयां, राजनीतिक ब्यूरो और संचार प्रणाली कुछ ही नाम के लिए शामिल हैं।

ग्वेरा चरणबद्ध युद्ध की सामान्य अवधारणा पर सहमत हैं, लेकिन वह युद्ध के स्तरों को निर्दिष्ट नहीं करते हैं या एक से दूसरे में आगे बढ़ने की कोई विधि नहीं बताते हैं। इसके बजाय, वह गुरिल्ला बलों के प्रसार की तुलना मधुमक्खी के छत्ते से करते हैं, और तर्क देते हैं कि जब एक गुरिल्ला इकाई, एक सम्मानजनक शक्ति तक पहुँचती है तो नए बलों के गठन के लिए आगे बढ़ना चाहिए। जब गुरिल्ला ताकतें पर्याप्त रूप से मजबूत हो जाती हैं, तो उन्हें 'नियमित सेनाओं द्वारा किए जाने वाले युद्ध में एक साथ शामिल होना चाहिए। जबकि दोनों विचारकों के बीच समानताएं पाई जा सकती हैं, माओ कई मोर्चों पर धीरे-धीरे दुश्मन पर काबू पाने के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण प्रदान करते है। गवेरा विकास की अधिक बुनियादी रणनीति के लिए तर्क देते हैं जब तक कि महत्वपूर्ण जनमानस विकसित नहीं हो जाता।

प्रत्येक के संघर्षों ने निस्संदेह उनके स्वभाव को प्रभावित किया है और यह उनके विचारों की शैली से लेकर उनके संगठन तक हर चीज में दिखाई देता है। लेखन के समय माओ ग्वेरा से बारह वर्ष बड़े थे और उन्हें लगभग एक दशक अधिक छापामार युद्ध का अनुभव था। दूसरी ओर, ग्वेरा, एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ, दुनिया के उत्पीडिघ्तों से गुरिल्ला युद्ध के माध्यम से खुद को मुक्त करने का आहवान करते हैं। निम्नलिखित दो वाक्य इस संबंध में लेखकों के मतभेदों को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं। माओ, युद्ध के मौलिक स्वयंसिद्ध का वर्णन करते हैं, राष्ट्रीय नीति के अनुसार अपनी ताकत का संरक्षण करते हैं। ग्वेरा एक पूरी तरह से अलग दृष्टिकोण लेता है, युद्ध को एक सबसे दिलचस्प घटना के रूप में वर्णित करते है, जो सभी को खुशी के आक्षेप में ले जाता है और हर किसी के कदमों में नया जोश डालता है। युद्ध की इन दो अलग-अलग व्याख्याओं को पढ़ने के बाद, कोई भी युवा क्रांतिकारी पर अपनी आँखें घुमाते हुए माओ को लगभग देख सकता है।

दोनों कार्यों का अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा। माओ को अभी भी नियमित रूप से विद्रोहियों और प्रति-विद्रोहियों द्वारा समान रूप से पढ़ा जाता है। लेकिन जहां माओ की प्रासंगिकता जारी है या शायद बढ़ी भी है, ग्वेरा के सिद्धांतों को अभी बहुत फल देना बाकी है। दर्जनों क्रांतिकारी आंदोलनों ने उनके फोको शॉर्टकट का उपयोग करने का प्रयास किया, फिर भी अब तक का एकमात्र सफल उपयोग क्यूबा में था। ग्वेरा खुद 7 साल बाद बोलीविया में इसी तरह की कोशिश करते हुए मर गए। रणनीति के उपयोग के अन्य उल्लेखनीय उदाहरण हैं। अल सल्वाडोर के एफएमएलएन, संयुक्त राज्य अमेरिका में सिम्बियोनीज लिबरेशन आर्मी, निकारागुआ के एफएसएलएन ष्सैंडनिस्टासष् और कई अन्य। एक दशक से अधिक समय तक फोकस आधारित रणनीतियों का प्रयास करने के बाद, वे अंततः इस रणनीति को जमीनी स्तर पर लोकप्रिय विद्रोह के पक्ष में छोड़ने के बाद ही सफल हुए। इनमें से कुछ समूहों के पास अपने राष्ट्रों के निर्माण और अपने लोगों की मदद करने के बारे में कम से कम सुखद विचार थे, फिर भी सभी विफल रहे। इसकी तुलना पेरू में सेंडेरो लुमिनोसो के माओवादी प्रेरित विद्रोह से की गई। फिर भी पहले चरण के राजनीतिक विकास पर लगातार ध्यान केंद्रित करके, यह एक दशक से अधिक समय तक लड़ाई में बने रहने में कामयाब रहा।

इसका मतलब यह नहीं है कि ग्वेरा के सिद्धांतों का अब कोई महत्व नहीं रह गया है। गुरिल्ला रणनीति और गुरिल्ला जीवन के विवरण की उनकी समझ आज भी प्रासंगिक है। वह माओ के कई मौलिक उपदेशों से भी सहमत हैं जिसमे राजनीतिक शक्ति की प्रधानता, लोगों का समर्थन और संदर्भ का महत्व शामिल हैं। इसके अलावा, उनकी कार्रवाई का आहवान आज भी दुनिया भर के लोगों को प्रेरित करता है। भले ही उनके कुछ सिद्धांत सही न हों, विद्रोहियों और प्रति-विद्रोहियों को समान रूप से उन्हें पूरी तरह से छूट देना नासममझी होगी। फिर भी अब यह स्पष्ट हो गया है कि माओ अपने व्यावहारिक दृष्टिकोण के साथ प्रभावी गुरिल्ला युद्ध के सिद्धांतों का अधिक सटीक वर्णन करते हैं। उनका व्यापक अनुभव और युद्ध की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का लंबा अध्ययन सुनिश्चित करता है कि उनके सिद्धांत प्रासंगिक बने रहेंगे। ग्वेरा की पुस्तक जिसमें व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ का अभाव था।क्यूबा की क्रांति के अनूठे अनुभवों पर बहुत अधिक निर्भर थी। इसने उनके दोषपूर्ण फोको शॉर्टकट सिद्धांत को जन्म दिया।

इन दोषों के बावजूद, छात्रों, चिकित्सकों और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के नीति-निर्माताओं के लिए दोनों पुस्तकों को पढ़ना बुद्धिमानी होगी। युद्ध की प्रकृति हमेशा विकसित हो रही है और आज यह बीस साल पहले की तुलना में कम राज्य केंद्रित है। भविष्य के अधिकांश संघर्ष माओ और ग्वेरा के वर्णन की तरह दिखने वाले हैं। विकसित दुनिया में नीति निर्माताओं के लिए, दो इष्टिकोणों के बीच अंतर को समझने से विद्रोही आंदोलनों को हराने के लिए रणनीति बनाने में काफी मदद मिलेगी। अपने अगले कदम पर विचार करने वाले क्रांतिकारी के लिए, उसके सामने विकल्पों का अध्ययन करना भी उतना ही बुद्धिमानी होगी। प्रत्येक को निम्नलिखित बुनियादी सिद्धांतों को याद रखना चाहिए। जनसंख्या जीत की कुंजी है,इसलिए उनके साथ अच्छा व्यवहार करें। राजनीतिक कार्रवाई कम से कम सैन्य कार्रवाई जितनी ही महत्वपूर्ण है। याद रखें कि प्रभावी विद्रोही रणनीति हमेशा निर्णायक लड़ाई से बचने की कोशिश करेगी जब तक कि वे इसे जीत नहीं सकते। और अंत में, रणनीति विकसित करते समय संदर्भ के महत्व को समझें। इन मूल्यों को याद करके, विद्रोही और प्रति-विद्रोही समान रूप से कल के युद्ध के मैदानों के लिए खुद को बेहतर तरीके से तैयार पाएंगे।

सन्दर्भ:

1. त्से तुंग, माओं, ''ऑन गुरिल्ला वारफेयर'' (1961), मेरिटीनों फाईन बुक।
2. ग्वेरा, सी: ''गुरिल्ला वारफेयर'' (1960), न्यूयार्क मंथली रिर्व्य प्रेस।
3. डेनियल जे0एफ0, रीडिस्कवरिंग काउण्टर-इनसर्जेनसी, (2013), वाशिंगटन डीसी यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. वाल्टर एल, ''गुरिल्ला वारफेयर: ए हिस्टोरिकल एण्ड क्रीटकल स्टडी'' (1976), ट्रांसकन पब्लिशर्स।
5. "Guerrilla" ऑक्सफोर्ड इंग्लिश ड्रिक्सनरी प्रेस।
6. थामस राबर्ट, ''रीलर्निंग काउण्टर-इनसर्जेसी वारफेयर'' (2004), स्प्रिंग।

महिला सशक्तिकरण की प्रतिमूर्तिः रूद्रम्मादेवी एक अध्ययन

डॉ० संजना सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, कलिंगा विश्वविद्यालय, रायपुर छत्तीसगढ़

सारांशः-

महिला सशक्तिकरण हमेशा से ही एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा रहा है। वर्तमान परिवेश की बात करे तो महिलाएँ ज्यादा सुदृढ एवं आत्मनिर्भर नजर आती है, पर इसके बीज तो प्राचीन काल में ही बोए जा चुके थे। इसी संदर्भ में इस शोध प्रपत्र के माध्यम से मैं सभी का ध्यान भारतीय परिदृश्य में 12 वीं से 14 वीं सदी के बीच आकृष्ट करना चाहती हूँ। जहाँ महिलाओं को सिर्फ सामाजिक प्रक्रिया का अंग समझा जाता था और सामान्य अवसर मिलना कपोल कल्पना दिखती थी। वही भारत के दक्षिण प्रांत में रूद्रमादेवी का शासिका के तौर पर स्थापित होना विश्व का ध्यान आकृष्ट करता है। जो महिलाओं के धैर्य, शौर्य एंव साहस का उदाहरण प्रस्तुत करता है। काकतीय वंश एक दक्षिण भारतीय राजवंश था जिसने आंध्र प्रदेश के अधिकांश दक्कन क्षेत्र पर 1150 से 1323ई0 तक शासन किया। काकतीयों की राजधानी ओरूगुल्लु थी, जिसे अब वारंगल के नाम से जाना जाता हैं। जो कि, प्रारम्भिक काल में राष्ट्रकूटों एंव पश्चिमी चालूक्यों के सामंत थे। परन्तु अपनी वीरता, शौर्य ने उन्हे स्वतंत्र शासन की ओर बढाया। जिसने आगे चलकर रूद्माादेवी जैसे शासको से दुनिया का साक्षात्कार कराया। हालांकि तत्कालीन समाज महिला को शासिका के तौर पर स्वीकार नही कर सकता था इसके बावजूद गणपति देव ने अपनी पुत्री को उत्तराधिकारी के रूप में चुनने का निर्णय लिया। परन्तु प्रारंभ के दिनो में गणपति देव ने राष्ट्र में आंतरिक एंव बाह्य कलहो को भापते हुए रूद्माादेवी को पुरुष 'रूद्रदेव' के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किया। पुरूष की ही भाँति कुशल योद्धा एंव सभी विद्याओं का प्रशिक्षण दिलाया। जो हमें प्राचीन समय में समानता के कारक समाज में मौजूद होने का प्रमाण देता हैं। परन्तु समय के साथ ही उनका जनता के प्रति प्रेम, समर्पण, राज्य भ्रमण, जनता के बीच जाकर उनके समस्याओं को समझना ज्यादा दिनों तक स्त्री होने की बात छुपा ना सकी और गणपति देव ने कलहों को नजरअंदाज एंव रुदम्मादेवी के ऊपर कलहों को शांत करने की क्षमता को देखते हुए गणपति देव ने महिला उत्तराधिकारी के रूप में घोषित किया ।रूद्रमा देवी 1259 ई0 में काकतीय वंश एव भारतीय आंध क्षेत्र की पहली स्वतंत्र महिला शासिका के रूप में सत्तारूढ़ हुई। जो निश्चित ही एक ऐतिहासिक घटना बन गई। इसने हमारे देश के इतिहास में एक नया अध्याय खोल दिया इसका कारण था कि इससे पहले विभिन्न राजवंशो में सहयोगी एंव संरक्षिका के तौर पर ही महिलाएँ सामने आई थी। वास्तविक सत्तारूढ़ शासिका के तौर पर रूद्माादेवी का प्रदुर्भाव आने वाली सदियो के लिए एक देशव्यापी उदाहरण बनकर उभरा। रूद्माा के युद्ध कौशल, कुशल कुटनीति, देश प्रेम, कलात्मक प्रवृत्ति ने काकतीय वंश को भारतीय पटल पर एक सशक्त शासन के रूप में उभारा।

रूद्रमा का सत्तारूढ़ होना रानी दुर्गावती, चांद-बीबी, बेगम हजरत महल, कुंतल देवी तथा रजिया सुल्तान जिसे भारत की पहली शासिका का दर्जा प्राप्त है, संक्रमण की प्रक्रिया मानी जा सकती है। रानी रूद्रमा ने खुद को अपनी प्रजा के प्रति जवाबदेह बना लिया था। वह एक सेनापति थी जो घोड़े की सवारी के साथ - साथ घोड़े की रक्षा करना भी जानती थी। रूद्रगा रवंय ही युद्धों का संचालन करती थी और सागने रो नेतृत्व भी करती थी। काफी लंबी अवधि तक चलने वाला यह वंश ऐतिहासिक दृष्टिकोण से थोड़ा उपेक्षित महसूस करता है भारतीय इतिहास के द्वारा काफी कम रानी रूद्रमादेवी के बारे में तथ्यों को सामने लाया गया है। मेरे विचार में यह शोध प्रपत्र निश्चित ही महिलाओं पर वैश्विक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव और ध्यान आकृष्ट करेगा।

प्रस्तावना:-

वैश्विक स्तर पर हमने हमेशा ही महिलाओं की स्थिति में बदलाव महसूस किया है वैदिक काल हो या उत्तर वैदिक काल, मलाला हो या एंजेला मार्केल ये सारे परिदृश्य महिलाओं के ऊपर दबाव एंव ऊपर उठने की दास्तां व्यक्त करता है। भारतीय परिदृश्य की बात करे तो 'मातृदेवो भव:, ''पितृ देवो भव:' के पूर्व का प्रचलन रहा है। फिर भी सर्वोच्चता क्या समानता भी विरले ही है। इसके विपरीत महिलाओं ने हमेशा ही कुशल सहयोगी के साथ - साथ नेतृत्वकर्ता के रूप में भी अपने आपको स्थापित किया हैं और समाज स्वीकारने को मजबूर हुआ है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारतीय दक्षिण राज्य, काकतीय शासिका रूद्रमादेवी है। काकतीय वंश का उदय 12 से 14 वी शताब्दी के बीच में भारत के दक्षिणी प्रांत जो वर्तमान में तेलगांना तथा आंध्रप्रदेश के रूप में जाना जाता है हुआ। जो प्रारभ में राष्ट्रकुटों तथा पश्चिमी चालुक्यों के तहत सामंत के रूप में कार्य करते थे। 1163 ई0 में चालुक्य अधीनस्थों का दमन करके प्रतापरूद्र के नेतृत्व में काकतीय वंश ने संप्रभुता ग्रहण की। ''दिनेशचन्द्र सरकार द्वारा शिलालेखों और सिक्कों के अध्ययन से पता चलता हैं कि परिवार के नाम का कोई समकालीन मानक वर्तनी नहीं थी। काकतीय, काकिता, काकाती और काकत्या शब्द का वर्णन मिलता है जो राजाओं के नाम के आगे जैसे, काकतीय रूद्रदेव, काकतीय गणपति देव या ककाती रूद्रदेव, ककाती गणपति देव शमिल किया जाना था। काकतीय शब्द मूलत: 'काकती से निकला है जिसे एक देवी या स्थान के नाम से जाना जाता है। कुमारस्वामी सोमपिथिन (15वी सदी के लेखक) ने विश्वनाथ पर एक टिप्पणी लिखे जिसमें 'प्रतारूद्रिया' के अनुसार राजवंश का नाम देवी दुर्गा के रूप काकाती के नाम पर रखा गया था। काकतीय काल के बारे में अधिकांश जानकारी शिलालेखो से ही प्राप्त होती है। जिसमें करीब 1000 पत्थर के शिलालेख और 12 तांबे की प्लेट शिलालेख शामिल है। काकतीय देश के बारे में विस्तृत जानकारी काकतीय काल तथा उसके बाद लिखी गई।

संस्कृत और तेलगू साहित्य कृतियों से भी प्राप्त होती है। इसमें शामिल है- प्रतापरूदियम, क्रीडा भोरापमक, पंडिताराहया-चरितमु, शिवयोगसरामु, नितिसार, नीतिशास्त्र-मुक्तावली, नत्य-रत्नावली, प्रतापचरित्रम, सिद्धेश्वर, चरित्र, सोमदेव, राजिविशे-चरित्रम, वेल्लि और वेलुगोत्तिवा-वंशचरित आदि।

रानी रूद्रमादेवी का जन्म 1262 ई0 में जो कि काकातीय राजा गणपति देव की पुत्री थी। रूद्रमादेवी अपने पिता कर स्त्री संतान थी उन्हें कोई पुत्र नही था हालांकि जनता एंव राज्य के द्वारा उत्तराधिकारी के रूप में पुरुष संतान की इच्छा की जा रही थी। जिस समय रूद्रगादेवी का जन्म हुआ उन दिनों दक्षिण भारत में पुरूष शाराको का ही प्रभुत्व था ऐरो में पड़ोसी दुश्मन राज्य द्वारा कलह की स्थिति जड़ें जमा रही थी, इसके स्तर गणपतिदेव ने औपचारिक रूप से प्राचीन पुत्रिका समारोह के माध्यम से पुत्री को पुत्र के रूप में नामित किया। तथा जनता के सामने अपनी पुत्री का नाम रूद्रदेव (पुरूष) रखा। टेलबोट सीथिया, रुद्रमादेवी द फीमेल किंग: द जेडर पॉलिटिकल आथोरिटी इन मेडिबल इंडिया में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 62 शिलालेखो में से 52 शिलालेखो में स्त्री रूद्रमादेवी को पुरूष रूद्रदेव के रूप में वर्णित किया गया है। पुरूष शासकों के प्रभुत्व होने के कारण गणपतिदेव ने उन्हें एक राजकुमार के रूप में पाला और उन्हे युद्ध कला सिखाई। 14 साल की उम्र में रुद्रदेव ने अपने पिता के साथ रुद्रदेव के नाम पर ही सिंहासन साझा किया। उसने सीखा कि राज्य का प्रशासन कैसे किया जाता है और आम लोगों की पीड़ा को समझाने के लिए जनता के साथ बैठका में भाग लिया। साथ ही कलाकारों, श्रमिकों को सभी शिलालेखों में उनके पुरूष नाम का उपयोग करने को कहा , जिसकी पुष्टि ''1235ई0 का करीम नगर का पोटगुल्लू एवं 1246 ई0 का भवेश्वर शिलालेख करता है। शिवदेय्या काकतीय वंश के गुरु एंव महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे, इन्होनें ही गणपति देव को रूद्रमा को गद्दी पर बिठाने के लिए आश्वश्त किया एक उत्तम गुरू एंव परायर्शदाता थे। राज्य के सभी सामान्य व्यक्तियों को उपस्थिति में रूद्रमा का अभिषेक उनके राज्य के प्रति प्रेम, सम्मान और समर्पण के कारण स्त्री शासिका रुद्रमादेवी के रूप में कराया गया । पूरे राज्य में उत्सव का महौल था। इस असाधारण घटना को देखने के लिए लोग दूर-दूर से पहुंचे थे। 1269 ई० का दुर्गी शिलालेख'' रूद्रमादेवी को राजा के रूप में संबोधित करता है। सिंहासनरूढ होने के पश्चात् रूद्रमादेवी का परिवारिक एंव बाहय विद्रोह बढ़ता जा रहा था स्त्री शासिका के अन्दर रहना किसी की बाह्य वंश एंव आंतरिक परिवार को मंजूर नही था। ''एकम्ब्रनाथ द्वारा लिखित। प्रतापचरित्र'' उनके सौतेले भाईयों, हरिहरदेव और मुरारीदेव को रुद्रमा को हटाने और वारंगल पर कब्जा करने का उल्लेख करती है। शाही परिवार के इन दोनों भाईयों ने शत्रुओं से हाथ गिलाकर रूद्रगा को सिंहासन से हटाने की साजिश की थी। परन्तु रूद्रगादेवी के अदम्य साहस एंव शौर्य एंव कूटनीति ने इन्हें असफल किया। बाहरी खतरों में कलिंग राजा नरसिम्हा तथा तत्कालीन सबसे बड़े शत्रु देवगिरि के यादव काकतीय वंश की इस

महिला शासिका को कुचलना चाह रहे थे जो कि रुद्रमादेवी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण एंव निर्णयक माना जाता है, के साथ युद्ध हुआ। जिराका परिचालन लद्रगा ने रवयं किया जो कि लगातार 15 दिनों तक चलता रहा। ''बीदर शिलालेख'' इस बात की पुष्टि करता है कि रूद्रमा देवी ने शत्रुओं का पीछा तब तक किया जब तक कि अपनी राजधानी में शरण ना लेंलें। उसने न केवल युद्ध किया अपितु क्षतिपूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में सोने की मांग भी की। यह युद्ध रूद्रमादेवी के शासन के लिए एक निर्णायक अध्याय था इसी के पश्चात् रूद्रमादेवी ने 'राय गज केसरी की उपाधि धारण की जिसका अर्थ है, ''हाथी समान शत्रु राजाओं के लिए शेर'' जो कि इसके पूर्व गणपति देव इस उपाधि से सुशोभित थे, पुत्री को प्राप्त हुआ जो अपने आप में ऐतिहासिकता समेटे हुए है। उनकी जीत के प्रतीक के रूप में स्वयंभूदेव मंदिर में एक सुंदर रंगमंडपा बनाया गया जिसे आज भी इतने खंडहरों के रूप में देखा जा सकता है। 1290 ई0 का ''अम्बदेव का त्रिपुरांतकम शिलालेख''रानी रूद्रमा के अधीनस्थ कई मंडलिकों पर उनकी सभी जीत के लिए खाते के रूप में खड़ा है साथ ही अभिलेख हमें पांड्यों एवं अन्य यादवों के साथ मैत्रीपूर्ण गठबंधन की चर्चा भी करता है। रूद्मा ने अपने शासन व्यवस्था में नईमकारी प्रणाली की व्यवस्था की इसके तहत किलें को 75 गढ़ों में बांटा गया तथा प्रत्येक गढ़ की सुरक्षा शासक की सेवा में एक नायक को सौंपा गया है जिरो यह जिग्गेदारी दी जाती थी उराकी उराकी घुडरावार रोना उनकी वित्तीय स्थिति के साथ-साथ स्मृद्धि के सार पर भी निर्भर करती है करती थी ।राजा को सेना की पूर्ति के अलावा उन्हें निश्चित रूप से कर देना पड़ता था ।इस तरह राजा इन बलों की ताकत और स्थिरता पर नियंत्रण रख सकता था द्यरूद्रमा ने राज्य की सुरक्षा और कल्याण हेतु किलें के दीवारों को चारों ओर रो उठाया और गजबूत किया साथ ही किले के चारों और खाई का निर्माण करवाया। रानी ने मंदिरों और मेंहराबों के निर्माण को प्रोत्साहित किया और स्वयंभू मंदिर में एक रंग मंडप का निर्माण करवाया जो उनके उपजात सोच को दर्शाती है रानी द्वारा लोगों की कलात्मक जरूरतों को पूरा करने वाले कलाकारों और मंदिर को मंडलियों द्वारा प्राप्त लोकप्रियता को संरक्षण दिया जाता था। मलकापुर के शिलालेख'' गुंटुर जिले में स्थित 1261 ईसवी में रूद्मादेवी द्वारा 10 नर्तकियों और न तबलावादक, तक एक कश्मीरी गायक 14 महिलाएं गायकों और ऑरकेस्टा के 6 सदस्यों के दिए को दिए गए संरक्षण की बात करता है। 1259 ईसवी के ''जूतिगां अभिलेख'' रुद्रमादेवी के विवाह का उल्लेख करता है उनका विवाह लगभग 1235 ईसवी में होने की चर्चा उनका विवाह वीरभद्र के साथ हुआ परंतु कम उम्र में ही रूद्रमा और वीरभद्र का साथ छूट गया था। किदवंती है कि रानी रूद्रमा एक लड़के के परवरिश के कारण संगीत और कला की पारखी नहीं थी लेकिन शिवतांडव पेरिनि के रूप में काफी प्रचलित थी। उसने इस नृत्य को सैनिकों के लिए एक अळयास के रूप में पाया और शाही सेना के प्रशिक्षण का हिस्सस बना दिया। काकतीय क्षेत्र के पाए गए शिलालेख एक बड़ी संख्या में महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है महिलाओं ने में बड़ी संख्या में व्यक्तिगत दाताओं का 11 प्रतिशत शामिल थी। महिलाओं ने मंदिरों का काफी अनुसरण किया साथ ही अभिलेख यह भी बताते हैं कि यह महिलाओं की पसंद थी कि वह अपने मायके के परिवार को उजागर करना चाहती हैं या फिर ससुराल पक्ष को। महिलाएं घरेलू कार्य तक सीमित नहीं थी। साथ ही रुद्रमादेवी का शासन रूढिवादी बाधाओं का भी खंडन करता हैं।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण काकतीय एंड देयर टाइमर में स्पष्ट किया है कि तत्कालीन परिस्थिति एवं सामाजिक व्यवस्थाओं के ऊपर काकतीय वंश द्वारा कला संस्कृति का अनुपम सौंदर्य देखने को मिलता है जो उस काल के समृद्धि को प्रस्तुत करता है।

सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में काकतीय वंश के नायकर व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था का वर्णन किया है।

- **डॉ० अलेख्य पुजाला 2012 स्प्लेंडर ऑफ तेलुगू परफार्मिंग आट्र्सः**- ए हिस्टोरिकलइ पनपेक्टिव में इन्होने दक्षिण राज्य के कला एवं संस्कृति का वर्णन वर्णन किया है और इतिहास को एक नई दिशा दी है।
- **डॉ० सत्यनरायण शर्मा, काकतीय चरित्रमु तेलगूः**- विजयाभारती प्रकाशन 2001 कृष्णा कुमार जी0 रानी रूद्रमा देवी, नव भारती 1985 दक्षिण भारतीय शिलालेख दृ खंड दिल्ली 1948
- **डॉ0 अलेख्य पुंजाला 2016ः**- रानी रूद्रमा देवीः अलेख्य पुजाला जी ने इस किताब के माध्यम से रुद्रमादेवी के शासन व्यक्तित्व, कार्यप्रणाली का विस्तृत अध्ययन कर के स्पष्ट किया है कि रूद्रमा देवी का शासन त्तकालीन व्यवस्था की ऊपरी सीमा थी जहां उन्नत व्यवस्था देखने को मिली।
- **मोनी गाथा 2018 काकतीय वंशः**- एक आर्किटेक्चरल सर्जनमें काकतीय वंश के स्थापत्य कला की चर्चा की है जिसमें रामेश्वर मंदिरय बारगल किला रामेश्वर मंदिरय मंदलिका आदि की चर्चा की है जो कि आश्चर्यजनक स्थापत्य का जनक माना जा सकता है।

- **टेलबोट सिंथिया 1991:-** रुद्रमादेवी द फीमेल किंग जेंडर पॉलीटिकल आथोरिटी इन मेडिवल इंडिया ।
- **गरोडिया अर्चना 2019:-** वुमेन हू रूल्ड इडिया वारियरस् आइकनस
- **कोरे कोटेस्वर राव 2019:-** रिलिजीयस कंडीसनस ड्यूरिंग द काकतीय फेयूडेटरान (इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिस्ट्री)

शोध प्रपत्र में शामिल साहित्य के सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि यह काकतीय वंश का साहित्य , आर्किटेक्चर रुद्रमादेवी का इतिहास ,शासन व्यवस्था आदि तत्कालीन दक्षिणी शासन से सभी मायने में उत्तम एवं कलात्मक था । हालांकि ये सर्वेक्षण काकतीय वंश के उपेक्षित होने को भी महसूस करता है इसके इतर प्रारंभिक स्त्रोत के खोज एवं नए इतिहासकारों की दृष्टि इसे विश्व मंच पर स्थापित करने के लिए प्रयासरत है।

अध्ययन का उद्देश्य:-

1. रुद्रमादेवी के प्रारंभिक जीवन का ऐतिहासिक अध्ययन करना।
2. रुद्रगादेवी के शारान व्यवरथा, कूटनीति, राजनितिक, व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययन करना।
3. रूदमादेवी का रुद्रदेव से रूद्रमादेवी अर्थात् पुरुष पहचान से स्त्री शासिका के रूप में व्यक्तित्व का ऐतिहासिक अध्ययन करना।
4. काकतीय वंश के तत्कालीन सामाजिक प्रक्रिया का ऐतिहासिक अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक वर्णनात्मक विधि का उपयोग किया गया है जिसमें उपकरण के तौर पर प्रारंभिक स्रोतों: लिखित दस्तावेज, अभिलेखों तथा पुस्तकों के लेखों के आधार पर विश्लेषण एवं विवेचना को आधार बनाकर अध्ययन किया गया।

रुद्रमादेवी काकतीय वंश की ही नहीं अपितु भारतीय इतिहास में दक्षिण भारत की सर्वप्रथम स्वतंत्र एवं उत्कृष्ट रानियों में ऐसे एक थी। रानी का लिंग उसके उच्च पद के कर्तव्यों को निभाने में कभी बाधा नहीं बनी अपितु स्त्री होते हुए उन्होंने हर शिक्षा ग्रहण किया है जो तत्कालीन समय में सिर्फ पुरुषों के अधिकार क्षेत्र में आते थे इतना ही नहीं रुद्रमादेवी के कुशल कूटनीति ,राजनीति , शौर्य एवं साहस ने विश्व पटल पर एक अनोखी पहचान दी है जो निश्चित ही आने वाली कई पीढिय्यों तक महिलाओं के लिए प्रेरणा का द्योतक रहेगी। उसका पूरूष पहनावा, जिसके साथ वह शाही दरबार में जाती थी सिंहासन को सुशोभित करती थी वहां मौजूद सभी लोगों ने भय और सम्मान को प्रेरित करती थी। यह एक प्रतिबद्ध शासिका थी जिन्होंने देश पर शासन करने में सक्रिय भाग लिया और राज्य के हितों को बढ़ावा दिया। मार्कोपोलो ने रुद्रमादेवी की चर्चा एवं शासन पर विशेष पकड की विवेचना सुंदर शब्दों में की है। काकतीय वंश की भव्यता ने इतिहासकारों को आकृष्ट किया है जिससे नित-प्रतिदिन नए खोज काकतीयों को जानने और उजागर करने में महत्वपूर्ण साबित हो रहे हैं। इसी के तहत भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अनुसार हाल ही में रुद्रमादेवी के बारे में द हिंदू में प्रकाशित दो लेखों में तेलुगु राज्यों में महत्वपूर्ण मूर्तियों की खोज के विषय में जानकारी दी है जो रुद्रमादेवी की मृत्यु से संबंधित है। इसके अलावा द हिंदू 8 अप्रैल 2018 में ग्रेनाइट में नक्काशीदार एक स्लैब की खोज की हुई है जिसमें योद्धा रानीरुद्रमा देवी का आदमकद चित्र है। इसके अलावा काकतीय वंश का रम्मपा मंदिर को यूनेस्कों में शामिल किया गया है।

इस प्रकार विपरीत परिस्थितियों में एक शासिका के रूप में उभरकर आना स्त्रियों के साहस, वीरता एवं महात्वाकांक्षाओं को दर्शाता है जिससे आज का तत्कालीन समाज वैश्विक स्तर पर प्रेरणा ले सकता है।

सन्दर्भ सूची:-

- डॉ० परब्रहा शारत्री पी0वी0 वारंगल के काकतीय AP हैदराबाद सरकार 1978।
- कृष्णा कुमारा जी रानी रूम्मादेवी नव भारती 1985
- दक्षिण भारतीय शिलालेख – खंड X दिल्ली 1948
- मरामांडा रमाराव, काकतीय संचिका, विशेष संस्करण 1991
- अलेख्य पुंजाला 2016 रानी रूद्रम्मा देवी (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया)
- कोर कोटेश्वर राव - रीलिजियस कंडिशसन ड्यूरिंग द काकतीय फेयरडेसन (2015) (International Journal of history)
- पी0एस0 कनक दुर्गा – काकतीय गणपति देव एण्ड देयर टाइमस (1985)

- आर0ज्योति सोशल एण्ड इकनॉमिक मिलयु इन काकतीय 1998
- डॉ0 अलेख्य पुंजाला - द स्पेलेंडर ऑफ तेलगू परफार्मिंग आट्र्स ए हिस्टोरिकल पर्सपैक्टिव (2012)
- टेलबोट सिंथिया, रूद्रम्मादेवी द फीमेल किंग, जेडर एण्ड पालिटिकल, आर्थोरिटि इन मेडिवल इंडिया 1991
- गरोडिया अर्चना - द वुमेन हु रूल्ड इंडिया, लीडर्स, वारियर आइकनस।
- मोनी गाथा - काकतीय डिनैस्टी आर्किटेक्चरल सर्जन 2018।
- www. the hindu-com/news/ two-sculptures& of rani-rudrama devi shed light on her-death/ article 2126820/-ccc-
- https:// Feminismindia-com/tag/rudrma& devi/
- https:// swarjyamay-com/magazine/a& queen with& a mission.
- Www- wikkipedia.com
- http://www-history joumal-ret
- http://www.TSPSC.com/kaktiya dyrasty
- TAL
- www.the historyfiles.com
- http://www.studymentor.com
- http://www.indianęt zone// kaktiya Rudrama

दिनकर के काव्य में युग-चेतना

डॉ० जरीना सईद

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, करामत हुसैन मुस्लिम गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

हिंदी साहित्याकाश में रामधारी सिंह 'दिनकर' का स्थान बहुत ऊँचा है। उनका जन्म 23 सितंबर, 1908 ई. को मुंगेर जिले के सिमरिया नामक ग्राम में हुआ था। उनका जीवन विषम परिस्थितियों और कड़ी मेहनत के बीच विकसित हुआ। आर्थिक कठिनाई के बीच उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। बहुत कम उम्र में पिता की मृत्यु हो जाने के कारण उन्हें परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उठानी पड़ी। परिस्थितियों ने उन्हें इच्छा के विपरीत नौकरी करने के लिए मजबूर किया। देश की गुलामी का अभिशाप भी दिनकर जी को सहना पड़ा। शायद यह जीवन के कठोर संघर्ष का प्रभाव था, जिसने उन्हें बल और ओज का कवि बना दिया।

संघर्ष दिनकर के जीवन का पर्याय बन गया। इन संघर्षों के बीच से ही उनकी सफलता की राह निकली। संघर्षों की आंच में तप कर उनका समूचा व्यक्तित्व और निखर कर सामने आया। न वे कभी अपने पथ से विचलित हुए और न ही उनके भीतर की कल्याण-भावना में कोई कमी आई। उनके भीतर कठोरता के साथ-साथ कोमलता और माधुर्य का अद्‌भुत संयोग था।

दिनकर जी ने जब काव्य-जगत में पदार्पण किया, उस समय कविता में दो तरह की विचारधाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। एक ओर छायावादी प्रवृत्ति के अनुसार प्रेम, श्रृंगार, प्रकृति और नारी विषयक रचनाएँ हो रही थीं तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता की धारा प्रवाहित हो रही थी। दिनकर जी ने राष्ट्रीयता से ओतप्रोत रचनाएँ कीं। उनके काव्य में नया जोश, नई गति और नई चेतना विद्यमान थी। दिनकर जी ने अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों का अनुकरण न करके अपनी स्वतंत्र राह बनाई। दिनकर जी की जन्मभूमि सिमरिया के प्राकृतिक परिवेश ने एक ओर उनके काव्य को भाव-भूमि और तेजस्विता प्रदान की, तो दूसरी ओर स्वतंत्रता संघर्ष का सक्रिय केन्द्र होने के कारण सिमरिया ने उनकी रचनाओं में राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीयता का स्वर भरा। 'रेणुका' में उन्होंने लिखा है-

हे जन्मभूमि! शत बार धन्य,
तुझ-सा न 'सिमरिया घाट' अन्य।
तेरे खेतों की छवि महान,
अनिमंत्रित आ उर में अजान।
भावुकता बन लहराती है,
फिर उमड़ गीत बन जाती है।[1]

गाँव की मिट्टी से मिली ऊर्जा की दिनकर को ओज का कवि बनाने में महती भूमिका रही। 'दिनकर' ने अपने मस्तक पर अनल-किरीट लेना स्वीकार किया किन्तु मन का प्रकाश बेचना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा-

स्वातंत्र्य गर्व उनका जो नर फाकों में प्राण गँवाते हैं।
पर नहीं बेच मन का प्रकाश, रोटी का मोल चुकाते हैं।[2]

सन् 1929-30 ई0 में जब दिनकर जी ने काव्य-जगत में प्रवेश किया, उस समय देश में स्वाधीनता के लिए संघर्ष चल रहा था। सन् 1939 में 'रेणुका' का प्रकाशन हुआ। इसकी कुछ कविताएँ पहले ही चर्चित हो चुकी थीं। 'रेणुका' में दिनकर जी की राजनीतिक चेतना का आरंभिक रूप मिलता है। उस समय देश के राजनैतिक वातावरण में एक और गाँधीजी की अहिंसा और दूसरी ओर भगत सिंह, रामप्रसाद 'बिस्मिल' आदि का प्रखर क्रांतिकारी रूप विद्यमान है। गाँधीवादी विचारधारा के विपरीत दिनकर ने लिखा -

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर,
पर, फिरा हमें गांडीव-गदा,
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर।[3]

दिनकर ने जहाँ एक ओर अहिंसा का मार्ग छोड़ क्रांतिकारी राह अपनाने पर बल दिया, वहीं 'बापू' शीर्षक कविता में अहिंसा को जीवन का सर्वश्रेष्ठ मूल्य बताते हुए कहा -

बापू ने राह बना डाली,
चलना चाहे संसार चले,
डगमग होते हों पाँव अगर,
तो पकड़ प्रेम का तार चले।[4]

'रेणुका' में तत्कालीन युग की वेदना व्यक्त हुई है। रेणुका के पश्चात् सन् 1939 ई. मे 'हुँकार' का प्रकाशन हुआ। 'हुँकार' जैसी रचना ने दिनकर जी को हिंदी साहित्य में विशेष स्थान का अधिकारी बना दिया। वे कहते हैं-

अमृत गीत तुम रचो कलानिधि! बुनो कल्पना की जाली।
तिमिर ज्योति की समर-भूमि का मैं चारण, मैं बेताली।।[5]

'हुँकार' उस राजनीतिक वातावरण का चित्र है, जिसमें गुलाम देश की दीनता और व्यथा साकार हो उठी है। स्वतंत्रता के लिए हर भारतवासी के मन में जो आक्रोश, विद्रोह और आकुलता थी, वह इन शब्दों में ढल कर सामने आई है-

ओ मदहोश! बुरा फल है-शूरों के शोणित पीने का ।
देना होगा तुम्हें एक दिन गिन- गिन मोल पसीने का ।।[6]

कवि भारतमाता की पुकार सुन कोमल भावों को छोड़ उठ खड़ा होता है-

फेंकता हूँ लो, तोड़ मरोड़
अरी निष्ठुरे बीन के तार ।
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख
फूँकता हूँ भैरव हुंकार ।।[7]

'हुँकार' पराधीन भारत के क्रोध का काव्य है। दिनकर जी के अंदर का कवि देश की अस्मिता के प्रति सदा सचेत रहा। डॉ. वेद प्रकाश उपाध्याय के अनुसार- ''वे समष्टि के कवि थे, व्यष्टि के नहीं।''[8] भारत माता की दशा देख उनकी भावनाएँ हृदय की गहराइयों से निकलकर जन-जन तक पहुँचती रहीं। देश की चेतना को जोड़ने वाली उनकी वाणी से लगातार चिंगारियाँ निकलती रहीं। उन्होंने स्वयं कहा है - ''रेणुका और हुँकार, सामधेनी और कुरुक्षेत्र, द्वंद्वगीत और बापू, इनमें मैंने जो कुछ भी गाया है, कंठ फाड़ कर गाया है, हृदय चीर कर गाया है। इन कविताओं में मैंने कहीं भी तकनीकी और साहित्यिक फॉर्मूलों का जान-बूझकर उपयोग किया हो, ऐसा तनिक भी याद नहीं आता। मेरा ख्याल है कि नजरुल और इकबाल, जोश और माखनलाल तथा सुभद्रा और नवीन भी अपनी ओजस्विनी कविताओं को रचते समय इसी प्रकार प्रेरणा में विभोर हो रहे होंगे।''[9]

दिनकर जी ने जिस समय हिंदी काव्य के क्षेत्र में कदम रखा था, उस समय साहित्य जगत में प्रसाद,पंत, निराला और महादेवी तथा दूसरी ओर राष्ट्रीयतावादी रचनाकारों के रूप में माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान और सोहनलाल द्विवेदी आदि साहित्यकार प्रतिष्ठित थे। ऐसे में दिनकर जी को अपना स्थान बनाने के लिए भी संघर्ष करना पड़ा। दिनकर जी की कविताओं में क्रांति का स्वर मुखर था। उन्होंने युवा-शक्ति का ओजपूर्ण स्वर में आह्वान किया, जिसने उन्हें लोकप्रियता के शिखर तक पहुँचाया और राष्ट्रीय कवियों के बीच अग्रणी बना दिया। दिनकर जी के विराट व्यक्तित्व में समूचा राष्ट्र समाया हुआ था। वे मात्र बिहार के नहीं थे, पूरा भारत उनमें बसता था। अपने देश के प्रति उनका असीम अनुराग इन पंक्तियों में दर्शनीय है-

तुझको या तेरे नदीश, गिरि, वन को नमन करूँ मैं
मेरे प्यारे देश! देह या मन को नमन करूँ मैं
किसको नमन करूँ मैं भारत किसको नमन करूँ मैं?[10]

दिनकर जी एक सजग साहित्यकार थे। उनकी रचनाओं में उनका युग बोलता है। 'चक्रवाल' की भूमिका में उन्होंने लिखा है ''ज्यों-ज्यों मेरी कविताएँ जन-समुदाय को आंदोलित करती गई, मेरा यह विश्वास जोर पकड़ता गया कि मैं समय का पुत्र हूँ और मेरा सबसे बड़ा कार्य है कि मैं अपने युग के क्रोध और आक्रोश को, अधीरता और बेचौनियों को सफलता के साथ छंदों में बाँधकर सबके सामने उपस्थित कर दूँ। मेरे पीछे और मेरे चारों ओर भारतीय मानवता खड़ी थी, जो पराधीनता के पाश से छूटने को बेचौन थी। अपने व्यक्तिगत जीवन में मैं स्वयं ऐसे युवकों से घिरा था, जो देश-सेवा का व्रत लिए हुए थे और जो समय के इंगित मात्र पर अपना जीवन होम देने को तैयार थे। उनकी अनुभूतियाँ और उनका उत्साह मुझे अत्यंत प्रिय और पवित्र लगता था तथा कविताएँ रचते समय मुझे कई बार ऐसा महसूस होता, मानो मैं उन्हीं की वेदना और आग को अपनी भाषा में लिख रहा हूँ।''[11] युग के आग्रह पर दिनकर की कलम देश प्रेमियों के साथ एक लय हो उठी। उस समय सारा देश परतंत्रता की जड़ों को उखाड़ फेंकने हेतु विकल था। राष्ट्रवादी कलमकार महापुरुषों और स्वतंत्रता सेनानियों की जय-जयकार कर रहे थे। दिनकर ने कहा-

कलम आज उनकी जय बोल।
जला अस्थियाँ बारी-बारी
छिटकायी जिनने चिनगारी
जो चढ़ गए पुण्य वेदी पर
लिए बिना गर्दन का मोल
कलम आज उनकी जय बोल।[12]

दिनकर जी की लेखनी से राष्ट्रीयता की धारा सतत प्रवाहित होती रही। सुप्त भारतीय चेतना को जागृत करने हेतु उन्होंने 'हिमालय' शीर्षक कविता लिखी। हिमालय हमारे देश का सजग प्रहरी है। इसके प्रति उनके भाव इस रूप में व्यक्त हुए हैं-

मेरे नगपति! मेरे विशाल।
साकार, दिव्य, गौरव विराट!
पौरुष के पूंजीभूत ज्वाल !
मेरी जननी के हिमकिरीट!
मेरे भारत के दिव्य भाल!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

* * * *

तू मौन त्याग कर सिंहनाद
रे तपी! आज तक का न काल।
नव- युग शंख ध्वनि जगा रही
तू जाग-जाग मेरे विशाल।[13]

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान राष्ट्रीयता से ओतप्रोत रचनाएँ कीं। उन्होंने अपनी लेखनी से जन-जागरण की अलख जगाई -

दहक रही मिट्टी स्वदेश की
खौल रहा गंगा का पानी

प्राचीरों में गरज रही है
जंजीरों में कसी जवानी।[14]

लंबे समय तक गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहने के बाद हमारे महापुरुषों, क्रांतिकारियों और देशवासियों के अथक परिश्रम से 15 अगस्त सन् 1947 को हमारा देश आजाद हो गया। लेकिन यह क्या, जिस आजाद देश और समाज की दिनकर जी ने कल्पना की थी, वह तो उन्हें दिखाई ही नहीं दे रहा था। देश की राजनीतिक दशा देख दिनकर उद्विग्न हो उठे और उनकी आत्मा चीत्कार कर उठी। 'हक की पुकार' कविता में (1952) उन्होंने राजनेताओं से कहा -

यह वही आदमी है, जिसकी
पीड़ाओं को आगे करके
स्वाधीन हुए थे तुम जिसकी
प्रतिमा जग के सम्मुख धर के।[15]

'भारत का यह रेशमी नगर' (1954) कविता में उन्होंने राजनेताओं को ललकारते हुए कहा -

ऐसा टूटेगा मोह, एक दिन के भीतर
इस राग-रंग की पूरी बरबादी होगी।
जब तक न देश के घर-घर में रेशम होगा
तब तक दिल्ली के भी तन पर खादी होगी।[16]

समाज की तत्कालीन स्थिति और जनता की दशा देख 'एक बार फिर स्वर दो' कविता (1961) में उन्होंने कहा-

एक बार फिर स्वर दो।
कहो शांति का मन अशांत है, बादल गुमर रहे हैं,
तप्त ऊमसी हवा टहनियों में छटपटा रही है।[17]

'समर शेष है' कविता में उन्होंने लिखा-

समर शेष है, इस स्वराज्य को सत्य बनाना होगा।
जिसका है यह न्यास, उसे सत्वर पहुँचाना होगा।[18]

दिनकर जी के विषय में डॉ. कुंदन ने लिखा है-''दिनकर अतीत की उज्ज्वल परंपरा को मथते हैं। उनमें सांस्कृतिक परंपराओं की गहरी समझ और सोच विद्यमान है। इस कारण कविताएँ वर्तमान की पुकार से सचेत क्रांति का स्वागत करती हैं। वास्तव में दिनकर भारतीय चेतना की सस्वर वाणी हैं और अपने युग की समस्त अभिव्यक्ति भी।''[19]

दिनकर के काव्य में भारत का संपूर्ण गौरवशाली अतीत प्रतिबिंबित हुआ है। वे राष्ट्रीय स्वाभिमान के अमर गायक हैं । उनकी रचनाओं ने जहाँ स्वतंत्रता के पूर्व जन-जागृति का शंखनाद किया वहीं स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत भी उन्होंने जन-चेता की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे सच्चे अर्थों में नवजागरण के अग्रदूत और युग प्रहरी हैं। प्रकृति से बेहद भावुक और संस्कारों की दृष्टि से राष्ट्रीयता से ओतप्रोत रामधारी सिंह दिनकर सही अर्थों में देश की पहचान हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. रेणुका: दिनकर, प्रथम संस्करण: 1935, पुस्तक-भंडार, लहेरिया सराय, पटना, पृष्ठ-91
2. नीम के पत्ते: दिनकर, प्रथम संस्करण: 1959, श्री अजंता प्रेस लि0 पटना, पृष्ठ-16
3. चक्रवाल: दिनकर, द्वितीय संस्करण 2005, अनुपम प्रकाशन, पटना, पृष्ठ-9
4. बापू: दिनकर, संस्करण 2004, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-13

5. हुँकारः दिनकर, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-18
6. वही, पृष्ठ-44
7. हुँकार, भूमिका, रामवृक्ष बेनीपुरी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ-10
8. राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीय संचेतनाः डॉ0 वेद प्रकाश उपाध्याय, संस्करण 2014, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ-3
9. चक्रवालः भूमिका, दिनकर, पृष्ठ-36
10. चक्रवालः दिनकर, पृष्ठ-358-359
11. चक्रवालः भूमिका, दिनकर, पृष्ठ-36
12. चक्रवालः दिनकर, पृष्ठ-58-59
13. वही, पृष्ठ-7-9
14. दिल्लीः दिनकर, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम लोक भारती संस्करण 2003, पृष्ठ-20
15. वही, पृष्ठ-23
16. वही, पृष्ठ-31
17. परशुराम की प्रतीक्षाः दिनकर, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-72
18. वही, पृष्ठ-77
19. दिनकर के काव्य पर भारतीय राजनीति का प्रभावः डॉ0 कुन्दन, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली पृष्ठ-87

स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का अध्ययन

जितेश कुमार शर्मा

शोध छात्र, नागरिक पी. जी. कॉलेज जंघई जौनपुर (उ0प्र0)

डॉ० कविता गुप्ता

शोध निर्देशिका, नागरिक पी. जी. कॉलेज जंघई जौनपुर (उ0प्र0)

संक्षिप्त सारांश-

स्नातक स्तर पर किशोर युवक-युवतियाँ आती है जिनमें अपार ऊर्जा का स्तर होता है और उनमें कुछ कर गुजरने की स्थिति होती है साथ ही अपने को जीवन का आकार धारण करते हैं आकांक्षायें बढ़ती है समायोजन करने का दायरा बढ़ता है। इसके सामाजिकरण की भूमिका में नेतृत्व का गुण विकसित होने लगता है। नेतृत्व का गुण इस प्रकार का होता है जो कि कक्षा से पोषित होकर समाज तक आता है और राष्ट्र की सेवा को तत्पर हो जाता है और स्नातक स्तर पर विद्यार्थी छात्र संघ से परिचित होता है तथा संघ की भावना का विकास होता है जहाँ एक टीम की भावना पोषित होती है और अच्छे से अच्छा भारतीय मूल्यों की प्राप्त करने में सहायक होते है। स्नातक स्तर पर शिक्षा विद्यार्थियों को उपकरण व कनेक्शन देती है जिससे वे अपने समाज व राष्ट्र का संरक्षरण करते है जिससे राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारी समझ बढ़ती है अब तो नयी शिक्षा नीति 2020 में स्नातक शिक्षा का पाठ्यक्रम तीन व चार वर्षीय दो प्रकार का संचालित हो रहा है।

मुख्य शब्द:- सामाजिक बुद्धि, मानकीकृत मापनी, अभिवृत्ति मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, CR मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावना:- आज के इस आधुनिकता और भौतिकता के अन्धाधुन्ध विकास के दौर में पारिवारिक, सामाजिक सम्बन्धों में अप्रत्याशित परिवर्तन देखने को मिल रहा है। मानव इस आकर्षण भरे दुनिया में इस तरह से खो गया है कि उसे तनिक भी भान नहीं है कि वह अपने विकास के इस दौड़ में अपने पीछे क्या-क्या छोड़ता जा रहा है आज जिस तरह से पारिवारिक सम्बन्धों में ह्रास देखने को मिल रहा है मानव अपने विकास में इस तरह से दौड़ रहा है कि परिवार के प्रति जो उसकी जिम्मेदारी है उसके प्रति पूरी तरह से उदासीन होता जा रहा है। पारिवारिक रिश्ते आज छिन्न-भिन्न होते जा रहे है। एक-दूसरे के प्रति क्या जिम्मेदारी किसी को भी इसका ज्ञान नहीं है। उसी तरह से सामाजिक सम्बन्धों के प्रति भी आज का मानव तनिक भी संवेदनशील नहीं है। समाज की विभिन्न आवश्यकताएँ होती है। मानव उनकी पूर्ति करने में अगर सक्षम हो जाता है तो सामाजिक सम्बन्धों में प्रगाढ़ता बनी रहती है। परन्तु बहुत कम देखने को मिलता है। आज जिस तरह से पारिवारिक, सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव हो रहे हैं।

शिक्षा प्रक्रिया के तीन प्रमुख अंगों- अध्यापक, छात्र व पाठ्यक्रम में अध्यापक का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। वैदिक काल में अध्यापन कार्य एक आध्यात्मिक कार्य माना जाता था। उस समय की सामाजिक व्यवस्था में सभी आदर्श अध्यापक के चारों ओर केन्द्रित रहते थे। इस समय का अध्यापक वैदिक रूझान व श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त, अपने विषय में निपुणता प्राप्त, अध्यापन के प्रति समर्पित, सद्आचरण करने वाला, ब्रह्मचर्य का पालन तथा सर्वोच्च सत्ता के ज्ञान के प्रति लालायित रहता था। मध्यकाल में अध्यापक

प्रशिक्षण उपेक्षित रहा। इस काल में मौलवी अध्यापन कार्य करते थे। चौदहवीं शताब्दी में कक्षा नायकीय प्रणाली अधिक प्रचलित थी। ब्रिटिश काल में अध्यापन एक वृत्ति के रूप में विकसित होने लगा था। सन् 1819 में कलकत्ता विद्यालय समाज ने प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण का कार्य प्रारम्भ किया। 1924 में बम्बई में देशी विद्यालय समाज, 1926 में मद्रास शिक्षा समाज ने प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की। सन् 1882 में अनेक प्रशिक्षण विद्यालय तथा महाविद्यालय खोले गये तथा 1904 में लॉर्ड कर्जन के प्रयास से प्रशिक्षण को काफी शक्ति मिली। बींसवीं शताब्दी के प्रथम कुछ दशकों में प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई तथा स्नातकों तथा पूर्व स्नातकों के लिए अलग-अलग प्रशिक्षण प्रारम्भ किये गये। शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। इसके द्वारा व्यक्ति का व्यवहार बदलता रहता है, व्यक्ति बिना इसके द्वारा नये ज्ञान को नही सीख सकता है। अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है। व्यक्ति अपने जन्म से मृत्यु तक जो कुछ सीखता है और अनुभव करता है, वह सब इसी के अन्तर्गत माना जाता है। उसके सीखने और अनुभव करने का परिणाम यह होता है कि वह धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण से अपना सामंजस्य स्थापित करता है। वास्तव में उसका सम्पूर्ण जीवन ही विद्या का काल है। बालक अपने माता-पिता, भाई-बहनों, मित्रों और अध्यापकों से हर समय और हर जगह कुछ न कुछ सीखता है, बड़ा होने पर वह जीवन में प्रवेश करता है और भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है।

अध्ययन की पृष्ठभूमिः- शिक्षा एक रुपान्तरण की प्रक्रिया है जो पशुत्व से मनुष्यत्व व मनुष्यत्व से देवत्व की तरफ अग्रार करती है। मनुष्य पैदाइसी पशुत्व से बँधा होता है जैसा कि कहा गया है कि पशु अज्ञानता के पाशों से बँधा होता है जिसे शिक्षा द्वारा खोला जाता है और मनुष्य के मनन् की भावना को प्रशिक्षित किया जाता है। प्राचीनकाल में मानव सभ्यता का उदय का मात्र कारण शिक्षा है। हमारी मूलभूत आवश्यकताओं का अहसास तो हमें प्रकृति कराती है जैसे रोटी, कपड़ा और मकान परन्तु इनकी प्राप्ति का तरीका क्या होगा इसे शिक्षा ही बताती है। हमारी शिक्षा का सूत्र रहा है असतो मा सद्गमय अर्थात् असत्य से सत्य की तरफ ले जाने वाली प्रक्रिया का नाम ही शिक्षा है। तमसो माँ ज्योर्तिम गमय अर्थात् अन्धकार रूपी अज्ञानता से प्रकाश यानी ज्ञान की तरफ ले जाने वाली प्रक्रिया का नाम शिक्षा है मृत्यों या आमृत्यं गमय अर्थात् मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया का नाम शिक्षा है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जो हमें अज्ञानता के सभी बन्धनों से मुक्त करती है अर्थात् सा विद्या या विमुक्तये। हमारे ऋषि-महर्षि अपने ज्ञान को तप से साधते थे ताकि आने वाली पीढ़ी उसे आगे बढ़ाये और अपने जीवन को सरल बनाये और इस प्रक्रिया के तहत अपने मनुष्य जीवन को सफल करती हुई प्रकृति को तिरोहित करे। हमारा पूरा इतिहास शैक्षिक विकास क्रम से भरा पड़ा है समाज से दूर प्रकृति की गोंद में बैठे मनीषियों ने शिक्षित करने के अनेकानेक विधाओं को साधित किया ताकि स्वस्थ मन हो, स्वस्थ मस्तिष्क हो जिससे एक अच्छे मानव समाज की रचना हो सके और सम्पूर्ण प्रकृति के जीवधारी प्रफुल्लित रह सके। हमारी शिक्षा व्यवस्था में माता प्रथम अध्यापिका होती है और बच्चे की प्रथम पाठशाला उसका घर होता है उसके साथी उसका परिवार और समाज का निर्माण उसी परिवार व समाज से होता है जिससे उसे पारिवारिक ज्ञान, नैतिक ज्ञान, सामाजिक ज्ञान तथा मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र और सामाजिक ज्ञान के व्यवहारिक पहलुओं से उसका परिचय होता है। इन सभी ज्ञान का जागरण करने के लिये एक मात्र शिक्षक जिम्मेदार है और कोरी मस्तिष्क पटल पर उसे लिखने वाली सभ्यता का पाठ भरने वाली उसकी माँ ही होती है जिसको पोषित व पल्लवित उसका परिवार करता है जो उसका समाज होता है। परिवार से ही उसको सामाजिक ज्ञान मिलता है इसलिये परिवार को सामाजिक ईकाई भी कहा जाता है। जिससे उसका सामाजीकरण प्रारम्भ होता है और उसमें सीखने की आंकाक्षायें उत्पन्न होती है और वह पड़ोस व गाँव से एक साथी समूह का निर्माण करने में लग जाता है अर्थात् सामाजिक बुद्धि का प्रस्फुटन होने लगता है। अब देखिये इसी बाल्यावस्था में आकांक्षाओं ने जन्म लेना प्रारम्भ किया और साथ ही सामाजिक बुद्धि का विकास भी होने लगता है।

अध्ययन का औचित्यः- माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952-53 द्वारा विद्यार्थियों में व्यावसायिक शिक्षा व अपने कुटीर उद्योगों तथा प्रशिक्षित व्यवसायों के लिये तैयार करने हेतु विद्यालयों को सुझाव दिया गया था जिससे विद्यार्थियों में अपने समाज के प्रति बुध्द्धि चातुर्य व प्रखरता का विकास हो सके अर्थात् सामाजिक बुद्धि के विषय में ही यह कहा गया कि देश अखंण्डता व अपनेपन से भरा पड़ा रहे। ठीक यही कुछ संकेत उच्च शिक्षा के दिशा में निर्देश था कि हमारे विद्यार्थी आकांक्षाओं पर खरा उतरें और उच्च शिक्षा की तरफ अग्रसर हो और देश का कद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़े। ऐसी ही संकल्पना हर्टाग कमेटी 1929 में भी की गयी थी

और वुड के घोषणा पत्र 1854 में विद्यालयों के अनुदान की संस्तुति भी इसी आशय के साथ की गयी थी। राधाकृष्णन आयोग 1948 ने विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा के क्षेत्र में बुद्धि हेतु उच्च शिक्षा की संकल्पना में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसे स्वायत्त निकाय की संकल्पना किया था जिससे हमारे विद्यार्थी उच्च शिक्षा सुविधापूर्ण ग्रहण करके वैज्ञानिक व तकनीकि क्षेत्र में कौशलात्मक विकास कर सके। भारतीय समाज की संस्कृति उर्वर और महत्वपूर्ण बन सके जिससे यह स्पष्ट हो सके की हमारी उच्च शिक्षा व्यवस्था इतनी सुदृढ़ हो जाये और भारत का युवा जनमानस पूरी तरह से सुशिक्षित होकर भविष्य की ओर अग्रसर हो सके। कोठारी आयोग 1964-66 में दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में उच्च शिक्षा को सुदृढ़ करने की दिशा में सुझाव दिया गया और वकालत की गयी कि देश को विकसित करना है तो उच्च शिक्षा को मजबूत करने के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ाना पड़ेगा जिससे बीच का अपव्यय व अवरोधन समाप्त किया जा सके तभी देश उन्नतशील हो सकेगा। युवाओं में उच्च शिक्षा के प्रति जागरुक बनाने के लिये महाविद्यालयों की स्थापना करने के साथ-साथ सुसज्जा बढ़ाना है जिससे विद्यार्थी स्नातक की शिक्षा आसानी से ग्रहण कर सके तभी हमारा देश भविष्योन्मुख होगा और हमें लक्ष्य प्राप्त हो सकेगें।

शिक्षा नीति 1968 में माध्यमिक शिक्षा के संरचना को महत्वपूर्ण बताते हुये उच्च शिक्षा को पूरी तरह से प्रभावित करने पर जोर दिया गया जिससे हमारी शिक्षा व्यवस्था पूर्ण रूप से मजबूत हो सके तथा राष्ट्र का निर्माण हो और विज्ञान, तकनीकी व कौशल के क्षेत्र में पूर्ण अग्रसर हो और आगे विकास करता हुआ भविष्य में अच्छा वैज्ञानिक, साहित्यकार व शिल्पी व चिकित्सक तैयार हो ताकि राष्ट्र विकसित हो। उस समय चिन्ता का विषय था कि देश गुलामी के बाद प्रथम शिक्षा नीति में शैक्षिक संस्थानों की वृद्धि के साथ-साथ संसाधनों में वृद्धि करने का लक्ष्य था और साथ ही गुणात्मक शिक्षा की महत्वपूर्ण संकल्पना रखी गयी जिसमें लगा गया कि पूरी तरह से शिक्षा व्यवस्था को मजबूत किया जा सके।

नयी शिक्षा नीति 1986 में भी यह बात स्पष्ट की गयी कि प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय व अवरोधन रोकने के लियें प्राथमिक स्तर को मजबूत किया जाये जिससे शिक्षा व्यवस्था को मजबूती मिल सके और शिक्षा-शिक्षण के रुप को अंगीकार किया जा सके बच्चों को व्यावसायिक शिक्षा की तरफ उन्मुख किया जा सके और उन्हें माध्यमिक स्तर पर सुविधायें मुहैया कराते हुये उच्च शिक्षा पर अधिक से अधिक अधिकार दिया जाये ताकि सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास को एक उचित प्रारुप दिया जा सके। कार्य योजना (1992) में 1986 राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा करते हुये भी विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास की बात कही गयी। साथ ही आचार्य राममूर्त्ति समिति 1990 ने वीकर सेक्शन के शिक्षा व शैक्षिक उत्थान में जोर दिया है और कहा कि विद्यार्थियों में शैक्षिक आकांक्षा की वृद्धि अतिआवश्यक है और उनमें शिक्षा के प्रति ललक होनी भी चाहिये। नयी शिक्षा नीति 2020 में भी विद्यार्थियों की शिक्षा की दिशा में नियोजित प्रयास करने की बात कही गयी है जिससे भावी भारत मजबूत हो सके और साथ ही उनके सशक्त विकास का रास्ता विकसित हो सके।

साहित्यावलोकनः- किसी शोध का मुख्य आधार उसका साहित्य होता है जो उसे उचित निर्देशन देते हुए शोध को एक नया आयाम अनुसंधानकर्त्ता को करता है। शोध के क्षेत्र में हो रहे नये तथा प्रभावशाली अन्य शोधों की जानकारी प्रस्तुत अध्ययन को एक सृजनात्मक रुप देती है तथा अनुसंधानकर्त्ता को नकल तथा पुनः दोहराव से बचाती है, और सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से होता है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्त्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रुपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

सामाजिक बुद्धि से सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षणः- शोधकर्त्ता ने छात्रों की सामाजिक बुद्धि से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने हेतु अनेक शैक्षिक साहित्यों जैसे-सर्वे ऑफ एजूकेशनल रिसर्च, समसामायिक पत्र-पत्रिकाएं, शोध प्रबन्धों, लघुशोध प्रबन्धों, समस्या से सम्बन्धित पुस्तकों, जर्नल, ज्ञानकोष आदि का विस्तृत अध्ययन किया जिनमें भारतीय शिक्षाशस्त्रियों एवं शोधकर्त्ताओं द्वारा किये गये प्रमुख अध्ययन-

कुबेल एसर (2019); ''मानव बुद्धि में कई अन्तः स्थापित दक्षतायें या विशिष्ट प्रकार की बुद्धि शामिल है जैसे सार, व्यवहारिक, भावनात्मक, सौन्दर्यशास्त्र, काइनेस्टिक और सामाजिक सबसे महत्वपूर्ण में से एक सामाजिक बुद्धि है। सामाजिक बुद्धिमत्ता को जो दो क्षमताओं के संयोजन के रुप में वर्णित किया जा सकता है, समझना और बातचीत करना। सोशल इन्टेलीजन्स के कई लोगों को आकर्षित करने के रुप में रखा जा सकता है और यह स्पष्ट है कि इसके कई फायदे है। आरम्भ करने के लिये

सामाजिक बुद्धि में से एक स्पष्टता है। स्पष्टता लोगों को स्वयं को स्पष्ट रुप से व्यक्त कर सकें। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि जिन लोगों के पास सामाजिक बुद्धि होती है वे आमतौर पर व्यापार क्षेत्र में सफल होते है उन्हें समाज में मूर्ति रुप में देखा जाता है। इसलिये उनकी सामाजिक बुद्धि एक सुनहरे अवसरों को पकड़ने में मद्द करती है जैसे हास्य कलाकारों को अपने क्षेत्र में खूब पसन्द किया जाता है जब दूसरे बिन्दु की बात आती है तो सामाजिक बुद्धि का एक और लाभ जागरुकता है। जागरुकता को सामाजिक सन्दर्भों को समझने के रुप में परिभाषित किया जा सकता है जो मानव व्यवहार को प्रभावित करते हैं और व्यवहारिक रणनीतियों को सफल होने की सबसे अधिक सम्भावना है। दूसरे शब्दों में इससे अलग ढंग से कहे तो इसे पढ़ने के स्थिति के रुप में वर्णित किया जा सकता है इसलिये यह कहा जा सकता है कि जिन लोगों के पास सामाजिक बुद्धि होती है वे बेहतर निर्णय ले सकते है।''

मैथ्यू (2019); ''सामाजिक बुद्धिमत्ता से तात्पर्य सम्बन्धों को सफलतापूर्वक बनाने और सामाजिक वातावरण को निगेटिव करने की क्षमता से है। यह दूसरों के साथ आने का अच्छा तरीका खोजने के बारे में है। यह अपने स्वयं के व्यवहार और दूसरों के व्यवहार को पर्याप्त रुप से समझने और मूल्यांकन करने की क्षमता है। यह दूसरों के साथ अच्छी तरह से मिलने और उनका सहयोग जीतने की क्षमता है। यह जीवन के सफलता व कैरियर की कुंजी है। यह पत्र सामाजिक बुद्धि के लिये एक प्राइमर प्रदान करता है।''

पारिल दीपाली (2021); ''वैश्वीकरण के युग में सामाजिक कौशल के साथ-साथ न्यूलाइन लीडरशिप के गुणों की आवश्यकता है शिक्षक शिक्षा नयी लाइन को आकार देने और नई लाइन को प्रभावी शिक्षक बनने के लिये छात्रों की आदतों, तौर तरीकों और सभी विशेषताओं को ढ़ालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना है कि सामाजिक बुद्धि नये स्तर के साथ-साथ नये छात्र शिक्षकों के नेतृत्व गुण। न्यूलाइन शोधकर्त्ता भी इस जाँच के माध्यम से यह पता लगाने की कोशिश करते है कि क्या लिंग, शिक्षण पद्धति और छात्र शिक्षकों की योग्यता उनकी सामाजिक बुद्धि और नेतृत्व व्यवहार गुणों की नई रेखा का प्रभाव है इस न्यूलाइन शोध का उद्देश्य छात्र शिक्षकों की सामाजिक बुद्धिमत्ता लीडरशिप व शैक्षणिक उपलब्धि के सम्बन्ध में पता लगाना है। न्यूलाइन यह अध्ययन शिक्षकों, छात्र शिक्षकों, शिक्षाविद्ों, प्रशासकों तथा अन्य शैक्षणिक संस्थानों के लिये उपयोगी होगा। सामाजिक बुद्धि का मापन एन0 के0 के मानकीकृत प्रश्नावली द्वारा पुणे विश्वविद्यालय के बी0एड्0 के छात्राध्यापकों पर किया गया परिणाम पाया गया कि विज्ञान के विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि कला के विद्यार्थियों की तुलना में उच्च थी।''

विकीपीडिया (2021); ''सामाजिक बुद्धि स्वयं को जानने और दूसरों की जानने की क्षमता है। सामाजिक बुद्धिमत्ता लोगों के साथ अनुभव और सामाजिक सेंटिंग्स में सफलता और असफलताओं के सीखने से विकसित होती हैं इसे आमतौर पर चातुर्य, सामान्य ज्ञान या सड़क स्मार्ट के रुप में जाना जाता है। सामाजिक वैज्ञानिक रास हनीविल का मानना है कि सामाजिक बुद्धि आत्म और सामाजिक जागरुकता विकसित सामाजिक विश्वासों और दृष्टिकोणों और जटिल सामाजिक परिवर्तन को प्रतिबंधित करने की क्षमता और भूख का एक समग्र उपाय है। मनोवैज्ञानिक हम्फ्री निकोलस का मानना है कि मात्रात्मक बुद्धि के बजाय सामाजिक बुद्धिमत्ता है जो परिभाषित करती है कि हम मनुष्य के रुप में कौन है। मूल परिभाषा एडवर्ड थार्नडाइक 1920 ने बताया कि मानव सम्बन्धों में बुद्धिमानी से कार्य करने के लिये पुरुषों और महिलाओं, लड़कों और लड़कियों को समझने और प्रतिबन्धित करने की क्षमता है। अन्य लेखकों ने परिभाषा को केवल सामाजिक स्थितियों के ज्ञान से निपटने के लिये प्रतिबंधित किया है। शायद अधिक रुप से सामाजिक अनुभूति या सामाजिक विपणन खुपिया कहा जाता है। क्योंकि यह सामाजिक मनोवैज्ञानिक विज्ञापन व विपणन रणनीतियाँ और रणनीति के रुझान से सम्बन्धित है सीन फोलेनों के अनुसार सामाजिक बुद्धिमत्ता एक व्यक्ति की अपने वातावरण को बेहतर ढंग से समझने और सामाजिक रुप से सफल आचरण के लिये उचित प्रतिक्रिया करने की क्षमता है। सामाजिक बुद्धिमत्ता का अनुभूति व भावनात्मक बुद्धिमत्ता से गहरा सम्बन्ध है सामाजिक अनुभूति और सामाजिक तंत्रिका विज्ञान का अध्ययन करने वाले अनुसंधान मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे कई सिद्धान्तों की खोज की है जिसमें मानव सामाजिक बुद्धि संचालित होती है। इस विषय पर शुरुआती काम में मनोवैज्ञानिक नैन्सी कैन्टर और जॉन क्हिलस्ट्रॉम ने उन अवधारणाओं के प्रकारों को रेखांकित किया जिनका उपयोग लोग अपने सामाजिक बुद्धि समझने के लिये करते है।''

लैट्रिका ए0 (2022); ''क्या ऑन लाइन क्रिया विधि सामाजिक बुद्धि से सम्बन्धित है। टेक्सास विश्वविद्यालय के तकनीकी विद्यार्थियों के सामाजिक बुद्धि का परीक्षण करने हेतु यह अध्ययन किया गया जिसके लिये सर्वे अनुसंधान आयोजित हुआ और यह अध्ययन करने का प्रयास किया गया कि हँसी मजाक वाले लोगों में सामाजिक बुद्धि अधिक होती है तो यह पाया गया कि हाँ वे

आनलाइन क्रियाविधि में भी अपनी जीवनशैली के प्रभाव से जीवन्त कर देते है। अतः वे लोग सभी गुण सम्पन्न है और साथ में हँस मुख भी है चाहे वे सीधे मिले या ऑनलाइन माहौल को ताजा कर देते है।''

अध्ययन का उद्देश्य:- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्ता द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि. ''स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों की सामाजिक बुद्धि का अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पना:- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि ''छात्र व छात्राओं के सामाजिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।''

अध्ययन के प्रकार:- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अनुसंधान था क्योंकि सारे चरों का विवरण वर्तमान के सम्बन्ध में देखा गया था। बेस्ट के शब्दों में, ''विवरणात्मक अनुसंधान वर्तमान स्थिति की व्याख्या तथा विवेचना प्रस्तुत करता है। इसका सम्बन्ध उन स्थितियों तथा सम्बन्धों से है जिनका अस्तित्व वर्तमान में है, अथवा उन व्यवहारों से है, जो कि प्रचलित है, व उन दृष्टिकोणों अथवा अभिवृत्तियों से है, जिनका प्रचलन है, व ऐसे प्रक्रमों से है, जोकि सक्रिय है, तथा अपने प्रभावों से है, जिन्हें अनुभव किया जा रहा है, अथवा उपनीतियों से है, जोकि विकासशील हैं।

स्पष्टतः ऐसे अनुसंधान का स्वरुप अत्यधिक व्यापक, विस्तृत तथा विषम होता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अध्ययन-जैसे सर्वेक्षण, विकासात्मक अध्ययन, व्यक्तिवृत अध्ययन, अन्र्तवस्तु अध्ययन, जनमत अध्ययन, सहसम्बन्ध अध्ययन, व उन्नति अध्ययन आदि सम्मिलित रहते हैं। इन विभिन्न तथा विविध अध्ययनों को एक ही प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत सम्मिलित करना निश्चिततः सुविधाजनक तथा वैधानिक है।

अध्ययन विधि:- प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि प्रयोग की गयी थी जिसमें शोध उपकरणों को प्रशासित करते हुये आंकड़ों का विश्लेषण किया गया था। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विश्लेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वेक्षण का इंग्लिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Sur+vey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा vey (veeir) पर आधारित है, जबकि Sor का अर्थ over तथा veeir का अर्थ to look होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्रायः सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण।

समष्टि:- प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि स्नातक स्तर के विद्यार्थी थे जो जौनपुर जनपद के महाविद्यालयों में अध्ययनरत् थे और सभी महाविद्यालय वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर से सम्बद्ध थे। समष्टि का संक्षिप्त विवरण अधोलिखित किसी अध्ययन की वह सम्पूर्ण ईकाई समष्टि कहलाती है। जिस पर शोध कार्य आधारित होता है।

प्रतिदर्श:- प्रस्तुत अध्ययन का न्यादर्श कुल 500 विद्यार्थियों का है। किसी बड़ी राशि में से चुनी हुई एक छोटी सी मात्रा को प्रतिदर्श या नमूना है। यह माना जाता है कि प्रतिदर्श के सांख्यिकीय गुण पूरी राशि के सांख्यिकीय गुणों का प्रतिनिधित्व करते है।

न्यादर्श:- शोधकर्त्ता द्वारा समय और धन के अभाव के कारण आगमनात्मक प्रविधि अपनाते हुए समष्टि से एक छोटा समूह अध्ययन हेतु चयनित किया जाता है। जिसे न्यादर्श कहते है। न्यादर्श पूरी समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जनपद के यादृच्छिक न्यादर्श प्रविधि द्वारा कुल पाँच सौ स्नातक स्तर के विद्यार्थी का चयन किया गया था जिनके वितरण का आधार लिंग व शहरी-ग्रामीण था। अनुसंधान में प्रायः प्रचलित विधि का प्रयोग सम्भव नही होता, क्योंकि इस विधि के द्वारा अध्ययन धन, समय व सुविधा के दृष्टिकोण से सापेक्षिकतः अत्याधिक खर्चीला व जटिल होता है। इसके विपरीत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अप्राचलिक विधि द्वारा अध्ययन पर्याप्त मात्रा में सुगम, सरल, अल्प-व्ययी तथा शुद्ध रहता है। अप्राचलिक विधि के अध्ययन का आधार प्रतिदर्श होता है।

प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिलम्ब रहता है। पी0 वी0 यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु-चित्र होता है।

यदि समष्टि का स्वरुप सजातीय रहता है, तब प्रतिदर्श के चयन में विशेष कठिनाई नहीं होतीं, परन्तु जब समष्टि का स्वरुप विषम जातीय रहता है, तब प्रतिदर्श की इकाईयों के चयन के लिए प्रतिचयन प्रक्रिया का उपयोग करना पड़ता है।

तालिका-1 न्यादर्श विवरण

क्र.सं.	महाविद्यालय	छात्र	छात्रायें	योग
1.	टी0 डी0 पी0 जी0 कॉलेज, जौनपुर	150	100	250
2.	राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर	100	150	250
	कुल योग–500	**250**	**250**	**500**

तालिका-2 क्षेत्र के आधार पर न्यादर्श विवरण

क्र.सं.	महाविद्यालय	शहरी	ग्रामीण	योग
1.	टी0 डी0 पी0 जी0 कॉलेज, जौनपुर	150	100	250
2.	राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर	150	100	250
	कुल योग–500	**300**	**200**	**500**

शोध उपकरणः- प्रस्तुत अध्ययन में आँकड़ों के संकलन हेतु जो शोध उपकरणों का निर्माण स्वयं शोधकर्त्ता द्वारा शोध निर्देशक के निर्देशन में किया गया। इनके विवरण अधोलिखित है।

सामाजिक बुद्धि मापनीः- सामाजिक बुद्धि मापनी हेतु कुल 80 कथन बनाये गये थे जो तीन बिन्दु मापनी पर थे सहमत, अनिश्चित, व असहमत इनका प्रशासन 370 छात्रों पर करके अंकन किया गया जिसमें प्रत्येक कथन पर टी–परीक्षण उच्च व निम्न समूहों के मध्य करके कुल 50 कथनों का चयन किया गया सभी विश्लेषण पर .05 सार्थकता स्तर के 1.96 से अधिक थे। इनका विश्वसनीयता गुणांक स्पिलिट हाफ 0.71 थी व वैधता गुणांक विशेषज्ञों की सहायता से 0.82 प्राप्त हुआ। मानक इनका प्रतिशत मानक था क्योंकि 80 अंक से अधिक पाने वाला अति उच्च सामाजिक बुद्धि व 20 से नीचे पाने वाला अतिनिम्न सामाजिक बुद्धि का कहा गया था। इनको प्राप्तांक सहमत पर 02, अनिश्चित पर 01 और असहमत पर 00 अंक था।

तालिका- 3 मानक तालिका

सामाजिक बुद्धि निर्धारक अंक	वर्ग
80–100	अति उच्च
60–80	उच्च
40–60	औसत
20–40	निम्न
00–20	अतिनिम्न

प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीकीः- प्रस्तुत अनुसंधान के अन्तर्गत उपरोक्त मापनी का प्रयोग करते हुए प्राप्त किये गये आंकड़ों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित सांख्यिकीय तकनीकी का प्रयोग किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में CR मूल्य 2 × 2 प्रसरण विश्लेषण सारणी तथा प्रोडक्ट मूमेंन्ट सहसम्बन्ध गुणांक का प्रयोग आंकड़ों के विश्लेषण हेतु किया गया ।

उद्देश्य से सम्बन्धित विश्लेषण व व्याख्याः- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों के सामाजिक बुद्धि का अध्ययन करना।'' इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु परीक्षण के लिये शून्य परिकल्पना बनायी गयी थी कि ''छात्र व छात्राओं के सामाजिक बुद्धि में सार्थक अन्तर नही है।'' इसके लिये निम्नलिखित विश्लेषण तालिका 1 का निर्माण हुआ।

तालिका-1 : छात्र व छात्राओं की सामाजिक बुद्धि सम्बन्धी सी.आर. मूल्य विश्लेषण तालिका

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	सी. आर. मूल्य	सार्थकता
छात्र	250	58.34	12.32	.99	6.57	.01 पर 2.58 से अधिक df (498)
छात्रायें	250	64.85	9.78			

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि छात्रों की सामाजिक बुद्धि पर प्राप्तांक का मध्यमान 58.34 और मानक विचलन 12.32 है जबकि छात्राओं के मध्यमान 64.85 व मानक विचलन 9.78 है जिनसे अभिकलित मानक त्रुटि .99 पायी गयी और सी. आर. मूल्य 6.57 प्राप्त हुआ जो df (498) के .01 सार्थकता स्तर पर 2.58 से अधिक है जिसके आधार पर शून्य परिकल्पना अस्वीकार हो जाती है और स्पष्ट होता है कि छात्राओं की सामाजिक बुद्धि छात्रों की तुलना में उच्च स्तर की होती है। प्रस्तुत अध्ययन का समर्थन आर्यनपूट (2013) का अध्ययन करती है। प्रस्तुत परिणाम के बारे में सम्भवत: कहा जा सकता है कि छात्राओं में सहनशीलता अनुशासन प्रियता व समायोजन की क्षमता उच्च स्तर की होती है।

शोध निष्कर्ष:- प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषणोपरान्त निष्कर्ष प्राप्त हुये है।

छात्राओं में सामाजिक बुद्धि की मात्रा छात्रों की तुलना में अधिक होती है।

शैक्षिक निहितार्थ:- हमारा इतिहास उच्च शिक्षा में बहुत ही प्रतिष्ठित रहा है। उच्च शिक्षा देने वाले भारतीय गुरुकुलों की बड़ी विशेषता रही है कि उनमें प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्च व उच्चतम् शिक्षा शिक्षात्मक प्राणाली से दी जाती थी। सबसे ऊपर के छात्र अपने नीचे वाले छात्रों का ध्यान रखते थे ऐसे में एक सहयोग भावना का विकास होता था और परिवार का प्रत्यय प्राप्त होता था। ऐसे में राष्ट्रीय एकता व अखड़ता को बल मिलता था। यही उच्च शिक्षा का अर्थ है। सामान्य रुप से सबको दी जाने वाली शिक्षा से ऊपर किसी विषय विशेषकर सूक्ष्म ज्ञान देना ही विश्वविद्यालय शिक्षा कही गयी। यह शिक्षा विश्वविद्यालयों, व्यावसायिक महाविद्यालयों और कम्युनिटी विश्वविद्यालयों के नाम से जाना जाता था। लिबरल आर्ट कॉलेजों एवं प्रौद्योगिकी संस्थानों आदि के द्वारा भी उच्च शिक्षा प्रदान की जाती है। प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के बाद यह शिक्षा का तृतीय स्तर है ज्यों प्राय: एच्छिक होता है। इसके अन्तर्गत स्नातक परास्नातक एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ-साथ डाक्टोरल शिक्षा प्रदान करता है। ऐसे ही उच्च शिक्षा का प्रचार प्रसार होता रहा है। इस तरह शिक्षा का स्वरुप बिखेरता हुआ भारत वर्ष में प्रतिष्ठित हुआ था। उच्च शिक्षा देने वाले भारतीय गुरुकुलों की बड़ी विशेषता यह थी कि उनकी प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम् शिक्षा की शिष्यात्मक प्रणाली (मोनिटियरिंग सिस्टम) से दी जाती थी। सबसे ऊपर का छात्र अपने नीचे के वर्ग के छात्रों को पढ़ाते थे और वे अपने से नीचे वालों को इसी प्रकार शिक्षा का लेन-देन चलता था। यद्यपि ब्राहमण, क्षत्रिय व वैश्य के पुत्र ही प्रवेश किये जाते थे और वर्णों के अनुकूल ही शिक्षा दी जाती थी तथापि नित्यधर्म, स्वच्छ, शील व शिष्टाचार की शिक्षा प्रत्येक छात्र को दी जाती थी और प्रत्येक छात्र को गुरुकुल में रहकर आश्रम का समस्त कार्य करना पड़ता था। कुछ गुरुकुल तो इतने बड़े थे वहाँ एक कुलपति व दस सहस्र ऋषियों और ब्रहमचारियों का अन्य दानादि देकर उनको पढ़ाई का प्रबन्ध करते थे और छात्र भी अपने सामर्थ्य के अनुसार गुरुदक्षिणा देते थे किन्तु कोई भी राजा अपने गुरुकुलों के हस्तक्षेप नहीं करते थे। इन गुरुकुलों का प्रारम्भ वास्तव में उन उपनिषदों से हुआ जिनमें चार से लेकर 21 तक विद्वान व मनीषी किसी नैतिक, सामाजिक या धार्मिक समस्यायों पर व्यवस्था देने के लिये एकत्र होते थे। कुछ गुरुकुलों ने वर्तमान राज्य विश्वविद्यालयों का रुप धारण कर लिये हैं। इन गुरुकुलों में वेदांग, वेद, दर्शन, नीतिशास्त्र, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, दंडनीति, सैन्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद आदि सभी विषयों की उच्च शिक्षा दी जाती थी और जब छात्र सब विधाओं में पूर्ण निष्पात हो जाता था तभी वह स्नातक हो पाता था। ब्राहमणों को यह छूट थी कि वे चाहे तो जीवन भर विद्यार्जन करते रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

कुबेल एसर (2019); ''सामाजिक बुद्धिमत्ता'' ओरेकल छात्र आवास आस्ट्रेलिया.

मैथ्यू (2019); ''सामाजिक खुपिया: एक प्राथमिक'' इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च ग्रन्थालय वाल. 07, नवम्बर 09 (2019): खण्ड -07 अंक 09 सितम्बर 2019.

पारिल दीपाली (2021); ''बी.एड्. छात्रों की सामाजिक बुद्धि और शैक्षणिक उपलब्धि का एक सह-सम्बन्धिक अध्ययन'' सोलापुरन विश्वविद्यालय रिसर्च गेट.

विकीपीडिया (2021); ''सामाजिक बुद्धिमत्ता'' विकीपीडिया

लैट्रिका ए0 (2022); ''डू स्टूडेंट्स एक्सपीरियेंन्स'' सोशल इन्टेलीजेन्स'' लाफ्टर एण्ड अदर इमोशन्स ऑन लाइन'' जर्नल ऑफ एसाइक्रोनस लर्निंग न्यूयार्क वाल-16 इसू-04.

लोढ़ा जितेन्द्र कुमार (2018); ''उच्च व निम्न बुद्धि वाले विद्यार्थियों के आत्मविश्वास का अध्ययन'' रिसर्च जर्नल चेतना ISSN 2231-3613.

स्वामी आंसरी के0 (2019); ''सोशल इन्टेलीजेंस एमंग एडालसेट व्यावज एण्ड गर्ल्स'' इंडियन जर्नल ऑफ रिसर्च वाल-08, इसू-10, अक्टूबर 2019 ISSN (2250-1991)

शर्मा नेहा (2019); ''ए कोरिलेसनल स्टडी ऑफ सोशल इन्टेलीजेंस एण्ड वेल बिंग'' आर्ट जे0ई0एस0सी0 रिसर्च आर्टिकल वाल-09 इसू नं0-04.

''उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम पर प्रभाव व अध्ययन''

डॉ० पार्वती यादव

सीमा कुमारी

सारांशः-

मनुष्य एवं सामाजिक प्राणी है वह समाज में रहता है जिसके कारण उसे समाज के कुछ नियम और आदर्शो का पालन करना होता है। ये नैतिक संबंधी नियम तथा आदर्श ही नैतिक मूल्य कहलाते है। नैतिक मूल्य व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है इनमें से एक महत्वपूर्ण पक्ष सृजनात्मकता है। प्रस्तुत शोध में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध में बिलासपुर संभाग के उच्च माध्यमिक स्तर के 800 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों के मापन हेतु अल्पना सेन गुप्ता एवं अरूण कुमार सिंह द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य मापनी का एवं सृजनात्मकता के मापन हेतु वी.के. पासी द्वारा निर्मित Passi Test of cerativity का प्रयोग किया गया है। आंकड़ो का एकत्रित करने के बाद इसका सांख्यिकीप विश्लेषण किया गया। विश्लेषण के पश्चात् यह पाया गया, की उच्च स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का उनके सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तावनाः-

मनुष्य समाज का अभिन्न अंग होने के कारण उसे समाज के बनाये नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है। ये नैतिक संबंधी नियम और आदर्श ही नैतिक मूल्य कहलाते है। विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम से नैतिक मूल्यों के बारे में बताया जा सकता है तथा छात्रों को इसे पालन करने के लिए प्रेरित भी किया जा सकता है। नैतिक मूल्य और सृजनात्मकता के साथ विशेष संबध है। नैतिक मूल्य छात्रों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम को किस प्रकार प्रभावित करता है। इस बिन्दु पर प्रकाश डालने का प्रयास प्रस्तुत शोध में किया गया है।

अध्ययन का औचित्यः-

आज वर्तमान समय में व्यक्तियों और विद्यार्थियों में नैतिक मूल्य के प्रति आस्था कम होते जा रही है। इस तरह अगर नैतिक मूल्यों का अभाव निरंतर जारी रहा तो समाज में अराजकता और विघटन जैसी समस्या की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इस कारण वर्तमान में विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का पता लगाना अत्यावश्यक है कि नैतिक मूल्य विद्यार्थियों के विभिन्न गुणों को किस प्रकार प्रभावित करता है। जैसे समायोजन, सृजनात्मकता, मानसिक स्वास्थ्य इत्यादि। सृजनशीलता के गुण छात्रों को विद्यालय और समाज

में सफल होने में सहायता करता है। सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम को नैतिक मूल्य किस प्रकार प्रभावित करती है। यह ज्ञात करने हेतु प्रस्तुत शोध में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का उनके सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

समस्या कथनः-

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम पर प्रभाव का अध्ययन।

प्रस्तुत पदों की क्रियात्मक परिभाषाः-

नैतिक मूल्यः-

प्रत्येक व्यक्ति का समाज में रहते हुए समाज के नैतिक संबंधी नियम तथा आदर्शों का पालन करना होता है। ये नैतिक संबंधी नियम तथा आदर्श की नैतिक मूल्य कहलाते है।

सृजनात्मकता के प्रवाह आयामः-

सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नए विचार या नई वस्तु का निर्माण करते है। प्रवाह आयाम से तात्पर्य किसी वस्तु को कितने तरीके से बनाना। अर्थात सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम वह योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी नए विचार या नई वस्तु का निर्माण विभिन्न तरीकों से करना या बनाना।

अध्ययन के उद्देश्यः-

01. उच्च एवं औसृत नैतिक मूल्य वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम का तुलनात्मक अध्ययन।
02. उच्च एवं निम्न नैतिक मूल्य वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम का तुलनात्मक अध्ययन।
03. औसत एवं निम्न नैतिक मूल्य वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन को परिकल्पनाः-

भ्01 उच्च एवं औसत नैतिक मूल्य वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

भ्02 उच्च एवं निम्न नैतिक मूल्य वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

भ्03 औसत एवं निम्न नैतिक मूल्य वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

जनसंख्या एवं न्यादर्शः-

प्रस्तुत शोध में छत्तीसगढ़ के बिलासपुर संभाग के 800 विद्यार्थियों का चयन किया गया है। इन 800 विद्यार्थियों में 400 छात्र तथा 400 छात्राएं शामिल है।

अध्ययन में प्रस्तुत उपकरणः-

प्रस्तुत शोध में आंकड़ो के संकलन हेतु निम्नाकित उपकरणों का प्रयोग किया गया है।

01. अल्पना सेन गुप्ता एवं अरूण कुमार सिंह द्वारा निर्मित Moral Value Scale
02. बी.के. पासो द्वारा निर्मित Passi test of creativity.

अध्ययन हेतु प्रस्तुत सांख्यिकीय विधियां

01. मध्यमान
02. मानम विचलन
03. मानक त्रुटि विचलन
04. टी-परीक्षण

तालिका

नैतिक मूल्य	अंको का प्रसार	छात्रों की संख्या
उच्च	28 से 36	202
औसत	13 से 27	426
निम्न	13 से कम	172

परिकल्पनाओं का विवरण एवं व्याख्या:-

HO1 उच्च एवं औसत नैतिक मूल्य वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

सारिणी क्रमांक - 1

Variable	Category	N	Mean	SD	SED	T-test value	Dt	Signiticance level	Interpretation
The flow dimension of Creativity	Good	202	74.97	20.52	1.93	3.22	626	0.05=1.96	HO1
	Average	426	68.75	26.71				0.01=2.59	Rejected

विश्लेषण:-

सारिणी क्रमांक 01 से ज्ञात होता है कि उत्त/उच्च और औसत नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम को आधार पर प्राप्त किए मध्यमान क्रमश: 74.97 तथा 68.75 है वही प्रमाणिक विचलन क्रमश: 20.52 तथा 26.71 है। मध्यमानों में अंतर को सार्थकता जांच के लिए t- मूल्य परीक्षण किया गया। गणना से प्राप्त t का मान 3.22 है। df=626 के लिए t का सारिणी मान 0.05 के सार्थकता स्तर पर 1.96 एवं 0.01 के सार्थकता स्तर पर 2.59 है। t का प्राप्त मान t के सारणी मान से 0.05 तथा 0.01 दोनों ही सार्थकता स्तरों पर अधिक है। अर्थात उत्तम और आहत नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर पाया गया।

परिणाम:- उच्च और औसत नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर है।

HO2 उच्च एवं निम्न नैतिक मूल्य वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर नहीं पाया जागा।

सारणी -2

Variable	Category	N	Mean	SD	SED	T-test value	Dt	Significance level	Interpretation
The flow dimension of Creativity	Good	202	74.97	20.52	2.001	6.08	372	0.05=7.97	1+02
	Average	172	62.79	18.53				0.01=2.59	Rejected

विश्लेषण:- सारिणी क्रमांक 02 से ज्ञात होता है कि उत्त/उच्च और औसत नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम को आधार पर प्राप्त किए मध्यमान क्रमशः 74.97 तथा 62.79 है वही प्रमाणिक विचलन क्रमशः 20.52 तथा 18.53 है। मध्यमानों में अंतर को सार्थकता जांच के लिए t- मूल्य परीक्षण किया गया। गणना से प्राप्त t का मान 6.08 है। df=372 के लिए t का सारिणी मान 0.05 के सार्थकता स्तर पर 1.97 एवं 0.01 के सार्थकता स्तर पर 2.59 है। t का प्राप्त मान t के सारणी मान से 0.05 तथा 0.01 दोनों ही सार्थकता स्तरों पर अधिक है। अर्थात उत्तम और आहत नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर पाया गया।

परिणाम:- उच्च और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर है।

HO3 औसत और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक नहीं पाया जाएगा।

सारणी-3

Variable	Category	N	Mean	SD	SED	T-test value	Dt	Significance level	Interpretation
The flow dimension of Creativity	Good	426	68.75	26.71	1.91	3.12	596	0.05=1.96	HO3
	Average	172	62.79	18.53				0.01=2.59	Rejected

विश्लेषण:- सारिणी क्रमांक 03 से ज्ञात होता है कि औसत और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम को आधार पर प्राप्त किए मध्यमान क्रमशः 68.75 तथा 62.79 है वही प्रमाणिक विचलन क्रमशः 26.71 तथा 18.53 है। मध्यमानों में अंतर को सार्थकता जांच के लिए t- मूल्य परीक्षण किया गया। गणना से प्राप्त t का मान 3.12 है। df=596 के लिए t का सारिणी मान 0.05 के सार्थकता स्तर पर 1.96 एवं 0.01 के सार्थकता स्तर पर 2.59 है। t का प्राप्त मान t के सारणी मान से 0.05 तथा 0.01 दोनों ही सार्थकता स्तरों पर अधिक है। अर्थात उत्तम और आहत नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर पाया गया।

परिणाम:- औसत और निम्न नैतिक मूल्य वाले विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम के सार्थक अंतर है।

उपसंहारः-

विद्यार्थियों के विद्यार्थी जीवन में ही अच्छे गुणों का विकास किया जा सकता है। जिससे वे अपने जीवन में सफलता और कुशलता हासिल कर सके। प्रस्तुत शोध के परिणाम से स्पष्ट है कि विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य का सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। अर्थात विद्यार्थियों के नैतिक मूल्य का सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम में सार्थक अंतर है।

अतः आवश्यक है कि विद्यालयों एवं समाज में शिक्षकों एवं अभिभावकों द्वारा बालकों में नैतिक मूल्यों का विकास इस तरह से किया जाय जिससे विद्यार्थियों का समाज एवं विद्यालयों एवं अन्य जगहों में सही ढंग से समायोजित हो सके और स्वास्थ्य राष्ट्र का निर्माण में अपना योगदान दे सके। नैतिक मूल्य विद्यार्थियों को स्कूल एवं घर समाज अन्य जगहों पर सामाजिक नियम पालन करने के लिए प्रेरित करती है सृजनात्मकता के प्रवाह आयाम का विकास तभी संभव है जब विद्यार्थियों में स्वतंत्र स्वच्छंद विचारों वाला, आत्मविश्वासी तथा हौसले से भरपुर हो।

संदर्भ-ग्रंथ

01. सिंह ए.के. (2015) मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदासः पटना पेज नं. 101, 217
02. मंगल, एस.के. एवं मंगल शु. (2017): व्यवहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियां, पी.एच. आई लानिंग, नई दिल्ली, पृ. 244
03. पाण्डेय आर.एस. (2003): शिक्षा मनोविज्ञान, आर.लाल बुक डिपोः मेरठ, पेपर नं. 340
04. नायक, पी.के. (2015): एडवांस एजुकेशनल साइकोलॉजी, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
05. शर्मा वी.पी. 2016 रिसर्च मेथडोलॉजी पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पेज नं. 450
06. कुलश्रेष्ठ, एस.पी. (2004) शैक्षिक तकनीकों के मूल आधार निषाद पुस्तक मंदिर आमरा, नवीनतम संस्करण
07. गुप्ता प्रो. एस. पी. एवं गुप्ता, डॉ. अलमा (2015), उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान सिद्धांत एवं व्यवहार शारदा प्रस्तक भवन, इलाहाबाद।

पाणिनीय धातुपाठ में धातुओं की समानार्थकता

डॉ० योगेन्द्र कुमार धामा

सह-आचार्य, संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, बामनवास, सवाई माधोपुर, राजस्थान

भारतीय चिन्तन में पद पदार्थ का विवेचन केवल शाब्दिकअर्थों तकसीमित न रहकर शब्दों के तात्विकतात्पर्यों तकपहुँचने के लिए प्रयत्नशील रहा है। भावना, मनोसंवेग, करुणा एवं वात्सल्य जैसे भावनात्मकअर्थ तत्वों के शब्द के साथ संमिश्रण की प्रक्रिया हमें बहुत प्राचीन काल में भारतीय परम्परा में उपलब्ध होती है। ऋग्वेद का प्राचीन ऋषि–

'उतत्व: पश्यन्न ददर्श वाचम् उतत्व श्रृणवन्न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासा' ।।[1]

इत्यादि मन्त्रों के द्वारा इन्हीं भावों को कहता है।

शब्दार्थ चिन्तन की यह गहन परम्परा ऋग्वैदिककाल से प्रारम्भ होकर ब्राह्मण व आरण्यककाल में पर्याप्त संवर्धित हुई है। इसी परम्परा में शब्द मात्र को धातु से निष्पन्न बताना महर्षि यास्कका महत्वपूर्ण चिन्तन था। वस्तुत: पद पदार्थ विवेचना का जो विशाल प्रासाद महर्षि पाणिनी, पतञ्जलि एवं कात्यायन ने खड़ा किया उसका मूलाधार यास्ककी घोषणा ही है।

व्याकरण की आरंभिकअवस्था में शब्द तत्त्व की व्याकृति के लिए 'धातु' रूप मूल प्रकृति का अन्वेषण किया गया। कालान्तर में आचार्यों के एकसमुदाय ने धातु को ही प्रत्येकपद का मूल माना। पाणिनि से उत्तर काल में व्याकरण का विकास जब अपनी चरम परिणति पर था, आचार्यों ने व्याकरण के शब्दों को सैद्धान्तिकस्वरूप प्रदान करने के लिए गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किये। इस विवेचन के परिणामस्वरूप आज हम पद, प्रातिपदिक, धातु इत्यादि पारिभाषिकशब्दों की एकव्यवस्थित व्याख्या पाते हैं।

संस्कृत भाषा की सौष्ठव युक्त संरचना का श्रेय व्याकरण को ही है। समकालीन संस्कृत व्याकरणों में सर्वाङ्ग रूप से पाणिनीय व्याकरण ही उपलब्ध होता है। महर्षि पाणिनि ने विषय के सम्यक् विवेचन के लिए इसके पंचांगो का निर्देश किया है– सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ एवं लिङ्गानुशासन। इन पाँच अंगो के द्वारा महर्षि पाणिनी ने व्याकरण को एकसुव्यवस्थित तथा संस्कृत को सुसंस्कृत स्वरूप प्रदान किया। जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत के विषय भाषाशास्त्रीय नियमों के अपवाद बने रहे। शताब्दियों से संस्कृत अपनी शब्द निर्माण प्रक्रिया व निर्वचन शैली के कारण अपने अक्षुण्ण स्वरूप को स्थिर किये हुए है। यास्ककी उक्ति 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि'[2] के अनुसार संस्कृत की अक्षुण्णता को बनाए रखने में धातुओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

पाणिनीय व्याकरणानुसार धातु शब्द 'दधाति इति धातु:' इस व्युत्पत्ति जुहोत्यादिगणस्थ 'डुधाञ् धारणपोषणयो:'[3] धातु से औणादिकतुन् प्रत्ययान्त निष्पन्न होता है। इस तरह इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ होगा, जो धारणकर्ता है– वह धातु है। अर्थात् वह मूलभूत शब्द जो नाम विभक्तियों से युक्त होकर 'नाम' का द्योतन कराता है, तिङ् प्रत्ययों से युक्त होकर जो क्रिया के स्वरूप को स्पष्ट करता है तथा किसी भी प्रत्यय का संसर्ग न होने पर जो स्वार्थ मात्र का द्योतक है, वह धातु है। इस प्रकार पद रचना तथा वाक्य रचना में धातु का महत्वपूर्ण स्थान है। धातु विषयकचर्चा तब और भी रूचिपूर्ण हो जाती है जब अनेकधातुएँ एकही अर्थ में पठित मिलती हैं। वस्तुत: समानार्थकप्रतीत होने वाली ये धातुएँ धात्वर्थ के विभिन्न पक्षों को उजागर करती हैं। जो संस्कृत भाषा की विशेषता की द्योतक है। परन्तु जो परम्परा जितनी अधिक विकसित होती है, वह चाहे कितनी भी व्यवस्थित क्यों न हो, उसके साथ कुछ विवादों का जुडना स्वाभाविक ही है। वैयाकरण जगत् के विवाद भी प्रत्याहार सूत्रों से आरम्भ होकर 'इति चिन्त्यम्' पर जाकर ही समाप्त होते हैं।

अर्थ की दृष्टि से वर्गीकरण के आधार पर धातुपाठ में एकही अर्थ में अनेक धातुओं का पाठ महर्षि पणिनि ने किया है। अत: धातुओं के समानार्थक प्रतीत होने पर भी सूक्ष्मभेद होने के कारण धातुओं का अर्थ समझने की भ्रान्ति बनी रहती है।

धातुपाठ में धातुओं की समानार्थकता-

व्याकरण के पाँच अंग है- सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ तथा लिङ्गानुशासन। पुराकाल में व्याकरण सम्प्रदाय के प्रवक्ता अपने सूत्रपाठ के अनुसंगत धातुपाठ का प्रवचन भी किया करते थे, यह बात प्राप्त प्रमाणों के आधार पर पूर्णतया स्पष्ट है। महर्षि पाणिनि रचित अनेकसूत्रों को देखने से स्पष्ट है कि उन्होंने पंचांग व्याकरण का उपदेश तथा सूत्रपाठ से पूर्व धातुपाठ का प्रवचन किया था। यथा-किरश्च पञ्चभ्य:[4], पुषादिद्युतादय्लृदित: परस्मैपदेषु[5] इत्यादि।

कतिपय आचार्यों की मान्यता है कि महर्षि पाणिनि ने धातुपाठ का अर्थ निर्देश रहित प्रवचन किया था। कालान्तर में किसी भीमसेन नामा वैयाकरण ने इसका अर्थ निर्देश सहित प्रतिपादन किया। परन्तु व्याकरण के कालजयी इतिहासकार आचार्य युधिष्ठिर मीमांसक उनके इन उपर्युक्त विचारों से सहमत नहीं हैं। मीमांसकजी के अनुसार यदि किसी अर्वाक्कालिक व्यक्ति (भीमसेन) ने धातुओं के साथ अर्थ जोड़े होते तो एकस्थान से पठित धातु के साथ ही सभी अभिप्रेत अर्थों का उल्लेख किया होता। अर्थभेद से धातु का पुन: पाठ न किया होता। अङ्ग प्राधान्य न्याय से अङ्ग रूप अर्थ के कारण प्रधान रूप धातु का पुन: पाठ कदापि उपयुक्त नहीं हो सकता। इससे स्पष्ट है कि जैसे सूत्रपाठ में पाणिनि ने समान आनुपूर्वी वाला 'बहुलं छन्दसि' सूत्र प्रकरण भेद से अनेक[6] स्थानों में पढ़ा, वैसे ही उसने एकधातु का ही अर्थ भेद से 2-3 बार पाठ किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि धातुओं का अर्थनिर्देश पाणिनीय ही है।

धातुपाठ में दिये गये अर्थ निर्देश से सामान्यतया धातुओं का अर्थ तो स्पष्ट हो जाता हे जैसे पा पाने, अद् भक्षणे, शीङ् शयने इत्यादि अर्थात् पा धातु पीना अर्थ में, अद् धातु भक्षण अर्थ में तथा शीङ् धातु शयन अर्थ में है। परन्तु समस्या तब उत्पन्न होती है जब एकही अर्थ में अनेकधातुओं का उल्लेख मिलता है। उदाहरण स्वरूप धातुपाठ के प्रत्येकगण में सैकड़ों धातुएँ गत्यर्थकपढ़ गई हैं। यह तो सुनिश्चित है कि वे धातुएँ गति के विभिन्न अर्थ वैशिष्ट्यों को प्रकट करती हैं पर वे कौन-कौन से रूप को प्रकट करतीं हैं, यह धात्वर्थ निर्देश से सही रूप से स्पष्ट नहीं हो पाता। यथा- गम्लृ गतौ, अय गतौ, अम्ब् गतौ, कस गतौ इन सभी धातुओं को गत्यर्थ में पढ़ा गया है। परन्तु गति तो धीरे-धीरे जाना, जल्दी जाना, लंगड़ाकर चलना, ऊपर जाना, नीचे जाना आदि भेदों के आधार पर कई प्रकार की होती है। धातुपाठ में गत्यर्थक धातुओं को प्राय: गतौ या गत्यर्थ: इन दो पदों से निर्देशित किया गया है। अत: गम्लृ आदि धातुओं को समानार्थक समझने की भ्रान्ति उत्पन्न होती है। वस्तुत: ये धातुएँ गति के सूक्ष्म भेदों तथा वैशिष्ट्य के द्योतनार्थ धातु पाठ में पठित हैं, अन्यथा इन धातुओं के समानार्थक होने की अवस्था में तो एकही धातु कार्य साधकहो जाती, उन शतश: धातुओं के धातुपाठ में पढने की आवश्यकता ही नहीं थी। चञ्च् गतौ, क्रुञ्च् गतौ, उख गतौ, रंह् गतौ, चुप् गतौ आदि धातुओं को एकही अर्थ में पढने की आवश्यकता ही नहीं थी, गम्लृ गतौ इस एकही धातु से कार्य सम्पन्न हो जाता। जिससे वैयाकरणों के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि शास्त्र के लाघव की होती क्योंकि 'अर्धमात्रा लाघवेन पुत्रजन्मोत्सवम्मन्यन्ते वैयाकरणा:'। परन्तु इन धातुओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन धातुओं में कोई भी दो धातुएँ समानार्थक नहीं है। इन सबमें अर्थगत वैभिन्न्य विद्यमान है। जैसे चञ्च्[7] धातु गति के अन्तर्गत स्पन्दन अर्थ में, क्रुञ्च्[8] धातु सर्पिल गमन में, उख[9] धातु कांपना अर्थ में, रंह्[10] धातु तेजी से आना अर्थ में तथा चुप्[11] धातु धीरे-धीरे जाना अर्थ में प्रयुक्त होती है।

इसी के साथ अट्[12] धातु पाणिनि ने गति अर्थ में पढ़ी हैं। परन्तु साहित्य में उपलब्ध अटा, अटाट्या, अट्या, अटनम् आदि शब्द इसके इधर-उधर घूमने अर्थ की पुष्टि करते हैं। इसी प्रकार गति अर्थ में पठित अहि[13] धातु वक्र गति अथवा टेढ़ा-मेढ़ा चलने अर्थ में, ईखि[14] धातु आन्दोलित होने, झूलने अर्थ में, कर्ब[15] धातु नीचता पूर्ण कार्य करने पतित होने अर्थ में, क्लुङ्[16] धातु स्पन्दन अर्थ में, खेलृ[17] धातु क्रीड़ा अर्थ में, चञ्चु[18] धातु स्फुरण अथवा चाञ्चल्य अर्थ में, टीकृ[19] धातु इधर-उधर घूमने अर्थ में, त्रौकृ[20] धातु उछलने अथवा उडने अर्थ में, द्रु[21] धातु शीघ्र गति अर्थ में, धावु[22] धातु दौडने अर्थ में, हिडि[23] धातु इधर-उधर घूमने फिरने अर्थ में प्राप्त होती है।

पाणिनि ने धातुपाठ में अनेक धातुएँ हिंसा अर्थ में पढ़ी हैं। 'हिंसि हिंसायाम्'[24] धातु से व्युत्पन्न यह शब्द पर्याप्त अर्थ विस्तार को अपने अन्दर समेटे हुए है। जिसके प्रत्येक भावों का पाणिनि ने पृथक् पृथक् स्पष्ट अर्थोल्लेख न करके वे सभी धातुएँ हिंसा अर्थ में ही पढ़ दी हैं। वस्तुत: क्षति, उत्पात, बुराई, नुकसान, चोट इत्यादि तीनों प्रकार के कायिक, वाचिक, मानसिक भावों को हिंसा शब्द अपने अन्दर समेटे हुए है। वैदिक प्रयोगों के आधार पर स्वामी दयानन्द इसके उखाड़ फेंकना, नष्ट करना, वध करना, पीड़ा देना अथवा अत्यधिक लाड़ प्यार कुशिक्षा आदि के द्वारा बालकों को नष्ट करने को भी हिंसा शब्द से ही ग्रहण करते हैं। अमर कोष

में अमरसिंह ने चौर्य्यादि कर्मो को हिंसा कहा है। जिसकी टीका में भरत ने चौर्य्य कर्म को बाँधना, पीटना, नष्ट करना, डराना अथवा वध करना आदि अनेक भावों का ग्रहण किया है। इस प्रकार किसी भी कार्य की असह्यता को हिंसा कहा जा सकता है। उन्हीं समानार्थक हिंसा अर्थ में निर्दिष्ट धातुओं में निहित सूक्ष्म अर्थ पार्थक्य अवश्य है। यथा सूत्रकार द्वारा हिंसा अर्थ में पठित अट्ट[25] धातु अनादर करने अर्थ में, कष्[26] धातु मसलने, खुरचने, पीड़ित करने अर्थ में, झर्झ[27] धातु झंझोड़ने अर्थ में, दाशृ[28] धातु धोखे से मारने अर्थ में, द्रुण्[29] धातु काटने, सताने अर्थ में, मीञ्[30] धातु वध करने अर्थ में, रध्[31] धातु क्षति पहुँचाने अर्थ में, श्रथ्[32] धातु वध करने अर्थ में प्राप्त होती है।

व्याकरण शास्त्र में शब्द ब्रह्म के रूप में स्तुत है। यदि लौकिकजगत् में हम इसका ब्रह्मत्व स्वीकार ना भी करें, फिर भी इसके सर्वव्यापक प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। शब्दों का प्रयोग, उसकी उच्चारण विधि जिसे आचार्य पाणिनि ने उदात्त, अनुदातत, स्वरित से नियंत्रित किया है, अध्ययन का बहुत विस्तृत क्षेत्र है। जिसे महर्षि पाणिनि ने 'शब्दे' या 'अव्यक्ते शब्दे' प्रयोगों में निर्धारित किया है। यथा- पाणिनि द्वारा शब्द करणार्थकअबि[33] धातु थूकने की ध्वनि अथवा बालकद्वारा अस्पष्ट रूप से पुकारने अर्थ में, कण्[34] धातु आर्तनाद करने अर्थ में, कासृ[35] धातु खांसने अर्थ में, क्वण्[36] धातु वाद्य यन्त्रों की ध्वनि अर्थ में, टुक्षु[37] धातु छींकने अर्थ में, गुङ्[38] धातु गो वर्ग के पशुओं की ध्वनि के अर्थ में, गृ[39] धातु स्तुति करने अर्थ में, ध्मा[40] धातु फूंकमारकर की गयी ध्वनि के अर्थ में, णासृ[41] धातु खर्राटे लेने अर्थ में, रेषृ[42] धातु घोड़े के हिनहिनाने अर्थ में हिक्क्[43] धातु हिचकी लेने अर्थ में प्राप्त होती है।

इसी प्रकार अन्य अर्थो में भी धातुएं समानार्थक पढ़ी गई हैं। यथा-क्रीड़ा अर्थ में विद्यमान उर्द्[44] धातु जल क्रीड़ा अर्थ में, किल्[45] धातु हास, विलास, विनोद अर्थ में, कूर्द्[46] धातु कूदने अर्थ में, दिवु[47] धातु जुंआ खेलने अर्थ में प्राप्त होती है। निवास अर्थ में विद्यमान मठ्[48] धातु शिक्षा दीक्षा के निमित्त रहने अर्थ में, कित्[49] धातु स्वास्थ्य लाभ के लिए कहीं रहने अर्थ में, पिजि[50] धातु पशु पक्षियों के निवासार्थ निर्मित पिंजरे के अर्थ में प्राप्त होती है। इसी प्रकार परिभाषण अर्थ में विद्यमान चर्च[51] धातु चर्चा करने अर्थ में, भट[52] धातु चाटुकारिता करने अर्थ में, मत्रि[53] धातु गुप्त मंत्रणा करने अर्थ में, भडि[54] धातु अश्लील उपहास करने अर्थ में प्राप्त होती है। ज्ञानार्थकमन[55] धातु मनन करने अर्थ में तथा विद[56] धातु जानने, समझने अर्थ में प्राप्त होती है। इसी प्रकार व्यक्तायां वाचि अर्थ में विद्यमान पठ्[57] धातु पढने अर्थ में, भाष[58] धातु भाषण देने, बोलने अर्थ में तथा लप[59] धातु बातचीत करने, कानाफूसी करने तथा बड़बड़ाने अर्थ में प्राप्त होती है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सभी समानार्थकधातुओं में सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद विद्यमान अवश्य है। समानार्थक धातुओं के विवेचन द्वारा उन-उन धातुओं के अर्थों को पूर्णतया स्पष्ट किया जाना आवश्यक है। जो संस्कृत भाषा की उन्नति में प्रयासरत लोगों के लिए नितांत करणीय कार्य है। यह प्रयास ही संस्कृत में पुनः क्रियानुरूप धातु के प्रयोग में सहायक होता हुआ संस्कृत के माधुर्य, सौष्ठव में वृद्धि करता हुआ शोध के आयामों को परिवर्धित करेगा।

संदर्भ

1. ऋग्वेद 10.71.4
2. निरुक्त 1.14
3. पाणिनीय धातुपाठ 3.10
4. पाणिनीय अष्टाध्यायी 7.2.75
5. पाणिनीय अष्टाध्यायी 3.1.55
6. पाणिनीय अष्टाध्यायी 2.4.39, 2.4.73, 2.4.76, 3.2.88, 5.2.122, 6.1.34, 7.1.8, 7.1.10, 7.1.103, 7.3.97,7.4.78,
7. पाणिनीय धातुपाठ 1.116
8. पाणिनीय धातुपाठ 1.113
9. पाणिनीय धातुपाठ 1.88
10. पाणिनीय धातुपाठ 1.487
11. पाणिनीय धातुपाठ 1.286
12. पाणिनीय धातुपाठ 1.192
13. पाणिनीय धातुपाठ 1.423
14. पाणिनीय धातुपाठ 1.88

15. पाणिनीय धातुपाठ 1.288
16. पाणिनीय धातुपाठ 1.685
17. पाणिनीय धातुपाठ 1.364
18. पाणिनीय धातुपाठ 1.116
19. पाणिनीय धातुपाठ 1.74
20. पाणिनीय धातुपाठ 1.74
21. पाणिनीय धातुपाठ 1.677
22. पाणिनीय धातुपाठ 1.397
23. पाणिनीय धातुपाठ 1.167
24. पाणिनीय धातुपाठ 7.18, 10.256
25. पाणिनीय धातुपाठ 1.155
26. पाणिनीय धातुपाठ 1.462
27. पाणिनीय धातुपाठ 1.475
28. पाणिनीय धातुपाठ 5.30
29. पाणिनीय धातुपाठ 6.49
30. पाणिनीय धातुपाठ 9.4
31. पाणिनीय धातुपाठ 4.82
32. पाणिनीय धातुपाठ 1.542, 10.249
33. पाणिनीय धातुपाठ 1.262
34. पाणिनीय धातुपाठ 1.303
35. पाणिनीय धातुपाठ 1.414
36. पाणिनीय धातुपाठ 1.303
37. पाणिनीय धातुपाठ 2.29
38. पाणिनीय धातुपाठ 1.680
39. पाणिनीय धातुपाठ 9.29
40. पाणिनीय धातुपाठ 1.661
41. पाणिनीय धातुपाठ 1.416
42. पाणिनीय धातुपाठ 1.413
43. पाणिनीय धातुपाठ 1.601
44. पाणिनीय धातुपाठ 1.18
45. पाणिनीय धातुपाठ 6.63
46. पाणिनीय धातुपाठ 1.19
47. पाणिनीय धातुपाठ 4.1
48. पाणिनीय धातुपाठ 1.224
49. पाणिनीय धातुपाठ 1.719
50. पाणिनीय धातुपाठ 10.35
51. पाणिनीय धातुपाठ 6.17
52. पाणिनीय धातुपाठ 1.529
53. पाणिनीय धातुपाठ 10.149
54. पाणिनीय धातुपाठ 1.172
55. पाणिनीय धातुपाठ 4.65
56. पाणिनीय धातुपाठ 2.57
57. पाणिनीय धातुपाठ 1.222
58. पाणिनीय धातुपाठ 1.407
59. पाणिनीय धातुपाठ 1.285

कम या अनियमित नींद से टाइप -2 मधुमेह का खतरा

वन्दना सिंह यादव

शोध छात्रा, गृह विज्ञान विभाग, हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड

प्रस्तावना

Introduction

कोविड 19 की महामारी ने शारीरिक और मानसिक सेहत को बहुत प्रभावित किया है। लोगों के जहन में एक असुरक्षा का भाव पैदा हो गया है ,चाहे वो डर कोरोना संक्रमण से लड़ने, उससे बचने का हो अथवा नौकरी जाने या अपनों के खोने का हो। इन्हीं चिंताओं की वजह से हमारी नींद के चक्र पर असर पड़ा, जिससे लोग अनिद्रा के शिकार होते गए। इन दो सालों की उठा – पटक ने अधिकतर लोगों को सिवाय चिंता के कुछ और नहीं दिया, जिस कारण लोग पूरी तरह सो भी नहीं पा रहे हैं। पूरी रात बिस्तर पर होने के बावजूद आँखों से नींद कोसों दूर हो गई है। इस कारण लोगों के शारीरक स्वास्थ्य पर तो असर पड़ा ही है, लेकिन उससे भी ज्यादा उनकी मानसिक सेहत गडबड़ाई है। तमाम लोग अवसाद का शिकार हुए हैं। उनकी रोग – प्रतिरोधक क्षमता कमजोर हुई है। नींद न आने और मोबाइल में घंटों-घंटों लगे रहने से आँखों पर भी विपरीत असर पड़ा है।

एक अमेरिकन सर्वे में 70 फीसदी लोगों ने इसकी शिकायत होने की बात स्वीकार की। 56 फीसदी ने माना कि उनकी आधी रात करवटें बदलने में गुजरी। 51 फीसदी ने नींद के लिए दवाओं का सहारा लेने की बात कुबूल की। लेकिन अगर आप रात में काम करते है या आपको अच्छी नींद नहीं आती तो आपको सावधान होने की जरूरत है क्योंकि आपको टाइप- 2 मधुमेह होने का खतरा अधिक रहता है। आपका यह सोचना कि 4-5 घण्टे की नींद ले लेना आपके शरीर के लिए पर्याप्त है, तो अपनी इस सोच को बदल डालिए। इसके साथ ही प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में नींद लेना शुरू कर दीजिए यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो आगे चलकर आपके शरीर में मौजूद रक्त शर्करा (blood sugar) का स्तर गड़बड़ा सकता है, जिससे आप टाइप-2 मधुमेह से पीड़ित हो सकते है। टाइप-2 मधुमेह के कारणों को लेकर यह नई बात सामने आई है।

एक नये शोध के मुताबिक रात में काम करने से रक्त में ग्लूकोस का स्तर अनियमित हो जाता है, जिससे टाइप-2 मधुमेह होने की आशंका बढ़ जाती है। दिन में काम करने वालों के बजाय नाईट शिफ्ट में काम करने वालों में ग्लूकोज का स्तर 16% बढ़ गया। बोस्टन में वीमेंस हॉस्पिटल एंड हावर्ड मेडिकल स्कूल और ब्रिघम के मेडिकल क्रोनोबायोलाजी प्रोग्राम आफ द डिवीजन आफ स्लीप मेडिसिन के शोधकर्ता क्रिस्टोफर मारिस के मुताबिक "एक रात भी काम करना ग्लूकोस के स्तर को अनियमित कर देता है। टाइप -2 मधुमेह की बीमारी में ब्लड में ग्लूकोज की मात्रा सामान्य से अधिक हो जाती है। ऐसे मरीजों में मोटापा, आँखों की समस्याओं, गुर्दे की समस्याओं और मस्तिष्क व हृदय रोंगों का खतरा बढ़ जाता है। एक अन्य अध्ययन में अमेरिकी अध्ययनकर्तोओ का कहना है कि हमने 8 वर्षो तक 1000 लोगों पर अध्ययन किया। अध्ययन में शामिल लोग रोज अपनी दिनचर्या का रिकार्ड कम्प्यूटर में दर्ज करते थे। माह के अंत में इन रिकॉर्डो का वैज्ञानिक अध्ययन करते थे। अध्ययन से यह पता चला कि जो लोग प्रतिदिन 6 घण्टे से कम नीद ले रहे थे उनके शरीर में रक्त शर्करा का स्तर सही नही था। इसके विपरीत जो लोग प्रतिदिन 6-7 घण्टे की नीद ले रहे थे, उनके शरीर में रक्त शर्करा का संतुलन सही था। इस अध्ययन की प्रमुख डॉ. लिसा का कहना है की अध्ययन से

यह भी पता चला है कि कम नीद लेने के कारण मधुमेह के साथ साथ, डिप्रेशन, मोटापा और हाई ब्लड प्रेशर से ग्रसित होने की संभावना कई गुना बढ़ जाती है।

एक अन्य नये शोध के मुताबिक छुट्टी के दिन ज्यादा सोने से मधुमेह का खतरा रहता है अर्थात हफ्ते में एक या दो दिन की नीद की अनियमितता भी सेहत पर नकारात्मक असर डाल सकती है। यूनिवर्सिटी आफ पिट्सबर्ग के शोधकर्ताओं का कहना है कि नीद की कमी से ज्यादा खतरनाक नीद की अनियमितता है। जो लोग रात में जागते हैं उनमे डायबीटीज और चयापचयी समस्याओं के होने का खतरा अधिक होता है। एक नये अध्ययन के अनुसार जो लोग रात में देर से सोते हैं, उनमे सुबह जल्दी जगने वाले लोगों की तुलना में डायबिटीज या मांसपेशियों से सम्बंधित समस्याओं का अधिक खतरा होता है। अध्ययनकर्ता नान ही किम के अनुसार, रात में जगने वालों में नींद की खराब गुणवत्ता, देर रात में खाना खाने और सुस्त जीवनशैली वालों में ये समस्याएं हो जाती हैं। इस अध्ययन में शामिल 1,620 लोगों की सोने की आदतों तथा चयापचय प्रक्रिया का अध्ययन किया गया है।

कम नींद आने से शरीर में सभी हार्मोन्स से सम्बन्धित कार्यो में बदलाव आते हैं। हमारे शरीर में इन्सुलिन की संवेदनशीलता कम होने से ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है और कोर्टिसोल हार्मोन भूख को नियंत्रित करते हैं। कम नींद के कारण हमारे शरीर में घ्रेलिन का लेवल बढ़ जाता है, जिससे भूख ज्यादा लगती है। इसके साथ ही जब लेप्टिन का लेवल भी कम हो जाता हैं। लेप्टिन पेट भरे होने का अहसास देता है। जर्नल आफ द एकेडमी आफ न्यूट्रीशन एंड डायटेटिक्स में प्रकाशित अध्ययन बताता है कि जो लोग कम सोते है या जिनकी नीद पूरी नही होती है, वे दूसरे दिन स्नैक्स के रूप में अत्यधिक कैलोरीज की चीजें खाते हैं, क्योंकि उन्हें भूख बहुत लगती है। अमेरिका की ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी के एक अध्ययन में बताया गया की जो लोग 7-8 घण्टे से कम नीद लेते है, वे दिन में अपने भोजन में अतिरिक्त शुगर, फैट, कैफीन, स्नैक्स और कार्बोहाइड्रेट का इस्तेमाल करते हैं। उनके पूरे दिन के खाने में एक बार जंक फूड जरुर होता है, जो उनके वजन बढने का सबसे बड़ा कारण बनता है। शोधकर्ताओं के अनुसार , रात को देर से सोने की वजह से हम खान-पान में बहुत अनियमित हो जाते है। नीद पूरी न होने की वजह से हम चिडचिडे भी हो जाते हैं और शांत रहने के लिए कुछ भी खा लेते हैं। इसको ऐसे समझिए, जेसे अगर आप रात को देर तक कुछ कर रहे हैं, सोये नही हैं तो जाहिर है की आपको भूख भी लगेगी। बेवक्त आप कुछ खायेगे और फिर सो जायेगे। इस पूरी प्रक्रिया में भोजन के पचने का कोई चांस ही नहीं है। अब सुबह आपकी नींद पूरी नहीं होगी या फिर आप देर से उठेंगे और उस कैलोरी को को बर्न नही कर पाएगे, तो जाहिर तौर पर आपके वजन पर इसका गहरा असर पड़ेगा।

चीन के जियामेन यूनिवर्सिटी और अमेरिका के हावर्ड मेडिकल स्कूल के शोधकर्ताओ की स्टेम सेल से सम्बन्धित एक रिपोर्ट के अनुसार अनिद्रा स्वास्थ्य सम्बन्धित एक गम्भीर बीमारी है। इसका मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। नींद नहीं आने से आँखों के नीचे रूखापन और खिचाव महसूस होता है। लम्बे समय तक नहीं सो पाने की स्थिति में आँखों की गम्भीर बीमारी हो सकती है। आँखों के कार्निया के पारदर्शी उत्तक से आँखों की परतों की सुरक्षा होती है, आँखों के कार्यो को अंजाम देने में इसका अहम योगदान है। लेकिन कार्निया की देख-रेख स्टेम सेलों से होती है। यह दो भागों में विभाजित होती हैं। एक तरह के स्टेम सेल मृत उत्तक की जगह लेते हैं और दूसरे स्टेम सेल चोट के कारण खराब हुए उत्तक की मरम्मत करते हैं। कार्निया के स्टेम सेल की गतिविधियों के सटीक नतीजों के लिए उनका सर्वश्रेष्ठ तरीके से कार्य करना आवश्यक है। कार्निया की स्टेम सेल ठीक से काम नहीं करती तो आँखों की बीमारियाँ और दृष्टिदोष हो जाता है।

डेनमार्क के कोपेनहेगन विश्वविद्यालय के एक शोध के अनुसार, बढ़ते तापमान के साथ हमारी नींद की अवधि घटती जा रही है। ऐसा रात में गर्मी बढ़ने के कारण हो रहा है। शोधकर्ताओं के अनुसार, यह स्लीप लॉस पुरूषों के मुकाबले महिलाओं में एक चौथाई ज्यादा हो रहा है। रात में गर्मी बढ़ने पर महिलाएं ज्यादा प्रभावित होती हैं। इसके अलावा महिलाओं में औसतन त्वचा के नीचे का फैट भी ज्यादा होता है, जिसकी वजह से उनकी कूलिंग प्रकिया धीमी हो जाती है। आर्थिक रूप से कमजोर देशों में कूलिंग की अच्छी सुविधाएं न होने से वहां की महिलाएं गर्मी से ज्यादा जूझती हैं। शोधकर्ताओं के अनुसार, औसतन एक व्यक्ति हर साल नींद के 44 घण्टे खो रहा है। हाल ही में भारत और पाकिस्तान में चली खतरनाक लू ने भी लोगों की नींद की अवधि कम की है। इसके अतरिक्त महिलाओ में भी कम सोने से मधुमेह के खतरा होने से सम्बन्धित कई शोध हुवे है। टाइप 2 मधुमेह के कारण को लेकर नई बात सामने आई है। शोध के मुताबिक नीद से जुडी परेशानियों का सामना कर रही महिलाओ में डायबिटीज का खतरा ज्यादा रहता है। शोधकर्ताओं ने कहा, कि जिन महिलाओ को सोने में परेशानी ,खराटे या सोते समय साँस रुकने जेसी दो या दो से ज्यादा नीद से जुडी परेशानीया होती है, उनमे टाइप 2 डायबिटीज का खतरा बढ़ जाता है। नीद से जुडी एक परेशानी ऐसी

महिलाओ को 47% तक डायबिटीज के खतरे में डाल देती है। बोस्टन स्थित हार्वर्ड ए चान स्कूल आफ पब्लिक हेल्थ ने 1,33,353 महिलाओ पर यह अध्ययन किया है। शोधकर्ताओ ने पर्याप्त नीद की जरूरत पर बल दिया है।

चीन के वुहान में हुआजोंग यूनिवर्सिटी के जुआन ली (मुख्य शोधकर्ता) ने 12 अंतर्राष्ट्रीय शोधों का सहारा लिया जिनमें लगभग सवा दो लाख लोग शामिल थे इस शोध के अनुसार शिफ्ट में काम करने वाले लोगों खासकर पुरूषों को सामान्य की तुलना में टाइप-2 मधुमेह का खतरा ज्यादा होता है। साथ ही जो लोग एक निर्धारित पाली की जगह बदलती हुई शिफ्ट में काम करते हैं उन्हें यह खतरा और भी ज्यादा होता है। न्यूयार्क के लेनोक्स अस्पताल के क्लिनिकल मनोविज्ञानी डा. एलेन मेनेविट्ज कहते हैं की यह शोध ज्यादा चौकाने वाला नहीं है, डाक्टर काफी समय से महसूस कर रहे थे कि अलग-अलग पालियों में काम करने से शरीर के रसायन प्रभावित होते हैं और इससे आतों और हृदय की बीमारियाँ हो सकती हैं। यहाँ तक कि इससे कैंसर की आशंका भी रहती है। अब टाइप-2 मधुमेह को भी इस सूची में जोड़ा जा सकता है। इस शोध में कर्मचारियों के कई पहलुओं को शामिल किया गया है जैसे पाली कब से कब तक है, बाडी मास इंडेक्स (वजन और लम्बाई की गणना), परिवार में किसी को मधुमेह था या नहीं और शारीरिक सक्रियता। हालाकि नतीजे सीधे-सीधे कुछ नहीं कहते पर पाया गया की शिफ्ट में काम करने वाले को मधुमेह होने की संभावना 9 फीसदी अधिक है, अगर कर्मी पुरुष है तो यह आंकड़ा 37 फीसदी हो सकता है। हालांकि पुरुष मधुमेह की चपेट में क्यों ज्यादा आते हैं इसका कोई साफ कारण नहीं है लेकिन हार्मोन टेस्टोस्टेरोन इसमें अहम भूमिका निभाता है। साथ ही रोटेटिंग शिफ्ट में काम करने वाले लोगों को टाइप-2 मधुमेह का खतरा 42 फीसदी ज्यादा होता है। टीम के अनुसार काम का समय बार-बार बदलने से शरीर के लिए सोने और जागने का समय तय करना मुश्किल हो जाता है।

निष्कर्ष :-

जब हम सोते है तो शरीर एक प्रकार से अपनी मरम्मत कर रहा होता है, यदि शरीर को अपनी मरम्मत करने का पूरा समय नहीं मिलेगा तो निश्चित है कि शरीर को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। जिसका असर रक्त शर्करा पर भी पड़ता है। साथ ही कम सोने से शरीर में इन्सुलिन की कमी हो जाती है जिससे मधुमेह होती है। पहले के अध्ययन में मोटापे को मधुमेह का कारण बताया गया था, जबकि नये अध्ययन में शिफ्ट में काम करने से कोलेस्ट्रोल और रक्तचाप बढ़ते हैं। अलग-अलग शिफ्ट में काम करने से सोने और जागने का समय टी करना मुश्किल हो जाता है ,शरीर के रसायन भी प्रभावित होते हैं जिससे आंतों,हृदय रोग तथा कैंसर के अलावा टाइप-2 मधुमेह की चपेट में भी आ सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. "रात मे काम करने से डायबिटीज सम्भव", अमर उजाला वाराणसी, रविवार, दिसम्बर 15,2013, पृ०सं. 20
2. नींद बचाए डायबीटिज से, संगिनी, दैनिक जागरण, वाराणसी, अगस्त 3, 2013 पृ0सं0 3
3. "छुट्टी के दिन ज्यादा सोने से डायबिटीज का खतरा", दैनिक जागरण, वाराणसी, नवम्बर 21, 2015, पृ०सं. 19
4. "मधुमेह से बचना है तो रात में सोएं", अमर उजाला वाराणसी, मंगलवार, अप्रैल 7,2015, पृ०सं. 14
5. "आपकी नींद और आपका वजन", अमर उजाला रूपायन, वाराणसी, शुक्रवार, नवम्बर 12, 2021, पृ०सं 4
6. "नींद में कमी से कार्निया के स्टेम सेल पर बुरा असर", दैनिक जागरण, वाराणसी, अप्रैल 30,2022, पृ०सं 15
7. "नींद क्यों नही आती ?", अमर उजाला रूपायन, वाराणसी, शुक्रवार, जून 10, 2022, पृ०सं 2
8. "कम सोने वाली महिलाओं को डायबिटीज का खतरा", दैनिक जागरण, वाराणसी, शनिवार, जनवरी 30,2016, पृ०सं 23
9. " शिफ्ट ड्यूटी से टाइप-2 डायबिटीज का खतरा", अमर उजाला, वाराणसी, शनिवार जुलाई 26, 2014

पंचायती राज में महिला सहभागिताः राजनीतिक सक्रियता का अनुभवमूलक अध्ययन

डॉ० बालूदान बारहठ

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, सुखाड़िया वि.वि., उदयपुर

शोध सारांश-

महिला सशक्तीकरण 21 वीं सदी के सबसे चर्चित विषयों में से है। भारत जैसे विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश के लिएयह मुद्दा बहूत प्रासंगिक और आवश्यक है। स्वाधीनता के 75 वर्ष पूर्ण होने को है, ऐसे में हमें यह देखना आवश्यक होगा कि पंचायती राज के संवैधानिक प्रावधानों के क्रियान्वयन के पच्चीस वर्ष पश्चात् इसमें महिलाओं की सहभागिता और प्रतिनिधित्व की क्या वास्तविकता है। संसद द्वारा पारित 73 व 74 वें संविधान संशोधनों के क्रियान्वयन में सभी राज्यों ने अपने यहां कानूनों का निर्माण किया जिनमें महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित रखे गये। बाद में अनेक राज्यों ने इस महिला आरक्षण को एक तिहाई से बढ़ाकर पच्चास प्रतिशत कर दिया जिसमें राजस्थान भी शामिल है। प्रस्तुत शोध राजस्थान के जनजाति बहुल उदयपुर जिले में पंचायती राज में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता पर केन्द्रित है।

अध्ययन क्षेत्र व पद्धति

प्रस्तुत शोध आलेख निमित्त उदयपुर जिले की दो पंचायत समिति गिर्वा और झाडौल का चयन किया। प्रत्येक पंचायत समिति से चार ग्राम पंचायतो का चयन करते हुए प्रत्येक ग्राम पंचायत से 25 उत्तरदाताओं का चयन किया गया। इस तरह कुल आठ ग्राम पंचायतो के 200 उत्तरदाताओं का चयन देव निदर्शन पद्धति से किया गया। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का सहारा लिया गया। समूह चर्चा के माध्यम से छूटे गये प्रश्नो पर तथ्यो का संकलन किया गया। साथ ही अनेक द्वितीयक स्त्रोतो का सहारा लिया गया जिन्हें सन्दर्भ सूची में वर्णित किया गया है।

उत्तरदाताओं से उन पर विचाराधारा विशेष के प्रभाव, पंचायती राज की अवधारणा की समझ, संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी, परिवार के सहयोग से राजनीति में आगमन, राष्ट्रीय मुद्दो की जानकारी, स्वंय द्वारा चुनाव में प्रचार, वरिष्ठ नेताओं से संपर्क आदि प्रश्नों से प्राथमिक तथ्यों का सकंलन किया गया।

अनुसूचित जनजाति की महिला जन प्रतिनिधियों पर राजनीतिक विचारधारा के प्रभाव के बारे में पाया गया कि गिर्वा पंचायम समिति से 4 महिलाओं और 6 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 3 महिलाओं और 5 पुरूषों ने सहमति दी है एवं गिर्वा पंचायत समिति से 8 महिलाओं और 7 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 6 महिलाओं और 9 पुरूषों ने आंशिक सहमति दी है। गिर्वा पंचायत समिति से 26 महिलाओं और 24 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 25 महिलाओं और 23 पुरूषों ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि गिर्वा पंचायत समिति से 12 महिलाओं और 13 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 16 महिलाओं और 13 पुरूषों ने असहमति दी है कि अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों पर किसी भी राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव नहीं है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों का परिवार के सहयोग से राजनीति में आगमन के अनुसार अध्ययन में 45 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 21 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई

जवाब नहीं दिया है जबकि 7 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार महिला जनप्रतिनिधि परिवार के सहयोग से राजनीति में नहीं आई है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों का समुदाय के सहयोग से राजनीति में आगमन के विश्लेषण में 21.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 24.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 23 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि 31 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार महिला जनप्रतिनिधि समुदाय के सहयोग से राजनीति में नहीं आई है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों का स्वनिर्णय से दल के चयन के प्रश्न में पाया गया कि गिर्वा पंचायत समिति से 16 महिलाओं और 14 पुरूष और झाडोल पंचात समिति से 15 महिलाओं और 13 पुरूषों ने सहमति दी है एवं गिर्वा पंचायत समिति से 10 महिलाओं और 12 पुरूष झाड़ोल पंचायत समिति से 11 महिलाओं और 9 पुरूषों ने आंशिक सहमति दी है। गिर्वा पंचायत समिति से 12 महिलाओं और 13 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 15 महिलाओं और 14 पुरूषों ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि गिर्वा पंचायत समिति से 12 महिलाओं और 11 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 9 महिलाओं और 14 पुरूषों ने असहमति दी है कि अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों ने स्वनिर्णय से दल का चयन नहीं किया है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों को राष्ट्रीय मुद्दों की जानकारी के प्रश्न में पाया गया कि गिर्वा पंचायत समिति से 12 महिलाओं और 18 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 15 महिलाओं और 10 पुरूषों ने सहमति दी है एवं गिर्वा पंचायत समिति से 8 महिलाओं और 6 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 5 महिलाओं और 7 पुरूषों ने आंशिक सहमति दी है तथा गिर्वा पंचायत समिति से 12 महिलाओं और 10 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 9 महिलाओ और 14 पुरूषों ने काई जवाब नहीं दिया है जबकि गिर्वा पंचायत समिति से 18 महिलाओं और 16 पुरूष और झाड़ोल पंचायत समिति से 21 महिलाओं और 19 पुरूषों ने असहमति दी है कि अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों का राष्ट्रीय मुद्दो की जानकारी नहीं है। इस प्रकार 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 13 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 22.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि 37 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों को राष्ट्रीय मुद्दों की जानकारी नहीं है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों को संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी के विवरण में पाया गया कि गिर्वा पंचायत समिति से 2 महिलाओं और 4 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 3 महिलाओं और 5 पुरूषों ने सहमति दी है। गिर्वा पंचायत समिति से 6 महिलाओं और 8 पुरूष और झाड़ोल पंचायत समिति से 8 महिलाओं और 7 पुरूषों ने आंशिक सहमति दी है तथा गिर्वा पंचायत समिति से 32 महिलाओं और 30 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 26 महिलाओं और 26 पुरूषों ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि गिर्वा पंचायत समिति से 11 महिलाओं और 10 पुरूष और झाडोल पंचायत समिति से 13 महिलाओं और 12 पुरूषों ने असहमति दी है कि अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों को संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी नहीं है।

यदि इन्हें प्रतिशत में देखेतो जिसमें 7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 13 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 57 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि 23 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों को संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी नहीं है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों को लोकतंत्र की समझ के अनुसार विवरण देखा जाये तो जिसमें 19 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 23 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 32.50 प्रतिशत उत्तरदातओं ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि 25.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों को लोकतंत्र की समझ नहीं है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों द्वारा चुनाव आचार संहिता का पालन करने के विवरण 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 24 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि 21 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों द्वारा चुनाव आचार संहिता का पालन नहीं किया जाता है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों का स्वयं के द्वारा चुनाव में प्रचार के प्रश्न में 19 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 20.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 17.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि

43 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों में स्वयं चुनाव प्रचार करने के कौशल की कमी है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों के भाषण एवं वक्तव्य के कौशल के प्रश्न में 19 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 20.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 17.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि 43 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों में भाषण एवं वक्तव्य के कौशल की कमी है।

वरिष्ठ नेताओं से तालमेल के प्रश्न में 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 26 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 11.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि 37.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों में वरिष्ठ नेताओं से ताल-मेल में कमी है।

अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों द्वारा मतदान हेतु जनता को प्रेरित करने के अनुसार विवरण में दिया गया है जिसमें 42.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है एवं 21 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है तथा 12.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई जवाब नहीं दिया है जबकि 24 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों में मतदान हेतु जनता को प्रेरित करने की कमी है।

इस तरह संक्षेप में देखा जाये तब स्पष्ट होता है कि गिर्वा और झाडोल पंचायत समिति के उत्तरदाताओं द्वारा जनजाति महिला जनप्रतिनिधियों की राजनीतिक सक्रियता के बारे में दृष्टिकोण दिया गया है जिसमें पाया गया कि 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों पर किसी भी राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव नहीं है। 45 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार जनप्रतिनिधियों के परिवार के सहयोग से राजनीति में आगमन पर सहमति दी है। समुदाय के सहयोग से राजनीति में आगमन पर 24.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आंशिक सहमति दी है। 29 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों का दल का चयन स्वनिर्णय से किया है।

37 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों को राष्ट्रीय मुद्दों की जानकारी नहीं है। 23 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों को संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी नहीं है। लोकतंत्र की समझ पर 32.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई जवाब नहीं दिया है। 27 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सहमति दी है कि महिला जनप्रतिनिधियों द्वारा चुनाव आचार संहिता का पालन किया जाता है। 43 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों में स्वयं चुनाव प्रचार करने के कौशल की कमी है जबकि 43 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों में भाषण एवचं वक्तव्य कौशल की कमी है। 37.50 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिला जनप्रतिनिधियों में वरिष्ठ नेताओं से ताल-मेल में कमी है। इस तरह अध्ययन से स्पष्ट है कि पंचायती राज में महिला आरक्षण के क्रांतिकारी परिणाम सामने आ रहे है। ठेठ देहाती एवं जनजाति क्षेत्र में महिलाओं का इतनी बड़ी संख्या में निर्वाचित होकर आना एवं प्रभावी तरीके से काम करना ऐतिहासिक है। लेकिन यह यात्रा अभी अधुरी है। जनजाति समाज की महिलाएं सामाजिक रूप से स्वायत है लेकिन शिक्षा, राजनीतिक जागरण, अवसरो की उपलब्धता व अनुभव से वह शीघ्र ही राजनीतिक रूप से भी स्वायत होकर लोकतंत्र को पूर्ण रूप प्रदान करेगी।

संदर्भ सूची

1. भारत का संविधान, विधि मंत्रालय भारत सरकार, 2011
2. राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1995, पंचायती एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय, राजस्थान सरकार, 2012
3. Development Journey and new form of Panchyati Raj Laxminarayan meena रावत पब्लिकेशन जयपुर, 2011
4. सुजस, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग राजस्थान, जयपुर के विभिन्न अंक
5. जनजाति विकास विभाग राजस्थान सरकार के विभिन्न वार्षिक प्रतिवेदन

अनिल प्रभा कुमार कृत 'मैं रमा नहीं' में चित्रित नारी

प्रो० प्रदीप श्रीधर

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग तथा निदेशक, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ० भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

सारांश: हिंदुस्तान की भूमि पर जन्मे पले, आस्थाशील लोग अपनी मातृभूमि को छोड़कर दूसरे देशों में जा बसे जहाँ वे अपनी आस्था तथा संस्कृति के बल पर पीढ़ियों से अपनी पहचान बनाए हुए हैं तथा पहचान को बनाए रखने के लिए संघर्षरत भी हैं। भारतवासी विदेशी वातावरण में रहकर भी अपनी भारतीय संस्कृति बचाने का भरसक प्रयास करते रहे हैं, नयी पीढ़ी को अपने भारतीय होने का बोध कराते रहते हैं। इस श्रृंखला में वे निरंतर भारतीय भोजन, रीति-रिवाज, तीज त्यौहार मनाते हैं; साथ ही सम्बंधों में भी आत्मीयता रखते हैं। वहीं दूसरी ओर एक समूह ऐसा भी है जो मूल रूप से तो भारतीय है परंतु उन्होंने विदेशी संस्कृति का चोला पहन रखा है, जिसे वे आधुनिक विचारधारा कहते हैं। अनिल प्रभा कुमार के कहानी संग्रह 'बहता पानी' में संकलित कहानी 'मैं रमा नहीं' में इसी प्रकार का द्वंद्व देखने को मिलता है। अनिल जी मानवीय संवेदनाओं को भलीभांति अपने लेखन में अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती हैं।

बीज शब्द: रमा, यूनिवर्सिटी रोटियाँ, रैस्पीरेटर, प्रोफेसर।

प्रस्तावना: हिंदी साहित्य का एक अभिन्न अंग हिंदी प्रवासी साहित्य भी है जो भारत से इतर अन्य कई देशों में रचा जा रहा है। प्रवासी हिंदी साहित्य के विषय में डॉ. कमलकिशोर गोयनका का मत है, "हिंदी के प्रवासी साहित्य की गति और विकास को अब कोई भी विरोधी शक्ति नहीं रोक सकती। वह हिंदी साहित्य की एक सशक्त धारा बन चुकी है और उसे हम हिंदी साहित्य की प्रमुख धारा में सम्मानपूर्ण स्थान देना होगा।"[1] माना जाता है कि महिला लेखक अधिकांश स्त्री विमर्श के संदर्भ में ही अपना रचनाकर्म करती हैं। महिला लेखकों के साहित्य की मुख्य पात्र नारी होती है परंतु ऐसा सिर्फ प्रवासी लेखिकाएँ ही नहीं वरन भारतीय लेखिकाएँ भी करती हैं। यह आवश्यक नहीं है कि सभी रचनाएँ स्त्री विमर्श पर आधारित हों। आज भारत में लिखी जा रही अधिकांश हिंदी कहानी स्त्री विमर्श के नाम पर देह विमर्श करती नजर आती है जबकि प्रवासी कहानियां मानवीय यथार्थ के भीतर मूल्यों की तलाश करती नजर आती हैं।[2]

अनिल प्रभा कुमार ने विदेश में रहते हुए अपनी लेखनी के बल पर ऐसे मार्मिक साहित्य का सृजन किया जिसने मानवीय जीवन की उथल-पुथल और द्वंद्व को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की। उनका कहानी संग्रह 'बहता पानी' बहुत महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इसमें विभिन्न कहानियों के माध्यम से प्रवासी जीवन की वास्तविकता का बोध होता है। प्रवासी जीवन की टूटन, जूझता जीवन, बिखरता अस्तित्व आदि इस संग्रह में शामिल हैं। 'मैं रमा नहीं' इसी संग्रह की एक मार्मिक कहानी है जिसमें रमा, दीपा, प्रोफेसर जैसी नारियों के चरित्रों का सृजन किया गया है जो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अपनी जीवन यात्रा पूर्ण करती हैं।

आलोच्य कहानी में नारी पात्र: प्रवासी कथा साहित्य में महिलाओं के तीन रूप सामने आते हैं। पहला वर्ग उन महिलाओं का है जो पाश्चात्य वातावरण तथा परिवेश को नकारात्मक रूप में ग्रहण करती हैं जिसके कारण नारी का विकृत रूप सामने आता है या कहें कि पाश्चात्य परिवेश की नकारात्मकता पाठकों के सम्मुख आती है। 'मैं रमा नहीं' कहानी की दीपा इसी वर्ग में आती है। वह अपने भारतीय मूल्यों को भूलकर पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है इसके लिए उसने अपना

पति भी छोड़ दिया तथा बिना विवाह के ही अपने बॉयफ्रेंड अर्जुन के साथ रहती है।वह स्वयं को बचाने के लिए किसी से भी झूठ बोल सकती है। दूसरे वर्ग में वे स्त्रियां आती हैं जो अपने तथा नये देश के परिवेश में सामंजस्य बनाकर आगे बढ़ने का प्रयास करती हैं। इस कहानी में प्रोफेसर ऐसी नारी पात्र है जो भारतीय विवाहित महिला है, विदेशी यूनिवर्सिटी में पढ़ाती है तथा भारतीय मूल्यों को साथ लेकर विदेशी परिवेश में रहती है। उसे भारतीय भोजन पसंद है। समय न होने के कारण वह रोटी-पराठे बाहर से ऑर्डर देकर बनवाती है। तीसरा वर्ग उन महिलाओं का है जो विदेश में रहकर भी अपने भारतीय मूल्यों-संस्कारों को नहीं भूलतीं। उन्हीं को आधार बनाकर अपना जीवन व्यतीत करती हैं। जैसे कहानी की मुख्य पात्र रमा। रमा अपने अपाहिज पति का पूरा साथ देती है, उसके इलाज के लिए रात-दिन मेहनत करती है जिनमें तमाम छोटे-छोटे कार्य शामिल हैं। रमा भारतीय नारी तथा पत्नी के रूप में हमारे सामने आती है। कहानी संग्रह की भूमिका में नरेंद्र कोहली जी ने कहा है, 'मैं रमा नहीं' कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण कहानी है जिसमें भारत और अमेरिका एक-दूसरे के सामने खड़े हैं। शोधपत्र में हम इन्हीं तीनों पात्रों के चरित्रों का अध्ययन करेंगे।

प्रोफेसर 'मैं रमा नहीं' कहानी की महत्त्वपूर्ण पात्र है। प्रोफेसर का कोई नाम नहीं दिया गया है कहानी में। प्रोफेसर कथावाचक के रूप में हमारे सामने आती है। वही पूरी कहानी को पाठकों के सम्मुख रखती है। कहानी की शुरुआत प्रोफेसर के रमा के घर जाने से होती है जहां रमा से पहली मुलाकात के बाद ही रमा उसके विचारों में घर कर लेती है। प्रोफेसर भारतीय विवाहित नारी है। साधारण सुलझी हुई गंभीर व्यक्तित्व की स्त्री जो यूनिवर्सिटी में पढ़ाती है। एक दिन प्रोफेसर रमा के घर पराठे का आर्डर लेने जाती है। वहाँ रमा के घर को देखकर रमा की दिनचर्या का अनुमान लगाने लगती है। "एक लंबा सा कमरा जिसका एक छोर था उसका अपाहिज पति और दूसरा छोर था उसका किचन। शायद वह इन्हीं दोनों छोरों के बीच घूमती रही होगी, हँसती, रोटी बेलते हुए या खामोश।[4] पहली बार में ही प्रोफेसर के मन में रमा ने स्थान बना लिया था। वह चाहकर भी रमा को अपने दिल-दिमाग से निकाल नहीं सकती थी। प्रोफेसर रमा के घर दीवार पर लटकी हुई तस्वीर के बारे में सोचती है, "एक ही तस्वीर में मुस्कुराती सुंदरी और दूसरी भी वह औरत जिससे मैं आज मिलकर आई हूं। चित्र वाली औरत की छाया भर-प्रौढ़ छाया। गुजराती शैली की साड़ी की जगह ढीली सी पेंट, टी-शर्ट कसकर बांधे बालों में सफेद फूलों की जगह थी बालों की बेरहम सफेदी।[5] प्रोफेसर रमा के व्यक्तित्व से खूब प्रभावित होती है। रमा के साथ केवल एक भेंट और वह प्रोफेसर के मस्तिष्क में घर कर लेती है और दीपा के साथ कितना समय बिताने के बावजूद भी वह दीपा के व्यक्तित्व को समझने में असमर्थ थी। "उसका चेहरा सुंदर और असुंदर की सीमारेखा पर पड़ता था। कसकर पोनीटेल की हुई थी। बड़ी-बड़ी आंखों के बावजूद उसमें कस्बाई परिपक्वता की झलक थी।"[6]

लेखिका ने कहानी में रमा के रूप में परंपरागत भारतीय स्त्री को प्रस्तुत किया है। रमा एक पतिव्रता साधारण नारी है। वह विदेश में किसी प्रकार से अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण कर रही है। वह भारतीय समूह में बहुत प्रसिद्ध है। अपने स्वभाव और साधारण जीवनशैली तथा संघर्ष करते रहने की प्रवृत्ति के कारण वह बहुत लोकप्रिय है। सहेलियों से प्रोफेसर को रमा के विषय में पता चलता है, "शादी के तीन साल बाद एक छोटी सी बच्ची को लेकर वे दोनों एक स्वर्ग की तलाश में अमेरिका आए थे। इंजीनियर पति को शुरू के संघर्ष के दिनों में रात की शिफ्ट में नौकरी मिली। देर रात को लौटते हुए किसी ने नशे की जरूरत को पूरा करने के लिए पिस्तौल तानकर जेब खाली करवा ली। फिर जाते वक्त पीछे से गोली भी दाग दी। गोली रीढ़ की हड्डी में अटक गई। अपाहिज हो गए वह।"[7]

प्रोफेसर ने यह सिर्फ सुना था, मिली पहली बार थी। परंतु जब वह मिली तो रमा ने पूरी आत्मीयता के साथ मुस्कुराके उसे गले लगा लिया था। रमा पति के लिए इलाज के लिए कई प्रकार के छोटे-छोटे काम करती थी जैसे लोगों के लिए रोटी बनाना, बेबी सिटिंग, सिलाई जो वह कर सकती थी। स्वाभिमानी रमा ने कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाया, न ही आधुनिक नारियों की भांति पति को छोड़कर गई। वह अपने पति के प्रति पूरी तरह समर्पित है। पति को कभी रैम्पीरेटर लगता, कभी हट जाता,वह सेवारत थी। अधेड़ पड़े पति को देखती तो बस देखती रह जाती। बस ये जिंदा रहें, सुहाग हैं मेरा, वह अक्सर यही कहती। जो सुनता उसके प्रति एक करुणा मिली श्रद्धा से भर जाता। आज के जमाने में ऐसी औरत कौन मानेगा कि अभी सीता और सावित्री जैसी औरतें हो सकती हैं। जहां रमा अपने पति की सेवा में रात-दिन लगी रहती है, दीपा विवाह को बंधन मानती और बिना विवाह के अर्जुन के साथ रहना उसे सही लगता। दीपा को प्रोफेसर के विभाग में ही नौकरी मिल गई। प्रोफेसर से मिलने जब वह उसके घर जाती है तो उसे देखकर प्रोफेसर उसके व्यवहार के बारे में कहती है, "उसका चेहरा देखकर मुझे लगा कि जैसे उसने न मुस्कुराने की कोई कसम निभाने के लिए अपने जबड़े जबरदस्त तरीके से बंद किए हुए हैं।"[8] प्रोफेसर उसके सामने औपचारिकताएं निभा रही थी किंतु वह बिल्कुल सामने बैठी थी। उसके आने का कारण जानना चाहा। उसने बताया, "आज सुबह मेरी उफकुलपति,

विभागाध्यक्ष और यूनियन के प्रतिनिधि के साथ बैठक हुई थी और मैं सस्पैंड कर दी गई हूँ।"[9] प्रोफेसर भावहीन होकर सुन रही थी। क्योंकि मैं एक ऑनलाइन कोर्स पढ़ा रही थी। बीस दिसंबर तक उसके अंक रजिस्ट्रार के दफ्तर तक भेजने थे। मैं भूल गई।"[10]

निष्कर्ष: अनिल प्रभा कुमार ने अपनी कहानी 'मैं रमा नहीं' में तीन प्रकार की महिलाओं की जीवनशैली का चित्रण किया है। सबकी अलग-अलग प्राथमिकताएं हैं, अलग-अलग संघर्ष हैं। रमा आदर्शवादी पत्नी है, वहीं दीपा स्वतंत्र प्रवृत्ति की आधुनिक महिला है जिसे लगता है विवाह करने से प्रेम के आयाम बदल जाते हैं। तीसरी प्रोफेसर शिक्षित और संवेदनशील है जो दोनों देशों के मध्य सामंजस्य बना कर चलती है। अनिल जी की यह कहानी भारतीय तथा अमेरिकी परिवेश के दर्द को दर्शाती है। 'मैं रमा नहीं' कहानी नारी की मानवीय संवेदना को प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ सूची-

1. डॉ. कमलकिशोर गोयनका, (भूमिका: शब्दयोग) वर्ष 2008, पृ. 6-7
2. हिमालिन डॉट कॉम/प्रवासी एचटीएमएल
3. नरेंद्र कोहली (भूमिका: बहता पानी, भावना प्रकाशन, दिल्ली, सं.2012) पृ.16
4. वही, पृ.112-113
5. वही, पृ.113
6. वही, पृ.114
7. वही, पृ.119
8. वही, पृ.116
9. वही, पृ.122
10. वही, पृ.123

अलवर जिले में शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धता व स्वरूप का भौगोलिक अध्ययन

नीतू चौधरी

शोधार्थिनी, भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर

डॉ० वेद प्रकाश यादव

सह आचार्य, भूगोल विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

किसी भी समाज या राष्ट्र की दिशा, दशा एवं गति के निर्धारण में शिक्षा का विशेष महत्व होता है। औपचारिक संस्था के रूप में ज्ञानसृजन, कौशल का विकास एवं मूल्यों (नैतिक व सामाजिक) के समावेशीकरण में शिक्षण संस्थाओं की अहम् भूमिका होती है, साथ ही शिक्षा व शिक्षण संस्थान व्यक्तित्व निर्माण कर आदर्श नागरिक तैयार करती हैं। ये संस्थान नागरिक में समानता, स्वतंत्रता, व्यक्ति की गरिमा, अभिव्यक्ति एवं विचार की स्वतंत्रता, सहयोग, भागीदारी, सामूहिकता, बंधुता जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों का समावेश कर लोकतंत्र का सुदृढ़ीकरण भी सुनिश्चित करती हैं।

हमारी शिक्षा प्रणाली में शैक्षणिक संस्थाओं को मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धता एवं स्वरूप के अन्तर्गत क्षेत्र में स्थित शिक्षण संस्थान यथा: प्राथमिक/उच्च प्राथमिक विद्यालय, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालय, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या वितरण एवं स्वरूप का अध्ययन किया गया है।

अलवर जिले में शिक्षा व्यवस्था का कार्य शिक्षा विभाग द्वारा सम्पन्न किया जा रहा है। जिला शिक्षा विभाग, अलवर क्षेत्र में शिक्षा की उपलब्धता, पहुँच एवं वहनीयता सुनिश्चित करता है तथा जिले में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं में शिक्षा के माध्यम से बौद्धिक व मानसिक विकास, आध्यात्मिक उन्नति, निर्णयन व नेतृत्व क्षमता का विकास, नैतिकता आदि मानवीय गुणों को विकसित करके सुशिक्षित, सुसभ्य, सुयोग्य एवं चरित्रवान नागरिकों का निर्माण कर रहा है। सुशिक्षित एवं सुचरित्र नागरिक भविष्य में समाज, राज्य एवं राष्ट्र की प्रगति, उन्नति एवं विकास में सकारात्मक भूमिका अदा करते हैं।

मुख्य बिन्दुः- शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धता व स्वरूप, अध्ययन क्षेत्र में विद्यालयों की स्थिति, प्राथमिक विद्यालय, उच्च प्राथमिक विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय, उच्च माध्यमिक विद्यालय, अध्ययन क्षेत्र में शिक्षण संस्थानों का वार्षिक वितरण, उच्च शिक्षा महाविद्यालय व विश्वविद्यालय एवं निष्कर्ष।

अध्ययन क्षेत्र

'पूर्वी राजस्थान का कश्मीर' एवं 'राजस्थान का सिंहद्वार' के रूप में प्रसिद्ध अलवर जिला अरावली पर्वतमाला की सुरम्य पहाडियों में अवस्थित हैं जो अपने प्राकृतिक सौंदर्य व ऐतिहासिक विरासत का धनी है। यहाँ अरावली पर्वतमाला का विकर्णतः विस्तार दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्वी छोर तक है जिसकी औसत ऊँचाई 456 मीटर से लेकर 700 मीटर तक प्राप्त होती है।

राजस्थान राज्य के उत्तर-पूर्वी भाग में अलवर जिला $27^0 4'$ से $28^0 4'$ उत्तरी अक्षांश तथा $76^0 7'$ से $77^0 13'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है जिसका उत्तर से दक्षिण विस्तार 137 कि.मी. और पूर्व-पश्चिम 110 कि.मी. है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 8380 वर्ग कि.मी. है जो राजस्थान के कुल क्षेत्रफल का 2.45 प्रतिशत है।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में शामिल अलवर राज्य का सीमावर्ती जिला है जो पूर्व दिशा में भरतपुर जिला, पश्चिम में जयपुर, दक्षिण में दौसा तथा उत्तर-पूर्व, उत्तर एवं उत्तर पश्चिम में हरियाणा राज्य के मेवात, गुरूग्राम, रेवाड़ी एवं महेन्द्रगढ़ जिलों के साथ सीमा बनाता है। यह जयपुर से लगभग 148 कि.मी. तथा दिल्ली से लगभग 160 कि.मी. दूर तथा आगरा-दिल्ली-जयपुर स्वर्णिम त्रिभुज के मध्य स्थित है।

जिले की कुल जनसंख्या 3674179 है। जनसंख्या में 1939026 पुरूष तथा 1735153 महिलाएँ है। यहाँ जनघनत्व 438 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. तथा लिंगानुपात 895 महिला प्रति हजार पुरूष है तथा जिलें में साक्षरता दर 70.72 प्रतिशत है जिसमें पुरूष साक्षरता 83.75 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता 56.25 प्रतिशत है।

प्रशासनिक दृष्टि से अलवर जिला वर्तमान में 14 उपखण्डों, 16 तहसीलों एवं 14 पंचायत समितियों में विभाजित है। जिले में कुल 532 पटवार मण्डल, 2084 राजस्व ग्राम, 512 ग्राम पंचायतें एवं 9 उप-तहसील है।

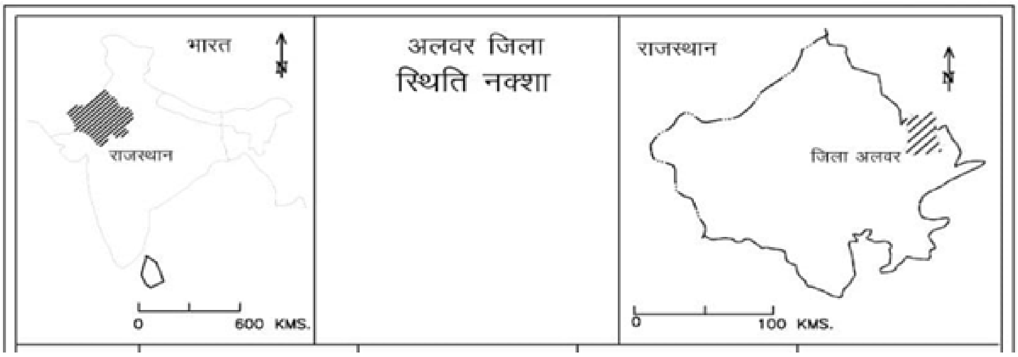

प्रस्तावना:-

किसी भी समाज या राष्ट्र की दिशा, दशा एवं गति निर्धारण में शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक होती है जो व्यक्ति में ज्ञानसृजन, कौशल विकास एवं मूल्यों का समावेश करके व्यक्तित्व निर्माण, समाज व राष्ट्र विकास की आधारशिला निर्मित करती है।

प्रत्येक समाज का अंतिम लक्ष्य ''अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम कल्याण'' सुनिश्चित करना होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रत्येक समाज विभिन्न संस्थाओं एवं संरचनाओं की स्थापना करता है जिनमें शिक्षण संस्थाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक समाज के प्रत्येक पक्ष पर शैक्षणिक संस्थाओं का अभूतपूर्व प्रभाव परिलक्षित होता रहा है। इन शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से मानव बौद्धिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अवधारणाओं की समझ विकसित करता है जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण समाज आर्थिक-सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से व्यवस्थित परिवर्तन की ओर अग्रसर होता है। इन परिवर्तनों के माध्यम से शिक्षण संस्थाएं किसी भी समाज के सुदृढ़ एवं स्थायी विकास को सुनिश्चित करती हैं।

सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षण संस्थाओं की अतिमहत्वपूर्ण भूमिका मानव संसाधन की गुणवत्ता में सुधार तथा अध्ययनरत शिक्षार्थियों में उच्च कोटि के सामाजिक एवं लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास करने में होती है। शिक्षण संस्थान दो स्तरों पर सामाजिक व नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान देते हैं-आधारभूत शिक्षा के स्तर पर तथा उच्च शिक्षा के स्तर पर।

शिक्षण संस्थाओं द्वारा विकसित मानव संसाधन पर आधारभूत स्तरीय शिक्षा मूल्यों का प्रभाव अधिक होता है जबकि उच्च शिक्षण संस्थान प्रायोगिक मूल्यों का विकास करते हैं। शिक्षण संस्थाओं द्वारा छात्रों में विकसित किए जाने वाले मूल्यों की नींव पर ही सम्पूर्ण समाज की भावी आधार शिला तैयार होती है।

उद्देश्य:-

1. अलवर जिले में शिक्षा के स्वरूप का अध्ययन करना।
2. अध्ययन क्षेत्र में शैक्षणिक संस्थानों की उपलब्धता एवं वार्षिक वितरण को स्पष्ट करना।

परिकल्पना:-

1. अध्ययन क्षेत्र में शिक्षण संस्थानों की संख्या में परिवर्तन हो रहा है।
2. अध्ययन क्षेत्र में उच्च शिक्षा संस्थानों में वृद्धि होने से उच्च शिक्षा तक पहुँच आसान हुई हैं।

आँकड़ों का संग्रहण:-

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक और द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों का संकलन प्रश्नावली, अनुसूची, व्यक्तिगत सम्पर्क, डायरी, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों और विभिन्न वेबसाइटों और पुस्तकों के माध्यम से किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों का संकलन जनगणना प्रतिवेदन जिला अलवर, कार्यालय जिला कलेक्टर, जिला सांख्यकीय विभाग, अलवर व जिला शिक्षा कार्यालय, अलवर से प्राप्त किया गया है।

परिसीमाएं

1. शोध पत्र के अध्ययन क्षेत्र में संचालित केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (ब्ैम्) के विद्यालयों तथा नवोदय विद्यालयों को शामिल नहीं किया गया है।
2. शोध पत्र में अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत संचालित उच्च शिक्षण संस्थानों में केवल सामान्य शिक्षा महाविद्यालयों को शामिल किया गया है, व्यावसायिक महाविद्यालयों को नहीं।

अध्ययन क्षेत्र में शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धता व स्वरूप

अध्ययन क्षेत्र अलवर जिले में शिक्षा व्यवस्था का कार्य शिक्षा विभाग द्वारा सम्पन्न किया जा रहा है। जिला शिक्षा विभाग, अलवर क्षेत्र में शिक्षा की उपलब्धता, पहुँच एवं वहनीयता सुनिश्चित करता है तथा जिले में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं में शिक्षा के माध्यम से बौद्धिक व मानसिक विकास, आध्यात्मिक उन्नति, निर्णयन व नेतृत्व क्षमता का विकास, नैतिकता आदि मानवीय गुणों को विकसित करके सुशिक्षित, सुसभ्य, सुयोग्य एवं चरित्रवान नागरिकों का निर्माण कर रहा है। सुशिक्षित एवं सुचरित्र नागरिक भविष्य में समाज, राज्य एवं राष्ट्र की प्रगति, उन्नति एवं विकास में सकारात्मक भूमिका अदा करते हैं।

अध्ययन क्षेत्र में शिक्षण संस्थाओं की स्थिति:- अध्ययन क्षेत्र अलवर जिले में शिक्षण संस्थाओं की स्थिति सारणी संख्या 1.1 से 1.6 में प्रदर्शित की गई है जिसका विश्लेषण इस प्रकार है:-

प्राथमिक विद्यालय:- प्राथमिक शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था की आधारशिला होती हैं तथा प्राथमिक विद्यालय, प्राथमिक शिक्षा की महत्वपूर्ण औपचारिक संस्थाएं हैं जो बालक के व्यक्तित्व में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अनेक महत्वपूर्ण बदलाव लाती हैं और उसके भावी विकास की दिशा सुनिश्चित करती हैं।

सारणी सं. 1.1 अलवर जिले में प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति

(वर्ष 2005 से 2018 तक)

क्र.स.	*वर्ष*	*छात्र/(सह शिक्षा) विद्यालय*	*छात्रा विद्यालय*	*कुल योग*
1.	2005-06	2612	0	2612
2.	2010-11	1551	0	1551
3.	2015-16	1326	2	1328
4.	2018-19	1296	0	1296

स्रोत:- कार्यालय जिला शिक्षा अधिकारी, अलवर

जिला सांख्यिकी कार्यालय, अलवर

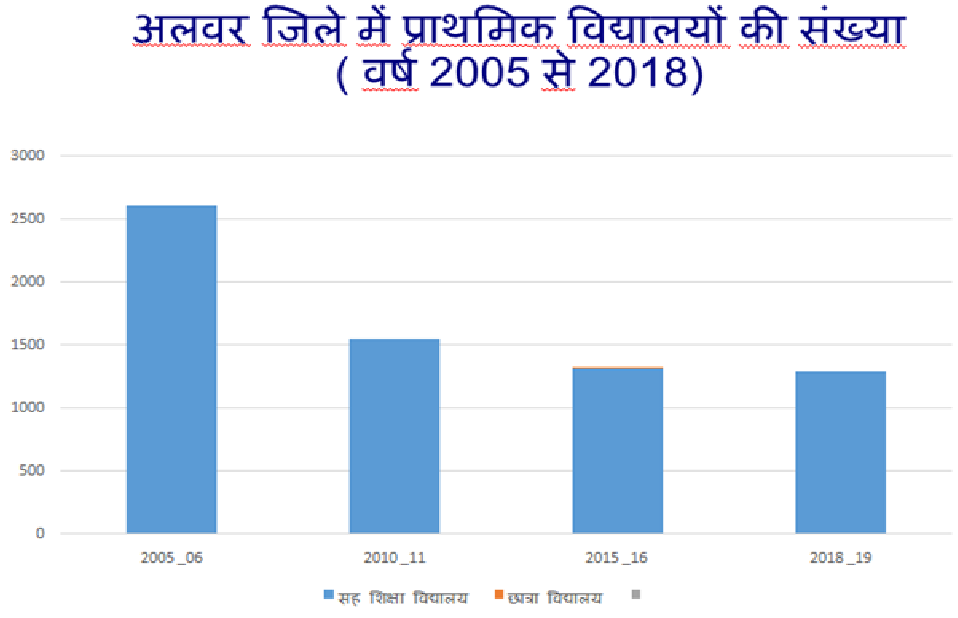

अध्ययन क्षेत्र में शिक्षण संस्थाओं की संख्या समयानुसार परिवर्तनशील रही है। यहाँ वर्ष 2005-06 में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 2612 अंकित की गई, जो वर्ष 2010-11 में कम होकर 1551 हो गई। यह गिरावट 1061 की थी। इसी प्रकार निरन्तर कमी के साथ वर्ष 2015-16 में जिले में कुल प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 1328 दर्ज की गई, जिसमें 2 छात्रा विद्यालय एवं शेष 1326 छात्र/सहशिक्षा विद्यालय थे। आगे वर्ष 2018-19 में इनकी संख्या घटकर 1296 ही रह गई। इस प्रकार जिले में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में निरन्तर कमी दर्ज हो रही है। यहाँ 2005 की तुलना में 2018 तक प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में लगभग 50 प्रतिशत की कमी अंकित की गई है जिसका मुख्य कारण राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या कम हो जाने के फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों को नजदीक के विद्यालय में विलय करना, उच्च स्तरीय विद्यालयों में क्रमोन्नतिकरण करना रहा है।

उच्च प्राथमिक विद्यालय: अध्ययन क्षेत्र अलवर जिले में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता निम्नलिखित प्रकार है-

सारणी सं. 1.2 अलवर जिले में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता का विवरण

(वर्ष 2005 से 2018 तक)

वर्ष	*छात्र/सहशिक्षा विद्यालय*	*छात्रा विद्यालय*	*कुल योग*
2005-06	2087	0	2087
2010-11	1802	0	1802
2015-16	2012	42	2054
2018-19	2025	22	2047

स्रोत:- कार्यालय जिला शिक्षा अधिकारी, अलवर

जिला सांख्यिकी कार्यालय, अलवर

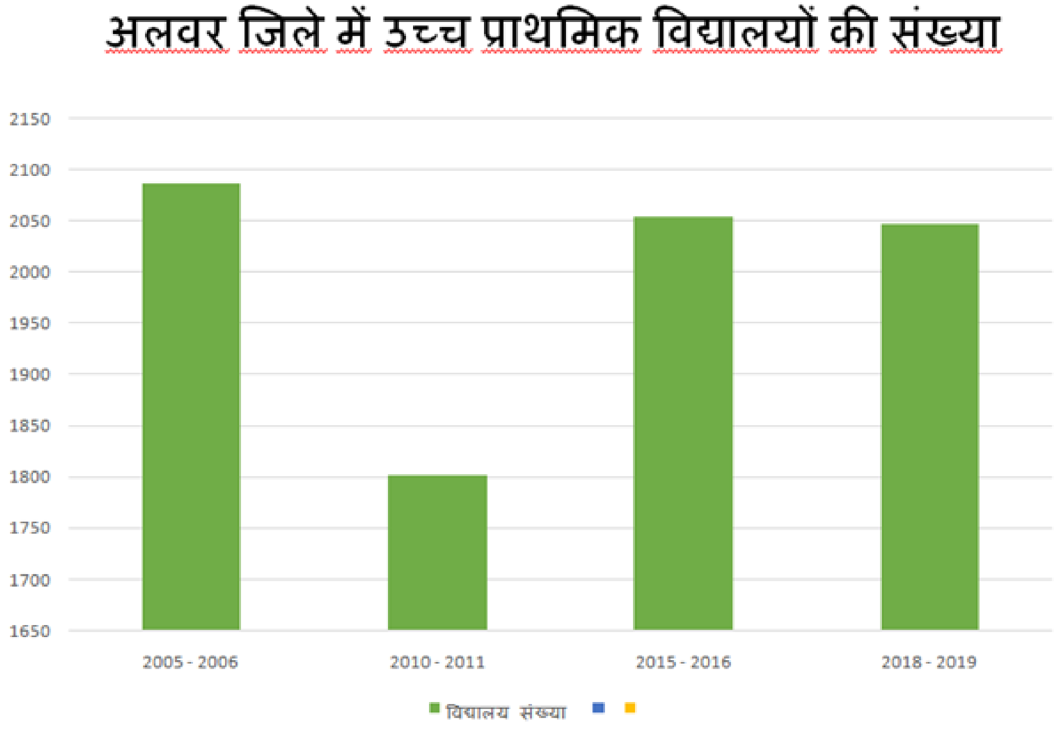

सारणी सं. 1.2 के अनुसार शोध क्षेत्र में वर्ष 2005-06 में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या 2087 थी जो 2010-11 में घटकर 1802 रह गयी, किंतु वर्ष 2015-16 में पुनः बढ़कर यह संख्या 2054 हो गई जिसमें 42 छात्रा विद्यालय एवं 2012 सहशिक्षा/बालक विद्यालय सम्मिलित थे। वर्ष 2010 की तुलना में 2015 में यह वृद्धि 252 दर्ज की गई। इस वृद्धि का मुख्य कारण शिक्षा क्षेत्र में सरकार के लगातार किए जा रहे प्रयास, सुविधाओं में वृद्धि एवं शिक्षा का बढ़ता महत्व है। किंतु वर्ष 2018 में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या घटकर 2047 रह गई, इसमें 2025 बालक/सह शिक्षा विद्यालय तथा 22 बालिका विद्यालय हैं। इस प्रकार वर्ष 2015-16 के सापेक्ष वर्ष 2018-19 में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में 7 की कमी अंकित की गई जिसका कारण सरकार द्वारा इनका उच्च स्तरीय विद्यालयों में विलय एवं क्रमोन्नतिकरण करना रहा हैं।

माध्यमिक विद्यालयः माध्यमिक शिक्षा देश की शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है जो प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा के मध्य सेतु का कार्य करती है।

सारणी सं. 1.3 अलवर जिले में माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति

(वर्ष 2005 से 2018 तक)

वर्ष (सत्र)	*छात्र/सहशिक्षा विद्यालय*	*छात्रा विद्यालय*	*कुल विद्यालय*
2005-06	519	15	534
2010-11	562	12	574
2015-16	758	20	778
2018-19	660	9	669

स्रोतः- कार्यालय जिला शिक्षा अधिकारी अलवर

जिला सांख्यिकी कार्यालय, अलवर

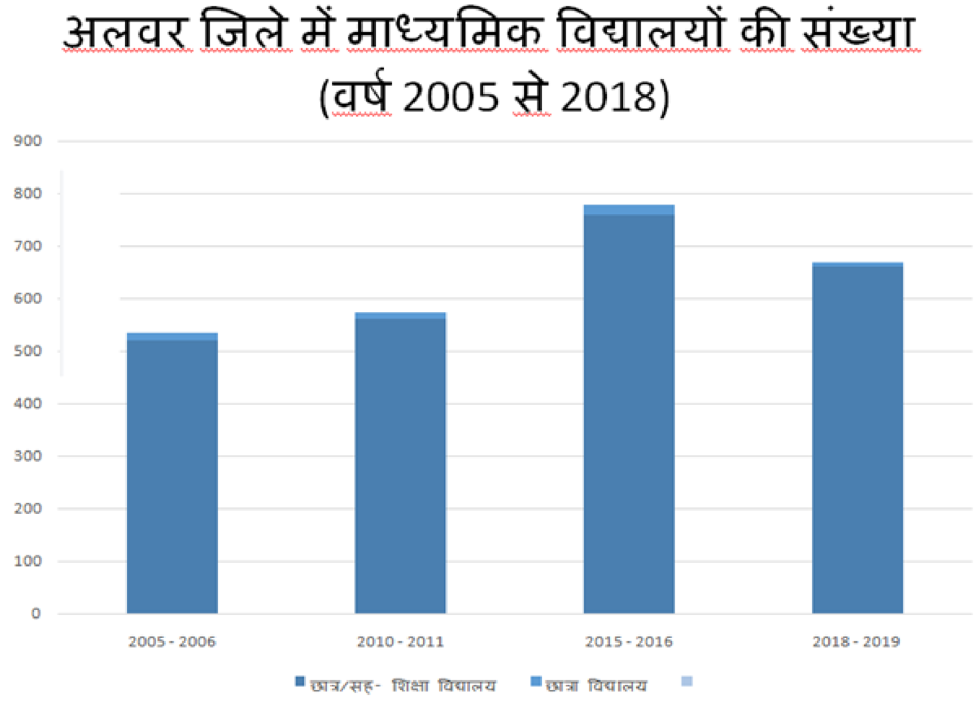

सारणी सं. 1.3 में शोध क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति को वर्षवार प्रदर्शित किया गया है जिसके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र में वर्ष 2005-06 में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 534 थी जिसमें 519 सह-शिक्षा/ बालक विद्यालय तथा 15 बालिका विद्यालय संचालित थे जो 2010-11 में बढ़कर 574 हो गए जिनमें 12 छात्राओं तथा 562 छात्र/सह शिक्षा के लिए उपलब्ध थे। इस प्रकार यह वृद्धि 40 की थी जिसका मूल कारण उच्च प्राथमिक विद्यालयों को माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में क्रमोन्नत करना तथा राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RSMA) के लक्ष्य प्राप्ति हेतु सरकार द्वारा उठाए गए सराहनीय कदम थे जिसके तहत सरकार उचित दूरी पर माध्यमिक विद्यालय सुविधा उपलब्ध करवाने हेतु प्रयास कर रही थी। इसी तरह लगातार वृद्धि का क्रम जारी रहते हुए 2015-16 के दौरान यह संख्या बढ़कर 778 हो गई जो वर्ष 2010-11 की तुलना में 204 अधिक थी जिसमें सहशिक्षा (छात्र) तथा छात्रा विद्यालयों की संख्या क्रमशः 758 व 20 थी। किंतु वर्ष 2018-19 में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में कमी दर्ज की गई जिसके परिणामस्वरूप कुल, छात्र (सहशिक्षा) व छात्रा माध्यमिक विद्यालयों की संख्या क्रमशः 669, 660 व 9 रह गई। इस कमी का मुख्य कारण सरकार द्वारा माध्यमिक विद्यालयों को उच्च माध्यमिक विद्यालयों में विलय व क्रमोन्नत किया जाना था।

उच्च माध्यमिक विद्यालय: शोध क्षेत्र अलवर जिले में उच्च माध्यमिक विद्यालयों की उपलब्धता का विवरण निम्नलिखित प्रकार है-

सारणी सं. 1.4 अलवर जिले में उच्च माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति

(वर्ष 2005-2018 तक)

वर्ष	*छात्र/सह शिक्षा विद्यालय*	*छात्रा विद्यालय*	*कुल योग*
2005-06	667	27	694
2010-11	491	22	513
2015-16	912	48	960
2018-19	1154	23	1177

स्रोत- कार्यालय जिला शिक्षा अधिकारी, अलवर
जिला सांख्यिकी कार्यालय, अलवर

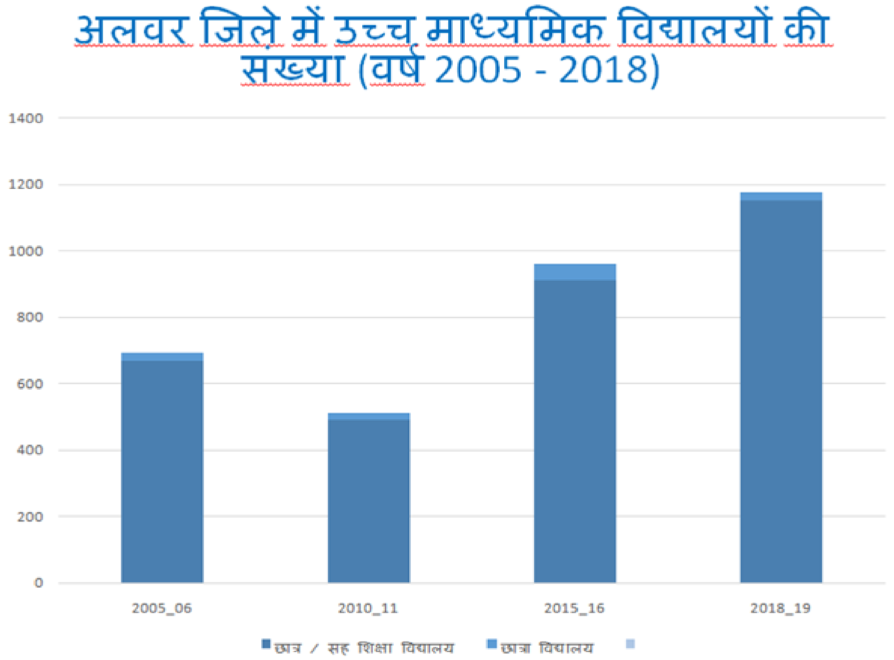

जिले में उच्च माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति को सारणी 1.4 द्वारा दर्शाया गया है जिसके आंकड़ो के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र में वर्ष 2005-06 में कुल 694 उच्च माध्यमिक विद्यालय संचालित थे जिनमें से 27 छात्राओं तथा 667 छात्र/सह शिक्षा हेतु उपलब्ध थे किंतु ये वर्ष 2010 -11 में कम होकर 513 विद्यालय (22 छात्रा व 491 सह शिक्षा/छात्र) ही रह गए। वहीं 2015-16 में उच्च माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में वर्ष 2010-11 के सापेक्ष 447 की वृद्धि हुई और इनकी संख्या बढ़कर जिले में 960 हो गई जिनमें 48 छात्राओं तथा 912 स्कूल दोनों (छात्र-छात्रा) को सुविधा उपलब्ध करवा रहे थे। इसी प्रकार वृद्धि का क्रम लगातार जारी रहा तथा वर्ष 2018-19 में स्कूलों की कुल संख्या 1177 (23 छात्रा व 1154 सह शिक्षा/ छात्र विद्यालय) पहुँच गई जो 2015-16 की तुलना में 217 अधिक दर्ज की गई। इनकी संख्या में वृद्धि का मुख्य कारण सरकार द्वारा शैक्षिक सुविधाओं हेतु किए जा रहे प्रयास और अन्य विद्यालयों का उच्च माध्यमिक विद्यालयों में विलय व क्रमोन्नत किया जाना था।

सामान्य शिक्षा महाविद्यालय:- अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत संचालित सभी सामान्य शिक्षा महाविद्यालयों का विवरण इस प्रकार है:-

सारणी सं. 1.5 अलवर जिले में सामान्य शिक्षा महाविद्यालयों की संख्या

(वर्ष 2005 से 2018 तक)

क्र.सं.	*वर्ष*	*महाविद्यालय संख्या*
1	2005-06	32
2	2010-11	67
3	2015-16	102
4	2018-19	86

स्रोत: उच्च शिक्षा वार्षिक प्रतिवेदन

सारणी संख्या 1.5 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शोध क्षेत्र में वर्ष 2005-06 में उच्च शिक्षा हेतु केवल 32 महाविद्यालय संचालित थे जो वर्ष 2010-11 एवं 2015-16 में बढ़कर क्रमश: 67 व 102 हो गए जिसका मुख्य कारण सरकार द्वारा उच्च शिक्षा में सुधार हेतु किए गए प्रयास, नए महाविद्यालयों की स्थापना करना, निजी महाविद्यालयों को मान्यता प्रदान करना तथा आधारभूत शैक्षणिक सुविधाओं का विकास करना था किंतु वर्ष 2017-18 के उपरांत इनकी संख्या में कमी आने लगी तथा वर्ष 2018-19 में कुल महाविद्यालय संख्या घटकर 86 रह गई।इसका मुख्य कारण निजी महाविद्यालयों का अनियमितताओं व अन्य निजी व आर्थिक कारणों से बंद होना रहा है।

सारणी 1.6 अलवर जिले में विश्वविद्यालयों की संख्या का विवरण

(वर्ष 2005 से 2018)

क्र.सं.	*शिक्षण संस्थान*	*2005-06*	*2010-11*	*2015-16*	*2018-19*
1.	राज्य वित्त पोषित विश्वविद्यालय	0	0	1	1
2.	निजी क्षेत्र के विश्वविद्यालय	0	2	3	4
	कुल विश्वविद्यालय	0	2	4	5

स्रोत-उच्च शिक्षा वार्षिक प्रतिवेदन

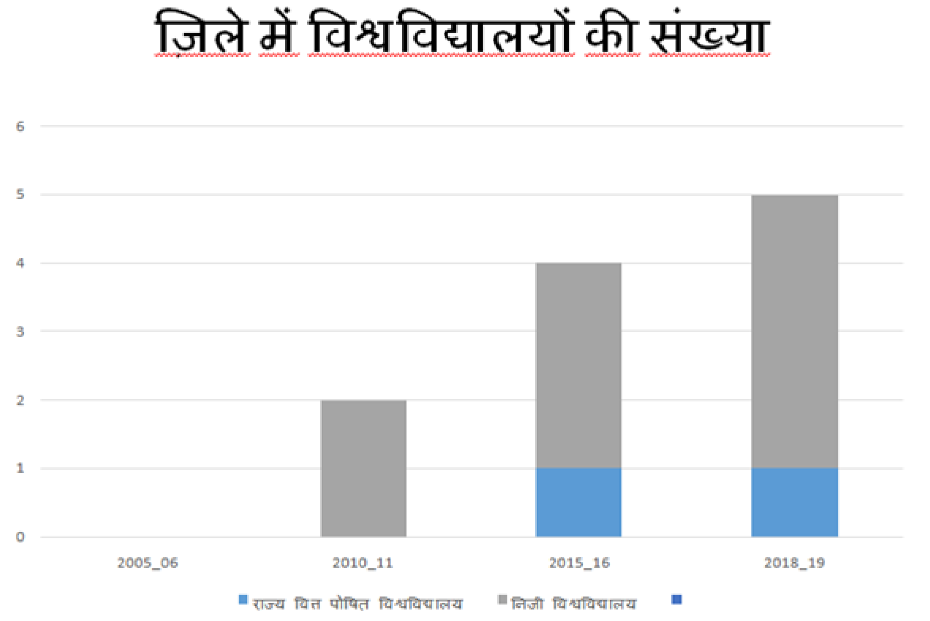

सारणी संख्या 1.6 द्वारा अलवर जिले में संचालित राजकीय व गैर राजकीय विश्वविद्यालयों का विवरण प्रदर्शित किया गया है जिसके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2005-06 में जिले में एक भी विश्वविद्यालय संचालित नहीं था। यहाॅ के महाविद्यालय राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के सम्बद्धक के रूप में संचालित थे। आगे 2010-11 में विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़कर 2 हो गई, यह वृद्धि निजी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों की स्थापना के उपरांत दर्ज की गई। वहीं राज्य वित्त पोषित विश्वविद्यालयों की संख्या अभी तक शून्य थी। फिर 2015-16 में यहाॅ विश्वविद्यालयों की संख्या 4 अंकित की गई जिसमें 1 राज्य वित्त पोषित एवं 3 निजी विश्वविद्यालय थे। यह 2010-11 की तुलना में 2 की वृद्धि थी। इसी प्रकार वर्ष 2018-19 में जिले में विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़कर 5 हो गई। यह वृद्धि निजी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों में दर्ज की गई। वर्तमान में जिले में 1 राजकीय एवं 4 गैर राजकीय विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र में 2005-06 में प्राथमिक, उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या अधिक थी लेकिन 2018-19 में इनकी संख्या कम हो गई जबकि माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई। इसी अवधि में महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों की संख्या में भी वृद्धि हुई, जिससे जिले में उच्च शिक्षा तक पहुँच आसान हुई है। इनके परिणामस्वरूप जिले के शैक्षणिक विकास के साथ-साथ सामाजिक व आर्थिक विकास को बढ़ावा मिला है तथापि अध्ययन क्षेत्र में शिक्षा के क्षेत्र में विकास एवं सुधार हेतु शैक्षणिक संस्थानों में वृद्धि एवं भौतिक सह-शैक्षणिक सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित किए जाने की ओर आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूचीः-

1. कार्यालय, जिला शिक्षा अधिकारी, अलवर
2. काॅलेज निदेशालय, शिक्षा संकुल, जयपुर
3. तकनीकी शिक्षा निदेशालय, जोधपुर
4. कार्यालय, जिला कलेक्टर भू अभिलेख, अलवर
5. जनगणना प्रतिवेदन, जिला अलवर, 2011
6. जिला सांख्यिकी कार्यालय, अलवर

प्रेमचन्द की पत्रकारिता के आधारस्तंभ

सरिता

व्याख्याता हिन्दी साहित्य, राजस्थान पीजी कॉलेज चिड़ावा, झुंझुनूं

प्रेमचन्द न केवल एक सफल साहित्यकार थे बल्कि एक निर्भीक पत्रकार भी थे। ब्रिटिश भारत के प्रायः सभी बडे साहित्यकारों ने साहित्य के साथ पत्रकारिता को भी अपनी अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन बनाया था। पत्रकारिता चूँकि साहित्य की अपेक्षा जनमत निर्माण में अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती है इसीलिए उस युग की पत्रकारिता में ब्रिटिश भारत की समस्त समस्याओं को पूरा स्थान प्राप्त हुआ है। बल्कि यह कहना गलत न होगा कि हिन्दी साहित्य का जो रूप वर्तमान समय में दिखाई देता है उसका अस्तित्व कहीं न कहीं ब्रिटिश भारत की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आज भी जीवित है। इस सत्य को उजागर करते हुए हिन्दी साहित्य के महान आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक "प्रेमचन्द और उनका युग" में लिखा है, "प्रेमचन्द सिर्फ कथाकार नहीं थे, पत्रकार भी थे।" भारतेन्दु से लेकर प्रेमचन्द तक हिन्दी साहित्य की परम्परा में यह बात ध्यान देने की है कि हमारे सभी बड़े साहित्यकार पत्रकार भी थे। पत्रकारिता उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी थी। यह पत्रकारिता एक सजग और लड़ाकू पत्रकारिता थी, जो देश विदेश के घटनाक्रम में दखल देती थी, जनता के जीवन और साहित्यकार के परस्पर सम्बन्ध को मजबूत करती थी।

"प्रेमचन्द एक युग है, भूगोल है, मनोविज्ञान है, इतिहास है। निरन्तर गतिमान रहना ही उनका धर्म था। प्रेमचन्द ने कहा था- मैं बहुत शुभ मुहूर्त में हंस पत्रिका का प्रकाशन कर रहा हूँ। 3 जून 1932 को बनारसीदास को उन्होंने पत्र में लिखा- मेरी आंकाक्षा बहुत ज्यादा नहीं है। मुझे दौलत और शौहरत नहीं चाहिए पर मेरे भीतर मोटरबम है। मैं तीन, चार श्रेष्ठ पुस्तके लिख सकूँ जो आजादी के काम आ सके। मेरा मानस का हंस अपनी चोंच में आजादी के संघर्ष की मिट्टी लेकर अपना योगदान कर रहा है।"

स्वाधीनता बहुत बड़ा जीवन मूल्य है। इसे प्राप्त करने हेतु मनुष्य सतत् संघर्षशील रहता है। स्वाधीनता के दो स्तर हैं- एक आंतरिक स्वाधीनता दूसरी बाह्य स्वाधीनता। स्वाधीन देश का नागरिक विभिन्न पराधीनताओं जैसे सामाजिक रूढ़ियों, सामाजिक वर्जनायें, आंतरिक भेदभाव के विरूद्ध समता लाने के लिए संघर्ष करता है। बाह्य पक्ष के अन्तर्गत देश की स्वाधीनता प्रमुख है। जब तक आप स्वतंत्र देश के नागरिक नहीं होंगे, तब तक आप अपनी मौलिक आजादी को हासिल नहीं कर सकते। इस आजादी को प्राप्त करने के लिए विश्व के विभिन्न देशों ने संघर्ष कर आजादी हासिल की है। भारत भी उन्हीं में से एक राष्ट्र है। देश की आजादी को प्राप्त करने के लिए देश के वीरों ने, देश के सच्चे सपूतों ने विभिन्न प्रकार से आजादी की लड़ाई लड़ी। आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता सबसे बड़ा शस्त्र है। इस शस्त्र के बिना आप आजादी हासिल नहीं कर सकते। यही कारण है कि मुंशी प्रेमचन्द का रचनात्मक लेखन कहानी, उपन्यास, नाटक ने जहाँ विभिन्न पात्रों के माध्यम से समाज के विभिन्न संघर्ष को दिखाया गया है, वहीं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी प्रेमचन्द निरन्तर अपनी आजादी की लड़ाई में, समाज के सुधार में अपना अप्रतिम योगदान देते रहे। इसके लिए उन्होंने माध्यम चुना विभिन्न पत्र तथा पत्रिकाओं को- 'हंस', 'माधुरी', 'जागरण' में वे बराबर लिखते रहे, स्तम्भकार के रूप में लेखन करते रहे।

प्रेमचन्द की दृष्टि देश-विदेश में चल रही इन हलचलों पर थी। प्रेमचन्द चूंकि गांधी जी को तत्कालीन भारत के लिए किसी उदारक से कम नहीं समझते थे। 19 दिसम्बर 1932 ई. को "जागरण" साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित 'महान तप' नामक शीर्षक में उन्होंने गांधी जी द्वारा किए जा रहे महान तप की प्रशंसा करते हुए लिखा, "कल यरवदा जेल में वह महान तप होगा, जिसकी कल्पना से ही रोमांच हो जाता है। भारत की तपोभूमि में इससे पहले भी बड़ी-बड़ी कठिन तपस्याऐं की गई हैं लेकिन यह तपस्या अभूतपूर्व है। भारत के इतिहास में ही नहीं, संसार के इतिहास में भी इसकी नजीर न मिल सकेगी। ज्ञान के लिए, मोक्ष के लिए, प्रभुता के लिए, औरों ने भी तप किए हैं, पर राष्ट्र की नौका सांम्प्रदायिक भंवर में चक्कर खा रही थी। समस्त देश में इन परिस्थितियों को

देख-देखकर निराश और हताशा हो रहा था। कहीं-कहीं साम्प्रदायिक द्वंद्व छिड़ गया था। राष्ट्र के मूल तत्व को हम भूल गये थे। गोलमेज फिर कैसे हो, उसमें कौन जाये आदि गौण बातों में पड़े हुए थे। उसी समय यरवदा जेल की ऊंची चारदीवारियों को भेदती, सरकार की गोपन नीति को चिरती हुई तुम्हारी इस भीषण प्रतिज्ञा की आवाज, आकाशवाणी-सी, हमारे कानों में आती है, और सारा देश सचेत हो जाता है, हमारी मुरझायी हुई आशा फिर लहलहा जाती है, हमारी निर्जीव देह में जान पड़ जाती है। हमारी आंखें खुल जाती हैं और हम देखते हैं कि जब राष्ट्र ही न रहा तो स्वराज्य कहाँ। जब संस्कृति ही न रही, तो हमारा अस्तित्व ही कहाँ।"

मानवीय चेतना में सत्य और न्याय का पक्ष सबसे उदात्त होता है। प्रेमचन्द का संघर्ष इसी सत्य एवं न्याय की प्राप्ति के लिए था। वे ऐसे साहसिक लेखक थे कि उन्होंने खुदीराम बोस का चित्र अपने कमरे में लटका रखा था। जिसकी यदि अंग्रेजों को जानकारी मिल जाती तो 10 वर्ष की सजा अवश्य होती और नौकरी जाती। अमृतराय द्वारा प्रेमचन्द को 'कलम का सिपाही' कहना उनके कार्यो के अनुरूप ही है। प्रेमचंद 1907 से 1936 तक निरन्तर अपनी कलम से योगदान देते रहे। 'सोज-ए-वतन' कहानी में सीधे कोई विरोधी बात नहीं थी, केवल स्वाधीनता की सुगंध भर थी। उसमें अनमोल रत्न का विशेष आशय के साथ प्रयोग किया गया था। वतन की हिफाजत के लिए जो खून का कतरा गिरता है, वह अनमोल रत्न है। इस वाक्य के कारण यह पुस्तक जब्त हुई। इसके पश्चात ही नवाबराय का अस्तित्व समाप्त हुआ और प्रेमचंद का उदय हुआ। उनमें अखबारनवीस बनने की ललक थी, तड़प थी, जो संसार के बहुत कम लेखकों में मिलेगी। अपनी अखबारनवीस बनने की इच्छा प्रेमचंद जी ने कानपुर निवासी अपने मित्र दयानारायण निगम से व्यक्त की। उन्होंने उर्दू में निकालने का निमंत्रण प्रेमचंद को दे दिया। इसके बाद प्रेमचंद माधुरी, जागरण, हंस पत्रिकाओं का संपादन करते रहे और विभिन्न अन्य पत्र-पत्रिकाओं में बराबर लेख एवं संपादकीय लिखते रहे, स्तम्भकार के रूप में लेखन कार्य करते रहे। हंस और जागरण की दो बार जमानत भी देनी पड़ी। प्रेमचन्द ने 1903 ई. में स्वंतत्र पत्रकारिता आरम्भ की थी और यह क्रम 1930 ई. में हंस के शुरू होने तक चलता रहा। "उन्होंने अपने पत्रकारिता के क्षेत्र में लेखन की शुरूआत 'ओलिबर क्रॉमवेल' के विभिन्न प्रसंगों पर टिप्पणी लेखन से की थी, जो 'आवाजे खल्क' में 1 मई 1903 से 24 सितम्बर 1903 तक धाराविक के रूप में छपी थी। इस पत्र के अलावा स्वदेश एवं मर्यादा में भी मुंशी जी रिपोर्ताज एवं टिप्पणियाँ लिखते थे। उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'जमाना' में मुंशी जी रपटों व टिप्पणियों के अलावा 'रफ्तारे जमाना' के नाम से एक स्थायी स्तम्भ भी लिखते थे।"

प्रेमचंद की पत्रकारिता इतनी सशक्त थी, जितनी की उनकी कहानियाँ या उपन्यास। रपट या टिप्पणी में किस तरह की भाषा का प्रयोग करना चाहिए, यह कोई उनसे ही सीख सकता है। कथन की स्पष्टता, भाषा की सरलता, संप्रेषणीयता इतनी सशक्त होनी चाहिए कि कोई आसानी से छोटे से समाचार की भी उपेक्षा न कर पाये। उदाहरण के लिए 'हंस' के 1934 के अंक में प्रकाशित उनके एक लेख को देख सकते है। 'जाति भेद मिटाने की आयोजना' शीर्षक से प्रेमचंद ने एक छोटी सी रपट लिखी थी- इस रपट की पहली ही पंक्ति में सूचना दी गयी है कि "बम्बई के मिबी यादव ने भेदभाव को मिटान के लिए यह प्रस्ताव किया है कि सभी हिन्दू उपजातियों को ब्राह्मण कहा जाये और हिन्दू शब्द को उड़ा दिया जाये, जिससे भेद-भाव का बोध होता है। उसके ठीक बाद प्रेमचंद टिप्पणी करते हैं- प्रस्ताव बड़े मजे का है। हम उस दिन को भारत के इतिहास में मुबारक समझेगें, जब सभी हरिजन ब्राह्मण कहलायेंगे।" दरअसल प्रेमचंद की पीड़ा यह है कि हम विभिन्न जातियों में बँटे हुए हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या हरिजन। हम अपने आप को सामान्य जन नहीं समझते। जाति के आधार पर श्रेष्ठता की भावना हमारे मन के कोने में कहीं न कहीं दबी रहती है जो अवसर मिलते ही सबसे उपर आकर अभिव्यक्ति पाती है। जातिगत भेद-भाव को हम समाप्त करने की स्थिति में नहीं पहुँच पाते हैं क्योंकि जातीयता हमारे खून में रचा-बसा हुआ है। 'हंस' के ही जनवरी 1934 के अंक में प्रेमचंद की एक छोटी सी टिप्पणी छपी है। शीर्षक है- 'अच्छी और बुरी साम्प्रदायिकता'। इसमें मुंशी जी लिखते हैं- "इंडियन सोशल रिफार्मर नामक पत्र में कहा है कि साम्प्रदायिकता अच्छी भी है और बुरी भी। बुरी साम्प्रदायिकता को उखाड़ना चाहिए, मगर अच्छी साम्प्रदायिकता वह है जो अपने क्षेत्र मे बड़ा उपयोगी काम कर सकती है, उसकी क्यों अवहेलना की जाये।" इतनी जानकारी देने के बाद प्रेमचंद की टिप्पणी है - "अगर साम्प्रदायिकता अच्छी हो सकती है तो पराधिनता भी अच्छी हो सकती है, झूठ भी अच्छा हो सकता है।" प्रेमचंद की पत्रकारिता मुद्दों पर केन्द्रित थी। उन्होंने हर उस विषय पर अपनी कलम चलायी जिससे समाज का, राष्ट्र का, व्यक्ति का हित होता हो। उन्होंने स्वाधीनता संग्राम, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति, हिन्दू-मुसलमान, छूत-अछूत, मजदूर-किसान, नागरिक, शासन, साहित्य, दर्शन, धर्म, समाज, शिक्षा, संस्कृति, महिला जगत से लेकर राष्ट्रभाषा से जुड़े तमाम मुद्दों पर रिपोर्ताज, टिप्पणियाँ एवं लेख लिखे, उन्होंने केवल समाचार पत्रो-पत्रिकाओं के लिए टिप्पणी, लेख ही नहीं लिखे अपितु संपादन कार्य से भी हिन्दी को समृद्ध किया। 'हंस' और 'जागरण' को प्रेमचंद के संपादकत्त्व में अपार लोकप्रियता भी हासिल हुई। सम्पादक के रूप में प्रेमचंद अपने सिद्धान्तों पर हमेशा

अड़िग रहे। वे महात्मा गाँधी के स्वाधीनता आंदोलन से भी प्रभावित थे। लोगों को गाँधी जी के आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित करते थे। अंग्रेजी शासन के कुकृत्यों की कठोर निन्दा भी करते थे। यहीं कारण है कि उन्हें बार-बार अंग्रेजी हुकूमत का कोप भाजन बनना पड़ता था। 'जागरण' के 12 दिसम्बर 1932 ई. के अंक में प्रेमचंद ने स्वयं इस कोप का ब्यौरा दिया है, हंस की जमानत से हाल ही में गला छूटा है। पाँच महिनों तक पत्र बंद रहा, इसलिए इतनी जल्दी जमानत का हुक्म पाकर हम क्षुब्ध हुए। इस पर प्रेमचंद जी टिप्पणी लिखते है- "ऐसे वातावरण में हर संपादक के सिर पर तलवार लटक रही हो, राष्ट्र का सच्चा विकास नहीं हो सकता।"

प्रेमचंद की दृष्टि देश में चल रही हलचलों से कब ओझल हो सकती थी। 5 दिसम्बर 1932 को 'महात्मा जी का उपवास' नामक शीर्षक में जहां एक तरू उन्होंने श्री केलप्पन की प्रशंसा की वहीं दूसरी और जमोरिन की खुलकर निन्दा भी की। इस संबंध में वह लिखते हैं, "श्री केलप्पन ने जिस साहस से गुरूवयूर के मंदिर को अछूतों के लिए खुलवा देने के लिए उपवास करने का निश्चय किया था, जिस साहस से वे कई दिन तक लगातार उपवास करते रहे, उसकी प्रशंसा की जावे थोड़ी है। उस समय जमेरिन के जिद्द कर मंदिर ने खोलने में जो अहम्मन्यता तथा जड़ता दिखलाई थी, उसकी जितनी निन्दा की जावे थोड़ी है। उस समय महात्मा जी के मना करने से श्री केलप्पण ने अनशन तोड़ दिया था। महात्मा जी ने इतने समय तक इस बात की प्रतिज्ञा की थी, कि किसी प्रकार जमोरिन का अक्ल आ जायेगी। महामना मानवीय जी, श्री राजगोपालाचारी और श्री राजेन्द्र प्रसाद तथा श्रीमती गांधी ने भी इस दशा में भरसक कोशिश की थी, कि जमोरिन अपनी जिद्द तोड़ दे, लेकिन जमोरिन ने कुछ भी नहीं किया। अब, क्या हम भारतीय इतना गिर गये हैं कि विश्व की एक विभूति जमोरिन की जिद्द के कारण बलिदान हो जावे। ईश्वर हमारे अहिंसात्मक आग्रह में बल दें।"

स्वदेश, मर्यादा पत्रों से भी सम्बद्ध रहे। असहयोग आन्दोलन के जमाने में स्तम्भकार के रूप में उनकी बहुत ख्याति थी। प्रेमचंद स्वयं सक्रिय राजनीति के क्षेत्र में कभी नहीं उतरे, लेकिन पत्रकारिता के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी महती भूमिका निभाते रहे। साम्राज्यवादी शोषण के खिलाफ उन्होंने खुलकर बिगुल बजाया। स्वराज प्राप्त करने के लिए हमेशा योगदान करते रहे। विभिन्न शीर्षक से उन्होंने देश की आजादी के लिए टिप्पणियाँ लिखी- "स्वराज मिलकर रहेगा- मई 1931, दमन की सीमा- अप्रैल 1932, काले कानून का व्यवहार- जनवरी 1933, कोढ़ पर खाज- जून 1935।" इन टिप्पणियों में साम्राज्यवाद के विरोध में उन्होंने लिखा । उनकी सम्पादकीय तटस्थता को जेनेन्द्र जी ने 'ममताहीन सद्भावना' कहा है।

प्रेमचंद ने पत्रकारिता को मिशन के रूप में जिया, फैशन या व्यवसाय के रूप में नहीं देखा। वे पत्रकारिता में पूँजी के प्रभुत्त्व के खिलाफ थे। पत्रकारिता में विज्ञापनों को वे कतई महत्व नहीं देते थे। वे पत्रकारिता के बुनियादी सिद्धान्तों व सवालों के हिमायती थे। वे किसी सत्ता प्रतिष्ठान के आगे नतमष्तक होकर पत्रकारिता की कतई पक्षधर नहीं थे। आधुनिक चमक-धमक की पत्रकारिता से उनका कोई नाता नहीं था। इसलिए उनकी पत्रकारिता आज भी पत्रकारों के लिए पाथेय है जो सिद्धान्तों के लिए लड़ना सिखाती है। जन-समुदाय का कल्याण करना चाहती है। जो बेजुबान की जुबान बनकर बोलना जानती है। ऐसी थी प्रेमचंद की पत्रकारिता। उनका साहित्यकार रूप जितना विराट है, तो पत्रकारिता के उनके स्वरूप की चर्चा तुलना में कम होती है। परन्तु पत्रकारिता का उनका कर्म भी उतना उच्च, दृढ़, देशानुरागी है। आज भी हम उनकी पत्रकारिता से प्रेरणा ले सकते है। पत्रकारिता के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचंद का योगदान अद्वितीय है।

सन्दर्भ सूची-

1. वर्मा, डॉ. रतन कुमारी, स्वाधीनता संग्राम में मुंशी प्रेमचंद का योगदान, साहित्य-भारती, जुलाई-सितम्बर 2002, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृष्ट-43
2. प्रेमचंद (संपादक) हिन्दी का अकेला साहित्यिक पत्र "जागरण"
3. प्रेमचंद: कहानीकार ही नहीं, पत्रकार भी, लाइव हिन्दुस्तान डाट काम, 29 जुलाई 2009
4. वहीं पृष्ठ-43
5. 'जागरण', 5 दिसम्बर 1932 'महात्मा जी का उपवास' (वहीं पृष्ठ 449-450)
6. प्रेमचंद की पत्रकारिता के सरोकार, विनीत नारायण का लेख, अमर उजाला डाट काम, 30 जुलाई 2012
7. वहीं।

अमृता प्रीतम और पिंजर में पीड़ा

डॉ० संगीता

पूर्व शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

तन से भरा-पूरा व्यक्ति जब मन से खाली हाने लगता है तब अदृश्य तंतुएँ उसे चारो ओर से बाँधने लगती है आकुंल मन दूर-दूर तक दौड़ आता है पर यह दौड़ और मन की रफ्तार मानों इस अदृश्य पिंजरे के भीतर होती है अमृता प्रीतम जिस पिंजरे (पिंजर) कीबात करती है वह पूरो थी। दिन के प्रकाश में पूरो हमीदा बन जाती थी, रात के अंधकार में वह पूरो रहती। किन्तु पूरो सोचती थी वह वास्तव में हमीदा थी न पूरो वह केवल एक पिंजर थी केवल पिंजर-जिसका कोई रूप न था, कोई नाम न था।[1] पिंजर तन-मन का जिसमें लगे एक-एक तार समाज की कुठित धातुओं से बने हैं। पिंजर देश के विभाजन और विस्थापन से पूर्व, पूरो की कहानी हैं अमृता प्रीतम अपने उपन्यासों में जिस दर्द को शब्द देती हैं वह तत्कालीन वीभत्सता में लाकर खड़ा कर देता है हंसती खेलती अल्हडपन में तितलियों सी मन को लुभाती सबको अपनी ओर खींचती और खुशियों से भर देती थी।

पुरो की अपनी दुनिया उसके माता-पिता भाई-बहन तक ही सिमटी थी जिसमें किसी बाहरी व्यक्ति के लिए तब तक जगह नहीं थी, जब तक उसने अपने होने वाले दूल्हे की कल्पना न की थी। विवाह से पूर्व पुरो जिसे देखने के लिए आतुर थी पर अपनी मर्यादा न भूली थी उसने तत्कालीन समाज में लगभग बदले में विवाह होते थे जिस परिवार से लड़की को बहू के रूप में लेना उस घर में अपनी लड़की बहू के रूप में भेजना होता था। पूरो की होने वाली ननद उसकी भाभी बनने वाली थी। साखियाँ पूरो को बात-बात में छेडती। पूरो लाज को समेटे मुस्कुराती और हर मजाक पर थोडा-थोडा और खिलती जाती। उसे कहाँ पता था कि उसके घर के बड़ो के बोये जहरीले बीजों की फसल उसे काटनी पडेगी अपने दुर्दैव से निश्चित सपनों और अरमानों को चादरे जैसे क्रोशिए से बुनती जा रही थी वह इस बात से अनजान थी कि बुनी हुई चादर से निकला एक धागा उसके चादर को उधेड देगा। पूरो जैसी लड़कियाँ आजादी मिलने के पूर्व देश के हालातों से अनजान न थी। यह स्वतंत्रता संग्राम के दौरान की गाथा है जब देश में हिन्दु और मुस्लिम के बीच बैर के बीज पड़ चुके थे। अंग्रेजो की फूट डालों और राज करो की नीति चरम पर पहुँच रही थी। आशुतोष कुमार अपने सम्पादकीय में विभाजन के सत्तर सालों पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि 'हिन्दू' और मुसलमान की धार्मिक पहचाने राजनीतिक में कैसे बदलती गई? इस प्रक्रिया में औपनिवेशिक राज्य की भूमिका क्या थी? यह भूमिका फूट डालो और राज करो' की उस बहुचर्चित रणनीति तक सीमित नहीं थी जिसके उदाहरणों के रूप में बंग-भंग से लेकर कैबिनेट मिशन तक की बातें सामने रखी जाती है।[2] समाज पर राजनीति कहीं न कहीं अधिक से हाबी हो रही थी। गली चौराहों और मोहल्लों में विभेद और विद्रोह के समाचार आम हो रहे थे। अमृतसर से अपने पुश्तैनी घर में लौटे शाहों का परिवार खुश था पूरो का विवाह तय हो गया था। पूरो रामचन्द को शादी के पहले देखना चाहती थी। रत्तोआल की ओर जाती सड़क पर उसकी झलक से पूरो की पुलक का ठिकाना न था। उसके पॉव के घूघरू उसके मन की थिरक को छम-छम करके बता रहे थे। पूरो अपनी नियति से अन्जान अपने बनाए कल्पना लोक में ही विचरती रहती। पूरो के ख्यालों में रामचन्द्र के छवि की निरन्तरता कोई निर्ममता से मिटा देना चाहता है। एक मुस्लिम नवयुवक रसीद जिसके सगे वालों ने कौल से बांध रखा था पूरो एक नरम-मुलायम मेमने सी शेर की ओर बढ़ रही थी और शेर की नजर मेमने को दबोचने की फिराक में झाडियों में छुपा था। खेतों से भिंडियाँ तोड़कर लौटती पूरो को रसीद घोडी पर उड़ा ले गया। जैसे किसी बवंडर ने पूरो को अपनी ओर खींच लिया हो। पूरो बदहवास बेसुध सी झंझावातों में जैसे धकेल दी गई हो। जब उसकी ऑख खुली, उसने स्वयं को एक गैर धर्मावलम्बी के घर की खाट पर बुखार से तपते हुए पाया। रशीद लगातार उसे ठण्डे पानी से पट्टियाॅ करता, हाथ पैर को रगड़ता कि पूरो अपनी सामान्य अवस्था में आ सके किन्तु पूरो में इतना शारीरिक बल न था कि वह अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकें वह कभी-कभी दवा पी लेती तो कभी मुंह को इस कदर बंद कर लेती

कि दवा की एक बूंद भी मुंह में न जा सकें। जो उसे शारीरिक पीड़ा से मुक्त कर सकें। पूरो के सिरहाने बैठे रशीद में वह रीछ साफ नजर आने लगा जिसके विषय माँ उसने सुन रखा था कि रीछ को कोई औरत अकेली मिल जाए तो वह उसे मारता नहीं अपनी गुफा में उठा ले जाता है और उस औरत को जबरन अपनी स्त्री बना लेता है। रशीद को पूरो ने इस रूप में देखा कि काली खाल वाला एक रीछ उस के बालों में अपने पंजे फेर रहा है पूरो एक गुफा में पड़ी है वह सिकुडती जाती है रीह फैलता जाता है।[3] पूरो रशीद के प्रेम भरे स्पर्श को स्वीकार नहीं कर पा रही थी। यह बात रशीद के लिए भी असहय थी। किन्तु रशीद का दोष इससे कम न होगा यह रशीद भली-भाँति जानता था। उसे पता था कि प्रेम बहुत ही सुखद अनुभूति होती है अगर वो दोनों ओर से हो। यहॉ पुरो के लिए रशीद प्रेमी ने सिर्फ दोषी था जिसने पूरो का जीवन नरक के समान बना दिया था।

पूरो के पिता पुलिस में कोई तहरीर नही दे सकते थे क्योंकि उन्हे अपनी इज्जत और सामाजिक प्रतिष्ठा अधिक प्रिय लगी। पूरो की माँ अन्दर ही अन्दर घुटती रहती, किन्तु वह भी विवश थी, रशीद के घर पन्द्रह दिन रह चुकी पूरो रशीद की ढील से भाग निकली अपने परिवार को पुनः पाने के लिए उसके माता-पिता की दहलीज अब उसकी न थी। वहाँ पहुँचकर उसे समझ आया कि रशीद सही कहता था कि अब उसका अस्तित्व शाहों के लिए समाप्त हो चुका था। अपने परिवार के लिए वह उसी दिन मर चुकी थी इसे वह अब जान पायी। जब उसकी मॉ ने कहा हम तुम्हे कहाँ रखेगें? तुझे कौन व्याह कर ले जाएगा? तेरा धर्म गया तेरा जन्म गया। हम जो इस समय कुछ भी बोले तो यहाँ हमारे लहू की एक बूंद भी न बचेगी।[4] उस दहलीज से पूरो को इस तरह लौटा दिया गया जैसे उस दहलीज से पूरो का कोई नाता ही न हो। वहाँ से लौटते कदमों को रशीद की ही दिशा मिली जिसके अतिरिक्त कोई और विकल्प शेष न था पूरो के जीवन की अधियारी में टिमटिमाती सी रौशनी रशीद का प्रेम और अपनापन था। रशीद ने पूरो से विवाह किया और पूरो को एक नया नाम मिला गोदने के रूप में 'हमीदा'।

हमीदा जो जन्मी न थी उसे जीवन दिया गया था रशीद के द्वारा हमीदा के कोई माता-पिता न थे। एक नई पहचान देने वाला रशीद था। यहॉ पूरो और रशीद के मध्य धर्म की एक गहरी खाई भी थी जिसके दोनो ओर धर्म के दो किनारों के रूप में दोनों खडे थे। जो चाहकर भी मिल नहीं सकते थे हमीदा बस शरीर से ही हमीदा थी उसकी आत्मा तो अभी भी पूरो ही थी। रशीद की ओर से धर्म उसके प्रेम से बड़ा नहीं है जो वह पूरो से करता है। वहीं पूरो के मन में रशीद के लिए घृणा के अतिरिक्त कुछ भी न था वह एक ऐसे बन्धन में बंधी थी जिसकी कोई गॉठ न दिखती थी जिसे खोलकर पूरो मुक्त हो सकें। पूरो का मन पंछी जनकर आसमान में उड़कर हर शाम अपनी नींद में आ जाता था।

कुछ समय बाद पूरो ने जावेद को जन्म दिया। किन्तु मॉ बनने का अनुभव सुखद न था उसके लिए पूरो के लिए संतोष का मात्र एक कारण था कि रशीद ने उसके अतिरिक्त किसी की ओर नजर उठाकर भी न देखा था। जिस गॉव में पूरो रहती थी उस गॉव में एक पगली जो घर-घर भीख माँगकर जीती थी वह किसी के कूकर्मो को अपने गर्भ में अनजाने ही धारण कर चुकी थी। उसके पेट के उभार गॉव की औरतों को शर्मिन्दा करते। पगली के बच्चे ने जनमते ही अपने मॉ को खो दिया था व उस बच्चे को पूरो ने अपनी दूसरे बेटे की तरह सीने से लगा लिया था। किन्तु धर्म के दिखावटी रक्षकों में उस बच्चे को पुरो से जबरन छीन लिया पर यशोदा सी मॉ पूरो के आगे समाज का दम्भ हार गया था। पूरो के माता-पिता और भाई-बहन सभी सुखपूर्वक जी रहे थे पूरो भी अपनी बनाई दुनिया में जीती थी किन्तु उसके मन से रामचन्द्र की छवि ने जैसे कोई ऐसा नाता जोड़ लिया था कि जिससे पूरो भी अलग न होना चाहती थी फिर भी खुद को रशीद की हमीदा मानकर अपने कमद पीछे कर लेती।

बँटवारे के समाचार की आग फैलते ही हिन्दू और मुस्लिमों के बीच मारने- काटने एक दूसरे पर हावी होने की खबरे आम होने लगी। विस्थापन के बीच रामचन्द्र की बहन जो अब पूरो की भाभी थी वह स्त्तोआज में ही मुस्लिमों द्वारा जबरन बंधक बना ली गई थी अपने ही घर में वह अब अपनी अस्मिता को बार-बार तार-तार होते देखती। पूरो अब पकिस्तान में थी उसके सभी सगे-सम्बन्धी अब भारत में चले गए थे रत्तोआल में फंसी थी लाजों उसकी भाभी जिसे रशाीद की सहायता से उसने भारत में अपने भाई से मिलवा दिया। जब दोनो देशों के अपनो से बिछडे रिश्ते-नातेदार को लगा कि इस मौके का अवसर उठाकर हमीदा (पूरो) भारत अपने लोगों के पास चली जाएगी। रशीद से वह मुक्त हो जाएगी। किन्तु पूरो ने अब अपना सर्वस्व रशीद को ही मान लिया था अब वह एक ऐसी पाकिस्तानी थी जिसके पास भारतीय होने का भी विकल्प था और धर्म से मुक्त होने का भी पर पूरो के लिए धर्म और देश से बड़ा रशीद था क्योंकि वह उसकी संतान का पिता था।

पिंजर मुख्यतः तो ऐसी स्त्रियों के मानवीय त्रास की कहानी कहता है जो मानवता की परिधि में कही भी नहीं आता। स्वतंत्रता पूर्व एक लड़की जिसे घर की दहलीज से अलग कर दिया गया। एक ऐसी स्त्री (विवाहित) जो स्वतंत्रता के पश्चात विस्थापन की

मार और त्रास अपने उसी घर से झेलती है जिसकी जन्मभूमि भी वही थी अमृता प्रीतम ने इस उपन्यास में पूरो को ही केन्द्र बिंदु माना है। पिंजर से सिर्फ विभाजन के समय की नारी को प्रस्तुत नहीं किया गया है। पिंजर प्रमुखता से पूरो को रेखांकित करता है जिसे बिन खिले डाली से तोड़कर पत्थर से कुचला गया था। एक ऐसी तितली जिसके पंखो को काटकर छत पर खुला छोड दिया गया था। एक लडकी के सपनों की चादर में जितने तारे टके थे सब नोच लिए गए थे वो भी एक ऐसे पुरूष के द्वारा जिसकी बुआ के साथ भी ऐसा ही किया गया था। बस अन्तर था तो इतना किस उस पुरूष ने पूरो की कुछ रातों का खिलौना बनाकर चूर-चूर कर फेंका नही, उसे अपने समाज में उचित स्थान दिया था। पूरो और लाजो दो ऐसी स्त्रियों जो उन सभी धर्म के नाम पर समाज की विकृत मानसिकता के सहारे प्रताड़ित किया गया था। एक ने विभाजन के पूर्व और दूसरे ने विभाजन के पश्चात धर्म के नाम पर स्वयं की काया पर मानसिक त्रास को सहा। क्या समाज यह बता सकता है कि इन दोनो स्त्रियों मे किसका दुख सबसे अधिक था। किसने पीड़ा अधिक भोगी? नहीं, समाज इसका आकलन नही कर सकता। एस स्त्री की पीड़ा का आकलन करना सम्भव नही है। विभाजन से पूर्व की त्रासद स्थितियों की भयावहता विभाजन के पश्चात और बढ़ने लगी। सामाजिक वैमनस्य ने स्त्री-पुरूषों के शरीर से ज्यादा मन को आहत किया था। इस हिन्दु-मुस्लिम साम्प्रादायिक दंगो की भेंट चढ़ी बच्चियों युवतियां और स्त्रियां विशेषकर हिन्दू स्त्रियाँ और बच्च्यिां जिनकी काया के साथ उनकी आत्मा को भी लहू-लुहान किया गया था। अमृता सिंह (लेखिका) अमृता प्रीतम के उपन्यासों में विभाजन की त्रासदी को रेखांकित करते हुए कहती है, 'पिंजर उपन्यास में महिलाओं के प्रति अमानवीयता का घृणास्पद चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में यह दिखाने का प्रयास किया गया हैकि किस प्रकार घर से बेघर हुए लोगों की बहू-बेटियों को काफिलों तथा कैम्पों पर हमला कर जबरदस्ती उठाकर ले जाया जाता था।[5] अमृता प्रीतम ने विस्थापन विभाजन की त्रासदी को प्रत्यक्षत: अपने सम्मुख घटते देखा था। जिसका उल्लेख वह लगभग अपने सभी उपन्यासों में करती है। उनके 'हस्ताक्षर' उपन्यास से विभाजन के समय तथा उसके पश्चात हुए नारी शोषण और उसकी नारकीय स्थिति का अत्यन्त रोमांचक चित्रण है। अमृता प्रीतम ने जिन्दगी और एक औरत के मध्य हुए वार्तालाप द्वारा नारी मन की व्यथा को प्रस्तुत किया है। औरत जिन्दगी से कहती है कि जब स्वतंत्रता की नींव रखी गई तो उसकी नींव नारी के मान-सम्मान मर्यादा को भंग कर क्यों रखी गयी? ऐसा क्यों हुआ कि पुरूष प्रधान समाज ने अपने द्वेष घृणा व झूठे अहंकार के चलते पहले तो अबलाओं को अपना शिकार बनाया और फिर उसी समाज ने अपनी झूठी आन मान व सम्मान की रक्षा हेतु उसे पहचानने और स्वीकारने से मना कर दिया। उसे औरों की हवस का शिकार बनने चाहते हुए भी अवैध सन्तान को जन्म देना पड़ा। जब मेरे देश मे आजादी की नींव रखी गई, तो उस नींव में मेरी हड्डियाँ क्यों चिन दी गई, जब चारों ओर खुशी के चिराग जल रहे थे, तो उस वक्त मेरी इज्जत और मेरी आबरू के पल्ले को आग क्यों लगी, स्त्री को तूने ऐसा शाप क्यों दिया कि उसने जली हुई कोख में भी बच्चे के लिए फिरना है, जाने किसके बच्चे को है[6] कोई उत्तर किसी के पास खासकर पुरूष प्रधान समाज के पास जहां धर्म के नाम पर कुछ भी सम्भव हो जाता है और एक स्त्री के लिए अभिशाप के अतिरिक्त कुछ और नही होता। पूरो के माध्यम से अमृता प्रीतम उस स्त्री की मनोदशा को अपनी पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त करती है, जब एक स्त्री अनचाहे गर्भ को धारण कर ढ़ोने के लिए विवश हो जाती है। मटर के दानो के बीच पकते मटर के कीड़े पर नजर पड़ते ही पूरो का मन जुगुप्शा और घृणा से भर आता है। पूरो को अपने शरीर के अंग अंग से घिन आने लगी। उसका मन चाहा कि वह अपने पेट में पल रहे कीड़े को झटकार दे, उसे अपने शरीर से दूर झाड़ दे ऐसे जैसे कोई चुभे हुए कांटे को नाखूनों मे फंसाकर निकाल देता है जैसे कोई धसे हुए गोखरू को उखाड़कर फेंक देता है, जैसे कोई चिपटी हुई किलनी को नोंचकर अलग कर देता है, जैसे कोई चिपटी हुई जोंक को तोड़ फेंकता है।[7] एक औरत का अंतरमन अपनी पूरी संवेदना के साथ जिस माँ बनने के सुख को भोगना चाहता है वह सुख क्या पूरो जैसी स्त्रियों के हिस्से मे आता है?

विभाजन के पश्चात दोनो देशों मे हुए विनाशकारी स्थितियों को सामान्य करने के उद्देश्य से लोगों की चलाचल सम्पत्ति जिसे विनष्ट कर दिया गया या हथिया लिया गया उनका विवरण भले ही कानून के पास हो। किन्तु जिन युवतियों और बच्चियों को घर की स्त्रियों को अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु स्वयं की हत्या के लिए प्रेरित किया गया। और जो स्त्रियॉ घर से बेघर हो गई उनके अपने बाल- बच्चों और अपनों से बिछड़ने की पीड़ा को व्यक्त या लिपिबद्ध किया जा सकता है। इसी त्रासद स्थिति पर प्रकाश डालते हुए प्रो0 मोइनुद्दीन जिनाबडे (प्रोफेसर) अपने लेख 'हथ लाइयॉ कुम्हलानी लाजवंती दे बूटे में कहते है 'कानून यह नहीं समझता कि औरत कोई धान का पौधा नहीं कि बीज बोया, अंकुर फूटा कुछ बड़ा हुआ तो उखाड़ कर दूसरी जगह उसकी रोपाई कर दी। औरत अपनी जड़ो को रिश्तों की गहराइयों में और खुद अपने भीतर के अथाह विस्तार में कहॉ तक और कितनी दूर तक फैला लेती है, इसकी खबर उसको स्वयं नहीं होती।8 औरत अपने अंकुरित और पल्लवित होने के लिए अपनी ही निर्मित जमीन

में जडे़ जमाना चाहती है। वहाँ से उखाडे़ जाने पर उसे हर जमीन बंजर ही नजर आती है। जिसमें पुनः पल्लवित और पुष्पित होने के लिए के स्त्री मन तैयार नहीं हो पाता।

अमृता प्रीतम ने पूरो को प्रमुखता से उभारा है, वहीं रशीद को भी प्रकाश में रखा है। समाज में जहॉ अलादित जैसे कूकर्मी युवक जिसने लाजों को जबरन अपनी हवस की पूर्ति का माध्यम बनाया, वहीं रशीद जैसे युवक जिसने अपनों की कौल की खातिर पूरो को पगडंडियों से उठाया था किन्तु वह पूरो से प्रेम करता था। उसने पूरो ससम्मान अपनी पत्नी बनाया माँ-बाप के द्वारा दुत्कारी गई पूरो का सहारा बना। जिसने पूरो के अतिरिक्त किसी औरत को नजर उठाकर न देखा था। जिसने लाजो को मुस्लिम वहशी और दरिंदे परिवार के चंगुल से छुडाया और उसे उसके घरवालों से मिलाया जिसने कदम-कदम पर पूरो का साथ दिया यहा जानते हुए भी कि पूरो उससे प्रेम नहीं करती थी। यह रशीद की सज्जनता और अपनापन ही था। जिसने पूरो को अपने से बॉध रखा था। तभी तो रशीद की बीमारी ने पूरो के नेम धरम और वैराग्य को अपनी ओर खींच लिया। पूरो दवा दारू देती रशीद के शरीर को दबाती चौके चूल्हे को देखती थी।[9] पूरो पूरे मन से पत्नी धर्म निभाती पर मन के कोने-कोने में रिक्तता को देख खिन्नता से भी भर उठती। पूरो के लिए यह सहज नहीं था जो वह कर रही थी।

1947 का बँटवारा, सिर्फ जमीनी बँटवारा नहीं था उस बँटवारे ने अमानवीयता की हदों से पार जाते लोगों को दिखाया। हिन्दू-मुस्लिम दो धर्मो के बीच कभी न भरने वाली खाई का निर्माण किया। दोनों में शरहद पार में होने वाली नृशंस घटनाओं ने मानवता को लज्जित किया। चारो तरह हो रहे दंगो, नरसंहार, लूट-खसोट, स्त्रियों और बच्चियों की मर्यादा से खेलते लोग, धर्म के नाम पर लड़ते हुए लोग, लहू-लुहान खेतों और गालियों की जमीनें, रोते-बिलखते, भूख से तड़पते लोग, विभीषिका से उपजे गंभीर हालात। सब कुछ निगल लेना चाह रहे थे। पूरो भी इन परिस्थितियों से अन्जान न थी। पूरो के मन में कई तरफ के प्रश्न उठते, पर वह उनका कोई उत्तर न सोच पाती। पता नहीं चलता था कि अब इस धरती पर जो कि मनुष्य के लहू से लथपथ हो गई है, पले की तरह गेहूँ की सुनहरी गालियॉ उत्पन्न होगी या नहीं............. इस धरती पर, जिसके खेतों में मुर्दे पड़े सड़ रहे है, अब भी पहले की तरह मकई के भुट्टों में से सुगन्ध निकलेगी या नहीं...........क्या में स्त्रियॉ इन पुरूषो के लिए संतान पैदा करेगी, जिन पुरूषो ने इन स्त्रियों की अपनी बहनों के साथ ऐसा अत्याचार किया बात''[10] पूरो के अपने परिवार के लोग भी इस त्रासदी को झेल रहे थे।

बँटवारे का बज्रपात दोनों ही मुल्को के सीमावर्ती क्षेत्रों के लोगों पर हुआ था दोनों ओर के लोग काफिल बनाकर भारत से पाकिस्तान और पाकिस्तान से भारत आ रहे थे। पूरो आते-जाते काफिले में अपने परिवार के लोगों को ढूंढना चाह रही थी। रामचन्द्र को ढूंढना चाह रही थी। और जैसे शिद्धत से ढूंढने वाले को कुछ भी मिल जाता है पूरो को भी अपने परिवार का पता मिल गया क्योंकि रामचन्द्र मिल गया था। किन्तु यह रामचन्द अब उसका मंगेतर न होकर उसकी छोटी बहन का पति था। उसी से जान पायी कि रामचन्द की छोटी बहन जो अब उसकी भाभी बन चुकी थी। वह फाफिले से बिछड गई है। पूरो लाजो की खोज-खबर लेना चाह रही थी। रशीद से सहयोग से मुस्लिम लोगों के कब्जे में बंद लाजो से रशीद की सहायता से लाजो को वहाँ से आजाद भी करा सकी थी। जब एक दूसरे देश की बिछडी लड़कियों, महिलाओं, बच्चों की पहचान कर उनके अपने लोगों को सौपने का फैसला लिया। तब पूरो ने भी अपने आई से सम्पर्क करके लाजो को भारत भेजने का जिम्मा किया। पूरो के भाई ने पूरो से मिलने पर उसे भी भारत चलने के लिए कहा किन्तु पारो ने विचार किया जो मैं इस समय कह दूं, मैं एक हिन्दू स्त्री हूँ तो वह मुझे इस सबके साथ जारी में बिठा कर ले जाएगें। मैं भी लौट सकती हूँ मैं भी लाजो की तरह, दो की हजारों लड़कियो को तरह.....।''[11] पूरो रशीद के पास जाकर खड़ी हो गई अपने बच्चे को गले से लगाया और कहा कि लाजो अपने घर लौट रहीं है समझ लेना कि इसी में पूरो भी लौट आई। मेरे लिए अब यही जगह है।'' चाहे कोई लड़की हिन्दू हो या मुसलमान जो लड़की अपने ठिकाने पहुँचती है समझो कि उसी के साथ पूरो भी आत्मा भी ठिकाने पहुँच गई। पूरो का एक निर्णय इस पिंजर उपन्यास में पूरो को अमर कर देता है, वह है पूरो का रशीद के साथ रहना।

इस उपन्यास में धर्म एक बहुत बड़े कारण के रूप में उभरता है। यहॉ रशीद यदि हिन्दू होता या पूरो एक मुस्लिम युवती होती तो पूरो और रशीद दोनो ही अपने व्यक्तित्व में नहीं निखर पाते। विपरीत परिस्थितियॉ और विसंगतियॉ ही दोनों के चरित्रों को कुंदन सा बना देते है। महिला होने से पूरो पर जहॉ बजपात हुआ था, वहीं रशीद भी कम आहत न हुआ था, कौन सा पुरूष अपनी स्त्री की घृणा के घूंट पीना सरल समझ सकता है। यह समझते हुए भी कि उसकी पत्नी पहले किसीभी मंगेतर थी। अमृता प्रीतम ने दोनों ही पात्रों को समाज की कसौटी पर कसा है। जिस पर दोनों ही खरे उतरते है। रशीद का पूरो को प्रेम करते हुए भी उसे मुक्त होने

का अवसर देना और पुरो का रशीद से घृणा करते हुए भी उसी के साथ रहने का निर्णय। यह स्थितियाँ आज भी बदली नहीं है अन्तर बस इतना ही है कि दो देशों के बीच नहीं बल्कि दो धर्मो के बीच होने वाले सम्बन्धों को आज भी यह समाज सहज स्वीकार नहीं करता। हरियाणा और राजस्थान आदि स्थानों पर तो धर्म, जाति के नाम पर आनर किलिंग एक आम सामाजिक रूग्गता के रूप में देखा जा सकता है। जबरन किसी को उठा ले जाना ही स्त्रियों के प्रति अत्याचार नहीं है। बल्कि उन्हे समाज में उचित सम्मान व स्थान न मिल पाना भी पीड़ा का कारण है।

अम्रता प्रीतम इस उपन्यास के माध्यम से न सिर्फ स्त्री की संवेदना को उसकी पीड़ा को उभारती है। बल्कि एक साथ कई प्रश्नचिन्ह भी लगाती है इस समाज की कुरीतियों पर जहाँ आज भी महिला वर्ग को उपभोग की वस्तु समझा जाता है। जिस शोषण में महिलाओं का भी योग रहता है जैसे-पूरो की मॉ जो न चाहते हुए भी अपनी पुत्री को अपनी दहलीज से लौट जाने के लिए प्रेरित करती है क्योंकि उसे समाज का लय है वह समाज जो स्त्री और पुरूषों से मिलकर बना होता है।

नि:संदेह आज हम जिस समाज में रह रहे हैं। उस समाज में जागरूकता अप्रत्याशित ढंग से बढ़ी है जिसमें सोशल नेटवर्किंग साइट्स का महत्वपूर्ण योगदान है। फिर भी, कहीं न कहीं महिलाओं का समर्थन महिलाओं को पूर्णत: नहीं मिल पा रहा है। यदि कोई महिला यह नहीं चाहती कि किसी भी महिला पर कोई भी अत्याचार हो तो उसे स्वयं आगे जाना होगा पूरो की तरह जब वह धर्म, जाति, समाज के परे रखकर पगली को रोटी देती है और उनके बच्चे को अपने बच्चे की तरह पाकने के लिए और आती है अम्रता प्रीतम यहॉ यह भी स्पष्ट करती है कि पहल महिलाओं की ही करना होगा।

सन्दर्भ सूची:

1. (पिंजर) (उपन्यास)-अमृता प्रीतम, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1982 पृ0सं0-19
2. आलोचना (पत्रिका),-सं0 (प्रधान) नामवार सिंह, सम्पादक-आशुतोष कुमार, संजीवन कुमार, अंक-59 जनवरी-मार्च-2019 पृ0सं0 (ग्पप)
3. चुने हुए (पिंजर) (उपन्यास) अमृता प्रीतम-प्र0सं0-11
4. कही, पृ0सं0-17
5. शब्द शिल्पी सं0 डॉ0 असमा अजीज, विश्व पुस्तक प्रकाशन नई दिल्ली, अंक-2016 पृ0सं0-35
6. चुने हुए उपन्यास-अमृता प्रीतम, पृ0सं0 3-4
7. आलोचना (पत्रिका) सं0-प्रधान सम्पादक नामवर सिंह, अंक-69 जनवरी मार्च 2019, पृ0सं0 99
9. चुने हुए उपन्यास (पिंजर) अम्रता प्रीतम सं0-35
10. पिंजर, अम्रता प्रीतम उमकपनउण्बवउ इण्टरनेट से साभार
11. पिंजर, अम्रता प्रीतम उमकपनउण्बवउ इण्टरनेट से साभार
12. वहीं।

प्राचीन भारतीय कराधान व्यवस्थाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० आलोक कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डा0 शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

सार संक्षेपः

किसी भी राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ उसकी कराधान पद्धति होती है। राज कोष किसी राज्य का अनिवार्य महत्वपूर्ण अंग होता है तथा राजकोष की समृद्धि समुचित कराधान व्यवस्था पर निर्भर करती है। प्राचीन भारतीय चिन्तन परंपरा में कराधान व्यवस्था पर गंभीर चिन्तन मनन किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारतीय कराधान व्यवस्था संबन्धी प्रावधानों, कर वसूली एवं कर मुक्ति का एक विश्लेषणपरक मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है जिसमें करो के औचित्य, उद्देश्य कराधान के भारतीय सिद्धांत तथा उनकी आधुनिक पाश्चात्य सिद्धांतों से तुलना करते हुए मुल्यांकनपरक अध्ययन किया गया है।

शब्दार्थ–कोष = खजाना, रत्निन = वैदिक अधिकारी सयाकर्ता = कर संग्राहक, सिस्मोण्डी = पोखमी अर्थशास्त्री।

ऐतिहासिक क्रम में राज्य के उदय एवं विकास के साथ ही उसकी आर्थिक समृद्धि, राज्य के स्थायित्व एवं विकास के लिए एक प्रमुख निर्धारक रही है। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने राजकोश को राज्य का अनिवार्य महत्वपूर्ण अंग कहा गया है। अर्थशास्त्र की परंपरा, स्मृतियों, नीति ग्रंथों एवं मानक कोशों में ''कोष'' को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है ''कोष'' की महत्ता बताते हुए कौटिल्य कहते है, चूँकि सभी कार्य कोष पर ही निर्भर है अतएव राजा को कोष पर सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिए।[1] यही नही कोष की समृद्धि से शक्तिशाली सेना तैयार की जा सकती है और कोष तथा सेना से इस पृथ्वी को प्राप्त किया जा सकता है।[2] कोष ही धर्म और काम का हेतु है।[3] कोष और सेना दोनो का रक्षक कोषही है।[4] कामान्दकीय नीतिसार में कहा गया है कि यह सार्वजनिक उक्ति है कि कोष राजा का मूल है।[5] महाभारत मे कहा गया है कि कोष और सेना राजा का मूल है तथा कोष सेना का मूल है।[6] नीतिवाक्यामृत में तो कहा गया है कि वास्तव में कोष राजाओं का प्राण न होकर उनका जीवन है। राजाओं के पार्थिव शरीर को नहीं बल्कि कोष को ही राजा कहा है।[7] इस प्रकार प्रायः सभी भारतीय चिन्तकों ने कोष को राज्य या राजा के लिए अनिवार्य बताया है।

राजकोष की समृद्धि के विभिन्न साधनों में 'कराधान व्यवस्था' का महत्वपूर्ण स्थान प्रारंभिक काल से अब तक बना हुआ है। डॉ0 अल्तेकर का मानना है कि प्रारंभिक युग में जब राजा की स्थिति अधिक सुदृढ़ नहीं थी, कर-व्यवस्था सामयिक और स्वेच्छानुसार होती थी।[8] धीरे-धीरे स्थिति में परिवर्तन हुआ। परवर्ती वैदिक साहित्य में भागदुध और समाहर्ता आदि रत्निनों के नाम मिलते हैं जो संभवतः कर- विभाग के अधिकारी थे। वैदिक युग के बाद और मौर्य युग के पूर्व के बीच की कर व्यवस्था के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। थोडी बहुत जानकारी जातको से मिल जाती है।

कर का औचित्यः प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने कर लिये जाने के औचित्य पर गहन चिन्तन किया था। क्योकि राजा को उन्होने धर्म अथवा दण्ड नीति के अधीन माना, इसीलिए कराधान व्यवस्था को भी दण्डनीति (शास्त्र) व धर्मशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित नियमों के अधीन माना गया है। भारतीय शास्त्रों की मौलिक मान्यता है कि 'कर' राजा का वह प्राप्तव्य है जिसे प्रजा की सुरक्षा के बदले प्राप्त करता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि प्रजा की रक्षा न करता हुआ यदि राजा प्रजा से करो का संचय करता है तो ऐसा राजा नरक गामी होता है।[9] गौतम ने राजा द्वारा करारोपण को इस आधार पर न्यायोचित ठहराया है कि उस पर प्रजा की रक्षा का दायित्व

है।[10] महाभारत में कहा गया है। कि कर राजा द्वारा प्रजा के प्रति किये जाने वाले कार्यों के लिए दिया गया वेतन होता है।[11] नारद स्मृति में कहा गया है कि राजस्व प्रजा की रक्षा करने का शुल्क है।[12] बोधायन का आदेश है कि वेतन के रूप में षष्ठांश लेकर राजा प्रजा की रक्षा करे।[13]

डॉ0 यू0एन0 घोषाल का मानना है कि कर तथा सुरक्षा के पारसपरिक सम्बन्ध के इस सिद्धांत का मूल्य निस्संदेह शासक और शासितो के बीच मूलभूत अनुबन्ध की धारणा में निहित था, जैसा कि राजस्व सम्बन्धी यूरोपीय मान्यता में भी पाया जाता है।[14] बौद्ध त्रिपिटक, अर्थशास्त्र और महाभारत में प्राप्त राजतंत्र की उत्पत्ति सम्बन्धी विविध विवरणों में राजा द्वारा सुरक्षा प्रदान और प्रजा द्वारा निश्चित मात्रा में कर- दान मूलभूत अनुबन्ध के दो पहलुओं के रूप में वर्णित मिलता है।

सुरक्षा के अतिरिक्त प्रजा के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएं जुटाना भी राजा का धर्म था। इसके लिए प्रजा से कर एकत्र करने का अधिकार राजा को था।[15] रूद्रदामान के जूनागढ़ अभिलेख में जनता के हितार्थ सुदर्शन झील की मरम्मत कराये जाने का उल्लेख मिलता है, जिसके लिए उसकी परिषद अलग से कर लगाना चाहती थी। परन्तु रूद्रदामन ने उस समय ऐसा नही किया। अकाल अतिवृष्टि आदि आकष्मिक संकटो का सामना करने के लिए भी कर लिया जाता था। अर्थशास्त्र के अनुसार कर के मुख्य आधार है प्रजा की समृद्धि, दुष्ट जनो से राज्य का निग्रह, योग्य अधिकारियों की नियुक्ति, आपदाओं से राज्य की रक्षा आदि।[16] इस प्रकार प्राचीन भारत में काराधान के लिए कुछ कारण बतायें जा सकते हैं इस दृष्टिकोण से आधुनिक युरोप में प्रचलित रहे उस लोक प्रिय सिद्धान्त से यह बहुत समता रखता है, जिसके अनुसार 'कर' वह मूल्य अथवा प्रतिदान है जो राजा जनता की सेवा करने के बदले प्राप्त करता है।

कराधान के सिद्धान्त: प्राचीन शास्त्रकारों ने 'कर' के जिए कुछ निश्चित सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे, जो करारोपण, कर वसूली एवं कर मुक्ति से सम्बन्धित थे। महाभारत और मनुस्मृति में लगभग समान शब्दों में कहा गया है कि नियम के अनुसार राजा को सदैव कर निर्धारण इस तरह करना चाहिए कि स्वयं राजा और उत्पादक दोनों की लाभ में भागीदारी हों।[18] महाभारत में कहा गया है कि कर लगाते समय लोभ या तृष्णा की वृद्धि नहीं होनी चाहिए। इस वृत्ति के होने पर वह उचित से अधिक कर लगाता है जिससे जनता का शोषण होता है।[19] इस मान्यता के नकारात्मक पक्ष को भी स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि राजा को अत्यधिक लोलुपतावश न तो स्वयं की हानि करनी चाहिए और न ही प्रजा की।[20]

मनुस्मति में तो स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि राजा को विषम परिस्थितियों में भी अनुचित कराधान नहीं करना चाहिए और समृद्ध स्थिति में भी अपने छोटे से छोटे शुल्क का परित्याग नहीं करना चाहिए।[21]

भारतीय मनीषियों ने कराधान के सिद्धान्तों को उपमा तथा रूपक अलंकारों से युक्त विशिष्ट शैली में भी स्पष्ट किया है। अर्थशास्त्र में कहा गया है कि राजा को अपने राज्य से पके हुये फल ही तोड़ने चाहिए जैसे कि कोई उद्यान से पके फल ही तोड़ता है, किन्तु प्रजा को भड़काने वाले कच्चे फल नहीं तोड़ने चाहिए ताकि उसका अपना ही नाश न हो।[22] मनुस्मुति में बड़े ही सारगर्भित शब्दों में कहा गया कि जिस प्रकार जोंक, बछड़ा और मधुमक्खी अपना-अपना भोजन थोड़ा-थोड़ा करके ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार राजा को भी थोड़ा-थोड़ा करके कर वसूल करना चाहिए। महाभारत में कहा गया है जिस प्रकार गाय को अधिक दूध दुह लेने पर बछड़ा निर्बल हो जाता है और बड़ा होने पर अधिक बोझ नही ढ़ो सकता उसी प्रकार आरंभ में ही अधिक कर लगा देने से कर दाता निर्बल बन जाता है।[23] अन्यत्र पुन: कहा गया कि जैसे बछड़े थन से दूध पीता है परन्तु थन को नहीं काटता ताकि बाद में भी दूध मिलता रहे, उसी प्रकार करदाता पर कर की मात्रा ऐसी रखनी चाहिए कि आगे से भी कर की प्राप्ति होती रहे।[24] शुक्रनीति में राजा से आग्रह किया गया है कि वह उद्यान के माली की तरह प्रजा से अपना अंश ग्रहण करे न कि कोयला बनाने वालों की तरह।

डॉ0 यू.एन. घोषाल का मत है कि उपुर्यक्त प्रयोग सिद्ध नियमों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इनमें कर सम्बन्धी कई सिद्धान्त समाहित है। प्रथमत: यह मौलिक सिद्धान्त है कि प्रजा द्वारा उत्पादित धन राजस्व का प्रमुख स्रोत होता है।[25] इस सिद्धान्त से सम्बद्ध व्यवहार-सूत्र इस प्रकार है: 1. कराधान ऐसा न हो कि प्रजा के जीवन निर्वाह में बाधा पड़े, अपितु उसके जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त छूट देनी चाहिए। 2. करों की वसूली धीरे-धीरे और क्रमश: करनी चाहिए न कि एक ही बार में, यह प्राय: ऐसी हो कि प्रजा इसको सह सके। 3 प्रजा के लिए प्रर्याप्त सुविधाजनक स्थान पर और समय में कर-वसूली करनी चाहिए।

कराधान संबंधी उपर्युक्त सिद्धान्तों की तुलना आधुनिक पाश्चात्य सिद्धान्तों से की जा सकती है। उपुर्यक्त में से प्रथम तथा द्वितीय व्यवहार-सूत्रों से पश्चिमी अर्थशास्त्री सिस्मोण्डी के कराधान संबंधी तृतीय और चतुर्थ नियमों की तुलना की जा सकती है। ये तृतीय तथा चतुर्थ नियम क्रमश: इस प्रकार है, प्रथमत: ''कराधान ऐसा हो जिससे कर दाताओं के जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं पर थोड़ी भी आँच न आयें'', दूसरे यह है कि ''प्रजा के धन पर राजा इस प्रकार आधात न करे कि वह पलायान कर जाये।''[26] उपर्युक्त ततीय व्यवहार-सूत्र की तुलना एडम स्मिथ द्वारा निर्दिष्ट कराधान संबंधी सिद्धान्त से की जा सकती है। एडम स्मिथ के अनुसार ''कर वसूली ऐसे समय अथवा ऐसे तरीके से की जानी चाहिए जो करदाताओं के लिए अत्यंत सुविधाजनक हो।[27]

कर-मुक्ति: भारतीय चिन्तन परंपरा में कराधान के साथ ही कर मुक्ति संबंधी प्रावधानों का भी प्रतिपादन किया गया। अर्थशास्त्र, महाभारत शुक्रनीति सर्व मध्यकालीन अभिलेखों में कर मुक्ति के साक्ष्य मिलते है। कौटिल्य के अनुसार नये निर्माण कार्यो के लिए पाँच वर्ष, पुन निर्माण कार्या में चार वर्ष, सिंचाई आदि की वृद्धि के लिए तीन साल और यदि परती भूमि को क्रय किया गया है तो उस पर दो वर्ष तक कर नहीं लिया जाये।[28] शुक्र के अनुसार जो लोग नवीन उद्योग करें अथवा परती जमीन को कृषि योग्य बनायें या नई नहरों का निर्माण करें अथवा सिंचाई के लिए कूप, तालाब आदि खुदवायें, तो उन पर कर तब तक न लगाया जाये, जब तक कि वे अपनी लागत का दुगना लाभ न उठा लें।[29] डॉ0 अल्तेकर का मत है कि गूँगे, बहरे ओर अंधे, अपाहिज लोग अपनी अयोग्यता के आधार पर कर मुक्त थें पढ़ने वाले छात्र, विधवा स्त्रियां और सन्यासी, जिनके आय के साधन नहीं होते थे कर मुक्त किये जाते थे। सैनिक ग्राम जो सैन्य संगठन के लिए व्यक्ति वृद्धि करते थे कर मुक्त किये जाते थे।[30] परन्तु कुछ पुराणों एवं स्मृतियों में समस्त ब्राह्मण वर्ग को भी कर मुक्त करने का उपदेश दिया गया है,[31] यद्यपि इसकी पुष्टि मध्यकालीन अभिलेखों से भी होती है। परमार वंश के राजा सोमसिंह देव[32] व विजय नगर के अच्युत राम[33] के अभिलेख और गुन्तूर जिले के दो अभिलेख[34] इस तथ्य को दर्शाते हैं, परन्तु अन्य उपलब्ध साक्ष्यों क आधार पर कहा जा सकता है कि इस प्रकार की कर मुक्ति सामान्य नियम न होकर अपवाद ही रही होगी जो राजा विशेष की प्रतिष्ठा बढ़ाने हेतु दी जाती थी। समकालीन दक्षिण भारतीय अभिलेखों से ज्ञात होता है कि जब भूमि अथवा ग्राम ब्राह्मणों या मंदिरों को दान में दिये जाते थे तो उनसे कर लिये जाते थे। जब ब्राह्मण सरकारी लगान या कर नहीं देते थे तो उनकी जमीनें बेचकर बकाया वसूल किया जाता था।[35] अन्य अभिलेखों से भी ज्ञात होता है कि बकाया कर चुकाने के लिए तीन महीने[36] और कभी दो वर्ष[37] तक की मोहलत दी जाती थी इसके बाद ब्राह्मणों की जमीनों को बेच दिया जाता था। महाभारत में स्पष्ट कहा गया है कि जो ब्राह्मण सरकारी पद पर अधिक वेतन पा रहे हों अथवा ऐसे ब्राह्मण जो वाणिज्य, कृषि और पशुपालन द्वारा धन प्राप्त कर रहे हो, उन पर पूर्ण दरों से कर वसूल करना चाहिए।[38] डॉ0 अल्तेकर का कहना है कि जब ब्राह्मण लेखक स्वयं इस विषय पर एकमत नहीं है तो ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त राज्य इसका पालन नहीं कर रहे थे। वह आगे कहते है कि सामान्यत: समस्त ब्राह्मणों को कर देना पड़ता था, केवल विद्वान और वे निर्धन ब्राह्मण जिन्हें राज्य द्वारा कोई संरक्षण न प्राप्त हुआ हो कर मुक्त घोषित किये जाते होंगे।[39] यही मत ज्यादा समीचीन प्रतीत होता है।

इस प्रकार निष्कर्ष रुप में कह सकते है कि प्राचीन भारतीय कर-पद्धति के सिद्धान्त पर्याप्त ठोस एवं अर्थव्यवस्था के आधुनिक सिद्धान्तों की तरह व्यवहारिक व प्रगतिशील थे। जिस युग में इनका प्रतिपादन हुआ, उस पर विचार करने पर ये वित्तीय चिन्तन की काफी विकसित अवस्था के परिचायक दिखाई देते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कोशपूर्वा: सर्वारम्भा। तस्मात्पूर्व कोशमवक्षेत। -अर्थशास्त्र: 2/8/1-2
2. आकरप्रभव: कोश: कोशाद्दण्ड: प्रजायते।
   पृथिवी कोशदण्डाभ्याम् प्राप्तते कोषभूषणम्।। -अर्थशास्त्र: 2/12/49
3. कोशो धर्म काम हेतु:। - अर्थशास्त्र: 8/1/51
4. कोश कोशस्य दण्डस्य च भवति। -अर्थशास्त्र: 8/1/54
5. कोशमूलो हि राजेति प्रवाद: सार्वलौकिक:।-कामन्दकीम नीतिसार: 21,33
6. राज्ञ: कोशबलं मूलं, कोशमूलं पुनर्बलम्- महाभारत: 12/130-35
7. कोशोहि भूपतीनां जीवितं न प्राणा: ......कोशो राजेत्युच्यते न भूपतीनां शरीरं। - नीति वाक्यामृतम्: 21, 5-7
8. अल्तेकर, अनंत सदाशिव- प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ-202

9. मनुस्मृति-8/307-08
10. गौतम धर्मसूत्र-10/27
11. महाभारत, शांतिपर्व -71/10
12. नारद स्मृति -17/48
13. बोधायन धर्मसूत्र -1, 10-18
14. घोषाल, यू.एन.-हिन्दू राजस्व व्यवस्था का इतिहास, पृष्ठ-14
15. मनुस्मति -5/404, कामांदकीय नीतिसार-5/84
16. कौटिल्य अर्थशास्त्र- 2/8/3
17. तुलनीय,बैस्टवेल-पब्लिक फाइनेन्स, तृतीय संस्करण, पृष्ठ-266
18. मनुस्मृति-7,128, महाभारत-12/87/18
19. महाभारत-12/87/18, 69/25
20. मनुस्मति-7, 139, महाभारत-12/87/18
21. मनुस्मति-7/170-71
22. अर्थशास्त्र-5/2
23. महाभारत -12/87/20-21
24. वत्सापेक्षी दुहेच्चौव स्तनांश्च न विकुट्टयेत। - महाभारत 12/88/4
25. घोषाल, यू.एन.-हिन्दू राजस्व व्यवस्था का इतिहास, पृष्ठ-16.
26. बैस्टेबेल, पब्लिक फाइनेंस, पृष्ठ-466
27. वेल्थ ऑफ नेशंस, पृष्ठ-346
28. अर्थशास्त्र-6/9
29. शुक्रनीति-4/2/127
30. अल्तेकर, अ0स0-प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ-206
31. विष्णु पुराण 3/25-26, मनुस्मति-7/133
32. एपीग्राफिया इण्डिका, वोल्यूम-8, पृष्ठ-208
33. इन्सक्रिप्शन्स फ्राम मद्रास प्रेसीडेन्सी, वोल्यूम-3, संख्या-768, 946
34. इन्सक्रिप्शन्स फ्राम मद्रास प्रेसीडेन्सी, वोल्यूम-1,पृष्ठ-22
35. एपीग्राफिया कर्नाटिका, संख्या-128
36. वही
37. इन्सक्रिप्शन्स फ्राम मद्रास प्रेसीडेन्सी, वोल्यूम-2, पृष्ठ 1245
38. महाभारत-12/76/4-7
39. अल्तेकर, अ0स0-पूर्वोक्त ग्रंथ, पृष्ठ-208

वेदों में दार्शनिक तत्व

डॉ० सुगन्धा जैन

गैस्ट फैकल्टी, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

सत्य-असत्य सर्गारम्भ में नामरूपात्मक जगत् के सृष्टा परमपिता परमात्मा द्वारा "ऋषिषु प्रविष्टाम्"[1] ऋषियों के अन्तःकरण में अनाहत नाद रूप में प्रवाहित, जाति देशकाल की मर्यादा से अबाधित, छन्दोमय दिव्यकाव्य 'चारों वेद' सदा से मानवमात्र के लिए प्रेरणाप्रद पथ-प्रदर्शक मूल 'उत्स' रहे हैं और कल्प-कल्पान्तर में भी रहेंगे। वेदों में व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के सभी पक्षों पर आदर्श एवं उदात्त उद्‌बोधन प्राप्त होते हैं। जिनमें धर्म-अधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य, व्यासेव्य-प्रबोधक सन्देश मानव-जाति को सुव्यवस्थित संचालन करने की मर्यादाओं का निर्देश करते हैं। वेद के प्रत्येक मन्त्र में मनुष्य के ऐहिक और पारलौकिक उत्थान के सूत्र समाहित हैं। वेदों में विश्वबन्धुत्व, विश्वशान्ति, विश्वकल्याण की कामना से अभिषिक्त व्यष्टि से समष्टि तक के चारित्रिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक उत्थान की सूक्ष्म विवेचना निहित है।

'वेद' शब्द "विद् ज्ञाने"[4] धातु से 'घन्' प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। 'घञ्' प्रत्यय भाव, कर्म, करण तीन अर्थों में होता है। इसलिए ज्ञान, ज्ञान का विषय, ज्ञेय पदार्थ और ज्ञान के साधन, ये चारों ही 'वेद' शब्द के वाच्य हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त महर्षि पाणिनी 'विद्' धातु से सत्ता, लाभ-विचार और ज्ञान ये चार अर्थ बताते हैं। इसमें विचार करना तो एक प्रकार से 'ज्ञान' के अन्तर्गत ही आ जाता है परन्तु सत्ता और लाभ ये दो अर्थ अतिरिक्त रहते हैं। इन अर्थों में तीनों प्रत्ययार्थ जोड़ने से 'वेद' शब्द का अर्थ अति गम्भीर हो जाता है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में कहा है-

"यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः"[3]

अर्थात्, विश्व का रूप इस वेद में निहित है, इसी बात को ध्यान में रखते हुए महर्षि मनु कहते हैं-

"पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यञ्चाप्रमेयञ्च वेद शास्त्रमिति स्थितिः"[4]।।

अर्थात् पितृ-संज्ञक रक्षक और पालक पिता आदि, विद्वान् और अन्य मनुष्यों का वेद सनातन नेत्र अर्थात् मार्गप्रदर्शक है, और वह अशक्य अर्थात् जिसे कोई पुरुष नहीं बना सकता, इसलिए अपौरुषेय हैं, अनन्त है ऐसी मान्यता है।

'वेद' भारतवर्ष एवं भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। 'वेद' विश्वसाहित्य की सबसे प्राचीन रचना है। वेद ही प्राचीनतम धार्मिक और दार्शनिक विचारों का मानव-भाषा में सर्वप्रथम परिचय प्रस्तुत कराता है। भारत की शाश्वत परम्परा वेद को सभी सत्यविद्याओं का मूल मानती है। अन्य शब्दों में वेद सर्वविद्यानिधान हैं, सत्यविधाओं का मूल होने के साथ-साथ वेद भारतीय दर्शन का भी मूल हैं।

'न्यायदर्शन' में कहा गया है 'जिस प्रकार मन्त्रों में बतायी गयी औषधियों के प्रयोग से रोग की निवृत्ति हो जाती है अतः उनकी प्रमाणिकता यथार्थ है। उसी प्रकार वेद की प्रमाणिकता भी आप्त होने से अंसदिग्ध है[5]। 'वैशेषिकदर्शन' वेद की वाक्य रचना को बुद्धि पूर्वक घोषित करता है[6]। 'सांख्य दर्शन' भी वेदों को अपौरुषेय तथा परमात्मशक्ति से उनकी अभिव्यक्ति होने के कारण उन्हें स्वतः प्रमाण मानता है[7]। 'योग दर्शन' में ईश्वर को काल की सीमा से परे आदिगुरु कहा गया है तथा उसे ही वेदों का प्रकाशक माना गया है[8]।

उक्त संकेतों से सुव्यक्त है कि वेद ही छहों आस्तिक-दर्शनों का मूल हैं और उनके लिए परम प्रमाण भी तथापि किसी एक दर्शन धारा के अनुसार वेद का कोई निश्चित दार्शनिक अभिमत प्रतिपादित करना अनुचित है।

"यह वेद साक्षात् प्राप्त ज्ञान के स्वरूपों का संकलन हैं, भण्डार हैं। इसी से तत्त्वों को निकालकर बाद में विद्वानों ने अपने-अपने विचार के लिए एवं दर्शनों के निर्माण के लिए ज्ञान का संचय किया है[9]। अतः स्पष्ट है कि भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों का मूल स्रोत 'वेद' ही हैं। वेद चार हैं -

1. 'ऋग्वेद' में उन मंत्रों का संग्रह है जो देवताओं की स्तुति के निमित्त गाये जाते थे, ऐसा कहा जाता है कि आर्य लोग अपनी प्राचीन मातृभूमि से भारत में आये थे तभी देवस्तुतियों में गाए जाने वाले मंत्र भी साथ लाए थे।
2. 'यजुर्वेद' में यज्ञ की विधियों का वर्णन करने वाला विशुद्ध कर्मकाण्ड का संग्रह है।
3. संगीत प्रधान श्सामवेदश में भी याज्ञिक मंत्रों की प्रधानता है।
4. 'अथर्ववेद' में जादू-टोना, मंत्र-तंत्र निहित है। यह एक भिन्न भाव से ओतप्रोत है।

प्रथम तीन वेदों में नाम, रूप और भाषा के साथ-साथ वस्तु - विषय में भी समता है। तीनों वेदों के अध्ययन-अध्यापन से पारलौकिक सुख की अनुभूति होती है तथा अथर्ववेद के ज्ञान से इहलौकिक भारतीय दर्शनों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का मूल तात्त्विक रूप वेदों में उपलब्ध है उसी को यथार्थ रूप में समझकर प्रतिभा सम्पन्न तत्त्वदर्शी ऋषियों ने लोकोपकार की भावना से दर्शन के रूप में ऊहापोह पूर्वक विवृत्त किया[10]।

'ऋग्वेद' में जगत् की उत्पत्ति के संबंध में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार हैं। अग्नि से जगत् की उत्पत्ति मानी गई है। इसके अतिरिक्त सोम से पृथ्वी, आकाश, दिन-रात, जल, औषधिओं आदि की उत्पत्ति मानी गई है। इन्द्र ने समस्त पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष को उत्पन्न किया। इन्होंने ही तीनों लोकों को तथा जीवों को उत्पन्न किया। इसी प्रकार कभी विश्वकर्मा, कभी वरुण आदि संसार की सृष्टि करने वाले कहे गए हैं[11]।

वेदों में 'असत्' को विश्व का उपादान कारण माना है। विश्वकर्मा ने बिना किसी की सहायता के सृष्टि की रचना की। सायणाचार्य ने तो स्पष्ट कहा है - "परमात्मा ने अपनी शक्ति से समस्त ब्रह्माण्ड को रचा। इसी शक्ति को 'माया' कहते हैं किन्तु यह देवशक्ति नित्य है। शंकर वेदान्त की श्मायाश की तरह यह अनिर्वचनीय नहीं है।"[12] यही बात तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी स्पष्टतः कही गयी है।

ऋग्वेद का 'नासदीय सूक्त' तो दार्शनिक ही है। यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? इसकी रचना प्रक्रिया कितनी विलक्षण थी? इन सब प्रश्नों पर नासदीय सूक्त में स्पष्ट प्रकाश डाला गया है। सर्गकाल से पूर्व प्रलयावस्था में सब कुछ असत् था यह बात नहीं है। उस समय तो सत् भी नहीं था, अन्तरिक्ष भी नहीं था, मृत्यु का भी भय नहीं था, अन्धकार मात्र सर्वत्र व्याप्त था, जल था प्रकाश नहीं था, वह 'एक' 'तपस्' से उत्पन्न हुआ, इत्यादि सृष्टि के सम्बन्ध में विचार मिलते हैं। अतः स्पष्ट है कि सृष्टि के आरम्भ में एक कोई अव्यक्त चेतन था, जिससे कालान्तर में सृष्टि के वैचित्र्य रूप अभिव्यक्त हुए। उस अव्यक्त चेतन को "तपसः" "महिम्ना" कहा है[13]।

'ऋग्वेद', उपनिषद् आदि में वर्णन मिलता है कि सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति परब्रहा परमेश्वर की इच्छा से हुई है। नासदीय सूक्त में कहा गया है कि, वह परमेश्वर सब स्थानों पर समान भाव से उत्पन्न हुआ जिनमें कुछ पदार्थ जीव रूप में और कुछ पदार्थ महान् प्रकृति रूप में थे। लेकिन यह कोई नहीं जानता की यह सृष्टि किस कारण और किसके निमित्त उत्पन्न हुई। क्योंकि समस्त देवता भी सृष्टि-उत्पत्ति के बाद के हैं। अतः सृष्टि का स्वामी ईश्वर ही इसे जानता है। जो सत्य रूप आकाश के सदृश अपने प्रकाश में या आनन्द स्वरूप में प्रतिष्ठित है[14]।

ऋग्वेद के 'पुरुष सूक्त में ब्रह्म का वर्णन हुआ है कि वह ब्रह्म विराट् परमेश्वर हजारों सिर वाला है उसकी हजारों आँखें हैं हजारों पैर हैं वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चारों ओर से व्याप्त किए हुए है। वह उस ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर सभी ओर[15] वर्तमान, भूत और भविष्यत सभी में वही है अथवा तीनों कालों के नियन्ता उस ब्रह्म की महिमा से ही जगत् है। सृष्टि प्रलय आदि सभी उसी से होते हैं उसी में लय हो जाते हैं[16]। उसके बाद अविनाशी वाणी का अविषय, अनिर्वचनीय वह ब्रह्म ही शेष रहता है। उस परब्रह्म में ही सभी पदार्थ स्थित हैं। उसी ब्रह्म में परमाणुओं में चमकता हुआ सम्पूर्ण संसार भासता है[17] और कुछ नहीं भासता अतः परब्रह्म निरवयव, भाद विकारों से रहित, अजर, अमर, परमार्थतत्त्व है।

वेद में अद्वितीय सर्वव्यापक अव्यक्त उस एक का वर्णन है जो सर्वशक्ति मान है, जो दुष्टों का नाश करने वाला तथा सज्जनों का रक्षक है। वेदों में 'ब्रह्म' के लिए भिन्न नामों का प्रयोग किया गया है 'यजुर्वेद' में उसे सर्वव्यापक, अकाय, अव्रण, के साथ-साथ

कवि, मनीषि, परिभू और स्वयम्भू कहा गया है। वह सब रूपों से युक्त परमज्योति है[18]। सामवेद ईश्वर को जड़ जगत् का स्वामी[19] तथा अथर्ववेद 'एक ज्योतिबहुधाविभाति' कहता है।

जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का परिचय ऋग्वेद के प्रसिद्ध श्द्वा सुपर्णा सयुजा इत्यादि मन्त्रों में स्पष्ट है। इसी परमात्मा का साक्षात्कार भारतीय दर्शन का लक्ष्य तथा दु:ख की चरम निवृत्ति है।

ऋग्वेद में मानव की अनादि जिज्ञासा का वर्णन है, ऋग्वेद के 'ज्ञानसूक्त' में ज्ञान प्राप्ति के साधनों, व्यवधानों, वाणी द्वारा ज्ञान कथन आदि का वर्णन है। अन्तर्मन के नाना व्यापारों के पश्चात् ज्ञाता तथा प्रमाता सत्तु की भाँति छानकर भली-भाँति परीक्षा करता हुआ धीरतापूर्वक आगे बढ़ता है। मन के द्वारा उस वाणी का ज्ञान ही मानव के लिए लक्ष्मीप्रद तथा मंगल-दायक होता है[20]।

किसी दार्शनिक विषय का सांगोपांग विचार किसी एक स्थान पर वेद में नहीं मिलता और न वह मिल ही सकता है, किन्तु छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े तत्त्वों के स्वरूप का साक्षात् दर्शन तो ऋषियों को हुआ था और वह सब अनुभव वेद में व्यक्त रूप में वर्णित है। उसमें लौकिक तथा अलौकिक सभी बातें हैं। स्थूलतम तथा सूक्ष्मतम रूप से भिन्न-भिन्न तत्त्वों का परिचय वेद के अध्ययन से हमें प्राप्त होता है। भारतीय दर्शन के विचार भी अनादि काल से हैं, हाँ इतना अवश्य है कि वेद में कोई भी विचार वर्गीकृत नहीं है। सम्भवत: इसकी आवश्यकता ही उस समय नहीं थी।

भारतीयों का जीवन भी तो दार्शनिक ही है। दोनों का उद्देश्य एक है। और चरम लक्ष्य तक पहुँचने का साधन भी एक ही है। भारतीय जीवन स्रोत में अन्य किसी के साथ विरोध नहीं था। अतएव शान्त रूप में भारतीय दर्शन विचारधारा या भारतीय जीवन-धारा सभी परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए अविच्छिन्न रूप से अनादिकाल से बहती चली आती थी, ये सभी बातें हमें वेद के मन्त्रों से मिलती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक साहित्य में प्राचीन भारतीय काव्य चेतना की जो अभिव्यक्ति हुई वह अनुपम है किन्तु उससे हमें पूर्ण रूप से कोई विकसित और सुसंगत दार्शनिक चिन्तन नहीं मिलता। वैदिक ऋचाएँ बाद में विकसित समस्त भारतीय दर्शन की आधार शिलाएँ हैं। उनमें दार्शनिक सिद्धान्त संकेत रूप में भरे पड़े हैं। इन्हीं का कालान्तर में विकास हुआ है। भारतीय दर्शन का सुप्रसिद्ध कर्म-सिद्धान्त का बीज हमें ऋतु की धारणा में मिलता है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' का ईश्वरवाद भी वेदमूलक ही है। यहाँ तक कि सांख्य का द्वैतवाद वैदिक 'हिरण्यगर्भ की परिकल्पना का ही विकसित रूप है। वेदान्तिक अद्वैतवाद जिसे हम सहज ही भारतीय काव्यात्मक अभिव्यक्ति कहते हैं हमें सर्वप्रथम वेदों में ही मिलती है। यही कारण है कि वे सारे दार्शनिक सम्प्रदाय जिन्हें हम 'आस्तिक सम्प्रदाय' कहते हैं अपना मूल वेदों में ही देखते हैं और वेदों के ज्ञान को अन्य प्रमाणों के साथ एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण मानते हैं।

6. उपनिषदों तक संक्षिप्त इतिवृत्त:-

भारतीय जन जीवन में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरव पूर्ण है। वेदों की सुदृढ़ आधारशिला पर ही भारतीय धर्म संस्कृति और सभ्यता का भव्य प्रासाद प्रतिष्ठित है। अपने प्रातिभ नेत्रों से साक्षात्कृत धर्म महर्षियों ने जिन नित्य सत्यों का साक्षात्कार किया और जो अध्यात्मिक ज्ञान-धारा ईश्वर के अनुग्रह से उनके पवित्र अन्त:करण में प्रवाहित हुई उसी विश्व-ज्ञानधारा का नाम 'वेद' है।

'वेद' शब्द मुख्य रूप से वैदिक संहिताओं का ही वाचक है, ब्राह्मण-ग्रन्थों का नहीं। नियमत: एक वेद की जितनी शाखाएँ होती हैं, उतनी ही संहिताएँ, उतने ही ब्राह्मण, आरण्यक तथा पृथक्-पृथक् उपनिषद् होते हैं। अत: वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मण, आरण्यक आदि का समावेश हो जाने के कारण 'वेद' शब्द से तात्पर्य ब्राह्मण ग्रन्थों से भी है। इसी गौण अर्थ को लेते हुए "मन्त्र ब्राह्मणायोर्वेदनामधेयम्"[21] अर्थात् मन्त्र (संहिता) और ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद कहते हैं।

यह निर्विवाद सत्य है कि वैदिक वाङ्मय की परम्परा में ब्राह्मण साहित्य का अपनी मूलभूत व्याख्यात्मक मान्यताओं के कारण विशिष्ट स्थान रहा है। इसके अतिरिक्त मूलवेद संहिताओं के व्याख्या भाग होने के फलस्वरूप इनकी उपादेयता नि:सन्देह है। ब्राह्मण ग्रन्थों में पहेलियों, आख्यायिकाओं तथा संवादों द्वारा वेद ज्ञान से दर्शन, आचार-विचार सम्बन्धी विचारों एवं विषयों का सहज और गम्भीर व्याख्या पक्ष प्रस्तुत किया गया है। साथ ही दार्शनिक और वैज्ञानिक तथ्यों का विस्तृत विवेचन करने के कारण वैदिक वाङ्मय अति महनीय ज्ञानकोश है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में यत्र-तत्र दर्शन संबंधी प्रचुर सामग्री एवं विषय-वस्तु विकीर्ण रूप से संग्रहीत है। ऋग्वेद के 'नासदीय सूक्त का प्रभाव ब्राह्मण ग्रन्थों पर भी स्पष्टत: दृष्टिगोचर होता है।

'शतपथब्राह्मण' में इस दृश्यमान सृष्टि के आविर्भाव से पूर्व की स्थिति का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है "नेव वा इदमग्रे ऽसदासीद नेव सदासीद" आदि प्रस्तुत विचार ऋग्वेद के "नासदीय सूक्त"[22] के विचार का पुष्टपोषक है।

शतपथ ब्राह्मण में पहले जलीय सृष्टि, फिर हिरण्यमपिंड (हिरण्यगर्भ) फिर पृथ्वी फिर क्रमशः फेन, मिट्टी, औषधि, वनस्पति, मत्स्य आदि के बाद पशु-पक्षी फिर क्रमशः मनुष्य आदि का वैज्ञानिक वर्णन है[23]। शतपथ ब्राह्मण में सृष्टि प्रक्रिया के साथ-साथ सांवत्सरिक सृष्टि का प्रतीकात्मक वर्णन है। संवत्सर ही प्रजापति है तथा 'भूतानां पति संवत्सर' से उषा ने गर्भ धारण किया फलतः कुमार का जन्म हुआ। नामरहित होने के कारण कुमार रुदन करने लगा अतः नामकरण किया गया[24]। यहाँ स्पष्ट ही 'कुमार' 'बारह मासों' में व्यक्त कालरूपी ईकाई (संवत्सर) का प्रतीक है। तीनों लोकों की सृष्टि से पूर्व देवों की उत्पत्ति का विचार भी शतपथ में किया गया है। प्रारम्भ में केवल ब्रह्म ही था[25]। उसने देवों को उत्पन्न किया। उसने ही देवों का सृजन कर उन्हें लोकों में स्थापित किया इस लोक में अग्नि को अन्तरिक्ष में वायु को, तथा द्युलोक में सूर्य को स्थापित किया[26]।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ का दार्शनिक महत्त्व प्रतिपादित करते हुए श्यज्ञश को श्रेष्ठतम कर्म बताया गया है। यज्ञ को विष्णु और प्रजापति[27] तथा संसार का पालक और रक्षक कहा गया है[28]। यज्ञ, पृथ्वी, जल आदि पाँच तत्त्वों को पवित्र करता है। जिसे पांक्तयज्ञ कहते हैं[29]। प्रकृत रूप से प्रकृति में निरन्तर यज्ञ चल रहा है। जिसमें बसन्त घी है, ग्रीष्म समिधा और शरद हवि[30]। इससे ही वर्षचक्र चल रहा है। प्रत्येक अणुगति कर रहा है इससे सृष्टि है, यह प्राकृतिक यज्ञ है। यह प्राकृत और कृत्रिम यज्ञ ही आत्मशुद्धि, समर्पण और ब्रह्म प्राप्ति का साधन है। अतः ब्रह्म को यज्ञ कहा गया[31]। ब्राह्मण ग्रन्थों में आत्मचिन्तन की दृष्टि में 'आत्मन्' शब्द 'चेतन-शक्ति' सत्ता के लिए ही प्रयुक्त है जिस प्रकार जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों अर्थो में प्रसंगतः पुरुष पद प्रयुक्त होता है उसी प्रकार आत्मा भी प्रसंगानुकूल दोनों सत्ताओं में प्रयुक्त होता है। ताण्ड्य ब्राह्मण में आत्मा को मध्यदेह स्थानीय कहा गया है[32]। छान्दोग्य ब्राह्मण ने आत्मा को 'क्षेत्रज्ञ' माना है। क्षेत्रज्ञ का अभिप्राय देश-विशेष का ज्ञाता है। क्षेत्र 'देह' और क्षेत्री देहावस्थित 'जीवात्मा' है। श्रीकृष्ण ने इस सम्बन्ध में कहा है कि "हे अर्जुन! जैसे एक सूर्य इस सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, वैसे क्षेत्री (आत्मा) भी सम्पूर्ण क्षेत्र (देह) को प्रकाशित करता है"[33]। अथर्ववेद में इसे अनमीवा[34] कहा गया है। जिसका अभिप्राय व्याधित्रय (अध्यात्मिक, आधिभौतिक' तथा 'आधिदैविक) का पुतला अर्थात् शरीर से है, जिसका अधिपति जीवात्मा ही 'क्षेत्रज्ञ' है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में मुक्ति चिन्तन के भाव स्पष्टतः परिलक्षित हैं। जन्म-मरण, स्वर्ग-नरक, सुख-दुःख, आदि से आत्यन्तिक उपराम होने के लिए आनन्दप्रद चिन्तन किया गया है, जिसे मोक्ष या कैवल्य कहा गया है। वेदों में कई स्थलों पर वर्णित अमृतत्त्व मोक्ष का बीज ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों एवं दर्शनादि ग्रन्थों में विकसित हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि यह पुरुष ही वह 'वैश्वानर अग्नि हैं जो इस वैश्वानर अग्नि को पुरुष के रूप में स्थित जानता है। वह मृत्यु अर्थात् आवागमन को जीत लेता है। इसी ब्राह्मण में 'शण्डिल्य-विद्या' प्रतिपादन के विषय में शाण्डिल्य, ऋषि का चिन्तन है कि आत्मा का ध्यान करो। 'जैमिनीय ब्राह्मण' में मृत्युपाश से मुक्ति और अमृतत्त्व वर्णित है। स्पष्टतया यहाँ मोक्ष का ही अर्थ ग्राह्य है। कालान्तर में यही 'मुक्ति'- योग दर्शन में कैवल्य, सांख्य में ब्रह्मरूप पुरुष, प्रकृति या अत्यन्त पुरुषार्थ, न्यायदर्शन में मिथ्योपलब्धि, विनाशजन्य-तत्त्वज्ञान या प्रतिबोध, वैशेषिक में निःश्रेयस, मीमांसा में धर्मज्ञान और वेदान्त में ब्रह्मज्ञान नामक चिन्तन पद्धतियों के रूप में प्रख्यात हुई। समस्त दुःखों का आत्यन्तिक उच्छेद और सर्व- शक्तिमान परमात्मसत्ता का साक्षात्कार ही परम-पुरुषार्थ अर्थात् 'मोक्ष' है।

आरण्यक ग्रन्थों का उद्भव नैसर्गिक प्रक्रिया के अनुरूप ब्राह्मण-ग्रन्थों के पश्चात् हुआ है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना मानवीय प्रवृत्ति है। वेदों और ब्राह्मणों में वर्णित यज्ञप्रक्रिया कष्टसाध्य, दुर्बोध्य और नीरस होने के कारण अरुचिकर होती जा रही थी अतः आत्मिक शान्ति के लिए आध्यात्म की आवश्यकता अनुभव की गई और स्थूल दृष्यमययज्ञ से सूक्ष्म अध्यात्मिक यज्ञ की ओर प्रवृत्ति हुई दूसरा कारण यह था कि यज्ञ गृहस्थ के लिए है, वानप्रस्थ और सन्यासियों के लिए आत्मतत्त्व एव ब्रह्मविद्या हेतु आरण्यकों की सृष्टि हुई। आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों के दार्शनिक और अध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है उसका पल्लवित रूप आरण्यक ग्रन्थ हैं, जिनका सुव्यवस्थित रूप उपनिषद् हैं। आरण्यक ग्रन्थ स्थूल से सूक्ष्म, भौतिकवाद से अध्यात्मवाद की ओर मूर्त्त से अमूर्त्त की ओर ले जाने वाले ग्रन्थ हैं। आरण्यक ग्रन्थ मनुष्य को अपनी भौतिक तथा ऐहिक विषय-वासनाओं से दूर करके आत्मचिन्तन के लिए प्रेरित करते हैं। वेद, संहिता आरण्यक उपनिषद् आदि एक दूसरे के पूरक अंग हैं जिनमें किसी एक का आभाव ही वेद ज्ञान को अपूर्ण बना देता है कर्मकाण्ड की दृष्टि से ब्राह्मण और आरण्यकों की पारस्परिक घनिष्ठता के कारण बोधायन धर्मसूत्रकार ने आरण्यकों को ब्राह्मण की कोटि में रख दिया है।

"विज्ञायते कर्मादिष्वेतैर्जुहुयात् पूतो देवलोकान्।
समश्नुते इति हि ब्राह्मणमिति हि ब्राह्मणम्"[35]।।

यही शब्द तैत्तिरीय आरण्यक में भी प्राप्त होते हैं[36]। अरण्य अर्थात् वन में पढ़ाये जाने के कारण इन्हें आरण्यक कहा गया है अथवा एकान्त, जनशून्य स्थान में ब्रह्मचर्य में निमग्न होकर ऋषियों ने जिस गम्भीर चिन्तन पूर्ण विद्या का पाठ किया उसका नाम आरण्यक है। महाभारत में आरण्यकों को वेदों का सारभाग कहा गया है। जैसे दही से मक्खन, मलय से चन्दन और औषधियों से अमृत प्राप्त होता है वैसे ही वेदों से आरण्यक प्राप्त हुए हैं[37]। 'ब्रह्मविद्या' का प्रतिपादक होने के कारण आरण्यकों का अपना विशेष महत्त्व है। इनमें यज्ञ प्रक्रिया के दार्शनिक पक्ष व यज्ञ के गूढ़ भावार्थ का विवेचन है। ये ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त दार्शनिक संकेतों का विशदीकरण हैं। जिस प्रकार गृहस्थाश्रम के विभिन्न यज्ञ यागादि कर्मों का प्रतिपादन ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित है उसी प्रकार वानप्रस्थ आश्रम के जितने भी यज्ञ, याग, महाव्रत, होम आदि हैं उनकी विधियों तथा व्यवस्थाओं का प्रतिपादन आरण्यक ग्रन्थों में है। इनमें वैदिक यागों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्ष का विवेचन प्राप्त होता है।

आरण्यकों में ब्रह्मा-विद्या तथा प्राणविद्या का विशेष वर्णन है। 'ऋग्वेद' में भी प्राणविद्या के सूत्र हैं - "आयुर्नप्राण: पुन: प्राणमिहं नो धेहि:" इसी प्रकार 'अथर्ववेद' में भी प्राणविद्या के वर्णन सम्बन्धी सूक्त प्राप्त होते हैं 'ऐतरेय आरण्यक में इसी का विशदीकरण करते हुए कहा गया है कि - "प्राण संसार का धारक है। मनुष्य से लेकर चींटी तक सभी प्राण पर निर्भर हैं[38]। 'मैत्रायणीआरण्यक' में प्राणों को 'अग्नि' और 'परमात्मा' बताया गया है- "प्राणेऽग्नि: परमात्मा"[39]।

'तैत्तिरीय आरण्यक' में काल-ब्रह्म का और कालचक्र का विशद वर्णन है। आरण्यकों में 'ब्रह्मन्' के तीन स्वरूप कहे गए हैं। 'पृथ्वी' आदि के रूप में 'स्थूल', 'मनस्' आदि के रूप में 'सूक्ष्म' तथा 'प्रणव' के रूप में 'शुद्ध' कहा गया है[40]। ज्ञानियों के लिए 'ब्रह्म' 'सत्' और अज्ञानियों के लिए 'असत्' है[41]। प्रणव स्वरूप 'ब्रह्म' में समस्त जगत् लय हो जाता है और उसी से पुन: स्थावर और जंगम रूप में समस्त जगत् उत्पन्न होता है। यह सत्य और अनन्त है। परम आकाश में यह अभिव्यक्त होता है और इसी के दर्शन से मुक्ति मिलती है[42]।

आरण्यक ग्रन्थों में 'आत्मा' के स्वरूप के सम्बन्ध में 'प्राण' के साथ 'आत्मा' के अभेद की भावना है। इसके अतिरिक्त 'आत्मा' को 'विज्ञानमय' और 'आनन्दमय' कहा गया है तथा अन्त में आनन्द ही कहकर आत्मा के परम स्वरूप का परिचय दिया गया है। आरण्यक ग्रन्थों में सृष्टि के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विचार विकीर्ण हैं। बहुतों ने एक व्यापक 'प्रजापति' की भावना की। इनका स्वरूप बहुत स्थूल माना गया, जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच वायु, पाँच भूत तथा मनस के मिश्रण से बना हुआ था। इसके पश्चात् इन्हें अग्नि के साथ अभिन्न और सर्वव्यापक बतलाया गया। सृष्टि करने के अनन्तर इनका शरीर नष्ट हो गया और इससे अन्न उत्पन्न हुआ[43]।

'ऐतरेय आरण्यक' के तृतीय अध्याय में सृष्टि के उच्चतम् मूल्यों का आत्मा से सम्बन्ध बताया गया है। मानव ही सृष्टि का उच्चतम् मूल्य है। सर्वप्रथम पंचभूत आत्मा रहती है। उसमें विभाजन होता है अन्न और आनन्द औषधि तथा वनस्पति अन्न हैं और प्राणी आनन्द प्राणभूतों में मानव भोक्ता है और अन्य प्राणी इनका अन्न हैं। इसके उपरान्त आत्मा के क्रमश: विकास का दिग्दर्शन किया गया है। इसी विकास को आत्मा का आविस्तराम्-अर्थात् अधिक अविर्भाव कहा गया है।

उपनिषदें समस्त भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों का उत्स हैं। ये भारतीय चिन्तन के इण्डेक्स तथा भारत के आशामय एवं प्रकाशमय विश्वास की मूल हैं। डॉ० रानाडे के शब्दों में - "जिस प्रकार एक पर्वत अपने विविध मार्गो से विभिन्न दिशाओं में बहने वाली नदियों को जन्म देता है, उसी प्रकार उपनिषदें दर्शन का वह चरम शिखर हैं जो अपने विविध अंगों से अनेक विचारमय प्रवाहों को जन्म देती हैं, जो जीवन-सागर की ओर क्रमशः बढ़ने के साथ-साथ असंख्य सहायक विचारधाराओं के निरन्तर अन्तर्प्रवाह से शान्ति ग्रहण करते हैं, जिससे जीवन सागर से सम्मिलन के स्थल पर जल का विपुल प्रसार-पटल बन जाता है[44]।

हमारा सम्पूर्ण दर्शन साहित्य (बौद्ध, जैन, सांख्य, योग न्याय, मीमांसा एवं वेदान्तादि) उपनिषदों की शिक्षाओं की ही व्याख्याएँ हैं। कहना न होगा कि वेदान्त के प्रमुख दार्शनिक सम्प्रदाय शंकर 'अद्वैत वेदान्त', माध्वाद्वैत वेदान्त, वल्लभ "विशुद्धाद्वैत वेदान्त" तथा रामानुजीय विशिष्टाद्वैतवेदान्त, उपनिषद् ब्रह्मसूत्र तथा गीता पर किए गए भिन्न-भिन्न भाष्यों से नि:सृत दार्शनिक विधाएँ ही हैं। ब्रह्मसूत्र की रचना महर्षि बादरायण ने उपनिषद् सिद्धान्तों के आधार पर की थी और गीता को तो महर्षि वेदव्यास स्वयमेव उपनिषदों का निचोड़ स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वेदान्त, सांख्य, आदि दार्शनिक विधाओं के मूल में उपनिषदें ही रहीं हैं।

ब्लूमफील्ड का कथन है- "नास्तिक बौद्ध मत से लेकर हिन्दू विचारों का कोई भी महत्त्वपूर्ण रूप ऐसा नहीं है जिसका मूल उपनिषदों में न हो"[45]। आर० डेविज ने बौद्ध दर्शन पर उपनिषदों के प्रभाव को दिखाते हुए लिखा है कि- "गौतम जन्म से हिन्दू थे, हिन्दू के समान पले, हिन्दू-जीवन व्यतीत किया और हिन्दू के रूप में ही मरे[46]।

'बृहदारण्यकोपनिषत्', 'छान्दोग्य' एवं 'कठोपनिषत्' में प्राप्त व्यक्त, अव्यक्त महदादि तत्त्वों का विवेचन तथा बाद में 'वेदाश्वतरोपनिषत् में सांख्यदर्शन के विचारों के साथ ही 'सांख्य' और 'कपिल' शब्द का प्रयोग सिद्ध करता है कि सांख्य का विकास उपनिषदों के मध्यकाल में हुआ होगा।

'यम' और 'नियम' को प्राचीन उपनिषदों में वर्णित योग के तत्त्वों तथा आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान में जोड़ दें (जो समाधि के पूर्वांग हैं) तो वे योग की अष्टांग-योजना बन जाएँगे। स्पष्टतः योग के तत्त्व उपनिषदों में बिखरे परिलक्षित होते हैं। न्याय तथा वैशेषिक दर्शन के मोक्ष-सिद्धान्त के अनुकूल, अनेकानेक विचार भी 'उपनिषदों में परिलक्षित होते हैं।

उपनिषदों में आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या, आत्मा, ब्रह्मन्, परमात्मतत्त्व, सृष्टि, जीव, माया आदि का अत्यन्त गूढ़ विवेचन प्राप्त होता है। वास्तव में उपनिषदें ज्ञान की खान हैं। कठोपनिषत् में 'ब्रह्म' का वर्णन करते हुए उसे अक्षर ब्रह्म'[47] कहा गया है। वह परमेश्वर सर्वव्यापी है। माण्डूक्योपनिषत् एवं छान्दोग्योपनिषत् भी उस अविनाशी ब्रह्म को ओंकारमय कहता है[48]। उपनिषदों अनेकशः वर्णन है कि वह परब्रह्म तीनों कालों का अधिष्ठाता, सर्वव्यापी अविनाशी और सत्य है। वह 'ब्रह्म' बैठा हुआ ही दूर चला जाता है, और शयन करते हुए भी सर्वत्र स्थापित रहता है। वह अस्थिर शरीरों में विदेह अविचल एवं महान है।

उपनिषदों में 'आत्मा' को अमृतरूप, अभयरूप और ब्रह्मरूप कहा गया है। यह 'आत्मा' शरीर से बाहर निकल कर परम ज्योति रूप ब्रह्म को प्राप्त कर उसी के स्वरूप में स्थित हो जाता है। आत्मा वाणी से परे शुद्ध, पवित्र, शून्य, शान्त, अनन्त, अविनाशी, स्थिर, सनातन, जन्म रहित एवं स्वतन्त्र है। उसी से शरीर को चेतन के समान प्रतिष्ठा मिलती है, वही प्रेरणा देने वाला है। सूक्ष्म, अग्राह्य और अदृश्य है। इसीलिए यह पुरुष है[49]। 'शिवसंकल्पोपनिषत्' में 'आत्मा' को सर्वव्यापी 'अमृत', 'विज्ञ', 'गतिमान', 'सृजनकर्त्ता', सूंघने वाला, स्पर्श करने वाला आदि कहा गया है। अन्यत्र भी उस 'आत्मा' को 'सर्वानियन्ता', 'ईश्वर', 'रुद्र', 'प्रजापति', शहिरण्यगर्भ' आदि कहा गया है।

उपनिषदों में सृष्टि-उत्पत्ति का विशद वर्णन प्राप्त होता है। 'तैत्तिरीयोपनिषत्' में कहा गया है कि उस परमेश्वर ने स्वतः प्रकट होने की इच्छा से तप करते हुए तेज प्राप्त कर इस दृश्य - जगत् की रचना की और बाद में स्वयं उसी में प्रविष्ट हो गया। तत्पश्चात् वह साकार और आकार सहित, निरुक्त, अनिरुक्त, आश्रयरूप अनाश्रय रूप आदि हुआ। एक स्थान पर वर्णन प्राप्त होता है कि सृष्टि से पूर्व एक मात्र परमात्मा ही था, अन्य कोई नहीं था अतः उस परमात्मा ने ही लोक रचना का विचार किया। उसी ने स्वर्गादि उच्चलोक, अन्तरिक्ष मृत्युलोक और जल आदि की रचना की।

'छान्दोग्योपनिषत्' में भी सृष्टि से पूर्व एक मात्र सत् के होने का वर्णन है। 'मुण्डकोपनिषत्' में सृष्टि उत्पत्ति का अति आलंकारिक वर्णन किया गया है। मकड़ी का उपमान देते हुए कहा गया है कि जैसे मकड़ी अपने शरीर से निकलने वाले तत्त्व से जाले को स्वयं बुनती और फिर निकलती है। उसी प्रकार अविनाशी परमेश्वर से यह विश्व प्रकट होता है।

उपनिषदों में ब्रह्मविद्या प्राणविद्या आत्मविद्या परा - अपराविद्या, पंचाग्नि-विद्या आदि ज्ञान का भण्डार छिपा है। गूढ़ से गूढ़ रहस्य निरन्तर उसका प्रक्षालन करते प्रतीत होते हैं। वहाँ कहीं पर भी कोई एक दूसरे का खण्डन करता नहीं प्रतीत होता। उसमें सभी दर्शनों के विचार स्रोत रूप में समाहित हैं। इस प्रकार उपनिषदों में दार्शनिक विचारधारा व्यापक रूप में विद्यमान है, निरन्तर प्रवाहमान है। उपनिषदों का चरम लक्ष्य उस अद्वितीय, अखण्ड, सत्, चित् आनन्द परमात्मा का विचार या साक्षात्कार करना है। यह निर्विवाद सत्य है कि वेदों ने जिन दार्शनिक बीजों को बोया, उपनिषदों में उनका परम्परागत रूप से पल्लवन हुआ और वह आगे भी दर्शन की ज्योति को प्रकाशमयी बनाने के लिए अपनी ज्ञान धारा को निरन्तर अविरल रूप से प्रवाहित कर रहे हैं।

संदर्भ

1 ऋग्वेद 10-71-3

2 ऋग्वेद भाष्यभूमिका सायणाचार्य 20-21

3 अथर्ववेद - 4-35-6

4 मनुस्मृति (मनुमहाराज)- 12-94
5 "मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्याच्च तत्प्रामाण्यमाप्त प्रमाणत्वात्"
- न्यावसूत्र-श्रीगौतम महामुनि 1.2.67
6 "बुद्धिपूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे"-वैशेषिक सूत्र - 6.11
7 "निजराक्त्यमिव्यक्ते: स्वत: प्रमाण्यम्"- सांख्यसूत्र - कपिलमुनि 5.51
8 "स पूर्वेषामपि गुरु: कालेनानवच्छेदात्"- योगसूत्र- 1.26 उस पर व्यास भाष्य
9 उमेश मिश्र - भारतीय दर्शन - पृष्ठ 32,
10 उदयवीर शास्त्री - दर्शन की मूल समस्याएं, संदर्शन अंक - 5, 1979, पृष्ठ-2
11 ऋग्वेद-10.72.2-4,
12 ऋग्वेद - 2.8.9.
13 "तम आसीत्तमसा गूढ़मग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
14 तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिम्नां: जायतेकम्" ऋग्वेद 10.124.3
15 ऋग्वेद नासदीय सूक्त 6-7.
16 "सहस्रशीर्षा: पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्। स भूमि विश्व्तो वृत्यात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्" ऋग्वेद-10.90.1
17 "पादेऽस्येहाभवत् पुन:"-ऋग्वेद -10-90-4
18 "परमाणौ परमाणवत्त संसारमण्डलम् विभाति"
- योगवसिष्ठ-निर्वार्ण- प्र030 / सर्ग -57 / - श्लोक-49
19 "ज्योतिरसि विश्वरूपम्" - यजुर्वेद -5-35
20 "ईशानमस्य जगत: तथा ईशानमिन्द्र तस्थुष:" सामवेद - 233
21 ऋग्वेद 10.71.2
22 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र 1.33
23 "नासदसीन्नोसदासीन्तदानी नासीद्रजो नो व्योमापरोयत्" ख ऋग्वेद -10-129-1
(i) "आपोहवा इदमग्रे सलिलमेवास हिरण्यमयमाण्ड: संबभूव"-शतपथब्राह्मण-11-1-6
(ii) "आप: फेन: मृता सिकता: शर्कराअश्मा पृथिवी"- शतपथब्राह्मण - 6-1-3-1 से 7 तक
24 शतपथ ब्राह्मण 6-1-3-7-9
25 "सर्वम् ब्रह्म प्रजापति :"-शतपथ ब्राह्मण -7-3-1-42
26 शतपथ ब्राह्मण-11-2-3-1
27 "यज्ञो वै विष्णु:" - 1-1-2-13, "प्रजापतिर्यज्ञ:"-1-1-1-13- शतपथ ब्राह्मण
28 "यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति -9-4-1-11
29 "पाङ्क्तो यज्ञ:" शतपथ ब्राह्मण-1-5-16
30 "वसन्तोऽस्यासीदाज्य ग्रीष्मइध्म: शरद् हवि: - यजुर्वेद- 31-14
31 "ब्रह्म यज्ञ:" शतपथ ब्राह्मण 3-1-4-15
32 ताण्ड्य ब्राह्मण- 14-920
33 "यथा प्रकाशयत्मेक: कृत्सनं लोकमिमं रवि: ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाश्यति भारत"।। - श्रीमद्भगवद्गीता- 13-33
34 "स्वे क्षेत्रे अनमीक विराज" अथर्ववेद 11-11-22
35 बोधायन धर्मसूत्र गोविन्दस्वामी, 3-7-7-16
36 तैत्तिरीय आरण्यक 2.7.5
37 महाभारत, 1-331-3

38 "सर्वाणि भूतानि आपिपीलिकाभ्य: प्राणेन बृहत्याविष्टवधानि ऐतरेयआरण्यक - 2-1-6
39 मैत्रायणी आरण्यक - 6-9
40 तैत्तिरीय आरण्यक - 7-6-8
41 तैत्तिरीय आरण्यक - 7-8
42 तैत्तिरीय आरण्यक - 8-6,9-1,8-2
43 "स इरामयो यद्धीरामयस्तस्माद्विरण्यमय:" ऐतरेय आरण्यक - 2/1/3
44 उपनिषद दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण पृष्ठ-131-डॉ० रानाडे
45 Religions of Veda, Bloomfield
46 Querted from Interoduction of Interoduction to Indian Philosophy
- Dutta and Chatterji P. 91.
47 "एतद्वैयेवाक्षरं ब्रह्म" - कठोपनिषत् 1.2.16
48 "ओमित्येतदक्षरर्मि सर्व।" - माण्डूक्योपनिषद्; "ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत" - छान्दोग्योपनिषत् - 1
49 "स वा एष शुद्ध: पूत: शून्य: शान्तोऽप्राणोऽनिरात्माऽनन्तोऽक्षय्य: स्थिर:

महात्मा गांधी की वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ० वीरेंद्र सिंह वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, हिंदू कॉलेज, मुरादाबाद

2 अक्टूबर 1869 ई. को जन्मे मोहनदास करमचंद गांधी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी कहलाये। मोहनदास करमचन्द गांधी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व वाले इंद्रधनुषी युग पुरुष थे। गांधी दुनिया के उन चंद गिने-चुने महापुरुषों में थे जिन्होनें बिना हथियार, गोला, बारूद, खून खराबा का सहारा लिए अत्यचार और गुलामी का विरोध किया और अपनी प्रखर वाणी से सत्य और अहिंसा का प्रयोग किया, जो बड़े-बड़े देशों का अनुकरणीय उदाहरण बना। महात्मा गांधी के विचारों को शक्तिशाली देशों के बड़े राजनेताओं ने आत्मसात कर के अपने-अपने देशों के विकास का माध्यम बनाया।

वर्तमान समय पर यदि किसी नेताओं के विचारों की प्रासंगिकता की बात आती है तो उसमें महात्मा गांधी सबसे अब्बल पायदान पर आते हैं। आधुनिक समय को आमतौर पर विकास का युग के रूप में जाना जाता है। हम जानते है कि विकास की इस अंधी दौड़ में कई विपत्ति आएंगी। तेजी से जनसंख्या वृध्दि, उत्पादन और खपत, बेरोजगारी, गरीबी, नस्लीय भेदभाव, आर्थिक असमानता, सामाजिक अन्याय, भ्रष्टाचार जैसी सभी प्रकार की समस्याओं के बीच में आज जीवन यापन करना पड़ रहा है। औद्योगीकरण मानव जाति के लिए अभिशाप बनता जा रहा है। वर्तमान में राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक और नैतिक अधिकारों के साथ-साथ मूल्यों का पतन और शोषण हो रहा है। विकास के साथ मानव जगत को इन समस्याओं के बारे में सोचना होगा और अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल समाधानों का पता लगाने की कोशिश करना चाहिए।

(शोध कुंजी) - सत्य, सत्याग्रह, अहिंसा, रोटी के योग्य श्रम, रामराज्य, वैश्वीकरण, आर्थिक उदारीकरण, तकनीकी, असहयोग आंदोलन, टॉलस्टाय, रस्किन एवं समाजवाद।

गांधी जी ने धर्मानुप्राणित परिवार में जन्म लिया था उनकी मातेश्वरी पुतलीबाई जी धार्मिक नियमों का दृढ़ता से पालन करती थी, सूर्यास्त के पश्चात भोजन नहीं करती उन्होंने गांधी जी को भी यही धार्मिक संस्कार दिए थे इन्हीं संस्कारों को शुद्ध प्रवाह गांधी जी में आजीवन रहा। गांधी की धर्म सम्बन्धी अपनी मौलिक अवधारणाएँ थी उनके परिचित सभी धर्मों के व्यक्ति थे और उनकी जीवनधारा में भी सब धर्मो का सत्व उनकी धार्मिकता का सशक्त आधार था इस आधार के केन्द्र में थी अहिंसा।

> *''गांधी इंसानों में चमत्कार थे। उन्होंने कभी इस बात की चिंता नहीं की, कि उनके विचार लोकप्रिय हैं या नहीं। उन्होंने पुलिस का संरक्षण भी कभी नहीं चाहा। आश्चर्य तो यह है कि उन पर पहले प्रहार क्यों नहीं हुआ ? इस प्रकार की शर्मनाक दु:खांत घटनाएं, महान पुरुषों के साथ होती रहती हैं। लेकिन गांधी की मृत्यु उनकी सबसे बड़ी विजय थी। आने वाली पीढियां शायद मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेंगी कि गांध ीजी जैसा हाड़-मांस का पुतला कभी इस धरती पर हुआ होगा।''[1] - अल्बर्ट आइन्स्टाईन*

महात्मा गांधी के विषय में आइन्स्टाईन के यह विचार उनकी विश्व लोकप्रियता को रेखांकित करते हैं। आज वैश्वीकरण का युग है, आर्थिक उदारीकरण का समय है, दुनिया विश्वग्राम बन चुकी है। एक ओर हम जहां चंद्रमा में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुके हैं वहीं दूसरी ओर दुनिया तीव्र गति से आतंकवाद, भ्रष्टाचार एवं तकनीकी के दुष्परिणामों की चपेट में आती जा रही है। ऐसे परिवेश में दुनिया को गांधी की याद आना लाजिमी है। मार्टिन लूथर किंग, जवाहरलाल नेहरू, नेल्सन मंडेला, यासर अराफात से लेकर बाराक ओबामा, दलाई लामा एवं आंग सांग सू की तक के 'प्रेरणा पुरुष' गांधी है। दरअसल गांधी एक फिजा थे साथ ही

एक अनोखी एवं शांति की फिजा के निर्माता भी, उनका संपूर्ण जीवन मानवता के लिए समर्पित था। उनका धर्म जाति एवं संप्रदाय से परे 'मानव-धर्म' था उसी के लिए वह ताउम्र जिए और जीने का संदेश दिया।

आज भौतिकवाद एवं आडम्बर की आंधी हर व्यक्ति को अपने आगोश में लेने को लालायित है। ऐसे परिवेश में गांधी का सादगी पूर्ण जीवन हमें प्रेरणा देता है। वह लिखते हैं – ''भोग भोगना मैंने शुरू तो किया, पर वह टिक न सका। घर के लिए साज- सामान भी बसाया। पर मेरे मन में उनके प्रति कभी मोह उत्पन्न नहीं हो सका। इसलिए घर बसाने के साथ ही मैंने खर्च कम करना शुरू कर दिया। धोबी का खर्च भी ज्यादा मालूम हुआ, अतएव मैंने धुलाई का सामान जुटाया। धुलाई कला पर पुस्तक पढ़ी और धोना सीखा। पत्नी को भी सिखाया। काम का कुल बोझ तो बढ़ा ही, पर नया काम होने से उसे करने में आनंद आता था।''[2]

महात्मा गांधी ऐसा कोई कार्य लोगों को करने के लिए कभी नहीं कहते थे, जो स्वयं न किया हो। उनके लिए साध्य और साधन दोनों की पवित्रता अनिवार्य थी इसलिए असहयोग आंदोलन को उन्होंने चौरा-चौरी कांड के कारण वापस लिया। वह स्वावलंबन के हिमायती थे, कोई भी प्रलोभन गांधी को डिगा नहीं सका, शायद इसीलिए आज वह बापू है, राष्ट्रपिता है और विश्वनेता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने उनके जन्म दिवस 02 अक्टूबर को अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस घोषित किया तो उसके कारण है कि दुनिया उनके मूल्यों का जाने-समझे।

''आज हम आस्था की बात करते हैं, अस्मिता की बात करते हैं, अकुंठित मानव-चेतना की बात करते हैं, और अपने परिवेश में उसे न पाकर निराश और विक्षुब्ध होते हैं। बड़ी-बड़ी बातें करते हुए छोटी सी छोटी बातों पर, छोटे-छोटे प्रलोभनों पर हम बिक जाते हैं। व्यवस्था हमें सरलता से खरीद लेती है, हम व्यवस्था के ढोल बन जाते हैं। फिर मुक्तिबोध को उदधृत करूं, तो लोभ-लोभ से प्रेरित समझदारी हमें रावण के घरों में पानी भरने को विवश कर देती है।''[3]

अनुकूल परिवेश गांधी का भी नहीं था, लेकिन वह कभी व्यवस्था के ढोल नहीं बने और जब देश आजाद हुआ तो सत्ता में भागीदारी भी नहीं कि और न ही परिवार के किसी सदस्य को करने दी, यहां तक की जब पं. जवाहरलाल नेहरु लाल किले से प्राचीर से देश के नाम 'नियति से महामिलन' का सम्बोधन दे रहे थे, तब यह संत कलकत्ता की गलियों में हिंदू-मुस्लिम एकता का पैगाम दे रहा था। आज हमारे अनेक गणमान्य गांधी टोपी तो पहनते हैं, लेकिन गांधी के मूल्यों को मानते नहीं हैं।

सत्य, सत्याग्रह, अहिंसा एवं गांधीवाद के विषय में जब कोई उनसे पूछता था, तो वह बड़ी विनम्रता से कहते थे कि मैंने कुछ नया नहीं किया, यह तो सनातन है, मैंने तो सिर्फ अपनी शक्ति भर इनका परीक्षण किया है –

''गांधीवाद नाम की कोई चीज नहीं है और न ही अपने पीछे मैं कोई ऐसा संप्रदाय छोड़ जाना चाहता हूं। मैं कदापि यह दावा नहीं करता कि मैंने किन्हीं नए सिद्धांतों को जन्म दिया है, मैंने तो अपने निजी तरीके से शाश्वत सत्यों को दैनिक जीवन और उसकी समस्याओं पर लागू करने का प्रयास मात्र किया है। मुझे संसार को कुछ नया नहीं सिखाना है। सत्य और अहिंसा उतने ही प्राचीन है, जितनी की ये पहाडिय्यां मैंने तो एक व्यापक आधार पर सत्य और अहिंसा दोनों क्षेत्रों में अपनी शक्ति भर परीक्षण करने का प्रयत्न किया है।''[4]

गांधीजी का मानना था कि अहिंसा के बिना सर्वोच्च सत्य की सिद्धि संभव नहीं है। अहिंसा और सत्य का संबंध अटूट है। जैसा कि हम जानते हैं कि गांधीजी के लिए सत्य ईश्वर है और जो व्यक्ति दूसरों को आघात पहुंचाता है, वह सत्य का उल्लंघन करता है अर्थात हिंसा करता है। हिंसा असत्य है, क्योंकि वह जीवन की एकता और परिपक्वता के विरुद्ध है। सत्य और अहिंसा गांधीजी के अनुसार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, किसी भी व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक अथवा हार्दिक कष्ट पहुंचाना हिंसा है। साधारणत: शारीरिक कष्ट पहुंचाने को ही हिंसा समझा जाता है। किंतु अहिंसक व्यक्ति शरीर और विचार दोनों से ही अहिंसा का पालन करता है। किसी का जीवन बचाना, किसी को जीवन प्रदान करना, उसके लिए सुखी जीवन के साधन प्रस्तुत करना भी अहिंसा है। शुभ कार्य करना भी अहिंसा है। गांधीजी के अनुसार – 'अहिंसा वीरस्य भूषणम्' अर्थात अहिंसा वीर का आभूषण है। केवल वीर तथा शक्तिशाली ही इसका प्रयोग कर सकते हैं। उन्हें ही अहिंसा द्वारा पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। गांधीजी का मत है कि कुछ व्यक्ति जो दुर्बल होते हैं, जो किसी का मुकाबला हिंसा द्वारा नहीं कर सकते, वे अहिंसा की शरण में आ जाते हैं। यद्यपि यह उचित नहीं है फिर भी इस प्रकार अहिंसा की शरण में आया व्यक्ति धीरे-धीरे आत्मिक बल प्राप्त करने लगता है और सतत साधना द्वारा उसकी अहिंसा वीर की अहिंसा में बदल जाती है।

राजनीतिक स्वतंत्रता आर्थिक प्रगति के साथ होना चाहिए। लेकिन वास्तव में सार्थक होने के लिए उस वृध्दि को न्यायसंगत बनाना होगा। राजनीतिक शक्ति के साथ कुछ लोग आर्थिक प्रगति के लाभ का आनंद नहीं ले सकते हैं, जबकि कई को उनका उचित हिस्सा नहीं मिलता है। पर्यावरण संरक्षण और संरक्षण की अनिवार्यता के साथ आर्थिक विकास की सुसंगत होना चाहिए। लेकिन स्थिरता का मतलब यह नहीं है कि बड़ी संख्या में लोगों को बेहतर भौतिक कल्याण और जीवन स्तर से वंचित किया जाए। राजनीतिक भाषण, इन दिनों, वैश्विक युध्द पर आतंक केन्द्रित है। और वास्तव में, आंतकवादी जो निर्दोष पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को निशाना बनाते हैं, वे किसी की मदद और दया के पात्र नहीं है। लेकिन आज के दुश्मन के बल व्यक्ति नहीं है, बल्कि दुनिया को सोचने और समझने के तरीके हैं। अधिक हिंसा के साथ हिंसा का मुकाबला करना एक टिकाऊ समाधान प्रदान नहीं करता हैं।

गांधीजी के आदर्श राज्य का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत रोटी के योग्य श्रम है, उन्होंने यह सिद्धांत टॉलस्टाय तथा रस्किन से लिया है। इस सिद्धांत की पुष्टि उन्होंने गीता और बाइबल द्वारा भी की है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन में इतना शारीरिक श्रम अवश्य करना चाहिए, जिससे उसके भोजन की आवश्यकता पूरी हो जाए, कोई भी व्यक्ति चाहे वह कोई भी व्यवसाय करता हो रोटी के लिए श्रम अवश्य करेगा, आज संसार में 90 प्रतिशत व्यक्ति श्रम करते हैं और शत-प्रतिशत व्यक्ति उसे उपभोग करते हैं। यदि शेष व्यक्ति भी मिलकर श्रम करें तो संसार कितना सुखी हो जायेगा।

महात्मा गांधी के वर्ण व्यवस्था, मशीनीकरण, पुलिस और सेना, रामराज्य एवं सत्याग्रह के सिद्धांतों को लेकर लोगों में मतभेद है और यदा-कदा आलोचना भी की जाती है। इसमें संदेह नहीं कि गांधीवादी विचारधारा एक आदर्शवादी विचारधारा है। जिसको पूरी तरह क्रियान्वित करना संभव नहीं है, तो भी एक आदर्श तो सामने रहना ही चाहिए, जिसके अनुरूप हम अपने आपको ढालने का प्रयास करते रहें, पं. जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में कहा जा सकता है -

> *''अक्सर बातें उनकी, मेरी समझ में नहीं आई। कुछ बातों में उनसे मतभेद भी हुआ। एक जमाने से उनका साथ रहा, उनकी निगरानी में काम किया। उनका छापा मेरे ऊपर पड़ा, मेरे ख्याल बदले, रहने का ढंग बदला, जिंदगी ने एक करवट ली। दिल बढ़ा, कद कुछ ऊंचा हुआ। आंखों में रोशनी आई। नए रास्ते दिखे। जो सवाल लाखों के दिल में थे और उनको परेशान करते थे, उनके जवाबों की कुछ झलक नजर आई। आज उस जवाब पर अमल न हो, तो कल होगा। परसों होगा।''*[5]

महात्मा गांधी के राजनीतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले थे। टॉलस्टॉय, रस्किन उनके प्रेरणास्रोत थे। एक ओर वे भगवत गीता से प्रभावित थे, तो दूसरी ओर ईसा से। विचारों के इस अद्‌भुत समन्वय ने उन्हें महानता के शिखर तक पहुंचाया। नरसी मेहता के ध्येय वाक्य- ''वैष्णव जन तो तेने कहिए पीर पराई जाणे रे' को गांधी ने अपने जीवन का आदर्श माना। वह सीमातीत और कालातीत हैं, उनका संपूर्ण जीवन 'परपीर' को समर्पित था। इसलिए दूसरों के लिए जीने वाला व्यक्ति कभी मरता नहीं है। वह सदैव अनिवार्य रहेंगे।

संदर्भ-ग्रंथ

1. डॉ. ओम नागपाल, 'प्रमुख राजनीतिक विचारक एवं विचारधाराएं', कमल प्रकाशन यशवंत रोड इंदौर संस्करण 1993-94, पृ.163
2. मोहनदास करमचंद गांधी ,'सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा', नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, संस्करण 2010, पृ. 190-191
3. शिवकुमार मिश्र, 'भक्ति-आंदोलन और भक्ति काव्य', लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2015, पृ.10
4. डॉ. ओम नागपाल, 'प्रमुख राजनीतिक विचारक एवं विचारधाराएं', कमल प्रकाशन यशवंत रोड इंदौर संस्करण 1993-94, पृ.151
5. डॉ. ओम नागपाल, 'प्रमुख राजनीतिक विचारक एवं विचारधाराएं', कमल प्रकाशन यशवंत रोड इंदौर संस्करण 1993-94, पृ.162

भारत में उच्च शिक्षा की दिशा एवं दशा

सुनील कुमार

असि० प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय सैदपुर, गाजीपुर, उ०प्र०

आधुनिक समाज में अशिक्षित होना अपने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक अधिकारों से वंचित होने की प्रक्रिया में एक छलांग की तरह है। आज संसार में लगभग सब कुछ लिखित माध्यमों पर निर्भर है ऐसे में अशिक्षित होना लगभग अभिशापित होना है। शिक्षा और विशेषत: उच्च शिक्षा किसी राष्ट्र के निर्माण का आधार होती है। उच्च शिक्षा के उद्देश्य रोजगार से कहीं अधिक व्यापक होते हैं और होने भी चाहिए। उच्च शिक्षा का उद्देश्य अगर मानव मस्तिष्क को रोबोट बना देना हो तो यह मानवता के लिए दुर्भाग्यपूर्ण एवं घातक होगा। उच्च शिक्षा की एक सामाजिक उपादेयता होती है, वह आर्थिक संसाधनों को जुटाने का माध्यम मात्र कभी नहीं हो सकती। लेकिन आज नवउदारवादी आर्थिक नीतियों से संचालित हमारी शासन-व्यवस्था और उस शासन व्यवस्था द्वारा निर्देशित उच्च शिक्षा अपनी इसी सामाजिक उपादेयता से दूर की जा रही है। हम अपनी शैक्षणिक व्यवस्था से धनाढ्यों के लिए बुद्धि से कुशाग्र मजदूर तैयार कर रहे हैं।

उच्च शिक्षा की वर्तमान दशा पर विचार करने से पूर्व भारतीय उच्च शिक्षा के इतिहास पर नजर डाल लेना आवश्यक है। वर्तमान में मौजूद विश्व का सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय सन् 1088 में इटली के बोलोना में स्थापित हुआ था। पेरिस विश्वविद्यालय की स्थापना 1091 में हुई। ऑक्सफोर्ड 1167 एवं कैम्ब्रिज 1209 में स्थापित हुआ। वर्तमान समय में यह प्रचलित धारणा है कि दुनिया को उच्च शिक्षा की देन पश्चिम की है। परन्तु कई अर्थों में भारत की उच्च शिक्षा की परम्परा अधिक प्राचीन और गौरवसम्पन्न है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ज्यां द्रेज और अमत्र्य सेन ने अपनी किताब An Uncertain Glory : India and its Contradictions में प्राचीन भारतीय उच्च शिक्षा की परम्परा के बारे में लिखा है कि ''हिन्दू सम्राटों के समर्थन से बौद्ध संस्था द्वारा संचालित नालन्दा विवि पर जरा गौर करें, जिसमें एशिया भर के छात्र पढ़ते थे और जो अखिल एशियाई विवि के तौर पर काम कर रहा था। 1088 में जब यूरोप के सबसे पुराने विवि की स्थापना हुई थी, उस समय नालन्दा विवि 600 साल से ज्यादा पुराना हो चुका था। नालन्दा उच्च शिक्षा का प्राचीन केन्द्र था और चीन, कोरिया, जापान, थाइलैण्ड, इंडोनेशिया और पूरी एशिया समेत यूरोप के तुर्की जैसे दुनिया भर के देशों के छात्रों को आकर्षित करता था। अपने उत्कर्ष के दौर में नालन्दा सातवीं सदी में एक आवासीय विवि था, जिसके विहारों में 10 हजार से ज्यादा छात्र रह रहे थे।''[1]

नालन्दा विश्वविद्यालय में कौन से विषय पढ़ाए जाते थे, इस सन्दर्भ में दोनों लेखक बताते हैं ''हमें जो भी जानकारियाँ, खासकर नालन्दा के पूर्व विद्यार्थियों (विशेषकर चीन के) के संस्मरणों के रूप में उपलब्ध हैं, उनसे पता चलता है कि वहाँ धर्म, इतिहास, कानून, भाषा-विज्ञान, औषधि विज्ञान, सार्वजनिक स्वास्थ्य, वास्तुकला, मूर्तिकला, खगोलशास्त्र जैसे विषय पढ़ाए जाते थे और उनमें शोध होते थे। सातवीं सदी में नालन्दा विवि के छात्र रहे ह्वान सांग ने लिखा है कि किस तरह वहाँ एक भव्य ऊँची वेधशाला धुंध-भरी सुबह में कुहासे को भेदती हुई उसके ऊपर शान से खड़ी दिखती थी। इस बात के भी साक्ष्य मिलते हैं कि वहाँ गणित पढ़ाया जाता था क्योंकि यह खगोलशास्त्र से जुड़ा हुआ है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि नालन्दा के पास ही कुसुमपुर या पाटलिपुत्र (आज का पटना) भारत के धुरन्धर गणितज्ञों का केन्द्र था।''[2]

प्राचीन भारतीय उच्च शिक्षा के केन्द्र रहे नालन्दा विश्वविद्यालय की गौरवकथा के सम्बन्ध में दोनों लेखक आगे बताते हैं ''औषधि विज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसे विषय विशेष तौर पर महत्वपूर्ण थे। चीन के यी जिंग नालन्दा विवि के ही एक विद्यार्थी थे, जो भारत तथा चीन की औषधि पद्धतियों का तुलनात्मक आंकलन करने वाले सबसे प्राचीन लेखक माने जाते हैं।

गौरतलब है कि चीन के प्राचीन इतिहास में नालन्दा विश्वविद्यालय को चीन के बाहर एकमात्र ऐसे शिक्षा संस्थान के रूप में दर्ज किया गया है, जिसमें चीन के छात्र उच्च शिक्षा लेने के लिए जाते थे। नालन्दा विवि में उच्च शिक्षा के ऊँचे स्तर का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है। इस तथ्य को स्वीकार करना भी महत्वपूर्ण है कि नालन्दा विवि जबकि भारत और पूरे विश्व में उच्च शिक्षा का प्रणेता था लेकिन यह एकमात्र नहीं था, क्योंकि इससे प्रेरणा लेकर पहली सहस्राब्दी में भारत में उच्च शिक्षा के दूसरे केन्द्र भी स्थापित किए गए। उनमें बिहार का ही विक्रमशिला विवि शैक्षणिक पाठ्यक्रम और उत्कृष्टता के मामले में नालन्दा विश्वविद्यालय की बराबरी कर रहा था।''[3]

परन्तु समृद्ध प्राचीन इतिहास पर गर्वमात्र से हम जर्जर वर्तमान पर सन्तुष्ट नहीं हो सकते। वर्तमान भारतीय विश्वविद्यालयों की उपलब्धियाँ नगण्य हैं। वर्तमान समय में जब विभिन्न संस्थाओं द्वारा गुणवत्ता के आधार पर वैश्विक शैक्षणिक संस्थानों का मूल्यांकन किया जाता है तो शीर्ष 100 या 200 की सूची में एक भी भारतीय विश्वविद्यालय समाहित नहीं होता। शीर्ष के संस्थान अमेरिका और यूरोप के होते हैं। एशिया के कुछ ही विकसित देशों जैसे चीन, जापान, कोरिया, सिंगापुर आदि के शैक्षणिक संस्थान इस सूची में स्थान बना पाते हैं। इसलिए अपने प्राचीन गौरव और विश्वगुरू जैसे आत्मतुष्टिपरक विशेषणों से बचते हुए वर्तमान उच्च शिक्षा को सुधारने का प्रबल प्रयत्न करना पड़ेगा।

भारतीय उच्च शिक्षा में सुधार की आवश्यकता कई आयामों पर है। कुछ आयाम उच्च शिक्षा के क्षैतिज विस्तार से सम्बन्धित हैं तो कुछ इसके गुणात्मक सुधार से। भारत में स्कूली शिक्षा से उच्च शिक्षा में बच्चों के प्रवेश का प्रतिशत अत्यन्त अल्प है। छात्रों का एक छोटा समूह ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाता है शेष छात्र माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त पढ़ाई छोड़ देते हैं। हमें यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि स्कूली शिक्षा प्राप्त प्रत्येक छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके। उन छात्रों के शिक्षा त्यागने के जो भी सामाजिक, आर्थिक कारण हैं उन्हें दूर किया जाय। हमें उच्च शिक्षा का विस्तार उस सीमा तक करना होगा जिसमें हर बच्चा समाहित हो सके। भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद का एक बहुत ही छोटा हिस्सा शिक्षा पर खर्च करता है। उसके खर्च का यह प्रतिशत विकासशील देशों में भी निचले पायदान पर आता है। हमें खर्च की यह राशि बढ़ानी होगी जिससे उच्च शिक्षा का विस्तार और उसमें गुणात्मक सुधार किया जा सके। उच्च शिक्षा का मुख्य भार भारतीय विश्वविद्यालयों पर है। इन विश्वविद्यालयों में मूलभूत सुविधाओं का अभाव और यहाँ की दूषित चयन प्रणाली भी गुणवत्ता के ह्रास का कारण बनती है। इस भ्रष्ट चयन प्रणाली के चलते जिन विश्वविद्यालयों को ज्ञान के प्रकाश का वाहक बनना था वे जातिवाद, प्रतिक्रियावाद और यथास्थितिवाद के जड़वाहक बन गए।

आधुनिक भारतीय शिक्षा व्यवस्था की एक कमी आर्थिक आधार पर इसका जबरदस्त विभाजन है। प्रसिद्ध शिक्षाविद् सोनम वांगचुक इस विभाजन को दृष्टिगत रखते हुए लिखते हैं ''पाँच प्रतिशत बच्चे ऐसे विद्यालयों में पढ़ रहे हैं जो अमेरिकी स्कूलों से भी महंगे हैं और बाकी के 95 प्रतिशत बच्चे ऐसे स्कूलों में पढ़ रहे हैं जो अफ्रीकी स्कूलों से भी बदतर हालत में हैं। ऐसे स्कूलों से निकले छात्र ही आगे चलकर सामाजिक असंतुलन व अस्थिरता के कारक बनते हैं। दुख की बात है कि सरकारें ग्रामीण विद्यालयों को पर्याप्त महत्व नहीं देती हैं। देश में शिक्षा का स्पष्ट बंटवारा हो चुका है। अमीरों की शिक्षा अलग, गरीबों की शिक्षा अलग।''[4] हमारी सरकारें बड़ी समस्याओं से किस तरह अलग खड़ी हो जाती हैं इसका उदाहरण देते हुए वे कहते हैं ''प्रोग्राम फॉर स्टूडेंट असेसमेंट (पीसा) के अन्तर्गत दुनियाभर के द्वात्रों की गुणवत्ता आंकी जाती है। अनेक छोटे-छोटे पूर्वी एशियाई देश इस आकलन में आगे रहते हैं जबकि भारत का स्थान 74 देशों में 72वां है। रैंकिंग की शर्मिन्दगी से बचने के लिए 2009 से भारत इस कार्यक्रम में हिस्सा ही नहीं लेता है। देश की सबसे बड़ी समस्या से मुँह मोड़ लेने का इससे बड़ा उदाहरण भला और क्या हो सकता है!''[5]

आर्थिक रूप से विभाजित इसी शिक्षा पद्धति के परिणामस्वरूप हम उस दिलचस्प पहेली का उत्तर पाते हैं जिसमें कुछ भारतीय उच्च शिक्षितों को और इसी बहाने थोड़ा-बहुत भारतीय उच्च शिक्षा को अन्तर्राष्ट्रीय प्रशंसा मिलती है। यह भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की विडम्बना है कि कुछ विशेषाधिकार प्राप्त समूह के बच्चों के लिए असाधारण स्तर के शैक्षणिक अवसर उपलब्ध हैं जबकि बाकी वृहद् समुदाय उस अवसर से वंचित है। आर्थिक एवं सामाजिक आधार पर अलग-अलग खाँचों में बंटा भारतीय समाज शिक्षा के स्तर पर भी बंट जाता है। विशेषाधिकारों पर आधारित यह शैक्षणिक विभाजन खतरनाक है। ''भारत में शिक्षा के क्षेत्र में जिस सख्त पदानुक्रम को बर्दाश्त किया जा रहा है, वह न केवल बुरी तरह अनुचित है बल्कि गतिशील अर्थव्यवस्था और प्रगतिशील समाज का आधार निर्मित करने में असाधारण रूप से अक्षम है। कौशल के साथ-साथ समानता पर विचार करने वाली संरचनात्मक दृष्टि से ही हम यह समझ पाएंगे कि चन्द लोगों पर असाधारण रूप से ध्यान केन्द्रित करने और बाकी विशाल बहुसंख्य भारतीयों की उपेक्षा

करने से देश को किस तरह और कितना नुकसान हो रहा है। उन बहुसंख्यकों की उपेक्षा करने से, जो आर्थिक पिछड़ेपन, जातीय विभाजनों, वर्गगत सीमाओं, स्त्री-पुरूष भेदभाव तथा असमानता और जातीयता तथा सामुदायिकता से सम्बन्धित सामाजिक विभाजनों के कारण आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं।''[6]

शिक्षा और विशेषत: उच्च शिक्षा हमारे मस्तिष्कों की जकड़बन्दियों को नष्ट करती है, हमें पूर्वाग्रहों से मुक्त करती है, मन की गांठों को खोलती है, हमें चिन्तन का मुक्त आकाश उपलब्ध कराती है। भारत में उच्च शिक्षा की समस्याएं व्यापक और जटिल हैं। इन समस्याओं की व्यापकता को सीमित करने और जटिलताओं को ढीला करने के लिए अभी बहुत प्रयास की आवश्यकता है। बाधाएं चाहें जितनी हो हमें उम्मीद तो रहेगी ही। हमारी उत्कट अभिलाषा हमें उद्देश्य से दूर नहीं होने देगी। कुछ उसी उम्मीद और विश्वास के साथ जैसा कि फैघ्ज अहमद 'फैघ्ज' ने लिखा है-

''नहीं निगाह में मंज़िल तो जुस्तजू ही सही
नही विसाल मयस्सर तो आरज़ू ही सही।''

सन्दर्भ सूची:-

भारत और उसके विरोधाभास- ज्यां द्रेज एवं अमत्र्य सेन (हिन्दी अनुवाद- अशोक कुमार), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-125-26
भारत और उसके विरोधाभास- ज्यां द्रेज एवं अमत्र्य सेन (हिन्दी अनुवाद- अशोक कुमार), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-126
भारत और उसके विरोधाभास- ज्यां द्रेज एवं अमत्र्य सेन (हिन्दी अनुवाद- अशोक कुमार), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-126
हक से ज्यादा जिम्मेदारी है आजादी - सोनम वांगचुक, अमर उजाला, 15 अगस्त 2018, सम्पादकीय पृष्ठ
हक से ज्यादा जिम्मेदारी है आजादी - सोनम वांगचुक, अमर उजाला, 15 अगस्त 2018, सम्पादकीय पृष्ठ
भारत और उसके विरोधाभास- ज्यां द्रेज एवं अमत्र्य सेन, (हिन्दी अनुवाद - अशोक कुमार), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0-139.

वर्तमान में महात्मा गांधी के अहिंसा सिद्धांत की प्रासंगिकता

दीपिका शर्मा

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर (राज.)

शोध सारांश

अहिंसा की ऐतिहासिक यात्रा में गाँधीजी 'मील का पत्थर' हैं जिनके अनुसार 'भगवद्गीता'' में जिस 'स्थितिप्रज्ञ' मानव का उल्लेख किया गया है, वह सत्य व अहिंसा के बिना प्राप्त नहीं हो सकती है। गाँधीजी ने अमेरिकन अराजकतावादी थोरों के 'सविनय अवज्ञा' को सकारात्मक स्वरूप प्रदान कर 'सविनय प्रतिरोध' का व्यावहारिक प्रयोग किया। जॉन रस्किन के ग्रन्थ 'अन टू द लास्ट' से गाँधीजी ने तीन सिद्धान्तों को ग्रहण किया, प्रथम, सबकी भलाई में व्यक्तिगत भलाई अन्तर्निहित हैं, द्वितीय, सभी लोगों को आजीविका प्राप्त करने का समान अधिकार प्राप्त है तथा तृतीय, साधारण मेहनत मजदूरी से युक्त किसान का जीवन सच्चा जीवन है। गाँधीजी लियो टॉलस्टॉय से सर्वाधिक प्रभावित थे। लियो टॉलस्टॉय ने अपने ग्रन्थ 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विद् इन यू' में आधुनिक समाज की सभी सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का हल 'प्रेम' बताया जो निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग व अहिंसा पर आधारित है। गांधीजी ने शताब्दियों पुरानी अहिंसा के दर्शन को नवीन संदर्भ में परिभाषित किया और सम्भाव्य रूप में प्रस्तुत कर बड़े पैमाने पर उन्हें जन आन्दोलनों में प्रयुक्त किया है। भारत के महान मनीषी और कर्मयोगी महात्मा गांधी ने भारत में सदियों से प्रचलित अहिंसा के सिद्धान्त को व्यावहारिक बनाया व इसके माध्यम से विश्वशान्ति का सन्देश दिया।

संकेताक्षर: शाश्वत मूल्य, विधेयात्मक शक्ति, व्यावहारिक अवधारणा, वैश्विक, प्रासंगिकता

अहिंसा की अवधारणा - भारत में हजारों वर्षो से अहिंसा का दर्शन जीवन का एक शाश्वत नियम रहा है। अहिंसा की अवधारणा के चिह्न न केवल भारतीय संस्कृति में अपितु वैश्विक स्तर पर भी प्राचीन समय से ही देखे जा सकते हैं। चीन में कन्फ्यूशियस (551-478 बी.सी), लाओत्से की शिक्षाओं में, प्राचीन यूनान में प्लेटो, स्टोइक, एपीक्युरस दार्शनिकों, यहूदी व ईसाई धर्म के पवित्र ग्रन्थों में अहिंसा, सत्याग्रह व निष्क्रिय प्रतिरोध के मूल्य स्थापित थे। भारतीय संस्कृति भी अहिंसात्मक विचारों से ओत-प्रोत है। ऋग्वेद में वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में, उपनिषद् में नैतिक गुणों के रूप में, पतंजलि के योगसूत्र में सभी जीवों के प्रति सद्भावना के रूप में, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता में कर्म के रूप में व्यावहारिक स्तर पर, जैन दर्शन में 'त्रिरत्न' के माध्यम से अहिंसा के अतिरेक स्वरूप पर, महात्मा बुद्ध के लोक नियम तथा अशोक के 'धम्म विजय' के आह्वान द्वारा अहिंसक मूल्यों को समुचित स्थान प्रदान किया गया है।

भारतीय चिंतकों में महात्मा गांधी का अनन्य स्थान है। शास्त्रीय दार्शनिक नहीं, अपितु व्यवहारिक जीवन के लिए एक नवीन दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले महान विचारक हैं। गांधीजी की नीति मीमांसा में अहिंसा का सर्वोच्च स्थान है। अहिंसा को वे परम धर्म मानते थे। उनका कहना था कि जब आप सत्य को ईश्वर के रूप में जानना चाहे तो उसका एकमात्र उपाय प्रेम तथा अहिंसा है। अहिंसा ना केवल हमारे विरोधियों को परास्त करती है अपितु हमें आंतरिक रूप से अधिक महान बनाकर अन्य मनुष्य के साथ एकता के सूत्र में बांधती है।

हृदय परिवर्तन द्वारा क्रांति का सिद्धांत अहिंसा के मनोवैज्ञानिक तथ्य पर आधारित है। क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, विद्वेष तथा स्वार्थ से प्रेरित होकर किसी प्राणी को अपने वचन अथवा कर्म द्वारा किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचाना और कष्ट पहुंचाने का विचार न करना

ही अहिंसा है। अहिंसा के इस निषेधात्मक अर्थ के अतिरिक्त गांधीजी के अनुसार उनका सकारात्मक अर्थ भी है, जिसमें प्राणियों के प्रति प्रेम, दया, सहानुभूति आदि रखने की सलाह दी गई है। उनका दृढ़विश्वास था कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक समस्याओं का स्थायी समाधान केवल शांतिपूर्ण अहिंसात्मक सिद्धांतों पर आधारित है। गांधीजी के अहिंसक विचारों की मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने वैयक्तिक अहिंसा को सामाजिकता का रूप दिया। जन-जीवन से उसका तादात्म्य संबंध स्थापित किया। अहिंसा को व्यवहारोपयोगी बनाकर उन्होंने अहिंसा के पुरातन अर्थों की सीमाओं का विस्तार किया। समसामयिक वैश्विक परिदृश्य अशान्त, अस्थिर, विवादग्रस्त व घृणास्पद है।

विश्व में शान्ति व सहयोग स्थापित करने के लिये लोगों को अहिंसा का पाठ पढ़ाना जरूरी है। अहिंसा के द्वारा ही लोगों का मन परिवर्तित किया जा सकता है। अहिंसा के विचार में मानव कल्याण की भावना है उसी के द्वारा लोग आपसी द्वेष को भुलाकर सौहार्दपूर्ण पूर्ण जीवन व्यतीत करेंगे। अत: गांधीजी का सिद्धांत समसामयिक विश्व में ही प्रासंगिक नहीं है बल्कि आने वाले समय में भी प्रासंगिक बना रहेगा।

गांधी जी के अनुसार अहिंसा: अभिप्राय एवं स्वरूप - यह सिद्धान्त देश-काल एवं परिस्थितियों से ऊपर सम्पूर्ण विश्व के कल्याण व उन्नति की कामना करने वाला सिद्धान्त है जो सभी युगों में सार्थक व प्रासंगिक है। गांधी दर्शन में अहिंसा की अवधारणा का अभिप्राय निषेधात्मक एवं विधायक अहिंसा से है। निषेधात्मक अहिंसा का आशय हिंसा का त्याग है दूसरे शब्दों में हिंसा की अनुपस्थिति ही अहिंसा है। गांधी चिंतन में निषेधात्मक हिंसा को दो भागों में विभक्त किया गया है जो निम्नांकित है ।

1. बाहरी हिंसा या स्थूल हिंसा - इसके अंतर्गत किसी कि भी हत्या करना या मारने का विचार एवं आचार आता है ।
2. आंतरिक हिंसा - आंतरिक हिंसा को मानसिक हिंसा या सूक्ष्म हिंसा भी कहा जाता है । इसके अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, असत्य जैसे विचार आते है। इस दृष्टि से गांधी चिंतन के अंतर्गत निषेधात्मक अहिंसा का अभिप्राय बाहरी अहिंसा एवं आंतरिक अहिंसा दोनों से है। उत्पत्ति की दृष्टि से अहिंसा शब्द निषेधात्मक है। महात्मा गांधी ने अहिंसा के नकारात्मक अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा कि मनुष्य का ऐसा व्यवहार हो, जिसमें हिंसा का सहारा न लिया जाय, अर्थात किसी जीव को पीड़ा न पहुंचायी जाए। महात्मा बुद्ध ने कहा था कि किसी भी जीव को कष्ट न पहुंचाया जाए, गांध ी ने उससे आगे बढ़ते हुए कहा कि विश्व के समस्त जीवों से प्रेम करो।

अहिंसा वह सिद्धान्त या नीति है जिसमें अपने विरोधी को प्रेम से जीता जाता है, घृणा या लडाई से नहीं।' अहिंसा हिंसा से अधिक शक्तिशाली है। अहिंसा एक दूसरे के प्रति प्रेम और आदर को जन्म देती है तथा सभी मनुष्यों को समान समझने की प्रेरणा देती है। गांधीजी की अहिंसा निषेधात्मक न होकर विधेयात्मक शक्ति है। गांधी की अहिंसा के तीन रूप हैं- प्रथम जागृत अहिंसा। अहिंसा व्यक्ति की अन्तर्रात्मा की पुकार पर स्वाभाविक रूप से जन्म लेती है, इस अहिंसा में असम्भव को भी संभव में बदल देने की अपार शक्ति निहित है। दूसरी, औचित्वपूर्ण अहिंसा है जिसे जीवन के किसी क्षेत्र में विशेष आवश्यकता पड़ने पर औचित्यानुसार एक नीति के रूप में अपनायी जाए। यद्यपि यह अहिंसा दुर्बल व्यक्तियों की है, पर इसका पालन ईमानदारी व दृढ़ता से किया जाय तो काफी शक्तिशाली और लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

तीसरी भीरुओं की अहिंसा, जो डरपोक व कायरों की अहिंसा है। यह निष्क्रिय अहिंसा है। कायरता व अहिंसा एक साथ नहीं रह सकते। गांधी ने कायरता को हिंसा से भी बुरा मानते हुए कहा कि यदि मुझे दोनों में से एक को चुनना हुआ, तो मैं निश्चित ही हिंसा को चुनूंगा।' इस प्रकार गांधी की अहिंसा की अवधारणा प्रगतिशील व परिस्थितियों पर निर्भर है।

अहिंसा का आधार: सत्य एवं सत्याग्रह - महात्मा गांधी के जीवन में दो मूल्यों के प्रति सबसे अधिक आग्रह और निष्ठा के दर्शन होते हैं। ये दो मूल्य हैं सत्य और अहिंसा। कहने के लिए ये दो हैं लेकिन वास्तव में उनके लिए ये एक ही मूल्य के दो पहलू थे। जो व्यक्ति सत्य पर टिका है वह अनिवार्यत: अहिंसक होगा, यह उनका मूल विश्वास था। धैर्य और संतोष इस अहिंसा की बुनियाद हैं। गांधी आस्तिक थे और ईश्वर की सत्ता में उनकी गहरी आस्था थी। उनके लिए ईश्वर का ही दूसरा नाम सत्य था और अहिंसा सत्य का दूसरा पहलू थी।

अहिंसा का अर्थ केवल दूसरों के प्रति हिंसा का प्रयोग न करना ही नहीं था। इसका अर्थ मन और आत्मा को अपने विरोधी के प्रति घृणा और द्वेष से पूरी तरह शुद्ध करना भी था। यदि मन, वचन और कर्म में एकरूपता न हुई और किसी एक में भी द्वेष या घृणा बची रह गई, तो उसे अहिंसा नहीं कहा जा सकता। राजनीति के क्षेत्र में इस अनूठे जीवन-दर्शन का कारगर इस्तेमाल करना

और वृहत्तर भारतीय जनमानस में प्रतिष्ठित करके उसे सत्याग्रह के रूप में विदेशी शासन के विरोध का हथियार बनाना, गांधी की ऐसी उपलब्धियां हैं जिन्हें सदियों तक याद रखा जाएगा। चाहे मार्टिन लूथर किंग, नेल्सन मंडेला या फिर शेख मुजीबुर्रहमान, सभी ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की।

सत्य और अहिंसा के मूल्य महात्मा गांधी की मौलिक खोज नहीं थे। भारतीय चिंतन परम्परा में ये मूल्य चिरकाल से प्रतिष्ठित और स्वीकृत रहे हैं। गांधी की महानता इस बात में थी कि इन निजी जीवन-मूल्यों का उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक प्रतिरोध के सार्वजनिक मूल्यों के रूप में पुनराविष्कार किया और अजेय माने जाने वाले ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लेने के लिए उनका उपयोग किया। सत्य और अहिंसा के प्रति उनकी आस्था इतनी गहरी थी कि यदि उनकी कीमत पर देश की आजादी प्राप्त होती हो, तो वे आजादी भी त्यागने के लिए तैयार थे।

1931 में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि अहिंसा की कीमत पर वे देश की आजादी खरीदने को तैयार नहीं हैं। इसके नौ साल बाद द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जब उनसे पूछा गया कि यदि उनके जीवनकाल में भारत स्वाधीन हो गया तो उनके कार्यकलाप क्या होंगे, महात्मा गांधी ने कहा, "यदि भारत मेरे जीवनकाल में आजाद हो गया और मेरे भीतर ऊर्जा शेष रही तो मैं सरकार से बाहर रहकर अहिंसा के आधार पर राष्ट्र-निर्माण का काम करूंगा।" सत्य और अहिंसा के इन जुड़वां मूल्यों को वे आत्मशुद्धि के लिए भी प्रयोग में लाते थे और उनका गहरा विश्वास था कि जब तक नागरिकों की आत्मशुद्धि नहीं होगी, लोकतंत्र अपने सही अर्थों में स्थापित नहीं हो सकता।

महात्मा गांधी का लक्ष्य विश्व शांति था और इसके लिए वे सच्चे अर्थों में "वसुधैव कुटुंबकम" के आदर्श का पालन करने के लिए कटिबद्ध थे। 1924 के आरंभ में, जब वे भारतीय राष्ट्रवाद के प्रबल प्रवक्ता के रूप में दुनिया भर में ख्याति प्राप्त कर चुके थे, गांधी ने बेलगांव में संपन्न हुए कांग्रेस अधिवेशन में कहा था कि आज के बेहतर विचारक एक-दूसरे से सदा युद्धरत पूर्णतः संप्रभु राष्ट्र नहीं, बल्कि स्वाधीन और मित्र राष्ट्रों के एक संघ की स्थापना चाहते हैं।

1930 के दशक में जब यूरोप और एशिया में फासिज्म जोर पकड़ रहा था, गांधी ने हमलावर देशों का अहिंसक तरीके से सामना करने का सुझाव दिया, क्योंकि सभी युद्ध दूसरे देशों पर कब्जा जमाकर उनके संसाधनों का शोषण करने के लिए किए जाते हैं और उनके मूल में राष्ट्रों का अनियंत्रित लोभ और लिप्सा होती है, इसलिए गांधी राष्ट्रवाद को मानवता के ऊपर रखने के विरुद्ध थे। उनके विचार में सैन्यवाद की समाप्ति के लिए प्रतिस्पर्धापरक लोभ, भय और घृणा की समाप्ति अनिवार्य थी।

शान्ति निर्माण में अहिंसा का महत्त्व - उन्होने शान्ति की संकल्पना को इसके नकारात्मक पक्ष से निकालकर रचनात्मक पक्ष का रूप दिया। गांधी ने संघर्ष को समझने और संपोषित शान्ति की स्थापना करने के लिए एक सुस्पष्ट रूपरेखा विकसित की। यह रूपरेखा उनकी मानव प्रकृति की अवधारणा से एकीकृत रूप से जुडी है। गांधी का विष्वास है कि मानव जाति में स्वाभाविक तौर पर अच्छाई रहती है। उनका मानना था कि मानव जाति में अहिंसा को पूरी संभाव्यता से विकसित करने की क्षमता है। उनका यह भी मानना था कि सारी मानव जाति का सम्बन्ध ईष्वर से है।

चूंकि ईश्वर और मानव जाति परस्पर एक दूसरे से जुड़े हैं, इसलिए अहिंसा मानव जाति का एक अटूट गुण है। उनके अनुसार अहिंसा का मार्ग और कुछ नहीं है बल्कि ईष्वर का मार्ग है। गांधी का मानना है कि मानव जाति के अन्दर अहिंसात्मक ढ़ंग से संघर्ष का निपटारा करने की पूरी संभाव्यता है। उनके शान्ति के दर्षन का अत्यधिक मौलिक सिद्धान्त अहिंसा ही है। गांधी के अनुसार अहिंसा के सार्वभौम मानवीय मूल्य का न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि गांव, राष्ट्रीय और वैष्विक स्तर पर भी प्रयोग करना चाहिए। संसार में संपोषित शान्ति स्थापित किए जाने का यह एक प्रभावषाली दृष्टिकोण है।

गांधी के शान्ति निर्माण प्रयासों के लिए अहिंसात्मक साधन कई कारणों से बहुत महत्त्वपूर्ण थे। प्रथम, अहिंसा का अर्थ किसी को विचार या कार्य द्वारा कष्ट न देना है। द्वितीय, गांधी की अहिंसा अत्यधिक गतिषील व सकारात्मक अवस्था लिए है। उदाहरण के लिए अपने विरोधी से भी प्रेम और करूणा से व्यवहार करना। यह प्रेम एक साधन की भांति कार्य करके सत्य के साध्य की प्राप्ति कराता है। गांधी ने सम्पूर्ण सत्य को ईष्वर माना है और उनके अनुसार सम्पूर्ण सत्य और ईष्वर में कोई अंतर नहीं हैं। गांधी ने यह भी कहा है कि मानव जाति जिस सत्य को जानती है वह कभी सम्पूर्ण नहीं रहा, बल्कि सापेक्ष था और मानव जाति ने इसमें भागेदारी की। इसलिए सत्य, ईष्वर, का साधक अहिंसा के मार्ग का अवलम्बन करता है क्योंकि जब तक वह अहिंसा के साधन का प्रयोग नहीं करेगा, तब तक अन्य व्यक्ति के सत्य के विचार के प्रति वह अनजान ही रहेगा।

समसामयिक वैश्विक परिदृश्य अशान्त, अस्थिर, विवादग्रस्त व घृणास्पद है। विवाद व समस्याऐं दिन प्रति दिन बढ़ रही हैं। तनावपूर्ण वातावरण उत्पन्न हो रहा है एवं राज्यों में अस्थिरता बढ़ती जा रही है। राज्यों में भौगोलिक सीमाओं के साथ धर्म, संस्कृति व नैतिकता के आधार पर भी वैमनस्य बढ़ता जा रहा है। इन सब पक्षों का संगठित हिंसा अर्थात् आतंकवाद अपने पक्ष में प्रयोग करने का प्रयास कर रहा है। आज विश्व के समक्ष हिंसा या आतंकवाद एक प्रमुख समस्या बन गयी है। व्यक्तियों के समूह व राष्ट्र अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए हिंसा को एक हथियार के रूप में प्रयोग करने लगे हैं।

हिंसा के लिए लोगों को उकसाने व हिंसा को वैधानिक ठहराने के लिए धर्म, नैतिकता, विचारधारा, आर्थिक व सामाजिक असमानताओं को मुद्दा बना कर इनका प्रयोग किया जाता है व व्यक्तियों तथा राष्ट्रों में हिंसा के पक्ष में उन्माद पैदा किया जा रहा है। इससे विश्व में अशान्ति उत्पन्न हो रही है व अराजकतापूर्ण माहौल बन रहा है। राज्यों के समानान्तर अन्य संगठन पनप रहे हैं जो सम्पूर्ण व्यवस्था को चुनौती देकर विश्व में अशान्ति, अव्यवस्था व अराजकता को बढ़ावा दिया जा रहा है,तथा हिंसा व आतंकवाद सब जगहों पर सर्वोच्चता की स्थिति प्राप्त कर रहा है। विश्व आज हिंसा व आतंकवाद से मुक्ति का उपाय खोजने में लगा हुआ है। हिंसा व आतंकवाद विविध आयामी हो गया है। जिसे रोकने के उपाय भी विविध आयामी ही हो सकते हैं।

समकालीन विश्व मे अहिंसावादी मूल्यो की प्रासंगिकता – समकालीन विश्व कई समस्याओं का सामना कर रहा है जिनकी प्रकृति राजनीतिक, आर्थिक और मानवतावादी है। गांधीवादी व्यवहार में ही उपरोक्त समस्यों का समाधान समाहित है। गांधीवाद के केन्द्रीय मूल्यों पर आधारित रणनीतियों को अपनाकर ही इन मुद्दों को सलझाया जा सकता है। आतंकवाद की समस्या युद्व के विकास की नही है बल्कि यह इससे कही अधिक राजनीतिक व सामाजिक-मुद्दो से जुडी समस्या है।

आंतकवाद की जड़े सामाजिक – मनोवैज्ञानिक कारको से जुडी है। यहां व्यक्ति का व्यवहार एक उपयुक्त कारक है। परिणामत: अगर किसी भी समाधान में आतंकवादी की मानसिकता का परिवर्तित करने की बात नही है, तब वह सफल नही हो सकता है। यहाॅ पर गाॅधीवादी मूल्यो की प्रासंगिकता बढ जाती है। गाॅधीवाद का विश्वास है कि जो व्यक्ति इस प्रकार की गतिविधियों में शामिल है,उनका हृदय परिवर्तन किया जा सकता है। गांधी का विष्वास है कि व्यक्ति का आत्मा का रूपान्तरण किए बिना समाज मे सुधार नही लाया जा सकता है। इसलिए स्थायी शान्ति और आतंकवाद की समस्या के पूर्ण समाधान के लिए व्यक्ति के व्यवहार में सुधार आवष्यक है।

राज्य एक तरफ तो नागरिक समाज की स्थापना के लिए प्रयास करे दूसरी तरफ, वह पड़ोसी राज्यों से विश्वास बनाए रखने के लिए विश्वास निर्माण उपाय की प्रक्रिया को प्रारम्भ करे। इस प्रकार मानवता के व्यापक क्षेत्र में गांधीवादी केन्द्रीय मूल्यों के प्रसार द्वारा शान्ति की संस्कृति के विकास की तत्काल आवश्यकता है। परिणाम चाहे शीघ्र दिखाई न में हैं, परन्तु दीर्घकाल में ये मूल्य वैश्विक शान्ति के निर्माण में मुख्य आधार के रूप में कार्य करेंगे।

इसलिए गांधीवाद समकालीन विश्व को पीड़ा पहुंचा रही समस्याओं को समझने के लिए न केवल प्रासंगिक है बल्कि यह राज्यों के बीच गांधीवादी मूल्यों की उपयोगिता के लिए जागरूकता पैदा करने का एक ट्रेड यंत्र भी है। इस वर्तमान शताब्दी में गांधीवाद की प्रासंगिकता निर्विवाद है। यह अहिंसा के केन्द्रीय मूल्य पर आधारित समय की कसौटी पर खरी एक विचारधारा है जिसका मूलभूत उद्देष्य शान्ति प्राप्त करना है। वैष्विक शंकाओ और वाद-विवाद के बावजूद, समकालीन विष्व में इस दर्षन की अत्यधिक प्रासंगिकता है।

निष्कर्ष – इस प्रकार गांधीजी की नीति मीमांसा में अहिंसा का सर्वोच्च स्थान है। गांधीजी सम्पूर्ण विश्व को परिवार मानते हुऐ अहिंसा को वैश्विक शान्ति व एकता को सुनिश्चित करने वाली एक अनिवार्य व अपरिहार्य ताकत मानते है। गांधी की अहिंसा सर्वाधिक विषय परिस्थितियों में भी सामाजिक परिवर्तन व राजनीतिक गतिविधि के लिए मौलिक व रचनात्मक पद्धति है।' अहिंसा, प्रत्येक समस्या के व्यावहारिक समाधान के लिए नैतिक आधार तैयार करती है।

गांधी के अन्य विचार जैसे सत्य स्वदेशी, स्वशासन, ट्रस्टीशिप, श्रम साधना आदि सभी विचारों की सार्थकता में ही अहिंसा की सार्थकता दिखती है। समकालीन विश्व कई समस्याओं का सामना कर रहा है जिनकी प्रकृति राजनीतिक, आर्थिक और मानवतावादी है। इन समस्याओं का समाधान गांधीवादी व्यवहार को अपनाने में ही निहित है। यद्यपि गांधीवाद को व्यवहार में लाना एक चुनौती

भरा कार्य है। द्विपक्षीय और वैश्विक शान्ति की प्राप्ति में राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न, शक्ति प्रतिमान, हथियारों की दौड़ और नरसंहार के हथियार इत्यादि मुददे संकट पैदा करते है। इस प्रकार की नकारात्मक घटनाओं को सुलझाने के लिए नई रणनीतियों का विकास करने की आवश्यकता है। विश्व में शान्ति व सहयोग स्थापित करने के लिये लोगों को अहिंसा का पाठ पढ़ाना जरूरी है। अहिंसा के द्वारा ही लोगों का मन परिवर्तित किया जा सकता है। गांधीवादी व्यवहार में ही उपरोक्त समस्यों का समाधान समाहित है।

सन्दर्भ सूचीः-

1. गाबा, ओ.पी., भारतीय राजनीति विचारक, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2011, पृ.सं. 182
2. कश्यप, सुभाष, राजनीति कोष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, अगस्त 2011, पृ.सं. 326
3. गाबा, ओ.बी., पूर्वोक्त, पृ.सं. 183
4. अवस्थी और अवस्थी, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2003, पृ.सं. 290
5. चक्रवर्ती, विद्युत, आधुनिक भारतीय राज. चिन्तन, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2012, पृ.सं. 63
6. सुजाता, गांधी की नैतिकता, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, राजघाट वाराणसी, 2013, पृ.सं. 13
7. मिश्र, अनिल दत्त, गांधी एक अध्ययन, पीयर्सन, दिल्ली, 2012, पृ.सं. 185
8. गर्ग, पूनम, गांधी की विचारधारा पर पश्चिम का प्रभाव, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1995. पृ.सं. 10

भारतीय समाज से समाप्त होते संयुक्त परिवार (वैशाली जिला के हाजीपुर के संदर्भ में)

ताहिरा परवीन

शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

आज के बदलते सामाजिक परिदृश्य में जितनी तेजी से संयुक्त परिवार टूट रहे हैं ऐसा लगता है मानो कुछ समय में इसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। संयुक्त परिवार ही वह स्थान है जहाँ बच्चे सभी संस्कार सीखते हैं, बेरोजगारों एवं विधवाओं को सुरक्षा प्राप्त होती है, वृद्धों का अंतिम समय भी सुविधा और सुख से व्यतीत होता है। नैतिकता की पहली पाठशाला माना जाने वाला संयुक्त परिवार को वर्तमान पीढ़ी भूलती जा रहा है कि इसका आनंद कैसा होता है। संयुक्त परिवार के टूटने के पीछे अनेक कारणों में से औद्योगीकरण एवं नगरीकरण प्रारंभिक प्रमुख कारण है। इसके अतिरिक्त आवास की समस्या, बढ़ती दैनिक जिम्मेदारी, महिलाओं का कामकाजी होना, पारिवारिक झगड़े, सुविधायुक्त जीवन की लालसा आदि ऐसे कारण हैं जो संयुक्त परिवार की प्रथा को लगातार तार-तार कर रहे हैं। संयुक्त परिवार के महत्व को इसके अभाव में ही समझा जा सकता है। एकल परिवार के लोग मानसिक विकलांगता तथा जिम्मेदारियों के बोझ से दबे हुए हैं जिससे उनमें तनाव एवं आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ रही है। संयुक्त परिवार सुसंस्कृत तथा सभ्य समाज की आवश्यकता है, यह आवश्यकता तभी पूर्ण होगी जब समाज की नींव अर्थात् परिवार सुसंगठित हो।

शब्द कुंजी: सामाजिक परिदृश्य, अस्तित्व, वर्तमान पीढ़ी, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण, मानसिक विकलांगता, तनाव, आत्महत्या।

प्रस्तावना

परिवार शब्द अंग्रेजी के थ्ंउपसल शब्द का हिन्दी रूपांतरण है जो लैटिन भाषा के थ्ंउनसने शब्द से बना है। संयुक्त परिवार ऐसा परिवार है जिसमें हमारे दादा-दादी, मम्मी-पापा, चाचा-चाची, ताऊ-ताई और सभी के बच्चे सब एक साथ रहते हैं। परिवार के मुखिया के जीवन में उसका पुत्र पृथक गृहस्थी नहीं बसाता तथा परिवार के नियमों का पालन सभी के लिए अनिवार्य होता है। एक घर-एक रसोई इसकी प्रमुख विशेषता है।

संयुक्त परिवार की परिभाषा

आई.पी. देसाई के अनुसार- ''उस परिवार को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें एक परिवार से अधिक पीढिघ्यों के सदस्य रहते हैं, सभी सदस्य परस्पर सम्पत्ति, आय, अधिकार व कर्त्तव्यों से संबंधित रहते हैं।''

इरावती कर्वे के अनुसार- ''संयुक्त परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो एक ही निवास स्थान में रहते हैं, एक ही रसोई में बना भोजन करते हैं जिनकी सामान्य सम्पत्ति होती है जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं तथा किसी न किसी रक्त संबंध द्वारा आपस में बंधे रहते हैं।''

श्रीनिवास के अनुसार- ''वह गृहस्थ समूह जो एकाकी परिवार से बड़े होते हैं जिसमें प्राय: दो या दो से अधिक परिवार होते हैं, संयुक्त परिवार कहलाते हैं।''

संयुक्त परिवार की विशेषताएँ

संयुक्त परिवार को इसकी विशेषताओं के आधार पर इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

परिवारों का संग्रह - इसमें दो या दो से अधिक प्राथमिक परिवारों का संग्रह होता है।

मुखिया का नियंत्रण - ऐसे परिवारों में सम्पत्ति तथा आर्थिक व सामाजिक कार्य पर मुखिया का नियंत्रण रहता है।

एक सामान्य भोजन व निवास - समस्त परिवारों का भोजन एक ही किचन में एक समान तैयार होता है। खान-पान के साथ रहन-सहन का स्तर भी एक सा ही होता है।

सभी सदस्यों के साथ समान व्यवहार - संयुक्त परिवारों में सदस्यों का व्यवहार समानता पर आधारित होता है।

आयु के आधार पर प्रस्थिति का निर्धारण - संयुक्त परिवारों में प्रस्थिति का निर्धारण आयु के आधार पर होता है जैसे पति का पद पत्नी से ऊँचा होता है तथा बड़ी आयु वाले व्यक्ति की प्रस्थिति कम आयु वाले व्यक्ति से ऊँची होती है।

स्वस्थ्य मनोरंजन का केन्द्र - ऐसे परिवारों में स्वस्थ्य मनोरंजन के लिए प्राय: कोई-न-कोई कार्यक्रम होते हैं जिससे वातावरण मनोरंजनात्मक बना रहता है।

संयुक्त दायित्वों के आदर्श पर परिवार का कार्य संचालन - इस आधार पर यदि पिता किसी अनिवार्य कार्य के लिए ऋण लेता है तो उसके पुत्रों का यह दायित्व हो जाता है कि वे भी ऋण चुकाने में अपना पूरा योगदान दें।

भ्रातृक संबंधों की दाम्पत्य संबंधों पर वरीयता - इसमें रक्त संबंधों को वैवाहिक संबंधों की अपेक्षा वरीयता दी जाती है। पति-पत्नी के संबंध पिता पुत्र के संबंधों की अपेक्षा निम्न माने जाते हैं।

संयुक्त परिवार के टूटने के कारण

समस्यात्मक बात यह है कि संयुक्त परिवार तेजी से टूट रहे हैं। एकाकी परिवार की सुविधाओं ने लोगों को इस प्रकार आकर्षित किया है कि पति-पत्नी और उनके बच्चे ही उनका परिवार है। बच्चे दादा-दादी की गोद भूल चुके हैं। इनके लोरियों की जगह मोबाईल राइम्स ने ले लिया है। इस प्रकार संयुक्त परिवार प्रथा धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। इसके लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी है।

औद्योगिक क्रांति - औद्योगिक क्षेत्र में उन्नति से यातायात और संचार भी आसान हुए। परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार नाभकीय परिवार में परिवर्तित हो गए।

नगरीकरण - नगरीकरण के कारण भी शहरों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ी जिसने संयुक्त की प्रथा को ढीला किया।

रोजगार की तलाश - गाँवों से रोजगार की तलाश में जाने वाले युवक रोजगार मिलने पर वहीं बस जाते हैं तथा अपना परिवार भी ले जाते हैं।

कामकाजी महिलाएं - संयुक्त परिवार के टूटने का एक कारण महिलाओं का कामकाजी होना भी है जिसमें महिलाएं अपने घरेलु दायित्वों का निर्वहन उचित ढंग से न कर पाने की अवस्था में संयुक्त परिवार से अलग हो जाती है।

पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति - पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोगों में अपने प्राचीन संस्कृति के प्रति वो निष्ठा एवं रूचि नहीं रही जो उन्हें अपनी संस्कृति से जोड़े रखे।

कानुनों का प्रभाव - संयुक्त परिवार व्यवस्था में कोई सदस्य अपनी पृथक सम्पत्ति नहीं रख सकता था किन्तु हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1929 ने संयुक्त परिवार से अलग होने की चाहत रखने वालों को सम्पत्ति का उत्तराधिकार बनाया। इसी प्रकार सम्पत्ति का अधिकार अधिनियम 1939, विशेष विवाह अधिनियम 1954, हिन्दू विवाह विच्छेद अधिनियम 1955 जैसे कानूनों ने संयुक्त परिवार प्रथा को कमजोर किया।

नवीन सामाजिक सुरक्षाएँ - पहले सुरक्षा का कार्य केवल संयुक्त परिवार करता था किन्तु अब राजकीय एवं केन्द्रीय संस्थाएं, इंश्योरेंस कम्पनियाँ आदि व्यक्ति को अनेक प्रकार की सुविधा एवं सुरक्षा प्रदान करती है जो संयुक्त परिवार की प्रथा पर कुठाराघात करती है।

परिवर्तित मनोवृत्तियाँ - पहले संयुक्त परिवार के सदस्यों में परस्पर प्रेम एवं सहयोग की भावना प्रबल होती थी किन्तु आज लोगों में स्वार्थ सिद्धि की भावना ज्यादा है जो एकाकी परिवार की ओर आकर्षित करती है।

परंपरागत व्यवसाय का समाप्त होना - वर्तमान में योग्यता एवं कुशलता के आधार पर जीविका का उपार्जन होने लगा है, इस परिवर्तन ने संयुक्त परिवार की आंतरिक संरचना को विघटित किया है।

धर्म के प्रति उदासीनता - शिक्षा के विकास के कारण अब लोगों की धार्मिक बंधन कमजोर होती जा रही है। अत: धर्म अर्थ जैसी पुरुषार्थ तथा यज्ञों की पूर्ति करना परिवार का अनिवार्य कार्य नहीं रहा जो संयुक्त परिवार के विखण्डन का एक कारण है।

संयुक्त परिवार का महत्व

परिवार समाज की प्रथम इकाई है, समाज की कल्पना परिवार बिना अधुरी है तथा सही मायने में परिवार संयुक्त परिवार को ही कहा जा सकता है जिसमें हमारे बच्चों को एक सुरक्षित वातावरण मिलता है कि वे अपना सामाजिक, मानसिक, शारीरिक विकास कर पाते हैं। समग्र विकासात्मक क्रिया में परिवार एक ढ़ाल की तरह सुरक्षा प्रदान करता है। संयुक्त परिवार के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

उचित श्रम विभाजन - सभी सदस्यों में कार्यों का विभाजन होता है, जो जिस कार्य में पारंगत होता है वो उसी कार्य का चयन करता है। इस प्रकार विशेषज्ञों का समूह ही परिवार में एकत्र हो जाता है।

मानसिक संतोष - कार्यों के उचित वितरण की हीं तरह क्षमतानुसार खर्चों का भी विभाजन होता है जिससे सभी में मानसिक संतोष बना रहता है।

सहयोग और पारस्परिक सहायता का केन्द्र - परिवार में किसी के विवाह का मामला हो या कोई दुर्घटना हो सभी परिस्थितियों में सभी सक्षम सदस्य पारस्परिक सहयोग से कार्य को सुगमता से सफल करते हैं।

भावात्मक सहयोग - संयुक्त परिवार में सदस्यों को आर्थिक सहयोग के साथ-साथ जो भावात्मक सहयोग प्राप्त होता है उसे अन्य कहीं भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। अत: किसी विपत्ति के समय कोई खुद को असहाय नहीं समझता।

मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति - संयुक्त परिवार ही एक मात्र स्थान है जहाँ व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है जैसे- प्रेम, करूणा, सहानुभूति आदि।

बच्चों के समाजीकरण में सहायक - समाजीकरण की प्रक्रिया संयुक्त परिवार में ही भली-भांति सम्पूर्ण होती है जहां प्रत्येक बच्चा अपने परिवार से सामाजिक प्राणी बनने के गुण सीखता है।

चरित्र निर्माण में सहायक - इसमें सभी सदस्य एक-दूसरे के आचरण-व्यवहार पर नियंत्रण रखते हैं जिसके कारण परिवारजनों में पथ भ्रमित होने की संभावना कम हो जाती है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. संयुक्त परिवार के टूटने के कारणों का पता लगाना।
2. संयुक्त परिवार के महत्वों का वर्णन करना।

शोध क्षेत्र का अध्ययन - प्रस्तुत शोध में अध्ययन क्षेत्र के रूप में बिहार राज्य के वैशाली जिला के हाजीपुर प्रखण्ड का चयन किया गया है। हाजीपुर का प्राचीन नाम उच्चकला था। मध्यकाल में बंगाल के गवर्नर रहे हाजी इलियास शाह ने यहां लम्बे समय तक शासन किया तथा इन्हीं के नाम से इस शहर का नामकरण किया गया। वैशाली जिला को गणतंत्र की जननी के नाम से जाना जाता है।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत लघु शोध में वर्णात्मक अध्ययन पद्धति द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति का लक्ष्य रखा गया है। यह प्रविधि क्या है का वर्णन करती है।

तथ्य संकलनः प्रस्तुत शोध में तथ्यों के संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों विधियों का उपयोग किया गया है।

निदर्शनः प्रस्तुत शोध में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति द्वारा 50 ऐसे निदर्शों का चयन किया गया है जो पहले संयुक्त परिवार में रहते थे।

आंकड़ों का विश्लेषणः वर्तमान शोध हेतु चयनित व्यक्तियों से साक्षात्कार प्रक्रिया द्वारा प्राप्त तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है–

तालिका - 1: प्रश्न - आपका संयुक्त परिवार से पृथक होने का मुख्य कारण क्या है?

	विकल्प	उत्तरदाता	प्रतिशत
1.	घरेलु झगड़े	16	32
2.	मानसिक परेशानी	08	16
3.	सम्पत्ति का बंटावारा	12	24
4.	उपरोक्त सभी	14	28
	कुल	50	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि संयुक्त परिवार के टूटने का मुख्य कारण घरेलु झगड़े हैं जिससे 32 प्रतिशत ने अपना अलग होना स्वीकार किया। 16 प्रतिशत ने मानसिक परेशानी से बचने के लिए, 24 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सम्पत्ति के बंटवारे के साथ ही एकाकी परिवार को स्वीकार किया तथा 28 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिन्होंने सामूहिक कारणों से संयुक्त परिवार को छोड़ा।

तालिका - 2: प्रश्न - क्या संयुक्त परिवार से पृथक होकर आपकी परेशानी दूर हुई?

विकल्प	उत्तरदाता	प्रतिशत
हाँ	36	72
नहीं	04	08
काफी हद तक	10	20
कुल	50	100

तालिका-2 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 72 प्रतिशत उत्तरदाताओं की समस्या समाप्त हो गयी, 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संबंध में अपनी असहमति जताई है, 20 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे भी हैं जिनकी समस्या पूरी तरह तो समाप्त नहीं हुई है किन्तु काफी हद तक समाधान हुआ।

तालिका - 3: प्रश्न - संयुक्त परिवार से अलग होने के पश्चात् कभी ऐसा लगता है कि संयुक्त परिवार में रहकर आपका परिवार ज्यादा सुरक्षित था?

विकल्प	उत्तरदाता	प्रतिशत
हाँ	33	66
नहीं	06	12
कभी-कभी	11	22
कुल	50	100

तालिका-3 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 66 प्रतिशत उत्तरदाता एकाकी परिवार से ज्यादा संयुक्त परिवार को सुरक्षा के लिए उचित मानते हैं। 12 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विचार नकारात्मक है तथा 22 प्रतिशत को संयुक्त परिवार कभी-कभी ही ज्यादा सुरक्षित लगता है।

तालिका - 4: प्रश्न - एकाकी परिवार में रहते हुए आप संयुक्त परिवार को किस कार्य में बेहतर समझते हैं।

विकल्प	उत्तरदाता	प्रतिशत
बच्चों के पालन-पोषण एवं समाजीकरण में	12	24
आर्थिक निर्बलता एवं दुर्घटना में	15	30
किसी बड़े निर्णय लेने में	09	18
उपरोक्त सभी में	14	28
कुल	50	100

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 24 प्रतिशत उत्तरदाता बच्चों के पालन-पोषण तथा समाजीकरण के लिए संयुक्त परिवार को बेहतर समझते हैं, 30 प्रतिशत आर्थिक निर्बलता तथा दुर्घटना में संयुक्त परिवार को बेहतर समझते हैं तथा 18 प्रतिशत उत्तरदाता किसी बड़े निर्णय को लेने में एकाकी परिवार को उचित नहीं समझते तथा 28 प्रतिशत उत्तरदाता उपरोक्त सभी कार्यों के लिए ही संयुक्त परिवार को ही उचित मानते हैं।

उपसंहार

एक अच्छा परिवार सुसंस्कृत तथा सुसभ्य समाज की आवश्यकता है और ये आवश्यकता केवल संयुक्त परिवार में ही पूरी हो सकती है किन्तु अब संयुक्त परिवार की प्रथा विलुप्त होती जा रही है और यह समस्या हमारे समाज के लिए घातक है। समाज की मानसिकता अब अपने स्वार्थ तक सिमट कर रह गयी है, कोई अपनी बेटी की शादी भी संयुक्त परिवार में करना नहीं चाहता किन्तु सुविधाएं संयुक्त परिवार वाली चाहिए। इन सभी बातों के पीछे मुख्य बिन्दु है। आत्मीयता की भावना का समाप्त होना, उदारता का लोप होना, सहनशीलता का कम होना जैसे अनेक कारण है जो संयुक्त परिवार से एकाकी परिवार की ओर ले जा रहे हैं, जहाँ कई रीति-रिवाजों और परंपराओं की समाप्ति हो चुकी है, परिणामस्वरूप बड़े-बूढ़ों को मार्गदर्शक के स्थान पर बोझ समझा जा रहा है। अपने ही बच्चे आज माता-पिता के साथ सामंजस्य नहीं कर पा रहे हैं। यदि हम चाहते हैं कि समाज की नींव मजबूत हो तो इसके लिए संयुक्त परिवारों के बिखराव को रोकने की खास जरूरत है। अतः संयुक्त परिवार के महत्व को नजरअंदाज न करते हुए उसके महत्व को समझने की जरूरत है।

संदर्भ सूची

1. देसाई आई. पी. (1956) ''द ज्वाइंट फैमिली इन इंडिया: एन एनालाइसिस सोशल बुलेटिन'', वॉल्युम 5, नं. 2
2. मुखर्जी आर.के. और डी. नारायण (1975) ''एक्सप्लोरेशन इन द फैमिली एण्ड अदर ऐसेज'', थैकर एण्ड कम्पनी, मुम्बई।
3. कपाडिया के.एम. (1966) ''मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बई।
4. देसाई आई.पी. (1964) ''सम एक्सपेक्ट ऑफ फैमिली इन महुआ'' एशिया पब्लिकेशन हाउस, मुम्बई।
5. कपाडिया के.एम. (1966) ''मैरिज एण्ड फैमिली इन इंडिया'' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बई।
6. Khalid Afifa, M. Sadia and more (2021) "Joint family or Nucler Family: The youth's perspective. Asian Journal of Social Science, ISSN(E) 2313-7401/ISSN (P) 2518-0096.
7. Orenstein H., Micklin M. (1967) "The Hindu Joint Family: The norm & number", University of British Columbia, Pacefic Affairs, 39(3), 31+325, Available at 10. 2307/275427.
8. www.google.com.

महिला स्वास्थ्य में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की भूमिका

डॉ० मोनिका यादव

स्कूल व्याख्याता, राजनीति विज्ञान, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, कमानियाँ (हरियाणा)

भारत की स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ भिन्न-भिन्न हैं। संक्रामक रोग मुख्यत: क्षयरोग और मलेरिया देश में व्याप्त रोगों में प्रमुख है। इसके अलावा, मधुमेह, हाइपरटेंशन, कैंसर तथा मानसिक रोग सहित गैर-संक्रामक (एनसीडी) रोगों का जोखिम बढ़ रहा है। यद्यपि हमने मातृ एवं शिशु मृत्यु-दर को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, फिर भी वे एक चुनौती बनी हुई हैं। हमारे स्वास्थ्य कर्मियों के कौशल में सुधार लाने और देश भर में इनकी उपलब्धता सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय सभी को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य देखभाल उपलब्ध करने हेतु विभिन्न योजनाओं, कार्यक्रमों एवं राष्ट्रीय पहलों को कार्यान्वित कर रहा है। इसका उद्देश्य अवसंरचना की कमी वाले क्षेत्रों में नई आधारभूत संरचना विकसित करके और मौजूदा संस्थाओं में जो आधारभूत संरचना है उसे उन्नत बनाकर विकेंद्रीकृत सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली तक पहुँच बढ़ाना है। एक एकीकृत और समग्र दृष्टिकोण प्रदान करने की प्रक्रिया के एक भाग के रूप में कई अलग-अलग कार्यक्रमों को राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) के व्यापक छत्रछाया में एकीकृत कर दिया गया है। इनमें से कुछ कार्यक्रम ये है- नेमी प्रतिरक्षा (आरआई), राष्ट्रीय वेक्टर जनित रोग नियंत्रण (एनवीबीडीसीपी), संशोधित राष्ट्रीय क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम (आर एन टी सी पी), समेकित रोग निगरानी कार्यक्रम (आईडीएसपी), राष्ट्रीय दृष्टिहीनता नियंत्रण कार्यक्रम (एनपीसीबी), राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम (एनएमएचपी), बुजुर्गों की स्वास्थ्य देखभाल के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीएचसीई) और राष्ट्रीय कैंसर, मधुमेह, हृदयवाहिका रोग एवं आघात रोकथाम और नियंत्रण कार्यक्रम (एनपीसीडीसीएस)। इसके अतिरिक्त आपदा प्रबंधन, अस्पतालों एवं औषधालयों के पुनर्विकास आदि को सुदृढ़ करने के लिए भी केन्द्र सरकार द्वारा सहायता प्रदान की जाती है।[1]

राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (एन.यू.एच.एम.), राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के तहत् एक उप-मिशन है जो शहरी गरीबों व संवेदनशील जनसंख्या पर ध्यान केंद्रित करते हुए शहरी जनसंख्या की स्वास्थ्य परिचर्या आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन में 50,000 से अधिक की आबादी वाले सभी शहर तथा कस्बे और जिला मुख्यालय व राज्य मुख्यालय शामिल हैं जबकि छोटे नगरों/कस्बों को राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत शामिल किया जाएगा। सिक्किम सहित उत्तर पूर्वी राज्यों तथा अन्य विशेष श्रेणी वाले राज्य जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश व उत्तराखंड, जिनके लिए केंद्रीय राज्य वित्त पोषण पैटर्न 90:10 है को छोड़कर सभी राज्यों का केंद्रीय राज्य वित्त-पोषण पैटर्न 75:25 है।

राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन के तहत् झुग्गी-वासियों तथा शहरी गरीब जनसंख्या के लिए चलाए जा रहे लक्षित क्रियाकलाप निम्नलिखित है:-

- 1000-2500 जनसंख्या, जिसमें 200-500 घर शामिल हों, पर एक आशा कर्मी होगी जो स्वास्थ्य सुविधाओं तथा शहरी ग्रामीण जनसंख्या के बीच प्रभावी, माँग-सृजन संपर्क के रूप में सेवाऐं देगी।

- महिला आरोग्य समिति (एमएएस) 250-500 जनसंख्या वाले 50-100 परिवारों के लिए होगी तथा झुग्गियों में समुदायिक आधारित सहयोगी शिक्षा समूह के रूप में कार्य करेगी। ये समिति निवारक व संवर्धक परिचर्या पर ध्यान केंद्रित करने के साथ समुदाय को जुटाने, निगरानी करने तथा रेफरल में शामिल होगी।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन कार्यक्रम के तहत् प्रयासों की पूर्ति के दृष्टिकोण के साथ राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन को अग्रेषण लिंकेज योजना उत्तर पूर्व में 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान शुरू की गई, यह अन्य स्वास्थ्य योजना से होने वाली संभावित बचत से वित्त-पोषित की जायेगी। इसका लक्ष्य गहन रूप में क्षेत्र की तृतीयक व द्वितीयक स्तर की स्वास्थ्य अवसंरचना में सुधार करना है। 12वीं योजना में इस योजना हेतु 748.00 करोड़ रु. का परिव्यय तैयार किया गया है।[2]

परिवार नियोजन को महत्वपूर्ण कार्यकलाप के रूप में मातृ एवं बाल मृत्यु दर कम करने लिए किया गया है तथा न कि केवल जनसंख्या स्थिरीकरण उपलब्धि हेतु कार्यनीति के रूप में पुनर्गठित किया गया है। नए उपकरण (सीयूआईयूसीडी) व नई पद्धति (पीपीआईयीसीडी) के आरंभ होने से पसंद के विकल्पों में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, पीपीआईयूसीडी के संवर्धन तथा आशा कर्मियों व पीपीआईयूसीडी सेवा प्रदाताओं हेतु प्रतिपूर्ति योजना आरंभ की गई थी। परिवार कल्याण सेवाओं की प्रदानगी हेतु विभिन्न सुविधाओं के परिचालन पर और अधिक बल दिया गया है।

चालू आशा योजना (गर्भनिरोधकों की घर पर डिलीवरी/जन्म के अंतराल को सुनिश्चित करना/गर्भावस्था जाँच किटों) ने एफपी कार्यक्रमों का सामुदायिक स्तर पर विकास किया है। इन्फोरमेंषन, एज्युकेषन एण्ड कम्युनिकेषन्स (आईईसी) बेसल सैल र्केसीनोमा (बीसीसी) के अतिरिक्त रिप्रोडेक्टिव, मेटरनल, न्यूबोर्न एण्ड चाईल्ड हैल्थ+ए (आरएमएनसीएच+ए) परामर्शदाताओं का शुभारम्भ, परिवार नियोजन सेवाओं हेतु माँग व जागरूकता पैदा करने का एक साधन है।

स्वास्थ्य नीति

पंचवर्षीय योजनाऐं विकासशील अर्थव्यवस्था की गतिशीलता को ध्यान में रखते हुए, नीति को लागू करने के लिए कार्यनीति की रूपरेखा बनाती हैं। तदनुसार, स्वास्थ्य क्षेत्र की 12वीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों को शामिल करते हुए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन को राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन में परिवर्तित करने की परिकल्पना की गई है।

उक्त योजना में चयनित कम आय वाले शहरी क्षेत्रों, सार्वजनिक क्षेत्रों में प्राथमिक परिचर्या सुविधाऐं प्रदान करना, विशेषत: सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों में स्वास्थ्य परिचर्या व्यवसायिकों हेतु शिक्षण और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार करना, जन स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान देना, औषध और खाद्य विनियामक प्रणाली को सुदृढ़ करना, चिकित्सा व्यवसाय का विनियमन करना, स्वास्थ्य में सूचना प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना और व्यापक स्वास्थ्य परिचर्या के लिए उपयुक्त संरचना तैयार करना परिकल्पित है। 12वीं योजना की कार्यनीति में कमजोर और उपेक्षित वर्गों की जनसंख्या पर ध्यान देते हुए स्वास्थ्य परिचर्या की पहुँच का विस्तार करने के लिए 11वीं योजना में किए गए उपायों को मजबूत करना शामिल है और इसीलिए योजना में जन स्वास्थ्य प्रणालियों के महत्वपूर्ण विस्तार और सुदृढ़ीकरण तथा मजबूत प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या के प्रावधान की परिकल्पना की गई है।[3]

जननी सुरक्षा योजना

'राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन' (एन.आर.एच.एम.) का एक प्रमुख उद्देश्य मातृ मृत्यु दर में कमी लाना है। इस दिशा में जननी सुरक्षा योजना एक अभिनव पहल है जिसके द्वारा गर्भवती माताओं, प्रसूता स्त्रियों तथा धात्री माताओं को सीधा लाभ पहुँचाया जाता है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत राज्य में जननी सुरक्षा योजना सितम्बर 2005 से चल रही है। जननी सुरक्षा योजना की पेशकश मौजूदा राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना (एन.एम.बी.एस.) का संशोधित रूप है। राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना, बीपीएल परिवारों की गर्भवती महिलाओं के लिए बेहतर आहार से जुड़ी थी, जबकि जननी सुरक्षा योजना गर्भावस्था के दौरान प्रसवपूर्व देखभाल सहित नकद सहायता तथा एकदम बाद क्षेत्र स्तरीय स्वास्थ्य कार्मिक द्वारा समन्वित देखभाल की एक प्रणाली स्थापित करके प्रसव के दौरान तथा प्रसवोत्तर अवधि में स्वास्थ्य केन्द्र में संस्थागत देखभाल आदि इन सभी तत्वों को शामिल करती है। जननी सुरक्षा योजना शत् प्रतिषत रूप से एक केन्द्र प्रायोजित योजना है।

प्रारम्भ में जननी सुरक्षा योजना से केवल बी.पी.एल. परिवार की प्रसूताऐं ही लाभान्वित हो रही थी, जिसका वर्ष 2006 में दायरा बढ़ाकर प्रदेश के सभी वर्गों की प्रसूता महिलाओं को लाभान्वित करने की सुविधा प्रदान की गई है। केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार

कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के द्वारा जारी किये गये दिशा-निर्देशों के अनुसार लाभान्वितों को प्रोत्साहन राशि प्रदान की जाती है।[4]

जननी सुरक्षा योजना के उद्देश्य

- समग्र मातृ मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर में कमी लाना।
- संस्थागत प्रसवों की संख्या में वृद्धि करना।

इस योजना के अन्तर्गत आशा सहयोगिनियों का चयन किया गया है, जो संस्थान एवं प्रसूता के बीच मध्यस्थता का कार्य करेगी।

जननी सुरक्षा योजना के अन्तर्गत आशा सहयोगिनी की भूमिका

- अपने क्षेत्र की शत् प्रतिषत गर्भवती महिलाओं की पहचान कर योजना का लाभ दिलवाने हेतु प्रसव पूर्व पंजीकरण एवं जननी सुरक्षा योजना (जच्चा-बच्चा) कार्ड बनवाने में सहयोग करेगी।
- गर्भवती महिलाओं को प्रसव पूर्व 3 बार जाँच, टीटनेस के टीके लगवाने एवं आयरन, फोलिक एसिड गोलियाँ उपलब्ध करवाने में सहयोग करेगी।
- गर्भवती महिलाओं को सरकारी संस्था अथवा मान्यता प्राप्त निजी चिकित्सालय में प्रसव करवाने हेतु प्रेरित करेगी।
- संस्थागत प्रसव करवाने हेतु सरकारी संस्था अथवा मान्यता प्राप्त निजी चिकित्सालय को चिन्हित करने में सहयोग करेगी तथा आवश्यकता पड़ने पर रेफरल चिकित्सालय के बारे में आवश्यक जानकारी उपलब्ध करवायेगी।
- प्रसूता को प्रसव हेतु चिन्हित संस्था पर ले जाने में सहयोग करेगी तथा संस्था पर प्रसवोपरान्त प्रसूता को डिस्चार्ज किये जाने तक संस्था में रहकर आवश्यक सहयोग करेगी।
- प्रसव उपरान्त नवजात शिशु को प्रसव के तुरन्त बाद माता का दूध पिलाने हेतु प्रेरित करेगी व 0-6 माह तक शिशु को सिर्फ माँ का दूध पिलाने की सलाह देगी तथा परिवार कल्याण के साधनों के उपयोग हेतु प्रेरित करेगी।
- नवजात शिशु को टीकारण करवाने में सहयोग करेगी।
- बच्चे के जन्म एवं माता व बच्चे की मृत्यु की सूचना संबंधित प्रसाविका व चिकित्सा अधिकारी को उपलब्ध करवायेगी।
- प्रसवोपरान्त 7 दिवस के अन्दर माता के स्वास्थ्य की जानकारी प्राप्त करेगी व आवश्यकतानुसार सहयोग करेगी।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (2005) की स्थापना के बाद से मान्यता प्राप्त सामाजिक कार्यकर्ता (आशा) राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन की गतिविधियों के क्रियान्वयन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। आशा कार्यक्रम समुदाय प्रक्रिया हस्तक्षेप की प्रमुख घटक के रूप में पहचान हुई और यह कार्यक्रम दुनिया के सबसे बड़े सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में विकसित हुआ है जिसके द्वारा स्वास्थ्य कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त हुआ है। आशा की भूमिका स्वास्थ्य के बिंदुओं पर जागरूकता उत्पन्न करने के लिए समुदाय और स्वास्थ्य सेवाओं के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है। आशा एक समुदाय स्तर की कार्यकर्ता है। वह चिकित्सा स्वास्थ्य तथा महिला एवं बाल विकास विभाग के बीच एक सहयोगिनी के रूप में कार्य करती है। इसलिए राजस्थान में इसको आशा सहयोगिनी के रूप में जाना जाता है। आशा, ग्राम पंचायत द्वारा चुनी हुई एक महिला कार्यकर्त्ता होती है, कार्य करना प्रारम्भ करने से पहले आशा सहयोगिनी को विभिन्न गहन प्रशिक्षणों से गुजरना होता है।[5]

महिला विकास यों भी आज शायद एक ऐसी उलझन बन चुका है कि जिसके एक सिरे को सुलझाओ तो दूसरा उलझ जाता है। परम्पराओं में उत्थान की तरफ नजर डालें तो आधुनिक समाज की विसंगतियाँ सामने आ रही होती है। शिक्षा से विकास की समस्या हल होती है तो विज्ञान की प्रगति से आनुपातिक लिंग दर महिलाओं और बालिकाओं की कमी के रूप में अंगूठा दिखने लगती है। सामाजिक विसंगतियों, मानसिक वितृष्णाओं और आडम्बर की बेडिघ्यों से बाहर निकले तो चकाचौंध और ग्लेमर में उलझी युवा महिलाओं की उच्छृंखलता और शोषण मुँह चिढ़ाने लगता है। देहलीज लांघ कर स्वतंत्रता का स्वाद चखने वाली महिलाऐं कार्यस्थलों पर शोषण की कड़वाहट झेलती है। स्वाभाविक ममता और सृजनशीलता की चाशनी में लिपटी आधी आबादी, कहीं-कहीं युद्ध और आतंकवाद की आग में भी झुलसी जाती है। संसाधनों के अतिरेक के बावजूद आधारभूत सुविधाओं की कमी महिलाओं

को त्रासदी भुगतने पर मजबूर कर देती है। एक सर्वे के अनुसार सब क्षेत्र (उप क्षेत्र) में औरतों का लगभग आधा जीवन नहाने, पीने और पशुओं के लिए पानी का इंतजाम करने, भोजन के लिए लकड़ी जुटाने में और परिवार के लिए भोजन बनाने और बाकी व्यवस्थाओं में लग जाता है। आधी आबादी को उस सच से भी उलझना पड़ता है कि यदि उसकी परम्परावादी तस्वीर टूट गई तो उसकी किरचें समाज व्यवस्था में उथल पुथल मचा देंगी। जब औरत और मर्द के तय कार्यक्षेत्र में दखलंदाजी होती तो अनेक नए प्रतिमान बनते हैं, पुराने टूटते हैं। इनमें सोची समझी साजिशों और विरोधों की भूमिका आग को हवा देने का काम करती है। नैसर्गिक कारण हो या स्वाभाविक स्त्री को घरबार सम्भालना ही पड़ता है और यहीं से सारी ऊहापोह शुरू होती है। दोहरे बोझ के बावजूद घर परिवार के दायित्व के बावजूद बाहर की दुनियाँ देखने की ललक में महिलाओं को काफी संघर्ष का सामना करना पड़ता है। ऐसे में आरक्षण, विशेष प्रावधान, सुविधाऐं ओर सुरक्षा के प्रश्न दो तरफा मानसिकताओं का जामा पहन लेते हैं। सदियों से चली आ रही धारणाऐं और परम्परागत रिवाज स्त्री स्वतन्त्र्य की राह में जब तब पत्थर बन खड़े हो जाते है। स्त्री को घर की शोभा, कोमल, नाजुक और संवेदनशील कहने वाली आवाजें महज मानवी के रूप में उसे स्वीकार्य नहीं कर पातीं हैं। वे उसे देवी का दर्जा दे सकते हैं, सहयोग देकर संरक्षित कर सकते हैं पर बराबर खड़ा करने का साहस नहीं जुटा पाते हैं। स्त्री सशक्तिकरण की राह में सबसे बड़ी बाधा बस यही है।[6]

आधी आबादी इस भय से भी निरन्तर डरती है कि यदि उसने परम्पराऐं तोड़ी तो उसकी किरचें समाज व्यवस्था के साथ-साथ उसकी घर गृहस्थी और बच्चों के जीवन को तहस नहस कर देंगी। औरतों और मर्दों के तय कार्यक्षेत्रों में दखलन्दाजी के परिणाम भी चौंका देने वाले होते हैं। घर सम्भालने और बच्चों के लालन-पालन जैसी नैसर्गिक आवश्यकताओं और दोहरे दायित्वों के बीच सोची समझी साजिशों और विरोधों की जाँच भी स्त्रियों को झुलसा देती हैं। सदियों से चली आ रही धारणाऐं और परम्पराऐं स्त्री-मुक्ति और विकास की राह में जब तब पहाड़ बन कर खड़ी हो जाती है।

स्त्री सशक्तिकरण की राह में अनेक बाधाऐं हैं जो दृढ़ इच्छा शक्ति, निरन्तर दबाव और कठोर निर्णय शक्ति के बल पर ही लांघी जा सकती है। राज्य में महिलाओं के हित में अनेक निर्णय लिए गए हैं पर ये स्त्री शक्ति को समाज के हित में लगाकर महज मानव के रूप में स्त्री को प्रतिष्ठापित करने में कहाँ तक सक्षम होंगे यह अभी वक्त के गर्भ में है।[7]

संदर्भ

1. प्रगति प्रतिवेदन, वर्ष 2014-15, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ.सं. 117-25
2. उपरोक्त, पृ.सं. 140-45
3. उपरोक्त, पृ.सं. 146-48
4. निरामया, जून 2006 पृ.सं. 36
5. निदेषालय चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवायें, राजस्थान, जयपुर के परिपत्र संख्या एनआरएचएम/आरसीएच-प्प/जेएसवाई/08/536 दि. 24.11.2008)
6. राजस्थान सुजस अंक जून 2012, पृ.सं. 20-25
7. उपरोक्त, पृ.सं. 25-27

भारत संचार निगम लिमिटेड में नौकरी की सन्तुष्टि के स्तर की विवेचना

नीलम यादव

(सहायक प्रोफेसर, NCWEB, रामानुजन कॉलेज, डीयू)

सारांश -

प्रस्तुत पेपर माध्यमिक और प्राथमिक स्त्रोतों के आंकड़ों के आधार पर विभिन्न संकेतकों का उपयोग करके बीएसएनएल के कर्मचारियों में नौकरी सन्तुष्टि स्तर की स्थिति का विश्लेषण करने का एक प्रयास है। अध्ययन से पता चलता है कि बीएसएनएल के कर्मचारी आंशिक रूप से सन्तुष्ट हैं और आंशिक रूप से सन्तुष्ट नहीं हैं। कर्मचारी संगठन के कार्यस्थल और बुनियादी ढ़ांचे से सन्तुष्ट है लेकिन संगठन के काम के घंटों से सन्तुष्ट नहीं हैं। आधे से अधिक कर्मचारी संगठन के नियमों और विनियमों से खुश हैं और उन्हें उचित पाते हैं। भूमिका और जिम्मेदारियों के अनुसार किए गए भुगतान के पक्ष में कम कर्मचारी हैं। अध्ययन एक अवलोकन द्वारा निष्कर्ष निकाला गया है कि बीएसएनएल संगठन के लिए नौकरी की सन्तुष्टि के महत्व के बारे में जानता है और इकसे लिए कदम उठा रहा है। बीएसएनएल के पास कुछ पहलुओं की कमी है लेकिन कुल मिलाकर यह अपने कर्मचारियों को सन्तुष्ट करने और इस दिशा में काम करने की कोशिश करता है।

परिचय -

मानव संसाधन को किसी भी संगठन में सबसे मूल्यवान सम्पति माना जाता है। यह अन्तर्निहित क्षमताओं, अर्जित ज्ञान और कौशल का योग है जो नियोजित व्यक्तियों की प्रतिभा और योग्यता द्वारा दर्शाया जाता है, जिसमें अधिकारी, पर्यवेक्षक और रैंक शामिल हें और फाइल कर्मचारी। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि व्यक्तिगत और संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मानव संसाधन का अधिकतम सम्भव सीमा तक उपयोग किया जाना चाहिए। इस प्रकार यह कर्मचारी का प्रदर्शन है, जो अंतत: निर्णय लेता है, और लक्ष्यों की प्राप्ति करता है। हालांकि, कर्मचारी प्रदर्शन काफी हद तक, प्रेरणा और नौकरी की सन्तुष्टि से प्रभावित होता है। किसी व्यक्ति और नियोक्ता के बीच कुल सम्बन्ध से सम्बन्धित शब्द जिसके लिए उसे भुगतान किया जाता है। सन्तुष्टि का मतलब काम पर प्रेरणा की अनुपस्थिति नहीं है। अनुसंधान कार्यकर्ताओं ने नौकरी की सन्तुष्टि और नौकरी असन्तोष में योगदान देने वाले कारकों का अलग-अलग वर्णन किया। बीएसएनएल में नौकरी की सन्तुष्टि के सम्बन्ध में किए गए सर्वेक्षण से प्रबन्धन को दिन-प्रतिदिन के आधार पर उनके द्वारा किए जा रहे काम के बारे में धारणाओं और आंतरिक भावनाओं को जानने में मदद मिलेगी। नौकरी की सन्तुष्टि शब्द बीएसएनएल के कर्मचारियों की पसन्द और नापसन्द पर प्रकट और केन्द्रित है। इस विशेष अध्ययन में शोधकर्ताओं ने सी की पहचान करने की कोशिश की है।

भारत में दूरसंचार -

भारत में दूरसंचार की शुरूआत 1851 में निजी व्यक्तियों द्वारा ''सार्वजनिक उपयोगिता सेवा'' के रूप में की गई थी। इसके बाद इसे 1943 में भारत सरकार द्वारा दूरसंचार विभाग के रूप में लिया गया; यह एक कैबिनेट मन्त्री की अध्यक्षता में संचार मन्त्रालय के तहत काम करता है। कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है, जिसमें भारत के सभी राज्यों में सर्कल कार्यालय हैं। सर्कल कार्यालय

महाप्रबन्धक की देखरेख में सभी राज्यों के प्रत्येक जिले की राजधानी में स्थित है। यह दुनिया की 7वीं सबसे कड़ी कम्पनी और भारत की नम्बर 1 टेलीकॉम कम्पनी है और दूरसंचार सेवाओं के 150 साल का जश्न मना रहा है। बीएसएनएल का गठन 1 अक्टूबर 2000 को हुआ था। बीएसएनएल सबसे बड़ा सार्वजनिक क्षेत्र है, जो 35 मिलियन से अधिक ग्राहकों की सेवा करता है और इसके रखरखाव और संचान के लिए 4,50,000 अधिकारियों और कर्मचारियों के कार्यबल के साथ है। सफल लॉन्च के साथ बीएसएनएल की डब्ल्यूएलएल, मोबाइल और ब्रॉडबैंड सेवाएं पूरे देश में हैं। दूरसंचार सेवाओं की पहले से ही गुणवत्ता में सुधान करने की जिम्मेदारी दूरसंचार नेटवर्क का विस्तार, दूरसंचार सेवा लेना...

बीएसएनएल का विजन -

एशिया में सबसे बड़ा दूरसंचार सेवा प्रदाता बनने के लिए।

बीएसएनएल का मिशन -

प्रतिस्पर्धी कीमतों पर मांग पर अपने ग्राहकों को विश्व स्तरीय अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी दूरसंचार सेवाएं प्रदान करना। अपने संचालन के क्षेत्र में विश्व स्तरीय दूरसंचार बुनियादी ढांचा प्रदान करना और देश की अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान देना।

बीएसएनएल के उद्देश्य -

- अग्रणी दूरसंचार सेवा प्रदाता बनने के लिए हमारे ग्राहक को गुणवत्तापूर्ण और विश्वसनीय निश्चित दूरसंचार सेवा प्रदान करना और इस तरह ग्राहकों का विश्वास बढ़ाना।
- उच्च गुणवत्ता की मोबाइल टेलीफोन सेवा प्रदइान करना और संचालन के अपने क्षेत्र में नम्बर 1 जीएसएम ऑपरेटर बननना।
- अन्य सेवा प्रदाताओं को उनकी आवश्यकता के अनुसार प्वाइंट ऑफ इंटकनेक्शन तुरन्त प्रदान करना।
- देश में अनुसंधान एवं विकास गतिविधि को सुविधाजनक बनाना।

नौकरी की सन्तुष्टि -

नौकरी की सन्तुष्टि को एक सुखद, भावनात्मक स्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है जो किसी की नौकरी के मूल्यांकन के परिणामस्वरूप होता है। यह कर्मचारी का निर्णय है कि कुल मिलाकर उसकी नौकरी विभिन्न जरूरतों में कितनी अच्छी तरह से सन्तोषजनक है। नौकरी की सन्तुष्टि शब्द को हॉपॉक (1935) द्वारा लाइम लाइट में लाया गया था। उन्होनें 1933 से पहले नौकरी की सन्तुष्टि पर किए गए 35 अध्ययनों को पुनर्जीवित किया और देखा कि नौकरी की सन्तुष्टि मनोवैज्ञानिक और पर्यावरणीय परिस्थितियों का संयोजन है। नौकरी की सन्तुष्टि को पेस्टनजी (1973) द्वारा नौकरी, प्रबन्धन, व्यक्तिगत समायोजन और सामाजिक आवश्यकता के रूप में सबसे उपयुक्त रूप से परिभाषित किया गया है। इन अध्ययनों से अंततः पता चला है कि काम की स्थिति में उपन्यास परिवर्तन अस्थायी रूप से उत्पादकता बढ़ाता है (जिसे हॉथोर्न प्रभाव कहा जाता है) बाद में यह पाया गया कि यह वृद्धि देखे जाने के ज्ञान के परिणामस्वरूप हुई। इस खोज ने प्रदान किया कि लोग वेतन के अलावा अन्य उद्देश्यों के लिए काम करते हैं, जिसने शोधकर्ताओं के लिए नौकरी की सन्तुष्टि में अन्य कारकों की जांच करने का मार्ग प्रशस्त किया।

नौकरी की सन्तुष्टि का महत्व -

नौकरी की सन्तुष्टि एक महत्वपूर्ण संकेतक है कि कर्मचारी अपनी नौकरी के बारे में कैसा महसूस करते हैं और संगठनात्मक, नागरिकता, अनुपस्थिति और टर्नओवर जैसे कार्य व्यवहार का भविष्यवक्ता है। नौकरी की सन्तुष्टि आंशिक रूप से व्यक्तित्व चर और विचलित कार्य व्यवहार के सम्बन्धों की मध्यस्था कर सकती हे। आम शोध खोज यह है कि नौकरी की सन्तुष्टि जीवन शैली के साथ सहसंबद्ध पारस्परिक है जिसका अर्थ है कि जो लोग जीवन से सन्तुष्ट हैं, वे अपनी नौकरी और लोगों से सन्तुष्ट होते हैं जो लोग अपनी नौकरी से सन्तुष्ट हैं, वे अपने जीवन से सन्तुष्ट होते हैं। इससे पता चलता है कि नौकरी की सन्तुष्टि और नौकरी का प्रदर्शन सीधे एक-दूसरे से सम्बन्धित है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ''एक खुश कार्यकर्ता एक उत्पादक कार्यकर्ता है।

यह स्पष्ट सबूत देता है कि असन्तुष्ट कर्मचारी अधिक बार काम छोड़ देते हें और इस्तीफा देने की अधिक सम्भावना रखते हैं और सन्तुष्ट कार्यकर्ता संगठन के साथ लम्बे समय तक काम करने की सम्भावना रखते हैं।

साहित्य की समीक्षा -

साहित्य की समीक्षा बीएसएनएल में नौकरी की सन्तुष्टि के लिए विभिन्न कारकों का विश्लेषण करने के लिए आयोजित की जाती है। विभिन्न लेखकों की पुस्तकों और लेखों को यह पता लगाने के लिए सन्दर्भित किया जाता है कि नौकरी की सन्तुष्टि स्तर में रेटिंग के लिए किस तरह के तरीके अनुकूल है।

Garon and Ringl (2009) -

संकेतिक कारक चर जो नौकरी की सन्तुष्टि को प्रभावित करते हैं, ये कारक हैं: 1. कार्यभार और स्टाफिंग सहित काम करने की स्थिति; 2. काम का माहौल: सशक्तिकरण, स्वायत्तता, सांझा शासन और अभ्यास पर नियन्त्रण; 3. वेतन, लाभ और शैक्षिक सहायता; 4. तनाव; 5. नेतृत्व के मुद्दे; 6. भूमिका संघर्ष और भ्रम; 7. व्यवसायिक मान्यता; 8. नर्स-चिकित्सक संचार और सहयोग; 9. घन्टे, शिफ्ट काम और शैड्यूलिंग; और 10. सहकर्मी समूह और सम्बन्धित की भावना।

Lu, while, and Barriball (2005) -

नौकरी की सन्तुष्टि के पारम्परिक मॉडल का उल्लेख किसी व्यक्ति की नौकर ीके बारे में सभी भावनाओं पर केन्द्रित है। हालांकि, नौकरी को सन्तोषजनक या असन्तोषजनक बनाता है, यह न केवल नौकरी की प्रकृति पर निर्भर करता है, बल्कि उन अपेक्षाओं पर भी निर्भर करता है जो व्यक्तियों को अपनी नौकरी प्रदान करनी चाहिए। मास्लो (हयूबर, 2006 में उद्धृत 1954) ने शारीरिक जरूरतों, सुरक्षा और सुरक्षा, सम्बन्धित, आत्म-वास्तविकता के सम्मान से पांच स्तर के पदानुक्रम के साथ मानवीय जरूरतों को व्यवस्थित किया।

Veldhoven (2004) -

ये लम्बे समय तक काम के घन्टे पादरियों द्वारा अपनी कलीसियाओं और समुदाय के प्रति एक मजबूत प्रतिबद्धता का संकेत हो सकते हैं। व्यक्तिगत सम्पर्ण, किसी की नौकरी में निवेश, और प्रतिबद्धता पादरी और धार्मिक आदेश श्रमिकों (विटबर्ग 1993) में नौकरी की सन्तुष्टि को बढ़ाती है। उपाख्यानात्मक खाते निश्चित रूप से इस प्रतिबद्धता को सत्यापित कर सकते हैं, और यह कुछ पादरी अग्निशामकों (ली एंड ओल्शफ्स्की 2002) के साथ कमोम में है।

Molrris & Blanton (1995) -

कर्मचारियों के बारे में एक अध्ययन, जो पादरी के रूप में प्रति सप्ताह 40 घन्टे से अधिक काम करते हैं, नौकरी के तनाव (रोविक 2007) से सम्बन्धित पारिवारिक मुद्दों की ओर भी इशारा करते हैं। बच्चों की संख्या को नौकरी के तनाव में वृद्धि से सम्बन्धित दिखाया गया था, और पति-पत्नि के समर्थन को नौकरी के तनाव में कमी से सम्बन्धित दिखाया गया था। यह माना जा सकता है कि महिला पादरी को कम वेतन और सम्मान और अधिक पारिवारिक तनाव के कारण पुरूष पादरी की तुलना में कम सन्तुष्टि होती है। एक लिंग विरोधाभासव काम की सन्तुष्टि और पादरी के भीतर पाया जाता है। हालांकि, महिला पादरी आम तौर पर सिस्टम को अन्यायपूर्ण मानने, कम वेतन प्राप्त करने, उन्नति के कम अवसर होने और छोटे बचज वाले छोटे चर्चो के बावजूद अपने पुरूष समकक्षों की तुलना में सन्तुष्ट या अधिक सन्तुष्ट होती हैं (मैकडफ 2001)।

अनुसंधान पद्धति -

उद्देश्यों -

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बीएसएनएल कर्मचारियों के बीच नौकरी की सन्तुष्टि के स्तर का विश्लेषण और जांच करना और विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों द्वारा सामना की जाने वाली समस्या को जाननता है। विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- बीएसएनएल और संगठनात्मक संरचना आदि का प्रोफाइल प्रस्तुत करना।
- नौकरी की प्रकृति और अन्य कारकों से सम्बन्धित कर्मचारियों के बीच सन्तुष्टि के स्तर का निरीक्षण करना।
- बीएसएनएल कर्मचारियों में नौकरी की सन्तुष्टि की सीमा और कर्मचारियों के नौकरी के प्रदर्शन पर इसके प्रीााव की पहचान करना।
- बीएसएनएल में काम के माहौल का मूल्यांकन करने के लिए।
- अपने कर्मचारियों के वेतन और अन्य लाभों के बारे में सन्तुष्टि की जांच करना।
- संगठन में कर्मचारियों की समग्र सन्तुष्टि में सुधार के लिए उपयुक्त उपाय सुझाना।

अपनाई जाने वाली पद्धति -

डेटा की प्रकृति -

अनुसंधान के लिए आवश्यक डेटा प्राथमिक और माध्यमिक स्त्रोतों से एकत्र किया गया है।

अनुसंधान डिजाइन -

वर्णनात्मक अनुसंधान लागू किया गया है, जिसे सांख्यिकीय अनुसंधान के रूप में भी जाना जाता है, अध्ययन की जा रही जनसंख्या या घटना के बारे में डेटा और विशेषताओं का वर्णन करता है।

डेटा संग्रह के तरीके -

इस रिपोर्ट की तैयारी में, शोध किए गए डेटा को विभिन्न स्त्रोतों से एकत्र किया जाता है। डेटा के स्त्रोत निम्नानुसार हैं:

प्राथमिक डेटा - यह डेटा शोधकर्ता द्वारा प्रत्यक्ष सूचना स्त्रोतों से एकत्र किया जाता है, कर्मचारियों, प्रबन्धकों, क्लर्को आदि से यह डेटा संग्रह, कर्मचारियों के साथ आमने-सामने बातचीत करने वाली प्रश्नावली का प्रशासन करके।

द्वितीयक डेटा - यह रिपोर्ट प्रस्तुति के लिए आवश्यक सैद्धान्तिक आधार देगा जो विभिन्न स्त्रोतों जैसे पत्रिकाओं, कार्यालय फाइलों, इंटर ऑफिस मैनुअल और वेब साइट से उपलब्ध हो सकता है।

तकनीक का इस्तेमाल किया -

प्रश्नावली डिजाइन -

चूंकि प्रश्नावली स्व-प्रशासित है, इसलिए सर्वेक्षण को सरल और उपयोगकर्ता के अनुकूल रखा जाता है। प्रश्नावली में उपयोग किए जाने वाले शब्द बनाए जाते हैं जिनमें प्रश्न शोध के अनुसार होते हैं और ये उत्तरदाता के लिए सुविधाजनक होते हैं। प्रश्नावली बनाई जाती है जिसमें प्रश्न शोध के अनुसार होते हैं और ये उत्तरदाताओं के लिए सुविधाजनक होते हैं।

स्वॉट विश्लेषण -

एसडब्ल्यूओटी पर्यावरण और इसमें कम्पनी की स्थिति के विश्लेषण की एक विधि है।ैव्ज् दो भागों से बना है: ताकत और कमजोरियां एक कम्पनी के आन्तरिक को सन्दर्भित करती हैं जबकि अवसर और खतरे कम्पनी के लिए बाहरी होते हैं और पर्यावरण में मौजूद होते हैं। आन्तरिक समस्याओं/मुद्दों को समझना होगा और सतत् आधार पर निपटना होगा। अकसर सलाहकारों को इस विश्वास पर इन दो पहलुओं का आकलन करने के लिए बुलाया जाता है कि एक बाहरी व्यक्ति कम्पनी में अधिक अन्तदृष्टि दे सकता है। बाहरी कारक, अवसर और खतरे, कम्पनी के नियन्त्रण में नहीं हैं। सामाजिक, आर्थिक, कानूनी, नियामक, राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय घटनाओं से बने पर्यावरण को ट्रैक करने के लिए लगातार स्कैन करना होगा। बीएसएनएल में एसडब्ल्यूओटी विश्लेषण ताकत, कमजोरी, अवसरों और खतरों के बारे में जानने के लिए किया जाता है। यह विश्लेषण नौकरी की सन्तुष्टि और कम्पनी के प्रति प्रतिक्रिया का हवाला देते हुए किया जाता है।

एसडब्ल्यूओटी विश्लेषण -

निष्कर्षो -

सभी निष्कर्ष बीएसएनएल लिमिटेड के कर्मचारियों की नौकरी की सन्तुष्टि के सम्बन्ध में प्राथमिक आंकड़ों के विश्लेषण और व्याख्या के आधार पर निकाले गए हैं।

विश्लेषण और व्याख्या से, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अधिकांश कर्मचारी कार्यस्थल से सन्तुष्ट हैं, जो संख्या में नगण्य हैं। और इसी तरह बुनियादी ढांचे के मामले में कई कर्मचारी सन्तुष्ट हैं और बहुत कम संख्या में कर्मचारी बीएसएनएल के अुनियादी ढांचे और कैंटिन सुविधाओं से खुश नहीं हैं। इसका मतलब है कि बीएसएनएल का कार्यस्थल और बुनियादी ढांचा अच्छा या सन्तोषजनक है।

यह निष्कर्ष निकाला गया है कि लगभग सभी कर्मचारी नियमों और जिम्मेदारियों के कार्यान्वयन से सन्तुष्ट हैं और उनमें से कुछ ही लागू नियमों और जिम्मेदारियों से सन्तुष्ट नहीं हैं। इसलिए यह दर्शाता है कि नियमों और जिम्मेदारियों का कार्यान्वयन निष्पक्ष रूप से किया जाता है।

अध्ययन से यह स्पष्ट है कि कर्मचारियों का उच्च प्रतिशत प्रबन्धन द्वारा दी गई काम पर स्वतन्त्रता से खुश है लेकिन उनमें से केवल कुछ ही कार्यस्थल पर दी गई स्वतन्त्रता से सन्तुष्ट महसूस नहीं कर रहे हैं।

विश्लेषण और व्याख्या के अनुसार, अधिकांश कर्मचारी संगठन में निर्मित टीम भावना से सन्तुष्ट है और केवल कुछ ही संगठन में टीम भावना से खुश नहीं हैं। इससे लगता है कि संगठन में टीम भावना मजबूत है।

इस अध्ययन से पता चलता है कि केवल कुछ कर्मचारी दृढ़ता से महसूस करते हैं कि संगठन द्वारा तय किए गए काम के घन्टे उनके लिए सबसे सुविधाजनक हैं। अन्य इन काम के घन्टों के पक्ष में नहीं है। इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रबन्धन ने काम करने की स्थिति और घन्टों के बारे में मुख्य विचार रखा, जो कर्मचारियों को सन्तुष्ट करता है।

अध्ययन से पता चलता है कि बहुत कम समख्या में कर्मचारी नौकरी की सुरक्षा से सन्तुष्ट हैं और शेष अधिकांश कर्मचारी संगठन द्वारा प्रदान की गई नौकरी की सुरक्षा से सन्तुष्ट नहीं हैं। इसलिए इस विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि बीएसएनएल के कर्मचारियों में नौकरी जाने का डर है।

विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि बहुत कम संख्या में कर्मचारी अपनी भूमिकाओं और जिम्मेदारी के अनुसार भुगतान से सन्तुष्ट हैं और शेष सभी अपनी भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के अनुसार भुगतान से सन्तुष्ट नहीं हैं। इसलिए इस विश्लेषण से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के अनुसार भुगतान बहुत सन्तुष्ट नहीं है।

केवल बहुत कम संख्या में कर्मचारी संगठन द्वारा ए गए पदोन्नति के अवसरों से सन्तुष्ट हैं। यह दर्शाता है कि कर्मचारियों के पास अवसरों की कोई वृद्धि नहीं है। विश्लेषण से पता चलता है कि वेतन का भुगतान हमेशा समय पर किया जाता है।

यह निष्कर्ष निकाला गया है कि कर्मचारी आमने-सामने संचार के लिए मंच से बहुत सन्तुष्ट नहीं हैं। विश्लेषण से स्पष्ट है कि आधे कर्मचारी सन्तुष्ट हैं और अन्य आधे कर्मचारियों के सुझावों को दिए गए प्रोत्साहन से सन्तुष्ट नहीं हैं। लेकिन कुछ ही लोग सोचते हैं कि कर्मचारियों द्वारा दिए गए सुझावों की सकारात्मक स्वीकृति है। लेकिन कुछ ही लोग सोचते हैं कि कर्मचारियों द्वारा दिए गए सुझावों की सकारात्मक स्वीकृति है। विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रबन्धन सभी वादों को पूरा करता है।

सुझाव -

सुझाव विश्लेषण और टिप्पणियों से लिए गए हैं। कुछ सुझाव इस प्रकार दिए गए है -

संगठन द्वारा तय किए गए कार्य घन्टों के मामले में बीएसएनएल लिमिटेड के कर्मचारियों के लिए सुविधाजनक नहीं है। काम के घन्टे 10 बजे/दिन हें जो सुबह 8.00 बजे से शाम 6.00 बजे तक हैं। इन घन्टों को 8 घन्टे तक कम करना चाहिए। वे संगठन में नौकरी के नुकसान के डर के बिना काम कर सकते हैं।

कर्मचारियों के विकास के अवसर बहुत कम हैं ताकि कर्मचारी टर्नओवर हो सके इसलिए प्रबन्धन को कर्मचारियों के प्रदर्शन के अनुसार पदोन्नति के अवसरों को बढ़ाने पर जोर देना होगा।

जैसा कि निर्णय लेने में कर्मचारियों की सक्रिय भागीदारी है, लेकिन शायद ही कभी उकने द्वारा दिए गए सुझावों को कार्रवाई में खींचा जाता है। इसलिए कर्मचारियों का आत्मविश्वास हतोत्साहित होता है।

इसलिए कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए प्रबन्धन कर्मचारियों द्वारा दिए गए कुछ उचित सुझावों को ध्यान में रख सकता है। यह प्रेरणा और अंतत: नौकरी बढ़ाने में मदद करेगा।

ग्रन्थ-सूची

पुस्तकों -

1. अध्वथप्पा K (2010) मानव संसाधन प्रबन्धक; टाटा मैक ग्रा हिल प्रकाशन
2. डीथ डेविस (1977) काम पर मानव सम्बन्ध; मैक ग्रा हिल प्रकाशन
3. जी.एस. सुधा

वेबसाईट -

1. http://en.wikipedia.org/wiki/Bharat_Sanchar_Nigam
2. http://en.wikipedia.org/wiki/Job_satisfaction
3. http://www.tandfonline.com

बाढ़ और सूखाः स्थायी रोकथाम और प्रबंधन

प्रीति अग्रवाल

यूजीसी नेट 2014, भूगोल

पिछले दशकों में, दुनिया भर में प्राकृतिक आपदाएं स्पष्ट रूप से पानी से संबंधित अत्यधिक बाढ़ और सूखे की घटनाओं के कारण हुई हैं। वर्षा की कमी के साथ-साथ भारी बारिश के कारण विभिन्न प्रकार की आपदाएँ आती हैं, जिनमें अत्यधिक सूखे से लेकर अभूतपूर्व बाढ़ तक शामिल हैं। जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय गिरावट, जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और बढ़ती गरीबी के कारण मानव समाज बाढ़ और सूखे की आपदाओं के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है। वे लंबे समय तक चलने वाले नकारात्मक परिणामों के साथ कृषि क्षेत्र, उद्योग, सेवाओं और पारिस्थितिकी तंत्र को गंभीर विनाश का कारण बनते हैं, विशेष रूप से गरीब विकासशील देशों में। वे आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए एक सीमित कारक बन गए हैं। इस समस्या से निपटने के लिए उचित रोकथाम और प्रबंधन उपायों की स्थापना के लिए विभिन्न प्रयास किए गए हैं। यह पत्र बाढ़ और सूखे के तनाव को दूर करने के लिए एकीकृत जल संसाधनों और व्यापक आपदा जोखिम प्रबंधन के एक स्थायी स्तर पर एक मास्टर प्लान अध्ययन का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है ताकि पिछली गलतियों से बचा जा सके और जिसके परिणामस्वरूप कई तरह की जरूरतों को पूरा किया जा सके।

बाढ़ को 4 प्रकारों में विभाजित किया जा सकता हैः कम अवधि में भारी वर्षा के कारण अचानक आने वाली बाढ़, यानी एक उष्णकटिबंधीय चक्रवात जिसके कारण बहुत अधिक वर्षा होती है, ओवर-बैंक बाढ़, लंबे समय तक वाटरशेड क्षेत्र में लगातार भारी वर्षा के कारण पानी की अधिकता पाठ्यक्रम-हिंसा का स्तर नदी के आकार, बारिश की मात्रा और अवधि पर निर्भर करता है (आमतौर पर, जल विज्ञान बाढ़ अचानक बाढ़ से अधिक लंबी होती है); बाढ़ के ज्वार, जो समुद्र से जुड़े नदी के मुहाने पर होते हैं; और तूफानी लहरें, जो समुद्र में उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के कारण समुद्र तट के किनारे होती हैं। सूखा एक शुष्क अवधि है जिसमें सामान्य स्थिति से कम या यहां तक कि कोई वर्षा नहीं होती है। यह तब होता है जब भूजल स्तर और नदी का प्रवाह कम हो जाता है और मानव, उद्योग, सेवा और कृषि उपयोग के लिए पानी की कमी हो जाती है। इसे 3 प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः मौसम संबंधी सूखा, मिट्टी और पौधों से वाष्पीकरण वार्षिक वर्षा से अधिक है; जल विज्ञान संबंधी सूखा, जिसमें लंबी अवधि के साथ मौसम संबंधी अभूतपूर्व परिवर्तन होता है, जिसमें औसत वर्षा तीव्रता की केवल थोड़ी मात्रा होती है-भूजल और नदी का जल स्तर कम रहता है, जिससे शुष्क मौसम के दौरान पानी की कमी हो जाती है; और कृषि सूखा, कृषि के लिए पानी की कमी की स्थिति जो कभी-कभी शुरुआती बरसात के मौसम में हो सकती है और व्यापक रूप से कृषि के विनाश का कारण बनती है।

एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन

जून 1992 में रियो डी जनेरियो में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में अनुमोदित एजेंडा 2 1, अध्याय 18 से, पारिस्थितिकी तंत्र, प्राकृतिक संसाधनों और सामाजिक और आर्थिक अच्छे के अभिन्न अंग के रूप में पानी की धारणा पर आधारित है। . इसलिए, मानव गतिविधियों में पानी की जरूरतों को पूरा करने और सामंजस्य स्थापित करने के लिए जल संसाधनों को जलीय पारिस्थितिकी तंत्र और संसाधन के बारहमासी कार्य को ध्यान में रखते हुए संरक्षित किया जाना है।

व्यापक आपदा जोखिम प्रबंधन (सीडीआरएम)

बाढ़ और सूखे के जोखिमों के प्रभाव को कम करने के लिए उपयोग की जाने वाली ठोस नीतियों में से एक यह है कि आपदाओं के प्रति प्रतिक्रिया करने वाली नीति से ऐसी नीति में परिवर्तन किया जाए जो जागरूकता को अधिक गंभीरता से लेते हुए उन्हें रोकती है। सीडीआरएम यह सुनिश्चित करने में मदद करेगा कि बाढ़ और सूखे के कारण कम परिणामी नुकसान हो। रोकथाम को प्राप्त करने के लिए आसन्न आपदाओं की प्रारंभिक चेतावनी की बेहतर प्रणाली की आवश्यकता है ताकि कमजोर आबादी को नुकसान से बाहर निकलने का समय दिया जा सके। हालांकि, जोखिम प्रबंधन तब तक बहुत कम हासिल करेगा जब तक कि इसका उपयोग सभी क्षेत्रों द्वारा एक समग्र आर्थिक योजना में एकीकरण के लिए आगे की योजना बनाने के लिए संयुक्त प्रयास में नहीं किया जाता है और इस बात पर जोर दिया जाता है कि बाढ़ और सूखे की रोकथाम की विशिष्ट प्रकृति को संरक्षित करने की आवश्यकता है।

बाढ़ और सूखा प्रबंधन विकल्प

बाढ़ और सूखे की गंभीरता से निपटने के लिए आवश्यक प्रभावशीलता की डिग्री प्रदान करने के लिए, किसी भी एक विकल्प से अपने आप में उम्मीद नहीं की जाएगी। संभावित कार्यों को प्ऱ्ड और ब्ल्क्ड के आधार पर संभावित प्रभावशीलता के संरचनात्मक और गैर-संरचनात्मक प्रबंधन के संयुक्त विचार के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

संरचनात्मक उपाय

संरचनात्मक उपायों के साथ बाढ़ और सूखा प्रबंधन में योगदान करने के लिए जो रणनीति घटक अपनाए जा सकते हैं, वे हैं:

- स्थानीय जल निकासी प्रदान करें, यदि आवश्यक हो तो ओवरफ्लो को बाहर करने के लिए डाइक का उपयोग करें,
- स्थानीय बाढ़ भंडारण, प्राकृतिक अवसाद और जल निकासी क्षमता का प्रावधान,
- भूमि उपयोग विनियमन,
- मौजूदा जलाशयों की प्रभावशीलता में वृद्धि और एक नए जलाशय संचालन नियम का विकास जो उद्देश्य की पूर्ण व्यावहारिक मान्यता देता है,
- चौनल ड्रेनेज क्षमता, डाइक और रिवर कट ऑफ में सुधार,
- बाढ़ के पानी के निरोध क्षेत्र को बढ़ाना,
- आपूर्ति प्रबंधन का उपयोग करके सूखे की रोकथाम, उदा। नए जल संसाधन बड़े ऊपरी भूमि भंडारण, मध्य / छोटे आकार के भंडारण, तटीय भंडारण, बेसिन स्थानांतरण, आदि।

गैर-संरचनात्मक उपाय

गैर-संरचनात्मक प्रबंधन के विकल्प इस प्रकार हैं:

- आवश्यक डेटा संग्रह, बाढ़ और सूखा जोखिम मानचित्रण उन क्षेत्रों की पहचान करने के लिए जहां बाढ़ और सूखा प्रतिरोध डिजाइन मानक, भूमि उपयोग प्रतिबंध, बाढ़ और सूखा पूर्वानुमान और चेतावनी कार्यक्रम लागू किए जाने चाहिए,
- बाढ़ सहिष्णु डिजाइन और निर्माण मानकों के आवेदन के साथ बाढ़ और सूखे की चेतावनी और आपातकालीन राहत कार्यक्रमों को अपनाना,
- जल प्रबंधन का उपयोग करके सूखे की रोकथाम, उदाहरण के लिए संयुक्त उपयोग, कृषि के लिए घरेलू उपयोग से जल निकासी के पानी का पुनर्चक्रण, दक्षता बचत, आदि।
- मांग प्रबंधन का उपयोग करके सूखे की रोकथाम, उदाहरण के लिए जल अधिकार, शुल्क/भूमि शुल्क, फसल विविध ीकरण/सब्सिडी का आवेदन।

एक प्रायोगिक अध्ययन का उदाहरण: थुंग कुला रोंग-है

समस्याओं की स्थिति

थुंग कुला रोंग-है, पूर्वोत्तर थाईलैंड में प्रसिद्ध थाई जैस्मीन चावल का सबसे अच्छा स्रोत है लगभग 340, 000 हेक्टेयर क्षेत्र को कवर करता है। यह क्षेत्र मुन नदी के सहायक जलग्रहण क्षेत्र में स्थित है। खेतों का ऊपरी भाग उत्तर और पश्चिम में एक मध्यम कटक और दक्षिण में एक कम कटक से घिरा है। उप-बेसिन क्षेत्रों के संदर्भ में अवरोही क्रम में क्षेत्र में पांच प्रमुख धाराएं हैं, अर्थात् लैम सिओ याई, लैम फलाब-फला, लाम ताओ, लैम सियो नोई और लैम फांग चू। वे पूर्व की ओर बहती हैं और क्षेत्र क्षेत्र के पूर्वी छोर पर मुन नदी के साथ मिलती हैं। थुंग कुला रोंग-है का इलाका काफी हद तक धान का खेत है। मध्य क्षेत्र में परिदृश्य लगभग समतल है जिसमें ऊंचाई में थोड़ा बदलाव है। 90 प्रतिशत से अधिक घरों को कृषि के रूप में वर्गीकृत किया गया है और लगभग सभी आबादी कृषि या कृषि संबंधी गतिविधियों में लगी हुई है। बेसिन में, गीले मौसम में चावल की खेती कुल कृषि क्षेत्र का लगभग 99 प्रतिशत है।[1]

बेसिन क्षेत्र में औसत वर्षा 1,270 मिमी प्रति वर्ष है। वार्षिक वर्षा का लगभग 90 प्रतिशत मई से अक्टूबर तक गीले मौसम में होता है। चक्रवातों के गुजरने के कारण अगस्त और सितंबर में सबसे अधिक वर्षा होती है। कभी-कभी जून और जुलाई के दौरान मानसून विस्थापित हो सकता है और इससे शुष्क मौसम हो सकता है जिसे शुरुआती बढ़ते मौसम के सूखे के रूप में जाना जाता है। गीले मौसम में, मासिक वर्षा संभावित वाष्पीकरण से अधिक हो जाती है। इसलिए, पानी की अधिकता उपलब्ध है और बाढ़ पैदा करती है। शुष्क मौसम में बहुत कम वर्षा होती है। फसलों और अन्य वनस्पतियों के लिए पानी विरले ही उपलब्ध होता है। इसलिए, परियोजना क्षेत्र में कृषि की खेती ज्यादातर वर्षा आधारित परिस्थितियों में होती है। वर्षा के अलग-अलग गीले और सूखे मौसमों का पैटर्न बेसिन में प्रवाह में परिलक्षित होता है, जो मौसमी उतार-चढ़ाव को दर्शाता है। मई में बारिश की शुरुआत के बाद, आम तौर पर महत्वपूर्ण अपवाह होने से पहले की अवधि होती है, जब शुष्क मौसम के दौरान मिट्टी की नमी का भंडार समाप्त हो जाता है, फिर से भर दिया जाता है। सितंबर से अक्टूबर के दौरान निर्वहन अपने अधिकतम तक पहुंच जाता है और व्यापक रूप से बाढ़ की बाढ़ आमतौर पर होती है। कैचमेंट में भंडारण की कमी के कारण अप्रैल के अंत में मंदी तेज है। सबसे कम डिस्चार्ज मार्च और अप्रैल के दौरान देखे जाते हैं। औसतन, परियोजना क्षेत्र में सभी धाराओं की विशिष्ट उपज लगभग 2-6 लीटर/वर्ग किमी है। वार्षिक अपवाह का 60४ से अधिक लगातार तीन महीनों, अगस्त से अक्टूबर में होता है। लेकिन इन महीनों के दौरान भी, न्यूनतम दैनिक प्रवाह में साल-दर-साल व्यापक बदलाव हो सकता है।[2]

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्तमान में पानी से संबंधित चरम घटनाएं, बाढ़ और सूखा, थुंग कुला रोंग-है में एक प्राकृतिक घटना है। क्षेत्र के निवासियों ने वार्षिक आपदाओं से निपटने के लिए ऐतिहासिक रूप से अपनी जीवन शैली को अनुकूलित किया है। जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए, रॉयल थाई सरकार (आरटीजी) ने क्षेत्र में बाढ़ और सूखे की समस्या को संबोधित करने के लिए उच्च प्राथमिकता दी है और जून 2002 में इस परियोजना क्षेत्र में जल संसाधन विकास के लिए एक मास्टर प्लान अध्ययन पूरा किया। अध्ययन मुख्य रूप से रॉयल सिंचाई विभाग (आरआईडी) और सलाहकारों के बीच समन्वित है ताकि बाढ़ और सूखे के जोखिम को कम करने के प्रयासों को तेज किया जा सके। मास्टर प्लान अध्ययन के परिणाम अतीत में स्थान, सीमा, कारणों और क्षति को बेहतर ढंग से समझने के लिए एक मैक्रो-स्तरीय बाढ़ और सूखा अध्ययन हैं। फिर, टिकाऊ प्रबंधन में योगदान करने के लिए किए जा सकने वाले कार्यों की समीक्षा की अंततः पहचान की जाती है।[3]

वर्तमान बाढ़ और सूखा प्रबंधन गतिविधियाँ

थाईलैंड में बाढ़ और सूखा प्रबंधन किसी एक एजेंसी की प्राथमिक जिम्मेदारी नहीं है। सिंचाई, विद्युत आपूर्ति, नेविगेशन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और मौसम विज्ञान, महानगरीय और स्थानीय प्रशासन में शामिल कई राष्ट्रीय एजेंसियों के साथ-साथ प्रांतीय और स्थानीय सरकारों के पास प्रबंधन के कुछ पहलुओं के लिए जिम्मेदारियां हैं। अध्ययन क्षेत्र में बाढ़ और सूखा प्रबंधन और नियोजन भी बड़े पैमाने पर जलग्रहण क्षेत्र के बजाय नागरिक प्रशासनिक क्षेत्र द्वारा किया जाता है। इसके अलावा, प्रबंधन और नियोजन बड़े पैमाने पर संगठनों द्वारा उनके केंद्रीय कार्यालयों से किया जाता है। नियोजन किसी विशेष क्षेत्र की समस्याओं पर केंद्रित विकास पर जोर देता है, कभी-कभी अन्य जल-संबंधी गतिविधियों की कीमत पर। वर्तमान में थुंग कुला रोंग-है में, बाढ़ प्रक्रिया के प्रबंधन का प्रमुख साधन इंजीनियरिंग कार्यों द्वारा जल आंदोलनों के भौतिक नियंत्रण के माध्यम से है। नियंत्रण के साधन हैं भंडारण और बांधों और

जल निकासी नहरों द्वारा बाढ़ के प्रवाह में देरी, बाढ़ के प्रवाह को प्रभावित क्षेत्रों से दूर करना और बाढ़ के पानी को डाइक और अन्य बाढ़ रक्षा संरचनाओं के माध्यम से बाहर करना। लेकिन इन रणनीतियों का बाढ़ को कम करने में ज्यादा असर नहीं पड़ा है। यह जलग्रहण क्षेत्र में बाढ़ के पानी को बनाए रखने के लिए बड़े भंडारण की कमी के कारण है। और पान के आकार का बेसिन क्षेत्र मुन नदी में बहने वाले बाढ़ के पानी को काफी हद तक बाधित करता है। इसके अलावा, मुन नदी के संगम पर बाढ़ की लहर आमतौर पर ऊपर की ओर फैलती है और सहायक नदी के किनारे से ऊपर उठती है। बेसिन क्षेत्र में बाढ़ की अवधि लगभग 2-6 सप्ताह लंबी होती है। थुंग कुला रोंग-है के जल संसाधन और उनका विकास कई वर्षों में काफी विस्तार से किया गया है। इनमें से कुछ पूरे बेसिन पर प्रस्तावित विकास के प्रभाव पर विचार किए बिना किसी विशेष क्षेत्र के एकल-उद्देश्य उपयोग पर केंद्रित हैं। थुंग कुला रोंग-है में सूखे की समस्या से निपटने के लिए, आधुनिक जल संसाधन विकास पहली बार 1981 में भूमि विकास विभाग द्वारा 1981 से 1996 के दौरान 15 वर्षीय योजना के साथ शुरू किया गया था। इसमें कृषि भूमि का पुनः मॉडलिंग, बाढ़ और जल निकासी नहरों और सड़कों के निर्माण से सूखा राहत। इससे घरेलू आय 1977 में 250 अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 1991 में 1,200 अमेरिकी डॉलर हो गई (1993 स्थिर कीमतों पर)। हालांकि, यह अभी भी आठवीं राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक विकास योजना (1997-2001) के लक्ष्य से बहुत दूर है, जो 2020 के लिए "1993 की स्थिर कीमतों पर कम से कम 12,000 की औसत प्रति व्यक्ति आय" का लक्ष्य निर्धारित करती है. इसलिए, परियोजना क्षेत्र में जल संसाधन विकास को प्रभावों के व्यापक दृष्टिकोण में लिया जाना चाहिए। भविष्य के बेसिन विकास के लिए एक एकीकृत सतत दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है।[4]

अनुशंसित टिकाऊ रोकथाम और प्रबंधन

क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और स्थानीय नीतियों और स्थायी बाढ़ और सूखा प्रबंधन के समन्वय के संबंध में, विभिन्न उपायों द्वारा इस प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं से निपटने का प्रयास किया गया है। लेकिन पूर्ण बाढ़ और सूखा नियंत्रण और क्षति का उन्मूलन संभव नहीं है। एकमात्र किफायती समाधान स्थायी रोकथाम और प्रबंधन उपायों में निवेश में निहित है। रियो में 1992 में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में भविष्य के लिए विकास सिद्धांत के रूप में, ब्रंटलैंड आयोग, पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग द्वारा सतत विकास सिद्धांत तैयार किया गया था। इस सिद्धांत को विकास रणनीतियों का मूल लक्ष्य बनाया गया था। इसके अनुसार, विकास टिकाऊ होता है यदि यह वर्तमान पीढ़ी को अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए भविष्य की पीढ़ी की संभावनाओं को प्रभावित किए बिना अपनी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम बनाता है। विकास को केवल तभी टिकाऊ माना जा सकता है जब यह समाजों को आपदाओं को रोकने या प्रबंधित करने में सक्षम बनाता है। थुंग कुला रोंग-है का परिदृश्य लगभग समतल है और आस-पास के क्षेत्रों में अधिकांश बेहतर जलाशय स्थलों का पहले ही उपयोग किया जा चुका है। अध्ययन क्षेत्र में बाढ़ और सूखा प्रबंधन में योगदान देने के लिए किए जा सकने वाले सभी संभावित कार्यों की समीक्षा के कारण जल प्रबंधन (गैर-संरचनात्मक उपाय) और संरचनात्मक उपाय दोनों हुए हैं। प्टेड और ब्लड्ड पर आधारित अनुशंसित स्थायी रोकथाम और प्रबंधन पहले परियोजना क्षेत्र में जल संसाधनों के सुधार और प्रबंधन द्वारा बेसिन के भीतर आत्म-समर्थन पर जोर देता है। नीति को बेसिन को उसके भौगोलिक और संस्थागत रूप से पूरी तरह से देखने के लिए निर्देशित किया गया है। अगला कदम यह सुनिश्चित करना है कि विकास को अन्य बेसिन क्षेत्रों और भविष्य की पीढिय्यों पर प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के उपायों को डिजाइन या शामिल किया गया है।[5]

निष्कर्ष

थुंग कुला रोंग-है में जल संसाधन विकास के मास्टर प्लान अध्ययन से पता चला है कि पूरे परियोजना क्षेत्र में बाढ़ के कारण बेसिन क्षेत्र में भारी वर्षा, अपस्ट्रीम में तेज बारिश और मुन नदी से बाढ़ की लहरें हैं। यद्यपि इस क्षेत्र में जल निकासी नहरों का घना नेटवर्क है, मध्य भाग में सामान्य भूमि स्तर समतल है। इसलिए, बेसिन क्षेत्र में बाढ़ की अवधि लगभग 2-6 सप्ताह तक रहती है। सूखे का कारण ज्यादातर शुष्क मौसम कृषि के उद्देश्य से गीले मौसम के दौरान अधिशेष पानी को स्टोर करने के लिए उपयुक्त स्थलों की कमी के कारण होता है। यह आवश्यक है कि बाढ़ और सूखा नीतियों को बेसिन को उसकी भौगोलिक और संस्था में पूरी तरह से देखने के लिए निर्देशित किया जाए। अगला कदम यह सुनिश्चित करना है कि विकास को बेसिन में अन्य क्षेत्रों और भविष्य की पीढिय्यों पर प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के उपायों को शामिल करने के लिए डिजाइन किया गया है या शामिल

किया गया है। इसे किसी भी नई विकास योजना के नियोजन चरण में किया जाना है। कुछ बुनियादी सिद्धांतों को भविष्य के स्थायी प्रबंधन का मार्गदर्शन करना चाहिए। वे हैं:

1. बाढ़ और सूखा प्रबंधन पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने के बजाय रोकथाम और प्रबंधन के लिए होना चाहिए, क्योंकि यह आर्थिक और पर्यावरणीय आधार पर अव्यावहारिक है,
2. रोकथाम के मानक वर्तमान भूमि उपयोग पैटर्न और भविष्य के विकास के अनुरूप होने चाहिए,
3. भविष्य का विकास पर्यावरण, अन्य बेसिन क्षेत्रों और अगली पीढ़ी की संभावनाओं को खतरे में डाले बिना विभिन्न हितध ारकों की संतुष्टि पर आधारित होना चाहिए,
4. परियोजना क्षेत्र में व्यापक जल संसाधन प्रबंधन प्रदान करने के लिए संस्थागत संगठन की स्थापना की जानी चाहिए।

संदर्भ

1. (एल) रॉयल थाई सरकार, थुंग कुला रोंग-है, बैंकॉक, थाईलैंड, जून 2002 में जल संसाधन विकास का मास्टर प्लान अध्ययन।
2. वही।
3. राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक विकास बोर्ड का कार्यालय (एनईएसडीबी), आठवीं राष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक विकास योजना (1997-2001), प्रधान मंत्री का कार्यालय, बैंकॉक, थाईलैंड, 1996।
4. वही।
5. पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग (ब्रंटलैंड आयोग, हमारा आम भविष्य, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987।

योग शिक्षा का वैश्विक स्तर पर प्रभाव

अर्चना सिंह

शोधार्थिनी, राजा श्री कृष्णदत्त पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर

डॉ० सुनीता गुप्ता

शोध निर्देशक, राजा श्री कृष्णदत्त पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर

संक्षिप्त सारांश- प्राचीन दार्शनिक विचारधाराएं यह मानती हैं कि मनुष्य इस संसार का सर्वश्रेष्ठ व प्रबुद्ध प्राणी है, जिसमें भौतिक वादी दार्शनिकों का मत है कि मनुष्य का मूल उद्देश्य सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करना है, जबकि आत्मवादी (आदर्शवादी) दार्शनिकों का मत है कि मनुष्य जीवन का मूल उद्देश्य मोक्ष (परमानन्द) प्राप्त करना है। सुख एक ऐसी अस्थाई अनुभूति है, जिसे मनुष्य भौतिक साधनों को एकत्रित करके प्राप्त कर लेता है। सुखानुभूति इच्छापूर्ति पर निर्भर करती है तथा इच्छापूर्ति आवश्यकतापूर्ति पर निर्भर करती है। एक इच्छापूर्ति के पश्चात् अगली इच्छा पैदा हो जाती है। तत्पश्चात् उसकी पूर्ति के उपरान्त पुनः मन में नई इच्छा जागृत हो जाती है। इस प्रकार से अनंत इच्छाओं के उत्पन्न होने तथा समाप्त होने का यह अंतहीन सिलसिला जीवन भर चलता रहता है। अंततः कुछ अपूर्ण इच्छाओं के साथ जीवन का अंत हो जाता है, परन्तु आत्मवादी दार्शनिकों का मत है कि मोक्ष (परमानन्द) ही चिर स्थाई सुख है, जिसे अध्यात्म की भाषा में कैवल्य भी कहते हैं। स्थाई आनन्द अवस्था ही परमानन्द या मुक्तावस्था कहलाती है। इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष ही मानव जीवन का अन्तिम सत्य व परम् उद्देश्य होता है। अतः जीवन में पूर्णता हेतु भौतिक सुख तथा आध्यात्मिक सुख दोनों पक्षों का एक समान व समानान्तर विकास आवश्यक है। यही भारतीय अध्यात्म विज्ञान चिंतन परम्परा का मूल सार भी है।

मुख्य शब्द- योग शिक्षा, उद्देश्य, महत्व एवं योग शिक्षा का प्रभाव विभिन्न देशों में इत्यादि।

योग की वैश्विक स्थिति- वर्तमान में योग एक चिकित्सा पद्धति के रूप में विश्व पटल पर अपनी ख्याति जन-जन तक फैला रहा है। वस्तुतः योग एक गूढ़ विषय है, परन्तु इसकी महत्ता केवल भारत वर्ष में ही नहीं अपितु विश्व के 177 से अधिक देशों में भी स्वीकारा गया है। भारत अपनी इस प्राचीन विद्या के माध्यम से पूरे विश्व तथा सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक नई ज्योति प्रदान करने की कोशिश करता रहा है। जैसा कि हम जानते हैं कि योग की उत्पत्ति भारतीय संस्कृति से ही हुई है। इसलिए इस अद्भुत योग विद्या के कारण आज भारत का विश्व स्तर पर गौरव और बढ़ जाता है। योग भारत की वह आध्यात्मिक विद्या है जो किसी भी देश के पास नहीं है। इस योग विद्या के कारण भारत पूरे विश्व पर प्रभाव छोड़ रहा है। विश्व के अनेक देशों में योग अनेक प्रकार से विकसित हो चुका है, जिससे प्रभावशाली लोग (महान हस्तियाँ) प्रभावित हो रहे हैं। पावर योग, यिन येन योग, एरियल योग, वाटर योग तथा हॉट योग आदि योग की क्रियाएं अन्तर्राष्ट्रीय महान व्यक्तियों के लिए योग एक पहचान बन चुकी है।

भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के अथक प्रयासों से योग आज पूरे विश्व में नई दृष्टि से देखा जा रहा है। भारतीय वैदिक परम्परा की यह जीवन पद्धति विश्व पटल पर स्वीकार की जा रही है, जिसे भारत के बढ़ते वैश्विक प्रभाव के तौर पर भी देखा जाना चाहिए। अतः यह स्पष्ट है कि योग एक ऐसा माध्यम है, जिससे वैदिक काल से समृद्ध रही भारतीय सभ्यता, संस्कृति का वैश्विक स्तर पर मान-सम्मान बढ़ रहा है। 21 जून को विश्व योग दिवस के यूएन के निर्णय से यह साफ हो गया कि एक बार फिर भारत ने वैदिक परम्परा की इस जीवन पद्धति को वैश्विक स्तर पर स्वीकारने के लिए बाध्य कर दिया है।

अत: माना जाए तो भारत ने पूरे विश्व को आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया है। 'शून्य' की तरह विश्व को भारत की सबसे बड़ी देन आज योग को माना जा रहा है। दरअसल योग केवल एक विचार नहीं अपितु यह जीवन जीने की एक कला तथा भारतीय जीवन पद्धति है, जिसमें जीवन मूल्य समाहित है। इस प्रकार पूरे विश्व में 'योग' आधुनिक जीवनचर्या का आधार बनता जा रहा है।

योग की शुरूआत भारत से हुई। तत्पश्चात् भारतवर्ष से योग बौद्ध धर्म के माध्यम से चीन, जापान, तिब्बत, नेपाल, दक्षिण पूर्व एशिया तथा श्रीलंका में अपनी ख्याति प्राप्त किया। वर्तमान में ''विश्व अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस'' के माध्यम से लगभग 185 देशों में योग अपनी जड़े जमा चुका है। योग की विश्व में वर्तमान स्थिति के ऑकलन का अध्ययन इस प्रकार से किया जा सकता है।

अमेरिका में योग की स्थिति-

सबसे पहले स्वामी विवेकानन्द ने सन् 1883 ई0 में अमेरिका को योग से परिचित कराया। उनके योग दर्शन से प्रेरित होकर अमेरिका जैसा विकसित देश भी आज योग को मान रहा है। 2012 में एक योग पत्रिका के सर्वेक्षण के अनुसार पता चलता है कि तब से (2012) अब तक (2019) अमेरिका में योग साधकों में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। उस दौरान 2 करोड़ लोग ही योगाभ्यास करते थे, जबकि योग जर्नल में छपे एक रिपोर्ट से पता चलता है कि अमेरिका में 2019 तक लगभग 3 करोड़ 60 लाख लोगों ने योग को अपनाया है। 'योग एलायंस' (2016) की रिपोर्ट के अनुसार 3 करोड़ 60 लाख लोग शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए योग को अपने दैनिक जीवन में अपना रहे हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार लगभग 90 प्रतिशत अमेरिकी योग के बारे में भली-भाँति जानते हैं, जबकि 2012 में 70 प्रतिशत लोगों को ही इसके बारे में जानकारी थी। अमेरिका में लगभग 72 प्रतिशत महिलाएं योग प्रशिक्षक हैं। वर्तमान में अमेरिका में 6000 योग स्टूडियो हैं तथा अमेरिकी लोग हर वर्ष योग कक्षाओं, कपड़ों तथा उपकरणों आदि सामानों पर लगभग 111573 करोड़ रूपये खर्च करते हैं।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा ने माननीय नरेन्द्र मोदी जी की नवरात्र उपवास तथा योग ऊर्जा को देखकर 'ह्वाइट हाउस' के 'ब्लू रूम' में डिनर के दौरान प्रभावित होकर उनकी ऊर्जा और तेजी के कायल हो गए। राष्ट्रपति बराक ओबामा ने ह्वाइट हाउस की ओर से जारी विज्ञप्ति में कहा कि यह आश्चर्य की बात है कि मोदी अमेरिका के पूरे दौरे पर उपवास पर रहे। उस समय बराक ओबामा ने भी योग का लोहा मानते हुए योग के प्रति आकर्षित हुए। उन्होंने एक वक्तव्य में कहा कि ''योग धर्म और संस्कृतियों की सीमाओं को पार करके अमेरिका में आध्यात्मिक अभ्यास की एक सार्वभौमिक भाषा बन गयी है। प्रतिदिन लाखों लोग अपने स्वास्थ्य और समग्र कल्याण के लिए योगाभ्यास करते हैं। इसलिए योग के प्रति अपना समर्थन दिखाएं और इस चुनौती का जबाब दें।''

रूस में योग की स्थिति-

जब भारत ने 2014 में 'विश्व योग दिवस' के अपने प्रस्ताव को संयुक्त राष्ट्र महासभा के समक्ष रखा, तब रूस ने सबसे उत्साही स्वभाव व्यक्त करते हुए समर्थन किया था। योग में रूस की दिलचस्पी का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि 'प्रथम विश्व योग दिवस' पर ही रूस के 80 शहरों में लगभग 33 हजार लोगों ने एक साथ मिलकर योग किया था। रूसी प्रधानमंत्री एवं तत्कालीन राष्ट्रपति ने भी योगाभ्यास को किया था।

यद्यपि 'योगा जर्नल' के सम्पादक 'एलेन फेरबेक' 1999 से ही रूस के मास्कों में अपना अष्टांग योग केन्द्र चला रहे हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार केवल मास्कों में इस समय लगभग 270 योग स्टूडियों स्थापित हैं। योग की बढ़ती लोकप्रियता के कारण अनेक रूसी नौजवान भारत में गोवा, हरिद्वार व ऋषिकेश में आकर योग सीखते हैं। जनसत्ता (10 मार्च 2019) में प्रकाशित समाचार से पता चलता है कि कठोर स्वभाव का समझे जाने वाला तथा वैचारिक दीवार रखने वाला रूस बिल्कुल बदल चुका है, क्योंकि योग वहां जन सामान्य में ही नहीं अपितु वहां के बुद्धिजीवी वर्गों में भी अपना स्थान बना लिया है। इसी वर्ष 'रसियन एकेडमी ऑफ साइंस' मास्को द्वारा आयोजित योग विषय पर सेमीनार से ज्ञात होता है कि रूस ने भी योग को अपनाकर विश्व में अपनी सकारात्मक छवि बना रहा है। योग का ही प्रभाव है कि अब रूस में अनेक शाकाहारी रेस्तरां भी देखने को मिल रहे हैं, जहां रूस में शराब और मांस के बिना भोजन अधूरा माना जाता था। अत: हम समस्त भारतीयों के लिए गर्व का विषय होना चाहिए कि पूरे विश्व में योग के कारण सकारात्मक, विनम्र और स्वतंत्र विचारों वाली पहचान विश्व स्तर पर स्थापित हो रही है।

जर्मनी में योग की स्थिति- 1992 से स्वामी विष्णु देवानन्द के शिष्य सुखदेव व्रेत्स द्वारा जर्मनी में 'योग विद्या' केन्द्र चलाया जा रहा है। आज अकेले ही इस संस्था के पास 120 योगा केन्द्र हैं तथा चार सेमीनार सेन्टर भी हैं इतना ही नहीं यह संस्था अब तक लगभग तेरह हजार योग शिक्षकों को तैयार कर चुका है। एक ऑकड़े के अनुसार जर्मनी में 24 लाख महिलाओं सहित 26 लाख लोग (33 प्रतिशत, 2017) योगाभ्यास का शौक रखते हैं। जर्मनी में इस समय 20000 से ज्यादा योग प्रशिक्षक भी हैं। वर्तमान में जर्मनी के स्कूलों तथा किण्डरगार्टन के बच्चों को भी योग सिखाया जा रहा है। धर्मशास्त्र के प्रोफेसर कार्ल बायर ने एक बहुचर्चित किताब लिखी, जिसमें कहा गया है कि ''भारत के पारम्परिक योग के साथ यूरोप (जर्मनी) का पहला परिचय यदि स्वयं सिकंदर के समय प्राचीन काल में नहीं तो मध्य युग में ही हो गया था।''

ब्रिटेन में योग की स्थिति- ब्रिटेन में सबसे पहले प्रथम योग स्कूल, भारत के ब्रिटिश राज्य में अधिकारी रह चुके सर पॉस ड्यूक्स ने 1949 में एपिंग में खोला था। इसके पश्चात् 1965 में 'ब्रिटिश व्हील ऑफ योग' (BWY) की स्थापना हुई तथा 1970 के बाद पूरे देश में योग कक्षाएं भी चलने लगीं। इस समय 5 लाख से अधिक लोग योगाभ्यास करते हैं। वर्तमान में ब्रिटेन के फेमस योग गुरू स्तुअर्ट गिलक्रिस्ट चर्चा में हैं, जिन्हें बदबूदार बालों वाला गुरू कहा जाता है।

पीपुल्स समाचार (19 फरवरी- 2019) पत्र में छपे एक रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटेन की गद्दी के वारिस और महारानी एलिजाबेथ के बेटे प्रिन्स चार्ल्स ने योग को अधिक से अधिक इस्तेमाल किया है। उन्होंने नेशलन हेल्थ सर्विस (NHS) को योग का इस्तेमाल करने के लिए प्रोत्साहित भी किया। प्रिन्स चार्ल्स ने उस समय लंदन में हो रहे ''योग इन हेल्थ केयर कान्फ्रेंस'' में दिए गए संदेश में भी योग के महत्व पर बल दिया। ब्रिटेन में योग की ख्याति इस प्रकार से बढ़ी कि वहां की सरकार ने लंदन की सुप्रसिद्ध मैडम तुसाद संग्रहालय में शीघ्र में योग गुरू बाबा रामदेव के मोम का पुतला लगाने पर विचार कर रही है।

फ्रांस में योग की स्थिति- वैसे तो फ्रांसीसी कसरत अथवा व्यायाम के लिए नहीं जाने जाते हैं, परन्तु विश्व योग कार्यक्रमों से प्रभावित होकर उनकी धीरे-धीरे योगाभ्यास करने की रूचि बढ़ने लगी है। पेरिस सहित कई शहरों में फिटनेस सेन्टर तथा योग स्टूडियों खोले जा चुके हैं। योग महोत्सवों तथा कार्यशालाओं के आयोजनों में हजारों की संख्या में लोग योगाभ्यास के लिए एकत्रित होते हैं। पेरिस के 'आइफल टावर' जैसी जगहों पर विभिन्न आयोजनों का उद्देश्य योग साधना को प्रचारित करना तथा अधिक से अधिक लोगों को शिक्षित प्रशिक्षित करना होता है। 2016 में द्वितीय विश्व योग दिवस के दौरान पेरिस के सबसे बड़े पार्क 'पार्क द ला वियेत' में 2000 से अधिक योग प्रेमियों ने भाग लिया। 2019 में विश्व योग दिवस पर दिल्ली में स्थित फ्रांस एम्बेसी में पूरे जोश के साथ फ्रांस के राजदूत अलेक्जेंडर जेग्लर की उपस्थिति में मनाया गया।

चेक गणराज्य में योग की स्थिति- पूर्वी यूरोप के अन्य क्षेत्रों की तरह ढाई दशकों के भीतर चेक गणराज्य में योग की जड़ें गहराई तक जम गयी हैं। वास्तव में माना जाए तो पूर्वी एवं पश्चिमी यूरोप में अब शायद ही कोई ऐसा देश बचा हो जहां योग अभी तक नहीं पहुंचा हो। वर्तमान में इन सभी देशों में योग का प्रसार तेजी से हो रहा है, जिससे भारतीय संस्कृति का प्रसार भी माना जा रहा है।

लगभग दो तीन दशकों में योग ने चौतरफा विस्तार करते हुए यूरोपीय पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन, पुस्तक प्रकाशन तथा फिल्मों में भी महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। 2010 में फिल्म 'सृष्टि के आरम्भ में प्रकाश था', 2012 में 'द ब्रीदिंग गॉड' तथा 'योग जीवन जीने की कला' रचना ने योग की महत्ता को और बढ़ा दिया। इसके अलावा योग पर आई 2015 में फिल्म 'जागो योगानन्द का जीवन' (अवेक द लाइफ ऑफ योगानन्द) ने भी योग साधना के लिए योगदानों का वर्णन किया। परमहंस योगानन्द ने अमेरिका में 1920 के दशक में योग साधना का बढ़-चढ़ कर प्रचार एवं प्रसार किया था।

चीन में योग की स्थिति- भारत और चीन का सम्बंध सांस्कृतिक रूप से सदा ही मजबूत रहा है। जब ह्वेनसांग 627-643 ई0 में भारत से अपने देश चीन वापस लौटा तो, लगभग ढाई हजार आयुर्वेद के नुस्खे अपने साथ ले आया। इस तरह से माना जाए तो चीन का योग से पुराना नाता रहा है। आज विश्व के किसी भी देश में उतने योग केन्द्र नहीं है, जितने कि चीन में हैं। यहां पर फिटनेस सेंटर में योग की कक्षाएं नियमित रूप से चलती हैं तथा बौद्ध धर्म के कारण चीन के लोग अपने आपको भारत के अत्यंत निकट मानते हैं। जनसत्ता समाचार पत्र में (21 अप्रैल 2019) छपे एक रिपोर्ट में डॉ0 वरूण वीर कहते है कि आज से 16 साल पहले, जब मुझे चीन जाने का सौभाग्य मिला तभी वहां अपनी ऑखों से योग को फैलते हुए देखा। आज चीन के कई शहरों में जैसे शंघाई, बीजिंग, शेंजन, नानजिंग, कुहान आदि लोग योगाभ्यास प्रतिदिन करते हैं। आज चीन में भारत से अधिक और आधुनिक

योग स्टूडियो तथा केन्द्र स्थापित है। 'प्योर योगा इण्टरनेशनल योग केन्द्र' का पहला स्टूडियो चीन के हांगकांग शहर में सन् 2002 में खोला गया जो आज 2019 में लगभग एक अरब डॉलर की प्रापर्टी बन चुका हैं चीन में हठ योग, नाद योग, ध्यान योग, ज्ञान योग तथा प्राणायाम के साथ-साथ योग के बदलते स्वरूप जैसे पावर योग, हॉट योग, एरियल योग आदि बहुत ही प्रचलित हो रहे हैं।

वर्तमान में योग की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के वर्ष 2015 में दौरे के दौरान चीन के कुनमिंग की 'युन्नान मिन्जू' यूनिवर्सिटी में पहला चीन-भारत योग कालेज स्थापित किया गया।

योग का प्रचलन चीन में बहुत तेजी से बढ़ रहा है। इसलिए चीन के लगभग 57 शहरों और 17 राज्यों में विभिन्न संस्थाओं द्वारा योग सिखाया जा रहा है, लेकिन विल्कुल चायनिज स्टाइल में जैसे- कुंग फू, जूडो या मार्शल आर्ट आदि के रूप में।

सऊदी अरब में योग की स्थिति- इस्लाम धर्म की जननी व मुसलमानों की उद्‌गम भूमि सऊदी अरब में योग ने अपनी ख्याति इस कदर फैलाया कि वहां की सरकार ने 2017 में योग को एक खेल के रूप में मान्यता प्रदान की। सऊदी अरब ने योग को शरीर विज्ञान का अद्‌भुत ज्ञानकुंज मानते हुए इसकी सराहना भी की। आज सऊदी अरब में योग के शिक्षण-प्रशिक्षण, प्रचार, योग शिविर लगाने तथा योग चिकित्सा को व्यावसायिक रूप में भी मान्यता प्रदान की। हालाँकि सऊदी अरब में ''अरब योग फाउंडेशन'' की शुरूआत 'नऊफ मारवई' ने सन् 2010 में ही की थी। नऊफ मारवई को सऊदी अरब की प्रथम योग शिक्षिका की उपाधि दी गयी है।

मलेशिया में योग की स्थिति- मलेशिया इस्लामिक देश होते हुए भी योग को बढ़ावा दे रहा है। 21 मार्च 2020 को सिद्धि योग के एक रिपोर्ट के अनुसार मलेशिया में सर्वश्रेष्ठ योग शिक्षक प्रशिक्षण स्कूल है, जो योग का प्रशिक्षण देकर प्रमाण-पत्र वितरित करत है। रिपोर्ट में कहा गया कि मलेशिया के कुआलालंपुर में हठयोग, सहस्रार योग (पिनांग), योग शक्ति, बी0के0एस0 अयंगर योगशाला, लाइट योग स्टूडियो तथा मनसा एवं योग दीप के माध्यम से लोगों को प्रशिक्षित किया जा रहा है।

पाकिस्तान में योग की स्थिति- पाकिस्तान भी योग का कायल है। वर्तमान में 'शमशाद हैदर' पाकिस्तान के लोगों में योग की अलख जगा रहे हैं। हालाँकि उन्होंने योग की शिक्षा भारत से हासिल की। शमशाद हैदर का कहना है कि धर्म की बजाय योग को विज्ञान के चश्मे से देखा जाना चाहिए। उनका मानना है कि योग सिर्फ भारत ही नहीं अपितु पाकिस्तान की भी धरोहर है। पाकिस्तान में भी कई योग क्लब हैं तथा लाहौर में सिर्फ महिलाओं के लिए 'इण्डस योगा हेल्थ क्लब' स्थापित है। इस क्लब की योग प्रशिक्षिका 'आरिफा जाहिद' कहती हैं कि ''घर-बाहर की तमाम जिम्मेदारियों के चलते आदमी इतना बिखर चुका है कि उसे सिर्फ योग ही जोड़ सकता है।'' पाकिस्तान में योग के बढ़ते प्रभाव से वहां के युवाओं को रोजगार के नए-नए मौके मिल रहे हैं, जिनसे उन्हें अपने ही देश में ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी योग सिखाने के अवसर मिल रहे हैं। आज पाकिस्तान में टी0वी0 चौनलों पर तरह-तरह के योग कार्यक्रमों को प्रसारित किया जा रहा है।

योग से भारत का बढ़ता वैश्विक प्रभाव- 'योग' भारत की ओर से समूचे विश्व को एक अमूल्य एवं अनुपम् देन है, जो आध्यात्मिक स्तर पर जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म में उच्च स्थान रखता है। आज लगभग 185 देशों में योग प्रचलित है। भिन्न-भिन्न देशों में योग को अपनाया तो जाता है, परन्तु अपनाने के तरीकों तथा विचारों में भिन्नता है। किस देश में योग को क्या समझकर स्वीकार किया जाए, इसे समझने के लिए योग के तीन स्तर होते हैं, जिन्हें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक माना जाता है। यूरोप में योग को शारीरिक स्तर पर अपनाया गया, तो अमेरिका में योग को शारीरिक स्तर के साथ-साथ मानसिक स्तर के रूप में अपनाया गया। कहीं-कहीं पर आध्यात्मिक रूप में अपनाने का प्रयास किया गया। यही स्थिति जापान की भी रही। विश्व में चीन सबसे तीव्र गति से योग को अपनाने वाला देश है। जहाँ सभी जिम तथा हेल्थ सेन्टर बिना योग के अधूरे माने जाते हैं। वहीं भारत योग के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक इन तीनों स्तरों से ऊपर उठकर प्राणायाम, धारणा और विश्व को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास कर रहा है। भारत सरकार ने योग की प्रामाणिकता एवं वैज्ञानिकता को आगे बढ़ाया। आज आयुष मंत्रालय के द्वारा क्यू0सी0आई0 के माध्यम से योग शिक्षकों की गुणवत्ता के स्तर को सुधारने का भरपूर प्रयास किया जा रहा है।

वर्तमान में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के अथक प्रयास से योग को आज पूरी दुनिया में एक नई दृष्टि से देखा जा रहा है। श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 'वसुधैव कुटुंबकम्' की नीति से योग का पूरी दुनिया में प्रसार किया है। नरेन्द्र मोदी जी की पहल पर 2014

में 21 जून को 'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' मनाने के यू0एन0 के निर्णय से यह साफ हो गया कि एक बार फिर भारत अपनी वैदिक परम्परा की यह जीवन पद्धति विश्व पटल पर पहुँचाने में सफल रहा और इसे भारत के बढ़ते वैश्विक प्रभाव के तौर पर देखा जा रहा है। यह स्पष्ट है कि अब योग वह जरिया बन गया है कि जिससे प्राचीन काल से समृद्ध रही भारतीय सभ्यता संस्कृति का आज वैश्विक स्तर पर बढ़-चढ़ कर प्रचार-प्रसार हो रहा है। अत: भारत ने विश्व की आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया है। भारत अपनी तमाम विद्याओं तथा पद्धतियों के कारण हमेशा से 'विश्वगुरू' के रूप में जाना जाता रहा है। योग विद्या भी उसी में से एक है। आज योग के जरिए किस प्रकार भारत अपनी सभ्यता का प्रसार दुनिया के हर कोने तक कर रहा है, इसका अंदाजा इस आँकड़े को देखकर पता लगता है कि भारत ने जब योग के प्रस्ताव को यू0एन0 में रखा तो उस समय उत्तरी अमेरिका के 23, दक्षिण अमेरिका के 11, यूरोप के 42, एशिया के 40, अफ्रीका के 46 एवं अन्य 12 देशों ने समर्थन किया। महत्वपूर्ण बात यह रही कि ईरान, पाकिस्तान और अरब समेत कुल 47 इस्लामिक देशों ने भी योग के महत्व को समझा तथा प्रस्ताव का समर्थन भी किया। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि भारत अपना विश्व पटल पर प्रभाव बढ़ाते हुए एक बार पुन: 'विश्वगुरू' बनने की राह पर अग्रसर है, जिसे योग से भारत का बढ़ता वैश्विक प्रभाव माना जा सकता है।

शोध निष्कर्ष:- प्रस्तुत शोध अध्ययन का अतिसूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि योग को आधुनिक शिक्षा पद्धति की मुख्य धारा से जोड़ दिया जाए तो शिक्षा के क्षेत्र में एक नूतन प्रयास होगा, क्योंकि योग शिक्षा से छात्र-छात्राओं में रोजगार के अवसर, स्वावलंबन के साथ-साथ आत्मनिर्भरता में दिन-प्रतिदिन वृद्धि देखी जा रही है। शोध अध्ययन के परिणाम यह भी बताते हैं कि योग वर्तमान शिक्षा पद्धति के लिए एक अचूक विद्या हो सकती है, जिससे युवाओं के व्यक्तित्व विकास में चार चाँद भी लग सकता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में योग को शारीरिक शिक्षा, खेल शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा के रूप में समाहित करके युवाओं के सर्वांगीण विकास को और गति प्रदान की जा सकती है। शोध अध्ययन का विश्लेषण यह भी बताता है कि योग वर्तमान में विश्व पटल पर अपनी ख्याति दिन-प्रतिदिन बढ़ाता ही जा रहा है। विश्व के विकसित एवं विकासशील देश जैसे अमेरिका, रूस, जापान, फ्रांस, जर्मनी, चीन, भारत, मलेशिया, सऊदी अरब, नेपाल यहां तक कि पाकिस्तान में भी योग के प्रति विशेष रूचि देखने को मिल रही है।

शैक्षिक निहितार्थ- किसी भी अनुसंधान अथवा शोध अध्ययन से प्राप्त परिणामों का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान ही उस शोध का शैक्षिक निहितार्थ होता है। शोधार्थिनी का मानना है कि इस शोध अध्ययन के परिणामों का भविष्य में शिक्षा के क्षेत्र में नि:संदेह ही अहम् योगदान हो सकता है। जो निम्नवत् है-

1. इस शोध अध्ययन से प्राप्त परिणामों का उपयोग खेल शिक्षा, चिकित्सीय शिक्षा तथा योग शिक्षा से सम्बन्धित विषय क्षेत्रों में पाठकों द्वारा किया जा सकेगा।
2. योग शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले नूतन अनुसंधान के साथ-साथ भविष्य में नई-नई सम्भावनाओं को तलाशने में इस शोध अध्ययन के परिणाम मील के पत्थर साबित हो सकेंगे।
3. शिक्षा के क्षेत्र में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश करना ही मेरे इसशोध अध्ययन का औचित्य है, जिससे राष्ट्र एवं समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सकेगा।
4. शोध अध्ययन के आए परिणामों से मुख्यत: स्वावलंबन, रोजगार, स्वास्थ्य शिक्षा, प्राकृतिक चिकित्सा तथा खेल जगत से जुड़े लोग भी लाभान्वित हो सकेंगे।
5. प्रस्तुत शोध के माध्यम से योग शिक्षा को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने का एक अभिनव प्रयास है ताकि राष्ट्र को सशक्त, स्वस्थ, योग्य एवं कुशल नागरिक मिल सकें।
6. आज के युवाओं में सांस्कृतिक, सामाजिक, पारिवारिक अनुशासन एवं उनके कौशल के विकास में इस शोध अध्ययन से अवश्य लाभ मिल सकेगा।

सन्दर्भिका:

- पतंजलि महर्षि (1971); ''योगसूत्र'' भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी.

- नागेन्द्र एच0आर0 (2004); ''व्यास पुष्पांजलि'' विवेकानन्द योग प्रकाशन, बैंगलूरु.
- सिंह सुनील (2007); ''योग से आरोग्य तक'' डायमण्डल पॉकेट बुक्श प्रकाशन.
- भद्रसेन आचार्य (2008); ''योग और स्वास्थ्य'' विजय कुमार गोविन्द राम हासानन्द प्रकाशन.
- बालकृष्ण आचार्य (2009); ''आओ सींखे योग'' मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स.
- कुमार कामाख्या (2012); ''योग रहस्य'' मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स.
- जैन राजकुमार आचार्य (2011); ''योग और आयुर्वेद'' मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स.
- कुलश्रेष्ठ असीम (2014); ''पातंजल योग सूत्र का परिचय और वैज्ञानिक अध्यात्म'' मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स.
- योग संदेश मासिक पत्रिका जून 2007.
- योग संदेश 11 अगस्त, 2014, अंक-12 दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, हरिद्वार.

उत्तर प्रदेश में दलित चेतनाः दशा एवं दिशा

डॉ० कीर्ति पटेल

प्रवक्ता, पत्राचार शिक्षा संस्थान, प्रयागराज (उ०प्र०)

''ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः।
उरु तदस्य यद् वैश्यं पदभ्यां शूद्रो अजायत।।''[1]

ऋग्वेद का यह श्लोक भारत में वर्ण व्यवस्था को दर्शाता है और इस वर्ण व्यवस्था की संकुचित दृष्टि ने दलित शब्द को जन्म दिया। 'दलित' शब्द की अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। दलित शब्द के पूर्व इसे विभिन्न नामो से पहचाना जाता था। वैदिक काल एवं स्मृति काल की वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। वर्ण व्यवस्था से शूद्र जातियों, उपजातियों का विकास होता रहा। फिर इनको 'चाण्डाल', अस्पृश्य, 'अछूत', 'हरिजन' आदि अनेक नामों से पुकारा जाता रहा। इनके साथ समाज और राज्य सत्ता ने जो दु:खद व्यवहार किये वे दर्दनाक है। दलित शब्द का वास्तविक अर्थ है 'दबाया हुआ', 'कुचला हुआ'। समाज में जो वर्ग बहुत दिनों से सताया हुआ है वह दलित वर्ग है। दलित वर्ग का प्रयोग हिन्दू समाज व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत रूप से शूद्र माने जाने वाले वर्गों के लिए रूढ़ हो गया है। दलित वर्ग में वे जातियाँ आती हैं जो निम्न स्तर पर हैं जिन्हें सदियों से सताया गया है।[2]

दलित भारतीय समाज की आधारशिला हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था की आधारभूत संरचना के केन्द्र में होने के बावजूद वर्तमान दलित ऐसी जातिय चक्रव्यूह में उलझा दिये गये हैं, या उलझ गये हैं जो समाज में निम्नतम वर्ग के रूप में जाना जाता है और जिन पर अमानवीयता की हद तक कठोर नियम लाद दिये गये हैं। भारतीय सामाजिक संरचना के लिए यह जाति विभाजन उसके विकास में सबसे बड़ी बाधा है। यह अकारण नहीं है, जब देश अपने आजादी की लड़ाई लड़ रहा था, भारत माँ के बीर सपूत अपनी कुर्बानी दे रहे थे, भारतीय दलितों के सम्मुख अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियों से अधिक भारतीय ब्राह्मणवाद या सवर्णवाद हिंसक रूप में दिखाई दे रहा था। दलितों के सम्मुख अन्तर-वाह्य दोनों स्तर पर दासता से मुक्ति की जरूरत थी।

दलित शब्द का अभिप्राय है जिसका दलन किया गया हो, जिसको रौंदा गया हो, जिसको दबाया या पदाक्रान्त किया गया हो। दलित भारतीय समाज का निम्नतम वर्ग है जिसको विशिष्ट संज्ञा आर्थिक व्यवस्थाओं के अनुरुप ही प्राप्त होती है, उदाहरणार्थ-दास प्रथा में दास, सामंती व्यवस्था में किसान, पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर समाज का दलित वर्ग कहलाता है। डॉ. सोहन पाल सुमनाक्षर के अनुसार, ''दलित वह है जिसका दलन किया गया है। उपेक्षित अपमानित, प्रताडिघ्त, बाधित अथवा पीड़ित व्यक्ति ही दलित की श्रेणी में आते हैं। दलित शब्द जहाँ व्यक्ति को अपनी अस्मिता, स्वाभिमान और अपने गौरवमयी इतिहास पर दृष्टिपात करने को बाध्य करता है, वहीं पर अवगति, वर्तमान स्थिति और तिरस्कृत जीवन के विषय में सोचने के लिए विवश करता है।'' मानव समाज के इतिहास में आदि से अब तक दलित एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करता आया है जिसका सामाजिक स्तर निम्नकोटि का है तथा जो परम्परागतरूप से दमित और पीडिघ्त रहा है किन्तु इतिहास के बदलते पृष्ठों में दलित आज केवल अनुसूचित जातियाँ ही हैं। वैसे भारतीय समाज में यही ऐसी जाति है जिस पर अस्पृश्यता के कठोरतम विधान लागू हैं तथा जिन्हें गंदे और कठोर कार्य करने के लिए बाध्यकारी किया गया है। इसीलिए आज के राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में दलित से अभिप्राय प्रथमत: और प्रत्यक्षत: केवल अनुसूचित जातियों से लगाया जाता है।

दलित शब्द आधुनिक समाज की देन है। आदि ग्रन्थ ऋग्वेद में इनके लिए दस्यु या दास शब्द आता है। इसका वर्णाश्रम संस्कार और आर्य संस्कृतियों में विश्वास नहीं था। विश्वास का यह अन्तराल क्रमश: बढ़ता ही गया जिसके कारण दासों की सामाजिक

स्थिति तथाकथित कुलीन अभिजात के सामने गिरती चली गयी। अथर्ववेद में इनकी स्थिति शूद्रों के रूप में परिगणित की गयी। ''शूद्र जनजाति का वर्णन आभीरों, दरदों, तुखारों, पहलवों आदि के साथ हुआ है। आभीरों के साथ शूद्रों का जो व्यापक उल्लेख हुआ है उससे संकेत मिलता है कि वे पुरानी जनजातियों के थे और युद्ध के समय सुखी और सम्पन्न थे। आभीर और शूद्र सरस्वती नदी के निकट रहते थे।''[3] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उत्तर वैदिक युग तक शूद्र एक जनजाति के रूप में थे और इनकी आर्थिक स्थिति बहुत चिंताजनक नहीं थी। इन्हीं में निवृद्ध, बलि, चमुरि, धुनि, विप्र, नमुचि, शम्बर, मृगया, शरदासुर, सुष्ण अर्बुद, तृष्ण, वैरोचन, मुचकुन्द, नन्द्रक, अंधक, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिचु, विषुर और जलंधर नाम के प्रसिद्ध राजा हुए। शूद्रों की यह सम्पन्न स्थिति तत्कालीन कुलीन वर्ग को ग्राह्य नहीं थी। इसीलिए योजनावद्ध तरीके से वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों,उपनिषदों, वेदान्त, स्मृति तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में शूद्रों की सामाजिक-आर्थिक तथा शैक्षिक गतिविधियों पर अंकुश लगाकर उन्हें अपमानित करने का प्रयास किया गया। 'ऋग्वेद' के मन्त्र 1.12.3/3, 3.34.9, 10.90.12, 'शतपथ ब्राह्मण' के मन्त्र 3-1.1.10.14.1 31: 'तैत्तरीय उपनिषद' 1.2.6. 7: छांदोग्य उपनिषद' 5.10.7, 'वेदांत दर्शन' - 1.3.34: 'आपस्तंब धर्म सूत्र'- 1.9.26.13: 'गौतम धर्म सूत्र' - 10.58.59, 2.3. 4: 'यम-स्मृति'- 64 और मनुस्मृति - 3.271, 8.20, 8.21, 8.277, 8.4.7, 9.334, 10.123, 10.125, 10.129, 10.51, 10.54, 10.96, 11.14, 11.131 को सन्दर्भ के रूप में लिया जाये तो शूद्रों पर किए गये सुनियोजित अत्याचार का पता चल जाता है। धीरे-धीरे योजनाबद्ध तरीके से इन शूद्रों को अपमानित करके प्रतिबन्धित करके समाज की कुलीन धारा से अलग कर दिया गया और अलग किये गये ये लोग अछूत की स्थिति में पहुँच गये। मानव-मानव के बीच पृथकता की जो रेखा वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों एवं स्मृतियों के माध्यम से खींची गयी वह महाभारत और रामायण आदि में और गहरी होती चली गयी। शूद्र जातियों का बलपूर्वक और कुलीनों की क्षमता भर दलन किया गया। आधुनिक भारत के सनातनी हिन्दू नेता ऐनापुरे शास्त्री ने तो यहाँ तक कहा कि जिस तरह मनुष्य जूता पहनता है, पर वह जूता शरीर का अंग नहीं है,उसी तरह हिन्दू समाज अछूतों का उपयोग करते हैं, पर वे उनके अंग नहीं हैं।

भारतीय इतिहास में कुलीनों के इस वर्चस्व का सर्वप्रथम संगठित विरोध बौद्धों ने किया। बौद्ध-ब्राह्मण संघर्ष ने दलितों को अपने मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए संगठित किया एवं उनको आंदोलनात्मक राह दिखायी। किन्तु संघर्ष मात्र और मात्र धार्मिक था। इनमें राजनीतिक चेतना का अभाव था। इसलिए इसकी उम्र अधिक नहीं हो पायी। मुस्लिम आक्रमणों के साथ ब्राह्मण बौद्ध संघर्ष स्थगित-सा हो गया। आधुनिक भारत में दलित चेतना के उद्बोधन का प्रयास महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिराव फूले ने किया। उन्होंनें 1873 में 'आर्य शोध समाज' की स्थापना की। महात्मा फूले ने अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी' के माध्यम से दलित वर्ग को संगठन और धार देने का प्रयास किया। महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन के माध्यम से इसे और गति प्रदान की। अस्पृश्यता गांधी की नजरों में 'हिन्दू समाज का कलंक' थी। इस कलंक को दूर करने के लिये उन्होंने लोगों से अपील की कि अगर हिन्दू धर्म को बचाये रखना है तो अस्पृश्यता को दूर करना होगा। यही धर्म को बचाये रखने जैस उद्देश्य के कारण ही गांधी दलित चिंतकों की नजरों में हेय हो गये। इन चिंतकों को गांधी से इतनी नफरत हो गयी कि इन लोगों ने भारतीय राजनीति के इस महानायक का विरोध करना शुरु किया, अपमानित किया और 'शैतान की औलाद' तक कह डाला। दलित आंदोलन और चेतना को उद्बुध करने का कार्य देश के विभिन्न हिस्सों से डॉ. अम्बेडकर के आने के बाद शुरु हो गया। बम्बई से बी. आर. शिंदे, केरल से ई. वी. रामास्वामी नायकर तथा सी. आर. रेड्डी, सी. एन. मुदालियार, टी. एम. नायर, पी.टी. चेन्नी आदि ने भी दलित आन्दोलन एवं संघर्ष को गति देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

आधुनिक भारत के इतिहास में डॉ. अम्बेडकर का आना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। डॉ. वी. आर. अम्बेडकर ने दलितों को राष्ट्रीय एवं सामाजिक आन्दोलन में उतारा। अब तक उनकी लड़ायी जो दूसरे लोग लड़ रहे थे वह अब दलितों ने अपने हाथ में ले ली। उन्होंने शिक्षा के प्रचार-प्रसार में स्वयं को सम्मिलित किया और अपने मुक्ति की स्वयं पहल की। ''पंजाब में 'आदि धर्म आन्दोलन', बंगाल में 'नाम शूद्र आन्दोलन', तमिलनाडु में 'आदि द्रविड़ आन्दोलन', आन्ध्र में 'आदि आन्ध्र आन्दोलन', कर्नाटक में 'आदि कर्नाटक आन्दोलन', कानपुर में 'आदि हिन्दू महासभा आन्दोलन', केरल में 'चरुमन कुलय और झाखा आन्दोलन' तथा महाराष्ट्र में डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में 'महार आंदोलन' शुरु हुए।'' आगे चलकर सम्पूर्ण देश का दलित आंदोलन डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में संकलित हो गया। उद्देश्य की पवित्रता परिणाम की पवित्रता में परिणत हो गयी। हिन्दू-समाज विघटन से बच गया। हिन्दू समाज को इसके लिए डॉ. अम्बेडकर का कृतज्ञ होना चाहिए। दलित बौद्ध धर्म की ओर अग्रसर हुए जो अन्ततः हिन्दू थे और उनका विरोध ब्राह्मणों द्वारा किये जा रहे वाह्यडम्बरों और अत्याचारों से था। आगे चलकर राजनीति में बाबू जगजीवन राम ने 'दलित वर्ग संघ' के

रूप में दलितों के आन्दोलन को आगे बढ़ाया। कांग्रेस पार्टी के साथ जुड़कर बाबू जगजीवन राम ने पार्टी के भीतर और बाहर दलितों को एक नयी पहचान देने का कार्य किया। कांग्रेस पार्टी ने जगजीवन राम को आगे करके दलित समुदाय का पूरा समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की। इंदिरा गांधी द्वारा 1975 में आपात काल की घोषणा और संजय गांधी का निरंकुश तानाशाही हस्तक्षेप ने बाबू जगजीवन राम को पार्टी से बाहर कर दिया। ''कांग्रेस फार डेमोक्रेसी'' पार्टी के बैनर तले जगजीवन राम ने नाकाम हस्तक्षेप की कोशिश की। 1977 में जनता पार्टी ने बदली राजनैतिक परिस्थितियों में दलितों के वोट के मकसद से जगजीवन राम को प्रधानमंत्री के रूप में प्रस्तावित कर बहुमत प्राप्त किया किन्तु सवर्ण राजनीति ने जगजीवन राम की जगह मोरार जी देसाई को प्रधानमंत्री बना दिया। दो वर्ष बाद ही जनता पार्टी सरकार चली गयी। फिर अगले ढाई महीने की सरकार चौ. चरण सिंह की बनी। इस सरकार के बाद बाबू जगजीवन राम ने सरकार बनाने का दावा पेश किया जो राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी द्वारा नामंजूर कर लोकसभा भंग कर दी गयी। यही खेल दलित नेता रामधन के साथ उ.प्र. में खेला गया। ''यहाँ भी सवर्ण नेतृत्व ने लोकतांत्रिक पद्धति का क्रूर नाटक खेला और रामधन को दरकिनार कर रामनरेश यादव को मुख्यमन्त्री बना दिया। यह सचमुच एक षड्यन्त्र था जो दलितों के खिलाफ रचा गया।''[4] 1980 में कांशीराम ने 'बामसेफ' (बैकवर्ड एण्ड माइनारिटीज शिड्यूल्ड कास्ट इम्प्लाइज फेडरेशन) के माध्यम से दलितों को झण्डे के साथ-साथ संघर्ष के लिए डण्डा भी थमाया। 'आप्रेस्ड इंडिया' और 'बहुजन संगठन' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से दलितों को लगातार उत्प्रेरित करने का कार्य कांशीराम ने किया। राजनीति में सक्रिय साझेदारी के लिए 1981 में डी. एस. -4 (दलित समाज शोषित संघर्ष समिति) और 1984 में 'बहुजन समाज पार्टी' का गठन किया। इसी समय अपने अधिकारों के लिए संघर्ष की मुद्रा में मुस्लिम एवं पिछड़ा समुदाय भी राजनीति की मुख्य धारा में प्रभावशाली रूप से दिखायी देता है। स्थितियों को समझते हुए जनवरी 1993 में उ.प्र. में कांशीराम एवं मुलायम सिंह यादव ने हाथ मिलाया। इस गठबंधन को शासक वर्गो ने ठीक से समझा और इसको नाकाम करने में लग गये। किन्तु, इनकी कोशिश नाकाम रही और सपा, बसपा गठबंधन को भारी बहुमत मिला। इनकी सरकार बनी किन्तु, सदियों से सत्तासीन रहे वर्ग को यह स्वीकार नहीं था। वे गलत रास्तों से दोनों दलों में दूरियाँ बढ़ाने लगे। स्थिति यह हुई कि दोनों दलों का गठबन्धन टूट गया तथा दलितों की पार्टी ने सवर्ण-ब्राह्मण वर्चस्व वाले दल से समझौता कर सरकार बनाया। शासक वर्ग अपनी योजना में सफल हुआ। आज दलितों की यह पार्टी सोशल इंजीनियरिंग के नाम पर इंदिरा गांधी के पुराने कांग्रेसी ढर्रा दलित, ब्राह्मण एवं मुस्लिम को लेकर राजनीति में सबल रूप से खड़ी है। यह दलित-चेतना संदर्भ राजनीति में कांशीराम के उत्तराधिकारी नेतृत्व में झंडा और डंडा संभालकर आज व्यवस्थित सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन में निर्णायक के रूप में दिखायी दे रहा है। अंबेडकर के विचार क्रान्ति को लेकर चलने वाली यह पार्टी उसे कितना सुरक्षित रख पायेगी यह समय बतायेगा।[5]

ध्यातव्य है कि दलितों की स्थिति वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों के समय से ही वर्चस्ववादी समुदायों द्वारा अत्यन्त दुष्कर बना दी गयी थी। शिक्षा एवं समय के बदलते स्वरूप ने दलितों को जो प्राचीन काल में अमानव जैसी थी, मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया। प्राचीन काल में जहाँ दलितों के समस्त मानवाधिकार निलम्बित थे आज के सम्बन्ध में बहाल ही नहीं किये गये हैं अपितु शासन एवं सत्ता की मजबूत बागडोर उनके हाथों में है फिर भी आधुनिक भारतीय समाज में सवर्णो की मानसिकता में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हुआ है।[6] वे आरक्षण का विरोध करते हैं एवं दलित शोषितों को बराबरी का दर्जा दिये जाने से कुंठित भी महसूस करते हैं। वास्तव में ऊँच-नीच के भेदभाव को हटाना समाज, सम्मान और समय के अवसर को दलित एवं शोषितों के लिए खोलना जो कानूनी रूप से न होकर सामाजिक एवं व्यवहारिक रूप से होना चाहिए। वर्तमान में इसी की सबसे ज्यादा और अहम आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

1. दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ0 एन0 सिंह, वाणी प्रकाशन, पृ0 53
2. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ01
3. शूद्रों का प्राचीन इतिहास - राम शरण शर्मा, पृ. 06।
4. दलित विमर्श की भूमिका: कँवल भारती, पृ. 87।
5. भारत का प्राचीन इतिहास, रोमिला थापर, पृ0 8
6. दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ0 एन0 सिंह, वाणी प्रकाशन, पृ0 67

प्राचीन भारतीय समाज में गुरूकुल का महत्व

डॉ० सविता नागर

एसोसिएट प्रोपफेसर, समाजशास्त्रा विभाग, एन. आर.ई. सी. कॉलेज खुर्जा, उत्तर प्रदेश

प्राचीन काल में भारतीय समाज में शिक्षा का स्वरूप अत्यंत ज्ञानप्रद, सुव्यवस्थित और सुनियोजित था, जिसमें व्यक्ति के लौकिक एवं परलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। भौतिक एवं आध्यात्मिक निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों का निष्पादन करने के लिए शिक्षा की नितांत आवश्यकता थी। मनुष्य एवं समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के ही माध्यम से संभव माना जाता रहा है। सही बात तो यह है कि शास्त्र एवं विवेक से शिक्षा सम्पन्न होती है और शिक्षा से मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है इसलिए ज्ञान उद्भव का आधार तंत्र शास्त्र एवं विवेक माना गया है। ''ज्ञान से विद्या, विद्या से मुक्ति प्राप्ति होती है तथा मनुष्य शिल्प में निपुणता प्राप्त करता है।''[1] इस तरह ज्ञान के आलोक से मनुष्य का जीवन आलोकित होता है, क्योंकि किसी भी कार्य को करने वाले दो प्रकार के लोग होते हैं, एक तो वे जो समझ अथवा ज्ञान से करते हैं, दूसरे वे जो बिना समझे या अज्ञान से करते हैं, किन्तु ज्ञान और अज्ञान दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। ''विद्या और सच्ची लगन के साथ जो व्यक्ति कर्म करता है, वही आर्थिक शक्तिशाली होता है।''[2] वस्तुतः ज्ञान अथवा विद्या से व्यक्ति का कर्म और आचरण परिष्कृत और दिव्य हो जाता है और अज्ञान समाप्त होता है, देव तुल्य हो जाता है। वैदिक युग में ऐसे ज्ञानी व्यक्ति को सर्वोच्य प्रतिष्ठा प्राप्त थी और जब व्यक्ति विद्या और ज्ञान से सम्पन्न हो जाता था, तब वह ऋषि से ऋण मुक्त हो जाता था। ऋग्वेदकालीन समाज में भी भौतिक की अपेक्षा बौद्धिक ज्ञान का महत्व था। इस युग में उनके विचार, ज्ञान की महिमा, त्यागमय जीवन, आध्यात्मिक चिंतन और भौतिक आर्कषण के प्रति विरक्त मनुष्य के जीवन के मूल थे। गायत्री जैसे मंत्र ज्ञान के उच्चतम आधार से परिपूर्ण है। सतपत ब्राहम्ण में कहा गया है कि ''स्वाध्याय और प्रवर्त्तन का अनुगमन करने से व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है फलस्वरूप वह स्वतंत्र हो जाता है। इससे उसे नित्य धन की प्राप्ति होती है। सुखद निद्रा आती हैं वह अपना चिकित्सक बन जाता है। उसकी इन्द्रियाँ संयमित हो जाती है, वह प्रज्ञवान हो जाता है और संसार के अभ्युदय में लग जाता है। समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को ब्रहम ज्ञान के माध्यम से पूर्ण करता है, जो लोग अनेक प्रकार की विधाओं का अध्ययन करते हैं वे देवताओं को प्रसन्न करते हैं तथा अपनी कामनाएँ पूर्ण करते हैं।''[3] अतः विद्या अथवा ज्ञान की सर्वश्रेष्ठता स्वंय सिद्ध है। भारतीय विचारकों के द्वारा तीन प्रकार के लोकों की कल्पना की गई है।

1. मनुष्य लोक
2. पितृ लोक और
3. देव लोक

इनमें से मनुष्य लोक पुत्र द्वारा ही जीता जा सकता है। ''तीनों लोकों मे देव लोक ही श्रेष्ठ। इसलिए विद्या प्रशंसनीय है।''[4] स्पष्ट है कि मनुष्य के जीवन में अनुपम योग रहा है।

शिक्षा से मनुष्य का जीवन विशुद्धि परिष्कृत प्रज्ञा सम्पन्न और समुन्नत ही नहीं होता। बल्कि समाज भी सात्विक और नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ सनमार्ग पर चलकर विकसित होता है। मनुष्य का जीवन शिक्षा एवं ज्ञान से ही धर्म प्रबंध, नैतिक मूल्यों से युक्त उच्च आदर्शों से भरा हुआ और बहुमुखी व्यक्तित्व से युक्त होता है। विद्या अर्जन से व्यक्ति आत्मनिर्भरता तो प्राप्त करता ही है, साथ ही परिवार और समाज के निर्माण में योगदान प्रदान करता है। मनुष्य के धार्मिक वृत्तियों का उत्थान, उसके चरित्र

का उत्थान,उसके व्यक्तित्व का उत्थान, उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन और उसके सांस्कृतिक जीवन का उन्नयन शिक्षा के प्रधान उद्देश्य है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपने इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहता है। ''अथर्ववेद में विद्या अथवा शिक्षा के उद्देश्यों और उसके परिणाम का उल्लेख किया गया है, जिसमें श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन आयु और अमरत्व को सन्निहित किया गया है।''[5]

मनुष्य की सुव्यस्थित और सुनियोजित शिक्षा का प्रारंभ उपनयन संस्कार के पश्चात् गृह त्याग कर गुरू के सानिध्य में जाता था तथा यहीं गुरूकुल में रहता। विभिन्न विषयों का शिक्षा ग्रहण करता था। इस संबंध में छंदोग्य उपनिषद् से विदित होता है कि अरूण उद्धालक आरूणि ने अपने पुत्र श्वेत केतु से गुरूकुल में जाकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए कहा था-''हे श्वेत केतु तू गुरूकुल में जाकर ब्रहम्चर्यपूर्वक विद्या ग्रहण कर, हे शौम्य हमारे कुल में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ जो अध्ययन ना करे और वह भी स्वयं ब्राह्मण होकर। यही नहीं इस संबंध में जो केवल ब्राहमणों को अपना बंधु बतलाता है।''[6] यह बारह वर्ष की अवस्था में गुरू के पास गया वहाँ गुरूकुल में सभी वेदों को पढ़कर 24 वर्षो का होकर अपने को विद्वान और अभिमानी समक्षते हुए उदंत भाव से घर वापस आया। उसके लौटने पर उसके पिता ने कहा ''हे शौम्य श्वेतकेतु तू जो ऐसा अभिमानी, अपने को विद्वान समझने वाला और उदंग हो रहा है सो क्या, तुमने गुरू से उस आदेशतत् ज्ञानोपदेश को भी पूछा है, जिससे अश्रुत-श्रुत हो जाता है, अमत्व मत्व हो जाता है और अविज्ञान भी ज्ञान हो जाता है।'' चूँकि श्वेत केतु उस ज्ञान तत्व को नहीं जानता था, इसलिए उसने जिज्ञासा की ''भगवान वह तत्व ज्ञानोत्पोदेश कैसा है?''[7] इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गुरूकुल में निवास करके ज्ञान और विद्या प्राप्त की जाती थी, साथ ही सदाचरण और सद्वृत्ति की भी शिक्षा ग्रहण की जाती थी।

गृह सूत्रों में ब्रह्मचारी के शिक्षा ग्रहण करने पर विस्तार से विचार किया गया है। पारस्कर गृह सूत्र में यह उल्लेखित है कि ''आचार्य के सम्मुख जब विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण के निमित्त्व उपस्थित होता था, तब आचार्य उससे पूछता था कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो।''[8] इस पर विद्यार्थी स्वभावत: उत्तर देता है कि आपका ही ब्रह्मचर्य! तत्पश्चात् आचार्य कहते थे-''नहीं तू इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, पहले अग्नि तुम्हारा आचार्य है। बाद में हम।'' फिर विद्यार्थी का दायां हाथ ग्रहण कर आचार्य उसे शिष्य के रूप में स्वीकार करते हुए कहता था ''मैं सविता की आज्ञा से तुम्हें शिष्य के रूप में स्वीकार कर रहा हूँ'', तदन्तर विद्यार्थी के ह्रदय पर अपना हाथ रखकर आचार्य यह कहता था, तुम्हारे और हमारे बीच श्रद्धा, प्रेम और विश्वास रहे।''[9]

उपनिष्दों में गुरूकुल के स्थान पर ''आचार्यकुल'' का प्रयोग किया गया है ''कुल'' शब्द अत्यंत सार्थक और सारगर्भित था, जिससे एक परम्परा का बोध होता था। गुरूकुल के दो प्रकार विकसित हो गए, एक गृहस्थ गुरू आश्रम और दूसरा बनस्थ प्रायोजित गुरूआश्रम। शिष्य अपने माता-पिता के कुल से आचार्यकुल में जाता, पितृ और आचार्य पत्नी, मातृ वृद्धि की भावना करते तथा पारिवारिक वातावरण अनुभव करता था। उपनिषद् में ''आचार्य कुलवाशी'', ''अन्तोवाशी'' जैसे शब्दों के साथ ''ब्रह्मचर्य वास'' (अर्थात् गुरूकुल में ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या ग्रहण करना) का भी उल्लेख हुआ है।''[10]

कृष्ण और बलराम ने संदीपन मुनि के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की थी। ''महाकाव्यों में गुरूकुलों का संदर्भ मिलता है जो शिक्षा और विद्या के विख्यात अधिष्ठान थे। भारद्धाज और बाल्मिकी के आश्रम उच्च्य कोटि के गुरूकुल थे। महाभारत में उल्लेखित है मार्कण्डेय और कन्य ऋषि के आश्रम शिक्षा के प्रधान विद्या स्थल थे। जहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी, इन अचार्यो के शिक्षा मंडलों में बहुसंख्यक छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। दुर्वाशा ऋषि कुरूनरेश से घमिलने गए तब उनके साथ दस हजार शिष्य थे।यह ऋषि की विद्धता और लोकप्रियता का परिचालक था। इसके अतिरिक्त इस उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि गुरूकुल की महत्ता समाज में पूर्णत: स्थापित हो चुकी थी और द्विजों के अधिकांश बालक इन आश्रमों में शिक्षा प्राप्ति के लिए जाते थे। स्मृतियों के अनुसार भी छात्र गुरूकुल में रहकर विद्या ग्रहण करता था।'' विद्यार्थी का गुरूकुल में प्रवेश करना उसके नवीन जीवन की गौरवमयी घटना माना जाता था।

''महान विद्वान आचार्य सत्यकाम जावाल के कुछ शिक्षाश्रम्य उपकौशल कमलायन ने शिक्षार्थी के रूप में 12 वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक व्यतीत किया था एवं इस अवधि में उसने निरंतर अपने आचार्यो की अग्नियों की परिचर्या सम्पन्न की थी।''[11] तत्कालीन समाज में आचार्य कुल की अग्नि परिचर्या धार्मिक कृत के रूप में स्वीकृत की जिसे शिष्यगण परिपूर्ण किया करते थे।

सत्यकाम जावाल स्वयं आचार्य हरिद्रुमत गौतम के कुल में अंतेवाशी बनकर ज्ञान प्राप्ति के निमित्त गया था। उपनिषद् में वर्णित है कि उसका उपनयन संस्कार करके 400 कुश और दुर्बल गायों को पृथक निकालकर आचार्य ने उससे कहा था कि ''इन गौओं का अनुशरण करें अर्थात् जहाँ-तहाँ एक गौवें चरती हुई जाए वह उनके पीछे-पीछे रहकर उनकी रक्षा करें। गुरू ने इस गौवों को ले जाते हुए सत्यकाम से कहा था। जब तक ये गौवों एक सहस्त्रन हो जाए तब तकवह न लौटे। तदन्तर सत्काम कई वर्षों तक इन गौवों को चराते एवं सेवा करते हुए प्रवास में ही रहा जबकि ये गौवें एक सहस्त्र नहीं हो गई।''[12] आचार्य की आज्ञा का नतम तक होकर अक्षरश: पालन करने का यह अद्वितीय उदाहरण है।

गुरूकुल अथवा आचार्य कुल में रहकर शिक्षा ग्रहण करने की प्रथा प्राचीन काल में बराबर चलती रही। चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला में चाणक्य के सानिध्य रहकर शिक्षा ग्रहण की थी। बौद्ध ग्रंथों से भी ब्राह्मण आचार्यो के कुलों का विवरण मिलता है,जिससे स्पष्ट होता है कि उस युग में भी लोग गुरूकुलों में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। ''चम्पा निवासी दिशा प्रमुख आचार्य के आश्रम में 500 छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। कोशल के सुनेत और शैल उस युग के अत्यंत विख्यात आचार्य थे।''[13] मिथिला का ब्राहम्यु वैदुष्य आचार्य अनेकानेक शिष्यों का आचार्य था, जिसके अन्त:वासी भी उसी कोटि के विद्वान थे।

गुप्त काल में भी गुरूकुल की शिक्षा निर्वाद से चलती रही ब्राहम्ण आचार्यो के निवास विद्या अर्जन के प्रधान केन्द्र थे। ''गुप्त अभिलेखों से विदित होता है कि आचार्य ब्राह्मणों को ग्राम्य दान में दिए जाते थे। आचार्य देवशर्मा को ब्रहम्पूर्वक ग्राम दान में प्रदान किया गया था।''[14] कालिदास के ग्रथों में अनेक ऐसे आश्रमों का उल्लेख मिलता है, जहाँ बौद्धिक उत्कर्ष के निमित्त लोग जाते थे और विभिन्न विषयों मे पारंगत होते थे। वान् ने हर्ष चरित् में स्वंय लिखा है कि वह विद्या-प्राप्ति के निमित्त अनेक वर्षो तक गुरू के आश्रम में रहा था।

''11वीं सदी का लेखन अलबरूनी भी गुरूकुल का उल्लेख करता है उसके अनुसार शिष्य दिन रात गुरू की सेवा में तल्लिन रहा करता था।''[15] प्राचीन काल में अनेकानेक विषयों की शिक्षा छात्रों को दी जाती थी, द्विजों के लिए वेद का अध्ययन आवश्यक था ही साथ ही वैदिक संहिताओं और वेदों का अध्ययन भी अपेक्षित था। ब्राहम्णकाल में यज्ञ विद्या का अध्यापन अधिक होता था। इसमें ज्ञान विज्ञान की सहायता ली जाती थी, ''उपनिषद् युग में वैदिक संहिताओं, वेदांगों, याज्ञिक्य विधाओं आदि के अतिरिक्त ब्रह्म विद्या का भी अध्ययन किया जाता था। इतिहास, पुराण, व्याकरण, भूतविद्या, छत्रविद्या, वाकोवाक्यम, तर्कशास्त्र निरूक्त, छंद, नक्षत्रविद्या, ज्योतिष, राशि, एकायन आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। सत्यज्ञान का अन्वेषण तथा उसका अनुपालन उपनिषद् युग में किया जाता था।''[16] आत्मा से संबंधित विद्या आत्मविद्या कही जाती थी, जो उपनिषद् काल के छात्रों का प्रधान विषय होती थी।

भाषा और साहित्य के अध्ययन अध्यापन में व्याकरण का बड़ा महत्व था, प्राचीन काल से इसके अध्ययन के प्रतिबुद्धि-जीवियों की अपार रूचि थी। वस्तुत: भाषा और साहित्य का संयोजन और संग्रथन तथा उसकी गरिमा और प्रतिष्ठा व्याकरण से ही थी। भारत में बहुत पहले से शब्द और वाक्य पर विचार करने वाले व्याकरण के विद्वान रहे हैं, जिन्होंने इस गुरू विषय पर बड़े ही विस्तार से लिखा है। ''शाकाह, पाणिनी, सर्ववर्म्मन, शशिदेव आदि अनेक व्याकरणों ने बहुचर्चित ग्रंथों का प्रणयण किया था। इत्सिंग से विदित होता है कि शिकावृति और पतंजली के महाभाष्य का चार अथवा छ: साल में अध्ययनपूर्ण होता था। व्याकरण उग्रभुति का उल्लेख अलबरूनी ने किया है, जिसने शिष्य हितावृति की रचना की थी।''[17]

जहाँ तक नारियों की शिक्षा का प्रश्न है, वैदिक युग में नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। ज्ञान और शिक्षा में वे किसी भी प्रकार पुरूषों से कम नहीं थी। ऋगवेद से अनेक ऋषिओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है,जिन्होंने अनेकानेक मंत्रों और ऋचाओं की रचना की थी। पोपामुद्रा, विश्ववार, आत्रेयी अपाला, काजीवती, घोपा, आदि विदुषी नारियाँ इनके अधिक प्रसिद्ध हैं। उपनिषदों में भी अनेक विदुषी स्त्रियों के संदर्भ मिलतीहै, जिनमें गार्जी परम् विदुषी महिला थी। उस युग में दो प्रकार की स्त्रियाँ थीं।

एक सधोबधु

दूसरी ब्रह्मवादनी

''सधोवधु विवाह होने के पहले तक ब्रह्मचर्य व्रत का अनुसरण करती थी तथा ब्रह्मवादिनी जीवन पर्यान्त ज्ञान अर्जन में लगी हुई ब्रह्मचर्य व्रत का अनुपालन करती थी।''[18] अध्यापन कार्य करने वाली स्त्रियाँ आचार्य और उपाध्याय कही जाती थीं।

पुस्तकीय तथा शैक्षणिक ज्ञान के साथ-साथ ज्ञान के विविध क्षेत्रो मे स्त्रियों को प्रशिक्षण दिया जाता था। ''डॉ अलतेकर ने वाकाटक, रानी प्रयावती गुप्ता, सातवाहन, रानी नैनिका के उदाहरण से स्पष्ट किया है किवे अपने लड़कों की अल्प व्यस्कता में कुशल शासक कभी नही हो पाती यदि उनको प्रशासन तथा संचालन की समुचित शिक्षा नहीं दी गई होती।''[19]

समय के अंतराल के साथ-साथ हमारी वर्तमान शिक्षा की प्रगति द्रुत गति से यदि किसी भी प्रत्यक्ष कारण से संभव हो सकी है तो अन्य-बातों की अपेक्षा वर्तमान में संचार माध्यम को ही श्रेय दे सकते हैं। क्योंकि विचारों का प्रचार एवं प्रसार इसी माध्यम से बड़ी सरलता एवं शीघ्रता से हो सका है। इसके साथ ही भारत में अंग्रेजी राज्य के इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अंग्रेज गवर्नर जरनलों ने विभिन्न कारणों से समय-समय पर शिक्षा के लिए प्रयत्न किए जिससे अंग्रेजी शिक्षा का क्रमिक एवं व्यवस्थित विकास संभव हो सका। किन्तु ठीक इसके पहले मुगलकालीन भारत में न कोई शिक्षा की क्रमिक एवं उचित व्यवस्था ही थी न जनता ने इसकी प्रगति के लिए कोई क्रियात्मक कदम ही उठाया। फिर भी मस्जिद और मंदिरों में मुल्ला, काजी और पंडित धार्मिक भावना से प्रेरित होकर शिक्षा का उद्देश्य अपने अर्जित किए हुए ज्ञान को कर्म में निहित करना है, जिससे मनुष्य में स्वाभिमान तथा नैतिकता बनी रही और यह बात हमें प्राचीन भारत के शिक्षा व्यवस्था में देखने को मिलती है, लेकिन आधुनिक युग में शिक्षा का महत्त्व तो बढ़ा, शिक्षा का प्रसार भी हुआ लेकिन मनुष्य में मानवता, स्वाभिमान, चारित्रिक हनन तथा नैतिक मूल्यों का हास भी हुआ जो समस्त विश्व के लिए प्रश्नवाचक चिह्न नजर आती है।

संदर्भ-सूची

1. विष्णु पुराण, 6.5.61
2. विष्णु पुराण, 1.19.41.
3. ऋग्वेद, 1.164.66
4. वृहद उपनिषद् 1.5.16
5. अत्रिय स्मृति, 1.140.41
6. डॉ. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक-इतिहास पृष्ठ 497
7. छान्दोग्य उपनिषद्, 6.1.1.3
8. पारस्कर गृह सूत्र, 2.3.
9. हरण्यक गृह सूत्र, 1.5.11.
10. छन्दोग्य उपनिषद्, 2.23.11.
11. छन्दोग्य उपनिषद्, 4.10.15.
12. छन्दोग्य उपनिषद्, 4.4.5
13. अनुत्तर निकाय-पृष्ठ 171
14. फिलिट, कार्पस इरिक र सन्स इंडिकोरम, भाग-3, अभिलेख-56
15. अलबरूनी, 11वीं सदी का भारत, पृष्ठ 168
16. छन्दोग्य उपनिषद्, 4.2
17. अलबरूनी, 11 वीं सदी का भारत, पृष्ठ 174
18. डॉ जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का समाजिक इतिहास पृष्ठ 536
19. ए. एस अल्तेकर, position of human in hindu civilization पृष्ठ 24

प्राथमिक ग्रामीण महिला कार्यकर्ता एवं उनका ग्रामीण अर्थव्यवस्था विकास में योगदानः सहारनपुर जनपद पर एक अध्ययन

रंजीता देवी

शोधार्थी, भूगोल विभाग, डी.जे. कॉलेज, बडौत (बागपत)

डॉ. वीरेन्द्र सिंह

शोध निदेशक एवं प्राचार्य, भूगोल विभाग, डी.जे. कॉलेज, बडौत (बागपत)

सारांश

ग्रामीण महिलाओं के सहयोग के बिना कृषि कार्य अधूरे हैं। वह एक कृषक के रूप में कम, कृषि मजदूर के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आ रही है। प्राथमिक ग्रामीण महिला कार्यकर्ताओं की व्यावसायिक संरचना की दृष्टि से कृषि मजदूरों के रूप में इनका योगदान अधिक मिलता है। इसके बाद कृषक महिलाओं का स्थान आता है। कृषक महिलाओं का वितरण कृषित भूमि के प्रतिशत वितरण से प्रभावित मिलता है। उत्तरी व दक्षिणी भागों की अपेक्षा पूर्वी व पश्चिमी भूभागों में इनकी उपस्थिति अधिक मिलती है।

वर्तमान तकनीकी युग में ग्रामीण महिलाओं की कृषि मजदूर कार्यकर्ता के रूप में उपस्थिति आज भी महत्वपूर्ण है। ऐसी महिला अपने परिवार की आजीविका को चलाने के लिए मजबूर होती है। इनकी भागीदारी व संख्या समय के साथ बढ़ी है।

शिवालिक व भावर की उपस्थिति ने ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी पशुपालन एवं वनोत्पादन कार्यो में बढ़ा दी है। सभी विकासखण्डों में बरसीम के उत्पादन ने भी दुग्ध उत्पादन हेतु पशुपालन को प्रोत्साहित किया है।

सहारनपुर नगर की समीपता ने बलियाखेड़ी विकासखण्ड में पशुपालन कार्य को विकसित करने में अधिक मदद की है। वर्तमान में ग्रामीण मजदूर महिलाएँ सब्जी उगाने, फसल उत्पाद एकत्र करने, बीज बोने, खाद डालने, सिंचाई कार्य में सहायता करने, दुग्ध उत्पाद सम्बन्धी कार्यो को करने, वन उत्पाद एकत्र करने का महत्वपूर्ण कार्य करती हैं।

प्रस्तावनाः प्रदेश में कृषि के क्षेत्र में महिलाओं की अहम भूमिका है तथा घरेलू कार्यो के साथ-साथ कृषि तथा बागवानी के क्षेत्र में महिलाओं की अग्रणीय भूमिका है। पुरूषों का गाँव की तरफ से शहर में पलायन होने की वजह से महिलाओं की हिस्सेदारी कृषि क्षेत्र में बढ़ रही है। इसकी वजह से महिलाएँ कृषि के साथ ही गावों में विभिन्न भूमिकाओं में दिख रही हैं।

भारत की स्थिति देखते हुए, ग्रामीण महिलाओं को कृषि को लेकर प्रशिक्षण दिये जाने की जरूरत में महिलाओं को अधिकार दिये जाने के बाद कृषि उत्पादकता में सुधार हुआ है। महिला किसानों को लेकर सरकार ने कई कदम उठाये हैं। कृषि में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को मान्यता देते हुए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने प्रत्येक 15 अक्टूबर को महिला किसान दिवस घोषित किया है।

उद्देश्य: इस अध्ययन का उद्देश्य प्राथमिक कार्यो में ग्रामीण महिलाओं की कार्यकर्ता के रूप में उपस्थिति, कार्यकर्ता के रूप में कार्य करने की प्रवृत्ति तथा उनकी व्यवसायिक संरचना का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र: सहारनपुर जनपद ऊपर गंगा मैदान का सबसे उत्तरी जनपद है। यह समतल मैदान के साथ अपनी उत्तरी सीमा शिवालिक पहाड़ी व वन प्रदेश 9 से 12 किमी. की चौड़ाई व 40 किमी. की लम्बाई में रखता है। इसमें दक्षिण में भावर प्रदेश की उपस्थिति 10-15 किमीङ्क की चौड़ाई में मिलती है। यमुना नदी इसकी पूर्वी सीमा बनाती है तथा अपने किनारे पर 7 से 10 किमी. की चौड़ाई में खादर का विस्तार रखती है। मध्य में हिण्डन का खादर 2 से 3 किमी. की चौड़ाई में फैला है। बांगर भूमि का विस्तार जनपद के अधिकांश शेष भाग पर मिलता है। नहर की प्रमुख नदी यमुना है। पांवधोई, ढमोला, कृष्णा, हिण्डन, नागदेव नदियाँ प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से यमुना की सहायक नदियाँ है। हिण्डन दूसरी प्रमुख नदी है।

पूर्वी यमुना नहर फैजाबाद के ताजेवाला से उद्गम रखती है व उत्तर-दक्षिण दिशा में बहती हुई कुआंखेड़ा के निकट ऊपर गंगा नहर की देवबन्द शाखा से मिलन करती है। इस जनपद में पर्वतीय वन मिट्टी, भावर मिट्टी, बांगर व खादर मिट्टियाँ मिलती हैं। बांगर मिट्टियाँ भूमिगत जल का प्रमुख स्रोत हैं। व फसलोत्पादन के लिए महत्व रखती हैं। यहाँ की जलवायु उपोष्ण व उप आर्द्र मानसून प्रकार की है। दिन रात के तापमान में विषमता के साथ शील व ग्रीष्म ऋतुओं में ऐसी विषमताएं पाई जाती है। वर्षा की मात्रा उत्तर-पूर्वी से दक्षिण-पश्चिम की ओर कम होती जाती है। यहाँ की प्रमुख वनस्पति शिवालिक वन व भावर घास है। शिवालिक पहाड़ियाँ घने वलों से ढकी है। इसके अलावा मैदानी भूभाग में आम, अमरूद, शीशम, चीड़, लोकाट, लीची के वृक्ष पाए जाते हैं। फलों का उत्पादन व्यापारिक पैमाने पर होता है।

विधि तन्त्र: वर्तमान शोधपर 1971, 1991 व 2011 के जनसंख्या के ऑकड़ों का प्रयोग किया गया है। विकासखण्डों को अध्ययन की इकाई माना गया है। ग्रामीण महिला जनसंख्या में महिला कार्यकर्ताओं का प्रतिशत ज्ञात किया गया है। प्राथमिक कार्यकर्ताओं में कृषक मजदूर, पशुपालन व वनोत्पादन में संलग्न महिला कार्यकर्ताओं को शामिल किया गया है। प्राथमिक ग्रामीण महिला कार्यकर्ताओं का प्रतिशत कुल ग्रामीण महिला कार्यकर्ताओं में प्रतिशत को अंकित किया गया है।

प्राथमिक महिला कार्यकर्ताओं का वितरण एवं प्रतिशत: यहाँ पर 1971, 1991 व 2011 के जनगणना वर्षो में ग्रामीण महिला कार्यकर्ताओं की प्राथमिक अर्थव्यवस्था में योगदान को बताने का प्रयास किया गया है। प्राथमिक कार्यकर्ताओं में ग्रामीण कृषित महिला एवं कृषि मजदूरों को शामिल किया गया है। इन जनगणना वर्षो में जनपद सहारनपुर में ग्रामीण महिला कार्यकर्ताओं में वृद्धि के साथ प्राथमिक कार्यकर्ताओं की संख्या व उनके प्रतिशत में भी वृद्धि अंकित की गई है।

सारिणी 1.1 प्राथमिक ग्रामीण महिला कार्यकर्ता वृद्धि एवं प्रतिशत (1961-2011)

क्रम	वर्ष	कुल ग्रामीण महिला कार्यकर्ता	प्राथमिक महिला कार्यकर्ता	कुल में प्रतिशत	वृद्धि संख्या	वृद्धि प्रतिशत
i	1961	15904	3070	19.30	–	–
ii	1971	7637	4849	63.49	+1779	+36.69
iii	1991	30035	17723	59.01	+12874	+72.64
iv	2011	88465	49060	55.45	+31337	+63.87
	1961–2011				+45990	+289.17

यहाँ पर सारिणी से विदित होता है कि प्राथमिक महिला कार्यकर्ताओं की संख्या में 45990 की वृद्धि अंकित की गई है। जबकि 1961 से 2011 के पांच दशकों में प्राथमिक महिला कार्यकर्ताओं में वृद्धि 72561 की हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों

में महिलाओं की भागीदारी में बढ़ोत्तरी हो रही है। इसका कारण ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि को अधिक प्राथमिकता देना है। प्राथमिक ग्रामीण महिला कार्यकर्ताओं की भागीदारी 1971 में 63.49 प्रतिशत, 1991 में 59.01 प्रतिशत है वहीं 2011 में घटकर 55.45 प्रतिशत रह गई है। लेकिन इनकी संख्या में वृद्धि अंकित की गई है।

2011 में प्राथमिक महिला कार्यकर्ताओं का प्रतिशत वितरण: अध्ययन क्षेत्र में इस वर्ष कुल ग्रामीण महिला कार्यकर्ताओं में प्राथमिक महिला कार्यकर्ता का 55.45 प्रतिशत अंकित किया गया है, जो गैर-प्राथमिक कार्यो की तुलना में काफी कम है। इनका प्रतिशत वितरण विकासखण्डों में विभिन्न असमानताएँ रखता है। इस वर्ष सबसे अधिक प्रतिशत 67.22 गंगोह विकासखण्ड में व सबसे कम प्रतिशत 40.90 बलियाखेड़ी विकासखण्ड में मिलता है।

(i) निम्न प्रतिशत प्राथमिक महिला कार्यकर्ता- इस वर्ग में 50 प्रतिशत से कम अनुपात रखने वाले विकासखण्ड़ों की संख्या तीन है। इनका औसत प्रतिशत 45.32 प्रतिशत रहा है तथा कुल में इनकी भागीदारी 20.44 प्रतिशत तक पहुँच गई है। इस वर्ग का उच्च प्रतिशत 50.00 साढौली कदीम में व सबसे कम 40.90 प्रतिशत पुवांरका विकासखण्ड में मिलता है। इनके मध्य इस वर्ग में बलियाखेड़ी विकासखण्ड में 45.76 प्रतिशत आंका गया है।

(ii) मध्यम प्रतिशत प्राथमिक महिला कार्यकर्ता- इस वर्ग में 50 से 55 प्रतिशत के बीच अनुपात रखने वले विकासखण्डों की संख्या 2 है। इनका औसत अनुपात 52.84 प्रतिशत है तथा कुल प्राथमिक महिला कार्यकर्ता में इनकी भागीदारी 20.26 प्रतिशत तक सामने आई है। इस वर्ग में सबसे कम अनुपात 51.97 प्रतिशत सरसावा में तथा सबसे अधिक अनुपात 53.48 प्रतिशत मुजफ्फराबादद्द विकास- खण्ड में मिलता है।

सारिणी 1.2 जनपद सहारनपुर के विकासखण्ड़ों में प्राथमिक महिला कार्यकर्ताओं का प्रतिशत एवं वितरण (2011)

क्रम	वर्ग	वर्ग प्रतिशत	विकास खण्डों की संख्या	ग्रामीण महिला कार्यकर्ता	प्राथमिक महिला कार्यकर्ता	औसत प्रतिशत	कुल का प्रतिशत
i	निम्न	< 50.00	3	22127	10029	45.32	20.44
ii	मध्यम	50.01–55.00	2	18817	9943	52.84	20.26
iii	उच्च	55.01–60.00	3	24419	13988	57.28	28.51
iv	अति उच्च	60.01 >	3	23102	15102	65.37	30.78
	योग		**11**	**88465**	**49060**	**55.45**	**100.00**

(iii) उच्च प्रतिशत प्राथमिक महिला कार्यकर्ता- 55 से 60 प्रतिशत के बीच महिला प्राथमिक कार्यकर्ताओं की उपस्थिति नकुड़ (58.34), रामपुर (56.69) तथा नागल (57.17) विकास खण्डों में मिलती है। इनका औसत 57.28 प्रतिशत है। जनपद का मध्यवर्ती भूभाग ऐसी विशेषता रखता है।

(iv) अति उच्च प्रतिशत प्राथमिक महिला कार्यकर्ता- इस वर्ग में 60 प्रतिशत से अधिक अनुपात रखने वाले विकासखण्डों की संख्या तीन है। जिनमें औसत रूप से 65.37 प्रतिशत कार्यकर्ता महिलाएँ प्राथमिक कार्यो में कार्यरत है। इस वर्ग में सबसे अधिक प्रतिशत 68.34 गंगोह विकास खण्ड में तथा सबसे कम 62.62 प्रतिशत देवबन्द विकासखण्ड में मिलता है। इन विकासखण्डों में कृषि कार्यो पर अधिक जोर दिया जाता है। गंगोह विकासखण्ड में अधिक कृषि की जाती है। वहीं देवबन्द विकासखण्ड में गन्ना मिल होने के कारण गन्ने की अधिक उपज पैदावार को दिया जाता है।

प्राथमिक ग्रामीण महिला कार्यकर्ताओं की व्यावसायिक संरचना (1961-2011): प्राथमिक महिला कार्यकर्ताओं पर उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर महिलाओं की व्यवसायिक संरचना का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। 1991 में कृषि मजदूर महिला को अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। उनकी संख्या में 1991-2011 में 21666 बढ़ोत्तरी अंकित की गयी है। यही बात कुल ग्रामीण महिला कार्यकर्ताओं में कृषक महिला 1991 में 22.03 प्रतिशत तथा 2011 में इनका प्रतिशत बढ़कर 26.08 हो गया है। इनकी संख्या में 8889 की बढोत्तरी को आँका गया है। पशुचारण व वनोत्पादन में कुल प्रतिशत में कमी होते हुए उनकी संख्या में बढ़ोत्तरी हुई है। 1961 में 9.30 प्रतिशत तथा 2011 में इनका 3.71 प्रतिशत रह गया है।

स्पष्ट है कि जिन भू-भागों पर कृषि मजदूर के रूप में महिलाएँ कार्यरत थीं, उन्हीं कृषक महिलाओं ने ही अपनी अहम भूमिका को कृषि में बनाये रखा है। इनकी बढ़ती भूमिका प्राथमिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बढ़ते योगदान का प्रतीक है।

सारिणी 1.3 प्राथमिक महिला कार्यकर्ताओं की व्यवसायिक संरचना (1961-2011)

क्रम	वर्ष	प्राथमिक महिला कार्यकर्ता	कृषक महिला	प्रतिशत	कृषि मजदूर महिला	प्रतिषत	पशुचारण व वनोत्पादन कार्यकर्ता	प्रतिशत
i	1961	3070	2398	78.12	414	13.50	288	9.38
ii	1971	4849	1869	38.55	2766	57.04	214	4.41
iii	1991	17723	3904	22.03	12779	72.10	1040	5.87
iv	2011	49060	12793	26.08	34445	70.21	1822	3.71
1991–2011		**+31339**	**8889**	—	**+21666**	—	**+782**	—

निष्कर्ष: भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण महिलाएँ अग्रणी भूमिका निभाती हैं, कृषि, पशुपालन व वनोतपादन कार्यो सहित आर्थिक गतिविधियों के विस्तृत दायरे में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण महिलाओं की प्राथमिक कार्यकर्ता के रूप में उनका काश्तकार, कृषित मजदूर एवं पशुपालन वनोत्पादन कार्य में ग्रामीण महिलाएँ अपनी अहम भूमिका को निभाती है। प्राथमिक महिला कार्यकर्ता के रूप में उनका दीर्घकालिक व अल्पकालिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था में उनका महत्वपूर्ण योगदान कार्यकर्ता का प्राथमिक अर्थव्यवस्था में क्या योगदान है? इसका आँकलन करने का प्रयास किया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक महिलाओं की संख्या पुरूषों से कम आँकी गई है। क्योंकि ग्रामीण महिलाओं को श्रम के मामले में दोहरी भूमिका का निर्वहन करना होता है। उनकी एक भूमिका परिवार का भोजन और अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने की होती है, तो दूसरी ओर जरूरत पड़ने पर खेती के कार्यो में सहयोग देना होता है। जिसके अन्तर्गत इन्हें साग-सब्जी व फसल उत्पादन, खेती की निराई का कार्य करना, बीज बोना, खाद डालना तथा फसल काटने का कार्य करना इन्हीं के द्वारा पूरा किया जाता है।

इस क्षेत्र में ग्रामीण महिलाएँ ही डेयरी पालन संबंधी अधिकतर कार्य कर रही है। डेयरी विकास कार्यक्रम में ग्रामीण महिलाओं का योगदान महत्वपूर्ण है महिला डेयरी विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत क्रियाशील महिलाओं को आवश्यकतानुसार विभिन्न विषयों में प्रशिक्षण सुविधा दिलाई जाती है। जैसे उन्नत पशुपालन तकनीकी, दुग्ध उत्पादक, सहकारी सीमित का संचालन, उद्यमिता विकास, महिला अधिकारों के प्रति जागृति एवं ज्ञान आदि जिससे उनमें सामाजिक एवं आर्थिक सम्पन्नता आ सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः

- Bakshi, B.P. : The Changing Role and Status of Women in Society, Social Welfare, April 1964.
- Bansal, S.C. : Saharanpur Ek Bhogolik Parichaya-2019.
- Evans, Pritchard, E.D. : Position of women in Primitive Societies and Other Essays in Social Anthropology, Faber and Faber, London, 1965.
- Gadgil, D.R. : Women in the Working Force in India, Asia Publishing House, Bombay, 1965.
- Singh, R.L. : India : A Regional Geography, 1971, NGSI Varanasi.
- District Statistical year Book – 2011, 2015, 2020
- District Census Hand book – 1961, 1971, 1991
- Abstract District Census Handbook – 2011.

भारत में जाति व्यवस्थाः सामाजिक आँकलन

डॉ० चन्द्रकांता के माथुर

अस्सिटेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

परिचय

भारतीय जाति व्यवस्था ऐतिहासिक सामाजिक सरंचनाओं के मुख्य आयामों में से एक है, जहां भारत में लोगों को वर्ग, धर्म, क्षेत्र, जनजाति, लिंग और भाषा के माध्यम से सामाजिक रूप से विभिन्नता पाई जाती है। यद्यपि कई अन्य प्रकार के भेदभाव सभी मानव समाजों में मौजूद हैं, किन्तु यह तब एक समस्या बन जाती है जब इनमें से एक या अधिक आयाम एक दूसरे को निरंतरित करने लगते हैं और धन, आय, शक्ति और प्रतिष्ठा जैसे मूल्यवान संसाधनों द्वारा तक व्यवस्थित उच्च स्थान एकमात्र आधार बन जाता हैं। भारतीय जाति प्रणाली को स्तरीकरण की एक निश्चित प्रणाली माना जाता है, जिसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उस जाति के लिए बाध्य होती है जिस जाति में वे पैदा हुए थे। एक अन्य सामाजिक स्थिति के लोगों के साथ बातचीत और व्यवहार पर सीमाएं हैं। इसका इतिहास बड़े पैमाने पर भारत व हिंदू धर्म के प्रमुख धर्मों में से एक से संबंधित है, और बौद्ध धर्म क्रांति के दौरान और ब्रिटिश शासन के दौरान कई तरीकों से बदल दिया गया है। बदलते परिवेश में निरन्तर सामाजिक व मानवीय सोच मैं बदलाव आया सोच बदली तो जाती समीकरण को स्वीकार व अस्वीकार करने के मत भी बदले।

पृष्ठभूमि

विश्वभर मैं हिंदू समाज को मुख्यतः भारतीय समाज के रूप में जाना जाता है, और भारतीय इतिहास में जाति व्यवस्था प्रारम्भ में स्तरीकृत-आधारित थी। जो विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत आती है, इन जातियों के श्रेणीबद्ध विभाजन के आधार पर एक श्रंखला मानी गई है। जिसके अनुसार भारतीय जाति व्यवस्था प्रारम्भ मैं चार वर्ण प्रणाली को सम्मिलित किया गया है। भारत में जाति व्यवस्था प्राचीन हिंदू परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और 1200 ईसा पूर्व से पहले की है। हिंदू सामाजिक संगठन के आधार के रूप में जाति ने भारत में अन्य धार्मिक समुदायों के जीवन के स्तर को काफी प्रभावित किया है। इसलिए, यह कहना गलत नहीं होगा कि जाति व्यवस्था हिंदू धर्म की मुख्य पहचान मजबूत स्तम्भ के रूप मैं देखी गई[2]। और लोकप्रिय हिंदू धर्म का पत्रक-लंगर इससे पहले कि हम 'जाति' शब्द को परिभाषित करते हैं, हमें 'वर्ण' और 'जाति' शब्दों के बीच मौजूद भेद के बारे में स्पष्ट होना चाहिए, जो वैचारिक रूप से एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। जाति शब्द का उपयोग पहली बार पुर्तगाली यात्रियों द्वारा किया गया था जो 16 वीं शताब्दी में भारत आए थे। जाति स्पेनिश और पुर्तगाली शब्द 'जाति' से आई है जिसका अर्थ है 'जाति', 'नस्ल', या 'वंश'। बहुत से भारतीय 'जाति' शब्द का प्रयोग करते हैं। भारत में 3,000 जातियां और 25,000 उपजातियां हैं, जिनमें से प्रत्येक एक विशिष्ट व्यवसाय से संबंधित हैं। ये विभिन्न जातियाँ चार मूल वर्णो के अंतर्गत आती हैं:[3]

- ब्राह्मण - पुजारी और शिक्षक
- क्षत्रिय - योद्धा और शासक
- वैश्य- किसान, व्यापारी और व्यापारी
- शूद्र-मजदूर

अम्बेडकर के अनुसार जाति एक स्व-संलग्न (self& enclosed) सामाजिक बंधन है जब तक कि उसमें आंतरिक सामाजिक मेलजोल आदि को सीमित नहीं किया जाता है। नतीजतन बाहरी लोगों के साथ खिलवाड़ की यह अनुपस्थिति सकारात्मक निषेधों

के कारण नहीं है, बल्कि यह जाति का एक स्वाभाविक परिणाम है, अर्थात् विशिष्टता, एक धार्मिक निषेधता व् उसके निषेधात्मक चरित्र का अधिग्रहण किया है लेकिन इसे बाद के विकास के रूप में विकृत आचरण को माना जा सकता है।[4]

भारत में जाति का अर्थ है कि निश्चित निश्चित इकाइयों में जनसंख्या का कृत्रिम काट दिया जाना, प्रत्येक को विस्तृत स्वरुप के माध्यम से दूसरे में समाहित होने से रोका गया।[5]

जाति न केवल किसी के व्यवसाय को निर्धारित करती है, बल्कि आहार संबंधी आदतों और अन्य जातियों के सदस्यों के साथ सम्मिलित होने से रोकती है , उच्च जाति के सदस्य अधिक धन और अवसरों का आनंद लेते हैं, जबकि निम्न जाति के सदस्य मासिक कार्य करते हैं। जाति व्यवस्था के अंतर्गत गरीब मजदूरी करने वाला समाज से बाहर व अछूत हैं। मैला ढोने वाला, सफाई करने वाला, कचरा हटाने जैसी अछूत नौकरियाँ इत्यादि जैसा की उन्हें शारीरिक तरल पदार्थों के संपर्क में रहने की आवश्यकता होती हैं। इसलिए उन्हें अस्पृश्य माना जाता है और उन्हें छुआ नहीं जाता। शरीर और भोजन में शुद्धता का महत्व प्रारंभिक संस्कृत साहित्य में पाया जाता है। अछूतों के घरों में अलग प्रवेश द्वार हैं और उन्हें अलग-अलग कुओं से पानी पीना चाहिए। उन्हें अशुद्धता की स्थायी स्थिति में माना जाता है। अछूतों को गांधी द्वारा ष्हरिजनष (ईश्वर के बच्चे) का नाम दिया गया था। उन्होंने अछूतों के साथ दोस्ती करने और खाने जैसे प्रतीकात्मक इशारों के साथ अपनी स्थिति बढ़ाने की कोशिश की। जाति व्यवस्था में ऊर्ध्वगामी गतिशीलता बहुत कम है। ज्यादातर लोग एक ही जाति में रहते हैं और अपना पूरा जीवन अपनी जाति में ही विवाह करते हैं।

जाति व्यवस्था का धार्मिक रूप

हिंदू धर्म में चार जातियाँ मौजूद हैं जो एक पदानुक्रम में व्यवस्थित हैं। जो भी इन जातियों में से एक से संबंधित नहीं है वह एक बहिष्कार है। जाति के लिए धार्मिक शब्द श्वर्णश है। प्रत्येक वर्ण के कुछ कर्तव्य और अधिकार हैं। प्रत्येक वर्ना सदस्यों को कुछ व्यवसायों में काम करना पड़ता है, जिसमें केवल वर्ना सदस्यों को अनुमति दी जाती है। प्रत्येक वर्ण में कुछ प्रकार के आहार होते हैं। सबसे अधिक व उच्च वर्ण ब्राह्मण (विद्वान) है। इस वर्ग के सदस्य पुजारी और समाज के शिक्षित लोग हैं। पदानुक्रम में उनके बाद का वर्ण क्षत्रिय है। इस वर्ग के सदस्य समाज के शासक और कुलीन वर्ग हैं। उनके बाद वैश्य हैं। इस वर्ग के सदस्य समाज के जमींदार और व्यापारी हैं। पदानुक्रम में उनके बाद शूद्र आता है। इस वर्ग के सदस्य समाज के किसान और श्रमिक वर्ग हैं जो गैर-प्रदूषणकारी नौकरियों में काम करते हैं। जाति पदानुक्रम यहाँ समाप्त होता है। इन जातियों के नीचे चार जातियों के मुकाबले अछूत हैं। इन अछूतों ने अपमानजनक नौकरियों जैसे सफाई, सीवेज आदि में काम किया। जिसके कारण यह जातियॉं अस्पृश्य श्रेणी के अंतर्गत आ गई।

अस्पृश्यता की उत्पत्ति

भारतीय जाति व्यवस्था का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू अस्पृश्यता की संस्था का प्रचलन है। इस विषय के बारे में भारतीय और साथ ही पश्चिमी विद्वानों द्वारा अब काफी कुछ लिखा व अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। जिसके अंतर्गत विभिन्न दृष्टिकोणों को अपनाया जाता है और अस्पृश्यता के उद्‌भव के बारे में अलग-अलग विचार व्यक्त किए जाते हैं।

जाति व्यवस्था में छुआछूत की विशेषता जाति व्यवस्था की क्रूर विशेषताओं में से एक है। इसे दुनिया में सबसे मजबूत नस्लवादी घटनाओं में से एक के रूप में देखा जाता है।

भारतीय समाज में, जिन लोगों ने अज्ञानतापूर्ण, अशुद्ध व्यवसायों में काम किया था, उन्हें अश्पृश्य के रूप में देखा गया था और इसलिए उन्हें अछूत माना जाता था। अछूतों का समाज में लगभग कोई अधिकार नहीं था। भारत के विभिन्न हिस्सों में उनके साथ विभिन्न तरीकों से व्यवहार किया गया। कुछ क्षेत्रों में अछूतों के प्रति रवैया कठोर और सख्त था। अन्य क्षेत्रों में यह कम कठोर था। जिन क्षेत्रों में रवैया कम सख्त था वहां अछूतों को भेदभाव फैलाने वाले लोगों के रूप में देखा जाता था और उनके निवास चार वर्ण समुदायों की बस्तियों से दूरी पर होते थे। अछूतों को चार वर्णों के लोगों को छूने की अनुमति नहीं थी। उन्हें उच्च वर्णों के घरों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। उन्हें मंदिरों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी। उन्हें वर्णों द्वारा उपयोग किए जाने वाले कुओं का उपयोग करने की अनुमति नहीं थी। सार्वजनिक अवसरों में वे चार वर्णो से दूरी पर बैठने के लिए मजबूर थे। जिन क्षेत्रों में अछूतों के प्रति दृष्टिकोण अधिक गंभीर था, बल्कि उनकी छाया के संपर्क में भी गन्दगी के रूप में देखा जाता था द्ययदि, किसी भी कारण से, एक अछूत अन्य किसी वर्णों के एक सदस्य के बीच संपर्क में जाता था, या वर्ण सदस्य अपवित्र हो जाता

गया तो उस शुद्ध होने के लिए खुद को पानी से विसर्जित या धोना पड़ता था। यदि अछूत किसी घर में प्रवेश करता था और किसी वर्ण सदस्य की चीजों को छूता था, तो वर्ण सदस्य उन स्थानों को धोते या साफ करते थे, जहां अछूतों ने छुआ और कदम रखा। कुछ प्रसंगों में, अछूत, जो वर्ण सदस्यों के साथ जुड़े हुए थे, को पीटा जाता था और यहां तक कि उनकी हत्या भी कर दी गई। कुछ उच्च पदानुक्रम के जातियों में नौकर भी होते थे जिनका काम उच्च जाति के सदस्यों के सामने जाना या चलना और सड़कों पर आने की घोषणा करना और यह देखना था द्य रूढ़िवादी हिंदुओं ने किसी भी तरह के प्रदूषणकारी काम में अछूत के रूप में काम किया और उनके साथ कोई संपर्क नहीं किया। रूढ़िवादी नियमों के अनुसार, जो कोई भी चार वर्णों से संबंधित नहीं है, जिसका अर्थ दलित है, अछूत हैं।

अछूतों की सामाजिक स्थिति

सामान्यतः भारत में हर जगह अस्पृश्य जातियों के अंतर्गत आने वाले लोगो के संबंध में अछूतों की समान सामाजिक स्थिति नहीं है। उनकी स्थिति एक समूह से दूसरे समूह में भिन्न होती है। हालाँकि, वे वंचित हैं, गरीब निरक्षर हैं और गाँव के एक अलग हिस्से में जाति के लोग रहते हैं। दक्षिण भारत में, वे वास्तव में मुख्य गाँव से आधे मील दूर या एक अलग गाँव में रहते हैं। उन्हें मैला ढोने के आवश्यक उद्देश्य को छोड़कर, जाति के हिंदू घरों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं है, और कई गांवों में, उन्हें उच्च जाति के निवास स्थानों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं है। अछूतों को जाति के हिंदुओं के टैंक और कुओं से पानी खींचने की अनुमति नहीं है। यहां तक कि वे बाजार में खरीदारी नहीं कर सकते, होटल में प्रवेश नहीं कर सकते हैं, अलग ग्लास और कप, की व्यवस्था होती है वहीँ शिक्षा लेने व् देने में पक्षपात किया जाता है, वे जाति के हिंदू छात्रों के साथ बैठने का हकदार नहीं हो सकते हैं, असंख्य प्रकार की दृश्य व् अदृश्य अश्पृश्यता का सामना करना पड़ता हैं, शादी विवाह स्वतंत्र होकर नहीं कर सकते इत्यादि।

दलितों की आर्थिक स्थिति

हिंदू सामाजिक व्यवस्था निर्माताओं ने अछूतों के जीवन का तरीका व उसका अनुपालन निर्धारित किया। वंचित समाज (शूद्र) उन्हें समुदाय के सभी काम करने होंगे। अछूत लोग मैला ढोने वाले होते हैं, मरे हुए जानवरों को हटाते हैं और चमड़े पर आधारित काम में शामिल होते हैं। उनकी कमाई बहुत कानून है। गाँवों में उन्हें अक्सर वस्तु के रूप में मेहनताना के रूप में भुगतान किया जाता है, और फसल के समय के दौरान, उन्हें अनाज की एक निश्चित स्थिति प्राप्त होती है जो उनके निर्वाह के लिए बहुत अपर्याप्त होती है। भारत के कई हिस्सों में वे बहुत अधिक अवैतनिक काम करने के लिए मजबूर हैं। जैसे, उदास वर्गों को व्यापार में निवेश करने के लिए पूंजी की कमी होती है।ऐसे असंख्य प्रकार से वंचित समाज का शोषण निरन्तर होता रहता है, वंचित समाज को इसके अधिकार का व् उसके जीवन निर्वाह का पूर्ण मेहनताना प्राप्त नहीं होता कई बार पुरे साल काम करने व् पुरे परिवार की कुल पूंजी जीवन निर्वाह के किये कम होती है जिस के कारण वंचित समाज के लोग अपने बच्चो का सही से पालन पोषण व् शिक्षा प्रदान करने मैं असमर्थ होते हैद्य किन्तु स्वतन्त्र भारत बी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में सरकार अनुसूचित जाति उप-राज्य का ध्यान केंद्रित कर रही है ताकि उनकी आर्थिक सहायता की जा सके। लेकिन राज्य सरकारें मनमाने ढंग से एससी के कल्याण के लिए निर्धारित अनुदान को रोक रही हैं। इसके अलावा, उनके खिलाफ भेदभाव की उम्र को देखते हुए, उन्होंने तीक्ष्ण व्यवसाय विकसित नहीं किया है।

दलित रूपांतरण और धर्म

भारतीय हिन्दू संस्कृति में वैसे तो अछूतों को हिंदू माना जाता है, लेकिन उन्हें मंदिरों में हिन्दू देवों की पूजा करने की अनुमति नहीं है। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि स्वतंत्रता सेनानी महात्मा गांधी ने उस अछूत हिस्सों और हिंदू समाज की संख्या का औसत निकाला और उन्होंने शूद्रों को ईश्वर की सन्तान (हरिजन) के रूप में प्रस्तुत किया। वंचित समाज को हरिजन कहे जाने व् माने जाने पर असंख्य विवाद है डॉ भीमराव अम्बेडकर इसे पक्षपातपूर्ण मानसिकता मानते है। उनके अनुसार यदि वंचित समाज ईश्वर की संतान है तो क्यू और किस आधार पर वंचित समाज को ईश्वर से दूर रहने व् अछूत कहे जाने व् अपवित्र माने जाने को न्यायसंगत माना जा सकता है।

भारत में जाति व्यवस्था का विभिन्न रूपांतर

जैसा कि हम जानते हैं कि भारत भूमि का एक सत्य है। और धर्म जाति व्यवस्था का एक कारण है। ऐतिहासिक रूप से हमने पाया कि जब भारत में लोदी, मुस्लिम शासक इत्यादि विदेशियों के आक्रमण व् भारत में साम्राज्य विस्तार की इच्छा ने अछूतों के मध्य धार्मिक विभेद करना व् धर्म को जाति का आधार बनाने का प्रयास किया जिसमें आक्रमणकारी काफी हद तक सफल भी रहे चूँकि इस्लाम धर्म जाति विभाजन को स्वीकार नहीं करता और उन्हें मजदूर व् संख्यात्मक रूप से लोग अपने साम्राज्य विस्तार हेतु उन्हें इन्ही लोगो की आवयश्कता थी। अत: सबसे अधिक धर्मांतरण वंचित समाज का ही करवाया गया किन्तु इससे उनकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया वह सब वंचित समाज के रूप में व्यवहार करने के लिए मजबूत थे आक्रमणकारी न केवल सैन्य अर्थों में मजबूत थे, उन्होंने भारतीयों पर अपने धर्म को लागू करने का भी प्रयास किया। अधिकांश मामलों में इस्लाम में परिवर्तित होने वाले भारतीय उसी सामाजिक स्थिति में थे, जैसा कि उनके इस्लाम में रूपांतरण से पहले था। उच्च वर्णों के हिंदू भारतीय समाज के उच्च स्तरों पर बने हुए थे। पदानुक्रम के निचले स्तरों के हिंदुओं ने सोचा था कि इस्लाम में परिवर्तित होने से वे हिंदू पदानुक्रम प्रणाली से बाहर आ जाएंगे, लेकिन अधिकांश मामलों में वे परिवर्तित होने के बाद समान पदानुक्रम स्तर में बने रहे। भारत के मुसलमानों के बीच एक द्वि-स्तरीय पदानुक्रम विकसित हुआ है। उच्च वर्ग, जिसे शरीफ जाट कहा जाता है, में वे मुस्लिम शामिल हैं जो जाति पदानुक्रम में उच्च स्तर में थे और वे मुस्लिम भी थे जो भारत से विदेशों में पहुंचे थे। निम्न वर्ग, जिसे अजलाफ जाट कहा जाता है, में निम्न जातियों से मुस्लिम धर्मान्तरित शामिल थे। अत: जिस प्रकार दुनिया में, उच्च वर्गों का निम्न वर्गों के साथ घनिष्ठ सामाजिक संबंध नहीं हैं, उसी तरह शरीफ जाट के सामान्य रूप से अजलाफ जाट के साथ घनिष्ठ सामाजिक संबंध नहीं हैं।

भारत के विभिन्न ईसाई समुदायों का भारत के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग तरीकों से व्यवहार किया गया। केरल के सीरियाई ईसाइयों को उच्च दर्जा प्राप्त था। यहूदियों के साथ, वे केरल के व्यापारिक समुदाय थे और उनके पास भी कुलीन अधिकार थे। 16 वीं शताब्दी से ईसाई मिशनरियों द्वारा बपतिस्मा लेने वाले भारतीय ज्यादातर उसी स्थिति में थे जो पहले थे। जैसा कि भारत के मुस्लिम समुदाय में, ईसाइयों के पास भी दो-स्तरीय सामाजिक पदानुक्रम है। कई अछूत, जो ईसाई धर्म में परिवर्तित हो गए, उन्हें अभी भी अछूत के रूप में माना जाता है, कभी-कभी अन्य ईसाईयों द्वारा।

यूरोपीय ईसाइयों को भी हिंदुओं के लिए अछूत माना जाता है। 17 वीं और 18 वीं शताब्दी में कुछ यूरोपीय लोगों ने भी दावा किया था कि उन्हें अछूत माना जाता है। लेकिन बाद में भारत पर ब्रिटिश शासन के साथ यह उच्च स्तर की हिंदू जातियां थीं, विशेष रूप से ब्राह्मण, जिन्होंने यूरोपीय लोकतांत्रिक दर्शन को अपनाया, जिसके अनुसार सभी समान हैं और उन्होंने इसे अन्य भारतीयों के लिए पेश किया।

अन्य धर्म जो भारत में स्थापित हुए थे जैसे - बौद्ध, जैन और सिख धर्म - में भी जाति व्यवस्था के कुछ चिह्न दिखाई देते हैं, भले ही वे जाति व्यवस्था का विरोध करते हैं। सिख धर्म जाति व्यवस्था को खारिज करता है। लेकिन सिख जातियों को अपनाने वाले विभिन्न जाट पारंपरिक जाट लाइनों के अनुसार काम करते हैं। विभिन्न जातियां सामान्य रूप से जातिगत पंक्तियों के भीतर विवाह करती हैं। जो जाट पंजाब के अभिजात वर्ग थे और सिख धर्म में परिवर्तित हुए, वे सिखों को उतना सम्मान नहीं देते हैं जो भारतीय पदानुक्रम के निचले स्तर के हैं। जैनों के अलग समुदाय भी हैं, जो सामुदायिक लाइनों के भीतर शादी करते हैं। भारत में बौद्धों का दो-स्तरीय पदानुक्रम है और ईसाइयों और मुसलमानों के मामलों की तरह ही यह भी उस समुदाय की स्थिति से संबंधित है जिससे व्यक्ति संबंधित है। दूसरी ओर, पश्चिम भारत के महार समुदाय, जो अछूत थे और ज्यादातर बौद्ध धर्म में परिवर्तित हुए, खुद को महारों के रूप में पहचानने के लिए विभिन्न राजनीतिक कारणों के कारण पसंद करते हैं और हमेशा बौद्ध के रूप में नहीं। अर्थात मात्र हिंदू धर्म ही जातियुक्त नहीं है अपितु सभी सामाजिक स्थिति जाति मायनों की पोषक है।

भारत में अस्पृश्यों की मुक्ति: एक तर्क

1930, सामाजिक परिवर्तन का साल था जब डॉ. भीमराव अंबेडकर को पूरे देश के अछूतों का एकमात्र शक्तिशाली नेता माना जाने लगा। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का विरोध किए बिना अछूतों के अधिकारों की उपलब्धि के संबंध में गोलमेज सम्मेलन में एक ऐतिहासिक भूमिका निभाई। गोलमेज सम्मेलन में, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अछूत एक अलग सामाजिक

समूह का गठन करते हैं और उन्हें हिंदू समुदाय का अभिन्न अंग नहीं माना जा सकता है। इसलिए, इस तर्क के आधार पर वह अछूतों के लिए अलग निर्वाचक मंडल चाहते थे। हालांकि, डॉ. अंबेडकर जी के इस कदम का महात्मा गांधी द्वारा विरोध किया गया। उन्होंने अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन को इस दलील पर खारिज कर दिया उन्होंने कहा वंचित समाज अश्पृश्यता का शिकार भले ही है किन्तु वह अछूत हिंदू थे और अलग मतदाता हिंदुओं के समाज में एक द्वेष उत्पन्न करेगा। जब अंबेडकर द्वारा अलग निर्वाचक मंडल प्राप्त किया गया, तो गांधी ने पूना में यरवदा जेल में 1932 में 'आमरण अनशन' शुरू करके इसका विरोध किया। उपवास का उद्देश्य अम्बेडकर को अछूतों के लिए अलग निर्वाचन की योजना को छोड़ने के लिए मजबूर करना था। इससे पूरे देश में तनाव पैदा हो गया। इस गतिरोध को हल करने और गांधी के जीवन को बचाने के लिए, मदन मोहन मालवीय और अन्य हिंदू नेताओं ने 19 सितंबर 1932 को बॉम्बे (मुंबई) में एक सम्मेलन आयोजित करने का फैसला किया और अंबेडकर को सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। बाद में अंबेडकर और गांधी जी के बीच एक समझौता हुआ। अंबेडकर ने अलग निर्वाचक मंडल की मांग छोड़ दी जिसे उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में जीता और निर्वाचित संयुक्त मतदाताओं 'को स्वीकार किया जिसमें जाति के हिंदुओं ने बहुमत का गठन किया। इस समझौते को प्रसिद्ध 'पूना पैक्ट' के रूप में जाना जाता है। अम्बेडकर ने स्वयं देखा कि गांधी के जबरदस्त उपवास के कारण पूना पैक्ट को स्वीकार किया गया था और उस समय दिए गए आश्वासन के कारण कि हिंदू अनुसूचित जातियों के चुनाव में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

आधुनिक भारत में जाति व्यवस्था

स्वतंत्र भारत के नेताओं ने तय किया कि भारत लोकतांत्रिक, समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष देश होगा। इस नीति के अनुसार धर्म और राज्य के बीच अलगाव है। अस्पृश्यता का व्यवहार करना या किसी व्यक्ति को उसकी जाति के आधार पर भेदभाव करना कानूनी रूप से निषिद्ध है। दूसरी श्रेणी अनुसूचित जनजाति है। इस श्रेणी में वे समुदाय शामिल हैं, जिन्होंने जाति व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया और मुख्य आबादी से दूर, भारत के जंगलों, जंगलों और पहाड़ों में गहरे निवास करना पसंद किया। अनुसूचित जनजातियों को आदिवासी भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है आदिवासी।

तीसरी श्रेणी को कभी-कभी अन्य पिछड़ा वर्ग या पिछड़ा वर्ग कहा जाता है। इस श्रेणी में वे जातियाँ शामिल हैं, जो सुद्र वर्ण की हैं और पूर्व अस्पृश्य भी हैं जो हिंदू धर्म से दूसरे धर्मों में परिवर्तित हो गई। इस श्रेणी में उन खानाबदोशों और जनजातियों को भी शामिल किया गया है जिन्होंने आपराधिक कृत्यों से जीवनयापन किया। केंद्र सरकार की नीति के अनुसार ये तीन श्रेणियां सकारात्मक भेदभाव की हकदार हैं। कभी-कभी इन तीन श्रेणियों को एक साथ पिछड़ा वर्ग के रूप में परिभाषित किया जाता है। भारत की 15% जनसंख्या अनुसूचित जाति है। केंद्र सरकार की नीति के अनुसार सरकारी नौकरियों में 15% और विश्वविद्यालयों में दाखिला लेने वाले छात्रों में से 15% अनुसूचित जाति से होने चाहिए। अनुसूचित जनजातियों के लिए लगभग 7.5% स्थान आरक्षित हैं जो भारतीय जनसंख्या में उनका अनुपात है। अन्य पिछड़ा वर्ग भारत की आबादी का लगभग 50% है, लेकिन केवल 27% सरकारी नौकरियां उनके लिए आरक्षित हैं।

केंद्र सरकार के साथ-साथ, भारत की राज्य सरकारें भी सकारात्मक भेदभाव की नीति का पालन करती हैं। विभिन्न राज्यों में प्रत्येक राज्य की जनसंख्या के आधार पर सकारात्मक भेदभाव के हकदार समुदायों के अलग-अलग आंकड़े हैं। विभिन्न राज्य सरकारों के पास सकारात्मक भेदभाव के हकदार समुदायों की अलग-अलग सूची है। कभी-कभी एक विशिष्ट समुदाय किसी विशेष राज्य में अधिकारों के लिए हकदार होता है, लेकिन भारत के किसी अन्य राज्य में नहीं।

आधुनिक भारत में इन सकारात्मक भेदभाव की नीतियों के कारण नए तनाव पैदा हुए। उच्च जाति समुदायों को पिछड़े वर्गों के लिए पदों को आरक्षित करने के लिए सरकार की नीति से भेदभाव महसूस होता है। कई मामलों में बड़ी संख्या में उच्च जाति के सदस्य उनके लिए आरक्षित कुछ स्थानों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। जबकि पिछड़े वर्ग के सदस्यों को उम्मीदवारों की तुलना में उनके लिए आरक्षित स्थानों की बड़ी संख्या के कारण प्रतिस्पर्धा करने की आवश्यकता नहीं है। कभी-कभी कोटा भरने के लिए, निम्न वर्ग के उम्मीदवारों को स्वीकार किया जाता है, भले ही वे उपयुक्त न हों। कभी-कभी कुछ आरक्षित पदों को मानवरहित रखा जाता है क्योंकि निम्न वर्ग के कुछ उम्मीदवार थे जो जातियों के बीच अधिक तनाव पैदा करते थे। निचली जातियों के बीच भी आरक्षण को लेकर तनाव है।

पिछड़े वर्गों के आरक्षित स्थान के लिए प्राथमिकता के क्रम में, अनुसूचित जाति के उम्मीदवार को अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवार से अधिक पसंद किया जाता है, जिसे अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवार से अधिक पसंद किया जाता है। जैसा कि पहले कहा गया था कि अन्य पिछड़ा वर्ग भारत की जनसंख्या का लगभग 50% है, लेकिन अन्य पिछड़ा वर्ग के केवल 27% केंद्र सरकार की नीति के अनुसार सकारात्मक भेदभाव के हकदार हैं। कुछ अन्य पिछड़ा वर्ग समुदाय सकारात्मक भेदभाव के हकदार राजनीतिक रूप से पिछड़े वर्ग के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए आयोजित कर रहे हैं। अनुसूचित जनजाति जिन्हें भारत के आदिवासियों के रूप में देखा जाता है, को भारतीय भूमि पर स्वामित्व और कुछ अधिकार प्राप्त हैं। भारत में कई समुदाय भी भारत के आदिवासी होने का दावा करते हैं और वे अनुसूचित जनजातियों के समान अधिकारों का दावा कर रहे हैं। जाति की पहचान राजनीतिक, सामाजिक और कानूनी व्याख्या का विषय बन गई है। सकारात्मक भेदभाव के हकदार के रूप में सूचीबद्ध होने वाले समुदाय इस सूची से बाहर नहीं निकलते हैं, भले ही उनकी सामाजिक और राजनीतिक स्थिति बेहतर हो। कई मामलों में कानूनी व्यवस्था यह तय करने के लिए शामिल है कि क्या एक निश्चित व्यक्ति सकारात्मक भेदभाव के लिए हकदार है। लेकिन इस सभी सकारात्मक भेदभाव नीति के साथ, अधिकांश समुदाय जो जाति पदानुक्रम में कम थे, आज भी सामाजिक व्यवस्था में कम हैं। और जो समुदाय सामाजिक पदानुक्रम में उच्च थे वे आज भी सामाजिक पदानुक्रम में उच्च हैं। ज्यादातर अपमानजनक काम आज भी दलितों द्वारा किए जाते हैं, जबकि ब्राह्मण भारत के डॉक्टर, इंजीनियर और वकील बनकर पदानुक्रम के शीर्ष पर बने हुए हैं

निष्कर्ष

भारतीय जाति व्यवस्था ने व्यवसायों और भूमिकाओं के साथ-साथ भारतीय समाज के मूल्यों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। धर्म सदियों से इस स्तरीकरण प्रणाली की ओर निरंतर धक्का दे रहा है, आर्यों के साथ शुरू हुआ और दुर्भाग्यपूर्ण भेदभाव, अलगाव, हिंसा और असमानता का एक लंबा रास्ता जारी रहा। भारतीय लोगों के दैनिक जीवन और विश्वासों को प्रभावित करने वाला धर्म था। आजादी के तैंतीस साल बाद भी भारतीय जातिगत चेतना की गिरफ्त में हैं। ऐतिहासिक रूप से, भारत सदियों से जाति, पंथ और भाषा से विभाजित समूहों के साथ सहस्राब्दी के लिए एक राष्ट्र के रूप में जीवित रहा है। काम को विभाजित किया गया था और प्रत्येक को जन्म से ही उनका आवंटित कार्य था, और कब्जे की आनुवंशिकता एक नियम था जिसने शहरी और ग्रामीण जीवन के अर्थशास्त्र में एक बड़ी भूमिका निभाई थी। व्यवसाय या जाति की गतिशीलता प्रतिबंधित थी, और अपने स्वयं के पथ का अनुसरण करने के लिए अपने पूर्वजों के कब्जे को छोड़ने वाला एक व्यक्ति शायद ही कभी देखा गया था। यह देखा जा सकता है कि भारत के भीतर सामाजिक और राजनीतिक संबंधों के गतिशील में जाति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हालांकि, जाति और वंशानुगत व्यवसायों के बीच संबंध अब कम महत्वपूर्ण हो गए हैं, और विशेषकर शहरी क्षेत्रों में जातियों के बीच सामाजिक संपर्क पर कम प्रतिबंध हैं। वर्तमान भारतीय समाज अपनी बंद प्रणालियों से जातियों और पंथों के बावजूद मानव आत्मा के जोर से परिवर्तन और प्रगति की स्थिति की ओर बढ़ रहा हैं । जाति व्यवस्था से जुड़े अन्याय को चुनौती देने वाले कई आंदोलनों ने भारत में व्यक्तियों को अन्य जाति के सदस्यों के प्रति अधिक नागरिक होने के लिए प्रोत्साहित किया है। कई निचली जातियों ने जाति व्यवस्था के आंशिक उन्मूलन से बहुत कुछ हासिल किया है, और भारत को अपनी संस्कृति से स्तरीकरण की इस प्रणाली को खत्म करने के निरंतर प्रयास के लिए सराहना की जानी चाहिए। हालाँकि, यह देखना महत्वपूर्ण है कि जाति की स्थिति ने आज भारत में जीवन की गुणवत्ता और सामाजिक गतिशीलता को कैसे प्रभावित किया है। वर्तमान समय में जाति व्यवस्था को लेकर असंख्य आंकलन व् विश्लेषण आ रहे है जाति व्यवस्था आन्तरिक द्वन्द्व से गुजर रही है परिवर्तन के दौर में मानसिकता में परिवर्तन आना अत्यंत आवयश्क हैं।

Reference

Stuart, and John Harriss. Reinventing India: Liberalization, Hindu Nationalism, and Popular Democracy. Cambridge, UK: Polity, 2000.

Daniel, Aharon. “Caste System in Modern India.” Adaniel’s Info Site.

http://adaniel.tripod.com/modernindia.htm

Smith, Brian K. Classifying the Universe: the Ancient Indian Varna System and the Origins of Caste. New York: Oxford UP, 1994.

Ghurye, G. S. Caste and Race in India. Bombay: Popular Prakashan, 1969.

Bouglé, Célestin. Essays on the Caste System. London: Cambridge UP, 1971

Pintane, Andrea. "Brahmans Within the Caste System." Home -CSU, Chico. Web. 23 sept. 2017.

Ghurye, G. S. Caste and Race in India. Bombay: Popular Prakashan, 1969.

Velassery, Sebastian. Casteism and Human Rights: toward an Ontology of the Social Order. Singapore: Marshall Cavendish Academic, 2005. Print.

Alavi, Seema. Sepoys And The Company Tradition and transition in Northern India 1770–1830. Oxford University Press India. 1998.

अरविन्द घोष का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद

डॉ० अजित

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान गवर्नमेंट कमला मोदी गर्ल्स कॉलेज, नीमकथाना (सीकर), राजस्थान

सारांश- दार्शनिक स्तर पर अरविन्द ने भारत के संन्यासवादी अद्वैतवादी अनुभवातीत प्रत्ययवाद और पश्चिम के लौकिकवादी, भौतिकवाद की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय किया है।यद्यपि बौद्धिक तथा राजनीतिक क्रियाकलाप के क्षेत्रों में भारतीयों की उपलब्धियाँ अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, किन्तु भारतीय प्रतिभा की उच्चतम अभिव्यक्ति वेदान्ती ऋषियों तथा बुद्ध की शिक्षाओं के रूप में हुई है। अपने परवर्ती काल में भारतीय आध्यात्मिकता पार्थिव जीवन को आत्मा की प्रतिभा के अनुरूप रूपान्तरित न कर सकी, इसलिए उसने लोगों में संसार को त्यागने की प्रवृत्ति जापत की और प्राकृतिक जगत की क्षणभंगुरता पर अतिशय बल देकर प्राणशक्ति को दुर्बल कर दिया। परिणाम यह हुआ कि जीवन के शुद्ध लौकिक क्षेत्रों में भारत संसार के अन्य देशों के साथ प्रतिस्पर्द्धा में सफल न हो सका। श्री अरविन्द आधुनिक भारत के ऐसे राजनीतिक विचारक थे जिन्हें भारतीय राष्ट्रवाद का महान उन्नायक माना जाता है। प्रारम्भ में उपराष्ट्रवाद के प्रणेता में किन्तु अरविन्द के लिए राजनीति और आध्यात्मिकता के बीच एक घनिष्ठ सम्बन्ध था और इसी कारण उनकी राजनीति किसी भी अन्य बाद में उनका झुकाव आध्यात्म की ओर हो गया और उनका राष्ट्रवादपूर्ण रूप से आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित हो गया। राष्ट्रवादी नेता की राजनीति से सर्वाधिक भिन्न रही श्री अरविन्द घोष ने भारतीय राष्ट्रवाद का एक अलग स्वरूप प्रदान किया जो कई मायने में अपने समकालीन राष्ट्रवादियों से उन्हें अलग करता है। श्री अरविन्द की दृष्टि में राष्ट्रवाद केवल एक आन्दोलन या विशाल जनसमूह मात्र नहीं था। वे भारत को एक वास्तविक सजीव और आध्यात्मिक सत्ता मानते थे।

मुख्य-शब्दः अरविन्द घोष, राष्ट्रवाद,आध्यात्म, विचारधारा।

प्रस्तावना

राष्ट्रवादी नेता के रूप में भी अरविन्द ने भारतीय तथा पाश्चात्य विचारों को समन्वित करने का प्रयत्न किया। जब वे निष्क्रिय प्रतिरोध का, ब्रिटिश न्यायालयों के स्थान पर पंचनिर्णय का और बहिष्कार का समर्थन करते हैं तो वास्तव में वे यूरोप के राजनीतिक इतिहास की सुपरिचित कार्यप्रणालियों का ही उल्लेख कर रहे कोरा राजनीतिक और आर्थिक था, किन्तु आयरलैण्ड और बंगाल में उसने मनोगत रूप धारण कर लिया है। वे आयरलैण्ड के सिन-फिन आन्दोलन के प्रशंसक थे। उनका कहना था कि यूरोप में राष्ट्रवाद का रूप एक सर्वव्यापी राजनीतिक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद यूरोप की ही उपज है, यद्यपि सांस्कृतिक आत्मचेतना तथा विदेशी विरोधी राजनीतिक भावना के रूप में वह भारत में सदैव विद्यमान रहा है। किन्तु इस रूप में जो अपनी सामूहिक एकता में विश्वास करते हैं उन्हें राजनीतिक आत्म-निर्णय का अधिकार है, राष्ट्रवाद की भावना फ्रांस की क्रान्ति के बाद ही प्रभावशाली हुई और आगे चलकर विल्सन ने उसे मान्यता दी। बर्क, मत्सीनी, मिल आदि अनेक पाश्चात्य राजनीतिक विचारकों का भारतीय नेताओं पर प्रभाव पड़ा। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर मत्सीनी का गम्भीर प्रभाव पड़ा है। अरविन्द ने भी मत्सीनी का अनेक बार ने राष्ट्रवाद के कोरे राजनीतिक रूप को नैतिक तथा विश्वराज्यीय आदर्श की ओर उन्मुख किया था। अरविन्द ने समय की आवश्यकताओं के अनुरूप राष्ट्रवाद को एक शुद्ध धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया यहूदी धर्म के नेताओं तथा शिक्षकों की भांति अरविन्द ने भी बंगालियों अथवा भारतीयों को 'चुनी हुई जाति' बतलाया और कहा कि उनका उद्देश्य भारत की राजनीतिक मुक्ति के ईश्वरीय आदर्श को प्राप्त करना है। किन्तु अरविन्द की यह धारणा कि भारत एक भौगोलिक प्रदेश नहीं , बल्कि माता है, वास्तव में भारत की ही उपज है। बंकिम ने, जिन्हें अरविन्द ऋषि कहा करते थे, अपनी रचनाओं के द्वारा इस धारणा को बहुत लोकप्रिय बनाया। चूँकि अरविन्द के

राष्ट्रवाद का रूप आध्यात्मिक था, इसलिए उन्होंने नेताओं तथा अनुयायियों दोनों के लिए नैतिक शिक्षा को बहुत आवश्यक बतलाया। उन्होंने लिखा 'हमारे नेताओं तथा अनुयायियों दोनों के लिए आवश्यक है कि वे अधिक गहरी साधना करें, देवी गुरु तथा हमारे आन्दोलन के नायक के साथ अधिक प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करें, अपनी आत्मा का उत्थान करें और विचारों तथा कार्यों में अधिक तेजवान और प्रचण्ड शक्ति का परिचय दें।'

हमारे अनुभव ने हमें बार- बार सिखाया है कि हम यूरोपवासियों के से नैतिकता मूल्य तथा अपरिपक्व उत्साह से विजय प्राप्त नहीं कर सकते। भारतवासियों! केवल भारत की आध्यात्मिकता, भारत की साधना, तपस्या, ज्ञान और शक्ति ही हमें स्वाधीन तथा महान् बना सकती है। पूर्व की इन चीजों के लिए हम अंग्रेजी के 'डिसीप्लिन', 'फिलॉसफी', 'स्ट्रेंग्थ' आदि समानार्थक शब्दों का प्रयोग करते हैं। किन्तु ये शब्द मूल अर्थ को भली-भाँति व्यक्त नहीं करते। तपस्या डिसीप्लिन से कुछ अधिक है। सर्जन, परिरक्षण और संहार की देवी शक्तियों को आध्यात्मिक साधना के द्वारा अपने में साक्षात्कृत करना ही तपस्या है। ज्ञान फिलॉसफी से बड़ी चीज है। जिसे प्राचीन ऋषियों ने दृष्टि कहा है उसके द्वारा प्राप्त प्रत्यक्ष अनुभूति ही ज्ञान है। शक्ति स्ट्रेंग्थ से बड़ी वस्तु है। नक्षत्रों को गति प्रदान करने वाली सार्वभौम ऊर्जा जब व्यक्ति में अवतरित होती है तो वही शक्ति कहलाती है। भारत के उत्थान में पूर्व की ही विजय होनी चाहिए। योगी को राजनीतिक नेता के पीछे खड़ा होना चाहिए अथवा अपने को राजनीतिक नेता के रूप में व्यक्त करना चाहिए। रामदास को शिवाजी के साथ एक ही शरीर में जन्म लेना है।

बुद्धि को आत्मा से और शक्ति को शुद्धता से पृथक करके यूरोपीय क्रान्ति की विजय भले ही हो सके, किन्तु हम यूरोपीय शक्ति के द्वारा विजय प्राप्त नहीं कर सकते। अत: अरविन्द राजनीतिक जीवन को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करना चाहते थे। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि प्राचीन हिन्दुओं के वेद, उपनिषद, गीता, योग और तन्त्र (आगम) आदि धर्मग्रन्थों में उस आध्यात्मिक विवेक का रहस्य विद्यमान है जो मानव जाति की मुक्ति के लिए आवश्यक है। उनका कहना था कि भारत शक्तिशाली और आक्रामक राष्ट्र बनने के लिए अपना उत्थान नहीं कर रहा है; वह तो इसलिए उठ रहा है कि उसका आध्यात्मिक भण्डार मानव जाति को उपलब्ध हो सके और उसके सहारे वह पूर्णता, समानता और एकता के देवदूतीय, स्वर्णिम, सुखस्वरित, मायावरणरहित जीवन की ओर प्रगति कर सके। अरविन्द का राष्ट्रवाद संकीर्ण तथा कट्टरतापूर्ण नहीं था, बल्कि उसका रूप विस्तृत व्यापक और महासांघिक था। वे कहा करते थे कि राष्ट्रवाद मानव के सामाजिक तथा राजनीतिक विकास के लिए आवश्यक है। अन्ततोगत्वा एक विश्व-संघ के द्वारा मानव की एकता स्थापित होनी चाहिए और इस आदर्श की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक नींव का निर्माण मानव धर्म तथा आन्तरिक एकता की भावना के द्वारा ही किया जा सकता है। अरविन्द लिखते हैं "विश्व की वर्तमान परिस्थितियाँ कितनी ही निंद्य और भयावह सम्भावनाओं से पूर्ण क्यों न हों, किन्तु उनमें ऐसी कोई चीज नहीं है जिससे हमें अपना यह मत बदलना पड़े कि किसी न किसी प्रकार का शव संघ आवश्यक तथा अनिवार्य है। प्रकृति की आन्तरिक गति, परिस्थितियों की बाध्यता तथा मानव जाति के वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं ने उसे अनिवार्य बना दिया है।"

अरविन्द का राष्ट्रवाद किसी भी रूप में संकुचित राष्ट्रवाद नहीं था। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता और जागरण पर बल दिया क्योंकि उनकी दृष्टि में भारत का कार्य विश्व का कार्य और ईश्वर कार्य था। विश्वकल्याण के लिए से भारत की स्वतंत्रता को अनि आवश्यक मानते थे। भारत की स्वतंत्रता का अर्थ वे मानवता की सेवा और ईश्वर की इच्छा के पालन के रूप में लेते थे। इसलिए अपवित्व की दृष्टि में राष्ट्रवाद की भावना स्वयं अपने आप में विशुद्ध धर्म थी। अरविन्द की दृष्टि में राष्ट्रवाद केवल एक आंदोलन तक सीमित नहीं है बल्कि यह आस्था का विषय है, वह मनुष्य का धर्म है। 1908 में अपने भाषणों के अंतर्गत श्री अरविन्द ने यह घोषणा की राष्ट्रवाद कोरा राजनीतिक कार्यक्रम नहीं हैं, राष्ट्र ऐसा धर्म है जो ईश्वर की देन है। राष्ट्रवाद तुम्हारी आत्मा का संबल है। यदि तुम राष्ट्रवाद के समर्थक हो तो तुम्हें धार्मिक आस्था के साथ राष्ट्र की आराधना करनी होगी तुम्हें यह याद रखना होगा कि तुम ईश्वर की योजना के निर्मित मात्र हो महर्षि अरविन्द देश को एक माता के रूप में देखते थे। वे देशवासियों से भारत की रक्षा करने की अपील करते रहे। डॉ ० कर्ण सिंह के शब्दों में श्री अरविन्द ने यह निर्दिष्ट किया कि भारत केवल भौगोलिक सत्ता नहीं है, केवल बौद्धिक संकल्पना भी नहीं है। भारत माता स्वयं साक्षात भगवती हैं जो शताब्दियों से बड़े प्यार दुलार से अपनी संतान का पालन-पोषण करती आई है। परन्तु आज वह विदेशी शासन पदाक्रांत होकर कराह रही है, उसका स्वाभिमान टुकड़े-टुकड़े हो चुका है, उसका गौरव भूल में मिल चुका है। भारत माता के पाँवों में पड़ी बेडिय्यों को काटना, अर्थात उसे विदेशी शासन से मुक्त

कराना उसकी संतान का परम कर्तव्य था श्री अरविन्द के राष्ट्रवाद का यही मूल मंत्र था। श्री अरविन्द का मानना था कि अंग्रेजी संस्कृति भौतिकवाद से प्रेरित है, भारतीय संस्कृति की आध्यात्मवाद में अगाध आस्था है। सच्चे राष्ट्रवाद की भावना ही भारतीय संस्थाओं और संस्कारों को नष्ट होने से बचा सकती है। यूरोप की नकल करके भारत अपना पुनरुत्थान कभी भी नहीं कर सकता।

राष्ट्रवाद की इस संकल्पना का प्रयोग करते हुए ही अरविन्द ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया लक्ष्य प्रदान किया। उनके अनुसार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य केवल औपनिवेशिक शासन की जगह स्वशासन स्थापित करना नहीं था बल्कि राष्ट्र का पुनर्निर्माण करना था। श्री अरविन्द के अनुसार स्वराज की मांग राष्ट्रवाद का स्वाभाविक हिस्सा है, क्योंकि कोई भी राष्ट्र विदेशी सत्ता के अधीन रहकर अपने विलक्षण व्यक्तित्व और स्वतंत्र अस्तित्व को कायम नहीं रख सकता। महर्षि अरविन्द के अनुसार, राष्ट्रवाद का अर्थ केवल राजनीति से नहीं है। राष्ट्रवाद का मतलब है हमारा धर्म राष्ट्रवाद ही हमारी उपासना पद्धति है, यही हमारी श्रद्धा है। भारत के उत्थान का अर्थ है हमारे सनातन धर्म का उत्थान हमारा सनातन धर्म ही हमारी राष्ट्रीयता है। जब कभी यह राष्ट्र अपने सनातन धर्म से दूर हटेगा तब इसका अध रू पतन होगा , तब ऐसी स्थिति में राष्ट्र का विनाश भी अटल है। तीस कोटि भारतवासियों की जननी हमारी हिन्द माता है। उसकी सेवा और पूजा करने से तथा उसके चरणों में आत्मसमर्पण करने से ही हमारा व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय उत्थान होगा।

अरविन्द ने समावेशी विकास की वर्तमान अवधारणा के आधार पर भी अपने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का समर्थन किया है। उनके अनुसार 'आध्यात्मिक राष्ट्रवाद में दमन का सर्वथा निषेध है, चाहे वह राष्ट्र के अंतर्गत व्यक्ति का दमन हो अथवा साम्राज्य या उपनिवेश के रूप में किसी अन्य राष्ट्र का दमन हो। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद में राष्ट्र का कोई भी अंग व्याधिग्रस्त अथवा त्याज्य नहीं माना जा सकता। किसी भी वर्ग को पीछे नहीं छोड़ा जा सकता सभी सदस्यों को पूर्ण स्वतंत्रता पूर्ण एकता और पूर्ण समन्वय के जीवन की ओर बढ़ाया जाता है। क्योंकि ये ही आध्यात्मिक राष्ट्र जीवन के चिह्न हैं। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद में राष्ट्र की भौतिक, आर्थिक, धार्मिक नैतिक और बौद्धिक सब प्रकार की प्रगति आवश्यक मानी जाती है। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का लक्ष्य राष्ट्र का सर्वांगीण विकास है, आध्यात्मिक राष्ट्र में राष्ट्रीय अहं नहीं बल्कि राष्ट्र आत्मा ही सवस्तु मानी जाती है।'

श्री अरविन्द राष्ट्र तथा राज्य को पृथक्-पृथक् रखने में विश्वास करते थे। राष्ट्र को आध्यात्मिकता का अर्धपूर्णाक मानते थे जब कि राज्य को वे यंत्रवत् ही स्वीकार करते थे। वे राष्ट्र के सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा सामाजिक विकास में शासकीय हस्तक्षेप को उचित नहीं मानते थे। उनके विचार जर्मन श् गदर्शवादियों से भिन्नता रखते हैं। वे राष्ट्र को प्रतिमानवीय बनाने के पक्ष में नहीं है। राष्ट्रवाद उनकी दृष्टि में पूर्णतया राजनीतिक अथवा आर्थिक अवस्थिति नहीं है। भारतवर्ष केवल भौगोलिक प्रदेश मात्र नहीं है, वह तो माता सहश है। राष्ट्रवाद सात्विक धर्म है। स्वदेशी एवं स्वराज्य द्वारा राजनीतिक एवं आर्थिक कार्यों को नियमित किया गया है। श्री अरविन्द की राष्ट्रवादी धारणा प्रतिक्रियावादी न होते हुए भी प्राध्यात्मिक एवं नैतिक प्रदर्शवाद पर आधारित है। राष्ट्रवाद को मानवीय एकता के अंतिम लक्ष्य से मिश्रित कर दिया गया है। राष्ट्र एक मनोवैज्ञानिक इकाई है। राष्ट्र के लिए राजनीतिक एकता आवश्यक नहीं है। राष्ट्र एक जीवंत समूह एवं समष्टिगत मानवता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा लार्ड ऐक्टन के समान राष्ट्रवाद की आलोचना करने वालों के लिए श्री अरविन्द का दर्शन उचित समाधान प्रस्तुत करता है। वे व्यक्ति को पूर्णतया राष्ट्र के समर्पित करने के विचार से सहमत नहीं है। वे राष्ट्रवाद को मानवीय प्रगति का एक सोपान मानते हैं, अंतिम लक्ष्य नहीं मानव के सामाजिक एवं राजनीतिक विकास में राष्ट्रवाद सहायक तत्व के रूप में है। उनका मानवीय एकता का आदर्श एक विश्व -संघ की स्थापना का श्रादर्श ही है। वे प्रारंभ में विश्व संघ की स्थापना परिसंघ के माध्यम से प्राप्त करना चाहते थे किन्तु बाद में उनका विचार केवल संघात्मक आधार पर स्वतंत्र राष्ट्रीयताओं के संघ बनाने का रहा। श्री अरविन्द ने पुनर्जागरणवाद के विचार द्वारा भारत के राष्ट्रीय गौरव तथा हिन्दू धर्म की महानता का संदेश दिया। वे भारत की प्राचीन आत्मा, आदर्शों एवं पद्धतियों का पुनर्जागरण चाहते थे। पश्चिम के अंधानुसरण की नीति उन्हें प्रिय नहीं थी। किन्तु वे ऐसे पुनर्जागरणवादी भी नहीं थे जो रूढ़िवाद से बद्ध हों। उन्हें पश्चिम से ग्रहण करने योग्य विचारों को अपनाने में कोई आपत्ति नहीं थी। उनका आग्रह केवल यही था कि हम ईश्वर के विधान में निष्ठा रखते हुए भारतीय बने रहें। यूरोप की हवा में बह न जायें। हम जो भी पश्चिम से ग्रहण करें वह एक भारतीय के रूप में ही करें। अपना अस्तित्व विस्मृत न कर बैठें। उनके ये विचार उनकी राष्ट्रभक्ति के प्रतीक हैं। संकीर्ण दृष्टिकोण से देखने पर उनका यह प्रयास केवल आक्रामक हिन्दू राष्ट्रवाद कहा गया है। विवेकानन्द तथा भगिनी निवेदिता के विचारों की भी इसी आधार पर आलोचना की गई है किन्तु इस प्रकार की आलोचना का राष्ट्रीय चेतना

के महान लक्ष्य की पूर्ति के प्रयास में इनकी उपयोगिता के समक्ष महत्व नहीं रहता। राष्ट्रीय चेतना उन्हीं तत्त्वों तथा कारणों से उद्वैत एवं की जा सकती है जिन तत्त्वों को बहुसंख्यक जन-समुदाय का समर्थन प्राप्त हो। केवल धर्मनिरपेक्षता के प्रधंज्ञान को दृष्टि में रख कर इन मनीषियों की आलोचना-प्रत्यालोचना संदर्भहीन दृष्टि का ही परिणाम हो सकती है।

निष्कर्ष

अरविन्द का तत्वशास्त्र, उनका इतिहास तथा संस्कृति दर्शन उनकी राष्ट्रवाद, स्वतन्त्रता तथा अध्यात्मीकृत समष्टिवाद की धारणाएँ पूर्व तथा पश्चिम के विचारों का समन्वय हैं। उन्होंने बार-बार आत्मा की शक्तियों का उल्लेख किया और बतलाया कि उन्हीं के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक अथवा तात्विक स्तर पर स्थायी समन्वय किया जा सकता है। अरविन्द के उक्त विचार आधुनिक राजनीतिक वैज्ञानिकों को विचित्र लगेंगे और यह सम्भव नहीं है कि अधिक लोग उनकी ओर आकृष्ट हो सकें। यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि शुद्ध सैद्धान्तिक स्तर पर अरविन्द ने पूर्व तथा पश्चिम के राजनीतिक विचारों को समन्वित करने का रमणीक प्रयत्न किया। अन्ततोगत्वा सभी राजनीतिक दार्शनिक कुछ अंशों में आस्था की अपेक्षा करते हैं। शुद्ध भौतिकवादी को प्लेटो, सन्स एक्विनास और हेगेल प्रतिक्रियावादी प्रतीत होते हैं, जबकि अध्यात्मवादी को मैकियावेली और हॉब्स उथले छिछले जान पड़ते हैं। आत्मा की शक्तियों में विश्वास रखने वालों के लिए अरविन्द के राजनीतिक दर्शन में गम्भीर सन्देश निहित है। अनुभववादी राजनीतिक वैज्ञानिकों के लिए भी जो पूर्व की आध्यात्मिक अनुभूतियों तथा पश्चिम के सैद्धान्तिक सामान्यीकरणों के बीच सामंजस्य और मेलमिलाप की कल्पना कर रहे हैं, अरविन्द एक महान् बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का काम दे सकते हैं। श्री अरविन्द ने भारत के आदर्शवादी चिंतन को परम्परा को नवीन ऊँचाई प्रदान की है। वे भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के अद्भुत व्याख्याकार के रूप में सर्वव-याद किये जाते रहेंगे। उनकी वैचारिक महत्ता इस कारण से भी मानी जाती तथा पश्चिम की नैतिक, आध्यात्मिक एवं सौन्दर्यमय परम्पराम्रों के महान समन्वयकर्ता थे। उनका धार्मिक एवं रहस्यवादी इष्टिकोण मौलिक एवं मर्मस्पर्शी था। वेद, वेदांत, उपनिषद, गीता धादि पर उनके लेख, उनकी चमत्कारी शैली एवं मानवातीत ज्ञान के जीवंत प्रमाण हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दिनकर, रामधारी सिंह, श्री अरविन्द मेरी दृष्टि में लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृ. 25
2. डॉ. यादव, ममता, महर्षि अरविन्द के दर्शन में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद एवं स्वराज्य Journal of Acharya Narendra Dev research Institute पृ. 102-106
3. गर्ग, सुषमा, भारतीय राजनीतिक चिन्तन अग्रवाल पब्लिकेन्स, आगरा, पृ. 163-165
4. सिंह, अजय, विजय प्रताप मल्ल, भारतीय राजनीतिक चिन्तन अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा 2014, पृ. 124-125
5. कुमार, अरुण, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, एस. बी. पी. डी. पब्लिकेशन्स आगरा, पृ. 114 115
6. गावा, ओमप्रकाश राजनीति चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा 2005, पृ. 287-288
7. सहस्रबुद्धे, योगी अरविन्द, पृ . 69
8. अरविन्द, मानवचक्र सोसायटी पांडिचेरी, 1970, पृ. 39-40
9. डॉ कर्ण सिंह, प्रोफेट ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1970 पृ. 83 - 11
10. श्री अरविन्द, उत्तरपाड़ा स्पीच, पृ. 22
11. श्री अरविन्द, द आयडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी, पृ. 479 रोनाल्ड शे व हर्ट ऑफ आर्यावर्त पृ. 128
12. जे. एक्जेमैडोनल्डर, द अवेकनिंग ऑफ इण्डिया, पृ. 182

मिजौ जन-जीवनः स्वरुप और परम्परा

कामना सिंह

कमरा नं0-266, गोदावरी हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

किसी समाज को समझने के लिए, उसकी संस्कृति और परम्परा को समझना जरूरी है क्योंकि समाज की पहचान उसकी संस्कृति और परम्परा में अन्तर्निहित होती है। मिजौजन-जीवन और उनके संघर्ष को समझने के लिए उनकी संस्कृति और परम्परा को समझना जरूरी है। मिजौ जनजीवन की परम्परा और संघर्ष की कहानी भारतीय गणतन्त्र की वह कहानी है, जिसमें एक तरफ भारत का सांस्कृतिक बोध, विविधता में एकता, बसा हुआ है तो दूसरी तरफ भारतीय समाज के विद्रूप यथार्थ के कई चेहरे (जातिवाद, वर्णवाद, धार्मिक विभेद आदि)। इस यथार्थ को समझने के लिए पूर्वोत्तर भारत को समझना आवश्यक है। जिस पूर्वोत्तर भारत को, भारतीय सीमाओं के अन्दर दूसरा देश माना जाता है, उसकी हकीकत और इतिहास को समझना जरूरी है क्योंकि बिना पूर्वोत्तर भारत को समझे मिजौ जन-जीवन को ठीक से नहीं समझा जा सकता है। पूर्वोत्तर भारत जिसमें भारतीय संघ के आठ राज्य असम, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम, अरुणाचल, नागालैण्ड, मेघालय, सिक्किम हैं। एक ओर जहाँ पूर्वोत्तर भारत तिब्बत, चीन, भूटान, म्यांमार (बर्मा) ,बांग्लादेश इन पाँच देशों के साथ अन्तरराष्ट्रीय सीमा बनता है वहीं दूसरी ओर यह (पूर्वोत्तर भारत) भारतीय संघ के केवल एक राज्य पश्चिम बंगाल (est Bangal) के साथ जुड़ा है।

अब सवाल यह है कि पूर्वोत्तर भारत, भारत का इतना महत्वपूर्ण हिस्सा होने के बावजूद भी मेनलैण्ड (Main land, North India) से क्यों कटा रहा? जिस भारत की पहचान "विविधता में एकता से बनती है, क्या यह बात पूर्वोत्तर भारत के सम्बन्ध में लागू होती है? ज्ञात है कि सांस्कृतिक स्तर पर पूर्वोत्तर भारत काफी समृद्ध है, लेकिन सामाजिक व राजनैतिक स्तर पर क्या उसे भारत के अन्य राज्यों जैसा स्थान प्राप्त है। अगर ऐसा नहीं है तो इन बुनियादी सवालों पर विचार करते हुए, हम पूर्वोत्तर भारत पर एक नजर डालते हैं। पूर्वोत्तर भारत के इतिहास को समझने के लिए उसे दो भागों में बाँट कर देख सकते हैं-

(i) स्वतन्त्रता पूर्व पूर्वोत्तर भारत

(ii) स्वतन्त्रता के बाद पूर्वोत्तर भारत

स्वतन्त्रता पूर्व पूर्वोत्तर भारत- स्वतन्त्रता से पूर्व असम एक विशाल राज्य था। जिसमें पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्य (मणिपुर, त्रिपुरा, अरुणाचल, मेघालय, मिजोरम, सिक्किम) सम्मिलित थे। बाद में इस क्षेत्र को 'कामरूप' नाम से जाना गया। 'कामरूप' नाम के संबंध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। 'कामरूप' राज्य का सबसे पुराना उदाहरण समुद्रगुप्त के 'इलाहाबाद शिलालेख' में मिलता है। 'इलाहाबाद शिलालेख' से पता चलता है कि समुद्रगुप्त की शक्ति से भयभीत होकर पूर्वी, उत्तर पूर्वी तथा पश्चिमी सीमा पर स्थित कई राज्यों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसमें कामरूप एक राज्य था। इस शिलालेख में कामरूप का वर्णन एक ऐसे सीमावर्ती राज्य के रूप में मिलता है, जो गुप्त साम्राज्य के अधीन था और गुप्त साम्राज्य के साथ कामरूप का मैत्रीपूर्ण संबंध था। कामरूप में उस समय वर्मन वंश का शासन था। इस वंश के उदय के विषय में स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। लेकिन यह पता चलता है कि इस वंश का प्रथम महत्वपूर्ण शासक 'पुष्पवर्मन' था, जो समुद्रगुप्त के समकालीन था। पुष्पवर्मन ने प्राग्योतिषपुर को अपनी राजधानी बनाई। इस बात का वर्णन पुराणों में भी मिलता है कि पुष्पवर्मन इस वंश का पहला महत्वपूर्ण शासक था। पुष्पवर्मन के बाद भूतिवर्मन के शासन काल में कामरूप एक शक्तिशाली राज्य बना। इसने अपने शासनकाल में सम्पूर्ण कामरूप को अपने अधिकार में कर लिया। भूतिवर्मन ने अपने शासन काल में 'अश्वमेघयज्ञ' भी कराया था। इस बात की जानकारी हमें चीनी यात्री ह्वेनसांग व अलबरूनी की पुस्तकों से मिलती है। वर्मन वंश के शासकों में अन्तिम शक्तिशाली व महान राजा भास्कर वर्मन (600-650 A.D.) था। भास्कर वर्मन उत्तर के राजा हर्ष वर्धन के समकालीन था। उसने अपनी प्रतिभा के बल पर सम्पूर्ण कामरूप

व बंगाल के कुछ क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया था। भास्कर वर्मन के बुलाने पर चीनी यात्री हवेनसांग 643 ई. में कामरूप गया था। उसने कामरूप का उल्लेख 'कामोलुपा' के रूप में किया था। ग्यारहवीं शताब्दी में अरब के इतिहासकार अलबरुनी के विवरण में भी कामरूप का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल से लेकर बारहवीं शताब्दी तक पूर्वी सीमांत देश को 'प्राग्यज्योतिष' और 'कामरूप' के नाम से जाना जाता था, और वहाँ वर्मन वंश का शासन था।

वर्मन वंश के अन्त के बाद असम पर मलेच्छ वंश (655-900 ई.) और पाल वंश (900-1100 ई.) का शासन कुछ समय के लिए रहा। इन राजाओं के आपसी झगड़े का लाभ उठाकर सन् 1228 ई. के आस-पास 'चाउलुशसिउकाफा' नाम के राजा ने अहोम वंश की स्थापना की, जो 600 वर्षों तक रहा। अहोम वंश का उल्लेख करते हुए माता प्रसाद गुप्त लिखते हैं कि "ये दक्षिण बर्मा के थाई परिवार के शासन शाखा के सदस्य थे, जिन्होंने पटकाई पहाड़ियों के पंगचोन दर्रे से नोङ्यांग झील होते हुए 13वीं (तेरहवीं) शताब्दी के पूर्व असम में प्रवेश किया और अपना सम्पर्क इस दर्रे से बर्मा के कीथ और कीन जनजातियों से बनाया रखा. ..। अहोम साम्राज्य ने असम पर करीब 600 वर्षों तक तेरहवीं सदी के शुरू से लेकर उन्नीसवीं सदी के मध्य तक शासन किया।"[1] अहोम राज वंश ने अपनी शक्ति से दक्षिण पूर्व क्षेत्र मोरान, बोराही और कागा जनजातियाँ को अपनी अधीनता स्वीकार कराई और अपने साम्राज्य को कछारी, भुइया और नागा क्षेत्रों तक बढ़ाया। इस प्रकार से अहोमराज वंश पूरे ब्रह्मपुत्र घाटी तक विस्तृत हो गया। अहोमराज वंश के लोग बहुत ही शक्तिशाली माने जाते थे। उन्हें किसी के अधीन रहना स्वीकार्य नहीं था। इसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि मध्य काल में मुगलों ने कामरूप पर अनेकों आक्रमण किये, लेकिन वे सभी असफल रहे।

अपनी विस्तारवादी और महत्वाकांक्षी प्रवृत्ति के कारण अट्ठारहवीं शताब्दी के आस-पास अहोमराज वंश में असंतोष व्याप्त होने लगा और ये आपस में ही लड़ने लगे। जिसके परिणामस्वरूप अहोमराज वंश की शक्ति क्षीण होने लगी। इनके आपसी मनमुटाव का फायदा उठाकर अट्ठारहवीं सदी के तीसरे दशक में बर्मा (म्यांमार) ने यहाँ आक्रमण शुरू किया और धीरे-धीरे उसने असम के बहुत से भागों पर अपना अधिकार कर लिया। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में अंग्रेजों का आगमन हुआ, इन्होंने भी अपना राज्य फैलाना शुरू किया। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात बर्मी सैनिकों के समक्ष यह बड़ी चुनौती थी कि वे असम को कैसे अपने कब्जे में रखे? इसको ध्यान में रखते हुए बर्मी सैनिकों ने अंग्रेजों के अधीन क्षेत्रों में दखल दिया और खुद को शक्तिशाली समझने लगे। इसी भ्रम में रहते हुए बर्मी सैनिकों ने दूसरे क्षेत्रों में भी अतिक्रमण किये, जिसके फलस्वरूप ये ग्वालपारा, सिलचर, चटगाँव को अपने अधिकार में कर लिया। यह सब देखते हुए 'ईस्ट इंडिया कम्पनी के गर्वनर जनरल ने अपना विरोध व्यक्त किया। इसके उपरान्त भी बर्मी सैनिकों ने कद्दार और मणिपुर पर आक्रमण कर अपने अधीन कर लिया। बर्मी सैनिकों ने जैसे ही कद्दार को अपने अधिकार में लिया, उसके बाद ही अंग्रेजों ने अपना सैनिक अभियान शुरू किया, क्योंकि अंग्रेज कद्दार को अपना संरक्षित राज्य समझते थे। इसी कारण सन् 1824 ई. में अंग्रेजों ने समर घाटी से अपना पहला सैनिक अभियान शुरू किया और अपनी सेना की एक टुकड़ी को कद्दार भेजा। इस युद्ध के बाद अंग्रेजों ने बर्मी सेना को कद्दार छोड़ने पर मजबूर किया। अंग्रेजों और बर्मी सेनाओं के बीच कई छोटी-छोटी लड़ाईयाँ हुई, जिसमें बर्मी सैनिकों ने अंग्रेजों का मजबूती के साथ सामना किया, लेकिन वे असफल रहे। यही छोटी-छोटी लड़ाईयाँ 5 मार्च 1824 ई. की 'आग्ल-बर्मा युद्ध' का कारण बनी, जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने सम्पूर्ण ब्रह्मपुत्र घाटी को अपने अधीन कर लिया। प्रथम आग्ल-बर्मा (1825 ई.) युद्ध के उपरान्त ब्रिटिश शासकों ने असम, मणिपुर, कद्दार और जैनतिया के साथ-साथ अकरान की पहाड़ियों पर भी पूर्ण नियंत्रण कर लिया। इस हार के पश्चात बर्मी सैनिकों को 'यादाब् (याँदबों)' की शर्मनाक संधि करनी पड़ी। जिसकी शर्तें निम्न थीं:

1. लड़ाई के हरजाने के रूप में एक करोड़ रुपये देने पड़े।
2. अकरान तथा तेनासेरिम के समुद्र तटीय प्रांतों से अधिकार छोड़ने की।
3. असम, कद्दार और जैयंतियाँ पर से सारे दाँब छोड़ देना।
4. मणिपुर को स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्वीकारना।
5. ब्रिटेन के साथ एक व्यापारिक संधि की बातचीत, जिसमें आंवा को एक ब्रिटिश रेजिडेंट रखना तथा कलकत्ता में एक बर्मी दूत नियुक्त करने की तमाम शर्तें रखी गई।

इस संधि के उपरान्त अंग्रेजों ने पूर्वोत्तर भारत पर अपना अधिकार कर लिया साथ ही बर्मा को उसके अधिकांश समुद्र तट से वंचित कर दिया। इसके अलावा भावी प्रसार के लिए बर्मा में भी अपनी जड़ों को मजबूत किया। संधि की शर्तो के अनुसार 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' ने असम को अपने अधिकार में लिया। अंग्रेजों ने देश के अन्य भागों की तरह यहाँ भी शासन की बागडोर प्रत्यक्ष रूप से नहीं ली, बल्कि असम को छोटे-छोटे भागों में बाँटकर, उसकी सीमा निर्धारित कर, वहाँ के सबसे शक्तिशाली व सम्पन्न व्यक्ति को वहाँ के शासन की बागडोर थमा दी। इसके साथ ही संधि की कुछ शर्ते भी रखीं, जैसे-अपनी देखरेख में मणिपुर को 'गंभीर सिंह' को सौंप दिया, गोविन्द सिंह को कछार का राजा बना दिया और इसके बदले में अंग्रेज उनसे दस हजार रुपये वार्षिक नजराना लिया करते थे। जयंतिया के राजा को सुरमा नदी के मैदानी और किनारे के भागों को सौंपकर असम में अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद अंग्रेजों ने अपनी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को सामने लाये। जिसका पहला शिकार कछार बना। उस समय कछार पर दो राजाओं का शासन था-गोविन्दचन्द्र (मैदानी भाग), तुलाराम (पहाड़ी भाग)। सन् 1842 ई. में गोविन्द चन्द्र की हत्या करवाने के बाद अंग्रेजों ने कछार पर पूर्ण नियंत्रण कर लिया। सन् 1842 ई. के आस-पास ही अंग्रेजों ने सुरमा घाटी, नागा, गोरा, लुसाई (मिजो) पहाड़ियों पर भी अपने शासन का विस्तार किया। इस तरह अंग्रेजों में असम के पहाड़ी और मैदानी दोनों क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। सन् 1848 ई. में अंग्रेजों ने उत्तरी असम का शासन अपने हाथों में लिया तो इसका विरोध हुआ। धीरे-धीरे यह विरोध, विद्रोह का रूप लेने लगा। प्रारम्भ में यह विद्रोह सिर्फ उच्च वर्गों द्वारा किया जा रहा था, लेकिन प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (1857 ई.) से आम लोगों ने भी इस विद्रोह में हिस्सा लिया। मनीराम दीवान, पुरंदर, जो अंग्रेजों के पक्षधर थे उन्होंने ने भी इस विद्रोह में हिस्सा लिया। इसके अलावा सूबेदार शेख भी कम, निर्मल हजारिक, हवलदार राजा बली खान, गौचंदी खान, चौधरी और मजुमदार परिवार जैसे कई किरदार सामने आते हैं, जिन्होंने इस विद्रोह में रणनीति बनाने से लेकर हथियार, पैसा, सहयोग इत्यादि मुहैया कराकर इस विद्रोह को सही दिशा देने में अहम भूमिका निभाई थी। इसी तरह चटगाँव व सिलहट (अब बांग्लादेश में), दक्षिणी असम के चलता, आज के मासिमपुर और अरुणाचल, हौलाकांदी और करीमगंज जैसे कई इलाके सामने आते हैं, जो विद्रोही सिपाहियो और अंग्रेजी सेना के बीच संघर्ष के गवाह बने रहे। लेकिन अंग्रेजों ने इस विद्रोह को चालाकी के साथ दबा दिया। उन्होंने इस विद्रोह के कई महत्वपूर्ण चेहरों (मनीराम दीवान, शेख भीकम...) को कैद कर लिया। उसमें मनीराम दीवान को कलकत्ता में गिरफ्तार करके, असम लाकर फाँसी की सजा दी गई। जिसके बाद इस विद्रोह की गति धीमी हो गई।

'ईस्ट इंडिया कम्पनी' के शासन काल में बंगाल के गर्वनर जनरल ने असम की शासन व्यवस्था की देख-रेख के लिए कमिश्नर डेविड स्काट को नियुक्त किया गया था। जो बंगाल के गर्वनर जनरल के अधीन था। डेविड स्काट ने असम में छः जिले लखीमपुर, कामरूप, शिवसागर, दारंग, नवगाँव और गोवालपारा बनाये और अलग से दीवान न्यायालय की स्थापना की। प्रारम्भ में न्यायालय की भाषा असमिया था, जिसे बाद में बंगाली (बांग्ला) कर दिया गया। वहाँ की जनता द्वारा इसका विरोध किये जाने पर सन् 1951 ई. में बंगाल के लेफ्टिनेंट गर्वनर जनरल जार्ज कांपबेल ने बांग्ला के स्थान पर असमिया को पुनः न्यायालय की भाषा बना दी।

सन् 1857 के विद्रोह में वहाँ की जनता की एकता को देखते हुए अंग्रेजी सरकार ने प्रशासन में परिवर्तन किया। इन्होंने मैदानी और पहाड़ी लोगों के बीच का झगड़ा दिखाकर इन क्षेत्रों के लिए सन् 1873 ई. में 'इनर लाइन रेगुलेशन 'एक्ट' पारित किया। जिसके तहत पहाड़ी क्षेत्रों में अन्य भारतीयों के जाने पर पाबंदी लगा दी गई। पहाड़ी सीमा क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए डिप्टी कमिश्नर की अनुमति लेनी पड़ती थी। जो आज भी कई पहाड़ी इलाकों में देखने को मिलती है। इस प्रकार अंग्रेजों ने बड़े आसानी से पहाड़ी और मैदानी क्षेत्र में रहने वालों के बीच दरार पैदा कर दी। यह अंग्रेजी प्रशासन की बड़ी जीत थी।

सन् 1874 ई. में लेफ्टिनेंट कर्नल आर.एच. कीटींगों को असम का पहला चीफ कमिश्नर नियुक्त किया गया। असम, जो बंगाल के लेफ्टिनेंट गर्वनर जनरल के अधीन था, उसे गर्वनर जनरल के अधीन कर दिया गया। आर.एच. कीटींगों ने असम की राजधानी शिलांग को बनाया और सिलहट को असम क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया। यह उस समय ब्रिटिश सरकार का महत्वपूर्ण कार्य था। सन् 1905 ई. में हुए 'बंग-भंग आन्दोलन' का प्रभाव पूर्वोत्तर भारत पर स्पष्ट तौर पर देखा जाता है। 1905 ई. में हुए विभाजन के फलस्वरूप बंगाल के राजशाही, ढाका तथा चटगाँव डिविजन में आने वाले पन्द्रह जिले असम में मिला दिये गये और पूर्वी 'बंगाल और असम' नाम से एक नया प्रांत बना दिया गया। लार्ड कर्जन के इस निर्णय का सर्वत्र विरोध हुआ, जिसने शीघ्र ही एक आन्दोलन का रूप ले लिया। सन् 1905 ई. का बंग-भंग विरोधी और स्वदेशी आन्दोलनों ने देश में एक नई हलचल पैदा कर दिया। कई

समाचार पत्रों ने इस आन्दोलन को नया जीवन प्रदान किया। इस क्रम में 1920 ई. में गाँधी जी द्वारा चलाये जा रहे 'असहयोग आन्दोलन' में असम के लोगों ने भी हिस्सा लिया। जिसके प्रमुख नेता तरुण राम फुकन, नवीन चन्द्र बारदोलई आदि थे। सन् 1921 ई. में महात्मा गाँधी असम आये। महात्मा गाँधी ने गुवाहाटी में सम्मेलन किया, जिसमें असम के अधिकार की बात के साथ ही विदेशी वस्तुओं और कपड़ों का बहिष्कार किया तथा उन्हें जलाया भी। इस सत्याग्रह में भाग लेने वाले हजारों सत्याग्रहियों ने साइमन कमीशन के शिलांग आने पर उनका बहिष्कार किया और 1930 ई. के 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' में बड़ी संख्या में लोगों ने हिस्सा लिया। जिसके प्रमुख नेता विष्णु राम मेधी, ओमेया कुमार दास, हेमचन्द्र बरुआ थे। इस आन्दोलन में भी हजारों लोग कैद हुए। इसके अलावा 1942 ई. के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी यहाँ के लोगों ने अपनी सक्रिय भागीदारी दर्ज की। इस छोटे बड़े आन्दोलनों को देखते हुए अंतत: 1935 ई. के एक्ट के अनुसार अन्य प्रदेशों की भाँति असम को भी गवर्नर क्षेत्र की स्वायतता दे दी गई, जो 1937 में लागू हुआ, और भारत के स्वतन्त्र होने तक चलता रहा। इस लम्बे संघर्ष के बाद 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ और सरजॉन अकबर हैदरी असम के पहले राज्यपाल बनें।

स्वतन्त्रता के बाद पूर्वोत्तर भारत:- सम्पूर्ण पूर्वोत्तर क्षेत्र को अंग्रेजों के शासनकाल (1820-1947) की समाप्ति तक 'असम' नाम से जाना जाता था। सन् 1947 ई. में (स्वतन्त्रता के समय) अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम और नागालैण्ड असम के भाग थे तथा मणिपुर और त्रिपुरा दो राजवाड़े थे। इसके अलावा सिलहट जो असम का सबसे बड़ा जिला था, उसे बँटवारे के समय बांग्लादेश (पूर्वी पाकिस्तान) में स्थानान्तरित कर दिया गया। बँटवारे के कुछ समय बाद लगभग 100 किलोमीटर का एक भाग, जिसमें भूटानी लोगों की संख्या अधिक थी। जिसे भारत सरकार ने भूटान को स्थानान्तरित कर दिया था। इस तरह से पूर्वोत्तर भारत, चीन, म्यांमार, भूटान, बांग्लादेश, तिब्बत के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सीमा बनाता है।

सन् 1950 ई. में भारतीय संविधान लागू किया गया, जिसके अन्तर्गत जनजातियों (पहाड़ी क्षेत्रों) को छठी अनुसूची के अन्तर्गत दो भागों में रखा गया-भाग 'अ', भाग 'ब'। भाग 'अ' के अन्तर्गत खासी, जयंतिया हिल्स, गोरा हिल्स, लुसाई हिल्स, नागा हिल्स, नार्थ कद्दार फ्रंटियर ट्रैक' में फ्रंटियर ट्रैक, तिवर फ्रंटियर ट्रैक, एबोर फ्रंटियर ट्रैक, मिशमी फ्रंटियर ट्रैक और नागा ट्राइबल्स एरिया था। भाग 'अ' के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों को स्वायतता दी गयी और उसमें काउंसिल बनाये गये, जिसे असम सरकार के अधीन रखा गया। वहीं भाग 'ब' के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों को राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में असम के राज्यपाल के अधीन रखा गया। स्वायत्तता प्राप्त क्षेत्रों के राजनीतिक प्रतिनिधियों का प्रतिनिधित्व असम विधान सभा और संसद दोनों में दिया गया।

सन् 1951 ई. में 'नार्थ ईस्ट फ्रंटियर एरिया के अन्तर्गत आने वाले बालीपारा फ्रंटियर ट्रैक, तिपर फ्रंटियर ट्रैक, एबोर फ्रंटियर ट्रैक और मिशमी फ्रंटियर ट्रैक जिलों के मैदानी भाग को असम सरकार के अधीन कर दिया गया था। शेष भाग के लिए 1954 के अधिनियम के अनुसार 'नार्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी'(नेफा) बना दिया गया। इसके उपरान्त पूर्वोत्तर क्षेत्र में अलग-अलग राज्य की माँग के लिए कई आन्दोलन हुए, जिसमें प्रमुख है नागा विद्रोह-सन् 1956 ई. के प्रारम्भ में नागा हिल्स में सशस्त्र विद्रोह हुआ, इस विद्रोह में नागालैण्ड को अलग राज्य बनाने की माँग की गई। सन् 1957 ई. में नागा तुवेसांग क्षेत्र को केन्द्रीय नियंत्रण के अन्तर्गत लाया गया और असम से प्रशासित किया गया। 1 दिसम्बर 1963 ई. को 'स्टेट ऑफ नागालैण्ड एक्ट लागू किया गया। इस प्रकार असम से पृथक होकर भारत का सोलहवां राज्य नागालैण्ड बना।

जुलाई 1906 ई. में असम सरकार ने कार्यालय की भाषा असमी के लिए एक विधेयक पारित किया। जिसका विरोध पहाड़ी क्षेत्रों के लगभग सभी राजनीतिक नेताओं और वहाँ की जनता ने किया। इस विरोध को बढ़ता देख संसद ने 'असम पुनर्गठन अधिनियम 1969' पारित किया। इसके उपरान्त 21 जनवरी 1971 ई. को भारत सरकार ने 'उत्तर-पूर्वी क्षेत्र अधिनियम पारित' किया, जो 1971 ई. में लागू कर दिया गया। इस अधिनियम के लागू होने के बाद मेघालय (1972), मणिपुर, त्रिपुरा को अलग राज्य का दर्जा मिला तथा मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश को केन्द्र शासित प्रदेश का दर्जा मिला। मिजोरम, जो एक केन्द्र शासित प्रदेश था, उसे 20 फरवरी 1987 ई. को 'मिजोरम राज्य अधिनियम 1986' के तहत पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। इसी क्रम में 20 फरवरी 1987 को 'अरुणाचल प्रदेश अधिनियम 1986' के तहत अरुणाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। इस प्रकार असम से अलग होकर कई छोटे-छोटे राज्य बने, जैसे मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम आदि। इन अलग-अलग राज्यों और असम को मिलाकर इस पूरे राज्य को 'सेवन सिस्टर स्टेट' के नाम से पुकारा जाता है।

मिजोरम-भारत के उत्तर-पूर्वी सीमा पर स्थित मिजोरम एक छोटा सा प्रदेश है। जिसके पश्चिम में त्रिपुरा, दक्षिण में बांग्लादेश, पूर्व में बर्मा (म्यांमार),उत्तर में मणिपुर, असम पड़ा है। फरवरी 1987 को यह भारत का तेइसवां राज्य बना। सन् 1972 ई. में केन्द्र शासित प्रदेश बनने से पहले तक मिजोरम, असम का एक जिला था। सन् 1891 ई. में यह (मिजोरम) ब्रिटिश अधिकार में आ गया। ब्रिटिश अधिकार में आने के पश्चात अंग्रेजों ने प्रशासन की दृष्टि से लुसाई हिल्स को दो भागों में बाँटा-उत्तरी लुसाई हिल्स, दक्षिणी लुसाई हिल्स। अंग्रेजों ने उत्तरी लुसाई हिल्स को असम सरकार के अधीन रखा तथा दक्षिणी लुसाई हिल्स को बंगाल सरकार के अधीन रखा। सन् 1898 ई. में अंग्रेजों ने राजनैतिक स्थिति को समझते हुए पुन: दोनों (उत्तरी लुसाई हिल्स और दक्षिणी लुसाई हिल्स) को मिला कर एक जिला बनाया, जिसका नाम 'लुसाई हिल्स' रखा। यह पूरा क्षेत्र असम के मुख्य आयुक्त के प्रशासन में आ गया। इस क्षेत्र में बाहरी लोगों की आवाजाही बढ़ते देख सन् 1935 ई. में ब्रिटिश सरकार ने लुसाई हिल्स को प्रतिबंधित क्षेत्र घोषित कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप देश के लोग भी बिना परमिट के यहाँ नहीं आ सकते थे। इस बात का अंग्रेजों ने भरपूर फायदा उठाया और यहाँ कई चर्चों की स्थापना की। इस क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों की विशेष कृपा रही। इन्होंने यहाँ ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार किया तथा लोगों को ईसाई धर्म स्वीकारने पर मजबूर भी किया। यही वजह है कि पूर्वोत्तर भारत के मिजोरम राज्य में सबसे अधिक ईसाई रहते हैं। यहाँ की 86 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ईसाई धर्म को मानती है। सन् 1935 से सन् 1945 ई. तक यह क्षेत्र द्वितीय विश्वयुद्ध की चपेट में रहा। जिस कारण यहाँ के लोगों को देश के भीतर अंग्रेजों तथा देश के बाहर जापानियों की प्रताड़ना सहनी पड़ी। सन् 1945 ई. में जापानियों के हार के साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ। जिसके उपरान्त देश के लोगों को आजादी की किरण दिखने लगी। आजादी की इस किरण ने देश की राजनीति को जहाँ विचारों का संग्राम बना दिया वहीं मिजोरम में कुछ पढ़े-लिखे लोगों के बीच भी राजनीतिक चेतना अंगड़ाई लेने लगी। मिजौ-जनजातियों में भी भविष्य के प्रति चिन्ता व्याप्त हुई। श्री आर. बानलोमा ने मिजोरम के भविष्य को लेकर कुछ प्रमुख मुद्दों को उठाया है, जो निम्न हैं-

(i) भारत की आजादी के बाद मिजोरम की स्थिति।

(ii) मुखियाओं के प्रति व्याप्त जनाक्रोश।

(iii) लोगों को बदलते राजनीतिक गतिविधियों से वाकिफ कराना।

(iv) राजनैतिक दल का गठन।

प्रदेश के मुख्य अधिकारियों से अनुमति मिलने के पश्चात् 9 अप्रैल सन् 1946 ई. को बानलोमाने 'मिजौ कॉमीनर्स यूनियन' नाम से एक राजनैतिक संगठन बनाया, जिसे बाद में 'मिजौ यूनियन' के नाम से जाना गया। इसका मुख्य उद्देश्य मुखियागिरी को समाप्त करके जनता को स्वराज्य दिलाना था। जनता द्वारा 'मिजौ यूनियन' को भारी मात्रा में सहयोग मिला। जिसके कई कारण थे, देश की आजादी के बाद मिजोरम का भविष्य, मुखियाओं की मनमानी और बर्बरता से छुटकारा पाने की इच्छा आदि। वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी थे, जो मुखियाओं से सहानुभूति रखते थे। इसमें तत्कालीन अंग्रेज सुपरिटेंडेंट भी थे। इस उहा-पोह में चारों ओर संघर्ष शुरू हुआ, जिसमें मुखिया अपना वर्चस्व चाहते थे और यूनियन पूर्ण प्रजातन्त्र की बहाली। मौके की नजाकत को समझते हुए श्रीलल वियकथड़ा ने यूनियन के अड़ियल रवैये को शान्त करने के लिए 5 जुलाई 1947 में 'यूनाइटेड मिजौ फ्रीडम आर्गेनाइजेशन' की स्थापना की। इस संगठन ने दोनों के संघर्ष को समाप्त कर बीच का रास्ता निकाला। इनकी नीति थी कि मुखियाओं के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार किया जाये और मिजोरम को म्यांमार के साथ मिलाया जाये। श्रीलल वियकथड़ा के अलगाववादी रवैया के कारण इसका चौतरफा विरोध हुआ। इसके पश्चात् 25 अप्रैल 1954 की 'मिजो डिस्ट्रिक्स हिल्स' बनाया गया, साथ ही 16 अगस्त 1954 ई. को गाँव पंचायत और जिला परिषद बनाया गया। इस राजनीतिक गतिविधियों के बीच मिजोरम में बहुत बड़ा अकाल पड़ा, जिसने जनता और राजनीतिक गतिविधियों को हिला कर रख दिया। सही मायने में देखा जाये तो मिजौ संघर्ष की कहानी सन् 1959 के अकाल से शुरू होती है। ऐसे समय में जनता की समस्या के समाधान के लिए 12 अक्टूबर 1961 ई. को 'मिजौ राष्ट्रीय अकाल फ्रंट' (मिजौ नेशलफेमिन फ्रंट) का गठन किया गया। जिसने अकाल और लोगों की तकलीफों के लिए सरकार के रवैया को बेहद निराशाजनक ठहराया। सरकार के निराशाजनक रवैया को देखते हुए लोगों ने एक नया संगठन बनाया, जिसका नाम 'मिजो नेशनल फ्रंट' था। सरकार के रवैया से हतोत्साहित होकर इस संगठन के नेता लाल डेंगा तथा उनके साथियों ने 20 फरवरी 1966 को भारतीय संघ के भीतर एक अलग राज्य की माँग की और इन्होंने हिंसा का मार्ग अपनाया। एम.एन.एफ. के लोगों ने सरकारी कार्यालय, प्रतिष्ठानों और संचार के माध्यमों पर हमला किया, बैंकों को लूटा और सड़कों को जाम किया, ताकि इलाकों में सेना का आगमन न हो सकें।

एम.एन.एफ. ने मिजोरम के मुख्य शहर लुंगलेह पर कब्जा कर लिया और जिला मुख्यालय आइजल पर दबाव बनाया। सरकार ने इस विद्रोह को दबाने के लिए एयरफोर्स का इस्तेमाल किया। एयरफोर्स आने के पश्चात विद्रोहियों को पीछे हटने पर मजबूर होना पड़ा। सम्भवत: आजाद भारत के इतिहास में पहली बार सरकार ने अपनी जनता के खिलाफ वायु सेना का इस्तेमाल किया था। इसके उपरान्त भी विद्रोही आत्म समर्पण के बजाय लड़ते रहे और यह संघर्ष कई सालों तक चलता रहा। अंतत:, 21 जनवरी 1972 को प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने मिजोरम को केन्द्र शासित राज्य बनाने की घोषणा की। इसके बाद भारत सरकार और मिजो नेशनल फ्रंट के बीच हुए समझौते के उपरान्त 20 फरवरी 1987 को मिजोरम भारत का तेइसवां राज्य बना।

मिजौ जन-जीवन- मिजौ जनजातियों के उद्‌भव व विकास के संबंध में अधिकांश इतिहासकारों के विचार एवं मत में तारतम्यता दिखाई देती है। इतिहासकारों का शारीरिक बनावट व पुरानी जातीय मान्यताओं के आधार पर यह मत है कि मिजौ-जनजाति के पूर्वजों का संबंध मंगोल जाति से है। स्वयं मिजौ-जनजाति भी अपने का मंगोल जाति का वंशज मानते हैं।

श्री हवाठिवाउवा और ललचुङनुङाने 'History and Culture of Mçoram' में मिजौ समाज में प्रचलित लोकगीतों के आधार पर मिजौ समाज के उद्‌भव को बताते हैं कि "Kachin (कचिन), ज्ञमतमद (केरेन), Shanvek (सानवेक), (चिम्फों), Miru (मीरू), Maru (मारू) और Mizo (मिजौ) आदि जातियों के पूर्वज पश्चिमी उत्तरी चीन और उत्तरी-पूर्वी तिब्बत के बीच 2000 वर्ष के आस-पास रहने वाले Tibbta (तिब्बता) नाम का व्यक्ति था। कालान्तर में Tibbta के वंशज सात दलों में बँटकर उत्तर-पूर्वी तिब्बत की तराई को पार करते हुए बर्मा में आकर बस गये। इन सात दलों में से तीन दल (Miru, Maru, Mizo) सर्वप्रथम बर्मा की तराई में उतरे। इनका आवासकाल 800 ई. के आस-पास माना गया है।

8वीं शताब्दी के मध्य काल में माण्डले का राजा सियाङपाहराङा मिजौ जाति का वंशज था, जिसकी पुष्टि उस समय के लोकगीतों से होती हैं। जो निम्न है Kawlah thir tuam Achawitu Siangpahranga- Satin Deng Dattu E- Aawvanlia Khawri, An trah thiam Kewl leh nai" हिन्दी में-'वर्मियों के देश में लौह शस्त्रपति सियाड पाहराङा शत्रुओं का काल, आवाज जैसी बिजली की गर्जना अन्य जातियों का सरताज दास-दासियों का मालिक।'[2] इस तरह लोकगीत, लोककथा और भारतीय इतिहास के आधार पर यह स्पष्ट है कि मिजौ-जनजाति के पूर्वज 8वीं सदी के पूर्व चीन के पश्चिमी उत्तरी और तिब्बत के उत्तर-पूर्वी भाग के बीच स्थित कोशू (Kaushu) प्रान्त में रहते थे। इनका वंशज सियाङपाहाङा बाद के समय में माण्डले का राजा बना।

मिजौ जनजाति के उद्‌भव तथा विभिन्न उपजातियों में बँटने के क्रम में समझाते हुए भी ललथडलियाना (Lalthangliana) ने लिखा है कि 'अन्य तिब्बत बार्मियों के समान ही 2000 वर्ष पहले मिजौ जनजाति चीन के ताओ घाटी (Taovally) के कोशू प्रान्त (Kaushu Proviencee) में रहती थी। कई शताब्दी तक रहने के उपरान्त 7वीं सदी के अन्त और 8वीं सदी के प्रारम्भ में मिजौ जनजाति बर्मा और तिब्बत की सीमा क्षेत्र में आकर बस गई। इस तरह धीरे-धीरे 8वीं सदी में मिजौ जनजाति ने बर्मा की काबो घाटी को अपने अधिकार में कर लिया और 8वीं सदी के अन्त में सियाङपाहराङा बर्मा के माण्डले का राजा बन गया और अपना राज्य स्थापित कर लिया।"[3]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये जनजातियाँ 8वीं सदी से 13वीं सदी तक काबों घाटी में रहीं। इस दौरान मिजौ जनजाति अपने समकालीन दो जातियों Miru और Maru के साथ इरावती नदी (in Burma) की तराई घाटियों में बिखर गई। बाद में (Aupataung) आऊपाताऊङ के प्रवास काल में इस जाति के बीच एक शक्तिशाली व्यक्ति का उदय हुआ। जो बाद में कबीले का सरदार बना। उसका नाम Chhinlunga (दिनलुङ) था और उस जगह का नाम उसके नाम पर Chhinlunga पड गया। यही से मिजौ भाषा का प्रथम परिचय मिलता है। माघवेन्द्र प्रसाद अपने लेख 'मिजौ जनजाति का सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य' में लिखा है कि "10वीं सदी से 13वीं सदी के मध्य बर्मा के इरावती नदी की तराई में निवास के दौरान ही इनकी भाषा का विकास हुआ था, जिसे 'लुशेई' या 'लुसेई' कहते हैं।'[4] इसी दौरान मिजौ जाति के लोगों ने सांस्कृतिक शौक, शृंगार, रहन-सहन, धर्म आदि के क्षेत्र में उन्नति किये थे। 14वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इरावती नदी (म्यांमार) के तटवर्ती क्षेत्र एवं काबो घाटी में बर्मा के Shan(शान) जाति द्वारा बार-बार आक्रमण किये जाने के पश्चात मिजौ लोगों ने काबों घाटी, इरावती नदी के तटीय क्षेत्र को छोड़कर चीन हिल्स की ओर आ गये थे। कई वर्षो तक चीन हिल्स में रहने के उपरान्त 16वीं सदी के प्रारम्भ में मिजौ जनजाति टियाऊ नदी (Tiau River a 159 k.m. long river which froms an international boundary river between India and Myanmar- Its rise near khuangphal village of champhai distric in Mizoram) की दुर्गम घाटी को पार कर अलग-अलग समूहों में विभाजित होकर

मिजोरम पहुँचीं। इस दौरान कई समूहों ने अपने ही लोगों में से बलिष्ठ, चतुर एवं योग्य व्यक्ति को मुखिया (राजाध्लल) बनाकर मिजोरम में प्रवेश किया। इस प्रथा ने आगे चल कर वंश परम्परा का रूप धारण कर लिया।

संदर्भ सूचीः

1. पूर्वोत्तर भारत और संस्कृति संगम-माता प्रसाद गुप्ता, अमन, प्रकाशन, कानपुर, 2015, पृष्ठ 13
2. हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ मिजोरम- श्री हुबाड़ा ठिबाउबा और श्री ललचुडनुड़ा (सेकेण्डरी सोर्स-समन्वय पूर्वोत्तर, अंक-10, जनवरी-मार्च 2011),
3. केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, पृष्ठ 114
4. History of Mizo in Burma&Lalthangliana, Publication Division, 1980, page 85

आश्रम पद्धति विद्यालय, राजकीय विद्यालय और अनुदानित विद्यालयों के छात्राओं में आत्म प्रत्यय:एक तुलनात्मक अध्ययन

अभिलाषा त्रिपाठी

शोध छात्रा (मनोविज्ञान विभाग), क0सु0 साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या

समाज कल्याण विभाग की स्थापना वर्ष 1955 में सामाजिक-आर्थिक एवं अन्य स्तर से निर्धन दलित व अन्य वर्गो के लिए कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से समाज की मुख्य धारा में लाने का दायित्व सरकार द्वारा इस विभाग को सौंपा गया है। 1955 में अस्तित्व में आकर यह विभाग समय-समय पर परिवर्तित एवं परिवर्धित होकर वर्ष 1995-96 में समाज कल्याण के नाम से अस्तित्व में आया। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसका मूल उद्देश्य समाज के निर्धन वर्गो के हितार्थ कल्याणकारी योजनाओं को लाकर उन्हें लाभान्वित करना होता है जिससे वह एक सम्मानित नागरिक के रूप में अपना जीवन-यापन कर सकें। समाज को प्रगति एवं विकासोन्मुखी बनाने में शिक्षा की अहम भूमिका होती है। इसी को ध्यान में रखते हुए विभाग ने एक योजना आश्रम पद्धति विद्यालय की स्थापना वर्ष 1975 में किया जिसका मुख्य उद्देश्य समाज में ऐसे निर्धन परिवारों के छात्रों को शिक्षित एवं संस्कारित करना होता है जो परिवार अपने बच्चों का भरण पोषण एवं शिक्षा दिलाने में असमर्थ होते हैं।

फिल्मर (2000) में अनेक देशों में बच्चों की शिक्षा पर सामाजिक, आर्थिक विषमता के कुप्रभाव का एक बड़ा अध्ययन किया है। इस अध्ययनों के परिणामों में उन्होंने भारत के सम्बन्ध में बताया कि लिंग भेद और विपन्नता के कारण अनेक बच्चे प्रारम्भिक स्तर तक की भी शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते। ऐसे बच्चो के लिए ही आश्रम पद्धति विद्यालय की आवश्कता थी। प्रारम्भ में ऐसे विद्यालय का स्वरूप एवं नाम गुरुकुल परम्परा की भांति आश्रम वाले परिवेश में रहकर अनुशासित एवं व्यवस्थित ज्ञान के माध्यम से शिक्षित करना इनका लक्ष्य था, किन्तु शिक्षा का स्तर प्राथमिक स्तर तक था। वर्ष 2008-09 में इसे उच्चीकृत करते हुए प्राथमिक से उच्चतर माध्यमिक विद्यालय कर दिया गया। पहले उ0प्र0 के कुछ ही जिलों में ऐसे विद्यालयों की स्थापना की गयी, किन्तु इसके महत्व को देखते हुए सरकार सभी जिलों मे इसकी स्थापना व संचालन आरम्भ कर दिया। वर्तमान में कुल 94 आश्रम पद्धति विद्यालय उ0प्र0 में संचालित हो रहे हैं। वर्ष 2015-16 में सरकार ने नवोदय के पैटर्न को आत्मसात् करते हुए इन विद्यालयों से प्राथमिक स्तर को समाप्त कर कक्षा-6 से 12 तक की शिक्षा देने की व्यवस्था की।

आश्रम पद्धति विद्यालय पूर्णतः अवासीय होते हैं जिनमे विद्यार्थियों को 24 घंटे विद्यालय मे ही रहना होता है। "A healthy minds live in healthy body" इसी परिकल्पना के आधार पर ऐसे विद्यालयों में आवासित छात्रों को भोजन एवं नाश्ता समयानुसार प्रदान किया जाता है। विद्यार्थियों को यूनिफार्म अन्य उपयोग के कपड़े तथा अन्य दैनिक आवश्यकता की वस्तुऐं निःशुल्क विद्यालय से ही प्राप्त होती हैं।

हम सभी अवगत हैं कि प्रदेश मे माध्यमिक स्तर के विद्यालयों मे अधिकांश या तो राजकीय हैं या प्राइवेट लेकिन सरकार से अनुदानित हैं। आश्रम पद्धति विद्यालय के विषय मे ऊपर जो बातें बतलायी गई हैं उनसे स्पष्ट है कि ये विद्यालय राजकीय और अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों से अनेक प्रकार से भिन्न हैं इस भिन्नता को तालिका के रूप मे तालिका सं0 1 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका सं0 1: आश्रम पद्धति विद्यालयों कि राजकीय तथा अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों से भिन्नता

आश्रम पद्धति विद्यालय	*राजकीय और अनुदानित माध्यमिक विद्यालय*
1. इस विद्यालय में उन्हीं बच्चों को प्रवेशित किया जाता है समाजिक	इन विद्यालयो मे सभी वर्गो के छात्रों का प्रवेश लिया जाता है जिसमे
जो गरीबी रेखा से नीचे (बी0पी0एल0) संवर्ग में आते हैं	एवं आर्थिक वर्गीकरण की कोई भूमिका नहीं होती।
2. ये विद्यालय पूर्णतः आवासीय होते हैं ।	ये विद्यालय आवासीय नहीं होते हैं।
3. इस विद्यालय में 60 प्रतिशत अनुसूचित जाति से, 25 प्रतिशत पिछड़ी जाति से, 15 प्रतिशत सामान्य जाति के छात्राओं को प्रवेश प्रक्रिया के माध्यम से चयनित किया जाता है।	इन विद्यालयों मे जाति वाद प्रवेश निर्धारण का कोटा नहीं होता है।
4. इस विद्यालय मे कक्षा का स्तर 6 से 12 का होता है। है।	इसमे कक्षा का स्तर पूर्व माध्यमिक अथवा माध्यमिक दोनो हो सकता
5. छात्र छात्राओं को शिक्षा, भोजन, आवासीय व्यवस्था आदि सभी का खर्च उ0प्र0 सरकार का समाज कल्याण विभाग द्वारा वहन किया जाता है।	इन संस्थाओ मे छात्र छात्राओं को ऐसी कोई सुविधा उपलब्ध नहीं होती है।
6. इस विद्यालय का प्रबंधन व नियन्त्रण मुख्य रूप से समाज द्वारा होता है।	इन विद्यालयों का नियन्त्रण शिक्षा विभाग, प्रबन्ध समिति एवं प्रशासन
कल्याण विभाग द्वारा किया जाता है।	

यहाँ एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि आश्रम पद्धति विद्यालय के विद्यार्थी अपने अध्ययन के माध्यम से क्या अपने व्यक्तित्व का विकास उस स्तर तक कर पाते हैं, जिस स्तर तक राजकीय और अनुदानित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का होता है? कैलिगुरी (1966) ने अपने एक अध्ययन के निष्कर्षो के आधार पर मत व्यक्त किया था कि निर्धन बच्चे जिस वन्चनायुक्त परिवेश मे पलते हैं उसका उनके आत्म प्रत्यय जैसे व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसा ही मत पोर्टिलो (2008) मे भी अपने लेख मे प्रस्तुत किया था। आश्रम पद्धति विद्यालय मे गरीब घरो के बच्चे पढ़ते हैं इसलिए उनके माध्यमिक स्तर तक पहुंचने पर शिक्षा के प्रभाव से उनमे आत्म प्रत्यय कि तुलना राजकीय और माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों मे आम प्रत्तय से उपयोगी जानकारी दे सकता है।

इस सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष में वर्तमान अध्ययन प्रस्तावित है इस अध्ययन का उद्देश्य हैः

आश्रम पद्धति विद्यालय के विद्यार्थियो के आत्म प्रत्यय की राजकीय और अनुदानित विद्यालयों के विद्यार्थियो से तुलना करना

परिकल्पना -विद्यालय का स्वरूप में भिन्नता (आश्रम प्रद्धति विद्यालय, राजकीय और अनुदानित माध्यमिक विद्यालय) होने पर अध्ययनरत छात्रों के आत्म प्रत्यय के स्वरूप में अन्तर पाया जायेगा।

विधि

प्रतिदर्श - प्रस्तावित अध्ययन में कक्षा के कुल 480 छात्राओं पर अध्ययन किया गया है, जिसमें 160 छात्रायें आश्रम पद्धति विद्यालय की, 160 छात्रायें राजकीय विद्यालय की एवं 160 छात्रायें अनुदानित विद्यालयों की थी।

मापनी -प्रस्तुत अध्ययन में आर0के0 सारस्वत (2005) द्वारा बनायी गयी आत्म प्रत्यय मापनी को प्रयोग में लिया गया, जिसमें कुल 48 पद हैं। इस मापनी से आत्मप्रत्यय की 6 विमाओं का मापन होता है जिनके नाम है, 1-भौतिक आत्म प्रत्यय, 2-सामाजिक आत्म प्रत्यय, 3- स्वभावगत आत्म प्रत्यय, 4-शैक्षिक आत्म प्रत्यय, 5-नैतिक आत्म प्रत्यय, 6-बौद्धिक आत्म प्रत्यय, इन विमाओं के अलग अलग प्राप्ताकों के साथ इनके योग से समग्र आत्म प्रत्यय का भी एक प्राप्तांक प्राप्त होता है।

परिणाम और व्याख्या

आत्म प्रत्यय मापनी की सहायता से प्रतिदर्श के सूचनादाताओं से प्रदत्त संग्रहण किया गया। इससे प्राप्त प्रदत्तों का संख्यिकीय विश्लेषण किया गया। अध्ययन का उद्देश्य तीन प्रकार के विद्यालयों के विद्यार्थियों में आत्म प्रत्यय के स्तर की तुलना करना था। इसके लिये एक द्वितीय प्रसरण विश्लेषण (वन वे अनोवा) विधि का उपयोग करना उचित था। इससे सम्बन्धित सांख्यिकीय मूल्य तालिका सं0 2 में प्रस्तुत है।

TABLE-2: आत्मप्रत्यय के आधार पर विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों में भिन्नता परीक्षण

क्रम संख्या	*आत्मप्रत्यय*	*आश्रम मध्यमान प्रा0वि*	*राजकीय मध्यमान प्रा0वि*	*अनुदानित मध्यमान प्रा0वि*	*F मूल्य*
1	भौतिक	31.89	31.18	31.03	2.15*
	आत्मप्रत्यय	4.31	3.73	3.92	
2	सामाजिक	28.51	27.39	28.51	3.82*
	आत्मप्रत्यय	4.28	4.26	3.91	
3	स्वभावगत	32.77	30.41	31.71	11.51***
	आत्मप्रत्यय	3.68	5.35	3.99	
4	शैक्षिक	34.58	32.92	31.52	22.30***
	आत्मप्रत्यय	3.69	3.95	4.57	
5	नैतिक	32.01	31.17	32.30	4.10*
	आत्मप्रत्यय	3.53	3.61	3.92	
6	बौद्धिक	29.09	27.88	30.06	10.40***
	आत्मप्रत्यय	4.06	4.19	4.56	
7	सम्पूर्ण	188.84	180.96	185.13	11.270***
	आत्मप्रत्यय	15.15	16.51	12.64	

0 < .01
* < .05
** < .00
*** < .00

तालिका 2 के सहज अवलोकन से ज्ञात होता है कि तीनों प्रकार के विद्यालयों के विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय और उसकी विमाओं के आधार पर सार्थक भिन्नता थी। इन तुलना से सम्बन्धित सभी F मूल्य कम या अधिक सार्थक पाये गये भौतिक, सामाजिक और नैतिक आत्मप्रत्यय की दृष्टि से अन्तर .05 स्तर पर सार्थक थे जबकि स्वभावगत, शैक्षिक, बौद्धिक और सम्पूर्ण आत्मप्रत्यय के लिये अन्तर .001 स्तर पर सार्थक पाये गये। अन्तरों से सम्बन्धित F मूल्यों की सार्थकता से अध्ययन के लिये प्रस्तावित परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है किन्तु इसे मानते हुए थोड़ी सावधानी की जरूरत है। वस्तुत: भिन्नता की यह परिकल्पना इस मान्यता पर आधारित थी कि आश्रम पद्धति विद्यालय के विघ्यार्थी निर्धन और समाज के पिछड़े वर्ग से आते हैं। इसलिये उनमें आत्मप्रत्यय राजकीय और अनुदानित विद्यालयों के विद्यार्थियों की तुलना में कम होगा। जैसा कि पहले भी उल्लिखित है कि कई अध्ययनों में निर्धनता का आत्मप्रत्यय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है (पोर्टिलो 2008) तालिका 2 के मध्यमान का प्राप्तांक इसके विपरीत है। आत्मप्रत्यय के सभी विमाओं और सम्पूर्ण आत्मप्रत्यय के लिये आश्रम पद्धति विद्यालयों के विद्यार्थियों के मध्यमान, प्राप्तांक राजकीय और अनुदानित विद्यालयों के विद्यार्थियों के प्राप्तांक, मध्यमान से अधिक है। इससे प्रतीत होता है कि आश्रम पद्धति विद्यालय के विद्यार्थियों का आत्मप्रत्यय अन्य दोनों विद्यालयों की तुलना में अपेक्षाकृत उच्च स्तर का है। अत: कह सकते हैं कि भिन्नता की परिकल्पना तो सिद्ध हुई, किन्तु भिन्नता पूर्ण कल्पित आधार पर नहीं है।

आत्मप्रत्यय सम्बन्धी इन परिणामों को समझने के क्रम में ऐसा अनुभव होता है कि वे बच्चे जो निर्धन परिवार के थे और जिनके आत्मप्रत्यय शायद उस स्तर का न रहा हो जितना राजकीय और अनुदानित विद्यालयों में पढ़ने वाले अपेक्षाकृत अधिक सुविधा सम्पन्न परिवारों के बच्चों का रहा हो, आश्रम पद्धति विद्यालयों की सुविधा और सहवासीय व्यवस्था में अध्ययन से बढ़ा हो और अन्य दो विद्यालयों के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक हो गया हो। इस तरह से वैकल्पिक मत किसी अन्य अध्ययन से ही पुष्ट हो सकता है।

प्राप्त परणिाम इस दृष्टिकोण से उत्साहवर्धक हैं इससे ज्ञात होता है कि अभावग्रस्त परिवारों के बच्चों को योजनाबद्ध तरीके से शिक्षा देकर उनमें आवश्यक उत्तम विकास किया जा सकता है। आश्रम पद्यपि विद्यालय के विद्यार्थियों के आत्मप्रत्यय में वृद्धि इन विद्यालयों की उपादेयता पुष्ट करती है। यह भी ध्यान देने की बात है कि आत्मप्रत्यय का विद्यालय की शैक्षणिक उपलब्धि पर बड़ा धनात्मक प्रभाव पड़ता है।

सबीहा डूले (2017) ने आत्म प्रत्यय का शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ने वाले का अध्ययन किया है और पाया है कि आत्म प्रत्यय का शैक्षणिक उपलब्धि पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार से श्वान-चौंग, श्नाइडर एवं मैक कार्टे (2007) ने अध्ययन के आधार पर बताया कि आत्म प्रत्यय शैक्षणिक उपलब्धि से पूर्णत: बधा हुआ है और यह तर्क दिया कि शैक्षिक क्रियाकलापों से ही आत्म प्रत्यय जुड़ा नहीं होता है। अपितु यह वर्तमान ज्ञान को भी परिलक्षित करता है।

निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन में यह पुष्ट किया है कि निर्धन तथा समाज के पिछड़े वर्ग के बच्चों को आवश्यक अध्ययन की सुविधा देकर उनकी अन्य तरीके से देखभाल करके उनके आत्मप्रत्यय में सुधार किया जा सकता है। इससे वे हीन भावना से बचेंगें और विकास की मुख्य धारा में उत्साह से आगे बढ़ेगें। इन अध्ययन से आश्रम पद्धति विद्यालयों की सफलता की भी पुष्टि हुई।

सन्दर्भ सूची

1. Bong, M., & Clark, R.E(1999).Comparison between self- concept and- efficacy in acamemic motivation research. Educational Psychologist, 34(3),139-153.
2. Caliguri, J. (1966). The self concept of the poverty child . The journal of Negro Education, 35 (3), p.p. 280-282
3. Filmer, D (2000). The structure of social disparities in education: Gender and weath. Policy Reasearch Paper Number 2268. Washington, DC.@ Word Bank
4. Portillo, C.T. (2008), Poverty, self concept and health: Experience of Latinas Refrived from http:// doi.org/101300, pp 229-242.
5. Sebastian C.L.; Heys, S.B.&Blakemore, S.J(2008). Development of the self concept during adolescent trends in cognitive sciences, 12 (11), pp 441-446

भरतमुनि का रससूत्र और उसके व्याख्याता

डॉ० कविता वर्मा

एस-503 सतलज अपार्टमेन्ट, गोमती नगर विस्तार, लखनऊ

रस का शाब्दिक अर्थ है ''आनन्द"। काव्य को पढ़ने या सुनने से जिस आनन्द की अनुभूति होती है रस कहलाता है। ''रस्यते आस्वाद्यते इति रस:''। अर्थात जिसका आस्वादन किया जाता है। या स्वाद लिया जाता है, उसे 'रस' कहते हैं। काव्य में रस का वही स्थान है जो शरीर मे आत्मा का।

आचार्य मम्मट ने रस को परिभाषित करते हुए लिखा है -

"कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणी यानि च,
रत्यादे: स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययो:।
विभाव अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण:
व्यक्त: स तैर्विभावाद्यै: स्थायी भावो रस: स्मृत:।।[1]

अर्थात लोक में रति आदि स्थायीभाव के जो कारण कार्य व सहकारी होते हैं, वे यदि नाटक या काव्य में प्रयोग होते हैं तो क्रमश: विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं और उन विभाव आदि से व्यक्त वह स्थायी भाव रस कहलाता है।

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने रस के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए रस को 'ब्रह्मास्वादसहोदर' कहा ह-

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदर।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रस:।।[2]

तैत्तिरीपनिषद में भी रस का निर्देश मिलता है -

रसौ वै स:।[3]

पर 'रस' का सैद्धान्तिक विवेचन भरतमुनि से प्रारम्भ होता है। उन्होनें अपने नाट्यशास्त्र मे लिखा है कि विभाव-अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है:-

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:''।[4]

इस प्रकार रस के चार अवयव ठहरते हैं- स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव।

स्थायी भाव- आचार्यो के मतानुसार ऐसे नौ मुख्य स्थायी भाव हैं जिनके जाग्रत ओर परिपुष्ट होने पर एकाग्र होकर मन आनन्द मग्न हो जाता है। जो भाव चिरकाल तक चित्त में रहता है एवं जो काव्य, नाटकादि में आद्योपान्त उपस्थित रहता है, प्रभावशीलता और प्रधानता में औरों में उत्कर्ष रखता है, साथ ही जिसमें विभावादि से सम्बन्धित होकर रस रूप में परिणत होने की शक्ति रहती है, स्थायी भाव कहा जाता है। प्रत्येक स्थायी भाव के आधार पर एक रस की कल्पना की गई है।[5] स्थायी भाव तथा उनके आधार पर कल्पित रसों के नाम इस प्रकार है-

स्थायीभाव	*रस*
रति	श्रृंगार
हास	हास्य

उत्साह	वीर
अमर्ष (क्रोध)	रौद्र
भय	भयानक
विस्मय	अद्‌भुत
शोक	करूण
जुगुप्सा	वीभत्स
निर्वेद	शांत

विभाव- भाव के उद्‌बोधक कारणों को विभाव कहते हैं। ये दो प्रकार के होते है।

1. **आलम्बन विभाव**- जिसका आलम्बन प्राप्त करके स्थायी भाव जाग्रत होता है, आलम्बन विभाव कहलाते हैं। उदाहरण के लिए हम रौद्र रस को लेते हैं। वह व्यक्ति प्राय: शत्रु, जिसको देखकर क्रोध उत्पन्न हो। जिसके मन में क्रोध आदि मनोविकार उत्पन्न हों, वह आश्रय कहा जाता है।
2. **उद्दीपन विभाव**- स्थायी भाव को उद्दीप्त करने वाले तत्व उद्दीपन विभाव कहे जाते हैं। उदाहरण के लिए श्रृंगार रस के उद्दीपन विभाव हैं-एकान्त स्थल, वाटिका, चन्द्र, चन्द्रिका, वन, उपवन, कुंज, कोकिल, पपीहा आदि। आलम्बन की चेष्टाएँ भी उद्दीपन के अन्तर्गत आती हैं। उदाहरण के लिए शत्रु के दंभपूर्ण वचन अथवा चुनौती भरे वाक्य आदि उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत होंगे।

अनुभाव- भाव का बोध कराने वाले अवयव अनुभाव हैं। इन्हीं के द्वारा रति इत्यादि स्थायी भाव काव्य में शब्दों द्वारा तथा नाटक में आश्रय की चेष्टाओं द्वारा प्रकट होते हैं-"अनुभावो भावबोधक:" संक्षेप में आश्रय की चेष्टाओं को अनुभाव कहते हैं।

अनुभावों के चार भेद होते हैं- कायिक अनुभाव, आहार्य अनुभाव, मानसिक अनुभाव तथा सात्विक अनुभाव।

कायिक अनुभाव- मनोभावों के अनुसार आँख, भौंह, हाथ आदि शरीर के अंगों द्वारा की गई कटाक्ष, मूँछों पर हाथ फेरना आदि को कायिक अनुभाव कहते हैं।

आहार्य अनुभाव- भाँति-भाँति के वेश-धारण को आहार्य अनुभाव कहते हैं।

मानसिक अनुभाव- अन्त:करण की भावना के अनुसार मन में आमोद-प्रमोद, हर्ष, विषादादि की जो तरंगें उठती हैं, उन्हें मानसिक अनुभाव कहते हैं।

सात्विक अनुभाव- आत्मा में अन्तर्भूत रस को प्रकाशित करने वाला अन्त:करण का धर्म विशेष सत्व कहलाता है। इसी सत्वगुण से उत्पन्न शरीर के स्वाभाविक अंग विचार को सात्विक अनुभाव कहते हैं। इनकी संख्या 8 मानी गई है- स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वर भंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय।

व्यभिचारी भाव- चिन्ता, अभिलाषा आदि चित्त की वृत्तियों को व्यभिचारी भाव कहा जाता है। इनको संचारी भाव भी कहते हैं। एक ही संचारी भाव एक से अधिक रस के अन्तर्गत हो जाता है। विविध आचरण करने वाले पुरुष को व्यभिचारी कहते है इसी आधार पर संचारी भाव को व्यभिचारी भाव कहते हैं। संचारी शब्द 'सम्' उपसर्ग और 'चर' धातु से मिलकर बना है। इसका अर्थ है सब भावों को भले प्रकार रसत्व की ओर ले जाने वाला, अथवा साथ-साथ चलने वाला। जो भाव स्थायी भावों में विद्यमान रहकर या उनके साथ-साथ उन्हें उपयोगी एंव पुष्ट बनाते, रस रूप तक पहुँचाते तथा जलतरंगवत उन्हीं में उत्पन्न होकर उन्हीं में विलीन हो जाते हैं। उन्हें संचारी भाव कहते हैं। ये ध्वनि रूप से स्थायी भावों के पोषक एवं सहायक होते हुए भी रस-सिद्ध-काल तक स्थिर नहीं रहते हैं। ये अवस्था विशेष में उत्पन्न होते है और अपना प्रयोजन पूरा हो जाने पर स्थायी भाव की उचित सहायता करके लुप्त हो जाते हैं।

अन्त: संचारी अथवा मन: संचारी भी इनकी संज्ञा है। इनकी संख्या कुल मिलाकर 33 मानी गई है- निर्वेद, ग्लानि, शंका, अस्या, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विबोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास, एवं वितर्क।

भरतमुनि के नाट्यशास्त की प्रथम उपलब्ध टीका अभिनवगुप्त रचित ''अभिनवभारती'' मिलती है जिसमें उन्होने रससूत्र की व्याख्या की है और अन्य व्याख्याकारोंद्वारा की गई व्याख्या को भी उद्धृतकिया है। ये व्याख्याएँ भट्टलोल्लट (9वीं शताब्दी), शंकुक (9वीं शताब्दी), भट्टनायक(11वीं शताब्दी) और अभिनवगुप्त (11वीं शताब्दी) के द्वारा क्रमशः मीमांसा, न्याय, सांख्य और शैवदर्शन के आलोक में की गयी, जो उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद, भुक्तिवाद और अभिव्यक्विाद के नाम से विख्यात है।

भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद:- भट्टलोल्लट के मतानुसार विभाव, अनुभाव आदि के संयोग से अनुकार्य राम आदि में रस की उत्पत्ति होती है। उनमें भी विभाव सीता आदि मुख्य रूप से रस के उत्पादक होते हैं। अनुभाव उस उत्पन्न हुए रस को बोधित करने वाले होते हैं और व्यभिचारिभाव उस उत्पन्न रस के परिपोषक होते हैं। अतः स्थायिभावों के साथ विभावों का उत्पाद्य-उत्पादकभाव, अनुभावों का गम्य-गमकभाव और व्यभिचारिभावों का पोण्य-पोषक भाव सम्बन्ध होता है। ''विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः व्यभिचारिभिनिर्वेदादिभिः सहकारिभिरूपचितो मुण्यया वृत्या रामादवनु-कार्ये तद्रूपतानुसन्धानान्नर्तकेऽपि प्रतीयमानो रस इटि भट्टलोल्लटप्रमृत्यः''।[6]

अर्थात् ललनादि (आलम्बन विभाव), उद्यानादि (उद्दीपन विभावों) से रति आदि (स्थायी भाव) उत्पन्न हुआ। (रति आदि की उत्पति के) कार्यभूत कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि अनुभावों से प्रतीति के योग्य किया गया और सहकारीरूप निर्वेदादि व्यभिचारी भावों से पुष्ट किया गया, मुख्य रूप से अनुकार्य रामादि में और उनके स्वरूप का अनुकरण करने से नट में आरोप्यमाण रस कहलाता है!

जब कुशल अभिनेता राम का अभिनय करता है तब उसके अभिनय कौशल से दर्शक पर ऐसा प्रभा पड़ता है कि वह अभिनेता में ही राम का आरोप कर देता है, उसे रस की प्रतीति अभिनेता में राम का आरोप करने से होती हैं। इस कारण लोल्लट का यह मत 'आरोपवाद' भी कहलाता है। भट्ट के मतानुसार अभिनेता राम का ऐसा कुशल अभिनय करता है कि दर्शक अभिनेता को ही राम समझ लेता है। इसी कारण व आनान्दित होता हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि सामाजिक या दर्शक को जो आनन्द या रस मिलता है वह अभिनेता में राम की समानता प्राप्त कर लेने से ही मिलता है। उन्होंने केवल नायक में रस का उत्पन्न होना और अभिनेता में उस रस की प्रतीति होना माना है।

डॉ0 नगेन्द्र 'रस सिद्धान्त' नामक अपने नवीनतम ग्रंथ में भट्टोल्लट द्वारा प्रतिपादित रस प्रक्रिया को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं-''जिस प्रकाररज्जु में सर्प की आरोपित प्रतीति के कारण सर्प के विद्यमान न रहने पर भी सर्प की प्रतीति और उसमें भयादि कार्यो की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार अभिनयादि के समय रामादिगत सीता विषयिनी अनुरागादि रूपा रति के विद्यमान न रहने पर भी नट में विद्यमान रस से उसकी प्रतीति होती है, और उसके द्वारा सहृदयों में चमत्कारानुभूति आदि कार्यों की उत्पत्ति होती है।"

शंकुक का अनुमितिवाद- शंकुक ने 'संयोग' का ''गम्यगमकभाव और 'निष्पत्ति' का 'अनुमिति' यह अर्थ किया है। शंकुक ने ''चित्रतुरंगन्याय" (चित्र में बना घोड़ा वास्तविक घोड़ा न होते हुए भी घोड़ा कहा जाता है) की कमनीय कल्पना को उद्घाटित कर सामाजिक के साथ रस का सम्बन्ध दिखलाने का प्रयत्न किया है। शंकुक के अनुसार नट कृत्रिम रूप से अनुभाव आदि का प्रकाशन करता है। परन्तु उनके सौन्दर्य के बल से उनमें वास्तविकता सी प्रतीति होती है। उन कृत्रिम अनुभावों आदि को देखकर सामाजिक नट में वस्तुतः विद्यमान न होने पर भी, उनमें रस का अनुमान कर लेता है और अपनी वासना के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का आस्वादन करता है।

शंकुक का मानना है कि जिस प्रकार चित्र में बने घोड़े को देखकर व्यक्ति उसे घोड़ा ही मान लेता है, उसी प्रकार राम की भूमिका प्रस्तुत करने वाले अभिनेता को भी व्यक्ति राम ही मान लेता है। इस प्रकार राम में उत्पन्न रस ाके अभिनेता ग्रहण करता है और दर्शक भी 'चित्र-तुरंग-न्याय' से इसी अनुमान पर रस ग्रहण करता है।

भट्टनायक का भुक्तिवाद- भट्टनायक ने भावकत्व-भोजकत्व व्यापारों की अवधारणा कर सामाजिक रसानुभूति का उपपादक करने का प्रयत्न किया है। भट्टनायक ने रसानुभूति का केन्द्र बिन्दु सामाजिक को ही माना है, इनका मानना है कि रस की निष्पत्ति न तो अनुकार्य राम में होती है और न ही अनुकर्ता नटादि में होती है् अनुकार्य और अनुकर्ता दोनों तटस्थ हैं, वास्तविक रसानुभूति तो केवल सामाजिक को होती है।

भट्टनायक का मानना है कि रस की न उत्पत्ति होती है, न अनुमिति होती है और न ही अभिव्यक्ति होती है, बल्कि सामाजिकों को रस की भुक्ति होती है-

न ताटस्थ्येन नात्ममतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभिव्यंज्यते अपितु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधरणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी, सत्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्धिश्रान्तिसतत्वेन भोगेन भुज्यते, इति भट्टनायकः।[7]

उनके अनुसार रस प्रक्रिया में सर्वप्रथम अभिधा व्यापार से काव्य का जो अर्थ उपस्थित होता है उसको शब्द का 'भावकत्व' व्यापार परिष्कृत कर सामाजिक के उपभोग के योग्य बना देता है। शब्द का 'भावकत्व' व्यापार कथा में परिष्कार कर उसमें से व्यक्ति विशेष के संबंध को हटाकर उसका साधारणीकरण कर देता है। तदन्तर शब्द का भोजकत्व व्यापार सामाजिक को रस का साक्षात्कारात्मक 'भोग' करवाता है।

अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद- ''निष्पत्तिध'' का अर्थ ''अभिव्यक्त'' करते हुए अभिनवगुप्त का कहना है कि रस की न तो उत्पत्ति होती है, न अनुमिति, न भुक्ति वरन् ''अभिव्यक्ति'' होती है।

रस को पूर्णतया आत्मगत मानते हुए उनका कहना है कि आनन्दमय ज्ञान स्वरूप आत्मा का ही आस्वादन रस रूप में होता है। केवल उस आनन्दमय की विचित्रता के सम्पादन के लिए रति शोक आदि वासनाओं का व्यापार होता है। और उन वासनाओं के उद्‌बोधन के लिए अभिनयादि रूप नट का व्यापार। यथोचित विभवादि को उपस्थित कराकर कवियों और नटों द्वारा स्थायीभाव रसत्व को प्राप्त कराये जाते हैं। इसलिए लौकिक चित्तवृत्ति का ज्ञान कवि एवं नट दोनों के लिए आवश्यक है।

अभिनव गुप्त ध्वनिवादी आचार्य थें अतः उन्होने रस को व्यंग्य माना है, वह न तो अभिधा का व्यापार है, न लक्षणा का विषय, अपितु वह तो व्यंजना का व्यापार है। अभिनवगुप्त भट्टनायक के साधारणीकरण सिद्धान्त को स्वीकार तो करते हैं, किन्तु उसे भावकत्व व्यापार न मानकर व्यंजना का व्यापर मानते हैं। व्यंजना के इस विभावन व्यापार से सहृदय के चित्त में स्थित रति आदि स्थायीभाव के रसास्वाद का अनुभव होता है। काव्य में व्यंजनाशक्ति की महिमा से ही रस की अभिव्यक्ति होती है।

अभिनवगुप्त कवि एवं सामाजिक दोनों में वासना रूप स्थायीभाव की सत्ता मानते हुए सम्पूर्ण काव्य संसार को रसमय घोषित किया है।

संदर्भः-

1. आचार्य मम्मट काव्यप्रकाशः चतुर्थ उल्लास, सूत्र-43
2. आचार्य मम्मट काव्यप्रकाशः चतुर्थ उल्लास, पृष्ठ सं0-108
3. तैत्तिरीयोपनिषद्-2.7.2
4. नाट्यशास्त्र भरतमुनि-6.18-21
5. डॉ0 राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी - शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन
6. आचार्य मम्मट काव्यप्रकाशः चतुर्थ उल्लास, पृष्ठ सं0-101
7. आचार्य मम्मट काव्यप्रकाशः चतुर्थ उल्लास, पृष्ठ सं0-103

सामाजिक-धार्मिक और पर शेख मुहम्मद अब्दुह के विचार तथा राजनीतिक सुधार

Sheikh Muhammad Abduh's Ideas on Socio-Religious and Political Reform

अमजद हुसैन

सहायक प्रोफेसर, अरबी विभाग अभयपुरी कॉलेज, अभयपुरी

संक्षेप

शेख मुहम्मद अब्दु आधुनिक मिस्र में एक प्रमुख व्यक्तित्व थे। उन्हें इस्लामी विचारधारा के शुरुआती वास्तुकारों में से एक माना जाता है। उन्हें एक राष्ट्रवादी के रूप में भी वर्णित किया गया था, जिन्होंने न केवल विचारकों और सुधारकों के पूरे स्कूल को प्रभावित और प्रेरित किया, बल्कि वे सामान्य रूप से इस्लाम की प्रकृति से भी चिंतित थे। उसके लिए, इस्लाम समय और परिस्थितियों की मांगों के अनुकूल है; उनके प्रमुख लक्ष्यों में से एक यह साबित करना था कि इस्लाम को आधुनिक विचारों के साथ समेटा जा सकता है और इस सुधार के लिए एक तरीका तैयार किया जा सकता है। उन्होंने इस्लाम को किसी भी तरह की कठोरता से मुक्त करने का प्रयास किया और इसे वास्तविक सांसारिक परिस्थितियों के अनुकूल और सामंजस्य में बनाया। उन्हें विश्वास था कि मुसलमान पश्चिमी सभ्यता के उन पहलुओं को चुन सकते हैं जो इस्लाम के विपरीत नहीं थे। मुसलमान आधुनिक यूरोप की संस्थाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, शिक्षा के तरीकों और विचारों के तरीकों को अपना सकते थे; लेकिन उन्हें इस्लाम में निर्धारित सिद्धांतों के संदर्भ में परिवर्तनों को सही ठहराना चाहिए। उनके द्वारा प्रस्तावित आधुनिक आदर्श की मूल नींव काफी हद तक तर्कवाद, उदारवाद, राष्ट्रवाद और इस्लाम के सार्वभौमिकता पर आधारित थी। अब्दुह का मानना था कि यह न केवल संभव था बल्कि यह दिखाना अनिवार्य था कि कैसे आधुनिक मूल्यों और संस्थानों को प्रामाणिक रूप से इस्लामी आदर्शों के साथ समेटा जा सकता है। इस विनम्र कार्य का मुख्य उद्देश्य उनके विकासवादी दृष्टिकोण और आधुनिकता के सिद्धांत दृष्टिकोण पर प्रकाश डालना है, इस दृढ़ विश्वास के साथ कि पश्चिमी आदर्शों को अपनाने से मुस्लिमों को ठहराव, पिछड़ेपन से मुक्ति मिलेगी और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लाभ प्राप्त करने के तरीकों का नेतृत्व किया जाएगा।

कीवर्डः विचारधारा, सामंजस्य, सद्भाव, सभ्यता, तर्कवाद, उदारवाद, राष्ट्रवाद, सार्वभौमिकता, विकासवादी दृष्टिकोण, दृढ़ विश्वास, ठहराव, विज्ञान, प्रौद्योगिकी

परिचयः

शेख मुहम्मद अब्दु आधुनिक मिस्र में एक प्रमुख व्यक्तित्व थे। उन्हें इस्लामी विचारधारा के शुरुआती वास्तुकारों में से एक माना जाता है। उन्हें एक राष्ट्रवादी के रूप में भी वर्णित किया गया था, जिन्होंने न केवल विचारकों और सुधारकों के पूरे स्कूल को प्रभावित और प्रेरित किया, जिसमें अल-अजहर विश्वविद्यालय के कई स्नातक भी शामिल थे, बल्कि कई गैर-मिस्र और गैर-मुसलमान भी थे। अब्दुह ने इस्लामी दुनिया भर में विशेष रूप से इस्लामी सुधार के कार्यक्रम से संबंधित उपलब्धियों और योगदानों से, उन्हें मुस्लिम विचारकों द्वारा अल-उस्ताद वा अल-इमाम (मास्टर और गाइड) की मानद उपाधि दी गई थी। सुधार के उनके अथक प्रयास को चार मुख्य क्षेत्रों यानी धर्मशास्त्र, राजनीति, संस्कृति, अरबी भाषा और शिक्षा प्रणाली में देखा जा सकता है।

राजनीतिक रूप से, उन्होंने उत्तरी अफ्रीका से दक्षिण पूर्व एशिया तक स्वतंत्र आंदोलनों और मुस्लिम राष्ट्रवाद की घोषणा की, न केवल अरबों बल्कि इंडोनेशियाई और मलय को प्रभावित किया।

शिक्षा और उपलब्धियां:

मुहम्मद अब्दुह का जन्म 1849 ई. में बुहैरा प्रांत के शुभरखित जिले के महलत नस्र में एक किसान परिवार में हुआ था। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही ली। अक्सर उम्र तक पहुंचने के बाद, उन्होंने दो साल में पवित्र कुरान को याद किया, जिसे असामान्य माना जाता था। तेरह साल की उम्र में, उन्हें तांता के अहमदी मस्जिद स्कूल में भेजा गया, जहाँ उन्हें अरबी व्याकरण के रहस्यों से परिचित कराया गया। मस्जिद में शिक्षा के तरीके ने छात्रों को तकनीकी शब्दों और वाक्य रचना के नियमों को याद रखने की मांग की, जिनकी उन्हें कोई समझ नहीं थी। इस शिक्षाशास्त्र से निराश होकर, वह स्कूल से भाग गया और अपने कुछ चाचाओं के साथ तीन महीने तक छिप गया, लेकिन उनमें से एक उसे वापस टांटा ले आया। बाद में उनकी मुलाकात एक महान विद्वान शेख दरवेश खादर से हुई जिन्होंने उन्हें तसव्वुफ (इस्लामी रहस्यवाद) के अभ्यास से परिचित कराया। यह मुलाकात अब्दुह के धार्मिक जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ थी और उसमें ज्ञान के प्रति प्रेम पैदा किया। सैय्यद जमाल अल-दीन अल-अफगानी से पहले अब्दुह के जीवन में शेख दरवेश का प्रभाव सबसे निर्णायक कारक था। उन्होंने 1866 से 1877 तक काहिरा के अल-अजहर में अपनी पढ़ाई जारी रखी। तीन साल तक अल-अजहर में व्याख्यान में भाग लेने के बाद, उन्होंने महसूस किया कि वहां पढ़ाने की पारंपरिक पद्धति के कारण उन्हें बिल्कुल भी फायदा नहीं हुआ। शिक्षक ने अपने छात्रों की दक्षता के लिए चिंता किए बिना अपना व्याख्यान दिया कि वह क्या जानता था या क्या नहीं जानता था। 1869 में, जमाल अल-दीनाल-अफगानी पहली बार मिस्र आए। अब्दुह और अल-अजहर के कई छात्रों ने उनसे मुलाकात की। अल-अफगानी ने अपने आगंतुकों को कुरान की व्याख्या और इस्लामी रहस्यवाद के विषय पर आकर्षित किया। दुर्भाग्य से, वह मिस्र में कुछ ही समय के लिए रुका था। जब वह 1871 में कॉन्स्टेंटिनोपल से काहिरा लौटा, तो अब्दुह और उसके दोस्त अल-अफगानी के आवास पर अल-स्टडी सत्रों में शामिल हुए। अल-अफगानी ने उन्हें मध्ययुगीन अरबी लेखन और विभिन्न यूरोपीय कार्यों से चयनित अंशों से परिचित कराया, जिनका अरबी में अनुवाद किया गया था। अल-अफगानी ने दर्शन, रहस्यवाद, इतिहास, राजनीति और समाजशास्त्र पर एक स्वतंत्र और उदार भावना के साथ चर्चा की, जो अल-अजहर के पारंपरिक तरीकों से बहुत अलग है।

1877 में अब्दुह ने आलिम की डिग्री के साथ अपनी पढ़ाई पूरी की और अल-अजहर में पढ़ाना शुरू किया। उन्होंने धर्मशास्त्र, तर्कशास्त्र, नैतिकता और यूरोपीय सभ्यता के इतिहास पर व्याख्यान दिए, तर्क और तार्किक प्रमाण के तरीकों को नियोजित किया जो उन्होंने अल-अफगानी से सीखा था। 1878 में उन्हें दाराल-उलूम में इतिहास का शिक्षक और खेदिवियल स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज में अरबी भाषा और साहित्य का शिक्षक नियुक्त किया गया। अल-वकियाल-मिसरियाह के प्रधान संपादक के रूप में, अब्दुल ने अपने लेखन के माध्यम से ओराबी आंदोलन का समर्थन किया। उन्होंने भाषण भी दिए जिसमें उन्होंने मिस्र के बेटों से अपने सम्मान और अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने का आग्रह किया। 11 जून, 1882 को, ब्रिटिश बेड़े ने अलेक्जेंड्रिया पर बमबारी की; और 13 सितंबर को अंग्रेजों ने देश पर कब्जा कर लिया। ओराबी विद्रोह पूरी तरह से ध्वस्त हो गया और आंदोलन के रिंग नेताओं को या तो जेल में डाल दिया गया या निर्वासन में भेज दिया गया। सितंबर, 1882 में अब्दुह को गिरफ्तार कर लिया गया और देश से भगा दिया गया और फिर बेरूत चला गया।

1884 में, निर्वासन के दौरान, अब्दुह को अल-अफगानी से पेरिस में शामिल होने का निमंत्रण मिला। इस शहर में उन्होंने जमीयत अल-उरवतल-वुथका (सोसाइटी ऑफ द इंडिसोल्युबल बॉन्ड) नामक एक संगठन की स्थापना की, जिसका उद्देश्य बिखरे हुए मुस्लिम लोगों को एकजुट करना, उनकी फूट के कारणों को मिटाना और उन्हें उनकी नींद से जगाना था। उन्होंने अल-उर्वताल-वुथका नामक एक पत्रिका प्रकाशित की जिसमें एक कट्टरपंथी और आक्रामक प्रकृति के लेख दिखाई दिए।

1888 में खेदीव तौफीक द्वारा अब्दु को मिस्र लौटने की अनुमति दी गई थी। उसी वर्ष उन्हें मिस्र की अदालतों में न्यायाधीश नियुक्त किया गया। वास्तव में वे अपने शिक्षण की ओर लौटना चाहते थे, लेकिन खेड़ीवे उन्हें अपने राजनीतिक विचारों से छात्रों को प्रभावित करने वाले स्थान पर रखने को तैयार नहीं थे। वह अपनी नौकरी में तब तक सफल रहा जब तक कि वह अपील की

अदालत में सर्वोच्च पद, परामर्शदाता तक नहीं पहुंच गया। वह न्याय और समानता से संबंधित न्यायाधीश थे, न कि कानूनों और अधिरोपणों के न्यायाधीश; या, एक अलग शब्दावली का उपयोग करने के लिए, वह एक मुजतहिद न्यायाधीश (इज्तिहाद का प्रयोग करने वाला एक न्यायाधीश, व्यक्तिगत व्याख्या) था, न कि मुकघ्ल्लिद न्यायाधीश (एक न्यायाधीश जो पहले से स्थापित फतवा, कानूनी राय को अपनाता था)।

3 जून, 1899 को, उन्हें मिस्र का मुफ्ती बनाया गया, जो मिस्र के लिए इस्लाम के कैनन कानून का आधिकारिक दुभाषिया बन गया। उनके फतवे और निर्णय आधिकारिक और अंतिम थे। इस कार्यालय में अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने व्यक्तिगत और व्यक्तिगत प्रश्नों के साथ-साथ सभी आधिकारिक मामलों पर निर्णय देकर इसका दायरा बढ़ाया। उनके फैसलों के कारण, उनकी प्रसिद्ध मुस्लिम दुनिया में फैल गई, और उनके फतवे कई हलकों में मांगे गए। उनके फतवों ने स्वतंत्रता की भावना और बंधन से परंपरा की स्वतंत्रता की भावना और इस्लाम को आधुनिक सभ्यता की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने की वास्तविक इच्छा प्रकट की। 25 जून, 1899 को, उन्हें विधान परिषद का सदस्य नियुक्त किया गया, जो उस समय केवल सलाहकार शक्तियों का प्रयोग करता था और कई मायनों में, प्रतिनिधि सरकार के क्षेत्र में अपने अनुभव की कमी को दर्शाता था। अच्छे कार्यों और सार्वजनिक सेवा में सहयोग को प्रोत्साहित करने और संगठित दान को बढ़ावा देने के लिए उनकी गतिविधियों ने मुस्लिम परोपकारी समाज की स्थापना और विकास को भी अपनाया। इसकी गतिविधियों में गरीबों के मुस्लिम बच्चों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना था जो अपनी शैक्षिक फीस का भुगतान नहीं कर सके। उन्होंने 1900 में एक साहित्यिक पुनरुत्थान लाने के लिए सोसाइटी फॉर द रिवाइवल ऑफ अरेबिक साइंसेज की भी स्थापना की; वह इसके अध्यक्ष थे। उन गतिविधियों के अलावा, उन्हें धर्मशास्त्र, कुरान की व्याख्या, बयानबाजी और तर्क पर अल-अजहर में व्याख्यान देने का समय मिला। वह अल-अजहर में सुधार के लिए प्रशासनिक समिति के सदस्य भी थे। इन विभिन्न गतिविधियों के बीच 11 जुलाई, 1905 ई. को उनकी मृत्यु हो गई, जिससे कई योजनाएं और परियोजनाएं अधूरी रह गईं।

साहित्यिक जीवनः

1870 के दशक के दौरान मिस्र के राष्ट्रों में राष्ट्रवाद की भावना और अपनेपन की भावना व्यापक रूप से उभरी। यह समय-समय पर अल-अहराम में व्यक्त किया गया था जिसमें अब्दुह ने अल-अफगानी के राजनीतिक विचारों को दर्शाते हुए लिखा था, और विदेशी प्रभावों के विकास और स्थानीय शासकों के भ्रष्टाचार की भी आलोचना की, इन आलोचनाओं के बारे में उनका विचार, अल-अफगान को 1879 में मिस्र से निष्कासित कर दिया गया था। शासक, खेदीव तौफीक, अब्दुह द्वारा दार अल-उलुम में अपने शिक्षण पद से बर्खास्त कर दिया गया और अल-अफगानी के सहयोग के लिए अपने गांव भेज दिया गया। 1880 में अब्दुह को रियाद पाशा (मिस्र के प्रधान मंत्री) द्वारा आधिकारिक गजट अल-वकाई अल-मिसरियाह (मिस्र की वास्तविकताओं) के संपादक के रूप में काहिरा वापस बुलाया गया था जिसमें उन्होंने कई लेख प्रकाशित किए थे, जिसमें कहा गया था कि राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक सुधार जैसे विभिन्न क्षेत्रों में सुधार। एक लेखक के रूप में, उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था, विशेष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा पर लेखों की एक श्रृंखला के माध्यम से जनमत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ओराबी (विद्रोह) के नेतृत्व में राष्ट्रवादियों की क्रांतिकारी हिंसा का विरोध करते हुए, अब्दुह ने फिर भी खेडिव के खिलाफ पक्ष लिया, जिन्होंने खुले तौर पर अंग्रेजों के साथ सहयोग किया। नतीजतन, ओराबी विद्रोह को कुचलने के बाद और 1882 में अंग्रेजों ने मिस्र पर कब्जा कर लिया, अब्दु को कुछ वर्षों के लिए निर्वासन में भेज दिया गया। बेरूत में थोड़े समय के प्रवास के बाद, वह पेरिस में अपने पुराने गुरु जमाल अल-दीन अल-अफगानी के साथ फिर से जुड़ गए और अल-अफगानी के साथ कई गतिविधियों में सहयोग किया, जिसमें एक लोकप्रिय पत्रिका अल-उरवाह अल-वुथका (द फर्मेस्ट बॉन्ड) का प्रकाशन भी शामिल है। . 1886 में, वह काहिरा लौट आए और मौजूदा राजनीतिक और धार्मिक ढांचे के भीतर सुधार के लिए खुद को समर्पित कर दिया। फिर, उन्हें 1888 में शरीयत न्यायालयों (मूल न्यायाधिकरण) के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया था, और उसके बाद, वह राजनीतिक प्रयासों में कम रुचि रखते थे और केवल शैक्षिक और कानूनी सुधारों में रुचि रखते थे। 1889 से 1905 तक उन्हें मिस्र के ग्रैंड मुफ्ती के रूप में नियुक्त किया गया था और उनका काफी राजनीतिक प्रभाव था। मैल्कम एच. केर राजनीति में अब्दु की भागीदारी के बारे में इस प्रकार बताते हैं: 'अपने प्रारंभिक वर्षों में राजनीति में बहुत रुचि लेने के बाद उन्होंने दृष्टिकोण में बदलाव किया और अपने लेखन को सामाजिक, धर्म और न्यायिक मामलों तक सीमित कर दिया'।

इस्लामी सुधार पर विचारः

इस्लामी सुधार में मुहम्मद अब्दु की रुचि मुस्लिम समुदायों की गिरती स्थिति से प्रेरित थी। उनके अनुसार, इन समुदायों में गिरावट का सबसे बड़ा एकल कारण निराशा थी; लोग अपने संस्थानों में सुधार की कोई संभावना नहीं देख पा रहे थे, और वे समाज की बीमारी को लाइलाज मानते थे और यह मानते थे कि प्रत्येक अगले दिन पिछले दिन से भी बदतर होगा। मन की यह स्थिति कुरान और हदीस (भविष्यद्वक्ता परंपराओं) की शिक्षाओं की अज्ञानता का परिणाम है, जो कि अप्रमाणिक हदीस पर निर्भरता या सही हदीस की गलत व्याख्या पर निर्भर है। कुरान मन के इस फ्रेम को झूठा और अविश्वासी कहता है जब यह कहता है कि अविश्वासियों के अलावा अल्लाह की आत्मा की कोई निराशा नहीं है।

अब्दु सामान्य रूप से इस्लाम की प्रकृति से चिंतित थे। उसके लिए, इस्लाम समय और परिस्थितियों की मांगों के अनुकूल है; उनके प्रमुख लक्ष्यों में से एक यह साबित करना था कि इस्लाम को आधुनिक विचारों के साथ समेटा जा सकता है और इस सुधार के लिए एक तरीका तैयार किया जा सकता है। इस्लामी सुधार पर उनके विचारों में, उनके अपने बयान के अनुसार, दो पहलू शामिल थेः इस्लामी विश्वास का सुधार, जो प्रारंभिक मुसलमानों के विश्वासों और आधुनिक विचारों की शिक्षाओं के साथ सद्भाव में होगा; और अरबी भाषा का सुधार। पहला बिंदु उनकी गतिविधियों में सबसे महत्वपूर्ण है। उनके लिए ऐसा संश्लेषण न केवल संभव था बल्कि वांछनीय भी था। उन्होंने इस्लाम को किसी भी तरह की कठोरता से मुक्त करने का प्रयास किया और इसे वास्तविक सांसारिक परिस्थितियों के अनुकूल और सामंजस्य में बनाया। उन्हें विश्वास था कि मुसलमान पश्चिमी सभ्यता के उन पहलुओं को चुन सकते हैं जो इस्लाम के विपरीत नहीं थे। मुसलमान आधुनिक यूरोप की संस्थाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, शिक्षा के तरीकों और विचारों के तरीकों को अपना सकते थे; लेकिन उन्हें इस्लाम में निर्धारित सिद्धांतों के संदर्भ में परिवर्तनों को सही ठहराना चाहिए।

सामाजिक-राजनीतिक सुधारः

उनके आंदोलन का मुख्य उद्देश्य मिस्र में सामाजिक जीवन की पूरी श्रृंखला में सामाजिक सुधार लाना था। अब्दुह ने ब्रिटिश निष्कासन को सुरक्षित करने के साधन के रूप में सच्चे आंतरिक सुधार का अनुमान लगाया। परिवर्तन ने मिस्र में महत्वपूर्ण विकास किया है और कई संभावित सुधारों के लिए नए रास्ते खोले हैं, जो समाज के पूरे ताने-बाने को सफलतापूर्वक प्रभावित करते हैं। इसने मुस्लिम समाज के पुनरुद्धार और सुधार में गहरा योगदान दिया, राष्ट्रीय चेतना और व्यवहार्य सामाजिक संस्था का निर्माण किया, और मिस्र में सामाजिक समूहों और पार्टियों के जोरदार विकास को प्रोत्साहित किया। इस आंदोलन का धार्मिक गतिविधियों को प्रचारित करने और बनाए रखने, सामाजिक समस्या को मिटाने, महिलाओं के अधिकारों की वकालत करने, आधुनिक शाब्दिक पुनरुत्थान और शास्त्रीय अरबी भाषा के उत्थान, अल-अजहर में सुधार को आगे बढ़ाने, धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना को आगे बढ़ाने, स्कूलों और कल्याण समूहों की स्थापना में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। समाज और पत्रिकाओं की स्थापना करना और विचारों और ज्ञान की सफलता में योगदान देना।

यह स्पष्ट रूप से सेना की संस्था, सैन्य तैनाती, गैर-मिस्र के मामलों और मिस्र की राजनीतिक दिशा सहित राजनीतिक संरचना के कई वर्गों में सुधार करने में उनकी व्यावहारिकता और मजबूत प्रभाव को दर्शाता है, जो मिस्र में अधिक से अधिक अंतरराष्ट्रीय और सामाजिक शक्ति का गठन करता है।

शैक्षिक सुधारः

अहमदी मस्जिद, तांता और जमीयल-अजहर, काहिरा में सुधार के लिए अब्दुह का जुनून विकसित होना शुरू हो गया था। सीखने की रूढ़िवादी प्रणाली के साथ मुठभेड़ ने उन्हें सुधार करने और अप्रचलित पाठ्यक्रम को बदलने के लिए प्रेरित किया, जहांः ष्छात्रों को ग्रंथों, उनकी टिप्पणियों, टिप्पणियों पर चमक, (अमीन, उस्मान 1953, 3) बिना आलोचनात्मक विश्लेषण के पढ़ना था। और समझ। उन्होंने शिक्षण वर्ग, पाठ्यक्रम और सीखने की पद्धति को व्यवस्थित करने, पश्चिमी शिक्षा की वैज्ञानिक शैली के साथ प्रतिस्पर्धा करने और आगे बढ़ने के लिए और प्रासंगिक नैतिक और नैतिक अनुशासन, विज्ञान, दर्शन, इतिहास और अन्य शास्त्रीय साहित्यिक परंपरा को शामिल करने के लिए अभूतपूर्व पहल की शुरुआत की। अल-अजहर में परिवर्तन के प्रयास और कार्य करने के लिए अब्दुह का रणनीतिक फोकस। वह सुधार की पहल शुरू करने और पाठ्यक्रम, फीस, विषय और शिक्षण घटकों की पूरी संरचना को बदलने और स्कूलों और शिक्षकों की बुनियादी आवश्यकताओं में सुधार करने की कोशिश करता है। उन्होंने अल-अजहर विश्वविद्यालय के स्तर और स्तर को ऊपर उठाने की आवश्यकता पर बल दिया और मिस्र के एक मजबूत और उदार राष्ट्र के निर्माण के लिए अंग्रेजों की भूमिका पर जोर दिया।

अब्दुह नारीवादी अधिकार के प्रबल समर्थक हैं। महिलाओं की शिक्षा के लिए उनके संघर्ष और उनकी ओर से सुधारों का कई महान मुस्लिम आदर्शवादियों और सुधारवादियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। अब्दु का प्रमुख संघर्ष मुस्लिम समाज में महिलाओं की स्थिति की भ्रांतियों को दूर करना था। उन्होंने कहा कि अधिकार और कर्तव्यों में पुरुष और महिलाएं समान हैं। अब्दुह ने इस्लामी नारीवाद की प्रकृति के बारे में भी लगातार बात की, जिसे उन्होंने पश्चिमी शैली के नारीवाद से अलग किया।

आधुनिकता पर अब्दु के विचार:

अब्दु ने आधुनिकता के विचारों को अनुकूल रूप से स्वीकार किया जो मुख्य रूप से मुस्लिम समाज की उन्नति के लिए तैयार थे। उनके द्वारा प्रस्तावित आधुनिक आदर्श की मूल नींव काफी हद तक तर्कवाद, उदारवाद, राष्ट्रवाद और इस्लाम के सार्वभौमिकता पर आधारित थी। अब्दुह का मानना था कि इस्लामी संस्कृति की कठोर संरचनाएं अनिवार्य रूप से एक तार्किक और तरल धर्म को रोक रही थीं।

अपने आधुनिकतावादी विचारों का समर्थन करने में अब्दु का दुर्जेय कार्य तफसीर अल-मनार है, जो उनकी सबसे बड़ी विरासत और कुरान की आधुनिक और तर्कसंगत व्याख्या को उजागर करने में योगदान है। अब्दुह का मानना था कि यह न केवल संभव था बल्कि यह दिखाना अनिवार्य था कि कैसे आधुनिक मूल्यों और संस्थानों को प्रामाणिक रूप से इस्लामी आदर्शों के साथ समेटा जा सकता है। अधिक मिलनसार और विकासवादी दृष्टिकोण अपनाने में उनकी समावेशिता ने उनके विश्वदृष्टि और आधुनिकता के सिद्धांत दृष्टिकोण की विशेषता बताई, जिसमें दृढ़ विश्वास था कि पश्चिमी आदर्शों को अपनाने से मुस्लिमों को ठहराव, पतन और पिछड़ेपन से मुक्ति मिलेगी और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लाभ प्राप्त करने के तरीकों का नेतृत्व किया जाएगा।

निष्कर्ष:

मिस्र में शेख मुहम्मद अब्दुह द्वारा शुरू किए गए सुधार के संघर्ष का दक्षिण पूर्व एशिया में गहरा प्रभाव और अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। कौम मुदा (युवा तुर्क के साथ गठबंधन) के रूप में ब्रांडेड कई महान विद्वान और सुधारवादी हाजी अब्दुल करीम अमरुल्ला (हाजी रसूल) (1879-1945), हाजी अब्दुल मलिक बिन अब्दुल करीम अमरुल्ला (1908-) जैसे उनकी आकांक्षाओं और विचारों से बहुत प्रभावित थे। 1981) (पडांग पंजांग, पश्चिम सुमात्रा), हाजी अहमद दहलान (1868-1923) (याङ्गकार्ता), अब्दुल हलीम हसन, जैनल अरिफिन अब्बास और अब्दुर रहीम हैथामी (उत्तर सुमात्रा) सईख अहमद मुहम्मद सुरकती (1875-1943), आदि और मलय दुनिया में अन्य प्रमुख बुद्धिजीवी। मलय इंडोनेशियाई दुनिया में अब्दुह का प्रमुख प्रभाव और महत्व प्रभाव तफसीर, पत्रिकाओं, प्रेस, पत्रिकाओं, स्कूलों, धार्मिक आंदोलन और संस्था के रूप में सुधार उन्मुख विद्वानों द्वारा निर्मित मूल कार्यों में परिलक्षित होता है जो उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में फला-फूला और योगदान दिया महाद्वीप में उनकी स्थायी और चिरस्थायी विरासतों का विस्तार किया और उन्हें चिह्नित किया।

सन्दर्भ:

1. स्टार्की, पॉल (2006)। आधुनिक अरबी साहित्य। यूके: एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. घिरबल, मोहम्मद (1965)। अल-मौसो अल-अरबिया अल-मुयसाराह (सरलीकृत अरबी विश्वकोश)। मिस्र: प्रकाशन के लिए फ्रैंकलिन इंस्टीट्यूशन।
3. न्यूमैन, डैनियल (2011)। पेरिस में एक इमाम: अल-तहतावी की फ्रांस यात्रा (1826ख्31)। लंदन: साकी बुक्स. आईएसबीएन 978-0-86356-346-1।
4. बदावी, मुहम्मद मुस्तफा (1993)। आधुनिक अरबी साहित्य का एक संक्षिप्त इतिहास। ऑक्सफोर्ड, यूके: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. ले गासिक, ट्रेवर (1970)। ष्आधुनिक अरबी गद्य साहित्य: एक परिचयष मिशिगन विश्वविद्यालय। , एन आर्बर: 116 - एरिक के माध्यम से।
6. एडम्स, सी.सी. 2010. मिस्र में इस्लाम और आधुनिकतावाद: मुहम्मद अब्दुह द्वारा उद्घाटन आधुनिक सुधार आंदोलन का एक अध्ययन। कुआलालंपुर: इस्लामिक बुक ट्रस्ट।
7. अब्दुह, मुहम्मद। 1966. एकता का धर्मशास्त्र। इशाक मुसाद और केनेथ क्रैग द्वारा अनुवादित। लंडन
8. डेफ, शकी। तारिख अल-अदाब अल-अरबी अल-मुअसिर फाई मिश्र, दारुल मारीफ, काहिरा, 1961

ई-प्रशासनः प्रशासन का तकनीकी रूपान्तरण

डॉ० शीतल मीना

सहआचार्य, राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

सरकार में कागजी कार्य को कम करने तथा प्रशासन में पारदर्शिता, जवाबदेही और अधिक आन्तरिक कार्यकुशलता लाने के लिए ई-प्रशासन की आवश्यकता पर सूचना व प्रोद्यौगिकी प्रबन्धकों की 25-26 जून 2003 को नई दिल्ली में आयोजित पूर्ण सत्र में बल दिया गया। ई-प्रशासन यानि 'इलैक्ट्रॉनिक-प्रशासन' वैकल्पिक प्रशासन हैं। यह एक ऐसा शासन हैं जो कही भी किसी भी समय उपलब्ध हैं। ई-प्रशासन सरकार व लोगो के बीच सहज संवाद का प्रतीक हैं। इंटरनैट, ई-मेल, आदि के माध्यम से सरकार अपने नागरिकों से सीधा संवाद स्थापित करने में सक्षम होती हैं। ई-प्रशासन के दो रूप हैं। एक रूप सरकार और विभागों के अपने आन्तरिक कामकाज संबधी। दूसरा सरकार या विभाग के आम जनता से सीधे सम्पर्क संबधी। पहले स्वरूप से सरकार के अपने फैसले लेने का काम सरल, तेज और भ्रष्टाचार विहीन हो सकता हैं दूसरे स्वरूप में आम जनता को उसके कामकाज संबधी सूचनाएँ एवं प्रक्रियाएं ऑन लाइन मिलने लगती है। आधुनिक युग में सुशासन के लिए ई-प्रशासन को आवश्यक माना जाता हैं। ई-प्रशासन तभी उपयोगी हैं जब ऑकड़े भरने का काम प्रशिक्षित लोगों के द्वारा किया जाये अतः इसके लिए सरकारी कर्मियों को उच्च स्तर का व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाना अपरिहार्य हैं। सूचना व प्रोद्यौगिकी के विस्तार के साथ ही साइबर अपराधों के बढ़ने से भी इंकार नही किया जा सकता। अतः आवश्यकता पुलिस व जांच ऐजेंसियों को प्रशिक्षित कर के इस योग्य बनाया जाए कि वे साइबर अपराधों की जांच कर सके। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्वेश्य सुशासन ई-प्रशासन की भूमिका एवं ई-प्रशासन के विविध पहलूओं का विश्लेषण कर चुनौतियों में सुधार हेतु अपेक्षित सुझाव देना हैं।

बीज अक्षर- सूचना व प्रोद्यौगिकी, ई-प्रशासन, सुशासन, इंटरनैट, ई-मेल, भ्रष्टाचार विहीन, पारदर्शिता, जवाबदेही, ऑन लाइन सूचना, साइबर अपराध, प्रशिक्षित आदि।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम हैं। यह सर्वकालीन एवं सर्वव्यापी है। ओद्योगिक क्रान्ति, नगरीकरण, जीवन के विभिन्न क्षेत्र में नई-नई प्रविधियों के अविष्कार, नई-नई मशीनों के अविष्कार, यातायात और संदेशवाहन की सुविधाओं में अत्यधिक प्रगति से सब कही परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। सामाजिक प्रगति के लिए परिवर्तन आवश्यक भी हैं। परिवर्तन जीवन का मूलमंत्र हैं। सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित करते हुए मैकाइवर तथा पेज ने लिखा हैं- ''सामाजिक परिवर्तन से अभिप्राय सामाजिक संबधों में होने वाले परिवर्तन से हैं। उन रीतियों में परिवर्तन से हैं जिनके द्वारा एक दूसरे के साथ अपना संबध जोड़ते है।'' उपर्युक्त परिभाषा सामाजिक परिवर्तन के संकुचित अर्थ को ही इंगित करती हैं वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन एक व्यापक अवधारणा हैं। जिसमें सामाजिक संबधों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तन भी शामिल है। बीसंज एवं बीसंज ने सामाजिक परिवर्तन के अन्तर्गत उन सभी परिवर्तनों को सम्मिलित किया हैं जो सामाजिक संरचना, संस्कृति तथा सभ्यता में होते है। सामाजिक-सांस्कृतिक क्रियाओं से संबधित भौतिक वस्तुओं के उत्पादन में परिवर्तन तभी होगा जबकि विज्ञान व प्रौद्योगिकी का अधिक विकास हो। प्रौद्योगिकी ज्ञान तकनीक एवं उपकरणों का संयोग हैं। जिसे मानव ने अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के संदर्भ में प्रकृति पर अधिकाधिक नियंत्रण प्राप्त करने के उद्वेश्य से विकसित किया हैं। प्रौद्योगिकी मानव निर्मित पर्यावरण का भौतिक उपयोगिता वादी तथा अधिक परिवर्तनशील पक्ष है। व्यक्ति व समाज के जीवन में प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक प्रयोग के परिणामस्वरूप व्यक्ति व समाज का ढ़ांचा ही बदल गया हैं।[1]

तकनीकी रूपान्तरण केवल प्रशासन में ही नही अपितु समाज के विभिन्न क्षेत्रों में इसका व्यापक प्रभाव देखा जा सकता हैं। जिसका विश्लेषण हम इस प्रकार से कर सकते हैं-

डिजीटल इंडिया एवं नागरिक सशक्तिकरण

कागज विहीन, उपस्थिति विहीन ओर नकदी विहीन शासन प्रदान करने के लिए सरकार के द्वारा डिजीटल इंडिप्या कार्यक्रम शुरू किया गया हैं। इसमें विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों और राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों की परियोजनाओं को शामिल किया गया है। यह कार्यक्रम तीन प्रमुख उद्वेश्यों पर केंद्रित हैं। डिजीटल आधारभूत संरचना की महत्वपूर्ण उपयोगिता, मांग आधारित शासन व्यवस्था और सेवाए एवं नागरिकों का डिजीटल सशक्तिकरण।[2]

आज भारत में जिन परियोजनओं के लिए तकनीकी सहयोग मुहैया कराया जा रहा हैं उनमें ई-प्रोक्योरमेंट, सार्वजनिक वित्त निगरानी प्रणाली (सीपीएसएमएस), ई-लेखा, ई-पंचायत, आधार से जुड़ी बायोमैट्रिक उपस्थिति प्रणाली, आव्रजन वीजा विदेशी रजिस्ट्रेशन निगरानी प्रणाली, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, भारतीय राष्ट्रीय पोर्टल, जीवन प्रमाण, ई- अदालतें, डिजीटल लॉकर, ई-कांउसलिंग, राष्ट्रीय कृषि बाजार, मोबाइल खाद प्रबंध प्रणाली, साइबर स्वच्छता केन्द्र, डिजीटल इंडिया पोर्टल, राष्ट्रीय परिवहन परियोजना, मानव संसाधन प्रबंधन प्रणालियां और कई सरकारी वेबसाइट शामिल हैं।[3]

डिजीटल इंडिया के दृष्टिकोण के अनुरूप ई-ऑकलन केन्द्र के माध्यम से करदाताओं व कर अधिकारियों के आमने-सामने आए बिना पंजीकृत खातों एवं पंजीकृत मोबाइल पर संदेश के माध्यम से करदाताओं कि शिकायतों में कमी लानें व कारोबार सुगमता बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। ग्राम पंचायतों के लेन-देन में पारदर्शिता लाने में ई-पंचायत के द्वारा पंचायतों के सारे रिकॉर्ड ऑन-लाइन किये जा रहे हैं। पंचायतों में विभिन्न मदों में उपलब्ध राशि तथा उसके द्वारा किये भुगतान का सारा ब्यौरा ऑन-लाइन उपलब्ध रहता हैं। साथ ही ग्राम पंचायत किसी भी मद से जो भी लेनदेन करेगी वह भी ऑन-लाइन रहता हैं। सीईओं अपने साफ्टवेयर के माध्यम से सारा विवरण देख सकते हैं। ग्राम पंचायत को धन का हस्तान्तरण तभी होगा जब प्रशासनिक, वित्तिय व तकनीकी तीनों स्तर पर स्वीकृति प्राप्त कर ली गयी हो। धन का हस्तान्तरण नकद के बजाय खाते के जरिये ऑन-लाइन होगा।[4]

डिजीटल इंडिया कार्यक्रम नागरिको को अधिकार संपन्न बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा हैं। डिजीटल प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग से सरकार सेवाएं उपलब्ध कराने की प्रणाली में सुधार के लिए विशेष पहल कर रही हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सरकार के कल्याण कार्यक्रमों का लाभ समाज के गरीब से गरीब व्यक्ति समेत लक्षित लाभार्थियों तक प्रत्यक्ष रूप से और सुगमता से पहुंचे और उसमें किसी तरह कि चोरी न हो पाए। जनधन बैंक खातों, मोबाइल फोन और आधार के माध्यम से के माध्यम से डिजीटल पहचान से गरीबों को विभिन्न योजनाओं का फायदा सीधे उनके बैंक खातों के माध्यम से मिलने लगा हैं। ई-गवर्नेस के द्वारा डिजीटल आधारभूत संरचना और अधिक मजबूत हुयी है। ई-गवर्नेस कार्यो में लगने वाले समय को काफी कम कर देता हैं। साइबर सुरक्षा हेतु राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र में कम्प्यूटर आपातकालीन बचाव दल का गठन किया गया हैं। जिसके द्वारा वेबसाइट, ई-मेल और विभिन्न सेवाओं से जुड़े खतरों का विश्लेषण, निगरानी और बचाव करना हैं।[5]

ई-गवर्नेस के द्वारा नागरिक सेवाओं में सुधार के लिए कई तरह की पहल की गयी हैं। मूल्यांकन के लिए ऑनलाइन प्रणाली शुरू करना और कर्मचारियों द्वारा विभिन्न तरह के रिटर्न दायर करना, ई-कार्यालय पर अमल और प्रशिक्षण एवं प्रतिभा आधारित पोस्टिंग प्रणाली को मजबूत करना। सूचना-प्रौद्योगिकी के माध्यम से पुलिस प्रशासन में एफआईआर प्रणाली में सुधार, पुलिसकर्मियों का बेहता प्रशिक्षण ओर साइबर अपराध, साइबर खतरों और फर्जीवाड़े के लिए अलग काडर की तैनाती की जा रही हैं इसी प्रकार सूचना-प्रौद्योगिकी के माध्यम से न्यायिक प्रणाली में भी पूरे देश में अदालती प्रक्रियाओं को इलेक्ट्रॉनिक स्वरूप प्रदान करने और केस प्रबंधन को भी तकनीक से लैंस कर सुधार किया जा सकता हैं। [6]

शोध-कार्य में तकनीकी साधन व उपकरण

परम्परागत अवधारणा के अनुसार यदि अध्यापक स्वयं सक्षम हैं तो उसे अन्य साधनो की आवश्यकता नही हैं। एक योग्य, दक्ष एवं प्रभावी अध्यापक बिना सहायक साधन तथा दृश्य श्रव्य सामग्री की भी रूचिकर तथा कलात्मक शिक्षण कर सकता हैं। ऐसी धारणा हमारे प्राचीन शिक्षा शास्त्रियों की हैं। किंतु अब धीरे-धीरे इस सोच में परिवर्तन आया हैं वास्तव में उपरोक्त विचार एकांगी व एक तरफा थे। क्योंकि वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप शिक्षा के औपचारिक स्वरूप में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा हैं। अब कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि होने लगी, ज्ञान-विज्ञान की नवीन शाखाओं के माध्यम से विषयों एवं विषयवस्तु में वृद्धि होने लगी, नयी शिक्षण विधियाँ विधा का भी प्रादुर्भाव होने से अध्यापको के लिए सक्षम शिक्षा प्रदान करना एक चुनौती बन गया। वैज्ञानिक विकास एवं दृष्टिकोण में आगे परिवर्तन से अब शिक्षक अधिक समय तक अछूता नही रह सकता। अब शिक्षको एवं शिक्षा शास्त्रियों ने इन परिवर्तित नवीन अवधारणाओं को स्वीकार किया। फलस्वरूप अब शिक्षण में आवश्यक संसाधनों का उपकरणों का प्रयोग

किया जाने से शिक्षण अधिक प्रभावी व रूचिकर एवं स्थाई सिद्ध होने लगा। इलेक्ट्रॉनिक मेल इंटरनेट पर उपलब्ध एक साधन या सेवा हैं जिसके उपयोग द्वारा दुनिया के किसी भी कोने में बैठे हुए व्यक्तियों के बीच संदेश और दस्तावेजों का आदान-प्रदान किया जा सकता हैं। ई-मेल में संदेश किसी व्यक्ति द्वारा नही पहुँचाया जाता हैं बल्कि इंटरनेट पर इलेक्ट्रॉनिक संदश के रूप में एक कम्प्यूटर से दूसरे कम्प्यूटर पर यात्रा करते हुए अपने गंतव्य पते पर प्रेशित कराया जा सकता हैं। यदि किसी कारण से व्यक्ति भेजी गयी सूचना को किसी विशेष दिनों में ग्रहण करने में समर्थ नही हो पाता तो प्रेशित संदेश या दस्तावेज उसके मेल बाक्स में जमा हो जाता हैं वह व्यक्ति उसे अपनी सुविधानुसार कभी भी पढ़कर उसका जवाब भेज सकता हैं ई-मेल के द्वारा शादी या जन्मदिन का निमंत्रण पत्र भी भेजा जा सकता हैं इसके लिए उन व्यक्तियों का ई-मेल पता होना आवश्यक हैं। नेटवर्क की सेवाओं के द्वारा आज आज ई-मेल के द्वारा चौटिंग भी होती हैं। इंटरनेट सर्फिग से इंटरनेट पर स्थित विभिन्न वेब पेज पर दी गई जानकारियों तथा करोड़ों वेबसाइट की जानकारी को प्राप्त कर सकते हैं।

अनुसंधानों के माध्यम से ज्ञात हुआ कि शैक्षिक टेलीकांफ्रेसिंग उतनी ही प्रभावशाली हैं जितनी कि आमने-सामने की शिक्षण प्रक्रिया होती हैं। एक दृष्य-श्रव्य प्रणाली की तरह यह अन्य प्रकार की सुविधा के लिए भी उपयोग में लायी जा सकती हैं। यह छात्र व शिक्षक को दूरदर्शन की तरह कम लागत पर अधिक प्रकार से सुविधा प्रदान करती हैं पूर्व की अवस्था में यह पाया गया कि इसके द्वारा नौ विभिन्न प्रकार के समूहों को जो कि आपस में सैंकड़ों मील की दूरी फैले हुए हैं, एक साथ शिक्षा प्रदान की जाती हैं। तथा उनके मध्य चित्रों को प्रदर्शित किया जाती हैं एवं उनके पास तक ध्वनियाँ भी पहुँचाई जाती हैं। अध्यापक भी एक सामान्य प्राणी हैं। अतः उसकी भी अपनी क्षमताएँ, अभियोग्यताएँ एवं सीमाएँ होती हैं जिनके कारण वह अपनी क्षमता से अधिक कार्य तो नही कर सकता किंतु इन वैज्ञानिक एवं सहायक साधनों के माध्यम से अपनी क्षमताएँ, अभियोग्यताओं में वृद्धि अवश्य कर सकता हैं।[7]

पर्यटन एवं यात्रा उद्योग में सूचना व प्रोद्यौगिकी का योगदान

पर्यटन उद्योग में ई-प्रशासन -वर्तमान में पर्यटन उद्योग वैश्विक उद्योग के रूप में उभर कर सामने आया हैं। आज पर्यटक अपने घर में ही बैठकर विश्व के गंतव्य स्थलों, वहां जाने-आने, ठहरने, दर्शनीय स्थलों व वहाँ पर मिलने वाली सुविधाओं के बारे में पर्याप्त, सही सूचनाएँ प्राप्त कर सकता हैं। चूँकि पर्यटन स्वयं अपने आप में अलग से अस्तित्व नही रखता हैं, उसे अनेक अवयवों पर निर्भर रहना पड़ता हैं। पर्यटन अनेक सेवाओं जैसे यात्रा के विभिनन साधनों, होटल, शॉपिंग आदि के बारे में नवीनतम् जानकारी की आवश्यकता रखता हैं इनमें होने वाली नई गतिविधियों के बारे में वह सूचनाएँ चाहता हैं इन सभी सूचनाओं को प्राप्त करना कम्प्यूटर के द्वारा संभव हो सका हैं। कम्प्यूटर के प्रयोग ने पर्यटन उद्योग को प्रगतिशील उद्योग बना दिया हैं। इंटरनेट, ई-मेल व विभिन्न वेबसाइट ने इसे आसान व हर व्यक्ति की पहुँच में ला दिया हैं। आज का पर्यटक पर्यटन स्थल पर जाने से पहले यात्रा करने, ठहरने, खाने-पीने, घूमने की व्यवस्था घर बैठे ही कर लेता हैं वह अत्यंत संतुश्ट व आत्मविश्वास के साथ पर्यटन करता हैं।[8]

संयुक्त राष्ट्र ने सर्वाधिक दुर्घटनाओं वाले जिन दस देशों की पहचान की हैं, उनमें भारत सबसे ऊपर है। आज यह तथ्य विचारणीय हैं कि जीवन के लिए जरूरी सुविधा बने मोबाइल जिसकी संचार क्रांति में अहम भूमिका हैं इसकी वजह से हर साल बीस फीसद सड़क दुर्घटनाएं होती हैं। विशेषज्ञों का मानना हैं कि जब तक भारत में तेज रफ्तार से वाहन चलाने, शराब पीकर गाड़ी चलाने, सुरक्षा बेल्ट का प्रयोग न करने और वाहन चलाते हुए मोबाइल पर बात करने पर सख्ती नही दिखाई जाएगी, तब तक सड़क दुर्घटनाओं पर अंकुश लगाना लगा पाना मुश्किल हैं। आज मोबाइल फोन के माध्यम से उपलब्ध सभी तरह की गतिविधियाँ अब सुविधा नही, बल्कि सनक की तरह इस्तेमाल की जा रही हैं गांव हो या शहर वाहन चलाते समय मोबाइल इस्तेमाल करने की यही सनक दुर्घटनाओं का बड़ा कारण बन रही हैं। खासकर इयरफोन लगाकर वाहन चलाने से तो हादसे की आशंका कई गुना बढ़ जाती हैं।,[9]

आज इलैक्ट्रॉनिक मीडिया, कंम्प्यूटर, इंटरनेट, सोशल मीडिया, फिल्मों जैसे विभिन्न संचार माध्यम स्कूलों और एकल परिवारों में सेंध लगाकर बच्चों के बीच पारिवारिक व स्कूली भूमिका का स्थापन्न बन रहे है। सच्चाई यह है कि बच्चों के बचपन से माता-पिता और स्कूल के अनुपस्थित रहने का लाभ बहुराष्ट्रीय कंपनिया उठा रही हैं यह बाजारवाद की विज्ञापन संस्कृति का ही असर हैं कि इन्हे अब बच्चे आने वाले समय के नए उपभोक्ता नजर आ रहे है। संचार माध्यमों ने बच्चों के कल्पनालोक और उनके यथार्थ में घालमेंल करते हुए आक्रोश, अश्लीलता व हिंसा को केन्द्र में लाकर रख दिया हैं। आक्रामकता, गुस्सा और हिंसा जैसे नकारात्मक तत्व अब बच्चों के व्यक्तित्व के सामान्य अनुभव बन रहे हैं। यह कटु सच्चाई हैं कि एकल परिवारों में भी बालकों से

भावनात्मक रिश्ते समाप्त हो रहे हैं। माता-पिता को अपने कारोबार और भोगवादी पार्टियों में व्यस्त रहते हैं इसलिए बालक या तो घर की चार दीवारी में बंद होकर माबाइल की दुनिया की ओर रूख कर रहे हैं इस दुनिया का नकारात्मक प्रभाव यह होता हैं कि बालक जब वास्तविक जीवन की मुश्किलों का सामना करते हैं तब वे ऐसी परिस्थितियों से या तो पलायन करने लगते हैं या फिर तनाव और अवसाद के शिकार हो जाते हैं। अनेक ऐसे उदाहरण हैं जहां बालको ने अपनी परीक्षा या प्रतियोगी परीक्षाओं यहां तक की मोबाइल गेम तक में नाकाम रहने पर या तो अपने साथी की हत्या कर डाली अथवा आत्महत्या कर ली।[10] बालको के इंटरनेट के उपयोग से जुड़ी एक और चुनौती ब्लू व्हेल चलेंज गेम हैं। जिससे कई देशों में किशोरों ने आत्महत्या की हैं। खेल कथित तौर पर एक श्रृंखला में होते हैं जिसमें कहने के लिए 50 दिन की अवधि में कई कार्य आवंटित किये जाते हैं। जिसकी अंतिम चुनौती में खिलाड़ी को आत्महत्या करने को बोला जाता हैं। 2016 में रूस में ब्लू व्हेल बड़े पैमाने पर उपयोग करने के बाद एक पत्रकार ने एक लेख के माध्यम से इस आत्मघाती खेल की और ध्यान आकर्शित किया। जिसके बाद रूस में इस खेल के विरूद्ध गहरी प्रतिक्रिया हुयी और बाद में इस खेल से जुडे़ एक व्यक्ति बुदेइकिंन को गिरफ्तार कर लिया गया। जिसे 16 किशोर बालको को आत्महत्या करने के लिए प्रोत्साहित करने का दोशी करार दिया गया।[11]

इसी प्रकार भारत में मोमो चौलेंज गेम के चक्कर में झांसी के एक किशोर ने आत्हत्या कर ली। यह इंटरनेट गेम व्हाट्स एप के माध्यम से लोगो को अपना शिकार बना रहा है।

सोशल मीडिया एवं समाज का बदलता परिवेश-

ऑक्सफाम के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ हैं कि 80 प्रतिशत सहस्त्राब्दी की जनसंख्या संदेश लिखकर या ऑन लाइन संवाद करना ज्यादा पसंद करती हैं इसके अनुसार सोलह से चौबीस वर्ष की आयु के पंद्रह फीसद युवा अपने फोन का उपयोग लोगो से बातचीत के लिए नही करना चाहते, बल्कि मौखिक बातचीत के स्थान पर वे संदेश भेजना अधिक पसंद करते हैं। आज की किशोर पीढ़ी एक ही कमरे में अपने आसपास बैठे लोगो से बात करने की बजाय संदेश ही भेजती हैं। वस्तुत: आज हम एक शोर रहित और आवाज रहित विश्व का हिससा बन चुके हैं। भाषा विज्ञानी सॉसर के अनुसार भाषा एक सामाजिक उत्पाद और वैयक्तिक व्यवहार दोनों हैं अब सोशल मीडिया के उपयोग बढ़ने के बाद लोगो में संवाद या तो कम हो गया हैं।[12]

प्रौद्योगिकी किस प्रकार धीरे-धीरे परम्परागत मादक पदार्थो का विकल्प बन रही हैं। इसी का एक उदाहरण हैं ई-सिगरेट। प्रौद्योगिकी की सापेक्ष नवीनता और तंबाकू सेवन कानूनों एवं चिकित्सीय औषधी नीतियों एवं पारम्परिक सिगरेटों के सेवन से स्वास्थ्य पर पड़ रहे दुश्प्रभावों से बचाने के लिए विकल्प के रूप में धुंआ रहित ई-सिगरेट यानि इलैक्ट्रॉनिक सिगरेट का प्रचलन किया गया। साथ ही यह भी कहा गया कि पारम्परिक सिगरेटों से ई-सिगरेटों को बदलकर श्रुमपान से होने वाली मौतों को कम किया जा सकता हैं। वस्तुत: ई-सिगरेट एक बैटरी चालित उपकरण हैं जिसमें निकोटिन या गैर-निकोटिन के वाश्पीकृत होने वाले घोल की सांस के साथ सेवन की जाने वाली खुराक प्रदान करता हैं। ई-सिगरेट के उपकरण पुन: उपयोग योग्य होते हैं। किंतु नवीन अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ हैं कि ई-सिगरेट भी दूसरे ध्रुमपान की तरह ही सेहत के लिए नुकसानदेह हैं। अमेंरिका में हुए एक अध्ययन के अनुसार दसवी व बारहवी कक्षा में पढ़ने वाले स्कूली बच्चों के बीच ई-सिगरेट पीने का प्रचलन अस्सी प्रतिशत बढ़ा हैं जबकि उसके निचली कक्षाओं के विद्याार्थियों के आंकड़े में साढ़े अड़तालीस प्रतिशत वृद्धि हुयी है। इस प्रकार के संकेत ई-सिगरेटों के प्रचलन से समाज पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभाव को इंगित करते हैं।[13]

आज तकनीकी क्रान्ति ने सरकारों में सर्वशक्तिमान होने जैसा ऐसा दम भर दिया हैं कि वे सभी नागरिकों को अपने द्वारा निर्धारित, निश्चित नियमों के अनुरूप ही चलने पर विवश कर रही हैं। यह नियंत्रण इस भावना को कम कर रहा हैं कि लोकतान्त्रिक व्यवस्था स्वनियंत्रित व स्वविश्लेषित होती है। तकनीक का असीमित नियंत्रण लोकतान्त्रिक व्यवस्था पर ही प्रश्न खडा कर रहा है। अमेंरिका सुरक्षा एजेंसी सीआईए के पूर्व कर्मचारी एडवर्ड स्नोडेघ्न द्वारा लिखी पुस्तक 'परमानेंट रिकॉर्ड' में अमेंरिकी सुरक्षा एजेंसियों पर 2013 में इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत जानकारियां एकत्रित करने का आरोप लगाया। वस्तुत: स्नोडन ने प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर सरकार द्वारा निजता में हस्तक्षेप को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। निजता प्रत्येक मानव का मूलभूत अधिकार हैं और इसकी रक्षा करना परिवार, समाज व देश का हैं। किंतु जब सुरक्षा के नाम पर सुरक्षा संस्थाओं द्वारा अपने देश के ही नही अपितु दूसरे देश के नागरिकों की सभी निजी जानकारियों को एकत्रित कर किया जाए तो ऐसा समाज रहने लायक कैसे हो सकता है। इस प्रश्न पर विचार के लिए अवश्य होना चाहिए कि देशहित के नाम निजी सूचनाओं कितना नियंत्रण सरकारों का हों।[14]

दृष्टिकोण

कंम्प्यूटर और संचार प्रौद्योगिकी ने 'सूचना समाज' की उत्पत्ति को संभव बनाकर और इसने जीवन के प्रत्येक पक्ष को नए स्वरूप प्रदान किए। राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज, संस्कृति शिक्षा और मनोरंजन सभी क्षेत्रों में इसका प्रभ्ववा देखा जा सकता है। प्रारम्भ में कंम्प्यूटर और संचार प्रोद्योगिकी के माध्यम से किसी का व्यक्तिगत डाटा रोजगार, व्यवसायिक, प्रशासनिक एजेंसियों द्वारा एकत्र किया जाता था। दूसरे शब्दों में कहे तो बड़े निगमों और सरकारी संस्थानों से संबद्ध कंम्प्यूटर डाटाबेस में हमारी निजि जानकारी प्रतिदिन एकत्र और परिश्कृत होती रहती हैं इसे ही निगरानीमूलक समाज की संज्ञा दी जाती हैं धीरे-धीरे इस तकनीक का प्रयोग परिवार के अंदर भी होने लगा। सामाजिक संबंधों में अविश्वास की बढ़ती प्रवृत्ति ने परिवार के प्रत्येक सदस्य को शक के दायरे में ला दिया है, इसलिए हर कोई एक-दूसरे पर निगरानी रखने लगा है। मोबाइल फोन, सोशल साइट, सोशल मीडिया, कलाई घडी इत्यादि आधुनिक इलेक्ट्रानिक गेजेट और डिवाइस मनुष्य के हर पल की खबर को कैंद कर लेने में सक्षम है और उसे संग्रहीत करते जाते हैं, जिसका कोई भी कभी भी दुरूपयोग कर सकता हैं इस निगरानी मूलक समाज ने अनेक नए प्रकार के खतरों और भय को उत्पन्न किया हैं। सूचना क्रांति और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए त्रीव विकास के बाद से हर जगह यानि दुकान, ऑफिस, मॉल, होटल, रेस्तरा, लिफ्ट, पार्किंग एरिया, बहुमंजिला इमारतों में यह लिखा देखा जा सकता हैं कि 'आप कैमरे की निगरानी में है'। आखिर ऐसा क्या जो हमारे जीन के हर पक्ष को सार्वजनिक करने की होड़ जारी हैं। हमारे हाथ में रहने वाला मोबाइल फोन जिस पर बातचीत, संदेशों, तस्वीरों और दसतावेजों का आदान-प्रदान होता हैं, हम अपनी निजी जिंदगी से जुड़ी बात साझा करत है, वह किसी और के नियंत्रण में है। इस तरह निजता खतरे में पड़ गई है। अब अचानक सब कुछ सार्वजनिक होने लगा है। आखिर क्यो? समाज को नियंत्रित करने का यह कौनसा तरीका हैं जो 'निजता के अधिकार' (राइट टू प्राइवेसी) का उल्लंघन करने से भी नही चुकता? इस नयी तकनीक के निजी और सार्वजनिक के बीच के अंतर को मिटा कर रख दिया हैं यह तथ्य हैं कि अब से पहले इतिहास में किसी भी समाज में कभी भी आमजन के रोजमर्रा के सामाजिक जीवन की इस तरह से निगरानी नही की गई। इससे समाज में एक नए किसम के खतरे और भय-मनोविज्ञान को उत्पन्न होत देखा जा सकता हैं विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान, शोध कार्य करत समय लोगो को यह आश्वासन दिया जाता है। कि उनके द्वारा दी गई सूचनाओं को गोपनीय रखा जाएगा, पर अब इस नई प्रौद्योगिकी के आने के बाद भी क्या इस तरह का कोई भरोसा दिया जा सकता हैं, ताकि उत्तरदाता/नागरिक निडर होकर सही और पक्षपात रहित जानकारी दे सके। इस बात से भी इंकार नही किया जा सकता हैं कि आने वाले कुछ वर्षो में हर व्यक्ति सोचने से भी ड़रने लगे कि ऐसा न हो कि उसके सोचने पर भी निगरानी शुरू हो जाए। देखा जाए तो संविधान में दिए गए, मौलिक अधिकारों के समक्ष वर्तमान सूचना समाज ने अनेक जोखिम उत्पन्न कर दिए हैं। उदाहरण के लिए वाक स्वतन्त्रता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, निजता का अधिकार आदि हाशिए पर चले गए हैं। यहां यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता हैं कि क्या हम प्रौद्योगिकी के नियंत्रण में हैं या प्रौद्योगिकी हमारे नियंत्रण? प्रौद्योगिकी एक अच्छी सेवक तो हो सकती, पर उसका मालिक वाला स्वरूप समाज के लिए बड़ा खतरा हैं। प्रौद्योगिकी उस तेज धार चाकू के समान हैं जिससे फल -सब्जी भी काटे जा सकते हैं और किसी का गला भी। परंतु यह आप पर निर्भर करता हैं कि आप उसका प्रयोग किसके लिए करते है? अगर आप किसी का गला काटते हैं तो इसमें दोश चाकू या प्रौद्योगिकी का नही हैं। जब तक तकनीक का प्रयोग मनुष्य के कल्याण के लिए किया जाए, तब तक तो वह एक वरदान साबित होती हैं, लेकिन जब उसका उपयोग मनुष्य के खिलाफ किया जाने लगता हैं तो समाज मेंविनाश के कगार पर आ जाता हैं, जैसा कि हम वर्तमान समाज में होता देख रहे हैं। परिणामस्वरूप परिवार, नातेदारी, समाज, राज्य और औपचारिक-अनौपचारिक संस्थाएं गंभीर चुनौतियों का सामना करती नजर आ रही हैं हाल में व्हाट्सएप से जासूसी की खबर ने सारे समाज में न केवल चिंता और गुस्सा उत्पन्न किया हैं, अपितु अनेक सवालों को भी जन्म दे ड़ाला हैं। एनएसओ नामक इजरायली कंपनी ने व्हाट्सएप जासूसी घटना का उद्वेश्य आतकवाद और अपराध से लड़ने के लिए सरकारों की साइबर मामलों में तकनीकी मदद प्रदान करना बताया था। लेकिन मानवाधिकार समूहों और विशेषज्ञों का तर्क हैं कि कुछ देशों की सरकारे साइबर अवराधों की मदद से अपने राजनीतिक विरोधियों की जासूसी करवाती हैं और अपने खिलाफ पनपनेवाले असंतोश को कुचलने की कोशिश करती हैं सवाल हैं कि आखिर हम किस तरह के समाज की और अग्रसर हो रहे हैं, जहां उठना-बैठना, सोना-जागना, खाना-पीना और शयनकक्ष तक की गतिविधियों सबकुछ दूसरों के नियंण में जा चुकी हैं विचारणीय यह हैं कि आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? किसी की निजी जिंदगी को साव्रजनिक कर के कोइ क्या हासिल करना चाहता हैं? हां, इतना अवश्य हुआ हैं, कि इन सबके कारण साइबर अपराध की घटनाएं तेजी से बढ़ रही हैं जिन पर काबू पाना कठिन होता जा रहा हैं सामान्यत: कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि इस प्रौद्योगिकी का उपयोग समाज से अपराध को समाप्त करने के लिए किया जा रहा हैं, पर राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरों के आंकड़ों के अनुसार साइबर अपराधें का ग्राफ प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा हैं। साइबर अपराध में भारत दुनिया में तीसरे सथान पर है।

यह चिंता का विषय हैं कि तकनीकी विकास का यह दौर हमारे समाज को कहां ले जाएगा ? क्या प्रौद्योगिकी के बाजार में हम एक वस्तु या उत्पाद बनकर रह गए हैं, जहां हमारी मर्जी के बिना कोई भी इन सूचनाओं को खरीद और बेच सकता हैं। अगर कोई व्यक्ति अपने निजी दायरे में किसी से कोई बात साझा करता हैं या कोई संपर्क संवाद करता है तो वह भी सार्वजनिक हो जा रहा हैं, जिसे कोई भी अपने लाभ के लिए इसतेमाल कर सकता हैं, ब्लैकमेल कर सकता हैं या सीाावित दुश्मन बनकर उभर सकता हैं परिणाम स्वयरूप इस 'विश्वास के अंत का युग' कहा जा सकता हैं जिसमें हर कोई दूसरों पर अविश्वास करने के कारण् निगरानीमूलक तकनीक का इस्तेमाल करने को बाध्य हुआ हैं। समाजशासत्रीय दृष्टिकोण से देखे तो सामाजिक संबंधों का निर्माण पारस्परिक विश्वास पर टिका होता हैं, लेकिन जब विश्वास का ही संकट खड़ा हो जाए तो मानवीय रिश्ते रह कहां जाएगें। इसी का परिणाम हैं कि आज समाज में भय, हिंसा, अविश्वास, धोखा तेजी से पैर पसारते जा रहे है। बिना अनुमति किसी भी नागरिक की निजी और सार्वजनिक सूचनाएं एकत्र करना या उन पर निगरानी रखना एक गंभीर अपराध हैं इसे किसी भी दृष्टि से न्यायोचित नही इळराया जा सकता । हर व्यक्ति की अपनी एक आत्म- प्रतिष्ठा होती हैं। जिसको किसी के साथ साझा करने या न करने का अधिकार भी केवल उसी का होता हैं। अत: बिना उसी अनुमति के उसकी निजी जानकारी को सार्वजनिक करना उसकी निजता का हनन करना है जो संविधान द्वारा दिए गए अधिकार का भी उल्लंघन है।[15] मेल इंटरनेट सारत: कोई भी टैक्नोलॉजी अपने आप में बुरी नही होती। उसका सदुपयोग या दुरूपयोग उसे अच्छा या बुरा साबित करता हैं। आज संचार माध्यम जरूरत नही लत बन गये हैं। अपनी जिंदगी खतरे में ड़ालने के साथ दूसरों के लिए भी जोखिम पैदा करने वाला यह व्यवहार अब जीवन शैली का हिस्सा बन गया है। तकनीक से मिली सुविधा सनक न बन जाए यह समझना जरूरी हैं ऐसी जीवन शैली से परहेज किया जाए जिसमें जिसमें की जरूरत और लत का अंतर ही भूला जाए। एकीकृत जिला शिक्षा प्रणाली सूचना, 2017 -2019 की की रिपोर्ट के अनुसार देश में केवल 63.14 प्रतिशत स्कूलों में ही बिजली मौजूद हैं। तकनीकी विकास का उपयोग समाज बुनियादि ढाँचे को बेहतर करने के लिए होना चाहिए। तभी वह समाज के लिए वरदान सिद्ध होगी अन्यथा वह अभिशाप बनकर समग्र व्यवस्था के लिए एक चुनौती बन जाएगी। आज तकनीकी विकास कर जो स्वरूप हमारे समक्ष हैं उसमें बुनियादि ढाँचे पर कम और विलासिता पर अधिक ध्यान हैं। अत: आवश्यकता इस बात की तकनीकी बेहतरी और बदलाव का माध्यम न बने, तो कम से कम इसे ऐसी अपूरणीय क्षति की वजह नही बनें जिससें किसी भी नागरिक के अनमोल जीवन की क्षति और परिवार व समाज का विकास अवरूद्ध हों।[16]

सन्दर्भ

1. रामगोपाल सिंह भारती, सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2001 पृ. 78-119
2. योगेश सूरी, शासन प्रणाली में सुधार, योजना, सितम्बर 2019 पृ.22-23
3. रवि शंकर प्रसाद, ई-सेवाओं के जरिये नागरिको का सशक्तिकरण, योजना, जुलाई 2019 पृ.7-17-22
4. जनसत्ता 7 अक्टुबर 2019 पृ. 7-13
5. रवि शंकर प्रसाद, ई-सेवाओं के जरिये नागरिको का सशक्तिकरण, योजना, जुलाई 2019 पृ.7-17-22
6. योगेश सूरी, शासन प्रणाली में सुधार, योजना, सितम्बर 2019 पृ.24
7. ई-शोध प्रणाली, कंचन राजोरिया, रिड्र रेफ्रेंस, आगरा, उळार प्रदेश 2015 पृ. 247-250
8. सुरेश चंद बंसल, मीनाक्षी प्रकाशन मेंरठ, 2011 पृ. 359
9. मोनिका शर्मा, स्मार्टफोन की लत से बढ़ते हादसे, जनसत्ता, 3 मई 2018 पृ.6
10. विशेष गुप्ता, उपभोक्तावाद और बच्चे, जनसत्ता, 16 जुलाई 2019 पृ.6
11. .https://hi.wikipedia.org/wiki/, ब्लू व्हेल (खेल)
12. ज्योति सिड़ाना, सोशल मीडिय्या और चुनौतियां, जनसत्ता, 12 जून 2019 पृ.6
13. सेहत की फ्रिक, जनसळा, 20 सितम्बर 2019 पृ.6
14. ऋतु सारस्वत, निजता पर नियंत्रण क्यों, राजस्थान पत्रिका 20 सितम्बर 2019 पृ. 6
15. ज्योति सिड़ाना, निगरानी के बढ़ते खतरे, जनसत्ता, 26 नवम्बर 2019 पृ.6
16. बदहाली के स्कूल, जनसळा, 16 जुलाई 2019 पृ.6

भारत के साझा बाजार में वस्तु एवम् सेवा कर: अर्थ, उपादेयता एवं चुनौतियां

शिव शर्मा

सहायक आचार्य- अर्थशास्त्र राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ (अलवर)

शोध सार:-वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) व्यापक, गंतव्य आधारित, बहु-स्तरीय कर है, जो अप्रत्यक्ष रूप से वस्तु एवं सेवाओं के उपयोग पर लगाया जाता है। माल एवं सेवा कर अधिनियम को 29 मार्च 2017 को भारतीय संसद में पारित किया गया तथा 1 जुलाई 2017 को इसे भारत में लागू कर दिया गया। यह एक एकीकृत कर प्रणाली है जिसने भारत में कई अप्रत्यक्ष करों का स्थान ले लिया है। संवैधानिक प्रावधानों का पालन करते हुए जी.एस.टी. के संबंध में संविधान संशोधन एंव विविध अधिनियम पारित किये गये हैं।

जी.एस.टी. वृहद कर बहुचरणीय कर, मूल्यवर्धित कर, गतंव्य आधारित कर जैसी विशेषताओं से युक्त है। जी.एस.टी. भारत के कर इतिहास मे एक आमूल-चूल सुधार हैं। जी.एस.टी. से जुड़े लाभों को ध्यान में रखकर इसे अपनाया गया है। 17 वर्षो के संघर्ष, सहयोग एवं समन्वय के माध्यम से इसे अपनाया गया है। हालांकि जी.एस.टी. के पारित होने के समक्ष राज्य सरकारे, कारोबारी, उपभोक्ता से जुड़ी कुछ समस्याएं थी फिर भी केंद्र-राज्य सहयोग, कारोबारी एवं जनता को विश्वास में लेकर इन समस्याओं का हल किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरदार पटेल ने देशी रियासतो को भारत संघ में मिलाकर भारत का राजनीतिक एकीकरण किया था, वहीं जी.एस.टी. ने केन्द्रीय एवं राज्य अप्रत्यक्ष करो को अपने में मिलाकर, एकल कर के माध्यम से राष्ट्र का आर्थिक एकीकरण किया है। भारत एकता और अखण्डता की दृष्टि से एक राष्ट्र है, जी.एस.टी. ने भारत रूपी एक राष्ट्र में एक कर को लागू किया है, जी.एस.टी. एकल कर होने के कारण सम्पूर्ण राष्ट्र एक बाजार में बदल गया है। इसी कारण जी.एस.टी. के संबंध में ''एक राष्ट्र एक कर, एक बाजार" का नारा दिया है। जो सच तो है ही, साथ ही जी.एस.टी. की एक पहचान भी बन गया है।

परिचय:- भारत प्राचीन काल से ही एक प्रमुख सभ्यता और संस्कृति के रूप में निरंतर विकास करता रहा है। सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर वर्तमान समय तक प्राचीन काल, मध्य काल और आधुनिक काल में राज्य द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का आरोपण एवं संग्रहण निरंतर किया जाता रहा है, यद्यपि इन करों में समय और परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक परिवर्तन एवं संशोधन होते रहे हैं। भारत में करों की इसी ऐतिहासिक यात्रा के क्रम में जी.एस.टी. को स्वतंत्र भारत के इतिहास में एक क्रांतिकारी अप्रत्यक्ष कर सुधार की संज्ञा दी जा रही है।

कर प्रणाली का महत्व:- कर वस्तुत: एक वित्तीय भुगतान है जो एक सम्प्रभु राज्य द्वारा अपने नागरिकों पर आरोपित एवं संग्रहित किया जाता है तथा नागरिको को आंतरिक एवं बाहय खतरों से सुरक्षा, सामाजिक, आर्थिक विकास, आधारभूत संरचना विकास जैसे कार्यों में पुन: अपने नागरिकों पर खर्च कर दिया जाता है। इस प्रकार कर प्रणाली किसी राज्य के प्रभावी रूप से संचालन तथा राजकीय आय एवं राजकीय व्यय का प्रमुख स्त्रोत है। इस प्रकार भारत सरकार की कुल आय का लगभग 70 प्रतिषत प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर प्रणाली से प्राप्त होता है। इसी महत्व को ध्यान में रखते हुए कर प्रणाली का प्रभावी वर्गीकरण, प्रबंधन और इसमें समयानुसार सुधार आवश्यक हो जाता है और वर्तमान जी. एस.टी. इसी सुधार क्रम का एक भाग है।

कर प्रणाली का वर्गीकरण:- चूँकि राज्य द्वारा अपने नागरिकों पर एक से अधिक कर आरोपित एवं वसूल किये जाते है ऐसे में अलग-अलग आधारों पर करों का वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है, जैसे करापात एवं कराघात के आधार पर समस्त करों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष नामक दो करों में बाँटा जाता है। प्रत्यक्ष करों में करापात एवं कराघात एक की व्यक्ति/संस्था/वस्तु पर होता है, जबकि अप्रत्यक्ष करों में करापात एवं कराघात अलग-अलग व्यक्ति/संस्था/वस्तु पर होता है। भारत में आयकर निगम कर आदि प्रत्यक्ष कर के उदाहरण है, वहीं उत्पाद शुल्क, सेवाकर, बिक्रीकर, मनोरंजन कर आदि अप्रत्यक्ष कर के उदाहरण है।

इसी प्रकार करारोपण के मूल्य आधार के आधार पर करों को टर्न ऑवर टैक्स तथा वैल्यू एडेड टैक्स (VAT) के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। टर्न ऑवर टैक्स में समस्त वस्तु के समस्त मूल्य पर कर लगता है, जबकि वैट (VAT) मे केवल मूल्य वर्धन पर कर लगता है। इसी प्रकार कर आरोपण की शक्ति के आधार पर समस्त करो को केन्द्रीय कर, राज्य कर एवं स्थानीय कर के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क, सेवाकर, अधिभार, उपकर आदि केन्द्रीय कर एवं उपकर हैं। ब्रिक्री कर प्रवेश कर, मनोरंजन कर खरीदकर आदि राज्य स्तरीय कर है, जबकि चुंगी, शुल्क आदि स्थानीय कर है। इसी प्रकार यदि करारोपण का आधार व्यक्ति एवं संस्था है, तब इसे आय कर एवं निगम कर कहते हैं तथा करारोपण का आधार वस्तु एवं सेवा है तब इसे क्रमश: वस्तु एवं सेवाकर (GST) कहते हैं।

जी.एस.टी. अपनाने की आवश्यकता:- कर राजस्व में वृद्धि करने तथा कर आधार बढ़ाने के लिए समय के अनुसार कर सुधार भी आवश्यक हो जाता है। चूंकि जी.एस.टी. से पूर्व की अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में कुछ समस्याएँ एवं जटिलताएँ उपस्थित थी, जैसे -

- वस्तुओं के उत्पादन एवं ब्रिक्री में कर चोरी।
- सेवाओं की परिभाषा में अस्पष्टता को लेकर कर चोरी।
- करों का प्रपाती प्रभाव (केस्केडिंग प्रभाव या टैक्स ऑन टैक्स)।
- अन्तर्राज्यीय व्यापार पर चौकपोस्ट ध् नाको पर ट्रकों की लम्बी लाइन।
- एक ही राज्य में नगरपालिका क्षेत्र में प्रवेश पर चुंगी।
- वस्तुओं पर केन्द्र एवं राज्य का समस्त कर भार अधिक होना।
- अलग-अलग राज्य में बिक्री कर (VAT) की दर अलग-अलग होने के कारण वस्तुओं के मूल्यों में राज्य स्तरीय अंतर होना।

अप्रत्यक्ष कर प्रणाली से जुड़ी इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए, इन समस्याओं को दूर करने के लिए तथा अप्रत्यक्ष कर प्रणाली को सरल पारदर्शी एवं आधुनिक बनाने के लिए, GST के रूप में नई अप्रत्यक्ष कर प्रणाली को अपनाया जाना आवश्यक हो गया था।

जी.एस.टी. प्रणाली का विकास क्रम:- जी.एस.टी (GST) के ऐतिहासिक विकासक्रम पर दृष्टिपात किया जाए तो जी.एस.टी. कोई एकदम नए कर की अवधारणा नही है, बल्कि फ्रांस 1954 में ही जी.एस.टी. प्रणाली को लागू करने वाला प्रथम राष्ट्र बन गया। उसके बाद जर्मनी, जापान, इटली, कनाडा, सिंगापुर सहित विश्व के 160 से अधिक देश अपने यहाँ जी.एस.टी. प्रणाली को लागू कर चुके हैं। वैश्विक अनुभवो से सीख लेते हुए, भारत भला कैसे जी.एस.टी. प्रणाली को अपनाने से बच सकता था। अत: भारत में भी जी.एस.टी. प्रणाली की यात्रा वर्ष 2000 से आरम्भ होती है जो 1 जुलाई 2017 को इसके लागू होने के साथ ही पूर्ण भी होती है।

इस विकास क्रम को हम बिन्दुवार क्रमिक रूप से समझ सकते हैं:-

- सन् 2000 में राज्यों के वित्त मंत्रियों की उच्च अधिकार प्राप्त समिति का गठन।
- सन् 2002 में जसवंत सिंह समिति।
- सन् 2003 में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर सुधार पर विजय केलकर समिति / कार्यबल।
- वर्ष 2006-07 के केन्द्रीय बजट के बजट भाषण में 1 अप्रैल 2010 से लागू करने की घोषणा।

- वर्ष 2011 में 115 वां संविधान संशोधन बिल पेश किया जाना, परन्तु पारित नहीं।
- वर्ष 2014 में 122 वां संविधान विधेयक लोकसभा में पेश किया गया।
- अगस्त-सितम्बर 2016 में ससंद, राष्ट्रपति एवं आधी राज्य विधानसभाओं का अनुमोदन।

किसी वस्तु की पूरी विनिर्माण शृंखला के दौरान विभिन्न चरणों में होने वाले सभी लेन-देन, मूल्य वर्धन पर GSt~ लगाया जाता है, जबकि पहले की व्यवस्था में केंद्र सरकार उत्पाद शुल्क (एक्साइज ड्यूटी) लगाती थी, राज्य सरकार द्वारा मूल्य संवर्धन कर (VAT) लगाये जाते थे। जिस राज्य में उत्पादन/विनिर्माण होता है, तो इन चरणों में लगने वाला GSt~ उसी राज्य को मिलता है। इसके अतिरिक्त यह एक गंतव्य आधारित कर भी है, जो किसी वस्तु की अंतिम बिक्री वाले राज्य में वसूला जाता है।

वस्तु एवम् सेवा कर (जीएसटी) को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने सहयोगी संघवाद (Co&operative Federalism) का सर्वोत्तम अनुप्रयोग कहा है और उम्मीद जताई है कि इससे मेक इन इंडिया को प्रोत्साहन मिलेगा। भारत में जीएसटी को 122वें संविधान संशोधन के माध्यम से पारित करके एकल अप्रत्यक्ष कर दर, जो सभी अप्रत्यक्ष करों की जगह लेगा, को लागू कर दिया है, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण भारत में साझा बाजार विकसित हो सकेगा।

आज कई वर्षों से वस्तु और सेवा कर (जीएसटी) को लेकर बना हुआ अवरोध खत्म हो गया है और समूचे देश में एक समान कर प्रणाली लागू किए जाने की राह प्रशस्त हो गई है। अप्रत्यक्ष कर में सुधार के दृष्टिकोण से यह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा और विशेष रूप से आजादी के पश्चात् यह सबसे बड़ी अप्रत्यक्ष कर सुधार व्यवस्था है। इससे भारत जैसे संघीय देश में वित्तीय संघवाद में एक क्रान्तिकारी सुधार देखने को मिलेगा क्योंकि जीएसटी से देश के 29 राज्यों और 9 केन्द्र शासित प्रदेशों में एक ही वस्तु के अलग-अलग मूल्यों की जगह एक ही मूल्य दिखाई देता है (कुछ अपवाद स्वरूप वस्तुएँ छोड़कर जैसे शराब, बिजली व रियल स्टेट सेक्टर)।

पहले देश में किसी वस्तु का उत्पादन होता था तो इस पर केन्द्र और राज्य स्तर पर अलग-अलग तरह के टैक्स लगते थे। केन्द्र सरकार के करों में सेंट्रल एक्साइज ड्यूटी, सर्विस टैक्स और अतिरिक्त कस्टम ड्यूटी शामिल होती हैं, जबकि दूसरी तरफ राज्य सरकारों के करों में वैट (मूल्य संवर्धित कर), मनोरंजन कर, विलासिता कर, लॉटरी कर व विद्युत शुल्क इत्यादि शामिल होते हैं।

वर्तमान में केन्द्र-राज्यों के बीच बीस से अधिक अप्रत्यक्ष कर के बदले एक जीएसटी कर लग चुका है। आन्तरिक रूप से जीएसटी की संरचना त्रि-स्तरीय हैं, केन्द्रीय जीएसटी, राज्य जीएसटी और अंतर्राज्यीय व्यापार पर जीएसटी। केन्द्रीय जीएसटी पर कर लगाने और इसे एकत्रित करने का अधिकार केन्द्र के पास है और राज्य जीएसटी को आरोपित और वसूलने का अधिकार राज्य सरकारों को है व अंतर्राज्यीय व्यापार पर जीएसटी आरोपित करने का अधिकार केन्द्र को है परन्तु इसका संग्रहण केन्द्र व राज्य दोनों के द्वारा किया जाता है।

जी.एस.टी. को प्रभावी बनाने के लिए जी.एस.टी. परिषद, जी.एस.टी. नेटवर्क, ई-वे बिल जैसे प्रावधान किये गए है। जी.एस.टी. की उपभोक्ता, कारोबारी, राज्य सरकारें आदि को लेकर कुछ कमिया/आलोचनाएं भी की गयी थी, फिर भी सरकार द्वारा इन सभी पक्षो को विश्वास में लेते हुए इन कमियो को दूर करने का प्रयास किया है। जी.एस.टी. के प्रबंधन हेतु केन्द्रीय एंव राज्य कर प्रशासनो को यथोचित निगरानी एवं नियंत्रण दिया गया है। थ्रेसहोल्ड लिमिट एवं कंपोजीशन स्कीम के माध्यम से छोटे उद्यमियों को संरक्षण दिया गया है। जी.एस.टी. ने सरकार, कारोबारी एवं उपभोक्ता सभी को लाभान्वित किया है।

मैं उम्मीद करता हूँ कि जीएसटी कानून के क्रियान्वयन से देश में कर व्यवस्था समय के साथ-साथ सरल हो जाएगी, साथ ही व्यापारियों को भ्रष्टाचार और लालफीताशाही से बहुत हद तक राहत मिलेगी। चूँकि पूर्व की कर व्यवस्था बहुत कठिन और कर भार अधिक होने की वजह से बहुत से कारोबारी बिक्री कर कम दर्शाते थे, लेकिन आज इन कर बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया जा रहा है, कारोबार असंगठित क्षेत्र से संगठित क्षेत्र की ओर बढ़ रहा है, विशेषज्ञों द्वारा ऐसी उम्मीद दर्शाई जा रही है। चूँकि आज राजनीति और अर्थशास्त्र दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं और एक में हुआ परिवर्तन का दूसरे पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसी संदर्भ में आज जीएसटी के राजनीतिक अर्थशास्त्र को समझना बहुत जरूरी है ताकि इसके आर्थिक पक्ष के साथ-साथ राजनीतिक पृष्ठभूमि को भी बेहतर तरीके से समझा जा सकता है।

वस्तु एवं सेवा कर की आर्थिक समीक्षाः- कई वर्षों के अन्तराल के पश्चात् देश में अप्रत्यक्ष करों की एक समान प्रणाली लागू की गई है। इस बिल को राज्यसभा में प्रस्तुत करते वक्त प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक के बाद एक ट्वीट कर इसे ऐतिहासिक

कदम करार दिया था। उन्होंने दावा किया कि इससे सहयोगी संघवाद, मेक इन इंडिया, स्टार्टअप इंडिया व निवेश को बढ़ावा मिलेगा और रोजगार बढ़ेंगे।

एकीकृत जीएसटी के समर्थक इसे 1991 के बाद के सबसे बड़े आर्थिक सुधार के रूप में देखते हैं, जिससे वस्तुओं और सेवाओं पर लगने वाले केन्द्र और राज्यों के 20 से ज्यादा अप्रत्यक्ष करों के बजाए आज सिर्फ एक ही कर लग रहा है, जिसके परिणामस्वरूप पूरे देश में समय के साथ साथ एक साझा बाजार विकसित होगा। सरकार ने इस योजना को अप्रैल, 2017 से पूरे देश में लागू किया। आज मजबूत और समग्र सूचना तकनीकी (आई.टी.) प्रणाली भारत में जीएसटी तंत्र की बुनियाद है, इसलिये करदाता सेवाएँ जैसे कि पंजीकरण रिटर्न, भुगतान आदि करदाताओं को ऑनलाइन उपलब्ध है।

जीएसटी कर के व्यापक सकारात्मक निहितार्थ हैं- प्रथम, यह हमारी प्रतिस्पर्धात्मकता के अवरोध का सबसे कुशल समाधान कर सकता है। इसके लागू न होने की स्थिति में हमें अनेक कराधानों और न्यायाधिकार क्षेत्रों का सामना करना पड़ता है, जैसे करों के ऊपर दोहराव कर की समस्या इत्यादि। इसके साथ ही केन्द्रीय बिक्री कर, चुंगी कर इत्यादि जिनका समायोजन नहीं किया जाता है, के कारण व्यापारियों पर कर दबाव इस कदर बढ़ जाता है कि अंतर्राज्यीय व्यापार असन्तुलित हो जाता है। जीएसटी की वजह से करों में बोझिलता एवं इनमें दोहराव जैसी समस्या स्वयं समाप्त हो जाएगी।

दूसरा, जीएसटी को भारतीय वित्तीय संघवाद (Fiscal Federalism) में 1991 में हुए उदारीकरण के पश्चात् एक क्रान्तिकारी आर्थिक सुधार के रूप में देखा जा सकता है। राज्यों ने वस्तुओं पर बिक्री कर (वैट) और केन्द्र सरकार ने उत्पाद शुल्क व सेवा कर लगाने के अपने अधिकार छोड़ने पर सहमति दिखाई है, जिसके पश्चात् त्रि-स्तरीय जीएसटी योजना अर्थात केन्द्रीय जीएसटी, राज्य स्तरीय जीएसटी व अंतर्राज्यीय जीएसटी की रूपरेखा तैयार की है, जिससे व्यवस्था में दक्षता, प्रतिस्पर्धा और समग्र कर संग्रहण के रूप में अतिरिक्त लाभ मिलने का भी अनुमान है।

तीसरा, जीएसटी से सम्पूर्ण भारत में वस्तुओं और सेवाओं के लिए एकीकृत और सुदृढ़ राष्ट्रीय बाजार (एकीकृत साझा बाजार) उपलब्ध हो जाएगा। ऐसे बाजार तक लघु उद्योगों व असंगठित क्षेत्र की पहुँच सुगम हो जाएगी। कम्पनियों को अंतर्राज्यीय करों से बचने के लिये स्टॉक भंडारण की आवश्यकता नहीं होगी। इससे कुछ पूँजी अतिरिक्त कार्यों के लिये मुक्त हो सकेगी, जिससे दक्षता व माँग भी बढ़ेगी। नेशनल काउंसिल फॉर एप्लाइड इकॉनोमिक रिसर्च और अन्यों का आंकलन है कि जीएसटी से सतत् आधार पर एक व दो प्रतिशत का सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि संभव है।

चौथा, चूँकि मूल्य श्रृंखला के पूर्व चरणों में करों का भुगतान कर चुकने का दावा और आदान कर भुगतान संबंधी दावा परस्पर आबद्ध होंगे, इसलिये विक्रेता और उपभोक्ता को इंटरलॉकिंग राहत मिल सकेंगी।

भावी चुनौतियाँ:- जीएसटी के तमाम सकारात्मक पहलुओं और इसे लागू करने में दुर्लभ व ऐतिहासिक राजनीतिक सहमति के बावजूद हमें इसके नकारात्मक पहलुओं और भावी चुनौतियों को भी ध्यान में रखना चाहिये। इस दृष्टिकोण से कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर गौर किया जा सकता है:-

पहला मुद्दा, एकसमान जीएसटी की दर से जुड़ा मसला है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। जीएसटी की एकसमान दर क्या होनी चाहिये? वित्त मंत्रालय की वर्ष 2003 में आई एक रिपोर्ट में इस दर का 12 प्रतिशत के तौर पर उल्लेख किया गया था। बीते वर्षों में यह दर ऊपर की और बढ़ी है और आज 18 प्रतिशत की चर्चा हो रही है। इस दर के निर्धारण में वित्त मंत्रालय की अधिकार प्राप्त समिति 'रेवेन्यू न्यूट्रल रेट' (RNr~ Revenue Neutral Rate) की अवधारणा का इस्तेमाल करती है।

आर.एन.आर. (RNR) वह एकसमान दर है, जिसे लागू किए जाने पर सभी राज्यों का राजस्व पहले जितना ही रहेगा, इसलिये किसी भी राज्य का मात्र इसलिए नुकसान नहीं होना चाहिये कि उसने जीएसटी लागू करने पर सहमति दी है, लेकिन इसमें भी कुछ दोष दिखाई पड़ते हैं, जैसे जब तक इसे एक वर्ष या इससे ज्यादा के लिये लागू न ही किया जाता, तब तक जीएसटी से लाभान्वित नहीं हुआ जा सकता। राज्यों की आशंकाओं के निवारण हेतु आर. एन. आर. की गणना के लिये प्रत्येक सम्भव मौजूदा करों (जैसे प्रवेश कर, चुंगी आदि) पर भी गौर किया गया है। प्रारम्भ में राज्यों को होने वाले नुकसान की प्रत्येक वर्ष के आखिर में पूरी भरपाई का आश्वासन दिया जाए। बेहतर होगा यदि सरकार इसकी दर 18 से 20 प्रतिशत के मध्य रखें और इससे ज्यादा होने पर जीएसटी का नकारात्मक दिखलाई पड़ सकता है।

दूसरा मुद्दा, जीएसटी के अप्रत्यक्ष कर होने से जुड़ा है। अपनी प्रकृति के अनुसार अप्रत्यक्ष कर प्रतिगामी होते हैं और धनी वर्ग की तुलना में निर्धन को ज्यादा प्रभावित करते हैं। भारत में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर संग्रह का अनुपात 65:35 है जोकि अधिकांश विकसित देशों के मानक से विपरीत है और दूसरी तरफ जी.डी.पी. और प्रत्यक्ष कर के बीच भारत का अनुपात विश्व में सर्वाधिक निम्न है, इसलिय प्रत्यक्ष करों के संग्रह को बढ़ाया जाना अति आवश्यक है।

आज भारत में केवल चार प्रतिशत भारतीय ही आयकर का भुगतान करते हैं, लेकिन व्यवहारिक रूप से लगभग सभी भारतीय अप्रत्यक्ष करों का भुगतान करते हैं। प्रत्यक्ष करों में गिरावट और अप्रत्यक्ष करों में बढ़ोतरी, भारतीय कर संग्रह में देखने को मिलता है। सेवा कर जोकि एक अप्रत्यक्ष कर है यह 1990 में 5 प्रतिशत था और आज 15 प्रतिशत से अधिक है, इसके अलावा स्वच्छ भारत उपकर, पेट्रोल और डीजल पर बढ़ाए जाने वाले उत्पाद शुल्क इसके हालिया उदाहरण हैं। जब तक जीएसटी दर की एक सीमा तय नहीं की जाती तब तक इसके ऊंचे बने रहने की संभावनाएँ बनी रहेगी। अपनी राजकोषीय वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये सरकार अप्रत्यक्ष करों को ऊँचा रखना चाहती है क्योंकि प्रत्यक्ष करों का आधार बढ़ाना मुश्किल होता है और इस पर लगाम केवल दर सीमा तय करके थामा जा सकता है।

तीसरा मुद्दा, करों को लेकर होने वाली मुकदमेबाजी से जुड़ा है। आज एक अनुमान के अनुसार, केन्द्रीय करों और सेवा करों से जुड़े कानूनी मामलों में एक हजार करोड़ रुपए की धनराशि फंसी हुई है। दूसरी तरफ राज्य स्तरीय वैट के मामलों में राज्यों को त्वरित कार्रवाई हेतु पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं। केन्द्रीय करों से सम्बन्धी विवादों को अपील और ट्रिब्यूनल प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, जिसमें वर्षों लग जाते हैं, दूसरी तरफ राज्यों में बिक्री कर आयुक्त के अधीन अधिकार सम्पन्न स्टाफ, राज्य स्तर पर वैट देने वाले को तर्कसंगत परेशानियों का त्वरित निपटारा करता है। इस अंतर को कर विवादों में 'रिव्यू' बनाम 'रिवाइज' (Reveiw vs Revise) के तौर पर जाना जाता है।

चौथा मुद्दा, जीएसटी के क्रियान्वयन से जुड़ा है। यहाँ जीएसटी परिषद् के बेहतर संचालन का प्रश्न उभरता है। जीएसटी परिषद् राज्यों की परिषद है, जिसमें केन्द्रीय वित्त मंत्रालय के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं। समझा जाता है कि एक राज्य के पास एक मत होगा और इसमें राज्य को 2/3 एवम् केन्द्र को 1/3 मत प्राप्त होगा। वित्तीय संघवाद को मजबूती देन के लिये राज्यों को और स्वायत्तता देनी होगी।

आज यह भी कहा जा रहा है कि यदि इस परिषद में वीटो पावर राज्य के पक्ष में रहे तो संघीय व्यवस्था के लिये ज्यादा हितकारी होगा, साथ ही परिषद का उपाध्यक्ष पद उस राज्य को प्रदान किया जाए, जो केंद्र के पक्ष एवम् विपक्ष के दल का न हो, इससे क्षेत्रीय दलों का हित भी सुरक्षित रहेगा। परिषद में चूंकि एक राज्य एक मत का सिद्धान्त रहेगा, इसमें आर्थिक रूप से बड़े राज्यों की यह शिकायत रह सकती है कि उनकी ज्यादा सुनी जाए। इसी प्रकार छोटे राज्यों की विशेष जरूरतों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिये। उदाहरण के तौर पर उत्तर-पूर्व के राज्यों के लिये जीएसटी की दर मुफीद रहनी चाहिये क्योंकि एक समान दर होने से वहाँ का करीब-करीब समूचा कारोबार कर छूट की परिधि में आ जाएगा।

पाँचवा मुद्दा, राज्यों की स्वायत्तता का हो सकता है। भारत ऐसा पहला बड़ा संघीय लोकतान्त्रिक देश है, जो समूचे देश में जीएसटी लागू कर रहा है और जिसमें राज्य, कर आरोपित नहीं करेगा। अमेरिका में राज्यों के पास बिक्री कर तथा आयकर लगाने का अधिकार है। भारत में राज्य विशेष द्वारा लागू की जाने वाली विशेष योजनाओं के संदर्भ में जीएसटी की भूमिका को देखना होगा जैसे कोई भी राज्य आपदा के दौरान विशेष कार्यक्रम की शुरुआत कर सकता है, तमिलनाडु में मिड डे मील योजना को उच्चीकृत कर दिया था जिसके फलस्वरूप मुख्यमंत्री ने (जो अब जीएसटी लागू होने पर सम्भव नहीं हो सकेगा) वस्तुओं पर करो को बढ़ा दिया था। यह कार्यक्रम बहुत सफल भी रहा और विदेशों में इसे नजीर के रूप में पेश किया गया क्योंकि इससे दोहरे लक्ष्य की पूर्ति हो रही थी, बच्चों के लिये बेहतर पोषण और स्कूलों में उनकी अच्छी उपस्थिति।

इसी प्रकार 1972 में महाराष्ट्र में सूखे के दौरान सरकार ने शहरों में रहने वालों पर पेशेवर कर (जो अब जीएसटी में सम्भव नहीं होगा) लगा दिया था ताकि ग्रामीणों के लिए 'रोजगार गारन्टी योजना' नाम के एक नए कार्यक्रम के लिये धन की व्यवस्था की जा सके। यहाँ कार्यक्रम आगे चलकर नेशनल रूरल एम्प्लॉयमेंट गारंटी एक्ट को शुरू करने की प्रेरणा बना। उपरोक्त संदर्भ में जीएसटी को राज्यों को इस प्रकार की तत्कालिक वित्तीय स्वायत्तता के प्रति संजीदा होना चाहिये।

जीएसटी की राजनीतिक पृष्ठभूमिः- जीएसटी के संदर्भ में संविधान में 122वां संविधान संशोधन सर्वसहमति से पारित किया गया और संविधान में एक नया अनुच्छेद 246ए (भाग-ग1) जोड़ा गया, जो इसमें संघ और राज्य विधायिका को जीएसटी पर नियम बनाने की शक्ति देता है। इस संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 273ए के तहत जीएसटी परिषद का निर्माण किया जाएगा, जिसमें जीएसटी परिषद की संरचना, कार्य आदि का विधायन किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप 'एक व्यक्ति, एक वोट' के सिद्धान्त की भावी रूपरेखा की ही भाँति 'एक देश, एक कर' व्यवस्था को अप्रैल 2017 से लागू किया गया।

यहाँ एक दिलचस्प बात यह देखने को मिलती है कि पिछले कई वर्षों से लटके बिल में अचानक ऐसा क्या हो गया कि संसद एकमत पर आ गई? प्रधानमंत्री वाजपेयी के समय गठित 'केलकर समिति' की रिपोर्ट के आधार पर जीएसटी की नींव रखी गई थी। यदि जीएसटी महज राजनीतिक श्रेय लेने की बात होती तो विपक्ष के तीखे विरोधों के बावजूद इसे पास करवा लेना, मोदी सरकार की एक बड़ी जीत कही जा सकती है।

इसके संकेत अगले ही दिन इससे सम्बंधित अगले विधेयकों को धन विधेयक (Money Bill) के तौर पर पेश किया जाए या वित्त विधेयक (Finance Bill) के रूप में, इसको लेकर शुरू हुई रस्साकशी में मिला, क्योंकि इससे सम्बंधित धन विधेयक अगर राज्य सभा में गिर भी जाता तो लोकसभा में बहुमत होने की वजह से बीजेपी इसे पास करवा लेती और वित्त विधेयकों पर दोनों सदनों की सहमति आवश्यक थी। तत्कालीन वित्त मंत्री अरुण जेटली राज्य सभा में बहस के दौरान अगले विधेयकों को वित्त विधेयक के रूप में पेश करने के अपने विचार से मुकरते नजर आए तो दूसरी तरफ कांग्रेस के जयराम रमेश ने इसके लिये नेताओं का हस्ताक्षर अभियान छेड़ दिया।

जीएसटी मौजूदा नव उदारवादी अर्थव्यवस्था के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है। यही वजह है कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इसे एक नए दौर की शुरुआत कहा था, हालांकि बतौर गुजरात के मुख्यमंत्री के रूप में इन्होंने इसका पुरजोर विरोध किया था। तब बाकी कई राज्यों के साथ गुजरात की दलील थी कि इससे राज्यों को राजस्व घाटा होगा। हालांकि कांग्रेस ने पाँच सालों तक राज्यों की राजस्व भरपाई का इंतजाम नए संशोधन में करवा दिया था और इसी के साथ विधेयक में उत्पादन वाले राज्यों को प्रतिशत राजस्व हिस्सेदारी का प्रावधान खत्म कर दिया गया था।

बहरहाल, इस समझौते के बावजूद जीएसटी पास करवाना मोदी के लिये बतौर प्रधानमंत्री बेहद जरूरी हो गया था। कह सकते हैं कि एक मायने में राज्य और देश की कमान संभालने में फर्क भी है, लेकिन भाजपा के लिये इसे यूपीए के राज में पास न होने देना और अब स्वयं पास करवाना अपना सियासी आधार मजबूत करना भी है।

इसे दूसरे दृष्टिकोण से भी समझा जा सकता है, जब 1991 में कांग्रेस की सरकार में वित्त मंत्री बनाए गए अर्थशास्त्री मनमोहन सिंह ने जब विश्व व्यापार संगठन (WTO) के लिये बनाए गए डंकल ड्राफ्ट और विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सिफारिशों के मुताबिक लाइसेंस कोटा परमिट राज के खात्मे का ऐलान किया और धीरे-धीरे उदारीकरण और निजीकरण की राह आसान करने लगे तो भाजपा और संघ परिवार समेत सभी दल उसके विरोधी थे। संघ परिवार के संगठनों ने तो उदारीकरण को आर्थिक गुलामी तक कहा था। इसके पश्चात् 1996 के लोकसभा चुनावों में भाजपा की सरकार तेरह दिनों में गिर गई और कांग्रेस के समर्थन से बनी संयुक्त मोर्चा सरकार में रहे तत्कालीन वित्त मंत्री जब अपना बजट लेकर आए तो वह भी आर्थिक उदारीकरण की दिशा में ही था। इन्हीं वजहों से भाजपा और संघ परिवार ने मुख्यधारा में शामिल होने के लिए अपनी विचारधारा में थोड़ा आर्थिक समायोजन किया, दूसरी और यह भी माना गया कि उदारीकरण से लाभान्वित होने वाले उभरते मध्यवर्ग और उच्चवर्ग का समर्थन हासिल करने के लिए नई आर्थिक नीतियों का समर्थन किया जाना अपरिहार्य सा हो गया था और सत्ता में आने के पश्चात् भाजपा नेताओं ने यह कहना शुरु किया कि हम आर्थिक सुधार मजबूती और तेजी के साथ करेंगे।

वर्ष 2003 में पूरे देश में खासकर व्यापार और उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए एकल कर प्रणाली कायम करने का विचार उभरा था। बाद में वर्ष 2007 में तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ने पूरे देश में एक सार्वभौमिक कर प्रणाली का प्रस्ताव रखा। वर्ष 2009 में यही वस्तु एवं सेवा कर संविधान संशोधन के रूप में पेश किया गया, तब भाजपा ने लगातार इसका विरोध किया था और सबसे सशक्त विरोध गुजरात से हो रहा था। लेकिन वर्ष 2012 में विधानसभा चुनावों में जीत के बाद नरेन्द्र मोदी के केन्द्रीय राजनीति में अपनी मौजूदगी दर्ज कराने का अभियान शुरु किया तो वहीं दूसरी तरफ पार्टी के कार्यकर्ताओं ने उनकी छवि विकास पुरुष की बनाई और बड़े उद्योगों को आश्रय के संदर्भ में गुजरात मॉडल को उसका आधार बनाया गया।

अपनी इसी छवि को और उजागर करते हुए पश्चिमी बंगाल के सिंगूर से टाटा का नैनो कारखाना हटाए जाने पर गुजरात में इसी कम्पनी को आधारभूत सुविधाएँ प्रदान की गई। शायद यही वजह रही कि प्रधानमंत्री बनने के बाद इन्होंने औद्योगिक विकास हेतु जमीन अधिग्रहण की प्रक्रिया को सरल बनाना (लेकिन भारी विरोध के चलते सरकार को पीछे हटना पड़ा), पर्यावरण संबंधी बाधाओं से अटकी पड़ी परियोजनाओं को आगे बढ़ाना, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) का क्षेत्र विस्तार करना और जीएसटी को लागू करने के मामले को अपनी प्राथमिकताओं में रखा। इस तीव्र आर्थिक उदारीकरण के प्रयासों के क्रम में भाजपा सरकार द्वारा मेक इन इण्डिया, स्टार्टअप इण्डिया और कोविड-19 के दौरान आत्मनिर्भर भारत जैसे कार्यक्रमों को राष्ट्रीय स्तर पर प्रारम्भ किया गया है।

यह सत्य है कि जीएसटी के शुरुआती दौर में महंगाई बढ़ी थी क्योंकि सेवा कर मौजूदा 15 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 20 प्रतिशत तक पहुँच गया था, इसी तरह कृषि उपजों की कीमतें भी बढ़ गई थी।

निष्कर्षः- कहा जा सकता है कि जीएसटी वास्तव में 1991 के बाद अप्रत्यक्ष करों के संदर्भ में हुआ, एक क्रान्तिकारी आर्थिक परिवर्तन है जिसे सम्पूर्ण भारत में करों के दृष्टिकोण से एक साझा बाजार विकसित होगा, कारोबारी माहौल बनेगा, निवेश के आसार बढ़ सकते हैं, लेकिन इस साझे बाजार के साथ-साथ सरकार को एक साझे समाज के विकास पर भी ध्यान देना होगा क्योंकि आज भी अमीर और गरीब के बीच का अन्तर बहुत ज्यादा है।

आज किसानों की स्थिति समय के साथ-साथ और बदतर हो रही है, साथ ही जातिगत व सांप्रदायिक हिंसा की घटनाएँ भी होती रही हैं। ऐसे में भारत को एक आर्थिक शक्ति के रूप में स्थापित करना दुष्कर होगा। जहाँ तक जीएसटी के सम्पूर्ण प्रभाव का प्रश्न है तो यह एक सकारात्मक प्रयास साबित होगा। हम आशा करते हैं कि जीएसटी के कारण देश का जीडीपी बढ़ेगा और वर्तमान कोविड-19 के दुष्प्रभाव से समय के साथ-साथ भारतीय अर्थव्यवस्था उभरेगी और भारत 2030 तक दुनिया की तीसरी बड़ी आर्थिक शक्ति बनने की राह पर आगे बढ़ेगा।

संक्षेप में दुनिया के जिन देशों ने जीएसटी को लागू किया उसके पहले उसको पूरी तैयारी की क्योंकि आयकर प्रणाली को पहले से ज्यादा मजबूत करना उसी तैयारी का हिस्सा है। मूल बात है, कर वसूलने वाले को नए ढंग और ढाँचे के अनुरूप प्रशिक्षित करना भी बहुत आवश्यक है। जीएसटी भारतीय अर्थव्यवस्था की सभी समस्याओं को दूर करने की रामबाण औषधि नहीं हो सकती, लेकिन करों में एक क्रान्तिकारी और अरसे से लंबित यह सुधार आवश्यक है। यह आर्थिक वृद्धि, रोजगार सृजन, बेहतर दक्षता प्रणाली, कारोबारी सुगमता और ज्यादा कर-संग्रहण का आश्वासन देगा और हम उम्मीद कर सकते हैं कि इसके क्रियान्वयन आने वाली बाधाओं को एवं पहचान कर उनके निराकरण हेतु कदम बढ़ाकर हम पूरे देश में एक साझा बाजार विकसित कर पाएँगे।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. Model GST Lane, Empowered Committee of State Finance Committee, Published by Government of India, 28 June 2016.
2. GST Bill How the TaÛ Reform Advanced Through the Years, The Indian EÛpress,11 August 2015.
3. Race for GST Committee Chairman Hots Up- Btessness Standard, 12 December 2015.
4. The Constitution 122nd Amendment, GST Bill 2014, www.prsindia.org, Retrieved 13 August 2016.
5. President Pranab Mukherjee gives Assent to Constitution Amendment Bill on GST, The Times of India,Retrieved 10 September 2016.
6. The Constitution- One Hundred and First Amendment Act, 2016, Ministry of Law,8 September 2016, Retrieved 29 September 2016.
7. PN. Dhat,The Evolution of Economic Policy in India, New Delhi Oxford University Press, 2003.
8. Arvind Panagariya, India The Energing Giant Oxford University Press, 2008.
9. Lawrence Suez, Federalism without Center The Impact of Political and Economic Reform in India's Federal System New Delhi, Sage, 2002.
10. MP Singh & BD Dua, India's Federalism in the New Millennium, Manohar Publication, 2002.
11. Madhav Godbole, Credit Rating of States for a Fresh Look, Economic and Political Weekly, March 14, 1998.

नागौद रियासत का विन्ध्य प्रदेश में विलय एवं विन्ध्य के विकास में नागौद राज्य का योगदान

पंकज कुमार गुप्ता

प्रवक्ता (इतिहास), पी.पी.एन. इन्टर कॉलेज कानपुर

सारांश-

15 अगस्त 1947 को देश स्वतंत्र हुआ और इसके बाद देशी राज्यों के भारतीय गणतंत्र में विलीनीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। बुन्देलखण्ड की 34 रियासतों को मिलाकर विन्ध्य प्रदेश (बुंदेलखण्ड) का निर्माण हुआ और रीवा की सत्ता पृथक रही। इस नए प्रदेश की राजधानी नौगांव में स्थापित हुई तथा कामता प्रसाद सक्सेना प्रधानमंत्री, गोपालशरण सिंह मंत्री, लालाराम बाजपेयी मंत्री और रामसहाय तिवारी मंत्री बनाए गये सी.वी. राव, आई.सी.एस. को मुख्य सचिव बनाया गया। विन्ध्य प्रदेश का संयुक्त मंत्रिमण्डल कामता प्रसाद सक्सेना ने 4 अप्रैल 1948 को प्रधानमंत्री पद की शपथ ली और दो महीने बाद 10 जुलाई 1948 ई. को रीवा और विन्ध्य प्रदेश का संयुक्त मंत्रिमण्डल बना। इस तरह से रीवा की पृथक सत्ता भी विन्ध्य प्रदेश में समाहित हो गई। अब राजधानी नौगांव से हटकर रीवा में स्थानान्तरित हो गई। विन्ध्य क्षेत्र के विकास में जनपद काल से ही नागौद राज्य में उल्लेखित भू-भाग की भूमिका रही है। उत्तर से दक्षिण को मिलाने वाला महापय (कान्तार पय) इसी भू-भाग से गुजरता था और भरहुत इसका महाचत्वर था। हजारों की संख्या में सार्थवाह यहां जमा होते थे और यहां से आवश्यक वस्तुएं, कलाकृतिया, साहित्य और संस्कृतियां विन्ध्य के विभिन्न अंचलों में पहुंचती थी। यहां तक की सत्ताजनित परिवर्तनों में इस भू-भाग का विशेष महत्व रहा, क्योंकि उत्तर या दक्षिण की विजय की कामना से चलने वाले योद्धाओं को इस क्षेत्र को विजित करना आवश्यक हो जाता था। नागौद राज्य कालंजर महल, केन घाटी, तमस घाटी और नर्मदा क्षेत्र के मध्य में स्थित होने के कारण चतुर्दिक की राजनैतिक, सामाजिक, कलात्मक तथा आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करता रहा है। यही कारण है कि सन् 1857 में नागौद राज्य विद्रोहियों का केन्द्र बन गया था और अंग्रेजी हुकूमत को नौगांव के बाद नागौद में ही फौजी विद्रोह का सामना करना पड़ा था। बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड के केन्द्र में होने के कारण स्वतंत्रता संग्राम के दौर में नागौद राज्य का विशेष महत्व रहा है और सन् 1947 ई. तक यह क्षेत्र पुल की भूमिका निभाता रहा है।

विन्ध्य प्रदेश के संयुक्त मंत्रिमण्डल सदस्य में कप्तान अवधेश प्रताप सिंह मुख्यमंत्री, कामता प्रसाद सक्सेना उप मुख्यमंत्री शिव बहादुर सिंह- मंत्री, नर्मदा सिंह हारौल-मंत्री, सत्यदेव-मंत्री, गोपाल शरण सिंह मंत्री, चतुर्भुज पाठक- मंत्री मनोनीत किए गए। संयुक्त विन्ध्य प्रदेश का मुख्य सचिव सी.वी. राव को नियुक्त किया गया। विन्ध्य प्रदेश कांग्रेस कमेटी के चुनाव के समय यह तय हुआ कि अध्यक्ष रीवा से एवं आम चुनाव कमेटी का संयोजक बुन्देलखण्ड से हो, किन्तु इसका पालन नहीं किया गया। अत: उपर्युक्त तथा अन्य कारणों से गोपालशरण सिंह ने 12 नवम्बर 1948 को मंत्रिपरिषद से त्यागपत्र दे दिया।

विन्ध्यप्रदेश के अस्तित्व में आने के बाद नागौद की स्थिति का उल्लेख इसलिए अनिवार्य है कि यह नगर राज्य की राजधानी रहा है और सदियों तक विन्ध्य ही नहीं बुन्देलखण्ड को भी राजनीति को प्रभावित करता रहा है। विन्ध्य प्रदेश (बुन्देलखण्ड) के अस्तित्व में आने के बाद नागौद राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री शिवशंकर प्रसाद सिंह को एडमिनिस्ट्रेटर बनाया गया। बाद में नागौद को जिले का रूप प्रदान किया गया, जिसके कलेक्टर शिवशंकर प्रसाद सिंह नियुक्त किए गए। इस जिले में 5 तहसीलें अजयगढ़, पन्ना, नागौद, मैहर, शिवरामपुर (चित्रकूट) कायम की गई। बघेलखण्ड एवं बुन्देलखण्ड के 8 जिलों को मिलाकर 10 जुलाई 1948 को संयुक्त विन्ध्य प्रदेश का निर्माण किया गया, उसके बाद नागौद के स्थान पर सतना एवं पन्ना जिले हो गए और नागौद तहसील

की शक्ल में बदल दिया गया। विन्ध्यप्रदेश के राज प्रमुख रीवा नरेश महाराजा मार्तण्ड सिंह एवं उपराजप्रमुख पन्ना नरेश यादवेन्द्र सिंह बनाए गए। मुख्यमंत्री कप्तान अवधेश प्रताप सिंह नियुक्त किये गए और उनके मंत्रिमण्डल में थे सर्वश्री कामता प्रसाद सक्सेना, राव साहब शिवबहादुर सिंह, नर्मदा प्रसाद सिंह हारौल, चतुर्भुज पाठक, गोपालशरण सिंह, सत्यदेव विन्ध्य प्रदेश की राजधानी सेवा कायम की गई। 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू होने पर विन्ध्य प्रदेश को सी. स्टेट की श्रेणी में रखा गया। विन्ध्यप्रदेश में विधायकों की संख्या 60 निर्धारित की गई। 11 नवम्बर 1948 को गोपालशरण सिंह के त्यागपत्र के बाद संयुक्त विन्ध्य प्रदेश का मंत्रिमण्डल अधिक दिनों तक नहीं चल सका और 14 अप्रैल 1949 को सेवामुक्त कर्मचारियों की नियुक्ति तथा भ्रष्टाचार आदि आरोपों के चलते हुए उसे भंग कर दिया गया। श्री बनर्जी भारत सरकार की ओर से विन्ध्यप्रदेश के प्रशासक नियुक्त किए गए। 1 जनवरी 1950 को श्रीनाथ मेहता संयुक्त विन्ध्य प्रदेश के चीफ कमिश्नर नियुक्त हुए। उन्हीं के काल में इस प्रदेश को अन्य प्रदेश में मिलाने की बात चली। विलीनीकरण के इस प्रयास का व्यापक विरोध हुआ और हजारों आन्दोलनकारी जेल गए। अंततः विन्ध्यप्रदेश को पार्ट सी. राज्य का दर्जा दिया गया।

सन् 1952 में पहले आम चुनाव हुए और वयस्क मताधिकार को मान्यता दी गई। विन्ध्यप्रदेश में लोकसभा के 6 और विधानसभा के 60 स्थानों के लिए चुनाव हुए। नागौद क्षेत्र से विधानसभा के लिए चंदीदीन और गोपालशरण सिंह निर्वाचित हुए तथा लोकसभा के लिए शिवदत्त उपाध्याय विजयी हुए। ये सभी कांग्रेस की टिकट पर चुनाव जीते। 17 मार्च 1952 को पं. शम्भूनाथ शुक्ल के नेतृत्व में विन्ध्य प्रदेश की पहली और अन्तिम निर्वाचित सरकार बनी, क्योंकि 1 नवम्बर 1956 को विन्ध्यप्रदेश - मध्यप्रदेश में विलीन हो गया। विन्ध्यप्रदेश की निर्वाचित सरकार के सदस्य पं. शम्भूनाथ शुक्ल- मुख्यमंत्री, लालाराम वाजपेयी गृहमंत्री, दान बहादुर सिंह- उद्योग मंत्री, महेन्द्र कुमार मालव- शिक्षा मंत्री, गोपालशरण सिंह- न्याय एवं योजना मंत्री थे एवं शिवानंद विन्ध्य प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष चुने गए तथा उपराज्यपाल के पद पर के. संथानम् की नियुक्ति हुई। इस सरकार के काल में राज्य में अनेक लोक कल्याणकारी कार्य हुए। सिंचाई विभाग की स्थापना हुई तथा अनेक सिंचाई परियोजनाएं प्रारम्भ हुई। कई कृषि फार्म खोले गए और ग्राम सेवकों की नियुक्तियां हुई। किसानों को ट्रैक्टर उपलब्ध कराए गए। महिलाओं के कल्याण के लिए शोशल वेलफेयर बोर्ड और महिला समितियों का निर्माण किया गया। शहडोल का अमरकंटक धर्मल पावर स्टेशन, अमलई का कागज कारखाना और सतना का सीमेन्ट उद्योग इसी काल में स्थापित हुए। केन का महलापुल, नौगांव का पोलिटेक्निक स्कूल और क्षय चिकित्सालय इसी समय निर्मित हुए। वा चित्रकूट, शहडोल- अमरकंटक तथा सिंगरौरीले आदि मानों का निर्माण इसी काल में किया गया। पं. शम्भूनाथ शुक्ल के नेतृत्व में बनी निर्वाचित सरकार का समापन 31 अम्टूबर 1956 को हुआ और 1 नवम्बर 1956 को विन्ध्य प्रदेश का अस्तित्व नवनिर्मित मध्यप्रदेश में विलीन हो गया।

विन्य क्षेत्र के विकास में जनपद काल से ही नागौद राज्य में उल्लेखित भू-भाग की भूमिका रही है। उत्तर से दक्षिण को मिलाने वाला महापथ (कान्तार पथ) इसी भू-भाग से गुजरता था और भरहुत इसका महाचत्वर था। हजारों की संख्या में सार्थवाह यहां जमा होते. थे और यहां से आवश्यक वस्तुएं, कलाकृतियां, साहित्य और संस्कृतियां विन्ध्य के विभिन्न अंचलों में पहुंचती थी। यहां तक की सत्ताजनित परिवर्तनों में इस भू-भाग का विशेष महत्व रहा, क्योंकि उत्तर या दक्षिण की विजय की कामना से चलने वाले योद्धाओं को इस क्षेत्र को विजित करना आवश्यक हो जाता था। नागौद राज्य कालंजर मंडल, केन घाटी, तमस घाटी और नर्मदा क्षेत्र के मध्य में स्थित होने के कारण चतुर्दिक को राजनैतिक, सामाजिक, कलात्मक तथा आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करता रहा है। यही कारण है कि सन् 1857 में नागौद राज्य विद्रोहियों का केन्द्र बन गया था और अंग्रेजी हुकूमत को नौगांव के बाद नागौद में ही फौजी विद्रोह का सामना करना पड़ा था। बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड के केन्द्र में होने के कारण स्वतंत्रता संग्राम के दौर में नागौद राज्य का विशेष महत्व रहा है और सन् 1947 ई. तक यह क्षेत्र पुल की भूमिका निभाता रहा है। विन्ध्यप्रदेश के आर्थिक विकास की तथाकथा रेलवे लाइन के आगमन के साथ शुरू होती है और इस काम में नागौद का योगदान सबसे अधिक है। सन् 1857 में जब विद्रोह हो चुका था और नागौद के राजा राघवेन्द्र ने विद्रोहियों को कुचलने अंग्रेजी हुकूमत का साथ दिया था। उस समय पोलिटिकल असिस्टेन्ट ने अपने एक पत्र के माध्यम से राजा के सामने रेलवे लाइन का प्रस्ताव रखा था। उसके उत्तर में लिखा गया राजा राघवेन्द्र सिंह का पथ विन्ध्य के विकास की बुनियाद बन गया। यह पत्र 16 अगस्त 1863 को पोलिटिकल असिस्टेन्ट नागौद को राघवेन्द्र सिंह ने लिखा, जिसका मजमून इस तरह है ष्मुझे आपका खत प्राप्त हुआ जिसमें रेलवे के लिए जमीन देने के वास्ते मेरी राय निम्न शर्तों के आधार पर मांगी गई है -

1. सरकार द्वारा रेलवे के काम और भवन हेतु आपसे भूमि चाही जा रही है, जो हमेशा के लिए रेलवे अधिकारियों के अध ीनस्थ होगी। उस क्षेत्र के सभी वाशिन्दा, चाहे वे रियासत की प्रजा हो, चाहे वे ब्रिटिश शासन की प्रजा हो, वे सब रेलवे के अधिकार क्षेत्र में होंगे।
2. यह है कि यदि किसी प्रकार का झगड़ा अधिकारियों, कर्मचारियों और रियासत की प्रजा जो रेलवे क्षेत्र से बाहर रहते हैं, होता है तो उसका फैसला पोलिटिकल असस्टिण्ट द्वारा किया जाएगा।

चूंकि यह मामला रियासत की, हमारे इलाके को समृद्धि से संबंधित है और जनता के लाभ के लिए है, इसलिए उक्त शर्तों के आधार पर जितनी भूमि की आवश्यकता पड़ेगी, रेलवे के लिए और सड़क के लिए देने के लिए मैं राजी हूँ।

विकास को इस कड़ी में भी नागौद राज्य उत्तर-दक्षिण को मिलाने वाला चत्वर बना। रेलवे लाइन्स बिछी और सतना में स्टेशन स्थापित किया गया, जिससे विन्ध्य में भांति-भांति के उद्योग आए और यहां की खनिजों तथा उत्पाद का निर्यात तथा आवश्यक वस्तुओं का आयात सम्भव हो सका। नागौद राज्य कृषि और व्यापार में अग्रणी था। इस राज्य की उचेहरा तहसील जहां कलात्मक बर्तनों के लिए प्रसिद्ध थी, वहीं नागौद तहसील जैसी खेती विन्ध्य में अन्यत्र कहीं न होती थी और परसमनियां का वनप्रान्त भरपूर वनोपज तथा प्रचुर खनिजों के लिए जाना जाता था और दुरेहा की पहाड़ियों में इमारती पत्थर, चूने का पत्थर, गेरू तथा छुट्टी की खदाने थीं। ये सब आगे चलकर विन्ध्य के विकास में काम आय। राज्य के पिथौराबाद और जसो जैसे बड़े तालाब मत्स्य उद्योग स्थापित करने में कारगर साबित हुए।

शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में नागौद का विशेष योगदान रहा है। कंधरेश, रत्नेश और अखिलेश जैसे साहित्यकार इसी राज्य में हुए। जैन ग्रंथों के प्रसिद्ध कवि धन्य कुमार जैन श्सुधेशश नागौद के ही निवासी थे। पं. शिव गोविन्द गर्ग ने इसी राज्य में रहकर संस्कृत काव्य रचे और संस्कृत ग्रंथों की टीकाएं की।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रतिहार राजपूतों का इतिहास, पृष्ठ 5, रामलखन सिंह.
2. अब्दुल रहीम खां से साक्षात्कार के आधार पर.
3. ट्रीटीज इंगेजमेण्ट्स एण्ड सनट्स- एचिसन खण्ड-5, पृष्ठ 236 से 265, पत्र XIII.

मनोहर श्याम जोशी जी के उपन्यासों में आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकताः एक दृष्टि

उमेश कुमार यादव

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित् विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ0प्र0

हिन्दी में मनोहर श्याम जोशी का साहित्य उत्तर-आधुनिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उनकी रचनाओं की सबसे प्रमुख विशेषता केन्द्रीय प्रवृत्ति के निषेध का है। इसका अनिवार्य परिणाम बहुलता है। कथ्य एवं शिल्प दोनों स्तरों पर बहुलतावादी चिन्तन उनकी रचनाओं में नजर आती है। भदेस को स्वीकार करना एक ऐसी विशेषता है जो हिन्दी के समकालीन उत्तर-आधुनिक उपन्यासों में सिर्फ मनोहर श्याम जोशी सर्वाधिक बौद्धिक के रूप में, अनोखे शैलीकार के रूप में, प्रचलित शैलियों, मुद्राओं की तह तक जाने, वाले हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण साहित्यकार हैं। मनोहर श्याम जोशी उत्तर-आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में सबसे अधिक चर्चित रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।

जीर्ण और पुरातन को संशोधित, पूनर्मूल्यांकित करके उन्हें समयानुकूल बनाना भी आधुनिकता की परियोजना का हिस्सा है। इसका कारण नवीन जीवन-पद्धतियों की आकांक्षा एवं विचित्रता के प्रति स्वाभाविक आकर्षण है। आधुनिकता में एक ओर जहाँ नवजीवन के विकास एवं नये प्रयोगों के प्रति आग्रह है वहीं दूसरी ओर रूढिघ्यो के प्रति नकारात्मक भाव भी विद्यमान है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने प्रकृति के रहस्यों पर से पर्दा उठाकर आधुनिकता का दर्शन कराया है। मानव जीवन में और साहित्य-जगत में बहुत से प्रतिगामी परिवर्तन आधुनिकता के कारण आये, जिससे अंधकार की दुनिया से बाहर निकलकर साहित्य और मानवता प्रकाश में आ खड़े हुए। परन्तु कालान्तर में इस आधुनिकता के दोष उभरकर सामने आने लगे। विदेशी संस्कारों के जन्म, नितांत वैयक्तिकता के निर्घोष एवं स्वतंत्रता की माँग की अनुपस्थिति ने आधुनिकता की सीमाओं को स्पष्ट कर दिया। मानसिक सुखों में वृद्धि करने के बावजूद आधुनिकता ने मनुष्य की मानसिक शांति को भंग कर दिया। घबराहट, शंका, त्रास, असुरक्षा के भावों से युक्त दुर्गुणों के विकास के कारण मानवीय गुणों का पतन होने लगा। कैलाश बाजपेयी ने लिखा है कि "आधुनिकता जब पतनोन्मुख होती है तब या तो फिर सनकी हो जाती है दम्भी! दिव्यता के स्थान पर आधुनिकता ने मनुष्य को प्रतिष्ठापित करने का कष्ट तो किया था, मगर काल के प्रवाह में मनुष्य पशु अधिक सिद्ध हुआ। आस्था का एक हरा-भरा खेत जो राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, प्रतिबद्धता और वीरों की गौरव गाथाओं के रूप में लहलहाया करता था, वह धीरे-धीरे बंजर हो चुका था। युद्ध के दिनों में वही आधुनिकता सारे सिद्धांतों को तिलांजलि देकर अणुबम गिरा चुकी थी।

आधुनिकता के प्रति इसी मोह भंग से उत्तर-आधुनिकता का उद्‌भव होता है। उत्तर-आधुनिकता ने मानवतावाद, समसामयिक मूल्यों, पूंजीवाद, सार्वभौमिक सत्य, मार्क्सवाद, मौलिकता एवं केन्द्रवाद और आधुनिकतावाद के महाख्यानों को चुनौती दी और उनका विखण्डन किया। उसने जाति, वर्ग, धर्म, संप्रदाय, राष्ट्र, लिंग आदि से सम्बन्धित परम्परागत एवं ऐतिहासिक अवधारणाओं को समस्यापूर्ण बताकर उसे सुलझाने का प्रयत्न किया। उसने समग्रतावादी विचार धारा का विरोध करते हुए बहुलतावाद का समर्थन किया। उसने जन संस्कृति, लोक कला, विविधता, स्त्रीवाद एवं अप्रतिनिधित्व को प्रतिनिधित्व प्रदान करने का समर्थन किया। उत्तर-आधुनिक युग में उपभोक्ता मूलक संस्कृति, बाजारवाद, पूँजीवाद की नई व्यवस्था, इलेक्ट्रानिक मीडिया के बढ़ते प्रभाव विघटित होते राजनीतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों आदि के कारण काफी परिवर्तन उत्पन्न हुए। इसमें समग्रतावादी, सार्वभौमिक सत्यों का नकार, तर्कवाद का नकार और आधुनिकतावाद की सक्षमता का विरोध मिलता है। गिरीश्वर मिश्र का कथन है कि "उत्तर आधुनिकता के युग में मानव की भौतिक विज्ञान और साहित्य को एक-दूसरे से अलग करने वाली सीमाएँ टूट रही हैं और सिद्धांत तथा तथ्य व्यवहार

और भाषा तथा संस्कृति और जीवन के बीच कृत्रिम भेद समाप्त हो रहे हैं। वस्तु निष्ठता और चिंतन की क्षमता के प्रति श्रद्धा का आधुनिकतावादी दौर बीत रहा है। मानवीय विमर्श का क्षेत्र व्यापक हो रहा है और ऐसा करते हुए ऐसे तमाम मुद्दे, प्रश्न और दृष्टियाँ जिन्हें काफी अप्रासंगिक करार दिया गया था पुनः सार्थकता ग्रहण कर रहे हैं।

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की ओर अभिसरण को लक्षित करते हुए एवं आधुनिकता को नये ढंग से दिखाने और बरतने की बात करते हुए सुधीश पचौरी जी ने लिखा है कि "इस संबंध में सबसे पहला और जबर्दस्त प्रयोग मनोहर श्याम जोशी ने 'कुरू कुरू स्वाहा' नामक उपन्यास से शुरू किया था। इसमें चले आते कथानक को तोड़-फोड़ दिया गया था चरित्रों को आजाद कर दिया गया था वस्तुतः मनोहर श्याम जोशी ने जीवन की संक्रमित दशा को उत्तर आधुनिक दृष्टिकोण से समझाने का प्रयास किया है। उनके उपन्यासों में अतीत से वर्तमान की ओर अभिसरण लक्षित होता है। आधुनिकता अतीत की पुनर्व्याख्या कर उसे अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करती है परन्तु उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता की अतीत संबंधी इस पुनर्व्याख्या को एक खिलौना बना डालती है वह अतीत को मनोरंजक बताकर उसे पुण्य एवं उपयोग की सामग्री बना देती है। और इस प्रकार अतीत की भव्यता एवं महावृतांत को नष्ट करते हुए उसका पुनुरूत्पादन करती है। आज आधुनिकता के कारण जीवन में चकाचौंध में भ्रमित होकर मनुष्य अपनी आत्म शक्ति खो चुका है। उसके जीवन में संघर्ष, द्वन्द्व एवं निराशा के परिव्याप्त हो जाने से उसकी मनःस्थिति अत्यंत कमजोर हो गई है। परिस्थितियों के सामने घुटने टेक कर वह सफलता से दूर होता जा रहा है। अत एव उसे अपना आत्म सम्मान प्राप्त कर वाह्य शक्तियों की गुलामी से बचने का प्रयत्न करना वक्त की माँग बन चुकी है। मनोहर श्याम जोशी ने अपने 'कसप' उपन्यास की पात्र बेबी के माध्यम से मनुष्य की खोई हुई आत्मशक्ति को जागृत करने का सफल प्रयास किया है आधुनिकता के प्रभाव के फलस्वरूप आज मानव दुनियाँ को कठिन परिस्थितियों में उलझ कर दुःख और निराशा से भरा हुआ जीवन व्यतीत कर रहा है। जबकि प्रत्येक मनुष्य में शिवत्व का वास होता है, वह शव से शिव बनकर उनकी शक्ति को धारण कर अपनी सारी दिक्कतों को दूर कर सकता है। अपने अंदर निहित शक्ति से मनुष्य समस्त सृष्टि का कल्याण एवं संहार करने में सक्षम है। इस प्रकार यहाँ मनोहर श्याम जोशी जी ने पौराणिक कथा के सहारे अपनी उत्तर-आधुनिक दृष्टि का परिचय दिया है।

वर्तमान युग में प्रेम का स्वरूप काफी परिवर्तित हो गया है। शारीरिक भूख एवं वासना पूरित हृदय ने प्रेम में सफलता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। आज मनुष्य प्रेम में सफलता प्राप्त करने के स्थान पर अपने कर्म तथा जीवन वृत्ति को प्राथमिकता देने लगा है। वह अपने भविष्य तथा पेट की भूख को शान्त करने के उद्देश्य से समाज में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए व्यस्त है। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करने के लिए उसने प्रेम संबंधों की तिलांजलि दे दी है। कुछ प्राप्त करने के लिए कुछ खोना पड़ेगा भाव को अपने भाग्य का हिस्सा बना लिया है। मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'कसप' में उपन्यास का नायक अपनी प्रेमिका का प्रेम ठुकराकर अपना कैरियर बनाने में व्यस्त हो जाता है। चौबीस वर्षों के उपरांत जब उसकी प्रेमिका उससे पुनः मिलती है तो उसके हृदय में प्रेमिका के प्रति पुनः प्रेम भाव उमड़ने लगता है। अपने अतीत की वर्तमानता में खोकर वह अपने प्रेम की पुरानी सुनहरी यादों में डूब जाता है, परन्तु अब नायिका का विवाह किसी अन्य पुरूष के साथ हो चुका होता है। वह नायक से कहती है कि बार-बार तुम मेरे अयोग्य ठहरे, बार-बार मैं आ सकूँ इस सुंदर संसार में तुमसे पीछा करवाने के लिए। इस प्रकार जोशी जी ने प्रेम की असफलता के प्रकटीकरण के लिए उसकी एक नव परिभाषा रची है और आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की ओर पदार्पण किया है।

तृष्णाग्रस्त आज का मानव सदैव असंतुष्ट रहता है। उसकी इच्छाएँ पूर्ण तो होती हैं परन्तु उसमें उसे सन्तोष नहीं मिलता परिस्थितियों के कारण वह मनोवांछित परिणतियों तक नहीं पहुँच पाता, फलतः वह सदैव व्याकुल और चिन्ताग्रस्त रहता है। मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'कसप' का पात्र डी0डी0 की भी यही दशा है। वह सफलता एवं प्रसिद्धि प्राप्त करने के बाद भी अपनी उपर्युक्त मानसिक दशा के कारण रोने लगता है ऐसा तो नहीं कि यह अपनी प्रस्तावित फिल्म की पटकथा के इस मुद्दे से सुखी होकर रो रहा है कि बच्चा देबिया भविष्य है और अधेड़ देवीदत्त अतीत? अगर भविष्य का एक नाम सब की तरह की स्वाधीनता है तो क्या उसका दूसरा नाम कपोल-कल्पना है।

मनोहर श्याम जोशी के प्रथम उपन्यास 'कुरू कुरू स्वाहा' ने आधुनिकता के सौंदर्यशास्त्र को अपने प्रकाशन के साथ ही न केवल ध्वस्त किया वरन् पाठक की अभिरूचि एवं आस्वादन की प्रक्रिया एवं दिशा को भी नया स्वरूप प्रदान किया। उनकी धारणा यह है कि इस दौर में सत्य एवं यथार्थ के कई स्तर एक साथ गतिशील हैं एवं बहुधा वे विरोध मूलक संरचना में भी हो सकते हैं अतः इस यथार्थ को व्यक्त करने के लिए पुराना आधुनिक 'दर्पणवाद' ने केवल असमर्थ है बल्कि वह एक छलना भी है। अतः कथा

की वैधानिकता की रक्षा उत्तर-आधुनिकता के साथ जुड़कर ही संभव है। इसलिए 'कुरू कुरू स्वाहा' में जोशी जी ने उत्तर आधुनिक स्थितियों को सत्य के आधुनिक प्रतिनिधान के विखण्डन के द्वारा पैदा की है। सत्य की एकरूपता एवं उसकी प्रतिनिधि छवि इस उपन्यास में संकटग्रस्त है। उन्होंने इस उपन्यास के कथा विन्यास का ऐसा खुला एवं क्रीड़ा युक्त रचना की है जिसमें चरित्र एवं कहानी अपनी-अपनी भंगिमा में क्रीड़ा करने के लिए स्वतंत्र हैं। यहाँ आधुनिक यथार्थवाद खंडित होकर छितरा जाता है, और उत्तर आधुनिक खिलंदड़ीसब तरफ फैलने लगती है जिसके कारण इसमें बुद्धिजीवी नायक के तीन स्तर, पहुँचेली नायिका के हजार 'रूप' कहानी में किससागोई और किस्सागोई में सतत् जाग्रत अनिकेत जिज्ञासा प्राप्त होती है और उसी के अनुरूप प्रत्येक पाठक का अपना भवितव्य हो जाता है। इस उपन्यास में 'पहुँचेली' के चरित्र के माध्यम से मनोहर श्याम जोशी जी ने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि सत्य या यथार्थ एक स्तरीय या अद्वितीय नहीं होता बल्कि वह होता ही नहीं है। सत्य एक दृष्टि है, एक 'विजन' है। इसी कारण से सत्य अनेक कोणीय और बहुलतावादी होता है। सत्य को जानना बहुत कठिन है। जोशी की इस दिलचस्पी के जवाब में पहुँचेली पतुरिया कहती है कि जिसके बारे में तुम्हें जिज्ञासा है, वह स्वयं जिज्ञासा है। जिसके लिए तुम भटक रहे हो वह स्वयं भटकन है। जो भी गुण, जैसी भी किया तुम्हें अपेक्षित हो, उसी हिसाब से मेरी कल्पना कर डालों। इस तरह यह जिज्ञासा, यह भटकन, यह हिसाब, सत्य अथवा यथार्थ की किसी भी किसी प्रकार की एक रैखिकता और 'पक्केपन' को भंग कर देता है और उस विश्व जनीन समग्रतावाद को टुकड़े-टुकड़े कर देता है जो आधुनिकतावाद की केन्द्रीय शक्ति है। 'कुरू-कुरू स्वाहा' का पात्र 'मैं' इस उपन्यास की कथा पर प्रकाश डालता है कि इसमें "एक होता है वह और पता नहीं वह साला वह होता है कि नहीं। एक होती है वह और पता नहीं वह साली वह होती है कि नहीं और फिर कुछ होता है और पता नहीं क्यों लगता साला यही है कि कुछ हुआ ही नहीं। इसमें यह 'साला कुछ होना और फिर नहीं होना' ही इस उपन्यास में इस उद्देश्य पूर्ण भ्रम की रचना करता है जिसमें हर प्रकार का यथार्थवाद गायब हो जाता है। अस्तित्ववाद स्वाहा हो जाता है और विचारधारात्मक यूटोपिया सिनिकल। विचारधारा या किसी भी प्रकार का आधुनिकतावादी महावृतांत यहाँ वह ढोल है जिसकी पोल उपन्यास में खोली जाती है। इसमें आधुनिकतावादी यूरोपिया के छलावे में न तो कथा का मुख्य पात्र आता है और न ही उपन्यासकार। मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की ओर अभिसरण हेतु संदेह को एक प्रविधि के रूप में मुख्यत: ज्ञान और विचार के क्षेत्र में आधुनिकतावादी दर्शन एवं कथा की आधुनिकतावादी संरचना के विखण्डन के लिए उपयोग में लाया गया है। उनके उपन्यासों में संदेह आधुनिकतावादी सीमाओं को अभिव्यक्त करने के लिए इस्तेमाल किया गया है। मनोहर श्याम जोशी अपने प्रथम उपन्यास 'कुरू कुरू स्वाहा' में ही उपन्यास के हीरो के आधुनिक एक रैखिक पर्सनालिटी को 'मनोहर', 'मैं' एवं 'जोशी जी' के त्रिविमीय पर्सनालिटी के माध्यम से विखण्डित कर देते हैं। क्योंकि नये जटिल 'हाइपर वर्ल्ड' में मनुष्य का खुद का एक आयामी व्यक्तित्व उसके भीतर प्रक्षिप्त अनेक वंचनाओं, वृत्तियों एवं अपूर्णताओं द्वारा बँटा हुआ एवं संदेहयुक्त है। आज के उपभोक्तावादी एवं भोगमूलक समाज ने इसे और अधिक सघन एवं अनेक कोणीय बना दिया है। आज व्यक्तित्व की प्रत्येक प्रकार की तार्किकता, एकाश्मिकता एवं यथार्थता संदेह जनक एवं बँटी हुई है। इसी वजह से 'कुरू कुरू स्वाहा' का कथा नायक अपने 'थ्री-टियर' चरित्र में यदि तथाकथित 'ईंटलैक्चुअल'-बौद्धिक सिनिक है इसीलिए जोशी जी के उपन्यासों के कथानायक शुरू से ही निष्क्रिय, भीरू, निर्णय-दुर्बल, कुंठित और विदूषकीय मुद्रा वाले हैं। मनोहर श्याम जोशी ने अपने उपन्यासों में सर्वसत्तावादी तर्क से जूझते हुए संदेह के माध्यम से उसे स्खलित करते करते हुए स्वप्न देखने को पुन: सहज बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिए अपने उपन्यासों में उन्होंने आधुनिक विचारधाराओं की आलोचना की है एवं महावृतातों के प्रति संदेहपरक दृष्टिकोण अपनाया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में तर्क प्रेम और क्रांति के प्रत्येक प्रकार के आधुनिकतावादी वृत्तांतों को ध्वस्त किया है। उनके समस्त कथा-साहित्य में शुरू से अंत तक आधुनिकतावादी वृत्तांतों का नकार मिलता है। 'कुरू-कुरू स्वाहा' के खलीकनुमा मार्क्सवादी स्वांग में, 'कसप' के प्रेम में अब तक मान्य रूमानीवाद के जगह-जगह विरचित होने में, 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' में कथा के यथार्थवादी कथन के पुन: आख्यान में परिवर्तित हो जाने में, और 'हमजाद' में आधुनिकता के मानवतावादी दर्शन के भोगवादी एवं सुविधावादी विचार में बदलाव हो जाने में इत्यादि परन्तु उनका 'क्याप' उपन्यास इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है क्योंकि इस उपन्यास में आधुनिकता की मानवीय परियोजना की एक पूरी-की-पूरी एंटीथीसिस ही उन्होंने रच डाली है। इस उपन्यास में उन्होंने न केवल आधुनिकीकरण के नाम पर विश्व भर में फैले हुए उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद पर से ही पर्दा उठाया है वरन् अन्य अनेक तरह के आधुनिक प्रगतिशील दर्शनों जैसे-मार्क्सवाद, नेहरू माडल, गांधीवाद, समाजवाद, उदारवाद पर भी प्रश्नचिन्ह लगाया है। आधुनिकीकरण के विकास-इंजन ने किस तरह प्रकृति की निर्दोष संपदा का दोहन किया है एवं उसका भी मनुष्यों की तरह उपनिवेशीकरण किया है इसे 'क्याप' उपन्यास में रिसन एवं

फस्कियाघर की कहानी द्वारा उपन्यासकार ने दर्शाया है। प्रकृति-विमर्श के साथ-साथ उत्तरा और दलित नायक रमुआ की प्रेमकथा के माध्यम से उन्होंने इस उपन्यास में स्त्री विमर्श एवं दलित विमर्श को भी स्थान दिया है। वस्तुतः उत्तर आधुनिकतावाद ने आधुनिकतावादी महावृत्तांतों को अस्मिता परक विमर्शों के माध्यम से विस्थापित किया है इसी वजह से जोशी जी के उपन्यासों में अस्मिता विमर्श इतने महत्वपूर्ण होकर सामने आये हैं, स्त्री विमर्श एवं दलित विमर्श को प्रस्तुत करता हुआ 'क्याप' उपन्यास का यह अंश दृष्टव्य है क्याप के दलित प्रेमी की विडम्बना यह है कि मर्द होते हुए भी मैंने सीमा का अतिक्रमण करने की दिशा में अपनी ओर से कोई पहल नहीं की। शायद इसलिए की मेरी क्रांतिकारिता मेरे मन में बहुत गहरे पड़े ब्राह्मणों के आतंक के सामने नगण्य ठहर रही थी। मैं किसी भी ब्राह्मण कन्या को बिगाड़ने की दिशा में पहल करने का दुस्साहस स्वप्न में भी नहीं कर सकता था। इस प्रकार जोशी जी ने यहाँ संदेह की सृजन धर्मिता एवं सृजन सापेक्षता दोनों को स्पष्ट किया है।

मनोहर श्याम जोशी जी मनुष्यता के संदर्भ में, उच्च भू संस्कृति एवं निम्न भू संस्कृति के कृत्रिम विभाजन के संदर्भ में, कथा को एक पाठीय तान के संदर्भ में मनुष्य अथवा प्रकृति के किसी भी संदर्भ में स्तरीकरण का विरोध करते हैं। वे अश्लील, भदेस, देशीय आदि को प्रस्तुति योग्य मानते हुए आधुनिकतावादी अभिजाल सौंदर्य अभिरूचियों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। अप्रस्तुति योग्य की प्रस्तुति को संभव मानते हुए वे आधुनिकतावादी नीतिशास्त्र को संदेहयुक्त समझते हैं। उनके उपन्यासों की कथाएं तर्क की जगह संयोंगों से निर्मित हुई हैं। इसी कारण जोशी जी के उपन्यासों में आधुनिकतावादी-विधेयवादी औपन्यासिक संरचना टूटकर बिखर जाती है और आख्यान कथा शैली का उपयोग संभव होता है। जहाँ संयोगों का रहस्य अंत तक भेदा नहीं जा सका है। इसने मानवीय तर्क एवं विचार शक्ति की किसी भी प्रकार की सक्षमता को संदेहपूर्ण बना दिया है। इस प्रकार मनोहर श्याम जोशी जी ने अपने उपन्यासों में आधुनिकतावादी मनुष्य की तर्कशक्ति, मेधा और सृजनात्मकता, बाजारवाद और नव-साम्राज्यवाद की शक्तियों को संदेह की डिकंस्ट्रक्टिव प्रविधि के द्वारा ध्वस्त करते हुए उत्तर-आधुनिकता की ओर अभिसरण किया है।

सदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. उत्तर आधुनिकताः उत्तर संवाद-संपा0-मुक्ता-गिरीश्वर मिश्र-नमन प्रकाशन नई दिल्ली-प्र0 सं0 2006
2. सुधीश पचौरी-उत्तरयथार्थवाद, (दिल्ली-वाणी प्रकाशनः प्र0 सं0-2004)
3. 'कसप' मनोहर श्याम जोशी-राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली तृतीय संस्करण- 2007.
4. कुरू कुरू स्वाहा-मनोहर श्याम जोशी-राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली प्र0 सं0-2001.
5. 'एतद् वैतत्' के 'नेति-नेति' होने पर ललित कार्तिकेय-समकालीन भारतीय साहित्य अक्टूबर-दिसम्बर 1994.
6. हरिया हरक्यूलिज की हैरानी-मनोहर श्याम जोशी, किताब घर नई दिल्ली 1994.

कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में अर्थ व्यवस्था

डॉ० गौरव कुमार

प्रवक्ता संस्कृत विभाग, झम्मन लाल पी0जी0 कॉलिज हसनपुर- अमरोहा (उ०प्र०)

प्राचीन काल से समाज का उत्कर्ष मनुष्य के आर्थिन जीवन की सम्पन्नता और समुन्नति पर निर्भर रहा है। व्यक्ति का भौतिक एवं सांसारिक सुख भी उनके आर्थिक विकास से प्रभावित होता है अतः भारतीय समाज का आर्थिक विकास 'पुरूषार्थ चतुष्ट्य अर्थात (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) के जीवन-दर्शन के माध्यम से हुआ है जिसमें 'अर्थ' भी एक मुख्य तत्व है। प्रायः व्यक्ति की मनःकांक्षा अनेकानेक वस्तुएँ प्राप्त करने की रही है जो अर्थ के बिना असम्भव सी-प्रतीत होती है। इसलिए हिन्दू धर्मशास्त्रकारों ने पुरूषार्थ के अन्तर्गत अर्थ की नियोजना की । समय-समय पर मनुष्य के अर्थ अर्जित करने के साधन परिवर्तित होते रहे किन्तु आर्थित जीवन का मूलाधार कृषि और व्यापार बने रहे। धर्म और अर्थ को एक एक दूसरे का पूरक माना गया है निघण्टु कार ने सुख-सुविधाओं का मूल धर्म माना है एंव धर्म का मूल अर्थ कहा है-

सुखस्य मूल धर्मः। धर्मस्य मूलम् अर्थः।।[1]

अर्थ मनुष्य के सुख-भोग, अरोग्य और धर्म का मुख्य तत्व रहा है इसलिए मनुष्य स्वाभाविक रूप से अर्थ की ओर आकर्षित रहा-

"धनात् धर्मः ततः सुखम्[2]

अतः सभी प्रयोजनो की सिद्धि धन से ही होती है-

'अतः सर्व प्रयोजन सिद्धि च अर्थ।'

अर्थ को धर्म का आधार भी माना गया है क्योकि इससे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता होता है। तथा अर्थविहीन व्यक्ति को ग्रीष्म की शुष्क सरिता के समान बताया गया है-

अर्थेन हि विहीन पुरूषास्याल्पमेधसः।
विच्छिधन्ते क्रिया सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो तथा।। महाभा0/ 12/08/18

कौटिल्य भी (पुरूषार्थो) धर्म,अर्थ और काम में अर्थ को ही मुख्य मानते है तथा धर्म और काम को अर्थ पर निर्भर मानते है। अर्थ एंव प्रधान इति। अर्थ मूलौ धर्म-कामौ। अर्थशास्त्र कौटिल्य ने चतुः विद्याओं में अन्वीक्षकी त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति को रखा तथा 'वाता' के अन्तगर्त कौटिल्य ने ''कृषि पाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता[4] कहकर कृषि, पशुपालन तथा व्यापार को ही अर्थ के मुख्य साधन के रूप में प्रस्तुत किया।

कृषि-मनु ने व्यावहारिक ज्ञान के लिए वार्ता को प्रमख माना है-'वार्तास्तम्भंश्च लोकतः[5]

कौटिल्य ने भूमि को दो भागों में बॉटा 1. खेती योग्य भूमि 2. ऊसर भूमि।[6] खेती योग्य भूमि को 'सीता'[7] कहा जाता था। खेतों मे तिल मूँग, उडद, गेहूँ, चावल, लोभिया[8] उगाये जाते थे खेती वर्षा पर निर्भर नही थी। सिचाई के लिए नादियों पर बड़े-2 वॉध बनाये गये तथा वर्षा का जल इक्ठ्ठा करने के लिए बड़े-बड़े जलाशयों का निर्माण किया गया था[9] किसानों से भूमि का कर भी लिया जाता था। कृषि भूमि के लिए राजा ने अनेक नियम बनायें, यदि कोई किसान खेती योग्य भूमि पर खेती नही करता तो राजा इस किसान से भूमि लेकर दूसरे किसान को दे। किसान के न मिलने पर कृषि योग्य भूमि को किसी गॉव के मुखिया पा व्यापारी को दे दि जाती थी। यदि वह व्यक्ति उस भूमि पर खेती नही करता था तो उससे उसका हर्जाना बसूल किया जाता था।10 खेती करने का मुख्य साधन-बैल था बैल-हल से ही खेती की जाती थी।[11]

खेती करने के लिए राजा किसानों को अन्न, बीज, बैल धनादि उपलब्ध कराता था तथा किसान फसल करने पर सभी उधार ली गई वस्तुओं को राजा को लौटा देते थे। राजा किसानों के स्वास्थ्य पर भी धन खर्च करता था जिससे वे स्वस्थ तथा निरोगी रहे। फूल फल केला, सुपारी,अन्न के खेत,अदरख और हल्दी के खेत इन सभी को 'सेतु:' कहा जाता था।[12] सेतु: 'के सकेत से पता चलता हैं कि उस समय अनेक प्रकार के फल, जैसे आम-अनार, ऑवला, नीबू बेर, उन्नाव, फालसा जैसे फलों की खेती भी कि जाती थीं। गन्ने की खेती तथा जीरा, मिर्च, चिरायता, सफेद सरसों, धनियॉ मैनफल जैसे मसालों की खेती भी की जाती थी।[13] ऊसर भूमि को यदि कोई किसान उपजाऊ बना लेता था तो वह उस भूमि का स्वामी हो जाता था[14] ऊसर भूमि पर ही पशुओं के लिए चरागाहें बनाई जाती थी[15] कृषि के लिए कृषि विभाग अलग से बनाया गया था जिसका अध्यक्ष 'सीताध्यक्ष'[16] कहलाता था। वह कृषिशास्त्र, शुल्बशास्त्र तथा वृक्ष विज्ञान की जान कारी लेकर विविध विशेषज्ञों की सहायता से समयनुसार अन्न, फल, फूल, कंद-मूल तथा जूट कपासादि के बीजों का संग्रह करने नौकरों दासों तथा परिश्रमिकों से ऐसी भूमि पर कृषि करवाता था जो कई बार जोती गई हों।[17]

फसलों के बोने का सही समय तथा वर्षा का अनुपात सभी का वैज्ञानिक आधार पर विवेचन किया गया है[18] साठी या धान, गेंहू,-जौ-ज्वार (ब्रीहि),कोदो, तिल, कांगनी प्रियंगु और लोभिया आदि को वर्षा शुरू होने से पहले ही वो देना चाहिये। मूंग, उडद, और हीमी आदि को वर्षा के मध्य में बोना चाहिए। कुसंबी मसूर, कुल्थी, जौ,गेंहु, मटर, असली और सरसों की फसल को वर्षा के अन्त में बोना चाहिये।[19] पेठा कद्दू, ककडी, तथा तरबूज के बोने के नदी के किनारों की भिूम उपयोग मानी गई है।[20] ईख के लिए वह जमीन उपयुक्त है जहाँ नदी का तल एक बार धूम गया हो। साग-सब्जी वौने के लिए कुएँ के आस-पास की जमीन अच्छी मानी गई। इस प्रकार अन्य फसलों के बोने के लिए सही जमीन का विस्तार से वर्णन कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया।[21] इसी प्रकार आम तथा कटहल के बीज बोने का सही उपाय का वर्णन भी किया गया है।[22] खेतों के रख-रखाव के लिए ग्वाले-नौकर आदि की व्यवस्था की गई। अनाज को रखने के लिए अन्नागार की व्यवस्था भी की गई थी जो अन्न के हिसाव से सुरक्षित स्थानो पर बनाये गये थे।[23] फसलों के हिसाब से खेती की जमीनें को भी बाँटा गया था।[24] इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है। कौटिल्य कें अर्थव्यवस्था का एक मुख्य आधार कृषि भी थी।

पशुपालन- आर्य काल या वैदिक काल से ही पशु एवं मानव का अभिन्न संबध रहा है। पशु के बिना मानव अधूरा था तथा वह पूर्ण रूप से पशुओं पर ही निर्भर था। जीवन यापन तथा कृषि करने के लिए पशुओं का महत्व मानव जीवन में बहुत अधिक था। अथर्ववेद में पशुओं की वृद्धि, उनका अभ्युदयशील, नीरोग तथा उनके सुख पूर्वक सन्तान उत्पन्न करने की कामना की गई है।[25] ऋग्वेद में भी पशुओं के लिए प्रार्थना की गई है कि हे परमेश्वर! तू हमें गौ व अश्वों सहित प्राप्त हो।[26] हमारा यह कोष गायों, घोड़ों, और सम्पदा से परिपूर्ण हो।[27] वैदिक ऋषि कामना करता है कि गौओं तुम हमें घृत, दूध, मक्खन से युक्त करो।[28] उपनिषद् काल में गौ, हाथी, अश्व को महिमामय माना गया।[29] इसके अतिरिक्त गाय को विनिमय का माध्यम भी माना गया।[30] उस समय भेड़, बकरी आदि का प्रयोग दूध, माँस, ऊन, के लिए किया जाता था।[31] ऊन का प्रमुख त्रोत होने के कारण भेड़ को 'ऊर्णावती' कहा गया।[32] मनुस्मृतिकार ने गाय के अतिरिक्त घोड़े को भी पवित्र 'पश' माना तथा।[33] गाय, अश्व, ऊँट एवं बकरी, कुत्ते, सुअर को मारने के लिए अर्थ दण्ड तक का विधान किया।[34] कौटिल्य कालीन या गुप्त कालीन समाज-आते आते गों, भैस आदि पशुओं की देखरेख के लिए अधिकारी नियुक्त किये जाने लगे जिसे 'गोऽध्यक्ष'[35] अर्थात् पशु विभाग अध्यक्ष कहा जाता था 'गोऽध्यक्ष' अर्थात् पशु-विभागाध्यक्ष के द्वारा अनेक प्रकार की गायों को 8 उपायों में बाँटा गया- 1 वेतनीपग्राहिक 2 करप्रतिकर 3. भग्नोंत्सृष्टक 4. भागानुप्रकवष्टक 5. ब्रजपर्यग्र 6. नष्ट 7. विनष्ट 8. क्षीरघृतसञ्जात।[36]

गायों को पालने वाला 'गोपालक। भैसों को पालने वाला 'पिण्डारक' गाय, भैस को दुहने वाला 'दोहक' दही को निकालने वाले को 'लुब्धक' कहा जाता था।[37] गायों की स्थिति और उनके दूध, घी के अनुपात से ही गोपालकों को वेतन या घी दूध में भाग दिया जाता था।[38] चोरों से पशुओं की रक्षा करने के लिए सरकारी चरागाहों का प्रबंन्ध भी किया गया था तथा पशुओं की आदमनी का दसवॉ भाग राजा को दिया जाता था।[39] बछड़ो के भी 6 प्रकार बताये है-1 दूध पीने वाला बछडा, 2 बडा बछडा, 3 कृषि योग्य बछड़ा (दम्य), 4 बोझा ढोने वाला साँड (बहिनो), 5 बिना बधिया किया हुआ साँड़ और हल जोतने योग्य बैल।[40] इसी प्रकार भैसें भी चार प्रकार के होते थे 1. जुवा, हल तथा गाड़ी में जोते जाने योग्य भैस, 2. (वृषभा), 3.मांस के उपयोग में आने वाले

(सूना-महिषा), 4. बोझा ढ़ोने योग्य।[41] गायों तथा भैसों भी सात प्रकार की होती थी।[42] बछड़ों,गायों तथा भैसों को राजकीय मुहर या लोहे के गर्म छल्लों से दागकर उनका विशेष चिहनों के साथ राजकीय रजिस्टर में भी उल्लेख होता था।[43]

गोपालको का यह भी कर्तव्य था कि वह बीमारी या बुढापे से मारे गये पशु की सूचना अध्यक्ष को दे। गाय भैस के अतिरिक्त उस समय बकरी, भेड, घोडा, ऊँट, कुत्ते तथा सुअर के पालने के संकेत मिलते है।[44] गाय ,भैस, बकरी तथा भेड के दूध से प्राप्त घी के अनुपात का भी विस्त वणर्न प्राप्त होता हैं।[45] पशुओ को दिये जाने वाले हरा चारा, भूसी, सानी, नमक, तेल तथा उदड़ आदि को कार्य शाक्ति तथा दूध-धी उत्पाद के अनुपात से गाय, भैस, घोडे, बैल, गधों के आहार की उत्तम व्यवस्था की गई थी।[46] घोडो के लिए अलग से 'अश्वाध्यक्ष' होता था जो उपहार मे प्राप्त, खरीदे हुए ,खरीदे हुए, युद्ध मे प्राप्त, अपने यहाँ पैदा हुए, बदले में प्राप्तदि सभी प्रकार के घोड़ां को उनकी नस्ल, रंग, उम्र, चिह्नादि का विवरण अपने रजिस्टर में रखता था।[47] घोड़ों की लंबाई-चौड़ाई और संख्या के हिसाब से अस्तबल या घुडसाल बनवाये जाते थे।[48] घोड़ों की उम्र, कार्य-शान्ति तथा नस्ल के हिसाब से उनके चारे का उत्तम प्रबन्ध किया गया था।[49] बीमार घोड़ो की उत्तम-चिकित्सा व्यवस्था भी वैद्यों के द्वारा की जाती थी।[50] काबुल, सिंध, आ्रर तथा अरब देशो के घोडे उत्तम श्रेणी के व्यास, सतलज के मध्यवर्ती प्रदेश (बाहलीकर) पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त (पापेयक), राजस्थान तथा तितल देशों में उत्पन्न घोडेः मध्यम श्रेणी के तथा अन्य सभी घोड़े अधम श्रेणी के होते थे।[51] श्रेणी के हिसाब से ही घोडों को युद्धकार्यो तथा साधारण सवारी अदि कार्यो मे उपयोग किया जाता था।[52] घोड़ों की चालों का विस्तृत वर्णन भी अर्थशास्त्र मे प्राप्त होते है।[53] घाड़ो के विभिन्न अंगो के लिए विभिन्न प्रकार के आभूषणों की व्यवस्था होती है।[54]

हाथियों की देख-भाल एवं रख-रखाव के लिये अलग से' हस्त्यध्यक्ष[55] अर्थातृ गजशाला का अध्यक्ष नियुक्त किया गाया था। वह हाथियों की लम्बाई-चौडाई के अनुसार गजशाला का निर्माण कराये तथा उनके भोजन आदि की व्यवस्था करे।[56] तथा उत्तम, मध्यम तथा सांकर्य लक्षण प्रकट होने वाले हाथियों को युध्द सम्बन्धि कार्यो में लगाया जाये। कार्य-भेदानुसार हाथियों को चार श्रेणियों में बायँ गया हैं-1 दम्य (शिक्षा देने योग्य) 2 सान्नह्य (युद्व के योग्य) 3 औपवाह्य (सवारी के योग्य) 4 व्याल घातक वृत्ति वाले)[57] इन चारों का भी अनेक वर्गो में वर्गीकरण किया गया हैं।[58] हाथियों की देखभाल के लिए गजशाला अध्यक्ष अनेकं कर्मचारीयों को नियुक्त करता था- जिसमें गजवैध, गजाशीक्षक, गजारोही, गजसंबंधी शास्त्रोक्त विधी का ज्ञाता, गजरक्षक, नहलाने-धुलाने वाला, खाना बनाने वाला, चारा देने वाला, बॉधने वाला, गजशाला का रक्षक आदि प्रमुख हैं।[59] इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पण्ट है कि गाय, हाथी, घोडें के लिए विशेष व्यवस्था थी तथा अन्य पशुओं के लिए भी उत्तम प्रबन्ध किया गया था।

उद्योग एवं व्यापार- उद्योग एवं व्यापार उस समय विकसित अवस्था में पहुँच चुके थे। खनिज उद्योग, वस्त्र उद्योग, आबकारी उद्योग तथा अनेक उद्योग कर संग्रह अर्थव्यवस्था मुख्य साधन बन गये थे-

खनिज उद्योग- खनिज उधोग अपने चरम पर था। अनेक प्रकार के मोति, मणियाँ, हीरे, प्रवाल (मूंगे), स्वर्ण तथा चाँदी खनिज में मुख्य थे। मोती को दस स्थानों से प्राप्त किया जाता था।[60] तथा उनकी अनेक प्रकार की मालायें तथा आभूषण बनाये जाते थे।[61] मणियों को भी तीन स्थानों से प्राप्त किया जाता था। (1)कौर (2)मालेयक (3) पारसमुद्रक।[62] अनेक प्रकार की मणियाँ उस समय मिलती थी।। जिसमें मणियाँ वैदूर्य मणि, इन्द्रनीलमणि, स्फटिक मणि का विशेष स्थान था।[63] इन सभी मणियों को भी अनेक वर्गो में बाँटा गया था।[64] हीरे भी छः स्थानों से प्राप्त किये जाते थे।-(1)सभाराष्ट्रक (2)मध्यमराष्ट्रक (3)कास्तीरराष्ट्रक (4)श्रीकटनक (5)मणि मंतक (6)इन्द्रवानक।[65] मूगें भी दो स्थानों से प्राप्त होते थे-(1) आलकन्दक (2)वैवर्णिक [66]। इनके अलावा ताँबा सीसा तथा लोहा भी अलग-अलग प्रकार का अनेक खानों से प्राप्त किया जाता था।[67] रागा, नमक तथा क्षार भी बहुत मिलती थी।[68] खान का अध्यक्ष इन खनिज पदार्थो को धातु, शास्त्र, रसायन, पाकविधि तथा। मणियों के विशेषज्ञों से उनकी जाँच कराता था। खानों से खनिजों को निकालकर उनका सौधन कर फिर व्यापारियों को बेच दिया जाता था।[69]

इस प्रकार आय का एक मुख्य स्रोत खनिज पदार्थ थे। कोष की उन्नति खानो पर ही निर्भर थी कोष की समृद्धि से ही सेना शक्तिशाली होती थी इस पृथिवि को सेना और कोष से ही जीता जा सकता था।

आकार प्रभवः कोषादण्ड़ः प्रजायते ।
पृथिवी कोषदण्डाभ्यां प्राप्यते कोषभूषण ।।
अधि0-2/प्रक0-28/अध्याय-27/पृष्ठ-142

चमड़ा उद्योग- चमड़ा उद्योग भी समृद्ध था। चमड़े की 15 जातियों का वर्णन हमे अर्थ शास्त्र में मिलता है।[70] मुलायम, चिकना और अधिक बालों वाला चमड़ा उत्तम कोटि का होता था।[71] भेड़ का चमड़ा[71] तथा मृग की छाला भी अनेक प्रकार की होती थी[72] भेड़ की चमड़े तथा मृग की अर्थात खाल से अनेक प्रकार के वस्त्र बनाये जाते थे।[73]

वस्त्र उद्योग- वस्त्रों का व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में था। कपास के प्रयोग से सूत तैयार किया जाता था जो मधुरा, कौकण, कलिंग, वंग, काशी, वत्स और मैसूर मैं पैदा होती थी।[74] रेशम काशी, तथा पुंड्र में उत्पन्न होती थी जिनसे उत्तम दुशाले बनाये जाते थे[75] सुत तथा रेशम से अनेक प्रकार के वस्त्रो का निर्माण किया जाता था।[76] वस्त्रो को रंगने के लिए किंशुक, कुसुम्भ (कुसुम का फुल) केसर के फूलो का प्रयोग किया जाता है।[77]

आयुध उद्योग- उस समय आयुध उद्योग भी पूर्ण से विकसित हो चुका था। अनेक प्रकार के हथियार कुशल कारीगरों द्वारा तैयार किये जात। हथियार स्थित यंत्र, चलयान, हलमुख आदि वर्गों में विभक्त थे।[78] स्थित यंत्रों में सर्वतोभद्र (मशीनगन), जामदग्न्य, बहुमुख, विश्वासघाती, संघाटि, यानक, पर्जन्यक, बहुयन्त्र, ऊर्ध्वबाहु, अध्बाहु आदि हथियार आते थें।[79] चल यन्त्र 16 प्रकार के होते थे[80]। हल मुख अर्थात् भाले की तरह फेके जाने वाले हथियार भी अनेक प्रकार के होते थे-जिनमें शक्ति, प्रास, कुंत, हारक, भिण्डिपाल, शूल, तोमर, वारह, कर्ण, कणप, कर्पण त्रासिक प्रमुख है।[81] इसके अतिरिक्त धनुष-बाण, खड्ग, फरसा, कुलहाडा, द्विमुखी, त्रिशूल इनका निर्माण भी किया जाता था। लोहा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। अतः हथियार बनाने में लोहे का अधिक प्रयोग होता था। हथियारो की मूठ और अग्रभागों के लिए लोहा हडड्ी लकड़ी गैडे भैसे के सींग हाथी दांत तथा बांस का प्रयोग किया जाता था।[82] हथियारो से शरीर की रक्षा के लिए छः प्रकार के कवच बनाये जाते थे। इनके बनाने में लोहे चमडे सूत सींग बांस तथा लकड़ी का प्रयोग किया जाता था।[83]

आबकारी उद्योग-शराब व्यवसाय भी खूब प्रचलित था। इसके लिए राजा की और से आबकारी अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। जो शराब तैयार करवाता था। तथा शराब को एक बडे व्यापारी को दे दिया जाता था जो अनेक ठेकेदारों के द्वारा उस शराब को विकबाता था।[84] शराब कई प्रकार की होती थी जिसमें मेदक प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय तथा मधु प्रमुख थी[85] अनेक प्रकार की शराब बनाने के लिए चावल, सुराबीज (किण्व), वृक्षें कीह छाल, अनेक प्रकार के फल, गुड, पाठा, लोध, गजपीपल, इलायची, इत्र, मुलहटी, केशर, दारूहल्दी आदि वस्तुओं का प्रयोग किया जाता था।[86] शराब पीने के लिए शराब खानों की व्यवस्था भी की गई थी। तथा शराब खानों में अनेक नियम बनाये गये थे।[87]

इसके अतिरिक्त लकड़ी उद्योग,[88] हड्डी उद्योग,[89] इस्पात[90] तथा औषध[91] के कारखाने भी थे जो उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करते थें। उस समय लगभग सभी प्रकार के उद्योग विकसित हो चुके थे। कैटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में सभी वस्तुओं तथा वस्तुओं पर लगने वाले (शुल्क) कर का भी विस्तृत वर्णन किया है।[92]

विदेशों से भी आयात-निर्यात् होता था[93] राजकीय वस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिये अनेक नियम बनाये गये थे । जिसके लिये विशेष रूप से पुण्य अध्ययन को नियुक्त किया गया था।[94]

अतः उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्य के समय उद्योग तथा व्यापार आय का मुख्य त्रोत थे सभी उद्योगों से चुंकीकर तथा व्यापार कर लिया जाता था। साथ ही कृषि तथा पशुपालन भी उन्नत अवस्था मे थे इनसे भी आय होती थी। तीनों ने मिलकर एक सुदृढ तथा विकसित अर्थव्यवस्था का निर्माण किया।

सन्दर्भ सूचीः

1 निघण्टुः-1/2
2 निघण्टुः-2/10
3 महाभा0/ 12/08/18
4 कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र-अधि0-1/प्रक0-1/अध्याय-3 प्रकाशन-चौखम्बा विद्याभवन,संस्करण-2009
5 मनुस्मृति-7/43
6 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-17/अध्याय-1/पृष्ठ-78

7 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-22/अध्याय-6/पृष्ठ-99
8 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-31/अध्याय-15/पृष्ठ-160
9 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-17/अध्याय-1/पृष्ठ-79
10 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-31/अध्याय-15/पृष्ठ-78
11 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-31/अध्याय-15/पृष्ठ-78 तथा अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-40/अध्याय-24/पृष्ठ-195
12 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-22/अध्याय-06/पृष्ठ-101
13 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-31/अध्याय-15/पृष्ठ-158-159
14 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-17/अध्याय-1/पृष्ठ-78
15 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-18/अध्याय-02/पृष्ठ-82
16 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-40/अध्याय-24/पृष्ठ-195
17 अर्थशास्त्र-वही
18 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-40/अध्याय-24/पृष्ठ-196
19 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-40/अध्याय-24/पृष्ठ-196-197
20 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-40/अध्याय-24/पृष्ठ-197
21 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-40/अध्याय-24/पृष्ठ-197-197
22 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-40/अध्याय-24/पृष्ठ-198
23 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-40/अध्याय-24/पृष्ठ-199
24 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-40/अध्याय-24/पृष्ठ-197-198
25 अथर्ववेद-3/14:6/49
26 वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो। ऋग्वेद-7/54/2
27 अयं निधिः सरमे अद्रिबहुनो गोभिरश्वेभिर्वुसुभिर्न्युष्ट- ऋग्वेद-10/10/87
28 घृतेनास्मान्तसमुक्षत-अथर्ववेद-7/75/2
29 छन्दो०उप०-7/29/2
30 ऐतरेय ब्रा०-7/13-16
31 वैदिक इंडेक्स, पृ०-12, 40-41
32 ऋग्वेद-8/56/3
33 मनुस्मृति-3/133
34 मनुस्मृति 11/68, 8/298
35 अर्थशास्त्र-अधि०-2/ प्रक०-45/अध्याय-29/पृष्ठ-216
36 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-45/अध्याय0-29/पृष्ठ-216-217
37 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-216
38 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-216,217
39 अर्थशास्त्र, पृष्ठ-217
40 वत्सा वत्सत्रा दम्या वहिनों वृषा उक्षाणश्चपुंगवा। अर्थशास्त्र, पृष्ठ-217
41 युगवाहन शकटवहा वृषभाः सूनामहिषाः पृष्ठस्कन्ध वाहिनश्च महिषाः। अर्थशास्त्र-वही-पृष्ठ-217
42 वत्सिका वत्सतरी प्रष्ठौही गर्भिणी धेनुश्चाप्रजाता बन्ध्याश्च गावों महिष्यश्च।। अर्थशास्त्र-वही पृष्ठ-217

43 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-217

44 अधि०-2/ प्रक०-45/ अध्याय-29/पृष्ठ-219

45 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ- 220

46 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-220-221

47 अर्थशास्त्र-अधि०-2/प्रक०-46/अध्याय-30/पृष्ठ-222

48 अर्थशास्त्र-वही

49 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-222-223

50 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-224, 227,228

51 अर्थशास्त्र-अधि०-2/प्रक०-46/अध्याय-30/पृष्ठ-225

52 अर्थशास्त्र-वही

53 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-226-227

54 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-227

55 अधि02/प्रक0-47/अध्याय/31/पृष्ठ-229-230

56 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-230

57 कर्मस्कन्धा: चत्वार:- दम्य: सान्नाह्या औपवाह्यो व्यालश्च। अधि0-2/प्रक0-48/अध्याय0-32/पृष्ठ-232

58 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-232-233

59 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-234

60 अर्थशास्त्र- अधि0-2/प्रक0-27/अध्याय-11/-पृष्ठ-125

61 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-126-127

62 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-127

63 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-127-128

64 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-127-128

65 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-129

66 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-129

67 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-28/अध्याय -12/पृष्ठ-138/139

68 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-140,142

69 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-136, 139,142

70 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-27/अध्याय-11/पृष्ठ-132,133

71 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-133

72 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-133,134

73 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-133,134

74 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-135

75 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-134

76 अर्थशास्त्र-अधि0-2/प्रक0-38/अध्याय-22/पृष्ठ-189-190

77 अर्थशास्त्र-अधि-2/प्रक0-33/अध्याय-17/पृष्ठ-168

78 अर्थशास्त्र-अधि-2/प्रक0-34/अध्याय-18/पृष्ठ-170-171

79 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-170-171

80 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-171

81 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-171

82 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-172

83 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-172-173

84 अर्थशास्त्र-अधि-2/प्रक0 41/अध्याय-25/पृष्ठ-200

85 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-201

86 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ- 202-203

87 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-201

88 अर्थशास्त्र-अधि-2/प्रक0-33/अध्याय-17/पृष्ठ-167

89 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-168

90 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-168

91 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ-168

92 अर्थशास्त्र-अधि-2/प्रक0-38/अध्याय-22/पृष्ठ- 189-190

93 अर्थशास्त्र-अधि-प्रक0-32/अध्याय-16/पृष्ठ-164

94 अर्थशास्त्र-वही, पृष्ठ -164-165

शैक्षणिक संस्थाओं का विद्रूप चेहरा: हिन्दी दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में

तनुजा गोस्वामी

उपायुक्त (राज्य कर विभाग, राजस्थान)

आजादी के बाद भारत का संविधान बना। संविधान ने दलितों को शिक्षा का अधिकार दिया। उससे पहले का भारतीय समाज मनुस्मृति से संचालित था जिसमें दलितों द्वारा वेदों को सुनने पर कान में पिघला हुआ सीसा डालने, उच्चारण करने पर जीभ काट देने का प्रावधान था। गैर कानूनी रूप से तो शिक्षा का अधिकार मिल गया लेकिन उसे भारतीय जड़ समाज में क्रियान्वित करने में सालों लग गये और इन सालों में कितने दलितों ने किस-किस तरह का बलिदान दिया है इसका कहीं कोई लेखा-जोखा नहीं है। कुछ तो पढने की इच्छा शक्ति होने के बावजूद अपनी कंगाली और बदहाली के कारण अपने घर और स्कूल के बीच की दूरी ही नहीं पाट पाये, और जिन्होंने वो दूरी तय कर ली उनमें से कुछ द्रोणाचार्य सरीखे गुरूजनों के प्रसाद में पुन: घर बैठने को विवश हो गये। जिन्होंने ये दोनों बाधाएं पार कर ली उनमें से कुछ ने भारतीय समाज की विद्रूपताओं से पर्दा उठा दिया।

भीमराव अम्बेडकर द्वारा निर्मित संविधान ने दलितों के लिए शिक्षा के द्वार तो खोल दिये किन्तु उनके लिए शिक्षा प्राप्त करना काँटों की सेज पर चलने जैसा था। भारतीय वर्णवादी सामाजिक व्यवस्था में जहाँ जन्म लेते ही बच्चे की पीठ पर जाति का जोंक चिपक जाता है और मृत्युपर्यन्त चिपका ही रहता है वहाँ की शैक्षणिक संस्थाओं में जाति कैसे न घुसती।

हिन्दी दलित आत्मकथाओं में ऐसे प्रसंगों की भरमार है। इन आत्मकथाओं में ऐसे कई प्रसंग आये हैं जिन्हें पढकर किसी भी पूर्वाग्रह रहित सामान्य व्यक्ति का हृदय विचलित हो सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के हैडमास्टर साहब को जब पता चलता है कि वे चूहड़ा जाति से हैं तो वह वाल्मीकि जी को उनके खानदानी काम की याद दिलाते हुए कहते हैं-''वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़ के झाड़ू बणा ले। पत्तों वाली झाड़ू बणाना। और पूरे स्कूल को ऐसा चमका दे जैसे सीसा। तेरा तो यह खानदानी काम है। जा... फटाफट लग जा काम पे।''[1] वे आगे लिखते हैं ''हैडमास्टर के आदेश पर मैंने स्कूल के कमरे, बरामदे साफ कर दिये। तभी वे खुद चलकर आये और बोले ''इसके मैदान भी साफ कर दे।'' लम्बा चौडा मैदान मेरे वजूद से कई गुना बड़ा था, जिसे साफ करने से मेरी कमर दर्द करने लगी थी। धूल से चेहरा सिर अँट गया था। मुँह के भीतर धूल घुस गई थी। मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था।''[2]

तीसरे दिन कक्षा में जाकर चुपचाप बैठ जाने पर हैडमास्टर उनके ऊपर लपक पड़ता है। वे लिखते हैं ''हैंडमास्टर की उँगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था। जैसे कोई भेडिघ्या बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका। चीखकर बोले, ''जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू...... नही तो गांड में मिर्ची डालकर बाहर काढ़ (निकाल) दूंगा।''[3]

सवर्ण समाज यह जानता है कि शिक्षा से चेतना के बंद कपाट खुलते हैं। इसलिए लगभग सभी दलित आत्मकथाओं में इस प्रकार के प्रसंग मिल जाते हैं। कौसल्या बैसंत्री 'दोहरा अभिशाप' में लिखती हैं, ''जब मैं प्राइमरी में चौथी में थी, तब शिक्षिका मुझसे बहुत काम करवाती थी। दूसरी लड़कियों को नहीं भेजती थी। जांचने की कॉपियों का बडा बंडल मेरे हाथ में पकड़ाकर अपने घर पहुंचाने को कहती।''[4] इसी तरह सुशीला टाकभौरे जी अपनी पीड़ा बयान करती हैं, ''मेरे घटिया कपडों के कारण ब्राह्मणों की लडकियाँ

मुझसे दोस्ती नहीं करती थी। कुनबी की लडकियाँ थीं तो मैं उनके साथ बैठ जाती थी अब वे नहीं थी तो मैं अकेली ही खाने की छुट्टी में बैठकर लडकियों का खेल देखती थी।''[5]

श्यौराज सिंह बेचौन की आत्मकथा इस लिहाज से अनूठी है कि उनके गुरूजनों ने उनका शोषण तो किया किन्तु स्कूल की चार दीवारी के भीतर नहीं। अधिकतर गुरूजनों ने उनसे शिक्षा की द्रोणाचार्य से भी बड़ी कीमत वसूली। उनके गाँव के मास्टर प्रेमपाल सिंह यादव ने उनका स्कूल में दाखिला तो करवा दिया किन्तु अपने घर और खेतों में दिन रात बेगारी करवा कर अपनी गुरू दक्षिणा वसूल कर ली। नवीं दसवीं में पढते समय उनके समक्ष दो जून की रोटी एक यक्ष प्रश्न था। इस समस्या को हल करने के लिए प्रेमपाल सिंह ने बालक श्यौराज को भूगोल के शिक्षक चौधरी रघुनाथ सिंह के साथ पीतमपुरा भेज दिया जो कि स्कूल से चार-पांच किलोमीटर दूर था। वे लिखते हैं, ''गुरू माता ने पहले दिन ही मुझे बैलों भैंसों का गोबर इकट्ठा करना और पशुशाला की सफाई का काम बता दिया था। बस्ता एक ओर रख, कमीज पजामा उतार घुटना बनियान में काम पर जुट गया। गुरूजी का बेटा उस वक्त स्कूल में दिये गये गृह-कार्य को पूरा करने में जुटा हुआ था।''6 गुरू स्वयं छः बजे उठते और बालक श्यौराज से कहते, ''मैं तेरी हाजरी दिलवा दूँगा, तू दो-तीन दिन खेत क्यार के काम देख ले। प्रेमपाल सिंह कहते हैं तू खेतों मवेशियों का हर काम संभाल लेता है दो मजदूरों का काम अकेला कर देता है।''[7]

एक दिन जब बालक श्यौराज अपनी बेगारी से निवृत्त होकर स्कूल जाने के लिए तैयार होने लगे तो गुरूमाता ने कहा ''देखि द्वय दिन तैं भंगिया को नास पीटो नाँय आयौ है। घर में बदबू फैल रही है। बालकन की टट्टी जमा है रही है। तू बुरौ मत मानिये मैने सुनो है भंगी-चमार सब काम कर देत हैं। घेर के बाहर तसला धरौ है बाहर खुरपी पड़ी है। राख मट्टी मैं दे दूंगी तू नैंक जाइ गन्दगी कूँ उठाइ के खेत में फैंक आ। मैं अब ही लल्ली से रोटी बनवाई दूँगी। खाई के तू स्कूल चलौ जइयो। देर होगी तो लल्ला तेरे गुरू जी से कहके तेरी हाजिरी लगवाय देगौ।''[8] वे आगे लिखते हैं मैंने देखा कि उनका बेटा साफ सुथरी ड्रेस पहन कर स्कूल जाने के लिए दही सब्जी खाकर तैयार हो रहा है।''[9]

कबीर ने अपने काव्य में गुरू को बहुत उच्च स्थान दिया है किन्तु दलित आत्मकथाओं में वर्णित अधिकांश गुरू वर्णवादी व्यवस्था से ग्रस्त प्रतीत होते हैं। मोहनदास नैमिशराय 'अपने-अपने पिंजरे' (भाग-1) में लिखते हैं, ''स्कूल में अधिकतर अध्यापक बात-बात में हमारी बस्ती का नाम लेते थे। धीरे धीरे स्कूल में हमारी पहचान बन गयी थी। वह पहचान थी कि हम चमार हैं। अध्यापक हमारे नाम लेकर कम बुलाते थे, बात-बात में चमार दरवज्जे वाले कह संबोधन किया करते थे। धीरे-धीरे सभी लडकों को पता लग गया था कि हम जाति से चमार हैं क्योंकि हम चमार नाम की बस्ती में रहते थे और वास्तव में था भी ऐसा ही। दो-तीन को छोड़कर पूरी बस्ती में चमार ही रहते थे। हमें यह सब सुनकर बुरा भी लगता था।''[10]

अपनी जातिगत पीड़ा को बयान करते हुए वे आगे लिखते हैं, ''कोई भी नया अध्यापक आता वह हमारा नाम बाद में पूछता। पहले हमारे बाप का नाम पूछता। हम कहाँ रहते हैं, हमारा बाप क्या काम करता है आदि-आदि। बस इस तरह वे सब बात पूछ लिया करते थे। अपने आप पता लग जाता था कि हमारे जिस्म के भीतर कहाँ-कहाँ घाव हैं। फिर वे उन घावों को छेडते थे।''[11]

वे आगे लिखते हैं ''सुबह की प्रार्थना में ही सभी की ड्रेस का मुआयना पी.टी. इंस्ट्रक्टर किया करता था। नाम था उसका शिव कुमार शर्मा । जो छात्र ड्रेस में नही होते उन्हें बहुत कुछ सुनना पड़ता था बार-बार हमें कहा जाता, ''अबे तुमसे पढने के लिए कौन कहता है बस जूते चप्पल बनाओ और आराम से रहो। चले आते हैं ससुरे न जाने कहाँ-कहाँ से।''[12]

दरअसल शिक्षण सस्थाओं में दलित बच्चों के साथ किया जाने वाला शोषण मानसिक घृणा के साथ-साथ एक षडयंत्र का परिणाम भी था। यदि किसी व्यक्ति को मानसिक रूप से गुलाम बना लिया जाए तो उसे शारीरिक रूप से गुलाम बनाने के लिए अधिक प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती। और किसी बच्चे को मानसिक रूप से तोडना किसी पेड़ की कच्ची टहनी तोडने के समान है। इन दलित आत्मकथाओं में जिन शिक्षक पात्रों का उल्लेख हुआ है वे शिक्षक न होकर मात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और कुछ शूद्र थे। ऐसे शिक्षकों ने शिक्षा परिसरों को अपने गरिमामय स्थान से नीचे उतारकर जाति की प्राथमिक प्रयोगशाला बना दिया। कई दलित आत्मकथाकारों ने यह स्वीकार किया है कि जातिगत हीनता बोध का पहली बार अहसास उन्हें अपने विद्यालयों में ही हुआ है।

बात-बात पर जाति का ओछापन याद दिलाते हुए कक्षा में हँसी का पात्र बनाना , बेवजह बेरहमी से पिटाई करना, पढाई में होशियार होने के बावजूद कम अंक देना, दलित बच्चों के रहन-सहन उनकी गरीबी का मजाक बनाना, शिक्षा प्राप्त करने के प्रति

हतोत्साहित करना, पानी पीने के स्त्रोतों को उनकी पहुँच से दूर रखना आदि कुछ सामान्य क्रियाकलाप थे जो लगभग सभी आत्मकथाओं में देखने को मिलते हैं। सुशीला टाकभौरे अपनी मझली बहन के विषय में लिखती हैं, ''स्कूल में उपेक्षा, अपमान और बात-बात में मिलने वाली सजा के कारण वह चौथी कक्षा से आगे नहीं पढ सकी।''[13] वे स्वयं के अनुभव के विषय में लिखती हैं, ''कक्षा में ब्राह्मण-बनियों के बच्चों को सबसे आगे बैठाया जाता था। पिछड़ी जाति के बच्चों को पीछे बैठाया जाता। अछूत बच्चे सबसे पीछे अलग बैठते थे। कक्षा में यह श्रेणी-वर्गीकरण जैसा था, इससे हमें अपने वर्ण और जाति का आभास हमेशा रहता था। मै कक्षा में सबसे पीछे बैठती थी। स्कूल के सभी शिक्षक और सभी बच्चे मेरी जाति के विषय में जानते थे। सबके मन में मेरे लिए एक निश्चित दूरी थी। मैं नहाकर साफ सुथरे कपडेघ् पहनकर स्कूल जाती थी फिर भी स्कूल के बच्चों अध्यापकों और चपरासी के लिए अछूत ही थी। मुझे छू जाने पर वे नहाकर शुद्ध होते हैं यह बात में जानती थी। वे मुझसे दूर रहें इसकी अपेक्षा मैं स्वयं उनसे दूर रहती थी ताकि मेरे कारण किसी को तकलीफ या परेशानी न हो। बचपन से सिखाई गई बातों से यह आदत बन गई थी। सबसे अलग रहना, सबके पीछे रहना ताकि कोई मेरा अपमान न करे, मुझे बुरा न कहे, मुझे सजा न दे। मैं सिर झुकाए अपनी स्लेट पर बार-बार लिखती और मिटाती रहती। गुरूजी दयाभाव से मेरे पास आते, मुझे देखते और अपनी कुरसी पर बैठ जाते थे। कक्षा में बच्चे हंसते खेलते धूम मचाते रहते, मैं चुपचाप सबको देखती थी।''[14]

उन्हें प्यास लगने पर पीने के पानी के लिए दूसरों के दयाभाव पर रहना पड़ता। दलित बच्चे पानी के एक-एक घूँट के साथ अपनी जाति की हीनता को भी निगलते रहे हैं। सभी दलित आत्मकथाकार पीने के पानी के लिए एक स्वर में चित्कार लगाते हुए से प्रतीत होते हैं। यहाँ यह विचारणीय बिन्दु है कि दलित बच्चे स्कूल में पानी के स्त्रोतों को छू नहीं सकते थे किन्तु पानी शरीर की आधारभूत प्राकृतिक आवश्यकता है। किसी भी शिक्षक ने दलित बच्चों के लिए पीने के पानी की अलग व्यवस्था करने की पहल की हो, ऐसा कोई प्रसंग देखने को नहीं मिलता जबकि एक अलग घडे का प्रबंध करना कोई कठिन कार्य नहीं था। इससे स्पष्ट होता है कि पानी के बहाने जातिगत हीनता और अपमान का अहसास कराना प्रमुख लक्ष्य रहा है। तुलसीराम जी इसी संदर्भ में एक प्रसंग का उल्लेख करते हैं ''विशेष रूप से एक घटना मुझे नहीं भूलती। कक्षा चार में ही एक बार मिसिर बाबा पानी पिलाने कुएँ पर गये। घिर्री पर डोर चढ़ाकर बाल्टी कुएँ में डाला। मैंनें कुतूहलवश कुएँ के चबूतरे को एक उँगली से क्षण भर के लिए छू दिया। किन्तु मिसिर बाबा बाल्टी को कुँए में डुबाते हुए नीचे से कनखिया पीछे देख रहे थे और मुझे उँगली चबूतरे से लगाते हुए उन्होंने देख लिया। मेरे द्वारा इस महापातकी क्रिया से उनका ब्राह्मणत्व इतना आहत हुआ कि उनके हाथ से डोर छूट गई और बाल्टी कुँए की तलहटी में जा पहुँची। मिसिर शोर मचाते हुए मुंशी जी के पास दौडेघ् और चिल्लाते रहे कि चमरा ने कुंआ छू लिया। मैं बहुत डर गया था। उस दिन मुंशीजी दिन भर रूक-रूककर गालियाँ देते रहे। इसके बाद मैं कभी पानी पिलाने के लिए कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।''[15] ''पानी पीना वास्तव में एक विकट समस्या थी। कभी कभी तो हम चुपके से पोखरे पर चले जाते जिसका पानी गहन जलकुम्भियों से ढका रहता था। हम जलकुम्भियों को हटाकर उसका पानी पीते।''[16]

दलित बच्चों को सांस्कृतिक कार्यक्रमों से भी दूर रखने का प्रयास किया जाता था। सुशीला जी जब दूसरी लडकियों को डाँस की प्रेक्टिस करते देखती तो उनका मन भी ललचा जाता था। ''एक दिन प्रेक्टिस के समय मैं भी उस ग्रुप के साथ डाँस करने लगी। ये देखकर शांति बहिनजी ने गुस्से के साथ डाँटते हुए मुझे उन लड़कियों के बीच से निकाल दिया- ''सुशीला तुम यहाँ कैसे आ गई? तुम इनके साथ डाँस नहीं करोगी। तब मुझे बहुत अपमान महसूस हुआ था मैं बहुत रोई थी। क्या गुनाह था मेरा? यही कि मैं अछूत जाति में पैदा हुई इसलिए।''[17]

इस प्रकार येन-केन प्रकारेण दलित बच्चों के आत्मसम्मान को कुचलने का प्रयास किया जाता रहा है उन्हें प्रतिपल यह अहसास करवाया जाता रहा है कि वे इन शिक्षण परिसरों में अवांछित हैं, उन्हें वहाँ नहीं होना चाहिए। कानून के भय से सवर्ण इन बच्चों को स्कूल से निकाल तो नहीं सकते थे किंतु इसके अतिरिक्त उन्होंने वह सब किया जो वे कर सकते थे।

सूरजपाल चौहान जाति के इस ब्रम्हराक्षस से ताउम्र लड़ते रहे। वे लिखते हैं, ''संस्कृत विषय पढ़ाने वाले अध्यापक वेदपाल शर्मा मुझे समय-समय पर जाति का ओछापन याद दिलाते रहते। मैं तड़प उठता था। उस द्रोणाचार्य की बातें सुनकर। एक दिन अपने साथी अध्यापकों से मेरी ओर संकेत कर उसने कहा था'' यदि देश के सारे चूहडेघ्-चमार पढ़-लिख गये तो गली-मोहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा?[18]

इन आत्मकथाओं में कई ऐसे संदर्भ आये हैं जहाँ मार-पिटाई के डर से तंग आकर दलित बच्चों ने स्कूल जाना छोड दिया, या दूसरे दलित बच्चे की बेरहम पिटाई देखकर डरावने सपनों के शिकार हो गये, हॉस्टल में सवर्ण छात्रों के शोषण के शिकार हुए। जो इस शोषण का मुँहतोड जवाब देता था उसे इस हद तक विवश कर दिया जाता था कि उनके पास स्कूल छोडने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचता था। सुशीला टाकभौरे के भाई शंकर ने कॉलेज में हुई रैंगिंग से परेशान होकर कुछ सवर्ण लडकों की पिटाई कर दी थी, उन्होंने हमेशा मार खाते रहने की परम्परा को तोडा था किंतु उन्हें इसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी, कॉलेज के दबाव के कारण उन्हें अपनी पढाई छोड देनी पड़ी।

शिक्षा-परसिरों का इस प्रकार का भेदभावपूर्ण वातावरण इन बच्चों को मनोवैज्ञानिक रूप से तोड़ देता है। ये बच्चे सहमे हुए चुपचाप अकेले बैठे रहने और अपमान सहने के आदि हो जाते हैं, अन्तर्मुखी हो जाते हैं या छोटी-छोटी बातों पर क्रोधित होने लग जाते हैं। मनोवेग भी जलधारा के समान होता है जो स्थिर नहीं रह सकता उसे किसी ना किसी रूप में बाहर आना होता है।

डॉ. तुलसीराम जी के अध्यापक मुंशी जी के मुंह से चमार बच्चों को देखते ही ''चमरकिट'' गाली निकल पडती थी। इस गाली से भयभीत होकर वे स्कूल जाने के नाम पर रोने-चिल्लाने लगते थे। यदि यह कल्पना की जाए कि उस समय डॉ. तुलसीराम का रोना चिल्लाना काम कर गया होता और उनका स्कूल छूट गया होता तो भारतीय बौद्धिक जगत का कितना बड़ा नुकसान हुआ होता। संविधान बनने से पहले भी न जाने कितने ऐसे बच्चे पैदा हुए होंगे जिनमें तुलसीराम, वाल्मीकि बनने की योग्यता रही होगी किंतु वे स्कूल की देहरी तक भी ना पहुँच पाये। बजरंग बिहारी तिवारी के अनुसार ''प्राइमरी स्कूल दलित आत्मकथाओं का अनिवार्य संदर्भ बना है। छोटे बच्चों के साथ जातिवादी अध्यापक किस तरह सलूक करते हैं किन स्तरों और किन रूपों में भेदभाव होता है यह उभरकर सामने आया है इसी प्रकार सरकारी दफ्तरों की वास्तविकता भी उघाड़ी गई। गाँव परम्परा का प्रतीक है तो स्कूल और कार्यालय आधुनिकता के। परम्परा और आधुनिकता में किस तरह निरंतरता बनी हुई है, दलित लेखकों का जीवन इसका प्रमाण है।''[19]

इस प्रकार भारत में प्राथमिक विद्यालय शिक्षा के प्राथमिक विद्यालय ना होकर वर्णव्यवस्था के प्राथमिक विद्यालय बने हुए हैं। कहा जाता है कि बचपन कच्चे घडेŸ के समान होता है उस कच्चे घड़े की मिट्टी में ही हीनता, आत्मग्लानि उपेक्षा, तिरस्कार और अपमान के बीज डालने का कार्य किया है हमारे प्राथमिक विद्यालयों ने। वे शिक्षक वर्ण-व्यवस्था के शिकजों में इस कदर कैद थे कि उनकी सामान्य बुद्धि शिक्षा परिसरों एवं अपने गाँव के गली मुहल्लों में अंतर ही नहीं कर पाई।

यह भी एक विचारणीय बिन्दु है कि भारत आजाद होने से लेकर आज तक के प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सामान्य तौर पर ना तो डॉ. भीमराव अम्बेडकर को शामिल किया गया और ना ही जातीय उन्मूलन कर प्रेरणादायी शिक्षा देने वाली किसी कहानी या कविता को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। इस क्रम में भारतीय रणनीतिकारों की अनिच्छा को सम्मिलित कर लिया जाए तो गलत नहीं होगा। प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। उसका प्रभाव सीधे बच्चे के अवचेतन पर होता है। जिसका प्रभाव हमोर अवचेतन पर हो जाता है उसे मिटा पाना लगभग असंभव होता है। यही कारण है कि कुछ तथाकथित राजनीतिक दल अपना कैडर निर्माण करने के लिए अपनी विचारधारा आधारित प्राथमिक विद्यालयों का संचालन करते हैं।

गौरतलब है कि प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों की अवस्थिति गाँव के भीतर या उसके आसपास होती है। गाँव में सभी लोग आपस में एक-दूसरे से भलीभाँति परिचित होते हैं। यहाँ भलीभाँति परिचित होने का सामान्य अर्थ है एक-दूसरे की जाति, उपजाति, गौत्र आदि से परिचित होना। गाँव का यही मिलनसार चेहरा दलित बच्चों के शोषण का आधार प्रमुख आधार बना। जो बच्चा ठाकुर जी के घर उनके बच्चों की गंदगी उठाने जा रहा है वही बच्चा जब ठाकुरजी के बच्चों के साथ स्कूल पहुँचता है तो उसकी मासूम आँखों की पलकें हीनता के बोझ के तले इस प्रकार दबी होती हैं कि वे उन सवर्ण बच्चों से नजरें मिलाने में स्वयं को असहाय पाती हैं। डॉ. अम्बेडकर इस सामाजिक विद्रूपता से परिचित भी थे और आशंकित भी थे इसीलिए उन्होंने शहरों को महत्त्व दिया क्योंकि शहरों में लोग एक-दूसरे से इतने भलीभांति परिचित नहीं होते। अनुसूचित जातियों और जनजातियों द्वारा सवर्णों से मेल खाते गोत्रों का प्रयोग करने के बाद तो किसी व्यक्ति की जाति का अनुमान लगाना थोडा कठिन हो गया है। व्यवसाय तथा निवास स्थान की जानकारी पूछकर अपने अनुमान को पक्का किये जाने का कार्य होने लगा। अत: मौटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि गाँव की प्राथमिक शालाएँ शिक्षा की प्राथमिक शाला ना होकर वर्णव्यवस्था की प्राथमिक शाला बन गई।

वर्ण व्यवस्था इतनी क्रूर है कि वह सहज मानवीय संवेदना का भी नाश कर देती है। भारतीय शिक्षण संस्थानों में दलित बच्चों के शोषण की कितनी कहानियाँ लिखी गई किंतु ऐसे उदाहरण देखने को नहीं मिलते जहाँ किसी शिक्षक ने शिक्षक होने के नाते उस टूटे हुए दलित बच्चों को संभाला हो या साथी शिक्षक द्वारा किये जाने वाले भेदभाव का विरोध किया हो। यही वर्णव्यवस्था की विडम्बना है कि वह व्यक्ति की सामान्य बुद्धि की हत्या करके उसे प्रत्येक असमानता और शोषण के समक्ष सहज बने रहना सिखाती है।

अतः कहा जा सकता है कि दलित आत्मकथाएँ शिक्षण संस्थाओं में होने वाले शोषणों के उदाहरणों से भरी पड़ी हैं। दलित बच्चे आठों पहर अपने व्यवहार का मन ही मन आंकलन करते हुए सहमे हुए रहते थे कि कहीं उनसे कोई चूक ना हो जाए। वर्णव्यवस्था का पालन न करने पर पड़ने वाली मार व गाली से बचने के लिए वे अपने अवचेतन से ही इन नियमों का पालन करते थे। ये नियम उनके रक्त प्रवाह का हिस्सा बन गये थे, जैसे कक्षा में सबसे पीछे बैठना, पानी के घडे या कुँए को हाथ ना लगाना मास्टर जी को अपनी कॉपी या स्लेट दूर से दिखाना, अपना लंच अलग करना या किसी से नहीं बाँटना, सवर्ण बच्चों के साथ ना खेलना, स्कूल में गर्दन नीचे करके शांत भाव से चुपचाप बैठे रहना, किसी भी सांस्कृतिक कार्यक्रम का हिस्सा ना बनना तथा मौन रहकर वर्णव्यवस्था के नियमों का पालन करना आदि। यही कारण है कि कुछ दलित आत्मकथाकारों ने यह तक स्वीकार किया है कि उन्हें पहली बार दलित होने का अहसास स्कूल जाने पर हुआ।

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन (पहला खण्ड), पृष्ठ संख्या 14
2. वही, पृष्ठ संख्या 15
3. वही, पृष्ठ संख्या 15
4. कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, पृष्ठ संख्या 45
5. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, पृष्ठ संख्या 45
6. श्यौराज सिंह बेचौन, मेरा बचपन मेरे कंधो पर, पृष्ठ संख्या 341
7. वही, पृष्ठ संख्या 341
8. वही, पृष्ठ संख्या 343
9. वही, पृष्ठ संख्या 343
10. मोहनदास नैमिशराय, अपने-अपने पिंजरे (भाग-1), पृष्ठ संख्या 78
11. वही, पृष्ठ संख्या 78,
12. वही, पृष्ठ संख्या 79,
13. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, पृष्ठ संख्या 16
14. वही, पृष्ठ संख्या 18,
15. डॉ. तुलसी दास, मुर्दहिया, पृष्ठ संख्या 55
16. वही, पृष्ठ संख्या 54,
17. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, पृष्ठ संख्या 45
18. सूरजपाल चौहान, तिरस्कृत, पृष्ठ संख्या 3
19. बजरंग बिहारी तिवारी, दलित साहित्यः एक अन्तर्यात्रा, नवारूण प्रकाशन 2015, पृष्ठ संख्या 151

प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी-जीवन की समस्याएँ

प्रीति सिंह

सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी), गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद

प्रेमचन्द उन लेखकों में है जिनकी रचनाओं से बाहर के साहित्य-प्रेमी हिन्दुस्तान को पहचानते हैं। उन्होंने हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय सम्मान को बढ़ाया है, हमारे देश को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में गौरव दिया है। प्रेमचन्द पर सारा हिन्दुस्तान गर्व करता है, दुनिया की शान्ति प्रेमी जनता गर्व करती है। सोवियत संघ के आलोचक मुक्त कण्ठ से उनका महत्व घोषित करते है। हम हिन्दी-भाषी प्रदेश के लोग उन पर खास-तौर से गर्व करते हैं क्योंकि वह सबसे हमारे थे, जिन विशेषताओं को उन्होंने अपने कथा-साहित्य में झलकाया है, वे हमारी जनता की जातीय विशेषताऐं थी।

हिन्दी साहित्य में आज जो समस्याऐं उठ रही हैं, उन्हें हल करने में प्रेमचन्द का अध्ययन बड़ी सहायता करता है।

वेश्या- जीवन पर हिन्दी में पहले भी उपन्यास लिखे गये थे और बाद में भी। 'सेवासदन' उपन्यास भी वेश्या जीवन की समस्या को लेकर लिखा गया उपन्यास है। उपन्यास की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। प्रेमचन्द ने किस तरह तमाम पुरानी सांस्कृतिक परम्पराओ को तोड़ते हुए वर्तमान समाज में नारी की पराधीनता को अपने निठुर और वीभत्स रूप में चित्रित किया है। इस पर सहसा विश्वास नहीं होता। हमारे साहित्य में कितने नाटक, कितने उपन्यास नारी के आत्म-बलिदान, उसके सतीत्व, उसकी पति सेवा पर नहीं लिखे गये? लेकिन कितने लेखको ने उसकी निस्सहायता, पराधीनता उसके साथ पशुओं और दासों जैसे व्यवहार पर नजर डाली है।

तमिलनाडु के महाकवि 'भारती' तेलगु साहित्य के भारतेन्दु वीरेशलिंगम उन थोड़े से साहित्यकारों में थे जिन्होंने नारी की पराधीनता के विरूद्ध आन्दोलन छेड़ा था। प्रेमचन्द ने नकली आदर्शो की रामनामी खींचकर पण्डितों और मौलवियों समाज के प्रतिष्ठित सज्जनों और धनपतियों का वास्तविक रूप जनता के सामने प्रकट कर दिया। कबीर के बाद किसी ने इतनी सच्चाई से, ऐसे मर्मवेधी व्यंग्य से हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों धर्मो के ढोंगियों और पाखंण्डियों का पर्दाफाश न किया था।

'सेवा सदन' उपन्यास की नायिका 'सुमन' का विवाह एक दोहाजू वर गजाधर से होता है। जो बिना दहेज लिए एक और कन्या का उद्धार करने के लिए तैयार है। उपन्यास की वास्तविक समस्या यह है लड़कियों को कुएँ में ढकेलना और फिर सतीत्व और पतिव्रत धर्म के गीत गाना। इस समूचे व्यापार में बेचारी सुमन की इच्छा, अनिच्छा का सवाल नहीं उठता। बलिपशु की तरह जिस खूँटेले भी बाँध दी जाये, उसे बँधना पड़ता है।

जैसी कि आशा की जा सकती है, सुमन का जीवन सुखी नहीं था। एक तो गरीबी थी, दूसरे अनमेल ब्याह हुआ था। उसकी सारी आशाओं, भविष्य के तमाम सुन्दर सपनों पर पानी फिर गया। जब वह वकील पदम सिंह के यहाँ आने-जाने लगी तब पति ने उस पर व्यर्थ संदेह भी किया। सुमन ने अच्छी तरह देख लिया कि इस समाज में स्त्री की कोई इज्जत नहीं है। इज्जत है तो उन स्त्रियों की जो अपनी इज्जत बेचने के लिए तैयार है।

सुमन के सामने भोली नाम की वेश्या रहती है। स्त्रियों में किसी ने पुरूषों से इज्जत पायी है तो भोली ने। वही लोग जो घर की स्त्री को पैर की जूती समझते थे भोली के तलवे सहलाने में अपने को धन्य मानते है। जब भोली गा रही थी तब पदमसिंह की स्त्री आष्चर्य कर रही थी "कि लोग इतने एकाग्रचित होकर क्या सुन रहे हैं।'' सुमन ने गाना पसन्द किया और उसने धीरे-2

दोहराया भी लेकिन "वह देखती थी कि सैकड़ो आँखे भोलीबाई की ओर लगी हुई है। उन नेत्रों में कितनी तृष्णा थी। कितनी विनम्रता, कितनी उत्सुकता।'' ये सब सदाचार और सतीत्व के ठेकेदार थे और सुमन सोचती थी- "इस स्त्री में कौन-सा जादू है।''

सुमन भी सुन्दर थी, गला सुरीला था लेकिन उसकी इज्जत करना तो दूर, उसके आत्मसम्मान को पग-2 पर ठुकराया जाता था। इसका कारण क्या था? राशि और वर्ण सब मिला लिये गये थे। मंत्रों के साथ भाँवरे पड़ चुकी थी। फिर भी गृहस्थ नारी का सम्मान क्यों न होता था? इसलिए कि यह विवाह-प्रथा स्वेच्छा से दो मनुष्यों का मिलन नहीं था वरन् स्वामी पुरूष के लिए एक दासी प्राप्त करने का साधन मात्र था। सत्य यह था कि पुरूष शासक था और स्त्री शासित। अपने दास की जब वह चाहता इज्जत करता, जब चाहता ठुकरा देता।

पदम सिंह के यहाँ से सुमन देर से लौटती है। गजाधर उस पर शक करता है। वह सुमन से उसी तरह व्यवहार करता है। जिस तरह पुरूष स्वामी अपनी खरीदी हुई दासी से। वह धमकाता है- "अब यह धाँधली एक न चलेगी, साफ साफ बताओ, तुम अब तक कहाँ रहीं। ठीक-ठीक बता दो, नहीं तो आज जो कुछ होना है, हो जायेगा।

इसी परिस्थिति में कितनी स्त्रियों ने मार नहीं खायी, पति की गालियाँ नहीं सुनी। लेकिन बीसवीं सदी के भारतीय समाज में धीरे-धीरे एक परिवर्तन हो रहा था साम्राज्यवादी सामन्ती, जुए के नीचे जनता कसमसाने लगी थी और समाज की सबसे दलित अंग नारी-राष्ट्रीय पराधीनता और घरेलू दासता दोनों से पिसती हुई नारी-स्वाधीनता के लिए हाथ फैलाने लगी थी। प्रेमचन्द ने सबसे पहले इस परिवर्तन को देखा था, उसका स्वागत किया था, उसे बढ़ावा दिया था।

सुमन का पति पुरानी रीति के अनुसार, घर से निकालने की धमकी देता है "चली जा मेरे घर से, राड़ कोसती है।''

सुमन भी स्वाभिमानी नारी है। वह न पैरों पड़ती है, न गिड़गिड़ाती है। उसके स्वर में भारत का नवजागृत नारीत्व उत्तर देता है-"हाँ, यो कहों कि तुम मुझे रखना नहीं चाहते, मेरे सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मंजूरी करूँगी, वहीं पेट पाल लूँगी।''

प्रेमचन्द ने संघर्ष का वास्तविक रूप पूरी सच्चाई के साथ चित्रित किया है। पति अपने को अन्नदाता न समझता तो उसे घर से निकालने की धमकी क्यों देता लेकिन स्वाभिमानी सुमन ऐसे अन्नदाता की गुलामी करने और ऊपर से उसकी गालियाँ खाने के लिए तैयार नहीं है। वह घर से निकलकर चल देती है।

वह पदम सिंह के घर आश्रय लेती है, अब उसके पति का सन्देह पक्का हो जाता है। वैश्या की इज्जत करने वाले महापुरूष औरत-मर्द में व्यभिचार छोड़कर दूसरे सम्बन्ध की कल्पना नहीं कर पाते। जो लोग पदम सिंह बने अच्छी तरह जानते थे, उन्होंने भी अपवाद पर विश्वास कर लिया। ये धर्मपरक मंजिल-दर-मंजिल सुमन को भोली के जीवन-पथ पर ठेल रहे थे। प्रेमचन्द ने विस्तार से दिखलाया है कि इस समाज व्यवस्था में सम्पत्ति के रक्षक सदाचार की आड़ में वेश्यावृत्ति को प्रश्रय ही नहीं देते, वेश्याओं को जन्म भी देते हैं। दहेज, अनमेल विवाह, पति का सन्देह, घर से निकालना और वेश्या की देहरी। मानों इस विवाह-प्रथा और वेश्यावृत्ति में कोई अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हो कि एक होगी तो दूसरी होगी ही और जिस समाज में विवाह का मतलब कन्या विक्रय हो, उससे वेश्यावृति कौन उठा सकता है।

नारी की पराधीनता के बारे में जो कटु अनुभव सुमन को हुआ था, वही कटु अनुभव उससे पहले भोली को हो चुका था। वह सुमन को बतलाती है। "मेरे माँ-बाप ने भी मुझे एक बूढ़े मियाँ के गले में बांध दिया था। उसके यहाँ दौलत थी और सब तरह का आराम था, लेकिन उसकी सूरत से मुझे नफरत थी। मैंने किसी तरह छः महीने तो काटे आखिर निकल खड़ी हुई।

प्रेमचन्द नारी के आदर और सम्मान की समस्या को तीखेपन से और बार-बार पाठक के सामने लाते है। पदम सिंह से खबर पाकर समाज-सुधारक विट्ठल दास सुमन को अपनी नयी वृत्ति छोड़ने के लिए समझाते है।

"सुमन ने बात काटकर कहा, महाशय, यह आप क्या कहते हैं? मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है, उसका षतांश भी तब नहीं होता था। एक बार में सेठ चिम्मन लाल के ठाकुरद्वारे में झूला देखने गयी थी, सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने भीतर न जाने दिया, लेकिन उसी ठाकुरद्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानों मेरे चरणो से वह मन्दिर पवित्र हो गया।''

कबीर की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए प्रेमचन्द न मन्दिर के पुजारियो को बखाते है और न मस्जिद के मौलवियों को।

हिन्दी कथा साहित्य की वह पहली नारी है जो आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए संघर्ष की डगर पर पाँव उठाती है। बचपन में वह सीधी और निस्सहाय है। उसकी इच्छाओं को आसानी से कुचलकर उसे एक अवांछित पुरूष के हवाले किया जा सकता है। लेकिन उसके भीतर कही वीर नारी का दर्प सो रहा था वह दर्प जो भारतीय नारी की विशेषता है और ठोकर खाकर जाग उठता है।

प्रेमचन्द ने सुमन को एक साँचे में ढली हुई सुन्दर मूर्ति की तरह पाठक के सामने नहीं रख दिया। उसके चरित्र-चित्रण में एक मौलिकता है जो उनकी कला की सबसे बड़ी विशेषता है। वह यह कि वे परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव के साथ अपने पात्रो के चरित्र में भी उतार-चढ़ाव दिखाते हैं। सुमन जैसे-जैसे कठिनाईयों का सामना करती है, वैसे-2 उसका व्यक्तित्व निखरता है। वह एक लड़ने-मरने वाली स्वावलम्बी नारी है। जो अपने ही नहीं, दूसरों के प्रति भी अन्याय सहन नहीं करती।

प्रेमचन्द से भिन्न जब हम दूसरे लेखकों के कथा-साहित्य में ऐसी नारी ढूँढते है। जिसके हृदय में अन्याय के प्रति ऐसा ही रोश हो तब हमें निराश होना पड़ता है। प्रेमचन्द नारी को मनुष्य का दर्जा देने के लिए लड़ रहे थे बत्तीस करोड़ में सोलह करोड़ को जानवर के बदले इंसान समझने के लिए इस उपन्यास का और सुमन का ऐतिहासिक महत्व है।

प्रेमचन्द ने "सेवासदन'' में नारी-समस्या की छानबीन हल्के-फुल्के सतही ढंग से न की थी। उन्होंने दिखलाया है कि वेश्यावृत्ति को पैदा करने वाले और पालने-पोसने वाले स्वार्थ समाज में मौजूद थे। इन स्वार्थो के निर्मूल हुए बिना किसी तरह का समाज-सुधार सम्भव न था।

प्रेमचन्द उन उपन्यासकारों में थे जो पेड़ का पत्ता देखकर संतोष न करते थे, बल्कि उसकी जड़े खोदकर देखते थे, चाहे वह पाताल तक ही क्यों न गयी हो। यही सबब है कि नारी-समस्या और वेश्यावृत्ति की छानबीन करते हुए उन्होंने धर्म, कानून और सम्पत्ति के सम्बन्धों पर भी अच्छी तरह प्रकाश डाला था। "सेवासदन'' में कुँवर अनिरूद्ध सिंह ने वेश्यावृत्ति पर जो विचार प्रकट किये है, उन पर ध्यान देने से यह संदेह नहीं रह जाता कि वे विचार प्रेमचन्द के ही है। कुँवर अनिरूद्ध सिंह कहते है

"हमें वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं। यह हमारी परम धृष्टता है। हम रात-दिन जो रिश्वते लेते है, सूद खाते है, दीनों का रक्त चूसते है, असहायों का गला काटते है कदापि इस योग्य नहीं है कि समाज के किसी अंग को नीचे या तुच्छ समझें। सबसे नीच हम है, सबसे बड़े पापी, दुराचारी अन्यायी हम है। जो अपने को शिक्षित, सभ्य, उदार और उच्च समझते है। हमारे शिक्षित भाईयों की ही बदौलत दालमण्डी आबाद है, चौक में चहल-पहल है, चकलों में रौनक है। यह मीना बाजार हम लोगों ने ही सजाया है, ये चिड़िया हम लोगों ने ही फसाई है। ये कठपुतलिया हमने ही बनायी है। जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती कर्मचारी अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु आदर और सम्मान के पात्र हो, वहाँ दालमण्डी क्यों न आबाद हो? हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता है। जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद दर सूद का अन्त होगा, उसी दिन दालमण्डी उजड़ जायेगी, ये चिड़िया उड़ जायेगी-पहले नहीं।''

"सेवासदन'' के जैसे "निर्मला'' और 'गबन' प्रेमचन्द के ऐसे उपन्यास है, जिनमें नारी समस्या प्रधान है। 'निर्मला' में कई तरह के दम्पति है। उदय का भानुलाल और कल्याणी, भालचन्द और रंगीलीबाई, डॉक्टर और सुधा, तोताराम और निर्मला। उपन्यास का मुख्य पात्र निर्मला और तोताराम है।

मुख्य कहानी निर्मला की है। उसके पिता की मृत्यु के बाद उसके ब्याह में बहुत सी अड़चने आती है। दहेज में लोग लम्बी रकमें मॉगते है विधवा कल्याणी यह सब कहाँ से लाये? आखिर जैसे गजाधर ने सुमन का उद्धार किया था, वैसे ही तोताराम ने निर्मला का उद्धार किया। सुमन का पति उससे लड़ता था, निर्मला का पति उसे खुश रखने की हजार कोशिशे करता है लेकिन इससे निर्मला का जीवन सुखी नहीं होता बल्कि सुमन से हजार गुना दुखी हो जाता है।

तोताराम की उम्र चालीस के करीब थी लेकिन बाल पक गये थे और तोंद निकल आयी थी। मन्दाग्नि और बबासीर से भी परेशान थे। घर में तीन लड़के थे और विधवा बहन। नयी बीबी को खुश रखने के लिए वह उपहार भेंट किया करते थे। कंजूस थे लेकिन उसे खुश रखने के लिए धन की परवाह न करते। लड़को को न देते, बीबी को मेवे और मिठाइयाँ खिलाते। वकालत से फुरसत पाकर उसे ग्रामोफोन सुनाते थे।

तोताराम जितना ही उसे रिझाने की कोशिश करते थे, उतना ही निर्मला का मन उससे भागा-भागा फिरता था। उसकी परिस्थिति का भयावनापन प्रेमचन्द ने तीखे शब्दों में यों व्यक्त किया है।

"लेकिन निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हँसने बोलने में संकोच होता था। इसका कदाचित् यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर देह चुराकर निकलती थी अब उसकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था.... वही बातें, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकलकर उसके हृदय पर षर के सामान आघात करती थी। ..... वह अपना रूप और यौवन उन्हें न दिखाना चाहती थी, क्योंकि वहाँ देखने वाली आँखे न थी।''

पति के प्रेम से उसका क्रोध और अवज्ञा अच्छे थे। सुमन का पति उस पर सन्देह करता था, मुँह पर कह देता था, लड़ लेता था सुमन को लड़ने का मौका देता था। निर्मला का पति उस पर सन्देह करता है -- गजाधर की तरह पर-पुरूष से प्रेम का नहीं वरन् अपने बड़े लड़के मंसाराम से भावी सम्बन्ध की आशंका से वह निर्मला को अपने प्रेम का बन्दी बना लेना चाहता है। वह वकील है अंग्रेजी पढ़ा लिखा है इसलिए अपना संदेह छिपाकर रखता है और ऊपर से प्रेम का अभिनय करते हुए वह निर्मला को जीवित नरक में ठेल देता है। उसे विरोध करने का लड़ने-झगड़ने का मौका ही नहीं देता है। अतृप्त नारी दर्पण में अपना श्रृंगार देखकर मन ही मन भस्म हुआ करती है।

"निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आईने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौंदर्य की सुशमापूर्ण आभा देखती, तो उसका हृदय एक संतृष्ण कामना से तड़प उठता था।'' जिस विवाह-प्रथा का आधार रूपये पैसे का लेन देन था निर्मला उसी की वेदी पर उस पशु की तरह छटपटायी करती थी जिसका सिर पूरी तरह से जुदा न हुआ हो।

प्रेमचन्द का साहित्य, बीसवी सदी के हिन्दुस्तान का सच्चा इतिहास है, हमारी जनता की सहृदयता, सहनशीलता और वीरता उनकी रचनाओं में फूल की तरह खिली हुई है। उनकी आवाज सुनकर हमें अपने देश और जनता पर गर्व होता है। उस जातीय संस्कृति पर गर्व होता है, जिसे पहले महायुद्ध में मानव-ध्वंसी तोपों की गड़गड़ाहट हवा में गूँज रहीं थी। आज भी जब विश्व पर तीसरे महायुद्ध के बादल छाये हुए है, उस स्वाधीनता-संग्राम के सैनिक की वाणी विश्व-शान्ति की रक्षा के लिए जनता का आह्वान करती है। प्रेमचन्द की आवाज भारत की अजेय जनता की आवाज है। इसलिए प्रेमचन्द आज भी हमारे साथ है।

संदर्भ सूचीः

1. प्रेमचन्द और उनका युग, पृ0सं0 63, 64
2. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ0 रामचन्द्र तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास-बच्चन सिंह
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ0 नगेन्द्र
6. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी

दक्षेस एवं भारत

संजय सिंह

शोध-छात्र, रक्षा अध्ययन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

पहले राजनीति, आर्थिक दिशा का निर्धारण करती थी, आज ठीक इसके विपरीत स्थिति है, आज आर्थिक सत्ताओं का बर्चस्व बढ़ा है और आर्थिक सत्ता ही राजनीति की दिशा निर्धारित करने में सक्षम हुई है। इससे आर्थिक व्यवस्था की अवधारणा से ही आज राज्यों के पारस्परिक मैत्री संबंधों के समीकरण को समझा जा सकता है। आर्थिक सत्ता का प्रयोग एक राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल करना अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में आम बात देखी जा सकती है।"

दक्षिण एशिया का सम्पूर्ण क्षेत्र उपनिवेशिक काल के दौरान ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत था। यद्यपि इस काल में यह क्षेत्र विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ा अवश्य, परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य ने इस क्षेत्र में औद्योगीकरण के लिये कोई भी प्रभावी नीति को लागू नहीं किया। इसके विपरीत यहाँ के परम्परागत उद्योग-धन्धों को नष्ट किया और यहाँ पर उत्पन्न कच्चे माल को ब्रिटेन के लिये भेजा जाने लगा। ब्रिटिश शासकों ने यहाँ पर औद्योगीकरण के लिए दोहरी नीति अपनायी। इसका नतीजा यह हुआ कि यहाँ पर आर्थिक आपदा जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी और यह एक अविकसित क्षेत्र के रूप में पहचाना जाने लगा।"

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र के देशों ने महत्वपूर्ण आर्थिक क्षेत्रों की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया, जिनमें कृषि, भूमि सुधार, औद्योगीकरण और यातायात तथा नेटवर्क स्थापना प्रमुख था। कृषि दक्षिण एशियाई देशों की रीढ़ की हड्डी के समान है। करीब 65 से 90 प्रतिशत जनसंख्या सीधे तौर से कृषि निर्भर है और इनकी जीविका का प्रमख साधन है। इन देशों का जी0डी0पी0 वृद्धि में कृषि एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।"

दक्षिण एशिया के देशों में औद्योगीकरण का आधार बहुत कमजोर ह क्या। यहा पर आधारभूत संरचनाओं तथा तकनीकी और संसाधनों का अभाव है। यद्यपि 1985 के बाद से इनके औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई है, परन्तु यह मुख्य रूप से भारत या पाकिस्तान और श्रीलंका के कछ क्षेत्रों में ही सीमित रही। अपनी औद्योगिक योजनाओं के द्वारा भारत ने निश्चित ही उच्च स्तर की प्राद्योगिकी को विकसित करने में सफलता प्राप्त की है, परिणामस्वरूप आज भारत विश्व के औद्योगिक देशों में सातवें स्थान पर है। भारत का कपड़ा उद्योग, चाय और कई अन्य कृषि उत्पादन विश्व में सर्वश्रेष्ठ है।"

परन्तु दक्षिण एशिया के अन्य देशों में औद्योगिक विकास धीमा है क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों का समुचित दोहन करने के लिए इन देशों के पास तकनीकी तथा आर्थिक कमजोरी जैसी समस्याएं है। इन देशों की प्रति व्यक्ति आय विश्व में सबसे कम है।" दक्षिण एशिया की जी0एन0पी0 विश्व जी0एन0पी0 की मात्र दो प्रतिशत है। क्षेत्र के कुल आयात का मात्र 2/3 भाग ही निर्यात द्वारा कवर होता है। दक्षिण एशिया के राष्ट्रों का विश्व जनसंख्या में 20 प्रतिशत एवं भूभाग में 3.5 प्रतिशत अनुपात होते हुये भी विश्व के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में उनका हिस्सा मात्र 2 प्रतिशत है। इन देशों में प्रति व्यक्ति आय की दर 1995-96 में 170 से 430 अमेरिकी डालर के बीच थी, जो कि उन्हें विश्व के निर्धनतम देशों की श्रेणी में खड़ा करती है।

दक्षेस के सदस्यों में भारी उत्साह है, परन्तु उनमें परस्पर शंकायें भी हैं। भारत से आर्थिक प्रतिस्पर्धा में अन्य देश जहाँ स्वयं की सामर्थ्य में न हैं। वहीं भारत की मान्यता है कि ये देश संतुलित व्यापार के नाम वस्तएँ बेचना चाहते हैं, जबकि घरेलू राजनीतिक कारण है निर्यात में कोताही करते हैं। जैसे-भारत, बांग्लादेश से गैस व खनिज गैस पर आधारित उर्वरकों आदि के आयात को प्राथमिकता देगा। पाकिस्तान से भी ऐसी ही आवश्यक वस्तुएँ भारत मंगाना चाहेगा। नेपाल से भारत जल संसाधनों से तैयार बिजली खरीदना चाहेगा। परन्तु भारत को इनकी आपूर्ति में ये देश आनाकानी करते हैं, क्योंकि विपक्षी शक्तियां इसे अपनी सरकारों की भारत

को समर्पण की नीति का प्रतीक मानती हैं। स्वयं बांग्लादेश आदि के बुद्धिजीवी मानते हैं कि उनके देश भारतीय उत्पादों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते।

अन्त: क्षेत्रीय व्यापार में वृद्धि एवं समुचित प्रबन्ध किसी भी क्षेत्रीय सहयोग संगठन का प्रमुख उद्देश्य है। यही उद्देश्य दक्षेस संघ का है, जिसे प्रकटत: घोषणा पत्र में अभिव्यक्त किया गया है। अन्त: क्षेत्रीय व्यापार में कच्चा माल या आयातित उत्पाद अपने पड़ोस से ही लिया जाता है। पड़ोस के माल का प्रयोग करने से परिवहन भाड़े की बचत होती है जिससे घरेलू बाजार के लिए आयातित माल भी सस्ता मिल जाता है। दूसरे निर्यातक देश को भी आपसी सहमति से अपनी वस्तुआ के लिये बाजार मिल जाता है। इस दृष्टि से आसियान, यूरोपीय संघ व अन्य क्षेत्रीय संगठनों की काफी उपलब्धियां रही हैं। दक्षिण एशिया में जैसा कि प्रारम्भ में देखा, अन्त: क्षेत्रीय एशिया का प्रतिशत विश्व व्यापार का 3 से 4 प्रतिशत तक चल रहा है।"

दक्षेस के देशों ने इसीलिऐ इसे सर्वोच्च महत्व दिया। साथ ही पहले वरीयता प्राप्त व्यापार और बाद में मुक्त व्यापार क्षेत्र की 2001 तक स्थापना करने का संकल्प लिया। अधिकारिक स्तर के साथ ही व्यापारिक संगठनों द्वारा भी पारस्परिक व्यापार बढ़ाने की संभावना को खोजा गया।"

अन्त: क्षेत्रीय व्यापार का महत्व इसलिए भी है कि अन्य प्रकार के आर्थिक सम्बन्ध जैसे संयुक्त उद्यम आदि योजनाएँ तकनीकी ज्ञान व वित्तीय संसाधनों की उपलब्धि पर निर्भर है। इसके अलावा संयुक्त उद्यमों सम्बन्धी कार्यक्रमों की क्रियान्विति में समय भी लगता है। यह भी दृष्टव्य है कि आर्थिक व्यापार, सामाजिक संप्रेषण और राजनैतिक सुलह-सफाई का भी साधन हो सकता है, जैसा कि अमेरिका एवं चीन के उभयपक्षी सम्बन्धों में देखने को मिलता है। इन्हीं तथ्यों के सन्दर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि जहां दक्षिणी एशिया के देश द्विपक्षीय व्यापार वृद्धि के लिये दक्षेस से पहले से ही सचेष्ट रहे हैं। दक्षेस के कारण बहुपक्षीय समझौता, वार्ताओं तथा पारस्परिक व्यापार में रूकावटों को सहजता से दूर कर सकने की अपेक्षा रही है। इनमें तटकर छूट के बारे में समझौता, व्यापार में प्राथमिकता का दर्जा, दूर संचार एवं माल परिवहन के साधन-सुविधा उपलब्ध करवाना आदि कार्यक्रम समाविष्ट है। अन्तिमत: दक्षेस से यह भी अपेक्षा रही है कि चाय, जूट, तैयार वस्त्र उद्योग आदि प्रमुख उत्पादों के विपणन में दक्षेस देशों में प्रतिस्पर्धा के स्थान पर परस्पर सहयोग की व्यवस्था को विकसित किया जाये। प्रस्तुत अध्याय में यही जानने का प्रयास किया गया है कि दक्षेस राष्ट्रों के मध्य वाणिज्य व व्यापार की क्या स्थिति है और क्षेत्रीय सहयोग में इनकी क्या भूमिका पन देखें रही है। साथ ही यह भी पता लगाने का प्रयास किया गया है कि दक्षेस की अन्तर्खेत्रीय वाणिज्य-व्यापार तथा सदस्य देशों की आर्थिक स्थिति के विकास में क्या भूमिका रही।

दक्षेस की स्थापना के प्रमुख लक्ष्यों में अन्त:क्षेत्रीय व्यापार में वृद्धि भी एक लक्ष्य रहा है। परन्तु प्रारम्भ के शिखर सम्मेलनों में इस मुद्दे पर चर्चा पर संकोच रहा, क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था के अधिक सशक्त होने से छोटे देशों को अपनी अर्थव्यवस्था को क्षति पहुँचने की आशंका रहती थी।

भारत के साथ संतुलित व्यापार की अल्प संभावनायें भी अन्तक्षेत्रीय व्यापार के विवर्द्धन में वरीयता सिद्धान्त की उपयोगिता को सीमित करती है। इन देशों की अर्थव्यवस्था में परिपूरकता के स्थान पर प्रतिस्पर्धा अधिक है। अधिकांश सदस्य देशों की अर्थव्यवस्थायें कृषि प्रधान हैं व भारत की तुलना में अपेक्षाकृत कम औद्योगिक । इस कारण भी भारत व अन्य सदस्य देशों में संतुलित व्यापार के कम अवसर हैं। एक साथ ही वैश्वीकरण व उदारीकरण की प्रक्रिया के कारण विश्व व्यापार प्रक्रिया से संतलन बिठाने में विपरीत दबाव होते हैं। जैसे-खाद्यान्नों की आपूर्ति में अमरीका आदि देश दिलचस्पी रखते हैं।

इसी बीच विभिन्न अध्ययनों के निष्कषों से यह तथ्य सामने आया कि इन देशों में व्यापार बढ़ने की काफी संभावना है। एक अध्ययन के अनुसार यह पाया गया कि मालभाड़े में रियायत आदि लाभों के बावजूद सदस्य देश कई आयातित वस्तुएँ दक्षेस के सदस्य देशों से नहीं अपितु बाहर के देशों से खरीदते रहे हैं। दक्षेस क्षेत्र में आपूर्ति योग्य वस्तुओं में उदाहरण के तौर पर भारत मात्र 2 प्रतिशत वस्तुएँ ही 1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षो में आयात करता रहा है, शेष अन्यत्र देशों से। इसी मामले में बांग्लादेश 17.46 प्रतिशत, पाकिस्तान 5.8 प्रतिशत व श्रीलंका मात्र 12.7 प्रतिशत वस्तुएँ ही क्षेत्र के सदस्य देशों से मंगवाते रहे। यह भी महसूस किया गया कि कुल व्यापार में दक्षेस के अन्तर्गत खरीदने योग्य 80 प्रतिशत वस्तुओं का विश्व के विभिन्न देशों से जो आयात किया जाता है, उसका 25 प्रतिशत भाग ही क्षेत्र के अन्दर से आयात होता है। इस प्रकार दक्षेस देशों में पारस्परिक व्यापार बढ़ने की काफी संभावना है।

इन सम्भावनाओं एवं विश्व आर्थिक परिदृश्य को दृष्टिगत रखते हुए दक्षेस के शीर्ष नेताओं ने आपसी आर्थिक सहयोग बढ़ाने की दिशा में प्रयास किया और बांग्लादेश की राजधानी ढाका में 10-11 अप्रैल 1993 में आयोजित सातवें दक्षेस शिखर सम्मेलन के दौरान दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के मध्य आपसी व्यापार को बढ़ाने के उद्देश्य से व्यापक रूप से वार्ता हुई। विचार-विमर्श के दौरान दक्षिण एशिया वरीयता व्यापार समझौते के प्रति व्यापक सहमति व्यक्त की गई और दक्षेस देशों के विदेशमंत्रियों ने अन्तक्षेत्रीय व्यापार के उदारीकरण के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किये।" इस अवसर पर भारत के विदेशमंत्री श्री दिनेश सिंह ने कहा कि यह पहला अवसर है जब दक्षेस के मंच पर आर्थिक सहयोग हेतु विचार-विमर्श किया गया 02 इस ''दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार समझौते" को 2 मई 1995 में नई दिल्ली में आयोजित आठवें शिखर सम्मेलन के दौरान मूर्तरूप प्रदान किया गया, जिसके परिणामस्वरूप 4 दिसम्बर 1995 से दक्षिण एशिया की प्रथम व्यापारिक सहमति अस्तित्व में आई।

भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान और मालदीव जैसे सभी सदस्य देशों ने एक दूसरे को व्यापार में वरीयता देना स्वीकारा। दक्षेस इन देशों को एक साथ लाकर परस्पर आयातों में विशेष छूट उपलब्ध करवाने का प्रयास करेगा। सदस्य देशों ने अपेक्षा की कि विश्व के अन्य क्षेत्रीय कार्यक्रमों व संगठनों की तरह यह समझौता भी मजबूत कदम के रूप में अपने को सिद्ध करेगा।"

वरीयता प्राप्त व्यापार समझौते के प्रावधानों के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई कि सदस्य देश एक दूसरे से आयतित उत्पादों पर तटकर में कम से कम 10 प्रतिशत से लेकर 100 प्रतिशत तक की रियायत देंगें। परन्तु इस व्यवस्था को न तो बाध्यकारी या अनिवार्य बनाया गया है और न ही इसकी कोई पूर्व निर्धारित समय सीमा रखी गई। सदस्य राष्ट्र परस्पर विचार-विमर्श के माध्यम से तटकर में कटौती का प्रतिशत तय करेंगे। वरीयता प्राप्त व्यापार के अन्तर्गत प्रारम्भिक रूप में तटकर में कटौती हेतु प्राथमिक उत्पाद, कृषि उत्पाद, कच्चा माल, पशुधन, समुद्री उत्पाद और तैयार माल जैसे क्षेत्र निर्धारित किये गये हैं। दक्षिण एशिया के बांग्लादेश, नेपाल एवं भूटान को न्यूनतम विकसित राष्ट्रों के रूप में मानते हुए यह व्यवस्था की गई है कि राष्ट्र दक्षेस राष्ट्रों से आयात पर अस्थायी रोक लगा सकते हैं।

इस समझौते के अन्तर्गत आने वाले सदस्य राष्ट्रों द्वारा अभी तक इस पर खुलकर अमल नहीं किया गया है। इन राष्ट्रों ने प्रथम दौर में कुल मिलाकर 226 वस्तुओं पर एवं दूसरे दौर में 2000 आयात योग्य वस्तुओं पर रियायतें देने के प्रति सहमति व्यक्त की है।

दक्षिण एशिया के देश विश्व के निर्धनतम देशों में हैं, जिनके पास कई बार जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुओं या औद्योगिक मशीनरी के आयात हेतु भी वांछित विदेशी मुद्रा नहीं होती, फलत: उन्हें विदेशी ऋण या अनुदान पर निर्भर रहना पड़ता है, जो विकसित देशों द्वारा अपने से ही माल खरीदने की शर्त पर दी जाती है।

वरीयता पर आधारित अन्त: क्षेत्रीय व्यापार के विवर्द्धन में जहाँ कई एक सीमाएं हैं, वही ऐसे परिवर्तन एवं विकास क्रम भी दृष्टव्य है, जो बताते हैं कि दक्षेस के अन्य कार्यक्रमों की भांति अन्त: क्षेत्रीय व्यापार में भी वांछित प्रगति होगी। यही कारण है कि पारस्परिक शंकाओं तथा धीमी प्रगति (लौंग गैस्टेशन पीरियड जैसा कि एक नेपाल समाचार पत्र ने लिखा) के बावजूद शिखर सम्मेलनों में वरीयता व्यापार (साप्टा) व मुक्त व्यापार क्षेत्र (साफ्टा) पर विचार-विमर्श में काफी उत्साह भरी वकालत का दृश्य रहता है।

इसके लिये कुछ सकारात्मक संकेत उत्तरदायी हैं। इनमें से कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं-

1. दक्षेस के सम्मेलनों एवं अन्य आयोजनों में सर्वसम्मति की परम्परा चल पड़ी है। साथ ही सबसे अधिक अनिच्छुक राष्ट्र को मनाने व उसी से प्रस्ताव करवाने की प्रथा भी है। जैसे-भारत से सशंकित पाकिस्तान से। फलत: अनिच्छुक राष्ट्र असहयोगी नहीं हो पाते, अपितु कुछ उदारता ही अपने निर्णयों में बरतते हैं।
2. वरीयता प्राप्त व्यापार क्षेत्र से सम्बन्धित प्रयासों की गति निश्चित ही धीमी रही है, जो इससे स्पष्ट है कि दक्षेस के तत्वावध ान में अन्त:क्षेत्रीय व्यापार इन देशों के कुल विश्व व्यापार का 3.5 प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ पाया है। दूसरे शब्दों में दक्षेस के प्रथम दशक में अन्त:क्षेत्रीय व्यापार मुश्किल से आधा प्रतिशत बढ़ा है। अनेक कारणों में एक प्रमुख कारण यह भी है कि सदस्य देश तटकर छूट के लिये एक-एक वस्तु को जाँचकर फैसला करते हैं, जबकि आवश्यकता श्वस्तु समूहश् के हिसाब से फैसला करने की है। जनवरी 1996 में दक्षेस के वाणिज्य मंत्रियों के सम्मेलन में भारत के तत्कालीन

वाणिज्य मंत्री पी. चिदम्बरम् ने प्रस्ताव किया था कि अन्य देश सहमत हों तो भारत कम से कम 4 वस्तु समूहो (उर्वरक, आधारभूत धातुएं, जैवकीय एवं अजैवकीय रसायन एवं लकड़ी से बने सामान) में तटकर छूट प्रदान कर सकता है। लेकिन अन्य देशों का इस ओर रूख स्पष्ट नहीं है, परन्तु यदि ऐसा हो जाता है तो स्वत: ही बड़े स्तर पर तटकर छूट में रियायत होगी एवं व्यापार बढ़ेगा।

3. दक्षेस के पक्ष में क्षेत्रव्यापी चुनिन्दा बुद्धिजीवी वर्ग की सक्रियता एक वरीयता व्यापार क्षेत्र में प्रभावी कदमों की आशाएं जगाती हैं। अनौपचारिक रूप से गठित इस समूह में सभी सदस्य देशों के चुनिन्दा बुद्धिजीवी हैं जो लेखन एवं वक्तृताओं से सहयोग से उपादेयता एवं असहयोग की कीमत के बारे में विस्तार से बयान करते हैं तथा अपने सम्पर्क के आधार पर शासन प्रमुखों के दृष्टिकोणों को भी पक्ष में जोड़ने का कार्य करते हैं। ''द्वितीय मार्ग" (सेकेंड ट्रेक) प्रयासों को सशक्त करने में जुटे हैं।
4. भारत की अग्रणी भूमिका अपनाना भी व्यापार विवर्द्धन में प्रगति के लिये सकारात्मक संकेत है। पिछले माले (1997) एवं कोलम्बो (1998) शिखर सम्मेलनों में भारत ने स्पष्टत: कहा कि अन्य सदस्य देशों से बराबरी की रियायतों को लिये बिना ही भारत अपनी तरफ से तटकर एवं अन्य गैर शुल्क प्रतिबन्धों में अधिक से अधिक रियायतें देगा। प्रधानमंत्री इन्द्र कुमार गुजराल द्वारा अलग से भी यह आश्वासन दिया गया, जो गुजराल सिद्धान्त के नाम से मशहूर है। फलत: सदस्य देशों में आशा जागती है कि भारत के उदार दृष्टिकोण से छोटे देश भारत के साथ अपने व्यापार को संतुलित कर सकेंगे व वे भी अधिक से अधिक व्यापार बढ़ा सकेंगे। भारत द्वारा दी गई रियायतों में दक्षेस के सदस्य देशों से आयातित माल में तटकर छूट देना, गैर टैरिफ प्रतिबन्धों में ढिलाई देना और सबसे अधिक बढ़कर छोटे देशों में तैयार माल में स्थानीय श्रम व मूल्य, अभिवर्द्धन सीमा को घटाकर 25 प्रतिशत कर देना आदि शामिल हैं।
5. एक अन्य संकेत दक्षेस व्यापार एवं उद्योग परिसंघ का गठन है। इससे बुद्धिजीवियों से भी अधिक दक्षिण एशिया के व्यापारी एवं व्यापार उद्योग संगठन क्षेत्रीय व्यापार विवर्द्धन की वकालत को आगे आए हैं। नई दिल्ली, ढाका, इस्लामाबाद आदि में इनकी बैठकें हुई हैं एवं भारत, पाकिस्तान आदि सभा सदस्य देशों के व्यापार संगठनों ने एक संयुक्त कमान के रूप में इसका गठन किया है। यह संगठन अपने या अपने सदस्य संगठनों के माध्यम से अन्त:क्षेत्रीय व्यापार के स्तर पर वाँछित तत्वों का अध्ययन करवाता है एवं उन्हें दूर करने जैसे आधारभूत संसाधनों में अभिवृद्धि आदि।

   संयुक्त संघ के तत्वावधान में एक दूसरे देश की अर्थव्यवस्था का निकट से अध्ययन करने के अवसर भी बढ़े हैं। इससे पारस्परिक काल्पनिक भय के शमन व विश्वास वृद्धि में सहयोग मिला है।'' किसी समय पाकिस्तान के उद्योगपति भारत से दूरी में विश्वास करते थे, क्योंकि दोनों की अर्थव्यवस्थायें समान क्रीड़ा स्थल/धरातल पर नहीं हैं। परन्तु अब उन्हीं के सदस्य (जैसे फैडरेशन ऑफ पाकिस्तान चेम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज की कराची शाखा के सदस्यों ने आगे बढ़कर पूर्व उल्लखित ढाका त्रिपक्षीय सम्मेलन में कहा कि भारत व पाकिस्तान को राजनीतिक विवादों को एक तरफ कर आर्थिक सहयोग बढ़ाने पर विचार करना चाहिये।

   इसी सन्दर्भ में एक यह भी शुभ संकेत है कि स्वयं दक्षेस देशों के शासन प्रतिनिधि निजी व्यापार संगठनों की भूमिका को स्वीकार ही करने नहीं लगे हैं, अपितु इसे अधिक औपचारिक व प्रभावी भी बनाना चाहते हैं। फलत: आर्थिक नेतृत्व के पहल करने पर शासनाधिकारियों को निर्णय लेने में सुविधा होगी।

   विश्व व्यवस्था व्यापार संगठन में विकसित देशों के वर्चस्व के प्रति तृतीय विश्व के अन्य देशों की भांति दक्षेस देशों में भी आर्थिक हितों के प्रति काफी चिन्ताएं हैं। इनमें बौद्धिक सम्पदा प्रावधानों, बालश्रम की आड़ में विकासशील देशों के निर्यात को सीमित करना और तैयार वस्त्रों के निर्यात की मात्रा घटाना आदि मुद्दे शामिल हैं। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश व श्रीलंका इनसे समान रूप से प्रभावित होते हैं। अत: ये संयुक्त दृष्टिकोण अपनाकर विकासशील देशों से अपने हित सुरक्षित रखने की आवश्यकता महसूस करते हैं। दक्षेस के मंच से यह सम्भव है।
6. विश्व के अधिक विकसित क्षेत्रीय संघ भी दक्षेस जैसे संघों द्वारा संचालित परियोजनाओं को प्रधानता देने लगे हैं। शीतयुद्ध की राजनीति के अवसान के बाद यह सम्भव हुआ है।
7. अन्त: क्षेत्रीय व्यापार बढ़ाने के लिये आवश्यक संसाधनों की समुचित व्यवस्थाओं की ओर भी ध्यान जाने लगा है। आध ारभूत सुविधायें जैसे सड़क व रेल परिवहन बढ़ाये जा रहे हैं। जैसे भारत व बांग्लादेश तथा भारत व पाकिस्तान के बीच

सड़क व रेल सुविधायें बढ़ाई जा रही हैं। स्वयं पाकिस्तान का व्यापारी वर्ग कहने लगा है कि भारत से चीनी या अन्य व्यापार करार समय पर लागू करवाने के लिये सड़क मार्ग खुल जाने चाहिये। इसी प्रकार समान मुद्रा में व्यापार की समस्या को श्एशियन क्लियरेन्स यूनियनश् के माध्यम से सुलझाया जा रहा है। टर्की से भारत, बांग्लादेश व म्यांमार होते हुये थाईलैण्ड तक की ट्रान्स एशियन रेलवे को मूर्त रूप देने का उद्देश्य भी व्यापार बढ़ाना है।

प्रथम दौर में भारत ने इसमें अपनी अग्रिम भूमिका अदा करते हुये सबसे 100 वस्तुओं पर शुल्कों में रियायतें द्वारा प्रदान की हैं। पाकिस्तान द्वारा श्रीलंका द्वारा 31, मालदीव द्वारा 17, बाग्लादेश 12 तथा भूटान द्वारा मात्र 7 वस्तुओं पर रियायतें देने की घोषणा की गई है। परन्तु वास्तविक आयात-निर्यात सम्वधी आंकड़ों से तुलना की जाए तो स्पष्ट लगता है कि वरीयता प्राप्त व्यापार के लिए तटकर छूट सम्बन्धी ये सूचियाँ वस्तुस्थिति से परे एक प्रचार का साधन अधिक हैं, और वास्तविक उद्देश्यों को पूरा करने वाली नहीं है जैसे कि भारत द्वारा प्रथम दौर में सूचीबद्ध 106 वस्तुओं में से 85 का भारत दक्षेस देशों से बिल्कुल आयात नहीं करता। शेष में से 21 ऐसी रहीं जिनका दक्षेस देशों से आयात कुल आयात का 10 प्रतिशत से भी कम रहा। इसका तात्पर्य यह है कि अन्य देश भारत की ओर भी माल भेज सकते हैं। यही स्थिति न्यूनाधिक अन्य देशों द्वारा तटकर छूट के लिए तैयार वस्तु सूचियों की है।

इसी दौरान दक्षेस देशों के व्यापार एवं औद्योगिक संगठनों द्वारा संयुक्त रूप से दक्षेस व्यापार मण्डल का गठन किया गया। इसकी ओर से सूचियों के विस्तार के लिये और निजी संगठनों को भी व्यापार में भागीदार बनाने के लिये दबाव बढ़ा। सिद्धान्ततः यह मांग मान ली गई है, साथ ही ही सूचियों का भी विस्तार हुआ है, जो बढ़कर 2000 तक पहुँची हैं।''

यह अधिक सार्थक प्रयास रहा, परन्तु इसमें भी एक सीमा तक प्रचार का उद्देश्य रहा है, व ऐसी भी वस्तुएँ समाविष्ट हैं, जिनका सम्बन्ध आयातदूनिर्यात की वास्तविकता से नहीं है। फिर भी उत्साही तत्व अन्तः क्षेत्रीय व्यापार को अधिक गति देने के लिये सक्रिय हैं, हालांकि अधिकारिक स्तर पर प्रक्रिया बड़ी धीमी है। फिर भी तीसरे व चौथे दौर में मिलाकर 4000 वस्तुओं तक को तटकर छूट के लिए वरीयता प्रदान करने के प्रयास जारी हैं।

दक्षेस वाणिज्य मण्डल के अलावा, "ख्यातिनाम व्यक्तियों का समूहष् नाम से एक और हित समूह उभरा है, जो वाँछित लक्ष्य की ओर इन प्रक्रियाओं को बढ़ाना नवें व दसवें शिखर सम्मेलनों में उन पर विचार हुआ व कुछ निर्णय भी। इसमें अभी दो बड़ी बाधाएँ है। प्रथमतः हिन्दुस्तान व पाकिस्तान के पसी विवाद जिनके चलते पाकिस्तान भारत को ''सर्वोच्च वरीयता प्राप्त देश'' का हर में आनाकानी कर रहा है। दूसरे भारत द्वारा अन्य क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं को बौना कर देने व भारतीय तैयार माल (अधिक सस्ता होने के कारण) के सरता होने के कारण अन्य देशों के उद्योग खतरे में पड़ जाने का डर है परन्तु यदि आंकड़े देखे जाएँ तो स्पष्ट है कि अन्य दक्षेस देशों में भी व्यापार अधिक नहीं बढ़ पा रहा है। इनमें से कुछ समस्याओं पर आगे विचार किया जा रहा है।

इन सब रियायतों का बड़ा प्रभाव पड़ा और एक वर्ष में ही नेपाल से भारत को निर्यात 72 प्रतिशत बढ़े जबकि अन्य देशों का सिर्फ 6 प्रतिशत तक निर्यात बढ़ा। उक्त व्यापार संतुलन में भारत में सेना, कृषि उद्योग व अन्य क्षेत्रों में रोजगार करने वाले नेपालियों द्वारा भेजी गई राशि सम्मिलित नहीं है। इसको जोड़ने के बाद कतिपय अर्थशास्त्रियों का अनुमान है कि व्यापार संतुलन नेपाल के पक्ष में है। भारत को इन वर्षों में वनस्पति घी, पॉलिस्टर धागा, जूट उत्पाद, साबुन आदि वस्तुओं का आधक निर्यात हुआ और भारत से तैयार औद्योगिक उत्पादों व खाद्यान्न का निर्यात बढ़ा।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. दास, किशोर सी0, द पालिटिकल इकोनामी आफ रीजनल को-आपरेशन इन साउथ एशिया, पेसफिक एफेयर, वा0-69, नं0-2, समर 1996.
2. मुनि, अनुराधा एण्ड एसडी0 मुनि, रीजनल को-आपरेशन इन साउथ एशिया, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1984, पृ0 29-31 वागनर, क्रिस्टीयन, रीजनल कॉपरेशन इन साउथ एशिया रू रिव्यू ऑफ द सार्क, आसैन पोलिटिक, वाल्यूम 44, अंक-2, 1993.
3. पटनायक, स्मृति एस0, मेकिंग सेंस आफ रीजनल को-आपरेशनः सार्क एट ट्वेन्टी, स्ट्रेटेजिक एनालिसिस, वाव-30, नं0-1, 2006.
4. मलिक, हफीज, (संपाव) डिलेम्माज आफ नेशनल सिक्योरिटी एण्ड को-आपरेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, सेंट मार्टिन्स प्रेस, न्यूयार्क, 1993.
5. फ्राम सार्क टू सार्क : माइलस्टोन्स इन द इवोल्यूशन ऑफ रीजनल कॉआपरेशन इन साउथ एशिया, सार्क सेक्रेटिरियेट, काठमाण्डू, वा0-1, 1980-1988.

6. राधेय, बी0एस0 श्रीकान्त, 'ग्लोबलाइजेशन ऑफ इण्डियन इकोनॉमी, स्ट्रेटेजीज एण्ड कंसट्रेन्स', इन एस0 मूर्ति, दि चेन्जिंग इण्डियन इकोनॉमिक आर्डर, इन्दुस पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1993.
7. दुबे, मुचकुन्द, रीजनल इकोनामिक इन्टीग्रेशन इन साउथ एशिया रू प्रिन्सिपल इश्यूज एण्ड रोल. आफ पॉलिटिकल फैक्टर, नई दिल्ली, जून 2008.
8. लामा, पी0 महेन्द्र, 'सार्क इन्टीग्रेटेड प्रोग्राम ऑफ एक्शन : टूवर्ड्स मोर इफैक्टिव को-ऑपरेशन', एशियन सर्वे, 1998 भाग 5, संख्या 1
9. बाजपेयी, पी० (संपा०), पालिटिक्स एण्ड पॉलिसीज आफ एशियन नेशंस, अनमोल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994, पृ0 65-69. दुबे, मुचकुन्द, रीजनल इकोनामिक इन्टीग्रेशन इन साउथ एशिया रू प्रिन्सिपल इश्यूज एण्ड रोल आफ पॉलिटिकल फैक्टर, नई दिल्ली, जून 2008.
10. रिजवी, गौहर, साउथ एशिया इन ए चेन्जिंग इण्टरनेशनल आर्डर, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009.
11. दुबे, मुचकुन्द, रीजनल इकोनामिक इन्टीग्रेशन इन साउथ एशिया-प्रिन्सिपल इश्यूज एण्ड रोल आफ पॉलिटिकल फैक्टर, नई दिल्ली, जून 2008.
12. चोपड़ा, प्रेम, फ्यूचर आफ साउथ एशिया, यूनीवर्सिटी प्रेस लि0, ढाका, 2009

महिलाओं की संरचनात्मक प्रस्थिति एवं भूमिका का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० अमृता श्रीवास्तव

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर

सारांश

भारतीय सामाजिक संस्कृति में नारी का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान रहा है "यत्र नार्यस्तु पूजयते, रमन्ते तत्रदेवता"- मनु के यह वाक्य उसकी गौरवपूर्ण प्रस्थिति को द्विगुणित कर दिया। नारी ईश्वर की अनुपम वसर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती है जो प्रकृति के अत्यन्त करीब है क्योंकि उसमें करूणा, ममता, सहिष्णुता व स्नेह के गुण प्रकृति के अनुरूप स्वाभाविक विद्यमान रहते हैं। जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिए स्त्री और पुरुष हैं; एक के अस्तित्व के बिना दूसरा अपूर्ण व अस्तित्व विहीन है। स्त्री की ही भूमिका से गृह का निर्माण व गृहणीस्वरूप का अस्तित्व बना। स्त्री गृह की शोभा व घर की संकल्पना को सुशोभित व सत्य बनाती है, इसलिएउसे "न गृहं गृह मित्याहु: गृहणी गृहभ्युच्यते।" कहा गया। नारी प्रकृति जन्य भिन्नता का वहन करती है। इसभिन्नता में सांस्कृतिक मूल्यों का समावेशन संरचनात्मक असमानता के तत्वों का सृजन करता है जहाँ उसकीप्रस्थिति निम्नता की वाहक बनती है। उसकी यह निम्नता पुरुष के प्राधान्य स्वरूप को बल प्रदान करती हैजो उसे पदार्थ सरीखा व्यवहार मानकर उसका उपयोग करता है। नारी प्रस्थिति को चार तत्वों के आधार परसमझा जाता है- उत्पादन, प्रजनन, लैंगिगता तथा बच्चों का समाजीकरण। भारतीय सन्दर्भ में समाजवादियोंऔर मार्क्सवादियों ने उत्पादन पर जरूरत से ज्यादा बल दिया और इसी सन्दर्भ में उपरोक्त चारों पहलुओं मेंपुरुषों का प्राधान्य है जबकि इन क्षेत्रों में स्त्रियों का मुख्य उत्तरदायित्व है। पुरुष की सर्वोच्चता जाति, वर्ग, पुरुष तंत्र तथा पुरुष कामुकता से उत्पन्न होती है। सम्पूर्ण संरचनागत व्यवहार के केन्द्र में पुरुष हैं, जबकि इस संरचना की परिधि पर नारी। समाज के प्रतिमानित दायित्वों के निर्वहन की जिम्मेदारी स्त्री पर निर्धारितकी गई और पुरुष इस निर्वहन से सदैव मुक्त रहा। वर्तमान समय में नारी ही संरचनागत प्रस्थितियों मेंसमतामूलक दायित्वों का समावेशन किया गया। इन्हें समाज के प्रतिमानित दायित्वों के साथ-साथ मूल्यआधारित व्यवस्थाओं से जोड़ने का कार्य प्रारम्भ किया गया। अब वह भी संरचनागत समाज के स्वरूप मेंकेन्द्रस्थ की भूमिका निभाने की सक्षमता रखती है।

मुख्य शब्द- सामाजिक प्रस्थिति, औपनिवेशिक काल, पूँजीवाद, वैश्विक समाज, पितृसत्तात्मक समाज, सती प्रथा, सामाजिक आंदोलन।

सामाजिक संरचनात्मक व्यवस्था में स्त्रियों के प्रति व्यवहार त्रेयम दर्जे व दलित सरीखा किया जाता है। स्त्री की स्थिति ग्रहण करने की स्थिति है यह तथ्य सभी जातियों और वर्गों के परिवारों की स्त्रियों केपरिवेश के बारे में सत्य है। जिन पर आज भी सामन्तवाद का प्रभाव या इस सामाजिक व्यवस्था की जीवनप्रणाली व मूल्य सामन्ती हो। ग्राम्य क्षेत्र में नव-धनाढ्य लोगों ने स्त्रियों पर उच्च शिक्षा ग्रहण करने, नौकरीकरने तथा प्रवसन करने पर प्रतिबन्ध लगा रखे हैं। वास्तव में मूल्य जनित यह असामनता पुरुषों द्वारा निर्मितवातावरण में नारी प्रस्थिति को पराधीन बना रखा है जिसे भिन्न काल खण्डों में समझा जा सकता है।

नारी प्रस्थिति ऐतिहासिक सन्दर्भ

ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह हीसामाजिक दायित्वों का निर्वहन करती थी उन्हें समस्त प्रकार के समानता मूलक अधिकारों से सुशोभित कियागया था। अत: स्त्रियाँ पुरुषों से विलग नहीं समझी गई

उन्हें व्यक्ति के रूप में सम्मान प्राप्त था। उनको सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। विवाह सम्बन्धी उनको पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। समस्तप्रकार के धार्मिक कार्यों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती थी। उत्तर वैदिक काल में नारी प्रस्थिति की निम्नतापरिलक्षित हुई पुत्री के एक अभिशाप माना जाने लगा, यद्यपि सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की स्वतंत्रता थीपरन्तु यह नियमों के अधीन थी। शूद्रों की तरह ही नारी को सम्पत्ति के स्वामित्व व उत्तराधिकार के अधिकारोंसे हटाया जाने लगा। स्त्रियों की कमाई भी पतियों और पुत्रों की सम्पत्ति मानी जानी लगी। यद्यपि इन्हें शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं किया गया, वे सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भाग लेती थी परन्तु उन्हें वेदों के अध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं था। गुप्तकाल में स्त्रियों की स्थिति में वास्तविक रूप में बिगाड़ आया। इस समय स्त्री की प्रस्थिति को दहेज जैसी कुप्रथा से जोड़कर देखा जाने लगा अर्थात् दहेज रूपी संस्था का विकास इसी युग से हुआ। विधवाएँ पुन: विवाह का अधिकार नहीं रखती थीं उन पर सारा जीवन प्रायश्चितऔर सादगी पूर्ण व्यतीत करने की बाध्यता लागू की गयी। स्त्रियों को सम्पत्ति के समान समझा गया, उनकेसम्पत्ति सम्बन्धी समस्त अधिकार छीन लिए गए परन्तु इस समय भी पर्दा प्रथा नहीं थी। नारी पुरुष प्रधानता के कुचक्र में फंसती चली गई, क्योंकि इसी समय सती प्रथा नामक कुव्यवस्था को स्थान मिलने लगा था।इस काल खण्ड में लीलावती व खना जैसी महिलाएँ अंकगणित व खगोल शास्त्र की विशेषज्ञ बनी, जो समाजमें अपवाद स्वरूप थीं। स्त्रियों की सतत् दयनीय स्थिति आगामी युग में मुख्यत: सातवीं सदी के बाद बाह्य आक्रमणकारियों के कारण और निम्न होती चली गयी। उन्हें पर्दा-प्रथा बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं का सामनाकरना पड़ा। यह स्थिति और भी भयावह 1207-1761 के काल खण्ड में हुई जहाँ बालिका हत्या, बाल विवाह,जौहर, पर्दा, सती तथा स्त्री दासता व बंधुआकरण जैसी सामाजिक बुराईयों के कारण इनकी सामाजिक प्रस्थिति निम्नतर हुई। स्त्री शिशु के जन्म को दुर्भायपूर्ण समझा जाने लगा। इन्हें स्वतंत्रता देना सर्वनाश के समान समझा जाने लगा, नारी का जीवन अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, जादू-टोना तथा अभिचारों में विश्वास सेपूर्ण था। मातृत्व का आदर किया जाता था। पति, सन्तान तथा परिवार से लगाव को सभी वर्गों में उत्तम मूल्य समझा जाता था।

समाज सुधार आन्दोलन तथा राष्ट्रीय आन्दोलन से नारियों में नवीन सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई। वर्ष 1927 में अखिल भारतीय महिला सभा की स्थापना जिसका उद्देश्य नारियों में शैक्षिक तथा सामाजिक चेतना को जाग्रत करना था। महात्मा गाँधी जी ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में लाने का प्रयास किया। वर्ष 1930-40 के दशक में मध्यम वर्गीय नारियों ने नौकरी करना प्रारम्भ किया परन्तु औपनिवेशिक शासक ऐसा कोई कदम उठाना चाहते थे जिससे भारतीय समाज में नारी प्रस्थिति में सुधार सम्भव हो। स्त्रियों के उत्तराधिकार, विवाह तथा विवाहित स्त्रियों के अधिकार के बारे में जो विधिक नियम पास हुए वह सनातन हिन्दू, संस्कृति के नियम तथा औपनिवेशिक नियमों का मिश्रण था, जैसे हिन्दू कानूनों में पति के वैवाहिक अधिकारों को लागू करने का वर्णन नहीं है अपितु पुन: प्रतिस्थापन का प्रश्न उठा तो इसे स्वीकार किया गयायह औपनिवेशिक कानूनों से लिया था। यद्यपि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु सामाजिक प्रस्थिति सुधार आन्दोलन हुए जिसमें आधुनिक समाज निर्माता राजा राम मोहन राय तथा ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का योगदान मुख्य है। जिन्होंने विधवा पुनर्विवाह 1856 कानून पारित करवाने में सफलता प्राप्त की तत्पश्चात् 1861 में विधवा पुनर्विवाह समिति बम्बई का गठन किया। वर्तमान सदी के प्रारम्भ में सम्पत्ति उत्तराधिकार के नियम तथा विवाह नियमनों से जुड़े कानून बने। स्वतंत्रता पश्चात् भारत का सबसे प्रमुख कानून विशेष विवाह अधिनियम 1954, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 तथा दहेज निरोधक अधिनियम 1961 रहे जिन्होंने नारी के विरूद्ध समस्याओं को खोजने का प्रयत्न कियाताकि उन्हें पुरुषों के समान समानता प्राप्त हो सके।

औपनिवेशिक काल में नारी की सामाजिक प्रस्थिति

औपनिवेशिक शासन के दौरान नारी की प्रस्थिति सुधार सम्बन्धी अनके रूढ़ियों पर प्रहार किया जिसमें सती, बालिका, हत्या, नारी दासता, बाल विवाह तथा विधवा पुनर्विवाह व सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों पर ध्यान दिया गया। 19वीं सदी के प्रारम्भ में सती प्रथा बंगाल, नदिया, वर्धमान, उत्तर प्रदेश (गाजीपुर) तथा बिहार(शाहबाद) तक सीमित थी। भारत के अन्य भागों में यह प्रथा नाम मात्र की थी। सभी जातियों में सती कारिवाज था परन्तु उच्च जातियों खासकर राजपूतों एवं ब्राह्मणों में इस प्रथा का अधिक प्रचलन था। राजपरिवारों में गौरव और वीरता के कारण सती एक आदर्श व्यवहार बन गयी परन्तुअधिकतर मामले में वे नारी सतीहोती थी जिनके पति मध्यम व निम्न मध्यम वर्ग के थे। इस प्रथा के निम्न उत्तरदायी कारण थे-

1. परम्परागत भारतीय सामाजिक रिवाज।
2. समाज में नारियों की स्थिति।

3. बहुपत्नी प्रथा तथा विधवा जीवन बिताने की बाध्यता।
4. सती क्रिया आदर्श रूप में मोझ भाव को दर्शाना व श्रद्धा के भाव का जुड़ा होना।

इस प्रथा को औपनिवेशिक शासन ने राजा राम मोहन राय के सहयोग से 1829 में धारा 17 के तहत अवैध घोषित किया जिसका विरोध अनेक धार्मिक नेताओं ने किया परन्तु अन्तत: यह प्रथा सतत् प्रयासों केतहत समाप्त हुई। नारी शिशु हत्या के समाज में निम्न कारण थे, सर्वप्रथम पुरुष की प्रधानता, समाज में नारीकी दयनीय स्थिति इज्जत-अभिमान की भावना की प्रेरणा तथा बेमेल-अनुलोम विवाह की बाध्यता। समाज मेंनारी के विवाह की अनिवार्यता व संरचनात्मक व्यवस्था में मूल्य जनित इनकी स्थिति नारी शिशु की हत्या से जुड़ा है। यद्यपि कुछ क्षेत्र, जैसे-राजपुताना सिंध पंजाब व सिखों में यह कुप्रथा प्रचलित थी, जिसका कारण सामाजिक स्वाभिमान से जुड़ा था। ग्रामीण व नगरीय अशिक्षित व निर्धन लोगों में बाल विवाह से सम्बन्धितक्रिया व्यवहार आज भी प्रचलित है। बाल विवाह की प्रथा दहेज, कौमार्य तथा शुचिता की धारणा से जुड़ी हैजिसका दूरगामी परिणाम समाज को देखना पड़ा जैसे-जनाधिक्य, निर्धनता, बेरोजगारी, शारीरिक अक्षमता(बीमारी), शैक्षिक कमी, माता-पिता पर निर्भरता आदि समस्यायें उत्पन्न हुई। औपनिवेशिक समय में इस सन्दर्भमें प्रथम कानून वर्ष 1860 में बना, जिसने नारी विवाह की आयु 10 वर्ष निर्धारित की जो 1891 में 12 वर्ष,1925 में 13 वर्ष-14 वर्ष क्रमश: लागू की गई। 1929 में शारदा बिल (बाल विवाह नियन्त्रण अधिनियम) पारितकर नारी की विवाह आयु 14 वर्ष तथा पुरुष की 18 वर्ष निर्धारित हुई। यह नियम 1930 में लागू हुआ। वर्ष1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम के द्वारा स्त्री की 18 वर्ष तथा पुरुष की 21 वर्ष आयु निर्धारित की गई।

परम्परागत भारतीय समाज में दासता दो प्रकार की है प्रथम तो गृहकार्यों से जुड़ी है तो दसूरी कृषिकार्यों से। दोनों ही क्षेत्रों में नारी दासतामूलक प्रस्थिति को धारित करती है। यहाँ गृहकार्य का सीधा सम्बन्धनारी के अर्थविहीन कार्यों से जोड़कर समझा जाता है तो वहीं कृषि कार्यों में वह अपना प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्षदोनों प्रकार के सहयोग देने के लिए बाध्य है। सामाजिक, पारिवारिक जीवन में वह एक गुलामी के कर्त्तव्योंका निर्वहन करती है, उसकी ये क्रियाएँ गैर आर्थिक क्रियाओं से जुड़ी होती है। दीपांकर गुप्त इसे संरचनात्मक असमानता का पर्याय ही मानते हैं।

नारी-पुरुष सम्बन्ध

नारी के पुरुष और सामाजिक संरचना के साथ बन्धन को पूँजीवाद का लक्षण माना गया है। इसबन्धन से नारी की मुक्ति को समाजवाद की संकल्पना समझा जा सकता है। स्त्रियों हेतु सिर्फ रोजगार उनकी समस्याओं को हल करने का उपाय नहीं है। समाज के प्रत्येक वर्ग में नारी अनेक आर्थिक कार्यों में रत हैफिर भी वे पुरुष के हाथों में जकड़ी हुई है। मीनाक्षी मुखर्जी ठीक ही कहती हैं, कि "एक पुरुष की अपेक्षाएक स्त्री के लिए सामाजिक अनुपालन अधिक आवश्यक है।" मुख्यत: एक नारी की पहचान स्वयं तथा अन्यलोगों के द्वारा पुरुष के साथ एक पुत्री, पत्नी तथा माँ के रूप में की जाती है। वर्तमान भारतीय नारी कीस्थिति समझने हेतु उनकों शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, शहरी-ग्रामीण के सन्दर्भ में समझने पर भी उसकीवास्तविकता का पता लगाना सम्भव नहीं। वास्तव में नारी को पुरुष से अलग रख कर अध्ययन नहीं कियाजा सकता। नारी की निम्न स्थिति के लिए सिर्फ परिवार के दोषी नहीं समझा जा सकता बल्कि समाज की प्रकृति, पृष्ठभूमि तथा मूल्यों के सन्दर्भ में समझना उचित होगा। महिला की स्थिति का अध्ययन करने में 'परानुभूति' का होना आवश्यक है।

नारी समानता की खोज

प्रत्येक समाज में स्त्री द्वारा पुरुष के साथ समानता की खोज एक सार्वभौमिक तथ्य है। यही तथ्य महिला आन्दोलन, नारी वर्गीय कार्यक्रम, आमूल-चूल परिवर्तनवादी तथा इनसे जुड़े संगठनों को सृजित करनेपर बल देता है। नारीवाद पुरुष से उच्चता की बात नहीं करता अपितु समानता से जुड़ा है, नारीवाद की उत्पत्ति सामाजिक संरचना से जुड़ी है। दोनों के मध्य संरचनागत असमानता के तथ्य हमेशा से जुड़े रहे हैं। प्रकृति से नारी का सम्बन्ध अधिक होने के कारण वह पुरुषोचित व्यवहार करने में पिछड़ गई और अपनीशारीरिक अक्षमता के कारण वह पुरुष पर निर्भर हुई जिसका यथोचित लाभ पुरुष समाज ने उठाया और वह परतन्त्रता के स्वरूप को दर्शाने लगी। पुरुषों के साथ स्त्रियों की समानता प्राप्त करने की माँग पुरुषों के निरंकुश अधिपत्य को दर्शाती है जो नारियों को स्वयं के उत्थान हेतु एक स्वतन्त्र मार्ग अपनाने पर बल देताहै जो कठोर पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष के साथ समानता के अधिकार प्राप्त करना चाहती है और वे इसपरिवर्तन के लिए वही उपाय अपना रही है जो पुरुष सदियों से स्वयं के लिए अपनाते

आए हैं। वर्तमान मेंमहिलाओं के लिए पुरुषों के समान प्रस्थिति और समाज के सब सदस्यों के समान, सम्मानित जीवन प्राप्तकरने हेतु महिला संगठन, महिला सामाजिक कार्यकर्ताओं, दहेज, बलात्कार, शोषण आदि के मुद्दों को उठाया।महिला संगठनों ने विशेषकर नगरीय क्षेत्रों में यौन समानता के लिए चेतना की भावना उत्पन्न की। 1960-70 के दशकों से नारी की समस्याओं के परिणामत: अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष, महिला दिवस, नारी से जुड़ी सभाएँ, संगोष्ठियाँ तथा महिला अध्ययनों पर शोध किए गए।

स्वतंत्रता पूर्व व पश्चात् नारी विधिक अधिकार

औपनिवेशिक शासन में भारतीय नारियों की प्रस्थिति सुधार व विकास में उनकी भागीदारी सुनिश्चितकरने हेतु कानून बनाए गए। यद्यपि ये कानून सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध थे जो नारी प्रस्थिति को सबलबनाते हैं। इनमें सर्वप्रथम हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1875, विधवाओं द्वारा आत्महत्या/सतीप्रथा को अवैध घोषित अधिनियम 1829, हिन्दू विधवा पुनर्विवाह संशोधन अधिनियम 1829 व 1856, भारतीय तलाक अधिनियम 1869, विशेष विवाह अधिनियम 1872, विवाहित महिलाओं का सम्पत्ति अधिनियम 1874, सहमतिकी उम्र अधिनियम 1881, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925, बाल विवाह निरोधक अधिनियम 1929, हिन्दूस्त्रियों की सम्पत्ति अधिनियम 1937, आदि प्रस्थितिजन्य सुधार लाने वाले कानून रहे। स्वतंत्रता पश्चात्य नारीके प्रति पूर्ण भेदभाव समाप्त करने तथा उन्हें समाज में संरक्षण प्रदान करने हेतु संविधान के मूलाधिकार (अनुच्छेद-14,15,16,23) तथा राज्य के नीति निदेशक तत्वों (अनुच्छेद-39,41,42) में समानता, शिक्षा, आर्थिकअधिकारों का संरक्षण प्रदान किया गया। साथ ही महिलाओं के अनैतिक व्यापार के प्रति संरक्षण (1986 अधिनियम), सेवायोजन में भेदभाव व समान कार्य हेतु समान वेतन (1976 अधिनियम), वर्ष 1983 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति का निर्माण हुआ जिसका यह लक्ष्य था कि 2000 तक सभी को स्वास्थ्य सेवाएँ दी जाए। इन स्वास्थ्य सुविधाओं के केन्द्र में माँ और बच्चों को रखा गया। महिला और बच्चों के विकास कार्यक्रम मानवसंसाधन मंत्रालय द्वारा चलाए जाते हैं। इसी के अन्तर्गत वर्ष 1985 में महिला एवं बाल विकास की स्थापनाहुई जो दोनों के लिए सुधार कार्यक्रम चलाता है, इसके अन्तर्गत पोषण व बाल विकास, बाल कल्याण, महिलाविकास आदि क्षेत्रों में ध्यान दिया जाता है। वर्ष 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन कर महिला केसंवैधानिक अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया गया। समय-समय पर वैधानिक नीतियों का मूल्यांकन कियाजाता रहा। नारी के सामाजिक उत्थान के लिए शिक्षा, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्रों में बढ़ाने हेतु पिछले तीनदशकों में महिलाओं ने व्यवसायिक दुनिया में अविश्वसनीय प्रगति की, परन्तु आज भी वह स्वयं के पारिवारिक जीवन को प्रभावित करने वाले नाते-रिश्तेदारों द्वारा हतोत्साहित की जाती है। वैश्विक समाज के प्रभाव के कारण नारी का सकारात्मक प्रभाव की ओर विकास शुरू हुआ। सर्वप्रथम शैक्षिक रूप से सशक्त होकर वित्तीयस्वायत्ता में वृद्धि कर वह स्वयं के परिवार में अपनी प्रस्थिति को मजबूत कर रही है। दोनो ही आर्थिक लाभपाकर स्वयं के परिवार की आय को बढ़ा रहे हैं। महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर बढ़े तो वहीं उसकीदोहरी जिम्मेदारियाँ बढ़ी। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के फलस्वरूप नारियों के सामाजिक विकल्प विस्तारितहुए जिस कारण उसे अपनी जाति, वर्ग, धर्म से वाह्य वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की स्वतंत्रता मिली।बढ़ते अवसरों और आर्थिक स्वतंत्रता ने महिलाओं के लिए वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता की सक्षमता प्रदान की। यद्यपि नारी की बढ़ती सहभागिता सामाजिक क्षेत्रों में उसके प्रति कुछ नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न करती है जैसे कार्य क्षेत्र में लैंगिक भेदभाव के कारण कम भुगतान प्राप्त होना व पुरुष के अधीन ही कार्य करना। आर्थिक कारणों से महिलाओं के प्रवसन में उनके शोषण में वृद्धि की बदलती आर्थिक संरचनाओं नेइनके शोषण के नए स्वरूपों को सृजित किया। इनको इससे सुरक्षा प्रदान करने हेतु घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 लाया गया जिसने घर और बाह्य क्षेत्रों में इनके साथ हो रहे मानसिक व शारीरिक प्रताड़ना पर पूर्णनियन्त्रण लगाया है और महिलाओं का शोषण के प्रत्येक क्षेत्र में संरक्षण करता है। आर्थिक क्षेत्र में इनकी निरन्तर भागीदारी बढ़ रही है महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण हो रहा है। शैक्षणिक जगत में भी वहनित नए कीर्तिमान स्थापित कर रही है। महिला स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएँ भी निरन्तर कम हो रही है।

वर्तमान सरकार द्वारा संचालित विभिन्न परियोजनाओं द्वारा नारी को सामाजिक सुरक्षा प्रदान कर उन्हेंव्यवहारगत सशक्त बनाने का कार्य किया जा रहा है। इसमें सर्वप्रथम बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ अभियान 2015 में पानीपत शहर से उद्घोषित हुआ जो इनके लिंगानुपात व शैक्षणिक क्षेत्र को सशक्तता प्रदान करता है तो वहीं 1 मई 2015 प्रधानमंत्री उज्जवला योजना स्वच्छ ईंधन व बेहतर स्वास्थ्य जीवन के मूल्य को सार्थक बनारहा है। अटल पेंशन योजना व प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना तथा प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजनाद्वारा आर्थिक क्षेत्रों में इनको सशक्त कर रहा है। प्रधानमंत्री आवास योजना जो महिला को केन्द्र में रखकरक्रियान्वित की जा रही है, इन्हें सामाजिक रूप से सुदृढ़ बना रही है।

नारी की पहचान व्यक्ति रूप में

सामाजिक असमानता का ऐसा परिदृश्य है कि नारी को एक सम्पत्ति, वस्तु तथा अधीन स्वरूप में माना गया। उसकी पहचान एक भूमिका के रूप में जैसे-पुत्री, पुत्र वधू, पत्नी, माता व सास में की गई न कि एक व्यक्ति के रूप में। परिवार के बाहर उसका स्वतंत्र सम्पर्क पुरुष द्वारा नियन्त्रित था। उसके मित्र सम्बन्धी व अन्य सम्पर्क वही थी जो अपने परिवार के सदस्यों के द्वारा उसे प्राप्त हुए यहाँ उसकी स्वतंत्रता का हनन किया गया। प्रत्येक नारी अपने जीवन पर्यन्त एक वस्तु के रूप में उपभोग की गई। उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को पुरुषवादी विचारों ने दबा दिया। उसको अनके कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, उसे जबरन यौन सम्बन्ध तथा वैवाहिक अधिकारों का हनन उसके विरूद्ध प्रमुख हिंसा रही। वर्तमान समय में परिवार तथा अनुलोम विवाहों से जुड़ी मान्यताओं को पुनः नियोजित करने की आवश्यकता है, ताकि उसकी प्रस्थिति जन्य सुधारों को बल प्रदान किया जा सके। यद्यपि वैधानिक प्रावधान उसे वैधानिक रूप से सशक्त बनाते हैं परन्तु सामाजिक मूल्यों में उसके प्रति किसी भी प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता। आज भी नारी को व्यक्तिके रूप में पहचान हेतु संघर्ष करना पड़ रहा है। यद्यपि समाज निरन्तर भौतिक विकास की ओर अग्रसर है परन्तु परम्परागत, प्रथागत मूल्य नारी को आज भी पराधीनता मूलक प्रस्थिति से जोड़े हुए हैं। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री प्रोफेसर कृष्ण कुमार इस सम्बन्ध में कहते हैं कि महिलाएँ व्यक्ति नहीं हैं अपितु वे यन्त्रवत् व वस्तुगतव्यवहार करती प्रतीत होती है, जो लैंगिक आधारित असमानता के व्यक्त करता है। प्रोफेसर किरन कार्णिककहती हैं कि एक तरफ तो नारी को परिवार का आधार माना जाता है तो दूसरी तरफ उसे सामाजिक भेदभावका शिकार होना पड़ता है। उन्हें सम्मान जनक स्थिति प्राप्त करने हेतु कई नियमों एवं बन्दिशों का सामनाकरना पड़ता है। ये सांस्कृतिक परिवेश को प्रदर्शित करती हैं तथा समाज में हमारे बने रहने के अस्तित्व कोदर्शाता है जिसमें पुरुष पूर्णतया मुक्त होते हैं।

निष्कर्ष

भारतीय सन्दर्भ में सामाजिक सांस्कृतिक बन्धन से मुक्ति पाने हेतु महिलाओं का संघर्ष एक दीर्घ कालिक सामाजिक तथ्य रहा है। समाज रूपी गाड़ी के दोनों पहिए (स्त्री-पुरुष) यद्यपि साथ चलते हैं परन्तु दोनों कासामाजिक क्षेत्रों में विकास असमान स्वरूप को दर्शाता है। स्त्री अपने समस्त दायित्वों का निर्वहन पुरुष को केन्द्र सरकार करती है। यौन आधारित असमानताओं के लिए वह पुरुष को ही जिम्मेदार मानती है। एक अन्यमान्यता के अनुसार ऐसा माना गया कि एक स्त्री के विकास में पुरुष से अधिक स्त्रियाँ ही बाधक के रूप मेंखड़ी हैं इसके पीछे सार्थक तर्क यह है कि पितृसत्ता समाज में रहने वाली स्त्री की भी विचारधारा समाजीकरणकी प्रक्रियाओं से पुरुषोचित व्यवहार के लिए बाध्य है जो उसी के अनुरूप व उसके हितों को ध्यान रखते हुएव्यवहार करती है। उनकी मानसिक व्यवहारगत विचारधारा में पुरुष का प्रभाव अधिक होता है। वर्तमान व्यवस्था जिसने नारियों को सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से पंगु बना दिया है उसे स्त्री संघोंने चुनौती दी। यौन न्याय (पुरुषों के लिए) भी प्राप्त करने के लिए हम भारत की परम्परागत रचना, स्तर तथापरतों, स्त्री-पुरुष की कल्पनाओं पर भिन्न विचारों तथा यथार्थता, पारिवारिक नारी प्रस्थिति तथा व्यवसायिक कार्य में लगी महिला के विचारों को समझे, व्यक्ति के रूप में उसे सम्मान देने की ओर अग्रसित हों।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दोषी, एस०एल0 एवं जैन, पी0सी0 (2003), भारतीय समाज (पृ0 326-332), जयपुर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
2. शर्मा, के0एल0 (2000), भारतीय समाज (पृ0 111-117), नई दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0।
3. क्रॉनिकल, दिसम्बर, 2015, पृ0 78-79
4. पाण्डे, प्रवीण कुमार (2010), समाजशास्त्र और आप (पृ0 18-24), नई दिल्ली, दक्ष पब्लिकेशन।
5. योजना (पृ0 39-42) (मई 2015), नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग।

जैन धर्म का विकास एवं प्रमुख राजवंशों का योगदानः एक दृष्टि

राजू यादव

शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में कर्मकाण्डों के प्रभाव से जैन संघ भी अछूता नहीं बचा था। तत्कालीन समय में देश का वातावरण विषम हो रहा था। यज्ञवाद में ईश्वर प्राप्ति के लिए जिन पाखण्डों को जन्म दिया उस पाखण्ड से गरीब व्यक्ति पिसता रहा। 'स्त्रियाँ स्वतंत्र नहीं हो सकती' जैसी कठोर प्रथाएं प्रचलित थीं। स्त्री और शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था।[1] शूद्रों पर पशुओं जैसा व्यवहार किया जाता था। शूद्रों को वेद की ऋचाएं सुनने, बोलने व कंठस्थ करने पर कठोर दण्ड का विधान था तथा यह प्रार्थना की जाती थी कि उन्हें बुद्धि न दें, यज्ञ का प्रसाद न दें और व्रत आदि का उपदेश भी न दें।[2] ऐसी महंगी व्यवस्था में वह स्वार्गिक सुखों की आशा को छोड़ बैठा और इसीलिए वह पाखण्ड का विरोध करने लगा तथा विरोध के साथ-साथ संगठित होने में ही अपनी भलाई समझी।

छठी शताब्दी ई0पू0 में यज्ञवाद, पाखण्ड के विरोध में लोग नास्तिक सम्प्रदायों की ओर आकृष्ट हुए। ऐसी स्थिति में किसी ऐसे योग्य नेता की आवश्यकता थी जो आत्मबल से क्रांति ला दे और याज्ञिक कर्मकाण्डों का विरोध करके उनमें अहिंसा की भावना भर दे, तभी महावीर का प्रादुर्भाव होता है। वर्धमान महावीर की जन्म भूमि विदेह देश की राजधानी वैशाली थी जिसे वर्तमान में वसाढ़ कहा जाता है। वैशाली के पश्चिम में गंडक नदी बहती थी उसके पश्चिम घाट पर क्षेत्रीय कुंडपुर के अधिनायक राजा सिद्धार्थ थे। सिद्धार्थ वीर योद्धा और पराक्रमी शासक थे। राजा सिद्धार्थ का विवाह वैशाली गणतंत्र के अध्यक्ष राजा चेटक की अत्यन्त सुन्दर एवं विदुषी पुत्री त्रिशला के साथ सम्पन्न हुआ। राजा सिद्धार्थ शस्त्र और शास्त्र विद्या में निपुण थे और भगवान पार्श्वनाथ के उपासक थे।[3] पिता राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला के गर्भ से भगवान महावीर का जन्म हुआ। जन्म होते ही सभी जीवों द्वारा क्षणिक शांति का अनुभव हुआ था। इन्द्र ने श्रीवृद्धि के कारण बालक का नाम वर्धमान रखा। बालक वर्धमान बाल्यकाल से ही प्रतिभा संपन्न, पराक्रमी, वीर, निर्भय आदि गुणों से युक्त थे। बालक का जीवन उत्तरोत्तर युवा अवस्था में परिणत होता गया। इस अवस्था में भी उनका चित्त भोगों की ओर नहीं था यद्यपि उन्हें भोग और उपभोग की वस्तुओं की कमी नहीं थी किंतु उनके अंतर मानस में उनके प्रति कोई आकर्षण नहीं था। वे उस काल में होने वाली विषम परिस्थिति से परिचित थे। राज्य कार्य में भी उनका मन नहीं लगता था। वर्धमान अपना आत्मविश्वास करते हुए जगत का कल्याण करना चाहते थे। इसी कारण उन्हें सांसारिक भोग और उपभोग अरुचिकर प्रतीत होते थे। इस तपस्वी जीवन में महावीर ने अनेक देशों, नगरों और ग्रामों आदि विविध स्थानों में विहार कर तप द्वारा आत्मशोधन किया। इस तरह महावीर आत्म शुद्धि करते हुए जृम्भिक ग्राम के समीप आए4 और ऋजुकूला या ऋजुपालिका नदी के किनारे साल वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किए।[5]

महावीर ने 30 वर्ष तक केवली जीवन में काशी, कौशल, वत्स, चंपा, पांचाल, मगध, राजगृह, वैशाली, अंग, बंग, कलिंग, ताम्रलिप्ति, सौराष्ट्र, मिथिला, मथुरा, नालंदा, पुण्ड्रवर्धन, कौशांबी, अयोध्या, उज्जैनी, मल्लदेश, कैकेयदेश, किराट, श्रावस्ती, कुमारगिरि और नेपाल आदि विविध देशों और नगरों में विहार कर कल्याणकारी सन्मार्ग का उपदेश दिया।[6] उनके लगभग पाँच लाख भक्त हो गए थे जो उनके द्वारा सुव्यवस्थित चतुर्विध संघ के सदस्य थे। इन्द्रभूति गौतम, अग्निभूति, वायुभूति, आर्यव्यक्त, सुधर्म, मण्डिकपुत्र, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचल, मैत्रेय उनके 11 गणधर या प्रधान शिष्य थे जिनकी अध्यक्षता में अनेक श्रमण मुनियों के गण या संघ संगठित हुए तथा बिना किसी वर्ण, जाति, लिंग आदि के भेदभाव के महावीर ने अपना उपदेश दिया।[7]

महावीर के उपदेशों का सार अहिंसावाद, कर्मवाद, साम्यवाद, एवं स्यादवाद रूप चतुष्ट्य धर्म था। अहिंसा तत्व को जितना अधिक सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से विशद, स्पष्ट एवं व्यापक रूप महावीर ने दिया उतना संभवत: किसी अन्य धर्मोपदेष्टा ने नहीं दिया।[8] महावीर के निर्वाणोपरांत जैन संघ का नायकत्व उनके प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम को प्राप्त हुआ। यह महावीर के शिष्य होने से पूर्व एक महान वेदशास्त्रज्ञ, प्रकाण्ड ब्राह्मण पंडित थे। इन्होंने महावीर के उपदेशों को व्यवस्थित एवं वर्गीकृत रूप से संकलित किया। उनके पश्चात् क्रमश: सुधर्माचार्य और तत्पश्चात् जम्बूस्वामी जैन संघ के नायक हुए। महावीर की शिष्य परम्परा में जम्बूस्वामी अंतिम केवली थे। मथुरा व शूरसेन क्षेत्र में इनके द्वारा जैन धर्म का अत्यधिक प्रचार-प्रसार हुआ। इसके पश्चात् विष्णु कुमार नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु नेक रमसा संघ का नेतृत्व किया। इन लोगों को संपूर्ण श्रुत का यथावत ज्ञान था। इसलिए इन्हें श्रुतकेवली कहा गया।[9] जैन धर्म के इतिहास में इन आचार्यों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इन आचार्यों के समय तक जैन के संघ अखंड व अविभक्त रहा था, किंतु इन आचार्यों के मृत्यु के पश्चात् इनके साधुओं में मतभेद, संघभेद, आचारभेद आदि उत्पन्न होने के कारण महावीर द्वारा उपदेशित पूर्ण ज्ञान धीरे-धीरे विच्छिन्न होने लगा।

मगध साम्राज्य के प्रारंभिक नरेशों में सर्वप्रसिद्ध राजा श्रेणिक बिम्बिसार था। यह राजा उसी वंश में उत्पन्न हुआ था जिसमें ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती एवं तीर्थंकर पार्श्व का जन्म हुआ था। अत: मगध के इस व्रात्य क्षत्रिय नागवंश का कुल धर्म प्रारंभ से ही जैन धर्म रहा प्रतीत होता है।[10] अपने निर्वासन काल में श्रेणिक ने देश देशांतरों का भ्रमण करके अनुभव प्राप्त किया। इसी काल में वह कतिपय जैनेत्तर श्रमण साधुओं के संपर्क में आया और उनका भक्त हो गया तथा जैन से विद्वेष भी करने लगा। कुछ अनुश्रुतियों के अनुसार तो वह बौद्ध हो गया था। किंतु बाद में वह पुन: जैन धर्म का अनुयायी बन चुका था। बिंबिसार का भाई चिलातिपुत्र जो राज्य कार्य से विरक्त था और उसने दत्त नामक जैन मुनि से वैभार पर्वत पर मुनि दीक्षा प्राप्त की।[11] फलस्वरूप श्रेणिक बिंबिसार मगध के सिंहासन पर बैठा। उसके सिंहासनरूढ़ होने के समय मगध का राज्य न विशेष बड़ा था और न ही बलवान। कोशल राज्य एवं वैशाली के वज्जिसंघ की सीमाएँ मगध साम्राज्य से सटी हुई थीं। श्रेणिक बिम्बिसार की महत्वाकांक्षा को भांपकर वैशाली नरेश चेटक के नेतृत्व में कोशल तथा वज्जिसंघ की सेनाओं ने मगध पर आक्रमण कर दिया किंतु चतुर श्रेणिक बिंबिसार ने अवसर देखकर संधि कर ली। इतना ही नहीं उसने चेटक की पुत्री चेलना और कोशल की राजकुमारी कौशला देवी के साथ विवाह करके उन दोनों शक्तिशाली पड़ोसी राज्यों को अपने पक्ष में कर लिया। जैन साहित्य से पता चलता है कि श्रेणिक बिंबिसार एक विजयी एवं प्रतापी नरेश ही नहीं था वरन् एक कुशल शासक भी था। उसके राज्य में न तो किसी प्रकार की अनीति थी और न ही किसी प्रकार का भय ही था। देश की समृद्धि की ओर उसका ध्यान था। विभिन्न व्यवसायों, व्यापारी एवं उद्योगों का उसके आश्रय और संरक्षण से श्रेणियों एवं निगमों का संगठन हुआ, इसी कारण से उसे श्रेणिक नाम प्राप्त हुआ बताया जाता है। सम्राट श्रेणिक जनपदों का पालक एवं पिता कहा गया है।

मगध राज बिंबिसार अपनी अग्रमहिषी एवं प्रिय पत्नी चेलना के प्रभाव से जैन धर्म का भक्त हो गया था। चेलना स्वयं महावीर की मौसी या ममेरी बहन थी। महावीर का प्रथम समवसरण श्रेणिक बिंबिसार की राजधानी के ही एक महत्वपूर्ण भाग विपुलाचल पर्वत पर जुड़ा था और वही श्रावण कृष्ण प्रतिपदा (ईसवी पूर्व 557) को उनका सर्वप्रथम धर्म उपदेश हुआ था। स्वयं महाराज श्रेणिक बिंबिसार सपरिवार उक्त समवसरण सभा में उपस्थित हुआ था।[12] उनकी साम्राग्यी चेलना श्राविका संघ की नेत्री हुई थी। श्रेणिक बिंबिसार के अभय कुमार मेघ कुमार वारिषेण, कुणिक, आदि कई पुत्र थे। इन सब में ज्येष्ठ पुत्र अभय कुमार अत्यंत मेधावी, राजनीति निपुण एवं धर्मात्मा थे। बिंबिसार के जीवनकाल में ही वह अपने भाइयों के साथ जैन मुनि हो गए थे। अत: बिंबिसार ने भी कुणिक अजातशत्रु को राजपाट सौंप कर एकांत में शेष जीवन व्यतीत करने का निश्चय लिया। अजातशत्रु कुणिक अपने पिता बिंबिसार के जीवनकाल में ही मगध के सिंहासन पर आसीन हो गया था। वह महान प्रतापी शासक था। उसके शासनकाल में उन्नति चरम शिखर पर थी। कोशल की राजधानी इस समय श्रावस्ती थी। इसका एक्ष्वाकुवंशी नरेश प्रसेनजित अपने समय का महाप्रतापी एवं प्रसिद्ध शासक था। तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण किया। वह स्वयं विद्वान था और विद्वानों का आदर करता था। पार्श्व परंपरा के जैन मुनि आचार्य केशी प्रसेनजित के गुरु थे। प्रसेनजित स्वयं महावीर स्वामी का भक्त था और अपने कुल धर्म जैन धर्म का अनुयायी था।

राजा अजातशत्रु के पश्चात् उसका पुत्र उदयिन मगध के सिंहासन पर बैठा। यह राज्य प्राप्त करने के पूर्व अपने पिता कुणिक की भांति अंग देश का शासक रहा था। जैन साहित्य में उसका पर्याप्त उल्लेख मिलता है और वहां उदयिन का वर्णन एक महान जैन नरेश के रूप में हुआ।[13] उदयिन ने पाटलिपुत्र नगर का निर्माण कराया तथा राजधानी राजगृह से उठाकर पाटलिपुत्र में ही स्थापित

किया। इस महान शासक के बाद मगध साम्राज्य में एक नए वंश का प्रारंभ हुआ जिसे नंद वंश कहते हैं। खारवेल के हाथी गुफा अभिलेख से यह तथ्य प्रकट होता है कि नंद वंश का प्रतापी नरेश महापदमनंद ने कलिंग राज्य की विजय की ओर उस राष्ट्र के इष्ट देवता कलिंग जिन अर्थात तीर्थंकर ऋषभदेव की प्रतिमा को वहां से उठा लाया था तथा उसने अपनी राजधानी में स्थापित किया था। इसके उपरांत उसका पुत्र महानंदिन राजा हुआ। इसी के शासनकाल में अंतिम श्रुत केवली आचार्य भद्रबाहु की मृत्यु हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी नरेश के शासनकाल के अंतिम वर्षों में वह अनुश्रुति प्रसिद्ध 12 वर्षीय भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था, जिसकी पूर्व सूचना पाकर आचार्य भद्रबाहु कई सहस्र ऋषि-मुनियों के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किए थे। संभवत यह राजा भी उनका भक्त एवं शिष्य था। इसी दुर्भिक्ष काल में जैन संघ में प्रथम बार फूट पड़ने के बीज पड़े। अंतिम केवली जंबूस्वामी के निर्वाण के बाद जैन धर्म में दिगम्बर श्वेताम्बर दो संप्रदायों का बीजारोपण हो जाता है। किंतु श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय वे गंगा-यमुना के सामान पुनः मिल जाती है[14] तथा भद्रबाहु श्रुतकेवली के मृत्यु के पश्चात जैन परंपरा स्थाई रूप से दो विभिन्न स्रोतों में प्रवाहित होने लगती है।[15]

लगभग ईसा पूर्व 326 में सिकंदर ने अटक के निकट सिंधु नदी को पार किया और तक्षशिला पहुंचा। उस समय तक्षशिला का शासक राजा आम्भि था। उसने सिकंदर से बिना युद्ध किए ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। उस समय सिकंदर ने दिगंबर जैन श्रमणों के उच्च चरित्र, तपस्वी जीवन, उन्नत ज्ञान और कठोर साधना के संबंध में अनेक लोगों के द्वारा प्रशंसा सुनी थी। इस प्रकार उसके मन में जैन मुनियों के दर्शन करने की प्रबल आकांक्षा हुई। तब उसने अपने एक अमात्य ऑनेसीक्रेटस को आदेशित किया कि जाओ और नगर के बाहर तपस्यारत जैन मुनि को लिवा लाओ। परंतु जैन मुनि उसके निमंत्रण को यह सुनकर की सम्राट सिकंदर उनको पारितोषिक देगा अस्वीकार कर दिए। यह सुनकर सम्राट सिकंदर ने सोचा जो सिकंदर से नहीं डरता वह निश्चय ही महान होगा। अतः उसके मन में जैन आचार्य के दर्शन की उत्सुकता बढ़ी और उसने जाकर आचार्य महाराज के दर्शन किए। वह जैन मुनियों के आचार-विचार, ज्ञान और तपस्या से बड़ा प्रभावित हुआ।[16]

सिकंदर के आक्रमण के पश्चात् भारत में एक महत्वपूर्ण राज्य क्रांति हुई। नंद वंश का पतन हुआ। मौर्य वंश की स्थापना हुई और फलस्वरूप मगध साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ। इस राज्यक्रांति के प्रधान नायक चंद्रगुप्त मौर्य और उसके सहायक पंडित चाणक्य थे। चाणक्य के सहयोग से सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य साम्राज्य का संगठन एवं शासन की अत्यंत सुचारु व्यवस्था की।

सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने उज्जयिनी को अधिकार में करने के पश्चात् दक्षिण देश की दिग्विजय करने के लिए यात्रा की। सुराष्ट्र में गिरी नगर के नेमिनाथ की वंदना की और उक्त पर्वत की तलहटी में सुदर्शन झील नामक विशाल सरोवर का निर्माण अपने राज्यपाल वैश्य पुष्य गुप्त की देखरेख में कराया। इसी के तट पर निर्ग्रंथ मुनियों के निवास के लिए चंद्र गुफा आदि गुफाएं बनवाई।[17] संभवतः सुराष्ट्र के गिरी नगर कि जिस गुफा में उसने कुछ दिन निवास किया था उसे चंद्र गुफा कहा जाने लगा। जैन अनुयायियों के अनुसार जीवन के अंतिम चरण में चंद्रगुप्त मौर्य ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया।[18] वह आचार्य भद्रबाहु की परंपरा का अनुयाई था और उनका ही पद अनुसरण करने का इच्छुक था। कहा जाता है कि जब मगध में 12 वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा तो चंद्रगुप्त राज्य त्यागकर जैन आचार्य भद्रबाहु के साथ श्रवणबेलगोला चले गए और तपस्यारत रहते हुए संलेखनापूर्वक देह त्याग किया।[19] निसंदेह चंद्रगुप्त ने दक्षिण की विजय की थी किंतु उसे सुसंगठित और स्थाई करने का अवसर उसे नहीं मिला था।

राजा बिंदुसार ने दक्षिण की यात्रा प्रारंभ की। प्रथम उद्देश्य अपने कुल गुरु आचार्य भद्रबाहु की समाधि स्थान तथा अपने पिता चंद्रगुप्त मौर्य के तपोभूमि एवं समाधि का दर्शन करने एवं द्वितीय उद्देश्य विजित प्रदेशों पर मौर्य आधिपत्य स्थाई करना था। आचार्य भद्रबाहु एवं चंद्रगुप्त मौर्य की तपोभूमि श्रवणबेलगोला में बिंदुसार द्वारा जैन मंदिर का निर्माण भी कराया गया था।[20] अपने पिता की भांति बिंदुसार भी जिज्ञासु था और विद्वानों तथा दार्शनिकों का आदर करता था। दिव्यावदान की एक कथा के अनुसार आजीवक परिव्राजक बिंदुसार की सभा को सुशोभित करते थे।[21] बिंदुसार के उपरांत उसका पुत्र अशोक मौर्य साम्राज्य का अधिपति हुआ। बौद्ध साहित्य और अनुसूचियों में अशोक से संबंधित अनेक कथाएं मिलती हैं जिनमें से अधिकांश अतिरंजित या कपोल कल्पित मानी जाती हैं। ब्राह्मण अनुश्रुति सम्राट अशोक के संबंध में प्रायः मौन है। जैन अनुश्रुतियों में अवश्य कुछ विवरण मिलते हैं किंतु उनसे बौद्ध अनुश्रुतियों का बहुत कम समर्थन होता है। कुछ विद्वान जैसे प्रोफेसर राइस और डॉक्टर थॉमस का मानना है कि उसका कुल धर्म जैन था तथा वह पूरे जीवन भर तो नहीं लेकिन पूर्वार्ध में अवश्य जैन था लेकिन अधिकांशतः विद्वान मानते हैं कि वह न तो मुख्यतः बौद्ध था न जैन एक नीतिपरायण महान राजा पालक सम्राट था जिसने अपनी प्रजा का नैतिक उत्कर्ष करने हेतु अपना एक नवीन समन्वयात्मक, और असांप्रदायिक एवं व्यावहारिक धर्म जनता के सामने प्रस्तुत किया।

अशोक सम्राट अपने पिता के शासनकाल में उज्जयिनी का शासक रहा था और उसी समय विदिशा के निकट एक जैन धर्मानुयायी श्रेष्ठी की कन्या से उसने विवाह किया जिससे कुणाल नाम का पुत्र पैदा हुआ था। अशोक ने भ्रमण यात्रा में जैन एवं बौद्ध धर्म के साथ-साथ संभवतः ब्राह्मण परंपरा के भी तीर्थों एवं दर्शनीय स्थानों को देखा था।[22] शिलालेखों में उसके द्वारा निर्ग्रंथों का विशेष रूप से आदर करने का उल्लेख है।[23] अतः अशोक जैन धर्म के दयामूलक उपदेशों से प्रभावित प्रतीत होता है।

सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र कुणाल अथवा सुयश साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ किंतु नेत्रहीन होने के कारण पुत्र सम्प्रति शासक हुआ सम्प्रति अथवा इंद्रपालित अपने पितामह अशोक के समान ही एक महान प्रज्ञावात्सल्य, शांतिप्रिय एवं प्रतापी सम्राट था। जैन संघ की मागधी शाखा के नेता आचार्य सुहस्ति उसके धर्म पुत्र थे। उनके उपदेश से सम्प्रति ने एक आदर्श जैन नरेश की भांति जीवन व्यतीत किया।[24] सम्प्रति ने जैन धर्म के प्रचार के लिए अथक प्रयत्न किया। बौद्ध जनश्रुति में बौद्ध धर्म के लिए अशोक ने जो कुछ किया बताया जाता है, जैन अनुश्रुति के अनुसार सम्प्रति ने जैन धर्म के लिए उससे कुछ अधिक ही किया बताया जाता है। सम्प्रति द्वारा अनेक तीर्थों की वंदना, जीर्णोद्धार, असंख्य नवीन जैन मंदिरों एवं मूर्तियों का विभिन्न स्थानों पर निर्माण और प्रतिष्ठा, विदेशों में जैन धर्म के लिए प्रचारक भेजना, धर्मों, उत्सवों को मनाना, साम्राज्य में अहिंसा प्रधान जैन आचार्य का प्रसार करना इत्यादि अनेक कार्यों का श्रेय इसी सम्राट को दिया जाता है।[25] विण्सेट स्मिथ के अनुसार उसने अरब और ईरान में भी जैन संस्कृति के केंद्र स्थापित किए थे। जयचंद्र विद्यालंकार के अनुसार चाहे समुद्रगुप्त के समय में चाहे सम्प्रति के समय में जैन धर्म की बुनियाद तमिल भारत के नए राज्यों में भी पहुंची इसमें कोई संदेह नहीं। उत्तर-पश्चिम के अनार्य देशों में भी सम्प्रति के समय में जैन प्रचारक भेजे गए और वहां जैन साधुओं के लिए अनेक विहार स्थापित किए गए।

मौर्य वंश के सम्राट सम्प्रति के उपरांत उसका पुत्र शालिशुक साम्राज्य का शासक हुआ। अपने पिता व अन्य पूर्वजों की भांति जैन धर्म का अनुयायी था। इसके द्वारा भी जैन धर्म का दूर-दूर तक प्रचार किया गया। इसके पश्चात मगध साम्राज्य में देववर्मन, सतधनुष और बृहद्रथ आदि राजा हुए अंतिम नरेश बृहद्रथ की उनके ब्राह्मण मंत्री पुष्यमित्र शुंग ने धोखे से हत्या करके राज्य सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार मगध में ईसा पूर्व 184 में मौर्य वंश का अंत हुआ। कुछ छोटे-छोटे मौर्य राजा मगध, पश्चिमी भारत, राजस्थान, धानदेश, कोंकण आदि के कुछ भाग में बहुत पीछे तक राज्य करते रहे। कलिंग में चौत्र या चेदि वंश का उदय हो चुका था। दूसरी सती ईसा पूर्व के पूर्वार्ध में कलिंग चक्रवर्ती सम्राट खारवेल के काल में उनका चरमोत्कर्ष हुआ। कलिंग नरेश खारवेल ने मगध पर आक्रमण किया। वह सिंह नरेश के जैन विरोध से क्षुब्ध था, उसका अश्वमेघ करना ही खारवेल को असह्य था। अतः खारवेल ने मगध के नंद नरेश को पराजित किया और वहां से आदि जिन की जिस प्रतिमा को पाटलिपुत्र ले आया था उसे वापस ले गया।[26]

चौथी शताब्दी ई0 के पूर्वाद्ध में गुप्त वंश का प्रथम पुरुष श्रीगुप्त थे जिसने नाग-वाकाट्कों द्वारा मगध से शक शासन का उच्छेद कर साम्राज्य की स्थापना की। सम्भवतः श्रीगुप्त बौद्ध धर्म का अनुयायी था। मृगशिखा वन के निकट उसने चीनी बौद्ध यात्रियों के निवास के लिए विहार का निर्माण कराया था। इसका पुत्र घटोत्कच गुप्त था, जिसने महाराज की पदवी धारण की। इसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम था और उसने महाराजाधिराज उपाधि धारण की। लिच्छवी राजकुमारी कुमार देवी के साथ चन्द्रगुप्त प्रथम का विवाह हुआ, वह प्राचीन क्षत्रियों का कुल महावीर का ही वंश था और उसमें जैन धर्म की प्रवृत्ति थी। इसके पश्चात् समुद्रगुप्त गुप्तवंश का एक परमप्रतापी और महान विजेता सम्राट बना। अपनी दिग्विजय के कारण वह भारतीय इतिहास में स्मरणीय है। सम्राट समुद्रगुप्त एक कुशल प्रशासक के साथ संगीत, कलाप्रेमी एवं परधर्मसहिष्णु था। इसके पश्चात् गुप्त साम्राज्य पर चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' प्रतापी राजा आसीन हुआ। इनके समय तक गुप्त वंश में भागवत धर्म की प्रवृत्ति हुई और गुप्त नरेश परमभागवत, परमभट्टारक, परमेश्वर, महाराजाधिराज उपाधियाँ धारण करने लगे। सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय सर्वधर्मसहिष्णु, उदार, दानशी, नीतिनिपुण एवं न्यायपरायण शासक था। साम्राज्य में सुख शान्ति और समृद्धि थी, ज्ञान-विज्ञान और कला की अभूतपूर्व उन्नति ने इस युग को स्वर्णयुग बना दिया। इनकी सभा के सुप्रसिद्ध नवरत्नों में क्षपणक नाम से सूचित विद्वान को आधुनिक इतिहासकार एक दिगम्बराचार्य मानते हैं और यह भी विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि यह दिगम्बराचार्य सुप्रसिद्ध द्वात्रिंशिकाओं के रचयिता सिद्धसेन प्रथम थे।[27]

चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में चीनी यात्री फाह्यान ने उत्तरी भारत के विविध स्थानों में जिन बौद्धेत्तर साधुओं, सम्प्रदायों और धार्मिक संस्थानों को देखा था, उसमें से अनेक जैन थे।[28] श्वेताम्बर आगमों का संकलन भी इसी युग में देवर्द्धिगणि द्वारा बल्लभी में हुआ था।[29] अतः उपर्युक्त तथ्यों के अवलोकन से यह कहा जा सकता है कि गुप्तकालीन नरेशों द्वारा जैन धर्म का प्रभाव एवं प्रसाद देश में पर्याप्त व्यापक था। यह धर्म उस काल में समुन्नत दशा में था और लोक जीवन का एक प्रमुख अंग था। चन्द्रगुप्त

विक्रमादित्य के पश्चात् कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त गुप्त वंश के अन्तिम महान सम्राट थे। इनके बाद गुप्त शासन का अवसान प्रारम्भ हो जाता है।

गुप्तवंश प्रधानतया भागवत धर्मावलम्बी या प्रमुख राजाओं के समय यह राज्यधर्म था परन्तु उत्तरवर्ती राजा बौद्ध एवं जैन धर्म के अनुयायी हुए। कुमारगुप्त प्रथम के समय में 426 ई0 के उदयगिरि लेख से पता चलता है कि शंकर नामक व्यक्ति ने पार्श्वनाथ की मूर्ति की स्थापना की थी।[30] इस समय मगध से लेकर कलिंग, मथुरा, उदयगिरि, तमिलनाडु तक जैन धर्म का प्रचार था। मथुरा और बल्लभी श्वेताम्बर जैन धर्म के केन्द्र थे। बंगाल में पुण्ड्रवर्धन दिगम्बर सम्प्रदाय का केन्द्र था। पहाड़पुर से प्राप्त अनेक अभिलेखों में जैन मन्दिरों को भूमि दान देने का वर्णन हुआ है। कहौन के लेख के अनुसार स्कन्दगुप्त के काल में भद्र नामक व्यक्ति ने पाँच जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों की स्थापना करायी थी।[31] मथुरा के एक अभिलेख के अनुसार कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल में हरिस्वामिनी नामक एक जैन महिला ने किसी जैन मन्दिर को दान दिया था।[32] इस समय तक उत्तर और दक्षिण भारत में जैन ग्रंथों पर भाष्य और टीकाएँ लिखी गयीं। मुनि सर्वनन्दी ने 458 ई0 में लोकविभंग नामक ग्रंथ लिखा। आचार्य सिद्धसेन ने न्यायवर्ता की रचना की जिससे जैन दर्शन और न्याय दर्शन के विकास में योग मिला।

गुप्त वंश के अंत के पश्चात् उत्तर भारत का सर्वप्रसिद्ध एकछत्र सम्राट हर्षवर्धन हुआ। चीनी यात्री ह्वेनसांग (629 ई0 से 643) ने उसके शासनकाल में भारत आया और यहाँ की तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक दशा का वर्णन अपनी पुस्तक 'सी-यू-की' में किया। हर्षवर्धन प्रयाग में प्रत्येक पाँच वर्ष पर एक महान अनुष्ठान कराता था जिसमें बौद्ध, जैन निर्ग्रंथ, शैव, वैष्णव आदि साधुओं को सत्कारपूर्वक आदर करता था तथा भरपूर दान देता था।[33] ह्वेनसांग के अनुसार कश्मीर से लेकर बंगाल पर्यन्त और हिमालय से लेकर कन्याकुमारी अन्तरीय पर्यन्त समस्त देश की अनेक प्रधान नगरियों और केन्द्रों में अत्यधिक संख्या में निर्ग्रंथ जैन साधु एवं उसके धर्मायतन और अधिष्ठान तथा अनुयायी विद्यमान थे।[34] अत: जैन धर्म हर्ष काल तक (606-647 ई0) अपनी स्थिति पूर्ववत् बनाए हुए था।

अत: उपर्युक्त तथ्यों के अवलोकन में यह कहा जा सकता है कि जैन धर्म प्रागैतिहासिक काल से प्रारम्भ होकर तीर्थंकरों के योगदान व प्रमुख राजवंशों द्वारा संरक्षण प्राप्त करते हुए अपनी प्रासंगिकता को अक्षुण्ण रखा है।

संदर्भ सूची-

1. वशिष्ठ स्मृति, 18.12.11, न स्त्रीशूद्रौवे द मधीयताम्
2. वशिष्ठ स्मृति, 18.12.13
   न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिण्त न दिविण्कृतम्।
   न चास्योपदिशद्धर्म, न चाम्य व्रतमादिशेत।।
3. परमानन्द शास्त्री, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग-एक, पृ0 134
4. जयधव, भाग-1, पृ0 79, 'उजुकूलनदी तीरे जेमियगामिस्स अवरण्हे पाद छायाए केवलणामुत्पाइदं।
5. हरिवंश पुराण, 2.57.59
6. परमानन्द शास्त्री, जैन धर्म का भारतीय इतिहास, द्वितीय भाग, पृ0 20
7. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 53
8. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 54
9. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 55
10. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 57
11. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 58
12. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 59
13. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 61
14. परमानन्द शास्त्री, जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, पृ0 47
15. हरिषेण कथा, पृ0 317

16. परमानन्द शास्त्री, जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, पृ0 65
17. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 75
18. द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्णमोहन श्रीमाली, 'प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2004, पृ0 177
19. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 77
20. द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्णमोहन श्रीमाली, 'प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2004, पृ0 178
21. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 80
22. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 82
23. एस0सी0 दिवाकर, जैन शासन, प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर, 1988, पृ0 68
24. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 83
25. एस0सी0 दिवाकर, जैन शासन, प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर, 1988, पृ0 69
26. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 178-179
27. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 117
28. एस0सी0 दिवाकर, जैन शासन, प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर, वर्ष 1998, पृ0 89
29. द्विजेन्द्र नरायण झा एवं कृष्णमोहन श्रीमाली, 'प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2004, पृ0 322
30. द्विजेन्द्र नरायण झा एवं कृष्णमोहन श्रीमाली, 'प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2004, पृ0 322
31. द्विजेन्द्र नरायण झा एवं कृष्णमोहन श्रीमाली, 'प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2004, पृ0 178
32. वासुदेव अग्रवाल, हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन, 1964, पृ0 78
33. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 123
34. डा0 ज्योति प्रसाद जैन, 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 1999, पृ0 123

हिन्दी के आदिवासी उपन्यासों में स्त्री-शोषण की चित्रित समस्याएँ: एक दृष्टि

डॉ० समर जीत सुमन

पूर्व शोध छात्र, हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

नारी को देवी का अवतार माना जाता है, वह ईश्वर की बनायी सर्वोत्तम कृति हैं। वह सृष्टि का उद्‌गम स्त्रोत एवं जीवनरूपी द्विपाद- चक्र-वाहिनी का एक सुदृढ़ पहिया है। सम्पूर्ण भारतीय समाज में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' की अवधारणा से स्पंदित, ममता, करूणा, त्याग, प्रेम एवं समर्पण की अधिष्ठात्री स्त्री की भूमिका सदा ही अविस्मरणीय रही है। परन्तु स्त्रियाँ प्रायः हर जगह शोषित-उत्पीड़ित ही रही हैं, फिर वह चाहे उच्च वर्ग की स्त्री हो या निम्न वर्ग की या फिर आदिवासी स्त्रियाँ हो सभी के साथ शोषण होता चला आ रहा है। स्त्रियों के शोषण की समस्या न तो कल कम थी न आज ही, इन शोषण ग्रस्त समाज की स्त्रियों का जीवन विषादपूर्ण एवं अपमान की जीती-जागती तस्वीर है। इन स्त्रियों की दुर्दशा पूर्ण स्थिति करने वाले यह सभ्य समाज ही है जो स्वयं को तो सभ्य और संस्कारित समाज का अंग मानता है परन्तु यह समाज स्त्रियों को भूखे गीदड़ की तरह नोच-नोच कर खाता चला जा रहा है। यह लोग स्त्रियों को मात्र भोग की वस्तु समझते है। भारतीय आदिवासी समाज में नारी की सामाजिक स्थिति के भिन्न-भिन्न रूप पाये जाते है। कुछ ऐसे भी आदिवासी समाज है जो नारी को अपने पैरो की जूती के समान समझते है। उस समाज की नारी पुरुष आश्रित होती है और कुछ आदिवासी समाज में स्त्रियाँ, पुरुषों पर अपना अधिकार जमाती है। इस समाज की स्त्रियाँ अपने आपको पुरुषों से कही ऊँचा समझती है और जीवन निर्वाह के लिए स्वयं को समर्थ मानती है।

मातृसत्तात्मक परम्परा के चलते भारत में आदिवासी महिलाओं की स्थिति देश के अन्य समुदाय की स्त्रियों के मुकाबले बेहतर है। अपने समुदाय में आदिवासी स्त्रियों का हमेशा से एक प्रमुख स्थान रहा है। लेकिन अब आदिवासी स्त्रियों के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी होती जा रही हैं। उन्हें अन्य महिलाओं से अलग कर देखा जा रहा है। सभ्यता, विकास और हैसियत में नीची और अपने समाज में अधिक मुक्त होने के कारण ये महिलाएँ गैर-आदिवासियों की नजर में उन्मुक्त मानी जाती है। गैर-आदिवासी उनका उपभोग भूमि हथियाने और उनके समुदाय का दमन करने के साथ-साथ उन पर अत्याचार भी करते आ रहे हैं।

आदिवासी समाज में प्रमुख समस्या है स्त्री का शोषण, इसी शोषण को लेकर हिन्दी में अनेक आदिवासी उपन्यास लिखे गये हैं। स्त्री शोषण का चित्रण 'जंगल के आसपास' उपन्यास में चित्रित है। दमकड़ी गाँव के लोग आदमखोर से पीड़ित थे। सरकार ने उसे मारने के लिए एक अंग्रेज शिकारी राबर्ट को नियुक्त किया है। वह दमकड़ी गाँव पहुँचता है। वहाँ के आदिवासी युवतियों को देख उसकी काम वासना जागती है। राबर्ट द्वारा शिकार की गई हिरण को तेज आंच में भूना जाने लगा। राबर्ट और उसके साथी छतरी के नीचे टेबल पर फ्रांसीसी स्कॉच खोलकर उसे खाने और हजम करने के सामान का बंदोबस्त करने लगे। इस सारे दृश्य को गाँव के सभी बच्चे आश्चर्य से देखने लगे। इस झुंड में कई आदिवासी युवतियाँ भी शामिल थीं। राबर्ट ने लड़कियों के झुंड में से ज्यादा जवान और खूबसूरत दिखाई देने वाली लड़की को इशारा करके बुलाया। सब लड़कियों ने अपनी-अपनी छाती पर हाथ रखकर समझना चाहा वह क्यों बुला रहा है। जब बुलायी गई लड़की ने हाथ रखा तो राबर्ट ने मुस्कुराकर स्वीकारात्मक गर्दन हिला दी और हाथ के इशारे से कहा हाँ तुम ही, चली आओ। लड़की सिकुड़ती-सकुचाती और अपनी फटी-पुरानी धोती में बड़ी मुश्किल से अपने वक्ष को छुपाती राबर्ट के पास पहुँचती है तथा गर्दन झुकाकर उसके बगल में खड़ी हो जाती है। लड़की के यौवन को देखकर राबर्ट की आँखें भूखे भेडिय्ये की तरह चमकने लगी। वह गोश्त का एक टुकड़ा लड़की की ओर बढ़ा देता है। लड़की हड़बड़ाकर टुकड़े

को लेना चाहती है किन्तु राबर्ट एक भद्दी नजाकत के साथ माँस के टुकड़े को हटा देता है। लड़की उस हरकत में हलकान होकर जब लौटने को तैयार होती है तो राबर्ट टुकड़ा लड़की को दे देता है और लड़की के कमर पर हाथ रखकर कहता है- ''अगर रात को आएगा टब हम टुम का बहुत बरी-बरी चीज प्रेजेण्ट देगा।''[1] लड़की गोश्त लेकर सीधे अपने घर जाती है। राबर्ट की नजरे उसका पीछा करती है।

लड़की के जाने के थोड़ी देर बाद ही उससे भी कुछ बड़ी लड़कियाँ सकुचाती-शरमाती बच्चों के उस झुंड में आ मिलती हैं और प्रतीक्षा करने लगती हैं कि शिकारी गोमा की तरह उन्हें भी बुलाए और गोश्त का टुकड़ा घर ले जाने के लिए दे ताकि उनके घर भी आज शाम हिरन का गोश्त बने। इस प्रकार झुंड में खड़ी लड़कियों को देख राबर्ट के खुशी का ठिकाना नहीं रहता। उसने हिरण की देह से बड़े-बड़े टुकड़े कटवाकर अपने सामने की प्लेटों में रखवाकर जाँच करने लगता है कि सबसे ज्यादा सुन्दर लड़की कौन सी है ताकि इशारा करके वह उसे बुलाये। आखिर एक लड़की को चुन लेता है और इशारे से उसे बुलाता है।

एकाएक एक दिन राबर्ट एक आदिवासी के घर घुस जाता है। मकान के अन्दर से चीखें सुनाई देने लगती है। उपन्यासकार लिखते हैं- ''चीखों के साथ ही कुछ इस तरह की उठा-पटक की आवाजें भी, जैसे कोई अरनी भैंस अपनी जान बचाने के लिए किसी बाघ के साथ युद्ध लड़ रही है।''[2] बाहर खड़े लोगों का झुंड इस दृश्य को किसी तमाशे की तरह देख रहा था। किसी को कुछ कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी। किन्तु यह सब जमना से सहा नहीं गया। वह तमाशे के घेरे को तोड़कर आगे आयी और दहाड़कर बोली- ''कमीनों, तुम्हारी बहू-बेटियों की लाज तुम्हारी आँखों के सामने एक विदेशी फिरंगी लूट रहा है और तुम इस तरह से पत्थर के बुत बने खड़े हो। डूब मरो कुत्तो, चुल्लू भर पानी में डूब मरो।''[3]

उपरोक्त प्रसंग स्त्री शोषण का मात्र एक पक्ष है, इसी उपन्यास में स्त्री शोषण का दूसरा पक्ष भी अभिव्यक्त हुआ है जो वहाँ के जमींदार राय साहब तथा ओझा द्वारा बनाये गए धार्मिक नियम परम्परा के रूप में सदियों से चला आ रहा है। रायसाहब और ओझा उस इलाके के न्यायाधीश हैं। इस इलाके में किसी भी स्त्री पर अत्याचार होने पर उसे अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। चंदेरी के शब्दों में ''जिस लड़की या औरत की इज्जत लुट जाती है, अगर वह शिकायत ओझा या रायसाहब को पहुँचाए तो पहले उस लड़की या औरत को अग्नि परीक्षा देनी होती है, अपनी शिकायत की सचाई को साबित करने के लिए। अग्नि-परीक्षा में खरी उतर आने पर इज्जत लूटने वाले को वह हर्जाना देना होता है, जो औरत उसके माता-पिता या उसका पति मांग करे। अंत में हर्जाना की राशि का फैसला ओझा करता है। यही इस इलाके के ओझा का बनाया हुआ धार्मिक दस्तूर है और यह दस्तूर आदिवासी जातियों के सभी कबीलों पर लागू होता है।''[4]

वास्तव में आदिवासियों के बीच उत्पन्न विवादों को वे अपने पंचायत द्वारा निपटा लेते हैं किन्तु ऐसे कई आदिवासी क्षेत्र हैं, जहाँ बाहरी लोगों का प्रवेश बरसों पहले हो चुका है। इन लोगों ने आर्थिक, सामाजिक स्तर पर उनका शोषण तो किया ही धर्म के नाम पर भी वे उनका शोषण करते रहे हैं। उनकी सामाजिक व्यवस्था में हस्तक्षेप कर रहे हैं और अपना वर्चस्व स्थापित किये हुए हैं। क्या एक औरत या लड़की को इतना कह देना मात्र ही अग्नि-परीक्षा से कम नहीं है कि उसकी इज्जत लुट गई है। अग्नि-परीक्षा के डर से आदिवासी औरत मर्द द्वारा अपने पर किए गए अत्याचार को लेकर जबान तक नहीं खोल सकती।

इसी प्रकार उपन्यास 'पठार पर कोहरा' में भी आदिवासी महिला पर अत्याचार का प्रसंग दिखाई देता है, रंगेनी अपने पति के मृत्यु के बाद अकेली रहती है। अपना जीवन चलाने के लिए जंगल में वनोपजों को चुनकर तथा घर के पास उगाए गये तरकारियों को लेकर शहर के गलियों में बेचने के लिए जाती है। रेलगाड़ी में सिपाही उसके साथ अत्याचार करते हैं, जिससे वह गर्भवती हो जाती है। गाँव में यह पता चलने पर उसे पंचायत में बुलाया जाता है और उससे पूछा जाता है कि यह गर्भ किसका है? रंगेनी अब तक झुका अपना सिर ऊपर उठाकर कहती है- ''बीते दिनों कई मरदों ने हमारी देह खँखोरी है। रेलवई के सिपाही, सँझली गाड़ी में। साहत जतने थे, सबने ...। फिर एक दिन औघड़वा भी हमारे साथ ...।''[5]

इसी प्रकार बस्तर के गोंड आदिवासी जीवन पर आधारित 'जंगल का फूल' उपन्यास मे गोंड नारी की सामाजिक स्थिति के संबंध में लेखक राजेन्द्र अवस्थी लिखते है- ''औरत की जात, वह तो कच्ची माटी की हाड़ी हैं। जिसे जो निशान उस पर बनाना हो, बना दे, जब कोई हाड़ी अकड़ती हैं तो कुम्हार उसे चाक में कसकर भरपूर तड़पाता है। 'मुंदरी' जानती थी कि दुनिया में कोई औरत बिना मर्द के नहीं रह सकती। मर्द उसका सहारा है, वैसा ही जैसे बेल के लिए झाड़ होता है। मरद शीशम का पेड़ है और औरत उसकी अमरबेल, बिना झाड़ का सहारा पाए वह जी नहीं सकती।''[6] इसलिए जब उपन्यास में ''मुंदरी सताय के बारे में सोचती तो

उसके मन में हमदर्दी के भाव जाग उठते है।''[7] एक औरत के मन में दूसरी औरत के प्रति हमदर्दी जताना लेखक की साधना रही है। लेखक बिना पति के नारी को असहाय मानते है। नारी के जीवन यापन के लिए पुरुष का सहारा आवश्यक माना गया है।

'जंगल का फूल' उपन्यास की नायिका 'महुआ' नारी स्थिति पर तरस खाती हुई कहती है-''काश, रात में उसे अफसर के पास रहना न पड़ता, झिरिया चुड़ैल न होती तो क्या पता, सवेरे सुलकसाए उससे आँखें फेर लेता और न जाने किससे वह अपनी नजरे उलझा लेता। इसलिए वह बन्धनहीन रहना चाहता है। उसका क्या, वह रह सकता है, पर मेरा क्या होगा? मैं औरत जो हूँ। कुम्हार की हांडी एक बार जूठी हुई फिर बेकार। दूसरा खसम भले मिल जाए, पर दिल कहाँ मिलता है।''[8] इस तरह से महुआ अपने और औरत जाति के बारे में तरह-तरह प्रकार से सोचती है।

उपन्यासकार राजेन्द्र अवस्थी ने केवल नारी स्थिति को बताया ही नहीं बल्कि नारी स्थिति को लेकर उपन्यास के पात्रों में आत्ममंथन जगाया है- मरदो ने मिलकर अपनी मरजी के कानून बना लिये है और उसे समाज का जामा पहना दिया है। जब कभी हम विरोध करती हैं, वे हँसते हुए कहते हैं- ''तेरा दर्द समझता हूँ पर क्या करूँगा''[9] समाज जो कहता है, वह करना पड़ता है फिर हम बूढ़े तुम्हारी भलाई के लिए ही करेंगे।

इस तरह सबकी बातें सुनते-सुनते जलियाँ झुलझुला जाती हैं और कहती है। मैं सोचती हूँ यह समाज भी कैसा है, जैसा भेडिये बसते है। तू तो जानती है पाली का किस्सा झिरिया की कहानी।''[10]

इस तरह उपन्यास में दूसरी ओर जलिया भी अपनी प्रेम व्यथा झालर सिंह से कहती है- ''तो यह कहो झालर सिंह कि तुम मरदों ने उसके मन को दीमक की तरह खा डाला है। लिंगों की दुनिया में औरत-मरद का भेद नहीं रे झालर। भेदभाव की सारी दीवारें तुम्हारी बनायी है। तुम हाथ में डुग-डुगी लेकर बन्दरों की तरह औरत को नचाते हो।''[11]

सत्ताय जब अपने पति के नाराज हो जाने पर उसे उसकी गल्तियों से अवगत कराने का प्रयास करती है तो हिरमे उसे पीटना शुरू कर देता है। यह सब देख जलिया हिरमें से कहती है- ''तुम मरद जब चाहों ढोल पीट सकते हो जब हम पीटना चाहती है तो तुम ढोल की दरार ढीली कर देते हो और कहते हो- भगवान ने लिखा है, तुम ढोल नहीं पीट सकती।''[12]

निश्चित रूप से आदिवासी समाज की स्त्रियों की दशा दयनीय है तथा उनके समाज में उनकी नगण्यता विद्यमान है। जो स्त्रियों को केवल काम करने वाली तथा भोग की वस्तु ही मानते है। इसके अलावा उनका कोई अस्तित्व और अधिकार नहीं है। जो कुछ भी है तो वह है 'पुरुष' बस इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

एक अन्य उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में मुख्यत: बेड़नी समाज की औरतों का वर्णन किया गया है, समाज में व्याप्त विसंगतियों के कारण दलित-शोषित जीवन व्यतीत करने को विवश स्त्रियों की दशा को रेखांकित करना कथाकार का मुख्य उद्देश्य है। समाज में इन औरतों की उपस्थिति का अनुभव तो किया जाता है, किन्तु इनके प्रति संवेदनात्मक अनुभूति कभी-कभार ही उपजती है। अधिकांश लोगों के लिए यह औरतें 'बेड़नी' मात्र हैं, जिन्हें नाचने वाली के रूप में नचाया जा सकता है, जिन्हें भोगा जा सकता है, किन्तु उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़े जाने के प्रश्न यदा-कदा ही उठते हैं। मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड अंचल में सदियों से लगभग एक सी जीवन शैली को जी रही इन बेड़नियों के अतीत और वर्तमान को उपन्यास में पिरोया गया है, जिसमें इतिहास, संस्मरणों, लोककथाओं एवं किंवदंतियों के साथ-साथ बेड़नियों के जीवन से जुड़े हुए शोधात्मक तथ्यों को आधार बनाया गया है। स्त्री विमर्श पर आधारित इस उपन्यास में सदियों से दलित, पीडिघ्त, शोषित एवं उपेक्षित स्त्रियों की जीवन दशाओं एवं उनसे जुड़ी समस्याओं को रेखांकित किया गया है। कथाकार ने स्वयं लिखा है कि- ''मैं पुरुषों की विरोधी नहीं हूँ, किन्तु उस विचारधारा की विरोधी हूँ जिसके अन्तर्गत स्त्री को मात्र उपभोग की वस्तु के रूप में देखा जाता है। विचारों का यह पुरुष-प्रधान परिवेश ही जिम्मेदार हैं उन औरतों के जीवन की त्रासदियों के लिए जो अतीत में 'गणिकाएं', 'देवदासियाँ', अथवा 'नगरवधुएं' कहलाती थीं और वर्तमान में 'कालगर्ल', 'बारडांसर' और 'सेक्सवर्कर' कहलाती हैं। अर्धशिक्षितों के बीच इन्हीं औरतों को 'नचनिया', 'पतुरिया' और 'धंधेवाली' कहा जाता है। समाज में देह-व्यापार यदि आज भी जीवित है तो मात्र इसलिए कि पुरुषों में स्त्री देह को खरीदने की प्रवृत्ति आज भी मौजूद है। स्त्रियों से जुड़े इस 'अपराध' को स्त्रियों की सहज उपलब्धता पर मढ़कर कोई भी समाज दोषमुक्त नहीं हो सकता।''[13]

इसी प्रकार आदिवासी स्त्रियों पर अत्याचारों का प्रसंग 'रेत' उपन्यास में भी मिलता है। 'रेत' कंजरों के जीवन पर लिखा गया उपन्यास है। अंग्रेजों ने भारत के कुछ जनजातियों को पेशे के आधार पर अपराधी जनजाति घोषित किया और 'क्रिमिनल ट्राइबल

एक्ट' कानून लागू किया था। जिसके चलते वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनका शोषण करते रहते थे। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने उन्हें विमुक्त किया, फिर भी वर्तमान में समाज उन्हें उसी रूप से देख रहा है। जहाँ कहीं भी कोई अपराध होने पर पुलिस पुरुषों को पकड़कर ले जाती है, उन्हें छुड़ा लाने के लिए स्त्रियाँ पुलिस अधिकारियों के साथ रात बिताती हैं। इसी समस्या की अभिव्यक्ति 'कबतक पुकारूँ' उपन्यास में भी हुई है। सुखराम को पुलिस के शिकंजों से छुड़ा लाने के लिए कजरी दरोगा रूस्तम खाँ की रखैल बनकर रहती है, जिसके कारण उसे यौन रोग का शिकार होना पड़ता है।

निष्कर्षत: हिन्दी के आदिवासी उपन्यासों में स्त्री-शोषण की समस्याओं को सभी उपन्यासकारों ने उठाकर इस ज्वलंत समस्या पर सबका ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है। हमारे देश में तब तक आदिवासी समाज की उन्नति नहीं हो सकती है, जब तक आदिवासी समाज में स्त्री शोषण पर नियंत्रण नहीं किया जाता, वर्तमान में समाज के सभी लोगों को इस समस्या पर गंभीरता पूर्वक ध्यान देना चाहिए तथा प्रयास करना चाहिए।

संदर्भ सूची-

1. 'जंगल के आसपास', राकेश वत्स, पृ0 129
2. 'जंगल के आसपास', राकेश वत्स, पृ0 144
3. 'जंगल के आसपास', राकेश वत्स, पृ0 144
4. 'जंगल के आसपास', राकेश वत्स, पृ0 138
5. 'पठार का कोहरा', राकेश कुमार सिंह, पृ0 69
6. 'जंगल के फूल', राजेन्द्र अवस्थी, पृ0 185-186
7. 'जंगल के फूल', राजेन्द्र अवस्थी, पृ0 175
8. 'जंगल के फूल', राजेन्द्र अवस्थी, पृ0 36
9. 'जंगल के फूल', राजेन्द्र अवस्थी, पृ0 72
10. 'जंगल के फूल', राजेन्द्र अवस्थी, पृ0 69
11. 'जंगल के फूल', राजेन्द्र अवस्थी, पृ0 80
12. 'जंगल के फूल', राजेन्द्र अवस्थी, पृ0 184
13. 'पिछले पन्ने की औरतें', डॉ0 शरद सिंह, आवरण पृष्ठ

राज्यों में राष्ट्रपति शासन की राजनीति का अध्ययन

अनिल कुमार

शोधाथः राजनीति विज्ञान विभाग, महाराज विनायक ग्लोबल विश्वविद्यालय, दण्ढ आमेर, जयपुर

डॉ० पॉचू राम मीना

शोध निर्देशकः सहायक-आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, महाराज विनायक ग्लोबल विद्यालय, दण्ढ आमेर, जयपुर

1. परिचय

भारतीय भू-भाग एक महाद्वीप की तरह विशाल और अनेक विविध्ताओं से भरा है। यहाँ अनेक धर्मो एवम् भाषाओ को मानने वे बोलने वाले लोग निवास करते हैं। इन विविधताओं के बावजूद हम ,एक साझी जमीन पर रहते हैं और हमारा एक साझा इतिहास है। खासकर उन दिनों का जब हम आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे। आजादी की लडाई के बाद एक ओर लडाई लडी गयी वह थी नवीन राज्यों की माँग हमारी संघीय व्यवस्था में नवीन राज्यों के गठन की माँग को लेकर भी तनाव रहा है।

अतः दिसम्बर 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की गई जिसने भाषा के आधर पर राज्यों के गठन की सिफारिश की। 1- नवंबर 1956 से सन्- 2014 तक देश मे विविध राज्यों कि स्थापना हुई साथ ही गठित राज्य और केन्द्र सरकार को भारतीय संविधान में एक जैसी शक्ति प्रदान की गई है। भारत का संविधान एक ऐसा उपकरण है जो देश में एक संघीय व्यवस्था प्रदान करता है और केन्द्र और राज्य सरकार के लिए निश्चित कार्यो को भी बताता है। कानून बनाने की प्रक्रिया के संबंध में केन्द्र और राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र का संविधान की अनुसूची-7 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। भारतीय संघ के सभी राज्यों को संविधान के अनुसार एक जैसी शक्ति प्रदान की गई है। यधपि कुछ राज्यों से सम्बन्धित विशेष प्रावधान किए गए हैं, किंतु फिर भी देश के विविध राज्यो की स्थिति और सांगठनिक संरचना भिन्न-भिन्न है। हालांकि, देश के विभिन्न राज्यों में होने वाली कुछ ऐसी आपात परिस्थितियाँ हैं जो राजनीतिक प्रक्रिया को बदल कर रख देती है, जिसके कारण देश या राज्यों में आपातकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

जिसके कारण केन्द्र सरकार राज्यों के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश कर सकती है और राष्ट्रपति के द्वारा आपातकाल की घोषणा किया जाना उनमें से एक है। जो कि भारत के संविधान के भाग-18 के अनुच्छेद-352 से अनुच्छेद-360 तक के केवल 9 अनुच्छेद में है। इसी लिए शोध छात्र ने इस शोध को करने का निश्चय किया है। आज हम आपको किसी घटना का जिक्र किये बगैर आपातकाल के बारे में बताएंगे कि आखिर वो कौन-सी स्थितियां और परिस्थितियां हैं जिनमें आपातकाल अर्थात् इमरजेंसी लागू हो सकती है या लागू हो जाती है।

जो कि निम्मन है, 1- राष्ट्रीय आपात अनुच्छेद-352, 2- राज्यों में संवैधानिक तन्त्र की विफलता ;ानी राष्ट्रपति शासन अनुच्छेद-356 और 3- वित्तीय आपात अनुच्छेद-360 है। आपात उपबन्धों को दरअसल देश में आंतरिक अशान्ति को खतरा होने,

बाहरी आक्रमण होने अथवा वित्तीय संकट की स्थिति में आपातकाल की घोषणा की जाती है, हालांकि इन तीनों आपात उपबन्धों का अपना एक सीमित क्षेत्र और दायरा है लेकिन चाहे किसी भी तरह का आपात हो इसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव आम जनता पर ही पड़ता है।

प्रस्तुत शोध में हम केवल संवैधानिक तंत्र की विफलता राष्ट्रपति शासन अनुच्छेद-356 की विस्तार से चर्चा करेंगे । अनुच्छेद-356 भारत शासन अधिनियम-1935 से लिया गया हैं। ये प्रावधान केन्द्र को किसी भी असामान्य स्थिति से प्रभावी रूप से निपटने में सक्षम बनाते हैं। प्रस्तुत शोध में बताना चाहूंगा की संविधान में इन प्रावधानों को जोड़ने का उद्देश्य देश की संप्रभुता, एकता, अखंडता, लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था तथा संविधान की सुरक्षा करना है। देश अथवा राज्य में राष्ट्रपति शासन भारत के संविधान के अनुसार लगाया जाता है। राष्ट्रपति शासन सिर्फ दो आधार पर ही लगाया जाता है। जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद-355 और अनुच्छेद-356 के अन्तर्गत आता है।

किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन उस समय लगाया जाता है जब उस राज्य की सरकार को बर्खास्त कर दिया जाता है और राज्य का शासन केन्द्र सरकार के आधीन हो जाता है तब उस घोषणा को संसद के दोनों ही सदन लोक सभा और राज्य सभा में दो महीने के अंतर्गत ही सामान्य बहुमत से स्वीकृत करना होगा फिर जब संसद के दोनों सदन से उस घोषणा को स्वीकृति प्रदान हो जाती है तो उस राज्य में अगले छह महीने के लिए राष्ट्रपति शासन लागू हो जाता है। राष्ट्रपति शासन को अधिक से अधिक तीन वर्षो तक बढ़ाया जा सकता है।

इसे राष्ट्रपति शासन इस लिए कहा जाता है क्योंकि इसके द्वारा राज्य का नियन्त्रण बजाय एक निर्वाचित मुख्यमन्त्री के सीधे भारत के राष्ट्रपति के अधीन आ जाता है। लेकिन प्रशासनिक दृष्टि से राज्य के राज्यपाल को केन्द्रीय सरकार द्वारा कार्यकारी अधिकार प्रदान किये जाते हैं, उसके पश्चात प्रशासन में मदद करने के लिए राज्यपाल आम तौर पर सलाहकारों की नियुक्ति करता है जो आम तौर पर सेवानिवृत्त सिविल सेवक होते हैं। वर्ष 1978 का 44वाँ संविधान संशोधन में कई बदलाव हुए इसके बाद यह कहा गया कि राष्ट्रपति शासन को एक वर्ष के बाद 06 माह और बढ़ाने के लिए इन दो शर्तो का पूरा होना जरूरी है।

उस समय राष्ट्रीय आपातकाल का होना जरूरी है भारतीय चुनाव आयोग इस बात को स्पष्ट तरीके से बताये कि उस राज्य में परेशानियों के कारण आम चुनाव नहीं कराया जा सकता। राष्ट्रपति को, राष्ट्रपति शासन हटाने के लिए किसी भी तरह से संसद की स्वीकृति की आवश्यकता नही है। सम्बन्धित शोध द्वारा जानेंगे की अपनी स्थापना के बाद से अनुच्छेद-356 बहस और चर्चा का विषय रहा है क्योंकि राष्ट्रपति शासन से राष्ट्र के संघीय ढांचे में बाधा उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अनुच्छेद-356 की उत्पत्ति को भारत सरकार अधिनियम की धारा 93 में वापस खोजा जा सकता है जिसमें राज्यपाल द्वारा आपातकाल लगाने का समान प्रावधान प्रदान किया गया है यदि राज्य को अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है।

हालांकि संविधान सभा के विभिन्न सदस्यों वे अध्यक्ष डॉ-बी-आर-अम्बेडकर जी का विचार था कि संविधान या कानून के किसी भी प्रावधान का दुरुपयोग किया जा सकता है लेकिन किसी कानून को शामिल ही ना करने के कारण के रूप में इसका इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। संविधान सभा की बहस में उन्होंने कहा कि वास्तव में मैं अपने माननीय मित्र श्री गुप्ते द्वारा कल व्यक्त की गई भावनाओं को साझा करता हूं कि हमें यह उम्मीद करनी चाहिए कि ऐसी धाराओं को कभी भी संचालन में नहीं बुलाया जाएगा और वे अयोग्य ही रहते हैं। यदि उन्हें लागू किया जाता है तो मुझे आशा है कि राष्ट्रपति जो इन शक्तियों से सम्पन्न हैं राज्यों के प्रशासन को वास्तव में निलम्बित करने से पहले उचित सावधानी बरतेंगे।

इस संविधान सभा में डॉ-बी-आर-अम्बेडकर जी के शब्दों के माध्यम से परिलक्षित हो सकता है। उन्होंने कहा कि यह देखा जाएगा कि समिति ने 'फेडरेशन' के बजाय 'संघ' शब्द का इस्तेमाल किया है। लेकिन समिति ने ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका अधिनियम ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट-1867 की भाषा का पालन करना पसन्द किया है और माना है कि भारत को एक संघ के रूप में वर्णित करने में फायदे है। हालांकि यह संविधान संरचना में संघीय हो सकता है। केन्द्र सरकार को कुछ प्रकार का प्रभुत्व प्रदान किया गया है लेकिन प्रभुत्व को मनमाने कारणों से उपयोग करने के बजाय इच्छित उद्देश्य को पूरा करने की आवश्यकता है। हालांकि संविधान के निर्माता भारतीय राजनीति की प्रकृति और उदाहरणों की भविष्यवाणी करने में सक्षम नहीं थे जब संविधान को केवल एक विशेष राजनीतिक दल को लाभ पहुंचाने के लिए सन्शोधित किया गया था।

1. 2016 से राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू:-

प्रस्तुत शाधे में आज हम जानेंगे कि दिसम्बर 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश पर 1- नवंबर 1956 से सन्- 2014 तक देश मे विविध राज्यों कि स्थापना हुई उनमे से एक राज्य है। जिसका गठन उत्तर प्रदेश के पर्वतीय जिलों को अलग कर के सन् 2000 में उत्तरॉचल नाम से किया गया था। और बाद में 1-जनवरी सन्- 2007 मे इसका नाम उत्तराखण्ड किया गया था। आज हम गठित विविध राज्यों में से केवल उत्तराखण्ड के बारे में ही चर्चा करेगें की किस प्रकार से इस राज्य को विशेष राज्य का दर्जा मिलने के बाद भी इसमे राष्ट्रपति शासन लगा।

उत्तराखण्ड की राजनीति में इस प्रकार के संकट का सामना पहली बार 2016 में उत्तराखण्ड के सी-एम हरीश रावत ने काँग्रेस पार्टी के नेतृत्व में किया था। राज्य में इस समस्या की शुरुआत विधानसभा में बजट को लेकर बहस के दौरान हुई जब 9 विधायकों ने पार्टी के खिलाफ बगावत कर दी और बी-जे-पी से हाथ मिला लिया। इसके चलते काँग्रेस के नेतृत्व वाले रावत के बहुमत को चुनौती दी गई और उसी के संबंध में राज्यपाल के.के पॉल ने फ्लोर टेस्ट में सी.एम रावत को बहुमत साबित करने के लिए आमन्त्रित किया था। फ्लोर टेस्ट से पहले राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने संवेधानिक तन्त्र का कारण बताते हुए कैबिनेट की सलाह पर राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा दिया। विधिवत निर्वाचित इलेक्टेड सरकार को बर्खास्त कर दिया गया और विधानसभा को निलम्बित कर दिया गया। यहां जो बड़ा सवाल उठता है वह फ्लोर टेस्ट की प्रतीक्षा के बिना आपातकाल लगाने के राष्ट्रपति के फैसले की संवैधानिकता के बारे में है। राजनीतिक अस्थिरता से सम्बन्धित सभी प्रश्नो का एकमात्र उत्तर फ्लोर टेस्ट के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है लेकिन राष्ट्रपति द्वारा इसे टाल दिया गया था। जब राष्ट्रपति शासन को उत्तराखण्ड के उच्च न्यायलय के समक्ष चुनौती दी गई तो न्यायालय ने राष्ट्रपति शासन को रद्द कर दिया और फ्लोर टेस्ट का आदेश दिया।

न्यायलय के मुख्य न्यायाधीश का विचार था कि भले ही राष्ट्रपति एक संवैधानिक पद है और राष्ट्रपति शासन लागू करना पूर्ण शक्ति नहीं है, ऐसा लग रहा था कि केन्द्र एक निजी पार्टी की तरह काम कर रहा है यानी अपने राजनीतिक हितों के लिए काम कर रहा है। जैसा कि बार-बार कहा गया था कि राष्ट्रपति शासन अन्तिम उपाय होना चाहिए बिना फ्लोर टेस्ट के इसे लागू करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। राष्ट्रपति शासन की गम्भीरता को समझने की जरूरत है यह राज्य सरकार के दायरे में एक अतिक्रमण की तरह है जिससे देश के संघीय ढांचे का उल्लंघन होता है।

इसके अतिरिक्त शोधकर्ता ने पाया कि यह कहने के लिए पर्याप्त आधार नहीं हैं कि राज्य में संवैधानिक तन्त्र की विफलता है क्योंकि राज्यपाल की रिपोर्ट का कोई प्रचलन नहीं है और ऐसी घटनाएं जो संवैधानिक सिद्धान्त से परे हैं और यह राजनीतिक संकट था लेकिन विधानसभा को निलम्बित करने से पहले इसे हल करने के लिए फ्लोर टेस्ट जैसे कोई कदम नहीं उठाए गए थे। केन्द्र सरकार द्वारा उत्तराखण्ड में राष्ट्रपति शासन हटाए जाने की खबर से बेहद खुश नजर आ रहे हरीश रावत ने कहा कि आखिरकार उन्हें न्यायपालिका से ही न्याय मिला है। और उन्हें न्यायपालिका पर शुरू से ही भरोसा था। इस तरह न्यायपालिका की विस्वस्नियता ज्यादा बढ़ी है। रावत ने केन्द्र सरकार के अटॉर्नी जनरल को धन्यवाद दिया कि उन्होंने बुधवार 11 मई को सुप्रीम कोर्ट में केन्द्र सरकार की तरफ से पहले ही अपना पक्ष साफ करते हुए राष्ट्रपति शासन हटाने की बात रखी। रावत ने सोनिया गाँधी, राहुल गाँधी और मायावती का भी इस मुश्किल घड़ी में साथ देने पर आभार जताया। रावत ने कहा कि उन्होंने बीते 55 दिन बहुत तनाव में गुजारे हैं। उन्होंने उत्तराखंड में लोकतन्त्र को बचाने के लिए हर तरह की बाधाओं का सामना किया। रावत ने कहा कि वे अब फिर नए सिरे से उत्तराखण्ड के विकास की नई कहानी लिखेंगे। उत्तराखण्ड में उनके राजनीतिक जीवन की यह दूसरी पारी बहुत चुनौतीपूर्ण है।

उन्हें अब जो काम करने का मौका मिला है उसमें वे कड़ी मेहनत कर राज्य के विकास के लिए अधिक से अधिक काम करेंगे। उन्होंने कहा आज सत्य पर असत्य की जीत हुई है। रावत ने कहा कि जिस तरह हम केदारनाथ आपदा से उबरे थे उसी तरह हम आज राजनीतिक त्रासदी से उबरे हैं।

2. अन्य राज्यो में राष्ट्रपति शासन लागू होना:-

प्रस्तुत शोध में बताना चाहूंगा की उत्तराखण्ड राज्य में राष्ट्रपति शासन लगने से पहले भी भारत के अन्य राज्यों में कई बार राष्ट्रपति शासन लगाया जा चुका था। वो भी संविधान लागू होने के एक साल बाद यानी 1951 में, सरकारी आंकड़ों के मुताबिक

आजादी के बाद पंजाब वह राज्य था जहां पहली बार राष्ट्रपति शासन लगाया गया था। काँग्रेस में फूट की वजह से जब नेहरू की नेतृत्व वाली काँग्रेस सरकार ने पंजाब के मुख्यमंत्री गोपीचन्द भार्गव को बर्खास्त कर दिया था वो भी जब उनके पास राज्य में बहुमत था और उनकी विफलता की कोई स्थिति नहीं थी । तब यहां 20 जून 1951 से 17 अप्रैल 1952 के बीच राष्ट्रपति शासन लगाया गया। उसके पश्चात फिर से 1954 में आंध्र प्रदेश की चुनी हुई सरकार को उखाड़ फेंका गया था। उसके के बाद 24 मार्च 1977 को मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने। उन्होंने 30 अप्रैल 1977 को 9 राज्यों में कुल 16 मौके ऐसे आए जब एक साथ अलग-अलग राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगा। 12 बार मोरारजी देसाई और 4 बार चरण सिंह के दौरान जब काँग्रेस के समर्थन से करीब 6 महीने के लिए चरण सिंह जी प्रधानमंत्री बने थे। इन्दिरा गाँधी का आपातकाल से पहले और बाद में बतौर प्रधानमंत्री कुल 15 साल का कार्यकाल रहा।

इस दौरान 51 बार 1966 से 1977 के बीच 34 बार और 1980 से 1984 के बीच 17 बार और जब इन्दिरा गाँधी चौथी बार प्रधानमंत्री बनीं तब 17 फरवरी को एक साथ 9 राज्यों में, 1989 से 1999 तक 7 प्रधानमंत्री बने, तब 10 साल में 20 बार अटल बिहारी वाजपेयी तीन बार प्रधानमंत्री बने तब उनके 6 साल के कार्यकाल में सिर्फ 4 बार, देश के 28 राज्यों में कम से कम एक बार, और 13 राज्यों में 4 या इससे ज्यादा बार, 1992 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद मामले के बाद पहले उत्तर प्रदेश में और बाद में एक साथ तीन राज्यों में, उत्तर प्रदेश वे मणिपुर में सबसे ज्यादा 10 बार राष्ट्रपति शासन लगाया गया।

हालांकि सबसे ज्यादा दिन तक पंजाब में अलग-अलग मौकों पर कुल 3510 दिन यानी लगभग 10 साल राष्ट्रपति शासन रहा। दूसरे नंबर पर जम्मू-कश्मीर है जहां 3 बार राष्ट्रपति शासन लगा और यह कुल 2375 दिन लागू रहा। राज्य में पहले राज्यपाल शासन लगाया जाता रहा इसके बाद राष्ट्रपति शासन की सिफारिशें हुई । मोदी कैबिनेट की बैठक में महाराष्ट्र में राष्ट्रपति शासन लगाने की राज्यपाल की सिफारिश को मंजूरी मिल गई थी आपको बता दें कि महाराष्ट्र के इतिहास में तीसरी बार राष्ट्रपति शासन लागू किया गया है राज्य में अब तक सिर्फ 2 बार ही राष्ट्रपति शासन लगा था। सबसे पहले 17 फरवरी 1980 को तत्कालीन मुख्यमंत्री शरद पवार को विधानसभा में पर्याप्त बहुमत होने के बावजूद सदन भंग कर दिया गया था राज्य में 17 फरवरी से 8 जून 1980 तक अर्थात 112 दिन तक और 28 सितंबर 2014 से लेकर 30 अक्टूबर यानी 32 दिनों तक राष्ट्रपति शासन रहा था और विधानसभा को भंग किया गया था। नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री रहते अब तक 10वीं बार राष्ट्रपति शासन लग चुका है। वहीं रामनाथ कोविंद चौथी बार राष्ट्रपति शासन लागू कर चुके हैं। भारत में सन्-1950 से संविधान लागू होने के बाद से 2021-22 तक 132 बार राष्ट्रपति शासन आर्टिकल-356 के तहत लगाया जा चुका है । आजादी के बाद से देश में अब तक 132 बार राष्ट्रपति शासन लगाया जा चुका है।

इंदिरा गाँधी के प्रधानमंत्री रहते सबसे ज्यादा 51 बार राष्ट्रपति शासन लगा था। अनुच्छेद-356 के उपयोग के 126 से अधिक उदाहरण मे से बहुत ही कम उदाहरण ऐसे हैं जबकि राष्ट्रपति शासन लागू करने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था। यह भारतीय लोकतन्त्र का एक स्थापित सिद्धान्त है कि राज्यपाल राष्ट्रपति की प्रसन्नता के लिए कार्य करता है और अंततः एक विशेष राजनीतिक दल से संबंधित मंत्रि परिषद सहायता और सलाह के तहत काम करता है।

3. राष्ट्रपति शासन लगने के प्रमुख कारणः-

1. यदि राष्ट्रपतिय राज्यपाल की रिपोर्ट को स्वीकार कर लेता है कि राज्य सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार नही चल रही है
2. यदि कोई राज्य केन्द्र द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने या उसे लागू करने में विफल रहता है
3. चुनाव नतीजों के बाद किसी एक दल या गठबन्धन को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलना।
4. सत्ता पक्ष के विधायकों के विपक्षी दल में शामिल होने के कारण सरकार गिरना।
5. सत्तापक्ष का गठबंधन टूटने के बाद सरकार गिरना और राजनीतिक अस्थिरता।
6. बहुमत होने के बावजूद मुख्यमंत्री का इस्तीफे देना।

4. राष्ट्रपति शासन लगने के अन्य प्रमुख कारणः-

1. चुनाव नतीजों के बाद किसी एक दल या गठबन्धन को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलना।

2. सत्ता पक्ष के विधायकों के विपक्षी दल में शामिल होने के कारण सरकार गिरना।
3. सत्तापक्ष का गठबन्धन टूटने के बाद सरकार गिरना और राजनीतिक अस्थिरता।
4. बहुमत होने के बावजूद मुख्यमंत्री का इस्तीफे देना।
5. राज्य में अनुच्छेद-356 के अंतर्गत दो प्रकार से राष्ट्रपति शासन लगाया जाता है।
6. राज्य में संविधान के अनुसार प्रशासन नहीं चलाने पर राज्यपाल द्वारा राज्य सरकार की रिपोर्ट राष्ट्रपति को दी जाती है इसके बाद राष्ट्रपति शासन लगाने का निर्णय राष्ट्रपति के द्वारा किया जाता है।
7. यदि कोई राज्य सरकार केन्द्र द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन नहीं करता है तो उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लग सकता है।

5. अनुच्छेद-356 के अधीन उद्घोषणा के प्रभावः-

कार्यपालिकाः पर राज्य मंत्रिपरिषद बर्खास्त कर दी जाती है और इसके सभी कृत्यों का निर्वहन राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के निर्देश पर किया जाता है।

विधायिकाः पर राज्य की विधानसभा बर्खास्त या निलम्बित कर दी जाती है और संसद को राज्य विषय पर विधायी अधिकारिता प्राप्त हो जाती है ।

1. राष्ट्रपति मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रीपरिषद् को भंग कर देता है।
2. राष्ट्रपति राज्य सरकार के कार्य अपने हाथ में ले लेता है और उसे राज्यपाल और अन्य कार्यकारी अधिकारियों की शक्तियां प्राप्त हो जातीं हैं ।
3. राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति के नाम पर राज्य सचिव की सहायता से अथवा राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किसी सलाहकार की सहायता से राज्य का शासन चलाता है यही कारण है कि आर्टिकल 356 के अंतर्गत की गयी घोषणा को राष्ट्रपति शासन कहा जाता है।
4. राष्ट्रपति घोषणा कर सकता है कि राज्य विधायिका की शक्तियों का प्रयोग संसद करेगी।
5. संसद राज्य के विधेयक और बजट प्रस्ताव को पारित करती है।
6. संसद को यह अधिकार है कि वह राज्य के लिए कानून बनाने की शक्ति राष्ट्रपति अथवा उसके किसी नामित अधिकारी को दे सकती है।
7. जब संसद नही चल रही हो तो राष्ट्रपति आर्टिकल-356 शासित राज्य के लिए कोई अध्यादेश जारी कर सकता है।
8. राष्ट्रपति शासन मे केन्द्र तथा केवल सम्बन्धित राज्य के मध्य सम्बन्ध मे परिवर्तन आता है।
9. राष्ट्रपति शासन मे राज्य मन्त्रिपरिषद बर्खास्त कर दी जाती है।
10. राष्ट्रपति शासन मे यह बर्खास्त या निलम्बित कर दी जाती है।
11. राष्ट्रपति शासन मे मूल अधिकार प्रभावित नही होते है।
12. राष्ट्रपति शासन मे केन्द्र और राज्यो के मध्य वित्तीय सम्बन्ध प्रभावित नही हो सकते हैं।

4. अनुच्छेद-356- इसकी प्रकृति और कार्यक्षेत्रः-

भारती अनुच्छेद-356 की प्रकृति और दायरे का वि"लेषण करने से पहले भारतीय राजनीतिक संरचना की प्रकृति को समझना आवश्यक है। भारतीय लोकतन्त्र सुशासन के लिए संघ और राज्य सरकार के बीच सन्तुलन बनाए रखने के लिए सहकारी संघवाद की अवधारणा पर काम करता है। केशवानन्द बनाम स्टेट ऑफ केरल के मामले के अनुसार यह कहा जा सकता है कि भारतीय उपमहाद्वीप की संघीय संरचना संविधान की मूल संरचना का एक हिस्सा है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद-1 भारत को राज्यों के संघ के रूप में बताता है लेकिन संविधान के निर्माताओं का इरादा राज्यों पर संघ का वर्चस्व प्रदान करने का नहीं था।

वास्तव में विभिन्न मामलों में केन्द्र सरकार का राज्य सरकार पर प्रभुत्व है लेकिन यह लोगों की अधिक भलाई के लिए किया गया था न कि राज्य सरकार की शक्ति को पार करने के लिए अनुच्छेद-356 की प्रकृति और दायरे में आते हुए यह देखा गया है

कि अनुच्छेद-356 के दो आवश्यक घटक हैं। सबसे पहले राष्ट्रपति राज्य के राज्यपाल द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के आधार पर किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा सकता है। इसे अन्य परिस्थितियों में भी लगाया जा सकता है दूसरा राष्ट्रपति शासन उस राज्य में तब लागू किया जा सकता है जब संवैधानिक तन्त्र की विफलता हो।

संवैधानिक तन्त्र की विफलता उस स्थिति को संदर्भित करती है जब राज्य सरकार संविधान के प्रावधानों का पालन करते हुए अपने कार्यों को पूरा नहीं कर पा रहा है। अनुच्छेद-356 के तहत राज्यपाल के पास एक रिपोर्ट तैयार करने और राष्ट्रपति को भेजने की शक्ति है यदि उसके राज्य में संवैधानिक मशीनरी की विफलता या राजनीतिक संकट जैसे हाउस राइडिंग की स्थिति आ जाती है तो हालांकि राष्ट्रपति के पास राज्यपाल की रिपोर्ट के अलावा अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी के आधार पर किसी राज्य में आपातकाल लगाने की शक्ति भी होती है।

लेकिन राज्यपाल की रिपोर्ट की विषय वस्तु जो राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए संभावित आधार हो सकती है को न्यायिक समीक्षा के दायरे में लाया गया है। न्यायालय राज्यपाल की रिपोर्ट की विषय-वस्तु की जांच कर सकती हैं जिसने राष्ट्रपति की संतुष्टि को आकर्षित किया है। राज्यपाल राष्ट्रपति की इच्छा के अधीन कार्य करता है और राष्ट्रपति केन्द्र में रह रहे दल से सम्बन्धित मन्त्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर कार्य करता है।

उदाहरण के लिए पी-एम के रूप में इंदिरा गाँधी के पास सबसे अधिक बार राष्ट्रपति शासन लगाने का रिकॉर्ड है और 90 परिस्थितियों में यह उन राज्यों में लगाया गया था जो विपक्षी दलों द्वारा शासित थे या उन राज्यों में जो उनकी पार्टी के हितों के अनुसार नहीं चले थे।

5. अनुच्छेद-356 की न्यायिक व्याख्याः-

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए देश के सर्वोच्च न्यायालय ने एस-आर बोम्मई बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया में कहा कि न्यायालय को राज्यपाल की रिपोर्ट की निष्पक्षता की जांच करने का अधिकार है। बोम्मई मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद-356 के दुरुपयोग को लेकर गम्भीर सवाल उठाए गए थे। इस मामले में कर्नाटक के मुख्यमंत्री को राज्यपाल द्वारा फ्लोर टेस्ट में बहुमत साबित करने का मौका देने से पहले बर्खास्त कर दिया गया था और बाद में राज्य पर राष्ट्रपति शासन लगाया गया था।

न्यायालय ने कहा कि आम तौर पर राष्ट्रपति की संतुष्टि संदिग्ध नहीं होती है लेकिन राज्यपाल की रिपोर्ट की जांच राष्ट्रपति की संतुष्टि के आधार का पता लगाने के लिए की जा सकती है।

न्यायालय ने कहा कि राष्ट्रपति की संतुष्टि वस्तुनिष्ठ सामग्री पर आधारित होनी चाहिए वह सामग्री राज्यपाल द्वारा उन्हें भेजी गई रिपोर्ट में या दोनों रिपोर्ट और अन्य स्रोतों से उपलब्ध हो सकती है। इसके अलावा इस प्रकार उपलब्ध वस्तुनिष्ठ सामग्री से यह संकेत मिलता है कि राज्य की सरकार संविधान के प्रावधानों के अनुसार नहीं चल रही इसके अतिरिक्त बोम्मई के मामले का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि न्यायालय ने माना कि आपातकाल लगाने की राष्ट्रपति की शक्ति पूर्ण शक्ति नहीं है और यह संविधान के प्रावधानों के अधीन है सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति एक संवैधानिक पद है और इसलिए राष्ट्रपति को संविधान के अनुसार कार्य करना आवश्यक है। रामेश्वर प्रसाद बनाम स्टेट ऑफ बिहार के मामले में भी ऐसा ही किया गया था जिसमें न्यायालय ने राज्यपाल द्वारा भेजी गई रिपोर्ट की जांच के बाद राज्य में राष्ट्रपति शासन की घोषणा को अयोग्य घोषित कर दिया था। यह देखा गया कि रिपोर्ट में ऐसी कोई वस्तुनिष्ठ सामग्री नहीं थी जिससे राष्ट्रपति की संतुष्टि प्राप्त करने की संभावना हो ऐसे मे न्यायालय राष्ट्रपति शासन लगाने के राष्ट्रपति के फैसले पर सवाल उठा सकती है।

यहां राज्यपाल की रिपोर्ट की निष्पक्षता का मतलब है कि संबंधित रिपोर्ट को उन परिस्थितियों की व्यापकता को दिखाना चाहिए जो राज्य में संवैधानिक तंत्र को रोक रही हैं। स्थिति गंभीर होनी चाहिए क्योंकि संविधान के कुछ प्रावधानों के उल्लंघन को संवैधानिक तंत्र की विफलता नहीं कहा जा सकता है और यह दिखाया जाना चाहिए कि आपातकाल की घोषणा के बिना सरकार संविधान के अनुसार चल सकती है। न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद-356 द्वारा दी गयी शक्ति एक सशर्त शक्ति है।

यह राष्ट्रपति के विवेक में प्रयोग की जाने वाली पूर्ण शक्ति नहीं है। यह संतुष्टि राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर या उसके द्वारा प्राप्त अन्य जानकारी के आधार पर या दोनों के आधार पर बनाई जा सकती है। न्यायालय का विचार था कि आपातकाल लगाना

अंतिम उपाय होना चाहिए और राज्यपाल को राष्ट्रपति शासन की घोषणा से पहले अन्य सभी उपायों को चुनने की आवश्यकता है। प्रासंगिक सामग्री का अस्तित्व संतुष्टि के गठन के लिए एक पूर्व शर्त है।

'मे' शब्द का प्रयोग न केवल विवेक का संकेत देता है बल्कि कार्रवाई की उपयुक्तता और आवश्यकता पर विचार करने का दायित्व भी दर्शाता है । राज्यपाल की रिपोर्ट की न्यायिक समीक्षा की अनुमति के बावजूद व्यापक दायरे के कारण अनुच्छेद-356 का दुरुपयोग अभी भी जारी है ।

6. अनुच्छेद-356 की अस्पष्टता और सन्शोधन की आवश्यकताः-

भारत जैसे संघीय देश में जहां संघ और राज्य विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा शासित होते हैं। केन्द्र में राजनीतिक दल द्वारा अनुच्छेद-356 का दुरुपयोग कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है और इसके उदाहरण भारत में कई बार देखे भी गए हैं। सन्-1950 से 2021-22 तक राज्यों में राष्ट्रपति शासन की घोषणा को देखने के बाद यह कहा जा सकता है कि ऐसी स्थिति तब पैदा हुई जब केन्द्र और राज्य में दो अलग-अलग दल मौजूद हों या जब केन्द्र सरकार के राजनीतिक हितों का राज्य सरकार के साथ टकराव होने लगे।

अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग का प्रमुख कारण इसकी अस्पष्ट और व्यक्तिपरक प्रकृति है। 'अन्यथा' और 'संवैधानिक तन्त्र की विफलता' जैसे शब्दों का प्रयोग इतना व्यापक है कि वे इसके दायरे में कई प्रकार के कार्यों को शामिल कर सकते हैं। अनुच्छेद-356 यह परिभाषित करने में विफल रहता है कि संवैधानिक तन्त्र की विफलता क्या है और किस प्रकार की विफलता को राज्य सरकार के कार्यक्षेत्र में अतिक्रमण करने के लिए एक उचित आधार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

अनुच्छेद-356 के दुरुपयोग को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका देश के संघीय ढांचे पर सीधा प्रभाव पड़ता है जिससे संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन होता है। कई विद्वानों ने कहा है कि अनुच्छेद-356 को हटा दिया जाना चाहिए लेकिन अनुच्छेद-356 को हटाने से राज्यों को अधिक स्वायत्तता मिलेगी और स्थिति और खराब होगी। समय की मांग है कि अनुच्छेद-356 में संशोधन किया जाए और 'अन्यथा' और 'संवैधानिक तन्त्र की विफलता' वाक्यांशों की एक विशिष्ट परिभाषा प्रदान की जाए ताकि अनुच्छेद-356 का दायरा तय किया जा सके। विधायिका को उन कार्यों की तीव्रता या गंभीरता को परिभाषित करना चाहिए जिन्हें यह तर्क देने के लिए उचित और न्यायसंगत आधार के रूप में दिया जा सकता है कि यह संवैधानिक तन्त्र की विफलता है और इसलिए निर्वाचित सरकार को बर्खास्त कर दिया जाना चाहिए।

7. निष्कर्ष

संविधान के तथाकथित 'मृत' अक्षरों जो दुर्लभतम से दुर्लभतम मामलों में उपयोग किए जाने की उम्मीद थी राज्य सरकार के दायरे का अतिक्रमण करने का एक उपकरण बन गया है। विविध राज्यों में आपातकाल लागू करने के वि"लेषण के माध्यम से यह देखा गया है कि राष्ट्रपति शासन उचित आधारों के बिना भी रहा है और वही भारतीय राजनीति का गलत पक्ष बन गया है। केन्द्र और राज्य दोनों सरकारें अपने क्षेत्र में सर्वोच्च हैं और उनमें से कोई भी दूसरों पर अपनी श्रेष्ठता का दावा नहीं कर सकता है।

अनुच्छेद-356 की अस्पष्ट प्रकृति के कारण कोई प्रभावी उपाय नहीं है जो केन्द्र सरकार के हाथों में अनुच्छेद-356 के दुरुपयोग को रोकता है। भारत के संघीय ढांचे की रक्षा के लिए बोम्मई के मामले में और साथ ही सरकारिया आयोग द्वारा पेश की गई सिफारिशों के अनुरूप अनुच्छेद 356 में संशोधन करना अनिवार्य है। राष्ट्रपति शासन हमेशा अंतिम उपाय होना चाहिए और सभी कदम जैसे राज्य सरकार को चेतावनी देना कि वह संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार काम नहीं कर रही है बहुमत साबित करने के लिए फ्लोर टेस्ट आदि का राज्यपाल द्वारा पालन किया जाना चाहिए।

हालांकि भले ही सरकारिया आयोग की सभी सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 356 में संशोधन किया जाएगा फिर भी शक्ति के दुरुपयोग की सम्भावना होगी क्योंकि किसी भी कानून की दक्षता इस शर्त पर निर्भर करती है कि इसे कितनी अच्छी तरह से लागू किया गया है। इसलिए अनुच्छेद-356 की सख्त व्याख्या के माध्यम से ही यह उम्मीद की जा सकती है कि राष्ट्रपति शासन का चुनाव करते समय संघ को फेडरेशन की भावना को बनाए रखा जाना चाहिए और केन्द्र सरकार को अपने स्वयं के राजनीतिक हितों की तलाश के लिए इस शक्ति का उपयोग नहीं करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संविधान के अनुच्छेद-356 पर एक परामर्श पत्र एन.सी.आर.डब्ल्य.सी 11 मई 2001।
2. संवैधानिक सभा वाद-विवाद अगस्त 4 1949 बी.आर.अम्बेडकर
3. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य ए.आई.आर 1973 एस.सी 1461 अम्बेडकर।
4. वेंकट अनंत भारत में राष्ट्रपति शासन कैसे वर्षों से लगाया गया है, लाइव मिंट,; 27 जनवरी 2016।
5. एस-आर-बोम्मई बनाम भारत संघ 1994 3 एस.सी.सी 1।
6. रामेश्वर प्रसाद बनाम बिहार राज्य ए.आई.आर 2006 एस.सी 980।
7. एस-आर-बोम्मई बनाम भारत संघ 1994 3 एस.सी.सी 1219 अनंत सुप्रा नोट 13।
8. नबाम रेबिया बनाम उपाध्यक्ष अरुणाचल प्रदेश विधान सभा 2017 13 एस.सी.सी 326।
9. हरीश चन्द्र सिंह रावत बनाम भारत संघ 2016 ए.आइ.आर सी.सी 2455।
10. विशेष संवाददाता दिल्ली में राष्ट्रपति शासन लगाया गया द हिंदू 17 फरवरी 2016।
11. विजिता सिंह महाराष्ट्र राष्ट्रपति शासन के तहत रखा गया द हिन्दू 12 नवंबर 2019
12. एच.एस.जैन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 1997 1 यू-पी-एल-बी-ई-सी 594।
13. रेड्डी गोविंदा राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2020 एस-सी-सी ऑनलाइन ए-पी 961।
14. आर-एस सरकारिया केन्द्र- राज्य सम्बन्धों पर सरकारिया आयोग की रिपोर्ट 1988।
15. धर्मचन्द जैन मुख्यमंत्री।
16. वी.क.एस.नायर केरला पॉलिटिक्स सिन्स 1947 कम्यूनिटी ऐटिट्यूडस।
17. ज.आर.सिवाच इण्डियन प्रेसिडेन्सी।
18. नैय्यर किशाम कॉन्सटीटयूशनल एक्सपेरीमेन्ट इन केरल।
19. आर.सी.शर्मा चेन्जिंग इण्डियन पॉलिटिकल सिनेरियो।
20. लिज मैथ्यू उत्तराखण्ड विजय बहुगुणा 8 अन्य बागी काँग्रेस विधायक भा.ज.पा में शामिल हुए द इंडियन एक्सप्रेस 19 मई 2016।
21. अनिल घंगास भारतीय संघवाद की तुलना में अनुच्छेद-356 के तहत राज्य आपातकाल 4
22. कानून का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल 100-110; 2018।
23. के.मधुसूदन राव संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करने के लिए प्राधिकरण 461 भारतीय विधि संस्थान 125-132; 2004।
23. जे-आर-सिवाच राज्य स्वायत्तता और राष्ट्रपति शासन 462 भारतीय राजनीति विज्ञान संघ 150-166 1985।

हिन्दी गद्य साहित्य में जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति

डॉ० सुधा रानी

सह-आचार्य, हिन्दी विभाग, वैश्य महाविद्यालय भिवानी, हरियाणा

शोधालेख सार- वस्तुत: किसी भी समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आकलन उसके जीवन-मूल्यों से किया जाता है। इसलिए जीवन-मूल्य किसी व्यक्ति की किसी भी क्षेत्र में सफलता के लिए जरूरी हैं। वैदिक काल से होते हुए, गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी तक अनेक महापुरुष जीवन-मूल्यों के कारण इतिहास में अमर हो गए। अत: जीवन मूल्य व्यक्ति को सकारात्मक बनाते हैं। वास्तव में जो व्यक्ति मूल्यहीन जीवन जीते हैं वे समाज में व्यर्थ माने जाते हैं तथा ऐसे व्यक्ति समाज के लिए बोझ माने जाते हैं। निठल्ले व्यक्ति समाज का कभी भी मार्ग-दर्शन नहीं करते। मूल्यहीन व्यक्ति की जिंदगी पंगु मानी जाती है, जिसमें कोई गति और निरंतरता नहीं होती और सिद्धांतों के अभाव में ऐसे लोग महत्वहीन, अनुपयोगी और परिवार व समाज के लिए बोझ स्वरूप होते हैं। चूंकि सिद्धांत और मूल्य मानव जीवन को ऊर्जा देते हैं, इसलिए समाज हो चाहे, परिवार, सबका संचालन कुछ आदर्शों और सिद्धांतों से होता है। यदि जीवन में इनका अभाव हो जाए तो समाज का ढांचा गड़बड़ाने लगता है। प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दी गद्य साहित्य में जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डाला गया है।

मूल शब्द- समाज, जीवन-मूल्य, सकारात्मक, कथा साहित्य, उपन्यास, अभिव्यक्ति ।

भूमिका-हम सभी इस बात को नकार नहीं सकते कि मूल्यों का व्यक्ति व समाज के लिए अत्यधिक महत्व है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे अपने व्यवहार, स्वभाव और जीवन तथा अन्य लोगों के प्रति समग्र व्यवहार का निर्धारण करते हैं। हम अपने जीवन में जो निर्णय लेते हैं, वे काफी हद तक हमारे मूल्यों के आधार पर होते हैं। जीवन में हमारे निर्णय न केवल हमें बल्कि हमारे परिवार, हमारे संगठन, हमारे समाज के साथ-साथ हमारे राष्ट्र को भी प्रभावित करते हैं। अत: समाज में अच्छे मूल्यों वाले व्यक्ति के आस-पास के सभी लोगों की भलाई को देखते हुए बुद्धिमान निर्णय लेने की संभावना है। दूसरी ओर, एक व्यक्ति जिसके पास मूल्यों की कमी है, वह इसमें विफल हो जाएगा और अपने लिए तथा उसके आसपास के लोगों के लिए भी एक समस्या पैदा कर सकता है।

मूल्यों का अर्थ:-

''मूल्य'' का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, इसलिए परिभाषित करना भी कठिन है। विद्वानों के ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में इस का विचार किया है। किसी ने व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अपनाया तथा किसी ने सामाजिक, किसी ने भोगवादी तथा किसी ने नैतिकतावादी, किसी ने आर्थिक तो किसी ने रहस्यवादी। जोसफ एन. फीचर के मतानुसार - ''मूल्य वे मानदंड है जो सम्पूर्ण संस्कृति और समाज को अभिप्राय तथा सार्थकता प्रदान करते है।''

मूल्य एक प्रकार की ऐसी कसौटी हैं, जिसके आधार पर संस्कृति और समाज के महत्व को नापा जा सकता है। मनुष्य की किसी अनुभव में, जो जीवन से संबंधित विषय है, उनमें मूल्य का महत्व कम या ज्यादा उस समय देखते हैं, जब उसके व्यवहार में मार्ग दर्शन का प्रश्न उठता है। मनुष्य अपने दैनिक जीवन में कुछ क्रियाओं या अनुभवों को विशिष्ट महत्व देता है, जो उसकी निर्णय शक्ति पर निर्भर है, इसकी अभिव्यक्ति मूल्यों के आधार पर ही होती है।

वास्तव में अधिकांश समाजशास्त्री इस बात से सहमत है कि 'मूल्य' जीवन के साथ जुडा शब्द है। चिंतन के क्षेत्र में तो इस शब्द का प्रयोग हमेशा होता है, व्यावहारिक रुप में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। व्यावहारिक मूल्य शब्द मापन की कसौटी के तौर पर प्रयोग किया जाता है, परंतु यहाॅ पर 'मूल्य' संपूर्ण मानवीय व्यवहार से अभिप्रेत है। 'मूल्य' शब्द गौरवता को दर्शाता है। अर्थपरिवर्तन के कारण इस शब्द में बडी व्यापकता पाई जाती है। अत: संक्षेप में हम गुणों को मूल्य कह सकते है। मूल्य केवल मानव व्यवहार की दिशा निर्धारण ही नहीं करते, बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते है।

मूल्यों के भेद:-

1. शास्वत मूल्य:- इन मूल्यों मे किसी भी कारण या परिस्थिति अनुरूप परिवर्तन नहीं होता है जिसमें सौदर्यात्मक मूल्य जैसे- सत्यम शिवम सुंदरम का स्थान है तथा नैतिक मूल्य- त्याग, अहिंसा, सेवा, न्याय आदि।
2. बदलते मूल्य:- भौतिक समृध्दि के साथ-साथ इन मूल्यों में बदलाव आते गये है। जैसे जैविक मूल्य जिनमें- आर्थिक मूल्य, या फिर अतिजैविक मूल्य, सामाजिक मूल्य, आध्यात्मिक मूल्य आदि शामिल हैं।

हिन्दी गद्य साहित्य एवं मूल्य:- हमारा साहित्य भले वो किसी भी भाषा में हो उसमें मूल्यों के दर्शन होते है। साहित्य और मूल्यों का अटूट रिश्ता है। हिन्दी साहित्य में प्राचीन काल से ही मूल्यों का विवरण हम देखने को मिलता है। प्राचीन काल के साहित्य में हमें भगवान श्रीकृष्ण या आदर्शोन्मुखी राम का गुण वर्णन दिखाई देता है। इन रुपों द्वारा आदर्श व्यक्तित्व में धैर्य, नीति, बुध्दि, वाक्चतुरता आदि शास्वत मूल्य दर्शाए गये हैं। साहित्य की हर विधा में अपनी-अपनी शैली के अनुसार मूल्यों को प्रतिष्ठित किया गया है। समय की मांग के अनुसार इन मूल्यों में परिवर्तन दिखाई देता है।

कहानी विधा में अभिव्यक्त मूल्य:- कहानी साहित्य की एक सशक्त विधा मानी जाती है। कहानी विधा से हमें जीवनपथ पर चलने के लिए आदर्श एवं मूल्य मिलते है। नयी कहानी और मूल्यों के संदर्भ में डॉ. इंद्रनाथ मदान ने लिखा है - "पहले कहानी अधिकांशत: कल्पना पर आधारित होती थी, अब यथार्थ को लेकर चलती है। अत: पहले की कहानी पुरानी है और आज की कहानी नयी है। नयी कहानी में तलाश पात्रों की नहीं यथार्थ की है, पात्रों के माध्यम से यथार्थ की अभिव्यक्ति की। पहले कहानी कला मूल्यों को लेकर लिखी जाती थी, अब जीवन मूल्यों को लेकर। चूंकि साहित्य की विविध विधाओं के अंतर्गत मूल्यों की चर्चा की जाती है, अत: कथा साहित्य विधा के अंतर्गत भी जीवन मूल्यों की चर्चा व्यापकतम रूप में की जाती है। स्वतंत्रापूर्व और स्वतंत्रयोत्तर काल में लिखे गये कथा साहित्य में यह बात दिखाई देती है। वास्तव में इस काल में लिखे गये कथा साहित्य में विस्तृत रूप से यथार्थ के धरातल पर मानव जीवन के लिए उपयोगी एवं महत्वपूर्ण मूल्यों की चर्चा समग्र रूप में की गयी है। अगर हम कहानी साहित्य विधा का विचार करते हैं तो आरंभिक कहानियां आदर्शपरक या कल्पनापरक होती थी, परंतु धीरे-धीरे इसमें जीवन मूल्यों की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती गई। स्वतंत्रता पूर्व कहानी में त्याग, निस्वार्थता, बलिदान आदि भावनायें विकसित की गई थी। प्रेमचंद कालीन कहानी में यथार्थ को दर्शाने का प्रयास किया गया । यानी यथार्थता के माध्यम से जीवन की विसंगतियां एवं कुरुपता को दर्शाया गया। स्वातंत्र्योत्तर काल में भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता, लोभस प्रवृत्ति को दिखाया गया है।

जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी कहानियों में 'आकाशदीप', 'ममता', 'पुकार', रिश्तों की उलझनें ही दर्शायी है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी में विशुध्द प्रेम और श्रध्दा भाव दर्शाया गया है। प्रेमचंद जी तो हमेशा से ही मूल्यों के आग्रही दिखाई देते है। उनकी 'परीक्षा', 'नमक का दरोगा', 'पांच परमेश्वर', में आदर्श का ही चित्रण है। विश्वंभर नाथ शर्मा की 'ताई' में पारिवारिक मूल्यों को दिखाया गया है। यशपाल जी की 'महादान' कहानी में मूल्यों का विघटन किस प्रकार हो रहा है उसे दर्शाया है। 'दुख का अधिकार' इस कहानी में सामाजिक, आर्थिक विषमता को दिखाया है। मोहन राकेश की 'मलबे का आदमी' में परिस्थितीनुरुप मूल्यों में हो रही गिरावट देख सकते है। कमलेश्वर जी के 'मांस का दरिया', 'कस्बे का आदमी', 'बयान' आदि कहानियों में आदर्श का आग्रह दिखाई देता है। मंन्नू भंडारी की कहानियों में पारिवारिक टूटते मूल्य, पुराने और नये मूल्यों में हो रहा संघर्ष दिखाई देता है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में नैतिक मूल्यों में विघटन होता गया। मूल्यों का अध:पतन हो गया है। अनेक कहानियों में यौन संबंधों को दर्शाया गया है। जो वर्णन यौन संबंधों का मिलता है वह अधिक मात्रा में और खुलकर किया गया है। साथ ही इस काल में हीनता, स्वार्थप्रवृत्ती अधिक दिखाई गई है। मन्नू जी की 'उंचाई', यादवेंद्र शर्मा की 'नारी और पत्नी', केशव दुबे जी की 'कांच का घर', शैलेश मटियानी की 'भय' आदि कहानियों में यौन संबंधों का उन्मुक्त विवरण पाया जाता है। मंजूल भगत की 'पाव रोटी और

कटलेट्स', दीप्ती खंडेवाल की 'बेहया', जितेंद्र भाटिया की 'शहाजदनामा' कहानियों में आर्थिक विषमता को देख सकते है। शिवानी की 'स्वयं सिद्धा', मेहरुनिसा परवेज की 'गिरवी रखी धूप', चित्रा मुद्‌गल की अग्निरेखा आदि कहानियों में सामाजिक मूल्यों का विघटन देखा जा सकता है। इस प्रकार हम कहानी विधा के माध्यम से अभिव्यक्त मूल्यों को देख सकते है।

उपन्यास विधा में अभिव्यक्त मूल्य:- अयोध्या सिंह उपाध्याय जी का उपन्यास 'अधखिला फूल' में धार्मिक अंधविश्वास का दुष्परिणाम देख सकते है। प्रेमचंद और उनके बाद के उपन्यासों में चरित्रात्मकता और उद्देश्यता दिखाई देती है। प्रेमचंद तो युगप्रवर्तक उपन्यासकार माने जाते हैं। प्रेमचंद जी ने कृषकों की समस्याओं को उठाया है। प्रेमचंद जी के उपन्यासों द्वारा व्यक्त समस्याएं सामाजिक और विश्वव्यापी है। 'गोदान' एक सर्वश्रेष्ठ कृति है। प्रेमचंद जी के बाद जैनेंद्र, अज्ञेय, और इलाचंद जोशी आदि लेखकों ने कुंठाओं, सेक्स आदि का चित्रण किया है। यशपाल, रांगेय राघव, आदि मार्क्सवाद के प्रभाव में होने के कारण समाजवादी विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार अपने उपन्यासों द्वारा किया है। साठोत्तरीय काल में तो महिला लेखन ने उपन्यासों में अपनी अलग पहचान निर्माण की। उनके उपन्यासों द्वारा विभिन्न मूल्यों को दर्शाया है। इस काल में परिवार टूटते नजर आये है। देश की अनुशासनहीनता, बेरोजगारी, महँगाई अधिकतर नजर आती है। कृष्णा सोबती के 'डार से बिछुडी', 'मित्रो मरजानी,' 'सूरजमुखी अंधेरे के', उपन्यासों में सेक्स का अधिकतर चित्रण, पुरातन मूल्यों को नकारती औरते दिखाई देती हैं। उषा प्रियंवदा जी ने 'रुकोगी नहीं राधिका' में प्यार, और प्यार न मिलने के कारण राधिका को मिलने वाला तनाव दर्शाया है। शशिप्रभा शास्त्री के 'वीरान रास्ते और झरना', नावें, 'सीढियाँ', आदि उपन्यासों में नारी मन की दु:ख, वेदना का वर्णन मिलता है। वीरान रास्ते और झरना में अवैध यौन संबंध दिखाई देते हैं। मुन्नू भंडारी के 'आपका बंटी', 'एक इंच मुस्कुराहट', 'महाभोज', 'स्वामी' आदि उपन्यासों मे प्रेम, राजनैतिक परिवेश, अलगाव, विश्वास आदि मूल्यों को व्यक्त करते हैं। मालती जोशी जी के 'ज्वालामुखी के संदर्भ में', 'पाषाण युग', 'निष्कासन', 'सहमें हुए प्रश्न' आदि उपन्यासों में एकाकीपन, आधुनिकता का परिवेश और उसके दुष्परिणाम दिखाई देते है। दीप्ती खंडेलवाल के 'प्रिया', 'वह तिसरा', 'कोहरे' तो मृदुला गर्ग के 'चितकोबरा', 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज' आदि में प्रेम की नई भावनाएं, स्नेह, कुछ उपन्यासों में क्रांतिकारी वृत्ति भी है। इस प्रकार उपन्यास साहित्य विधा के माध्यम से मूल्यों को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली है।

सारांश:- अन्तत: आधुनिक युग बड़ी ही तीव्रता से परिवर्तित हो रहा है जिसमें परम्परागत एवं नवीन मूल्यों में टकराव, संघर्ष एवं संक्रमणशीलता दिखाई गयी है। मनुष्य की भौतिक साधनों के प्रति आसक्ति एवं बढ़ते हुए पूंजीवाद ने एक नए अर्थ संस्कृति को जन्म दिया है। राजनीतिक स्तर पर बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, बेईमानी, अराजकता, अधिकारों का दुरूपयोग, अकर्मण्यता आदि विकृतियों से समाज आक्रांत हुआ है और जीवन के प्राय: सभी क्षेत्रों में इन विकृतियों का प्रभाव गहराई तक है जिससे समाज में मूल्य विघटन और मूल्यहीनता की स्थितियां उत्पन्न हुई है। अत: हिन्दी साहित्य की समस्त विधायों में ग्राम्य-कस्बाई-नगरीय और महानगरीय परिवेश में पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर भी नए पुराने मूल्यों के द्वंद्व और मूल्यविघटन की स्थिति को स्पष्ट: देखा जा सकता है।

सन्दर्भ सूची-

- नीलम सिंह, तलाल नगर के उपन्यासों में जीवन मूल्य, पृष्ठ संख्या- 36।
- डॉ. इंद्रनाथ मदान, जीवन मूल्य, पृष्ठ संख्या- 89।
- साक्षी मित्तल, डगर पनघट की, पृष्ठ संख्या- 98।
- डॉ. शिवा शर्मा, आधुनिक जीवन में जीवन मूल्यों की परिभाषा, पृष्ठ संख्या- 45।
- आनंद मेहता, विचार, नियम तथा तीसरा आयाम, पृष्ठ संख्या- 54।
- डॉ. रमेश देशमुख, हमारे जीवन मूल्य, पृष्ठ संख्या- 82।
- डॉ. रघुवंश, जीवन के अनमोल खजाने, पृष्ठ संख्या- 46।
- डॉ. योगेंदर प्रसाद शर्मा, जीवन मूल्य, पृष्ठ संख्या - 78।

भारत की अर्थव्यवस्था में खाद्यान्न उत्पादकता में वृद्धि की वर्तमान परिस्थितियाँ, (उ0प्र0 राज्य के विशेष संदर्भ में)

उज्ज्वल चतुर्वेदी

शोध छात्रा (अर्थशास्त्र), छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

डॉ० मंजू अवस्थी

एसोसिएट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र), डी0बी0एस0 महाविद्यालय, कानपुर

भारत एक कृषि प्रधान देश है, देश की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांवों में निवास करती है। देश की वर्तमान जनसंख्या लगभग 120 करोड़ है जो आगामी बीस वर्षों में लगभग 140 करोड़ और शताब्दी के मध्य तक बढ़कर लगभग 170 करोड़ हो जाने का अनुमान है। लगातार बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्न की आवश्यकता पूर्ति हेतु हमें देश में खाद्यान्न का उत्पादन सन् 2025 तक 380 मि. टन और सन् 2050 तक 480 मि. टन बढ़ाना होगा। साथ ही बढ़ती आवश्यकता के अनुरूप ही तिलहन, चीनी, सब्जी-फल, चारा, रेशा, दूध, मांस-मछली आदि का उत्पादन भी बढ़ाना होगा, परन्तु समस्या यह है कि दिन-प्रतिदिन भूमि की उपलब्धता कम होती जा रही है। वर्ष 1999-2000 में प्रति व्यक्ति 0.15 हैक्टेयर भूमि उपलब्ध थी जो 2020 तक घटकर 0.05 हैक्टेयर प्रति व्यक्ति रह जायेगी। ऐसी स्थिति में इन फसलों के अंतर्गत अधिक क्षेत्र तो बढ़ाना असंभव है। साथ ही अधिक उत्पादन लेने के लिए संसाधनों की क्षमता से अधिक दोहन हो रहा है। खेती में उर्वरक और पीड़कनाशी रसायनों के बढ़ते प्रयोग से पर्यावरण-मृदा, जल और वायु के प्रदूषण की समस्या बढ़ रही है। इन सभी समस्याओं पर काबू पाने और उत्पादन बढ़ाने का एक ही उपाय है कि प्रति इकाई संसाधन फसल उत्पादकता बढ़ाई जाये और जनसंख्या के अनुरूप उत्पादन बढ़ाने तथा पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए कृषि उत्पादन के टिकाऊपन पर ध्यान दिया जाये। ऐसे में भारत में बड़े परिवर्तन के द्वारा खाद्यान्न उत्पादकता बढ़ाने की सम्भावनाओं पर विचार करना अति आवश्यक है।

वैज्ञानिक व तकनीकी विकास के बावजूद देश में आज भी 40 से 50 फीसदी कृषि प्रणाली मानसून (भगवान) के भरोसे है। जिस वर्ष प्रकृति साथ देती है, उस वर्ष तो देश में बड़े पैमाने पर खाद्यान्न उत्पादन होता है परंतु प्रकृति के कुपित होने की स्थिति में खाने के भी लाले पड़ जाते हैं। इसी कारण देश की कृषि अर्थव्यवस्था को मानसून आधारित जुआ कहा जाता है। कर्ज तले दबा किसान अगली फसल के लिए फिर से कर्ज लेने को मजबूर हो जाता है। विगत वर्षों में कर्ज के जाल में उलझे अनेक किसानों ने कर्ज से मुक्ति प्राप्त करने के लिए स्वयं मौत का आलिंगन कर लिया। प्राकृतिक निर्भरता को कम करने और किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए कृषि क्षेत्र में आधारभूत अवसंरचना के विकास पर जोर दिया जा रहा है।

उत्तर प्रदेश भारत का सीमान्त प्रदेश है। इसकी उत्तरी सीमा नेपाल को छूती है। उत्तराखंड के गठन से पूर्व इसकी सीमाएं चीन के तिब्बती क्षेत्र को भी छूती थीं लेकिन अब यह क्षेत्र उत्तराखंड में चला गया है। प्रदेश के उत्तर में अब नेपाल सीमा के साथ उत्तरांचल की शिवालिक पर्वत श्रेणियां हैं। पश्चिमी और दक्षिण पश्चिमी सीमा पर हरियाणा, दिल्ली और राजस्थान हैं तथा दक्षिण

में मध्य प्रदेश और पूर्वी सीमा बिहार से लगी हुई है। इन सीमाओं को प्राकृतिक तौर पर देखा जाये तो उत्तर में हिमालय की शिवालिक श्रेणियाँ, पश्चिम, दक्षिण-पश्चिम तथा दक्षिण में यमुना नदी तथा विन्ध्याचल और पूर्व में गंडक नदी है। उत्तराखंड के गठन के पूर्व राज्य के तीन भू-भाग थे। इसमें पर्वतीय क्षेत्र, मैदानी क्षेत्र और दक्षिण का पठारी क्षेत्र था, किन्तु अब इस पर्वतीय क्षेत्र से लगा हुआ तराई-भाभर क्षेत्र ही बचा हुआ है।

उत्तर प्रदेश की अर्थ व्यवस्था का मूल आधार कृषि है। लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है। प्रदेश के आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। वर्ष 2011-12 के भू-उपयोगिता के आंकड़ों के अनुसार प्रदेश में शुद्ध कृषित क्षेत्रफल 166.23 लाख हेक्टेयर (69प्रतिशत) क्षेत्र में खेती की जाती है। वर्ष 2011 की कृषि गणना के आँकड़ों के अनुसार उत्तर प्रदेश में 233.25 लाख कृषक परिवार हैं। कृषि की आधुनिक तकनीक का उपयोग कर उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि की दिशा में कृषकों की मेहनत एवं लगनशीलता का ही परिणाम है कि आज प्रदेश न केवल खाद्यान्न के उत्पादन में आत्मनिर्भर है, बल्कि देश में अतिरिक्त उत्पादन का योगदान करता है। इस प्रकार प्रदेश आवश्यकता से आधिक्य की ओर अग्रसर है।

बारहवीं पंचवर्षीय योजना एवं कृषि नीति-2013 के अन्तर्गत वित्तीय वर्ष 2015-16 में कृषि की 5.1 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर को बनाये रखते हुए कुल खाद्यान्न 626.64 लाख टन का उत्पादन स्तर प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, जिसमें खरीफ में 212.66 लाख मै0 टन एवं रबी में 413.98 लाख टन सम्मिलित है। इस प्रकार तिलहनी फसलों में 14.03 लाख टन सम्मिलित है। इसी प्रकार तिलहनी फसलों में 13.03 लाख टन (शुद्ध) का उत्पादन स्तर प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

प्राकृतिक मृदा संसाधन की उत्पादकता बनाये रखने हेतु विभिन्न कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, जिससे रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशकों के असंतुलित प्रयोग से मृदा स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सके। उक्त के परिप्रेक्ष्य में प्रदेश स्तर पर खरीफ एवं रबी फसल की बुवाई के पूर्व ''अपनी मिट्टी पहचानो'' अभियान चलाया जा रहा है। इस अभियान के द्वारा मृदा नमूने एकत्र कर प्रयोगशालाओं में परीक्षण के लिए भेजे जाते हैं। विश्लेषित मृदा नमूने की संस्तुतियाँ, मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से कृषकों को उपलब्ध करायी जायेगी।

प्रदेश में स्थापित कृषि विज्ञान केन्द्रों के साथ प्रत्येक माह के प्रथम बृहस्पतिवार को वैज्ञानिक, कृषक तथा कृषि अधिकारियों की बैठक का आयोजन किया जा रहा है। प्रदेश में एग्रो क्लाईमेटिक जोनवार तीन दिवसीय विराट किसान मेलों का आयोजन किया गया। इस मेले में कृषकों की समस्याओं का स्थलीय निदान तथा कृषि निवेश कृषि तकनीक भी उपलब्ध करायी गयी। विगत वर्षों में प्रदेश की कृषि उत्पादकता में उत्तरोत्तर हो रही वृद्धि को और तीव्र गति देने को ध्यान में रखते हुए कृषि उत्पादन की नवीन तकनीक को ससमय कृषकों तक पहुंचाना, सामयिक कृषि संसाधन व्यवस्था हेतु मण्डल, जनपद, विकास खण्ड एवं न्याय पंचायत स्तर पर खरीफ एवं रबी मौसमों के प्रारम्भ में गोष्ठियों का आयोजन किया जा रहा है। गोष्ठियों में कृषि विश्वविद्यालय एवं अन्य संस्थाओं के वैज्ञानिक तथा प्रदेश स्तर के अन्य विभागों के अधिकारियों द्वारा भाग लेकर कृषकों के हितोपयोगी बनाया जाता है।

कृषि की सम-सामयिक समस्याओं के निदान एवं तकनीकी ज्ञान में वृद्धि हेतु मासिक बुलेटिन ''कृषि चिन्तन'' का प्रकाशन किया जा रहा है। इस बुलेटिन को प्रदेश की समस्त ग्राम पंचायतों, विभागीय कर्मचारियों, प्रगतिशील कृषकों एवं जन-प्रतिनिधियों को नि:शुल्क उपलब्ध कराया जा रहा है। कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र की सम-सामयिक समस्याओं के निदान एवं अद्यतन पद्धति एवं तकनीकों के प्रचार-प्रसार हेतु कृषि एवं पशुपालन मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है तथा इसे कृषकों के मध्य रू0 24 मात्र के वार्षिक मूल्य पर सदस्य कृषकों को उपलब्ध कराया जाता है। जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए बायो फर्टीलाइजर, बायो पेस्टीसाइड्स एवं बायो एजेन्ट्स के वितरण पर 75 प्रतिशत अनुदान एवं मृदा में सूक्ष्म तत्वों की कमी को दूर करने एवं भूमि सुधार के उद्देश्य से जिंक सल्फेट 50 प्रतिशत एवं जिप्सम के वितरण पर भी 75 प्रतिशत अनुदान विभिन्न योजनाओं के माध्यम से कृषकों को उपलब्ध कराया जा रहा है। राष्ट्रीय कृषि विकास योजनान्तर्गत सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र को आच्छादित करते हुए इसके समग्र विकास हेतु अवस्थापना विकास, उन्नत तकनीक तथा वृहद स्तर पर जनपद स्तरीय योजनायें तैयार कर कार्यक्रमों को स्थानीय आवश्यकतानुसार संचालित किये जाने की सतत् प्रक्रिया अपनायी गयी है। राष्ट्रीय कृषि विकास योजनान्तर्गत वर्ष 2015-16 में रू0 778.00 करोड़ के बजट की व्यवस्था की गयी है।

दृष्टिकोण

प्रदेश में गेहूँ, चावल एवं दलहन के उत्पादन की असमानता को दूर करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार के द्वारा संचालित राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन वित्तीय वर्ष 2007-08 से चलायी जा रही है। उत्पादन एवं उत्पादता में वृद्धि हेतु पूर्वी उत्तर प्रदेश में हरित क्रांति के विस्तार की रणनीतिक योजना वर्ष 2010-11 से संचालित की जा रही है। रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से दृष्टिगोचर दुष्प्रभावों को कम करने हेतु विभिन्न पारिस्थितिकीय संसाधनों द्वारा कीट/रोग नियंत्रण की योजना चलायी जा रही है। योजना के अन्तर्गत बायो एजेन्ट्स, बायो पेस्टीसाइड्स एवं एकीकृत नाशी जीव प्रबन्धन जैसी तकनीकों के प्रयोग से कीट/रोग नियंत्रण किये जाने का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए, कृषि प्रसार, कृषि निवेश तथा तकनीकी प्रबन्धन योजना कृषि की नवीनतम जानकारियों, नवीनतम वैज्ञानिक कृषि पद्धतियों तथा विभिन्न तकनीकी प्रबन्धनों को प्रचार-प्रसार के माध्यम से कृषकों तक पहुंचाये जाने हेतु यह योजना चलाई जा रही है।

कृषि के विकास हेतु सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के अन्तर्गत पारदर्शी किसान सेवा योजना के माध्यम से अनुदान की धनराशि लाभार्थी के खाते में तीन दिन के अन्दर अन्तरित किया जाना साफ्टपवेयर के माध्यम से सुनिश्चित कराया जायेगा। ''किसान का अधिकार किसान के द्वार'' कृषि विभाग के समस्त कार्यालयों को कम्प्यूटर नेटवर्क के माध्यम से जोड़ते हुए योजनाओं की ऑन लाइन मॉनीटरिंग, कुशल वित्तीय प्रबन्धन, विभाग के कार्यकलापों में पारदर्शिता लाना तथा कम्प्यूटर तकनीक को कृषकों के लिये उपयोगी बनाते हुये विभाग की पहुँच आम जनता तक सुनिश्चित किया जायेगा। सूक्ष्म से वृहद स्तर तक के सभी कार्य तुरंत तथा दोष रहित तरीके से सम्पन्न कराया जाना इस कार्यक्रम के माध्यम से संभव बनाया जायेगा। उक्त के साथ-साथ कम्प्यूटरीकृत आँकड़ों के विश्लेषण द्वारा कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि के लिये वास्तविक आँकड़ों की उपलब्धता सुलभ हो जायेगी जिससे प्रभावशाली एवं दोष रहित रणनीति तैयार किया जाना सरल होगा।

भविष्य की चुनौतियों एवं घटते जल स्रोत को दृष्टिगत रखते हुए भूमि एवं जल संरक्षण के विभिन्न कार्यक्रमों जैसे- रामगंगा नदी के कटरी क्षेत्र में भूमि सुधार का कार्यक्रम एवं नाबार्ड वित्त पोषित आर0आई0डी0एफ0 योजनान्तर्गत भूमि एवं जल संरक्षण के कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं। प्रदेश के मृदा स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाये रखने हेतु मृदा स्वास्थ्य का सुदृढ़ीकरण योजना, मृदा में सूक्ष्म तत्वों की कमी को दूर करने एवं भूमि सुधार हेतु जिप्सम के वितरण की योजना एवं जैव उर्वरक उत्पादन प्रयोगशालाओं के सुदृढ़ीकरण/जैव उर्वरकों के प्रयोग को प्रोत्साहित करने का कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है।

कृषि उद्यमिता को विकसित करने की दिशा में उद्यमी स्वावलम्बन योजना के संचालन का प्रस्ताव है जिसके अन्तर्गत वित्तीय वर्ष 2015-16 में कुल 1000 एग्री जंक्शन की स्थापना का लक्ष्य है जिसमें प्रति केन्द्र पर 60000.00 के अनुदान उपलब्ध कराये जाने का प्रस्ताव है। एग्री जंक्शन के माध्यम से कृषकों को अच्छी गुणवत्ता का कृषि निवेश उपलब्ध कराया जायेगा। वित्तीय वर्ष 2015-16 में योजनान्तर्गत रू0 600.00 का प्रावधान कराया गया है।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजनान्तर्गत पशुओं की नस्ल सुधार एवं पशुओं में रोगों की रोकथाम हेतु प्रयोगशाला की स्थापना, वैक्सीन का उत्पादन कर उत्पादकता में वृद्धि सम्बन्धी कार्यक्रम का संचालन प्रस्तावित है। वित्तीय वर्ष 2015-16 में योजनान्तर्गत 1000.00 लाख का प्राविधान कराया गया है।

उ0प्र0 में विभिन्न कृषि जलवायुवीय परिस्थितियों में कृषि शिक्षा, शोध एवं प्रसार की बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चार कृषि विश्वविद्यालय एवं एक डीम्ड कृषि विश्वविद्यालय स्थापित है।

- चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर
- नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद
- सरदार बल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मोदीपुरम, मेरठ
- बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
- सैम हिगिनबॉटम इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर, टेक्नोलॉजी एंड साइंसेज, इलाहाबाद (डीम्ड विश्वविद्यालय)।

उन्नतशील फसल प्रजातियों एवं तकनीकों के प्रचार-प्रसार हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा प्रत्येक जनपद में कृषि विज्ञान केन्द्र स्थापित किये जाने का प्रावधान है। प्रदेश के कुल 75 जनपदों में से वर्तमान में 67 जनपदों में कृषि विज्ञान केन्द्र स्थापित है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा तैयार किये गये मॉडल एक्ट के आधार पर उत्तर प्रदेश कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय अधिनियम 2014 तैयार कर शासन को उपलब्ध कराया गया।

प्रदेश में फसल मौसम पूर्वानुमान से सम्बन्धित सूचना निरन्तर प्राप्त कर कृषि के लिये सामयिक जानकारी/संस्तुतियाँ देने हेतु परिषद में क्राप वेदर वॉच ग्रुप का गठन किया गया है। क्रॉप वेदर वॉच ग्रुप द्वारा वर्ष 2014 में 23 साप्ताहिक बैठकों का आयोजन किया गया है। बैठक में प्रदेश में विभिन्न फसलों की बुवाई तथा फसल प्रबन्ध, जल एवं भूमि प्रबंध तथा अन्य कृषि सम्बन्धी कार्यकलापों पर किसानों के लाभार्थ दी गई संस्तुतियों को शासन, कृषि, उद्यान एवं पशुपालन विभाग, मीडिया को प्रचार-प्रसार हेतु प्रेषित किया गया। ग्रुप की संस्तुतियाँ इफको के सहयोग से एस.एम.एस. के द्वारा 9 लाख कृषकों को पहुँचाई जा रही है।

कृषि विभाग का मूल उद्देश्य कृषि विकास की दर को गति प्रदान करने के साथ-साथ फसलोत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि करना है, जिससे प्रदेश के कृषकों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर उनके जीवन-स्तर को ऊपर उठाया जा सके। इसके अतिरिक्त प्रदेश में व्याप्त क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने के लिए क्षेत्र विशेष के लिये उपयुक्त योजनाओं का क्रियान्वयन एवं कृषकों को रोजगार के नये अवसर प्रदान करना है। उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किये जा रहे प्रयासों के अन्तर्गत- कृषि उत्पादन की विकास दर प्रति वर्ष 5. 1 प्रतिशत बनाये रखते हुए खाद्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु कृषि की नवीन तकनीकी का प्रचार-प्रसार तथा कृषकों की कृषि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान। कृषकों को विभिन्न परिस्थितियों में अधिक उत्पादन लेने हेतु विभिन्न योजनाओं के माध्यम से तकनीकी प्रदर्शनों का आयोजन एवं उनके परिणामों से कृषकों को परिचित कराना। विभिन्न फसलों की उत्पादकता एवं उत्पादन में वृद्धि हेतु विभाग द्वारा विभिन्न उपज पालन योजनाओं एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन। कृषकों को कृषि निवेशों की आपूर्ति निर्धारित समय-सारिणी के अनुरूप सुनिश्चित करना। कृषि उत्पादन के लिए वांछित विभिन्न कृषि निवेशों की गुणवत्ता पर बल देना। दैवी आपदाओं यथा बाढ़, सूखे की स्थिति आदि में उन परिस्थितियों के अनुसार आकस्मिक योजना का निर्माण कर कृषकों को सही समय पर उचित फसल चक्रों की जानकारी देना एवं उसी के अनुरूप कृषि निवेशों की व्यवस्था कराना। प्रदेश में स्थित समस्याग्रस्त भूमि यथा- जलमग्न, ऊसर, बंजर, बीहड़ आदि भूमि को उपचारित करके कृषि क्षेत्रफल में वृद्धि करते हुये उपजाऊ बनाना। कृषि नीति 2013 के सफल क्रियान्वयन का सतत् अनुश्रवण कर निर्धारित प्रतिमानों को साकार करना। कृषि उत्पादन में प्राकृतिक आपदाओं, कीट/रोग आदि जोखिम के कारण होने वाली क्षति की पूर्ति एवं कृषि में प्रगतिशील तरीकों को प्रोत्साहन देने के लिए प्रदेश में संचालित कृषि बीमा योजनाओं को व्यापकता प्रदान करना।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में हरित क्रान्ति के विस्तार की उप योजना (राष्ट्रीय कृषि विकास योजना से पोषित) वर्ष 2010-11 से पूर्वी उत्तर प्रदेश में संचालित की जा रही है। योजना का मुख्य उद्देश्य चावल एवं गेहूँ की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी, मृदा स्वास्थ्य में सुधार, सिंचाई जल के कुशल उपयोग, कृषि यंत्रीकरण, ऊसर क्षेत्रों में जिप्सम का प्रयोग, सामुदायिक भण्डारण योजना तथा खेती की लागत को कम करने हेतु उन्नत कृषि पद्धति को बढ़ावा दिया जा रहा है। चयनित जनपदों में फसलों की उत्पादकता में उत्साहवर्द्धक वृद्धि के आंकड़े प्राप्त हो रहे हैं।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि तथ्यों का विश्लेषण करने पर यह बात सिद्ध होती है कि भारत में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है। ईश्वरीय अनुकम्पा से उ0प्र0 प्राकृतिक संपदाओं से धनी है। भारत सरकार और उत्तर प्रदेश सरकार के क्रमशः संयुक्त एवं पृथक प्रयासों से खाद्यान्न उत्पादकता में वृद्धि की गति को नई दिशा प्रदान की गयी है। कृषि उत्पादों से न केवल मानव जीवन का अस्तित्व है बल्कि मानव विकास की आधारशिला सुदृढ़ एवं विकसित होती है। इस प्रकार यह तथ्य सिद्ध होता है कि उत्तर प्रदेश में कृषि विकास की चुनौतियों को सरकार अपने प्रयासों से यथासम्भव दूर कर रही है तथा खाद्यान्न उत्पादकता वर्तमान स्थितियों के विश्लेषण एवं समाधान के लिए सरकार पूर्णतः तत्पर दिखाई पड़ रही है।

संदर्भ सूची-

1. कुरुक्षेत्र पत्रिका, अंक अगस्त 2018, प्रकाशक और मुद्रक- डॉ0 साधना राउत, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003, पृ0 13
2. कुरुक्षेत्र पत्रिका, अंक फरवरी 2018, प्रकाशक और मुद्रक- डॉ0 साधना राउत, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003, पृ0 4
3. कुरुक्षेत्र पत्रिका, अंक मार्च 2011, प्रकाशक और मुद्रक- अरविन्द मंजीत सिंह, अपर महानिदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003, पृ0 3-7
4. उत्तर प्रदेश, 2015, प्रकाशक भारत बुक सेन्टर, अशोक मार्ग लखनऊ, पृ0 354-362
5. http://isanhelp.in/organic-farming/उत्पादन-बढ़ाने-के-सफल-एवं-सरल-उपाय

हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधिः जायसी का वियोग वर्णन

डॉ० वेदवती सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी०ए०वी०पी०जी० कालेज, गोरखपुर

संयोग रस की स्थिति में दैववशात् या सामाजिक परिस्थितियों के कारण व्यवधान आ जाता है तो प्रेमी और प्रेमिका की परस्पर मिलन के लिए उत्पन्न होने वाली छटपटाहट तड़प और पीर को विरह की या विप्रलम्भ की संज्ञा दी जाती है। विरह की अग्नि में तपकर प्रेमी की मलिनता गल जाती है, और वह विशुद्ध प्रेम की प्राप्ति करता है। सुमित्रानन्दन पन्त ने काव्य की उत्पत्ति ही आह से माना है-

''वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।।''

जहाँ तक जायसी का प्रश्न है उनके महाकाव्य पद्मावत में श्रृंगार रस की विराट योजना है। यद्यपि श्रृंगार के दोनों पक्षों का चित्रण पद्यमावत में मिलता है, तथापि सूफी मान्यता के कारण विरह को अत्यधिक महत्व मिला है। जायसी ने रत्नसेन, पद्मावती और नागमती के माध्यम से विरह दशा का चित्रण किया है आध्यात्मिकता में उलझ जाने के कारण रत्नसेन के विरह में लौकिक टीस देखने को नहीं मिलती। पूर्वराग से विरह का आरम्भ होता है, जिसमें अभिलाषा दशा का वर्णन पर्याप्त है, पर दुख के अतिरेक का वर्णन कर कवि ने प्रबास का सा दृश्य उपस्थित कर दिया है। जिसमें अस्वाभाविकता आ गयी है। उदाहरणार्थ-

विरह दशा को जरत सिरावा, को प्रीतम सो करै मेरावा
X X X
जस विछोह जल मीन दुहेला, जल हुत काढ़ि अशिन मह मेला।।

जायसी यहाँ विरह के माप जोख में लग गये है जिसके कारण विरह वर्णन प्रभावपूर्ण नहीं बन पड़ा है।

विवाह से पूर्व पद्मावती भी पूर्वराग रंजिता है। यहाँ भी जायसी के वर्णन में कल्पना की अतिशयता है। आध्यात्मिकता की प्रवृत्ति के कारण जायसी यहाँ भी स्वाभाविकता की सीमा लांघते हैं। निश्चित आलम्बन के अभाव उसे वियोग के अन्तर्गत् नहीं माना जा सकता।

जब रत्नसेन तथा पद्मावती सिंहलद्वीप से चितौड़ लौटते हैं तो उस समय रास्ते में जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है, पद्मावती रत्नसेन एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं ऐसी दशा में पद्मावती की वियोग पूर्ण स्थिति का कवि ने अत्यन्त ही मार्मिक वर्णन किया है-

आवा पवन विछोह कर, पात परा बेकरार।
तरवर तजा जो चूरि कै, लागै केहि कै डार।।

यहाँ बिना आश्रय के असहाय दशा का मार्मिक चित्रण जायसी ने किया है।

नागमती का वियोग वर्णन- नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। इसमें जायसी के विरहाकुल हृदय की गहन अनुभूति के दर्शन होते हैं। डॉ0 कमल कुलश्रेष्ठ के शब्दों में ''वेदना का जितना निरीह, मार्मिक, निर्मल एवं पावन स्वरूप इस विरह वर्णन में मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है। यही चित्रण पद्मावत का सर्वस्व है। इसमें जायसी के भावुक हृदय ने नागमती के पावन सौन्दर्य को अच्छी प्रकार पहचाना है।

नागमती का विरह रत्नसेन के प्रवास से आरम्भ होता है। जब नागमती के पवित्र प्रेम, पतिव्रत सेवा, सौन्दर्य को ठुकराकर रत्नसेन एक अज्ञात, सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए घर से निकल जाता है तो नागमती को गहरा आघात लगता है, उसका अन्तस् हाहाकार कर उठता है। पति के प्रत्यागमन की आशा में उसके मार्ग पर दृष्टि लगा देती है लेकिन जब वह लौटकर नहीं आया तो उसका हृदय सशंकित होने लगा-

नागमती चितउर पथ हेरा, पियु जो गयउ पुनि कीन्ह न फेरा।
नागर काहु नारि बस परा, सो मोर पिउ मोसो हरा।

X X X

सुआ काल होई लेइगा पीऊ, पिउ नहि जात जात बर जीऊ।
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह।
झुरि झुरि पिंजर हौं भई, विरह काल मोहि दीन्ह।

प्राकृतिक उपादान जो संयोग में सुखद प्रतीत होते हैं वे इस दुख के वातावरण में विरहाग्नि को द्विगुणित करने वाले प्रतीत होते हैं-

पिय वियोग अस बाउर जीऊ, पपिहा नित वोल पिउ पीऊ।
अधिक काम दाधै सो रामा, हरि लैगये सुआ पिउ नामा।

X X X

प्रान पयान होत को राखा, को सुनाव प्रितम के भाखा।

यद्यपि साखियाँ उसे धैर्य बँधाती हैं फिर भी नागमती को चौन नहीं मिलता है।

बारहमास पद्धति के अनुसार नागमती के विरह का चित्रण जायसी ने बारहमासा पद्धति के माध्यम से नागमती के विरह का अत्यन्त ही वेदनापूर्ण चित्रण किया है। इस क्रम में एक-एक मास में क्रम से प्रकृति के अनुसार नागमती में होने वाले परिवर्तन को कवि ने वाणी दी है। अषाढ़ मास में बादलों की गरज के साथ ऐसा प्रतीत होता है मानो विरह रूपी राजा ने बादल रूपी सेना को सजाकर नागमती पर चढ़ाई कर दी हो-

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा, साजा विरह दुंदु दल बाजा।
खड्ग बीजु चमकै चहु ओरा, बुदबान बरसहि घनघोरा।

जब आकाश में अत्यधिक काले बादल घिर आये तो उसके विरह की तीव्रता और बढ़ गयी और वह व्याकुल होकर पुकार उठी-

ओनई घटा आइ चहुफेरी, कंत! उबारु मदन हौ घेरी।
कामदेव के वार से घायल नागमती सोचती है -
जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारो औ गर्व।
कन्त पियारा बाहिरा, हम सुख भूला सर्व।।

सावन के महीने में वर्षा की अधिकता के कारण धरती पानी से आप्लावित हो गयी है, किन्तु नागमती विरह व्यथा के कारण सूखती जा रही है -

सावन बरस मेह अति पानी, भरनि परी हौ विरह झुरानी।

अत्यधिक वृष्टि के कारण चारो तरफ जल व्याप्त है ऐसी स्थिति में नागमती के पंख भी नहीं है कि उड़कर प्रियतम के पास पहुँच जाय -

परवत समुद अगम विच, बीहड़ घन वन ढ़ाँख।
किमि कै भेटौ कंत तुम्ह, ना मोहि पाव न पाँख।।

कैसी निरीहता और विवशता है देखते ही बनती है। माघ के महीने में नागमती की आँखों से अविरल अश्रु की धारा ऐसे निकलती है मानो आँगन के कोने से पानी की ओरी चू रही हो- बरसै मघा झकोरि, झकोरी मोर दुई नैन चुवै जस ओरी।

कार्तिक मास में जब चन्द्रमा की शीतल किरणे सारे संसार को शीतलता प्रदान करती है वही वियोग की अवस्था में नागमती की व्यथा को और बढ़ा रही है।

कातिक शरद चन्द उजियारी, जग शीतल हौ विरहै जारी।

चारो तरफ दीपमालिका की तैयारियाँ हो रही है किन्तु नागमती के लिए यह सब व्यर्थ है-

सखि मानहि तेवहार सब, गाइ देवारी खेलि।
हौ का गावौ कंत बिनु, रही छार सिर मेलि।।

अगहन के महीने में नागमती दीपक की वर्तिका के समान जल रही है। अब तो उसकी एक ही कामना है-

पिऊ सो कहेउ संदेसड़ा, हे भौरा हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, सोइ का धुआ हम्ह लाग।।
कितनी कसक, कितनी वेदना और कितनी शालीनता है उसके इस संदेश में।

फागुन के महीने में सब लोग फाग गा रहे है जो उसके विरह को और भी उद्दीप्त कर रहा है-

फाग करहि सब चाचरि जोरी, मोहि तन लाइ दिन्ह जस होरी।

बैसाख महीने में नागमती के हृदय रूपी सरोवर का जल सूखता जा रहा है जिसके कारण उसमें दरारें पड़ गयी हैं वह कामना करती है कि उसका प्रियतम दर्शन रूपी वर्षा से उसे पूरित कर दे-

सरवर हिया घटत नित जाई, टूक-टूक होइ के बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका, दीठि दवरगा मेरवहु एका।

जेठ में वह गर्मी की दुहरी मार से अत्यन्त तप्त हो जाती है, और अपने अन्तस की समस्त करूणा वेदना के साथ प्रियतम को पुकार उठती है।

जायसी के बारहमासे का विशद विवेचन करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है ''वेदना का अत्यन्त निर्मल और कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का अत्यन्त मर्मस्पर्शी माधुर्य, अपने चारों ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापरों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य भावना तथा विषय के अनुसार भाषा के अत्यन्त स्निग्ध सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है। पर इन कुछ विशषताओं की ओर ध्यान जाने पर इसके सौन्दर्य का बहुत कुछ अनिर्वचनीय रह जाता है।''

उहात्मक चित्रण- जायसी ने फारसी की मसनवी पद्धति के अनुसार काव्य रचना की है इसलिए उनके विरह वर्णन में उहात्मकता का समावेश हुआ है फिर भी गाम्भीर्य बना हुआ है और वे हृदय की तीब्र वेदना को व्यक्त करने में सफल रहे हैं। नागमती को विलाप करते हुए साल बीत गया, वह पति वियोग में रोते-रोते काली पड़ गयी, अब रक्त भी आँखों के रास्ते बूँद- बूँद गिरने लगे।-

धनि कोयल भई कन्त सनेहा, तोला मास रहा नहि देहा।
रकत न रहा विरह तन जरा, रती रती होइ नैनन्हि ढ़रा।।

इतना ही नहीं नसें भी सूखकर तांत बन गयी हैं। -

हाड़ भये सब किंकरी, नसे भई सब ताँत।
रोंव-रोंव से धुनि उठै, कहौ व्यथा केहि भाँति।।

इस दशा में पहुँचकर नागमती अपनी वास्तविक स्थिति को भूलकर एक सामान्य नारी के समान घर से निकलकर पेड़-पक्षियों से प्रियतम का हाल जानना चाहती है। विरहदग्ध पद्मावती जिस पक्षी के निकट जाती है वही पंखहीन हो जाता है तथा वृक्ष पत्रहीन हो जाते हैं। -

जेहि पंखी के नीयर होई, कही बिरह की बात।

सोई पंखी जाई जरि, तरिवर होइ निपात।।

जायसी की इस प्रकार की अत्युक्तियों में गाम्भीर्य है जिसे पढ़कर हँसी नहीं आती बल्कि मन द्रवीभूत हो जाता है। आचार्य शुक्ल ने कहा है ''यह हिन्दू गृहिणी की विरह वाणी है। इसका सात्विक मर्यादापूर्ण चित्रण परम मनोरम है। वन वन भटकती नागमती अपनी वेदना व्यक्त करती है आखिर वह पूर्ण दशा को प्राप्त होती है जहाँ सम्पूर्ण जड़ चेतन एक हो जाते है। मानवी संवेदना पशु पक्षियों तक व्याप्त हो जाती है।''

विरह की विभिन्न दशाएँ-साहित्य शास्त्र में ग्यारह मानदशाओ का चित्रण किया गया है- (1) अभिलाषा (2) चिन्ता (3) स्मरण (4) गुण कथन (5) उद्वेग (6) प्रलाप (7) उन्माद (8) जड़ता (9) व्याधि (10) मूर्च्छा (11) मरण। कहने की आवश्यकता नहीं कि जायसी ने प्राय: समस्त दशाओं से सम्बन्धित मार्मिक वर्णन किया है। नागमती के वियोग में प्रेमभाव अत्यन्त उत्कर्ष दशा को प्राप्त हुआ है अभिलाषा का उत्कर्ष द्रष्टव्य है-

राति दिवस बस यह जिउ मोरे, लगौ निहोर कन्त अब तोरे।

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।

मकु तेहि मारग उडिघ परै, कन्त धरै जहँ पाव।।

उन्माद की दशा में वह चेतन अचेतन का भेद भूलकर वह पशु पक्षियों पेड़ पल्लव सबसे अपने हृदय की वेदना व्यक्त करती है- शायद इससे मन की व्यथा कुछ कम हो जाय। उसके विलाप के कारण सभी पक्षियों की नींद हराम हो जाती है। एक पक्षी को उस पर दया आयी है और वह उसका सन्देश ले जाने को तैयार हो जाता है। पक्षी द्वारा नागमती पद्मावती को जो सन्देशा भेजना चाहती है वह अत्यन्त मर्मस्पर्शी है- मोहि भोग सो काज न बारी, सौंह दिठि कै चाखनाहारी। शुक्ल जी के शब्दों में ''इस सन्देश में मान, हर्ष गर्व आदि से रहित, सुख भोग की लालसा से अलग, अत्यन्त नम्रत्व, शीतल और विशुद्ध प्रेम की झलक पायी जाती है।'' नागमती जब समस्त पशु पक्षियों से सहानुभूति व्यक्त करती है वहाँ 'आवेग' दशा का चित्रण है-

पिउ सो कहउ सन्देसड़ा, हे भौरा ! हे काग!

सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुआँ हम्ह लाग।।

भादों के महीने में नागमती के वियोग का चित्रण प्रलाप के अन्तर्गत आता है -

बरसे माघा झकोरि झकोरी मोरि दुइ नैन चुवै जस ओरी

इसी प्रकार चिन्ता, गुण कथन, स्मरण आदि दशाएँ आद्योपान्त वर्णित है।

हिन्दी साहित्य में मरण दशा का बहुत कम चित्रण है लेकिन जहाँ मृत्यु के बाद भी मिलन की आशा रहती है, वहाँ रति भाव कम रहता है और वियोग के अन्तर्गत मरण दशा का वर्णन किया जाता है। रत्नसेन की मृत्यु के समय 'करूण रस' होता लेकिन दोनो रानियाँ परलोक में मिलन की इच्छा लेकर सती होती है 'मरण' दशा का यह वर्णन जायसी के काव्य की विशेषता ही कही जायेगी-

जियत, कन्त ! तुम हम्ह गर लाई, मुए कण्ठ नहिं छोड़हिं साई।

नागमती के वियोग वर्णन की अद्वितीयता - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी के विरह वर्णन की अद्वितीयता का विवेचन करते हुए लिखा है कि ''नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में अद्वितीय वस्तु है।'' नागमती एक आदर्श ललना है वह अन्त तक भारतीयता के रंग में रंगी रहती है वह प्रतिव्रता है विरहाग्नि में जलती हुई प्रिय के दर्शन की लालायित रहती है। -

मोहि भोग सो काज नबांरी, सौंह दिठि कै चाखनहारी।

इतना ही नहीं वह प्रियतम के लिए अपने शरीर को भी जलाकर राख बनाना चाहती है शायद उस मार्ग पर प्रियतम के पाँव पड़ जाय। यह भारतीय नारी के प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है जहाँ कोई शिकायत नहीं बल्कि मर मिटने की तमन्ना है।

जायसी ने नागमती के अकेलेपन और उसकी व्यथा का चित्रण ''फिर फिर रोव कोइ नहि डोला'' के माध्यम से किया है तथा ''आधी रात विहंगम बोला'' के द्वारा उसे चरम पर पहुँचा दिया है। वह एक सामान्य नारी की भाँति पद्मावती को संदेश भेजती है -

सवति न होइ तू बैरिन, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर, तोर पाय मोर माथ।

कितनी कसक, कितनी पीड़ा छिपी है उसके इस सन्देश में। यह हिन्दू गृहिणी की मार्मिक वेदना की पुकार है।

निष्कर्ष -अन्ततः हम कह सकते हैं कि जायसी का वियोग वर्णन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। यद्यपि उसमें उहात्मकता का प्रयोग हुआ है तथापि सर्वत्र गाम्भीर्य बना हुआ है। अन्तः हम रविन्द्र नाथ टैगोर के शब्दों में कह सकते हैं - ''मेरे हृदय में एक विरहिणी नारी बैठी हुई है जो अपने दुख का गीत सुनाया करती है यह विरहिणी अजर अमर है...... यही विरहिणी कालिदास के हृदय में शकुन्तला, भवभूति के हृदय में सीता, जायसी की आत्मा में नागमती, सूर के अन्तस में राधा और मीरा के प्राणों में अरूण होकर रोई थी।''

अतः निसंकोच हम जायसी को वियोग श्रृंगार का प्रधान कवि कह सकते है। ऐसी वेदना, ऐसी सरसता गाम्भीर्य और कोमलता अन्यत्र दुर्लभ है।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. जायसी ग्रन्थावलीः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. पद्मावतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. त्रिवेणीः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
5. पद्मावत एक अनुशीलतः इन्द्रचन्द्र नारंग
6. जायसी एक नयी दृष्टिः रघुवंश
7. हिन्दी साहित्य की भूमिकाः आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक व आर्थिक परिवेश के सन्दर्भ में व्यक्तित्व का अध्ययन

डॉ० शिखा सक्सेना

विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र, श्री चित्रगुप्त पीजी कॉलेज, मैनपुरी (उ.प्र.)

ईश्वर कि सृष्टि में मानव जीवन पवित्रमय है। मनुष्य को ज्ञान अर्जन करने कि जिज्ञासा होती है। इसलिए मानव अन्य प्राणियों से पृथक है। शिक्षा के द्वारा मानवीय शक्ति का विकास होता है, बालक का सामाजिक -बौद्धिक -सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास पूर्ण रूप से शिक्षा के उपर निर्भर करता है। अतःपूर्णता पाने के लिए शिक्षा ग्रहण कि जाती है। प्रस्तुत अध्ययन में राजस्थान राज्य के टोंक जिले के ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक परिवेश के सन्दर्भ में व्यक्तित्व का अध्ययन किया गया है।

यहाँ सामाजिक व आर्थिक परिवेश के सन्दर्भ में व्यक्तित्व अध्ययन से तात्पर्य है-

बाल्यावस्था में विद्यार्थी विद्यालय जाता है। वहाँ उसमे समूह निर्माण की प्रवृति जागृत होती हैं। इसको सामाजिक परिवेश का विकास कहा जाता है। किशोरावस्था में सामाजिक विकास के उपर विद्यार्थियों कि रुचि व आवश्यकताओं की पूर्ति, असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। इस अवस्था में यौवन विकसित होने से बालक-बालिका परस्पर मिलन के लिए, वार्तालाप करने के लिए तथा सामाजिक कार्यों में भाग लेना चाहते हैं। उनमें उत्साह, नेतृत्व आदि के गुणों का विकास होता है। समाज की उन्नति के साथ विधार्थियों का विकास होता है, एवं समाज की अवन्नति के साथ उनकी अवन्नति होती है। कुछ विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश उस प्रकार नहीं हैं, जो कि वह नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा को कैसे प्राप्त करेंगे? क्योंकि परिवार से ही विद्यार्थियों का सर्वप्रथम सामाजिक विकास होता है। फिर भी वह समाज से, विभिन्न अनुष्ठानों से, परम्पराओं से, वातावरण से कुछ शिक्षा ग्रहण करता है। अतः वंशानुगत का, शारीरिक-मानसिक स्थिति का, परिवार का, समाज का, विद्यालय का और अध्यापक का भी प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ता हैं परिणाम स्वरूप सामाजिक परिवेश के अनुसार विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में भिन्नता दिखाई देती है। धन के बिना विद्या का अर्जन नहीं हो पाता हैं। जिसके पास धन नहीं है, उसकी कोई भी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती है। सिर्फ सामाजिक परिवेश का ही नहीं, आर्थिक परिवेश का भी प्रभाव विद्यार्थियों के उपर पड़ता है। अभिभावकों की आर्थिक स्थिति जैसे अमीर अभिभावकों के बालक उन्नत विद्यालय में पड़ते है, उत्तम व्यक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करता है(उत्तम स्थान में निवास करता है) लेकिन गरीब परिवार का बालक उत्तम वातावरण के, उचित सम्पर्क के, श्रेष्ठ विद्याालय के अभाव में अनुत्साहित होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि व्यक्तित्व को सामाजिक और आर्थिक परिवेश प्रभावित करता है।

व्यक्तित्व के अध्ययन में आत्मा और स्वयं को केन्द्रीय स्थान दिया गया हैं। दर्शनशास्त्र में आत्मा स्वरूप की विवेचना की गई है। उपनिषद् में निरूपण किया गया है कि अन्नमयादि पंचकोष शरीरादि आत्मा के प्रति उत्तरोतर विकास का परिचायक है। इन सब कोषों के सम्बन्ध व्यक्तित्व के विविध आयामों है। अतएव व्यक्तित्व के अध्ययन में इन सब कोषों को आधार माना जाता है। सर्वागपूर्ण व्यक्तित्व का निरूपण श्री मद्भागवत गीता में वर्णित है, जो सत्व-रज-तम गुणों को भी वर्णन करनें में समर्थ हैं। मनुस्मृति में भी त्रिगुणात्मक सृष्टि का विवरण प्राप्त होता है। व्यक्तित्व के विवेचन में श्री मद्भगवतगीता का गुणातीत लक्षण महत्वपूर्ण है।

मन और शरीर सम्बन्धित शक्तियाँ व्यक्तित्व तत्व के अन्तर्गत आती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार व्यक्तित्व शारीरिक-मानसिक-सामाजिक-सांवेगिक-शक्ति से युक्त होता हैं व्यक्तित्व निर्धारण में वेशभूषा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अत: कहा गया है कि-

"विद्यया वयुषा वाचा वस्त्रेण विनयेन च।
वकारै:पंचभिर्युक्तो नर: सर्वत्र शंस्यते।।"

किसी भी विद्यार्थियों का आकार देखकर, भाषण सुनकर उसकी मानसिक स्थिति कैसी है, यह निर्णय किया जा सकता है। अत: सुभाषितनिधि में कहा गया है-

"आकारैरिगिंतैर्गत्या चेष्ट्या भाषणेन वा।
नेत्रवत्क्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गत मन:।।"

व्यक्तित्व जन्मजात और अर्जित होता है। उनको दो कारक होते है। 1. वंशानुगत, 2. पर्यावरण। व्यक्तित्व का जो जन्मजात तत्व है, उससे उनका व्यक्तित्व अलग दिखाई देता है। पर्यावरण कारक में परिवार, परिवेश, विद्यालय, आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक वातावरण, बालसमूह और शिक्षा आते है। इन सबका का प्रभाव बालक के उपर पड़ता है। मनोवैज्ञानिक में कारको का भी प्रभाव दिखाई देता है, जैसे कि प्रशंसा, सहयोग, समायोजन, पुरस्कार, धैर्य आदि ।

व्यक्तित्व का वर्गीकरण जुंग महोदय ने दो प्रकार से किया है- उन्होनें उनकी किताब psychological types में व्यक्तित्व को दो प्रकार से बताये है-अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी। गिलफोर्ड महोदय ने व्यक्तित्व के विषय में कहा है कि-

"personality is an integrated pattern of trails" आलपोर्ट महोदय ने व्यक्तित्व के विषय में कहा है कि-

"personality is the dynamic organization within the individual of those psychophysical system that determine his unique adjustment in his environment."

कुछ पूर्व अध्ययन के विषय में -

- नागपाल, शम्मी (2001) एम.एड. श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली के द्वारा किये गये ग्रामीण एवं शहरी छात्रों के समायोजनस्तर एवं व्यक्तित्व गुणों का एक तुलनात्मक अध्ययन के अनुसार पारिवारिक समायोजन में उभय ग्रामीण और शहरी विद्यार्थियों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। ग्रामीण विद्यार्थियों कि अपेक्षा शहरी विद्यार्थियों में समायोजन अधिक पाया गया है।
- आलोक (2009) एम.एड. राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), जयपुर परिसर, जयपुर के द्वारा किये गये संस्कृत छात्रों का व आधुनिक छात्रों का व्यक्तित्व के समायोजन के पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन के अनुसार संस्कृतविद्यार्थियों के व आधुनिक विधार्थियों के समायोजन स्तर में कोई अन्तर नहीं है।

उद्देश्य

- माध्यमिकस्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक व आर्थिक परिवेश का अध्ययन करना।
- माध्यामिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का अध्ययन करना ।

शोध परिकल्पना

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास में सामाजिक व आर्थिक परिवेश का प्रभाव नहीं है।

विधि

प्रस्तुत अध्ययन का प्रारुप सर्वेक्षण विधि पर आधारित है।

न्यादर्शः-

न्यादर्श के रुप में माध्यमिक स्तर के स्तर के 300 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। जिस में 8 व 9 के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया।

अध्ययन के उपकरण

- प्रस्तुत अध्ययन में एल.एन. दुबे एवं बी. निगम की सामाजिक-आर्थिक स्थिति मापनी का प्रयोग किया गया है। इस प्रश्नावली में चार विकल्पात्मक उत्तर वाले 30 प्रश्न हैं।
- व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए रोबर्ट जी बर्नराइटर की व्यक्तित्वप्रश्नमिति का प्रयोग किया गया है। इस प्रश्नावली में हाँ, या नहीं, ? वाले 125 प्रश्न हैं।

संख्यिकी विश्लेषण

आकड़ों के विश्लेषण हेतु सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है। जिसमें मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, टी-गणित मूल्य का प्रयोग किया गया। परिकल्पना का विश्लेषण के लिए सार्थकता को 0 05 विश्वसनीयता स्तर पर परीक्षण किया गया।

उद्देश्यः- माध्यमिकस्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक व आर्थिक परिवेश का अध्ययन करना।

सारणी-1: *सामाजिक व आर्थिक परिवेश की स्थिति की सारणी*

students	N	M	S.D	df	t	Level of Significance	Significance/notSignificance
Boys	150	37.36	5.6	298	1.21	0.05 (1.97)	Not significance
Girls	150	36.63	5				

सारणी-2: *व्यक्तित्व की सारणी-*

Students	N	M	S.D	df	t	Level of significance	significance/not significance
Boys	150	95.43	12.4	298	0.57	0.05(1.97)	Not significance
Girls	150	94.7	9.8				

उपरोक्त सारणी से यह ज्ञात होती है कि माध्यमिकस्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक व आर्थिक परिवेश की स्थिति मापन में 0.05 स्तर में गणित टी-मूल्य 1.21 है। यहाँ गणित टी-मूल्य सारणीमूल्य कि अपेक्षा कम है।

अतः यह स्पष्ट होता है कि 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं पाया गया। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक व आर्थिक परिवेश और व्यक्तित्व के मध्य में भेद नहीं है, यह जो शून्य परिकल्पना लिया गया, वह स्वीकृत किया गया है।

परिणाम

अध्ययन द्वारा निम्न परिणाम प्राप्त हुये है-

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तितत्व विकास में सामाजिक व आर्थिक परिवेश का प्रभाव नहीं है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक व आर्थिक परिवेश में और व्यक्तित्व में भेद है, लेकिन सार्थक भेद नहीं पाया गया।

शैक्षिक निहितार्थ

- विद्यार्थी सर्वदा अपनी परिस्थिति के अनुसार व आवश्यकता के अनुसार अपने मूल्यों में, विचारों में, धारणाओं में और आदर्श में परिवर्तन करने में सक्षम होगें। उससे समाज के साथ और वातावरण के साथ अपने को समायोजित कर सकेगें।

- विद्यार्थियों की परिस्थिति और परिवेश के अनुसार शैक्षणिक संस्था शिक्षा प्रदान की व्यवस्था में सहायता प्रदान कर सकेगा।
- प्रस्तुत अध्ययन से यह ज्ञात है कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्वविकास में उचित मार्गदर्शन अध्यापक के द्वारा, अभिभावक के द्वारा शिक्षण संस्थाओं के द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए।

सीमाकंन

- प्रस्तुत अध्ययन केवल राजस्थान राज्य के टोंक जिला के ग्रामीण क्षे़त्र तक ही सीमित है।
- प्रस्तुत अध्ययन केवल माध्यमिक स्तर तक ही सीमित है।
- यह अध्ययन केवल 300 विद्यार्थियों तक ही सीमित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Alport –Personality
2. पाठक, पी डी –शिक्षा मनोविज्ञान
3. माथुर, डॉ० एस० एस० –शिक्षा मनोविज्ञान
4. अस्थाना, डॉ० विपिन –मनोविज्ञान और शिक्षा
5. गुप्ता, एस पी–उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान
6. मंगल, एस०के० –शिक्षा मनोविज्ञान
7. पाण्डेय, डॉ० रामशकल–शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि
8. सुभाषितनिधि
9. श्रीमद्भगवगीता
10. माथुर, डॉ० एस० एस० –शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार
11. नागर, कैलाश नाथ – साख्यिकि के मूलतत्व
12. कपिल, एच० के० –अनुसन्धान विधियाँ

एड्स ग्रस्त व्यक्तियों की मनोदशा का अन्वेषणात्मक अध्ययन- पश्चिमी उत्तरप्रदेश के विशेष संदर्भ में

डॉ० रागिनी कुमारी

भारत जैसे विकासशील देश के लिए एचआईवी संक्रमण एक चुनौती के रूप में उभर कर आया है। यह संक्रमण विशेषकर युवा वर्ग में तेजी से फैला है। यह संक्रमण विशेषता 15 से 45 वर्ष के युवाओं में ज्यादा मिला है। इस संक्रमण के परिणाम स्वरूप राष्ट्र के विकास की गति निश्चित रूप से बाधित हुई है।

शुरुआत में भारत में एचआईवी के पता चलने के बाद किसी भी व्यक्ति ने इसे गंभीर रूप से नहीं लिया। उनका सोचना था कि यह पश्चिमी रोग है जो वेश्याओं को, समलैंगिकों को या फिर इंजेक्शन से नशीली दवाओं के सेवन करने वाले नशेड़ियों को होगा। इस संकीर्ण दायरे वाली सोच के परिणाम आज हमारे सामने हैं। इस रोग की प्रवृत्ति के कारण भी लोग एड्स जैसी बीमारी को गंभीरता से नहीं लेते। चूंकि इस रोग का पता रक्त के परीक्षण के उपरांत ही हो सकता है, इस कारण भी अनजाने में एचआईवी से संक्रमित या पॉजिटिव व्यक्ति इस वायरस को 6 से 7 वर्ष तक पाल सकता है और पति पत्नी, यौन साथी एक दूसरे को या संक्रमित माता अपने शिशु को संक्रमण दे सकती है। यह इस संक्रमण से जुड़ी समस्या की पेचीदगी है।

भारत जैसे देश में एड्स केवल एक बीमारी ही नहीं अपितु यह एक सामाजिक समस्या भी है। एड्स जैसे विशेष बिंदु पर कोई भी आसानी से झिझक, शर्म के कारण, चर्चा नहीं कर पाता, जबकि इसके समाधान के लिए व्यापक दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता है। जिससे युवा वर्ग को बचाया जा सके। इसके लिए संवेदनशील होना आवश्यक है। इस प्रकार से हम राष्ट्र के विकास की अमूल्य निधि "मानव संसाधन" को एचआईवी के संक्रमण से मुक्त कर सकते हैं। यह एक ऐसी बीमारी है जो पीड़ा तो देती है इसके साथ ही साथ यह कार्य करने की क्षमता को भी प्रभावित करती है। इसका दूसरा पहलू यह भी है कि इस बीमारी से पीड़ित व्यक्ति को समाज में जो सम्मान मिलना चाहिए उसे नहीं मिलता। बल्कि उसे भेदभाव का अनुभव करना पड़ता है।वह हमेशा संबंधियों से असहज महसूस करता है जिसके कारण उसकी पीड़ा और भी असहनीय हो जाती है।

व्यक्ति के जीवन काल व शायद उसके बाद भी सार्वदेशिक व्याधि के दुष्प्रभावों का अनुमान लगाना कठिन है। प्रारंभ में यह बीमारी जो कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित प्रतीत होती थी, उसी ने तीन दशकों में संपूर्ण विश्व में वृहद स्तर पर स्त्री पुरुषों व बच्चों को अपने शिकंजे में जकड़ लिया है। एड्स, स्वास्थ्य संबंधी समस्या के साथ-साथ हमारे देश में सामाजिक समस्या भी है। इसके सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक पक्ष भी है।यह मूल सामाजिक संस्थाओं के लिए वैयक्तिक, पारिवारिक और सामुदायिक स्तर पर एक खतरा है। इसका सबसे अहम पहलू आर्थिक पक्ष है। क्योंकि स्वास्थ्य पर राष्ट्र का आधा व्यय एड्स की रोकथाम में ही लग सकता है, यदि एड्स रोगियों की आवश्यकता और उनके रोजगार तथा पुनर्वास को पूरा किया जाने लगे। एड्स विशेष प्रकार से लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक रूप से उत्पादनशील वर्षों में आक्रमण करता है। जबकि वह समय एक दृष्टि से दूसरों की देखभाल के लिए उत्तरदाई होता है। परिणाम स्वरूप जब धनार्जन करने वाले व्यक्ति बीमारी के प्रभाव से खत्म हो जाते हैं,तो वह परिवार को जीवन यापन के साधनों से विहीन छोड़ जाते हैं। इस प्रकार एचआईवी से ग्रस्त व्यक्ति शुरुआत में संवेगात्मक आघात से तथा बाद में सामाजिकता से अलगाव और अंत में 1 या 2 वर्षों तक गंभीर शारीरिक समस्याओं से पीड़ित होते हैं। इसके साथ ही साथ वे आर्थिक दृष्टि से भी कमजोर हो जाते हैं। एड्स रोगी अपने रोजगार से हाथ धो बैठते हैं। इसके साथ ही साथ अपने परिवार जनों

तथा समुदाय से अलग कर दिए जाते हैं एवं मित्रों द्वारा अस्वीकार कर दिए जाते हैं।अभी भी तीन दशकों के पश्चात जागरूकता व पर्याप्त जानकारी के अभाव के कारण रोगियों व उनके बच्चों को स्कूल, विश्वविद्यालय तथा चिकित्सालयों में सुविधाओं को प्राप्त करने में असुविधा हो जाती है। उनके परिवारजनों को भी आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कष्ट उठाना पड़ता है। युवा व विवाहित एड्स रोगियों की पत्नियां जहां वैधव्य का सामना करती है वही उनके बच्चेअनाथ हो जाते हैं।

सार्वभौमिक रूप से एचआईवी संक्रमण का कोई विशेष प्रभावशाली उपचार उपलब्ध नहीं है। पूरे विश्व के लिए यह एक चुनौती है। इस वायरस के संक्रमण से विकसित एवं विकासशील दोनों देश अछूते नहीं है। संक्रमण से पूर्व बचाव हेतु कोई वैक्सीन अथवा संक्रमण होने के बाद इसको खत्म करने के लिए कोई भी औषधियां अभी तक एक स्वप्न के समान ही हैं।

एचआईवी एक रेट्रोवायरस है। इसके विशिष्ट गुणों के कारण ही अभी तक इसके संक्रमण को खत्म करने का इलाज संभव नहीं हो सका है। उपलब्ध दवाओं के प्रभाव से संक्रमित व्यक्ति की जीवन की गुणवत्ता व जीवन अवधि को बढ़ाया ही जा सकता है। अत: इससे बचने के लिए समुचित एवं पर्याप्त जानकारी का होना ही एक बचने का मात्र उपाय है। एचआईवी से संबंधित सही एवं उपयुक्त जानकारी प्रत्येक व्यक्ति को होना आवश्यक है। इसके लिए अंतर विभागीय समन्वय की विशेष जरूरत है। संक्रमण की सूक्ष्म स्तर पर रोकथाम, केयर व सपोर्ट, इलाज व सहयोग संबंधी सेवाओं में, प्राइवेट सेक्टर, सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों तथा एचआईवी से संक्रमित व्यक्तियों के नेटवर्क की विशेष भूमिका है। भारत सरकार ने इसके लिए देश, राज्य व जनपद स्तर तक व्यवहार पूर्ण कार्यक्रम लागू किए हैं।

एचआईवी की जानकारी से ना केवल संक्रमण की रोकथाम हो सकेगी बल्कि इससे जुड़ी भ्रांतियों को भी दूर किया जाना संभव होगा। इसके परिणाम स्वरूप जागरूक समाज का निर्माण होगा। एचआईवी के साथ जी रहे व्यक्तियों के प्रति भेदभाव भी समाप्त हो सकेगा। भारतवर्ष में यौन जनित रोग पहले से ही एक गंभीर समस्या रही है। इस पर बिना झिझक व शर्म के चर्चा व इसका समुचित चिकित्सीय प्रबंधन समय से प्राप्त होने से व्यक्ति को गंभीर समस्या से बचाया जा सकता है। ऐसे रोगों के 40% रोगी हमारी जनसंख्या की मध्यवर्गीय श्रेणी से संबंध रखते हैं। यौन जनित रोगों से संक्रमित व्यक्ति को सामान्य व्यक्ति की तुलना में एचआईवी संक्रमण की आशंका 20% तक ज्यादा रहती है एवं संचार में अवरोध उत्पन्न करने के लिए यौन आचरण पर ध्यान केंद्रित करना होगा।

सभी पुरुषों, महिलाओं व किशोर वर्ग हेतु जानकारी व शिक्षा कार्यक्रम महत्वपूर्ण है। विशेषकर उन लोगों के लिए जिन्हें एचआईवी संक्रमण का अधिक खतरा है। दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों की भांति हमारे देश में भी यौन संक्रमण से अविलंब बचाव किया जाना सर्वोच्च प्राथमिकता है। चिकित्सीय प्रबंधन हेतु चिकित्सा केंद्रों पर जांच की सुविधा, दवाइयां व एस.टी.आई. सुरक्षा क्लिनिक की स्थापना भी भारत सरकार द्वारा की गई है। एड्स से संक्रमित लोगों में यौन व्यवहार सर्वाधिक खतरनाक है। इसलिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि लोगों को कन्डोम, सुरक्षित व संयमित यौन संबंधों के साथ ही संयम व वफादारी की सूचना-शिक्षा का प्रसार किया जाए। इस कार्य हेतु टी.वी, रेडियो, समाचार पत्र व अन्य साधनों से प्रचार को बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है।

एचआईवी रोग की पहचान सर्वप्रथम अफ्रीका में हुई थी इसीलिए अफ्रीका को एड्स का जनक व युगांडा को इसकी राजधानी माना जाता है। इसकी जानकारी एक वैज्ञानिक एलेग्जेंडर टेम्पकटन को सन 1970 में मिली जब वे अफ्रीका में अपने सहयोगी के साथ केपोसीस सार्कोमा नामक एक प्रकार की त्वचा कैंसर पर शोध कार्य कर रहे थे।

एचआईवी रोग की पूरी जानकारी दुनिया को तब हुई जब सन 1981 में अमेरिका के सेंटर फॉर डिजीज कंट्रोल में लॉस एंजिल्स व न्यूयॉर्क के समलैंगिक पुरुष में पहला केस मिला। उपचार के दौरान उस पर कई प्रकार की महंगी दवाइयों का प्रयोग किया गया किंतु कोई असर नहीं हुआ तो चिकित्सकों ने रोगी की रोग प्रतिरोधक क्षमता की जांच करवाई। इस जांच के पश्चात चिकित्सक इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उस युवक की प्रतिरोधक क्षमता पूरी तरह समाप्त हो चुकी थी।

उस व्यक्ति को विशिष्ट किस्म के फेफड़े का संक्रमण था, जिसे न्यूमोसिस्टिस कैरिनाई या वर्तमान नाम न्यूमोसिस्टिव जिरोवेसी एवं दुर्लभ किस्म का त्वचा का ट्यूमर केपोसिस सार्कोमा भी था। उस व्यक्ति की प्रतिरोधक तंत्र की जांच में प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने वाले CD 4 कोशिकाओं की भारी कमी थी। CD 4 के T cel से शरीर को रोगों व विभिन्न संक्रमण से लड़ने की क्षमता प्रदान करते हैं।

कुछ समय अंतराल में संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी यूरोप व अफ्रीका में भी केस मिलने लगे। सन 1982 में एड्स को पैदा करने वाले वायरस को फ्रेंच वैज्ञानिक डॉक्टर मोंटेग्नियर जोकि पाश्चर संस्थान में कार्यरत थे एवं अमेरिकन वैज्ञानिक डॉ.राबट.सी. गैलो जो कि राष्ट्रीय कैंसर संस्थान में कार्यरत थे इनके द्वारा संयुक्त रूप से चिन्हित किया गया । शुरू में वायरस को LAV-लिम्फोएडिनोपैथी एसोसिएटेड वायरस, फ्रेंच वैज्ञानिक द्वारा नाम दिया गया एवं अमेरिकी वैज्ञानिकों द्वारा HTLVlll-human T lymphocytotropic वायरस जलचम ससस के रूप में नामित किया गया। सन् 1983 में संयुक्त राज्य अमेरिका व फ्रांस में किए गए शोधों के पश्चात एड्स के कारक वायरस को एचआईवी के रूप में चिन्हित किया गया। यह वायरस 1/1000 मि.मि. ब्यास का एक गोलाकार अति सूक्ष्म विषाणु है, जो दो लिपिड झिल्लियों का बना होता है, इसमें दो प्रकार के ग्लाइकोप्रोटीन व दो प्रकार के प्रोटीन स्तर होते हैं।

नामकरण की अंतर्राष्ट्रीय समिति द्वारा इसे ह्यूमन इम्यूनोडिफिशिएंसी वायरस वह इसके HIV 1व HIV 2 के प्रकारों को पहचान दी गई व कालांतर में इसके ए,बी,सी सब टाइप भी ज्ञात किए गए हैं।

भारतवर्ष में मई 1986 में क्रिस्चियन मेडिकल कॉलेज चेन्नई में कमर्शियल सेक्स वर्कर के रक्त के नमूने में पहला एचआईवी से संक्रमित केस पाया गया। 1987 में भारत में एड्स की पहली चिकित्सा प्रमाणित की गई। सन 1992 में कई दवाओं के योग से पहली बार परीक्षण हुआ। सन् 1994 में मां से बच्चे को होने वाले संक्रमण की रोक की पहली चिकित्सा हुई। आज हमारे देश में लगभग 2.4 मिलियन लोग इस वायरस के संक्रमण से ग्रस्त हैं।

भारत में एचआईवी या एड्स महामारी को 25 वर्ष से अधिक हुए हैं। इस अवधि में यह बीमारी देश में अत्यधिक गंभीर स्वास्थ्य समस्या के रूप में उभर कर सामने आई। एचआईवी के प्रारंभिक मामले उत्तर-पूर्वी राज्यों में पाए गए। धीरे-धीरे यह बीमारी आसपास के क्षेत्रों में भी फैल गई।

भारत में एचआईवी की व्यापकता व बचाव की रणनीति -

सन 1986 की शुरुआत में, जब विश्व भर में 20000 एड्स के केस थे, भारत में एचआईवी का पहला केस पाया गया था। विकसित देशों में इसके भयावह परिणामों का समाज शास्त्रियों व मनोवैज्ञानिकों द्वारा आकलन किया जा चुका था। इस तथ्य से यह संज्ञान लिया गया कि यदि भारत में ऐसा हुआ तो क्या किया जाएगा। जनवरी 1986 में एक मेडिकल जर्नल में प्रकाशित हुआ कि "विकसित देशों से भिन्न भारत में वैज्ञानिक, प्रयोगशाला, अनुसंधान व आयुर्विज्ञान कार्मिकों का अभाव है। इसके साथ ही लैंगिक व यौन मामलों से जुड़े सांस्कृतिक परहेज, स्थानीय स्वास्थ्य सेवाओं व समुदायों में कमजोर समन्वय, गरीबी व कुपोषण एवं रक्त का संग्रहण व उसकी जांच एक चुनौती होगी।"

इस क्रम में 'राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान एवं नियंत्रण केंद्र' पुणे, की स्थापना हुई। ब्लड बैंक में एचआईवी की जांच की सुविधा शुरू की गई। सन् 1987 में राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम प्रारंभ हुआ, जिसमें सर्विलांस, रक्त की जांच व स्वास्थ्य शिक्षा को सम्मिलित किया गया। इस कार्यक्रम के तहत सन् 1987 के अंत तक 52907 लोगों की एचआईवी जांच की गई, जिसमें 135 व्यक्ति एचआईवी से संक्रमित पाए गए तथा 14 व्यक्तियों में एड्स की स्थिति पाई गई। एचआईवी संक्रमण से ग्रसित लोगों में एक से अधिक यौन साथियों से यौन संबंध प्रकाश में आया। 1989 के अध्ययन में भारत के पूर्वी राज्यों में इंजेक्शन से नशीली दवाओं के सेवन की साझेदारी वाले मामले तेजी से प्रकाश में आए।

सन 1990 की शुरुआत में एचआईवी संक्रमण की रफ्तार आम जन समुदाय में तीव्र होने के साथ भारत सरकार ने विशिष्ट रणनीति के तहत 1992 में 'राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन' की स्थापना की, जोकि राष्ट्रीय नीति, रोकथाम व नियंत्रण कार्यक्रम से संबंधित था। इसी क्रम में राज्य व केंद्र शासित प्रदेशों में कुल 38 एड्स नियंत्रण सोसाइटी की स्थापना की गई। इसके माध्यम से एचआईवी की रोकथाम व ब्लड सेफ्टी कार्यक्रम को प्रभावशाली ढंग से लागू किया गया।

वर्ष 1998 तक देश के प्रत्येक राज्य में एचआईवी के केस बहुधा पाए जाने लगे व यह भी स्पष्ट रूप से देखा गया कि विशेष राज्य व शहरों में इसके संक्रमण का स्तर अलग-अलग है। एचआईवी का संक्रमण सामान्य जन समुदाय में व्यापक स्तर पर फैल चुका है। जिसमें गृहणी, विवाहित महिलाएं, बच्चे व संभ्रांत वर्ग के लोग भी शामिल है।

सन् 1999 में राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम।। की शुरुआत की गई जो विभिन्न उद्देश्यों के साथ शुरू किया गया। जिसमें मुख्यतया जागरूकता बढ़ाने के साथ हाई रिस्क ग्रुप में व्यवहार परिवर्तन, स्वैच्छिक परामर्श व परीक्षण केंद्रों की स्थापना तेजी से की गई। भारत सरकार की इस योजना से सामान्य जन को एचआईवी की जांच व इससे संबंधित उनकी जिज्ञासा को परामर्श के माध्यम से सही दिशा प्रदान की गई।

इसके साथ ही वर्ष 2006 में NACP lll राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम का तृतीय फेज प्रारंभ हुआ, जिसमें हाई रिस्क ग्रुप में बचाव व रोकथाम की सेवाओं को उपलब्ध कराना, एकीकृत परामर्श व परीक्षण केंद्रों की स्थापना व इनकी संख्या में वृद्धि करना, बेसिक सर्विसेज, एचआईवी से संक्रमित व्यक्तियों को केयर सपोर्ट व ट्रीटमेंट, आईईसी, ब्लड सेफ्टी प्रोग्राम, स्ट्रैटेजिक इंफॉर्मेशन मैनेजमेंट यूनिट की स्थापना प्रमुख रूप से की गई। इस चरण में नाको व भारत सरकार के प्रमुख लक्ष्य एचआईवी संक्रमण की दर को रोकते हुए घटाने की रणनीति पर ज्यादा ध्यान दिया गया। इस संदर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य विषय है कि इन वर्षों में एचआईवी का वायरस शहरी क्षेत्रों से ग्रामीण क्षेत्रों में, हाई रिस्क ग्रुप से सामान्य जन समुदाय में तीव्रता से फैला है।

वर्ष 2019 तक एचआईवी के 23.4 लाख केस उभर कर सामने आए। यह वर्ष 2010 से 2019 तक एचआईवी के केस में 37% की वृद्धि थी।

एचआईवी के संक्रमण की तेजी को महामारी के स्तर पर संज्ञान में लेते हुए हमारी सरकार ने राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन ने देश के 611 जनपदों को क्रमश: 4 श्रेणियों- A, B,C , एवं D में संक्रमण की तीव्रता के आधार पर वर्गीकृत किया। उनमें से 156 जनपदों की A-High Prevelance एवं 39 जनपदों की High HIV epidemic जनपद के रूप में चिन्हित किया है।

नयी योजना के तहत इन जनपदों में DAPCU (डिस्टिक ऐड्स प्रीवेंशन एंड कंट्रोल यूनिट) की स्थापना एचआईवी के संक्रमण को प्रत्येक स्तर पर रोकने व कार्य योजना का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन हेतु किया गया है। यह यूनिट जनपद स्तर पर पब्लिक हेल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर, नेशनल रूरल हेल्थ मिशन व जनपद के जिलाधिकारी महोदय की अध्यक्षता में गठित DACC (डिस्टिक एड्स कंट्रोल कमिटी) डीएचएस (डिस्टिक हेल्थ सोसायटी) के साथ समन्वय से एड्स नियंत्रण कार्यक्रम का प्रभावी रूप से स्थानीय स्तर पर संचालन एवं क्रियान्वयन कर रही है। इसमें ब्लड बैंक, आई.सी.

टी.सी., पी.पी.टी.सी.टी.,ए.आर.टी. लक्षित समूहों पर कार्यरत गैर सरकारी संगठन, एस.टी.आई. क्लीनिक, एचआईवी- टी.वी. सह समन्वय, कम्युनिटी केयर सेंटर, लिंक ए.आर.टी. केंद्र, लिंक वर्कर स्कीम, स्टेट रेफरेंस लेबोरेटरी व डिस्टिक लेवल नेटवर्क ऑफ एचआईवी पॉजिटिव पीपुल्स प्रमुख घटक एवं सर्विस प्रोवाइडर केंद्र हैं। इन सभी केन्द्रों पर जनपद में ग्राम स्तर तक सुविधा प्रदान करने, एचआईवी संक्रमण को रोकने व पॉजिटिव व्यक्तियों को आसानी से सेवा उपलब्ध कराने तथा उनके मौलिक अधिकारों तक उनकी पहुंच आसान बनाने के लिए कार्य किए जाते हैं।

एचआईवी संक्रमित रोगियों के जीवन में संक्रमण के पश्चात उत्पन्न होने वाली शारीरिक कठिनाइयों को ध्यान में रखकर शोध अध्ययन व समाधान शरीर विज्ञानियों द्वारा सुझाए जाते हैं। इस क्रम में यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि संक्रमित व्यक्ति जहां एक ओर गंभीर बीमारियों से ग्रस्त होने पर एड्स की स्थिति में पहुंच जाता है वही वह व्यक्ति संक्रमण का पता चलते ही तनाव, प्रतिबल, अवसाद, कुंठा से ग्रस्त होने लगता है साथ ही अन्य मानसिक व सामाजिक यातनाओं, कलंक व भेदभाव का भी सामना करता है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिक घटकों वह कारकों के दुष्प्रभाव व उनके चलते असमायोजन की स्थिति उत्पन्न होने लगती है एवं संक्रमित व्यक्ति या एड्स रोगी का व्यक्तित्व भी प्रभावित होता है। तनाव व अवसाद की स्थिति रोगी व्यक्ति में अधिक समय तक बने रहने से बदले की भावना, आत्महत्या के विचार, सामाजिक आहरण व अन्य प्रभाव उत्पन्न करती हैं कभी-कभी रोगी का व्यक्तित्व पूर्णतया विघटनकारी भी हो सकता है।

यह अध्ययन एचआईवी संक्रमित एड्स रोगी की संवेदनशीलता को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक कारकों पर ध्यान केंद्रित करते हुए किया गया है। जिससे कि एड्स रोगी की तकलीफ व उसकी सोच को एंपैथेटिक स्वरूप में समझा जा सकेः इस प्रकार उनको सामाजिक व मनोवैज्ञानिक सहयोग व बिना शर्त सकारात्मक सम्मान प्रदान किया जाए। हमारे देश में एचआईवी का संक्रमण बीमारी के साथ एक सामाजिक समस्या भी है। अत: यह आवश्यक है कि वायरस से संक्रमित व्यक्ति या एड्स रोगी को मनोवैज्ञानिक

व सामाजिक समर्थन की आवश्यकता उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी की चिकित्सकीय व अन्य सेवाओं की। जब लाखों लोग एक ही बीमारी से पीड़ित हो तब चिकित्सकीय प्रणाली के साथ मनोवैज्ञानिक व सामाजिक सहयोग की अत्यंत आवश्यकता होगी। इस प्रकार हम उनके मूड, जरूरत, संकोच व भेदभाव को बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।

प्रस्तुत अध्ययन शएड्स ग्रस्त व्यक्तियों की मनोदशा का अन्वेषण आत्मक अध्ययन- पश्चिमी उत्तर प्रदेश के विशेष संदर्भ मेंश किया गया है। भौगोलिक, सामाजिक, रहन-सहन, खानपान की दृष्टि से आर्थिक संपन्नता से भरपूर पश्चिमी उत्तर प्रदेश का गंगा-जमुना के दोआब में स्थित यह क्षेत्र सांस्कृतिक व सामाजिक दृष्टि से काफी आगे है। यहां भोजन व भोज्य उत्पाद, प्राकृतिक संसाधन यातायात की सुविधा व आय उच्च कोटि के हैं। परंतु इसके सापेक्ष शिक्षा का स्तर सामान्य से कम है।

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के समीप होने के कारण औद्योगिकरण इस क्षेत्र में ज्यादा है, जैसे- सीमेंट, कपड़ा, अल्कोहल उत्पाद,कृषि व साग सब्जी फल व पुष्प उत्पादन अंतरराष्ट्रीय स्तर का है। यहां स्पेशल इकोनामिक जोन व फल प्रक्षेत्र के साथ ही फलों के निर्यात हेतु एक्सपोर्ट हाउस भी बनाए गए हैं। व्यापारिक दृष्टिकोण से यहां दिआयामी व्यक्ति प्रतिस्थापन सिद्धांत रूप से लगातार होता रहता है। इन सब कारणों से व्यक्ति के जीवन में एकाकीपन का भी समावेश हो जाता है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति नैतिक मूल्यों से समझौता करने को विवश हो जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप उसमें इससे उत्पन्न होने वाली बीमारियों व संक्रमण की संभावना अत्यंत प्रबल हो जाती हैं। उक्त सामाजिक, आर्थिक और औद्योगिक मानवीय कारकों को दृष्टिगत करते हुए इन्हें आधार मानकर इस प्रकार की शोध की आवश्यकता महसूस हुई है।

शोध ग्रन्थ-

Agarwal, A.K. 1990. Strategies for primary prevention of AIDS. Indian J Psychiatry. 32: 209-10.

Ahuja, A.S.; Parker, S.R. and Yeolekar, M.E. 1998. Psychosocial aspects of seropositive HIV Patients. J Assoc Physicians India 46: 277-80.

Ames, M.H.: Gatewood Colwell, G. and Kaczmarek, M. 1989. Reliability and Validity of the Beek Depression Inventory for white and Mexican-American gerontic Population. Psychological Reports. 65: 1163-1165.

Angelino, 2002. Depression and Adjustment Disorder in Patients with HIV Disease. AIDS Care 10(5): 31-35.

Ankrah. M. 1993. The impact of HIV AIDS on family and other significant relationships. AIDS Care 5:5-22

Baria, F. et. al. 1997. India Today 15 Mar Issue. ‘AIDS-Striking home.

Baron, R. A. 2002. Psychology. Singapore: Pearson Education

Beck, A.T. 1987. Cognitive models of depression. Journal of Cognitive Psychotherapy. 1: 5-37.

Beck, A.T.: Brown, G. and Steer. R.A. 1989. Sex differences on the revised Beck Depression Inventory for out Patients with affective disorders. Journal of Personality Assessment. 53: 693-702.

Beck, A T. and Freeman, A. 1990. Cognitive therapy of personality disorders. Guilford Press

Beck, A.T.: Brown, G. and Steer, R.A. 1996. Beck Depression Inventory II Manual.. San Antonio, TX. In: The Psychological Corporation.

Berger, S: Schad. T. Vonwyl. V. Ehlen, U., Zellweger, C. and Gabb, J. 2008. Effects of cognitive behavioural Stress management on HIV-1 RNA. CD, Cell counts and Psychosocial Parameters of HIV-infected persons. AIDS 2-767-775

आतंकवाद एक विश्वव्यापी चुनौती

सुबोध मणि त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग,
श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय बलिया (उ0प्र0)

प्रस्तावना-

आतंक का शाब्दिक अर्थ है "भय"। इस तरह अपने शाब्दिक अर्थ में आतंवाद भय अथवा आतंक की आधार शिला पर टिका है। आतंक एक मनोवैज्ञानिक दशा है - अत्यंत भय एवं चिन्ता की अवस्था। वहीं वाद के जुड़ते ही यह मनोवैज्ञानिकता के क्षेत्र से उठकर विश्वास एवं विचार के घेरे में आ जाता है। आतंकवाद की कोई सर्वसम्मत परिभाषा अभी तक विकसित नहीं हो पाई है। लेकिन एक बात पर सभी सहमत है कि हिंसा का भय जताकर वैयक्तिक हिंसा के कार्य या हिंसा के अभियान द्वारा लोगों में भय का समावेश करना इसका उद्देश्य है।[1]

आतंकवाद एक विश्वव्यापी समस्या है। विश्व का कोई भी भाग ऐसा नही है, जहाँ किसी न किसी रूप में किसी न किसी विचारधारा के अन्तर्गत आतंकवादी गतिविधियाँ न चल रही हों। 21वीं शताब्दी में आतंकवाद का खतरा लगभग सभी राष्ट्रों, विकसित तथा विकासशील दोनों ही के लिए सुरक्षा की दृष्टि से चिंता का प्रमुख विषय बन गया है। आतंकवाद एक विवादास्पद मुद्दा है, जिसने न केवल राष्ट्र-राज्यों की भौगोलिक एकता तथा राजनीतिक स्थायित्व को चुनौती प्रदान की है, बल्कि वैश्विक शांति तथा क्षेत्रीय सुरक्षा की दृष्टि से भी इसके दूरगामी परिणाम हो सकते है। आतंकवाद चाहे एक समूह द्वारा संचालित हो या एक राष्ट्र-राज्य द्वारा, को समुचित रूप से समझने के लिए उसकी कुछ विशिष्टताओं का विश्लेषण करना आत्यावश्यक है, क्योंकि एक समूह द्वारा अवप्रेरित आतंकवाद को नियंत्रित किया जा सकता है, लेकिन एक राज्य द्वारा प्रवर्तित आतंकवाद को नियंत्रित करना मुश्किल है।[2]

आतंकवाद राजनीतिक हिंसा का एक विशेष रूप है। इसके अन्तर्गत हिंसात्मक शक्ति द्वारा भय का वातावरण बनाकर निरंतर दबाव बनाए रखते हुए अपनी बात मनवाने की प्रवृति है। इसमें तोड़फोड़, हत्याएँ, बम के प्रयोग द्वारा जनता के मन में भय पैदा करने का प्रयास किया जाता है, ताकि वह विरोध न कर सके तथा इन कार्यवाहियों के विरुद्ध आवाज न उठा सके। हिंसा की गतिविधियाँ बार-बार की जाती है, ताकि दबाव का वातावरण बना रहे।

आतंकवाद के विभिन्न स्वरूपों पर एक नजर -

- **प्रथम विश्वयुद्ध में आतंक**

जर्मन सेना ने 1914 में बेल्जियम और फ्रांस पर हमला कर दिया तथा जन-साधारण को आतंकित करने की नीति अपनाई। उसके सहयोगी राष्ट्रों आस्ट्रिया और हंगरी ने भी प्रथम विश्वयुद्ध में असैनिकों पर घोर अत्याचार किए।

जर्मन सेना को शार्प शूटर्स और छापामारों के हमलों की आशंका बनी रहती थी। 1871 में फ्रांस पर हमले के दौरान जर्मनी को अपनी सेना का एक चौथाई भाग अपनी सप्लाई लाइन की सुरक्षा के लिए नियुक्त करना पड़ा था। जर्मनी ने 19वीं शताब्दी में दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका पर आक्रमण के समय भी आतंक की नीति अपनाई थी-उन्होंने हेरेरो में हजारों बच्चों और औरतों को मौत के घाट उतार दिया था। कुछ को गोली से उड़ाया या फांसी पर लटका दिया गया और शेष को भूखा-प्यासा मरने के लिए मरुस्थल में ढकेल दिया गया था।[3]

बेल्जियम में उन्होंने प्रमुख लोगों को बंधक बनाने की नीति अपनाई थी। यदि छापामार उन पर हमला करते तो जर्मन सेना बड़ी संख्या में बंधक असैनिकों की हत्या कर देती। इन बंधकों का प्रयोग स्थानीय उपद्रवों को कुचलने के लिए किया गया। पीछे हटती बेल्जियम की सेना ने पुलिस और अन्य अनेक सामरिक ठिकानों को इसलिए नष्ट कर दिया कि जर्मन सेना के अभियान में देरी हो। जर्मनी ने हजारों असैनिकों को बंदी बनाकर उन्हें अपनी फैक्ट्रियों में बेगार करने के लिए भेज दिया। उन्होंने बेल्जियम से एक लाख बीस हजार और फ्रांस से एक लाख लोगों को जर्मनी भेज दिया था। लेकिन जर्मनी का यह अत्याचार विपरीत परिणाम लेकर आया। पहला विश्वयुद्ध शुरू होने पर युवक सेना में भर्ती नहीं होना चाहते थे-विशेषकर इंग्लैंड में-लेकिन जब जर्मन अत्याचारों के समाचार यूरोप में फैले तो असंख्य युवक सेना में भर्ती होने के लिए तैयार हो गए।

जर्मनी ने बुद्धिजीवियों पर भी जबरदस्त अत्याचार किए और बेल्जियम की मध्यकालीन युनिवर्सिटी जला डाली, जिसमें असंख्य दुर्लभ पुस्तकें उपलब्ध थी। उन्होंने 22 अगस्त 1914 को फ्रांस के एक गांव में 50 असैनिकों को जिंदा भून डाला। उनकी पनडुब्बियों ने अनेक नागरिक जहाजों पर हमले करके उन्हें डुबा दिया। 7 मई 1915 को एक जर्मन पनडुब्बी ने ऐसे यात्रीवाहक जहाज को डुबा दिया, जिसमें 1400 असैनिक मारे गए। उन्होंने हालैंड के नगरों तथा कालेजों पर भी अंधाधुंध बमबारी की थी। आस्ट्रिया और हंगरी ने भी ऐसे ही जघन्य अत्याचार किए। पोलैंड और यूक्रेनवासियों पर तो उन्होंने दिल दहलाने वाला कहर ढहाया। पीछे हटती रूसी सेना ने भी पोलैंड में ऐसा ही आतंक मचाया था।

- **क्रांतिकारी आतंकवाद**

संवैधानिक सरकार को आतंक की सहायता से उखाड़ फेंकने और समाज में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को क्रांतिकारी आतंकवाद कहा जाता है। वामपंथी राजनीतिक आंदोलनकारी प्रायः क्रांतिकारी आतंकवाद का सहारा लेते हैं, लेकिन क्रांतिकारी राजनीतिक वामपंथियों तक सीमित नहीं है। 1930 में जर्मनी में नाजी पार्टी क्रांतिकारी दल थी। क्रांतिकारी आतंकवाद की जड़ें लेनिनवादी, मार्क्सवादी, वामपंथी विचारधाराओं से लेकर फासीवाद, दक्षिण-पंथियों तक फैलती है। दोनों विचारधाराओं का जन्म बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ। दोनों ने आतंक का सहारा लिया। दोनों उन्नीसवीं शताब्दी के समाजवादियों से अधिक प्रभावित है। क्रांतिकारी आतंकवाद में राजनीतिक हत्याओं, असीमित हिंसा ओर भयंकर रक्तपात का सहारा लिया जाता है। बम विस्फोट, भोजन में जहर मिलाना, जल और वायु को दूषित करना, जनमानस को हानि पहुंचाना उनके मुख्य उद्देश्य एवं साधन हैं।

बेरोजगारी, गरीबी, जातीय और लैंगिक भेद-भाव के कारण लोग वामपंथी क्रांतिकारी राजनीतिक आंदोलन मे शामिल होते है। गरीबी और अशिक्षा से पीडिघ्त लोग जब पड़ोस में समृद्ध लोगो को देखते हैं, जिनके पास आवश्यकता से अधिक धन और एश्वर्य होता है तो मन में आक्रोश होना स्वाभाविक है, क्रांतिकारी इस स्थिति में परिवर्तन का प्रयास करते हैं तभी हिंसा और आंदोलन का जन्म होता है। पुलिस, सरकारी तंत्र और भ्रष्टाचार अकसर सामाजिक और आर्थिक भेद-भाव को बढ़ाने में सहायक होते है।

दक्षिणपंथियों को प्रेरणा कहीं और से मिलती है। वे प्रायः वामपंथियों से खतरा महसूस करते हैं। अन्य वर्गो, भिन्न जन-जातियों और महिलाओं का समान अधिकार देने वाले सामाजिक परिवर्तन से उन्हें भय होता है और इसके विरोध में दक्षिणपंथी उग्रवाद का जन्म होता है। सामाजिक क्रांतिकारीयों ने अनेक देशों को हानि पहुंचाई है। राष्ट्रवादी आतंक का उद्देश्य स्पष्ट है, लेकिन क्रांतिकारी उग्रवाद के कारण भी राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन मे उपस्थित होते है। पीएलओ ने इस्राइल की भूमि पर फिलिस्तीनी राज्य की स्थापना की मांग की। क्रांतिकारी का आदर्श आतंकवाद फैलाने का एक बहाना मात्र है। क्रांतिकारी आतंकवाद यथास्थिति बनाए रखना नहीं चाहता। इसका मूल उद्देश्य राजनीतिक परिवर्तन होता है।[4]

- **स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद**

कुछ आतंकवादी संगठन राज्य और क्षेत्र-विशेष में ही सक्रिय रहते हैं, जैसे-गर्भपात-विरोधी और पशुओं के हिमायती संगठन। अधिकांश उग्रवादी किसी न किसी रूप में अंतर्राष्ट्रीय संपर्क-सूत्रों से जुड़े होते हैं। कोई मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय पहलुओं पर आधारित होता है, तो विभिन्न देशों के उग्रवादियों के बीच सहयोग शुरू होता है।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी यूरोपीय शासन छिन्न-भिन्न हुआ। उस समय अनेक आतंकवादी संगठनों ने राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर साम्राज्यवादियों के विरुद्ध सहयोग स्थापित किया। 1950 के दशक में मसोक्को और टयूनीशिया ने अल्जीरियाई लिबरेशन फ्रंट से फ्रांसीसियों के विरुद्ध सहयोग किया।

इसी काल में पश्चिमी राष्ट्रों और कम्युनिस्ट देशों के बीच शीतयुद्ध हुआ। दोनों गुटों ने स्वतंत्रता-सेनानियों (फ्रीडम फाइटर) के संगठनों को सहायता दी। एक गुट ने उन्हें 'आजादी की जंग का योद्धा' बताया तो दूसरी ने 'उग्रवादी' कहा। अंतर्राष्ट्रीय उग्रवाद के सहयोग का एक और उदाहरण इस्राइल है जिसके संगठन के विरोध में अरब राष्ट्रों ने उग्रवादियों की सहायता की।1944 में यहूदी उग्रवादियों ने मिश्र में ब्रिटिश मिनिस्टर लार्ड मोमन की हत्या की, ताकि वे विश्व के देशों का समर्थन जुटा सकें। 1980 में मध्यपूर्व क्षेत्र के उग्रवादियों ने पश्चिमी यूरोप में 75 आतंकवादी हमले किए, जिनमें 65 लोग मारे गए। उनके निशाने पर मुख्यत: पश्चिमी देशों के नागरिक और उनकी संपत्ति थी न कि अरब, फिलिस्तीनी, इस्राइली या यहूदी।

उग्रवाद स्थानीय सीमाओं को पार कर अंतर्राष्ट्रीय रूप तब धारण करता है जब या तो सीमापार से समान राजनीतिक विचारधारा वाले संगठनों की सहानुभूति और सहायता मिले या जब अंतर्राष्ट्रीय जगत में एक ही जनजाति या समुदाय के लोग उनसे सहानुभूति रखें। श्रीलंका का एलटीटीई संगठन तमिलभाषी मूल का है जिसे भारत और विश्व के अनेक देशों में बसे तमिल समुदाय के लोग आर्थिक और सैन्य सहायता देते हैं। यही बात सिख उग्रवादियों पर लागू होती थी। नगा उग्रवाद एवं मिजो उग्रवाद को भी इसी कारण सीमापार से सहायता मिलती रही। शीतयुद्ध कि समय पूंजीवादी शक्तियों के विरुद्ध साम्यवादी देश वामपंथी उग्रवादियों को सहायता देते थे। अमेरिकी सरकार ने भी 1980 के दशक में दक्षिण-अमेरिकी देशों को साम्यवादियों के विरुद्ध आतंकवादी युद्ध में गुप्त रूप से सहायता दी थी।

अंतर्राष्ट्रीय उग्रवाद को सबसे अधिक प्रोत्साहन मध्यपूर्व के देशों की सरकारों से मिला। फिलिस्तीन में छापामार युद्ध के लिए 1960 के दशक में सीरिया और लीबिया ने प्रशिक्षण, धनराशि और शस्त्रास्त्र की सहायता दी। लीबिया के कर्नल गद्दाफी ने तो आयरलैंड के प्रोविजनल आईआरए के उग्रवादियों को हथियार और गोला-बारूद भी भेजा। अमेरिकी फ्लाइट-103 में 1988 में लीबिया की सहायता से विस्फोट किया गया। 1980 के दशक में ईरान इन दोनों देशों की श्रेणी में आ मिला। अयातुल्ला खुमैनी ने लेबनान स्थित फिलिस्तीनी हिज्ब अल्लाह संगठन को भरपूर सहायता दी। इस्लामी उग्रवादी बार-बार अमेरिका पर आरोप लगाते रहे हैं कि वह इस्राइल की छिपे तौर पर सहायता करता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में चरमपंथियों का आश्रय, प्रशिक्षण और हर प्रकार की सहायता देने के लिए पाकिस्तान कुख्यात है। उसकी गुप्तचर संस्था आईएसआई ने मुजाहिदीन, तालिबान और विश्व के अनेक स्थानों पर जेहाद के लिए युवकों की भर्ती की और अफगान युद्ध का संचालन करने के बार चरमपंथियों का दिग्दर्शन भी किया। पाकिस्तान की शह पर भारतीय कश्मीर में उग्रवादियों का आतंक आज भी जारी है। उधर बांग्लादेश ने पूर्वोत्तर क्षेत्र के भारतीय उग्रवादियों को, जो पूर्वोत्तर भारत में सक्रिय हैं, सहायता दी है। उसकी सरकार अपने बयानों में इस प्रकार की सहायता से साफ इंकार करती है, लेकिन इकबालिया बयानों में उल्फा, बोरो, एनएलएफटी, एटीटीएफ और मणिपुर के अनेक उग्रवादियों ने अपने आतंकवादी संगठन के बेस सिल्हट से लेकर ढाका, कोक्स बाजार, बंदरबन और चट्टग्राम पहाड़ियों में होना स्वीकारा है। बांग्लादेश में भारतीय उग्रवादियों की शरणस्थलियों और ट्रेनिंग कैंपों का विवरण स्वयं उग्रवादियों ने दिया। कुछ ने तो वहां के शीर्ष नेताओं से हुई बैठकों और उनसे मिले आश्वासनों का भी जिक्र किया है।

आतंकवाद का कारण

परिभाषात्मक पक्ष की तरह आतंकवाद के कारण बहुत ज्यादा बहस में है। एक सवाल बार-बार पूछा जाता है कि आतंकवाद के क्या कारण हैं। सामान्य तौर पर ऐसा कहा जा सकता है कि निम्न प्रमुख कारण हैं जिससे आतंकवाद को बढ़ावा मिलता है।

सामाजिक और राजनीतिक अन्याय

आमतौर पर लोग या आम जनता आतंकवाद का तब सहारा लेती है जब उन्हें लगता है कि वो एक सामाजिक या राजनीतिक या ऐतिहासिक गल्तियों के खिलाफ लड़ने का प्रयास कर रहे हैं। एक बिन्दु पर जाकर जब लोग पाते हैं कि उनके बुनियादी अधिकारों का हनन हुआ है तब वो आतंकवाद का सहारा लेने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

एक बार फिर वहां एक विश्वास है कि हिंसक माध्यम अंत को न्यायोचित ठहराते हैं। ऐसा आगे कहा जा सकता है हक आतंकी आतंक का रास्ता इसलिए अपनाते हैं क्योंकि उनके पास और कोई दूसरा रास्ता नहीं बचता है। फिर भी कुछ मामलों में जो लोग

आतंकी रणनीति को अपनाते है उनको इस बात के लिए तैयार किया जाता है कि इच्छित लक्ष्य को पाने के लिए हिंसा या फिर हिंसा का डर सबसे कारगर तरीका है।

जातीय राष्ट्रवाद

जातीय राष्ट्रवाद आतंकवाद का एक और दूसरा कारण है। एक आबादी की एक सरकार से अलग होने की इच्छा और फिर अपना एक देश बनाना एक आतंकी समूह के निर्माण का कारण बन सकता हैं। 20 सदी में यह बात अक्सर देखी जाती थी जब तमाम देश अपने उपनिवेशवादी मालिक से अलग हो रहे थे।

इसमें कई क्षेत्रों के कई देश थे जिन्होंने इस तरह से स्वतंत्रता हासिल की। जातीय राष्ट्रयवाद आतंकवाद का महत्वपूर्ण स्रोत बना रहेगा। जहां तक इतिहास के दस्तावेज की बात है तो लोग अक्सर इस तरह के आतंकवाद में शरण लेने की कोशिश किए हैं जिससे अपनी जाति के लिए न्याय हासिल कर सकें।

धर्म

धर्म को आतंकवाद के एक सबसे अहम कारक के तौर पर देखा जाता है। ऐसा कहा जा सकता है कि आमतौर पर आज के दौर में यह आम विश्वास है कि आतंकवाद धर्म के कारण हैं। हालांकि यह आतंकवाद के लिए मुख्य कारक नहीं है लेकिन यह बात पूरे विश्वास के साथ कहीं जा सकती है कि धर्म निश्चित तौर पर उसके कुछ प्रकारों के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जैसा कि हॉफमैन इन्साइट टेर्ररिज्म में इस बात को चिन्हित करते है कि धर्म राजनीतिक-जातीय राष्ट्रवाद से जुड़का संचालित होता है और यह बहुत सालों से आतंकवाद का एक कारण रहा है। वास्तव में धर्म आतंकवाद को विकसित करने के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज की दुनिया में आतंकवाद के हिस्से के तौर पर इस्लामिक कट्टरपन एक महत्वपूर्ण योगदान देता है।

ऐसा कहा जाना चाहिए कि आतंकवाद के चालक के तौर पर धार्मिक सिद्धान्त जो सही मायने में खतरा पेश करते हैं वह हमले के लिए उत्साहित करना जो किसी भी आतंकवाद से ज्यादा हिंसक होता है। अगले जन्म में पुरस्कार मिलने के वादे के साथ ज्यादातर आतंकी आत्मघाती बमबाजी के लिए तैयार हो जाते हैं और इसी तरह के दूसरी सभी रणनीतियों के लिए तैयार रहते हैं। इस तरह के मामलों में धर्म वास्तव में एक अफीम का काम करता है और लोग आतंकी गतिविधियों के एजेंट के तौर पर काम करने के लिए निर्देशित होते है।

निष्कर्ष-

एक आतंक मुक्त विश्व को हासिल करने के लिए दुनिया के सभी देशों को एग सहमति पर पहुंचना चाहिए। हमें यह बिल्कुल तय मान लेना चाहिए कि दुनिया में शांति की स्थापना ही केवल आखिरी समाधान है जिससे दुनिया की सारी समस्याएं हल हो सकती हैं जो विश्व के पैमाने पर सभी राष्ट्रों को परेशान कर रही है।

इससे भी आगे हमें इस लिए चिंतित होना चाहिए कि इस अस्थिर दुनिया में आतंकवाद एक और बढ़ने वाली समस्या है। मौजूदा समय की दुनिया आतंकवाद के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। यह आधुनिक समाज का अभिन्न हिस्सा बन गया है। ऐसा सामाजिक और आर्थिक कारणों से हुआ हो। यह बिल्कुल अच्छे से समझा जाता है कि वैश्विक समस्याएं आधुनिक दुनिया को प्रभावित करती हैं। आधुनिक दुनिया बहुत तेजी से बदलाव का अहसास कर रही है जिसने सभी देशों को एक दूसरे पर निर्भर बना दिया है और पूरी दुनिया एक गांव मे तब्दील हो गई है। समाज के विकास के साथ-साथ दुनिया और छोटी होती जा रही है और कोई घटना किसी भी इलाके में दुनिया के दूसरे हिस्सों पर गहरा असर छोड़कर जाती है। इस तरह से आतंकवाद ने दुनिया की राजनीति को और जटिल बना दिया है।

निष्कर्ष

1. क्लेफोर्ड ई. सीमोनसेन व जेरेमी आर. स्पिन्डलोब, टेरेरिज्म टुडे द पास्ट, द प्लेयर्स, द फ्रयूचर, न्यू जर्सी, प्रेन्टिस हॉल, 2000, पृ. 3.
2. कुलवंत कौर, (सं.), ग्लोबल टैरेरिज्म, इश्यूज, डाइमेन्शन्स एण्ड ऑपशन्स, नई दिल्ली, कनिष्क, 2005, पृ. 3-4.
3. डेशील जे0 एफ0 - फन्डामेंटल ऑफ आब्जेक्टिव साइकोलोजी पृ0 551
4. युवाचार्य डॉ. अशोक, डॉ. अनिल दत्त मिश्रा, टैरेरिज्म, ए ग्लोबल चौलेंज, नई दिल्ली, रिगल, 2009, पृ. 4-6.
5. Charters, David A., (ed.) (1990): Democratic response to International Terrorism, New Yark: Transnational publisher, p. 52.

स्वामी विवेकानंद के जीवन दर्शन की समसामयिक प्रासंगिकता

डॉ० गुलाब बाई मीना

सह आचार्य - राजनीति विज्ञान विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

सनातन धर्म के प्रवर्तक और समस्त वेदो के ज्ञाता, आध्यात्मिकता से परिपूर्ण स्वामी विवेकानंद भारत के एक ऐसे व्यक्तित्व थे जिन्होंने अपने महान विचारों और आध्यात्मिक ज्ञान के बल पर समस्त मानव जीवन और विशेषकर युवा जगत को एक नयी राह दिखाई है। उनके जन्मदिवस को भारत में युवा दिवस के रूप में मनाया जाता है। स्वामी विवेकानंद भारत के एक ऐसे पथ प्रदर्शक थे जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व को भारत की सभ्यता और संस्कृति से रूबरू कराया। उनके महान विचार आज भी युवाओं को प्रेरित करते है, वे हमेशा पुरुषार्थ यानि कर्म करने में विश्वाश करते थे।

स्वामी विवेकानंद का जीवन दर्शन मानव के लिए अत्यंत गौरवपूर्ण एवं प्रेरणादायक हैं। उन्होंने बताया कि जीवन एक संघर्ष है। इस संघर्ष में केवल समर्थ ही विजय होती हैं तथा असमर्थ नष्ट हो जाता हैं। अतः विजय प्राप्त करके जीवित रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की प्रत्येक चुनौती के साथ डटकर संघर्ष करना चाहिए। स्वामी जी तत्कालीन भारतीय जनता के कष्टों को देखकर बड़ा दुख होता था।

स्वामी विवेकानंद की नस नस में भारतीय तथा आध्यात्मिकता कूट-कूट कर भरी हुई थी। अतः उनकी शिक्षा दर्शन का आधार भी भारतीय वेदांत तथा उपनिषद ही रहे। वे कहते थे कि प्रत्येक प्राणी में आत्मा विराजमान है। इस आत्मा को पहचानना ही धर्म है। स्वामी जी का अटल विश्वास था कि सभी प्रकार का सामान्य तथा आध्यात्मिक ज्ञान मनुष्य के मन में ही है। स्वामी जी का कहना था कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को नहीं सिखाता बल्कि वो खुद सीखता है। बाहरी शिक्षक तो केवल सुझाव प्रस्तुत करता है। जिससे भीतरी शिक्षक को समझाने और सिखाने के लिए प्रेरणा मिल जाती हैं।

संकेताक्षर: जीवन दर्शन, वैश्विक, साम्राज्यवादी नैसर्गिक, करुणा, आध्यात्मिक।

प्रस्तावना - वास्तव में, जब-जब आध्यात्मिक, धार्मिक मूल्यों का अधोपतन, चारित्रिक और नैतिक सिद्धांतों का हास हुआ है, महान् द्रष्टा, संत, समाज-सुधारक विचक्षण और आध्यात्मिकता के उद्बोधक निरंतर हिंदुस्तान में आविर्भूत होते रहे हैं। इतना ही नहीं, जनमानस की जीवन-पद्धति को शक्तिशाली बनाने, उसका पुनरुद्धार करने, आध्यात्मिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करने और सनातन धर्म के चिरंतन सिद्धांतों के प्रचार करने के निमित्त अपने मस्तिष्क तथा अपनी शक्ति को न्योछावर करते रहे हैं।

उत्थान-पतन के दीर्घकालीन इतिहास में संभवतः हिंदुस्तान का इतना संकटपूर्ण समय कभी नहीं रहा, जितना कि उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध रहा था। हिंदुस्तान अंग्रेजी साम्राज्य का कंगाल और दयनीय गुलाम बनकर रह गया था। अंग्रेजी शिक्षा के जादू से संज्ञाशून्य-सा हुआ हिंदुस्तान का तरुण वर्ग वेद उपनिषदों और पुराणों की तीव्र भर्त्सना करने लगा था और इन ग्रंथों को फूहड़ अंध-विश्वासों का भंडार, अंधी श्रद्धाओं का पुलिंदा, कूड़ा-कचरा तथा शब्दाडंबरपूर्ण दंत-कथाएँ समझने लगा था।

संक्रमण की ऐसी स्थिति में बंगाल में अपनी समस्त आभा के साथ आध्यात्मिकता के एक देदीप्यमान सूर्य का उदय हुआ, जिसका नाम था- 'स्वामी विवेकानंद'। उस सूर्य ने चिरकालीन सुसुप्त जनता में जन-जागरण का शंख हूंका था, फलतः उद्भूत राष्ट्रोत्थान के युग का सूत्रपात हुआ।

भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत महापुरुषों में स्वामी विवेकानंद का अन्यतम स्थान है। उनका जन्म 12 जनवरी 1863 में कलकता में एक सभ्रांत परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त जो प्रसिद्ध वकील थे और माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। इनकी माता आध्यात्मिकता में पूर्ण विश्वास करती थीं, परन्तु इनके पिता स्वतंत्र विचार के गौरवपूर्ण व्यक्ति थे। इनके बचपन का नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था और बाद में महाराजा खेतड़ी अजीत सिंह के सुझाव पर नरेन्द्र नाथ ने अपना नाम स्वामी विवेकानंद रखा था।

शारीरिक दृष्टि से नरेन्द्र नाथ हृष्ट-पुष्ट और शौर्यवान थे। उनका शारीरिक गठन और प्रभावशाली मुखाकृति प्रत्येक को अपनी और आकर्षित कर लेती थी। रामकृष्ण के शिष्य बनने से पूर्व वे कुश्ती, मुक्केबाजी, घुड़सवारी और तैरने आदि में भी निपुणता प्राप्त कर चुके थे । उनकी बुद्धि विलक्षण थी, जो पाश्चात्य दर्शन में ढाली गयी थी।

उन्होंने देकार्त, ह्यूम, कांट, फाखते, स्पैजा, हेपिल, शौपेन्हावर, कॉमटे, डार्विन और मिल आदि पाश्चात्य दार्शनिकों की रचनाओं को गहनता से पढ़ा था। इन अध्ययनों के कारण उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक और विश्लेष्णात्मक हो गया था।

मानवतावाद एवं दरिद्रनारायण की अवधारणा - विवेकानंद एक मानवतावादी चिंतक थे, उनके अनुसार मनुष्य का जीवन ही एक धर्म है। धर्म न तो पुस्तकों में है, न ही धार्मिक सिद्धांतों में, प्रत्येक व्यक्ति अपने ईश्वर का अनुभव स्वयं कर सकता है। विवेकानंद ने धार्मिक आडंबर पर चोट की तथा ईश्वर की एकता पर बल दिया। विवेकानंद के शब्दों में "मेरा ईश्वर दुखी, पीडिघ्त हर जाति का निर्धन मनुष्य है।"

इस प्रकार विवेकानंद ने गरीबी को ईश्वर से जोडकर दरिद्रनारायण की अवधारणा दी ताकि इससे लोगों को वंचित वर्गों की सेवा के प्रति जागरूक किया जा सके और उनकी स्थिति में सुधार करने हेतु प्रेरित किया जा सके। इसी प्रकार उन्होंने गरीबी और अज्ञान की समाप्ति पर बल दिया तथा गरीबों के कल्याण हेतु कार्य करना राष्ट्र सेवा बताया। किंतु विवेकानंद ने वेद की प्रमाणिकता को स्वीकार करने के लिये वर्ण व्यवस्था को भी स्वीकृति दी। हालाँकि वे अस्पृश्यता के घोर विरोधी थे।

राष्ट्रवाद - आधुनिक काल में पश्चिमी विश्व में राष्ट्रवाद की अवधारणा का विकास हुआ लेकिन स्वामी विवेकानंद का राष्ट्रवाद प्रमुख रूप से भारतीय अध्यात्म एवं नैतिकता से संबद्ध है। भारतीय संस्कृति के प्रमुख घटक मानववाद एवं सार्वभौमिकतावाद विवेकानंद के राष्ट्रवाद की आधारशिला माने जा सकते हैं। पश्चिमी राष्ट्रवाद के विपरीत विवेकानंद का राष्ट्रवाद भारतीय धर्म पर आधारित है जो भारतीय लोगों का जीवन रस है। उनके लेखों और उद्धरणों से यह इंगित होता है कि भारत माता एकमात्र देवी हैं जिनकी प्रार्थना देश के सभी लोगों को सहृदय से करनी चाहिये।

वेदांत दर्शन - वेदांत दर्शन उपनिषद् पर आधारित है तथा इसमें उपनिषद् की व्याख्या की गई है। वेदांत दर्शन में ब्रह्म की अवधारणा पर बल दिया गया है, जो उपनिषद् का केंद्रीय तत्त्व है। इसमें वेद को ज्ञान का परम स्रोत माना गया है, जिस पर प्रश्न खड़ा नहीं किया जा सकता। वेदांत में संसार से मुक्ति के लिये त्याग के स्थान पर ज्ञान के पथ को आवश्यक माना गया है और ज्ञान का अंतिम उद्देश्य संसार से मुक्ति के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति है। वर्ष 1897 में विवेकानंद ने अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात् रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस मिशन ने भारत में शिक्षा और लोकोपकारी कार्यों जैसे- आपदाओं में सहायता, चिकित्सा सुविधा, प्राथमिक और उच्च शिक्षा तथा जनजातियों के कल्याण पर बल दिया।

नैतिकता - अतीत में आधुनिक मूल्यों का विकास न होने के कारण व्यैक्तिक एवं सामाजिक जीवन में नैतिकता प्रमुख रूप से धर्म एवं सामाजिक बंधनों पर आधारित होती थी, हालाँकि ऐसी स्थिति वर्तमान में भी मौजूद है लेकिन इसके साथ अन्य कारक भी नैतिकता के लिये प्रेरक का कार्य करते हैं। विवेकानंद ने आंतरिक शुद्धता एवं आत्मा की एकता के सिद्धांत पर आधारित नैतिकता की नवीन अवधारणा प्रस्तुत की। विवेकानंद के अनुसार, नैतिकता और कुछ नहीं, बल्कि व्यक्ति को एक अच्छा नागरिक बनाने में सहायता करने वाली नियम संहिता है। मानव नैसर्गिक रूप से ही नैतिक होता है, अत: व्यक्ति को नैतिकता के मूल्यों को अवश्य अपनाना चाहिये। आत्मा की एकता पर बल देकर विवेकानंद ने सभी मनुष्यों के मध्य सहृदयता एवं करुणा की भावना के प्रसार का प्रयास किया है।

युवाओं के लिये प्रेरणा - स्वामी विवेकानंद का मानना है कि किसी भी राष्ट्र का युवा जागरूक और अपने उद्देश्य के प्रति समर्पित हो, तो वह देश किसी भी लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। युवाओं को सफलता के लिये समर्पण भाव को बढ़ाना होगा तथा भविष्य की चुनौतियों से निपटने के लिये तैयार रहना होगा, विवेकानंद युवाओं को आध्यात्मिक बल के साथ-साथ शारीरिक बल में वृद्धि करने के लिये भी प्रेरित करते हैं।

युवाओं के लिये प्रेरणास्रोत के रूप में विवेकानंद के जन्मदिवस, 12 जनवरी को भारत में राष्ट्रीय युवा दिवस तथा राष्ट्रीय युवा सप्ताह मनाया जाता है। राष्ट्रीय युवा सप्ताह के एक हिस्से के रूप में भारत सरकार प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय युवा महोत्सव का आयोजन करती है और इस महोत्सव का उद्देश्य राष्ट्रीय एकीकरण, सांप्रदायिक सौहार्द्र तथा भाईचारे में वृद्धि करना है।

धर्मनिरपेक्षता पर विचार - विवेकानंद का विचार है कि सभी धर्म एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं, जो उनके आध्यात्मिक गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस के आध्यात्मिक प्रयोगों पर आधारित है। परमहंस रहस्यवाद के इतिहास में अद्वितीय स्थान रखते हैं, जिनके आध्यात्मिक अभ्यासों में यह विश्वास निहित है कि सगुण और निर्गुण की अवधारणा के साथ ही ईसाईयत और इस्लाम के आध्यात्मिक अभ्यास आदि सभी एक ही बोध या जागृति की ओर ले जाते हैं। शिकागो के अपने प्रवास के दौरान स्वामी विवेकानंद ने तीन महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर बल दिया।

पहला, उन्होंने कहा कि भारतीय परंपरा न केवल सहिष्णुता बल्कि सभी धर्मों को सत्य के रूप में स्वीकार करने में विश्वास रखती है। दूसरा, उन्होंने स्पष्ट और मुखर शब्दों में इस बात पर बल दिया कि बौद्ध धर्म के बिना हिंदू धर्म और हिंदू धर्म के बिना बौद्ध धर्म अपूर्ण है। तीसरा, यदि कोई व्यक्ति केवल अपने धर्म के अनन्य अस्तित्व और दूसरों के धर्म के विनाश का स्वप्न रखता है तो मैं हृदय की अतल गहराइयों से उसे दया भाव से देखता हूँ और उसे इंगित करता हूँ कि विरोध के बावजूद प्रत्येक धर्म के झंडे पर जल्द ही संघर्ष के बदले सहयोग, विनाश के बदले सम्मिलन और मतभेद के बजाय सद्भाव व शांति का संदेश लिखा होगा।

धर्म और तर्कसंगतता - भारत के अतीत के संबंध में विवेकानंद की व्याख्या तार्किक थी और यही कारण रहा कि जब वे पश्चिम से वापस लौटे तो उनके साथ बड़ी संख्या में उनके अमेरिकी और यूरोपीय अनुयायी भी आए। वर्ष 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की उनकी परियोजना में उन्हें इन अनुयायियों का सहयोग और समर्थन मिला। स्वामी विवेकानंद ने बल दिया कि पश्चिम की भौतिक और आधुनिक संस्कृति की ओर भारतीय आध्यात्मिकता का प्रसार करना चाहिये, जबकि वे भारत के वैज्ञानिक आधुनिकीकरण के पक्ष में भी मजबूती से खड़े हुए। उन्होंने जगदीश चंद्र बोस की वैज्ञानिक परियोजनाओं का भी समर्थन किया।

स्वामी विवेकानंद ने आयरिश शिक्षिका मार्गरेट नोबल (जिन्हें उन्होंने 'सिस्टर निवेदिता' का नाम दिया) को भारत आमंत्रित किया ताकि वे भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने में सहयोग कर सकें। स्वामी विवेकानंद ने ही जमशेदजी टाटा को भारतीय विज्ञान संस्थान और 'टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी' की स्थापना के लिये प्रेरित किया था। भारत को एक धर्मनिरपेक्ष ढाँचे की आवश्यकता थी जिसके चलते वैज्ञानिक और तकनीकी विकास भारत की भौतिक समृद्धि को बढ़ा सकते थे और विवेकानंद के विचार इसके प्रेरणा स्रोत बने।

गांधी, नेहरू पर प्रभाव - विवेकानंद ने आधुनिक भारत के निर्माताओं पर भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला जिन्होंने बाद में द्वि-राष्ट्र सिद्धांत को चुनौती दी। इन नेताओं में महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस शामिल थे। महात्मा गांधी द्वारा सामाजिक रूप से शोषित लोगों को 'हरिजन' शब्द से संबोधित किये जाने के वर्षों पहले ही स्वामी विवेकानंद ने 'दरिद्र नारायण' शब्द का प्रयोग किया था जिसका आशय था कि 'गरीबों की सेवा ही ईश्वर की सेवा है।'

वस्तुत: महात्मा गांधी ने यह स्वीकार भी किया था कि भारत के प्रति उनका प्रेम विवेकानंद को पढ़ने के बाद हजार गुना बढ़ गया। स्वामी विवेकानंद के इन्हीं नवीन विचारों और प्रेरक आह्वानों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए उनके जन्मदिवस को 'राष्ट्रीय युवा दिवस' घोषित किया गया।

शिक्षा पर बल - स्वामी विवेकानंद का मानना है कि भारत की खोई हुई प्रतिष्ठा तथा सम्मान को शिक्षा द्वारा ही वापस लाया जा सकता है। किसी देश की योग्यता तथा क्षमता में वृद्धि उस देश के नागरिकों के मध्य व्याप्त शिक्षा के स्तर से ही हो सकती है। स्वामी विवेकानंद ने ऐसी शिक्षा पर बल दिया जिसके माध्यम से विद्यार्थी की आत्मोन्नति हो और जो उसके चरित्र निर्माण में सहायक हो सके। साथ ही शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिसमें विद्यार्थी ज्ञान प्राप्ति में आत्मनिर्भर तथा चुनौतियों से निपटने में स्वयं सक्षम हों। विवेकानंद ऐसी शिक्षा पद्धति के घोर विरोधी थे जिसमें गरीबों एवं वंचित वर्गों के लिये स्थान नहीं था।

निष्कर्ष - स्वामी विवेकानंद का जन्म 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ लेकिन उनके विचार और जीवन दर्शन आज के दौर में अत्यधिक प्रासंगिक हैं। विवेकानंद जैसे महापुरुष मृत्यु के बाद भी जीवित रहते हैं और अमर हो जाते हैं तथा सदियों तक अपने विचारों और शिक्षा से लोगों को प्रेरित करते रहते हैं। मौजूदा समय में विश्व संरक्षणवाद एवं कट्टरवाद की ओर बढ़ रहा है जिससे भारत भी अछूता नहीं है, विवेकानंद का राष्ट्रवाद न सिर्फ अंतर्राष्ट्रीयवाद बल्कि मानववाद की भी प्रेरणा देता है।

इसके साथ ही विवेकानंद की धर्म की अवधारणा लोगों को जोड़ने के लिये अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि यह अवधारणा भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्व सर्वधर्म समभाव पर जोर देती है। यदि विश्व सर्वधर्म समभाव का अनुकरण करे तो विश्व की दो-तिहाई समस्याओं और हिंसा को रोका जा सकता है। भारत की एक बड़ी संख्या अभी भी गरीबी में जीवन जीने के लिये मजबूर है तथा वंचित समुदायों की समस्याएँ अभी भी वैसी ही बनी हुई हैं यदि विवेकानंद की दरिद्रनारायण की संकल्पना को साकार किया जाए तो असमानता, गरीबी, गैर-बराबरी, अस्पृश्यता आदि से बिना बल प्रयोग किये ही निपटा जा सकता है तथा एक आदर्श समाज की संकल्पना को साकार किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. स्वामी विवेकानंद एक जीवनी, आशा प्रसाद, सिंधु पब्लिकेशन नयी दिल्ली, बम्बई
2. भारत में विवेकानंद, अनुवादक - पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर
3. विवेकानंद साहित्य, जन्मशती संस्करण प्रथम खंड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता
4. मेरे गुरुदेव, स्वामी विवेकानंद एकादश संस्करण, रामकृष्ण मठ, नागपुर
5. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन-आचार्य डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
6. उपर्युक्त
7. उपर्युक्त
8. उपर्युक्त
9. ज्ञानमार्ग कर्मयोगी स्वामी विवेकानंद, देवकीनन्दन गौतम, दयाल प्रकाषन, आगरा

लोक लुभावनवाद राजनीति के दौर में भारतीय प्रशासन के समक्ष चुनौतियां

डॉ० ज्ञानचंद भारती

सह आचार्य- लोक प्रशासन, मा.ला.व. राजकीय महाविद्यालय, भीलवाड़ा

प्रस्तावना

माले ए मुफ्त दिल-ए-बेरहम। इस पुरानी कहावत ने वर्तमान भारतीय राजनीति की सटीक व्याख्या की है। भारत में राजनीतिक दल भारतीय मतदाताओं को विभिन्न माध्यमों से लुभाने का प्रयास कर रहे है जिसमें प्रचार तंत्र (सोशल व डिजीटल मीडिया) के साथ-साथ मुफ्त उपहार या फ्रीबीज (Freebies) का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। इस कालखण्ड में मुफ्त उपहार या फ्रीबीज (Freebies) का स्वरूप परम्परागत मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान से आगे बढ़कर मोबाइल, लैपटोप, साईकिल, आर्थिक हस्तांतरण (Direct Bank Transfer) तक जा पहुँचा है। फ्रीबीज (Freebies) का बढ़ता प्रभाव न केवल राजनीतिक संवाद को दूषित कर रहा है वरन् स्वस्थ लोकतंत्र के लिए आवश्यक विवेकपूर्ण व्यवहार को भी शून्य में बदलता जा रहा है ।

परिकल्पना (Hypothesis)

1. विगत दो दशकों में भारतीय उपमहाद्वीप में हुए चुनावी प्रक्रिया में लोक लुभावन मुद्दों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुआ है।
2. लोक लुभावन वादों/मुफ्त उपहार या फ्रीबीज (Freebies) /रेवडियों ने चुनावी प्रक्रिया की तर्कसंगतता को क्षीण किया है।
3. मुफ्त उपहार या फ्रीबीज (Freebies) के प्रभाव ने मतदाताओं को लोक लुभावनवाद की राजनीति की ओर अग्रसर किया है।
4. मुफ्त उपहार या फ्रीबीज (Freebies) का उपयोग कर राजनीतिक दलों ने अर्थव्यवस्था एवं प्रशासन के समक्ष उनके प्रबंध न की चुनौतियां उत्पन्न की है।
5. लोक लुभावनवाद की राजनीति प्रशासनिक प्रक्रियाओं को दुष्कर बनाती है जिसके कारण प्रशासनिक तंत्र की कार्य क्षमता का क्षीण होती है।

शोध प्रविधि (Research Methodology)

प्रस्तुत अध्ययन अनुभवमूलक है, जिसमें परिकल्पनाओं का सत्यापन एवं निष्कर्षो का विश्लेषण आंकडों के आधार पर किया जा सकेगा। इस अध्ययन के लिए द्वितीयक आंकडों का संकलन प्रकाशित रिपोर्ट, पुस्तकें, आलेख एवं वेबसाइटों पर प्रकाशित सामग्री, समाचारों से लिया जायेगा। इन आंकडों का विश्लेषण विभिन्न सांख्यिकीय विधिओं द्वारा किया जाकर घटकों के मध्य सह-संबंधों का अध्ययन किया जायेगा एवं परिकल्पनाओं का सत्यापन या संशोधन किया जा सकेगा।

लोक लुभावनवाद की राजनीति का अर्थ एवं तत्व

लोक लुभावनवाद राजनीतिक रूख की एक श्रृखंला है जो लोगों (Peoples) को केन्द्र में रखती है एवं अभिजात्य वर्ग (Elite) की खिलाफत करती है। यह सता में स्थापित राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रतिष्ठान को अभिजात्य वर्ग मानकर उसके खिलाफ दुष्प्रचार करती है। इस प्रचार तंत्र का नेतृत्व एक करिश्माई नेता के द्वारा किया जाता है जो व्यवस्था में व्याप्त सभी समस्याओं का समाधान करने का दावा करता है।

अपनी वैचारिकता को अमलीजामा पहनाने के लिए यह सामान्य हित/इच्छा की दुआई देता है एवं प्रत्येक कार्य को राष्ट्रवाद से जोड़कर प्रस्तुत करता है। जन सामान्य की जटिल समस्याओं का सरल हल बता कर जनसमूह में अपने लिए विशेष स्थान बनाता है। समावेशी लोक लुभावनवाद सभी वर्गों को शामिल करते हुए एक सर्व समावेशी समूह (Peoples) की संकल्पना पर काम करता है। जबकि बहष्करणीय स्वरूप में यह किसी विशेष सामाजिक सांस्कृतिक वर्ग की वकालात करता है।[1]

लोक लुभावनवाद की राजनीति का प्रभाव

2014 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी ने अपने घोषणा पत्र में राष्ट्रीय स्वास्थय मिशन के तहत सभी को नि:शुल्क चिकित्सा सुविधाएं, इन्दिरा आवास योजना को बेहतर बनाते हुए 2017 तक सभी झुग्गी झोपड़ पटिटयों में पक्के मकान, महिला सशक्तीकरण, काले धन पर रोक लगाने के लिए पारदर्शी प्रक्रिया अपनाने, हाई स्पीड ट्रेन जैसे वादे जनता किये थे। लेकिन जनता ने बीजेपी के बुलेट ट्रेन, हर राज्य में AIIMS, 2022 तक सभी घरों को पक्का बनाने, 01 लाख नौकरियों हर साल, महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण, काला धन आने से प्रत्येक के खाते में 15 लाख रूपया, राममंदिर बनाने, समान नागरिक संहिता, धारा 370 हटाने, मैं देश नहीं बिकने दूंगा मैं देश नहीं झुकने दूंगा, प्रधान सेवक बनकर सेवा करना जैसे वादों के प्रचार प्रसार के दम पर 31 प्रतिशत वोट देते हासिल करते हुए 282 सीटों पर जीत दर्ज की। वही कांग्रेस 19.5 प्रतिशत वोट प्राप्त कर केवल 48 सीटें ही पा सकी ।

इन चुनावी वादों में काला धन आने से प्रत्येक के खाते में 15 लाख रूपया, राममंदिर बनाने, समान नागरिक संहिता, धारा 370 हटाने, मैं देश नहीं बिकने दूंगा मैं देश नहीं झुकने दूंगा के साथ हिन्दुत्व के तड़के ने बीजेपी की पौ बारह कर दी। इस चुनाव अभियान में डिजीटल प्लेटफॉर्म ने राजनीतिक पार्टियों की पहुँच आम आदमी तक कर दी। जहॉ पर सोशल मीडिया ने नेताओं को चमत्कारिक युग पुरूष बना दिया। विजयी पार्टी के नेता ने लोक लुभावनवादसे कांग्रेस को चारों खाने चित करते हुए उसकी 7 दशक पुरानी राजनीतिक समझ को बौना साबित कर दिया। मीडिया की इतनी सुनियोजित भूमिका पहले कभी नहीं देखी गई।

इस भांति 2014 का भारतीय लोकसभा का चुनाव राजनीतिक परिदृश्य की वह घटना है जिसका वैश्विक पटल पर विश्लेषण एवं शोध किया जाने लगा। इसी क्रम में 2019 के लोक सभा चुनावों में किसान निधि के 6000 रूपयों का (Direct Bank Transfer) हस्तांतरण, किसानों की आय दुगुनी करने, राममंदिर बनाने, समान नागरिक संहिता, धारा 370 हटाने, मैं देश नहीं बिकने दूंगा मैं देश नहीं झुकने दूंगा, राष्ट्रवाद बनाम देशद्रोही, नीच राजनीति, जैसे नारों के सहारे बीजेपी ने 37.5 प्रतिशत वोट प्राप्त करते हुए 303 सीटों पर जीत दर्ज की।

वर्ष 2014 एवं 2019 के लोकसभा चुनाव उस लोक लुभावनवाद की राजनीति के अगले पायदान थे जिसकी शुरूआत 2011 में दक्षिण भारतीय राज्य तमिलनाडु से हुई थी। जिसमें मुख्यमंत्री जयललिता ने लोगों को मुफ्त सुविधाएं एवं वस्तुएं बांटी और 2016 के विधानसभा चुनावों में जीत दर्ज की। इस के पूर्व 2015 में दिल्ली में आम आदमी पार्टी ने मुफ्त सुविधाओं एवं वस्तुओं की झड़ी लगा दी, जिसमें मुफ्त बिजली, पानी, बस यात्रा जैसे वादों ने आम आदमी पार्टी को दिल्ली की सता पर काबिज किया।

लोक लुभावनवाद का सकारात्मक प्रभाव: सरकार अपने संवैधानिक दायित्वों (Directive Principles) को पूरा करने के लिए लोक लुभावनवाद का सहारा लेती है-

1. कल्याणकारी योजनाओं का आधार: खाद्य सुरक्षा के अर्न्तगत पीडीएस में मुफ्त अनाज एवं 2 रूपये किलो चावल एवं 1 रूपये किलोगेहूँ का वितरण
2. मनरेगाके अर्न्तगत 100 दिन का रोजगाार
3. शहरी क्षेत्रों में भी 100 का रोजगार
4. सामाजिक एवं आर्थिक विकास के अर्न्तगत बीमा, पेंशन एवं रोजगाार

5. कुपोषण से मुक्ति के लिए मिड डे मील
6. संस्थागत आर्थिक विकास के लिए सड़क, बाँध एवं रेलवे परियोजनाएं
7. राजनीतिक परिक्षेत्र में जन भावना का विकास

लोक लुभावनवाद का नकारात्मक प्रभाव:

1. सार्वजनिक धन का अपवाह/दुरूपयोग: फ्रीबीज/मुफ्त उपहार सार्वजनिक धन, जो कि करदाताओं से संकलित किया जाता है, का अनार्थिक क्रियाओं में अपव्यव होने से अपवाह/दुरूपयोग के समान है।
2. किसी के लिए उपहार किसी के लिए आपदा: सरकार फ्रीबीज/मुफ्त उपहार के लिए औद्योगिक एवं वाणिज्यिक संस्थानों से अनुबंध करती है जिससे इन संस्थानों को कम कीमत पर सेवाएं उपलब्ध करवानी पड़ती है। परिणामत: ये संस्थान अपनी सेवाओं का स्तर गिरा देते है।
3. राजकोषीय घाटे में वृद्धि: सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार पर लगातार खर्च करने पर राजस्व में कमी होती रहती है।
4. मतदाताओं का सूचित निर्णय में विकृति: चुनाव अभियानों में विवेकहीन फ्रीबीज/मुफ्त उपहार का वितरण एवं पेशकश मतदाताओं में विवेकहीन निर्णय को बढावा देता है।
5. अस्थायी प्रकृति के होने के कारण स्थायी परिसम्पतियों का निर्माण में असक्षम, फलत: आधारभूत संरचनात्मक विकास में पिछडापन।
6. गरिमापूर्ण जीवन का अभाव: नागरिकों में सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार के कारण राष्ट्र एवं समाज के प्रति गौरव का भान नहीं होने से नागरिक अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति उदासीनता ।
7. निजी वस्तु आधारित सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार नागरिकों में कोई भी सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का विकास नहीं करते है जिससे व्यक्ति कामचोर एवं मुफ्तखोर बनता जाता है।[2]

प्रशासनिक चुनौतियां:

1. सरकारी कार्यकलापों में वृद्धि: लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी स्वरूप ने राज्यों के कार्य क्षेत्र का न केवल विस्तार किया है वरन् उसकी उपादेयता एवं अपरिहार्यता ने प्रशासनिक तंत्र को मनुष्य के जन्म से पूर्व से लेकर मृत्यु पश्चात के कार्यक्रमों तक अंगीकृत कर दिया है। ऐसे में प्रशासनिक कियाओं में जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं छुटा है जिसके संबंध में प्रशासन चिन्ता न करे या उसका प्रबंध ना करें। रही सही कसरराजनीतिक दलों द्वारा नागरिकों में सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार ने पूरी कर दी है। नागरिकों में सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार के निर्धारण, खरीद एवं सुनियोजित वितरण प्रशासन के लिए टेढी खीर बनी हुई।

2. आर्थिक कुप्रबंधन: सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार पर लगातार खर्च करने पर राजस्व में कमी होती रहती है। राजकोषीय उतरदायित्व एवं बजट प्रबंधन अधिनियम 2003 के अनुसार 2009 तक राजकोषीय घाटा शून्य तक लाना था किन्तु नागरिकों में सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार के कारण सरकार का राजकोषीय घाटा बढ़ता रहता है।[3] आर्थिक कुप्रबंधन का आलम यह है कि सरकार हमेशा ऑवर ड्राफ्ट का शिकार रहती है। जब सरकारराजकोषीय घाटा की पूर्ति नहीं कर पाती है जो सार्वजनिक ऋण के माध्यम से धन जुटाती है।[4] जब सरकार के सभी उपाय निष्फल हो जावे तो वह मुद्रा अवमूलन कर मुद्रा स्फीति का सहारा लेती है। फलत: रूपया कमजोर होता है एवं मंहगाई बढ़ती है। सरकार का वितीय ढांचा चरमरा जाता है।

3. सार्वजनिक संस्थानों की सेवा एवं गुणवता का संकट: सरकार फ्रीबीज/मुफ्त उपहार के लिए औद्योगिक एवं वाणिज्यिक संस्थानों से अनुबंध करती है जिससे इन संस्थानों को कम कीमत पर सेवाएं उपलब्ध करवानी पड़ती है। राजकीय उपक्रमों की अनआर्थिक स्थिति एवं सेवाओं की कम कीमत होने से यह पहले से ही घाटे में चल रहे होते है ऐसे में इनको सब्सिडी की मार झेलनी पडती है। परिणामत: ये संस्थान अपनी सेवाओं का स्तर गिरा देते है। बिजली, पानी, दूरसंचार, गैस जैसे क्षेत्रों में सरकार अपनी लागत भी मुश्किल से निकाल पाती है।[5]

4. वितीय संसाधनों का बंटवारा प्रभावहीन: संविधान के अनुच्छेद 280 के अनुसार वित आयोग द्वारा केन्द्र एवं राज्यों में वितीय संसाधनों एवं एकत्र करों का बंटवारा किया जाता है, जो विकास एवं मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपयोग किया

जाना चाहिए किन्तु सरकार फ्रीबीज/मुफ्त उपहार के लिए राशि खर्च कर विकास के लिए और अधिक धन की मांग रिजर्व बैंक या केन्द्र से करती है।[6] योजना आयोग/वर्तमान में नीति आयोग द्वारा विभिन्न योजनाओं के निर्धारण एवं बजट आंवटन में इन सरकारी फ्रीबीज/मुफ्त उपहार की झलक साफ रूप से दिखाई देती है।[7] आर्थिक सामाजिक विकास की योजनाएं अपने मूल स्वरूप को छोड़कर राजनीतिक पार्टी की इच्छा पूर्ति का साधन मात्र रह जाती है।

5. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का परीक्षण: नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक अपने लेखा परीक्षण में सरकार द्वारा किये सार्वजनिक धन की उपयोगिता का परीक्षण करते हुए सरकार की नीतियों की आलोचना करता है ताकि सरकार द्वारा किया व्यय सामान्य जन की आशा अनुरूप हो एवं सामान्य हित की पूर्ति में सहायक हो।[8] सीएजी की रिर्पोट पर संसद में बहस-चर्चा होने के बाद प्रशासनिक कार्यवाही तय होती है लेकिन किसी भी सरकार द्वारा कभी भी इनफ्रीबीज/मुफ्त उपहार पर रोक लगाने के लिए गंभीर प्रयास नहीं किये गये। ऐसे में सीएजी की रिर्पोट एक खानापूर्ति बन कर रह जाती है। ऐसे में प्रशासन के लिए भी कोई नजीर नहीं होती है, अत: वह अपव्यय और धन के अपवाह पर रोक लगाने में असमर्थ होता है।

6. मूलभूत अधि संरचनाओं/इन्फ्रास्ट्राकचर का अभाव: सरकार की नीतियों, जो कि उनके घोषणा पत्र के अनुरूप तय होती है, कार्यक्रमों का स्वरूप सतासीन पार्टी के अनुरूप होगा। जब सरकार में शामिल पार्टी अपने एजेण्डे के अनुरूप कार्य करती है तो इससे सार्वभौमिक विकास एवं मूलभूत अधि संरचनाओं/इन्फ्रास्ट्राकचर के संबंध में आशा करना बेवकूफी होगा। मूलभूत अधि संरचनाओं/इन्फ्रास्ट्राकचर को दीर्घकालीन योजना मानकर उससे दूरी बना ली जाती है। प्रशासन चाहकर भी इनको प्राथमिकता में शामिल नहीं कर पाता है। नुकसान आम जन का होता है लेकिन वह आत्ममुग्धता में सच देख नहीं पाता है।

7. आयोजना में अव्यवहारिक तत्वों का समावेश: आयोजना एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक प्रक्रिया है जिसमें उपलब्ध संसाधनों न केवल अनुमान लगाया जाता है वरन इन संसाधनों का समुचित उपयोग किया जाता है।[9] जब आपके उपलब्ध संसाधन आपके आशानुरूप कार्यो में समायोजित नहीं किये गये है तो आशा अनुरूप परिणाम भी संभव नहीं जान पड़ते है। योजना आयोग सतासीन पार्टी एवं प्रधानमंत्री का प्रवक्ता बनकर रह जाता है। ऐसे में प्रशासन भी सता अनुकूल कार्यक्रम का संधारण करता है एवं सरकार की जी हजूरी करता है। वह आयोजना के मौलिक कार्य को भूलकर लोक लुभावन कार्यो को तरजीह देता है।

8. विदेशी निवेश के लिए आकर्षण की अनुपलब्धता: एलपीजी के दौर में विश्व एक गांव के रूप में परिवर्तित हो गया है। ऐसे दौर में एक देश दूसरे देश से न केवल वस्तुओं का आदान प्रदान करता है वरन एक दूसरे के आर्थिक विकास एवं प्रौद्योगिकी में भी साझेदार है। ऐकला चालो रे की नीति वर्तमान समय में संभव नहीं है। एक देश दूसरे देश में निवेश करने से पूर्व देश में मूलभूत अधि संरचनाओं/इन्फ्रास्ट्राकचर का आंकलन करता है और उनकी उपस्थिति विदेशी निवेशकर्ताओं में आकर्षण पैदा करती है।मूलभूत अधि संरचनाओं/इन्फ्रास्ट्राकचर की कमी उस देश में होने वाले विदेश निवेश को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। प्रशासन कितना भी अच्छा प्रतिवेदन प्रस्तुत करें लेकिन मूलभूत अधि संरचनाओं/ इन्फ्रास्ट्राकचर के अभाव में उसके प्रयासों को सफलता मिलने की संभावना क्षीण ही रहती है।

9. स्वतंत्र एवं स्वच्छ चुनाव: चुनाव भारतीय लोकतंत्र की जीवन रेखा है। बिना चुनाव लोकतंत्र की कल्पना करना संभव नहीं है। चुनाव वह प्रक्रिया है जहां दलों के कार्यक्रमों, विचारधारा, लोककप्रियता, प्रासंगिकता एवं स्वीकार्यता का परीक्षण होता है। प्रो मुनरो के शब्दों में ''लोकतंत्रात्मक शासन दलीय प्रणाली का दूसरा नाम हैं''[10] लोक लुभावनवाद की राजनीति में दलों के कार्यक्रमों पर नियंत्रण न केवल असंभव है वरन उनकी ऑडिट भी संभव नहीं है। लोक लुभावनवाद की राजनीति में चुनाव प्रचार के दौरान राजनीतिक दलों द्वारा जैसा व्यवहार किया जाता है वह सीधे तौर पर आचार संहिता का उल्लंघन है और चुनावी प्रक्रिया को पूर्णरूपेण दूषित करने के समान है। लोक लुभावने वादों का अंबार लग जाता है और चुनाव आयोग उनका परीक्षण करके उनको दण्डित करने में कभी कभी अपने को असहाय पाता है। प्रशासन की पूरी शक्ति केवल चुनाव कराने में खर्च हो जाती है। ऐसे में प्रशासन के सामनेस्वतंत्र, निष्पक्ष एवं स्वच्छ चुनाव कराना एक चुनौति है।

10. सामाजिक सौहार्द्य को बनाये रखना: लोक लुभावनवाद की राजनीति में जब राजनीतिक दल किसी विशेष समुदाय को अपने से जोड़ लेते है तो समाज के अन्य समुदाय उससे ईर्ष्यावश विपरित दिशा में गतिमान हो जाते है। अपने समुदाय के हितों से

प्रेरित हो एक समुदाय दूसरे का दुश्मन समान व्यवहार करता है। ऐसे में प्रशासन के सामने सामाजिक सौहार्द्बनाये रखना एक चुनौति है।

11. कानून व्यवस्था बनाये रखना: नागरिकों में सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार के निर्धारण, खरीद एवं सुनियोजित वितरण के दौरान प्रशासन को अलग से व्यवस्था करनी पड़ती है। लोक लुभावनवाद की राजनीति में जब भीड़ उमड़ पडती है तो प्रशासन के सामने कानून व्यवस्था बनाये रखना एक चुनौति से कम नहीं है। नेताओं द्वारा अपनी छवि चमकाने एवं भीड़ को आकर्षित करने की मंशा प्रशासन के सामने एक चुनौति है।

12. सुशासन (गुड गवर्नेंस) की संकल्पना का प्राभूत: वर्तमान दौर में प्रशासन में नये उभरते आयामों मेंनव लोक प्रबंध अवधारणाउद्यमी सरकार (Entrepreneurial Government) है। यह अवधारणा e-Governance के साथ घुली मिली हुई है जिसे आजकल SMART Governmentकहा जा रहा है जिसका अर्थ है:

S = Small (नौकरशाही का आकार कम करना)

M = Morale (प्रशासन में नैतिकता स्थापित करना)

A = Accountable (लोकसेवाओं में जवाबदेयता लाना)

R = Reliable/Responsive (जनता में प्रशासन के प्रति विश्वास उत्पन करना)

T = Transparent (सरकारी नीतियों, निर्णय, कार्योतथा सेवाओं में पारदर्शिता लाना)

इस भांति सुशासन जनता के प्रति न केवल संवेदनशील रहता है वरन् वह पारदर्शिता व जवाबदेयता भी उत्पन्न करता है। अर्थात ''अभिशासन वह है जिसमें राजनीतिक जवाबदेयता, नौकरशाही क्रिया शीलता व जवाबदेयता, स्वतंत्रता की उपलब्धता, कानूनों का पालन, पारदर्शिता पूर्वक सूचनाओं की उपलब्धता, प्रभावी तथा कुशल प्रशासन और सरकार एवं लोगों के मध्य सहयोग परिलक्षित होता है।[11]

समाधान:

लोक लुभावनवाद की राजनीति में जब राजनीतिक दल प्रशासन एवं समाज को प्रभावित करने लगे एवं स्थापित प्रक्रियाओं को दूषित करने लगे तो उन पर प्रतिबंध के साथ-साथ अनेक उपायों को प्राभूत करना चाहिए-

1. मतदाताओं को सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार एवं कल्याण में अन्तर समझाना
2. राजनीतिक दलों द्वारा धन के तार्किक उपयोग की आचार संहिता का निर्माण एवं प्रकाशन
3. राजनीतिक दलों द्वारा उगाहे गये धन का ब्यौरा सार्वजनिक करना
4. मतदाता जागरूकता
5. सहकारी संघवाद
6. केन्द्र राज्य संबंधों में Subsidiarityका प्रोत्साहन
7. न्यायिक हस्तक्षेप
8. चुनाव आचार संहिता का कठोरता से पालन
9. सब्सिडी, फ्रीबीज/मुफ्त उपहार के बजाय कौशल विकास के पर जोर
10. सरकार एवं राजनीतिक दलों की प्रत्येक स्तर पर सोशल ऑडिट
11. लोक लुभावनवाद की राजनीति के मामलों के निर्धारण के लिए अलग विधान

संदर्भ सूची

1. मुडडे और रोविरा काल्टवासेर 2013 पेज 149
2. Sop or Welfare Deabte on : Freebie, The Hindu

3. कटारिया डॉ सुरेन्द्र, भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, 2008 पेज 257
4. पूर्वाक्त 270
5. अवस्थी एवं अवस्थी, भारतीय प्रशासन,लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2003 पेज 190
6. डीडी बसु, भारत का संविधान, लेक्सिस नेक्सिस, नई दिल्ली, 2018 पेज 416
7. श्रीराम माहेश्वरी, इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, ऑरियन्ट लॉगमैन, नई दिल्ली, 1995, पेज 117.121
8. श्रीराम माहेश्वरी, भारतीय प्रशासन, ऑरियन्ट लॉगमैन, नई दिल्ली, , 2001, पेज 437
9. श्रीराम माहेश्वरी, इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, ऑरियन्ट लॉगमैन, नई दिल्ली, 1995, पेज 116
10. डॉ बी एल फडिया, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पेज 252
11. कटारिया डॉ. सुरेन्द्र, प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबंध, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009, पृष्ठ 96

भारत में न्यायिक सक्रियतावाद की प्रासंगिकता

महेन्द्र प्रताप बॉयला

सह आचार्य-राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश- पिछले तीन दशकों से न्यायिक सक्रियता ने न्यायिक प्रक्रिया के लिए एक नये क्षेत्र को जन्म दिया है एवं न्याय चाहने वाले असंख्य लोगों के लिए नई आशा प्रदान की है। जनहित याचिका की वैधता एवं इसके विविध पहलुओं की महत्ता, जिनका संबंध अद्यतन आवश्यताओं से हैं, नव सामाजिक आंदोलन के रूप में हैं एवं इस संबंध में न्यायालयों ने बहुत सारे निर्णय दिये है, जिनसे जनहित याचिकाओं के अभ्युदय एवं इससे संबंधित समस्याओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है।

इस प्रकार जनहित याचिका संबंधी धारणा जो न्यायिक सक्रियता द्वारा पोषित है, धीरे-धीरे विशेष महत्व की विषय वस्तु बन गई हैं तथा संवैधानिक एवं विधिक उपचार के क्षेत्र में इसका महत्वपूर्ण एवं सम्मानजनक स्थान स्थापित हो चुका है, जो सामाजिक न्याय की सार्थकता को प्रभावित कर रहा है तथा सामाजिक समस्याओं एवं जटिलताओं का हल करने हेतु सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु तात्विक न्याय को क्रियान्वित करने के लिए कटिबद्ध है।

लोकहित मुकदमा जनहित याचिका की अवधारणा का उद्‌भव एवं विकास संविधान-निर्माताओं के चिर-प्रतीक्षित सपनों को साकार बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जिसके माध्यम से समाज के दीन-हीन, असहाय लोगों के लिए न्यायालय के दरवाजे खोलने का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

प्रस्तावना- 'न्याय' का अर्थ केवल 'कानूनी न्याय न देकर संविधान की प्रस्तावना में वर्णित 'सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय है। इस तरह सामान्य नागरिकों को व्यापक न्याय दिलाने के विषय में न्यायपालिका राज्य की सहभागी बन रही है। यह सच है कि भारत जैसे विविधता वाले बड़े देश में सभी वर्ग के लोगों को पूर्ण न्याय मिलना कठिन है, फिर भी इसमें संदेह नहीं है कि जनहितवाद इस दिशा में एक सही प्रयास है तथा शीघ्र और सुलभ न्याय दिलाने के लक्ष्य की ओर बढ़ने का एक सोपान है।

भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग, जो सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण वर्षो से उपेक्षित रहा है, न्यायिक सक्रियतावाद की अवधारणा एवं जनहितवाद की नई तकनीक से पर्याप्त रूप से लाभान्वित हुआ है और स्वयं को देश की मुख्यधारा में समायोजित करने में पर्याप्त सीमा तक सफल हुआ है।

यद्यपि न्यायिक सक्रियता की अवधारणा एवं इसके उपकरण के रूप में जनहितवादों की आलोचनाओं में कुछ सच्चाई हो सकती है लेकिन यह निर्विवाद है कि न्यायिक सक्रियता एवं जनहित के मामलों ने विशेषत: गरीबों और साधनहीन लोगों में एक आशा की किरण अवश्य जगाई है जिससे वह अपने मानवीय और विधिक अधिकारों के प्रति आश्वस्त हुए हैं। जनहितवाद की पद्धति को न्यायपालिका का एक ऐसा प्रयास कहा जा सकता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति को शासन तंत्र के अन्याय और उपेक्षापूर्ण कार्यो से राहत मिली है।

प्रसन्नता की बात यह है कि पिछले कुछ समय से सर्वोच्च न्यायालय ने समय की माँग को पहचाना है तथा भारतीय जनता की आवश्यकता को समझा है। उसने यह मान लिया है कि 'न्याय' या 'जस्टिस' का स्वरूप केवल कानूनी न होकर सामाजिक एवं आर्थिक भी है। उसने यह स्वीकार कर लिया है कि न्याय व्यवस्था को आम जनता की जीवन दशा को सुधारने तथा उसे मूलभूत मानवीय अधिकार दिलाने के लिए ''सक्रिय भागीदार'' बन जाना चाहिए।

इस 'सक्रिय' या 'क्रिया प्रधान दृष्टिकोण को अपनाने के कारण भारतीय न्याय व्यवस्था का स्वरूप बदलता जा रहा है और वह निषेधात्मक के स्थान पर विधेयात्मक अथवा रचनात्मक बन गयी है। उसकी यह मान्यता है कि कानून अतीत से चिपकी हुई

रूढ़िवादी स्थायी व्यवस्था मात्र नहीं है तथा गरीबों को इस न्याय व्यवस्था में सम्मानजनक भागरीदार बनाया जाना चाहिए। इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक सक्रियता की अवधारणा का प्रयोग करते हुए अनेक क्षेत्रों में अभूतपूर्व कार्य किया है।

जनहितकारी विवादों को मान्यता- सर्वप्रथम, उसने जनहितकारी विवादों को मान्यता दी है। इसके अनुसार, कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे समूह या वर्ग की ओर मुकदमा लड़ सकता है जिसे उसके कानूनी या संवैधानिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया हो। सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि गरीब अथवा सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों के मामले में कोई भी समाज सेवी न्यायालय के समझ 'वाद' ला सकता है। न्यायालय में तकनीकी तथा कार्य-विधि सम्बन्धी नियमों की परवाह किये बिना उसे लिखित रूप में देने मात्र से ही कार्यवाही करेगा।

'अनुच्छेद 21' की नवीन व्याख्या-दूसरे, इसके अन्तर्गत भारतीय संविधान के 'अनुच्छेद 21' की नवीन व्याख्या की गई है एवं आम आदमी के जीवन और सुरक्षा को वास्तविक बनाने का प्रयास किया गया है। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर, किसी व्यक्ति को उसके जीवन तथा निजी स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित नहीं किया जायेगा।' परंपरागत न्याय की अवधारणा में यह माना जाता रहा है कि कार्यपालिका या सरकार कोई कार्यविधि अपनाकर व्यक्ति की स्वतन्त्रता या जीवन को छीन सकती है। किन्तु मेनका गाँधी के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय लिया है कि कार्यविधि भी विवेक सम्मत, उत्तम तथा न्यायपूर्ण होनी चाहिए। अब यह सरकार का दायित्व बना दिया गया है कि वह निर्धन पक्षकार को कानूनी सहायता प्रदान करे, अन्यथा अदालती कार्यवाही विलम्ब एवं व्ययकारी होने के कारण न्याय के स्थान पर अन्याय प्रदान करने लग जाती है।

संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकार के अध्याय में अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत वैयक्तिक स्वतंत्रता का प्रावधान किया है। लेकिन यह मौलिक अधिकार पूर्ण नहीं है, विधि के अन्तर्गत स्थापित प्रक्रिया से वैयक्तिक स्वंतत्रता के अधिकार को वंचित किया जा सकता है। वैयक्तिक स्वतंत्रता की सीमा क्या हो, तथा विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया कैसी हो, के अर्थान्वयन एवं पुनरावलोकन के अन्तर्गत न्यायपालिका ने इस स्वतंत्रता को बहुत ही व्यापक बना दिया है, जो इसकी सक्रियता का स्पष्ट उदाहरण है।

न्यायालय ने हजारों लोकहित वादों के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया है कि अनुच्छेद 21 का आशय केवल शारीरिक स्वतंत्रता या अस्तित्व से नहीं है, बल्कि इसमें न केवल जीवन की सभी न्यूनतम आवश्यकताओं को प्राप्त करने का अधिकार है, साथ ही व्यक्ति को मानव गरिमा से शुद्ध पर्यावरण में जीने का अधिकार भी है और मानव गरिमा के लिए सभी आवश्यक पहलुओं को पूरा करना राज्य का दायित्व है।

अनुच्छेद 21 विधायिका तथा कार्यपालिका दोनों के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है। गोपालन वाद के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि अनुच्छेद 21 केवल कार्यपालिका के कृत्यों के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है, विधान मंडल के विरुद्ध नहीं। अतएव विधानमंडल कोई विधि पारित करके किसी व्यक्ति को प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता से वंचित कर सकता था किन्तु मेनका गांधी बनाम भारत संघ के मामले में उच्चतम न्यायालय ने गोपालन के मामले में दिए अपने निर्णय को उलट दिया और यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 21 केवल कार्यपालिका के कृत्यों के विरुद्ध नहीं, वरन् विधायिका के विरुद्ध भी संरक्षण प्रदान करता है। विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधि के अधीन विहित प्रक्रिया, जो किसी व्यक्ति को उसके प्राण एवं दैहिक स्वाधीनता से वंचित करती है, उचित युक्तियुक्त नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होनी चाहिए।

नागरिकों की प्रतिष्ठा एवं अवसर की सुरक्षा- इसके अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय ने नागरिकों की प्रतिष्ठा एवं अवसर की सुरक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रत्येक व्यक्ति की इस आधिकारिता को स्वीकार किया है कि वह निर्धन, असमर्थ अथवा सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े व्यक्ति, समूह या वर्ग के लिए न्यायालय के समक्ष वाद प्रस्तुत कर सकता है एवं यह वाद राज्य सरकार, सरकारी अधिकारी या प्राधिकरण के विद्ध लाया जा सकता है। 'बम्बई के पटरीवासियों या सुनील बत्रा के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि 'धारा 21' में जीवन का अर्थ केवल भौतिक अस्तित्व की सुरक्षा मात्र न होकर उन सभी नैसर्गिक शक्तियों से है जिनके द्वारा जीवन का उपभोग किया जाता है तथा मनुष्य की आत्मा बाह्य जगत में संचरण करती है।

उसमें मानव प्रतिष्ठा के साथ जीवन-यापन के अधिकार को उक्त मौलिक अधिकार के अन्तर्गत अधिकार के अन्तर्गत शामिल किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि निर्दयता, क्रूरता मनुष्य को अमानवीय या पाशविक यातना की सजा देना आदि अब सम्भव नहीं है। इसी प्रकार 'मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा' के सन्दर्भ में तथा 'नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय समझौते' के अधीन घोषित अधिकारों को मानव प्रतिष्ठा के अन्तर्गत शामिल कर दिया गया है। 'आगरा होम', 'दिल्ली नारी निकेतन'

तथा 'एयरपोर्ट प्राधिकरण' के मामलों में इसी दृष्टि बिन्दु को अपनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि अनुच्छेद 14 का समान कानून संरक्षण सबको स्वेच्छाचारिता के विरूद्ध गारण्टी देता है।

सृजानात्मक कलाकार की भूमिका-चौथी बात, सर्वोच्च न्यायालय की यह मान्यता रहीं है कि यद्यपि न्यायाधीश या न्यायालय का काम कानून बनाना या निर्माण करना नहीं है, लेकिन वह कानून की रूप रेखाओं में रंग अवश्य भरता है। इस तरह वह कानून के निर्माण में भी भाग ले रहा है। न्यायाधीश एक ऐसा सृजानात्मक कलाकार है जिसमें 'न्यायमूर्ति पी.एन.भगवती' के अनुसार 'अरस्तू और प्लेटो' दोनों के गुण पाये जाते हैं। एक ओर वह 'विधि के शासन' का संस्थापक है तो दूसरी ओर, प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार न्याय प्रदान करने वाला 'दार्शनिक राजा' भी है।

सुने जाने का अधिकार का उदारीकरण- भारत में न्यायिक सक्रियता की अवधारणा के आने से पूर्व स्थिति थी कि किसी व्यक्ति को न्यायालय द्वारा सुने जाने का अधिकार है अथवा नहीं, यह भूतकाल के जनहित मुकदमों में बड़ी बाधा बनी हुई थी। न्यायालय की इस प्रक्रिया में न्याय प्रशासन को अत्यंत नुकसान हुआ। अत: इस कारण इस व्याधि को दूर करने के लिए न्यायालय ने जनहित मुकदमा को उभरकर आने हेतु एवं इसे उच्च शिखर पर पहुंचाने हेतु वर्तमान में एक उदारीकरण दृष्टिकोण को अपनाया है।

इस प्रकार ''जहां अधिकार है, वहां उपचार है" को विस्तृत किया है ताकि जनभावना से युक्त व्यक्ति द्वारा न्यायालय में वाद लाने पर सभी जनहितों की रक्षा कर न्याय को सही दिशा में काम लिया जा सके। न्यायधीश भगवती ने चेतावनी दी कि यदि जनहित से संबंधित मामलों में कार्यवाही करने का अधिकार यदि किसी व्यक्ति को नहीं दिया जाता है तो ना केवल वे न्याय से वंचित होंगे, वरन ऐसी स्थिति में विधि शासन गंभीर रूप से चरमरा जाएगा।

नव विकसित अवधारणा- न्यायालय ने लोकसंस्था या जनभावना से प्रेरित व्यक्तियों को जनहित मुकदमा के तहत मामले को उठाने का अधिकार दिया है। यह न्यायालय द्वारा स्वीकृत एक नव विकसित अवधारणा है जिसके तहत विधि द्वारा स्थापित कर्तव्यों के निर्वाह करने के लिए सरकार एवं राज्य को बाध्य किया जा सकता है ताकि नागरिकों को संविधान प्रदत्त एवं संरक्षित अधिकार उपलब्ध हो सके। जनहित मुकदमों के माध्यम से संविधान के अंतर्गत प्रतिज्ञाओं को यथार्थ रूप से न्यायिक सक्रियता के तहत कार्य रूप दिया जा रहा है।

जन भावना से ओतप्रोत- जनहित याचिकाएं वास्तविक रुप से जन भावना से ओतप्रोत व्यक्ति, राज्य एवं न्यायालय की ओर से सामूहिक प्रयास है जिसके माध्यम से कल्याणकारी विधानों द्वारा नागरिकों को उपलब्ध संवैधानिक एवं विधिक अधिकारों का उपभोग करना संरक्षित किया जाता है। जनहित याचिकाओं के तहत न्यायालय द्वारा सामाजिक नियंत्रण को समाहित किया गया है ताकि राज्य अथवा लोक प्राधिकारी की जिम्मेदारी को सुनिश्चित किया जा सके।

निष्कर्ष:- इस प्रकार सार रूप में यह कहा जा सकता है कि संविधान हो या अन्य सभी कानून, इनका उद्देश्य विभिन्न परिस्थितियों में लोगों के जीवन को नियमित करना है। ऐसे में न्यायिक सक्रियता एक न्यायाधीश को अनुमति देती है कि जहां कानून विफल हों, वहां अपने विवेक का प्रयोग करें। इस सक्रियता से जजों को अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज रखने की शक्ति मिलती है। इतिहास गवाह है कि किसी भी नाजुक मसले पर जब-जब हमारी सरकारों ने सुस्ती दिखाई, तब-तब सर्वोच्च न्यायालय ने ही उसे नींद से जगाने का काम किया है।

मतलब साफ है कि 'अदालती फटकार' सुने बगैर जनहित के लिए कोई भी बड़ा फैसला लेने से सरकारें या तो जानबूझकर कतराती हैं या फिर वे मसले उनकी प्राथमिकता में ही नहीं होते। यही वजह है कि जब पानी सिर के ऊपर तक आ जाता है, तब माननीय न्यायाधीशों को सक्रिय होकर यह बताना पड़ता है कि अदालतें अभी जिंदा हैं। 'न्यायिक सक्रियता' के कारण ही लोगों का भरोसा उनके प्रति बढ़ता है और उन्हें यह अहसास हुआ है कि उनकी आवाज सुनने वाला भी कोई है।

यह अवधारणा गरीब लोगों को यह अहसास कराने के लिए विकसित की गई है कि साधनहीन, अशिक्षित लोगों को भी इस बात का एहसास हो जाए कि उन्हें भी संवैधानिक एवं विधिक अधिकार उपलब्ध है, न कि ये अधिकार मात्र औपचारिकता पूर्ण कानून की पुस्तकों तक सीमित है। इसके अलावा अनेक सामाजिक महत्व के विषयों में किसी व्यक्ति अथवा सामाजिक संस्था की पहल पर न्यायालय ने सक्रिय रूप से हस्तक्षेप कर सामाजिक हितों का संरक्षण एवं संवर्धन किया है।

21वी सदी में मानव जीवन की सामाजिक एवं आर्थिक जटिलताओं के साथ-साथ जनहित मामलों के नए-नए आयाम उभर कर सामने आ रहे हैं तथा अब इसका क्षेत्र अत्यधिक व्यापक हो गया है और इसने और इसके कारण न्यायिक सक्रियता के कार्य क्षेत्र में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है।समय-समय पर जनहित याचिकाओं के माध्यम से न्यायालय ने समाज के कमजोर वर्ग की आंखों के आंसू पोंछने का सार्थक प्रयास किया है। अपने 45 वर्षों के सफर में न्यायालय ने सामाजिक न्याय एवं सार्वजनिक महत्व के असंख्य मामलों में महत्वपूर्ण निर्णय देकर न केवल न्यायिक सक्रियता का परिचय दिया है, अपितु आम आदमी के प्रति संवेदनशीलता भी जताई है।

अनेक मामलों में न्यायालय ने कहा है कि जनहित याचिका का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, इसे किसी परिधि में बांधना संभव नहीं है। यद्यपि यह सही है कि न्यायालय को जनहित याचिकाओं को उत्साहित करना चाहिए लेकिन आज भी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था ही सामाजिक अन्याय का मुख्य कारण है, उसे केवल न्यायालय द्वारा दूर नहीं किया जा सकता। इस समस्या के समाधान हेतु जन सहयोग की अपेक्षा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. धवन, आर., पब्लिक इंटरेस्ट लिटिगेशन इन इंडिया - एन इनवेस्टिगेटिव रिपोर्ट, नई दिल्ली, 2014.
2. देसाइ, ए.आर., वॉयलेशन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट्स इन इंडिया, (सं.) बम्बई पॉपुलर प्रकाशन खण्ड 3, बम्बई, 1986.
3. कागजी, एम.सी.जे., दी कॉस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, रणशिया पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 2018
4. मुखर्जी के.पी, दि जनरल ऑफ पोलिटिकल सांइस, नई दिल्ली, जुलाई-सितम्बर 2004.
5. ब्लैक, सी.एल., द पीपुल एण्ड द कोर्ट, न्यूयार्क मैकमिलन, नई दिल्ली, 1960.
6. बक्शी, उपेन्द्र, कैरेज, क्रॉफ्ट एण्ड कन्टेन्शन: द इण्डियन सुप्रीम कोर्ट इन द एट्टीज, ओरिएंट पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1985.
7. पाण्डेय, जे. एन., भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2006.
8. आनन्द सी.एल., एन इंट्रोडक्शन टु द हिस्ट्री ऑफ गवर्नमेण्ट ऑफ इंडिया, (ब्रिटिश पीरियड: भाग-2), मैकमिलन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992.
9. शर्मा, गजानन, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971.
10. आनंद, सी. एल., गनर्वमेंट ऑफ इण्डिया: 1935 एक्ट, इलाहाबाद, 1998.
11. पायली, एम.वी., कॉस्टीट्यूशनल गवर्नमेन्ट इन इंडिया, एस. चंद प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966.
12. गुप्ता, बी.एस., इंडिया प्रोब्लेम्स ऑफ गवर्नेस, मानक तलाश एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2016.
13. राव, जी.आर.एस., पॉलिटिकल पॉपुलिज्म, एडमिनिस्ट्रेटिव केरियारिज्म एंड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म, दीप एण्ड दीप, नई दिल्ली, 1990.
14. शर्मा, एस. एन., पर्सनल लिबर्टी अंडर इंडियन कॉस्टीट्यूशन, दीप एण्ड दीप, नई दिल्ली, 1991.

पत्र - पत्रिकाएँ

1. प्रतियोगिता दर्पण
2. सिविल सर्विसेज टाइम्स
3. क्रॉनिकल
4. योजना
5. कुरूक्षेत्र

भारत में मानवाधिकारः स्वरुप एवं इन्हें प्रभावी बनाने हेतु सुझाव

नन्दराम खटीक

सह आचार्य-राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश

मानव अधिकार जीवन में आने वाली अनेक बाधाओं को दूर करके शांति एवं भाईचारे को बढ़ाता है, उन्नति एवं विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। मानव अधिकार मस्तिष्क की अभिवृत्ति है जो मानव और उसकी शक्तियों, लौकिक मामलों, लौकिक आकांक्षाओं तथा उसकी भलाई को प्राथमिक महत्त्व प्रदान करता है। मानव अधिकार की अवधारणा का ऐतिहासिक दृष्टि से सिंहावलोकन करने के पश्चात् यह विश्लेषित होता है कि मानव अधिकारों के संवर्धन, संरक्षण व क्रियान्वयन में संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न अंगों ने अपनी सार्थक भूमिका का निर्वाह किया है। आर्थिक व सामाजिक परिषद ने विभिन्न आयोगों के माध्यम से मानव अधिकारों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ ने बदलते वैश्विक परिदृश्य में स्वयं को स्थापित किया है तथापि मानव अधिकारों के संरक्षण के क्षेत्र में किए गये योगदान को और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानव अधिकारों के अनुश्रवण के क्षेत्र को भी व्यापक करने की जरूरत है, तभी मानव अधिकारों के उल्लंघन की घटनाओं में कमी आयेगी। साथ ही राष्ट्रीय सम्प्रभुता की अवधारणा भी कमजोर पड़ेगी, क्योंकि वैश्वीकरण के युग में कोई भी देश मानव अधिकारों का उल्लंघन कर पूरे विश्व से कटकर नहीं रह सकता है। इस स्थिति में मानवाधिकारों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान करना महत्त्वपूर्ण विषय बन जाता है। मानव के जीवन और उसकी गरिमा की सुरक्षा की दिशा में मानवाधिकारों का महत्त्व सर्वाधिक विशिष्ट पहलू है।

मूल शब्द- संवैधानिक, लोकतंत्र, वैश्वीकरण, सम्प्रभुता, मताधिकार, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण।

परिचय- जीवन के प्रारम्भ से मृत्यु पर्यन्त मानव को सामाजिक, मानसिक और आर्थिक रूप से स्वतंत्रता एवं सम्मानित जीवन जीने का अधिकार मानवाधिकारों से प्राप्त होता है। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, अन्तर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय एवं राष्ट्रीय न्यायालयों द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में उल्लिखित मानव अधिकारों के प्रावधानों को लगातार रेखांकित किया गया है। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, नागरिक व राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा तथा आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा ने समेकित रूप से मानव अधिकारों का एक त्रिकोण बनाया है जिसे मानवता के मैग्नाकार्टा की संज्ञा दी जाती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में मानव अधिकारों के संरक्षण व संवर्द्धन हेतु विभिन्न गतिविधियों के संचालन के बावजूद वैश्विक स्तर पर मानव अधिकारों के उल्लंघन व अतिक्रमण की घटनाएँ सामान्य हैं, क्योंकि राष्ट्रीय संप्रभुता की अवधारणा मानव अधिकारों के निरीक्षण व परीक्षण में विकट बाधा बनकर उभरी है। राज्यों ने बहुत से अवसरों पर इस बात की चर्चा की है, विशेषकर विकासशील राष्ट्रों ने कि, मानव अधिकार के प्रश्नों को आधार बनाकर उनके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप हो रहा है।

इस प्रकार मानवाधिकार के मुद्दों पर विकासशील राज्यों में स्थिति बहुत ही दुविधापूर्ण है। राज्य की स्थिति बहुत ही कमजोर है और अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए नागरिक स्वतंत्रताओं का उल्लंघन इन राज्यों में सामान्य है, कुछ स्थितियों में तो राज्य आंतरिक विद्रोह को दबाने के लिए भी मानव अधिकारों की पालना नहीं करते है। ऐसे में अंतरराष्ट्रीय संगठनों के हस्तक्षेप, राज्यों की स्थिति को और भी कमजोर कर देते हैं।

भारतीय संविधान एवं मानवाधिकार- आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा मानव जीवन के लिए अत्यावश्यक पहलू और मानवाधिकार के अपरिहार्य तत्त्व भी हैं। भारतीय संविधान में प्रगणित और अप्रणित अधिकारों के माध्यम से यह व्यवस्था सुनिश्चित की गई है कि मानव अधिकारों का किसी भी रूप में हनन न हो। प्रत्येक व्यक्ति को वे सभी अधिकार और स्वतंत्रताएँ प्राप्त हों जिनके वे हकदार हैं।

भारतीय संविधान में मानवाधिकार का समावेश मुख्यत: संविधान के अध्याय-3 एवं 4 में किया गया है, जिन्हें हम मूल अधिकार एवं नीति-निदेशक तत्वों के नाम से जानते हैं। ये भारत के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन जीने की आवश्यकता परिस्थितियों से संबंधित सभी अधिकार प्रदान करते हैं, जिनके फलस्वरूप आज भारत के प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं न्यायिक स्वतंत्रता प्राप्त है। इन अधिकारों ने ही प्रत्येक भारतीय नागरिक को अपने चहुमुखी विकास की परिस्थितियाँ प्रदान की है।

कहा जा सकता है कि कालांतर में संविधान ने भारतीय समाज में, विशेषत: अपेक्षाकृत दबे हुए समाज व वर्ग में एक सकारात्मक द्वन्द्व पैदा किया। वस्तुत: संविधान के लागू होने के समय के समाज का वास्तविक रूप और संविधान के आदर्श परस्पर विरोधी दिशा में थे परन्तु उसी आधार पर निर्मित आज के भारतीय समाज में मानवाधिकारों को लेकर जितनी चिंता है और स्वतंत्रता व समता की जितनी आकांक्षा आज हमें दृष्टिगोचर हो रही है, वह इतिहास में पहले दिखाई नही दी।

आज कई ऐसे बिंदु जो मानवाधिकारों के पक्ष में हैं और जो मानवाधिकारों के संरक्षण और प्रोत्साहन के लिए स्थितियों को अनुकूल बना रहे हैं। इनमें सम्भवत: सबसे प्रमुख लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, गैर-सरकारी संगठनों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका और समाचार-संचार माध्यमों की अभूतपूर्व पहुँच है। संचार सुविधाओं के चलते आज किसी भी घटना से कुछ क्षणों में दुनियाभर के लोग अवगत हो जाते है।

अकाल एवं अन्य प्राकृतिक-मानवीय आपदाओं की खबरें आज जितने लोगों तक पहुँच जाती हैं, वैसा पहले कभी सम्भव नहीं था। इसी प्रकार सरकारों या शक्तिशाली वर्गों की तरफ से असहाय, गरीब एवं पिछड़े वर्गों के ऊपर किए जाने वाले अत्याचारों की खबरों को छिपाकर रख पाना लगातार असभव होता जा रहा है।

ऐसी खबरों पर आज तुरन्त और व्यापक प्रतिक्रिया होती है, जिससे एक तरफ पीड़ित लोगों और उनके अधिकरों के हित में काम करने के लिए न केवल स्थानीय अधिकारियों पर वांछित दबाव पैदा होता है, अपितु ऐसे लोगों के हित में काम करने के लिए दूसरी जगह के लोगों में भी एक कर्तव्य भावना पैदा होती है। हर सम्बन्धित घटना पर इसका प्रभाव हम अपने आसपास महसूस कर सकते हैं।

यह सूचना तकनीक के विस्तार की ही परिणति है कि आज नारीवाद जैसी अवधारणा का जन्म हुआ है और कमजोर वर्गों के प्रति आम संवेदना बढ़ी है। समाज के विकसित होने की प्रक्रिया के साथ-साथ मानव अधिकारों के सम्बन्ध में जो धारणाएँ पहले अधिकांशत: नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों में मानी जाती थी, वे अब बढ़कर नये आयाम ले चुकी हैं। इनमें कामकाजी महिलाओं के अधिकार, दिव्यांगों के अधिकार, मानसिक रूप से अपंगों के अधिकार, दलितो तथा अल्पसंख्यकों के अधिकार, बाल शिक्षा, बालश्रम एवं बाल शोषण उल्लेखनीय रूप से शामिल हुए हैं।

मानवाधिकारों को प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक कदम

राष्ट्रीय संस्कृति के अनुरूप- मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 29 में इस बात को मान्यता दी गई है कि मानव अधिकारों के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय प्रयास व उद्देश्य उन सीमाओं के अन्तर्गत आता है, जो विधि द्वारा पूर्ण रूप से दूसरे लोगों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को मान्यता प्रदान कर उनके प्रति समादर प्रकट करता है तथा जो नैतिकता, लोक व्यवस्था तथा लोकतान्त्रिक समाज के सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। भले ही वे एक देश से दूसरे देश में भिन्न क्यों न हो, चूंकि विधि की राष्ट्रीय प्रणाली समाज के राष्ट्रीय ढांचे को प्रतिबिंबित करती है और उसके समान होती है।

इसी प्रकार वह राष्ट्र के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन को भी प्रकट करती है, यही नहीं, वह उसकी धार्मिक, नैतिक तथा बौद्धिक संस्कृति को भी प्रकट करती है। वर्तमान में मानव समाज राजनीतिक दृष्टि से भिन्न-भिन्न और स्वतन्त्र राज्यों में संगठित है जिसमें प्रत्येक की अपनी नागरिक विधि है और जो सामूहिक रूप से राज्यों के एक बड़े समाज की रचना करता है और अन्तर्राष्ट्रीय विधि को एक ही प्रणाली से शासित होता है। इसलिए जीवन के विश्वव्यापी नाटक में मानव अधिकारों को इस प्रकार से मूर्तरूप दिया जाना चाहिए कि वे राष्ट्रीय संस्कृति के अनुरूप बन सके।

मानवाधिकार का सशक्त माध्यम शिक्षा- सच कहा जाए तो मानवाधिकार शब्द चाहे नया लग सकता है, लेकिन इसका भाव मनुष्य जाति के जन्म से ही है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं और वह दूसरे मनुष्य के साथ ही समाज में रह सकता है।

ऐसी स्थिति में अगर एक मनुष्य वंचित है, दुखी है, तब समाज में दूसरे मनुष्य का यह कर्तव्य बनता है कि वह उसकी सहायता करे, तभी जाकर एक सुखी समाज की स्थापना हो पाएगी। समाज में अगर कुछ लोग साधन संपन्न हैं और कुछ लोग साधनहीन, तो समाज में अराजकता फैलने का डर बना रहता है, जिसका खामियाजा धनी व निर्धन दोनों को भुगतना पड़ता है। तब ऐसे हालात में मानवाधिकार की शिक्षा द्वारा समाज में एक ज्ञान का प्रकाश फैलाया जाए जिससे समान अवसर व समान जीवन की लौ जले, जिसमें प्रत्येक मानव के अपने-अपने जीवन-लक्ष्य की अपने ढंग से प्राप्ति हो।

व्यावहारिक क्रियान्विति तंत्र विकसित करना आवश्यक- यह सत्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय दस्तावेज पर्याप्त महत्त्व रखते हैं परंतु यह भी उतना ही सत्य है कि वे स्वत: क्रियान्वित नहीं होते और उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय कानून के स्तर पर बाध्यकारी नहीं बनाया जा सकता। मानवाधिकारों को संहिताबद्ध करने एवं उनके प्रति सम्मान बढ़ाने में उतनी बाधाएँ नहीं आती, जितनी इन अधिकारों को व्यावहारिक दृष्टि से लागू करने में पैदा होती हैं।

यह कठिनाई उस समय और भी बढ़ जाती है, जब राज्यों के परस्पर दायित्वों को लेकर प्राय: आम सहमति बन ही नहीं पाती है। मानवाधिकार मात्र आदर्श लक्ष्य नहीं है वरन् ये ऐसी आवश्यक परिस्थितियाँ हैं जिनके अभाव में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर पाता। इसलिये राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मात्र वैधानिक व्यवस्थाएँ ही पर्याप्त नहीं हैं, इनके लिये दोनों ही स्तरों पर व्यावहारिक क्रियान्विति तंत्र विकसित करना आवश्यक है।

मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं का स्वरूप सार्वजनिक- सभी मानवाधिकार सार्वभौमिक, अविभाज्य और अंतर्निर्भर तथा अन्तर्सम्बधित हैं। अंतरराष्ट्रीय समुदाय को मानवाधिकारों को न्यायसंगत रीति से, समानता के स्तर पर और समान महत्व देते हुए, भूमंडलीय पैमाने पर देखना चाहिए।

राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय विशिष्टताओं और विभिन्न ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमियों के महत्व का खयाल तो रखना चाहिए, परन्तु राज्यों का यह कर्तव्य है कि वे सभी मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं का अभिवर्धन करें और उन्हें संरक्षण दें, भले ही उनकी राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्थाएं कुछ भी हों। लोकतंत्र, विकास तथा मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान, ये तीनों अंतर्निर्भर और एक-दूसरे को मजबूत बनाने वाले हैं।

लोकतंत्र लोगों की अपनी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रणालियां तय करने के संबंध में स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त इच्छा और अपने जीवन के सभी पहलुओं के प्रति उनकी पूर्ण भागीदारी पर आधारित है। उपर्युक्त संदर्भ में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के अभिवर्धन और संरक्षण का स्वरूप सार्वजनिक होना चाहिए।

सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन जरूरी- सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य उन परिवर्तनों में से है जिसके आधार पर समाज के हर वर्ग के उत्थान एवं उज्ज्वल भविष्य का निर्माण हो सके तथा एक ऐसा बदलाव जिसमें हर वर्ग के मानव को मानव गरिमा की दृष्टि से देखा जाए, न कि आर्थिक, जातिगत, लिंगभेद इत्यादि दृष्टि से।

अत: सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन सहिष्णुता, अहिंसा, पक्षपात रहित व्यवहार के आधार पर ही संभव है। एक मनुष्य का कर्तव्य ही दूसरे मनुष्य का अधिकार साबित होता है। ईश्वर ने संपूर्ण सृष्टि को संपन्नता दी है, जिसमें प्रत्येक जीव गरिमा से पूर्ण है।

कानून के समक्ष सबकी समानता नितांत आवश्यक एवं अनिवार्य है। न्याय व्यवस्था पक्षपातपूर्ण व्यवहारों से पूर्णत: मुक्त होनी चाहिए। प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लिए भी यह आवश्यक हो कि वे नियम के अंतर्गत ही काम करें। प्रशासनिक अधिकारी को भी सामान्य नागरिक की भांति ही कानून का बाध्यता बनी रहे, साथ ही प्रशासनिक अधिकारी जनता के प्रति उत्तरदायी बने रहें।

इतना ही नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन तो समाज की मूल जड़ सामान्य नागरिक से होना चाहिए। सामान्य जन को हर पक्ष से जागरूक होना होगा। सामाजिक विषमताओं एवं अशांति के आज के परिवेश में शिक्षित वर्ग से समाज को महत्त्वपूर्ण अपेक्षाएं हैं। अपनी शिक्षा एवं गुणों का उपयोग कर तथा नि:स्वार्थ रहकर उन्हें समाज में सामंजस्य की स्थिति निर्मित करनी होगी जिससे उन्नतशील सामाजिक परिवर्तन होगा और मानवाधिकार का राज्य स्थापित हो सकेगा।

स्वच्छ और ईमानदार राजनीति ही मानवाधिकार की परिणति- पिछले कुछ समय से राजनीति में भी वह शुचिता और स्वच्छता अब नहीं रही है। गरीब और समाज के हाशिए पर जी रहे लोग यह नहीं समझ पा रहे हैं कि आखिर वे ऐसे निरीह कैसे हैं? लेकिन इन सब तथ्यों पर अगर हम गौर करें तो पाते हैं कि भारत के राजनीतिक तंत्र में भी कुछ बाधक तत्व है, जिसकी वजह से समाज में यह घोर असमानता पनपी है। लेकिन अब आवश्यकता है राजनीति में स्वच्छता, ईमानदारी और शुचिता की, जिसके आधार पर देश एक नए उन्नतशील स्वरूप को प्राप्त कर सके। जिसका उदय वर्तमान में कई पहलुओं में नजर भी आ रहा है।

स्वच्छ और ईमानदार राजनीति ही देश में संविधान के नियमों को सच्चे अर्थों में लागू करेगी और जहां संविधान संशोधन की जरूरत होगी तो वहां संशोधन भी करना पड़ेगा। सच्चा और स्वच्छ लोकतंत्र तभी प्रकाश में आएगा जब इसमें राजनीतिज्ञों और जनता समुचित भागीदारी होगी। तभी हम मानवाधिकार के क्षेत्र में संपूर्ण विश्व को एक नया दर्शन और एक नया स्वरूप प्रदान कर पाएंगे।

शिक्षण, जागरण एवं अनुशासन ही मानवाधिकार का नियम -मानवाधिकार एक मानव के द्वारा दूसरे मानव को अपने जैसा ही जीता-जागता एवं संवेदनाओं से भरा इंसान समझने की कवायद है। यदि हर मनुष्य अपनी अज्ञानता को दूर कर शिक्षित बने यानी बुद्धि को प्रखर करे तो स्वत: ही मानवाधिकार सभी को मिलने लगेगा। यदि हम अपने अहंकार रूपी विकार को समझ के साथ दूर करें तो भी स्वत: ही मानवाधिकार का प्रकाश चारों ओर फैल जाएगा।

बुद्धिरूपी तराजू पर पढ़ा-लिखा मानव अपने विचारों एवं कर्मों को धर्म एवं न्याय की कसौटी पर कसकर ही कर्म करता है। शिक्षित, जागरूक एवं अनुशासित बनकर हम अपने अधिकारों को तो प्राप्त कर ही सकते हैं, साथ ही दूसरों के अधिकारों का भी संरक्षण कर सकते हैं।

सकारात्मक सोच की आवश्यकता- आज हाशिए पर जीने वाले लोग जैसे गरीब, निरक्षर, मजदूर आदि पोषण, शिक्षा एवं रोजगार के अभाव से ग्रस्त हैं। मजदूरों का एक बहुत बड़ा वर्ग है जो विभिन्न प्रकार से समाज एवं देश के निर्माण में योगदान देते हैं लेकिन यह कितनी शर्मनाक स्थिति है कि वे दो वक्त की भरपेट रोटी, रहने के लिए मकान एवं हर खुशी से वंचित हैं।

इन लोगों के मानवाधिकारों की रक्षा और इनको सही रूप में जीवन के अधिकार की प्राप्ति हो सके, इसके लिए हर भारतीय को मिलजुल कर प्रयास करने की आवश्यकता है। हर मानव को मानवाधिकार मिले, यह सकारात्मक सोच हमें अपने अंदर लानी होगी और खुद अपने कदम हमें पहले बढ़ाने होंगे। तभी जाकर यह महान् कार्य संभव हो पाएगा।

जटिल न्यायिक प्रक्रिया में सुधार की आवश्यकता- इसके अतिरिक्त मेरे विचार में देश के प्रत्येक न्यायालय को मानवाधिकारों की सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने की दिशा में कार्य करना चाहिए। इसके साथ-साथ मानवाधिकारों से सम्बन्धित बहुत ज्यादा कानून बनाने के बजाय उनके क्रियान्वयन पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। अत्यधिक खर्चीली विधिक प्रक्रिया को सरल बनाना चाहिए। मानवाधिकारों को लागू करवाने के लिए विधिक सहायता प्रणाली को भी सुदृढ़ एवं जटिल न्यायिक प्रक्रिया को भी सरल बनाये जाने की जरूरत है।

जन भागीदारी भी अति आवश्यक-मानवाधिकारों की समुचित जानकारी आम जन को सरलता से प्राप्त होनी चाहिए। इस दिशा में भी सकारात्मक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। मानवाधिकारों से सम्बन्धित सुधारों में जन भागीदारी भी अति आवश्यक है। न्यायपालिका के साथ-साथ गैर सरकारी संगठनों को भी मानवाधिकारों के क्रियान्वयन में महत्ती भूमिका निभानी होगी। ज्यादातर लोगो को मानवाधिकारों के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

अगर कही भी मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, तो उसके खिलाफ आवाज उठानी चाहिए। उत्पीड़न किसी का भी हो गलत है, इसलिए हर व्यक्ति को अपने आस-पास होने वाले मानवाधिकार के हनन का विरोध करना चाहिए। मानव अधिकारों के माध्यम से नागरिकों के जीवन, स्वतन्त्रता, समानता और सम्मान की रक्षा की जा सकती हैं। आम लोगों में मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता की जरूरत है।

निष्कर्ष- मानवाधिकार का मूल मंत्र है- सर्वे भवन्तु सुखिन: अर्थात सभी मनुष्य सुखपूर्वक रहें, ताकि पूरा समाज सुखी हो। भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष ही भारतीय जीवन के प्रमुख दर्शन हैं तथा इनकी प्राप्ति ही मनुष्य का चरम ध्येय है। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता के साथ-साथ दूसरे व्यक्तियों के साथ भ्रातृत्व के भाव से रहें, तो सर्वे भवन्तु सुखिन: की संकल्पना सही अर्थों में सच हो जाए।

अपने मूल अधिकारों के हनन से ही समाज में असंतोष फैलता है, जो धीरे-धीरे उग्र होकर हिंसा का रूप ले लेता है। अतः अपने अधिकारों की सुरक्षा के साथ दूसरों के अधिकारों का सम्मान करें, तब सर्वे भवन्तु सुखिनः के लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है।

मानवाधिकार एक संवेदनशील मुद्दा है, जिसका ज्ञान व खयाल हर मानव का कर्तव्य है। जब तक हम निचले स्तर से नहीं जानेंगे व सोचेंगे, तब तक संपूर्ण मानवाधिकार का आकलन मुश्किल है। अतः अब समय आ गया है जब मानवाधिकार की शिक्षा व मूल्यों को जन-जन को जानना होगा, समझना होगा, ताकि इस आधुनिक वैज्ञानिक युग में यह एक भाषण का मुद्दा न रहकर सभ्यता बन जाए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. नसीमा, सी., ह्यूमन राइट्स एजुकेशन -कन्सेप्चुअल एण्डपेडागोजिकल एसपेक्टस, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2002.
2. बावेल, बसन्ती लाल, पुलिस प्रशासन, अन्वेषण एवं मानवाधिकार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1998.
3. बावेल, बसन्ती लाल, मानवाधिकार, सैन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2016.
4. बेगम, एस. मेहरताज, ह्यूमन राइट्स इन इण्डिया, ए.पी.एच.पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002.
5. भौमिक, के. एल., डेवलपमेन्ट ऑफ वीमन एण्ड चिल्ड्रन, इण्टर इण्डिया पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1985.
6. रहीम, अब्दुल वीजापुर, पी., पर्सपेक्टिव्स ऑन ह्यूमन राइट्स, मानक एवं कुमार, सुरेश पब्लिकेशन्स लिमिटेड, नई दिल्ली, 1999.
7. समल, सुनिता, ह्यूमन राइट्स एण्ड डवलपमेन्ट इन इमर्जिंग वर्ल्ड ऑर्डर, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2000.
8. सोईऐया ई. अहमद, ह्यूमन राइट इन इस्लामिक सोसायटी मुस्लिम्स एंड द वेस्टर्न कॉन्सेप्ट ऑफ राइट, राउटलेग पब्लिकेशन्स, 2019.
9. सिन्हा, पी.सी., इण्डियाज ग्लोबल ह्यूमन राइट्स ऑब्लिगेशन्स- ए स्टेटस रिर्पोट, पार्ट-2, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2003.
10. सेठ, लीला, टॉकिंग ऑफ जस्टिस पीपूल राइटस इन मार्डन इंडिया, पब्लिकेशन एल्फे बुक कम्पनी, नई दिल्ली, 2014.

भारत का श्रीलंका से संबंधों का पुनर्नवीनीकरण: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

राजेश गुप्ता

सहायक आचार्य-राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सार- भारत और श्रीलंका के संबंधों में उल्लेखनीय सुधार हुए हैं। तमिल एक ऐसा घटक है जो दोनों देशों के पारस्परिक संबंधों में अपने अतिशय अभियोजना को खोता जा रहा है। भारत श्रीलंका के साथ अपने रिश्तों को लेकर उत्सुक रहा है, जिसमें उसने चीन के पक्ष या विपक्ष में किसी भी तरह की जोरदारी नहीं की है। क्योंकि भारत अपने रिश्तों में किसी भी तरह के चीन के हस्तक्षेप या उपस्थिति को स्वीकार नहीं करता है।

वर्तमान में भारत सरकार ने श्री लंका से विश्वास एवं लगाव पैदा करने के लिए सार्थक कदम उठाए हैं। भारत और श्रीलंका ने एक साथ पारस्परिक रिश्तों को कायम करने के लिए अलग-अलग रास्ते अख्तियार किए हैं, जो अधिक मित्रतापूर्ण रहे हैं। यह विश्व राजनीति के परस्पर टकराहट का परिणाम नहीं है, या किसी महाशक्ति के दिशा निर्देशन का ही परिणाम नहीं है। यह परस्पर लाभ और एक दूसरे के प्रति सम्मान पर आधारित है। यह मोदी के विदेश नीति का मूल हैं, जो एक सशक्त ताकत के रूप में उभर कर सामने आ रहा हैं।

मूल शब्द- विदेश नीति, संप्रभुता, गुटनिरपेक्षता शांतिपूर्ण, पंचशील, सह अस्तित्व, बहुध्रूवीय।

परिचय- श्रीलंका भारतीय सागर के हृदय में अवस्थित है। इसके ठीक पास से ही प्रमुख जलपोत परिवहन के मार्ग गुजरते हैं। यह उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि भारतीय सागर के क्षेत्र भारत प्रशांत क्षेत्र के अंतर्गत स्थित है, जो विश्व का सर्वाधिक व्यस्ततम एवं आर्थिक रूप से गतिशील राज्य है। इस क्षेत्र को काफी अरसे 'पर्ल ऑफ इण्डियन ओशनश यानी श्भारतीय सागर के मोती' के रूप में जाना जाता है।

लेकिन श्रीलंका के चुनाव में राष्ट्रपति श्री महिन्द्रा राजपक्षे की हार से यह 'भारतीय सागर का मोती' अचानक चीन के 'मोतियों के माला' के रूप में ढल गया। लेकिन जब हम श्रीलंका के आर्थिक समृद्धि को चीन के अम्युदय के साथ जोड़ते है तो यह चर्चा करना भी लाजिमी हो जाता है कि श्रीलंका का नेतृत्व किसके हाथों में है। लेकिन राजनीतिक दृष्टिकोण से यदि इस पर नजर डाली जाएं तो यह कहना सही है कि भारतीय प्रधानमंत्री मोदी की सरकार ने बीजिंग के धागे से इस मोती को वापस छीन लेने में काबिलियत दिखाई है। हालाँकि श्रीलंका की जनता ने उस सरकार को बाहर का रास्ता दिखा दिया जो चीन के साथ सहानुभूति और मित्रतापूर्ण रवैये के साथ पेश आ रही थी। इसके साथ ही यह भी कोई भूलने वाली बात नहीं है कि श्रीलंका की आगामी सरकार ने दिल्ली के अनुकूल रवैया अपनाया।

नि:संदेह, इससे जो नतीजा सामने आए, उससे यह मतलब कदापि नहीं निकलता कि नई दिल्ली दूरगामी रणनीति अपनाती है। भारत श्रीलंका के भौगोलिक स्थिति से काफी लाभान्वित होता है। इसलिए यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मोदी सरकार के कूटनीति ने उभरती हुई महाशक्ति को कई तरह के संदेश दिए है। भाताब्दियों पहले वर्चस्व की लड़ाई के दौरान इसी तरह के संदेश प्राप्त हुए थे। उस समय उभरती हुई महाशक्ति अमेरिका ने ब्रिटेन से सबक सीखा। मोदी सरकार ने अपने विदेश नीति के पिटारे में खास तौर से दो चीजों पर ध्यान केन्द्रित किया, (1) अंतर्दृष्टि और (2) प्रभाव।

यह विशेष रूप से बीजिंग के लिए समसामयिक और सांदर्भिक रहा। हालाँकि बीजिंग के विदेश नीति में वृहद रूप से उत्कृष्ट संसाधनों का भी ख्याल रखा गया है। फिर भी ये अकेले सेना के ताकत पर ही असफल नहीं हो सकते हैं। श्रीलंका में नई दिल्ली के प्रति रूझान सन् 2014 के चुनावों में देखने को मिला। विरोधी दलों ने दावा किया कि वो राजपक्षे और बीजिंग के बीच किए गए भ्रष्ट सौदेबाजी को खत्म करेंगे।

यह हकीकत है कि श्रीलंका में विपक्षी दलों चीन के साथ रिश्तों को अपने चुनाव अभियान में एक औजार के रूप में इस्तेमाल किया गया क्योंकि राजपक्षे की हार चाहता था। चुनाव के बाद अगली सरकार ने एक बार फिर भारत सरकार से अपने रिश्तों पर ध्यान केन्द्रित किया। यह वाकई में चीन के तरफ से किए गए श्छवि प्रबंधनश की असफलता रही।

श्रीलंका में श्रीलंका की सरकार और तमिल चीतों के मध्य गृह युद्ध छिड़ा, जो एशिया का सबसे लंबा और वृहद् गृह युद्ध माना जाता है। सरकार आई और गई। लेकिन कोलंबो ने जिस तरह से लिट्टे (लिबरेशन टाईगर्स ऑफ तमिल ईलम) पर जीत हासिल किया, वो केवल घरेलू जीत नहीं रही। यह पूरी तरह से एक सरेआम बाहरी जीत रही। लेकिन यही से चीन का अभ्युदय होना शुरू हुआ।

श्रीलंका की सरकार ने अपनी जीत का नगाड़ा नहीं बजाए क्योंकि उसे पश्चिम जगत की तरफ से भय था कि कहीं उसे मानवाधिकार के उल्लंधन के मुद्दे पर अंतर्राष्ट्रीय नियमों के तहत फंसा न दिया जाए। यदि ऐसा नहीं भी होता, तो व्यापार को प्रतिबंधित एवं सीमित कर दिया जाता, जिससे श्रीलंका की अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचता और सरकार भी अगले चुनावों में सत्ता हासिल नहीं कर पाती। जब चीन एक महाशक्ति के रूप में उभरा तो इसने राजपक्षे को पूरी तरह से आजादी दी कि वो युद्ध को अंजाम

प्रधानमंत्री के तरफ से किया गया प्रयास कहीं से भी अप्रत्याशित नहीं था। भारत में एक तरफ हिंदुत्व की मुहिम छिड़ी और मोदी का अभ्युदय हुआ हिंदुत्व की इस विचारधारा ने अपने आपको सार भारतीय विरासत का अग्रणी कहा। जाहिर है कि इस विरासत में बौद्धवाद, जैनवाद और सिक्खवाद भी शामिल थे। मोदी ने तमिलों की हृदयस्थली श्रीलंका का दौरा किया और इनके कल्याण के प्रति अपनी वचन बद्धता को दोहराया। इससे भारतीय प्रधानमंत्री को श्रीलंका के निवासियों और भारतीय तमिलों के निकट आने में सहायता मिली। जब उन्होंने यह जाना कि श्रीलंका के निवासियों को भाक है कि भारत के तमिलनाडु राज्य के माध्यम से ही नई दिल्ली अपनी श्रीलंका के प्रति नीतियों को कार्यान्वित करता है, तो मोदी ने एक बार फिर नये सिरे से भारत-श्रीलंका के संबंधों को पुर्नस्थापित करने की कोशिश की। उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि उनके देशों के संबंध कहीं और अधिक गहरे तथा व्यापाक है। यदि बीजिंग को इन छोटे राज्यों पर अपने प्रभुत्व को कायम करना है तो उसे इन राज्यों में अपनी विदेश नीति के तहत एक गहरी अंतर्दृष्टि एवं सूझबूझ कायम करनी होगी।

श्रीलंका में तो चीन अपने बौद्धदर्शन के ताकत पर फैल ही सकता है। इसके निमित्त बीजिंग भारत के मैकियावेली, कौटिल्य एवं अन्य के उदात्त एवं व्यवहारिक दर्शनों से प्रेरणा ले सकता है और दक्षिण एशिया में अपना वर्चस्व स्थापित कर सकता है। कौटिल्य ने कहा था कि किसी भी राज्य का ठीक अगला पड़ोसी राज्य ही उससे शत्रुता कर सकता है, इसलिए पड़ोसियों या पड़ोसी राज्यों को एक दूसरे का प्राकृतिक या स्वाभाविक सहयोगी कहना चाहिए।

परिणामत: भारत के ईर्द-गिर्द के सारो राज्यों ने चीन की इस बड़ी भूमिका का तहे दिल से समर्थन किया। इसी तरह चीन ने भी दक्षिण एशियाई राज्यों की एकजुटता का अनुमोदन किया। वास्तव में बीजिंग को श्रीलंका के लंबे चौड़े वृहद् इतिहास का पहले से पता था। उसने यहाँ के नागरिक समाज और सम्भावित जोखिमों का पहले से ही इल्म था कि कहीं हमारी सौदेबाजी को भ्रष्ट करार न दिया जाए। इन्हीं सारी आशंकाओं और आरोपों को निर्मूल साबित करने के लिए, बीजिंग ने राजपक्षे सरकार को सहयोग दिया और इस बात पर जोर दिया गया कि चीन श्रीलंका की उन परियोजनाओं में निवेश करें जिसे भारत ने नकार दिया है।

बीजिंग ने श्रीलंका सरकार को प्राणघातक सैन्य साजो सामान एवं हथियार उपलब्ध कराए। इसके साथ ही वो सभी कूटनीतिक सहायता मुहैया कराई गई जो दिल्ली नहीं करा पाती। युद्ध तो खत्म हो गया लेकिन इसने कुछ मुख्य मुद्दे छोड़ दिए जो राष्ट्र के जेहन में आज भी मौजूद है। ये खास मुद्दे श्रीलंका की बहुल जनसंख्या की आँखों में आज भी प्रतिबिंबित होते है। शायद यही श्रीलंका के निवर्तमान राष्ट्रपति की शानदार उपलब्धि रही।

इसके ठीक उलट, भारत के प्रति श्रीलंका की प्रतिक्रिया या तो मिश्रित या नकारात्मक रही। यदि तमिलों के तरफ देखें तो उनके मन में लिट्टे (लिबरेशन टाईगर्स ऑफ तमिल ईलम) से जूझ रही भारतीय शांति सेना के प्रति काफी कड़वाहट भरी है। यदि हम सिंहलियों की तरफ रूख करते हैं तो वे भारत को ही दोषी ठहराते हैं कि इसने तमिल चीतों को अपने यहाँ प्रशिक्षित किया जिसके

परिणाम स्वरूप इनको (सिंहलियों) शिकस्त झेलनी पड़ी। किसी भी तरह से इस युद्ध को सन् 1991 में खत्म कर दिया गया।

इन सारी स्थितियों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रश्न यह खड़ा होता है कि आखिर में भारत ने अपने छवि के पुनर्निर्माण के लिए क्या किया? क्या इसने अपने को चीन से बेहतर साबित करने की कोशिश की। अपनी छवि को पुनः हासिल करने की कवायद में आंशिक प्रयास नई दिल्ली के सांस्कृतिक कूटनीति की तरफ से हो सकता है कि इसने श्रीलंका के अंतर्दृश्टि के भीतर प्रविष्ट होने की कोशिश की।

इस तरह के प्रयास का खुला इजहार मोदी की यात्रा के दौरान किया गया। भारतीय प्रधानमंत्री ने सिंहालियों के समर्थन को हासिल करने की कोशिश की। उन्होंने इस क्रम में पवित्र बौद्ध तीर्थस्थलों पर जाकर पूजा अर्चना की एवं सिंहली बहुल इलाकों का दौरा किया। इसे 'बौद्धवाद कूटनीति' (बुद्धिस्ट डिप्लोमेसी) कहा गया। इसके श्तहत 'एक्ट ईस्ट' पॉलिसी को अपनाया गया और व्यापक बौद्ध जनसंख्या वाले इलाकों में पहुँचने की कोशिश की गई।

भारत के तरफ से सार्वजनिक रूप से बौद्ध सिद्धांत पर जोर देने की कोशिश की गई और अपने आप को समस्त भारतीय संस्कृति का एकमात्र प्रतिनिधि करार दिया गया। यह भारतीय और हिन्दू धर्म में अगाध आस्था रखने वाले चीन ने व्यवस्थित तरीके से सोच समझकर श्रीलंका के ढ़ाचागत विकास में निवेश करना शुरू कर दिया। निवेश को श्रीलंका की जनता ने भी महसूस किया। दिल्ली की काबिलियत थी कि उसने कोलंबो को आकर्षित किया क्योंकि इसमें वर्चस्व स्थापित करने की क्षमता थी जो कि लोक कूटनीति के दायरे से बाहर थी।

राजपक्षे के तरफ से वायदे भी किए गए कि भार की खुफिया एजेंसी ने विरोधी खेमे को संगठित होने में मद् की जो कि पिछले चुनाव में स्पष्ट तौर पर दिखा। दिल्ली ने इससे इन्कार किया। यह निश्चितता के साथ नहीं कहा जा सकता है कि सच क्या है। लेकिन भारत ने चीन को अप्रत्यक्ष रूप से ही सही लेकिन प्रेरित किया है कि वो श्रीलंका की परिसीमाओं के भीतर मजबूत करें। घरेलू राजनीति में हस्तक्षेप तो कहीं से भी नैतिक नहीं है लेकिन महाशक्तियां ने इसकी बार-बार आजमाइश की है। बीजिंग ने रिश्ते को मजबूत करने के लिए निवेश का प्रयोग किया है।

इसके पास यह भी विकल्प था कि वो ग्रामीण राष्ट्रवादियों को भारत के प्रति संदेह उत्पन्न करने के लिए उकसाता और विपक्षियों को देश द्रोह के प्रेरित भी करता भारत और चीन के पास सरकारी विभागों के अलावे कई तरह के उद्यमों की भरमार है। इनके पास सशक्त विचारकों की फौज एवं विश्वविद्यालय भी है। पूरा लाभ उठाने के लिए नेता सर्वश्रेष्ठ परामर्शो का अनुसरण करते हैं। इनके लिए प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण होते है जहाँ प्रामाणिकता के साथ विश्लेषण होते हैं और योग्यताएँ पुरस्कृत होते है। अतीत में योग्यता का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से होता था। दक्षिण एशिया में उभर रही ताकतों को इस पर भी गौर करना चाहिए।

सन् 2005 में श्रीलंका के राष्ट्रपति महिन्द्रा राजपक्षे के चुनाव सम्पन्न होने तक चीन और श्रीलंका के मध्य संबंध में मूलभूत रूप से बदलाव देखने को मिला। भोश दक्षिण एशियाई राज्यों के ठीक विपरित भारत ने चीनी प्रभाव से अपना बचाव किया है। लेकिन कोलंबो ने सीमित या प्रतिबंधित रूप से ही सही चीन के साथ 20 वीं शताब्दी तक आते-आते कूटनीतिक संबंध विकसित कर लिए।

यहाँ तक कि सन् 1990 में बीजिंग से हथियारों के आयात भी होने लगें। राजपक्षे ने जब कार्यभार संभाला तो लिट्टे (लिबरेशन टाईगर्स ऑफ तमिल ईलम) के साथ संघर्ष देखने को मिला। लिट्टे एक अत्यधिक हिंसक अलगाववादी आंदोलन रहा जिसने दावा किया कि वो तमिल अल्पसंख्यकों के अधिकारों के प्रति संवेदनशील एवं संघर्षशील है। कोलंबो और लिट्टे ने सन् 2002 में युद्ध विराम की घोषणा की और श्रीलंका के विदेश मंत्री की हत्या हो गई।

राष्ट्रपति राजपक्षे ने सत्ता में कदम रखने के थोड़े ही दिनों बाद दिल्ली से अपील की गई ताकि उनको सैन्य सहायता पहुँचाई जाए। श्रीलंका के राष्ट्रपति ने लिट्टे की पूरी तरह से कुचलने का मन बना लिया था। सन् 2006 में दिल्ली ने चुपचाप राजपक्षे को पाँच ड.17 हेलीकॉप्टर प्रदान किए। इसके साथ ही साथ सैन्य सहायता भी पहुँचाई गई। ताकि लिट्टे उनके साजो सामान एवं समुद्री सागर में बिखरे पड़े हथियारों को निशाना बनाया जाए। राजपक्षे अमेरिका की तरफ रुख करने की हिम्मत नहीं कर सकें क्योंकि उन्हें लिट्टे के साथ संघर्ष में मानवाधिकार उल्लंघन के आरोप लगने की भी आशंका थी। वाशिंगटन ने श्रीलंका के लिए विदेशी सहायता की राशि घटा दी। लेकिन चीन ने इसकी भरपाई की।

सन् 2007 में, राजपक्षे ने चीनी हथियारों और गोली बादी के लिए चीन के साथ 37 मिलियन दृष्टिगत डालर की सौदेबाजी की। सन् 2008 में चीन ने कोलंबो को N% F-7 जेटा विमान, एयरक्राफ्ट बंदूकें और JY-11 रडार उपलब्ध कराए। लिट्टे के साथ हुए युद्ध विराम भी उल्लंधन के शिकार हुए। इसीलिए सन् 2009 में राजपक्षे ने धरती पर वार करने वाले हथियार विकसित किए जिससे लिट्टे का सफाया हो गया। इस प्रक्रिया में 20,000 नागरिकों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

श्रीलंका में इसलिए यह कहा जा सकता है कि मोदी सरकार सतत ढंग से दक्षिण पूर्वी एशिया के चारों तरफ चीनी वर्चस्व को रोकने की कोशिश करती रही है और भारत को एक बार पुन: सिरमोर बनाने के अपने संकल्प के प्रति वचनबद्ध है। इसी इरादे के साथ मोदी सरकार ने श्रीलंका में विश्व के सबसे सुस्त एवं खाली पड़े एयरपोर्ट को खरीदने की जुगत में है। ये बंदरगाह 2000 एकड़ में फैले हुए हैं और भविष्य में व्यापार की दृष्टि से लाभकारी हैं। इसके पीछे रणनीतिक योजना यह है कि एयरपोर्ट हंबनटोटा बंदरगाह से केवल इतनी ही दूरी पर स्थित है कि यहाँ आधे घंटे में वाहन से पहुँचा जा सकता है। इसे बताने की जरूरत नहीं है कि इस बंदरगाह को चीन के द्वारा 99 साल के पट्टे पर खरीदा गया था।

इस बंदरगाह को खरीदने के पीछे चीन का मुख्य उद्देश्य यही था कि इसका इस्तेमाल 'वन बेल्ट वन रोड' का निर्माण करने के लिए किया जाए ताकि सागरों के बीच संबद्धता कायम हो और सैन्य विस्तार हो। हंबनटोटा बंदरगाह दुनियाँ के नजरों में एक दशक पहले आए और चीन ने यह समझने में देर नहीं की कि इस बंदरगाह की कितनी अधिक है। इसने इसको व्यापक रूप दे दिया। इसके साथ ही एक एयरपोर्ट और अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट स्टेडियम निर्मित किये गए। ये सभी चीन निर्मित बहुगलियारे से जोड़ दिये गए।

यह बंदरगाह भारतीय सागर के व्यस्ततम समुद्रीय गलियारे के उत्तरी कोने में स्थित है। इससे चीन को प्रत्यक्ष लाभ यह है कि इसका इस्तेमाल जल परिवहन एवं माल ढुलाई के लिए किया जा सकता है। भारतीय खुफिया ने रिपोर्ट दी कि चीन इस बंदरगाह में अपने नी सैनिक बेड़े के लिये योजना बना रहा है। इसके लिए हवाई निगरानी की क्षमता की जरूरत पड़ेगी। भारत को भी इस बंदरगाह के फायदा है कि वहाँपर एयरपोर्ट स्थित हो जाए तो भारत और श्रीलंका के मध्य परिवहन आसान हो जाएगा। इससे भारत को इस संपूर्ण क्षेत्र में निगरानी करने में सहूलियत मिलेगी।

सन् 2005 में, अमेरिकी रक्षा विभाग ने अपनी रिपोर्ट में पुष्ट किया कि चीनी मिसाईल पनडुब्बियों भारतीय सागर में गतिशील एवं सक्रिय है जिससे भारतीय राज्यों को खतरा है। इस रिपोर्ट में हवाले से यह भी जानकारी दी गई कि बहुत सारे युद्धक जलपोत जीत का जश्न मन रहा था और उसमें ढेर सारी चीजें चीन निर्मित थी। और जब कोलंबो को अंतर्राष्ट्रीय आलोचना झेलनी पड़ी, तो फिर चीन ने संयुक्त राष्ट्र संघ में इस आलोचना और मानवाधिकार हनन के मुद्दे के रूप में उठने से रोककर श्रीलंका की अप्रत्यक्ष रूप से मद्द की। श्रीलंका के वरिष्ठ अधिकारी ने कैपिटल हिल में अमेरिका के अधिकारियों का धन्यवाद ज्ञापन किया कि उन्होंने श्रीलंका को चीन के निकट जाने के लिए प्रेरित किया।

बंदरगाह और राजनीति- वेबसाईट के विवेचकों ने अपने हवाले से यह खबर दी कि किस तरह से भारत श्रीलंका में खाली पड़े बंदरगाहों को खरीद रहा है। वाकई ये भारत के लोगों के लिए किसी आश्चर्य से कम नहीं था कि क्यों भारत ऐसे खाली और सुस्त पड़े बंदरगाहों को खरीद रहा है, जो प्रतिदिन केवल 12 यात्रियों या उससे कम लोगों को अपने तट पर उतरते हुए देखता है? लेकिन बहुत से लोग यह नहीं जानते है कि ये इस सरकार की उत्कृष्ट योजना है ताकि भारतीय सागर में चीनी प्रमुत्व जैसी समस्याओं से निपटा जा सकें। फिर भी यह भी एक सच है कि चीन आज 10 सालों से श्रीलंका या भारतीय सागर में अपने आधार तैयार कर रहा है ताकि दक्षिणी पूर्वी एशियाई क्षेत्रों में अपने वर्चस्व स्थापित किए जा सकें।

पूर्ववर्ती कांग्रेस की सरकार ने कभी सोचा भी नहीं था कि चीन भारत के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता है। इनके प्रभुत्व जमाने के तौर-तरीकों या गतिविधियों को लगातार नजरअंदाज किया गया। लेकिन सन् 2014 में मोदी सरकार के अस्तित्व में आने के बाद, पहला काम यह किया गया कि सारे देशों से कूटनीतिक संबंध स्थापित किए गए। अरुणांचल प्रदेश और डोकलाम में बढ़ रहे चीनी खतरे सर्वविदित थे। सरकार ने यहाँ के क्षेत्रों में सेना का नियंत्रण स्थापित किया।

चीन के द्वारा डोकलाम परिक्षेत्र में सड़कें बनाए जाने की गतिविधियों को भारत ने राकने की भरसक कोशिशें की। इसके बाद दोनों देशों में तनाव व्याप्त हो गया। मोदी सरकार ने बहुत मजबूत तरीके से आश्वस्त किया कि चीनी टुकड़ियों इस क्षेत्र से वापस जा चुकी हैं। यह भारत की सबसे बड़ी रणनीतिक विजय रही। यहाँ तक कि दिल्ली भी राजपक्षे के चीन के साथ गलबहियों करने से अपने को असहज महसूस कर रही थी। सन् 2007 में भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ने चेतावनी दिया कि अब समय आ

गया है कि श्रीलंका यह समझे कि भारत इस क्षेत्र एक बड़ी ताकत है। इसलिए वो चीन या पाकिस्तान के पास जाकर हथियारों के लिए बात-चीत करने से परहेज करें।

श्रीलंका के भू-राजनीतिक प्रक्षेत्र में चीनी पनडुब्बियों की अचानक उपस्थिति ने नई दिल्ली की श्रीलंका से दूरी बढ़ा दी। लेकिन एक महीने बाद भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने व्यक्तिगत रूप से राजपक्षे को ध्यान दिलाया कि "श्रीलंका अपने पड़ोसी देशों को किसी भी देश के तरफ से बंदरगाहों पर सैन्य जमावड़े को समुद्रीय समझौते के अंतर्गत सूचित करें।" फिर भी नवम्बर माह में कोलंबों में पनडुब्बियों देखी गई जिसकी कोई पूर्व सूचना नहीं दी गई थीं इसी साल श्रीलंका में राष्ट्रपति चुनाव की घोषणा की गई। इसमें राजपक्षे को अत्यधिक आशा थी कि वे तीसरी बार निर्वाचित होंगे। लेकिन फिर भी उनको अपने भूतपूर्व सहयोगी से अप्रत्याशित चुनौतियां मिली।

चुनाव अभियान के दौरान इनके भूतपूर्व एवं अन्नय सहयोगी मैत्रीपाल सिरिसेना ने राजपक्षे की चीन के साथ मैत्री की गम्भीर आलोचना की और इनके द्वारा श्रीलंका के ऊपर चीन से ढ़ेर सारा कर्जे लेने पर विरोध भी जताया। ष्यह धरती जिस पर अंग्रेजों का सैन्य शक्ति के बल पर कब्जा रहा, आज फिर मुट्ठी भर लोगों के हाथों में बेचा जा रहा है।ष सिरिसेना ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में इसकी सिलसिले वार व्याख्या की। उन्होंने आगे कहा कि श्रीलंका कभी भी नहीं चाहेगा कि कोई भी तीसरा देश उनके यहाँ आर्थिक या सुरक्षात्मक रूप से घुसपैठ करें। बल्कि इस बात की बेहद जरूरत है कि सारे भारतीय राज्यों से समान रूप से रणनीतिक संबंध विकसित किये जाए।

भारत ने श्रीलंका के साथ रिश्तों को आसान और बेहतर बनाने के लिए मुहिम चलाई ताकि चीन के भारतीय सागर और दक्षिण एशिया में बढ़ते वर्चस्व को रोका जा सकें। इसी दिशा में यात्रा पर आए श्रीलंका के राष्ट्रपति श्री रानिल विक्रमसिंघे और मेजबानी कर रहे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के बीच आर्थिक सहयोग पर हस्ताक्षर एवं पनडुब्बियों दो-तीन सालों से हंबनटोटा बंदरगाह में जमे पड़े हैं। इस बंदरगाह को चीन के द्वारा इसीलिए खरीदा गया था ताकि श्रीलंका में आने वाले भारतीय व्यापारिक मार्गो को रोका जाए।

अब तो स्थिति यह है कि भारत में बनने वाली हुंडई कारें चीन के द्वारा निर्मित एवं विकसित हंबनटोटा बंदरगाह में खड़ी की जाती है। इसके लिए भारत एक बड़ी रकम अदा करता है। चीन की यही रणनीति रही कि श्रीलंका के बंदरगाहों का इस्तेमाल भारतीय सागर पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए किया जाए। इसके साथ ही साथ दक्षिण अफ्रीका पर पाकिस्तान की सहायता से सैन्य वर्चस्व का विस्तार किया जाए। इन सबके पीछे मुख्य उद्देश्य यही रहा कि बंगलादेश, म्यांमार और श्रीलंका का प्रयोग करते हुए भारत को घेरा जाए और पाकिस्तान का सहारा लेकर पश्चिम के तरफ धावा बोला जाए। इसलिए भारत के लिए अपरिहार्य था कि चीन के वर्चस्व को तोड़ने के लिए श्रीलंका में बंदरगाहों को 40 सालों के खरीद लिया जाए।

इस दिशा में भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने एक अत्यन्त सशक्त निर्णय लिया कि एक महत्त्वपूर्ण एवं महत्त्वाकांक्षी योजना पर विचार किया जाए और जापान तथा अमेरिका के मद्द से नये समुद्री मार्ग तैयार किए जाए। सालों से कांग्रेस सरकार के उपेक्षापूर्ण नीतियों की वजह से भारत की भारतीय सागर में स्थिति कमजोर हो गई थी। अगर तमिलवासी बसे हुए है। इनका अस्तित्व और राजनीतिक स्वरूप उत्तरी पूर्वी तमिलों से बिल्कुल भिन्न है। ये श्रीलंका की आँखों में खटकते हैं। ये अत्यंत गरीब है और राज्य के किसी भी संसाधनों से पूर्णतया वंचित हैं।

प्रधानमंत्री मोदी ने दोनों देशों के बीच गहरा संपर्क साधने की कोशिश की है। उनका प्रयास है कि बौद्धवाद मजबूत हो। कांग्रेस शासन के दौरान, विदेश नीति में बौद्धवाद एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में शामिल नहीं था। मोदी जी ने इसे एक आकार देने की कोशिश की। लंका की जनता के साथ अपनी भावनाओं को जोड़ते हुए उन्होंने कहा कि बौद्धवाद श्रीलंका की राष्ट्रीय अस्मिता का एक भिन्न अंग है।

यही समय है कि हम दोनों देशों के उपेक्षित आध्यात्मिक अस्मिता को परस्पर जोड़े। अतिथि के रूप में महज आमंत्रित करना भी नहीं है, बल्कि संबंधों की एक नई शुरूआत है, जो भौगोलिक अर्थशास्त्र की समझदारी पर आधारित है। इसके पहले भारत और श्रीलंका के मध्य संबंध केवल धमकियों एवं आंतरिक गतिशीलता पर आधारित हुआ करते थे । आपसी वैमनस्य की वजह से एवं परस्पर धमकी भरे शब्दों को इस्तेमाल करने के वजह से श्रीलंका ने भारत को हमेशा बड़े दबंग के रूप में देखा। जिसकी वजह से इसको भारत की तरफ से अपने प्रति खतरे का अहसास हुआ।

भारत की तरफ से श्रीलंका के साथ जिस तरह की बातें हुई, उसमें तमिलनाडु के आंतरिक राजनीति का सबसे बड़ा योगदान

रहा। भौगोलिक स्थिति, सांस्कृतिक परिवेश एवं भू-अर्थशास्त्र को केवल तमिलनाडु को ध्यान में रखते हुए दरकिनार किया गया। इस तरह से तमिलनाडु ने दो राष्ट्रों के बीच प्रेम और नफरत का खेल खेला। श्रीलंका में शांति सेना का भेजना, तमिल चीते को आतंकवादी संगठन करार देना और राजीव गाँधी की नृशंस हत्या शायद इसी की परिणति रही।

दूसरी वजह यह रही कि कांग्रेस पार्टी के शासनकाल में उपेक्षापूर्ण नीति अपनाई गई जिसकी वजह से महाशक्तिया को भारतीय उपसागर में हस्तक्षेप करने का मौका मिला। सबसे पहले अमेरिका और फिर बाद में चीन ने इस भारतीय सागर में हस्तक्षेप करने शुरू किए। भारत शांति का संदेश देता रहा। चीन ने इस अवसर का जमकर लाभ उठाया। पहले तो इसने अपनी जॉबाजी हिमालय के क्षेत्रों में दिखाई और बाद में भारतीय सागर में अपने तेवर दिखाए। इसने पूरी तरह से मौके को मुनाया। भारत के पास कोई विकल्प नहीं रहा। यदि हम वर्तमान परिस्थितियों में मोदी के गतिविधियों को ध्यान से देखें तो हमें कटु वास्तविकता वाद के साथ आदर्शवाद का पुट नजर आता है जिसको आज युग में एक नये दृष्टिकोण के रूप में देखा जा सकता है।

निष्कर्ष- वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दीर्घकालिक कार्य बिन्दुओं के साथ पहल की है। उन्होंने दक्षिण एशियाई लोगों के साथ वार्ता की है और उनके साथ भावनात्मक रायशुमारी की है। रणनीति के टिप्पणीकार सी० राजा राममोहन ने कहा कि पूर्ववर्ती भारतीय सरकारों ने श्रीलंका के नीति के निर्धारण में भयंकर गलतियों की है। इनके अनुसार भारत अभी भी श्रीलंका के साथ उसके आध्यात्मिक विरासत को साझा यह श्रीलंका का ही बौद्धवाद है जिसने भारत को समृद्ध किया है। श्रीलंका के अंगान्कोका ने सन् 1891 में महाबोधि सोसायटी की स्थापना की। बौद्धवाद की कूटनीति केवल सांस्कृतिक वीरत्व के रूप में देखा जाता है।

चीन भी बौद्ध देशों को अपने ढ़ंग से प्रभावित करने की कोशिश कर रहा है। यह तिब्बत में रक्षा के लिए प्रयत्न कर रहा है। यदि भारत श्रीलंका के निवासियों का दिल जीतता है, चीन के बढ़ते प्रभाव को रोका जा सकता है। श्रीलंका ने चीनी पनडुब्बियों को कोलंबो में ठहरने की इजाजत नहीं दी। यह सार्क देशों में सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है, जिसके बंदरगाह में भारत के 70 प्रतिशत जलपोत कोलंबो के बंदरगाह पर रूकते हैं। श्रीलंका का सांस्कृतिक स्वरूप एक ऐसे भू-आर्थिकी की शुरूआत करेगा जिससे त्वरित व्यापक आर्थिक विकास होगा।

भारत और श्रीलंका के संबंधों में उल्लेखनीय सुधार हुए हैं। वर्तमान में भारतीय विदेश नीति ने विश्वास एवं लगाव पैदा करने के लिए सार्थक कदम उठाए हैं। भारत और श्रीलंका ने एक साथ पारस्परिक रिश्तों को कायम करने के लिए अलग-अलग रास्ते अख्तियार किए हैं, जो अधिक मित्रतापूर्ण रहे हैं। यह विश्व राजनीति के परस्पर टकराहट का परिणाम नहीं है, या किसी महाशक्ति के दिशा निर्देशन का ही परिणाम नहीं है। यह परस्पर लाभ और एक दूसरे के प्रति सम्मान पर आधारित है। यह मोदी के विदेश नीति का मूल हैं, जो एक सशक्त ताकत के रूप में उभर कर सामने आ रहा हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. गुप्ता, राकेश, टैरेरिज्म कम्युनलिज्म एण्ड अदर चौलेन्जेज टू इण्डियान सिक्युरिटी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004
2. गुलाम, श्रीप्रकाश, मोहम्मदशाह, टुवर्ड्स अण्डरस्टेन्डिंग द कश्मीर क्राईसेस, नई दिल्ली, 2015
3. लाल, ए.के., नीयो-टैरेरिज्म, ज्ञान पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2004
4. मिश्रा, पुष्पेंद्र कुमार, भारत-पाक संबंध: एक पूनर्वेक्षण, क्लासिकल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2016
5. सेन, अमर्त्य, स्वतंत्रता के रूप में विकास, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2000
6. चन्द्र भूषण, टैरेरिज्म एण्ड सेपरेशन इन नॉर्थ ईस्ट इण्डिया, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
7. चन्द्र रमेश, ग्लोबल टैरेरिज्म: ए थेट टू ह्यूमनिटी, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
8. दीक्षित, संजय, अनब्रेकिंग इंडिया डिसीजन ऑन आर्टिकल 370 एंड सीएए, गरुड़ प्रकाशन, 2020
9. भोंडले के., राहुल, इण्डिया सिक्योरिटी स्कोप, ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2006
10. चन्द, अत्तर, टैरेरिज्म पॉलिटिकल वायलेन्स एण्ड सेक्युरिटी ऑफ नेशन्स, ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988
11. हॉरोविट्ज, डोनाल्ड, सामुदायिक संघर्ष: नीति और संभावनाएँ, ईगल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1990

जनसंचार माध्यमः एक परिचय

प्रो० डॉ० सविता तायडे

हिंदी विभाग, एस. एन. डी. टी. कॉलेज ऑफ आर्टस,
एस. सी. बी. कॉलेज ऑफ कॉमर्स ॲण्ड सायन्स फॉर वूमन, मुंबई

संचार शब्द संस्कृत की 'चर' धातु से बना है , जिसका अर्थ है- चलना। इसी से संचार शब्द बना है। जिसका तात्पर्य है आगे बढ़ना, फैलना। संचार को अंग्रेजी भाषा में कम्युनिकेशन (Communication) कहा जाता है। कम्युनिकेशन शब्द लैटिन भाषा के कम्युनिस (Communis) से निर्मित है। कम्युनिस का अर्थ है किसी वस्तु या विषय का सबके लिए सा होना। जिसके द्वारा किसी भाव, विचार अथवा जानकारी को हम दूसरे तक पहुँचाते हैं, उसे कम्युनिकेशन कहा जाता है। संचार भाषा का अर्थ है- वह भाषा जिसका प्रयोग संचार के विभिन्न माध्यमों के लिए किया जाता है। इस प्रकार संचार शब्द का अर्थ हुआ किसी भाव, विचार या ज्ञान की बाते तथा सुचनाओं को आपस में शब्दों या प्रतीकों द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचारों, मनोवृत्तियों तथा सूचना में हिस्सा लिया है।

जनसंचार के माध्यमों के अन्तर्गत मुख्यतः समाचार पत्र, रेडियो, दुरदर्शन, फिल्म, टेलिफोन, कम्प्युटर, पत्र- पत्रिकाएँ, पुस्तके, टेपरिकार्डर, कैसेट आदि आते है। इन जनसंचार के सभी माध्यमों ने विश्व में फैली समस्त मानव जाति को प्रभावित किया है। संचार के दायरे में अभिव्यक्ति के सभी रूप आ जाते हैं, संसार के सभी प्राणी किसी-न-किसी रूप में आपस में संदेशों का आदान-प्रदान करते है। मनुष्य हो या अन्य कोई प्राणी सभी अपने संदेश या सूचना को प्रभावित रूप से अभिव्यक्त करना चाहते है। गंध, रंग, शब्द, ध्वनि, स्पर्श, शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा किए जाने वाले संकेत हाव-भाव और विभिन्न मशीनों, उपकरणों द्वारा भेजे जानेवाले संकेत. ....यह एक लंबी सूची है, जो संचार के माध्यम बनाती है।

जनमाध्यमों के उपर्युक्त वर्गीकरण की अपेक्षा हमें निम्नांकित वर्गीकरण अधिक उपयुक्त लगता है, क्योंकि आज संचार के इन सभी माध्यमों की भाषा हिंदी बन चुकी है। श्रव्य और दृश्य माध्यमों में भी शब्दों ध्वनियों का प्रयोग होता है तथा आधुनिक युग में संचार के विभिन्न माध्यम भूमिका निभा रहे है।

संचार के माध्यमों को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

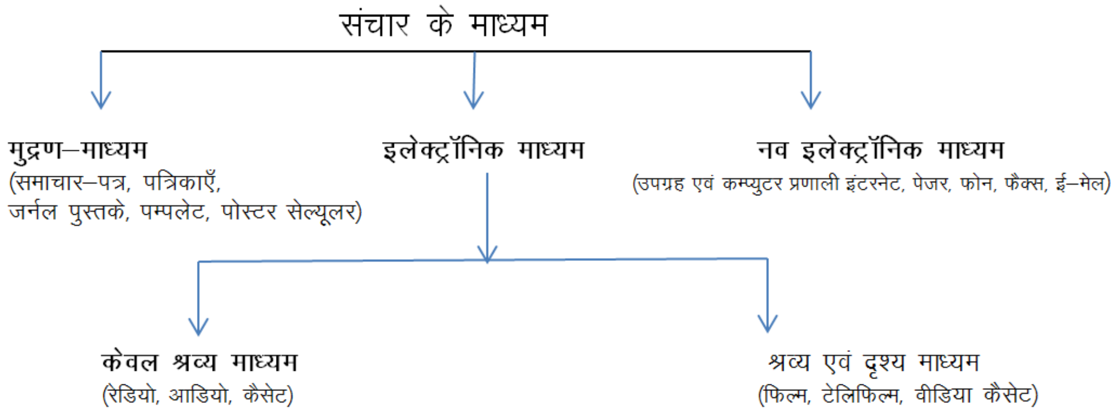

मुद्रण जनसंचार माध्यमः-

आधुनिक जन माध्यमों की अपेक्षा में सबसे प्राचीन मुद्रण-माध्यम है। समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, जर्नल, पोस्टर, पम्पलेट, पुस्तके आदि मुद्रण-माध्यम के अंतर्गत आते हैं। आज भी अन्य संचार माध्यमों की अपेक्षा में ये लिखित माध्यम विश्वसनीयता रखते है। इनके प्रामाणिकता में जनता इसलिए भी विश्वास करती है क्योंकि अन्य माध्यमों जैसे रेडियो एवं टेलीव्हीजन पर सरकारी नियंत्रण होता है। मुद्रण-माध्यम स्वशासित होने के कारण अधिक स्वतंत्र है। मुद्रण माध्यमों की भाषा मानक भाषा होती हैं- समाचार पत्र पत्रिकाएँ, पुस्तके, आदि की हिंदी, मानक हिंदी ही है। विश्व की बात करे तो प्रायः सभी विकसित तथा विकासशील देशों में प्रत्येक पढ़ा लिखा दैनिक समाचार पत्र पढ़ता है। आज आधुनिक समाज या शहर की कल्पना बिना समाचार पत्र के कर ही नहीं सकते है। समाचार पत्र किसी समुदाय की रचना तो नहीं करते, परंतु वे उस समूदाय की मर्यादाओं का निर्धारण तथा उसकी एकता को अवश्य बनाये रखते है। मनुष्य की सामान्य रूचि तथा आचरण को प्रेरणा देते है। विशेषकर ऐसे समाज में जहाँ एक समाचार पत्र पढ़ा जाता है। इस प्रकार एक स्थानीय अखबार किसी कस्बे अथवा जनपद की पहचान इसकी अस्मिता की भावना सुरक्षित रखने में सहायता करता है तथा व्यापक दृष्टि से एक समाचार पत्र हजारों किलोमीटर दूर घटनेवाली हल्की-फुल्की अथवा मानवीय करूणा शोक आदि की घटनाओं को समाचार के माध्यम से आधुनिक विश्व की एकता के सूत्र में भी बाँधते है।

वर्तमान समय में हमारे देश में हजारों समाचार-पत्र, पाक्षिक, साप्ताहिक तथा मासिक पत्र पत्रिकाएँ निकल रही है, जैसे प्रताप, कर्मवीर, वीणा, चाँद, माधुरी, मतवाला, सुधा, जागरण, हंस, विशाल, भारत, हिन्दू पंच, गंगा, हिमालय जैसे स्तरीय पत्रिकाएँ जनता में साहित्यिक चेतना और गाँधीवादी विचारधारा प्रसारित करने में अग्रगण्य है। दैनिक पत्रों में विश्वमित्र, स्वतंत्र, आज, भारत और आर्यावृत्त की भी भूमिका सराहनीय है। संक्षेप में कहे तो प्रेस ने राष्ट्रीय चेतना के विकास में, अँग्रेजी के अनीतियों के विरोध में, सामाजिक कुरीतियों के उन्मुलन में साहित्यिक, सांस्कृतिक जागरण में जनता में राजनीतिक चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यमः-

जनसंचार का दूसरा प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण माध्यम इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है। इसमें पहला केवल श्रव्य माध्यम है। श्रव्य माध्यम में रेडियो तथा ऑडियो कैसेट आते है। यह माध्यम श्रवणेन्द्रियों के जरिए सारी दुनिया को स्रोता के निकट ले जाता है। इस माध्यम से दुर्गमस्थानों में रहनेवाले लाखों करोड़ों बाहरी दुनिया से जुड़ जाते है। इस माध्यम में विभिन्न कार्यक्रम प्रसारित होते है। इस माध्यम की अपनी भाषा होती है। संचार की प्रक्रिया को रेडियो के आविष्कार ने मानव समाज के भीतर अपनी जगह एक विश्वसनीय मित्र के रूप में बना ली है। रेडियों ऐसा संचार माध्यम है, जिसके माध्यम से विस्तृत जनसमुदाय को एक ही संदेश पहुँचाया जा सकता है। वास्तव में रेडियो का आविष्कार 19 वी शताब्दी में माना जाता है। मनुष्य की आवाज पहली बार रेडियो पर 1906 में सुनाई दी। भारत में रेडियो प्रसारण का इतिहास सन 1926 से शुरू होता है। रेडियो संचार का सस्ता, सुविधाजनक एवं लोकप्रिय साधन बन चुका है। किसी रेडियो स्टेशन से जिस समय संदेश प्रसारित होता है, ठीक उसी समय (कुल सैकडो) में वह हजारो मील दूर बैठे लोग उसे रेडियो विद्युत ऊर्जा के द्वारा ध्वनि तरंगो के माध्यम से अपने रेडियो सेट पर सुन सकते है।

राष्ट्रीय प्रसारणों के साथ ही आकाशवाणी ने प्रादेशिक सेवाओं महत्व है। रेडियो पर प्रायः प्रसारण की निम्नलिखित विधाएँ है- समाचार फीचर, वार्ता, साक्षात्कार, डाक्युमेन्टरी, विचार गोष्ठी, आँखो देखा हाल, नाटक, कहानी, काव्यपाठ, कवि सम्मेलन, विशेष प्रसारण, रील, रेडियो रिपोर्ट, बच्चों का कार्यक्रम, महिला कार्यक्रम, युवा कार्यक्रम, किस्मों के लिए कार्यक्रम, संगीत के विविध कार्यक्रम, खेल जगत, पर्व और जयन्तियाँ, बुजुगों के लिए परिवार कल्याण, स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम आदि।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम का दूसरा भेद दृश्य- श्रव्य है। जिसमें फिल्म तथा टेलीविजन की गणना होती है। वर्तमान समय में फिल्म एवं टेलीविजन की लोकप्रियता सबसे प्रभावी रूप में है। आज फिल्म, टेलीविजन तथा वीडियों कैसेट संचार का सबसे सशक्त माध्यम बन गया है। टेलीविजन के साथ फिल्म माध्यम साँठ- गाँठ कर विश्व का परिवर्तन करने में अपनी भूमिका निभा रहा है। वैसे देखा जाये तो टेलीविजन ने हमारी पढ़ने की आदत बिगाड़ दी है और कम्प्युटर ने हमारी गणित की क्षमता को बाँध दिया है। उसके बावजूद इन माध्यमों की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आ रही है। फिल्म और टेलीविजन इन इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों ने जहाँ पर बैठे सारे विश्व को जोड़ दिया है। यह माध्यम विशाल जन समुदाय का ध्यान आकर्षित करने में अन्य सभी माध्यमों से आगे है। इसने दुनिया की सारी तमाम दुरियों को मिटा दिया है।

दुरदर्शन पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों को दो वर्गों में रखा जा सकता है

1. ऐसे कार्यक्रम जिनमें उच्चारित शब्द का महत्व सर्वोपरि है , जो प्रथम वर्गों के कार्यक्रम में आते है- समाचार वार्ता , साक्षात्कार , रिपोर्ट , नाटक , परिचर्चा , रूपक या फिचर , कमेंटरी , खेल आदि का आँखो देखा प्रसारण , वृत्तचित्र , कवि सम्मेलन और मुशायरा , यू . जी . एन . सी . ई . आर . टी के शिक्षण कार्यक्रम आदि।
2. ऐसे कार्यक्रम जिनमें संगीत और मनोरंजन ही एकमात्र लक्ष्य है। यह द्वितीय वर्ग के कार्यक्रम में आते है फीचर, फिल्म, फिल्मी गीत एवं संगीत, लोकगीत, संगीत, शास्त्रीय संगीत, गायन, वाद्य संगीत आदि।

नव इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यमः-

संचार का सबसे प्रभावी एवं सशक्त माध्यम नव इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है। इसके अन्तर्गत उपग्रह, कम्प्युटर, इंटरनेट, सेल्यूलर फोन, फैक्स, ई-मेल आदि आते है। इन संचार माध्यमों के अतिरिक्त टेलीग्राफ नामक आधुनिक संचार माध्यम है। इसके द्वारा संदेश भेजा जाता है।

इलेक्ट्रॉनिक जन माध्यम में उपग्रह (सेटेलाईट) है। उपग्रहों के कारण आजकल संचार की दुनिया में पर्याप्त विकास हुआ है। विषववृत्त रेखा के ऊपर एक निश्चित ऊँचाई पर उपग्रह स्थापित किया जाता है। इन्हीं भूस्थिर उपग्रह करते है, जो प्रसारण की सुविधा प्रदान करते हैं। जिससे अंतरराष्ट्रीय संचार प्रणाली विकसित होती है। पृथ्वी की किसी कक्षा में एक स्थान पर उपग्रह स्थिर हो जाता है, तो वह पृथ्वी के साथ-साथ घूमने लगता है। उपग्रह को राकेट लांचर की सहायता से स्थापित किया जाता है। उसके ऊपर एक अभिकेन्द्र बल काम करता है। यह अभिकेन्द्र बल उपग्रह पर लगनेवाली पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति को संतुलित करता है, जिससे उपग्रह वही घूमता रहता है , नीचे नहीं आ पाता। उपग्रह की गति कम नहीं होनी चाहिए अन्यथा वह नीचे आ जायेगा और गिरकर नष्ट हो जायेगा।

पृथ्वी से कुछ सिग्नल उपग्रह की ओर भेजे जाते है। उपग्रह उन्हे ग्रहण करता है तथा उनका आवर्धन कर लेता है। इसके बाद उपग्रह द्वारा वे अवधिक सिगनल विभिन्न दिशाओं में प्रेषित कर दिये जाते है। इन सिगनलों को पृथ्वी पर स्थित अनेक केन्द्र ग्रहण कर लेते है और प्रसारित करते है। उपग्रहों के माध्यम से प्रेषित समाचार दिन-रात पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे हैं, जिनको विश्वभर के रेडियो एवं टेलीविजन केन्द्रों द्वारा प्राप्त कर प्रसारित करते है। इन उपग्रहों से सुदूर अन्तरिक्ष की अ गत ज्ञान की जानकारी भी प्राप्त होती है। आज हमारी प्रायः सभी जनसंचार माध्यम उपग्रह से जुड़े है, और प्रभावशाली ढंग से संचार प्रक्रिया में लगे हुए है। मुद्रण, श्रव्य, दृश्य तथा नव इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के अतिरिक्त कुछ अन्य जनसंचार के माध्यम है जैसे टेलीग्राफ, इन्टरनेट, टेलीप्रिंटर, फैक्स, टेलीफोन, कार्डलेस टेलीफोन, इन्टरकॉम, एस. टी. डी., आई. एस. डी., पेजर, सेल्युलर टेलीफोन, वीडियो फोन, टेलीटेक्स्ट, टेलीकान्फ्रेंस, टेलेक्स, वीडियो टेक्स्ट एवं इलेक्ट्रॉनिक मेल आदि।

निष्कर्ष- जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में हिंदी भाषा का प्रयोग किया जा रहा है। फिल्म टेलीविजन, उपग्रह चौनलों और इंटरनेट आदि संचार के माध्यमों में हिंदी का इतना व्यापक प्रयोग हो रहा है। वर्तमान समय में संचार माध्यम जिस भाषा का प्रयोग कर रहे है क्या वह शुध्द हिंदी है। आलोचको के अनुसार वह भाषा हिंदी नहीं 'हिंग्लिश' है। जिसके अंतर्गत हिंदी कम अंग्रेजी ज्यादा है। जिस 'हिंग्लिश' कहा जाता है। आज जिस 'हिंग्लिश' का प्रयोग संचार माध्यमों में हो रहा है। वह ज्यादा देर नहीं चलेगा। हिंदी का शुध्द रूप अपने आप सामने आएगा। सही मायने में भाषा वही होती है। जिस रूप में वह लिखी जाती है। जनसंचार में भाषा मुख्य माध्यम है। भाषा के बिना संसार असंभव है। शिक्षा से विज्ञान का निर्माण हुआ है, तब विज्ञान से जनसंचार के आधुनिक साधनों का मानव की आधुनिक शिक्षा तथा विज्ञान दोनों के प्रचार एवं प्रसार एवं प्रसार के लिए जनसंचार के माध्यम अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका तथा दायित्व का निर्वाह कर रहे है।

संदर्भ सूची

1. प्रयोजनमूलक हिंदी अधूनातन आयाम- डॉ0 अंबादास देशमुख, शैलजा प्रकाशन, कानपूर 2009
2. प्रयोजनमूलक हिंदी रू सिद्धांत और प्रयोग- डॉ0 दंगल झाल्टे वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 1996

ध्वनियांकन तकनीक का परिवर्तित स्वरुप व संगीत में उसकी उपयोगिता

डॉ० मुकेश

एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, पं०नेकी राम शर्मा राजकीय कालेज, रोहतक (हरियाणा)

संगीत शिक्षा का मुख्य उदेश्य उसे छात्रों की शिक्षा का एक हिस्सा बनाना है। साथ ही जिन छात्रों में कलाकार बनने की प्रतिभा गुप्त रूप में विद्यमान हो उसे विकसित करना और अवसर देना भी एक उदेश्य है।

वैदिक काल में संगीत की तीनों विद्याओं गीतं वाद्यं एवं नृतं का पर्याप्त मात्रा में उल्लेख तथा साम से सम्बन्धित एक विशिष्ट प्रकार के प्रचुर साहित्य का सृजन इस बात का प्रमाण है कि वैदिक काल में संगीत शास्त्र विकास के सर्वोच्च धरातल पर प्रतिष्ठित था। संगीत से सम्बन्धित इतने विशाल साहित्य का सृजन एक दिन में अथवा अपने आप हो गया ऐसा नहीं माना जा सकता।

आधुनिक युग की व्यवस्था में यदि शिक्षा की बात की जाये तो यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि शिक्षा भी आधुनिक तकनीक पर आधारित हो गई है। अर्थात शिक्षा में विज्ञान एवं तकनीक का समावश हो गया है। 20वीं शताब्दी में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में त्वरित गति से हुए परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वैज्ञानिकता ने जहां समाजिक, राजनैतिक शैक्षिक परिवर्तनों को प्रभावित किया है वहाँ संस्कृति एवं कला भी अछूती नही रही है। संगीत के क्षेत्र में तो तकनीक के प्रयोग से एक नये युग की शुरुआत हो गई है। ऐसा कहा जा सकता है यदि हम दृष्टि डाले तो जहाँ पहले संगीत गुरु शिष्य परम्परा से शुरू हुआ फिर घरानों में पहुँचा तत्पश्चात शिक्षण संस्थाओं में।

गुरु शिष्य परम्परा में विधार्थी को गुरु के आश्रम या घर रहकर शिक्षा ग्रहण करनी होती थी। संगीतज्ञ विद्वान अपने अपने वंशजों को ही संगीत शिक्षा देना श्रेष्ठ समझते थे। अथक प्रयासों के पश्चात् संगीत की शिक्षा शिक्षण संस्थाओं में दी जाने लगी। "शास्त्रीय संगीत पहले मंदिरों गिरिजाघरों राजा महाराजाओं के दरवारों या छोटी छोटी महफिलों के सीमित दायरे में बंधा हुआ था। जिसके कारण जन साधारण संगीत से दूर होता जा रहा था तथा उस समय इस कला के कलाकारों को एक बार प्रदर्शन के पश्चात उसे दोबारा सुनने या देखने की सुविधा नहीं थी।"[1]

वर्तमान में भारतीय संगीत के प्रचार प्रसार को देखते हुए यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि मीडिया के अभूतपूर्व योगदान से यह कार्य संभव हुआ है। भारतीय संगीत मुख्यत: शास्त्रीय संगीत जिसका जन्म मंत्रोच्चार के साथ वन खण्ड स्थित महर्षि के आश्रम में हुआ जो मन्दिरों राज दरबारों हवेलियों रईस लोगों के जीवन का अभिन्न अंग बनता चला गया। इस दिशा में मीडिया का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। विभिन्न माध्यमों से सूचना प्रदान करके संगीत रसिको को आकर्षित कर संगीत के क्षेत्र में कार्य करने हेतु प्रेरित कर रहा है।

संगीत के क्षेत्र में भी मीडिया के प्रकारों द्वारा रचनात्मक कार्यो के अवसर प्राप्त किये जा रहे है। आधुनिक एवं परिष्कृत सोच विचारों द्वारा संगीत को मीडिया से जोड़कर नवीनतमता लाई जा रही है।

20वीं सदी के प्रारम्भ में विज्ञान एवं तकनीकी विकास कम में संगीत स्वर लिपि, ध्वनिमुद्रण व ध्वनि संग्रंण के कांतिकारी शोध ने भविष्य की विस्मयकारी संभावनाओं की नींव डाली और संगीत शिक्षा व संगीत प्रदर्शन के लिये नये मार्ग खोल दिये।

वैज्ञानिक तकनीक के प्रयोग से अब संगीत संग्रहीत होने लगा। इलेक्ट्रोनिक माध्यमों में समस्त विषयों से संबंधित जानकारी आसानी से उपलब्ध होने लगी। इन माध्यमों के अन्तर्गत ग्रामोफोन आकाशवाणी दूरदर्शन सिनेमा, ध्वनि निक्षेपक, ध्वनि मुद्रक

कम्प्यूटर आदि साधनों के माध्यम से कियात्मक पक्ष को अत्याधिक समृद्धशाली बनाने का प्रोत्साहन मिला है। इन माध्यमों द्वारा संगीत के कलाकारों एवं उनसे जुड़े वाद्यों को खासी लोकप्रियता हासिल हुई तथा व्यवहारिक एवं क्रियात्मक पक्ष को स्थायित्व मिला। संगीत कला घरानों के सिमित दायरे से निकलकर जन साधारण तक पहुँची। जो संगीत कला अपने पारम्परिक रूप में अपनी विशिष्ट शैली से परिपूर्ण घरानों के सीमित दायरों में व्यवस्थित थी।

20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में वैज्ञानिकता के आगमन से प्रभावित हुए बिना नही रह सकी। ध्वनियांकन की नई-नई तकनीकों के खोज व आगमन से संगीत जनसाधारण तक सुलभ होने लगा। इस दिशा में ग्रामोफोन रिकॉर्ड तथा आकाशवाणी व अन्य प्रकरण के समुचित प्रयोग ने इस क्षेत्र में एक नया आयाम स्थापित किया।

ग्रामोफोन

ग्रामोफोन युनानी भाषा का शब्द है जिसमें 'ग्रामों' का अर्थ है "अक्षर' और 'फोन' का अर्थ है "ध्वनि" अर्थात किसी भी ऐसे यन्त्र को ग्रामोफोन कहते है जिससे ध्वनि का अभिलेखन और बाद में पुनरूत्पादन होता है।

सर्वप्रथम लियन स्काट में सन् 1857 में फोनाटोग्राफ का अविष्कार किया जिसके द्वारा ध्वनि अभिलेखन किया जा सकता था। फोनाटोग्राफ में एक "झिल्ली थी जिससे एक बहुत नाजुक उत्तालोक संलग्न था। अभिलिखित ध्वनि का प्रथम वास्तविक पुनरूत्पादन टी ए एडिसन द्वारा सन् 1876 में हो सका। जिसका नाम फोनोग्राफ रखा गया।

सन् 1877 से 1887 के मध्य फोनोग्राफ विश्व में हर जगह पहुँच चुका था। हजारों नौजवान एडिसन के फोनोग्राफ के प्रति आकृषित थे इन्ही में से एक थे एमिली बरलाइनर।

बरलाइनर डब्ल्यू गैसवर्ग द्वारा लंदन में रिकोर्डिंग का कार्य आरम्भ किया गया। यह रिकोर्डिंग अभियान वही नही रूका बल्कि एक श्रृंखला के रूप विश्व के विभिन्न देशों में पहुँचा उनमें भारत भी शामिल था।

ग्रामोफोन का मुख्य उदेश्य विद्वानों की विद्वता तथा कलाकारों की कला को सुरक्षित रखना था ताकि भावी पीढियां भी इनकी कला से लाभान्वित हो सके। लेकिन प्रारम्भ में इस उदेश्य की पूर्ति संभव न हो सकी कारण कुछ कलाकारों की रूढिवादी विचारधारा इस दिशा में बाधक रही। परिणामत: उन कलाकारों की कला को रिकोर्ड नही किया जा सका।[2]

कुछ ऐसे भी कलाकार भी हुए जिन्होंने इस ओर अपना विशेष ध्यान देकर ग्रामोफोन रिकोर्डिंग में अपना सहयोग दिया। 34 शास्त्रीय संगीत के गायकों जैसे पं विष्णु दिगम्बर पलुस्कर इनके ही गुरू बालकृष्ण बुआउस्ताद अल्लादिया खाँ ... गायक... ने भी अपने गायन के रिकॉर्ड बनाकर आने वाले संगीत प्रेमियों के लिये संगीत को शुलभ बनाया।

सन् 1898 ई से 1907 ई की कलावधि में ध्वनिमुद्रण के उधोग में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा के साथ बहुत उन्नति पर रही। इस तकनीक ने भारत के बड़े शहरों में तथा उच्च्य समाज में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था। तकनीकी और गुण दोनों दृष्टियों से संगीत में भारी बदलाव आया। पश्चिम में माइकोग्रुव रिकोर्डिंग सन् 1948 ई में प्रारम्भ हुई। हालाकि इसके बहुत बाद तक 78 R.P.M. रिकॉर्ड बनते रहे।

आधुनिक सीडी सिस्टम का रूप पाने में म्युजिक सिस्टम ने बहुत लम्बा सफर तय किया है। 19वीं सदी के अन्तिम दशक में टेप पर आवाज को रिकॉर्ड करने के कई प्रयोग हुए। सन् 1998 में 'वाल्डीमर पॉलसन' ने टेपरिकोर्डर का अविष्कार किया तथा सन् 1936 ई. मे प्रथम बार उसका प्रयोग किया गया 'बर्लिन रेडियों फेयर मैग्रेक्टोफोन कम्पनी जर्मनी' नेसन् 1928 में कागज की टेप सन् 1930 में स्टील की टेप सन् 1936 में सेल्यूलोज के टेप सन् 1943 में पी.वी.सी. के टेप तथा सन् 1957 में पोलिएस्टर के टेप का अविष्कार हुआ। इस पोलिएस्टर टेप पर चुम्बकीय आक्साइड का लेप लगातार प्रयोग में लाया गया। यह दृढ़ भी था और मुंडनशील भी। 1956 में स्टीरियों फोनिक रिकोर्डिंग भी टेप से मिलने लगी। सन् 1960 में रिकॉर्ड के कैसेट बनने से टेप को चढ़ाना और बदलना अति सरल हो गया। टेपरिकॉर्डर के एम्पलीफायर की गुणवत्ता अति उत्तम हो गई और कई सुविधाएँ एडिटिंग के लिये भी उपलब्ध हो गई। बहुत सी कम्पनियों द्वारा ध्वनि का अंकन कर संगीत व गीतों के कॅसेट्स उपलब्ध कराये गये।

समय के साथ साथ रिकोर्डिंग प्रणाली में पर्याप्त परिवर्तन हुए। जहाँ पहले साधारण रिकोर्डिंग होती थी जैसा गाया वैसा ही रिकोर्ड कर लिया उसमें कुछ सुधार की आवश्यकता नही रहती थी वही रिकोर्डिंग पद्धति धीरे-धीरे वैज्ञानिक तकनीकियो के कारण और समय की जरूरत के कारण परिवर्तित होती चली गई। रिकॉर्डिंग की विधि आज बहुत बदल गई है और उससे कलाकार का प्रस्तुतीकरण बहुत बदल गया है। पहले मोनो रिकॉर्डिंग होती थी।

उसके बाद समय बदला और मल्टी चौनल और मल्टी मैक्रोफोन की जरूरत महसूस की गई। गाने वाले के साथ जैसे सितार वाला बासुरी वाला तबला वाला यानि सबकी आवाज अलग अलग सुनाई दे इसी को रिकोर्डिंग करने की जरूरत हुई और उसको उचिता समझा गया। इसके बार मल्टी फेडर की रिकोर्डिंग आई। चार फेडर लेकर उसमें चार चौनल से सेंट्रल आउट से लेकर रिकॉर्डिंग कर सकते हैं। लेकिन वह चीज भी आवश्यकताओं के अनुरूप नही रही और प्राइवेट रिकोर्डिंग कम्पनियों ने संगीत के कुछ ऐसे उपकरणों को बनाया कि जिससे जो संगीत का सौन्दर्य है वह निखर गया और उसके बाद स्टीरियों रिकोर्डिंग शुरू हुई। यह एक विधि है जिसमें ईको थोड़ा सा रहता है गूँज रहती है और वह आवाज सरकूलेट होकर और डिफरेन्ट स्पीकर्स में क्लीयर सुनाई देती है। वह स्टीरियों रिकोर्डिंग है। इसमें कलाकार की अच्छी चीज भी हाईलाइट होने लगी और बुरी चीज भी। अब उसके बुरे आस्पेक्ट को जिसकी जरूरत नही उसको कैसे अलग करें यह रिकॉर्डिंग का ट्रैक सिस्टम है। ये उपकरण दो दृष्टि से और एक समय की दिक्कत के कारण इस मल्टी ट्रैक सिस्टम ने आर्टिस्ट एवं प्रस्तुति को एक नया मोड़ दिया।

अब नई तकनीक आ गई है डिजिटल तकनीक जिससे आप इस रिकोर्डिंग को नम्बर्स बनाकर रिकोर्ड कर सकते है। सीडी माध्यम भी रिकोर्डिंग का माध्यम है। इसमे एक बार रिकोर्डिंग करिये बार बार इस्तेमाल करिए या उसे रखे रहिये उसमें कभी कमी नही आती। यह प्रणाली 1979 में विकसित हो गई। काम्पैक्ट डिस्क में सम्पूर्ण रिकोर्डिन्ग कम्प्यूटर एवं लेजर किरणों में ही होती है इसलिए यह देखने में बहुत आसान लगती है। अब इस ध्वनि को रिकॉर्ड करना होता है तो उसको सबसे पहले संवेदनों के जरिए कम्प्यूटर तक पहुँचाया जाता है तथा वह इसका प्रतिनिधित्व करता है।[3]

ध्वनि मुद्रण में माइकरोफोन का अपना विशेष महत्त्व। अब वह कलाकार की सफलता असफलता का धोतक माना जाने लगा। आज इस 'रिकॉर्डिंग के जरिए कलाकार की थोड़ी सी गलती भी पता लगती है। अगर कलाकार नें थोड़ा सा अच्छा बजाया तो बहुत अच्छा सुनाई देगा और थोड़ी सी गलती भी बहुत बड़ी होकर पता चलती है। आज कलाकार बहुत कुछ तकनीकों का प्रयोग माइक के सामने करते है जो पहले नहीं कर पाते थे।

20वीं शताब्दी के आखिरी दो दशकों में कम्पयूटर का अभूतपूर्व विकास हुआ। इनका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। संगीत को कम्प्यूटर से जोड़ने के लिए एक ध्वनि कार्ड का प्रयोग में लाया जाता है। ध्वनि के संकेत पहले 'माइक्रोफोन की सहायता से विधुत संकेतों में बदलकर इस कार्ड को दिये जाते है। एक एडट द्वारा इसको एक सैकण्ड में 40000 बार की दर से नाप कर एक संख्याओं की एक श्रेणी बना दी जाती है। ये संख्याएँ 16 या ज्यादा बाईनरी अंको में होती है। एक सैकण्ड में 6 लाख से ज्यादा बाईनरी अंको की श्रेणी को कुछ तरिकों से कुछ करके कम्प्यूटर के डिस्क पर भरा जाता है।

रिकोर्डिंग के विषय में यह कहा जा सकता है कि किसी कलाकार के गायन एवं वादन की किसी विशेषता को सुनकर व समझकर अपने गायन या वादन में निखार ला सकता है। यही प्रयत्न संगीत को जानने का महत्त्वपूर्ण अंग है। इस दृष्टि से इन वैज्ञानिक उपकरणों ने संगीत के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तकनीक का संगीत के प्रचार प्रसार में विशेष योगदान है। इसके द्वारा जहाँ मनुष्य ने जीवन की आधारभूत: जरूरतों में सुविधा प्राप्त की है। वहिं संगीत सुनने सीखने व सिखाने आदि में भी सुविधा प्राप्त होनी सम्भव हुई।

आज संगीत शिक्षण के क्षेत्र में कम्प्यूटर एवं इन्टरनेट का महत्त्वपूर्ण योगदान की चर्चा हो रही है। संगीत शिक्षण के लिये वेबसाइट बन रही हैं। वेबसाइट एक इलैक्ट्रॉनिक पेज होते है जिनमें पाठ्य ध्वनि विडियो ऑडियो तथा चित्रो आदि का समावेश है जो कि आपस में परस्पर जुड़े होते है। वर्तमान समय में न सिर्फ भारतीय संगीत में अतितु विश्व के प्रत्येक संगीत में अनेकों वेबसाइट इन्टरनेट पर उपलब्ध है। अब आडियो विडियो रिकॉर्डिंग्स मल्टीमीडिया इन्टरनेट वेबसाइट आदि दूरसचौर माध्यमों के द्वारा संगीत सीखना सम्भव होता जा रहा है।

निष्कर्ष

नि:सन्देह आज के समय काल व परिस्थितियों को देखते हुए हमें हर प्रचलित टेक्नोलॉजी को अपने विकास व समृद्धि के लिए अपनाने में हिचकना नहीं चाहिए। चूंकि नई टेक्नोलॉजी से संगीत शिक्षण ग्रहण करने में सुगमता आई है इसलिये यह स्वत: ही कब संगीत के साथ हो गई इसका एहसास ही नहीं हुआ। परन्तु यह भी सत्य है कि टेक्नोलॉजी अपनाने से 'गुरू' के मार्गदर्शन की आवश्यकता ही न रहेगी यह सम्भव नही है। संगीत में चाहें वह गायन हो या वादन जब तक गुरु नही बतायेगा की किस प्रकार

रियाज करें, गला कैसे तैयार करना है, साज पर हाथ किस प्रकार रखना है, उसका संचालन, स्वर लगाव, किस राग में किस तरह स्वरों को लगाना है, स्वरों की बारिकियों, हरकतों इत्यादि इन सब को न तो लिपिबद्ध किया जा सकता है और न ही रिकोर्डिंग से सीखा जा सकता है। इसके लिये तो गुरू उस्ताद या मार्गदर्शक के सामने बैठकर व्यक्तिगत रूप से सीखा जाना ही सम्भव है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि

1. 'संगीत' मासिक पत्रिका, (अगस्त 1985)
2. भारतीय संगीत में वैज्ञानिक उपकरणों का प्रभाव -डॉ० अनिता गौतम
3. हिन्दुस्तानी संगीत में परिवर्तनशीलता - डॉ० बैनर्जी असित कुमार
4. डॉ० रमाकांत द्विवेदी -उत्तर भारतीय शास्त्रीय गायन का ध्वन्यांकित अध्ययन
5. संगीत पत्रिका, सितंबर 2011, पृष्ठ 13

रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं उनके शैक्षिक विचारः एक अध्ययन

डॉ० दुर्गेश पाल

सहायक आचार्य शिक्षाशास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ०प्र०)

प्रस्तावना

विश्व मंच पर भारतीय साहित्य का परचम लहराने वाले साहित्यकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर को गुरुदेव के नाम से भी जाना जाता है। वे विश्वविख्यात कवि, साहित्यकार, दार्शनिक और भारतीय साहित्य के एकमात्र नोबल पुरस्कार विजेता हैं। इन्होंने अपनी पहचान बांग्ला साहित्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना में नयी जान फूँकने वाले युगदृष्टा के रूप में बनाई। वे एशिया के प्रथम नोबेल पुरस्कार सम्मानित व्यक्ति हैं। वे एकमात्र कवि हैं जिसकी दो रचनाएँ दो देशों का राष्ट्रगान बनीं। भारत का राष्ट्र-गान जन गण मन और बांग्लादेश का राष्ट्रीय गान आमार सोनार बांग्ला गुरुदेव की ही रचनाएँ हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर और माता शारदा देवी थी। 7 मई, 1861 को कोलकाता के जोड़ासाँको ठाकुरबाड़ी मे इनका जन्म हुआ था।[1] उनकी स्कूल की पढ़ाई प्रतिष्ठित सेंट जेवियर स्कूल में हुई। उन्होंने बैरिस्टर बनने की चाहत में 1878 में इंग्लैण्ड के ब्रिजटोन में पब्लिक स्कूल में नाम दर्ज कराया। उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय में कानून का अध्ययन किया लेकिन 1880 में बिना डिग्री हासिल किए ही स्वदेश वापस आ गए।

1881 में स्वदेश लौटने के उपरान्त उन्होंने समाज सेवा तथा राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर एक लेखक के रूप में अपना व्यवहारिक जीवन आरम्भ किया।[2] सबसे पहले उन्होंने मासिक पत्रिका 'भारती' में तथा इसके बाद 'साधना' नामक पत्रिका के लिये लिखना आरम्भ किया। वह समाज सेवा कार्य में भी संलग्न हुए। राजनीतिक घटनाक्रम में भी उन्होंने अपनी भागीदारी प्रदर्शित की। सामाजिक, राजनीतिक व शैक्षिक कार्यों के बीच उनकी साहित्य साधना निरन्तर चलती रही। जिसने आगे चल कर उन्हें विश्वव्यापी प्रतिष्ठा प्रदान की। रवीन्द्र नाथ टैगोर इस बात को भली प्रकार जानते थे कि किसी भी बात को जनसामान्य तक पहुंचाने का सबसे प्रभावशाली साधन शिक्षा है। अत: अपनी साहित्यिक साधना के साथ-साथ वह शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कार्य में भी संलग्न रहे। बोलपुर के समीप सन् 1901 में शान्ति निकेतन की स्थापना करने के साथ उन्होंने खुद को शिक्षा-साहित्य व समाज सेवा के कार्य में समर्पित कर दिया। शान्ति निकेतन के माध्यम से शिक्षा के प्रसार व समाज सेवा के माध्यम से उन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाई।

वे अपने कर्तव्य पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते रहे। सन् 1913 ई. में अपनी कृति गीतांजली पर नोबल पुरस्कार प्राप्त करने के साथ वह एक विश्वविख्यात व्यक्ति बने।

टैगोर ने करीब 2,230 गीतों की रचना की। रवीन्द्र संगीत बांग्ला संस्कृति का अभिन्न अंग है। टैगोर के संगीत को उनके साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता। उनकी अधिकतर रचनाएँ तो अब उनके गीतों में शामिल हो चुकी हैं। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की ठुमरी शैली से प्रभावित ये गीत मानवीय भावनाओं के अलग-अलग रंग प्रस्तुत करते हैं। अलग-अलग रागों में गुरुदेव के गीत यह आभास कराते हैं मानो उनकी रचना उस राग विशेष के लिए ही की गई थी। प्रकृति के प्रति गहरा लगाव रखने वाला यह प्रकृति प्रेमी ऐसा एकमात्र व्यक्ति है जिसने दो देशों के लिए राष्ट्रगान लिखा।

टैगोर और महात्मा गांधी के बीच राष्ट्रीयता और मानवता को लेकर हमेशा वैचारिक मतभेद रहा। जहाँ गांधी पहले पायदान पर राष्ट्रवाद को रखते थे, वहीं टैगोर मानवता को राष्ट्रवाद से अधिक महत्व देते थे। लेकिन दोनों एक-दूसरे का बहुत अधिक सम्मान करते थे। टैगोर ने गांधीजी को महात्मा का विशेषण दिया था।

रवीन्द्र नाथ टैगोर के दार्शनिक विचार

अपने दर्शन में रवीन्द्र नाथ ने ईश्वर को सर्वोच्च सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। वे अद्वैतवादी थे। वे विश्व की सर्वोच्च शक्ति के रूप में उसी परमपुरुष को मानने थे जो जगत का पालन कर्त्ता है। यही कारण है कि टैगोर को 'सत्यम् शिवम् एवं अद्वैतम' की धारणा में दृढ़ विश्वास था। उनके अनुसार सृष्टि में सामंजस्य है। इसलिए व्यक्तित्व में भी सामंजस्य होना चाहिए।

टैगोर सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे वे जीवनपर्यन्त मानव की सेवा में लगे रहे वे शाश्वत मानवीय मूल्यों के अधिवक्ता थे तथा मानवता की सेवा में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते थे। एक महाकवि होने के कारण उन्हीं संवेगों एवं स्थाई भावों के दमन का परामर्श नहीं दिया अपितु व्यक्ति की सभी शक्तियों के सामंजस्य पूर्ण विकास का समर्थन किया है। टैगोर ने ग्राम-सुधार एवं ग्राम सेवा को महत्वपूर्ण मानकर ग्रामीणों को उचित सम्मान दिलाने का प्रयास किया। छुआ-छूत एवं जाति-पांति के आप विरोधी थे। वे धर्म, भाषा तथा लिंग के आधार पर कोई भेद-भाव स्वीकार नहीं करते थे इस प्रकार स्वतंत्रता में उनकी विशेष आस्था थी उनका मानना था कि यदि देश आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो जाएगा तो राजनीतिक स्वतंत्रता स्वयं ही प्राप्त हो जाएगी।

गुरुदेव ने मनुष्य को एकता और सामंजस्य का पाठ पढ़ाया। उन्होंने अनुभव किया कि मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य-प्रगति करना है। उन्होंने विभाजित करने वाले सिद्धांत को संदेह की दृष्टि से देखा और सम्पूर्ण मानव-जाति को एक माना। वे ईश्वर में विश्वास करते थे, इसलिए वे मनुष्य में भी विश्वास करते थे। उनका विश्वास था कि मनुष्य परमात्मा का रूप है। ईश्वर की उपासना न केवल पवित्र नगरों के मन्दिरों और बड़े शहरों के गिरजाघरों में की जा सकती है, वरन् भूमि को जोतकर और पत्थरों को तोड़कर भी की जा सकती है। गीतांजली में उनके ये विचार बड़े ही स्पष्ट और सुबोध हैं।

डॉ. एम. पी. वर्मा ने टैगोर के जीवन दर्शन को इस प्रकार परिभाषित किया है-

> *"रवीन्द्रनाथ ने मानव-स्वभाव के संवेगों के विनाश और उनके सौन्दर्यात्मक तथा सामाजिक पक्षों के दमन की स्वीकृति नहीं दी। उन्होंने मनुष्य के व्यक्तित्व और शक्तियों के सब पहलुओं के पूर्ण और शक्तिशाली विकास के सिद्धांत को स्वीकार किया। उन्होंने आत्मा को भव्यताओं, पहाड़ों की धेरी गुफाओं और जंगलों के एकान्त स्थान में खोजना अस्वीकार किया। वे जीवन की स्वीकृति चाहते थे, सभी पक्षों में-सुखों और दु:खों में, आदर्शों और सद्भावनाओं में, दु:खद घटनाओं और संकटपूर्ण परिस्थितियों में।''*

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक दृष्टिकोण

रवीन्द्रनाथ टैगोर सिर्फ शिक्षण संबंधी सिद्धांत का प्रतिपादन ही नहीं करते थे वरन् उसे व्यावहारिक रूप से अमल में भी लाते थे। अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने 'विश्व भारती' की स्थापना की। साहित्य, कला दर्शन के क्षेत्र में उनकी अनुपम उपलब्धियों ने भारत के मस्तिष्क को ऊँचा कर दिया है। टैगोर के शिक्षा-सिद्धांत उनके स्वयं के अनुभवों के परिणाम है। यद्यपि उन्होंने अध्यापन का कार्य नहीं किया फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान अनुकरणीय है।

टैगोर का सम्बन्ध ऐसे परिवार से था, जो सब प्रकार से प्रगतिशील विचारों और कार्यो तथा विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों का केन्द्र था। उस परिवार के सदस्यों में प्राय: सभी अच्छी बातों के जानकार थे; जैसे-दर्शन, विज्ञान, संस्कृति, कविता व कला, संगीत, नाटक, राष्ट्र-निर्माण, समाज-सुधार, व्यापार, व्यवसाय और आध्यात्मिक अनुभव। टैगोर में ऐसी तीव्र और विविध ग्रहण-शक्ति थी कि उन्होंने इन सभी बातों का बड़ी सरलता से ग्रहण करके अपना लिया।

उपरोक्त गुणों के अलावा टैगोर में और भी कई ऐसे गुण थे, जिन्होंने टैगोर को महान बना दिया। उनकी बुद्धि इतनी तेज थी कि वे बड़ी सरलता से किसी भी ज्ञान को अपना बना सकते थे। उन्हें विज्ञानों और मानव-शास्त्रों का बहुत ज्ञान था।

टैगोर ने भारतीय शिक्षा में एक नए प्रयोग का सूत्रपात किया। वे भारतीय आदर्शों के समर्थक थे ही पाश्चात्य विचारों के प्रति भी वे जागृत थे। उन्होंने रूसो की प्रकृतिवादी विचारधारा से, फ्रोबेल की किण्डर गार्टन पद्धति से तथा जॉन ड्यूबी की शैक्षिक

विचारधारा में विभिन्न विशेषताओं को देखा किन्तु उने विचारों को हर जगह सत्य नहीं माना और न ही पाश्चात्य विचारधारा का अंधानुकरण किया। टैगोर के शिक्षा दर्शन के संदर्भ में श्री सुनीलचन्द्र ले लिखा है- "टैगोर ने शिक्षा को जो योगदान दिया, उसमें पेस्टालॉजी और फ्रावेल के कार्य सम्मिलित हैं और उनके कार्यों में जो कमियाँ रह गई थीं उनकी पूर्ति भी है; उदाहरणार्थ-फ्रावेल की किण्डरगार्टन पद्धति में खेल, नृत्य और रचनात्मक कार्यों को विशेष स्थान है। टैगोर ने बताया कि यह पद्धति सफलतापूर्वक तभी कार्य कर सकती है, जब जीवन की कठोरता एवं वास्तविकता से दूर अति सुन्दर वातावरण का निर्माण किया जाए।''

रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचार स्वानुभव पर आधारित थे। टैगोर प्रकृतिवादी अवश्य थे किन्तु उनका प्रकृतिवाद रूसो के प्रकृतिवाद से भिन्न था। वे समाज को प्राकृतिक नियमों पर आधारित तो करना चाहते थे किन्तु आधुनिक वैज्ञानिकता एवं अतीत की धार्मिकता एवं नैतिकता से विहीन समाज को अच्छा नहीं समझते थे। इसके साथ ही टैगोर ने अपने रहस्यवाद को जीवन की यथार्थ भूमि पर आधारित करके शिक्षा के सभी स्तरों पर इसे लागू किया।[4]

टैगोर शिक्षा के क्षेत्र में आध्यात्मवादी थे इसीलिए उनके प्रकृतिवाद की अनिवार्य परिवर्तित आदर्शवाद में हुई। आध्यात्मिकता की बात करके टैगोर ने भारत के अतीत को सम्मानित किया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे। उनका विश्वास था कि संसार में मानवीयता का गुण सर्वश्रेष्ठ है। वर्तमान परिस्थितियों में गिरते हुए मानवीय मनुष्यों के कारण उनका मन दुखी था वे श्रमजीवी व प्रबुद्ध मानव को ईश्वर मानते थे अत: उन्होंने कहा- "ईश्वर को भी नहीं खोजना चाहिए जहाँ किसान हल जोत रहा हो।''

टैगोर अपने राष्ट्र से बहुत प्रेम करते थे उनका राष्ट्र प्रेम संकीर्ण नहीं था। वे भारत के प्रति तो बालकों में प्रेम जगाना ही चाहते थे। साथ ही उनमें अन्तर्राष्ट्रीय भावना को भी जागृत करना चाहते थे। वे समस्त विश्व को एक समझते थे अत: समस्त विश्व के मानव की विराट एकता के लिए प्रयत्नशील थे। अपेन काव्य, साहित्य, संगीत एवं शिक्षा योजना सभी में उन्होंने विश्व बंधुत्व की भावना को साकार रूप प्रदान किया है।

टैगोर ने 'शिक्षा' का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक ("Personilityj") पर्सनेल्टी में लिखा है- "सर्वोत्तम शिक्षा वही है जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।''

सम्पूर्ण सृष्टि से टैगोर का अभिप्राय है-संसार की चर और अचर, जड़ और चेतन, सजीव और निर्जीव-सभी वस्तुएँ। इन वस्तुओं से हमारे जीवन का सामंजस्य तभी हो सकता है, जब हमारी समस्त शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित होकर उच्चतम बिन्दु पर पहुँच जाएँ। इसी को टैगोर ने 'पूर्ण मनुष्यत्व' (Complete Manhood) कहा है। शिक्षा का कार्य है- हमें इस स्थिति पर पहुँचाना। इस दृष्टिकोण से टैगोर के अनुसार-शिक्षा, विकास की प्रक्रिया है। वह मनुष्य का शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, व्यावसायिक, धार्मिक और आध्यात्मिक विकास करती है। अत: टैगोर विचार में शिक्षा का रूप अत्यन्त व्यापक है।

व्यापक शैक्षिक अभिप्राय के तहत टैगोर ने शिक्षा के प्राचीन भारतीय आदर्श को स्थान दिया है। यह आदर्श है-'सा विद्या सा विमुक्तये' (Education is that which liberate)। इस आदर्श के अनुसार शिक्षा-मनुष्य को आध्यात्मिक ज्ञान देकर उसे जीवन और मरण से मुक्ति प्रदान करती है। टैगोर ने शिक्षा के इस प्राचीन आदर्श को भी व्यापक रूप दिया है। उसका कहना है कि-शिक्षा न केवल आवागमन से; वरन् आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और मानसिक दासता से भी मनुष्य को मुक्ति प्रदान करती है। अत: मनुष्य को शिक्षा द्वारा उस सब ज्ञान का संग्रह करना चाहिए, जो उसके पूर्वजों द्वारा संचित किया जा चुका है। यही सच्ची शिक्षा है। टैगोर ने स्वयं लिखा है-"सच्ची शिक्षा संग्रह किए गए लाभप्रद ज्ञान के प्रत्येक अंग के प्रयोग करने में उस अंग के वास्तविक स्वरूप को जानने में और जीवन में जीवन के लिए सच्चे आश्रय का निर्माण करने में है।''[5]

शिक्षा का प्रयोजन

टैगोरद्वारा, निर्धारित किए जाने वाले शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. पूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिए बालक का पूर्ण विकास करना।
2. बालक के अन्दर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण और विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करना जिससे पूरब और पश्चिम में समन्वय कायम हो सके।
3. बालक के शरीर का स्वस्थ और स्वाभाविक विकास एवं उसके भिन्न-भिन्न हिस्सों के इन्द्रियों को प्रशिक्षित करना।

4. बालक का वैयक्तिक, व्यावसायिक और सामाजिक विकास करना।
5. बालक के बौद्धिक विकास हेतु स्वतंत्र चिन्तन जरूरी है अतः स्मृति पर अधिक भार न डालकर चिन्तन एवं कल्पना शक्तियों का विकास करना।
6. बालक को वास्तविक जीवन की बातों, स्थितियों और पर्यावरण की जानकारी देकर एवं उनसे अनुकूलन कराके, उसके मस्तिष्क का विकास करना।
7. बालक को धैर्य, शान्ति, आत्म-अनुशासन, आन्तरिक, स्वतंत्रता, आन्तरिक शक्ति और आन्तरिक ज्ञान के मूल्यों से अवगत करा के, उसका नैतिक और आध्यात्मिक विकास करना।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों की वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही भारत देश तीव्र आर्थिक विकास कर विश्व के अन्य देशों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने को कृतसंकल्प है। इस अवधि में देश की सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था सुदृढ़ हुयी है व देश में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का तेजी से विस्तार हुआ है। इस पूरे विकास क्रम में उसका साथ दिया है शिक्षा ने। स्वतंत्र भारत ने शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि की है इसमें कोई दो राय नहीं। किन्तु इस विकास और विस्तार के बीच शिक्षा के क्षेत्र में कुछ अति महत्वपूर्ण पक्षों की अनदेखी भी हुयी है। जिसने अनेक व्यवहारिक समस्याओं को जन्म दिया है। इसमें एक प्रमुख समस्या है शिक्षा के बाजारीकरण की। आज शिक्षा के तीनों प्रमुख अंग, प्रबन्ध, प्रशासन व शिक्षण में बाजारीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान है। हम देखते हैं कि इन तीनों ही पक्षों में आर्थिक लाभ हानि का प्रश्न ऊपर है। इस पूरे क्रम का नकारात्मक प्रभाव पड़ा है विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों पर। उत्तम उत्पाद हेतु, उत्तम मूल्य पर टिकी व्यवसायीकरण की प्रक्रिया ने विद्यार्थियों को एक ऐसी मशीन बना दिया है जिसे ज्यादा से ज्यादा तथ्यों को रट-रटाकर शत-प्रतिशत अंक किसी भी हाल में प्राप्त करने हैं। विद्यालय की मोटी फीस अदा करने वाले अभिभावक की अपेक्षाओं व विद्यालय के उत्तम उत्पादन की बाध्यता के बीच एक विद्यार्थी की स्थिति बहुत सुविधाजनक नहीं है। इनके तमाम दुष्परिणाम आगे चल कर प्रकाश में आते रहे हैं। कभी इन दोनों धुरियों के बीच फंसा बालक हताश हो गहरी निराशा में डूब जाता है, कभी आत्महत्या की ओर प्रवृत्त होता है तो कभी अपनी स्वयं की विशिष्टताओं को पहचान ही नहीं पाता और हीन भावना का शिकार हो जाता है। वह विकास की जिन बुलन्दियों को छू सकता है उनकी तरफ देखने तक का साहस नहीं करता।

कहना ना होगा कि शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त हो रही इन असामान्य प्रवृत्तियों के प्रति सतर्क होना चाहिए। और यही हमें आवश्यकता महसूस होती है भारत के प्रमुख शिक्षाविदों के शिक्षा चिन्तन की। आज अति आवश्यक प्रतीत होता है कि हम इन शिक्षाविदों के शिक्षा दर्शन में दिये तथ्यों को आत्मसात करें, उन्हें व्यवहारिक रूप दे। शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त हो रही तमाम समस्याओं को रोकने और इसे सकारात्मक दिशा देने के सम्बन्ध में यहां रवीन्द्र नाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन का आश्रय लेना बड़ा ही व्यवहारिक होगा। पराधीन भारत में जब शिक्षा का प्रचार-प्रसार अंग्रेजी नीति नियम के अनुरूप हो रहा था, रवीन्द्र नाथ टैगोर ने शान्ति निकेतन की स्थापना कर एक आदर्श शिक्षा संस्थान का उदाहरण हमारे समक्ष रखा था।

उनके शिक्षा दर्शन में हमें शिक्षा के प्रत्येक पक्ष के विषय में ऐसा व्यवहारिक दृष्टिकोण देखने को मिलता है जो हमारी आज की ढेरों शैक्षिक समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

सन्दर्भ

1 टैगोर रवीन्द्रनाथ (1964) - विश्व मानवता की ओर, "इलाचन्द्र" जोशी द्वारा अनूदित, सूचना विभाग, उ.प्र. पृ.-66।

2 टैगोर रवीन्द्रनाथ (1920) क्रियेटिव यूनिटी, मैकमिलन एण्ड कं., लन्दन, पृ0 98।

3 श्रीधरन जी - भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2001, पृ0 86।

4 राजेन्द्र सिंह द्वारा अनूदित, टैगोर रवीन्द्र (1990) भारतीय शिक्षा, पृ0 55।

5 भारतीय शिक्षा दर्शन (अनुवाद-श्रीकृष्ण चन्द्र), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1962, पृ0 23।

महात्मा गाँधी की बुनियादी शिक्षा एवं उसकी वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० राजेश कुमार सिंह

सहायक आचार्य शिक्षाशास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ0प्र0)

महात्मा गाँधी हमारे राष्ट्रपिता कहे जाते हैं। इनका नाम भारतीय गणराज्य के निर्माता के रूप में लिया जाता है। गाँधी जी एक महान दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री भी थे। महात्मा गांधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को काठियावाड़ के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम करमचन्द गाँधी था, जो उस समय राजकोट एवं बीकानोर रियासतों के दीवान थे। इनके जीवन पर पिता का प्रभाव अधिक पड़ा।

1887 में गाँधी जी बैरिस्टर बनने के लिए इंग्लैण्ड गये। 1891 में ये बैरिस्टर बनकर स्वदेश लौटे। 1893 में एक मुकदमे के सिलसिले में इन्हें दक्षिणी अफ्रीका जाना पड़ा। वहाँ पर भारतीयों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। गाँधी जी के साथ भी अंग्रेजों द्वारा की गई कई घटनाएँ घटीं। इससे गाँधी जी ने भारतीयों के संकट दूर करने के लिए वहीं रहने का निश्चय किया। 1903 में उन्होंने टाल्सटाय फार्म की स्थापना की। इस आश्रम में आश्रमवासियों को 8 घण्टे का व्यावसायिक शिक्षण दिया जाता था। 2 घण्टे बौद्धिक कार्य करना पड़ता था। पाकविद्या, सफाई, काष्ठकला, प्रिंटिंग आदि उनके मुख्य व्यवसाय थे।[1]

गाँधी जी को 1915 में भारत आना पड़ा। यहाँ पर पहले वे शान्ति निकेतन गए। वहाँ से साबरमती एवं सेवाग्राम आश्रमों की स्थापना में लगे।[2]

गाँधीजी ने जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सभी क्षेत्रों में पूर्ण निष्ठा एवं आस्था के साथ काम किया। 30 जनवरी, 1948 को आपकी हत्या कर दी गई।

गाँधी जी के शिक्षा-दर्शन

गाँधी जी के शिक्षा-दर्शन का अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि गाँधी जी हृदय से आदर्शवादी थे। वे अपने आदर्शों को वास्तविक तथा लाभप्रद एवं फलदायक बनाना चाहते थे। अतः उनके शिक्षा दर्शन में प्रकृतिवाद, आदर्शवाद तथा प्रयोजनवाद की झलक स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है। उनके शिक्षा दर्शन में उक्त तीनों विचारधाराओं में कोई विरोध नहीं अपितु वे एक दूसरे की पूरक हैं। आदर्शवाद गाँधी दर्शन का आधार है तथा प्रकृतिवाद तथा प्रयोजनवाद उसके सहायक हैं। गाँधी जी के शिक्षा-दर्शन को हम आर्दशवादी इसलिए कह सकते हैं। क्योंकि वह जीवन के अन्तिम लक्ष्य सत्य को प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करता है, प्रकृतिवादी इसलिए कह सकते हैं क्योंकि बालक को उसकी प्रकृति के अनुसार विकसित करना चाहता है तथा प्रयोजनवादी इसलिए कह सकते है क्योंकि यह बालक को उसकी रुचि के अनुसार क्रिया करके सीखने पर बल दिया है जिससे पाठ्यक्रम के सभी विषयों में समन्वय तथा एकीकरण स्थापित हो सके डॉ0 एम0 एस0 पटेल के शब्दों में- "दार्शनिक के रूप में गाँधी जी की महानता इस बात में है कि उनका शिक्षा-दर्शन अपनी योजना में प्रकृतिवादी, अपने उद्देश्यों में आर्दशवादी और अपने कार्यक्रम और कार्य विधि में प्रयोजनवादी है। शिक्षा दार्शनिकों के रूप में गाँधी जी की वास्तविक महानता इस बात में है कि उनके दर्शन में प्रकृतिवाद, आदर्शवाद और प्रयोजनवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ स्वतंत्र नहीं हैं, वरन् मिलकर एक हो गई हैं। इस प्रकार एक ऐसे सिद्धांत को जन्म दिया है जो आज की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त होगा और मानव आत्मा की सर्वोच्च आकांक्षाओं को सन्तुष्ट करेगा।''

महात्मा गाँधी की बुनियादी शिक्षा की पृष्ठभूमि

गाँधी जब अफ्रीका में थे तब सत्याग्रह आन्दोलन चलाने के लिए उन्होंने जोहान्सबर्ग से कुछ मील दूर पर एक फार्म किराए पर ले लिया था। इस टाल्सटाय फार्म में सत्याग्रही सपरिवार रहते थे। इनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि विभिन्न सम्प्रदाय के लोग रहते थे। इन सत्याग्रहियों के बच्चों को बढ़ाने के लिए एक स्कूल खोला गया। गाँधी ने इन्हीं बच्चों को शिक्षा देना प्रारम्भ किया। यहाँ पर बच्चों को कुछ हाथ का काम करना पड़ता और केवल तीन घण्टे पढ़ाई-लिखाई में दिये जाते थे। शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जाती थी। पुस्तकों का सहारा बहुत कम लिया जाता था। गाँधीजी का यह कार्यक्रम सन् 1911 ई0 से सन् 1914 तक चलता रहा। भारत आने पर गाँधीजी ने अपने शिक्षण के प्रयोग को बन्द नहीं किया। सन् 1915 में साबरमती आश्रम में उन्होंने इस प्रयोग को जारी रखा। गाँधीजी ने सन् 1936 ई0 में हरिजन पत्र द्वारा अपने विचार का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया।[3] सन् 1937 ई0 में जब देश के नौ प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल स्थापित हुए तो गांधीजी ने अपनी शिक्षा-योजना को लागू करने का विचार किया। 22 एवं 23 अक्टूबर सन् 1937 ई0 में नवीन शिक्षा पर विचार करने के लिए वर्षा में शिक्षा शास्त्रियों का एक 'अखिल भारतीय सम्मेलन' आयोजित किया गया। जिसमें डॉ0 जाकिर हुसैन, खुशाल तलकशी शाह, डॉ0 सैयद महमूद, विनोबा भावे, प्रफुल्लचन्द्र राय, काका कलेलकर, रविशंकर शुक्ल, अविनाश लिंगम, श्रीमती आशा देवी, किशोरीलाल मशरुवाला, के0 जी0 सैयदन, जे0 सी0 आर्यनायकम प्रभृति 80 शिक्षा-प्रेमी एकत्र हुए थे और गाँधीजी के प्रस्ताव के पक्ष या विपक्ष में उन्होंने अपने विचार प्रकट किये। इस सम्मेलन की अध्यक्षता स्वयं गाँधीजी ने की। वर्धा-सम्मेलन में पारित प्रस्तावों के आधार पर एक शिक्षा योजना प्रस्तुत करने के लिए डॉ0 जाकिर हुसैन के सभापतित्व में एक समिति नियुक्त की गई और इस समिति का प्रतिवेदन ही बेसिक शिक्षा का प्रामाणिक दस्तावेज बना। अप्रैल, 1938 में हरिपुरा में सम्पन्न कांग्रेस अधिवेशन में इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया और बेसिक शिक्षा को पार्टी के कार्यक्रम में समाविष्ट कर लिया गया। यही प्रस्ताव बेसिक शिक्षा के मूलभूत सिद्धांत हैं।

बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धांत

बेसिक शिक्षा अथवा 'आधारभूत शिक्षा' या 'बुनियाद शिक्षा' या 'बुनियाद तालीम' या नयी तालीम के नाम से जानी गयी इस शिक्षा के चार प्रमुख सिद्धान्त हैं[4] -

(1) सार्वभौम सात वर्ष तक अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा- वर्धा सम्मेलन में पारित प्रस्ताव था "इस परिषद की सम्मति में देश के सब बच्चों के लिए सात वर्षों की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए।'' वैसे वर्धा सम्मेलन के सत्ताईस वर्ष पूर्व गोपालकृष्ण गोखले ने एक प्रस्ताव द्वारा प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क करने की माँग की थी और सन् 1911 में उन्होंने इस आशय का एक बिल भी पेश किया था, जो पास नहीं हो सका था। सन् 1918-20 में विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने प्राइमरी एजूकेशन एक्ट पास कर प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क बनाने का अधिकार जिला-परिषदों एवं नगर पालिकाओं को दे दिया किन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

अतः अनिवार्यता के लिए यह आवश्यक था कि शिक्षा को निःशुल्क बनाया जाय। इसलिए मूल प्रस्ताव के अनुसार सात वर्षों की शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने का आग्रह किया गया। बाद में स्वतन्त्र भारत में संविधान ने चौदह वर्ष की आयु तक में बालकों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा देने की घोषणा की।

(2) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो- बेसिक शिक्षा का दूसरा मूल सिद्धान्त था मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना। गाँधी मातृभाषा के प्रबल समर्थक थे। उस समय भारत उच्च प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश करते ही बच्चों को अंग्रेजी पढ़नी पड़ती थी और उच्च माध्यमिक शिक्षा तो अंग्रेजी से दी जाती थी।

(3) उद्योग-केन्द्रित शिक्षा- वर्धा सम्मेलन ने प्रस्ताव पास किया-"यह परिषद महात्मा गाँधी के इस सुझाव का समर्थन करती है कि इस पूर्ण अवधि में शिक्षा का केन्द्र कोई उत्पादक उद्योग होना चाहिए और बच्चों में जो दूसरे अच्छे गुण पैदा करने हैं और उनको जो शिक्षा-दीक्षा देनी है उसका सम्बन्ध यथासम्भव इसी केन्द्रीय उद्योग से होना चाहिए और इस उद्योग का चुनाव बच्चों के परिवेश और स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। "वर्धा सम्मेलन में गाँधी जी ने स्पष्ट कहा-'' आज मैं जो चीज आपके सामने रखने जा रहा हूँ, वह पढ़ाई के साथ-साथ एकाध धन्धा सिखा देने की चीज नहीं है। मैं तो अब यह कहना चाहता हूँ कि लड़कों को जो कुछ भी सिखाया जाये वह किसी उद्योग या दस्तकारी के जरिए ही सिखया जाये।''

(4) शिक्षा स्वावलम्बन पर अधिारित हो- बेसिक शिक्षा स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर आधारित है। वर्धा सम्मेलन में गाँधी जी ने कहा था "मैं इस बात के लिए बहुत उत्सुक हूँ कि दस्तकारी के जरिए विद्यार्थी जो कुछ पैदा करें, उसकी कीमत से शिक्षक का खर्च निकल सके, क्योकि मुझे यकीन है कि देश के करोड़ों बच्चों को तालीम देने के लिए सिवा इसके दूसरा कोई रास्ता नहीं है।'' बैसिक शिक्षा के इस चौथे सिद्धान्त की सबसे अधिक आलोचना हुई है। वर्ध्दा-सम्मेलन में भी इस पर मतभिन्नता थी किन्तु बाद में प्रस्ताव पास हो गया था।

बुनियादी शिक्षा की विशेषताएँ[5]

(1) उद्योग द्वारा शिक्षण- बेसिक शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सम्पूर्ण शिक्षा किसी उद्योग के द्वारा होती है।

(2) आध्यात्मिकता- गाँधीवाद आध्यात्मिकता का दर्शन है। यह कोरा आर्थिक या सामाजिक दर्शन नहीं है। इसमें ईश्वर पर विश्वास, आत्मबल की जागृति, आत्मा का उन्नयन और परमात्मा के साक्षात्कार के तत्व निहित है।

(3) अस्पृश्यता का अभाव- छुआछूत का विचार समाप्त होना चाहिए। सभी मनुष्य ईश्वर की सन्तान हैं और सभी को प्रगति का अवसर मिलना चाहिए।

(4) चारित्रिक दृढता- गाँधीवाद में चरित्रिक दृढ़ता पर बल है। गाँधीजी के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति अपने चरित्र को उत्तरोत्तर उन्नत करते जाते थे।

(5) देश-सेवा- देश की सेवा के लिए तन, मन और धन से जीवन को अर्पित करना और तदर्थ स्वार्थ का परित्याग करना।[6]

(6) साधन की पवित्रता- गाँधीवाद में साधन की पवित्रता पर ध्यान दिया जाता है। अपवित्र साधनों से प्राप्त होने वाली अच्छी से अच्छी वस्तु का भी गाँधीवादी परित्याग कर देता है।

(7) ध्येयनिष्ठा- गाँधीवाद में ध्येयनिष्ठा पर बल है। लक्ष्य स्थिर हो जाने पर उसे प्राप्त करने की लगन होनी चाहिए।

(8) ट्रस्टीशिप का सिद्धांत- गाँधीवाद में यह माना जाता है कि सम्पत्ति पर किसी का नितान्त अधिकार नहीं है। जिसके पास सम्पत्ति है वह उस सम्पित्त का केवल ट्रस्टी या संरक्षक है और उसे उस सम्पत्ति का उपयोग देशहित में करना चाहिए।

(9) स्वयंसेवकों का व्रत- कुछ गाँधीवादी स्वयंसेवक आजीवन देश-सेवा के व्रती होते हैं-गाँधीवाद में यह अपेक्षा की जाती है कि आजीवन सेवकों व सेविकाओं की वृद्धि होनी चाहिए।

(10) सत्याग्रह- गाँधीवाद में सत्य पर अटल रहने की नीति पर बल है। गाँधीवादी में इतना नैतिक साहस होना चाहिए कि वह विरोधों के बावजूद सत्य का आग्रह कर सके।[7]

बुनियादी शिक्षा की वर्तमान सन्दर्भ में प्रासंगिकता

अब विचार करें भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति में प्राथमिक शिक्षा कि व्यवस्थापन व क्रियान्वयन में व्याप्त कमियों पर। यह ठीक है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति हुई है, फिर यह प्रगति चाहे प्राथमिक स्तर पर हो, माध्यमिक स्तर पर या फिर उच्चस्तरीय पर। लेकिन हम वृद्धि कर रहे हैं, हम पहले से बेहतर हैं यह सोच कर प्रसन्न होने से काम ना चलेगा। हम और बेहतर कैसे हों हम श्रेष्ठ, सर्वश्रेष्ठ कैसे हों यह लक्ष्य सदैव आँखों के आगे रखना होगा। देश का एक-एक बच्चा देश की अपनी पहचान हो। वह आत्मविश्वासी, कर्तव्यनिष्ठ, भलामानस बन सके इसके प्रयास सदैव करते रहने होंगे। इन सारे प्रयासों में एक मुद्दे की अनदेखी खतरनाक होगी, जो है रोजी-रोटी की। तमाम तकनीकी ज्ञान, तमाम सिद्धान्त, नीति-नियम बता समझाकर भी यदि प्रारम्भिक माँग की अनदेखी शिक्षा द्वारा की गया तो परिणाम सुखद ना होंगे। महात्मा गाँधी ने बुनियाद शिक्षा की अवधारणा प्रस्तुत कर इसी मूलभूत आवश्यकता की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित किया था। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्य अनेक विशिष्टताओं के साथ-साथ शिक्षा को मनुष्य की मूलभूत आवश्सकताओं से जोड़े रखना अति आवश्यक है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की कुल आबादी का बड़ा हिस्सा गाँवों में निवास करता है। अतः विकास की दृष्टि से किसी भी पहलू की विवेचना में ग्रामीण आवश्यकता की अनदेखी उचित नहीं है। बात जब देश के बच्चों के विकास की हो, उनकी शिक्षा व्यवस्था की हो तो इस वर्ग विशेष की अनदेखी कतई उचित ना होगी। महात्मा गाँधी ने भारत देश के मूल में निहित ग्रामीण पृष्ठभूमि की आवश्यकता के अनुरूप बुनियादी शिक्षा व्यवस्था की एक ऐसी रूपरेखा हमारे सामने रखी थी जो हिन्दुस्तान के तमाम बच्चों

को, फिर वे गाँवों के रहने वाले हों या शहरों के हिन्दुस्तान के सभी श्रेष्ठ और स्थाई तत्वों के साथ जोड़ देने की ताकत रखती है। खेद का विषय है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् आधुनिकीकरण के तेज बहाव के साथ हमने आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार प्रसार पर इतना जोर दिया है कि महात्मा गाँधी द्वारा प्रस्तुत बुनियादी शिक्षा की ओर हमारा ध्यान नही नहीं है।

आज की हमारी शिक्षा व्यवस्था का ढांचा अंग्रेज सरकार द्वारा स्थापित आधार पर ज्यों का त्यों खड़ा है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या इस पूर्व नियोजित धुरी पर किये गये हमारे प्रयास हमारा विकास सही दिशा में कर सके हैं? उत्तर है नहीं! अंग्रेजो द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था के प्रारूप को ज्यों का त्यों स्वीकार कर हमने अपनी मूलभूत शैक्षिक समस्याओं की अनदेखी की है। बड़ी संख्या में शिक्षा प्राप्त बालक-बालिका जिस सैद्धान्तिक नीति नियमों से परिचित हो सके हैं। उनके व्यवहारिक प्रयोग में अनभिज्ञ है। हम उन्हें बरसो-बरस शिक्षा तो प्रदान करते हैं किन्तु प्रतिफल स्वरूप एक कागज पर अंकित श्रेणी ही प्रदान कर पाते हैं। विद्यालयों से शिक्षित होकर निकला बालक लम्बे परिश्रम के बावजूद कोई ऐसा हुनर नहीं सीख पाता जिससे कि वह अपनी रोटी-रोजी कमा सके।[8]

महात्मा गाँधी अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के मूल में निहित इस समस्या से परिचित थे यही कारण है कि उन्होंने भारत के बालक-बालिकाओं के लिये बुनियादी शिक्षा की वकालत की थी। 6 से 14 वर्ष आयु के बालकों की रूचि, रूझान, योग्यता व आवश्यकता को ध्यान में रखकर निर्मित इस योजना के पाठ्यक्रम में हस्तकला, कताई-बंनाई, काष्ठ, चर्मकार्य, कृषि, फलों और साग सब्जी के उद्योग या प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण के अनुकूल अन्य कोई हस्तकला जिनका शैक्षिक मूल्य हो, इन सभी को स्थान दिया हैं हां, यहाँ अन्य प्रमुख विषयों मातृभाषा, गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, चित्रकला, ड्राइंग, संगीत, हिन्दुस्तानी आदि की महत्ता की भी अनदेखी नहीं की गयी है। पाठ्कक्रम का यह व्यवस्थित स्वरूप एक बालक को सीखे गये सैद्धान्तिक ज्ञान की व्यवहारिक उपयोगिता से परिचित कराता है। बालक ने विज्ञान विषय में जिन विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधों के बारे में पढ़ा, उन्हें पाठ्यक्रम के क्रियात्मक पक्ष द्वारा छू कर भी देखा, साथ ही उसे बोने उगाने और बड़ा करने की पद्धति भी सीखी, जिन विविध प्रकार के तन्तुओं के बारे में पढ़ा उनसे दैनिक उपयोग की वस्तुएं बनाना भी वे सीख सके।

कहना ना होगा हमारी आज की जरूरत भी यही है ऐसे सभी प्रयास जो कक्षा में सीखे गये ज्ञान को व्यवहारिक रूप दे सके हमें अपने पाठ्यक्रम में अवश्य सम्मिलित करने चाहिये। गाँधी जी ने कहा था ओटाई और कताई आदि गाँवों में चलने योग्य हाथ-उद्योगों के द्वारा प्राथमिक शिक्षण की मेरी योजना की कल्पना चुपचाप चलने वाली ऐसी सामाजिक क्राति के रूप में की गयी है, जिसके अत्यन्त दूरगामी परिणाम होंगे। वह शहरों और गाँवों में स्वस्थऔर नैतिक सम्बन्धों की स्थापना के लिये सुदृढ़ आधार पेश करेगी और इस तरह मौजूदा सामाजिक अरक्षितता और वर्गो के पारस्परिक सम्बधों की मौजूदा कटुता की बुराइयां बड़ी हद तक दूर होगी।

हाथ का काम इस सारी योजना का केन्द्र बिन्दु होगा। हाथ की तालीम का मतलब यह नहीं होगा कि विद्यार्थी पाठशाला के संग्रहालय में रखने लायक वस्तुएं बनाएं या ऐसे खिलौने बनाएं जिनका कोई मूल्य ना हों उन्हें ऐसी वस्तुएं बनाना चाहिये, जो बाजार में बेची जा सके। कारखानों के प्रारम्भिक काल में जिस तरह बच्चे मार के भय से काम करते थे। उस तरह हमारे बच्चे यह काम नहीं करेंगे। वे उसे इसलिये करेंगे कि इससे उन्हें आनन्द मिलता है और उनकी बुद्धि को स्फूर्ति मिलती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत यह विधि बाल मनोविज्ञान पर आधारित है। यहां बालक को करके सीखने, अनुभव द्वारा सीखने तथा जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में सीखने का अवसर प्राप्त होता है। सभी बालक अपनी रूचियों, रूझानों, योग्यताओं व आवश्यकताओं के अनुसार स्थानीय हस्तकला तथा उद्योग को चुनकर क्रियाशील रहते हुए अपने अनुभवों के आधार पर ज्ञान को इकाई के रूप में प्राप्त करते हैं। सीखा हुआ ज्ञान स्थायी रहता हैं, उनकी पद्धति का प्रयोग करते हुए सभी बालक क्रियाशील रहते हैं, उनकी मूल प्रवृत्तियों को प्रकाशन का अवसर मिलता है तथा उनमें रचनात्मकता अविकसित होती है। यही इस पद्धति की खूबी है। बुनियादी शिक्षा का केन्द्र बालक है जो अपनी निजी क्रियाओं तथा अनुभवों द्वारा अपने आपको वातावरण के अनुकूल बनाकर शिक्षा का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध स्थापित करती है। हमारी वर्तमान आवश्यकता भी यही है अत: हमें महात्मा गाँधी द्वारा प्रस्तुत बुनियादी शिक्षा के पहलुओं को अपनी वर्तमान शिक्षा पद्धति में आवश्यकतानुसार अवश्य स्थान देना चाहिये।

सन्दर्भ

1 गाँधी जी (2006) मेरे सपनों का भारत, नौवा पुनर्मुद्रण, संग्राहक आर. के. प्रभु नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, पृ. 199

2 यंग इण्डिया 01.09.1921

3 हरिजन, 09.10.1937

4 जायसवाल सीताराम (2004) भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं भारतीय शिक्षा की समस्याएं, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ पृ. 135

5 मुकाबले, जोसेफ, सी (1997) गाँधीयन एजुकेशन, डिस्कवरी पब्लिकेशन, हाउस, नयी दिल्ली, पृ0 63।

6 महात्मा गांधी की राजनैतिक अवधारणाएँ, कलिंग पब्लिकेशंस, दिल्ली, 1992, पृ0 32।

7 पटेल एम. एस. (1974) दि एजुकेशनल फिलास्फी ऑफ महात्मा गाँधी, बड़ौदा, पृ0 89।

8 लाल रमन बिहारी (2000) भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ पृ0 177-178

'कोपल-कथा': स्त्री-मुक्ति की अभिव्यक्ति

कोमल कुमारी

शोध-छात्रा, विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग, ल.ना.मि.वि, दरभंगा (बिहार)

हमारे देश की आधी आबादी स्त्रियों की है, परन्तु हमारा देश पुरुष प्रधान है। इसलिए स्त्रियों को कभी भी घर-परिवार समाज एवं देश में बराबरी का अधिकार प्राप्त नहीं होता है। उनकी पहचान उनके नाम व काम से न होकर किसी पुरुष की पुत्री, बहन, पत्नी अथवा माँ आदि रूपों में बनती है। उन्हें घर से बाहर निकलने, उच्च शिक्षा ग्रहण कर नौकरी करके आत्मनिर्भर बनने, समाजसेवक अथवा राजनेता व विदुषी बनकर राष्ट्र की सेवा करने जैसे बड़े कर्तव्यों से हमेशा वंचित रखा जाता है। उन्हें तो घर की चारदीवारी को ही अपनी दुनिया मान लेने का आदेश दे दिया जाता है। गाँव की स्त्रियाँ तो अक्षर-ज्ञान कर ले यही काफी है और शहर की स्त्रियाँ तो बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ हासिल करके भी हासिये पर चली जाती हैं। घर लोगों द्वारा उन्हें समझाया जाता है कि स्त्रियों का काम घर संभालना, बच्चे पैदा करना तथा पूरे परिवार को खिलाना-पिलाना और स्नेह व एकता के सूत्र में बांधे रखना है। इसके अलावा उसका एक और महत्त्वपूर्ण कार्य है- अपने पति का एकनिष्ट होकर सेवा करना, उसे रिझाये रखना तथा उसके अत्याचारों को बर्दाश्त करना भी।

महिलाओं को बचपन से ही यह समझाया जाता है कि जमाना खराब है। उन्हें हमेशा किसी का सहारा लेकर ही रहना चाहिए। इसलिए जन्म से लेकर विवाहिता होने तक पिता व भाई का संरक्षण, विवाहिता होने पर पति का तथा वृद्धा होने पर अपने पुत्र का मोहताज बन जाती है। उन्हें पढ़ाया भी इसलिए ही जाता है, ताकि वो घर खर्चे का सही से हिसाब-किताब रख सके और अपने बाल-बच्चों को पढ़ा-लिखा सकें। उनको पढ़ा लिखाकर गृहस्वामिनी बना देना अथवा ज्ञानी महिला का पुरुषों के बात-विचार में हस्तक्षेप करना पुरुषों को कतई पसंद नहीं होता। जिस प्रगतिशील परिवार के पुरुषों ने अपने घर की विदुषी महिलाओं को मान-सम्मान दिया, समाज के रूढ़िग्रस्त लोगों ने 'जोरू के गुलाम' का दर्जा दे दिया। आश्चर्य की बात तो यह है कि महिलाओं को पीछे ढकेलने में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं ने भी बराबरी की भूमिका निभाई है। महिलाएँ अपने ही पुत्र और पुत्री में फर्क करने लगती है। समृद्ध परिवार की महिलाएँ भी अपने पुत्र को अधिक पौष्टिक भोजन कराती है। उसके पढ़ने-लिखने का खास ख्याल रखती है, उसके जिद्द को पूरा करती है तथा उसके सपनों का भी पोषण करती है, लेकिन पुत्री को छोटी उम्र से ही तौर तरीके सीखने लगती है। विवाह हेतु कामचलाऊ पढ़ाई के साथ ही स्वादिष्ट भोजन पकाना, घर की साफ-सफाई व सज्जा करना, परिवार के लोगों का ख्याल रखना, पूजा-पाठ करना, सहनशील व मृदुभाषी बनना सीखने पर पुत्रियों को जोड़ देती है। पर इसके साथ ही अधूरी रह जाती है बिटिया की पढ़ाई, उसके सपने, उसके शौक। परिवार के द्वारा बेटियों के साथ जो पक्षपात होता है, उससे उसका व्यक्तित्व हल्का व कमजोर हो जाता है। वह दब्बू और रूढ़िग्रस्त हो जाती है। इस प्रकार महिलां पुरुषों का अत्याचार सहने के लिए तन-मन से एकदम तैयार हो जाती है।

स्त्रियों का शोषण, उन पर होते अत्याचार, भेद-भाव, उनकी तकलीफ, पीड़ा व मानसिक वेदना हमेशा से ही साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। वरिष्ठ कथाकार अरुण प्रकाश ने भी अपनी कथाओं में स्त्री-वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। इनका उपन्यास 'कोपल कथा' संपूर्ण रूप से स्त्री-मुक्ति की अभिव्यक्ति है। इस उपन्यास में स्त्री दादी, माँ, पत्नी, बहन, नौकरानी, वेश्या हर रूप में पीड़िता है और अपनी मुक्ति की तलाश कर रही है।

'कोपल कथा' की नायिका 'ज्ञान' बहुत ही संस्कारी और विचारशील स्त्री है। माँ के अभाव में पूरी गृहस्थी का बोझ उसी के कंधे पर है। ज्ञान अब तीस वर्ष की हो गई है। उसके विवाह की उम्र निकली जा रही है, लेकिन धन के अभाव में अच्छा

लड़का नहीं मिल रहा है। वह जमींदार परिवार की बेटी है, लेकिन दिन-रात नौकरों की तरह खटती रहती है। भाई हर वक्त डाँटता रहता है और भाभी ताने देने का एक मौका भी नहीं गँवाती है। विवाह में हो रही देरी के कारण गाँव के लोग तरह-तरह के अफवाह फैला रहे हैं। ज्ञान सुंदर, पढ़ी-लिखी और समझदार लड़की है, लेकिन यहाँ कोई उसकी योग्यता का कदर करने वाला नहीं है। घर और बाहर दोनों जगहों पर अपमान झेलकर भी चुप रहती या फिर अपने कमरे में घंटों रोती रहती है। इस घर में उसका दु:ख-सुख सुनने वाला भी कोई नहीं है।

ऐसा नहीं है कि ज्ञान एक अनाथ बालिका है। इस दुनिया में उसका कोई भी नहीं है अथवा वह किसी दूर के रिश्तेदार के आश्रय में रहती है। कभी उसका अपना एक भरा-पूरा परिवार हुआ करता था- रिश्तों से भी और वैभव से भी। माँ, पिताजी, दादी और तीन बड़े भाई-बहनों से भरा हुआ घर तथा नौकर-चाकरों? से भरा हुआ आँगन-दरवाजा, लेकिन ज्ञान के पिता हरि परसाद की एक गलती ने इस हँसते-खेलते खुशहाल घर में आग लगा दिया। हरि परसाद अपनी जवानी के दिनों में बड़े ही रंगीन मिजाज थे। विवाह के पश्चात चार-चार बच्चों को जन्म देते-देते उनकी पत्नी पुरानी हो गयी। अब पत्नी का कार्य घर के अन्दर रहकर गृहस्थी संभालना और बच्चों की परवरिश करना रह गया, लेकिन हरिपरसाद के कार्य-सूची में रंगरलियाँ मनाना, कमसिन बालाओं के साथ प्रेम-प्रसंग करना, चतुरी भाट से अपनी प्रशंसा में कवित्त सुनना, नर्तकी हुस्ना का ठुमरी देखना जैसे अनेक कार्य थे। उनका सारा समय इन्हीं कार्यों में बीतता और पर्याप्त धन-दौलत भी खर्च होता चला गया। हद तो तब हो गयी जब एक दिन नर्तकी हुस्ना को हवेली में ही में ही लाकर रख लिया, पत्नी के दुख-दर्द का तनिक भी उन्हें विचार ही नहीं रहा। परिवार के लोगों ने घर में आई नाचनेवाली का भरपूर विरोध किया, परन्धु हरि परसाद को कोई फर्क ही नहीं पड़ा। कथाकार अरुण प्रकाश ने इस घटना का मार्मिक वर्णन करते हुए लिखा है-

"गजब का नाचती थी हुस्ना! टबलची फेल, उसके घुँघरू बजते रहते।.....इसी भुलावे में पत्न्नी, बेटा, अपने बाप-दादा की प्रतिष्ठा सब भूल गये हरिपरसाद। पॉच साजिंदों सहित हुस्ना सनमहला इस्टेट में आ गयी। शक में पड़ी हुस्ना जब देखती है और खूबसूरत लगती। पुरानी कचहरी में डेरा जमा। घर में कोहराम मचा रहा।.....घर में भूचाल बना रहा। दुलहिन ने खाना-पीना छोड़ा रखा था, मॉ रूठकर मायके चली गयी थी।"[1]

हरि परसाद की पत्नी इज्जतदार व समझदार थी। इसलिए वह अपने पति के इस कुकृत्य पर कभी अपने घर में लड़ाई-झगड़ा नहीं करती। पति के कुकृत्यों को बर्दाश्त करती रही। जब नहीं रहा गया तब उसने जहर खाकर प्राण त्याग दिया। यहीं से घर की बर्बादी आरंभ हो गयी, क्योंकि जिस हुस्ना के प्रेम में हरि परसाद मग्न था। वह एक दिन हवेली में ही गैरमर्द के साथ सोती हुई पकड़ी गयी। तुरंत जल्लाद हरि परसाद ने दंडाधिकारी का रूप धारण करके हुस्ना और उसके सभी मित्रों का सर, धर से अलग करके रातों-रात चौड़ी गाछी में दफन कर दिये। अफवाह फैला दी कि हुस्ना बेवफा निकली। रंडी, प्रेम थोड़े ही देखती है, देखती है पैसा। अपने पुराने आशिक के साथ उड़नछू हो गयी। हुस्ना के कत्ल के साथ ही हरि परसाद के जीवन व उनके परिवार की सुख-शान्ति व समृद्धि का अंत हो गया।

कल तक हरि परसाद की माँ और पत्नी मिलजुलकर बड़े प्रेम से गृहकार्य करतीं और बचे हुए समय में लाइब्रेरी से पुस्तकें मँगाकर पढ़ाई करती थी। चारों बच्चे भी माँ और दादी के ममतामयी छाँव में पल-बढ़ रहे थे, परन्तु अब घर में अलक्ष्मी का प्रवेश घर हो चुका था। हरि परसाद की लक्ष्मीस्वरूपा पत्नी तिरस्कृत व अपमानित होकर दुनिया से चली गयी। इस घटना से उनकी माँ का मानसिक संतुलन इस कदर बिगड़ गया कि उन्हें अक्सर पागलपन के दौरे पड़ने लगे। चारों बच्चे अचानक स्नेह व ममता के छाँव से वंचित हो गये। छोटे भाई ने बेईमानी करके ऊपजाऊ जमीन व धन-संपत्ति अपने नाम कर ली। हरि परसाद अब सतमहला हबेली के खोखले मालिक थे, इसलिए नौकर-चाकर भी अब यहॉ से विदा हो गये।

हरि परसाद दु:ख-संताप में डूबे हुए हमेशा स्वयं में ही खोये रहते हैं। उनका बड़ा बेटा परिवार सहित मुंगेर जाकर बस जाता है और छोटा बेटा-बहू हवेली पर हुकूमत करने लगता है। वह घर की बर्बादी के लिए जिम्मेदार पिता को हर वक्त जलील करता है और अब उन्हें एक पैसा भी अपनी मर्जी से खर्च नहीं करने देता है। अपनी बेवकूफी व मजबूरी में डूबे हुए हरि परसाद अपनी बड़ी बेटी विभा का विवाह बड़े खानदान में अपने मन मुताबिक कर देते हैं, लेकिन उन्होंने दहेज के रूप में मोटी रकम देने का झूठा वादा कर लिया और विवाह के पश्चात विभा को एक फूटी कौड़ी भी साथ में नहीं देते हैं। बड़े खानदान के लालची लड़के वाले इस बात को यों ही नहीं जाने देते हैं। वे लोग दहेज के लिए हर वक्त, हर मौके पर विभा को प्रताड़ित करते रहते हैं। इससे

भी जब नहीं आता तब वे घोषणा करते हैं कि जब तक वकाया दहेज की राशि हमें मिल नहीं जाती, तक विभा को मायके जाने नहीं दिया जायेगा। बेचारी विभा नव-यौवना है, नवविवाहिता है, बड़े खानदान की बेटी और अब खानदानी बहु भी है। उसके घर में किसी चीज का अभाव नहीं है। लेकिन दहेज के लिए वह अपने ससुराल में हर वक्त इतने ताने सुनती हैं। इतना बेइज्जत होती है कि उसका अपने ही जीवन के प्रति आस्था, विश्वास, आशा, उल्लास समाप्त हो गया है। वह आये दिन अक्सर बीमार रहती है, और दिन प्रति-दिन सूखती ही जा रही है। उसके विवाहित जीवन में ऐसी आग लगी हुई है जिसमें उसकी सारी कोमल भावना व मधुर सपने स्वाहा हो रहे हैं। वह हर रोज अपने भाग्य को कोसती हुई किसी प्रकार से अपना दिन काट रही है। नाई फूलेना जब विभा के ससुराल जाता है तो वह उसकी दुर्दशा व मरनासन्न स्थिति को देखकर बड़ा ही आहत होता है। वापस लौटकर बड़े ही दु:ख के साथ सारी बातें परिवार के लोगों को बताता है। वह उसकी लिखी चिट्ठी छोटी बहन के हाथों में दे देता है, जिसमें विभा अपनी व्यथा का वर्णन करते हुए ज्ञान को लिखती है-

"बाबूजी को पूरा तिलक नहीं देना था तो किसी गरीब के यहाँ बैठा देते। कम से कम रोज ताना तो नहीं सुनना पड़ता। नैहर का नाम लेने ही पूरा घर भौंकने लगता है। मेरी बहना, औरत होना ही नरक नरक है.... बस, किसी दिन मेरे मरने की खबर सुन लोगी।"[2]

आश्चर्य की बात है कि उस का अपार कष्ट देखकर भी उसके पिता व भाई उससे उबारने का कोई भी प्रयास नहीं करते हैं। उसे उसके भाग्य के भरोसे छोड़कर निश्चित हो जाते हैं। साथ ही जो गलती से कर चुके हैं। उसे ही पुन: दोहराने के लिए तैयार हैं। ऐसा ही खानदानी घर- वर ज्ञान के लिए भी खोजा जा रहा है, किन्तु विवाह खर्च के निर्वहन, हेतु यदि कोई जमीन हरि परसाद बेचना चाहता है तो उनका लड़का बीच में दीवार बन खड़ा हो जाता है। धन है। धन के अभाव में कई विवाह टूट गया और कुछ जगहों पर पिता के अकड़ के कारण। हवेली में नौकरों का अभाव है, इसलिए हम दिन-रात अकेले खटती रहती है। घर मे सबके लिए भोजन तैयार करना, घर की साफ-सफाई करना, कपड़े व बर्तन धोना, अनाज को कूटना-पिसना-सुखाना, घर के आवश्यक सामान मँगवाना, पगली दादी की सेवा करना, पिता की जरूरतों का ख्याल रखना, भाई-भाभी का टहल करना आदि सब कुछ ज्ञान के हिस्से का ही कार्य है। ज्ञान बखूबी इन सारे कार्यो का निर्वाह करती है। फिर भी लक्ष्मीस्वरूपा इस बेटी के कार्यो का न तो इस घर में कद्र है और न ही उसकी इज्जत।

बेचारी ज्ञान गृहकार्य समाप्त करके गुमसुग-सी अपने कमरे में बैठी रहती या अपने नसीब पर ऑसू बहाती है। समय थोड़ा अच्छा बिने इसके लिए वह कभी कोई पुरानी किताब पढ़ती है, तो कभी रेडियो सुनती है या फिर सिलाई-कढ़ाई करती है। ज्ञान अपने घर में नितान्त अकेली है। उसकी मॉ मर चुकी है, दादी पागल हो चुकी है, पिता अपने ही दुख में मग्न रहते हैं, दीदी को मायके आने की व ताने के सिवाय कुछ सुझता ही नहीं है। ज्ञान की जो बचपन की सहेलिया थीं। उन सभी का ब्याह हो चुका है। सभी अपनी-अपनी गृहस्थी में मग्न हैं। पास-पड़ोस में यदि कोई लड़की है भी तो उसके घर वाले ज्ञान जैसी बदनाम लड़की के साथ उठने-बैठने नहीं देते हैं। ज्ञान का परिवार तो खोखला है ही अपने टोले में भी वह पूर्णरूप से उपेक्षित है। उसे अब अपना जीवन ही बोझ के समान लगने लगा है। कथाकार अरुण प्रकाश, बिलखती ज्ञान की मानसिक वेदना का चित्रण करते हुए लिखते हैं-

"तू क्यों पैदा हुई है? औरत बनकर क्थ्यों पैदा हुई? औरत सदियों से खिलौना है। खिलौने रोते नहीं.....चुप हो जा, खिलौने रोते नहीं.....चुप हो जा......चुप हो जा......चुप।"[3]

ज्ञान का यदि समय से विवाह नहीं हो रहा है तो उसमें दोषी उसका परिवार और उनकी रूढ़िवादी सोच है, लेकिन समाज तो लड़की को ही दोषी ठहरायेगा न। इसलिए ज्ञान के खिलाफ लोग तरह-तरह की अफवाह फैला रहे हैं। विवाह में हो रहे विलंब हेतु हर व्यक्ति अपने-अपने तरीके से ज्ञान पर आरोप लगा रहा है। उसे बदनाम करने की कोशिश कर रहा है। ज्ञान के दु:ख भरे जीवन के और नर्क बना रहा है। ज्ञान की अवस्था इतनी दयनीय है कि उसकी व्यथा सुनने वाला भी कोई नहीं है। अपने व्याकुलता को वह अपनी बड़ी बहन को एक चिट्ठी में लिखकर इस प्रकार व्यक्त करती है-

"दीदी, हरदम यही लगता है कि मैं लड़की नहीं, लाश हूँ, जो सड़ रही हूँ और इस लाश को उठाकर चिता पर जलाने को कोई तैयार नहीं है।.......पास-पड़ोस की औरतें चुगली खाती रहती हैं- ज्ञान तो तीन बार पेट गिरा चुकी......बाप उसकी शादी क्यों करेगा?

....ज्ञान का खेत जोतने के लिए बंधू हलवाहा है ही......तुमसे ज्यादा मेरे बारे में कोई नहीं जानता। मर्द कैसा होता है, मैंने जाना नहीं। दूर से ही देखा है- सपने की तरह। दादी कहती है- कोई राजकुमार आयेगा, तुझे ब्याह ले जायेगा। क्या राजकुमार इतना गरीब होता है कि वह मुझसे पैसे लेगा, तभी ब्याह करेगा।"[4]

आखिर क्या गलती है ज्ञान की अथवा विभा की। अपनी माँ की तरह ही ये दोनों बदनसीब बेटियाँ दूसरे के बुड़े कर्मों का फल भोग रही है। ज्ञान का लालची भाई अशोक एक दिन चोरी-छुपे आनन-फानन में पिता की अनुपस्थिति में ही ज्ञान का पकड़ौआ विवाह करवा देता है। दहेज के खर्चे से मुक्ति पाकर कर जैसे ही वह इत्मीनान है तो पता चलता है कि लड़का तो छोटी जात का है। अब भूमिहार की बेटी मल्लाह के घर में कैसे बसेगी। इसलिए अशोक दुल्हे को डरा-धमकाकर भगा देना चाहता है। ज्ञान का क्या वह सुहागन विधवा की तरह नैहर- में पड़ी रहेगी जिंदगी भर। ज्ञान पकडौआ विवाह का भविष्य जानती है। ससुराल वाले अपना भी सकते हैं और ठुकरा भी सकते हैं। अपने ही गाँव की बेटी प्रभा की दुर्दशा उसने देखी है। पकड़ौआ विवाह के पश्चात पति व ससुराल द्वारा ठुकरा दिये जाने के कारण वह सुहागन रही न विधवा। भाई की डाँट व भाभी के ताने सुनती तथा नौकरानी की तरह नैहर में खटती हुई ज्ञान अपना जीवन बर्बाद नहीं कर सकती। हलाँकि उसका पति मदन छोटी जात का होने की वजह से शर्मिंदा है। वह ज्ञान को छोड़कर जाना चाहता है, लेकिन ज्ञान एक पढ़े-लिखे, संस्कारी नवयुवक में अपना उज्जवल भविष्य साफ-साफ देख रही है। इसलिए वह इस रिश्ते को निभाना चाहती है। वर्षो से चुपचाप अत्याचार सहनेवाली ज्ञान आज अपने लिए मजबूत फैसला लेती है। उसकी शादी चाहे किसी भी जात के लड़के से हुई हो अब उसका पति है। वह उसके साथ भूखे-प्यासे रह सकती है, गुमनाम होकर रह सकती है, लेकिन अब अपने नैहर की चाकरी नहीं कर सकती है। वह दूल्हे को रोक लेती है और हमेशा साथ निभाने का वचन देती हुई कहती है-

"मैं विधवा नहीं बनूँगी.........तुम्हारे रहते.......... नहीं जाने दूँगी तुम्हें! बहुत सहा है......अब तो साथ ही मरेंगे..... ...हम साथ ही मरेंगे।"[5]

परिवार के लोग दूल्हे को मार-पीटकर भगा देना चाहते हैं, लेकिन नौकरानी जौना वाली ज्ञान के रिश्ते को बचाने के लिए चट्टान की तरह खड़ी हो जाती है। पास-पड़ोस में एक जौनावाली ही तो है जो बचपन से आज तक ज्ञान के सुख-दुख में उसका साथ दिया है। उसकी मुसीबतों को हल करने का प्रयास किया है। रोजमर्रा के कार्यों में बिना किसी लालच के मदद की है। निःसंतान जौनावाली ज्ञान को अपनी बेटी की तरह स्नेह व ममता से सदैव तृप्त करती रही है। इसलिए आज वह अपनी बेटी का घर किसी भी कीमत पर गुजरने नहीं दे सकती है। वह समाज के लोगों को बुलाती है, ताकि दुल्हे की हत्या न हो जाये। ज्ञान की एकमात्र हितैषी जौनावाली ज्ञान के घर को बसा देती है और उसे नैहर की त्रास से मुक्ति दिलाती है।

'कोपल कथा' की स्त्रियाँ शोषित-पीड़ित अवश्य हैं, लेकिन वह मुसीबतों के आगे घुटने नहीं टेकती हैं। वह परिस्थितियों से हर संभव मुकाबला करती हैं। यह बात अलग है कि ज्ञान की माँ, दादी व हार जाती है, लेकिन ज्ञान इनकी गलतियों से सबक लेती है। गौ जैसी सीधी-सादी लड़की को अपना संपूर्ण अस्तित्व संकट से घिरा हुआ नजर आता है, तब वह बौखला उठती है। आज तीस वर्षों से जिस नैहर के मोहजाल में फँसी रही थी, अचानक उसे झटके से तोड़ देती है। एक अजनबी नवयुवक की आँखों में उसे ऐसी सच्चाई नजर आती है कि वह अपने सभी पुराने रिश्तों का त्याग करके इस खानदानी, रईस परिवार के दोहरे जीवन से मुक्ति पाना चाहती है। ज्ञान अपने पति के साथ एक नई शुरुआत करना चाहती है, जहाँ प्रेम होगा, सम्मान होगा, मेहनत होगा और मधुर सपने होंगे।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:

1) कोंपल कथा, अरुण प्रकाशन, पृ. 31-32
2) वही, पृ. 36
3) वही, पृ. 20
4) वही, पृ. 13
5) वही, पृ. 96

प्राचीन भारत में बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र

परीक्षित लायेक

सहा० प्राध्यापक, श्री रामकृष्ण शारदा आश्रम टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज हजारीबाग

प्रस्ताबना

बौद्ध विहार की सम्पूर्ण व्यवस्था बौद्ध भिक्षुओं के हाथों में रहती थी. चाहे वह छोटा बौद्ध विहार हो अथवा बड़ा। इनका प्रबन्धन किसी विख्यात बौद्ध विद्वान् के निर्देशन में होता था, जो संघ के सदस्यों के मतों से भिक्षुओं में से चुना जाता था। नालन्दा विश्वविद्यालय, पहले बौद्ध संघ था किंतु कालान्तर में विश्वविख्यात शिक्षण संस्था के रूप में विख्यात हुआ। प्रधान आचार्य के प्रबन्ध में सहायता प्रदान करने के लिए कई समितियाँ होती थीं जिनमें दो समितियाँ प्रधान थीं- एक शिक्षा समिति और दूसरी प्रबन्ध समिति। शिक्षा समिति के अन्तर्गत विभिन्न पाठ्यक्रमों का निर्देरण होता था तथा प्रबन्ध समिति के अन्तर्गत शिक्षा-संस्थाओं की प्रशासनिक व्यवस्था, कार्यकर्ताओं की नियुक्ति तथा भवनों का निर्माण आदि कार्य होते थे प्रारम्भ में बौद्ध शिक्षण संस्थाओं के अनुशासन और नियम प्राय: हिन्दू शिक्षण व्यवस्था की तरह थे। दोनों शिक्षा प्रणालियों के आदर्श और पद्धति में भी बहुत साम्य था। जैसे-जैसे बौद्ध-शिक्षा का प्रसार हुआ. इनकी आदर्श, पद्धति एवं नियमों में अंतर आता गया तथा बहुत से वैदिक शिक्षण संस्थान राजकीय संरक्षण खोकर बौद्ध शिक्षण संस्थानों में बदल गए।

बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था

बौद्ध धर्म का विकास मठों में हुआ था। बौद्ध मठों में मात्र धर्म पर ही चर्चा नहीं होती थी वरन् शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षा प्रसार का उत्तरदायित्व भी इन मठों का ही था। बौद्धकाल में मठ शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। डॉ० मुकर्जी के शब्दों में-"बौद्ध मठों को बौद्ध शिक्षा एवं ज्ञान का केन्द्र माना जाता था। बौद्ध संसार अपने मठों से अलग शिक्षा अर्जित करने का कोई अवसर नहीं देता था। धार्मिक एवं लौकिक समस्त प्रकार की शिक्षा भिक्षुओं के हाथ में थी।"

महात्मा बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर बहुत से लोग किशोरावस्था में ही भिक्षुव्रत ग्रहण करके बौद्ध संघ में सम्मिलित हो गए। विभिन्न राज्यों के राजा एवं सम्पन्न गृहस्थ बौद्ध विहारों को उदारतापूर्वक दान देते थे। ये भी शिक्षा के भी महत्वपूर्ण केन्द्र हो गए जिनमें आचार्य और उपाध्याय अध्यापन का कार्य करते थे। इस प्रकार आचार्य-कुलों या गुरुकुलों का स्थान विहारों ने ले लिया और परम्परागत गुरुकुलों को भारी आघात लगा। परम्परागत गुरुकुल का स्वरूप एक परिवार की तरह होता था जिसमें गुरु और शिष्यों के बीच पिता-पुत्र जैसा सम्बन्ध हो जाता था किन्तु बौद्ध विहारों में यह सम्भव नहीं था, क्योंकि उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले भिक्षुओं या विद्यार्थियों की संख्या सैकड़ों- हजारों में होती थी। भिक्षुओं को अपने भोजन आदि के लिए भिक्षाटन की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि बौद्ध विहार प्राय: अत्यन्त समृद्ध होते थे। विद्यार्थी इन विहारों में बड़े समूह में शिक्षार्जन करते थे। उनके अध्यापन के लिए अनेक उपाध्याय और शिक्षक नियत होते थे। विद्यार्थियों को विनय-पिटक में दिए गए नियमों का पालन करना होता था।

प्रारम्भ में बौद्ध शिक्षण संस्थाओं के अनुशासन और नियम प्राय: हिन्दू शिक्षण व्यवस्था की तरह थे। दोनों शिक्षा प्रणालियों के आदर्श और पद्धति में भी बहुत साम्य था। जैसे-जैसे बौद्ध-शिक्षा का प्रसार हुआ. इनकी आदर्श, पद्धति एवं नियमों में अंतर आता गया तथा बहुत से वैदिक शिक्षण संस्थान राजकीय संरक्षण खोकर बौद्ध शिक्षण संस्थानों में बदल गए। बौद्ध विहारों में शिक्षा का माध्यम संस्कृत न होकर पालि था। बौद्ध संघ में शिक्षा आरम्भ करने के लिए 'पब्वजा' (प्रव्रज्या) और समाप्ति के लिए 'उपसम्बदा'

नामक संस्कार आवश्यक थे। प्राय: आठ वर्ष के बाद कभी भी पब्बजा संस्कार करवाया जा सकता था। ऐसे विद्यार्थी को उपासक कहा जाता था। उसे विहार में रहते हुए बुद्ध के उपदेशों में शत-प्रतिशत श्रद्धा रखनी होती थी तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना होता था। वह भी हिन्दू विद्यार्थियों की तरह 'भिक्षाटन' के लिए जाता था। उपसम्बदा के समय विद्यार्थी की आयु लगभग 30 वर्ष हो जाती थी। बौद्ध उपासक भी अपने आचार्य की सेवा करता था।

बौद्ध दर्शन में शिक्षा के केंद्र

नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों तथा और वलभी बौद्धकाल में नालन्दा, विक्रमशिला, तक्षशिला, श्रावस्ती, वल्लभी, अमरावती, ओदन्तपुरी, नदियाँ आदि विहार बौद्ध शिक्षा के प्रसिद्ध एवं उच्च शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। इन समस्त उच्च शिक्षा केन्द्रों में से नालन्दा विश्वविद्यालय सर्वोच्च स्थान पर था। नालन्दा, बौद्धकाल में उच्च शिक्षा का एक महत्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र था। यहाँ प्रवेश से पूर्व शिक्षार्थी को कठिन परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती थी ह्वेनसांग (जिसने इस विश्वविद्यालय में अनेक वर्षों तक बौद्ध दर्शन का गहन अध्ययन किया) ने लिखा है कि विद्यालय के प्रधान द्वारों पर नियुक्त विविध विषयों के विशेषज्ञ पण्डित प्रवेशार्थियों से उनकी योग्यता तथा प्रतिभा की परीक्षा हेतु दार्शनिक विषयों एवं अन्य ऐसी ही समस्याओं पर जटिल प्रश्न पूछते थे। परिणामत: मुश्किल से 20% शिक्षार्थी ही प्रवेश प्राप्त कर पाते थे। चीन, कोरिया, तिब्बत आदि देशों के शिक्षार्थी इस विश्वविद्यालय में अध्ययन हेतु आते थे।

तक्षशिला

प्राचीन काल से तक्षशिला (अब पाकिस्तान के अधिकार क्षेत्र में है) ज्ञान और विद्या के क्षेत्र में बहुत अधिक प्रसिद्ध था। इसकी प्रसिद्धि सातवीं सदी ई०पू० में ही हो गयी थी। यह उल्लिखित है कि इसकी स्थापना भरत ने की थी और इसका प्रशासन तक्ष को सौंपा था। अत: तक्ष के नाम पर इस स्थान का नाम तक्षशिला हुआ। जातकों से ज्ञात होता है कि देश के विभिन्न स्थानों से छात्र वहां जाकर आचार्य के सानिध्य में रहकर शिल्प का ज्ञान प्राप्त करते थे।' वहाँ वेदों के साथ-साथ हस्तिसूत्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद एवं 18 शिल्पों की शिक्षा छात्रों को प्रदान की जाती थी। देश के कोने-कोने से विद्यार्थी यहां आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। इनमें वाराणसी, राजगृह, मिथिला, उज्जियनी आदि नगरों के भी छात्र रहते थे जो कि यहां ज्ञानार्जन हेतु आते थे। पाटलिपुत्र निवासी 'जीवन' ने तक्षशिला में जाकर अध्ययन किया था जो कि कालान्तर में आयुर्वेद का महान विद्वान बना। वह महात्मा बुद्ध का समकालीन था। यहाँ से अनेक सम्राटों ने शिक्षा प्राप्त की। कौशल नरेश प्रसेनजीत, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त, महान अर्थशास्त्री कौटिल्य ख्यातिलब्ध वैद्य जीवक, वैयाकरण पाणिनी और पतंजलि ने यहाँ शिक्षा ग्रहण की थी। इसके वर्तमान अवशेष इस बात के प्रमाण है कि तक्षशिला ने चौथी शती ई० पू० से छठी शती तक अनेक उथल-पुथल देखे थे। यवन, यवन बाख्वी, शक, पल्लव, कुषाण और हूणों के अनेक आक्रमण इसने सहे थे तथा इन झंझावतों से अपने को यथारक्षित रखने का प्रयास किया था। इन आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि नवीन ज्ञान-विज्ञान का सम्पर्क भरत से हुआ तथा भारतीय जनमानस में उसका समावेश भी प्रारम्भ हुआ। जातक युग में यहाँ नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की संख्या बहुत अधिक थी, जो वेद और शिल्प में पारंगत थे। वे एकांतवास करते थे तथा उनके साथ उनके शिष्य रहते थे। जातकों से विदित होता है कि यहाँ के एक आचार्य के निर्देशन में पाँच-पाँच सौ छात्र शिक्षा ग्रहण करते थे। ऐसे आचार्य अनेक थे जो सैकड़ों विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। निश्चित ही यहाँ की शिक्षा बहुत अधिक संघटित नहीं थी, किन्तु फिर भी इसका महत्व था निर्धारित पाठ्यक्रम होता था छात्र अपनी इच्छा अनुसार विषय पढ़ते थे

शिक्षा का प्रधान उद्देश्य था, स्वांत सुख, न कि उपाधि प्राप्ति। एक जातक में उल्लिखित है कि एक आचार्य से 103 विद्यार्थी धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा प्राप्त करने तथा शिक्षा देने में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी समान रूप से शिक्षा प्राप्त करते थेश आचार्य के पास क्षत्रिय ब्राह्मण, वैश्य के साथ-साथ दर्जी और मछली मारने वाले निम्न जाति के लोग भी शिक्षा ग्रहण करते थे, जो उस युग की जाति-व्यवस्था के लचीलेपन की ओर भी इंगित करता था। धनी और निर्धन समान रूप से गुरू के शिष्य हो सकते थे। तत्कालीन युग में धनी छात्र धनराशि के साथ गुरू दक्षिणा देता था और निर्धन छात्र श्रम करके गुरू दक्षिणा प्रदान करता था। धनी छात्रों द्वारा प्राय: एक एक सहस्र कार्षा का गुरू को दक्षिणा के रूप में अर्पित किया जाता था। योग्य एवं मेधावी छात्रों को राजकीय सहायता पर शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जाता था। वाराणसी और राजगृह

के राजपुरोहित के पुत्र और युवराजों के साथ जाने वाले ऐसे छात्रों को देखा जा सकता था। स्पष्ट है कि इस युग में तक्षशिला अशोक के समय में शिक्षा का मुख्य केन्द्र था।श प्रतिभाशाली किन्तु निर्धन छात्रों को राज्यों और समाज की ओर से प्रत्येक सम्भव सहयोग प्राप्त होता था। तक्षशिला के शिक्षा केन्द्र का महत्व चौथी सदी ई० तक ही रहा, क्योंकि पाँचवी सदी में भारत की यात्रा करने वाले फाह्यान ने इस स्थान से सम्बन्धित ऐसा कोई विवरण नहीं दिया जिससे यह जाना जा सके कि तक्षशिला उस समय शिक्षा और विद्या का प्रधान केन्द्र था। ह्वेनसांग जब भारत आया था, उस समय इसका सम्पूर्ण वैभव नष्ट हो चुका था। अन्य बौद्ध विहारों की अवस्था जीर्ण शीर्ण थी।

नालन्दा

प्राचीन काल में उत्तरार्द्ध में नालन्दा विश्वविद्यालय अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त कर चुका था। वहाँ बौद्ध धर्म और दर्शन की शिक्षा के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय के विषय में चीनी यात्रियों ने विशेष रूप से विस्तारपूर्वक लिखा है। वैसे नालन्दा की ख्याति महात्मा बुद्ध के समय से थी। 500 श्रेष्ठियों ने मिलकर 10 करोड़ मुद्राओं से नालन्दा क्षेत्र को क्रय करके महात्मा बुद्ध को अर्पित किया था। बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र की यह जन्मभूमि थी। तथागत ने वहाँ के आम्रवन में कई दिन व्यतीत करके अपने शिष्यों को अपने धर्म की शिक्षा दी थी। कालान्तर में अशोक महान ने वहाँ विशाल विहार का निर्माण कराया था। ऐसा लगता है अशोक महान ने वहाँ विशाल विहार का निर्माण कराया था। ऐसा लगता है

कि यह स्थान अपने प्रारम्भिक काल में ब्राह्मण शिक्षा का केन्द्र होते हुए भी बौद्ध धर्म और शिक्षा का प्रचार-प्रसार भी था। इसकी प्रमुखता पांचवी शती के मध्य में अधिक बढ़ी जब बौद्ध विद्वान दिड नाग ने नालन्दा में जाकर वहाँ के विख्यात ब्राह्मण पंडित सुदुर्गम को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। समय-समय पर गुप्त राजाओं ने नालन्दा के विकास में सराहनीय योगदान किया था, जो उनकी धार्मिक सहिष्णुता और विचारों की व्यापकता का उज्जवल पक्ष है। सर्वप्रथम कुमारगुप्त ने इस बौद्ध संघ को दान दिया था। उसके बाद बुद्धगुप्त, तथागत गुप्त, नरसिंहगुप्त बालादित्य आदि अनेक गुप्त राजाओं ने इसे अपना संरक्षण प्रदान कर इसके विकास में योग दिया था। श्वानचांग के विवरण से ज्ञात होता है कि अनेकानेक बौद्ध विहारों का निर्माण यहाँ किया गया था। विहारों में कुछ तो काफी बड़े और भव्य थे जिनके गगनचुम्बी अत्यन्त आकर्षक थे। यहाँ का ससे बड़ा विहार 203 फीट लम्बा और 164 फीट चौड़ा था। इसके कक्ष 9 फीट से 12 फीट तक लम्बे थे। यशोवर्मा के एक अभिलेख से विदित होता है कि नालन्दा के विहारों की शिखर श्रेणियाँ गगनस्थ मेघों का चुम्बन करती थीं। इनमें अनेक जलाशय थे, जिनमें कमल तैरते रहते थे। यहाँ कई विशालकाय भवन थे, जिसमें छोटे-बड़े अनेक कक्ष थे। उत्खनन से मिले अवशेष वहाँ की भव्यता प्रमाणित करते है। विश्वविद्यालय भवन में व्याख्यान के निमित्त 7 विशालकाय कक्ष और 300 छोटे-बड़े कक्ष थे। विद्यार्थी छात्रावासों में रहते थे तथा प्रत्येक कोनों पर कूपों का निर्माण किया गया था। इस विश्वविद्यालय के खर्चे के लिए 200 गाँव दान में प्राप्त थे, जिनकी आय से यहाँ के भिक्षु कार्यकर्ताओं और भिक्षु अध्येताओं का पालन पोषण होता था। यही नहीं, इन गाँवों के निवासी प्रतिदिन कई मन चावल और दूध यहाँ भेजा करते थे। विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। उनके आवास और भोजन की व्यवस्था विश्वविद्यालय द्वारा नि:शुल्क की जाती थी। इस शिक्षा संस्था में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए कठोर नियम थे। ऐसे प्रवेशच्छुक विद्यार्थियों के लिए कठोर नियम थे। ऐसे प्रवेशच्छुक विद्यार्थी को सबसे पहले द्वारपाल से वाद-विवाद करना पड़ता था तथा उसकी शंकाओं का समाधान करना आवश्यक था। उसके प्रश्नों से 8-10 विद्यार्थी असफल भी हो जाया करते थे और एक दो सफल। अपने-अपने विषय के यहाँ अनेक विद्वान थे । इत्सिंग के समय में यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या 3000 थी किन्तु श्वानच्वांग के समय इस विश्वविद्यालय में छात्र संख्या बढ़कर 10,000 हो गई। यहाँ के शिक्षकों की संख्या 1510 थी जिनमें एक हजार दस सूत्र निकायों में दक्ष थे और शेष पाँच सौ अन्य विषयों में। श्वानच्वांग के समय इस विश्वविद्यालय का प्रधान कुलपति शीलभद्र था, जो अनेकानेक विषयों में पारंगत था। उसके पहले धर्मपाल इस विश्वविद्यालय का कुलपति था। श्वानचांग भी यहाँ के प्रधान शिक्षकों में से था जिसने अनेकानेक विषयों पर अधिकार प्राप्त किया था। यहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सुदूर प्रदेशों और विदेशों में विद्यार्थी यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। चीन, तिब्बत, कोरिया, तुखार आदि अनेक देशों के विदेशी शिक्षार्थी यहाँ रहकर ज्ञान प्राप्त करते थे तथा अपनी रूचि के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करते थे। विद्यार्थी के अध्ययन के लिए यहाँ धर्मयक्ष नाम विशालकाय पुस्तकालय था। इत्सिंग ने स्वयं 400 संस्कृत पुस्तकों की प्रतिलिपियां तैयार की थी, जिनमें लगभग 3 लाख श्लोक थे।

रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक नामक तीन भवनों से मिलकर भव्य पुस्तकालय का निर्माण हुआ था, जिनमें जिज्ञासु और अध्ययनशील विद्यार्थियों की प्राय: भीड़ रहा करती थी। यहाँ का एक अध्यापक 9 या 10 विद्यार्थी को पढ़ाता था। इस विश्वविद्यालय के अध्यापक कक्ष बहुधा बड़े-बड़े थे। इनमें 8 विशाल व्याख्यान भवन थे और 300 छोटे व्याख्यान कक्ष। सभी विषयों में मिलाकर नित्य लगभग 100 व्याख्यानों की आयोजना की जाती थी। नालन्दा में विशेषकर महायान शाखा का अध्ययन किया-कराया जाता था। यहाँ के अनेक विहार भी महायानी शाखा के पालि भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाती थी। नागार्जुन, वसुबन्धु, असंग, धर्मकीर्ति आदि ऐसे ही महायानी विचारक थे, जिन्होंने इसी शिक्षा केन्द्र से अपने को उन्नत किया था। श्वान चांग ने अनेक ऐसे विद्वान आचार्यो का उल्लेख किया है, जो अपने अपने विषय के प्रकाण्ड पंडित थे तथा भारत के विभिन्न प्रदेशों से आकर यहाँ अध्ययन-अध्यापन करते थे। धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभागिम, जिनमित्र, आर्यदेव, दिड, नाग, ज्ञानचन्द्र आदि ऐसे ही प्रतिभावान विद्वान थे जिनके आकर्षण से दूरस्थ विद्यार्थी भी ज्ञानार्जन के निमित्त आते थे और अपने को सुबुद्ध और सुरक्षित बनाने की चेष्टा करते थे, नालन्दा का पाठ्यक्रम विस्तृत था। मुख्य रूप से यह विहार महायान शाखा का था, किन्तु हीनयान शाखा के ग्रंथों तथा अन्य विषयों का भी अध्यापन होता था। ह्वेनसांग ने योगशास्त्र का अध्ययन करने के लिए नालंदा में प्रवेश किया था। यहाँवाद-विवाद ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन था। प्रारम्भ में विद्यार्थियों को व्याकरण के नियमों को कंठस्थ कराया जाता था, फिर भाषा का पूर्णज्ञान कराने के बाद तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि के अध्ययन के बाद विद्यार्थियों को वाद-विवाद में अग्रसर होने का अवसर दिया जाता था। नालंदा में तीन वेदों, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं वेदान्त तथा सांख्य दर्शन का भी अध्यापन होता था। चिकित्साशास्त्र भी अध्ययन का एक विषय था। शीलभद्र की अध्यक्षता में ह्वेनसांग ने जिन विषयों का अध्ययन किया था उनमें से प्रमुख थे- योगशास्त्र, हेतु विद्या, शब्द विद्या आदि। यहाँ पालि का अध्ययन अनिवार्य था, क्योंकि हीनयान ग्रन्थ पालिभाषा में ही है। अत: हम देखते है कि नालंदा के पाठ्यक्रम में अनेक विषय सम्मिलित थे तथा सभी विषयों की उच्च शिक्षा दी जाती थी एवं विद्यार्थी समान रूप से अपना ज्ञानवर्द्धन करते थे।

नालन्दा का सम्बन्ध प्राचीन काल से जैन एवं बौद्ध धर्म से था। दीघनिकाय के ब्रह्म जाल सुक्त में महात्मा बुद्ध के नालन्दा में प्रवास का वर्णन है। जैन भगवती सूत्र में वर्णित है कि महावीर स्वामी ने नालन्दा में गोसाल से भेंट की और चौदह वर्षावास निवास किया। अशोक के काल में भी नालन्दा बिहार उन्नत हो चुका था। हवेनसांग के अनुसार शकादित्य या कुमारगुप्त प्रथम दान से देकर नालन्दा विश्वविद्यालय की नींव रखी। जिसके उत्थान में बुधगुप्त, तथागतगुप्त और बालादित्य ने भी योगदान दिया। बालादित्य ने नालन्दा में तीन मंजिला मण्डप निर्मित करवाया। जिसमें कई विहार भी थे। पाल अभिलेखों में इसे महाविहार अर्थात् 'नालन्दा महाविहाराय आर्य भिक्षुस्य' कहा गया है। हर्ष के काल में नालन्दा का महत्व बढ़ गया था। हवेनसांग के अनुसार हर्ष द्वारा नालन्दा में शैक्षणिक व अन्य व्यय के लिए सौ ग्रामों का राजस्व दिया गया और पीतल का विहार बनवाया गया। पाल शासकों के काल मेकं नालन्दा में बौद्ध तंत्रवाद का विकास हुआ। देवपाल के शासन काल में नालन्दा को अर्न्तराष्ट्रीय पहचान मिली। देवपाल (810 से 850 ई0) के मुद्दगिरि ताम्रपत्र में वर्णित है कि सुमात्रा के महाराज बेलपुत्र देव के आग्रह करने पर इनके द्वारा निर्मिए करवाए गए बिहार की व्यवस्था के लिए देवपाल ने पांच गांव दान में दिया। विश्वविद्यालय का नेतृत्व विशेषज्ञ कुलपति को दिया जाता था। इसका चुनाव चरित्र, विद्वता व कार्य अनुभव को ध्यान में रखकर किया जाता था। कुलपति की सहायता के लिए शिक्षा समिति व प्रबन्ध समिति गठित की गयी थी। शिक्षा समिति का कार्य छात्रों के प्रवेश, पाठ्यक्रम का निर्धारण और अध्यापकों के पाठ्य विषय का विभाजन, सम्बन्धित कार्य करना था। प्रबन्ध समिति के द्वारा सामान्य प्रशासन, भवन-निर्माण, आवास, भोजन, चिकित्सा एवं आय व्यय से सम्बन्धित कार्य किए जाते थे। नालन्दा विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा अत्यन्त कठिन थी। इनमें व्याकरण, अभिधम्म कोश व न्याय से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते थे। हवेनसांग के अनुसार केवल बीस प्रतिशत छात्र ही प्रवेश परीक्षा में सफल हो पाते थे। विश्वविद्यालय में न्यूनतम बीस वर्ष की आयु के विद्यार्थी ही सम्मिलित किए जाते थे। प्राथमिक शिक्षा के लिए भी प्रबन्ध किया गया था। जिसमें ब्रह्मचारी ही प्रविष्ट किए जाते थे। नालन्दा में एक विशाल पुस्तकालय निर्मित किया गया था। हवेनसांग के अनुसार दीवारों से ही बनायी गयी पत्थर की आलमारियों पर पुस्तकों को रखा जाता था। सम्बन्धित विषय के विद्वान अध्यापक को पुस्तकालय के देख-रेख की जिम्मेदारी दी जाती थी। पुस्तकालय में पुस्तकों को संरक्षण के साथ-साथ लेखन भी किया जाता था। इत्सिंग ने नालन्दा से चार सौ संस्कृत ग्रंथों की प्रतियां ली थीं। पुस्तकालय के तीन भवनों का उल्लेख प्राप्त होता है- रत्नादधि, रत्नसागर तथा

रत्नरंजक। हवेनसांग के अनुसार नालन्दा में 5 विद्याएं पढ़ायी जाती थी- शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या, शिल्प स्थान विद्या और अध्यात्म विद्या । प्रत्येक विषय में सौ व्याख्यान होते थे। इसके अतिरिक्त वाद-विवाद के द्वारा भी ज्ञान का प्रतिस्पर्धी विकास किया जाता था। नालन्दा से शिक्षा ग्रहण करने वाले देश-विदेश के विद्यार्थियों की लम्बी सूची है। नालन्दा विश्वविद्यालय में विभिन्न ग्रंथों का अनुवाद भी किया जाता था। इससे सांस्कृतिक समन्वय व ज्ञानार्जन में सहायता मिली। शीलभद्र ने "जार्य बुद्ध भूमि बुद्ध व्याख्यान' ग्रन्थ की रचना की। धर्मपाल ने श्वर्ण सूत्र वृत्तिनामश नामक संस्कृत व्याकरण की टीका लिखी। इसके अतिरिक्त शांतरक्षित ने तत्व संग्रह, पद्मसंभव ने समय श्पज्यशिकाश ग्रंथों की रचना की। यहां पर रहने वाले शिक्षक, विद्वता उच्च चरित्र के लिए प्रसिद्ध थे। हवेनसांग के अनुसार इन्हें समाज में अत्यन्त सम्मानित स्थान प्राप्त था। कालान्तर में नालंदा की अवनति होने लगी, सम्भवतः विहारों का निर्माण न हो सकना ही अवनति का प्रमुख कारण था। बख्तियार खिलजी ने नालंदा के भवनों को ध्वस्त कर दिया। वर्तमान में नालंदा के अवशेष ही अपने यश-कीर्ति का बखान करते हैं।

निष्कर्ष

बौद्ध दर्शन का प्रभाव तत्कालीन समाज पर विशेषकर परिलक्षित होता है तथा शिक्षा के क्षेत्र में बौद्ध दर्शन ने पर्याप्त प्रभाव डाला था तथा तत्कालीन शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। इस कारण इस दृष्टि से बौद्ध शिक्षा आदर्श मानी जा सकती है। आज वर्तमान शिक्षा में जिन सुधारों एवं परिवर्तन की चर्चाएं हो रही हैं, वह परिवर्तन तथा सुधार लाने में बौद्ध शिक्षा मार्ग दर्शन कर सकती है। बौद्ध शिक्षा में वे समस्त विशेषताएं विद्यमान थीं, जिनकी आज आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- नीरज श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारत प्रशासन, समाज एवं संस्कृति
- एम० के० दास-एजूकेशन सिस्टम आफ दि ऐशेन्ट हिन्दूज पृष्ठ 17
- वाटर्स- आन हेनसांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, लंदन, भाग-2, पृष्ठ 240-45
- जातक संख्या 456, सं0 378, सं0 489, सं0 336, तिलमुत्ति जातक संव 252 संव 456

ग्रामीण महिलाओं का स्तर, सहभागिता तथा भेदभाव - हरियाणा के संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ० जोगेन्द्र सिंह खोखर

असोसियेट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, ए.आई. जाट एच.एम. महाविद्यालय रोहतक

सारांश-

हरियाणा राज्य सामाजिक, आर्थिक तथा जनसांख्यिकी रूप से देश का एक सुदृढ़ एवं उन्नत राज्य है। प्रति व्यक्ति आय की दृष्टि से भी यह देश के अग्रणी राज्यों में से एक है। किन्तु राज्य की इस उच्चतम आय का वितरण यहां के सभी वर्गों ओर जातियों में एक समान नहीं है। यहां अभी भी अनेक जातियों के अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो दयनीय एवं तंगहालीपूर्ण जीवनयापन के लिए विवश हैं और ये सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शिक्षा तथा चिकित्सा सूच्याकार स्तम्भ के निम्नतम पायदान पर विराजमान हैं। ऐसी स्थिति अधिकांश अनुसूचित जातियों में प्रत्यक्षत: देखी जा सकती है। इन जातियों में महिलाओं की स्थिति और भी सोचनीय है। इन जातियों में आज भी महिलाओं को बच्चे पैदा करने वाली तथा पति व परिजनों की इच्छानुसार समस्त कार्य करने वाली ही माना जाता है। ऐसी स्थिति में महिलाओं के साथ समानता का व्यवहार, सदभाव तथा महत्वपूर्ण कार्यों में उनकी सहभागिता की आशा कैसे की जा सकती है। अत: यह अत्यावश्यक है कि सदियों से पिछडी अनुसूचित जातियों में महिलाओं की वास्तविक स्थिति, उनके साथ होने वाले भेदभावों की प्रकृति तथा विभिन्न कार्यों में उनकी सहभागिता की वास्तविक जानकारी प्राप्त करने के लिए शोध कार्य किए जाएं। इस शोध पत्र का यही प्रमुख उद्देश्य है।

परिचय-

महिलाएं परिवार की आधारभूत आवश्यकताओं की परिपूर्ति के लिए लगभग सभी जिम्मेंदारियों का निर्वहन कुशलतापूर्वक करती हैं। यह स्थिति तो तब है जब इन जिम्मेंदारियों को पूर्ण करने के लिए आवश्यक संसाधनों, सूचनाओं और स्वतन्त्रता से भी ये अधिकांशत: वंचित हैं। परिवार के प्रति महिला के समर्पण का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि अनेक बार बच्चों की भूख शान्त करने के लिए वे अपना खाना भी बच्चों को खिलाकर स्वयं भूखे पेट ही सो जाती हैं। इस समर्पण के उपरान्त भी प्राचीनकाल से ही महिलाएं बड़ी संख्या में कुपोषित, गरीब, अशिक्षित, बेरोजगार तथा छोटी-छोटी आवश्यकताओं की परिपूर्ति लिए पुरूषों पर आश्रित हैं।

महिलाओं के प्रति भेदभाव किसी एक समाज, जाति, धर्म अथवा देश की समस्या नहीं है बल्कि यह एक विश्वस्तरीय समस्या है। विश्व में किए जाने वाले कुल कार्यों में से दो तिहाई कार्य महिलाओं द्वारा किए जाने के उपरान्त भी ये विश्व की केवल दस प्रतिशत आय तथा मात्र एक प्रतिशत परिसंपळि की अधिकारी हैं (सुनील कुमार, 2010)। विश्व के कुल गरीब जनसंख्या में भी अधिकांश संख्या महिलाओं की है। स्कूल न जाने वाले मिलियन बच्चों में से भी अधिकांश संख्या लड़कियों की ही है। महिलाओं के साथ भेदभाव तथा उपेक्षा के मामले विकसित देशों की अपेक्षा अविकसित देशों में ज्यादा पाए जाते हैं। यही प्रमुख कारण है कि विश्व के अनेकानेक अविकसित एवं विकासशील देशों में लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या निरंतर कम होती जा रही

है। भारत भी इस समस्या से अछूता नहीं है। भारत में 1000 पुरूषों के पीछे 914 महिलाएं ही हैं (कुन्दरा एण्ड बावा, 1982)। यह स्थिति तब है जब जन्मता और उळारजिविता में महिलाओं को पुरूषों के अपेक्षा जैविक रूप से अधिक अनुकूलता प्राप्त है। भारत में महिलाओं की स्थिति को परिवर्तित करने के लिए विगत लम्बे समय से प्रयास किए जा रहे हैं। इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप महिलाएं अब भारत में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में सहभागिता कर रही हैं और अनेक क्षेत्रों में वे अग्रणी भूमिका में भी हैं। महिलाओं के प्रति भेदभाव को समाप्त करने, समानता का अधिकार देने, महिलाओं की गरीमा को बनाए रखने, अपमानजनक प्रथाओं का परित्याग करने तथा मानवीय परिस्थितियों को बनाए रखने के लिए देश के संविधान में भी विशेष प्रावधान किए गए हैं। किन्तु अभी तक भारत में महिलाओं का स्तर ऐच्छिक उच्चता को प्राप्त करने में पूर्णतः सफल नहीं हो सका है। यहां आज भी महिलाएं विभिन्न प्रकार के भेदभाव एवं अत्याचार सहन करने के लिए विवश हैं। यही नहीं देश में महिलाओं से बलात्कार, अम्लीय हमले, दहेज हत्या, तलाक तथा लड़कियों से जबरन वेश्यावृति आदि शर्मनाक मामले दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। यही कारण है कि विश्वस्तर पर भारत को महिलाओं के लिए चौथा खतरनाक तथा जी 20 देशों में सबसे खराब देश माना गया है (डैनियल अहरोन, 2005)।

भारत एक विशाल देश है। यहां अनेक धर्मो और जातियों के व्यक्ति रहते हैं। इन सभी धर्मो और जातियों में महिलाओं की स्थिति एक समान नहीं है। अधिकांश धर्म एवं जातियों में इनको द्वितीय श्रेणी का दर्जा मिला हुआ है। सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सुदृढ़ जातियों में इनकी स्थिति में सुधार के कुछ संकेत अवश्य प्राप्त हुए हो किन्तु दयनीय एवं तंगहालीपूर्ण जीवनयापन के लिए विवश तथा सामाजिक-आर्थिक एवं शिक्षा सूच्याकार स्तम्भ के निम्नतम पायदान पर विराजमान अनुसूचित जातियों की महिलाओं के एक सार्थक भाग को आज भी अपनी स्थिति में सुधार तथा उनके साथ होने वाले भेदभाव के निराकरण का इन्तजार है। यह शोध कार्य अनुसूचित जातियों की महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, उनके साथ होने वाले विभिन्न स्तरीय भेदभाव तथा विभिन्न कार्यो में उनकी सहभागिता की वास्तविक जानकरी प्राप्त करने के लिए हरियाणा के रोहतक जिले में कर्मसम्पादित किया गया है।

शोध पद्धति-

प्राथमिक समंक संकलन पर आधारित तथा समष्टि पद्यति के महत्व के दृष्टिगत यह अध्ययन हरियाणा राज्य के रोहतक जिले की अनुसूचित जातियों में कर्मसम्पादित किया गया है। अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यहां बहुस्तरीय उद्देश्यीय निदर्शन प्रणाली का प्रयोग किया गया है। प्रथम स्तर पर कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों की अधिकतम् संख्या के आधार पर रोहतक जिले के प्रमुख खण्डों रोहतक, कलानौर तथा महम से एक-एक गांव का चयन करते हुए कुल तीन गांव का चयन किया गया है। रोहतक खण्ड से कटवाड़ा, कलानौर खण्ड से सैम्पल तथा महम खण्ड से भैणी चन्द्रपाल गांव का चयन किया गया है। द्वितीय स्तर पर सूचनाओं के संकलन के लिए चयनित गांव से उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। उत्तरदाताओं का चयन ग्रामीण क्षेत्रों में नियुक्त आंगनवाड़ी कार्यकर्त्ताओं द्वारा तैयार किए गए रजिस्टर की सहायता से किया गया है। इस रजिस्टर में आंगनवाड़ी केंद्र के अधीनस्थ जनसंख्या की सम्पूर्ण सूचनाएं दर्ज होती हैं। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर अध्ययन के उद्देश्यानुसार कुल 144 उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। उत्तरदाताओं के चयन में स्त्री व पुरुषों की संख्या, उनका शैक्षणिक स्तर तथा बच्चों की संख्या का भी ध्यान रखा गया है। इस प्रकार प्रत्येक गांव से योग्य उत्तरदाताओं का चयन करते हुए चयनित उत्तरदाताओं से पूर्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से आवश्यक सूचनाएं संकलित की गयी हैं। संकलित सूचनाओं का विशिष्ट विशेषताओं के आधार पर तालिकाकरण किया गया है और आवश्यक सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग से यथेष्ट निष्कर्ष प्राप्त किए गए हैं।

प्रमुख प्राप्तियां -

चयनित उत्तरदाता- किसी भी शोधकार्य के लिए उत्तरदाताओं का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता हैं। यहां उत्तरदाताओं का चयन करते समय आंगनवाड़ी कार्यकर्ता द्वारा संकलित सूचनाओं के आधार पर स्त्री व पुरुषों की संख्या, शैक्षणिक स्तर, व्यवसायिक संरचना तथा परिवार में बच्चों की संख्या का भी ध्यान रखा गया है।

तालिका-1.0

क्र. सं.	उत्तरदाताओं का लिंगानुसार वितरण			
	गांव	स्त्री	पुरूष	योग
1	कटवाड़ा	36(37.11)	23(48.94)	59(40.97)
2	सैम्पल	31(31.96)	14(29.78)	45(31.25)
3	भैणी चन्द्रपाल	30(30.93)	10(21.28)	40(27.78)
	योग	**97** (100)	**47**(100)	**144**(100)

स्रोत- गणना संग्रहित प्राथमिक समंकों पर आधारित है। कोष्ठक में प्रतिशत मात्रा दर्शायी गई है।

अध्ययन क्षेत्र के चयनित तीन गांव कटवाड़ा, सैम्पल तथा भैणी चन्द्रपाल से कुल 144 उत्तरदाताओं का चयन किया गया है। तालिका के विश्लेषण अनुसार ग्रामीण क्षेत्र के कुल 144 उत्तरदाताओं में से 59 उत्तरदाता गांव कटवाड़ा, 45 उत्तरदाता गांव सैम्पल से तथा 40 उत्तरदाता गांव भैणी चन्द्रपाल के रहने वाले थे। स्त्री उत्तरदाताओं की संख्या न्यूनाधिक तीनों गांव में लगभग एक जैसी ही थी। दूसरी तरफ पुरूष उत्तरदाता गांव कटवाड़ा से सर्वाधिक थे। उत्तरदाताओं में स्त्रीयों की संख्या का अधिक होने का प्रमुख कारण उनकी सुगम उपलब्धता तथा शोध का स्त्रीयों पर केंद्रित होना था।

शिक्षा का स्तर

शिक्षा को मानव सभ्यता का आधार माना जाता है। व्यक्तिगतस्तर पर यह जहां आत्मसंतुष्टि, ज्ञान, कुशलता एवं आत्म-विश्वास उत्पन्न करती है वहीं समाज के लिए यह विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। भारत में छः वर्ष से अधिक आयु का जो व्यक्ति किसी भाषा को समझ सकता है और उसे पढ़ तथा लिख सकता है उसे साक्षर माना जाता है। साक्षर होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसने कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त की हो अथवा कोई न्यूनतम परीक्षा पास की हो। प्रत्युत कोई व्यक्ति जो न तो पढ़ सकता है और न ही लिख सकता है अथवा किसी भाषा को पढ़ सकता है किन्तु लिख नहीं सकता है निरक्षर माना जाता है।

तालिका- 2.0

क्र. सं.	उत्तरदाताओं का शिक्षा का स्तर			
	शिक्षा स्तर	स्त्री उत्तरदाता	पुरूष उत्तरदाता	कुल उत्तरदाता
1	निरक्षर	25(25.77)	03(6.38)	28(19.44)
2	प्राथमिक	24(24.74)	5(10.64)	29(20.14)
3	माध्यमिक	34(35.06)	15(31.92)	49(34.03)
4	वरिष्ठ माध्यमिक	06(6.19)	09(19.15)	15(10.42)
5	स्नातक	04(4.12)	07(14.89)	11(7.64)
6	स्नातकोत्तर	01(1.03)	04(8.51)	05(3.47)
7	अन्य	03(3.09)	04(8.51)	07(4.86)
8	योग	97(100)	47(100)	144(100)

स्रोत- गणना संग्रहित प्राथमिक समंकों पर आधारित है। कोष्ठक में प्रतिशत मात्रा दर्शायी गई है।

तालिका में दर्शाए गए समंको से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जातियों के लगभग 20 प्रतिशत उत्तरदाता निरक्षर थे। अर्थात ये न तो पढ़ सकते थे और न ही लिख सकते थे। निरक्षर उत्तरदाताओं में 90 प्रतिशत संख्या स्त्रियों की थी। शिक्षा का स्तर उच्च होने के साथ ही जहां पुरूष उत्तरदाताओं की संख्या बढ़ती गई वहीं स्त्री उत्तरदाताओं की संख्या निरंतर कम होती गई है। यहां अन्य में शिक्षा स्नातक, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान की उपाधि या डिप्लोमा, कम्प्यूटर पाठ्यक्रम, अभियांत्रिकी शिक्षा, कानून शिक्षा तथा विभिन्न तकनीकी पाठ्यक्रमों की उपाधि अथवा डिप्लोमा धारक उत्तरदाताओं को शामिल किया गया है। वर्तमान के तकनीकी युग में तकनीकी शिक्षा प्राप्त उत्तरदाताओं की संख्या भी काफी कम थी। सारांशस्वरूप कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र की अनुसूचित जातियों मुख्यत: इनकी स्त्रियों का शिक्षा स्तर आशानुरूप नहीं था।

व्यवसायिक स्थिति- अनुसूचित जातियां काफी लम्बे समय तक घृणित, तुच्छ तथा महत्त्वहीन कार्य करती रही हैं। सरकारों द्वारा दी जा रही अनेक सुविधाओं सहायता तथा विशेषाधिकारों के फलस्वरूप अब इन जातियों के व्यक्ति विभिन्न सरकारी अथवा गैर सरकारी पदों पर विराजमान होने के साथ-साथ वाणिज्य, व्यापार तथा औद्योगिक कार्यों में भी सहभागिता कर रहे हैं। रोहतक जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में निवसित अनुसूचित जातियों की व्यवसायिक संरचना की वास्तविक स्थिति को तालिका 3.0 में दर्शाया गया है। यहां उत्तरदाताओं के सभी कार्यों को प्रमुख छ: गतिविधियों में समायोजित किया गया है।

तालिका- 3.0

क.सं.	उत्तरदाताओं की व्यवसायिक स्थिति			
	व्यवसायिक संरचना	स्त्री उत्तरदाता	पुरूष उत्तरदाता	कुल उत्तरदाता
1	बेरोजगार	66(68.05)	09 (19.15)	75(52.08)
2	स्थायी सेवा	00(00)	05(10.64)	05(3.47)
3	अस्थायी सेवा	08(8.25)	7(14.89)	15(10.43)
4	कृषि कार्य	07(7.21)	2(4.26)	09(6.25)
5	अकृषि कार्य	05(5.15)	5(10.64)	10(6.94)
6	दैनिक श्रमिक	09(9.28)	16(34.04)	25(17.36)
7	अन्य कार्य	02(2.06)	3(6.38)	05(3.47)
	योग	97(100)	47(100)	144(100)

स्रोत-गणना संग्रहित प्राथमिक समंकों पर आधारित है। कोष्ठक में प्रतिषत मात्रा दर्शायी गई है।

तालिका के विश्लेषणानुसार अध्ययन क्षेत्र में आधे से अधिक उत्तरदाता बेरोजगार तथा लगभग 47 प्रतिशत उत्तरदाता किसी न किसी कार्य में अवश्य संलग्न थे। कार्यरत उतरदात्ताओं में से सर्वाधिक 17.36 प्रतिशत उत्तरदाता दैनिक श्रमिक कार्यों तथा 10.43 प्रतिशत उत्तरदाता अस्थायी सेवाओं से जुडे हुए थे। कृषि तथा अकृषि कार्यों में लगभग एक समान उत्तरदाता कार्यरत थे। स्त्री तथा पुरूष उत्तरदाताओं की तुलना से स्पष्ट होता है कि जहां दो तिहाई स्त्रीयां बेरोजगार थी वहीं तीन चौथाई से भी अधिक पुरूष किसी न किसी प्रकार का कार्य अवश्य कर रहे थे। कार्यरत स्त्रियों में से अधिकतर प्राईवेट स्कूल, गांव तथा आंगनवाडियों में सफाई का कार्य करती थी या फिर दिहाडी करती थी। अन्य कार्यों में रेहड़ीवाले, छोटी दुकान वाले, गली मोहल्ले में फेरी लगाने वाले उत्तरदाताओं को शामिल किया गया है। इन कार्यों में पुरूष उत्तरदाताओं की सख्या अधिक थी।

पारिवारिक निर्णयों में सहभागिता

भारतीय समाज में परिवार एक महत्वपूर्ण किन्तु सबसे सूक्ष्म इकाई होती है। माता पिता, पति पत्नी तथा बच्चे संयुक्त रूप से एक परिवार की संरचना करते हैं। परिवार के सुचारू संचालन के लिए सभी सदस्यों की सहभागिता की आशा की जाती है। इसी संदर्भ में एकत्रित आंकडें निम्न तालिका में दिए गए हैं।

तालिका-4.0

क.सं.	पारिवारिक निर्णयों मे सहभागिता			
		स्त्री उत्तरदाता	पुरूष उत्तरदाता	कुल उत्तरदाता
1	हॉ	03 (3.10)	09 (19.15)	12(8.34)
2	नहीं	88 (90.72)	25(53.19)	113(78.47)
3	कभी–कभी	06(6.18)	13(27.66)	19(13.19)
4	योग	97(100)	47(100)	144(100)

स्रोत– गणना संग्रहित प्राथमिक समंकों पर आधारित है। कोष्ठक में प्रतिशत मात्रा दर्शायी गई है।

तालिका के विश्लेषणानुसार अध्ययन क्षेत्र में 78.47 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना था कि पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की किसी प्रकार की सहभागिता नहीं होती है। केवल 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ही बताया कि घर की स्त्रीयों की घरेलू मामलों में सलाह लेते हैं। लगभग 13 प्रतिशत उत्तरदाता घरेलू मामलों में स्त्रीयों की सलाह कभी कभी ही लेते थे। 90 प्रतिशत से अधिक स्त्री उत्तरदाताओं का मानना था घर के पुरूष घरेलू मामलों में उन्हें कभी भी नहीं पूछते हैं। दूसरी तरफ लगभग 47 प्रतिशत पुरूषों के अनुसार वे घरेलू मामलों में स्त्रीयों की सलाह लेते रहते हैं।

समाजिक- आर्थिक कार्यों में सहभागिता -

भारतीय समाज अब पूर्व की भान्ति पूर्णत: पुरूष प्रधान नहीं रहा है। अब स्त्रियां प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कार्यों में पुरुषों के समान ही सहभागिता कर रही हैं। अब ये घर की चारदीवारी में रहकर बच्चों को जन्म देने वाली माताएं मात्र नहीं रही हैं बल्कि उच्च शिक्षा ग्रहण कर विभिन्न पदों पर नियुक्त होकर समाज की सम्मानित सदस्य होनें के साथ-साथ देश के आर्थिक विकास में भी महत्त्वपूर्ण सहयोग दे रही हैं। इसी के दृष्टिगत अध्ययन क्षेत्र में सामाजिक-आर्थिक कार्यों में स्त्रियों की सहभागिता की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए प्राथमिक सूचनाओं के संकलन का प्रयास किया गया है।

तालिका- 5.0

क. सं.	समाजिक– आर्थिक कार्यों में सहभागिता			
	सहभागिता पर स्थिति	स्त्री उत्तरदाता	पुरूष उत्तरदाता	कुल उत्तरदाता
1	हॉ	00 (0.00)	02 (04.26)	02(1.39)
2	नहीं	79 (81.44)	45(95.74)	124(86.11)
3	पता नहीं	18(18.56)	00(0.00)	18(12.50)
4	योग	97(100)	47(100)	144(100)

स्रोत– गणना संग्रहित प्राथमिक समंकों पर आधारित है। कोष्ठक में प्रतिशत मात्रा दर्शायी गई है।

तालिका के विश्लेषणानुसार अध्ययन क्षेत्र की लगभग 86 प्रतिशत स्त्री उत्तरदाताओं का मानना था कि समाजिक- आर्थिक कार्यों में उनकी किसी प्रकार की कोई भी भूमिका नहीं होती है। आश्चर्यचकित करने वाला तथ्य तो यह है कि 18 प्रतिशत से अधिक स्त्रीयों को तो ये भी नहीं पता था कि समाजिक- आर्थिक कार्य होते क्या हैं। अधिकांश पुरूषों ने भी माना कि इन जातियों की महिलाओं को ऐसे कार्यों में शामिल नहीं किया जाता है क्योंकि सभी समाजिक- आर्थिक कार्यों की जिम्मेदारी पुरूषों की ही होती हैं।

बच्चों के जन्म पर नियन्त्रण

तालिका- 6.0

क. सं.	बच्चों के जन्म पर नियन्त्रण			
	बच्चों पर नियन्त्रण की स्थिति	स्त्री उत्तरदाता	पुरूष उत्तरदाता	कुल उत्तरदाता
1	हॉं	05 (5.15)	08 (17.02)	13(9.02)
2	नहीं	85 (87.63)	29(61.70)	114(79.17)
3	पता नहीं	07 (7.22)	10(21.28)	17(11.81)
4	योग	97(100)	47(100)	144(100)

स्रोत- गणना संग्रहित प्राथमिक समंकों पर आधारित है। कोष्ठक में प्रतिशत मात्रा दर्शायी गई है।

वैसे तो बच्चे के जन्म का समय तथा संख्या पर पूर्ण नियन्त्रण माता पिता का ही होता है। किन्तु ग्रामीण क्षेत्र की अनुसुचित जातियों की महिलाओं के अनुसार बच्चे के जन्म का समय तथा संख्या पर उनका पूर्ण नियन्त्रण नहीं होते है।

संकलित सूचनाओं के विश्लेषणार्थ ग्रामीण क्षेत्र के अधिकांश उत्तरदाता इससे सहमत थे कि बच्चों के जन्म पर उनका नियन्त्रण नहीं है। कम से कम तब तक तो नहीं जब तक घर में दो या तीन पुत्रों का जन्म न हो जाएं। इस मामले में अधिकांश स्त्रीयां अपने पतियों और घर के बुजुर्गो पर ही निर्भर थी।

लड़के एवं लड़की में सामाजिक भेदभाव -

भारतीय समाज; विशेषकर उत्तरी भारत में पुरूष प्रधान समाज माना जाता है। लड़कियों के प्रति भेदभाव हमारे पारम्परिक सामाजिक ढांचे, सांस्कृतिक मान्यताओं तथा धार्मिक मूल्य प्रणाली में अन्तर्निहित है। लड़कियां हमेशा से ही अनिच्छुक सन्तान मानी जाती रही हैं और यही कारण है कि इनके जन्म पर खुशी नहीं होती है। यहां लड़कियों को बोझ समझते हुए इनके लालन-पालन, आहार, चिकित्सा, वस्त्र तथा शिक्षा पर कम खर्च किया जाता है। कमलेश (2009) ने सामाजिक-मानसिक तथा नैतिक भेदभाव की ओर संकेत करते हुए कहा है कि यहां लड़कियां सदैव वंचित, उपेक्षित तथा अल्पपोषित रहती हैं। उनके द्वारा अत्याधिक कार्य किए जाने पर भी उनके प्रोत्साहन, शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर काफी कम ध्यान दिया जाता है।

तालिका - 7.0

क.सं.	लड़के एवं लड़की में सामाजिक भेदभाव			
	लड़के एवं लड़की में समानता	स्त्री उत्तरदाता	पुरूष उत्तरदाता	कुल उत्तरदाता
1	हॉं	00 (0.00)	18 (38.30)	18(12.50)
2	नहीं	85 (87.63)	29(61.70)	114(79.17)
3	पता नहीं	12(12.37)	00(0.00)	12(8.33)
4	योग	97(100)	47(100)	144(100)

स्रोत- गणना संग्रहित प्राथमिक समंकों पर आधारित है। कोष्ठक में प्रतिशत मात्रा दर्शायी गई है।

तालिका के अनुसार चयनित उत्तरदाताओं में से लगभग 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना था कि लड़के व लड़की का सामाजिक स्तर कभी भी एक समान नहीं हो सकता है। इन सभी का मानना था कि लड़का अपने पूर्वजों की परम्परा को आगे बढ़ाने वाला, माता-पिता के बुढ़ापे का सहारा तथा समाज में सम्मान दिलाने वाला होता है जबकि लड़की कमजोर, असुरक्षित तथा पराया धन होती है। लड़की विवाह के पश्चात् अपने पति के साथ चली जाती है जबकि लड़का शादी के बाद भी माता-पिता, सगे-सम्बन्धियों तथा मित्रों से जुड़ा रहता है और समस्त पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों को पूर्ण करता है। इसके विपरीत क्षेत्र के केवल 12.50 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते थे कि अब समय एवं परिस्थितियां परिवर्तित हो रही हैं और अब लड़कियाँ भी लड़कों की भान्ति सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रही हैं और वे सामाजिक एवं पारिवारिक जिम्मेदारी निभाने के योग्य हो रही हैं। इनका एक तर्क यह भी था कि वर्तमान में लड़कियां लड़कों की अपेक्षा माता-पिता के ज्यादा करीब हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 88 प्रतिशत स्त्रीओं ने माना कि न तो अभी तक समाज ने लड़की को लड़के के समान माना है और न ही निकट भविष्य में कोई ऐसी सम्भावना ही दिखाई देती है।

परिवार में लड़के का महत्त्व -

आरम्भ से ही भारतीय समाज में लड़के को प्राथमिकता दी जाती रही है। यहाँ लड़के को केवल माता-पिता को मुखाग्नि देने वाला ही नहीं अपितु वृद्धावस्था में सामाजिक, मानसिक तथा आर्थिक रूप से सहारा देने वाला भी माना जाता है। परिवार में लड़के के महत्त्व को इसी से समझा जा सकता है कि यदि किसी परिवार में लड़का नहीं होता है तो वह परिवार सामाजिक दया का पात्र बन कर रह जाता है और लोग उसे बेचारा, पुत्रहीन, बेसहारा आदि अनेक सम्बोधनों से सम्बोधित करते हैं। इन्हीं कारणों से प्रत्येक माता-पिता की यह हार्दिक इच्छा होती है कि उनके घर में भी कम से कम एक पुत्र अवश्य होना चाहिए।

तालिका - 8.0

क.सं.	परिवार में लड़के का महत्त्व पर उत्तरदाताओं के विचार			
	परिवार में लडके का महत्त्व	स्त्री उत्तरदाता	पुरूष उत्तरदाता	कुल उत्तरदाता
1	हाँ	97 (100)	47(100)	144(100)
2	नहीं	00 (00)	00	00
3	पता नहीं	00 (00)	00	00
4	योग	97 (100)	47(100)	97(100)

स्रोत- गणना संग्रहित प्राथमिक समंकों पर आधारित है। कोष्ठक में प्रतिशत मात्रा दर्शायी गई है।

तालिका में दर्शाए परिणामों से स्पष्ट होता है कि आधुनिक युग में भी अनुसूचित जातियों के सभी स्त्री एवं पुरूष उत्तरदाताओं का मानना था कि परिवार में लड़के के जन्म को आवश्यक माना जाता है। अधिकांश स्त्री उत्तरदाताओं का मानना था कि लड़के के जन्म के बिना न तो उनका परिवार पूरा होता है और न ही उनका कर्त्तव्य। लड़के के जन्म के बिना वे स्वयं को अधूरा मानती हैं। अधिकांश का कहना था कि परिवार में कम से कम एक लड़का अवश्य होना चाहिए। परिवार में लड़के के होने से समाज में प्रतिष्ठा, सुरक्षा एवं प्रभाव बढ़ता है। पुत्र के बिना अथवा अकेली पुत्रियों वाले माता-पिता सामाजिक दया का पात्र बन जाते हैं और अनेक अवसरों पर समाज द्वारा उन्हें अनदेखा किया जाता है।

निष्कर्ष-

पुरुषों की जीवनदायिनी मां भी एक महिला होती है। किन्तु पुरुष प्राचीन काल से ही इनके साथ भिन्न- भिन्न तरीकों से भेदभाव करता रहा है और यह कार्य अभी भी जारी है। प्रस्तुत शोध पत्र के निष्कर्ष से इस कथन को बल प्राप्त होता है। हरियाणा जैसे राज्य

में भी महिलाओं के साथ सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा स्वास्थ्य आदि सभी स्तरों पर भेदभाव किया जाता है। दयनीय एवं तंगहालीपूर्ण जीवनयापन के लिए विवश तथा सामाजिक-आर्थिक एवं शिक्षा सूच्याकार स्तम्भ के निम्नतम् पायदान पर विराजमान अनुसूचित जातियों की महिलाओं के एक सार्थक भाग की स्थिति और भी चिंतनीय है। यही कारण है कि यहां कि एक तिहाई महिलाएं निरक्षर हैं और शेष में से मात्र एक चौथाई ही मैट्रिक स्तर तक शिक्षा ग्रहण कर पायी हैं। पारिवारिक निर्णयों, सामाजिक आर्थिक सहभागिता तथा बच्चों के जन्म का समय एवं संख्या पर इन महिलाओं का नियन्त्रण न होने से स्पष्ट होता है कि इनका सामाजिक स्तर भी अच्छा नहीं कहा जा सकता है। इन्हें आज भी वंशबेल को बढ़ाने, बच्चों का लालन पालन करने तथा घरेलू कार्य करने का साधन मात्र ही माना जाता है। आज भी लड़की के जन्म पर किसी को खुशी नहीं होती बल्कि दुख प्रकट किया जाता है। इसके विपरीत लड़के के जन्म को भगवान का आर्शीवाद माना जाता है और उसे उत्सव के रूप में मनाया जाता है। यही कारण है कि सभी महिलाएं लड़के के जन्म के बिना स्वयं को अधूरा मानती हैं और उनका मानना है कि परिवार में कम से कम एक लड़का आवश्य होना चाहिए। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अधिकाश महिलाएं भेदभावग्रस्त हैं। पुरुषों में महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता जैसी कोई बात नहीं पायी गई। बार-बाार के गर्भाधान तथा अधिक शिशु जन्मता से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को नियन्त्रित करने के लिए महिलाओं को अपने स्तर पर ही समाधान करना होता है। अतः निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि महिलाओं के साथ भेदभाव उनके जन्म से पूर्व ही आरम्भ हो जाते हैं और उनके मरणोपरान्त ही समाप्त हो पाते हैं।

संदर्भ सूची

- इप्सटीन, टी.एस. (1962), ईकनॉमिक डिवेलप्मेन्ट एण्ड सोशल चौंज इन साउथ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस, मुम्बई
- खान, मुमताज अली (1980), शेड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड देयर स्टेट्स इन इण्डिया, उप्पल पब्लिशिंग हाऊस, न्यू देहली।
- कुन्दरा एण्ड बावा (1982)ए सवान हिस्टरी ऑफ इण्डिया अपटू 1526, नीलम पब्लिशर्स,जलन्धर,
- कंवर, एम. आर. (1985), शेड्यूल्ड कास्टः सोश्यो-ईकनॉमिक सर्वे, किताब महल, न्यू देहली।
- शास्त्री सोहनलाल (1993), हिन्दू धर्माचार्य के द्वारा प्रस्तावित हिन्दू राष्ट्र के संविधान के कुछ लक्षण, बुनियादी संघर्ष, जून, पृ. 10
- चोपड़ा, विपला (1997), ईकनॉमिक डिवेलप्मेंट ऑफ शेड्यूल्ड कास्ट्स इन पंजाब, इन वी. एस. महाजन एण्ड बी. एस. मान (एडी) ईकनॉमिक डिवेलप्मेंट ऑफ शेड्यूल्ड कास्ट्स, अनमोल पब्लिकेशंस, न्यू देहली।
- इन्टरनशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ पॉपुलेशन साईसीज (2000), नैशनल फैमली हैल्थ सर्वे (1998-1999) मुम्बईः इण्टरनेशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ पॉपुलेशन साईसीज।
- ऑफिस ऑफ द रजिस्ट्रार जनरल एण्ड सेन्सस कमिशनर (2001), टोटल पॉपुलेशन, पॉपुलेशन ऑफ शेड्यूल्ड कास्ट एण्ड शेड्यूल्ड ट्राइब्स एण्ड देयर प्रोपोर्सन टू द टोटल पॉपुलेशन, न्यू दिल्ली।
- सुनील कुमार(2010), जाति व्यवस्था-निरन्तरता एवं परिवर्तन, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, पृ. 5

प्राकृत भाषा और परवर्ती अपभ्रंशः एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० दुधनाथ चौधरी

विभागाध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, भोजपुर, बिहार - 802301

अपभ्रंश शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम व्याकरण पतंजली (150 ई०वी०) ने महाभाष्य में किया था। उस शब्द का प्रयोग करने का उद्देश्य संस्कृत के एक शब्द के प्रचलित कई प्रकार के रूपान्तरों को बताना ही था। जैसे- गौं शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि विविध रूप हैं यह विविधता ही उनकी दृष्टि में अपभ्रंश थी। परन्तु भामह और दण्डी (छठी शती) के समय तक अपभ्रंश साहित्यिक भाषा बन गयी थी और इसमें काव्य रचना भी होने लगी थी। इसका तात्पर्य यह है कि अपभ्रंश पंतजली के समय से भामह तक लोक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी और उसमें साहित्य रचना होने लगी थी। इसका अभिप्राय यह है कि अपभ्रंश पतंजली के समय से भामह तक लोक-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी और उसमें साहित्य रचना होने लग गयी थी। यह एक भाषा वैज्ञानिक तथ्य है कि लोक भाषा ही साहित्यिक भाषा के लिए आधार बनती है। लोक भाषा अपने परिवर्तनशीलता के नियम को नहीं छोड़ती। वह कभी प्राकृत हो जाती है और कभी अपभ्रंश तथा कभी कोई अन्य भाषा। इस सम्बन्ध में भाषा विशेषज्ञ डॉ० नामवर सिंह लिखते हैं कि प्रत्येक युग में साहित्यारूढ़ भाषा के समानान्तर कोई न कोई देशी भाषा (लोकभाषा) अवश्य रही है और यही देशी भाषा उस साहित्यिक भाषा को नया जीवन प्रदान कर हमेशा विकसित करती हुई आगे बढ़ती जाती है।

यहाँ यह बतना आवश्यक है कि अपभ्रंश का विकास प्राकृत काल की लोक भाषा से हुआ और यह भाषा साहित्यारूढ़ होकर 1000 ई० तक काव्य रचना का माध्यम रही। बाद में भी इसी भाषा में काव्य रचना होती रही। किन्तु प्राकृत वैयाकरण-हेमचन्द्र (12वीं शती) के समय तक साहित्य में अपभ्रंश का एक रूप स्थिर व परिनिष्ठित हो चुका था। अपभ्रंश के परवर्ती कवियों ने अपभ्रंश व्याकरण को सामने रखकर ही साहित्य निर्माण किया। ऐसे प्रयत्न हेमचन्द्र के तीन सौ वर्ष बाद तक होते रहे। इधर परिनिष्ठित अपभ्रंश में काव्य लिखे जा रहे थे और उधर लोक भाषा परिवर्तनशीलता के आधार पर नई रूप ग्रहण कर रही थी। इसके आलोक में डॉङ्क नामवर बताते हैं कि- हेमचन्द्र के बाद अपभ्रंश काव्य की एक और भी धारा प्रवाहित हुई जिसमें परिनिष्ठित अपभ्रंश के नियमों का कड़ाई से पालन करने की अपेक्षा लोक प्रचलित भाषा का उपयोग होता था। इस मिश्रित भाषा में रचित ग्रंथ काव्य की दृष्टि से तो उत्कृष्ट है ही आधुनिक देशी भाषाओं के आरंभिक रूप में अध्ययन की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। भारतीय आर्य भाषा के इतिहास अथवा विकास की दृष्टि से परवर्ती अपभ्रंश का यह देश्यमिश्रित साहित्य विशेष महत्व का है और सच्चे अर्थो में परवर्ती अपभ्रंश का काल माना जाता है। कुछेक परवर्ती अपभ्रंश की रचनाएँ इस प्रकार है-

1. प्राकृति पैंगलम् (12वीं से 15वीं शताब्दी)
2. सिरिचूलिभद्र-फागु- (14वीं शताब्दी)
3. नेमिनाथ चउपई - (13वीं शताब्दी)
4. उक्तिव्यक्ति प्रकरण (12वीं शताब्दी)
5. कीर्तिलता (14वीं शताब्दी)
6. पृथ्वीराजरासो (12वीं शताब्दी)
7. विद्यापति पदावली (14वीं शताब्दी)

1. प्राकृति पैंगलम्:- यह छन्द शास्त्र का एक संग्रह ग्रंथ हैं। इसमें प्राकृत अपभ्रंश तथा परवर्ती अपभ्रंश के छन्दों का संग्रह हुआ है। ग्रंथ का नाम प्राकृत पैंगलम है किन्तु अधिकांश भाग में परवर्ती अपभ्रंश की रचनाएँ दी गई है। इस ग्रंथ के संग्राहक के सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार का संग्रह संभवत: 14वीं शताब्दी में तैयार हुआ होगा। इसमें व्यवहार विद्याधर, जज्जल, हरब्रिहल और कई अज्ञात कवियों की रचनाओं का संग्रह हैं। प्राकृत पैंगलम में अनेक विषयों से सम्बन्धित पद्य मिलती है। वीरता श्रृंगार-संयोगश्रृंगार तथा वियोगश्रृंगार राजस्तुति नीति भक्ति देवस्तुति, प्रकृति चित्रण, सुखी जीवन, दु:खी जीवन नि:सारता, क्षणभंगुरता, सेना प्रयाण, युद्ध वर्णन, कीर्ति प्रशसा, वीर क्षत्राणी का ओजस्वी चित्र, सामन्ती समाज का चित्रण इत्यादि विषय भिन्न-भिन्न पद्यों में चित्रित है।

2. सिरिचूलिभद्र-फागु- (श्रीचूलिभद्र-फागु):- यह रचना गुजरात के जैन आचार्य जिन पद्म सूरी की है। यह 27 पद्यों में रचित एक लघु काव्य हैं इस सरस काव्य में मुनि स्थूलिभद्र (थूलिभद्र) की चारित्रिक दृढ़ता की कहानी वर्णित हैं। काम पर विजय का एक सुंदर चित्रण इसमें हुआ है। काव्य में दोहा और रोला छंद का प्रयोग किया गया हैं। भाषा में गुजराती का प्रभाव स्वाभाविक है और सरलीकरण प्रवृति हैं। तत्सम शब्दों के प्रयोग काव्य में मिलते है।

3. नेमिनाथ चउपई - यह गुजरात के विनयचन्द्र सूरि द्वारा 40 पद्यों में रचित एक छोटी रचना है जिसमें राजुल के विरह का वर्णन है। राजुल का विवाह नेमिनाथ से होने जा रहा था, किन्तु वहाँ मांस-भोजन की निमित मारे जाने वाले पशुओं की चीत्कार सुनकर नेमिनाथ को वैराग्य हो गया। राजुल विरह में जलने लगी। ''कवि ने बारहमासे के माध्यम से उसके विरह का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। बारहमासे के माध्यम से विरह वर्णन की परम्परा सर्वप्रथम यही परिलक्षित होती है, जिसका अच्छा विकास 'बीसलदेवरासो' और जायसी के 'पद्मावत' में दिखाई पड़ता हैं 'नेमिनाथ चउपई' का बारहमासा वर्णन 'श्रावण' से शुरू होता है'' काव्य में चौपाई छन्द का प्रयोग हुआ है।

4. उक्तिव्यक्ति प्रकरण- काशी के दामोदर पण्डित द्वारा रचित उक्ति व्यक्ति प्रकरण मध्यदेशीय अपभ्रंश की एकमात्र उपलब्ध कृति है। इसमें पश्चिमी और पूर्वी अपभ्रंश के बीच मध्यदेश की अपभ्रंश के स्वरूप का ज्ञान होता है। पाँच प्रकरणों में गुम्फित यह एक व्याकरण ग्रन्थ है। उक्ति का अर्थ है- 'सामान्य जन की भाषा'। मुनि जिनविजयजी ने लिखा है- ''उक्ति शब्द का अर्थ है लोकोक्ति अर्थात् लोक-व्यवहार में प्रयुक्त भाषा-पद्धति जिसे हम हिन्दी में बोली कह सकते है। लोकभाषात्मक उक्ति की जो व्यक्ति अर्थात् व्यक्तता स्पष्टीकरण करे- वह है उक्ति व्यक्ति शास्त्र। मध्यदेश का आधुनिक प्रतिनिधि उत्तरप्रदेश के डॉक्ट्ट वर्मा के अनुसार इसमें पाँच प्रधान महाजन पदों का संघ मिला हुआ है, वे ये हैं- कुरु जनपद (खड़ी बोली प्रदेश), पांचाल जनपद (कन्नौजी प्रदेश), शूरसेन जनपद (ब्रजभाषा प्रदेश), कौशल जनपद (अवधि प्रदेश) तथा काशी जनपद (भोजपुरी प्रदेश)।

खड़ी बोली प्रदेश:- खड़ी बोली का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है तथा इसका क्षेत्र देहरादून का मैदानी भाग सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, दिल्ली का कुछ भाग, बिजनौर, रामपुर तथा मुरादाबाद है।

कन्नौजी प्रदेश:- कन्नौजी इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर, हरदोई, पीली भीत आदि में बोली जाती है। यह भी शौरसेनी अपभ्रंश से ही निकली है।

ब्रजभाषा प्रदेश:- ब्रजभाषा आगरा, मथुरा, अलीगढ़, धौलपुर, मैनपुरी, एटा, बदायूँ, बरेली तथा आसपास के क्षेत्र में बोली जाती हैं इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है।

अवधी प्रदेश:- अवधी का क्षेत्र लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, मिर्जापुर, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी आदि हैं। अधिकांश विद्वान इस भाषा का संबंध अर्धगामधी अपभ्रंश से मानते हैं।

भोजपुरी प्रदेश:- इस बोली का क्षेत्र बनारस, जौनपुर, मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़ बस्ती, शाहाबाद, चम्पारन, चारन तथा आसपास का कुछ क्षेत्र है। इसका विकास मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है।

5. कीर्तिलता:- विद्यापति रचित कीर्तिलता में आश्रयदाता कीर्तिसिंह का यश का गान किया गया हैं बिहार के दरभंगा जिला अन्तर्गत विसपी ग्राम में विद्यापति का जन्म हुआ था। महाराज कीर्तिसिंह की दानशीलता, वीरता तथा राजनैतिक कुशलता का वर्णन इस काव्य में मिलता है। यह रचना चार पल्लवों में लिखी गई हैं विद्यापति कहते है कि देशीवचन सबको मीठे लगते है। अत: अवहट्ठ

(अपभ्रंश) में रचना करता हूँ। इस कथा का प्रारंभ कीर्तिसिंह के वंश और पराक्रम के वर्णन से होती है। कीर्तिसिंह के पिता राजा गणेश्वर को नवाब असलान ने छल से मार दिया था। कीर्तिसिंह ने अपने पिता की बदला लेने की भावना से असलान के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। इस युद्ध में कीर्तिसिंह विजयी हुए। इसके पश्चात् उनका राज्याभिषेक हुआ। आशीर्वाद तथा मंगलकामना के साथ काव्य समाप्त होता है। विद्यापति ने जौनपुर नगर का वर्णन बड़े ही सजीव ढंग से किया हैं। कीर्तिलता में प्रेरणादायी कथन भी प्राप्त होते हैं उसमें पुरुषों की व्याख्या बड़े ही व्यंगात्मक दृष्टिकोण से किया है- इसमें कहा गया है कि जन्म मात्र से कोई पुरुष नहीं होता। पुरुष वही है, जिसका मान हो, जिसमें धनोपार्जन की शक्ति हो। जो धर्म परायण हो, आपत्ति-विपति में ही हीन-दीन वचन न बोलने वाला है। कीर्तिलता की भाषा परवर्ती अपभ्रंश है। इसमें मैथिली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। अरबी-फारसी के शब्दों में तत्सम-तद्भव व देशज शब्दों का प्रयोग भी इसमें मिलता है। काव्य में स्थान-स्थान पर गद्य का प्रयोग भी देखा जा सकता है। इस दृष्टि से चम्पू काव्य भी कहा जाता है। इस काव्य में मात्रिक वर्णिक दोनों प्रकार छंदों का प्रयोग हुआ है।

6. पृथ्वीराजरासो:- चन्दबरदाई द्वारा रचित ''पृथ्वी राजरासो'' परवर्ती अपभ्रंश का उत्कृष्ट काव्य हैं। यह राजस्थान का महत्वपूर्ण तथा लोकप्रिय काव्य रहा है। इस काव्य को डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृथ्वी राजरासो का प्रेम काव्य ही मानते हैं। रास-साहित्य की परम्परा अपभ्रंश काल से लेकर 18वीं 19वीं शताब्दी तक चलती रही। इस श्रृंखला में कुछ महत्वपूर्ण रसों ग्रन्थ इस प्रकार हैं शालिभद्सूरि का भरतेश्वर-बाहुबलिराम (12वीं शती) 203 पद्यों में निर्मित हैं। आसुग कवि की दो रचनाएँ हैं। जीवदयारास तथा चन्दनबालारास (12वीं शती) धर्मसूरि का जम्बूस्वामी रास, देल्हणि का गयसुकुमारल रास (13वीं शती) नरपति नाल्ह का बीसलदेवरास (14वीं शती) जल्ह कवि का बुद्धिराम (14वी शती) आदि अनेको रासों ग्रंथ प्राप्त होते हैं। इन सबमें 'पृथ्वीराजरासो' उत्कृष्ट काव्य है। इसमें चन्दबरदाई ने अपने आश्रयदाता पृथ्वीराज चौहान के शौर्य श्रृंगार तथा प्रेम की कथा वर्णित है। रासों के तीन विवाह प्रसंगों इंछिनी का, शशिव्रता का और संयोगिता का में से विद्वानों की दृष्टि में शशिव्रता विवाह प्रसंग काव्यात्मक दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का उत्कृष्ट प्रसंग है। श्रृगार और वीर रस इस काव्य में प्रधान है। वैसे श्रृंगार रस रसों का राजा माना गया है। परन्तु भवभूति ने करुण रस को यह स्थान प्रदान किया है।

करूण रस का चित्रण चन्दवरदाई बड़ी मार्मिकता से करते हैं। क्या विडम्बना है कि जिस पृथ्वीराज ने मोहम्मद गौरी को कई बार परास्त कर छोड़ दिया था और उसे एक बार भी छोड़ने के मौका गौरी ने नहीं दिया। वह गजनी के लोहे के शिकंजों में बन्द है वह भी अन्धा बना कर। पिछलें दिनों के सुख और वैभव की याद में दु:ख की काली छाया और गहरी हो जाती है। आज वह अपने सूरसामंतों, परिवार और देश से दूर है। घोड़ों हाथियों और भण्डारों का राजा दीन हो गया हैं। प्राण से प्यारी संयोगिता, सुन्दरियों से चित्रित चित्रसारी नही है और विरुद्ध अर्थात् बढ़-चढ़ कर बखान करने वाला कवि चन्द्र भी उससे लाखों मील दूर हैं। आज दान देने के लिए हाथ में फूटी कौड़ी तक उसके पास नहीं रहा। इस संदर्भ में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते है कि वस्तुत: मूल पृथ्वी राज रासों शौरसेनी अपभ्रंश में लिखा गया था जो परिनिष्ठित साहित्यिक अपभ्रंश से थोड़ी भिन्न और आगे बढ़ी हुई थी। मुनि जिन विजय जी इसकी भाषा को अपभ्रंश ही मानते हैं। रासो की भाषा में तत्सम तद्भव, देशज तथा विदेशज सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है। रासों में अलंकारों का स्वाभाविक और सुन्दर प्रयोग मिलता है। शब्दालंकारों में- अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा वक्रोक्ति और अर्थालंकारो में - उपमा उत्प्रेक्षारूपक आदि कवि के प्रिय अलंकार हैं। इसमें बहुत प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ हैं। इसमें कुल 72 प्रकार के छन्द मिलते हैं। इन्हें छप्पय छन्द का राजा कहा गया है।

7. विद्यापति पदावली:- विद्यापति द्वारा समय-समय पर गाए जाने वाले पदों का संग्रह ही विद्यापति पदावली कहे जाते हैं। मिथिला में तो ये घर-घर में गाये जाते है। इन पदों को भिन्न-भिन्न भागों में रखा जा सकता है। कुछ पद प्रकृति सम्बन्धी है तो कुछ पद स्तुतिपरक है परन्तु अधिकांश पद राधाकृष्ण के प्रेम संबंधी है। विद्यापति के गीतों की विशेषता है- लोकाभिमुखता यों लोक जीवन से जुड़े हुए गीत ही है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का उदय- पिछले पृष्ठ में अपभ्रंश भाषा और साहित्य का जो विवेचन प्रस्तुत किया गया हैं उसमें ज्ञात होगा कि साहित्य के क्षेत्र में 6ठीं शती से 14वीं शती तक अपभ्रंश के दो रूप हमारे सामने उपस्थित होते हैं पहला रूप स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल, कनकामर, सरहपा, कण्हपा आदि कवियों की रचनाओं में मिलता है और दूसरा रूप अब्दुल रहमान विद्यापति, चन्दबरदाई, दामोदर पण्डित आदि की रचनाओं में देख जा सकता हैं। इस तरह से साहित्य के क्षेत्र में क्रमश: परिनिष्ठित अपभ्रंश

और परवर्ती अपभ्रंश की रचनाएँ प्राप्त होती है। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि परवर्ती अपभ्रंश के मूल में परिनिष्ठित अपभ्रंश ही हैं पारिनिष्ठ अपभ्रंश का जब लौकिक भावो के साथ मिश्रण हुआ तो वह परवर्ती अपभ्रंश बन गई। परवर्ती अपभ्रंश का साहित्य पश्चिम पूर्व और मध्यदेश में प्राप्त होता है। देश-भेद से लोक-भाषाओं में भेद होता ही है।

डॉ० नामवर सिंह का कथन है- ''अपभ्रंश में आधुनिक देशी बोलियों का जितना प्रगाढ़ मिश्रण पूर्वी प्रदेशों में दिखाई पड़ता है, उतना पश्चिमी में नहीं। पश्चिख्मी प्रदेशों की साहित्यिक भाषा बहुत दिनों तक परिनिष्ठित अपभ्रंश से प्रभावित रही किन्तु पूर्व के लिए वह शुरू से ही मात्र साहित्यिक भाषा होने के कारण स्थानीय बोली से अलग रही है। फलतः पूरब में देशी बोलियों का उभार बहुत तेजी से हुआ। यह देश-भेद धीरे-धीरे इतना बढ़ा कि तेरहवीं शताब्दी में जाते-जाते अपभ्रंश के सहारे ही पूरब और पश्चिम के देशों ने अपनी बोलियों का स्वतंत्र रूप प्रकट कर दिया। इस तरह से परवर्ती अपभ्रंश नये-नये रूप धारण करती गई और 14वीं शती से नई-नई भाषाओं की सत्ता दिखाई देने लगी। इन आधुनिक भाषाओं का उदय और विकास अपभ्रंश के ही गर्भ में धीरे-धीरे सैकड़ों वर्षो से होता आ रहा था। एक ओर साहित्य अपभ्रंश के रूप में धीरे-धीरे अप्रचलित होते गए और दूसरी ओर ह्रास और नवीन रूपों के विकास की प्रक्रिया से ही आधुनिक भाषाओं का उदय हुआ। आधुनिक भाषाओं के नए-नए रूप निश्चित ही उनकी प्रादेशिक बोलियों से आते रहे हैं।

भारतीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिन्न स्थानीय भेदों से हुआ है। ये भाषाएँ निम्नलिखित हैं -

(क) पूर्वी भाषाएँ:-

1. पूर्वी हिन्दी
2. बिहारी
3. उड़िया
4. बंगला
5. असमिया

(ख) पश्चिमी भाषाएँ:-

1. गुजराती
2. राजस्थानी

(ग) उत्तरी भाषाएँ:-

1. सिंधी
2. लहन्दा
3. पंजाबी

(ख) दक्षिणी भाषा:-

1. मराठी

(ङ) मध्यदेशीय भाषा:- पश्चिमी हिन्दी

इस प्रकार अपभ्रंश भाषा ही हिन्दी और अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास के मूल में है। जहाँ तक हिन्दी भाषा का प्रश्न है यह अपभ्रंश की साक्षात उत्तराधिकारिणी है। अपभ्रंश भाषा और साहित्य की समस्त परम्पराएँ हिन्दी में सुरक्षित है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार शायद ही किसी प्रांतीय साहित्य में ये सारी की सारी विशेषताएँ इतनी मात्रा में सुरक्षित हो। डॉ० शंभुनाथ पाण्डेय लिखते हैं- ''अपभ्रंश और हिन्दी का संबंध अत्यन्त गहरा और समृद्ध है। वे एक दूसरे की पूरक है। हिन्दी के ठीक से समझने के लिए अपभ्रंश की जानकारी आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हे। हिन्दी ही नहीं अन्य नव्य भारतीय आर्यभाषाओं की आधारशिला अपभ्रंश ही है।

संदर्भ-सूची

1. अपभ्रंश एक परिचय - डॉ. कमलचन्द सोगाणी प्रकाशक- अपभ्रंश साहित्य अकादमी जैन विद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीर जी - राजस्थान
2. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, डॉ. नामवर सिंह (पृ. 75), प्रकाशक- लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद
3. हिन्दी साहित्य, उद्‌भव और विकास, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी (पृ. 25)
4. अपभ्रंश और अवहट्ट- एक अन्तर्यात्रा - डॉ. शम्भूनाथ पाण्डेय, चौखम्भा ओरिएण्टालिया, वाराणसी।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नागेन्द्र (पृ. 23, 24, 25) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
6. भारतीय आर्यभाषाओं का इतिहास, श्री जगदीश प्रसाद- कौशिक- (पृ. 161)

जैनधर्म सम्मत सिद्धान्तों की वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता

डॉ० सन्तोष देवी

संस्कृत सहायक प्राध्यापिका चौ० ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय फतेहपुर-पूण्डरी, कैथल (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

आधुनिक युग में राग-द्वेष, हिंसा तथा आतंकवाद आदि समस्याओं के समाधान के लिए जैनधर्म द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अत्यन्त प्रासंगिक हो गए हैं। इन सिद्धान्तों को अपनाकर मानव जीवन की सभी समस्याओं का समाधान कर सकता है तथा इनके परिपालन से वैयक्तिक कल्याण के साथ-साथ समाज में विश्वबन्धुत्व की भावना उत्पन्न कर सुख तथा शाँति का संवाहक बन सकता है।

मुख्य-शब्दः सर्वोदय, समभाव, लोक कल्याण, शीलवान, अपरिग्रह, यथार्थवादी दृष्टिकोण, विश्वबन्धुत्व।

जैनधर्म सहिष्णुता और समभाव का धर्म है। जहाँ समभाव अर्थात् सर्वोदय का भाव होता है वहाँ शाँति होती है। जैनधर्म में समभाव प्रशस्त करने वाले अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु - ये पाँच परमेष्ठी होते हैं, जिनके नाम स्मरण मात्र से अन्तःकरण रूप में सभी प्राणियों के प्रति सर्वोदयी धारा प्रवाहित होने लगती है। हृदय करूणा से ओतप्रोत हो जाता है। तब जीवन में कर्मों का अभाव होकर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच व्रतों का पालन होता है।[1]

जैनधर्म का उपदेश तथा उक्त कथन ही धर्मतीर्थ कहलाता है, जिसे आचार्य समन्भद्र स्वामी ने 'सर्वोदय तीर्थ' की संज्ञा दी है।[2] सबका उदय ही सर्वोदय है, अर्थात् जिसमें सभी प्राणियों को अपनी उन्नति के समान अवसर मिलें तथा प्रत्येक व्यक्ति सर्वोच्च पद प्राप्त कर सबको पूर्ण सुखी और ज्ञानी होने का पूर्ण अधिकार प्राप्त कराता है, वही सर्वोदय सिद्धान्त है। समभाव ही सर्वोदय का मूल आधार है।

संसार में जितने जीव हैं वे सब सुख चाहते हैं और दुःख से डरते हैं।[3] यही कारण है कि जैनधर्म में सभी तीर्थंकरों ने दुःख को दूर करने वाला और सुख को प्रदान करने वाला सदुपदेश ही दिया है।

प्रत्येक धर्म में लोक कल्याण के उद्देश्य से कुछ व्रतों (सिद्धान्तों) के परिपालन पर विशेष बल दिया जाता है। जैनधर्म में पंच महाव्रतों के परिपालन पर विशेष बल दिया गया है और वे हैं - 1. अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय (चोरी न करना) 4. ब्रह्मचर्य 5. अपरिग्रह। इन व्रतों के द्वारा मनुष्य की उन वृत्तियों पर नियंत्रण करने का प्रयत्न किया गया है जो समाज में मुख्य रूप से वैर-विरोध के जनक हैं।

जैनधर्म के सिद्धान्तों में अहिंसा सर्वोपरि सिद्धान्त है। आचार्य अमृतचन्द्र ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'पुरुषार्थसिद्धयुपाय' में अहिंसा की व्याख्या की है कि आत्मा में राग-द्वेष की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और इन भावों का आत्मा में उत्पन्न न होना ही अहिंसा है।[4] राग व द्वेष-इन दोनों की निवृत्ति से हिंसा (असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य व परिग्रह) आदि (पापों) की स्वतः निवृत्ति हो जाती है।[5]

समाज में सुखमय वातावरण बनाने के लिए भावनाओं का विशेष महत्त्व है। जैसा कि आचार्य सोमदेव लिखते हैं कि सब जीवों में परस्पर मैत्री होनी चाहिए। जो गुणों में श्रेष्ठ हो उनमें प्रमोद भाव रखना चाहिए और जो निर्गुण हो, असभ्य और उद्धत हो उनके प्रति माध्यस्थ भाव रखना चाहिए।[6]

व्यसन-मुक्त सामाजिक संरचना में श्रावकाचारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वसुनन्दि-श्रावकाचार में सप्त व्यसनों के विषय में लिखा है कि जुआ, शराब, मांस, वेश्या, शिकार, चोरी और परदार-सेवन-ये सातों व्यसन दुर्गति-गमन के कारणभूत हैं।[7] इन दुर्व्यसनों का त्याग गृहस्थ धर्म की साधना का प्रथम चरण हैं।

महाकवि रइधू ने समस्त व्यसनों का मूल द्यूत-व्यसन को बताया है, वे लिखते हैं कि जुए में हजारों आपत्तियों का निवास रहता है। धन, धर्म, यश तथा मान-प्रतिष्ठा आदि सभी का विनाश द्यूत-व्यसन द्वारा हो जाता है।[8]

जैनधर्म के अनुसार शीलवान अर्थात् पवित्र आचरण वाला व्यक्ति ही जगत् में पूज्यता (सम्मान) को प्राप्त करता है, वह इन्द्र आदि से भी आदरणीय और जगत् के लोगों का एक उत्कृष्ट भूषण होता है। जो सन्तोष अर्थात् धर्म को धारण करता है वह समस्त शीलों या सदाचारों में सिद्ध होता है।[9]

जैनधर्म में व्रतों (सिद्धान्तों) की महता न केवल धार्मिक दृष्टि से ही है अपितु सामाजिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। हिंसा की भावना समाप्त होने से पारस्परिक मैत्रीभावना बढ़ती है। सत्य अणुव्रत के परिपालन से समाज में प्रामाणिकता का वातावरण बनता है, जैसा कि 'सिद्धान्तार्थसार' में लिखा गया है कि सत्यविहीन वाणी, शीलरहित नारी और करुणा से रहित धर्म महापुरुषों द्वारा निन्दनीय माने गए हैं। सत्यवक्ता पुरुष संसार में मेरु के शिखर के समान गौरव प्राप्त करता है, उसकी वाणी में लोग विश्वास करते हैं।[10]

जैनधर्म के पंचव्रतों के परिपालन में अपरिग्रह का विशेष स्थान है। अपरिग्रह व्रत के पालन से समाज में समता का वातावरण बनता है। आवश्कता से अधिक बढ़ती हुई वस्तुओं के संग्रह की मनोवृत्ति के कारण सामाजिक असंतुलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। "परिसमन्तात् मोहबुद्धया गृह्यते स परिग्रह:" अर्थात् मोह (ममत्व) बुद्धि के द्वारा जो पदार्थादि चारों ओर से ग्रहण किया जाए वह परिग्रह है। चैतन्य आत्मतत्त्व को छोड़कर जिन-जिन पदार्थों का संयोग आत्मा के साथ है वे सभी पदार्थ परिग्रह हैं। जहाँ मोह-मूर्च्छाभाव है - वही परिग्रह है।[11] परिग्रह के निषेध सूचक शब्दों को अपरिग्रह कहते हैं।

जैनधर्म के अनुसार जो मनुष्य चेतन या अचेतन पदार्थों में तनिक भी परिग्रह का अनुमोदन करता है वह दु:ख से मुक्त नहीं हो सकता।[12] पद्मपुराण के अनुसार परिग्रह के संबंध से राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं तथा राग और द्वेष ही संसार में दु:ख के प्रबल कारण हैं।[13]

वास्तव में अपरिग्रह किसी वस्तु के त्याग का नाम नहीं हैं अपितु किसी वस्तु में निहित ममत्व के त्याग का नाम है। परिग्रह से सम्पूर्ण विरत होने के लिए सर्वप्रथम आभ्यन्तर परिग्रह से विरत होने की आवश्यकता है। जब तक चित्त अन्तरंग परिग्रह से व्याकुल हो तो बाह्य निर्ग्रन्थता व्यर्थ हैं, जैसे केंचली छोड़ने से सर्प विषरहित नहीं हो जाता।[14]

जैनागमों के अनुसार जीव परिग्रह के निमित्त हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, मैथुन का सेवन करता है और अत्यधिक मूर्च्छा करता है।[15] परिग्रह शान्ति का विरोधी है, धैर्य के अभाव का मित्र है, मोह का विश्रामस्थान है, पाप की खान है, विपदाओं का स्थान है, अशुभ का लीलावन है, चित्त की उलझन की निधि है, अभिमान का मंत्री है, शोक का कारण है, कलह का घर है, अत: यह परिग्रह महात्माओं के लिए त्याग है।[16]

अपरिग्रह वृत्ति अपनाने पर मानव अशान्ति, अधैर्य, मोह, पाप, विपदा, असद्, ध्यान, उलझन, अभिमान, शोक तथा कलह, जो दु:ख व बन्धन के कारण हैं, उनसे मुक्त हो सकता है, अत: जैनधर्म के अपरिग्रह व्रत ने वैदिक संस्कृति को अत्यधिक प्रभावित किया है।

वेदों में आत्मातिरिक्त अन्य वस्तुओं के प्रति ममत्व भाव का तथा वस्तुओं के संग्रहण का निषेध किया गया है। 'यजुर्वेद' में सृष्टि के समस्त पदार्थों का कारण एवं स्वामी ईश्वर को माना गया है तथा मानव को लालच न करते हुए त्यागपूर्वक सृष्टि के पदार्थों का उपभोग करने का आदेश दिया गया है।[17]

वैदिक ऋषियों ने परिग्रह के दुष्प्रभावों से बचने के लिए अपरिग्रह पर विशेष बल दिया है और कहा है कि मानव अपने किए गए कार्य की उन्नति के लिए सौ हाथों वाला होकर धन एकत्रित करे और हजार हाथों वाला बनकर उसका दान कर दें।[18]

जैनधर्म यथार्थवादी दृष्टिकोण पर आधारित हैं। इस धर्म के अनुसार वेदों ने संसार में समृद्धि और विपुल धन अथवा विशेष महत्त्व के लिए कुछ वस्तुओं के संग्रह और उनके समुदायों में बाँटकर वर्गीकरण के लिए बल दिया है[19] ताकि ज्ञान-विज्ञान का प्रवाह गतिमान रहे।

जैनधर्म के अनुकूल ही वेद में गृहस्थाश्रम के सुचारू परिपालन के लिए उत्तम गृहिणी से अपेक्ष की गयी कि वह घर में दक्षता और व्यवस्था से योग्य वस्तुओं का संग्रह करें तथा साथ ही वह उदारतापूर्वक दान करने वाली भी होनी चाहिए।[20]

आधुनिक युग में राग-द्वेष, हिंसा तथा आतंकवाद आदि समस्याओं के समाधान के लिए जैनधर्म द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अत्यन्त प्रासंगिक हो गए हैं। इन सिद्धान्तों को अपनाकर मानव जीवन की सभी समस्याओं का समाधान कर सकता है तथा इनके परिपालन से वैयक्तिक कल्याण के साथ-साथ समाज में विश्वबन्धुत्व की भावना उत्पन्न कर सुख तथा शाँति का संवाहक बन सकता है।

सन्दर्भ

1. आ॰ समन्तभद्र, युक्त्यनुशासन, श्लोक-61
   सर्वान्तवत्तद्गुण-मुख्य कल्पं, सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
   सर्वाऽऽपदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।।
2. तीर्थवर्द्धमान, पृ॰ 94-95,
   मुनि विद्यानन्द, वीर निर्वाण प्रकाशन समिति इन्दौर (म॰ प्र॰)
3. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, (आ॰ समन्तभद्र) श्लोक-02
   संसार दुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।
4. पुरुषार्थसिद्धयुपाय, 4.8.44
   अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
   तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।
5. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (आ समन्त भद्र),48
   रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति।
6. उपासकाध्ययन (आचार्य सोमदेव), 334
   मैत्री प्रमोद कारुण्यमाध्यस्थानि यथाक्रमम्।
   सत्वे गुणाधिके क्लिष्टे निर्गुणेऽपि च भावयेत।।
7. वसुनन्दि-श्रावकाचार,
   जूयं मज्ज मंसं वेसा परद्धि चोर-परयारं।
   दुग्गइगमणस्सेदाणि हेउभूदाणि पावाणि।।
8. सिद्धसान्तार्थसार (महाकवि रइधू), 3.25
   सव्वाण वसणाण्धं मूलं जूवं हि कलह दुहगेहं।
   इह परलोयविरूद्धं तं चयणिज्जं कया कज्जं।।
9. उपासकाध्ययन (आचार्य सोमदेव), 7.53
   शीलवान् महतां मान्यो जगतामेक मण्डनम्।
   स सिद्धः सर्वशीलेषु यः सन्तोषमधिष्ठितः।।
10. सिद्धान्तार्थसार (महाकवि रइधू), 3.105-106
    वाणी सच्चतिदेवना सीलतिदेवणा य णारि साहरणा।
    धम्मोविय णिक्करुणा एदे जाणि णिंदणिज्जाहि।।
    सच्च पहासी पुरिसा गरूवउ मेरुत्त्व वणिउ लोए।
    सव्वाणं विस्सासो उप्पज्जइ तासु वयणेण।।

11. मूर्च्छापरिग्रह-तत्वार्थसूत्र, 7.17
12. सूयगहा। सं युवाचार्य महाप्रज्ञ, 1.1.2
    चित्तमंतमचित वा परिगिज्झ किसामवि।
    अण्णं वा अणुजाणाइ, एवं दुक्खा ण मुच्चई।।
13. पद्मपुराण, 1.182
14. ज्ञानसार, 25.4
15. समणासुतं गाथा, 140, पृ॰ 44
16. सिन्दूर प्रकरण, 43
17. यजुर्वेद, 40.1
    ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
    तेन व्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।
18. अथर्ववेद, 3.24.5
    शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
    कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह।।
19. तदेव, 3.24.7
20. तदेव, 4.38.1

स्वामी विवेकानन्द का सामाजिक एवं आर्थिक दर्शन

यतीन्द्र कुमार यादव

शोधार्थी, डॉ0 राममनोहर लोहिया राजकीय महाविद्यालय, मुफ्तीगंज, जौनपुर

डॉ० अनिल कुमार सोनकर

शोध निर्देशक डॉ0 राममनोहर लोहिया राजकीय महाविद्यालय, मुफ्तीगंज, जौनपुर

जब सारे देश में शूद्रत्व भरा हुआ हैं तो शुद्रो के विषय में अलग क्या कहा जाए! अन्य देशो के शुद्रकुल की नींद कुछ टूटी सी हैं, पर उनमे विद्या नहीं हैं। उसके बदले हैं उनका साधारण जातिगुण-स्वजातिद्वेष। उनकी संख्या यदि अधिक ही हैं तो क्या? जिस एकता के बल से दस मनुष्य लाख मनुष्यों की शक्ति संग्रह करते हैं, वह एकता अभी शूद्रों से कोसों दूर हैं। इसलिए सारी शुद्रजाति प्राकृतिक नियमो के अनुसार पराधीन हैं।

काल के प्रभाव से ब्राह्मण आदि वर्ण भी शूद्रों का नीच स्थान प्राप्त कर रहे हैं, और शूद्रजाति ऊँचा स्थान पा रही हैं। शूद्रों से भरे, रोम के दास यूरोप ने क्षत्रियो का बल प्राप्त किया हैं। महाबलवान चीन हम लोगो के सामने ही बड़ी शीघ्रता से शूद्रत्व प्राप्त कर था है और नगण्य जापान हवा कि तरह शुद्रत्व को झाड़ता हुआ ऊंची जातियों का अधिकार ले रहा है। यहाँ पर आजकल के यूनान और इटली के क्षत्रियपद पर उत्थान का और तुर्क, स्पेन आदि के पतन का कारण भी सोचने का विषय है।

तो भी एक ऐसा समय आएगा जब शुद्रत्वसहित शूद्रों का प्राधान्य होगा, अर्थात आजकल जिस प्रकार शुद्रजाति वैश्यत्व अथवा क्षत्रित्व प्राप्त कर अपना बल दिखा रही है उस प्रकार नही, वरन अपने शुद्रोचित धर्म कर्मसहित वह समाज में आधिपत्य प्राप्त करेगी। पश्चात् जगत में इसकी लालिमा भी आकाश में दिखने लगी है, और इसके फलाफल का विचार कर सब लोग घबराये हुए है। सोशलिज्म, अनार्किज्म, नाइलिज्म आदि सम्प्रदाय इस विप्लव की आगे चलनेवाली ध्वजाएँ हैं। युगों से पीसकर शुद्रमात्र या तो कुत्तों कि तरह बड़ो के चरण चाटनेवाले य हिंस्त्र पशुओं की तरह निर्दय हो गयें हैं। फिर सदा से उनकी अभिलाषाये निष्फल होती आ रही है। इसीलिए दृढ़ता और अध्यवसाय उनमें बिलकुल नही हैं।

पश्चात् जगत में विद्या का प्रचार होने पर भी वहाँ शूद्रो के उत्थान में एक बड़ी अड़चन रह गयी है। इसका कारण यह है कि वहाँ लोग गुणगत जाती मानते है। ऐसी ही गुणानुसार वर्णव्यवस्था इस देश में भी प्राचीनकाल में प्रचलित थी, जिसके कारण शुद्रजाति कि उन्नति कभी हो ही नही सकती थी। एक तो शूद्रों को विद्या प्राप्त करने तथा धनसंग्रह करने का सुविधा बहुत कम था। दूसरे, यदि एक-दो असाधारण मनुष्य शुद्रकुल में कभी उत्पन्न भी होते, तो उच्चवर्ण तुरंत उन्हें उपाधियाँ देकर अपनी मण्डली में खींच लेता था। उनकी विद्या का प्रभाव और धन का हिस्सा दूसरी जातियों के काम आता था। उनके सजातीय उनकी विद्या, बुद्धि और धन से कुछ भी लाभ न्हीं उठा सकते थे। इतना ही नही, वरन कुलीनों के निकम्मे मनुष्य कूडेध्कर्कट कि तरह निकालकर शुद्रकुल में मिला दिये जाते थें।

वेश्यापुत्र वशिष्ठ और नारद, दासीपुत्र सत्यकाम जाबाल, धीवर व्यास, अग्यात पिता कृप, द्रोण और कर्ण आदि सब ने अपनी विद्या या वीरता के प्रभाव से ब्राह्मणत्व या क्षत्रित्व पाया था परन्तु इससे वेश्या, दासी, धीवर या सारथिकुल का क्या लाभ हुआ, यह सोचने का विषय है फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य- कुल से निकाले हुए मनुष्य सदा शूद्रकुल में जा मिलते थे।

आजकल के भारत में शूद्रकुल में उत्पन्न बड़े से बड़े या करोडपति को भी अपना समाज छोड़ने का अधिकार नही है। इसका फल यह होता है कि उसकी विद्या-बुद्धि और धन का प्रभाव उसी जाति में रह जाता हैं तथा उसी समाज का कल्याण करने में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार इस जन्मगत जाती कि व्यवस्था से प्रत्येक जाति अपनी सीमा के बाहर जाने में असमर्थ होकर अपनी ही मण्डली के लोगों की धीरे धीरे उन्नति कर रही है। जब तक भारत में बिना जाति कि परवाह किये दण्ड- पुरस्कार देनेवाला राजशासन रहेगा तब तक निम्न जातियों की इसी प्रकार उन्नति होती रहेगी।

इतना भेद कर रखा है कि वह अपने सब अधिकारों से वंचित है, और जब तक ऐसा भाव रहेगा तब तक उसकी यही दशा रहेगी।

समान कष्ट, घृणा या प्रीति आपस में सहानुभूति का कारण होती है। जिस नियम से हिंस्क पशु दलबद्ध हो शिकार करते फिरते है, उसी नियम से मनुष्य भी मिलकर रहते तथा जाति या राष्ट्र का संगठन करते है।

आत्यन्तिक स्वजातिप्रेम और परजातिविद्वेष राष्ट्र की उन्नति का एक प्रधान कारण है। इसी स्वजतिप्रेम और परजातिविद्वेष ने प्रतिद्वंदिता की सृष्टि करते हुए ईरानिद्वेषी यूनान को, कार्ठेजद्वेषी रोम को, काफिरद्वेषी अरबजाति को, मूरद्वेशी स्पेन को, स्पेनद्वेषी फ्रांस को, फ्रांसद्वेषी इंग्लैण्ड और जर्मनी को तथा इंग्लैण्डद्वेषी अमेरिका को उन्नति के शिखर पर चढ़ाया है।

स्वार्थ ही स्वार्थत्याग का पहला शिक्षक है। व्यष्टि के स्वार्थो कि रक्षा के लिए ही समष्टि के कल्याण की ओर लोगों का ध्यान जाता है स्वजाति के स्वार्थ में अपना स्वार्थ है, और स्वजाति के हित में अपना हित। बहुत से काम कुछ लोगों की सहायता बिना किसी प्रकार नही चल सकते आत्मरक्षा तक नही हो सकती। स्वार्थरक्षा के लिए यह सहकारियता सब देशों और जातियों मे पायी जाती है। पर इस स्वार्थ की सीमा में हेर फेर है। संतान उत्पन्न करने और किसी प्रकार पेट भरने का अवसर पाने से ही भारतवासियों की पूरी स्वार्थसिद्धि हो जाती है। हाँ उच्च वर्णो के लिए इतना और है कि उनके धर्माचरण में कोई बाधा न पड़े। वर्तमान भारत में इससे बड़ी और महत्वाकांक्षा नही है। यही भारती जीवन का सर्वोच्च सोपान है।

परन्तु इस गुणों-दोषों के भीतर से भविष्य के अशेष मंगल का यह चिन्ह भी दीखता है कि इस विजातीय और प्राचीन स्वजातीय भाव के संघर्ष से बहुत दिनों की सोयी हुई जाती धीरे-धीरे जग रही है। उससे भूले हों, तो भी कोई हानि नही। सभी कामों में भूल-भ्रम-प्रमाद ही हमारा उत्तम शिक्षक है सत्य का पथ उसी को मिलता है जिससे भूलें होती है। वृक्ष से भूल नही होती पत्थर को भ्रम नही होता, पशुओ में भी नियमविरुद्ध आचरण कम ही देखने में आते है, परन्तु यथार्थ ब्राह्मणों की उत्पत्ति भ्रम- प्रमाद से भरे मनुष्यकुल में ही होती है, हम लोगो के लिए यदि दुसरे लोग ही बचपन से मृत्यु तक के सब कर्म और उठने के समय से सोने तक की सारी चिंताए निश्चित कर दे और राजशक्ति का दबाव सड़कर उन नियमो के कठोर बंधन से हमें जकड दे, तो हम लोगों केके लिए चिंता न करने का और विषय रहा ही क्या? मननशील होने के कारण ही तो हम लोग मनुष्य है मनीषी है और मुनि है।

चिंतनशीलता का लोप होते ही तमोगुण का प्रादुर्भाव होता है और जड़त्व आ जाता है इस समय भी प्रत्येक धर्मनेता और समाजनेता समाज के लिए नियम बनाने में ही व्यस्त है देश में क्या नियमो कि कमी है? नियमों से पिसकर, समाज जो अधोगति प्राप्त कर रहा है उसे कौन समझता है?

सम्पूर्ण स्वाधीन स्वेच्छाचारी राजा के अधीन विजित जाति विशेष घृणा का पात्र नही होती है। शक्तिशाली सम्राट की सब प्रजाए समान अधिकार रखती है- अर्थात किसी भी प्रजा को राजशक्ति के नियमन करने का अधिकार तनिक भी नही है। ऐसी दशा में ऊँची जातियों को विशेष अधिकार कम ही रहते है परन्तु जहाँ प्रजानियमित राजा या प्रजातंत्र विजित जाति पर राज्य करता है, वहाँ विजयी और विजितों के बीच बड़ा अन्तर हो जाता हैं, और शक्ति विजितो के हितसाधन में पूरी तरह लगायी जाने पर थोड़े ही समय में उनका परम कल्याण कर सकती हैं, उसी शक्ति का बहुत सा हिस्सा विजित जाति को वश में रखने कि चेष्टा में व्यय किया जाता हैं और इस प्रकार वह व्यर्थ नष्ट हो जाता हैं।

एक और आधुनिक पश्चात् विज्ञान हैं जिसका शक्तिसंग्रह सब की आँखों के सामने उसे प्रमाणित कर रहा हैं, और जिसकी चमक सैकड़ो सूर्यों की ज्योति की तरह आँखों से चौकचौध पैदा कर देती हैं। दूसरी ओर हमारे पूर्वजो की अपूर्व वीरता, अमानवी प्रतिभा और देवदुर्लभ अध्यात्मज्ञान की वे परम्पराएँ हैं, जिन्हें अनेक स्वदेशी और विदेशी विद्वानों ने प्रकट किया हैं, जो युग-युगान्तर की सहानुभूति के कारण समस्त शरीर में, जल्दी दौड़ जाती हैं और बल तथा आशा प्रदान करती हैं। एक ओर जड़ विज्ञान, प्रचुर धन-सम्पति, प्रभूत बलसंचय और उत्कट इन्द्रियसुख विदेशी साहित्य में कोलाहल मचा रहे हैं, दूसरी ओर इस कोलाहल को फोड़ता हुआ, क्षीण परन्तु मर्मभेदी स्वर से युक्त पूर्वीय देवताओं का आर्तनाद सुनाई पड़ता हैं। एक समय हमारे सामने ये दृश्य आते हैं- सुन्दर, बढ़िया तथा ठिक ढंग से सजाया हुआ भोजन, उमदा पेय, बहुमूल्य पोशाक, ऊँचे-ऊँचे बड़े-बड़े महल तथा नये-नये ढंग की गाड़िया-सवारियाँ आदि, नये-नये अदब-कायदे तथा नये-नये फैशन जिनके अनुसार सज-धजकर हमारे सामने आजकल की विदुषी नारी काफी निर्लज्जतापूर्ण स्वतंत्रता से घूमती फिरती हैं। ये सब सामग्रियाँ न जाने कितनी नयी-नयी इच्छाएँ तथा वासनाएँ उत्पन्न करती हैं परन्तु फिर यह दृश्य बदलकर इसके स्थान में एक दूसरा गम्भीर दृश्य आ जाता हैं और वह है सीता, सावित्री, व्रत-उपवास, तपोवन, जटाजूट, वत्कल तथा गौरिक वस्त्र, कौपीन, समाधि एवं आत्मोपलब्धि की सतत चेष्टा।

एक ओर पश्चात् समाज की स्वार्थकेन्द्रित स्वाधीनता हैं, और दूसरी ओर आर्यो का कठोर आत्मबलिदान। इस विषम संघर्ष से समाज जो डगमगा उठेगा, तो इसमे आश्चर्य ही क्या हैं? पश्चात् जगत का उद्देश्य व्यक्तिगति स्वाधीनता हैं, भाषा अर्थकारी विद्या है और उपाय राजनीति हैं। भारत का उद्देश्य मुक्ति हैं, भाषा वेद हैं और उपाय त्याग हैं। वर्तमान भारत मानों एक बार सोचता हैं कि भविष्य के सन्दिग्ध पारमार्थिक हित के मोह में पड़कर मैं इस लोक का व्यर्थ नाश कर रहा हूँ फिर मन्त्रमुग्ध की तरह सुनता हैं-

"इति संसारे स्फुटतरदोषःद्य कथमिह मानव तव संतोषः।।"

"संसार में ये सब दोष भरे पड़े हैं।

ये मनुष्यों, यहाँ तुम्हे संतोष कैसे हो सकता हैं?"[2]

एक ओर नया भारत कहता हैं कि हमको पति-पत्नी चुनने में पूरी स्वतंत्रता चाहिएँ, क्योंकि जिस विवाह पर हमारे भविष्य जीवन का सारा सुख दुःख निर्भर हैं, उसका हम अपने इच्छा से चुनाव करेंगे। दूसरी ओर प्राचीन भारत की आज्ञा होती हैं कि विवाह इन्द्रियसुख के लिए नहीं, वरन सन्तानोत्पत्ति के लिए हैं। इस देश की यही धारणा हैं। संतान उत्पन्न करके समाज के भावी हानि-लाभ के तुम कारण हो, इसलिए जिस प्रणाली से विवाह करने में समाज का सबसे अधिक कल्याण होना सम्भव हैं, वही प्रणाली समाज में प्रचलित हैं। तुम समाज के सुख के लिए अपने सुखभोग की इच्छा त्यागो।

एक ओर नया भारत कहता हैं कि पश्चात् भाव, भाषा, खान-पान और वेश-भूषा का अवलम्बन करने से ही हम लोग पश्चात् जातियों की भाति शक्तिमान हो सकेंगे। दूसरी ओर प्राचीन भारत कहता हैं कि मुर्ख! नकल करने से भी कही दूसरो का भाव अपना हुआ हैं? बिना उपार्जन किये कोई वस्तु अपनी नहीं होती। क्या सिंह की खाल पहनकर गधा कही सिंह हुआ हैं?

एक ओर नवीन भारत कहता है कि पश्चात् जातियों जो कुछ कर रही हैं, वही अच्छा नहीं हैं तो वे ऐसे बलवान कैसे हुए? दूसरी ओर प्राचीन भारत कहता हैं कि बिजली की चमक तो खूब होती हैं, पर क्षणित होती हैं। बालक! तुम्हारी आँखे चौंधिया रही हैं, सावधान!

तो क्या हमें पश्चात् जगत से कुछ भी सिखाने को नहीं हैं? क्या हमें चेष्टा या प्रयत्न करने की जरुरत नहीं हैं? क्या हम सब प्रकार पूरे हैं? क्या हमारा समाज पूर्णतया निश्छिद्र हैं? नहीं, सिखाने को बहुत कुछ हैं। प्रयत्न तो हमें जीवन भर करना चाहिए। प्रयत्न ही मनुष्यजीवन का उद्देश्य हैं। श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे, "जब तक जीऊ, तब तक सीखूँ।" जिस व्यक्ति या समाज को कुछ सीखना नहीं हैं, वह मृत्यु के मुह में जा चूका हैं। सिखाने तो है, परन्तु भय भी हैं।

एक कम बुद्धिवाला लड़का श्रीरामकृष्ण देव के सामने सदा शास्त्रों की निन्दा किया करता था। उसने एक बार गीता की बड़ी प्रशंसा की। इस पर श्रीरामकृष्ण देव ने कहा कि, "किसी अंग्रेज विद्वान ने गीता की प्रशंसा की होगी, इसीलिए यह भी उसकी प्रशंसा कर रहा हैं।"

ये भारत! यही विकट का कारण हैं। हम लोगो में पश्चात् जातियों की नकल करने की इच्छा ऐसी प्रबल होती जाती हैं कि भले-बुरे का निश्चय अब विचारबुद्धि, शास्त्र या हिताहित ज्ञान से नहीं किया जाता। गोर लोग जिस भाव और आचार की प्रशंसा

करे, वही अच्छा हैं और वे जिसकी निन्दा करे, वही बुरा! अफसोस! इससे बढकर मुर्खता का परिचय और क्या होगा?

पश्चात् स्त्रियाँ स्वाधीन भाव से घुमती हैं, इसलिए वही चाल अच्छी हैं। वे अपने लिए वर आप चुन लेती हैं, इसलिए वही उन्नति का सर्वोच्च सोपान हैं य पश्चात् पुरुष हम लोगो की वेश-भूषा, खां-पान को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, इसलिए हमारी ये चीजे बहुत बुरी हैं य पश्चात् लोग मूर्तिपूजा को खराब कहते हैं य तो वह भी बड़ी खराब होगी, क्यों न हो?

पश्चात् लोग एक ही देवता को कल्याणप्रद बताते हैं, इसलिए अपने देव-देवियों को गंगा में फेंक दो। पश्चात् लोग जातिभेद को घृणित समझते है, इसलिए सब वर्णो को मिलाकर एक कर दो। पश्चात् लोग बाल्य विवाह को सब अनर्थो का कारण कहते हैं, इसीलिए वह भी अवश्य ही बड़ा खराब होगा।

यहाँ पर हम इस बात का विचार नहीं करते कि ये प्रथाएँ चलानी चाहिए अथवा रुकनी चाहिए। परन्तु यदि पश्चात् लोगो की घृणादृष्टि के कारण ही हमारे रीति-रिवाज बुरे साबित होते हो, तो उसका प्रतिवाद अवश्यक होना चाहिए।

पश्चात् समाज और भारतसमाज की मूल गति और उद्देश्य में इतना अन्तर हैं कि पाश्यात्यों के अनुकरण पर गठित समाज इस देश में किसी काम का नहीं होगा। जो लोग पश्चात् समाज में नहीं रहे हैं, वहाँ की स्त्रियों की पवित्रता की रक्षा के लिए स्त्रियों और पुरुषो के आपस में मिलाने के जो नियम और बाधाएँ प्रचलित हैं, उन्हें बिना जाने जो अपनी स्त्रियों को पुरुषो से बिना रोक-टोक के मिलाने देते हैं, उन लोगो से हमारी रत्ती भर भी सहानिभूति नहीं हैं।

पश्चात् देशों में भी मैंने देखा हैं कि दुर्बल जातियों की संतान जब इंग्लैण्ड में जन्म लेती हैं तो अपने को वह स्पेनिश, पोर्तुगीज, यूनानी आदि- जो वह हो- न बताकर अंग्रेज ही बताती हैं। बलवान की ओर सब कोई दौड़ता हैं। दुर्बलमात्र की यह इच्छा रहती हैं कि बड़े लोगो के गौरव की छटा उसके शरीर में कुछ लग जाए। भारत वासियों को जब मैं अंग्रेजी वेश-भूषा में देखता हूँ, तब समझता हूँ की ये लोग शायद पद्दलित, विद्याहीन, दरिद्र भारतवासियों के साथ अपनी सजातीयता स्वीकार करने में लज्जित होते हैं। चौदह सौ वर्ष तक हिदुओं के रक्त से पलकर भी पारसी लोग अब 'नेटिव' नहीं हैं! जातिहीन और अपने को ब्राह्मण बताने वाली जातियों के जात्यभिमान के निकट बड़े-बड़े कुलीन ब्राह्मणों तक का जात्यभिमान कपूर की तरह उड़कर लुप्त हो जाता हैं। फिर पश्चात्यों ने अब हमें यह भी सिखलाया हैं कि यह जो केवल कमर ही कपड़ा लपेटने वाली मुर्ख जाति हैं वह अनार्य हैं! इसलिए वे लोग हम लोगो के बन्धु नहीं हैं!!

ऐ भारत! क्या दूसरो की ही हाँ में हाँ मिलाकर, दूसरो की ही नकल कर, दूसरो का ही मुँह ताककर इस दासो की- सी दुर्बलता, इस घृणित, जघन्य निष्ठुरता से ही तुम बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त करोगे? क्या इसी लज्जास्पद का पुरुषता से तुम वीरभोग्य स्वाधिनता प्राप्त करोगे? ऐ भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों के आदर्श सीता, सावत्री, दमयन्ती हैं। मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं यह मत भूलना की तुम्हारा विवाह, धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय सुख के लिए- अपने व्यक्तिगत सुख के लिए- नहीं हैं यह मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलिस्वरूप रखे गये हो यह मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र हैं यह तुम मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त तुम्हारे भाई हैं। ऐ वीर! साहस का आश्रय लो। गर्व से बोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई हैं यह बोलो की अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सब मेरे भाई हैं यह तुम भी केवल कमर में ही कपड़ा लपेट गर्व से पुकारकर कहो कि भारतवासी मेरा भाई हैं, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरी शिशुसज्जा मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्धक्य की वाराणसी हैं। भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग हैं, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण हैं यह और रातदिन कहते रहो कि- "हे गौरीनाथ! हे जगदम्बे! मुझे मनुष्यत्व दो। माँ, मेरी दुर्बलता और का पुरुषता दूर कर दो, माँ मुझे मनुष्य बना दो।"

वर्तमान समय में तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम एक गाँव से दुसरे गाँव को जाओ और लोगो को समझाओ कि अब और अधिक समय तक आलस्यपूर्वक केवल बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। उन्हें उनकी यथार्थ स्थिति का परिचय कराओ और कहो, "ऐ भाइयों! सब लोग उठो! जागो! अब और कितनी देर तक सोते रहोगे?....... अब तक ब्राह्मणों ने धर्म पर एकाधिपत्य कर रखा हैं यहाँ पर वे जब काल की प्रबल तरंग के विरुद्ध अपना एकाधिपत्य नहीं रख सकते, तब चलो, और ऐसे प्रयत्न करो कि देश भर में प्रत्येक को वह धर्म प्राप्त हो जाय। उनके मन यह बैठा दो कि ब्राह्मणों के समान उनका भी धर्म पर वही अधिकार हैं। सभी को, चाण्डाल तक को भी, इन्ही जाज्वल्यमान मन्त्रो का उपदेश करो। उन्हें सरल शब्दों में जीवन के लिए आवश्यक विषयों तथा वाणिज्य-व्यापार

और कृषि आदि की भी शिक्षा दो। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते, धिक्कार है तुम्हारी शिक्षा और संस्कृति को, धिक्कार है तुम्हारे वेदों और वेदान्त के अध्यन को! भारत की उच्च जातिवालों, तुम चाहे जितना भी अपने को आर्य पूर्वजों की संतान कहने का प्रदर्शन करो, चाहे जितना भी प्राचीन भारत के वैभव का रात-दिन गुणगान करो और अपने जन्म के अभिमान में अकड़ते रहो- पर क्या तुम ऐसा सझते हो कि तुम सजीव हो? तुम तो दशसहस्त्र वर्षो से सुरक्षित रखे हुए मृत देह (डनउउपमे) जैसे ही हो! भारतवर्ष में जो थोड़ी बहुत जीवन-शक्ति अभी भी हैं, वह उन्ही में मिलेगी, जिन्हें तुम्हारे पूर्वज 'चलते-फिरते,सड़े, गन्दे मांसपिण्ड' मानकर घृणा करते थे और यथार्थ में 'चलते हुए मुरदे' तो तुम लोग हो। तुम्हारे घर-द्वार, तुम्हारे साज-सम्मान ऐसे निर्जीव और पुराने हैं कि वे अजायब-घर के नमूनों के समान दिखायी देते है और तुम्हारे रित-रिवाज, चाल-ढाल और रहन-सहन को देखकर कोई भी यही सोचेगा कि 'नानी' की कहानी सुन रहा हैं! तुमसे व्यक्तिगत परिचय प्राप्त कर लेने के बाद भी जब वह घर लौटता हैं, तो मानो यह सोचता हैं कि वह कला-भवन के रंगीन चित्र देखने गया था! ऐ भारत के उच्च वर्गवालो, तुम तो माया के इस संसार में मानो इन्द्रजाल हो, रहस्य हो, मरुमरीचिका हो, एकत्र मिश्रित विभिन्न भूतकालिक क्रियाओं के तुम केवल द्योगत मात्र हो। तुम को अभी भी वर्मान समय में कोई देख रहा हैं- यह तो मानो केवल अजीर्ण के कारण होने वाला भयानक दु:स्वप्न हैं। तुम तो भविष्य के शून्याकार, सारहीन, अस्तित्व रहित पदार्थ हो।

स्वप्न राज्य के नागरिक! तुम लोग और अधिक समय तक क्यों भटक रहे हो? तुम भूतकालीन भारत के मृत शरीर के मांसहींन, रक्तहीन अस्थिकंकाल जैसे हो- तुम शीघ्र ही अपने को मिट्टी में मिलाकर हवा में अदृश्य क्यों नहीं हो जाते? तुम्हारी अस्थिमयी अँगुलियों में तुम्हारे पूर्वजो के संग्रह किये हुए रत्न की कुछ अमूल्य मुद्रिकाए हैं और बहुत सी प्राचीन सम्पत्ति की पितारियां तुम्हारे दुर्गन्ध-युक्त मृत शरीर की छाती से चिपकी हुई सुरक्षित रही हुई हैं। अब तक तुमको उन्हें दुसरे को सौप देने अवसर नहीं मिला था। अब ब्रिटिश राज्य- शासन में प्रतिबन्धरहित शिक्षा एवं ज्ञान-प्रसार के दिनों में, उन सब वस्तुओं को अपने उत्तराधिकारियों को सौंप दो। यह बात यथा संभव शीघ्र कर डालो। तुम अपने को शून्य में लीन करके अदृश्य हो जाओ और अपने स्थान में 'नव भारत' का उदय होने दो। उसका उदय हल चलनेवाले किसानों की कुटियों से, मछुए, मोचियों और मेहतरो की झोपड़ियों से हो। बनिये की दूकान से, रोटी बेचनेवाले की भट्टी के पास से वह प्रकट हो। कारखानों हाटों और बाजारों से वह निकले। वह 'नव भारत' अमराइयों और जंगलो से, पहाड़ों और पर्वतों से प्रकट हो। ये साधारण लोग सहस्त्रों वर्षो से अत्याचार सहते आये हैं- बिना कुड़बुड़ाये उन्होंने यह सब सहा हैं और परिणाम में उन्होंने आश्चर्यकारक धैर्य- शक्ति प्राप्त कर ली हैं। वे सतत विपत्ति सहते रहे हैं, जिसे उन्हें अविरल जीवन-शक्ति प्राप्त हो गयी हैं। मुट्ठी भर अन्य से पेट भरकर वे संसार को कंपा सकते है या उनको तुम केवल आधी रोटी दे दो, और देखोगे की सारे संसार का विस्तार उनकी शक्ति के समावेश के लिए पर्याप्त न होगा। उनमे 'रक्तबीज' की अक्षय जीवन-शक्ति भरी हैं। इसके अतिरिक्त, उनमें पवित्र और नितियुग जीवन से आने वाला वह आश्चर्यजनक बल हैं, जो संसार में अन्यत्र नहीं मिलता ऐसी शक्ति, ऐसा संतोष, ऐसा प्रेम और चुपचाप सतत कार्य करने की ऐसी शक्ति और कार्य के समय इस प्रकार सिंह बल प्रकट करना - यह सब तुम्हे अन्यत्र कहाँ मिलेगा? भूतकाल के कंकाल! देखो, तुम्हारे सामने तुम्हारे उत्तराधिकारी खड़े हैं- भावी भारत वर्ष खड़ा हैं।[3]

सन्दर्भ

1. वर्मान भारत स्वामी विवेकानन्द अनु० सहाय श्री रघुनाथ पृष्ठ-24.25.
2. वर्मान भारत स्वामी विवेकानन्द अनु० सहाय श्री रघुनाथ पृष्ठ-28-29.
3. वर्मान भारत स्वामी विवेकानन्द अनु० सहाय श्री रघुनाथ पृष्ठ-73-74.

लड़कियों की शिक्षा और सशक्तिकरण

सुहास डफल

सहायक प्रोफेसर, श्रीमती काशीबाई नवले कॉलेज ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग, लोनावला, पुणे

सारांश

भारत में सरकार और नागरिक समाज दोनों शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए गहराई से चिंतित हैं क्योंकि शिक्षित महिलाएं राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। शिक्षा महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक कदम है क्योंकि यह उन्हें बाधाओं का सामना करने, उनकी स्थापित भूमिकाओं पर सवाल उठाने और उनके जीवन में सकारात्मक बदलाव करने के लिए तैयार करती है। महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा के महत्व और हाल के वर्षों में वैश्विक प्रमुखता में भारत के उदय के कारण, हमें इसे अनदेखा नहीं करना चाहिए। महिलाओं की शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के लिए सबसे शक्तिशाली शक्ति है। चूंकि शिक्षा महिला सशक्तिकरण की आधारशिला है, इसलिए यह अधिक महत्वपूर्ण हो गया है कि भारत में अधिक लड़कियों और महिलाओं को शिक्षा मिले। उपलब्धि अंतर को बंद करने में मदद करने के अलावा, शिक्षा अपने घरों के भीतर लोगों की सामाजिक स्थिति को बढ़ाती है और सक्रिय नागरिकता की संस्कृति को बढ़ावा देती है। एक सामाजिक संदर्भ जिसमें व्यक्तियों और समूहों को निर्णय लेने और सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन की ओर ले जाने वाले कार्यों को लेने के लिए सशक्त बनाया जाता है, सशक्तिकरण की एक परिभाषा है। इस अर्थ में, ज्ञान, शक्ति और अनुभव का अधिग्रहण आंतरिक क्षमता को मजबूत करने का कार्य करता है। किसी को सशक्त बनाने के लिए उन्हें अपने निर्णय लेने, अपने स्वयं के जीवन का प्रभार लेने और अपने स्वयं के काम को निर्देशित करने के लिए स्वतंत्रता और अधिकार प्रदान करना है। यह अपने भविष्य को आकार देना शुरू करने का तरीका है और ऐसा महसूस नहीं करता है कि जीवन सिर्फ आपके साथ हो रहा है। हमेशा कुछ ऐसे लोग या समूह होंगे जिन्हें किसी भी समुदाय, राज्य या देश में उनकी मौलिक स्वतंत्रता से वंचित किया जाता है, लेकिन जो इस तथ्य से भी अनजान हैं कि उन्हें इन अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। अगर हम ऐसा करते हैं तो हमारे समाज में महिलाएं सबसे पहले स्वयंसेवक होंगी। वास्तव में, महिलाएं हर समुदाय में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस तथ्य के बावजूद कि हर कोई इसके बारे में जानता है, कोई भी इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। प्रभाव यह है कि महिलाओं को उस स्तर का सम्मान नहीं दिया जाता है जो वे पहले करते थे। महिलाओं के अवमूल्यन की व्यापक प्रवृत्ति के जवाब में महिलाओं को सशक्त बनाने की आवश्यकता के बारे में जागरूकता बढ़ रही थी कि उन्हें समाज में एक द्वितीयक स्थान पर धकेल दिया गया है और मौलिक सुरक्षा तक पहुंच से वंचित कर दिया गया है। हाल ही में महिला सशक्तिकरण के विषय पर बहुत सारी बातें और ध्यान दिया गया है। हालांकि यह सच है कि हम एक स्वतंत्र देश में रहते हैं, हम सभी को खुद से पूछना चाहिए कि क्या हम वास्तव में स्वतंत्र हैं और क्या हम स्वतंत्रता का आनंद ले रहे हैं। महिलाओं के खिलाफ भेदभाव और लैंगिक असमानता सदियों से रही है। लिंगों के बीच समानता की यह इच्छा इस प्रकार सार्वभौमिक है। यह जरूरी है कि महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान अवसर दिए जाएं, जिनमें कार्यस्थल, विरासत, विवाह, राजनीति आदि तक सीमित नहीं है। समानता प्राप्त करने के लिए महिलाओं के प्रयासों के परिणामस्वरूप कई महिला समूह और संगठन शुरू किए गए हैं। यद्यपि कानून के तहत महिलाओं और पुरुषों के साथ समान व्यवहार किया जाता है, लेकिन कई सुरक्षा जिनके लिए वे कानूनी रूप से हकदार हैं, हमारी संस्कृति द्वारा महिलाओं को वंचित कर दिया गया है। सशक्त होने का अर्थ है अपनी प्रतिभाओं में विश्वास रखना, अपने राजनीतिक और सामाजिक जुड़ाव को बढ़ाना और अपनी पूरी क्षमता का एहसास करना।

महिला शिक्षा का महत्व

"एक आदमी को शिक्षित करने का मतलब है एक व्यक्ति को शिक्षित करना; एक महिला को शिक्षित करने का मतलब एक परिवार को शिक्षित करना है। भारत की माताओं को सशक्त बनाने के लिए, पहले इसकी महिलाओं को सशक्त बनाना आवश्यक है। एसजीटी जवाहरलाल नेहरू पी.टी. समग्र रूप से भारत की उन्नति को अपनी महिलाओं की शिक्षा से बहुत लाभ होता है। महिलाओं को शिक्षित करना कार्यबल के विकास में सहायता करता है और घर और समुदाय में जीवन स्तर को बढ़ाता है। यह कहना कि शिक्षा समाज की बुराइयों का जवाब है, अनुचित नहीं है। यद्यपि कई लेखकों ने शिक्षा को परिभाषित करने का प्रयास किया है, लेकिन एम फुले की अवधारणा सबसे केंद्रीय के रूप में खड़ी है। "शिक्षा वह है जो अच्छे और बुरे के बीच अंतर को दर्शाती है," एम फुले ने एक बार कहा था। पूर्ववर्ती अवधारणा को ध्यान में रखते हुए, हम देखते हैं कि शिक्षा पूरे मानव इतिहास में सभी क्रांतिकारी आंदोलनों की नींव है। 2 शिक्षा का अर्थ है हर पहलू में व्यवहार का संशोधन, जैसे मानसिकता, दृष्टिकोण, दृष्टिकोण आदि। जिन महिलाओं ने औपचारिक शिक्षा पूरी कर ली है, वे अपनी बेटियों की शिक्षा के लिए वकालत करने की अधिक संभावना रखते हैं और अपने बच्चों को अधिक प्रभावी ढंग से मार्गदर्शन करने की स्थिति में हैं। महिला शिक्षा को नवजात मृत्यु दर में कमी और बढ़ती आबादी से जोड़ा गया है। लैंगिक पूर्वाग्रह को खत्म करने और महिलाओं को शिक्षा तक समान पहुंच प्राप्त करने से पहले भारत में अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है। जब साक्षरता की बात आती है तो लिंग के बीच असमानता केवल एक संकेत है। जबकि पुरुष साहित्यिक दर 82.14% से अधिक है और महिला साक्षरता दर सिर्फ 65.46% है। (b) महिलाओं को केवल घर की पत्नी माना जाता था और घर में रहना बेहतर होता था।

शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण

महिलाओं का सशक्तिकरण हर स्वस्थ समुदाय, राज्य या राष्ट्र का एक मौलिक घटक है। जब बच्चे के अस्तित्व के मौलिक पहलुओं की बात आती है, तो प्राथमिक प्रभावशाली अक्सर बच्चे की मां होती है। हमारे समाज में महिलाओं के योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। अधिक सकारात्मक मानसिकता की ओर एक बदलाव महिलाओं को शिक्षा के माध्यम से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के परिणामस्वरूप हो सकता है। नतीजतन, यह भारत के निरंतर सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए आवश्यक है। भारत का संविधान राज्य को सकारात्मक कार्रवाई नीतियों को स्थापित करने का अधिकार देता है ताकि महिलाओं को अपने करियर और जीवन के अन्य क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। शिक्षा में महिलाओं के जीवन पर बड़ा प्रभाव डालने की क्षमता है। महिलाओं का सशक्तिकरण एक ऐसा विषय है जो वैश्विक स्तर पर चिंता का विषय है, और महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर चर्चा दुनिया भर में कई आधिकारिक और अनौपचारिक आंदोलनों में सबसे आगे है। 1985 में NAROIBI में हुए अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में, महिला सशक्तिकरण का विचार पहली बार प्रस्तुत किया गया था। महिलाओं को सशक्त बनाने की प्रक्रिया में शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक है क्योंकि यह उन्हें कठिनाइयों पर प्रतिक्रिया करने, पारंपरिक रूप से निभाई गई भूमिकाओं पर सवाल उठाने और उनके जीवन को बदलने के लिए आवश्यक उपकरण देता है। इसलिए, हम महिलाओं के सशक्तिकरण के संबंध में शिक्षा के महत्व को नजरअंदाज नहीं कर सकते। महिलाओं की शिक्षा में हालिया प्रगति के प्रकाश में, भारत को अक्सर अगले दशकों में अग्रणी वैश्विक महाशक्ति की भूमिका के लिए एक संभावित दावेदार के रूप में देखा जाता है। यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि महिलाओं की स्थिति को परिभाषित करने में भूमिका निभाने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक महिलाओं की शैक्षिक प्राप्ति में प्रगति की दर है, जिसे अक्सर महिलाओं के सशक्तिकरण के रूप में जाना जाता है। 4 अगर हम सुपर पावर बनना चाहते हैं, तो हमें अपना अधिकांश ध्यान महिलाओं की शिक्षा पर केंद्रित करने की आवश्यकता है। इस तरह, यह महिलाओं के अधिकारों की उन्नति के लिए मजबूर करेगा। महिलाओं के लिए संयुक्त राष्ट्रीय विकास कोष (UNIFEM) के अनुसार, महिला सशक्तिकरण को निम्नलिखित के रूप में परिभाषित किया जा सकता है:

लिंग गतिशीलता और इन गतिशीलताओं को बदलने के कई तरीकों के बारे में जागरूकता प्राप्त करना और समझ प्राप्त करना एक आवश्यक कदम है।

अपने स्वयं के मूल्य के लिए एक स्वस्थ प्रशंसा प्राप्त करना, वांछित परिवर्तन लाने की क्षमता में दृढ़ विश्वास, और यह दृढ़ विश्वास कि किसी को अपने जीवन पर नियंत्रण रखने का अधिकार है।

उनके लिए उपलब्ध विकल्पों की संख्या में वृद्धि करके किसी की बातचीत की ताकत में वृद्धि करना।एक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था लाने के लिए सामाजिक विकास के पाठ्यक्रम को व्यवस्थित करने और प्रभाव डालने की क्षमता में वृद्धि करना जो राष्ट्रीय और विश्वव्यापी स्तर पर अधिक न्यायसंगत है। इसलिए, सशक्तिकरण व्यक्तिगत नियंत्रण या प्रभाव की व्यक्तिपरक भावना को संदर्भित करता है, साथ ही साथ वास्तविक सामाजिक प्रभाव, राजनीतिक प्राधिकरण और कानूनी अधिकारों में रुचि रखता है। यह एक अवधारणा है जो कई स्तरों पर लोगों, संगठनों और समुदाय को समग्र रूप से संदर्भित करती है। जिन लोगों के पास मूल्यवान संसाधनों का समान हिस्सा नहीं है, वे एक ऐसी प्रक्रिया में भाग लेकर इन संसाधनों पर नियंत्रण तक अधिक पहुंच प्राप्त कर सकते हैं जो वैश्विक स्तर पर चल रही है और उस समुदाय में केंद्रित है जहां वे रहते हैं। इस प्रक्रिया के लिए पारस्परिक सम्मान, महत्वपूर्ण प्रतिबिंब, देखभाल और समूह भागीदारी की आवश्यकता होती है।

भारत में महिलाओं के सामने आने वाली कुछ चुनौतियां:

भेदभाव: भारत में महिलाओं को अक्सर जीवन के कई क्षेत्रों में भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जिसमें घर और कार्यस्थल शामिल हैं। इससे उनके लिए शैक्षिक और कैरियर के अवसर प्राप्त करना मुश्किल हो सकता है, जिससे असमान उपचार और खराब वेतन हो सकता है। इसके अतिरिक्त, इससे उनके लिए स्वास्थ्य सेवा प्राप्त करना मुश्किल हो सकता है।

शिक्षा और रोजगार तक पहुंच की कमी: भारत में, महिलाओं को अक्सर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भेदभाव का अनुभव होता है, जिसमें जीवन के घरेलू और पेशेवर क्षेत्र शामिल हैं। इससे रंग के लोगों के लिए शैक्षिक और कैरियर के अवसर प्राप्त करना कठिन हो सकता है, और इससे असमान उपचार और रंग के लोगों के लिए खराब मुआवजा भी हो सकता है।

शिक्षा और रोजगार तक पहुंच की कमी: जब स्कूल और कार्यबल तक पहुंच प्राप्त करने की बात आती है, तो भारत में महिलाओं को कई महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, विश्व बैंक द्वारा किए गए शोध के अनुसार, भारत में कामकाजी उम्र की लगभग आधी महिलाएं श्रम शक्ति में भाग ले रही हैं, लेकिन लगभग 80 प्रतिशत कामकाजी उम्र के पुरुष ऐसा कर रहे हैं। यह सांस्कृतिक और सामाजिक प्रतिबंधों के साथ-साथ शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसरों तक पहुंच की कमी के कारण है, जो महिलाओं को कार्यबल में शामिल होने से रोकता है।

लिंग आधारित हिंसा भारत में एक बड़ी समस्या है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार, वर्ष 2021 में भारत में महिलाओं के खिलाफ हिंसा की 428,278 से अधिक घटनाएं दर्ज की गई। इसमें शारीरिक और यौन हमले के उदाहरण शामिल हैं, साथ ही दहेज प्रथाओं से जुड़ी हिंसा और महिला शिशुओं की हत्या भी शामिल है। आंकड़े परेशान करने वाले हैं: अकेले 2021 में, महिला पीड़ितों के खिलाफ बलात्कार के 31,677 प्रलेखित मामले थे।

गरीबी: बड़ी संख्या में भारतीय महिलाएं, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाएं गरीब हैं। गरीबी महिलाओं के लिए शैक्षिक अवसरों और काम के अवसरों को प्राप्त करना कठिन बना सकती है, इसके अलावा खराब स्वास्थ्य और कुपोषण जैसे अतिरिक्त मुद्दों को जन्म दे सकती है।

महिलाओं की भागीदारी का महत्व

महिलाओं की भागीदारी एक संगठन के लिए समर्थन के साधन के रूप में और कानून स्थापित करने वालों के लिए नियंत्रण की एक विधि के रूप में काम कर सकती है। भागीदारी औपचारिक या अनौपचारिक, औपचारिक या आकस्मिक, राजनीतिक, सामाजिक या प्रशासनिक चरित्र हो सकती है। भागीदारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हो सकती है। ऐसे कई तरीके हैं जिनसे महिलाएं पंचायत राज की संस्थाओं में भाग ले सकती हैं। यह उन सभी गतिविधियों को संदर्भित करता है जो प्रक्रियाओं और प्रशासन में महिलाओं की भागीदारी को प्रदर्शित करते हैं। इसमें नीति निर्माण और कार्यक्रम योजना में भागीदारी के साथ-साथ विकास लक्ष्य समूहों के लिए नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और मूल्यांकन में भागीदारी शामिल है। 7 भारत की स्वतंत्रता से पहले से, भारत में महिलाएं राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार रही हैं। उन्होंने स्वयंसेवकों के रूप में और विभिन्न क्षमताओं में नेताओं के रूप में मुक्ति के लिए संघर्ष में भाग लिया। भारत को अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 में कहा गया था कि कानून के समक्ष महिलाओं के साथ समान व्यवहार किया जाएगा। इस तथ्य के बावजूद कि भारत का संविधान सभी भारतीय नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है, महिलाओं को देश के राजनीतिक क्षेत्र में अल्पसंख्यक स्थान प्राप्त है। इस

मामले की सच्चाई यह है कि महिलाओं के पास राष्ट्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर पुरुषों के समान अधिकार नहीं हैं। यह तथ्य कि लोकसभा में भारत की आबादी का मुश्किल से 10 प्रतिशत प्रतिनिधित्व है, देश में चीजों की वर्तमान स्थिति का निराशाजनक प्रतिबिंब है। अब कुल 233 सांसदों में से 21 महिलाएं राज्यसभा में सांसद के रूप में सेवारत हैं। यह पूरी सदस्यता का सिर्फ नौ प्रतिशत है, जो लोकसभा की तुलना में और भी कम प्रतिशत है। समाज के स्तर पर, संसद में पुरुष प्रभुत्व, नौकरशाही, न्यायपालिका, सेना और पुलिस सभी लैंगिक असमानता की ओर इशारा करते हैं। यह इस तथ्य के बावजूद सच है कि आमतौर पर यह तर्क दिया जाता है कि राजनीतिक नेतृत्व के पदों पर महिलाओं के परिणामस्वरूप एक ऐसी दुनिया होगी जो अधिक सहकारी है और संघर्ष में शामिल होने की संभावना कम है। महिलाओं की घृणित और असमान स्थिति इस तथ्य से बढ़ जाती है कि उनके पास राजनीतिक और आर्थिक शक्ति की कमी है। भले ही स्वतंत्रता के बाद भारत का अपना संविधान था, लेकिन देश निष्पक्षता, समानता और सामाजिक न्याय जैसे नैतिक आदर्शों को प्राप्त करने में सफल नहीं था। भले ही बहुत वर्षों तक प्रधानमंत्री के पद पर एक महिला रही, लेकिन महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं हुआ। 1970 के दशक के मध्य में, जब संयुक्त राष्ट्र (यूएन) ने 1975 को "अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष" के रूप में घोषित किया, तो दुनिया भर की राजनीति में महिलाओं की उपस्थिति महत्व का मुद्दा बनने लगी। संयुक्त राष्ट्र ने तब 1976-1985 के वर्षों को उस समय के दौरान "समानता, विकास और शांति" को बढ़ावा देने के व्यापक लक्ष्य के साथ महिलाओं पर ध्यान केंद्रित करने के लिए समर्पित किया। 73 वें और 74 वें संविधान संशोधन अधिनियमों के बावजूद, जिसने महिलाओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर देकर राजनीतिक स्तर पर महिलाओं की स्थिति को बढ़ावा दिया, भारत में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी आज तक भी काफी महत्वहीन बनी हुई है। हालांकि, इन कृत्यों के परिणामस्वरूप कुछ प्रकार का सुधार हुआ है। भारत के संविधान के 73 वें और 74 वें संशोधन (1993) ने महिलाओं के लिए पंचायतों और नगर पालिकाओं के स्थानीय निकायों में सीटों के आरक्षण की अनुमति दी। इसने स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी के लिए एक ठोस मंच स्थापित किया।

शैक्षिक समानता

स्कूलों में लड़कों और लड़कियों का नामांकन एक और क्षेत्र है जिसमें महिलाओं की समानता ने वयस्क साक्षरता कार्यक्रमों के बारे में जानकारी के प्रसार के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में महत्वपूर्ण प्रगति का प्रदर्शन किया है। साक्षरता पहलों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी के परिणामस्वरूप पढ़ने के स्तर में लिंग अंतर उत्तरोत्तर कम होता जा रहा है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि नियोलिटरेसी वाले परिवारों में लड़कों और लड़कियों के बीच स्कूल नामांकन में लिंग अंतर कम या बिना साक्षरता स्तर वाले लोगों की तुलना में काफी कम है। दुनिया भर में लड़कियों और लड़कों के लिए उपलब्ध मौलिक शैक्षिक अवसर अब समान हैं। हालांकि, केवल कुछ ही देशों ने स्कूली शिक्षा के सभी स्तरों में इस लक्ष्य को पूरा किया है। राजनीतिक जीवन में सक्रिय महिलाओं की संख्या हमेशा बढ़ती जा रही है। जनवरी 2014 तक, 46 राष्ट्र थे जिनमें संसद के कम से कम एक सदन में 30 प्रतिशत से अधिक महिला सांसद शामिल थीं। अभी भी कई देशों में लैंगिक समानता की कमी है, और महिलाएं जीवन के कई पहलुओं में भेदभाव सहन करना जारी रखती हैं, जिसमें स्कूल और रोजगार, आर्थिक संपत्ति और राजनीतिक जुड़ाव तक पहुंच शामिल है। हर उद्योग जिसमें हम काम करते हैं, महिलाओं और लड़कियों के लिए अद्वितीय चुनौतियों और बाधाओं का अपना सेट है। दुनिया में 62 मिलियन कम शिक्षित महिलाएं हैं जितनी होनी चाहिए। उनके जीवनकाल में, दुनिया की हर तीन में से एक महिला किसी न किसी प्रकार की लिंग-आधारित हिंसा का शिकार होगी। विकासशील दुनिया में, हर सात लड़कियों में से एक की शादी 15 साल की उम्र से पहले कर दी जाती है, और कुछ बाल दुल्हन आठ या नौ साल की उम्र तक होती हैं। गर्भावस्था और प्रसव के दौरान जटिलताएं हर साल दुनिया भर में 287,000 से अधिक महिलाओं की मृत्यु के लिए जिम्मेदार हैं, जिनमें से 99 प्रतिशत अविकसित देशों में रहते हैं। इस तथ्य के बावजूद कि कृषि श्रम शक्ति में महिलाओं की हिस्सेदारी 40 प्रतिशत से अधिक है, मुश्किल से 3 से 20 प्रतिशत महिलाओं के पास वास्तव में संपत्ति है। अफ्रीका में सभी फर्मों का केवल 10 प्रतिशत महिलाओं द्वारा चलाया जाता है, और उनमें से अधिकांश उप-सहारा अफ्रीका में हैं। दक्षिण एशिया में केवल 3 प्रतिशत आबादी इस श्रेणी में आती है। और इस तथ्य के बावजूद कि वे दुनिया की आधी आबादी बनाते हैं, महिलाएं दुनिया के विधायी निकायों का 20 प्रतिशत से बहुत कम बनाती हैं। एक ऐसा वातावरण बनाना जिसमें महिलाओं और लड़कियों को पुरुषों और लड़कों के साथ समान आधार पर व्यवहार किया जाता है, हर उद्योग को बदलने की क्षमता रखता है जिसमें हम शामिल हैं। लैंगिक समानता को बढ़ावा देना और महिलाओं का

सशक्तिकरण विकास का एक पहलू नहीं है; बल्कि, यह विकास के लिए आवश्यक है। इस समस्या को समाप्त करने के लिए, हमें महिलाओं और लड़कियों की सहायता करने की हमारी प्रतिबद्धता को मजबूत करने के साधन के रूप में लैंगिक समानता और महिलाओं के सशक्तिकरण पर कुछ शैक्षिक जागरूकता कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

विकास की दिशा में आगे बढ़ने और नेतृत्व करने की देश की क्षमता उस भूमिका से दृढ़ता से जुड़ी हुई है जो महिलाएं देश को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया में निभाती हैं। वे एक जीवंत मानवता की आवश्यक संपत्ति हैं, जो राष्ट्रीय समृद्धि के लिए आवश्यक है; नतीजतन, अगर हम अपने देश में महिलाओं के लिए एक उज्ज्वल भविष्य देखना चाहते हैं, तो उन्हें शिक्षा प्रदान करना हमारी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे एक जीवंत मानवता की महत्वपूर्ण संपत्ति हैं। कमजोरी की स्थिति से अधिकार की स्थिति में जाने का अर्थ है "सशक्त बनना। महिलाओं की शिक्षा एकमात्र सबसे प्रभावी उपकरण है जिसका उपयोग समाज की मौजूदा स्थिति को बदलने के लिए किया जा सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि महिलाएं आबादी का एक बड़ा प्रतिशत बनाती हैं। शिक्षा न केवल लोगों को अधिक आत्मनिर्भर बनने में सक्षम बनाती है, बल्कि यह उन्हें उस परिवार के अधिक सम्मानित सदस्य बनने में भी सक्षम बनाती है जिससे वे संबंधित हैं। यह राज्य में शिक्षा के सभी स्तरों पर महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने और सूचना और शिक्षा के प्रसार में लैंगिक पूर्वाग्रह के प्रभाव को कम करने के लिए किया गया था। राज्य ने स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की स्थापना की जो इन दोनों लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए केवल महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। शिक्षा, अन्य बातों के अलावा, लिंग भेदभाव को खत्म करने के इरादे से सरकार, पंचायतों और अन्य सार्वजनिक समस्याओं में भागीदारी के विचार को बढ़ावा देती है।

संदर्भ

1. सुगुना एम (2011)। भारत में शिक्षा और महिला सशक्तिकरण। बहु-विषयक अनुसंधान की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका: वॉल्यूम 1. मुद्दा 8.
2. शिंडू जे (2012)। शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण। अभिनव जर्नल: खंड 1। मुद्दा- 11. पी. 3.
3. के. महालिंगा। पंचायत राज संस्थानों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण। इंडियन जर्नल ऑफ इंडिया अनुसंधान: खंड 3। मुद्दा 3.
4. छिब्बर बी (2010)। महिलाएं और भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया। मुख्यधारा साप्ताहिक जर्नल: वॉल्यूम XLVIII-मुद्दा 18.
5. भट टी (2014) भारत में महिला शिक्षा हमेशा की जरूरत। ह्यूमन राइट्स इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल: वॉल्यूम 1 पी.3.
6. कोटुला, लोरेंजो (1 जनवरी 2007)। स्थानीय संसाधन नियंत्रण के लिए कानूनी सशक्तिकरण: अफ्रीका में विदेशी निवेश परियोजनाओं के भीतर स्थानीय संसाधन अधिकारों को सुरक्षित करना। IIED, 2007. पृष्ठ 48. आईएसबीएन 9781843696674
7. जिमरमैन, एमए (2000)। सशक्तिकरण सिद्धांत: विश्लेषण के मनोवैज्ञानिक, संगठनात्मक और सामुदायिक स्तर। "सामुदायिक मनोविज्ञान की पुस्तिका," 43-63।
8. रैपापोर्ट, जे (1984)। सशक्तिकरण में अध्ययन: इस मुद्दे का परिचय। "मानव सेवाओं में रोकथाम," 3, 1-7।

द्वीपों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

डॉ० रत्न प्रकाश द्विवेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, खरडीहा महाविधालय, खरडीहा गाजीपुर

जलवायु परिवर्तन से इसकी दृश्यता हिमालयी क्षेत्र से लेकर बंगाल की खाड़ी या भारत के अन्य तटीय क्षेत्रों तक है, क्योंकि समुद्र का जल स्तर भारत के लिए सबसे खतरनाक जलवायु परिवर्तन का कारण बन रहा है। यह अनुमान है कि बहुत लज्द हम 4 मिलियन जलवायु के लक्ष्य तक पहुंच सकते है। रिफ्यूजी जो बिना किसी कानूनी ढांचे के आंतरिक रूप से विस्थापित हो जाएंगे। सुंदरबन सबसे संवेदनशील क्षेत्र हैं जहां जलवायु परिवर्तन से मैं किसी भी रूप, समुद्र के स्तर में वृद्धि, बाढ़ और तूफान, कटाव, बढ़ते पानी और हवा के तापमान, टूटे तटबंधों, टूटे हुए मौसम के पैटर्न के बारे में बता सकता हूँ इन सभी के बीच सबसे महत्वपूर्ण कारक समुद्र के स्तर में वृद्धि के कारण मनुष्यों का आंतरिक प्रवास है। यह संयुक्त राष्ट्र के जलवायु परिवर्तन द्वारा दावा किया गया था कि ''दुनिया को जलवायु विस्थापन से निपटने की आवश्यकता है'', यूरोपीय संसदीय अनुसंधान सेवा के अनुसार, यह वर्ष 2000 में 173 मिलियन से बढ़कर 2017 में 258 मिलियन हो गया था, दिन-ब-दिन बढ़ते हुए, क्योंकि लोग तटीय क्षेत्रों से पलायन कर रहे हैं और द्वीप मुख्य रूप से समुद्र के स्तर में वृद्धि, ड्राफ्ट, चक्रवात, बाढ़ के कारण है।

यूएनएफसीसी के अनुसार, दुनिया में हर जगह बदललते मौसम की स्थिति, मानव जीवन को सबसे खराब रूप में विकृत करती है, कुछ लोग समुद्र के स्तर में वृद्धि या बाढ़ या सूखे, या ठंड के काटने के कारण अपना आवास खो रहे है, लोग अपने प्राकृतिक आवास से स्थानांतरित होने के लिए मजबूर हैं या उन्हें जरूरत है हर दिन परिवर्तनों के साथ लड़ने और अपनी जमीन पर रहने जैसे कुछ मजबूत निर्णय लेने के लिए (UNFCC, 2018)। जलवायु परिवर्तन के सभी गंभीर मुद्दों और इससे जुड़े जोखिमों पर पेरिस समझौते 2015 (UNFCC, 2015) से संयुक्त राष्ट्र द्वारा ध्यान दिया गया, लेकिन जलवायु विस्थापित लोगों पर ऐसी कोई चर्चा नहीं हुई, बल्कि यह एक वर्ग के मानव और प्रवासन द्वारा प्राकृतिक संसाधनों की कमी पर आधारित था। इससे खतरनाक प्रभावों के कारण अन्य वर्ग के मानव। COP24 में पोलैंड में हुआ, UNFCC और पार्टियों ने स्थानीय और स्वदेषी समुदायों के लिए मंच पर निर्णय लिया (COp 24.2018)। एंटोनियों गुट्रेस, UNFCC के महासचिव के अनुसार, ''हम समय से बाहर चल रहे हैं, उन्होंने इस पर जोर दिया। 1.5 डिग्री तापमान में वृद्धि का मुद्दा, यह दुनिया भर में द्वीपीय और तटीय निवासियों के लिए विनाशकारी हो सकता है, जो तापमान में वृद्धि के सबसे बुरे परिणामों का सामना करेंगे, यह अब कोई अज्ञानतापूर्ण मुद्दा नहीं है, यह कुछ के लिए दयनीय होता जा रहा है। यूरोपीय संसदीय अनुसंधान सेवा के अनुसार, लोग अपने मूल स्थान से दूसरे तक जलवायु का एकमात्र कारण होने के कारण पलायन कर रहे हैं, यह 2017 में 173 मिलियन से बढ़कर 2017 में 258 मिलियन हो गया था।[1] लोग उन्हें 'शरणार्थी' के रूप में संबोधित करना पसंद नहीं करते हैं, उनके पास भूमि, बसने वाले आजीविका पैटर्न थे जो थोड़े समय में ही गायब हो गए थे, इसलिए, वे जलवायु परिवर्तन को रोकने के कारण एक बार गरीब होने के संकट के साथ रह रहे हैं, जलवायु विस्थान के मुद्दे को दूसरे प्रकार के शरणार्थी संकट के रूप में नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, यूएनएफसीसी के अनुसार, यह उन सभी तटीय लोगों के लिए संकट होगा जो अपने मूल स्थान को अपना घर कहते है, जो तापमान 1.5 डिग्री से अधिक होने पर पानी में डूब जाएगा।

भारत के जलवायु विस्थापित लोगों के जीवन पर यह अध्ययन पहला है और यह संबोधित करने के लिए 'जलवायु परिवर्तन' केवल एक शब्द नहीं है, इसका सीधा सामना करने वाले लोगों पर सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिणाम है और इसे मानव केन्द्रित जोखिम की आवश्यकता है और इस संकटग्रस्त बेघर लोगों को बेहतर ढंग से समायोजित करने के लिए लचीलापन मॉडल। इसने उनके जीवन और उनके आसपास के वातावरण के बारे में समझ को बदल दिया, वे अपने घर, सामान, सामाजिक व्यवस्था, विवाह

पद्धति, कृषि-खेती और मछली पकड़ने की व्यवस्था, धर्म और त्योहारों के पैटर्न को बचाने में असफल रहे, इससे वे अव्यवस्थित हो गए और वे हार गए उनका सामुदायिक नियंत्रण पूरी तरह से है, इस तरह बाहरी प्रभाव बड़े पैमाने पर आंतरिक विफलता का कारण बनता है। अज्ञात लोगों के साथ एक अज्ञात जगह में जाना उनके लिए आसान नहीं था, क्योंकि वे सामाजिक नियंत्रण और गतिशीलता के साथ अपने स्वयं के छोटे कॉम्पैक्ट सामाजिक प्रणालियों के साथ आइलैंडर्स के रूप में रहते थे। सरकार के लिए हमेशा यह संभव नहीं है कि वह विस्थापितों को नई जगह मुहैया कराए, क्योंकि उनकी अपनी धार्मिक समस्याएं हैं, फगन के अनुसार, भारत के लिए चार हजार किलोमीटर से अधिक बाड़ का निर्माण किया था।

सुंदरबन डेल्टा पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव-

यह भारत का सबसे अधिक कटाव वाला तटीय क्षेत्र है, हाजरा एट अल के अनुसार, भारतीय सुंदरवन डेल्टा को 1969-2001 के दौरान 162.879 किमी0 2 की कुल भूमि हानि हुई थी। हालांकि, और पिछले 30 वर्षों में भूमि की मात्रा का अनुमान 82.505 किमी0 2 है। यह 102 द्वीपों के साथ 4000 वर्ग किमी0 क्षेत्र में कुल है, जिसमें केवल 54 बसे हुए हैं, इसमें दुनिया का सबसे बड़ा मैन्ग्रोव वन है और दुनिया के रूप में मान्यता प्राप्त है। विरासत स्थल, सुंदरवन के द्वीपों के गंभीर जलमग्न होने का सबसे प्रभावी कारण जलवायु परिवर्तन है, जिसमें सिस्टम की कई विफलताएं हैं, जैसे मिट्टी की लवणता बढ़ रही है, कृषि को नुकसान हो रहा है, टूटे तटबंध, बढ़ते ज्वार, लगातार चक्रवात, मछली पकड़ने की प्रणाली की गड़बड़ी अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर रही है। खराब औद्योगिक अर्थव्यवस्था और कम ढांचागत विकास वाले लोगों की आबादी अभी भी मैंग्रोव वन और इसके प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है।[2] बढ़ती लवणता सभी फसलों को मारने के लिए पर्याप्त है और सिंचाई प्रणाली को बाधित करती है इसलिए केवल मौसमी कृषि होती हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय के अनुसार, 4,150,000,000 टन कार्बन डाइऑक्साइड भारत के इस हिस्से में भिगो रहा है। दिल्ली बार काउंसिल की रिपोर्ट के अनुसार, तापमान 0.5 से 0.6 डिग्री तक बढ़ गया है, जो मैंग्रोव वन और जलीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर रहा है। कृषि भूमि 2,149.615 वर्ग किलोमीटर से 1,691.246 वर्ग किलोमीटर तक डूब गई है, पास के हलदिया बंदरगाह से सीवेज डिस्चार्ज बढ़ने के इस क्षेत्र में गाद बनने की पूरी प्रणाली बदल गई है जो द्वीपों के सिकुड़ने में मदद कर रही है। वन आवरण में 5 प्रतिशत की कमी आई है और नए रोग महामारी हैं, जिससे मानव-पशु संघर्ष बढ़ रहे हैं।[3]

1920 का आंतरिक रूप से विस्थापित: घोरमारा और लोहचरा द्वीप पर जलवायु प्रवासियों के जीवन का अन्वेषण, एक केस स्टडी भारतीय एक्सप्रेस (2015) के अनुसार, बंगाल की खाड़ी में एक द्वीप है ''डूबता हुआ द्वीप'', जो अपनी आधी जमीन 22000 बीघा जमीन से लेकर 5000 बीघा जमीन और कई रहने योग्य गांवों तक खो सकता था, ''घोरमारा और लोहारा'' सुंदरबन द्वीप का द्वीप जलवायु परिवर्तन के कारण तटीय भारत का सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र है।

पानी में हमेशा के लिए अपनी खुद की भूमि का चयन करना एक ऐसी स्थिति है, जिसमें आप दु:ख और भ्रम के अलावा कुछ भी नहीं छोड़ते हैं, यह लोग हर दिन इसका सामना कर रहे थे, अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे थे और अपनी जमीन को बचाने के लिए उन्होंने भयावह रूप से काम किया अपनी जमीन की रक्षा के लिए मिट्टी के बांध बनाने के लिए खतरनाक स्थिति में कीचड़ काटने जैसी परिस्थितियाँ, उन्होंने अपनी जमीनों को बचाने के लिए पूरे परिवारों के साथ मिलकर काम किया है, लेकिन जब माँ प्रकृति उनसे नाराज हो गई और उनकी सारी रणनीतियाँ और ज्ञान विफल हो गए, और वहाँ थे उनके अनुसार, उनकी भूमि को बचाने के लिए कोई दया नहीं। एक ठीक सुबह वे पानी के एक पुल में जाग गए, और अपने घरों को पानी में डूबने से बचाने की कोशिश की, लेकिन यह भंग हो गया। वे सभी केवल एक आधार पहचान पत्र और उनके साथ कुछ सामान के साथ, एक उच्च क्षेत्र की ओर अपना जीवन बचाने के लिए भाग गए। बस एक रात में उस गांव के सभी लोग भूमिहीन हो जाते हैं। वे उनके अनुसार भिखारी बन जाते हैं, और उन्हें आस-पास के बचे हुए खेतों पर अलग-अलग मजदूरी का काम करना पड़ता था और महिलाएं विशेष रूप से झींगुरों को पकड़ने की कला सीखतीं थीं और युवा काम के लिए उस जगह को छोड़ते थे। शरद ऋतु के समय में छोटे हिलसा (तेनुओलोसा इलिशा) और बामला (हार्पडॉन नेहेरेस), पोम्फ्रेट (पैम्पस अर्जेंटियस), मैकेरल (रैकरेलिगर कानागुट्टा), रोहु (लबियो रोहिता) वीटकी (लेट्स कैलकेफर) को पकड़ने के लिए यह सबसे अच्छा मौसम है। गहरे समुद्र, और लाल केकड़ों के साथ किनारे के पास कुछ छोटी मछलियाँ, फिर सर्दियों का मौसम आता है, जो केवल सूखी मछलियों के लिए होता है, सर्दियों के लिए सभी घर अच्छी तरह से सूखने वाली मछलियों से सुसज्जित होते हैं, लेकिन इस बार मछली पकड़ने में भारी बदलाव होता है, क्योंकि जल स्तर अपनी मछलियों को गहराई तक ले जाता है और मछुआरे के लिए वहां तक पहुंचने के लिए यात्रा कठिन बना रही है,

और प्राकृतिक आपदाएं भी लगातार होती जा रही हैं, जो गहरे समुद्र में रहने का समर्थन नहीं कर रही है इसलिए यह एक बहुत बड़ा नुकसान है, अगर आप उस मछली की मात्रा के बिना ट्रोलिंग से लौट रहे हैं जिसकी आप उम्मीद कर रहे थे प्रति यात्रा दो लाख की तरह इतना पैसा निवेश करना, उनके पास तीन प्रकार के जाल हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में मछली पकड़ने के लिए हैं जैसे लैगून मछली पकड़ना, गहरे पानी में मछली पकड़ना, तीन आकार के साथ नहर मछली पकड़ना। उनके दैनिक जीवन में एक बड़ा बदलाव आया है जब उन्होंने आपातकालीन स्थिति पर अपनी सरकार द्वारा सागर द्वीप में पुनर्वास किया है, उन्हें अपने हाथों से पूरे वन क्षेत्र को रहने योग्य क्षेत्र में रीमेक करना पड़ा, उन्होंने योजना बनाई है कि उन्हें इस क्षेत्र में वितरित किया जाना चाहिए, जहां कोई संघर्ष नहीं हो सकता है और जीवित रहना आसान होगा, इसलिए हर घर के बीच में नहरें होती हैं और एक बगीचा, एक तालाब, कृषि क्षेत्र के एक बीघा और उनके सामने खुले घर होते हैं, जो कुछ भी वे अपने खोए हुए आवास के अनुसार आकार लेते हैं, आप कर सकते हैं। घोरमारा द्वीप का एक टूटा हुआ टुकड़ा सागर में देखें, जिसे लोगों द्वारा बनाया गया था ताकि जल स्तर में वृद्धि और कटाव में सब कुछ खो जाए। यह घटना दुनिया भर में तटीय क्षेत्रों में हो रही

जलवायु परिवर्तन अनुसंधान में, परिदृश्य भविष्य के विभिन्न पहलुओं के प्रशंसनीय प्रक्षेपवक्र का वर्णन करते हैं जो मानवजनित जलवायु परिवर्तन के संभावित परिणामों की जांच के लिए निर्मित होते हैं।

जलवायु शासन और अंतर्राष्ट्रीय प्रशासन के अन्य क्षेत्रों के बीच अंतराल को कम करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून की प्रणालियों की गहन जांच की आवश्यकता होती है जो पर्यावरण प्रबंधन, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, समुद्र के कानून और मानव अधिकारों के क्षेत्र में मौजूदा कानूनी व्यवस्थाओं के मापदंडों को परिभाषित करते हैं। इन डोमेन में अंतर्राष्ट्रीय कानून बनाने वाले कानून के निकाय विशाल, भीड़भाड़ वाले और खंडित हैं; उनके पास सुसंगतता, समझदारी और अक्सर दीर्घकालिक प्रभावशीलता का अभाव है। यह अंतर्राष्ट्रीय शासन की ध्वनि प्रणालियों की संरचना के प्रयासों को जटिल बनाता है।[4]

जलवायु परिवर्तन के भीतर कई महत्वपूर्ण संकेतक जो वैश्विक सहमति और एक सुसंगत समाधान के निर्माण के लिए एक सहकारी पद्धति का निर्माण करने के लिए मापदंड और दृष्टिकोण का सही मूल्यांकन करने में मदद करेंगे। इस संबंध में विभिन्न पहलुओं को देखना होगा जो भविष्य और वर्तमान के लिए महत्वपूर्ण है। यह मूल्यांकन केवल बहु मापदंड दृष्टिकोण लेने पर किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण प्रभावितों और उन परिणामों पर विचार करता है, जिन्हें उन लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम नहीं होने पर सामना किया जा सकता है। मूल्यांकन को परिदृश्यों के रूप में दिखाना होगा जो जलवायु परिवर्तन पर काबू पाने के लिए कड़े कदम उठाने के लिए उपयोगी होगा।

संदर्भ

1. ईपीआरएस, 2018, P.2.12
2. Abbott, Kenneth. W, (2012),”Engaging the public and the private in global sustainability governance”, *International Affairs*, 88: 3, 543–564.
3. Abbott, Kenneth. W, (2012),”Engaging the public and the private in global sustainability governance”, *International Affairs*, 88: 3, 543–564.
4. The Fatter the Tail, the Fatter the Climate Agreement

सतत विकास की अवधारणाः पर्यावरण के संदर्भ में

डॉ० सन्तोष कुमार गुप्ता

भूगोल विभाग

''सतत विकास एक ऐसा विकास है जिसमें भविष्य की जरूरतों को पूरा कर सकने की क्षमता से बिना समझौता किए वर्तमान की जरूरतों को पूरा किया जाता है।'' सतत विकास विश्व की प्राकृतिक संसाधनों की सीमा के भीतर रहकर सततता पर सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिकी प्रगति और क्षमता के विचार के रूप में ध्यान केन्द्रित करने तथा इन तत्वों के आपस में जोड़ने वाले बहुत से स्रोतों की मांग करता है। इसे ध्यान में रखना अत्यंत जरूरी है कि इन तीन सूत्रों को आपस में एक इकाई के रूप में गुत्थे हुए हैं। सतत विकास में व्यापक रूप से पसरी हुई गरीबी की परिस्थिति का उन्मूलन और उपशमन भी शामिल है। धारीणीय विकास एक ऐसा रास्ता है जिसके द्वारा हम ना सिर्फ वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करते है, बल्कि आने वाली भावी पीढ़ियों की भी जरूरत को ध्यान में रखते हैं। संसाधनों का जिस तीव्रता से उपभोग हो रहा है उतनी तीव्रता से हमारी प्रकृति इनको फिर से पूरा नहीं कर सकती है। विकास के लिए सतत अवस्था (पर्यावरणीय सततता) संसाधनों की मांग और पूंजी में समतूल्यता स्थापित करने वाले कारक है। इसलिए सततता के तीन अलग-अलग अवस्थाओं के बारे में सोचा जा सकता है। यह अवांछित (असतत अवस्था) वांछित (समतूल्यता की अवस्था) और अत्यधिक वांछित (सतत अवस्था) में हो सकता है। ज्यों ही संसाधनों की मांग पूर्ति से अधिक हो जती असतत अवस्था घटित होती है। जब संसाधनों के उपभोग की मांग प्रकृति के द्वारा उसे पुनः पूरा कर सकने की क्षमता के समतूल्य होती है तो यह सतत अवस्था से समतूल्यता बनाती है। सबसे अधिक वांछित अवस्था सतत अवस्था हैं जिसमें संसाधनों के उपभोग की मांग प्रकृति द्वारा इसे पूरा कर सकने की क्षमता से कम होती है। भारत ने सतत विकास के बारे में सोचने और इसे अवधारणाकृत करने की ओर कदम बढ़ाया है। 1972 में जब इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री थीं उन्होंने स्टाकहोम में ह्यमैन एनवायरमेंट पर हो रहे यू एन सम्मेलन में सतत विकास के लिए पर्यावरण सुरक्षा पर ध्यान दिया। उन्होनें कहा कि गरीबी का उन्मूलन विश्व के लिए पर्यावरणीय रणनीति का एक अभिन्न भाग है।सतत विकास, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा के एकीकरण द्वारा लोक कल्याण को सुनिश्चित करेगा।

पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता

वर्तमान समय में मनुष्य प्रगति की ओर उन्मुख है। वह प्रतिदिन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक क्षेत्र में उन्नति कर विकास की ओर बढ़ता जा रहा है वहीं दूसरी ओर विकास की गति हमारे लिए कष्टकारी सिद्ध होती जा रही है और इसी विकास के कारण हमारा पर्यावरण प्रभावित होकर प्रदूषित होता जा रहा है। वनों के कटाई, वनस्पतियों और जीवों के संबंधों में कमी, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण में वृद्धि, विज्ञापन तथा तकनीकी का अप्रत्याशित प्रसार और जनसंख्या विस्फोट तथा परमाणु भट्टियों में पैदा होने वाली रेडियाधर्मी ईधन की राख, रासायनिक प्रदूषक और इलेक्ट्रानिक उपकरण जनित प्रदूषक सामग्री के विस्तार से जो पारिस्थितिकी परिवर्तन प्रदूषण के रूप में सामने आ रहे हैं उससे प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया है। प्रकृति दोहन के कारण जो स्थितियां पैदा हो रही हैं उसमें प्रकृति कब तक मनुष्य का साथ दे पाएगी यह अनुमान लगाना कठिन नहीं हैं। विकसित देश जिस आर्थिक विकास का लाभ आज उठा रहे हैं वह भूतकाल में मानवीय पर्यावरण के संरक्षण को ध्यान में रखे बिना प्रापत किया गया था।''[1]आज से पचास वर्ष पहले से ही पर्यावरणविद मानव और प्रकृति के बिगड़ते संबंधों के बारे में सचेत किए जा रहे है, लेकिन उपभोग के नाम पर औद्योगीकरण दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है।

किसी भी देश में प्रदूषण की रोकथाम तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए सबसे बेहतर उपाय है कि पर्यावरण संबंधी पारंपरिक कानूनों तथा आधुनिक कानूनों को सम्मिलित कर एक बेहतर कानून का निर्माण करके वहां के सीमित संसाधनों को ध्यान में रखते हुए पर्यावरणीय सुरक्षा के बेहतर उपाय किए जाएं तथा इसके लिए सभी सकारात्मक एवं प्रासंगिक उपायों को अपनाया जाए। अत: पर्यावरण संरक्षण के लिए वैश्विक तथा राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। वैश्विक स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संस्था द्वारा तथा राष्ट्रीय स्तर पर संविधान द्वारा तथा सरकारी प्रावधानों द्वारा पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।

पर्यावरण संरक्षण: मानवीय दृष्टिकोण

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में प्रकृति से अनुराग केवल उपयोगितावादी दृष्टि से नहीं वरन् पूजा श्रद्धा और आदर की भावना से किया जाता है। वेदों में भी कहा गया है 'रक्षाये प्रकृति पातुं लोका' अर्थात् प्राणी मात्र के लिए प्रकृति की रक्षा कीजिए। यही पर्यावरणीय संरक्षण का भाव वर्तमान समय में स्टाक होम सम्मेलन में दिखाई देता है। सन् 1972 में स्टाकहोम में पर्यावरण पर आयोजित प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनमें एक मत से सभी ने पर्यावरण संरक्षण को मानवता की आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया। सौभाग्य से तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने इसका प्रतिनिधित्व किया और इसे एक व्यवहारिक रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने जहां एक ओर पर्यावरण के संरक्षण को प्राथमिकता देना बेहिचक स्वीकार किया वहीं उन्होंने इस बात को जोरदार ढंग से सामने रखा कि इस मुद्दे का समाधान विकास की समस्या से साथ जोड़कर ढूंढा जाना चाहिए। इसके साथ ही उन्होंने रेखांकित किया कि ''पर्यावरण के लिए संकट वर्तमान में उत्पन्न हुआ है उसके लिए खुद औपनिवेशिक शक्तियां कम जिम्मेदार नहीं है। तेल हो या खनिज अपनी जरूरत के लिए इन संसाधनों का दोहन करते वक्त प्रकृति के स्वास्थ्य की कोई चिन्ता सम्पन्न पश्चिमी देशों ने कभी नहीं की थी।[2]

पिछले डेढ़ दशक के दौरान दुनियाभर में पर्यावरण प्रदूषण की घटनाओं में गंभीर वृद्धि देखी गई है। इस तथ्य से इन्कार तो नहीं ही कियाजा सकता है कि हम सभी उसी पृथ्वी पर रहते हैं, जो कि एकमात्र ऐसा ग्रह है, जहां पर्यावरण है। यह एकमात्र ग्रह है, जहां वायु और पानी दो बुनियादी चीजें मौजूद हैं और ये दोनों चीजें जीवन को बनाए रखती हैं। यह अच्छी तरह से पता है कि हवा और पानी नहीं होते, तो पृथ्वी भी ब्रह्मंड के अन्य ग्रहों की तरह ही होती-यानी यहां कोई आदमी नहीं, कोई जानवर नहीं, कोई पौधे नहीं होते। जिस जीवमंडल में जीवित प्राणी हैं, वहां उनके जीवन के लिए ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड, आर्गन और जल वाष्प हैं। मां जैसी प्रकृति ने जीव-जंतु वाली इस दुनिया में जीवन के स्वस्थ विकास को सुनिश्चित करने और जीव जंतुओं की सहायता के लिए एक संपूर्ण संतुलन की व्यवस्था कर रखी है। यह संतुलन न केवल जानवरों और पौधों के बीच जीवन-चक्र में मदद करता है, बल्कि यह खनिजों और ऊर्जा के निरंतर स्रोत भी पैदा करता है, जिसके बिना आज की मानव सभ्यता के निर्माण की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इसी संतुलन का कमाल है कि इतने हजारों सालों से मानव जीवन और अस्तित्व के अन्य रूप अच्छी तरह बढ़ते रहे। पर्यावरण प्रदूषण के लिए निम्नलिखित कारक जिम्मेदार हैं, जो टिकाऊ विकास की राह में भी एक बड़ी बाधा है:

उद्योग:

उद्योग पर्यावरण प्रदूषण का एक प्रमुख स्रोत है। इस वास्तविकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि दुनियाभर के उद्योगों ने समृद्धि और विकास को नया आयाम दिया है, बल्कि जीवमंडल में दखलंदाजी की है और पारिस्थितिक में काफी उथल-पुथल भी लाया है। धुआं, चक्कर काटती गैसें, औद्योगिक अपशिष्ट और वैज्ञानिक अनुप्रयोगों में गिरावट प्रमुख स्वास्थ्य खतरा बन गए हैं। यह हवा और पानी दोनों दूषित-प्रदूषित कर चुका है। अब तो यह सर्वस्वीकृत है कि औद्योगिक अपशिष्टों का अनुचित निपटारा ही मिट्टी और जल प्रदूषण का प्रमुख स्रोत है। इसके अलावा, उद्योग से पैदा होने वाली रासायनिक अपशिष्ट, झीलों, नदियों और समुद्र तथा यहां तक कि मिट्टी को भी प्रदूषित कर देता है।

1. प्रदूषण

हवा, पानी और मिट्टी के प्रदूषण को पुन: संभालने के लिए लाखों साल की आवश्यकता होती है। उद्योग और मोटर वाहन निकास नंबर एक प्रदूषक हैं भारी धातुएं, नाइट्रेट्स और प्लास्टिक, प्रदूषण के लिए जिम्मेदार जहरीले पदार्थ हैं। जबकि जल प्रदूषण

तेल बिखराव, अम्ल वर्षा, शहरी प्रवाह के कारण होता है; वायु प्रदूषण विभिन्न गैसों और उद्योगों और कारखानों और जीवाश्र्म इंधनों के दहन द्वारा उत्पन्न विषों के कारण होता है; मिट्टी प्रदूषण प्रमुख रूप से औद्योगिक कचरे के कारण होता है जो आवश्यक पोषक तत्वों से मिट्टी को वंचित करता है।

2. ग्लोबल वार्मिंग

ग्लोबल वार्मिंग जैसे जलवायु परिवर्तन मानव पद्धतियों का परिणाम है जैसे ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन। ग्लोबल वार्मिंग महासागरों और पृथ्वी की सतह के तापमान को बढ़ाते हैं जिससे ध्रुवीय बर्फ के आच्छादन, पिघलने लगते है, समुद्र के स्तर में वृद्धि होती है और वर्षा की अप्राकृतिक पद्धति जैसे तीव्र बाढ़, अत्यधिक बर्फ या मरूस्थलीकरण होने लगता है।

3. अधिक जनसंख्या

ग्रह की आबादी अरक्षणीय स्तर तक पहुंच रही है क्योंकि यह पानी, ईधन और भोजन जैसे संसाधनों की कमी का सामना करती है। कम विकसित और विकासशील देशों में जनसंख्या विस्फोट पहले से ही दुलर्भ संसाधनों पर दबाव डाल रहा है। रासायनिक उर्वरक, कीटनाशकों और कीटाणुनाशकों के उपयोग के माध्यम से पर्यावरण को नुकसान पहुंचाते हुए गहन कृषि का अभ्यास किया जाता है। अधिक जनसंख्या महत्वपूर्ण वर्तमान पर्यावरण समस्याओं में से एक है।

4. प्राकृतिक संसाधन रिक्तिकरण

प्राकृतिक संसाधन रिक्तिकरण एक औ महत्वपूर्ण वर्तमान पर्यावरणीय समस्या है। जीवाश्म ईंधन की खपत से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है, जो कि ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है। विश्व स्तर पर, लोग ऊर्जा के अक्षय स्रोतों जैसे सौर, पवन, बायोगैस और भूतापीय ऊर्जा में बदलावा के लिए प्रयास कर रहे हैं। बुनियादी सुविधाओं को स्थापित करने और इन स्रोतों को बनाए रखने की लागत हाल के वर्षों में घट गई है।

5. अपशिष्ट निपटान

संसाधनों की अधिक खपत और प्लास्टिक का निर्माण अपशिष्ट निपटान का वैश्विक संकट पैदा कर रहे हैं। विकसित देश कचरे या कूड़े के अत्यधिक मात्रा में उत्पादन करने और महासागरों और कम विकसित देशों में अपना कूड़ा डंप करने के लिए कुख्यात हैं। परमाणु कचरे के निपटान के साथ स्वास्थ्य संबंधी खतरें जुड़े हैं। प्लास्टिक, फास्ट फूड, पैकेजिंग और सस्ते इलेक्ट्रानिक अपशिष्ट मनुष्य के कल्याण को खतरा पैदा करते हैं। अपशिष्ट निपटान जरूरी वर्तमान पर्यावरण समस्या में से एक है।

6. जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन अभी तक एक अन्य पर्यावरणीय समस्या है जो पिछले कुछ दशकों में सामने आई है। यह ग्लोबल वार्मिंग में वृद्धि के कारण होती है जो जीवाश्म ईंधन को जलाने और उद्योगों द्वारा हानिकारक गैसों को उत्सर्जित करने से वातावरण के तापमान में वृद्धि के कारण होती है। जलवायु परिवर्तन में कई हानिकारक प्रभाव हैं, जो कि ध्रुवीय बर्फ के पिघलने, मौसम में परिवर्तन, नए रोगों की घटना, बाढ़ की लगातार घटनाएं और समग्र मौसम परिदृश्य में परिवर्तन तक सीमित नहीं है।

7. जैव विविधता का नुकसान

मानव गतिविधि प्रजातियों और निवासों के विलुप्त होने और जैव विविधता के नुकसान की ओर अग्रसर हैं। पारिस्थितिकी प्रणालियां, जो लाखों सालों में परिपूर्ण हुयीं है, खतरे में है, जब किसी भी प्रजाति की आबादी कम हो रही है। पारिस्थितिकी तंत्र और मानव गतिविधि के अस्तित्व के लिए परागण जैसी प्राकृतिक प्रक्रियाओं का संतुलन महत्वपूर्ण है। एक और उदाहरण विभिन्न महासागरों में प्रवाल भित्तियों का विनाश है, जो समृद्ध समुद्री जीवन का समर्थन करता है।

समस्याएं

एसिड वर्षा

वातावरण में कुछ प्रदूषकों की उपस्थिति के कारण एसिड वर्षा उत्पन्न होती है। एसिड बारिश जीवाश्म ईधन के दहन या ज्वालामुखी विस्फोट यासड़ने वाली वनस्पति के कारण हो सकती हैजो वायुमंडल में सल्फर डाईऑक्साइड और नाइट्रोजन आक्साइड को छोड़ देते हैं। एसिड बारिस एक ज्ञात पर्यावरणीय समस्या है जो मानव स्वास्थ्य, वन्यजीव और जलीय प्रजातियों पर गंभीर प्रभाव डाल सकती है।

12. जल प्रदूषण

स्वच्छ पेयजल एक दुलर्भ वस्तु बनता जा रहा है। जल एक आर्थिक और राजनीतिक मुद्दा बनता जा रहा है क्योंकि मानव जनसंख्या इस संसाधन के लिए संघर्ष करती है। सुझाए गए विकल्पों में से एक विलवणीकरण की प्रक्रिया का उपयोग करना है। औद्योगिक विकास हमारे नदियों, समुद्रों और महासागरों को जहरीले प्रदूषण से भर रहा है जो मानव स्वास्थ्य के लिए एक बड़ा खतरा है।

13. शहरी फैलाव

शहरी फैलाव का मतलब है कि उच्च घनत्व वाले शहरी इलाकों से कम घनत्व वाले ग्रामीण इलाकों में आबादी कम घनत्व वाले ग्रामीण इलाकों में आबादी का पलायन, जिससे शहर अधिक से अधिक ग्रामीण इलाकों में फैलता है। शहरी फैलाव का परिणाम भूमि में गिरावट, यातायात में वृद्धि, पर्यावरणीय मुद्दें और स्वास्थ्य के मुद्दे हैं। भूमि की लगातार बढ़ती मांग वनस्पतियों और जीवों के प्राकृतिक वातावरण को स्थानान्तरित करने की जगह विस्थापित करती है।

14. सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्याएं

वर्तमान पर्यावरणीय समस्याएं मनुष्य के स्वास्थ्य, और जानवरों के स्वास्थ्य के लिए बहुत जोखिम पैदा करती है। गंदा पानी दुनिया का सबसे बड़ा स्वास्थ्य जोखिम है और जीवन और सार्वजनिक स्वास्थ्य की गुणवत्ता के लिए खतरा पैदा करता है। नदियों के लिए प्रवाह में, जीवों के साथ जहरीले पदार्थों, रसायों और बीमारियों के जीवों को ले जाता है। प्रदूषक, हृदय-नाड़ी संबंधी समस्याओं जैसे अस्थमा और श्वसन रोग पैदा करते है। उच्च तापमान संक्रामक रोगों जैसे डेंगू को फैलने को प्रोत्साहित करता है।

संदर्भ

1 http://zeenews.india.com/hindi/science/2014-was-the-warmest-year-so-far/264335

2 http://www.who.int/mediacentre/commentaries/climate-change-conference/en/

महादेवी वर्मा की साहित्यिक यात्रा

डॉ० शालिनी

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय निनौआ, फर्रुखाबाद

सार

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य की दुनिया में शीर्ष क्रम में से एक हैं। जय शंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी, 'निराला' और सुमित्रा नंदन पंत जैसे "छायवाद" आंदोलन के अग्रदूतों के साथ उन्हें हमेशा श्रद्धा के साथ याद किया जाता है। उनकी शैली ऐसी थी कि वे प्रकृति के रहस्यवाद को मनुष्य की उच्चतम कल्पना के साथ आसानी से एकीकृत कर सकती थीं जहां दुख और सुख आपस में जुड़े होते हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य को न केवल समृद्ध किया बल्कि उसे एक नई दिशा भी दी, उसे नए उद्देश्यों की ओर निर्देशित करते हुए एक अधिक सुखद और आनंदमय पथ की ओर अग्रसर किया। उनके पाठक न केवल उनकी अलंकृत भाषा और सुंदर अभिव्यक्ति से प्रभावित थे, बल्कि परम सत्य के साथ एकता की भावना से उभरने वाले शाश्वत सत्य के दार्शनिक बोध की गहरी सौंदर्य धारा से भी प्रभावित थे, जिसने उनके पाठकों को शाश्वत सुख या आनंद का स्वाद लेने में सक्षम बनाया। इस पत्र के माध्यम से महादेवी वर्मा की साहित्यिक यात्रा का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य-शब्द: कृतियां; नारीवादी योगदान; साहित्यिक जीवन; विरासत।

परिचय

महादेवी वर्मा एक प्रसिद्ध कवयित्री और विद्वान थी। उनके अधिकांश कार्यों में हम आध्यात्मिकता का सार देख सकते हैं। वे वर्ड्सवर्थ की तरह प्रकृति प्रेमी थीं। उनके लिए प्रकृति की सुंदरता न केवल आनंद की वस्तु थी, बल्कि पूजा और आराधना की वस्तु भी थी। प्रकृति, उनके लिए आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाने वाली प्रेरणा का एक शाश्वत स्रोत थी। उनका मानना था कि महिलाओं के शिक्षित होने से ही समाज प्रबुद्ध होता है। वह चाहती थीं कि महिलाएं सशक्त हों और आत्मनिर्भर बनें। महादेवी वर्मा की महत्वपूर्ण कृतियों में दीप शिखा, निहारिका, निर्जा, रश्मि, यम, संध्या गीत, साम-रीति की रेखाएँ और अतीत के चलचित्र शामिल हैं। उनके लिए गद्य बुद्धि का विषय था और पद्य भावना का विषय था। गद्य में व्यक्ति को विचार करने और चर्चा करने के लिए विषयों की आवश्यकता होती है, लेकिन कविता अपने आप बहती है। इसे किसी प्रकार के बाहरी सहयोग की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में अपने को सुंदर ढंग से अभिव्यक्त कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। वह ललित कलाओं, संस्कृति और अपनी कविताओं, कला-कथाओं और अन्य लेखन के माध्यम से आत्म-अभिव्यक्ति में भी गहराई से शामिल थीं।[1]

उन्हें राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी लेकिन वह समकालीन परिदृश्य से बहुत अवगत थीं। वे समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, घूस, कपट, असत्य, झूठ और पाखंड के रूप में व्याप्त बुराइयों के खिलाफ थीं। वह सत्य की पुजारी थीं और महात्मा गांधी की एक वफादार प्रशंसक और शिष्या थीं। उन्होंने कहा, "महाभारत के समय केवल एक असत्य पांडवों और कौरवों दोनों के लिए बहुत दुर्भाग्य लेकर आया था, लेकिन अब हर कोई असत्य और पाखंड का आश्रय ले रहा था। इसलिए, हम समाज में हर जगह गहरे संकट और दुख पाते हैं। भगवान ही जानता है कि देश का क्या होगा।" हिंदी संस्थान, ल्यूक-नो में अपने अध्यक्षीय भाषण में, उन्होंने स्वार्थी और आत्म-केंद्रित राजनेताओं के तरीकों पर अपनी पीड़ा व्यक्त की, उन्होंने हमेशा अपने लिए कल्याण को महत्व दिया और लोगों की आम भलाई को नजरअंदाज कर दिया। उनके अनुसार, राजनेता बेईमान अत्याचारियों के हाथों की कठपुतली मात्र बन गए हैं और उनका एकमात्र उद्देश्य सत्ता के गलियारों में सर्वोच्च सीट हासिल करना था। उन्होंने कहा, "मैं समझ सकती हूं कि अगर

कोई देश की सेवा करने का सपना देखता है और राष्ट्र निर्माण के महत्वपूर्ण कार्य के लिए खुद को समर्पित करता है या बड़े पैमाने पर मानव जाति की सेवा करता है, लेकिन मैं यह नहीं समझ सकता कि कोई व्यक्ति कैसे छीनकर मामलों के शीर्ष पर होने का सपना देख सकता है। "सत्ता हासिल करने के खेल में सबसे ऊंची कुर्सी और फिर भी सोचते हैं कि वह एक महान व्यक्ति हैं।"[2]

महादेवी ने महात्मा गांधी के जीवन दर्शन का बारीकी से पालन किया। उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू और डॉ. राजेंद्र प्रसाद जैसी बड़ी हस्तियों के साथ काम किया। उन्होंने महसूस किया कि सच्चाई और खुशी स्वाभाविक रूप से बलिदान से बहती है, सर्वोच्च वास्तविकता के साथ पुनर्मिलन से। उसने अपने जीवन में जो उपदेश दिया, उसका अभ्यास किया। यहाँ तक कि उनकी कविताओं का एक-एक शब्द कमोबेश धर्मोपदेश या शास्त्र का एक अंश बन गया।

महादेवी वर्मा का जन्म 1907 में फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ था। वह एक वकील के परिवार से आई थी। उसके दो भाई और एक बहन थी। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा मध्य प्रदेश के जबलपुर में प्राप्त की। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. किया। उनका विवाह 1914 में डॉ. स्वरूप नारायण वर्मा से हुआ था, जब वह केवल 9 वर्ष की थीं, लेकिन विवाह के बाद उन्होंने अध्ययन जारी रखा। अपने वैचारिक मतभेद के कारण वे अधिकतर अलग-अलग रहते थे।

महादेवी वर्मा का साहित्यिक जीवन

महादेवी वर्मा ने इलाहाबाद महिला विद्यापीठ की पहली प्रधानाध्यापिका की नौकरी ली, जिसे हिंदी माध्यम से लड़कियों को सांस्कृतिक और साहित्यिक शिक्षा देने के लिए शुरू किया गया था। बाद में, वह संस्थान की अध्यक्ष बनीं। वह बौद्ध धर्म से भी काफी प्रभावित थीं और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से भी जुड़ी थीं। महादेवी वर्मा ने खुद को एक चित्रकार के रूप में भी स्थापित किया। उन्होंने स्वयं दीपशिखा और यम जैसी अपनी काव्य कृतियों का चित्रण किया।

महादेवी वर्मा छायावादी हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध कवयित्रियों में से एक थीं। इस विधा के अन्य प्रसिद्ध कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद और सुमित्रानंदन पंत हैं। वह अपनी पुस्तक अतीत के चलचित्र (द मूविंग फ्रेम्स ऑफ द पास्ट) और स्मृति की रेखाएं (द फ्लेम ऑफ ए अर्थेन लैम्प) 1942 के लिए जानी जाती हैं। इस पुस्तक में 51 गीत हैं। सभी कविताएँ सर्वोच्च एक से अलग होने की गहरी पीड़ा पर आधारित हैं और रहस्यवाद से भरी हैं। इस गुण के लिए अक्सर उनकी तुलना 16वीं शताब्दी की संत कवयित्री मीराबाई से की जाती थी। उनकी कुछ अन्य प्रमुख पुस्तकें निहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1934) और संध्या गीत (1936), दीपशिखा (1942), सप्तपर्णा (1960), सप्तपर्णा (1960), अग्निरेखा (1990, उनके बाद प्रकाशित) हैं। मौत)। उन्होंने अपनी कविताओं में भारतीय दर्शन को भी शामिल किया।[3]

महादेवी वर्मा की कृतियाँ

उनकी प्रसिद्ध गद्य रचनाओं में, श्रृंखला की कादियान भारतीय महिलाओं की परेशानियों के बारे में है। उनके अन्य प्रमुख गद्य प्रकाशन साहित्यकार की आस्था, पथ के साथी संकल्प, संभाषण हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में तत्सम और तत्व शब्दों का मिश्रण किया है। उन्होंने हिंदी साहित्य में एक नए युग की शुरुआत की - रहस्यवाद। जैसा कि वह एक समाज सुधारक, एक महिला कार्यकर्ता, एक सांस्कृतिक और राजनीतिक नेता थीं, उन्होंने इस क्षेत्र से अपना विषय चुना। महादेवी वर्मा को 1982 में सर्वोच्च भारतीय साहित्य पुरस्कार ज्ञानपीठ से सम्मानित किया गया था। 1956 में उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था। वह 1979 में साहित्य अकादमी की पहली महिला फेलो थीं। 1988 में उन्हें भारत सरकार द्वारा पद्म विभूषण की उपाधि दी गई थी। महादेवी वर्मा की महत्वपूर्ण कृतियों में दीप शिखा, निहारिका, निर्जा, रश्मि, यम, संध्या गीत, साम-रीति की रेखाएँ और अतीत के चलचित्र शामिल हैं। उनके लिए गद्य बुद्धि का विषय था और पद्य भावना का विषय था। गद्य में व्यक्ति को विचार करने और चर्चा करने के लिए विषयों की आवश्यकता होती है, लेकिन कविता अपने आप बहती है। इसे किसी प्रकार के बाहरी सहयोग की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में अपने को सुंदर ढंग से अभिव्यक्त कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। वह अपनी कविताओं, लेखों और अन्य लेखन के माध्यम से ललित कला, संस्कृति और आत्म-अभिव्यक्ति में भी गहराई से शामिल थीं।[4]

उनकी शैली ऐसी थी कि वे प्रकृति के रहस्यवाद को मनुष्य की उच्चतम कल्पना के साथ आसानी से एकीकृत कर सकती थीं जहां दुख और सुख आपस में जुड़े होते हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य को न केवल समृद्ध किया है बल्कि उसे एक नई दिशा भी दी है, उसे नए उद्देश्यों की ओर निर्देशित करते हुए एक अधिक सुखद और आनंदमय पथ की ओर अग्रसर किया है। उनके पाठक

न केवल उनकी अलंकृत भाषा और सुंदर अभिव्यक्ति से प्रभावित थे, बल्कि परम सत्य के साथ एकता की भावना से उभरने वाले शाश्वत सत्य के दार्शनिक बोध की गहरी सौंदर्य धारा से भी प्रभावित थे, जिसने उनके पाठकों को शाश्वत सुख या आनंद का स्वाद लेने में सक्षम बनाया।

वह चाहती थीं कि महिलाएं सशक्त हों और आत्मनिर्भर बनें। उन्हें राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी लेकिन वह समकालीन परिदृश्य से बहुत अवगत थीं। वे समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, घूस, कपट, असत्य, झूठ और पाखंड के रूप में व्याप्त बुराइयों के खिलाफ थीं। वह सत्यनिष्ठ थीं और महात्मा गांधी की एक वफादार प्रशंसक और शिष्या थीं। उन्होंने कहा, "महाभारत के समय केवल एक असत्य पांडवों और कौरवों दोनों के लिए बहुत दुर्भाग्य लेकर आया था, लेकिन अब हर कोई असत्य, असत्य और पाखंड का आश्रय ले रहा था। इसलिए, हम समाज में हर जगह गहरे संकट, दुख और दुख पाते हैं। "भगवान ही जानता है कि देश का क्या होगा।"[5]

हिंदी संस्थान, ल्यूक-नो में अपने अध्यक्षीय भाषण में, उन्होंने उन तरीकों पर अपनी पीड़ा व्यक्त की, जो राजनेता स्वार्थी और आत्म-केंद्रित थे, उन्होंने हमेशा अपने कल्याण के लिए महत्व दिया और लोगों की आम भलाई को नजरअंदाज कर दिया। उनके अनुसार, राजनेता बेईमान अत्याचारियों के हाथों की कठपुतली मात्र बन गए हैं और उनका एकमात्र उद्देश्य सत्ता के गलियारों में सर्वोच्च सीट हासिल करना था। उन्होंने कहा, "मैं समझ सकती हूं कि अगर कोई देश की सेवा करने का सपना देखता है और राष्ट्र निर्माण के महत्वपूर्ण कार्य के लिए खुद को समर्पित करता है या बड़े पैमाने पर मानव जाति की सेवा करता है, लेकिन मैं यह नहीं समझ सकता कि कोई व्यक्ति कैसे छीनकर मामलों के शीर्ष पर होने का सपना देख सकता है।" सत्ता हासिल करने के खेल में सबसे ऊंची कुर्सी हो जाती है और फिर भी सोचते हैं कि वह एक महान व्यक्ति हैं।"

नारीवादी योगदान

एक कवि के रूप में उनके काम ने अक्सर एक नारीवादी और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में उनके काम की देखरेख की है। वर्मा की कविताओं और निबंधों ने हिंदी में 'नारीवादी लेखन' की शुरुआत की। अपनी पुस्तक, श्रृंखला की कादियान (लिंक्स इन माय चेन्स) में, वह भारतीय महिलाओं द्वारा सामना किए जाने वाले अत्याचारों पर बहुत जोर देती हैं। उनका निबंध, हिंदू स्त्री का पटनिवा (द वाइफहुड ऑफ हिंदू वुमेन) इस बात पर केंद्रित था कि कैसे शादी एक महिला के लिए गुलामी के समान थी। उनके पास कोई वित्तीय स्वतंत्रता या सक्रिय आवाज नहीं थी; उन्हें बस एक बिंदास पत्नी और एक देखभाल करने वाली माँ के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

चा जैसी उनकी कविताओं ने महिला कामुकता के विषय की पड़ताल की। और लघुकथा बिबिया एक ऐसी महिला के बारे में बात करती है जिसने शारीरिक और मानसिक शोषण का अनुभव किया। सबसे प्रसिद्ध नारीवादी गद्य अतीत के चलचित्र (द पिक्चर्स ऑफ पास्ट) मुख्य रूप से महिलाओं के अनुभव पर केंद्रित लघु कथाओं का संग्रह था, जिन्होंने वर्मा के जीवन को गहराई से छुआ था।[6]

उसकी विरासत

वह एक दयालु इंसान थीं और हमेशा सभी प्रकार के आवारा जानवरों को आश्रय देने की ओर झुकी रहती थीं। महादेवी वर्मा ने पुरुष-केंद्रित साहित्यिक और सामाजिक दुनिया में अपना नाम बनाया। उन्हें एक प्रतिष्ठित महिला के रूप में याद किया जाता है, जिन्होंने खादी की साड़ियाँ पहनी थीं और कविताएँ लिखी थीं। 11 सितंबर, 1987 को उनका निधन हो गया, लेकिन उनकी विरासत ने महिलाओं के लिए एक रास्ता बनाया और उनका काम अभी भी इस बात की पुष्टि करता है कि महिलाओं को समाज में अपने अधीनस्थ भाग्य को स्वीकार नहीं करना चाहिए। गांधी की एक भक्त अनुयायी और अधिवक्ता, महादेवी वर्मा भारत में एक घरेलू नाम है और आधुनिक हिंदी दुनिया में पत्रों की एक प्रमुख महिला हैं। भारत में "महिला प्रश्न" पर महादेवी वर्मा के कुछ सबसे प्रसिद्ध लेखों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

महादेवी वर्मा के जीवन और कार्य और आधुनिक मानक हिंदी के विकास के साथ-साथ भारत में 1920 के दशक में चल रहे नवजात महिला आंदोलन दोनों के लिए उनके महत्व को दर्शाता है। भारत के बाहर अकादमी में महिलाओं की शिक्षा में वर्मा के कई योगदानों, आधुनिक मानक हिंदी के विकास और देर-औपनिवेशिक भारत में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान राजनीतिक विचारों

पर बहुत कम विद्वानों का ध्यान दिया गया है। उनकी रचनाओं में मात्रा भाषा और राष्ट्रवाद, कलाकारों के रूप में महिलाओं की भूमिका, मातृत्व और विवाह की राजनीति जैसे विषयों को शामिल करती है – ऐसे विषय जो समकालीन भारत में महिलाओं के जीवन और भारत के बाहर भी महिलाओं के अधिकारों के लिए आंदोलनों के लिए प्रासंगिक बने हुए हैं।[7]

महादेवी वर्मा के नारीवादी राजनीतिक निबंधों के अनुवादों का खंड अपनी तरह का पहला अनुवाद है। जबकि इन निबंधों में से कुछ, विशेष रूप से महादेवी वर्मा के हमारी श्रृंखला की कारियां संग्रह से नीरा के. सोहोनी द्वारा अनुवादित किए गए हैं और लिंक्स इन द चेन (कथा, 2003) शीर्षक के तहत प्रकाशित किए गए हैं, वर्मा की राजनीतिक सोच का कोई निरंतर इलाज नहीं है। जबकि हिंदी में वर्मा पर पर्याप्त काम है, नारीवाद के विद्वान (और हिंदी के छात्र जो भाषा अधिग्रहण के शुरुआती चरणों में हैं) उनके काम के व्यापक नमूने के लिए कहीं नहीं जाते हैं।[8]

साहित्य में महादेवी वर्मा का आविर्भाव उस समय हुआ जब खड़ी बोली के आकार को परिष्कृत किया जा रहा था। उन्होंने हिंदी कविता में ब्रजभाषा की कोमलता का परिचय दिया। उन्होंने हमें भारतीय दर्शन को दिल से स्वीकार करने वाले गीतों का भंडार दिया। इस प्रकार उन्होंने भाषा, साहित्य और दर्शन तीनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य किया जिसने आगे चलकर एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया। उन्होंने अपने गीतों की रचना और भाषा में एक अद्वितीय लय और सरलता पैदा की, साथ ही साथ प्रतीकों और छवियों का स्वाभाविक उपयोग किया जो पाठक के मन में एक तस्वीर खींचती हैं। छायावादी काव्य की समृद्धि में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। जहाँ जयशंकर प्रसाद ने छायावादी काव्य को स्वाभाविक रूप दिया, वहीं सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने इसमें मुक्ति को मूर्त रूप दिया और सुमित्रानंदन पंत ने सूक्ष्मता की कला लाई, लेकिन वर्मा ने छायावादी काव्य को जीवन प्रदान किया। उनके काव्य की सबसे प्रमुख विशेषता भावुकता और अनुभूति की तीव्रता है। हृदय की सूक्ष्मतम सूक्ष्म अभिव्यक्तियों की ऐसी जीवंत और मूर्त अभिव्यक्ति 'वर्मा' को सर्वश्रेष्ठ छायावादी कवियों में बनाती है। उन्हें हिंदी में उनके भाषणों के लिए सम्मान के साथ याद किया जाता है। उनके भाषण आम आदमी के लिए करुणा से भरे और सच्चाई के पक्के होते थे। तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन, 1983, दिल्ली में, वह समापन समारोह की मुख्य अतिथि थीं।[9]

निष्कर्ष

अपनी मूल रचनाओं के अलावा, वह अपने अनुवाद 'सप्तपर्ण' (1980) जैसी कृतियों के साथ एक रचनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्होंने अपनी सांस्कृतिक चेतना के सहारे वेदों, रामायण, थेरागाथा और अश्वघोष, कालिदास, भवभूति और जयदेव की रचनाओं की पहचान स्थापित करते हुए हिंदी कविता के 39 चुनिंदा महत्वपूर्ण अंशों को अपनी कृति में प्रस्तुत किया है। प्रारंभ में उन्होंने 61 पृष्ठ की 'अपनी बात' में भारतीय ज्ञान और साहित्य की इस अमूल्य धरोहर के संबंध में गहन शोध किया है, जो केवल स्त्री-लेखन तक ही सीमित नहीं, बल्कि समग्र सोच और ललित लेखन को समृद्ध करती है।

संदर्भ

1. झा, फिजा (11 सितंबर 2019), "कवि महादेवी वर्मा और उनकी अनदेखा नारीवादी विरासत"। प्रिंट।
2. वशिष्ठ, आर.के. (2002), उत्तर प्रदेश (मासिक पत्रिका) अंक 7. लखनऊ, भारत: सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उ.प्र. पृ. 24।
3. अनंतराम, अनीता (30 जनवरी 2012), बॉडीज दैट रिमेम्बर: वीमेन्स इंडीजिनस नॉलेज एंड कॉस्मोपॉलिटनिज्म इन साउथ एशियन पोएट्री, सिरैक्यूज यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. शोमर, काराइन (1983), महादेवी वर्मा और आधुनिक हिंदी कविता का छायावाद युग, बर्कले, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
5. डेविड, रुबिन (1998), सरस्वती की वापसी: चार हिंदी कवि, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. नागर, शिवचंद्र (1953), महादेवी: विचार और अभिव्यक्ति, इलाहाबाद: किताब महल, पृ. 92.
7. रूथ, वनिता (2021), मेरा परिवार महादेवी वर्मा द्वारा, गुरुग्राम: पेंगुइन रैंडम हाउस, पृ. 8–9
8. वर्मा, महादेवी (1962), निहार, साहित्य भवन।
9. वर्मा, महादेवी (सितंबर 2008), यम, लोकभारती प्रकाशन।

दलित उत्थानः ज्योतिबा फुले और डॉ० भीमराव अम्बेडकर

निखिल कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुँअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

भूमिका

भारत वर्ष में सदियों से शोषित पीड़ित मानवता को नई दिशा दिखाने वाले उन्नायकों में ज्योतिबा फुले और डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का योगदान अप्रतिम रहा है। आज के वर्तमान समय में दलित, शोषित, पिछड़ा वर्ग और महिलाएँ सम्मानपूर्वक जीवन जी रहे हैं तो उनमें ज्योतिबा फुले और डॉ0 अम्बेडकर के योगदानों का ही परिणाम माना जा सकता है। इन दोनों महंपुरुषों ने अपने-अपने समय में दलित, शोषित, पिछड़ा वर्ग और महिलाओं की स्थितियों के सुधार हेतु कई कार्यक्रम चलाये थे।

महात्मा ज्योतिबा फुले सामाजिक क्रांति के पुरोधा जिनका पूरा नाम ज्योतिराव गोविंदराव फुले था जिनका जन्म 11 अप्रैल 1827 को पूने महाराष्ट्र में हुआ था। उनका परिवार कई पीढ़ी पहले सतारा से पूने आकर फूलों का काम करता था और इस कार्य में इनकी प्रवीणता के कारण पेशवाओं ने उन्हें और खेती के लिए जमीन उपलब्ध करायी। फूलों के काम में लगे रहने के कारण ये लोग 'फुले' के नाम से जाने जाते थे। वे मात्र 9 माह के थे तब उनकी माता का देहांत हो गया था। कम उम्र में अपने पैत्रिक व्यवसाय में लग जाने के कारण उनकी पढ़ाई भी छूट गयी, जिसे उन्होंने बाद में पूरा किया। उस काल में प्रचलित बाल विवाह से ज्योतिराव भी अछूते नहीं रहे और 12 वर्ष की आयु में उनका विवाह सावित्री बाई फुले के साथ कर दी गई।

जब राष्ट्र अंधकार और अंधविश्वास के युग में जी रहा था और राष्ट्र के निम्न वर्ग और महिलाएँ अपने सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए कराह रही थी तब ज्योतिबा ने निम्न या अछूत वर्ग को इस दशा से बाहर करने हेतु अनेक कार्य किये। दलितोत्थान के अपने कार्यक्रमों में उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं, व नाटक मंचोंका सहारा लेकर अपनी बात लोगों तक पहुंचाने का कार्य किया। ज्योतिबा के विचार में न कोई सवर्ण अर्थात् उच्च जाति का हो सकता है और नही कोई निम्न अर्थात् शूद्र जाति का हो सकता है। मानव-मानव में किस तरह का भेद, मानव कीदो ही जाति है स्त्री व पुरुष तीसरा कोई नहीं।

महात्मा ज्योतिबा फुले का सामाजिक न्याय और दलित उत्थान कार्यक्रम -

विद्या बिना मति गयी, मति बिना नीति गयी।
नीति बिना गति गयी, गति बिना वित गया।
वित बिना शूद गये, इतने अनर्थ, एक अविधा ने किये।।
-महात्मा ज्योतिबा फुले

जिस भारतीय जनमानस ने शोषण व दासता के उत्पीडन का जो दंश झेला था महात्मा फुले ने इसके विरोध में कई कार्यक्रम किए और अपने विचार को देश के कोने-कोने तक पहुँचाने का काम किया। श्री एल0 जी0 मेश्राम ने दलितों की स्थितियों के बारे में बताये है कि ''शूद्रों में से कई लोगों को (जातियों को) रास्ते पर थूकने तक की मनाही थी। इसलिए उन शूद्रों को ब्राह्मणों की बस्तियों से गुजरना पड़ा तो अपने साथ थूकने के लिए मिट्टी के किसी एक बर्तन को रखना पड़ता था।'' (एल0 जी0 मेश्राम 'विमलकीर्ति', महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली, भाग-1, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 प्रस्तावना से) इस बात से पता चलता

है कि उस समय दलितों की स्थिति क्या रही होगी और इन कुप्रथाओं को समाप्त करने का बीड़ा ज्योतिबा ने उठा ले रखा था तो उन्हें भी न जाने कितनी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा होगा। महात्मा फुले के चिंतन के केन्द्र में मुख्य रूप् से धर्म जाति की अवधारणा है। आज जिसे दलित कहा जाता है महात्मा फुले ने इसे शूद्रातिशूद्र कहकर संबोधन किया था। 1848 में शूद्रातिशूद्र कन्याओं के लिए एक पाठशाला की स्थापना की। 1848 के समय में दलित कन्याओं के लिए पाठशाला, स्कूल खोलना अपने आप में एक साहसी और क्रांतिकारी कदम माना जाता थां 1848 में यह पाठशाला खोलकर फुले ने उस समय के समाज के ठेकेदारों को बहुत नाराज कर दिया था। उनके पिता गोविन्दराव जी भी सामंती समाज के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे जिनके कारण उनको अपने पिता के विरोध का सामना भी करना पड़ा और अंततः उसे घर से भी निकाल दिया गया। उसके बाद महात्मा फुले ने दो और विद्यालय खोल दिए और ये विद्यालय सिर्फ दलित कन्याओं के लिए ही नहीं बल्कि इनके पाठशाला में सभी वर्ग के कन्याओं को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था।

महात्मा फुले एक समतामूलक और न्याय पर आधारित समाज के पक्षधर थे। इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में खेतीहर, मजदूर, और किसान के लिए विस्तृत योजना की बात कही। उन्होंने आज के 175 वर्ष पूर्व की कृषि शिक्षा के लिए विद्यालयों की स्थापना की बात कही। साथ ही फुले ने विवाह प्रथा के कर्मकांड में स्त्री को पुरुषों के अधीन माना जाता था लेकिन महात्मा फुले का दर्शन हर स्तर पर गैर बराबरी का विरोध करता था। बाल विवाह के भी घोर विरोधी रहे थे और इसके लिए अभिभावकों को समझाने का अथक प्रयास भी करते रहे। इसके साथ ही वे विधवा विवाह के भी पक्षधर थे। उनका कहना था जब पुरुष दूसरी बार विवाह कर सकता है तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती समान अधिकार की बात करते थे और स्त्रीयों के नारकीय जीवन से बाहर निकालने हेतु कई कार्य किए जिसमें उन्हें सफलता भी मिली। इनके इस विशाल समतामूलक समाज निर्माण की झलक उनके ग्रंथ, ग्रंथरचयिता की प्रस्तावना में देखने को मिलती है जिसमें उन्होंने लिखें हैं कि ''अपने इस असीम विशाल अवकाश में निर्माता ने अनगिनत सूर्यमण्डलों के साथ उनके ग्रहों-उपग्रहों के साथ उनसे संबंधित सभी जीव-प्राणियों को पैदा किया है। उनमें से हम सभी मानव नर-नारियों को उसके लिए क्या-क्या करना चाहिए। हम सभी नर-नारियों को उसका स्मरण मन जागृत रखकर एक-दूसरे के साथ किस तरह का आचरण करने से उसको खुशी होगी, इसके दृष्टि में रखते हुए मैंने उसकी मेहरबानी से सभी मानव नर-नारियों के कल्याण के लिए यह छोटा-सा ग्रंथ लिखा है। यह सभी के स्वीकार करने योग्य हो और हम सभी लोग निर्माता के सत्यम राज का समान उपभोग कर सकें, मेरी उससे यही मांग है। (एल0 जी0 मेश्राम 'विमलकीर्ति', महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली, पृ0 95) इससे स्पष्ट होता है कि ज्योतिबा फुले ऐसे समतामूलक समाज निर्माण के पक्षधर थे जिसमें सिर्फ दलितोत्थान ही नहीं बल्कि पुरुष के समक्ष स्त्री की पराधीनता नहीं बल्कि समान अधिकार के हिमायती थे।

महात्मा ज्योतिबा फुले का मानव मुक्ति कार्यक्रम सिर्फ दलित वर्ग तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि इसके साथ उन्होंने पिछड़ा वर्ग का उत्थान भी चाहते थे और साथ ही स्त्रियों की दशा में सुधार के लिए अनवरत कार्य करते रहे। स्त्रियों को शिक्षित करने की दिशा में उन्होंने सर्वप्रथम पुणे के बुधवार पेठ में कन्या पाठशाला खोला और अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को शिक्षित कर उसमें प्रथम शिक्षिका के रूप में नियुक्त किये इसके लिए उन्हें कई विरोध व संघर्षों से गुजरना पड़ा परन्तु अपने कार्य से पिछे नहीं हटे। ऐसे में कहा जा सकता है कि सावित्रीबाई आधुनिक भारत की पहली विदुषी व महान समाज सेविका थी। 1863 में ज्योतिबा ने 'बाल हत्या प्रतिबंध गृह' की स्थापना की। 1873 में 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की जो दलितोत्थान की दिशा में लोगों को जागृत करने का कार्य और समतामूलक समाज के निर्माण में लोगों की भागीदारी बढ़ाने का काम किया और साथ ही साथ कई महत्वपूर्ण कार्य किये।

जाति से बहिष्कृतः

अछूतोद्धार के लिए ज्योतिबा ने कई अछूत बच्चों को अपने घर पर पाला और अपने घर की पानी उनलोगों के उपयोग के लिए खोल दिए। इसके परिणमस्वरूप उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया गया। फिर उन्होंने कुछ समय तक एक मिशन स्कूल में अध्यापक का काम किया जिससे उन्हें पश्चिम के विचारों से भी परिचित हुए, परन्तु ईसाई धर्म ने उन्हें कभी भी आकृष्ट नहीं कर पाया। 1853 में पति-पत्नी ने अपने मकान में प्रौढ़ों के लिए रात्रि पाठशाला खोली इन सब कामों से उनकी बढ़ती ख्याति देखकर प्रतिक्रियावादियों ने एक बार उन्हें जान से मारने के लिए दो हत्यारों को सुपारी देकर भेजा परन्तु वे ज्योतिबा के समाजसेवा और जनकल्याण के कार्यो से परिचित होकर उनके सच्चे शिष्य भक्त बन गए।

महात्मा की उपाधिः

पिछड़ों, अतिपिछड़ों, महिलाओं, दलितों और निर्बल वर्ग को न्याय और सम्मानपूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा दिलाने के लिए 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। उनकी इन समाजसेवा देखकर 1888 ई0 में बंबई की एक विशाल जनसभा में उन्हें 'महात्मा' की उपाधि से विभुषित किया गया।

डॉ0 बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक न्याय और दलित उत्थान कार्यक्रमः

"जब तक आप सामाजिक स्वतंत्रता नहीं हासिल कर लेते, कानून आपको जो भी स्वतंत्रता देता है वो आपके किसी काम की नहीं।"

– डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर

भारत वर्ष में जब छुआ-छूत का प्रभाव जोर-शोर से पूरे देश में व्याप्त था, उसी समय डॉ0 भीमराव रामजी अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 में हुआ था। वे एक बहुजन राजनीतिक नेता, एक बौद्ध पुनरूत्थानवादी के साथ भारतीय विधिवेळा और भारतीय संविधान के मुख्य वास्तुकार भी थे। उन्हें बाबासाहेब के लोकप्रिय नाम से भी जाना जाता है। इन्हें भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से भी सम्मानित किया गया है। इनका जन्म महार जाति जो एक अस्पृश्य जाति में आता है में हुआ था इसलिए उन्होंने अपने जीवनकाल में छूआ-छूत, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच की कुप्रथाओं को बहुत नजदीक से झेला और महसूस किया था इसलिए इन कुप्रथाओं से काफी आहत भी थे।

बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर जिन्होंने समाज की बेडियां तोड़कर विकास के लिए कार्य किए। उन्होंने अपना सारा जीवन हिन्दू धर्म चर्तुवर्ण प्रणाली और भारतीय समाज में सर्वव्यापित जाति व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष में बिता दिया। हिन्दू धर्म में मानव समाज को चार वर्णों में वर्गीकृत किया गया है के घोर विरोधी भी रहे हैं।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जो ज्योतिबा फुले के अनुयायी थे इन्होंने महात्मा बुद्ध, कबीर के बाद अपने तीसरे गुरु के रूप में महात्मा फुले को ही अंगीकार कर, जाति-प्रथा, छूआ-छूत व ऊँच-नीच के भेदभाव को समाप्त कर समतामूलक समाज की स्थापना हेतु जीवनपर्यत संघर्षरत रहे। डॉ0 अम्बेडकर जाति प्रथा के घोर विरोधी थे। मनु द्वारा रचित मनुस्मृति में चार वर्ण व्यवस्था का कड़ा विरोध करते हुए उसे मानने से इंकार कर दिया और लोगों से ये आह्वान किए कि ये साजिश है जो मानव-मानव के बीच भेदभाव स्थापित करता है। डॉ0 अम्बेडकर स्वयं अछूत घर में पैदा लिये थे। जिसके कारण वे इन कुप्रथाओं से खुद आहत थे। परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि लोग जानवरों से घृणा नहीं करते बल्कि मनुष्यों (शूद्रों) से घृणा करते थे। उस समय में अम्बेडकर ने जो इन शोषित, पीड़ित, उत्पीड़ित समाज को जीवन जीने की एक नई रोशनी दी उसके लिए शोषित समाज उसका हमेशा ऋणी रहेगा। उन्होंने लोगों को यह समझाने का प्रयास किया कि सभी मानव है फिर इसमें छुआछुत क्यों? इन चीजों से लोगों को समझाने में उन्होंने कठिन परिश्रम किये इसके लिए उन्हें कई यातनाएँ मिली परन्तु उन्होंने कभी भी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किए और अनवरत दलितोत्थान की दिशा में कार्य करते रहे।

आज डॉ0 अम्बेडकर को दलितों का मसीहा कहा जाता है। परन्तु उनके दलित उत्थान और समतामूलक समाज के निर्माण कार्य को सिर्फ दलितों तक ही सीमित कर देना उनके साथ बेईमानी सी होगी। उन्होंने न सिर्फ दलितों का उत्थान चाहते थे बल्कि स्त्रियों की दशा में सुधार हेतु कई कार्य किए इस दिशा में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् तत्कालीन भारत के विधि मंत्री के रूप में संसद में प्रस्तावित 'हिन्दू कोड बिल' को देखा जा सकता है। आज दलित वपर्ग कुछ हद तक अपने को बेहतर स्थिति में देख पा रहे हैं इसके पिदे डॉ0 अम्बेडकर का सराहनीय योगदान रहा है। भारत में प्रचलित जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था को वे कभी स्वीकार नहीं किये उनका कहना था कि दलितों को यदि अपनी अवस्था में सुधार लाना है तो वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था से बाहर निकलना होगा। इसके लिए उन्होंने दलित वर्ग को शिक्षा ग्रहण करने पर विशेष जोर दिया और ललकारा कि यही एक मार्ग है जिससे आप अपनी स्थितियों में सुधार ला सकते है। उन्होंने पिछड़ा, दलित वर्ग के लोगों से आह्वान करते हुए कहा कि पहले शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो। उनकी दृष्टि में शिक्षा वह कुंजी है जो विभिन्न मार्ग के दरवाजे को खेल सकता है। उन्होंने दलितों को राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने पर भी जोर दिया और कहा कि सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए रानीति में पूर्ण हिस्सेदारी जरूरी है।

डॉ0 अम्बेडकर और आरक्षण नीतिः-

भारत की विविधता को ध्यान में रखते हुए अवसर की समानता, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का उल्लेख भारतीय संविधान की प्रस्तावता में है। जब आरक्षण की व्यवस्था पर संविधान सभा में बहस हो रही थी तो डॉ0 अम्बेडकर ने गोपाल कृष्ण गोखले की उस बात का उल्लेख किया जिसमें उन्होंने कहा था कि ब्रिटिश कर्मचारी तंत्र में भारतीयों का प्रतिनिधित्व न होने के कारण समाज कुंठित हो रहा है। इसलिए समाज के सभी लोगों का प्रतिनिधित्व होनी चाहिए। नैतिकता के आधार पर उनकी क्षमताओं के उपयोग के लिए उन्हें आरक्षण दिया जाना चाहिए। डॉ0 अम्बेडकर ने कहा कि जब डेढ़ सौ वर्ष पुरानी अंग्रेजी शासन-व्यवस्था में प्रतिनिधित्व न मिलने के कारण भारतीय सवर्ण अपनी क्षमताओं का उपयोग नहीं कर पा रहे थे, तो भारत के दलित समाज की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

इसी पृष्ठभूमि में अम्बेडकर ने संविधान सभामें दलितों को आरक्षण देने की मांग उठाई, ताकि उनका प्रतिनिधित्व हो सके और अपनी क्षमताओं का उपयोग कर सकें। संविधान के अनुच्छेद 15 और अनुच्छेद 16 में सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है जो मौलिक अधिकार के क्षेत्र में भी आता है।

दोनों विचारकों के विचारों की तुलना एवं वर्तमान संदर्भ में उसकी प्रासंगिकताः

बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर ने महात्मा ज्योतिबा फुले को अपना गुरू मानकर अछूतों के कार्य को आगे बढ़ाया। डॉ0 अम्बेडकर महार जाति में पैदा हुए जो महाराष्ट्र में अछूत मानी जाती है जिनके कारण उनको सामाजिक गैर बराबरी का अपमान, छूआछूत एवं जाति के अपमान के विष का घूंट स्वयं पीना पड़ा था। उन्होंने इस सामाजिक आन्दोलन को गति दी। महात्मा फुले ने अछूतो का रक्षित करने का कार्य अपने हाथों में लिया था, जबकि डॉ0 अम्बेडकर ने दलित वर्गो को अपने अधिकारों का बोध कराकर उनकों अपने अधिकारो को प्राप्त करने हेतु सामाजिक आंदोलन के माध्यम से संघर्ष के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने अछूतों को मंदिर में प्रवेश करने, उच्च वर्ग के जातियों के तालाब व कुओं में पानी लेने के अधिकार को लेकर आंदोलन प्रारंभ किया। दोनों ने अछूतों पिछड़ो, अति पिछड़ों महिलाओं को अपने भाग्य में कष्ट भोगना लिख है के सिद्धांत को खारिज करते हुए अपने अधिकारों के लिए हिम्मत से आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

ज्योतिबा फुले द्वारा शोषित, पीडित्रत, पिछडत्रा वर्ग, दलित वर्ग, महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु जो रास्ता तैयार किया उसका अनुसरण डॉ0 अम्बेडकर ने शत-प्रतिशत किया और अपना तीसरा गुरु भी स्वीकार किया। ज्योतिबा फुले के समय इस देश की 75 फीसदी आबादी जिस अंधकार युग में जी रहा था उससे बाहर निकालने में ज्योतिबा बहुत हद तक सफल रहे। डॉ0 अम्बेडकर ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया और समता, स्वतंत्रता, न्याय पर आधारित समतामूलक समाज की प्रतिस्थापना को अमलीजामा पहनाने कि लिए इन प्रावधानों को सांविधानिक रूप देने का काय। किया। जबतक इस देश में वर्णविहिन, जातिविहिन समतामूलक समतामूलक समाज की स्थापना नहीं होती, छुआछूत जैसी कुरुतियों, अंधविश्वासों से मुक्ति नहीं मिल जाती जब तक इन दोनों योद्धा, महापुरुषों के विचारों की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

संदर्भ सूचीः-

1. एल0 जी0 मेश्राम 'विमलकीर्ति', महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
2. श्रामबाबु ज्योति, सामाजिक क्रांति के अग्रदूतः महात्मा ज्योतिबा फुले, साहिन्यागार, जयपुर, 2007
3. कन्हैयालाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2008
4. डॉ0 नामदेव, ज्योतिबा फुले, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2012
5. राजेन्द्र मोहन भटनागर, डॉ0 अम्बेडकरः चिंतन और विचार, जगतराम एण्ड संस, नई दिल्ली, 2008
6. भारतीय राजनीति विज्ञान शोध पत्रिका, वर्ष-प्रथम, अंक-द्वितीय, जुलाई-दिसम्बर-2009
7. थ्बहार जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, जनवरी-जून 2014, वोल्यूम-3, नं0-1
8. सूर्यनारायण रणसुभे, डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1998
9. धर्मवीर, अंबेडकर और दलित आंदोलन, समता प्रकाशन, दिल्ली, 2004
10. चंगदेव, भागनराव खैरमौड़े, बाबा साहेब डॉ0 अंबेडकर, जीवन और चिंतन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005

युवा पीढ़ी के सर्वांगीण विकास में योग की भूमिका

डॉ0 विजय लक्ष्मी मिश्रा

असिस्टेंट प्रोफेसर-समाजशास्त्र, धीरेन्द्र महिला पी0जी0 कॉलेज, करमाजीतपुर, वाराणसी

प्रस्तावना- युवा पीढ़ी में नया जोश होता है, जिसका उपयोग करके युवा अपने तथा अपने परिवार का सर्वांगीण विकास करने में सफल हो सकता है। व्यक्तित्व एक विकासात्मक तंत्र है। जन्म से लेकर मृत्यु तक यह प्रक्रिया चलती रहती है। प्रत्येक व्यक्ति में जन्मजात कुछ जैविक योग्यताएँ वर्तमान रहती है, मनुष्य इन्हीं योग्यताओं के साथ सामाजिक प्रभावों के बीच पलता बढ़ता है। इस प्रकार जन्मजात जैविक योग्यताओं और सामाजिक प्रभावों का अन्त:क्रियाओं के फलस्वरूप ही किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व अपूर्व ढंग का होता है।

योग दर्शन और शिक्षा- योग दर्शन में शिक्षा के संदर्भ में स्वतंत्र रूप से कोई विचार नहीं किया गया है परंतु उसकी तत्व मीमांसा, ज्ञान, मीमांसा और आचार मीमांसा से शिक्षा संबंधी अनेक तथ्यों की जानकारी होती है। मनुष्य के अंत:करण (मन, अहंकार, और बुद्धि) का वैज्ञानिक विश्लेषण योग दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है। यहाँ हम योग दर्शन के शिक्षा संबंधी विचारों को क्रमबद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

शिक्षा वह आधार है जिस पर मानव जाति का संपूर्ण विकास टिका हुआ है। इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान व कला कौशल में वृद्धि व व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। दृष्टिकोण दार्शनिकों का विचार केन्द्र मनुष्य होता है। ये मनुष्य के वास्तविक स्वरूप की जानने तथा उसके जीवन का अंतिम उद्देश्य निश्चित करने का प्रयत्न करते हैं। मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन मार्ग निश्चित करने में भी दार्शनिकों की रुचि होती है और इन सबके ज्ञान एवं प्रशिक्षण के लिए वे शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। इस प्रकार दार्शनिकों की दृष्टि से शिक्षा मनुष्य जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन होती है।

भौतिकवादी दार्शनिक शंकराचार्य जीवन को ही सत्य मानते हैं। इनकी दृष्टि से मनुष्य का अंतिम उद्देश्य सुखपूर्वक जीने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य शरीर व मन से स्वस्थ से तथा इंद्रिय भोग के साधनों से संपन्न हो। यह सब कार्य वे शिक्षा द्वारा करना चाहते हैं।

शिक्षा वह है जो मनुष्य को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने योग्य बनाती है। अध्यात्मवादी दार्शनिक मनुष्य के लौकिक जीवन की अपेक्षा उसके पारलौकिक जीवन को अधिक महत्वशाली मानते हैं। वेदांती तो इस लौकिक जीवन से सदा-सदा के लिए छुटकारा चाहते हैं। इसे वे कहते हैं। स: विद्या या विमुक्तये।

विद्यार्थियों के लिए योग शिक्षा का महत्व- योग को अनुशासन कहा गया है। आज के युग में अनुशासन की आवश्यकता बढ़ गई है। युवा पीढ़ी में अनुशासनहीनता बढ़ रही है- उसके लिए जिम्मेदार हैं, हमारे जीवन की परिवर्तित जीवन शैली। पाश्चात्य सभ्यता को अनुकरण करके हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को नष्ट कर रहे हैं। भौतिकता की दौड़ में हमने अपने मूल्य नष्ट कर दिये हैं। हम इस दौड़ में न अपने शरीर को बलिष्ठ रख पा रहे हैं न मानसिक रूप से संतुलित हो पा रहे हैं।

विद्यार्थियों के लिए आवश्यक है कि विद्याध्ययन के दौरान उनका शारीरिक मानसिक संतुलन बना रहे। आज के युग में पढ़ाई के तौर तरीके बदल गये हैं। स्कूली पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य प्रकार के कौशल भी विद्यार्थी को प्राप्त करने पड़ते हैं। प्रतियोगिता

के दौर में विद्यार्थी को अपना अधिकतम समय पढ़ाई-लिखाई में ही लगाना पड़ता है। इसलिये आवश्यक है कि मानसिक तनाव को दूर करने के लिये खेल या योग के उपायों की श्रेष्ठ जीवन शैली को अपनाया जाये।

विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य का विशेष महत्व होता है। वर्तमान में विभिन्न टी०वी० चौनल उत्तेजक दृश्यों भरे धारावाहिक, फिल्मी गाने तथा अन्य प्रकार के प्रोग्राम करके उपभोक्ताओं को परोसते हैं। उनका उद्देश विज्ञापन के माध्यम से धन कमाना होता है।

लेकिन कोमल भावनाओं का विद्यार्थी इसे समझ नहीं पाता वह विभिन्न प्रकार की हरकतें करने लगता है या मानसिक कुंठाओं का शिकार हो जाता है। इसके लिये अत्यन्त आवश्यक है कि विद्यार्थी योग को अपनाएँ। योग न केवल मन को स्वस्थ रखता है, बल्कि तनाव भी दूर करता है। मनुष्य अभ्यास के बाद अपने आपको तरोताजा महसूस करता है। आसनों तथा प्राणायाम के माध्यम से शारीरिक दृढ़ता आती है, मन संयमित रहता है। ध्यान के कारण एकाग्रता आती है। चित्त की चंचलता दूर होती है। मन एकाग्र होकर पढ़ाई-लिखाई में लगता है। बुरे विचार भी समाप्त हो जाते हैं। विद्यार्थी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है जिससे उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। आधुनिक युग में योग शिक्षा स्वस्थ शिक्षा की ऐसी विधा है जो सबसे प्राचीन होते हुए भी आधुनिक प्रणाली कही जा सकती है। इसकी महत्ता को व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है। इसके प्रचार तथा प्रसार के भरसक प्रयत्न किये जा रहे हैं। यह प्रणाली अत्यधिक सस्ती तथा कम खर्चीली है, सर्वसुलभ है। इसे मनुष्य अपने दैनिक जीवन में नित्य के कार्य-कलापों से संबद्ध कर प्रयोग में ला सकता है।

योग दर्शन भारतीय दर्शन शास्त्र की एक अत्यंत प्राचीन शाखा है। योग को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय महर्षि पतंजलि को है। परंतु इससे पूर्व भी विश्रृंखलित रूप में वेदों, उपनिषदों, सूत्रों आदि में योगदर्शन की विशेषताएँ मिलती है। ऋग्वेद में कई स्थलों पर यौगिक प्रक्रिया का उल्लेख है (ऋग्वेद 1.164.31 तथा 10.177.3)। उपनिषदों में तो 'योग प्रक्रिया के बहुत से प्रमाण उपलब्ध है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (2-7-15)में क्रियात्मक योग का बहुत सुंदर वर्णन किया गया है-समाधि करते समय सिर, गर्दन और रीढ़ को एक सीध में रखना, इन्द्रियों को मन के द्वारा वश में करना, श्वास-प्रश्वास का नियमन, समतल, पवित्र मनोनुकूल स्थान पर योग का अभ्यास करना आदि विधान यहाँ बताए गए है।छान्दोग्योपनिषद (8,6), वृहदारण्यकोपनिषद् (4.3.20) और कौशीतकिउपनिषद् (4.19) में हृदय से पुरीतत (अंतड़ियों) तक जाने वाली नाड़ियों का वर्णन है। उपनिषदों के बाद पुराणों में 'योग' का विस्तार से वर्णन मिलता है। प्राचीन ऋषियों की अंतदृष्टि का कारण भी योग ही था, तभी से दार्शनिकों और धर्म प्रचारकों ने 'योग' की उपयोगिता स्वीकार कर ली है तथा उसका विवेचन अपने-अपने दृष्टिकोण से किया है इसलिए 'योग के अनेक प्रकार है। बुद्ध धर्म में पालीत्रिपिटकों तथा संस्कृत-ग्रन्थों में भी योग का विवेचन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। महावीर स्वामी स्वयं योगी थे और जैन धर्म में योग का विवेचन विशिष्टता से हुआ है। तंत्रों में तो योग का महत्वपूर्ण स्थान है ही। गोरखनाथ के 'नाथ-सम्प्रदाय' में योग का इतना आदर है कि उस संप्रदाय को 'योगी संप्रदाय' के नाम से पुकारते है। नाथपंथी सिद्ध 'हठयोग' के परमाचार्य माने गए है। 'मंत्र योग', 'लय योग, आदि प्रसिद्ध है ही परन्तु योगदर्शन पतंजलि का दर्शन है जिसे 'राज योग' की संज्ञा मिली है।

पतंजलि योग सूत्र- उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि योगदर्शन अत्यंत प्राचीन है। पतंजलि ने इसी सामग्री को एकत्रित करके उसे अपने मौलिक विचारों से सजाकर एक व्यवस्थित रूप दे दिया है। याज्ञवल्क्य-स्मृति के अनुसार हिरण्यगर्भ योग के वक्ता है। पतंजलि ने योग का मात्र अनुसंधान किया, अर्थात प्रतिपादित शास्त्र का उपदेश मात्र दिया है। अत: वे योग के प्रवर्तक न होकर प्रचारक या संशोधक मात्र है। परंपरा के अनुसार'योग सूत्र' के रचयिता और व्याकरण महाभाष्य के निर्माता पतंजलि एक ही व्यक्ति है। 'योग सूत्र' की रचना विक्रम पूर्व द्वितीय शताब्दि में हुई मानी जाती है।

'योग सूत्र' में चार पाद है, जिनकी सूत्र संख्या 195 है। पहला पाद 'समाधिपाद' है। जिसमें समाधि के रूप तथा भेद एवं चित्त और चित्त वृत्तियों का वर्णन है। दूसरा पाद है 'साधनपाद', जिसमें क्रियायोग क्लेश तथा उसके भेद, क्लेशों को दूर करने के दो प्रकार के साधनों का वर्णन है। आंतरिक साधनों में धारणा, ध्यान, समाधि की चर्चा है तथा बाह्य साधनों मे यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार आदि का वर्णन है। तीसरे पाद 'विभूतिपाद' में आंतरिक साधनों के साथ-साथ योगाभ्यास की सिद्धियों का भी वर्णन है। यहाँ बताया गया है कि धारणा, ध्यान और समाधि तीनों का सम्मिलित रूप 'संयम' है। यह संयम 'योग' के लिए नितांत आवश्यक है और चौथे पाद 'कैवल्य पाद' में मुख्य रूप से कैवल्य या मुक्ति अथवा मोक्ष के स्वरूप का पूर्ण रूप से विवेचन किया गया है। यहाँ प्रकृति-पुरूष पर भी प्रकाश डाला गया है। विशेषत: इसी अध्याय के आधार पर योगदर्शन पर 'सांख्य' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

भारतीय दर्शन की अन्य दर्शन पद्धतियों की भाँति योगदर्शन में भी समस्त इच्छाओं का कारण वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ना होना ही है। शरीर इसी अज्ञान के कारण है। इसका समर्थक चित्त है और इसका विषय सांसारिक सुखोपभोग है। जब तक अविद्या का अस्तित्व है, मनुष्य अपने बोझ को उतारकर फेंक नहीं सकता है। अविद्या विवेक ज्ञान से ही दूर हो सकती है। विवेक ज्ञान के अतिरिक्त योग दर्शन मे मोक्षप्राप्ति के अन्य साधनों पर भी बल दिया गया है। इन साधनों में मानसिक क्रियाओं के दमन पर अधिक प्रकाश डाला गया है। मानसिक अनुशासन से जो अवस्था उत्पन्न होती है उसे 'निद्रा' की अवस्था नहीं कह सकते है। वह उससे बिल्कुल ही भिन्न रहती है। यद्यपि दोनो का बाहय रूप एक समान दिखाई पड़ता है। योग के द्वारा एकाग्रता उत्पन्न होती है। रजोगुण और तमोगुण चित्त में क्रमश: बेचौनी तथा मूढ़ता पैदा करते है। सत्वगुण की अधिकता से ही 'एकाग्रता' उत्पन्न होती है। योगदर्शन की मान्यता है कि सभी मनुष्य 'आत्मसंयम' का पालन करने योग्य नहीं होते है कुछ व्यक्ति 'बहिर्मुख' होते है, उनके लिए क्रिया योग का विधान है, जिसमें तप स्वाध्याय भक्ति आदि शामिल है। तप के द्वारा क्लेश व कर्म के परिणाम स्वरूप भीतर उपस्थित संस्कार सहित सभी मलिनताएँ नष्ट हो जाती है। एक योगी जब समग्र होकर समाधिस्थित हो जाता है, तब उसके प्रारब्ध, संचित तथा क्रियमाण कर्म सभी नष्ट हो जाते है अर्थात् उनके फल उसे बांधते नहीं है। योगदर्शन में जीवन का लक्ष्य अनासक्ति या परमस्वाधीनता (कैवल्य) प्राप्त करना है जिस 'पूर्णता' तक पहुँचने की यहाँ बात कही जा रही है उस तक पहुँचने में 'नैतिक-प्रसादन' करते है। 'यम' के पाँच भेद- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह केवल व्यक्ति का नैतिक उत्थान ही नही करते, अपितु सामाजिक कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करते है। 'नियम' के अंतर्गत वर्णित पाँच भेद -शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर भक्ति आदि भी मनुष्य की नैतिक उन्नति के परिचायक है। यही नही, योगदर्शन का निम्न सूत्र व्यक्तिगत तथा सामाजिक एवं पारिवारिक संबंधों के बहुत अनुकूल है-

मैत्री करूणामुदितो पेक्षाणां सुखदुख।
पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित प्रसादनम्।।

अर्थात सुख-दुख, पुण्य-अपुण्य विषयों में क्रम से मैत्री, करूणा, प्रसन्नता व उपेक्षा की भावना से चित्त का प्रसादन होता है। योगी समाधि की अवस्था में भले ही सुख-दुख, पाप-पुण्य से परे हो जाए, पर उसके व्यवहार में मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम होता है। उसके लिए सारा संसार उसका अपना होता है। योग मार्ग के लक्ष्य को प्राप्त कर योगी सुख में मैत्री की भावना रखता है अर्थात सुखी जनों को देखकर हर्षित होता है। दुखी जनो को देखकर करूणा द्रवित हो जाता है तथा उनके दुखो को दूर करने की प्रार्थना करता है। पुण्यशीलों को देखकर हर्षित होता है। पापकर्माओं के प्रति भी द्वेष की भावना न होकर उपेक्षा ही उसके मन में रहती है अर्थात अविरोध भाव से इच्छा करता है कि वे पापमुक्त हो जाए। अत: कहा जा सकता है कि योगदर्शन का 'नीतिशास्त्र' बहुत विकसित है तथा व्यष्टि-समष्टि दोनो के लिए कल्याण साधक है।

उपसंहार- योग युवा पीढ़ी को शारीरिक मानसिक शक्तियों का उचित प्रयोग करने एवं उन्हें विकसित करने हेतु प्रेरित करता है। इसके साथ ही 'योग' एक और स्वाध्याय को महत्व देता है जिसके अंतर्गत धर्म ग्रंथों का अध्ययन किया जाता है, तो दूसरी और ईश्वर प्रणिधान को। योग तथा उसकी क्रियाए शरीर तथा मन को अनुशासित कर जीवन के चरमोद्देश्य आनंद की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होती है। आत्मा में निहित विशेषताओं की निधियों को खोज निकालना योग से ही संभव है। एकांत, मौन व ध्यान मनुष्य की मानसिकता पर गहरा सकारात्मक प्रभाव छोड़ते है। यही कारण है कि आधुनिक चिकित्सक भी 'योग' अभ्यास करने का निर्देश देते है। योग भारतीय मनीषियों के आध्याम्कि चिंतन का सार है। योग में ऐसा माना गया है कि मानव व्यक्तित्व दो परम सत्ता के मंच से निर्मित होता है - पुरूष (चेतना) तथा प्रकृति (शक्ति) प्रकृति से अलग पुरूष शुद्ध, अनिश्चित, चेतन तथा सर्वभौम होता है तथा व्यक्तित्व से उसका कोई मतलब नहीं होता पर जब पुरूष के साथ प्रकृति का मिलन होता है तो वह मानव व्यक्तित्व का रूप धारण करता है। इन दोनों के मिलन से विकास की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। आगे चलकर विकास के क्रम में मन तथा शरीर ;उपदक ंदक इवकलद्ध का जन्म होता है। अत: योग के अनुसार व्यक्तित्व सिर्फ शरीर तथा मन नहीं है बल्कि शरीर, मन तथा आत्मा का एक संगठन है। योग में आत्मा को महत्वपूर्ण माना गया है। आत्मा ही शरीर तथा मन की क्रियाओं को निर्धारित करती है जिसके आधार पर व्यवहार होते है। इस प्रकार योग साहित्य के अनुसार व्यक्तित्व में तीन प्रकार के गुण होते है - शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक। व्यक्तित्व के ये तीनों पहलू एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं बल्कि एक-दूसरे पर निर्भर करते है। व्यक्ति यदि इनमें से किसी एक या दो पहलू का ध्यान रखे और तीसरे की उपेक्षा करे तो उसका व्यक्तित्व समुचित रूप से विकसित नहीं होगा और वे पहलू

भी बुरी तरह प्रभावित होगे जिनका वह ध्यान रख रहे है। उदाहरणार्थ, पश्चिम के कुछ धनी देशों ने व्यक्तित्व-विकास के शारीरिक तथा मानसिक पहलुओं पर तो पर्याप्त ध्यान दिया पर आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा की। फलत: उनका मानसिक स्वास्थ्य भी आहत हुआ। सभी प्राणी उस परमपिता परमेश्वर के अंश हैं। इसलिए सभी से प्रेम करना चाहिए। छोटे-बड़े का भेदभाव भूल कर समता की भावना भरने से योग शिक्षा बहुत सहायक हो सकती है।

संदर्भ सूची-

1. अग्रवाल बी.बी.: आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा 2000
2. स्वामी निरंजानान्द सरस्वती (1994) योग दर्शन देवधर, श्री पंचदशनाम परमहंस अलखवाडा।
3. गोस्वामी आयुष्मान (2006) योग व ध्यान द्वारा आत्मानुभूति शैक्षिक आवश्यकता ज्ञानानंद प्रकाश श्रीवास्तव द्वारा लिखित पुस्तक पर आधारित भारतीय आधुरिक शिक्षा 2006
4. पातंजल योग प्रदीप गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र.
5. योगांक गीताप्रेस गोरखपुर उ.प्र.
6. शिवसंहिता कैवल्यधाम श्रीमत्याधव योग मंदिर समिति लोनावला पुणे (महाराष्ट्र)
7. स्वामी सत्यानंद सरस्वती, 2006 आसन प्राणायाम मुद्रा बंध, योग प्रकाशन ट्रस्ट मुगेंर, बिहार
8. मिश्र नंदलाल 2004 मानव चेतना बी.एस. शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा
9. गोस्वामी हर्षवर्धन, 2011, प्राणायाम, सत्यम पब्लिकेशन, दिल्ली
10. रावत अनुजा 2014, योग और योगी, सत्यम प्रकाशन दिल्ली
11. सिंह एवं सिंह 2002, भारतीय दर्शन, ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली
12. भारद्वाज ईश्वर 2011, मानव चेतना, सत्यम प्रकाशन दिल्ली
13. नागेन्द्र एच.आर. 2015 प्राणायाम, स्वामी विवेकांनंद योग प्रकाशन बैगलौंर
14. स्वाामी विवेकानंद, 2014 राजयोग, पी.एम. प्रकाशन दिल्ली
15. शांति प्रकाश आत्रेय 1965, योग मनोविज्ञान, श्री तारा प्रकाशन वाराणसी

ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में महिला स्वास्थ्यः दशा और दिशा

डॉ० एकता श्रीवास्तव

असि0 प्रोफेसर(गृह विज्ञान) आर0पी0 (पी0जी0) कालेज, मीरगंज, बरेली

सारांश

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं, जिसमें उसकी शक्ति, क्षमता, हिम्मत, स्वास्थ एवं निरोग शरीर की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। विश्व की सामाजिक संरचना में दो वर्ग हैं - महिला और पुरुष। भारत एक पुरुष प्रधान देश है। अतः हमारे समाज में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा निम्न दर्जा प्राप्त है। अतः उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण व देखरेख जैसी आधारभूत सुविधाओं से भी वंचित रखा जाता है। इसका विपरीत प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है।

एक महिला जब स्वस्थ होती है, तब वह प्रसन्न रहती है तथा वह अपने आप को सक्रिय सृजनशील, समझदार तथा योग्य महसूस करती है। उसमें इतनी शक्ति व बल होता है कि वह अपने दैनिक कार्य कर सके एवं परिवार व समाज में निर्धारित भूमिकाओं को निभा सके। दूसरे शब्दों में हम कहें तो महिला स्वास्थ्य उनके जीवन के हर पहलु पर प्रभाव डालता है। ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य संबन्धी अनेक कारण हैं, जिसमें दो मूल कारण हैं-गरीबी तथा महिलाओं का निम्न जीवन स्तर। जिसके कारण महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न होती हैं। ग्रामीण महिलाएं अक्सर अच्छे आवास तथा अच्छे भोजन से वंचित रहती हैं तथा स्वास्थ्य सेवाओं के उपलब्ध होने के बावजूद भी उनका लाभ उन तक नहीं पहुंच पाता हैं, जिससे उनके सामने खराब स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ खड़ी होती हैं।

शब्द कुंजी: ग्रामीण, प्रिरिप्रेक्ष्य, स्वास्थ्य, महिला स्वास्थ्य, दशा, दिशा

प्रस्तावना

भारत की जनसंख्या का अधिकांश भाग ग्रामीण क्षेत्र में रहता है। भारतीय गाँव हमारे लोक-जीवन के समग्र पहलुओं-सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को अपने में समेटे भारत के नव-निर्माण के नाभिक हैं। इनकी गोद में जहाँ हमारे अतीत की विरासत, वहीं इनके गर्भ में नये भारत का भविष्य भी पल रहा है। लोक सस्कृति और प्रकृति से निकट का सम्बन्ध सादगी, सहजता, सामाजिकता, बन्धुत्व, महात्वाकांक्षाओं की लघुता और संवेदनशीलताा हमारे गाँवों की आज भी पहचान है। साथ ही भारतीय गाँवों में बसने वाली देश की 70.0 प्रतिशत आबादी अशिक्षा, अभाव, अन्याय और असमानता की शिकार भी है।

समाज में परिवतर्न लाने के लिये महिलाओं की समान भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी, महिला सशक्तिकरण आज देश एवं राज्य सरकार की प्राथमिकता है, एक महिला स्वस्थ्य होगी तो पूरा परिवार स्वस्थ रहेगा और परिवार स्वस्थ रहेगा तो समाज, राज्य व देश स्वस्थ भी होगा। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं के स्वास्थ्य को लेकर समाज व सरकार जागरूक हो।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं, जिसमें उनकी शक्ति, क्षमता, हिम्मत, स्वास्थ्य एवं निरोग शरीर की भूमिका उनकी सफलताओं एवं उपलब्धियों की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। विश्व की सामाजिक संरचना में दो वर्ग हैं - महिला और पुरुष। भारत एक पुरुष प्रधान देश है। अतः हमारे समाज में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा निम्न दर्जा प्राप्त है। अतः उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण व देखरेख जैसी आधारभूत सुविधाओं से भी वंचित रखा जाता है। इसका विपरीत प्रभाव

उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है। महिलाओं के स्वास्थ्य को तभी अहमियत दी जाती है, जब वह गर्भवती होती है। इसलिए महिलाओं को उनके स्वास्थ्य के प्रति सचेत करने के लिए स्वास्थ्य शिक्षा पर विचार करना आवश्यक है। स्वास्थ्य-शिक्षा से तात्पर्य लोगों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करना है। इसलिए प्रस्तुत आलेख में ग्रामीण महिलाओं में स्वास्थ्य एवं उपचार संबंधी चेतना के बारे में जानने का प्रयास किया गया है।

हमारे समाज में आज भी अनेकों महिलाएँ अपनी सेहत को लेकर उपेक्षा की शिकार हैं। स्वास्थ्य केन्द्रों का उपलब्ध न होना भी सेहत के लिए प्रतिकूल परिस्थिति पैदा करता है। महिलाओं को बर्दाश्त करने की शिक्षा घर-परिवार के सदस्यों द्वारा ही दी जाती है। अत: महिलाएँ डॉक्टर के पास तभी जाती है, जब स्थिति बर्दाश्त से बाहर हो जाती है। संपूर्ण विश्व में स्वास्थ्य के प्रति सजगता और जागृति के उद्देश्य से 7 अप्रैल को 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' मनाया जाता है। लेकिन स्वास्थ्य दिवस की सार्थकता केवल तभी है जब समाज की केन्द्रीय इकाई 'नारी और बच्चे' स्वस्थ हों।

किसी भी समाज के उत्तरोत्तर विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। सामाजिक स्थायित्व एवं उन्नति के लिए महिलाओं का योगदान वांछनीय होता है। पारिवारिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन के लिए भी महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है।

महिलाएँ विकास और सामाजिक स्तर की दृष्टि से काफी पीछे हैं तथा स्त्री-पुरुष असमानता की खाई काफी चौड़ी है। यद्यपि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि प्रदेश में आजादी के बाद से महिला शिक्षा बढ़ी है व समाज में सहभागिता करने की योग्यता का भी विकास हुआ है। महिला उन्नति की कुछ रूकावटें दूर तो जरूर हुई परन्तु उनके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के क्षेत्र में प्रवेश करने के साधन और अवसर दोनों ही सीमित हैं।

हमारे देश में महिलाओं के स्वास्थ्य से संबंधित अनेक अध्ययन हुए हैं। परन्तु महिलाओं में स्वास्थ्य समस्याओं से संबंधित शोध कार्यों की अत्यंत कमी है। संबंधित विषय पर कुछ प्रमुख अध्ययन निम्न हैं:-

'मंजुलता छिल्लर (2010)' ने अपने लेख 'भारतीय नारी: शोषण के बदलते आयाम' में बताया कि आजादी के इतने वर्षो बाद भी महिलाओं के प्रति समाज में ज्यादा बदलाव नहीं आया है। आज भी महिलाओं के स्वास्थ्य और सेहत को लेकर लापरवाही बरती जाती है।

'शुभंकर बनर्जी' ने अपने अध्ययन में बताया कि सामाजिक विकास के बावजूद भारत में ऐसी करोड़ों महिलाएँ हैं जो अपनी अनेक सामाजिक, आर्थिक, मानसिक असमर्थताओं के कारण मजबूर होकर कुपोषित हैं।

'अखिलेश्वर लाल श्रीवास्तव' लिखते हैं कि विभिन्न प्रकार के रोग वातावरण से व्यक्ति अथवा स्त्री को मिलते हैं। जैसे T.B., Viral, Internal Infection etc. अत: नारी के उपचार एवं निदान में समाज में मनोवैज्ञानिक कारकों को विशेष महत्व प्रदान किया जाने लगा है। विश्व महिलाओं के चौथे सम्मेलन में यह कहा गया है कि स्त्री का स्वास्थ्य परिवार की आर्थक सामाजिक स्थिति पर निर्भर करता है। काम के बोझ से स्त्रियों का ध्यान अपने स्वास्थ्य के प्रति जाता ही नहीं। इतने कड़े परिश्रम के पश्चात् इन्हें पौष्टिक आहार भी प्राप्त नहीं होता। इसलिए ये अस्वस्थ्य रहती है।

'मीरा मिश्र' ने अपने अध्ययन में बताया कि ज्यादातर महिलाओं का वजन एवं लम्बाई कम होती है और उनमें खून की कमी होती है। परिणामत: वे कमजोर बच्चों को जन्म देती है और स्वयं भी कुपोषण की शिकार हो जाती है।

ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य की दशा और दिशा

उपरोक्त पूर्ववर्ती अध्ययनों के आलोक में वर्तमान ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य की दशा और दिशा का अध्ययन किया गया है।

स्वास्थ्य का संबध शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक लाभ से है, अर्थात् वही मनुष्य स्वस्थ है, जिसके शरीर में शारीरिक रूप से कोई रोग ना हो, कोई मानसिक द्वन्द ना हो। वह समाज का अभिन्न अंग हो, और आध्यात्मिक रूप से वह स्वस्थ हो, अर्थात् वह ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास रखता हो। सर्वविदित है कि स्वास्थ्य एक बहुआयामी अवधारणा है जो जैविक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक तत्वों द्वारा निर्धरित होती है। प्राथमिक आवश्यकताएँ जैसे भोजन, शुद्ध स्वच्छ जलापूर्ति, आवास, सफाई प्रबंधन और स्वास्थ्य सेवाओं तक जनता की पहुँच उसके स्वास्थ्य स्तर को प्रभावित करती है और यह सब नैतिकता और पोषक संकेतकों द्वारा प्रतिबिंबित होता है।

महिलाओं में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता कम है। वे अपने स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण तथा देखभाल आदि के मामले में काफी उदासीन हैं। इसका कारण महिलाओं का अभी भी रूढ़िवादी परम्पराओं एवं अंधविश्वासों में विश्वास रखना है। हम सामाजिक दृष्टि से महिलाओं के स्वास्थ्य पर विचार करें तो सहज ही ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली महिलाओं को चिकित्सा सुविधा कम प्राप्त होती है। महिला डॉक्टर की कमी भी महिलाओं के ईलाज के लिए अस्पताल न जाने का एक प्रमुख कारण है। ग्रामीण महिलाएं लम्बे समय तक किसी गंभीर रोग का ईलाज भी नहीं करा पाती। इसलिए इनकी कार्यक्षमता दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। हम जब स्त्री स्वास्थ्य पर विचार करते हैं, तो उसके अंतर्गत, कितनी स्वस्थ आयु, पोषण आहार की स्थिति और संतानोत्पत्ति की शक्ति आती है, को देखा जाता है, तो वहीं हिंसा और जोखिम भरा कार्य और कार्य का वातावरण और काम की दशाएँ सभी स्त्री स्वास्थ्य के अंतर्गत आती है। विश्व-महिलाओं के चौथे सम्मेलन में यह कहा गया है कि स्त्री का स्वास्थ्य परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। काम के बोझ से स्त्रियों का ध्यान अपने स्वास्थ्य की ओर जाता ही नहीं। इसलिए ये अस्वस्थ रहती है।

स्त्रियों के स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ

स्त्रियों का स्वास्थ्य मुख्यतया जैवकीय, सामाजिक और सांस्कृतिक तथ्यों से प्रभावित होता है जैसे कि कम उम्र में शादी, अशिक्षा, असुरक्षित गर्भपात, गरीबी, अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएँ, माँ बनने की उम्र, लैंगिक विषमता कम शिक्षा शारीरिक शोषण, घरेलू हिंसा सामाजिक व सांस्कृतिक प्रभाव व रोजगार के कम अवसर आदि। सामान्यतया यह माना जाता है कि स्त्रियाँ पुरुषों की तुलना में अधिक आयु तक जीती है। लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि उनकी जीवन शैली उच्च श्रेणी की है। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार स्त्रियाँ पुरुषों की तुलना में शारीरिक रूप से अधिक कमजोर व अयोग्य होती है। यह सुझाव दिया गया है कि जहाँ मातृत्व सुरक्षा की कमी होती है वहाँ स्त्रियाँ बहुत ही संवेदनशील होती है। असुरक्षित होती है। सामाजिक आर्थिक स्थिति में प्रचलित भिन्नता का मुख्य कारण स्त्रियों की कम उम्र में शादी व शिशु जन्मना है।

भारत में मातृत्व सम्बन्धी मृत्यु दर दुनिया भर में दूसरे सबसे ऊँचे स्तर पर है। देश में केवल 42 प्रतिशत जन्मों की निगरानी पेशेवर स्वास्थ्य कर्मियों द्वारा की जाती है। ज्यादातर महिलाएँ अपने बच्चे को जन्म देने के लिए परिवार की किसी महिला की मदद लेती है। जिसके पास अक्सर ना तो इस कार्य की जानकारी होती है और ना ही माँ की जिन्दगी खतरे में पड़ने पर उसे बचाने की सुविधाएँ उपलब्ध होती है। यूएनडीपी मानव विकास रिपोर्ट (1997) के अनुसार 88 प्रतिशत गर्भवती महिलाए 15 से 49 वर्ष की आयु में रक्त अल्पता (एनीमिया) से पीड़ित पायी गयी थी। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अज्ञानता के कारण औसतन महिलाओं के पास अपनी प्रजजन क्षमता पर थोड़ा या कोई नियन्त्रण नहीं होता। महिलाओं के पास परिवार नियोजन के सुरक्षित व आत्म नियन्त्रण तरीके उपलब्ध नहीं होते। जिसके कारण उन क्षेत्र की महिलाओं को अनेको स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात होता है कि विभिन्न स्वयं सेवी संस्थाओं, नीति निर्माताओं और विशेषज्ञों ने स्त्रियों की साक्षरता व गरीबों को दूर करने के लिए विभिन्न विकासात्मक कार्यक्रमों का आयोजन किया है।

पोषणता की स्थिति

मनुष्य की तीन मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं जिनके बिना उनका जीवन असम्भव है- हवा (आक्सीजन), जल तथा आहार। भोजन मानव जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है जिसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता। मनुष्य प्रतिदिन लगभग तीन बार आहार ग्रहण करता है, जो मानव की भूख की संतुष्टि के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आहार द्वारा ही व्यक्ति की शारीरिक वृद्धि व विकास होता है, उसे कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है और शारीरिक गतिविधियाँ नियमित रहती हैं जिससे वह स्वस्थ रहता है। मनुष्य की भोजन की आवश्यकता उसके शरीर में तीन मुख्य कारणों- 1. शरीर निर्माण करना, 2. शरीर को ऊर्जा देना तथा 3. शरीर को सुरक्षा प्रदान करने के लिए होती है।

भारतीय महिलाओं की स्वास्थ्य व पोषण की स्थिति सांस्कृतिक व पारम्परिक परम्पराओं के कारण अत्यन्त दयनीय बन गयी है। विशेष रूप से उनके गर्भावस्था व दुग्धपान के समय। अध्ययन में यह पाया गया है कि ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं की इस दौरान लिए गये आहार में मानक तत्व की कमी पायी गयी है। आमतौर पर कम वजन का शिशु माँ के कम पोषक भोजन व खराब स्वास्थ्य के कारण जन्म लेता है। रक्त अल्पता की बीमारी भी शिशु भी माँ को ज्यादा होती है बजाय किशोरी या गर्भावस्था वाली युवती

के। महामारी विज्ञान सम्बन्धी शोधो ने यह पाया है कि 50 प्रतिशत गर्भवती महिलाएँ एनीमिया (रक्त अल्पता) की बीमारी से पीड़ित है। गर्भावस्था के दौरान स्वास्थ्य सम्बन्धी लापरवाही व पोषण सम्बन्धी अज्ञानता का दुष्परिणाम शिशु व माँ दोनो के ऊपर पड़ता है। उचित शिक्षा व अधिकार द्वारा इस दुष्परिणाम के प्रभाव से बचा जा सकता है। इस दिशा में निश्चित कदम उठाकर स्त्री को स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी का महत्व बताया जाना नितान्त आवश्यक है।

स्त्रियो में मातृत्व सम्बन्धी समस्या

प्राय: बचपन और प्रजननीय उम्र में खराब पोषण और स्वास्थ्य सुविधाओं को अनदेखा करना है। यद्यपि भारत की सरकार ने स्त्रियों की स्वास्थ स्थिति, गरीबी, शिक्षा, स्त्रियों के प्रति हिंसा के विरूद्ध, लैंगिक भिन्नता आदि क्षेत्रों में विभिन्न कदम उठाये है परन्तु इस दिशा में और भी प्रयास की आवश्यकता है तथा प्रयास से साथ ही उस पर सार्थक अमल होना भी नितान्त आवश्यक है। प्रस्तुत आलेख में स्त्रियों की इन्ही समस्याओं और उनके सन्दर्भ में किये प्रयासों का उल्लेख किया गया है।

घरेलू हिंसा व शारीरिक शोषण

महिलाओं में विभिन्न बीमारियों का कारण केवल उनकी लैंगिग विभिन्नता गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता ही नहीं है बल्कि घरेलू हिंसा व शारीरिक शोषण, शारीरिक हिंसा आदि भी है जो उनकी मातृत्व क्षमता, स्वायत्त, जीवन शैली व शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालती है। भारत में स्त्री व पुरुष दोनों का जन्म के समय एक जैसी ही जीवन प्रत्याशा होती है। आर्थिक सहायता, बुजुर्ग होने पर सुरक्षा जायदाद का उत्तराधिकारी और दहेज आदि। ये सभी धारणा पुत्र को प्राथमिकता देते है। हालांकि भारतीय सरकार ने इस विषमता को दूर करने के लिए अनेक सार्थक प्रयास किया है। अनिश्चित एवं अवैधानिक और असुरक्षित गर्भपात ने स्त्रियों के स्वास्थ्य पर नाकारात्मक प्रभाव डाला है। ऐसी स्थिति को कम करके भारतीय स्त्रियों के सम्पूर्ण स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है। भारतीय महिलाओं के स्वास्थ्य और उनके मानस पटल पर नाकारात्मक प्रभाव डालने में पति और सास का अत्याचार व हिंसा भी अहम भूमिका निभाते है। ऐसे बच्चे जो कम शिक्षित माँ से जन्म लेते हैं उन्हें अनेक पोषकीय कमी से उत्पन्न समस्याओं का सामना करना पडता है। क्योंकि उन्हें उच्च पोषक तत्वों का ज्ञान नहीं होता।

सरकारी प्रयास

वर्तमान में स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधा केन्द्रों की गुणवत्ता में सुधार पर ध्यान केंद्रित कर रहा है। राष्ट्रीय गुणवत्ता आश्वासन कार्यक्रम सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधा केन्द्रों में गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए एनएचएम की एक पहल है। नवंबर, 2013 में शुरू की गई यह पहल सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में कार्यान्वित की जा रही है। इस कार्यक्रम के तहत, जिला अस्पतालों, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और शहरी- प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के लिए अलग-अलग राष्ट्रीय गुणवत्ता आश्वासन मानक (एनक्यूएएस) हैं। गुणवत्ता मानकों और मूल्यांकनकर्ता प्रशिक्षण कार्यक्रम को आईएसक्यूयूए (इंटरनेशनल सोसायटी फॉर क्वालिटी इन हेल्थकेयर) से अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई है। वर्तमान में 310 स्वास्थ्य सुविधा केन्द्र राष्ट्रीय स्तर पर और राज्य स्तर पर 509 स्वास्थ्य सुविधा केन्द्र गुणवत्ता प्रमाणित हैं।

ग्रामीण स्वास्थ के साथ 1 मई, 2013 को सरकार ने एनएचएम के उप-मिशन के रूप में राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन (एनयूएचएम) की शुरूआत करने की मंजूरी दी। इसमें एनआरएचएम एनएचएम का दूसरा उप-मिशन है। मंत्रिमंडल ने मंजूरी दी है कि एनयूएचएम के उप-मिशन समेत एनएचएम राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तर पर एनआरएचएम के तहत पहले से सृजित संस्थागत तंत्रों का प्रयोग करेगा। एनयूएचएम में शहरी जनसंख्या विशेषकर शहरी गरीब और अन्य कमजोर वर्गो को गुणवत्ता पूर्ण प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सरलता से पहुंचाकर उनकी स्वास्थ्य स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है। एनयूएचएम में सभी राज्य राजधानियों, जिला मुख्यालयों और 50,000 और इससे अधिक की जनसंख्या (जनगणना 2011 के अनुसार) वाले अन्य शहरों/कस्बों को चरणबद्ध तरीके से कवर किया जाता है। 50,000 से कम की जनसंख्या वाले शहरों और कस्बों को एनआरएचएम के अंतर्गत कवर किया जाता रहेगा।

निष्कर्ष

ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य सम्बन्धी अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि उनके जीवन में अनेक परेशानियाँ एवं मुद्दे है जिसमें स्वास्थ एवं कुपोषण प्रमुख है। हालांकि सरकार द्वारा अनेको नीतियां और कार्यक्रम दिये गये है, परन्तु आम जागरूकता अति आवश्यक है। घरेलू हिंसा तथा अन्य प्रकार की हिंसा से नारी के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव है। नारी अभ्युदय के लिए उनकी पहचान, उनका सम्मान एवं व्यवस्था के सभी क्षेत्र में उनके लिए गरिमामय स्थान सुरक्षित, संरक्षित और सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। अतः महिलाओं को उचित स्वास्थ्य सुविधा, उन्हें समय-समय पर पोषाहार, स्वच्छता आदि के विविध आयामों से अवगत कराने की भी आवश्यकता है, साथ ही महिलाओं को अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरुक होने की भी आवश्यकता है। ऐसा करके ही सर्वश्रेष्ठ भारत की कल्पना की जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चतुर्थ विश्व महिला सम्मेलन, बीजिंग, 1995, पृ. 84 ।
2. छिल्लर मंजुलता, 'भारतीय नारी: शोषण के बदलते आयाम', वर्ष 2010।
3. बनर्जी, शुभंकर, महिला कुपोषण: एक राष्ट्रीय समस्या, कुरुक्षेत्र, वर्ष 61, अंक 2, दिसम्बर 2005, पृ. 36-38 ।
4. राधाकमल मुखर्जी: चिंतन परंपरा, वर्ष 19, अंक-2, जुलाई-दिसम्बर, 2017।
5. मिश्रा मीरा, कुपोषण की रोकथाम: महिला स्वास्थ्य की भूमिका, योजना। वर्ष 60, अंक-2, फरवरी 2016, न्यू दिल्ली, पृ. 40-42।
6. विश्व स्वास्थ्य संगठन, द वर्ल्ड हैल्थ रिपोर्ट, 2016 जिनेवा, डब्ल्यू.एच.ओ., 2016।
7. श्रीवास्तव, अखिलेश्वर लाल, चिकित्सा सामाजिक विज्ञान की रूपरेखा, उ.प्र., हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
8. सैन्सस इंडिया, 2011 ।
9. मीनाक्षी मेट्रो (2003) (हिन्दी अनु0) 'स्त्री अधिकारों को औचित्य साधन' राजकमल प्रकाशन, नई दिल्लीं ।
10. सिंह निशांत (2005), मानवाधिकार और महिलाएं, राधा पब्लिकेशन, नयी दिल्ली।
11. वार्षिक रिपोर्ट (2018-19), स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार।

वैश्वीकरण का भारतीय उद्योगो पर पड़ने वाले प्रभावों का एक अध्ययन

डॉ० रवि सनवाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय लोहाघाट, चम्पावत

सारांश

वैश्वीकरण का अर्थ हैं, राष्ट्रों के बीच व्यापार बाधाओं का निराकरण और वित्तीय प्रवाह के माध्यम से राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं का एकीकरण करना हैं। साथ ही वस्तुओं और सेवाओं में व्यापार और कॉर्पोरेट निवेश को प्रोत्साहित किया जाता हैं। 1991 की आर्थिक नीति में बदलाव के कारण भारतीय उद्योगों का वैश्वीकरण एक बड़े पैमाने पर हुआ। जिसमें भारत के उद्योगों में वैश्वीकरण के प्रभावों का मुख्य लाभ यह रहा है, कि कई विदेशी कंपनियां जो भारत में विभिन्न उद्योगों को स्थापित करती रहीं, साथ ही विदेशी कंपनियां उन्नत प्रौद्योगिकी के द्वारा, उद्योगों को तकनीकी रूप से उन्नत बनाने में भी सफल हुई हैं। जो कई लोगों को रोजगार प्रदान करने के साथ देश में बेरोजगारी और निर्धनता के स्तर को कम करने में सहायक हुई हैं। वैश्वीकरण का भारतीय उद्योग पर सकारात्मक प्रभाव होने के साथ-साथ नकारात्मक प्रभाव भी पाया गया हैं, जिसमें प्रौद्योगिकी के आने के बाद से श्रमिकों की संख्या में कमी आयी है, साथ ही विदेशी कंपनियों और घरेलू कंपनियों के बीच भारतीय बाजार में प्रतिस्पर्धा में भी बढोतरी हुई है। अर्थात् भारतीय अर्थव्यवस्था में वैश्वीकरण की नीति को बढावा देने से उद्योगों में नवप्रवर्तन एवं तकनीकि कुशलता का विकास हुआ हैं। जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास की गति तीव्र हुई है। भारतीय उद्योग पर वैश्वीकरण के प्रभाव सकारात्मक होने के साथ-साथ नाकारात्मक भी सिद्व हुए हैं। भारत सरकार को भारतीय उद्योग के वैश्वीकरण के सम्बन्ध में ऐसी अधिक नीतियों का प्रयास करना चाहिए जो कि उद्योगों के लिए लाभकारी सिद्व हो।

की-वर्ड: वैश्वीकरण, उद्योग, भारतीय अर्थव्यवस्था, आर्थिक नीति।

प्रस्तावना

नई आर्थिक नीति का अर्थ केवल विदेशी व्यापार या विदेशी पूंजी निवेश तक ही सीमित नही है। अर्थव्यवस्था के सभी अंगों में नियन्त्रणों के स्थान पर उदारीकरण अपनाया जायें। नई आर्थिक नीति के प्रमुख अंग है- नई औद्यौगिक नीति, राजकोषीय नीति, नई मौद्रिक नीति, विदेशी नीति, विनिमय नियन्त्रण नीति एंव नई व्यापारिक नीति आदि। आर्थिक वैश्वीकरण में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में जोड़ने की प्रकिया समाविष्ट है, और यह व्यापार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (निगमों या बहुराष्ट्रीय उद्यमों) अल्पकालीन पूंजी प्रवाहों, श्रम तथा सामान्यत: मानवजाति के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह और टेकनोलॉजी के प्रवाह द्वारा सम्पन्न किया जाता है।"

वैश्वीकरण वर्तमान समय के व्यापारिक माहौल की ऐसी अवधारणा है, जो पूरे विश्व को एक मंडल, एक केन्द्र बनाने की बात करता हैं। वैश्वीकरण ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है, जिसमें भारतीय उद्योग भी शामिल हैं। 1991 में नई औद्योगिक नीति में विदेशी निवेश को बढावा देने से देश में विदेशी पूंजी के विकास के साथ-साथ रोजगार के अवसरों में भी वृद्वि देखी गयी हैं। वैश्वीकरण ने देशों को विकास बढाने के लिए मजबूर किया है। जिसमें विकास केन्द्रित रणनीतियां अपनाई गई है, जिनमें पारदर्शी व्यापार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, पूंजी प्रचलन और प्रौद्योगिकी स्थानांतरण आदि शामिल हैं।

वैश्वीकरण का अर्थ है, एक देश की अर्थव्यवस्था को अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं से जोड़ना तथा विदेशी पूंजी, विदेशी तकनीक व स्वतंत्र व्यापार को बढावा देना। इसके अन्तर्गत पूंजी, बहुराष्ट्रीय निगमों, वस्तुओं, सेवाओं, व्यक्तियों के एक देश से दूसरे देशों में आने-जाने पर लगी रूकावटों को कम किया गया हैं। वैश्वीकरण का उद्देश्य समूचे विश्व को एक वैश्विक गांव के रूप में देखने से हैं। भारत का शेष विश्व अर्थव्यवस्था से व्यापार भी बढ रहा हैं।

भारत के उद्योगों पर वैश्वीकरण का प्रभाव से आशय है, कि विदेशी कंपनियों को भारत की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में निवेश करने की अनुमति देकर अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश के लिए खोलना, विदेशी विनियम नियंत्रण अधिनियम जैसें कानूनों को धीरे-धीरे समाप्त करके बहुराष्ट्रीय निगमों को देश में आने की व निवेश करने की सुविधाएं प्रदान करना, भारतीय कंपनियों को विदेशी कंपनियों के साथ सहयोग करने की अनुमति देना तथा दूसरे देशों में संयुक्त परियोजनाएं चालू करने के लिए प्रोत्साहित करना, तथा मात्रात्मक प्रतिबन्धों के स्थान पर धीरे-धीरे प्रशुःल्कों को प्रतिस्थापित करना और फिर धीरे-धीरे उनको भी कम कर देना, जिससे आयात उदारीकरण कार्यक्रमों को व्यापक आधार पर लागू किया जा सके। वैश्वीकरण की दिशा में भारत सरकार ने 1980 के दशक के आरम्भ से ही प्रयास करने शुरू कर दिए थे। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विदेशी पूंजी को बहुत सी रियासतें दी गई, साथ ही बहुत से ऐसे क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय निगमों को प्रवेश करने की अनुमति दी गई जिनमें उन्हें पहले काम करने की अनुमति नहीं दी गई थी।

वर्तमान समय में सरकार ने 'मेक इन इंडिया' पहल की शुरूआत की है। इसके लिए न केवल घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देने की पहल की जा रही है, बल्कि विदेशी निवेशकों और प्रवासी भारतीयों को भी देश के विनिर्माण क्षेत्र में निवेश करने को प्रोत्साहित किया जा रहा हैं। देश के सफल घरेलू उत्पाद में विनिर्माण क्षेत्र की मौजूदा हिस्सेदारी मात्र 15 फीसदी है। सरकार द्वारा निर्णय लिया गया है, कि अगले पॉच साल में इस हिस्सेदारी को बढाकर 25 फीसदी तक लाया जाए। इसके लिए आवश्यकता यह हैं, कि अधिक मात्रा में निवेश किया जाए।

साहित्य समीक्षाः

'डॉ0 बद्री विशाल त्रिपाठी' ने अपने अध्ययन 'विदेशी व्यापार एवं भुगतान सन्तुलन' में स्पष्ट किया है, कि भारत पर वैश्विक वित्तीय संकट और मंदी का प्रभाव कम पड़े इसके लिए आवश्यक हैं कि सरकार को औद्यौगिक एवं व्यावसायिक जगत के ग्रामीण क्षेत्र पर ध्यान देना चाहिए। जिससे तरलता की कमी के कारण निर्यात आधारित अर्थव्यवस्थायें अपने उत्पाद किसी भी कीमत पर बेचने को तत्पर हो। इस प्रकार की प्रक्रिया से भारतीय उद्योगों को बचाने के लिए आयात शुल्क ऊँचा किया जाना चाहिए। और एन्टी डम्पिंग-डयूटी लगायी जानी चाहिए। साथ ही उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। इसलिए वर्तमान मुक्त व्यापार नीति के स्थान पर सीमित संरक्षणात्मक व्यापार नीति पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

आई0 एल0 ओ0 रिपोर्ट के अनुसार वैश्वीकरण का लाभ उन लोगों को हुआ हैं, "जो बहुर्राष्ट्रीय निगमों और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्द्धी राष्ट्रीय उपक्रमों से जुडे हुए हैं (अर्थात् हिस्सेदार, प्रबन्धक, कर्मचारी या उप-ठेकेदार के रूप में)। या जो पूंजी एवं अन्य परिसम्पत्तियों से सम्पन्न है, उद्यमकर्ता याग्यता रखते हैं, और जिनके पास शिक्षा एवं कौशल है, उनकी अधिक मांग है और इन सभी लागों ने लाभ प्राप्त किया हैं।"

अध्ययन के उद्देश्यः

वर्तमान अध्ययन का मुख्य उद्देश्य वैश्वीकरण के साथ निजीकरण, उदारीकरण व औद्योगिकीकरण के संबधों का मूल्यांकन करना है। इसके अतिरिक्त अध्ययन के अन्य उद्वेश्य निम्न प्रकार है।

- विभिन्न सूचंको के आधार पर वैश्वीकरण की वर्तमान स्थिति क्या है ?
- भारत वर्ष में निजीकरण, उदारीकरण व औद्यौगिकीकरण का अध्ययन करना तथा उनसे जुड़ी समस्याओं का पता लगाना है।
- भारत वर्ष में निजीकरण, उदारीकरण, औद्यौगिकीकरण पर वैश्वीकरण द्वारा पड़े हुए प्रभावों का मूल्याकंन करना है।

शोध पद्वतिः प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक समको पर आधारित है, द्वितीयक संमको के संकलन हेतु आयात निर्यात डाटा बैंक, वाणिज्यक मंत्रालय भारत सरकार, वर्ल्ड ट्रेड रिर्पोट, पुस्तके, पत्रिकाएं, दैनिक समाचार पत्र, बैब लिकं एवं लेखों के माध्यम से जानकारी एकत्रित की गयी है।

भारतीय उद्योगों पर वैश्वीकरण के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावः भारतीय उद्योगों में वैश्वीकरण के कुछ सकारात्मक प्रभाव व साथ ही कुछ नकारात्मक प्रभाव भी रहे हैं। सकारात्मक प्रभाव यह रहा है, कि प्रेट्रोलियम, विनिर्माण उद्योग, दवा आदि में भारी मात्रा में विदेशी निवेश हुआ। जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था में उद्योगों को बढावा मिला। इससे कई विदेशी कंपनियों ने भारत में उद्योग स्थापित किए। जिनमें फार्मास्यूटिकल, बीपीओ, प्रेट्रोलियम, विनिर्माण और रासायनिक क्षेत्र मुख्य हैं। इन कंपनियों के स्थापित होने से भारत में राजगार में वृद्धि हुई। साथ ही बेरोजगारी व गरीबी को कम करने में भी मदद मिली।

भारतीय उद्योगों पर वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव के साथ-साथ नकारात्मक प्रभाव भी सामने आए हैं, जिनमें 1991 की आर्थिक नीति में बदलाव के साथ विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए बाजारों को खोल देने से विदेशी कंपनियां और घरेलू कंपनियों के बीच भारतीय बाजार में प्रतिस्पर्धा बढी। जिससे विदेशी वस्तुओं के भारतीय सामानों से बेहतर गुणवत्ता होने के कारण उपभोक्ता विदेशी वस्तुओं को अधिक खरीदने लगे। जिनमें मुख्य रूप से दवा, विनिर्माण, रसायन और इस्पात उद्योग प्रमुख थे। साथ ही उन्नत प्रौद्योगिकी के विकसित होने से श्रमिकों की संख्या में कमी आयी। जिससे कई लोगों नौकरियों से निकाल दिया गया। यह मुख्य रूप से दवा, रसायन, विनिर्माण और सीमेंट उद्योगों में हुआ।

1991 की नई आर्थिक नीति में वैश्वीकरण

भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया भारत सरकार द्वारा 24 जुलाई, 1991 में लागू की गई आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप हुई। जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के दबाव के कारण अपनाई गई थी। 1990 के दशक में सरकार ने भारतीय बाजारों को विदेशी निवेश के लिए खोल दिया था। भारत में वैश्वीकरण विभिन्न क्षेत्रों में हुआ जिनमें मुख्य रूप से इस्पात, दवा, प्रेट्रोलियम, रसायन, कपङा, सीमेंट, आदि। नई आर्थिक नीति 1991 में बदलाव के कारण देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गयी जिसके परिणामस्वरूप, भारतीय उद्योगों का वैश्वीकरण एक बङे पैमाने पर हुआ।

सरकार द्वारा 1991 में (परिशिष्ट प्प्प् में शामिल) उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों की सूची तैयार की जिनमें विदेशी ईक्विटी को 51 प्रतिशत तक, बिना सरकार से अनुमति लिए करने की व्यवस्था थी। इस सीमा को बहुत से उद्योगों के लिए बाद में 74 प्रतिशत तक और फिर 100 प्रतिशत तक बढा दिया गया। वर्तमान में अधिकतर क्षेत्रों में (क्षेत्रीय नियमों व नियंत्रणों के अधीन) 100 प्रतिशत तक विदेशी निवेश की छूट हैं।

वैश्वीकरण ने भारतीय उद्योगों में 'असमान प्रतिस्पर्धा' को जन्म दिया हैं। यह प्रतिस्पर्धा है, 'शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय निगमों' और कमजोर व आकार में अपेक्षाकृत बहुत छोटे उद्योगों के बीच। भारत की बङी औद्योगिक इकाईया भी विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की तुलना में बहुत छोटी है। इसका मुख्य कारण भारतीय उद्योग आकार में बहुराष्ट्रीय तुलना में बहुत छोटे हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां शक्तिशाली वित्तीय शक्ति के कारण बहुराष्ट्रीय निगम न केवल भारतीय उद्यमों की तुलना में किसी उत्पादन क्षेत्र में अधिक लम्बे समय तक हानि नहीं सह सकते हैं। इसलिए वे भारतीय उद्यमियों को उनके सहयोग से स्थापित उद्योगों में से आसानी से बाहर कर सकते हैं और उद्योगों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर सकते हैं।

1991 की आर्थिक नीति में अपनाई गई उदारीकरण की नीतियों ने एक पूर्णतया नई व्यवस्था को जन्म दिया है, जिसके अधिन न केवल विदेशी पूंजी का अन्तर्प्रवाह हुआ अपितु इसमें भारतीय घरेलू उद्यमियों ने स्वयं को पहली बार विदेशी निवेश का लाभानुभोगी न पाकर विदेशी निवेशकों का निशाना महसूस किया गया।

भारत में विदेशी निवेश का अंतरप्रवाह (US मिलियन डॉलर)

वर्ष	*प्रत्यक्ष विदेशी निवेश*	*पोर्टफोलियो निवेश*	*कुल विदेशी निवेश*
1990-91	97	6	103
2000-01	4,031	2,760	6,791
2009-10	37,763	32,376	70,139
2014-15	45,128	40,923	86,071
2015-16	55,457	(-) 3,516	51,941
2016-17 अप्रैल से दिसंबर तक	48,032	(-) 3,378	44,654

Source : Handbook of Statistics on Indian Economy, 2015&16; RBI Bulletin, April 2017

भारत की कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्राप्तियों में मॉरीशस का हिस्सा सबसे अधिक 34 प्रतिशत है। इसके बाद सिंगापुर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में हिस्सा 16 प्रतिशत है। भारत की प्रत्यक्ष विदेशी निवेश प्राप्तियों में मॉरीशस के अधिक हिस्से का कारण भारत द्वारा मॉरीशस से हुए निवेश को करों में विशेष छूट देना है।

सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम

एमएसएमई भारत जैसें देश में बड़े उद्योगों की तुलना में अपेक्षाकृत कम पूंजीगत लागत से कृषि एवं कृषि-संबद्ध क्षेत्र के बाद एकमात्र दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं, जो उद्यमिता, रोजगार स्वरोजगार के नए अवसरों का सृजन करता है। साथ ही एमएसएमई क्षेत्र नवाचार तथा रचनात्मक को बढावा देकर, कम जोखिम उठाकर स्वदेशी वस्तुओं, सेंवाओं के उत्पादन से अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आत्मनिर्भर होने व घरेलू और वैश्विक बाजारों की पूर्ति कर अपनी महांता को प्रतिपादित करता हैं। सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम कारोबारी नवोन्मेंश के जरिए उद्यमिता की संस्कृति के प्रसार में अपना योगदान दे रहे हैं। ये उद्यम स्थानीय तथा वैश्विक बाजारों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की वस्तुएं और सेवाएं उपलब्ध कराते हैं। देश के सफल घरेलू उत्पाद में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों का योगदान 8 प्रतिशत के बराबर हैं। जबकि विनिर्माण क्षेत्र के उत्पादन का 45 प्रतिशत और देश के निर्यात का 40 प्रतिशत हिस्सा इस क्षेत्र से आता हैं।

वैश्वीकरण, निजीकरण एवं सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की तीव्र प्रगति के दौर में एमएसएमई क्षेत्र स्थानीय कला एवं संस्कृति, पर्यटन, योग, आयुर्वेद, स्वास्थ्य पर्यटन, हस्तशिल्प इत्यादि को न केवल बढावा देता हैं, अपितु राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय-स्तर पर पहचान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं।

वैश्विक विनिर्माण सूचकांक 2018 की रिपोर्ट में उत्पादन का ढाँचा श्रेणी में भारत, चीन से काफी पीछे 30 वें स्थान पर हैं, किन्तु अन्य देशों रूस, ब्राजील तथा दक्षिण अफ्रीका से आगे है, यही नहीं इस श्रेणी में भारत की स्थिति अपने पड़ोसी देशों श्रीलंका, पाकिस्तान, तथा बांग्लादेश से भी बेहतर स्थिति में हैं।

निष्कर्ष: वैश्वीकरण की नीति यद्यपि आर्थिक जगत के लिए ही उत्पन्न हुई है और विकसित हो रही है फिर भी इस व्यवस्था ने मनुष्य जीवन व समुदायों पर व्यापक असर डाला है। आज जीवन का कोई क्षेत्र इस व्यवस्था से अछूता नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानव समुदाय का विकास इस व्यवस्था के बिना हो ही नही सकता। वैश्वीकरण के माध्यम से उद्योगों में नवाचार विकसित हुआ, साथ ही नवीन प्रौद्योगिकी का विकास हुआ, जिससे नए उपक्रमों और बड़े-बड़े बहुराष्ट्रीय उद्यमों के बीच भारत की भागीदारी विकसित हुई। वैश्वीकरण के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियां और नए उपक्रमों के बीच भागीदारी बढी साथ ही इससे अंतर्राष्ट्रीय उद्यमिता की सुविधा का भी विकास हुआ। अत: यह कहा जा सकता हैं, कि वैश्वीकरण के भारतीय उद्योगों पर सकारात्मक प्रभाव के साथ-साथ नकारात्मक प्रभाव भी रहे हैं, जिससे भारत के प्रमुख व्यापार और विदेशी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश व्यवस्थाओं में सुधार, श्रम प्रधान उद्योगों में छोटे पैमाने के उद्योगों के संरक्षण, लाइसेंस समाप्ति और मल्टी फाइबर व्यवस्था के बावजूद भी भारत में श्रम प्रधान उद्यम में बढोतरी नहीं हो पा रही है। वैश्वीकरण के वर्तमान परिवेश में उद्योगों को अधिक कुशल और प्रतिस्पर्धी होने की आवश्यकता हैं। उद्योगों द्वारा निर्माण समाज की गुणवत्ता अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की गुणवत्ता के बराबर होनी चाहिए तभी हम अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे प्रतिस्पर्धा कर पायेंगे।

सुझाव

- भारतीय उद्योगों के लिए आवश्यक हैं, कि उद्यमी में नवाचार की भावना का विकास हो, जिससे उद्योगों पर वैश्वीकरण के माध्यम से सकारात्मक प्रभाव पड़े।
- भारतीय उद्योगों का संकुचित आकार के विकास को बढाने के लिए अन्नत प्रौद्योगिकी को बढावा दिया जाना चाहिए। जिससे भारतीय उद्योग बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम हो सके।
- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश उद्योगों में कुटीर या ग्रामीण की प्रधानता है। यदि इन उद्योगों का विकास नवीन प्रौद्योगिकी उपयोग, व नवाचार के माध्यम से किया जाए तो भारतीय उद्योगों में वैश्वीकरण की प्रक्रिया सफल हो सकती हैं।

- भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया सफल हो सकती है, यदि कुटीर, लघु उद्योगों में अधिक निवेश को बढाया जाए। जिसके परिणामस्वरूप रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हो सकती है।
- भारतीय उद्योगों को प्रतिस्पर्धी उद्योग बनाने के लिए आवश्यक है, कि वित्तीय पूंजी का निवेश अधिक मात्रा में हो।
- भारतीय उद्योगों को वैश्विक प्रतिस्पर्धी में मजबूत बनाने के लिए आवश्यक है, कि लघु इकाइयों की पूंजीगत संरचना को मजबूत करना, समय पर ऋण की सुविधा उपलब्ध करवाना साथ ही वित्तीय संस्थाओं के बीच अधिक समन्वय स्थापित करना है।
- वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभावों के लिए आवश्यक है, कि सूक्ष्म एवं लघु उद्यमों के लिए बाजारों की व्यवस्था जैसे प्रतिस्पर्धा स्तर, संरक्षणवाद, प्रभुत्व, मांग आदि के बीच उचित समन्वय रहना चाहिए। जिससे वह देशीय और वैश्विक-स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर पाएंगे।

सन्दर्भ सूची

- पुरी वी.के. मिश्रा एस. के. भारतीय अर्थव्यवस्था, (2015) हिमालया पब्लिशिंग हाऊस पृष्ठ संख्या- 513-518
- दत गौरव, महाजन अश्विनी, भारतीय अर्थव्यवस्था, (2015) पृष्ठ संख्या- 250
- त्रिपाठी विशाल बद्री डॉ0. , भारतीय अर्थव्यवस्था, (2012)
- योजना मासिक पत्रिका, अप्रैल (2015)
- कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका, अक्टूबर (2018)
- RBI Bulletin, April 2017
- अग्रवाल प्रो0 एम0 डी0, भारत में वित्तीय प्रबन्ध पंचशील प्रकाशन जयपुर।
- माहेश्वरी डा0 पी0डी0 गुप्ता एवं डा0 एस0 सी0 गुप्ता, मौद्रिक अर्थशास्त्र एवं बैंकिग, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल।
- डा0 एस0 सी0 जैन, व्यावसायिक वातावरण, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल।
- सिन्हा डा0 वी0सी0, मुद्रा बैंकिग विदेशी विनिमय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, लोक भारतीय प्रकाशन।

भारत में महिला सशक्तिकरण- एक अध्ययन

अमरनाथ वर्मा

सहायक आचार्य, (राज. वि.) एस एन के पी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीम का थाना, (सीकर)

महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया से हैं जिसमें महिलाओं के लिए सर्वसम्पन्न और विकसित होने हेतु संभावनाओं के द्वारा खुले नए विकल्प तैयार हों। महिलाएँ समाज के लगभग आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती हैं। लेकिन उनकी राजनीतिक सहभागिता लगभग नगण्य रही है। वर्तमान पंचायती राज सामाजिक समता और न्याय, आर्थिक विकास और व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर आधारित ग्रामीण जीवन को नया रूप देने का एक सामूहिक प्रयास है। इसी क्रम में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी महिला सशक्तिकरण के लिये हो रहे प्रयासों का प्रमुख घटक हैं। महिलाओं को प्रदत्त आरक्षण की व्यवस्था से समाज के विभिन्न वर्गों की महिलाओं को पंचायत राज संस्थाओं में स्थान प्राप्त हुआ है। महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक भूमिका स्वतंत्रता के पश्चात से नगण्य रहने के कारण इन्हें पिछड़े वर्गों में रखकर आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है संपूर्ण महिला वर्ग में भी वर्गों के आधार पर महिलाओं की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति में अंतर है। राजनीति का क्षेत्र भी महिलाओं के प्रभाव से अछूता नहीं है। भारत एक प्रजातांत्रिक देश है जिसमें जनता के द्वारा देश की संचालन व्यवस्था हेतु अपने मत में जनप्रतिनिधियों को चुना जाता है और इन्हीं जनप्रतिनिधियों के द्वारा सत्ता में पहुँच कर देश की नीतियों एवं दिशा निर्देशों को बनाया एवम् क्रियान्वित किया जाता है। देश की राजनीति में महिलाओं की भूमिका शुरूआत के दिनों में अशिक्षा, पर्दाप्रथा के कारण कम भी लेकिन जैसे-जैसे सामाजिक कुरीतियाँ खत्म हो रही है महिलाओं की भूमिका राजनीति में मजबूत होती जा रही है। शिक्षा, स्वास्थ्य, खेलकूद, कानून, अभियांत्रिकी, प्रबंधन के साथ-साथ राजनीति के क्षेत्र में भी महिलाए आगे आ रही है और अपनी स्थिति को सुधारने के प्रयास में लगी हुई है।

कुँजी:- सामाजिक, पंचायती राज, राजनीतिक, स्वतंत्रता, शिक्षा।

प्रस्तावना:- यह सर्वविदित है कि हमारे देश की जनसंख्या का आधा हिस्सा महिलाऐं हैं। जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है क्योंकि महिला एवं पुरूष विकास रूपी गाड़ी के दो पहिए है। महिलायें राष्ट्र के विकास में उतना ही महत्व रखती हैं जितना कि पुरूष। अत: देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बगैर संभव नहीं है। भारतीय महिलाओं ने देश दुनिया के विभिन्न क्षेत्र में अपना सम्मानित स्थान बनाया है। आज महिलाऐं बेहतर रोजगार के लिए दुनिया के किसी भी कोने में जाने के लिए तैयार है। आज ऐसा कोई क्षेत्र नही जहां महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज न कराई हो। राष्ट्र के विकास की अग्रदूत बनी महिलाओं द्वारा देश ही नही वरन् विदेशों में भी अपने राष्ट्र का परचम लहराया है यह सब अथक प्रयासों के द्वारा धीरे-धीरे संभव हो पाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व महिलाओं की स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। वह शोषण तथा कुप्रथा जैसी विसंगतियों का शिकार थी। समाज में कई प्रकार की रूढ़िया, अंधविश्वास व्याप्त थे। महिलाओं के प्रति रूढ़िवादी एवं परम्परागत सोच स्त्री को पिता, पति या पुत्र का आश्रित मानते हुए उसे मुख्य रूप से घर की चारदीवारी तक सीमित रखा गया। जिसका मुख्य कारण तात्कालिक सामाजिक विचार का पिछड़ापन तथा स्त्रियों का अज्ञानता के बंधन में जकड़ा होना था। स्वतंत्रता के बाद से ही नारी के स्वरूप में तेजी से परिवर्तन आया है। जिस देश में नारी को घर की दहलीज से बाहर निकलने की आज्ञा नही थी, उसी देश में आज नारी पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। वह घर की चारदीवारी से निकलकर अंतरिक्ष तक जा पहुंची है। जिस देश की नारी जागृत, शिक्षित तथा गुणवत्ती होती है वही देश संसार में सबसे अधिक उन्नति करता है इसी विचार धारा को ध्यान में रखकर हमारे यहां स्त्रियों को पुरूषों के बराबर अधिकार प्रदान किये गये और इनके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था

की गयी, तब किसी ने सोचा भी न था कि वह पिछड़ा हुआ नारी वर्ग पुरूषों से भी आगे निकल जायेगा। शिक्षा ही वह साधन है जिसके द्वारा महिलाओं की रोजगार तथा स्वास्थ्य की स्थिति को सुधारा जा सकता है।

हमारा समाज मूल रूप से पुरूष प्रधान रहा है। पहले महिलाओं के पास किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता न होने के कारण उसकी सामाजिक व पारिवारिक स्थिति एक पराश्रित से अधिक नहीं थी। जिसे हर कदम पर एक पुरूष के सहारे की जरूरत होती थी। वैसे तो आजादी के बाद से ही महिला उत्थान के उद्देश्य से विभिन्न प्रयास किये जाते रहें है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में महिला सशक्तिकरण की कार्य में तेजी आयी है। इन्हीं प्रयासों के परिणाम स्वरूप महिलाओं के आत्म विश्वास में बढ़ोत्तरी हुयी है। वे किसी भी चुनौती को स्वीकार करने के लिए खुद को तैयार करने लगी है। एक ओर जहाँ केन्द्र व राज्यों की सरकारें महिला उत्थान की नई-नई योजनायें बनाने लगीं है। वहीं कई गैर सरकारी संगठन भी उनके अधिकारों के लिये उनकी आवाज बुलन्द करने लगें है। महिला में ऐसी प्रबल भावना को उजागर करने का प्रयास भी किया जा रहा है। कि वह अपने अन्दर छिपी की ताकत को सामने लाकर बिना किसी सहारे के आने वाली हर चुनौती का सामना कर सकें।

सृष्टि की उत्पत्ति एवं सभ्यता के विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। पुराणों के अनुसार चाहे धर्म की रक्षा हो या उसकी पुर्नस्थापना इन सभी कार्यो को आदि शक्ति माँ जगदम्बा ने ही पूर्ण किया है। सीता, सावित्री के धर्मपालन को आज भी आदर्श के रूप में समाज में माना जाता है। रानी लक्ष्मीबाई, मदरटेरेसा के वीरता बलिदान तथा सेवा की मिशालें आज भी हमारे जीवन को एक दिशा प्रदान करती है।

महिलाए कई रूपों में जीवन व्यतीत करते हुए एक सभ्य एवम् सुसंस्कृत समाज की निर्माण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह कभी बेटी के रूप में कभी बहन के रूप में तो कभी पत्नी एवम् प्रेमिका के रूप में कभी माँ के रूप में समाज को विकसित एवं परिमार्जित करने का अथक प्रयास करती रहती है।

समाज की प्रत्येक आवश्यकताओं को पूरा करने में महिलाएं पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर साथ चलती है। समाज में विकास में सहभागिता का जो सम्मान उन्हें प्राप्त होना चाहिए या वह नही मिल पाया है। क्योंकि इस सभ्य समाज में पुरूषवर्ग का वर्चस्व विद्यमान है। पुरूष वर्ग हर क्षेत्र में महिलाओं के सहयोग से अपने उद्देश्यों को प्राप्त करते है लेकिन जब सम्मान एवं अधिकार की बात आती है तो महिलाएं पुरूषों से कहीं पीछे छूट जाती है। महिलाओं को अपने अस्तित्व की बार-बार लड़ाई लड़नी पड़ती है लेकिन यह प्रकृति गवाह है कि जब भी समाज में कोई परिवर्तन या क्रांति हुई है महिलाओं ने उस पर अपना सर्वस्व अर्पण किया है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्य तथा दिशा-निर्देशक सिद्धांतों में लैंगिक समानता के सिद्धांत का उल्लेख किया गया है। संविधान न केवल महिलाओं की समानता को सुनिश्चित करता है, बल्कि राज्यों को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव का निर्देश देता है।

लोकतांत्रिक राजनीति के ढांचे में हमारे कानून, विकास नीतियां, योजनाएं तथा कार्यक्रम को विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के उत्थान की ओर उन्मुख रखा गया है। पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-78) से महिला कल्याण से लेकर विकास तक के मुद्दे को उठाया जा रहा है। हाल के वर्षों में महिला सशक्तीकरण को महिला की दशा का एक केंद्रीय मुद्दा माना गया है। राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना वर्ष 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई है, जिसके तहत महिला के अधिकारों तथा कानूनी अशिकारों को सुरक्षा प्रदान की जाती है। संविधान का 73वां तथा 74वां संशोधन (1993) में पंचायत तथा नगर निकाय के चुनावों में महिला को आरक्षण प्रदान करने का प्रावधान किया गया है, जिससे स्थानीय स्तरों पर उनकी भागीदारी का मार्ग प्रशस्त होता है।

किसी भी राष्ट्र को सुदृढ़, सशक्त व आत्मनिर्भर बनाने का लक्ष्य उस राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को सशक्त बनाकर ही प्राप्त किया जा सकता है, जिसके लिए महिलाओं व पुरुषों दोनों के सम्मिलित प्रयास आवश्यक हैं। यदि महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ है तो निश्चित ही देश भी सुदृढ़ व सशक्त होगा। बदलती परिस्थितियों के साथ भारत में महिलाओं को सशक्त बनाने के प्रयासों के प्रभाव परिलक्षित हो रहे हैं। वर्तमान में महिलाओं की सामाजिक आर्थिक राजनीतिक हिस्सेदारी बढ़ी है। उन्होंने पुरुष वर्चस्व वाले समाज में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। बदलते परिवेश में कार्यशील महिलाओं ने दोहरे दायित्व का निभाकर अपनी दोगुनी शक्ति का प्रदर्शन कर सिद्ध किया है कि समाज की प्रगति पुरुष और महिला दोनों की साझा जिम्मेदारी है। इस शोध पत्र में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका के इतिहास, वर्तमान व भविष्य की उन्नत आकांक्षाओं को विभिन्न आधारों पर विश्लेषित करने

का प्रयास किया गया है। राष्ट्र निर्माण हेतु महिलाओं के वैयक्तिक व सामूहिक प्रयासों को भी दर्शाया गया है क्योंकि महिलाओं का प्रत्येक प्रगतिशील कदम चाहें वह अपनी रूचि के क्षेत्र में हो या नवीन व्यवसाय में, महिलाओं को आत्मनिर्भर व सुदृढ़ बनाने के साथ-साथ संपूर्ण राष्ट्र के विकास में सहयोगी होता है।

संपूर्ण विश्व में नारी महिमा का उद्घोष उसी समय हो गया था जब भारतीय ऋषियों ने अथर्ववेद "माता भूमिः पुत्रो अहं पृथ्वियां" (अर्थात भूमि मेरी माता है और हम इस भूमि के पुत्र हैं) की प्रतिष्ठा की थी। नेपोलियन बोनापार्ट ने स्त्री की महत्ता को बताते हुए कहा था "आप मुझे एक योग्य माता दो, मैं तुम्हें एक योग्य राष्ट्र दूँगा"। भारतीय जनजीवन व संस्कृति का केंद्र भी सदैव स्त्री ही रही है। सशक्त महिलाएं ही सशक्त समाज की आधारशिला है। राष्ट्र के समग्र विकास व निर्माण में महिलाओं के योगदान की कोई निश्चित सीमा नहीं है। उन्होंने देश के बहुदिशीय विकास व प्रगति में स्वयं की भागीदारी को उत्कृष्ट ढंग से सुनिश्चित किया है। वर्तमान में स्वयं के अस्तित्व की स्वतंत्रता को बनाए रखने हेतु महिलाएं अनेक क्षेत्रों में पुरुषों से आगे निकल चुकी हैं। विज्ञान, अंतरिक्ष, प्रौद्योगिकी, शिक्षा, चिकित्सा, राजनीति, खेल कूद, मनोरंजन, अध्यापन, इंजीनियरिंग, व्यापार, साहित्य, प्रबंधन, कानून, प्रशासन, समाज सेवा, अनुसंधान, मीडिया, पर्यटन तथा अन्य अतिदक्षता वाले क्षेत्रों में भी महिलाओं की उपलब्धि ने स्वयं उनको आत्मनिर्भर बनाने के साथ-साथ राष्ट्र निर्माण में भी योगदान दिया।

भविष्य की उन्नत सम्भावनाएं: आधुनिक भारत की महिलाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन कर रही हैं। पुरुष वर्चस्व के अनेक क्षेत्रों में महिलाओं ने अपनी जड़ों को जमा लिया है, जैसे कि चिकित्सा के क्षेत्र में डॉ आनंदीबाई जोशी, उड्डयन क्षेत्र में पायलट सरला ठकराल, वकालत के क्षेत्र में कोर्नेलिया सोराबजी ने स्वयं शुरुआत करके अनेक महिलाओं को प्रेरणा देकर इन क्षेत्रों में स्थापित किया।

परंतु यह ध्यान देने योग्य है कि अन्य क्षेत्रों में महिलाओं की संख्या अभी भी कम है, फिर भी उन क्षेत्रों में उनके भविष्य निर्माण की अनेक संभावनाएं हैं। समकालीन तौर पर वर्ष 2018 में देश की पहली महिला फायर फाइटर बनी तान्या सन्याल ने पुरुषों के लिए आरक्षित माने जाने वाले क्षेत्र में कदम रख कर अनेक महिलाओं की सोच को प्रभावित किया। इसी प्रकार रिक्शा चालन, टैक्सी चालन, कुरियर सेवा, पैराग्लाइडिंग जैसे क्षेत्रों में यद्यपि कुछ ही महिलाएं स्थापित हुई है तथापि उन्होंने अनेक महिलाओं के भविष्य संबंधी अवसरों को बढ़ा दिया है। इस कारण आशा की जाती है कि भविष्य में महिलाएं अन्य क्षेत्रों में भी आशातीत सफलता हासिल कर देश का नाम रोशन करेंगी।

शिक्षा मानव जीवन का सार्वाधिक आवश्यक संस्कार और सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिशीलता का सबसे सशक्त माध्यम होता है। शिक्षा ही वह संस्कार है जो दो व्यक्तियों के बीच युगों के अन्तर को विभाजित करता है। शिक्षा की इसी महत्ता को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने 10-14 वर्ष तक के बच्चों के लिए मुक्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की थी। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि आजादी के 56 वर्षो बाद भी हम निरक्षरता रूपी कलंक को नहीं मिटा सकें। आज भी भारत की लगभग 35 प्रतिशत आबादी निरक्षर है और पूरे विश्व में निरक्षरता के मामले में प्रथम स्थान पर है। महिला शिक्षा की स्थिति और बदतर है 1991 की जनगणना के अनुसार जहाँ पुरुषों की साक्षरता दर 64.13 प्रतिशत थी वही महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 39.29 प्रतिशत थी। 2001 की जनगणना के अनुसार यह बढ़कर क्रमशः 75.85 प्रतिशत एवं 54.16 प्रतिशत हो गयी। इसमें भी. ग्रामीण क्षेत्रों में तो यह दर कम होकर 30.6 प्रतिशत (1991 के जनगणनानुसार) तक ही सिमट कर रह गयी। गौरतलब है कि भारत की 75 प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है, और आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा अभी भी निरक्षर है, और जब तक हमारी आबादी का आधे से अधिक भाग निरक्षर हैं, तब तक हमारा विकास अधूरा रहेगा। जवाहर लाल नेहरू के अनुसार 'एक लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है, परन्तु एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है।' महिलाओं के शिक्षा में बहुत बड़ी बाधाएँ हैं- बालिकाओं के लिए अलग विद्यालय की कमी, विद्यालयों का अधिक दूरी पर होना, महिला अध्यापिकाओं की कमी, पर्दा प्रथा, गरीबी, अशिक्षित माता-पिता, अल्पायु में विवाह असुरक्षित वातावरण एवं यातायात का अभाव आदि। जब तक इन कमियों को दूर नहीं किया जाता, महिला शिक्षा में बाधा ही पैदा होगी, हाँलाकि सरकारों द्वारा भी महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए तरह-तरह की योजनाएँ एवं कार्यक्रम भी लागू किया गया जो कि एक सराहनीय कदम है, किन्तु अभी भी इस दिशा में बहुत कुछ करना होगा। महिला शिक्षा का प्रभाव जनसंख्या वृद्धि एवं स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। जिन प्रान्तों में साक्षरता दर अधिक है वहाँ जनसंख्या वृद्धि एवं स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। जिन प्रान्तों में साक्षरता दर अधिक है वहाँ जनसंख्या वृद्धि, बाल तथा मातृ मृत्युदर भी कम है। अतः परिवार की मुख्य धुरी, महिला का सशक्तीकरण जरूरी है और सशक्तीकरण के लिए जरूरी है- शिक्षा आरम्भ से ही समाज में महिलाओं का

विशिष्ट स्थान रहा है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' हमारा आदर्श रहा है। अत: महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार तो दूर की बात रही, उन पर कोई बुरी दृष्टि भी नहीं डाल सकता था। किन्तु समय परिवर्तन, बढ़ती हुई भौतिकता तथा पाश्चात्य सभ्यता के अतिक्रमण के परिणाम स्वरूप महिलाओं की स्थिति दिन प्रति दिन गम्भीर होती चली गयी, जिससे महिलाओं पर तरह-तरह के अत्याचारों में बृद्धि हुई। समाज में महिलाओं साथ छेड़छाड़, लैंगिक अपराध, वैवाहिक अपराध, दहेज, लज्जा भंग करना, व्यपहरण/अपहरण, वेश्यावृत्ति, भ्रूण हत्या तथा ऐसी ही अन्य अश्लील एवं आपराधिक घटनाओं ने जन्म लिया। जिसे समाप्त करने के लिए कानून की आवश्यकता हुई। अत: कानून के माध्यम से महिलाओं की दयनीय दशा में काफी सुधार आया। महिलाओं की अस्मिता, मानव-सम्मान तथा स्वतंत्रता को अक्षुण बनाये रखने में कानून की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही। इसके माध्यम से महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति चेतना जागृति हुई तथा समाज में व्याप्त बुराईयों के विरुद्ध उन्हें व्यापक अधिकार प्राप्त हुआ। इस प्रकार से संवैधानिक कानूनों के माध्यम से महिलाओं को व्यापक संरक्षणीय अधिकार प्रदान किया गया तथा महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार या अपराध करने वाले व्यक्तियों के लिए कठोर से कठोर दण्ड की भी व्यवस्था किया गया। यह व्यवस्था भारतीय दण्ड संहिता अतिरिक्त मानवाधिकार संरक्षण द्वारा भी महिलाओं को पर्याप्त सुरक्षा एवं अधिकार प्रदान किया गया। इस दिशा में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण रही है, जिसके अन्तर्गत महिलाओं को सम्पत्ति में व्यापक अधिकार प्रदान किया गया, किन्तु कानून के होते हुए आज भी समाज में महिलाओं के साथ अपराधों में कमी नहीं आयी है आज भी दहेज हत्या कन्या भ्रूण हत्या, बलात्कार, वेश्यावृत्ति, छेड़छाड़ आदि जैसी घटनाएँ रोजमर्रा की घटनाएँ हो गयी है अत: इसके पूर्णत: उन्मूलन के लिए कानून को और भी प्रभावी बनाना होगा तथा महिलाओं के प्रति सामाजिक सोच में बदलाव लाना भी नितान्त आवश्यक है। अत: हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण कानून न्याय नहीं, और सम्पूर्ण न्याय के लिए कानून आवश्यक नहीं है। अत: महिला के कारगर सशक्तीकरण के लिए कानून और न्याय को एक दूसरे का पूरक और सहायक बनना होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

- आशा कौशिक: नारी सशक्तीकरण, विमार्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2004.
- आशा कौशिक: गाँधी नयी सदी के लिए - प्रत्यय एवं परिवर्तन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2000.
- आशा कौशिक: महिला सशक्तीकरण - भूमण्डलीकरण के दौरे में चुनौतियाँ एक और अन्तरीप, मार्च 2002.
- आशा कौशिक: ग्लोबलाइजेशन: डेमोक्रेसी एण्ड कल्चर - सिचुएटिंग गाँधीयन अल्टरनेटिव्ज, जयपुर, पॉइन्टर पब्लिशर्स, 2002.
- आर.बी. कुमार: जेण्डर इक्वालिटी एण्ड इक्विटी फॉर वीमेन एम्पावरमेन्ट एण्डियन जर्नल ऑफ पॉपूलेशन एजूकेशन, 2001.
- आन्द्रे बिताई: 'एम्पावरमेन्ट' इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, मार्च 6-13, 1999.
- उमाशंकर झाँ एवं प्रेमलता पुजारी (सं.): 'इण्डियन वूमेन टूडे ट्रेडिशन, माडर्निटी एण्ड चौलेन्ज: वाल्यूम I, II, III , ट कनिष्का पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1996.
- उमा चक्रवर्ती 'कंडीशंस ऑफ बेंगाली वीमेन एराउंड द सेकेंड हाफ द नांटीथ सेंचुरी, कलकत्ता, 1963.
- एम०ए० अंसारी: महिला और मानवाधिकार ज्योति पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2000.
- एम०एम० अन्सारी: नारी चेतना और अपराध, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1989.
- एम०ए० अन्सारी: महिला और मानवाधिकार ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2000.
- एम०के० गाँधी: आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन हाउस, अहमदाबाद, 1989.
- एम०के० गांधी: टू द वीमन लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद, 1941.
- एम०के० गांधी: 'वीमेन एंड सोशल इन जस्टिस नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद 1954.
- एम०के० गांधी: 'माई एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रुथ' नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद.
- एलिसन जैगर: फेमिनिस्ट पॉलिटिक्स एण्ड ह्यूमन नेचर ब्राइटन, हारवेस्टर, 1983.
- एस्टर बोसरप: वोमन्स रोल इन इकॉनोमिक डवलपमेन्ट, न्यूयार्क सेन्ट मार्टिन्स, 1970.
- ए०एस० अल्टेकर: वीमन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962.
- ए०एस० अल्टेकर: पोजीशन ऑफ विमन इन द हिन्दू सिविलिजाइशेन, बनारस, कल्चर पब्लिकेशन्स, 1938.
- एस०एस० नाथावत: 'वेल्यू बेस्ड क्वालिटी ऑफ लाइफ' इण्डियन जर्नल ऑफ क्लिनिकल साइकोलाजी, 1997

कॉलेज के विद्यार्थियों की बुद्धि पर उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति का प्रभावः एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ० चंचला कुमारी

विश्वविद्यालय मनोविज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार (Abstract)

वर्तमान शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कॉलेज के विद्यार्थियों की बुद्धि पर उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति की प्रभाव का पता लगाना है। प्रस्तुत शोध अध्ययन का परिकल्पना हैं- निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के कॉलेज के विद्यार्थियों का बुद्धि का स्तर निम्न होगा, उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की तुलना में । इस शोध अध्ययन में मुजफ्फरपुर शहर में स्थित विभिन्न महाविद्यालयों के स्नातक प्रथम खंड के 400 विद्यार्थियों (200 निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के कॉलेज के विद्यार्थी, तथा 200 उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थी) का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श विधि से किया गया था जिनकी न्यूनतम उम्र 16 वर्ष और अधिकतम उम्र 18 वर्ष थी। निष्कर्ष में यह पाया गया कि निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों का बुद्धि का स्तर निम्न था, जबकि उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की बुद्धि का स्तर उच्च था। यह भी निष्कर्ष में पाया गया कि कॉलेज के विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का प्रभाव उनके बुद्धि पर पड़ता हैं।

कुंजी शब्द (Key Words): बुद्धि तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति।

पृष्ठभूमि (Background)

बुद्धि का प्रयोग हमलोग अपने आम जिंदगी की दिनचर्या में काफी करते हैं। लेकिन जितना हमलोग अपने जिंदगी में बुद्धि के सही अर्थ को समझते हैं, बाल-विकास, शिक्षाशास्त्र तथा मनोविज्ञान में इसका अर्थ और महत्व कहीं अधिक है। सरल शब्दों में बुद्धि का अर्थ है - किसी भी कार्य, स्थिति में उपलब्ध सभी तरह के विकल्पों में से सबसे अधिक बेहतर और अनुकूल विकल्प का चयन करके अपने उद्देश्यों या लक्ष्य को प्राप्त करना।बुद्धि के अर्थ की तरह ही बुद्धि की परिभाषा में अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने मत दिए हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परिभाषा को वातावरण के साथ समायोजन करने की क्षमता के आधार पर परिभाषित किया गया है।

जबकि बहुत सारे मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को पर्यावरण के साथ समायोजन से नहीं जोड़कर, बुद्धि को सीखने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया हैं, जबकि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अमूर्त चिन्तन (मन में सोचना) करने की क्षमता के रूप में बुद्धि को परिभाषित किया है।

लेकिन अनेकों मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परिभाषा को केवल एक चीज से न जोड़ने के बजाय संयुक्त रूप से जोड़कर परिभाषित किया है उनमें से कुछ महत्वपूर्ण बुद्धि की परिभाषाओं को नीचे दिया गया है- वेश्लर के अनुसार "बुद्धि एक समुच्चय या सार्वजनिक क्षमता है, जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है और वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है"।

रूढ़िवादिता और अंधविश्वासों को दूर कर समाज में बदलाव लाने और लोगों को बुद्धिमान और तर्कसंगत बनाने के लिए शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण हथियार है। शिक्षा एक राज्य या देश के लोगों को कुशल और सभ्य बनाने के लिए प्रमुख उपकरण है, और अपने नागरिक के व्यक्तिगत विकास के माध्यम से एक राष्ट्र के विकास का नेतृत्व करती है। शिक्षित नागरिक के बिना कोई भी देश विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति नहीं कर सकता है जो किसी राष्ट्र के विकास के लिए प्रमुख आवश्यकता है। शिक्षा की पूरी प्रक्रिया अकादमिक प्रदर्शन या छात्रों की उपलब्धि, शिक्षा के अंतिम उत्पाद (शिक्षण-सीखने की प्रक्रिया) पर केंद्रित है। छात्रों का अकादमिक प्रदर्शन या उपलब्धि माता-पिता की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, बुद्धि, छात्रों के आवासीय इलाके, लिंग, आयु, स्कूल और कक्षा के कमरे के वातावरण और कई अन्य जैसे कई कारकों से प्रभावित होती है। यह शिक्षा है जो किसी व्यक्ति के व्यवसाय, आय, स्थिति या समाज में स्थिति को निर्धारित करती है। दूसरी ओर, छात्र के परिवार या माता-पिता की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का छात्रों की शैक्षणिक सफलता पर बहुत प्रभाव पड़ता है, वे पारस्परिक रूप से एक-दूसरे से संबंधित होते हैं, लेकिन छात्र की बुद्धि में सामाजिक आर्थिक स्थिति महत्वपूर्ण योगदान कारक होता है।

एटकिंसन (1960) के अनुसार "यह सफलता प्राप्त करने या उपलब्धि के लिए व्यक्ति की स्थाई प्रवुर्ति है जो व्यवहार को दिशा की तीव्रता और निरंतरता प्रदान करती है"। संतोष कुमार (2005) ने प्राथमिक विद्यालय के बच्चों की संज्ञानात्मक योग्यताओं पर लिंग के किसी विशेष प्रभाव के न होने की जानकारी दी। श्रीवास्तव, मंजरी (2004) ने वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर में ष्व्यक्तित्व और सामाजिक सांस्कृतिक चरों के संबंध में संज्ञानात्मक प्रक्रिया का एक अध्ययनष शोध प्रबंधन जमा किया। उनके अध्ययन का निष्कर्ष बताया हैं की स्थानीयता का विशेष प्रभाव बच्चों में संज्ञानात्मक पड़ता है। इस प्रकार वर्तमान शोध अध्ययन कॉलेज के विद्यार्थियों की बुद्धि पर उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति की प्रभाव का अध्ययन करने का प्रयास करता है।

उद्देश (Purpose)

वर्तमान शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य कॉलेज के विद्यार्थियों की बुद्धि पर उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति की प्रभाव का पता लगाना है।

परिकल्पना (Hypothesis)

प्रस्तुत शोध अध्ययन का परिकल्पना हैं- निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के कॉलेज के विद्यार्थियों का बुद्धि का स्तर निम्न होगा, उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की तुलना में ।

अध्ययन का तरीका (Method of the Study)

प्रतिदर्श (Sample)

प्रस्तुत शोध अध्ययन में मुजफ्फरपुर शहर में स्थित विभिन्न महाविद्यालयों के स्नातक प्रथम खंड के विद्यार्थियों का चयन प्रतिदर्श के रूप में किया गया। प्रतिदर्श में एकरूपता अथवा समानता बनाए रखने के लिए सिर्फ कला के विद्यार्थियों का ही चयन किया गया। प्रतिदर्श में लड़का लड़की दोनों का सम्मिलित किया गया है जिनका न्यूनतम उम्र 16 वर्ष और अधिकतम उम्र 18 वर्ष था। विभिन्न महाविद्यालयों से प्रतिदर्श के रूप में 400 विद्यार्थियों का चयन किया गया था जो महाविद्यालय के अनुसार नीचे के टेबल में दर्शाया गया है:

टेबुल संख्या -1: विभिन्न महाविद्यालयों से चयनित विद्यार्थियों की संख्या

क्रमांक	*महाविद्यालय के नाम*	*लड़का*	*लड़की*	*कुल संख्या*
01.	एलएस कॉलेज मुजफ्फरपुर	90	20	110
02.	आरडीएस कॉलेज मुजफ्फरपुर	90	20	110
03.	नितिश्वर सिंह कॉलेज मुजफ्फरपुर	80	20	100
04.	एमडीडीएम कॉलेज मुजफ्फरपुर	-	80	80
	कुल संख्या	260	140	400

नमूने लेने की तकनीक (Sampling Techniques)

इस शोध अध्ययन में प्रतिदर्श चयन की जिस विधि का उपयोग किया गया है उसे आकस्मिक सह उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श (प्दबपकमदजंस ब्नउ च्नतचवेपअम ैंउचसम) कहा जा सकता है। शोध अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में रखकर उपलब्ध विद्यार्थियों को प्रतिदर्श में शामिल कर लिया गया था, ऐसा समझा जाता है कि चयनित प्रतिदर्श अपनी जनसंख्या के ठीक तरीके से प्रतिनिधित्व करता है। अतः प्राप्त परिणाम भी विश्वसनीय होगा।

आंकड़ा इकठा करने का साधन (Tools of Data Collection)

I. व्यक्तिगत सूचना सारणी (Personal Information Schedule)

आंकड़ा इकठा करने के लिये "व्यक्तिगत सूचना सारणी" का निर्माण लिया गया था। इस व्यक्तिगत सूचना सारणी के द्वारा विद्यार्थियों के परिचय और उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की गई थी, साथ ही साथ उनकी पृष्ठभूमि संबंधी जानकारियां भी एकत्रित की गई। उनके परिवार की शिक्षा का स्तर, अभिभावक का व्यवसाय, परिवार की आमदनी इत्यादि बातों की जानकारी एकत्रित करने के लिए प्रश्नों का निर्माण किया गया था। इस व्यक्ति सूचना सारणी द्वारा विद्यार्थी की व्यक्तिगत पहचान के अलावा उसके परिवार की विभिन्न विशेषताओं की जानने में मदद मिलेगी।

II. सामान्य बुद्धि परीक्षण (ळमदमतंस प्दजमससपहमदबम ज्मेज)

मोहसिन (डवीपद, 1968) ने हिंदी में एक बुद्धि परीक्षण का विकास किया है जिसे "सामान्य बुद्धि परीक्षण" करते हैं। बिहार में इस बुद्धि परीक्षण का शोधकार्यों के लिए सघन उपयोग किया जाता है। यह एक विश्वसनीयता परीक्षण है और इसकी जांच पुनः जांच विश्वसनीयता 0.89 पाई गई है। इस बुद्धि परीक्षण पर प्राप्त अंकों का विश्लेषण करने के लिए कुछ कुशाग्रता की सूची निकाली जाती है। कुशाग्रता की सूची द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर व्यक्ति की बुद्धि का स्तर की जानकारी प्राप्त की जाती है।

डेटा संग्रह की तकनीक (Technique of Data Collection)

शोध की एक रूपरेखा तैयार कर लेने के बाद और उपयोग में लाए जाने वाले दोनों परीक्षणों का निश्चय करने के बाद यह तय किया गया कि निश्चित किये गए प्रतिदर्श पर दोनों परीक्षणों का उपयोग करके प्रदत संग्रह किया जाए। यह निश्चित किया जा चुका था कि मुजफ्फरपुर शहर के विभिन्न कॉलेजों के स्नातक खंड-1 में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के ऊपर दोनों परीक्षणों का उपयोग करके प्रदत संग्रह किया जायेगा। अतः बारी-बारी से निश्चित किए गए विभिन्न महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को दोनों परीक्षणों का उपयोग किया गया। विद्यार्थियों को परीक्षणों का उपयोग करते समय कुछ खास बातों का ध्यान रखा गया- सर्वप्रथम महाविद्यालय प्रशासन से इसकी मौखिक अनुमति ले ली गई इसके बाद तक संग्रह के क्रम में कुछ शिक्षकों को भी निवेदन करके सम्मिलित किया गया ताकि प्रदर्शन में सुधार हो। शोधकर्ता अपने साथ दो सहयोगियों को भी ले गई थी ताकि शोध कार्य में उनसे मदद ली जा सके।

प्रदत संग्रह शुरू करने के पहले विद्यार्थियों से नजदीकी संबंध स्थापित करने की कोशिश की गई ताकि उनसे परीक्षणों में मांगी गई अपेक्षित सूचनाओं के बारे में सहयोग मिल सके। सर्वप्रथम शोधकर्ता ने उन्हें अपना परिचय दिया और शोध के उद्देश्य की जानकारी उन्हें दी गई। इसके बाद कुछ विद्यार्थियों से भी उनका परिचय लिया गया ताकि उन से नजदीकी संबंध स्थापित हो सके। कुछ बातचीत कर चुकने के बाद बारी-बारी से विभिन्न परीक्षणों का वितरण उनके बीच किया गया. एक परीक्षण का वितरण कर चुकने के बाद उस से संबंधित आवश्यक निर्देश दिया गया, यह भी बताया गया कि वह निर्देश परीक्षण में भी उल्लेखित है। उनसे यह स्पष्ट जानकारी ले गई कि इन निर्देशों को समझ लिया गया अथवा नहीं, यदि किसी विद्यार्थी को निर्देश समझने में कोई कठिनाई हुई तो उसे व्यक्तिगत रूप से उन निर्देशों को समझा दिया गया। विद्यार्थियों के सामने यह बात स्पष्ट कर दी गई की यह कोई महाविद्यालय की परीक्षा नहीं है और सभी विद्यार्थियों के सभी प्रश्नों का उत्तर एक ही नहीं होगा। एक हीं प्रश्न के उत्तर अलग अलग हो सकते हैं। अतः इसमें नकल करने की कोई गुंजाइश नहीं बनती है और एक दूसरे की नकल करने की कोशिश ना की जाए। अब इन निर्देशों के बाद शोधकर्ता और उसके साथियों ने विभिन्न परीक्षणों का उपयोग करके विद्यार्थियों से अपेक्षित सूचनाएं प्राप्त कर ली। इसी प्रकार सभी परीक्षणों से संबंधित सूचनाएं प्राप्त कर ली गई।

आँकड़ा विश्लेषण (Analysis of Data)

आँकड़ा संग्रह करने के बाद सांख्यिकी विश्लेषण किया गया। सांख्यिकी विश्लेषण में mean, SD, t-value एवं p-value को देखा गया जो तालिका-2 में अंकित हैं। सांख्यिकी विश्लेषण करने से पहले सभी विद्यार्थियो को निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति और उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियो को दो समूहों में बांट लिया गया। दोनों समूहों के परीक्षणों के अंकों के लिए बारंबारता तालिका बना ली गई और उसका मध्यमान एवं प्रमाणिक विचलन निकाल लिया गया। फिर दोनों समूहों के प्राप्ताँकों के बीच ज-तंजपव का उपयोग करके दोनों समूहों के प्राप्ताँकों के बीच अंतर ज्ञात कर लिया गया।

परिणाम (Results)

तालिका-2: कॉलेज के विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा उनके बुद्धि के स्तर में अंतर

कॉलेज के विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति	*N*	*Mean*	*SD*	*t-value*	*p-value*
निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियो	200	66.56	3.11	9.11	.000’
उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों	200	77.81	4.13		

*Significance at 0-01 level

तालिका संख्या- 2 को देखने से स्पष्ट होता हैं कि, निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों का बुद्धि के पैमाने पर निम्न माध्य (66.56) आया हैं जबकि उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों का बहिमुर्खता के पैमाने पर उच्च माध्य (77.81) आया हैं। जबकि SD, 3.11 एवं 4.13 आया हैं। टी-वैल्यू की बात करें तो 9.11, 0.01 साथर्कता के स्तर पर आया हैं । परिणाम बताता हैं कि निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों का बुद्धि का स्तर निम्न होता हैं, जबकि उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की बुद्धि का स्तर उच्च होता हैं। इसका मतलब हैं कि कॉलेज के विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा उनके बुद्धि के बीच संबंध होता हैं। प्राप्त परिणाम द्वारा निर्मित की गयी पूर्वकल्पना की पुष्टि हो रही हैं।

निष्कर्ष (Conclusions)

निष्कर्ष में यह पाया गया कि निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों का बुद्धि का स्तर निम्न था, जबकि उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की बुद्धि का स्तर उच्च था । यह भी निष्कर्ष में पाया गया कि कॉलेज के विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का प्रभाव उनके बुद्धि पर पड़ता हैं ।

संदर्भ (Reference)

Atkinson, J. W. (1960), Achievement motive and text anxiety conceived as motive to approach success and motive to avoid failure, Journal of Abnormal and Social Psychology, 60, Pp. 52-63.

Kumar, S. (2005), A Study of anxiety level and adjustment patterns of advantaged and disadvantaged groups of students, Magadh Journal of Social Research, Vol., XI, No. 1, Pp. 21-26.

श्रीवास्तव, मंजरी (2004), "व्यक्तित्व और सामाजिक सांस्कृतिक चरों के संबंध में संज्ञानात्मक प्रक्रिया का एक अध्ययन", शोध प्रबंधन, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर।

21वीं शताब्दी में पर्यावरण अध्ययन की आवश्यकता

डॉ० राजीव कुमार

एसो० प्रोफेसर-भूगोल विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

पर्यावरण का निर्माण पृथ्वी की उत्पत्ति के वाद मंदगति से सतत् सक्रिय क्रिया से उत्पन्न हुआ है। पृथ्वी पर चारो तरफ विस्तृत जैविक व अजैविक तत्वों जल, वायु एवं मिट्टियों का श्रृंखलावद्ध एवं व्यवस्थित संगठन पर्यावरण का निर्माण करता है। मनुष्य भी पर्यावरण का अंग है और पर्यावरण के सभी घटक अपने आप में एवं एक दूसरे से अन्तर्प्रक्रिया करते हैं। जैविक और अजैविक तत्व भी क्रियाशील रहते हैं। अजैविक घटक तत्वों की क्रियाऐं प्राकृतिक नियमों एवं चक्रों यथा-उत्पत्ति विकास, अपरदन चक्र, प्राकृतिक आपदाऐं- भूकम्प, ज्वालामुखी, बलन, भ्रशंन द्वारा सतत् क्रिया होती रहती है, और पर्यावरण को प्रभावित करती हैं।

इसी प्रकार से जीव जगत एवं मानव भी क्रियाशील रहते हुए प्राकृतिक चक्र से समायोजित होते रहते हैं किन्तु मानव, पर्यावरण का विशिष्ट जीव है जिसकी आवश्यकताऐं अधिक होने के कारण विकास द्वारा पर्यावरण पर प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा में पर्यावरण को सर्वाधिक प्रभावित किया है। इस प्रक्रिया में प्रारम्भिक चरणों में मानव अपने अंहम् की पूर्ति करता है, किन्तु पर्यावरण के तत्वों के लगातार दोहन से प्राकृतिक चक्रों में असंतुलन होता रहता है जिससे पर्यावरण की गुणवत्ता प्रभावित होती है। पर्यावरण का विनाश होता है तथा युद्ध स्तर पर पर्यावरण सुघम के प्रयास आरम्भ किये गये हैं। यदि मानव को पर्यावरण का वोध बचपन से ही कराया जाय तो पर्यावरण का दोहन सीमित करने का प्रयास करेगा। इसीलिए भी पर्यावरण का अध्ययन करना नितांत आवश्यक हो गया है।

भौगोलिक अध्ययन का उद्देश्य भी मानव कल्याण है किन्तु मानव कल्याण व्यापक और जटिल कार्य है पर्यावरण के जैविक व अजैविक घटकों तथा मानव के बीच अर्न्तक्रिया होती रहती है और ये घटक परस्पर क्रियाशील रहते हैं। मानव एवं पर्यावरण की अर्न्तप्रक्रिया से समाज के गठन एवं उसकी सांस्कृतिक उपलब्धि प्रभावित होती है। विकसित समाज तकनीक से पर्यावरण में अधिक परिवर्तन लाने का प्रयास करता है जबकि इसके विपरीत अविकसित समाज पर्यावरण को प्रभावित/अथवा परिवर्तन लाने का प्रयास सीमित रूप से करता है।

पर्यावरण का अर्थ: (Meaning of Environment)

पर्यावरण का सामान्य अर्थ भौतिक परिवेश से होता है पर्यावरण वास्तविक रूप से व्यापक अर्थों वाला है जिसकी अभिप्राय: समस्त परिस्थितिकी अथवा परिवृत्ति (Total Set of Surrounding) परिवेश, पडौस, जीवनयापन एवं कार्य प्रणाली की दशायें, वनस्पतियों एवं जीव जगत के विकास की दशायें आदि अर्थों में किया जाता है। वास्वत में एन्वायरमेंन्ट (Environment) शब्द फ्रेंच भाषा के Environir शब्द से बना है1 जिसका अर्थ पारिस्थितिकी है जिसमें सभी स्थितियॉं, परिस्थितियॉं दशायें आदि जो वनस्पतियों एवं जीवन जगत को प्रभावित करती है, सम्मिलित हैं। एच0फिटिंग ने लिखा है "जीव के परिवेशीय कारकों का योग पर्यावरण है।"[1] ए0जी0 टान्सले ने पर्यावरण को "उन सम्पूर्ण प्रभावी दशाओं का योग कहा है जिनमें जीव रहते हैं।"[2] पर्यावरण को परिभाषित करते हुए हर्स कोविट ने लिखा है कि "पर्यावरण सम्पूर्ण वाह्य परिस्थितियों और उसका जीव धारियों पर पडने वाला प्रभाव है जो जीव जगत के जीवन चक्र का नियामक हैं।"[3] वास्तव में पर्यावरण प्राकृतिक दशाओं एवं शक्तियों से निमित एक साकार प्राकृतिक स्वरूप है जिसका प्रभाव मानव एवं उसकी क्रियाओं पर पड़ता है।

भौगोलिक अध्ययन में पर्यावरण की अवधारणा व्यापक है। भूगोल में पृथ्वी तल को, मानव निवास के रूप में अध्ययन किया जाता है। स्वभावत: पृथ्वी तल और उसके समीवर्ती समस्त भौतिक परिवेश का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। सदियों तक वायुमण्डल के निचले स्तर का ज्ञान ही मानव को अभीष्ट था लेकिन सौर मण्डल क्रिया कलापों के कारण अन्तरिक्ष की ज्ञान भी आवश्यक हो गया है। पर्यावरण सम्बन्धी बढती कठिनाईयों के कारण न केवल भूगोल के अपितु अनेक विषयों के सिद्धान्त भी उसके अध्ययन की ओर आकर्षित हुए हैं। जीवों की बिगडती पारिस्थितिकी ने पर्यावरण के रहस्यों को जानने के लिए बाध्य कर दिया है।

पर्यावरण के प्रकार (Type of Environment)

प्रारम्भिक आवश्यकताओं की पूर्ति में मानव ने पर्यावरण में वर्तमान तक अनेक परिवर्तन कर लिया है। परिवर्तन क्रिया से संस्कृति विकास और संस्कृति विकास से परिवर्तन क्रिया में सक्रियता निरन्तर संचालित रहती है। भौतिक पर्यावरण में विषमता परिलक्षित होने से पर्यावरण का वर्गीकरण करना आसान हो गया है जो निम्न प्रकार है:-

1. भौगोलिक पर्यावरण (Geographical Environment)

मानव अपनी क्रियाओं द्वारा अपने चारो ओर आवेष्ठित पर्यावरण में परिवर्तन करके जिस नवीन पर्यावरण का निर्माण करता है उसे भौगोलिक पर्यावरण कहते हैं। इस पर्यावरण का मापन मानव क्रियाओं की मात्रा तथा उसके पर्यावरण प्रभाव की दर द्वारा किया जाता है अर्थात् जो समाज सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जितना अल्प विकसित होता है उसकी क्रियाओं की मात्रा उतनी ही कम होती है तथा भौगोलिक पर्यावरण उतना ही सीमित होता है।

2. संक्रियात्मक पर्यावरण (Operating Environment)

मानव समूह के पर्यावरण में क्रियाशील रहने से कम परिवर्तन होता है जिससे एक नवीन पर्यावरण का निर्माण होता है जिसे संक्रियात्मक पर्यावरण कहा जाता है। यह पर्यावरण पूर्णरूप से भौगोलिक पर्यावरण नहीं होता है। यदि मानव क्रियाऐं सक्रिय रहती हैं तो यह पर्यावरण भौगोलिक वातावरण और अग्रसर रहता है। इस पर्यावरण में यदि 60 प्रतिशत प्राकृतिक पर्यावरण है तो 40 प्रतिशत भौगोलिक पर्यावरण का योगदान होता है। 60 प्रतिशत प्राकृतिक पर्यावरण की प्रधानता को कम करने के लिए मानव निस्तर क्रियाशील रहता है। संक्रियात्मक पर्यावरण भिन्न-भिन्न होता है क्योंकि प्रत्येक मानव समूह की क्रियाओं की मात्रा उसके सांस्कृतिक वैज्ञानिक प्रजातीय गुणों के कारण भिन्न-भिन्न होती है।

3. बोधात्मक पर्यावरण (Recepitual èPerceptual Environment)

यह पर्यावरण संक्रियात्मक पर्यावरण का अंग है। इसका मापन सम्भव नहीं है। पर्यावरण का ज्ञान संवेदनाओं के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक मानव के अंदर भिन्न-भिन्न संवेदनाएं होती है। इसीलिए इसका मापन सम्भव नहीं है। इस पर्यावरण की बोधगम्यता अनुभव, शिक्षा, विश्लेषण एवं तर्क आदि के द्वारा संवदनात्मक एवं प्रतीकात्मक ज्ञान द्वारा की जाती है।

4. व्यवहारात्मक पर्यावरण (Behaviroural Environment)

नवीन आविष्कार अनुसंधान तया अन्योन्य विकास के लिए सक्रिय जागरूक मानव से मुक्त पर्यावरण व्यवहारात्मक पर्यावरण कहलाता है। विश्व का अधिकांश पर्यावरण इसी प्रकार की पर्यावरण है।

मानव भौगोलिक संक्रियात्मक, बोधात्मक तथा व्यवहारात्मक पर्यावरण में निवास करता है वह संस्कृति के विकास के लिए विभिन्न प्रकार की प्राविधियों का प्रयोग करके पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाता है। इससे सांस्कृतिक विकास में सहायक सभी तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। पर्यावरण को दो भागों में विभक्त किया है (1) भौतिक पर्यावरण (Natural Environment) जिसका वर्णन उपरोक्त में किया गया है। सांस्कृतिक पर्यावरण मानव की अनुक्रियाओं से उत्पन्न भौतिक स्वरूपों और पारिस्थितियों को कहते हैं जो एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। मानव निर्मित वस्ती, आर्थिक कार्य, आचार विचार तथा राजनैतिक व्यवस्था इसके प्रमुख तत्व हैं। इन तत्वों का निर्माण मानव ने अपने ज्ञान विज्ञान, तकनीक और आवश्यकतानुसार पर्यावरण के सहयोग से किया है।[4]

पर्यावरण का मूल्यांकन (Evoluation of Environment)

पर्यावरण तत्वों का मूल्यांकन प्रकृति ने पर्यावरण का निर्माण अजैव व जैव घटकों से किया है। जैव घटक में मानव सर्वाधिक शक्तिशाली तत्व है। वह पर्यावरण का नियत्रंक, चालक, रूपान्तक एवं विनाशक के रूप में जाना जाता है। इन क्रियाओं को कार्यरूप में बदलने के लिए वह स्वयं पर्यावरण के द्वारा बदलता रहा है। अपनी क्षमता, आवश्यकता और सामान्जस्य के द्वारा वह अपने परिवेश की व्यवस्था अर्थात् पारिस्थितिकी का नियमन करता रहता है। यही कारण है कि भूगोल के प्रारम्भिक काल में नियतवादी अवधारणा की प्रधानता रही। मानव के बढ़ते प्रभाव के कारण उसकी नियन्त्रक, चालक और रूपान्तक क्षमता में वृद्धि के कारण वैचारिक बदलाव से सम्भववाद को जन्म दिया। इन वैचारिक भावनाओं के कारण मनुष्य अपने परिवेश की उपज न होकर नियत्रंक समझा जाने लगा। तकनीकी विकास ने इस स्थिति को और आगे बढाया और तब मानव प्रकृति विजय की बात करने लगा। लेकिन जब प्रकृति के प्रकोपों से पार पाने के सभी रास्ते दुरूह प्रमाणित होने लगे तो पुनः प्रकृतिवाद की ओर लौटना अनिवार्य हो गया। इससे प्रकट होता है कि पर्यावरण के बन्धनों को पार करने का प्रयास कुछ ही परिस्थितियों में सम्भव है। फलतः नव प्रकृतिवाद की अवधारणा विकसित हुई किन्तु वर्तमान समय में मानवीय बोध, मानवीय चेतना, मानवीय क्रिया और मानवीय सृजनात्मक को केन्द्रीय सक्रिय भूमिका प्रदान करता है। वर्तमान में मानव व्यक्ति के रूप में क्या है और वह क्या कर सकता है से मानववादी भूगोल की अवधारणा विकसित हुई है। जिसमें मानव को केन्द्र में रखकर मानव प्राणी को एक केन्द्रीय स्थान प्रदान किया गया है। प्रत्यक्षवादी के असफल रहने से घटना क्रिया विज्ञान को भी अव ध्यान में रखा जा रहा है। वास्तविकता अर्थात व्यवहारिकता की अवधारणा को विकसित कर रहा है।[5]

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भौगोलिक मान्यता के अनुसार पर्यावरण दो प्रकार-भौतिक व सांस्कृतिक होता है। भौतिक पर्यावरण प्राकृतिक उपादानों जैव व अजैव घटकों का समुच्चय है जो धरातल से लेकर आकाश तक व्याप्त है जबकि सांस्कृतिक पर्यावरण मानव प्रकृति को अर्न्तप्रक्रिया का प्रतिफल है। मानव द्वारा सृजित दृश्य और अदृश्य तत्वों के संगठित रूप को सांस्कृतिक परिवेश कहा जाता है। स्पष्ट है कि सांस्कृतिक परिवेश पर भौतिक परिवेश का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव पाया जाता है। भौतिक पर्यावरण की महत्ता इससे भी प्रमाणित है जबकि इसकी अनुपस्थिति में जीवन असम्भव है। वर्तमान समय में अब तक की खोजों से यही प्रमाणित होता है कि केवल पृथ्वी पर जीवधरियों का अस्तित्व है। सौर परिवार के अन्य ग्रह-उपग्रह पर्यावरण की प्रतिकूलता के कारण जीव रहित है। अतः पर्यावरण जीवन का आधार है। यही कारण है कि भौतिक पर्यावरण का स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन किया जाता है क्योंकि इसका प्रभाव बहुआयामी है। पर्यावरण जनित संसाधन ही मानव समाज की प्रगति का आधार है।

संसाधनों का अत्यधिक दोहन मानव समाज के दु:ख का कारण है। उदाहरण के रूप में वायु और जल दोनों जीवन के लिए बहुमूल्य तत्व हैं इनके विना, प्रगति को स्थायी नहीं बनाया जा सकता है। लेकिन आज औद्योगिक देशों में पर्यावरणीय एवं सांस्कृतिक दोनों का प्रदूषण बढने से वहां स्वस्थ मानव जीवन की समस्या पैदा हो रही है यहां तक कि कई देशों में पेय जल का अभाव है और हवा की आक्सीजन गैस प्रदूषित हो गयी है लेकिन प्रगति को बनाये रखने के लिए पर्यावरण का विनाश प्रगति को बनाये रखने के लिए पर्यावरण का विनाश उनके लिए क्षम्य लगता है जो ठीक नहीं है। भौतिकता की आँधी उनका बहुत कुछ नष्ट कर चुकी है। स्पष्ट है कि मानव केवल पर्यावरण का एक जीव मात्र न होकर सामाजिक पारिस्थितिकी का जीव है जो पर्यावरण से अर्न्तक्रिया करते हुए जीव मण्डल के केन्द्र में स्थापित है। इस प्रकार से पर्यावरण और जीव जगत का मूल्यांकन करना आसान कार्य नहीं है।

भारत में सदियों से संग्रहित विचारों को प्रकृति द्वारा संजो कर रखा है आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति इसका उदाहरण है जिसमें पर्यावरण के अनुसार खान-पान रहन सहन तथा क्रिया कलाप की व्यवस्था बतायी गयी। आयुर्वेद की अवगति के कारण ही पर्यावरण के प्रति उदासीनता अनेकों वीमारियों, दैवीय प्रकोपों और सामाजिक समस्याओं का कारण वन गयी है। मानव का उनके प्रति दम्भ पूर्ण व्यवहार उसके अस्तित्व के लिए खतरा बन गया हैं जल, वायु, वनस्पति, मृदा, जीव और अनेक भौतिक तत्वों के प्रति निष्ठुर व्यवहार आज मानवता के लिए खतरे बताये जा रहे हैं। इन खतरों से छुटकारा पाने के लिए पर्यावरण का समुचित ज्ञान और उचित प्रबन्ध आज की महत्वपूर्ण आवश्यकता वन गयी है। इस कार्य के लिए विविध ज्ञान विज्ञानों के विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है क्योंकि आज का वैज्ञानिक समाज विशेषीकरण के नाम पर अनेक खेमों में बट गया है। पर्यावरण की अशुद्धता के कारण ही गावों और शहरों में ड्रेनेज की व्यवस्था पर भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा है ताकि संक्रामक बीमारियों को नियंत्रित किया जा सके।[6]

भूगोल में पर्यावरण का अध्ययन दो दृष्टिकोणों से किया जाता है प्रथम पर्यावरण के जीवधारियों विशेषकर मानव का प्रभाव और द्वितीय जीवों, विशेषकर मानव का प्रकृति के साथ छेडछाड। वास्तव में भूगोल एक ऐसी स्थिति का नियामक है, जो प्रकृति के उपादानों का विश्लेषण के साथ मनुष्य और अन्य जीवों की अर्न्तप्रक्रिया की मूल्यांकन करता है। इसीलिए पर्यावरण की अनुकूलता और प्रतिकूलता को अध्ययन का मूल्यांकन करना आवश्यक हो गया है। प्रथ्वी पर बढती जनसंख्या और उसके साथ तेजी से बढती उसकी आवश्यकता प्रकृति से सहयोग के स्थान पर सघंर्ष के लिए प्रोत्साहित कर रही है। उदाहरण के रूप में अधिक अनाज की आवश्यकता, औद्योगिकीकरण या शहरीकरण के लिए जंगलों का तेजी से विनाश हुआ है इसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व में देखा जा रहा हैं। इन स्थिति को रोकने के लिए भारत में चिपको आदोलन का आगाज 1972 में रोकने के लिए हुआ जिसका विश्व व्यापी समर्थन मिला। आज पृथ्वी पर पारिस्थितिकी को संतुलन बनाये रखने के लिए एक तिहाई भूमि पर जंगलों का होना आवश्यक माना गया। जंगलों की सुरक्षा तथा वृक्षारोपण व वन विनाश को रोकने के लिए कानूनी प्रावधानों का भी समावेश किया गया है ताकि पृथ्वी पर पर्यावरण के असन्तुलन को रोका जा सके। जहॉं एक और पर्यावरण प्रबन्धक तथा सतत् विकास को ढूढॉं जा रहा है वहीं दूसरी ओर विकास के नाम पर पर्यावरण को नष्ट करने का कुचक भी विद्यमान है पृथ्वी तल पर अपने कार्यो से समस्या प्रधान बनाने वाले उन्नत समाज आज अन्तरिक्ष में अत्यधिक सैटेलाइटों को भेजकर अन्तरिक्ष में भी प्रदूषण फैलाने की दिशा में भी अग्रसर हो गया है।

पर्यावरण की महत्ता एवं वोध (Perception &Importance of Environment)

पर्यावरण के दो प्रधान अजैव घटक व जैव घटक एक दूसरे से इस प्रकार से संघटित है कि उनको अलग-अलग देखना कठिन कार्य है लेकिन दोनों घटकों के कुछ तत्व अधिक व्यापक प्रभाव डालने वाले हैं अजैव तत्वों में जलवायु तथा जैव तत्वों में मानव सर्वोपरि हैं। इन दोनों तत्वों की भूमिका जीव मण्डल की व्यवस्था और क्रियाशीलता को प्रभावित करती है। जिस प्रकार जलवायु ने जीवों का इतिहास वनाया है, तो मानव ने जलवायु सहित अन्य जीवन जन्तुओं, अर्थात जीव जगत को प्रभावित किया है। जिससे उनके समक्ष अस्तित्व का खतरा उत्पन्न हो गया है।

जैवमण्डल की रचना में अजैव व जैव दोनों ही तत्वों का महत्व है अंतर केवल इतना है कि अजैव तत्वों की तुलना में जैव तत्वों से विशेषकर मानव की क्रियाशीलता से जैव मण्डल की गुणवत्ता में तीव्र परिवर्तन आया है। मानव अपनी वौद्धिकता के वल पर विकसित विज्ञान और तकनीकी की मदद से अपने निवास्य को सबसे अधिक परिवर्तित किया है उसका यह परिवर्तनकारी रूख पर्यावरण को बदलने तक पहुंच गया है और उसे पर्यावरण के निर्माणकर्ता के रूप में समझा जाने लगा है। प्रश्न यह है कि क्या मानव को पर्यावरण का ठीक ज्ञान है? वर्तमान अनुभव से यही प्रमाणित होता है कि उसका ज्ञान अधूरा है जो उसके अस्तित्व के लिए भी खतरा बन गया है। वायुमण्डल का विश्वव्यापी प्रदूषण इसका सबसे बडा प्रमाण है। पृथ्वी के वायुमण्डल का तापमान सामान्य से 0.5 डिग्री सेल्सियत तक अधिक हो गया है वायुमण्डल की ओजोन पर्त में कार्वनडाई आक्साइड के अधिक उत्सर्जन से ओजोन पर्त पर छेद हो गया हे। यह ओजोन पर्त सूर्य की पराबैगनी किरणों को पृथ्वी पर रोकने का कार्य करती है और कैंसर जैसी भयंकर बीमारियों से मनुष्य को बचाती है।

पर्यावरण के प्रति मनुष्य की चेतना, जन्म से जागृत होती है क्योंकि उसका जन्म ही पर्यावरण की देन के परिणाम स्वरूप है पर्यावरण से समायोजन सभी जीव जगत का स्वाभाविक गुण है। पर्यावरण से समायोजन की प्रक्रिया मानव एक इकाई के रूप में नहीं बल्कि एक परिवार एवं समाज के रूप में विद्यमान है। आदिवासी मानव अपनी मूलभूत आवश्यकता के लिए प्रकृति के संसाधनों पर निर्भर रहते हैं। प्रकृति के साथ उनका अर्न्तसम्बन्ध सहजता पर आधारित होता है लेकिन मानव समाज की बढती जनसंख्या तथा बढ़ती आवश्यकता ने पर्यावरण की बदलने के लिए उत्प्रेरित किया। जंगल से भोजन प्राप्त करने के स्थानपर पशुपालन और कृषि विकास इसी क्रम का प्रतीक हैं इन कार्यो के लिए पर्यावरण का बोध स्थानीय अथवा क्षेत्रीय स्तर पर होना ही पर्याप्त था। धीरे-धीरे विज्ञान और तकनीक के विकास से अधिक जनकल्याण की परिकल्पना विकसित हुई। फलत: अधिक उत्पादन हेतु पर्यावरण के संसाधनों का दोहन बडे पैमाने पर शुरू हो गया। इस प्रक्रिया में प्रकृति के प्रति अनुदान रवैया दिनों दिन बढता जा रहा है। फलत: प्राकृतिक तत्वों की गुणवत्ता में तीव्र ह्रास यह प्रमाणित करने लगी है कि प्रकृति की स्वनियामक एवं स्वअभिवर्धक शक्ति क्षीण होती जा रही है जिससे जीवन की गुणवत्ता भी नष्ट होती जा रही है इस बोध से नयी चेतना जागृत हुई है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण प्रबन्ध पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण सुधार, पर्यावरण संधृत जैसे विचारों का जन्म हुआ है। अत: पर्यावरण जीव अर्न्तसम्बन्धों

को नये सिरे से समझने के लिए पारिस्थैतिकी का अध्ययन आवश्यक समझा जाने लगा है। स्पष्ट है कि पर्यावरण बोध की विधिक स्थितियाँ मानव समाज के उत्थान व पतन की प्रतीक है। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिससे प्रकट होता है कि पर्यावरण का सही बोध न होने के कारण अनेक जैव प्रजातियों का विनाश हो जाने से विलुप्त हो रही है। मानव भी इससे अछूता नहीं है। आज पर्यावरण का सही बोध न होने के कारण ही पर्यावरण अवमानना जनित समस्याऐं विकट रूप लेती जा रही है। यदि पहले से सही ज्ञान होता कि विभिन्न प्रकार की त्याज्य वस्तुऐं वायुमण्डल को प्रदूषित कर जीवन के लिए संकट पैदा करेगी तो शायद यह भयावह स्थिति नहीं होती जो आज वन गयी है। मानव भूगोल के अनेक विद्धानों ने पर्यावरण मानव सम्बन्धों की बिगडती स्थिति की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट किया लेकिन उनकी भी अनदेखी की गयी।

पर्यावरण बोध को बुकफील्ड ने दो प्रकारों में बॉटा (1) आनुभाविक पर्यावरण तथा (2) पर्यावरणीय अनुभवों से है जो मानव के विविध निर्णयों का आधार है अर्थात् वह पर्यावणीय अनुभव जो पीढी दर पीढी चला आ रहा है। जिसके आधार पर कोई निर्णय लिया जाता है। उदाहरण के लिए वायु, जल, मृदा पौधों के सम्बन्ध में संगृहीय ज्ञान और अनुभव जो जीवन संचार के स्तम्भ है। इसी वर्ग में आते हैं। पर्यावणीय ज्ञान से अर्थ पर्यावरण का जानकारी से है जिसमें कुछ ज्ञान पूरा और कुछ अधूरा होता है जिसके कारण असावधानियां होती रहती है। उदाहरण के रूप में वायुमण्डल का ज्ञान है किन्तु ओजोन परत का वास्तविक ज्ञान अधूरा होने के कारण विषैली गैसों को विना रोक-टोक के वायुमण्डल में छोडा जाता रहा है जिसके कारण ओजोन परत नष्ट हो रही है फलस्वरूप पृथ्वी पर परा बैगनी किरणें पृथ्वी पर पहुंचने लगेगी जो जैव जगत के संहार का कारण हो सकती है।

आर0 डाउन्स का मानना है कि पर्यावरण बोध/ज्ञान भौगोलिक इकाई की वस्तु है जिसका अध्ययन तीन उपागमों के माध्यम से किया जा सकता है:-

1. संरचनात्मक उपागम (Structural Approach)
2. मूल्यांकन उपागम (Evoluational Approach)
3. अपेक्षित उपागम (Preference Approach)

संरचनात्मक उपागम के अन्तर्गत किसी स्थान की पर्यावरणीय स्थिति का मानव के मन पर पड़ने वाले स्थाई प्रभाव को परखा जाता है। मानव संस्कृति की विविधता संरचनात्मक उपागम के कारण ही देखने को मिलती है। मूल्यांकन उपागम में पर्यावरण के तत्वों का मूल्यांकन स्थान, काल/समय और अर्न्तसम्बन्ध के परिप्रेक्ष में किया जाता है उदाहरण के रूप में किसी नदी घाटी के विकास कार्य में उसकी उपलब्धियों के साथ कठिनाईयों और कुप्रभावों का भी मूल्यांकन किया जाता है। नर्मदा घाटी परियोजना के सम्बन्ध में विस्तृत ज्ञान के अभाव में ऐसी परिस्थिति पैदा हुई है। जहाँ लाभ की तुलना में पारिस्थितिकी की हानि का खतरा इस परियोजना से जुड गया है। उपेक्षित उपागम में उपरोक्त दोनों उपागमों के समुच्चय को आधार पर बनाया गयाहै अर्थात् पर्यावरण के सम्बन्ध में जो ज्ञान उपलब्ध है उसी के क्रम में साक्ष्यों का संग्रह किया जाता है। उसके बाद कोई निर्णय लिया जाता है। किसी क्षेत्र में प्राकृतिक प्रकोप का पुराना अनुभव उस क्षेत्र के निवासियों को है जिसके आधार पर निश्चित किया जाता है कि किन उपायों से उससे छुटकारा पाया जा सकता है अथवा उसके प्रमाणों को कम किया जा सकता है। हम जानते हैं कि भूकम्प, ज्वालामुखी, समुदी तूफान, बाढ सूखा दावाग्नि, माहामारियाँ आदि प्रकृति की देन है। इनके सृजन पर रोक लगाना सम्भव नहीं है फिर भी मनुष्य अपनी खोज और प्रयोगों से यह जानने का प्रयास करता है कि समुद्री तूफान की गतिशीलता और व्यापकता का क्या स्वभाव है इसके लिए रडार अथवा उपग्रहों से चित्र लेकर सावधानी की अग्रिम सूचना देकर जन-धन हानि की बचत करने का प्रयास करता है। साथ ही ऐसा कोई निर्माण तूफान आने वाले क्षेत्रों में नहीं करना चाहता जिससे अधिक नुकसान हो । यही कारण है कि जापान में लकडी के घर अधिक बनाये जाते हैं ताकि भूकम्प के आने से जानमाल की क्षति कम हो। विज्ञान और तकनीकी विकास के फलस्वरूप अव जापान में कंक्रीट के वहुमंजिला इमारतें बनाई जा रही है। लेकिन भूकम्प सुरक्षा का प्रावधान उनकी संरचना को प्रमुख आधार होता है। विश्व के अनेक देशों में प्राकृतिक प्रकोपों का प्रभाव समान नहीं है, फलत: इनको झेलने का बोध भी समान नहीं मिलता है। कम विकसित देश इसे सहजता से जबकि विकसित देश इससे अधिक आक्रन्त भाव से झेलते हैं स्पष्ट है कि पर्यावरण का बोध प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक समाज के लिए भिन्न-भिन्न होता है।

पर्यावरण वोध का स्तर (Level of Perception) विश्व संस्था यूनेस्को के तत्वाधान में पर्यावरण वोध के विधिक पक्षें के अध्ययन के लिए पर्यावरण विदों का आव्हान किया गया है क्योंकि पर्यावरण की कुछ समस्याऐं विश्व व्यापी है तो कुछ क्षेत्रीय हैं इस दृष्टिकोण से पर्यावरण का अध्ययन विश्व स्तरीय, राज्य स्तरीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर किया जा रहा है।

विश्वस्तर पर पर्यावरण बोध (Environmental Perception at world Level) विश्व स्तर पर पर्यावरण बोध सीमित है क्योंकि बडे पैमाने पर पर्यावरण वोध एक कठिन है लेकिन ऐसी अनेक समस्याऐं हैं जिनका विश्व व्यापी प्रभाव है। उदाहरण के लिए जलवायु किसी देश की सीमा में बधी नहीं होती, जलवायु के अतिरेक का प्रभाव विस्तृत हो सकता है। इसी प्रकार वायुमण्डल में प्रदूषित गैसों का प्रभाव भी विश्वव्यापी हो सकता हैं गत वर्षो के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि वायुमण्डल की विभिन्न परतों में कार्वनडाईआक्साइड के बढते प्रभाव से ओजोन परत का नाश तेजी से हो रहा है जिसका प्रभाव विश्वव्यापी है। इसी प्रकार वनस्पतियॉ एवं समुद्री शैलाव के विनाश के कारण आक्सीजन वजट पर घातक प्रभाव हो रहा है। बढ़ते कार्वन डाई आक्साइड से पृथ्वी का तापमान 0.5 सेल्यिस तक बढ़ गया है और इसी दर से कार्वनडाई आक्साइड की मात्रा की दर बढती गयी तो पृथ्वी का तापमान कई डिग्री सैल्यिस तक बढने की सम्भावना व्यक्त की जा रही है जो विनाश का आमंत्रण है। यह भी कहा जा रहा है कि पृथ्वी पर हरित गृह प्रभाव (Green House ffeect) गडबड हो रहा है। हरित गृह प्रभाव वायुमण्डल की ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन विकास और रक्षक के रूप में कार्य करती है। वायुमण्डल में उपस्थित कार्वन डाई आक्साइउ (Co_2) जलवाष्प तथा अन्य उपस्थित गैसों के अणु पृथ्वी के धरातल से लौटने वाली ऊष्मा को सोख लेते हैं यही ऊष्मा पृथ्वी को गर्म रखती है जिसके परिणाम स्वरूप जैव जगत के लिए तापमान की अनुकूल परिस्थितियॉ वनी रहती हैं, जो जैव जगत के लिए खतरनाक है। एक अध्ययन के अनुसार 1880 ई0 के पूर्व एक लाख वर्ष एक वायुमण्डल में कार्वन डाई आक्साइउ (Co_2) की मात्रा स्थिर रही। औघ्योगिक युग के साथ इसमें तीव्रगति से बदलाव आया है। 1958 में एक परीक्षण के अनुसार वायुमण्डल में कार्वनडाई आक्साइड की मात्रा 10 लाख में 315 पीपीएस हिस्से के बराबर थी जो बढ़कर 1984 में 345पीपीएम के बराबर तथा वर्तमान में यह 692 पीपीएस के बराबर हो गयी है।

पृथ्वी के हरितगृह प्रभाव के निर्माण में मीथेन, नाइट्रेट आक्साइड और ओजोन आदि गैसों का महत्व भी उल्लेखनीय है। एक अध्ययन में 40 ऐसी गैसों का पता लगा है जो पृथ्वी के हरितगृह प्रभाव को बनाये रखने में योगदान देती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि वर्ष 2030ई0 तक वायुमण्डल के हरिगृह गैसों की मात्रा दो-गुनी हो जायेगी जिसके फलस्वरूप पृथ्वी का औसत तापमान 3-4 डिग्री सेल्सियस तक बढ जायेगा। जो जीव जगत के लिए विनाशकारी सिद्ध होगी। तापमान के बढने से पृथ्वी तल के करीब 11 प्रतिशत क्षेत्रफल जो हिम आवरण से घिरा है। तापमान के बढने से हिम आवरण से हिम पिघलकर जल वन जायेगा जो 3 करोड वर्ग किमी0 जल राशि के बराबर होगा। इस जल के कारण सागरों का जल सतह 65 मीटर ऊपर उठ जाने की सम्भावना व्यक्त की गयी है। जिसके कारण महाद्वीपों का 15 लाख कि0मी0 का क्षेत्र जलमग्न हो जाने की सम्भावना है। यह जली प्रलय का दिन होगा। वैज्ञानिक का अनुमान है कि यदि सामान्य से 3-4 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ जाय तो भी पृथ्वी पर जल की भयावह स्थिति उत्पन्न हो जोयगी। जिससे समुद्र के तटीय भाग जलमग्न हो जायेंगे और अनेक द्वीपों का अस्तित्व भी समाप्त हो जायेगा। विश्व के मालद्वीप, मारीशश समोआ जैसे छोटे-छोटे समुद्री द्वीपों पर बसे देशों को अस्तित्व के लिए भी संघर्ष करना पडेगा। ऐसे द्वीपों ने अर्न्तराष्ट्रीय पर्यावरणीय सुरक्षा मंच पर सुरक्षा अभियान को उठाना शुरू कर दिया है ।

राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण वोध (Environmental Perception on National level)

राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण बोध अपेक्षाकृत सशक्त होता है। राज्य निर्माण के कार्यक्रम पर्यावरण वोध पर आधारित होते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर पारिस्थैतिकी तंत्र की गुत्थियों का बोध आसानी से किया जा सकता है। राष्ट्र अपने पर्यावरणीय तत्वों जैसे मौसम तथा जलवायु, मृदा, धरातल, खनिज, जल, वनस्पति और जीव जन्तुओं का सही ज्ञान प्राप्त कर अपने क्रिया कलापों को व्यवस्थित कर सकता है। पर्यावरण का सीधा सम्बन्ध जैव जगत की आदतों में है जो पर्यावरण विद्या को प्रकट करती है।

कोई भी जीव पर्यावरण वोध के आधार पर अर्न्तक्रिया करता है। इसी के परिप्रेक्ष्य में भविष्य की अर्न्तप्रक्रिया को व्यवस्थित करना होता है जहॉ ऐसा नहीं किया जाता पारिस्थैतिकी सन्तुलन होने लगता है जो जैव जगत की विनाश का कारण वन जाता है। प्राकृतिक प्रकोप का निवारण राष्ट्रीय पर्यावरण वोध के अनुसार ही करता है। उदाहरण के लिए संतुलित पर्यावरण के लिए पृथ्वी धरातल का 33 प्रतिशत क्षेत्रफल वनाच्छादित होना चाहिए। भारत इस मापदण्ड से अपने जंगलों का काफी विनाश (10 प्रतिशत) कर चुका है अत: इस समस्या से निवटने हेतु वन महोत्सव, सामाजिक वानिकी जैसी राष्ट्रीय योजनायें चलायी जा रही हैं। पश्चिमी देशों में वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण जैसी समस्याओं का वोध राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय स्तर पर हुआ है जैसी भयावह स्थिति विकसित देशों में है विकासशील देशों में नहीं है। यूरोप के अनेक देशों ने स्थिति इतनी विकराल रूप ले चुकी है कि वहां पानी-पीने

से भी डर लगता हैं वहां का धरातलीय और भूमिगत जल दोनों ही प्रदूषित हो गये हैं । यहॉं तक कि हिम आवरण से पिघला जल भी अम्ल वर्षा के कारण दूषित हो गया है। यूरोपीय विश्व के अन्य भागों के जल को पीना नहीं चाहते हैं । यह पर्यावरण के पक्षीय वोध का जीता जागता प्रमाण है। भारत बाढ और सूखे का प्रकोप झेलते रहने के कारण इसके निवारण हेतु ठोस उपाय नहीं करता। भारत की अपार जल राशि का संसाधन के रूप में बोध बहुत ही साधारण है। यदि मृदा और जल संसाधन का सही वोध हो जाय तो भारत के निवासियों को वेकारी और भुखमरी से छुटकारा मिल सकता है जो औद्योगिक विकास के वल पर सम्भव नहीं है। पर्यावरण वोध राष्ट्रीय चरित्र से जुडा होने के कारण राष्ट्रीयता के प्रति अनुराग निष्ठा भी पर्यावरण वोध पर आधारित है।

क्षेत्रीय स्तर पर पर्यावरण बोध- (Environmental Perception at Regional Level)

गॉव से शहर के लघु क्षेत्र का पर्यावरण वोध सबसे आसान है क्योंकि पर्यावरण के तत्वों की निकटता का लाभ ऐसी स्थिति में सबसे अधिक मिलता है। एक बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र का गॉव अपने पर्यावरण बोध के कारण कठिनाई झेल कर वना रहता है। धनजन की सुरक्षा के लिए वे अपने ढंग से प्रयास करते हैं, जिसका ज्ञान वाढ़ से सुरक्षित क्षेत्र के ग्रामीणों को नहीं होता है। इसी प्रकार नगर के निवासियों का पर्यावरण वोध, ग्रामीणों से भिन्न होता है सांस्कृतिक पर्यावरण की प्रधानता के कारण नगरवासियों को पेड का महत्व समझ नहीं आता है। हालॉंकि उनके लिए भी आक्सीजन की आपूर्ति और कार्वनडाई आक्साइड का शोषण उतना ही जरूरी है जितनी ग्रामीण क्षेत्र को। यही कारण है कि नगरों की पारिस्थैतिकी अत्यधिक संतुलित है। यूरोप के नगरों में जनसंख्या पलायन एक नई प्रवृत्ति है जहॉं नगरों में अस्वस्थ वातावरण के कारण वडी संख्या में नागरिक दैनिक यात्रा कर ग्रामीण क्षेत्रों के आवासों में निवास करना हितकर मान रहे हैं। नगरों की पर्यावरण की बिगडती स्थिति को सुधारने के लिए अनेकों देशों में वृक्षारोपण अनिवार्य कर दिया गया है। यही कारण है कि भारत हजारों वर्ष पूर्व पर्यावरण को संतुलित रखने के लिए उपवन नगर की रचना की गयी जिसे नगर निर्माण के लिए अनावश्यक समझा गया। यह पर्यावरण बोध की कमी का प्रमाण की प्रदर्शित करता है। विश्व के अनेक देशों में औद्योगिक नगरों की व्याप्त सामग्री समीपवर्ती पर्यावरण को प्रदूषित करती है। गंगाजल का प्रदूषण नगरीय त्याग्ज सामग्री के कारण ही कठिन बिंदु तक पहुँच गया है और इसे प्रदूषणमुक्त बनाने के लिए गंगा सफाई अभियान शुरू किया गया है। नागरिकों और औद्योगिक मालिकों को इसका बोध नहीं कि उनके इस कृत्य से पर्यावरण को कितनी हानि हो रही है। भोपाल गैस त्रासदी इसी प्रकार के अपरिपक्व पर्यावरण बोध का प्रतिफल है। यूकेलिप्टस वृक्ष के गुण से अज्ञान होने के कारण इसका रोपण ऐसे क्षेत्रो में भी किया जा रहा है जहां जल स्तर बहुत नीचे है वास्तविकता यह है कि यह अन्य वृक्षों की तुलना में बहुत अधिक जल का शोषण करता हैं अत: केवल ऊँचे सतह वाले क्षेत्रों के लिए यह वक्षारोपण उपयुक्त है।

21 वीं शताब्दी में पर्यावरणीय समस्याओं के निदान हेतु विश्वस्तरीय सम्मेलनों के द्वारा किये गये प्रयास (The Twenty First Century the world wides ffeorts through Cenferences for Solution of Enviromental Problems) औद्योगिक युग के आरम्भ से धीरे-धीरे मानव पर्यावरण के सम्बन्धों में परिवर्तन आने लगा। विगत 150 सालों की अवधि में पर्यावरण इतना असंतुलित हो गया है कि अब अनेक स्तरों पर चेतावनी दी जाने लगी हैं यद्यपि पर्यावरण की व्यवस्था स्वनियंत्रित और स्वसवर्धन प्रणाली पर आधारित है लेकिन यह प्रणाली पंगु हो रही है। मानव के हस्तक्षेप के कारण आज पर्यावरण संवर्धन, पर्यावरण विकास, पर्यावरण सुधार और पर्यावरण बोध की चर्चा विश्वव्यापी अन्तराष्ट्रीय मंचों पर की जाने लगी हैं विश्व की बढती जनसंख्या, घटता प्राकृतिक संसाधन, ऊर्जा संकट प्राकृतिक आपदायें आदि भयावह प्रश्न बनते जा रहे हैं। अनेकों प्रयासों के बावजूद विश्व की आधी आवादी भुखमरी का शिकार है। जहॉं जनसंख्या अधिक है वहॉं प्राकृतिक प्रकोप भी अत्यन्त भयावह रूप में प्रकट हो रहे हैं। इन्हीं समस्याओं को सुलझाने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है।

पर्यावरण की समस्याओं को हल करने के लिए 20वीं शताब्दी के उत्तराद्ध से पर्यावरण सम्मेलन का आयोजन किया जाने लगा। जिनका प्रमाण 21वीं शताब्दी में हुआ। 1972 में स्काटहोम (स्वीडन) में मानव पर्यावरण सम्मेलन का सर्वप्रथम आयोजन किया गया। इसमें मानव पर्यावरण सम्बन्धों तथा तत्जनित परिणामों का चिन्तन किया गया। तभी से पर्यावरण के मुद्दों पर जागरूकता हेतु प्रतिवर्ष विभिन्न देशों में यह 05 जून का पर्यावरण के दिवस के रूप में मनाया जा रहा है। 1973 में पृथ्वी सम्मेलन (जिनेवा) स्वीटजरलैण्ड में, 1974-केवल एक दुनिया स्पोकेन (संयुक्त राज्य अमेरिका), 1975 मानव निपटान (ढाका, बांगला देश) 1976 पानी जीवन हेतु महत्वपूर्ण संसाधन (ओटोरियो, कनाडा), 1977 ओजोन परत पर्यावरण सम्बन्धी चिन्ता, भूमि हानि और मृदाक्षरण (सिलहट, बंगला देश) 1978- विना विनाश के विकास (सिलहट, बंगला देश), 1979-बच्चों के लिए एक भविष्य विना विनाश के विकास

(सिलहट बंगला देश) 1980- नई सदी की नहीं चुनौतियॉं विना विनाश के विकास (सिलहट, बंगला देश) 1981 भूजल, मानव खाद्य श्रृखला में जहरीले रसायन (सिलहट, बंगला देश) 1982 पर्यावरण सम्बन्धी चिन्ता का नवीनीकरण (ढाका, बंगला देश) 1983 खतरनाक अपशिष्ट प्रबन्धन और निपटान अम्लीय वर्षा और ऊर्जा (सिलहट बंगलादेश), 1984व मरूस्थलीकरण (राजशाही, बंगलादेश), 1985- शांति के लिए एक पेड (ओन्टोरियो, कनाडा) 1987 पर्यावरण और क्षरण एक छत से ज्यादा (नैरोवी, केन्या) 1988- जव लोग पर्यावरण को प्रथम स्थान पर रखेंगे विकास अंत में आयेगा (बैंकाक- थाईलैण्ड), 1989 ग्लोवल वार्मिग-वैश्विक चेतावनी (ब्रूसेल्स, वेल्जियम), 1990 बच्चे और पर्यावरण (मैक्सिको सिटी, मैक्सिको), 1991- जलवायु परिवर्तन वैश्विक भागीदारी की आवश्यकता (स्टॉक होम, स्वीडन), 1992 केवल एक पृथ्वी, देखभाल और साझा (रियो डी जेनेरिया, ब्राजील) 1993 गरीबी और पर्यावरण: दुष्चक्र तोडना (वीजिंग, चीन), 1994 एक पृथ्वी एक विचार (लंदन, ब्रिटेन) 1995, हम लोग वैश्विक पर्यावरण के लिए एक हो (प्रिटोरिया, द0 अफ्रीका), 1996- हमारी पृथ्वी, हमारा आवास, हमारा घर (इस्तावुल) टर्की, 1997-पृथ्वी पर जीवन के लिए, (सियोल, कोरिया गणराज्य), 1998 पृथ्वी पर जीवन के लिए (मौस्को, रूस), 1999 हमारी पृथ्वी हमारा भविष्य (टोकियो जापान) 2000 पर्यावरण शताब्दी कार्य करने का समय (एडिलेड आस्टेलिया) 2001, जीवन की वल्ड वाइड वेव (टोरियो-इटली, और हवाना, क्यूवा), 2002 पृथ्वी को एक मौका दो (शेन्जेन, चीन), 2003 जल (वेरूत-लेवनान), 2004 समुद्र और महासागर मृत या जीवित (वार्सिलोना स्पेन), 2005 हरित शहर (सैनफ्रॉंन्सिसकों, संयुक्त राज्य अमेरिका), 2006 रेगिस्तान और मरूस्थलीकरण (अल्जीयर्स, अल्जीरिया), 2007 वर्फ का पिघलना एक गम्भीर विषय (लंदन, इग्लैण्ड), 2008 कार्वनडाई आक्साइड (ब्व2) किक टू हैविट (वेलिंगटन, न्यूजीलैण्ड), 2009 आपके गृह आपकी जागरू (मैक्सिकों सिटी, मैक्सिको), 2010 बहुत सारी प्रजाति, एक ग्रह, एक भविष्य (रंगपुर -बंगलादेश), 2011 जंगल, प्रकृति आपकी सेवा में (दिल्ली, भारत) 2012, हरित अर्थ व्यवस्था क्यों इसने आपको शामिल किया (ब्रासीलिया, ब्राजील), 2013 सोचो, खाओ और बचाओ (उलान वरार, मंगोलिया) 2014 छोटे द्वीप विकसित राज्य (ब्रिजटाउन, वारवाडोस) 2015 सात अरव सपने एक ग्रह (रोम-ईटली), 2016 दुनिया को एक बेहतर जगह बनाने की दौड (लुआन्डा, अंगोला) 2017 लोगों को प्रकृति से जोडना (ओटावा, कनाड़ा) आदि सम्मेलन का आयोजन प्रतिवर्ष पर्यावरण को बचाने के लिए आव्हान किया गया है वास्तव में प्रतिवर्ष पर्यावरणीय सम्मेलनों के आयोजनों के निष्कर्षो पर प्रश्नचिन्ह लग रहा है? आवश्यकता इस बात की है कि सम्मेलनों के निष्कर्षों को व्यावारिक दृष्टिकोण से अपनाकर ही पर्यावरण के ह्रास को रोकने हेतु 21वीं शताब्दी में पर्यावरण के अध्ययन की आवश्यकता पर जोर देना आवश्यक हो गया है।

सन्दर्भ-सूची

1. Chaurasi, R.S. (192).: Environmental Pollution & Mangement.
2. Fitting H. (1922): Tarks and aims of Comparative
3. Tansley,A.G. (1926): Practical Plant Ecology
4. Herskovites, M.J.(1948) Man and his work, Newyork.
5. Prasad Gayatri & Nottiyal, R (2008) : Environmental Geogrphy
6. सिंह सवेन्द्र (1991): पर्यावरण भूगोल, इलाहाबाद
7. राव, वी0पी0 (2005): पर्यावरण अध्ययन के आधार, गोरखपुर
8. सिंह, वी0एन0 एण्ड सिंह, मनीष कुमार (2015) मानव भूगोल का स्वरूप प्रवालिका पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

नागा आदिवासी एवं उनकी समस्याएं

डॉ० सुखबीर सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय भेरिया पिहोवा कुरुक्षेत्र

नागा समुदाय के लोग कई आदिवासियों के समूह थे, जो भारत, बर्मा सीमा के पास हिमालय के पूर्वी इलाकों में निवास करते थे। ये आदिवासी अपने पहाड़ी ठिकानों में सुरक्षित थे और शेष भारत में चल रहे विभिन्न प्रकार की हलचलों से अनभिज्ञ थे। उस समय नागा पहाड़ियां असम का हिस्सा हुआ करती थी। मैदानी इलाकों में असमी बोलने वाले हिंदू रहते थे, जो संस्कृति और धार्मिक बंधनों के द्वारा भारत की विशाल मुख्य भूमि से जुड़े हुए थे। आदिवासियों के महत्वपूर्ण समूहों में मिजो, खासी, गारो और जयंतिया प्रमुख थे, उन्होंने उन पहाड़ियों का नाम अपने समुदाय के पीछे जोड़ लिया था, जहां वे रहते थे। उत्तर पूर्वी भारत के आदिवासियों में शायद नागा सबसे ज्यादा स्वायत्त थे। नागा समुदाय हिंदुओं को नमक के बदले चावल बेचते थे। नागाओं की समस्या सन् 1946 में शुरू हुई, जब भारत में ब्रिटिश राज के भाग्य का निर्धारण सत्ता के तत्कालीन केंद्र दिल्ली और शिमला में किया जा रहा था। इसलिए जनवरी 1946 में नागाओं ने नागा नेशनल काउंसिल या एनएनसी का गठन किया और द नागा नेशन नाम से एक अपनी पत्रिका भी निकाली। जिसकी ढाई सौ प्रतियां नागा इलाकों में बांटी गई थी। नागा समुदाय के लोग अपने आप को एक राष्ट्र के रूप में महसूस करते थे और वे कहां करते थे कि हमें अपनी संप्रभुता का चुनाव करना चाहिए। हम आजाद होना चाहते हैं, हम अपनी मर्जी की जिंदगी जीना चाहते हैं और हम यह नहीं चाहते कि दूसरे लोग हमारे साथ रहे। जुलाई 1946 में एनएनसी महासचिव टी. सखरी ने जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र लिखा और जवाब में नेहरू जी ने नागाओं को पूरी स्वायत्तता देने की बात कही। नेहरू ने कहा कि नागाओं को अपनी न्यायिक प्रणाली स्थापित करने की छूट होगी, ताकि बाहर के लोग उनके इलाके में जाकर प्रभाव स्थापित ना कर पाए और उनका शोषण करके लाभ न उठा पाए। इसलिए टी. साखरी ने ऐलान कर दिया कि नागा समुदाय के लोग भारत के साथ अपना संबंध बरकरार रखेंगे और हम अपने इलाकों में अपने स्वशासन के अधिकार का उपयोग करेंगे, लेकिन व्यापक मुद्दों पर हम भारत के साथ जुड़े रहेंगे।

जून 1947ईसवी में एनएनसी नेताओं का एक प्रतिनिधिमंडल असम के गवर्नर सर अकबर हैदर से भारत के साथ नागांओ के जुड़ने की शर्त तय करने के संदर्भ में मुलाकात करते हैं और दोनों ही पक्ष इस बात के लिए राजी हो जाते हैं कि आदिवासियों की जमीन पर बाहरी लोगों का अधिकार नहीं होना चाहिए और ना ही नागांओ की धार्मिक परंपराओं के साथ किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ होनी चाहिए। सरकारी कर्मचारियों की बहाली में एनएनसी की यह बात मानी जाएगी। उसके बाद एनएनसी नेताओं का एक प्रतिनिधिमंडल दिल्ली गया जहां वे जवाहरलाल नेहरू से मिले, जवाहरलाल नेहरू ने उनसे कहा कि उन्हें स्वायत्तता दी जा सकती है, लेकिन आजादी की मांग नहीं मानी जा सकती। उन्होंने महात्मा गांधी से भी मुलाकात की और गांधीजी ने उनसे कहा कि अगर उनकी इच्छा है तो वे अपनी आजादी की घोषणा कर सकते हैं। उन्हें भारत में शामिल होने के लिए कोई मजबूर नहीं कर सकता और अगर दिल्ली की सरकार सेना भेजती है, तो वे खुद इसका विरोध करने के लिए नागा पहाड़ियों तक जाएंगे। गांधी जी का यह कहना कि आपको कोई मजबूर नहीं कर सकता, नागा प्रतिनिधिमंडल आत्मनिर्भरता को महसूस करने लगा। गांधीजी ने कहा कि आप लोग सभी तरह की हस्तकला में निपुणता हासिल कीजिए। वही शांतिपूर्ण आजादी का रास्ता है और अगर आप राइफल, बंदूक और तोपों की बात करेंगे तो वह एक बेवकूफाना बात नजर आएगी।

नागा आजादी के सबसे प्रबल समर्थक खोनोमा के अंगामी थे। खोनोमा नागा इलाके में एक गांव है जहां के लोगों ने अंग्रेजो के खिलाफ एक लड़ाई लड़ी थी जो बेनतीजा रही थी। यहां के लोगों को पूरे नागा पहाड़ियों में जाना जाता था और लोग उनसे

बहुत ज्यादा डरते थे। पीपल्स इंडिपेंडेंस लीग के रूप में एक गुट ने अमेरिकी स्वतंत्रता सेनानियों से कुछ शब्द और उनके नारे उधार लेकर पूर्ण आजादी के सामान के आह्वान के साथ नागा पहाड़ियों में पर्चे बांट दिए गए थे।

लेकिन इस बात ने पढ़े-लिखे नगाओ के बीच अच्छा संदेश नहीं दिया और वे अपनी आजादी को परिभाषित करने में लगे हुए थे। उधर नहीं दिल्ली में देश के संविधान सभा की बैठक हो रही थी 30 जुलाई 1947 ईस्वी को जयपाल सिंह ने संविधान सभा को नागा पहाड़ियों में चल रही कुछ बहुत ही अप्रिय घटनाओं के होने की सूचना दी थी। जयपाल सिंह ने साफ-साफ कहा था कि नागा पहाड़ियां हमेशा से भारत का हिस्सा रही हैं, इसलिए उनके देश से अलग होने का कोई सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि जयपाल सिंह खुद भी आदिवासी थे। विधानसभा में आखिरकार यह तय किया गया कि 400 समुदायों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया जाए, जो कुल आबादी का 7 फीसदी था और इन्हें सरकारी नौकरियों में आरक्षण भी प्रदान किया जाए। संविधान का भाग 5 केंद्रीय भारत के आदिवासियों से संबंधित है। जयपाल सिंह की यह राय थी कि आदिवासियों के लिए इन प्रावधानों का सही फायदा तभी मिलेगा, जब उनको भारतीय संघ के अंदर एक अलग राज्य दिया जाए और उन्होंने इस संभावित राज्य का नाम झारखंड रखा। इस राज्य में उनका अपना गृह क्षेत्र छोटा नागपुर था जो बंगाल और उड़ीसा के नए आदिवासी जिले में शामिल थे, इसकी आबादी 1 करोड़ 20लाख थी। इस विचार ने छोटा नागपुर के युवाओं को काफी प्रभावित किया था।

फरवरी 1948 में जयपाल सिंह ने अखिल भारतीय आदिवासी महासभा के एक सम्मेलन में यह भाषण दिया कि आजादी मिलने के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जगह बिहारी साम्राज्यवाद ने ले ली है, जो आदिवासियों के लिए एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है। परंतु नागा आदिवासी पूरी आजादी चाहते थे और एक अलग संप्रभु नागा देश का सपना पाले हुए थे। नागा समुदाय के लोगों में इस विचार का समर्थन मुख्य रूप से अनगामी नागाओं ने किया। जिसमें सबसे खास था खोनोमाह गांव का एक नागा व्यक्ति, जो भविष्य में इस आंदोलन का मुख्य सूत्रधार बन गया। उस व्यक्ति का नाम था अनगामी जापू फिजो। जिसके नाम से लगभग आधी शताब्दी तक उस आंदोलन को याद किया जाता रहा। फीजो का जन्म 1913 ईस्वी में हुआ था। बचपन में फिजो लकवे का शिकार हो गया था और उसका चेहरा टेढ़ा हो गया था देखने। उसे कविता लिखने का शौक था और नागा राष्ट्रीय गीत भी उसने लिखा था। फिजो एक बहुत ही ऊर्जावान व्यक्ति था और उसका व्यक्तित्व बहुत ही प्रेरणादायक था। 1951 में उसने नागा पहाड़ियों का व्यापक दौरा किया और लोगों से आजादी के पक्ष में हस्ताक्षर करवाए। 99. 99 फीसदी लोगों ने आजादी के पक्ष में हस्ताक्षर किए। आजादी के 4 साल बाद तक भारत सरकार शरणार्थियों की समस्या से जूझ रही थी और देसी रजवाड़ों का भारतीय संघ में विलय करवाया जा रहा था, लेकिन नागा पहाड़ियों के इलाके पर सरकार का कोई प्रभाव नहीं था। 1951 ईस्वीं के अंतिम सप्ताह में प्रधानमंत्री ने चुनाव प्रचार के संबंध में असम के तेजपुर का दौरा किया था और फिजो अपने तीन साथियों के साथ उनसे मिलने आया। जब एनएनसी के अध्यक्ष ने उनसे आजादी की मांग की तो नेहरू ने कहा की नागा भी किसी अन्य भारतीय नागरिक की तरह ही स्वतंत्र है और उन्होंने यह भी कहा कि नागाओं के लिए आजादी की मांग का कोई प्रश्न ही नहीं है, इसलिए एनएनसी ने चुनाव का बहिष्कार किया। प्रेस कॉन्फ्रेंस में फिजो ने कहा कि नागा आजादी के लिए अपना संघर्ष जारी रखेंगे और 1 दिन आएगा जब हम इस समस्या का समाधान कर लेंगे। नागाओं की लड़ाई ऐसी लड़ाई थी कि दुनिया की निगाहों से बिल्कुल ओझल किसी भी बाहरी व्यक्ति या पत्रकार को नागा जिलों में जाने की इजाजत नहीं थी। सन् 1954 के बाद हालात बद से बदतर होते चले गए और उसी साल के बसंत में कोहिमा शहर में मोटरसाइकिल पर सवार एक सेना अधिकारी ने सड़क पर चलने वाले किसी आदमी को ठोकर मार दी। इसके विरोध में वहां के स्थानीय लोगों की भारी भीड़ जमा हो गई। पुलिस ने विचलित होकर गोली चला दी, जिसमें एक प्रतिष्ठित न्यायधीश और एक एनएनसी नेता की मौत हो गई। इस घटना से नागा समुदाय बुरी तरह नाराज हो गया। एनएनसी पर कट्टरपंथियों का कब्जा हो गया और वे हथियारबंद विद्रोह की तैयारी में लग गए। जून 1954 में असम राइफल्स ने कथित रूप से नागा विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति रखने वालों के एक गांव पर हमला कर दिया। सितंबर में कुछ विद्रोहियों ने नागालैंड की एक संघीय सरकार के गठन का ऐलान कर दिया। जनवरी 1956 में टी. सखरी की मृत्यु के बाद विद्रोहियों द्वारा गठित नागालैंड की फेडरल गवर्नमेंट की तरफ से ताजा घोषणा की गई और नागालैंड के लिए एक राष्ट्रीय झंडे का निर्माण किया गया, नागा होमलैंड के विभिन्न इलाकों के लिए कमांडरों की नियुक्ति की घोषणा की गई। कुछ समय के बाद एक बुजुर्ग डॉक्टर जिसका नाम टी. हारालू था, उसकी हत्या कर दी गई। इस बीच नागा पहाड़ियों में सेना की मौजूदगी बढ़ती गई और नागा हिल्स फोर्स के नाम से एक नई सैनिक टुकड़ी का गठन किया गया। जिसमें पहाड़ियों पर युद्ध करने में दक्ष सैनिकों की एक रेजिमेंट बनाई गई।

नागाओं की इस सेना को सहायता देने के लिए स्वयंसेवक दल, कुरियर पार्टी और महिला स्वयंसेवक संगठन भी थे, सबसे आखरी संगठन में नर्से थी, जो मौका पड़ने पर बेहतरीन ढंग से लड़ भी सकती थी और नागा विद्रोहियों को आम गांव वालों का भी समर्थन हासिल था। सन 1956ईस्वी के मध्य तक नागा पहाड़ियों में एक पूर्ण युद्ध शुरू हो चुका था। जुलाई के अंतिम सप्ताह में तत्कालीन गृहमंत्री गोविंद बल्लभ पंत ने संसद में स्वीकार किया कि इन लड़ाइयों में भारतीय सेना ने अपने 68 जवान जबकि 370 विद्रोहियों को मार गिराया है। गोविंद बल्लभ पंत ने कहा की नागा आजादी की बात महज एक खोखली बात है, उन्होंने कहा कि नागा समुदाय के लोग समझदारी से काम लेंगे और इस बात को महसूस करेंगे कि हम सब भारत से ताल्लुक रखते हैं।

अगस्त 1956ईस्वी में लोकसभा में नागा पहाड़ियों में चल रही उथल-पुथल पर एक बहुत लंबी बहस हुई। मणिपुर से आने वाले एक मेइती सदस्य ने कहा कि हाल में उस इलाके का दौरा करने के बाद यह पता चलता है कि किस तरह उसकी गाड़ियों के काफिले पर नागा विद्रोहियों ने हमला किया। उन्होंने कहा कि उनको खासकर फिजों को समझाना बहुत मुश्किल कार्य है और उस सदस्य ने यह भी कहा कि नागाओं को आजादी नहीं मिलनी चाहिए, लेकिन उन्हें तत्काल भारतीय संघ के अंदर एक अलग राज्य जरूर दे देना चाहिए। इस बहस में दूसरे सदस्य थे, समाजवादी सांसद रिशांग किशिंग। जिन्होंने सेना द्वारा गांव में आग लगा दिए जाने और बेकसूर लोगों की हत्या किए जाने की कटु आलोचना की थी। प्रधानमंत्री ने अपने जवाब में स्वीकार किया था कि कुछ लोगों की हत्या हुई है। जिसमें से एक डॉक्टर टी. हारालू भी शामिल है और उनकी हत्या से मुझे बहुत दुखः पहुंचा था। दिसंबर 1956ईस्वी में लंदन में भारतीय उच्चायोग द्वारा जारी एक रिपोर्ट में नागा पहाड़ियों में जारी सैन्य अभियान की कामयाबी के बारे में बताया गया। इस रिपोर्ट में कहा गया कि सेना ने विद्रोहियों के प्रतिरोध की कमर तोड़ दी है और इस अभियान को खत्म करने की प्रक्रिया में है। अखबारों ने इस खबर को ऐसे ही हुबहू छाप दिया। कुछ सप्ताह के बाद मैनचेस्टर गार्जियन ने एक खबर प्रकाशित की और लिखा 'नागा विरोध लगभग समाप्त'। इस खबर के द्वारा भारत सरकार नागा उदारवादियों के साथ कुछ समझौता करने वाली है और नागा विद्रोहियों में धीरे-धीरे आपस में ही असंतोष पनप आए हैं, हालांकि इस बात की स्वीकृति सामने नहीं आ रही थी और किसी नए सवेरे की आहट सुनाई नहीं दे रही थी।

जवाहरलाल नेहरू ने नागा समस्या के बारे में कहा था कि हमें उत्तर पूर्व के आदिवासी इलाकों में एक कठिन समस्या का सामना किया और वह समस्या थी नागा समस्या। हम अभी तक इन इलाकों के लोगों का दिल जीतने में कामयाब नहीं हुए हैं। नागा पहाड़ी जिलों में पिछले तीन सालों से जो वे असहयोग करते आ रहे हैं और ऐसा उन्होंने महान अनुशासन और कामयाबी के साथ किया है। दुनिया की निगाहों से ओझल और ज्यादातर भारतीयों के लिए अज्ञात नागा विद्रोह भारत सरकार के लिए एक गंभीर सिर दर्द था और नेहरू का शासनकाल भी सुरक्षित और स्थाई नहीं था। यह चुनौतियां देश की परिधि पर नहीं बल्कि उन इलाकों से आने वाली थी, जिसे हिंदुस्तान का ठोस हिस्सा माना जाता था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 जेड. फिजो, द फेट ऑफ द नागा पीपलः एन अपील टू द वर्ल्ड, जुलाई 1960।

2 सी.डब्ल्यू.एम.जी. खंड 88 पृष्ठ 373-74।

3 जे. एच. हटन, द अनगामी नागाज, लंदन, मैकमिलन, 1921 पृष्ठ 11।

4 जी.एस.घुरये,द शेड्यूल्ड ट्राइब्स, मुंबई, पापुलर प्रकाशन 1959।

5 अगपित टिर्की, झारखंड मूवमेंट, ए स्टडी ऑफ इट्स डायनॉमिक्स, नई दिल्ली, मीडिया कम्युनिकेशंस, 2002।

6 जवाहरलाल नेहरू, नो इंडिपेंडेंस फोर नागाज, टाइम्स ऑफ इंडिया, 1 जनवरी 1952।

7 जवाहरलाल नेहरू, डिमांड फॉर नागा स्टेट, टाइम्स ऑफ इंडिया, 12 फरवरी 1952।

8 रामचंद्र गुहाः सिविलाइज्ड, वेरियर एल्विन, हिज ट्राईबल्स एंड इंडिया, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999 पृष्ठ 285।

9 आर्थर सविंसन, निबेड़ान के नागालैंड, पृष्ठ 26।

10 थरोट एस.पी.पी. फ्रॉम रिवोली टू रिट्रीट, नई दिल्ली, एलाइड पब्लिशर्स, 1986, अध्याय 15, द नागाज।

11 लोकसभा डिबेट्स, 23 अगस्त, 1956।

12 जवाहरलाल नेहरूः चौलेंजेस टू द नेशन स्टेट, इन असम एंड नागालैंड, पृष्ठ 203-204।

जन्म-कुण्डली में मारक भावों का ज्योतिषीय विवेचन

डॉ० सुधीर कुमार शर्मा

सह आचार्य, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

उर्मिला मीणा

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

सामान्य जन मानस में से प्रत्येक व्यक्ति की यह अनिवार्य जिज्ञासा होती है कि वह अपने जीवन में आने वाले समय के विषय में जान सके। व्यक्ति अपने मृत्यु अथवा कष्ट के समय को जानने के लिए तथा उसे टालने के लिए प्रयास करता है। इस समय के विषय में जानकारी हेतु व्यक्ति ज्योतिष की शरण लेता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में इसी विषय की ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से विवेचना की गई है। ज्योतिष ग्रन्थों के अनुसार जन्म-कुण्डली के तृतीय एवं अष्टम स्थान से आयु का विचार किया जाता है तथा इनके व्यय स्थान से मारक का विचार किया जाता है। संसार में सभी हानियों से बढ़कर जीवन की हानि होती है अत: द्वितीयेश एवं सप्तमेश की दशा में मरण अर्थात् मृत्यु तुल्य कष्ट का निर्धारण किया जाता है।

कूट शब्द:- मारकेश, सप्तमेश, द्वितीयेश, द्वादशेश, अन्तर्दशा, अनिष्ट, कारक ग्रह, क्रियमाण, प्रारब्ध, संचित।

प्रस्तावना:-

प्रत्येक मनुष्य जन्म के साथ अपने पूर्व संचित कर्मों का एक संग्रह साथ लाता है जिसके अनुसार ही उसे वर्तमान जीवन में अच्छे तथा बुरे समय का उपभोग करना होता है उसके जीवन का निर्धारण भी पूर्व कर्मों के अनुसार ही होता है तथा मृत्यु के समय का निश्चय भी उसी के अनुरूप होता है। किसी भी व्यक्ति की जन्म-कुण्डली का अध्ययन कर इस विषय में स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला जा सकता है।

जन्म-कुण्डली में व्यक्ति की आयु का निर्धारण करने हेतु तृतीय व अष्टम भाव की भूमिका होती है तथा इनके व्यय भाव अर्थात् इनसे द्वादश स्थान में आने वाले भावों को मारक स्थान कहा जाता है तृतीय से द्वादश भाव द्वितीय भाव होता है और अष्टम से द्वादश स्थान सप्तम भाव होता है। अत: सप्तम व द्वितीय को कुण्डली के मारक भावों की संज्ञा दी गई हैं अत: सप्तम के स्वामी को सप्तमेश व द्वितीय के स्वामी को द्वितीयेश कहा जाता है द्वितीय से व्यक्ति के परिवार व धन स्थिति तथा सप्तम से जीवनसाथी का विचार भी किया जाता है इन भावों में स्थित ग्रहों की स्थिति व दशा के दौरान व्यक्ति का प्रतिकूल समय जानना चाहिए। मारक का विचार करने से पूर्व व्यक्ति का आयु निर्धारण विचार किया जाता है। जन्म कुण्डली के ग्रह स्थिति के आधार पर उस जन्मकुण्डली के व्यक्ति की अल्प, मध्यम एवं पूर्ण आयु का निर्धारण किया जाता है। यथा-

"फलदीपिका के अनुसार"[1]

जाते कुमारे सति पूर्वमार्ये

रायुर्विचिन्त्यं हि ततः फलानि।

विचारणीया गुणिनी स्थितेतद्

गुणाः समस्ताः खलु लक्षणज्ञैः।।

अर्थात् जब बालक का जन्म हो तो सर्वप्रथम उसके आयु का विचार करें उसके बाद अन्य फल देखें। यदि जन्म-कुण्डली मे अन्य राजयोग आदि हो तो ज्योतिषियों की सहायता से उनका विचार करें। शास्त्रकारों ने ठीक ही कहा है-

पूर्वमायुः परीक्षैव पश्चाल्लक्षणमुच्यते।

आयुर्विना नराणां तु लक्षणैः किं प्रयोजनम्।।

अर्थात् भविष्य के विषय में जानने से पूर्व आयु के विषय में जानना अत्यन्त आवश्यक एवं प्रयोजनकारी है क्योंकि यदि आयु नहीं तो अन्य लक्षणों से क्या प्रयोजन? अतः आयु के विषय में जानना आवश्यक है।

नृणां वर्षशतं ह्यायुस्तस्मिंस्त्रेधा विभज्यते।

अल्पं मध्यं दीर्घमायुरित्येतत्सर्वसम्मतम्।।[2]

साधारणतः मनुष्य की 100 वर्ष की पूर्णायु मानी जाती है इसे तीन भागों में विभाजित किया गया है। अल्पायु, मध्यायु और दीर्घायु।

जन्म-:कुण्डली में मारक स्थान का निर्णय करने हेतु लघु पाराशरी में कहा गया है कि

अष्टमं ह्यायुषः स्थानमष्टमादष्टमं च यत्।

तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते।।[3]

अर्थात् जन्म लग्न से अष्टम स्थान आयु स्थान कहा जाता है और अष्टम से अष्टम अर्थात् तृतीय स्थान आयु स्थान हैं इन दोनों अर्थात् अष्टम एवं तृतीय से व्यय स्थान क्रमशः सप्तम व द्वितीय स्थान मारक स्थान कहलाते हैं।

महर्षि जैमिनी के अनुसार मारक स्थान का निश्चय करते हुए कहा गया है कि

"अघशवनिधनम्।"[4]

एकादश स्थान से चतुर्थ स्थान मारक भाव है अर्थात् लग्न से द्वितीय भाव से मनुष्यों के निधन अर्थात् मृत्यु के विषय में विचार करना चाहिए।

"तत्रापि सप्तमस्थानाद् द्वितीयं बलवत्तरम्।"[5]

बृहत्पाराशर होराशास्त्रम् के अनुसार सप्तम की अपेक्षा द्वितीय को बली मारक स्थान माना जाता है।

मारक स्थान के निर्णय पश्चात् मारक ग्रह का निर्णय करते हुए पाराशर ऋषि द्वारा बताया गया है कि इन ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति का मरण समझना चाहिए-

तदीशितुस्तत्रगताः पापिनस्तेन संयुताः।।

तेषां दशाविपाकेषु संभवे निधनं नृणाम्।

तेषामसम्भवे साक्षाद् व्यायाधीशदशास्वपि।।[6]

दोनों मारक स्थान अर्थात् द्वितीय व सप्तम स्थानों के स्वामी ग्रहों की दशा में मरण सम्भव है। अन्य ग्रह शुक्र, गुरू आदि को भी मारक कहा गया है अतः इनकी दशा में भी मरण सम्भव है। मारक स्थान में स्थित होने से इनकी मारकता बढ़ जाती है। अतः मारक स्थान स्थित मारकेशों की अथवा पापी ग्रहों से युक्त मारकेशों की अन्तर्दशाओं में मनुष्य की मृत्यु हो सकती है।

मारकेश का तात्पर्य है जो मारकत्व का ईश हो। यद्यपि सभी द्वितीयेश व सप्तमेश मारक होते हैं यह एक सामान्य नियम है यहाँ शुक्र व गुरू सप्तमेश होकर केन्द्राधिपत्य दोष से युक्त हो जाते हैं और इनमें प्रबल मारकता आ जाती है। सप्तमेश यदि शुक्र हो तो स्वयं ही द्वितीयेश भी होता है अतः दोनों ही स्थानों का मारक अधिपत्य प्राप्त होने से उसकी मारकता में सन्देह नहीं रहता है, लेकिन

गुरू यदि द्वितीयेश हो तो सप्तमेश शुक्र होगा या सूर्य होगा और गुरू यदि सप्तमेश हो तो भी शुक्र द्वितीय मारकेश होता है अतः गुरू या शुक्र मारकेश हो और कुण्डली में कहीं भी स्थित हो तो वे मारक हो सकते हैं। इसके अलावा यदि वे मारकेश द्वितीय व सप्तम स्थान में हो तो उनकी मारकता अत्यधिक बढ़ जाती है इस प्रकार सभी द्वितीयेश व सप्तमेश मारकेश हैं तथा गुरू व शुक्र बली मारक हैं।

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः।

क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशासु च।।[7]

यदि उपरोक्त मारक ग्रहों की दशा आयु खण्ड में प्राप्त नहीं हो तो द्वितीयेश, सप्तमेश, इनसे संयुक्त पाप ग्रह, मारक स्थानगत पापग्रह और लग्न से व्ययेश इन सबकी दशा प्राप्ति आयु खण्ड में सम्भव न हो तो व्ययेश से अर्थात् अष्टम के व्ययेश (सप्तमेश) के सम्बन्धी ग्रहों की अथवा द्वितीयेशादि ग्रहों के सम्बन्धी ग्रहों की दशा अन्तर्दशाओं में मृत्यु समझनी चाहिए। अर्थात् गुरू, शुक्र की दशा में अनिष्ट प्राप्ति नहीं होने पर पापग्रहों की दशा में मरण या मृत्यु तुल्य कष्ट समझने चाहिए।

अन्य मारक स्थितियाँ

केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित्।

कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने।।[8]

केवल अष्टमेश कुण्डली में वह कहीं भी स्थित हो या उच्चगत ही क्यों न हो सर्वाधिक पापी होता है, एकादशेश, षष्ठेश, अथवा तृतीयेश की दशाओं में मरण होता है। इनको पूर्व की बतायी स्थितियों के अनुसार क्रमशः निर्बलता बतायी गई है

मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः

अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः।।[9]

शनि की विशेष मारकता के विषय में बताते हुए कहा गया है कि यदि पापी शनि पूर्वोक्त मारकों से सम्बन्ध करता हो तो वह सभी मारकों को पीछे करके स्वयं ही मारक हो जाता है इसलिए शनि सभी मारक ग्रहों में प्रबल है। यदि शनि मारक है तो शेष मारकों के विचार की आवश्यकता ही नहीं है।

भावे स्वकर्म चित्तांशात्स्वांशे निधने निधनम्।[10]

महर्षि जैमिनी के मतानुसार भाव अर्थात् जन्म लग्न से अष्टम स्थान, स्वकर्म आत्मकारक से तृतीय स्थान, लग्न से षष्ठ भावगत नवांश राशि, कारकांश कुण्डली की लग्न राशि से निधन स्थान अर्थात् नवम् स्थान से मृत्यु विचार करना चाहिए।

माता-पिता का मारक भाव निर्णय-

"मातापित्रोर्द्वितीयः।"[11]

महर्षि जैमिनी के मतानुसार माता-पिता की मृत्यु का विचार एकादश भाव से द्वितीय अर्थात् द्वादश भाव से किया जाता है यह स्थान लग्न से दशम् भाव है। दूसरे भाव को पूर्व में भी मारक माना है अतः नवम् से द्वितीय अर्थात् दशम भाव को माता-पिता का मारक स्थान कहना युक्तिसंगत हैं। पाराशर मत के अनुसार-

किंचित् विशेषं वक्ष्यामि यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्।

नवमेऽपि पितृज्ञानं सूर्याच्च नवमेऽथवा।।[12]

नवम् से द्वितीय अर्थात् दशम और तृतीय से द्वितीय अर्थात् चतुर्थ क्रमशः पिता व माता के बली मारक स्थान हैं। दशम व चतुर्थ से जातक को प्राप्त होने वाले पितृ-मातृ-सुख के विषय में विचार किया जाता है।

बन्धु-बान्धवों का मारक भाव निर्णय-

"ज्ञातिवर्ग भ्रात्रादिस्तृतीयः।"[13]

महर्षि जैमिनी के मतानुसार लग्न से अष्टम भाव द्वारा भ्राता व बन्धु-बान्धवों की मृत्यु का विचार करना चाहिए। अष्टम स्थान तृतीय से षष्ठ अर्थात् रोग स्थान है और चतुर्थ से पंचम भाव शूल स्थान है अतः इनकी बन्धु-बान्धवों की मृत्यु का विचार अष्टम

भाव से किया जायेगा।

कलत्रं चतुर्थम्।[14]

पुत्रम् पञ्चमम्[15]

स्त्री की मृतयु का विचार अष्टम भाव द्वारा होता है स्त्री स्थान से द्वितीय होने के कारण यह बली मारक है। पुत्र के अनिष्ट का विचार लग्न से सप्तम भाव द्वारा होता है।

"शत्रुवर्ग षष्ठम्।"[16]

शत्रुओं की मृत्यु का विचार लग्न से द्वादश भाव द्वारा होता है। प्रसिद्ध शत्रु स्थाान से सप्तम मारक होता है अतः द्वादश भाव द्वारा शत्रु मरण का विचार किया जाता है।

तत्र पापानां सन्निकृष्टम्।[17]

पूर्व में मारक भावों में से जिसमें पापग्रह हों उसी से सम्बन्धित के विषय में मरण समझना चाहिए कि उसकी मृत्यु असामान्य तरीके से होगी अथवा उससे सम्बन्धित की आयु कम होगी।

"जनने।"[18]

इसी प्रकार महर्षि जैमिनी के अनुसार विभिन्न सम्बन्धियों के भावों से जनन अर्थात् अष्टम भाव में यदि पापग्रह हों तो भी असामान्य मृत्यु समझनी चाहिए। अष्टम स्थान में शुभग्रह होने पर आयु के लिए अनुकूलता समझनी चाहिए।

यत्संप्रोक्तं योगजं पूर्वमायुर्होरापारावारपारग्ङ्मज्ञैः

तस्मादायुः सारभूतं यदेतत्पुण्याचारश्लोकभाजां नराणाम्।[19]

बलाबलविवेकेन पुष्करालयशालिनाम्

सुमनोभिरिदं देश्यमायुर्धर्मादिशालिनाम्।।[20]

उपरोक्त बताये गये सभी योगों की फलितता उन्हीं लोगों के लिए होती है, जो लोग शुद्धाचरण, सच्चरित्र व धर्मपरक होते हैं। योगों की फलीभूतता हेतु अपनी सावधानी, दुर्व्यसनों से दूर रहना और सदाचारी, मिताहारी होना आवश्यक है जो लोग दुराचारी व असदाचारी होते हैं वे समय से पूर्व जीवन लीला समाप्त कर लेते हैं अतः सभी योगों के रहते हुए भी व्यक्ति यदि संयमित जीवन जीये तो मारक भाव भी व्यक्ति को अधिक कष्टप्रद नहीं होगें।

उपरोक्त योगों द्वारा निर्णित आयु की समाप्ति या काल अवधि में उक्त वरियता के क्रम से जिस ग्रह की महादशा हो वह ग्रह मारकेश कहा जाता है। इस मारकेश ग्रह की महादशा में इससे सम्बन्धित ग्रह या सहधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा आने पर व्यक्ति की मृत्यु होती है।

निष्कर्षः-

ज्योतिष में मारकेश का अर्थ अत्यधिक व्यापक है मारक भावों से सदैव मृत्यु या मरण अर्थ ही ग्रहण नहीं होता अपितु वर्तमान संदर्भ में इसे हम व्यापक अर्थ में ग्रहण कर इस निष्कर्ष पर चर्चा कर सकते हैं कि यदि किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति बहुत सुदृढ़ है तथा मारक ग्रहों की दशा में वह अपमानित हो जाये, उस पर कोर्ट, कचहरी में मुकदमें चले, किसी व्यक्ति की शारीरिक स्थिति सुदृढ़ हो तथा उसे बीमारी जकड़ ले, किसी व्यक्ति की आर्थिक व पारिवारिक स्थिति अच्छी हो लेकिन मारक ग्रहों की दशा में आर्थिक व पारिवारिक स्थिति को नुकसान हो जाये। ये सभी प्रकार की स्थितियाँ मृत्यु तुल्य कष्ट प्रदान करती है अतः वर्तमान समय में केवल मृत्यु अर्थ का ग्रहण करने के साथ-साथ जीवन में अतुलनीय, अकल्पनीय कष्ट का ग्रहण भी कर सकते हैं और मानसिक स्थिति को सुदृढ़ रख कर योगों के कारण व निवारण के विषय में ज्योतिष द्वारा उपायों को जान सकते हैं।

संदर्भ-

1. फलदीपिका, आयुर्दायाध्यायः, श्लोक-1
   प्रकाशक- मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2010 ई.

2. फलदीपिका आयुर्दायाध्याय:, श्लोक-7
प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2010 ई.
3. लघुपाराशरी, मारकाध्याय:, श्लोक-23
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2022 ई.
4. जैमिनी सूत्रम्, तृतीयोध्याय:, श्लोक-89
प्रकाशक: रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2003
5. बृहत्पाराश होराशास्त्रम्, मारक भेदाध्याय, श्लोक-3
प्रकाशक: चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष: 2009 ई.
6. लघुपाराशरी, मारकाध्याय:, श्लोक-24,25
प्रकाशक: रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2022 ई.
7. लघु पाराशरी, मारकाध्याय:, श्लोक-26
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2022 ई.
8. लघु पाराशरी, मारकाध्याय: श्लोक-27
प्रकाशक: रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष - 2022 ई.
9. लघु पाराशरी, मारकाध्याय:, श्लोक-28
प्रकाशक - रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2022 ई.
10. जैमिनीसूत्रम्, तृतीयोऽध्याय:, श्लोक-98
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2003 ई.
11. जैमिनी सूत्रम्, तृतीयोऽध्याय:, श्लोक-90
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2003 ई.
12. बृहत्पाराशर होराशास्त्रम्, भाववर्ग, श्लोक 38, 39
प्रकाशक- चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष: 2009 ई.
13. जैमिनीसूत्रम्, तृतीयोऽध्याय: श्लोक-91
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2003 ई.
14. जैमिनीसूत्रम्, तृतीयोऽध्याय: श्लोक-92
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2003 ई.
15. जैमिनीसूत्रम्, तृतीयोऽध्याय: श्लोक-93
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2003 ई.
16. जैमिनीसूत्रम्, तृतीयोऽध्याय: श्लोक-94
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2003 ई.
17. जैमिनीसूत्रम्, तृतीयोऽध्याय: श्लोक-95
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2003 ई.
18. जैमिनीसूत्रम्, तृतीयोऽध्याय: श्लोक-96
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2003 ई.
19. जातकालंकार, आयुर्दायाध्याय:, श्लोक 21
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2004 ई.
20. जातकालंकार, आयुर्दायाध्याय:, श्लोक-22
प्रकाशक- रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष- 2004 ई.

भारत की चुनाव प्रक्रियाः एक सुधारात्मक राजनीतिक विश्लेषण

डॉ० मुखलाल राय

एसोशियेट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, एम0 पी0 एस0 साईन्स कॉलेज, मुजफ्फापुर, बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सारांशः

भारत के चुनाव प्रक्रिया सन् 1947 ई0 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सन् 1951 से प्रारम्भ होता है। भारत के चुनाव प्रक्रिया में गौरवशाली परम्पराओं, सांस्कृतिक धरोहरों से परिपूर्ण एवं विविधता में एकता की भावना को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त करता भारतवर्ष विश्व का सबसे बडा लोकतान्त्रिक देश है। लोकतान्त्रिक देश की मुख्य विशेषता स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन प्रणाली है। निष्पक्ष निर्वाचन प्रणाली के अन्तर्गत लोकतन्त्र के जीवन्त स्वरूप को स्पष्टतः देखा जा सकता है। लोकतन्त्र को अधिक परिपक्व एवं सुदृढ बनाने हेतु देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में वृहद् परिवर्तन वर्तमान समय की महत्वपूर्ण मांग है। राजनीतिक व्यवस्था में सुधार हेतु निर्वाचन व्यवस्था में परिवर्तन एक अहम् विषय है। भारत में प्रथम लोकसभा के निर्वाचन से लेकर वर्तमान में सत्रहवी लोकसभा के निर्वाचन तक निर्वाचन व्यवस्था में समय पर अनेक परिवर्तन किए गए है। चुनाव सुधारो के क्रम में निर्णयो का महत्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि निर्वाचन व्यवस्था में सुधार किए गए है एवं विभिन्न नवाचारो यथा-ईवीएम मशीन का प्रयोग, नोट विकल्प की उपस्थिति, वीवीपेट को भी चुनाव में प्रयोग किया गया है।

मुख्य शब्दः परंपराओं, सांस्कृतिक, राजनीति, प्रशासनिक, निर्वाचन व्यवस्था, ईवीएम मशीन।

परिचय एवं पृष्ठभूमिः

भारत विश्व का बहुत बड़ा लोकतांत्रिक देश है, जिसमें चुनावी प्रणाली में करने योग्य उन परिवर्तनों को चुनाव सुधार कहते है जिनके करने से जनता की आकांक्षाएँ चुनाव परिणामों के रूप में अधिकाधिक परिणत होने लगे। चुनाव सुधारों को लेकर बीते दशक से ही सरकार, चुनाव आयोग व राजनीतिक दलो ने अहम पहल की है । इसके तहत् राजनीति में अपराधीकरण रोकने, राजनीतिक दलो में सुधार, पार्टी फंडिग में पारदर्शिता, चुनाव में फायदा पाने के लिए धर्म के गलत इस्तेमाल, पेड न्यूज और आचार संहिता के उल्लघंन के मसले पर चर्चा हो रही है इनमें अहम सुधार करने की बेहद जरूरत है। अभी सरकार का कहना है कि वह चुनाव सुधारों पर संजिदा है और जिन मसलो पर राजनीतिक दलो में मतभेद है उन मसलो पर राजनीतिक दलों में आम राय बनाने की पहल हो रही है। 1998 में चुनाव आयोग व कानून मन्त्रालय ने देश भर में कई व्यापक चर्चाएं कराई और उसके बाद कुछ प्रस्ताव एक दस्तावेज के रूप में तैयार किया इस प्रस्ताव को कानून मंत्रालय ने विधि आयोग को भेज दिया तथा चुनाव आयोग इस प्रकार के चुनाव सुधारों को लागू करने को लेकर बेहद सक्रिय है। यहाँ नागरिकों द्वारा विधायिका के विभिन्न पदों के लिए प्रत्यक्ष रूप से नागरिकों को चुना जाता है। इस कड़ी को और मजबूत करने के लिए संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्र, निष्पक्ष व पारदर्शी चुनाव कराने के लिए निर्वाचन आयोग की स्थापना की नींव अनुच्छेद 324 से 329 तक में रखी, जो चुनावों में अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण का काम करता है। वक्त के साथ चुनाव आयोग ने चुनावी प्रक्रिया में सुधार किए तथा आयोग ने चुनावी प्रक्रिया को पारदर्शी

स्वतंत्र निष्पक्ष बनाने के लिए नये आयाम, अधिकारों, नियमों का निर्माण किया व लागू किये गये जो बेहद जरूरी माने जाते है लोकतंत्र के लिए।

उद्देष्यः

प्रस्तुत लेख में भारत में चुनाव प्रक्रिया एवं चुनाव सुधार का अध्ययन किया गया हैं जिसके निम्न उद्देश्य है:-

1. भारत में चुनाव का अभिप्राय और लोकतंत्र के साथ उसका संबंध
2. भारत में चुनाव प्रक्रिया के प्रवाही और बाधक तत्व
3. चुनाव प्रक्रिया में जाति, वर्ग, धर्म आदि की भूमिका
4. चुनाव प्रक्रिया में विचारार्थ विषय
5. बदलती सामाजिक रूप रेखाएं और चुनाव।

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत लेख में 'भारत के चुनाव प्रक्रिया में उच्च स्तरीय विश्वसनीयता लाने के लिए यथासंभव प्राथमिक तथा द्वितीयक स्त्रोंतों का उपयोग किया गया है। एक प्रश्नावली भी तैयार की गई है जिसके माध्यम से समाज के प्रबुद्ध लोगों यथा राजनेताओं, जागरूक मतदाताओं, अधिकारियों एवं शिक्षकों से यह जानने का प्रयास किया गया है कि आज भी चुनाव प्रक्रिया में क्या-क्या कमियां है तथा इन कमियों को दूर करने के क्या-क्या प्रयास हो सकते है। एकत्रित आंकड़ों का अवलोकन एवं विश्लेषण करके वांछित निष्कर्ष प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। भारत में चुनावों का आयोजन भारतीय संविधान के तहत बनाये गये भारतीय निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाता है। यह एक अच्छी तरह स्थापित परंपरा है कि एक बार चुनाव प्रक्रिया शुरू होने के बाद कोई भी अदालत चुनाव आयोग द्वारा परिणाम घोषित किये जाने तक किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।

साहित्यावलोकनः

भारत में चुनाव एवं चुनाव सुधार के सन्दर्भ में किये गये इस आलेख के उद्देश्यों तथा शोध पद्धति का विवरण प्रस्तुत करते हुए इस विषय पर लिखे गये साहित्य का अवलोकन किया गया है यथा - सुभाष कश्यप ने अपनी रचना ''दल-बदल और राज्यों की राजनीति'' (1970) में लिखा है कि भारतीय राजनीति में दल-बदल की प्रवृति ने लोकतंत्र को काफी आघात पहुँचाया है। दल-बदल मतदाताओं के साथ किया गया धोखा होता है चुनाव सुधारों के माध्यम से सबसे पहले इसमें सुधार की आवश्यकता है। आचार्य भालचन्द्र गोस्वामी ने अपनी रचना ''भारत में चुनाव प्रक्रियाः दशा और दिशा'' (1999) में भारत में चुनाव प्रक्रिया की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करते हुए इसकी विभिन्न प्रकार की कमियों का उल्लेख किया है। साथ ही इन कमियों को दूर करने हेतु किये गये प्रयासों का भी वर्णन किया हैं महेश्वर सिंह ने अपनी पुस्तक ''भारतीय लोकतंत्रः समस्याएँ व समाधान'' (2000) में भारतीय लोकतंत्र में विद्यामान बाहुबल, धनबल, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद तथा भाषावाद जैसी समस्याओं का उल्लेख करते हुए इन समस्याओं के समाधान के उपाय भी सुझाये हैं। मनोज अग्रवाल द्वारा रचित ग्रन्थ ''चुनाव प्रक्रिया की ओर एक कदम'' (2015) में भारत में सुशासन की दिशा में चुनाव प्रक्रिया में एक कदम बताया गया है। इसके अलावा भारत में चुनाव प्रक्रिया की महत्ती आवश्यकता पर बल देते हुए, इस दिशा में अब तक किये गये प्रयासों की सराहना भी की गई है।

चुनावी प्रक्रियाएं समय और स्थान के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं एवं दलगत राजनीति ऐसे परिवर्तनों और विविधताओं के लिए उत्प्रेरक का कार्य करती हैं। बहुसंख्यक और पीआर प्रणाली दोनों का अलग-अलग समय में दुनिया भर के देशों द्वारा आजमाया गया और उसमें परिवर्तन किए गए एवं प्रतिस्थापित किया गया। कई देशों ने एक प्रकार की चुनावी प्रणाली से दूसरी तरह की चुनावी प्रणाली में परिवर्तन करके अथवा दो अलग-अलग चुनावी प्रणालियों का संयोजन करके चुनावी प्रणाली को बदलने की कोशिश की हैं। एक उत्कृष्ट उदाहरण फ्रांस का है, जिसने अपनी चुनावी प्रणाली को दूसरों की तुलना में अधिक बार परिवर्तित किया हैं। 1985 तक संसदीय चुनाव द्वितीय-मत प्रणाली के अनुसार आयोजित किए गए थे, इसे सोशलिस्ट पार्टी के प्रभाव में पार्टी-सूची प्रणाली द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, जिसने 1980 एवं 1990 के दशक में राष्ट्रीय संसद को नियंत्रित किया था।

चुनावी प्रक्रिया:

भारत के चुनावी प्रक्रिया का मूल्यांकन निम्नलिखित दो पहलुओं के संदर्भ में किया जा सकता हैं: पहला, चुनावी प्रक्रिया किस हद तक निष्पक्ष एवं न्यायसंगत प्रतिनिधित्व देने में सक्षम हैं और दूसरा, सरकार की दक्षता पर इसका प्रभाव। बहुसंख्यकवादी तरीकों की बात करें तो निष्पक्ष और न्यायसंगत प्रतिनिधित्व देने का मानदंड अवास्तविक रहता हैं क्योंकि यह लोकप्रिय वरीयता से प्रेरित होता हैं जो अपने वास्तविक रूप में समाज का प्रतिनिधित्व कर सकता है या नहीं भी कर सकता हैं। बहुसंख्यकवादी तरीकों से जुड़ी सामान्य आलोचना यह है कि यह चुनावी मजबूती के लिए सही नहीं हैं क्या ेंकि चुनाव जीतने के लिए 'साधारण बहुमत' करना ही एकमात्र मानदंड हैं। ऐसी व्यवस्था में अप ेक्षाकृत छोटे दलों को दरकिनार करने की प्रवृत्ति होती हैं। यह भारत में 2014 के आम चुनावों में बहुत स्पष्ट रूप से उदाहरणस्वरूप दृष्टिगोचर होता हैं, जहां भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने चुनावों में जीत हासिल की और अपने पक्ष में केवल 31 प्रतिशत वोट प्राप्त करने के बावजूद एक बहुसंख्यक सरकार बनाई।

इस संदर्भ में, पी0 आर0 प्रणाली जनता का निष्पक्ष एवं न्यायसंगत प्रतिनिधित्व देने में कहीं अधिक कुशल प्रतीत होती हैं। यहां, हमें यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि चुनावी प्रणाली का एक आवश्यक कार्य न केवल सरकार गठन की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाना है, बल्कि एक मजबूत और स्थिर शासन प्रणाली प्रदान करना भी हैं। इस कार्य में पीआर प्रणाली विफल होती प्रतीत होती हैं क्योंकि इसके परिणामस्वरूप आमतौर पर गठबंधन सरकारें बनती है जो कि एकदलीय सरकार की तरह स्थिर और मजबूत नहीं हो सकती हैं। यह देखा गया हैं कि पी0 आर0 प्रणाली में गठित गठबंधन सरकारों को चुनावों में स्पष्ट चुनावी ताकत का दावा करने के बावजूद चुनाव के पश्चात् समान आलोचना और चुनौतियों का सामना पड़ता हैं। पीआर प्रणाली में प्रभाव का दायरा सिकुड़ता हैं और गठबंधन सरकारों के गठन के कारण सार्वजनिक वादों पर कार्य करने और पूरा करने की क्षमता समान रूप से बाधित होती हैं। चुनाव प्रक्रिया में गौरवशाली परम्पराओ, सांस्कृतिक धरोहरो से परिपूर्ण एवं विविधता में एकता की भावना को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त करता भारतवर्ष विश्व का सबसे बडा लोकतान्त्रिक देश है। लोकतान्त्रिक देश की मुख्य विशेषता स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन प्रणाली है। निष्पक्ष निर्वाचन प्रणाली के अन्तर्गत लोकतन्त्र के जीवन्त स्वरूप को स्पष्टत: देखा जा सकता है। लोकतन्त्र को अधिक परिपक्व एवं सुदृढ बनाने हेतु देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में वृहद् परिवर्तन वर्तमान समय की महत्वपूर्ण मांग है। राजनीतिक व्यवस्था में सुधार हेतु निर्वाचन व्यवस्था में परिवर्तन एक अहम् विषय है। भारत में प्रथम लोकसभा के निर्वाचन से लेकर वर्तमान में सत्रहवी लोकसभा के निर्वाचन तक निर्वाचन व्यवस्था में समय पर अनेक परिवर्तन किए गए है। भारत में निम्नलिखित तरीके से चुनावी प्रक्रिया होती है।

निर्वाचन क्षेत्रों का गठन:

संविधान में कहा गया है कि प्रत्येक जनगणना के पूरा होने के बाद राज्यों को लोकसभा में सीटों के आवंटन का पुनरू समायोजन किया जाएगा। इसी तरह, विधानसभाओं के चुनाव के लिए निर्वाचन क्षेत्रों को भी पुन: समायोजित किया जाता है।

नामांकन भरना:

उम्मीदवारों का नामांकन चुनाव प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। नियमों के अनुसार उम्मीदवार या अपना नाम प्रस्तावित करने वाला व्यक्ति रिटर्निंग ऑफिसर के पास नामांकन पत्र दाखिल करता है। भारत सरकार या किसी राज्य के अधीन लाभ का कोई पद धारण करता है (मंत्रियों या उप मंत्रियों के पदों को इस प्रयोजन के लिए लाभ के पद के रूप में नहीं माना जाता है) मानसिक रूप से अक्षम है और न्यायालय द्वारा उसको मानसिक रूप से कमजोर घोषित किया गया हो या दिवालिया हो तथा अगर वह भारत का नागरिक नहीं हो। अगर वह संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून के तहत अयोग्य घोषित किया गया हो।

नामांकन की जांच:

रिटर्निंग ऑफिसर नामांकन पत्रों की बहुत सावधानी से जांच करता है। जब वह ऑफिसर कुछ गड़बड़ी पाता है, तो उस व्यक्ति को आधिकारिक तौर पर छह साल के लिए चुनाव लड़ने से रोक दिया जाता है। उम्मीदवार सही पाए जाने के बाद भी अपना नामांकन पत्र वापस ले सकते हैं। यदि उम्मीदवार किसी अनुसूचित जाति या जनजाति का है तो जमानत राशि आधी कर दी जाती है।

चुनाव प्रचार:

नामांकन की जांच में सब सही होने पर चुनावी प्रत्याशी चुनावी प्रचार करना शुरू कर देता है, जहां से वह चुनाव लड़ रहा होता है।

मतदान प्रक्रिया:

मतदान के दिन मतदान समाप्त होने के समय से 48 घंटे पहले चुनाव प्रचार रोक दिया जाना चाहिए। पीठासीन अधिकारी पूरी मतदान प्रक्रिया का पर्यवेक्षण करता है और यह सुनिश्चित करता है कि उसके अधीन काम करने वाले सभी व्यक्ति चुनावी मानदंडों और प्रथाओं का पालन करें। मतदाता अपना वोट या तो जिस उम्मीदवार को वोट देना चाहता है उसके नाम के आगे मुहर लगाकर या वोटिंग मशीन के बटन को दबाकर रिकॉर्ड करता है।

मतों की गिनती:

मतदान समाप्त होने के बाद मतपेटियों या वोटिंग मशीनों को सील कर दिया जाता है और उन्हें मतगणना केंद्रों तक पुलिस हिरासत में ले जाया जाता है। इसके बाद मतगणना की प्रक्रिया शुरू होती है। भारत में पहली बार मतों की गिनती सन् 1979 में हुई थी।

चुनाव खर्च से संबंधित लेखा प्रस्तुत करना:

कानून अपने चुनाव में विभिन्न दावेदारों द्वारा किए जाने वाले खर्च की अधिकतम सीमा तय करता है। उम्मीदवारों को चुनाव खर्च का लेखा-जोखा दाखिल करना होता है। एक उम्मीदवार के लिए अपने चुनाव पर निर्धारित राशि से अधिक पैसा खर्च करना भ्रष्टाचार माना जाता है, और उसकी जांच भी हो सकती है।

चुनावों प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने एवं चुनाव में अपराधी तत्वों को रोकने एवं अपने जनप्रतिनिधियों के बारे में जानकारी हेतु निर्वाचन आयोग ने निर्देश दिया कि चुनाव लड़ने वाले सभी उम्मीदवारों को अपने नामांकन पर्चे के साथ ही एक शपथ पत्र देना होगा जिसमें अपनी पत्नी और आश्रितों की कुल चल एवं अचल संपळियों व देनदारियों का विवरण, अपनी शैक्षिक योग्यता के साथ ही यदि कोई अपराधी पृष्ठभूमि हो तो उसकी जानकारी, उनके खिलाफ दायर आपराधिक मामलों का विवरण देना होंगे लेकिन क्या यह प्रणाली भाव-शून्यता में काम कर रही है? जानकारों की माने तो इस समस्या में समाज की भी स्पष्ट भागीदारी है। हमारी राजनीतिक प्रणाली का व्यवहार समाज के प्रति उनकी प्रतिक्रिया है। इस राजनीतिक प्रणाली को सुधारने के लिये समाज और उसके तंत्रों में सुधार की आवश्यकता है। यहीं से चुनावी सुधार महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। भारत जैसे जीवंत लोकतंत्र में यह आवश्यक है कि देश में सुशासन के लिये सबसे अच्छे नागरिकों को जन प्रतिनिधियों के रूप में चुना जाए। इससे जनजीवन में नैतिक मूल्यों को बढ़ावा मिलता है, साथ ही ऐसे उम्मीदवारों की संख्या भी बढ़ती है जो सकारात्मक वोट के आधार पर चुनाव जीतते हैं। लोकतंत्र की इस प्रणाली में मतदाता को उम्मीदवार चुनने या अस्वीकार करने का अवसर दिया जाना चाहिये जो राजनीतिक दलों को चुनाव में अच्छे उम्मीदवार उतारने पर मजबूर करे। कोई भी लोकतंत्र इस आस्था पर काम करता है कि चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष होंगे। यह चुनाव प्रक्रिया ही है जो चुने गए लोगों को गुणवत्ता और उनके प्रदर्शन के माध्यम से हमारे लोकतंत्र को प्रभावी बनाती है।

चुनाव सुधार प्रक्रिया:

चुनाव सुधार एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। भारत में समय पर चुनाव सम्बन्धी खामियों को दूर करने के प्रयास होते रहे हैं लेकिन अभी बहुत सारे सुधार अपेक्षित हैं। चूँकि राजनीतिक दल चुनाव सुधारों से प्रत्यक्षत: प्रभावित होते हैं इसलिए सुधारों के प्रति उनका दृष्टिकोण मायने रखता है। निर्वाचन आयोग के साथ-साथ दिनेश गोस्वामी समिति से लेकर इन्द्रजीत गुप्ता कमेटी ने चुनाव सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये, किन्तु महत्वपूर्ण सुधारों से जुड़े सुझाव पर राजनीतिक दलों द्वारा कोई सकारात्मक रूख नहीं दिखाया गया। ऐसा इसलिए भी कि चुनाव सुधार से जुड़ा सबसे बड़ा मुद्दा राजनीतिक दलों के फंडिंग का आधार तय करना और उसकी पारदर्शी तरीके से निगरानी करना है। चुनाव सुधारों की सरकारों द्वारा अनदेखी के कारण ही हाल में सम्पन्न लोकसभा चुनाव में निर्वाचन आयोग की निष्पक्षता और विश्वसनीयता पर कई पार्टियों और राजनीतिज्ञों द्वारा तमाम आक्षेप लगाये गए।

लेकिन भारत में निर्वाचन आयोग ने अब तक 17 लोकसभा चुनावों को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया है, जिसके द्वारा भारत में लोकतंत्र की जड़े लगातार मजबूत हुई हैं। इस पद्धति की प्राय: मात्र साधारण बहुमत पर विचार करने से बड़ी संख्या में वोटो के 'बर्बाद' होने के आधार पर आलोचना की जाती हैं। कुछ अन्य तरीकों में द्वितीय मत प्रणाली, वैकल्पिक वोट (एवी) प्रणाली/सप्लीमेंट्री वोट (एसवी), तथा कोंडोरसेट विधि एक विकल्प प्रदान करती हैं। चुनावी प्रणालियों की दूसरी श्रेणी को आनुपातिक प्रतिनिधित्व (पीआर) प्रणाली के रूप में जाना जाता हैं, जिसमें एकल-हस्तांतरणीय मत (एसटीवी) प्रणाली, दल-सूची प्रणाली, मिश्रित-सदस्य आनुपातिक (एमएमपी) या अतिरिक्त सदस्य (एएम) प्रणाली, अर्ध-आनुपातिक पद्धति, संचयी मत प्रणाली और स्लेट प्रणाली शामिल हैं। ये तरीके अधिक प्रतिनिधिक हैं क्योंकि वे आनुपातिकता नियम का पालन करते हैं जिसका अर्थ है कि सीटों को प्राप्त मतों के अनुसार आंवटित किया जाता हैं। बहुसंख्यकवादी तरीकों का परिणाम आमतौर पर एक-दलीय सरकारों और दो-दलीय प्रणालियों में होता हैं जो कभी-कभी तीसरे पक्ष या छोटे समूहों और दलों के प्रयासों को छुपाते हैं। पी0आर0 प्रणाली आमतौर पर एक बहुदलीय प्रणाली में काम करती हैं और गठबंधन सरकारों को जन्म देती हैं। दोनों प्रणालियों के अपने फायदें और नुकसान हैं। जबकि पूर्व की प्रणाली के तहत सरकारों में मध्यावधि परिवर्तन की कम संभावना के साथ मजबूत और स्थिर सरकारें जन्म लेती हैं, बाद वाली प्रणाली लोकतंत्र के सार से अधिक चिंतित हैं जिसे सर्वसम्मति, चर्चा और वार्ता के संदर्भ में आंका जाता है जो केवल गठबंधन सरकारों के मामले में हो सकता हैं। नुकसान के संदर्भ में, बहुसंख्यकवादी तरीकों से सरकारों को सार्वजनिक अस्वीकृति का सामना करने का जोखिम होता हैं क्योंकि यह 'साधारण बहुमत' पर आधारित होता है जो बडेघ् पैमान पर जनता के खिलाफ हो सकता हैं। दूसरी ओर, पीआर प्रणाली बहुत जटिल और समय लेने वाली हैं तथा वृहत और गरीब देशों के लिए संभव नहीं हो सकता हैं क्योंकि कई दौर का मतदान एक महंगाा मामला प्रतीत होता हैं। किसी भी लोकतांत्रिक देश में चुनाव काफी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और क्योंकि भारत को विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रुप में भी जाना जाता है।

भारतीय लोकतंत्र को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र होने का गौरव प्राप्त है, यहाँ एक आम चुनाव का आयोजन यूरोप, अमेरिका, कनाडा एवं आस्ट्रेलिया में एक साथ चुनाव कराये जाने के बराबर है। बड़े पैमाने पर गरीबी और अशिक्षा के बावजूद भारत ने एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की देखरेख में सफल चुनाव आयोजित किए हैं। चुनाव में भारी संख्या में मतदाताओं को भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। कानून के मुताबिक उन्हें नजदीक से नजदीक स्थान पर मतदान केन्द्र उपलब्ध कराया जाता है ताकि वह दूरी पैदल तय की जा सके। चुनाव प्रचार अभियान की कठोरता पूर्वक निगरानी की जाती है। ऐसी तमाम खूबियों के बावजूद भारतीय लोकतंत्र में अनेक चुनाव संबंधी कमियाँ या समस्याएं बनी हुई हैं जो भारतीय निर्वाचन प्रणाली के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। हलांकि समय-समय पर चुनाव आयोग द्वारा चुनावी सुधार के उपाय किए जाते रहे हैं। संविधान के 61 वें संशोधन (1988) के द्वारा मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया एवं 19 जनवरी, 1992 का एक आध्यादेश जारी कर संसदीय एवं विधान सभा निर्वाचनों में प्रचार करने की अवधि 20 दिनों से घटाकर 14 दिन कर दिया गया।15 मार्च 1989 से इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन (ई0वी0एम0) लागू किया गया और 1998 ई0 में राजस्थान, मध्यप्रदेश और दिल्ली के विभिन्न चुनाव क्षेत्रों में इसका इस्तेमाल हुआ। मई 2004 ई0 में 14वीं लोक सभा के चुनाव में ई0 वी0 एम0 का प्रयोग हुआ था। जाली मतदान को रोकने के लिए आयोग द्वारा 1995 ई0 से मतदाताओं को मतदाता पहचान पत्र उपलब्ध कराया गया। विधि आयोग ने 1999 ई0 में अपनी रिपोर्ट में लोक सभा एवं विधान सभा चुनाव एक साथ कराने की पुरजोर तरीके से पैरवी की। इस मद्दे पर कार्मिक, लोकसेवा, विधि, एवं न्याय जैसे विभागों से जुड़ी संसद की स्थायी समिति ने 2015 ई0 में संसद के दोनो पटलों पर इस प्रस्ताव का रखा।इस विषय में वर्ष 2017 में चुनाव आयोग ने भी हामी भर दी। दिसम्बर 2016 में चुनाव आयोग ने विधि मंत्रालय का शिफारिश में कहा कि एक प्रत्याशी दो सीटों पर चुनाव लड़ने की छूट नहीं मिलनी चाहिए। ई0 वी0 एम0 द्वारा मतदान की निष्पक्षता की जॉच के लिए वर्ष 2013 में सर्वप्रथम नागालैण्ड के चुनाव में वोटर वेरीफाईबल पेपर ऑडिट ट्रॉल (बी0बी0 पैट) का प्रयोग हुआ। पॉच चुनाव सुधार भी पेश किया गया:

1. रिमोट वोटिंग मशीन (आर0वी0एम0)- मूल स्थान से दूर दूसरे देशों में रहने वाले का वोट डालने का मौका मिलेगा।
2. एक देश एक चुनाव - इसमें एक साथ लोक सभा, विधान सभा, नगरीय निकाय एवं पंचायती चुनाव की व्यवस्था करना था लेकिन इसके लिए सभी राजनीतिक दल तैयार नहीं थे।
3. एक मतदाता एक मतदाता सूची- लोक सभा एवंि वधान सभा की एक मतदाता सूची एवं स्थानीय निकाय की दूसरी मतदाता सूची होती है।

4. वोटर लिस्ट को आधार से जोड़नें की योजना है ताकि इससे दोहरा व फर्जी मतदाता पकड़ में आ जाय।
5. एक व्यक्ति एक सीट - एक व्यक्ति को एक ही जगह से चुनाव लड़ना होगा।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि चुनाव के प्रक्रिया को समझना चाहिए की केवल वैधानिक प्रावधानो और निर्वाचन प्रक्रिया में सुधार से स्वतन्त्र और मुक्त चुनाव एवं स्वस्थ राजनीतिक वातावरण के निर्माण की गारंटी नहीं दी जा सकती है। चुनावी प्रक्रियाएं बहुत महत्वपूर्ण होती हैं, जब लोकतांत्रिक समाजों क` गठन एवं रखरखाव की बात आती हैं। वे न केवल चुनाव परिणामों को आकार देती है, बल्कि किसी भी देश में दल प्रणाली की संरचना, राजनीतिक संस्कृति और सरकार के गठन को भी प्रभावित करती हैं। फलस्वरूप, चुनावी प्रक्रियाएं किसी देश की सामाजिक और राजनीतिक संरचना से भी प्रभावित होती हैं। अलग-अलग सेट-अप भिन्न-भिन्न चुनावी प्रणालियों की मांग करते है जो या तो एकांकी या संयोजन वाली होती हैं। चुनावी प्रणालियों के अलग-अलग प्रकार के अध्ययन को दो प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं:- बहुसंख्यक प्रणाली तथा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली। सबसे अधिक चुना जाने वाला बहुसंख्यकवादी तरीका 'एकल-सदस्य बहुलता' का है, जिसे 'फर्स्ट-पास्ट-द-पोस्ट प्रणाली' भी कहा जाता हैं। इसका पालन उन देशों में किया जाता हैं जहां एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होते है तथा अधिकतम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को विजेता घोषित किया जाता हैं। चुनाव जीतने के लिए आवश्यक न्यूनतम मतों की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

वोटों का साधारण बहुमत ही एकमात्र मापदंड हैं। इसलिए भारत में चुनावों को काफी अहम माना जाता है। आजादी के बाद से भारत में कई बार चुनाव हो चुके और इन्होंने देश के विकास को गति देने का एक महत्वपूर्ण कार्य किया। यह चुनाव प्रक्रिया ही है, जिसके कारण भारत में सुशासन, कानून व्यवस्था तथा पारदर्शिता जैसी चीजों को बढ़ावा मिला है। यह चुनाव प्रक्रिया है जिसने दिन-प्रतिदिन भारत में लोकतंत्र के नींव को और भी मजबूत किया है। यहीं कारण है कि भारतीय लोकतंत्र में चुनाव इतना महत्वपूर्ण स्थान रखते है।

संदर्भ सूची

1. पुखराज जैनः 'भारतीय शासन एंव राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 1999
2. मनोज अग्रवालः 'चुनाव सुधार-सुशासन की ओर एक कदम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
3. एम0 लक्ष्मीकातंः 'भारत की राजव्यवस्था, मैकग्राहिल एजयूकेशन प्राइवेट लिमिटिड चेन्नई 2017
4. ज. पी0 सिंहः 'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, 21वी सदी में भारत, पी0एच0आई0 लर्लिग पा0 लि0, दिल्ली 2016
5. पाण्डेय, अरूण; हमारा लोकतंत्र और जानने का अधिकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2000
6. सिहं, महेश्वर, भारतीय लोकतंत्र; समस्याए ं ए ंव समाधान, साहित्यागार, जयपुर 2000
7. दुबे, एम पी.; धर्मनिरपेक्षवाद एवं भारतीय प्रजातंत्र, नेशनल पब्लिकेशंन हाउस, नई दिल्ली, 2004
8. अग्रवाल, मनोज; चुनाव सुधार-सुशासन की ओर एक कदम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2015
9. उमेश गुप्ता आलेख (भारत में चुनाव सुधार)
10. अब चुनाव सुधार की ओर मोदी सरकार (प्रदीप ठाकुर) मई 2014
11. मनोज चन्द्रवाल (आर्टिकल 29 जुलाई 2016)
12. सेंगर, शैलेन्द्र; भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियां, गुंजन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
13. तिलक, रघुकुल; लोंकतंत्र स्वरूप एवं समस्या, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 2011
14. राय, अरूंधति, कठघरे में लोंकतंत्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
15. त्रिपाठी, ममता मणि; चुनाव सुधार, प्रशासन की ओर एक कदम, प्रशांत प्रकाशन, दिल्ली, 2015
16. पुनिया, पिंकी एवं रितेश भारद्वाज 2013ः चुनाव और निर्वाचन व्यवस्था, चौधरी, बी0 एन0 एवं युवराज कुमार (संपा0), भारत में राजनीतिक प्रक्रियाएं, हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 73-74
17. दी इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली 14 मई 2007 पृ09
18. दूबे, अभय कुमारः चुनाव प्रणाली-विसंगतियाँ और सुधार, योजना, जुलाई 2014, पृ0 18
19. वी0एल0 फाड़िया एवं कुलदीप फाड़िया (1985) भारतीय शासन एवं राजनीति, प्रथम संस्करण, साहित्य भवन आगरा, पृ0 729-733

बस्तर रियासत के लोकनायक - लाल कालेन्द्र सिंह

डॉ० सीमा पाल

अतिथी शिक्षक इतिहास अध्ययनशाला पं. रविशंकर शुक्ल वि.वि., रायपुर (छ.ग.)

सारांशः– 'बस्तर', छ.ग. का वह संभाग है जो अपने क्षेत्रफल, प्राकृतिक संसाधनो, जनजातीय संस्कृति एवं जनजातीय समूहों की अधिकता के कारण न केवल राष्ट्रीय स्तर पर, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बना चुका है। आज का यह बस्तर अतीत में विभिन्न राजवंशो के अधीन रहते हुए काकतीय वंश की शासनावधि में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आया। समृद्ध आदिवासी संस्कृति और परंपरा की रक्षा एवं विदेशी आगंतुकों से आतंकित होकर बस्तर के महानायकों ने अपनी सांस्कृतिक पहचान एवं पवित्रता की रक्षा के लिए ब्रिटिश शासन का विरोध किया, तथा उसके विरुद्ध विद्रोह किए।

इसी कड़ी में नाम आता है, बस्तर के लाल कालेंद्र सिंह का, जिन्होंनें काकतीय वंश के शासनकाल में दीवान पद भी संभाला एवं जो 1910 के भूमकाल विद्रोह जैसे प्रतिरोध के महानायक भी बने। लाल कालेंद्र सिंह के पिता लाल दलगंजन सिंह थे जो सन् 1854 से सन् 1862 तक बस्तर के दीवान रहे जिनका बस्तर के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। लाल कालेंद्र सिंह ने बचपन से बस्तर की राजव्यवस्था का बारीकी से अवलोकन किया था। सन् 1876 के मुरिया विद्रोह के समय उनकी उम्र बहुत कम थी लेकिन उसकी छाप का प्रमाण सन् 1910 के विद्रोह की योजना एवं नेतृत्व के समय मिलता है। उन्होंनें आदिवासियों को बस्तर से बाहरी लोगों को भगाने के लिए आंदोलन करने के लिए तैयार किया, जिससे प्रेरणा पाकर जनजातीय लोगों ने विद्रोह किया तथा नारा दिया "बस्तर, बस्तर वासियों का है।

22 अक्टूबर, 1909 को दशहरे के दिन ताड़ोकी में लाल कालेन्द्र सिंह ने अंग्रेजों के खिलाफ जंग का ऐलान किया। उसने नेतनार ग्राम के एक धुरवा व्यक्ति गुण्डाधूर को विद्रोह का नेता बनाया। फरवरी, 1910 में समूचे बस्तर में यह विद्रोह फैला तथा रियासत के कुछ इलाकों को छोड़कर समूचा बस्तर विद्रोहियों के प्रभाव में आ गया। दीवान बैजनाथ पंडा रायपुर भाग गया तथा राजा रूद्र प्रतापदेव विद्रोहियों के बंदी बन गए। इस संपूर्ण योजना के पीछे लाल कालेंद्र सिंह और उसके सहयोगियों का हाथ था।

"लाल कालेन्द्र सिंह" का नाम छत्तीसगढ़ के उन महानायकों में से एक है जिन्होंनें छ.ग. की बस्तर रियासत पर बढ़ते हुए ब्रिटिश प्रभुत्व का विरोध किया। यही विरोध सन् 1910 में ''भूमकाल" नामक जनक्रांति के रूप में प्रकट हुआ जिसके सूत्रधार, प्रेरणास्त्रोत एवं सिपहसालार लाल कालेन्द्र सिंह थे। लाल कालेन्द्र सिंह का संबंध बस्तर के राजपरिवार से था। उल्लेखनीय है कि जहां बस्तर रिसायत के राजा अपने नाम के साथ 'देव' शब्द लगाते थे क्योंकि बस्तर में राजा को देवतुल्य माना जाता था जैसे राजा भूपालदेव, राजा भैरमदेव, वहीं पर राजपरिवार के महत्वपूर्ण सदस्य अपने नाम से पहले 'लाल' शब्द लगाते थे जैसे लाल दलगंजन सिंह, लाल कालेन्द्र सिंह। बस्तर के राजवंश में जन्म लेने के बावजूद भी लाल कालेन्द्र सिंह में शाही परिवार का होने का तनिक भी घमंड नहीं था। लाल ने स्वयं को आम वनवासियों के बीच रखा, उनकी समस्याएं सुनीं और समझी थीं।

कुंजी शब्द- बस्तर, लाल, भूमकाल, विद्रोह, दीवान

उद्देश्य- मेरे शोध पत्र का उद्देश्य 1910 ई. के भूमकाल विप्लव में लाल कालेन्द्र सिंह की भूमिका का अवलोकन करना है।

शोध प्रविधि- अपने इस शोध- पत्र हेतु मैंने विषय से संबंधित प्राथमिक एवं द्वितीयक-दोनों प्रकार के स्त्रोतों से मदद ली है। विषय से संबंधित पुस्तकों, शोध पत्रों, शोध प्रबंधो का अध्ययन एवं अवलोकन भी किया है।

काकतीय युगीन बस्तर में समय-समय पर जन असंतोष उभरकर सामने आए, जन आंदोलन, विप्लव एवं षडयंत्र भी हुए। (1) शीध्र उत्तेजित हो उठने वाले वनवासी या आदिम जनजातियों ने व्यवस्था को अकारण चुनौती दी हो, ऐसी बात नहीं है। बात चाहे सन् 1774 के हल्बा विद्रोह की करें, चाहे सन् 1876 के मुरिया विद्रोह की करें, सन् 1910 के भूमकाल की या फिर 1929 ई. के विद्रोह की सभी के पीछे 'जन असंतोष' मूल कारण रहा।

20 वीं सदी के प्रारंभिक दस वर्षों का महत्व -बस्तर रियासत के लिए विशेष रहा है। (2) यही वह समय था जब बस्तर में 1910 ई. में लाल झगड़ा/लाल विद्रोह (3) नामक संघर्ष हुआ। लाल कालेन्द्र सिंह इस संघर्ष के मूल संगठनकर्त्ता थे। बस्तर रियासत के संदर्भ में ध्यान देने वाली बात यह है कि इस रियासत में ''राजा'' का पद प्रमुख होता था, राजा के बाद 'दीवान' का पद महत्वपूर्ण माना जाता था- जब जब इस दीवान क पद पर राजपरिवार के सदस्य पदासीन हुए जैसे लाल दलगंजन सिंह, लाल कालेन्द्र सिंह, कुंवर दुर्जन सिंह, स्थिति नियंत्रण में रही लेकिन बाहर के व्यक्तियों को जनता ने कभी सहन नहीं किया, समय समय पर अंग्रेजों द्वारा नियुक्त दीवानों की योग्यता और कार्यकुशलता की भी शिकायत की जाती रही।

लाल कालेन्द्र सिंह, सन् 1881 से सन् 1886 तक बस्तर के दीवान रहे। वे ऐसे व्यक्ति थे जो हार जीत की परवाह किए बिना अपने अस्तित्व का अहसास कराने से नहीं चुकते थे। उनका प्रभाव राजा से लेकर आम जनता तक में था। लेकिन अंग्रेजी हस्तक्षेप के कारण उन्हें 'दीवान' पद से आरोप लगाकर हटा दिया गया। पद के साथ जुड़ा सम्मान भी दिनों दिन कम किया गया, इतना ही नहीं, बल्कि राजधानी जगदलपुर में आने व रहने के लिए उन्हें दीवान या प्रशासक की मंजूरी लेनी आवश्यक थी।

लाल कालेन्द्र सिंह का संक्षिप्त जीवन परिचय

लाल कालेन्द्र सिंह का जन्म जगदलपुर के समीप कालीपुर नामक ग्राम में सन् 1863 को हुआ था। पिता का नाम लाल दलगंजन सिंह एंव माता का नाम लक्ष्मी कुंवर था। पितामह का नाम राजा महिपाल देव था जिन्होंनें सन् 1800 से 1839 ई. तक बस्तर का शासन संभाला। लाल कालेन्द्र सिंह के पिता लाल दलगंजन सिंह सन् 1854 से सन् 1862 तक बस्तर के दीवान रहे। इस अवधि में बस्तर में सब कुछ इनके इशारों पर होता था। राजा, दीवान के सामने बौने हो गए थे। पिता का यही दबंग व्यक्तित्व उनके पुत्र कालेन्द्र सिंह को विरासत में मिला। कालेन्द्र सिंह की माता लक्ष्मी कुंवर, सीमावर्ती रियासत कांकेर राजपरिवार की थी। उन्होंनें ही कालेन्द्र सिंह को पाला पोसा। यही कारण है कि कालेन्द्र पर माता के व्यक्तिव की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। लाल कालेन्द्र सिंह की शिक्षा दीक्षा के बारे में कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। हां, पर वे पढ़ना लिखना जानते थे, यह उनके हस्ताक्षर युक्त कुछ पत्रों से पता चलता है जो कलेक्टोरेट रिकॉर्ड रूम, जगदलपुर में संग्रहित हैं। उनके नामकरण को लेकर भी कई मतभेद हैं। उनका नाम कहीं पर कालिन्दर सिंह, कालेन्द्र सिंह तो कहीं कालेन्द्र सिंह लिखा जाता है। परंतु हिंदी में लिखे ग्रंथ 'बस्तर भूषण' में उनका नाम स्पष्ट रूप से लाल कालेन्द्र सिंह लिखा है। (4) लाल कालेन्द्र सिंह का विवाह 19 जून 1891 को रूकमणी बाई से हुआ जिससे उनकी 'सूर्यकुमारी' नामक पुत्री का जन्म हुआ। सूर्यकुमारी का विवाह पुनैया प्रशासक के पुत्र राणा गजेन्द्र वीर जंग से हुआ था।(5)

लाल कालेन्द्र सिंह और भूमकाल (लाल विद्रोह/ लाल झगड़ा)

1910 ई. में हुए 'भूमकाल विद्रोह' का बस्तर के आदिवासी संघर्षो के इतिहास में विशेष स्थान है। संघर्ष क्षेत्र व गहनता-दोनों दृष्टियों से यह विद्रोह व्यापक था।(6)

1876 ई. से 1910 ई. तक लगभग 34 वर्षो बाद आए इस झंझावात ने पूरे बस्तर को हिला दिया जो ''बस्तर, बस्तर वासियों का है'' इस नारे को लेकर प्रारंभ हुआ।(7)

'भूमकाल' का शाब्दिक अर्थ होता है ''लोगों का एक स्थान पर जमा होना और एक साथ शीघ्रता से चले जाना।'' भूमकाल विद्रोह मे बस्तर में निवास करने वाली भतरा, परजा, धुरवा, मुरिया, माड़िया, हल्बा, धाकड़, महरा प्रभृत जातियों ने भाग लिया था।(8)

भूमकाल के प्रमुख सूत्रधार थ- लाल कालेन्द्र सिंह। लाल विभिन्न कारणों से मौजूदा शासन व्यवस्था से घोर असंतुष्ट थे। शासन द्वारा उनकी प्रत्यक्ष उपेक्षा से वे मर्माहत थे। दीवान पद से हटने के बाद वे अधिकतर जगदलपुर से बाहर अपने गांव कालीपुर में रहते थे। (9) उनके निवास पर आदिवासी नेता उनसे मिलने आते थे। धुरवा जनजाति का लोकप्रिय नेता गुंडाधुर अक्सर उनसे मिला

करता था। वह लाल का दाहिना हाथ माना जाता था। लाल कालेन्द्र सिंह अपने पिता लाल दलगंजन सिंह के समान ही आदिवासियों में लोकप्रिय तो थे, साथ ही साथ, आम जनता एवं लाल की सोच भी मिलती जुलती थी। बस्तर के तत्कालीन सुप्रिटेंडेंट पंडा बैजनाथ के प्रशासन से आम जन एवं लाल कालेन्द्र सिंह दोनों नाराज थे। वे शीघ्र ही जन आकांक्षाओं के अनुरूप एक जन नायक के रूप में भूमकाल के नायक के रूप में सामने आए।

लाल कालेन्द्र सिंह की बस्तर का राजा बनने की इच्छा पूरी नहीं हो पाई। भैरमदेव के काफी समय तक नि: संतान होने के कारण लाल भी चिंतित थे और उन्होनें भैरमदेव का तीसरा विवाह करवा दिया। हालांकि केदारनाथ ठाकुर ने अपने ग्रंथ 'बस्तर भूषण' में लिखा है कि नि:संतानता की अवस्था में ''यद्यपि इस समय महाराज भैरमदेव ने श्रीमान लाल कालेन्द्र सिंह साहेब को उत्तराधिकारी कबूल कर लिया तथापि श्रीमान लाल साहेब ने उसे उचित न समझ उनका तीसरा विवाह ही करवा दिया।" भैरमदेव को रूद्रप्रताप देव के रूप में पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई तथा देखते देखते वे बस्तर के राजा बन गए।

लाल कालेन्द्र सिंह पशु पक्षी तथा साहित्य संगीत के प्रेमी थे। लाल को अलग-अलग तरह के कई शौक थे। रियासत की ओर से प्रतिमास सौ रूपये भत्ते के तथा तीन हजार रूपये वार्षिक उन्हें मोकासा की जमीन से प्राप्त होते थे लेकिन उनका खर्च आमदनी से अधिक था। ऐसे में उन पर कर्ज का भार भी बढ़ गया था। अपनी एकमात्र पुत्री के विवाह के लिए उन्होंनें रियासत से अनुदान मांगा था जो उन्हें नहीं दिया गया लेकिन फिर भी उन्होनें अपनी पुत्री का विवाह धूमधाम से किया।

पंडा बैजनाथ की नई वन नीति के फलस्वरूप वनों के आरक्षण के चलते लाल कालेन्द्र सिंह से कई गांव छिन गए थे। हांलांकि अपनी लोकप्रियता के बल पर लाल कालेन्द्र सिंह पुन: दीवान बनना चाहते थे लेकिन अंग्रेज कुछ और चाहते थे। अत: लाल कालेन्द्र सिंह ने रानी सुवर्ण कुमारी, कुंवर बहादुर सिंह तथा मुकुन्द देव के साथ मिलकर विप्लव की योजना बनाई। जगदलपुर के दक्षिण पूर्व में स्थित नेतानार इलाके के परजा/धुरवा लोगों ने इस संघर्ष मे बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया और गुप्त दूतों के माध्यम से एकता के प्रतीक स्वरूप "एक तीर, एक लाल मिर्च, मिट्टी का टुकड़ा, धनुष व भाला की अनुकृति को घुमाया गया था। (10) भूमकाल की संघर्ष अवधि और संघर्ष दबा देने के पश्चात् लाल कालेन्द्र सिंह की 1910 के संघर्ष में भूमिका के संबंध में चार प्रमुख लोगों ने अपनी रिपार्ट दी-

1. बी.पी. स्टेन्डन, चीफ सेक्रेटरी- चीफ कमिश्नर, सी.पी.एंड बरार, मार्च और दिसंबर 1910. (11)
2. ई.ए. डिब्रे, स्पेशल ड्यूटी ऑफीसर, बस्तर स्टेट की रिपोर्ट, 8 अप्रैल 1910 और 23 जून 1910 ई. (12)
3. ऑफिसिएटिंग कमिश्नर, छत्तीसगढ़ डिवीजन-वि.एस. एम. चिटनवीस की 21 मई 1910 की 28 पैरा की रिपोर्ट।
4. मि.आर. एच. क्रेडाक, चीफ कमिश्नर सेंट्रल प्राव्हिन्सेस की 25 जुलाई 1910 की रिपोर्ट, पैरा 11.

इन सभी रिपोर्टो, में लाल कालेन्द्र सिंह को विप्लव के लिए मूल रूप से जिम्मेदार माना गया है।

लाल ने आदिवासियों को जागृत करने के लिए प्रचारित करना आरंभ किया कि अंग्रेज सरकार के कारण ही बस्तर के देवी देवता नाराज हो गए हैं और उनकी तकलीफें बढ़ीं हैं। राजा रूद्रप्रताप देव की अंग्रेजी भक्ति के साथ साथ उनकी वैधता को चुनौती देते हुए उसे अवैध संतान निरूपित कर देव पद से उतार दिया गया। अब राजा को देव तुल्य मानने वाले जनजातिय लोगों की निष्ठा को ठेस लगी और वे विद्रोह के लिए उठ खड़े हुए।

22 अक्टूबर 1909 को दशहरे के दिन अंतागढ़ के ताड़ोकी ग्राम में लाल ने नेतानार गांव के एक धुरवा गुण्डाधुर को संघर्ष की कमान सौंप दी। बस्तर के पॉलिटिकल एजेंट डी. ब्रेट ने 31 जनवरी 1910 को बस्तर रियासत का दौरा किया, लेकिन उसे विद्रोह की भनक भी नहीं लगी।

विद्रोह का आरंभ व प्रसार

02 फरवरी 1910 को पूसपाल बाजार की लूट से विद्रोह आरंभ हो गया। 3 फरवरी को लाल कालेन्द्र सिंह ने बस्तर की जनता को ब्रिटिश सरकार पर आक्रमण करने, पुलिस थाना व वन विभाग के कार्यालयों को जलाने तथा परदेशियों को मारकर भगा देने का ऐलान किया। 8 फरवरी को बस्तर की तार लाइनें काट दीं गईं। दंतेवाड़ा, नारायणपुर, अंतागढ़ और कोंटा में भी विद्रोह का प्रसार हो गया था।

विद्रोह की सूचना मिलते ही राजा रूद्रप्रताप देव ने पॉलिटिकल एजेंट रायपुर तथा चीफ कमिश्नर नागपुर को टेलीग्राम से सहायता की याचना की। अंग्रेजों ने बस्तर के पूर्व प्रशासक मि. गेयर तथा पॉलिटिकल एजेंट रायपुर डी. ब्रेट को 500 सैनिकों के साथ बस्तर रवाना किया। 16 फरवरी 1910 को ब्रिटिश सेना और विद्रोहियों के बीच खड़गघाट के पास संघर्ष हुआ। गेयर के द्वारा गोली चलाने के आदेश के चलते 05 आदिवासी घटना स्थल पर ही मारे गए। बचे विद्रोही जगदलपुर की ओर आने लगे जिनका पीछा ब्रिटिश सेना ने किया। 20 फरवरी को लाल अपने गांव से जगदलपुर पहुंचे लेकिन फौजी मार्च के कारण कुछ नहीं कर सकें। 21 फरवरी को लाल की राजा से भेंट हुई, जिसमें लाल ने राजा रूद्रप्रताप देव को निकम्मा-दोगला कहा। 22 फरवरी को लाल को डी. ब्रेट के सामने हाजिर किया गया। डी. ब्रेट ने कालेन्द्र सिंह से उनके साथियों के बारे में जानकारी मांगी लेकिन लाल ने मुँह नहीं खोला।

गेयर, राजा के साथ लाल कालेन्द्र सिंह को भी आदिवासियों व उनके नेताओं से मुलाकात के वक्त साथ रखते थे। यह स्पष्ट कहा गया कि जब तक शांति स्थापित नहीं होती तब तक आदिवासियों की शिकायतें नहीं सुनी जाएंगी। 25 फरवरी को राजा और लाल ने 23 प्रमुख आदिवासियों को प्रस्तुत किया, मगर ये वास्तविक प्रमुख नही थे। (13) गेयर को यह स्पष्ट हो गया कि लाल वास्तव में शांति स्थापना हेतु कुछ भी प्रयास नहीं कर रहे हैं। 20 फरवरी को जगदलपुर आने के बाद से 25 फरवरी तक लाल ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया था जिससे अंग्रेजों को लगे कि शांति स्थापना तथा विद्रोह को शांत करने के लिए वे कुछ कर रहे है। इसलिए 25 फरवरी को 15 प्रमुख आदिवासी नेताओं के साथ लाल गिरफ्तार कर लिए गए तथा कड़े पहरे में रखे गए। आदिवासी नेताओं ने गुंडाधुर के नेतृत्व में लाल को मुक्त कराने की योजना बनाई। गेयर जिस बंगले में ठहरे हुए थे, वहां बड़ी संख्या में सशस्त्र आदिवासी पहुंचते और लाल की रिहाई की अपील करतें। 27 मार्च 1910 को अलनार के जंगल में लाल को मुक्त कराने के लिए एकत्र सशस्त्र आदिवासी तथा ब्रिटिश सैन्य टुकड़ी में हुए भीषण संघर्ष में 21 आदिवासी मारे गए। लाल को मुक्त कराने का प्रयास असफल हो गया था। अब कालेन्द्र सिंह तथा अन्य बंदियों को 22 वीं पंजाबी वाहिनी के साथ रायपुर भेजा गया।

लाल का उद्देश्य सशस्त्र आदिवासियों की बड़ी संख्या में उपस्थिति से राजा को भयभीत कर अपने लिए महत्वपूर्ण पद व प्रतिष्ठा प्राप्त करना था। उनके मार्ग की दो प्रमुख बाधाएं थीं- दीवान बैजनाथ पंडा और राजगुरू, इनके अलावा उन सभी को रास्ते से हटाना उद्देश्य था जिनसे आदिवासियों को शिकायतें थीं। लेकिन इंस्पेक्टर जगन्नाथ प्रसाद ने राजा रूद्रप्रातप देव को लगातार अंग्रेजों से सहायता मांगने के लिए प्रेरित किया। राजा को अंग्रेजी सहायता की उपलब्धता ने लाल की योजनाओं पर पानी फेर दिया। और प्रतिष्ठा पाने के लिए कालेन्द्र सिंह द्वारा 1910 ई. में किया गया सशस्त्र प्रदर्शन व संघर्ष विफल हो गया। विद्रोह को कठोरता से दबा दिया गया, लाल गिरफ्तार कर लिए गए। लाल की गिरफ्तारी, कोड़ों की मार तथा आर्थिक जुर्माने ने बस्तर के आदिवासियों की आशाओं पर तुषारापात कर दिया। परंतु फिर भी यह विद्रोह उन्हें दीवान बैजनाथ पंड़ा और राजगुरू मित्रनाथ ठाकुर से मुक्त कराने में सफल सिद्ध हुआ।

लाल कालेन्द्र सिंह को गिरफ्तार कर रायपुर जेल में रखा गया। 1910 के विद्रोह मे लाल की भूमिका के संबंध में अनेक स्तर पर जांच पड़ताल की गई।

छत्तीसगढ़ डिवीजन के ऑफिसिएटिंग कमिश्नर एस. एम. चिटनवीस ने मामले की जांच कर अपनी रिपोर्ट 21 मार्च 1910 को तैयार की जिसमें 28 पैराग्राफ हैं।

इस रिपोर्ट मे अनेक गवाहों सबूतों के माध्यम से लाल को विद्रोह का गुनहगार सिद्व करने का प्रयास किया गया। चिटनवीस ने सुझाव दिया कि लाल को रियासत से बाहर रखा जाए, यह असंभव है कि उन्हें रियासत बस्तर के भीतर पुनः रहने दिया जाए। ऐसा इसलिए करना लाजमी माना गया ताकि वे बस्तर आकर फिर से किसी षडयंत्र में शामिल न हो सकें। चीफ कमिश्नर ने लाल को 'बस्तर के बहादुर शाह' की उपमा दी थी जिसने विद्रोह के संगठन मे कोई भाग नहीं लिया लेकिन अपने नाम का प्रयोग विद्रोह के लिए जमीन तैयार करने हेतु किया।

लाल की संपत्ति को रियासत के व्यवस्थापन में रखने तथा उसकी आय से लाल के ऋणों को चुकाने का निर्णय लिया गया। लाल को मासिक एक सौ रूपये भत्ता देने के साथ ही भविष्य में भत्ते की वृद्धि के संबंध में निर्णय को बस्तर राजा की इच्छा पर छोड़ दिया गया।

निष्कष-

समस्त विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि यद्यपि लाल कालेन्द्र सिंह और आदिवासियों की दृष्टि से 1910 ई. का भूमकाल संघर्ष, असफल रहा, परंतु इसने लाल कालेन्द्र सिंह को एक बार पुनः चर्चित व्यक्तित्व बना दिया। इस संघर्ष ने बस्तर के इतिहास में लाल को अमर बना दिया, अन्यथा वे बस्तर इतिहास में एक सामान्य पात्र ही होते। लाल बस्तर से निर्वासित कर दिए गए प्रारंभ में उन्हें रायपुर जेल में रखा गया। बाद में स्वास्थ्य खराब होने के कारण एलीचपुर में रखा गया, जहां निर्वासित अवस्था मे ही उनकी मृत्यु हो गई।

संदर्भ सूची

1. मिश्र, रमेंद्रनाथ, "काकतीय युगीन बस्तर" (शोधप्रबंध, 1989) पृष्ठ - 2
2. गावडे, रामजी, ''बस्तर के लाल कालेन्द्र सिंह का मूल्यांकन" (शोध प्रबंध, 2000 ई) पृष्ठ-72
3. गावडे, रामजी, ''बस्तर के लाल कालेन्द्र सिंह का मूल्यांकन" (शोध प्रबंध, 2000ई) पृष्ठ-72
4. ठाकुर, केदारनाथ, 'बस्तर भूषण', द्वितीय संस्करण (1908 ई) पृष्ठ - 143
5. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ बस्तर फॉर द ईअर 1913, पैरा I
6. बेहार, रामकुमार, छ. ग. का इतिहास, छ. ग. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर (2009ई) पृष्ठ 263
7. खुंटे, डी. एन., बस्तर की राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था (1854 ई. से 1947 ई. तक), शिवालिक प्रकाशन, (दिल्ली, 2019), पृष्ठ- 109
8. फॉरैन डिपार्टमेंट सीक्रेट, 01 अगस्त 1911, फाइल नं. 34-40
9. मिश्र, रमेंद्रनाथ, ''काकतीय युगीन बस्तर" (शोध प्रबंध, 1989), पृष्ठ- 145
10. बी.पी. स्टेन्डन की रिपोर्ट, दिनांक 16 दिसंबर 1910, फॉरैन डिपार्टमेंट सीक्रेट 1, अगस्त 1911, फाइन नंबर 30 -40, प्रोसिडिंग्स नं. 37, पत्र क्रं. 175
11. फॉरैन डिपार्टमेंट सीक्रेट-1, अगस्त 1911, फाइल नंबर 34-40, पत्र क्रमांक 4417, दिनांक 23 जून 1910, प्रोसिडिंग्स नंबर 37
12. फॉरैन पॉलिटिकल, सीक्रेट 1, सितंबर 1910, क्रमांक 16
13. गाबडे, रामजी, ''बस्तर के लाल कालेन्द्र सिंह का मूल्यांकन" (शोध प्रबंध, 2000ई) अध्याय ट, पृष्ठ- 02

मैथिली मे साहित्यानुसन्धान ओ आलोचना

डॉ० सुरेश पासवान

सहायक प्रोफेसर, विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, ल०ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कोनो भाषा साहित्यमे अनुसन्धान आलोचनेक अन्तर्गत अबैत अछि। मैथिली साहित्यक लेल ई बड़ सौभाग्यक विषय थिक जे एकर अनुसन्धानक कार्य आरम्भ कयनिहार सर्वप्रथम गैर मैथिली भाषी अंगरेजी ओ बंगलाक विद्वान लोकनि भेलाह। मिथिलाक विद्वान लोकनि पश्चात् एहि कार्य दिस प्रवृत्त भेलाह।

सर्वप्रथम सन् 1801 ई0 मे कोलबूक, 1840 ई० मे मार्टिन, 1874 ई0 मे कैम्पवेल, 1875 ई० मे फैलेन, 1878 ई० में बीम्स, 1880 ई० मे ग्रिअर्सन आ 1893 ई० मे कैलॉग सन अंगरेजी विद्वान लोकनि मैथिली भाषाक स्वरूपक अध्ययन दिस प्रवृत भेलाह। तत्पश्चात बंगलाक विद्वान लोकनि यथा नगेन्द्र नाथ गुप्त, म०म० हर प्रसाद शास्त्री, डॉ० प्रबोध चन्द्र बागची, डॉ० सुकुमार सेन ओ डा० सुनीति कुमार चटर्जी प्रभृति अंगरेजी विद्वान लेकनिमे लब्धप्रतिष्ठित विद्वान सर जार्ज अब्राहम ग्रिअर्सन मैथिलीक अनुशीलन कार्यक हेतु आलोकपुंज भए प्रकट भेलाह आ मैथिली साहित्यक अध्ययन-अनुशीलन कार्यक दिशा निर्देश कयलनि। तँ बंगलाक विद्वान लोकनि मे सर्वप्रथम नगेन्द्र नाथ गुप्त मिथिलाक गाम- गाममे घुमि विद्यापतिक पदक संकलन कयलनि। एहि अभियानमे गोविन्द दासक पदावली सेहो प्राप्त भेल । म०म० हर प्रसाद शास्त्री वर्णरत्नाकर ओ बौद्धगान ओ दोहाकोषक अन्वेषण कयलनि। हिनका द्वारा लिखित कीर्तिलताक भूमिका सेहो बड़ शोधपूर्ण भेल। डॉ० सुकुमार सेनक विद्यापति गोष्ठी तथा History of Brujbuli literature vks History of Bengala literature सेहो बड़ प्रसिद्ध अछि जाहि से मैथिलीक महत्त्व प्रसिद्ध भेल, संगहि विद्यापतिक प्रसंग नगेन्द्र नाथ गुप्त ओ विमान विहारी मजूमदारक उल्लेखनीय कार्य के सेहो बिसरल नहि जा सकैत अछि।

मैथिली साहित्यानुसन्धान ओ आलोचनाक श्री गणेश सर्वप्रथम मैथिली भाषी कवि-कवीश्वर चन्द्रा झा द्वारा भेल जनिक लोचनक रागतरंगिनी', 'विद्यापतिक पदावली ओ गोविन्द दासक 'कृष्णकेलिलीला' आदि कार्य प्रसिद्ध अछि। हिनक साहेब राम दासक पदावलीक संकलन ओ तकर सारगर्भित भूमिका सेहो महत्त्वपूर्ण अछि हिनक प्राचीन कवि लोकनिक परिचयक प्रसंग कार्य सेहो मैथिली साहित्यक अध्येताक हेतु बड़ मार्ग प्रदर्शक गेल। इएह गुप्त ओ ग्रिअर्सनक हेतु अनुसन्धान विषयक कार्य कयने छलाह।

चन्दा झाक पश्चात मैथिलीमे साहित्यानुसन्धान ओ अध्ययनक परम्परा स्थापित रहल प्राचीन पुस्तकक प्रकाशन ओ तकर भूमिका लेखन द्वारा, उदाहरणक लेल पारिजातहरणक भूमिका- डॉ० गंगानाथ झा, ओ चन्दा झाक महेशवाणी संग्रह, हर्षनाथ ग्रन्थावली, गणनाथ झा ओ विन्धनाथ झा ग्रन्थावली, डॉ० अमरनाथ झा, कृष्ण जन्मक भूमिका डॉ० उमेश मिश्र आदिक नामक उल्लेख कयल जा सकैत अछि मुदा एहि परम्परामे आगाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कयलनि प्रो० रमानाथ झा ओ सुमन जी।

मैथिली अनुसन्धान ओ आलोचनाक क्षेत्रमे समय-समय पर मैथिलीक विविध संस्था सेहो उल्लेखनीय कार्य होइत रहल अछि जाहिमे पटनाक चेतना समितिक सक्रिय सहयोग उल्लेखनीय रहलैक अछि। अद्यपर्यन्त दर्जनहु अमूल्य ग्रन्थक प्रकाशन, घर-बाहर सदृश स्तरीय वैमासिक पत्रिकाक प्रकाशन, समय-समय पर परिसंवाद गोष्ठी आयोजन तथा अर्धशती से प्रतिवर्ष विद्यापति पर्वक अवसर पर साहित्यिक आ सांस्कृतिक आयोजनके अनुष्ठित कय साहित्यिक वातावरण निर्मा जे महती योगदान देलक अछि से सर्वतोभावेन स्तुत्य आ वरेण्य अछि। एतरिक्त मैथिली अकादमी पटना तथा मिथिला सांस्कृतिक परिषद, कलकत्ता द्वारा एहि दिशा मे कयल गेल कार्य के सेहो नहि कयल जा सकैत अछि।

हिन्दी साहित्यक महान साहित्यकार एवं उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द आलोचनाक मह पर प्रकाश देत कहलनि अछि- साहित्य चिक जीवनक आलोचना तें कोनो साहित्यमे आलोचनाक महत्त्व छैक ओ कहबाक विषय नहि थिक। जीवनक जाहि सत्यताक दर्शन

साहित्यमे भेटैत अछि, ओ निबन्ध रूप मे हो, कथा हो, कविता हो या उपन्यास प्रभृति आलोचना एकटा सशक्त माध्यम कि जे साहित्य के चिर काल तक दीर्घायु बनौने रहैत अछि एकटा सफल आलोचकक ई कर्त्तव्य होइ छनि जे ओ कोनो रचनाक तहमे डुबिकऽ ओकर तत्वक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करथि। आलोचनाक लेन संसारक साहित्य से परिचित होयब आवश्यक अछि।

आलोचना शब्दक अर्थ होइत अछि– चारू कात से देखब एकरे दोसर शब्दमे समालोचन सेहो कहल जाइत अछि। जकर अर्थ होइत अछि सम्यक रूप बाहर भीतर देखय मैथिली में आलोचन साहित्यक विकासमे गति आयल पत्र पत्रिकाक प्रकाशन से मैथिली हित साधन, मिथिला मोद, मिथिला मिहिर, साहित्य पत्र आदि पत्रिकाक माध्यमसँ कतेको आलोचनात्मक निबन्ध प्रकाशित होअय लागत प्रारम्भिक आलोचक वर्गमे प्रमुख छथि भुवन जी, म०म० परमेश्वर झा, म०म० गंगानाथ झा, म०म० उमेश मिश्र, मुकुन्द झां बख्शी ओ म०म० मुरलीधर झा आदि मुदा पाश्चात्य समीक्षा शास्त्रक आधार पर मैथिली आलोचना के नव दिशा देनिहार भेलाह आचार्य रमानाथ झा एकटा सफल आलोचकक तीन टा गुण सर्वमान्य अछि– सहृदयता, विस्तृत ज्ञान ओ निस्पक्षता एहि तीनू गुणक दृष्टिएँ प्रो० रमानाथ झाक स्थान आलोचकक कोटि मे अग्रगण्य अछि। ओ संस्कृत एवं अंगरेजी भाषाक मर्मज्ञ विद्वान छलाह। दुर भाषाक आधार पर ओ मैथिली में निस्पक्ष आलोचना पद्धतिक सूत्रपात कयलनि। अपन निष्पक्षताक कारण ई कतोक व्यक्ति में लोकप्रिय नहि भेलाह। हिनक एहि निष्पक्षताक कारण मैथिलीक महान साहित्यकार यात्री जी हिनका सारस्वत मे हे मराल अथवा साहित्य सरोवरक हंस कहने छथि। हिनक मैथिली में कतोक गवेषणात्मक, निबन्ध ओ प्रबन्ध निबन्धमाला' ओ 'प्रबन्धसंग्रह मे प्रकाशित अछि। हिनक प्रबन्ध संग्रह मे प्रकाशित प्रबन्ध सम मैथिली साहित्यक आदिकाल से लय चन्दा झां धरिक कतोक दुर्लग ऐतिहासिक तथ्य पर प्रामाणिक प्रकाश देत अछि हिनक समीक्षावृति निबन्ध अद्यावधि मैथिली आलोचनाक मानदण्ड अछि। एकर अतिरिक्त हिनक पृथ्वीपुत्र, ललका पाग, पवित्रा, विडम्बना, श्रीश जी रचित मैथिली साहित्यक इतिहास आदि पोथीक भूमिका आलोचनाक आदर्श उदाहरण अछि।

हिनक शैलीक अनुकरण करत मैथिली आलोचनाक क्षेत्र मे उपस्थित मेलाह डॉ० जयकान्त मिश्र, डॉ० उमानाथ झा, डॉ० सुभद्र झा, डॉ० श्री कृष्ण मिश्र, प्रो० राधाकृष्ण चौधरी, भोला लाल दास, श्री नरेन्द्र नाथ दास, बाबू लक्ष्मीपति सिंह, प्रो० जयदेव मिश्र कुमार गंगानन्द सिंह, पंव शिवनन्दन ठाकुर आदि ई लोकनि विभिन्न पत्र-पत्रिकाक माध्यम से या स्वतंत्र समीक्षात्मक पोथी लिखि आलोचनाक मार्ग के प्रशस्त कयलनि।

आलोचनाक दोसर पक्षक विकास मेल विभिन्न विश्वविद्यालय में मिथिला भाषाक माध्यमसँ पी-एच०डी० तथा डी० लिट्क उपाधिक शोध प्रबन्ध स्वीकृति भेला से प्राध्यापक लोकनिक वर्ग मे कथा, कविता, उपन्यास, नाटक आदि विधा पर आलोचनात्मक व्याख्यान देव आवश्यक मड गेल। संगहि छात्र लोकनिक हेतु आलोचनात्मक पोथी या निबन्ध लिखय सेहो आवश्यक भ5 गेल। एहि क्रम में जयदेव मिश्रक मिथिलाक हास्य साहित्य, सुगनजीक मैथिली काव्य पर संस्कृतिक प्रभाव, दुर्गानाथ झा श्रीशक साहित्य विमर्श, डॉ० जगदीश मिश्रक शास्त्रीय प्रबन्ध, डॉ० यशोदा नाथ झाक यात्री काव्य विवेचन, भीमनाथ झाक विविधा आ परिचायिका आदि उल्लेखनीय रचना अछि।

प्राध्यापक वर्गक अतिरिक्त अन्य कतेको आलोचक छथि जे अपन रचना से मैथिली आलोचनाक भण्डार के भरबाक चेष्टा कयने छथि। ताहिने सर्वाधिक उल्लेखनीय छथि सुधांशु शेखर चौधरी, पं० गोविन्द झा, पं० चन्द्रनाथ मिश्र अमर, मोहन भारद्वाज, डॉ० रमानन्द झा रमण, जीवकान्त आदि।

मैथिली इतिहास लेखनक क्षेत्रमे ख्यात छथि डॉ० जयकान्त मिश्र, डॉ० दुर्गानाथ झा 'श्रीश, डॉव बालगोविन्द झा 'व्यथित', डॉ० देवकान्त झा, डॉ० दिनेश कुमार झा आदि। हिनका लोकनिक इतिहास किए विश्लेषणात्मक अछि तँ किछु मे स्वतंत्रताक मादक मैथिली साहित्यक विकासक्रमका उल्लेख भेल अछि।

स्वतंत्रताक बाद विभिन्न विश्वविद्यालय से अनुसन्धानात्मक ग्रन्थ प्रकाशित भेल जाहि पर लेखक के पी-एच० डी० ओ डी० लिक उपाधि मेटल अछि। ई सम ग्रन्थ आलोचना साहित्यकें समृद्ध कयलक एहिने प्रमुख अछि डॉ० दुर्गानाथ झा 'श्रीशक 'आधुनिक मैथिली कविताक प्रवृति, डॉ० इन्द्रकान्त झाक 'विद्यापतिकालीन मिथिला प्रो० अमरेश पाठकक मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध ययन (आलोचना साहित्य), डॉ० यशोदानाथ झाक यात्री काव्य विवेचन', डॉ० सुभद्र झाकद फारमेशन ऑफ मैथिली लैंग्वेज' प्रवृति जाहि मे डॉ० सुभद्र झा के द फारमेशन ऑफ मैथिली लैग्वेज' पर सर्वप्रथम मैथिली भाषा पर डी० लिट्क उपाधि मेटल छनि से प्रो० अमरेश पाठक के मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध्ययन पर मैथिली साहित्यमे प्रथम डी० लिट्क उपाधि प्राप्त भेल

छनि जाहि पात्य समीक्षा शास्त्रक आधार पर मैथिली उपन्यासक आलोचना प्रस्तुत कयल गेल अछि। आलोचनाक क्षेत्र में आचार्य रमानाथ झाक बाद भूमिका लेखनक क्षेत्रमे उल्लेखनीय का कयलनि अछि सुमन जी अमर जी. प्रो० अमरेश पाठक, प्रो० भीमनाथ झा, प्रो० रामदेव झा, डॉ० देवकान्त झा आदि हिनका लोकनिक द्वारा भूमिका लेखनक माध्यम से आलोच्य पोथीक सम्यक समीक्षा कपल गेल अछि।

अंततः कहल जा सकैत अछि जे मैथिलीक अनुसन्धान ओ आलोचना उन्नतिक दिशामे दिनानुदिन अग्रसर भए रहल अछि तथा एकर विविध पक्षक नित नवीन विकास भऽ रहल छ। मैथिली साहित्यक अन्य अंग जर्को इहो अंग शीघ्र समृद्धिक सोपान पर प्रतिष्ठित म जायत से सहजहि आशा कयल जा सकैत अछि।

सन्दर्भ संकेत-

1. मैथिली साहित्यक इतिहास ले० डॉ० दुर्गानाथ झा 'श्रीश पृ0- 403
2. शताब्दीक संधिबेला मे मैथिली साहित्यक उत्कर्ष-ले० ध् सं० मधुकान्त झा, पृ0-49
3. प्रेमचन्द रचना संचयन- सं० निर्मल वर्मा, कमल किशोर गोयनका, पृ0-738
4. तदैव पृ0 739
5. समय-साल पत्रिका (जुलाई-अगस्त-2010) ले० डॉ० नरेश मोहन झा, पृ0- 31
6. तदैव, पृ० 38
7. तदैव पृ0- 39
8. मैथिली साहित्यक इतिहास, ले० डॉ० दुर्गानाथ झा 'श्रीश, पृ0- 414
9. मैथिली साहित्यक इतिहास, ले० श्री जयकान्त मिश्र, पृ0- 48
10. तदैद, पृ०-49

तांत्रिक विद्या का प्राचीन विश्वविद्यालय विक्रमशिला

डॉ० लाल बहादुर स्वर्णकार

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) नई दिल्ली।

भारतीय संस्कृति तथा साधना के उज्ज्वल इतिहास में विक्रमशिला विश्वविद्यालय संबंधा है। पर्याप्त प्रामाणिकता और प्रतिबद्ध राष्ट्रीयता के अभाव में विक्रमशिला विश्व-विद्यालय भी अपने स्थल, निर्माण काल और निर्माता के साथ अपनी मौलिक भूमिका को प्रकाशित करने में वर्षों तक विवादास्पद बना रहा। किन्तु अब विवादों के बादल छँट गये है। भारतीय विद्वान हर प्रसाद शास्त्री, प्रबोधचन्द्र बागची, विनयतोष महाचार्या, राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि ने अपने खोजपूर्ण अध्ययनों द्वारा वित्रमशिला की महान गौरव गाथा को स्पंदित कर दिया है। फलस्वरूप पूर्वाचल धरती की मंत्रपूत सिद्धभूमि विक्रमशिला विश्व- विद्यालय समस्त विश्व के समक्ष बौद्ध धर्म की महायान शाखा के दार्शनिक कवियों की सिद्ध बाणियों को मुखरित करने लगा है। विक्रमशिला का सम्भवत: समुचित नाम वित्रमशील है। इस ओर पुरातत्व तथा भारतीय भाषा-विकास के तथ्य सकेत करते हैं। सिद्धों की वाणियों के प्राप्त तिब्बती अनुवादों में कई स्थानों पर विक्रमपुर, मित्रमलपुरी आदि नगरबोधक नाम आये है। 'शील' बौद्ध धर्म के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आचार-विचार की उच्चतर भावभूमि का बोधक शब्द है। जो इस 'शील' के स्तर पर पूवर्ती साधकों का विशेष रूप से क्रमण करता है, वही विक्रमशील है। निश्चयपूर्वक बिहार प्रांत के भागलपुर जिले के पूर्वी क्षेत्र स्थित कहलगांव के समीप गंगा के तट पर स्थित विक्रमशील विश्व-विद्यालय महासुस, निर्वाण और बोधिसत्त्व की आध्यात्मिक स्थितियों की साधना का अवगाहन और अभिव्यक्ति 'शील' के सन्दर्भ में अधिकाधिक करता रहा होगा। विद्वानों ने उपलब्ध आलेखों के आधार पर यह माना है कि आठवीं पाताब्दी से लेकर बार शताब्दी तक साधना के साहित्य रचने वाले मुप्रसिद्ध चौरासी सिद्धों में आधे से अधिक बिहार के निवासी थे और इनमें अधिकांश विक्रमशील विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थे। कुछ सिद्धों की मातृभूमि तो विक्रमशील के पाश्ववर्ती क्षेत्र हैं और कुछेक के जन्म स्थान सहोर (आधुनिक नाम सबौर), मंगलपुर (आधुनिक नाम भागलपुर) और चम्पा (आधुनिक नाथनगर क्षेत्र) माने जाते हैं। इनमें सरहपा, लूईपा, शबरपा, मदेपा, चर्पटीपा, धामपा, बीणापा, दीपंकर श्रीज्ञान, नारोपा, शांतीपा, चम्पपा, चेलुकपा, विनयश्री आदि सिद्धगण विक्रमशील शिक्षक और अंग गौरव शिष्प इन तीनों रूपों में से किसी-न-किसी प्रसंग में विक्रमशील के महान संस्कारों के संवाहक सिद्ध होते हैं। विक्रमशिला तांत्रिक विद्या का प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालय था, जिसका प्रभाव लगभग आठवी से बारहवीं शताब्दी तक भारतीय साधना की धारा पर रहा तांत्रिक साधना और चर्यारों की रचना इस विश्वविद्यालय की देन है। राजा धर्मपाल ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना संभवत: आठवीं शताब्दी में की थी राजा धर्मपाल बंगाल के प्रथम पाल राजा गोपाल के पुत्र थे। विक्रपजिला की स्थापना चाहे जब कमी हुई हो, किन्तु यह तो बिलकुल प्रमाणित तथ्य है कि इस विश्वविद्यालय का अस्तित्व लगभग चार सौ वर्षों तक रहा। इन चार सौ वर्षों के बीच विक्रमशिला शिक्षा का, तंत्र साधना और साहित्य का एक प्रमुख केन्द्र रहा। ठीक इसी विश्वविद्यालय के समकालीन यहाँ से पश्चिम में नालन्दा विश्वविद्यालय भी इसी प्रकार का कार्य कर रहा था। विक्रमशिला ने देश-विदेश के विद्वानों को प्रभावित किया, जिनमें तिब्बयों का सम्बन्ध इस सिद्धपीठ से बड़ा पुराना रहा। बोद्ध संसार के प्राय: सभी केन्द्रों से इसका सम्बन्ध था। नालन्दा की तरह यह महायान बौद्धशाखा का केन्द्र था उकी महायान शाखा के विकास ने कालान्तर में तन्त्र साधन को जन्म दिया, जिनमें यजमान और फलत: तन्त्र साधना के कई रूप उमरे, जिनमें कालचक्रवान शाखा लगभग दसवीं शती में फैले। वाममार्ग की जड़ विक्रमशिला में गहरी जमी गत कई वर्षो से हुई खुवाई में प्राप्त खण्डहरों की दीवारों पर इन गिद्धों के उत्कीर्ण चित्र मिले हैं। विक्रमशिला के निकट शबरी देवी का स्थान मी है, जहाँ बलि प्रदान

की प्रथा थी कुछ दिनों पूर्व तक भी ऐसा होता रहा था। विक्रमशिला की खुदाई में प्राप्त साग परिवेश यह स्पष्ट कर देता है कि यह सिद्धपीठ था

बौद्ध धर्म विकृत होकर वज्रयान संप्रदाय के रूप में देश के पूरबी भागों में बहुत दिनों से चला आ रहा था। इन बौद्ध तांत्रिकों के बीच वामाचार अपनी चरम सीमा को पहुंचा। ये बिहार से लेकर आसाम तक फैले थे और सिद्ध कहलाते थे। 'बोगसी सिद्ध' इन्हीं में हुए हैं जिनका परंपरा-गत स्मरण जनता को अब तक है। इन तांत्रिक योगियों को लोग अलोकिक शक्ति संपन्न समझते थे। ये अपनी सिद्धियों और विभूतियों के लिये प्रसिद्ध थे। राजशेखर ने कपूरमंजरी' में भैरवानंद नाम से एक ऐसे ही सिद्ध योगी का समावेश किया है। इस प्रकार जनता पर सिद्ध योगियों का प्रभाव विक्रम की १०वीं शती से ही पाया जाता है, जो मुसलमानों के आने पर पठानों के समय तक कुछ-कुछ बना रहा। बिहार के नालंदा और विक्रमशिला नामक प्रसिद्ध विद्यापीठ इनके अड्डे थे। बख्तियार खिलजी ने इन दोनों स्थानों को जब उजाड़ा तब ये तितर-वितर हो गए। बहुत से भोट आदि अन्य देशों को चले गये। "वजयान शाखा" में जो "योगी सिद्ध" के नाम से प्रसिद्ध हुए वे अपने मत का संस्कार जनता पर भी डालना चाहते थे। इसमें व संस्कृत रचनाओ के अतिरिक्त अपनी बानी अपभ्रंश दृ मिश्रित देश भाषा या काव्यभाषा में भी बराबर सुनाते रहे। उनकी रचनाओं का एक संग्रह पहले म० म० प्रसाद शास्त्री ने बंगला भारी में "बाबा" से निकला था। पीछ त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन जी भोट देश में जाकर सिद्धों की और बहुत-सी रचनाएँ लाए।

सिद्धों में सबसे पुराने 'सरह' (सरोजवज्र्च भी नाम है) हैं जिनका काल डाक्टर वियतोष भट्टाचार्य ने विक्रम संवत् ६६० निश्चित किया है। "उनकी रचना के कुछ नमूने दिये जाते हैं, जिसमें तस्साधना पर जोर और पंडितों को फटकार बतापी गई है- पंडित सअल सत बलखाणइ। देहद् बुद्ध बसंत न जाणछ। अगणागमण ण तेज बिखंडिअ। तोवि णिगन्ज माणइ हउ पंडिअ" "घट में ही बुद्ध हैं यह नहीं जानता, आवागमन को ही खंडित नहीं किया, तो भी निर्लज्ज कहता है कि मैं पंडित हूँ।" इसी प्रकार जहाँ रवि, शशि, पवन आदि की गति नहीं वहां चित्त को विश्राम कराने का दावा ऋणु (सीधे दक्षिण) मार्ग छोड़कर 'क' (टेढ़ा, वाम) मार्ग ग्रहण करने का उपदेश भी है। 'जहि मन पवन न संचरइ, रवि शशि नाहि पवेश'- यहाँ मन और पवन का संचार नहीं होता और चन्द्र-सूर्य को भी प्रवेणाधिकार नहीं है। चन्द्र-सूर्य इडा-गिंगलामय आवर्तनशील कालचक्र का ही नामान्तर है। शान्तिमय निर्वाणपद काल के अतीत हैं, इसलिए वहाँ चन्द्र-सूर्य की लक्षित नहीं होती। उन्मनीभाव होने से ही मनोलय होता है। अतएव, जो अवस्था उन्मनी की भी परावस्था कहकर वर्णित होती है, उनमें मन की क्रिया नहीं रहती, किसी प्रकार की वृत्ति का उदय नहीं होता, यह कहना व्यर्थ है। प्राण स्थिर होने से वहाँ श्वास-प्रश्वास नहीं चलता। वहाँ की वायु में लहर नहीं खेलती- इसीलिए वह स्थिर या स्तिमित वायु शास्त्र में अनेक स्थलों पर 'गंगन' के नाम से आख्यात हुई हैं। सहजिया साधक कहते हैं कि यही निर्वाण प्रत्येक का 'निज स्वभाव' (निज राहाव)है यही परमार्थ है। यहाँ का जो आनन्द है, जिसे महामुख कहते हैं, वह सहज होने के कारण एक, कारणहीन और सदा उदित है। पाये बिना जरा-मरण का त्याग नहीं होता। जब तक वायु की गति है, तबतक संकल्प का प्रभाव आवश्यम्भावी है। उसका फल है भ्रान्ति का विकास। संकल्पवश सभी कार्यों में अपना कर्तृत्वा- भिमान जगता है--स्वयं को कर्त्ता प्रतीत होता है। वास्तव में, संसार के सारे कार्य स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं, और फिर स्वभाव में ही विलीन होते हैं--कर्त्ता कोई नहीं रहता। कर्तृत्व-बोध अज्ञान का विलास मात्र है। वायु के स्थिर हो जाने से संकल्पजाल कट जाता है, ज्ञानमुद्रा की उपलब्धि होने से मिथ्याज्ञान और कत्तृत्व का अभिमान लुप्त हो जाता है। ही संकल्प का मूल है, कर्ता कोई नहीं, यही बोध ही शुद्धबोध या ज्ञानमुद्रा है। होते ही सर्वधर्म का शोधन होकर संकल्प विकल्प से परे निविकार निरंजन पद की प्राप्ति होती है। 'स्वभाव इस बोध का उदय वज्चयानियों की योग-तंत्र-साधनाओं में मद्य तथा स्त्रियों का विशेषत: डोमिनी, रजकी आदि का दृ अबाध प्रकार गाते हैं-- सेवन एक आवश्यक अंग था। सिद्ध कण्हपा डोमिनी का अह्वान- गीत इस नगर बाहिरे डोबी तोरि कुड़िया छइ धोइ जाइ सो बाम्नाड़िया।" कापालिक जोगियों से बचे रहने का उपदेश घर में सास ननद आदि देती ही रहती थीं, पर वे आकर्षित होती ही थीं-- जैसे कृष्ण की ओर गोपियाँ होतीं थी। रहस्य-मागियों की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार सिद्ध लोग अपनी बानी को ऐसी पहेली के रूप में भी रखते थे जिसे कोई बिरला ही बूझ सकता है।

बौद्ध धर्म ने जब तांत्रिक रूप धारण किया तब उसमें पाँच ध्यानी बुद्धों और उनकी शक्तियों के अतिरिक्त अनेक बोधिसत्तवों की उद्भावना की गई जो सृष्टि का परिचालन करते हैं। वज्रयान में आकर 'गहासुखवाद' का प्रवर्तन हुआ। प्रज्ञा और उपाय के योग से इस महासुख दशा की प्राप्ति मानी गई। इसे आनंद-स्वरूप ईश्वरत्व ही समझिए। निर्वाण के तीन अवयव ठहराए गए--शून्य, विज्ञान और महासुख। के लिये उसे सहवास-सुख से सौ सहवास-सुख के समान बताया गया। चली और उनकी नग्न मूर्तियाँ सहवास

भी मिलती हैं। स्थान पर होने लगे। उपनिषद् में तो ब्रह्मानंद के सुख के परिमाण का अंदाजा करने गुना कहा था पर वज्रयान में निर्वाण के सुख का स्वरूप ही शक्तियों सहित देवताओं के 'युगनद्ध' स्वरूप की भावना की अनेक अश्लील मुद्राओं में बनने लगीं, जो कहीं कहीं. अब रहस्य या गुह्य की प्रवृत्ति बढ़ती गई और 'गुह्य समाज' या 'श्री समाज' स्थान ऊँचे नीचे कई वर्णों की स्त्रियों को लेकर मद्यपान के साथ अनेक वीभत्स विधान वज्रयानियों के साधना के प्रधान अंग थे। सिद्धि प्राप्त करने के लिये किसी स्त्री का (जिसे पशक्ति, योगिनी या महामुद्रा कहते थे) सेवन आवश्यक था।" विक्रमशिला की तांत्रिक विद्या का उल्लेख कई स्थानों पर तिब्बती स्रोतों से प्राप्त विवरण में मिलता है। शुभ-पा ने सर्वेश्वर उर्फ मंत्रीगुप्त नामक तांत्रिक के चमत्कार का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उन्हें अपने चमत्कारों के कारण विक्रमशिला के महाचार्य अतिश दीपंकर के द्वारा विक्रमशिला से निष्कासित कर दिया गया था।

शुभ-पा ने लिखा है कि उस समय एक ब्राह्मण पंडित सिद्ध नरोपा से मिला था जो बुद्ध धर्म को ग्रहण कर बौद्ध हो गया। उसने रत्नाकर शांति के संरक्षण में अध्ययन कर सिद्धि प्राप्त की। विक्रमशिला में उसने सूत्र और तंत्र दोनों का अध्ययन किया। अपने अध्ययन काल में वह तंवबल से दूध को मदिरा में परिवर्तित कर पान किया करता था, इसी अपराध के कारण उसे अतिश द्वारा विश्वविद्यालय से निष्कासित किया गया, उसके बाद, भी मंत्रीगुप्त ने कई करिश्मे दिखाये जैसे चर्म पर बैठकर गंगा को पार करना आदि। इनका प्रभाव व्यापक रूप से फैला उस समय की प्रचारित अवधारणा के अनुसार प्रत्येक आचार्य, विद्वान और पंडित को तंत्र विद्या जानना आवश्यक था। अतिश के जीवनी लेखकों ने भी अतिश की तांत्रिक विद्या का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे स्वयं डाकिनी के साथ बैठकर तांत्रिक किराएँ किया करते थे। इनसे स्पष्ट होता है कि विक्रमशिला मुख्य रूप से तांत्रिक विद्या का विश्वविद्यालय था।

संदर्भ संकेत-

- परिषद्-पत्रिका (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना) में प्रकाशित डॉ० बेचन का निबंध "विक्रमशिला का सिद्धपीठ", पृ० १३८, वर्ष ७: अंक ३, अक्टूबर, १९६७ ई०
- वही, पृ० १३६.
- हिन्दी साहित्य का इतिहास (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) पृ० ७ बारहवाँ संस्करण
- भारतीय साधना की धारा (पंडित गोपीनाथ कविराज) पृ० ९४
- पुरातत्त्व - निबन्धावली (राहोर और विक्रमशिला) - राहुल सांकृत्यायन
- Radhakrishna Chaudhary' - 'The University of Vikramasila'.
- Also-JBTS-I, 10. Journal of Indian History-Vol. LVI-Part II, August 1978 -pp. 213-235.
- Also Gurupada Haldar-Vrdhatrayi. For the "Decline of the University of Vikramasila"-(by R. K. Chaudhary)
- Cunningham-Geography of Ancient India, N. L. Dey-Ancient and Medieval Geography of India-for details.
- N. R. Ray (Ed.).-Sources of india History, Vol. IV-B..P Majumdar-A
- Survey of the sources of History of Ancient Bihar.
- Sambhala-Lam-Yig-Patna-1966.
- Mitra's-Nepal Catalogue-229.
- Biblioteca Indica seies, p. 50 (Sragadharararastotratika' (Ed) by S. C. Vidyabhusan:
- Brhatsambhupurana(Eby H. P. Sastri Atisa and Tibet., p. 105 if
- Simbabhadra.of Taranatha is Haribhadra of Sumpa. Taranatha confirms the point that special allowance was paid to those who studied the text of Prajnaparamitasutràs-tantric text of immense importance.
- HCIP-IV. 271; V. 410 and 273.
- lbid-IV. 273.
- Wine, meat, fish, grain, copulation are the ranchamakaras. In the Tantra it is a Sadhana to gain control over material desires

आधुनिक बिहार का सृजनः एक ऐतिहासिक विश्लेषण

अभिमन्यु कुमार

(नेट) शोध छात्र, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

बिहार का अतीत बहुत ही समृद्ध और गौरवशाली रहा है। प्राचीन काल से ही यह सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक चेतना का केन्द्र बिन्दु रहा है। इतिहास के पृष्ठों के अवलोकन से पता चलता है कि बिहार का स्वतंत्र आस्तित्व हमेशा विद्यमान रहा है। मुस्लिमों के शासन काल में भी बिहार का अपना एक अलग अस्तित्व था और यह पूर्वी हिन्दुस्तान की कुँजी समझा जाता था। मुगल शासन के कमजोर हो जाने के पश्चात् बंगाल का नवाब स्वतंत्र हो गया और बंगाल पर मुगलों का नाम मात्र का ही शासन रहा। इस समय बिहार के प्रशासन के लिए एक अलग-अलग नायब-नाजिम नियुक्त किया जाता था, परन्तु 1764 की बक्सर की लड़ाई के बाद दिल्ली के एक कमजोर बादशाह शाह आलम ने बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दिवानी ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंप दी। फिर भी बिहार के लिए एक नायब-नाजिम बहाल होता रहा। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शासन सूत्र अपने हाथों में लेने के पश्चात् लोगों के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्त्तन हुए। परन्तु इस परिवर्त्तन को जनता बर्दास्त नहीं कर सकी। जगह-जगह विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार द्वारा भी राष्ट्रीय भावना को बल मिला। 1885 में जब भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई तब बिहारियों की राजनीतिक चेतना और प्रबल हुई। फिर भी बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा का एक सूत्र में बंधा रहना, बिहार की प्रगति के लिए बाधक साबित हुआ। राजधानी कलकत्ता होने के कारण बिहार में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार उतना नहीं हुआ, जितना की बंगाल में हुआ। बिहार में प्रशासकीय पदों को भरने के लिए कलकत्ता में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त बंगालियों को ही लाया जाता था। बिहार के विद्यालयों में टिके रहने के लिए उन्हें अतिरिक्त भत्ता भी दिया जाता था। फलतः बंगाल की अपेक्षा बिहार सामाजिक और आर्थिक विकास में पिछड़ता चला गया।

बिहारी अपनी निरीहता के प्रति सदैव चिन्तित रहे, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप बंगाल से अलग होने की बात उनके मन में घर करती गई। 1889 में सच्चिदानंद सिन्हा बैरिस्टरी पास करने इंग्लैण्ड गये। कतिपय राजनीतिक तथा प्रशासकीय कारणों से इंग्लैण्ड में उस समय बिहार का नाम कोई नहीं जानता था। जब सच्चिदानंद सिन्हा बिहार की भौगोलिक स्थिति का वर्णन करते, तो अंग्रेज कहने लगते 'अरे बंगाल कहो।' बहुत से उनके मित्र तो उन्हें यहाँ तक चुनौती देते कि भूगोल की किसी भी स्वीकृत पाठ्यपुस्तक में बिहार का नाम दिखला दो।(1) इस पर सच्चिदानंद की गर्दन शर्म से झुक जाती थी। 1893 में जब वे बैरिस्टरी पास कर वापस लौट रहे थे, तब जहाज में एक पंजाबी युवक से मुलाकात हुई, वह भी बैरिस्टरी पास कर वापस आ रहा था। बातचीत के दौरान उसने सच्चिदानंद से पूछा कि किस प्रान्त के निवासी हैं, सच्चिदानंद ने जब बिहार का नाम बतलाया, तब कुछ क्षण के लिए वह चुप हो गया। फिर बाद में कहा कि ऐसा नाम पहले कभी नहीं सुना।(2) इतना ही नहीं सच्चिदानंद के दिल पर गहरा असर उस समय हुआ, जब उन्होंने रेलवे प्लेटफॉर्म पर एक लंबे-चौड़े बिहारी सिपाही को बंगाल पुलिस का बिल्ला लगाये हुए देखा।(3)

इन घटनाओं का असर सच्चिदानंद सिन्हा पर इस प्रकार पड़ा कि उन्होंने अपने मन में संकल्प लिया कि बिहार को एक स्वतंत्र प्रशासकीय इकाई बनवा कर ही दम लेंगे। उन्होंने पटना के एक वरिष्ठ पत्रकार महेश नारायण से इस संदर्भ में विचार विमर्श किया। महेश नारायण इस समय पटना से कायस्थ गजट का सम्पादन करते थे और वे भी इस विचार के समर्थक थे कि बिहारियों के सामाजिक तथा राजनैतिक जागरण के लिए बिहार को बंगाल से अलग करना होगा। फलतः सच्चिदानन्द सिन्हा, महेश नारायण,

नन्दकिशोर लाल और कृष्णा सहाय ने इस आन्दोलन को गति प्रदान करने के लिए जनवरी 1894 से 'बिहार टाइम्स' नामक पत्र निकालना आरंभ किया। महेश नारायण को ही इसका सम्पादक बनाया गया।(4)

बिहार टाइम्स के साथ ही बिहार पृथक-करन आन्दोलन की गति भी तीव्र हो गई। इस संबंध में अनेक लेख छपे जिसमें लोगों को बतलाया गया कि बिहार और बंगाल का गठबंधन कृत्रिम है, जो सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक प्रगति के मार्ग में बाधक है। पत्र के आँकड़ों द्वारा यह भी बतलाया गया कि किस तरह सरकार प्रत्येक क्षेत्र में बंगालियों का हित का पोषण कर रही है।(5) 1894 में उपराज्यपाल सर चार्ल्स इलियट को बिहार को बंगाल से अलग करने के संबंध में एक ज्ञापन भी दिया गया।(6) 1894 में सरकारी अधिकारियों में इस बात पर विमर्श हो रहा था कि प्रशासकीय सुविधा के दृष्टिकोण से बंगाल के चटगांव मण्डल को आसाम से मिला दिया जाय। यह प्रस्ताव आसाम के मुख्य आयुक्त विलियम वार्ड ने प्रस्तुत किया था। सच्चिदानंद तथा महेश नारायण ने इस अवसर का लाभ उठाकर सरकार के सामने यह प्रस्ताव रखा कि बिहार को ही बंगाल से अलग कर दिया जाय। इन लोगों ने बंगाल के बंटवारे की व्यर्थता पर बिहार टाईम्स में अनेक लेख लिखे, जिसमें बतलाया गया कि चटगाँव को आसाम में मिलाने से प्रशासकीय कठिनाई कदापि दूर नहीं होगी, बल्कि इसका समुचित समाधान बिहार को ही बंगाल से अलग करने से निकल सकता है।(7)

बिहार हेराल्ड के सम्पादक गुरू प्रसाद सेन ने बिहार के पृथक करण के विरूद्ध अनेक लेख लिखे। अमृत बाजार पत्रिका तथा कलकत्ता के अन्य पत्रों ने भी इसका घोर विरोध किया। परन्तु, बिहारियों में इस समय इतनी जागृति आ गई थी कि लोग जगह-जगह आम सभाओं का संगठन कर बिहार के पृथक करण की मांग करने लगे। पायोनियर ने इस प्रस्ताव का हर्षोल्लास के साथ समर्थन किया और जब एक लब्ध प्रतिष्ठ भारतीय नागरिक सेवा के सदस्य एन्टोनी मैक डोनाल्ड ने बिहार के पृथक करण के समर्थन में पायोनियर में एक लेख लिखा, तब बहुत से लोग, जो पहले इसका विरोध करते थे, इस प्रस्ताव का पक्ष-पोषण करने लगे।(8)

इसी समय बंगाल के उपराज्यपाल अलेक्जेन्डर मैकनजी गया आये। सच्चिदानंद सिन्हा ने नन्द किशोर लाल से विचार-विमर्श कर एक ज्ञापन तैयार कराया, जिसमें बिहार को बंगाल से अलग करने की मांग की गई थी। यह ज्ञापन गया के स्थानीय संस्थाओं की ओर से उप राज्यपाल को दिया गया। परन्तु, उन्होंने इस मांग को अस्वीकार कर दिया। उपराज्यपाल ने कहा कि भारत मंत्री उत्तरी भारत में किसी अन्य स्थानीय शासन की स्थापना को कभी भी स्वीकृत नही ंकर सकते।(9)

उपराज्यपाल द्वारा बिहार पृथक करण की मांग अस्वीकृत हो जाने पर बिहारी नेताओं को काफी सदमा पहुंचा, फिर भी वे विचलित नहीं हुए। सन् 1903 के प्रारंभ में ही लोगों को यह बात मालूम हो गई थी कि भारत के वायसराय लार्ड कर्जन बंगाल के बंटवारे के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। कर्जन ने विलियम वार्ड की योजना को साकार रूप देने के लिए बंगाल के चटगांव मण्डल तथा ढाका और मेमन सिंह दो जिलों को आसाम में मिलाने की बात को एक सरकारी प्रस्ताव में दर्ज कराया जो गृह विभाग के सचिव हरबर्ट रिजले के हस्ताक्षर से तीन दिसम्बर 1903 को प्रकाशित हुआ। इसके शीघ्र बाद बंगाल के विभाजन के विरोध में सम्पूर्ण देश में स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन छिड़ गया।(10)

पटना के अखबारों ने भी लॉर्ड कर्जन के प्रस्ताव का विरोध किया, परन्तु वैकल्पिक रूप में सुझाव दिया कि अगर प्रशासकीय दृष्टिकोण से विभाजन अनिवार्य ही है तो बिहार को ही बंगाल से अलग कर दिया जाय। सच्चिदानंद ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि बिहार का पृथक करण प्रशासकीय दृष्टिकोण से सर्वोत्तम सुझाव है। अगर सरकार इसे नहीं मानती है, तो उसके सामने दो ही विकल्प हो सकते हैं- सरकार यह साबित करे कि यह योजना अनुपयोगी है या इसकी निहित भावना स्वार्थपूर्ण तथा खतरनाक है।(11)

सच्चिदानंद सिन्हा ने फरवरी, 1904 ई0 के हिन्दुस्तान रिव्यू में एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था 'दि पार्टिशन ऑफ दि लोअर प्रोविन्सेज: एन अलटरनेटिव प्रोपोजल' तथा इसी शीर्षक से दूसरा लेख अगस्त 1905 ई0 के हिन्दुस्तान रिव्यू में श्री महेश नारायण ने लिखा। इन दोनों लेखों को मिलाकर जनवरी, 1906 ई0 में एक पुस्तक प्रकाशित की गई, जिसका नाम 'पार्टिशन ऑफ बंगाल और सेपरेशन ऑफ बिहार' रखा गया। भारत तथा ब्रिटेन में इसका वृहत पैमाने पर वितरण किया गया। बिहारी नेताओं ने अपनी माँग स्वीकृत नहीं होने पर भी बंग-विभाजन के विरूद्ध चल रहे आन्दोलन में भाग नहीं लिया, क्योंकि वे समझते थे कि वैसा करने पर उनकी माँग कमजोर पड़ जाएगी। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि जब सरकार उनकी मांग की उपयोगिता को समझ जायेगी, तब वह उसे स्वत: स्वीकृत कर लेगी।

बंगालियों द्वारा बिहारी नेताओं के स्वतंत्र सूबे की मांग की काफी आलोचना हुई तथा कुछ लोगों ने इसे व्यक्तिगत स्वार्थ समझा, जिससे बिहारियों को अधिक संख्या में नौकरी मिल सके।[12] फिर भी, बिहारी नेताओं ने अपनी भर्त्सना तथा आलोचना की जरा भी परवाह नहीं की और हिन्दू-मुसलमान कन्धे-से-कन्धा मिलाकर अपनी मांग पर अटल रहे।

इस समय कलकत्ता में पढ़ने वाले बिहारी छात्र को भी अपनी हीनता का बोध हुआ और राजेन्द्र प्रसाद जो कलकत्ता 'बिहारी क्लब' के मंत्री थे, के मन में एक बिहारी छात्र सम्मेलन करने की बात उठी, जिससे बिहारी छात्रों में एकता की भावना जागृत हो सके। 'बिहारी क्लब' ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। राजेन्द्र प्रसाद पटना आकर सच्चिदानंद सिन्हा, महेश नारायण तथा अन्य नेताओं के साथ इस प्रश्न पर विचार-विमर्श किया। सभी लोगों ने मुक्त कंठ से इस कार्य में सहमति प्रदान की। फलत: 1906 में दशहरे की छुट्टी में पहला बिहारी छात्र सम्मेलन पटना कॉलेज में पटना के प्रमुख बैरिस्टर शफरूद्दीन के सभापतित्व में संपन्न हुआ।[13]

इस प्रकार का छात्र संगठन बिहार के लिए तो नया था ही, भारत के किसी अन्य प्रान्त में भी इस प्रकार का छात्र सम्मेलन पहले कभी नहीं हुआ था। इस सम्मेलन ने बिहार में एक नया जागरण ला दिया और बिहारी विद्यार्थी जो अब तक असंगठित थे, एक मंच पर एकत्र हो गये। साथ ही साथ इस सम्मेलन ने सच्चिदानंद तथा महेश नारायण के सपनों को साकार बनाने में गति प्रदान की।

जुलाई 1906 में 'बिहार टाईम्स' का नाम बदलकर 'बिहारी' रखा गया। यद्यपि इसके सम्पादक महेश नारायण ही बने रहे, परन्तु कुल आर्थिक उत्तरदायित्व सच्चिदानंद सिन्हा ने अपने ऊपर ले लिया। दुर्भाग्यवश 1907 में महेश नारायण जी का देहावसान हो गया। महेश नारायण की मृत्यु के पश्चात् मजहरूल हक, अली इमाम, हसन इमाम तथा अन्य बिहारी मुसलमानों ने भी सच्चिदानंद सिन्हा का भरपूर सहयोग दिया। इन नेताओं के प्रयास से बिहार प्रादेशिक सम्मेलन की स्थापना हुई। जिसका पहला अधिवेशन अली इमाम की अध्यक्षता में 12 और 13 अप्रैल, 1908 को पटना में सम्पन्न हुआ।[14] इस अधिवेशन में मुहम्मद फकरूद्दीन ने एक प्रस्ताव रखा, जिसमें बिहार को बंगाल से अलग कर एक नया प्रान्त बनाने की मांग की। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ।

बिहार प्रादेशिक सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन 9 और 10 अप्रैल 1909 को भागलपुर में सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में संपन्न हुआ, जहाँ फिर बिहार को एक अलग प्रान्त बनाने की जोरदार मांग की गई। सच्चिदानंद सिन्हा ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि बिहार एक वृहत् आबादी का क्षेत्र है, जो एक विस्तृत भू-भाग में बसा है, जब तक इसे एक अलग प्रान्त का दर्जा नहीं मिलता, तब तक यहाँ के लोग संतुष्ट नहीं रह सकते।[15] उन्होंने जोरदार शब्दों में मांग की कि बिहार को एक अलग प्रान्त बनाया जाय, जिसमें उड़ीसा मण्डल रहे या न रहे, परन्तु छोटानागपुर अवश्य सम्मिलित हो। सन् 1910 में मॉरले मिन्टो सुधार के अन्तर्गत पहला चुनाव हुआ, जिससे सच्चिदानंद सिन्हा चार महाराजाओं को हरा कर बंगाल विधान परिषद् की ओर से केन्द्रीय विधान परिषद में प्रतिनिधित्व करने के लिए निर्वाचित हुए। सच्चिदानंद सिन्हा के लिए यह एक बड़ी बात थी, जब वे चार महाराजाओं को हरा कर केन्द्रीय विधान परिषद् के सदस्य बने।

केन्द्रीय विधान परिषद् के सदस्य बनने के पश्चात् सच्चिदानंद सरकार के सीधे सम्पर्क में आये तथा सरकारी अधिकारियों को इस दिशा में प्रभावित करना शुरू किया। इसी समय विधि सदस्य एस0 पी0 सिन्हा ने त्याग पत्र दे दिया, जिससे सरकार के सामने विधि सदस्य बनाने की समस्या आ खड़ी हुई। वायसराय लॉर्ड मिन्टो चाहते थे कि विधि सदस्य किसी मुसलमान को बनाया जाय तथा इस संबंध में उन्होंने सच्चिदानंद सिन्हा से सलाह मशविरा किया। श्री सिन्हा ने इस पद के लिए अली इमाम का नाम प्रस्तावित किया। परन्तु यह शक था कि इस प्रस्ताव को वे स्वीकार करेंगे या नहीं, क्योंकि उनका भारत के स्थायी विधि परामर्शदाता के रूप में काफी प्रसिद्धि थी। श्री सिन्हा इस प्रस्ताव को लेकर स्वयं अली इमाम के पास कलकत्ता गये। अली इमाम इस पद पर नहीं जाना चाहते थे, परन्तु जब सच्चिदानंद सिन्हा ने उन्हें समझाया कि इस पद पर जाकर संभव है वे बिहार को नया प्रान्त बनवाने में समर्थ हो सके, तब अली इमाम तैयार हुए।[16]

सन् 1911 के प्रारंभ में ही लोगों को यह मालूम हो गया कि इस वर्ष दिल्ली में एक शाही दरबार होगा, जिसमें पंचम जॉर्ज को भारत का सम्राट घोषित किया जायेगा। लोगों को यह भी पता हो गया था कि इस अवसर पर सम्राट की ओर से भारत के हित में एक महत्वपूर्ण घोषणा की जाएगी। इस अवसर के लिए बंगाली नरम दल के नेताओं ने ज्ञापन तैयार किया, जिसमें कहा गया कि जहाँ तक बंगालियों का संबंध है, उन्हें बंग-भंग संशोधन के सिवा कोई भी महत्वपूर्ण घोषणा पसंद नहीं आयेगी।[17] बंगालियों

ने इस दिशा में बिहारी नेताओं से भी सहयोग प्राप्त करना चाहा जिसके लिए कलकत्ता के इण्डियन एसोसिएशन हॉल में एक सभा हुई परन्तु बिहारियों ने यह शर्त्त रखी कि जब-तक बंगाली नेतागण बिहार के पृथक्करण को सिद्धान्त रूप में नहीं मानते तथा जब-तक इस प्रावधान को स्मार पत्र में दर्ज नहीं किया जाता, तब तक वे उन्हें किसी तरह का सहयोग नहीं दे सकते। जब बिहारी नेताओं ने सहयोग देने से इन्कार कर दिया, तब बंगालियों ने 12 जून, 1911 को अपना ज्ञापन मौलिक रूप में ही वायसराय के सामने पेश किया। बिहारी नेताओं ने भी वायसराय से एक अलग प्रान्त बनाने की मांग की।(18)

सन् 1911 के शरद में केन्द्रीय विधान परिषद् के अधिवेशन के सिलसिले में सच्चिदानंद सिन्हा शिमला गये तथा अली इमाम के साथ ठहरे। कुछ दिनों के पश्चात् जब केन्द्रीय विधान परिषद् का सत्र समाप्त हो गया और सच्चिदानंद पटना आने की तैयारी करने लगे, तब अली इमाम ने उनसे कहा 'मान लो अगर बिहार प्रान्त का निर्माण हो भी गया, तो भी इसकी संभावना नहीं है कि उसे कार्यकारिणी परिषद् का लाभ मिले ही, क्योंकि संयुक्त प्रदेश तथा पंजाब में भी ऐसी संस्था नहीं बनी है। वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में अगर वे ऐसा प्रस्ताव रखते हैं, तब लोग सिर्फ उसका मजाक ही उड़ायेंगे। इस पर सच्चिदानंद ने जवाब दिया कि अगर बिहार को अपना अलग प्रान्त मिलता है, तब बिहारी कार्यकारिणी परिषद् के भी हकदार होंगे, क्योंकि बंगाल के साथ रहते हुये भी बिहार को कार्यकारिणी परिषद् का लाभ सदा मिलता रहा है। परन्तु अली इमाम ने नहीं समझा कि इस तर्क का कोई महत्व सरकार के सामने होगा। उन्होंने जवाब दिया कि कहना बहुत आसान है, परन्तु करना कठिन है।

पाश्चात्य् संवैधानिक विधि पर अनेक ग्रंथों के अवलोकन के बाद सच्चिदानंद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि बिहार पृथक्करण के सरकारी दस्तावेज में अगर सपरिषद्-उपराज्यपाल शब्द अंकित कर दिया जाय तब संभव है कि सरकारी अधिकारी इस सूक्ष्म तथा तकनीकी शब्द के महत्व को नजरअंदाज कर जाये और बाद में सरकार बिहार के कार्यकारिणी परिषद् गठित करने को विवश हो जाय। सच्चिदानंद ने अली इमाम को अपनी योजना बतायी और औपचारिक रूप में कार्यकारिणी परिषद् की मांग करने के बदले सरकारी दस्तावेज में सपरिषद् उपराज्यपाल शब्द को ही अभिव्यक्त करने के लिए कहा। अली इमाम को यद्यपि इस योजना में संदेह था, फिर भी उन्होंने इस सुझाव को मान लिया। परन्तु इस योजना को अप्रत्याशित सफलता मिली।[19]

बंगाल सरकार ने बिहारी द्वारा प्रेषित अभ्यावेदन तथा प्रत्युत्तर केन्द्रीय सरकार के पास अग्रसारित कर दिया। केन्द्रीय सरकार ने इस अभिवेदन को अत्यंत ही महत्वपूर्ण सारगर्भित बताया तथा इस आशय का एक पत्र भी बंगाल सरकार के पास भेजा, साथ ही इसकी एक प्रतिलिपि सेक्रेट्री ऑफ स्टेट के पास लंदन भेज दी गयी। बिहार के पृथक होने का आन्दोलन बढ़ता ही गया।

अंग्रेजी सरकार को यह बात समझ में आ गई कि यदि बिहार को स्वतंत्र प्रान्त का रूप नहीं दिया गया तो इस असंतोष की लहर विद्रोह तथा राष्ट्रीय आन्दोलन की चिंगारी में परिणत हो जायेगी। इन खतरों को ध्यान में रख कर ब्रिटिश सरकार ने बिहार को पृथक प्रान्त बनाने का निर्णय लिया। अत: अगस्त 1911 में सरकार ने सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को लिखा कि "बिहार के लोग अत्यंत ही बलिष्ठ तथा राज भक्त हैं और वे बंगाल से पृथक होना चाहते हैं।" बंगाल के विभाजन के समय बिहार के लोगों ने बिहार को पृथक करने के लिए जान बूझकर आन्दोलन नहीं शुरू किया था, क्योंकि वे सरकार के विरोध में बंगालियों का साथ नहीं देना चाहते थे। हाल के वर्षो में बिहार मे बड़ा जागरण हुआ तथा उनको विश्वास हो गया कि जब-तक बिहार को बंगाल से पृथक नहीं कर दिया जाता, तब-तक उनका विकास नहीं होगा। अत: बंगाल से बिहार को पृथक कर अब उनकी चिर लंबित मांग तथा अच्छे ध्येय को पूर्ण करने का अवसर आ गया है।[20] इस पत्र का इंग्लैण्ड में अच्छा प्रभाव हुआ तथा इसकी स्वीकृति मिल गई।

12 दिसम्बर, 1911 को दिल्ली में शाही दरबार लगा और सरकार ने यह घोषणा की कि बिहार, उड़ीसा तथा छोटानागपुर को बंगाल से पृथक किया जाता है। 22 मार्च 1912 को इसकी अधिसूचना भी निकाल दी गई और 1 अप्रैल, 1912 से भारत के मानचित्र पर बिहार एक अलग प्रान्त के रूप में अस्तित्व में आ गया।

संदर्भः-

1. सच्चिदानंद सिन्हा, सम इमिनेंट बिहार कन्टेम्पोरेरीज, पटना(1944 ई.) पृ. सं. 11.
2. हिन्दुस्तान रिव्यू, दिसम्बर, पृ. सं. 527-28.
3. सचिदानंद सिन्हा, सम इमिनेंट बिहार कन्टेम्पोरेरिज, पृ. iii.
4. हिन्दुस्तान रिव्यू, अगस्त 1907, पृ. सं. 79.

5. विजय चन्द्र चौधरी, क्रियेशन ऑफ मॉडर्न बिहार, पटना (1964), पृ. सं. 49.
6. विजय चन्द्र चौधरी, हिन्दुस्तान रिव्यू, अगस्त 1905, पृ. सं. 173.
7. सच्चिदानंद सिन्हा, सम इपिमेन्ट बिहार कन्टेम्पोरेरिज, पृ.सं. xiii-
8. वही, पृ. सं. xv
9. वही, पृ. सं. xvi
10. नागेन्द्र मोहन प्रसाद श्रीवास्तव, ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया: इफेक्टस ऑफ इन्टरनेशनल इवेन्ट्स, मेरठ (1973) पृ. सं. 08.
11. महेश नारायण तथा सच्चिानन्द सिन्हा, पार्टिशन ऑफ बंगाल और सेपरेशन ऑफ बिहार, बाँकीपुर (1906), पृ. सं. 2.
12. सच्चिदानंद सिन्हा, सम इमिनेन्ट बिहार कन्टेम्पोरेरिज, पृ. सं. 48.
13. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ. सं. 54
14. हिन्दुस्तान रिव्यू, अप्रैल, 1909, पृ. सं. 388.
15. दि बिहार, अक्टूबर, 01, 1909.
16. सच्चिदानन्द सिन्हा, सम इमिनेन्ट बिहार कन्टेम्पोरेरिज, पृ. सं. xxviii.
17. अम्बिका चरण मजूमदार, इण्डियन नेशनल इवोल्यूशन, पृ. सं. 217-19.
18. उपरोक्त, पृ. सं. 221.
19. सच्चिदानन्द सिन्हा, सम इमिनेन्ट बिहार, कन्टेम्पोरेरीज, पृ. सं. xxxiii.
20. सौ साल में पटना, बिहार विधान परिषद्, अप्रैल 2012, पृ. सं. 16

प्राचीन भारतीय इतिहास में शूद्रों की स्थिति एवं शिक्षा संबंधी अधिकारः एक ऐतिहासिक अध्ययन

राज कुमार

शोधार्थी, विश्वविद्यालय प्रा0 भा0 ई0, सं0 एवं पुरातत्व विभाग,
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

वर्ण का आधार जन्म होना चाहिए या कर्म, यह विषय प्राचीन काल से ही विवादास्पद रहा है। वर्तमान समय में हिन्दुओं में जिस प्रकार की वर्ण-व्यवस्था का प्रचलन है और शताब्दियों से जो प्रचलित है, वह निश्चय ही जन्म के आधार पर की जाती है। ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व और शुद्रत्व की गणना जन्म के आधार पर ही की जाती है। कोई व्यक्ति अध्यापक हो, सैनिक हो, व्यापारी हो, सेवक हो यदि उसने ब्राह्मण परिवार में जन्म लिया है तो उसको ब्राह्मण ही कहा जायेगा।

परंतु आर्य सभ्यता के प्रारंभिक युग में ऐसा नहीं था। वर्णो के विभाजन का आधार गुण-कर्म को ही माना जाता था। योग्यता और क्षमता के आधार पर व्यक्ति को वर्ण प्राप्त होता था। शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत योग्यता के आधार पर शिष्य को आचार्य द्वारा वर्ण प्रदान किया जाता था।

प्राचीन काल में प्रजाजनों में वर्ण-विभाजन नहीं था। सबका एक ही वर्ण था। गुणों और कर्मों की विशेषता के आधार पर मनुष्यों का समाज चार वर्णों में विभक्त किया गया था।[1] दृष्टान्त है कि भगवान कृष्ण ने गुणों और कर्मो को वर्ण विभाजन का आधार माना है। रामायण, महाभारत, उपनिषद, पुराण, सूत्र और स्मृति ग्रंथों में स्थान-स्थान पर गुण-कर्म को वर्ण का आधार माना गया है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि निम्न-निम्न वर्ण भी कर्म का आचरण करके पूर्व-पूर्व कर्म को प्राप्त करता है।[2] अधर्म का आचरण करके पर्व-पूर्व वर्ण भी निम्न-निम्न वर्ण को प्राप्त करता है। मनु का कथन है कि धर्म का आचरण करने और विद्या का अध्ययन करने से शूद्र भी ब्राह्मण हो जाता है। इसके विपरीत अधर्म का आचरण करने से ब्राह्मण भी शुद्र हो जाता है।

प्रायः सभी शास्त्रकारों की यह मान्यता है कि कोई भी व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नहीं होता, अपितु गुणों से ही होता है। चारों वर्णो में बाह्मण अपने कर्मो से ही श्रेष्ठ है। शुक्रनीतिसार में लिखा है कि विश्वामित्र, मातंग और नारद ने तपस्या और विद्या के प्रभाव से विशिष्ट उन्नत स्थान को प्राप्त किया था, जन्म सें नहीं।[3]

इस विषय में शतपथ ब्राह्मण की भी इसी प्रकार की मान्यता है कि ब्राह्मण के लिए उसकी प्रथम योग्यता उसका ज्ञानी होना है। विश्वामित्र देवापि और जनक ने अपने ज्ञान के कारण ही ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त किया था। यहाँ छनदोग्य उपनिषद की एक कथा के अनुसार शूद्रा जबला का पुत्र सत्यकाम अपने साथ पवित्र आचरण, विद्या और बुद्धि के कारण विद्वान गुरू का शिष्य बना। माता के नाम पर उसका गोत्र जाबाल प्रसिद्ध हुआ। वह 'यजुर्वेद की एक शाखा का संस्थापक हुआ।[4]

'ऐतरेय उपनिषद' की कथा के अनुसार शूद्र माता इलुषा का पुत्र कवष अपने पवित्र आचरण, विद्या, और बुद्धि के कारण ऋषि कहलाया और कवष ऐलूष के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह 'ऋग्वेद' की कुछ ऋचाओं का ऋषि है।[5]

परंतु कालांतर में आर्यो की वह वर्ण-व्यवस्था दूषित हो गई। समय के परिवर्तन के साथ ही गुण-कर्म के स्थान पर जन्म ने प्रमुखता ले ली।[6] इस परिवर्तन का मुख्य आधार संभवतः यह रहा होगा कि समाज में मूर्धन्य लोग ब्राह्मण थे। इन्होंने ही शास्त्रों की

भी रचना की थी और सामाजिक व्यवस्थाओं का संचालन किया था। अपनी संतानों की श्रेष्ठता को बनाये रखने के लिए, इन्होंने जन्म को प्रमुखता देना प्रारंभ कर दिया। अब गुण- कर्म का स्थान गौण हो गया।[7] पिता के वर्ण के अनुसार ही पुत्र का भी वर्ण माना जाने लगा। 'महाभारत' के युग में क्रियात्मक रूप से यही सिद्धांत प्रचलित रहा था। महाभारतकार ने प्रयास किया कि वर्ण का आधार गुण-कर्म रहे। महाभारतकार ने कहा कि ब्रह्मा ने कर्म के द्वारा ही वर्णो की सृष्टि की थी।[8]

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि महाभारतकार अपने प्रयत्नों में सफल नहीं हो सके, वे परास्त हो गये। इस महान ग्रंथ में ही अनेक उदाहरण ऐसे है, जबकि वर्ण का आधार जन्म माना गया, गुण कर्म नहीं। क्षत्रियद्वेषी परशुराम युद्ध प्रेमी थे। क्षत्रियों को इक्कीस बार पराजित करके और क्षत्रियों के गुणों से युक्त होकर भी वे ब्राह्मण कहलाये। क्योंकि वे ब्राह्मण जमदग्नि के पुत्र थे। युद्धों में सक्रिय भाग लेने वाले द्रोण, कृप और अश्वस्थामा को किसी ने क्ष्त्रिय नहीं समझा।[9] द्रोपदी ने कर्ण को सूतपुत्र कह कर उसका तिरसकार किया। युद्धविद्या में निपुण होने पर भी उसको क्षत्रिय नहीं माना गया तथा उसके साथ विवाह करने की संभावना में निपुण होने पर भी उसको क्षत्रिय नहीं माना तथा उसके साथ विवाह करने की संभावना से भी द्रौपदी ने इंकार कर दिया।

महाभारत युद्ध के अनंतर वर्णो में गुण-कर्म का आधार सर्वथा लुप्त हो गया। जन्म ही इसका निर्णायक रहा। हलांकि मनु ने ऐसे ब्राह्मणों का उल्लेख किया है, जो पतित, नास्तिक और नपुंषक है। परन्तु उसने अविद्वान और मूर्ख ब्राह्मण को भी देवता माना।[10]

ज्ञात हो कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में शूद्र का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है।[11] उसको परम पुरूष के पैरों से उत्पन्न कहा गया है। इसका अभिप्राय है कि जिस प्रकार पुरूष अपने पैरों के सहारे ही खड़ा हो सकता है तथा गति कर सकता है, उसी प्रकार समाज की स्थिरता और गति भी शूद्र के बिना नहीं रह सकती। इस रूपक से यह सिद्ध है कि वैदिक समाज में शूद्रों की स्थिति अन्य वर्णो की अपेक्षा यदि उच्च नहीं थी तो अधिक हीन भी नहीं थी। वे समाज के अविभाज्य और सम्मानित अंग थे।[12]

कलांतर में शूद्र की स्थिति हीन हो गई। इनको सेवा और दास-भाव के ही योग्य समझा जाने लगा।[13] यह कहा गया कि शूद्र को चाहिए कि वह समाज के अन्य वर्णों की सेवा करें और उसमें किसी प्रकार की ईर्ष्या न करें। उसकी सृष्टि दासता के लिए ही है।

इस युग में शूद्र के लिए यज्ञ, तप, वेदाध्ययन आदि सभी निषिद्ध हो गये। इन कार्यो को करने के लिए उसको मृत्यु दंड तक दिया जा सकता था। मनु का कथन है कि शूद्र के लिए स्तुत्य कर्म यही है कि वह द्विज की सेवा करें। इसके अतिरिक्त वह अन्य जो भी कार्य करता है, उसका वह कार्य निष्फल होता है।[14]

विहित कर्मो को छोड ध्कर उच्च वर्णों के योग्य कर्मो को करने वाला शूद्र दंड के योग्य था। 'रामायण' के उत्तर कांड में तपस्या करने वाले शूद्र मनि शम्बूक का राम द्वारा वध किये जाने की कथा वर्णित है। उत्तरावर्ती संहिता गंथों में भी शूद्र को हीन माना गया था। शूद्र तो पशुओं के अश्व के समान है और यज्ञ के अयोग्य है।[15]

प्राचीन शास्त्रों ने शूद्र को एकजाति और अन्य वर्णो को द्विजाति कहा गया है।[16] जिनका उपनयन संस्कार किया जाता है वे द्विजाति कहलाते हैं। जिनका उपनयन संस्कार करना विहित नहीं है वे एकजाति हैं। इससे स्पष्ट है कि वर्ण का आधार जन्मगत हो जाने पर शूद्र को उपनयन संस्कार से वंचित कर दिया गया। उसके लिए मंत्रों से रहित कुछ संस्कार- पुंसवन, जातकर्म, नामकरण आदि ही विहित रहे।

आगे चलकर, स्मृतियों के युग में सामाजिक दृष्टि से शूद्रों को स्थिति बहुत लीन हो गई। पहले तो वे वेतन लेकर अन्य वर्णो की सेवा (भृत्यचरणम्) करते थे। परंतु मनु ने उनके लिए धन के संचय का निषेध कर दिया। उनके लिए जूठा अन्न, पुराने वस्त्र, पुराल और अन्य परानी वस्तुयें ही दान देने की व्यवस्था की गई।[17] प्रतीत होता है कि स्मृतियों के युग में तथा बौद्ध काल में शूद्रों के तीन वर्ग थे-

1. हीन कार्य करने वाले, मैला ढोने वाले, सफाई करने वाले और घरों में दास वृत्ति करने वाले
2. वेतन लेकर कार्य करने वाले।
3. शिल्प का कार्य करने वाले।

शूद्र की शिक्षा और उपनयन आदि के संबंध में विवाद है कि प्राचीन समय में उनको शिक्षा का अधिकार प्राप्त था या कि नहीं।

सूत्र ग्रंथों में शूद्र के उपनयन के संबंध में निश्चित रूप से कोई सिद्धंत नहीं है।[18] बोधायन ने रथकार वैश्य पिता और शूद्र माता की संतान को उपनयन का अधिकार दिया है। उसका उपनयन वर्षा ऋतु में कराना चाहिए।[19] तैत्तिरीय बाह्मण ने अग्न्याधान के समय रथकार को कुछ मंत्रों के पाठ का अधिकार दिया है।

परंतु सामान्यत: प्राचीन शिक्षा- पद्धति में शूद्रों को उपनयन संस्कार कराने का अधिकार नहीं दिया गया था। उनको वेद पढ़ने का अधिकार भी नहीं था। वेद पढ़ने के अधिकार निषेध इसलिए नहीं था कि वे शूद्र हैं अपितु इसके लिए था। क्योंकि वे वेदों की भाषा और भावना से परिचित नहीं है। ऐसे व्यक्तियों पर समय और शक्ति को व्यय करना उचित नहीं समझा गया था। जो वेद मंत्रों को समझ नहीं सकते। वे अन्य कार्यो के लिए योद्धा बनने के लिये या शिल्पों की रचना करने के लिए अधिक उपयुक्त थे।[20] वैदिक संस्त शूद्रों की भाषा नहीं थी। अत: यह भय था कि वे वेद -मंत्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते। वेद मंत्रों के अशुद्ध उच्चारण से एक भी स्वर या मात्रा के दोष से देवता कुपित हो जाते हैं।[21] अत: उस युग के मनीषियों ने शूद्रों के लिए वेदाध्ययन का निषेध किया था।

परंतु वैदिक संहितायें शूद्रों को वेदों या अन्य विद्याओं के अध्ययन के अधिकार से वंचित नहीं करती। यजुर्वेद का कथन है कि वैदिक वाणी चारों वर्णो- ब्राह्मण, क्षत्रिय (राजन्य) शूद्र और आर्य (वैश्य) सबके लिए है। जैमिनी ने मीमांसा दर्शन में शूद्रों सहित सभी वर्णो को स्वर्ग की कामना से यज्ञ करने का अधिकार दिया था।

वस्तुत: शिक्षा के संबंध में प्राचीन समय में शूद्रों की स्थिति को ठीक-ठीक नहीं समझा गया। अपनी योग्यता के अनुसार विद्या को प्राप्त करने का शूद्रों को पूरा अधिकार था। अनेक शूद्र ऋषियों के उदाहरण प्राचीन साहित्य में प्रसिद्ध हैं। सत्यकाम जांबालि का नाम बहुत प्रसिद्ध है। जांबाला नाम की शूद्रा दासी के इस पुत्र को उसके व्यवहार से प्रसन्न होकर गुरू ने उच्चतम शिक्षा दी और वह प्रसिद्ध माननीय एवं स्वीकरणीय ऋषि हुआ।

प्राचीन समय की प्रत्येक गति विधि पर यज्ञों का पूरा प्रभाव था। शिक्षा पद्धति पर भी यह प्रभाव कम नहीं था। जिसको यज्ञ में भाग लेने का अधिकार था। उसको शिक्षा का भी अधिकार था। शूद्रों को पाकयज्ञ करने का अधिकार महाभारतकार ने दिया है यह यज्ञ तो एक भक्ति है जिसको श्रद्धायज्ञ कहते हैं। इसकों मन द्वारा पूरा किया जाता है। देवता भी इसके अंश को ग्रहण करते हैं।

प्राचीन काल में शूद्रों को समाज में सब प्रकार के अधिकारों को प्राप्त करने का वर्णन मिलते हैं। शुंग कदम्ब, कण्व आदि राजाओं के उत्कीर्ण लेखों से विदित होता है कि उनके सैनिक शिक्षा के अधिकारी चारों वर्णो के लोग होते थे। हवेन्सांग के विवरणों से विदित होता है कि मणिपुर और सिंध में शूद्र राजा थे। प्राचीन काल के प्रतापी नंद वंश को इतिहासकारों ने शूद्र बताया है जब शूद्र राजा हो सकते थे तब उनकी उच्च शिक्षा के अधिकार से वंचित मानना असंगत ही लगता है।

शंकराचार्य ने सभी वर्णो को ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार दिया है। वेदांतसूत्र[22] की व्याख्या करते हुए वे कहते है ''उपासना, प्रार्थना, उपवास आदि उपयों से उच्चतम ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ वर्ण या आश्रम के प्रश्न का उठाना असंगत होगा। जिज्ञासु को ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार है। चाहे वह किसी भी वर्ण या जाति का हो। रामानुज ने भी वेदांतसूत्र की व्याख्या करते हुए शुद्रों को विद्याध्ययन कराये जाने का समर्थन किया है। ज्ञान का धन सभी को प्राप्तव्य है, चाहे वह किसी भी धर्म या जाति का हो। चाहे वह शुद्र ही क्यों न हो।[23]

भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति पर विचार करते हुए प्राचीन समय की बौद्ध शिक्षा पद्धति पर विचार करना उचित होगा। बौद्ध शिक्षा पद्धति में कोई भी जाति या वर्ण का कोई बंधन नहीं था। इसमे सभी जाति तथा वर्ण को समान शिक्षा की व्यवस्था थी।[24] बौद्ध साहित्य में कहा गया है कि जिस प्रकार गंगा यमुना आदि नदियाँ समुद में मिलकर अपने पूर्व परिचय को खो देती और वह एक महासमुद्र कहलाती है उसी प्रकार तुम्हारी जातियाँ अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं है। सभी वर्ण के लोग एक ही जगह और एक साथ शिक्षा ग्रहण करते थे।[25]

इस प्रकार, प्राचीन भारत में जन्म के आधार पर शिक्षा की व्यवस्था नहीं हो कर कर्म के आधार पर थी। किन्तु धीरे-धीरे जन्म आधार पर तब्दील होता गया। वैदिक साहित्यों को शूद्र को वेदों या अन्य विधाओं के अध्ययन के अधिकार से वंचित नहीं करती है। रामायण, महाभारत, उपनिषद, पुराण आदि ग्रंथों में कहीं-कही गुण कर्म को वर्ण का आधार माना गया है। लेकिन बाद में आर्यो की वर्ण व्यवस्था दुषित हो गयी। समय के परिवर्तन के साथ ही गुण कर्म के स्थान जन्म ने प्रमुखता ले ली। लेकिन बौद्ध काल में शिक्षा के क्षेत्र में कोई भेद भाव नहीं था। वहाँ सभी वर्ण के लोग ज्ञान उपार्जन करते थे।

संदर्भ सूची

1 महाभारत शांतिपर्व.
2 आपस्तम्ब धर्म सूत्र, 2.5 11.10.11.
3 शुक्रनीतिसार, 1.269.
4 आर0एस0शर्मा, शूद्राज इन एंशिएंट इंडिया, द्वितीय संस्करण, 1980,पृ0-33
5 ऋग्वेद 10.30.1.3.39-34.
6 जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार, हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना, पृ-138.
7 ग्यारहवीं सदी का भारत पृ0-117.
8 महाभारत 2.33.161.
9 वही.
10 मनुस्मृति, 3.150.
11 विद्याधर महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ0 37
12 पी0एल0भार्गव इंडिया इन द वैदिक एज, पृ0-49
13 महाभारत, शांतिपर्व, 60.28.
14 आर0एस0शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0-65
15 विद्याधर महाजन, पूर्वोक्त, 2.10.19.1-6
16 मनुस्मृति, 10.4.
17 वही, 10.125.
18 बोधायण धर्मसूत्र, 2.5.8.9.
19 वही, 2,5.8.9.
20 याज्ञवल्यक स्मृति, 1.122-48.
21 पाणनीय शिक्षा.
22 वेदान्त सूत्र, 3,4,38 पर शंकर भाष.
23 मेधातिथि; मनुस्मृति, 3.67,121;156,10.14.
24 जय शंकर मिश्र, पूर्वोक्त, पृ0 142.
25 वही, 145.

"आलोचना की आलोचना"

डॉ० ललित कुमार

सहायक आचार्य (हिन्दी) वी.वी. राज. स्ना. महाविद्यालय, जालौर (राजस्थान)

सामान्य जीवन में 'आलोचना' का अर्थ 'बुराई करने' से लिया जाता है लेकिन सैद्धान्तिक और शास्त्रीय रूप में आलोचना का अर्थ है- 'किसी कृति, व्यक्ति, विचार, स्थान, पद्धति, व्यवहार, सिद्धान्त आदि के गुण-दोषों पर निष्पक्षतापूर्वक विचार करना, विमर्श प्रस्तुत करना।'

'आलोचना' शब्द जब अपने अर्थ खोने लगा और 'बुराई' के रूप में रूढ़ होने लगा तो समालोचना, समीक्षा आदि शब्द समय के साथ अस्तित्व में आए।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार, "आलोचना शब्द 'लोच' से बना है- आ + लोच् + अन + आ = आलोचना। 'लोच्' का अर्थ है 'देखना'। इसलिए किसी वस्तु या कृति की सम्यक् व्याख्या, उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है।"[1]

माना जाता है कि राजशेखर ने 'काव्य मीमांसा' रचना से आलोचना या समीक्षा का सूत्रपात किया था। आलोचना के संबंध में विभिन्न विद्वानों के अनेक मत प्रचलित हैं।

डॉ. श्याम सुन्दरदास के अनुसार, "साहित्य जीवन की व्याख्या है तो आलोचना उस व्याख्या की व्याख्या है।"

बाबू गुलाबराय का मत है कि "कवि की कृति का सभी दृष्टियों से आस्वाद कर पाठकों को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना आलोचना है।"

धीरेन्द्र वर्मा मानते है कि "आलोचना स्वस्थ मन से साहित्य या कला का अध्ययन करना और सौन्दर्य को परखना सिखाती है, यही उसका परम कर्त्तव्य है।"

नगेन्द्र कहते है कि "आलोचना सृजन का पुनर्सृजन है।"

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' जैसे प्रतिष्ठित ग्रंथ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना का महत्व व्यवस्थित ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी आलोचना के क्षेत्र में मूलभूत रूप से कार्य किया है जिसका प्रभाव परवर्ती आलोचना साहित्य पर स्पष्ट दिखाई देता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने आलोचना को नये अर्थों और संदर्भों में विवेचित करने का प्रयास किया है।

मिडिल्टन मरे के अनुसार "कला जीवन की सजगता है और आलोचना कला की सजगता है।" जे.ई. स्पिनगार्न कहते हैं कि- "लेखक की अभिव्यक्ति के प्रयास क्या, कैसे और कहाँ तक सफल रहे हैं? यही विचार करना आलोचना है।"

विक्टर ह्यूगों का मत है कि "रचना अच्छी है या बुरी... उसका पता लगाना आलोचना का कर्तव्य है।"

लोंजाइनस का तर्क है कि "आलोचना अधिक परिश्रम का प्रमाण है।"

परंपरागत आलोचना प्रायः रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, छंद, औचित्य आदि पर निर्भर रही है जबकि नैतिकता, सौन्दर्य विज्ञान, यथार्थ आदि पर पाश्चात्य आलोचना आधारित होती है।

आलोचना के तत्वों पर विचार किया जाए तो सहानुभूति, साहस, अंतर्दृष्टि, अतीत-ज्ञान, सौंदर्यानुभूति (शिल्प), समग्रता, संवेदना, अध्ययन-मनन, विचारशीलता आदि प्रमुख तत्व सामने आते हैं।

डॉ. भगीरथ मिश्र ने सहृदयता, विस्तृत ज्ञान, निष्पक्षता आदि आलोचक के प्रमुख गुण माने हैं। वे लिखते हैं कि- "आलोचना का कार्य कवि और उसकी कृति का यथार्थ मूल्य प्रकट करना है। इसके लिए कृति में व्याप्त गुणों का उद्घाटन और दोषों का

विवेचन तो उसका कार्य है ही, साथ ही उसका समाज में और अन्य कलाकृतियों के बीच क्या स्थान और महत्व है, यह स्पष्ट करना भी आलोचना का ही कार्य है।"[2]

डॉ. अमरनाथ का कहना है कि– "आलोचना मानव की सहज प्रवृत्ति है, यही कारण है कि उसका अस्तित्व अन्य मानवीय वृत्तियों अथवा संवेदनाओं की भाँति चिरकाल से ही स्वीकार किया जाता है। आलोचना को साहित्य के संदर्भ में देखने पर साहित्य-रचना के बाद इसका आविर्भाव स्वतः सिद्ध हो जाता है।"[3]

आलोचना के बदले हुए रूप के नवीन स्वरूप पर बच्चन सिंह की टिप्पणी है– "नये आलोचक आलोचना का संबंध केवल भाषा-संरचना तक ही मानते हैं। मूल्यों और संवेदनाओं से उनका कतई ताल्लुक नहीं होता।"[4]

प्रायः सभी विद्वान आलोचक के स्पष्ट वर्गीकरण में दुविधाग्रस्त दिखाई देते हैं। अधिकांश विद्वान् आलोचना को व्याख्यात्मक और निर्णयात्मक भागों में वर्गीकृत करते हैं। कई विद्वान, आलोचना के अनेक वर्ग और उपवर्ग दर्शाते रहे हैं। स्पष्टतया आलोचना को केवल दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– सैद्धान्तिक आलोचना तथा व्यावहारिक आलोचना।

यदि आलोचना को समग्र रूप से वर्गों-उपवर्गों में बाँटा जाए तो निम्नांकित रूप सामने आते हैं– शास्त्रीय आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, गवेषणाप्रधान (गवेषणात्मक) आलोचना, परिचयात्मक आलोचना, सिद्धान्तप्रधान (सैद्धान्तिक) आलोचना, चिन्तनप्रधान आलोचना, प्रभाववादी (आत्मगत या प्रभावाभिव्यंजक) आलोचना, अनुभवात्मक आलोचना, अभिव्यंजनावादी आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना, कार्यात्मक आलोचना, गुणदोषात्मक आलोचना, वैज्ञानिक आलोचना, जीवन वृत्तांतीय आलोचना, भौतिकवादी आलोचना, मनोवैज्ञानिक (अंतश्चेतनावादी) आलोचना, मार्क्सवादी (प्रगतिवादी) आलोचना, रचनात्मक आलोचना, साहित्यिक आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना, निर्णयात्मक आलोचना, समाजशास्त्रीय आलोचना आदि।

रामविलास शर्मा को मार्क्सवादी आलोचना का शिखर पुरुष मानते हुए बच्चनसिंह ने लिखा है– "आलोचना को भाषायी रीतिबद्धता से उन्होंने वैसे ही मुक्त किया है, जैसे निराला ने कविता को छंदों के बंधन से।"[5]

परंपरागत रूप से सैद्धान्तिक आलोचना का प्रभाव ही अधिक रहा है। सैद्धान्तिक आलोचना की परंपरा में निम्नांकित ग्रंथ प्रमुख माने जा सकते हैं– नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), काव्यालंकार (भामह), काव्यादर्श (दण्डी), वक्रोक्तिजीवितम् (कुन्तक), काव्यालंकार सूत्र (वामन), धवन्यालोक (आनंदवर्धन), काव्यप्रकाश (मम्मट), साहित्य दर्पण (विश्वनाथ) आदि।

डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार, "भारतीय आलोचना पद्धति के भीतर सबसे अधिक सम्मान सैद्धान्तिक आलोचना को ही मिला है।"[6]

परम्परागत आलोचना पद्धति में प्रायः वस्तु (तथ्य, सिद्धान्त और जीवन) जैसी विशेषता रहती है। व्यक्ति प्रधान न होकर विषय प्रधान होना, पूर्ववर्ती आचार्यों के विचारों का समुचित अध्ययन, तथ्यों की सिद्धी व सत्य का अन्वेषण आदि इस आलोचना पद्धति की अन्य विशेषताएँ मानी जा सकती हैं।

आलोचना के प्रारंभ से लेकर वर्तमान स्वरूप तक अनेक परिवर्तन और प्रतिमान निर्मित होते दिखाई देते हैं।

डॉ. नगेन्द्र का मत है कि "प्रगतिवादी आलोचना के बाद वह आलोचना अस्तित्व में आयी जिसे 'नयी आलोचना' कहा जाता है।"[7]

डॉ. नगेन्द्र का मानना है कि तुलनात्मक आलोचना का आरंभ 1907 में पद्मसिंह शर्मा ने किया।...

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना में भाषा का स्तर निर्मित करने के लिए महावीर प्रसाद द्विवेदी को धन्यवाद दिया है। स्वयं शुक्ल और महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी आलोचना में 'मील का पत्थर' माने जाने वाले आलोचक रहे हैं।

परिचयात्मक आलोचना भारतेन्दु युग से ही प्रारंभ हुई ऐसा माना जाता है। व्याख्यात्मक आलोचना का सूत्रपात प्रेमघन द्वारा किया गया और प्राचीन शास्त्रीय आलोचनाओं को कृष्णबिहारी मिश्र ने प्रतिष्ठित किया। जगन्नाथदास रत्नाकर ने पाश्चात्य आलोचनाओं का हिन्दी अनुवाद किया। डॉ. नगेन्द्र को प्रमुख रसवादी आलोचक माना जाता है। उन्होंने व्यावहारिक आलोचना को 'प्रायोगिक आलोचना' भी कहा है और हिन्दी आलोचना पर विशिष्ट टिप्पणियाँ की हैं, जैसे– "भारतेन्दु युग में हिन्दी आलोचना का प्रारंभ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ, किंतु आधुनिक आलोचना का उत्कृष्ट उदाहरण इस काल में नहीं मिलता।"[8]

वास्तव में भारतेन्दु युग की पत्र-पत्रिकाओं में आधुनिक आलोचना का शुरूआती रूप सुरक्षित है। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि हिन्दी में आलोचना की शुरुआत बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने की। 'आनंद कादंबिनी' पत्रिका में संयोगिता स्वयंवर (लालाश्रीनिवासदास कृत) व बंग विजेता (गदाधर सिंह कृत) की आलोचना कर प्रेमघन ने इस विधा की शुरुआत की।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती पत्रिका, समालोचना पत्रिका... आदि पत्रिकाएँ आलोचना के क्षेत्र में श्रेष्ठ पत्रिकाएँ रही हैं। माना जाता है कि 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' से अन्वेषण और अनुसंधानपरक आलोचना की शुरुआत हुई।

मिश्र बंधु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, किशोरीलाल गोस्वामी, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, श्यामसुन्दर दास, बालमुकुन्द गुप्त, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र, बच्चनसिंह, नामवरसिंह आदि प्रमुख आलोचक रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को हिन्दी आलोचना में शिखर पुरुष माना जाता है।

यदि आलोचना के क्रमिक विकास पर दृष्टि डाले तो भारतेन्दु मंडल से लेकर नगेन्द्र, बच्चनसिंह और नामवरसिंह आदि विकासधारा के प्रारंभ से अंत तक की 'आलोचना-सार' की समग्रता का उदाहरण देने वाले नाम ठहरते हैं।

भारतेन्दु युग से प्रारंभ हुई हिन्दी आलोचना में 'छंदप्रभाकर' (जगन्नाथ प्रसाद भानु), 'जसवंत-जसो भूषण' (मुरारिदान कविराज), 'काव्यसुधाकर' (जानकीप्रसाद), 'नाटक' (भारतेन्दु), 'शिवसिंहसरोज' (शिवसिंह सेगर) आदि प्रमुख आलोचनात्मक कृतियाँ रही है।... भारतेन्दु युग की आलोचना मुख्यत: पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित होती रही। इस युग में आलोचनात्मक प्रतिमान और सिद्धान्त उतने सशक्त नहीं थे जितने कालांतर में हुए।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में आलोचना में शिल्प पक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया। भाषा और व्याकरण पर आलोचना अधिक केन्द्रित रही। 'काव्यप्रभाकर' (जगन्नाथ प्रसाद भानु), अलंकार मंजूषा (लाला भगवानदीन), हिंदी नवरत्न (मिश्र बंधु), समालोचनादर्श (जगन्नाथ दास रत्नाकर) आदि इस युग की महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक कृतियाँ हैं।

इस युग की आलोचना विधा में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का विशेष योगदान रहा। 1902 में चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा जयपुर से निकाला गया 'समालोचक' पत्र भी इस विधा में सक्रिय सिद्ध हुआ। कृष्णबिहारी मिश्र ने शास्त्रीय आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया तो लाला भगवानदीन भक्तिकाल के कवियों की आलोचना के कारण जाने गये।

हिन्दी में द्विवेदी के उत्तरार्द्ध से रामचन्द्र शुक्ल के आलोचना साहित्य की धूम हुई। 'कविता क्या है?' और 'साहित्य' जैसे आलोचनात्मक प्रयासों के बाद शुक्ल ने उन आलोचनात्मक निबंधों की रचना की जो 'चिंतामणि' के विभिन्न भागों में आज भी नजर आते हैं। शुक्ल रचित 'रस- मीमांसा' के आधार पर डॉ. नगेन्द्र ने टिप्पणी की है कि "शुक्ल ने हिन्दी में पहली बार रस- विवेचन को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया।"[9]

'अलंकारदर्पण' (जगन्नाथ प्रसाद भानु), नवरस (गुलाबराय), काव्यांग कौमुदी (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र), अलंकार पीयूष (रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'), रूपक रहस्य (श्याम सुंदर दास), रसकलस (हरिऔंध), काव्य में रहस्यवाद, हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल), कबीर का रहस्यवाद (रामकुमार वर्मा) आदि शुक्लयुग की प्रमुख आलोचनात्मक रचनाएँ मानी जा सकती हैं।

शुक्लोतर युग- जिसे कविता के कालक्रम में प्रगतिवाद भी कहा जा सकता है- में आलोचना के प्रतिमान मौटे तौर पर बदलने लगे और अधिकांश रूप से सैद्धांतिक आलोचना की जगह व्यावहारिक आलोचना का पक्ष प्रखर और सशक्त होने लगा। आधुनिक साहित्य, नया साहित्य: नये प्रश्न, कवि निराला, प्रकीर्णिका (नंददुलारे वाजपेयी), हिन्दी साहित्य की भूमिका, सूर साहित्य, कबीर (हजारीप्रसाद द्विवेदी), सुमित्रानंदन पंत, साकेत: एक अध्ययन, रीतिकाव्य की भूमिका, आधुनिक हिन्दी नाटक, कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, नयी समीक्षा: नये संदर्भ (नगेन्द्र), सिद्धांत और अध्ययन, काव्य के रूप, अध्ययन और आस्वाद (गुलाबराय), हिंदी साहित्य का अतीत, वाङ्मय विमर्श (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) आदि इस युग की प्रसिद्ध आलोचनात्मक कृतियाँ रही है।

हिंदी के काव्यकाल 'प्रगतिवाद' का प्रभाव आलोचना के रूप में मार्क्सवादी आलोचना में नजर आता है। इस युग के प्रमुख आलोचकों में शिवदानसिंह चौहान का नाम आता है। 'प्रगतिवाद', 'साहित्य परख', 'आलोचना के मान', 'साहित्य की समस्याएँ' आदि उनकी प्रमुख आलोचनात्मक कृतियाँ हैं जो मार्क्सवादी स्वर से प्रभावित हैं। प्रकाशचंद्र गुप्त रचित 'हिंदी साहित्य की जनवादी परंपरा' भी प्रमुख मार्क्सवादी आलोचना मानी जाती है। रामविलास शर्मा को श्रेष्ठ मार्क्सवादी आलोचक माना जाता है। 'प्रगति और परंपरा', 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', 'आस्था और सौंदर्य' आदि उनकी प्रमुख आलोचनात्मक रचनाएँ हैं।

मार्क्सवादी आलोचकों के अतिरिक्त दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आलोचनाएँ प्रस्तुत करने वाले आलोचक भी प्रसिद्ध रहे हैं। डॉ. देवराज (छायावाद का पतन, प्रतिक्रियाएँ), अज्ञेय (त्रिशंकु), इलाचंद्र जोशी (साहित्य सर्जना, विवेचना, विश्लेषण) आदि इस धारा के प्रमुख आलोचक रहे हैं।

मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, विनय मोहन, माता प्रसाद गुप्त आदि भी इसी धारा के आलोचक माने जाते हैं।

छठे दशक के बाद जिन आलोचकों का उभार हुआ उनमें नेमिचंद्र जैन (अधूरे साक्षात्कार), नामवरसिंह (कहानी, नयी कहानी), बच्चनसिंह (आलोचना को चुनौती, आलोचक और आलोचना), रामस्वरूप चतुर्वेदी (भाषा और संवेदना) आदि प्रमुख नाम रहे हैं।

1970 और 1980 के समय के मध्य आलोचकों की संख्या और रचनाधर्मिता बढ़ गई। विजयदेवनारायणसाही (शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट), लक्ष्मीकांत वर्मा (नये प्रतिमान: पुराने निकष), धर्मवीर भारती (साहित्य और मानव मूल्य, पश्यन्ती), डॉ. रघुवंश (साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य), डॉ. हरदयाल (आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प), दूधनाथसिंह (निराला: आत्महंता आस्था), रमेशकुंतलमेघ (अथातो सौंदर्य जिज्ञासा), नेमिचन्द्र जैन (अधूरे साक्षात्कार) आदि इस काल के प्रमुख आलोचक रहे हैं।

सन् 1980 से लेकर आगे के बीस-पच्चीस वर्षों में आलोचना में अनेक स्तरों पर बदलाव आया और तमाम प्रकार की पुरानी मान्यताओं तथा प्रतिमानों पर प्रश्न चिह्न उठे।

डॉ. रामविलास शर्मा (भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी, भारत में अंग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, हिंदी-जाति का साहित्य), नंदकिशोर नवल (कविता की मूक्ति, यथाप्रसंग, निराला: कृति से साक्षात्कार, शताब्दी की कविता, कविता के अरपार), अज्ञेय (युग संधियों पर, धार और किनारे, शेषा, कवि-निकष), विजयदेव नारायण साही (जायसी, छठवां दशक, साहित्य क्यों?), नंदकिशोर आचार्य (रचना का सच, सर्जक का मन, साहित्य का स्वभाव), रामस्वरूप चतुर्वेदी (इतिहास और आलोचक दृष्टि, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, प्रसाद-निराला-अज्ञेय, भक्ति काव्य यात्रा), कृष्णदत्त पालीवाल (मैथिलीशरण गुप्त), परमानंद श्रीवास्तव (उपन्यास का पुनर्जन्म, शहर और मनुष्य), गोपालराय (संप्रति, हिन्दी उपन्यास का विकास), सिद्धनाथ कुमार (प्रसाद के नाटक, स्कंद गुप्त: संवेदना और शिल्प) आदि आलोचक पिछले पच्चीस से तीस बरसों में आलोचना विधा को समृद्ध करते रहे हैं।

समय के साथ आलोचना की प्रवृत्ति और धाराएँ भी बदली हैं और पिछले दो से तीन दशकों में स्त्री विमर्श आधारित आलोचना, दलित विमर्श आधारित आलोचना तथा आदिवासी विमर्श आधारित आलोचना का विशेष विकास हुआ है। टी.वी. कुट्टीमनी, कालीचरण स्नेही, एन. सिंह, धर्मवीर, रत्नकुमार सांभरिया, सुशीला टाकभौरे, जसराम हरनोटिया, रूपचन्द गौतम, मोहन दास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि आदि नाम दलित विमर्श की आलोचना के प्रमुख हस्ताक्षर माने जा सकते हैं। जयपाल सिंह मुंडा, पीटर पॉल एक्का, गंगासहाय मीणा, हरिराम मीणा, काजल डेमटा, ज्योति लकड़ा, महादेव टोप्पो आदि प्रमुख आदिवासी साहित्य आलोचक माने जा सकते हैं।

स्त्री विमर्श आधारित आलोचना में पण्डित रमाबाई, ताराबाई शिंदे आदि के लेखकीय प्रयास जहाँ शुरुआती साहित्य का उचित रूप माने जा सकते हैं वहीं महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, अलका सरावगी, मृदुला गर्ग, कीर्ति चौधरी, कात्यायनी, सविता सिंह, शुभा शर्मा आदि ने न्यूनाधिक रूप से इस धारा की आलोचना में योगदान दिया है।

हिन्दी आलोचना का भविष्य उज्ज्वल है और तमाम परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए इस विधा में उत्तरोत्तर विकास और वृद्धि होती जा रही है।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1) पारिभाषिक शब्दावली- संपादक धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 120, ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी
2. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, पृष्ठ 134, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
3. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली - डॉ. अमरनाथ, पृष्ठ 93, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास- बच्चनसिंह, पृष्ठ 504, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास- बच्चनसिंह, पृष्ठ 511, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
6. काव्यशास्त्र- डॉ. भगीरथ मिश्र, पृष्ठ 148, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ नगेन्द्र, पृष्ठ 80, मयूर पेपरबैक्स नोएडा
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 465, मयूर पेपरबैक्स नोएडा
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 573, मयूर पेपरबैक्स नोएडा

गुप्तकाल की राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का मूल्यांकन

विवेक कुमार यादव

(शोधार्थी) सल्तनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर, जौनपुर,
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर

सारांश

मौर्य साम्राज्य के बाद भारत में फिर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना और राजनीतिक शक्तियों को एक सूत्र में संगठित करने का श्रेय गुप्त वंश के शासकों को है। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे शक्तिशाली सम्राटों के नेतृत्व में मगध के गुप्त गौरव का पुनरुद्धार हुआ। फिर, भारत के एक बड़े भाग में विशाल साम्राज्य का संगठन हुआ। गुप्त सम्राटों ने न सिर्फ एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की बल्कि इसके प्रशासन की भी सुव्यवस्था की। इस युग की शासन पद्धति के अध्ययन के लिए फाहियान का विवरण, अभिलेख और सिक्के, विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस', कालिदास ग्रन्थावली, कामन्दकीय, 'नीतिसार', विभिन्न स्मृतियाँ आदि सामग्रियाँ उपलब्ध हैं। पर गुप्तों की शासन व्यवस्था उतनी सुदृढ़ नहीं थी जितनी मौयों की। दोनों शासन पद्धतियों में मुख्य अन्तर यह है कि जहाँ मौर्यो के अधीन सत्ता के केन्द्रीकरण पर बल दिया गया था, वहाँ गुप्तकाल में हम सत्ता का विकेन्द्रीकरण पाते हैं।

गुप्तकाल का प्रथम नरेश श्रीगुप्त था जिसका शासन काल 275 से 300 ई0 के बीच माना जाता है। चीनी भिक्षु इत्सिंग ने श्रीगुप्त (ये-शि-कि-तो) को चीनी यात्रियों के लिए मृगशिखा, वन नामक विहार बनवाया था उसका कोई भी लेख अथवा सिक्का नहीं मिलता। दो मुहरों पर एक में संस्कृत तथा प्राकृत मिश्रित मुद्रा लेख गुप्तस्य तथा दूसरे में संस्कृत में श्री गुप्तस्य अंकित है।

गुप्त वंश का दूसरा नरेश घटोत्कच श्रीगुप्त का पुत्र था जिसके नाम के साथ 'महाराज' उपाधि जुड़े होने से यह अनुमान किया गया है कि घटोत्कच की पिता के ही समान सामान्य शासक था। गुप्त वंश वास्तविक इतिहास चन्द्रगुप्त प्रथम से प्रारम्भ होता है। चन्द्रगुप्त प्रथम (320-335 ई0) घटोत्कच का पुत्र था जो प्रारम्भिक गुप्त शासकों में सबसे अधिक शक्तिशाली था। चन्द्रगुप्त प्रथम के नाम के पूर्व गुप्त अभिलेखों में महाराजाधिराज जुडा मिलता है। चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने को कर मुक्त कर लिया था और अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। चन्द्रगुप्त ने कुमार देवी नाम की लिच्छवियों की एक राजकुमारी से विवाहकर अपने नवोदित राजकुल को गौरवान्वित किया चन्द्रगुप्त ने एक प्रकार की सोने के सिक्कों पर इस प्रसंग को उत्कीर्ण कराया। उन पर सामने की ओर रानी को मुद्रिका प्रदान करते हुए राजा की आकृति खुदी है, दाहिने भाग पर चन्द्र' अथवा 'चन्द्रगुप्त और बायें भाग पर कुमारदेवी अथवा 'श्रीकुमारदेवी' शब्द अंकित है इन सिक्कों पर पीछे की ओर लिकाय लिखावट के साथ सिंहवाहिनी दुर्गा की आकृति खुदी है। चन्द्रगुप्त के राज्य की सीमाएं पुराण के एक श्लोक में जो दी हुई है उनसे जान पड़ता है कि मगध (दक्षिण बिहार), प्रयाग, साकेत. (अयोध्या) और निकटवर्ती इलाके उसके अन्तर्गत थे। चन्द्रगुप्त प्रथम ने सम्भवत: पन्द्रह वर्ष तक राज्य किया।

चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात् उसका सुयोग्य पुत्र समुद्रगुप्त (350-375 ई0) साम्राज्यकी गद्दी पर बैठा। वह लिच्छवि राजकुमारी से उत्पन्न हुआ था। समुद्रगुप्त गुप्त सम्राटों की श्रृंखला में अद्वितीय था। शक्ति, प्रताप और पराक्रम में उसकी समता न थी। कुछ पीढ़ियों अश्वमेध यज्ञ की परम्परा जो लुप्त हो गयी थी, जिसका उसने पुनरुद्धार किया। समुद्रगुप्त ने स्मारक प्रकार के सोने के सिक्के चलाये जिसके मुख भाग पर यज्ञ का अश्व यूप (बलि) स्तन्न) के सामने खड़ा है और उसके पृष्ठ भाग पर रानी की आकृति और सम्राट का विरुद अश्वमेघ पराक्रम खुदा है। समुद्रगुप्त योद्धा, शास्त्रों का ज्ञाता, कवि, गायक औरवीणावादक था। सम्भवत: वह वैष्णव

धर्म का अनुयायी था। समुद्रगुप्त की विजयों की तालिका प्रयाग के किले में खड़े अशोक के स्तम्म पर खुदी है। उसकी यह प्रशस्ति कवि हरिवेण ने रची थी। यह प्रशस्ति सम्भवत: 300 ई0 के लगभग दिग्विजय के पश्चात् और अश्वमेघ यज्ञ के पूर्व खुदी थी। इस प्रशस्ति में उसकी छ: प्रकार की विजयों का वर्णन हुआ है- 1. उन्मीलित राज्य, जिसको उसने उखाड़ फेंका: 2. आटविक राज्य जिनके अधिपतियों को उसने अपने सेवक बनने को बाध्य किया 3. दक्षिण के राज्य जिनके नरेशों को परास्त कर उनके राज्य उन्हें लौटा दिये। (श्रीयं जहार न तु मेदिनीम्, कालिदास) 4. प्रत्यन्त तथा 5. गणराज्य जिन्होंने उसके पराक्रम से घबड़ा कर स्वयं आत्मसमर्पण कर दिया. 6. सीमा पर के अथवा कुछ विदेशी राज्य जिन्होंने समुद्रगुप्त के प्रति भेट आदि देकर उसे सन्तुष्ट किया।

इन राज्यों की पहचान साधारणत इस प्रकार की गई है- पहले प्रकार के नष्ट किये गये राजाओं में से थे. रूद्र देव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मा, गणपति नाग, नागसेन, नन्दी, अच्युत और आसाम (कामरूप) के राजा बलवर्मा ये आर्यावर्त के राजा कहे गये हैं। दूसरे प्रकार के राज्य आटविक कहलाते थे क्योंकि वे सम्भवत मध्य प्रदेश के वनों में पड़ते थे। दक्षिणापथ के राजाओं में एक कोशल का महेन्द्र था। दूसरा महाकान्तार का व्याघ्रराज, तीसरा कोराल का मटराज चौथा पीठापुरम का महेन्द्र, पांचवा कोदूर का स्वामी दत्त छता ऐरन्ड पल्ल का दमन, सातवा कांची का विष्णुगोप, आठवाँ अवमुक्त का नील राज नवी वेंगी का हरितवर्मा, दसवीं पालक्क का उग्रसेन, ग्यारहवाँ देवराष्ट्र का कुबेर और बारहवाँ कुस्थलपुर का धनन्जय सीमावर्ती राज्यों में समट (दक्षिणी-पूर्वी बंगाल) इवाक (आसाम स्थित डबोक) कामरूप ((पासाग), नेपाल एवं कर्तृपुर (कुम और रुहेलखण्ड के जिले थे। गणराज्यों में मालदा में आर्जुनायन जयपुर-अलवर में यौधेयभद्रक सवी-चेनाव घाटी में आभीर पर्वतीय क्षेत्र और बेतवा नदी के बीच स्थित अहीरवाड़ में, प्रार्जुन नरसिंहपुर जिले में सेनकानीक मिलसा के समीप, काक सनकानिकों के पड़ोस में और खरपरिक (मध्यप्रदेश के दमोह जिले में बसे थे।'

प्रयाग प्रशस्ति की तेइसवीं-चौबीसवीं पंक्तियों में कुछ विदेशी राज्यों के नाम दिये गये हैं जिनके विषय में यह बताया गया है कि वे स्वयं को सम्राट की सेवा में उपस्थित करना, कन्याओं के उपहार एवं अपने-अपने राज्यों में शासन करने के निमित्त गरूड़ मुद्रा से अंकित राजाज्ञा के लिए प्रार्थना करना आदि विविध उपायों द्वारा उसकी सेवा किया करते थे। इनमें प्रथम देवपुत्र पाहि पाहानुषाहि है ये कुषाणों के वंशज थे जिन्होंने शाही नाम से दीर्घकाल तक पंजाब- अफगानिस्तान पर शासन किया। देव पुत्र, पाहि तथा बाहानुषाहि से तात्पर्य परवर्ती कुषाण राजाओं से है। दूसरा विदेशी राज्य शक है जो गुणों के समय मालवा- गुजरात में शासन करते थे। उनका समकालीन शासक रूद्रसेन तृतीय (348-378 ई०) था।

तीसरे विदेशी राज्य का नाम मुरूड है ओ टालमी के अनुत्तार ऊपरी गंगा घाटी के निवासी थे। शर्वनाथ खोह दानपत्र (513 ई0) में महादेवी गुरूडदेवी का उल्लेख है चौथा विदेशी राज्य सिंघल है। समुद्रगुप्त के समय इसका राजा नेफवरी था जिसने बोध गया में श्रीलंका के यात्रियों की सुविधा के लिए एक बौद्ध-बिहार बनवाया था। पाँचवे विदेशी राज्य के रूप में सर्वद्वीपदासी का उल्लेख है जिनसे तात्पर्य दक्षिण-पूर्व एशियाई हिन्दु उपनिवेशों से है। सरो प्रदेश बिहार परिवी बंगाल समुद्रगुप्त द्वारा स्थापितनया साम्राज्य सम्पूर्ण उत्तर तक विस्तृत था। मध्यप्रदेश के वनराज्यों, दक्षिणापथ के राज्यों, सीमान्त प्रान्त के प्रत्यन्तों, पंजाब, राजस्थान आदि पर भी उसकी प्रभुता स्थापित हो गयी थी। प्राय: चालीस वर्ष समुद्रगुप्त ने उदारतापूर्वक शासन किया।

समुद्रगुप्त के पश्चात् रामगुप्त अल्प समय के लिए शासक हुआ। वह कायर एवं अपने कुल के लिए कलंग था।' शकों ने उसे परास्त कर उसकी पत्नी ध्रुव देवी की मांग की। रामगुप्त ने अपनी प्रजा को सन्तुष्ट करने के लिए ध्रुव देवी को देने के निमित्त तैयार हो ने गया। चन्द्रगुप्त ने कुल गौरव की रक्षा ध्रुवदेवी की प्रार्थना पर की। वह सुन्दर और युवा था उसने रानी रूप में ध्रुव देवी के बदले रक्षको के साथ स्वयं शक स्कन्धावार में प्रवेश कर ध्रुव देवी के स्वागत के लिए नाच-रंग में डूब शक राजा का वध कर दिया और ध्रुवदेवी के साथ ही गुप्त सिंहासन पर अधिकार भी कर लिया। इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक नरेश पृथ्वीसेन प्रथम के पुत्र सदसेन द्वितीय से कर वाकाटकों को मित्र बना कर उसकी राह से मालया पहुँच शकों का घोर पराभाव किया। इसकी स्मृति में उसके सान्धिविग्रहिके मन्त्री शावीरसेन ने मिलसा के पास उदयगिरि में अभिलेख लिखवाया कि सारे जगत की विजय की इच्छा करने वाले को राजा ने उधर की यात्रा की थी। मालवा, गुजरात और सौराष्ट्र का शक्व्रत रूद्रसेन तृतीय था। महरौली के लौह स्तम्भ से प्रकट होता है कि बंगाल में शत्रुओं ने बनाकर विद्रोह का अंडा खडा किया था चन्द्रगुप्त शीघ्र बंगाल और उनको शीघ्रपंजाब की ओर बढ़ा। चन्द्र ने सिन्ध की सातों धाराओं (पंजाब की नदियों) को लांघ वाहिकों को जीता चन्द्रगुप्त ने पश्चिम की राह से बाहर जा आमू दरिया के घाटी के (वाहलीक) विदेशियों को परास्त किया। समुद्रगुप्त की विजय से जो शकादि शत्रुओं का उन्मूलन कर चन्द्रगुप्त ने देश में चिरकालिक शान्ति स्थापित कर दी। मालवा, गुजरात आदि की विजय

से सामुद्रिक व्यापार की राह खुल गयी चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल की एक विशिष्ट घटना चीनी यात्री फाहयान का भारत भ्रमण है। यह यात्री भारत में प्राय: चौदह वर्ष तक फिरता बौद्धों आचार्यों से मिलता और बौद्धों कृतियों का संग्रह तथा अध्ययन करता रहा फाहयान ने अपने भ्रमण की अवधि (399-414 ई०) में देश की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर काफी विवरण लिखे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य पिता की गद्दी पर बैठा। उसकी माता ध्रुवदेवी थी, कुमारगुप्त के शासन में कला और संस्कृति (आदि की सर्वागीण उन्नति हुई। कुमारगुप्त का साम्राज्य हिमालय से नर्मदा नदी तक उत्तर से दक्षिण और बंगाल से सौराष्ट्र (काठियावाड) तक पूरब से पश्चिम फैला हुआ था। कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य की जीवनकाल की एक महत्वपूर्ण घटना नर्मदा तीर के शमित्रों का गुप्ता पर आक्रमण था उसके पुत्र कन्दगुप्त ने युद्ध को जीता और पुष्यमित्रों से गुप्त साम्राज्य की पक्ष कर विचलित कुछ लड़गी की फिर से प्रतिष्ठा की। रगत प्रथम का एक अनुज गोविंदगुप्त था जो उत्तरी बिहार में राज्यपाल था। ने पहले ही कर लिया था। पुश्यमित्रों की विजय के बाद ही स्कन्दगुप्त को हूणों के उस प्रबल झंझावाद का सामना करना पड़ा। हूणों का प्रथम आक्रमण स्कन्दगुप्त के समय में हुआ। डा० यू०एन० राय के अनुसार इसका नेता खुशनेवाज था। जिसने ईरान के ससानी शासकों को दबाने के बाद भारत पर आक्रमण किया होगा।' यह युद्ध बड़ा भयंकर था उसकी भयंकरता का संकेत भितरी स्तम्भ लेख में हुआ है। जिसके अनुसार हूणों के साथ युद्ध क्षेत्र में उतरने पर उसकी भुजाओं के प्रताप से पृथ्वी कांप गयी तथा भीषन आदर्श (बवंडर) उठ खड़ा हुआ? स्कन्दगुप्त ने हूणों को हराकर गुप्त साम्राज्य की रक्षा की।

स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया इसके पश्चात् निम्नलिखित गुप्त राजाओं ने राज किया। पुरुगुप्त कुमारगुप्त प्रथम का पुत्र तथा स्कन्दगुप्त का सौतेला भाई था जिसने बहुत कम समय तक शासन किया। पुरुगुप्त का उत्तराधिकारी कुमारगुप्त द्वितीय हुआ जिसका सारनाथ अभिलेख गुप्त सम्वत् 154 (47350) का मिला है। वह बौद्ध धर्म का मतानुयायी था। कुमारगुप्त द्वितीय के बाद ग्रुप गुप्त ने 477ई0 से 495 ई0 तक शासन किया। बुधगुप्त ने गुप्त साम्राज्य कोसुरक्षित रखा। उसके कई अभिलेख मिले हैं। फाल्यान, ह्वेनसांग के अनुसार वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसने नालन्दा महाविहार को दान दिया था यह अन्तिम गुप्त सम्राट था जिसने सम्पूर्ण उत्तर भारत पर शासन किया।

बुधगुप्त के बाद गुप्त साम्राज्य तीन राज्यों में बंट गया थाख़ मध्य क्षेत्र में उसके पुत्र बालादित्य नरसिंहगुप्त का शासन था, मालवा में भानुगुप्त और पूर्वी प्रदेशों में बुधगुप्त के अन्य पुत्र वैन्यगुप्त ने शासन किया। वैन्यगुप्त का एक अभिलेख गुणैधर दान-पत्र 507ई0 का है जिसमें उसने बौद्ध विहार के लिए कुछ भूमि दान किया था 510 ई0 के ऐरण अभिलेख में भानुगुप्त का नाम मिलता है जिसने हूणों को पराजित किया था।

नरसिंहगुप्त बालादित्य ने 495 ई0 से 530ई0 तक शासन किया। उसने हूण नरेश मिहिरकुल को पराजित किया था। यह बौद्ध धर्म का मतानुयायी था और बौद्ध विद्वान वसुबन्धु का शिष्य था। दैन्यगुप्त के बाद नरसिंह गुप्त के पुत्र कुमारगुप्त तृतीय ने 5305054350 तक शासन "किया। दामोदरपुर लेख में उसकी उपाधि परमदैवत, परमभट्टारक, राजाधिराज मिलती है। कुमारगुप्त तृतीय के बाद उसके बाद पुत्र विष्णुगुप्त ने 54350 ने 550ई0 तक शासन किया। उसका नालन्दा से एक लेख मिला है। शुमंडल लेख से अनुमानित होता है गुप्त सत्ता किसी न किसी रूप में उड़ीसा में 570 ई० तक विद्यमान रही। गुप्तकालीन प्रशासन गुप्त सम्राट के काल में भारतवर्ष सामाजिक एवं भौतिक उन्नति की उल्लेखनीय पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। इस समय भारत वर्ष में एकछत्र शासन का प्रादुर्भाव हुआ। गुप्त काल में शान्ति एवं व्यवस्था की स्थापना हुई जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों में नगी विकास सम्भव हो रोकागुप्तों की शासन व्यवस्था की प्रशंसा करते हुये चीनी यात्री फाह्यान ने लिखा है कि भारतवर्ष के लोग समृद्ध एवं सम्पन्न थे राज्य उनके व्यक्तिगत मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था। राजा न्याय, सेना तथा दीवानी विभाग का अध्यक्ष था। महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ वह स्वयं करता था। लोग सम्राट को ईश्वर का प्रतिनिधि समझते थे। साम्राज्य के विभिन्न भागों की यथा तथ्य सूचना पाने के हेतु सम्राट दौरा किया करता था।

सम्राट शासन के कार्यों में मन्त्रिमण्डल की सहायता लेता था। गुप्तकालीन अभिलेखों में मन्त्रिमण्डल के निम्न सदस्यों के नाम मिलते हैं जिसमें हरिषेण, शाब वीरसेन, शिखर स्वामी, पृथ्वीषेण आदि थे। हरिषेण समुद्रगुप्त का सन्धिविग्रह मन्त्री था। इसका उल्लेख प्रयाग प्रशस्ति में मिलता है। इसके अतिरिक्त वह कुमारामात्य तथा महा दण्डनायक भी था। शाब चन्द्रगुप्त द्वितीय का सन्धिविग्रह

मन्त्री था जबकि शिखरस्वामी का उल्लेख करमदण्डा अभिलेख में हुआ है वह चन्द्रगुप्त द्वितीय का मंत्री तथा कुमारा मात्य था। पृथ्वीषेण कुमारगुप्त का मंत्री तथा कुमारामात्य था। सम्राट विद्वान एवं पवित्र आचरण वाले व्यक्तियों को मंत्री बनाता था।"

केन्द्रीय कर्मचारी- डा0 अल्तेकर ने अभिलेखों के आधार पर कतिपय केन्द्रीय. कर्मचारियों की एक तालिका प्रस्तुत की है जिसके अन्तर्गत सर्वाध्यक्ष, प्रतिहार अथवा महाप्रतिहार तथा कुमारामात्य सम्मिलित थे। राजा के नीचे प्रधान सेनापति हुआ करता था जिसे महासेनापति अथवा महाददायक कहा जाता था। सेना कई सेनाओं में विभाजित थी उदाहरणार्थ- सेना अश्वसेना और पदाति पाज सेना के प्रधान अध्यक्ष को महामीपति कहा जाता था। जबकि अश्व सेना के अध्यक्ष को महाश्वपति कहा जाता था। सैनिकों के द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले शस्त्रों का उल्लेख प्रयाग प्रशस्ति में मिलता है। उदाहरणार्थ फरसा (परशु), वाण (सर), शंकु, शक्ति, प्रसासी, तोमर, भिलिंदपाल, नाराच, तथा वैतस्तिक।

पुलिस- शासन गुप्तों के शासन में अधिक सुदृढ़ था। पुलिस विभाग के सबसे बड़े कर्मचारी को दण्डपाशिक कहते थे। डा० अल्तेकर का कथन है कि यह कर्मचारी आधुनिक जिला पुलिस-सुपरिटेन्डेन्ट के समकक्ष। पुलिस विभाग के साधारण कर्मचारियों को चाट तथा 'भाट'। अभिज्ञान शाकुन्तलम तथा मृच्छकटिकम में पहरेदार को रक्षिन् कहा गया है। फाहयान लिखता है कि उस समय चोरी का कोई भय नहीं था।

शासन की सुविधा के निमित्त साम्राज्य का विभाजन प्रान्तों में किया गया था। प्रान्त को देश अथवा मुक्ति कहा जाता था। इस समय के प्रान्तों में सौराष्ट्र पश्चिम मालवा (अवन्ति पूर्वी मालवा (ए) तीरमुक्ति (उतारी बिहार (उत्तरी बंगाल) वर्धा (पश्चिमी बंगाल) तथा मगध उल्लेखनीय है। राज्यपाल को उपरिक अथवा उपरिकमहाराज' कहा जाता था। सीमा प्रान्त के राज्यपालों के लिए गोप्ता शब्द अभिलेखों में आता है। अभिलेखों में कुछ राज्यपालों के नाम इस प्रकार आते हैं। गोविन्द गुप्त जो तिरभुक्ति प्रान्त का राज्यपाल था। घटोत्कक्षगुप्त कुमारगुप्त का पुत्र तथा पूर्वी मालवा का राज्यपाल था। पर्णदत्त स्कन्द गुप्त के काल में सौराष्ट्र का राज्यपाल था।

प्रान्तों का वर्गीकरण जनपदों में किया गया था। जिन्हें विषय कहते थे जनपद के सबसे प्रधान अधिकारी को विषयपति कहा जाता था उसकी नियुक्ति राज्यपाल स्वयं करता था जिलाधीश (विषयपत्ति) की सहायता के लिए एक समिति होती थी जिसके बार सदस्य हुआ करते थे। 1 नगरसेट (पुर के पूजीपतियों का मुखिया) 2 सार्थवाह (जिले के व्यापारियों का प्रधान) 3. प्रथम कुलिक (व्यावसासियों का प्रतिनिधि) तथा 4. प्रथम कायस्थ (लेखक) जनपद का एक प्रधान नगर होता था जिसे अनि कहते थे। नगर का शासन राजा की ओर से नियुक्त पदाधिकारियों तथा स्थानीय सभा समितियों एवं समुदायों द्वारा सम्पन था। पदाधिकारियों में नगर प्रमुख उल्लेखनीयहै। यह अवस्था मौर्यों के काल से ही चली आ रही थी। नगर प्रमुख को कौटिल्य ने नागरक कहा है। जूनागढ़ अभिलेख में चक्रपालित का नाम उल्लेख हुआ है जो सौराष्ट्र के पुर गिरि नगर का नगरपति स्कन्दगुप्तकालीन प्रमुख अधिकारी था। इस लेख के अनुसार उसके दो प्रधान कर्तव्य थे 1 नगर की रक्षा 2. दुष्टों का दमन।

नगरशासन के लिए एक सभा होती थी जिसे प्राचीन ग्रन्थों में पौर कहा गया है 'रामायण' खारबेल के लेख तथा दिव्यावदान' एवं कतिपय अन्य ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। बृहस्पति के अनुसार यह नगर में शान्तिक कर्म अर्थात् शान्ति की व्यवस्था करती थी। इसके अतिरिक्त पौष्टिक कर्म अर्थात् नागरिकों के हित में कार्य इसका कर्तव्य समझा जाता था। नगर सभा के अन्य सार्वजनिक कार्यो में सभागृह, सरोवर मन्दिर एवं विश्रामालय का निर्माण तथा अनाथ एवं दरिद्रता की सहायता उल्लेखनीय है। नालन्दा से एक मुद्रा मिली है। जिस पर पुरिका शब्द उत्कीर्ण मिलता है।" यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नगर सभा की एक मुद्रा भी होती थी. जिससे इस सभा के विशिष्ट लेखमुद्रित किये जाते थे।

पारस्परिक विवादों का निर्णय बहुधा स्थानीय समितियों एवं समुदायों द्वारा किया जाता था। इनमें तीन विशेष रूप से उल्लेखनीय है 1 श्रेणी 2 पूग तथा 3 कुल इन समितियों को अपने-अपने क्षेत्रों में निर्णय देने का अधिकार राज्य की ओर से प्राप्त था।' इन समितियों का प्रधान निर्णय देने का काम करते थे। व्यापारी श्रेष्ठी कहा जाता था। 'पूंग' नगर में रहने वाले विभिन्न जातियों की समितियों को कहा जाता था। सम्भवत: एक ही परिवार के सदस्यों के समूह को कुल कहते थे। इन विभिन्न धर्मो को राज्य की ओर से मान्यता प्राप्त थी। यदि कुल, जाति तथा श्रेणी के सदस्य अपने धर्म का पालन नहीं करते थे तो राज्य उन्हें दण्ड देता था।

ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम शासन का कार्य प्रधानत: ग्राम सभा के द्वारा सम्पादित होता था। ग्राम वासियों के लाभ निमित्त इसे विविध चेष्टाएं करनी पड़ती थी। उदाहरणार्थ- सभा गृह का निर्माण, रक्षा-व्यवस्था, स्वच्छता व्यवस्था, सरोवर निर्माण तथा असहाय व्यक्तियों के भोजन एवं वस्त्र का प्रबन्ध। ग्राम सभा का सबसे प्रधान सदस्यग्रामिक' (मुखिया) होता था। अन्य सदस्यों को महत्तर कहा जाता था। गुप्त कालीन अभिलेखों में ग्राम सभा के लिए पंचमण्डली तथा ग्राम जनपद शब्द आते हैं।'

नगर में न्याय शासन का कार्य प्रधानत: राजकीय न्यायालयों के द्वारा किया जाता था पृच्छिकटिक में नगर न्यायालय को 'अधिकरण- मण्डप न्यायाधीश को 'अधिकर्णिक कहा गया है। अशोककालीन धौली के शिलालेख में नगर-न्यायाधीश को नगल-वियोहालक (नगर व्यवहारक) कहा गया है। नगर न्यायाधीश के पद पर योग्य व्यक्ति की नियुक्ति की जाती थी अधिकर्णिक की सहायता के लिए कुछ और भी कर्मचारी होते थे। उदाहरणार्थ- इसे मंत्रणा प्रदान करने वाले राजपुरूष, दूत, गुप्तचर तथा मुहर्रिर आदि।

न्यायालय में प्रमाण भी लिया जाता था बिना प्रमाण के निर्णय ठीक नहीं माना जाता था।' इसके लिए गवाही ली जाती थी सभी प्रकार के मनुष्यों की गवाही ठीक नहीं मानीजाती थी केवल तपस्वी, दानशील, कुलीन सत्यवादी ऋजु पुत्रवान, धर्मप्रधान तथा धनिक व्यक्तियों का प्रमाण सही माना जाता था।' न्यायालय में शपथ ग्रहण की भी प्रथा प्रचलित थी। ब्राह्मणों को सत्य क्षत्रिय को वाहन या आयुध वैश्य को गऊ. बीज एवं सुवर्ण तथा शूद को सब पापों की शपथ लेनी पड़ती थी।

शोधग्रंथ-

- के०सी० श्रीवास्तव प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, युनाइटेड बुक डिपो, 21 यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।
- रतिभानु सिंह, नाहर प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, के०एम० एजेंसी प्रा०लि० 28. नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली।
- डॉ०, वासुदेवशरण अग्रवाल प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
- डॉ० सुशील कुमार पाण्डेय प्राचीन मृण्मयी मूर्तिकला, संजय बुक सेन्टर गोलघर वाराणसी-
- श्रीमती माधुरी अग्रवाल, प्राचीन भारतीय सिक्कों और मोहरों पर ब्राह्मण देवी-देवता और उनके प्रतीक रामानन्द विद्याभवन, जे-3/227 डी०डी० ए० फ्लेट्स कालकाजी, नई दिल्ली।
- डॉ० शिवस्वरूप सहाय प्राचीन भारतीय धर्म, मोतीलाल बनारसीदास, बंगली रोड, जवाहरनगर दिल्ली, 1996.
- मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1958.
- वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय कला, पृथिवी प्रकाशन, बी0 1954, अमेठी कोठी।
- पी०बी० काणे धर्मशास्त्र का इतिहास, पूना 1941-53
- उदयनारायण राय, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग,
- गुप्त साम्राज्य परमेश्वरी लाल गुप्त, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी, द्वितीय सं0 1991

प्राचीनकाल में प्रमुख महाजनपदो की शासन व्यवस्था का अध्ययन

संदीप कुमार

(शोधार्थी)सल्तनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर, जौनपुर,
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर

सारांश

आरंभिक भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ई.पू. को एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी काल माना जाता है। इस काल को प्राय: आरंभिक राज्यों, नगरों, लोहे के बढ़ते प्रयोग और सिक्कों के विकास के साथ जोड़ा जाता है। इसी काल में बौद्ध तथा जैन सहित विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का विकास हुआ। बौद्ध और जैन धर्म (अध्याय 4) के आरंभिक ग्रंथों में महाजनपद नाम से सोलह राज्यों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि महाजनपदों के नाम की सूची इन ग्रंथों में एकसमान नहीं है लेकिन वज्जि, मगध, कोशल, कुरु, पांचाल, गांधार और अवन्ति जैसे नाम प्राय: मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि उक्त महाजनपद सबसे महत्वपूर्ण महाजनपदों में गिने जाते होंगे।

महाजनपदों की शासन व्यवस्था पूर्णता राजा के अधीन थी, उसके परामर्श हेतु महामात्य या पुरोहित का सहयोग लिया जाता था। महाजनपदों में शासन की विस्तारवादी नीति एवं प्रभुत्व हेतु संघर्ष के परिणामस्वरूप कुछ महाजनपदों का अस्तित्व क्षीण हो गया और वे अधिकृत कर लिये गये तथा कुछ राज्यों से बलि या कर वसूल किया जाने लगा। इस समय चार महाजनपदों के प्रशासनिक एवं राजनैतिक शक्ति उत्कर्ष पर थी। छठी शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्द्ध तक आते-आते हमें उत्तर भारत की राजनीति में चार शक्तिशाली राज्यों का प्रभुत्व दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सोलह महाजनपदों की पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता एवं संघर्ष के फलस्वरूप अनेक छोटे जनपदों का बड़े राज्यों में विलय हो गया और इस प्रकार केवल चार बड़े राजतन्त्र ही प्रभुत्व में रहे अन्य महाजनपद या तो इनकी विस्तारवादी नीति के शिकार। हुए अथवा के अत्यन्त महत्वहीन हो गये। महात्मा गौतम बुद्ध के समय में इन्हीं चार राजतन्त्रों का उत्तर भारत की राजनीति में बोलवाला था। ये राज्य थे- 1. कोशल. 2. वत्स, 3. अवन्ति और 4. मगध।

कोशलः-

कोशल उत्तर पूर्व भारत का प्रमुख राज्य था जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी। महात्मा बुद्ध के पूर्व ही कंस नामक राजा ने काशी राज्य को जीता था। जातक ग्रंथो में कंस को बारानसिग्गहो अर्थात बनारस पर अधिकार करने वाला कहा गया है। 4 कंस का पुत्र तथा उत्तराधिकारी महाकोशल हुआ। उसके समय में कोशल का काशी पर पूर्ण अधिकार हो गया था। काशी के मिल जाने से कोशल का प्रभुत्व अत्याधिक बढ़ गया। काशी व्यापार तथा वस्त्रोद्योग का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था और तक्षशिला सौवीर तथा अन्य दूरवर्ती स्थानों के साथ उसका व्यापारिक सम्बन्ध था। इस राज्य के मिल जाने से कोशल की राजनैतिक तथा आर्थिक समृद्धि बढ़ गयीं। पूर्व में उसका प्रतिद्वन्दी राज्य मगध था। कोशल तथा मगध के बीच वैमनस्य का मुख्य कारण, काशी का राज्य था जिसकी सीमायें दोनो ही राज्यों के स्पर्श करती थीं। बुद्ध के समय कोशल का राजा प्रसेनजित था वह महाकोशल का पुत्र था उसने मगध को संतुष्ट करने के लिये अपनी बहन महाकोशला अथवा कोशलादेवी का विवाह मगध नरेश बिम्बिसार के साथ कर दिया तथा दहेज में काशी अथवा उसके कुछ ग्राम दिये।

अत: बिम्बिसार के समय तक इन दोनों राज्यों में मैत्री सम्बन्ध कायम रहा। परन्तु बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु के समय में कोशल और मगध में पुन: संघर्ष छिड़ा। संयुक्त निकाय में प्रसेनजित तथा अजातशत्रु के संघर्ष का विवरण मिलता है। ज्ञात होता है कि प्रथम युद्ध में अजातशत्रु ने प्रसेनजित को परास्त किया तथा उसने भाग कर श्रावस्ती में शरण ली किन्तु दूसरी बार अजातशत्रु पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया। कालान्तर में प्रसेनजित ने मगध से संधि कर लेना ही श्रेयस्कर समझा और उसने अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह अजातशत्रु से कर दिया। काशी के ग्राम जो प्रसेनजित ने बिम्बिसार की मृत्यु के पश्चात वापस लिये थे पुन: अजातशत्रु को सौंप दिये।

प्रसेनजित के समय में कोशल का राज्य अपने उत्कर्ष पर था। काशी के अतिरिक्त उसका कपिलवस्तु के शाक्य, केसपुत्र के कलाम, पावा और कुशीनगर के मल्ल, रामगाम के कोलीय, पिप्पलिवन के मोरिय आदि गणराज्यों पर भी अधिकार था। बौद्ध ग्रन्थ संयुक्त निकाय के अनुसार वह पांच राजाओं के एक गुट का नेतृत्व करता था। प्रसेनजित महात्मा बुद्ध एवं उसके मत के प्रति श्रद्धालु था। बुद्ध उसकी राजधानी में प्राय: जाते तथा विश्राम करते थे।

प्रसेनजित का पुत्र तथा उत्तराधिकारी विड्डभ हुआ। संयुक्त निकाय से पता चलता है कि प्रसेनजित के मंत्री दीघचारण ने विड्डभ के साथ मिलकर कोशल नरेश के विरुद्ध षड्यंत्र किया। विड्डभ ने अपने पिता की अनुपस्थिति में राजसत्ता परअधिकार कर लिया। प्रसेनजित ने भागकर मगध राज्य में शरण ली किन्तु राजगृह नगर के समीप पहुँचने पर थकान से उसकी मृत्यु हो गयी। विड्डग ने कपिलवस्तु के शाक्यों पर आक्रमण किया। संघर्ष का कारण बौद्ध साहित्य में यह बताया कि कोशलनरेश प्रसेनजित महात्मा बुद्ध के कुल में सम्बन्ध स्थापित करने को काफी उत्सुक था। इस उददेश्य से उसने शाक्यों से यह मांग कि वे अपने वंश की एक कन्या का विवाह उसके साथ कर दे। शाक्यों का यह प्रस्ताव अपने वंश की मर्यादा के प्रतिकूल लगा किन्तु वे कोशल नरेश को रूष्ट भी नहीं करना चाहते थे। अत: उन्होंने छल से वासमखात्तिया नामक एक दासी की पुत्री को प्रसेनजित के पास राजकुमारी बनाकर भेज दिया।

प्रसेनजित ने उससे विवाह कर लिया। विड्डम उसी का पुत्र था। जब उसे इस छल का पता लगा तब वह बड़ा कुपित हुआ तथा वह शाक्यों से बदला लेने का निश्चय किया। कहा जाता है कि वह एक बार वह स्वयं शाक्य के राज्य में गया था तो शाक्यों ने उसे दासी पुत्र कहकर अपमान किया था। इसी अपमान का बदला लेने के लिये राजा बनते ही उसने शाक्यों पर आक्रमण कर दिया। वे पराजित हुए तथा नगर के पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का भीषण संहार किया गया। उनमें से अनेक ने भागकर अपनी जान बचाई। किन्तु विड्डम को अपने दुष्कृत्यों का फल तुरन्त मिला। शाक्यों के संहार के बाद जब वह अपनी पूरी सेना के साथ वापस लौट रहा था तो अचिरावती राप्ती नदी की बाढ़ में अपनी पूरी सेना के साथ नष्ट हो गया। रिज डेविडस ने इस कथा की प्रमाणिकता को स्वीकार किया है। यह घटना महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ पहले की है। विड्डम के उत्तराधिकारी के विषय में उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। लगता है उसके साथ ही कोशल का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया तथा मगध में मिला लिया गया।

वत्स:

इलाहाबाद तथा बांदा जनपदों की भूमि पर स्थित वत्स भी गौतम युद्ध के समय का एक प्रमुख राजतन्त्र था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। इस समय यहां पौरववंशी राजा उदयन राज्य कर रहा था। विनयपिटक में उसके पिता का नाम परंतप तथा पुत्र का नाम बोधकुमार मिलता है। वत्स का पड़ोसी राज्य अवन्ति था। दोनो ही साम्राज्यवादी थे। ऐसी स्थिति में दोनों के बीच संघर्ष छिड़ना अवश्यंभावी था। एक बार हाथियों का शिकार करते हुए उदयन को अवन्तिराज प्रद्योत के सैनिकों ने बन्दी बना लिया। कारागार में उसका प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता से प्रेम हो गया तथा वह वासदत्ता का अपहरण कर अपनी राजधानी कौशाम्बी वापस लौट आया। बाद में प्रद्योत ने विवाह की अनुमति दे दी। इस प्रकार वत्स और अविन्त के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गया।

सोमदेव के कथासरित्सागर तथा श्रीहर्ष की प्रियदर्शिका से पता चलता है कि उदयन ने कलिंग को जीता तथा अपने श्वसुर दृढ़वर्मन को अंग की गददी पर आसीन किया था परन्तु इन विवरणों की सत्यता संदेहास्पद है। यद्यपि उदयन के साम्राज्य विस्तार का सही अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि उसका साम्राज्य गंगा यमुना के दक्षिण पश्चिम में अविन्त की सीमा तक विस्तृत था। सुमसुमारागिरि के भग्ग गणराज्य के लोग उसकी आधीनता स्वीकार करते थे। जातक ग्रन्थों के अनुसार

भग्ग राज्य में उसका पुत्र बोधि निवास करता था। भाग के अनुसार उदयन का विवाह मगध के राजा दर्शक की बहन पद्मावती के साथ हुआ था। इससे उदयन मगध का भी मित्र बन गया तथा अब वह मगध के विरुद्ध अवन्ति की सहायता नहीं कर सकता था।

उदयन प्रारम्भ में बौद्धमतानुयायी नहीं था किन्तु बाद में प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु पिन्डोल ने उसे बौद्ध मत में दीक्षित किया। कौशाम्बी में इस समय कई मठ थे जिसमें घोषितराम सर्वप्रमुख था। इसका निर्माण श्रेष्ठि घोषित ने करवाया था। बुद्ध स्वयं मठो में जाते तथा विश्राम करते थे। बौद्ध धर्म का केन्द्र होने के साथ-साथ कौशाम्बी प्रसिद्ध नगर भी था। कौशाम्बी की खुदाइयों से उदयन के राजप्रसाद के अवशेष मिलते हैं जिससे उसकी ऐतिहासिकता की पुष्टि हो जाती है।" उदयन के बाद वत्स राज्य का इतिहास अन्धकार पूर्ण है। लगता है उसके साथ की इसकी स्वतंत्रता का विलोप हो गया तथा यह राज्य अवन्ति के आधीन चला गया।

अवन्तिः-

यह पश्चिमी भारत का प्रमुख राजतन्त्र था। गौतम बुद्ध के समय में यहां का राजा प्रद्योत था। वह पुलिक का पुत्र था। विष्णुपुराण से पता चलता है कि पुलिक बार्हदय वंश का अन्तिम राजा रिपुंजय का अमात्य था उसने अपने स्वामी को हटाकर अपने पुत्र को राजा बनाया। उसके इस कार्य का अनुमोदन समस्त क्षत्रियों ने बिना किसी विरोध के किया और प्रद्योत को राजा स्वीकार कर लिया। उसकी कठोर सैनिक नीतियों के कारण महावग्ग जातक में उसे चण्ड प्रद्योत कहा गया है। वह एक महत्वाकांक्षी शासक था। उसके समय में सम्पूर्ण मालवा तथा पूर्व एवं दक्षिण के कुछ प्रदेश अवन्ति राज्य के आधीन हो गये थे। आर्थिक दृष्टि से यह राज्य अत्यन्त समृद्ध था। यहां का लौह उद्योग विकसित अवस्था में था। अत: यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि प्रद्योत के पास उत्तम कोटि के लोहे के अस्त्र-शस्त्र रहे होगें जिनके बल पर उसने मगध की साम्राज्यवादी नीति का दीर्घकाल तक प्रतिरोध किया। विंबिसार के समय मेंमगध के साथ प्रद्योत के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे।

ज्ञात होता है कि जब एक बार प्रद्योत पाण्डु रोग से ग्रसित हो गया तो बिम्बिसार ने अपने राजवैद्य जीवक को उसके उपचार के लिये भेजा था। किन्तु अजातशत्रु के समय में दोनों राज्यों का मैत्री सम्बन्ध जाता रहा। मज्झिम निकाय से पता चलता है कि प्रद्योत के आक्रमण के भय से मगध नरेश अजातशत्रु अपनी राजधानी का दुर्गीकरण करवा रहा था। किन्तु दोनों राजाओं के बीच कोई प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं हो पाया। पुराणों में कहा गया है कि वह पड़ोसी राजाओं को अपने आधीन रखेगा तथा अच्छी नीति का नहीं होगा। वह नरोत्तम 23 वर्षो तक राज्य करेगा। प्रद्योत बाद में अपने बौद्ध पुरोहित महाकच्चायन के प्रभाव से बौद्ध बन गया। अवन्ति बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र बन गया। वहां अनेक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु तथा भिक्षुणियां निवास करते थे।

प्रद्योत के बाद उसका पुत्र पालक अवन्ति का राजा हुआ परिशिष्टापर्यन से पता चलता है कि पालक ने वत्स राज्य पर आक्रमण कर उसकी राजधानी कौशाम्बी पर अधिकार कर लिया था। सम्भवत: उसने अपने पुत्र विशाखयूप को कौशाम्बी का उपराजा बनाया था। पालक ने 24 वर्षो तक राज्य किया।" उसके बाद विशाखयूप अजक तथा नन्दिवर्धन ने बारी बारी से राजा हुए जिन्होंने क्रमश: 50, 21 तथा 20 वर्षो तक राज्य किया। इन सबका अन्त शिशुनाग ने किया।

मगधः-

युद्धकालीन राजतन्त्रों में मगध सर्वाधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। आगे "चलकर सब राज्य इसी में मिल गये तथा एक प्रकार से मगध का इतिहास पूरे भारत का इतिहास बना। ऐतिहासिक काल में मगध साम्राज्य की महत्ता का वास्तविक संस्थापक विविसार था वह महात्मा बुद्ध का मित्र एवं संरक्षक था। बिबिसार एकमहान विजेता था। उसने अपने पड़ोसी राज्य अंग पर आक्रमण कर उसे जीता तथा अपने साम्राज्य में मिला लिया। बिम्बिसार वृद्धावस्था में अपने पुत्र अजातशत्रु द्वारा मारा गया। अजातशत्रु भी घोर सामाज्यवादी था। उसने वज्जिसंघ को परास्त कर उसका राज्य मगध में मिला लिया। इसके पश्चात उसने मल्लों के संघ की विजय की। उसके समय में मगध राज्य का अत्याधिक उत्कर्ष हुआ।

उक्त प्रमुख महाजनपदो से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि महाजनपदकालीन अन्तर राज्य सम्बन्ध की स्थिति विस्तारवादी युद्ध व संघर्ष पर केन्द्रित थी। यहां के शासकों द्वारा परस्पर युद्ध, सन्धि एवं मैत्री तथा वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा अपने पड़ोसी राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त गुप्तचर व्यवस्था, दौत्य कर्म एवं विभिन्न कूटनीतिक माध्यमों से पड़ोसी राज्यों पर अपना प्रभाव रखते थे। महाजनपदों के मध्य युद्ध एवं मैत्री सम्बन्ध निर्धारित नीतियों के अन्तर्गत होता था, जिसका अनुपालन

दोनों राज्यों को करना होता था। सन्धि नियमों का उल्लघन युद्ध के लिये चुनौती माना जाता था, जिसमें अगला राज्य युद्ध करने के लिए स्वतंत्र होता था। महाजनपदों में वैवाहिक सम्बन्ध अन्तर राज्य सुरक्षा एवं सम्बन्ध की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण उपाय था प्रत्येक महाजनीतिक एवं बुद्धिमान शासकों ने वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा अपने राज्य को सुरक्षित बनाने का उपाय अपनाया। करद राज्यों के साथ सम्बन्ध भी अहस्तक्षेपवादी था। जब तक वे नियमित कर एवं शर्तों का अनुपालन कारते थे, उन पर आक्रमण या युद्ध की नीति नहीं अपनाई जाती थीं।

शोध ग्रन्थ-

- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद युनाईटेड बुक डिपो, पृ० सं०-115
- पार्टिजर, डायनेस्टीज आफ द कलि एज पृ०सं०-18-19
- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद, बुनाईटेड बुक डिपो, पृ० सं०-140-144
- राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एन्सियन्ट इण्डिया, पृ०सं० 117
- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास इलाहाबाद युनाईटेड बुक डिपो. पृ० सं०-153
- हर्ष चरित काकवर्ण शिशुनागिः नगरोपकण्ठे निचकृते निस्त्रिसेन पार्टिजर, डायनेस्टीज आफ द कलि एज, पृ०सं०-20-21
- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास. इलाहाबाद, युनाईटेड बुक डिपो, पृ० सं०-74
- ऋग्वेद, 1/8/26
- डॉ० शिव स्वरूप सहाय, प्राचीन भारत का इतिहास एवं विधितंत्र, पृ०सं० 224
- वासुदेव शरण अग्रवाल पाणिनीकालीन भारत वाराणसी संवत् 2012
- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास इलाहाबाद, युनाईटेड बुक डिपो, 50 सं०109
- राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एन्सियन्ट इण्डिया, पृ०सं० 960
- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद, युनाईटेड बुक डिपो, पृ० स०-110
- हिन्दू सिविलाइजेशन पृ०सं० 198
- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद युनाईटेड बुक डिपो. पृ० स०-110-111
- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद, युनाईटेड बुक डिपो, पृ० सं०-457-458
- राधाकुमुद मुखर्जी, द गुप्त इम्पायर, पृ०सं०-121
- सुधाकर चट्टोपाध्याय अर्ली हिस्ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया, पृ०सं०-175
- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद युनाईटेड बुक डिपो, पृ० सं०-470-472
- एस०के० मैती, इकोनामिक लाइफ ऑफ नार्दन इण्डिया इन द गुप्त पीरियड, (पृ०स०) 135-138
- के०सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास, इलाहाबाद, युनाईटेड बुक डिपो, पृ० सं०-473

जीवनीपरक उपन्यासो की विकास यात्रा

डॉ० दीपाली चिंचोलकर

विद्वानो ने एतिहासिक उपन्यासो की प्रवृत्ति शिल्प और शैली के विकास के आधार पर हिन्दी एतिहासिक उपन्यास साहित्य धारा को तीन कालों में बांटा है। उसी को दृष्टिगत रखते हुए जीवनीपरक उपन्यास साहित्य धारा को भी हम तीन कालों में बांट सकते है।

(क्योंकि एतिहासिक उपन्यास के प्रारंभ के साथ ही जीवनीपरक उपन्यास का प्रारंभ है)

(1) प्रथम उत्थान काल - सन् (1890 ई. से 1915 ई. तक)

(2) द्वितीय उत्थान काल - सन् (1916 ई. से 1928 ई. तक)

(3) तृतीय उत्थान काल - सन् (1929 ई. से आज तक)

प्रथम उत्थान:- जीवनीपरक उपन्यास का जन्म हम किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों को मान सकते हैं इन्होने कई एतिहासिक उपन्यास लिखे है जिनमें से अधिकांश का नामकरण किसी पात्र विशेष के नाम पर ही किया गया है। मात्र इतिहास से लिये गये है। किन्तु उनको जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है। या उनके चारो ओर चित्र विचित्र घटनाओं का जाल बुना है। उसमें काल्पनिकता की ही प्रधानता है। उन्होने लिखा भी है ‘‘हमने अपने बनाये उपन्यासों में ऐतिहासिक घटना को गौण और अपनी कल्पना को मुख्य रखा है और कहीं-कहीं तो कल्पना के आगे इतिहास को दूर से ही नमस्कार कर दिया।’’[1]

ऐतिहासिक उपन्यासों में मूल पात्र और प्रधान घटनाएं ऐतिहासिक होती है पर पात्रों के आंतरिक जीवन, उनकी भावना और विचारों के संसार का जो चित्र प्रस्तुत किया जाता है, वह कल्पना प्रस्तुत होते हुए भी यर्थात् होता है। गोस्वामी जी की ऐतिहासिक कथाओं में भी तत्कालीन जीवन तथा पात्रों के भाव जगत का चित्र स्पष्ट नहीं होता। इसके विपरीत उनमें अंत: पूरीय षडयंत्रो काम व्यापारो साहसिक कार्यो तथा तिलस्मी ढंग की गुफाओं में विचरण करने का भ्रम नहीं होता। गोस्वामीजी के सभी उपन्यास मुख्यत: प्रेमकथाएँ है। पात्रो के नाम ऐतिहासिक है. पर मूलकथाओं का इतिहास से सम्बंध नहीं के बराबर है।”[2]

01. तारा: किशोरीलाल गोस्वामी भूमिका

02. ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार: डॉ. गोपीनाथ तिवारी पृ. 99

फिर भी इनमें कुछ उपन्यासो में जीवनीपरक उपन्यासो के सूत्र मिलते है सर्वप्रथम इस दिशा में ‘‘कनक कुसुम व मस्तानी” (1903) का उल्लेख किया जा सकता है। यद्यपि इस उपन्यास में भी गोस्वामीजी का उद्देश्य प्रेम कथा कहना है किन्तु बाजीराव की अपेक्षा मस्तानी ही इसमें अधिक उभर कर हमारे सामने आई है। उसका चित्रण लेखक ने अद्‌भुत आत्मबल से सम्पन्न नायिका के रूप में किया है। बाजीराव को पाने के लिए वह अद्‌भुत साहस के काम लेती है संपूर्ण औपन्यासिक चित्र उसी की जीवन रेखाओं पर आधारित है।

गोस्वामीजी द्वारा लिखित ‘‘रजिया बेगम व रंगमहल में हलाहल” (1904ई) दूसरा जीवनीपरक उपन्यास है। इस उपन्यास में जीवनीपरक उपन्यास के तत्व अधिक स्पष्ट रूप से हमारे सामने आते है इसमें रजिया बेगम के व्यक्तिगत जीवन की कहानी है। उपन्यास के कथानक को इतिहास से समर्थन प्राप्त है। अपने अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास में भी उपन्यासकार की दृष्टि उस समय घटनाचक्रो या हासविलास विषय वासना का चित्रण करने की ओर रही है किंतु आदि से अंत उन्होंने बेगम रजिया। के जीवन पर भी अपनी दृष्टि रखी है। उसका व्यक्तित्व पूरी तरह से उभरकर हमारे सामने आता है।

गंगाप्रसाद गुप्त इस युग के दूसरे जीवनीपरक उपन्यासकार है। इनके द्वारा सन् 1904 में ही ''हम्मीर" नामक उपन्यास लिखा गया, जिसमें चित्तौड़ वीर हम्मीर के अपने खोये राज्य की प्राप्ति के लिए किए गए प्रयत्नों तथा दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी से हुए उसके युद्धो का वर्णन है। हम्मीर अपनी कूटनीति तथा अपनी पत्नी की सहायता से इसमें सफल होता है। संपूर्ण उपन्यास ''हम्मीर के इर्द गिर्द घूमता है। ''हम्मीर में कथानक से अधिक हम्मीर के जीवन पर ध्यान दिया गया है.....वास्तव में यह उपन्यास नहीं........ जीवन चरित्र है।"[1]'

वस्तुत: लेखक का ध्यान रोचकता निर्वाह की ओर बराबर बना रहा है। तिवारीजी को यह उपन्यास केवल जीवन चरित्र ही क्यों लगा इस संबंध में श्री गंगाप्रसाद गुप्त का कथन दृष्टव्य है-

''कहानी ही उपन्यास का मूल होने पर भी उसकी घटना सत्यघटना की भाँति सत्य प्रतीत होने चाहिए उसके चरित्र वास्तविक चरित्रो की भाँति वास्तविक प्रतीत होन चाहिए।''[2]

01. ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार: डॉ. गोपीनाथ तिवारी पृ. 99

02. हम्मीर: गंगाप्रसाद गुप्त भूमिका

सत्य की रक्षा हेतु ही इस उपन्यास में हम्मीर के जीवन से सम्बंधित तथ्यो की प्रधानता है। गुप्तजी के नूरजहाँ उपन्यास में नूरजहाँ की जीवन गाया है।

बाबू जयरामदास गुप्त इस युग के तीसरे जीवनीपरक उपन्यासकार है। चाँदबीबी व वीरमणी (1909) तथा रोशनआरा (1910 ई.) नामक उपन्यासों को हम जीवनीपरक कह सकते है। प्रथम उपन्यास में अहमदनगर की वीर माल्लिका चांदबीबी की वीरता तथा शौर्य का चित्रण है तो दूसरा उपन्यास शाहजहाँ की दूसरी बेटी रोशनआरा से संबंधित है।

अन्य जीवनीपरक उपन्यास:- प्रथम उत्थानकाल के उपर्युक्त तीन प्रमुख उपन्यासकारो के पद चिन्हों पर चलकर अन्य कई उपन्यासकारो ने इतिहास से ''पात्र विशेष को लेकर ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन किया। इनमें से कुछ में हमें उपन्यासकारों की दृष्टि पात्र विशेष पर निबद्ध दिखाई पडती है किन्तु फिर भी अपनी अन्य विशेषताओं के कारण उपन्यासो को हम विशुद्ध जीवनीपरक उपन्यास नहीं कह सकते। बलदेवप्रसाद मिश्र के ''पृथ्वीराज चौहान' (1920 ई.), बलभद्रसिंह के महाराष्ट्र के अन्यतमवीर शिवाजी से संबंधित दो उपन्यास सौंदर्यकुसुम व महाराष्ट्र उदय (1910ई.) तथा सौदर्य प्रभा व अदभूत अंगुठी (1911 ई.) मथुराप्रसाद शर्माकृत नूरजहाँ (1905) श्यामसुंदरलाल कृत ''नूरजहाँ" जैनेन्द्र किशोर कृत गुलेनार (1906) जयरामलाल रस्तोगीकृत "ताजमहल" (1911 ई.) उपन्यासो में जीवनीपरकता देखी जा सकती है।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है इन उपन्यासो में मनोरंजकता पर दृष्टि रखने के कारण इनमें कुतूहलवर्द्धक काल्पनिक घटनाओं का ही विन्यास मानवीय जीवन के आंतरिक सत्यो की खोज एतिहासिक वातावरण महान चरित्रो का चित्रण तथा उदात्त भावनाओं के प्रदर्शन का प्रयत्न लेशमात्र भी नहीं है। कल्पना का प्रयोग अधिक है मुख्य विषय की ओर दृष्टि कम है। उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य था मनोरंजन। तद्नुसार उनकी दृष्टि अपने नायक या नायिका के व्यक्तित्व के उसी पक्ष पर टिकी हुई हैं, जो पाठकों को मनोरंजन की सामग्री दे सके। यदि वह रजिया का चित्रण करता है तो इसलिए नहीं कि रजिया की चरित्रगत विशेषताओं या उसके व्यक्तित्व से प्रभावित है, वरन् उसके प्रेम प्रसंगों को वह पाठकों के सामने उपस्थित करना चाहता है। इसी प्रयत्न में अनजाने ही या आवश्यकतानुसार उसके व्यक्ति के अन्य पक्षों का उद्घाटन हो गया है। यह बात इस काल में लिखे गए समस्त जीवनीपरक उपन्यासो पर लागू होती है।

''व्यक्तित्व निर्माण की कला अज्ञात थी। पात्रो को न तो विकास स्वातंत्र्यही मिला न उनका संपूर्ण स्वरूप ही सामने आ सका।"[1]

यद्यपि इस युग में लिखे गये उपन्यासों को विशुद्ध रूप से जीवनीपरक नहीं। कहा जा सकता किंतु कुछ तत्व अवश्य मिलते है व्यक्ति चित्रण की ओर कुछ झुकाव अवश्य ही दिखलाई पड़ता है। इस प्रवृत्ति का विकास आगामी युग में हुआ, जिसके लिये इन उपन्यासों ने पृष्ठभूमि के निर्माण का कार्य किया। शैली यद्यपि कसावट रहित है, रोचकता का सर्वथा अभाव है, किंतु पात्र विशेष का संपूर्ण व्यक्तित्व अपनी विशेषताओं सहित उभरकर सामने आया है। 'लेखक को इतिहास देने का ऐसा मोह है। कि वह उपन्यास मूल इतिहास के निकट पहुँच जाता है। वास्तव में मिश्र बंधुओं में उपन्यास कला नहीं है। फलत: उनके ऐतिहासिक उपन्यास जीवनी या इतिहास बन गए हैं, जिनमें कल्पना भी मिली हुई है।"[2]

जीवनीपरक उपन्यासो के तत्वो की कसौटी पर ये उपन्यास खरे उतरते हैं। इतिहास और कल्पना का समुचित संयोग, ऐतिहासिक पात्रों का सशक्त व्यक्तित्व चित्रण तथा उन पात्रो के चारो और परिस्थितियों का सजीव चित्रण इस युग में देखने को नही मिलता। पात्र विशेष के जीवन के विशिष्ट पक्षो का जिसके लिये वह इतिहास में जाना जाता है, चित्रण इस युग के उपन्यासकारों की दृष्टि में महत्वपूर्ण नहीं है।

द्वितीय उत्थान:- हिंदी में जीवनीपरक उपन्यास लेखन का प्रारंभ हम वास्तव में श्री बृजनंदन सहाय लिखित ''लालचीन" (1916) से मान सकते है। इस उपन्यास में पूर्वकाल की परंपरा से हटकर पात्र विशेष पर उपन्यास केन्द्रित किया गया है। प्रथम उत्थान काल में रजिया चौगम तथा हम्मीर के अतिरिक्त अन्य सभी उपन्यास घटनात्मकता की प्रधानता को लेकर चले है। यद्यपि ये दोनो उपन्यास भी अपवाद नहीं है किंतु इनमें लेखक का प्रयत्न अनजाने में ही व्यक्ति विशेष के जीवन उद्घाटन की और हो गया है। घटना प्रधान उपन्यास लेखन की प्रवृत्ति बृजनंदन सहाय के लालचिन के साथ ही क्रमश: क्षीण होने लगी।

01. हिन्दी उपन्यास: शिवनारायण श्रीवास्तव पृ. 61

02. ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार: डॉ. गोपीनाथ तिवारी पृ. 128

मिश्र बंधुओं ने द्वितीय उत्थान काल ने ही लिखना आरंभ किया इनके द्वारा लिखित चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (1942 ई.) पुस्यमित्र शुंग (1943 ई.) चंद्रगुप्त मौर्य (1947 ई.) तथा उदयन (1948 ई.) उपन्यास जीवनीपरक ही है। मिश्र बन्धुओ के पूर्व के ऐतिहासिक उपन्यासकारों ने केवल मुस्लिमकाल से ही पात्रों का चयन कर जीवनीपरक उपन्यास लेखन के क्षेत्र में योगदान दिया। वहाँ मिश्र बंधुओं ने मुस्लिम इतिहास से पूर्व के इतिहास से अपने उपन्यासों के नायको का चुनाव किया है। उपन्यासकारो ने इतिहास का बहुत ध्यान रखा है तथा जीवनी के सपूर्ण तत्व इन उपन्यासो में समाहित हो गए हैं। अतएव इन्हें विशुद्ध जीवनीपरक उपन्यास कहा जा सकता है।

अन्य जीवनीपरक उपन्यास:- इस युग के अन्य उपन्यासो में श्यामसुंदर लाल रानी दुर्गावती (1917) जो कि मंडला की रानी दुर्गावती की वीरता और पराक्रम को लेकर लिखा गया है तथा विशंभर जिज्जा कृत. तुर्क रमणी (1925) जो तुर्की के राष्ट्रीय नेता के जीवन पर आधारित है दोनों ही साधारण कोटि के उपन्यास है।"[1]

इन उपन्यासो में घटना वैचिन्त्य को प्रधानता न देकर चरित्र चित्रण को प्रधानता दी गई है। इन उपन्यासकारों के उपन्यासों में उन्मुक्त कल्पना का आधिक्य नहीं है। उसके स्थान पर एतिहासिक तथ्यो एवं प्रसंगों का कलात्मक मिश्रण हुआ है। अपने नायको के चित्रण में उन्होंने यथार्थ का ध्यान रखा है, उनके जीवन को तथ्यात्मकता से उपस्थित किया है।

तृतीय उत्थान:- इस युग में प्रभूत मात्रा में ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए और पात्र विशेष को लेकर उसके जीवन पर आधारित उपन्यासो का इस काल में आधिक्य रहा। इस काल के उपन्यासकारो ने यदि किसी ''ख्यात" व्यक्ति को अपने उपन्यास का गायक या नायिका बनाया तो वह फिर अपने उद्देश्य को छोड़कर अन्य बातों में नहीं उलझा। जिस पात्र विशेष को उसने लिया उसका पूरी तरह से चित्रण उसने ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया। स्पष्ट शब्दो में कहा जा सकता है कि उनमें जीवनी लेखन की प्रवृत्ति बढ़ी और उन्होंने उपन्यास के आवश्यक तत्वों का संयोग करके जीवनीपरक उपन्यास तैयार किये।

इस युग के प्रमुख जीवनीपरक उपन्यासकार तथा उनके द्वारा लिखित उपन्यासो का विवरण इस प्रकार है।

वृदावनलाल वर्मा:- वर्मा जी इस युग के प्रमुख जीवनीपरक उपन्यास लेखक है। 'मुसाहिब जू' (1943 ई.), झाँसी की रानी (1046ई), माघवजी सिंधिया" (1948-49ई.). मृगनयनी (1950ई.) अहिल्याबाई, (1950 ई.) दुर्गावती (1953 ई.) तथा रामगढ़ की रानी (1966 ई.) इनके द्वारा लिखित जीवनीपरक उपन्यास है। वर्माजी ने अपने उपन्यासो में इतिहास के विविध युगो के महान चरित्र नायको के चरित्र उद्घाटन द्वारा समाज के परिपाश्र्व में व्यक्ति मूल्यों और व्यक्ति आदर्शो की स्थापना का प्रयत्न किया है। इन उपन्यासो मे उपन्यासकार की व्यक्ति पूजा का स्वर स्पष्ट ध्वनित होता है। इतिहास के चरित्र नायकों का व्यक्तित्व उभारने का प्रयत्न ही मुख्य रहा है। ''मूसाहिब जू" उपन्यास में दतिया के मुसाहिब दिलीपसिंह के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को लेकर चला है। ''झाँसी की रानी इतिहास प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी रानी लक्ष्मी के जीवन पर आधारित है मृगनयनी में राई गाँव की गुजर कन्या के जीवन पर आधारित एक अत्यंत रोचक उपन्यास है।" अहिल्याबाई में अहिल्याबाई के जीवन पर आधारित लघु उपन्यास है जो ऐतिहासिक तथा काल्पनिक प्रसंगो के माध्यम से साकार हो उठा है। इसी प्रकार ''महारानी दुर्गावती" नामक उपन्यास में उपन्यासकार ने शक्ति और सुंदरता की मूर्ति के रूप में गोडवाने की महारानी का यथार्थ चित्र अंकित किया है। वर्माजी द्वारा लिखे गये सभी

उपन्यास जीवनीपरक उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान के योग्य है। तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उनके द्वारा ग्रहित पात्र सजीव हो उठा है।

राहुल सांस्कृत्यायनः- राहुल सांस्कृत्यायन द्वारा लिखे गए विस्मृत यात्री (1955) तथा सिंह सेनापति (1942) जीवनीपरक है। विस्मृत यात्री में बौद्ध यात्री नरेन्द्रयश की जीवनकथा वर्णित है। ''सिंह सेनापति में लिच्छवि कुमार सिंह की कथा वर्णित है।

गोविंद वल्लभ पंतः- ''अमिताभ' (1951) सिद्वार्थ के जीवन पर आधारित है, उनके जन्म मृत्यु तक की कथा वर्णित है।

रांगेय राघवः- रांगेय राघव द्वारा लिखित देवकी का बेटा (1954) रत्ना की बात (1954), लोई का ताना (1954) यशोधरा जीत गई (1954), भारती का सपूत (1954), लखिमा की आँखे (1957) आदि जीवनीपरक है। इसमें क्रमशः तुलसी, कबीर यशोधरा, भारतेन्दु विद्यापति आदि की जीवनकथा पर उपन्यासकार की दृष्टि है।

अमर बहादुरसिंह 'अमरेशः- अमर बहादुर द्वारा लिखे गए उपन्यासों में रानी बेनीमाधव (1958) अवध के इलाके में कार्यरत् स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी का अत्यंत सुंदर चित्र है। प्रवीनराय' (1960) में ओरछा नरेश इंद्रजीतसिंह के अखाड़े की कमनीय कलानेत्री. जो उनकी प्रेमपात्री भी थी तथा कवियत्री भी थी के जीवन की सुंदर तस्वीर है।

वाल्मिकी त्रिपाठीः-

वाल्मिकी त्रिपाठी का नाम जीवनीपरक उपन्यास लेखकों में विशेष स्थान का अधिकारी है राजपूत तथा मुगल पात्रो के जीवन से संबंधित घटनाओं को लेकर उन्होने रोचक उपन्यास लिखे है।

''''जहाँदारशाह" में पतनोन्मुख (1959) मुगल साम्राज्य के दुर्बलतम शासक जहाँदारशाह के जीवन को चित्रित किया गया है वही विकलांग में इतिहास प्रसिद्ध वीर महाराणा सांगा के जीवन का चित्र हैं इसी प्रकार 'प्रजातीय प्रजेश' में चित्तौड़गढ़ के प्रशासक वीर चूड़ावत के अदभूत त्याग एवं "दुरभिसंधि' में वीर बुंदेला छत्रसाल के अद्‌भुत पराक्रम तथा शौर्य की जीवनगाथा प्रस्तुत की गई है।

उमाशंकरः- जीवनीपरक उपन्यास लेखकों में एक महत्वपूर्ण नाम है। इनके द्वारा लिखित उपन्यासों में ''नाना फडनीस" में नाना के जीवन का चित्रण है वे अपनी दुरदर्शिता और विलक्षण बुद्धि से अंग्रेजो की कूटनीतियों से लड़ने वाले महान सैनिक के रूप में प्रसिद्ध होते हैं 'पेशवा की कंचनी' बाजीराद की प्रेयसी मस्तानी के जीवन पर केंद्रित है। ''कावेरी के किनारे (1958)" में मैसूर सम्राट हैदरअली के जीवन की झांकी प्रस्तुत है जो अत्यंत सशक्त है।

आनंद प्रकाश जैनः- ''पलको की ढाल (1961ई) इनके द्वारा लिखित जीवनीपरक उपन्यास है जिसमें उन्होंने भारत की प्रथम साम्राज्ञी रजिया सुल्ताना को उपन्यास की नायिका बनाया है।

अन्य महत्वपूर्ण जीवनीपरक उपन्यासकार एवं उनके उपन्यासः- श्री संतोष व्यास द्वारा कालिदास (1960ई) नामक उपन्यास लिखा गया जो कालिदास के जीवन पर आधारित है।

श्री मनहर चौहान द्वारा सूर्य का रक्त (1965) नामक जीवनीपरक उपन्यास लिखा गया जो शिवाजी के पुत्र संभाजी के संपूर्ण जीवन पर आधारित है। इसी प्रकार श्री यादवेन्द्र शर्मा चंद" द्वारा लिखित ''केसरिया पगड़ी" (1960) तथा खून का टीका' जीवनीपरक है। ''केसरिया पगडी" स्वामीभक्त देशभक्त दुर्गादास राठौर के जीवन पर आधारित है खून का टीका (1966) हम्मीर के जीवन पर आधारित है। श्री इकबाल बहादुर देवसरे द्वारा कई जीवनीपरक उपन्यास लिखे गए है, ''शाहे अवध" (1974) जाने आलम (1975) नवाब बेमुल्क (1976) बेगम हजरत महल (1977) ओरछा की नर्तकी (1976) मस्तानी (1972) तथा तानसेन (1979) इनके महत्वपूर्ण जीवनीपरक उपन्यास है।

श्री भगवत शरण उपाध्याय द्वारा लिखित" कालीदास (1981) श्री अमृतलाल नागर द्वारा लिखित ''मानस का हंस" (1975) तथा खंजन नयन (1981) नामक उपन्यास क्रमशः तुलसीदास एवं सुर के जीवन पर आधारित हैं श्री वीरेन्द्रकुमार जैन द्वारा जैन तीर्थंकर ''महावीर स्वामी" के जीवन पर आधारित अनुत्तर योगी नामक उपन्यास चार भागों में लिखा गया है यह अपने विशिष्ट ढंग का उपन्यास है।

इसी श्रेणी में श्री नरेन्द्र कोहली कृत तोड़ो कारा तोड़ो स्वामी विवेकानंद के जीवन पर आधारित उपन्यास है। जो चार भागों में लिखा गया है।

श्री गिरिजाकिशोर द्वारा पहला गिरमिटिया गाँधी जी के जीवन पर आधारित हैं। श्री संजीव द्वारा सूत्रधार एवं मैत्रयी पुष्पा द्वारा रचित 'कही ईसुरी फाग है।

तृतीय उत्थान काल जीवनपरक उपन्यासों का समृद्धकाल है मात्रा तथा गुण दोनों की दृष्टियों से श्रेष्ठ उपन्यासों की सृष्टि इस काल में हुई। वृंदावनलाल वर्मा द्वारा लिखित 'झाँसी की रानी के पश्चात् जीवनी परक उपन्यास पर्याप्त मात्रा में लिखे गए। वृंदावनलाल वर्मा, रांगेय राघव, उमाशंकर अमरेश, आनंदप्रकाश जैन, वाल्मीकि त्रिपाठी मनहर चौहान, देवरारे, अमृतलाल नागर आदि ने भी श्रेष्ठ जीवनीपरक लिखे है।

इस काल में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि उपन्यास लेखको ने इतिहास के संपूर्ण ज्ञात कालखंड से अपने प्रमुख पात्रों का चयन किया है। इसका कारण यह है कि मनोरंजन ही इनका उद्देश्य नहीं था. उनकी दृष्टि समाज में आदर्श प्रस्तुत करने की ओर रही है। ये उपन्यासकार सस्ते मनोरंजन के लिए अपने नायक या नायिकाओं के चरित्र को दूषित नही करते. मनचाही तोड़ मरोड़ नहीं करते वरन ऐतिहासिक तथ्यो के आधार पर जीवन यथार्थ रूप सामने रखते हैं। कल्पना का प्रयोग केवल रोचकता में वृद्धि के लिए करते है, इतिहास के मौन पृष्ठों को वाणी देने के लिए यह कल्पना इतिहास सम्मत होती है।

जीवनीपरक उपन्यासों का भविष्य उज्जवल है।

(ख) जीवनी उपन्यासों का विभाजन:-

जीवनीपरक उपन्यासों का विषय विभिन्न व्यक्तियों का जीवन होता है। ये व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के ख्यात व्यक्ति रहते है जिसका प्रामणिक इतिहास पुराण जनश्रुतियों अथवा साहित्यिक क्षेत्र में रहता है। अत: विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर ही जीवनीपरक उपन्यासों का विभाजन किया जा सकता है।

(1) ऐतिहासिक पात्रों पर केन्द्रित जीवनीपरक उपन्यासः-

ऐतिहासिक पात्रों पर केन्द्रित उपन्यासों में उपन्यासकार ऐतिहासिक व्यक्ति को अपनी जीवन दृष्टि का आधार मानकर अपने उपन्यासों की रचना करता है। इन उपन्यासों में उपन्यासकार समाज की पृष्ठभूमि पर ऐतिहासिक नायक के व्यक्तित्व की रक्षाकर किसी विशेष व्यक्ति के द्वारा जीवन मूल्यों की स्थापना करता है। इन उपन्यासों मे इतिहास के चरित्र नायको का चरित्र चित्रण ही उपन्यास का विषय रहता है किन्तु इनका जीवन सामाजिक की अपेक्षा व्यक्ति के आदर्श और व्यक्ति मूलें की स्थापना करता है। ऐतिहासिकपात्रों पर आधारित उपन्यासों में हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत बाणभट्ट की आत्मकथा, रांगेय राघव कृत यशोधरा जी गई, लोई का ताना, रत्ना की बात, वृंदावनलाल वर्मा कृत झाँसी की रानी अहिल्या बाई अमृतलाल नागर कृत मानस का हंस, खंजन नयन गिरिराजकिशोर कृत पहला गिरमिटिया आदि इन सभी कृतियों में ऐतिहासिक व्यक्तियों को आधार मानकर उपन्यास लिखे गए।

(2) पौरणिक पात्रों पर केन्द्रित जीवनीपरक उपन्यासः-

पौराणिक पात्रों पर केन्द्रित उपन्यासों में उपन्यासकार पौराणिक पात्र को केन्द्र में रखकर अपने उपन्यासों की रचना करता है। इन उपन्यासों के पात्र जनमानस में विख्यात होते है। परंतु इनकी प्रामाणिक जीवनी नही मिलती है। इनका उल्लेख केवल पुराणो, वेद शास्त्रो में ही होता है और इन्ही वेद, शास्त्रों, पुराणों को आधार मानकर उपन्यासकार, उपन्यास की रचना करता है।

इस प्रकार के कई उपन्यास है जिनमें राम, कृष्ण, द्रोण, यशोदा, आदि पौराणिक पात्रो को लेकर उपन्यास लिखे गए यथा रांगेय राघव कृत देवकी का बेटा, प्रतिदान, नरेन्द्र कोहली कृत महासमर, दीक्षा, अवसर आदि।

(3) लोकाश्रित पात्रों पर केन्द्रित जीवनीपरक उपन्यासः-

लोकाश्रित पात्रों पर केन्द्रित उपन्यासों में उपन्यासकार लोकाश्रित पात्र को लेकर उपन्यासों की रचना करते है। इन उपन्यासों के पात्र जनमानस में विख्यात होते है। परंतु इनकी भी प्रामाणिक जीवनी नहीं मिलती। इनका उल्लेख केवल जनश्रुतियों में ही होता है। और उसे ही आधार मानकर उपन्यासकार, उपन्यासों की रचना करते है। यथा सूत्रधार कही ईसुरी फाग आदि।

भारत- नेपाल संबंधों के बदलते प्रतिमानः समस्याएं और संभावनाएं

सिम्पी कुमारी गुप्ता

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, नीलाम्बर-पीताम्बर विश्वविद्यालय, मेदिनीनगर, पलामू (झारखण्ड)

सारांश

2006 तक नेपाल दुनिया का एकमात्र हिंदू राज्य था। यह एक लैंडलॉक देश है, जो हिमालय के दक्षिणी ढलानों पर स्थित है। इसके उत्तर में तिब्बत और दक्षिण में भारत है। भारत और चीन दोनों के साथ इसकी साझा सीमाएं हैं। जब से चीन ने तिब्बत पर अपनी पूर्ण संप्रभुता स्थापित की है, तब से नेपाल की स्थिति भारत के लिए और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। इसे भारत और चीन के बीच एक बफर स्टेट माना जा सकता है। नेपाल भारत के साथ एक खुली सीमा साझा करता है और तीन तरफ से घिरा हुआ है, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम। नेपाल की दक्षिण एशियाई क्षेत्र में भौगोलिक या राजनीतिक पहलुओं में अपनी अनूठी स्थिति है। भारत तथा नेपाल के मध्य प्राचीन काल से भौगोलिक स्थिति और समान धार्मिक, भाषाई और सांस्कृतिक पहचान के कारण घनिष्ठ संबंध रहे हैं जो दोनों देशों को ओवरलैप करते हैं।

यह एक राज्य से दूसरे राज्य के संबंधों में भी प्रकट होता है जो पिछले कुछ वर्षों में दोनों देशों में राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद, उच्च स्तर पर यात्राओं के नियमित आदान-प्रदान द्वारा मजबूत हुए हैं। दोनों देशों ने समय-समय पर एक-दूसरे के मूल्य और महत्व को स्वीकार किया है और विभिन्न अवसरों पर रिश्ते को शविशेषश भी बताया है।

मूल शब्दः भारत-नेपाल संबंध, मैत्री संधि, लोकतंत्र, बदलते प्रतिमान, समस्याएं, संभावनाएं

परिचय

भारत और नेपाल ने अपने विशेष संबंधों की शुरुआत 1950 की भारत-नेपाल शांति और मित्रता संधि और संबंधित पत्रों के साथ की, जो दोनों देशों के बीच सुरक्षा और द्विपक्षीय व्यापार का समझौता था। इन समझौतों ने भारत और नेपाल के बीच एक विशेष संबंध को मजबूत किया, जिसने नेपाल को जरुरी आर्थिक सहायता और भारत में नेपालियों को भारतीय नागरिकों के समान आर्थिक और शैक्षिक अवसर प्रदान किए। भारत-नेपाल सीमा खुली है; जहाँ से नेपाली और भारतीय नागरिक बिना पासपोर्ट या वीजा के सीमा पार आ-जा सकते हैं और किसी भी देश में रह तथा काम कर सकते हैं।

जहाँ भारत इस संधि को अपने क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्वी, चीन के प्रभाव को कम करने के रूप में महत्व देता है, वहीँ नेपाल का एक वर्ग इसे अपनी संप्रभुता का उल्लंघन मानता है।

ऐतिहासिक सिंहावलोकन (1950-1970)

- 1950 के दशक के दौराननेपाल ने भारत के साथ घनिष्ठ संबंधों का स्वागत किया।लेकिन समय के साथ इन संबंधों में कडवाहट आयी।1970 के दशक के मध्य में तनाव तब और बढ़ गया, जब नेपाल ने व्यापार और पारगमन संधि में अपने पक्ष में पर्याप्त संशोधन के लिए दबाव डाला और खुलेआम आलोचना की।

  1975 में, राजा बीरेंद्र बीर बिक्रम शाह देव ने प्रस्ताव दिया कि नेपाल को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शांति क्षेत्र के रूप में मान्यता दी जाए। इसमें उन्हें चीन और पाकिस्तान से समर्थन मिला। भारत ने इस प्रस्ताव को अपनी सुरक्षा के लिए संभावित खतरा

मानकर इसका समर्थन नहीं किया। 1984 में नेपाल ने प्रस्ताव दोहराया, लेकिन भारत की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई। चीन के समर्थन से नेपाल ने लगातार अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इस प्रस्ताव को बढ़ावा देकर 1990 तक 112 देशों का समर्थन हासिल कर लिया था।

- 1978 में, भारत दीर्घकालिक नेपाली मांग को मानते हुए, व्यापार और पारगमन संधियों को अलग करने पर सहमत हुआ। 1988 में, जब दोनों संधियाँ नवीनीकरण के लिए थीं, तो पारगमन संधि पर भारत की इच्छाओं को समायोजित करने से नेपाल के इनकार के कारण भारत को एकल व्यापार और पारगमन संधि का आह्वान करना पड़ा। जिससे भारत-नेपाल संबंधों में गंभीर संकट पैदा हो गया। दो विस्तारों के बाद, दोनों संधियाँ 23 मार्च, 1989 को समाप्त हो गईं, जिसके परिणामस्वरूप नेपाल की एक आभासी भारतीय आर्थिक नाकेबंदी हुई जो अप्रैल 1990 के अंत तक चली। हालाँकि दोनों देशों के टकराव में आर्थिक मुद्दे एक प्रमुख कारक थे, लेकिन इसमें चीनी हथियारों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

  नई दिल्ली ने हथियारों की खरीद को बीजिंग के साथ सैन्य संबंध बनाने के काठमांडू के इरादे के संकेत के रूप में माना, जो कि 1950 की संधि और 1959 और 1965 में आदान-प्रदान किए गए पत्रों का उल्लंघन है।जिसमें नेपाल को भारत के सुरक्षा क्षेत्र में शामिल किया गया था और भारत की मंजूरी के बिना हथियारों की खरीद को रोक दिया गया था। भारत ने सुरक्षा को आर्थिक संबंधों से जोड़ा और समग्र रूप से भारत-नेपाल संबंधों की समीक्षा पर जोर दिया। बिगड़ती आर्थिक स्थिति के बाद नेपाल को पीछे हटना पड़ा। इससे नेपाल की राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव आया, जिसमें राजा को संसदीय लोकतंत्र स्थापित करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

- 1990 के दशक में जून 1990 में नेपाल के प्रधान मंत्री कृष्ण प्रसाद भट्टराई और भारतीय प्रधान मंत्री वी.पी. सिंह की नई दिल्ली बैठक के दौरान नई दिल्ली और काठमांडू के बीच विशेष सुरक्षा संबंध फिर से स्थापित हुए। दिसंबर 1991 में नेपाली प्रधान मंत्री गिरिजा प्रसाद कोइराला की भारत यात्रा के दौरान, दोनों देशों ने नेपाल को अतिरिक्त आर्थिक लाभ देने के लिए डिजाइन की गई नई, अलग व्यापार और पारगमन संधियों और अन्य आर्थिक समझौतों पर हस्ताक्षर किए। अप्रैल 1995 में नेपाली प्रधान मंत्री मन मोहन अधिकारी ने नई दिल्ली का दौरा किया और 1950 की शांति और मित्रता संधि की प्रमुख समीक्षा पर जोर दिया।

  1996 मेंभारत ने बैराज बनाने के उद्देश्य से नेपाल के साथ महाकाली नदी जल संधि पर हस्ताक्षर किए। महाकाली संधि ने नेपाल को बांग्लादेश के चटगांव क्षेत्र के माध्यम से व्यापार करने की अनुमति दी। इन पारगमन मार्गो ने नेपाल की परिवहन लागत को कम कर दिया, साथ ही भारत के लिए नेपाल से संचालित आईएसआई एजेंटों की गतिविधियों की जांच और नियंत्रण को भी संभव बना दिया। इस पारगमन मार्ग ने भारत और उसके पड़ोसियों के बीच अंतर-क्षेत्रीय व्यापार को और बढ़ाया। भारत ने 1990 में यूएनओ में नेपाल के प्रवेश को प्रायोजित किया था।

- नेपाल 21वीं सदी में भी गरीब और वंचित बना हुआ है जबकि भारत ने बहुत उच्च विकास दर के साथ दुनिया में एक केंद्रीय स्थान हासिल कर लिया है। 2005 मेंराजा ज्ञानेंद्र के सत्ता संभालने के बाद, भारत के साथ नेपाली संबंधों में खटास आ गई। हालाँकि2008 में लोकतंत्र की बहाली के बाद, नेपाल के प्रधान मंत्री प्रचंड ने सितंबर 2008 में भारत का दौरा किया। उन्होंने दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय संबंधों में एक नई पहल की बात की।

दोनों ने 22 सूत्री बयान जारी कर अन्य समझौतों के अलावा 1950 की शांति और मित्रता संधि की समीक्षा, समायोजन और अद्यतन करने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। भारत 150 करोड़ रुपये तक की क्रेडिट लाइन भी मुहैया कराएगा।नेपाल पेट्रोलियम उत्पादों की निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित करेगा, साथ ही नेपाल के साथ सहमत मात्रा के लिए चावल, गेहूं, मक्का, चीनी और सुक्रोज के निर्यात पर प्रतिबंध हटाएगा। वे तत्काल बाढ़ राहत के रूप में 20 करोड़ रुपये भी प्रदान करेंगे। बदले मेंनेपाल ष्नेपाल में भारतीय निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए निवेशक अनुकूल, सक्षम कारोबारी माहौल को बढ़ावा देनेष के लिए कदम उठाएगा। 2010 में भारत ने 250 मिलियन डॉलर की क्रेडिट लाइन और 80,000 टन खाद्यान्न का विस्तार किया। इसके अलावा, दोनों पक्षों के बीच जल संसाधनों के विकास पर चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए मंत्री, सचिव और तकनीकी स्तर पर एक मुक्त स्तरीय तंत्र बनाया जाएगा। राजनीतिक रूप से, भारत ने नेपाल में शांति की दिशा में प्रयासों को बढ़ावा देने की इच्छा को स्वीकार किया। तत्कालीन भारतीय विदेश मंत्री प्रणब मुखर्जी ने नेपाली प्रधान मंत्री प्रचंड से वादा किया कि वह ष्शांति और विकास के लिए हर संभव मदद देंगेष।

समस्याएँ और संभावनाएँ

नेपाल और भारत के बीच बहुत पुराना रिश्ता है, दोनों सदियों के लोगों के स्तर पर और दोनों सरकारों के स्तर पर, दोनों के बीच 1,800 किमी की खुली सीमा भी है। नेपाल और भारत दोनों धर्मनिरपेक्ष देश हैं, जिनमें मुख्य रूप से हिंदू आबादी है। लेकिन एक बड़ा सवाल उठता है: क्या ये बाध्यकारी शर्तें यह घोषित करने के लिए हैं कि नेपाल और भारत के बीच 'विशेष संबंध' हैं? विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य में, इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन प्रतीत होता है। चूँकि नेपाल और भारत के पास कोई विशेष गुट नहीं है, इसलिए उनके पास विरोध के लिए विशेष गठबंधन भी नहीं है। उनके पास ऐसा कुछ भी 'विशेष' नहीं है जो इस रिश्ते को 'विशेष रिश्ता' होने का संकेत दे। चूंकि नेपाल, इसके अलावा नेपाली लोगों की धारणा या विश्वास है कि सभी जल समझौतों, जल संसाधनों पर संधियों और अन्य मामलों में भारत द्वारा उन्हें बुरी तरह धोखा दिया गया है, इसलिए नेपाल के लोग हर भारतीय गतिविधि को बहुत संदेह की दृष्टि से देखते हैं। 1950 की मैत्री संधि को नेपालियों की भावना और आकांक्षाओं के अनुरूप तथा समय और परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार भारत के साथ प्रतिस्थापित करने का मुद्दा भारत और नेपाल के बीच संबंधों में एक और मुद्दा है। नेपाल ने शिकायत की कि संधि पर असमान शर्तों पर हस्ताक्षर किए गए थे। नेपाली सरकार ने तर्क दिया कि संधि पर उस समय हस्ताक्षर किए गए थे जब नेपाल कमजोर था और अपनी मांगों को स्पष्ट करने की स्थिति में नहीं था। संधि के प्रति नेपाल के विरोध के कारण संधि पर बातचीत हुई और इसे दोबारा तैयार किया गया।

नई संधि के अनुसार, नेपाली वस्तुओं को आमतौर पर विदेशी वस्तुओं पर लगाए जाने वाले कर को घटाकर भारत में आयात किया जा सकता है। भारतीय कंपनियों ने इसका फायदा उठाया और नेपाल में सिगरेट कंपनियां स्थापित कीं। संधि पर भारत के बार-बार जोर देने या नेपाली भावनाओं के हितों के खिलाफ असमान 1950 संधि को संस्थागत बनाने के भारत के प्रयास ने उनके संबंधों में और अधिक भ्रम पैदा कर दिया है। भारत-नेपाल संबंधों में कुछ प्रमुख विवादास्पद मुद्दे नेपाल में भारतीय मूल के लोगों और नेपाली सरकार द्वारा उनके साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार से संबंधित हैं। भारत में नेपाली मूल के कुछ वर्ग गोरखालैंड की मांग के प्रति सहानुभूति रखते रहे हैं। पिछले कुछ दशकों से गोरखा लोग भारतीय क्षेत्र में अपने लिए जगह बनाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। गोरखालैंड की यह मांग आज भी जारी है. इसके अलावा भूटान में नेपाली मूल के लोगों ने कथित तौर पर यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम (उल्फा) को नैतिक और भौतिक रूप से भी समर्थन दिया है। दूसरा मुद्दा और चुनौती है षगोरखा भर्तीष ब्रिटिश और भारतीय सेना में गोरखा सैनिकों की भर्ती ष्दो मित्र देशों के बीच एक कड़ीष कहा जाता है, जो नेपाल में विवाद का प्रश्न बन गया। 9 नवंबर, 1947 को गोरखा सैनिकों की भर्ती के संबंध में काठमांडू में यूनाइटेड किंगडम सरकार, भारत डोमिनियन सरकार और नेपाल सरकार के बीच एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए।

कोसी, गंडक और महाकाली जैसी जल संधियों को लेकर विवादों के कारण दोनों देशों के बीच पानी एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। परिणामस्वरूप नेपाल में जलविद्युत क्षेत्र में भारतीय निवेशकों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। नेपाल में यह भावना है कि भारत ने उन संधियों में नेपाल को धोखा दिया है और नेपाल के प्राकृतिक संसाधनों को उसके हितों को ध्यान में रखे बिना बेच दिया गया है। तिब्बत के विकास को बढ़ावा देने के साधन के रूप में नेपाल में पनबिजली परियोजनाओं में चीन की बढ़ती दिलचस्पी भारत के लिए जोखिम बढ़ा देगी, जिसने परंपरागत रूप से देखा है कि नेपाल के जल संसाधन विशेष रूप से उसके नियंत्रण क्षेत्र में विफल हो रहे हैं। कई नेपालियों को लंबे समय से संदेह है कि नई दिल्ली को देश की जलविद्युत क्षमता के विकास में कम और नेपाल के जल संसाधनों को नियंत्रित करने में अधिक रुचि है। चीन के संभावित निवेशक और आयातक के रूप में उभरने से भू-राजनीतिक जोखिम बढ़ना निश्चित है।

कालापानी नेपाल और भारत के बीच बहस का एक और अहम मुद्दा है। विदेश मंत्री के रूप में जसवन्त सिंह के कार्यकाल के दौरान भारत, नेपाल और चीन के त्रि-जंक्शन पर स्थित कालापानी के मुद्दे पर दोनों देशों के बीच उच्च स्तरीय वार्ता हुई। नेपाल का दावा है कि यह एन्क्लेव उसके क्षेत्र में स्थित है, इस पर भारत ने कड़ी आपत्ति जताई थी। हालाँकि भारत सरकार ने इस मुद्दे पर चुप्पी साधे रखी, लेकिन कालापानी में भारतीय सेना की मौजूदगी को लेकर नेपाली संसद, राजनीतिक दल और आम जनता तथा सड़क पर माहौल गरमा गया। नेपाली क्षेत्र और कालापानी पर भारतीय उपस्थिति राजा महेंद्र द्वारा शासित निरंकुश पंचायत काल के दौरान 1962 से शुरू हुई। नेपाल में भारत विरोधी भावना काफी हद तक राजनीति से प्रेरित है और 1951 में राजशाही की पुनर्स्थापना के बाद से मौजूद है।

राजशाही ने अपने लिए एक लोकप्रिय समर्थन-आधार बनाने और लोगों के बीच राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा करने के लिए भारतीय विरोध को एक रैली बिंदु के रूप में इस्तेमाल किया। नेपाल में कुछ जातीय समूहों के बीच भारत विरोधी भावना इस धारणा से उत्पन्न होती है कि भारत अभी भी गुप्त रूप से राजशाही का समर्थन कर रहा है। नेपाल के कुछ सैन्य अधिकारियों और राजभक्तों का मानना है कि राजशाही के अंत और माओवादियों के उदय के लिए भारत जिम्मेदार है। माओवादियों ने लोगों को यह समझाने की भी कोशिश की है कि भारत नेपाल में राजनीतिक स्थिरता नहीं चाहता है। भारतीय विरोध में आर्थिक कारक भी जुड़ते हैं।

हर दिन, मध्य-पश्चिमी नेपाल से हजारों अकुशल मजदूर नौकरी की तलाश में भारतीय सीमा पार करते हैं और उन्हें विभिन्न तरीकों से परेशान किया जाता है। ग्रामीण इलाकों के कई सेवानिवृत्त गोरखा सैनिकों को भी सेवानिवृत्ति लाभों के लिए भारतीय अधिकारियों से उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है।

जहां तक द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों का सवाल है, सबसे पहले, दोनों देशों के बीच बढ़ते व्यापार असंतुलन के कारण कुछ राजनीतिक नेताओं, अर्थशास्त्रियों और व्यापारियों ने आरोप लगाया है कि यह नेपाल को गरीब बनाए रखने के लिए भारत की एक सोची-समझी रणनीति है।

भविष्य

भारत और नेपाल अपने संबंधों में अतीत की दरार को जारी रखने का जोखिम उठा सकते हैं। नेपाल की उभरती संभावनाओं को भारत के विरोधियों द्वारा एक माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। भारत में समर्थन आतंकवाद, उग्रवाद और व्यवधान पर अंकुश लगाने और समाप्त करने की आवश्यकता है। तीसरे देश पूर्व को नष्ट करने के लिए उत्तरार्द्ध का शोषण कर रहे हैं। जून 1997 में प्रधान मंत्री आई के गुजराल की नेपाल यात्रा के दौरान, संधि की समीक्षा करने की नेपाली मांग को इस भावना से स्वीकार किया गया कि संधियाँ और समझौते तभी अच्छे से काम करते हैं जब दोनों पक्षों के बीच बुनियादी राजनीतिक समझ और विश्वास हो।

इसी भावना से, नेपाल को यह समझना चाहिए कि भारत अपने तात्कालिक और दीर्घकालिक सुरक्षा हितों की अनदेखी नहीं कर सकता, जबकि वह अन्य क्षेत्रों में नेपाल के हितों और संवेदनशीलताओं को उदारतापूर्वक समायोजित करना जारी रखता है।

पारस्परिकता पर जोर दिए बिना, पड़ोसियों के साथ संबंध सुधारने का ष्गुजराल सिद्धांतष् स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है कि भारत की सुरक्षा से समझौता नहीं किया जा सकता है। ऐसा कोई भी समझौता पूरे उपमहाद्वीप में भारत की सुरक्षा चिंताओं पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। सुरक्षा दृष्टिकोण से सीमा प्रबंधन की समस्या पर भी विचार किया जा सकता है, लेकिन खुली सीमा व्यवस्था को पूर्ववत करने के विकल्प महंगे, बोझिल और अव्यवहारिक हैं। शांतिपूर्ण और मैत्रीपूर्ण सीमा सुनिश्चित करने के लिए, दोनों देशों को अपने-अपने देशों में फैल रही सामाजिक-राजनीतिक उथल-पुथल से निपटने में भी सहयोग करना होगा।

जहां नेपाल भारत को अपनी बढ़ती ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने का एक बड़ा स्रोत प्रदान करता है, वहीं भारत नेपाल को निवेश और प्रौद्योगिकी के एक आशाजनक और भरोसेमंद स्रोत के साथ-साथ व्यापार के लिए एक बड़ा बाजार भी प्रदान करता है। दोनों देशों ने परस्पर निर्भरता की व्यवहार्य संरचनाएं बनाने के लिए इन पारस्परिक लाभों की खोज शुरू कर दी है। व्यापार और पारगमन के मुद्दों पर नेपाल के साथ भारत का समझौता और दोनों देशों के बीच महाकाली संधि का धीमा लेकिन आशावादी कार्यान्वयन- इस प्रक्रिया को अधिक गति के साथ जारी रखना होगा क्योंकि अभी भी राजनीतिक कलंक और संदेह बरकरार हैं। परस्पर निर्भरता बढ़ने से दोनों देशों के बीच राजनीतिक माहौल भी बेहतर होगा। भारत अतीत में आर्थिक कारकों का उचित एवं प्रभावी उपयोग नहीं कर पाया है, लेकिन भविष्य में इस चुनौती का सामना करना होगा।

निष्कर्ष

करीबी पड़ोसियों के रूप में, भारत और नेपाल मित्रता और सहयोग का एक अनूठा रिश्ता साझा करते हैं, जो खुली सीमाओं और रिश्तेदारी और संस्कृति के लोगों के बीच गहरे संपर्कों की विशेषता है। सीमाओं के पार लोगों की मुक्त आवाजाही की एक लंबी परंपरा रही है। भारत नेपाल का सबसे बड़ा व्यापार भागीदार, विदेशी निवेश और पर्यटक आगमन का स्रोत बना हुआ है। भारत ने उपकरण और प्रशिक्षण के प्रावधान के माध्यम से नेपाल सेना (एनए) के आधुनिकीकरण में मदद करने में अग्रणी भूमिका निभाई थी।

हालाँकि उनके रिश्ते कभी-कभी पटरी से उतर गए हैं, इन समस्याओं के बावजूद, 3-4 अगस्त 2014 को प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी की दो दिवसीय नेपाल यात्रा ने भारत-नेपाल संबंधों में एक नई शुरुआत की। प्रधान मंत्री ने नेपाल के विकास के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की और संबंधों को नई ऊंचाई पर ले जाने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाने का वादा किया। इसके अलावा नेपाल के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के आश्वासन के साथउन्होंने नेपाली लोगों के दिल और दिमाग को जीतने का प्रयास किया। प्रधान मंत्री ने 1950 की शांति और मित्रता संधि को संशोधित करने की इच्छा व्यक्त करते हुए नेपाल सरकार के सुझावोंपर विचार करने के का आश्वासन दिया।

नेपाल संवैधानिक संकट का सामना कर रहा है क्योंकि 2012 में नए संविधान का मसौदा तैयार किए बिना संविधान सभा को भंग कर दिया गया था। प्रधान मंत्री मोदी ने उम्मीद जताई कि संविधान सभा संघीय और लोकतांत्रिक राजनीतिक ढांचे का समर्थन करने और देश में समानता को बढ़ावा देने के लिए एक संविधान का मसौदा तैयार करेगी। नेपाल के राजनीतिक नेताओं को आश्वासन देते हुए, मोदी ने कहा, ष्हम संविधान को समय पर लाने के लिए सभी आवश्यक मदद करने के लिए तैयार हैंष् नेपाल की संविधान सभा में उनके संबोधन की श्राजनीतिक स्पेक्ट्रमश के कई नेपाली नेताओं ने सराहना की।

मोदी ने राजमार्ग, सूचना प्रौद्योगिकी और बिजली के लिए ट्रांसमिशन लाइनों के विकास के माध्यम से नेपाल की मदद करने के लिए एचआईटी- अवधारणा की रूपरेखा तैयार की। यह अनुमान लगाया गया था कि प्रधान मंत्री की यात्रा के दौरान पावर ट्रेडिंग समझौते (पीटीए) पर हस्ताक्षर किए जाएंगे, लेकिन दोनों सरकारें यात्रा से पहले पावर व्यापार पर आम सहमति पर नहीं पहुंच सकीं। जल संसाधनों पर भारत के श्संभावितश एकाधिकार के बारे में नेपाल की आशंका के कारण पारस्परिक रूप से स्वीकृत समझौते पर पहुंचने में देरी हो रही है। बाधाओं के बावजूद, दोनों पक्ष आशावादी हैं और आने वाले महीनों में सौदा हासिल करने के लिए आवश्यक तैयारी करेंगे। इस यात्रा ने भारत-नेपाल संबंधों में एक नया अध्याय खोला।

वास्तव में, भारत-नेपाल संबंधों में पहले से ही एक गति उत्पन्न हो चुकी है और इसे बेहतर अनुवर्ती कार्रवाई और कार्यान्वयन के साथ जारी रखा जाना चाहिए। भारत और नेपाल दोनों एक दूसरे के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। नेपाल उभरते भारत को प्रौद्योगिकी, निवेश और बाजार तक आसान पहुंच के रूप में विकास के अवसर के रूप में देखता है। नेपाल को भारत से बेहतर सहयोग की उम्मीद है।

सन्दर्भ

1. जे.एन. दीक्षित : भारत की विदेश नीति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
2. राम सागर शुक्ल: अनजान पड़ोसी, भारत-नेपाल, सनातन प्रकाशन, लखनऊ, 2019
3. मुकेश देवी: नेपाल-चीन के बढ़ते संबंध: भारत की सुरक्षा चिन्ता, ब्लू रोज पब्लिर्शस, नई दिल्ली, 2017
4. आशीष त्रिपाठी: भारत नेपाल सम्बन्ध और दक्षेस, फर्स्ट प्रिन्ट पब्लिकेशन, जनवरी, 2017
5. प्रमोद कुमार: भारत-नेपाल सम्बन्ध : चुनौतियां एवं समाधान, ए.एस.आर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2018
6. अरूण मिश्र: भारत-नेपाल संबंध के विभिन्न आयाम, उदय पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 2020
7. खन्ना बी0एन0 और अन्य: 'भारत की विदेश नीति', दिल्ली वि0वि0, दिल्ली
8. चौहान राजीव कुमार : (2010) भारत-नेपाल के सामरिक सम्बन्ध, (सन 1950 से अबतक) आकृति प्रकाशन, नई दिल्ली
9. Sanjay Upadhya, "Nepal and the Geo- strategic Rivalry between China and India", (New York, Routledge publication, 2012).
10. Puran Chandra, "India in Asian Continent", (New Delhi, Swastik Publications, 2014)
11. H.P. Chanttopadhyay, Surya Narain Yadav, "India and the Contemporary World, Emerging Partnership in the 21st Century" (New Delhi, Global Vision Publishing House, 2010)
12. Nancy Jettley, "India's Foreign Policy Challenges and Prospects", (New Delhi, Vikas Publishing House Pvt. Ltd, 1999)
13. Upreti.B.C, "Nepal Transition to Democratic Republic State" (India, Kalpaz Publications, 2010)
14. Trivedi Ramesh, "India's Relations with Her Neighbours", (New Delhi, ISHA books, 2008)

अलीगढ़ जनपद में भूमि उपयोग का परिपवर्तनशील अध्ययन, 2000-2001 से 2015-16

डॉ० नवनीत शर्मा

अस्थायी प्रवक्ता, एन.आर.ई.सी. कॉलेज, खुर्जा (बुलन्दशहर)

डॉ० रामदास सिंह

स० अ०, पूर्व माध्यमिक विद्यालय, मुहब्बतपुर लभौआ बरनाहल, मैनपुरी

प्रस्तावना- भूमि उपयोग का तात्पर्य मानव द्वारा धरातल के विविध रूपों (पर्वत, पहाड़, मरू भूमि धरातल खदान, यातायात, आवास, कृषि, पशुपालन तथा खनिज) में प्रयोग किये जाने वाले कार्यो से है। भूमि का प्रमुख उपयोग फसलों के उत्पादन के लिए किया जाता है। इसका अन्य उपयोग यातायात, मनोरंजन, आवास उद्योग तथा व्यवसाय आदि जैसे कार्यो के लिए भी होता है। इस प्रकार भूमि मानव जीवन का आधारभूत संसाधन है। तथा इसका उपयोग किसी भी क्षेत्र के मानव तथा वहाँ की परिस्थिति की भू-दशाओं के मध्य पारस्परिक सामंजस्य को प्रस्तुत करना है।

भूमि उपयोग, भूमि प्रयोग तथा भूमि संसाधन उपयोग प्रायः एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयोग किये जाते हैं परन्तु इनके मध्य एक सूक्ष्म अन्तर है। कुछ भूगोलविद् इनकी अलग-अलग व्याख्याऐं प्रस्तुत करते हैं। प्राकृतिक परिवेश में भूमि प्रयोग एक तत्सामयिक प्रक्रिया है, जबकि मानवीय इच्छाओं के रूप में अपनाया गया भूमि उपयोग एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। इससे सतत् एवम् क्रमबद्ध विकास का स्वरूप लक्षित होता है। वुड के अनुसार, ''भूमि प्रयोग केवल प्राकृतिक भू-दृष्य के सन्दर्भ में ही नहीं बल्कि मानवीय क्रियाओं पर आधारित उपयोगी सुधारों के रूप में भी प्रयुक्त होना चाहिए।'' अतः भूमि उपयोग प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही उपादानों के सहयोग का प्रतिफल है। डॉ० सिंह के अनुसार, ''कृषि से पूर्व की अवस्था के लिए जिसके अन्तर्गत प्रकृति का पूर्णतया अनुसरण किया जाता है भूमि प्रयोग शब्द अधिक उपयुक्त होगा परन्तु जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भूमि के उचित या अनुचित प्रयोग करता है उसके लिए ''भूमि उपयोग'' कहना अधिक तर्कसंगत होगा।''

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते है कि, भूमि के प्रयोग तथा उपयोग में अन्तर है दोनों ही शब्द भूमि की दो अवस्थाओं के लिए प्रयुक्त होते हैं। किसी क्षेत्र, प्रदेश या देश का भूमि उपयोग उसके सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक दृश्य का मिला जुला भू-दृश्य होता है। भूमि प्रयोग जहाँ एक प्रक्रिया है, वहीं उपयोग उसका टिकाऊ संसाधन के रूप में व्यावहारिक उपयोग है।

कृषि भूमि उपयोग पर भारत एवं विश्व के विभिन्न देशों में अनेक विद्वानों ने समय-समय पर अध्ययन कर अपने शोध प्रबन्ध एवं शोध प्रपत्र प्रस्तुत किये है। इनमें वान थ्यूनेन (1783-1850), जॉनसन (1926), कैण्डाल (1939), लॉश (1954), स्टाम्प (1960), किलिंग वेल एवं मान्टगूमरी (1961), मेलर (1967), एफ० ए० आ० (1994), यू० एस० सोइल सर्वे डिविजन (1997) और भारतीय विद्वानों में प्रो० एम० शफी (1961-64), हनुमत राव (1970), नूर मोहम्मद (1978), सिंह, जसवीर (1984) सहगल (1990), मोहन्ती (1994) आदि के कार्य उल्लेखनीय हैं।

अध्ययन क्षेत्र- अलीगढ़ जनपद उत्तर भारत के पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ मण्डल के ही उत्तरी भाग में स्थित एक महत्वपूर्ण जनपद है, जो गंगा-यमुना नदियों के मध्य स्थित है। वर्ष 1997 में इस जनपद से सिकन्दराराऊ, हसायन, मुरसान, सासनी तथा हाथरस कुल पाँच विकास खण्डों को पृथक कर नवसृजित हाथरस जनपद में सम्मलित कर दिया गया, जिससे जनपद की स्थिति, विस्तार तथा क्षेत्रफल सभी परिवर्तित हुए हैं। वर्तमान में अलीगढ़ जनपद का अक्षांशीय विस्तार $27^{0}35'$ उत्तरी अक्षांश से $28^{0}11'$ उत्तरी अक्षांश तथा देशान्तरीय विस्तार $77^{0}29'$ पूर्वी देशान्तर से $78^{0}38'$ पूर्वी देशान्तर के मध्य 3700 वर्ग किलोमीटर में है।

इसके पूर्व में बदाँयू जनपद गंगा नदी द्वारा पृथक होता है तथा पश्चिम में हरियाणा राज्य यमुना नदी द्वारा पृथक होता है, उत्तर में बुलन्दशहर व गौतम बुद्धनगर जनपद तथा दक्षिण में हाथरस व मथुरा जनपद है। जनपद में अनेक ऐतिहासिक अधिवास है, जिसमें खैर जट्टारी, कसिमपुर कॉलोनी, अतरौली, छर्रा, हल्दुआगंज, जलाली, पिलखना, कौड़ियागंज, विजयगढ़, इगलास, बेसवा तथा जनपद केन्द्र के रूप में अलीगढ़ नगर सहित कुल 13 नगरीय अधिवास है। जनपद में कुल 1180 आबाद ग्राम तथा 30 गैर आबाद ग्राम घोषित हैं। इस प्रकार कुल 1210 ग्राम हैं, जो 122 पंचायतों के मध्य वितरित हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार अलीगढ़ जनपद में कुल 36,73,889 व्यक्ति निवास करते हैं, जिसमें 24,56,698 (66.86 प्रतिशत) व्यक्ति ग्रामीण तथा 12,17,191 (33.13 प्रतिशत) व्यक्ति नगरीय क्षेत्रों में निवास करते हैं।

वर्तमान शोध अध्ययन अलीगढ़ जनपद के विभिन्न भौगोलिक एवं विषयगत पक्षो के विश्लेषण एवं विवेचन हेतु विकास खण्ड एवं तहसील को आधार भूत इकाइयों को आवश्यकतानुसार माना गया है। जनपद में कुल 12 विकास खण्ड हैं जो 5 तहसीलों में विभाजित हैं।

आंकड़े व विधितन्त्र- प्रस्तुत शोध प्रपत्र द्वितीयक आंकड़े पर आधारित है भूमि उपयोग व कृषि उपयोग के विकासखण्डवार सभी आंकड़े कृषि वर्ष 2000-01 से 2015-16 पर आधारित हैं। विधितन्त्र विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक, अवलोकनात्मक एवं पूर्ववर्ती विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये शोध कार्यो के समीक्षोपरान्त इसको प्रस्तुत किया गया है।

किसी भी क्षेत्र के भूमि उपयोग को धरातलीय स्वरूप, बनावट, ढाल, मृदा प्रकार, उर्वरता, भूमि का मूल्य, जल की आवश्यकता एवं उपलब्धता, शस्य प्रणाली, शस्यपन परम्परा, कृषक की रूचि एवं शस्य चयन, शस्यन सुरक्षा आवागमन की सुविधा तथा जागरूकता आदि कारक महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं जहाँ नगरीय क्षेत्र में भूमि उपयोग संकेन्द्रीय वलयानुसार मेखलाबद्ध अथवा सेक्टर के रूप में परिवर्तनीय होते हैं, वहीं प्राय: ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि का उपयोग संकेन्द्रीय वलयानुसार अधिवास से दूरी के साथ ही गुणवत्ता द्वारा मिलती है।

भूमि उपयोग का वर्गीकरण

विभिन्न राज्य अभिलेखों में भूमि उपयोग के भिन्न-भिन्न वर्गीकरण दर्शाये गये हैं, किन्तु जिला स्तर पर सर्वमान्य वर्गीकरण निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. कुल प्रतिवेदित क्षेत्र
2. वन क्षेत्र
3. चरागाह क्षेत्र
4. कृषियोग्य बंजर भूमि
5. परती भूमि
6. ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि
7. कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि
8. शुद्ध कृषित क्षेत्र
9. उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र

1. कुल प्रतिवेदित क्षेत्र- अलीगढ़ जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल 3,71,261 हेक्टेयर है, जिसका 3.22 प्रतिशत (11,983 हेक्टेयर) क्षेत्रफल नगरीय क्षेत्र के विभिन्न उपयोग में आता है। 96.77 प्रतिशत (2,59,278 हेक्टेयर) क्षेत्र ग्रामीण भूमि उपयोग के अन्तर्गत है। जनपद का 82.22 प्रतिशत (3,05,252 हेक्टेयर) क्षेत्रफल शुद्ध कृषित क्षेत्र भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत है तथा अन्य भूमि उपयोग वर्ग के आधार पर विकास खण्डवार विवरण तालिका-01 व मानचित्र-01 और तालिका-02 व मानचित्र-02 द्वारा दर्शाया गया है।

2. वन क्षेत्र- अलीगढ जनपद में वन क्षेत्र अल्प मात्रा में पाया जाता है, ये केवल सड़कों, तालाबों, नदियों तथा नहरों के किनारे-किनारे पट्टीनुमा आकार में पाया जाता है। कुछ वन क्षेत्र कहीं-कहीं बबूल के वृक्षों के झुण्ड के रूप में मिलते हैं।

तालिका-01 तथा मानचित्र-01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि, वर्ष 2015-16 में अलीगढ़ जनपद में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 0.69 प्रतिशत (2,577 हेक्टेयर) क्षेत्रफल वन भूमि उपयोग के अन्तर्गत है। क्षेत्रीय प्ररिप्रेक्ष्य में जवां विकास खण्ड में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का सर्वाधिक 2.63 प्रतिशत (834 हेक्टेयर) भू-भाग वन क्षेत्र में प्रयुक्त है, वहीं सबसे कम वन क्षेत्र 45 हेक्टेयर (0.12 प्रतिशत) टप्पल विकास खण्ड के अन्तर्गत है।

3. कृषि योग्य बंजर भूमि- भूमि उपयोग के इस वर्ग के अन्तर्गत उस भूमि को समाहित किया जाता है जो वस्तुत:कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत अधिग्रहित हो सकती है, किन्तु विशेष कारणों से कृषि हेतु उपयोग नहीं हो पा रही है। अत: वह क्षेत्र जो घास वृक्ष इत्यादि के अन्तर्गत है तथा अल्प भू-अधिग्रहण प्रयासों से कृषि योग्य बनाया जा सकता है। अलीगढ़ जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 2.51 प्रतिशत क्षेत्रफल पर भूमि उपयोग के इस वर्ग का विस्तार है। तालिका-01 तथा मानचित्र-01 के क्षेत्रीय अवलोकन से स्पष्ट है कि, टप्पल विकास खण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 2.72 प्रतिशत (1020 हेक्टेयर) भाग पर यह सर्वाधिक विस्तारित है, वहीं सबसे कम 0.26 प्रतिशत (67 हेक्टेयर) इग्लास विकास खण्ड के अन्तर्गत मिलती है।

4. परती भूमि- इस भूमि वर्ग के अन्तर्गत उस भू-क्षेत्र को रखा जाता है, जिसकी उर्वरता प्रति वर्ष शस्य उगाने योग्य नहीं है तथा कृषकों द्वारा एक या एक से अधिक वर्षों के लिए शस्य विहीन छोड़ दिया जाता है, जिससे कि प्राकृतिक रूप से इसकी उर्वरता में वृद्धि हो सके। इस आधार पर इस भूमि उपयोग वर्ग को दो भागों में विभाजित किया जाता है-

(i) वर्तमान परती भूमि- इस भूमि के अन्तर्गत उस भूमि वर्ग को रखा जाता है जो एक वर्ष तक परती छोड़ी गयी है। अलीगढ़ जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 0.75 प्रतिशत (2,819 हेक्टेयर) भू-भाग पर इसका विस्तार मिलता है। तालिका-01 तथा मानचित्र-01 से स्पष्ट है कि, सर्वाधिक लोधा विकास खण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 1.31 प्रतिशत (367 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर परती भूमि का विस्तार है, वहीं मात्र 0.37 प्रतिशत (98 हेक्टेयर) क्षेत्रफल अकराबाद विकास खण्ड में पाया जाता है।

(ii) पुरानी परती भूमि- इस भूमि वर्ग उपयोग के अन्तर्गत वह क्षेत्र आता है जो एक से अधिक वर्षों तक छोड़ी गयी है। अलीगढ़ जनपद में वर्ष 2015-16 में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 1.52 प्रतिशत (4,739 हेक्टेयर) भू-भाग पर इसका विस्तार मिलता है। तालिका-01 द्वारा क्षेत्रीय अवलोकन से स्पष्ट है कि, लोधा विकास खण्ड में सर्वाधिक 4.38 प्रतिशत (1,193 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर पुरानी परती भूमि का विस्तार है, सबसे कम 0.04 प्रतिशत (11 हेक्टेयर) क्षेत्रफल बिजौली विकास खण्ड में पाया जाता है।

वर्ष /विकासखण्ड	कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल	वन	कृय बेकार भूमि	वर्तमान परती	अन्य परती	ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि	कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि	चरा गाह	उद्यानों वृक्षों एवम् झाड़िया का क्षेत्रफल
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
2013–14	371261	2577	7013	3367	5317	5905	41011	1731	327
2014–15	371261	2577	6823	2819	4739	5863	41141	1730	317
2015–16	371261	2577	6823	2819	4739	5863	41141	1730	317
विकास खण्डवार 2015–16									
1. टप्पल	37429	45	1020	183	275	351	4120	207	0
2. चण्डौस	33367	131	737	188	35	436	2731	159	9
3. खैर	32002	44	629	168	267	375	2497	147	14
4. जवां	31605	834	323	270	464	548	4252	192	42
5. लोधा	27227	49	445	367	1193	578	2665	231	8
6. धनीपुर	30036	50	961	261	447	900	3212	120	13
7. गोंडा	29210	70	206	160	381	169	2931	78	5
8. इगलास	25535	85	67	104	319	153	2809	104	10
9. अतरौली	27325	210	212	107	221	232	2800	135	96
10. बिजौली	24914	200	589	273	11	530	4262	148	36
11. गंगीरी	34757	63	678	222	375	435	3274	157	16
12. अकराबाद	25871	780	344	98	80	853	2137	29	57
योग ग्रामीण	359278	2561	6211	2401	4384	5560	37690	1707	306
योग नगरीय	11983	16	612	418	355	303	3451	23	11
योग जनपद	371261	2577	6823	2819	4739	5863	41141	1730	317

5. ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि- जिन क्षेत्रों में भूमि जल स्तर के करण लवण प्रभावित अर्थात ऊसर है तथा किसी भी प्रकार की वनस्पति को उगाने की क्षमता नहीं रखती उन क्षेत्रों को ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के अन्तर्गत रखा जाता है। जनपद अलीगढ़ के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 1.57 प्रतिशत (5863 हेक्टेयर) भू-भाग पर इसका विस्तार है। वर्ष 2015-16 में तालिका-01 तथा मानचित्र-01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि, ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के विस्तार में पर्याप्त क्षेत्रीय विषमताऐं पायी जाती हैं। जहाँ सर्वाधिक अकराबाद विकास खण्ड में इसका विस्तार 3.29 प्रतिशत (853 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर है। वही सबसे कम 0.59 प्रतिशत (153 हेक्टेयर) क्षेत्रफल इगलास विकासखण्ड में पाया जाता है।

6. कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि- इस भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत विशेषत: अधिवास एवं सांस्कृतिक कार्यो में प्रयुक्त भूमि, धरातलीय विषमता के कारण उपयोग में न लाये जाने योग्य भूमि, जलमग्न भूमि व राजस्व विभाग के द्वारा छोड़ी गई भूमि आदि सम्मिलत हैं। इस दृष्टि से वर्तमान समय में इस भूमि उपयोग वर्ग को अधिवासीय क्षेत्र आस-पास की कृषित भूमि को निगलता हुआ प्रतीत होता है। अत: भूमि उपयोग के इस वर्ग का विस्तार बढ़ता जा रहा है।

वर्ष 2015-16 में अलीगढ़ जनपद के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 11.08 प्रतिशत भाग पर कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि है। तालिका-01 के अवलोकन से जनपद की क्षेत्रीय विषमता स्पष्ट होती है कि जवाँ विकास खण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 13.45 प्रतिशत (4,252 हेक्टेयर) भू-भाग पर इस भूमि उपयोग वर्ग का सर्वाधिक विस्तार है, वहीं सबसे कम 8.26 प्रतिशत (2,137 हेक्टेयर) अकराबाद विकास खण्ड के कुल क्षेत्र में इसका विस्तार है।

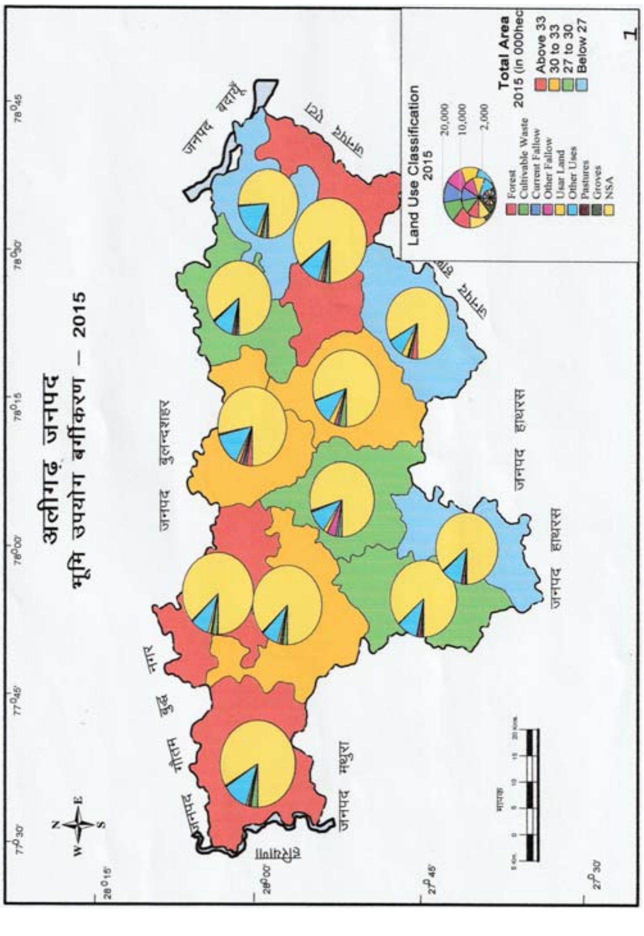

7. चरागाह भूमि क्षेत्र- अलीगढ़ जनपद में चरागाह भूमि क्षेत्र अल्प मात्रा में मिलता है, चरागाह के अन्तर्गत अलग से भू-क्षेत्र आवृत्त नहीं है। 2015-16 की तालिका-01 से स्पष्ट है कि, अलीगढ़ जनपद के कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 0.46 प्रतिशत (1,730 हेक्टेयर) क्षेत्रफल चरागाह भूमि उपयोग वर्ग के अन्तर्गत है। क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में लोधा विकासखण्ड में कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का सर्वाधिक 0.84 प्रतिशत (231 हेक्टेयर) भू-भाग है, वहीं सबसे कम 0.11 प्रतिशत (29 हेक्टेयर) अकराबाद विकास खण्ड का भू-भाग इस वर्ग के अन्तर्गत आता है।

8. उद्यानों, वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्र- अलीगढ़ जनपद में उद्यान, वृक्ष व झाडियाँ बहुत अल्प मात्रा में मिलते हैं। इनके लिए अलग से भू-क्षेत्र आवृत्त नहीं है, ये केवल सड़कों, तालाबों, नदियों तथा नहरों के किनारे-किनारे पट्टीनुमा आकार में पाए जाते है।

तालिका-01 तथा मानचित्र-01 के अवलोकन से स्पष्ट है कि, वर्ष 2015-16 में अलीगढ़ जनपद में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र के 0.08 प्रतिशत (317 हेक्टेयर) क्षेत्रफल पर उद्यानों, वृक्ष एवं झाड़ियों में भूमि उपयोग क्षेत्रफल है। तालिका-01 तथा मानचित्र-01 के क्षेत्रीय अवलोकन से स्पष्ट है कि, सर्वाधिक अतरौली विकासखण्ड के कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल के 0.35 प्रतिशत (96 हेक्टेयर) भू-भाग पर इस भूमि वर्ग का विस्तार है। वहीं टप्पल विकासखण्ड में इस प्रकार की भूमि उपयोग नगण्य है।

9. शद्ध कृषित क्षेत्र- कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले क्षेत्र के भूमि उपयोग में शुद्ध कृषित क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण कारक है इससे अधिक दूसरा कोई कारक नहीं है। विभिन्न ग्राम एवं तहसीलों में दीर्घकालिक कृषिगत् आवरण भूमि की उर्वरा शक्ति जनसंख्या का भूमि संसाधन पर दबाव, अर्थव्यस्था में विविधीकरण के अभाव तथा सिंचाई का वृहद एवं गहन प्रयोग शुद्ध कृषि के उच्च अनुपात में परिणत हुआ है। भूमि उपयोग इस महत्वपूर्ण तत्व के उपयोग के आधार पर ही किसी भी क्षेत्र की कृषि प्रकारणीयता निर्धारित की जा सकती है, यथा- धान्य प्रधान वाणिज्यिक, निर्वाहन एवं पशुपालन कृषि व्यवस्था आदि।

तालिका-2

वर्ष /विकासखण्ड	शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	एक बार से से अधिक बोया गया क्षेत्रफल	सकल बोया गया क्षेत्रफल				गन्ने के लिए तैयार की गयी भूमि	शुद्ध सिचिंत क्षेत्रफल	सकल सिचिंत क्षेत्रफल
			कुल	रबी	खरीफ	जायद			
1	11	12	13	14	15		1617	18	19
2013–14	304013	242333	546346	284882	233062	28402	0	303560	462093
2014–15	305252	236655	541907	281126	233831	26950	0	304337	478009
2015–16	305252	236655	541907	281126	233831	26950	0	304337	478009
विकास खण्डवार 2015–16									
1. टप्पल	31228	25575	56803	29725	25452	1625	0	31706	53790
2. चण्डौस	28625	20725	49350	26160	21947	1243	0	28039	43038
3. खैर	27861	21226	49087	28100	18639	2348	0	27051	42834
4. जवां	24680	18479	43159	21585	19941	1633	0	24514	41665
5. लोधा	21691	16429	38120	20288	15785	2047	0	22253	31598
6. धनीपुर	24072	15731	39803	20135	17261	2461	0	23159	38429
7. गोंडा	25210	20157	45367	24266	18144	2957	0	25327	39415
8. इग्लास	21884	16388	38272	19850	13423	4999	0	21965	34287
9. अतरौली	23312	19400	42712	21087	19306	231	0	23841	38385
10. बिजौली	18865	15082	33947	7404	15506	1037	0	19055	25419
11. गंगीरी	29537	21624	51161	25521	23837	1803	0	29848	38023
12. अकराबाद	21493	20047	41540	21192	18787	1561		26513	38900
योग ग्रामीण	298458	230863	529321	2755313	227969	26033	0	297271	465773
योग नगरीय	6794	3792	12586	5813	5862	917	0	7066	12236
योग जनपद	305252	236655	541907	281126	233831	26950	0	304337	478009

शुद्ध बोया गया, सकल बोया गया तथा सकल सिंचित क्षेत्र

तालिका-02 तथा मानचित्र-02 से स्पष्ट है कि, टप्पल विकासखण्ड में सर्वाधिक 10.23 प्रतिशत शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल है, जबकि बिजौली विकासखण्ड में सबसे कम 6.18 प्रतिशत है। सर्वाधिक सकल बोया गया सर्वाधिक क्षेत्रफल टप्पल विकासखण्ड में 10.48 प्रतिशत दर्ज किया गया है जबकि सबसे कम 7.03 प्रतिशत लोधा विकासखण्ड में दर्ज किया गया है। इसी प्रकार सकल सिंचित क्षेत्रफल सर्वाधिक 11.25 प्रतिशत टप्पल विकासखण्ड में जबकि सबसे कम बिजौली विकासखण्ड में 5.32 प्रतिशत दर्ज किया गया है।

शुद्ध कृषित क्षेत्र का सामयिक परिर्वतन, 2000-2001 एवं 2015-2016

अलीगढ़ जनपद में वर्ष 2000-01 में 30,0293 हेक्टयेर क्षेत्रफल (कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का 81.22 प्रतिशत) शद्ध कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत आता था जो वर्ष 2015-16 तक 4,959 हेक्टेयर वृद्धि के साथ 30,5,252 हेक्टेयर हो गया जो कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 82.22 प्रतिशत है। इस प्रकार विगत 15 वर्षो में 1 प्रतिशत प्रतिवेदित क्षेत्रफल की वृद्धि शुद्ध कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत अंकित की गई है।

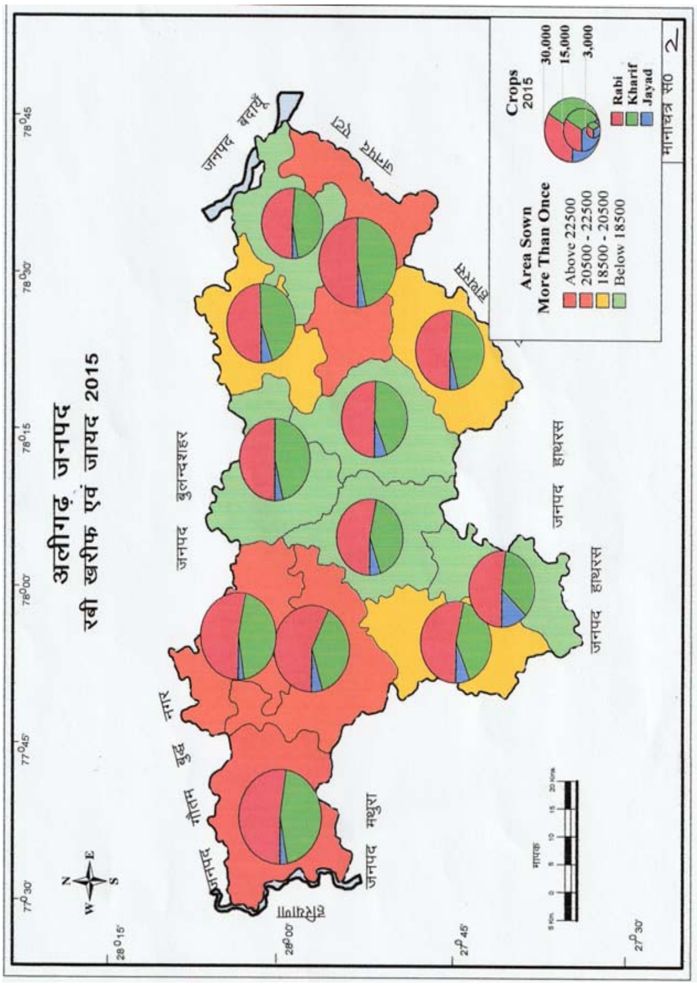

विकासखण्डवार तालिका-03 तथा मानचित्र-03 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि, जनपद के 12 विकास खण्डों में वर्ष 2000-2001 एवं 2015-16 के दौरान 15 वर्षों के अन्तराल में 3 विकास खण्डों में शुद्ध कृषि क्षेत्र के सामयिक प्रविर्तन में ऋणात्मक वृद्धि हुई है। इनमें कृषि क्षेत्र 2015-16 में बढ़ने के बजाय घट गया है। इनमें सर्वाधिक ऋणात्मक वृद्धि लोधा विकास खण्ड में -1.65 प्रतिशत हुई है। इसके बाद क्रमशः गोण्डा (-0.50 प्रतिशत) तथा खैर (-0.21 प्रतिशत) विकास खण्ड का स्थान है। वर्ष 2000-2001 में लोधा विकास खण्ड में शुद्ध कृषित क्षेत्र जहाँ 81.31 प्रतिशत था, वहीं 2015-16 में 79.66 प्रतिशत रह गया। इसी प्रकार शुद्ध कृषित क्षेत्र में सर्वाधिक वृद्धि टप्पल विकास खण्ड में हुई है। टप्पल विकास खण्ड में 2000-2001 में शुद्ध कृषित क्षेत्र 73.72 प्रतिशत था, जो 9.71 प्रतिशत वृद्धि के साथ 2015-16 में 83.43 प्रतिशत हो गया। इस विकास खण्ड में शुद्ध कृषित क्षेत्र में 2005-2006 में सभी विकास खण्डों में वृद्धि देखी गयी थी, किन्तु उसके बाद से इसमें सतत् कमी आ रही है। जनपद के साथ 7 विकास खण्ड ऐसे हैं जिनके शुद्ध कृषित क्षेत्र में वृद्धि ऋणात्मक या 1 प्रतिशत से कम अंकित की गयी है।

तालिका-3 अलीगढ़ जनपद- शुद्ध कृषित क्षेत्र के सामायिक स्थानिक प्रतिरूप (2000- से 2015-16)

विकासखण्ड	शुद्ध कृषित क्षेत्र (प्रतिशत में)				
	2000-01	2005-06	2010-11	2015-16	वर्ष 2000-2001 एवं 2015-16 के मध्य परिवर्तन
1. टप्पल	73.72	85.12	84.80	83.43	9.71
2. चण्डौस	84.87	85.62	85.79	85.78	0.91
3. खैर	87.27	86.25	85.71	87.06	-0.21
4. जवाँ	74.42	77.11	79.29	78.08	3.66
5. लोधा	81.31	79.46	78.89	79.66	-1.65
6. धनापुर	79.43	75.30	79.77	80.14	0.71
7. गोंडा	86.80	86.82	86.06	86.30	-0.50
8. इग्लास	85.26	85.97	85.47	85.70	0.44
9. अतरौली	84.32	85.90	85.12	85.31	0.99
10. बिजौली	70.85	74.42	75.68	75.72	4.87
11. गंगीरी	83.94	84.04	84.67	84.98	1.04
12. अकराबाद	79.82	81.96	83.08	83.07	3.25
ग्रामीण योग	82.54	82.54	83.02	83.07	0.53
[illegible]	[illegible]	44.72	47.57	56.69	11.97
[illegible]	[illegible]	81.67	81.87	82.22	0.95

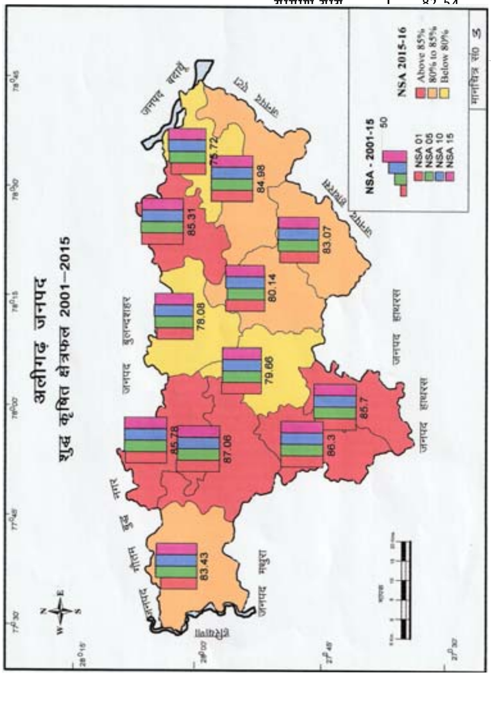

वर्ष 2015-16 में शुद्ध कृषित क्षेत्र के क्षेत्रीय प्रतिरूप को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है-

तालिका-03 के अवलोकन से ज्ञात हो रहे शुद्ध कृषित क्षेत्र के क्षेत्रीय प्रतिरूप को चार श्रेणियों में श्रेणीबद्ध किया गया है।

1. उच्च अनुपात के कृषित क्षेत्र- शुद्ध कृषित क्षेत्र के इस वर्ग के अन्तर्गत जनपद के 85 प्रतिशत से अधिक अनुपात वाले कुल पाँच विकास खण्ड सम्मलित हैं जिनमें जनपद के उत्तर पश्चिम में चण्डौस तथा खैर से लेकर दक्षिण व दक्षिण-पश्चिम में इग्लास व गौण्डा विकास खण्ड तक एक मेखला के रूप में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर-पूर्व में अतरौली विकास खण्ड सहित जनपद के 50.00 प्रतिशत भाग पर उच्च अनुपात वाले कृषित क्षेत्र का विस्तार है। स्पष्ट है कि, इन क्षेत्रों में कृषिगत क्रियाएं अत्यधिक सघन तथा सिंचाई के साधनों की स्थिति तुलनात्मक रूप से अन्य विकास खण्डों की अपेक्षा अच्छी है।

2. मध्यम अनुपात के कृषित क्षेत्र- 80-85 प्रतिशत शुद्ध व कृषित क्षेत्र वाले चार विकास खण्ड इस वर्ग में सम्मलित है, जिनमें जनपद के पश्चिम भाग टप्पल, उत्तरी मध्यवर्ती भाग में धनीपूर पूर्वी भाग में गंगीरी तथा दक्षिणी पूर्वी भाग में अकराबाद विकास खण्ड सम्मलित हैं जो मध्यम अनुपात वाले कृषित क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

3. न्यून अनुपात के कृषित क्षेत्र- जनपद के इस वर्ग के अन्तर्गत 80.00 प्रतिशत से कम शुद्ध कृषित क्षेत्र किया गया है, जिनमें जनपद के उत्तरी भू-भाग में जवां व मध्यवर्ती भाग में लोधा, तथा उत्तरी-पूर्वी भाग में बिजौली विकास खण्ड सम्मिलित हैं, जो जनपद के 25 प्रतिशत भाग पर विस्तृत है। जवां तथा लोधा विकासखण्ड में ऊसर व बंजर के कारण तथा बिजौली विकास के पूर्वी किनारे पर प्रवाहित होने वाली गंगा नदी के खादर के विस्तार के कारण शद्ध कृषित क्षेत्र का कम अनुपात मिलती है। उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि, जनपद के अन्तर्गत भूमि उपयोग संरचना वर्ष 2000-01 से 2015-16 तक शुद्ध कृषित क्षेत्र के अन्तर्गत लगभग निरंतरता रही है किन्तु टप्पल तथा अकराबाद विकास खण्डों में इसमें परिवर्तनशीलता देखने को मिली है। जनपद के अन्तर्गत भूमि उपयोग संरचना वर्ष 2000-2001 से 2015-16 के मध्य परिवर्तनशील रही है। जिसमें वन, चरागाह एवं उद्यान, परती भूमि, कृषि योग्य बंजर भूमि व ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के क्षेत्रफल में कम दर्ज की गई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. सिंह जयदेव (2005):- मैनपुरी जनपद में कृषि स्वरूप एवम् भूमि वहन क्षमता का भौगोलिक विश्लेषण अप्रकाशित शोध ग्रन्ध डा० बी० आर० वि० वि० आगरा, पृष्ठ-75
2. Chauhan D.S. (1961) :- "Studies in Utilization of Agricultural Land " Agrawal & Co. Agra. PP-22-24
3. Buck J.N. (1972) :- " Land Utilization Theory and Practice New Delhi, P-3.
4. Mandal R.B. (1972) " Land Utilization Theory & Practice " New Delhi, P-3.
5. Nanavali M.B. (For World) (1957):- " Reading in Land Utilization " The Indian Society of Agricultural Economics Bombey P-32.
6. Stamp L.D. (1960) : "Land of Britain its use & misuse London".
7. Shafi M. (1961) Field work in land use, Research under Indian Conditions,Geographical Magazine, Bombay, Volume 8 & 9. Shafi M. (1961), Land Utilization in Eastern.
8. Shafi M. (1961), Land Utilization in Eastern in Uttar Pradesh
9. Hanumant Rao, CH. (1970): Farm Size and Credite Policy: Economic & Political Weekly, Review of Agricultural P-26.
10. Mohammad, Noor (1970) : Agricultural Land use in India, Delhi Inter India Publication.
11. Singh, Jasbir and Dillon, S.S. (1984): " Agricultural Geography" New Delhi.

कुर्किहार की काँस्य बौद्ध कला

नीता लखैया

शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

भारतीय संस्कृति में अनेक धर्मों का विकास देखा जाता है। बिहार राज्य में समृद्ध संप्रदायों जैसे ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध धर्म का विकास साक्ष्यों के आधार पर देखा जाता है। बिहार में नालन्दा, बोधगया, वैशाली, चौसा, सुल्तानगंज, जमुई, विक्रमशिला आदि ऐसे अनछुए स्थल हैं जहाँ से प्राप्त कलाकृतियों का अनुसंधान के माध्यम से मूल्यांकन किया जा सकता है। गया जिले के कुर्किहार (राजगृह गया मार्ग पर स्थित) नामक ऐतिहासिक ग्राम से विशाल काँस्य कला का संग्रह प्राप्त हुआ जिससे यह अनुमान होता है कि यह ऐतिहासिक स्थल काँस्य मूर्तिकला के निर्माण का केन्द्र रहा होगा। पुरातत्वविदों के द्वारा कुर्किहार के मूर्तिकला पर विशेष रूप से अनुसंधान किया गया है। इसके ऐतिहासिक महत्व को देखते हुए उन्हें बिहार के प्रमुख संग्रहालय, पटना संग्रहालय, में प्रदर्शित कर विश्वप्रसिद्ध दीर्घा के रूप में विकसित किया गया।

बौद्ध धर्मावलम्बियों में विख्यात है कि बौद्ध धर्म के कनक मुनि बुद्ध के अवसान के चार सहस्र वर्ष पश्चात् भगवान बुद्ध, बोधिसत्व मैत्रेय के रूप में यहीं से अवतरित होंगे। सम्भवत: बौद्ध साहित्य में उल्लिखित प्राचीन कुक्कुटपाद विहार अर्वाचीन कुर्किहार ही है, जिसका उल्लेख चीनी यात्री फाहियान एवं हवेनसांग ने अपने यात्रा विवरणों में किया है। इस विशाल संग्रह का पता इस ग्राम के जमींदार को मन्दिर निर्माण के लिए उत्खनन कार्य कराते समय अकस्मात धातु-मूर्त्तियाँ मिलने के कारण चला। कुर्किहार की काँस्य मूर्तिकला के प्रतिमा लक्षण के आधार पर बुद्ध को स्थानक, ध्यान मुद्रा में किरीटयुक्त बैठे हुए दिखाया गया है। बौद्ध धर्म के शास्त्रीय अवधारणा के अनुसार बुद्ध को किरीटयुक्त दिखाना उचित नहीं है। इस तरह की बुद्ध-प्रतिमाएँ बौद्ध धर्म की शास्त्रीय अवधारणा का पालन नहीं करती किन्तु इस कला केन्द्र पर भगवान बुद्ध के इस स्वरूप का अंकन है और लोकप्रियता भी हैं। यहाँ की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें से तिरानबे प्रतिमाओं एवं कलाकृतियों पर बौद्ध धर्म के मंत्र' अभिलिखित हैं। कुछ कलाकृतियों में दाता के नाम, उनके पिता का नाम एवं उस देश का नाम भी उल्लिखित हैं। इन अभिलेखों से यह अनुमान होता है कि कुर्किहार के कला केन्द्र पर भिन्न-भिन्न जगहों से आये बौद्ध धर्मावलम्बी इन मूर्त्तिओं का निर्माण कराकर कई बौद्ध विहारों को दान-स्वरूप भेंट किये होंगे। मूर्ति कला-शैली के आधार पर अधिकांश प्रतिमाओं का कुर्किहार की कास्य बौद्ध कला तिथि-अंकन पालयुगीन है, किन्तु इनमें से कुछ प्रतिमाएँ कला के दृष्टिकोण से पूर्व पालकालीन होने का अनुमान होता है।" अन्य बौद्ध कलाकृतियों में भगवान बुद्ध के अतिरिक्त अन्य बौद्ध देवी-देवताओं यथा तारा, प्रज्ञापारमिता, चुण्डा, अपराजिता, मंजुश्री, अवलोकितेश्वर आदि का अंकन है।

बिहार के शिल्पकारों के द्वारा इन तक्षण कलाकृतियों को देखने से अनुमान होता है कि काँस्य कला का अपूर्व संग्रह एवं निर्माण का केन्द्र कुकिंहार रहा होगा जिसे 8वीं-12वीं शताब्दी तक के शिल्पकारों का महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है। मैं अपने इस लघु शोध प्रबंध में कुकिंहार की बौद्ध कला के अनछुए प्रसंग पर विचार प्रस्तुत कर रही हूँ। पटना संग्रहालय में प्रदर्शित इन बौद्ध कलाकृतियों में बुद्ध के विभिन्न मुद्राओं में मूर्तियाँ, बौद्ध देवियों एवं बौद्ध धर्म से संबंधित लगभग 240 कलाकृतियाँ एवं 156 कांस्य प्रतिमाएँ, शेष पेडेस्टल, शंख, मनौती स्तूप, छत्र आदि का व्यापक संग्रह है।" ज्ञातव्य है कि पाल शासक बौद्ध धर्मावलम्बी थे, अतएव इस युग में बौद्ध धर्म का विकास हुआ एवं संरक्षण मिला। कुर्किहार की पालयुगीन बौद्ध कलाएँ यहाँ की उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इस काल की काँस्य कला के निर्माण में भिन्न-भिन्न ढंग से मूर्तियों को अलंकरण से अलंकृत किया गया। वस्तुत: इस काल के मूर्तिकला में सौन्दर्य का बोध का बोध एवं भाष्कर्य का चमत्कार यही इसकी विशेषता है।

कुर्किहार की बुद्ध की स्थानक प्रतिमाएँ जिसकी कला विलक्षण है, भारतीय कला में विशिष्ट स्थान रखती हैं। नालंदा से प्राप्त बुद्ध की स्थानक प्रतिमा की कला शैली भी उत्कृष्ट है। लगभग 10वीं शती ई. की यह प्रतिमा शिल्पकला के दृष्टिकोण से अत्यंत सुन्दर मानी गयी है। यह भी अनुमान होता है कि इसी बुद्ध प्रतिमा की कला-शैली थाईलैण्ड, इन्डोनेशिया, जावा, सुमात्रा आदि देशों में लोकप्रिय हुई। बौद्ध कला में बुद्ध को अभय एवं वरद मुद्रा में शिल्पकारों ने दिखाया। उनके चेहरे में मुस्कान, दोनों कंधों पर उत्तरीय, चेहरे में कोमलता यहाँ की कला की पहचान है बिहार को काँस्य प्रतिमा का अनुपम उदाहरण भागलपुर स्थित सुल्तानगंज से बुद्ध की स्थानक मूर्ति प्राप्त हुई जो वरसिंघम संग्रहालय में प्रदर्शित है।' सुल्तानगंज की विशाल काँस्य कला की निर्माण स्थल अनुसंधानविदों के लिए एक महत्वपूर्ण विषय है।

बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर आधारित कला का अंकन इस युग के शिल्पकारों ने अपने कुशल तकनीक के आधार पर किया तभी तो कूर्किहार से प्राप्त मूर्ति में भी बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाएँ एक परिकारों में दर्शायी गयी है। इस परिकारा में उत्कीर्ण घटनाओं का निर्माण कला लगभग 11वीं शती ई. के होने का अनुमान होता है। इस प्रतिमा के पट्टिका में बुद्ध के जन्म, उनके द्वारा नलगिरि में मदमस्त गज को नियंत्रित करना, सारनाथ में धर्मचक्रप्रवर्तन के साथ धर्मोपदेश, वरद मुद्रा में श्रावस्ती चमत्कार, भिक्षापात्र के साथ खड़े बन्दर को शहद पान कराते और ऊपरी भाग में महापरिनिर्वाण आदि बुद्ध के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ बड़े ही कलात्मक ढंग से दर्शाये गये हैं।

कुकिंहार की एक अन्य बौद्ध मूर्ति के मुखमण्डल में कोमलता, प्रभामण्डल अण्डाकार, अधखुली आँखें, होठ पतले, नासिका तीक्ष्ण बड़ी ही बारिकी से दर्शाये गये हैं। यह इस कला केन्द्र की उत्कृष्ट शिल्प लक्षण माना जाता है। अन्य बौद्ध कला में एक बुद्ध की मूर्ति को स्थानक रूप में दर्शाया गया है। इसके सिर पर मुकुट, दाहिना हाथ अभय मुद्रा, बायें हाथ में संघाती (चीवर) है। बुद्ध कमल के ऊपर अभय मुद्रा में दिखाये गये हैं। अधखुली आंखें, रजतजटित उर्ना इस मूर्ति की शिल्प की विशेषता है। एक अन्य प्रतिमा" में बुद्ध को कमल के ऊपर अभय मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। इनकी आँखें एवं उर्णा रजतजटित हैं।

काँस्य काल में अवलोकितेश्वर का चित्रण विभिन्न रूपों में किया गया है। ये न बुद्ध अमिताभ के बोधिसत्व हैं। इनके बायें हाथ में कमल तथा सिर पर ध्यानी बुद्ध, अमिताभ, को छोटी मूर्ति अंकित होती है। यहाँ से प्राप्त 10वीं शती ई. को एक मूर्ति में अवलोकितेश्वर को अल्प भंग मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। पद्मपाणी अवलोकितेश्वर की एक विलक्षण धातु मूर्ति कुर्किहार से प्राप्त है। इनका दाहिना हाथ वरद् मुद्रा में है

कांस्य शिल्पकला में ही सिंहनाद अवलोकितेश्वर बौद्ध धर्म के हीनयान सम्प्रदाय से संबंधित है। सिंहनाद का शाब्दिक अर्थ सिंह का गर्जन होता है। साधनमाला में इन्हें जटामुकुट युक्त तीन नेत्रों वाला देवता बताया गया है। ये मृगछाल धारण करते हैं। इन्हें अलंकृत नहीं किया जाता है। इनके दाहिने हाथ में त्रिशूल होता है जिसमें सर्प लिपय रहता तथा बायें हाथ में कमल पुष्प होता है। इनके किरीट में अमिताभ को छोटी मूर्ति अकित होती है। सिंहनाद अवलोकितेश्वर" की एक विलक्षण प्रतिमा कुर्किहार से प्राप्त है। कुर्किहार से प्राप्त इस मूर्ति की विशेषता है कि इसमें सिंहनाद अवलोकितेश्वर अलंकरणयुक्त हैं।

कुर्किहार से प्राप्त मंजुश्री को एकहरे कमलदल आसन पर द्विभंग मुद्रा पर बैठे दिखाया गया है जिनके बायें हाथ में नीलोत्पल तथा दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। प्रज्ञापारमिता की पाण्डुलिपि नीलोत्पल पर अवस्थित है। कला शैली के आधार पर इस प्रतिमा का काल-निर्धारण लगभग 9वीं शती ई. किया गया है।

बौद्ध देवी प्रतिमाओं में तारा अतिशक्तिशाली देवी हैं। मूर्किहार से प्राप्त मूर्तियों में तारा को खड़े अथवा बैठे हुए दिखाया गया है। तारा" की एक विलक्षण कांस्य-प्रतिमा में तारा को एक कमल आसन पर अतिभंग मुद्रा में खड़ा अंकित किया गया है। प्रतिमा अग्निशिखायुक्त प्रभामण्डल के अन्दर अवस्थित है। प्रभामण्डल के ऊपरी मध्य भाग में छत्र है। तारा के बांयें हाथ में कमल नाल है तथा दाहिना हाथ वरद मुद्रा में प्रदर्शित है। तारा की यह प्रतिमा भारतीय काँस्य कला का अनुपम उदाहरण है। कला शैली के आधार पर इस प्रतिमा का काल निर्धारण काल 10वीं शती ई. किया जाता है।

अतः मूर्तिकला के दृष्टिकोण में कुर्किहार की काँस्य कलाएँ भारतीय शिल्पकला में विशिष्ट स्थान रखती है। अपनी अपूर्व कलाशैली के कारण कुर्किहार की काँस्य कला सम्पूर्ण विश्व में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

संदर्भ सूचीः-

1. कनिंघम, ए, आर्कियोलॉजिकल सर्वे इण्डिया रिपोर्ट, पृ. 15-16.
2. सरस्वती, एस. के. य शास्त्री, के.सी. और क्रैम्रीश, एच., कुर्किहार, गया एण्ड बोध गया, पृ. 11, राजशाही, 1936.
3. वही, पृ. 71.
4. परशुराम पाण्डेय, 'कुर्किहार की विलक्षण बौद्ध प्रतिमाएँ', बोधी- चक्र, भाग - 1, पृ. 102.
5. पाण्डेय, परशुराम, बिहार सांस्कृतिक विरासत विशेषांक, पृ. 79, बिहार, पटना, 1996.
6. आर्क नं. 9593, पटना म्यूजियम कैटलॉग, टेराकोटा एण्ड मेटल इमेजेज, पृ. 177, पटना, 2001.
7. आर्क नं. 9595, वही, पृ. 183.
8. आर्क नं. 9625, वही, पृ. 184.
9. आर्क नं. 9589, वही, पृ. 179.
10. आर्क नं. 9536, वही, पृ. 177.
11. आर्क नं. 9693, वही, पृ. 189.
12. आर्क नं. 9786, वही, पृ. 192.
13. आर्क नं. 9623, वही, पृ. 192.
14. आर्क नं. 9788, वही, पृ. 190.
15. आर्क नं. 9630, वही, पृ. 196.

प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा तथा इसके उद्देश्य एवं आदर्श

कविता लखैयार

शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन, मगध विश्वविद्यालय बोध गया

प्राचीन भारत में नारी शिक्षा का विशेष स्थान था। अधिकांश नारियाँ समाज की सभ्य, शिक्षित और सम्मानित अंग रही हैं। पुरुषों के समान स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता थी तथा उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। वे पुरुषों के साथ यज्ञ करती थीं, यहाँ तक की वह यज्ञ पूर्ण नहीं माना जाता था जो बिना स्त्रियों के सम्पादित किया गया था। अथर्ववेद में कन्या के द्वारा ब्रह्मचर्य की व्यवस्था का पालन करने का वर्णन मिलता है। मनु के कथन से स्पष्ट होता है कि पूर्वकाल में लड़कियों का भी उपनयन संस्कार सम्पन्न होता था। कुछ लड़कियाँ विवाह की आयु हो जाने पर भी अध्ययन समाप्त नहीं करती थीं। उन्हें ब्रह्मवादिनी कहते थे। अध्ययन का कार्य करने वाली स्त्रियों का 'उपाध्यानी' कहते थे। परन्तु जा स्त्रियों स्वयं अध्यापिकायें होती थीं उन्हें उपाध्याय कहते थे। सूत्र ग्रंथों, रामायण और महाभारत से पता चलता है कि स्त्रियाँ वैदिक कार्यो के साथ धार्मिक कृत्य भी करती थीं। ऋग्वेद के कई मंत्रों की रचना स्त्रियों ने की थी। दर्शन के क्षेत्र में भी स्त्रियाँ अध्ययन और चिन्तन में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं।[1]

बालिकाओं की शिक्षा के लिये परिवार का विशेष योगदान था। ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं कि लड़कियाँ छात्रावासों, स्कूलों अथवा कॉलेजों में शिक्षा पाती थीं। मालती माधव के नाटक में कामतदायिकी की शिक्षा कॉलेज में भूरिवासु तथा देववर्ता के संग होने के उदाहरण मिलते हैं। धर्म सूत्रों के अनुसार लड़कियों की शिक्षा घर पर होनी चाहिए। यह व्यवस्था वस्तुतरू उच्च परिवारों में ही संभव थी। लड़कियों को घरेलू विज्ञान की शिक्षा के लिये घर प्रमुख शिक्षा केन्द्र थे। संगीत तथा नृत्य भी शिक्षा बालिकाओं को दी जाती थी। इन कलाओं में सिद्धहस्त नारियों का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की अनुमति देकर उनके लिये शिक्षा की सुविधाओं को बढ़ा दिया। डॉ. अल्तेकर ने लिखा है कि बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित करने की अनुमति देकर शिक्षा तथा दर्शन के प्रसार में विशेष योग दिया। राजकीय परिवार की लड़कियाँ सैनिक शिक्षा भी प्राप्त करती थी।[2]

परिवार भी लड़कियों के लिये प्रथम पाठशाला थी। अधिकांश स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही थीं और ज्ञान के क्षेत्र में योगदान दे रही थीं। अत: यह अनुमान करना भी स्वाभाविक सा है कि स्त्रियाँ अध्यापन के व्यवस्था में भी थीं। बारहवीं शताब्दी तक पर्दा प्रथा की कठोरता न होने के कारण स्त्रियों को अध्यापन का व्यवसाय ग्रहण करने में विशेष असुविधा नहीं होती थी। सम्भव है कि अध्यापिकाओं ने लड़कों को भी शिक्षित किया होगा। पाणिनी के विवरण से पता चलता है कि लड़कियों के रहने के लिये आवास होते थे जिसे छात्रीशाला कहते थे जो महिला निरीक्षकों की देख-रेख में चलते थे। परन्तु डॉ. अल्तेकर के कथनानुसार स्त्रियों के छात्रीशाला की व्यवस्था तथा अध्यापिकाओं के कार्यक्रमों के विषय में स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

प्राचीन काल में सह-शिक्षा के विषय में जिज्ञासा होना स्वाभाविक सा है किन्तु उपलब्ध स्रोतों से इस व्यवस्था पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता है। मालती माधव जो आठवीं शताब्दी की रचना है। उससे सह-शिक्षा का संकेत मिलता है। 8वीं शताब्दी में भवभूति को रचना उत्तररामचरित में सह-शिक्षा का उल्लेख मिलता है। डॉ. अल्तेकर के अनुसार पुराणों में वर्णित सुजाता, प्रभदवश की कथाओं से ज्ञात होता है कि बालिकाओं का विवाह युवावस्था प्राप्त करने पर होता है और वे पाठशाला में बालकों के साथ ही पढ़ती थीं। बंगाल में भी स्त्रियों के सह-शिक्षा का उल्लेख मिलता है वहाँ की प्राचीन लोककथाओं से ज्ञात होता है कि बालक-बालिकाएँ एक सत्ता ही पाठशाला में अध्ययन करते थे। परन्तु सह-शिक्षा की इस व्यवस्था से कितने प्रतिशत स्त्रियाँ लाभ उठाती थीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

वैदिक काल में स्त्रियाँ पुरुषों की भांति परा एवं अपरा विद्याओं का अध्ययन करती थीं। राजतरंगणी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 12वीं शताब्दी तक संगीत स्त्रियों का प्रिय विषय बना रहा। ललित कथाओं के अतिरिक्त स्त्रियाँ धार्मिक ग्रंथों एवं शास्त्रों का भी अध्ययन किया करती थी। रामायण और महाभारत अध्ययन के प्रमुख धार्मिक ग्रंथ थे।[3]

स्त्रियों के शिल्प शिक्षा का भी उल्लेख मिलता है। आसाम के राजा कालिन्द वर्मा की पुत्री कल्प सुन्दरी सब तरह के कार्यों में चतुर एवं तरह-तरह के कला कौशल तथा शिल्प में कुशल थी। स्त्रियों को भाषा का भी ज्ञान कराया जाता था जिससे वे संस्कृत विशेषतया, प्राकृत भाषा बिना किसी अवरोध के बोलती थी। कभी-कभी स्त्रियों के गृह-नक्षत्रादि और तंत्र-मंत्र के ज्ञान का भी उल्लेख मिलता है। रानी विलासवती ने अनेक मंत्रों को सिद्ध किया था। इसके अतिरिक्त गणित जैसे शुल्क विषयों का अध्ययन भी उच्चकोटि की स्त्रियाँ करती थीं।

परन्तु धीरे-धीरे स्त्रियों को शिक्षा की स्वतंत्रता का अंत हो गया। इसका कारण स्त्रियों का धार्मिक स्थिति का पतन था। लड़कियों का उपनयन संस्कार भी अब दिखावा मात्र ही रह गया। याज्ञवल्क्य तथा उनका अनुकरण करके बाद के स्मृतिकारों ने स्त्रियों के लिये उपनयन संस्कार को पूर्णत: वर्जित कर दिया। इस प्रतिबंध के कारण स्त्रियों के लिये उपनयन संस्कार को पूर्णत: वर्जित कर दिया। इस प्रतिबंध के कारण स्त्रियाँ वेदध्ययन से वंचित कर दी गई. वे वैदिक यज्ञ नहीं कर सकती थीं- वैदिक मंत्रों का उच्चारण नहीं कर सकती थी। अत: स्त्रियों के शिक्षा प्राप्त करने के अवसर कम हो गये। फिर भी सभ्य और समृद्ध परिवारों की स्त्रियाँ ललित कलायें और गृहस्थ जीवन से संबंधित विद्यायें सीखने के साथ हो साहित्यिक शिक्षा भी ग्रहण करती थीं। परन्तु साधारण परिवारों की स्त्रियों में शिक्षा का प्रतिशत बहुत ही कम रहा होगा। साधारण परिवार की स्त्रियों में शिक्षा का प्रतिशत बहुत ही कम रहा होगा। साधारण परिवार को स्त्रियाँ जीवन निर्वाह के निमित्त कताई और बुनाई का आश्रय लेती थी।

शिल्पों तथा उद्योगों की शिक्षा के लिये प्राचीन भारत में अलग व्यवस्था थी। प्राय: सभी प्रमुख उद्योगों और शिल्पों की श्रेणियाँ थीं। अधिकांश पुत्र पिता की मृत्यु के बाद उसी व्यवसाय को करता था। शिक्षार्थी भी शिक्षा लेने के लिये किसी कुशल कारीगर के साथ रहता था। शिक्षा की अवधि में शिष्य के रहने और भोजन आदि करने का व्यय गुरु ही उठाता था।

किसी भी देश के अतीत के आधार पर वर्तमान निश्चित होता है तथा भावी प्रेरणा का मूल स्रोत होता है। भारत के अतीत का गौरव वर्तमान को उज्जवल करता हुआ उसके भविष्य को भी आकर्षक बना रहा है। प्राचीन भारत में जीवन का प्रत्येक क्षेत्र पर धर्म का प्रभाव था। इसका मुख्य कारण प्राचीन भारतीय विचारधारा एवं जीवन-दर्शन का पूर्ण रूप से धार्मिक होना था। वास्तव में प्राचीन शिक्षा धर्म से प्रेरित थी। प्राचीन भारत में शिक्षा ज्ञान का स्रोत थी। उसे लोक और परलोक सुधारत का माध्यम माना जाता था। भारत न केवल भारतीयता का ही विकास नहीं किया, वरन जिसके चित्र मानव को जन्म दिया और मानवता का विकास करना ही उसकी सभ्यता का एक मात्र उद्देश्य रहा है उसके लिये सम्पूर्ण पृथ्वी ही कुटुम्ब श्री वसुधैव कुटुम्बकम्[4]

प्राचीन भारत में जीवन का उद्देश्य था आदर्श था और आदर्श की प्राप्ति संसार के सभी भौतिक विभूतियों से उच्चतर समझी जाती थी। इसके आधार पर प्राचीन भारत की शिक्षा का विकास हुआ था। शिक्षा का उद्देश्य एक आदर्श जीवन प्राप्त क समझा जाता था। जीवन का प्रमुख उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति था अतरू जीवन की प्रत्येक क्रिया मोक्ष प्राप्ति के लिये ही की जाती थी। इस भावना का शिक्षा पर भी प्रभाव रहा। प्राचीन काल में शिक्षा का केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम ही नहीं माना जाता था बल्कि शिक्षा मोक्ष प्राप्त करने का एक साधन मानी जाती थी। यही कारण है कि जीवन की सम्पूर्ण बहुमुखी क्रियाय धर्म के मार्ग पर चलकर ही अपने एक मात्र गंतव्य 'मोक्ष' की ओर अग्रसर हुई शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय देन अद्वितीय है। जब संसार की अन्य जातियाँ सभ्यता के प्रथम सोपान पर भी उस समय भारत में उच्च तत्वज्ञान की मीमांसा की तथा उसने अपने ज्ञान से विश्व को आलोकित किया और मानव सभ्यता के एक मानदण्ड की स्थापना की।

उस समय मनुष्यों का ऐसा विश्वास था कि मोक्ष ही जीवन का परम लक्ष्य है। उनके भौतिक जगत से ध्यान न देने के कारण उनकी समस्त प्रवृतियाँ बाह्य विकास की और न उन्मुख होकर अन्तर्जगत के सृजन निर्माण को और प्रेरित हो गई थी। तत्कालीन मानव-समाज का अन्तिम लक्ष्य ब्रह्म व अन्तिम सना की प्राप्ति रहा है। शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को उसके नागरिक और सामाजिक ज्ञान अर्जित करना ही था। समावर्तन संस्कार के समय गुरु इन समस्त कर्तव्यों को बड़े ही प्रभाव युक्त शब्दों में समझता था। शिक्षा सामाजिक सुख और कौशल की वृद्धि का भी ध्यान रखती थी। समाज की सभी प्रकार की क्रियाओं के लिये लोगों को शिक्षा देने का उद्देश्य प्राचीन भारत में था। शिक्षा देश की संस्कृति के संरक्षण और परिवर्धन का प्रमुख माध्यम है। संक्षेप में प्राचीन काल में

शिक्षा के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य थे। (1) व्यक्ति के चरित्र का विकास करना, (2) बाह्य अनुशासन के साथ-साथ आन्तरिक अनुशासन को अधिक महत्व प्रदान करना, (3) जीवन को पूर्ण रूप से पवित्र बनाए रखकर, अन्तिम उद्देश्य श्मोक्षश् की ओर ले जाना (4) भौतिक जगत से मन को हटाकर आंतरिक जगत की ओर ध्यान केन्द्रित करना, (5) जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करना, (6) वैदिक साहित्य, यज्ञ तथा कर्मकाण्डों और आध्यात्मिक रहस्यों की सांस्कृतिक निधि के रूप में संजोकर रखना।

उपर्युक्त शिक्षा के उद्देश्यों से यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि प्राचीन काल में शिक्षा का उद्देश्य केवल धर्म दिक्षा देना या चरित्र का निर्माण था। इस संदर्भ में प्रकाश डालते हुए श्री बी.जी. गोखले लिखते हैं- इस प्रणाली का आयोजन इस प्रकार का था कि जीवन के प्रति छात्र का दृष्टिकोण विस्तृत हो जाय, उसमें ज्ञान की ज्योति बड़े, उसकी बुद्धि प्रखर हो और उसके व्यक्तित्व के विकास द्वारा उसके अन्दर चरित्र बल की स्थापना हो। यह सत्य है कि इस प्रणाली में धर्म शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया जाता था, परन्तु साथ ही ज्ञान तथा साहित्य की शाखाओं के महत्व को भी भुलाया जाता था।

प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन शिक्षा पद्धति के लक्ष्य, ध्येय, और आदर्श क्या थे। भारतीय शिक्षा केवल पुस्तकों के ज्ञान तक ही सीमित न थी। शिक्षा की सार्थकता तभी थी जब इससे विद्यार्थी में विवेक बुद्धि बढ़े और उसे कार्य में सफलता मिलें। इस प्रकार शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन ही नहीं थी। शिक्षा का आदर्श चरित्र का निर्माण था। नैतिक भावना का विकास करके चरित्र को समुन्नत और श्रेष्ठ बनाना भारतीय शिक्षा पद्धति का एक प्रमुख उद्देश्य था। भारतीय शिक्षा का आदर्श विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना था। विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को दबाया नहीं जाता था बलिक पूर्ण विकास का अवसर दिया जाता था। विद्यार्थियों के आत्म-सम्मान की भावना बढाई जाती थी। उनके वैदिक एवं शारीरिक विकास की ओर भी ध्यान दिया जाता था शिक्षा वृत्ति द्वारा वह अपनी सहायता स्वयं करता था। विद्यार्थी व्यक्तित्व के विकास के लिये उसमें आत्म-संयम और आत्म-अनुशासन को भी महत्व दिया जाता था। विद्यार्थी का जीवन सीधा-सादा एवं सरल था। शिक्षा का आदर्श विद्यार्थी को उसके नागरिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का ज्ञान कराना भी था। समावर्तन संस्कार के समय गुरु इन समस्त कर्त्तव्यों का बड़े ही प्रभाव युक्त शब्दों में समझता था। मनुष्य को अपने स्वार्थ में लिप्त नहीं रहना चाहिए। पर सेवा और पर व्याकरण में भी उसके धन का समुचित भाग व्यय होना चाहिए।[5]

शिक्षा सामाजिक सुख और कौशल की वृद्धि का भी ध्यान रखती थी। इसलिए भारतीय समाज में श्रम विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार किया था। इसलिये भारतीय शिक्षा पद्धति ने अपने सम्मुख यह आदर्श रखा था कि विभिन्न उद्योगों, व्यवसायों और विधाओं को नई पीढ़ी के लोगों में भली-भांति नियोजित कर सके। समाज में सभी प्रकार की क्रियाओं के लिये लोगों को शिक्षा देने का उद्देश्य प्राचीन भारत में था। शिक्षा देश की संस्कृति के संरक्षण और परिवर्धन का प्रमुख माध्यम है। शिक्षा के द्वारा ही देश की सांस्कृतिक चेतना और स्मृति का अस्तित्व बना रहा है। प्राचीन काल में शिष्य, गुरु-गृह जाकर अध्ययन करता था। गुरु-शिष्य संबंध बहुत घनिष्ठ था। गुरु-गृह ही उसका शिक्षालय था। छात्रों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जाता था जिससे वे अपने व्यक्तित्व का विकास करते थे। प्राचीन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विकास करना था। इसके लिये बाह्य उपकरणों का उपयोग न करके विद्यार्थियों के आंतरिक शक्ति पर निरर्थक ध्यान दिया जाता था। प्राचीन काल में बौद्धकाल की भांति या जैसे आजकल शिक्षा केन्द्र ही नहीं थे। उस समय कुछ मठ अथवा विशाल तीर्थ क्षेत्रों का निर्माण हो गया था। उन्हें शिक्षा केन्द्र अथवा संस्थाएँ नहीं कहा जा सकता फिर भी उपनिषद में संघ परिषद, चरण, मठ आदि शब्द आये हैं जहाँ विद्वान एकत्र होकर शास्त्रार्थ किया करते थे। सामूहिक रूप में शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षा संगठनों का प्राचीन काल में अभाव था।

संदर्भ-सूची

1. मनुस्मृति, 9/10/102
2. पी. बी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास अनुवाद हिन्दी भाग, पृ. 327
3. गौतम धर्मसूत्र, 2 / 9 / 1 अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री
4. तैततीय संहिता, 6/2/1
5. पाणिनी शिक्षा, 52, मन्त्रोहीन स्वरतो वर्णतो या मिथ्याप्रयुक्त न तमर्थमाह। सावाग्वजो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतो पराधात्।

प्रयोजनमूलक हिन्दी का स्वरूप

डॉ० पुष्पा कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, सुन्दरवती महिला महाविद्यालय, भागलपुर, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

आमतौर पर भाषा के दो प्रायोगिक रूप मिलते हैं--औपचारिक तथा अनौपचारिक भाषा रूप। दैंनदिन प्रयोग में आनेवाली भाषा के रूप को सामान्य हिन्दी के नाम से जाना जाता है, जबकि कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, कविता आदि की भाषा साहित्यिक हिन्दी कहलाती है। हिन्दी के इन दोनों प्रचलित रूपों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण एवं कामकाजी रूप भी मिलता है जो वर्तमान में अत्यंत उपयोगी है। वह है--प्रयोजनमूलक हिन्दी का स्वरूप।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व इस पद की व्याख्या जान लेना आवश्यक है। प्रयोजनमूलक हिन्दी अर्थात् "उद्येश्य के निहितार्थ प्रयोग में आनेवाली हिन्दी भाषा'। जो अपने भाषा प्रयोग में विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु साधन है। इसे कामकाजी हिन्दी के नाम से भी जाना जाता है। साहित्येत्तर रूपों में इसके वृहतर प्रयोग प्रशासन, बैंक, पत्रकारिता, विधि आदि क्षेत्रों में भी अनिवार्य रूप से मिलते हैं। यह ऐसा सेवा माध्यम है जो प्रशासन व्यवस्था एवं तकनीकी क्षेत्रों में निरंतर प्रगतिशील है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के लिए अंग्रेजी में 'FUNCTIONAl HINDI' शब्द का प्रयोग किया जाता है अर्थात् कामकाजी या व्यवहारिक हिन्दी। इसमें मुख्यत: वाणिज्य, व्यापार जैसे मीडिया की भाषा, सट्टा बाजार आदि की भाषा शामिल है। इसे कार्यालयी हिन्दी या 'OFFICIAl HINDI' के सम्बन्ध में भी प्रयुक्त किया जाता है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के व्यवहार क्षेत्र

भाषा प्रयुक्ति के आधार पर प्रयोजनमूलक हिन्दी के व्यवहार क्षेत्र को मोटे तौर पर इस प्रकार प्रयोगवत स्वरूप मिलते हैं:-

1. ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त हिन्दी, जिसमें विभिन्न शास्त्रों में प्रयुक्त भाषा रूप जैसे--संगीतशास्त्र, काव्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र, भाषाशास्त्र, योगशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि।
2. तकनीकी हिन्दी, जिसमें इंजीनियरिंग, प्रेस, फैक्ट्री, मिल आदि की तकनीकी भाषा।
3. साहित्यिक हिन्दी अर्थात् कविता, कहानी, नाटक, निबंध आदि की हिन्दी।
4. वाणिज्य व्यापार की हिन्दी, जिसमें मंडियों, सट्टाबाजारों, दलालों एवं सर्राफों की हिन्दी।
5. कार्यालयी हिन्दी जिसमें कार्यालयों तथा प्रशासन से सम्बन्धित हिन्दी।

क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित भाषा रूप को 'विशिष्ट प्रयोजन की भाषा' कहना भी युक्तिसंगत होगा। विशेष प्रयोजन के अनुरूप विभिन्न प्रयुक्तियों में निर्धारित भाषा का रूप विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होता है। जैसे- कार्यालय की भाषा को अस्पताल में, बैंक की भाषा को न्यायालय में नहीं प्रयोग किया जा सकता। ऐसी स्थिति में व्यवहार क्षेत्र में होनेवाले अंतर के कारण ही यह 'प्रयोजनमूलक भाषा' कहलाती है।

प्रयोजनमूलक भाषा के प्रकार्य

प्रयोजनार्थ प्रयुक्ति ही प्रयोजनमूलक भाषा को संस्थागत बनाते हैं। प्रयोजनमूलक प्रकार्यों के तदनुरूप योजनाबद्ध विकास हेतु भाषा नीति और भाषा नियोजन आवश्यक है क्योंकि इससे भाषा की क्रियान्वयन विधि का संधान होता है। चूँकि यह संस्थागत प्रयोजनार्थ

प्रयुक्त होती है इसलिए इसमें तत्सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुरूप नियमों एवं निर्देशों को ध्यान में रखकर ही नवीन शब्दावलियों का सृजन होता है। इसके अनुसार हिन्दी भाषा के प्रयोजनमूलक प्रकार्य दो रूपों में उपलब्ध हैं--

1. राजभाषा हिन्दी के रूप में-- राजकाज की भाषा देश की राजभाषा कहलाती है। संविधान के अनुच्छेद 343 खंड-1 में वर्णित है कि 'संघ की राजभाषा' हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। अंग्रेजी के स्थान पर एकदम हिन्दी को लाने में उत्पन्न होनेवाली व्यवहारिक कठिनाइयों की संभावना को मद्देनजर रखते हुए यह प्रस्ताव पारित किया गया कि 26 जनवरी, 1965 तक अंग्रेजी का व्यवहार उन सभी प्रयोजनों के लिए किया जाता रहेगा, जिनके लिए उसका व्यवहार संविधान पारित होने से पहले होता रहा है। 'संघ की राजभाषा' से तात्पर्य विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की भाषा है।
2. राष्ट्रभाषा हिन्दी के रूप में-- भाषा का वह रूप जो जनता के दिलों के तार को जोड़ने के साथ ही राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान भी होती है, राष्ट्रभाषा कहलाने की योग्यता रखती है। इस तरह राष्ट्रभाषा हिन्दी राजभाषा के रूप में पूरे देश की सम्पर्क की भाषा भी है। साथ ही ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में व्यवहृत हिन्दी भाषा परस्पर सम्पर्क के लिए सामान्य व्यवहार में प्रयोग की जाती है। सम्पर्क की भाषा होने के कारण हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है। यही हिन्दी भाषा अपने तकनीकी स्वरूप में राजभाषा के रूप में व्यवहृत होती है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के विविध रूप

1.कार्यालयी हिन्दी-- सरकार तथा सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यालयों के कामकाज से सम्बन्ध रखनेवाली हिन्दी कार्यालयी हिन्दी के नाम से अभिहित किया जाता है। कार्यालयी हिन्दी ज्यादातर अनुवाद आधारित हिन्दी होती है। जैसे--

-- इसे तत्काल प्रभाव से लागू किया जाता है।

--उचित दिशा-निर्देश के साथ पुनःप्रेषण।

--विचाराधीन मामला।

कार्यालयी हिन्दी में भाषा का औपचारिक रूप मिलता है।

2.वित्त तथा वाणिज्य-व्यापार की हिन्दी

वित्त तथा वाणिज्य-व्यापार में सम्प्रेषण के लिए जिस हिन्दी भाषा का प्रयोग होता है वह सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त नहीं होता। इसकी शब्दावली तथा शैली बाजार की अपनी शब्दावली या वाक्यांश होते हैं; जो उसके अवस्था बोधक होते हैं। जैसे--

-- सोना उछला, चाँदी लुढ़की।

-- सोने में सुरखी, चाँदी भी तेज।

-- दालें नरम, तिलहन गरम।

--बाजार आज खामोश।

--सेंसेक्स आज 65 अंक उछलकर 1030 पर बंद हुआ।

इन वाणिज्यिक गतिविधियों में बैंकों की भूमिका दिन-प्रतिदिन विस्तार पा रही है। बैंकों में भी हिन्दी का प्रयोग धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। यद्यपि बैंक की अपनी शब्दावली है, जो अंग्रेजी में होते हुए भी हिन्दी भाषा में 'एडोप्ट' कर लिये गये हैं और सम्पूर्ण जनता उसका धड़ल्ले से प्रयोग भी कर रही है। जैसे-- फॉर्म, चेक, ड्राफ्ट, अकाउंट, सेविंग आदि शब्द।

3.विधि की हिन्दी-- स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व न्यायालयों में उर्दू मिश्रित हिन्दी का प्रचलन था और स्वातंत्र्योत्तर अंग्रेजी का वर्चस्व हो गया, किन्तु आज भी न्यायालयी हिन्दी अपने जटिलतम स्वरूप में न्याय-व्यवस्था में कदम रखे हुये है। आज आवश्यकता है कि इसमें सुधार करते हुए हिन्दी के सहज एवं बोधगम्य स्वरूप का प्रयोग करें।

4.विज्ञान की हिन्दी-- रसायण, भौतिकी, वणस्पतिशास्त्र, इंजिनीयरिंग, कम्प्यूटर, चिकित्सा विज्ञान आदि क्षेत्रों की शब्दावली, वाक्य-संरचना व विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ होती हैं। विज्ञान की हिन्दी विवरणात्मक न होकर सूचनात्मक होती है। इसमें सहजता लाने के लिए कुछ शब्दों को ज्यों-का-त्यों देवनागरी लिपि में लिख दिया जाता है और कोष्ठक में उसकी अंग्रेजी शब्द भी डाल दिये जाते हैं। यह अभी शैशवावस्था में है। इसमें अभूतपूर्व विकास की आवश्यकता है।

5.जनसंचार की हिन्दी-- जनसंचार माध्यमों में अखबार, रेडियों एवं दूरदर्शन ने प्रगति के साथ हिन्दी के प्रयोजनमूलक स्वरूप को शीर्ष तक पहुँचाने का कार्य किया है। इसमें समाचार पत्र-पत्रिकाएँ लिखित माध्यम हैं। रेडियो श्रव्य माध्यम, टेलिवीजन एवं कम्प्यूटर दृश्य एवं श्रव्य दोनों। आज टेलीप्रिंटर्स के माध्यम से ऑफसेट प्रिंटिंग को पर्याप्त बल मिला है। इसकी सहायता से कुछ ही सेकेंडों में हजारों मील दूर समाचार प्रेषित किया जा सकता है। किन्तु इन सभी माध्यमों में हिन्दी भाषा के रूप में विभिन्नता भी मिलती है। रेडियों, दूरदर्शन की हिन्दी भाषा का सरल होना अनिवार्यता है जबकि समाचार-पत्रों की हिन्दी क्लिष्ट भी हो सकती है।

प्रयोजनमूलक भाषा और प्रयुक्ति का सम्बन्ध

प्रयोजनमूलक भाषा अर्थात् किसी प्रयोजन विशेष के लिए प्रयुक्त होनेवाली हिन्दी भाषा। भाषा भावों और विचारों की लिखित और मौखिक अभिव्यक्ति का साधन होती है। शब्द प्रयोजनीय होते हैं। विभिन्न कार्यक्षेत्रों के अनुसार विभिन्न भाषा प्रयुक्तियाँ होती हैं। जैसे, परिवार के अनुसार पारिवारिक भाषा का प्रयोग पारस्परिक बातचीत, पत्र-व्यवहार एवं विचारों के आदान-प्रदान में प्रयोग में वयवहृत होते हैं। उसी भाषा को हम अपने कार्यालय, व्यवसाय में नहीं प्रयुक्त कर सकते क्योंकि पारिवारिक भाषा अनौपचारिक होती है जबकि कार्यालय या व्यवसाय की भाषा औपचारिक। दोनों के बीच इस्तेमाल किए गए शब्दावलियों एवं वाक्यांशों के व्यवहारगत एवं भाषागत अंतर होते है। कार्यालय या संस्था विशेष से जुड़ी शब्दावली उस संस्था एवं कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित होती है क्योंकि ये शब्दावलियाँ एवं वाक्यांश प्रयोजन विशेष के लिए प्रयुक्त होती हैं। विभिन्न प्रयोजनों में प्रयुक्त हानेवाली भाषा के अंतर की प्रयुक्ति ही उस भाषा को प्रयोजनमूलक स्वरूप प्रदान करती है। 'प्रयुक्ति' शब्द 'प्रयुक्त' में 'ई' प्रत्यय लगााकर बना है। 'प्रयुक्त' का अर्थ होता है-- प्रयोग में लाया हुआ। भाषा का जो रूप किसी विशिष्ट कार्य-क्षेत्र में उस कार्य-क्षेत्र की आवश्यकता एवं विशिष्टता के अनुसार बार-बार प्रयुक्त होता है, उस कार्य-क्षेत्र विशेष की प्रयुक्ति होती है। भाषा के सामाजिक-व्यवसायिक भेद ही 'प्रयुक्ति' की संकज्पना का स्वरूप निर्धारण करता है। स्थान एवं कार्य विभिन्नता के कारण व्यापारियों, कचहरियों, कार्यालयों, बैंकों आदि की भाषा उस क्षेत्र विशेष से जुड़े लोगों की सामान्यत: स्वीकृत भाषा होती है। प्रयोजनमूलक भाषा के विविध रूप इन प्रयुक्तियों द्वारा ही निर्धारित होते हैं। नौकरीपेशा लोगों की भाषा, श्रमिकों की भाषा, अध्यापकों की भाषा व्यवसाय भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न होते हैं। जबकि एक ही व्यवसाय से जुड़े सभी लोगों की भाषा प्रयोग, विशिष्ट शब्दावली, वाक्यांश या वाक्य-प्रयोग के ढंग उस विशिष्ट कार्य क्षेत्र की प्रयुक्ति कहलाती है।

प्रयुक्ति का आधार

प्रयोग की विशेषताओं के अनुसार प्रयुक्तियों का निर्माण होता है। प्रयुक्ति भाषा की अंतर्निहित संरचना है। विभिन्न प्रयुक्तियों की शब्दावली मिलकर उस भाषा की शब्दावली बनती है, जिसमें भाषा की संरचना और उसका सामान्य प्रयोग होता है। यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों की शब्दावलियों को एक-दूसरे में सीमित प्रयोग होते रहते हैं। इसके वाबजूद शब्दावली प्रयुक्ति का महत्वपूर्ण आधार होती है। प्रयुक्ति निर्धारण का मुख्यत: दो आधार है--

1. क्षेत्र विशिष्ट शब्दावली
2. अर्थ विशिष्ट शब्दावली

सम्प्रेषण की प्रक्रिया भी प्रयुक्ति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मौखिक और लिखित व्यवस्था के अनुरूप शब्दावली का चयन एवं प्रयोग में औपचारिकता-अनौपचारिकता का अंतर होना भी आवश्यक है। सम्प्रेषण में वक्ता एवं श्रोता, लेखक एवं पाठक की स्थिति एवं वातावरण विशेष का प्रभाव स्वाभाविक रूप में पड़ता है। साथ ही भाषा प्रयोग की अनौपचारिक एवं औपचारिक स्थिति भी प्रयुक्ति निर्धारण का आधार स्तम्भ है। प्रयुक्ति के आधार पर भाषा का वर्गीकरण--

क. सामान्य व्यवहारिक प्रयुक्ति, ख. साहित्यिक प्रयुक्ति, ग. वाणिज्यिक-व्यापारिक प्रयुक्ति, घ. बैंकिंग शब्दावली प्रयुक्ति, ड0. प्रशासनिक प्रयुक्ति, च. विधिक प्रयुक्ति, छ. वैज्ञानिक प्रयुक्ति, ज. मीडिया, पत्रकारिता अर्थात् संचार माध्यमों की प्रयुक्ति, झ. विज्ञापन की प्रयुक्ति।

इसके अतिरिक्त आवश्यकता एवं प्रयोजन के अनुरूप नये भाषा प्रयुक्तियों का निरंतर प्रयोग हो रहा है, भाषा की प्रयोजनीयता की नवीनता एवं निरंतरता को गतिशील एवं संवहनशील बनाये हुए है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी की वाक्य-संरचना

वाक्य के अलग-अलग घटकों से मिलकर बने व्याकरणिक एवं सार्थक अभिरूप को वाक्य-संरचना कहा जाता है।

जैसे- राम भोजन किया। इसमें राम (कर्त्ता), भोजन (कर्म) एवं किया (क्रिया) है।

प्रत्येक भाषा में वाक्य-संरचना का एक निश्चित क्रम होता है। हिन्दी भाषा में यह क्रम कर्त्ता + कर्म + क्रिया है जबकि अग्रेंजी में यह क्रम कर्त्ता + क्रिया कर्म है।

हिन्दी में-- रमेश विद्यालय जाता है।

(कर्त्ता) (कर्म) (क्रिया)

अंग्रेजी में-- Ramesh goes to School

(कर्त्ता) (क्रिया) (कर्म)

कभी-कभी वाक्य सौन्दर्यीकरण और विचलन के अनुरूप इन व्याकरणिक कोटियों में स्थान परिवर्तन देखा जा सकता है। वाक्य-विस्तार हेतु इस क्रमवार प्रक्रिया में परिवर्तन स्वाभाविक है। सामान्य हिन्दी वाक्य-संरचना हिन्दी का मानक रूप होता है। यह राष्ट्रभाषा होने के साथ ही संघ की राजभाषा भी है। सामान्य हिन्दी की दो शैलियाँ मिलती हैं। एक तत्सम शब्दावलीयुक्त और दूसरा उर्दूबहुल। वार्तालाप और सामान्य व्यवहार में इन दोनों के मिले-जुले रूप का प्रयोग होता है। इन संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ अरबी-फारसी एवं देशज शब्दों का प्रयोग बहुतायत में होता है।

सामान्य हिन्दी वाक्य-संरचना में कुछ क्षेत्र विशेष की शब्दावलियों के प्रयोग एवं विन्यास में भिन्नता है। इसे निम्नांकित वाक्यों द्वारा समझा जा सकता है।

क. इस कार्यालय के सभी कर्मचारी आ चुके हैं।

ख. महाविद्यालय के उच्चतम अधिकारी छुट्टी पर हैं।

वाक्य-संरचना में दो प्रकार के घटक हैं--अनिवार्य घटक और ऐच्छिक घटक। जिन अंशों के बिना वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से निरर्थक रहता है, उन्हें अनिवार्य घटक कहते हैं।

उदाहरणस्वरूप- मोहन जाता है।

इस वाक्य में 'मोहन' (कर्त्ता) और 'जाता है' (अकर्मक क्रिया)। ये दोनों ही वाक्य के अनिवार्य घटक हैं। इनमें से किसी एक घटक को हटा देने पर वाक्य पूर्ण नहीं होगा। इनके अतिरिक्त वाक्य में कुछ घटक ऐसे होते हैं जिन्हें वाक्य से निकाल देने पर भी व्याकरणिक दृष्टि से वाक्य पूर्ण रहता है।

जैसे- मीरा रोज देर से दफ्तर से लौटती है।

इस वाक्य में 'मीरा दफ्तर से लौटती है' अनिवार्य घटक है। इसमें 'रोज', 'देर से' आदि घटकों को निकाल देने पर भी वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण रहता है। इसलिए इन्हें 'ऐच्छिक घटक' कहते हैं।

वाक्य-संरचना में कम-से-कम दो अनिवार्य घटक होते हैं। ये हैं- संज्ञा (कर्त्ता) और क्रिया। इन दोनों के बिना कोई वाक्य पूर्ण नहीं बन सकता, किन्तु कभी-कभी एक दो शब्दों के अल्पांग वाक्यों में भी वाक्य की पूर्णता की प्रतीति होती है।

उदाहरणस्वरूप-

कौन? = (आप कौन हैं?)

आइए। = (आप अंदर आइये।)

ओ टैक्सी! = (टैक्सी वाला रूको या इधर आओ।)

वाक्यों के विभिन्न घटकों की अन्विति

अन्विति वाक्य में विभिन्न घटकों के लिंग-पुरूष-वचन के अनुसार होती है। यह अन्विति वाक्य में प्रयुक्त कर्त्ता, कर्म एवं क्रिया के लिंग, वचन, पुरूष के अनुसार व्यवहृत होती है। कभी-कभी विशेषण की संज्ञा के लिंग, वचन, पुरूष के अनुसार भी होती है। सामान्यत: वाक्य में क्रिया की अन्विति कर्त्ता के साथ होती है।

क. अकर्मक वाक्यः-

प्रधानाध्यापक दस बजे विद्यालय आते हैं। (वर्तमान काल)

लिपिक दौरे पर गया। (भूत काल)

कल शिक्षक जल्दी आयेंगे। (भविष्य काल)

ख. सकर्मक वाक्यः-

प्रधानाचार्य आवेदन पर हस्ताक्षर करते हैं। (वर्तमान काल)

टंकक ने पत्र टंकित किया। (भूत काल)

कल कर्मचारी हड़ताल पर रहेंगे। (भविष्य काल)

कभी-कभी क्रिया की अन्विति कर्त्ता के स्थान पर कर्म के साथ होती है। जैसे-

पदाधिकारी ने सभी दस्तावेजों को देखा।

मोहन ने वेतन भुगतान बिल बनाया।

पहले वाक्य में क्रिया 'देखना' की अन्विति 'दस्तावेजों' (पुलिंग, बहुवचन) से है और दूसरे वाक्य में क्रिया 'बनाना' की अन्विति 'वेतन भुगतान बिल' (पुलिंग, एकवचन) से है।

कभी-कभी कुछ क्रियाओं के साथ दो कर्मों का प्रयोग होता है। इनमें पहला कर्म 'गौण' होता है और दूसरा 'प्रधान'। गौण कर्म 'चेतन' और प्रधान कर्म 'अचेतन' होता है। इन द्विकर्मक वाक्यों में सामान्य भूतकाल में क्रिया की अन्विति मुख्य (अचेतन) कर्म से होती है। उदाहरणार्थ--

प्राचार्य ने सहायक लिपिक को चार फाइलें दी।

अनुभाग अधिकारी ने कनीय अधिकारी को दो पत्र सौंपे।

परन्तु जिन वाक्यों की अन्विति के साथ 'को' परसर्ग प्रयोग में आते हैं, उसमें क्रिया पुलिंग एकवचन में रहती है। जैसे-

कुलसचिव ने छात्र कल्याण पदाधिकारी को बुलाया।

लिपिक ने चपरासी को समझाया।

द्विकर्मक क्रियाओं वाले वाक्यों में क्रिया की अन्विति हमेशा मुख्य कर्म से होती है। जैसे-

भंडार लिपिक ने चपरासी को स्टेशनरी दी।

साहब ने लिपिक को दो फाइलें दी।

कर्मवाच्य वाक्यों में क्रिया की अन्विति कर्त्ता के स्थान पर 'कर्म' से होती है। जैसे-

प्रशाखा पदाधिकारी ने सभी निविदाओं की अधिसूचनाएँ जारी की।

कर्मवाच्य वाक्यों में प्रायः कर्म का लोप हो जाता है क्योंकि कार्यालयी संदर्भ में कर्त्ता स्वयं कार्यालय होता है, कोई व्यक्ति विशेष नहीं। जैसे-

पत्र प्रेषित हुआ।

निदेशक का आदेश पारित हुआ।

निष्कर्षः- प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूप पर विस्तृत अध्ययनोपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रयोजनमूलक हिन्दी, भाषा का वह रूप है जिसका प्रयोग किसी प्रयोजन विशेष से होता है। भाषा प्रयोग के आधार पर इसके दो रूप मिलते हैं- क. सामान्य व्यवहार की भाषा, ख. विशिष्ट प्रयोजन की भाषा। विशिष्ट प्रयोजन की भाषा का ज्ञान विशेष प्रयत्न से होता है। सामान्य हिन्दी से भिन्न प्रयोजनमूलक हिन्दी का ज्ञान उसके मानक स्वरूप के प्रयोग के लिए निहायत ही आवश्यक है। तभी प्रयोजनमूलक वाक्य-संरचना का सटीक व्यवहार संभव हो सकता है। कार्यालयी कामकाज, जैसे- टिप्पण, मसौदा लेखन तथा अन्य प्रशासनिक कार्यों आदि के लिए विशिष्ट शब्दावलियों एवं वाक्यांशों की आवश्यकता होती है। इसलिए अभिधापरक प्रयोजनमूलक हिन्दी भाषा का ज्ञान वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यास और उनकी विषय वस्तुः एक विमर्श

डॉ० बृजेन्द्र पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक, मानव संसाधन विकास केंद्र, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

सारांश

अगर कोई अंचल का अर्थ ग्रामीण अंचल से लगाता है, तो हमें उसकी बौद्धिकता पर संदेह करने का अवसर मिल जाता है। क्योंकि यह अंचल गाँव का भी हो सकता है और नगरों का भी। यह अंचल एक कस्बा भी हो सकता है, एक मुहल्ला भी। यह अंचल एक ग्राम भी हो सकता है, एक पूरा नगर भी। और आंचलिक उपन्यास केवल ग्रामीण अंचल पर ही आधारित होते हैं यह यथार्थ नहीं है। आंचलिक उपन्यासों में किसी अंचल विशेष को कथा का आधार बनाकर वहाँ की सामान्य प्रवृत्तियों (उस अंचल की संस्कृति, मान्यता, मानवीय स्वभाव, छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम-सहानुभूति, लोक-भाषा, लोक-व्यवहार तथा सामाजिक एवं राजनीतिक प्रभाव एवं स्थिति) को व्यापक परिवेश में चित्रित करने का प्रयत्न किया जाता है। लेखक इन परिस्थितियों को राष्ट्र की सामान्य परिस्थितियों से सम्बद्ध कर पूर्ण और सार्वजनीन बनाने का प्रयास करता है।

मूल शब्दः ग्रामीण अंचल, आंचलिकता, आंचलिक संस्कृति, लोक व्यवहार मान्यता

परिचय

हिन्दी उपन्यासों के क्षेत्र में आंचलिक प्रवृत्ति आधुनिकतम प्रवृत्ति के रूप में मान्य है। व्यक्तिवादी साहित्य के विरोध में उपन्यासों में विशिष्ट आंचलिकता, नवीन चेतना की परिचायक है। आधुनिक युग में उपन्यास वैयक्तिक कुण्ठाओं एवं मान्यताओं से पृथक् उस प्राकृतिक वातावरण की ओर उन्मुख हो रहे हैं, जहाँ भारतीय संस्कृति अपने प्राचीन रूप से सुरक्षित है, वहाँ नवीन परिवर्तनों का प्रभाव किंचित् मात्र भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

आंचलिकता का उदय एक विशेष आंदोलन द्वारा हुआ है। यह आंदोलन विश्व साहित्य से सम्बन्धित है। डेनियलल हाफमैन का इस सम्बन्ध में मत है कि प्रादेशिकता संसारव्यापी रोमांटिक आंदोलन की अभिव्यक्ति है। इस कारण उन सब राष्ट्रों के साहित्य में, जो इस आंदोलन से प्रभावित रहे थे, इसके दर्शन हो जाते है।

इस आंदोलन के प्रभावस्वरूप ही पाश्चात्य देशों में ऐसे उपन्यासों का विकास हुआ जिनमें प्रकृति के निश्छल एवं उन्मुक्त वातावरण का चित्रण प्राप्त होता है। पश्चिम में मेरिया एजवर्थ, सर वाल्टर स्कॉट एवं थामस हार्डी ने 19वीं शताब्दी में आंचलिक उपन्यासों का प्रवर्तन किया।

इस प्रकार उन उपन्यासों की प्रगति की दिशा में एक नया मार्ग खोला। अमरीकी उपन्यासकारों में मार्क ट्वेन एवं आनेस्ट हेमिग्वे ने भी आंचलिक उपन्यासों का लेखन करके उसके विकास में योगदान दिया। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि आंचलिक प्रवृत्ति ने उपन्यास साहित्य को रूढ़िमुक्त कर स्वच्छन्द वातावरण में विकसित होने के अवसर प्रदान किये।

आंचलिक उपन्यास का अर्थ

आंचलिक शब्द अंचल में 'इक' प्रत्यय लगने से बना है, जिसका अर्थ है अंचल सम्बन्धी। अंचल संज्ञा शब्द से विशेषण बन गया, जिसके संस्कृत में विभिन्न अर्थ हैं। साङी का छोर, पल्ला आदि अर्थों के अलावा हिन्दी में अंचल का सीधा और स्पष्ट अर्थ है- जनपद या क्षेत्र, जो अपने में एक पूर्ण भौगोलिक इकाई होता है।

उस अंचल विशेष के अपने रीति-रिवाज, अपने सुख-दुख, अपनी जीवन-प्रणाली, अपनी परम्पराएँ एवं अपनी मान्यताएँ होती हैं, जिनमें वह गतिशील रहता है। गतिशील के एवं वहाँ की जङता के विविध एवं बहुआयामी संदर्भों के समग्र अंकन में ही आंचलिक उपन्यास की शक्ति और सीमा निहित है।

अत: आंचलिक उपन्यास एक सीमित अंचल या क्षेत्र विशेष के सर्वागीण जीवन को जिसमें वहाँ के साधारण-असाधारण विवरण, परिचित-अपरिचित भूमियों का उद्घाटन, विविध छवियों का अंकन आदि निहित होता है, वस्तुमुखी दृष्टि से रूपायित करता है तथा इसमें रचनाशीलता का नया आग्रह एवं लोकधर्मी भाषा, बोलियों-उपबोलियों की भी विविध भंगिमाएँ निहित होती है।

अत: यह कहना उचित है कि आंचलिक उपन्यासकारों ने अनुभवहीन सामान्य या विराट के पीछे न दौङकर अनुभव की सीमा में आने वाले अंचल विशेष को उपन्यास का क्षेत्र बनाया है।

आंचलिक उपन्यासः प्रमुख मत

- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार; ''आंचलिक उपन्यास वे हैं, जिनमें अविकसित अंचल विशेष के आदिवासियों अथवा आदिम जातियों का विशेष रूप से चित्रण किया गया हो।''
- डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में, ''आंचलिक उपन्यास तो अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। उसका सम्बन्ध जनपद से होता है ऐसा नहीं, वह जनपद की ही कथा है।''
- डॉ. देवराज उपाध्याय के अनुसार, '' आंचलिक उपन्यास के लेखक देश के किसी विशेष भू-भाग पर ध्यान केन्द्रित करके उसके जीवन को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि पाठक उसकी अनन्य विशेषताओं, विशिष्ट व्यक्तित्व, रीति-परम्पराओं तथा जीवन-विधा के प्रति सचते व आकृष्ट हो जाता है।''
- डॉ. हरदयाल के अनुसार, ''आंचलिक उपन्यास वह है, जिसमें अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के वैविध्यपूर्ण जीवन का चित्रण हो। जिसमें वहाँ की भाषा, लोकोक्ति, लोक-कथायें, लोक-गीत, मुहावरे और लहजा, वेशभूषा, धर्म-जीवन, समाज, संस्कृति तथा के अनुसार, ''उपन्यासों में लोकरंगों के उभारकर किसी अंचल विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास कहा जायेगा।''
- डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के शब्दों में, ''आंचलिक उपन्यास उन उपन्यासों को कहते हैं, जिनमें किसी विशेष जनपद, अंचल-क्षेत्र के जन-जीवन का समग्र चित्रण होता है।''

आंचलिक उपन्यास का विषय-क्षेत्र

आंचलिक उपन्यासों के विषय-क्षेत्र को लेकर कुछ विवादास्पद-सी स्थिति आज भी है। एक वर्ग शहरी मुहल्ले या कस्बों के जीवन को अभिव्यक्ति देने वाले उपन्यासों को भी आंचलिक कहने का आग्रही है, जबकि दूसरा वर्ग ग्राम एवं विशिष्ट अंचलों को ही इन उपन्यासों का विषय-क्षेत्र मानता है।

पहले वर्ग में राजेन्द्र अवस्थी, कान्ति वर्मा, महेन्द्र चतुर्वेदी, सुरेश सिन्हा आदि के नाम प्रमुख हैं, जबकि दूसरे वर्ग में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. हरदयाल एवं डॉ. धनंजय वर्मा, डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एवं डॉ. विवेकीराय आदि के नाम उल्लेखनीय है।

वस्तुस्थिति यह है कि आंचलिकता में नगर की खींचतान व्यर्थ है। आंचलिक जीवन मुख्यत: ग्रामीण ही होता है और आंचलिक उपन्यास इस स्थानिक यथार्थ की सघनता एवं समग्रता के साथ अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर प्रस्तुत हुए है।

आंचलिक उपन्यासों का विषय-क्षेत्र ग्राम एवं भारत के वे ही अज्ञात और अपेक्षित अंचल हैं जिनकी सुध-बुध हिन्दी उपन्यासकार की स्वन्तत्रता परवर्तीकाल में अपनी संस्कृति एवं गौरव के पुन: स्थानार्थ हुई है।

आंचलिक उपन्यासों का प्रादुर्भाव पश्चिमी सभ्यता एवं आधुनिकता की प्रतिक्रियावश विद्रोह में हुआ क्योंकि तत्कालीन उपन्यासों में अनुभूतियों की नग्न एवं अर्थहीन अभिव्यक्ति, मूल्यहीनता, संत्रास, कुंठा, अर्थशून्य-बेईमानी, नंपुसक, आतंक आदि सभी का दबदबा बढ़ने लगा था।

यह एक सत्य है कि कला का व्यापक तथा संभावनापूर्ण रूप हमें आंचलिक उपन्यासों में ही मिलता है जो विशुद्ध रूप से ग्रामीण है। इन्हीं आंचलिक उपन्यासों में ग्राम चेतना के विविध आयामों की आंतरिकता अपनी समग्रता के साथ अनुभूत्यात्मक स्वर पर अभिव्यक्ति हुई है।

हिंदी आंचलिक उपन्यासों में मानवीय संवेदना

किसी भी समाज के अस्तित्व की कल्पना 'मानवता' के बिना करना संभव नहीं है। समाज का निर्माण और विकास उस समाज के निवासियों की स्थिति और उनकी विचारधारा के आधार पर व्याप्त मानवीय मूल्यों के आधार पर होता है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में नैतिकता का ह्रास समाज से संबद्ध सभी क्षेत्रों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। नि:संदेह इसका कारण मानवीय मूल्यों में आ रहा क्षरण ही है। बाल्यावस्था से ही मानवीय नैतिक मूल्यों को उकेरती दादी-नानी द्वारा सुनाई जाने वाली कहानियाँ चारित्रिक निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं। इन कहानियों के माध्यम से बच्चों को मानवीय नैतिक मूल्यों का बोध होता था, जिसके फलस्वरूप समाज में सामंजस्य और आपसी सौहार्द का निर्माण होता था। मानवीय समाज की स्थापना से ही मानवीय नैतिक मूल्यों पर विचार किया जाता रहा है, क्योंकि ये मूल्य ही समाज को संगठित एवं निदेशित करते रहे हैं। मानव के बिना इन मूल्यों का कोई अस्तित्व नहीं है।

साहित्य मानव के उदात्त भावों और विचारों की अभिव्यक्ति है। इस आधार पर साहित्य का प्रत्यक्ष संबंध मानवीय नैतिक मूल्यों से है। सारत: मानव-समाज के विकास में मानवीय नैतिक मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, और साहित्य इन मूल्यों को संरक्षण प्रदान कर इन्हें पोषित-पल्लवित करता है। हिंदी के नैतिक मूल्यवादी साहित्य ने सदैव मानव समाज को प्रोत्साहित कर मानवीय नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु प्रेरित किया है। हिंदी साहित्य मात्र 'कला, कला के लिए' सिद्धांत का अनुगमन नहीं करता, अपितु सांस्कृतिक मूल्यों का समुच्चय, परंपरा से संपृक्ति और जीवन मूल्यों का संरक्षण हिंदी साहित्य का ध्येय है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में विकसित गद्य विधाओं में 'उपन्यास' विधा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। हिंदी उपन्यास के विकास का श्रेय अंग्रेजी एवं बंगला के उपन्यासकारों को दिया जा सकता है, क्योंकि हिंदी साहित्य में 'उपन्यास' विधा का आरंभ अंग्रेजी और बंगला के उपन्यासों की लोकप्रियता को देखकर हुआ। हिंदी साहित्य के पाँचवें दशक में हिंदी उपन्यास का एक नया स्वरूप दृष्टिगत हुआ, जिसे 'आंचलिक उपन्यास' कहा गया। इस तरह के उपन्यासों में उपन्यासकार का ध्यान उस स्थान विशेष की संस्कृति, भाषा-बोली, रीति-रिवाज, रहन-सहन, लोकजीवन, धार्मिक विश्वास इत्यादि के चित्रण में अधिक रमता है। हिंदी के आंचलिक उपन्यासों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 'आंचलिकता' का संबंध पिछड़े हुए ग्रामीण जीवन से ही है। नगर और कसबे के जीवन पर आधृत बहुत से ऐसे उपन्यास मिल जाएँगे, जिनमे चरित्रों की अपेक्षा आधारभूत 'अंचल' अधिक मुखर होता है। ऐसी स्थिति में अधिकतर उपन्यास 'आंचलिक' माने जा सकते हैं। अपनी सांस्कृतिक विरासत से गहरे जुड़े आंचलिक उपन्यासों में नए और पुराने मूल्यों के द्वंद्व तथा फिर मूल्यों में संक्रमण के जो विस्तृत चित्र मिलते हैं, वे नगरबोधी उपन्यासों में कम ही दृष्टिगत होते हैं। 'आंचलिकता' केवल हिंदी उपन्यास में ही नहीं, अपितु संपूर्ण भारतीय साहित्य की प्रमुख और उल्लेखनीय प्रवृत्ति रही है और है। यह प्रवृत्ति जहाँ विदेशी साहित्य से प्रेरित और पोषित है, वहीं स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदले हुए परिवेश का दबाव भी इसके उदय के मूल में है।

हिंदी साहित्य के पुरोधा विद्वान नंददुलारे वाजपेयी हिंदी साहित्य के 'आंचलिक उपन्यास' के आविर्भाव को एक प्रतिक्रिया मानते हैं- "हिंदी में भी नागरिक उपन्यास लेखकों की बँधी-बँधाई और पिटी-पिटाई जीवन भूमिकाओं से हिंदी पाठकों की परितृप्ति हो चुकी थी और इस पिष्ट-पेषण से ऊबकर नई वस्तु की ओर उन्मुख होना चाहते हैं। तभी सीमित क्षेत्रों और ग्रामीण अंचलों की जीवनचर्या लेकर आंचलिक उपन्यास का आविर्भाव हुआ।"

'आंचलिक उपन्यास' विधा के विकास में एक ओर स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, दूसरी ओर वाह्य प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं। इन उपन्यासों का परिवेश क्षेत्रीय या आंचलिक होता है। क्षेत्रीय भाषा तथा बोली का स्पष्ट प्रभाव इन उपन्यासों में देखा जा सकता है। पात्रों के कथोपकथनों में स्थानीय भाषा का प्रभाव स्वाभाविकता की अभिवृद्धि करता है।

उदाहरणार्थ- बिहार के अंचल पर आधारित उपन्यासों (मैला आंचल, परती परिकथा, नई पौध, वरुण के बेटे आदि) में भोजपुरी एवं मैथिली शब्दों, लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रभाव दिखाई देता है। और मुंबई अंचल पर लिखे गए उपन्यास (सागर, लहरें और मनुष्य) में मुंबईया हिंदी, मराठी शब्दों और लोकोक्तियों का प्रभाव देखा जा सकता है। अवध के अंचल का प्रभाव 'बूंद और समुद्र' में तथा ब्रज क्षेत्र का प्रभाव 'काका' जैसे उपन्यासों में दृष्टिगत होता है।

उपन्यास और उपन्यासकार

आंचलिक उपन्यासों का सृजन हिंदी साहित्य में 'फनीश्वरनाथ 'रेणु' के आगमन से पूर्व हो चुका था। किंतु उन्हें 'आंचलिक' नहीं कहा जाता था, क्योंकि उस समय इस धारा का नामकरण नहीं किया गया था।

सन 1954 ई। में 'मैला आँचल' के प्रकाशन के उपरांत इस प्रकृति के उपन्यासों की धारा का नामकरण 'आंचलिक उपन्यास' किया गया। 'मैला आँचल' से पूर्व सृजित इस धारा के प्रमुख उपन्यासों में- 'बलचनमा' (नागार्जुन), 'नई पौध' (नागार्जुन), 'काका' (रांगेय राघव), 'बहती गंगा' (शिवपूजन सहाय) और 'देहाती दुनिया' (शिवपूजन सहाय) आदि उल्लेखनीय हैं।

अद्यतन परिवेश में निरंतर मानवीय मूल्यों में परिलक्षित हो रही कमियों/बुराइयों का कारण और समाधान साहित्य के माध्यम से ही संभव है। आंचलिक उपन्यास अंचल विशेष के माध्यम से संपूर्ण भारतीय ग्रामीण परिवेश की चर्चा करते हैं। अपने देश-समाज की संस्कृति और उसमंउ व्याप्त मानवीय संवेदना को यथार्थ रूप में समझने के लिए ग्रामीण परिवेश के अध्ययन की आवश्यकता है। आंचलिक उपन्यासों के माध्यम से भारतीय परिवेश के विविध ग्रामीण अंचलों और उनमें व्याप्त मानवीय संवेदनाओं से निर्मित मूल्यों से भारतीय संस्कृति के साथ मानवीय नैतिक मूल्यों के नूतन प्रतिमान स्थापित किये जा सकते हैं।

'मैला आँचल' से हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित उपन्यासकार रेणु ने प्रेमचंदोत्तर उपन्यास को एक नई दिशा प्रदान की। वह नई दिशा आंचिलकता है। 'मैला आँचल' उपन्यास के शीर्षक में ही 'आँचल' पद का प्रयोग प्रेमचंदोत्तर उपन्यास की आंचिलकता के समारंभ को प्रकट करता है। इस स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास में आंचलिकता एकदम प्रकट होने नहीं लगती है।

इस परंपरा के बीज पहले से कहीं न कहीं अंकुरित हो रहे थे, जिसका यहाँ प्रत्यग्दर्शन करते हैं।

यह परंपरा शिवप्रसाद मिश्र के 'बहती गंगा' (1925), शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' (1926), निराला के 'बिल्लेश्वर बकरिया' गोपालराम गहमरी के 'भोजपुर की ठगी' (1901), उपन्यास तक पीछे जा पहुँचती है। इतना ही नहीं, शिवकुमार मिश्र तो ग्राम जीवन-केन्द्रित उपन्यासों की सुदीर्घ परंपरा का प्रारम्भ भुवनेश्वर मिश्र के 'घरारु घटना' (1894 ई.) से मानते हैं, जबकि वे आंचलिक उपन्यासों की परम्परा का प्रवर्तन रेणु के 'मैला आँचल' से ही बताते हैं।

आंचलिक उपन्यासों में विशिष्ट ग्रामीण और नागरिक जीवन को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है, जिनमें उपन्यास के चरित्र का जीवन विशिष्ट जनजाति पर भी केन्द्रित होता है। उदय शंकर भट्ट के आंचलिक उपन्यास में 'वह जो मैंने देखा', 'आधार', 'सागर, लहरें और मनुष्य', 'रथ के पहिए', 'दूधगाछ', 'ब्रह्मपुत्र' और 'कथा कहो उर्वशी' महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। इनके 'सागर, लहरें और मनुष्य' उपन्यास में मुम्बई के मछुआरों की लोक-संस्कृति का वर्णन मिलता है।

आंचलिक उपन्यास-धारा के प्रमुख उपन्यासकारों में से एक नागार्जुन हैं जिन्होंने 'बलचनमा', 'नई पौध', 'रतिनाथ की चाची', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे' तथा 'दु:खमोचन' इत्यादि छह सुंदर उपन्यासों मेंविशेषत: मिथिला के ग्रामीण प्रदेशों के जन-जीवन का चित्रण मिलता है। रेणु का प्रसिद्ध उपन्यास'मैला आँचल' आंचलिकता का प्रवर्तक उपन्यास है ही। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती ने 'सूरज कासातवाँ घोड़ा', देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'रथ के पहिए' तथा 'ब्रह्मपुत्र', बालभद्र

ठाकुर ने 'आदित्यनाथ,'मुक्तावली' और 'नेपाल की बेटी', राजेन्द्र यादव ने 'कुल्टा', रांगेय राघव ने 'काका' तथा 'कब तक पुकारूँ', नागर जी ने 'सेठ बाँकेमल' और 'बूँद और समुद्र' उल्लेखनीय आंचलिक उपन्यास का सृजन किया ।

हिन्दी आंचलिक उपन्यासों की यह दीर्घ परम्परा है। राही मासूम रजा ने 'आधा गाँव', 'टोपी शुक्ला', 'हिम्मत जौनपुरी', 'ओस की बूँद', 'दिल एक सादा कागज' और 'कटरा बी-आर्जू' उपन्यासों को हिन्दी पाठक को प्रदान किया। रामदरश मिश्र द्वारा आंचलिक उपन्यास में 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'सूखता हुआ तालाब', 'बीच का समय', 'अपने लोग', 'रात का सफर', 'आकाश की छत', 'बिना दरवाजे का मकान' और 'दूसरा घर' को लिखा गया।

विवेकी राय द्वारा आंचलिक उपन्यास में 'बबूल', 'पुरुष पुराण', 'लोक-ऋण', 'श्वेत पत्र','सोनामाटी', 'समर शेष है' और 'मंगल भवन' की रचना की गयी है, जिनमें आंचलिकता का रूप पाया जाता है।

हिन्दी आंचलिक उपन्यासों की इस प्रवृत्ति को इन उपन्यासों में भी देखा जा सकता है-भैरव प्रसाद गुप्त का 'गंगा मैया' और 'मशाल', शिव प्रसाद मिश्र का 'बहती गंगा', रांगेय राघव का 'काका', अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र', उदय शंकर भट्ट के 'लोक परलोक', 'शेष अवशेष', राँगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', शैलेश मटियानी द्वारा आंचलिक उपन्यास में 'हौलदार', 'चिट्ठी' 'चौथी मुट्ठी', 'जलतरंग' और 'छोटे-छोटे पक्षी', राजेन्द्र अवस्थी द्वारा आंचलिक उपन्यास में 'सूरज किरण की छाँव', 'जंगल के फूल', 'बीमार शहर' और 'मछली बाजार' उपन्यास का लेखन हुआ है। इतना ही नहीं, इस परंपरा को ये उपन्यास और समृद्ध करते रघुवर दयाल का 'त्रियुगा', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी', नागार्जुन का 'इमरतिया', श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी', ओमप्रकाश निर्मल का 'बहता पानी, रमता जोगी', रवीन्द्र कालिया का 'खुदा सही सलामत', कृष्णा सोबती का 'मित्रो मरजानी' तथा मनोहर श्याम जोशी का 'कसम'।

निष्कर्ष

भारत में भौगोलिक वैविध्य के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक वैविध्य भी है जिसके कारण हमारे यहाँ आंचलिक उपन्यासों के लिए पर्याप्त अवकाश रहा है। आजाद भारत के इन इंद्रधनुषी रंगों को मुखरता प्रदान करने के लिए दुनिया के देशों की तरह भारत में भी 'आंचलिक उपन्यास' की खोज हुई। यह कारण हिंदी के आंचलिक उपन्यासों पर भी सटीक बैठता है। 'हिन्दीसाहित्य कोश' में आंचलिक उपन्यासों को सामाजिक उपन्यासों का ही एक प्रकार माना है। हिन्दीउपन्यास साहित्य में यह एक नयी विधा है, जिसमें किसी विशिष्ट भूमि प्रदेश को केन्द्र में रखकर उपन्यासों का लेखन किया जाता है। ऐसे उपन्यास आंचलिक उपन्यास कहे जाते हैं।' इस प्रकार, आंचलिक उपन्यासों में किसी विशेष अंचल या भौगोलिक क्षेत्र के जीवन के समग्र यथार्थ की अभिव्यक्तिष् होती है। इस उपन्यास शैली में उसी प्रदेश की रीति-रस्में, पहनावा, खानपान, भाषा-बोली, प्रकृति, संस्कृति इत्यादि को जीवंतता को दी जाती है। इनके पात्र, चरित्र, वातावरण, संवाद, भाषा इत्यादि तत्त्व अंचल के ही प्रभाव से रचे होते हैं। अत: आंचलिक उपन्यासों में स्वतंत्र भारत के मुख्य रूप से ग्रामीण अंचल का जीवन-यर्थाथ समूचे रूप से उभरकर सामने आता है।

सन्दर्भ

1. धीरेन्द्र वर्मा तथा अन्य, हिन्दी साहित्य कोष, भाग-1, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2015, पृ. 74-75
2. शिवकुमार मिश्र,'यथार्थवाद और आंचलिक उपन्यास', मधुरेश (संपा.) फणीश्वरनाथ रेणु और मार्क्सवादी आलोचना, यश पब्लिकेशन, दिल्ली, 2008, पृ. 13-14
3. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2009, पृ. 5
4. हिन्दी उपन्यास: विविध आयाम, सं. डॉ. चंद्रभानु सोनवने, पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1977.
5. ज्ञानचन्द्र गुप्त, आंचलिक उपन्यास, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1975, पृ. 41
6. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2018
7. उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा, डॉ.परमानंद श्रीवास्तव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1976.
8. स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक उपन्यास, सुभाषिनी शर्मा, सजीव प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976.
9. नामवर सिंह, 'अंग्रेजी ढंग का नॉवेल और भारतीय उपन्यास', आशीष त्रिपाठी (संपा.), प्रेमचन्द और भारतीय समाज, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2017, पृ. 48
10. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014.
11. उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ, डॉ. सुरेश सिन्हा, रामा प्रकाशन, लखनऊ 1965.
12. गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 243-244
13. हिन्दी उपन्यास: अंतरंग पहचान,डॉ.प्रेमकुमार,गिरनार प्रकाशन महेसाना, 1983.

भारत के पुस्तकालयों मे उपयोग होने वाले प्रमुख डिजिटल लाइब्रेरी कंसोर्टियम

डॉ० कन्हैया लाल शर्मा

वनस्थली, विश्वविद्यालय तह. निवाई, टोंक, राजस्थान

सारांश

लाइब्रेरी कंसोर्टियम, पुस्तकालयों का एक संघ है जिसका उद्देश्य ई-संसाधनो के संग्रह का विकास और उसके उपयोग को सुविधाजनक बनानाहै। एक लाइब्रेरी कंसोर्टियम का गठन स्थानीय, क्षेत्रीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर का हो सकता है। आज सूचना का विस्फोट, उपयोगकर्ताओं की आवश्यकताओं की विविधता, वित्तीय संकट और आत्मनिर्भरता की असंभवता के कारण लाइब्रेरी कंसोर्टियम का उद्भव् हुआ है। भारत में कई कंसोर्टिया मॉडल प्रचलित हैं जैसे ओपन कंसोर्टिया, बंद समूह संघ, केंद्रीय वित्त पोषित मॉडल, साझा-बजट मॉडल, नेशनल कंसोर्टियम और प्रकाशकों द्वारा विकसित मॉडल आदि। भारत के प्रमुख कंसोर्टिया में यूजीसी-इन्फोनेट कंसोर्टियम, इन्डेस्ट कंसोर्टियम, सीएसआईआर कंसोर्टियम इसरो की पहल, आईआईएम के लिए कंसोर्टियम, आईआईएम के लिए कंसोर्टियम, फोर्सा कंसोर्टियम, सीईआरए, आईसीएआर कंसोर्टियम, आईसीआईसीआई नॉलेज पार्क, हैदराबाद आदि आते है।

मुख्य शब्द: यूजीसी-इन्फोनेट कंसोर्टियम, इन्डेस्ट कंसोर्टियम, सीएसआईआर, इसरो आदि।

1 परिचय: आज के समय में पुस्तकालयों के समूह द्वारा ई-सूचना की खरीददारी एक साथ करना बहुतमहत्वपूर्ण गया हैं, जिसका प्रमुख कारण सूचना विस्फोट उपयोगकर्ता की आवश्यकताओं की विविधता एवम वित्तीय संकट आदि है। सूचना के विस्फोट और अपर्याप्त संग्रह ने पुस्तकालयों को संग्रह विकास के लिए नए दर्शन और प्रौद्योगिकियों को अपनाने और सूचना की लागत को कम करने के लिए प्रेरित किया है। ऐसा महसूस किया गया है कि ई-जर्नल्स कंसोर्टियम की अवधारणा से अतिरिक्त शुल्क की आवश्यकता के बिना पुस्तकालय अच्छा काम कर सकते है।

2. परिभाषाएं: पुस्तकालय जगत के विभिन विद्वानों एवम संगठनो ने अनेक परिभाषाएं दी हैं।

"कंसोर्टिया" "कंसोर्टियम" का बहुवचन रूप है लेकिन अक्सर इसका उपयोग एक ही रूप में किया जाता है। कंसोर्टियम लैटिन शब्द "कंसोर्ट" से लिया गया है जिसका अर्थ साझेदारी है। लाइब्रेरी कंसोर्टियम पुस्तकालयों का एक समूह है जिसमे एक संयुक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पुस्तकालय एक साथ मिलकर कार्य करते हैं जिसमे आपसी सहयोग और संसाधनों की साझेदारी की आवश्यकता होती है। लाइब्रेरी कंसोर्टियम मुख्य रूप से डिजिटल या इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में संसाधन साझा करने से संबंधित है। कंसोर्टिया का उद्देश्य वह हासिल करना है जो समूह के सदस्य व्यक्तिगत रूप से हासिल नहीं कर सकते है।

ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार कंसोर्टिया का अर्थ है "एक सामान्य उद्देश्य के लिए कई शक्तियों, कंपनियों आदि का अस्थायी सहयोग। यह समान प्रकार के संगठनों/संस्थानों का एक संघ है जो उपयोगकर्ताओं के एक विशिष्ट उद्देश्य को पूरा करने के लिए या सेवा करने के लिए मिलकर कार्य करते हैं।"

अकादमिक एक्सेलेरेटर लाइब्रेरी कंसोर्टियम के अनुसार "लाइब्रेरी कंसोर्टियम स्कूल, सार्वजनिक या शैक्षणिक पुस्तकालयों, विशेष पुस्तकालयों और सूचना केंद्रों का एक सहकारी निकाय है, जो अपने सदस्यों ओर संसाधनों मे समन्वय बनाता है। कंसोर्टिया

स्थानीय, राज्य, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जैसे विभिन्न स्तरों पर बनता है। पुस्तकालय आम तौर पर एकाधिक संघों से संबंधित होते हैं। लाइब्रेरी कंसोर्टियम का लक्ष्य सामूहिक कार्यो के माध्यम से सदस्य पुस्तकालयों की क्षमता और प्रभावशीलता को बढ़ाना है, जिसमें प्रिंट या इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों को साझा करना, संसाधनों की संयुक्त खरीद के माध्यम से लागत कम करना, व्यावसायिक विकास के अवसर आदि शामिल हैं, लेकिन यह इन्हीं तक सीमित नहीं है। मूल सिद्धांत जिसके द्वारा कंसोर्टियम संचालित होता है वह यह है कि पुस्तकालय अकेले जितना हासिल कर सकते हैं उससे कहीं अधिक एक साथ मिलकर हासिल कर सकते हैं।"

(बोइस) (1995) के अनुसार पुस्तकालयो मे आपस मे सहयोग तब होता है जब दो या दो से अधिक पुस्तकालय अपने संबंधित उपयोगकर्ताओं को अधिक से अधिक विकसित सेवाएं प्रदान करने के लिए मिलकर काम करते हैं।

3. इलेक्ट्रॉनिक कंसोर्टियम की आवश्यकता: निम्नलिखित कारकों से पुस्तकालयों को इलेक्ट्रॉनिक कंसोर्टियम की आवश्यकता महसूस हुई है:

1. सूचना विस्फोट,
2. उपयोगकर्ता की आवश्यकताओं की विविधता,
3. वित्तीय संकट और
4. आत्मनिर्भरता की असंभवता।

4. कंसोर्टिया मॉडल: भारत में कई कंसोर्टिया मॉडल प्रचलित हैं और उनमें से प्रत्येक की अलग-अलग विशेषताएं हैं। मॉडल हैं:

(i) ओपन कंसोर्टिया: इस प्रकार का कंसोर्टियम ओपन एंडेड है और पुस्तकालयों को अपनी इच्छानुसार शामिल होने और छोड़ने की सुविधा प्रदान करता है। इस मामले में, प्रकाशक प्रति उत्पाद एक विशिष्ट दर पर कंसोर्टियम के लिए पुस्तकालयों की न्यूनतम संख्या तय करते हैं। इस प्रकार का संघ आम तौर पर छोटे सजातीय समूहों द्वारा संचालित होता है जो एक विशिष्ट विषय क्षेत्र में संसाधनों को परस्पर साझा करने का इरादा रखते हैं। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा संचालित इन्डेस्ट कंसोर्टियम इसका एक उदाहरण है।

(ii) बंद समूह संघ: बंद समूह संघ विशेष रूप से एक परिभाषित समूह के भीतर रहता है। इस प्रकार का संघ समूह के सदस्यों (सीएसआईआर, डीएई और आईआईएम कंसोर्टियम) के बीच गठबंधन, संबद्धता और सहयोग से उभरता है। इस संघ के गठन और संचालन के दिशानिर्देश काफी सरल और आसान होते हैं।

(iii) केंद्रीय वित्त पोषित मॉडल: इस मॉडल में, कंसोर्टियम का अस्तित्व पूरी तरह से केंद्रीय वित्त पोषण एजेंसी पर निर्भर करता हैं। इस मॉडल की ताकत यह है कि कंसोर्टियम को चलाने की वित्तीय जिम्मेदारी मूल निकाय द्वारा वहन की जाती है। इन्डेस्ट, यूजीसी इन्फोनेट, सीएसआईआर, आईसीएमआर कंसोर्टिया आदि इस मॉडल के उदाहरण हैं।

(iv) साझा-बजट मॉडल: इस मॉडल में भाग लेने वाले पुस्तकालय नेतृत्व करते हैं और कंसोर्टियम बनाते हैं। आईआईएम और फोरसा इस मॉडल के उदाहरण हैं। कंसोर्टियम के परिचालन पहलुओं, विशेष रूप से धन का प्रबंधन आदि को व्यक्तिगत रूप से नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार के मॉडल के लिए बेहतर और मजबूत आधार के लिए एमओयू में प्रवेश करने की हमेशा सिफारिश की जाती है।

(v) नेशनल कंसोर्टियम: जहां तक भारत का सवाल है, यह एक वैचारिक मॉडल या ढांचा है, जिस पर हमारे देश में चल रहे किसी भी कंसोर्टियम द्वारा गंभीरता से प्रयास नहीं किया जा रहा है। इस संबंध में यूजीसी इन्फोनेट और इन्डेस्ट द्वारा कुछ अलग-अलग प्रयास किए गए हैं, लेकिन उन्हें अभी तक कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं मिली है। इस दिशा में सूचना उत्पादों की राष्ट्रीय स्तर पर लाइसेंसिंग हासिल की जा सकती है।

(vi) प्रकाशकों की पहल: उपरोक्त के अलावा, भारत ने हाल ही के वर्षों में प्रकाशकों द्वारा कंसोर्टिया मॉडल भी शुरू कियागया है। एमराल्ड पब्लिशिंग ग्रुप (पूर्व में एमसीबी यूनिवर्सिटी प्रेस) द्वारा प्रकाशित एमराल्ड फुल-टेक्स्ट लाइब्रेरी इसका एक उदाहरण है। यहां, प्रकाशकों ने भाग लेने वाले पुस्तकालयों को राष्ट्रीय स्तर पर भारी रियायती कंसोर्टियम मूल्य की पेशकश की। इसकी पूर्व शर्त यह है कि उनके प्रिंट सब्सक्रिप्शन में कोई गिरावट नहीं होनी चाहिए। आशा है कि निकट भविष्य में प्रकाशकों की ओर से ऐसी कई पहल सामने आएंगी।

5. भारत में कंसोर्टिया पहल

पुस्तकालय संसाधनों को साझा करने और इंटरनेट प्रौद्योगिकियों के उपयोग के लिए कुछ उल्लेखनीय भारतीय पहल इस प्रकार हैं:

(i) यूजीसी-इन्फोनेट कंसोर्टियम: सूचना और पुस्तकालय नेटवर्क (इन्फ्लिबनेट), ने भारत मे ई-जर्नल्स तक पहुंच बनाने की दिशा मे पहल की है। भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली बहुत बड़ी और जटिल है। भारत में चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी उच्च शिक्षा प्रणाली है, जिसमें 471 से अधिक विश्वविद्यालय, 22,064 संबद्ध कॉलेज और 5.21 लाख संकाय शामिल हैं। 2004 में लॉन्च किया गया यूजीसी-इन्फोनेट डिजिटल लाइब्रेरी कंसोर्टियम, यूजीसी के 12बी अधिनियम के तहत कवर किए गए 160 विश्वविद्यालयों को 5,790 पत्रिकाओं को अलग-अलग प्रदान करता है। इस सेवा की सबसे आकर्षक विशेषता यह है की कंसोर्टिया सदस्यों के बीच इंटर लाइब्रेरी लेंडिंग के लिए स्वचालित रूप से ई-मेल अनुरोध भेजें जाते है।

(ii) इन्डेस्ट कंसोर्टियम: इन्डेस्ट कंसोर्टियम इंजीनियरिंग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लिय भारत सरकार के मानव संसाधन और विकास मंत्रालय के प्रयासों से गठित एक संघ है,जिसमे सभी भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, आईआईएससी और कुछ अन्य संस्थान इसके सहयोगी सदस्यहै। इसे 2003 में लॉन्च किया गया। इन्डेस्ट कंसोर्टियम, 48 केंद्रीय वित्त पोषित तकनीकी संस्थानों, 60 सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त इंजीनियरिंग कॉलेजों और 820 निजी इंजीनियरिंग कॉलेजों को कई प्रकाशकों और एग्रीगेटरों से 12,000 इलेक्ट्रॉनिक पत्रिकाओं और छह ग्रंथ सूची डेटाबेस प्रदान करता है।

(iii) सीएसआईआर कंसोर्टियम/ नेशनल नॉलेज रिसोर्स कंसोर्टियम (एनकेआरसी): वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) की 40 राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ इसकी सदस्य हैं जो इंजीनियरिंग, जैविक, रासायनिक, भौतिक, पर्यावरण और सूचना विज्ञान के क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास कार्य करती हैं। सीएसआईआर द्वारा नियुक्त टास्क फोर्स और वार्ता समिति की सिफारिश के आधार पर, जुलाई 2002 से सभी 1200 एल्सेवियर ई-जर्नल सभी 40 प्रयोगशालाओं को उपलब्ध कराए गए हैं। एनएएल, एनसीएल, आईएमटेक, एनआईओ और एनआईएसटी जैसी कुछ प्रयोगशालाएं काफी समय से एल्सेवियरआदि की सेवाये प्रदान कर रहे हैं। क्लूवर (550 शीर्षक) और स्प्रिंगर (450 शीर्षक) जैसे अन्य प्रकाशकों के साथ बातचीत उन्नत चरण में है। सभी प्रयोगशालाओं के लिए कंसोर्टियम (जेसीसीसी) को जे-गेट कस्टम सामग्री उपलब्ध कराने का भी प्रयास किया गया है। नेशनल नॉलेज रिसोर्स कंसोर्टियम (एनकेआरसी) वर्ष 2009 में स्थापित किया गयाप् नेशनल नॉलेज रिसोर्स कंसोर्टियम (एनकेआरसी) 43 सीएसआईआर और 26 डीएसटी संस्थानों के पुस्तकालयों और सूचना केंद्रों का एक नेटवर्क है। एनकेआरसी की उत्पत्ति वर्ष 2001 में हुई, जब सीएसआईआर ने अपने सभी उपयोगकर्ताओं को एल्सेवियर साइंस की 1200 विषम पत्रिकाओं तक पहुंच प्रदान करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक जर्नल्स कंसोर्टियम की स्थापना की। समय के साथ, कंसोर्टियम न केवल संसाधनों की संख्या के मामले में बल्कि उपयोगकर्ताओं की संख्या के मामले में भी बढ़ा, क्योंकि अधिक समान विचारधारा वाले संस्थानों ने कंसोर्टियम में शामिल होने के लिए रुचि दिखाई। आज, एनकेआरसी सभी प्रमुख प्रकाशकों, पेटेंट, मानकों, उद्धरण और ग्रंथ सूची डेटाबेस के 5,000+ ई-जर्नलों तक पहुंच की सुविधा प्रदान करता है। लाइसेंस प्राप्त संसाधनों के अलावा, एनकेआरसी एक एकल बिंदु इकाई भी है जो अपने उपयोगकर्ताओं संसाधनों तक सुचन प्रदान करता है।

(iv) इसरो की पहल: भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के पुस्तकालयों द्वारा ग्रंथ सूची डेटाबेस जारी किया जाता है, जिससे दोहरी सदस्यता से बचा जा सके। ई-जर्नल्स और कंसोर्टियम के लिए औपचारिक कंसोर्टियम बनाने की दिशा में एक बड़ा कदम उठाया गया है। यह 12 भाग लेने वाले पुस्तकालयों के लिए 9000 ई-जर्नल्स को उपलब्द करवाता है।

(v) आईआईएम के लिए कंसोर्टियम: छह भारतीय प्रबंधन संस्थानों ने एक कंसोर्टियम बनाया है ज्यो प्रबंधन, सामाजिक और व्यवहार विज्ञान के क्षेत्रों में उपलब्ध ई-जर्नल्स और डेटाबेस की सेवाये प्रधान कर रहे है। ये ई-जर्नल्स जैसे एल्सेवियर (247 शीर्षक), ब्लैकवेल (268 शीर्षक), क्लूवर (33 शीर्षक), विली (3 शीर्षक) की सेवाये दे रहे हैं। इसके अलावा, ईबीएससीओ डेटाबेस के 2300 शीर्षक और एबीआई इन्फॉर्म डेटाबेस के 800 शीर्षक इलेक्ट्रॉनिक रूप से आईआईएम पुस्तकालयों के उपयोगकर्ताओं के लिए उपलब्ध कराता हैं। ये एबीआई इनफॉर्म, ईबीएससीओ, ईकॉनलिट, जीएमआईडी, साइसिनफो, सोशियोफाइल इत्यादि जैसे शीर्षकों की सदस्यता के आधार पर विभिन्न आईआईएम को चुनिंदा 13 ग्रंथसूची

डेटाबेस की सुचना प्रदान करता हैं। आईआईएम, बैंगलोर अकेले ग्रंथ सूची डेटाबेस के द्वारा लाखो रुपये की वार्षिक बचत का दावा करता है।

(vi) फोर्सा कंसोर्टियम: फोरम फॉर रिसोर्स शेयरिंग इन एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिजिक्स (फोर्सा), जो रमन रिसर्च इंस्टीट्यूट, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एस्ट्रोफिजिक्स, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिजिक्स, नेशनल सेंटर फॉर रेडियो एस्ट्रोफिजिक्स एंड फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरीज का एक संघ है, ज्यो अपने उपयोगकर्ताओं को प्रिंट सदस्यता से 12.5% अधिक भुगतान के साथ क्लूवर के 25 ई-जर्नलों की सुचना प्रदान करता है। इस संघ ने सूची मूल्य के लगभग 1/3 मूल्य पर इसके ई-संस्करण प्रदान करने के लिए नेचर के प्रकाशकों के साथ सफलतापूर्वक बातचीत की है।

(v) आईसीआईसीआई नॉलेज पार्क, हैदराबाद: हैदराबाद स्थित आईसीआईसीआई नॉलेज पार्क ने चार हैदराबाद स्थित और एक पुणे स्थित अनुसंधान एवं विकास संस्थानों को कंसोर्टियम सेवा के लिए इंफॉर्मेटिक्स इंडिया लिमिटेड के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए है। प्रारंभ में यह सेवा आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से शुरु हुई बाद मे इसे सदस्यों के लिए नि:शुल्क कर दिया गया।

(vi) सीईआरए, आईसीएआर: कृषि में ई-संसाधनों के लिए कंसोर्टियम (सीईआरए) को आईसीएआर द्वारा 30 अप्रैल 2008 को निम्नलिखित उद्देश्यों के लिय लॉन्च किया गया था।

- आईसीएआर संस्थानों/कृषि विश्वविद्यालयों आदि के मौजूदा अनुसंधान एवं विकास सूचना संसाधन आधार को विश्व के अग्रणी संस्थानों/संगठनों के बराबर विकसित करना।
- आईसीएआर संस्थानों/एसएयू में वैज्ञानिकों/शिक्षकों के बीच ई-एक्सेस संस्कृति का निर्माण करना।
- वैज्ञानिक प्रकाशनों के मूल्यांकन के लिए आईएआरआई में एक विज्ञान उद्धरण सूचकांक (एससीआई) सुविधा विकसित करना।
- विज्ञान उद्धरण सूचकांक के माध्यम से मापे गए अनुसंधान प्रकाशनों के स्तर पर सीईआरए के प्रभाव का आकलन करना।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि भारत में पुस्तकालय संघ की गतिविधियाँ हाल ही में शुरु हुई हैं और तेजी से विकसित हो रही हैं। चूंकि कंसोर्टिया पहल एलआईएस पेशेवरों के साथ-साथ प्रवर्तक/लाभार्थी संस्थानों की सक्रिय भागीदारी पर निर्भर करता है, यह आम तौर पर कठिनाइयों और बाधाओं के साथ विकसित और बढ़ता है। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि ई-जर्नल सदस्यता अपने आप में एक जटिल और पेचीदा प्रक्रिया है, जो कई तरह से कंसोर्टियम गतिविधि में समस्याएं पैदा करती है। स्वाभाविक रूप से ऐसे कई मुद्दे और समस्याएं होंगी जो कंसोर्टिया गतिविधियों में शामिल पुस्तकालयों को परेशान करती रहती हैं। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि कंसोर्टियम मे, भाग लेने वाले पुस्तकालयों को कई लाभ होते है, जैसे नाममात्र निवेश पर संसाधनो में भारी वृद्धि; ई-जर्नल्स की श्रृंखला तक निर्बाध पहुंच सुनिश्चित करना; भविष्य के लिए पहले से सब्सक्राइब की गई विद्वतापूर्ण सामग्री तक सतत पहुंच को सक्षम करना; संस्थागत बौद्धिक क्षमता और वैज्ञानिक उत्पादकता में वृद्धि; अत्याधुनिक संग्रह रणनीतियों के माध्यम से विद्वतापूर्ण सामग्रियों के दीर्घकालिक संरक्षण के अवसर आदि।

संदर्भ

1. https://academic-accelerator.com//encyclopedia//library-consortium
2. बोइसे, जे.ए. (1995)। पुस्तकालय सहयोग: एक उपाय लेकिन रामबाण नहीं। आईएफएलए जर्नल, 21(2): 89-93।
3. www.infolibrarian.com
4. http://web.inflibnet.ac.in
5. http://paniit.iitd.ac.in/indest
6. http://www.iimahd.ernet.in,http://www.iimb.ernet.in,
7. http://www.iimcal.ac.in,http://www.iimidr.ac.in,
8. http://www.iimk.ac.in, http://www.iiml.ac.in/

9. http://www.iiap.res.in/library/forsa.html
10. http://www.iciciknowledgepark.com/
11. http://www.cera.jccc.in/
12. बिस्वास, बिधान चंद्रा एट. अल. आईटी युग में पुस्तकालय संसाधन साझाकरण। पुस्तकालयों के बीच सामग्री साझा करने के लिए कंसोर्टिया दृष्टिकोण पर राष्ट्रीय सम्मेलन की कार्यवाही में, एसआईएस 2002, 27-29 मई 2002, मंगलागंगोत्री पीपी 441-456।
13. चोलिन, वी.ए. और मूर्ति, टी.ए.वी. कंसोर्टिया के माध्यम से विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों के बीच संसाधनों को साझा करना: इनफ्लिबनेट दृष्टिकोण। पुस्तकालयों के बीच सामग्री साझा करने के लिए कंसोर्टिया दृष्टिकोण पर राष्ट्रीय सम्मेलन की कार्यवाही में, एसआईएस 2002, 27-29 मई 2002, मंगलागंगोत्री। पृ.161-173.
14. खट्टर, नंदिनी. राजस्थान के विश्वविद्यालय पुस्तकालयों के बीच संसाधन साझाकरण की व्यवहार्यता अध्ययन, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 1993
15. राव, एन. लक्ष्मण, कंसोर्टिया यूसेज लाइब्रेरीज अलायंस एंड पार्टनरशिप्स प्लानिंग सर्विस एन्हांसमेंट। पुस्तकालय रुझान. 2006
16. http://www.thefreelibrary.com/knowledge-sharing+activities+in+india.-a0144666665)। 22.2.2008 को डाउनलोड किया गया।

‘भारतरत्न’ डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की राष्ट्रपति के रूप में कार्यशैली

डॉ० किरण मदान

विभागाध्यक्षा, राजनीति विज्ञान, आई.बी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पानीपत

शताब्दियों पूर्व यूनान के दार्शनिक प्लेटो ने कहा था कि आदर्शवादी राज्य की स्थापना तभी हो सकेगी, जब शासन सत्ता दार्शनिक शासकों के हाथ में होगी। प्लेटो की यह परिकल्पना भारत में तब साकार हुई, जब विश्वविख्यात दार्शनिक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने 13 मई, 1962 को भारत के दूसरे राष्ट्रपति के रूप में शपथ ली।

डॉ. राधाकृष्णन शासन को आम लोगों तक पहुँचाना चाहते थे। वे जनसाधारण से सीधा सम्बन्ध रखने के पक्षधर थे। उन्होंने राष्ट्रपति भवन को सप्ताह में दो बार आम लोगों के लिए खोलने का निर्देश जारी किया था। वे एक स्वस्थ समाज जो भूख, गरीबी और अशिक्षा से मुक्त हो, के निर्माण के लिए ईमानदारी और निष्ठा से निरंतर लगे थे उनके नेतृत्व की कठिन परीक्षा का अवसर तब आया था, जब 8 सितम्बर 1962 को चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया था। यह पं. नेहरू एवं समूचे देश के लिए आश्चर्यचकित कर देने वाला हमला था क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व ही भारत और चीन के मध्य ‘‘पंचशील समझौता’’ हुआ था। पंचशील समझौते का उल्लंघन कर चीनी सेना ने भारत की उत्तरी सीमा को चारों तरफ से घेरकर थॉगला रिज पर चढ़ाई कर दी थी। दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ गया था। 20 अक्टूबर तक चीनी सेना लद्दाख क्षेत्र से काफी अन्दर तक घुस आयी थी और उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रांत को पूरी तरह से घेर लिया था। देश की इस गम्भीर चुनौती का सामना करने के लिए डॉ. राधाकृष्णन ने प्रधानमंत्री पं. नेहरू से विचार विमर्श किया। उन्होंने पं. नेहरू से अन्य उपाय करने के साथ-साथ कुछ अन्य देशों से सहयोग लेने के विषय में भी विचार करने को कहा।[1]

डॉ. राधाकृष्णन ने युद्ध की स्थिति पर विचार करने के लिए सेना के तीनों अंगों के अध्यक्षों और तत्कालीन रक्षामंत्री कृष्णमेनन को विचार-विमर्श के लिए बुलाया। डॉ. राधाकृष्णन रक्षा मंत्री के अब तक के कार्यों एवं नीतियों से सतुंष्ट नहीं थे। 23 अक्टूबर को डॉ. राधाकृष्णन ने पं. नेहरू से कृष्ण मेनन को रक्षा मंत्री पद से हटाने को भी कहा था।

उन्होंने कहा कि, ‘‘देश को अब उन पर विश्वास नहीं रह गया है।’’ पं. नेहरू ने डॉ. राधाकृष्णन से कहा कि वर्तमान में कृष्णमेनन से अधिक रक्षा विभाग की जानकारी किसी को नहीं है।[2]

युद्ध में चीन लगातार जीत रहा था। उसने तवांग पर भी कब्जा कर लिया था। इस बीच अमेरिकी राजदूत गेलब्रेथ ने राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन से मुलाकात की और बताया कि अमेरिका भारत की हर तरह से सैनिक साजो सामान सहित मदद करने को तैयार है, किन्तु भारत की तरफ से इस प्रकार की कोई सहायता लेने सम्बन्धी सम्पर्क या पत्र अमेरिका को नहीं प्राप्त हुआ है। इस पर डॉ. राधाकृष्णन को बडाष् क्षोभ हुआ और उन्होंने तुरन्त सेना प्रमुख को बुलाकर इस सन्दर्भ में पूछताछ की। सेना प्रमुख ने जवाब दिया कि रक्षा मंत्री महोदय किसी भी पश्चिमी देश से कोई सहायता लेने को तैयार नहीं है। उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने बीबीसी से वार्ता के दौरान कहा था कि भारत पश्चिमी देशों से सैनिक सहायता नहीं लेगा।[3]

इस सारे प्रकरण की जानकारी डॉ. राधाकृष्णन ने प्रधानमंत्री पं. नेहरू को दी और इस प्रकरण पर विचार करने को कहा।

26 अक्टूबर 1962 को राष्ट्रपति ने भारतीय संविधान के अनु. 352 के अंतर्गत भारत में पहली बार आपातकाल की घोषणा कर दी।[4]

इस घोषणा के साथ ही अनु. 19 के अन्तर्गत नागरिकों के स्वतत्रंता सम्बन्धी अधिकार को निलम्बित किया गया था। अनु. 359 के अंतर्गत राष्ट्रपति राधाकृष्णन द्वारा बाद में दिये गए आदेशों से नागरिकों के अनु. 14, 21 और 22 के अन्तर्गत न्यायालयों द्वारा कार्यवाही कराने के अधिकार को भी निलम्बित कर दिया गया था।[5]

28 अक्टूबर 1962 को पं. नेहरू ने डॉ. राधाकृष्णन से यह स्वीकार कर लिया कि उनकी 'नीति' असफल हो गयी है। उस समय के समाचार पत्रों में और आम लोगों में लगातार नेहरू के नीति की आलोचना आरै रक्षामंत्री कृष्णमेनन के दृष्टिकोण की जमकर आलोचना हो रही थी, जिसके परिणामस्वरूप पं. नेहरू ने कृष्णमेनन को रक्षामंत्री पद से हटाकर 'रक्षा उत्पादन मंत्री' बना दिया। पं. नेहरू के इस कदम से कांग्रेस पार्टी के अन्दर भी लोग सहमत नहीं थे।

राष्ट्रपति डॉ. राधाकष्णन ने पं. नेहरू से स्पष्ट तौर पर कह दिया था कि-यह कदम पर्याप्त नहीं है, कृष्णमेनन अब भी कैबिनेट में हैं और वह भी रक्षा मंत्रालय में। विपक्ष इसका जोर शोर से विरोध कर रहा है आप इस पर विचार करें।

पं. नेहरू ने कृष्णमेनन के मुद्दे पर दिल्ली में सभी मुख्यमंत्रियों एवं कैबिनेट सदस्यों की बैठक बुलाई जिसमें सिर्फ जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री श्री बक्शी गुलाम मोहम्मद ने मेनन का समर्थन किया और पंजाब के मुख्यमंत्री कैरों सिंह तटस्थ रहे बाकी सभी मुख्यमंत्रियों ने मेनन को हटाने की मांग की। इसके अलावा कैबिनेट के अधिकांश सदस्य भी मेनन के विरोध में थे। अंततः मेनन को त्यागपत्र देना पड़ा। 7 नवम्बर 1962 को मेनन द्वारा भेजे गये त्यागपत्र को डॉ. राधाकृष्णन ने स्वीकार कर लिया था।[6]

डॉ. राधाकृष्णन भारत की हार से बहुत चिन्तित थे उन्होंने युद्धग्रस्त पूर्वी सेक्टर का स्वयं दौरा किया था और सैनिक अधिकारियों से बातचीत की थी। जब उन्हें जानकारी लगी कि सेना के पास सैनिक साजो सामान, हथियारों एवं आवश्यक कपड़ों तक की कमी है, तो उन्हें बहुत चिंता हुई थी। उन्होंने पं. नेहरू से इस सम्बन्ध में बातचीत की थी। इसके पश्चात् पं. नेहरू ने अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी को चीनी आक्रमण के सन्दर्भ में जानकारी दी। जॉन एफ. कैनेडी ने भारत को हर तरह की मदद देने का आश्वासन दिया। अमेरिकी सीनेट के एक दल ने युद्ध के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी लेने एवं सहायता देने के उद्देश्य से भारत का दौरा किया। डॉ. राधाकृष्णन ने उस दल को देश की सभी स्थितियों से अवगत कराया था। 14 नवम्बर तक चीनी सेना भारत के अन्दर काफी क्षेत्रों पर कब्जा जमा चुकी थी। अमेरिकी राष्ट्रपति श्री कैनेडी ने सारी स्थिति समझकर अमेरिका से एक वृहद सैनिक दल को भारत की सहायता के लिए रवाना किया था। इधर चीन ने 21 अक्टूबर 1962 को एकतरफा युद्ध विराम की घोषणा कर दी। उसने भारत के काफी क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया था।[7] इस प्रकार इस युद्ध में भारत को बुरी तरह हार का सामना करना पड़ा था।

देश की इस नाजुक स्थिति में डॉ. राधाकृष्णन ने अपने दृढ़ नेतृत्व एवं ओजपूर्ण भाषणों से राष्ट्र में पुनः शक्ति भरने की कोशिश की। राष्ट्र के नाम उन्होंने अपने संदेश में कहा कि चीनियों की भारी संख्या में सेना के आक्रमण एवं दुर्गम क्षेत्रों के कारण हमारी सेनाओं को पराजित होना पड़ा, किन्तु इसने हमारी आँखे खोल दी हैं हमें वास्तविक स्थिति का पता चल गया है। हमें अपनी कमियों का पता चल गया है। अब हमारा देश पुनः नई इच्छा शक्ति के साथ नए लक्ष्य प्राप्त करेगा।[8]

युद्ध में भारत के पराजित होने के पश्चात् राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने भारत के पक्ष में विश्व जनमत तैयार करने एवं सामरिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कई देशों की यात्राएँ की और देश के पक्ष में समर्थन जुटाया। राज्यसभा के सदस्य एवं प्रख्यात कवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि-

''डॉ. राधाकृष्णन ने निःसंदेह संकट की घड़ी में देश की आत्मा का प्रतिनिधित्व किया और यह स्पष्ट कर दिया कि राजनीति की प्रतिस्पर्धा में दर्शन अपने सत्य से आँखें नहीं चुराता, वरन् आपकी बात को जोर से कहता है।''[9]

राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन व्यावहारिक दृष्टि रखते थे। वे देश की गरीबी से भली भांति परिचित थे। वे इसका समाधान एक व्यवस्थित तरीके से करना चाहते थे। 1965 में गणतंत्र दिवस के अवसर पर राष्ट्र के नाम संदेश में उन्होंने अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहा कि जनता एवं सरकार दोनों को ईमानदारी एवं कठिन परिश्रम से कार्य करना चाहिए और अनुशासन में रहना चाहिए। डॉ. राधाकृष्णन के इस वक्तव्य पर लाल बहादुर शास्त्री ने आपत्ति भी की थी और इस पर कैबिनेट में चर्चा भी की थी।[10]

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि डॉ. राधाकृष्णन अपने विचारों को प्रकट करने में संकोच नहीं करते थे।

डॉ. राधाकृष्णन का कुशल नेतृत्व उस समय भी दिखायी पड़ता है, जबकि पाकिस्तान ने 1 सितम्बर 1965 को दक्षिणी कश्मीर में अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का उल्लंघन कर भारत पर आक्रमण कर दिया।[11] संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने दोनो देशों से युद्ध विराम करने सम्बन्धी प्रस्ताव को पारित किया था। उस सन्दर्भ में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव यू-थांट ने भारत-पाकिस्तान की यात्रा भी की थी।

डॉ. राधाकृष्णन ने यू-थांट से स्पष्ट कर दिया था कि उनके मन में पाकिस्तान की जनता के प्रति मित्रवत् सद्भावना है, किंतु भारत वर्तमान स्थिति मं` अपनी दृढ़ता पर कायम है। वह पाकिस्तान की कश्मीर में जनमत संग्रह कराने की मांग को खारिज करता है।

अंतत: युद्ध में भारत ने निर्णायक बढतघ लेते हुए पाकिस्तान की सेना को हरा दिया था।

डॉ. राधाकृष्णन ने 25 सितम्बर 1965 को आकाशवाणी से प्रसारित राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में कहा कि-पाकिस्तान ने भारत के विषय में गलत आंकलन किया। उसने भारत को अत्यधिक कमजोर व डरा हुआ माना यद्यपि कि भारत स्वभावत: सेनाओं के अधिक प्रयोग के पक्ष में नहीं है, किन्तु जब आक्रमण हो तो वह चुप-चाप भी नहीं बैठेगा। वह अपनी सुरक्षा करने में समर्थ है। उन्होंने यह भी कहा कि भारत यूँ थाँट योजना पर विचार कर रहा है किंतु पाकिस्तान को यह चाहिए कि वह अपने मुजाहिदीन और अपनी सेना को वापस अपने क्षेत्र में बुलाये साथ ही सयुंक्त राष्ट्र को भी यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पाकिस्तान द्वारा ऐसी घटना की पुनरावृत्ति न हो।''[12] अंतत: 23 सितम्बर 1965 को युद्ध विराम की घोषणा हो गई थी।

राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन अपने राष्ट्रपतित्व काल में देश के भीतर की सभी समस्याओं के प्रति गम्भीर चिंतन करते थे और उनका समुचित एवं व्यावहारिक समाधान चाहते थे। वे देश में अनाज उत्पादन की कमी को लेकर अत्यन्त चिन्तित थे। इसी प्रकार देश के कुछ हिस्सों में होने वाली हिंसा को लेकर भी वे चिंतित रहते थे वे इसे राष्ट्रीय अखण्डता के लिए खतरा मानते थे। भ्रष्टाचार को डॉ. राधाकृष्णन अव्यवस्था फैलने का प्रमुख कारण मानते थे। इन्होंने राष्ट्र के नाम अपने संदेश में कहा था-प्रतिनिधियों को अपने गुणों में सुधार लाना चाहिए। उन्होंने सरकार को भी आगाह किया कि ईमानदारी और प्रतिबद्धता के अभाव में भ्रष्टाचार पर काबू नहीं पाया जा सकता है। भ्रष्टाचार को समाप्त किए बिना असामाजिक तत्वों का मुकाबला नहीं किया जा सकता है।[13] वे राजनीति में गिरते आचरण से चिंतित थे। उन्होंने राजनीतिक दलों से अपील की थी कि वे ऐसा प्रतिनिधि चुने, जो नैतिक जिम्मेदारी को समझे और लोग उस पर विश्वास करें।

भारतीय प्रजातंत्र में डॉ. राधाकृष्णन का दृढ़ विश्वास था। अपनी विदाई के अवसर पर 12 मई 1967 को आकाशवाणी प्रसारण में राष्ट्र के नाम दिए गए अपने संदेश में कहा कि, पूर्व भविष्यवाणी के बावजूद विपरीत परिस्थितियों में भारतीय संविधान में बहुत सफलतापूर्वक कार्य किया। किन्तु लोकतंत्र के बारे में उन्होंने यह कहा कि यह शासन प्रणाली से कुछ अधिक है। यह जीवन की एक पद्धति है जो मानवीय पहलुओं पर हमें सभ्य आचरण करना सीखाता है। हमें शांतिपूर्ण परिवर्तन करना चाहिए और आमूल-चूल सुधार करना चाहिए।[14]

डॉ. राधाकृष्णन एक ऐसे राष्ट्रपति थ`, जिन्होंने अपने कार्यकाल में तीन प्रधानमंत्रियों के साथ कार्य किया था। पं. जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री और श्रीमती इंदिरा गांधी। इसके अलावा कुछ दिनों तक अस्थायी व्यवस्था के तहत प्रधानमंत्री गुलजारी लाल नंदा के साथ भी डॉ. राधाकृष्णन का साथ रहा था। जहां तक पं. नेहरू और डॉ. राधाकृष्णन के सम्बन्ध का प्रश्न है वे बहुत आत्मीय थे। 1962 के राष्ट्रपति निर्वाचन में डॉ. राधाकृष्णन को जीत दिलाने में पं. नेहरू की अहम् योगदान था, किंतु यह भी तथ्य है कि डॉ. राधाकृष्णन इसके बावजूद नेहरू के हाथ की कठपुतली बनने को तैयार नहीं थे।[15] कुछ विशेष मुद्दों पर डॉ. राधाकृष्णन पं. नेहरू से सहमत नहीं थो पं. नेहरू को उस समय बहुत बुरा लगा था, जब राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने अपने भाषणों में 1962 में चीन के विरूद्ध युद्ध में भारत की असफलताओं के कारण सरकार की कटु आलोचना की थी तथा देश में बढ़ रहे भ्रष्टाचार पर चिंता व्यक्त की थी।[16]

इसके अलावा, प्रताप सिंह कैरो के विरूद्ध 'दास आयोग' के गठन में भी दोनों में मतभेद रहा। राष्ट्रपति श्री कैरो के विरूद्ध जाँच आयोग गठित किये जाने के पक्षधर थ`, जबकि पं. नेहरू की ऐसी इच्छा नहीं थी।[17] सबसे दु:खद अवसर दोनों के सम्बन्धों में तब आया था, जब अगस्त 1963 में राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष (कामराज) से गुप्त वार्ता की और यह इच्छा व्यक्त की कि नेहरू को प्रधानमंत्री पद से हटा देना चाहिए। कामराज ने राष्ट्रपति की इच्छा को पूरा नहीं किया, बल्कि जैसा कुछ लोगों का कहना है, यह बात पं. नेहरू तक पहुँचा दी थी। तबसे डॉ. राधाकृष्णन पं. नेहरू के अप्रिय पात्र और कामराज पं. नेहरू के अधिक विश्वस्त व घनिष्ठ सहयोगी बन गये।[18]

डॉ. राधाकृष्णन के राष्ट्रपतित्व काल में ऐसे अवसर भी आये जबकि दोनो के विचारों में समानता नहीं थी किंतु उसका समाधान दोनो ने बड़ी शालीनता एवं मधुरता से निकाला था। भारत पर चीन आक्रमण के समय रक्षामंत्री कृष्णमेनन के इस्तीफे को लेकर दोनों के मतों में एकरूपता नहीं थी।[19] जहां तक प्रधानमंत्री के रूप में लाल बहादुर शास्त्री का प्रश्न है, सर्वपल्ली गोपाल जिन्होंने

डॉ. राधाकृष्णन की आत्मकथा लिखी है, ने यह स्पष्ट किया है कि राष्ट्रपति और श्री शास्त्री के बीच में कई मुद्द्दों को लेकर असहमति थी। श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री शास्त्री की कैबिनेट में एक सदस्य थी और उनके श्री शास्त्री से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। अत: डॉ. राधाकृष्णन के पास दोनों लोग अलग-अलग शिकायत लेकर जाते थे। सर्वपल्ली गोपाल ने यह भी लिखा है कि, डॉ. राधाकृष्णन जी शास्त्री द्वारा किये गये ताशकन्द समझौते से सतुंष्ट नही थे। इसी प्रकार डॉ. राधाकृष्णन श्रीमती गांधी की नीतियों से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने कई अवसरों पर सरकार की खुलकर आलोचना भी की थी, चाहे वह अनाज उत्पादन में वृद्धि करने का मामला हो या भ्रष्टाचार व अव्यवस्था का मामला हो, डॉ. राधाकृष्णन ने खुलकर अपनी बातें रखी। इस प्रकार डॉ. राधाकृष्णन और श्रीमती गांधी के मध्य सदैव मर्यादित सम्बन्ध रहे। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि डॉ. राधाकृष्णन के काल में दो-दो प्रधानमंत्री की मृत्यु और देश पर दो-दो आक्रमण हुए किंतु डॉ. राधाकृष्णन ने इस भारी उथल-पुथल के बीच अपने संवैधानिक कर्तव्यों को पूरी कर्तव्यनिष्ठा से निर्वहन किया था और अपनी कुशल नेतृत्व शैली से राजनीतिक व्यवस्था को भंग होने से बचाये रखा था। 1954 में इन्हें 'भारतरत्न' की उपाधि प्रदान की गयी थी।

संदर्भ:

1) *Sharma Veena : "President in Indian Political System", Rawat Publications,* New Delhi, 2001, P. 212-213.
2) *Jai, Dr. Janak Raj : Ibid. P. 44.*
3) *Pioneer : Lucknow 24 Oct. 1962 P. 1.*
4) Pioneer : Lucknow 28 Oct. 1962 P. 1.
5) डॉ. परमात्मशरण: भारतीय शासन एवं राजनीति, रस्तोगी पब्लिकेशंस, मेरठ 1980-81, पृ. 221.
6) *Dr. Janak Raj Jai : Ibid. P. 44-45.*
7) Pioneer : Lucknow 22 Oct. 1962 P. 1.
8) Dr. Radhakrishnan- "The Philosopher President" from Wikipedia, the free encyclopedia.
9) गोयल,राम गोपाल: 'भारत रत्न विभूतियां', अभिनव प्रकाशन, अजमेर 2007, पृ. 19.
10) *Hindustan Times : Jan 26, 1965, P. 1.*
11) Pioneer : Lucknow, 3 Sept. 1965.
12) Dr. Radhakrishnan- "The Philosopher President" from Wikipedia, the free encyclopedia.
13) "President Speach to the Nation : Republic Day Speaches (1950-2000)", Publication Division, Ministary of Information and broadcosting, Government of India P. 49.
14) Dr. Radhakrishnan- "The Philosopher President" from Wikipedia, the free encyclopedia.
15) Veena Sharma : "President in Indian Political System", Rawat Publications, New Delhi, 2001, P. 212.
16) H.N. Pandit : The P.M.'s President. P. 6.
17) Veena Sharma : "President in Indian Political System", Rawat Publications, New Delhi, 2001, P. 212.
18) H.N. Pandit : The P.M.'s President. P. 29.
19) *Veena Sharma : "President in Indian Political System", Rawat Publications, New Delhi, 2001, P. 212.*

महिला कहानीकारों की कहानियों में व्याप्त सामाजिक संदर्भः एक दृष्टि

प्रो० (डॉ०) शिव शंकर मण्डल

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, जी.बी. कॉलेज, नवगछिया ति. मॉ. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर।

स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद नये परिवेश का जन्म हुआ जिसने व्यक्ति और समाज के लिए एक विशिष्ट संक्रमण को स्थान दिया। आजादी के बाद पूरे देश का परिवेश धीरे-धीरे बदलता जा रहा था और आर्थिक खुशहाली के अभाव में जनता का जीवन अत्यन्त दुःखी हो गया था। वस्तुओं के बढ़ते मूल्य औसत आमदनी कम होने से बेकारी का फैलना, पूँजी का केन्द्रीयकरण आदि कुछ ऐसी समस्यायें थीं जिन्होंने राष्ट्र व्यवस्था को मध्यवर्गीय जीवन को संकटग्रस्त बना दिया। मध्यमवर्गीय जीवन की आपाधापी और नौकरशाही प्रशासन ने जनता की आकांक्षाओं पर तीखा कुठाराघात किया।

मध्यवर्ग में स्वाधीनता के बाद देश में धीरे-धीरे चेतना का विकास होने लगा। लोगों में इस कल्पना ने जन्म लिया कि स्वतंत्रता के पश्चात एक नए जीवन का आरंभ होगा, जो नई उमंग और नई रंगों से भरा हुआ होगा। सामाजिक आर्थिक दृष्टि से भी उनके जीवन में अत्यधिक सुख सुविधा का आगमन होगा। महिला कहानीकारों की कहानियों में समाज के ये समस्त संदर्भ इस प्रकार गुथें हुए हैं जैसे समाज में व्याप्त इन भावनाओं को उन्होंने सूक्ष्मता के साथ देखा और परखा है। इसी के साथ समाज में व्याप्त इस अवसाद को उन्होंने मानो अपने ह्दय से अनुभूत भी किया है। क्योंकि यह तो सत्य है की एक साहित्यकार की रचना में उसके समाज के आसपास का वातावरण अवतरित आवश्य होता है। अतः आज की नई कहानियों में व्यक्ति के माध्यम से तत्कालीन परिवेश और परिवेश के माध्यम से तत्कालीन व्यक्ति को महिला कहानीकारों के द्वारा खोजा गया है, जिसमें कोई संशय नहीं। नई कहानी में व्यक्ति अपने समग्र परिवेश में उपस्थित हुआ है और महिला साहित्यकार ने उसकी प्रत्येक भावना का स्पर्श कर संपूर्ण आत्मीयता के साथ उसे अपनी कहानियों में उतारा है।

शब्द कुंजी- महिला कहानीकार, कहानियाँ, सामाजिक संदर्भ, मध्यमवर्ग।

आलेख प्रस्तुति-

वर्तमान समय में महिला कहानीकारों द्वारा लिखी गई उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त भावनाओं के अंतर्गत मध्यम वर्ग विशाल रूप लेकर के अवतरित हुआ है। अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति के आग्रह के फलस्वरूप मध्यवर्ग का चित्रण नई कहानी में अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। यथार्थ की अभिव्यक्ति की मांग अब सर्वसम्मत बात हो गयी है। जिसका स्पर्श महिला कथाकारों ने बड़ी ही स्पष्टता, सरलता और सहजता के साथ किया है।

साहित्य अब वास्तविक जीवन से दूर भागने की या कल्पना के लोक में घूमते ही रहने की बात को स्वीकार नहीं करता। वह जीवनाभिमुख हो गया है, यह सत्य है। ऊँची अपेक्षाओं एवं संक्षिप्त, अधूरी आर्थिक परिस्थिति से युक्त इस वर्ग की प्रमुख वेदना को स्त्री रचनाकारों ने अभिव्यक्ति प्रदान की है। ऊँची वैयक्तिक लिप्सायें, आर्थिक तंगी, सामन्तवाद का प्रभाव तथा नई पाश्चात्य सभ्यता का आकर्षण इस वर्ग के अन्तर्विरोध एवं मानसिक संघर्ष को व्यक्त करते हैं, जिनका वर्णन इन कथाकारों की कहानी में प्राप्त होता है। इच्छाओं की अपूर्णता एवं आकांक्षाओं के अनुकूल अवसर की अप्राप्ति इस वर्ग में निराशा, कुंठा एवं घुटन का निर्माण करती है। जीवन से निराश होकर पतनोन्मुखी विचारों को स्वीकार करके यह वर्ग अपने परिवार तथा समाज में जीवन को विकृति प्रदान करता है और अनेकानेक समस्यायें निर्मित कर देता है।

हिन्दी महिला कहानीकारों ने मध्यवर्ग की प्रायः सभी वृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया है और उसे यथार्थ स्तर पर ला खड़ा कर दिया है। नये आंदोलन के साथ इस वर्ग की व्यक्तिवादिता ने प्रतिक्रियावादी रूप धारण कर लिया है।

मध्यवर्ग में सबसे बड़ा हिस्सा क्लर्कों का होता है। सरकारी, गैर सरकारी दफ्तरों में एक ही प्रकार का काम पूरी जिन्दगी भर करते- करते तथा अपने आर्थिक एवं पारिवारिक संकटों से जूझते जूझते क्लर्क का जीवन अभाव, पीड़ा एवं असंतोष के साथ बीत जाता है। आर्थिक तंगी, परवशता, घुटना, विलासिता इस वर्ग का सामान्य संकट है, छोटी-सी इच्छा भी कभी पूर्ण नहीं होती है। अभावग्रस्त जीवन बिताने के कारण इस वर्ग में व्यक्तियों में स्वप्नवादिता परिलक्षित होती है।

साहित्यकार समाज का प्रतिबिंब मात्र नहीं बल्कि समाज को बदलने की एक अदम्य शक्ति को धारण करने वाला शक्तिपुंज है। उसके लिए सृष्टा और दृष्टा होना आवश्यक है। क्योंकि वह समाज को बदलने के अपने अनुरूप अभिव्यक्त करने की कला को धारण करता है। इसीलिए एक साहित्यकार को ईश्वर से भी बड़ा सृष्टा कहा गया है। क्योंकि ईश्वर की सृष्टि निश्चित नियम में बद्ध है लेकिन साहित्यकार की सृष्टि को किसी नियम में नहीं बांधा जा सकता। वह कल्पनाओं के पंख लगाकर आकाश के पर भी उड़ सकता है और भावनाओं की डोर से ईश्वर को भी बढ़ सकता है हिंदी साहित्य की महिला कहानीकारों की अभिव्यक्ति अदम्य है। उच्च कल्पनाओं से युक्त है, सत्य भावनाओं से अनुप्राणित है तथा यथार्थ का प्रतिबिंब है।

महिला लेखिका मन्नू भण्डारी ने अपनी "दो कलाकार' नामक कहानी में इस लक्ष्य का प्रभावकारी चित्रण प्रस्तुत किया है। मन्नू भंडारी ने अपनी इस कहानी के माध्यम से दो समाज सेविकाओं को चित्रित करते हुए उनके द्वारा समाज के एक ऐसे यथार्थ को प्रस्तुत किया है जो हमें अपने चारों ओर देखने को मिल जाता है। कहानी के दो पत्रों में चित्रा एक ऐसी पात्र है जो सामाजिकता से किसी भी प्रकार का संबंध नहीं रखती, लेकिन समाज की विषमताओं को चित्रित करने के कारण उसे सर्वाधिक ख्याति मिलती है। जबकि अरुणा समाज के संपूर्ण दुख को आत्मसात कर अपने हृदय की अनुभूतियों से जोड़कर चलती है, लेकिन अपने दोनों बच्चों के लालन पालन में रत रहने वाली समाज में किसी प्रकार की ख्याति को प्राप्त नहीं कर पाती। कहानी के माध्यम से मन्नू भंडारी ने सामाजिक खोखले संदर्भ को बड़ी चतुरता से स्पष्ट किया है, जो हमें चारों ओर देखने को मिलता है। सहृदय व्यक्ति जीवन में मात खाता है और चतुर चालाक व्यक्ति झूठी भावनाओं के द्वारा संवेदनाओं को ग्रहण करते हुए उन्नति का शिखर छू लेता है। हमारे समाज में व्याप्त यह विडंबना वास्तविकता में अत्यधिक दयनीय है। मानव सत्य को खा लेने वाली है, जिसे देखकर सरल सहृदयी समाज कुंठित होता है।

आज समाज का मध्यम वर्ग उच्छृंखलता, नितिहीनता, आदर्शहीनता से युक्त दृष्टिगोचर होता है। और यही कारण है कि आर्थिक परिस्थितियों एवं उससे उत्पन्न विकृतियों के कारण समाज का मध्यम वर्ग अत्यधिक प्रभावित होता है। मध्यम वर्ग में पति-पत्नी के कमजोर संबंध, तनाव, संशय, टूटन, बिखरन आदि अमानवीय स्तर को जन्म देने लगते हैं। इस वर्ग के स्त्री पुरुष का पारिवारिक झगड़ा नित्य प्रतिदिन की बात होती है। मन्नू भंडारी अपनी कहानी "क्षय" में भी आर्थिक संकट से उत्पन्न घुटन का सांकेतिक चित्रण प्रस्तुत करती है। "आदर्श सामने रखकर चलने वाली कुन्ती परिवार के लिए संघर्ष करती हुई टूट जाती है, घुटन उसको रोग से ग्रस्त कर देती है। परिवार की जिम्मेदारी आर्थिक आवश्यकता एवं सिद्धान्तों की आदर्शवादिता अन्त में उसका दम घोटने लगती हैं, यहाँ मन्नू भण्डारी ने मध्यवर्ग की परिवेशगत यथार्थ को सांकेतिक रूप से प्रस्तुत करते हुए समाज का स्पष्ट चित्र खींचा है।

नई कहानियों में महिला कथाकारों ने जिन समाजिक सन्दर्भो को परिवेश के साथ अभिव्यक्त किया है, उनमें पारिवारिक सम्बन्ध प्रमुख हैं। पुराने कथाकारों में परिवार के प्रति गहरी आस्था एवं आदर्शवादी भावना थी और वे सम्बन्धों के शाश्वत रूप को लेकर कहानियों की रचना किया करते थे। उन कथा पात्रों में हिन्दू संस्कारों का गहरा प्रभाव था, इसका मतलब ये कि पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण था । उदाहरण के लिए पुत्र आज्ञाकारी, पति को पत्नी ईश्वर रूप समझने वाली एवं भाई प्राणोत्सर्ग करने वाला हुआ करते हैं। इसी भांति परिवार के अन्य सम्बन्ध भी निश्चित हुआ करते थे। लेकिन नई कहानी के माध्यम से कथाकारों ने सम्बन्धों की बदलती प्रक्रिया को उसके परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित किया है। अब कहानी में मानवीय मूल्यों की चर्चा दिखाई देती है, नये कथाकारों के लिए सम्बन्धों के केवल परम्परागत नाम ही रह गये थे। उन्होंने उनके पारस्परिक रूपों की बदलती चेतना को अर्थपूर्ण ढंग से अन्वेषित किया है।

वस्तुतः नई कहानी अपने परिवेश के प्रति यह बहुत बड़ी ईमानदारी थी और इसे नई कहानी ने कुछ सीमा तक निभाया भी है। इस प्रकार पारिवारिक सम्बन्धों पर विचार करने से प्रकट होता है कि व्यक्ति-व्यक्ति का फिर स्त्री-पुरुष के मध्य कैसे सम्बन्ध होगा या है।

सृष्टि के आरम्भ से ही स्त्री और पुरुष समान रूप से समाजरूपी गाड़ी के दो पहिये माने जाते हैं। आज भी पुरुषविहीन समाज की परिकल्पना मात्र हास्यास्पद स्थिति ही कही जा सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि पुरुष के अभाव में नारी का अस्तित्व एकांगी है। जहाँ नारी समाज में पुत्री, बहन, पत्नी और माता के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करती आ रही है वहीं पुरुष पुत्र और भाई, पति, पिता के रूप में अपने उत्तरदायित्व का परिचय देता रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर पुरुष मूलतः आर्थिक दृष्टि से संशस्त्र है। वह अपने वर्तमान के प्रति इतना प्रतिबद्ध (सचेष्ट) हो चुका है कि न तो वह भविष्य के विषय में सोच पाता है न अतीत की सुखदायक वादियों में लौट पाता है। क्योंकि वर्तमान के आगे कुछ ही नहीं देता, अतीत के विषय में वह यही सोचता है कि "उसे कुछ नहीं मिलताङ्क.। सिर्फ एक तीखी कड़वाहट या सुखद स्मृतियों की चुभन। फिर उसका बोझ ढोने से लाभ?"

उषा प्रियंवदा अपनी कहानी "जिंदगी और गुलाब के फूल" के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं कि, आज स्त्री और पुरुष दोनों अलग-अलग क्षेत्र में कार्य करते हैं। दोनों ही मानसिक संघर्ष के शिकार है। कोई झुकना नहीं चाहता। वह कहानी के माध्यम से कहती है- "यही पुरुष कहीं कटीली जिंदगी में गुलाब के फूलों के सपने देखता है" तो कहीं बिंदा महाराज की भांति कुंठा और घुटन का जीवन व्यतीत करता है"।

नई कहानी के पुरुष भी अपेक्षाकृत अधिक चेतनाशील हैं। उसकी आत्मपरकता और वैयक्तिकता एकांगी नही है और न वह स्वप्न भंग से उद्भूत है। उसके अन्य कार्य कारण से सम्बन्ध हैं। न तो उसे नारी ने तोड़ा है न ही विगत पुरुष की भांति भावुकता का ही शिकार हुआ है। मन्नू भंडारी अपनी कहानी रानी मां का चबूतरा में समाज के इस संवेदनशील संदर्भ को प्रस्तुत करते हुए कहती है कि, -

"इसी स्वातंत्र्योत्तर समाज में गुलाबी जैसी नारियाँ भी हैं जो न तो एकान्त पसंद हैं और न ही सामाजिक संघर्षो के प्रति ही किसी प्रकार का मानसिक तनाव अथवा शारीरिक टुटन है। अपितु वे अपनी पूर्ण निस्संगता के साथ सामाजिक संघर्ष के प्रति प्रतिश्रुत हैं। "गुलाबी आर्थिक रूप से स्वतंत्र है, उसे अपनी मेहनत की कमाई का भरोसा है। वह बस्ती वालों की दया पर जीवित नहीं रहना चाहती। मानो संघर्ष उसका जीवन है।

"शशिप्रभा शास्त्री" की "ढोना एक गुलाब का" कहानी में नारी के प्रेम और त्याग का वर्णन है। कहानी की माधुरी एक स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित व्यक्ति के साथ विवाह दी जाती है जो एक साल के अन्दर छोड़ देता है। वह सालभर पिता के घर रहती है। इसी बीच रतनलाल को ट्रेनिंग के लिए विदेश जाने के लिए चुना लिया जाता है। आर्थिक अभाव के कारण विदेश भेजना नहीं चाहते, तब माधुरी अपने पिता को पैसे के लिए राजी करती है। पत्नी का व्यवहार देखकर रामलाल गद्‌गद्‌ हो उठता है। वह कहना है- "मधु मुझे माफ कर दोगी न। अपने किये का पश्चाताप करना चाहता हूँ किसी भी प्रकार।" भारतीय नारी की यह महानता रही है कि उपेक्षा और प्रताड़ना पाकर भी उसके प्रति मन, वचन, कर्म समर्पित रहती है। कभी-कभी उसका त्याग पति की दृष्टि के बदलने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

मन्नू भण्डारी की "यही सच है" की दीपा ऐसी लडकी लड़की है जो केवल सच को स्वीकार करती है जो उसके समक्ष प्रत्यक्ष है। जिसे वह भोग सकती है। लेकिन वह उस प्रत्यक्ष से दूर रहती है सच को ही सब कुछ मानती है।

यहाँ "कृष्णा सोबती" की एक लम्बी कहानी "तिन पहाड़" की जया ऐसी लड़की है, जो एक अतीत से श्रीदा से प्यार करती है। श्रीदा अन्य लड़की से विवाह कर लेते हैं। ... तपन के संसर्ग में आकर वह फिर से सम्बन्धों की तलाश में खो जाती है। उसे जीवन असार्थक लगने लगता है और आत्महत्या कर लेती है। जहाँ तक कहानी के रोमांटिक स्वर का प्रश्न है, कहानी और उसके पात्र उसी स्वर में बोलते हैं। जया की परिणति भी उसी रूप में हुई है। किन्तु साथ ही कहानी में स्त्री की विवशता पर प्रश्नचिह्न भी लगा देती है।

सन् 70 के बाद की महिला कथा लेखिकाओं में विशिष्ट स्थान रखने वाली "मृदुला गर्ग" नारी के प्रति बदले दृष्टिकोण को लेकर एक खास बौद्धिक तेवर के साथ उपस्थित होती हैं। जहाँ रोमांटिक भावुक दृष्टि को नकारती वैचारिकता के धरातल पर सम्बन्धों की सूक्ष्म परतों को खोलती हैं। वहीं इन्होंने नारी के बीच के सम्बन्धों को नये कोण से देखा है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है की नई कहानियों में महिला कथाकारों ने समाज के ज्वलंत मुद्दों को उपस्थित किया है, जो हमारे इर्द-गिर्द दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष

नई कहानी में महिला कथाकारों ने समाज और स्त्री की बदलती हुई स्थिति, संघर्ष और बदलते हुए संबंधों के स्वरूप का चित्रण किया है। नई कहानी का समाज एक नया समाज है। जो मध्यम वर्ग की गाथा कहता है। विशेष कर बदलती राजनीतिक परिस्थितियों, नए सामाजिक संदर्भों और विश्रृंखलित अर्थव्यवस्था में वह केवल यथार्थ मात्र का चित्रण करता दिखायी देता है। नई कहानी इन सबसे भरी पड़ी है। नई कहानियों में महिला कथाकारों ने समाज के सूक्ष्म से सूक्ष्म संदर्भों को स्पष्टता और बारीकी के साथ वर्णित किया है। इसी के साथ-साथ उन्होंने समाज में स्थित ग्राम क्या है? उसमें कहां परिवर्तन आ रहा है? क्या संभावनाएं हैं? इसका चित्रण भी अपनी कहानियों के माध्यम से किया है। यद्यपि इस दशक की कहानी संख्या में कम रही हैं जो स्त्री पुरुष के संबंधों को उद्घाटित कर सकें, लेकिन फिर भी महिला कथाकारों के द्वारा जो कहानी लिखी गई हैं उनमें सामाजिक समस्याएं स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी कहानी के दो दशक", - डॉ० सुरेश धीगड़ा।
2. उषा प्रियम्बदा- "जिन्दगी और गुलाब के फूल।
3. मनु भण्डारी - श्रेष्ठ कहानियाँ, "रानी माँ का चबूतरा"।
4. नई कहानी - डॉ० कामेश्वर प्रसाद सिंह (मध्यवर्गीय जीवन)
5. हिन्दी कहानी - सामाजिक सन्दर्भ, डॉ० अश्वघोष।
6. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, -विवेकी राय।
7. आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मृत्यु, - डॉ० रमेश देशमुख।
8. यही सच है"- मन्नू भण्डारी।
9. मन्नू भण्डारी- "मैं हार गइ"।
10. "नई कहानी"- मध्यवर्गीय जीवन- डॉ० कामेश्वर।

समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास

डॉ० शशि गुप्ता

सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय बिलासा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर, जिला- बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

प्रस्तावना

मानव के समुदाय से समाज की निर्मिति होती है और समाज का मानव के बिना कोई अस्तित्व नहीं है। इस संदर्भ में समाजशास्त्र की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं-

"1- समाजशास्त्र मानव-समाज सामाजिक समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है।
2- समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों का अध्ययन हैं।
3- समाजशास्त्र क्रियाओं एवं अंत: क्रियाओं का अध्ययन है।
4- समाजशास्त्र सामाजिक समूहों का अध्ययन है।
5- समाजशास्त्र विज्ञान का अध्ययन है।
6- समाजशास्त्र संस्थाओं का अध्ययन है आदि।"[1]

समाजशास्त्र एक मानवीय विषय है यही कारण है कि इसका इतिहास मानव समुदाय एवं उसके प्राचीन इतिहास से संबंधित है। समाजशास्त्र के उद्भव का संबंध समाज में सभ्यताओं के उत्थान-पतन तथा संगठित रूप आदि के कालखंड से है यही समाजशास्त्र की उत्पत्ति का मूल है। इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाले तत्कालीन समय में दार्शनिक, इतिहास विद, विचारक अथवा विधि विशेषज्ञ जाने गये। अधिकतर विद्वानों का मत है कि समाजशास्त्र का व्यवस्थित ढंग से अध्ययन आरंभ करने वाला प्रथम विचारक प्लेटो था। प्लेटो के पश्चात् अरस्तू ने राजनीतिक संस्थाओं का अति विस्तृत और महत्वपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है, जिसमें उसने सामाजिक तथा आर्थिक तथ्यों का भी समावेश किया है आधुनिक काल के मानव वंश शास्त्रियों का कथन है कि मानव समाज का विज्ञान आज भी अपनी शैशव अवस्था में है। कुछ विद्वानों का कथन है समाजशास्त्र की उत्पत्ति विज्ञान के रूप में फ्रांस देश की क्रान्ति के समय हुई है।

यह सिद्धान्त है कि समाजशास्त्र मानव से सम्बंधित होने के कारण मानवीय विषय है इसी के अन्तर्गत मानव की कुछ प्राकृतिक सीमाएँ होती हैं। समाजशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति पर आधृत है और इस पद्धति में तर्क तथा अनुभव विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। समाजशास्त्र समस्या से सम्बंधित तथ्यों को एकत्र करके सिद्धान्तों की निर्तिति करता है। उन सिद्धान्तों के परीक्षण तक पुनर्परीक्षण द्वारा प्रभावित करके अनुभव युक्ति, तथ्य, तर्क के माध्यम से प्रमाणित करता है। उपरोक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि वह एक ओर अनुभव पर भी आधारित शास्त्र है।

फ्रांसीसी समाजशास्त्री दुर्मिल एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण वाले प्रमुख समाजशास्त्री जाने जाते हैं। समाजशास्त्र को तीन भागों में विभक्त करते हैं। यथा-सामाजिक स्वरूप शास्त्र, सामाजिक शरीर शास्त्र तथा सामान्य समाजशास्त्र। सामाजिक स्वरूप शास्त्र में समस्त विषय समाहित हैं। सामाजिक स्वरूप शास्त्र के माध्यम से हम किसी भी देश की जनसंख्या, आकलन एवं विवरण आदि ज्ञात करते हैं। सामान्य समाजशास्त्र, सामाजिक विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, तथा राजनीतिशास्त्र आदि विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तों के पृथक-पृथक क्षेत्रों का विवरण प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात करता है कि सामान्य नियम कार्यरत हैं अथवा

निष्क्रिय। सामाजिक शरीर शास्त्र में सामाजिक विज्ञान से सम्बंधित विषयों का समावेश है। जिनका समाज से गूढ़ संबंध है। यथा-धर्म, अर्थ तथा नीति आदि। धर्म का समाजशास्त्र तथा नीति का समाजशास्त्र आदि। समाजशास्त्र के इस भाग की सफलता इसके विभिन्न भागों एवं विषयों के गहन अध्ययन पर निर्भर करती है।

''मनुष्य की प्रगति एवं विकास उसके शारीरिक गठन पर निर्भर करता है। मानव का उद्भव और विकास कैसे हुआ? उसने अपनी रक्षा कैसे की होगी? मनुष्य और अन्य प्राणियों में कौन-कौन से गुण होते हैं? आदि की सम्पूर्ण एवं सही जानकारी के लिए समाजशास्त्र को प्राणिशास्त्र का सहारा लेना पड़ता है। मानव की व्यक्तिगत शारीरिक जाति तथा उसकी विशेषताएँ आदि अन्य प्राणियों से भिन्न क्यों हैं इसके उत्तर हेतु भी समाजशास्त्र को प्राणिशास्त्र पर ही निर्भर रहना पड़ता है।''[2]

स्माजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र का व्यापक संबंध रहा है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री जी.ई.जी. कैटलिन की धारणा है कि- ''राजनीति शास्त्र तथा समाजशास्त्र अविमाज्य है और ये वास्तव में ये दोनों एक ही चित्र के दो पहलू हैं।''[3] सामाजिक विश्वास, विचार धाराएँ राज्य के स्वरूप को परिवर्तित करती हैं। राज्य के सामाजिक ढाँचे का अध्ययन समाजशास्त्र का विषय है। राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र एक दूसरे के कार्य के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। मनोविज्ञान में मानव के व्यवहार एवं आचरण का अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति के मनोभावों को ज्ञात करने के लिए मनोविज्ञान आवश्यक है। सर्व विदित तथ्य यह है कि समाज अपने आप में एक मनोवैज्ञानिक संगठन होता है। मनोविज्ञान का संबंध आदि व्यक्तिगत है तो समाजशास्त्र का सम्बंध निश्चित रुपेण सामाजिक होता है। मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान, तथा समाज विज्ञान रुपेण सामाजिक होता है। मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान, तथा समाज विज्ञान के बीच स्थित व्यकित की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। यह सिद्धान्त आर.एस. वुडवर्थ द्वारा प्रतिपादित है।

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र का घनिष्ठ संबंध है। अर्थशास्त्र में धन की उत्पत्ति एवं वितरण से संबंधित सभी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। मानव के विकास में धन (अर्थ) का विशेष योगदान होने के कारण अर्थशास्त्र का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। समाज में जो गुणदोष होते हैं, रीति-रिवाज और जो परम्पराएँ होती हैं उनके मूल तक पहुँचने के लिए अर्थशास्त्रियों को समाज का सहारा लेना पड़ता है, क्योंकि आर्थिक समस्याओं के अध्ययन के बिना समाजशास्त्र का अध्ययन नहीं हो सकता है। यथार्थ रूप में आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र एक-दूसरे के अति निकट हैं समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के मध्य घनिष्ठ संबंध को प्रकट करते हैं। इसी प्रकार समाजशास्त्र तथा नीति-शास्त्र एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। नीतिशास्त्र समाज को नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित आदि का बोध कराता रहता है। चूँकि नीतिशास्त्र समाज के नैतिक मूल्यों का ही अध्ययन करता है अत: यह भी मानव की सामाजिकता से ही सम्बद्ध है। समाजशास्त्री सी.ए.एल. वूड का कथन है कि ''समाजशास्त्र का कार्य वैज्ञानिक नीतिशास्त्र को आधार प्रदान करना है। दूसरी ओर नीतिशास्त्र का कार्य उन नैतिक मान्यताओं को ग्रहण करना है जो मानव समाज का वैज्ञानिक ज्ञान प्रस्तुत करते हैं और उन्हें विकसित, उनकी आलोचना तथा उनमें समन्वय स्थापित करते हैं। विज्ञानों पर आधारित नीति शास्त्र का ज्ञान विशेष उपयोगी होगा और समाजशास्त्र पर आधारित ज्ञान अन्य किसी भी ज्ञान की अपेक्षा अधिक उपयोगी होगा।''[4]

नेतृत्वशास्त्र में मानव की उत्पत्ति, विकास, उसके समस्त क्रियाकलाप एवं सांस्कृतिक विवरण आदि का अध्ययन किया जाता है। इसमें मानव के दो पक्षों सत् तथा असत् का निरूपण किया जाता है। नेतृत्व शास्त्र में मनुष्य के व्यवहार तथा आचरण का सामाजिक परिवेश के अनुसार अध्ययन होने के कारण इसके लिए समाजशास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं। इस प्रकार अनेक ज्ञान-विज्ञानों की मदद से ही समाजशास्त्र अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार समाजशास्त्र का इतिहास मानव समुदाय एवं उनके अति प्राचीन ऐतिहासिक काल से सम्बन्धित है। समाजशास्त्र के उद्भव का प्रादुर्भाव हम समाज में प्रचलित संस्कृतियों, सभ्यताओं, आचरणों, नीतियों, रीति-रिवाजों तथा समस्ज सामाजिक व्यवहारों के उत्थान तथा समाज के संगठित रूप आदि के संज्ञान को ज्ञात करने के कालखण्ड से मान सकते हैं। इन सिद्धान्तों के जन्मदाता थे दार्शनिक, इतिहास-विद, विचारक तथा विधि-विशेषज्ञ आदि। प्लेटो को हम समाजशास्त्र का व्यवसित ढंग से अध्ययन करने वाला जनक तथा उसने उपरांत अरस्तू जिसने राजनीतिक संस्थाओं का अति विस्तृत एवं महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया को द्वितीय जनक माना जा सकता है। कफछ विद्वानों का कथन है कि समाजशास्त्र की उत्पत्ति फ्रांस की क्रान्ति के समय हुई है। समाजशास्त्र एक मानवीय विषय होने के कारण मानव की प्राकृतिक सीमाओं को अपने में समाविष्ट रखता है। जब समाजशास्त्र कि किसी समस्या से संबंधित तत्त्वों को एकत्रित करता है तभी उनके आधार पर सिद्धान्तों का निर्माण करता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि समाजशास्त्र अनुभव पर आधारित एक शास्त्र है।

मानव प्राचीनकाल से ही अपने समुदाय एवं समूहों के अध्ययन एवं चिंतन के प्रति जिज्ञासु रहा है। मानव अपनी वृद्धि के उपरांत सदैव, कबीलों, समुदायों, संगठनों तथा समाज में ही निवास करता आया है। मानव ने अपने चारों ओर घटित घटनाओं के चिंतन एवं मनन में कौतूहल प्रदर्शित किया है। यही कारण है कि प्राकृतिक विज्ञान का उद्‌भव सामाजिक विज्ञान के पूर्व हुआ ऐसा प्रतीत होता है। ईब्न खल्डून द्वारा स्थापित सिद्धान्तों के आधार पर ऐतिहासिक तथा सामाजिक घटनाओं की व्याख्या की जाती है। सत्रहवीं शताब्दी में हॉब्स ने प्रकृति से संबंधित एक अति विशिष्ट सिद्धान्त को विकसित किया जो इतिहास में 'सामाजिक संविदा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके उपरान्त स्पीनोजा ने इस सिद्धान्त को संशोधित रूप में पेश किया तथा इसमें एक नवीन सिद्धान्त की संरचना की। ग्रेशियस ने भी एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया है।

अठारहवीं सदी में लॉक ने अपने राजनीतिक दर्शन में समाज तथा राज्य से संबंधित महत्त्वपूर्ण विचार प्रतिपदित किये हैं। इसी काल में फ्रांसीसी दार्शनिक रूसो ने एक नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसमें अनके समाजशास्त्रीय तथ्यों की अन्तर्दृष्टि दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त बोंसा, विवको, कोनडोर्स, मोन्टेस्क्यू, एडमस्मिथ, एक फर्गुसन तथा जॉन गौन्अ आदि सामाजिक विचारकों ने भी मनुष्य, प्रकृति, राज्य तथा राजनीतिक विचारों में समाजशास्त्रीय घटनाओं का अध्ययन एवं सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है।

मानव स्वभावत: एक जिज्ञासु प्राणी है। उसने आदिकाल से ही प्रचलित विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं को ज्ञात करने का प्रयास किया है। भारत में प्राचीनकाल से ही समाज में सन्निहित विभिन्न पहलुओं का उल्लेख पृथक्-पृथक् ढंग से किया गया है। वैदिक साहित्य एवं हिन्दू ग्रंथों (वेद, उपनिषद्, पुराणों, शास्त्रों, संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों, महाभारत, रामायण तथा गीता आदि) में वर्ण एवं जनजाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार प्रणाली, आश्रम व्यवस्था, विविध संस्कारों तथा ऋण व्यवस्था आदि विभिन्न पहलुओं का सटीक वर्णन मिलता है। सामाजिक पहलुओं के अध्ययन की एक लम्बी प्रक्रिया रही है। ''ऑगस्ट कॉम्ट ने सर्वप्रथम 1938 ई. में समाजशास्त्र शब्द का प्रयोग किया था।''[5] 19वीं सदी के समाजशास्त्र को निश्चित तौर पर विज्ञान माना गया है। सेन्ट साइमन ने समूह पर आश्रित विज्ञान की कल्पना की है।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक एवं विचारक कॉट ने सन् 1938 ई. में लेटिन भाषा के SOCIUS (समाज अथवा साथी) तथा ग्रीक भाषा के LOGOS (वार्तालाप या विज्ञान) इन दोनों शब्दों के मिश्रण से इस विषय का 'समाजशास्त्र' नामकरण किया। अलग-अलग भाषाओं के मिश्रण के कारण इसे अवैध संतान की संज्ञा प्रदान की गयी है। जॉन स्टुअर्ट तथा हरबर्ट स्पेन्सर ने भी इसी नामकरण (समाजशास्त्र) की पुष्टि की है। समाजशास्त्र के उद्‌भव एवं विकास के संदर्भ मैं यह सिद्ध होता है कि पश्चिमी यूरोप की सामाजिक परिस्थितियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। उपरोक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि मानव की जवीन में समाजशास्त्र विषय का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. इक्कीसवीं सदी की महिला लेखिकाओं के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अनुशीलन- डॉ. ललिता राठोड, पृ. 17
2. हिन्दी और मराठी की प्रगतिशीलता का समाजशास्त्रीय अनुशीलन- डॉ. हणमंतराव पाटील, पृ. 15
3. इनसायक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज खण्ड-14
4. फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य: समाजशास्त्रीय विश्लेषण- जोगेन्द्र सिंह वर्मा, पृ. 40
5. वही, पृ. 21

स्वराज आश्रम बारडोली

चौधरी विपुलकुमार सगरामभाई

पीएच.डी. विद्वान (इतिहास) हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण

बारडोली सत्याग्रह भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में एक मील का पत्थर है। इस प्रकार असहयोग आंदोलन की शुरुआत से बारडोली तालुक गांधीवादी गतिविधियों का केंद्र बन गया। गांधीजी ने इस तालुका में नकार का संघर्ष चलाने का निर्णय लिया, इसके पीछे का कारण बारडोली में कुँवरजीभाई और कल्याणजीभाई मेहता की गतिविधियाँ थीं। बारडोली में राष्ट्रीय विद्यालय खुलने से कार्य का दायरा बढ़ा और बारडोली में स्वयंसेवकों की संख्या बढ़ने पर कुँवरजीभाई ने एक किराये के मकान में आश्रम शुरू किया। श्री कुँवरजी भाई के नेतृत्व में राष्ट्रीय विद्यालयों, सरकारी अदालतों-दफ्तरों के बहिष्कार, रचनात्मक कार्यक्रमों आदि से बारडोली तालुका में असहयोग में सफलता प्राप्त हुई। शराब बेचने जा रहे एक भजन मंडली के श्री मकानजी मास्टर को जहांगीर नामक पीठावाले ने पीटा। इस अध्याय में बारडोली द्वारा वल्लभभाई को चिढ़ाया गया था। वल्लभभाई ने उत्तेजित लोगों को शांत किया और एक बैठक में मकनजी मास्टर और जहांगीर ने सब कुछ भूलकर एक-दूसरे को गले लगा लिया और उनके बीच व्यंग्यपूर्ण झड़प भी हुई। घटना इतनी संवेदनशील थी कि "वल्लभभाई ने उस ट्रेन को वापस पटरी पर ला दिया जो पटरी से उतरने वाली थी"4 वल्लभभाई ने इस अवसर पर गांधीजी के सत्य अहिंसा के महत्व को समझाया और लोगों से शांत रहने और स्वराज काज के लिए तैयार रहने का आह्वान किया क्योंकि अभी और कठिनाइयाँ थीं। सहना होगा..

१९२० ई. में गांधीजी और वल्लभभाई बारडोली में एक सभा में आये। वह अप्सरा में रात्रि विश्राम किये। कुँवरजीभाई कहते हैं कि "बापूजी और सरदार बारदोली की तत्परता से कुछ हद तक आश्वस्त थे"। इस प्रकार बारडोली नकार की लड़ाई के लिए पूरी तरह से तैयार था। लेकिन चौरी चौरा घटना के बाद गांधी जी ने असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया. गांधीजी ने कार्यकर्ताओं को रचनात्मक गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए कहा, जबकि श्री कुँवरजीभाई मेहता ने भी बारडोली में रचनात्मक कार्य किए। यहां का कालीपराज जिसे गांधीजी ने रानीपराज नाम दिया था। उन्होंने उन्हें राष्ट्र निर्माण के कार्य में शामिल करने का बीड़ा उठाया। इस प्रकार बारडोली में स्वराज्य आश्रम की नींव असहयोग आन्दोलन द्वारा ही रखी गयी। इस आश्रम की स्थापना का उद्देश्य जन चेतना के लिए रचनात्मक कार्यों के माध्यम से लोगों में जागरूकता पैदा करना था। इस आश्रम की स्थापना के पीछे प्रेरणास्रोत सरदार वल्लभभाई पटेल थे। इससे पहले यह आश्रम १९२१ में बारडोली पोस्ट ऑफिस की इमारत में शुरू किया गया था। जब यह स्थान छोटा पड़ गया, तो कुँवरजीभाई ने निकटवर्ती अपसरा में स्वराज आश्रम शुरू किया। इस अप्सरा के आश्रम का उद्घाटन श्री दरबार साहिब ने किया था इसलिए इसे "दरबारगढ़" कहा गया। १९२२ तक इस आश्रम के मुखिया कुँवरजीभाई थे। इस समय बारडोली गांव में कांग्रेस कार्यालय चल रहा था। १९२५ में, आश्रम के न्यासी बोर्ड का गठन किया गया और वल्लभभाई पटेल बारडोली आश्रम के शासी निकाय के अध्यक्ष बने।

गांधीजी और सरदार पटेल ने भी आश्रम के निर्माण के लिए धन जुटाने में मदद की। आश्रम का पुनर्निर्माण वल्लभभाई पटेल की देखरेख में किया गया था। १९२८ के बारडोली सत्याग्रह के दौरान, वल्लभभाई पटेल ने आश्रम की गतिविधियों को चलाने के लिए बारह एकड़ जमीन खरीदी। जिसमें कार्यालय, श्रमिक आवास, अतिथि आवास, डेलोस आदि बनाये गये। १९२८ के सत्याग्रह के बाद बारडोली आश्रम स्वतंत्रता संग्राम का केन्द्र बन गया। इसी आश्रम में सरदार वल्लभभाई पटेल का निवास स्थान "बंगला" बनाया गया था। सरदार पटेल १९४२ तक गर्मियों में कभी-कभी यहाँ रुकते थे। वल्लभभाई यहां के पेड़ों और बगीचों की देखभाल करते हैं। आश्रम उन्हें बहुत प्रिय था, इसीलिए १९५० में जब सरदार पटेल आखिरी बार आश्रम आये थे तो आश्रम को उत्तमचंद शाह को सौंपते हुए उन्होंने कहा था, "उत्तमचंद, यह आश्रम भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक ऐतिहासिक स्थान है., यह भविष्य

के लिए तीर्थस्थल बनना है।" इसलिए इसे बचाकर रखें". इस प्रकार १९५० से १९९८ तक उत्तमचंद शाह ने बारडोली आश्रम को विभिन्न गतिविधियों के केंद्र के रूप में विकसित किया।

१९२८ के बारडोली सत्याग्रह के बाद बारडोली स्वराज आश्रम और बारडोली क्षेत्र देश में बेहतर रूप से जाना जाने लगा। वह लड़ाई सत्य के लिए अहिंसक लड़ाई थी। यह वह सत्याग्रह था जिसने गांधीजी के सत्याग्रह के सिद्धांतों को व्यवहार में लाया।

बारडोली में राजस्व में ३० प्रतिशत की वृद्धि का प्रतिरोध 'बारडोली सत्याग्रह' है। इस अनुचित राजस्व में २३ गाँव ऐसे थे जिन्हें दोगुना राजस्व देना पड़ता था। कल्याणजीभाई और कुँवरजीभाई ने वल्लभभाई पटेल से बारडोली के किसानों के लिए सत्याग्रह संघर्ष का नेतृत्व करने का अनुरोध किया। वल्लभभाई ने वास्तविक स्थिति को जानते हुए और यह महसूस करते हुए कि किसान संघर्ष के लिए तैयार हैं, गांधीजी के आदेश पर संघर्ष का नेतृत्व संभाला। सितंबर १९२७ में किसानों ने लगान न चुकाने की प्रतिज्ञा ली और सरकार चाहे जो भी अत्याचार करे, उसे सहने के लिए तैयार थे। वल्लभभाई पटेल के सफल नेतृत्व के कारण संघर्ष सफल रहा। इस संघर्ष में बारडोली स्वराज आश्रम और उसके कार्यकर्ताओं ने उत्कृष्ट कार्य किया। बारडोली सत्याग्रह के बाद सरदारश्री के सुझाव पर एक सामाजिक सुधार कार्यक्रम चलाया गया। बाल विवाह, मरणोपरांत रात्रि भोज, भूत भोजन जैसी प्रथाओं को रोकने के लिए हर जगह नटवर युवक मंडलों की स्थापना की गई।

स्वराज आश्रम के साथ-साथ गाँवों में सरभोन, मढ़ी, वरद, वेदची, सातवव आश्रम जैसे अन्य आश्रम स्थापित किए गए। जो बारडोली सत्याग्रह के दौरान शिविर थे। इस प्रकार बारडोली आश्रम के आधार पर लोगों के बीच गांधीजी की जागरूकता और रचनात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए अन्य आश्रम भी शुरू किए गए। जो आज भी अपना काम बखूबी कर रहा है. वल्लभभाई पटेल की प्रेरणा और गतिविधियों को उत्तमचंद शाह अरम्भी और उनकी बेटी निरंजन की बहन कलार्थी ने आगे बढ़ाया है। जिसमें बालवाड़ी, पंचायत प्रशिक्षण वर्ग, खादी गतिविधि, सरदार कन्या विद्यालय, सरदार पटेल राष्ट्रीय संग्रहालय, प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र, गौ-विद्यालय, ग्रामोद्योग गतिविधियाँ आदि रचनात्मक गतिविधियाँ आज भी चल रही हैं। इससे बारडोली के ग्रामीणों को फायदा हो रहा है.

संदर्भग्रंथ सूची

१. जशवंत शेखड़ीवाला (सं.), सरदार में मेहता का लेख: सरदार पटेल पर लेखों का एक संकलन, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, आनंद, प्रथम संस्करण, १९७६

२. जी.एम. नांदुरकर (सं.), लेटर्स ऑफ सरदारश्री, खंड-२, तीसरा संस्करण, सरदार वल्लभभाई पटेल मेमोरियल भवन, अहमदाबाद, १९८१

३. नरहरि द्वा. पारिख और उत्तमचंद D. शाह, सरदार पटेल के भाषण, पुनर्मुद्रण, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, २०१३

४. भाईलालभाई द्याभाई पटेल, स्वप्न सिद्धिने पंथे, चारुथर विद्यामंडल, वल्लभ विद्यानगर, आनंद, १९५७

५. जी.एम.नादुरकर (सं.), लेटर्स ऑफ सरदारश्री-२, जन्म शताब्दी खंड-२, सरदार वल्लभभाई पटेल मेमोरियल भवन, तीसरा संस्करण, १९८१

६. डॉ. धीरूभाई ठाकर, गुजराती इनसाइक्लोपीडिया, गुजरात इनसाइक्लोपीडिया ट्रस्ट, अहमदाबाद, २००२

महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता का अध्ययन

माया सोनकर

नेट (शिक्षाशास्त्र)

महात्मा गांधी एक कुशल राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ समाज सुधारक एवं महान शिक्षा शास्त्री भी थे। उनके शिक्षा संबंधी विचार विभिन्न लेखों एवं भाषण में स्पष्ट रूप से मिलते हैं। वे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक प्रगति का आधार शिक्षा को ही मानते थे। उनके शिक्षा संबंधी सिद्धांत बुनियादी शिक्षा का एक व्यावहारिक रूप था। वे चाहते थे कि देश का प्रत्येक नागरिक शिक्षित हो परंतु वे केवल साक्षरता मात्रा को ही शिक्षा नहीं मानते थे। उनका कहना था कि "साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न शिक्षा का प्रारंभ। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरुष और स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है।" गांधी जी के अनुसार शिक्षा ही विकास की प्रक्रिया है।

गांधी जी के बुनियादी शिक्षा संबंधी विचार निम्नलिखित है-

1. 7 से 14 वर्ष तक के बालकों को निशुल्क व अनिवार्य शिक्षा दी जाएगी।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी न की अंग्रेजी।
3. शिक्षा शिल्प आधारित होगी।
4. हस्तकला, करघा आदि की शिक्षा दी जाएगी। जैसे - लकड़ी का काम, मिट्टी का काम, उद्यान कार्य, चरखा, मछली पालन आदि।

गांधी जी के शिक्षा के उद्देश्यों को तात्कालिक उद्देश्य एवं शिक्षा के सर्वोच्च उद्देश्य में बांटा जा सकता है। तात्कालिक उद्देश्य में उनका कहना था कि 7 वर्ष का कोर्स समाप्त करने के बाद 14 वर्ष की आयु में बालक को कमाने वाले व्यक्ति के रूप में विद्यालय से बाहर भेज देना चाहिए। यह गांधी जी का प्रथम उद्देश्य है। उनका दूसरा उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना है। उनका मानना था कि "जब तक मस्तिष्क और शरीर का विकास आत्मा की जागृति के साथ-साथ न होगा तब पहले प्रकार का विकास एकागी सिद्ध होगा। पूर्ण मनुष्य का निर्माण करने के लिए इन तीनों का उचित एवं सामंजस्यपूर्ण सम्मिश्रण आवश्यक है। उनके शिक्षा के उद्देश्यों में सांस्कृतिक विकास, चारित्रिक विकास एवं आध्यात्मिक विकास भी सर्वोपरि है।

गांधी जी का मानना था कि यदि शिक्षा योजना को सुचारू रूप से चलना है तो इसके लिए इससे संबंधित विचारधारा, कार्य पद्धति तथा पाठ्यक्रम के बारे में जानना अति आवश्यक है। इससे प्रयत्नों के लक्ष्य का पता चलता है तथा पाठ्यक्रम का महत्व इसलिए है क्योंकि वह शिक्षा की विषय वस्तु के बारे में जानकारी देता है। इसके माध्यम से शिक्षार्थियों का मूल्यांकन आसानी से किया जा सकता है। अत: सफल शिक्षा योजना के लिए पाठ्यक्रम भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि अन्य।

गांधी जी के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि वह बालक का सर्वागीण विकास कर सके। उन्होंने बेसिक शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया। इस शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम के बारे में उनका कथन है- "प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कम से कम 7 साल का हो। इसमें बच्चों को इतना सामान्य ज्ञान मिल जाना चाहिए जो उन्हें साधारणतया मैट्रिक तक की शिक्षा में मिल जाता है। इसमें अंग्रेजी नहीं रहेगी उसकी जगह कोई एक अच्छा सा उद्योग सिखाया जाएगा। लड़के और लड़कियों का सर्वोन्मुखी विकास हो। इसीलिए सारी शिक्षा जहां तक हो सके एक ऐसे उद्योग द्वारा दी जानी चाहिए जिसमें कुछ उपार्जन भी हो

सके।" इस शिक्षा प्रणाली का पाठ्यक्रम छात्रों को आत्मनिर्भर बनाने वाला एवं सर्वांगीण उन्नति में योगदान देने वाला है। इसके लिए उन्हें हस्त कार्य या दस्तकारी के माध्यम से शिक्षा देना आवश्यक है। महात्मा गांधी ने शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हस्तकला एवं उद्योग, मातृभाषा में शिक्षा, व्यवहारिक गणित, सामाजिक विज्ञान, सामान्य विज्ञान, संगीत, चित्रकला, आचरण शिक्षा, स्वास्थ्य विज्ञान जैसे विषयों पर विशेष बल देने की बात की।

गांधी जी की प्रमुख शिक्षण विधियों में करके सीखना एवं स्वयं के अनुभव से सीखना प्रमुख है। वे शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक बल क्रिया पर देते थे। उनका मानना था कि स्वयं करके सीखना ही उत्तम सीखना होता है। उन्होंने अन्य विधियों में कथन, व्याख्यान एवं प्रश्नोत्तर विधि को भी महत्वपूर्ण माना है। वह पुस्तकीय शिक्षा के विरोधी थे। शिक्षा में वे क्राफ्ट/ शिल्प शिक्षा को विशेष महत्व देते थे। इसके साथ ही साथ उन्होंने सीखने की प्रक्रिया में विभिन्न विषयों के समन्वय स्थापित करने पर विशेष बल दिया। उनका कहना था कि एक तो किसी महत्वपूर्ण हस्तकला के इर्द-गिर्द अन्य विषयों को रखकर उसका अध्यापन करना चाहिए और दूसरे विभिन्न विषयों में पारस्परिक संबंध स्थापित करते हुए उसका अध्यापन करना चाहिए।

गांधीजी अनुशासन को विशेष महत्व देते हैं। वे बालकों को स्वतंत्र वातावरण में शिक्षा देने के पक्ष में थे। गांधी जी का मानना था कि बालकों को इस प्रकार से शिक्षा देनी चाहिए जो ऊपर से लादी न गई हो। गांधी जी स्वयं अनुशासित रहते हुए बालकों के भी अनुशासन पर विशेष बल देते हैं। यद्यपि कि वे स्वतंत्र वातावरण के पक्ष में थे परंतु वे अनुशासन को बहुत महत्व देते हैं। गांधी जी शारीरिक दंड, दमनात्मक अनुशासन के विरोधी थे। वह प्रभावात्मक व मुक्त आत्मक अनुशासन के पक्ष में थे। उनका मानना था कि बच्चे तभी अनुशासित हो सकते हैं जब अध्यापक स्वयं अनुशासित रहे। उनके अनुसार यह अनुशासन आत्म प्रेरित होना चाहिए। आत्म अनुशासन को प्राप्त करने के लिए वे दमनात्मक विधि का विरोध करते हैं। उनका कहना था कि गलत रास्ते पर चलने वाले को सही रास्ते पर लाने के लिए अध्यापकों को स्वयं ब्रह्मचर्य एवं संयमी जीवन का पालन करना आवश्यक है। यदि बच्चों के सामने उच्च आचरण और उच्च विचारों के आदर्श रखे जाएंगे तो वह उन्हें अनुकरण के द्वारा स्वयं ग्रहण कर लेंगे। विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों ने अपने-अपने अनुसार अनुशासन के विषय में मत दिए हैं। गांधी जी ने इसमें संतुलन बनाने का प्रयत्न किया है। गांधी जी की शिक्षा योजना में कर्तव्य एवं दायित्व को विशेष स्थान दिया गया है। उनके अनुसार बालक में सामाजिकता का विकास किया जाना अति आवश्यक है जिससे वह सामाजिक जिम्मेदारी एवं सामाजिक दृष्टि से काम की कद्र करना सीखें।

गांधी जी की शिक्षा योजना में शिक्षक का स्थान सर्वोपरि है। उनका मानना है कि शिक्षक की वह व्यक्ति है जो विद्यार्थियों को ज्ञान, आदर्श एवं सत्यता का बोध कराता है। अत: उनका कहना था कि शिक्षक को आदर्शवादी, सत्यवादी, कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। उनका मानना था कि शिक्षक को शासन के रूप में नहीं बल्कि एक पथ प्रदर्शक के रूप में होना चाहिए। शिक्षक को शिक्षार्थी की स्वतंत्रता का भी ध्यान रखना चाहिए। एक शिक्षक को सहायक के रूप में सदैव कार्यरत रहना चाहिए।

गांधीजी शिक्षक के संबंध में एक आदर्शवादी दृष्टिकोण रखते हैं। वह शिक्षक को सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, सहिष्णुता और परिश्रम आदि गुणों से परिपूर्ण देखना चाहते थे। उनके अनुसार बालको पर जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए बल्कि उन्हें अपने व्यक्तित्व से प्रभावित करना चाहिए।

गांधी जी के अनुसार विद्यालय ऐसी संस्थाएं होनी चाहिए जहां शिक्षक अपनी लगन से कर्तव्य निष्ठ होकर शिक्षण प्रक्रिया को करें तथा विद्यार्थी को आत्मनिर्भर बना सके। उनका मानना था कि बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए विद्यालय का वातावरण अहम भूमिका निभाता है। अत: अध्यापकों और शिक्षार्थियों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह विद्यालय के वातावरण को इस प्रकार बनाएं कि वहां सरलता से समुचित विकास किया जा सके। गांधी जी का विचार था कि स्वस्थ शरीर स्वच्छ वातावरण में ही रह सकता है ।अत: वह विद्यालयों की साफ सफाई पर विशेष जोर देते थे। उनका मानना था कि साफ सफाई की आदतों का निर्माण बच्चों में प्राकृतिक रूप से बचपन से ही विकसित करना चाहिए। गांधी जी का मानना था कि बच्चों पर वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है।विद्यालय के बारे में वह कहते हैं कि विद्यालय प्रकृति की गोद में, किसी सुरम्य और सुंदर स्थान पर होना चाहिए। विद्यालय का वातावरण इस प्रकार होना चाहिए कि वह बालकों का सर्वांगीण विकास करने वाला हो।

गांधी जी शिक्षार्थियों को देव रूप मानते थे। अत: उनमें आदर्शवादी विचार की झलक मिलती है। उनका मानना था कि प्रत्येक विद्यार्थी में देव तत्व होता है तथा प्रत्येक विद्यार्थी आत्मिक दृष्टि से तो समान होता है परंतु प्रत्येक विद्यार्थी का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होता है और यही गुण उसे दूसरों से अलग करता है तथा इसी गुण के कारण वह समाज में अपना विशिष्ट योगदान देते हैं। गांधी

जी का कहना था कि एक विद्यार्थी को अनुशासित रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। विद्यार्थी को देश प्रेमी, सेवा करने वाला, क्रियाशील तथा जिज्ञासु प्रवृत्ति का होना चाहिए। विद्यार्थी को स्वतंत्र रूप से विचार करते हुए अपने कर्तव्यों को पूरा करने वाला होना चाहिए। उनका मानना था कि विद्यार्थियों को आत्म- अनुशासित, आज्ञाकारी एवं खोजी प्रवृत्ति वाला होना चाहिए।

गांधी जी सत्य एवं अहिंसा के पुजारी थे। वह सत्य को ईश्वर मानते थे। अत: उन्होंने सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य की शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया। वे किसी विशेष धर्म की शिक्षा देने के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था कि सभी धर्म की कुछ अच्छाइयों को संयुक्त कर एक ऐसे धर्म पर बल देना चाहिए जो जीवन के लिए जरूरी हो। अत: वे चाहते थे कि सभी धर्म के कुछ सामान्य सिद्धांतों और नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए। उनका मानना था कि सभी धर्म से बड़ा धर्म मानव सेवा है।

गांधी जी ने अपने शिक्षा दर्शन में स्त्री शिक्षा को भी विशेष महत्व दिया। उनका मानना था कि स्त्रियां ईश्वर द्वारा की गई श्रेष्ठतम रचना है। उन्होंने स्त्रियों की दयनीय स्थिति को सुधारने का बहुत प्रयास किया। उनका कहना था कि "स्त्री और पुरुष दोनों समान स्तर के हैं परंतु दोनों स्वभाव से सामान नहीं है, वे समानता रहित गुणों वाले एक युगल हैं जो एक दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे के सहायक है, वह ऐसे सहायक हैं कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता।" उनका मानना था कि स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जो उनके तथा समाज के लिए उपयोगी हो तथा वह अपने जीवन को सफल बना सके।

महात्मा गांधी मूल्यांकन प्रक्रिया को शिक्षा का अभिन्न अंग मानते हैं। इससे छात्रों द्वारा अर्जित किए गए ज्ञान का पता चलता है तथा समय-समय पर मूल्यांकन करते रहने से छात्रों द्वारा की जा रही त्रुटियों का ज्ञान शिक्षक को होता है जिसे दूर कर वह बालकों का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं। गांधी जी का शिक्षा के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है। उनका मूल मंत्र था "शोषण विहीन समाज की स्थापना करना।" उसके लिए सभी को शिक्षित होना चाहिए क्योंकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण असंभव है। अत: गांधी जी ने जो शिक्षा के उद्देश्यों एवं सिद्धांतों की व्याख्या की वे प्रारंभिक शिक्षा योजना एवं उनके शिक्षा दर्शन का मूर्त रूप है। अत: उनका शिक्षा दर्शन उनको एक शिक्षा शास्त्री के रूप में भी समाज के सामने प्रस्तुत करता है। उनका शिक्षा के प्रति जो योगदान था वह अद्वितीय था। उनका मानना था मेरे प्रिय भारत में बच्चों को 3H की शिक्षा अर्थात head, hand, heart की शिक्षा दी जाए। शिक्षा उन्हें स्वावलंबी बनाए और देश को मजबूत बनाने में अपना योगदान दे सके।

गांधी जी के शैक्षिक विचारों की वर्तमान में उपयोगिता

शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास हेतु बहुत उपयोगी है तथा सर्वांगीण विकास हेतु गांधीजी के शैक्षिक विचारों, विभिन्न पद्धतियों एवं उनकी क्रियाओं की मदद ली जा सकती है। गांधी जी क्रिया आधारित शिक्षा के पक्ष में थे अत: उन्होंने अपने विचारों एवं क्रियाकलापों को आपस में जोड़ने पर विशेष बल दिया है। जो आधुनिक शिक्षा में बहुत कामगार साबित हो सकता है। गांधी जी के आत्मनिर्भर भारत का सपना वर्तमान में सबसे ज्यादा प्रासंगिक है। गांधी जी ने जीवन कौशल से संबंधित एवं व्यवसायिक शिक्षा देने की बात की थी जो कि आज की नई शिक्षा नीति में महत्वपूर्ण है। उनकी क्रिया आधारित शिक्षा का समर्थन आज के शिक्षा शास्त्री भी करते हैं। यह पद्धति भी वर्तमान में प्रासंगिक है। गांधी जी ने बालक के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जिसे आज भी महत्वपूर्ण माना जाता है। उनके शिक्षा दर्शन में आधुनिकता की झलक दिखाई पड़ती है। गांधी जी ने धार्मिक, स्त्री शिक्षा एवं आध्यात्मिक ज्ञान पर विशेष बल दिया जो वर्तमान में भी प्रासंगिक है। वह अध्यापकों को सर्वगुण संपन्न देखना चाहते थे जिसे वर्तमान में भी शिक्षा शास्त्री आवश्यक मानते हैं। उन्होंने क्रिया आधारित पाठ्यक्रम पर विशेष बल दिया वर्तमान में भी पाठ्यक्रम के सिद्धांतों को इसी आधार पर रखा गया है। गांधी जी ने अनुशासन को लेकर जो भी बातें कहीं वह आज के समय में भी प्रासंगिक है। उन्होंने स्वतंत्र अनुशासन पर बल दिया एवं दमनात्मक अनुशासन का विरोध किया, वर्तमान में शिक्षा शास्त्री भी इससे सहमत है। गांधी जी ने शिक्षा के माध्यम से सत्य, अहिंसा के मार्ग पर चलना एवं शांति लाने की बात की तथा शिक्षा के साथ-साथ पर्यावरण पर विशेष बल दिया। आज की नई शिक्षा नीति एवं पर्यावरण पर गांधी जी के सिद्धांतों को सफल बनाने का प्रयास किया जा रहा है। जिससे भारतीय समाज को आर्थिक एवं तकनीकी रूप से गतिशील बनाया जा रहा है। गांधी जी बेसिक शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से देने के पक्ष में थे। आज की नई शिक्षा नीति में भी मातृभाषा पर विशेष बल दिया गया है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि गांधी जी का शिक्षा दर्शन वर्तमान में अति प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पांडे, राम सकल, आधुनिक भारतीय शिक्षा दर्शन, विनोद प्रकाशन
2. शुक्ला, बाजपेई, शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य, आलोक प्रकाशन
3. पांडे, राम सकल, भारत के महान शिक्षा शास्त्री विनोद प्रकाशन
4. शील अवनींद्र, उभरते हुए भारतीय समाज में शिक्षक साहित्य, रत्नालय प्रकाशन
5. पाल, एस के, महान पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा शास्त्री कैलाश प्रकाशन
6. गांधी, मोहनदास करमचंद बेसिक एजुकेशन
7. गांधी, मोहनदास करमचंद, हरिजन, अहमदाबाद नवजीवन प्रकाशन
8. गांधी, मोहनदास करमचंद, मेरे सपनों का भारत, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन

Web sites:

- https//www.drishtias.com
- https//www.rashtriyashiksha.com
- https//www.educationmirror.org

राजस्थान में पर्यटन विकास का भौगोलिक अध्ययन

डॉ० अशोक कुमार खटीक

सह आचार्य (भूगोल) बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

सारांश

राजस्थान में पर्यटन विकास का भौगोलिक अध्ययन प्रस्तुत पत्र में किया गया है। इस शोध पत्र में, राजस्थान में पर्यटन के वर्तमान स्वरूप, विशेषताओं और महत्व को समझाया गया है। राजस्थान भारत का एक राज्य है जो पर्यटन के लिए सबसे अच्छा राज्य माना जाता है। राजस्थान राज्य में हर जिले में कई दर्शनीय स्थान देखने को मिलते हैं, विशेषकर एक ऐसा किला है जो लगभग हर जिले में है। इनके अलावा, राजस्थान में कई पौराणिक मंदिर भी हैं। प्राकृतिक सुंदरता और महान इतिहास के साथ राजस्थान में पर्यटन उद्योग फल-फूल रहा है। राजस्थान घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दोनों पर्यटकों के लिए एक उपयुक्त पर्यटन स्थल है। भारत आने वाले हर तीसरे पर्यटक को राजस्थान की यात्रा अवश्य करनी चाहिए। विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए पर्यटन राज्य का दूसरा सबसे बड़ा उद्योग है। विदेशी पर्यटकों के मामले में राजस्थान भारत में 5 वें स्थान पर है। राजस्थान में, जयपुर पहले स्थान पर है और विदेशी पर्यटकों के मामले में उदयपुर पहले स्थान पर है। अधिकांश विदेशी पर्यटक मार्च के महीने के दौरान राज्य में आते हैं। जून के महीने में राज्य में विदेशी पर्यटकों की संख्या सबसे कम है। देशी पर्यटकों के मामले में राजस्थान भारत में 7 वें स्थान पर है। राजस्थान में देशी पर्यटकों के दृष्टिकोण से, पहला स्थान अजमेर का है और दूसरा स्थान पुष्कर का है। सितंबर महीने के दौरान अधिकांश देशी पर्यटक राज्य में आते हैं। राज्य में जून के महीने में सबसे कम देशी पर्यटक आते हैं। इस शोध पत्र में राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थलों के भौगोलिक अध्ययन के साथ - साथ पर्यटन विकास के सरकारी प्रयासों का भी अध्ययन किया गया है।

मूल शब्द: राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल, राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल, राजस्थान में पर्यटन, राजस्थान पर्यटन विकास निगम, पर्यटन नीति, यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल, पर्यटन त्रिभुज, पर्यटन सर्किट, मारू त्रिकोण, पर्यटन विकास कार्य।

परिचय

राजस्थान भारत का एक राज्य है जो पर्यटन के लिए सबसे अच्छा राज्य माना जाता है। राजस्थान राज्य में हर जिले में कई दर्शनीय स्थान देखने को मिलते हैं, विशेषकर एक ऐसा किला है जो लगभग हर जिले में है। इनके अलावा, राजस्थान में कई पौराणिक मंदिर भी हैं। प्राकृतिक सुंदरता और महान इतिहास के साथ राजस्थान में पर्यटन उद्योग फल - फूल रहा है। राजस्थान घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दोनों पर्यटकों के लिए एक उपयुक्त पर्यटन स्थल है। भारत आने वाले हर तीसरे विदेशी पर्यटक का राजस्थान आना निश्चित है क्योंकि यह भारत आने वाले पर्यटकों के लिए "गोल्डन ट्रायंगल" का हिस्सा है। जयपुर के महल, उदयपुर की झीलें और जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर के भव्य किले भारतीय और विदेशी पर्यटकों के लिए सबसे पसंदीदा स्थलों में से हैं। इन प्रसिद्ध स्थलों को देखने के लिए हजारों पर्यटक यहां आते हैं। जयपुर के हवामहल, जोधपुर, बीकानेर के धोरे और जैसलमेर के धोरे काफी प्रसिद्ध हैं। जोध पुर का मेहरानगढ़ किला, सवाई माधोपुर का रणथंभौर किला और चित्तौड़गढ़ किला काफी प्रसिद्ध हैं। राजस्थान में कई पुरानी हवेलियाँ भी हैं जो आज के समय में हेरिटेज होटल बन गई हैं। पर्यटन ने यहां के आतिथ्य क्षेत्र में रोजगार को भी बढ़ावा दिया है। यहाँ की मुख्य मिठाई "घेवर "है। मोहम्मद यूनुस समिति की सिफारिश पर राजस्थान 4 मार्च 1989 को पर्यटन उद्योग का दर्जा प्राप्त करने वाला भारत का पहला राज्य था।

राजस्थान की भौगौलिक स्थिति :-

अध्ययन क्षेत्र राजस्थान की स्थिति 23'3' उतरी अक्षांश से 30'12' उतरी अक्षांश (अक्षांशीय विस्तार 7'9') तथा 69'30' पूर्वी देशान्तर से 78'17' पूर्वी देशान्तर (विस्तार 8'47) के मध्य स्थित राजस्थान का अधिकांश भाग कर्क रेखा (231/2') अर्थात 23 0 30' उतरी अक्षांश रेखा के उत्तर में स्थित है। कर्क रेखा राज्य में डूंगरपुर जिले की दक्षिणी सीमा से होती हुई बाँसवाड़ा जिले के लगभग मध्य से गुजरती हैं। बाँसवाड़ा शहर कर्क रेखा से राज्य का सर्वाधिक नजदीक स्थित शहर है। जलवायु की दृष्टि से राज्य का अधिकांश भाग उपोष्ण या शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित है।

विस्तार:- उत्तर से दक्षिण तक लम्बाई 826 कि. मी. व विस्तार उत्तर में कोणा गाँव (गंगानगर) से दक्षिण में बोरकुण्ड गाँव (कुशलगढ़, बांसवाड़ा) तक है।

पूर्व से पश्चिम तक चौड़ाई 869 कि. मी. व विस्तार पूर्व में सिलाना गाँव (राजाखेड़ा, धौलपुर) से पश्चिम में कटरा (फतेहगढ़, सम, जैसलमेर) तक है।

राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल :-

राजस्थान का शाब्दिक अर्थ है - "राजाओं की भूमी"। अपनी रंगीन संस्कृति को बिखेरते हुए इस राज्य ने सिर्फ राष्ट्रीय पर्यटकों को ही नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय पर्यटकों को भी आकर्षित किया है। जयपुर की शानदार हवेलियों से लेकर, उदयपुर की झीलों तक, मंदिरों से लेकर जैसलमेर व बिकानेर के बालू टिब्बों तक - सब कुछ देखने लायक है। सिर्फ देखने लायक नहीं, जिंदगी भर याद रखने लायक है। यहाँ के लोक गीत व लोकनृत्य भी अपनी स्थानीय संस्कृति को अस्तित्व में बनाए रखने के लिए पूरा सहयोग करते है। यहाँ का पारंपरिक भोजन आपके मुँह में पानी भर देगा और आप इसे खाए बिना रह नहीं पाऐंगे। राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल आपको दीवाना बना देंगे। सुंदर व आलीशान हवेलियों के आप मुरीद हो जाऐंगे।

राजस्थान के दर्शनीय स्थल:-

राजस्थान खूबसूरती से लबालब है। बस देर है तो, यहाँ आकर इसके हर एक हिस्से को भरपूर तरह से जीने की। प्राकृतिक सौंदर्य से लेकर अद्भुत कला प्रदर्शन तक आपको सब प्रशंसनीय स्थल देखने मिलेंगे। राजस्थान के चार प्रमुख पर्यटन स्थलों के नाम हैं-जयपुर, उदयपुर, जैसलमेर व माउंट आबू।

Rajasthan Travel map

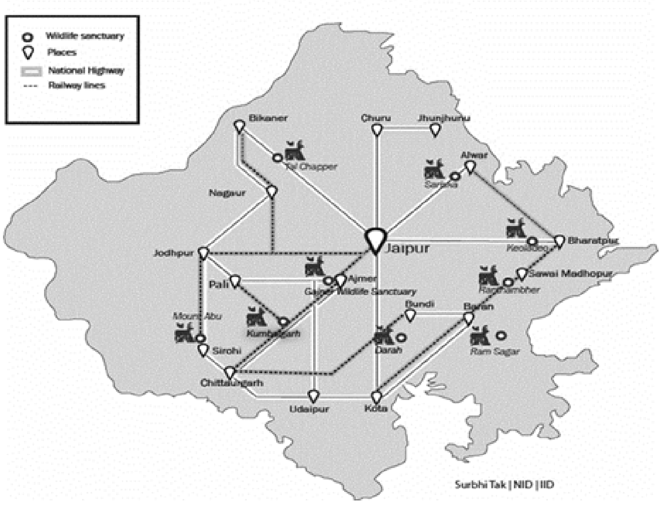

1. जयपुर :-

ये शहर प्राचीनता व आधुनिकता का अद्‌भुत मिश्रण है। पिंक सिटी (गुलाबी शहर) के नाम से ये विश्व भर में प्रसिद्ध है। राजस्थान का राजधानी क्षेत्र जो, अपने सौंदर्य से आपको मंत्रमुग्ध कर देगा। जयपुर को गुलाबी रंग से रंगा गया है और यही इसकी खूबसूरती में इजाफा करता है। यहाँ के कुछ मुख्य पर्यटन स्थलों में-हवा महल, आमेर किला, जंतर-मंतर, नाहरगढ़ किला, सिटी पैलेस, चोखी धानी, अल्बर्ट हॉल म्यूजियम व बिरला मंदिर आदि शामिल है। यह शहर सुंदर किलों, मंदिरों व संग्रहालय आदि से अपनी शोभा बढ़ाता है। बापू बाजार यहाँ का सबसे प्रख्यात बाजार है जो, राजस्थान की पारंपरिक वस्तुओं के लिए जाना जाता है-रंग-बिरंगे जयपुरी दुपट्टे, राजस्थानी गहनें आदि।

2. उदयपुर :-

राजस्थान का वो शहर जिसे "झीलों का शहर" कहा जाता है। अरावली पहाड़ों से घिरा यह शहर प्राकृतिक सौंदर्य का प्रतीक है। हैरान कर देने वाली वास्तुकला आपको इस शहर आने के लिए बाध्य करेगी। पिचोला झील में नाव पर सवारी कर जैसे आप प्रकृति के आँचल में समा जाऐंगे। घाटी में बसा व चार झीलों से घिरे इस शहर को अगर "राजस्थान का कश्मीर" कहा जाए तो, इसमें कुछ गलत नहीं है। राजस्थान आकर्षक स्थल में इस शहर का नाम बड़े गर्व से लिया जाता है। यहाँ के मुख्य स्थल हैं - सज्जनगढ़ किला, फतह सागर झील, विंटेज कार म्यूजियम, इकलिंग्जी मंदिर, दूध तलाई म्यूजिकल गार्डन, जैसामंद झील आदि।

3. जैसलमेर :-

राजस्थान की "गोल्डन सिटी", इसे ये नाम थार मरूस्थल में उड़ते सुनहरे पीले बालू टिब्बों के कारण दिया गया है। पाकिस्तान की सीमा के करीब बसा यह शहर राजस्थान का चर्चित पर्यटक स्थल है। यहाँ बहुत से ऐतिहासिक स्थल है जो सुनहरे पीले रंग के चूना-पत्थर से बने हैं। ऊँट की सवारी कर मरूस्थल से होकर गुजरना व रात के वक्त आसमान के नीचे कैंप में रात गुजारना एक विस्मरणीय अनुभव है। जैसलमेर का किला यहाँ का सबसे महत्वपूर्ण आकर्षण है। जैन मंदिर, राष्ट्रीय उद्यान, गदीसर झील, बड़ा बाग आदि अन्य स्थल हैं।

4. माउंट आबू :-

यह राजस्थान का एकमात्र पहाड़ी इलाका है। हरे-भरे व ठंडे वातावरण से ये पर्यटकों को अपनी ओर खींचता है। राजस्थान के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पर्यटन स्थल में यहाँ दिलवारा मंदिर शामिल है। यह ऐतिहासिकता व अतुलनीय वास्तुकला का प्रतीक है, जो पूरे भारत में बेहद मशहूर है। अगर आप इतिहास के शौकिया नहीं हैं तो, आप नक्की झील में बोटिंग व सनसैट पॉईट से सूर्यास्त देखकर नजारों का लुत्फ उठा सकते हैं। यह आपके और आपके साथी के लिए रूमानी गंतव्य (रोमैंटिक डैस्टिनेशन) भी बन सकता है।

5. जोधपुर :-

इस शहर को "गेटवे टू थार" के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ का सबसे मशहूर स्थल है मेहरनगढ़ किला जो इतिहास व संस्कृति का संगम है। राजस्थानी वास्तुकला का उपयोग कर इतनी महीनता इसे हर एक कोने को तराशा गया है कि, आप देखते ही हैरान हो जाऐंगे। इस किले के अंदर ही दो मंदिर व एक संग्राहलय भी है। किले के प्रवेश द्वार पर आपको राजस्थानी लोकगीत की झलक भी दिखेगी, जो आपको भा जाएगी। यह राजस्थान के सबसे बड़े किलों में से एक है। नीले आसमान के नजारे से, नीली दीवारों व नीले घरों के कारण इस शहर को "ब्लू सिटी " भी कहा जाता है।

6. अजमेर :-

अरावली पहाड़ियों से घिरा यह शहर मुईनुद्दीन चिशती की, दरगाह शरीफ के लिए मशहूर है। राजस्थान आकर अगर, आप मुगल वास्तुकला के गवाह बनना चाहते हैं तो, अजमेर बेहद शांतिपूर्ण व आध्यात्मिक शहर है। राजस्थान के हृदय में. बसा अजमेर हिंदू व मुस्लिम श्रद्धालुओं का स्थान है। यहाँ प्रत्येक वर्ष भारी भीड़ उमड़ती है। इस शहर की एक और खासियत है, और वो है यहाँ की संस्कृति व शिल्प कौशल। यह एक धार्मिक स्थान है जहाँ आकर आपके मन को शांति मिल सकती है।

7. रणथंभोर :-

भारत के श्रेष्ठ टाईगर रिजर्व में शामिल ये स्थान बहुत से पशु - पक्षी व पेड़ - पौधों के लिए भी मशहूर है। विंध्य व अरावली की तलहटी में बसा यह स्थान राष्ट्रीय उद्यान, रणथंभोर किले के लिए भी प्रचलित है। छुट्टियाँ मनाने के लिए एक बेहतरीन स्थान जो आपकी सूची में शामिल होना चाहिए। राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल में शामिल ये जगह वन्यजीवों की तस्वीरें खींचने केशौकीन यात्रियों का केंद्र है। 392 किमी के क्षेत्र में फैला राष्ट्रीय उद्यान अद्‌भुत पक्षियों व जानवरों को उनके प्राकृतिक निवास में रहते देखने का सबसे अच्छा स्थान है।

8. बीकानेर :-

बीकानेर, संस्कृति व पर्यटकों का स्वर्ग माना जाता है। ऊँटों की सवारी कर बालू टिब्बों से गुजरना आपको एक अनोखा अनुभव देगा। यहाँ के प्राचीन महल व किले आपको स्तब्ध कर देंगे। इस शहर को "ऊँटों का देश " कहा जाता है। बीकानेर अपनी अद्‌भुत वास्तुकला, संस्कृति व कला के लिए प्रसिद्ध है। बीकानेर, अंतर्राष्ट्रीय ऊँटों के त्योहार के लिए भी मशहूर है, जिसे विश्व भर से लोग देखने आते हैं।

9. पुष्कर :-

यह सबसे प्राचीन शहरों में से एक है, जो पाँच पवित्र धामों में से एक है। यही एकलौता शहर है जहाँ ब्रह्मा को समर्पित एक मंदिर है और इसी के लिए यह प्रसिद्ध है। नवंबर में यहाँ भारत का सबसे बड़ा ऊँटों के मेले का आयोजन होता है। छोटी - छोटी रंग - बिरंगी दुकानों पर सस्ते दामों पर शिल्प कौशल से बनी वस्तुऐं मिलती हैं। यहाँ की संस्कृति पर्यटकों को आकर्षित करती है। राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल में इस शहर का नाम भी बड़ी प्रसन्नता से लिया जाता है। क्योंकि इस शहर में वो खासियत है, जो यात्रियों का ध्यान अपनी तरफ केंद्रित कर सके।

10. भरतपुर:-

इस शहर को "पक्षियों के स्वर्ग" के नाम से जाना जाता है। यह संस्कृति से भरपूर शहर है, जो इसके सादगीपन में इजाफा करता है, ये केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान के लिए मशहूर है। यहाँ पशु - पक्षियों की 370 प्रजातियाँ हैं पर, यह बर्ड सेंक्चुरी के नाम से ज्यादा प्रचलित है। आपको यहाँ ढेर सरे अनोखे पक्षी देखने को मिलेंगे। यहाँ पक्षियों की 230 प्रजातियाँ हैं, 200 प्रकार के अन्य जानवर जैसे - मछली, कछुए, साँप, छिपकलियाँ, आदि व 350 प्रकार के फूलों के पौधों का स्थान है। एक ऐसी जगह जहाँ आपको हर तरह के रंग में रंगने का मौका मिलेगा। राजस्थानी संस्कृति अपनत्व का पर्याय है। इसमें हर रंग घुला हुआ है, आप एक - एक रंग में घुलकर अपने विभिन्न पहलू को निखार पाऐंगे। राजस्थान के प्रमुख पर्यटन स्थल, एक ऐसी जगह है जहाँ आकर जिंदगी को भरपूर तरह से जिया जा सकता है।

वैश्विक पर्यटन :-

विश्व पर्यटन दिवस 27 सितम्बर को मनाया जाता है। भारतीय पर्यटन दिवस 25 जनवरी को मनाया जाता है। न.छ.ठ. ने 2003 को अन्तर्राष्ट्रीय ईको ट्यूरिज्म वर्ष के रूप में घोषित किया। भारत का पर्यटन वाक्य है 'अतिथि देवों भव' एवं राजस्थान का पर्यटन वाक्य 'अतुलनीय राजस्थान' था। भारत में सर्वाधिक पर्यटक फ्रांस से आते है। फ्रांस के पश्चात इग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, इटली का स्थान है।

राजस्थान में पर्यटन :-

भारत मे आने वाला हर तीसरा पर्यटक राजस्थान मे अवश्य आता है। पर्यटन विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाला राज्य का दूसरा सबसे बड़ा उद्योग है। विदेशी पर्यटकों की दृष्टि से राजस्थान का भारत में 5 वां स्थान है। राजस्थान मे विदेशी पर्यटकों की दृष्टि से प्रथम स्थान जयपुर का तथा दूसरा स्थान उदयपुर का है। राज्य में सर्वाधिक विदेशी पर्यटक मार्च के महीने में आते है। राज्य में सबसे कम विदेशी पर्यटक जून के महीने में आते है। स्वदेशी पर्यटको की दृष्टि से राजस्थान का भारत में 7 वां स्थान है। राजस्थान मे स्वदेशी पर्यटको की दृष्टि से प्रथम स्थान अजमेर का तथा दूसरा स्थान पुष्कर का है। राज्य में सर्वाधिक स्वदेशी पर्यटक सितम्बर के महीने में आते है। राज्य में सबसे कम स्वदेशी पर्यटक जून के महीने में आते है। राजस्थान में पर्यटन निदेशालय की स्थापना 1955 मे की गई। राज्य पर्यटन निदेशालय का मुख्यालय जयपुर में स्थित है।

राजस्थान पर्यटन विकास निगम (RTDC)

राजस्थान पर्यटन विकास निगम (R.T.D.C.) की स्थापना 1 अप्रैल, 1979 में की गई।

राजस्थान पर्यटन विकास निगम का मुख्यालय जयपुर में स्थित हैं। राज्य में पर्यटन के विकास के लिए उत्तरदायी संस्था (R.T.D.C.) है। पर्यटन को उद्योग का दर्जा देने वाला राजस्थान भारत का प्रथम राज्य है। राजस्थान ने पर्यटन को उद्योग का दर्जा 1989 में मोहम्मद युनुस समिति की सिफारिश पर दिया। पर्यटन को निर्धूम (धुंआ रहित) उद्योग के उपनाम से भी जाना जाता है। पर्यटकों की आवासीय समस्या पर्यटकों की आवासीय समस्या के समाधान के लिए 27 सितम्बर 1991 पेईंग गेस्ट योजना की शुरूआत (12 जिलों) की गई। वर्तमान मे पेइंग गेस्ट योजना 33 जिलों मे चलाई जा रही है। पर्यटकों की सुरक्षा के लिए पर्यटन पुलिस की तैनाती करने वाला राजस्थान भारत का प्रथम राज्य है। राजस्थान मे पर्यटन पुलिस की तैनाती 1 अगस्त 2000 मे की गई। राज्य में पर्यटन पुलिस की तैनाती सर्वप्रथम जयपुर के जन्तर - मन्तर व आमेर मे की गई। राजस्थान ने अपनी पर्यटन नीति की घोषणा 27 सितम्बर, 2001 में की।

भारत नें अपनी पर्यटन नीति की घोषणा 23 अक्टूबर 2002 में की। पर्यटन को जन उद्योग का दर्जा 2004-05 में दिया गया। राजस्थान पर्यटन विभाग R.T.D.C. द्वारा पर्यटकों की सुविधा हेतु अप्रेल, 2002 में पर्यटन हेल्पलाइन सेवा की शुरूआत की गई। पर्यटन के क्षेत्र मे दिया जाने वाला सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'पाटा' पुरस्कार है। पाटा पुरस्कार की शुरूआत 1985 में की गई। 2010 का पाटा पुरस्कार राजस्थान को दिया गया। 2014 का पाटा पुरस्कार केरल को दिया गया यह 29 वां पुरस्कार था।

राजस्थान पर्यटन विकास निगम की स्थापना 1978 में हुई। इसका मुख्यालय जयपुर में है। इसके कार्य निम्न प्रकार हैं।

- राजस्थान में पर्यटन विकास हेतु कार्यक्रम, नीतियां और योजनाएं तैयार करना।
- पर्यटन स्थल का रखरखाव करना।
- पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु मेले व महोत्सव को आयोजित करना।
- पर्यटकों की सुविधा हेतु होटल, पर्यटन पुलिस एवम् गाईडों की व्यवस्था करना।

लोकप्रिय पर्यटन स्थल

- पुष्कर झील
- अजमेर की खघ्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह।

- जोधपुर – घंटाघर, जोधपुर, मेहरानगढ़ दुर्ग के लिए तथा धोरों के लिए काफी प्रसिद्ध है।
- बाड़मेर और बीकानेर जो अपनी हवेलियों के लिए प्रसिद्ध है।
- जैसलमेर – अपने हवेलियों तथा रेगिस्तानी धोरों तथा सुनहरे पत्थरों के लिए जाना जाता है इस कारण सैकड़ों पर्यटक आते जाते रहते है।

राजस्थान में पर्यटन विकास

- राजस्थान में अधिकांश पर्यटक (घरेलू और विदेशी दोनों) – 1. पुष्कर – अजमेर 2. माउंट आबू – सिरोही।
- राजस्थान में विदेशी पर्यटकों की सबसे अधिक संख्या है – जयपुर शहर। राजस्थान में अधिकांश
- विदेशी पर्यटक – 1. फ्रांस 2. ब्रिटेन से आते हैं। पर्यटन के संदर्भ में, राजस्थान को 9 सर्किट 1 सर्किट में विभाजित किया गया है।

पर्यटन नीति

जून 2011 में सरकार ने पर्यटन को बढ़ावा देने और युवाओं को रोजगार से जोड़ने के लिए 'पधारो म्हारे देश' योजना शुरू की। राजस्थान में 2015 में अपनी नई पर्यटन नीति की घोषणा की गई थी।

पर्यटकों के लिए शाही ट्रेन

- 1982-83 में पर्यटन के क्षेत्र में पहली शाही ट्रेन (पैलेस व्हील्स) शुरू की गई।
- 3 सितंबर 1995 से, शाही ट्रेन को फिर से शुरू किया गया और इसका नाम बदलकर 'न्यू पैलेस ऑन व्हील्स' रखा गया। शाही ट्रेन को 'द ओरिएंटल एक्सप्रेस' के रूप में भी जाना जाता है।
- यह ट्रेन चित्तौड़, जैसलमेर, जोधपुर, जयपुर होते हुए दिल्ली जाती है। 2003 में, पर्यटन के क्षेत्र में' फेयरी क्वीन' नामक एक ट्रेन शुरू की गई थी। परी रानी शेखावाटी क्षेत्र में काम करती है। 2004 में पर्यटन के क्षेत्र में 'विलेज ऑन व्हील्स' नाम की ट्रेन शुरू की गई। "हेरिटेज ऑन व्हील्स" नामक एक ट्रेन 2006 में पर्यटन क्षेत्र में शुरू की गई थी। यह ट्रेन जयपुर, सीकर, झुंझुनू, चूरू से बीकानेर तक जाती है। "रॉयल राजस्थान ऑन व्हील्स " नामक एक ट्रेन 11 सितंबर 2009 को पर्यटन क्षेत्र में शुरू की गई थी। राजस्थान की नवीनतम पर्यटक ट्रेन 'द ग्रेट अरावली सफारी ट्रेन' को चलाने का प्रस्ताव है। यह ट्रेन अजमेर, राजसमंद और उदयपुर के बीच कमली घाट मैदान में चलाई जाएगी।

पर्यटकों के लिए बस

2003 में पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए डबल डेकर बस 'जयपुर प्राइड 24' जयपुर में शुरू की गई थी। यह बस सियाराम सिटी एसोसिएशन द्वारा संचालित की जा रही है। बीकानेर के लदैरा गाँव में धौरा एक्सप्रेस नामक एक बस चलाई जा रही है। पैलेस ऑन एयर के माध्यम से पर्यटकों को ऐतिहासिक स्थलों पर जाने के लिए बनाया जाएगा। लहरों पर पैलेस के माध्यम से हुगली, चंबल, यमुना नदियों पर कोलकाता से धौलपुर तक नाव और बेड़े परिभ्रमण शुरू करने का प्रस्ताव है।

यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल

राजस्थान में तीन यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल हैं – केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान, जंतर मंतर (जयपुर), राजस्थान के पहाड़ी किले (चित्तौड़गढ़, कुंभलगढ़, रणथंभौर, अम्बर, जैसलमेर)।

कुम्भलगढ़ किले को 2013 में यूनेस्को की विश्व विरासत स्थल घोषित किया गया था, इस किले की दीवार 38 किमी लंबी है। इसे चीन की महान दीवार के बाद दुनिया की दूसरी सबसे लंबी दीवार माना जाता है।

पर्यटन त्रिकोण

- स्वर्णिम त्रिकोण – दिल्ली – आगरा – जयपुर
- मरू त्रिकोण – जैसलमेर – बीकानेर – जोधपुर

पर्यटन सर्किट

राजस्थान में पर्यटन की अपार संभावनाएं है. यहाँ के पर्यटन स्थलों को 9 सर्किटों में विभाजित किया गया हैं. कुछ मैदानी है तो कोई मरुस्थलीय किसी में ऐतिहासिक भवन एवं किले शोभा बढ़ाते है तो कही अभ्यारण्य हैं। ये 9 पर्यटन सर्किट निम्न प्रकार हैं।

- मरू सर्किट - जैसलमेर - बीकानेर - जोधपुर - बाड़मेर
- शेखावाटी सर्किट - सीकर - झुंझुनू
- ढुढाड सर्किट - जयपुर - दौसा - आमेर
- ब्रज मेवात सर्किट - अलवर - भरतपुर - सवाईमाधोपुर - टोंक
- हाड़ौती सर्किट - कोटा - बुंदी - बारा - झालावाड़
- मेरवाड़ा सर्किट - अजमेर - पुष्कर - मेड़ता - नागौर
- मेवाड़ सर्किट - राजसमंद, चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा
- वागड़ सर्किट - बांसवाड़ा - डुंगरपुर
- गौड़वाड़ सर्किट - पाली - सिरोही ख्र जालौर

राजस्थान में तीन पर्यटन सर्किट प्रस्तावित हैं।

- हाडोती सर्किट
- तीर्थ सर्किट
- राष्टीय राजधानी क्षेत्र सर्किट

मरू त्रिकोण

मरू त्रिकोण में बाडमेर को भी शामिल किया गया है। मरू त्रिकोण को जापान की J.B.I.C. संस्था के सहयोग से विकसित किया जा रहा है।

- शेखावाटी त्रिकोण:- शेखावाटी त्रिकोण में पर्यटन के क्षेत्र में चलाई जा रहीं ट्रेन फेयरी क्वीन है।
- स्वर्णिम त्रिकोण:- दिल्ली स्वर्णिम त्रिकोण जयपुर आगरा
- स्वर्णिम त्रिकोण, गुड़गांव, अलवर भरतपुर को राष्ट्रीय राजधानी के क्षेत्र में शामिल किया गया है।
- रजत त्रिकोण:- मुम्बई रजत त्रिकोण बैगलुरू हैदराबाद
- सौर ऊर्जा त्रिकोण:- जैसलमेर सोर ऊर्जा त्रिकोण है" बाडमेर जोधपुर हैं

राजस्थान में रोपवे:-

- राज्य का प्रथम रोपवे भीनमाल (जालोर) में सुण्डा माता पर्वत पर 20 दिसम्बर 2006 से संचालित है ।
- राजस्थान का दूसरा रोपवे उदयपुर में करणी माता मंदिर पर 8 जून 2008 से संचालित है।
- राज्य का तीसरा रोपवे सावित्री माता मंदिर (अजमेर) में संचालित है।
- राज्य में जयपुर के कनक वृंदावन, माउण्ट आबू सिरोही में रोपवे प्रस्तावित है।

पर्यटन विकास कार्य :-

- राज्य का पहला राजीव गांधी कन्वेशन सैंटर जोधपुर में बनाया जाएगा।
- भारत का यह तीसरा टूरिज्म कन्वेशन सेंटर होगा।
- राज्य का पहला मीरा संग्रहालय उदयपुर में स्थापित किया गया है।

- राज्य के पहले व भारत के चौथे हेर्मिंग बिज (झूलता पुल) का निर्माण चम्बल नदी पर किया गया है ।
- रणथम्भौर में सफारी पार्क बनाया जाएगा।
- देश का यह तीसरा सफारी पार्क है। जिसमें वन्य जीवों को विचरण करते हुए देखा जा सकेगा।
- पहला कर्नाटक के बनारघाटा नेशनल पार्क में तथा दूसरा भोपाल में स्थित है।
- उदयपुर को भारत का सर्वश्रेष्ट अवकाश स्थान के रुप में चुना गया है।
- 2010 को जयपुर के जंतर - मंतर को यूनेस्को की वर्ल्ड हैरीटेज की कल्चरल सूची में शामिल किया गया है।
- यह राज्य की पहली व देश की 23 वीं धरोहर है।
- भरतपुर के घना पक्षी विहार को 1985 में यूनेस्को की नेचूरल हैरिटेज सूची में शामिल किया गया था।
- राजस्थान का प्रथम हाथी गांव जयपुर में आमेर के कुण्डा ग्राम में स्थापित किया गया है।
- हाथी गाँव छ.भ. 8 पर स्थित है। हाथी गांव के पास ही कालबेलिया' स्कूल आँफ डाँस स्थापित किया जा रहा है।
- हाथी गॉव एशिया का तीसरा गांव है। इस तरह के अन्य दो गॉव श्रीलंका; थाईलैण्ड में है।
- राजस्थान में चार पर्यटन संभाग जोधपुर, अजमेर, उदयपुर, कोटा स्थिति हैं।
- सांभर झील को पर्यटन के क्षेत्र में 'रामसर साईट' के नाम से जाना जाता है।
- दूसरा रामसर साईट केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान भरतपुर है।
- राजस्थान के दर्शनीय स्थलों के महत्व का कर्नल जेम्स टॉड ने अपनी पुस्तक 'ट्रेवल इन वेस्टर्न इंडिया' में वर्णन किया है।
- विदेशी पर्यटकों की भारतीय चिकित्सा पद्धति में बढ़ रही रूची के लिए उदयपुर के केलाशपुरी व हवाला गॉव तथा जोध पुर में आयुर्वेदिक गाँव स्थापित किए गए हैं।
- आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय की स्थापना जोधपुर मे की गई है।
- राजस्थान में आध्यात्मिक पर्यटन को बढावा देने से सम्बीधत योजना अपना धाम, अपना काम, अपना नाम' ।
- जयपुर में पर्यटकों को असामाजिक तत्वों से बचाने हेतु चलाया गया अभियान आप्रेशन स्वागत्म।
- राजस्थान का प्रथम हेरीटेज होटल अजीत भवन, जोधपुर है।

निष्कर्ष :-

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि राजस्थान राज्य पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत में आने वाला प्रत्येक तीसरा पर्यटक राजस्थान मे अवश्य आता है। पर्यटन विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाला राज्य का दूसरा सबसे बड़ा उद्योग है। विदेशी पर्यटकों की दृष्टि से राजस्थान का भारत में 5 वां स्थान है। राजस्थान में पर्यटन की अपार संभावनाएं है। यहाँ के पर्यटन स्थलों को 9 सर्किटों में विभाजित किया गया हैं। कुछ मैदानी है तो कोई मरुस्थलीय किसी में ऐतिहासिक भवन एवं किले शोभा बढ़ाते है तो कही अभ्यारण्य हैं। राजस्थान सरकार इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है जिससे राजस्थान राज्य में पर्यटन उद्योग को बढ़ावा मिल रहा है।

सन्दर्भ सूची :-

1. राजस्थान का भूगोल, प्रोफेसर एच एस शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
2. राजस्थान की अर्थव्यवस्था, प्रोफेसर लक्ष्मी नारायण नाथूराम, कॉलेज बुक हॉउस, जयपुर
3. राजस्थान का भूगोल, डॉ. हरिमोहन सक्सेना, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
4. राजस्थान सुजस, त्रिमासिक पत्रिका, राजस्थान सरकार, जयपुर
5. राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास व विनियोग निगम लिमिटेड
6. सूचना एवं जन संचार प्रौद्योगिकी विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर
7. राजस्थान पर्यटन विकास निगम, जयपुर, राजस्थान

प्रेमचंद युगीन सामाजिक परिस्थितियाँ

डॉ० सुमित्रा कुमारी

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, महिला महाविद्यालय, झोझू कलां, (चरखी दादरी)

शोधलेख सार

एक सफल व जागरूक साहित्य के लिए यह आवश्यक होता है कि वह युगीन परिस्थितियों की अवहेलना न करे। समाज का एक अंग होने के कारण साहित्यकार की दृष्टि देशकाल पर भी अवश्य होनी चाहिए। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी साहित्यकार अपने युग की परिस्थितियों से समान रूप से प्रभावित हों। प्रेमचंद युगीन सामाजिक परिस्थितियों को मुख्य रूप से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। यहाँ में सामाजिक परिस्थितियों के अंतर्गत नगर की सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन प्रस्तुत कर रही हूँ।

साधारण शब्दों में व्यक्ति व परिवारों के समूह का नाम ही समाज है। यदि समाज न होता तो सम्भव है कि व्यक्ति का इतना विकास भी नहीं होता। भारत में आरम्भ से ही पुरुष-प्रधान समाज की परम्परा रही है यद्यपि पुरातन काल में स्त्रियों को भी अधिकार मिले हुए थे, परन्तु समाज की अधिकांश गतिविधियाँ पुरुषों द्वारा ही संचालित थी।

प्रेमचंद के जन्म से पूर्व सैकड़ों वर्षों के विदेशी शासन ने भारतीय समाज को निराशा के उस धरातल पर पहुँचा दिया था जहाँ से उस का पुनर्जागरण या पुनरूत्थान होना लगभग असम्भव-सा हो गया था। परन्तु कुछ समाज सुधारको जैसे राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द आदि के प्रयासों से भारतीय समाज में कुछ चेतना आने लगी थी। प्रेमचंद युगीन सामाजिक परिस्थितियों को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है।

मूल शब्द: समाज, पुरुष-प्रधान, सामाजिक परिस्थितियां, शोषण, मजदूर वर्ग, जीवन निर्वाह

भूमिका

नगर में सामाजिक परिस्थिति: प्रेमचंद युग में यद्यपि नगरों की स्थिति उतनी उन्नत व विरसित नहीं थी परन्तु औद्योगीकरण, परिवहन के साधनों आदि के कारण नगर विकास के प्रमुख केन्द्र बने हुए थ। नगरीय जीवन में कुछ वर्गों का विशेष बाहुल्य था। इन वर्गों में मजदूर, उद्योगपति, सरकारी कर्मचारी, गैर-सरकारी कर्मचारी, कारीगर व छोटे व्यापारी प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त नगरीय समाज में एक बड़ा प्रतिनिधित्व स्त्रियों का भी था जिनमें से अधिकांश घर की चार दीवारी तक सीमित थीं। कुछ उच्च शिक्षित महिलाओं या अति निम्न वर्ग की महिलाओं को ही इस चार दीवारी से बाहर निकलकर कार्य करने की छूट प्राप्त थी।

मजदूर वर्ग में अधिकांश या तो गाँवों से आते थे या फिर नगरीय मजदूरों के ही पुत्र-पौत्रादि थे। गाँवों से आने वाले मजदूरों का सबसे बड़ा कारण था कि या तो उनकी जमीनें, खेत आदि महाजन के सूद, जमींदार के लगान, कारिंदों के शोषण आदि के कारण उनके हाथों से निकल चुके थे या संयुक्त-परिवार-प्रणाली के समाप्त होने के कारण उनकी भू-जोत इतनी छोटी हो चुकी थी कि उससे खेत के लगान देने परिवार का पेट भरने आदि की सम्भावना समाप्त हो चुकी थी। अत: इन भूमिहीन किसानों का कर व नगरों की ओर होना स्वाभाविक था।

परन्तु नगरों में भी उनकी दशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था। मील मालिक, उद्योगपति आदि जो कि उनके रोजगारदाता थे, उनका भरपूर शोषण करते थे। सन् 1914 से पहले तक मजदूर वर्ग राष्ट्रीय आंदोलनों के पीछे चलना था। मजदूरों में एकता नहीं थी और वे प्रभावशाली ढंग से संगठित नहीं हुए थे। मजदूर वर्ग के संगठन का प्रथम प्रयास तब हुआ जब उन्होंने तिलक को छह

वर्ष का कारावास दिए जाने पर बम्बई में आम हड़ताल की। उससे पूर्व उनकी आर्थिक एवं आवासीय स्थिति पर दृष्टि डालने के लिए 1928 में ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रतिनिधिमंडल की रिपोर्ट के कुछ अंश प्रस्तुत है।

"सारी जाँच पड़ताल से पता चलता है कि भारत के मजदूरों की एक विशाल संख्या को लगभग एक शिलिंग प्रतिदिन से अधिक मजदूरी नहीं मिलती।"

उनकी आवासीय स्थिति पर लिखा गया है–हम जहाँ कही भी ठहरे वहाँ हमने मजदूरों के क्वाटरों को देखा और यदि हमने स्वयं यह सब नहीं देखा होता तो हमें यकीन नहीं होता कि ऐसी गंदी जगहें भी है। यहाँ लाईनों में मकानों के समूह है। जिनके मालिक इन मकानों के किरायेदारों से किराये के रूप में प्रतिमाह 4 शिलिंग 6 पैसे लेते है। माने के नाम पर नौ फीट लम्बी और नौ फीट चौड़ी एक अंधेरी कोठरी है जिनके दीवाले मिट्टी की है और टूटी-फूटी छत है। इसी कमरे में लोग रहते हैं, खाना बनाते हैं और सोते भी हैं। इनके सामने एक छोटा-सा आँगन है जिसके कोने में एक छोटा-सा पाखाना बना है। रहने के मकान में कोई खिड़की नहीं है, केवल दरवाजे के ऊपर छत को तोड़कर एक सुराख बनाया गया है जिससे रोशनी और हवा आ सकती है। इन कोठरियों के बाहर एक लम्बी संकरी नाली है जिसमें हर तरह का कूड़ा कचरा डाला जाता है।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य तथ्य यह है नगरों में मजदूरों की संख्या सन् 1921 की जनगणना के अनुसार लगभग छब्बीस लाख थी। सन् 1931 तक यह संख्या पैंतीस लाख के ऊपर पहुँच चुकी थी। इसके अतिरिक्त यह ध्यान रखना चाहिए कि यह संख्या खान मजदूर, रेल व जल परिवहन मजदूर तथा मंझोले व बड़े कारखाने में काम करने वाले मजदूरों को सम्मलित नहीं किया गया जो उन छोटे कारखाने में काम करते थे, वहाँ मजदूरों को सम्मलित नहीं किया गया है जो उन छोटे कारखानों में काम करते थे जहाँ मजदूरों की कुल संख्या दस या उससे कम होती थी। उन मजदूरों की भयावह स्थिति का तो केवल अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि उनकी स्थिति पर इतिहास स्वयं चुप है। अत: प्रचलित अर्थों में कहा जा सकता है कि संख्या की दृष्टि से मजदूर वर्ग भारत की आबादी की तुलना में अधिक नहीं था। अत: यदि भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है तो नगरों की जनसंख्या में लगभग नब्बे प्रतिशत मजदूर वर्ग ही मिलते हैं। उपर्युक्त टिप्पणियों से हमें नगरीय समाज के एक बड़े वर्ग की सामाजिक स्थिति का आभास होता है।

सन् 1910 में बम्बई में कारागार हितवर्धक सत्ता, सन् 1920 में 'इंडियन ट्रेड कांगेस' आदि की स्थापना से मजदूरों के दिलों पर थोड़ा-बहुत कार्य हुआ। धीरे-धीरे मजदूर आंदोलन अधिक राजनीतिक रंगमंच बहुत आगे तक पहुँच गया। इसमें कम्युनिस्टों का बहुत बड़ा योगदान था। सन् 19327 में मजदूरों के प्रमुख कम्युनिस्ट नेताओं को गिरफ्तार कर मेरठ में मुकद्दमा चलाया गया तथा इस मुकद्दमें का फैसला 16 जनवरी 1933 को सुनाया गया। 27 अभियुक्तों को कड़ी सजा दी गई।''

नगरों में उद्योगपतियों का आगमन एकदम नया नहीं था। रियासतों के राजा-महाराजा, बड़े-बड़े महाजन आदि के पास प्रचूर मात्रा में धन था। बदलते परिवेश को देखकर उन्होंने औद्योगीकरण में हाथ आजमानें का प्रयास किया। आरम्भ में भारतीय औद्योगीकरण को बढ़ावा मिला क्योंकि 1875 के पश्चात् अमेरिका व अन्य यूरोपीय देशों से भी माल भारत आने लगा था। इस आयात का आधिपत्य बनाए रखने के लिए अंग्रेजों ने भारत में नए-नए उद्यागों की स्थापना को प्रोत्साहन दिया। अत: इन उद्योगपतियों ने स्थिति का भरपूर लाभ उठाया। समाज में इनहें पर्याप्त सम्मान मिला हुआ था। उद्योगों के साथ-साथ इन्होंने अंग्रेजी जीवनशैली को भी अपना लिया था। वे न केवल रहन-सहन, खान-पान आदि में अंग्रेजों की नकल करने लगे बल्कि मूजदों के शोषण में भी उन्हीं की प्रणाली को अपनाया। उनके शोषण से उत्पन्न मजदूरों की स्थिति पर हम पहले ही विचार कर चुके हैं।

सरकारी कर्मचारियों में उच्च पदाधिकारी व सामान्य तथा निम्न कर्मचारी दोनों ही सम्मलित है। उच्च पदाधिकारी जैसे प्रोफेसर, तहसीलदार, पुलिस सुपरिटेंडेंट (जो अधिकतर अंग्रेज होते थे) आदि को समाज में सम्मान प्राप्त था। अत्यधिक शिक्षित होने पर भी इन्होंने अपनी योग्यता पर आदि का प्रयोग जनहित, देशहित में नहीं किया। भारतीय अधिकारियों में भ्रष्टाचार अधिक व्याप्त था तो पुलिस अधिकारी भी शोषण में पीछे न थे। सरकारी वकील, सरकारी डॉक्टर, प्रोफेसर आदि भी स्वार्थ सिद्धि के लिए तत्पर थे। सामान्य व निम्न कर्मचारियों में क्लर्क, चपरासी आदि गिने जा सकते हैं। इनकी आय सीमित व परिवार बड़ा होने के कारण ये भी भारतीय जनता का शोषण करने में पीछे न थे। इनका एक मात्र अपवाद उन सभी भारतीय सैनिकों को माना जा सकता है जो वस्तुत: कर्त्तव्यनिष्ठ थे। फिर भी भले ही अंग्रेजी शासन में उन्हें विवश होकर भारतीय जनता की भावना का दमन करना पड़ा। गैर सरकारी कर्मचारी जैसे घरेलू नौकर, चौकीदार आदि भी समाज में पीड़ित थे और मजदूरों की भाँति उनका भी शोषण होता था। कारीगर वर्ग

के व्यक्तियों की न तो इतनी अधिक दुर्दशा थी और न ही वे अधिक समृद्ध थे। समाज में इन्हें मजदूरों की अपेक्षा अधिक, सम्मान प्राप्त था।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद काल में नगरीय परिस्थितियाँ संतोषजनक न थीं। सामाजिक दृष्टि से नगरीय समाज , उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग में बँटा हुआ था। उच्च वर्ग में उद्योग धन्धे चलाने वाले यहाँ जन, सरकारी बड़े पदाधिकारियों आदि आते है। ये सम्पन्न और खुशहाल जीवन जी रहे थे। मध्य वर्ग में आने वाले व्यक्ति नगरीय अधिकारों से वंचित थे और शोषण का शिकार थे। सामाजिक दृष्टि से येन-केन-प्रकारेण जीवन निर्वाह कर रहे थे। समाज का निम्न वर्ग जिसमें मजदूर, किसान आदि आते हैं दयनीय जीवन जी रहे थे। शोषण का शिकार थे और इनकी परवाह किसी को न थी।

संदर्भ सूची

1. रजनी पास दत्त: 'आज का भारत' राजीव बेरी मैकमिलन इंडिया लि० 2/10, अंसारी रोड़, नई दिल्ली-02
2. वही
3. सत्या एम० राय: 'हिन्दी में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद' हिन्दी माध्यम कायान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं डॉ० भीमराव अम्बेडकर

डॉ० प्रभात कुमार

(एसोसिएट प्रोफेसर) विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान, किसान पी0जी0 कॉलिज, सिम्भावली (हापुड़) उ0प्र0

डॉ० अरविन्द कुमार

(सहायक प्रोफेसर) राजनीति विज्ञान, आई.एम.आई.आर. सी.भैना, सदरपुर (हापुड़) उ0प्र0

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर देश के महान सपूत एवं संविधान निर्माता थे, किन्तु बड़े ही दुख के साथ यह कहना पड़ता है कि बाबा साहब को मान-सम्मान नहीं दी गई जो उन्हें मिलना चाहिए था, दूसरे राजनीतिक दल भी केवल उनके नाम का राजनीतिक इस्तेमाल करती रही है। 1914 ई0 में प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी की सरकार बनने के बाद बाबा साहब को मान सम्मान दिलाने के साथ-साथ उनके सपनों को भी साकार करने में लगी हुई है।

भारत के राष्ट्र जीवन में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का विशिष्ट स्थान है। इसकी स्थापना प्रसिद्ध शिक्षाविद, सामजसेवी, महान देश भक्त, त्याग तपस्या के प्रतिमूर्ति डॉ0 केशल बलिराम हेडगेवार नें 1925 ई. में विजयदशमी के दिन की थी। इसका उद्देश्य हिंदुओं को संगठित कर उनमें एकता स्थापित करना, देश को ब्रिटिश सरकार की गुलामी से मुक्त करना, नवयुवकों को राष्ट्र के प्रति, देश के प्रति त्याग करने के साथ-साथ उनमें प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा प्रदान कर देश भक्ति की भावना भरना है। संघ में शमिल होने वाले नवयुवकों को बिना किसी भेद भाव के एक समान व्यवहार करते हुए उन्हें शारीरिक, सैनिक, आध्यात्मिक राष्ट्रीय शिक्षा देने के साथ-साथ संस्कार मय बनाना है।

डॉक्टर हेडगेवार ने संघ के लिए तीन प्रकार के संस्कार निश्चित किए थे-

पहला संस्कार- हम भारत माता के पुत्र हिंदू हैं और सब एक हैं।

दूसरा संस्कार- एक पंक्ति में खड़े रहो, अर्थात् किसी भी जाति, धर्म, भाषा, वेशभूषा, अमीर, गरीब और खान-पान के भेद भाव के बिना सभी व्यक्ति समान रूप से एक पंक्ति में खड़े हों। स्पष्ट है डॉ0 हेडगेवार के इस भावना ने पहली बार भारतीयों को एक जुट होने का मौका दिया, पंक्ति के लोगों

को यह सिखाया जाता है कि हम भारत माता की संतान हैं, भारत माता की रक्षा करना तथा भारत के लोगों की सहायता करना, व्यक्ति एक पंक्ति में बैठकर ही सीखता है। एक पंक्ति में बैठकर व्यक्ति अनुशासन धैर्य के साथ काम करना सीखता हैं। संघ में शामिल नवयुवक एक पंक्ति में खडेध होकर प्रार्थना करते हैं बैठकर भोजन करते है, कहने का अर्थ है कि अति महत्वपूर्ण संस्कार संघ पद्धति देती है।

तीसरा संस्कार- देश के लिए एक घण्टा- डॉ0 हेडगेवार ने संघ में शामिल सदस्यों से कहा कि देश के लिए केवल एक घण्टा समय अर्थात् संघ को दें। कि '' मैं केवल अपने लिये नहीं बल्कि समाज के लिए भी हूँ, इससे मानव जीवन को एक अलग ही संस्कार मिला

संघ ने स्वयं सेवकों को समाजिक बनाया है। समाज सेवा का व्रत लेने वाले लोगों का एकत्रीकरण संघ है। यदि हम संघ को संस्कार देने वाला विद्यालय कहे तो इससे कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर देश के महान सपूत एवं संविधान निर्माता थे, किन्तु बड़े ही दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि कांग्रेस पार्टी 60 वर्ष तक सत्ता में रहने के बाद भी बाबा साहब को वे मान-सम्मान नहीं दी जिनके वो हकदार थें, उन्होनें गरीबों, दलितों, शोषितों के उत्थान के लिए अपना

सारा जीवन समर्पित कर दिया। वास्तविकता यह है कि डॉ0 अम्बेडकर के नाम पर कांग्रेस पार्टी, वाभपंथी पार्टी और अन्य कई राजनितिक दल राजनीति करती रही है। किन्तु उनके विचारों और दृष्टि कोण को कमी सम्मान नहीं दिया। कांग्रेस चाहती तो बाबा साहब को भारत रत्न दे सकती थी, किन्तु नहीं दी, उनसे पहले कांग्रेस जवाहर लाल नेहरू और इंदिरा गांधी को भारत रत्न दे दी थी। 1990 ई0 में जब भाजपा समर्पित जनता दल की सरकार बनी तब उनके महापरिनिर्वाण के 34 वर्ष बाद उन्हें 'भारत रत्न' सम्मान दिया गया।

2014 ई0 में केन्द्र के प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में सरकार बनी। प्रधानमंत्री ने बाबा सहाब को मान सम्मान देने के साथ साथ उनके सपनों को भी एक-एक कर साकार कर रहे हैं। संकीर्ण मानसिकता वालों नें डॉ0 भीमराव अम्बेडकर को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ;तैद्ध के विचारों का विरोधी बताया है किन्तु यह वास्तविकता से कोसो दूर है। कई ऐसे महत्वपूर्ण विषय हैं जिन पर बाबा साहब और राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ के विचार एक समान हैं। ये विचार निम्नलिखित हैं-

1. देश को आजाद करना-

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का और डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का विचार था कि सर्वप्रथम देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराया जाये, ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंका जाये। 1925 में स्थापित डॉ0 केशव बलिराम हेडगेवार द्वारा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के बारे में उन्होने कहा था कि संघ का अंतिम लक्ष्य स्वराज्य प्राप्त करना है। डॉ0 अम्बेडकर भी चाहते थे देश को ब्रिटिश सरकार से आजादी मिले, साथ ही साथ वे दलितों पिछघ्डों के साथ हो रहे शोषण भेदभाव, छुआछूत, सामाजिक कुरीतियों को भी दूर करना चाहते थे। उन्होनें इसके लिए 1928 ई0 में महाड सत्याग्रह, 1930 में नाशिक सत्याग्रह, 1935 ई0 में येवला की गर्जना जैसे आन्दोलन चलाए थे।

2. राष्ट्रवाद की अवधारणा-

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और डॉ0 अम्बेडकर के बीच राष्ट्रवाद की अवधारणा के बीच भी वैचारिक साम्य देखने को मिलता है। दोनों अखंड राष्ट्रवाद के पक्षधर रहें हैं। डॉ0 अम्बेडकर सम्पूर्ण वांगमय के खण्ड 5 में लिखा है "डॉ0 अम्बेडकर का दृढ़ मत था कि मैं हिंदुस्तान से प्रेम करता हूँ। मैं जीऊंगा तो हिंदुस्तान के लिए मरूँगा तो हिंदुस्तान के लिए। शरीर का प्रत्येक कण मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण हिंदुस्तान के काम आए, इस लिए मेरा जन्म हुआ है।"

डॉ0 हेडगेवार कहते थे जिन्हें मातृ भूमि को वन्दन करने में प्रसन्नता और गर्व का अनुभव होता है उन लोगों का राष्ट्र बनता हैं। जिन्हें अपना यह देश अपनी मातृ भूमि लगती जिन्हें वन्दे मातरम् कहने में गर्व अनुभव होता हैं उनका राष्ट्र बनता है।

3. समान नागरिक संहिता पर एक मत

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और बाबा साहब के विचार समान नागरिक संहिता के संबंध में भी एक जैसा है। दोनों एक समान नागरिक संहिता बनाये जाने के समर्थक हैं समान नागरिक संहिता पर कांग्रेस विरोध करती रही है। डॉ0 भीम राव अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि "मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि समान नागरिक संहिता का इतना विरोध क्यों हो रहा है? यह सवाल क्यों पूछा जा रहा है कि भारत जैसे देश के लिए समान नागरिक संहिता लागू करना क्या सम्भव हैं? उनका कहना था कि समान नागरिक संहिता एक ऐसा कानून होगा जो प्रत्योक धर्म के लोगों के लिए समान होगा, और उनका धर्म से काई लेना देना नही होगा। इस कानून में परिवार, विवाह, सम्पत्ति और मूलभूत नागरिक अधिकार के मामलों में बराबरी होगी। राज्य का यह कर्त्तव्य होगा कि वह लोगों के व्यक्तिगत अधिकार को सुनिश्चित करेगा और समुदाय के नाम पर उनका हनन नहीं होगा। भारतीय जनता पार्टी भी एक समान नागरिक संहिता बनाने की बात कहती है।

4. अनुच्छेद 370 का प्रबल विरोध

जब भारतीय संविधान में 370 अनुच्छेद बनाया जा रहा था तब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने इसके घोर विरोध किया था। अनुच्छेद 370 जिसमें 35। भी शामिल है कश्मीर को कई विशेष अधिकार प्रदान करता है इसके खिलाफ

डॉ0 अम्बेडकर ने कई बार अपने विचार रखे थे। उन्होंने अनुच्छेद 370 के बारे में शेख अब्दुल्ला को लिखे पत्र मे कहा था 'आप चाहते हैं कि भारत, जम्मू कश्मीर की सीमा की सुरक्षा करे, यहां सड़कों का निर्माण करे, अनाज की सप्लाई करें, साथ ही कश्मीर के लोगों को, भारत के लोगों के समान अधिकार मिले। आप अपनी मांगों के बाद चाहते हैं कि भारत सरकार को कश्मीर में सीमित अधिकार ही मिलना चाहिए। ऐसे प्रस्ताव भारत के साथ विश्वास घात होगा, जिसे भारत का कानून मंत्री, होने के नाते कभी स्वीकर नहीं करूँगा।"

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं भारतीय जनता पार्टी ने प्रारम्भ से ही अनुच्छेद 370 एवं 35 (A) को हटाने की मांग करते रही है। श्यामा प्रसाद मुखर्जी पंडित दीनदयाल उपध्याय आदि ने तो अनुच्छेद 370 को समाप्त करने के लिए आंदोलन भी किए, किन्तु उस समय की तत्कालीन सरकार ने दोनों की हत्या करवा दी थी।

5. हिंदू एकता के प्रबल समर्थक

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं डॉ अम्बेडकर हिंदू एकता के प्रबल समर्थक रहे है। हिंदुओं को संगठित करने, उनमें देशभक्ति एवं त्याग की भावना भरने का काम संघ बेखूबी करता है। डॉ0 अम्बेडकर की जीवनी लिखनें वाले सी.बी. खैर मोड़े ने बाबा साहब के शब्दों को उद्धत करतें हुए लिखा है कि मुझमें और सावरकर में इस प्रश्न पर न केवल सहमति है बल्कि सहयोग भी है कि हिंदू समाज को एकजुट और संगठित किया जाए और हिंदुओं को अन्य मजहबों के आक्रमणों आत्मरक्षा के लिए तैयार किया जाये।

डॉ0 अम्बेडकर हिंदू एकता के समर्थक थे किन्तु वे दूसरी ओर हिंदू समाज में व्याप्त बुराईयां पर कठोर प्रहार करते थे जैसे जाति के आधार पर भेद भाव उनको बर्दास्त नहीं था।

6. समाज में व्याप्त बुराईयाँ दूर हो विशेष कर जातिगत भेद भाव

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं डॉ0 अम्बेडकर दोनों ही समाज में जाति के आधार पर हो रहे भेदभाव, शोषण के खिलाफ थे। 1925 ई0 में डॉ0 हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना किया था, तब संघ का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति के साथ-साथ समाज में व्याप्त जाति भेदभाव, दलितों पिछड़ों के साथ हो रहे शोषण अत्याचार को भी दूर करना चाहते थे, इसके लिए उन्होंने संघ के लिए तीन संस्कार निश्चित किए जो आज भी उतने ही सार्थक हैं जितने उस समय थे। पहला संस्कार है हम भारत माता के पुत्र हिन्दू हैं और सब एक हैं, अर्थात् समान हैं। दूसरा संस्कार एक पंक्ति में खड़े रहो, अर्थात् किसी भी जाति, धर्म, मजहब का हो संघ में शामिल होने वाला सब एक समान हैं, इस प्रकार यहा न तो कोई जाति पूछेगा और न कोई इस पर चर्चा करेगा। पिछड़ी जाति का हो या अग्रणी जाति का सबके साथ एक जैसा व्यवहार, सभी एक साथ बैठकर खाना खायेंगे एक साथ मिल जुलकर काम करेंगे। डॉ0 अम्बेडकर 1939 ई0 में पूना में संघ शिक्षा वर्ग देखने गये थे। वे यह देखकर आश्चर्य किए कि स्वयं सेवक शत् प्रतिशत बिना भेदभाव के बराबारी का, भाई सा व्यवहार कर रहे थे, उनमें एक दूसरे की जाति जानने की कोई चिंता नहीं थी। डॉ0 अम्बेडकर ने डॉ0 हेडगेवार से पूछा कि क्या शिविर में कोई अस्पृश्य भी हैं? उत्तर मिला शिविर में न तो स्पृश्य है और न ही अस्पृश्य। यहां तो सब भाई-भाई हैं सब केवल हिंदू हैं।

7. आर्यो का भारतीय मूल होने पर एक मत-

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और डॉ0 अम्बेडकर आर्यो का भारतीय मूल होने पर एक विचार रखते थे। डॉ0 अम्बेडकर का कहना था कि आर्य भारतीय थे और वे किसी जाति का नाम नहीं था, वे शुद्र नही थें बल्कि क्षत्रिय थे और वे लोग भी आर्यो के समाज के ही अंग थे।" डॉ0 अम्बेडकर ने इस धारणा का खण्डन किया कि आर्य गोरी नस्ल के ही थे बल्कि वे श्याम वर्ण के भी थे।

8. संस्कृत का राजभाषा बनाने का समर्थन-

डॉ0 अम्बेडकर 10 सितंबर 1949 ई0 को डॉ0 बी वी केस्कर और नजीरूद्दीन अहमद के साथ मिलकर संस्कृत को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव रखा था।, संस्कृत को लेकर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का विचार भी कुछ ऐसा ही है।

9. भारतीय संस्कृति में विश्वास-

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और डॉ0 अम्बेडकर के मध्य धर्म और संस्कृति के मामले में भी वैचारिक साम्यता है। संघ भी धर्म को मानता है और बाबा साहब भी धर्म को मानते थे। डॉ0 अम्बेडकर ईस्लाम और ईसाईयत को विदेशी धर्म मानते थे, संघ का भी विचार भी ऐसा ही था।

डॉ0 अम्बेडकर उस धर्म को मानते थे जो भारतीय संस्कृति के अनुकूल था, यही कारण था कि उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनाया था, क्योंकि बौद्ध धर्म भारत की संस्कृति से निकला एक धर्म था।

10 पंथ निरपेक्ष राष्ट्र पर विचार-

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और डॉ0 अम्बेडकर का स्पष्ट विचार था कि भारत पंथ निरपेक्ष राष्ट्र नहीं होगा, किन्तु कांग्रेस ने संविधान के मूल प्रस्तावना में संशोधन कर पंथनिरपेक्ष, समाजवाद और अखण्डता शब्द जोड़ दिया।

11. वामपथ की विचार धारा का विरोध-

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ डॉ0 अम्बेडकर दोनों वामपंथी विचार धारा का विरोध करते हैं। 25 नवम्बर 1949 ई0 को संविधान सभा में बोलते हुए डा0 अम्बेडकर ने कहा था ''वामपंथी इसलिए इस संविधान को नहीं मानेंगे क्योंकि यह संसदीय लोकतंत्र के अनुरूप है और वामपंथी संसदीय लोकतंत्र को मानते नहीं है।

उपरोक्त तथ्तों से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और बाबा भीमराव अम्बेडकर के विचारों में कई मुद्दों पर एक समान विचार थे। बाबा साहब न केवल दलितों पिछड़ों शोषितों के महान नेता थे बल्कि वे पूरे भारत वर्ष के थे। उनके विचारों को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली सरकार साकार करने में लगी हुई है।

''बाबा साहेब ने संविधान के माध्यम से दलित, पीड़ित शोषित, वंचित, हाशिये पर खड़े करोड़ो लोगो को सशक्त बनाया है, करूँणा का इससे बड़ा उदाहरण नहीं हो सकता। लोगों की पीड़ा के लिए यह करूणा भगवान बुद्ध के सबसे महान गुणों में से एक थी।''-प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी

जिस न्यू इंडिया की बात मैं करता हूँ वो बाबा साहेब के सपनों का भारत है। सभी को सम्मान अवसर, सभी को समान अधिकार जाति के बंधन से मुक्त भारत। टेक्नोलॉजी की शक्ति के बल पर बढ़ता हुआ भारत, सबको साथ लेकर, सबका विकास करता हुआ भारत।'' -प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी

संदर्भ गंथ सूची

- सिन्हा: राकेश: डॉ0 केशव बलिराम हेडगेवार, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार 2003
- शेषादि हो वो सैकला सम्पादा: कृतिरूप संघ दर्शन, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली 2003
- जाधव, नरेन्द्र (संपादक): डॉ0 अम्बेडकर सामाजिक विचार एवं दर्शन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2015
- गौतम: एस0एस0 (संपादक): डॉ0 अम्बेडकर के भाषण, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2009
- जाधव: नरेन्द्र (संपादक) डॉ0 अम्बेडकर रजनीति, धर्म, संविधान प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2015
- स्वरूप, देवेन्द्र: संघ राजनीति और मीडिया, प्रभात प्रकाश, दिल्ली 2017
- पुजारी, विजयकुमार: डॉ0 अम्बेडकर जीवन दर्शन, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली 2005
- हिंदू महात्मा: संविधान, उद्देश्य और नियम, नई दिल्ली 1937
- देश पांडे, एस0एच: भाई डेज इन द आर0एस0एस0 बंबई 1975
- स्वरूप, देवेन्द्र: जाति-विहीन समाज का सपना प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2017
- प्रकाशवीर शास्त्री द्वारा संसद में धारा 370 हटाने के लिए वर्ष 1964 में विधेयक पेश करने के अवसर पर दिया
- गया भाषण
- पेपस मुजे: डायरी 10 मई 1927, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
- सिंह, श्याम संविधान सभा में डॉ0 अम्बेडकर, सम्यक प्रकाशन 2012
- पालकर, ना0द (सम्पादक) डॉ0 हेडगेवार: पत्ररूप व्यक्ति दर्शन, अर्चना प्रकाशन, इंदौर 1989
- सिंह, रामगोपाल: डॉ अम्बेडकर का विचार दर्शन, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रथ अकादमी, भोपाल 2002
- मून, वंसत, (अनुवाद लक्ष्मण हर्दवाणी): सभता के समर्थक डॉ0 अम्बेडकर, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2006
- प्रसाद चन्द्रभान: भारतीय समाज और दलित राजनीति, गौतम बुक सैन्टर, दिल्ली 2006

उत्तर भारत में मराठी साम्राज्य का विस्तार और प्रभुत्व (१७६१-७२)

मोतीभाई हरिभाई वलागांठ

पीऐच.डी. स्कॉलर, टेक्नो ग्लोबल यूनिवर्सिटी बिसनपुर, सिलोंग, मेघालय, मु.पो.वेदंचा ता.पालनपुर, जि. बनासकांठा

डॉ. दीधे ने अपनी पुस्तक पेश्वा बाजीराव, प्रथम और मराठा विस्तार' में बताया है कि, पानीपत की लड़ाई से पहले, उत्तर भारत में मराठा साम्राज्य, जिसमें दिल्ली, आगरा, दोआब, बुन्देलखण्ड और मालवा शामिल थे; इसमें पानीपत की लड़ाई के बाद छोटे शासकों के विद्रोह और स्थानीय सेनाओं के विद्रोह के साथ-साथ पहाड़ी जनजातियों के आक्रमण के कारण पूरे उत्तर भारत में उथल-पुथल की स्थिति थी! और इस तरह इस दशक (१७६१-७०) में मराठी साम्राज्य की सीमाएँ सिकुड़ गईं और सीमित हो गई। मराठों ने अपने साम्राज्य की सीमाएँ चम्बल नदी के दक्षिण तक सीमित कर दीं। इसलिए, चूंकि पेश्वा दक्षिण भारत में निजाम अली और हैदर अली जैसे दुश्मनों और भोंसले, राघोबा, गायकवाड़ जैसे कई आंतरिक दुश्मनों को हराने में लगे हुए थे, इसलिए वह उत्तर भारत की ओर नहीं देख सकते थे। परिणामस्वरूप, मल्हारराव होल्कर और महादजी सिंधिया (जिन्हें अभी तक पैतृक राज्य नहीं दिया गया था, और राघोबा ने उन्हें विद्रोही घोषित कर दिया था और उनके काम में हस्तक्षेप किया था) को उत्तर भारत में मराठी हितों के संरक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। पेश्वा के आदेश पर हैदर अली के विरुद्ध युद्ध में होलकर को दक्षिण की ओर जाना पड़ा और इस राजनीतिक प्रभुत्व का लाभ उठाकर महादजी सिंधिया कई वर्षों तक कोई ठोस कार्यवाही नहीं कर सके और परिणामस्वरूप, केवल तीन वर्ष में ही पानीपत की लड़ाई के बाद निर्वात में, अंग्रेजों ने तीन उत्तरी शक्तियों- मुगल सम्राट, अयोध्या के वजीर को हराया और बंगाल प्रांत के नवाब को पूरी तरह से दबा दिया और अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इतना ही नहीं बल्कि ई.एस. १७६४ में (१७५७ में प्लासी की लड़ाई के ठीक सात साल बाद) बक्सर की लड़ाई में अपदस्थ मीर कासिम, शुजाउद्दौला और मुगल बादशाह ने मिलकर एक गठबंधन बनाया, अंग्रेजों ने संयुक्त सेना को पूरी तरह से हरा दिया और उन्हें वाराणसी तक पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया! इस प्रकार, उत्तर भारतीय राजनीति में अंग्रेजों को हराकर, अपने प्रांतों को पुनः प्राप्त करने की आखिरी उम्मीद को खत्म कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश प्रभुत्व और शक्ति में वृद्धि हुई, यदि नागपुर के जानोजी भोंसले (मीर कासिम द्वारा बार-बार मदद के लिए अनुरोध किया गया) ने संघ की मदद की थी, तो भारत का रहस्य इतिहास शायद अलग होता.! उत्तर में बढ़ती ब्रिटिश शक्ति को स्थायी रूप से दबाया जा सकता था! लेकिन इतिहास 'अगर' और 'तब' पर निर्भर नहीं करता. उस समय जानोजी को पूना को लूटने और पेश्वा को हराने में विशेष रुचि थी!! अन्यथा, भारतीय शासकों को विदेशी अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता करनी होगी!

कोडाना मैदान में मल्हारराव होल्कर की हार, मई १७६५: बक्शर की लड़ाई के बाद, अंग्रेजों ने मीर कासिम को पकड़ने और दंडित करने के लिए बहुत प्रयास किए, लेकिन मीर कासिम को अयोध्या के नवाब शुजाउद दौला द्वारा संरक्षित किया गया था। अंग्रेजों ने शुजा के क्षेत्रों पर आक्रमण किया और चुनार (सैन्य केंद्र) और इलाहाबाद पर कब्जा कर लिया और उसकी राजधानी लखनऊ पर आक्रमण करके जवाबी कार्रवाई की। शुजा ने मल्हारराव होल्कर से मदद मांगी (जो आगरा में जाट राजा जवाहर सिंह और नजीबुद्दौला के बीच सुलह करा रहे थे। शुजा और मल्हारराव होल्कर की संयुक्त सेना ने ३ मई, १७६५ को कोड़ा मैदान में ब्रिटिश जनरल फ्लेचर से लड़ाई की। होल्कर शुरू में नाराज थे) फ्लेचर ने अपनी छापेमारी रणनीति के साथ, लेकिन अंत में, होलकर हार गए और उन्हें कालपी से पीछे हटना पड़ा। बेशक, महादजी सिंधिया, जो राजस्थान में कोटा के अंदर थे, समय पर नहीं पहुंच सके, इसलिए मराठों को आत्मसमर्पण करना पड़ा। मल्हारराव होलकर की मृत्यु हो गई इस युद्ध का वर्ष. १७६६,

अहल्याबाई का उदय: ई. एस। १७६६ में मल्हार राव होलकर की मृत्यु के बाद खंडेराव प्रथम इंदौर में सत्ता में आये। खंडेराव की पत्नी अल्लाहबाई बहुत व्यावहारिक और उत्साही राजनीतिज्ञ थीं। जैसे ही खंडेराव की युद्ध में मृत्यु हो गई, उन्होंने अपने नाबालिग बेटे मालेराव की ओर से राज्य संभाला, लेकिन दुर्भाग्य से २७ मार्च १७६७ को राजकुमार मालेराव की भी मृत्यु हो गई। उन्होंने कई आपदाओं के बीच आत्मविश्वास और धैर्य विकसित करते हुए केवल ३० वर्षों तक शासन किया; लेकिन पेश्वा ने भी समर्थन किया. बेशक, राघोबा ने यह मानते हुए कि होल्कर परिवार का अब कोई उत्तराधिकारी नहीं है, राय की संपत्ति हासिल करने के लिए बहुत प्रयास किए। अहल्याबाई इतनी सम्मानित थीं कि जब राघोबा ने गंगाधर चंद्रचूड़ और चिंटो विट्ठल की प्रेरणा (या बुरी मदद?) से अपने सैनिकों को इंदौर पर हमला करने का आदेश दिया, तो एक भी सैनिक ने उनके आदेश का पालन नहीं किया! अहल्याबाई ने राघोबा को कड़ी चेतावनी भी दी। अंतत: वह लज्जित हुआ और अहल्याबाई के पास जाकर क्षमा याचना की। इस प्रकार, राधोबा की बुरी गतिविधियों के कारण मराठों को बहुत नुकसान हुआ, पेश्वा की सलाह पर अहल्याबाई ने तुकोजी होल्कर को अपने दत्तक पुत्र के रूप में चुना। तुकोजी और अहल्याबाई ने मिलकर उत्तर भारत में मराठी शक्ति का बहुत विकास किया।

गोहद की लड़ाई में राघोबा की हार, १७६६: उत्तर में मराठी शक्ति या अपना वर्चस्व स्थापित करने का इरादा रखते हुए, राघोबा ने पहली बार अप्रैल १७६६ में नागपुर के जानोजी भोंसले की मदद से एक सेना के साथ प्रस्थान किया। भरतपुर के राजा जवाहर सिंह को अपने अधीन करना। उस समय जवाहर सिंह गोहद के किले (चम्बल नदी के पास) में थे। राघोबा ने भगवान को चारों ओर से घेर लिया, लेकिन चंबल नदी घाटी में रहने वाले जाटों ने राजा की बहुत मदद की, इसी बीच होलकर और सिंधिया ने भी राधोबा का साथ छोड़ दिया, जब लंबे समय तक मजदूरी न मिलने के कारण विद्रोह जैसी स्थिति पैदा हो गई थी सेना में। अत: राधिबा का गौहद पर आक्रमण विफल हो गया। बेशक, महादजी सिंधिया ने बीच में रहकर संधि की और राधोबा की प्रतिष्ठा बचाई! केवल १५ लाख रूपये लेकर राघोबा हार का कलंक लेकर नासिक लौट आये। यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि उत्तर में राघोबा की विफलता से मराठी गौरव को भारी नुकसान हुआ, और जवाहरसाडे सी। एस। १७६७ में उसने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया और कालपी तक का सम्पूर्ण क्षेत्र जीत लिया। पूना का पेठा भी इस युवा जेट राजा की बढ़ती शक्ति से चिंतित हो गया और उसे इसे समाप्त करने के विचार को लागू करने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसी अवधि में, दिसंबर, १७६७ में, जब जयपुर के राजा ने जवाहरलाल नेहरू पर आक्रमण किया, तो पेश्वा को मौका मिल गया। पेश्वा ने जयपुर के राजा की सहायता की। दोनों ने मिलकर जवाहर सिंह को नारनौल के निकट मोथा नामक स्थान पर हराया। २१ दिसम्बर १७९७ को एक अकेले सैनिक ने विजयी जयपुर के राजवी माही की हत्या कर दी। उनके उत्तराधिकारी प्रताप सिंह ने मराठों का पक्ष लिया।

आगरा और मथुरा की मराठा विजय, १७७०: जाट राजा प्रताप सिंह और भोपाल के नवाब ने मराठों का पक्ष लिया और बहुमूल्य सहायता प्रदान की। पेश्वा माधवराव ने उत्तर भारत में मराठी शक्ति को पुन: स्थापित करने के लिए अपने दो विश्वस्त सेनापतियों रामचन्द्र गणेशन और विसा कृष्णाजी को भेजा। जाट सरदारों नवल सिंह और रणजीत सिंह के बीच संघर्ष में मराठों ने रणजीत सिंह की मदद की, नवल सिंह को हराया और गोवर्धन की लड़ाई के अंत में, मराठों ने ५ अप्रैल १७७० को आगरा और मथुरा पर अधिकार कर लिया। बेशक, कर्णुखाबाद के अहमद खान बंगेश और दिल्ली के मीरबख्शी (बार) नाजीबुद्दोला ने मिलकर मराठों को हराने का फैसला किया; लेकिन पेश्वा की सेना की समय पर मदद से गंगा नदी के तट पर अफगान सैनिकों द्वारा चारों ओर से घिरे होने के बावजूद, मराठा सैनिक अनुभव के कारण अभूतपूर्व साहस दिखाते हुए धीरे-धीरे यमुना नदी के तट पर सुरक्षित स्थानों पर चले गए।. इसी समय ३१ अक्टूबर १७७ को नजीबुदौला की मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र जमात खाँ मीरबख्शी बन गया; मराठों ने नई सेना पाकर जोरदार लड़ाई लड़ी और अहमद खान और जाबेत खान को हरा दिया। रोहिलों पर इस विजय में रामचन्द्र और महादजी ने महान वीरता दिखाकर अपना नाम कमाया। इटावा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने फर्दुखाबाद की ओर मार्च किया, और अंतत: अहमद खान ने मराठों को कम से कम वह सारा क्षेत्र सौंप दिया जो उन्होंने पानीपत की लड़ाई से पहले हासिल किया था। इससे अहमद खान को गहरा सदमा लगा और इसलिए ११ जुलाई १७७१ को उनकी भी मृत्यु हो गई.

महादजी सिंधिया का सफल संचालन: अंग्रेजों को उत्तर भारत में तेजी से फैलते मराठी साम्राज्य की बहुत चिंता होने लगी। महादजी सिंधिया और दो अन्य जनरलों (रामचंद्र और विसाजी) ने मिलकर ८ सितंबर १७७० को जाट सरकार नवलसिंह से युद्ध जुर्माने के रूप में ६५ लाख रुपये ले लिए और रणजीत सिंह को जाट राज छोड़ने के लिए कहा, और सेवानिवृत्ति में उन्हें केवल २० लाख की जागीर दी, सम्पूर्ण राज्य मराठों को देकर साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार जाटों, शकील और पठानों (अफधा) को अपने अधीन करते हुए, महादजी ने दोआब और फर्दुखाबाद पर विजय प्राप्त की, हालाँकि इस बार परिस्थितियाँ भी अनुकूल

थीं, क्योंकि वाराणसी के राजा बलवंतसिह, जो कि अंग्रेजों के प्रबल पक्षधर थे, की मृत्यु हो गई थी (२३ अगस्त, १७७०)). मीर कासिम और बंगाल के नवाब अंग्रेजों को हराने के लिए सक्रिय थे और मुगल सम्राट, जो १२ वर्षो तक इलाहाबाद में अंग्रेजों के नियंत्रण में नाममात्र की शक्ति का आनंद ले रहा था, अब पूरी तरह से विक्षुब्ध हो गया था! उत्तर में मराठी शक्ति के तेजी से प्रसार के लिए अंग्रेजों ने मराठों का विरोध किया, लेकिन शक्तिशाली मराठा सरदार महादजी सिंधिया ने उस विरोध को भी नहीं सुना!

दिल्ली में मुगल सम्राट का पुनः प्रवेश और मराठा शक्ति अपने चरम पर: मुगल सम्राट ने फखाबाद और उपजाऊ दोआब क्षेत्र के प्रभुत्व को मान्यता दी, जिसे मराठों ने सैन्य तख्तापलट के माध्यम से हासिल किया था। लेकिन मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय (१७५९-१८०९) के वजीर नजफ खान ने मराठा जनरलों की गतिविधियों का कड़ा विरोध किया। उसने महादजी को धमकी दी कि वह किसी और को बादशाह बना देगा और गाजीउद्दीन को वजीर बना देगा। अतः महादजी ने सेना के साथ कूच किया और १० फरवरी, १७७१ के शुभ दिन पर राजधानी दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार महादजी सिंधिया ने ठीक दस वर्ष बाद उत्तर भारत में फिर से मराठों का भगवा ध्वज फहराया। महादजी ने शाह आलम द्वितीय के पुत्र जवानबख्श को दिल्ली की गद्दी पर बिठाया और निगरानी की। दिल्ली पर सिंधिया की जीत महाराष्ट्र के लिए फायदेमंद साबित हुई. शाह आलम की मां जीनतमहल ने मुगल बादशाह से मराठों की सुरक्षा सुनिश्चित करने, उन्हें पूर्व के सभी राजनीतिक अधिकार देने और इस तरह इलाहाबाद से दिल्ली चले जाने का आग्रह किया। १२ फरवरी को शाह आलम ने मराठों के साथ कानूनी समझौता किया। शुक्रवार १२ अप्रैल को शहंशाह दिल्ली के लिए रवाना हो गए. अनुप नगर में महादजी ने बादशाह का भव्य स्वागत किया और दोनों दिल्ली चले गये। १२ वर्ष बाद ६ जनवरी, १७७२ को (नयी गणना के अनुसार) शहंशाह ने महादजी की सहायता से राजधानी दिल्ली में प्रवेश किया। पानीपत की लड़ाई (उत्तर भारत में) में जो कुछ भी खो गया था, उसे महादजी सिंधिया की वीरता और चातुर्य से मराठों ने पुनः प्राप्त कर लिया। इस प्रकार, महादजी 'राजाओं के निर्माता'

संदर्भसूचि

१. Sardesai, G.S. : 'New History of the Marathas', Voll, II
२. Sharma S.R. : 'The Making of Modern India'
३. Kincaid, C.A. & Parasnis, D.B. : 'A History of the Maratha People', Vol-III

‘मध्यवर्ग का उद्‌भव और विकास’

डॉ० अनूप श्री विजयिनी

सहायक प्राध्यापक, मुररका कॉलेज सुल्तानगंज, टी.एम.बी.यू. भागलपुर

बीज शब्द- मध्यवर्ग, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, सत्ता, क्रांति

मध्यवर्ग की अवधारणा अठारहवीं शताब्दी की है। सन 1785 ई. में रेवरेण्ड थॉमस गिसबर्न ने ‘मध्य वर्ग’ का प्रयोग किया था। तत्कालीन यूरोपीय समाज में सामंतशाही का वर्चस्व था। यहाँ राजा और प्रजा का भाव था। इन दोनों के बीच एक वर्ग पनप रहा था, जिसे आगे चलकर मध्य वर्ग नाम दिया गया। विलियम आउटबेट ने लिखा है-

“मध्यवर्ग का एक पद के रूप में प्रयोग 1785 में। किया गया था। इस पद के माध्यम से गिसबर्न ने उस धनी और ठेकेदार (जोखिम उठाकर नया उद्यम शुरू करने वाला) ओर संकेत किया था, जो जमींदार और कामकाजी मजदूरों के बीच में स्थित था।”[1] यूरोप में 16 वीं-17 वीं का दौर काफी उथल-पुथल रहा है। यह मूलतः विद्रोह का दौर है। एक के बाद दूसरा विद्रोह और दूसरे के बाद तीसरा विद्रोह हुआ। सन 1785 से 1915 के मध्य अकेले फ्रांस में 100 किसान विद्रोह हुए थे।[2]इस विद्रोह से पूर्व ही औद्योगिक क्रांति की शुरुआत हो चुकी थी और पूँजीवादी जड़ें जमा चुका था।

मार्क्स ने स्वीकारा था कि पूँजीवाद के उदय के फलस्वरूप ही मध्यवर्ग अस्तित्व में आया। इस वर्ग की फ्रांस की राज्य क्रांति में अहम भूमिका थी। एक तरह से यही वर्ग सबसे अधिक सक्रिय और लाभ की स्थिति में था। इस पर विचार करते हुए डॉ. गिरीश ने लिखा है-

“मध्यम वर्ग का उदय पूँजीवाद के विकास के साथ हुआ। कालक्रम में इसका आकार बढ़ता गया। इसकी एक ओर तो मजदूर वर्ग (सर्वहारा) थे तो दूसरी ओर पूँजीपति और भू- स्वामी। इंग्लैंड की राज्यक्रांति में मध्यम वर्ग की अहम भूमिका थी।[3]

सोलहवीं सदी में यूरोप में एक साथ कई घटनाएं घटी। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप बेरोजगार ग्रामीण जनता नगर की ओर प्रस्थान कर रही थी। छोटे-छोटे व्यापारी वर्ग का उदय हो रहा था। इस वर्ग का सारा ध्यान पूँजी बढ़ाने और मुनाफा कमाने पर ही रहता था। इस पर विचार करते हुए डॉ. श्यामसुंदर घोष ने लिखा है-

“जिसका ध्यान पूँजी बढ़ाने और मुनाफा कमाने पर ही रहता था। लेकिन इनकी पूँजी बढ़ाने और मुनाफा कमाने का व्यापार आसानी से चल नहीं सकता था, क्योंकि सत्ता सामंतों के हाथ में थी। भूमि पर उनका अधिकार था और भूमि से संबंधित होने के कारण खेतिहर और मजदूर भी उन्हीं के मातहत थे। इसीलिए बुर्जुआ वर्ग ने अपने को गरीबों का रहनुमा कहना शुरू किया और समता, स्वतंत्रता तथा भातृत्व का नारा दिया। निम्नवर्ग उसके चकमें में आ गया और बेहतर जीवन की आकांक्षा से प्रेरित होकर उसने सामंतों के खिलाफ विद्रोह किया। लेकिन विद्रोह के बाद जब नयी समाज व्यवस्था कायम करने की बात चली तो शासन सूत्र संभालने और नीति नियम निर्धारण बूर्जुआ वर्ग ही सामने आया।”[4]

बेरोजगारी की संख्या में बेतहाशा वृद्धि होनी शुरू हो गयी थी, जिसका परिणाम वहाँ की अर्थव्यवस्था पर पड़ा। इस पर प्रकाश डालते हुए ये. अगिल अगिवालोवा लिखते हैं कि ‘सोलहवीं सदी के आसपास यूरोप की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई, फलतः भूमि के दाम तेजी से बढ़े। इससे एक ओर जहाँ बड़े भूस्वामी लाभान्वित हुए, वहीं दूसरी ओर अतिरिक्त जनसंख्या किसी भी तरह तो उजरती मजदूरों का जन्म हुआ वहीं दूसरी ओर शहरों में मैन्युफैक्चरियों (हस्त उद्योगशाला) का जन्म हुआ, जिसमें दसों से लेकर सैकड़ों काम करते थे।[5]

आगे चलकर मध्यवर्ग का व्यापक विस्तार हुआ और इसने सभी महत्वपूर्ण पदों पर अपना अधिकार जमा लिया। पूँजीवाद के उदय के बाद इस वर्ग की भूमिका और ज्यादा अहम हो गई। प्रो.दुर्गा प्रसाद गुप्त 'संस्कृति का अकेलापन' में लिखते हैं- 'पूंजीवाद के मुफ्त व्यापार ने जिस मध्यवर्ग को जन्म दिया है, मध्यवर्ग पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, नव उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद का चहेता है।'(6)

अतः यूरोप में पूँजीवाद का जैसे-जैसे विस्तार हुआ, वैसे-वैसे मध्यवर्ग भी फैलता गया और पूरी दुनिया में छा गया।

1. मध्यवर्ग की अवधारणा:-

मानव सभ्यता के अस्तित्व में आने से मानव समाज किसी-न-किसी रूप में विभाजित रहा है। जैसे- कबीलाई संस्कृति, वर्ण-व्यवस्था और जाति के नाम पर। औद्योगिक क्रांति कहीं-न-कहीं मानव समाज में वर्ग विभाजन का आधार बना। वर्ग समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है और यह व्यक्ति की पहचान में अहम मानी जाती है। मूलचंद गौतम का विचार है-

"वर्ग समाज का अनिवार्य अंग है। जिसका निर्णय आर्थिक और सामाजिक समानता तथा भिन्नता के आधार पर किया जाता है। विशिष्ट आर्थिक और सामाजिक स्तर वाले व्यक्ति समूह ही विशिष्ट वर्ग के रूप में पहचाने जाते हैं।"(7)

वर्ग के निर्धारण में केवल आर्थिक आधार ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि व्यक्ति की शिक्षा, व्यवसाय, रहन-सहन के स्तर आदि के सम्मिलित प्रभाव के आधार पर ही यह निर्णय किया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति समाज के किस वर्ग से सम्बद्ध है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्ग और समाज का अटूट संबंध है। वर्ग को परिभाषित करने में मार्क्स-एंगेल्स की भूमिका को सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। मार्क्स ने वर्ग का विभाजन दो भागों में किया है। उन्होंने पहले वर्ग को बूर्जुआ वर्ग कहा।

'बुर्जुआ शब्द का जन्म फ्रांस में हुआ और इसका अर्थ 'नगरवासी' होता है। इस शब्द का प्रयोग मध्यम वर्ग के लिए किया जाता है। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले यूरोप में उन वर्गों के लिए किया गया जिन्होंने किसानों की जमीनें अपने कब्जे में ली थी।

ऐतिहासिक रूप बुर्जुआ वर्ग ही आगे चलकर मध्यवर्ग के नाम से जाना जाने लगा, क्योंकि यह वर्ग जमींदार और मजदूरों के बीच का था। अपने आरंभिक अर्थों में मध्यवर्ग जिसका बोध कराता था फ्रांस की क्रांति के समय उसका वही अर्थ नहीं रह गया था और आगे की औद्योगिक क्रांति ने पूरी तस्वीर ही बदल डाली। बदलते दौर में इसकी पहचान आर्थिक आधार, रहन-सहन, पेशे, जीवनमूल्यों के आधार की गयी।

हर देश में मध्यवर्ग की स्थिति और स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। श्यामसुन्दर दास का मानना है कि उच्च मध्यवर्ग का वह रूप जो बुर्जुआ वर्ग का पर्याय समझा जाता है। सभी देशों में एक-सा नहीं रहा है। विभिन्न देशों के इतिहास से इस बात की पुष्टि होती है- जैसे भारतवर्ष में मध्यवर्ग का अस्तित्व बहुत पहले से था और उसमें भी कुछ लोग, पद, प्रतिष्ठा, सामाजिक और आर्थिक हैसियत की दृष्टि से ऊँचा स्थान रखते थे फिर भी उनको अंग्रेज बुर्जुआ वर्ग का पर्याय नहीं कहा जा सकता है। भारतीय मध्यवर्ग के स्वरूप को पहचान पाना और कठिन है। अरुण कुमार त्रिपाठी ने लिखा है-

"भारतीय मध्यवर्ग एक अबूझ पहेली है जो एक तरफ वैश्वीकरण के नारे में उलझा हुआ है तो दूसरी तरफ अपनी स्थानीय संकीर्णताओं को छोड़ना नहीं चाहता। ढीली-ढाली सीमा और लचीले मानदंडों के आधार पर समाजशास्त्रियों ने उसकी जो परिभाषा गढ़ी है, एक चरित्र जो राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों ने गढ़ा है और दूसरा चरित्र है, जो आर्थिक शक्तियों ने गढ़ा है। जाहिर तौर पर वर्ग की मार्क्सवादी परिभाषा के तहत मध्यवर्ग का चरित्र समझौतावादी और स्वार्थी बताया गया है।उसका एक छोटा हिस्सा भले ही सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन में रुचि रखता है, लेकिन बड़ा हिस्सा सत्ता में जाने और उससे लाभ पाने के लिए आतुर रहता है जबकि बाजार उसे बेहद प्रगतिशील और क्रांतिकारी बताता है।(8.)

इतिहास गवाह है कि किसी व्यक्ति के वर्ग के निर्धारण का आधार सिर्फ एक बात से तय नहीं होता है। वर्ग के निर्धारण के लिए एक साथ कई स्तरों पर विचार किया जाना आवश्यक होता है। इसी पर विचार करते हुए रॉय लीविस ने लिखा है-

"कोई व्यक्ति किस वर्ग से ताल्लुक रखता है इसके निर्धारण के लिए कई कारकों पर विचार करना पड़ता है जिनमें आय, व्यवसाय, उच्चारण, खर्च की आदतें, आवास, संस्कृति, खाली वक्त गुजारने की चाह, कपड़े, शिक्षा, नैतिक दृष्टिकोण और अन्य व्यक्तियों के साथ उसके संबंध प्रमुख हैं।"(9.)

मध्यवर्ग का निर्धारण करते वक्त ख्याल रखना चाहिए कि उनका मुख्य पेशा क्या है? मध्यवर्ग को समाजद्रोही के रूप में भी देखा जाता है। यह वर्ग हमेशा बुर्जुआ वर्ग की सेवा में लगा रहता है। मध्यमवर्ग पूंजीपति वर्ग का सेवक है, इसलिए चाहे जितना भी प्रगतिशील हो मजदूरों का शुभचिंतक नहीं हो सकता है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है-

"हमारे समाज का मध्यवर्ग परिवार की मर्यादा और स्तर कायम रखने तथा रोजी कमाने में ही सारी शक्ति लगा रहा है।इस वर्ग की राष्ट्रीय चेतना के ह्रास के साथ उसकी नैतिक शक्ति भी बहुत कुछ क्षीण हो चली है। लोग अपने से ऊँचे स्तर के व्यक्ति को देखते हैं और स्वयं भी उसी जीवन-शैली को अपनाने को प्रेरित हो रहे हैं।"(10)

अत:-मध्यवर्ग को एक निश्चित अवधारणा में बांध पाना अत्यंत कठिन है, फिर भी उसकी विभिन्न प्रवृतियों को ध्यान में रखते हुए मध्यवर्ग की अवधारणा का निर्धारण किया जा सकता है। एक तरह से हम कह सकते हैं कि मध्यवर्ग एक ऐसा वर्ग है जो हर स्थिति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का आभास कराता है।

2. यूरोप में मध्यवर्ग का उदय और विकास

यूरोप का मध्यकालीन समाज अपनी सामंतवादी प्रवृतियों में जकड़ा हुआ था। यूरोप के पुनर्जागरण ने जड़तापूर्ण मध्यवर्गीय में नवीनता का संचार करके उनमें राष्ट्रवाद एवं मानवतावाद जैसे तत्व को भरा। यूरोप के मध्यवर्गीय समाज पुरोहित वर्ग और कुलीन वर्ग से क्षुब्ध था। इस वर्ग ने विभिन्न क्रांतियों के माध्यम से अपनी कुंठाओं को दूर किया। यह मध्यवर्ग पूरे यूरोप में मुख्य रूप से फ्रांस और इंग्लैंड में ही सबसे अधिक शिक्षित था।

यूरोपीय मध्यवर्ग औद्योगिक क्रांति की देन थी। इसी औद्योगिक क्रांति के बाद मध्यवर्ग सारी दुनिया में अपना वर्चस्व स्थापित करता था। आधुनिक युग के आरंभ में यूरोप में हुए पुनर्जागरण ने समाज में मध्यम वर्गीय मूल्यों की स्थापना करके एक नये युग का आरंभ किया था, लेकिन लंबे समय तक मध्यम वर्ग की शक्ति उजागर नहीं हो पाई थी। समूची सामंती व्यवस्था को ध्वस्त करते हुए यह वर्ग अपनी व्यवस्था कायम करने में सफल हो जाते हैं। इसलिए राहुल सिंह ने लिखा है-

"यूरोप का मध्यवर्ग चुनौतियों का सामना करते हुए विकसित हुआ है। फ्रांस की क्रांति और इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति से प्रभावित होता हुआ और उन्हें प्रभावित करता हुआ इसका विकास हुआ है।"(11)

1789 की फ्रांसीसी क्रांति के पूर्व फ्रांस का समाज अपनी मध्ययुगीन एवं सामन्तवादी सोच से जकड़ा हुआ था। फ्रांसीसी समाज मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित था- पुरोहित वर्ग या पादरी वर्ग, कुलीन अथवा सामंत वर्ग तथा वंचित वर्ग अथवा सुविधाविहीन वर्ग। मध्यवर्ग में साहूकार, व्यापारी, शिक्षक, वकील, डॉक्टर, लेखक, कलाकार, सरकारी कर्मचारी आदि सम्मिलित थे जो उद्योग, व्यवसाय आदि पेशे से संबंधित थे और इन्हें शारीरिक श्रम नहीं करना पड़ता था। ये लोग बुद्धिमान, मेहनती, शिक्षित और आर्थिक रूप से संपन्न थे किंतु इस वर्ग को कोई राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं था। अत: यह वर्ग सामाजिक व्यवस्था में क्रांति के साथ-साथ राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन चाहता था। हेजेन को उल्लेखित करते हुए जैन माथुर लिखते हैं-

"वे सामाजिक समता चाहते थे उनकी प्रबल इच्छा थी कि कानून इस बात को स्वीकार कर ले कि बुर्जुआ वर्ग के लोग कुलीन वर्ग के समान हैं।"(12)

फ्रांस के मध्यवर्ग में अपने अधिकारों की तड़प थी। नेपोलियन ने सेंट हेलिना में सत्य ही कहा था कि 'क्रांति का मूल कारण स्वतंत्रता नहीं, बल्कि मध्यवर्ग की समानता की चाह थी।' चूँकि फ्रांस की क्रांति के मूल में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का सिद्धान्त था और फ्रांस का मध्यवर्ग भी कुलीन वर्ग के साथ सामाजिक समता प्राप्त करना चाहता था।

इंग्लैंड का मध्यवर्ग भी बहुत शक्तिशाली था। उसके पास बुद्धि पहले से थी और धन की अतिशयता ने उसे ज्यादा महत्वपूर्ण बना दिया। अठारहवीं शताब्दी में मध्यवर्ग इंग्लैंड का काफी शक्तिशाली वर्ग बन गया था। व्यापार के कारण धन की शक्ति इसके हाथों में केंद्रित होने लगी थी, लेकिन इंग्लैण्ड में मध्यवर्गीय व्यक्तियों के निर्धारण में धन तथा आय को प्रमुख आधार नहीं माना गया। इंग्लैंड में मध्यवर्ग को इतनी मान्यता मिली कि वह देश की संपत्ति के मुख्य स्त्रोत के रुप में देखा जाने लगा। बोंहम ने लिखा है-

"मध्यवर्ग देश का धन एवं बुद्धि है तथा अंग्रेजों का गौरव है।"

इससे स्पष्ट है कि औद्योगिक क्रांति के शुरुआती दिनों में ही मध्यवर्ग ने अपनी उपयोगिता को साबित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी और इसका भरपूर लाभ इंग्लैंड ने उठाया।

रूसी क्रांति में मध्यवर्ग एवं प्रबुद्ध वर्ग की भूमिका को प्राय: अनदेखा किया गया है। जबकि हमें ज्ञात है कि क्रांतिकारी समाजवादी दल का नेतृत्व ही मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के हाथ में था। कृषकों को संगठित करने एवं स्थानीय संस्थाओं की मांग इसी वर्ग ने की थी। 1917 की प्रथम क्रांति में सेंट पीटर्सबर्ग के सैनिकों और मजदूरों के साथ मध्यमवर्ग की भूमिका थी। सर्वहारा और मध्यमवर्ग की भूमिका कम ज्यादा हो सकती है, परन्तु मध्यम वर्ग की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है।

अत: यूरोपीय मध्यवर्ग का विकास नगरों से हुआ था क्योंकि सारे उद्योग शहरों में ही स्थापित किये गए थे। जबकि भारतीय मध्यवर्ग ग्रामीण क्षेत्रों से उभर कर आया था। इस कारण ही यूरोप में मध्यवर्ग का बंटवारा नगर तथा ग्राम के आधार पर नहीं किया जा सकता। यूरोप के मध्यवर्ग के उदय कारण ही स्त्री-पुरुष का भेदभाव लगभग समाप्त हो गया था। राजकिशोर का मानना है कि पश्चिम के मध्यवर्ग और भारत के मध्यवर्ग में कुछ बुनियादी अंतर है। पश्चिम में मध्यवर्ग के वर्गीकरण की प्रक्रिया बहुत तेज रही। इसका कारण यह था कि औद्योगिक सभ्यता ने वहाँ तेजी से कदम बढ़ाएं तथा धन का बँटवारा अपेक्षाकृत बराबरी के स्तर पर हुआ। आज भी अमेरिका, फ्रांस या जर्मनी में आर्थिक विषमता भारत या पाकिस्तान से बहुत कम है।

3. भारत में मध्यवर्ग का उदय और विकास

दुनिया के प्राय: सभी देशों में मध्यवर्ग का उदय और विकास भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में हुआ है। किसी भी देश के संदर्भ में यह तय कर पाना बहुत मुश्किल है कि किन सामाजिक वर्गों के मेल से वहाँ मध्यवर्ग का निर्माण हुआ है। निश्चित रूप से प्रत्येक देश की चुनौतियां अलग-अलग रही हैं। जाहिर है कि मध्यवर्ग का उदय जिन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप फ्रांस या इंग्लैंड में होता है, उन्हीं परिस्थितियों में ही भारतीय मध्यवर्ग का भी उदय हो यह बिल्कुल भी जरूरी नहीं है। इस पर विचार करते हुए बी. बी.मिश्र ने लिखा है-

"भारत में मध्यवर्ग का विकास उस प्रकार या उन परिस्थितियों में नहीं हुआ जिस प्रकार या जिन परिस्थितियों में यूरोपीय देशों में हुआ। यहाँ मध्यवर्ग का विकास यूरोपीय देशों की अपेक्षा अधिक पहले हुआ और उसका संबंध उद्योगों की अपेक्षा व्यवसायों और सार्वजनिक सेवाओं से अधिक रहा।"[13]

यूरोप और भारत के मध्यवर्ग के उदय की प्रक्रिया में एक और अंतर यह भी है कि यूरोप में मध्यवर्ग के संघर्ष और भारतीय मध्यवर्ग के संघर्ष में अंतर था। भारत में यद्यपि मध्यवर्ग का उदय यूरोप की तुलना में एक शताब्दी बाद हुआ पर दोनों की उदयकालीन परिस्थितियां एक सी नहीं थी। इसी पर विचार करते हुए प्रेमसिंह ने लिखा है-

"इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय मध्यवर्ग का उदय चाहे जिन परिस्थितियों में हुआ हो लेकिन इसका उदय आधुनिक युग की विशिष्ट परिघटना मानी जाती है।[14]

भारतीय मध्यवर्ग के विकास में 1857 आन्दोलन का महत्वपूर्ण स्थान है। 1857 के बाद यह 'पॉलिटिकल कैटेगरी' के रूप में सामने आता है। 1947 के बाद का समय इसके 'इकोनॉमिक कैटेगरी' के रूप में विकसित होने का है।

भारत में मध्यवर्ग का सबसे पहले उदय बंगाल में माना जाता है, क्योंकि ब्रिटिश हुकूमत की राजधानी वहीं थी और सत्ता व्यवस्था वहीं से संचालित हुआ करती थी। वाई. पी. छिब्बर लिखते हैं-

"संभवत यह कहना कि बंगाल भारत में आधुनिक मध्यवर्ग का जन्म स्थान रहा है, ऐतिहासिक रूप से गलत नहीं होगा।"[15]

भारतीय मध्यवर्ग का संघर्ष और विद्रोह के बीच नहीं, बल्कि सुविधा और सुरक्षा के बीच पनपा। भारतीय मध्यवर्ग जोखिम उठाने से परहेज करता रहा है। शिक्षा और अच्छी समझ के जरिये विद्रोह और परिवर्तन के बजाय ये समझौता और घुटन सहने के आदी हो जाते हैं। B- Datta Roy भारतीय मध्यवर्ग के विकास के बारे में कहते हैं-

"भारत के उत्तर-पूर्व के घाटी क्षेत्रों की बात करें तो वहाँ मध्यवर्ग का विकास भारत के अन्य भागों के समान नहीं हुआ है, जबकि वहीं के पहाड़ी इलाके में मध्यवर्ग का स्वतंत्र विकास हुआ है।"[16]

आजादी से पूर्व जिन मध्यवर्ग का उदय हुआ वह अपने स्वभाव में वर्ण व्यवस्था का विरोधी जरूर था, लेकिन धीरे-धीरे यह विरोध भी क्षीण होता गया। बाद के दिनों में इन वर्गों ने अपनी सुविधा के लिए नैतिक प्रतिमानों की तिलांजलि दे दी। पवन कुमार वर्मा का मानना है कि "यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि जो मध्यवर्ग कभी जाति व्यवस्था को तोड़ने के लिए आतुर था वही अपनी अस्तित्व की रक्षा के लिए आश्रय ले रहा है।"[17]

मध्यवर्ग का बदला हुआ चरित्र समूचे राष्ट्र के लिए खतरे की निशानी बनकर उभरा है। यह मध्यवर्ग दिखावे के जीवन का आदी बन चुका है। पूरनचंद जोशी का मानना है कि 'राष्ट्रीय संकट की गहराई का इससे भी पता लगता है कि देश में शासक वर्ग यानी नव मध्यम वर्ग का उभरता हुआ चरित्र मुख्य रूप से स्वयं आज की समस्याओं का समाधान नहीं, उसकी मूल्यहीनता और चरित्रहीनता समस्याओं का मूल बन गए हैं।'[18]

आजादी के बाद भारतीय मध्यवर्ग के विकास में आमूलचूल परिवर्तन हुआ और इसकी नैतिकता के गिरावट में बेतहाशा वृद्धि हुई। इसके संपत्ति का अंबार लग गया। इसे छुपाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाई जाने लगी। गिरीश मिश्र का मानना है

कि 'भारतीय नव मध्यवर्ग भ्रष्टाचार का माध्यम बनाता है। फिर वे हस्तांतरण कीमतों के जरिये करों की चोरी करते हैं, पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने में नहीं हिचकते हैं बशर्ते उनका मुनाफा बढ़े, तस्करी, धोखाधड़ी और काले धन को सफेद करने में वे माहिर हैं इन सब दुष्कर्मों में नया मध्यम वर्ग उनका सहभागी बनता है।'(19)

सन 1980 के बाद से भारतीय मध्यवर्ग का चेहरा ही बदल गया।उसके आय में बेहताशा वृद्धि हुई। उसके रहन-सहन, खान-पान, यहाँ तक की सोचने समझने की दृष्टि में भी व्यापक फेर-बदल हुआ। मध्यवर्ग ने देश के अधिकांश ऐशो आराम की चीजों पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। हर क्षेत्र में उसका दबदबा देखा जा सकता है।

इस भोगवादी माहौल ने भारतीय मध्यवर्ग को समझौतापरस्त बना दिया। यह हर कीमत पर अपने आपको सुरक्षित देखने की आकांक्षा रखने लगा है पिछले पाँच छह दशकों में मध्यवर्ग के चरित्र में जिस प्रकार का परिवर्तन हुआ उसका एक बड़ा हिस्सा उतना ही नीचे गिरा है। वह अवसरवादी समझौतापरस्त और अनैतिक बना है।

राजेन्द्र यादव का मानना है कि 'सारी वैचारिक क्रांतियां, स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व की सारी घोषणाएं मध्यवर्ग के दिमागों में सबसे पहले जन्म लेती हैं, क्योंकि अपनी त्रिशंकु स्थिति के बावजूद यही वर्ग है जो सोचता-समझता और सपने पालता है।(20)

अत: स्पष्ट है कि भारत में नव मध्यम वर्ग का विस्फोटक विकास और उसके चरित्र और चेतना में गुणात्मक परिवर्तन ऐसा युगान्तकारी परिवर्तन लगता है कि जिसके संभाव्य परिणामों के प्रति देश के विचारक पूरी तरह सचेत नहीं है। इस नव मध्यम वर्ग की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भूमिका क्या है? इनका अधिकांश जनसाधारण की समस्याओं और आकांक्षों के प्रति क्या रुख है। ये किस दिशा में भारत को इक्कीसवीं सदी में ले जाना चाहते हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि भिन्न-भिन्न समयों में मध्यम वर्ग के स्वरूप में परिवर्तन होता रहा है। इसका विकास औपनिवेशिक भारत का मध्यवर्ग, स्वातंत्र्योत्तर भारत का मध्यवर्ग और उदारीकरण के बाद के मध्यवर्ग के संदर्भ में बांट कर भी अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. William Outhwait, tom bottomore(ed) the blackwell directtionary of twentiath century social thought, p.38
2. गुरुचौन सिंह, द न्यू मिडिल क्लास इन इंडिया:-ए.बायोलॉजिकल एनालिसिस, पृष्ठ- 53
3. गिरीश मिश्र- पहल, अंक 70, पृष्ठ-155
4. 4.डॉ. श्यामसुंदर घोष, भारतीय मध्यवर्ग, पृष्ठ-38)
5. ये अगिल अगिवालोवा- ग दो- सदोया मध्ययुग का इतिहास, पृष्ठ, 223-224)
6. दुर्गा प्रसाद गुप्त, संस्कृति का अकेलापन, पृष्ठ 103-104)
7. डॉ. मूलचंद गौतम, हिंदी नाटक की भूमिका: मध्यवर्ग के संदर्भ में, पृष्ठ 23)
8. अरुण कुमार त्रिपाठी, राष्ट्रीय सहारा, 28 जुलाई 2012, पृष्ठ 23)
9. Roy Lewis and Angus Mande, the English Middle Class, p.19-20)
10. डॉ. मूलचंद, हिंदी नाटक की भूमिका: मध्यवर्ग के संदर्भ में, पृष्ठ-53)
11. राहुल सिंह, तद्भव, अंक, 17, पृष्ठ 50)
12. जैन माथुर, आधुनिक विश्व का इतिहास, पृष्ठ 163)
13. डॉ. बी.बी.मिश्र, द इंडियन मिडिल क्लासेस(भूमिका)
14. प्रेम सिंह, उदारीकरण की तानाशाही, पृष्ठ 57
15. Y. P. Chhibbar, from cast to class, p.47
16. B. Datta Roy(Ed.) The emergence and Role of Middle Class in North East India, Introduction
17. पवन कुमार वर्मा, भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान, पृष्ठ-45
18. पूर्णचंदजोशी, आजादी की आधी सदी, पृष्ठ 132)
19. गिरीश मिश्र, पहल पत्रिका, अंक-70, 153)
20. हंस संपादकीय, पृष्ठ 8

कबीर के साहित्य का समाज पर प्रभाव

मुन्नी देवी

शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

शोधसार

कबीर भक्तिकाल की निर्गुण धारा (ज्ञानाश्रयी शाखा) के प्रवर्तक कवि हैं। वे अपनी बात को साफ एवं दो टूक शब्दों में प्रभावी ढंग से कह देने के हिमायती थे बन पडे तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। इसलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को वाणी का डिटेक्टर कहा है।

कबीर के जीवन के बारे में अनेक किंवदंतियॉ प्रचलित हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में खुद को काशी का जुलाहा कहा है। कबीर के विधिवत साक्षर होने का कोइ प्रमाण नहीं मिलता। कबीर की निम्नलिखित पंक्तियां इसका प्रमाण हैं.

'मसि कागद छुयो नहि कलम गहि नहि हाथ'

कबीर के देशाटन और सत्संग से ज्ञान प्राप्त किया। किताबी ज्ञान के स्थान पर आखों देखे सत्य और अनुभव को प्रमुखता दी। उनकी रचनाओं में नाथों, सिद्धों और सूफी संतों की बातों का प्रभाव मिलता है। वे कर्मकाण्ड और वेद-विचार के विरोधी थे तथा जाति-भेद, वर्ण भेद और सम्प्रदाय भेद के स्थान पर प्रेम, सद्भाव और समानता का समर्थन करते थे।

मूल शब्द- बिरला, साखी, विराग, प्रपंच, आविर्भाव, अंतस्साक्ष्य, गियाना, निरुपण, कोपभाजन, लरि-लरि, मरम, किंवदंतियॉ, जीवात्मा, नायकत्व,

1. कबीर की निर्गुण काव्य धारा: संत काव्य धारा (ज्ञानाश्रयी)

निर्गुण शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है. "बिना गुण"। निर्गण का तात्पर्य गुणातीत से लिया जाता है अर्थात गुणों से परे। परे वही होता है जो निर्गुण निराकार है। निर्गुण काव्य धारा में ईश्वर निर्गुण निराकार के संदर्भ में आया है। इस काव्य में ईश्वर अवतार नहीं लेते हैं।

संत शब्द का अर्थ एंव परिभाषा:-

संत शब्द-सत् से निकला है अर्थात् ईश्वर सम्बंधी सत् का उच्चारण करने वाला भक्त संता कहलाता है। ऋग्वेद में ज्ञान को अर्थात् ईश्वर को सत् कहा गया है। गुरुनानक ने कहा था दृसत् ही ईश्वर है अर्थात् जो ईश्वर से सम्बंधित अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं, उन्हें संत कहा जाता है।

2. कबीर भक्ति:-

कबीर की भक्ति नामस्मरण, वेदांतभक्ति, प्रेमाभक्ति, नारदभक्ति, योग-भक्ति, जप, तप, त्याग, मानवभक्ति इनकी योग साधना, इडा, पिंगला, सुषुम्ना पर आधारित है। इनकी भक्ति पर विभिन्न मतों का प्रभाव देखा जाता है।

'हरि जननी मैं बालक तोरो' कहकर ईसाई भक्ति के करीब हैं। जल में कुम्भ, कुम्भ में जल कहकर शंकर के "अद्वैत दर्शन" के करीब पॅहुच जाते तो "रूखा सुखा खाये के ठण्डा पानी पिय के" की बात करते हुए बौद्ध धर्म के मध्यम मार्ग के करीब पहॅुच जाते हैं।

साधना का यह योग हठ मार्ग नाथ परम्परा से चला आ रहा था। यह भक्ति एके" वरवाद पर आधारित है। कबीर की भक्ति अहिंसा का संदेश देती है जो वैष्णव भक्ति पर आधारित है। इनकी भक्ति शंकराचार्य के अद्वैवतवाद पर आधारित है। इनकी भक्ति पर सूफी काव्य के प्रेम की परछाई पडी है। साधारण शब्दों में कहा जाए तो विभिन्न भक्ति मार्गो में जो अच्छी बातें हैं कबीर की भक्ति में मिल जाती हैं। कबीर लोकमत के सच्चे संस्थापक थे जो अछूत, जातिवाद, द्वैतवाद, मूर्तिपूजा और बाहरी आडम्बरों का विरोध करते थे।

3. कबीर का साहित्य एंव कबीर सम्बंधी मुख्य ग्रंथ:-

डॉ. श्यामसुंदर दास ने सन् 1928 ई.-कबीर ग्रंथावली प्रकाशित की जिसमें 808 साख्यिॉ, 403 पद, और अंत में 7 रमैणियॉ है। इसका मूल आधार "कबीर जी की बानी" नामक एक ग्रंथ है। हनुमानदास जी का साखी ग्रंथ, साधु युगलानंद की "सत्य कबीर की साखी" प्रयाग से प्रकाशित शब्दावली और साखी संग्रह आदि।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने सटीक संग्रह नाम से प्रकाशित किया है। कबीर के कुछ पद "गुरुग्रंथ साहिब" में भी मिलते हैं-कबीर के नाम के 228 पद तथा 238 श्लोक (साखियॉ) संग्रहित हैं।

कबीर परचई और पीपा परचई में भी कबीर से सम्बंधित पद हैं। पीपा परचई संत पीपा पर आधारित है, परंतु उसमें कुछ पद कबीर से सम्बंधित हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ.श्याम सुंदर दास का कहना है कि इनका एक मुख्य ग्रंथ है. "बीजक"

बीजक के तीन भाग हैं.

1. साखी
2. सबद
3. रमैनी

कबीर का स्वंय का भी कहना है-

"बीजक बित्त बतवाइयॉ जो बित्त गुप्ता हो
सबद-बतावै जीव को बूझै बिरला कोय।"

1. साखी:-

साखी शब्द संस्कृत भाषा का साक्षी है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है- गवाही देना। यह साक्षी का तद्भव रुप है। साक्षी शब्द चेतन से सम्बंध रखने वाली मानी जाती है अर्थात साखी भाग में आत्मचिन्तन पर विशेष ध्यान दिया। आत्मा, परमात्मा, जगत, गुरु भक्ति और जगत के सम्बंध में जानकारी देती है। ब्रम्हा और जगत् के प्रति विराग की भावना नजर आती है। कबीर ने साखी में मुख्य रुप से जीव विचार पर चर्चा की है। यह "दोहा छंद" के रुप में जिसकी भाषा राजस्थानी और पंजाबी मिश्रित खडी बोली है।

2. सबद:-

गीतों में लिखा गया बीजक का भाग संतमत में "सबद" उपदेश कहलाते हैं। कबीर का यह भाग जगत् में जीव ब्रम्हा की उपस्थिति को दर्शाता है। यह गीतात्मक शैली में लिखे हुए पद हैं। सबद भाग मुख्य रुप से ब्रम्हा विचार पर ही चर्चा की गई है। ये भाग विभिन्न राग.रागिनियों का समावेश लिए बैठे हैं। सबद पर पूर्वी भाषा और ब्रज का प्रभाव देखने को मिलता है।

3. रमैनी:-

रामायण का तद्भव है। यह चौपाई के रुप में लिखित है। जिस पर पूर्वी और ब्रजभाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। इस भाग में जगत् प्रपंच पर ही अधिक विचार किया गया है। अर्थात् यह जगत् विचार प्रधान है। इस भाग पर पुरानी भोजपुरी भाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। यह भाग जीवात्मा का परमात्मा में और परमात्मा का जीवात्मा में रमण करने की स्थिति को दर्शाता है।

4. कबीर के साहित्य का सामाजिक दृष्टिकोणः-

भारतीय धर्मसाधना के इतिहास में कबीरदास ऐसे महान् विचारक एंव प्रतिभाशाली महाकवि हैं, जिन्होंने शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जनजीवन का नायकत्व किया। उनके आविर्भाव-काल का निर्णय करने के लिए उपलब्ध सामग्री को तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है:-

- अंतस्साक्ष्य
- साम्प्रदायिक सामग्री
- प्राचीन ग्रन्थों एवं विद्वानों के अभिमत

अंतस्ससाक्ष्य की दृष्टि से उन्होनें केवल दो प्रसंगों- काजी द्वारा हाथी चलवाने तथा लोहे की जंजीरों में बंधवाकर गंगा में डूबोने के प्रयत्न का वर्णन किया है।

सिकंदर लोदी द्वारा किये गए अत्याचारों का जो वर्णन अनंतदासकृत "कबीर परिचई" में है, उससे इन उल्लेखों का पूर्णसाम्य है। तात्पर्य यह है कि कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन थे इनका आविर्भाव तेरहवीं शताब्दी के अंत अथवा चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ था।

कबीर के विषय में कहा जाता है कि एक प्रसिद्ध सूफी मुसलमान फकीर शेख तकी से दीक्षा ली थी। वे उस सूफी फकीर को गुरु मानते थे। आरम्भ से ही कबीर हिंदू भाव की उपासना ओर आकर्षित हो रहे थे। अत: उन दिनों जबकि रामानन्द जी की बडी धूम थी, अवश्य वे उनके सत्संग में शामिल होते रहे होंगें।

कबीर अपने आपको जुलाहा मानते थे और अपने अक्खडपन के कारण जुलाहा होने का गर्व भी रखते थे:-

"तू ब्राम्हण मैं काशी का जुलाहा, बूझहु मोर गियाना।"

इनको अपने घर का काम करना पडता था, किन्तु उसमें विशेष रुचि न थी। वे आरम्भ से ही भावुक और भक्त थे और बडी युक्ति के साथ उन्होनें रामानन्द जी से दीक्षा प्राप्त की थी:-

'काशी में हम प्रकट भये हैं, रामानन्द चेताये।'

कबीर को 'राम नाम' रामानन्द जी से ही प्राप्त हुआ, पर आगे चलकर कबीर के 'राम' रामानन्द के राम से भिन्न हो गए। अत: कबीर को वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं ले सकते।

कबीर दूर दूर तक देशाटन किया हठयोगियों तथा सूफी मुसलमान फकीरों का भी सत्संग किया। कबीर के राम धनुर्धर साकार राम नहीं रहे वे ब्रम्हा के पर्याय हुए:-

दसरथ सुत विहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।

सारांश यह है कि जो ब्रम्हा हिन्दुओं की विचार पद्धति में ज्ञानमार्ग का एक निरुपण था उसी को कबीर ने सूफियों के ढर्रे पर उपासना का ही विषय नहीं प्रेम का भी विषय बनाया और उसकी प्राप्ति के लिए हठयोगियों की साधना का समर्थन किया।

इन्होनें हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों की खूब हँसी उडाई है:-

'इन दो उन राह न पाई।'

इन्होनें हिन्दुओं की धर्म भीरुता, जाति-पाति बंधन, छुआछूत, पाखण्ड, आडम्बर, अंधविश्वास आदि बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। वे हिन्दू और मुसलमान को एक दृष्टि से- मानव दृष्टि से देखते थे:-

कह हिन्दू मोहि राम पियारा,तुरक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मुये, मरम न काउ न जाना।।

कबीर बाह्य आडम्बरों तथा रुढियों के विरोधी थे। पशु-बलि, तीर्थ, व्रत, छापा, तिलक, रोजा, नमाज, हज, आदि आडम्बरों और कर्मकाण्डों तथा पाखण्डों का इन्होनें खण्डन किया। इस खण्डनात्मक प्रवृति के कारण कबीर को सिकंदर लोदी का कोप भाजन बनाना पडा था:-

1.पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
तातें यह चाकी भली, पीस खाय संसार।।
2.कांकर पात्थर जोरि करि, मसजिद लइ चिनाई।
ता चढि मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाई।।

5. उद्देश्यः-

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य कबीर के साहित्य के बारे में जानना तथा उनके समाज के प्रति दृष्टिकोण को भी प्रकाश में लाना है। उन्होनें अपनी प्रखर वाणी के माध्यम से समाज को बुराइयों से दूर रहने का संदेश दिया है। समाज में फैली बुराइयों, बाह्यआडम्बरों और अंधविश्वास को दूर करने का प्रयास किया है तथा समाज में एक सच्चे सुधारक का कार्य किया है। वाणी पर उनका जबरदस्त प्रभाव था तथा वे अपनी बात को स्पष्ट व साफ-साफ शब्दों में प्रकट करते थे।

6. निष्कर्षः-

सार रूप में कहा जा सकता है कि कबीर असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न तो थे ही, उन्होनें कुछ छन्दोबद्ध किया है, वह आश्चर्यचकित करने वाला है। किसी समय की शिष्ट और शिक्षित जनता पर कबीर का प्रभाव पडा या न पडा हा, इस पर विरोधी रायें हो सकती हैं, किन्तु अब यह कहने की जरूरत नहीं है कि आज की शिष्ट और शिक्षित जनता पर कबीर का प्रभाव किसी भी अन्य कवि के प्रभाव से अधिक ही पडा है।

अत: स्पष्ट है कि कबीर जैसी प्रखर प्रतिभा और आग किसी अन्य में नहीं पायी जाती।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल,- प्रकाशक- मयूर बुक्स, दरिया गंज, नई दिल्ली
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास- ले. डॉ. फरमान अली (JNU,DELHI)- प्रकाशक.आर. बी डी. पब्लिकेशन्स, जयपुर-नई दिल्ली
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- प्रकाशक. यूनिक टेडर्स, जयपुर।
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास- डॉ. बच्चन सिंह-राधाकृष्ण- प्रकाशक. नई दिल्ली।
5. आरोह-माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर- प्रकाशक-राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मंडल, जयपुर।
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. चातक, प्रो.राजकुमार शर्मा -जयपुर।
7. "कबीर" हजारी प्रसाद द्विवेदी- राजकमल प्रकाशन।
8. कबीर ग्रंथावली- माता प्रसाद गुप्ता।
9. संत कबीर. डॉ. रामकुमार वर्मा- साहित्य भवन, इलाहबाद।
10. कबीर ग्रंथावली- सं. डॉ. श्याम सुन्दर दास, लोक भारती प्रकाशन।

इक्कीसवीं सदी की कविताः बदलते जीवन मूल्य

डॉ० विश्वप्रभा

हिन्दी विभागाध्यक्ष, डी.ए.वी. कॉलेज फॉर गर्ल्ज़, यमुनानगर

कविता हृदय का स्पंदन है, सृजन है, नित्य और नूतन है। यह अपने समय और समाज की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। यह कोई यंत्रीकृत परियोजना कार्य (प्रोजेक्ट) नहीं है, जिसे तकनीकी सहायता से वातानुकूलित कमरे में डनलपी गद्दे पर बैठकर समय और समाज की स्थितियों, परिस्थितियों एवं विचार शक्ति से परे होकर पूर्ण किया जा सके। कविता का आधार जीवन है और जीवन समाज का अंग है। इस प्रकार जीवन और समाज की मधु-तिक्त, सुख-दुख और हर्ष-विषादमय संवेदनाएँ ही स्वरों और शब्दों में आकार ग्रहण कर कविता बनती है। कविता समाज की धड़कन को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करती है। सामाजिक कुरीतियों, विकृतियों, शासन की भ्रष्ट नीतियों का मुखर विरोध करती है। बदलते हुए जीवन मूल्यों का आईना होती है कविता।

इक्कसवीं सदी की कविता आदिकाल के भाट-चरणों के स्तुति, गान और अतिशयोक्ति प्रलाप की भांति नहीं है। यह भक्तिकाल की शरणागत त्राहिमाम की आर्तपुकार भी नहीं है। यह रीतिकाल के सुबाला और प्याला के वर्णन मात्र पर नहीं रूकती। न ही नवजागरण की प्रखर राष्ट्रवादी चेतना या द्विवेदी युग की पौराणिकता ही इक्कीसवीं सदी में परिलक्षित होती है। छायावादी वैयक्तिक राग-विराग या रहस्यावादिता, प्रगतिवादी क्रांति का गर्जन तर्जन या शिल्प के धरातल पर अज्ञेय की परिवर्तनशीलता है न ही इसमें नई कविता या समकालीन कविता का अलगाव, अजनबीपन निराशा एवं कुंठा का व्यथित एवं भयभीत स्वर है। बल्कि आज की कविता जितनी प्रगतिशील जनतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष है, पहले की कविता ऐसी कभी नहीं रही। आज के कवि के तेवर पहले से ज्यादा तीखे है। बीसवीं सदी पाश्चात्य के जय की सदी थी तो इक्कीसवीं सदी पौरवात्य के विजयश्री का वरण करने जा रही है।

रमाकांत शर्मा के शब्दों में कहें तो -"निश्चय ही हमारा समय दारुण चुनौतियों का समय है। मूल्य-परिवर्तन से उत्पन्न संकट का समय है। संबंधों के बदलाव और उनके खोते जाने का समय है। धर्म और राजनीति तथा राजनीति और अपराध की विकृत सांठ-गांठ का समय है। इस समय को समकालीन कवियों ने 'अजब समय', 'क्रूर समय', 'गैर मामूली समय', 'तंत्र की गिरफ्त का समय', 'विघटन विगलन का समय' और असह्य समय कहा है।" ऐसे समय में जब समाज की व्यवस्था तार-तार हो रही हो, मूल्यों का ह्रास हो रहा हो, नीतियों का क्षरण हो रहा हो तो रचना और रचनाकार दोनों का दायित्व बढ़ जाता है।

श्री अशोक वाजपेयी, लीलाधर जगूड़ी, हेमंत कुकरेती, मंगलेश डबराल, कैलाश वाजपेयी, आलोक धन्वा, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, विष्णु खरे इत्यादि एवं इनके साथी अनेक समकालीन कवि इस समय की इसी पुकार को अपने शब्द दे रहे है। युवा कवि पंकज सिंह, नीलेश रघुवंशी, एकांत श्रीवास्तव, उदय प्रकाश, कुमार अम्बुज, निलय उपाध्याय एवं मलय पवन एवं ज्ञानेन्द्र पति आदि युवा कवि वायवी कविता से दूर समाज के यथार्थ धरातल पर कविता का सर्जन कर रहे हैं। महिला कवयित्रियां कात्यायनी, अनामिका, निर्मला पुतुल, सविता सिंह, अमिता प्रजापति, सारा शगुफ़्ता इत्यादि नारी अस्मिता से जुड़े प्रश्नों एवं स्त्री के जीवन मूल्यों एवं दायित्व बोध को यथोचित प्रकट कर रही हैं तो दलित साहित्य के काव्य में ओमप्रकाश बाल्मीकि, सुरेशचंद्र, कंवल भारती, जयंत परमार एवं जयप्रकाश कर्दम आदि अपनी कविताओं में वंचितों के आक्रोश को रेखाकिंत कर रहे हैं।

आज कविता हृदय नहीं बुद्धि का विषय बन गई है। आज कविता वैचारिक है। यह भावुकता या कल्पना प्रियता के स्थान पर तत्कालिक मुद्दों पर सार्थक बहस करती है। यह सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं नैतिक नियमों आदि पर प्रश्नाकुल

दृष्टि से देखती है। वहीं बाज़ारीकरण और उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के प्रति नफरत प्रकट करती है तो साथ ही भ्रष्टाचारी, दुराचारी, आतंकवादी गतिविधियों का विरोध कर जीवन मूल्यों की रक्षा का सराहनीय कार्य भी करती है।

जब हम किसी निश्चित युग की संवेदना से प्रतिभिज्ञान करते हैं तो निश्चित ही उस युग की तत्कालीन घटनाओं, परिस्थितियों और युग को प्रभावित करने वाले तत्वों के बोध के धरातल पर उतरते हें। कवि राजेश जोशी इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में भ्रष्टाचार पर प्रहार करते हुए कहते हैं –

"गांधी जी के सिर पर एक कौआ बैठा है
शाम के धुँधुलके में मूर्ति का रंग
और कौवे का रंग इतना एक-सा है
कि कौवा मूर्ति का ही हिस्सा लग रहा है।"

यह कौआ संसद से लेकर सड़क तक उपस्थित है। सत्य, न्याय, निष्ठा, त्याग, बलिदान सब गुजरे जमाने की बात हो गई है। भ्रष्टाचार का ऐसा मायाजाल जिसमें सत्य और असत्य को पहचानना मुश्किल हो गया है। गांधी जी का कौआ अर्थात् आज के शासक वर्ग जिसका न कोई सिद्धान्त है न नीति। बस छल-कपट और येन केन प्रकारेण संसद तक पहुंच जनता को लूटना ही ध्येय है।

21वीं सदी के समय देश में बदलते जीवन मूल्यों में राजनीति ने अनेक समस्याओ को जन्म दिया है। संविधान के द्वारा जिस प्रजातंत्र को सर्वोपरि व्यवस्था के रूप में स्वीकारा वह राजतंत्र हो गया किन्तु प्रजातंत्र के नाम पर जनता को गुमराह कर वोट बटोरने का सिलसिला चलता चला आ रहा है। सच मायने में कहें तो राजनीति का नीति से दूर का संबंध भी नहीं बचा है। इसलिए सत्तासीन होते ही अपने और अपने वंश के कल्याण में वे व्यस्त हो जाते है। कैलाश वाजपेयी की ये पंक्तियां जनता की साक्षात तस्वीर उपस्थित करती है।

"मैं आपके मतभेद से पूरी तरह सहमत हूं
नाम वाम पूछकर क्या करेंगे
बलि का बकरा हूं मैं जनमत हूं "

वैश्वीकरण या भूमंडीकरण से बड़ा तीव्र प्रभाव समाज, शिक्षा, अर्थ, संस्कृति, विज्ञान, धर्म, और सभ्यता पर पड़ता है। 21वीं सदी के सतासीन के पास विश्व बैंक के ऋण के रूप में करोड़ों रूपये आ रहे है। यह राजनितिज्ञ पहले की तरह न तो निर्धन है और न ही विवश। सूचना प्रौद्योगिकी से देश के सम्पूर्ण विकास के लिए नये-नये साधनों का प्रयोग तो हो रहा है किन्तु देश का विकास नहीं हो रहा। कैलाश वाजपेयी के शब्दों में –

"कुछ दिन हुए
मेरे ज़मीर का अवसान हो गया
राजनीति नामक वेश्या, कोठे से उतर कर
आ लेटी, धर्म, अर्थशास्त्र के गुलकंद पलंग पर
जीवन शैली ही बदल गयी समाज की।

इस कविता में कवि इक्कीसवीं सदी की राजनीति में व्याप्त अत्यन्त हेयता और उससे उत्पन्न भयंकर दुष्परिणामों को संप्रेषित करता है।

इक्कीसवीं सदी का आरम्भ बाजारवाद से होता है। नयी तकनीकों के कारण उत्पादन पहले से कई गुणा बढ़ गया तो उसे बेचने की समस्या खड़ी हो गई। इस समस्या के समाधान के रूप में बाजारवाद के अनुयायियों द्वारा पहले तो भड़काऊ विज्ञापनों के द्वारा क्रेता के मन में उत्पाद खरीदने की लालसा पैदा की गई तथा दूसरा क्रेता को ऋण देकर उत्पादन खरीदने के लिए तैयार किया। जहां पहले समाज में कर्जदार को कहीं न कहीं हेय प्राणी समझा जाता था, लेकिन अब बाजारवाद ने उस सोच को भी बदल डाला जहां पहले कर्जदार को कर्ज लेने की विवशता और समाज के उसके प्रति हेयता बोध के कारण नींद न आती थी। लीलाधर जगूड़ी की ये पंक्तियां मनुष्य की परिवर्तित मन:स्थिति को दिखाती हैं।

"अब वह सोचने लगा,
नींद कैसे आती होगी उसे।
कई बार कुछ न कर सकने की झपकियों से जागकर
अपने उंघते सम्बन्धों को अनिद्रा तक पहुंचाते हुए
सोचता रहा कर्ज़ पाने से ही वापस आ जायेगी मेरी नींद
आंखों में शांति की नींव डालते हुए।"

स्पष्ट है कि आज समाज के मन से स्वावलम्बन प्रस्थान कर चुका है उसमें पराधीनता घर कर गई है। जिसके कारण अनेक जघन्य परिणाम निकलते है। स्वाभाविक सी बात है कि जब हाथ पसारने वाला निश्चिंत हो जाता है, तब उसका पतन अवश्यंभावी है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के ब्रांड बनाने वाली मानसिकता मीडिया के मायाजाल और देहवादी समर्पणशील संस्कृति पर भी कवि चोट करता है। अर्थप्रधान इस युग में सारे मूल्य, विचार, नियम, सिद्धान्तहीन हो गए हे। इज्जत बेचकर भी फ़लता और मुनफ़ा कमाने में आज के युवा को गुरेज नहीं। कुमार अंबुज की चिन्ता इन शब्दों में प्रकट हुई है।

"एक सरीखा धोखा है, एक जैसे अश्वमेघ
एक सा आनंद, एक सी सुरंग
विज्ञापन एक ही लालच से, लस लस
कैमरे के पीदे एक जैसी आंख
आत्मसमर्पण का एक जैसा समारोह।"

भौतिकतावाद की चकाचौंध यूं तो समूचे समाज पर है परन्तु युवा पीढ़ी पर इस चौंधियाहट का असर सबसे अधिक दृष्टिगोचर हो रहा है। सुरेश शर्मा के शब्दों में –

"यह किस मायावी सुरंग में आ गये हम
चकाचौंध के किस तिलस्म में गुम हो रहे बच्चे
कौन टकसालों में गिरवी रखा जा रहा बचपन
और किस सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में उतर गई
हमारी सारी बालाएं।"

सच में इस समस्या का अन्त कहीं दिखाई नहीं देता। जहां युवा पीढ़ी के रास्ते की भयावहता की ओर संकेत है वहीं मर्यादा और शीलच्युत होकर बालाएं सौंदर्य प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए उत्कण्ठित है। आज युवा पीढ़ी का भविष्य धूमिल होता दिखाई देता है।

जनता अब धार्मिक अंधविश्वास और धर्म के जेहादी पाश से बंधी दुनिया इस सब से बाहर आना चाहती है। धर्म के ठेकेदारों कठमुल्लों से उसका विश्वास उठ गया है। अपनी कविता दुष्चक्र में सृष्टा में कवि वीरेन डंगवाल ईश्वर से यह प्रश्न करते हैं कि

"प्रार्थनाग्रह जरूर उठाए गए एक से एक आलीशान,
मगर भीतर चिने हुए गारे से
खोखले, आत्महीन शिखर-गुम्बद बीमार
ऊंगली से छूते ही जिन्हें रिस आता है खून !
आखिर यह किनके हाथ सौंप दिया है ईश्वर
तुमने इतना बड़ा कारोबार।"

धार्मिक उन्माद के समक्ष कभी-कभी सर्जना की शक्ति भी क्षीण होती प्रतीत होती है। आज समय आदर्शहीन, मनुष्य मूल्यहीन, शासन सिद्धान्तहीन और जनता कर्तव्यहीन हो गई प्रतीत होती है। समाज के धर्म के नीति और शासन के नियामक ही पतित हो रहे हैं। संयम निष्ठा और त्याग के बंधन टूट रहे हैं। यह राजनीति, समाजनीति और धर्म नीति का स्खलन भविष्य के लिए खतरा है।

आज कविता समय और समाज के मूल्यों को नष्ट करने वाले तत्वों से टकरा रही है एवं मानव जाति का अर्धांग नारी के दुख-दर्द, पीड़ा एवं दुर्दशा को भी चित्रित कर रही है। भले ही मूल्य बदल रहे है लेकिन आज भी कविता मानवता के दुश्मनों को ललकार कर, जनता को जगाकर कह रही है ज्ञानेन्द्र पति के शब्दों में देखें -

"सृजन और शांति के लिए
कसना होगा मानव-समुदायों को
युद्ध और विनाश की तिजारत के विरूद्ध
मौत के आढ़तियों की दुकानों के शटर
गिराने होंगे जनमत के बल से।"

कहना न होगा कविता समय-समय पर मानवता की जय का उद्घोष और मनुष्य में आत्मबल का संचार करती रहेगी।

21वीं सदी के 9 वर्ष बीते हैं पर इनमें पर्याप्त कविता लिखी गई है। इस कवि के द्वारा समसामयिक मानवीय तत्वों की जटिलता को संप्रेषित करने का प्रयास कर सारग्राही जीवन मूल्यों की रक्षा का सुष्ठु प्रयास भी दृष्टव्य है।

संदर्भ

राजेश जोशी- चांद की वर्तनी, पृ. 73, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006।
लीलाधर जगूड़ी- खबर का मुंह विज्ञापन से ढका है, पृ. 40, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण, 2002।
वीरेन उंगवाल- दुष्चक्र में सृष्टा, पृ. 24, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002।
ज्ञानेद्रपति- अधरात घास-गंध, पृ. 116, संशयात्मा काव्य संग्रह, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2004।
कुमार अम्बुज- मानकीकरण कविता, पृ. 60, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2002।
रमाकांत शर्मा- सेतुपत्रिका, कविता विशेषांक-10, संपादक: देवेन्द्र गुप्त, जनवरी-जून।
कैलाश वाजपेयी- बलिप्रसंग कविता, पृ. 63, हवा में हस्ताक्षर संग्रह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
लीलाधर जगूड़ी- कर्ज के बाद नींद कविता, पृ. 22, साक्षात्कार 295 जुलाई 2004, भोपाल।
सुरेश शर्मा- जीवन बचा रहता है तब कविता, पृ. 31, साक्षात्कार 273, सितम्बर 2002।
वहीं, सच के जुर्म में कविता, पृ. 30।
प्रो. सरिता वाशिष्ट- हिन्दी साहित्य वर्तमान दशक, कल्पना प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2011

नागार्जुन के गद्य साहित्य में सामाजिक जनतांत्रिक पृष्ठभूमि: एक वैचारिक परिप्रेक्ष्य

डॉ० हेमन्त पाल घृतलहरे

सहायक प्राध्यापक - हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय सनावल, जिला - बलरामपुर-रामानुजगंज (छ. ग.)

शोधसार

नागार्जुन ग्रामीण समाज की गाथा के गायक हैं। उनके साहित्य की कथा भूमि अधिकांशत: ग्रामीण परिवेश पर आधारित रही है, इसलिए उन्होंने गाँव के निम्नवर्गीय पात्रों को अपने उपन्यासों में विशेष स्थान दिया है। इसके साथ ही साथ शोषण करने वाली ताकतों का यथार्थ चित्रण इस प्रकार किया है कि उनके मुखौटे देश और समाज के सामने बेनकाब हो गए। नागार्जुन ने अपने गद्य साहित्य में ग्रामीण समाज की समस्याओं को उभारने के साथ-साथ समाजवादी नजरिए से उन समस्याओं का हल भी प्रस्तुत किया हैं। यह बात सही है कि नागार्जुन प्रेमचंद की परम्परा के लेखक हैं परन्तु एक ओर जहाँ प्रेमचंद अपने कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन की समस्यायों को उठाते हुए बिना कोई समाधान प्रस्तुत किए ही पाठकों के माध्यम से अनेक समाधान सुरक्षित रखते हैं वहीं दूसरी ओर नागार्जुन के गद्य-साहित्य में समस्यायों का समाधान निश्चित रूप से परिलक्षित होता हैं। नागार्जुन सर्वहारा वर्ग के लेखक हैं। उनके साहित्य में जनतांत्रिक चेतनाएं सम्मिलित हैं। नागार्जुन के गद्य साहित्य में भारतीय समाज के सताए हुए लोगों, दलितों, किसानों, मजदूरों, शोषितों, पतितों, नारियों, बाल मजदूरों, विधवाओं आदि की पीड़ा को सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। यह वह लोग हैं जिन पर लोग बात तक करने से भी कतराते हैं। एक जनतांत्रिक लेखक के लिए हाशिये के लोगों की समस्याओं को नजरअंदाज करना बिल्कुल भी संभव नहीं है। इस प्रकार नागार्जुन के साहित्य में सामाजिक पृष्ठभूमि अपनी चरम सीमा के रूप में अभिव्यक्त हुई है।

शब्द कुंजी:- नागार्जुन, गद्य साहित्य, सामाजिक, जनतांत्रिक, पृष्ठभूमि, वैचारिक परिप्रेक्ष्य।

आलेख प्रस्तुति

समाज व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों की एक व्यवस्था है। इसलिए इसका कोई मूर्त रूप नहीं होता। इसकी अवधारणा अनुभूतिमूलक है। पर उसके सदस्यों में एक दूसरे की सत्ता और अस्तित्व की प्रतीति होती है। ज्ञान और प्रतीति के अभाव में सामाजिक संबंधों का विकास संभव नहीं है। पारस्परिक सहयोग एवं संबंध का आधार परस्पर समभाव और सम्मान होता है। जो समाजिक पृष्ठभूमि को तैयार करता है। समाज व्यक्तियों का समुच्चय है। यह विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न समूहों में विभक्त है। अत: मानव मन और समूह जन की गतिशीलता उसे निरंतर प्रभावित करती रहती है। परिणामस्वरूप समाज परिवर्तनशील होता है। समाज की यह गतिशीलता ही उसके विकास का मूल है।

समाज और जनतंत्र के संबंधों के विभिन्न स्तर और आयाम का अवधारणात्मक अध्ययन और मानव संबंध के विभिन्न परिप्रेक्ष्य में उनका समग्र विवेचन आज के साहित्य विमर्श की अनिवार्य जरूरतों में से एक है। समाज शास्त्र में परिभाषित समाज और साहित्य में गृहीत समाज के अर्थबोध के एक बुनियादी अंतर को सहज ही लक्षित किया जा सकता है। साहित्य में गृहीत समाज का आशय इतना व्यापक होता है कि उसकी सीमा में विश्व की संपूर्ण मानव आबादी ही नहीं अपितु सारे चर-अचर, गोचर- अगोचर, चेतन-अचेतन आदि आसानी से समाहित हो जाते है। साहित्य के समाज से बाहर कुछ भी नहीं होता है। मनुष्य के सुख-दुख, हर्ष उल्लास में नदी-सागर, पशु-पक्षी, ताल-तलैया सभी शामिल होते हैं। सभी मनुष्य की भाषा और संवेदना में सहज शामिल होकर संवाद की सार्थक संभावनाएँ रचते हैं।

जनतांत्रिक चेतना का स्वरूप

नागार्जुन के गद्य-साहित्य में उस समाज का चित्रण मिलता है जिसमें सामन्तशाही जमींदार वर्ग उस कर्मठ, जुझारू और संघर्षी वर्ग का खून चूस रहा है जो अपनी मेहनत और सेवा से इस वर्ग को खुशहाल करता है। किन्तु जब उन्हें अपनी मेहनत का उतना भी पारितोषिक नहीं मिल पाता जिससे उनके परिवार का पेट भर सके तो उनमें आक्रोश और विद्रोह का भाव पनपता है। क्या जनतांत्रिक व्यवस्था वाले समाज में ऐसा होना स्वाभाविक है? बाबा बटेसरनाथ और बलचनमा उपन्यास में दरअसल इसी आक्रोश का अवलोकन करते है। देखा जाये तो यह एक प्रकार से नागार्जुन का ही समाज-व्यवस्था के प्रति आक्रोश है।

बाबा बटेसरनाथ उपन्यास में जीवनाथ और जैकिशुन आदि ने अच्छी तरह समझ लिया है-"सिर्फ अदालत के भरोसे इन दुष्टों से छुटकारा नहीं मिलेगा गाँव को, जन बल को अच्छी तरह संगठित कर लेना चाहिए"।

साहित्यकार बहुधा अपने देश-काल की परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है। नागार्जुन ऐसे ही कथाकार है जो देश की तत्कालीन परिस्थितियों से गहरे रूप में जुड़े हुए हैं।

नागार्जुन प्रगतिशील विचारों के वाहक हैं। नागार्जुन के कथा-साहित्य में यह विचार धारा दो रूपों में प्रतिफलित दिखाई पड़ती है। सामाजिक विचार के अन्तर्गत शोषित वर्ग का समर्थन, नारी स्वाधीनता, रूढ़ियों, पाखण्डों, ग्रामीण नव निर्माण तथा युवा वर्ग में विश्वास आदि के द्वारा नागार्जुन ने प्रगतिशील जनतांत्रिक विचारों का परिचय दिया है, वहीं राजनीतिक जनतांत्रिक विचार के अन्तर्गत भ्रष्टाचार तथा प्रशासनतंत्र पर प्रहार भी किया है। विचारों के इन दोनों रूपों द्वारा नागार्जुन जिस लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ते हैं वह है नयी जनवादी समाज व्यवस्था की स्थापना है।

नागार्जुन ने जनवादी और समाजवादी विचारों से संबंद्ध होकर कथा- साहित्य का निर्माण किया है। उनका कथा साहित्य बहुधा ग्रामीण धरातल से जुड़ा रहा है। उनके कथा साहित्य में मुख्य रूप से जिन जनतांत्रिक चेतना के स्वरूप की अभिव्यक्ति हुई है वे हैं:-सामाजिक चेतना, राजनीतिक जनतांत्रिक चेतना, आर्थिक जनतांत्रिक चेतना एवं धार्मिक जनतांत्रिक चेतना।

सामाजिक चेतना

नई पौध उपन्यास में नागार्जुन ने मिथिलांचल के नौगछिया गाँव के नवयुवकों में उभरती हुई जनतांत्रिक चेतना का यथार्थवादी दृष्टि से चित्रण किया है। बलचनमा की तरह यह उपन्यास भी प्रेमचंद की परम्परा से जुड़ा हुआ है, पर यहाँ पर भी नागार्जुन प्रेमचंद की परम्परा से आगे निकल गए हैं। प्रेमचंद के 'निर्मला' उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्या आई है लेकिन उसका समाधान नहीं बताया गया है। लेकिन नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'नई पौध' में अनमेल विवाह की समस्या उठाते हुए इस समस्या के विरोध में गाँव की नई पीढ़ी में जनतांत्रिक चेतना का स्वर फूँका, जिसके कारण एक नारी के अनमेल विवाह को रोक दिया गया। अत: हम नवयुवकों में जनतांत्रिक चेतना भर कर इस समस्या का हल निकाल सकते हैं। इस प्रकार इस उपन्यास में नागार्जुन की सामाजिक जनतांत्रिक चेतना के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

राजनीतिक जनतांत्रिक चेतना

नागार्जुन एक गहरी राजनीतिक चेतना के लेखक रहे है। उनके लिए राजनीति का अर्थ है सम्पूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए लड़ाई, सत्ता का जूस पीना या नोट से वोट हासिल करना नहीं। उनके लिए दल-निर्देश से अधिक महत्वपूर्ण है आम जन की राजनीतिक आकांक्षा। वे शुरु से ही अभिव्यक्ति की आजादी के पैरोकार रहे हैं। 'बाबा बटेसरनाथ' नामक उपन्यास में ईस्ट इण्डिया कंपनी की स्थापना से लेकर, गोरों के अत्याचार, जमींदारी उन्मूलन, गाँधीजी का असहयोग आन्दोलन, नमक कानून, नागपुर झंडा सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन, चौरी-चौरा काण्ड, गोलमेज कान्फ्रेन्स, गाँधी इर्विन समझौता, व्यक्तिगत सत्याग्रह आदि प्रमुख घटनाओं का उन्होंने वर्णन किया है।

जनतांत्रिक व्यवस्था में जनता के हितार्थ जनता द्वारा संचालित सत्ता होती है। जनता की सर्वांगीण उन्नति करना ही इस प्रणाली का उद्देश्य होता है। लेकिन आज हमारा जनतंत्र कुछ गिने-चुने पूँजीपतियों के हाथों कठपुतली बनकर रह गया है। यही कारण है कि भारत के जनमानस में इस जनतंत्र को लेकर कई सवाल तथा संदेह उत्पन्न हैं? जनता समझ नहीं पा रही है कि शासक देशी

है या वही विदेशी? स्वतंत्र भारत में स्थापित पूँजीवादी जनवादी सत्ता की इस असलियत का पर्दाफाश करते हुए अपनी शरामराजश शीर्षक कविता में नागार्जुन लिखते हैं-

"खादी ने मलमल से अपनी साँठ-गाँठ कर डाली है,
बिड़ला-टाटा-डालमिया की तीसों दिन दिवाली है।
जोर जुलुम की आँधी चलती बोल नहीं कुछ सकते हो
समझ न पाता हूँ कि हुकूमत गोरी है या काली है"

स्पष्ट है कि स्वतंत्रता के बाद भले ही हमने राजनीतिक रूप से जनतांत्रिक प्रणाली को अपनाया हो परन्तु वास्तव में विदेशी पूँजीपतियों की जगह देशी पूंजीपतियों ने ही बागडोर संभाली।

नागार्जुन कभी भी किसी खास राजनीतिक दल के पिछलग्गू नहीं रहे। नागार्जुन की प्रतिबद्धता आम जनता के प्रति थी, किसी दल के लिए नहीं। नागार्जुन आम जन के लिए सिर्फ अपनी रचनाओं में ही चिन्तित नहीं थे। वे प्रत्यक्ष संघर्ष में भी कूद पड़े थे।

आर्थिक जनतांत्रिक चेतना

नागार्जुन सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र की तरह आर्थिक क्षेत्र में भी स्वाधीनता चाहते हैं। आर्थिक असंतुलन विभिन्न विषमताओं को जन्म देता है और आर्थिक विषमता समाज और मानव-जीवन को अस्त-व्यस्त बनाती है। अतः समाज में अर्थ संघर्ष की प्रक्रिया शाश्वत है। आर्थिक विषमता की खाई में पिसता हुआ नागार्जुन की उपन्यास 'बलचनमा' में बलचनमा कहता है-

"गरीबी नरक है भैया, नरक। चावल के चार दाने छोड़कर बहेलिया जैसे चिड़ियों को फँसाता है, उसी तरह ये दौलतवाले गरजमंद औरतों को परपंच में फँसा मारते हैं।" "आधुनिक जीवन की प्रमुख जटिलताएँ अर्थमूलक है। संतुलित अर्थ-व्यवस्था जन जीवन का प्रमुख आधार होती है।

नागार्जुन के गद्य साहित्य में आर्थिक क्षेत्र में जनतांत्रिक चेतना उनके पात्रों के माध्यम से लक्षित होती है। आर्थिक दृष्टि से दबाए गए लोग नागार्जुन की संवेदना के विषय है। उनके प्रति नागार्जुन की प्रतिबद्धता है। वे उनके प्रमुख पक्षधर हैं। उनकी यह पक्षधरता 'बलचनमा', 'वरुण के बेटे' 'बाबा बटेसरनाथ', गरीबदास आदि उपन्यासों में दिखाई देती है। जनतांत्रिक मूल्यों के आग्रह से समाज के पिछड़े वर्गों के प्रति सहानुभूति के दृष्टिकोण का निर्माण तभी होता है जब समाज में परिश्रम के आधार पर जीविकापार्जन करने वालों की संख्या का बाहुल्य हो तथा उन्हें मान्यता प्राप्त हो।

धार्मिक जनतांत्रिक चेतना-

नागार्जुन की जनतांत्रिक सोच धार्मिक क्षेत्रों में भी रही है। धर्म का आधुनिक कालीन स्वरुप नागार्जुन जैसे चिंतक की नजर से छूटना संभव नहीं था। वे स्वयं एक कर्मठ मैथिल ब्राह्मण परिवार में जन्में थे। उस नाते कर्मकांड की व्यर्थता उन्हें ज्ञात थी। जनतांत्रिक और प्रगतिशील विचारक के नाते उन्होंने उस कर्मकांड की व्यर्थता को व्यक्त करने की लेखकीय ईमानदारी दिखाई है।

'जमनिया का बाबा' यह पूरा उपन्यास ही धार्मिक यथार्थ, धार्मिक समस्याओं पर केन्द्रित है। इस उपन्यास में हिंदू धर्म पर बड़ी सटीक टिप्पणी करते हुए नागार्जुन ने लिखा है-"मेरी यह पक्की राय है कि हिन्दुओं जैसी लचकीली तबीयत और किसी जाति को नसीब न हुई। नेक, रहमदिल, सहनशील, हिंदू-समाज बरगद का यह बूढ़ा झमाटदार पेड़ है, जिसकी टहनियों से हजारों चमगादड़ लटके रहते हैं, जिसकी छाया में हाथी और ऊँट और बैल साथ-साथ जुगाली करते हैं। कुत्ते, गधे, कछुए सब की गुंजाइश रहती है। उनसे अलग न रहो, उनमें घुल-मिलकर रहो फिर देखो कि तुम पर सर्वस्व निछावर करते है।" हिन्दुओं की इस अंधश्रद्धाओं के कारण ही उसी धर्म के स्वार्थी लोग जनता का शोषण करते हैं। उनकी श्रद्धाओं का गलत लाभ उठाते हैं।

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में तारा बाबा नामक पात्र है, जो चित्र-विचित्र चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध है। जैसे मरी गाय को जीवित कर देना, चोर को घर में अटकाना आदि। शबाबा बटेसरनाथश उपन्यास में भी नागार्जुन ने चमत्कारों की व्यर्थता एवं अंधश्रद्धाओं का खुलकर चित्रण किया है।

नागार्जुन वैज्ञानिक दृष्टि रखने वाले जनतांत्रिक रचनाकार है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा रूढ़ि-परम्परा, अंधश्रद्धा, धार्मिक शोषण आदि का विस्तार से वर्णन किया है। नागार्जुन का दृष्टिकोण यह हैं कि शोषक-वर्ग अपनी शोषण की नीति को बनाए रखने

के लिए ईश्वर, रूढ़ि, अंधविश्वास को कायम रखना चाहते है। इनका सहारा लेकर वे शोषण एवं लूट करते हैं। नागार्जुन के अनुसार यह शोषक वर्ग की एक साजिश है।

निष्कर्ष

अंततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि नागार्जुन संघर्षो के सामने न थके, न झुके बल्कि हमेशा डटे रहें। वे जीवन पर्यन्त अपने साहित्य एवं श्रम द्वारा कराहती मानवता की सेवा करते रहे। वे निरन्तर सच्चाई के लिए लड़ते रहे। नागार्जुन किसी शास्त्रीय, विचारधारा के खूंटे से बँधकर नहीं रह पाए। नागार्जुन का रचना कर्म कभी रूका नहीं, कभी चुका नहीं, अंतिम साँस तक चलता रहा।

नागार्जुन के गद्य-साहित्य में जनतांत्रिक चेतना की सभी प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं। उनके गद्य-साहित्य के केन्द्र में सामान्य जन है और उनके जीवन की त्रासदी को सूक्ष्मता से देखने का प्रयत्न किया गया है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक सभी क्षेत्र में आमजन का शोषण लगातार हो रहा है। इस शोषण और अन्याय का विरोध करना एवं शोषण मुक्त मानवीय भावनाओं से युक्त समाज का निर्माण करना ही जनतांत्रिक रचनाकार नागार्जुन का उद्देश्य है। नागार्जुन को जन शक्ति में विश्वास है, अतः वे स्पष्ट कह देते हैं कि अन्याय के विरुद्ध शोषित वर्ग को संगठित होकर आवाज उठाना आवश्यक है। इसके लिए उनके पात्र विभिन्न समस्याओं से घिरे होकर भी घबराते नहीं है, अपनी जिजीविषा को छोड़ते नहीं है और वे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक शोषण का विरोध करते हैं। नागार्जुन सच्चे अथों में जनतांत्रिक लेखक है और वे सदैव आम आदमी के पक्ष में रहकर उनको शोषण से मुक्त करना चाहते हैं। नागार्जुन का साहित्य जन के हित में जन के लिए लिखा गया साहित्य है। अतः उनके गद्य साहित्य में जनतांत्रिक चेतना की संपूर्ण प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दीपक प्रसाद त्यागी- 'स्वातंत्र्योतर हिंदी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास, डी. लिट. शोध प्रबंध, इलाहाबाद विश्व विद्यालय
2. (डॉ.) सुमित्रा त्यागी,- 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य में जीवन-दर्शन, साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करणः 1978
3. (डॉ.) अजय तिवारी- 'नागार्जुन की कविता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करणः 2005
4. रामचन्द्र तिवारी,- 'हिंदी का गद्य साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करणः 1992
5. अक्षय रमनलाल देसाई,- 'रुरल सोशियोलॉजी इन इण्डिया', पापुलर प्रकाशन, बम्बई, संस्करणः 1959
6. (डॉ.) सुषमा धवन,- 'हिंदी उपन्यास', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करणः 1969
7. नागार्जुनः मेरे साक्षात्कार, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994
8. मैनेजर पाण्डेय,- 'संकलित निबंध' नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, संस्करण 2008

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की जीविका वरीयता का अध्ययन

सचिन मौर्य

शोधार्थी, बयालसी महाविद्यालय, जलालपुर, जौनपुर

डॉ० बृजेश कुमार मिश्रा

एसोसिएट प्रोफेसर, बयालसी महाविद्यालय, जलालपुर, जौनपुर

सारांश- प्रस्तुत शोध में स्नातक स्तर पर अध्ययनरत कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की जीविका वरीयता के विभिन्न क्षेत्रों यथा-जनसंचार एवं पत्रकारिता, कलात्मक एवं डिजाइनिंग, विज्ञान एवं तकनीकी, कृषि, वाणिज्य एवं प्रबंधन, चिकित्सा, रक्षा, पर्यटन एवं आतिथ्य, कानून एवं व्यवस्था तथा शिक्षा क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन किया गया। आंकड़ों के संग्रहण के लिए विवेक भार्गव एवं राजश्री भार्गव द्वारा निर्मित जीविका वरीयता रिकार्ड का प्रयोग किया गया। प्रस्तुत शोध में वाराणसी मण्डल के कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग में अध्ययनरत स्नातक स्तर के 300 विद्यार्थियों को प्रतिदर्श के रूप में सम्मिलित किया जिसमें 150 कला वर्ग एवं 150 वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थी सम्मिलित किए गए। आंकड़ों के विश्लेषण के लिए टी-टेस्ट, मानक विचलन एवं माध्य का प्रयोग किया गया जिसके परिणामस्वरूप स्नातक स्तर पर अध्ययनरत कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की वाणिज्य एवं प्रबंधन क्षेत्र तथा रक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया जबकि जनसंचार एवं पत्रकारिता, विज्ञान एवं तकनीकी, कृषि, कलात्मक एवं डिजाइनिंग, चिकित्सा, पर्यटन एवं आतिथ्य, कानून एवं व्यवस्था तथा शिक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

प्रस्तावना- शिक्षा व्यक्तित्व के सभी पक्षों शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं सामाजिक के सर्वांगीण विकास का माध्यम है। उचित शिक्षा के अभाव में व्यक्तित्व का उचित विकास संभव नहीं है। वर्तमान प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में केवल ज्ञान देने पर ही जोर दिया जाता है, विषयों से सम्बन्धित ज्ञान के विकास पर ध्यान नहीं दिया जाता जिस कारण बुद्धि का सही ढंग से विकास नहीं हो पाता। स्नातक स्तर पर कला, विज्ञान व वाणिज्य अकादमिक वर्गोके अधिकतर छात्र स्नातक के उपरान्त ही अपनी जीविका चलाने के लिए नौकरी के अवसर की तलाश करते है। कैरियर वरीयता का तात्पर्य उपलब्ध अवसरों या नौकरी मे से किसी एक अवसर या नौकरी के चुनने से है। एक अन्य अर्थ में, कैरियर का तात्पर्य एक नौकरी प्राप्त करके सेवानिवृत्ति होने तक कार्य करते रहना है। परन्तु वास्तव में कैरियर वरीयता का तात्पर्य अपनी बुद्धि, रुचि एवं क्षमताओं के अनुसार एक उचित विकल्प का चुनाव है अतः यह आवश्यक है कि कला, विज्ञान व वाणिज्य वर्गों के अलग-अलग उपलब्ध अवसरों के अनुसार एवं छात्रों की क्षमताओं के अनुरुप ही मार्गदर्शन प्रदान किया जाए।

अध्ययन का उद्देश्य-

स्नातक स्तर पर अध्ययनरत कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की जीविका वरीयता का तुलनात्मक अध्ययन निम्न क्षेत्रों में करना।

1-जनसंचार एवं पत्रकारिता, 2-कलात्मक एवं डिजाइनिंग, 3-विज्ञान एवं तकनीकी, 4-कृषि, 5-वाणिज्य एवं प्रबंधन, 6-चिकित्सा, 7-रक्षा, 8-पर्यटन एवं आतिथ्य, 9-कानून एवं व्यवस्था 10- शिक्षा

अध्ययन की आवश्यकता- स्नातक के उपरान्त सही कैरियर का चुनाव, बच्चे की बुद्धि एवं रुचि के अनुसार एक कठिन कार्य है। गत वर्षों पूर्व बच्चे अपने पूर्वजों का व्यवसाय अपनाते थे किसान का बेटा किसान, सुनार का बेटा सुनार, बढ़ई का बेटा बढ़ई। परन्तु तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण, पारम्परिक व्यवसायों से जीवन यापन मुश्किल हो गया। उस समय पारम्परिक व्यवसायों के अलावा कोई विकल्प नहीं था परन्तु आज के युवा के पास नौकरियों के अनेक विकल्प हैं परन्तु कुछ को कोई जानकारी नहीं होती और कुछ को आधी अधूरी जानकारी होती है परिणामस्वरुप कुछ नौकरी पाने में असफल रहते हैं और कुछ ऐसी नौकरी चुनते है। जिससे वे असंतुष्ट रहते हैं और निराशा का शिकार हो जाते हैं अतः कला वर्ग में नौकरी के कौन कौन से विकल्प है, विज्ञान वर्ग के विद्यार्थी के लिए किस क्षेत्र में कितने अवसर हैं इन सभी जानकारी के लिए कला, वाणिज्य एवं विज्ञान अकादमिक वर्गों की जीविका वरीयता का अध्ययन आवश्यक है।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन-

1. बत्रा, डा0 हर्ष और नन्दा, डा0 सपना ने अपने अध्ययन ''कैरियर प्रीफेरेन्सेस इन रिलेशन टू लॉजिकल थिंकिंग ऑफ सीनियर सेकेंडरी स्टूडेन्ट" में चंडीगढ़ के उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की जीविका वरीयता के प्रति तार्किक सोच का अध्ययन किया। इन्होनें अपने अध्ययन में दो सरकारी विद्यालयों से 100 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया। आंकड़ों के संग्रहण के लिए यादृच्छिक विधि तथा विवेक भार्गव एवं राजश्री भार्गव दारा निर्मित कैरियर प्रीफेरेन्स रिकार्ड एवं डॉ0 सुजीत कुमार व डॉ0 सिखा तिवारी द्वारा निर्मित तार्किक सोच परीक्षण का प्रयोग किया। इन्होने अपने अध्ययन में निम्न निष्कर्ष प्राप्त किए-
   - अ- छात्र एवं छात्राओं में विज्ञान व तकनीकी क्षेत्र एवं रक्षा क्षेत्रों को छोड़कर कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
   - ब- विज्ञान व तकनीकी क्षेत्र एवं रक्षा क्षेत्र को छात्र, छात्राओं की अपेक्षा अधिक पसन्द करते है।
2. कांडपाल, ज्योति (मई-2016) ने अपने शोध पत्र ''कैरियर प्रीफेरेन्सेस ऑफ मेल एण्ड फीमेल सीनियर स्टूडेन्ट विद स्पेशल रिफरेन्स टू रुरल एण्ड अर्बन एरीयाज ऑफ सिरसा डिस्ट्रिक्ट ऑफ हरियाणा स्टेट" में हरियाणा के सिरसा जिले के माध्यमिक विद्यालयों मे अध्ययनरत विद्यार्थियों का लिंग एवं अधिवास के आधार पर जीविका वरीयता का अध्ययन किया। इन्होनें अपने अध्ययन में दस माध्यमिक विद्यालयों से 200 विद्यार्थियों (100 पुरुष एवं100 महिला) को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया। आंकड़ों के संग्रहण के लिए यादृच्छिक विधि तथा विवेक भार्गव एवं राजश्री भार्गव द्वारा निर्मित कैरियर प्रीफेरेन्स रिकार्ड का प्रयोग किया। इन्होने अपने अध्ययन में निम्न निष्कर्ष प्राप्त किए-
   - अ- छात्र एवं छात्राओं की तुलना में जनसंचार एवं पत्रकारिता, विज्ञान एवं तकनीकी, चिकित्सा, पर्यटन एवं आतिथ्य क्षेत्र की जीविका वरीयता में कोई सार्थक अन्तर नही पाया गया जबकि कलात्मक एवं डिजाइनिंग, कृषि, वाणिज्य एवं प्रबंधन, रक्षा, कानून एवं व्यवस्था एवं शिक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर पाया गया।
   - ब- ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की तुलना में जनसंचार एवं पत्रकारिता, पर्यटन एवं आतिथ्य क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर पाया गया जबकि अन्य क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
3. के., मि. वसील (मई 2019) ने अपने शोध पत्र ''वोकेशनल इन्टेरेस्ट ऑफ सीनियर सेकेण्डरी स्कूल स्टूडेन्ट इन रिलेशन टू दियर स्ट्रीम ऑफ स्टडी" में उच्च माध्यमिक विद्यालयों मे अध्ययनरत विद्यार्थियों की अकादमिक वर्ग के आधार पर व्यावसायिक रुचि का अध्ययन किया। इन्होनें अपने अध्ययन में उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद में स्थित उच्च माध्यमिक विद्यालयों मे अध्ययनरत 208 विद्यार्थियों (104 पुरुष एवं 104 महिला) को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया जिसको कला वर्ग, वाणिज्य वर्ग, विज्ञान वर्ग (मैथ), विज्ञान वर्ग (बायो) में विभक्त किया गया। आंकड़ों के संग्रहण के लिए यादृच्छिक विधि तथा विवेक भार्गव एवं राजश्री भार्गव द्वारा निर्मित कैरियर प्रीफेरेन्स रिकार्ड का प्रयोग किया।

अ. अधिकतर विद्यार्थी जनसंचार एवं पत्रकारिता क्षेत्र के प्रति औसत वरीयता प्रदर्शित करते हैं।

ब. वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थी कलात्मक एवं डिजाइनिंग क्षेत्र के प्रति उच्च वरीयता प्रदर्शित करते है।

स. विज्ञान(बायो वर्ग) के विद्यार्थी चिकित्सा क्षेत्र को अधिक वरीयता प्रदान करते हैं, जबकि विज्ञान (गणित वर्ग), वाणिज्य वर्ग एवं कला वर्ग के विद्यार्थी इस क्षेत्र के प्रति औसत व निम्न वरीयता प्रदान करते हैं।

द. शिक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में विज्ञान वर्ग के छात्रों की रुचि वाणिज्य व मानविकी वर्ग के छात्रों की तुलना में अधिक पायी गई।

य. कानून एवं व्यवस्था क्षेत्र की जीविका वरीयता में वाणिज्य व मानविकी वर्ग के छात्रों की रुचि, विज्ञान वर्ग के छात्रों तुलना में अधिक पायी गई।

र. पर्यटन एवं आतिथ्य क्षेत्र की जीविका वरीयता में वाणिज्य व मानविकी वर्ग के छात्रों की रुचि, विज्ञान वर्ग के छात्रों की तुलना में अधिक पायी गई।

न्यादर्श- न्यादर्श के रूप में वाराणसी मण्डल वर्ग में अध्ययनरत स्नातक स्तर के 300 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया जिसमें 150 कला वर्ग एवं 150 वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया।

उपकरण- आंकड़ों के संग्रहण के लिए विवेक भार्गव एवं राजश्री भार्गव द्वारा निर्मित कैरियर प्रीफेरेन्स रिकार्ड का प्रयोग किया।

परिकल्पनाएँ-

1. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में जनसंचार एवं पत्रकारिता क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में कलात्मक एवं डिजाइनिंग क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।
4. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में कृषि क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।
5. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में वाणिज्य एवं प्रबंधन क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।
6. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में चिकित्सा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।
7. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में रक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।
8. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में पर्यटन एवं आतिथ्य क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।
9. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में कानून एवं व्यवस्था क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।
10. स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में शिक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है।

स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियो कीं जीविका वरीयता का विश्लेषण

शून्य परिकल्पना संख्या-1

''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की जनसंचार एवं पत्रकारिता क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''

तालिका संख्या-1

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ))
कला	150	3.31	.83	.07	1.72	298	.087
वाणिज्य	150	3.16	.71	.06			

विश्लेषण एवं व्याख्या- तालिका संख्या-1 से स्पष्ट है कि टी का मान 1.72 है जो (298) स्वतन्त्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से कम है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट नहीं करता। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की जनसंचार एवं पत्रकारिता क्षेत्र की जीविका वरीयता के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।

अत: शून्य परिकल्पना "स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की जनसंचार एवं पत्रकारिता क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है, .05 सार्थकता स्तर एव (298) स्वतन्त्रांश पर स्वीकृत की जाती है।

शून्य परिकल्पना संख्या-2

"स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की कलात्मक एवं डिजाइनिंग क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है"

तालिका संख्या-2

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ))	
कला	150	3.13	.95	.08	.61	298		.539
वाणिज्य	150	3.07	.92	.08				

विष्लेषण एवं व्याख्या- उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि टी का परिगणित मान 0.61 प्राप्त हुआ जो (298) स्वतन्त्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से कम है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट नही करता इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की कलात्मक एवं डिजाइनिंग क्षेत्र की जीविका वरीयता के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है। अत: शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की कलात्मक एवं डिजाइनिंग क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है", .05 सार्थकता स्तर एवं (298) स्वतन्त्रांश पर स्वीकृत की जाती है।

शून्य परिकल्पना संख्या-3

"स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है"

तालिका संख्या-3

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ)
कला	150	3.07	.92	.07	.19	298	.848
वाणिज्य	150	3.05	.88	.07			

विश्लेषण एवं व्याख्या-

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि टी का परिगणित मान .19 प्राप्त हुआ जो (298) स्वतन्त्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से कम है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट नही करता। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र की जीविका वरीयता के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है। अत: शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है'' .05 सार्थकता स्तर एव (298) स्वतन्त्रांश पर स्वीकृत की जाती है।

शून्य परिकल्पना संख्या-4

"स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की कृषि क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''

तालिका संख्या-4

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ)
कला	150	3.29	.90	.07	.90	298	.367
वाणिज्य	150	3.19	.89	.07			

विश्लेषण एवं व्याख्या-

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि टी का परिगणित मान .90 प्राप्त हुआ जो (298) स्वतन्त्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से कम है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट नही करता। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की कृषि क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है। अत: शून्य परिकल्पना "स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की कृषि क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''.05 सार्थकता स्तर एवं (298) स्वतंत्रांश पर स्वीकृत की जाती है।

शून्य परिकल्पना संख्या-5

"स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की वाणिज्य एवं प्रबंधन क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''

तालिका संख्या-5

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ)
कला	150	3.21	.76	.06	2.56	298	.011
वाणिज्य	150	2.98	.82	.07			

विश्लेषण एवं व्याख्या-

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि टी का मान 2.56 प्राप्त हुआ जो (298) स्वतंत्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से अधिक है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की वाणिज्य एवं प्रबंधन क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर है अत: शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर पर

कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की वाणिज्य एवं प्रबंधन क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है, (298) स्वतन्त्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर अस्वीकृत की जाती है मध्यमान के विश्लेषणानुसार कला वर्ग के विद्यार्थी वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की अपेक्षा वाणिज्य एवं प्रबंधन क्षेत्र को अधिक वरीयता प्रदान करते हैं।

शून्य परिकल्पना संख्या-6

"स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की चिकित्सा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''

तालिका संख्या-6

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ)
कला	150	3.53	.94	.08	1.18	298	.239
वाणिज्य	150	3.39	1.02	.08			

विश्लेषण एवं व्याख्या-

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि टी का परिगणित मान 1.18 प्राप्त हुआ जो (298) स्वतंत्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से कम है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट नहीं करता। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की चिकित्सा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है। अत: शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की चिकित्सा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है, (298) स्वतंत्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर स्वीकृत की जाती है।

शून्य परिकल्पना संख्या-7

"स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की रक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''

तालिका संख्या-7

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ)
कला	150	3.37	.81	.07	3.54	298	.000
वाणिज्य	150	3.01	.92	.08			

विश्लेषण एवं व्याख्या- उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि टी का परिगणित मान 3.54 प्राप्त हुआ जो (298) स्वतन्त्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से अधिक है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की रक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर है। अत: शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की रक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है" .05 सार्थकता स्तर एवं (298) स्वतन्त्रांश पर अस्वीकृत की जाती है। मध्यमान के विश्लेषणानुसार कला वर्ग के विद्यार्थी वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की अपेक्षा रक्षा क्षेत्र को अधिक वरीयता प्रदान करते हैं।

शून्य परिकल्पना संख्या-8

"स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की पर्यटन एवं आतिथ्य क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''

तालिका संख्या-8

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ)
कला	150	3.31	.84	.07	.65	298	.515
वाणिज्य	150	3.25	.93	.08			

विश्लेषण एवं व्याख्या-

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि टी का परिगणित मान .65 प्राप्त हुआ जो (298) स्वतन्त्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से कम है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट नही करता। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की पर्यटन एवं आतिथ्य क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की पर्यटन एवं आतिथ्य क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''.05 सार्थकता स्तर एव (298) स्वतंत्रांश पर स्वीकृत की जाती है।"

शून्य परिकल्पना संख्या-9

'' स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की कानून एवं व्यवस्था क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''

तालिका संख्या-9

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ)
कला	150	2.88	.88	.07	.00	298	1.000
वाणिज्य	150	2.88	.83	.07			

विश्लेषण एवं व्याख्या- उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि टी का परिगणित मान .00 प्राप्त हुआ जो (298) स्वतन्त्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से कम है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट नही करता। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की कानून एवं व्यवस्था क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है अतः शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की कानून एवं व्यवस्था क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है" .05 सार्थकता स्तर एव (298) स्वतंत्रांश पर स्वीकृत की जाती है।

शून्य परिकल्पना संख्या-10

"स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की शिक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है''

तालिका संख्या-10

वर्ग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि माध्य	टी का मान	स्वतन्त्रांश	सार्थकता (द्वि पुच्छ)
कला	150	2.76	.92	.07	1.12	298	.264
वाणिज्य	150	2.88	.94	.08			

विश्लेषण एवं व्याख्या- उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि टी का परिगणित मान 1.12 प्राप्त हुआ जो (298) स्वतन्त्रांश व .05 सार्थकता स्तर पर सारणी मान से कम है अर्थात यह सार्थक अन्तर प्रकट नही करता है इस प्रकार स्पष्ट है कि स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों की शिक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है। अत: शून्य परिकल्पना ''स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के शिक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता में सार्थक अन्तर नहीं है'' .05 सार्थकता स्तर एवं (298) स्वतन्त्रांश पर स्वीकृत की जाती है।

विज्ञान स्नातकों के छात्र व छात्राओं की जीविका वरीयता का समग्र विश्लेषण

शून्य परिकल्पना	चर		निष्कर्ष
	आश्रित चर	अनाश्रित चर(तुलनात्मक वर्ग)	
1	जनसंचार एवं पत्रकारिता क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	स्वीकृत p= .087
2	कलात्मक एवं डिजाइनिंग क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	स्वीकृत p= .539
3	विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	स्वीकृत p= .848
4	कृषि क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	स्वीकृत p= .367
5	वाणिज्य एवं प्रबंधन क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	अस्वीकृत p= .011
6	चिकित्सा क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	स्वीकृत p= .239
7	रक्षा क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	अस्वीकृत p=.000
8	पर्यटन एवं आतिथ्य क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	स्वीकृत p=.515
9	कानून एवं व्यवस्था क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	स्वीकृत p=1.000
10	शिक्षा क्षेत्र	कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग	स्वीकृत p= .264

निष्कर्ष-

1- स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में वाणिज्य एवं प्रबंधन क्षेत्र एवं रक्षा क्षेत्र, की जीविका वरीयता के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया।

2- स्नातक स्तर पर कला वर्ग एवं वाणिज्य वर्ग के विद्यार्थियों में जनसंचार एवं पत्रकारिता क्षेत्र, कलात्मक एवं डिजाइनिंग क्षेत्र, विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र, कृषि क्षेत्र, चिकित्सा क्षेत्र , पर्यटन एवं आतिथ्य क्षेत्र ,कानून एवं व्यवस्था क्षेत्र एवं शिक्षा क्षेत्र की जीविका वरीयता के मध्य सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. Mattoo, Dr. Mohammad Iqbal [2013]'' Career Choices of Secondary Students with Special Reference to Gender, Type of Stream and Parental Education '' Research on Humanities and Social Sciences Vol.3, No.20, pages 55-62.
2. Sreelatha, S. [May-2014] ''VOCATIONAL CHOICES OF SOCIALLY DISADVANTAGED ADOLESCENTS IN KANYAKUMARI DISTRICT '' Indian Streams Research Journal, Volume-4 , Issue-4 pages 1-5.

3. Aslam, Sabahat [March 2018]''Career preferences and academic achievement of secondary school students with respect to their dichotomy'' International Journal of Advanced Educational Research Volume 3; Issue 2; Pages 167-175.
4. K. , Mr. Vaseel. (May 2019) ''Vocational Interest of Senior Secondary School Students in Relation to Their Stream of Study'' Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)'' Volume 24, Issue 5, Ser. 8, pages 63-68.
5. Batra, Dr. Harsh & Nanda, Dr. Sapna ''CAREER PREFERENCES IN RELATION TO LOGICAL THINKING OF SENIOR SECONDARY STUDENTS'' Government College of Education, Chandigarh.
6. Mehar, Ram and Kaur, Avneet [December 2015] ''Career Choice Preferences among Rural and Urban Adolescents in Relation to their Intelligence^^ Educational Quest: An Int. J. of Education and Applied Social Sciences Vol 6, Issue 3, pages 197-205. http://www.ndpublisher.in
7. Nadeem, N. A. , Ahmad, Ishfaq [February-2016] ''Career Preferences of Male and Female Higher Secondary Students – A Comparative study'' International Journal Scientific Research and Education, Volume 4, Issue02, Pages-4973-4982.
8. Bhargava Vivek and Bhargava Rajshree (2009). Career Preference Record. National Psychological Corporation, Agra.

शैक्षणिक संस्थानों की अधुनातन प्रकृति में भूमण्डलीकरण की भूमिका का सारांशिक अनुशीलन

जितेन्द्र कुमार गिरि

कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड

शोध सारांश-

वैज्ञानिक अनुसंधानों की नित्यता के चरमोत्कर्ष से उद्भूत वर्तमान द्वंद्वात्मक भौतिकतावादी परिवेश में जिस तरह से मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र शाश्वत विकसित नूतन तकनीकी एवं मशीनीकरण से संचालित हो रहा है ठीक उसी तरह से समय की गत्यात्मकता के अनुरूप मानवीय प्रवृळियों के निर्माण के साथ-साथ उसे विज्ञान, तकनीकी व अनुसंधान आदि के सीख, समझ और प्रयोग योग्य बनाने में सर्वाधिक प्रभावशाली भूमिका निभाने वाले शैक्षणिक संस्थानों में भी तकनीकी जनित नवाचारों के उपयोग की आवश्यकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। दूरस्थ शिक्षा (क्पेजंदबम म्कनबंजपवद) प्रणाली के बढ़ते उपयोग ने आज के समय में शिक्षण संस्थानों की कम्प्यूटर, प्रोजेक्टर व इण्टरनेट आदि के माध्यम से प्रचलित शिक्षण तकनीकी में और अधिक विविधता तथा आधुनिकता का समावेश कर दिया है। इसके अतिरिक्त भूमण्डलीकरण के प्रभाव से शैक्षणिक संस्थानों के चुनाव में एकाधिक विकल्पों की उपलब्धता से भी भारत के महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों व प्रौद्योगिकी संस्थानों आदि को वैश्विक स्तर के अनुरूप बनने तथा प्रतियोगिता में स्वयं को उनके समक्ष स्थापित रखने या उनका प्रतिद्वंदी बनने के लिए नवोन्मेष के अतिशीघ्र स्वीकरण का दबाव बढ़ता जा रहा है। क्योंकि भारतीय शैक्षणिक संस्थानों में अध्ययन-अध्यापन के उद्देश्य से समय-समय पर बड़ी मात्रा में विश्व के अन्य देशों से विद्यार्थी, शोधार्थी और अध्यापक आदि आते रहते हैं जिससे भारत की अर्थव्यवस्था व शैक्षणिक संस्थानों की महळाा दोनों पर प्रभाव पड़ता है। लेकिन आज के विश्व में दूसरे पश्चिमी और पूर्वी देशों के शिक्षण संस्थानों द्वारा नवाचार का उपयोग करके अत्याधुनिक स्वरूप धारण कर लेने से न केवल भारत में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आने वाले विदेशी छात्रों की संख्या में उपयुक्त वृद्धि का अभाव दिखाई देता है अपितु भारतीय शिक्षण संस्थानों पर इसी का एक सर्वाधिक नकारात्मक प्रभाव यह रहा है कि कभी सम्पूर्ण विश्व को शिक्षा देने वाले विश्वगुरु भारत का कोई भी शैक्षणिक संस्थान वैश्विक स्तर पर उच्च संस्थानों से प्रतियोगिता करने में सफल नहीं हो पा रहा है। इसलिए अत्यंत आवश्यक हो गया है कि भारत के शैक्षणिक संस्थानों में वैज्ञानिक अनुप्रयोगों एवं नवाचार आदि को अपनाकर इनकी कालातीत महळाा को समसामयिक वैश्विक परिवेश में पुनः प्रतिष्ठित किया जाय।

बीज शब्द- भूमण्डलीकरण, बाजारवाद, संस्थान, शिक्षा, नवाचार

शोध-विषय

अट्ठारहवीं शताब्दी के उळाराद्धं से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक अर्थात् सन् 1750 ई0 से लेकर सन् 1850 ई0 के बीच की शताब्दी का समय वर्तमान अतिवैज्ञानिकता, द्वंद्वात्मक भौतिकता, अतिशय विचारशीलता, विस्तृत महत्वाकांक्षा तथा अर्थलोलुपता से आछन्न वैश्विक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि के निर्माण का समय रहा है। इसी कालावधि में यूरोप (विशेषतः इग्लैंण्ड और फ्रांस) की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मुख्यतः तकनीकी स्थिति में सर्वव्यापी बदलाव देखने को मिलता है जिसका

प्रभाव कालांतर में सम्पूर्ण विश्व पर पड़ा। जहाँ एक तरफ इग्लैंण्ड में घटित औद्योगिक क्रांति ने नूतन आविष्कारों द्वारा बुद्धि, विवेक व विज्ञान के दोहन का मार्ग प्रशस्त किया तो वहीं दूसरी तरफ स्वतंत्रता, समानता तथा विश्व बंधुत्व की प्रबल पक्षधर सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रांति ने एकात्मकता, स्वच्छंदता एवं अधिकारों के प्रति जागरूकता की निनाद से लोगों में अत्यधिक महत्वाकांक्षी, स्वार्थी और लोभी प्रवृत्ति का संचार किया। क्योंकि फ्रांस की क्रांति का तात्कालिक कारण राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगति थी इसलिए प्रभावस्वरूप इसने स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा तथा विश्व-बंधुत्व आदि पर अधिक बल देकर अत्यंत कम समय में ही विश्व को मानवता के पोषण की ओर उन्मुख किया, लेकिन औद्योगिक क्रांति दीर्घकाल से यूरोप के उच्चवर्गीय समाज की राजनैतिक तथा आर्थिक एकाधिकार की भावना, रूढ़िवादी मध्यमवर्ग (बुर्जुआ वर्ग) की निरन्तर बढ़ती महात्वाकांक्षा और निम्न वर्ग के दमन एवं शोषण की पराकाष्ठा का संकलित विस्फोट थी। यही कारण था कि केवल यूरोप ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व पर इसका दीर्घकालिक व परिवर्तनगामी प्रभाव पड़ा। यद्यपि औद्योगिक क्रांति तथा फ्रांसीसी क्रांति का उद्गम स्थल विश्व का पश्चिमी भू-भाग था तथापि इन दोनों नव उद्भूत परिवर्तनों का सर्वव्यापी व चिरस्थायी प्रभाव सम्पूर्ण विश्व में देखने को मिला। वर्तमान मानव समाज, सभ्यता, संस्कृति और विज्ञान को झकझोर कर रख देने वाले उपनिवेशवाद, बाजारवाद, पूँजीवाद, अतिशय स्वेच्छाचारिता की प्रवृत्ति, नित्य-नूतन आविष्कारित तकनीकी युक्त वैज्ञानिकता, भूमण्डलीकरण और सतही 'विश्व परिवार' की भावना का उदय इन क्रांतियों का ही विस्तृत और दूरगामी प्रतिफलन है।

इग्लैंण्ड के औपनिवेशिक अत्याचार के प्रतिरोध में पहला कदम अमरीकियों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के माध्यम से उठाया जा चुका था। इसके अतिरिक्त जर्मनी, फ्रांस एवं इटली के निरंकुश शासक भी इग्लैंण्ड के औपनिवेशिक, राजनीतिक व आर्थिक एकाधिकार को समय-समय पर चुनौती देते रहते थे लेकिन फिर भी इससे न तो उसकी उपनिवेशवादी नीति में किसी तरह का परिवर्तन आया था और न ही सम्पूर्ण विश्व पर राजनीतिक व आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करने की उसकी महत्वकांक्षा में किसी तरह का प्रतिरोध ही उत्पन्न हुआ था, बल्कि वह अपने इसी उद्देश्य की सिद्धि हेतु निरंतर नये-नये साधनों का प्रयोग करने में तत्पर था। दूसरी तरफ राजनीतिक स्वेच्छाचारिता और संप्रभुता से युद्ध की विभीषिका की आशंका के कारण यूरोप (विशेषत: फ्रांस) के समाज का निम्न और बुर्जआ वर्ग धीरे-धीरे विद्रोही प्रवृत्ति की ओर अग्रसर हो रहा था। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए निरंकुश शासकों द्वारा समाज के एक वृहत वर्ग के अधिकारों का अकारण ही दमन करते रहने तथा उनका आवश्यकतानुरूप शारीरिक शोषण करते रहने के कारण इस वर्ग का अन्त:करण आन्दोलित होने लगा, फलस्वरूप अपने अधिकारों की रक्षा एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु इन वर्गों ने व्यापक रूप से संगठित होकर 1789 ई0 में एक दीर्घफलगामी परिवर्तन की आधारशिला रखी, जिसका एकीकृत नाम 'फ्रांस की क्रांति' दिया गया।

इग्लैंण्ड अपनी औपनिवेशिक नीतियों की सफलता व सार्थकता के लिए जिन नूतन पद्धतियों का प्रयोग कर रहा था, उसी का एकीकृत रूप औद्योगिक क्रांति कहलाया। यद्यपि अपने आरम्भिक स्वरूप में यह क्रांति उद्योगों की उन्नति पर आधारित थी लेकिन कालांतर में बाजारवाद और पूँजीवाद के जन्म ने इसे केवल उद्योग-धंधों तक ही सीमित नहीं रहने दिया बल्कि अब इसकी आगोश में कृषि, शिक्षा, संचार, शासन, पर्यटन, आदि जैसे मानव जीवन का प्रत्येक पक्ष आसानी से आ गया। अपने उद्भव और विकास से अग्रसर होकर चमोत्कर्ष तक पहुँचने की अवस्था में विज्ञान अपने अनुसंधानों तथा अनुप्रयोगों के क्रम में लगातार नये-नये तकनीकी स्तर को प्रापत करता रहा और अन्तत: बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते नवीन तकनीकी पर आधारित एक यांत्रिक युग का उद्घोष हुआ जो मानवीयता को यांत्रिकता से आच्छादित करने की प्रक्रिया का ही एक अभिन्न अंग था। नये सृजित इस मशीनीकरण के परिवेश ने मनुष्य को पूर्णत: तकनीकी पर निर्भर करके जहाँ एक तरफ उसके जीवन को भौतिक सुख-सुविधाओं से सपन्न कर उसे आसान बनाया वहीं दूसरी तरफ उसे यत्रों से संचालित करके उसकी स्वाभाविक वृत्ति का नाश कर दिया, जिससे व्यक्ति के सहज गुणों जैसे दया, माया, ममता, मानवता व करूणा आदि पर बाजारवाद पूर्णत: प्रबल हो उठा तथा तकनीकी और नवाचार आदि मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं से लेकर वृहद आकांक्षाओं की पूर्ति तक के लिए अनिवार्य एकमात्र साधन बन गया।

जैसे-जैसे साधारण मानवीय क्रियाकलापों के लिए तकनीकी पर उसकी निर्भरता बढ़ती गयी वैसे-वैसे नये आविष्कारों व प्रयोगों के प्रति उसकी अभिलाषाओं में भी अभूतपूर्व वृद्धि देखने को मिली। इक्कीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों तक आते-आते इसी अभिलाषा ने द्वंद्वात्मक भौतिकता अथवा उत्तर आधुनिकता का परिवेश सृजित किया जिसमें वैज्ञानिक तकनीकी के नंगेपन से प्रादुर्भूत भौतिकतावादी चकाचौंध में स्वाभाविक मानवीय मनोवृत्तियों का गला घोंटकर यंत्रीकरण की संस्कृति अस्तित्व में आई। भले ही इस

नई विकसित संस्कृति का मानव जीवन पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव समान रूप से पड़ा हो लेकिन भौतिक सुख-सुविधाओं का आकांक्षी मनुष्य इसके सकारात्मक परिणाम की तरफ ही दृष्टिगत कर सका तथा इसके नकारात्मक परिणाम को नगण्य सिद्ध करने के लिए उसने अनेक दलीलें खोज निकाली। आधुनिक एवं नवीन तकनीकी के अतिशीघ्र स्वीकरण का यह सिद्धांत मनुष्य या समाज के किसी क्षेत्र विशेष से सम्बद्ध रहा हो, ऐसा मानना वास्तविकता से नितांत अनभिज्ञता प्रकट करना ही है। वैश्वीकरण के इस वर्तमान परिवेश में विश्व का प्रत्येक भाग, प्रत्येक देश, प्रत्येक समाज, प्रत्येक संस्था और यहाँ तक कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को आधुनिक, सरल, नवीन व बेहतर बनाने के लिए नवाचार के प्रति लालायित हो उठा। ऐसी परिस्थिति में जाने-अनजाने विश्व में एक प्रतिस्पर्धा का आरभ हुआ जिसमें एक दूसरे से आगे बढ़ने, स्वयं को प्रतिस्पर्धी बनाए रखने, ज्यादा-से-ज्यादा संसाधन एकत्रित करने, व्यापार-व्यवसाय की श्रीवृद्धि करने तथा भौतिक सुख-सुविधाओं का उपभोग करने आदि के लिए अधिक से अधिक नवीन और कम समय में अधिक उत्पादन करने वाली तकनीकी को अपनाने की होड़ सी लग गयी।

भूमण्डलीकरण एवं बाजारवाद से जनित प्रतिस्पर्धा के इस दौर में स्वयं के अस्तित्व को बनाए रखने या प्रतियोगिता में दूसरों से आगे रहने अथवा अधिक से अधिक धन संग्रह की प्रवृत्ति ने मूर्त मनुष्य की अपेक्षा धनोपार्जन के उद्देश्य से स्थापित अमूर्त संस्थानों में नवाचार को आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी बना दिया। इस श्रेणी के विविध संस्थानों में शैक्षणिक संस्थान (जिसमें प्राथमिक पाठशाला, माध्यमिक विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, प्रौद्योगिकी संस्थान और शोध संस्थान आदि सम्मिलित है) अग्रणी भूमिका में है। क्योंकि मानव चरित्र के निर्माण से लेकर उसके व्यक्तित्व विकास तथा आत्मनिर्भर बनने तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया में इन शैक्षणिक संस्थानों का अनिर्वचनीय योगदान होता है इसलिए विश्वभर में ऐसी संस्थाओं को आधुनिक, नवीन एवं समय के अनुकूल उपादेय बनाने के उद्देश्य से निरंतर प्रयास किया जाता रहा है जिससे वे योग्य चरित्र निर्माण के अतिरिक्त समय की माँग के अनुरुप विद्यार्थी-शोधार्थी देकर स्वयं की प्रतिष्ठता के साथ-साथ अपने समाज एवं देश की महत्ता में अभिवृद्धि कर सकें। लेकिन वैश्वीकरण और बाजारवादी इस परिवेश में शैक्षणिक संस्थान केवल अपने समाज तथा देश तक ही सीमित नहीं रह गये हैं। अब उन्हें विश्व के अन्य संस्थानों से प्रतिस्पर्धा भी करनी है तथा चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता रोजगार परक शिक्षा भी देनी है। यही कारण है कि आज के समय में प्रत्येक देश के शिक्षण संस्थानों की नैतिक जिम्मेदारियां स्वयं ही बढ़ गयी हैं। भौतिक सुविधाओं के बढ़ने के साथ-ही-साथ लोगों की महत्वाकांक्षाएं बढ़ती गयी और उनकी पूर्ति के लिए वह नगरों की सड़कों पर जीवन की आपाधापी में सहज ही सम्मिलित हो गया। किसी व्यक्ति के पास समय ही नहीं रह गया कि वह कुछ पल बैठकर शांति से कुछ विचार कर सके। इन सब नव उद्भूत परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए विश्व के शैक्षणिक संस्थानों ने नूतन तकनीकी का प्रयोग आरम्भ किया जिसमें Computer, Projector, E-Learning, E-Programming, Distance Education, Online Course आदि शामिल थे। इन नवाचारों के प्रयोग द्वारा जहाँ समय की बचत होने लगी शिक्षा प्रणाली बेहतर और रोजगारोन्मुख होने लगी वहीं शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने में मदद भी मिली। क्योंकि वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं अनुप्रयोगों का व्यवस्थित आरम्भ सर्वप्रथम पश्चिम में हुआ इसलिए इनसे जनित नवोन्मेष भी प्रथमत: इसी भौगोलिक क्षेत्र के शैक्षणिक संस्थानों ने अपनाया जिसके प्रभाव स्वरुप धीरे-धीरे अन्य देशों में भी यह प्रणाली प्रचलन में आयी।

विश्व की अपेक्षा भारतीय शैक्षणिक संस्थान सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढालने में असफल रहे हैं इसलिए उनमें नवोन्मेष की आवश्यकता आज भी बनी हुई है। जहाँ पश्चिम सहित पूर्व के अधिकांश विश्वविद्यालयों, प्रौद्योगिकी एवं शोध संस्थानों में नवाचार को अपनाकर बेहतर से आगे बढ़कर बेहतरीन बनने की होड़ लगी हुई है वहीं भारतीय शिक्षण संस्थान आज भी बीसवीं शताब्दी की शिक्षा पद्धति पर निर्भर बने हुए हैं। उनमें आज भी किताबों को रटाने, परीक्षा लेने और उपाधि देने की परम्परागत प्रणाली का विधिपूर्वक पालन किया जाता है जिसे वे अपना संस्थागत एवं नैतिक उत्तरदायित्व समझते हैं। इसका सर्वाधिक दुष्परिणाम यह हो रहा है कि भारत की साक्षरता दर लगातार बढ़ रही है लेकिन उससे भी तीव्र वृद्धि दर बेरोजगारी की है। जितनी संख्या उपाधि प्राप्त करने वालों की बढ़ती जा रही है उससे कहीं अधिक बेरोजगारों की। यदि किसी उच्च उपाधि प्राप्त व्यक्ति को रोजगार मिल भी जा रहा है तो उसमें कौशल के नितांत अभाव की शिकायत भी मिल रही है। तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय के भारतीय शिक्षण संस्थान चाहे वे विश्वविद्यालय हो या प्रौद्योगिकी संस्थान अथवा अन्य किसी तरह के शैक्षणिक संगठन, समय के अनुकूल कौशलयुक्त एवं रोजगारपरक शिक्षा देने में वे सर्वथा असफल रहे हैं। इसका सर्वप्रधान कारण यही है कि बदलती वैश्विक परिस्थितियों के अनुरूप वे स्वयं में बदलाव न करके बंधी-बंधाई पारम्परिक प्रणाली का अनुसरण करते चले आ रहे है और इससे भी बड़ी बिडम्बना यह है कि व इसी रटाने और परीक्षा कराकर उपाधि देने की अपनी प्रवृत्ति को भारतीय शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख

प्रयोजन सिद्ध करने में जोर-शोर से तत्पर हो गये हैं। हालाँकि भौगोलीकरण के प्रभाव स्वरुप कुछ भारतीय शैक्षणिक संस्थान या तो नवाचार को अपनाने लगे है या फिर उस दिशा में उन्मुख है लेकिन फिर भी यह मात्रा नगण्य ही बनी हुई है। यदि कुछ गिने-चुने प्रौद्योगिकी संस्थानों को छोड़ दिया जाय तो अधिकांश विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों की स्थिति जस-की-तस दिखाई देती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. शिक्षा के मूल सिद्धान्त, डॉ0 राजीव मालवीय, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2012
2. शिक्षा दर्शन एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, डॉ0 राजीव मालवीय, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2013
3. आधुनिक शिक्षा के दर्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, प्रो0 सरयू प्रसाद चौबे, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2016
4. सूचना प्रौद्योगिकी एवं शिक्षा एक विमर्श, डॉ0 एस0.पी0 गुप्त, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2011
5. शिक्षा का ताना-बाना, डॉ0 एस0पी0 गुप्त, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2012
6. शैक्षिक तकनीकी के मूल तत्व, डॉ0 सत्यनारायण दुबे, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2015
7. शैक्षिक तकनीकी एवं नवाचार, डॉ0 राजीव मालवीय, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2014
8. भूमण्डलीकरण और भारत, पुष्पेश पंत, ऐक्सेस पब्लिशिंग, नई दिल्ली, संस्करण 2016
9. भारत का भूमण्डलीकरण, संपा0 अभय कुमार दूबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2007
10. शिक्षा के नवाचार एवं आधुनिक प्रवृत्तियां, शंकर शरण श्रीवास्तव, प्रकाशन-हर प्रसाद भार्गव, आगरा, संस्करण-2009
11. एक वैश्वीकरण विश्व, डॉ0 शिक्षा रानी, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, संस्करण-2017
12. अमेरिकन जनरल ऑफ सोशियोलॉजी, ई0 डब्ल्यू0 चेस्टर, मैकमिलन, न्यूयॉर्क, संस्करण-1961

उत्तर प्रदेश में किसानों के वित्तीय सुधार में 'किसान क्रेडिट कार्ड' के योगदान का मूल्यांकन

प्रमोद कुमार

एम0काम0, यू0जी0सी0 नेट, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ० संजीव गुप्ता

एसोसिएट प्रोफेसर, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

सार- भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसमें लाखों कृषकों का जीवन यापन होता है जिसमें कृषि कार्य में लगे कृषकों का अच्छा जीवन यापन भी हो रहा है जबकि उत्तर प्रदेश के आर्थिक सुधार में किसान क्रेडिट कार्ड ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है जिस तरह से मानव शरीर में रीढ़ महत्वपूर्ण है इसी तरह 'किसान क्रेडिट कार्ड' भी उतना ही महत्व रखता है क्योंकि जब किसान के पास क्रेडिट कार्ड नही था तब किसान देशी बैकरों तथा साहूकारों से ऋण लेता था जिसके चलते वह ऋण के बोझ तले दबा रहता था और अपनी आर्थिक स्थिति सुधार नहीं पाता था। क्योंकि ब्याज की ऊंची दर से उनकी स्थिति में सुधार नही हो पाता था।

बीज शब्दः- किसान, क्रेडिट, कार्ड, वित्तीय, आर्थिक, विकास, कृषक।

परिचयः- भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था वाला देश है जिसमें कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। तथा जिसमें कृषि ऋण का अहम् योगदान है।जिसमें किसानों को फसलों की वृद्धि के लिए तथा धारणीय विकास के साथ-साथ कृषि उपकरण खरीदने के लिए ऋण लेते हैं। उत्तर प्रदेश में छोटे तथा सीमांत कृषकों की संख्या लगभग 92.5% जिसमें 79.5% सीमान्त कृषक तथा 13 प्रतिशत छोटे कृषक है जिनके पास भूमि का हिस्सा 73.3 प्रतिशत है उनके पास 0.5 हेक्टेयर से कम भूमि है जिसमें औसत 0. 27 हेक्टेयर है। इतनी कम भूमि के होने से नई तकनीकी तथा वैज्ञानिक तकनीकी से कृषि कार्य सम्भव नहीं है। जबकि किसान क्रेडिट कार्ड में न्यूनतम ब्याज पर ऋण उपलब्ध होता है जिसमें ग्रामीण बैंक तथा वाणिज्यिक बैंकों का अहम् योगदान है। 'किसान क्रेडिट कार्ड' स्कीम आर.वी. गुप्ता समिति के सिफारिशों के आधार पर नाबार्ड की कार्य योजना के द्वारा 1998 अगस्त में 'किसान क्रेडिट कार्ड' का पदार्पण हुआ तब से आज तक यह सफल योजना है जिसमें लाखों किसानों के आर्थिक सुधार में महत्वपूर्ण योगदान है जिसमें कृषकों को समय पर ब्याज उपलब्ध हो जाने से फसल, कृषि यंत्रों को खरीदने में मदद मिल जाती है और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि कृषकों को देशी बैकरों के बोझ तले दबना नही पड़ता है कम ब्याज दर पर बैंको से किसान क्रेडिट कार्ड के द्वारा लोन प्राप्त कर सकते है।

शोध के उद्देश्यः-

1. इस शोध से किसान क्रेडिट कार्ड धारक कृषकों की समस्याओं का अध्ययन किया जा सकेगा।
2. प्रस्तुत शोध से बैंकिग व्यवस्था की समस्याओं तथा ऋण की जानकारी हो सकेगी।

3. इस शोध के द्वारा उत्तर प्रदेश के बैंकिंग व्यवस्था तथा कृषकों के बीच समस्याओं का अध्ययन हो पायेगा।
4. इस शोध के द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड के लाभ तथा गुणों का अध्ययन हो पायेगा।
5. इस अध्ययन के द्वारा ग्रामीण विकास में सुधार की स्थिति का पता चल पायेगा।

मुख्य भाग:- उत्तर प्रदेश सरकार ने ''उत्तर प्रदेश कृषि नीति 2013'' के द्वारा यह लक्ष्य रखा है कि राज्य में परिवर्तन लाना है जिसके अन्तर्गत खाद्य तथा पोषण तत्वों के द्वारा ग्रामीण व्यक्तियों की जीवन शैली में सुधार तथा भविष्य के लिए उत्पादन क्षमता को बनाये रख कर विकास किया जाना चाहिए।

राज्य सरकार ने पूर्ण रूप से कृषि नीति के द्वारा कृषकों को फसल ऋण उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध क्योंकि जब तक किसान समृद्ध नही होगा तब तक देश समृद्ध नही होगा क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है। हालाँकि भारत सरकार ने 'उत्तर प्रदेश कृषि नीति 2013' मान्यता प्रदान की है जिसके तहत वित्त मंत्रालय के वित्तीय सेवाओं के वित्त मंत्रालय के द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड स्कीम का पुनरालोकन किया जिसके बाद अब किसान क्रेडिट कार्ड को स्मार्ट कार्ड-कम डेबिट कार्ड कहा है।

किसान क्रेडिट कार्ड के मानक -

1. इस कार्ड की अधिकतम समय-सीमा 5 वर्ष निर्धारित किया गया है उसके बाद इसे नवीनीकरण कराया जा सकता है यह फिर वर्तमान कार्ड की राशि जमा करके नया कार्ड बनाया जा सकता है।
2. कार्ड में 3 लाख रूपये तथा कोई अतिरिक्त राशि कार्ड बनवाने पर नही लगती है।
3. कार्ड में सब्सिडी दी जाती है अगर समय से लेन-देन करते रहते है जो राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार के मानक द्वारा।
4. किसान क्रेडिट कार्ड की राशि पर न्यूनतम ब्याज दर लिया जाता है जो कि सबसे कम है।

राज्य सरकार का मुख्य उद्देश्य है फसल ऋण के लिए कृषकों को समय पर ऋण की उपलब्धता हो सके, जो क्रेडिट कार्ड के द्वारा वाणिज्यिक बैंकों तथा सहकारी बैंको द्वारा ऋण न्यूनतम ब्याज दर पर उपलब्ध कराया जा सके।

1. कृषकों की फसल ऋण से आवश्यकता की पूर्ति सम्भव हो रही है।
2. बाजार से लिया गया ऋण चुकाने में आसानी।
3. उधार लिया गया फसल के लिए उवर्रक तथा पेस्टीसाइड में व्यय को चुकाने में मदद मिलती है।
4. किसान क्रेडिट कार्ड से परिवार के विभिन्न व्यय तथा विवाह आदि के खर्च में मदद मिलती है।
5. किसान क्रेडिट कार्ड के अन्तर्गत कृषकों का दुर्घटना बीमा की भरपाई हो जाती है।
6. राज्य सरकार के दिशा-निर्देशानुसार अगर कृषक कार्ड की रकम समय पर भुगतान करता है तो उसे ब्याज दर में कमी होती है।
7. किसान क्रेडिट कार्ड धारक कृषक की फसल अगर नुकसान हो जाती है तो प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना के अन्तर्गत लाभ दिया जाता है।
8. किसान क्रेडिट कार्ड से कृषकों की आर्थिक हालत में सुधार हो रहा है जिससे वे अपना जीवन स्तर में सुधार कर पा रहे हैं।

ग्रामीण कृषकों को किसान क्रेडिट कार्ड से उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार के साथ-साथ उनका जीवन स्तर में सुधार आ रहा है क्योंकि अब कृषकों को देशी बैकरों तथा साहूकारों से ऋण कम लेना पड़ता है जिसमें उनके ब्याज का भुगतान नही करना पड़ता है जबकि किसान क्रेडिट कार्ड बहुत कम ब्याज का भुगतान करना पड़ता है। जिसमें कृषकों को नगदी फसलों की बुवाई करते है। और किसान क्रेडिट कार्ड का भुगतान समय पर कर देते है। जिससे ग्रामीण बैंको के साथ-साथ कृषक को भी लाभ हो रहा होता है। भारत सरकार ने 2006-07 से किसान क्रेडिट कार्ड धारकों को फसल ऋण पर वार्षिक 7 प्रतिशत ब्याज वसूल करती है। जिसके अधिकतम ऋण 3 लाख तक परन्तु वर्तमान में समय से पहले भुगतान किया जाता है। तो 3 प्रतिशत तक ऋण छूट प्रदान की जाती है तब आपसे ऋण पर केवल 4 प्रतिशत ही ब्याज पड़ेगा यह सुविधा केवल छोटे तथा सीमान्त कृषकों के किसान क्रेडिट कार्ड धारकों के लिए है।

किसान क्रेडिट कार्ड धारकों के लिए दुर्घटना बीमा योजना चलाई जा रही है। जिसमें विभिन्न तरह के दुर्घटना भी शामिल है।

1. मृत्यु
2. आजीवन दिव्यागंता
3. समस्त अंग या दोनो आंखे या एक अंग में दिव्यांगता आना
4. एक अंग या एक आंख से दिव्यांग।

अर्थात इसके लिए एक या तीन वर्ष के लिए बीमा होता है इसमें 1 वर्ष की बीमा प्रीमियम 15 रूपये तथा 3 वर्ष के लिए 45 रूपये है।

शोध का विश्लेषणः-

किसान क्रेडिट कार्ड 2016-17 व 2017-18 का लक्ष्य (लाख में)

cSd dk uke	y{;	forj.k	forj.k izfr'kr] y{; ds vuqlkj
सहकारी बैंक वाणिज्यिक बैंक	3.82 31.18	3.85 31.21	100.79 100.10
कुल	35.00	35.06	200.89

2017-18, में लक्ष्य के अनुसार नये तथा पुराने नवीनीकरण

cSd dk uke	y{;	forj.k	forj.k izfr'kr] y{; ds vuqlkj
सहकारी बैंक वाणिज्यिक बैंक	0.24 2.76	7.48 36.54	7.72 39.3
कुल	3.00	44.02	47.02

उपरोक्त किसान क्रेडिट कार्ड में अगर 2016-17 का लक्ष्य 3.82 लाख था तो वही पर वितरण 3.85 लाख था जो इससे 0. 03 लाख अधिक है।

इससे तात्पर्य है कि सहकारी बैंको द्वारा लक्ष्य के अनुसार क्रेडिट कार्ड का वितरण अधिक हो रहा है। और कृषक कार्ड बनवाने के इच्छुक है।

1. वाणिज्यिक बैंकों को 31.18 लाख क्रेडिट कार्ड का लक्ष्य था वहीं पर 31.21 लाख क्रेडिट कार्ड का वितरण हुआ इससे यह तात्पर्य है कि वाणिज्यिक बैंक भी किसान क्रेडिट कार्ड वितरण में पीछे नही है।
2. वर्ष 2017 -18 में सहकारी बैंकों द्वारा नये कार्ड 0.24 लाख बनाये गये तथा 7.48 पुराने कार्ड का नवीनीकरण हुआ वहीं पर वाणिज्यिक बैंकों में 2.76 लाख नये कार्ड जारी किए गये, जबकि 36.54 लाख पुराने कार्ड का नवीनीकरण किया गया।
3. वर्ष 2017-18 में नये कार्डो की अपेक्षा पुराने कार्डो का नवीनीकरण अधिक हुआ है जबकि सहकारी बैंकों का प्रतिनिधित्व भी कम है वहीं पर वाणिज्यिक बैंकों का प्रतिनिधित्व अधिक है परन्तु वाणिज्यिक बैंकों में नये कार्डो 2.76 लाख है 36.54नवीनीकरण किया गया है। इससे यह तात्पर्य है कि नये कार्डों की अपेक्षा पुराने कार्डों का नवीनीकरण अधिक हुआ है इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि कार्ड धारक नये कार्डों को बनाने में रूचि नहीं ले रहे है।

किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने में कृषकों को समस्याएं-

1. बैंको द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने में समय का अधिक लगना जिससे कृषकों का समय पर कार्य नहीं हो पाता है।
2. 'किसान क्रेडिट कार्ड' बनवाने में कमीशन-खोरी होती है।

3. किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने में दलालों का बोलबाला रहता है जिससे कृषकों से मनमाना कमीशन लिया जाता है।
4. वाणिज्यिक बैंकों में 'किसान क्रेडिट कार्ड' बनवाने में कृषकों को बहुत औपचारिकताओं के बाद ऋण दिया जाता है। जिससे कृषकों का समय बर्बाद होता है।
5. सहकारी बैंकों में किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने में समय बहुत लगता है। जिससे कृषकों का आवश्यक कार्य समय पर नहीं हो पाता है।
6. किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने में कृषकों की सबसे बड़ी समस्या है। बैंकों में दलाली का होना जिससे कृषकों का वाजिब काम नहीं हो पाता है।।

सुझाव-

1. 'किसान क्रेडिट कार्ड' बनवाने के लिए एक अलग से एकल खिड़की होनी।
2. बैंक कर्मचारियों को क्रेडिट कार्ड बनवाने में उदार व्यवस्था अपनाना चाहिए। जिससे कार्ड बनवाने में समय कम लगे।
3. किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने के लिए न्यूनतम समय-सीमा निर्धारित होना चाहिए जिसमें कृषकों को अधिक इन्तजार न करना पड़े।
4. बैंक कर्मचारी कृषकों को किसान क्रेडिट कार्ड के बारे में फायदे बताना चाहिए जिससे कृषकों में कार्ड बनवाने में उत्सुकता हो सके।
5. बैंक कर्मचारियों को चौपाल लगाकर कृषकों को 'किसान क्रेडिट कार्ड' बनाना चाहिए।

निष्कर्ष-

किसान क्रेडिट कार्ड व्यवस्था एक ऐसी नीति है जो कृषकों के लिए बहुत अच्छी है परन्तु अनेकों समस्याओं से उत्तर प्रदेश के कृषक जूझ रहे हैं क्योंकि बैंकों में कमीशन के नाम पर मनमाने तरीके से लोन दिया जाता है जिस पर कमीशन-खोरी होती है। क्योंकि आज भी ग्रामीणों में अधिकतर कृषक शिक्षित नहीं हैं जिससे उनको आसानी से कमीशन के नाम पर वसूली की जाती है जिसमें कृषकों को ऋण लेने में बैंको द्वारा दौड़ाया जाता है। क्योंकि कृषकों में जागरूकता की कमी होने से किसान क्रेडिट कार्ड बनवाने में समस्या का सामना करना पड़ता है। फिलहाल वर्तमान में देखा जाए तो पहले की अपेक्षा कम कमीशन बाजी है। पहले अगर कृषक ऋण चुकाने में देरी करता था तो राजस्व अमीन द्वारा कमीशन के नाम से कृषकों की आर.सी. कटवा दी जाती थी और कृषकों को मनमानी तरीकों से धन उगाही होती थी और कृषकों का शोषण होता था परन्तु आज कुछ हद तक परिस्थितियां सुधरी है। कृषक जागरूक हो गये हैं दिनों-दिन तरक्की कर रहे हैं।

सन्दर्भ सूचीः-

1. कृषि विकास विभाग, उत्तर प्रदेश।
2. कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश।
3. अमर उजाला
4. दैनिक जागरण।
5. कृषि विपणन एवं कृषि विदेश व्यापार निदेशालय, उत्तर प्रदेश।

वेबसाइड-

1. upagripardarshi.gov.in
2. upagriculture.gov.in
3. http// upagriculture.com
4. http// agriculture.up.gov.in

कार्य जीवन संतुलनः लखनऊ के बैंकों में कार्यरत् महिलाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन

सची निगम

शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सारांशः

कार्य जीवन संतुलन श्रमिकों के बीच चर्चा के सबसे महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभरा है और इसने विभिन्न उद्योगों में काम करने वाले कर्मचारियों की एक विस्तृत श्रृंखला का ध्यान आकर्षित किया है। विश्व स्तर पर पुरुष और महिला कर्मचारियों के बीच कार्य-जीवन संतुलन पर विभिन्न अध्ययन आयोजित किए गए हैं। विकसित देशों में इस मुद्दे से निपटने के लिए काफी उपाय भी सुझाए गए हैं और जिन्हें कुछ हद तक लागू भी किया गया है। हालांकि विकासशील और अविकसित देश इस मुद्दे को हल करने में पूरी तरह से सफल नहीं हुए हैं। नतीजतन बैंकिंग क्षेत्र में कई कर्मचारियों को बड़ी मात्रा में कार्य-जीवन संघर्ष का सामना करना पड़ता है, जो न केवल महिलाओं के व्यवसायिक जीवन को बल्कि उनके व्यक्तिगत जीवन को भी प्रभावित करता है। इस अध्ययन में यह देखने का प्रयास किया गया है कि कार्य-जीवन संतुलन बैंकिंग उद्योग में कामकाजी महिलाओं के व्यक्तिगत जीवन को कैसे प्रभावित करता है।

मुख्य शब्द- बैंकिंग क्षेत्र, कामकाजी महिलाएं, कार्य-जीवन संतुलन, कार्य-जीवन संघर्ष और तनाव।

प्रस्तावनाः कार्य-जीवन संतुलन एक संतुलित जीवन जीने का सतत् प्रयास है। यह एक संगठन के भीतर एक कर्मचारी के निजी और व्यावसायिक जीवन को अलग करता है। कार्य-जीवन संतुलन एक कर्मचारी को अपने निजी और व्यावसायिक जीवन के बीच प्राथमिकता तय करने की क्षमता को संदर्भित करता है। व्यावसायिक जीवन में कैरियर, उत्पादक, प्रदर्शन और एक संगठन के प्रतिप्रतिबद्धता शामिल है (मेहता और कुंदनानी, 2015)।

परिवार, व्यक्तिगत विकास, अच्छा स्वास्थ्य और मित्रता ये सभी व्यक्तिगत जीवन के पहलू हैं। व्यावसायिक और निजी जीवन के बीच संतुलन बनाए रखना किसी भी व्यक्ति के लिए एक चुनौती हो सकती है। इसलिए, कार्य-जीवन संघर्षो को कम करने के लिए कुछ संगठनों ने विभिन्न उपाय अपनाये हैं और यदि इन उपायों को ठीक से लागू किया जाता है, तो वे कर्मचारियों को अपने व्यक्तिगत जीवन को उचित रूप से प्रबंधित करने में मदद कर सकत हैं।

मणि (2013) के अनुसार कार्य-जीवन संतुलन शब्द वर्ष 1986 में व्यापक रूप से चर्चा में आया और यह तब अस्तित्व में है, जब इसे उचित रूप से प्रबंधित किया जाए ताकि व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन की मांगों को पूरा किया जा सके। आमतौर पर संगठन कर्मचारियों को श्रम के स्त्रोत के रूप में देखते हैं और अधिकांश उनके निजी जीवन को महत्व नहीं देते हैं। वर्तमान में बैंकिंग क्षेत्र की कामकाजी महिलाएं अपने निजी जीवन पर कार्य-जीवन संतुलन के प्रतिकूल प्रभाव से पीड़ित हैं। परिणामस्वरूप महिला कर्मचारी अपने कार्य-जीवन संतुलन को कैसे बनाए रख रही हैं, इसका विश्लेषण उपयुक्त माना गया है।

साहित्य की समीक्षाः यादव और दाभाड़े (2014) के अनुसार कार्य-जीवन संतुलन एक ऐसी स्थिति है, जो कर्मचारियों के लिए ऐसी नीतियां बनाने और उसे लागू करने के लिए जिम्मेदार है, जिससे कि कर्मचारियों का निजी जीवन प्रभावित न हो। वैश्वीकरण के प्रसार और अधिक प्रतिस्पर्धा के साथ कार्य-जीवन संतुलन विषय सरकारी और गैर-सरकारी निकायों द्वारा विचाराधीन मुद्दों में

से एक बन गया है, इसलिए नियोक्ताओं को ऐसी रणनीतियों और नीतियों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने की योजना बनानी चाहिए, जो उनके कर्मचारियों को एक अच्छा कार्य-जीवन संतुलन बनाए रखने में मदद करें। इसके साथ ही महिलाओं के कार्यबल के लिए उपयुक्त कार्य-जीवन शैली का समर्थन करे। (अग्रवाल, 2015)।

डेलिना और राया (2013) का कहना है कि परंपरागत रूप से महिलाओं को अपने घरों की चारदीवारों के भीतर अपना जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया है। प्रतिस्पर्धा के इस युग में महिलाएं अपनी घरेलू जिम्मेदारियों को निभाने के साथ-साथ जीवन के हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ मिलकर काम करती हैं। इसी कारण महिलाओं को कार्य-जीवन संतुलन को सर्वोत्तम तरीके से बनाए रखने के लिए प्रेरित किया जाता है। जिससे कि महिलाओं के निजी और व्यावसायिक जीवन में सामंजस्य बना रहे। लक्ष्मी और गोपीनाथ (2013) द्वारा किए गए अध्ययन में कहा गया है कि महिलाएं घरेलू वित्तीय बोझ से निपटने के लिए कमाई की जिम्मेदारी साझा करके अपने जीवन-साथी की मदद करने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हुई हैं। तब से महिलाओं के बीच कार्य-जीवन के संतुलन विषय पर अधिक ध्यान दिया गया है। इसलिए यह समझना महत्वपूर्ण हो गया है कि महिलाएं अपने व्यक्तिगत और कामकाजी जीवन को कैसे संतुलित करती हैं। यादव और यादव (2014) के अनुसार कार्य-जीवन संतुलन आधिकारिक और व्यक्तिगत जीवन के बीच स्थिरता स्थापित करने और उसे बनाए रखने की एक रणनीति और तकनीक है। हालांकि किसी भी व्यक्ति के लिए, कार्य-जीवन संतुलन को बनाए रखना महत्वपूर्ण है, लेकिन कामकाजी महिलाओं के लिए गंभीर समस्याएं खड़ी हो सकती हैं, यदि वे कार्य-जीवन संतुलन को ठीक से प्रबंधित करने में विफल रहती हैं। संगठन के प्रति श्रमिकों की प्रतिबद्धता और संगठन का प्रदर्शन भी कर्मचारियों के बीच कार्य-जीवन संतुलन के रख-रखाव के लिए सीधे आनुपातिक है। सेठी (2015) का मानना कि हमारे सांस्कृतिक मानदण्डों और मूल्यों में अपने परिवार की देखभाल करना महिलाओं की सबसे आवश्यक जिम्मेदारियों में से एक है। इसलिए स्वस्थ और स्थिर जीवन जीने के लिए कामकाजी महिलाओं को एक पेशेवर व्यक्ति और गृहिणी की दोहरी भूमिका इस तरह निभानी होगी कि कोई भी भूमिका प्रभावित न हो। उचित रूप से, इससे परिवारों और संगठनों दोनों को लाभ होगा।

सिंगली और हाइन्स (2005) के अनुसार कार्य-जीवन संतुलन के लिए लचीले कामकाज को एक सकारात्मक क्षमता के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है, जो कि श्रमिकों विशेषकर, महिलाओं के लिए उपयोगी संसाधन हैं, ताकि वे अपने काम को पारिवारिक मांगों के अनुरूप ढाल सकें।

सिंह (2015) के अनुसार कार्य जीवन-असंतुलन का सामाजिक मुद्दों पर सीधा प्रभाव पड़ता है, जैसे पालन-पोषण में देरी, प्रजनन दर में गिरावट, बढ़ती आबादी और श्रम आपूर्ति में कमी। आज एक कर्मचारी से न केवल समय सीमा को पूरा करने की अपेक्षा की जाती है, बल्कि गुणवत्तापूर्ण उत्पादन देने की भी अपेक्षा की जाती है, जो संगठन में उसके अस्तित्व के लिए आवश्यक है। चूंकि आज का पेशेवर जीवन इतना प्रतिस्पर्धी है और दबाव इतना अधिक है कि स्वस्थ्य व्यक्तिगत जीवन बनाए रखना बेहद जरूरी हो जाता है। संतुलन बनाए रखने की कोशिश में कई समस्याएं आती हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जीवन भर चार हितधारकों-उसका अपना व्यक्तित्व, नौकरी, परिवार और समाज से घिरा रहता है। इसलिए कार्य-जीवन संतुलन पूरी दुनिया में एक सामाजिक मुद्दा बन गया है। राव (2017) का मानना है कि एक मुद्दे के रूप में कार्य-जीवन संतुलन सबसे पहले काम के माहौल में व्यक्तिगत गरिमा से संबंधित है, लेकिन यह लैंगिक समानता, सामुदायिक विकास और एक ऐसे भविष्य के लिए गहन दृष्टिकोण का भी प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें बच्चों की देखभाल और पालन-पोषण उनके मातापिता की एकमात्र जिम्मेदारी नहीं है। इसलिए कार्य-जीवन संतुलन को कार्य और परिवार के समय और स्थान के समन्वय के एक तरीके से कहीं अधिक देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे एक ऐसे मुद्दे के रूप में माना जाना चाहिए जो सीधे तौर पर इस बात पर प्रभाव डालता है कि हम अपने समाजों को निष्पक्ष और अधिक मानवीय बनाने के लिए उन्हें कैसे व्यवस्थित करते हैं।

पुरोहित और पाटिल (2013) का कहना है कि कार्य-जीवन संतुलन शब्द का इस्तेमाल किसी के पेशेवर करियर और व्यक्तिगत जीवन-शैली की प्राथमिकता और प्रबंधन को परिभाषित करने के लिए किया जाता है। कार्य-जीवन संतुलन का उपयोग सफल जीवन प्राप्त करने के लिए संतुलित दृष्टिकोण अपनाने के तरीकों का वर्णन करने के लिए किया जाता है इसके अलावा, मानव संसाधन पेशेवरों ने कार्य-जीवन संतुलन दृष्टिकोण से जुड़ी समस्याओं और संघर्षो के समाधान के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए है। ये कदम न केवल कर्मचारियों को उनके निजी और कामकाजी जीवन के बीच स्थिरता प्राप्त करने में सहायता करते हैं, बल्कि नियोक्ताओं को अपने कार्यबल से अधिकतम उत्पादकता प्राप्त करने में भी सहायता करते हैं।

उद्देश्य

1. बैंकिंग क्षेत्र में कामकाजी महिलाओं के व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करने में कार्य जीवन असंतुलन का अध्ययन करना।
2. बैंकिंग क्षेत्र में कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में कार्य-जीवन संतुलन की आवश्यकता का अध्ययन करना।

शोध पद्धतिः प्रस्तुत शोध अध्ययन का केन्द्र बिन्दु कार्य-जीवन संतुलनः लखनऊ की बैंकों में कार्यरत् महिलाओं का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन है, जो कि सूक्ष्म प्रकृति का अध्ययन है।

शोध प्रारूपः प्रस्तुत शोध अध्ययन में समस्या के विभिन्न पक्षों को विस्तृत रूप से उजागर करने के लिए अध्ययन का प्रारूप रूप से वर्णनात्मक रखा गया है, जिससे कि तथ्यों का सही, पूर्ण एवं यथार्थ विवरण करना सम्भव हो सके। साथ ही अध्ययन से सम्बन्धित अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप को भी प्रयोग किया गया है, ताकि उस प्रकरण के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की जा सके, जिसके विषय में शोधकर्त्ता को या तो कोई जानकारी न हो या सीमित जानकारी हो।

अध्ययन क्षेत्रः प्रस्तुत शोध अध्ययन में क्षेत्र के लिए लखनऊ की बैंकों का चयन किया गया है।

उत्तरदाता का चयन व आकारः प्रस्तुत शोध अध्ययन में उत्तरदाता के रूप मे लखनऊ की बैंकों में कार्यरत् 150 महिलाओं का चयन किया गया है। इसमें निदर्शन विधि के अंतर्गत सोद्देश्य निदर्शन का प्रयोग किया है। इस निदर्शन में जिसे निर्णयात्मक प्रतिदर्शन भी कहते हैं, शोधकर्त्ता उद्देश्यपूर्वक से उन व्यक्तियों को चुनता है, जो कि उसकी दृष्टि से प्रतिदर्श सदस्यों के लिए कुछ उपर्युक्त वांछित विषेषताओं के साथ अनुसंधान के विषय के लिए सार्थक समझे जाते हैं और शोधकर्त्ता को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इसमें इकाइयों का चयन विचार के बाद किया जाता है और यह पूर्व निर्णय पर आधारित होता है।

तथ्यों का संकलनः कामकाजी महिलाओं में कार्य-जीवन संतुलन के अध्ययन हेतु प्राथमिक तथा द्वितीय स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्त्रोत में तथ्यों के संकलन हेतु क्षेत्रीय कार्य पद्धति को अपनाया गया है, जिसमें साक्षात्कार, अनुसूची का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक स्त्रोत के अन्तर्गत शोधपत्र, पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा समाचार-पत्र से तथ्यों का संकलन किया गया है।

तथ्यों का वर्णन व विश्लेषणः प्रस्तुत अध्ययन कार्य-जीवन संतुलनः लखनऊ की बैंकों में कार्यरत् महिलाओं का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन है। इस अध्ययन में कामकाजी महिलाओं की आयु वर्ग संरचना, जातीय प्रस्थिति, धार्मिक स्थिति, वैवाहित स्थिति, पारिवारिक स्थिति एवं शैक्षिक पृष्ठभूमि का आंकलन किया गया है। कार्य-जीवन संतुलन किसी व्यक्ति के अपने व्यावसायिक और निजी जीवन के बीच प्राथमिकता तय करने की क्षमता पर केन्द्रित है। पिछले अध्ययनों ने पुष्टि की है कि महिलाओं के बीच कार्य-जीवन संतुलन एक सफल व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन जीने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कार्य-जीवन संतुलन और बैंकिंग क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं के संतुष्ट व्यक्तिगत जीवन के बीच सीधा आनुपातिक संबंध होता हैं। अतः कार्य जीवन संतुलन को समझने के लिए कामकाजी महिलाओं की सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन महत्वपूर्ण है। अध्ययन के उपरान्त जो तथ्य सामने आये हैं, उनका वर्णन व विश्लेषण इस प्रकार है।

कामकाजी महिलाओं की आयु का विवरण

vk;q	vkofÙk	izfr'kr
20–30 वर्ष	30	20%
30–40वर्ष	93	62%
40–50वर्ष	23	15.33%
50–60वर्ष	4	2.67%
dqy	**150**	**100%**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अधिकतर कामकाजी महिलाओं की आयु 30 से 40 वर्ष है, जिसका प्रतिशत 62 प्रतिशत है। आयु 20-30 वर्ष महिलाओं का प्रतिषत 20% है और 40-50 वर्ष की महिलाओं का प्रतिशत 15.33% तथा 50-60 वर्ष की महिलाओं का प्रतिषत 2.67 प्रतिशत है।

कामकाजी महिलाओं की जातीय स्थिति

lenk;	vkofÙk	ifr'kr
सामान्य	113	75.33%
पिछड़ा वर्ग	15	10%
अनुसूचित जाति	19	12.67%
अनुसूचित जनजाति	3	2%
dy	**150**	**100%**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकतर कामकाजी महिलायें सामान्य जाति से सम्बन्धित है जिनका 75.33% प्रतिशत है, जो सर्वाधिक है। इसके बाद 10% प्रतिशत पिछड़ी जाति से सम्बन्धित है तथा अनुसूचित जाति की महिलाएं 12.67% और अनुसूचित जनजनाति की महिलाओं का प्रतिशत 2% है।

कामकाजी महिलाओं की धार्मिक स्थिति

/ke	vkofÙk	ifr'kr
हिन्दू	134	89.33%
मुस्लिम	11	7.33%
सिक्ख	5	3.33%
ईसाई	0	0%
dy	**150**	**100%**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि अधिकतर कामकाजी महिलाएं हिन्दू धर्म की है जिनका 89.33% प्रतिशत है तथा मुस्लिम धर्म की महिलाओं का प्रतिशत 7.33% प्रतिशत है। सिक्ख धर्म की महिलाओं का प्रतिशत 3.33% प्रतिशत है।

कामकाजी महिलाओं की वैवाहिक स्थिति

oSokfgd fLFkfr	vkofÙk	ifr'kr
विवाहित	132	88%
अविवाहित	15	10%
विवाह विच्छेदन	1	.67%
विधवा	2	1.33%
परित्याग	0	0%
dy	**150**	**100%**

उपरोक्त तालिका को देखने से पता चलता है कि अधिकतर कामकाजी महिलाएं विवाहित हैं, जिनका प्रतिशत 88% प्रतिशत है। अविवाहित महिलाओं का प्रतिशत 10% प्रतिशत है। विवाह विच्छेदन की महिलाओं का प्रतिशत 67% प्रतिशत तथा विधवा महिलाओं का प्रतिशत 1.33% प्रतिशत है।

कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति

ikfjokfjd fLFkfr	vkofŸk	izfr'kr
संयुक्त परिवार	68	45.33%
एकल परिवार	82	54.67%
dqy	**150**	**100%**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कामकाजी महिलाओं में अधिकतर महिलाएं एकल परिवार की है, जिनका प्रतिशत 54.67% प्रतिशत तथा संयुक्त परिवार की महिलाओं का प्रतिशत 45.33% है।

कामकाजी महिलाओं की शैक्षिक पृष्ठभूमि

'kSf{kd i"BHkwfe	vkofŸk	izfr'kr
कला संकाय	25	16.67%
विज्ञान संकाय	68	45.33%
वाणिज्य संकाय	57	38%
dqy	**150**	**100%**

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि बैंकों में काम करने वाली महिलाओं की शैक्षिक पृष्ठ भूमि में 45.33 प्रतिशत महिलाएं विज्ञान पृष्ठभूमि की है, जबकि 38% प्रतिशत महिलाएं वाणिज्य तथा 16.67% प्रतिशत महिलाएं कला संकाय पृष्ठभूमि की है।

यह नौकरी चुनौती पूर्ण है

izfrfØ;k	vkofŸk	izfr'kr
हाँ	140	93.33%
नहीं	10	6.67%
dqy	**150**	**100%**

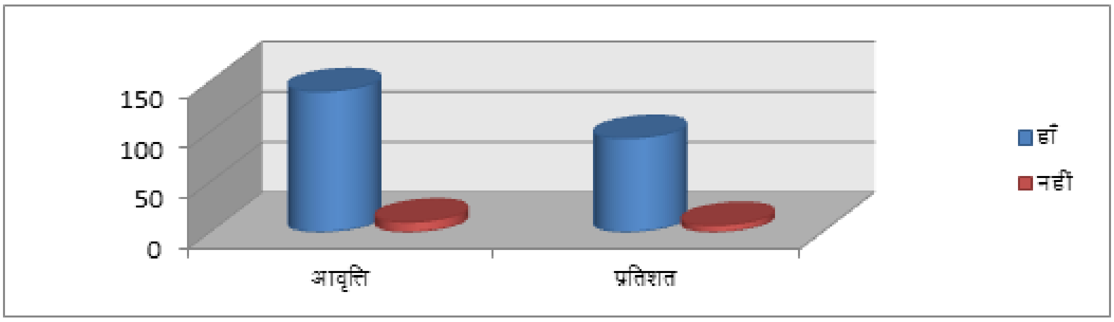

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 93.33% प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि उनके लिए यह बैंक की नौकरी चुनौतीपूर्ण है, जबकि 6.67% प्रतिशत महिलाएं इसे नहीं मानती हैं।

दोहरी भूमिका का सामना

ifrfØ;k	vkofÙk	ifr'kr
हाँ	38	25.33%
नहीं	19	12.67%
कभी–कभी	93	62%
d|y	**150**	**100%**

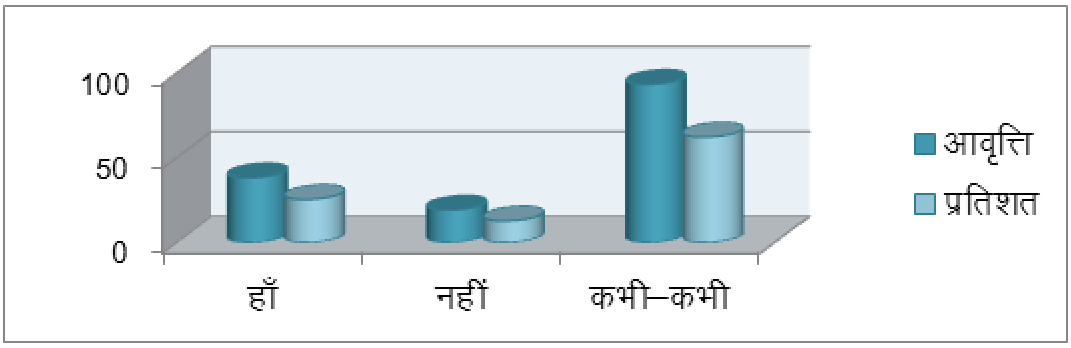

उपरोक्त तालिका में देखा जा सकता है कि बैंकिंग क्षेत्र में कामकाजी महिलाओं में 25.33% प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि उन्हें घर और बाहर दोनों के लिए दोहरी भूमिका का सामना करना पड़ता है, जबकि 62% प्रतिशत महिलाओं को कभी-कभी दोहरी भूमिका का सामना करना पड़ता है तथा 12.67% प्रतिशत महिलाएं इसे नहीं मानती हैं।

नौकरी की प्रोफेशनल जिम्मेदारीयों और घरेलू जिम्मेदारियों के बीच तनाव व संघर्ष का सामना

ifrfØ;k	vkofÙk	ifr'kr
हाँ	120	80%
नहीं	26	17.33%
कह नहीं सकते	4	2.67%
d|y	**150**	**100%**

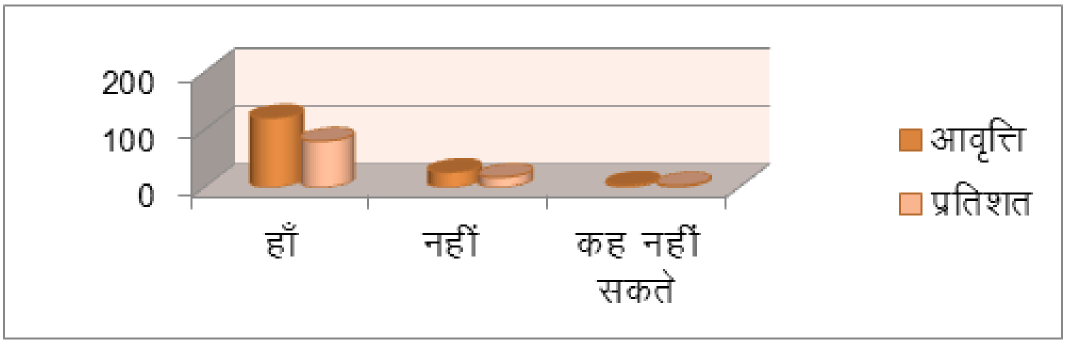

उपरोक्त तालिका में देखा जा सकता है कि बैंकिंग क्षेत्र की कामकाजी महिलाओं में से 80% प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि उन्हें नौकरी की प्रोफेशनल जिम्मेदारियों और घरेलू जिम्मेदारियों के बीच तनाव व संघर्ष का सामना करना पड़ता है।

स्वास्थ्य के लिए समय

izfrfØ;k	vkofÙk	izfr'kr
हाँ	8	5.33%
नहीं	132	88%
कभी–कभी	10	6.67%
dqy	**150**	**100%**

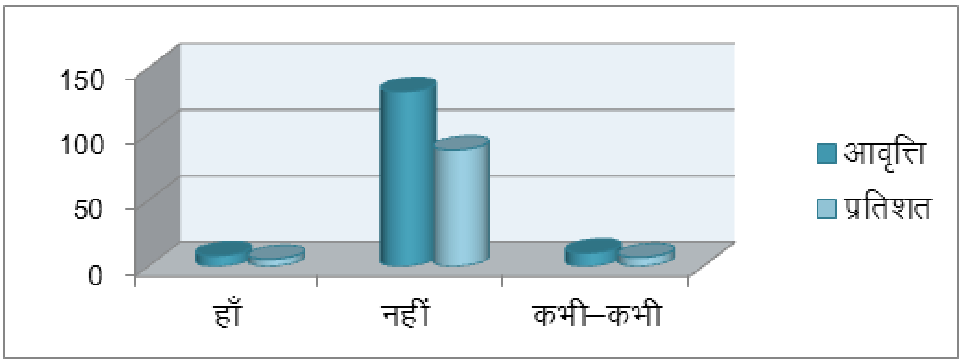

उपरोक्त तालिका में देखा जा सकता है कि बैंकिंग क्षेत्र की 88 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं काम के दोहरे संघर्ष के बीच अपने स्वास्थ्य के लिए समय नहीं दे पाती हैं, जबकि 5.33% प्रतिशत महिलाएं अपने स्वास्थ्य के लिए समय देती हैं तथा 6.67% प्रतिशत महिलाएं कभी-कभी अपने स्वास्थ्य के लिए समय दे पाती हैं।

कार्यालय से घर जाकर घरेलू कार्यों और बच्चों की शिक्षा से सम्बन्धित जिम्मेदारी सिर्फ आपकी होती है।

izfrfØ;k	vkofÙk	izfr'kr
हाँ	86	57.33%
नहीं	45	30%
हमेशा	8	5.33%
कभी–कभी	11	7.33%
dqy	**150**	**100%**

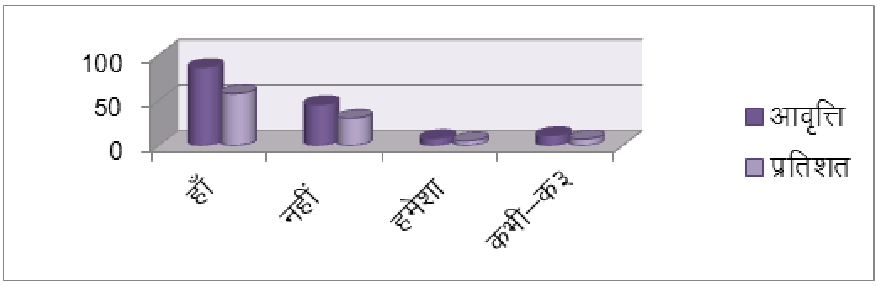

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि बैंकिंग क्षेत्र की कामकाजी महिलाओं में से 57.33 प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि कार्यालय से घर जाकर घरेलू कार्यों और बच्चों की शिक्षा से सम्बन्धित जिम्मेदारी सिर्फ उनकी होती है, जबकि 30% प्रतिशत महिलाएं इसे नहीं मानती हैं। कामकाजी महिलाओं में 7.33% प्रतिशत महिलाओं के अनुसार उन्हें कभी-कभी तथा 8% प्रतिशत महिलाएं इसे हमेशा मानती हैं।

निष्कर्ष-

प्रस्तुत अध्ययन में बैंकिंग क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं में कार्य-जीवन संतुलन के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जब महिलाओं को बैंकों में लंबे समय तक काम करना पड़ता है, तो महिलाएं अपने परिवार को उचित और आवश्यक समय नहीं दे पाती हैं और कुछ हद तक महिलाएं एक खुशहाल और संतुष्ट जीवन जीने में असफल हो जाती हैं। शोध कार्य का प्रथम उद्देश्य कार्य-जीवन असंतुलन के उन कारकों की पहचान करना है, जो बैंकिंग क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं के व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करते हैं, जिसमें पाया गया कि बैंकिंग क्षेत्र में लंबे समय तक काम करने की उच्च मांगों के कारण कार्य-जीवन असंतुलन से सम्बन्धित कई समस्याएं पैदा हुई हैं, क्योंकि महिलाओं को करियर निर्माण तथा खुशहाल परिवारों के लिए दोहरी भूमिका का सामना करना पड़ता है। कार्य-जीवन असंतुलन के कारण 93.33% प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि उनके लिए यह नौकरी चुनौतीपूर्ण है। कार्य-जीवन असंतुलन महिलाओं के तनाव के स्तर को बढ़ाता है, जिससे लगातार तनाव की भावना महिलाओं के स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है, क्योंकि 80% प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि नौकरी की प्रोफेशनल जिम्मेदारियों और घरेलू जिम्मेदारियों के बीच वे तनाव व संघर्ष का सामना करती हैं। शोध कार्य के द्वितीय उद्देश्य में बैंकिंग क्षेत्र में कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में कार्य-जीवन संतुलन की आवश्यकता का अध्ययन करना है, जिसमें पाया गया कि बैंकिंग क्षेत्र में काम करने वाली जो महिलाएं कार्य-जीवन संतुलन बनाए रखती हैं वो महिलाएं अपने जीवन-साथी, अपने बच्चों और अन्य सामाजिक-पारिवारिक जिम्मेदारियों की देखभाल करने में सक्षम होती हैं, क्योंकि 57.33% प्रतिशतम हिलाओं का मानना है कि कार्यालय से घर जाकर घरेलू कार्यों और बच्चों की शिक्षा से सम्बन्धित कोई भी जिम्मेदारी सिर्फ उनकी ही होती है। पारिवारिक जिम्मेदारियों और प्रौद्योगिकी में आधुनिकता के कारण महिलाओं के लिए काम का माहौल तेजी से बदल रहा है, जिस कारण 88 प्रतिशत महिलाएं कामकाज के दोहरे संघर्ष के बीच अपने स्वास्थ्य के लिए समय नहीं दे पाती हैं। चूंकि हमारे समाज में महिलाओं को अपने से ज्यादा अपने परिवार की देखभाल करनी पड़ती है, इसलिए एक अच्छा कार्य-जीवन संतुलन उनके लिए विशेष महत्व रखता है। सबसे महत्वपूर्ण औपचारिक और अनौपचारिक नियमों में से जो महिलाओं के लिए एक स्वस्थ कार्य-जीवन संतुलन को सुनिश्चित करने में सहायता करते हैं, उनमें चाइल्ड कैअर पहल, लचीला कार्यक्रम, प्रबंधकीय समर्थन और सहकर्मी समर्थन है।

References

1. Aggarwal, N. 2015. "Work Life Balance in E-Age :A study of women Employees". *International Journal of Computer ScienceAnd Technology, 6*, 79-85.
2. Delina, G., & R, P. 2013. "A study on work - life balance in working women". *International Journal of Commerce, BusinessAnd Management, 2*, 274-82.
3. Lakshmi, K., & Sujatha, S. 2013. "Work life balance of women employees - with reference to teaching Faculties".A*bhinav Journals, 2*, 53-62.
4. Mani, V. 2013. "Work life balanceAnd women professionals". *Global Journal of ManagementAnd Business Research, 3*, 117-28.
5. Mehta, P., & Kundnani, N. 2015. "Work - life balanceAtA glance - synthetic review". *Journal of Business Management & Social Sciences Research, 4*, 49-53.
6. Purohit, M., & Patil, D. 2013. "A Comparative study of work life balance in various Industrial sectors in Pune region". *International journal of Marketing, financial servicesAnd Management Research, 2*, 198-206.

7. Rao, I. 2017. “Work Life Balance for sustainable Human Development : cultural IntelligenceAs enabler”. *Journal of Human Behavior in the Social Environment, 27(7)*, 706-713.
8. Sethi, U. J. 2015. “Influence of work Life balance onArganisational commitment.A comparative study of women employees working in publicAnd private sector banks”. *International Journal of Management, I. T.And Enginering, 5*, 243-55.
9. Singh,A. 2015. “Work Life Balance:A Social Issue in redefining Human Resource Paradigm”. *Prestige Institute of Management*, 197-204.
10. Singley, S., & Hynes, K. 2005. “Transitions to parenthood work - family policies, genderAnd the couple context”. *Gender & Society, 19(3)*, 376-397.
11. Yadav, R. K., & Dabhade, N. 2014. “Work life balanceAnd job satisfactionAmong the working women of bankingAnd education sector -A Comparative study”. *International letters of socialAnd Humanistic Sciences, 21*, 181-201.
12. Yadav, R. K., & Singh, S. 2014. “Impact of work life balanceAnd stress management on job satisfactionAmong the working women in public sector banks”. *International Letters of socialAnd Humanistic Sciences, 26*, 63-70.

वाल्मीकि रामायण में धर्मशास्त्र

डॉ० बिपन शर्मा

जम्मू

धर्मशास्त्र के निरूपण में रामायण जैसी मूल्यवान् कृति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारतवर्ष में काव्य का जन्म धार्मिक, वातारण में हुआ है और भारतीय संस्कृति का मूलाधार धर्म ही है। रामायण को धर्म का उपादान माना जाता है। धर्म मानव जीवन एवं समाज की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सार्वभौमिक घटना है। धर्म शब्द का अर्थ भारतीय संस्कृति के अनुसार अत्यन्त व्यापक है। धर्म के मुख्य स्रोत श्रुति और स्मृति हैं। अत: श्रुति एवं स्मृति द्वारा कहा गया धर्म ही अनुष्ठेय हैं।

'धर्म शब्द 'धृ' धातु से 'मन्' प्रत्यय होकर निष्पन्न हुआ है। धर्म शब्द की शाब्दिक व्युत्पत्ति इस प्रकार है- "धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभि: इति वा" अर्थात् जो लोक को एवं पुण्यात्माओं द्वारा धारण किया जाता है वह धर्म है। मनुस्मृति ने धर्म का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह:।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधे दशकं धर्मलक्षणम्।।[1]

धर्म मानव हृदय की एक उच्च एवं उदात्त पवित्र भावना है। मनुष्य में सात्त्विक प्रवृत्तियों का विकास धर्म के कारण ही होता है तथा समाज एवं राष्ट्र सेवा, सहयोग, परोपकार, सहानुभूति की भावनायें जागृत होती है जिससे मानव का विकास सम्भव होता है जो कल्याणकारी सिद्ध होता है।

आदिकवि वाल्मीकि को सप्तऋषियों ने धार्मिक जीवन का ज्ञान दिया था उनके द्वारा रचित रामायण में धार्मिकता को श्रेष्ठतम् एवं लोक कल्याणकारी बतलाया गया है। क्योंकि तत्कालीन समाज में सम्पूर्ण कार्य धर्मानुसार ही करने पड़ते थे। रामायण में धर्म के विषय में इस प्रकार कहा गया है-

धर्मो ही परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मसंश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम्।।[2]

रामायण में वर्णित धर्म का आशय मनुष्य के लिए निर्धारित कर्त्तव्य पालन से है। तत्कालीन समाज में वर्ण क्रमानुसार जिस वर्ण का जो कर्म निर्धारित किया गया था वह उसी के अनुसार आचरण करता था। यही उसका कर्त्तव्य था और वही उसका धर्म भी था। रामायण में धर्मशास्त्र-विषयक सामग्री प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। आदि काव्य रामायण में वर्णधर्म, आश्रम धर्म, राजधर्म, नारी धर्म स्थिति एवं शिष्टाचार वर्णन हुआ है। उसकी धर्ममयता में कोई संदेह नहीं है वह तो पद-पद पर धर्म से अनुस्यूत है।

1) वर्ण धर्म-

रामायणकालीन आर्यो की सामाजिक व्यवस्था वर्णाश्रम की भित्ति पर अवलम्बित थी। रामायण के आरण्यकाण्ड में वर्णित है कि महात्मा कश्यप की पत्नी मनु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र जाति वाले मनुष्यों को जन्म दिया। उनके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए और हृदयों से क्षत्रिय। दोनों गुरुओं से वैश्यों का जन्म हुआ और दोनों पैरों से शूद्रों का ऐसा प्रसिद्धि है।[3]

ब्राह्मण -

वेदों का अध्ययन, व्रत, नियम का पालन, यज्ञों का अनुष्ठान तथा दान ये प्रथम तीन धर्म थे। स्वाध्याय, अध्यापन, तपस्या और प्रतिग्रह ब्राह्मणों के विशिष्ट कर्म थे। पुरोहित और ऋत्विक बनने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को था। अपने विशिष्ट कार्यो के

अतिरिक्त ब्राह्मणों को अन्य जातियों के कर्मों द्वारा भी निर्वाह करने की स्वतन्त्रता थी। तत्कालीन ब्राह्मणों को उनके कर्म अनुसार पांच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - (1) देव ब्राह्मण, (2) मुनि ब्राह्मण, (3) द्विज ब्राह्मण, (4) श्रात्र ब्राह्मण, (5) वैश्य ब्राह्मण।[4]

ब्राह्मणों का वध वर्जित था।5 दोषी ब्राह्मण भी अवध्य था। ब्राह्मण का धन हरने वाला कठोर दण्ड का भागी बनता था। ब्राह्मण हत्या महापातक थी। ब्राह्मणों का व्यक्तित्व गौओं और राजाओं के समान पवित्र माना जाता था। दैनिक जीवन में ब्राह्मणों को सर्वदा अग्रिम स्थान मिलता था। राजा लोग ब्राह्मणों के प्रति प्रभूत सम्मान प्रदर्शित करते थे। श्रीराम को 'ब्राह्मणामानुपासक:' कहा गया है। राजकीय समाज में ब्राह्मण पुरोहित की बहुत प्रतिष्ठा थी। राजा का वह अनिवार्य सहायक और परामर्शदाता था। दशरथ और श्रीराम के शासनकाल में वसिष्ठ को जो सम्मान एवं महत्त्व प्राप्त था, उससे पुरोहित के महान गौरव का स्पष्टीकरण होता है। ब्राह्मणों की इस असाधारण महत्ता और अलौकिक मान-प्रतिष्ठा का रहस्य था- उनकी त्याग भावना, ऐहिक वस्तुओं के प्रति अनासक्ति, स्वाध्याय और धर्म-सेवा में तत्परता, नि:स्वार्थ राजकीय सेवा, विलक्षण बौद्धिक प्रतिभा एवं संगठन शक्ति।

क्षत्रिय-

क्षत्रिय का प्रमुख कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करना था। श्रीराम के अनुसार क्षत्रिय इसलिए धारण करता है कि संसार में 'आर्त' शब्द का अस्तित्तव ही न रहे- क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति।[6] ब्राह्मण, गौ और शरणागत की रक्षा उसका विशेष लक्ष्य था। क्षत्रिय दान लेने का नहीं, केवल देने का अधिकारी था। परशुराम और कार्तवीर्य अर्जुन, वसिष्ठ और विश्वामित्र, शुक्र और ययाति तथा वसिष्ठ पुत्र और त्रिशङ्कु जैसे अपकादों के अतिरिक्त ब्राह्मणों और क्षत्रियों के पारस्परिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण थे। क्षत्रिय ब्राह्मणों को शीर्षस्थानीय मानकर उन्हीं का अनुगमन करते थे।[7]

वैश्य-

वैश्य लोग कृषि, गोपालन और वाणिज्य-व्यवसाय करते थे। वे ही अधिकतर कर चुकाया करते थे। अयोध्या तथा अन्य नगरों में उनके लिए पृथक् और प्रशस्त निवास स्थान बने थे। अपनी संख्या और ऐश्वर्य के कारण वैश्य अयोध्या के सबसे प्रतिभाशाली नागिरक थे।[8] वैश्य के व्यापारिक संघ श्रेणी, गण और नैगम कहलाते थे।

शुद्र-

तीनों वर्णों की सेवा करना शुद्र का विहित कर्म था। उन्हें यज्ञों में उपस्थित होने का अधिकार था, यज्ञों के अनुष्ठान करने का नहीं।[9] चारों वर्णों के पारस्परिक सम्बन्ध सद्भावना पूर्ण थे। सभी वर्ण 'स्वकर्मनिरत' थे। अत: वर्ण-विद्वेष नाम मात्र भी नहीं था। अयोध्या के वर्णन में कहा गया है कि क्षत्रिय ब्राह्मणों को अपना नेता मानते थे। वैश्य क्षत्रियों की आज्ञा पालन करते और शूद्र अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए तीनों वर्णों की सेवा में संलग्न रहते थे।[10]

2) आश्रम धर्म -

वेदों के आधार पर चार आश्रमों की व्यवस्था करके धर्मशास्त्रियों ने जो समाज का संगठन किया उसी का वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में किया है।

क) ब्रह्मचर्याश्रम- माता पिता को चाहिए कि पांच वर्ष की आयु में बालक को गुरुकुल में प्रेषित कर दे अथवा घर पर ही रखकर दूसरों से या स्वयं विद्या अध्ययन करवायें। जब तक शिक्षा पूर्ण न हो तब तक उसे ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करना होगा। बालक का कर्त्तव्य है कि वह गुरु के यहाँ ब्रह्मर्याश्रमधर्म की शास्त्रोक्त विधि के अनुसार यथाधिकार यज्ञोपवित संस्कार कराकर वेदाध्ययन करते हुआ विद्या अभ्यास करे, शास्त्रों का तथा अनेक प्रकार की भाषाओं और लिपियों का ज्ञान प्राप्त करें। वाल्मीकि रामायण में कठशाखा और कलाप शाखा के अध्येता दण्डधारी ब्रह्मचारी[11] और मेखलाधारी ब्रह्मचारी[12] का वर्णन मिलता है।

ख) गृहस्थाश्रम- समावर्तन संस्कार के बाद जब बालक विद्या अध्ययन करके आये तो मार्ग में मिल जाने पर राजा को उचित है कि वह उसके लिए उचित मार्ग दे दे और घर आने पर पिता को उचित चाहिए कि वह स्नातक की सत्कारपूर्वक मधुपर्क आदि से पूजा करे। गृहस्थ आश्रम पर ही शेष तीनों आश्रम आश्रित हैं जिससे गृहस्थाश्रम की महत्ता उजागर होती है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए नित्य पांच प्रकार के पाप होते हैं, उनकी निवृत्ति के लिए पंच महायज्ञों का अनुष्ठान करना आवश्यक है। ये महायज्ञ इस प्रकार है-

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्ते तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।[13]

अतिथि का पाद्य, आर्ध्य, मधुपर्क और आसन द्वारा स्वागत करना गृहस्थ का परम कर्त्तव्य है।[14] अतिथि रूप में आये हुए विभीषण का स्वागत करके श्रीराम ने अतिथ्य धर्म का परिचय दिया है।[15] वाल्मीकि रामायण में पग-पग पर गृहस्थाश्रम का महत्त्व दृष्टिगोचर होता है।

ग) वानप्रस्थ आश्रम- 'ब्रह्मचर्य' और 'गृहस्थ' आश्रम की योजनाओं के अतिरिक्त "वानप्रस्थ" आश्रम की योजना का वर्णन समग्र वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध होता है। इस योजना के अनुसार प्रारम्भिक युग में किसी भी अवस्था का व्यक्ति वानप्रस्थ विधि से व्यक्तित्व का विकास करने के लिए सामाजिक जीवन को छोड़ कर चल देता था। इस प्रकार विद्यार्थी जीवन के पश्चात् वानप्रस्थ के तपोमय जीवन का समारम्भ सम्भव था।

रामायण में प्रयाग संगम पर भारद्वाज ऋषि के आश्रम, चित्रकूट में वाल्मीकि आदि ऋषियों के आश्रम, दण्डकारण्य में अगस्त्य आदि महर्षियों के आश्रम के प्रचूर वर्णन मिलते हैं।[16] वन में मुनि लोग अपने उपनिवेश के लिए उपवन बना लेते थे।[17] रामायण में तप के द्वारा प्रभा को द्योतित होने का उल्लेख है। तपस्या करके महात्मा अग्नि के समान देदीप्यमान हो जाते थे। मुनि साधारणतः जप और होम में संलगन रहते थे। तप के द्वारा ब्रह्मत्व की सम्भावना मानी जाती थी। रामायण काल में यज्ञ की भांति तप के लिए नियत अवधि होती थी। उस अवधि के समाप्त होने पर तपस्वी वैसे ही स्नान करते थे, जैसे ब्रह्मचारी अध्ययन समाप्त कर लेने पर स्नातक बनते समय।[18]

घ) सन्यास आश्रम- सन्यास-आश्रम में मनुष्य सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होकर महान् विचारक बनने का अवसर पाता है। जब तक मानव किसी एक स्थान, कुटुम्ब, ग्राम देश, कुल, धर्म, व्यवसाय और पद से सम्बन्ध रखता है, तब तक उसके बौद्धिक विकास और विचार श्रेत्र सीमित रहते हैं। सन्यासी अपने व्यक्तित्व की असीमता का अनुभव करके उसके विकास के लिए अपनी शक्तियों का पूर्ण अयोग कर सकता है।

वानप्रस्थ आश्रम के मनन, चिन्तन और तप साधारणतः ब्रह्मज्ञान के साधन हैं। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर इन साधनों की आवश्यकता नहीं रह जाती। साधना की अवधि समाप्त हो जाने पर मुनि की सन्यास अवस्था होती है। ब्रह्मज्ञानियों को रामायण में 'भावितात्मा' की उपाधि दी गई है।[19]

3) राजधर्म -

प्रायः सभी राजनीति शास्त्रज्ञों ने राज्य के सात अङ्ग बतलाये हैं, यथा- 1. स्वामी (शासक या राजा) 2. अमात्य (मन्त्री), 3. जनपद 4. दुर्ग 5. कोश 6. दण्ड(सेना) 7. मित्र। वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत इन सप्ताङ्गों का वर्णन दृष्टिगोचर होता है, किष्किन्धाकाण्ड में कहा गया है कि जिस राजा का कोश, दण्ड, मित्र और अपना शरीर- ये सबके सब समान रूप से वश में रहते हैं वह विशाल राज्य का पालन एवं उपभोग करता है।[20]

क) स्वामी (राजा)- वाल्मीकि के अनुसार आदर्श राजा गुणवान, पराक्रमी, धर्मज्ञ, उपकार मानने वाला, सत्यवक्ता, दृढ़प्रतिज्ञ, सदाचारी, समस्त प्राणियों का हितसाधक, विद्वान, सामर्थ्यशाली, प्रिय दर्शन, मन पर अधिकार रखने वाला, क्रोध को जीतने वाला, कान्तिमान्, अनिन्दक और संग्राम में अजय योद्धा होता है। राजा को व्यक्तिगत हित की अपेक्षा जनहित का विशेष ध्यान रखना पड़ता था। श्रीराम ने प्रजा की प्रसन्नता के लिए अपनी प्रियभार्या सीता का परित्याग कर दिया। राजा को जनमत के समक्ष झुकना पड़ता था।[21]

राजा समस्त राष्ट्र का संरक्षक था। धर्मानुसार न्याय वितरण करना उसका कर्तव्य था। उसका यह कर्तव्य था कि चारों वर्ण स्वकर्मनिरत है या नहीं। प्रजा राजा को अपनी आय का छठा भाग कर के रूप में देती थी। बदले में राजा पर दुष्टों के दमन और साधुओं के रक्षण का भार आ पड़ता था। यदि राजा दण्ड देने में प्रमाद कर जाये तो उसे दूसरों को किये हुए पाप भी भोगने पड़ते हैं।[22]

रामायण में राजा को 14 प्रकार के दोषों से बचने के लिए उपदेश दिया गया है- यथा नास्तिकता, असत्यवादिता, क्रोध, अनवधानता, प्रमाद, समझदारों से न मिलना, आलस्य, इन्द्रिय सुख में लगने रहना, मन्त्रियों से सम्मति न लेना, राजनीति ज्ञान-विहित

से सम्मति लेना, निर्णीत बातों के अनुसार न चलना, गुप्तनीति का पालन न करना, शुभ कार्य न करना, एक ही समय सभी प्रकार की बातों को अङ्गीकार करना।[23]

ख) मन्त्री- मन्त्रिपरिषद् के दो भाग थे- (1) अमात्यमण्डल, जिसके सदस्य अमात्य या सचिव कहलाते थे। प्रत्येक के अधिकार में एक विभाग था। अमात्यगण सम्भवत: क्षत्रिय वर्ण के थे। इनका कार्य शासन कार्य का संचालन करना था। (2) मन्त्रिमण्डल जो श्गुरव:' भी कहलाते थे। यह एक परामर्श दात्री समिति थी, जो किसी कार्य विशेष पर आमन्त्रित की जाती थी। इसके सदस्य ब्राह्मण थे।

दशरथ के अमात्यमण्डल में धृष्टि, जयन्त विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रपाल और सुमन्त्र थे[24] तथा मन्त्रिमण्डल में सुयज्ञ, जाबलि, कश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन तथा ऋत्विगद्वय वसिष्ठ और वामदेव थे।[25] अमात्य मण्डल और मन्त्रिमण्डल दोनों सम्मिलितरूप से मन्त्रिपरिषद् कहलाते थे।

दशरथ के अमात्यगण मन्त्र के तत्त्व को जनने वाले और बाहरी चेष्ठा को देखकर ही मन के भाव समझ लेने वाले थे। वे बड़े यशस्वी और गुणवान थे, सदा ही राजा-प्रजा के प्रिय और हित में लगे रहते थे। उनके स्वभाव और विचार शुद्ध थे तथा राजकीय कार्यों में निरन्तर संलगन रहा करते थे। दशरथ के मन्त्रिगण परम्परागत थे।[26]

मन्त्रियों का यह कर्त्तव्य था कि वे राजा को कुपथगामी बनने से बचाए। अश्वमेघ यज्ञ करने के समय, युवराज को राज्य का बाहर कार्यवश भेजने के समय, युवराज को योग्य वधु चुनाव के समय, सभा के समक्ष किसी प्रस्ताव को रखने से पूर्व, युद्ध घोषण करने से पूर्व तथा अन्य कठिन समस्याओं का हल करने के समय राजा मन्त्रिपरिषद् से परामर्श करता था। जब एक ब्राह्मण ने, जिसका पुत्र असमय में ही मर गया था, श्रीराम पर कुव्यवस्था का दोषारोपण किया तब श्रीराम ने अपनी मन्त्रीपरिषद से परामर्श किया था।[27]

ग) राज्य (राष्ट्र)- राष्ट्र की समृद्धि आदर्श-शासन व्यवस्था से ही सम्भव है। राजा दशरथ के शासनकाल में सम्पूर्ण अयोध्यावासी प्रसन्न, धर्मात्मा, धन-धान्य सम्पन्न तथा निर्लोभी थे।[28] वे नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रहते, मालाएं और अङ्गराग धारण करते तथा बहुमूल्य खाद्य और पेय पदार्थों का सेवन करते थे।[29] अपवित्र अन्न भोजन करने वाला, दान न देने वाला तथा मन का विग्रह ने करने वाला मनुष्य तो वहाँ कोई दिखाई ही नहीं देता था।[30] अयोध्यापुरी में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो अग्निहोत्र और यज्ञ न करता हो। क्षुद्र, चोर, दुराचारी अथवा वर्णसंकर का तो वहां नाम भी नहीं था।[31] सभी मनुष्य स्त्री पुत्र और पौत्र आदि परिवार के साथ सुख से रहते थे।[32] सभी नगर एवं राष्ट्र धन-धान्य से सम्पन्न थे।

घ) कोश- दशरथ के मन्त्रिगण राजकीय कोश को समृद्ध करने में अत्यन्त जागरूक रहते थे।[33] वे ब्राह्मणों और क्षत्रियों को कष्ट न पहुंचाकर यथोचित धन से राजा का खजाना भरते थे।[34] राजा की आय का मुख्य स्रोत 'बलिषड्भाग' अर्थात् प्रजा की आय का छठा भाग था।[35] कर का भार अत्याधिक नहीं था और न वह कठोरता से वसूल किया जाता था। आय के अन्य स्रोत अधीनस्थ राजाओं से प्राप्त होने वाले उपहार भी थे।[36] अयोध्या के राजा को उपहार करने वाले राजा तीन प्रकार के थे- केवल (जो राज्य नहीं करते थे), अपरान्त (जो विदेशी राजा थे), और समुद्र (जो समुद्र पार के देशों के शासक थे)। राजा को आय के विविध उपायों से तथा व्यय के उचित साधनों से परिचित रहना चाहिए।[37] राजा का धन देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा तथा मित्रों के लिए खर्च होता था।

ड) दण्ड- श्रीराम का शासन परम्परागत राजधर्म के अनुसार होता था। न्याय विवरण का सर्वोच्च सिद्धान्त यह था कि निरपराध व्यक्ति को दण्ड नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि निरपराध होने पर भी जिनको मिथ्या दोष लगाकर दण्ड दिया जाता है, उन मनुष्यों की आखों से जो आंसू गिरते हैं, वे पक्षपातपूर्ण शासन करने वाले राजा के पुत्र और पशुओं का नाश कर डालते हैं। राजा को यह ध्यान रखना पड़ता था कि योग्य न्यायधीशों द्वारा जांच कराये बिना कथित अपराधी को दण्डित न किया जाये। चित्रकूट पर श्रीराम भरत से पूछते हैं कि कभी ऐसा तो नहीं होता कि कोई मनुष्य किसी श्रेष्ठ, निर्दोष और शुद्धात्मा पुरुषपर भी दोष लगा दे और शास्त्र ज्ञान में कुशल विद्वानों द्वारा उसके विषय में विचार कराये बिना लोभ आदि के कारण उसे दण्ड दे दिया जाये।द्य जो चोरी में पकड़ा गया, जिस किसी ने चोरी करते समय देखा हो, पूछताछ से भी जिसके चोर होने का प्रमाण मिल गया हो तथा जिसके विरुद्ध चोरी का समान उपलब्ध होना आदि अन्य प्रमाण मिल गये हो, ऐसे चोर को भी राज्य धन के लालच में छोड़ तो नहीं दिया जाता?[39] यदि धनी एवं निर्धन में विवाद हो और वह राज्य के न्यायालय में निर्णय के लिये आया हो, तो मन्त्री धन आदि के लोभ छोड़कर इस पर विचार करते है ना?[40]

ङ) मित्र- राजनीति विशेषज्ञों ने मित्र बनाने की आवश्यकता पर बहुत बल दिया है और राजा के लिए अच्छे मित्र के गुणों का वर्णन किया है- राजा सोना एवं भूमि प्राप्त कर उतना समृद्ध नहीं होता जितना अटल मित्र पाकर, भले ही मित्र धन सम्पन्न न हो, क्योंकि भविष्य में वह शक्तिशाली हो जायेगा, एक दुर्बल मित्र भी श्लाघनीय है यदि वह गुणवान एवं कृतज्ञ हो, उसकी प्रजा सन्तुष्ट हो और अपने हाथ में लिए हुए कार्य को अन्त तक करने वाला अर्थात् दृढ़ प्रतिज्ञा हो।

पुरुषसिंह राजा दशरथ अयोध्या में ही रहकर इस पृथ्वी का शासन करते थे। उन्हें कभी अपने से बड़ा और समान कोई भी शत्रु नहीं मिला। उनके मित्रों की संख्या बहुत थी।[41] श्रीराम का सुग्रीव के साथ मित्रता करना भी राज्य के सप्तङ्गो के महत्त्व का द्योतक है। श्रीराम ने सुग्रीव का हाथ अपने हाथ में लेकर परस्पर मैत्री का अटूट सम्बन्ध स्थापित किया।[42] हनुमान-सुग्रीव को राजधर्म का उपदेश देते हुए कहते हैं- कि जो राजा मित्रों के प्रति सदैव साधुतापूर्ण बर्ताव करता है, उसके राज्य, यश और प्रताप की वृद्घि होती है।[43]

नारी धर्म-

रामायणकालीन समाज में धर्म के साथ साथ लोकमार्यदा का अद्‌भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। यहाँ पर पतिव्रत्य धर्म की विस्तार से चर्चा मिलती है। प्रत्येक स्त्री का यह धर्म था कि वह मन, वचन एवं कर्म से सदैव पति अनुरागिणी बनी रहे तथा वह कभी पति की अवहेलना न करे, पति के द्वारा तिरस्कृत होने पर भी रोषवश उसके विरुद्ध आचरण न करे। पतिव्रत्य धर्म का उल्घंन करने वाली स्त्रियों को समाज हेय की दृष्टि से देखता था तथा उन्हें असती या दुष्टा कहकर सम्बोधित करता था। *जैसे-*

असत्य: सर्वलोकेऽस्मिन् सततं सत्कृता प्रियैः।
भर्तारं नानुमन्यन्ते विनियातगतं स्त्रियः।।
एष स्वभावं नारीणामनुभूय पुरा सुखम्।
अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहत्यपि।।[44]

अर्थात् जो स्त्रियाँ पति द्वारा सम्मानित होकर भी उसके विपत्ति में पड़ जाने पर उसका सम्मान नहीं करती है वे इस संसार में असती या दुष्टा के नाम से बोधित होती है। क्योंकि पहले वह पति से यथेष्ठ सुख की भोग करती रही है, लेकिन थोड़ी सी विपत्ति आने पर उस पर दोषारोपण करती हुई उसका साथ छोड़ देती है।

रामायण में जिस तरह पतिव्रत्य धर्म का वर्णन प्रतीत होता है उसी तरह से पति के भी नैतिक कर्त्तव्यों के निर्वहन का वर्णन मिलता है कि वह भी पत्नी की सभी प्रकार से रक्षा करें तथा उसको संतुष्ट रखे।

स्त्रियों को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी उत्सवों में, राज्याभिषेक में, यज्ञों में, सामूहिक भोजों में, श्राद्धकर्म में, अन्तयेष्टि क्रिया में स्त्रियाँ सम्मिलित होती थी।[45] अपने पति की वे 'क्रीड़ासहाय' थी।[46] विविध वस्त्राभूषणों से सुसजित हो वे अपने-अपने पतियों के साथ देश विदेश में भ्रमण करती थी। स्त्रियों के प्रति उच्चशिष्टाचार का पालन किया जाता था। उन्हें सभी प्राणियों के हाथों अवध्य माना गया था। वाहनों पर चढ़ते समय स्त्रियों को पहले स्थान दिया जाता था। परायी स्त्रियों की ओर देखना असभ्यता थी।

5. शिष्टाचार-

रामायण-काल सभ्यता, शिष्टता, मधुर संवाद, विनम्र व्यवहार और आदर्श शिष्टाचार का युग था। रामायणकालीन शिष्टाचार भारतीय शिष्टाचार का सदा आदर्शभूत रहा है। पञ्चमहायज्ञों में अतिथि सत्कार का विशिष्ट स्थान था। अभ्यागतों का पाद्य, अर्ध्य, मधुपर्क और आसन द्वारा स्वागत किया जाता।[47] क्या तपस्वी, क्या राजा, आतिथ्य में अपनी शक्ति के अनुसार सारे साधन जुटा देते थे। अतिथि रूप में शरण में आये विभीषण के विषय में जब श्रीराम अपने मन्त्रियों से सम्मति प्रकट करने को कहते हैं तो सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान्, मैन्द तथा लक्ष्मण-प्राय: सभी विभीषण को शरण देने का विरोध करते हैं, तब श्रीराम सभी को समझाते हुए उस कबूतर का उदाहरण देते हैं, जिसने व्याध का यथोचित आतिथ्य करते हुए अपने मांस का भोजन कराया था। उन्होंने कहा-

एवं दोषों महानत्र प्रपन्ननामरक्षणे।
अस्वर्ग्य चायशस्यं च बलवीर्य विनाशनम।।[48]

शरणागत की रक्षा न करने में महान् दोष है। शरणागत का त्याग स्वर्ग और सुयश की प्राप्ति मिटा देता है और मनुष्य के बल और वीर्य का नाश करता है।

6. सामान्य धर्म-

रामायणकालीन संस्कृति धर्म द्वारा पूर्णतया अनुप्राणित थी। वेदों का प्रभुत्व सर्वव्यापी था। धार्मिक अनुष्ठानो में प्रमाण भूत थे। नये घर में प्रवेश करने से पूर्व 'वास्तुशान्ति' नामक कृत्य सम्पादित किया जाता था।[49] प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ करने के अवसर पर स्वस्त्ययन क्रिया की जाती थी। दैनिक अनिवार्य धार्मिक कार्य "अहिनक कृत्य" कहलाते थे- जिसमें स्नान, अर्ध्य, तर्पण, मार्जन, प्राणायाम, गायत्री जप, अग्निहोत्र और देवार्चन सम्मिलित थे। रामायण समय में आर्य उपयुक्त समय पर सन्ध्योपासन करने में बड़े जागरूक रहा करते थे। अन्तयेष्टि क्रिया में प्रेत कार्य, उदयक्रिया, पिण्डदान निर्वाप-क्रिया तथा श्राद्धकर्म किये जाते थे।[50] तीर्थ स्थानों का अनुष्ठान किया जाता था, जिसमें शास्त्रीय विधि के पालन का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। अयोध्या में निवास करने वाले लोग धर्मात्मा, बहुश्रुत, निर्लोभ, सत्यावादी, अपने धन से ही सन्तुष्ट रहने वाले, संयमी तथा शील एवं सदाचार की दृष्टि महर्षि की भान्ति विशुद्ध थे। प्रतिज्ञा पालन, सत्यवादिता, कृतज्ञता, इन्द्रियनिगृह तथा दानशीलता का वाल्मीकि ने स्थल-स्थल पर आग्रह किया है। कर्म-पल भोगने के लिए जन्म-जन्मान्तर तथा स्वर्ग और नरक की प्राप्ति में विश्वास अनिवार्य था। जीवन के प्रत्येक दृष्टिकोण आशा तथा निराशा का समन्वय था। धर्म जीवन के समग्र उत्कर्ष का मूल स्रोत था-

धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत।[51]

सात्त्विक और दैवी जीवन की ओर प्रेरित करने वाली सम्पूर्ण बाते धर्म का अन्तर्गत थी। रामायण के चरित्र-चित्रण में धर्म की साकार मूर्तियाँ, धर्म के ज्वलन्त आदर्श विद्यमान हैं। विभीषण में शरणागत धर्म का, हनुमान में सेवा धर्म का सुग्रीव में,सांख्यधर्म का दशरथ में पितृधर्म का, श्रीराम में पुत्र धर्म, पतिधर्म और राजधर्म का, कौशल्या में स्त्री धर्म का, सीता में पातिव्रत्यधर्म का तथा भरत और लक्षमण में भ्रातृधर्म का मूर्तिवान् आदर्श सन्निहित है।

सन्दर्भ सूची-

1. मनुस्मृति, 6.92
2. वाल्मीकि रामायण, 2.21.41
3. मनुर्मनुष्याञ्जनयत् कश्यापस्य महात्मनः। ब्राह्मवान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शुद्राञ्चं मनुजर्षभ। वा.रा.अ.का., 14.29-30
4. अयोध्या काण्ड, 32.29
5. वा.रा.उत्तर काण्ड
6. वा.रा. आरण्यकाण्ड, 10.3
7. प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्य क्षत्रियैर्द्विजात्। ऐश्वर्य पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः।। युद्ध काण्ड, 128.118
8. नानादेशनिवासेश्च वणिग्भिरुपशोभिताम्। वा.का., 5.14
9. शुद्रांश्चैव सहस्रशः। बा.का., 13.20
10. ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शुद्रा लोभविवर्जिः। यु.का., 128.104
11. वा.रा.अयो. काण्ड, 32.18-20
12. वही, 32.21
13. मनुस्मृति, 3.10
14. वा.रा. बाल काण्ड, 2.25
15. वा.रा. युद्ध काण्ड, 19.31
16. वा.रा. अयो. काण्ड सर्ग- 54, 56, अरण्यक काण्ड सर्ग 6, 8
17. वा.रा. अरण्य काण्ड, 11, 78
18. वा.रा. बाल काण्ड, सर्ग 51
19. बालकाण्ड, सर्ग, 63.1
20. अरण्य काण्ड सर्ग, 5.4

21. यस्य कोशश्च दण्डश्च मित्राण्यात्मा च भूमिया समान्येतानि सर्वाणि स राज्यं महदश्नुते। कि.का., 29.11
22. उत्तराकाण्ड, 45.14
23. तथा तयोर्विहरतोः सीताराघवयोश्चिरम्। उ.का., 43.25
24. बालकाण्ड, 7.17
25. वही, 7.3
26. वही, 7.4
27. वही, 7.12
28. उत्तरकाण्ड, 74.6
29. बालकाण्ड 6.6
30. वही, 6.10
31. वही, 6.12
32. वही, 6.18
33. नित्यमूला नित्याफलास्तरवस्त्र पुष्रिता।
    कामवर्षी च पर्जन्य:सुखस्पर्सश्च मारूतः। यु.का., 121.103

34 युद्ध कांड, 128.104
35 बाल कांड, 7.11
36 वही, 6.11
37 उत्तरकांड, 6.11
38 सुन्दर कांड, 2.19
39 बाल कांड सर्ग, 5, सुन्दर कांड, 2.14, 16
40 अयोध्या कांड, 100.56
41 वही, 100.58
42 वा.रामा., सुन्दर, 4.16
43 सुन्दर कांड, 4
44 वा.रामा., 2.39.20-21
45 मित्रवातसामन्तः प्रतापहतकंटकः बा.का., 7.23
46 वा.रामा., कि.का., 5.11
47 अयोध्या काण्ड, 117.27
48 वा.रामा., अयोध्या काण्ड , 117.29
49 वा.रामा., अयोध्या काण्ड , 118.34
50. बाल कांड, 77.26
51 वही, 2.56.31

गुरु जंभेश्वर जी महाराज के आध्यात्मिक संवाद एवं अभिव्यक्ति शैली

डॉ० मनबीर

शोधार्थी, जाम्भाणी साहित्य एवं प्राध्यापक, शिक्षा विभाग हरियाणा, हिसार

गुरू जंभेश्वर जी महाराज का अवतार ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण काल मध्यकाल में हुआ था। उनका जन्म विक्रमी संवत 1508 में भादो बदी अष्टमी यानि सन 1451 में आधी रात्रि को पीपासर गांव में हुआ था। हालांकि यह भी अभी तक संशय है कि वे माता हंसा के उदर से पैदा हुए थे या भगवान कृष्ण के जन्म की तरह भगवान विष्णु के अंश के रूप में लोहट जी के घर में अवतरित हो गए थे। क्योंकि कोई भी ग्रंथ या साक्ष्य इस बात को प्रमाणित नहीं कर रहा कि उनका जन्म हंसा के पेट से ही हुआ था। उनके जन्म का विवरण केवल परवर्ती कवियों की रचनाओं में ही उद्धृत है। कथा परसिध में कवि सुरजनजी ने लिखा है:

पंनरां संमंत अठोतरै, भादव वदि अवतार।

अठंव तिथि अचंभ गति, आवे सिरजण हार।।

ऐसे में निश्चित रूप से गुरू जंभेश्वर जी महाराज ने इंसानी उदर से जन्म न लेकर दिव्य शक्ति का प्रमाण जन्म काल के दौरान ही दे दिया था। बाद में जीवन के आरंभिक वर्षों में जैसा कि एक महान संत पुरूष व दैवीय शक्ति से अपेक्षित होता है वैसा ही व्यवहार उन्होंने किया था। जरूरत के हिसाब से बोलना, व्यर्थ वाद विवाद से दूर रहना, चंचलता व अलहड़पन की बजाय धीर-गंभीर की मुद्रा में ही गुरू जी रहते थे।

गुरू जी ने स्वयं के अगम पुरूष व दिव्य आत्मा होने का सबूत तो तभी दे दिया था जब उन्होंने दोष मोचन करने वाले भोपे तथा उनको बुलवाने की कोशिश कर रहे एक श्मशान सेवी पंडे को चमत्कार दिखाया। इस दौरान उनके सबद में जहां गुरू की महिमा व लक्षणों का बखान हुआ वहीं कच्चे घड़े से कुएं से पानी निकालकर व उस पानी से ज्योत जलाकर उपस्थित लोगों को जता दिया था कि वे कोई सामान्य मानव नहीं है। लेकिन जैसा कि उस दौर का प्रभाव था कि लोग ऐसी घटनाओं को किसी कलाबाज की कला मानते थे और मानसिक रूप से इतने विकसित नहीं थे कि वे गुरू जी के बोले गए सबद का अर्थ व उन द्वारा किए गए असंभव कार्य को सबक रूप में ले पाते।

परवर्ती संत साहित्य व ग्रंथों में उनके जीवन का विभाजन तीन काल खंडों में वर्णित है। वील्होजी जी के एक छप्पय में उनके जीवन-वृत को इस प्रकार कहा गया है:

वरस सात संसारि, बाल लीला निरहारी।

वरस पांच बावीस, पाल एता दिन चारी।

ग्यारै और चालीस, सबद कथिया अवनासी।

बाल गुवाल गुर ग्यांन, मास तीन व्रस पच्यासी।

गुरू जी ने जीवन के प्रारंभिक सात वर्ष तक एक तरह से मौन रूप धारण कर यानि मितभाषी रहकर जीवन व्यतीत किया। साहित्य में इस दौरान उनकी द्वारा की गई अनेक बाल-लीलाओं का भी वर्णन आता है जिनसमें जन्म घूंटी न लेना, स्तनपान नहीं करना, दूध न पीना, भोजन न करना आदि मुख्य हैं। जहां तक दूसरे काल खंड की बात है उसे 27 वर्ष माना गया है जिस दौरान

उन्होंने गौचारण किया तथा अपने साथी युवकों, ग्रामीणों, माता-पिता व कुछ प्रभावी व्यक्तियों को सही रास्ते पर लाने व कुरीतियों से उपर उठने के लिए कई तरह के चमत्कार व दैवीय तरीकों का सहारा लिया। इस काल में जहां माता-पिता ने उन पर विवाह करने तथा अन्य सांसारिक कार्यो में रमने के लिए कई तरह के उपाय किए लेकिन गुरू जी ने तर्क व अध्यात्म के आधार पर उन्हें विश्वास में लिया और आजीवन ब्रहमचारी रहे। माता-पिता के इंतकाल के बाद उन्होंने अपना घर बार त्याग दिया तथा जिस उद्देश्य के लिए धरती पर आए थे उसे पूरा करने के लिए पीपासर गांव से थोड़ी दूर रेत के विशाल उंचे टीले समराथल पर आसन लगाकर बैठ गए।

उनके जीवन का तीसरा कालखंड 51 वर्ष 3 महीने का था जो समराथल पर बीता। इस दौरान उन्होंने जहां एक नवीन पंथ की स्थापना की वहीं देश विदेश में भ्रमण कर भूले भटके लोगों को रास्ते पर लाने की कोशिश शुरू की। गुरू जी जिस समय धरा पर आए थे वह दौर राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व नैतिक रूप से काफी उथल पुथल भरा था। उन्होंने अपने जीवन के शुरूआती वर्षो में इस बात को भली भांति जान लिया था कि लोगों का उद्धार वैदिक उपदेशों की बजाय व्यावहारिक समाधान की बातों से ही संभव हो सकता है। उन्हें समझाने के लिए उनके ज्ञान के स्तर तक जाना होगा तथा फिर उन्हीं की बोली व भाषा में जीवन मुक्ति के उपाय बताने होंगे। और इस दिशा में अपेक्षित परिणाम के लिए गुरू जंभेश्वर जी ने अध्यात्म क्षेत्र की क्लिष्ट शब्दावली, संस्कृत व वैदिक रूप में लिखे गए मंत्रों को सरल भाषा में अनुवाद कर लोगों को दिए ताकि वे इनके मर्म को जान सके तथा उनका प्रयोग व्यवाहारिक जीवन में कर एक खुशहाल जीवन व्यतीत कर सकें।

यही नहीं उन्होंने अपने सबदों में प्रत्येक सबद को इस तरह चुना जो कई-कई अर्थो के अलावा गहन और गूढ अर्थ को समेटे हुए था। इसके लिए उन्होंने कहा-मोरा सबद खोजो, ज्यू सबदे सबद समाई(27/1-2)। अपनी विशेष प्रवचन, संवाद व उपदेश शैली की वजह से ही गुरू जी की बातों को पढे लिखे विद्वानों, अनपढ़ किसान व मजदूर वर्ग ने अपनाया तथा जीवन में चिपके दोषों व कुरीतियों को छोडकर उनके अनुयायी बन गए।

उनके तीसरे कालखंड यानि उपदेश काल के दौरान अनेक प्रसंग व दृष्टांत इस बात के गवाह हैं कि उन्होंने किसी भी व्यक्ति व समुदाय को अपने साथ जोडने के लिए मजबूर नहीं किया। जो ज्यूं आवै सौ त्यूं थरपा, साचा सूं सत भायो(29/55-56)। वे लोगों को बाहरी आंडबरों, कुरीतियों तथा प्रचलित दोषों के समाधान का रास्ता बताने में ही विश्वास करते थे तथा उनके उपदेश व्यावहारिक जीवन की महता पर बल देते थे। इसी कारण उनके अनुयायियों की जमात में राजा, नवाब, सूबेदार, संत, महात्मा, किसान, व्यापारी, मजदूर सभी तबकों के लोग शामिल हुए।

गुरू जंभेश्वर जी के उपदेशों का सामूहिक नाम सबदवाणी है जो समय-समय पर उन्होंने अनेक लोगों के प्रति उनकी शंका निवारण, जिज्ञासा-समाधान, प्रश्नोत्तर और प्रतिबोध कराने के लिए कहे थे। हस्तलिखित प्रतियों में सबदवाणी के लिए च्सबद श्रीवायकज् का प्रयोग भी है, जिसका तात्पर्य श्रीमुख से निसृत ज्ञानवाणी है। सबद अर्थात ज्ञान। बिश्नोई धर्म के सिद्धांतों का मूल आधार होने के कारण इसको जंभवाणी व सिद्धांतवाणी भी कहा गया है। बिश्नोई धर्म में सबदवाणी ही एक मात्र और स्वत: प्रमाण है। यह पांचवां वेद भी मानी जाती है (डॉ. हीरालाल माहेश्वरी : जांभोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य, भाग-1, कलकता-1970)।

सबद उनके हृदय से निकले स्वाभाविक उद्‌गार मात्र थे जो स्वानुभूति, ब्रह्मनुभूति व भावानुभूति की अभिव्यक्ति है। सबदवाणी आरंभ से अंत तक आध्यात्मिकता के रंग में रंगी है। जंभवाणी में मूल रूप से उन्हीं जीवन पद्वतियों, नियमों, अवधियों को अपनाया गया है जो आध्यात्मिक दृष्टि से उच्चादर्शपरक है और मनुष्य को शांतिमय, विनयशील व कल्याणकारी बनाती हैं (डॉ. किशनाराम बिश्नोई : गुरू जंभेश्वर: विविध आयाम: 2008: 239)।

वाणी का निर्माण काल गुरू जंभेश्वर जी के सातवें साल विक्रमी संवत 1515 (सन 1458) से आरंभ होकर उनके निर्वाण प्राप्ति-सन 1536 तक है। इस दीर्घ अवधि में गुरूजी ने निश्चय ही अनेक सबद कहे होंगे, किंतु आज तक उनके 123 सबद और कतिपय मंत्र ही प्राप्त हुए हैं। अनेक परिस्थितियों, संरक्षण के अभाव तथा मुखश्रुति से हस्तांतरित होने के कारण बहुत से सबद धीरे-धीरे काल-कवलित होते रहे हैं। सबदवाणी में गुरू जंभेश्वर जी द्वारा मनुष्य को उंचा उठाने तथा उसे लोक कल्याण की और उन्मुख करने का सरल, सहज और व्यावहारिक मार्ग के बारे में जानकारी मिलती है। सबदवाणी का लक्ष्य कर्मशीलता, आत्मज्ञान और लोकमंगल है। वह मनुष्य को जड़ता, कुसंस्कार, अज्ञान और भ्रम से छुटकारा दिलाकर उसको उंचा उठाने का प्रयास है। वाणी आत्म-स्वरूप को बोध कराकर विश्व कल्याण की ओर प्रेरित करती है। वह साहित्य, धर्म संस्कृति और विचारों के क्षेत्र में नई

भूमिका और आयाम प्रस्तुत करती है। उसमें विक्रम की 16वीं शताब्दी की मरूभाषा सुरक्षित है (डॉ. हीरालाल माहेश्वरी: जाम्भोजी: नई दिल्ली: 1981: 16)।

गुरूजी ने अपनी वाणी में केवल आचार पक्ष को ही मजबूत नहीं किया बल्कि विचार पक्ष को भी सुदृढ़ करने के लिए 29 नियमों की आचार संहिता बनाई। इस आचार संहिता में सभी मुख्य धर्मो का समन्वय और सामंजस्य स्थापित किया गया। वस्तुत: सबदवाणी ज्ञान का अथाह भंडार है जिनमें निहित पद सभी वेदों व धर्मशास्त्रों के अध्यात्म को समेटे हुए हैं। अध्ययन की सीमाओं के चलते यहां पर उनकी सभी शिक्षाओं तथा उपदेशों का वर्णन संभव नहीं है, इसलिए कुछ ही शिक्षाओं का विवरण नीचे दिया जा रहा है जिनमें स्पष्टत: उनकी प्रभावी अभिव्यक्ति शैली प्रतिबिंबित होती है।

गुरू जी ने अपने पहले ही सबद में गुरू बनने का ढोंग करने करने वालों से सतर्क रहने के लिए गुरू के गुणों का बखान इस तरह किया है-

गुर चीन्हू गुर चीन्ह पिरोहित, गुर मुखि धरम वखांणी।

जो गुर होयबा सहजे सीले नादे विंदे, तिंह गुर का आळिंगार पिछांणी। (1/1-4)

उनका मानना था कि भगवान से मिलाने तथा मोक्ष का रास्ता बताने वाला सिर्फ गुरू ही है। अगर वह ढोंगी व पाखंडी होगा तो जीव का कल्याण मुश्किल है इसलिए उन्होंने सबसे पहले अपने उपदेश में लोगों को सच्चे, ज्ञानी, संयमी, संतोषी, शीलवान, सहज एवं छह दर्शनों के ज्ञाता, मोह व शारीरिक संताप को हरने वाला तथा दिखावे व आडंबरों से दूर महापुरूष को ही गुरू धारण करने के लिए शिक्षा दी है।

गुरु जंभेश्वर जी के अधिकांश सबद व उपदेश प्रश्नोत्तर शैली तथा शंका समाधान हेतु बोले गए हैं। जब कान्हा जी का पुत्र ऊधो जी अपनी सांढे छुड़ाने का धन्यवाद देने के लिए ध्यानमग्न गुरू जी के पास आता है और उनसे प्रश्न करता है कि आप कौन से देव की पूजा करते हैं, तब गुरू जी कहते हैं -

ओउम् अइयालो अपरंपर बाणी, म्हें जपा न जाया जीऊं। (5/1)

मैं धरती पर चारो जीव योनियों में जन्म लेने वाले किसी भी देव, पीर , फकीर, भूत, प्रेत, भैरू, पशु-पक्षी आदि की पूजा अर्चना नहीं करता। मैं तो उस निराकार, निर्गुण तथा कण-कण में बसने वाले तथा सृष्टि के रचयिता भगवान विष्णु का जप करता हूं। इस सबद के माध्यम से गुरू जी ने एक तरह से मूर्ति पूजा तथा भगवान के नाम पाखंड करने वाले पीरों, फकीरों व भगवेधारियों से सचेत रहने का संदेश दिया है।

व्यक्ति जब तक स्वयं के बारे में नही जानता तब तक वह भक्ति, अध्यात्म व परमार्थ के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता। और इसके लिए किसी पाठशाला की भी जरूरत नहीं। इसी तरह के एक संवाद में गुरू जी अपना उदाहरण देते हुए कहते हैं-

म्हे सरै न बैठा सीख न पूछी, निरत सूरत सब जाणी।(6/7-8)

अर्थात मैंने किसी भी पाठशाला में शिक्षा ग्रहण नहीं की, किन्तु मैं जानता सब कुछ हूं। आप भी सब कुछ जान सकते हैं बस जरूरत है बाह्य परिवेश में रमण करने वाली चितवृतियों को संयमित करके उनको आत्मस्थ करने की।

एक पुरोहित के यह पूछने पर कि आप हिंदुओं के देवता हैं या मुसलमानों के। आपका सिद्धांत उपदेश किसके लिए है? इस पर गुरू जंभेश्वर जी ने पुरोहित की शंका समाधान करते हुए कहा-मुझे आप हिंदू मत कहो, मैं मुसलमान भी नहीं हूं। जिसका कर्म शुद्ध व पवित्र है, उसी का ही मैं हूं, और मेरा भी वही शिष्य है। अंदर बैठी हुई जीवात्मा न तो कोई हिंदू है और न ही कोई मुसलमान है। यह शरीर जिस जाति में जन्मा है उसकी जाति संस्कार वैसे कर दिए जाते हैं। मैं तो उसका ही हूं जो न्याययुक्त सच्चे मानव धर्म में विश्वास करता है।

साचा सूं पतियायो।

इसके आगे उन्होंने कहा कि उंचे कुल में पैदा होने से व्यक्ति महान नहीं होता बल्कि वह अपने कर्मो से महान अथवा बड़ा बनता है।

उतम कुली का उत्तम न होयबा, कारण किरिया सारूं।(26/7-8)

गुरू जी का मानना था कि जब तक मनुष्य अपने क्रियाकलापों में शुद्धता व पवित्रता नहीं लाएगा तब तक उसे जीवन मुक्ति के रास्ते पर लाना कठिन है। और इसके लिए उन्होंने सबसे पहले विभिन्न धर्मो के तथाकथित विद्ववानों व काजियों को चेताया। इसी उद्देश्य के साथ उन्होंने लोगों को जीव हिंसा न करने तथा जीवों के जीवन व उनके मनुष्य हेतु क्रियाओं का बड़ा ही मार्मिक विवरण अपने सबदों में दिया है-

चर फिर आवे सहज दुहावै, जिसका खीर हलाली।

जिसके गले करद क्यूं सारो, थे पढ सुण रहिया खाली।(8/9-12)

एक अन्य पंक्ति में भी इसी तरह का चित्रण है-

सुणरे काजी सुणरे मुल्ला, यामै कोण भया मुरदारूं।

जीवां ऊपर जोर करीजे, अंतकाल होयसी भारूं।(8/1-4) अर्थात हे प्रबुद्ध लोगो, अगर जीव जंतुओं के प्रति हिंसा व उनको हलाल करोगे तो तुम्हारा अंतकाल बड़ा विपतियों भरा होगा।

मनुष्य जीवन को व्यर्थ प्रपंचों से बचाने तथा खुशी से व्यतीत करने के लिए हमें उस दिव्य व निराकार परमपिता परमात्मा का नाम जप व गुणगान दिन में कुछ समय के लिए अवश्य करना चाहिए। क्योंकि एक तो ऐसा करके मनुष्य परमात्मा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता जिसने उसने ऐसा सुंदर जीवन बख्शा दूसरा वह सदा-सदा के लिए मोक्ष प्राप्ति का भी मार्ग तैयार करता है। गुरू जी ने सावधान किया है कि ऐसा न करने वाले मनुष्य का जीवन व्यर्थ में ही बीत जाता है-

ओउम कांय रे मुरखा तैं जन्म गुमायों।

भुंय भारी ले भारूं।।

जा दिन तेरे होम नै जापनै तपनै किरिया,

गुरू न चीन्हों पंथ न पायो।

अहल गई जमवारूं।(13/1-5)

उन्होंने आगे कहा कि भगवान का जप, तप व स्मरण न करने के चलते अगर तुम पर किसी तरह की विपति, दुख व पीड़ा आती है तो इसके लिए तुम स्वयं जिम्मेदार होगे यानि यह तेरी करनी का ही फल होगा-

विष्णु न दोष किसो रे प्राणी, तेरी करणी का उपकारूं।(13/35-36)

गुरू जी ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि अजरों को मनुष्य जीवन के सबसे बड़े शत्रु माने हैं। उनका कहना है कि जब तक प्राणी इन्हें अपने जीवन से नहीं त्यागता अर्थात धीरे-धीरे इनका क्षरण नहीं करता तब तक वह विष्णु की भक्ति की तरफ उन्मुख नहीं हो सकता तथा न ही जीवन में चौन व शांति प्राप्त कर सकता है।

विष्णु विष्णु भण अजर जरीजे, यह जीवन का मूलूं।(15/7-8)

और

अजर जरे जीवत मरे वो बास बैंकुठा पावे।

अच्छी संगति व श्रेष्ठ लोगों से सबंध बनाने पर भी गुरू जी ने जोर दिया है। उनका कहना है कि उत्तम संगति के प्रभाव से एक दुर्गुणी व दुर्बुद्धि मनुष्य भी उसी तरह जीवन से तर जाता है जिस तरह लकड़ी का संयोग होने से लोहा भी जल से पार उतर जाता है। लकड़ी की नाव पर रखा हुआ लोहा जल में नहीं डूबता।

बेड़ी काठ संजोगे मिलिया, खेवट खेवा खेहूं।

लोहा नीर किस विध तरिबा, उत्तम संग सनेहूँ। (16/5-8)

दुनिया में विरोध, तनाव, क्लेश, अविश्वास, बिखराव, संबंधों में खटास, शत्रुता के लिए गुरू जी ने सौम्य व मधुर वाणी के कम प्रयोग को कारण माना है। अगर सभी मनुष्य आपसी व्यवहार, सामाजिक कार्यो व मिलन के दौरान मधुर व संयमित भाषा का इस्तेमाल करें तो निश्चित रूप से यह संसार स्वर्ग का वास हो जाएगा। फिर इन झगड़े, फसाद, दंगे व बैर-विरोध के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा। सभी एक दूसरे के प्रिय बन जाएंगे। एक जमात की शंका समाधान के दौरान गुरू जी ने कहा था आपके पास

जो वाणी है वह मधुर नहीं है, इसलिए आप लोग दुखी हैं। उन्होंने कहा कि आप अगर मेरी तरह सहज, सुंदर, सौम्य, संयमित, अनुशासित व रसपूर्ण वाणी के स्वामी होंगे तो आपके पास किसी चीज की कमी नहीं होगी।

ओउम मौरे सहजे सुंदर लोतर वाणी।(17/1-2)

इसी कड़ी में उन्होंने आगे कहा कि संसार में कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है। ज्ञान की सीमा अपार है। ऐसे में अगर कोई यह दम भरता है कि उसे सब पता है तो उसे कुछ भी पता नहीं है। हां लेकिन अगर कोई यह कहता है कि वह कुछ भी नहीं जानता है तो इसका अर्थ है कि वह जानने के लिए उत्सुक होगा और अवश्य ही कुछ जानेगा। इस तरह गुरू जी ने ऐसे ढोंगी, पाखंडी, तथाकथित विद्वान, ज्ञानी, योग, काजी व भगवाधारियों से सचेत रहने के लिए कहा है जो अपने आपको सर्वज्ञ कहते हैं।

ओउम जां कुछ जां कुछ जां कछू न जांणी,

ना कुछ ना कुछ तां कुछ जाणी। (18/1-4)

गुरू जी ने भगवान को मठों, मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों, तीर्थो, पहाड़ों व वनों में ढुंढने वालों के लिए कहा है-

अड़सठ तीर्थ हिरदा भीतर, बाहर लोका चारूं।(19/9-10)

मनुष्य जीवन में प्रेम, सौहार्द, शांति के वातावरण के लिए प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व में दया भाव होना आवश्यक है। इसकी अनुपस्थिति में पापकर्म ही वृद्धि करते हैं-

ओउम जां जां दया न मया, तां तां बिकरम कयां। (20/1-2)

गुरू जी ने अपने संवाद न केवल आध्यात्मिक व व्यावहारिक आदर्शो पर केंद्रित किए बल्कि उनमें जगह-जगह वैज्ञानिकता व तर्क का भी पुट दिया है। एक सबद में गुरू जी ने ऐसे तथाकथित भोगी साधु संतों, महंतों व अधिक खाने में विश्वास करने वालों के लिए कहा है कि अधिक भोजन करने में कुछ भी गुण नहीं । इससे शरीर स्थूल व मोटा हो जाएगा तथा आगे-पीछे मांस का भार झूलेगा। व्यर्थ ही शरीर का भार उठाना पड़ेगा। और जैसा कि आज का विज्ञान भी इस बात को मानता है कि मोटापा अनेक बीमारियों की जड़ है। इसके अलावा उन्होंने यहां पर यह भी समझाने की कोशिश की है शरीर में मोटे-तगड़े होने से परमात्मा के अंश के रूप में विद्यमान आत्मा छोटी-बड़ी नहीं होती। वह तो मोटे व दुबले-पतले शरीर में एक समान रूप में ही होती। मनुष्य आत्मस्वरूप है न कि शरीर रूप है। इस भेद को समझने की जरूरत है।

ओउम घणतण जीम्या को गुण नाहीं, मल भरिया भंडारू।

आगे पीछे माटी झूलै, भूला बहैज भारूं। (26/1-4)

गुरू जी ने मनुष्य को जीवन में वेद, शास्त्रों, ग्रंथों, पुस्तकों, योगी, ज्ञानी व सिद्धपुरूषों से प्राप्त ज्ञान को पहले अपने जीवन में उतारने की शिक्षा दी है। उनका कहना है कि सच्चा ज्ञानी व सिद्ध पुरूष वही है जो ज्ञान को श्रवण करने के बाद मनन फिर निदिध्यासन तथा तत्पश्चात दर्शन का अनुभव करता है। केवल कथन करने से वेद शास्त्र का ज्ञाता नहीं हो जाता। ज्ञाता तो तभी होता है जब वह कथनानुसार आचरण करता है। अन्यथा बड़े-बड़े पोथे व ग्रंथ पढने के बाद भी मनुष्य खाली व निस्सार नजर आता है। व्यर्थ की बातों में न उलझकर तत्व ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिए।

ओउम पढ कागल वेदूं शास्त्र, पढ़ सुन रहिया कछु न लहिया।(27/1-2)

गुरू जी ने जीवन की निसारता पर बड़े ही सटीक शब्दों में कहा है कि संसार में अनेक महान, दानी, प्रतापी, राजा-महाराजा, तपस्वी, योगी, विद्ववान, ऋषि-मुनि व अनेक छोटे-बड़ों ने जन्म लिया है और न जाने ऐसे कितने ही आने वाले समय में भी इस धरती पर आएंगे लेकिन कोई भी एक निश्चित अवधि के बाद संसार में टिक नहीं पाएगा। उसे अपने प्रियों, सगे संबंधियों से नाता तोडकर विदा होना पड़ेगा। और जब तक सांसारिक व स्थूल शरीर में रहेंगे तब तक उन्हें विभिन्न तरह के कष्टों व विपतियों का भी सामना करना पड़ेगा। संसार परिवर्तनशील है, यहां कुछ भी स्थायी नहीं है। जो कुछ पहले था, वह अब नहीं रहा। जो अब है वह आगे नहीं रहेगा। यहां पर कौन किसका भाई है, कौन किसका मित्र है, कौन किसका माता-पिता है। दुनिया भूल तथा मोह माया के बंधन में पड़ी हुई है। सब कुछ काल कवलित होने वाला है लेकिन दुनिया फिर भी उस प्रभु को स्मरण नहीं कर रही है जो उसे जन्म मरण के बंधन से छुटकारा दिलाने वाला है।

ओउम कवण न हुआ, कवण न होयसी, किण न सह्य दुख भारूं।
कवण न गइया, कवण न जासी, कवण रहा संसारूं।(33/1-4)
किसकी माई किसका भाई, किसका पख परवारूं।
भूली दुनिया मर-मर जावै, न चिन्हों करतारूं।(33/9-12)

मध्यकाल समाज में जहां नारियों को घर की चौखट पार करने की इजाजत नहीं थी उस दौर में भी गुरू जी ने स्त्रियों के लिए स्वतंत्रता व सम्मान की भावना की शिक्षा दी। यही नहीं उन्होंने इसके लिए उन तथाकथित योगी, पंडों, नाथों को भी विभिन्न तर्को द्वारा रिझाया तथा स्त्रियों के प्रति उनके दृष्टिकोण में बदलाव लाए। एक योगी नाथ के यह कहने पर कि वे तो स्त्री का मुख भी नहीं देखते। योगी के लिए नारी साधना में बाधक है। इसके प्रत्युत्तर में गुरू जी ने कहा कि स्त्री पुरूष में शरीर की बनावट की दृष्टि से तो कोई फर्क नहीं है। वही श्वांस, मांस, वही देह, प्राणादिक पांचों तत्वों का पुतला तो एक जैसा है फिर स्त्री मध्यम व पुरूष उत्तम क्यों है? यदि यही ज्ञान है तो अज्ञान किसे कहेंगे?

ओउम तइया सांसू तइया मांसूं, तइया देह दमोई,
उत्तम मध्यम क्यूं जाणीजै, विवरस देखो लोई।(42/1-4)

गुरू जी ने किसी कार्य में अपेक्षित परिणाम के लिए एकाग्र भाव को जरूरी माना है। उनका कहना है कि दुविधा वृति में न तो कोई पवित्र कार्य किया जा सकता है और न ही किसी जनकल्याण के रास्ते पर अग्रसर हो सकते हैं। जीवन में किसी भी तरह की बुराई, कुरीति व दोषों पर विजय पाने के लिए एकाग्रचित्त होकर संकल्प करने की आवश्यकता है। द्विविधा वृत्ति से न तो कथा कह सकते हैं और न ही सुन सकते हैं। एकाग्रता के अभाव में तो अपना मार्ग भी याद नहीं रहता तथा दो मन से न कोई गुरू की पदवी पा सकता है और न ही कोई समर्पित चेला हो सकता है।

दोय मन दोय दिल कही न कंथा, दोय मन दोय दिल सुणी न कथा।
दोय मन दोय दिल पंथ दुहेला, दोय मन दोय दिल गुरू न चेला। (50/3-6)

गुरु जंभेश्वर जी महाराज ने जीवन से पार लंघने के लिए योग, ध्यान व तप के लिए जंगल व कंदराओं में जाने के बजाय कर्म करने की प्रेरणा दी है। इसके लिए उन्होंने गृहस्थी जीवन की सार्थकता की ओर संकेत करते हुए कहा है कि मनुष्य गृहस्थ जीवन में सद्कर्म करते हुए मोक्ष प्राप्त कर सकता है इसलिए जरूरत है बस कर्म करते हुए उस निराकार परमदेव को स्मरण करते रहने की।

हिरदै नाम विष्णु को जंपो, हाथे करो टवाई। (99/7-8)

गुरु जांभोजी ने अपने उपदेशों में मनुष्य के आचार-व्यावहार तथा सद्कर्मो पर विशेष रूप से बल दिया है। उन्होंने कहा कि मनुष्य अपने जीवन में जिस तरह के कष्टों व दुखों का सामना करता है उसके लिए कोई दैवीय या बाह्य शक्ति जिम्मेवार नहीं होती बल्कि उसी के बुरे कर्म ही इसका कारण होते हैं। उन्होंने चेताया कि अपनी विपरीत परिस्थितियों के लिए भगवान को दोष देना एक तरह से अज्ञानता का ही परिचायक है।

विष्णु कूं दोष किसो रे प्राणी, आपे खता कमाणी। (107/9-10)

इस तरह गुरु जंभेश्वर जी महाराज ने अपने 51 वर्ष के उपदेश काल में अनंत शब्दों का उच्चारण कर आम जनमानस के आचार-व्यावहार को पवित्र बनाने की कोशिश की थी। उनका मत था कि जीवां न जुगति, मुवां न मुक्ति यानि मनुष्य जीवन के दौरान विभिन्न तरह की व्याधियों तथा आडंबरों से अपने को बचाते हुए तथा प्रभु का स्मरण करते हुए मनुष्य सादा एवं क्लेश रहित जीवन जीए ताकि मरने के बाद उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाए। अतः स्पष्ट है कि उनके संवाद तथा विचार संप्रेषण की कला अत्युत्तम थी जिसके चलते ही लोग उनके दर्शन व ज्ञान के प्रति आकृष्ट हुए तथा उनके अनुयायी बने।

संदर्भ ग्रंथः

1. आचार्य, स्वामी कृष्णानंद (2011) : शब्दवाणी दर्शन : ऋषिकेश (देहरादून) : स्वामी ज्ञानप्रकाश जी प्रिंटर्स
2. आचार्य, स्वामी कृष्णानंद (2013) : जाम्भा पुराण : बीकानेर : जांभाणी साहित्य अकादमी

3. खीचड़, ताराचंद (2013) : श्री जंभदेव चरित्र भानु : मुकाम, नोखा : अखिल भारतीय बिश्नोई महासभा
4. गोदारा, श्री माला राम (2008) : जम्भगीता : सांचौर (जालौर) : जम्भेश्वर प्रकाशन
5. पारीक, श्री सूर्य शंकर (2001) : जाम्भोजी की वाणी : बीकानेर : विकास पब्लिशर्स
6. बिश्नोई, डा. किशनाराम (2008) : गुरू जम्भेश्वर : विविध आयाम : हिसार : गुरू जम्भेश्वर प्रकाशन
7. बिश्नोई, डा. किशनाराम (1996) : जंभवाणी मूलसंजीवनी व्याख्या : हिसार : गुरू जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
8. माहेश्वरी, डा. हीरालाल (1970) : जाम्भोजी, विष्णोई संप्रदाय और साहित्य (भाग-1 व भाग-2) : कलकता : बी.आर. पब्लिकेशन
9. माहेश्वरी, डा. हीरालाल (1976) : जाम्भोजी की सबदवाणी (मूल और टीका) : श्रीगंगानगर : श्री सोहनलाल गोदारा
10. माहेश्वरी, डा. हीरालाल (2011) : श्री जाम्भोजी और जम्भवाणी मीमांसा : अबोहर (फिरोजपुर) : श्री गुरू जंभेश्वर साहित्य सभा

पश्चिमी विश्व में महिला आंदोलन

डॉ० कमला

राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सुनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, दयाल सिंह कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय

सार मानव इतिहास साक्षी है कि सदैव महिलाओं को 'प्रभुता' एवं शक्ति से दूर ही रखा जाता रहा है और इसलिए प्रत्येक देश, काल, जाति व धर्म में महिलाओं को पुरुषों के बराबर न आने की संरचनात्मक व सांस्कृतिक बाध्यताएँ बनायी गयी, असमानता की यह स्थिति मुख्यत: पितृसत्तात्मक व्यवस्था से उत्पन्न की गई, जो स्त्री को कुछ विशेष कार्यों यथा घर गृहस्थी, बच्चों का लालन-पालन इत्यादि की ही इजाजत देती है, जिससे स्त्री में दबी प्रतिभा, व सृजनता कुंठित होती है और इसी छुपी नारी शक्ति, रचनात्मकता व सृजनात्मकता को जागृत करने हेतु नारीवादी आंदोलन का जन्म हुआ है। प्रश्न यह उठता है कि नारीवाद क्या है? यह एक आन्दोलन है जो उठ खड़ा हुआ है असमानताओं और शोषण के विरोध में, जो हजारों वर्षों से होता आ रहा है आदी मानव जाति (स्त्री) के साथ। महिलाओं के साथ हर स्तर पर शोषण व उत्पीड़न होता है केवल इसलिए क्योंकि वह स्त्री है, इसी लिंग के कारण उसकी कुछ विशेष जरूरत है जिन्हें सदा से ही नजरअंदाज किया जाता रहा है यही असंतोष समाज में बदलाव चाहता है। (चाहे क्रांतिकारी बदलाव भी क्यों न हो) समाज में बिखरी इस आदी मानव जाति ने अब समूह का रूप ले लिया है और आज नारीवादी अपने मुद्दों पर संगठित आवाज उठा रहे हैं। नारीवाद मुख्यत: वह अवधारणा है जो स्त्री की साामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक स्थिति में बदलाव चाहता है। नारीवाद का जन्म नारी की पहचान की खोज में हुआ है। यूं तो मैरी वूलस्टोनक्रॉफ्टके चिंतन से इंग्लैंड में इसका जन्म हुआ किन्तु इसे सशक्तिकरण मिला महिला आन्दोलन की दूसरी लहर 1960 के दशक में जब नारीवादी विचारकों ने क्रांतिकारी बदलावों के विचार दिये।

संकेतशब्द महिला आंदोलन, नारीवाद, महिला आधिकार, उदारवादी नारीवाद, समाजवादी नारीवाद, मार्क्सवादी नारीवाद, रेडिकल नारीवाद, पितृसत्ता, पुरुष प्रधानता इत्यादि।

दुनिया भर में इतिहास लेखन पूरी तरह पुरुष केन्द्रित रहा है। यही कारण है कि मनुष्य के इतिहास में बराबर की हिस्सेदारी होते हुए भी मानुषी इतिहास ग्रंथों में नहीं के बराबर है। भले ही कितनी ही महिलाओं ने वीरतापूर्वक लड़कर अपनी जान दे दी है और कितने ही पुरुष पीठ दिखा कर भाग गए हो। किन्तु फिर भी महिलाओं ने अपने अधिकारों के लिए लड़ाई को जारी रखा। पाश्चात्य जगत में महिला आंदोलन को प्राय: दो लहरों में बांटा जाता है जो इस प्रकार हैं-

महिला आंदोलन की प्रथम लहर

ब्रिटेन में मेरी वोल्स्टोक्रॉफ्रट की पुस्तक ए विंडिकेशन ऑफ द राइट ऑफ्फ वूमन से इस प्रथम लहर की शुरूआत मानी जाती है। बाद में जे०एस० मिल, फ्रेडरिक ऐगंल्स का चिंतन भी इसमें शामिल हो गया। स्त्रियों को मताधिकार दिलाना इस आंदोलन की सुप्रसिद्ध सफलता रही। संयुक्त राज्य अमरीका की संसद ने 1919 में महिलाओं को मताधिकार देने के लिए संविधान में संशोधन किया। ब्रिटेन में महिलाओं को 1927 में मताधिकार मिला। जबकि फ्रांस में 1944 तक इंतजार करना पड़ा।[1] 1688 की सुनहरी क्रांति,

1789 की फ्रांस की क्रांति ने महिलाओं में जागरुकता पैदा की। 1776 की 'स्वतंत्राता की अमरीकी घोषणा' ने यह भी रेखांकित किया कि इतिहास में हमेशा ही महिलाओं की समानता को नकारा गया है। मानव समुदाय का इतिहास पुरुषों द्वारा महिलाओं पर बल प्रयोग और कष्ट देने का इतिहास रहा है जिसमें मुख्य उद्देश्य औरतों पर पुरुष प्रभुत्व स्थापित करना रहा है। मताधिकार को इस अन्याय को समाप्त करने हेतु सहयोगी के रूप में देखा गया है और महिला आंदोलन की इस प्रथम लहर में यह माना गया कि महिलाओं का यह कर्तव्य है कि वह अपना मत अधिकार प्राप्त करें।[2]

बाद के समय में जे०एस० मिल एण्ड हैरियट मिल ने द सब्जैक्शन ऑपफ वूमन में काम और परिवार की पारंपरिक प्रणालियों पर सवाल उठाया जो उनके मुताबिक महिलाओं को न केवल घर तक सीमित तथा प्रतिबंधित करती है बल्कि चयन के अधिकार से भी वंचित करती है।[3] वुलस्टोनक्रॉफ्रट और मिल दोनों का ही मानना था कि महिलाएँ मानव जाति की सदस्य होने के नाते तार्किक विचार में सक्षम होती है तथा पुरुषों की तरह समान प्राकृतिक अधिकारों की हकदार होती है। 1884 में फ्रेडरिक ऐंगल्स द्वारा रचित परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति जैसी रचना आई, जिसमें उन्होंने मार्क्स के विपरीत, महिलाओं के उत्पीड़न के सवाल को ज्यादा योजनाबद्ध ढंग से हल करने की कोशिश की। ऐंगल्स का कहना था कि महिलाओं की गुलामी के प्रश्न को इतिहास में समझना होगा। उन्होंने कहा कि प्रारंभिक किस्म के समाजों में महिलाएँ घर के अन्दर उत्पादन के साधनों पर और पुरुष घर के बाहर के अन्य उपकरणों-औजारों पर नियंत्राण रखते थे। घर के बाहर उत्पादन के अध्किाध्कि साधन होते जाने के साथ ही इस क्षेत्रा में ज्यादा अधिशेष पैदा होने लगा। पुरुषों द्वारा इसके हस्तगतकरण की प्रक्रिया में उन्हें महिलाओं की तुलना में अधिक आर्थिक सत्ता प्राप्त हुई क्योंकि ऐतिहासिक तौर पर घर के बाहर का उत्पादन महत्त्वपूर्ण होता गया इसलिए नारी मुक्ति तब तक संभव नहीं थी जब तक महिलाएँ घरेलू काम छोड़कर घर के बाहर नौकरी मिलने वाले काम को नहीं स्वीकारती।[4]

महिला आंदोलन की दूसरी लहर का उदय

1949 में प्रकाशित सिमोन द- बोउवार की पुस्तक 'द सेकेंड सैक्स'- महिला आंदोलन की दूसरी लहर की आधारशिला बनी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यूरोप एवं उत्तरी अमेरीका में एक नया आत्मविश्वास और भविष्योन्मुख आशावाद उभर रहा था। इस आशावाद के पीछे थी उन्नति व तकनीकी। आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक क्षेत्रों में इस कदर प्रगति हुई जो मानव इतिहास में अभूतपूर्व थी। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप महिला श्रम की मांग भी बढ़ी। महिलाओं हेतु व्यवसायिक व शैक्षिक विकल्पों का दायरा बढ़ता गया व साथ ही साथ हर क्षेत्रा में भेदभाव भी। इससे महिलाओं में जेंडर आधारित अन्याय के बारे में जागरुकता बढ़ी और इसके खिलाफ लड़ने के लिए संगठन भी बढ़े। गर्भ निरोधक गोलियों ने महिला आंदोलन के पूर्वाधर को जमाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। संयुक्त राज्य अमरीका में 1950 के दशक में 'नागरिक अधिकार आंदोलन' का उद्‌भव हुआ, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जर्मनी में छात्रा आंदोलन, नव वाम तथा श्रमिक वर्ग के आंदोलन विशेष रूप से प्रभाावशाली रहे।[5]

महिला आंदोलन की द्वितीय लहर में मांग एवं मुद्दों की राजनीतिः महिला समूह अपने आंदोलन के राजनैतिक मूल्यों जैसे-स्वायत्तता, समानता, श्रेणी मुक्तता के प्रति गंभीर थे किन्तु यह छोटे-छोटे संगठन केन्द्रित नहीं थे। मीडिया ने महिलाओं के मुद्दों और उनके परिप्रेक्ष्य को जनता तक पहुँचाने में समर्थन जुटाने में निर्णायक भूमिका निभाई। 1968 मे मिस अमरीका प्रतियोगिता का 200 नारीवादियों ने विरोध् किया। फ्रांस में 1972 में लगभग 300 फ्रांसीसी महिलाओं ने एक आंचलिक अखबार में सार्वजनिक पक्ष छपवाया जिसमें उन्होंने लिखा 'मैंने गर्भपात कराया है।' इस चिट्ठी में सिमोन द बोउफवार जैसी जानी-मानी हस्तियाँ भी थी। कई मुद्दों की पैरवी राज्य और सरकार के महकमों को भी करनी पड़ी। 1972 में अमरीका में 'समानाधिकार संशोधन' पारित किया गया। 1970 के दशक में ही ब्रिटेन व इटली जैसे देशों में 'घरेलू काम के लिए वेतन' की मुहिम छेड़ी गई। ताकि समाज जान सके कि घरेलू कार्य मूल्यहीन नहीं है।

महिला आंदोलन का चरित्र चित्राण उसके द्वारा उठाये गए विस्तृत मुद्दों के बल पर किया जा सकता है जिनमें शामिल है महिलाओं का वैतनिक तथा अवैतनिक काम, रोजगार एवं शिक्षा में समानाधिकार, यौनिक उत्पीड़न और घरेलू हिंसा, गर्भ नियंत्रण एवं गर्भपात का अधिकार, इत्यादि जो 1960 और 1970 के दशकों के जाने माने अभियान थे। आंदोलन के कई नारे प्रसिद्ध व लोकप्रिय हुए। जैसे- फ्जो व्यक्तिगत है वह राजनैतिक है, और इस तरह महिला आंदोलनों ने राजनीति की प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध नई भाषा विकसित की।[6]

समाजवादी देशों में महिला अधिकार के मुद्दे

मार्च 1919 में मास्को में हुए 'तृतीय इंटरनेशनल सम्मेलन' के साथ ही समाजवादी देशों में महिलाओं का संगठित आंदोलन शुरू हुआ। 1917 की रूसी क्रांति की सफलता के बाद ही सरकार ने कुछ आदेश जारी किये जो कानूनी विवाह, बच्चों एवं परिवार के लिए पंजिकाओं से संबंधित थे। 1918 में रूस में परिवार संहिता अधिनियम बना। 1970 तक देश के संपूर्ण कर्मचारियों एवं श्रमिकों, किसानों में 53% संख्या महिलाओं की थी। उत्पादन एवं पुनरूत्थान में महिलाओं की राजकीय विचारधारा के अंग के रूप में स्वीकारते हुए सोवियत संघ में कई प्रावधान किये गये जो महिलाओं की बाधाओं को दूर करते, महिलाओं को सहयोग देने हेतु माताओं व बच्चों की देखभाल हेतु सार्वजनिक केन्द्र खोले गये, मातृत्व अवकाश में संपूर्ण वेतन, शिशु सदन बाल विहार की व्यवस्था की गई।[7]

चीन में महिलाओं की स्थिति शोषण की शिकार थी, न उन्हें सम्पत्ति और न ही भूमि में अधिकार प्राप्त थे और वे पूर्ण रूप से पुरुषों के अधीन थी। ४ मई का आंदोलन चीन में महिला मुक्ति का पहला आंदोलन था। जिसने शिक्षा व आर्थिक आत्मनिर्भरता के माध्यम से महिलाओं की पूर्व मुक्ति का आह्वान किया। 1931-34 की पहली क्षेत्रीय सरकार ने महिला समानता के कानून पारित किये।[8]

जुडिथ स्टेसी ने कहा कि, चीन के 'क्रांति काल' की संपूर्ण अवधि् में साम्यवादी दल की नीतियाँ और कार्यक्रम वर्ग और लिंग के युद्धों के बीच आवश्यकतानुसार रास्ते बदलते रहे।[9], 1940 के दशक में महिलाओं ने पुरुष श्रम शक्ति की कमी की वजह से अपनी श्रम शक्ति का परिचय दिया। 1930 में एक विधेयक लाया गया जिसने बहुविवाह, बाल विवाह, कन्या बिक्री, शिशु हत्या को समाप्त कर दिया व स्त्री और पुरुष दोनों को तलाक, पुर्नविवाह, उत्तराधिकार और संपत्ति संबंधी अधिकार दिये गये। 'महान छलांग' (Great Leap Forward) के दौर में ग्रामीण कम्यूनों में कई भोजनालय खोले गए, जिससे महिलाओं को खाना बनाने व कपड़े धेने से मुक्ति मिली, महिलाओं के लिए पार्टी के मुख्य संगठन का गठन 'अखिल चीन लोकतांत्रिक संस्था' के रूप में हुआ।[10]

क्यूबा में महिलाओं पर हो रहे आर्थिक शोषण को 1950 के दशक के अंतिम वर्षो में क्यूबा में हुई क्रांति द्वारा संबोधित किया गया। 1960-70 के दशक में महिलाएँ क्यूबा में जागृत हुई व अधिकारों हेतु लड़ी। 1960 में स्थापित 'स्पेशल स्कूल फॉर द एडवान्समेंट ऑपफ द डोमेस्टिक सरवेंट' में करीब 20,000 युवतियों ने भाग लिया। 1974 में सरकार ने 'परिवार संहिता' कानून पास किया। मार्क्स, एंगेल्स ने यह माना था कि समाजवाद में महिलाएँ नागरिक जीवन के हर क्षेत्रा में अर्थात् कानून पुरुषों के समान स्तर, समान सामाजिक अधिकार और आर्थिक जीवन में समान भागीदारी प्राप्त करेंगी। यही सब इन समाजवादी देशों के महिला आंदोलन के मुख्य मुद्दे रहे हैं।[11]

निष्कर्ष

18वीं व 19वीं सदी के नारीवादी आंदोलन ने ही विकासशील देशों की महिलाओं को भी अपने अधिकारों हेतु आवाज बुलंद करने की प्रेरणा दी। और समाज के सभी वर्गो में चेतना जगाई, किन्तु यह केवल प्रथम प्रयास है, सुधार हेतु, यदि महिलाएँ पितृसत्ता को बदलना चाहती हैं और महिला स्थिति में सुधार चाहती हैं तो पितृसत्ता को ही उत्पीड़न का सबसे बड़ा कारण मानकर इससे लड़ना होगा। महिलाओं पर आज दो तरह का बोझ है। पहला, पितृसत्ता का बोझ और दूसरा, पितृसत्ता के खिलाफ संघर्षो का बोझ। यह महिलाओं पर निर्भर है कि वह किसे उठाना चाहती है यदि संघर्ष के बोझ को महिलाएँ उठाती हैं तो निसंदेह परिणाम अच्छा ही होगा।

संदर्भ

1 मेरी जॉन, 'पश्चिम में समकालीन महिला आंदोलन', साधना आर्य, निवेदिता मेनन व जिनी लोकनीता (संपादित), नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे, 2001, दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ० 105-110.

2 एलीजाबेथ कैडी, स्टेन्टन, सुसेन एंथोनी एण्ड मोथीडो जोसलीन गेग (एडीटिड), द हिस्ट्री ऑपफ वूमन्स सफरेज, वॉल्यूम I, न्यूयॉर्क, रोचौस्टर, 1881, पृ० 70.

3 जे०एस० मिल, द सब्जेक्शन ऑफ वुमन, (1869) लंदन, कैम्ब्रिज, डेंट, 1989.

4 फ्रेडरिक ऐंगल्स, द ऑरिजन ऑफ द फैमिली, प्राइवेट प्रोपर्टी एण्ड द स्टेट, फस्ट एडीशन, मोस्को, फोरन लैम्बेजीज पब्लिशिंग हाउफस, 1943, पृ० 13-14.

5 मेरी जॉन, वही, पृ० 110-112.

6 वही, पृ० 113-115.

7 श्रीमती चक्रवर्ती, 'समाजवादी देशों में महिला आंदोलन', साधना आर्य, निवेदिता मेनन व जिनी लोकनीता (संपादित), नारीवादी राजनीति: संघर्ष एवं मुद्दे, दिल्ली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृ० 93-95.

8 वही, पृ० 96-99.

9 वही, पृ० 97.

10 वही, पृ० 99.

11 वही, पृ० 99-104.

हिन्दी सिनेमा और लोकगीत

डॉ० सीमा राठौर

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर- 388 120 गुजरात

लोकगीत जिन्हें एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा समाज या लोक अपनाता है। यह गीत लोक में प्रचलित लोगों के द्वारा गा कर सुनाया जाता है। यह एक मौखिक अभिव्यक्ति है। यह एक भावाभिव्यक्ति है जिसे लोक विविध प्रसंगों या त्यौहारों तथा विशेष संदर्भों में व्यक्त करते हुए अपने सुख-दुःख बाँटते हैं। लोकगीत की उत्पत्ति सर्वप्रथम मौखिक रूप से होती है बाद में वह लिखित या दृश्य-श्रव्य माध्यमों में प्रचारित-प्रसारित होते हैं। लोकगीतों में शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोगी अभिव्यक्ति है। इन गीतों की अभिव्यक्ति महद्अंश लोक प्रचलित बोलियों में होती है जिसमें समग्र लोक जीवन और उससे जुड़े विविध संदर्भों का जिक्र मिलता है। लोकगीतों के माध्यम से लोक संस्कार, लोक संस्कृति का परिचय प्राप्त होता है।

लोकगीत विशेषकर विवाह, मुंडन संस्कार, पूजन-अर्जन, जनेऊ, त्यौहार, व्रत-पूजा, कथा प्रसंग आदि में आनंदाभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है। शोक के प्रसंग में लोकगीतों का प्रचलन कम पाया जा रहा है। किन्तु, स्त्रियों का रूदन लम्बी ध्वनियों के साथ लय में होता है। लोकगीतों की मधुरता से कोई भी व्यक्ति अपना मुँह नहीं मोड सकता। लोकगीतों के बगैरह प्रसंग निरस महसूस होते हैं। इन गीतों की हमें आदत माँ के गर्भ से एक संस्कार के रूप में हो जाती है जो मृत्युपर्यन्त समय-समय पर हम इसका आस्वाद लेते हैं। लोकगीतों में मनुष्यों के सभी भावों के साथ सभी रसों का भंडार है। यह कहने में मुझे अतिशयोक्ति नहीं लग रही कि लोकगीत लोक की आत्मानुभूति है। लोक के लिए मनोरंजन का एक सक्षम और सुखद माध्यम भी है। इससे आज का मीडिया भी नहीं बच सका यहाँ तक कि लगभग फिल्मों में कभी-कभी संपूर्ण लोकगीत तो कभी उसके अंश का प्रयोग निर्माता और पाठक के लिए एक व्यंजन है जिसका प्रभाव दिर्घकालीन है। आज 21वीं सदी में हम चाहे कितने भी वैज्ञानिक या यांत्रिक जीवन की सराहना करें लेकिन हमारा लोक जीवन परम्परागत रूप से हमें सुख देता आया है जिसके उदाहरण लोक संगीत या लोकगीतों के प्रति हमारा लगाव है। लोकगीतों का अपना सौंदर्य है, अपनी मधुरता है जिसमें हमें कहीं न कहीं हमारी मौजूदगी का अहसास होने लगता है। इसलिए आज भी यह गीत लोकमुख से लेकर दृश्य-श्रव्य माध्यमों में भी अपनी गरीमा बनाये हुए हैं।

हिन्दी फिल्मों ने प्रारंभ से ही जन मानस को प्रभावित किया है। इस प्रकार लोक साहित्य, लोक वाद्य, लोक संगीत, लोक कलाएँ, लोक बोलियाँ, लोक व्यवहार और लोक के द्वारा निर्मित विशेष संदर्भों ने भी फिल्म जगत को आकर्षित किया है। यूँ कहें कि दोनों कलाएँ एक-दूसरे की पूरक है। फिल्म भले नया कलारूप है लेकिन लोकगीतों के माध्यम से निर्माता फिल्म को और भी मानव जीवन से नजदीक ले जाता है। गीत और खान-पान में हमारी संस्कृति उजागर हो रही है। हमारी रूचि और आदतें यहीं से बनती और सँवरती है। भारत के पास लोक संगीत की बड़ी धरोहर है। फिल्म संगीत के माध्यम से उन्हें आज के युवाओं तक पहुँचाकर भारतीय संस्कारों का एक तरह से सिंचन भी है।

हिन्दी सिनेमा और लोकगीत

फिल्म के गायकों में लोकगीतात्मक संवेदना है तो ही वह लोकगीतों के प्रति न्याय कर पाएँगे अन्यथा नहीं। 1958 में राज खोसला निर्देशित फिल्म काला पानी आई थी जिसमें मजरूह सुल्तानपुरी लिखित और आशा भोंसले द्वारा गाया गया गाना- "नजर लागी राजा तोरे बंगले पर; जो मैं होती राजा काली बदरिया, बरसि रहती राजा तोरे बंगले पर।" यह लोकगीत मुजरा के जमाने में गाया गया है। 2012 में बनी फिल्म 'एजेंट विनोद' में लोकगीत को मालिनी अवस्थी ने गाया है जो स्थापित लोकगायिका है पर गाना लोकगीतात्मक संवेदना छोड़कर आइटम सोंग मात्र बन गया। गाना है- "दिल मेरा मुफ्त का..." का रीमिक्स संस्करण आशा

भोंसले लोकगायिका नहीं है पर उनके गाए गए गानों में लोकगीतात्मकता है। पैसे और प्रतिष्ठा के मोह में आज के कुछेक कलाकार सांगीतिक निष्ठा से समझौता कर मौका हांसिल करना चाहते हैं।

फिल्म उद्योग क्षेत्र ने 'लोक' के सत्व और तथ्यों को तोड़ मरोड़कर बाजारू मांग के अनुसार प्रस्तुत करना चाहा है। लोक का खुलापन और फिल्मों के खुलेपन में जमीन-आसमान का अंतर है। लोक का उपयोग भारतीय संस्कृति और संस्कार की पहचान होनी चाहिए लेकिन आज फिल्मों में इन सत्वों और तथ्यों को बेचकर अधिक से अधिक कमाई की जा रही है जिससे लोकगीतों की भ्रामक छवि आज उभर रही है। इस संदर्भ में कुछ ठोस कदम फिल्मजगत से अपेक्षित है।

लोकगीत लोकबोली में होने के कारन क्षेत्र विशेष तक सिमित थे। आज फिल्म जैसे व्यापक माध्यम के द्वारा समग्र विश्व में फैल गए। हमारी प्रारंभिक फिल्मों में अवधी और भोजपुरी के कई गीत हैं जिन्हें कई बड़े गायकों ने अपनी आवाजें दी हैं। आज हिन्दी फिल्मों पर पंजाब के कल्चर का बहुत बड़ा प्रभाव महसूस हो रहा है। जो, गानों पर भी प्रभाव है। 2005 में आई फिल्म पीपली लाइव का छत्तीसगढ़ी गाना- "चोला माटी के हो राम" अत्यंत हृदयस्पर्शी लोकगीत है।

गीत चयन करते हुए सांस्कृतिक पक्ष को भी ध्यान में रखना चाहिए। आज 21वीं शदी में भी हमारे मांगलिक प्रसंगों में हमें नये-पुराने गीत पसंद है। इसकी धुने आज भी हमारे शादी ब्याह जैसे प्रसंगों में बजती है तो सब कोई नाच उठते हैं। यहाँ तक कि कार चलाते हुए या आराम के समय में हमें वही पुरानी धुने सुनना और उसके शब्दों पर वाह-वाह पुकारते हुए हमें कोई रोक नहीं सकता इसके पीछे का कारन है फिल्म निर्माताओं के उत्तम उद्देश्य और गीतकार-संगीतकारों में संजीदगी। वह संवेदना आज नहीं रही इसलिए बाजार हावी हो गया। तारा बानो घ्फैजाबादी द्वारा गाया गया लोकगीत- "लौंडा बदनाम हुआ नसीबन तेरे लिए" पर आइटम सोंग- "मुन्नी बदनाम हुई डार्लिंग तेरे लिए" यह लोकगीतों पर पड़नेवाले नकारात्मक प्रभावों का उत्तम उदाहरण है।

लोकगीतों से ही लोक जीवन में रंग और जीवंतता है। गीत के तत्व दिल और दिमाग की गहराइयों में उतरकर व्यक्ति के चिंतन और व्यवहार को संचालित करते हैं। 2013 में आई 'रामलीला' फिल्म का गीत है "लीली लेमड़ी रे लीलो नागरवेल नो छोड़ प्रभु परोढना रे म्हारा घेर उतारा करता जाव... उतारा नइ करूँ रे मारे घेर सीता जुवे वाट", नगार संग ढोल बाजे गाने में मात्र नर्तन में हींच लेने के लिए थोडा अंतरा लिया गया है। गुजरात में नवरात्री के दौरान युवा इस लोकगीत पर खूब झुमते हैं। जो, प्रभाव हमें फिल्म में भी महसूस हो रहा है। फिल्म में स्वर दिया है श्रेया घोशाल और गुजराती लोकगायक ओसमाण मीर ने। एक और गुजराती गरबा है- "साथिया पुरावो द्वारे दिवड़ा प्रगटावो आज मारे आँगणे पधारशे माँ पावा वाली" को कैलाश खेर ने स्वर दिया- "चोक पुरावो, माटी रंगावो, आज मेरे पिया घर आवेंगे। अगर सुनाऊँ जो, खुशी रे बताऊँ जो, आज मेरे पिया घर आवेंगे।" जिसके आधार हिन्दी में भी कई भजन-गीत बने हैं। उपर्युक्त दोनों लोकगीतों में गुजराती संस्कृति के साथ इश्वरीय कामना है जबकि फिल्मों में रामलीला में इस लोकगीत के माध्यम से सांस्कृतिक पक्ष के साथ मनोरंजन है जबकि कैलाश खेर के स्वर में गाए हुए गीत में प्रियतम के घर आगमन के पूर्व की तैयारी की भावना है। इस प्रकार संजय लीला भणसाली की फिल्मों में भी गुजराती लोक कहीं न कहीं में दृश्यमान होता है।

लोकगीतों में काव्यात्मकता है, भावों की स्निग्धता है, विचारों की उदात्तता है। आज भले ही सिनेमा का संगीत शोर-शराबे से भर गया है किन्तु फिल्मों में लोकगीतों की चाहत किसी भी रूप में कम नहीं है। आज भी वेदनाभिव्यक्ति का माध्यम है, सामाजिक-सांस्कृतिक उपादेयता है। अध्ययन की सुविधा हेतु रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम साहित्य के 28 भेद किए हैं। भारत की विविध बोलियों के लोकगीतों का प्रयोग हिन्दी फिल्मों में भरपूर हुआ है। जैसे- 'दिल्ली-6' का गाना- सास गाली देवे, देवर समझा लेवे, ससुराल गेंदा फूल।"

'तीसरी कसम' का गीत "बीड़े के सब रस ले गयी रे पिंजरे वाली मुनिया।"७

'वक्त' फिल्म में पिया केपरदेश जाने पर विरहिणी भारतीय परंपरा के अनुसार कौए को दूत बनाकर कहती है- "कागा रे जारे जारे मोरे पिया का संदेशवा...।"

"भूमरो-भूमरो श्याम रंग भूमरो, आये हो किस बगिया से...(कश्मीरी लोकगीत-फिल्म मिशन कश्मीर)"

"चार दिनों का प्यार हो....रब्बा बड़ी लम्बी जुदाई... लम्बी जुदाई..." (पंजाबी लोकगीत-फिल्म-हीरो)

"मेरे अँगने में तूम्हारा क्या काम है, जो है नामवाला वही तो बदनाम है।" (फिल्म-लावारिस-उत्तरप्रदेश का लोकगीत)

'घुम्मर' गीत 'पदमावत समेत कई फिल्मों में इसका उपयोग हुआ है।' "म्हारी घुमर नखराली रे माँ... आवोजी आवोजी रे घुमरडी खेलवा रे बाइ सा...." (पदमावत-राजस्थानी लोकगीत)

'केसरिया बालम आवो नी पधारो म्हारे देश' राजस्थानी लोकगीत का प्रयोग कई फिल्मों में हुआ है। इसे मांड गायिका गवरी देवी समेत कई गायक-गायिकाओं ने स्वर दिये हैं। 'डोर' फिल्म-2006 में नागेश कुकूनूर ने बनाई है इसमें भी करशन सागढिया ने केसरिया बालम... गीत गाया है।

भारत का अधिकांश जन समूह गाँव में निवासी है। लोक कला और लोक संस्कृति का गहरा संबंध गाँवों से रहा है। लोक संगीत, लोकगीत या लोक धुने आज भी हमारे ह्रदय में स्थान रखती है। गीत-संगीत या लोकगीत को शिखर तक पहुँचाने में बोलती फिल्मों का योगदान विशेष है। "दे दे खुदा के नाम पे प्यारे... ताकत है अगर देने की" यह हिन्दी सिनेमा का पहला गाना था और देश की पहली बोलती फिल्म आलम आरा-1931 का यह गीत है।

भारतीय भाषाओं में विशेषकर लोकगीत और पारंपरिक प्रसंगों के गीतों के संदर्भ में राजस्थान और गुजरात का प्रभुत्व महसूस हो रहा है। पर्व गीतों में उत्तर भारत का प्रभाव हिन्दी फिल्मों में दिखाई पड रहा है- जैसे होली गीत। वर्षा गीत में सविशेष ब्रज का प्रभाव है। आधुनिक फिल्मों पर पंजाब का लोक छाया हुआ है। राजस्थान के कालबेलिया लोकगीतों का प्रयोग सर्प के संदर्भो वाली फिल्मों में मिलते हैं। जैसे-नागिन। 'किक' फिल्म का गाना-झूमे की रात है....में गुजरात के आदिवासी राठ प्रदेश की लोकधून (अलगोजा वाद्य से बजाई जानेवाली) का उपयोग है।

1173 से 1266 में हुए बाबा शेख फरिद शकरगंज पंजाब के संत कवि थे जिन्होंने 'काग' कौए को संदेशवाहक के रूप में रखते हुए कुछ पंक्तियाँ मौखिक कही। जिसके उपर एक संपूर्ण फिल्म-पिया मिलन की आस 1961 में बनी। इसमें लता मंगेशकर ने बाबा फरिद की पंक्तियाँ गाई। (मूल पंक्तियाँ)

"कागा सब तन खाइयो, कागा करंग ढढोलिआ सगला
एक न खाईयो मास खाइआ मासु
दो नैनन मत खाइयो ए दुइ नैना मति छुडउ पिर
मोहे पिया मिलन की आस।" देखन की आस
(जाइ मिला तिना सज्जणा-बाबा शेख फरिद की बानी, पृ. 62)

सिनेमा जीवन-जगत का अनुकरण है लोक तत्व से जुड़े सभी संदर्भ जीवन जगत को संस्कृति से जोड़ने का कार्य कर रहा है। फिल्मों में लोक तत्व का पुट जीवंतता का कार्य कर रहा है। अर्थात् फिल्मों में लोक तत्व का पुट जीवंतता लाता है। लोकगीत, लोक साहित्य, लोकनृत्य, लोकबोली-भाषा, प्रांतिय पहनावा, खान-पान, लोक संस्कार, लोक गायक, लोक कलाएँ एवं कलाकार, लोक वायकाएँ आदि का सहज प्रभाव फिल्मों पर है। हिन्दी फिल्मों में लोरियाँ भी लोकगीतों के रूप में हैं। स्वरप्रधान लोक काव्यों लोक संस्कृति के साथ बच्चे को बचपन से ही अच्छे संस्कार देने की प्रवृत्ति है जो आज धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। झवेरचंद मेघाणी (गुजराती साहित्यकार) का लोरीगीत

"शिवाजी ने नीदरू न आवे
माता जीजाबाई पारणु जुलावे..."

इस धून का प्रयोग भी कई फिल्मों में किया है विशेष कर शिवाजी के जीवन-चरित्र से जुड़ी फिल्मों में है। अतः लोकगीत दिल की गहराई तक उतर जाते है इसलिए चिरस्मरणीय है। लोकगीत या लोकबानी भारतीय संस्कृति और संस्कार है।

संदर्भ:

1. ग्राम-साहित्य-भाग-1, राम नरेश त्रिपाठी।
2. झवेरचंद मेघाणी-गुजराती साहित्यकार।
3. साहित्य और सिनेमा- डॉ. शेलजा भारद्वाज।
4. विविध हिन्दी फिल्में।
5. इन्टरनेट से।
6. विद्वानों से चर्चा-विचार से।
7. जाई मिला तिना सज्जणो-सूफी कवि बाबा शेख फरिद की बानी- संपादक डॉ. जसविन्दर कौर बिन्द्रा।

मानवीय मूल्यों का विकास एवं शिक्षा

डॉ० दयाशंकर तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद डिग्री कॉलेज (यूनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद) प्रयागराज

प्रस्तावना–

मानवीय मूल्य जीवन के आचरण एवं व्यवहार को बनाने वाले सूत्र एवं यंत्र माने गए हैं। सामाजिक परंपराएं एवं विभिन्न संस्कृतियों जीवन एवं मानवीय मूल्यों के आधार पर ही बनते हैं। प्रत्येक देश के जीवन मूल्य वहां के धार्मिक दार्शनिक एवं नैतिक सिद्धांतों के आधार पर बनते हैं और बनाकर पूर्ण रूप से विकसित भी होते हैं। भारतीय शिक्षाविदों एवं दार्शनिकों ने मूल रूप से मूल्यों को दो रूप में प्रदर्शित किया है– प्रथम भौतिक मूल्य एवं द्वितीय आध्यात्मिक मूल्य। भौतिक मूल्य के अंतर्गत प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, सौहार्द, अहिंसा और देश प्रेम आते हैं जबकि आध्यात्मिक मूल्यों में चार फलों यथा धर्म अर्थ काम और मोक्ष को लिया गया है।

मानव जीवन में शिक्षा का उतना ही महत्व है जितना वर्तमान समय में जीवन को जीने का। मानव जीवन में इंसान का शिक्षित होना जरूरी है मगर यह बात जब तक सभी लोग नहीं मान लेते तब तक ऐसा कहा जा सकता है कि मानव जीवन में शिक्षा का क्या महत्व है।

आज भी कई जगह ऐसी है जहां बच्चों को पढ़ाया नहीं जाता, कई जगह तो बच्चों की पढ़ाई के लिए स्कूल तक नहीं है और अगर कहीं है भी तो वहां प्रशिक्षित शिक्षक नहीं है तथा साथ ही वहां पर किसी प्रकार का मैनेजमेंट भी नहीं है। इन सब के बावजूद कहीं पर तो यह हाल है कि सिर्फ लड़कों को लोग पढ़ते हैं, लड़कियों को नहीं अगर ऐसा ही चलेगा तो आप ही बताएं कि मानव जीवन में शिक्षा का क्या महत्व रख जाएगा? शिक्षा का महत्व सिर्फ पढ़ना या कुछ सीखना नहीं होता बल्कि शिक्षा के विचार को एवम उसकी अच्छाई को अपने जीवन में लाना भी होता है। मुझे लगता है कि ऐसे समाज में शिक्षा एक क्रांतिकारी माध्यम हो सकती है जहां पर लिंग के आधार पर भेदभाव होता हो, तथा रूढ़िवादी परंपराओं, जो आज उचित नहीं है, का पालन किया जाता रहता हो।

"Each One Teach One" का नारा इस दिशा में सफलता दिला सकता है। एक अफ्रीकी अमेरिकी कहावत है। शिक्षा मानव विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसके बिना मनुष्य का विकसित होना और फलना फूलना काफी कठिन हो जाता है। "हर एक एक को पढ़ाओ" वाक्यांश की उत्पत्ति संयुक्त राज्य अमेरिका में गुलामी के दौरान हुई थी। जब अफ्रीकियों और अफ्रीकी अमेरिकियों को पढ़ना सीखने सहित कई प्रकार की शिक्षा संबंधी गतिविधियों से वंचित कर दिया गया था। बहुत से यदि अधिकांश नहीं तो दासों को उनकी तात्कालिक परिस्थितियों से परे किसी भी चीज के बारे में अज्ञानता की स्थिति में रखा गया था। ऐसे समय में शिक्षा मालिकों, कानून निर्माता और संबंधित अधिकारियों के नियंत्रण में थी, यह उस समय की बात है कि जब एक गुलाम पढ़ना सीखना था। उसे सिखाया जाता था, तो वह किसी और को पढ़ाना उनका कर्तव्य बन जाता था जिससे हर एक एक को पढ़ाता है, वाक्यांश का उदय हुआ।

हर एक एक को पढ़ाओ को पढ़ाओ वाक्यांश की अवधारणा अस्तित्व के लिए बुनियादी सिद्धांतों के रूप में शिक्षा और एकता की आवश्यकता पर आधारित है। हम सभी जानते हैं कि शिक्षा मनुष्य के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण है और उसके जीवन के निर्माण खंड के रूप में कार्य करती है। यह कहना गलत नहीं है की शिक्षा किसी व्यक्ति की सफलता और असफलता के बीच का निर्णायक कारण है। किसी व्यक्ति का विकास उसकी उचित शिक्षा जैसे नैतिक प्रशिक्षण, व्यवहार, स्वयं और दयालुता का ज्ञान और सामान्य

रूप से दुनिया को समझने में निकटता से संबंधित है। शिक्षा एक ऐसी चीज है जिसकी हर किसी को आवश्यकता होती है और इसका महत्व हमारे दैनिक जीवन में हमारे द्वारा लिए गए निर्णय के रूप में प्रदर्शित होता है।उचित शिक्षा यानी हमारे आसपास की चीजों का, कुछ बुनियादी तथ्यों का, सच्चाई और परिवेश का ज्ञान अच्छे जीवन निर्णयों को जन्म देगा जो हमारे जीवन को संवारने योग्य बना देगा।।

भारत हमेशा से समाज के दो वर्गों में विभाजित रहा है।जिसमें विशेष अधिकार प्राप्त और वंचित वर्ग शामिल है। इस मतभेद को किस प्रकार से दूर किया जाए और एक समृद्ध राष्ट्र का निर्माण कैसे किया जाए, इस पर लगातार बहस और चर्चा होती रहती है। आशा की एक किरण जो इस अंतर को कम शक्ति कम कर सकती है वह शिक्षा है या वह शिक्षा ही हो सकती है। एक शिक्षित व्यक्ति अपने अधिकारों के बारे में अच्छी तरह से जानता है और बेहतर तरीके से काम करने की स्थिति में होता है, और इसलिए उसे अपने जीवन को सफल बनाने के लिए अवसरों की कभी कमी नहीं होती। लेकिन दुर्भाग्य से हमारे देश में वंचित वर्गों के लिए शिक्षा तक पहुंच वास्तव में आसान नहीं है। समाज में बहुत अधिक जाति और समुदाय आधारित मतभेद आज भी व्याप्त है जिसके परिणाम स्वरुप गरीब बच्चों को वह शिक्षा नहीं मिल पाती जो उन्हें मिलना चाहिए। निश्चित रूप से इसमें कोई संदेह नहीं की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यक्ति को गुणवत्तापूर्ण जीवन और सुरक्षित भविष्य के लिए भी सशक्त बनाती है। शिक्षा एक ऐसी चीज है जो सफलता और स्वतंत्र सोच के सभी द्वार खोलती है, और एक शिक्षित व्यक्ति जीवन के प्रति बहुत बेहतर और आत्मविश्वास पूर्ण दृष्टिकोण बना सकता है।

सुकरात की मान्यता थी कि "सर्वश्रेष्ठ अनुसंधान इस विषय का अध्ययन करना है कि मनुष्य को क्या बनना चाहिए और उसे किन बातों का अनुसरण करना चाहिए"। सुकरात के इस कथन से यह बात साबित होती है की सुकरात जैसे विद्वान बहुत पहले से ही मनुष्य के वास्तविक जीवन उद्देश्यों को जानने की कोशिशें में लगे थे और चूकि मानव में इन चीजों का ज्ञान शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है।इसलिए यह स्वाभाविक है कि मानवी मूल्य के विकास में या विकास के लिए हमें अपनी शिक्षा पद्धति पर बहुत ही तन्मयता से सोच विचार करना होगा, ऐसी नीतियां बनानी होगी जिससे मनुष्य को उचित और अनुचित का ज्ञान हो सके। और वह अपने लिए एवं समाज के लिए एक सुखद समाज का निर्माण कर सके।

रूसो के शिक्षा पर विचारः

रूसो ने अपनी शिक्षा संबंधी विचार 1762 में लिखी अपनी पुस्तक "एमिल" दिए हुए हैं। रूसो द्वारा लिखी गई यह पुस्तक शिक्षा के क्षेत्र में एक अद्वितीय रचना माने जाते हैं। रूसो मनुष्य की प्रकृति को शुद्ध मानते थे। रूसो शिक्षा को एक प्राकृतिक क्रिया मानते थे जिसके द्वारा बच्चों की जन्मजात शक्तियों का प्राकृतिक विकास होता है। इन्होंने शिक्षा की कृत्रिमता पर प्रहार किया था क्योंकि यह बालकों की प्राकृतिक शक्तियों का विकास ना करके उन्हें बाहर से सामाजिक मान्यताओं से परिचित कराती है। इनका मत था कि बच्चों को सत्य से परिचित कराने के बजाय शिक्षा का उद्देश्य सत्य खोजने के लिए प्रेरित करना होना चाहिए। वह शिक्षा को बच्चों के व्यक्तित्व विकास में नियंत्रक होने की बजाय या निर्देशित करने के स्थान पर उनके सहायक बनने पर बल देने की बात करते थे। अपनी शिक्षा पद्धति को निषेधात्मक शिक्षा की संज्ञा दी। हालांकि मैरी वोल्सटेनक्राफ्ट जैसे आरंभिक नारीवादियों ने रूसो की शिक्षा पद्धति की आलोचना, उसकी जेंडर आधारित भेदभाव के चलते की।

कार्ल मार्क्स के शिक्षा संबंधी विचारः

मार्क्सवादियों का मानना है की शिक्षा बुर्जुआ वर्ग के हाथों में वास्तविक उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पा रही है। कार्ल मार्क्स और उसके साथ ही एंजेल्स का मत था कि शिक्षा पूंजीपति या पूंजीवादी व्यवस्था को गति प्रदान करने और उसे कमजोर करने में दोनों प्रकार से सहायक हो सकते थे। इसलिए उन्होंने शिक्षा के उस पक्ष पर बल दिया जिसके द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त किया जा सके। कार्ल मार्क्स मानते थे की श्रमिक श्रम करके शिक्षा प्राप्त करता है, इसलिए शिक्षा में श्रम जैसे मूल्यों को समाहित करना चाहिए। हम इसका उदाहरण महात्मा गांधी के विचारों में भी पाते हैं। जहां उन्होंने शिक्षा में श्रम को भी सम्मिलित करने की बात की थी। मार्क्सवादी विचारक शिक्षा को सभी के लिए सुलभ करने की बात करते हैं। वह शिक्षा को राज्य नियंत्रित करना चाहते हैं। मार्क्सवादियों का मानना है कि शिक्षा सभी लोगों को समान रूप से प्राप्त हो, तथा समाज में सभी प्रकार के वर्ग भेद समाप्त करने में सहायक बन सके।

राष्ट्र के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भी शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। अतः सामाजिक उद्देश्य के संकुचित अर्थ में राष्ट्र स्वयं की शिक्षा की एक सुनिश्चित प्रणाली बनाकर लागू करता है। यही नहीं पाठ्यक्रम शिक्षण पद्धतियों एवं अनुशासन को भी इसी प्रकार से आयोजित करता है कि व्यक्ति की इच्छाओं तथा आकांक्षाओं का संकुचन भी हो जाए, और उसमें आज्ञा पालन, अनुशासन, संगठन तथा अपार शक्ति के ऐसे भाव भी विकसित हो जाए कि वे राष्ट्र कल्याण हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर दे। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य अपने संकुचित अर्थ में राज्य अथवा राष्ट्र को ही सबसे ऊंची सत्ता मानता है। इसके अनुसार मानव की स्वतंत्रता का दमन करके मानवीय जीवन के प्रत्येक अंग का पूर्ण रूप से सामाजिकरण कर दिया जाता है। क्योंकि समस्त शक्ति राष्ट्रों के हाथ में आ जाती है इसलिए व्यक्ति अपने निजित्व के विकास हेतु स्वप्न भी नहीं देख सकता। उससे केवल यही आशा की जाती है कि वह राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने प्राणों की आहूति दे दें।

वास्तव में देखा जाए तो मानवीय मूल्य का राष्ट्रीय मूल्यों के साथ सामंजस्य बैठाना पड़ेगा। वर्तमान वैश्वीकरण की दुनिया में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। शिक्षा के माध्यम से आज व्यक्ति तमाम प्रकार की नई जानकारी को हासिल कर रहा है। और नई-नई तकनीक के माध्यम से एक दूसरे से जुड़ाव महसूस कर रहा है। प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी मदद से आज हम एक दूसरे की संस्कृति, भाषा एवं वेशभूषा से भी परिचित हो रहे हैं। आज की वैश्वीकरण दुनिया को बनाने में शिक्षा की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। साथ ही हमें यह भी याद रखना होगा की मानवी मूल्य की कोई सीमा नहीं होती अर्थात यह राष्ट्र की सीमाओं से परे होते हैं। हमें शिक्षा का उद्देश्य व्यापक आधार पर लेना चाहिए ना कि संकुचित आधार पर। इसीलिए आज शिक्षा को राज्य नियंत्रण की बजाय स्वतंत्र करने की बात की जा रही है। इस दिशा में इस दिशा में इंटरनेट भी एक बहुत ही क्रांतिकारी काम कर रहा है इंटरनेट की मदद से आज हम तमाम प्रकार की जानकारी से अपने आप को अवगत करते हैं एवं नई-नई जानकारी को हासिल करके अपने मस्तिष्क की विभिन्न शिराओं को खोलते हुए अपने विकास के लिए नए-नए रास्ते भी तलाश कर रहे हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा और मानवीय मूल्यों का आपस में एक घनिष्ठ अंतर संबंध होता है। दोनों ही एक दूसरे के पूरक के रूप में है। शिक्षा मानवीय मूल्यों को प्राप्त करने में एक साधन कभी बनती है तो कभी मानवीय मूल्य खुद समय के अनुकूल करते हुए शिक्षा एवं शिक्षण पद्धति को बदलने का प्रयास करती है।

संदर्भ ग्रंथः

1- पांडेय रामशकल, शिक्षा वर्तमान सन्दर्भ मे विकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद 2011

2- पाठक आर.पी, प्राचीन भारत मे उच्च शिक्षा, कनिष्ठ पब्लिशर्स, नई दिल्ली 2014

3- वेदालंकर सत्यकाम, शिक्षा सिद्धान्त और समस्याएं, राष्ट्रवाणी प्रकाशन दिल्ली 2002

4- शारदा जितेंद्र, शिक्षा की समस्याएं, श्री गणेश प्रकाशन दिल्ली, 2008

5- विकासपीड़ीयां. काम

6- अध्यात्मपेडियां. काम

7- महतो वाल्मीकि, शिक्षा समानता और समाज, आधार प्रकाशन, पंचकुला 2012

8- आर्य, डॉ मोहनलाल, (2018), शिक्षा के ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य, मेरठ, आर लाल बुक डिपो।

9- आर्य, डॉ मोहनलाल, (2017), सामाजिक विज्ञान का शिक्षण शास्त्र, मेरठ, आर लाल बुक डिपो।

10- पचौरी गिरीश, (2009) शिक्षा के सामाजिक आधार।

11- पांडे, राम सकल, (2010) मानवाधिकार और शिक्षा।

12- पायल, भोल एवं जैन(2005), मूल्य पर्यावरण तथा मानवाधिकारों की शिक्षा।

नरेंद्र कोहली की दृष्टि में स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्व

अभिशेक कुमार सिन्हा

शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रो० विजय कुमार

प्राध्यापक, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ नरेंद्र कोहली का रचना संसार अत्यंत ही समृद्ध रहा है। अगर इनकी लेखनी की बात करें तो इन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में अपने लेखन द्वारा पाठकों पर असीम छाप छोड़ी है चाहे वह उपन्यास हो या कहानी, निबंध हो या नाटक, व्यंग्य हो या संस्मरण या कोई अन्य गौण विधा। साहित्य का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिससे वे अछूते रह गए हों। खासकर इनके उपन्यासों की बात करें तो इनके उपन्यासों में कालजयत्व के तत्व, उपन्यास में दर्शन, अध्यात्म एवं नीति का पठनीय तथा मनोग्राही समावेश देखने को मिलता है जो उन्हें अपने समकालीन सभी साहित्यकारों में सबसे ऊपर लाकर खड़ा कर देता है। इस उल्लेखनीय कार्य के कारण ही उनकी सहज तुलना लेव तोलस्तोय से की जा सकती है। तोलस्तोय ही वे शख्स थे जिनकी रूसी से अनूदित कृतियाँ पश्चिम में वह आस्था एवं प्रेम के स्वर दे सकीं जिसके अभाव का अनुभव अंग्रेजी साहित्य में गहराता जा रहा था। तोलस्तोय की पश्चिम में लोकप्रियता का रहस्य था उनका अध्यात्म के प्रति समर्पण तथा समाज के विकास में उनका योगदान एवं अंतर्मन की पुकार। ठीक वैसा ही समर्पण एवं समाज को सही दिशा की ओर ले जाने की लालसा कोहली जी के साहित्य में भी सर्वत्र प्रतिध्वनित होती हुई दिखाई पड़ती है और यही उनके युग-प्रवर्तन का आधार भी है। उनके साहित्य में कालजयत्व का रहस्य भलीभांति देखने को मिलता है। इसी रहस्य के कारण ही वे भारतीय संस्कृति के धर्म- दर्शन और अध्यात्म की व्याख्या नए रूप से प्रस्तुत करने में भी सफल सिद्ध हुए हैं। खासकर 'न भूतो न भविष्यति', 'तोड़ो कारा तोड़ो' तथा 'पूत अनोखो जायो' जैसे उपन्यासों में युग-पुरुष के रूप में विख्यात एवं अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान स्वामी विवेकानंद के सम्पूर्ण जीवन को आधार बनाकर वेदान्त दर्शन की नई व्याख्या प्रस्तुत करने में इनका अहम योगदान रहा है। स्वामी जी ने ही वेदान्त दर्शन को एक लोकोपयोगी एवं व्यावहारिक दर्शन का रूप प्रदान किया था। व्यावहारिक वेदान्त दर्शन के अंतर्गत विवेकानंद का यह विचार था कि शांत एवं निश्चल चिंतन की अपेक्षा मानव सेवा अधिक प्रशस्त है। जहाँ तक विवेकानंद के अद्वैतवादी दर्शन की बात है वहाँ वे स्वयं जानते थे कि वे कोई नई बात नहीं कह रहे हैं। स्वामी जी के व्यावहारिक दर्शन का यह प्रबल पक्ष था कि वे साध्य की ही तरह साधन को भी विशेष महत्त्व देते थे। स्वयं कोहली जी ने भी स्वामी जी के व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए लिखा है, "स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व का आकर्षण..आकर्षण नहीं जादू..जादू जो सिर चढ़कर बोलता है। कोई संवेदनशील व्यक्ति उनके निकट नहीं रह सकता।..और युवा मन उत्साह से पागल ही हो जाता है। ऐसा कौन सा गुण था जो स्वामी जी में नहीं था। मानव के चरम विकास की साक्षातमूर्ति को किसी एक युग, प्रदेश, सम्प्रदाय अथवा संगठन के साथ बांध देना अज्ञान भी है और अन्याय भी।"[1] इसी तरह श्री शंकर भी अपनी पुस्तक "विवेकानंद की आत्मकथा" में स्वामी जी के व्यक्तित्व की चर्चा करते हुए लिखते हैं "स्वामी विवेकानंद नवजागरण के पुरोधा थे। उनका चमत्कृत कर देना वाला व्यक्तित्व, उनकी वाक्शैली और उनके ज्ञान ने भारतीय अध्यात्म एवं मानव-दर्शन को नए आयाम दिए। मोक्ष की

आकांक्षा से गृह-त्याग करने वाले विवेकानंद ने व्यक्तिगत इच्छाओं को तिलांजलि देकर दीन-दु:खी और दरिद्र नारायण की सेवा का व्रत ले लिया। उन्होंने पाखंड और आडंबरों का खंडन कर धर्म की सर्वमान्य व्याख्या प्रस्तुत की। इतना ही नहीं दीन- हीन और गुलाम भारत को विश्वगुरु के सिंहासन पर विराजमान किया।"[2]

आज की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक संसाधनों के दुरुपयोग के कारण विश्व में कई तरह के संकट उत्पन्न हो गए हैं। ऐसी स्थिति में लोग अपनी इंसानियत को भूलकर सिर्फ धन जुटाने में लगे हुए हैं उन्हें किसी की पीड़ा से कोई मतलब नहीं है। दिन पर दिन सामाजिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है और लोगों में एक-दूसरे के प्रति असंतोष का भाव बढ़ता जा रहा है। यहां तक कि विश्व में प्रत्येक जगह युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। छोटे देशों में हर समय इस बात का भय बना रहता है कि न जाने कब कौन सा देश उनपर आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर दे और बड़े देशों में अपनी शक्ति प्रदर्शन की होड़ मची हुई है। प्रत्येक राष्ट्र अपने को बड़ा दिखाने में जुटा हुआ है यहाँ तक कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को बर्बाद करने के लिए अपनी जमीन पर आतंकवादियों को प्रशिक्षण तक देते हैं। इस विघटन का मुख्य कारण आज की वह पीढ़ी है जो शिक्षा तो ग्रहण करती है पर संस्कार ग्रहण करने में उसे संकोच होता है। इस गिरते हुए राष्ट्रीय सामाजिक मूल्यों से चिंतित होकर ही नरेंद कोहली अपने उपन्यासों में स्वामी विवेकानन्द के विचारों को स्थापित करने का प्रयास करते हैं। स्वामी जी ने हमेशा व्यक्ति के चरित्र निर्माण और उसके नैतिक गुणों का विकास किस प्रकार हो इस पर बल दिया। उनकी दृष्टि में उस शिक्षा का भी कोई महत्व नहीं है जो सिर्फ पद ग्रहण करने के लिए ही ली जाती हो। यही कारण है कि वे प्रतिभा को पद से अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं "पद के लिए अंक ठीक हैं। प्रतिभा के लिए नहीं। प्रतिभा को ज्ञान चाहिए। अंक दूसरों को प्रभावित करने के लिए हैं, ज्ञान अपने को परितोष के लिए है।"[3] स्वामी जी की दृष्टि में हर धर्म बराबर था वे किसी भी धर्म या उनसे जुड़े लोगों का अपमान नहीं करते थे और न ही उनके अंदर यह कभी विचार आया कि उनका धर्म अन्य धर्मों से अधिक बलिष्ठ है। वे मानव का सबसे बड़ा शत्रु अंधविश्वास तथा कट्टरता को समझते थे किंतु मूर्ति पूजा पर उनका विचार अलग था वे मूर्ति पूजा को शाश्वत तत्त्व का ध्यान करने की क्रिया मानते थे। "हिन्दू, मूर्ति की पूजा नहीं करता, वह मूर्ति के अवलंब से उस शाश्वत तत्त्व का ध्यान करने की क्रिया करता है।"[4]

स्वामी विवेकानंद जी को यह भली-भांति ज्ञात था कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति के पीछे वहां के युवाओं का बहुत बड़ा योगदान होता है इसलिए वे देश के युवाओं को लेकर काफी चिंतित रहा करते थे। वे युवाओं को अपसंस्कृति से ग्रसित होकर असभ्यता के अंधकार रूपी गलियारे में भटकते हुए नहीं देखना चाहते थे। उनका मानना था कि देश में युवाओं के लिए ऐसी नीति लागू होनी चाहिए जो उन्हें अपने देश की प्राचीन संस्कृति से सिर्फ परिचित ही न कराए बल्कि उन्हें संस्कारी व सभ्य भी बनाये। वे युवाओं को अक्सर यह कहकर समझाया करते थे कि "देश को बलशाली वीरों की आवश्यकता है, ध्यान पर बैठी कठपुतलियों की नहीं।"[5] विवेकानंद स्वंय सन्यासी थे किंतु उनके विचार अन्य सन्यासियों से बिल्कुल भिन्न थे वे मानव सेवा को ही ईश्वर की सेवा समझते थे तथा उन्हें अपने गुरुभाईयों से भी यही चाहत थी, "अपने हृदय को पवित्र करने के लिए उन्हें तपस्या के रूप में मानव-सेवा करनी चाहिए। अंतत: उसीसे उन्हें ईश्वर-लाभ होगा।"[6] स्वामी जी ने न केवल कुछ न कर सके तो सन्यासी हो जाएंगे की पारंपरिक प्रचलित अवधारणा को गलत साबित किया बल्कि सन्यासी होने का सही मतलब भी बताया। उनकी दृष्टि में मनुष्य वही है जो मनुष्य के लिए मरता हो अगर ऐसा नहीं है तो मनुष्य और पशु में कोई अंतर नहीं है।

जीवन के लक्ष्य को समझने में धर्म का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है इसमें कोई शक नहीं है किंतु धर्म से हिन्दू जाति, मुसलमान जाति या ईसाई जाति को जोड़ना यह ठीक नहीं है। स्वामी जी धर्म का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि "धर्म से मेरा तात्पर्य वह नहीं है। देखो विधा-बुद्धि आदि सभी विषयों में प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पृथक-पृथक देखा जाता है। इसी कारण उनके उपयुक्त धर्म का भी भिन्न-भिन्न होना भी आवश्यक है, अन्यथा वह किसी भी तरह उनके लिए संतोषप्रद नहीं होगा। वे किसी भी प्रकार उसका अनुष्ठान कर सुखी नहीं हो पाएँगे। अपने-अपने स्वभाव के अनुकूल धर्म मत को स्वयं ही देख-भालकर, सोच-विचारकर चुन लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। धर्मग्रंथ का पथ, गुरु का उपदेश साधु-दर्शन, सत्पुरुषों का संग आदि उसे इस मार्ग में सहायता मार्ग देते हैं।"[7] स्वामी जी कर्म को ही वास्तविक रूप में सच्चा धर्म मानते हैं। उनका इस बारे में कहना था कि संसार में सिर्फ अच्छा या बुरा ही कर्म नहीं होता। कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं जो हमें सुख के साथ दुख का भी अनुभव देते हैं। इसलिए हमें बिना किसी स्वार्थ के अपना कर्म निरंतर करते रहना चाहिए क्योंकि गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं- "काम करो। किंतु फल मुझे अर्पण कर दो, अर्थात मेरे लिए ही काम करो।"[8] इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी जी धर्म को पूजा पद्धति से बिल्कुल भिन्न समझते थे।

स्वामी जी से एक बार उनके किसी शिष्य ने पूछा था कि अगर किसी कारणवश कोई किसी सत्य को ढकने का प्रयास करता है या उसके स्थान पर कोई मधुर झूठ बोलता है तो उसके द्वारा ऐसा करना उचित माना जा सकता है इसपर स्वामी जी ने अपना मंतव्य देते हुए कहा था, "झूठ प्रत्येक स्थिति में झूठ ही है, इसलिए किसी भी अवस्था में उसे उचित नहीं ठहराया जा सकता। जब हम झूठ बोलते हैं और मान लेते हैं कि किसी अन्य उदात्त कारण से हमारा यह झूठ बोलना उचित है, तो हम मिथ्या भाषण की परंपरा का श्रीगणेश करते हैं। सत्य, शिष्टाचार और शालीनता के अपने-अपने क्षेत्र हैं। यह आवश्यक नहीं कि सत्य हमेशा अशिष्ट ही हो। वरन मैं तो यह कहूंगा कि सत्य कभी अशिष्ट अथवा आशालीन हो ही नहीं सकता।"[9] इससे यह ज्ञात होता है कि स्वामी जी लोगों को हमेशा सत्य बोलने के लिये प्रेरित किया करते थे क्योंकि उनकी दृष्टि में सत्य बोलना एक ऐसा हथियार है जो लोगों को विपरीत परिस्थिति में भी अडिग रहने की प्रेरणा देता है।

स्वामी जी का कहना है कि आज का युग वैज्ञानिकता का युग है बिना विज्ञान को साथ लिए समाज का विकास असंभव है। उनकी दृष्टि में विज्ञान और दर्शन एक-दूसरे के अभिन्न अंग है। इसलिए मनुष्य को विज्ञान के साथ दर्शन का भी ज्ञान होना चाहिए क्योंकि इसके अध्ययन से ही मानव में एक ओर वैज्ञानिक मानसिकता का विकास होता है तो दूसरी ओर आध्यात्मिकता का सृजन भी होता है बिना दर्शन को जाने विज्ञान को समझना उतना ही अधूरा है जितना कि बिना अक्षर ज्ञान के कुछ लिखना। इसलिए लोगों को चाहिए कि वह अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए कुछ ऐसा करे कि उन्हें विज्ञान का तो ज्ञान हो ही और साथ ही दर्शन को समझने के लिए उन्हें दर-दर भटकना न पड़े।

स्वामी विवेकानंद का अभ्युदय उस समय हुआ जब भारत पर अंग्रेजों का शासन था अंग्रेजी शासन होने के कारण ही लोगों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव अधिक देखने को मिल रहा था लोग न चाहते हुए भी अंग्रेजों के रंग में रंगने को मजबूर थे उन्हें वही करना पड़ता था जो अंग्रेज उनसे करने को कहते थे उन्होंने भारतीयों को लेकर तरह-तरह के नियम बना रखे थे। किंतु स्वामी जी बचपन से ही अंग्रेजों के नियमों के खिलाफ थे यहाँ तक कि वे उनके द्वारा बोले जाने वाली अंग्रेजी भाषा को भी सीखना नहीं चाहते थे किंतु बार-बार अपने पिता के समझाने के बाद वे अंग्रेजी सीखने के लिए राजी हो गए। एक बार जब उनकी माता ने उनका परीक्षा-फल देखकर उनसे कहा था कि जिस अंग्रेजी को पढ़ने के लिए न जाने तुम क्या-क्या नखरे करते थे उसमें तुम्हारे अंक कितने अच्छे आये हैं। इसपर उन्होंने अपनी माता को उत्तर देते हुए कहा था "माँ! मैं इसलिए तो विरोध नहीं कर रहा था कि मैं अंग्रेजी पढ़ने में अक्षम था। मैं तो केवल नीति के आधार पर इसका विरोध कर रहा था। यह तो मैं तब भी जानता था कि जब भी पढ़ने लगूँगा, उसका अच्छा अभ्यास कर ही लूंगा।"[10] इससे पता चलता है कि वे अंग्रेजी को बस इसलिए नहीं सिखना चाहते थे क्योंकि वे उसे अपनी भाषा नहीं समझते थे। यहां तक कि वे उनके जैसा पहनावा भी पसंद नहीं करते थे अपने कॉलेज के समय में वे अक्सर इस संबंध में अपने मित्रों के साथ चर्चा किया करते थे, "अंग्रेज साहब बहादुर का सरकारी कॉलेज है। अधिकांश अध्यापक अंग्रेज या यूरोपीय हैं। उन्हें हम धोती-कुर्ते में नंगे ही लगते हैं। वे इसे शिष्ट परिधान नहीं मानते। अब या तो टाई के साथ कोट और पतलून पहनो या चपकन और पजामा।"[11]

स्वामी जी के अंदर हमेशा से ही निडरता और साहस का भाव भरा पड़ा था। कोहली जी ने अपने उपन्यासों में कई जगह उनके साहस और निडरता का उदाहरण दिया है। एकबार की बात है जब स्वामी जी छोटे थे तो वे अपने मित्र गोपू के साथ उनकी वाटिका में टहल रहे थे और टहलने के दौरान ही वे अपने प्रिय चम्पक वृक्ष को देखकर उसकी मोटी शाखा पर पैर फंसाकर उलटा लटककर झूलने लगे ऐसा करते देख उनके मित्र गोपू को भी लगा कि वे भी उसी की तरह उलटा लटककर झूला झूले पर उनमें ऐसा करने की साहस नहीं थी इसलिए वे स्वामी जी के पास आकर उनसे पूछा कि तुम्हें इसी वृक्ष पर झूलना क्यों अच्छा लगता है। इसपर स्वामी जी ने उत्तर देते हुए कहा था कि यह चम्पक का वृक्ष है जिसके पुष्प भगवान शिव को अति प्रिय है और भगवान शिव मुझे। इसलिए ही यह वृक्ष भी मुझे प्रिय है। इसी दौरान गोपू के दादा जी की नजर स्वामी जी पर पड़ती है और वे उसे समझाते हुए कहते हैं कि इसकी डाल बहुत कमजोर होती है इसलिए वे ऐसा न किया करे किंतु वे गोपू के दादा जी की बात नहीं मानते इसपर दादा जी उन्हें डराने के लिए ब्रह्मदैत्य की कथा सुनाते हैं ताकि वे दुबारा इस वृक्ष पर झूला न झूले किंतु दादाजी की बात सुनकर वे डरते नहीं है बल्कि इस बात के प्रमाण के लिए वे जाकर फिर वापस आते हैं और उसी वृक्ष पर फिरसे उलटा लटक जाते हैं। ऐसा करता देख गोपू उनसे फिरसे लटकने का कारण पूछता है जिसपर स्वामी जी उत्तर देते हुए कहते हैं कि "कैसा मूर्ख है तू कि किसी ने कहा और तूने मान लिया। अरे, यदि इस वृक्ष पर ब्रह्मदैत्य होता, तो वह कब का मेरी गरदन मरोड़ चुका होता। आज पहली बार तो मैं इस वृक्ष पर झूल नहीं रहा।"[12] इसी प्रकार जब वे अपने मित्रों के साथ नवाब की पशुशाला देखकर नाव

से वापस आ रहे थे तभी उनके मित्र हेमंत को उबकाई आती है और वह नाव पर ही उल्टी कर देता है जिसके कारण मल्लाह उनपर क्रोधित होता हुआ गंदगी साफ करने को कहता है किंतु साफ करने के लिए कोई साधन न देखकर स्वामी जी उन्हें ही इस गंदगी को साफ करने के लिए आग्रह करते हैं और इसके बदले वे उन्हें दुगना भाड़ा ले लेने के लिए कहते हैं जिसपर मल्लाह और क्रोधित होता हुआ उनसे कहता है कि मुझपर पैसे का रौब मत दिखाओ, मैं तुम्हारी गंदगी साफ करने के लिए नाव नहीं चलाता और यह कहकर वह अपनी नाव को किनारे लगा अपने साथियों को चिल्लाकर उन्हें पीटने के लिए वहाँ बुला लेता है। इसी दौरान स्वामी जी वहाँ से भागकर अपने मित्रों को बचाने के लिए दो अंग्रेज सैनिकों से बिना डरे और सोचे सहायता मांगते हैं और वे सैनिक उनकी सहायता भी करते हैं जिसके कारण उनके मित्र मल्लाह के हाथों पीटने से बच जाते हैं जिसपर उनका मित्र तपन उनकी साहस का परिचय देता हुआ कहता है कि "हमें तो तुम्हारे साहस ने बचा लिया। नहीं तो आज पिटकर अस्पताल ही पहुँचे होते।"[13] इन सारी बातों से यह ज्ञात होता है कि स्वामी जी के अंदर बचपन से ही साहस कूट-कूट कर भरा पड़ा था। वे किसी की बात पर तब तक विश्वास नहीं करते थे जब तक कि उन्हें स्वयं उसका ठोस प्रमाण न मिल जाय। ऐसे महान व्यक्तित्व पर लिखकर कोहली जी ने न सिर्फ हिंदी साहित्य जगत को शुशोभित किया बल्कि पाठकों को भी स्वामी विवेकानंद के जीवन दर्शन से अवगत कराया।

संदर्भ ग्रंथ

1. तोड़ो कारा तोड़ो-1(निर्माण), नरेंद्र कोहली, किताबघर प्रकाशन, संस्करण-2013, कवर पृष्ठ
2. विवेकानंद की आत्मकथा, शंकर, प्रभात प्रकाशन, संस्करण-2020, कवर पृष्ठ
3. न भूतो न भविष्यति, नरेंद्र कोहली, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2013, 2014, आवृति-2018, पृष्ठ संख्या-15
4. ज्ञानमार्ग कर्मयोगी स्वामी विवेकानंद, देवकी नंदन गौतम, प्रभात प्रकाशन, संस्करण-2018, पृष्ठ संख्या-89
5. ज्ञानमार्ग कर्मयोगी स्वामी विवेकानंद, देवकी नंदन गौतम, प्रभात प्रकाशन, संस्करण-2018, पृष्ठ संख्या-102
6. न भूतो न भविष्यति, नरेंद्र कोहली, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2013, 2014, आवृति-2018, पृष्ठ संख्या-185
7. तोड़ो कारा तोड़ो-4(निर्देश), नरेंद्र कोहली, किताबघर प्रकाशन, संस्करण-2019, पृष्ठ संख्या-121
8. तोड़ो कारा तोड़ो-4(निर्देश), नरेंद्र कोहली, किताबघर प्रकाशन, संस्करण-2019, पृष्ठ संख्या-121
9. तोड़ो कारा तोड़ो-4(निर्देश), नरेंद्र कोहली, किताबघर प्रकाशन, संस्करण-2019, पृष्ठ संख्या-123
10. तोड़ो कारा तोड़ो-1(निर्माण), नरेंद्र कोहली, किताबघर प्रकाशन, संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-104
11. पृष्ठ संख्या-14 न भूतो न भविष्यति, नरेंद्र कोहली, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2013, 2014, आवृति-2018
12. तोड़ो कारा तोड़ो-1(निर्माण), नरेंद्र कोहली, किताबघर प्रकाशन, संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-97
13. तोड़ो कारा तोड़ो-1(निर्माण), नरेंद्र कोहली, किताबघर प्रकाशन, संस्करण-2013, पृष्ठ संख्या-104

मनुस्मृति में वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं, कर्म से मान्य है

डॉ० अजित कुमार

लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

मनुस्मृति में अनेक स्थलों पर स्पष्ट और सांकेतिक रूप में ऐसे वर्णन हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि मनु वर्णव्यवस्था का निर्धारण मूलतः कर्म से मानते हैं, जन्म से नहीं। किसी भी वर्ण में उत्पन्न बालक को माता-पिता अपने वर्ण या अन्य किसी भी वर्ण में दीक्षित करा सकते हैं, किन्तु शैक्षणिक काल में अन्ततः वर्ण का निश्चय, उसके गुण, कर्म, स्वभाव-संस्कार आदि के आधार पर आचार्य करता है। बाद में कर्मों या व्यवसाय के आधार पर उसमें परिवर्तन हो सकता है।

मूल शब्द- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णव्यवस्था, मनुस्मृति

प्रस्तावना-

कर्म से वर्णव्यवस्था के विधायक या संकेतक स्थलों को प्रदर्शित करने वाले निम्न स्थल मनुस्मृति में प्राप्त हैं। ये सभी मनुस्मृति की आधारभूत भावना के अनुरूप, संकेतित विषय के अन्तर्गत, प्रसंगसम्मत और शैली के अनुकूल हैं- 1-31, 87-91, 2-36-39, 103, 126- 168 4-245, 10-65।।

इन सभी स्थलों का अनुशीलन और विश्लेषण करने के अनन्तर इस विषयक निम्न निष्कर्ष स्पष्ट होते हैं-

1- (क) यदि मनु जन्म से ही किसी वर्ण को श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ मानते तो उन्हें वर्णों के कर्मों का निश्चय करने की आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि जो व्यक्ति जन्म के आधार पर ही श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ माना जा रहा है तो वह वैसा ही रहेगा, चाहे कर्म करे या न करे। शैशवावस्था और कौमार्यावस्था में भी वह वर्णों के लिए प्रतिपादित कर्मों को नहीं करता है, अपितु बहुत बार तो अज्ञान में विरोधी कर्म भी कर देता है। जब उस अवस्था में उसे जन्मतः ब्राह्मण या धर्म की प्रत्यक्ष मूर्ति माना जा रहा है[1] तो बाद में कर्मों के न करने या विरोधी कर्मों के करने से भी उसका ब्राह्मणत्व नष्ट नहीं होना चाहिए। लेकिन मनुस्मृति के सभी विधि-निषेध वचनों, व्यवस्थाओं और वर्णों के लिए कर्मों के निश्चय से स्पष्ट होता है कि मनु धर्म-अधर्म, कर्म और अवस्थाओं से ही वर्णव्यवस्था या व्यक्ति की श्रेष्ठता मानते हैं, जन्म से नहीं। यदि जन्म से ही श्रेष्ठत्व स्वीकार कर लिया जाये तो मनुस्मृति की सम्पूर्ण कर्मव्यवस्था ही व्यर्थ हो जायेगी। कोई पालन करे या न करे व्यवस्थाओं का कोई महत्त्व ही नहीं रहेगा, क्योंकि उनका श्रेष्ठत्व-अश्रेष्ठत्व तो जन्म से ही निर्धारित हो ही चुका। लेकिन मनु ने कर्म के आधार पर वर्णव्यवस्था मानी हैं निम्न श्लोकों में उनकी अत्यधिक स्पष्ट घोषणा द्रष्टव्य है-

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।[2]

अर्थात्- श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ कर्मों के अनुसार शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है अर्थात् गुणकर्मों के अनुकूल कोई ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण रहता है तथा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के गुण वाला हो तो वह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार

शूद्र के घर उत्पन्न भी मूर्ख हो तो वह शूद्र रहता है और जो उत्तम गुणयुक्त हो तो यथायोग्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य का भी वर्ण-परिवर्तन समझना चाहिए।

कर्मणा वर्णव्यवस्था का अतिस्पष्ट विधान- मनु ने इस श्लोक में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में वर्णव्यवस्था को कर्मों पर आधारित माना है। इस मान्यता के सम्बन्ध में अन्य विवेचन 2-31, 87-91ऋ 107, 11-114 श्लोकों में देखिये।

श्लोक की पुष्टि में प्रमाण- प्राचीन काल में कर्मानुसार वर्णव्यवस्था प्रचलित थी। इसके अनेक प्रमाण और उदाहरण मिलते हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में इसी मान्यता को स्पष्ट किया है-

''धर्मचर्य्यया अघन्यो वर्णः पूर्व पूर्व वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।1।।

अधर्मचर्य्यया पूर्वा वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।2।।[3]

धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस-जिस के योग्य होवे।।1।।

वैसे अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचे-नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे।।2।।[4]

(2) अपने धर्म-कर्मों को पालन न करने पर कोई भी व्यक्ति शूद्र बन जाता है, ऐसा मनु का मत है। यथा- (अ) वेद न पढ़ने पर द्विज शूद्रता को प्राप्त करता है।[5] (आ) सन्ध्योपासना न करने वाला व्यक्ति शूद्रवत होता है।[6] (इ) यथोक्त आयु सीमा तक उपनयन में दीक्षित न होकर द्विज न बनने वाले व्यक्ति 'व्रात्य' संज्ञक शूद्र कहलाते हैं। (ई) नीचों की संगति से ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त करता है।[7] इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि न तो मनु ने व्यक्ति को जन्म से ही अश्रेष्ठ माना है और न जन्मना आधार पर वर्णव्यवस्था मानी है, यदि जन्मना इनका निर्धारण होता तो उक्तरूप से वे निम्न वर्ण वाले न बनते।

(3) इसके साथ ही शूद्रता को प्राप्त व्यक्ति यदि अपने कर्मों को सुधार लेता है और त्रुटियों के लिए प्रायश्चित कर लेता है तो वह पुनः अपने वर्ण का हो सकता है। मनु ने यह मान्यता 'व्रात्य' संज्ञक शूद्रों के लिए और वर्णविरूद्ध कार्यो के कारण ब्राह्मण-वर्ण से बहिष्कृत ब्राह्मणों के लिए विहित प्रायश्चितों में प्रकट की है।[8] इस व्यवस्था से भी मनु की वर्णव्यवस्था कर्मानुसार ही सिद्ध होती है।

(4) मनु ने व्यक्ति की प्रतिष्ठा और बड़प्पन, गुणों की योग्यता के आधार पर माना है।[9] मनु की यह मान्यता भी यह स्पष्ट करती है कि मनु जन्म के आधार पर श्रेष्ठता या उच्चता अथवा वर्णव्यवस्था नहीं मानते, अपितु कर्म या गुणों को ही आधार मानते हैं।

(5) मनु ने वर्णों के कर्म बतलाते हुए ''लोकानां विवृद्धयर्थम्''[10] (समाज की वृद्धि के लिए) और ''सर्वस्यास्य तु गुप्त्यर्थम्''[11] (इस समस्त जगत् की सुरक्षा के लिए) को कर्म निर्धारण का कारण बतलाया है इन कारणों पर विशेष ध्यान देने पर यहां यह स्पष्ट मान्यता प्रकट हो जाती है कि मनु कर्मों के आधार पर ही वर्ण-व्यवस्था मानते हैं, जन्म के अनुसार नहीं। क्योंकि, यदि जन्म से ही व्यक्ति श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ, उच्च-निम्न निर्धारित हो गये तो उससे समाज या जगत् की क्या वृद्धि होगी? केवल उच्च लोगों की वृद्धि होगी। अपितु वृद्धि भी कहां होगी, जो जिस स्तर का होगा वहीं रहेगा। उसे अपने स्तर की उन्नति का अवसर ही कहां मिलेगा? यदि जन्मना वर्ण-व्यवस्था मानें तो इन कारणों का कथन निरर्थक होगा। इन कारणों के कथन से एक और संकेत मिलता है- वह यह कि चार वर्णो के अनुसार प्रजाएं नहीं बनायी अपितु प्रजाओं की वृद्धि के लिये (प्रजाओं के लिए) चार वर्ण बनाये अर्थात् पहले प्रजाएं बनीं जो जन्मना समान थीं, फिर उनमें से गुण कर्मानुसार चार वर्ण निर्मित किये गये, जिससे समाज व्यवस्था में बंधकर वृद्धि करता रहे। इस प्रयोगपद्धति से भी कर्मणा वर्णव्यवस्था सिद्ध होती है।

(6) 'वर्ण' शब्द का अर्थ और व्युत्पत्ति ही यह सिद्ध करते हैं कि मनु की व्यवस्था जन्मना न होकर कर्मणा है। निरुक्त में 'वर्ण' शब्द की व्युत्पत्ति दी है---'वर्णो वृणोतेः[12] अर्थात् कर्मानुसार जिसका वरण किया जाये वह 'वर्ण' है। इस पर प्रकाश डालते हुए महर्षि दयानन्द ने भी स्पष्ट किया है-

''वर्णो वृणोतेरिति निरुक्तप्रामाण्याद्वरणीया वरीतुमर्हाः।

गुणकर्माणि च दृष्ट्वा यथायोग्यं व्रियन्ते ये ते वर्णा ।''[13]

अर्थात्-गुण-कर्मों को देखकर यथायोग्य अधिकार जिसको दिया जाये वह वर्ण है।

(7) वर्णों के नाम उनके कर्मानुसार रखे गये हैं। नामों की व्युत्पत्ति स्वयं उनके कर्मों का बोध कराती है (इसके लिए विस्तृत विवेचन मनुस्मृति के 1-87-91 श्लोकों पर द्रष्टव्य है)।

(क) 'ब्राह्मण' नाम कर्मणा वर्णव्यवस्था का सूचक-

वर्णों के नामों की व्याकरणानुसारी रचना और व्युत्पत्ति से भी यह बात सिद्ध होती है कि मनु ने कर्मानुसार ही वर्णों का नाम करण दिया है और नामों से वर्णों के कर्मों का भी बोध होता है। 'ब्रह्मन्' प्रातिपदिक से 'तदधीते तद्वेद'[14] अर्थ में 'अण' प्रत्यय के योग से 'ब्राह्मण' शब्द बनता है। इसकी व्युत्पत्ति है-'ब्रह्मणा वेदेन परमेश्वरस्य उपासनेन च सह वर्तमानो विद्यादि उत्तमगुणयुक्त: पुरुष: अर्थात् वेद और परमात्मा के अध्ययन और उपासना में तल्लीन रहते हुए विद्या आदि उत्तम गुणों को धारण करने से व्यक्ति 'ब्राह्मण' कहलाता है। मनु ने भी इन्हीं कर्मों को ब्राह्मण के प्रमुख कर्मों के रूप में वर्णित किया है।

ब्राह्मणग्रन्थों के वचनों में भी वर्णों के कर्मों का वर्णन पाया जाता है। निम्न वचनों में ब्राह्मण के कर्त्तव्य उद्दिष्ट हैं-

(अ) ''आग्नेयो ब्राह्मण:''।[15] ''आग्नेयो हि ब्राह्मण:'' (काठ-ब्रा- 29-10) ब्राह्मण श्रेष्ठ व्रतों= यज्ञादि से सम्बन्ध रखने वाला अर्थात् यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण होता है

(आ) ''ब्राह्मणो व्रतभृत्''।[16] ''व्रतस्य रूपं यत् सत्यम्''[17] ब्राह्मण श्रेष्ठ व्रतों= कर्मो को धारण करने वाला होता है। सत्य बोलना व्रत का एक रूप है।

(इ) ''गायत्रौ वै ब्राह्मणा:'' (ऐ-ब्रा- 1-28)। ''गायत्रो यज्ञ:'' (गो-ब्रा- पू- 4-24)। ''गायत्रो वै बृहस्पति:'' (ता-ब्रा- 5-1-15) ब्राह्मण गायत्र, होता है। गायत्र वेद, यज्ञ और परमात्मा को कहते हैं।

(ख) 'क्षत्रिय' नाम कर्मणा व्यवस्था का सूचक-

(1) क्षणु-हिंसा अर्थ वाली (तनादि) धातु से 'क्त' प्रत्यय के योग से 'क्षत:' शब्द की सिद्धि होती है और 'क्षत' उपपद में 'त्रैङ्' धातु से पालन करने अर्थ में (भ्वादि) 'अन्येष्वपि दृश्यते'[18] सूत्र से 'उ:' प्रत्यय, पूर्वपदान्त्याकारलोप होकर 'क्षत्र' शब्द बना। 'क्षत्र एव क्षत्रिय:' स्वार्थ में 'इय:' होने से 'क्षत्रिय:' अथवा क्षत्रस्य-अपत्यं वा, 'क्षत्राद् घ:'[19] सूत्र से जन्म लेने अर्थ में 'घ:' प्रत्यय होकर क्षत्रिय शब्द बना। 'क्षदति रक्षति जनान् क्षत्र:' जो जनता की रक्षा का कार्य करता है अथवा, 'क्षण्यते हिंस्यते नश्यते पदार्थो येन स 'क्षत:' =घातादि:, ततस्त्रायते रक्षतीति क्षत्र:= आक्रमण, चोट, हानि आदि से लोगों की रक्षा करने वाला होने से क्षत्रिय को 'क्षत्रिय' कहते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में -'क्षत्रं राजन्य:' (ऐ-ब्रा- 8-2, 3-4) 'क्षत्रस्य वा एतद्रूपं यद् राजन्य:' (श-ब्रा- 13-1-5-3)= क्षत्रिय 'क्षत्र' का ही रूप है, जो प्रजा का रक्षक होता है।

(2) यहां अपत्यार्थ में 'इय' आदेश के योग से क्षत्रिय आदि शब्द बनाने में यह शंका उत्पन्न होती है कि क्या मनु जन्म के आधार पर वर्ण मानते हैं? इस शंका के निराकरण के लिए प्रमाण पुष्ट समाधान है। वंश केवल जन्म से ही नहीं अपितु विद्याजन्म से भी वंश चलता है। अष्टाध्यायी (2-1-19) में 'संख्यावंश्येन' सूत्र में विद्या से जन्म माना है। मनुस्मृति (2-119-123) श्लोकों में स्पष्टत: विद्या के आधार पर जन्म माना है। इस प्रकार गुणग्राहिता, कार्यकारणभाव और विद्या के आधार पर भी अपत्य आदि सम्बन्ध होते हैं। जैसे सूर्य, वरूण आदि की कोई पत्नी या अपत्य आदि नहीं होते, किन्तु फिर भी कार्य-करण और गुणग्राहिता आदि के आधार पर अदिति का पुत्र आदित्य, सूर्य की पत्नी सूर्या आदि, और वरूणानी, मैत्रावरूण: आदि प्रयोग होते हैं।

(3) क्षत्रिय के विस्तृत कर्त्तव्यों का वर्णन 7-1 से 9-225 श्लोकों में है।

(ग) 'वैश्य' नाम कर्मणा व्यवस्था का सूचक-

(1) ''विश: मनुष्यनाम'' (निघ- 2-3) उससे भावार्थ में 'यत्' उससे स्वार्थ में 'अण' अथवा 'विश' प्रातिपदिक से अपत्यार्थ में 'य्' छान्दस् प्रत्यय से 'वैश्य' शब्द बना। ''यो यत्र-तत्र व्यवहारविद्यासु प्रविशति स: 'वैश्य:' व्यवहारविद्याकुशल: जनो वा'' जो विविध व्यावहारिक व्यापारों में प्रविष्ट रहता है या विविध विद्याओं में कुशल जन 'वैश्य' होता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में- ''एतद् वै वैश्यस्य समृद्धं यत् पशव:''[20] ''तस्मादु बहुपशुर्वैश्वदेवो हिजागतो वैश्य:''[21] पशुपालन से वैश्य की समृद्धि होती है, यह वैश्य का कर्त्तव्य है।

(2) वैश्य के कर्त्तव्यों का वर्णन विस्तार से द्रष्टव्य है मनुस्मृति 9-225-333 में।

(घ) 'शूद्र' नाम कर्मणा व्यवस्था का सूचक-

(1) शुच्- शोकार्थक (भ्वादि) धातु से शुचेर्दश्च' (उणा- 2-19) सूत्र में 'रक' प्रत्यय, उकार को दीर्घ, च को द होकर 'शूद्र' शब्द बनता है।

शूद्रः=शोचनीयः शोच्यां स्थितिमापन्नो वा, सेवायां साधु अविद्याादिगुणसहितो मनुष्यो वा' =शूद्र वह व्यक्ति होता है जो अपने अज्ञान के कारण किसी प्रकार की उन्नत स्थिति को नहीं प्राप्त कर पाया और जिसे अपनी निम्न स्थिति होने की तथा उसे उन्नत करने की सदैव चिन्ता बनी रहती हैं, अथवा स्वामी के द्वारा जिसके भरण की चिन्ता की जाती है। ऐसा सेवक मनुष्य शूद्र है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यही भाव मिलता है- ''असतो वा एष सम्भूतो यत् शूद्रः''।[22] असतः=अविद्यातः। अज्ञान और अविद्या से जिसकी निम्न जीवन स्थिति रह जाती है, जो केवल सेवा आदि कार्य ही कर सकता है, ऐसा मनुष्य शूद्र होता है।

(2) वह उत्तम कर्मों से उच्च वर्ण को भी प्राप्त कर सकता है।[23]

(3) शूद्र के कर्त्तव्यों का विस्तृत वर्णन 9-334-335 श्लोकों में है। उन श्लोंको से मनु की शूद्र-सम्बन्धी यह मान्यता और भी स्पष्ट हो जाती है कि वे शूद्र को जन्मना नहीं मानते तथा न घृणास्पद मानते हैं।

(8) मनु कर्मणा वर्णव्यवस्था मानते हैं इसमें अन्य प्रमाण भी हैं-

(क) शूद्र को वे हीन नहीं मानते अपितु 'शुचिः'=पवित्र 'उत्कृष्ट शुश्रूषुः' आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हैं।[24] सबके घरों में सब प्रकार की सेवा करने वाला भला अपवित्र, अछूत, हीन कैसे हो सकता है? (ख) मनु व्यक्ति को शूद्र इसलिए मानते हैं कि वह पढ़ता नहीं। उसका वेदाध्ययन रूपी दूसरा ब्रह्मजन्म नहीं होता। मनुस्मृति (2-126) में अज्ञानता के कारण ही यह कथन किया है- ''यथा शूद्रस्तथैव सः''। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों को द्विज इसलिए कहा जाता है कि उनका ब्रह्मजन्म रूपी दूसरा जन्म होता है- 'द्विर्जायते इति द्विजः। शूद्र को 'एकजातिः' न पढ़ने के आधार पर कहा जाता है। देखिए प्रमाण- 'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णाः द्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रः नास्ति तु पंचमः।।[25] (ग) मनु कर्मों के आधार पर मनुष्यों के दो वर्ग मानते हैं- जो श्रेष्ठ धर्माकुल आर्य परम्पराओं में दीक्षित हैं, वे चारों वर्ण आर्य हैं। (2) इनमें अदीक्षित शेष सब दस्यु हैं (10-45)। (घ) मनु कर्म के आधार पर ही व्यक्ति को श्रेष्ठ=आर्य और अश्रेष्ठ=अनार्य मानते हैं। मनुस्मृति (10-57-58) में वे कर्मों के आधार पर इनकी पहचान करने को कहते हैं। ये सब बातें मनु की कर्मणा वर्णव्यवस्था की मान्यता को सिद्ध करती हैं।

संदर्भ

1 मनुस्मृति 1-198
2 वही, 10-65
3 आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1-5-10-11
4 सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास
5 योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।। मनु- 2-168
6 न तिष्ठति तु यः पूर्वा नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विजकर्मणः ।। मनु- 2-103
7 उत्तमानुत्तमान्गच्छन् हीनान् हीनांश्च वर्जयन्। ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्ययवायेन शूद्रताम्।। मनु- 4-245
8 मनु- 11-191-196
9 मनु- 2-136, 137, 154, 156
10 मनु- 1-31
11 मनु- 1-87
12 निरुक्त 2-1-4
13 ऋग्वेद भा- भू- वर्णाश्रमधर्मविषय
14 अष्टा- 4-2-59
15 ताण्ड्य ब्राह्मण 15-4-8

16 तैत्तिरिय संहिता 1-6-7-2
17 शतपथ ब्राह्मण 12-8-2-4
18 अष्टा- 3-2-101
19 अष्टा- 4-1-138
20 ता-ब्रा- 18-4-6
21 ता-ब्रा- 6-1-10
22 तै-ब्रा- 3-2-3-9
23 मनु- 9-35, 10-65
24 मनु- 9-335
25 मनु- 10-4

अध्यात्म द्वारा मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना

डॉ० आकाँक्षा दुबे

भोपाल (म०प्र०)

शोधसार

इस सम्पूर्ण यह सम्पूर्ण सृष्टि और ब्रह्मपरब्रह्म परमात्मा का प्रतिरूप है। जिसकी आध्यात्मिक गुड़गांवऊर्जाओं से इसका संचालन हो रहा वो इसहै। चहुंओर विस्तृत मानव संस्कृति, सभ्यता, समाज सभी ईश्वरीय आलोक से प्रकाशित है। प्रत्येक प्राणी के ह्रदय में जीवन उसी आनंद परमात्मा की ब्रह्मशक्ति जीवन ज्योति के रूप में व्याप्त हैं। वह सृष्टि के कण कण में सौंदर्य, शक्ति और आनंद का स्वरूप धारण करके समाया हुआ है।

पुरुष और प्रकृति दो तत्वों से निर्मित यह सृष्टि नकारात्मक एवं सकारात्मक शक्तिपुंज से आलोड़ित होती रहती है। मानव की सद्वृत्तियां स्व योग का अवलंबन लेकर सकारात्मक शक्तियों के प्रति आकर्षित हो कर उस चिदानंद की सत्य भावनाओं की अुभूतियों का अहसास करने में सक्षम होती हैं। इसके विपरीत नकारात्मक तत्वों के प्रभाव में फंसकर मानव अपनी आत्मशक्तियों को भुलाकर विभिन्न दुर्भावनाओं से युक्त हो जाता है और अपने जीवन के लक्ष्यों से भटक जाता है। शिव सत्य है, शिवत्व की प्राप्ति आध्यात्मिक तत्वों के ज्ञान से होती है। आध्यात्मिक वातावरण मानव मेधा को जीवन मूल्यों से, आदर्शों से जोड़ते हुए सद्वृत्तियों की ओर लेकर जाता है। जिनकी समष्टि उसे आत्मसाक्षात्कार कराने में सक्षम होती है। अतः महर्षि पतंजलि अपने योग दर्शन के माध्यम से सर्वप्रथम सूत्र में यही कहते हैं "चित्त वृत्ति निरोधः योगः"। यह योग साधना ही मानववृत्तियों को संतुलित करके एकाग्र करने के लिए अहम भूमिका निभाती है। संपूर्ण विश्व में योग के द्वारा ही व्यक्ति जीवन मूल्यों की प्राप्ति करता है और अपने लक्ष्य तक पहुंचता है। लेकिन परिवर्तन समय, समाज, संस्कृति, सभ्यता, मानव किसी को नहीं छोड़ता। वह हर किसी को अपने आवेश में लेकर अपने अनुसार ढाल लेता है। इसी परिवर्तन के कारण जिस ऋषि भूमि पर बड़े बड़े ऋषियों ने अपनी मनीषा से नित्य नवीनताओं को जन्म दिया, महाविभूतियों को प्राप्त किया, उसी पृथ्वी पर रहने वाली मानव सभ्यता आज अपने जीवन मूल्यों को भुलाती चली जा रही है। चारों ओर भ्रष्टाचार, लालच, भुखमरी, बेरोजगारी, असभ्यता, अभद्रता, चोरी, डकैती आदि अनेक अवगुण संपूर्ण मानव संस्कृति को अज्ञान के अंधेरे में जकड़ चुके हैं। आज मनुष्यों के मध्य से आध्यात्मिक शक्तियां पूर्णतः लुप्त हो चुकी हैं। आज एक दु:खी, पीड़ित, शोषित व्यक्ति की हाय भी किसी दुष्ट को दंडित नहीं कर पाती, जिसका प्रमुख कारण यह है की दुखी और पीड़ित व्यक्ति भी किसी न किसी रूप में झूठ, छल, दंभ, द्वेष आदि विविध अवगुणों में जकड़ा हुआ है। आज पुनः आवश्यक है कि हमें अपनी पृथ्वी पर आध्यात्मिक वातावरण को उत्पन्न करना होगा जिससे चारों ओर पुनः जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना की जा सके।

शब्द कुंजी :- अध्यात्म, विद्या, मानवीय मूल्यों, पुनर्स्थापना, आदर्श, परब्रह्म, ज्योति, योग।

प्रस्तावना

आज संपूर्ण विश्व अशांति से व्याप्त हो चुका है। मानव सभ्यता धन, साधन और संसाधनों को जुटाने में इतनी शिद्दत से जुट गई है कि, वह अपने जीवन की शांति खो बैठी है। निर्धन हो या धनवान, सज्जन हो या दुर्जन हर कोई मात्र अपनी और अपने परिवार के स्वार्थ की चिंता करता है। संपूर्ण विश्व में हर ओर राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक, भौगोलिक, पर्यावरणिक सशक्तिकरण की बातें होती हैं। लेकिन आत्मिक सशक्तिकरण कहीं नहीं है। यदि देखा जाए तो प्रत्येक मानव में नैतिक पतन दृष्टिगोचर होता है। हर एक व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि दुर्गुणों की चपेट में आने लगा है। मानव की आंतरिक

शक्ति समाप्त होने के कारण उसकी आध्यात्मिक ऊर्जाएं लुप्त होने लगी हैं। आज मानव संस्कृति के मध्य व्याप्त मानवीयता का सौंदर्य, जीवन मूल्यों, नैतिक आदर्शों की रमणीयता पूर्णत: समाप्त हो चुकी है।

मूल्यों की अवधारणा

मूल्य शब्द से आशय भौतिक वस्तु अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण से है, जिसके द्वारा मनुष्य के किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति होती है। मूल्यों का व्यक्ति के आचरण, व्यक्तित्व तथा कार्यो पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। ये मूल्य ही मानव को आत्मोन्नति प्रदान करते हुए एक श्रेष्ठ नागरिक बनाने में सक्षम होते हैं। मूल्य ही मनुष्य को चिंतनशील बनाते हैं।

मनुष्य की चिंतनशील तथा सामाजिक होने की प्रवृति ही नए मूल्यों को जन्म देती है। मनुष्य अपनी इसी वृत्ती के कारण नए-नए विचारों, उपदेशों एवं अवधारणाओं को जन्म देता इस विचार या चिंतन को ही 'मूल्य' नाम से पहचाना जाता है। 'मूल्य' अपने आप में एक व्यापक शब्द है जो विविध विचारों और अर्थों को व्यक्त करता है। मूल्य का अर्थ, प्रकार और उसके स्वरूप का अध्ययन 'मूल्य मीमांसा' विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के 'वैल्यू' ग्रीक में 'एक्सियस', जर्मन में 'वैर्ट' और फ्रांसीसी में 'वालोर' नाम से पहचाना जाता है। व्युत्पति की दृष्टि से 'मूल्य' शब्द की उत्पत्ति 'मूल+यत' से मानी गई जिसका अर्थ है 'उखाड़ देने योग्य' या मोल लेने योग्य'।

'मूल्य' एक अमूर्त अवधारणा है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति भोगता, अनुभव करता है। मूल्यों का संबंध हमारी आतंरिक चेतना से है जिसे वह भोगता व अनुभव करता है। मूल्यों का संबंध हमारी आतंरिक चेतना से होता है। 'मूल्य' सामाजिक चेतना और स्वस्थ समाज-जीवन के लिए वरदान होते है और इन्हीं मूल्यों पर समाज खड़ा होता है। एक प्रकार से मूल्य समाज-व्यवस्था का अलिखित संविधान माने जा सकते हैं, उसमें निहित विचारों से समाज एवं मनुष्य जीवन में प्रकाश को प्राप्त करता है। मूल्यों का यही प्रकाश स्वस्थ समाज के निर्माण में सहायक बनता है। सामान्यत: मूल्य के दो रूप प्रदर्शित होते हैं- 1. मानव मूल्य 2. जीवन मूल्य। यही आदर्श जीवन का मार्गदर्शन करते हैं तथा जीवन-मूल्य हमारी व्यावहारिकता को प्रस्तुत करते हैं।

मूल्यों के अंतर्गत जीवन लक्ष्यों और साध्य की खोज निरंतर चलती रहती है जो की विवके जनित तथा पूर्णरूप से स्वतंत्र होती है। मूल्य-निर्माण में सम्यक ज्ञान और विवके की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। सभी मूल्यों का आधार मानवीय विवके ही है। विवके विचारों को जन्म देता है, विचारों से धारणाएँ बनती हैं यही धारणाएँ युगानुरूप मूल्यों का रूप धारण करती हैं। यथार्थ में मूल्यों का संबंध भूत, भविष्य एवं वर्तमान समय की तीनों अवस्थाओं से है।

जीवन मूल्यों का महत्व

'मूल्य' का मानव जीवन में एक विशेष स्थान है। मूल्यों के आधार पर मनुष्य तथा पशु में भेद किया जा सकता है। जीवन मूल्य आदर्शों और मानदंडो के सहयोग से बन जाते है और पुरे जीवन को प्रभावित, परिचालित, नियंत्रित करते है। मूल्यों की प्रकृती समष्टिगत तथा व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार की होती है। 'मूल्य' मानव को प्राप्त परंपरागत समाज द्वारा दी गई वे मान्यताएँ, अवध ारणाएँ अथवा वैचारिक इकाई है। जिनमें आदर्श, अनुभूति, मानवीय संवदेना, उपयोगिता तथा प्रेरणा का समावेश रहता है, जिनके आध ार पर न केवल व्यक्ति का जीवन उन्नत, उद्दात तथा समृध्द बनता है, प्रत्युत अंतरीकरण की प्रक्रिया से समाज प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। समाज ही मूल्यों का मुख्य स्त्रोत है क्योंकि मूल्य समाज में ही विकसित होते है। अत: मूल्यों की गतिशीलता भी समाज पर आधारित है।

मूल्यों का मानवीय जीवन से घनिष्ट संबंध है। मानव जीवन मूल्यों से नियंत्रित होता है। मानवीय मूल्यों में जीवन की सार्वभौम, संवदेना और प्रयोजनशीलता को स्वीकार किया जाता है। यही जीवन मूल्य साहित्य में सौंदर्य, शिवत्व एंव् सत्य के रूप में अभिव्यक्ति पाते है। साहित्य की मूल्यवता उसके स्वरूप के साथ साथ उसके व्यापक प्रयोजन में निहित होती है। साहित्य की कोई भी प्रवृति या कोई भी कृति अपने निरपेक्ष या असंपृक्त प्रवति या कृति नहीं होती। उसके पीछे एक लंबी साहित्य परंपरा होती है। जीवन-मूल्य साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण निकष है। व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक धारणाएँ जीवन मूल्य बनकर साहित्य में बिम्मो, और प्रतिकों के आश्रय से प्रत्यक्ष होती है। साहित्य के जीवन-मूल्य जीवन कि उस मूल्यवत्ता प्रतीक है जो मानव संस्कृति व सभ्यता का निर्माण करती है। वाल्मिकी ने अपने साहित्य में जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

आध्यात्मिक सशक्तिकरण

आध्यात्मिक सशक्तिकरण का तात्पर्य है अपने अंदर के विकारों का उन्मूलन करना। अपनी आत्मशक्ति को आदि अनादी गुणों एवं ऊर्जाओं में वापस ले जाना। जब तक मनुष्य अपनी आंतरिक वृत्तियों को नहीं बदलेगा तब तक वह समाज में नवीन चेतना को नहीं ला सकता। समाज को नवीनता की ओर ले जाने के लिए सर्वप्रथम मनुष्य को स्वयं के विचारों को, अपनी सोच को, समझ को बदलना होगा। अध्यात्म को यदि सही मायनों में देखा जाए तो यह संपूर्ण और संतुलित जीवन जीने का एक सार्वभौमिक तत्व है। वर्तमान युग में मनुष्य ने निरंतर वैज्ञानिकता की ओर चलते हुए विविध रूपों में अपना, अपने राष्ट्र का और विश्व का विकास किया है। इस एक दृष्टि से उसने वैज्ञानिक, भौतिक, औद्योगिक प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की है।

मनुष्य की यह प्रवृत्ति है कि वह चीजों को जानना और समझना चाहता है। सदियों से संत और सूफी, जीवन और मृत्यु के रहस्य की खोज करते रहे हैं और वे सब इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हम इस रहस्य को आध्यात्मिक स्तर पर ही जान सकते हैं। आध्यात्मिक यात्रा उन रूहानी मंडलों का अनुभव करना है जो कि बुद्धि और मन से परे हैं और यह सब हमें रहस्यमय लगता है। यही कारण है कि अध्यात्म को रहस्यवाद भी कहा जाता है।

अध्यात्म जीवन को जीने का एक व्यावहारिक तरीका है जो हमारे आंतरिक जीवन को समृद्ध बनाने के साथ-साथ, हमारे आपसी संबंधों को भी बेहतर बनाता है। अध्यात्म का मूल सिद्धांत यह है कि हममें से प्रत्येक वास्तव में एक आत्मा है जो कि थोड़े समय के लिए इस भौतिक शरीर में आई है। यह समय बीस, पचास, साठ, अस्सी या सौ वर्ष का हो सकता है, लेकिन मृत्यु के बाद हर एक को इस दुनिया से जाना है। इस संसार का और इस जीवन का उद्देश्य क्या है। अपने जीवन के उस उद्देश्य को समझते हुए परम लक्ष्य मोक्ष की ओर प्रयाण करना और उसकी प्राप्ति हेतु ईश्वर में लीन होना आध्यात्मिक क्रिया हैं। अस्तु ईश्वररीय सत्य को पहचानते हुए अपनी समस्त वृत्तियों को सरल, सरस, सत्य, अहिंसात्मक, प्रेममयी बनाकर आचरण करना अध्यात्म का आधार है।

हमारे जीवन का उद्देश्य अपनी आत्मा का मिलाप परमात्मा से करना है। परमात्मा से मिलने पर ही परम ज्ञान प्राप्त होता है जो जग की भलाई बताता है अध्यात्म का यह रूप हमें अपने जीवन और दुनिया के अन्य लोगों के जीवन को सुधारने के अनगिनत अवसर प्रदान करता है। आत्मा की यात्रा की शुरूआत प्रभु की ज्योति और अनहद शब्द से संपर्क करने पर आरंभ होती है। जिसके लिए अष्टांग योग का अवलंब लेना पड़ता है। इस अष्टांग योग से ही अध्यात्म की यात्रा प्रारम्भ होती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य

हमने बहुत अधिक वैज्ञानिक और भौतिक उन्नति कर ली है, हमारे सामने व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर यह चुनौती है कि हम अपने जीवन मूल्यों को किस प्रकार धारण करें? ऐसा क्या करें की अध्यात्म के क्षेत्र में भी उसी तरह अद्‌भुत रूप से तरक्की करें। आज कि इस औद्योगिक जीवनशैली में प्रत्येक मनुष्य मात्र अपने कर्म को महत्त्व देते हुए धन की लोलुपता में अनेक प्रकार के आयामों को अपनाता चला जाता है और एक वाक्य उसका ये रहता है कि, ईश्वर की पूजा पाठ तो वृद्ध लोगों की वृत्ति है, युवावस्था कर्म का नाम है। कर्म को महत्त्व देना चाहिए। लेकिन आज का व्यक्ति यह भूल चुका है कि जब तक आध्यात्मिक शक्ति मानव के अंदर नहीं होगी तब तक किसी भी क्षेत्र में उसको उपलब्धि, सुख, शांति और समृद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। जो प्रत्यक्ष रूप से समाज में देखने को मिल रही है। प्रत्येक व्यक्ति दिन-रात काम कर रहा है। अहर्निश मेहनत कर रहा है लेकिन सुख और शांति उसके परिवार में, उसके जीवन में बिल्कुल भी नहीं है। जिसका सबसे बड़ा कारण जीवन मूल्यों की अवनति है। आज प्रत्येक मनुष्य के मध्य से जीवन मूल्य विलुप्त हो चुके हैं। वह सिर्फ स्वार्थ के लिए जीना चाहता है, स्वार्थ के लिए कर्म करना चाहता है और स्वार्थ के लिए ही व्यक्ति मात्र से अपने संबंध स्थापित करना चाहता है। लेकिन ईश्वर की इस सृष्टि में ईश्वरीय शक्ति की स्थापना स्वार्थ से परे है। जहाँ स्वार्थ है वहाँ ईश्वरीय शक्तियां नहीं हैं। आज भी जहाँ पर ईश्वरीय शक्तियां विद्यमान हैं वहाँ जीवन मूल्य हैं। वहाँ आध्यात्मिक उन्नति है।

अध्यात्म से जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना

जीवन में भौतिक उपलब्धियां ही पर्याप्त नहीं हैं। इनके साथ ही जीवन मूल्यों की भी आवश्यकता है। ईश्वरीय विचार ही आध्यात्मिक ऊर्जा प्रदान कर जीवन मूल्यों को जन्म देते हैं। स्वयं की पहचान या स्वानुभव ही अध्यात्म है। इसे आत्मचिंतन भी कहते हैं। कल्याणकामी मनुष्य को आत्मचिंतन अवश्य करना चाहिए। आत्मा संबंधी विचार मनुष्य का उत्थान करता है। ऐसे विचार से हममें दैवीय गुणों की धारणा पुष्ट होती है, बुरी आदतों का निवारण होता है और सत्कर्मी की ओर प्रवृत्तिबढ़ती है। आत्मतत्व की अमरता का सिद्धांत हमें मनोबल प्रदान करता है। भौतिक जगत की नश्वरता का तथ्य हमें भटकाव और भ्रम से दूर करता है। दुर्भाग्य से व्यक्ति मोह बंधन में जकड़ा हुआ है। काम, क्रोध, लोभ आदि के बंधन उसे निरंतर घेरे हुए हैं। सत्संग और स्वाध्याय से कभी-कभी उसे प्रबोध होता है, किंतु उस प्रबोध का प्रभाव क्षणिक ही देखा गया है। आवश्यकता है जीवन में ज्ञान को उतारने की। असत कर्मी से निरंतर दूर रहने का प्रयास होना चाहिए। छल, पाखंड, ईर्ष्या, पापाचार से निरंतर दूर रहना होगा। शुभ चिंतन और तदनुसार कर्म से बुद्धि निर्मल होगी और चित्त शांत होगा। सद्ज्ञान का दिव्यप्रकाश, मोहजन्य अंधकार के मिटने पर ही होता है। इसलिए नियमित अभ्यास द्वारा वृत्तियों का नियंत्रण करना अभीष्ट है। बार-बार विचार करना चाहिए कि सांसारिक भोगों की सत्ता क्षणिक है, ये चिरस्थायी नहीं है। अपना स्वरूप ही सदैव रहने वाला है। इसलिए आत्मस्वरूप की ही धारणा करनी चाहिए। वासनाओं के बंधन बड़े प्रबल हैं। नियमित अभ्यास से मोह के ये बंधन ढीले होते हैं। बंधन काटने के लिए संसारी व्यक्ति को बहुत प्रयास करना पड़ता है। परमात्मा की कृपा और भाग्य से ही वासनाओं से विराग हो पाता है। राग के अभाव में सर्वत्र सहानुभूति होती है। जीवन सहज-सरल बनता है और शांति प्राप्त होती है। आध्यात्मिक चिंतन से ही जीवन में सुधार आता है और मानसिक उत्थान होता है। संतोष वृत्ति लाकर सहज जीवन जिया जा सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता का कथन है कि आत्मानंद में रमण करने वाला आत्मज्ञानी ब्रह्म को प्राप्त होता है। अंतस की शांति प्राप्त हो जाने पर बाह्य जगत के झंझावात प्राणी को व्यथित नहीं करते। इसलिए आध्यात्मिक मूल्यों के माध्यम से अपने को सुव्यवस्थित करना चाहिए।

अध्यात्म तत्व का सहारा लेते हुए जीवन मूल्यों को पुर्नस्थापित करने के लिए शास्त्रों में बताई गई दैनिक तपचर्या को अपनाना होगा। प्रतिदिन सत्य का आचरण करना होगा। मानव मात्र के प्रति कल्याणमई वृत्ति धारण करनी होगी। ईर्ष्या और द्वेष को त्यागकर प्रेम और मानवता का प्रचार प्रसार करना होगा। योगसाधना के द्वारा हृदय को एकाग्रचित करते हुए संतोष को धारण करना होगा। आंतरिक परिशुद्धि कर एकादश इन्द्रियों को नियंत्रित करना होगा। जीवन के लक्ष्य मोक्ष को धारणा कर पुरुषार्थ में प्रवृत्त होना होगा। यह संसार क्षणभंगुर है इस दृष्टि को अपनाकर धन, समृद्धि, ऐश्वर्य आदि को केवल कर्तव्य रूप में धारण करना होगा इसके पश्चात् अपनी संतानों को देते हुए ऋषि परंपरा के अनुसार अध्यात्म में लीन होना होगा। कुल मिलाकर ऋषि सभ्यता के संपूर्ण नियमों को अपनाते हुए ही उसी आध्यात्मिक धरातल पर मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना संभव है।

निष्कर्ष

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि जीवनमूल्य और अध्यात्म का पारस्पारिक घनिष्ठ संबंध है। जीवन को आदर्श की ओर ले जाने, भौतिक स्थिती से मानवीय स्थिती में पहुंचाने और सुनियोजित कर्म की प्रेरणा देनेवाले प्रेरक तत्व 'अध्यात्म' को धारण करना होगा। जीवन मूल्य ही व्यक्ति तथा समाज के अस्तित्व एवं उसके विकास के विधायक तत्व होते हैं। ये सामाजिक आवश्यकताओं, सामान्य जन के कल्याण एवं लोकहित में साधक होते हैं। मूल्य समाज के वे आधार स्तंभ है, जिन पर समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का भव्य भवन खडा है। इन जीवन मूल्यों की प्राप्ति आध्यात्मिक धरातल पर ही संभव है और उस आध्यात्मिक वातावरण को उत्पन्न करने के लिए हमें अपने वेदों धर्म शास्त्रों प्राणों पुराण उ और उपनिषदों की विद्याओं को पुन: अपनाना होगा पुन: उस रहस्य को जानने की जिज्ञासा को उदाहरण करना होगा और पुन: अपने मन को निर्मल बनाते हुए योग साधनाओं के द्वारा ऊर्जावान बनाना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वामन शिवराम आपटे, संस्कृत हिंदी कोश, मुंबई, 1921.
2. रामधारी सिंह दिनकर, आधुनिक बोध, नेशनल पंजाबी प्रकाशन दिल्ली, 1960.
3. आनंद प्रकाश दीक्षित, स्वाधीनताकालीन हिंदी साहित्य के जीवन मूल्य, संपादक, रामगोपाल शर्मा, प्रथम संस्करण, 1982.
4. डॉ. वीरेन्द्र मोहन, भक्ति काव्य और मानव मूल्य, प्रथम संस्करण, 1985.
5. गोविंद चंद्र पांडे, मूल्य मीमांसा, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1989.
6. संपा. गिरीराजशरण अग्रवाल, शोध दिशा, हिंदी साहित्य निकेतन बिजगौर, दिसंबर 2017.

परमाणु ऊर्जा संयन्त्र दुर्घटना से निकटवर्ती स्थानीय निवासियों को विकिरण जनित स्वास्थ्य समस्याएं

डॉ० शिखा श्रीवास्तव

शोध निर्देशिका, प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजीय अध्ययन विभाग, टी०डी०पी०जी० कॉलेज, जौनपुर

शिखर कान्त श्रीवास्तव

शोधार्थी, रक्षा एवं स्त्रातजीय अध्ययन विभाग, टी०डी०पी०जी० कॉलेज, जौनपुर

सार-

परम्परागत ईंधन के बजाय परमाणु ईंधन की अल्प मात्रा अत्यधिक हरित ऊर्जा उत्पादित करती है, जो इसकी एक बड़ी विशेषता है परन्तु इस ऊर्जा को प्राप्त करने की तकनीकी अत्यन्त जोखिम भरी है, जो इसके स्याह पक्ष को प्रकट करती है। 1950 से 2020 तक इस क्षेत्र में अनेकों छोटी-बड़ी दुर्घटनाएं होती रही है। परमाणु ऊर्जा संयन्त्रों में होने वाली बड़ी दुर्घटनाओं से निकटवर्ती स्थानीय निवासियों को विकिरण जनित स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत शोध पत्र में विकिरण जनित स्वास्थ्य समस्याओं तथा विश्व की प्रमुख परमाणु ऊर्जा दुर्घटनाओं से निकटवर्ती स्थानीय निवासियों को होने वाली समस्याओं को व्यक्त किया गया है।

तकनीकी शब्द- परमाणु ऊर्जा केन्द्र, निकटवर्ती स्थानीय निवासी, आयनीकृत रेडियोधर्मी विकिरण

परमाणु ऊर्जा एवं आयनीकृत विकिरण-

वर्तमान समाज की विद्युत ऊर्जा पर निर्भरता ने, विद्युत ऊर्जा के उत्पादन में वृद्धि को प्रेरित किया है, जिसके फलस्वरूप परमाणु ऊर्जा से विद्युत उत्पादन के विकल्प का समुचित प्रयोग हो रहा है। विश्व के विकसित राष्ट्रों में परमाणु ऊर्जा संयन्त्रों से अत्यधिक विद्युत ऊर्जा का उत्पादन हो रहा है, वहीं भारत जैसे विकासशील राष्ट्र भी अपनी बढ़ती ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इस विकल्प का प्रयोग कर, शनैः- शनैः विद्युत ऊर्जा के उत्पादन में वृद्धि कर रहे हैं।

परमाणु ऊर्जा संयन्त्रों में नाभिकीय विकिरण से प्राप्त ऊष्मा द्वारा विद्युत ऊर्जा का उत्पादन किया जाता है। समष्टि में ऊष्मा स्थानान्तरण की तीन विधियां हैं, जिनमें से एक विकिरण है। विकिरण में ऊष्मा तरंगों अथवा किरणों के माध्यम से संचरित होती है। दैनिक जीवन में प्राणी किसी न किसी माध्यम से नित्य विकिरण के सम्पर्क में आता है। विकिरण के दो स्रोत है पहला प्राकृतिक जैसे सूर्य से आने वाली पराबैगनी किरणें, घरों की रसोई में प्रयोग होने वाला ग्रेनाइट पत्थर आदि प्राकृतिक विकिरण के स्रोत है। दूसरा मानव निर्मित जैसे एक्स-रे, माइक्रोवेव आदि मानव निर्मित विकिरण के स्रोत हैं। विकिरण को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है पहला आयनीकृत विकिरण(रेडियोधर्मी विकिरण), यह उच्च आवृत्ति वाली किरणों एवं तरंगों का विकिरण है। दूसरा गैर आयनीकृत विकिरण, यह निम्न आवृत्ति वाली किरणों एवं तरंगों का विकिरण है। इन दोनों प्रकार के विकिरण की अधिक मात्रा जैव मंडल के घटकों हेतु हानिकारक है, जिसका मानव एक अंग है।[1]

आयनीकृत विकिरण ऊष्मा की इतनी मात्रा संचरित करता है जिससे पदार्थों के परमाणुओं की संरचना में बदलाव हो जाता है, जो जैव जगत में जैविक कोशिकाओं को क्षति पहुंचाती है। जैसे सूर्य की पराबैंगनी किरणों की अधिक मात्रा त्वचा को क्षति पहुंचाती है, कैंसर तक पैदा कर सकती हैं। यह आयनीकृत विकिरण सम्बन्धी क्षति का उदाहरण है।[2]

परमाणु ऊर्जा संयन्त्र से चार प्रकार के आयनीकृत विकिरण होते हैं ये क्रमशः अल्फा, बीटा, गामा एवं न्यूट्रान विकिरण हैं। अल्फा विकिरण ज्यादातर वस्तुओं की सतहों को भेद नहीं सकता इसकी भेदन क्षमता न्यूनतम होती है। वही बीटा विकिरण की भेदन क्षमता अल्फा विकिरण से ज्यादा होती है और गामा विकिरण की भेदन क्षमता सबसे ज्यादा होती है। न्यूट्रॉन ज्यादातर सतहों को भेद सकता है परंतु जल द्वारा इसकी भेदन क्षमता कम हो जाती है।[3]

किसी सतह पर विकिरण की मात्रा मापने हेतु अंतरराष्ट्रीय मात्रक सीवर्ट(Sv) का प्रयोग करते हैं। सामान्यता विकिरण स्तर कम होते हैं अतः इन्हें मि०ली० सीवर्ट(mSv) अथवा सीवर्ट के 1000 वें हिस्से में मापते हैं। इसके साथ रैड(rad), ग्रे(Gy) तथा रेम(rem) मात्रकों का प्रयोग भी विकिरण की अवशोषित मात्रा तथा प्रभावी मात्रा को मापने हेतु किया जाता है।[4]

परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में होने वाली प्रमुख दुर्घटनाएं-

विश्व में अनेक परमाणु ऊर्जा दुर्घटनाएं हुई है। इन घटनाओं के स्तर को अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु घटना मापक द्वारा मापा जाता है। इस मापक पर परमाणु ऊर्जा दुर्घटनाओं को एक से दस स्तर के मध्य मापा जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में कुछ प्रमुख परमाणु ऊर्जा दुर्घटनाओं को अध्ययन हेतु लिया गया है। ये दुर्घटनाएं अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु घटना मापक पर पांचवें स्तर अथवा उससे अधिक(अब तक मापे गए अधिकतम) स्तर की दुर्घटना श्रेणी के अन्तर्गत आती है। जैसे 1952 में कनाडा के चॉक नदी नाभिकीय शोधशाला की दुर्घटना, 1957 में युनाइटेड किंगडम के विन्डस्केल पाइल सेलैफील्ड कुम्बरिया स्थित परमाणु ऊर्जा संयन्त्र की दुर्घटना, 1979 में संयुक्त राज्य अमेरिका के थ्री माइल आईलैण्ड परमाणु ऊर्जा संयन्त्र की दुर्घटना, 1986 मे सोवियत संघ के चेरनोबिल परमाणु ऊर्जा संयन्त्र की दुर्घटना, 2011 में जापान के फुकुशिमा परमाणु ऊर्जा संयन्त्र की दुर्घटना, ये कुछ प्रमुख परमाणु ऊर्जा दुर्घटनाएं हैं।[5]

चॉक नदी नाभिकीय शोध संयन्त्र दुर्घटना कनाडा-

प्रथम परमाणु ऊर्जा संयन्त्र दुर्घटना 286 प्लांट रोड, चॉक नदी, ऑनटेरियो, कनाडा के चॉक नदी नाभिकीय प्रयोगशाला में हुई। इस प्रयोगशाला में 'राष्ट्रीय प्रयोगात्मक शोध' नामक नाभिकीय शोध संयन्त्र कार्यरत था, जिसमें भारी-जल मंन्दक के रूप में तथा हल्का-जल शीतलक के रूप में प्रयोग किया जाता था। 12 दिसम्बर 1952 को संयन्त्र में आंशिक रूप से शीतलक की कमी थी साथ ही यान्त्रिक समस्या तथा मानवीय त्रुटियों के कारण नियन्त्रक छड़ें भी अभिकेन्द्र में ठीक से नहीं डाली जा सकीं एवं पुनः त्रुटिवश नियन्त्रक छड़ों को अभिकेन्द्र से बाहर निकाल दिया गया, जिससे अनियन्त्रित नाभिकीय विखण्डन श्रृंखला अभिक्रिया शुरू हो गई। फलस्वरुप ईधन छड़ो के अत्यधिक गर्म होने के कारण संयन्त्र का अभिकेन्द्र पिघल गया तथा संयन्त्र भवन में हाइड्रोजन विस्फोट से संयन्त्र एवं संयन्त्र भवन गम्भीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गया। इस घटना से वातावरण में तेजी से बड़ी मात्रा में सूक्ष्म रेडियोधर्मी तत्व चारों ओर फैल गए।[6]

इस दुर्घटना से कोई संयन्त्रकर्मी अथवा स्थानीय निवासी तत्काल प्रभावित नहीं हुआ था परन्तु इस दुर्घटना के उपरान्त संयन्त्र की सफाई में बड़ी मात्रा में सफाईकर्मी, संयन्त्रकर्मी, सैन्य अधिकारी भी शामिल हुए थे। तत्कालीन कनाडाई वायु सेना में कॉरपोरल पद पर आसीन बजारनी हैनिबल पॉलसन जो संयन्त्र की सफाई में कार्यरत थे, आगे चलकर उन्हें शरीर के विभिन्न हिस्सों में कैंसर की समस्याएं हो गई। मात्र 15 वर्षो के भीतर उनके शरीर में कैंसर के 40 ऑपरेशन हुए, आगे चलकर उन्हें न्यायालय के माध्यम से विकिरण जनित स्वास्थ्य समस्याओं के लिए पेंशन प्रदान की गई।[7]

600 से अधिक सफाईकर्मी संयन्त्र की सफाई में थे, परन्तु न तो कनाडाई अधिकारियों ने और ना ही किसी अन्य संस्थान ने दुर्घटना से होने वाले स्वास्थ्य प्रभावों को समझने के लिए, संयन्त्रकर्मियों एवं सफाईकर्मियों की किसी भी प्रकार की चिकित्सकीय जांच नहीं कराई।[8] 07 अक्टूबर 2021 के समाचार अनुसार अब कनाडा की संघीय सरकार सफाई कार्य में लगे कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति प्रदान कर रही है, जिसके माध्यम से 22.3 मिलियन डॉलर की धनराशि सैकड़ो सफाई कर्मियों को प्रदान की जा रही है। यह परमाणु दुर्घटना अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु घटना मापक पर पांचवें स्तर की दुर्घटना श्रेणी के अन्तर्गत आती है।[9]

विन्डस्केल परमाणु ऊर्जा संयन्त्र दुर्घटना इंग्लैण्ड-

8 अक्टूबर 1957 को ब्रिटेन इंग्लैण्ड के कम्बरलैण्ड कम्ब्रिया में स्थित विन्डस्केल परमाणु ऊर्जा संयन्त्र दुर्घटनाग्रस्त हो गया। इस संयन्त्र की पहली इकाई का ग्रेफाइट नियंत्रक अनियंत्रित होकर ईंधन छड़ों को अत्यधिक गर्म कर दिया जिससे 10 टन रेडियोधर्मी ईंधन और संयन्त्र का अभिकेन्द्र दोनों पिघल गए परिणामस्वरूप संयन्त्र में आग लग गई तथा ग्रेफाइट नियंत्रक सैकड़ो दिनों तक आग में जलता रहा।[10]

इस घटना से रेडियोधर्मी आयोडीन 131 वातावरण में फैल गई तथा लंदन से डेनमार्क तक रेडियोधर्मी बादल भी देखे गए। पहले तो ब्रिटेन की सरकार ने दुर्घटना की गंभीरता को कम बताने का प्रयास किया बाद में तत्कालीन सरकार ने 500 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में दूध फल एवं अन्य खाद्य सामग्रियों के वितरण एवं व्यापार पर रोक लगा दी। इस दुर्घटना में 23 लोगों की मृत्यु हुई, 2,50,000 स्थानीय निवासियों को उनके निवास स्थान से निर्वासित होना पड़ा, तथा 260 लोग थायराइड कैंसर से ग्रस्त हो गए जिनमें आगे चलकर 13 लोगों की मृत्यु हो गई।[11]

दुर्घटना के बाद से 80 के दशक तक संयन्त्र को पूरी तरह से बन्द कर उसमें प्रवेश वर्जित कर दिया गया। वर्ष 2015 में भी उस क्षेत्र से रेडियोधर्मी अपशिष्टों के सफाई का कार्य जारी रहा। यह परमाणु दुर्घटना भी अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु घटना मापक पर पांचवें स्तर की दुर्घटना श्रेणी के अन्तर्गत आती है।[12]

किश्त्यिम परमाणु दुर्घटना सोवियत संघ रूस-

29 सितंबर 1957 को यूराल पर्वत के पूर्वी ढलान पर स्थित क्षेत्र किश्त्यिम, चेल्याबिनस्क ओब्लास्ट में स्थित, परमाणु ऊर्जा केन्द्र तथा मायाक प्लूटोनियम संसाधन संयन्त्र के परमाणु अपशिष्ट भण्डारण इकाई में भण्डारित परमाणु अपशिष्टों की शुष्क नाइट्रेट एवं एसिडिक लवणों की उपस्थिति में रेडियोधर्मी अभिक्रियाओं के फल-स्वरुप तापमान में वृद्धि होने लगी। वर्षों से समुचित रखरखाव के अभाव में परमाणु अपशिष्ट भण्डारण इकाई की शीतलन प्रणाली भी विफल हो गई, परिणाम स्वरूप एक मीटर मोटी कंक्रीट की बनी अपशिष्ट भण्डारण टंकी में विस्फोट हो गया जो की 70 टन टी०एन०टी० विस्फोट के बराबर था।[13]

इस विस्फोट से सीजियम-137(Cs-137) स्ट्रॉन्शियम-90(Sr-90) जिरकोनियम-95(Zr-95) तथा सेरियम-144(Ce-144) के सूक्ष्म रेडियोधर्मी प्रदूषक कण वातावरण में चारों ओर फैल गए। उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर बहने वाली हवा ने विस्फोट के पश्चात मात्र 11 घण्टों में ही सूक्ष्म रेडियोधर्मी प्रदूषक तत्वों को उसे दिशा में चेल्याबिनस्क, ओज़्योर्स्क, सवेर्डलोवस्क एवं त्यूमेन के लगभग 2000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र तक पहुंचा दिया।[14]

दुर्घटना के एक हफ्ते पश्चात स्थानीय निवासियों का पलायन वहां से प्रारंभ हुआ प्रथम 7 से 10 दिनों में लगभग 600 स्थानीय लोगों को इन क्षेत्रों से निर्वासित किया गया। वर्ष भर में लगभग 6,480 लोगों को तथा अगले वर्ष लगभग 3,100 लोग अपने निवास स्थानों को छोड़कर सुरक्षित क्षेत्र की ओर पलायित कर दिए गए। 2 वर्षो तक चली इस प्रक्रिया में लगभग 11,000 लोगों को वहां से निर्वासित कर दिया गया।[15]

इस दुर्घटना से सम्बन्धित पहली जानकारी 17 मार्च 1959 को Die Presse नामक समाचार पत्र में प्रकाशित हुई। तत्कालीन सोवियत संघ रूस से निर्वासित जीव विज्ञानी जोरेस ए मेदेवेदेव द्वारा ब्रिटिश जर्नल, साइंटिस्ट में 1976 में प्रकाशित विशेष लेख के आने तक सोवियत संघ ने इसे विश्व की नजरों से छुपाने का प्रयास किया। 1980 में जोरेस ए मेदेवेदेव ने 'न्यूक्लियर डिजास्टर इन द यूराल्स' नामक पुस्तक में इसका विवरण दिया। इस क्षेत्र को इतना गोपनीय रखा गया था कि स्थानीय निवासियों को दुर्घटना एवं इसके प्रभावों का कोई अंदाजा ही नहीं था।[16] इस दुर्घटना से जुड़ी ज्यादातर जानकारी सोवियत संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी को प्रदान की गई सूचनाओं से प्राप्त होती है। जो यह दर्शाता है कि स्वतन्त्र रूप से विभिन्न देशों एवं सरकारों में परमाणु ऊर्जा दुर्घटनाओं की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना कितना कठिन कार्य है। यह परमाणु दुर्घटना अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु घटना मापक पर छठवें स्तर की दुर्घटना श्रेणी के अन्तर्गत आती है।

थ्री माइल आईलैण्ड परमाणु ऊर्जा संयन्त्र दुर्घटना संयुक्त राज्य अमेरिका-

28 मार्च 1979 को संयुक्त राज्य अमेरिका में पेन्सिलवेनिया राज्य के हॉरिसबर्ग शहर में लण्डनडेरे नगर की सुसक्यूहेना नदी में स्थित थ्री माइल आईलैण्ड के परमाणु ऊर्जा केन्द्र की दूसरी इकाई में सुबह चार बजे, मानवीय त्रुटियों एवं यान्त्रिक त्रुटियों की श्रृंखला

के फलस्वरुप, संयन्त्र का अभिकेन्द्र आंशिक रूप से पिघल गया। जिससे सूक्ष्म रेडियोधर्मी प्रदूषक तत्व, जलवाष्प, जिरकोनियम डाइऑक्साइड वातावरण में फैल गये। सुबह 06:30 मिनट तक संयन्त्र भवन में नाभिकीय प्रदूषण का स्तर सामान्य से 3000 गुना अधिक था। लगभग 07:08 मिनट पर थ्री माइल आईलैण्ड के निकटवर्ती क्षेत्र में आपातकाल की घोषणा की गई, जिससे स्थानीय निवासियों में भय व्याप्त हो गया। पेन्सिलवेनिया के तत्कालीन गवर्नर रिचर्ड थ्रोनबर्ग के नेतृत्व में स्थानीय निवासियों को सुरक्षित स्थानों पर भेजा गया।[17]

अप्रैल 1979 संयुक्त राज्य अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति जिमी कार्टर (जो स्वयं नाभिकीय अभियन्ता भी थे) ने संयन्त्र का दौरा किया और प्रदूषण के स्तर को जाना। उसके बाद परमाणु ऊर्जा के विरोध में व्यापक नागरिक अभियान चले, स्थानीय निवासियों द्वारा अनेक विरोध प्रदर्शन किए गए। अन्त में यह ज्ञात हुआ कि इस दुर्घटना से रेडियोधर्मी प्रदूषण तो हुआ परन्तु संयन्त्रकर्मियों एवं स्थानीय निवासियों को इस दुर्धटना के पश्चात कोई स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या नहीं हुई, क्योकि ज्यादातर रेडियोधर्मी प्रदूषक संयन्त्र भवन के अन्दर तक ही सीमित थे।[18]

सन् 1985 तक परमाणु ऊर्जा केन्द्र पूर्ण रूप से बन्द रहा तथा परमाणु ऊर्जा केन्द्र की दूसरी इकाई को भी हमेशा के लिए बन्द कर दिया गया। सन् 1993 तक संयन्त्र एवं आसपास के क्षेत्रों में सफाई का कार्य चलता रहा। सितंबर 2019 से परमाणु ऊर्जा केन्द्र की पहली इकाई को भी बन्द कर दिया गया।[19] यह दुर्घटना संयुक्त राज्य अमेरिका के परमाणु ऊर्जा इतिहास की अब तक की सबसे बड़ी दुर्घटना है तथा अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु घटना मापक पर पाँचवें स्तर की दुर्घटना श्रेणी के अन्तर्गत आती है।

चेर्नोबिल परमाणु ऊर्जा केन्द्र दुर्घटना सोवियत संघ रूस-

तत्कालीन सोवियत संघ वर्तमान यूक्रेन में स्थित चेर्नोबिल शहर जो बेलारूस की सीमा से 20 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है के परमाणु ऊर्जा संयन्त्र में दुर्घटना घटी। ये दुर्घटना नाभिकीय ऊर्जा उद्योग में अब तक की घटित होने वाली सबसे बड़ी दुर्घटना है।[20]

चेर्नोबिल परमाणु ऊर्जा केन्द्र में 26 अप्रैल 1986 को एक सुरक्षा परीक्षण किया जा रहा था, जो यह सुनिश्चित करता की संयन्त्र को ठण्डा रखने वाले तन्त्र में यदि विद्युत आपूर्ति किन्हीं कारणों से बाधित हो तो ऐसी स्थिति में वैकल्पिक विद्युत आपूर्ति के आने तक संयन्त्र को ठण्डा कैसे रखा जाए। इसे सुनिश्चित करने हेतु किये जा रहे सुरक्षा परीक्षण के दौरान, संयन्त्र में किन्ही कारणों से अनियंत्रित नाभिकीय श्रृंखला अभिक्रिया होने लगी। जिसके फलस्वरुप संयन्त्र में तेजी से अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न होने लगी, जिसने संयन्त्र को ठण्डा रखने वाले शीतलक को अत्यधिक तप्त कर वाष्पित कर दिया। परिणाम स्वरुप एक भाप का विस्फोट हुआ, जिसने संयन्त्र की इमारत को क्षतिग्रस्त कर संयन्त्र के अभिकेन्द्र तथा परमाणु ईंधन दोनों को द्रवित कर दिया। जिसके फलस्वरुप मंदक ग्रेफाइट, नियंत्रक छड़े, संयन्त्र अभिकेन्द्र के हिस्से तथा ईंधन पूर्णत: संयन्त्र की इमारत से बाहर वातावरण के सम्पर्क में आ गए।[21]

जिससे सोवियत संघ तथा यूरोप के बड़े क्षेत्र में रेडियोधर्मी तत्वों के सूक्ष्म कण जिनमें विशेष रूप से आयोडीन-131(I-131) जिसकी अर्धआयु 8 दिन तथा सीजियम-137(Cs-137) जिसकी अर्धआयु 30 वर्ष मुख्य रेडियोधर्मी प्रदूषक थे। इनके अतिरिक्त जेनॉन-133(Xe-133) जिसकी अर्धआयु 5 दिन, सीजियम-134(Cs-134) जिसकी अर्धआयु 2 वर्ष, स्ट्रॉन्टियम-90(Sr-90) जिसकी अर्धआयु 28 वर्ष, प्लूटोनियम-239(Pu-239) जिसकी अर्धआयु 24100 वर्ष, ट्रिटियम-3(H-3) जिसकी अर्ध आयु 12 वर्ष इन रेडियोधर्मी तत्वों के सूक्ष्म कण पर्यावरण में फैल गए, जो जल, थल, वायु, वनस्पतियों, जन्तुओं सभी को प्रभावित किए।[22]

सम्पूर्ण उत्तरी गोलार्ध के बड़े भाग पर रेडियोधर्मी बादल छा गए थे, विशेष रूप से वर्तमान बेलारूस, रूस, यूक्रेन के निवासी गम्भीर आर्थिक सामाजिक एवं स्वास्थ्य समस्याओं से घिर गए थे। इस दुर्घटना ने असैन्य गतिविधियों में अब तक का वृहदतम अनियंत्रित रेडियोधर्मी प्रदूषण पर्यावरण में किया, जिससे संयन्त्रकर्मी, आपातकर्मी, स्थानीय निवासी सभी रेडियोधर्मी विकिरण की उच्च मात्रा के प्रभाव से स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से ग्रस्त हो गए।[23]

इस दुर्घटना में दो संयन्त्र कर्मियों की तत्काल मृत्यु हो गई तथा 134 संयन्त्रकर्मी एवं आपातकर्मी विकिरण की उच्च मात्रा के कारण एक्यूट रेडिएशन सिंड्रोम से ग्रस्त हो गए, जिनमें से 28 के लिए यह प्राणघातक सिद्ध हुई। आपातकर्मियों के इस समूह के अतिरिक्त हजारों आपातकर्मी जो संयन्त्र के पुनर्स्थापन एवं संयन्त्र के पुन: सामान्य प्रचालन हेतु कार्यरत थे, वे क्षतिग्रस्त संयन्त्र तथा

पर्यावरण में व्याप्त रेडियोधर्मी तत्वों के सूक्ष्म कणों द्वारा होने वाले विकिरण से आन्तरिक एवं बाह्य दोनों रूप से ग्रस्त हुए। जिनमें लगभग 600 संयन्त्रकर्मी, अग्निशमनकर्मी, सुरक्षाकर्मी तथा स्थानीय चिकित्साकर्मी पहले ही दिवस में विकिरण ग्रस्त हो गए।[24]

सन् 1986 से 87 के मध्य लगभग 4,40,000 आपातकर्मियों ने दुर्घटना क्षेत्र में अपनी आपात सेवाएं प्रदान कीं तथा ऐसे ही अन्य कर्मियों ने सन् 1988 से 90 के मध्य विभिन्न क्षेत्रों में अपनी आपात सेवाएं प्रदान की जिनमें से 5,00,000 आपात कर्मियों के आंकड़े विशेष स्वास्थ्य पंजिका में उपलब्ध है। उनमें से हजारों कर्मी ब्लड कैंसर के संभावित खतरे से जूझ रहे हैं। सन् 1986 से 2005 तक लगभग 50 लाख निकटवर्ती स्थानीय निवासियों (जिनमें बच्चे एवं युवा विशेष रूप से) को आयनीकृत विकिरण की न्यून मात्रा के कारण थायराइड कैंसर की सम्भावना बनी हुई हैं।[25] यह परमाणु दुर्घटना अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु घटना मापक पर सातवें स्तर की दुर्घटना श्रेणी के अन्तर्गत आती है।

फुकुशिमा डाईची परमाणु ऊर्जा केन्द्र दुर्घटना जापान-

11 मार्च 2011 को दोपहर 02:45 मिनट पर जापान में अब तक का मापा गया सबसे बड़ा 9.1 तीव्रता का भूकम्प आया जो विश्व के इतिहास में मापा गया अब तक का चौथा सबसे बड़ा भूकम्प था। इस भूकम्प के पश्चात आई सुनामी ने जापान के पूर्वी तटीय क्षेत्र के बड़े हिस्से को जलमग्न कर दिया जिसमें फुकुशिमा प्रान्त भी शामिल था। फुकुशिमा दाईची परमाणु ऊर्जा केन्द्र जापान के फुकुशिमा प्रान्त के फुतबा जिले में ओकुमा और फुताबा शहरों के पास 860 एकड़ पर स्थित है।

फुकुशिमा डाईची परमाणु ऊर्जा केन्द्र की भूकम्प-रोधी तकनीक नें भूकम्प के पश्चात संयन्त्र में होने वाली नाभिकीय अभिक्रिया को बन्द कर दिया। जिससे ऊर्जा उत्पादन बंद हो गया। ऐसी स्थिति में संयन्त्र को ठण्डा करने हेतु अतिरिक्त ऊर्जा की आपूर्ति के लिए संयन्त्र का डीजल जनरेटर संयन्त्र को ठण्डा करने की प्रक्रिया करने लगा परन्तु भूकम्प के बाद आई सुनामी ने संयन्त्र भवन को पानी में डुबो दिया जिससे डीजल जनरेटर भी बन्द होगा। इससे संयन्त्र की विभिन्न इकाइयों का तापमान बढ़ने लगा। दोपहर करीब 03:41 मिनट पर संयन्त्र के अभिकेन्द्र का तापमान लगभग 28,000 डिग्री सेंटीग्रेट, सूर्य की सतह के तापमान जैसा हो गया।[26]

13 मार्च को पहली इकाई और 14 मार्च को तीसरी इकाई में विस्फोट हो गया, 15 मार्च को दूसरी इकाई में भी विस्फोट हो गया। इन विस्फोटों से संयन्त्र तथा आसपास का पर्यावरण, प्रशान्त महासागर सभी रेडियोधर्मी सूक्ष्म प्रदूषक कणों द्वारा प्रदूषित हो गए। यह कृत्रिम तरीके से होने वाला रेडियोधर्मी प्रदूषण महासागरों में होने वाला अब तक का सबसे बड़ा प्रदूषण था। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात जापान में इतनी बड़ी मानवीय त्रासदी, दो प्राकृतिक आपदाओं तथा एक कृत्रिम आपदा के एक के बाद एक क्रम से आने से हुई।[27]

इस दुर्घटना के पश्चात एक बड़े भूभाग से स्थानीय निवासियों को निर्वासित कर दिया गया। आज भी संयन्त्र से उत्तर-पश्चिम की ओर का एक वृहद क्षेत्र निर्जन है। जापान सरकार ने उस क्षेत्र के स्थानीय निवासियों को प्रस्ताव दिया कि यदि वे चाहें तो अपनी सम्पत्ति जापान सरकार को उचित मूल्य पर बेच सकते हैं, क्योंकि दीर्घकाल तक वहां रेडियोधर्मी विकिरण का स्तर अधिक रहेगा जिससे वहां निवास करना सम्भव नहीं है। इस दुर्घटना के उपरान्त स्थानीय निवासियों में कोई भी विकिरण जनित स्वास्थ्य समस्याओं से तत्काल प्रभावित नहीं हुआ, परन्तु दीर्घकाल में होने वाली विकिरण जनित स्वास्थ्य समस्याएं देखने को मिल सकती हैं, जिसकी रोकथाम के हेतु प्रदूषित क्षेत्र को पूर्ण रूप से निर्जन कर दिया गया है। संयन्त्र के 20 कि०मी० से 50 कि०मी० की परिधि में आयोडीन की गोली का वितरण जापान सरकार द्वारा थायराइड कैंसर की रोकथाम हेतु किया गया। यह परमाणु दुर्घटना भी अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु घटना मापक पर पाँचवें स्तर की दुर्घटना श्रेणी के अन्तर्गत आती है।[28]

परमाणु ऊर्जा दुर्घटनाओं का स्वास्थ्य पर प्रभाव-

परमाणु ऊर्जा केन्द्र में होने वाली दुर्घटनाओं में रेडियोधर्मी धूल आयनीकृत विकिरण करने वाले तत्वों का समावेश की हुई होती है, जो संयन्त्र के निकटवर्ती क्षेत्र (लगभग 16 किलोमीटर की त्रिज्या वाले क्षेत्रफल) में व्याप्त सभी भवनों, वाहनों, बाहर रहने वाले प्राणियों, वनस्पतियों, जल, मृदा सभी को दूषित कर देती है, जिससे वातावरण में आयोडीन-131, सीजियम-134, 137 तथा बड़ी दुर्घटनाओं में स्ट्रान्टियम-90 और प्लूटोनियम-239 भी निकलते हैं, ये रेडियोएक्टिव पदार्थ अत्यंत घातक आयनीकृत रेडियोधर्मी विकिरण करते हैं। इनमें आयोडीन-131 थायराइड कैंसर का मुख्य कारक है तथा अन्य सभी शारीरिक कोशिकाओं को प्रभावित करते हैं।[29]

ये दो प्रकार से शरीर की कोशिकाओं को प्रभावित करते हैं पहला बाह्य सम्पर्क के माध्यम से एवं दूसरा आंतरिक सम्पर्क के माध्यम से, बाह्य सम्पर्क में जैसे त्वचा, बाल, कपड़े तथा पर्यावरण के सभी घटको के सम्पर्क में आने से एवं आंतरिक रूप से नासिका एवं मुख मार्ग द्वारा फेफड़ों एवं आमाशय तक ये हानिकारक रेडियोधर्मी विकिरण करने वाले पदार्थो के कण पहुंचकर आयनीकृत रेडियोधर्मी विकिरण कर कोशिकाओं को क्षति पहुंचाते हैं। युवा एवं बच्चे इससे ज्यादा प्रभावित होते हैं, क्योंकि इनमें अत्यधिक कोशिकाएं परस्पर विभाजित होती रहती हैं तथा ऊतकों का विकास चलता रहता है, जिनका जीवन काल भी अधिक होता है, जिसके कारण युवा एवं बच्चों मे कैंसर कारक कोशिकाएं विकसित होने का पर्याप्त समय प्राप्त करती हैं।[30]

आयनीकृत रेडियोधर्मी विकिरण के संपर्क में आने से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को परम्परागत रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है। पहला डिटरमिनिस्टिक प्रभाव, इसमें विकिरण सम्बन्धी दुर्घटना के तुरन्त पश्चात होने वाले विकिरण की उच्च मात्रा(जो अल्पकालिक होती है) के सम्पर्क में आने से शरीर के सभी ऊतकों में अभिक्रिया स्वरूप अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं हो जाती हैं। दूसरा स्टॉकैस्टिक प्रभाव, ये किसी आबादी में विकिरण सम्बन्धी दुर्घटना के पश्चात दीर्घकाल तक विकिरण के सम्पर्क में रहने से, उसमें बीमारी की बढ़ती घटनाओं के रूप में प्रकट होते हैं जिनमें मुख्य रुप से कैंसर प्रमुख है।[31]

आयनीकृत रेडियोधर्मी विकिरण के निरन्तर सम्पर्क में रहने से एवं अधिक मात्रा से पित्तवाहिका का, अस्थि का, मस्तिष्क का, छाती का, गुदा का, ग्रसनी का, पित्ताशय का, यकृत का, फेफड़े का, अग्न्याशय का, अण्डाशय का, लार ग्रंथि का, छोटी आंत का, उदर का, थायराइड ग्रंथि का, मूत्र वाहिका का, वृक्क का, मूत्राशय का, श्रोणि का, प्लाज्मा कोशिकाओं का इन सभी अंगों का कैंसर होता है तथा कैंसर के अतिरिक्त नॉन मैलिग्नैन्ट थायरॉयड नोड्यूल, पैराथायरॉयड एडेनोमा, सबकैप्सुलर मोतियाबिन्द, मस्तिष्क एवं केन्द्रीय तंत्रिका तंत्रों में गांठें, एक्यूट रेडिएशन सिंड्रोम, कार्डियोवैस्कुलर डिजीज, क्यूटेनियस रेडिएशन इंजरी जैसी समस्याएं होती हैं। इनसे मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य भी प्रभावित रहता है।[32]

निष्कर्ष-

परमाणु ऊर्जा से विद्युत ऊर्जा उत्पादन की तकनीकी सुरक्षित होते हुए भी, खतरों की सम्भावना बनी रहती है तथा आपातकालीन स्थिति में आयनीकृत रेडियोधर्मी विकिरण का खतरा स्थानीय क्षेत्र में बना रहता है। संयन्त्र से 16 किलो मीटर त्रिज्या का वृत्तीय क्षेत्र आयनीकृत रेडियोधर्मी विकिरण हेतु अत्यंत संवेदनशील माना जाता है।

परमाणु ऊर्जा केन्द्रों का प्रचालन एवं रखरखाव जोखिम भरा है। इसमें प्राकृतिक आपदाओं के फलस्वरुप, अभिकल्पन एवं प्रचालन में होने वाली मानवीय अथवा यांत्रिक त्रुटियों के फलस्वरुप, ऊर्जा उत्पादन पश्चात निकलने वाले अपशिष्टों के प्रबंधन तथा रखरखाव में किसी भी प्रकार की अप्रत्याशित अव्यवस्था अथवा त्रुटि की संभावना बनी रहती है। जिसके फलस्वरुप होने वाली, कोई बड़ी परमाणु ऊर्जा दुर्घटना रेडियोधर्मी विकिरण का कारण बन सकती है। जो परमाणु ऊर्जा केन्द्रों के निकटवर्ती स्थानीय निवासियों के साथ-साथ जैव मण्डल को भी विषाक्त रेडियोधर्मी प्रदूषकों से दूषित कर सकती है। जिससे स्थानीय निवासियों को विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं जैसे विभिन्न अंगों का कैंसर, आनुवांशिक एवं मानसिक समस्याओ का सामना करना पड़ सकता है। ये समस्याएं विकिरण की मात्रा के अनुसार अल्पकालिक, दीर्घकालिक एवं प्राणघातक हो सकती है।

इन सभी दुर्घटनाओं में परमाणु ऊर्जा संयन्त्र के निकटवर्ती स्थानीय निवासी आयनीकृत रेडियोधर्मी विकिरण से प्रभावित रहे। आज भी जिन देशों में इस तकनीक का प्रयोग हो रहा है, वे सभी सम्भावित आपातकाल की निरन्तर रोकथाम में लगे रहते हैं, जिससे किसी भी प्रकार की मानवीय अथवा यांत्रिक त्रुटि ना हो जो घातक सिद्ध हो।

सन्दर्भ-

1. https://www.epa.gov/radiation/radiation-basics
2. https://www.who.int/news-room/questions-and-answers/item/radiation-the-known-health-effects-of-ultraviolet-radiation , https://www.epa.gov/radiation/radiation-health-effects
3. https://www.nrdc.org/stories/nuclear-power-101
4. https://www.epa.gov/radiation/radiation-terms-and-units
5. https://researchgate.net/publication/274729702_Of_Disasters_and_Dragon_Kings_A_Statistical_Analysis_of_Nuclear_Power_Incidents_Accidents

6. https://ottawacitizen.com/news/chalk-rivers-toxic-legacy
7. http://www.ccnr.org/paulson_legacy.html
8. https://www.cbc.ca/news/canada/ottawa/aecl-workers-radiation-exposure-compensation-justice-1.4369187
9. https://thewalrus.ca/nuclear-accidents/
10. https://inis.iaea.org/collection/NCLCollectionStore/_Public/37/004/37004435.pdf
11. https://www.researchgate.net/publication/311097119_Health_effects_of_the_Windscale_Pile_fire
12. https://www.nature.com/articles/182635b0.pdf
13. https://www.britannica.com/event/Kyshtym-disaster
14. http://large.stanford.edu/courses/2017/ph241/buttinger1/
15. https://www.researchgate.net/publication/317036034_An_Approach_to_Detecting_Delayed_Effects_of_Radioactive_Contamination_on_Industrial-Urban-_Area_Dwellers
16. https://iopscience.iop.org/article/10.1088/1361-6498/aa7f8d
17. https://world-nuclear.org/information-library/safety-and-security/safety-of-plants/three-mile-island-accident.aspx
18. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC1405170/
19. https://www.energy.gov/ne/articles/5-facts-know-about-three-mile-island#:~:text=The%20accident's%20exposure%20had%20no,plant%20workers%20or%20surrounding%20public.&text=On%20March%2028th%2C%201979,function%20that%20prevents%20reactor%20damage
20. https://www.unscear.org/unscear/en/chernobyl.html
21. United Nations Scientific Committee on the Effects of Atomic Radiation. Sources and Effects of Ionizing Radiation: UNSCEAR 2008 Report to the General Assembly with Scientific Annexes. Volume II, Annex D. Health effects due to radiation from the Chernobyl accident. New York: United Nations, 2011.
22. WHO, Health Effects of the Chernobyl Accident and Special Health Care Programmes, Report of the UN Chernobyl Forum Expert Group 'Health' Geneva 2006
23. https://www.greenfacts.org/en/chernobyl/l-2/2-health-effects-chernobyl.htm
24. https://www.cancer.gov/news-events/press-releases/2021/genetic-effects-chernobyl-radiation-exposure
25. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC4899336/ , https://world-nuclear.org/information-library/safety-and-security/safety-of-plants/appendices/chernobyl-accident-appendix-2-health-impacts.aspx
26. https://world-nuclear.org/information-library/safety-and-security/safety-of-plants/fukushima-daiichi-accident.aspx
27. https://www.cdc.gov/nceh/features/fukushima-radiation/index.html#:~:text=The%20loss%20of%20social%20connections,were%20evacuated%20after%20the%20incident
28. https://www.who.int/news-room/questions-and-answers/item/health-consequences-of-fukushima-nuclear-accident
29. https://www.cdc.gov/nceh/multimedia/infographics/nuclear_power_plant_accidents.html
30. https://journals.lww.com/ijsgh/fulltext/2022/09010/direct_and_indirect_health_effects_of_the_nuclear.2.aspx
31. https://ec.europa.eu/health/scientific_committees/opinions_layman/security_scanners/en/l-3/5-health-effect-radiation.htm#:~:text=Deterministic%20effects%20(or%20tissue%20reactions,the%20effect%20does%20not%20occur.
32. https://www.publichealth.va.gov/exposures/radiation/diseases.asp , https://www.cancer.gov/about-cancer/causes-prevention/risk/radiation/nuclear-accidents-fact-sheet#:~:text=At%20high%20doses%2C%20ionizing%20radiation,cataracts%2C%20as%20well%20as%20cancer.

भारतीय संस्कृति में न्याय दर्शन

अशोक कुमार

इतिहास विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

हडप्पा सभ्यता के बाद भारत में वैदिक सभ्यता का विकास हुआ। वैदिक सभ्यता प्राचीन भारत की सभ्यता थी जिसमें वेदों की रचना हुई। पुरातात्विक उत्खनने के आधार पर इस सभ्यता के अवशेष 2000 ई० पू० से 600 ई० के बीच मिले हैं। वैदिक साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन से उस समय के दार्शनिक व आध्यात्मिक विकास का भी पता चलता है। वेदकालीन समाज को सही प्रकार समझकर व उस पर विचार किया जाए तो कि यही स्पष्ट होगा की उस समय के आर्थिक जीवन को आध्यात्मिक तथा दार्शनिक मूल्य दिया गया है। वैदिक आर्यो ने संसार की क्षणभंगुरता को अनुभव किया तथा जीवन की समस्याओं को समझने का प्रयत्न किया। मृत्यु की विभिषिका अर्थात् जन्म-मरण को दूर करने के लिए उन्होंने अमरत्व के भण्डार देवताओं की स्मृति करनी शुरू कर दी। उन्होंने आत्मतत्व को पहचाना तथा आत्मा के अमरतत्व को जाना। जीवन-मरण की गत्थी को सुलझाने के लिये पुनर्जन्म के सिद्धान्त का भी विकास उन्होंने किया था। क्योंकि वैदिक साहित्य में उक्त सिद्धान्त का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में विभिन्न देवताओं के द्वारा विभिन्न जन्मों का तथा उनके अवतारों का उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलता है। प्रकृति, जीव, ब्रह्म आदि के पारस्परिक सम्बन्धों को समझकर उपनिषदों के आधार पर उनको सुलझाया जाने लगा था। सृष्टि की उत्पत्ति कैसे, कब, क्यों हुई उसको लेकर अनेक दार्शनिक विचारों द्वारा कितने ही सिद्धान्त उपस्थित किये गये थे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय दर्शनशास्त्र का विकास वैदिक युग से ही प्रारम्भ हो गया था क्योंकि उस समय के विद्वानों द्वारा सांसारिक पहलियों को समझना प्रारम्भ कर दिया था। ऋग्वेद में कितने ही स्थलों पर दार्शनिक ढंग पर संसार की समस्याओं को समझने का प्रयत्न किया गया है। ऋग्वेद मे एक स्थान पर कहा गया है कि "सर्वप्रथम इस सृष्टि को उत्पन्न होते किसने देखा है जबकि अस्थिरहित ने अस्थिवालों को धारण किया?

इस भूमि का जीव उसका रक्त व उसकी आत्मा कहा है? क्या कोई यह सब पूछने के लिये किसी विद्वान के पास गया है? (प्रश्न) पृथ्वी का परम अन्त कहां है? भुवन की नाभि कहाँ है? तृष (धर्म?) रूपी अश्व का वीर्य कहाँ है? परम वागशक्ति कहा है? (उत्तर) यह वेदि पृथिवी का परम अन्त है। यह यज्ञ भवन की नाभि है। यह सोम तृषरूपी अश्व का वीर्य है। यह ब्रह्मा पर वाशक्ति है। इन प्रश्नोत्तरी में दार्शनिकों व कर्मकाण्डियों के पारस्परिक वाद-विवादों का पता चलता है। इसी प्रकरण में उस परमत्व को समझने का प्रयत्न करते हुए कहा गया है कि वैदिक ऋचाएँ वह अक्षर परमधाम हैं, जहाँ सब देवताओं का वास रहता है। अंत में उस परमतत्व का निर्देश करते हुए कहा गया है कि वह परम तत्व एक है विद्वानों द्वारा अग्नि, यम आदि अनेक नामों द्वारा उसका विवेचन करते हैं।

वैदिक काल को दो भागों में बांटा गया है। ऋग्वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल। ऋग्वेद की रचना इसी काल के दौरान हुई। ईरानी भाषा के प्राचीनतम ग्रंथ अवेस्ता की सूक्तियाँ ऋग्वेद से मिलती-जुलती हैं। बोगाजवोर्ड (एशिया माईनर) में पाए गए 1400 ई०पू० के अभिलेख में भी हिंदू देवताओं (इंद्र, मित्र, वरुण नासत्य) का वर्णन मिलता है।[1] ऋग्वैदिक काल में प्राकृतिक शक्तियों की ही पूजा की जाती थी और कर्मकांडों की प्रमुखता नहीं थी। परंतु उत्तरवैदिक काल तक आते-आते कर्मकांडो की प्रमुखता बढ़ गई। वैदिक धर्म कर्म पर आधारित था। यह धर्म पूर्णत: प्रतिमार्गी है। वैदिक देवताओं में पुरुष भाव की प्रधानता है। कुछ देवताओं की आराधना मानव रूप में तो कुछ की पशु रूप में की गई है। आकाश के देवता अन्तरिक्ष के देवता व पृथ्वी के देवता आदि। उत्तरवैदिक काल तक आते-आते धर्म में काफी बदलाव आ चुका था। जो देवता ऋग्वेद में पूज्यनीय था उतर वैदिक में उसकी स्थिति वैसी नहीं थी। जैसे प्रजापति की महिमा में वृद्धि होने लगी थी। धीरे-धीरे उसने इंद्र का स्थान ले लिया। ऋग्वैदिक ऋषियों ने जिस

समय जिस देवता की स्तति की उसे ही सर्वोच्च मानकर उसमें सम्पूर्ण गुणों का आरोपण कर दिया।[2] इसी प्रवृति को हीनाथीज्म कहा गया है। धीरे-धीरे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई की समाज में अनेक देवता उत्पन्न हो गए।

पाणिनी ने अपनी व्याकरण मे दर्शन शब्द का वर्णन किया है। दर्शन शब्द का अर्थ दृष्टि या देखना, जिसके द्वारा देखा जाय होगा। दर्शन शब्द का शब्दार्थ केवल देखना या सामान्य ही नहीं है। इसी कारण पाणिनी ने धारवर्थ में 'प्रेक्षण' शब्द का प्रयोग किया है। प्रकृष्ट ईक्षण जिसमें अन्तश्चक्षुओं द्वारा देखना या मनन करके सोपपतिक निष्कर्ष निकालना ही दर्शन की विषयवस्तु है। साधन और फल दोनों ही दर्शन हैं। जहाँ इन सिद्धान्तों को संकलन हो, उन ग्रन्थों का नाम दर्शन ही होगा जैसे न्याय दर्शन वैशेषिक दर्शन, मीमांसा दर्शन आदि।[3]

दर्शन ग्रन्थों को दर्शनशास्त्र भी कहते हैं। दर्शन अर्थात् धर्म ऋषियों के उपदेशों को जिन ग्रन्थों में लिखा गया है उनका नाम ही दर्शन शास्त्र है। दर्शनों का उपदेश वैयक्तिक जीवन में अपना कर उपयोग करना अधिक उपयोगी है। आध्यात्मिक उन्नयन तथा पवित्रता बिना दर्शनों के सम्भव नहीं है। दर्शन-शास्त्र हमारे जीवन में अंधकार में ज्योति के समान मार्गदर्शी है। भारतीय दर्शन का आरंभ वेदों से होता है। वेद भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति साहित्य का आधार स्त्रोत है। वर्तमान समय में भी धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यों के अवसर पर वेद मंत्रों गायन होता है। वैदिक साहित्य का विकास चार चरणों में हुआ जो संहिता ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् कहलाते हैं। मंत्रों और स्तुतियों के संग्रह को संहिता कहते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद मंत्रो की संहिताएं ही हैं। इनकी भी अनेक शाखाएँ हैं। इन सहिताओं में संकलित मंत्र यज्ञ के दौरान देवताओं की स्तुति के लिए गाए जाते हैं।

इन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, सोम, उषा आदि देवताओं की स्तुति इन मंत्रों के द्वारा ही की जाती है। हिन्दू धर्म में दर्शन अत्यन्त प्राचीन परम्परा रही है। वैदिक दर्शनों में षड्दर्शन अधिक प्रसिद्ध और प्राचीन है। इन दर्शनों को आस्तिक दर्शन कहा जाता है। वैदिक युग में अवतारवाद की परम्परा बढ़ने लगी। प्रजापति द्वारा वराहरूप में पृथ्वी धारण तथा कूर्म बनने की कथा इस युग में चल पड़ी जो बाद में अवतारों के क्रम का मूल बनी। याज्ञिक कर्मकांडों ने जटिलीय रूप धारण कर लिया। आंडबरों ने समाज में अपने रूप को कठोरता प्रदान कर दी जिसके कारण पशु बलि जैसे कर्मकाण्ड बढ़ गए। उपनिषद् काल में ज्ञानमार्ग को महत्व दिया जाने लगा जिसके कारण कर्म, मुक्ति तथा पर्वजन्म की प्राथमिकता बढ़ गई। धीरे-धीरे स्थिति जादू-टोने, भूत-प्रेतो और अंधविश्वासों की हो गई जिसने कर्मकांड का रूप धारण कर पुरोहितों की संख्या में बढ़ोतरी की। अब होतृ, उद्गात, अध्वर्यु और ब्रह्मन् में प्रत्येक के अनेक सहकारी हो गए। बौद्धिक चिंतन ने इन षड्दर्शनों (सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व और मीमांसा) का बीजारोपण हुआ।[4]

न्याय दर्शन

यह एक आस्तिक दर्शन है। वेदों को प्रमाणिक बनाने में इसका विशेष स्थान है। इस दर्शन की तत्व-विवेचना व्यवहारिक दृष्टिकोण पर आश्रित होने के कारण अन्य दर्शनों की अपेक्षा यह आसान है। इस दर्शन की प्रमाण विवेचना की समझे बिना किसी भी दर्शन की तत्वानुभूति नहीं की जा सकती। इसी कारण से प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में सर्वप्रथम न्याय दर्शन पढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया गया। व्याकरण की भाँति न्याय दर्शन का अध्ययन संस्कृत शिक्षा का आवश्यक अंग था। न्याय का अर्थ- उचित, वांछनीय सत्य की खोज दर्शन के तर्क के आधार पर की जाये।

वात्स्यायन न्याय सूत्र भाष्य के अनुसार न्याय का अर्थ है ज्यादातर प्रभावों की मदद से वस्तु तत्व की परीक्षा। न्याय दर्शन में प्रभावों की सहायता से वस्तु तत्व की परीक्षा की गई है इसीलिए उसे न्याय दर्शन कहा गया है। न्याय दर्शन के प्रतिपादक महर्षि गौतम है। न्याय सूत्र इनका न्याय दर्शन का ग्रन्थ है। न्याय सूत्र मे सोलह पदर्थो (प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, तर्क, अवयव, वाद, निर्णय, कल्प, हेत्वाभास, वितण्डा, हल, जाति, निग्रह स्थान) के स्वरूप का यथार्थ विरूपण किया गया है।[5] वातस्यादीन द्वारा न्याय सूत्र पर भाष्य लिखा गया। उसके बाद अनेक विद्वानों द्वारा न्याय दर्षन की व्याख्या कर उसको एक नया स्वरूप प्रदान किया। न्याय द्वारा पदार्थ के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है जिसके कारण कुछ विद्वान इसे वास्तविक दर्शनों की कोटि में रखते हैं। यह अनेक तत्वों के अस्तित्व को स्वीकार करता है इसलिए कुछ विद्वानों द्वारा इसे बहुतत्ववादी बताया गया है। यह दर्शन तर्क पर आधारित है इसलिए कुछ विद्वान तर्क शास्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं। मुख्य रूप से यह दर्शन अपनी ज्ञान मीमांसा के लिए प्रसिद्ध होने के कारण शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है जिस प्रकार वैशेषिक दर्शन के मूलतः वस्तुगत यथार्थ तथा उसके विविध पक्षों की विवेचना की है उसी प्रकार न्याय-दर्शन ने यथार्थ के सम्बन्ध में ज्ञान की समस्या की खोज पर अपना ध्यान केंद्रित किया। इसी कारण इस दर्शन को हेतु विद्या (सच्ची तर्क प्रणाली व उचित न्याय का विज्ञान) और प्रभावशास्त्र (वैध ज्ञान का विज्ञान) के नाम

का प्रयोग किया जाता है। इस दर्शन की उत्पति सार्वजनिक वाद-विवाद से उत्पन्न विज्ञान (तर्क) के अध्ययन से इसके ज्ञान द्वारा किसी भी क्षेत्र के विषयों व वस्तुओं का तर्कसंगत विश्लेषण करने तथा उसका आलोचनात्मक करने की प्रणाली स्थापित की। जिसके कारण जीवन तथा यथार्थ की समस्याओं का हल ढुढने का प्रयास किया गया।[6]

वात्स्यायन के अनुसार- न्याय तार्किक प्रभाव के नियमों द्वारा ज्ञान की वस्तुओं की आलोचनात्मक परीक्षा है।' न्याय तर्क का पर्यायवाची शब्द है और वह दर्शन, जो अन्य दर्शनों की अपेक्षा अधिक पूर्णता के साथ तर्क विषय का प्रतिपादन करता है न्याय-दर्शन के नाम से जाना जाता है। न्याय का परम उद्देश्य मनुष्य के उस दुख को समाप्त जिसका मूल कारण वास्तविकता की अज्ञानता है। इसमें भी इस बात को स्वीकार किया गया है कि सम्यक ज्ञान के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। न्याय का प्रमुख ग्रंथ न्याय सूत्र है जिसका श्रेय गौतम को दिया जाता है। न्याय मत के अनुसार ज्ञान के चार मान्य साधन है- अनुभूति (प्रत्यक्ष), अर्थ निकालना (अनुमान), तुलना करना (उपमान) और शब्द (साक्य)। अप्रामाणिक ज्ञान द्वारा शंका और काल्पनिक वाद-विवाद उत्पन्न होता है। कारण- कार्य संबंध में न्याय सिद्धांत को प्रभाव के सहज और अपरिवर्तनीय पूर्ववर्ती के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रभाव अपने कारण में पहले से अस्तित्व नहीं रखता, इस परिणाम पर बल देने के कारण न्याय सिद्धांत सांख्य योग तथा वेदांती संकल्पनाएं है। तीन प्रकार के कारणों का वर्णन है- अंतर्निहित अथवा भौतिक कारण (तत्व, जिससे प्रभाव की उत्पत्ति होती है), और अंतर्निहित (जो कारण की उत्पत्ति में सहायता करता है) और सक्षम (वस्तु क्रिया या शक्ति, जो भौतिक कारण के उत्पादन में सहायता करती है) न्याय सिद्धांत में ईश्वर ब्रह्मांड का भौतिक कारण नहीं है, क्योंकि अणु और आत्माएं भी शाष्वत है। वैदिक धर्म के स्वरूप के अनुसंधान के लिए न्याय की विशेष उपयोगिता है। इसीलिए मनुस्मृति में श्रुत्यनुगामी तर्क की सहायता से ही धर्म के रहस्य को जानने की बात कही गई है। न्याय का व्यापक अर्थ है- विभिन्न प्रमाणों की सहायता से वस्तुतत्व की परीक्षा प्रमाणों के स्वरूप वर्णन परीक्षण प्रणाली के व्यावहारिक रूप के प्रकटन के कारण यह न्याय दर्शन के नाम से अभिहित है। न्याय का दूसरा नाम अन्वीक्षा के द्वारा प्रवर्तित होने वाली विद्या जिसका अर्थ है प्रत्यक्ष या आगम पर आश्रित अनुमान। भारतीय दर्शन के इतिहास में न्याय दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। न्याय दर्शन के विकास की दो धारायें हैं प्रथम धारा का सूत्रकार गौतम जिसने षोडश पदार्थो के यथार्थ निरूपक होने से पदार्थमीमांसात्मक प्रणाली कहते हैं जिसका प्राचीन नाम न्याय है तथा मुख्य विषय पदार्थमीमांसा है।[7]

दूसरी को प्रमाणमीमांसात्मक कहते है जिसे गंमेषोपाध्याय ने तत्वचिन्तामणि में प्रवर्तित किया। इस धारा को नव्यन्याय कहते हैं प्रमाणमीमांसा वर्णित है। न्याय दर्शन से सम्बद्ध उद्योतकर का न्यायवार्तिक, वाचस्पति मित्र की तात्पर्यटीका जयन्तभट्ट की न्यायमंजरी, उदयनाचार्य की न्याय-कुसुमाजलि गंगेश उपाध्याय की तत्वचिन्तामणि आदि ग्रन्थ है। न्यायमत में बताया गया है कि किस प्रकार ईश्वर के अनुग्रह के बिना जीव न तो प्रमेय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है और न ही इस जगत के दुखों से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। ईश्वर ही इस सृष्टि का पालनहार है तथा वही इसका संहार करने वाला है। न्यायमत में ईश्वर जगत का निमित कारण हैं उपादान ईश्वर जीव मात्र का नियन्ता है, कर्मफल का दाता है तथा सुख व दुखों का व्यवस्थापक है।

भारतीय दर्शन साहित्य को न्याय दर्शन की सबसे अमूल्य देन शास्त्रीय विवेचनात्मक पद्धति है। प्रमाण की विस्तृत व्याख्या तथा विवेचना कर न्याय के जिन तत्वों को खोज निकाला है, उनका उपयोग अन्य दर्शन ने भी कुछ परिवर्तनों के साथ किया है। हेत्वाभासो का सूक्ष्म विवरण देकर न्याय दर्शन ने अनुमान को दोषमुक्त करने का मार्ग प्रशस्त किया है।

न्याय दर्शन का मूल्यांकन

इसने मनुष्य के भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों पक्षों को समान स्वरूप प्रदान किया है। न्याय-दर्शन का मूल आधार यही है कि पदार्थ और आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जाने बिना मनुष्य सुख-दुख से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता। इसी कारण न्याय शिक्षा मनुष्य के इन्द्रिय ज्ञान, बौद्धिक एवं नैतिक विकास पर बल देता है। इसके द्वारा ही मनुष्य पदार्थ एवं आत्म तत्त्व का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। न्याय-दर्शन बहुतत्ववादी होने के कारण अन्य भारतीय दर्शनों से अलग है। इसकी योग साधना, आत्मानुभूति तथा इन्द्रिय प्रशिक्षण सम्बन्धी शिक्षा का वर्तमान युग में भी विशेष महत्व है।[9] न्याय दर्शन ने अनुशासन को अन्दर की वस्तु माना है। स्वअनुशासन ही वास्तविक अनुशासन है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि न्याय दर्शन प्राचीन भारतीय दर्शन है लेकिन उसका शैक्षिक दृष्टिकोण आधुनिक मनोविज्ञान से पूर्व रूप से मेल खाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. जैन, कैलाश चन्द, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली- 2011
2. सिंह, भगवान, ''हडप्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली- 1987
3. शर्मा, रीता, ''प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास' शील सन्स, जयपुर, 2004
4. मिश्र, जी०एस०पी०, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर- 1983
5. शरण, डॉ. आर० पुचचीन भारतीय धर्म एवं दर्षन का स्वरूप' राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
6. ज्ञानी, शिवदत ''वेदकालीन समाज, वाराणसी, 1967
7. विद्यालंकार, सत्यकेतु, ''प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग' श्री सरस्वती मदन सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली, 2019
8. सिंह डॉ. राधेश्याम, वैदिक भारत समाज, संस्कृति एवं साहित्य, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली -2018
9. विद्यालयतर सत्यकेतु, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन-श्री सरस्वती सदन, मसुरी

सांस्कृतिक एकीकरण में पाञ्चरात्र संप्रदाय की भूमिका

नवीन

शोध छात्र, इतिहास विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

परिचय

प्रकृति ने भारत को एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई प्रदान की है। इस भौगोलिक इकाई के कारण ही इसे भारतीय उपमहाद्वीप के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल से इस भौगोलिक एकता को राजनीतिक एवं सांस्कृतिक एकीकरण स्थापित करने का प्रयत्न, भारतीय चिंतको द्वारा किया गया। राजनीतिक एकीकरण के लिए एकराट, राजाधिराज, परमभट्टारक एवं चक्रवर्ती सम्राट इत्यादि की उपाधि प्रदान कर इस भूखण्ड को जोडने का प्रयास किया। प्राचीन भारत में यह प्रयास दो बार सफल हो पाया। लेकिन इस प्रकार का राजनीतिक एकीकरण ज्यादा समय तक स्थापित नही रह पाया। राजनीतिक एकीकरण के साथ-साथ सांस्कृतिक एकीकरण स्थापित करने का प्रयास भी भारतीय चिंतको द्वारा किया गया।

भारतीय सांस्कृतिक एकता अपने आरंभिक काल से ही चिरस्थाई रूप से वर्तमान तक दिखाई देती है। जो विश्व की अधिकतर संस्कृतियों में दिखाई नही देती। मिस्र एवं मेसोपोटामिया इत्यादि संस्कृतियों का अपने आधुनिक निवासियों के साथ कोई संबंध नही है। लेकिन भारतीय संस्कृति के मूल तत्व इतने स्थाई रहे कि समय एवं विदेशी बर्बर आक्रमण भी इन्हे विलुप्त नही कर सके। वर्तमान में भी सैन्धव सम्यता के देवी-देवता एवं वैदिक मन्त्रों के प्रति गहरी आस्था है। आज भी प्राचीन भाषा, दर्शन, साहित्य, धर्म एवं सामाजिक आचार-विचार हमारे लिए मूल्यावान है। प्रस्तुत शोध लेख भारतीय संस्कृतिक एकीकरण में पाञ्चरात्र संप्रदाय की भूमिका पर केन्द्रित है। इसलिए यहा हम इस एकीकरण में पाञ्चरात्र संप्रदाय की भूमिका ही विश्लेषण करेंगे।

भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति पर पाञ्चरात्र संप्रदाय का अपना महत्वपूर्ण प्रभाव है। परंपरा में इसे पाञ्चरात्र आगम के नाम से भी जाना जाता जो की वैष्णव आगम का एक भाग है। वैष्णव सम्प्रदाय के दो मुख्य भेद बताए गए हैं पाञ्चरात्र आगम, वैखानस आगम। लेकिन हयशीर्ष संहिता में पाञ्चरात्र आगम, वैखानस आगम के अतिरिक्त हमें भागवत आगम का भी उल्लेख मिलता है।[1] किन्तु भागवत आगम के विषय में अन्यतर कही विवरण उपलब्ध नहीं होता अतः वैष्णव आगम के दो ही मुख्य भेद माने गए है। पाञ्चरात्र संप्रदाय को अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त माना जाता है। पाञ्चरात्र संप्रदाय का जन्म स्थान उत्तर भारत में श्वेत द्वीप को माना जाता है। महाभारत में इसकी पहचान मेरुपर्वत के पश्चिम उत्तर में की गई है।[2] यह संप्रदाय लगभग तीसरी-चौथी शाताब्दी तक दक्षिण भारत में फैल चुका था। इस संप्रदाय ने किस प्रकार सांस्कृतिक एकीकरण में अहम भूमिका निभाई इसका वर्णन यहा किया जाएगा।

भारतीय सांस्कृति की विशेषता

भारतीय सांस्कृतिक एकीकरण की प्रमुख विशेषता इसकी ग्रहणशीलता, समन्वयवाद, सार्वभौमिकता एवं सहिष्णुता इत्यादि मानी जाती है। इन विशेषताओं को विकसित करने में पाञ्चरात्र संप्रदाय का अधिक प्रभाव रहा है।

ग्रहणशीलता: पाञ्चरात्र संप्रदाय ने ग्रहणशीलता के भाव को जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस संदर्भ में इन्होंने भारत की ही जातियों एवं जनजातियों को नही जोडा बल्कि विदेशी जातियों (आक्रमणकारी) को भी प्रभावित कर उन्हें अपनी धारा में प्रवाहित कर लिया। हेलियोडोरस ने भागवत की उपाधि धारण करना और इसके साथ-साथ कुषाण शासकों द्वारा वासुदेव आदि नाम रखना इसकी पुष्टि करते हैं।

चर्तुव्यूह इस संप्रदाय का मौलिक सिद्धान्त माना जाता है।[3] शुरुआत में यह सात्त्वत जाति में प्रचलित था। लेकिन जब इस संप्रदाय के प्रमख देव वासुदेव नारायण का विष्णु के साथ संबंध जोड दिया गया तो इस मौलिक सिद्धान्त ने ही अवतारवाद की धारण को विकसित किया। इस धारणा में भारत के विभिन्न भागों पर पूजे जाने वाले देवों को विष्णु का ही रूप माना जाता है। अब भगवान विष्णु को ही जगत का निर्माता माना जाने लगा। अर्थात् जगत की उत्त्पति विष्णु से ही मानी गई और स्थानिय देवता को विष्णु का ही रूप मान लिया गया। इस विचार का फैलाने के लिए पुराणों एवं पाञ्चरात्र साहित्य की रचना की गई। विष्णु पुराण में ही प्रथम बार भारत एवं उसके भौगोलिक क्षेत्र की व्याख्या की गई है। ब्रह्मा, महेश, कृष्ण, राम, परशुराम, बुद्ध, वराहा, मत्स्य, सूर्य एवं जगन्नाथ इत्यादि विष्णु के ही रूप माने गए है।

विष्णु का एक नाम लक्ष्मीनारायण भी लिया जाता है। पाञ्चरात्र संप्रदाय ने लक्ष्मी को प्रमुख देवी का दर्जा दिया गया है। यह विष्णुनारायण की शक्ति है जो इन्ही में निवास भी करती है। लक्ष्मी तन्त्र में कहा गया है कि मैं (लक्ष्मी) विष्णुनारायण से भिन्न नही हूं।[4] उसी से अभिन्न हूं। इसी ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि सारे विश्व का निर्माण मेरे द्वारा हुआ है। मैं सब का आश्रय हूं। सभी मेरे में आश्रय लेते हैं। इसी कारण मेरा एक नाम प्रकृति भी है। इसी प्रकार की धारण ने ही वसुधैव कुटुम्बकम् की धारण का प्रतिपादन किया।

लक्ष्मी तन्त्र में लक्ष्मी के अनेक नाम बताए गए है।[5] ये (लक्ष्मी) ही श्री, लक्ष्मी, महालक्ष्मी, चण्डा, चण्डिका, भद्रकाली, काली, भद्रा, दुर्गा, महेश्वरी, माया, योगमाया, त्रिगुणा, भगवत्पनी, भगवती, परा, मोहिनी, सरस्वती, सर्वकामदा, प्रीति वर्धनी, रेवती, रूक्मिणी, रति, उषा एवं तारा इत्यादि के रूप में समय-समय पर अवतरीत हुई है। ऐसा लक्ष्मी तन्त्र में उल्लेख आया है। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि विभिन्न देवियों की उपासना देवों की तरह ही भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग समूहों द्वारा की जाती थी। जिनको लक्ष्मी का ही एक रूप मान लिया गया और लक्ष्मी स्वयं ही विष्णुनारायण में ही वास करती है। जनजातिय समाज में नारी को मातृदेवी के रूप में पूजा जाता था। इस प्रकार यह इस और इसारा करता है कि पाञ्चरात्र संप्रदाय में विभिन्न देवियों के रूप में पूजा अर्चना का स्थान देना इसके जनजातिय समाज से ब्राह्मणिय समाज व्यवस्था में उचित स्थान दिलाने में महत्वपुर्ण भूमिका निभाई। यह सब इस संप्रदाय की ग्रहणशीलता को दर्शाता है कि किस प्रकार समस्थ भारत में सभी देवी-देवताओं को विष्णु के परिवार के रूप ही मान लिया गया।

अगस्त्य ऋषि की भूमिका: परंपरा में ऐसा माना जाता है कि उत्तर भारतीय संस्कृति को दक्षिण भारत में प्रचारित करने वाले पहले व्यक्ति महर्षि अगस्त्य ही थे। इन्होंने ही दक्षिण भारत में हुए पहले दो संगमों की अध्यक्षता की थी। भार्गव तन्त्र[6] में भूमिका में कपिल देव नारायण ने उल्लेख किया है कि पाञ्चरात्र साहित्य के इस ग्रन्थ में महेन्द्र पर्वत पर जो उपदेश परशुराम ने अगस्त्य को दिया। वही भार्गव तन्त्र के रूप में प्रचलित है। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि अगस्त्य ऋषि वैदिक परंपरा से संबंधित थे और पाञ्चरात्र संप्रदाय के अनुयायियों ने इसे वैदिक परंपरा से ही संबंधित माना है। अगस्त्य ने न केवल इस परंपरा को ग्रहण किया बल्कि दक्षिण में इसका प्रचार-प्रसार करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भार्गव तन्त्र के अलावा पाञ्चरात्र साहित्य में अगस्त्य संहिता[7] का नाम भी मिलता है। इसमें चेर, पाण्डय एवं केरल के नामों का उल्लेख मिलता है जो दर्शाता है कि इस ग्रन्थ की रचना अगस्त्य ने अपने दक्षिण में निवास के दौरान की हालाकि विद्वानों ने इस संहिता के रचना का समय लगभग 11वीं 12वीं शताब्दी के आस-पास माना है। स्मिथ महोदय ने इस का समय रामानुज के बाद माना है।[8] लेकिन यह सब इस ओर हमार ध्यान आकृषित करता है कि महर्षि अगस्त्य ने पाञ्चरात्र परंपरा को दक्षिण भारत में प्रसारित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

अन्य धार्मिक मत एवं पाञ्चरात्र

पाञ्चरात्र साहित्य के ग्रन्थों में पाञ्चरात्र शब्द का उल्लेख विभिन्न मतों के लिए अलग-अलग संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। शाण्डिल्य संहिता में सांख्य, योग, वेद, शैव अरण्य को रात्रि कहा गया है इन सांख्यादि पांचों का अर्थ इसी पा्चरात्र में स्वयं प्राप्त हो जाता है इन पांचों शास्त्रों का आनन्द अर्थात् ईष्ट अर्थ आनन्द जिस शास्त्र से प्राप्त होता है उसे पाञ्चरात्र शास्त्र कहते हैं।[9]

भारद्वाज संहिता के अनुसार इस शास्त्र में पांच रात्रों का समावेश है, अत: इस शास्त्र को पाञ्चरात्र शास्त्र कहा गया है ये रात्रे निम्नलिखित है: ब्रह्मरात्र, शिवरात्र, इन्द्ररात्र, नागरात्र तथा ऋषिरात्र। इसका अनुकरण सनत्कुमार संहिता भी करती है। उपर्युक्त वर्गिकरण पाञ्चरात्र का शैवधर्म, वैदिक देवता इन्द्र एवं नाग जाति से इनका संबंध दिखाता है।[10]

अहिर्बुध्न्य संहिता के अनुसार जो दर्शन या सिद्धान्त में ब्रह्म के पांच रूपों पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा को मान्यता देता हो वह पाञ्चरात्र शास्त्र कहलाता है। अहिर्बुध्न्य संहिता के अनूसार दिव्यशासन वाले सदागममय मात्र उस शास्त्र के सार को लेकर स्वयं विष्णु ने जिस शास्त्र की रचना की वह परव्यूह, विभव तथा स्वभाव का निरूपण करने वाला पाञ्चरात्र नाम का तन्त्र हुआ। जिसमें मात्र मोक्षफल के लक्षणों का वर्णन है। विभव रूप ने इसे अन्य मतों से जोडने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा इस संप्रदाय ने अन्तर्यामी रूप ने आम जन को विष्णुनारायण से ही जोड दिया। इस प्रकार हम यह मान सकते हैं कि इस संप्रदाय ने ही यह धारणा विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई की प्रत्येक मानव एक ही ईश्वर की सन्तान है। इसमें वैष्णव संकल्प रूप सुदर्शन नामक शास्त्र अपने प०चवक्त्र से पांच भागों में विभक्त हो गया। यह भी माना जाता है कि विष्णु ने ही समस्त अस्त्र-शस्त्रों की उत्पति मानव एवं देवों के कल्याण के लिए की। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि जगत की उत्त्पति विष्णु से हुई है। वहीं इसका कारण है। जो इसके व्यापक दृष्टिकोण को दर्शाता है।[11]

पाद्म संहिता के अनुसार इस दर्शन का नाम 'पाञ्चरात्र' होने का अर्थ यह है कि जिस प्रकार सूर्य रात्रि को दूर भगा देता है, उसी प्रकार यह अन्य दर्शनों (सांख्य, योग, बौद्ध, पाशुपत, कापाल तथा शैव) को छिन्न-भिन्न कर देता है। जिसके कारण इस शास्त्र को पाञ्चरात्र कहा जाता है।[12] यहां इसका तात्पर्य यह लगाया जा सकता है कि पाञ्चरात्र संप्रदाय की दिक्षा ग्रहण करने के पश्चात अन्य किसी दर्शन की जरूरत नही रहती। चुकि इस दर्शन में सभी मतों का सार नहित है।

अनिरूद्ध-संहिता में वर्णित पाञ्चरात्र शब्दार्थ कुछ हद तक पाद्म संहिता के समान है इसके अनुसार जिस प्रकार दिन में चन्द्र एवं तारागण समाप्त हो जाते हैं। सांख्ययोगादि शास्त्र जिस शास्त्र के समक्ष सर्वथा प्रभावहीन हो जाते हैं। उसी शास्त्र का नाम पाञ्चरात्रशास्त्र है।[13] अथवा दिवाकर भगवान भुवनभास्कर के प्रदीप होने पर जिस तरह अन्य नक्षत्र महत्वहीन एवं प्रभावहीन हो जाते हैं उसी तरह पाञ्चरात्रशास्त्र के समक्ष अन्य सभी शास्त्र मलिन हो जाते हैं।

इस प्रकार संहिताओं में त्रयी, सांख्या, योग, पाशुपत, कापाल, शैव, बौद्ध और सात्वत इत्यादि मतों का उल्लेख पाञ्चरात्र साहित्य में हुआ है। अहिर्बुध्न्य संहिता में तो यहा तक कहा गया है कि सभी शास्त्र विष्णु के संकल्प की प्रेरणा से समय-समय पर पृथ्वी पर प्रविभक्त होते रहे हैं।[14]

पाञ्चरात्र का सांख्य एवं योग दर्शन के साथ संबंध

पाञ्चरात्र एवं सांख्य दर्शन के संबंधों का पहला उदाहरण महाभारत में मिलता है शन्तिपर्व में कहा गया है कि पाञ्चरात्र में संप्रदाय में सांख्य एवं योग दर्शन के सिद्धान्त कुट-कुट कर भरे हुए है।[15] शान्तिपर्व में ही नारायण को सांख्य मूर्ते की संज्ञा दी गई है।[16]

महाभारत के शान्तिपर्व में नारायण के दो सौ नामों की स्तुति की गई है जिसमें नारद ने इनको सांख्या मूर्ते नाम से स्तुति (78 सांख्य योग) की।[17] इस साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि पाञ्चरात्र संप्रदाय का सांख्य दर्शन के साथ गहरा संबंध था।

अहिर्बुध्न्य संहिता के सांख्यस्वरूपवर्णनम् में सांख्य शास्त्र के विषय में कहा गया है कि यह शास्त्र महर्षि कपिल के द्वारा वैष्णव संकलप से उत्पन्न हुआ। इसमें सांख्य के दो मुख्य भेदो में साठ प्रकार बताए गए है। प्राक्रत मण्डप में 32 और वैकृतमण्डप में 28।[18] उपर्युक्त धारणा और अधिक स्पष्ट हो जाती है जब अहिर्बुध्न्य संहिता में विभव के जो 39 नाम गिनाए गए है उनमें एक नाम कपिल (सातवा नाम) का भी मिलता है। जो इन दोनों सिद्धान्तों के मिलन का दूसरा महत्वपूर्ण स्त्रोत है।[19]

शैव धर्म के साथ संबंध

जिस प्रकार पाञ्चरात्र संहिताओं में पाञ्चरात्र शाखा का संबंध शुकल यजुर्वेद की एकायन शाखा से माना गया है उसी प्रकार पाशुपतों का संबंध श्वेताश्वर उपनिषद् से माना गया है। इसके प्रणेता एवं प्रमुख आर्चाय श्वेताश्वर को माना गया है। इनको अनेक शैव आगमों का रचियता भी बताया गया है।[20] श्वेताश्वतर कृष्ण यजुवर्कद की एक शाखा है। शौनक ने चरणव्यूह सूत्रम् में इस शाखा का उल्लेख किया है।[21]

महाभारत एवं पुराणों[22] में श्वेद्वीप, श्रीरोद को मेरुपर्वत के उत्तर पश्चिम में बताया है।[23] त्रिपाठी ने अपने ग्रन्थ में श्वेताश्वतर शाखा का प्रचलन क्षेत्र श्वेतद्वीप ही बताया है।[24] महाभारत के उद्योगपर्व में मेरुपर्वत, श्वेतपर्वत, श्रीरोद तट, पाताल आदि में कश्यप एवं

कद्रू के नागवंशीय अश्वतर कुल का आधिपत्य बताया है जिन्होंने शिव की कठोर तपस्या कर ऋषितत्व प्राप्त किया था।[25] वायु पुराण में पाशपुत शाखा का प्रणयन श्वेतया श्वेताश्वतर नामक नर ऋषि द्वारा बताया गया है। कूर्म पुराण में भी श्वेताश्वतर का उल्लेख महामुनि के रूप में हुआ है।[26]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पाञ्चरात्र एवं पाशुपत संप्रदाय का उद्‌भव एक ही स्थान पर लेकिन अलग-अलग परंपरा में हुआ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पाञ्चरात्र एवं पाशुपत मत की श्वेताश्वतर शाखा एक लम्बे समय तक श्वेतद्वीप में लोकप्रिय रही होगी और श्वेतद्वीप इन दोनों संप्रदायों की जन्म भूमि रही है शतरूद्रीय परंपरा पाशुपतागम की सबसे प्राचीन शाखा है। पाशुपतों ने एवं पाञ्चरात्रों दोनों ने ही आगमिक प्रेरणा पुरुष सूक्त से ग्रहण की।[27] पुरुष सूक्त एवं पाशुपतागमों में गहरा संबंध है ऐसा माना जाता है कि श्वेताश्वतर उपनिषद ने इसे यथावत ग्रहण कर लिया है।[28] अहिर्बुध्न्य संहिता के अध्ययन से हमें यह आभास होता है कि इस ग्रन्थ का ज्ञान नारद ने अहिर्बुध्न्य (रूद्र, शिव) से लिया। इसमें हमें ग्यारह रूद्रों का उल्लेख मिलता है जिनमें से अहिर्बुध्न्य सात्विक रूद्र (शिव) माने गये हैं। इस प्रकार के साक्ष्यों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संभवतः अहिर्बुध्न्य संहिता कश्मीर में जिस समय लिखी गई। श्रेडर महोदय का भी यही मानना है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि इस ग्रन्थ की रचना के समय वैष्णव पा०चरात्रिको और शैव में आपस में समन्वात्मक संबंध था।

महेश्वर तन्त्र परंपरा में तो यह ग्रन्थ पाञ्चरात्र साहित्य में गिना जाता है लेकिन इसकी भूमिका के अध्ययन से आभास होता है कि इसमें पाञ्चरात्र तन्त्र की निन्दा की गई है और शिव तन्त्र की महिमा का वर्णन हुआ है। इस ग्रन्थ में पाञ्चरात्र को विष्णु प्रोक्त तन्त्र बताया गया है जो संख्या में पच्चीश है- इसमें इन्हें यह तन्त्र उन लोगों के लिए बताया है जो वेद मार्ग से स्खलित (गिरा हुआ, पतित) हो गए थे। इस ग्रन्थ में पाञ्चरात्र शास्त्र पर यह आरोप लगाया गया है क्योंकि ये (पाञ्चरात्र आदि) समय पर ही उपकारक होते हैं। इस प्रकार इसमें हम यह पाते हैं कि शिव तन्त्र को अन्य तन्त्रों जिसमें पाञ्चरात्र तन्त्र भी शामिल है से श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए लिखी गई है और इसे अन्य तन्त्रों के प्रति दृष्टि असहिष्णु दिखाई पड़ती है।[29]

विद्वानों का मानना है कि नारायण ने पांच रात्रों में जिसका ज्ञान दिया उसे पाञ्चरात्र शास्त्र कहते हैं। यथा ब्रह्मरात्र, शिवरात्र, इन्द्ररात्र, ऋषिरात्र एवं बृहस्पतिरात्र। इसमें एक रात्र का नाम शिव के नाम पर रखा गया है। ऐसा माना जाता है कि इस रात्र का ज्ञान शिव ने नारायण से प्राप्त किया था उसी का ज्ञान शिव ने सनत्कुमार को दस अध्याय में दिया था। उसी को सनत्कुमार ने संकलित किया। इस प्रकार पांच रात्रों में एक रात्र का नाम शिव के नाम पर होना इनके गहरे संबंधो की ओर संकेत करता है।[30]

शिवरात्र के प्रथम अध्याय में देवी देवताओं को ग्राम में कहा स्थापित किया जाना चाहिए जिससे गांव की भौतिक उन्नति होगी इसका वर्णन यहा देखने को मिलता है। इसमें ग्राम के मध्य में अग्नि एवं ब्रह्म देव का, ग्राम के उत्तर में कुबेर, सूर्य, अश्विनी कुमार, सोम एवं कार्तिकय का, दक्षिण में गणेश एवं यमराज का, पूर्व एवं पश्चिम में श्री, श्रीलक्ष्मी का, ग्राम के आग्नय कोण में दुर्गा का इत्यादि देवी एवं देवताओं की स्थापना करने से ग्राम की भौतिक उन्नति होती है अगर उपयुक्त विधि से स्थापना नही की जाती तो उस ग्राम का विनाश हो जाता है। इसमें सबसे विचारणीय बात यह है कि इस रात्र का नाम शिव रात्र होते हुए भी ऐसा कहा गया है कि अगर रुद्र/शिव मूर्ति की स्थापना ग्राम से 100 धनुष की दूरी पर की जानी चाहिए। दूरी कम होन पर उस ग्राम का विनाश हो जाता है।

शाक्त आगम के साथ संबंध

वैष्णव, शैव धर्मो के साथ-साथ शाक्त संप्रदाय भी अत्यन्त लोकप्रिय रहा। शाक्त संप्रदाय में शक्ति को इष्टदेवी मानकर इसकी पूजा की जाती है। इस संप्रदाय ने देवसमूह में देवीयों को स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शाक्त संपदाय ने दुर्गा को आदिशक्ति स्वीकार कर उन्हें जगत का पालन एवं संहारकर्ता के रूप में मान्यता प्रदान की। शाक्त संप्रदाय के अवलोकन से ऐसा आभास होता है कि इस संप्रदाय में शक्ति को दूर्गा के समान ही काली, चामुण्डा, भवानी, रुद्राणी, लक्ष्मी तथा सरस्वती आदि नामों से संयुक्त किया गया है।[31]

जिस प्रकार शाक्त संप्रदाय में नारी को देवी (दुर्गा) शक्ति के रूप में मान्यता प्रदान की उसी प्रकार पाञ्चरात्र संप्रदाय ने भी नारी को देवी (लक्ष्मी) शक्ति के रूप स्वीकारा। इस दृष्टिकोण से पाञ्चरात्र संप्रदाय का शाक्त संप्रदाय के साथ भी घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है। इन दोनों संप्रदाय के संबंधों के विषय में लक्ष्मीतन्त्र में विस्तार से वर्णन आया है। अन्त में हम जैन धर्म के विषय

में यह कहेंगे कि इनसे इन्होंने अहिंसा का सिद्धान्त ग्रहण किया। महात्मा बुद्ध को नौवीं शाताब्द के आस-पास विष्णु का ही अवतार मान लिया गया।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह कह सकते हैं कि पाञ्चरात्र संप्रदाय ने जिस प्रकार की ग्रहणशीलता दिखाई देती है। वह अन्य किसी मत या संप्रदाय में दिखाई नही देती। अवतारवाद के सिद्धान्त ने उत्तर, मध्य एवं दक्षिण भारत के स्थानिए देवता को विष्णु का ही अंश माना गया। इस प्रकार की अवस्था ने पुरे भारतवर्ष में आज विष्णु नारायण की पूजा बडे ही हर्ष एवं उल्लास के साथ की जाती है। जिसने भारतीय सांस्कृतिक एकीकरण का आधार तैयार किया। इस संप्रदाय में लक्ष्मी देवी का महत्वपूर्ण स्थान है। इस संप्रदाय में लक्ष्मी को विभिन्न रूपों के रूप के नामों से जाना जाता है जो यह दर्शाता है कि इस संप्रदाय में भारत की विभिन्न जन-जातीयों को इसमें शामिल कर लिया गया। क्योंकि जन जातियों में ही नारी की पूजा की जाती है। लक्ष्मी देवी जिन्हे अन्य नामों से भी जाना जाता है। आज भारत के प्रत्येक भाग में पूजा की जाती है। अन्य मतों को इसमें स्थान दिया गया। अहिर्बुध्न्य संहिता के अध्ययन से हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि सांख्य, योग, शैव, पाशुपत, बौद्ध, वेद, आरण्यक आदि सभी मतों का प्रचार विष्णु ने ही अपने संकल्प से समय-समय पर किया। इस प्रकार के मतों ने इस एकीकरण को और अधिक गहराई प्रदान करने में अहम भूमिका निभाई।

भारतीय संस्कृति का जब कभी भी विदेशी शासन के दौरान (तर्की, मुगल, ब्रिटिश)भारतीय सांस्कृतिक की मिटाने की कोशिश की गई। आधुनिक काल में भारतीयों को ईसाईकरण करने का प्रयास किया गया। इन आक्रमणों के बावजुद भी और अधिक मजबुती से इसका सामना किया। राजाराम मोहनराय, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती इत्यादि ने इसमें सुधार किया तो पश्चिमी विद्वान पोल हैकर ने भी माना की जब से न्यु वैदान्त उठ खडा हुआ है तब से हिन्दुओं का ईसाइयों में धर्मान्तर करना मुश्किल हो गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हयशीर्ष पाञ्चरात्र आदिकाण्ड, पी० भवन मोहन सांख्य तीर्थ, वीरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही, 1952, अ० 2, श्लोक 3-6
2. महाभारत, शान्तिपर्व अ० 335, 7-20
3. मिश्र रामप्यारे, वैष्णव पाञ्चरात्र आगम, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृ० 115-130
4. लक्ष्मी तन्त्र, अ० 4
5. वही
6. भार्गव तन्त्र, सं० कपिलदेव नारायण, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2012, पृ० प्रस्तावना
7. अगस्त्य संहिता, भूमिका
8. स्मिथ डैनियल,डिस्क्रिप्टइव विब्लोग्राफी ऑफ दा प्रिंटेड टैंक्स्ट ऑफ दा पाञ्चरात्रागम, ओरियंटल इंस्टिट्युट, बड़ोदा, 1975, पृ० 1-30
9. शाण्डिल्य संहिता, अ० 1 खण्ड़ 4, श्लोक 75-78
10. भारद्वाज संहिता, अ० 2, श्लोक 12-13
11. अहिर्बुध्न्य संहिता, अ० 11, श्लोक 62-64
12. पाद्म संहिता, चर्यापाद, अ० 1
13. अनिरुद्ध संहिता, अ० 1, श्लोक 35-38
14. अहिर्बुध्न्य संहिता, अ० 12
15. महाभारत, शान्तिपर्व, अ० 339, श्लोक 111-112
16. वही
17. वही
18. अहिर्बुध्न्य सहिता, अ० 12, श्लोक 18-30
19. वही, अ० 5, श्लोक 50-51
20. जयाख्य संहिता, आमुख, पृ० 15, 109,116; कूर्मपुराण, अ० 12 श्लोक 23-40
21. चरणव्यूह सूत्रम्, चौखम्भा बनारस, 1938, पृ० 31; श्वेताश्वतर उपनिषद 6, 21

22. स्कन्द पुराण, वैष्णवखण्ड, अ० 4, 7-9-19; अग्नि पुराण, अ० 107,7; वायु पुराण, पूर्वखण्ड, अ० 3,46; अ० 11, 38-39; मत्स्य पुराण, अ० 122, 49
23. स्कन्द पुराण, वैष्णवखण्ड, अ० 4, 7-9-19; अग्नि पुराण, अ० 107, 7; वायु पुराण, पूर्वखण्ड, अ० 3,46, अ० 11, 38-39; मत्स्य पुराण, अ० 122, 49
24. त्रिपाठी, वही, पृ० 12
25. महाभरत, अ० 99, 11, अ० 103, 8-16
26. वायु पुराण, अ० 22, 3-20; कूर्मपुराण, अ० 14, 23-40
27. सूतसंहिता, भाग, 3, 4; यज्ञवैभावखण्ड, ब्रह्मगीत
28. त्रिपाठी, वही, पृ० 32; कुर्मपुराण, अ० 15, 84, 115, 118, 119
29. महेश्वर तन्त्र, भूमिका
30. सनत्कुमारसंहिता, शिवरात्र, अ० 1, तिथियाग
31. श्रीवास्तव, के० सी०, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, युनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2015 पृ० 812

पंचगव्य का औषधीय विवेचन एवं उपादेयता

डॉ० लता शर्मा

सह आचार्य संस्कृत, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर

धर्मप्रधान भारतीय संस्कृक्ति स्वार्थ की अपेक्षा परार्थ की भावना पर आधारित है। व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि का प्राधान्य इसकी विशेषता है। यही कारण है कि हमारे पूर्वज ऋषियों द्वारा ऐसी व्यवस्था बनाई गई कि व्यक्ति जितना स्वयं भोग करे उससे अधिक प्रकृति को प्रदान करे और जो उपभोग करे उसका भी पूर्व समर्पण ईश्वर के प्रति हो। यही कारण है कि यहाँ प्रारम्भ से ही प्रत्येक उपलब्धि को ईश्वर को समर्पित किया जाता है। प्रत्येक त्यौहार में ईश्वर को समर्पित करते हुए विविध पूजन एवं यज्ञ-यागादि किये जाते हैं और यज्ञावशिष्ट को ही ग्रहण करना परम धर्म कहा गया है।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

यजुर्वेद-40/1/2 ईशावास्योपनिषद्[1]

ईश्वर के प्रति समर्पण की अभिव्यक्ति पूजा-विधान व यज्ञ में दिखाई देती है। मानव की मूल प्रवृत्तियों का शोधन होकर निःश्रेयस् की सिद्धि हो यह तो पूजन-विधान का मानसिक एवं आध्यात्मिक पक्ष है ही किन्तु इसका भौतिक पक्ष भी है जो मानव के लौकिक कल्याण एवं कर्मों के शोधन से सम्बद्ध है। उस ही पक्ष पर विशेष रूप से इस शोध-पत्र में प्रकाश डाला गया है।

सभी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान अथवा यज्ञ-यागादि पंचगव्यपान के अनन्तर ही प्रारम्भ किये जाते हैं। पंचगव्य में प्रयुक्त पाँच पदार्थ हैं गोदुग्ध, गोदधि, गोधृत्त, गोमूत्र एवं गोमय।

गोदुग्ध बलवर्धक, बुद्धिवर्धक, नेत्रज्योतिवर्धक, तुष्टिकारक, वीर्यवर्धक, कान्तिजनक, स्निग्ध एवं सुपाच्य होता है। साथ ही रक्तपित्त व कृमि नाशक, अतिसार, उदावर्त, जीर्ण ज्वर, मनोव्यथा, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, अर्श, पाण्डु (पीलिया), क्षय (टी.बी.), हृदय रोग, गुल्म, श्वास रोग, उदरशूल, सूखा रोग जैसे रोगों का शमन करता है। कहा गया है गाय के थनों से निकला दूध पीने से सर्व रोग दूर हो जाते हैं-

धारोष्णमृतोपमम्

क्षीरात्परं नास्ति हि जीवनीयम्

चरक संहिता के अनुसार गाय के दूध में दस गुण होते हैं।

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।

गुरू मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः।।

चरकसूत्र *27/217*

प्रातः कालीन (सूर्योदय काल में दुहा गया) दूध तथा संगव (दोपहर में दुहा गया दूध) तथा सायंदोह (सायं काल में दुहा गया दूध) अलग-अलग गुण रखता है। इसके पीने का काल भी अलग अलग गुणकारक होता है। गाय के दूध सेवन से निर्बल सबल व स्वस्थ, निस्तेज-तेजस्वी हो जाता है।

यूथ गावो भेदयथा कृशं चिद श्रीर चित्कृणुथा सुपत्रीकम।

भद्रं गृहं कृणुथ ब्रहद्वी वयं उच्यते सभासु।।

अथर्ववेद-4.2.16

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार गाय के दूध में विटामिन ए, बी, सी, डी व ई की भरपूर मात्रा पाई जाती है और जो मांसाहार नहीं करते उनके लिए यह उत्तम जैव प्रोटीन प्रदाता है।

गोदधि- सुश्रुत संहिता के अनुसार दधि के गुण हैं-

स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्धनम्।
वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुचिप्रदम्।।
सुश्रुत सूत्र 45/67-68

यह वातजन्य, अर्श, त्रिदोष, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, उदरशुल, सूर्यावर्त (आधा सीसी) जैसे रोगों का नाशक है। कुछ अन्य औषधीय द्रव्यों के साथ मिलकर सेवन करने से यह भंयकर विष का शमन करने में भी समर्थ हो जाता है। यदि काँच पेट में चला जाए तो पेट भरकर गोदधि खिलाने से वह निकल जाता है।

गोघृत आयुर्वेद में प्रयुक्त आयुर्वैधृतम् पंक्ति वस्तुत: गोघृत के सेवन मात्र को आयु का पर्याय कहती है। सुश्रुत संहिता के अनुसार-

विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम्।
चक्षुष्यमग्रयं बल्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम्।।
सुश्रुत सूत्र 45/97

यह मधुर, शीतल, वात व पित्त दोष और विष का नाशक, नेत्रज्योति वर्धक और सामर्थ्यवर्धक कहा गया है। यह और, नाक, कान के रोगों में खाँसी, जुकाम नजालाको मूर्च्हा, ज्वर तथा बाल तिजन्य दोषी को दूर करता है। पुराने गोघृत की तलवे सिर पर मालिश करने से पुराना ज्वर भी उतर जाता है। गोधृत जितना पुराना हो उतना ही गुणकारी होता है। इसलिए दस वर्ष पुराना घी जीर्ण, सौ वर्ष पुराना घी कौम्भ तथा ग्यारह सौ वर्ष से भी पुराने घी की महाघृत संज्ञा कही गई है।

गव्यं सुमधुरं किंचिद् दोषघ्नं कृमिकृष्ठनुत्।
कण्डूं च शमयेत् पीतं सम्यग्दोषोदरे हितम्।।
चरकसूत्र-1/101

कृमिरोग, कुष्ठरोग, खुजली, प्लीहारोग नाशक, स्नायविक विकार का शमन करता है। यह कटु, तीक्ष्ण, खारा, कसैला, आंशिक मधुर, पित्तवर्धक व मेदक होता है। गोमूत्र से असंख्य रोगों की चिकित्सा सम्भव है और गुर्दे (किडनी) के रोगों की महाऔषधि है। इसमें कार्बोलिक एसिड, पोटैशियम, कैलशियम, मैग्नेशियम, फास्फेट, पोटाश, अमोनिया, किएटिनिन नाइट्रोजन, लैक्टोज पाया जाता है।

गोमूत्र एक अत्यन्त सशक्त जैव उर्वरक भी है और उच्च क्षमता युक्त कीटनाशक व कीट नियन्त्रक भी है। जिसका प्रयोग भारत जैसे कृषि प्रधान देश में अत्यंत लाभकारी हो सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक शोध रिपोर्ट में कहा गया है कि आने वाले कुछ दशकों में ही सभी प्रकार की एंटीबायोटिक दवाइयाँ प्रभावहीन होने लगेंगीं क्योंकि रोगाणु अपने अन्दर प्रतिरोध क्षमता विकसित कर लेते हैं। ऐसे में गोमूत्र एक नया जैव औषध हो सकता है। प्रत्युत गोमूत्र, नीम, लहसुन के संयोग से उत्पन्न जैव खाद का तो पेटेण्ट भी करवा लिया गया है।

गोमय- गोमय सभी प्रकार के रोगाणु, कीटाणुओं का नाशक है। इस कारण सर्वत्र गोमय से पृथ्वी को पोतकर रोगमुक्त करने का विधान पूजन से पूर्व प्राप्त होता है। गोमय में लगभग पाँच सौ प्रकार के जीवाणु होते हैं जो रोगमुक्त एवं वातावरण को प्रदूषण मुक्त करने में सक्षम होते हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक सर जेम्स मार्टिन ने गाय के गोबर में खमीर व समुद्री जल मिलाकर एक उत्प्रेरक बनाया जिससे बंजर भूमि भी उर्वरा हो गई। गोबर हानिकारक रेडिएशन को रोकने की अद्भुत क्षमता रखता है। गोबर में मेंथाल, फिनालोइण्डौल, अमोनिया, नाइट्रोजन, पोटाश, फास्फोरिक अम्ल आदि रसायन पाए जाते हैं जो वातावरण की शुद्धि में बहुत लाभदायक हैं। गोमय कण्डों से गोघृत के साथ यदि हवन किया जाता है तो एथिलीन ऑक्साइड, फारमेल्डीहाइड गैस तथा प्रोपीलीन ऑक्साइड गैस घूम रूप में विसर्जित होती हैं। इसमें से प्रथम दो गैस जीवाणुनाशक है और ऑपरेशन थियेटर को रोगाणुमुक्त रखने में काम ली जाती है। प्रोपीलीन आसपास के वातावरण की शद्धि तथा जलवर्षा का हेतु बनती है। गोमय की राख भी गुणकारी औषधि है इस प्रकार गाय से प्राप्त प्रत्येक सत्य आपन्त उपयोगी है और इसलिए ही उन्हें माता की संज्ञा भी प्राप्त है-

गायो विश्वस्य मातर
गोमूत्र गोमयं सर्पिः क्षीरं दधिच।।
रोचना षडंगमेतत् परमं मंगल्यं सर्वदा गवाम्।
विष्णु संहिता 23/58-59

लौगाक्षिस्मृति तथा पाराशरस्मृति आदि में पंचगव्य निर्माण की विधि उल्लिखित है। तदनुसार भिन्न वर्णो की गायों से भिन्न-भिन्न पदार्थ ग्रहण कर पंचगव्य बनाना चाहिए। उपलब्धता ना हो तो स्वर्ण-वणा गो से सभी पदार्थ प्राप्त करने चाहिए।

गोमूत्रं ताम्रवर्णाया: श्वेतायाश्चौव गोमयम्।
पय: कांचनवर्णाया: नीलाया: एव वै दधि।।
घृतं तु सर्ववर्णाया: सर्व कापिलमेव वा।
लौगाक्षिस्मृति

इसमें एक-एक भाग घृत, गोमूत्र, दो भाग दधि, तीन भाग दूध तथा आधा भाग गोमय का होना चाहिए। उसे भी वेदमन्त्रों से अभिमन्त्रित किया जाए तो वह विशेष उपकारी होता है। इस प्रकार पंचगव्य से शोधित शरीर तथा स्थान सर्वथा पूजन योग्य हो जाते हैं। प्रतिदिन के पूजन विधान में जो

निष्कर्षत: जो भी परम्पराएँ प्रचलित हैं और जिन वस्तुओं का प्रयोग पूजन-विधान तथा यज्ञ-यागादि में किया जाता है वे सभी भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, दृष्टि से सुविचारित एवं ज्ञात हैं। वर्षों तक बिना किसी जाँच परख के रीति के रूप में मानते चले आ रहे हम लोग उस विषय का विवेचन करने अथवा सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि से दूर हो गए हैं। बस यही कारण है कि उन परम्पराओं अथवा सामग्री को व्यर्थ समझने लगते हैं लेकिन उन्हें व्यर्थ न मानकर यदि हम महत्वबुद्धि से उसका विश्लेषण करें तो पाएँगे कि एक भी वस्तु अथवा प्रक्रिया व्यर्थ नहीं है। इस प्रकार के महत्तवपूर्ण पदार्थ यदि नित्य रूप से हमारे पूजन-विधान का अंग बनें तो उनकी उपस्थिति घर में अपरिहार्य होगी और यदि इनकी उपस्थिति हुई तो हम निस्सन्देह आरोग्य प्राप्त कर उच्च आध्यात्मिक अनुभव को प्राप्त कर सकेगें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 अथर्ववेद संहिता - पं रामस्वरूप शर्मा, चौक बनारस
2 महाभारत - गीता प्रेस गोरखपुर
3 चरक संहिता -व्याख्याकार पं काशीनाथ शास्त्री,चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
4 सुश्रुत संहिता - सुश्रुत,सं कविराज अम्बिका दत्त शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
5 नित्यकर्म पूजा प्रकाश- पं लाल बिहारी मिश्र, गीता प्रेस गोरखपुर
6 भावप्रकाश - डॉ अजय कुमार, डॉ टीना सिंघल
7 अग्नि पुराण - गीता प्रेस गोरखपुर
8 वेदों में पर्यावरण चेतना - डॉ नन्दिता सिंघवी, सोनाली पब्लिकेशन, जयपुर
9 यज्ञ: एक समग्र उपचार प्रक्रिया - आचार्य श्रीराम शर्मा, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
10 संस्कृत विज्ञान दीपिका -निर्मल त्रिखा, ईस्टर्न बुक लिंक्स, दिल्ली

कृष्णा सोबती का लेखनः चारित्रिक अमरता का प्रतीक

डॉ० रामाशंकर कुशवाहा

सहायक प्राध्यापक, दयाल सिंह कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)

हिंदी साहित्य के इतिहास में कृष्णा सोबती एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनके 'चरित्र' साहित्य में अमरता को प्राप्त कर गए हैं। उदहारण के लिए एक चरित्र है मित्रो। 'मित्रो मरजानी' उपन्यास की प्रमुख चरित्र 'मित्रो' की भूमिका पाठक को मुग्ध कर देती है। वह ऐसे गढ़ी गयी है कि उसे जितनी बार, जितने तरीके से पढ़िए, हर बार अलग लगती है। उसके मुल्कन को लेकर बार-बार सवाल यह उठता है कि 'मित्रो' कौन है? क्या है उसमें ऐसा क्या है जो पूरी व्यवस्था को हिलाये रखती है? जब आप गहराई में जाते हैं तो पता चलता है कि मित्रो 'पितृसत्तात्मक व्यवस्था' का 'उत्पाद' न होकर अपने मूल स्वाभाव में सबसे 'पहले मनुष्य' है। सिमोन के कथन- 'स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है'- के आलोक में 'मित्रो' को आसानी से समझ सकते हैं।

इस उपन्यास में मित्रो के साथ चार स्त्री चरित्र और हैं- धनवन्ती, सुहाग, फूलां और बालो। इसमें धनवन्ती, सुहाग और फूलां उस संरचना में पली बढ़ी हैं, जहाँ स्त्री 'बनाई जाती' है। धनवंती का यह कहना कि- 'समित्रावन्ती, इसे जिद चढ़ी है तो तू ही आंख नीची कर ले। बेटी, मर्द मालिक का सामना हम बेचारियों को क्या सोहे?'[1] उसके पितृसत्ता के कारखाने में बने होने का प्रमाण है। इस वक्तव्य पर ध्यान दें तो यह एक स्त्री का दूसरी स्त्री के लिए सुझाव न होकर पितृसत्तात्मक मूल्यों का ही पोषण है। धनवन्ती स्त्री होने के बावजूद पितृसत्तात्मक व्यवस्था की एजेंट की तरह कार्य करती है। उसे उस व्यवस्था ने अनुकूलित कर लिया है।'[2] जैसा कि सिमोन अपनी पुस्तक 'द सैकेंड सेक्स' में कहती हैं- 'औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बने रहने के लिए उसे अनुकूल किया जाता है।'[3] परंतु 'मित्रो' उस कारखाने का उत्पाद ही नहीं है। 'मित्रो मरजानी' अपने समय का ऐसा उपन्यास है, जिसे साहित्यकार एवं आलोचकों से अधिक पाठकों ने सम्मान दिया। इस रचना के केंद्र में 'मित्रो' है, जो परिवार में रहकर पारिवारिक व्यवस्था से अलग दिखाई देती है। उपन्यास के अन्य चरित्र यह सिखाते हैं कि वह कैसे अलग है।

भारतीय परिवार एवं समाज में स्त्री का आत्मनिर्णय, उनकी इच्छाएं, वरण की स्वतंत्रता आदि विषय के लिए कोई जगह नहीं है। यदि कोई स्त्री इन वर्जित क्षेत्रों में प्रवेश करती है तो वह कुलटा कहलाती है। लेकिन 'मित्रो' को किसी सर्टिफिकेट की दरकार नहीं। हालांकि मित्रो की यह दैहिकता सुहाग को भी रास नहीं आती है। सुहाग के अनुसार स्त्री में 'हया' का होना जरूरी है। इसलिए बहुत सुलझी हुई सुहाग मित्रो के स्वाभाव को लेकर बहुत कठोर बात कहती है- 'इस कुलबोरन की तरह जनानी को हया न हो तो नित-नित झूठी होती औरत की देह निरे पाप का घट है।'[4]

'मित्रो' जैसे चरित्र की उपस्थिति परिवार से लेकर साहित्यिक बिरादरी तक में खलबली मचा देती है। मित्रो के साहित्य में आगमन को लेकर एक वक्तव्य दृष्टिगोचर है- ''मित्रो' के जैसा किरदार हिंदी साहित्य में आ सकता है, इतने दबंग तरीके से आ सकता है और अपने बल पर पाठकों के बीच खुद को स्थापित कर सकता है.....यह देखकर हिंदी के साहित्यिक समाज को झटका सा लगा था।'[5] 'मित्रो' का निर्माण उस फैक्ट्री में हुआ ही नहीं जहाँ स्त्री बनाई जाती है। यह 'नहीं' बनना ही उसकी पहचान है। वह स्वतंत्र होकर जीती है। अपनी जेठानी से कहती है- 'मेरे चहेते जेठ की महारानी! जिस पर जो चढ़ा है चढ़ा रहे, मुझ पर तो सींगोवाला भूत चढ़ा है।'[6] अपने इसी स्वाभाव के कारण वह 'पारिवारिक ढांचे में फिट नहीं बैठती। मित्रो की चारित्रिक विशेषता के बारे में आलोचक/साहित्यकार डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं- 'चरित्र की दृष्टि से मित्रो अभूतपूर्व पात्र है। इस गृहस्थी में पता नहीं कहां से टपक पड़ी है, उसने सब कुछ अस्त-व्यस्त कर दिया है।'[7]

भारतीय समाज विवाह और संतति को अंतिम सत्य की तरह मानता है। कभी सामाजिक सुरक्षा तो कभी शारीरिक जरूरत आदि शब्द देकर स्त्री को ऐसा करने के लिए बाध्य करता है। स्त्री से त्याग और समर्पण की अपेक्षा करते हुए लगातार उसके अधिकारों से वंचित किये रहता है। इस तरह के संघर्षों को कृष्णा सोबती अच्छे से जानती थीं। इसीलिए उन्होंने मित्रो को पुरुषवादी सोच के खिलाफ एक चुनौती की तरह खड़ा किया है। 'मित्रो' की दैहिक चेतना इन परंपराओं एवं नैतिकताओं के आवरण को चीरते हुए ऐसे प्रश्न उपस्थित कर देती है कि आदमी असहज हो जाता है। मित्रो के विषय में बात करते हुए कृष्णा सोबती कहती हैं- 'मित्रो 'व्यक्ति' की जिस छटपटाहट का प्रतीक है, वह यौन उफान ही नहीं, व्यक्ति की अस्मिता का भी अक्स है, जिसे नारी की पारिवारिक महिमा में भुला दिया जाता है।'[8] यह पारिवारिक चक्र एक प्रकार का सामाजिक 'फ्रेम' है, जिसे तोड़ने वाला हमेशा कटघरे में दिखता है।

शादीशुदा मित्रो अपने उन्मुक्त व्यवहार के कारण सबको खटकती है। खासकर उसकी सास और जेठानी उससे यह उम्मीद करती हैं कि मर्दों के सामने मित्रो को 'बहू' की तरह पेश आना चाहिए। परम्परा के अनुसार 'बहू/बेटियों को घरेलू शिक्षा घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ देती हैं। मित्रो की सास कहती हैं- 'समित्रारानी, माथे का कपड़ा तनिक नींवा कर ले, बेटी! तेरे ससुर-जेठ बैठे हैं!'[9] सास की इस सीख से मित्रो को रत्ती भर फर्क नहीं पड़ता। व्यवहार से ऐसा लगता है कि मित्रो पुरुष और स्त्री में कोई भेद ही नहीं करती है। उसे तो ईश्वर का भी डर नहीं। सुहाग जब ये कहती है- "यह राह-कुराह छोड़ दे, बहना। एक दिन सबको उस न्यायी के दरबार में हाज़र होना है!'[10] तो मित्रो आंख नचाते हुए कहती है- 'काहे का डर? जिस बड़े दरबारवाले का दरबार लगा होगा, वह इन्साफी क्या मर्द-जना न होगा? तुम्हारी देवरानी को भी हांक पड़ गई तो जग-जहान का अलबेला गुमानी एक नज़र तो मित्रो पर भी डाल लेगा!'[11] मित्रो को अपने शारीर पर इतना गुमान है कि विश्वास के साथ कहती है कि 'बड़े दरबार वाला' भी उसे एक नजर जरूर देखेगा। पुरुष की कमजोरी और सौन्दर्य के प्रति आसक्ति के प्रति वह निश्चिन्त है। तभी तो सुहाग्वान्ति से कहती है- 'मैं सदके-बलिहारी! अपने जेठ की सती-सावधी नार पर! जिठानी, मेरे जेठ से कह रखना, जब तक मित्रो के पास यह इलाही ताकत है, मित्रो मरती नहीं।'[12] यहाँ मित्रो का व्यावहारिक मनोविज्ञान सराहनीय लगता है। वह जानती है पुरुष जल्दी आसक्त हो जाता है।

जब ससुर के दरबार में उसकी पेशी होती है तो जेठानी उसे समझाती है। लेकिन मित्रो चुप रहना नहीं जानती। उसमें पारिवारिक जीवन का 'संस्कार' जितना कम है, व्यवहारिक जीवन का अनुभव उतना ही अधिक है। इसलिए वह बिना बात की बात नहीं कहती, बल्कि जो भी बोलती है, उसमें उसका व्यावहारिक ज्ञान शामिल रहता है। अपनी सास से कहती है- 'अम्मा, जिस दाते का नाम लेती हो, उसे आंख से किसने देखा है? असल पैगम्बर तो तुम्हारे बेटे ठहरे, जब चाहें पौदे रोप दें!'[13] यह अलग बात है कि उसका बोलना 'आज्ञाकारी और शालीन बहू सुहाग' के जैसा नहीं है। इसलिए बात-बात पर उसे हिदायत मिलती रहती है।[14]

मित्रो की हाजिर जवाबी घर के पुरुषों को चुनौती की तरह लगती है। जब पारिवार की अदालत में उस पर सवाल किया जाता है तो वह बेखौफ और बेबाकी से उसका जवाब देती है। 'सच तो यूं, जेठ जी, कि दीन-दुनिया बिसरा मैं मनुक्ख की जात से हंस-खेल लेती हूं। झूठ यूं कि खसम का दिया राजपाट छोड़े मैं कोठे पर तो नहीं जा बैठी?'[15] यह जवाब के साथ पति पर व्यंग्य भी है। उसके स्वच्छन्द स्वाभाव को लेकर बार-बार सवाल उठता है, जिसका जवाब वह खुद देती है- 'सात नदियों की तारू, तवे-सी काली मेरी मां, और मैं गोरी चिट्टी उसकी कोख पड़ी। कहती हैं, इलाके के बड़भागी तहसीलदार की मुंहादरा है मित्रो। अब तुम्हीं बताओ, जेठानी, तुम-जैसा सत-बल कहां से पाऊं-लाऊं?'[16] मित्रो के पालन-पोषण में वह भाव नहीं भरा गया जो परिवार व्यवस्था में पली-बढ़ी लड़की के लालन-पालन में अनिवार्य जैसा होता है। क्योंकि मित्रो की मां 'बालो' खुद भी कभी गृहस्थ नहीं रहीं। उन्होंने पुरुष को नियंत्रित करने की कला सीखी थी। पुरुषों के साथ संबंध बनाये थे और यह सब उनकी अपनी बनाई दुनिया में घटित हुआ था, जिसकी मालकिन वह खुद थीं। वहां उन्हीं की सत्ता चलती थी। जिसमें उन्होंने कभी भी पुरुष का वर्चस्व स्वीकार नहीं किया। मित्रो यही देखकर बड़ी हुई थी कि मां के इतने चाहने वाले हैं और मां इन सब पर शासन करती है।

विद्वान मानते हैं कि कृष्णा सोबती ने मित्रो की जरुरतों को प्रस्तुत करने के लिए एक नई भाषा गढ़ी है। मित्रो अपने पति के लिए कहती है- 'मेरा यह बेअकल मर्द-जना यही नहीं जानता कि मुझ-सी दरियाई नार किस गुर से काबू आती है! मैं निगोड़ी बन-ठनके बैठती हूं तो गबरू सौदा-सुल्फ लेने उठ जाता है। अरे, जिसने नार-मुटियार को सधाने की पढ़ाई नहीं पढ़ी, वह इस बालो की बलूगड़ी को क्या सधाएगा?'[17] जैसे वह मित्रो के सौंदर्य को लेकर, शारीरिकता को लेकर, मायके की बोली ठिठोली को लेकर लिखती हैं, उससे मित्रो का व्यवहार और अधिक स्पष्ट हो जाता है। 'मां-बेटी की चुहल' ऐसे सामने आती है जैसे दो सहेलियां हों। इन चरित्रों के माध्यम से कृष्णा सोबती बहुत सहजभाव से संवादों को प्रस्तुत करती हैं। जिसमें शाब्दिक चमत्कार नहीं बल्कि जीवन का संघर्ष, उसकी रूमानियत और दैनिक चर्या शामिल है।

भारतीय पारिवारिक नैतिकता के ढांचे में मित्रो जैसी चरित्र सहज स्वीकार्य नहीं थी। स्त्री के मातृत्व व देवत्व से गढ़ी महिमामंडित छवियों के विरोध में अपनी नसों में बहती कामनाओं व इच्छाओं का पता देते हुए मित्रो एक जगह अपनी जिठानी से कहती है- 'देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता। बहुत हुआ हफ्ते-पखवारे'[18] उसके इस 'खुले-डुले' व्यवहार को शारीरक भूख से जोड़ दिया गया है। हिंदी आलोचना में इसे 'आदिम कुंठाहीनता' का नाम दिया गया है। जबकि यह मित्रो के सहज उद्‌गार हैं। इस संदर्भ में 'निर्मला जैन' लिखती हैं- 'मित्रो व्यक्ति नहीं एहसास है। सामाजिक मर्यादा के साथ देह धर्मिता की टकराहट है।'[19] मित्रो केवल यौनिकता का पुतला नहीं है। वह जानती है कि शारीरिकता ही सम्पूर्णता नहीं है। बल्कि उसके व्यक्तित्व का यह एक हिस्सा मात्र है। लोगों के मन में ऐसा विचार आने का कारण है- मित्रो का साहस, उसकी निडरता और उसका मुखर (आउटस्पोकन) होना, जो है सो है। उसे ये स्वीकारने में जरा भी संकोच नहीं है। उसकी यही स्पष्टवादिता किसी के लिए शर्म या चुनौती होकर भी उसके अपने 'चरित्र का खूबसूरत गहना' की भांति है।

'मित्रो' सिर्फ शरीर नहीं है। उसमें एक प्रमुख गुण है मानवीयता। इस संदर्भ में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं- 'परिवार के विरोध-कलह में वह हमेशा मानवीय रुख अपनाती है।'[20] मित्रो अपने सास-ससुर, जेठ-जिठानी, पति आदि सभी के लिए खड़ी होती है। उनकी मदद करती है। गहने-गट्टे को लेकर झगड़ते वक्त देवरानी फूलां जब अपनी सास को उलटा-सीधा कहती है तो मित्रो उसकी 'पीठ पर थापी दे' उसको धमकाती है कि मैं तुम्हारी सास होती तो तुम्हारे सर के बाल नोच लेती।[21] ससुर का अपमान करते हुए फूलां के भाई 'बिशना' जब कहता है कि- 'पहले अपने बुढ़ऊ ससुर को तो बुला!',[22] तो मित्रो उसको बहुत सलीके से जवाब देती है- 'इतना घमंड न करो, लाला! बाद तुम्हारा बाल रंग-रंग भले जवान रुस्तम बनो, पर याद रख लो मित्रो का कहना, एक दिन वह भी पापड़ बन भुर जाएगा!'[23] फूलां का कपड़ों एवं गहनों का भुख्खापन सुहाग को अपने लपेटे में लेते देख मित्रो का माथा ठनक जाता है। वह फूलां को लताड़ते हुए कहती है- 'मैं तेरी जमदूती, बस! तूने सास से टक्कर ली मैंने माना, पर जिसकी तू जूती-बराबर भी नहीं अब उसकी इज्जत-पत उतारने चली है? अरी, चुपचाप यह गहने अन्दर डाल ले, नहीं तो उनसे भी जाएगी।'[24] मित्रो गलत और सही के भेद को समझती है और यह भी समझती है कि जीवन केवल स्वार्थ का नाम नहीं है।

मित्रो यथाजीवी है। समय की नजाकत को समझती है। उसका यही व्यावहारिक दर्शन उसे ऊँचाई प्रदान करता है। उसे अपने को साबित करने की ताकत देता है। गुलजारी के कारण जब भाइयों मंडी कर्ज चढ़ जाता है, तो ऐसे में सरदारी को परेशान देख मित्रो कहती है- 'महाराज जी, न थाली बांटते हो.न नींद बांटते हो, दिल के दुखड़े ही बांट लो।'[25] सरदारी के बताने पर कि कितना 'देना' चढ़ा है, वह अपने संदूक से पैसे निकालकर उसके सामने रख देती है। कृष्णा सोबती हैं- 'मित्रो ने एड़ियां उठा पड़छत्ती पर से टीन की सन्दूचकी उतारी। ताली लगा लाल पट्ट की थैली निकाली और घरवाले के आगे रख बोली-यह दमड़ी दात परवान करो, लाल जी! कौन इस नांवे के बिना मित्रो की बेटी कंवारी रह जाएगी?'[26] मित्रो को ऐसा करते देख एक पल को सरदारी भी 'हक्का-बक्का' रह जाता है। जो 'बुरों-की-बुरी मशहूर' है, उसकी ऐसी दिलदारी! घटनाओं का क्रम बताता है कि जब, जिसको, जैसी जरूरत पड़ती है, मित्रो सबसे पहले हाजिर रहती है।

मित्रो के स्वभाव में किसी भी चीज को लेकर कहीं भी दब्बूपन या झिझक नहीं है। वह अपने व्यक्तित्व के मूल को खुली बाहों से स्वीकारती है। यदि कोई उसके व्यक्तित्व को 'वैसा होने', जैसा कि 'स्त्री को होना चाहिए', के आधार पर प्रश्नांकित करता है तो वह उसी को कठघरे में लाकर खड़ा कर देती है। जब उसकी सास अपने घर में संतान न होने की शिकायत करती हैं तो मित्रो उनसे कहती है- 'मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूं, पर, अम्मा, अपने लाडले बेटे का भी तो आड़-तोड़ जुटाओ! निगोड़े मेरे पत्थर के बुत में भी कोई हरकत तो हो!'[27] मित्रो की मां 'बालो' अपने जीवन में कभी बेबस स्त्री की तरह नहीं दिखाई देती हैं। अपने चाहने वालों के साथ रास-रंग ही उनके जीवन की सच्चाई थी। लेकिन उस जीवन की अस्थिरता और सम्मान हीनता से भी वह बखूबी परिचित थीं। इसलिए मित्रो को उस जीवन से अलग वैवाहिक जीवन की तरफ ले गयीं। वह चाहती थीं कि मित्रो को सुख के साथ स्थिरता भी मिले।

मित्रो में पारंपरिक एवं सेवा परायण स्त्री की जगह मनुष्यता के भाव हैं। उसकी जुबानी मुखरता, अदम्य दैहिक आकांक्षाएं, बोली-ठोली, पल-पल एक नई चुनौती, इन सारी टकराहटों के बावजूद कोई उससे घृणा नहीं कर पाता है। इसका प्रमुख कारण है उसकी मानवीयता तथा वास्तविकता, जिस पर रीझते हुए गुरुदास कहते हैं - 'सच पूछ तो इस घर की रौनक तो् मंझली बहू! भले

बोली-ठोली में तेज-तर्रार, पर उठते-बैठते चहकती-कुहकती तो है!'[28] मित्रो की अभूतपूर्वता को लेकर डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं- 'मित्रो इसलिए भी अभूतपूर्व है कि बहुत सहज है। यह अभूतपूर्वता असामान्यता नहीं, वास्तविकता से उपजी है।'[29] 'कृष्णा सोबती के चरित्रों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह हाड़ मांस से बनी धड़कती हुई जीवित इकाइयां हैं। जो केवल शारीरिक इकाई ही नहीं बल्कि चैतन्यता का प्रमाण भी हैं,'[30] जिसका सटीक उदाहरण मित्रो है। 'मित्रो मरजानी' तथा कृष्णा सोबती के लेखन की सार्थकता इसी में है कि हम ये जान पाएं कि मित्रो जैसी स्त्रियां भी हैं जो स्त्री अस्मिता एवं स्त्री मुक्ति की रूढ़ होती परिभाषाओं को चुनौती देती हैं। वे ये जान और समझ पाती हैं कि अपनी मन मर्जी से जीना, किसी के अधीन न होना भी ताकत है, सामर्थ्य है।'[31] कृष्णा सोबती के लेखन की महत्ता पर आशुतोष अपने लेख में लिखते हैं- 'उनका लेखन स्त्रियों की खुदमुख्तारी के लिए एक प्रकार का सृजनात्मक सत्याग्रह है।'[32]

संदर्भ

1. कृष्णा सोबती- मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2018, पृ. 12।
2. आशुतोष, मित्रो मरजानी: कथा में नयी स्त्री का जन्म, पृ. 120।
3. प्रभा खेतान- स्त्री उपेक्षिता, हिन्द पॉकेट बुक्स, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण-2002, पृ. 21।
4. कृष्णा सोबती- मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2018, पृ. 18।
5. अशोक वाजपेयी https//bbc.com m।
6. कृष्णा सोबती- मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण- 2018, पृ. 41।
7. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी- कुछ कहानियां कुछ विचार', राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1998, पृ. 77।
8. डॉ ओम निश्चल- शबद भेद- कृष्णा सोबती- https://samalochan.blogspot.com/2019/06/blog-post.html?m=1.
9. कृष्णा सोबती- मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2018, पृ. 33।
10. वही. पृ. 82।
11. वही. पृ. 82-83।
12. वही. पृ. 19।
13. कृष्णा सोबती- मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-2018, पृ. 65।
14. 'भगवान् के लिए वहां अवा-तवा न बकना, मंझली!...बड़े सयाने जो कहेंगे, सुन लेना!'- वही. पृ. 32.
15. वही. पृ. 36।
16. वही. पृ. 20।
17. वही. पृ. 32।
18. वही. पृ. 20।
19. निर्मला जैन- कथा समय में तीन हम सफर, पृ. 108,।
20. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी- कुछ कहानियां कुछ विचार', राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1998, पृ. 82।
21. 'शाबाश, देवरानी, शाबाश! इस चिट्टे सिरवाली की तुमने अच्छी बात की है! पर इतना जान ले, देवरानी, मैं जो तेरे मर्द की मां होती तो, रानी, तेरे इस पिदके-से सिर पर एक बाल न रहने देती!'-- कृष्णा सोबती- मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण- 2018, पृ.33।
22. वही. पृ.57।
23. वही. पृ.57।
24. वही. पृ. 31।
25. वही. पृ. 48।
26. वही. पृ. 49।
27 कृष्णा सोबती- मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण- 2018, पृष्ठ 75।

28. वही. पृ. 87।
29. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी- कुछ कहानियां कुछ विचार', राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1998, पृष्ठ 77।
30. डॉ ओम निश्चल- शबद भेद- कृष्णा सोबती- . https://samalochan.blogspot.com/2019/k06/blog-post.html.m=1
31. डॉ. रेखा सेठी- https://samalochan.com/krishna-sobti-4/.
32. आशुतोष, मित्रो मरजानी: कथा में नयी स्त्री का जन्म, कृष्णा सोबती: एक मूल्यांकन, संपादक-छबिल कुमार मेहेर, प्रकाशक सामयिक बुक्स, संस्करण 2016 पृष्ठ 120।

सार्वजनिक परिवहन प्रणाली: दशा एवं दिशा

विनय कुमार सिंह पटेल

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजेन्द्र प्रसाद पी0जी0कालेज, मीरगंज, बरेली
(सम्बद्ध महात्मा ज्योतिबा फूले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली)

भारतीय यातायात प्रणाली और परिवहन का समाजशास्त्र उनके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं को समझने का अध्ययन करता है। यह विशेष रूप से व्यक्ति और समुदाय के जीवन में परिवहन के प्रभाव को ध्यान में रखता है, जैसे कि यात्रा के माध्यम से सामाजिक संबधों में परिवर्तन, यातायात के विभिन्न रूपों का सामाजिक वितरण, और यात्रा के सामाजिक और आर्थिक आयाम। इसके अलावा यह उन सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करता है जो यातायात और परिवहन प्रणाली के साथ संबंधित है, जैसे कि प्रदूषण, ट्रैफिक, सड़क सुरक्षा और सार्वजनिक परिवहन की उपलब्धता। सार्वजनिक परिवहन प्रणाली समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करती है। इसके माध्यम से लोगों की सामाजिक संगठन, आर्थिक सार्मथ्य और सांस्कृतिक व्यवहार में परिवर्तन आता है। सार्वजनिक परिवहन प्रणाली के माध्यम से समाज में समानता को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि इसके द्वारा अलग-अलग सामाजिक वर्गो से संबंधित व्यक्ति यात्रा कर सकते है। यह भी लोगों को अलग-अलग क्षेत्रों में रहने और काम करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है, जो समाज में विविधता को बढ़ाता है। इसके साथ ही सार्वजनिक परिवहन प्रणाली के विकास से जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ इससे जुड़ी समस्याओं का भी समाधान हो सकता है, जैसे कि यातायात की जटिलता और प्रदूषण। भारतीय समाजशास्त्री देवेन्द्र कुमार, डा0 सुरेश कुमार, डा0 संजय कुमार, डा0 राजेश अग्रवाल, डा0 अशोक वर्मा इत्यादि सभी सार्वजनिक परिवहन प्रणाली के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक पहलुओं पर अध्ययन करते हैं।

सार्वजनिक परिवहन प्रणाली में जाम की समस्या समाजशास्त्र के कई पहलुओं को प्रभावित करती है। यह उपयोगकर्ताओं के जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है, जैसे कि समय की बर्बादी, तनाव और सामाजिक संबधों में अलगाव। सार्वजनिक परिवहन प्रणाली में जाम के कारण सामाजिक और आर्थिक आपसी संबंधों पर भी प्रभाव पड़ता है, जैसे कि काम पर समय से पहुचने की क्षमता, व्यापार की गति और लोगों के जीवन में सामाजिक और पारिवारिक कार्यों का समय। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से जाम की समस्या की अध्ययन उन विभिन्न कारकों को शामिल करता है जो इसे प्रेरित करते हैं, जैसा कि जनसंख्या वृद्धि, नगरीयकरण, अर्थव्यवस्था के विकास और सार्वजनिक परिवहन नीतियों का प्रभाव। इसके अलावा, जाम की समस्या के समाधान के लिए सामाजिक निर्माण, आर्थिक नीतियों का पुनरावलोकन और परिवहन प्रणाली के तकनीकी और आर्थिक सुधारों की आवश्यकता होती है।

सड़क जाम जैसी समस्या पहले महानगरों के हिस्से ही थी। छोटे शहर व कस्बे इससे मुक्त थे। मगर अब छोटे-बडेघ नगर भी इससे पस्त होने लगे हैं। लखनऊ, पटना, रांची, देहरादून जैसे मध्यम श्रेणी के शहरों में भी सड़कों पर गाड़ियां रेंगती नजर आती हैं। स्थिति यह है कि जो चौक चौराहे कभी इन शहरों की पहचान हुआ करते थे, आज वे जाम के कुख्यात केन्द्र बन गए हैं। महानगरों में में एलीवेटेड रोड, फ्लाई ओवर, अंडरपास जैसे नव-निर्माण से जाम की समस्या का कुछ हद तक हल निकाला जा सकता है, निकाला जाता भी है, मगर मध्यम व छोटे शहर बड़े पैमाने पर ऐसा नहीं कर पा रहें हैं। फिर इन नगरों में जाम का चरित्र भी अलग-अलग है। भारत में सड़क जाम की समस्या व्यापक है। 10 लाख से अधिक आबादी वाले नगर इससे सर्वाधिक पीड़ित हैं। अमूमन सड़कों की दुर्व्यवस्था व अनुशासित परिचालन के अभाव के कारण ऐसा होता है। अपने यहां सड़कों की मरम्मत तभी की जाती है, जब वे धंसती या टूटती हैं, जबकि यह काम नियमित तौर पर होना चाहिए। हालांकि फुटपाथ का न होना या उस

पर अतिक्रमण भी एक बड़ी समस्या है, जिसके कारण पैदल यात्री सड़कों पर चलने को मजबूर होते हैं। सड़क जाम हमें कई तरह से प्रभावित करता है। इससे शहरों की आबोहवा तो पदूषित होती ही हैं, अर्थव्यवस्था पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। अनुमान है भारत में सड़क जाम के कारण पड़ने वाले दुष्प्रभावों से देश को 40.7 अरब डालर का नुकसान होता है। इतना ही नहीं परिवहन मंत्रालय के एक आंकडेघ् के मुताबिक मुख्यत: जाम से साल 2019 में 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहरों में तकरीबन 60,000 दुर्घटनाएं हुई जिनमें 12,000 से अधिक लोगों ने अपनी जान गवाई, जबकि 48,000 से अधिक गम्भीर रूप से चोटिल हुए।

महानगरों जैसी समस्याएं अब लखनऊ, पटना, रांची, जमशेदपुर जैसे मध्यम श्रेणी के शहरों में भी दिखने लगी है। यहाँ भी अवैध कालोनियों का बेहरतीब विस्तार हो रहा है। शहरी नियोजन के अभाव में छोटी-छोटी गलियां बन जाती हैं, जो मुख्य सड़कों को प्रभावित करती हैं। यहां सार्वजनिक परिवहन में सुधार करना होगा। अमूमन जब कभी सार्वजनिक परिवहन की बेहतरी की बात उठती है तो शहर मेट्रो मांगने लगता है। मगर मेट्रो के बजाय आवासन और शहरी कार्य मंत्रालय द्वारा जारी दिशा-निर्देशों का इस्तेमाल अधिक व्यावहारिक है, जिसमे अलग-अलग शहरों की जरूरतों के मद्देनजर अलग-अलग सार्वजनिक परिवहन को विस्तार देने की बात कही गयी हैं। ये परिवहन माध्यम बस, लाइट रेल ट्रांजिट (एल.आर.टी), मोनो रेल, मेट्रो कुछ भी हो सकते हैं। आवासन और शहरी कार्य मंत्रालय द्वारा जारी राष्ट्रीय परिवहन शहरी नीति की भांति राज्य भी एक अलग नीति बनाए, जो शहरों की अपनी प्रकृति के मुताबिक हो। मध्यम व छोटे शहरों में यातायात के प्रबंधन की भी भारी कमी है। प्रति एक लाख आबादी पर 40 से 60 सार्वजनिक बसों का होना आदर्श माना जाता है, लेकिन लखनऊ में यह आंकड़ा महज छ: बसों का है। बेंगलुरू में प्रति लाख आबादी पर सर्वाधिक 45 बसें हैं। सरकारी व निजी बसों को यदि मिला भी दें,तो अपने देश के राष्ट्रीय स्तर पर एक लाख की आबादी पर सिर्फ 24 बसें उपलब्ध हैं। इसका अर्थ है कि हमें एक तरफ सड़कों का चौड़ीकरण या विस्तार करना होगा, फ्लाई ओवर या एलीवेटेड रोड बनाने होंगे, तो दूसरी तरफ यातायात व्यवस्था का भी उचित प्रबंधन करना होगा। इन कामों में संसाधन की कमी कोई समस्या नहीं है। मसला नियोजन और क्रियान्वयन के मोर्चे पर है।

सड़क जाम से निपटने के लिए आम लोगों की मानसिकता को भी हतोत्साहित करना होगा। यह कोई आसान काम नहीं है। आंकड़ों के मुताबिक मुम्बई में आधी से अधिक सड़कों पर निजी कार वालों का कब्जा है जबकि 28 फीसदी हिस्सेदारी मोटरसाइकिल वालों की है। पटना, लखनऊ, रांची जैसे नगरों की तस्वीर इससे अलग नहीं है। यहां तक कि सुदूर कस्बों में भी अब बड़ी-बड़ी गाड़ियां दिखने लगी हैं। जब कि वहां सड़के एक लेन की हैं। गाड़ियों की संख्या बढ़ने की एक बड़ी वजह लोगों की बढ़ती समृद्धि है, जो एक लिहाज से सुखद है, लेकिन सार्वजनिक परिवहन के अभाव में वे गाड़ियां खरीदना पसंद करते हैं, ताकि उनका आवागमन आरामदेह हो। इस प्रवृत्ति को हमें खत्म करना है। जिसके लिए सार्वजनिक परिवहन के पर्याप्त विकल्प लोगों को उपलब्ध कराने होंगे। ऐसा करना सिर्फ छोटे और मध्यम श्रेणी के शहरों में नहीं, बल्कि महानगरों में भी फायदेमंद है।

रही बात सड़कों के चौड़ीकरण की, तो 'हस्तांतरणीय विकास अधिकार' (टीडीआर) जैसी नीति हमारे काम आ सकती हैं। यह इस अवधारणा पर आधारित है कि लोंगो से उनकी जमीन का कुछ टुकड़ा सड़क निर्माण में ले लिया जाय और बदले में उनको कुछ रियायतें दी जाएं। मसलन, जो अपनी जमीन सार्वजनिक उद्देश्य के लिए छोड़ेगा, उसे अपने मकान में अतिरिक्त एक मंजिल बनाने की अनुमति दी जायेगी। इसके अलावा, सड़क विकास के लिए स्थानीय लोगों पर कुछ कर भी लगाए जा सकते हैं। एक विकल्प पुनर्निर्माण योजनाएं हो सकती हैं, जिसकी तरफ दिल्ली के प्रस्तावित मास्टर प्लान में कदम बढ़ाया गया है। इसमें जमीनों को सार्वजनिक निजी भागीदारी के तहत विकसित करने की बात कही गई है। महाराष्ट्र के धारावी क्षेत्र का भी इसी तरह पुर्नविकास किया जा रहा है। अन्य शहर भी ऐसा कुछ कर सकते हैं। इससे सड़कों के लिए जमीन मिल जायेगी व शहर भी साफ-सुथरा हो जायेगा।

यातायात प्रबंधन के लिए अहमदाबाद जैसा प्रयोग किया जा सकता है, जिसने बसों के लिए अलग लेन बनाएं। हालांकि, दिल्ली में यह 'बस रैपिड ट्रांजिस सिस्टम' (बीआरटीएस) सफल नहीं हो सका, लेकिन मध्यम व छोटे शहरों में ऐसा किया जा सकता है। मुमकिन हो, तो वहाँ कुछ सड़कों को 'सिंगल लेन' भी किया जा सकता है, यानी उस पर सिर्फ एक तरफ जाने वाले वाहन चलेंगे। नोएडा और गुरूग्राम में कुछ इलाकों में यह व्यवस्था अच्छे ढंग से काम कर रही है। जाम की एक वजह जनसंख्या को भी बताया जाता है, पर यह गलत सोच है। नियोजन व क्रियान्वयन की समस्या है। अगर शहर-दर-शहर अध्ययन हों, उसके अनुरूप उपाय किये जाएं, तो भारत सड़क जाम की समस्या से काफी हद तक बच सकता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से परिवहन प्रणाली में कई समस्याएं उभर सकती हैं। जिसमें प्रथम स्तर पर परिवहन साधनों की असमान उपलब्धता और उपयोग में सामाजिक असमानता है। इसका निदान सार्वजनिक परिवहन के प्रसार को बढ़ाना और आवश्यकतानुसार सुविधाओं को सुनिश्चित करना हो सकता है। द्वितीय स्तर पर परिवहन साधनों के तेजी से उपयोग के कारण उत्पन्न होने वाली पर्यावरणीय समस्याएं (जैसे कि वायु प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन इत्यादि) हैं। निदान में सार्वजनिक परिवहन प्रणाली को और स्वच्छ और पर्यावरण के प्रति उत्तेजना देने वाले विकल्पों को प्रोत्साहन शामिल हों सकता है, जैसे कि बिजली, हाइब्रिड और बिजली से चालित वाहनों का प्रयोग। तृतीय स्तर पर कई बार सार्वजनिक परिवहन प्रणाली का उपयोग सामाजिक अलगाव को बढ़ा सकता है। जैसे कि विभिन्न समुदायों के बीच यातायात की अलग-अलग सुविधाएं। इस समस्या का निदान समान सुविधाओं के लिए सार्वजनिक परिवहन प्रणाली में समानता की संवेदनशीलता को बढ़ाना हो सकता है। चतुर्थ स्तर पर सार्वजनिक परिवहन प्रणाली में सुरक्षा समस्याएं भी होती हैं जैसे कि अवैध यात्रा, हिंसा, चोरी आदि। इसके निदान के लिए सुरक्षा कार्यक्रमों और तकनीकी उपायों को अधिक सुविधा प्रदान की जा सकती है।

पंचम स्तर पर सार्वजनिक परिवहन प्रणाली के उपयोग में आर्थिक असमानता भी हो सकती है। जहां कुछ लोग स्वयं वाहन का उपयोग कर सकते हैं जब कि दूसरे लोग सार्वजनिक परिवहन प्रणाली का ही आश्रय लेने के लिए बाध्य होते हैं। इसका निदान सस्ते और सुलभ सार्वजनिक परिवहन सेवाओं के प्रसार में हो सकता है। इन समस्याओं का समाधान उपयोगकर्ताओं, सरकारों और संगठनों के सहयोग से हो सकता है। जो सार्वजनिक परिवहन प्रणाली को सामाजिक, पर्यावरणीय और आर्थिक सभी पहलुओं पर कारगर होगा। यह समाधान नागरिक सहयोग, समय- संबंधी योजनाएं, सामाजिक संरचना के बदलाव, सार्वजनिक परिवहन के प्रोत्साहन और यातायात प्रणाली में तकनीकी सुधारों के माध्यम से किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. सिविल सर्विसेज टाइम्स, सितम्बर 2022, पृष्ठ सं0 88।
2. हिन्दुस्तान, फरवरी 2024।
3. लोक प्रशासन जर्नल, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, जुलाई-सितम्बर 2021।
4. Urban Management. Prof. K.K. Pandey.

प्राचीन भारत में राजस्व व्यवस्था (600 ई०पू० से 300 ई० तक)

सुमन

शोधार्थी, इतिहास विभाग

प्राचीन काल से ही राजस्व व्यवस्था प्रचलित है। राजा का कर लेने का अधिकार राज्य के उदय के समय से ही राजा और प्रजा के बीच में है। गौतम के अनुसार, ''प्रजा राजा को इसलिए 'कर' देती है कि वह प्रजा की रक्षा करता है। नारद द्वारा भी इस प्रकार की पुष्टि की गई है। उनके अनुसार राजा प्रजा की रक्षा करता है। प्रजा जो 'कर' देती है वह राजा का पारिश्रमिक है। ऋग्वैदिक काल में राजा कबीले की रक्षा करता था और अन्य कबीलों के विरुद्ध युद्धों में विजय प्राप्त करता था। इसी कारण कबीले के लोग राजा को अपनी इच्छा से 'बलि' देते थे। इसलिए राजा को बलिहृत कहा जाता था। यह बलि अनाज, पशु आदि के रूप में होती थी। परन्तु जिन कबीलों को युद्ध में पराजित किया जाता था उन्हें बलि या भेंट देने के लिए विवश किया जाता था। इस प्रकार ऋग्वैदिक काल में राजा के कबीले के लोग अपनी इच्छा से बलि (कर) देते थे और पराजित शत्रुओं को बलि देने के लिए विवश किया जाता था।[1] ऋग्वेद में राजा को प्रजा का खा जाने वाला कहा गया है। इसका अर्थ प्रजा अत्याचार करने वाला नहीं है अपितु इसका अभिप्राय यह है कि राजा अपने व्यय के लिए प्रजा पर निर्भर होता है। ऋग्वैदिक काल के प्रारम्भ में कबीले द्वारा राजा को 'बलि' अपनी इच्छा के अनुसार दी थी परन्तु उत्तर वैदिक काल में इसका स्वरूप अनिवार्य कर के रूप में हो गया। अथर्ववेद में वर्णन मिलता है कि इस काल में क्षत्रियों के अतिरिक्त अधिकतर ब्राह्मण भी अपने निर्वाह के लिए बलि पर निर्भर थे। अथर्ववेद में शुल्क का भी उल्लेख मिलता है। अधिकतर कर जन साधारण से ही लिया जाता था। जिनमें पशुपालक, किसान, शिल्पी तथा व्यापारी आदि शामिल होते थे। धर्म सूत्रों में वर्णन मिलता है कि राजा प्रजा से केवल वैध कर वसूल सकता था। वह अपने व्यय के लिए वैध करों के अतिरिक्त कोई सम्पत्ति नहीं ले सकता था। गौतम द्वारा भू-राजस्व की तीन दरें अर्थात् अन्न का 1/6 भाग, 1/8 भाग तथा 1/10 भाग बताई है। इसके टीकाकार हरदत्त ने बताया है कि ये तीन दरें खेत की मिट्टी की किस्म के आधार पर निर्भर थी। जहाँ पैदावार अधिक होती थी कहाँ अधिक तथा कम उपजाऊ वाली मिट्टी वाले खेतों से कम भू-राजस्व वसूल किया जाता था।[2]

अर्थशास्त्र में निश्चित भू-राजस्व का वर्णन मिलता है 5 या 10 गाँवों का अधिकारी जो गोप कहलाता था। गाँवों की सीमाओं गाँव के खेतों, ऐसी भूमि का विवरण जिसमें खेती नहीं होती थी भूमि का विवरण तैयार करता था। गाँवों के मकानों की सूची तैयार करता था तथा उनसे कितना कर वसूल करना है आदि का विवरण भी गोप द्वारा ही तैयार किया जाता था तथा यह भी निश्चित किया जाता था कि कितना कर नकद लेना है तथा कितना बेगार तथा कितना धन जुर्माने के रूप में वसूल करना है। समाहर्ता जाँच करने के लिए उन गाँवों में निरीक्षक भी भेजता था। वे निरीक्षक करों की जाँच पड़ताल करते थे। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक व्यक्ति से अलग कर वसूल किया जाता था। परन्तु कुछ गाँवों में पूरे गाँव का इक्ट्ठा कर भी निर्धारित किया जाता था। इस प्रकार के कर को कौटिल्य ने पिण्डकर कहा है। मौर्योत्तर और गुप्त काल के अभिलेखों में पिण्डकर का उल्लेख नहीं मिलता। इसका अर्थ यह है कि मौर्योत्तर और गुप्त काल में पूरे गाँव पर कर लगाने की प्रथा नहीं रही।

कौटिल्य के अनुसार राजा को प्रजा से उतना ही कर लेना चाहिए जितना कि वह सरलता से दे सके ऐसा न हो कि राज्य इतना अधिक कर लगा दे कि प्रजा के पास उत्पादन के लिए धन ही न बचे। कौटिल्य द्वारा वर्णन किया गया है कि राजा को उपज का छठा भाग कर के रूप में लेना चाहिए। अर्थशास्त्र में वर्णन मिलता है कि गेप को गाँव की भूमि को तीन श्रेणियों में बांटना चाहिए

जैसे- ऊँची भूमि (स्थल), नीची भूमि (केदार) और अन्य भूमि। अलग-अलग भूमि के लिए अलग-अलग कर निर्धारित करने का सुझाव भी कौटिल्य द्वारा दिया गया है। जिसके आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अलग-अलग भूमि का कर निर्धारण भी अलग-अलग था। भू-राजस्व का औसत उपज का छठा भाग होता होगा। कौटिल्य ने यह भी वर्णन किया है कि जो किसान नौ -तोड़ भूमि में खेती करे उससे राजा को तब तक कर नहीं लेना चाहिए जब तक कि उसका लाभ मूलधन से दुगुना ना हो जाये। दुर्भिक्ष के समय राजा को भू-राजस्व वसूल नहीं करना चाहिए। जो खेत की उपज वर्षा के पानी पर निर्भर न हो फसल का 1/3 या 1/4 भाग भू-राजस्व का लेना चाहिए। अर्थशास्त्र में 'बलि' का अर्थ वह उपकर प्रतीक होता है जो राजा उपज के 'भाग' के अतिरिक्त प्रजा से लेता था।[3]

मनुस्मृति में राजा को अन्न का 1/10 भाग कर के रूप में लेने की अनुमति दी है। इसमें भी वर्णित है कि राजा को उतना ही कर लेना चाहिए जिससे कि उत्पादकों के पास उत्पादन के लिए पर्याप्त धन बचा रहे। मनु ने भूमि की उपज के अनुसार अन्न का 1/6, 1/8, या 1/2 भाग राजा का भू-राजस्व लिखा है। मनु ने भूमि का विभाजन तीन वर्गों में किया है।

डायोडोरस ने मेगस्थनीज के आधार पर लिखा है कि किसान उपज का चौथाई भाग भू-राजस्व के रूप में राज्य को देते थे। गोषाल ने डायडोरस के उक्त कथन को ठीक मान कर कहा है कि मौर्य काल में भू-राजस्व की दर बहुत ऊँची थी। रूम्मिनदेई स्तंभलेख में वर्णन मिलता है कि वहाँ उपज का 1/8 भाग राजस्व के रूप में किया जायेगा। जिससे यह पता चलता है कि वहाँ के निवासियों से अन्य किसानों की अपेक्षा आधा भू-राजस्व लिया जाता था और बलि बिल्कुल माफ कर दिया गया। महाभारत के शान्ति पर्व में स्पष्ट लिखा है कि कर का निर्धारण आय और खर्च का हिसाब लगाकर करना चाहिए। मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक ने स्पष्ट लिखा है कि राजा की जो पूंजी लगी है उसमें जो वृद्धि हुई हो उसी पर कर लगाना चाहिए। पूरी उपज पर राजा का भाग निश्चित नहीं किया जाता था बल्कि लाभ पर जो किसान को हुआ हो।[4]

कुरू धम्म जातक से ज्ञात होता है कि खड़ी फसल का अनुमान लगा कर भू-राजस्व निश्चित किया जाता था। भू-राजस्व निर्धारित करने की इस पद्धति के कानकूत कहते है। महाभारत में स्पष्ट लिखा है राजा के खजाने को अनाज से पूर्ण रूप से भरना चाहिए। इसका यही अर्थ है कि भू-राजस्व इस समय अनाज के रूप में ही लिया जाता था। महाभारत में यह भी वर्णन मिलता है कि दुर्भिक्ष के समय राजा को भू-राजस्व वसूल नहीं करना चाहिए।

भू-राजस्व को 'भाग' कहा जाता था क्योंकि इसमें उत्पादित अनाज का एक भाग राजा कर के रूप में लेता था। वह साधारणतया उपज का छठा भाग होता था किन्तु यह भाग हमेशा तथा सर्वत्र छठा भाग नहीं रहा। यही राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत था। परंतु राजा इसके अतिरिक्त भी कुछ कर प्रजा से वसूल करता था। इन्हें साधारणतया बलि कहा जाता था। अशोक के रूम्मिनदेइ स्तम्भ लेख में 'बलि' नाम के कर का उल्लेख है। रूद्रदामन के जूनागढ़ शिलालेख में भी बलि का उल्लेख है। इस शिलालेख में कर 'विष्टि' और 'प्रणय' को कष्टकर कर कहा गया है। 'कर' संभवत: संपत्ति पर वार्षिक कर था। मनु के अनुसार कर 'भाग' के अतिरिक्त टेक्स था। बाद में कर शब्द का प्रयोग 'भाग' के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के कर के लिए किया जाने लगा। अर्थशास्त्र में 'प्रतिकर' का भी उल्लेख मिलता है यह भी किसी प्रकार का अतिरिक्त कर था।[5]

अर्थशास्त्र में हिरण्य नाम के कर का भी उल्लेख है। संभवत: यह भी किसी प्रकार का अतिरिक्त कर था क्योंकि इसका नियमित करों की सूची में उल्लेख नहीं है। गोषाल के अनुसार यह कर भाग के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट फसलों पर लगाया जाता था और नकद धन के रूप में वसूल किया जाता था। परंतु लल्लन जी गोपाल गोषाल के विचार से सहमल नहीं है। विष्टि का अर्थ बेगार है। एरियन के अनुसार शिल्पी और कारीगर राज्य के लिए कर के स्थान पर बेगार करते थे। अर्थशास्त्र में लिखा है कि राज्य इस प्रकार की सेवाओं का उपयोग राज्य के कारखानों में कर सकता है। मनु ने स्पष्ट लिखा है कि शूद्र शिल्पी और कारीगर अपना कर अपनी सेवाओं के रूप में राज्य को दे सकते है। परन्तु विष्टि कर कष्टकर था। अर्थशास्त्र में इसे अतिरिक्त करों की सूची में रखा गया है। कौटिल्य के अनुसार विष्टि के अंतर्गत श्रम से राज्य के फार्मों पर खेती कराई जा सकती थी। महाभारत में लिखा है कि कारीगरों को केवल भोजन देकर उनसे बेगार कराई जा सकती थी। जातक कथाओं से स्पष्ट है कि बेगार के कारण जन-साधारण को बहुत कष्ट झेलने पड़ते थे।

'प्रणय' का अर्थ आपात-कालीन कर है। जब राज्य को अतिरिक्त धन की आवश्यकता होती थी यह साधारण करों के अतिरिक्त प्रजा को कुछ अधिक धन देने के लिए बाध्य करता था। इस धन को ही 'प्रणय' कहा गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार जब राज्य पर आर्थिक संकट हो वह किसानों, व्यापारियों, शिल्पियों और पशुपालकों से प्रणय वसूल कर सकता है। राजा को 'ब्रह्मदेव' भूमि

के स्वामियों से इस प्रकार का कर वसूल करने का अधिकार नहीं था। किसानों से यह कर भूमि की उपज के अनुसार चौथाई से तिहाई तक होता था। मनु के अनुसार राजा को प्रणय के अंतर्गत चौथाई से अधिक अनाज नहीं लेना चाहिए। रूद्रदामन ने अपने जूनागढ़ अभिलेख में लिखा है कि उसने प्रजा से कर 'विष्टि' या 'प्रणय' जैसा कोई कष्टकर कर वसूल नहीं किया।[6]

सरकारी फार्मों से आय

सरकारी फार्मों का निरीक्षण विशेष निरीक्षक के हाथ में होता था। इन फार्मों पर जो किसान खेती करते थे यदि उनके अपने बैल और हल आदि होते तो उन्हें उपज का आधा भाग लेने का अधिकार था। यदि वे सरकारी बैलों और हलों आदि का प्रयोग करते तो उपज का 1/4 या 1/5 भाग ले सकते थे। इन फार्मों पर बेगार करने वाले मजदूर भी काम करते थे। कृषि से आय के समान ही राज्य को सुरक्षित जंगलों, खानों, सरकारी पशुशालाओं और नाज की बिक्री से भी आय होती थी।

सातवाहन राजाओं के कार्ले और नासिक के अनुदान-पत्र विशेष व्यक्तियों के नाम में है। इसका अर्थ है कि इन भूमि-खण्डों पर अलग-अलग भू-राजस्व लिया जाता था। सातवाहन राजा गौतमी-पुत्र ने अपने अभिलेख में लिखा है कि उसने अपनी प्रजा के केवल वैध करों को ही वसूल किया अवैध करों को नहीं।[7]

पशु कर

मेगस्थनीज ने लिखा है कि पशु पालक मौर्य राजाओं को अपने पशुओं पर कर देते थे। स्मृतियों के अनुसार यह कर पशुओं के मूल्य का 1/50 भाग होता था। पशुओं की बिक्री पर सरकार यह कर लेती थी। अर्थशास्त्र के अनुसार सरकार को मुर्गियों और सुअरों पर उनके मूल्य का 1/2, छोटे पशुओं पर 1/6, गाय, भैंस, खच्चर, गधा और ऊँट पर उनके मूल्य का 1/10 भाग कर के रूप में लेना चाहिए।

सिंचाई कर

एम०एच० गोपाल के अनुसार मौर्यकाल में सरकार सिंचाई कर (उदक भाग) भी लेती थी। अर्थशास्त्र के अनुसार जो किसान हाथ से सिंचाई करते हैं वे सिंचाई उपकर के रूप में उपज का 1/5 भाग देंगे, जो कंधे पर पानी ले जाते है वे उपज का 1/4 भाग, जो रहत से सिंचाई करते है वे उपज का 1/3 भाग और नदियों, झीलों, तालाबों और कुँओं से सिंचाई करते है वे उपज का 1/4 भाग देंगे। नहरों, तालाबों तथा कुँओं से पानी खेतों में लाने की व्यवस्था स्थानीय निवासियों द्वारा की जाती थी जिसकी पुष्टि शक-कुषाण और गुप्तकालीन अभिलेखों से होती है।[8]

उत्संग

किसी उत्सव के समय प्रजा जो भेंट राजा को देती थी उसे कौटिल्य ने उत्संग कहा है। जातकों में लिखा है कि राजकुमार के जन्म पर प्रजा-जन में से प्रत्येक उसके दूध के निमित्त एक कार्षायण लाया। इसी प्रकार राज्याभिषेक के समय प्रजाजन राजा के लिए भेंट लाते थे। इन भेंटों से भी राजा को बहुत आय होती थी।

भूमि अनुदान

राज्य जो भूमिखंड ब्राह्मणों या धार्मिक संस्थाओं को दान में देता था उनसे भू-राजस्व नहीं लेता था। अर्थशास्त्र में लिखा है कि इन भूमि-खण्डों से राजा को किसी प्रकार का आपातकालीन कर भी नहीं लेना चाहिए।

भू-राजस्व में छूट

जब फसल खराब होती थी तो किसानों से उस फसल का भू-राजस्व नहीं लिया जाता था। जब कोई किसान खेत में सुधार करके अधिक अन्न उपजाता था उसके लिए भी उसे भू-राजस्व में छूट दी जाती थी। कुछ विशेष परिस्थितियों में भी भू-राजस्व में छूट दी जाती थी जैसे कि लुम्बिनीवन के निवासियों पर गौतम बुद्ध का जन्म-स्थान होने के कारण अशोक ने भू-राजस्व कम कर दिया था।[9]

ब्राह्मणों को भू-राजस्व से उन्मुक्ति

वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार राजा को ब्राह्मणों से कर नहीं लेना चाहिए। मनु का भी यही मत है, विधि-वेत्ताओं ने इसका कारण यह दिया है कि ब्राह्मण लोग राज्य की आध्यात्मिक सेवा के रूप में कर देते है।

निष्कर्ष

सैद्धान्तिक दृष्टि से प्राचीन भारत की राजस्व व्यवस्था ईसा पूर्व 600 से 300 ई तक दोषहीन थी। उसमें बिना पक्षपात के राजा को परिस्थिति के अनुसार कर कम या अधिक लेने की छूट थी। परन्तु कर का प्रजा पर प्रभाव बहुत कुछ राजा के व्यक्तित्व पर निर्भर था। अच्छा राजा प्रजा के हित को ध्यान में रखकर केवल वैध कर ही वसूल करते थे जैसे कि रूद्रदामन और गौतमी पुत्र शातकर्णी द्वारा

आपालकाल में कर में वृद्धि

कौटिल्य ने लिखा है कि आपातकालीन स्थिति में राजा 1/6 भाग के स्थान पर 1/4 से 1/3 भाग तक प्रणय के रूप में ले सकता है।

सन्दर्भ सूची

1 मुलर, मैक्स, ''ऋग्वेद'' (Second edn.) वैदिक समशोधन मंदाल, पुणे, 4 खंड, 1933

2 कौटिल्य, ''अर्थशास्त्र'' (अनुवाद), आर० शमाशास्त्री, मैसूर, 1919

3 बोस, अतीन्द्रनाथ, सोशयल एंड रूरल इकोनमी, के०ए० फर्म, मुखोपाध्याय, कलकता, 1961, पृ० 109

4 गोपाल, एम०एच०, मौर्यन पब्लिक फाइनेंस, जोर्ज एलन, लंदन, 1935, पृ० 71

5 गोपाल, ललन, हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन एशियंट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965

6 शर्मा, रामशरण, ''लाइट आन अर्ली इण्डियन सोसायटी एंड इकोनमी''

7 विद्यालंकार, सत्यकेतु, ''प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन'', श्रीसरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2011

8 थापर, रोमिला, ''भारत का इतिहास'', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989

9 बुच, मगनलाल, ए० इकोनोमिक लाइफ इन एनसियंट इंडिया, आर०एस० पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 1979

आधुनिकता और हिंदी उपन्यास

डॉ० नीतू रानी

सहायक प्रोफेसर, माता साहिब कौर गर्ल्ज कॉलिज, तलवंडी साबो, बठिंडा (पंजाब)

शोधसार

आधुनिकता एक ऐसी प्रक्रिया है जो हर ओर से नित्य नवीनता को धारण करती है। साहित्य की दृष्टि से यदि आधुनिकता की ओर विचार विमर्श किया जाए तो यह है साहित्य की प्रत्येक विधा को चारों ओर से घेरे हुए है। उपन्यास क्षेत्र में आधुनिकता उपन्यासों के आंतरिक स्वरूप में भी विद्यमान हैं और उनके बाह्यरूप को भी घेरे हुए है। यह एक ऐसा जीवन बोध है जिसमें प्रश्न चिन्हों की निरंतरता है। इसके साथ जुड़ा हुआ दूसरा प्रश्न यह है कि क्या यह मूल्य है या प्रक्रिया है? तो इससे स्पष्ट होता है कि यह एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया से स्वीकृत मूल्य स्वीकृत हो जाने की गवाही देकर पुनः स्थापित होकर विस्थापित होते रहते हैं। इसलिए इसे मूल्यवत्ता या मूल्यहीनता में आंकना भी असंगत प्रतीत होता है। आधुनिकता को पाश्चात्य के साथ देखा जाये तो आध ुनिकता में किसी मौलिक अंतर को झांकना अपने आप में सही सिद्ध हो सकता है। यदि आधुनिकता के एक से अधिक दौर हो सकते हैं जिससे यह गुजर चुकी हैं अथवा गुजर रही है तो वास्तव में यह एक प्रक्रिया का स्वरूप है। हिंदी उपन्यासों में और समकालीन हिंदी उपन्यास में इसको पहचानना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस क्षेत्र में एक गहन चिंतन पश्चिम की ओर से किया गया और वर्तमान में भी किया जा रहाहै। यह चिंतन उपन्यास में कभी अंत के भविष्य को लेकर है, तो कभी वास्तविकता और यथार्थता को जानने के लिए है, कभी उपन्यास की विद्या को लेकर है, तो कभी कला के अमानवीकरण की समस्या को लेकर है, कभी संबोधन या वाग्मिता की समस्या को लेकर ही है। कभी चरित्र चित्रण की समस्या को लेकर के आध ुनिकता के फलक को देखा जाती है। इस प्रकार विभिन्न रूपों में उपन्यास साहित्य में आधुनिकता को देखने के अलग अलग संदर्भ विद्यमान हो सकते हैं। इसका इतिहास अत्यधिक लंबा और गहरा है जो निरंतर परंपरा से संपन्न है। हिंदी उपन्यास में आधुनिकता का बोध नगरीकरण की प्रक्रिया से भी जुड़ा हुआ है और उपन्यास विधा किसी विशेष देश अथवा विशेष भाषा तक सीमित न होकर समस्त देशों और भाषाओं में व्याप्त हैं अतः आधुनिकता और हिंदी उपन्यास परस्पर घनिष्ठरूप से संबंधित है। जिनके विभिन्न आयाम संभव है और इसी दृष्टि से उस पर चिंतन मनन भी अपेक्षित है।इस शोध पत्र को लिखने का उद्देश्य उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में नवाचार के आगमन पर चिंतन करना है।

शब्दकुंजीः- आधुनिकता, साहित्य, उपन्यास, नवाचार।

प्रस्तावनाः-

आधुनिक भावबोध की संकल्पना उपन्यास साहित्य एवं साहित्येतर क्षेत्र में एक प्रासंगिक चर्चा का विषय रही है। जिसे समझने के लिए समय समय पर विद्वानों ने अनेक प्रयास किये हैं। किसी ने उसके किसी छोर की ओर तो किसी ने किसी अन्य छोर की ओर दृष्टिपात किया। किसी ने इस आधुनिक बोध को समग्र रूप से अपने विचारों में समा लेने का प्रयास भी किया। अंग्रेजी आलोचक स्टीफन स्पेंडर ने आधुनिक भाव बोध की गहराई को नापने के प्रयत्न में कहा है कि, "आधुनिकता समसामयिक परिप्रेक्ष्य और परिदृश्य के प्रति तीव्र जागरूकता है। यद्यपि वह उसके मूल्यों को स्वीकार नहीं करती। वह जीवन को उसकी संपूर्णता में देखती है और उसका स्वीकरण एवं अस्वीकरण करती है"।

मैथ्यू आर्नोल्ड: के अनुसार "आधुनिकता का मूल लक्षण ही युग का प्रतिनिधित्व करना होता है"। लेकिन लियोनिल ट्रिलिंग कामानना है कि, "यह कलाकार की आत्मा और युग के प्रति जागरूकता के बिना संभव नहीं है"। आधुनिक साहित्य ने सामाजिक मनुष्य की वैचारिकता को प्रमुखाता दी है। आधुनिक और पुरातन का संबन्ध ऐतिहासिक दृष्टि से सापेक्ष्य अधिक है। आधुनिक संदर्भ में वह संघर्षपूर्ण है।

आधुनिकताबोध

आधुनिकता के संबन्धा में हिन्दी के विद्वानों ने भी अपने-अपने अभिमत प्रकट किए हैं। डॉ० धर्मवीर भारती के शब्दोंमें "आधुनिकता बोध संकट बोध है"। लेकिन डॉ० नामवरसिंह ने इसे एक प्रक्रिया के रूप में अभिव्यक्त किया है। अज्ञेय इसे सापेक्षतावाद कहते हैं। डॉ० मदान विकल्पों के खुले रहने की स्थिति को आधुनिक कहते हैं। डॉ० विपिन कुमार अग्रवाल के अनुसार आधुनिकता का एक पहलू वह है जो बीते हुए से शेयर करता है। और दूसरा वह जो उसकी अपनी देन है, उसका अपना विशेष गुण है।" गंगा प्रसाद विमल के लिये आधुनिकता एक प्रकार की मानसिकता है और इस मानसिकता का विकास आध्यात्मिक चिंतन एवं धार्मिक दर्शन पर प्रश्न चिन्ह लगाने के कारण हुआ है। लेकिन धनंजय वर्मा के लिये आधुनिकता परंपरा के प्रति एक नई संवेदना है। कुल मिलाकर यह केवल पीछे दिखाने की वृत्ति नहीं है अर्थात् आधुनिकता केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण नहीं है वह एक समसामयिक दृष्टि भी है।

कुल मिलाकर आधुनिकता बदली हुई एक ऐसी मानसिकता है जिसमें नित्य नवीनता और नवाचार का समावेश हुआ है। इसके रूपायन के पीछे कुछ प्रमुख तत्वों का समावेश भी हुआ है। उन तत्वों को पकड़ पाना और उसके आधार पर आधुनिकता या आधुनिक भाव बोध की जड़ तक पहुँच पाना ही इस आलेख का उद्देश्य है। आधुनिकता के रूपायन के पीछे कार्यरत कुछ तत्व हैं- अंग्रेजी शिक्षा, विज्ञान का प्रभाव, विभिन्न दर्शनों का प्रभाव, सुधारवादी संस्थाओं का प्रभाव, भाषा और साहित्य में आए हुए नए संदर्भों का प्रभाव, उपन्यास के प्रति एक नए दृष्टिकोण का प्रभाव और अभिव्यक्ति के नवीन स्वरूप का प्रभाव। इस प्रकार इन सबकी समष्टि से आधुनिकता का साहित्यमें नवप्रवेश परिलक्षित होता है।

आधुनिकता का प्रवेश

जैसे वैज्ञानिक विकास एवं विश्व युद्धों की भीषण परिस्थिति ने पाश्चात्य साहित्य में आधुनिकता के प्रवेश के लिये उचित परिस्थिति को जन्म दिया था ठीक उसी प्रकार भारतीय साहित्य में आधुनिकता अर्थात आधुनिक भावबोध के प्रवेश की अपनी अलग परिस्थिति अवश्य रही है। एक ओर वैज्ञानिक प्रगति एवं तज्जन्य बौद्धिक दृष्टिकोण इसका कारण बना तो दूसरी ओर स्वाधीनोत्तर भारतीय परिस्थिति ने इसको गहराया। आम जनता की सारी आकांक्षाएँ तितर बितर हो गयी। वह अपने भविष्य को अंधकारमय महसूस करता है। इसलिये स्वाधीनोत्तर हिन्दी साहित्य में वैयक्तिकता, कुंठा, निराशा, अकेलापन, विसंगति जैसी नूतन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ है।

भारतीय संदर्भ में आधुनिकता को अनेक दृष्टियों में देखा गया है। वस्तुत: भारतीय बुद्धिजीवी ने अपने आशाओं, सीमाओं, परम्पराओं, आकांक्षाओं के अनुरूप आधुनिकता बोध को पहचानने का प्रयत्न किया ।

अत: आधुनिक भावबोध एक बौद्धिक मानसिकता है । उसके मूल में व्यक्ति की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक समझ वर्तमान है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का उदय

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का उदय भारतेन्दु-युग से माना जाता है। सवाल उठता है, क्यों? क्या भारतेन्दु-युग से पहले हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिकता की झलक नहीं दिखती? यदि नहीं तो उसके क्या कारण रहे? भारतेन्दुयुग में ऐसा क्या होता है, जिससे हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का उदय माना जाने लगता है? रामविलास शर्मा ने अपने ऐतिहासिक प्रयत्नों से हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के उदय का काल 12वीं सदी निश्चति करने की कोशिश की है। रामविलास शर्मा ने पश्च्चिम्मि में आधुनिकता के सोपानों के समानान्तर हिन्दी में भी वैसे ही सोपानों को रचने की अद्‌भुत मेधा का परिचय दिया है। मतलब यह कि यूरोप में

आधुनिकता बुनियादी रूप से पुनर्जागरण और प्रबोधन रूपी विश्ध्व सभ्यता के दो महत्त्वपूर्ण चरणों से गुजर कर आकार ग्रहण करती है।

इस प्रकार हिंदी साहित्य में आधुनिकता मनुष्य के सांस्कृतिक विचारों की विकास यात्रा का परिणाम है जिसमें विज्ञान, दर्शन, शिक्षा जैसे अनेक तत्वों का योगदान रहा है। संस्कृति एवं साहित्य का प्रारंभ से ही अटूट संबंध होता है। इस सांस्कृतिक अभियान का प्रभाव साहित्य में अवश्यंभावी है। स्वाधीनोत्तर विशेष परिस्थिति का भी पर्याप्त प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ा है। इसीलिए स्वाधीनोत्तर हिंदी साहित्य में अनेक नूतन प्रवृत्तियाँ उभर कर आयीं। उन सभी प्रवृत्तियाँ को यदि संक्षिप्त रूप में देखा जाए तो उन सब में हिंदी उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ- व्यक्ति संबंधों की जटिलता, मध्यम वर्गीय जीवन की पहचान, राजनैतिक चेतना, आंचलिकता शिल्पगत नवीनता आदि समाहित है।

आधुनिक हिंदी उपन्यास

साहित्य समाज का दर्पण होता हैं। और मानव के चारों ओर प्रकृति में जो कुछ भी है साहित्य के द्वारा उसको अभिव्यक्त किया जाताहै। आधुनिक बोध से जूझते हुए हिंदी उपन्यास साहित्य में समाज की वर्तमान प्रासंगिक तथ्यों को घेरने का पूरा प्रयास किया गयाहै। वर्तमान परिवेश में मनुष्य एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अपने अस्तित्व को समेटता हुआ दिखाई दे रहा है। जिसमें अनास्था, अविश्वास, स्वीकृति का बोझ निरंतर अपने चरण पसारता चला जा रहा है। ऐसा लगता है कि, मानो मानवक्रय विक्रय की एक वस्तु रह गया है। मानवीय संबंध निरंतर धूमिल होने लगे हैं। मिट्टी में मिलते हुए दिखाई ददेरहेहैं।व्यावहारिकता समाप्त हो गयी। चारों ओर संसार औपचारिकताओं के बंधनोंसे जकड़ता चला जा रहाहै। ये सभीसन्दर्भआज उपन्यास का विषय भी हो रहेहैं। इन सभी नवीन संदर्भो से युक्त होने के कारण आधुनिक हिंदी उपन्यासों का स्वरूप बदल गया है। जिन संदर्भोने वर्तमान उपन्यास साहित्य को प्रभावित किया है वह संदर्भ इस प्रकार है:-

पारिवारिक संबन्धों के बदलते आयाम

सभ्यता के विकास के साथ साथ पारिवारिक जीवन में अनेक परिवर्तन उपस्थित हुए हैं । बदलते सामाजिक, राजनीजिक, आर्थिक परिवेश तथा जीवन मूल्योंने इस परिवर्तन को तीव्रतर बना दियाहै। संयुक्त परिवार आज के संदर्भ में व्यक्ति के आन्तरिक एवं बाह्य विकास के लिये घातक सिद्ध हुए हैं। आर्थिक विषमता, नयी शिक्षा से प्राप्त स्वतंत्रता बोध, शहरी जीवन की व्यस्तता आदि ने व्यक्ति को संयुक्त परिवार के दमघोंटू वातावरण से मुक्त होने के लिये विवश किया। फलतः धीरे धीरे संयुक्त परिवार की चार दिवारीढह पड़ी। सम्मिलित परिवार के इस विघटन के मूल में आर्थिक, कठिनाईयाँ, शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व का विभिन्न दिशाओं में विकास और गाँव की मिट्टी से हटकर नगर की ओर संक्रमण का हाथ तो है ही साथ साथ उसके प्रमुख कारणों में नारी की स्थिति में क्रमिक परिवर्तन भी है। संयुक्त परिवार के उत्प्रेरक तत्व अनेक हैं। औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप अधिकाधिक लोग गाँव छोड़कर शहर जाकर बस रहे है। साथ ही औद्योगिकीकरण से उद्भूत आर्थिक आकर्षण भी शिक्षित एवं नवयुवकों को शहर की ओर खींच रहा है।

संयुक्त परिवार के विघटन और एकल परिवार की स्थापना ने व्यक्तिवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया । मनुष्य का दायरा संकुचित होता जा रहा है और भौतिक उन्नति के प्रति आस्था उसको और अधिक स्वाथी बनाती जा रही हैं। 'भौतिक साधनों को हासिल करने की इस दौड में पारिवारिक संबन्ध अपने आप में शिथिल हो रहे हैं। दूसरी ओर आधुनिक शहरों की सामाजिक सांस्कृतिक विशेषताये संयुक्त परिवार को बढ़ावा नहीं देती ।

राजेंद्र यादव के उपन्यास "सारा आकाश" में इसी प्रकार पारिवारिक तनाव के पहलुओं का चित्रण किया गया है। जहाँ पर उपन्यासकार संयुक्त परिवार के प्रति तनिक भी आस्थावान नहीं है। जो आज के संदर्भ में प्रासंगिकभी नहीं है।

नरेश मेहता अपने उपन्यास "यह पथ बन्धु था" में संयुक्त परिवार के विभिन्न पहलुओं का पर्दाफाश करते हुए दिखाई देते हैं। परिवार के कमाऊ सदस्य स्वतंत्र हो जाना चाहते हैं। उपन्यास में पिता कहते हैं कि, "दुनिया भर के छल प्रपंच हैं, लेकिन वह मेरी समझ में तो नहीं आते"। उसके परिवार के सदस्यों में भी इसकी झलक देखने को मिलती है। अधिकांश सदस्य वहाँ पर घुट घुटकर जी रहे हैं। वह सब उस जीवन से मुक्ति चाहते हैं। इसलिए एक दूसरे से ही संघर्ष प्रारंभ कर देते हैं। अंत में पिता यह कहने के

लिए विवश हो जाता है कि,"नाक भौं सकोड़कर रहने की आवश्यकता नहीं है, जहाँ समायेवहीं जाए। किसी को यहाँ देहात जैसा लगता है। इस घर में लोगों के मिजाज ही नहीं मिलते"।

पारिवारिक संबंधों में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का समावेश होने लगा है जो एक नई समस्या को लेकर आया है। रेशम बक्शी के उपन्यास "बैसाखियों वाली इमारत" में नई परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। यशपाल के "झूठा सच" उपन्यास में मध्यमवर्गीय पात्र भी विवाह को सामाजिक बंधन के रूप में स्वीकार नहीं करते बल्कि व्यक्तिक संबंध के रूप में मान्यता देते हैं। शीलो अपने और रतन के प्रेम के विषय में कहती है "मोहब्बत का धर्म अपनी जगह है, घर बार का धर्म और ब्याह अपनी जगह"।

राजेंद्र यादव के उपन्यास"उखड़ेहुए लोग" भी वैवाहिक जीवन की रूढ़ियों को तोड़ने वाला उपन्यास है।

इस प्रकार यह तो निश्चित है कि जैसे जैसे समय परिवर्तित हो रहा है व्यक्ति के संबंध भी जटिलतर होते जा रहे हैं। जिसके कारण बहुत सारी समस्याएं पारिवारिक जीवन में अपना स्थान बनाती चली जा रही है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास इसके गवाह हैं कि प्रत्येक संबंध जटिलताओं को प्राप्त हो रहा है। आज परिवार के मध्य नैतिक, सांस्कृतिक मूल्य समाप्ति की ओर है। स्त्री और पुरुष दोनों स्वतंत्र भाव से अपने आयाम निश्चित कर रहे हैं जो न केवल पारिवारिक वातावरण को वरनबालकों के मनोभावों को भी प्रभावित कर रहा है। आधुनिकता के विभिन्न आयाम इन सभी उपन्यासों में परिलक्षित होतेहैं।

मध्यवर्ग का उदय और नगरीकरण का विकास

भारत में मध्यवर्ग का उदय उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। इस देश के सामंतीय ढ़ाँचे की तुलना में यूरोपीय सामंतीय ढाँचा बहुत कुछ भिन्न था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने उस पर संघातिक प्रहार किया। उसका ढाँचा बुरी तरह छिन्न भिन्न कर भू लुठित करदिया गया। विदेशियों के भयंकर से भयंकर आक्रमण, गृह युद्ध की सर्वग्रासी लपटें, लूट खसोट आदि अनेक भौतिक बाधायें भारत में जिस रूढ़ आर्थिक ढ़ाँचे को बदल न सकीं उसे ब्रिटिश साम्राज्यवादी संघातों ने अमूल परिवर्तन कर दिया। इस विध्वंस के मूल में अंग्रेजों की दृष्टि कभी भी निर्माणात्मक नहीं रही। लेकिन अंग्रेजों के न चाहने पर भी इतिहास की गत्यात्मक प्रवृत्ति ने निर्माण का कार्य अपने आप आरम्भ कर दिया।जिसमें आधुनिकता का भाव समाहित था जो उपन्यास साहित्य के साथ मिलकर एक नवीन आयाम के रूप में परिवर्तित हो गया।

बेकारी की समस्या आधुनिक युग की विशेष समस्या है। आधुनिक नगरों में जनसंख्या की वृद्धि के कारण इसका विकास हुआ है । नगरीकरण के कारण जब ग्रामीण होती का महत्व समाप्त होने लगा तो भारी संख्या में ग्रामीण नगरों की खोज के लिये दौड़ पड़े 12 किन्तु नगरों में इतने बड़े अनुपात में जीविका के साधनों को जुड़ा नहीं हो पाया। फलस्वरूप नगरों में बेकारी की समस्या फैलने लगी।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास"जहाजका पंछी" में नगर जीवन में विकसित बेरोजगारी का चित्रण हुआ है। उपन्यासकार ने कथानायक के माध्यम से सैकड़ों यवयुवकों के तीक्ष्ण वर्तमान को उभारने का प्रयत्न किया है जो जीविका विहीन होने के कारण निस्सहाय है और रोटी के टुकड़े के लिये तरसते हैं।'

जगदम्बा प्रसाद दीक्षित ने अपने उपन्यास "कटा हुआ आसमान" में बेरोजगारी की समस्या को गहराई से पकड़ पाने का पूर्ण प्रयास किया है। उपन्यास के नायक रमेश को बम्बई के एक डिग्री कॉलेज में लेक्चरशिप मिल जाती है। तब वह सोचता है कि, देहरादून से अपने सारे परिवार को बम्बई लाकर नए सिरे से अपने घर को बसाएगा। धूमधाम से रत्नों की शादी कराके तथा छोटे भाई सुरेश को पढ़ा लिखा के अपनी विधवा माँ के अंतर्मन की अभिलाषाओं को साकार कर देने की कामना करता है। किंतु बम्बई जैसे महानगर की परिस्थितियांउसे सुदूर ही मोड़ पर लाकर खड़ा कर देती है। महानगर के महंगे जीवन में परिवार के साथ रहने का उसका मोहभंग हो जाता है। छोटे भाई को एमए कराना, छोटी बहन की शादी करना ये सारे स्वप्न ध्वस्त होने लगते हैं। विश्वास की इमारतें ढहने लगती है। अंततः वह सोचता है कि महानगर के इस भीड़भाड़ वाले जीवन में परिवार के लोग उसके लिए बोझ बनते जा रहे हैं। जगदम्बा प्रसाद दीक्षित अपने इस उपन्यास के माध्यम से वर्तमान जीवन के यथार्थ को बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ उपस्थित करते हैं।

निःसंदेह कहा जा सकता है कि, आधुनिक हिंदी उपन्यास मध्यम वर्गीय जीवन की जटिलताओं संकुलताओं को अपने विस्तृत कलेवर में समेट लेने वाले हैं। परंपरा का निषेध करने वाले, वर्तमान के साथ सक्रिय संग्राम करने वाले तथा भविष्य के प्रति शंकाकुल मानसिकता रखने वाले मध्यमवर्गीय व्यक्ति मन के रेशे रेशे उतार रखने में हिंदी उपन्यास सफल रहे हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि, हिंदी उपन्यास की स्थिति दिन प्रति दिन परिवर्तित युग एवं संदर्भो को अपने अंदर समेटती चली जा रही है। एक ही शिल्प विधि के अनेक उपन्यास अब नहीं दिखाई देते। अब जितने भी उपन्यास है उनके संदर्भ, आयाम, शिल्प,वैशिष्ट्य सभी कुछ वर्तमान प्रासंगिकताओं से युक्त है। उपन्यासकार अपने कत्थ्य में समाज में व्याप्त, युग में व्याप्त अनुभूत सत्य के संप्रेषण के लिए विभिन्न स्वरूपों का समावेश करता हुआ दिखाई देता है। वह अभिव्यक्ति की ईमानदारी की ओर बल देने के कारण शैली, गुण एवं अनुभूति की प्रमुखता को अपना रहा है। अत: निश्चित रूप से हिंदी उपन्यास आधुनिक बोध को अपने अंतस में समेटने में पूर्ण सफल हो रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नई समीक्षा, नये संदर्भ: नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली : 1964
2. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद: त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वारणसी : 1965.
3. आज का हिन्दी उपन्यास: इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली: 1966.
4. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ: लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, राधाकृष्ण प्रकाशन 1970.
5. हिन्दी उपन्यास : डा सुरेश सिन्हा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1972.
6. हिन्दी उपन्यास प्रयोग के चरण: राजकमल बोरा, नमिता प्रकाशन, औरंगाबाद: 1972.
7. आधुनिक भाव-बोध की संज्ञा: अमृतराय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद 1972.
8. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम्य जीवन: विवेकी राय, लाकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1974.
9. आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास: अतुलीवर अरोड़ा, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब विश्वविद्यालय, चंड़ीगढ़: 1974.
10. आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य: इन्द्रनाथ मदान राधाकृष्ण। प्रकाशन, दिल्ली: 1978.

काठमे समाजिक मूल्यक चित्रण

गौतम कुमार

शोधार्थी यू.जी.सी-नेट/जे.आर.एफ, विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, उत्तरी परिसर, भूपेन्द्र नारायण मण्डल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुरा (बिहार)

डॉ० नरेन्द्रनाथ झा

(शोध निर्देशक एवं पर्यवेक्षक) सहायक प्राचार्य, विश्वविद्यालय मैथिली विभाग, उत्तरी परिसर, भूपेन्द्र नारायण मण्डल विश्वविद्यालय, लालू नगर, मधेपुरा (बिहार)

मैथिली साहित्यक कथा विधामे 'काठ' कथासंग्रहक महत्ता सर्वविदित अछि। पन्द्रह गोट कथा, संगहि एहिमे कथाकारक सूक्ष्म ओ स्पष्ट दृष्टि, आ वर्तमान मिथिलाक सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक ओ राजनीतिक स्थितिक व्यापक अनुभूतिक प्रयोग भेल अछि। वर्ष 2006 मे साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित एहि कथाकृतिमे मैथिल समाजक चित्रणक संग देशी शब्दक प्रचुर प्रयोग भेल अछि। एकर कथावस्तु समसामयिक, नायक-नायिका मैथिल, वातावरण ऍटनाक अनुकूल, भाषा-स्पष्ट ओ बोधगम्य, शैली विशिष्ट, कथोपकथन सजीव एवं उद्देश्य समाजक वास्तविक ओ जीवन्त स्वरूपकेँ लगसँ देखायब थिक।

एकर पहिल कथाक नाम 'स्वाद' छैक। एहिमे सिमरिया कात जाय शवक दाह-संस्कार आ ताहि क्रममे ऍटित ऍटनाक सजीव आ मार्मिक चित्रण भेल अछि। कथाक पृष्ठभूमि मे आयल दलित वर्गक जीविकाक साधन एवं प्रदूषित होइत गंगाक जलकेँ ताहि सँ बचेबाक उपक्रमक अनुपम वर्णन अछि।

दोसर कथा थिक 'जानवर'। एहिमे मैथिल समाजमे होअयबला गोबरधन पूजा-विधानक प्रसंग रुचिपूर्ण तथ्य संग्रहक संग मानवक दानवी प्रवृत्ति कें उद्ाटित कयल गेल अछि। एकटा छोट निर्दोष सुगरक बच्चाकेँ कतोक बलगर पै-पै पशु जकरा नाना प्रकारक जड़ी-बुटीक तरल मिश्रणकेँ काँड़ीसँ पिआओल जाइछ, मताओल जाइछ आ बच्चाकेँ निर्दयतापूर्वक ओहि पै पशुक बीचमे वध हेतु छोड़ि देल जाइछ। ततबय नहि, सहस्र संख्यामे उपस्थित दर्शक एहि जान्य खेलक आनन्द उठबैछ। मनुक्ख देवी-देवतासँ प्राप्त, प्रकृतिसँ प्राप्त सुन्दर-मनोरम एहि संसारक सर्वश्रेष्ठ बुद्धिजीवी प्राणी भऽ ऍमण्डसँ भरल अछि। ओ जीव-जन्तुक अन्तर्सम्बन्धके, नेह-क्षेमके, परस्पर निर्भरताकेँ, पारिस्थितिकीक संतुलनके निर्मूल कऽ तकरा अपना ढंगे चलयबाक असंभव आयासमे निशि-दिन लागल रहैछ।

तेसर कथा थिक- 'खुल्ला'। दैनिक रेलयात्रा जाहिमे कुजरा-कुजरनीक नित्यप्रतिक कथा-व्यथा आ गामसे बाहर रहि जीविकोपार्जन कर्यनिहारक मध्य अन्तर्सम्बन्धक चित्रण अछि। कथाक मूलमे कुजरा-समाज अछि। ओकर अहं केर रक्षा, मर्यादित व्यवहार, परदेशियाक प्रति स्नेहभाव व्याख्यायित अछि। विवाहोपरान्त विरहाग्निक ज्वालामे पालैत एकटा नवयुवती- कुजरनीक अहं ओ तकर मर्यादाक सीमा-भाव निम्नांक्ति अछि-

कि तखने केओ ओहिमेस टिपलकै 'ऐसे कहिया तक रहिहऽ। खुल्ला करा लऽ। तब, जे मोनमे होइ हऽ करिहऽ। कि ताहिपर खएनाइ छोड़ि एकै बेर चौलक पानि जकाँ भभकि उठलि सब्वो- 'ई तू कोन बात सिखलाबऽ हू चाची! हम कोनो रंडी-बेसिया हैं? एक छोड़ दिहिस, कि दोसरे लुंगी लिए छुछुआत शुरू। फिर दोसरा छोड्सि, कि तिसरा लुंगी तर ढुक जाउ। ...तू बेलज्जी, तोहर समाज बेलज्जी, समाज के ई वेवहार बेलज्जी... थू...[2]

उपर्युक्त कथ्यसँ व्यक्तिक मर्यादा समाजसँ श्रेष्ठ भऽ जाइछ, जकरा बेलज्जीक संज्ञासँ अभिहित कयल अछि।

'पियास' शीर्षक कथा शहरी जीवनसँ सम्पृक्त मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करैछ। भौतिक सुखक भूखल लोकक आँखिसँ संस्कार, मर्यादा, नैतिकता, कुलीनता सभक चित्र बहार भऽ बिला गेल अछि। छोट-छिन ारमे रहि सभ तरहक सुखके भोगबाक अभिलाषी शहरी जिनगी जीबाक तऽ नाटक मात्र करैछ। मुदा भविष्णुक आधुनिक चेतना, ओकर मनोमस्तिष्कपर आधुनिक जीवन शैली मे व्याप्त अमर्यादित ओ दूषित-संस्कारक गम्भीर प्रभाव पड़ैत छैक, ताहिपर अभिभावकक अनठायब सन मुद्रा। आगाँ एहि समाजके कतय धरि लऽ जायत? कथाकार विविध उपाटनाक चित्रण सँ संकेत-सचेत करैत छथि-

"यादवजी सपरिवार अपन ड्राँइंग रूम मे बैसल स्पेनिश फिल्मक चित्रादिक मादे निर्लज्ज भऽ कऽ गप्प कऽ रहल छथि। बेटा विषयक उपस्थापन कयलकनि। पत्नी व्याख्या। अपने ठहाका लगबैत। सोझाँमे बैसल समर्थ बेटी बापकेँ डपटैत- 'एतेक गंभीर बात पर पापा अहाँ गँवार जकाँ किए हँसि रहल छी। जैकीक सेंटोमेंटके बुझियौ! ओकरा संग हमरो सेंटीमेंट जुड़ल अछि..."[3]

एहि कथासंग्रहक नवम कथा थिक 'लोक देखलक'। मैथिल समाजमे कोनो मांगलिक अवसरपर तथाकथित उपेक्षित वर्गक सहयोग अपेक्षित वर्गसँ बेसिये दृष्टिगत होइत रहल अछि। हेतु जे होअय। ओहि उपेक्षितक मनःस्थिति, यज्ञके सुसम्पन्न करबाक उत्साह, श्रद्धा आ कर्त्तव्यपरायणताक भाव वस्तुतः अनुकरणीय होइछ। मुदा अपेक्षित वर्गक पारम्परिक सोचसँ उत्साही प्रवृत्ति पर कुठाराातक एकटा मार्मिक चित्र निम्न अछि-

'पंडित भैया-

'सभटा अनिष्टक ार अछि ई सिरकलिया।'

'ई की बजै छी बाबू।'

हम ठीक बजै छी! शुभकाजमे राँड़-मसोमात अशुभ मानल जाइत छै। ताहूमे बाल-विधवा! काल्हि ने ओ दूध के छुबैत आ ने दूध फैटतै।"[4]

एहि कथामे ाृणा, ईर्ष्या ओ दुर्भावना से ग्रस्त लोक सिरकलिया सन कर्ताक विधवा, मुदा सामाजिक लोकक स्वस्थ मनके दुर्बल आ निरुत्साह करबामे कोनो कसरि नहि छोड़लक अछि। कथा पण्डित भैयाक उक्ति से लोककेँ सचेत कयलक अछि।

'झुनझुन्ना' शीर्षक कथामे ान-वित्तसँ श्रीसम्पन्न साहेब-मेम दम्पति करुणियाँकेँ कारुणिक बनाइयो कऽ झुनझुन्नासँ बेसी बुझि नहि सकलथिन। ओकरा करुण बनयबाक क्रममे अपन मातृत्व शक्ति कें बिसरि गेलीह मेम, वात्सल्यक सौरभसँ सुवासित 'करुण' मातृत्व सुखक अभाव मेमक सन्ततिके होअय नहि देलकैक। मुदा मेमसाहेब तऽ अपनहु सन्ततिक माय नहि अपितु मेम छलीह 'मेम'। धनक मदमातल, सुविधाभोगी, स्वार्थी ओ महत्वाकांक्षी प्रवृत्तिक लोकक अपन नोकरनीक प्रति उक्तिक अवलोकन एहि कथामे देखल जा सकैछ-

मेम साहेब 'गाममे ककरा लग फेकि एबै! पित्ती पितिआइन रखतै?'

साहेब 'देखबै, किछु पाइ-ताइक लोभ-लाभ दऽ कऽ बुझा-सुझा देबै।"

मैथिल समाजमे एहन अर्थ सम्पन्न लोक सभसँ एहि कथाक माध्यमे सचेत कयल गेल अछि।

'हाक' शीर्षक कथाक माध्यम सँ कथाकार अपन रूढ़ि-जन्य परम्परासँ फराक होयबाक संकेत दैत छथि। अद्यावधि मैथिल समाजमे रूढ़ि-जन्य वेदना व्याप्त अछि। जेना ओकर प्राणरक्षासँ पै भौतिक सुखकारक वस्तु। ओकर आत्मा ओकरा लगमे नहि! ते ने भगवतीक सिराउरके गमछामे बन्हने आ चाउरक बोराके पजिऔने हिमवत भऽ कऽ रहि गेल। एकर कथानकक माध्यमसँ हाक देल गेल अछि अन्धविश्वासी समाजके सतर्क सचेत होयबाक लेल, सर्वप्रथम प्राणरक्षाक लेल, मुदा कँ सुनैछ-

"ओतऽ पहुँचिते सभ धक् रहि गेल। सभ अनुमान कएलक, मुदा निष्कर्ष किछ नहि बहरपले। सभक सभ गुम्म। फेकू चार उठऔने मुर्त्तिवत् ठाढ़। करिया भाइ भगवतीक सिराउरके गमछामे बन्हने आ चाउरक बोराके पजियोने पड़ल। माछामा बान्डल बड़द सेहो निष्प्राण। ककरो मुँहसँ बकार नहि बहरा रहल छलै।"[6]

बाढ़िक समस्याक निराकरण नदीक पानिके" बान्हि-छेकि कऽ नहि, अपित ओकरा स्वच्छन्द बहय पसरय दैत रहबाक लेल कहल गेल अछि। स्वाभाविक गतिके नहि रोकबाक संदेश देल गेल अछि।

'रिटायरमेंट' शीर्षक कथामे अवकाशप्राप्त व्यक्तिकें ारमुहाँक बाद पूर्वक अपेक्षा पछाति स्वयंके अपेक्षाकृत देह सँ, पारिवारिक सदस्यसँ, समाज सँ दुर्वल-असम्मृक्त भेल अनुभूतिक यथार्थ चित्रण भेल अछि। ई एक गोट वृद्ध-जन्य समस्या थिक जे प्राय: अधिकांश परिवारमे दृष्टिगत होइछ। ई कथा एहि कहाबीक चरितार्थ करैत आश्रित व्यक्तिकें सेहो सचेत करैछ- 'सब दिन होत न एक समाना'।

'काठ' शीर्षक कथामे शोषक-शोषितक यथार्थ चित्रण भेल अछि। मनुक्ख चाहे गरीब होअय वा ानिक सभक अपन व्यक्तिगत जीवन, आदर्श, इच्छा ओ अहं सर्वोपरि होइछ। मुदा ओकर जीवनमे हस्तक्षेप कयनिहारके ओ काठ कहैछ। काठ नीरस, सुगन्धरहित, सम्वेदनहीन, ह्रदयहीन वस्तुमात्र होइछ। समाजमे किछु लोक श्रमिक वर्गक सुख-दु:खसँ, परम सहयोगी से निज स्वार्थान्धक कारणे ओकरा लेल सेहो काठ बनि गेल अछि-

"गिरहस जे आबि रहल हइ हकपाड़ा बनल! ओकरा सभके करेजा नइ होड़ हइ जनू।"

"लाजे-धाक की होइ हइ!"

"इहो सराुआक जाति काठ होइ हए, काठ।"

मुदा फेर सोचौछ अपन जीवन निर्वाहक गप। एहिठाम आबिकऽ ओ हारि जाइछ। ओकर व्यक्तिगत जीवन, आदर्श, अहं निर्मूल भऽ जाइत छैक। ओकर दाम्पत्य जीवनपर कुठारााात होइत छैक।

"नइ जइऐ की?"

"से कोना हेतै। पेट आ पिरेम संगे नइ होतै!"[7]

वस्तुत: मजूर वर्गक लेल ओकर गिरहस काठे! ई मजूर धन सँ विपन्न, भले पेटक आगिमे ाकि रहल होअए, मुदा ओकर गिरहस हिमखण्ड थोड्बे छथि जे पालि जयताह! ओ तऽ काठ छथि, जरि सकैत छथि, सुड्डाह भऽ सकैत छथि, मुदा पालि कऽ नव आकार ग्रहण नहि कऽ सकैत छथि।

सम्प्रति मैथिली भाषा साहित्यक अभिवृद्धिमे कथा विधा चरमोत्कर्षपर अछि। कथाकारक सर्वव्यापी सोचक दर्शन कथामे भेटैत अछि। समाजक आधुनिक भौतिकवादी सोच दिस उन्मुखीकरणक फलस्वरूप कथामे नवीन शैलीक पदार्पण भऽ रहलैक अछि। सामाजिक-सांस्कृतिक क्षरण, स्थापित मान्यता-परम्पराक लोप, नैतिक पतन, दिनानुदिन सर्वसाधारणक बोलीमे लसि-गुद्रद्दाहीन-रोड़ाह बोलीक प्रक्षिक जन-जनमे धन संग्रहक प्रति अत्यधिक आसक्ति से मैथिली कथा बेस प्रभावित भेल दृष्टिगत होइछ। सम्प्रति मैथिली कथाक फलक गाम-ार, बाध-वन से राष्ट्रीय-अनतर्राष्ट्रीय स्तर धरि लतरल-चतरल जा रहल अछि। ई शुभ संकेत थिक।

मैथिली कथामे अद्यावधि कतोक नव विषय वस्तुक समावेश होयब अपेक्षित प्रासंगिक अछि। एकर अवलोकनसँ प्राय: सभ किछु भेटत, मुदा न्यूनतामे। तकर समृद्धि होअय। कथाकेँ मनोरंजक, चित्ताकर्षक आ उद्देश्यपूर्ण बनयबाक लेल कथाकार अपन दृष्टिकेँ आओर सूक्ष्म राखथि, ओहिमे सात्विकता आबय, सामाजिक गठजोड़केँ सशक्त-समरस बनयबाक पुट जे दैनिक जीवनमे निरामिष गप व्यवहारक प्रयोग प्रचूरताक संग भऽ रहलैये, से अपसंस्कृक्ति, असभ्यताक प्रतीक, भाषा-बोलीपर पाश्चात्य सभ्यताक प्रकोप भेल। मुदा तकर परिमार्जन करब तऽ साहित्यकार-भाषा शिल्पीक हाथमे अछि, नहि कि ओकरा ओही रूपमे अपन साहित्यमे प्रयोग कऽ लेब। मनोरंजनक संग सामाजिक-सांस्कृतिक मर्यादाकेँ अक्षुण्ण राखब, समाजके दृष्टिबोध करायब, सचेत करब तऽ साहित्यकारक प्रथम कर्त्तव्य सदासँ रहलैक अछि।

संदर्भ सूची:

1. काठ (कथा-संग्रह) विभूति आनन्द; प्रकाशन- जखन तखन, दरभंगा प्रकाशन वर्ष- 2002
2. वैह; पृष्ठ संख्या- 36-37
3. वैह; पृष्ठ संख्या- 57
4. वै;, पृष्ठ संख्या- 79
5. वैह; पृष्ठ संख्या- 83
6. वैह; पृष्ठ संख्या- 111
7. वैह; पृष्ठ संख्या- 128

एकैसम सदीक महाकाव्यः शकुन्तला

रमण जी

शोधकर्ता, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

महाकाव्य काव्यक विशिष्ट ओ महत्त्वपूर्ण अंग थिक। मैथिलीमे महाकाव्य-रचनाक विकास संस्कृत महाकाव्यक अनुप्रेरणाक परिणाम थिक। संस्कृत महाकाव्य-परम्पराक श्रीगणेश आदिकवि बाल्मीकि श्रामायण श्से होइल, जकरा दृष्टिये रात्रि महाकाव्यक लक्षण सेहो निर्धारित मेल। विभिन्न प्रकारक ऐतिहासिक, पौराणिक, महाभारत, रामायण, आदि विषयके केन्द्रित करैव महाकाव्य सभ मैथिलीक महिमा ओ गरिमा बढ्यबामे सहायक सिद्ध भेल। यद्यपि महाकाव्य मुख्यत: आधुनिक कालमे लिखल गेल, मुदा लेखन-क्रम पूर्णत: परम्परापर आधारित।

एकैसम सदीमे प्रकाशित महाकाव्यक स्थिति उत्साहवर्द्धक अडि एकर प्रकाशनक प्रवाह सन्तोषप्रद मानि सबैत छी। दयाकान्त झाक 'निश्वाण स्वप्न' (2001 ई.) आ 'पांचाली परिणय' ('06), चन्द्रभानु सिंहक 'शकुन्तला' (('02), अनन्त बिहारी लाल दास 'इन्दु'क 'खंजन नयन निरंजन' ('02), शशिबोध मिन्न 'शशि'क 'नचिकेता' ('02) आ 'चतुर्दशी' ('19), बैजू मिश्र 'देहाती 'क 'मैथिली रामायण' ('02), प्रो. मुक्तिनाथ झाक 'बुद्धायन' ('05), मैथिली पुत्र 'प्रदीप'क 'अन्हारसँ इजोतमे आत' ('14), 'नटवर लीला महाकाव्य' (07) आ 'ओसीतावतरण' (2009-'10), कविचूड़ामणि 'मधुप 'क 'मुक्तमधुप' ('06), डॉ. कृष्णचन्द्र झा 'मयंक'क 'मैथिली रामायण' ('08), लालदासक 'महेश्वर विनोद' ('11), स्नेहलताक 'सीतावतरण' ('11), अरविन्द कुमार मिश्र 'नीरज'क 'परमहंस गोस्वामी लक्ष्मीनाथ' ('14), गंगाप्रसाद झाक 'कुलकमल' ('18), सूर्यनारायण झा 'सरस 'क 'मैथिली श्री सीतारामचरितमानस', 'बुद्धिनाथ झाक'। महाभारत' ('19, तीन भाग- आरम्भ खण्ड, मध्य खण्ड एवं समापन खण्डमे विभक्त), प्रो. महिनाथ झाक 'सुदर्शन-विजय' (19) आदि एकैसम सदीमे प्रकाशित प्रमुख महाकाव्य थिक। संगहि प्रो. मुक्तिनाथ झाक 'स्वर्गच्युति ओ पुनरपि लभते स्वर्गम्' ('17) [मूल अंग्रेजीमे जॉन मिल्टनक 'पैराडाइज लॉस्ट'] विशिष्ट अनूदित महाकाव्य थिक, जकर प्रकाशन साहित्यिकी द्वारा भेल।

साहित्य अकादेमी एखन धरि मात्र सात गोट महाकाव्य 'राधा विरह' ('70), 'सीतायन' ('76), 'कृष्णचरित' ('79), 'अगस्त्यायनी' ('81), 'पराशर' ('89), 'प्रतिज्ञापाण्डव' ('01) आ 'शकुन्तला' ('04) के पुरस्कृत कयने अछि। एकैसम सदीमे प्रकाशित ओ पुरस्कृत होयबाक सौभाग्य एकमात्र 'शकुन्तला' महाकाव्यके छैक। साहित्य अकादेमीक अनुवाद पुरस्कार, युवा पुरस्कार आ बाल पुरस्कार कोनहुँ महाकाव्यके नहि भेटल अछि। यद्यपि मैथिली महाकाव्यक स्थितिक प्रसंग लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार प्रो. रामदेव झा लिखैत छथि- "मैथिली साहित्यक ई दुर्बल विधा आब एतेक सबल भश गेल अछि जे अध्ययन-अध्यापन ओ अनुसन्धान-आलोचनाक एकटय गरिष्ठ विषयक रूपमे स्थापित भ' गेल अछि।... मैथिलीमे एकटा एहन वर्ग सक्रिय अछि जे सुविचारित रूपर्स मैधिली महाकाव्यक विकासमे अवरोध उत्पन्न करबामे साकांक्ष रहैत अछि। एहि प्रच्छन्न मैथिली लेखकक वर्ग द्वारा प्रयत्यक्ष वा परोक्ष रूपर्स कथित वा लिखित रूपमे, वैयक्तिक वा सामूहिक रूपमे मैथिली महाकाव्यके अनुपयोगी, अप्रासंगिक, प्रियमान विधा कहि कऽ नकारल जाइछ तँ महाकाव्य रचयिताके पुरातनपंथी, पोङापंथी, परम्परावादी, रूढ़िवादी इत्यादि विशेषण द्वारा धिक्कारल जाइत छनि। एतेक धरि जे महाकाव्य विधाक घर्षण हेतु 'प्रतिज्ञा पाण्डवीकरण' सन एकटा परिधानो गढ़ि लेल गेल। कतिपय तथाकथित प्रगतिवादी कवि-आलोचकलोकनि महाकाव्य-रचयिताकै तिरस्कृत ओ अपमानितो करबामे संकोच नहि करैत छथि। जखन कि साहित्यहि आब अप्रासंगिक मेल जा रहल अछि तेहनो विषम कालमे महाकाव्यक सर्जन भ' रहल अछि।"[1]

महाकवि चन्द्रभानु सिंहक जन्म नदियामी (बिरौल, दरभंगा) गाममे 1 मार्च, 1922 के आ मृत्यु 19 अक्टूबर, 2016 के मेलनि। 1940 से 2000 ई. घरि आकाशवाणीसँ प्रसारित शताधिक गीत 'स्वदेश भारती 'मे संकलित भेल संगहि हिनक 'के ई गीत अलापै छइ' गीतसंग्रह सेहो महत्त्वपूर्ण छनि। 'शकुन्तला' महाकाव्य हिनक अक्षय यशक स्तम्भ थिक। 2004 ई. मे साहित्य अकादेमीसँ पुरस्कृत आ 2012 मे प्रबोध साहित्य-सम्मानसै अलंकृत-विभूषित चन्द्रभानु सिंहक परिचय सूत्रबद्ध करैत 'शकुन्तला'क सम्पादक रामदेव सिंह 'कलाकार' लिखने छधि- "मिथिलांचलमे पदयामी कविक रूपमे जन-जनसँ परिचित, स्वतंत्रता आन्दोलनक सक्रिय सहयोगी। खादी धोती, कुर्ता, तौनी, चप्पल काँखमे झोला आ 'झोलामे कविताक बुलेटिन। दप-दप फड़-फड़ केश आ चोकटल मुँहपर ऐंठल उज्जर मोंछ। निठ्ठ देहाती, सहज बोलचाल, महोल कंठमे गीतक अक्षय भण्डार आ आँखिक चमक आकर्षक ई छथि महाकवि चन्द्रभानु"[2] हिन्दीमे 'सप्तमहारथी', 'राष्ट्रभारती' आ 'बजरंग पचीसा 'क प्रणेता छथि।

महाकवि चन्द्रभानु सिंह गीतकारक रूपमे सुप्रसिद्ध रहथि आ 'हिनकासँ 'कोइली' कविता प्रत्येक मंचपर निश्चित रूपे श्रोता सुनैत छल। महाकाव्यक भूमिका-लेखनमे मैथिली साहित्यक सुमेरु प. चन्द्रनाथ मिश्श्र 'अमर'क मन्तव्य छनि- "साहित्य साधनामे निरत, अपन 'चन्द्रभानु' संज्ञाके सार्थक कयनिहार अर्थात् चन्द्र अपन रश्मिर्स रातिके उजागर आ भानु अपन मरीचि मेलासँ समस्त विश्वके उजागर ओ उद्घासित रखनिहार महाकवि श्री चढ़ भानु सिंह समाजमध्य चिरपरिचित ओ बहुचर्चित तथा प्रशंसित रहलाह अछि। हिनक एक विशेषता ईहो रहलनि अछि जे सिंह रहितो गरजलाह नहि प्रत्युत कोकिल जकाँ काव्य-उपवनके कूजित करैत रहलाह।"[3] गीत-रचनामे पर्याप्त सुयश प्राप्त रहबाक कारणे 'कोइली' मधुकोष तै अछिए, 'शकुन्तला 'क सर्जन हिनक गरिमाके आओर बढ़ाय देलक।

महाकवि कालिदास विरचित 'अभिज्ञान शाकुन्तलम् 'क कथावस्तुपर आधारित 'शकुन्तला' पौराणिक इतिहासपर केन्द्रित विलक्षण महाकाव्य थिक। नायिका प्रधान एहि महाकाव्यमे शकुन्तला आ दुष्यन्तक प्रेम कथा वर्णित अछि। एहिसँ पूर्व सरसकवि ईशनाथ झाक 'शकुन्तला' अनूदित नाटकमे आ कविवर दामोदर लालदासक 'शकुन्तलोपाख्यान' खण्डकाव्यमे कालिदासक शकुन्तलाक प्रतिविम्ब मैथिली साहित्याकाशमे चमकाय चुकल छथि। 'शकुन्तला'के लक्षण ग्रंथक कसौटीपर देखैत छी जे एकर विशेषता, गुण ओ महत्त्व मैथिली साहित्यक एक अनुपम आ सफल महाकाव्य प्रमाणित करैत अछि। कविवर प्राचीन परम्पराक पालन करैत एकरा अत्यधिक चमत्कारक बनओने छथि। पुराणे जकाँ एहि महाकाव्यमे शकुन्तला दुष्यन्तक प्रेममे अलौकिकताक संग स्वाभाविकताक दर्शन होइछ। प्रभात वर्णन, सन्ध्यावर्णन, इजोरिया रातुक वर्णन तथा छओ ऋतुक वर्णन मोहक ढंगसँ भेल अछि। महाकाव्यक मुख्य पात्र ओ मुख्य भाव-दुनूक समन्वित रूप एकर नामकरणमे स्पष्ट अछि। महाकाव्यक निर्माण एक पैघ यज्ञक आयोजन सदृश होइछ, ते मंगलाचरण तथा ईश वन्दना रहब स्वाभाविक-

'हे अम्ब, भाव कदम्ब फूलल दर्द दंशे भगवती,
अछि हृदय पीड़ासँ बिंधल से पसीझल स्नेहक मती।

जे दिशा अँहक बसात केर ओहिमे बहौ मम कल्पना-

अनुरागिनी! से छवि दियौ अविलम्ब भारत भारती।।'[4]

नओ सर्गमे आबद्ध आ पुनः सैंतीस उपखण्डमे विभक्त एहि महाकाव्यमे शकुन्तलाक चरितके आधार बनायब महाकविक उदात्त भावना ओ दृष्टिक सूक्ष्मताक परिचायक थिक। मंगलाचरण होइतहि कण्व आश्रमसँ ब्रह्माण्डक विराट दर्शन करबैत कथानकक सूत्रपात होइत अछि आ क्रमशः इन्द्र सभाक वर्णन, शकुन्तलाक माय मेनकाक आवाहन, विश्वामित्रक समाधि सम्मोहन, ब्रह्म मुहूर्तमे कण्व ऋषि द्वारा शकुन्तला प्राप्ति, लालन-पालन, हस्तिनापुर नगरक वर्णन, नव पात्र अधमक आविर्भाव आ राजकीय सम्मान, सैन्य संगठन, तीर्थ राज प्रयाग, काशी ओ तिरहुतक वर्णन, दुष्यन्तक आखेट, शकुन्तलाक पूर्वराग, मिलन, सौन्दर्य बन्धन, लग्न विचार, प्रमातरता, कण ऋषिक अनुपस्थितिमे गौतमीक आदेशसँ परिणय, प्रथम रात्रि मिलन, मुद्रिका समर्पण, दुष्यन्तक हस्तिनापुर आगमन कण्व आश्रममे दुर्वासा मुनिक आगमन ओ शकुन्तलाक अपमान, शकुन्तला शापित, नदीमे मुद्रिकाक खसब, शापन प्रभाव, परित्यक्ताक जीवन प्रारम्भ, विरह वर्णन, मुद्रिका अन्वेषण ओ शाप विमुक्ति, दुष्यन्त शोकमग्न, भरतक जन्म मारीधि आश्रम, भरतक शौर्य चमत्कारसँ दुष्यन्त प्रभावित, दुष्यन्त शकुन्तलाक मिलन आदिक उल्लेख ए महाकाव्यमे नीक जकाँ गेल अछि। ई वर्णन सघ महाकविक विशालता ओ महत्ताक परिचायक थिक।

शकुन्तलाके पिता रैभ्यक स्नेह कहियो नहि भेटल, कारण हिनक पदार्पणक किछुए समयक बाद स्वर्गवासी भ' गेलाह। मुदा मायक आज्ञापालन ई सभ दिन करथि। नायक दुष्यन्तक हृदय प्रेम आ करुणासँ भरा अछि जे सर्वत्र भेटत। वनजाति अधम नामक पात्र महाकविक कल्पना थिक, जे 'अभिज्ञान शाकुन्तलम् 'मे से नहि छैक। अधम राजाक कृपापात्र अछि जे राजाज्ञापर समर्पित रहल। समस्त महाकाव्य गीतमय अछि। होल चौतावर, सोहर, लगनी, बारहमासा, प्रभाती, झूमर आदि गीतसभक सन्निवेशक संग छन्दक वैविध्य आ ठेठ मैथिल शब्दक प्रयोग एकर वैशिष्ट्य थिक। ठाम ठाम लोकोक्तिक प्रयोगसँ महाकाव्य आह्लादकारी भेल अछि-

कनहा बिलड़ा माड़े तिरपित विपटा अहिना फटकए।..
दूध माछ दूनू अछि वैरी आर्गा पड़ल कसौटी।
खसब कतयसँ पड़ब कतय जा चढ़ल आगि तन औरी।।[5]

अनेकतामे एकताक सन्देश दैत समानता रखबाक आह्वान महाकवि करैत छथि-

अही माटि केर ई शरीर छड़ जे सबहक छड़ तनमे।
तूलम तूल सभक हक एके भेद न हमरा मनमे।।[6]

महाकाव्यर्क काव्योचित सौन्दर्य-वर्णनसँ नीक जकाँ सजाओल गेल अछि-

सीमड़ तरुसन दीर्घ बाहु दुहुँसें कसि दाबल छाती।
उभरल मेरु फुलायल दू टा कमल जकर अछि थाती।।
वक्ष-पहाड़ अधिक नहि ऊठल फूल पेंच सन चिपकल।
देखि विचित्र रूप नारी के मीत! मोन अछि अलगल।।[7]

संगहि-

एक फूल दोसर पराग अछि भक्ति भाव जनु जोड़ल।
एक शब्द दोसर ध्वनि तकरे समाज जायले मोड़ल।।[8]

'शकुन्तला 'मे माधुर्य, शब्द-सौन्दर्य, लय-प्रवाह सर्वत्र परिलक्षित होइछ। रसराज श्रृंगारक दुनू भेद स आ वियोगके महाकवि चित्रित कयने छथि। दुष्यन्त ओ शकुन्तलाक यौवन आ परस्पर प्रतीक्षामे महाकविक कल अत्यधिक आकर्षक अछि-

राजहंस-शुभ पीठ विलासिनि कुमर फिरै छथि डेरा।
उठि उठि बैसथि हेरथि फिरि फिरि हीवथि सरित किन्हेरा।।
साँझ सूर्य केर दीप्त थार भेल बढ़बए विपिनक लाली।
जनु रतिनाथ कपोल मालिनिक खीचथि रेख प्रवाली।।"[9]

वास्तवमे 'शकुन्तला' मैथिली प्रबन्धकाव्यमालाक एक सुरभित सुमन थिक। महाकाव्यक अधिकार लक्षणसँ ई आभूषित अछि आ एक सफल महाकाव्य मानबाने कोनहुँ आपत्ति नहि। अपन काव्यके महाकवि चन्द्रभानु सिंह ततबा चमत्कृत ओ आकर्षित बनाओल जे पाठकक हृदय अनायासहि ओहि प्रति आकृष्ट भ' जाइछ। एकर कला पक्षक सौन्दर्य भाव पक्षसँ बेसी विलक्षण अछि। एहिमे शब्दक सुकुमारता, लयक माधुर्य, भाषामे प्रवाल आ वर्णनक चमत्कार अत्यधिक हृदयग्राही अछि। प्रो. केष्कर ठाकुर लिखने छथि "एक राजा द्वारा मर्यादाक उलंघनर्स जाहि प्रकारे नारीक भावनाके ठेस पहुँचल अछि ताहि प्रकरणके 'शकुन्तला'मे अत्यन्त सूक्ष्म रीतिए प्रस्तुत कयल गेल अछि। शकुन्तलाक चरितमे नारी घावनाक उत्कर्षक वर्णन भेल अछि।"[10] अन्तमे प्रो. भीमनाथा झाक विचार 'शकुन्तला 'क प्रसंग पूर्णत: प्रासंगिक "जे अपन भाषामे महाकाव्यप्रिय छथि तनिको लेल, जे मुक्तक काव्य प्रिय छथि तनिको लेल, जे गीतकाव्यप्रिय छथि तनिको लेल, जे मिथिलाक लोकधुनपर आधारित अभिनव पदावलीक रसिक छथि तनिको लेल, तथा जे भाषा वैज्ञानिक छथि, नव-नव शब्दक अन्वेषक अनुसंधाता छथि तनिको लेल, अर्थात् भाषा ओ साहित्यक सभ कोटिक अनुरागी लेल समान रूपसँ एहि महाकाव्यक उपयोगिता सिद्ध अछि।"[11]

सन्दर्भः

1. ठाकुर, योणा, मैथिली प्रबन्ध-काव्यक उद्धव ओ विकास (सम्मादित) साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली; 2017 ई., पू.- 35
2. सिंह, चन्द्रभानु शकुन्तला, मिथिला सांस्कृतिक संगम 269/72ए, आजाद नगर, इलाहाबाद; 2002 ई., अन्तिम कभर पृष्ठ
3. तत्रैव - 5 (भूमिका)
4. तत्रैव - 2
5. तत्रैव - 108 एवं 326
6. तत्रैव - 126
7. तत्रैव - पू - 306
८. तत्रैव - 352
9. तत्रैव - पू - 337
10. ठाकुर, वीणा, मैथिली प्रस्न्ध-काव्यक उद्‌भव ओ विकास (सम्पादित) साहित्य अकादेमी, नई दिल्लीः 2017 ई., पू.- 139
11. झा, भीमनाथ, कालपात्र : जखन उत्खन प्रकाशन, लक्ष्मीसागर, दरभंगा, 2011 ई.. पू - 91

18 वीं शताब्दी: भारत का अंधकार का युग या आर्थिक समृद्धि का काल

रवि लाल सिंह यादव

एम.फिल अफ्रीकी अध्ययन, अफ्रीकी अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

एम.ए. इतिहास, सामाजिक विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय नेट/जेआरएफ

भारत में 18 वीं शताब्दी का काल तीव्र गति से होते परिवर्तनों और स्थाई परंपराओं के पतन के काल के रूप में देखा जाता रहा है। जहां 1700 ई में औरंगजेब के शासनकाल में मुगल साम्राज्य अपनी पराकाष्ठा पर था परंतु 1730 ई के आसपास इसके कई सारे भाग राजनीतिक एकता से क्षेत्रीय राज्यों में विखंडित हो गए थे जैसे अवध, बंगाल, मराठा इत्यादि। वहीं दूसरी तरफ अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी पूर्वी भारत में काफी तेजी से सफलता प्राप्त कर रही थी और उपमहाद्वीप के दूसरे भागों में भी हस्तक्षेप करने लगी थी। इन आधारों पर यह निश्चित हो चुका था कि अंग्रेजी कंपनी भारत में एक उपनिवेशी राज्य प्रारंभ करने की दिशा में बढ़ रही थी। इन्हीं तीव्र गति से होते परिवर्तनों ने इतिहासकारों को अपनी ओर अध्ययन के लिए आकर्षित किया और 18वीं शताब्दी वाद विवाद का प्रमुख केंद्र बन गई। प्रारंभिक इतिहासकारों ने 18वीं शताब्दी को मुगल साम्राज्य के पतन के रूप में ज्यादा महत्व दिया परंतु नवीनतम इतिहासकारों ने 18वीं शताब्दी के क्षेत्रीय राज्यों और आर्थिक समृद्धि को महत्व प्रदान करने का प्रयास किया।

शुरुआती दौर में इतिहासकारों ने साम्राज्य केंद्रित दृष्टिकोण के आधार पर 18वीं शताब्दी की व्याख्या करने का प्रयास किया। जिसमें सबसे पहले साम्राज्यवादी इतिहासकार जैसे वी ए स्मिथ आदि ने 18वीं शताब्दी को अंधकार युग के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने यह दिखाना चाहा कि राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक पतन इस कल की विशेषता थी तथा सिर्फ अंग्रेजी शासन के तहत ही अंधकार युग से भारत बाहर आया। इसी क्रम में विलियम इरविन और जदुनाथ सरकार जैसे इतिहासकारों ने मुगल शासको के व्यक्तित्व और उनकी नीतियों को 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन के लिए जिम्मेदार माना। उनका कहना था कि औरंगजेब की विभाजनकारी नीतियां खासकर उसकी धार्मिक नीतियों का दोष था। साथ ही औरंगजेब के बाद कमजोर बादशाह और निकम्मे कमांडर पतन हेतु जिम्मेदार थे। परंतु इस व्याख्या को अधिकांश इतिहासकारों द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है।

बाद के इतिहासकारों ने मुगल साम्राज्य की अवनति के लिए शासको की कमजोरी के स्थान पर एक संरचनात्मक प्रक्रिया से घटने वाली समस्याओं को प्रमुख कारण माना। सतीश चंद्र मानसबदारों की बढ़ती संख्या तथा जगीरों की कमी को संकट का प्रमुख कारण मानते हैं जिसके कारण कुलीन वर्ग में आपसी प्रतिस्पर्धा बड़ी और मुगल साम्राज्य धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसर हुआ। इनका मानना है कि जब किसान, जमींदार और मनसबदार के त्रिध्रुवीय संतुलन एवं अव्यवस्थित होने लगा तो पतन अपरिहार्य हो गया था। इसी प्रकार इतिहासकार अतहर अली के अनुसार दक्कन और मराठा राज्य क्षेत्र में मुगल साम्राज्य विस्तार के कारण कुलीनों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी और जागीर व्यवस्था की कार्य पद्धति में संकट उत्पन्न होने लगा। अच्छी जगीरो के लिए कुलीनों में प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी जिसके कारण मुगल साम्राज्य 18वीं शताब्दी में पतन की ओर अग्रसर हुआ।

इरफान हबीब मुगल साम्राज्य के पतन को आर्थिक दृष्टि से देखते हैं उनके अनुसार मुगल राजस्व वसूली व्यवस्था में ही दोष अंतर्निहित थे। साम्राज्य सुरक्षा हेतु बड़ी सेना रखना चाहता था इस कारण राजस्व की दर ऊंची रखी गई थी। साथ ही कुलीन अपनी

जगीरो से ज्यादा से ज्यादा राजस्व प्राप्त करना चाहते थे। इन प्रयासों के कारण किसानों की चिंता कुलीन नहीं करते थे। साथ ही कुलीनों के लगातार होते स्थानांतरण ने कृषि सुधारों में उनकी रुचि को कम कर दिया था। अंततः किसानों का अत्यधिक शोषण हुआ और यह किसान विद्रोह के रूप में परिणत हुआ और इससे साम्राज्य का राजनीतिक और सामाजिक तंतु कमजोर हुआ। ये सभी दृष्टिकोण मुगल साम्राज्य के पतन को 18वीं शताब्दी के केंद्र में रखते हैं परंतु 18वीं शताब्दी के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं को अछूता छोड़ देते हैं।

कालांतर में संशोधनवादी इतिहासकारों ने साम्राज्य केंद्रित दृष्टिकोण के स्थान पर क्षेत्र केंद्रित दृष्टिकोण के आधार पर इतिहास लिखने का प्रयास किया। इतिहासकार मुजफ्फर आलम ने पंजाब और अवध सूबों की तुलना कर पतन का कारण जानने का प्रयास किया। उनके अनुसार मुगल साम्राज्य विभिन्न स्तरों पर संघर्षरत समुदायों और विभिन्न देसी सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं के बीच सामंजस स्थापित करने वाली एजेंसी के रूप में कार्यकर्ता था। जब मुगल साम्राज्य स्थानीय प्रभावशाली तत्वों पर अपना नियंत्रण स्थापित करने में असफल होने लगा तो इन क्षेत्रों में 'नई सूबेदारी' के रूप में स्थानीय मजबूत शासक उभरने लगे।

परंतु देखा जाए तो 18 शताब्दी मुगल साम्राज्य की अवनति और क्षेत्र राज्यों के सुदृढ़ीकरण तक ही सीमित नहीं थी। इस शताब्दी में कई आमूल परिवर्तन देखे गए थे। इतिहासकार बर्नार्ड कोहन ने बताया है कि कृषि अधिशेष पर नियंत्रण में बदलाव हो रहा था। 18वीं शताब्दी में क्षेत्रीय शक्तिशाली सरदार अधिशेष पर अपना नियंत्रण बढ़ाने का प्रयास कर रहे थे। वहीं सी ए बेली एक अलग नजरिया प्रस्तुत करते हैं जिसमें वह कहते हैं कि जब पश्चिमी शक्तियों के हाथों 18वीं शताब्दी में धन का संग्रहण होने लगा तो भारतीय वस्तुओं की मांग यूरोप में बढ़ने लगी जिससे भारत का यूरोप ही नहीं एशियाई देशों के बीच भी व्यापार बढ़ने लगा। भारत की बढ़ती आबादी बड़ी मात्रा में श्रम बल प्रदान कर रही थी। हालांकि वे क्षेत्रीय विभिन्नता की बात करते हैं जहां अवध, हैदराबाद, बंगाल आदि में समृद्धि नजर आई वहीं पंजाब जैसे क्षेत्र में पतन भी देखा गया। इसके अलावा इजारेदारी के बढ़ते चलन को भी वे उजागर करते हैं जिसे वह 'शाही शक्ति के व्यवसायिकरण' की संज्ञा प्रदान करते हैं। जिसने स्थानीय स्तरों पर शक्ति के हस्तांतरण में मदद की ताकि और अधिक राजस्व का संग्रहण प्राप्त हो सके। वे 'सैन्य राजकोषीयवाद' की भी बात करते हैं जिसमें बड़ी मात्रा में सेना रखने तथा उसका उपयोग राजस्व संग्रहण हेतु करना प्रमुख विशेषता थी। जिसके कारण 18वीं सदी में क्षेत्रीय शक्तियों ने महंगी और बड़ी सेना रखना शुरू कर दिया जिसके कमांडर यूरोपीय होते थे।

इतिहासकार मुजफ्फर आलम मानते हैं कि 18 वीं शताब्दी को मुगल पतन के रूप में नहीं बल्कि स्वायत क्षेत्रीय राज्यों में होते बदलाव के रूप में देखना चाहिए। वह केंद्र के कमजोर होने तथा क्षेत्र स्तर पर मजबूत होते सूबेदारी की बात करते हैं जिसे उन्होंने नई सूबेदारी की संज्ञा दी। तपन राय चौधरी 18वीं शताब्दी में यूरोप से आने वाले बुलियन के प्रभाव के आधार पर भारत की बढ़ती आर्थिक समृद्धि की चर्चा करते हैं उनके अनुसार भारत उसे समय विश्व के 25% व्यापार को नियंत्रित करता था। इस प्रकार 18वीं शताब्दी को अंधकार की शताब्दी नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार संजय सुब्रमण्यम तथा सी ए बेली 'पोर्टफोलियो पूंजीवाद' की बात करते हैं जहां विभिन्न पोर्टफोलियो पूंजीवादी अपनी पूंजी को विभिन्न क्षेत्रों जैसे कृषि राजस्व, व्यापार, सैन्य संसाधनों आदि पर लगा रहे थे। इससे स्थानीय स्तर पर समृद्धि बढ़ने लगी थी। इन सब ने 'नई जमीदारी' को बढ़ावा दिया।

इस प्रकार देखा जाए तो 18वीं शताब्दी में निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं थी। पहला, 18वीं शताब्दी में विशाल मुगल साम्राज्य का विघटन हुआ और क्षेत्र स्तर पर छोटी-छोटी मजबूत सत्ताओं का उभार हुआ। प्लासी और बक्सर के युद्ध के पश्चात अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का राजनीतिक प्रभुत्व भारत में धीरे-धीरे बढ़ने लगा। दूसरा, 18वीं शताब्दी के प्रभाव को पूर्ण रूप से समझने के लिए इतिहासकार इसे एक लंबी शताब्दी के रूप में देखते है। आर्थिक परिपेक्ष्य में दीर्घकालिक शताब्दी की अवधारणा लाभप्रद नजर आती है जिसमें क्षेत्र में राजनीतिक पुनर्वस्थिति के कारण आर्थिक पुनरुत्थान भी हुआ था। तीसरा, भारत की अर्थव्यवस्था और विश्व की अर्थव्यवस्था के मध्य संबंधमजबूती के अवलोकन में देखा जा सकता है। 18वीं शताब्दी में 17वीं शताब्दी की तुलना में अर्थव्यवस्था का विश्वव्यापी विस्तार हुआ और भारत का समुद्री व्यापार तेजी से बढ़ा। इस दृष्टिकोण के अनुसार 18वीं शताब्दी को आर्थिक रूप से विघटनकारी युग मानना सही नहीं होगा।

निष्कर्ष

18वीं शताब्दी की प्रमुख विशेषता थी मुगल साम्राज्य का पतन और विभिन्न क्षेत्रीय सत्ता केन्द्रों का निर्माण होना। 18वीं शताब्दी के मध्य में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का बंगाल में राजनीतिक सत्ता की स्थापना एक नया उभरता कारक था जिसका प्रभाव आने

वाले वर्षों में बहुत ही गहरा पडने वाला था। इतिहासकारों में दो प्रमुख दृष्टिकोण देखे गए। पहला था साम्राज्य केंद्रित दृष्टिकोण जिसके अनुसार मुगल साम्राज्य के पतन के कारण 18वीं शताब्दी में भारत में अराजकता फैली। वही दूसरा दृष्टिकोण था क्षेत्र आधारित जिसके अनुसार मुगल साम्राज्य के पतन के बावजूद भारत में अवस्था अराजकता नहीं फैली बल्कि क्षेत्रीय स्तर पर सामाजिक एवं आर्थिक समृद्धि बढ़ी। अत: 18वीं शताब्दी को अंधकार युग कहना सार्थक नहीं होगा।

सन्दर्भ

1. हबीब, इरफान (2013). द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया 1556-1707. ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशन
2. चंद्र, सतीश (2007). मध्यकालीन भारत का इतिहास. ओरिएंट ब्लैक्सवान
3. बेली, सी ए (2012). रूलर्स, टाउनसमैन, एंड बजार्स: नार्थ इंडिया सोसाइटी इन द ऐज ऑफ ब्रिटिश एक्सपेंशन 1770-1870. ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशन
4. चौधरी, टी. आर. (1984). कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया
5. आलम, मुजफ्फर (2001). द क्राइसिस ऑफ एम्पायर इन द मुगल नार्थ इंडिया: अवध एंड द पंजाब 1707-1748. ऑक्सफोर्ड पब्लिकेशन

अलवर जिले का अपवाह तंत्र-एक भौगोलिक अध्ययन

मनोज कुमार शर्मा

शोधार्थी-भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान।

हिमांशी शर्मा

शोधार्थी-भूगोल विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान।

शोध सारांश- नदियों का मानव जीवन में विशेष महत्व है। नदियां जल प्रदाता होती हैं। जल के बिना हम पृथ्वी तल पर मानव जीवन की कल्पना भी नही। कर सकते, कदाचित् इसलिए ही नदियों को जीवनदायिनी कहा जाता है। नदियों से केवल फसल ही नहीं उगाई जाती बल्कि वह सभ्यता की जन्मदाता भी होती है तथा साथ ही उसका पालन-पोषण भी करती है। उदाहरण के लिए मिस्र की प्राचीन सभ्यता नील नदी के किनारे ही विकसित हुई। हमारे देश भारत में सिंधु घाटी सभ्यता जिसे हड़प्पा सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है, भी सिंधु नदी के किनारे ही विकसित हुई। नदियों के महत्व को इस तथ्य से भी आकां जा सकता है कि विष्व के बड़े-बड़े विकसित महानगर नदियों के किनारे ही बसे हैं।

मुख्य शब्द- अपवाह तंत्र, सिंचाई के प्रमुख साधन, जीवनरेखा (Lifeline)।

प्रस्तावना- हमारा प्रदेश राजस्थान मरू प्रदेश के नाम से जाना जाता है। क्योंकि राज्य के कुल भोगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 60 प्रतिशत भू-भाग पर मरूस्थल का ही विस्तार है। अतः इस दृष्टि से भी उपरोक्त विषय का अध्ययन अत्यधिक प्रांसगिक हो जाता है। प्रदेश में प्रवाहित होने वाली बारहमासी तथा मोसमी नदियों को प्रदेश की जीवनरेखा (Lifeline) के नाम से सम्बोधित किया जाता है। राज्य में स्थित नदियों के जल का उपयोग निम्न कार्यों में किया जाता है-

- सिंचाई के साधन के रूप में उपयोग।
- पेयजल के रूप में उपयोग।
- ओद्योगिक इकाईयों में जलापूर्ति के रूप में उपयोग।
- भू-जल स्तर को बनाए रखने में सहायक।
- जल-विद्युत उत्पन्न करने में सहायक।
- मरू प्रदेश को हरा-भरा बनाने में सक्षम।

अध्ययन क्षेत्र- अलवर जिला राजस्थान राज्य के उत्तर-पूर्व दिशा में स्थित है। इसका अंक्षाशीय विस्तार 27° 20' उत्तर से 27° 34' उत्तर है जबकि देशान्तरीय विस्तार 76° 23' पूर्व से 76° 38' पूर्व है। यह क्षेत्र राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। यह जिला धरातलीय विविधताओं से युक्त है। अरावली पर्वतमाला यहां दक्षिण-पश्चिम दिशा में विकर्ण की भांति फैली हुई है। अलवर जिले के उत्तर में हरियाणा राज्य के गुडगांव तथा रेवाड़ी जिले अवस्थित हैं जबकि उत्तर-पूर्व दिशा में राजस्थान का ही भरतपुर जिला स्थित है। इसके उत्तर-पश्चिम में जयपुर जिला व दक्षिण में दोसा जिला अवस्थित हैं। यह राजस्थान का बड़ा नगर व उद्योग तथा व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण केन्द्र है।

अलवर जिले की प्रमुख नदियां- अलवर जिले की नदियां नित्यवाही नहीं है। यहाँ सामान्यतः मोसमी नदियां पाई जाती हैं। जिनमें साबी, रूपारेल, बाणगंगा, चूड़सिद्ध व लोन्थोना नदियां प्रमुख हैं। वर्षा के मोसम में ये नदियां अपने उद्‌गम स्थलों से निकलकर

अपने गंतव्य तक पहुँचती हैं। जिन क्षेत्रों में होकर इन नदियों का जल प्रवाहित होता है वहाँ फसलों की सिचाई के लिए इनका विषेष महत्व है। अलवर जिले की प्रमुख नदियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(अ) साबी नदी– यह नदी अलवर जिले की सबसे बड़ी नदी है। साबी नदी प्रदेश की अन्त: प्रवाह की नदी है। जिसके किनारे जोधपुरा (जयपुर) सभ्यता विकसित है। इस नदी का उद्गम जयपुर में साईवाड़, सेवर की पहाड़ियों से होता है। अन्त मे यह नदी पटोदी (गुड़गांव, हरियाणा) के निकट विलुप्त होती है। पूर्व में यह नदी वर्षा ऋतु में अपनी विनाषलीला के लिए प्रसिद्ध थी।

(ब) रूपारेल नदी– यह अलवर जिले की प्रमुख नदी है। रूपारेल भी प्रदेश की अन्त: प्रवाह की नदी है। यह नदी अलवर जिले की थानागाजी तहसील में उदयनाथ की पहाड़ी से निकलती है। अपने उद्गम स्थान से निकलकर यह नदी सरिस्का अभ्यारण्य में दक्षिण से उत्तर की ओर बहती हुई मैदानी भागों में प्रवेश करती है। इसे यहाँ अनेक स्थानीय नामों से जाना जाता है। रूपारेल नदी को लसवारी तथा वराह नदी भी कहते हैं। यह नदी अंत में सीकरी बाँध, भरतपुर में विलुप्त हो जाती है। इस नदी की प्रमुख सहायक जलधाराएं सुकरी, श्यामगंगा व करोट नाला हैं।

(स) बाणगंगा नदी– इस नदी को अर्जुन की गंगा, ताला नदी व रूण्डित सरिता के नाम से भी जाना जाता है। बाणगंगा नदी का उद्गम जयपुर जिले में स्थित बैराठ की पहाड़ियों से होता है। इसके किनारे ही बैराठ सभ्यता का विकास हुआ था। यह नदी बंगाल की खाड़ी की ओर प्रवाहित होती है। यह नदी अलवर जिले के दक्षिणी–पूर्वी भाग में राजगढ़ तहसील के उकेरी गांव के पास से होकर प्रवाहित होती है। यह राजगढ़ व थानागाजी तहसील के पहाड़ी भाग का पानी नालों के माध्यम से अपने साथ मिलाती है। इसकी सहायक नदियां गुमटी नाला, सूरी नदी पलोसन नदी है।

(द) चूड़सिद्ध– यह नदी अलवर तहसील की चूड़सिद्ध पहाड़ी से निकलती है। इसका प्रवाह पश्चिम दिशा से पूर्व दिशा की ओर पीपरोल तक पाया जाता है। इसके पश्चात् यह नदी उत्तर दिशा की ओर मुड़ जाती है। अन्त में यह नदी हरियाणा राज्य के मेवात जिले में प्रवेश करती है।

(य) लोन्थोना– लोन्थोना नदी अलवर जिले की पूर्वी सीमा पर अवस्थित काला पहाड़ी से निकलती है। इस नदी में पहाड़ी क्षेत्रों का जल सम्मिलित होता है। यह नदी उत्तर से दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती है। शेखपुर के निकट यह पूर्व दिशा की ओर मुड़ जाती है। नोगावां के निकट यह नदी अलवर–दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग को पार कर हरियाणा राज्य के गुड़गावं जिले में प्रवेश कर जाती है।

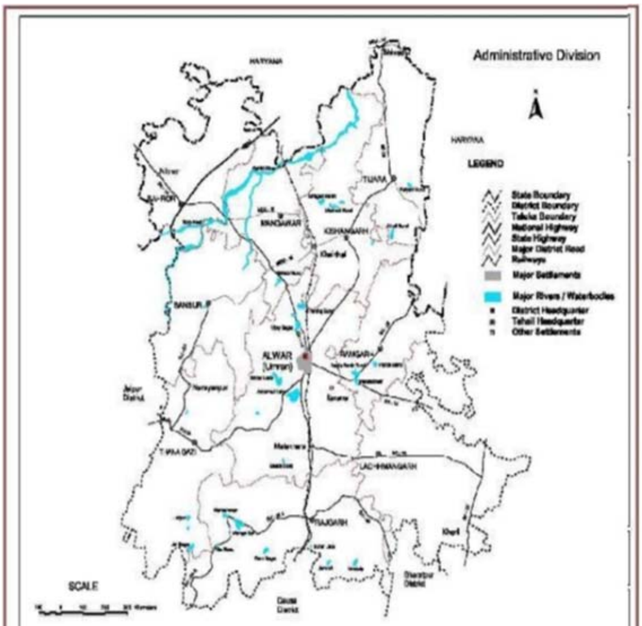

चित्र:- अलवर जिले का प्रशासनिक मानचित्र एवं अपवाह तंत्र का निरूपण।

सारणी- अलवर जिले में तहसीलों के अनुसार नदियों का अपवाह क्षेत्र (वर्ग कि.मी. में)

[redacted]	[redacted]	[redacted]	[redacted]	[redacted]
[redacted]	अलवर	87.7	1077.8	0.3
[redacted]	बानसूर	551.4	98.9	—
[redacted]	बहरोड़	242.6	—	—
[redacted]	कठूमर	—	—	—
[redacted]	किशनगढ़	564.9	138	—
[redacted]	कोटकासिम	—	—	—
[redacted]	लक्ष्मणगढ़	—	—	967.1
[redacted]	मंडावर	607.4	—	—
[redacted]	राजगढ़	—	254.6	725.6
[redacted]	रामगढ़	—	659.3	—
[redacted]	थानागाजी	68.1	114.8	554.6
[redacted]	तिजारा	625.3	193.6	—
[redacted]		2747.4	2537.0	2247.6

Source- Report on AQUIFER MAPPING AND GROUND WATER MANAGEMENT Alwar District, Rajasthan, (UNDER 12th PLAN) Western Region, Jaipur.

निष्कर्ष- नदियाँ मानव जीवन में विशेष स्थान रखती हैं। नदियों से प्राप्त होने वाले जल से धरातल पर अनेक दैनिक कार्य संपन्न होते हैं। चूंकि क्षेत्र में नित्यवाही नदियां न्यून है अत: क्षेत्र की जनसंख्या के लिए भूमिगत जल स्रोतों के पश्चात् ये नदियां ही सिंचाई के लिए प्रमुख साधन हैं। ये नदियां मोसमी नदियां हैं अत: इनमें वर्षाकाल में ही जल प्रवाहित होता है। अत: इन नदियों में जल सुचारू रूप से प्रवाहित हो, इसके लिए जनसामान्य में उन कारकों के प्रति चेतना जागरूक होना आवश्यक है जो वर्षा लाने में सहायक होते हैं।

संदर्भ-

- Report on AQUIFER MAPPING AND GROUND WATER MANAGEMENT Alwar District, Rajasthan, Western Region, Jaipur.
- District Hand Book Alwar – 2020
- REJUVENATING THE RUPAREL – VIR SINGH
- आओ नदी को समझे - डॉ. नीलेश हेड़ा, विनोद बोधनकर, गोपाल सिंह ओर नरेन्द्र चुघ। तरूण भारत संघ, अलवर।
- साबी नदी - गोपाल सिंह, प्रथम संस्करण जून, 2010, तरूण भारत संघ, प्रकाशन अलवर।
- राजस्थान का भूगोल - हरिमोहन सक्सेना
- दैनिक समाचार पत्र

‘अनुच्छेद 370 का समापन भारत के लिए कितना औचित्यपूर्णः एक समीक्षा’

डॉ० देवेन्द्र कुमार गोयल

सह-प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, के.के.एम. महाविद्यालय, जमुई (बिहार)

शोधसार

जम्मू-कश्मीर का राजनीतिक महत्त्व केवल राज्य तक ही सीमित न होकर पूरे देश में है। इससे भी अधिक भारत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रतिष्ठा का प्रश्न भी है। भारत सरकार का मानना है कि जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय पूर्ण एवं अन्तिम है, जिस पर कोई बात नहीं हो सकती। दूसरी ओर, पाकिस्तान का कहना है कि भारत का जम्मू-कश्मीर पर अवैध कब्जा है और जम्मू-कश्मीर की जनता को आत्म निर्णय का अधिकार होना चाहिए। वहीं अलगाववादियों का मानना है कि कश्मीर के भाग्य का निर्धारण संयुक्त राष्ट्र के आत्म निर्णय के प्रस्ताव के आधार पर होना चाहिए। इन सबके बीच राजनीतिक दल है, जिनके लिए धारा 370 केवल राज्य की चुनावी राजनीति का ही मुद्दा नहीं है अपितु राष्ट्रीय दलों के लिए यह पूरे देश की राजनीति को प्रभावित करने वाला विषय है।

अपनी धरती पर इन पूर्व मुद्दों को दिन रात झेलने वाली जम्मू कश्मीर की भूमि वर्तमान में इससे मुक्त है। वास्तव में धारा 370 न केवल जम्मू कश्मीर के लिए एक बंदिश थी बल्कि उसके सर्वागीण विकास की सबसे बड़ी बाधक रही है। अतः ए अनुच्छेद का समापन भारत के लिए भले ही चुनौतीपूर्ण रहा हो लेकिन संपूर्ण जम्मू कश्मीर वासियों के लिए यह एक स्वर्णिम पल बनकर आया है। इसका औचित्य वास्तव में भारतवासियों के लिए न्यायपूर्ण है जम्मू-कश्मीर का राजनीतिक महत्त्व केवल राज्य तक ही सीमित न होकर पूरे देश में है। इससे भी अधिक भारत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रतिष्ठा का प्रश्न भी है। भारत सरकार का मानना है कि जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय पूर्ण एंव अन्तिम है, जिस पर कोई बात नहीं हो सकती। दूसरी ओर, पाकिस्तान का कहना है कि भारत का जम्मू-कश्मीर पर अवैध कब्जा है और जम्मू-कश्मीर की जनता को आत्म निर्णय का अधिकार होना चाहिए। वहीं अलगाववादियों का मानना है कि कश्मीर के भाग्य का निर्धारण संयुक्त राष्ट्र के आत्म निर्णय के प्रस्ताव के आधार पर होना चाहिए। इन सबके बीच राजनीतिक दल है, जिनके लिए धारा 370 केवल राज्य की चुनावी राजनीति का ही मुद्दा नहीं है अपितु राष्ट्रीय दलों के लिए यह पूरे देश की राजनीति को प्रभावित करने वाला विषय है। वैसा ही कैसे कैसे इस इस उस इस इस इसअपनी धरती पर इन पूर्व मुद्दों को दिन रात झेलने वाली जम्मू कश्मीर की भूमि वर्तमान में इससे मुक्त है। वास्तव में धारा 370 न केवल जम्मू कश्मीर के लिए एक बंदिश थी बल्कि उसके सर्वागीण विकास की सबसे बड़ी बाधक रही है। अतः अनुच्छेद 370 का समापन भारत के लिए भले ही चुनौतीपूर्ण रहा हो लेकिन संपूर्ण जम्मू कश्मीर वासियों के लिए यह एक स्वर्णिम पल बनकर आया है। इसका औचित्य वास्तव में भारतवासियों के लिए न्यायपूर्ण है।

शब्द कुंजीः- अनुच्छेद 370, समापन, भारत, औचित्य, शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक।

प्रस्तावनाः-

अनुच्छेद 35।, जो कि अनुच्छेद 370 का विस्तार है, राज्य के स्थायी निवासियों को परिभाषित करने के लिये जम्मू-कश्मीर राज्य की विधायिका को शक्ति प्रदान करता है और उन स्थायी निवासियों को विशेषाधिकार प्रदान करता है तथा राज्य में अन्य राज्यों के

निवासियों को कार्य करने या संपत्ति के स्वामित्व की अनुमति नहीं देता है। इस अनुच्छेद का उद्देश्य जम्मू-कश्मीर की जनसांख्यिकीय संरचना की रक्षा करना था।

अनुच्छेद 35। की संवैधानिकता पर इस आधार पर बहस की जाती है कि इसे संशोधन प्रक्रिया के माध्यम से नहीं जोड़ा गया था। हालाँकि, इसी तरह के प्रावधानों का इस्तेमाल अन्य राज्यों के विशेष अधिकारों को बढ़ाने के लिये भी किया जाता रहा है।

370 का अतीत

संवैधानिक रूप से देखा जाए तो मूल रूप से इस अनुच्छेद को गोपालास्वामी आयंगर ने संविधान में शामिल करने का प्रस्ताव रखा था। किन परिस्थितियों के कारण इस अनुच्छेद की आवश्यकता थी उसका वर्णन करते हुए आयंगर ने कहा, "सर्वप्रथम यह है कि जम्मू व कश्मीर की सीमाओं में युद्ध चल रहा है। अब भी राज्य की हालत असामान्य तथा अशान्त है। अत: यह आवश्यक है कि इस राज्य के प्रशासन का संचालन तब तक इन असामान्य परिस्थितियों के अनुकूल किया जाए जब तक वैसी शान्ति स्थापित न हो, जैसी की अन्य राज्यों में है"। इस तरह उस समय की विशेष परिस्थितियों में राज्य का शासन संचालित करने के उद्देश्य से अनुच्छेद 306 (ए) जो बाद में अनुच्छेद 370 हो गया, को संविधान में शामिल किया गया। आयंगर ने यह आशा व्यक्त की थी कि जम्मू-कश्मीर राज्य भी भविष्य में अन्य देशी राज्यों के समान भारत संघ में पूर्ण रूप से एकीकृत हो जाएगा तब यह धारा विलुप्त हो जाएगी। पण्डित नेहरू ने भी यही आशा व्यक्त की थी कि धारा 370 समय बीतने के साथ धीरे-धीरे घिस जाएगी। यही वजह है कि इसे भाग 21 के तहत 'अस्थाई व संक्रमणकालीन प्रावधान' के रूप में ही शामिल किया गया था। यहाँ यह भी विशेष है कि प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर जम्मू-कश्मीर के लिए ऐसे विशेष प्रावधानों के खिलाफ थे, इसलिए इस प्रस्ताव पर हुई चर्चा में उन्होंने भाग ही नहीं लिया था। वहीं हसरत मौहानी ने संविधान सभा में सवाल उठाया कि 'कश्मीर के प्रति यह विशेष बर्ताव क्यों? तब भी श्री आयंगर ने कहा था यह विभेद कश्मीर की विशेष परिस्थितियों के कारण है"।

राजनीतिक रूप से देखा जाए तो स्पष्ट ही है कि इस अनुच्छेद ने जम्मू- कश्मीर को एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। पूर्वोत्तर के अनेक राज्यों के लिए भी स्वायत्तता की ऐसी व्यवस्थाएँ है जैसी जम्मू-कश्मीर के लिए है परन्तु उन राज्यों की राजनीति की प्रकृति, भौगोलिक अवस्थिति, क्षेत्रफल आदि के कारण इतनी चर्चित नहीं है।

370 के प्रमुख पहलू

अनुच्छेद 370 के प्रावधानों के अनुसार, संसद को जम्मू-कश्मीर के बारे में रक्षा, विदेश मामले और संचार के विषय में कानून बनाने का अधिकार था, लेकिन किसी अन्य विषय से संबंधित कानून को लागू करवाने के लिए केंद्र को राज्य सरकार की मंजूरी चाहिए थी।

इसी विशेष दर्जे के कारण जम्मू-कश्मीर राज्य पर संविधान की धारा 356 लागू नहीं होती थी। राष्ट्रपति के पास राज्य के संविधान को बर्खास्त करने का अधिकार नहीं था। 1976 का शहरी भूमि कानून राज्य पर लागू नहीं होता था। भारत के दूसरे राज्यों के लोग जम्मू-कश्मीर में जमीन नहीं खरीद सकते थे। भारतीय संविधान की धारा 360 के तहत देश में वित्तीय आपातकाल लगाने का प्रावधान है जो जम्मू-कश्मीर पर लागू नहीं होता था।

कुछ विशेष अधिकार के रूप में कश्मीर में आरटीआई (RTI) और सीएजी (CAG) जैसे कानून लागू नहीं होते थे। जम्मू-कश्मीर के नागरिकों के पास दोहरी नागरिकता, अलग राष्ट्रध्वज था। जम्मू-कश्मीर की विधानसभा का कार्यकाल भारत की अपेक्षाकृत 6 वर्षों का होता था। सबसे निन्दनीय जम्मू-कश्मीर के अंदर भारत के राष्ट्रध्वज या राष्ट्रीय प्रतीकों का अपमान अपराध नहीं था।

370 का राजनीतिक आर्थिक रूप से प्रतिकूल प्रभाव

इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि अनुच्छेद 370 को लेकर पूरे राज्य में सहमति नहीं रही। जहाँ कश्मीर घाटी में इसको बनाये रखने को लेकर जो उत्साह रहा, वैसा ही उत्साह और आन्दोलन जम्मू क्षेत्र में इसको समाप्त करने को लेकर भी व्याप्त रहा था। लेह-लद्दाख भी अनुच्छेद 370 को लेकर संतुष्ट नहीं था। इसलिए इस आम धारणा को तोड़ना आवश्यक था कि जम्मू-कश्मीर राज्य के नागरिक अनुच्छेद 370 को बनाये रखना चाहते थे। वास्तविकता यह थी कि केवल घाटी के लोग इस अनुच्छेद को बनाये रखना चाहते थे। शेर-ए-जम्मू नाम से प्रसिद्ध एवं जम्मू क्षेत्र की प्रमुख पार्टी नेशनल पेंथर्स पार्टी के प्रमुख प्रो. भीम सिंह

का कहना था कि "अनुच्छेद 370 राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक है। संसद के 90 प्रतिशत सदस्य इसके अध्ययन की कोई आवश्यकता नहीं समझते और न ही इसके महत्त्व से परिचित है"। भीम सिंह का मानना था कि, यह अनुच्छेद जम्मू के लिए तो भेदभावमूलक है ही जो पूरे देश को पिछले 65 वर्षों से कैंसर के समान खोखला कर रहा है। इसके विपरीत वर्तमान में जहाँ भारतीय जनता पार्टी, जम्मू-कश्मीर पेंथर्स पार्टी आदि धारा 370 को समाप्त करना चाहती थीं, वहीं नेशनल कान्फ्रेन्स एवं पीडीपी न केवल इसको बनाये रखना चाहती थी अपितु इसको और ज्यादा सशक्त करना चाहती थी जिसमें उनके अपने निजी स्वार्थ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते थे। जो जम्मू कश्मीर और भारत के लिए प्रतिकूल ही रहे।

यदि आर्थिक आधार पर देखा जाए तब स्पष्ट होता है कि धारा 370 ने राज्य के आर्थिक विकास एवं कल्याणकारी सूचकांक को भी बाधित ही किया। राज्य में उद्योग धन्धों का किसी प्रकार का विकास नहीं हुआ, शैक्षणिक संस्थाओं में मानवीय संसाधनों का अभाव रहा, चिकित्सा व्यवस्था में आधारभूत सुविधाओं की कमी बनी रही, धरती के स्वर्ग में पर्यटन की जितनी सम्भावनाएँ है, उसका बहुत कम दोहन यहां हो पाया। इन सबके परिणामस्वरूप राज्य के बड़े पैमाने पर बेरोजगारी व्याप्त रही। यही वजह है कि राज्य आर्थिक रूप से केन्द्र सरकार पर निर्भर रहा है।

370 का समापन और नया स्वरूप, नवीन ऊर्ध्वगामी राहें

जम्मू कश्मीर से 370 का हटना एक स्वर्णिम सवेरे के समान था। अनुच्छेद 370 और 35ए से आजादी के बाद धरती का स्वर्ग कहा जाने वाला जम्मू कश्मीर और लद्दाख अब देश के सभी हिस्सों के साथ विकास की राह पर बढ़ने लगा है। कदम से कदम मिलाकर अपने स्वप्नों को परिपूर्ण करने में दौड़ लगाने लगा है। जम्मू कश्मीर और लद्दाख से 370 के प्रावधनों को निरस्त करने के बाद 70 साल की टीस समाप्त हो गयी है। जब उसे मुख्यधारा से जोड़कर देश के अन्य राज्यों के बराबर लाकर खड़ा किया गया तो वहां की मानव जाति को हर ओर से अपना विकास करने के लिए चारों ओर रास्ते प्राप्त हो गए। वर्तमान में सभी केंद्रीय कानून जम्मू और कश्मीर केंद्र शासित प्रदेश में लागू हैं।

यदि देखा जाए तो दशकों से कश्मीर बहुत दूर था। 370 के प्रावधनों के अनुसार संसद को जम्मू कश्मीर के बारे में रक्षा विदेश मामले और संचार के विषय में कानून बनाने का अधिकार था लेकिन किसी अन्य विषय से संबंधित कानून को लागू करवाने के लिए केंद्र को राज्य सरकार की मंजूरी लेनी पड़ती थी जिसके कारण अनेक प्रकार से जम्मू कश्मीर के विकास की राहें बन्द थीं।

5 अगस्त 2019 को जम्मू कश्मीर को अनुच्छेद 370 और 35 ए द्वारा मुक्त करने की मंजूरी दी गई। तब गृह मंत्री अमित शाह ने कहा कि, "ऐतिहासिक भूल को ठीक करने वाला यह एक ऐतिहासिक कदम है"। मोदी सरकार की इसी दीर्घकालिक सोच का नतीजा है कि, आज कश्मीर भी देश के साथ विकास कर रहा है। चाइल्ड मैरिज एक्ट, शिक्षा का अधिकार और भूमि का सुधार जैसे कानून अब यहाँ पर भी प्रभावी हैं। वाल्मीकि, दलित और गोरखा जो राज्य में दशकों से रह रहे हैं उन्हें भी राज्य के अन्य निवासियों के समान अधिकार प्राप्त हो रहे हैं। वर्ष 2020-21 में 15वें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार जम्मू और कश्मीर प्रदेश एवं लद्दाख केंद्र शासित प्रदेश को क्रमशः 30757 करोड़ और 5959 करोड़ रुपए का अनुदान प्राप्त हुआ।

अनुच्छेद 370 के समाप्त होते ही अक्टूबर, 2019 से जम्मू-कश्मीर और लद्दाख को दो अलग केन्द्र शासित प्रदेश में पुनगठित कर दिया गया।

इसके साथ ही केन्द्र सरकार के 170 कानून जो पहले लागू नहीं थे, अब वे इस क्षेत्र में लागू कर दिए गए। अब स्थानीय निवासियों और दूसरे राज्यों के नागरिकों के मध्य अधिकार समान हो गये। राज्य के 334 कानूनों में से 164 कानूनों को निरस्त किया गया, 167 कानूनों को भारतीय संविधान के अनुरूप अनुकूलित किया गया।

अंतरराष्ट्रीय सीमा के पास रहने वालों के लिए सेवाओं और शैक्षणिक संस्थानों में 3 प्रतिशत औरक्षण का प्रावधान किया गया।

370 से आजादी के एक साल बाद यहां गांवों के साथ जनपद और जिला पंचायत के चुनाव सफलतापूर्वक संपन्न हुए। कई वर्षो के बाद सन 2018 में पंचायत चुनाव हुए और इसमें 74.1 फीसदी मतदान हुआ। सन 2019 में पहली बार आयोजित ब्लॉक डेवलेपमेंट काउंसिल चुनाव में 98.3 फीसदी मतदान हुआ।

इसके बाद संपूर्ण भारतवर्ष में प्रभावी आयुष्मान भारत प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना, पीएम किसान योजना, पीएम आवास योजना आदि सभी का लाभ यहां के निवासियों को प्राप्त होने लगा। सभी को चुनाव में मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ। मूल निवासी

कानून लागू किया गया। 1990 में कश्मीर घाटी से भगाए गए कश्मीरी पंडितों को फिर से यहां बसाने का रास्ता साफ हुआ। कश्मीर प्रवासियों की वापसी के लिए 6000 नौकरियां और 6000 पारगमन आवासों के निर्माण का कार्य भी प्रगति से गतिशील हुआ। इसी के साथ-साथ जम्मू कश्मीर से बाहर विवाह करने वाली लड़कियों और उनके बच्चों के अधिकारों का संरक्षण भी सुनिश्चित हुआ। लोगों को रोजगार की प्राप्ति हुई। लगभग 10000 भार्तीयां तत्काल सुनिश्चित की गई। साथ ही नए मेडिकल कॉलेज और पांच नए नर्सिंग कॉलेजों को मंजूरी प्राप्त हुई। नए स्वीकृत 50 कॉलेज में 48 कॉलेज को गतिशील किया गया जिनमें 6700 छात्रों ने प्रवेश लिया। केसर पारंपरिक रूप से प्रसिद्ध कश्मीरी व्यंजनों से जुड़ा, उसके औषधीय गुणों को कश्मीर की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा माना गया और कश्मीरी केसर को जीआई टैग प्राप्त हुआ जिसके कारण उसे व्यापक स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

सबसे बड़ी बात यह है कि हर ओर विकास के रास्ते तो इतनी तेजी से जम्मू एंड कश्मीर में खुले जिनको बताने के लिए अनेक पृष्ठ भरे जा सकते हैं लेकिन इन्हीं के साथ-साथ जिस आतंक से जम्मू कश्मीर मुक्त हुआ वह बहुत बड़ी बात है। अनुच्छेद 370 हटाने के बाद अलगाववादियों का जनाधार खत्म होने लगा। 2018 में 58, 2019 में 70 और 2020 में 6 हुर्रियत नेता हिरासत में ले लिए गए। 18 हुर्रियत नेताओं से सरकारी खर्चे पर मिलने वाली सुरक्षा वापस ले ली गई।अलगाववादियों के 82 बैंक खातों में लेनदेन पर रोक लगा दी गई। इस प्रकार आतंक की घटनाओं में उल्लेखनीय कमी दर्ज की गई और घाटी में शांति और सुरक्षा का नया वातावरण बना जो जम्मू कश्मीर को नए स्वरूप, नई राह और नया जीवन देने का एक प्रतीक है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि, धारा 370 का हटना न केवल औचित्य पूर्ण है बल्कि पूरे भारतवर्ष के साथ-साथ जम्मू कश्मीर के लिए यह एक सौभाग्य की बात है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना मूल अधिकार है जिसकी प्राप्ति इस अनुच्छेद के हटने के बाद ही संभव थी जिसकी पूर्ति 7दशकों के बाद संभव हो पाई है।

निष्कर्ष

अंततः कह सकते हैं कि, अनुच्छेद का समापन न केवल जम्मू कश्मीर के लिये बल्कि संपूर्ण राष्ट्र के विकास के लिए औचित्यपूर्ण है, आवश्यक है। अनुच्छेद के समापन के साथ साथ प्रारंभ हुआ जम्मू कश्मीर के निवासियों का विकास, उनकी प्रगति, उनका उत्थान, एक स्वतंत्र जीवन, सम्मानित जीवन जिसे जीने के लिए प्रत्येक मानव सभ्यता अनेक प्रकार के संघर्ष करती है। भले ही भारत सन् 1947 में आजाद हुआ लेकिन वास्तविक आजादी जम्मू एंड कश्मीर को अनुच्छेद 370 के समापन के उपरांत प्राप्त हुई है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के शब्दों में धारा 370 के समापन का औचित्य निहित है- "जम्मू-कश्मीर की बहनों और भाईयों के साहस और जज्बे को सलाम करता हूं। वर्षो तक कुछ स्वार्थी तत्वों ने 'इमोशनल ब्लैक- मेलिंग' का काम किया, लोगों को गुमराह किया और विकास की अनदेखी की। जम्मू- कश्मीर और लद्दाख अब ऐसे लोगों के चंगुल से आजाद हैं। एक नई सुबह एक बेहतर कल के लिए तैयार है"।

-प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

तेंग, एम.के.; 'कश्मीर आर्टिकल 370', अनमोल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1990.

भट्टाचार्या, अजीत; 'कश्मीर: दी बुंडेड वैली', यूबीएस, नई दिल्ली, 1994.

लवकारे, अरविन्द: 'द ट्रूथ अबाउट आर्टिकल 370', अम्भव महालगी प्रबोधनि, मुम्बई, 2005.

बसू, डी.डी.; 'भारत का संविधान एक परिचय', वाधवा प्रकाशन, नागपुर,2006.

बामजेई पी.एन.के.; 'ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर', एम.डी. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009.

रविन्द्र, जुगरान; 'रक्तरंजित जम्मू-कश्मीर', ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010.

अग्निहोत्री, कुलदीप चन्द्र: 'जम्मू-कश्मीर की अनकही कहानी', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013.

नूरानी, ए.जी.; 'आर्टिकल 370: ए कान्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ जम्मू- कश्मीर', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014.

चौपड़ा, पी.एम., चौपड़ा प्रभा; 'सरदार पटेल कश्मीर एवं हैदराबाद', प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015.

कबीर एवम् समन्वयवाद

डॉ० वंदना त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दौलत राम कॉलेज, दिल्ली

भक्ति कवियों में कदाचित् कबीर के बारे में सर्वाधिक लिखा गया है। उन्हें एक महान रहस्यवादी, दार्शनिक, सामाजिक और धार्मिक सुधारक तथा उपदेशक के रूप में देखा जाता है। उन्होंने सांप्रदायिक सौहार्द और विश्व बंधुत्व जैसे महत्वूर्ण तत्वों को भक्ति आंदोलन में सम्मिलित करके भक्ति चिंतन और आंदोलन को एक नई गति और दिशा प्रदान की। कबीर हिन्दुओं के लिए 'वैष्णव' भक्त थे, मुसलमानों के लिए 'पीर', सिखों के लिए 'भगत' थे, तो कबीरपंथियों के लिए 'अवतार'। आधुनिक राष्ट्रवादी उन्हें हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रतीक के रूप में देखते हैं, जबकि नव वेदांती उन्हें 'सार्वभौमिक धर्म' या 'मानव धर्म' का प्रचारक कहते हैं। वहीं क्रांतिकारी/प्रगतिशील लोगों की दृष्टि में वे सामाजिक एवं धार्मिक सुधारक के रूप में जाने जाते हैं। उनके उदार व्यक्तित्व के कारण हिंदू और मुस्लिम दोनों उनका सम्मान करते थे और सिख धर्म के उदय काल के दौरान भी वे एक प्रमुख प्रेरणा थे, उनके वचन सिखों के गुरु ग्रंथ साहिब में सम्मलित हैं। यहां तक कि ईसाई भी दावा करते थे कि उनके उपदेश पवित्र बाइबिल के बहुत निकट थे हालांकि इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं है।

प्रामाणिक स्रोतों के अभाव के कारण उनका जीवन भी रहस्यों से भरा हुआ था। उनके जन्म और मृत्यु को लेकर कई किंवदन्तियां प्रचलित हैं। एक मत के अनुसार स्वामी रामानंद ने भूल वश एक विधवा ब्राह्मणी को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था और पुत्रवती होने पर लोक-लाज के भय से ब्राह्मणी ने अपने पुत्र को बनारस के लहरताला ताल की सीढ़ियों पर छोड़ दिया था, जिसे एक मुस्लिम जोड़े, नीरू और नीमा, ने पाया व अपनाया और उनका पालन-पोषण किया। उनके जन्म की तिथि को लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। परन्तु तथ्यों को देखते हुए उनका जन्म 15 वीं शताब्दी में हुआ माना जाता है।

एक अन्य प्रसिद्ध लोकगाथा के अनुसार कबीर की मृत्यु के उपरांत हिंदू और मुस्लिम अनुयायियों ने उनके पार्थिव शरीर पर अपना दावा किया। लेकिन जब शववस्त्र हटाया गया तो फूलों का ढेर मिला, जिसे हिन्दुओं और मुसलमानों ने आपस में विभाजित कर अपने-अपने निर्धारित अनुष्ठान के अनुसार दफनाया व अंतिम संस्कार किया। मगहर में उनकी कब्र/दरगाह और समाधि आज भी अगल-बगल स्थित हैं।

भारत में लगभग सार्वभौमिक रूप से माना जाता है कि कबीर प्रसिद्ध गुरु रामानंद के शिष्य थे। स्वयं उनका कथन था: "हम कासी में भटक गए, रामानंद चेताए।" कबीर के बारे में सबसे लोकप्रिय किंवदंती संभवत: यह है कि उन्होंने स्वामी रामानंद को उन्हें शिष्य के रूप में स्वीकार करने पर कैसे बाध्य किया। ब्रह्म मुहूर्त में गंगा स्नान के लिए जब रामानंद नदी की सीढ़ियां उतर रहे थे तो कबीर उनके मार्ग में लेट गए और अनजाने में रामानंद का पांव कबीर के देह से टकरा गया और उनके मुख से "राम-राम" निकला, जिसे कबीर गुरु मंत्र मान जाप करने लगे। उनके समर्पण और निष्ठा से प्रभावित होकर रामानंद ने उन्हें अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। हालांकि तजकिरा-ए-औलिया-हिंद का दावा है कि वे मुस्लिम सूफी, शेख तकी, के शिष्य थे।

अपनी पृष्ठभूमि के कारण कबीर पारंपरिक और संस्थागत शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके थे। वे व्यक्तिगत अनुभवों को सर्वोपरि मानते थे। इस संबंध में उनके प्रसिद्ध शब्द इस प्रकार हैं:

मैं कहता हूं आंखन देखी, तू कहता कागज की लेखी।
मसि कागद छूऔं नहीं, कलम गहौं नहि हाथ।
चारों जुग कै महातम, कबिरा मुखहिं जनाई बात।।

(अर्थात् मैंने कागज और स्याही छुआ नहीं और न ही कलम पकड़ी है। मैं चारो युगों के महात्मय की बात मुहजबानी बताता हूँ।)

कबीर की पहचान उनके दोहों, उक्तियों अथवा उपलब्ध संकलनों से स्पष्ट नहीं होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वयं हिंदू या मुस्लिम के रूप में अपनी पहचान जताना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं में स्वयं को "कोरी" और "जुलाहा" (हिंदू व मुस्लिम बुनकर) कह कर बुलाया है तथा ईश्वर को "राम" व "रहीम" दोनो नामों से संबोधित किया है। उन्होंने स्वयं को एक ऐसे आंदोलन से संबद्ध किया, जो ना हिंदूवादी था और ना ही इस्लामवादी था। बल्कि वह एक सार्वभौमिक अवधारणा पर आधारित था।

वे न सन्यासी थे और न हीं भिक्षु। उन्होंने सूफियों की भांति गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। बुनाई का पारिवारिक व्यवसाय जारी रखा यद्यपि उनका अधिकांश समय साधुओं, संतों और सूफियों की संगत में व्यतीत होता था, जहां से उन्होंने विभिन्न धर्मों, विचारों आदि का ज्ञान प्राप्त किया।

कुछ आधुनिक टिप्पणीकार कबीर को हिंदू धर्म और इस्लाम के संश्लेषणकर्ता के रूप में देखते है। हालांकि कबीर ने न कोई पंथ चलाया, न कोई मार्ग बनाया। परन्तु उन्होंने अपने विचारों और वचनों द्वारा सभी धर्मो, जातियों, संप्रदायों के लोगों को अपना अनुयायी बनाया, जिसने सामाजिक समरसता और धार्मिक सहिष्णुता बढ़ाने का कार्य किया और इस प्रकार समन्वय के मार्ग को प्रशस्त किया। उन्होंने धार्मिक पाखंडों व भेदभावों, सामाजिक कुरीतियों एवम् असमानताओं, अनाचारों, पारस्परिक विरोध आदि को दूर करने का प्रयास किया। उनका मानना था चूंकि प्राणियों के बीच जीवात्मा स्तर पर कोई भेद भाव नहीं होता इसलिए लोगों को अपने अंतर विवेक से अपने भीतर के जीवात्मा को पहचान कर सबके साथ बराबर का व्यवहार करना चाहिए। उन्होंने ब्राह्मणों और शूद्रों के बीच पूर्ण समानता का समर्थन किया। वे हिंदू मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक हीं नहीं, स्वयं उसके प्रतीक भी थे। सिख समुदाय के प्रमुख प्रेरणा थे। उन्होंने प्रेम, करुणा, भक्ति, ध्यान, कर्मपथ और मानव मूल्यों को मोक्ष का रास्ता बताया। इस प्रकार वे समाज में समन्वयवाद के उत्प्रेरक समझे गए। कबीर अपने समय में समानांतर रूप से चल रहे सामाजिक आंदोलन और समन्वयवाद के कई प्रभावशाली कारकों और प्रयासों में से एक थे। उन्होंने 15वीं सदी के भारत की धार्मिक उत्तेजना और विकसित हो रही समन्वयवादी संस्कृति- सूफीवाद, भक्ति आंदोलन, सिख धर्म, आदि का प्रतिनिधित्व किया और साथ ही उसे सशक्त भी किया।

कबीर का जीवन और कार्य समन्वयवाद का प्रतीक था। उनके अभिभावक मुस्लिम थे लेकिन उन्होंने हिंदू गुरु से दीक्षा ली। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि कबीर के विचारों पर वैदिक धर्म, हिंदू और बौद्ध तंत्रवाद, और दक्षिण (वैष्णव परंपरा) की व्यक्तिगत प्रेम व भक्तिवाद, इस्लाम एवम् उपनिषदों द्वारा प्रवर्तित एकेश्वरवाद और निराकार ईश्वर, सूफी जिक्र से नाम (शब्द), नाथ पंथ से विचार और कार्य की शुद्धता, योग, व तांत्रिक शिक्षा और सूफी परंपराओं से रहस्यवाद, बौद्ध धर्म से जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति आदि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। यहां तक कि कुछ लोगों ने उन्हें योगी सिद्ध करने का भी प्रयास किया है हालांकि स्वयं कबीर की रचनाओं में अनेक ऐसे उल्लेख है जिनसे संकेत मिलता है कि वह योगियों और उनके कर्मकांडो के समग्र रूप से विरोधी थे। वस्तुत: कबीर सभी से प्रभावित थे लेकिन उनका अपना एक स्वतंत्र विचार था।

उन्होंने हिंदू धर्म और इस्लाम दोनों के कर्मकांडो, आडंबरों, खोखलेपन और औपचारिकताओं को अस्वीकार किया, फिर भी उनकी विरासत पर हिंदू और मुस्लिम दोनों दावा करते हैं। वास्तव में उन्होंने हिंदू धर्म या इस्लाम को अस्वीकृत नहीं किया, बल्कि उनकी औपचारिक संस्थागत धर्म में दिखावा, कर्मकांड और व्यक्तियों के महत्वहीनता को अस्वीकार किया था। कबीर किसी भी धर्म के विरुद्ध नहीं थे, लेकिन धर्म के पवित्र सिद्धांतों के किसी भी प्रकार के विरूपण और गलत प्रस्तुतीकरण को अस्वीकार करते थे, क्योंकि उनका मानना था कि धर्म के तथाकथित रक्षकों द्वारा अज्ञानी अनुयायियों को पथभ्रष्ट करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। कबीर ने पुजारी और मुल्ला दोनों की भूमिका की आलोचना की है, जो ईश्वर और मनुष्य के बीच व्यावसायिक मध्यस्ता करते थे। इसके विपरीत उन्होंने "सतगुरु" अर्थात् स्वयं परमत्मा को हीं मानव गुरु के स्थान पर रखा है। कबीर सभी प्रकार के रीति रिवाजों, उत्सवों, आडंबरों और समारोहों के विरुद्ध थे। अन्य क्रांतिकारी संतों की भांति कबीर ने दोनो समुदायों के धर्मग्रंथों की दैवी स्थिति को अस्वीकार किया है, जो उनके अनुसार, विभिन्न धर्मावलंबियों में विवाद को जन्म देते हैं। वे अनुभव ज्ञान अर्थात् व्यक्तिगत अनुभवों द्वारा प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान में विश्वास रखते थे। उनका कहना था:

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सु पंडित होय।।

उन्होंने संस्कृत भाषा के बजाय जनमानस की बोली को प्रोत्साहित किया। वे कहते हैं:

संस्कीरत (संस्कार की हुई भाषा) है कूप जल, 'भासा' बहता नीर।

कबीर ने दोनो संप्रदायों और समस्त जातियों के लोगों को संबोधित किया। उन्होंने एक निश्चित एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद (अथार्त ईश्वर एक निराकार और सर्वव्यापी है) की स्थापना का प्रयास किया। उनके अनुसार अल्लाह, राम, रहीम एवम् हरि सब एक हीं ईश्वर के अनेक नाम है, जिस प्रकार एक सोने से बनें आभूषणों के कई रूप होते हैं। हिन्दुओं की पूजा एवम् मुसलमानों की नमाज ईश्वर को पूजने के विविध तरीके हैं।

कबीर निर्गुण भक्ति में विश्वास करते थे। निर्गुण भक्ति का तात्पर्य है एक निराकार ईश्वर की भक्ति जो आंतरिक भावनाओं द्वारा उसे प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाती है। उनका मूल तत्व एक ईश्वरीय तत्व में विलीन हो जाना था। इसलिए वह स्वर्ग, नरक, दंड और पुरस्कार को महत्व नहीं देते थे। वे ईश्वर से सीधा संबंध स्थापित करने पर बल देते हैं। वैष्णव संत होने के उपरांत भी वे ईश्वर के अवतार को नहीं मानते थे। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि कबीर का राम वह नहीं है जिसने "दशरथ" के परिवार में जन्म लिया, बल्कि वह है जो "सर्वव्यापी" है। वे सहज मार्ग के प्रवर्तक थे। कबीर के अनुसार व्यक्ति को सत्य (ईश्वर) को अपने भीतर खोजना चाहिए। प्रेम, करुणा, भक्ति एवम् ध्यान ईश्वर तक पहुंचने के साधन है।

ज्यों तिल माहि तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साईं तुझ ही में है, जाग सके तो जाग।।

कबीर ने खोजा और अपने आप को खोजा।
और उसने ईश्वर को अपने भीतर पाया।।

हरि दक्षिण में वास करते हैं, अल्लाह का स्थान पश्चिम में है।
अपने हृदय में ढूंढो अपने हृदय के हृदय में ढूंढो,
वहीं उनका निवास स्थान है।।

कबीर ने ईश्वर की परंपरागत धारणाओं का सदैव विरोध किया।

योगी "गोरख गोरख" चिल्लाते हैं, हिंदू "राम राम" जपते हैं।
और मुसलमानों का खुदा है, परंतु कबीर का स्वामी सर्वव्यापी (परमात्मा) है।।

कबीर की माया की अवधारणा मौलिक रूप से शंकराचार्य की माया पर आधारित है। उन्होंने विशेष रूप से यह विचार किया कि आत्मा और परमात्मा के बीच का भेद माया द्वारा जनित है तथा जब ये भेद मिट जाता है तो दोनो पुन: एक हो जाते हैं। वे आत्मा के सार तत्व में विलीन होने में विश्वास रखते थे। उनके अनुसार आत्मा जन्म और मृत्यु से स्वतंत्र है। इसलिए जब मनुष्य के मन से जन्म और मृत्यु का विचार निकल जाएगा तो वह ईश्वर में सदैव के लिए विलीन हो जाएगा।

कबीर एक व्यवहारिक व्यक्ति थे। वे सिद्धांतों के स्थान पर कर्म पर विश्वास करते थे। उन्होंने उनके प्रति कठोर रुख अपनाया जो किये बिना उपदेश देते थे।

कथनी कठी तो क्या भया, जोर करनी न ठहराई।

उपदेश और कर्म के बीच समन्वय मनुष्यों को एकजुट करने में एक महान नैतिक बल प्रदान करता है। इसलिए कबीर ने नैतिक मूल्यों का सर्वाधिक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है:

जहां दया वहां धरम है, जहां लोभ तहं पाप।
जहां करोध तहं काल है, जहां खिमा तहां आप।।

सांच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हिर्दय सांच है, ताके हिर्दय आप।।

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
अपना तन सीतल करै, औरों को सुख होय।।

आध्यात्मिक विकास की तैयारी में सूफियों ने नि:स्वार्थ भक्ति और सांसारिक आसक्ति से स्वतन्त्रता को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना था। कबीर के चिंतन में भी वही भावना प्रवाहित होती प्रतीत होती है। तर्क, त्याग की सूफी अवधारणा से प्रभावित होकर कबीर ने सांसारिक जीवन का नहीं वरन् सांसारिक लोभ और भौतिकवादी दृष्टिकोण का परित्याग किया। वह इस बात पर बल देते हैं कि इस दिशा में अहंकार भी छोड़ देना चाहिए।

कबीर वैष्णव परंपरा से प्रभावित हो प्रेम को धार्मिक ज्ञान की तुलना में अधिक श्रेष्ठ मानते थे। प्रेम की सहायता से मानव आत्मा परम सत्य के साथ एकाकार का अनुभव करती है और अपने व्यक्तित्व को उसमें विलीन कर पाती है। ऐसी स्तिथि में दोनो के भाग्य समान हो जाते हैं।

कबीर और परमेश्वर (इस प्रकार) एक हो गए हैं।
कि कोई भी उनके बीच भेद नहीं कर सकता।।

जब मैं था हरि नहीं, जब हरि है मैं नहीं।
सब अंधियारा मिट गया, जब दीपक देखा माहि।।

हरि मरिहैं तो हम हूं मरिहैं।
हरि न मरिहैं, हम काहें को मरिहै।।

कबीर ईश्वर की प्राप्ति के लिए गुरु के महत्व को भी मानते हैं। गुरु की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि गुरु के समान जीवन में कोई भी हितैषी नहीं होता। गुरु ही ईश्वर का ज्ञान देने वाले हैं। अगर किसी व्यक्ति को गुरु कृपा मिल जाए तो वह पल भर में मनुष्य से देवता बन जाता है।

गुरु बिन ज्ञान न उपजैं, गुरु बिन मिले न मोक्ष।
गुरु बिन लखे न सत्य को, गुरु बिन मिटे न दोष।।

यहां तक कि वे गुरु को ईश्वर से भी अधिक महत्व देते हैं।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपणै, गोविन्द दियो बताय।।

इस प्रकार उन्होंने भारतीय वेदांत तथा मुस्लिम तसव्वुफ (सूफीवाद) के समन्वय में योगदान दिया जो चिंतन व आंदोलन के इतिहास में एक नए युग के आरभ का द्योतक था।

वे पर्यावरण के प्रति भी सचेत थे। अत: वे पेड़ों को काटने और पत्तियों को तोड़ने का विरोध करते थे। वे चेतातें है:

तुम पत्तों को काटती हो, ए मालिन की लड़की।
प्रत्येक पत्ती में जीवन है, पत्तों में ब्रह्मा,
शाखाओं में विष्णु और फूलों में शिव हैं।
हमारे सामने तुम तीनों देवताओं को नष्ट करती हो,
जिनकी तुम पूजा करती हो।

कबीर का कहना था कि दोषों के लिए अपने भीतर झाँकें, धोखा देने से धोखा खाना श्रेयस्कर है।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

कबीरदास ने तत्कालीन समय में स्थानीय स्तर पर प्रशासकीय क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर भी कटाक्ष किया। उन्होंने कर्मचारियों और राजस्व अधिकारियों की भ्रष्ट और दमनकारी नीति (जो उनके व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित थी) के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की। वे धन संचय के विरोधी थे और उसकी निंदा करते थे। साहूकारों के विरुद्ध और अभिजात वर्ग पर भी उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया

व्यक्त की। इस प्रकार कबीर ने संस्थागत धर्म के सभी सिद्धांतों तथा पूरी व्यवस्था को अस्वीकार किया है। उन्होंने अपने अनुयायियों पर यह कहते हुए बहुत कठोर शर्त लगाई की उनके साथ वही लोग चल सकते हैं जो अपनी धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक पहचान को जला चुके हों।

कबीरा खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हांथ।
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ।।

उनके उदारवादी विचारों ने हिंदुओं और मुसलमानों के रूढ़िवादी अभिजात्य वर्ग को नाराज कर दिया, जिन्होंने उनके खिलाफ प्रतिक्रियावादी कदम उठाए जिसके कारण कबीर को लंबे संघर्ष का सामना करना पड़ा।

कबीर के संकलनों में से तीन प्रमुख संग्रह हैं। सबसे प्राचीन गुरु ग्रंथ साहिब या आदि ग्रंथ (1603) है; दूसरी पंचवाणी अर्थात राजस्थानी संग्रह है; और तीसरी बीजक है। पंचवाणी एवम् बीजक की तिथि निश्चित नहीं है परन्तु माना जाता है कि वे 17 वीं शताब्दी की थीं।

अन्य परंपराओं में कबीर अपनी कठोरता और मूर्तिभंजन के लिए जाने जाते हैं, लेकिन गुरु ग्रंथ साहिब और पंचवाणी में एक नरम और अधिक भावुक कबीर भी दिखाई देते हैं जो परमानंद के गीत गाते हैं, जो किसी प्रिय के लिए तीव्र लालसा और पीड़ायुक्त अलगाव का अनुभव करते हैं, या जो अक्सर खुद को एक सेवक या भिखारी के रूप में एक व्यक्तिगत दिव्य गुरु के प्रति समर्पित कर देते हैं। बीजक एक अधिक कठोर संस्करण प्रस्तुत करता है।

कबीर एक प्रखर शिक्षक हैं जो अपने श्रोताओं को उनकी झूठी सुरक्षा से बाहर निकालने का प्रयास करते हैं। वह जुनूनी है लेकिन उनका जुनून जगाने का है। उनकी शैली कठोर और प्रत्यक्ष है। कबीर श्रोताओं को सीधे संबोधित करते हैं और आक्रामक तरीके से बात करते हैं। उनके लगभग सभी दोहों में प्रत्यक्ष संबोधन के कुछ पद हैं। उदाहरणत: हे साधकों! सुनो भाइयों! बताओ पंडित! मूर्ख! आदि। उनके दोहे सवालों, हमलों/आक्रमणों, विरोधाभासों और रहस्य से भरे होते हैं। वह सामना करते हैं, परेशान करते हैं, मोहित करते हैं, भ्रम के सागर में डूब रहे लोगों में चेतना की चिंगारी जगाने का प्रयास करते हैं, भ्रांति दूर करने का प्रयास करते हैं। उनकी शैली सरल, सपाट, और दो टूक, है लेकिन बहुत गहरी और ज्ञानवर्धक है।

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर।।

नहाये धोये क्या हुआ, जो मन मैल न जाए।
मीन सदा जल में रहे, धोये बास न जाए।।

उनमें भाषा द्वारा प्रभावित करने की शक्ति है। उनका साहित्य जन जीवन को उन्नत बनाने वाला मानवतावाद का पोषक, विश्व बंधुत्व की भावना जाग्रत करने वाला है। उनकी भाषा जनसमाज की भाषा है जो देशज और ठेठ होने पर भी बहुत प्रभावशाली और स्पष्टवादिता पूर्ण है। शांतिमय जीवन के समर्थक कबीर अहिंसा, सत्य, सदाचार, दया, करुणा, प्रेम आदि सद्गुणों के उपासक थे। उनकी वाणी युगों-युगों तक हमारे सामने परिलक्षित होते रहेंगे। उनके काव्य में स्थानीय भाषा का प्रयोग था, इसलिए जनमानस के निकट था। उसमें लौकिक और पारलौकिक दोनो विषयों का समावेश था। वह एक ओर सामाजिक विसंगतियों पर चोट करता था तो वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक और नैतिकता पर बल देता था।

कबीर ने अपने विचारों को मूर्त रूप देने के लिए एक राजनीतिक स्वप्नलोक, 'अमर देसवा' की भी संकल्पना की है जो राज्यविहीन, जातिविहीन, संपत्तिविहीन, पदानुक्रमविहीन आदर्श समाज था। उनका यह समाज, राज्य के कामकाज, पुरोहितों, मौलवियों और अभिजात वर्ग के साथ उसके संबंधों के आलोचनात्मक अवलोकन से उभरा था। उनके समकालीन संत रैदास ने इसे बेगमपुरा कहा। यह ईश्वर का राज्य, बिना किसी दु:ख, निजि संपत्ति, कर, राजशाही या सामाजिक पदानुक्रम के एक आदर्श ग्राम समाज था। यह बिना किसी डर, लालच, क्रोध, प्रतिस्पर्धा, भेदभाव, अपराध और अभाव के गुणी लोगों की भूमि थी जिसमे कोई संगठित सरकार नहीं थी और निर्णय लेने में लोगों की सामूहिक भागीदारी थी। लौकिक और आध्यात्मिक संप्रभुता लोगों-व्यक्तियों में निहित था। प्रेम, करुणा, सामाजिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता सामाजिक व्यवस्था का सार था। भक्त (प्रेम और भक्ति के आदर्शों का पालन करने वाले गुणी लोग) काल्पनिक समाज के अगुआ थे। यह न्याय, समानता और स्वतंत्रता पर आधारित था। यह एक तर्कसंगत और मानवीय समाज था जो स्वतंत्रता और प्रचुरता की भूमि थी। उनका मुक्तिवादी सांस्कृतिक आंदोलन और उनका आदर्श लोक उनके

युग के वैकल्पिक राजनीतिक विचारों का प्रतिनिधित्व करता था। इसलिए टैगोर ने उन्हें मुक्तिदूत और उनकी कविताओं को चिर आधुनिक कहा है। उन्होंने अपने समय की आधुनिकता का प्रतिनिधित्व किया जो स्वदेशी थी और निम्नवर्गीयता में निहित थी। कबीर अपने समय के रचनात्मक एवम् विनाशकारी दोनों तत्वों के प्रतिफल थे। इस स्तिथि ने उन्हें एक महान क्रांतिकारी और गैर समझौतावादी संत बना दिया था। कबीर के उद्देश्य को स्थायी नहीं बल्कि विविधता और गतिशीलता के रूप में देखना चाहिए।

संदर्भः

द्विवेदी, (पं.) हजारी प्रसाद, कबीर, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, 1942.

द्विवेदी, (डॉ) केदारनाथ, कबीर और कबीर पंथः तुलनात्मक अध्ययन, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1996.

निलोत्पल (सं.), कबीर दोहावली, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 2011.

Roy Himanshu, Exploring Political Ideas of Kabir, Frontier, November 2015

सिंह, नामवर, 'कबीर का दर्द', राजकिशोर (सं.), कबीर की खोज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001.

सिंह, (प्रोफेसर) वासुदेव, कबीर और उनके काव्य का नया मूल्यांकन, कला मंदिर, दिल्ली, 2001-2002

वैशेषिक दर्शन में वर्णित गुण पदार्थ का परिशीलन

मुकेश कुमार

शोध छात्र, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वितेश कुमार

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, जम्मू

वैशेषिक दर्शन को कणाद दर्शन, औलूक्य दर्शन और पाशुपत दर्शन आदि कहा जाता है। इस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कनाद (कणभुक, कणभुक्ष अलूक) हैं। इस दर्शन का प्रतिनिधि ग्रन्थ वैशेषिकसूत्र है। यह ग्रन्थ कनाद द्वारा 10 अध्यायों 20 आह्निकों और 370 सूत्रों से निबंद्ध किया गया है।

हम जब भी वैशेषिक दर्शन में बताए गए तत्वों (पदार्थो) की बात करते है, तो हमें ज्ञात होता है कि यह दर्शन सप्त पदार्थो को मानता है परन्तु इस दर्शन के प्रतिनिधि ग्रन्थ में केवल 6 पदार्थो को ही माना गया है। यदि बात करें इस दर्शन का नाम वैशेषिक क्यों पड़ा तो इस विषय मे कुछ विद्वानों का मानना है कि इस शास्त्र मे 'विशेष' नामक पदार्थ की विवेचना विशद रूप मे हुई है। इसलिए इस दर्शन को वैशेषिक दर्शन कहा जाता है।

इस दर्शन का भी अन्य भारतीय दर्शनों की भांति जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति ही है और मोक्ष की प्राप्ति के लिए विशेषिकों के अनुसार सप्त पदार्थो का ज्ञान होना आवश्यक है। यहाँ सर्वप्रथम यह जानते हैं कि 'पदार्थ' क्या है?

पदार्थ- अभिधेयत्वं पदार्थत्वम्।

अर्थात्- पदार्थ वह है जिसका अस्तित्व (सत्ता) है, जिसका हम ज्ञान कर सकते हैं और जिसका कोई न कोई नाम है।

हम ऊपर भी पढ चुके है कि कनाद ने तो 6 पदार्थ ही माने थे। अभाव को उन्होनें पदार्थ नहीं माना था। यहाँ प्रश्न मन मे उत्पन्न होता है कि फिर वैशेषिक दर्शक को सप्त पदार्थ स्वीकार किसके द्धारा हुए। जब हम इस दर्शन के इतिहास को पढते है, तो हमें ज्ञात होता है कि वैशेषिकसूत्र पर पदार्थधर्मसंग्रह नामक प्रशस्तपादाचार्य द्वारा लिखे गए प्रमाणिक भाष्य में अभाव पदार्थ को स्वीकार कर सप्त पदार्थ माने गए, जो इस प्रकार हैं-

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, और अभाव।

शोध पत्र के विषय अनुसार केवल गुण पदार्थ पर ही विचार किया गया है।

गुण प्रकरण

गुण-द्रव्यसामान्यमात्रवृत्तित्वं गुणत्वम्। - तर्कसंग्रह।

गुणों को लेकर भी वैशेषिकों में मतभेद देखने को मिलता है। जब हम इस दर्शन के मूल ग्रन्थ का अध्ययन करते है तो हमें ज्ञात होता है कि महर्षि कनाद ने तो केवल 17 गुणों को स्वीकार किया है, वह 17 गुण अधोलिखित है-

रूपरसगन्धस्पर्शासंख्यापरिमणानिपृथकत्वं संयोगविभागौ

परत्वापरत्वे बुद्धयः सुख दुःख इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्चगुणाः।- वैशेषिकसूत्र

परन्तु कनाद के बाद जितने भी वैशेषिक हुए उन्होंने गुणों की संख्या 24 ग्रहण की है और तो और वैशेषिकसूत्र के भाष्यकार प्रशस्तपाद ने भी 24 गुण माने है। यह 24 गुण ही सामान्य जन मानस को भी मान्य है।

रूप- रस- गन्ध- स्पर्श- संख्या- परिणाम- पृथक्त्व- संयोग- विभाग- परत्वा- ऽपरत्व- -गुरुत्व द्रवत्व- स्नेह- शब्द- बुद्धि- सुख- दुःखेच्छा- द्वेष-प्रयत्न- धर्माऽधर्मसंस्कारश्चतुविशतिगुर्ण:।- तर्कसंग्रह

अन्नमभट्ट के अनुसार इन 24 गुणों को हम क्रमशः एक-एक कर जानने का प्रयास करें गए। सर्वप्रथम हम रूप नामक गुण को जानते है।

रूपः-

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्।- तर्कसंग्रह

केवल चक्षुओं द्वारा जिसका ग्रहण किया जाए उसे रूप कहा जाता है। रूपके शुक्ल-नील-पीत-रक्त-हरित-कपिश तथा चित्र नामक सात प्रकार है। यह सातों प्रकार के रूप पृथ्वी नामक द्रव्य मे विद्यमान होते है। जल नामक द्रवय में अभास्वरशुक्ल नामक गुण और तेज अर्थात् अग्नि में भास्वरशुक्ल नामक गुण देखा जाता है।

रसः-

रसनाग्राह्यो गुणो रसः।- तर्कसंग्रह

रसना इंद्री द्वारा (जिह्वा) ग्राह्य गुण को रस कहते हैं। वैशेषिकों ने रस

के छः (6) प्रकार माने हैं- मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त।

यह छः रस केवल दो द्रव्यों में पाए जाते हैं। पृथिवी इन छः रसों से युक्त है और जल में केवल मधुर रस ग्राह्य है।

गन्ध-

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः- तर्कसंग्रह

घ्राण इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य गुण को गन्ध कहा जाता है।

यह गन्ध गुण दो प्रकार का होता है सुरभि (सुगन्ध) तथा असुरभि (दुर्गन्ध)। यह दोनों प्रकार की गन्ध केवल पृथ्वी नामक द्रव्य मे होती है।

स्पर्श-

त्वगिन्द्रियमात्रग्रह्यो गुणः स्पर्शः।- तर्कसंग्रह

समस्त शरीर मे विद्यमान त्वक् (Skin) नामक इन्द्री के द्वारा जिसका ग्रहण किया जाए उसे स्पर्श गुण कहा जाता है। अन्नम्भट्ट ने शीत, उष्ण और अनुष्णाशीत नामक तीन प्रकार का स्पर्श माना है। स्पर्श पृथ्वी-जल-तेज और वायु नामक चार द्रव्यों में पाया जाता हैं। जलमे शीत स्पर्श, तेज में उष्ण और न उष्ण न शीत अर्थात् सामान्य स्पर्श पृथ्वी और वायु नामक द्रव्यों मे होता है।

संख्या-

एकत्वादिव्यवहारहेतुः संख्या।-तर्कसंग्रह।

अर्थात् जब हम एक, दो, तीन आदि गणना का व्यवहार करते हैं उसे संख्या कहा जाता है संख्या नामक गुण प्रत्येक (9) नव द्रव्यों में रहता है। जब हम एक नामक संख्या का व्यवहार करते है तो वह एक नित्य भी होता है और अनित्य भी, परमाणुओं मे जो एक परमाणु है वहाँ एक नित्य है तथा जब हम यह कहते है कि एक ाट है तो यहाँ जो एक संख्या का व्यवहार हुआ यह अनित्य है क्योंकि ाट कभी भी नष्ट हो सकता है। दो, तीन आदि संख्याएँ सर्वथा और सर्वत्र अनित्य ही होती हैं। यदि हम संख्या नामक गुण की सीमा को जाने तो इसकी सीमा एक से लेकर परार्ध तक है।

परिमाण-

मानव्यवहारासाधारणकारणं परिमाणम्। - तर्कसंग्रह।

परिमाण को सामान्य शब्दों मे मान या माप कहा जाता है। यह परिमाण नव (9) द्रव्यों में रहता है। अन्नम्भट्ट ने तर्कसंग्रह नामक अपनी पुस्तक में परिमाण के चार प्रकार बताए हैं। जो अणु, महत् दीर्ं और ह्रस्व नाम से जाने जाते हैं।

पृथक्त्व-

पृथग्व्यवहारासाधारणकारणं पृथक्त्वम्। - तर्क संग्रह।

जब हम यह व्यवहार करते है कि यह वस्तु उस वस्तु से भिन्न है उसे पृथक्त्वम् कहा जाता है।

यह गुण नव द्रव्यों मे विद्यमान रहता है।

संयोगः-

संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः।- तर्कसंग्रह।

यह कहना कि यह दोनों संयुक्त है, संयोग कहलाता है यथा एक एक तंतु (धागा) जब संयुक्त होता है तो पट (कपड़े) का निर्माण करता है। यह जो तंतु मिलते हैं अर्थात् संयुक्त होते है, उसे संयोग कहा जाता है।

यह संयोग नामक गुण प्रत्येक द्रव्य मे होता है।

विभागः-

संयोगनाशकोगुणो विभागः।

अर्थात् जब दो या दो से अधिक वस्तुओं के संयोग का नाश होता है और जो गुण इनका नाश करता है उसे विभाग गुण कहते हैं। यह गुण भी नव द्रव्यों में निवास करता है।

परत्वापरत्वः- अब दो गुणों को एक साथ जाने गए, जिन्हें परत्व और अपरत्व गुण कहा जाता है। इन गुणो को बताते हुए तर्कसंग्रह कार लिखते हैं-

पराऽपरव्यवहाराऽसाधारणकारणे परत्वापरत्वे।

यदि इसका शाब्दिक अर्थ करें तो कह सकते है कि जब हम पर व्यवहार करते हैं तो उसके असाधारण कारण को परत्व और अपर व्यवहार करने पर उसके असााधारण कारण को अपरत्व कहते हैं। यह दोनों गुण पृथ्वी-तेज-जल-वायु और मन नामक पाँच मुर्त द्रव्यों मे रहते हैं।

नव्य वैशेषिकों ने इनके दो-दो प्रकार माने हैं। परत्व दिककृत, परत्व कालकृत और अपरत्व दिक्कृत अपरत्व कालकृत।

1. परत्व दिक्कृतः- जो दुर है उसे परत्वदिक्कृत कहा जाता है।
2. परत्व कालकृतः-ज्येष्ठ के लिए परत्वकालकृत का व्यवहार होता है।
3. अपरत्व दिक्कृतः-समीप का व्यवहार अपरत्व दिक्कृत के द्वारा होता है।
4. अपरत्व कालकृतः- कनिष्ठ में अपरत्व कालकृत है।

गुरुत्वः- इस गुण पर आधुनिक विज्ञानिकों ने भी बहुत अनुसन्धान किए हैं। जिनमें पाश्चात्य विज्ञानिक न्यूटन द्वारा बताए गए गुरुत्वाकर्षण के नियम बहुत प्रसिद्ध हैं। हमें यह बचपन से ही बताया और पढ़ाया गया है कि गुरुत्वाकर्षण के विषय में इस संसार को न्यूटन ने ही बताया लेकिन यह सत्य नहीं। वैशेषिक दर्शन में इस विषय में हजारों साल पहले ही बताया जा चुका है।

आद्यपतनाऽसमवायिकारणं गुरुत्वम्।

अर्थात् जब किसी वस्तु का आद्य (नीचे) की ओर पतन होता है तो उसके असमवायिकारण (उस वस्तु को जो शक्ति नीचे की ओर खींचति है) को गुरुत्व कहा जाता है और यह गुरुत्व नामक गुण केवल पृथ्वी और जल दो द्रव्यों में ही होता है। यह तो आधुनिक विज्ञानिकों ने भी माना है।

द्रवत्वः-

आद्यस्यन्दनाऽसमवायिकारणं द्रवत्वम्।

आद्यस्यन्दन अर्थात् प्रश्रवण के असमवायिकारण को द्रवत्व गुण कहा जाता है। यह सांसिद्धिक और नैमित्तक दो प्रकार का है। द्रवत्व गुण पृथ्वी, जल और तेज में निवास करता है।

सांसिद्धिक प्रकार का द्रवत्व जलमे और नैमित्तिक प्रकार का द्रवत्व पृथ्वी (ृत अर्थात् ाी) एंव तेज (सुर्वण आदि धातुओं) में रहता है। ृत और सुर्वण दोनों में यह द्रवत्व अग्नि के संयोग से उत्पन्न होता है।

स्नेहः- साधारण भाषा में स्नेह प्रेम का ही रूप माना जाता है परन्तु वैशेषिको ने स्नेह की अलग ही परिभाषा इस संसार को प्रदान की है। इनका मानना है कि जब चूर्ण अर्थात् आटे को जल नामक द्रव्य के संयोग द्वारा पिण्ड बना दिया जाता है तो वह पिण्ड का कारण स्नेह गुण ही बनता है और किसी भी गुण मे यह शक्ति नहीं है।

चुर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः।

यह गुण केवल जल नामक द्रव्य मे ही रहता है।

शब्दः- शब्द की अगर बात करें तो बहुत से भारतीय दर्शनों में शब्द को एक प्रमाण स्वीकार किया गया है। परन्तु वैशेषिको ने इसे एक गुण भी बताया है। शब्द की परिभाषा करते हुए अन्नमभट्ट लिखते हैं-

श्रोत्रग्राह्योगुणः शब्दः। -तर्क संग्रह।

जो गुण श्रोत्रो से ग्राह्य हो उसे शब्द: कहा जाता है। शब्द गुण केवल एक आकाश नामक द्रव्य में रहता है। इसगुण के दो प्रकार है एक जिसे हम ध्वन्यात्मक शब्द कहते है, यह भेरी, ढोल, सीतार आदि से निकलने वाले शब्द होते है और दुसरा प्रकार वर्णात्मक शब्द के नाम से जाना जाता है इसमे संसार की समस्त भाषों द्वारा बोले जाने वाले शब्द आते है।

बुद्धिः- भारतीय दर्शनों में ही नहीं पाशचात्य दर्शनों में भी बुद्धि के विषय में विस्तार से चर्चा हुई है ओर हो भी क्यों न यह विषय है ही जानने योग्य। बुद्धि ही एक ऐसा गुण है जो मनुष्य को अन्यजीवों से पृथक करता है। बुद्धि के विषय पर वैशेषिकों का मानना है कि बुद्धि वह गुण है जो जीवों के समस्त व्यवहाराकों का हेतु बनता है। इस दर्शन ने तो बुद्धि को ही ज्ञान कहा है अर्थात् ज्ञान का पर्याय ही बुद्धि है।

वैशेषिकों ने बुद्धि को दो प्रकार का बताया है- स्मृति और अनुभव।

सर्वव्यवहारहेतुर्गुणोबुद्धिर्ज्ञानम्। सा द्विविधास्मृतिरनुभवक्ष्च।।- तर्कसंग्रह।

स्मृति नामक बुद्धि को स्पष्ट करते हुए दार्शनिक कहते है-

संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः।

अर्थात्- संस्कारमात्र से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को स्मृति कहा जाता है यदि सामान्य भाषा मे इस स्मृतिज्ञान को समझे तो कह सकते है कि जो ज्ञान हमे पहले का हुआ हो अर्थात् किसी को देखा हो या किसी विषय को पढ़ा हो और कुछ सालों के बाद उस विषय को फिर से पढ़े या उस व्यक्ति को देखे तो याद आ जाता है कि इसे पहले भी देखा है या पढा है इस प्रकार का जो ज्ञान होता है उसे स्मृति ज्ञान कहा जाता है। अब हम अनुभव नामक बुद्धि के प्रकार को जानते है। इस विषय को बताते हुए अन्नम्भट लिखते है-

तद्भिन्नंज्ञानमनुभवः। - तर्कसंग्रह

अर्थात् स्मृति ज्ञान से पृथक ज्ञान अनुभव है। इसे स्पष्ट करने के लिए अनुभव के दो भेद किए गए है। एक यथार्थ अनुभव दूसरा अयथार्थ अनुभव। अब हम आगे इन दो भेदों को समझे गए।

यथार्थ अनुभवः- वस्तु का सही रूप में ज्ञान करना ही यथार्थ अनुभव कहलाता है। यथा जब हम रस्सी को देखें तो हमें रस्सी का ही ज्ञान हो न की सर्प का इसे ही यथार्थ कहते है।

यथार्थ अर्थात् प्रमा (सत्य)।

अयथार्थ अनुभवः:- वस्तु में किसी अन्य वस्तु का ज्ञान अयथार्थ है। इस ज्ञान को इस टना से समझते है, जब हम समुद्र तट पर भ्रमण कर रहे होते हैं तो वहाँ रेत पर पडी हुई शुक्ति (सीपी) को देख कर यह ज्ञान होता है कि कोई चाँदी की वस्तु है इस प्रकार का जो मिथ्या ज्ञान हमें हुआ उसे ही अयथार्थ कहा जाता है।

तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः। - तर्कसंग्रह

सुखः:- इस गुण की चाह संसार के समस्त जीवों मे होती है। अन्नम्भट इसका लक्षण करते हुए कहते है कि जो सब प्राणियों को स्वयं के लिए अनुकूल लगे वह सुख है।

सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम्। - तर्कसंग्रह।

दुःखः:- प्रत्येक दर्शन मे दुःख के नाश को ही मोक्ष माना है। ईश्वरकृष्ण ने तो सांख्यकारीका नामक अपने ग्रन्थ मे दुखों के विषय मे बताते हुए ही ग्रन्थ को प्रारम्भ किया है। वैशेषिकों ने दुःख को गुण मानते हुए इसे सरल शब्दों में अपने ग्रन्थों में व्यक्त किया है।

प्रतिकूलवेदनीयं दुखःम्।- तर्कसंग्रह।

अर्थात् जो स्वयं के लिए प्रतिकूल हो वह दुःख है।

इच्छाः:- कामनाओं को इच्छा नामक गुण कहा गया है।

''इच्छाः कामः''।

द्वेषः -

क्रोधो द्वेषः।

अर्थात् क्रोध नामक संवेग को द्वेषः कहा जाता है।

प्रयत्नः:- किसी कार्य को करने के लिए किया गया प्रयास प्रयत्न कहलाता है।

''कृतिः प्रयत्नः। - तर्कसंग्रह

धर्मः:- वेदों मे बताए गए मार्ग पर चलने से जो गुण उत्पन्न होता है उसे धर्म कहा जाता है।

''विहितकर्मजन्यो धर्मः''।

अधर्मः:- वेदों मे जो कर्म करने के लिए मना किया गया है वैसे कर्म करने से अधर्म उत्पन्न होता है।

निषिद्धकर्मजन्यस्त्वधर्मः।

संस्कारः:- यह अंतिम गुण है इस गुण को वैशेषिकों ने बडी ही सरलता से व्यक्त किया है। सामान्य भाषा मे संस्कार को, अवशिष्ट गुणों को जन्म देने वाला कहा जाता है। संस्कार का मूल अर्थ 'शुद्धीकरण' है। अन्नम्भट्ट ने संस्कार तीन प्रकार का माना है।

वेग, भावना और स्थितिस्थापक।

वेग मुर्त द्रव्यों मे निवास करता है। भावना को स्पष्ट करते हुए ग्रन्थकार बताते हैं कि अनूभवजन्यास्मृतिहेतुर्भावना और यह केवल आत्मा मे रहती है।

तीसरा प्रकार जो स्थितिस्थापक कहलाता है। स्थितिस्थापक का अर्थ है किसी वस्तु को यदि अन्य रूप मे बना दिया जाए लेकिन वह किसी न किसी कारण पुनः अपने मूल रूप को ग्रहण कर ले, वह जो कारण है उसे ही स्थितिस्थापक कहा जाता है यह संस्कार केवल वस्त्रादि रूप मे पृथ्वी नामक द्रव्य मे निवास करता है।

इस संस्कार नामक गुण के साथ हमारा शोध पत्र का कार्य पूर्ण हुआ।

संदर्भग्रन्थ

- शडदर्शन समुच्चय-हरिप्रभासूरी, चौखम्भा प्रकाषन वाराणसी।
- सर्वदर्शन संग्रह-श्री मन्मध्वाचार्य विरचित श्री उदयनारायणसिहं कृत तथा गोविन्द सूरी विरचयित भाषा टीका सहित, ल.वे.मुद्रणालय, मुम्बई।
- भारतीय दर्शन-डॉ. राधा कृष्णन, हिन्दी अनु. नन्द किशोर गोभिल प्रथम एवं द्वितीय भाग, राजकमल एण्ड संस, कश्मीरी गेट दिल्ली।
- तर्क-संग्रह, अन्नम्भट्टविरचित हिन्दी व्याख्याकार श्रीचन्द्रधर शुक्ल, चौखम्भा पब्लिशर्स वाराणसी।
- दर्शनशास्त्र लेखक रोहित कुमार आदि, अरिहन्त पब्लिकेशन्स इण्डिया लिमिटेड।
- मार्गोपदेशिका, लेखक डॉ. शत्रुन त्रिपाठी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
- भारतीय दर्शन के इतिहास का सार्वाङ्गीण विवेचन, डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, साहित्य भण्डार शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक सुभाष बाजार, मेरठ।

हिंदी उपन्यासों में चित्रित कश्मीर का इतिहास, वर्तमान और भविष्य

कृष्णा अनुराग

शोधप्रज्ञ, हिंदी विभाग, ल.ना.मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रो० राजेंद्र साह

सह लेखक, हिंदी विभाग, जी. डी.कॉलेज, बेगुसराय

भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति (1947) के साथ ही कश्मीर समस्या एक ऐसे राजनीतिक नासूर के रूप में उठ खड़ी हुई कि आज तक भारत की राजनीति और जनता उसके दुष्परिणाम भोग रही है, यद्यपि यह भी सत्य है कि यह समस्या भारतीय स्वतंत्रता के बाद की नहीं अपितु इसकी जड़ें ऐतिहासिक त्रासदियों से जुड़ी हुई हैं। कब तक इस समस्या का निराकरण होगा इसकी कोई स्पष्ट घोषणा नहीं की जा सकती है परंतु राजनीतिक प्रयास के साथ-साथ हिंदी साहित्य में भी इस विषय पर निरंतर सकारात्मक सृजन हो रहा है और साहित्यिक दृष्टिकोण से इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया जा रहा है। यही कारण है कि समकालीन हिन्दी उपन्यासों में कश्मीर के हालिया उथल-पुथल को यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

हिंदी उपन्यासों में न केवल कश्मीर के इतिहास, परंपरा, सांस्कृतिक थाति का गहरा विश्लेषण है, अपितु वहाँ के लोक-जीवन, सामान्य जनता में हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द और भाईचारे की विरासत का सूक्ष्म चित्रण भी है, साथ ही वर्तमान के कश्मीरी जीवन, आतंकवाद की समस्याओं और सन् 1947ई. से चली आ रही राजनीतिक उथल-पुथल का बड़ा प्रमाणिक और संवेदनात्मक चित्रण हुआ है। कश्मीर की भौगोलिक संरचना और स्वर्गीय प्राकृतिक सुंदरता उसे विशिष्टतम की श्रेणी में ला खड़ा करती है। इसके बावजूद दिन-रात चलने वाली गोलियाँ, सुबह-शाम होती पत्थरबाजियाँ, सरेआम होती मारकाट और बमबाजियों की वजह से कश्मीर आज कहीं न कहीं समग्न विकास के मामले में पिछड़ चुका है। कश्मीर की व्यथा-कथा को व्यक्त करते हुए कई उपन्यास; मसलन श्कथा सतीसर (चंद्रकांता), 'दर्दपुर' (क्षमा कौल), 'कश्मीर की बेटी' (शत्रुघ्नन प्रसाद), 'शिगाफ' (मनीषा कुलश्रेष्ठ), 'व्यथ-व्यथा (हरिकृष्ण कौल) आदि लिखे गए। महत्त्वपूर्ण यह है कि कश्मीर की व्यथा को वाणी देने वाले अधिकतर उपन्यासकारों के लिए यह त्रासदी 'भोगा हुआ यथार्थ है।

किसी भी देश-प्रदेश के समग्न विकास के लिए आवश्यक है कि शासन सत्ता और जनता के बीच समन्वय बना रहे और जनता की भी नीतिगत फैसलों में निर्णायक भागिदारी हो, परंतु दुखद यह है कि चौदहवीं शती में जब कश्मीर का पतनकाल शुरू हुआ तब से लेकर आज तक ऐसा नहीं हो सका है। राजा हो या लोकतांत्रिक रूप से चुनी हुई सरकार, दोनों का ही जनता पर अपने फैसले थोप देते है। जनता की राय नहीं पूछी जाती बल्कि उन्हें जाति, धर्म, संप्रदायों में विभक्त रहने और उसी में उलझे रहने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह स्थिति चौदहवीं शती में भी थी और आज भी उसी रूप में विद्यमान है। "लोहर, क्षत्रिय, डामर, लावण्य, वैश्य, शूद्र- सभी एक साथ न तो बैठ सकते हैं और न देश के लिए विचार कर सकते हैं।"[1]

उपन्यास में यह कथन भले ही चौदहवीं शताब्दी का हो लेकिन हम इस सच से मुँह नहीं मोड़ सकते कि आज भी कमोबेश स्थिति ऐसी ही है। फर्क इतना है कि आज जातियाँ गौण हो गयी हैं और साम्प्रदायिकता चरम पर पहुँच चुकी है। सती के पवित्र

सरोवर से निकली कश्मीर वादी, जिसे ज्ञान की भूमि का दर्जा मिला, वहाँ तथाकथित कुलीन वर्ग के प्रबुद्ध जनों ने भी स्वहित को देशहित से ऊपर माना तभी तो पंडित प्रवर देव स्वामी कहते हैं- "नहीं तो ये राजा, महाराजा, सम्राट ब्राह्मणों से कर लेना आरंभ कर देंगे।"[2]

जबकि उस समय सम्राट ने कर इसलिए माँगा था कि लुटेरे दुल्चा के आक्रमण से कश्मीर को बचाया जा सके। दूसरी ओर एक तथाकथित निम्न वर्ग का निषाद अपने देश को विपत्तियों से घिरा देख कहता है- "हम लोग भी कर दे रहे हैं। देश को उजड़ने से बचाना है।"[3] मेरी दृष्टि में यही सार्थक साहित्यिक प्रयास है किसी समस्या को सुलझाने का। उपन्यासकार एक तथाकथित निम्न जाति के व्यक्ति से यह बात कहवा कर समाज के समक्ष एक उदाहरण पेश करता है और एक नयी दिशा देता है कि वक्त रहते सँभल जाना चाहिए अन्यथा जाति-संप्रदायों में विभक्त रहने पर परतंत्र भी होना पड़ेगा और विकास की गति भी चौपट हो जाएगी।

आज कश्मीर की स्थिति बेहद संवेदनशील है, ऐसे नाजुक मौके पर जब एक तरफ सरकार अनुच्छेद-370 और 35ए हटा कर यह प्रचारित कर रही है कि सरकार के इस कदम से कश्मीर में विकास की गंगा बहने लगेगी तब एक आम कश्मीरी इकबाल की बातें अनायास ही मस्तिष्क को झकझोरती हैं- "आप लोगों ने हमेशा कश्मीर को चाहा, कश्मीर के लोगों को नहीं। अगर कश्मीर से आपका मतलब सिर्फ पहाड़, जंगलों से है तो बेशक यह रख लीजिए, लेकिन यदि लोगों की परवाह है तो उनकी मर्जी भी सुनिए।"[4] आज नित्य हो रही हिंसा, पत्थरबाजी, बमबाजी, आतंकियों के समर्थन में नारे लगाने की घटनाएँ इसी ओर इशारा करती हैं कि समाज का एक बड़ा वर्ग सरकार के फैसलों से संतुष्ट नहीं है। शायद यही कारण है कि भारत सरकार ने अगस्त 2019 में जो ऐतिहासिक कदम उठाया उसके कई महीने बीत जाने के बाद भी आज स्थितियाँ सामान्य नहीं हो सकी हैं और लोग संगीनों के साये में जीने को मजबूर हैं। हिंदी उपन्यासों में इस बिंदु पर विशेष प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार सरकार और जनता के बीच विश्वास और समन्वय की भयंकर कमी है। यही कारण है कि जब सरकार कश्मीर के लिए हितकारी फैसले भी लेती है तब भी जनता का विश्वास और समर्थन हासिल नहीं होता।

सरकार के अच्छे फैसले भी प्रकार अफवाहों की भेंट चढ़ जाते हैं- "दहशतगर्दों ने अफवाहों का ऐसा घनघोर कुहासा फैला रखा था कि दोषी निर्दोष दोनों के चेहरे उसमें गुम हो गए थे।"[5] प्रश्न यह उठता है कि आखिर शासन सत्ता से बड़ा तंत्र तो आतंकवादियों या अलगाववादियों का नहीं हो सकता, फिर यह कैसे मुमकिन है कि सरकार की बातें जनता तक नहीं पहुँचे? इस समस्या पर भी हिंदी उपन्यासों में विचार किया गया है। उत्तर जो लगभग सभी उपन्यासों के बीच से निकल कर आता है वह यह कि शासन सत्ता और जनता के बीच जो बेहिसाब दूरी बढ़ गयी है, उस खाली जगह में आतंकवादियों और अलगाववादियों ने बड़ी मजबूती से पैर जमा लिए हैं और वहीं से भोली-भाली, अशिक्षित जनता को नियंत्रित करते हैं। एक और कारण जो चंद्रकांता अपने उपन्यास 'कथा सतीसर' में गिनाती हैं- "बाह्य षड्यंत्र, भीतरी अव्यवस्था, गलत रणनीतियाँ और शासकों की महत्त्वाकाँक्षाएँ!"[6] जब वे 'शासकों की महत्त्वाकाँक्षाएँ' कहती हैं उसका मतलब होता है प्रादेशिक सरकार। आजादी के बाद कश्मीर का मुख्यमंत्री जो भी बना कहीं न कहीं उसके हृदय में यह ख्वाहिश रही कि कश्मीर स्वतंत्र राज्य हो और वे उसके प्रधानमंत्री। संभवत: इसीलिए उन्होंने अलगाववादियों और आतंकवादियों को फलने-फूलने दिया। बख्शी साहब अपवाद थे जिनके मन में यह ख्वाहिश नहीं जगी।

विकास और शिक्षा के बीच अन्योन्याश्रित संबंध है, किसी भी देश-प्रदेश का विकास तभी संभव है जब वहाँ के युवा शिक्षित हों। कश्मीर इस मामले में कभी देश का सिरमौर था तब कल्हण, बिल्हण, मम्मट, अभिनवगुप्त आदि विद्वानों का वहाँ बसेरा था परंतु आज स्थितियाँ बिल्कुल विपरीत हैं। आज कश्मीरी युवाओं का एक बड़ा वर्ग आतंकियों, अलगाववादियों और कट्टरपंथियों के बहकावे में आ कर कलम उठाने के बजाए हथियार उठा रहा है। बेवाओं की हालत बयाँ करते हुए हेडमास्टर साहब कहते हैं- "हमें आपका ख्याल बहुत कीमती लगा। अगर ये लोग पढ़े-लिखे होते तो.... मेरा मतलब है इनके खाविन्द पढ़े-लिखे होते तो सब के सब सिर्फ पन्द्रह या बीस हजार में खुद को नहीं बेचते और अपने पीछे बेवाओं का पूरा गाँव ही नहीं छोड़ देते। इल्म के न होने से ही ऐसा हुआ। हमीदपुर में ऐसा करने में कामयाबी क्यों नहीं मिली आतंकियों को। क्योंकि वे कमोबेश पढ़े-लिखे हैं। इसीलिए अब यह बेवाओं का पूरा गाँव ही हमारे सिर पर आ गया है, क्या करें? कुछ काम भी इनसे नहीं होता। कुछ पढ़ाई-लिखाई इनके लिए शुरू की जाए तो धीरे-धीरे इनसे अपने रोजगार तलाशने की भी कोशिश शुरू करायी जा सकती है।"[7] हेडमास्टर चूँकि पढ़े-लिखे हैं, इसीलिए उनसे बेवाओं का कष्ट नहीं देखा जाता जबकि अनपढ़ और भ्रमित लोग उन बेवाओं को कहते हैं कि खुशी मनाओं तुम्हारा पति 'शहीद' हुआ है।

सन् 1931 ई. में जब गरीब, किसान, मजदूर आदि के नाम पर कश्मीर में राजा के खिलाफ विरोध का बिगुल फूंका गया तभी से अल्पसंख्यक हिंदू समाज भी हिंसात्मक गतिविधि का शिकार हुआ। यह बात शेख अब्दुल्ला साहब को भी गलत लगी यही कारण है कि सन् 1931 ई. में जिस दल का नाम उन्होंने 'मुस्लिम कांफ्रेंस' रखा था सन् 1939ई. में उसे बदलकर 'नेश्नल कांफ्रेस' कर दिया। क्योंकि वे जानते थे कि कश्मीर के विकास के लिए जितना जरूरी मुसलमान है उतना ही जरूरी हिन्दू भी, यह बात दीगर है कि आगे चलकर उन्होंने भी धर्म के आधार पर भेदभाव शुरू कर दिया।

समाज, प्रदेश और राष्ट्र के सर्वांगिन विकास के लिए यह बेहद जरूरी है कि समाज में सौहार्द, प्रेम, सद्भाव और भाईचारा हो परंतु कटु सत्य यह है कि सन् 1980-1990ई. के बीच कश्मीर में धार्मिक उन्माद अपने चरम पर था और जिसका दंश लोग आज तक झेल रहे हैं। कश्मीर को उन्नति और विकास और में बराबर के भागिदार हिन्दू समाज को कश्मीर से बर्बरता के साथ खदेड़ा गया। एक भरे-पूरे समाज के पलायन, विस्थापन और और निष्कासन से प्रदेश का भी कितना नुकसान होता है इसका भी बड़ी सूक्ष्मता से हिंदी उपन्यासों में चित्रण हुआ है।

"अमि, मैं बारह साल का ही था न, जब हमें उन्होंने खदेड़ा का था? मुझे हल्का-सा याद था कि श्रीनगर तब कैसा दिखता था। उस समय वहाँ स्कीइंग की इंटरनेशनल प्रतियोगिता होती थी। बहुत तरसता था इसीलिए चला गया।"[8] एक निष्कासित कश्मीरी जिसे अपने घर से जबर्दस्ती निकाल दिया गया हो उसके दर्द को इन पंक्तियों से समझा जा सकता है। आतंकियों की वजह से ही यहाँ पर्यटन उद्योग भी चौपट हो गया। चंद्रकांता भी इसी त्रासदी का शिकार हुई हैं। इसीलिए अपने उपन्यास में व्यथित होकर प्रश्न करती हैं- "कश्मीर की अर्थव्यवस्था का आधार कालीन इंडस्ट्री, शाल इंडस्ट्री, पेपर मैशी, वुड वर्क, रेश्म के कारखाने और टूरिज्म हैं। देश-विदेश तक फैले इस व्यापार में, कितने पंडित शामिल हैं? मुट्ठीभर ही तो? वहाँ किसने किसका हक छीना है?"[9]

ऐसे तमाम प्रकरणों, घटनाओं से इन उपन्यासों के पन्ने हैं रंगे हुए है। जिस ऋषिभूमि को कल्हण ने स्वर्ग की संज्ञा से विभूषित किया था वह इस कदर रक्तरंजित होगी, किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। जिस प्रदेश में शिवरात्रि और ईद एक साथ मनाने की परंपरा रही हो, वहाँ जब अपने ही लोग अपनों के खून के प्यासे हो जाएँ तो उससे कैसे बचा जा सकता है। पाषाण युगश में बृजमोहनजी अपने सबसे खास मित्र सज्जाद से यही कहते हैं- "यह सबसे खतरनाक तूफान है, सज्जाद, क्योंकि यह न लड़ाई है न कबाइलियों का हमला। देख लेना, यह यहाँ की जमीन पर लाशों की ढेर लगा देगा।"[10]

एक बेहद गंभीर मुद्दे पर भी हिन्दी उपन्यासकारों का ध्यान गया है। तमाम उपन्यासों में गरीबों की बढ़ती गरीबी और अमीरों की बढ़ती अमीरी को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है।

"पहाड़ियाँ उतरते भेड़-बकरियों के झुंडों के साथ फटे फिरनों के नीचे नंगी टाँगे दिखाते कम उम्र के चरवाहों को देखते सोचता रहा, कि धन्यधान्य से सुहागवती प्रकृति के गोद में, ये अधनंगे चरवाहे और भूमिहीन मजदूर, आजादी के बाद कितना बदल गए? शेख साहब और बख्शी साहब के रहते भी ये वहीं खड़े हैं, जहाँ पहले थे।"[11]

जब लोकराज्य की माँग के लिए आंदोलन शुरू हुआ था तब लोगों की उम्मीद थी कि जब हमारी अपनी सरकार आएगी तब सब के जीवन में खुशहाली आएगी जबकि खुशहाली आयी सिर्फ "बख्शी ब्रदर्श और शेख साहब के नाते-रिश्तेदारों के साथ कई राजनीतिक सेठों की शानदार कोठियोंष में।"[12]

कश्मीर धीरे-धीरे सुनियोजित साजिश के तहत देश से काटा जाने लगा। केंद्र सरकार से मिले पैसे को वहाँ सत्ताधारी नेतागण खा रहे थे और जनता को आतंकवादियों का चारा बनने के लिए छोड़ दिया गया था। "यों वादी में नए धन्धे खुले हैं; मिलिटेंटों से पत्रकारों की मुलाकातें करवाना, न्यूज एजेंसियों को भीतरी खबरे देना। बी.एस.एफ. या आर्मी के जवान को मारने के तो दो लाख तक मिलते हैं।"[13]

कश्मीर के नौजवानों को पैसों का प्रलोभन देकर इसी तरह भड़काया और बहकाया गया और वे नासमझ उन्हें ही अपना मसीहा मान बैठे। कश्मीरी युवाओं को हत्या के लिए उकसाते हुए आतंकी कहता है- "याद रखो, दो आर्मी अफसरों के सिर याने चार लाख रुपये। पुश्तों के दरिद्र कटेंगे।"[14] इतनी दहशतगर्दी और हिंसात्मक वातावरण के बीच कश्मीर की कश्मीरियत को तहस-नहस किया गया साथ ही आम जनमानस को देश के खिलाफ भड़काने का भरपूर प्रयास किया गया। इतना सबकुछ होने के बावजूद भी कश्मीर से उम्मीद की किरण नजर आती है और लगता है कि भविष्य में निश्चित ही वहाँ समग्न विकास होगा। कारण यह कि इतने हिंसात्मक माहौल में भी शैव, बौद्ध और इस्लामिक संस्कृति की साँझी विरासत सहेजने वाले लोगों की संख्या में कमी नहीं आयी

है। हिंसात्मक माहौल में उनकी आवाज जरूर दब गयी लेकिन उनकी निश्छल भावनाएँ हमेशा अपने देश और हिंसा पीड़ितों के साथ रहीं। हिंदी उपन्यासों में इस बिंदु पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया गया है। "रहमान ने दुलार से पुचकारा, चल सुलतान, बढ़ा कदम। धीरे-धीरे, टिह.... टिह.... टिह। ताजल नहीं हं, हं लल्ली बहन को खैरों से पहुँचाना है....।"[15]

साम्प्रदायिक सद्भाव के अनेक चित्र इन उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। "शुक्र परवरदिगार! खुर्शीद ने आसमान की तरफ हाथ उठाए, ताँग मोड़ लो और इत्मीनान से चलो। अब कोई डर नहीं। चले गए मुए।"[16]

हिन्दू लड़की की विदाई के लिए मुसलमानों को जिम्मेवारी दी गयी और उनलोगों ने इसे बखूबी निभाया भी। यही सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत ने कश्मीरियत को जीवित रखा है और यही सोच कश्मीर की प्रगति की वाहक बनेगी। इसीलिए जिन लेखकों ने आतंक को झेला भी है उन्होंने भी अपने उपन्यासों में सूक्ष्म से सूक्ष्म साम्प्रदायिक सद्भाव की घटनाओं का स्थान दिया है।

संदर्भ सूची-

1. प्रसाद, शत्रुघ्न, कश्मीर की बेटी, पृ. 164, सत्साहित्य प्रकाशन
2. वही, पृ. 16
3. वही, पृ.- 19
4. रॉय, जयश्री, इकबाल, पृ. 8, आधार प्रकाशन
5. चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृ. 573, राजकमल प्रकाशन
6. वही
7. कौल, क्षमा, दर्दपुर, पृ. 351, भारतीय ज्ञानपीठ
8. कुलश्रेष्ठ, मनीषा, शिगाफ, पृ. 59, राजकमल प्रकाशन
9. चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृ.513, राजकमल प्रकाशन
10. कौल, संजना, पाषाण युग, पृ. 37, आधार प्रकाशन
11. चंद्रकांता, कथा सतीसर, पृ. 326, राजकमल प्रकाशन
12. वही, पृ.- 326
13. वही, पृ.- 535/536
14. वही, पृ.- 547
15. वही, पृ.- 23
16. वही, पृ. 25

मोहन राकेश के उपन्यासों में आधुनिक नर-नारी सम्बन्ध

डॉ० सुषमा

जम्मू

आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं- नाटक, कहानी और उपन्यास में से उपन्यास ही ऐसी विधा है जिसमें आधुनिक मानव जीवन का समग्र चित्रण मिलता है। आधुनिक मानव की सामाजिक चेतना और उसके युग बोध की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति उपन्यास के माध्यम से हुई है। स्पष्ट है कि जीवन के यथार्थ को उभारने में उपन्यास का विशेष सामाजिक महत्व है।

यह निर्विवाद है कि उपन्यास का केन्द्रीय विषय मनुष्य ही रहा है और आज का उपन्यास निरन्तर जीवन के निकट आने और नया अर्थ देने के लिए संघर्षरत है। इस प्रक्रिया में आधुनिक उपन्यास आधुनिक मानव संबंधों की कहानी कहता है।

मोहन राकेश के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के आधुनिक रूप की सर्वाधिक व्याख्या की गई है; इन्होंने अपने उपन्यास परम्परागत लीक से हटकर लिखें हैं। मोहन राकेश के उपन्यासों में पति-पत्नी आपस में लड़ते-झगड़ते एक दूसरे से टूटते बिखरते, घृणा और क्रोध करते, अन्ततः पति-पत्नी ही बने रहते हैं, झट से अलग नहीं होते।

भारतीय समाज में अधिकांश दम्पति इसी प्रकार के कलह-क्लेशों से पीड़ित रहते हुए भी अन्त तक समझौता किये रहते हैं। प्रतिदिन की झिक झिक से छुटकारा पाने के लिए पति तो कभी कभी पत्नी से मुक्त होने की हद तक सोच लेता है, किन्तु पत्नी तो पुराने संस्कारों से जकड़ी हुई है। "अंधेरे बंद कमरे" में शुक्ला एक ऐसा ही पात्र है, वह जानती कि उसका पति एकदम बुरा इन्सान है और पहले से ही शादी- शुदा है फिर भी वह उसे पुराने समय की नारियों की भांति परमेश्वर ही मानती है। परन्तु "अंधेरे बंद कमरे" के अन्य दम्पति नीलिमा और हरबंस इसके विपरीत हैं।

नीलिमा आधुनिक नारी है वह अपने पति हरबंस की परतन्त्रता को स्वीकार कर उसकी चहार दिवारी में घुटती रहना नहीं चाहती। वह कलाकार है और अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखती है। वह चाहती है कि उसकी कला का प्रदर्शन बाहरी समाज में भी हो। नारी स्वाधीनता की चेतना उसे महज पत्नी बनी रहने के विरुध बार बार प्रेरित करती है।

हरबंस और नीलिमा के विचारों की आधुनिकता और संस्कारों की प्राचीनता के कारण तनाव चलता है। आधुनिकता के कारण एक ओर हरबंस अपनी पत्नी नीलिमा को सुशिक्षित एवं स्वतंत्र व्यक्तित्व सम्पन्न देखना चाहता है और दूसरी ओर पतिपन के संस्कार नीलिमा के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास में बाधक बनने लगता है। इधर नीलिमा महज पति समर्पिता पत्नी बनी रहने को तैयार नहीं है, उसमें आधुनिक नारी की व्यक्तिवादी चेतना मौजूद है, उसे पति की इच्छानुकूल स्वयं को तोड़ने मोड़ने के लिए बाध्य नहीं रहने देती। वह कहती है- "जहाँ नीलिमा तुम्हारे काम आ सकती है, वहां वह तुम्हारी पत्नी है और तुम्हें उसे इस्तेमाल करने का पूरा हक है। मगर आज मेरी वजह से कुछ लोगों की दावत करनी पड़ी तो तुम्हारी आत्मा विद्रोह कर रही है कि मैं तुम्हें कीचड़ में घसीट रही हूँ।"

नीलिमा स्वयं को "भोग्या-वस्तु" मात्र नहीं मान पाती। वह कहती है, "अब मैं उसकी भूख तक का समान बनकर नहीं रहना चाहती। उसने आज तक यह नहीं समझा कि मैं कोई उपयोग की वस्तु नहीं इन्सान हूँ और मेरी भी कुछ जरूरतें हैं।"[1]

नीलिमा का यह आत्मबोध पति-पत्नी के परम्परागत सम्बन्धों की अपेक्षा नवीन जीवन मूल्यों की मांग को ही घोषित करता है।

मोहन राकेश के दूसरे उपन्यास 'अन्तराल' की नायिका श्यामा आधुनिक नारी है जो पुराने रीति-रिवाजों को नहीं मानती। विधवा होते हुए भी सुहागिनों की तरह श्रृंगार करती, जबकि प्राचीन भारतीय समाज में विधवा के लिए श्रृंगार करना निषेध माना जाता है। आधुनिक भारत के संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ है जिस कारण पारिवारिक सदस्यों के सम्बन्ध बदले है। 'अन्तराल' उपन्यास में परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध में बदलाव के कारण महानगरीय व्यक्तिवादिता का भाव माना जाता सकता है।[2] परिवार अब होटल में बदलता जा रहा है। जिसमें अलग-अलग राहों में राहगीर रात-बिरात को लेकर पुनः दिन में अपनी- अपनी राहों पर लौट जाते है।- छोटी बहन सीमा का यह कथन मूल्यों के विघटन की ओर संकेत करता है।[3] सीमा कहती है: "हम लोग एक दूसरे षे डरती दबती हुई यहां रहे; तम बात निभाने वाली नहीं है और न ही किसी एक दूसरी पर एहसान लादना और दूसरी का एहसान झेलना ही निभ सकता है।"[5] इस कथन से स्पष्ट है कि आधुनिक परिवारों में आपसी विश्वास, प्रेम, हमदर्दी, मोह इत्यादि नहीं है, सिर्फ दिखावे के लिए एक दूसरे से प्यार करते है, रिश्तेदारी निभाते हैं और अन्दर ही अन्दर एक-दूसरे के प्रति घृणा, नफरत, कुंठा आदि लिए हुए हैं। सीमा, श्यामा और बीजी लोगों के देखने में रिश्तेदारी में बंधे हुए है और यह रिश्ता भी निकट का है परन्तु तीनों परस्पर एक-दूसरे से कटी-कटी सी है। उपन्यासकार ने इन तीनों नारी पात्रों के माध्यम से आधुनिक समाज में धीरे-धीरे घर कर रही व्यक्तिवादिता और अजनबियत को सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

इस उपन्यास के माध्यम से मोहन राकेश ने आधुनिक प्रेम के स्वरूप में आत्मजन्य आकर्षण नहीं काम की प्रधानता है। 'अन्तराल' का कुमार नायिका श्यामा से बनावटी प्रेम करता है। उस प्रेम का आकर्षण वासनाजन्य है। एकनिष्ठ प्रेम नहीं है। कुमार पहली प्रेमिका लता तथा दूसरी प्रेमिका श्यामा को वासना की नजरिए से देखता है परन्तु श्यामा उपन्यास के शुरु से लेकर अंत तक उससे बनाए रखती है। कुमार को जब भी मौका मिलता है वह बिना विचारे श्यामा के पास चला जाता है। जबकि भारतीय समाजों विधवा का किसी पर-पुरूष के साथ साथ घुल-मिलकर रहना उचित नहीं मानता। कुमार पढ़ने के लिए आई श्यामा को मौका मिलते ही अपनी बांहों में जकड़ लेता है। एक दिन दोनों बिना पढ़े पढ़ाये घर से बाहर घूमने जाते हैं। सुनसान रास्ते में बारिश में घूमते है और जैसे ही बिजली की चमक में श्यामा के शरीर को देखता है, उसके अन्दर काम की भावना प्रज्वलित हो जाती है, और वह उसे अपनी बांहों में कस लेता है।[6]

इसी उपन्यास के अंत तक पहुंचते-पहुंचते घर में आई हुई श्यामा को अकेले देखकर मौके का लाभ उठाकर और काम की अग्नि में अंधा होकर श्यामा को अपनी बाहों में जोड़ते हुए बिस्तर पर ले जाता है और उसके शरीर को दांतों से काटने लगता है। कुमार का यह प्रेम आदर्श प्रेम न होकर शारीरिक भूख तक ही सीमित है। वह प्रेम न करके श्यामा से अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए प्रेम का नाटक करता है।

मोहन राकेश द्वारा रचित उपन्यास 'न आने वाला कल' की स्थिति थोड़ी भिन्न है। मनोज विधवा श्यामा से प्रेम करता है परन्तु उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित नहीं कर पाता जबकि शोभा उसकी पत्नी है, शोभा के अतिरिक्त उसके जीवन में बानी और काशनी भी आती है परन्तु वह किसी से चाहकर कर भी शारीरिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता।

बानी आधुनिक स्त्री पात्र है जो आधुनिक सभ्यता और संस्कृति को स्वीकारती है कि प्रत्येक व्यक्ति के अपने अलग-अलग मानदण्ड होते है। शोभा के जीवन के मानदंड अलग है तो बानी के अलग। मनोज शोभा से उत्पन्न अभाव की पुर्ति बानी से बंधकर करना चाहता है, बानी भी मनोज का चुनाव करती है किन्तु वह सिर्फ चुनाव ही करती है हमेशा के लिए उसके साथ बंधना नहीं चाहती हैं। वह मनोज से कहती है "किसी आदमी के साथ घर बसाकर रहने की बात से मुझे शुरू से चिढ़ रही है।" वह हर आदमी की संगति अपने चुनाव के स्तर पर करती है, आदमी के चुनाव के स्तर पर नहीं। उसकी दृष्टि में तो हर आदमी शारीरिक स्तर पर स्त्री के साथ जुड़े रहने का प्रयत्न करता हैं। वह बिना किसी संकोच के शारीरिक संबंधों पर विचार करती है। वह विभिन्न पुरूषों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर चुकी है। शारीरिक सम्बन्ध में नैतिकता को महत्व नहीं देती। वह भावना के स्तर पर जुड़ना मानों उसके अहं को ठेस पहुँचाता है। उसके जीने का मूल्य स्वतंत्र प्रक्रियाहै जिसमें वह जीती है। पुरूषों के साथ सोना उसके लिए जैविक मांग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अत: ऐसे पुरुष को पाना चाहती है जो उसे समझ सकें। बानी जैसी स्त्री पूर्ण स्वतन्त्र होकर मर्यादा

और नैतिकता के बिना प्रवाह किए अचेतन में घुमती हुई बातों को प्रकाश में ला सकती है। झूठी नैतिकता का बोझ ढोने को वह तैयार नहीं।

इस प्रकार मोहन राकेश ने मानव के अन्दर छिपी आकांक्षा को उजागर किया है। मानव चाहता कुछ है, लेकिन प्रत्यक्ष में नहीं कह सकता ऐसा पहले होता था परन्तु अब तो खुले शब्दों में कहा जाता है। जैसे कि बानी के विचारों में ऐसा प्रत्यक्ष रूप में देखने को मिलता है।

मनोज के अन्दर अतृप्त कामनाओं की पूर्ति की एक मांग है किन्तु बानी के यह कहने पर, "यह खेल कभी भी खेला जा सकता है, किसी के साथ भी।" मनोज के अहं को ठेस लगती है। वह बानी से शारीरिक स्तर पर जुड़ने का प्रयास करता है किन्तु बानी का यह कथन दोनों की स्थितियों को स्पष्ट कर देता है, "मेरी दिलचस्पी एक ओर आदमी के अन्दरूनी व्यवहार को देखने में होती है और तुम्हारी.. शायद एक ओर लड़की के साथ रात व्यतीत कर लेने भर में। पर तुम्हें शायद मुझसे निराशा ही होती, क्योंकि मेरे अन्दर तुम्हें वह प्रतिक्रिया न मिलती जिसकी तुम मुझसे अपेक्षा रखते हो।"[7]

इस प्रकार बानी भी अस्तित्व के स्तर पर उससे टकराती है, उसे असहाय बनाती है। जहां बानी आधुनिकता की सजीव पात्र बनकर आधुनिकता की अस्वीकृति स्पष्ट है किन्तु एक ऐसे बिन्दु पर दोनों मिलते है वह है अकेलापन। बानी के लिए किसी भी प्रकार के रिश्तों का कुछ अर्थ नहीं है। क्योंकि उसे भटकने में ही एक आनन्द मिलता है। वह अनेक पुरुषों के साथ सहवास के बावजूद न जुड़े रहने की प्रक्रिया में जिन्दा है जबकि मनोज का अलगाव शोभा, बानी और काशनी से होता है लेकिन जुड़ने की निरन्तर प्रक्रिया के संदर्भ में उस क्षण भोगने का प्रयास करता है।

लेखक मोहन राकेश ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उच्च अथवा मध्यवर्गीय शिक्षित दम्पतियों के आधुनिक जीवन को प्रस्तुत किया है, जिसमें एक घुटन है, पीड़ा है, किन्तु वह सबके समक्ष प्रस्तुत नहीं हो पाती। इन दम्पतियों की असफल मानसिक ग्रंथियों से युक्त भारतीय मध्यवर्गीय समाज के प्रति कठिन हो गया है, केवल छटपटाहट उनके हाथ लगी।

आधुनिक नर-नारी के सम्बन्ध में तनाव का बहुत बड़ा कारण उन दोनों में अहं भावना का होना। अहं एक बुरी भावना है, अहं चाहे नर में हो या नारी में एकदम खतरनाक सिद्ध होता है। इसी कारण दाम्पत्य जीवन में तनाव आ जाता है। इसी तनाव के कारण दाम्पत्य सम्बन्ध टूट जाते है, घर तबाह हो जाते हैं बच्चे बर्बाद हो जाते है और समाज उन्हें घृणा की दृष्टि से देखता है परन्तु आधुनिक नर-नारी में अहंकार भावना न हो तो वह अपने आप को मृत समझते है। नर चाहते है कि नारी आगे बढ़े, पर वह मेरे अधीन ही रहे, जबकि नारी वैसे तो आगे बढ़ने से कुछ कतराती है और जब वह एकदम आगे बढ़ जाती है तो वह पुरूष की अधीनता को स्वीकार नहीं कर पाती, जिससे पुरूष के मन में ठेस लगती है और वह अपने आप से नफरत करने लगता है।

मोहन राकेश के उपन्यास 'अंधेरे बन्द कमरे' में इसका खुलकर वर्णन हुआ है। राकेश जी ने पुरूष की अहं भावना हरवंस द्वारा व्यक्त की है। हरबंस एक ओर अपनी पत्नी नीलिमा को आधुनिक स्त्री बनने की प्रेरणा देता है तो दूसरी ओर उसके व्यक्तित्व से ईर्ष्या करता है। नीलिमा चित्रकारी एवं नृत्य कला द्वारा प्रशंसा प्राप्त करती है तो हरबंस उससे ईर्ष्या करने लगता है। वह नीलिमा का बड़े बड़े कलाकारों के साथ मिलना पसंद नहीं करता। वह पहले स्वयं उसे नृत्य सीखने के लिए प्रेरित करता है परन्तु बाद में इन्कार कर देता है। तब नीलिमा कहती है, "तुम ने स्वयं ही मेरे अन्दर की चीज को उकसाया और बढ़ावा दिया है अब जब वह पूरी तरह मेरे मन पर छा गयी है, तो तुम चाहते हो कि मैं उससे मुक्त कर लूं, परन्तु मैं नहीं कर सकती। तुम्हीं ने इस मार्ग से परिचित करवाया था अब मैं अपने मन से उस रास्ते पर इतना चल आयी हूँ कि लौट नहीं सकती।[8] इसी कारण उन दोनों में तनाव रहता है।

इस उपन्यास में इसके उदाहरण यत्र-तत्र बिखरे पड़े है। हरबंस का व्यक्तित्व सामंती मूल्यों के सांचे में ढला हुआ है, जबकि नीलिमा का व्यक्तित्व महत्त्वाकांक्षी है और सफलता पाने की खोज में क्रियाशील है। नीलिमा और हरबंस के प्रेम और दाम्पत्य में आधुनिक परिवेश के कारण दरारें पड़ जाती है। उनका प्रेम और दाम्पत्य सौंदर्य नष्ट हो जाता है और जीवन में घुटन और एकरसता घर कर जाती है। इस स्थिति विकास के लिए उन दोनों का अहं सहायक होता है। इन दोनों की विशुद्ध वैयक्तिक जरूरतों और मांगों की जटिलता भी दाम्पत्य जीवन में दरारे लाने की प्रमुख भूमिका निभाती है। नीलिमा के शब्दों में, "हम लोगों की जिन्दगी की जरूरतें बिल्कुल अलग-अलग है और कितनी भी कोशिश करे हम एक दूसरे की आवश्यकताएं पूरी नहीं कर सकते। वस्तुत: नीलिमा और हरबंस दोनों ही अहम् की कैद में है। नीलिमा सोचती है कि हरबंस अपने अहम् को भुला देता है तो अच्छा होगा। परन्तु वह स्वयं भी अपने अहम् के कारण वह वहां रूक नहीं पाती और लंदन चली जाती है। और हरबंस की संवेदनाओं पर निर्मम प्रहार करती है।"[9]

इस प्रकार मोहन राकेश ने अपने उपन्यासों में आधुनिकता और नर-नारी के बदलते सम्बन्धों का वर्णन बखूवी किया है। आधुनिक नर-नारी में अपनी-अपनी महत्वाकांक्षा का वर्णन, नारी की उच्च महत्वाकांक्षा, शिक्षा का महत्व, नारी की योग्यता का महत्व, यौन कुण्ठाओं का वर्णन आदि इन उपन्यासों में मिलता है।

नारी जो पहले पर्दा प्रथा को स्वीकार करती थी, वहीं नारी आज पर्दा-प्रथा को अभिशाप मानती है। जो नारी अपने आप को पुरूष के अधीन समझती थी आज वहीं नारी पुरूष को अपने अधीन रखने में विश्वास करती है, जो नारी चाहे वह एक दिन के पश्चात् विधवा हो जाती थी। और पूरा जीवन एक मानसिक और बौद्धिक स्थिति है जो अपने परिवेश और समाज की गहनतम समस्याओं से अद्भूत होकर समकालीन जीवन को संस्कार देती है; इसके कारण समाज संस्कृति तथा व्यक्तित्व में अमूलचूक परिवर्तन हुए है।।आधुनिकता का हमारे जीवन से अटूट सम्बन्ध है। परन्तु यह आधुनिकता एकदम पैदा नहीं हो सकती। आधुनिकताजन्य मानवीय जीवन एवं सम्बन्धों में परिवर्तन आए है और मानव अकेलापन, उदासीनता, अजनबीपन, आस्था-अनास्था, व्यर्थता, अलगाव, कृत्रिमता, घुटन आदि का अनुभव कर रहा है, जिससे उसे संत्रास, आत्महत्या तथा मृत्युलोक का अहसास होने लगता है क्योंकि ईमानदारी और आदर्श उसके लिए खोखले और बेमानी शब्द हो गए है। मनुष्य वैषम्य और अन्तर विरोधों का शिकार बन गया है, तथा बाहर और भीतर से टूटकर वह दो स्वतंत्र ईसाइयों में बंट जाता है। अतः वह अन्दर से थका हारा और खोखला होता जा रहा है।

सन्दर्भ सूचीः

1. अंधेरे बंद कमरे-मोहन राकेश
2. अन्तराल ख्र मोहन राकेश
3. अन्तराल
4. अन्तराल
5. न आने वाला कल-मोहन राकेश
6. न आने वाले कल- मोहन राकेश
7. अंधेरे बंद कमरे
8. ,
9. अंधेरे बन्द कमरे

ब्रिटिश शिक्षा का भारतीय समाज पर प्रभाव का अध्ययन

प्रीति सुमन

इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सार: कम्पनी शासन के अधीन अंग्रेजी शिक्षा का भारत में बहुत जोरों से विकास हुआ। जैसे-जैसे कम्पनी के शासन का विस्तार होता चला गया। वैसे-वैसे ही ब्रिटिश अधिकारियों को अंग्रेजी शिक्षा के विकास की आवश्यकता महसूस होती चली गई। उन्होंने प्रशासनीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पर जोर दिया। इस विषय पर डॉ. मजूमदार ने भी लिखा है कि, ''अंग्रेजी भाषा के भारत में प्रचालित होने के कई कारण थे। उनके विचार से उदारवादी भारतीयों का ध्येय सार्वजनिक जीवन में सम्मान प्राप्त करना तथा नई चेतना ग्रहण करना था। उपयोगिता की दृष्टि से प्रशासन में ऊंची नौकरियां प्राप्त करना था जबकि दूसरी ओर ईसाई मिशनरी अंग्रेजी भाषा के पक्ष में थें, परंतु 1835 ई. में मैकाले के विवरण से यह बात स्पष्ट हो गई कि भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगा। लार्ड विलियम बैंटिक ने भी मैकाले के वर्क को स्वीकार किया और कहा कि आज के पश्चात् भारतीयों को ब्रिटिश साहित्य तथा विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी भाषा में प्रदान की जाएगी।'' इसके पश्चात् भारत में सरकारी, गैर सरकारी तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित स्कूलों तथा कॉलेजों की बाढ़ सी आ गई। 1857 ई० में मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता में लन्दन विश्वविद्यालय की तर्ज पर तीन विश्वविद्यालय स्थापित कर दिए गए। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार के प्रयत्नों से भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या में दिन-रात वृद्धि होती चली गई।

मुख्य-शब्द: कम्पनी शासन के अधीन, अंग्रेजी शिक्षा, ब्रिटिश साहित्य, विज्ञान की शिक्षा, ब्रिटिश सरकार।

1. भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना:-

भारत में अंग्रेजी भाषा लागू करने का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि इससे भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न हुई। ब्रिटिश साहित्य में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की भावना पर बल दिया गया था। जब भारतीयों ने मिल्टन, वर्क, जॉन मिल, स्टुअर्ट मिल, हरबर्ट, स्पेन्सर, थॉम्स पेन आदि के उदार एवं स्वतंत्र विचारों को पढ़ा तो भारतीयों में भी स्वतंत्र एवं राष्ट्र के प्रति प्रेम के भाव जागृत हो गए। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने भी लिखा है कि, ''पश्चिम के राजनीति शास्त्र विशेषज्ञ लॉक, स्पेंसर और मैकाले, जेम्स मिल और बर्क के लेखों ने केवल भारतीयों के राजनीतिक विचारों को ही प्रभावित नहीं किया अपितु राष्ट्रीय आन्दोलन की रूपरेखा और संचालन पर भी प्रभाव डाला।''

2. राष्ट्रीय आंदोलन:-

भारत में अंग्रेजी शिक्षा लागू हो जाने से भारतीयों में जहां एकता की भावना विकसित हुई वहीं पर अपने राष्ट्र को विदेशी शासन के चंगुल से मुक्त कराने की भी भावना विकसित हुई। भारतीयों ने सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन के विरूद्ध 1857 ई. में कान्ति की। इसमें पढ़े-लिखे लोगों ने भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया। इसके पश्चात् 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई। इसके नेताओं ने जो पाश्चात्य शिक्षा के ज्ञान से परिपूर्ण थे, भारतीय जनता से राष्ट्रीयता के भाव विकसित करने तथा उनको अपने साथ लेकर राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन लोगों ने तब तक आंदोलन जारी रखा जब तक भारतीयों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो गई।

3. पुनर्जागरण आंदोलनः-

19 वीं शताब्दी में पाश्चात्य शिक्षा के परिणामस्वरूप ही भारत में पुनर्जागरण आन्दोलन चला। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द आदि ने भारतीय धर्म तथा सामाजिक सुधार के लिए आंदोलन चलाया। वे एक उच्चकोटि के सुधारक थे, जिन्होंने वेदों, धर्म ग्रन्थों, हिन्दू धर्म और संस्कृति को अपने विचारों का आधार बनाया और उन्होंने तर्क, समानता, स्वतंत्रता, भाईचारे की भावना का पक्ष लेते हुए असमानता, सामाजिक बुराइयों जैसे जाति-प्रथा, स्त्रियों की दयनीय स्थिति आदि का विरोध किया और इन बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। राजा राममोहन राय अंग्रेजी भाषा के समर्थक थे। वे अंग्रेजों के विचारों एवं उनकी संस्कृति से पूर्णतया परिचित थे। स्वामी दयानन्द अंग्रेजी से अनभिज्ञ थे। वे भी शिक्षा के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों को समाप्त कर प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के मूल्यों को समाज में स्थापित करना चाहते थे। इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द भी आधुनिक शिक्षा प्राप्त थे। अत: आधुनिक शिक्षा के परिणामस्वरूप ही भारत में पुनर्जागरण आंदोलन चला। डॉ. सीताराम शर्मा के अनुसार ''भारतीयों ने अंग्रेजी भाषा पढ ध्कर उसके केवल उद्धान्त पक्ष को ही स्वीकार किया और यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान से प्रेरणा लेकर वे अपने समाज और धर्म की विसंगतियों और कुरीतियों को दूर करने में लग गए इसी प्रक्रिया का स्वाभाविक परिणाम 19वीं शताब्दी के धार्मिक और समाज सुधार आंदोलनों के अतिरिक्त राष्ट्रीयता की भावना का विकास रहा।'

4. समाज सुधारः-

अंग्रेजी शिक्षा के विकास का सबसे बड़ा गुण यह निकला कि इसने भारतीय समाज की अनेक बुराइयों को समाप्त करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय समाज में एक लम्बे समय से प्रचलित सामाजिक कुरीतियों जैसे सती-प्रथा, कन्या वध, बाल विवाह आदि को समाप्त करने का श्रेय अंग्रेजी शिक्षा ही है। इसी के परिणामस्वरूप विधवाओं को पुनर्विवाह की आज्ञा प्रदान की गई। आज भारतीय समाज में अस्पृश्यता में जितनी भी कमी आई है उसका सबसे अधिक श्रेय अंग्रेजी शिक्षा को ही जाता है, क्योंकि आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीय नवयुवक इन सभी सामाजिक बुराइयों में विश्वास नहीं करते थे और इन्हें समाप्त करने में इन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

5. विज्ञान एवं तकनीक का विकासः-

भारत में अंग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप ही विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। पाश्चात्य शिक्षा लागू हो जाने से भारतीयों ने यूरोपीय विज्ञान के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त की। भारतीय वैज्ञानिकों ने भी विज्ञान के क्षेत्र में नई-नई आधुनिक खोजें की। भारत में आधुनिक चिकित्सा शास्त्र पर भी बल दिया गया। बम्बई जैसे नगरों में मेडिकल कॉलेजों की स्थापना की गई। विज्ञान का ही सहारा लेकर विभिन्न उद्योगों में बड़ी-बड़ी मशीने लगाई गई। मषीनों के प्रयोग ने नए-नए व्यवसायों को जन्म दिया। कृषि के क्षेत्र में भी नई तकनीकी विधियां अपनाई गई। लोगों ने यूरोपीय आधार पर कृषि करनी आरंभ कर दी थी। यहां तक की गांवों में भी कृषि के नए-नए यंत्र तथा सिंचाई के नवीनतम साधनों का प्रयोग आरंभ हो गया था।

6. भारतीय भाषाओं के साथ अन्यायः-

अंग्रेजी भाषा लागू हो जाने का सबसे बड़ा दोष यह निकला कि इससे भारतीय भाषाओं को जबरदस्त झटका लगा। संस्कृत, अरबी, फारसी, तमिल, बंगाली, मराठी, गुजराती आदि भाषाएं प्राचीन काल से ही बहुत प्रसिद्ध थी। इन भाषाओं में उच्चकोटि के साहित्य भी लिखें गए थे, परंतु अंग्रेजी शिक्षा के सामने इन भाषाओं का महत्त्व पूरी तरह से समाप्त हो गया। 1835 ई० के पश्चात् प्राचीन भाषाओं के विकास पर सरकार ने ध्यान देना बिल्कुल बन्द कर दिया। ताराचंद के अनुसार, ''अंग्रेजी की प्रभुसत्ता भारतीय भाषाओं के विकास के मार्ग में रोड़ा बनी। जो शिक्षित भारतीय अंग्रेजी पढ़ते-लिखते और बोलते थे, वे बहुत दिनों तक अपनी मातृभाषा की अवहेलना करते रहे। यह सत्य है कि कुछ परिणाम में सभी भाषाओं में शक्तिशाली साहित्य उत्पन्न हुआ परंतु ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, इतिहास बहुत कम रखा गया।'' अब प्राचीन भाषाओं अर्थात् संस्कृत अरबी या फारसी का स्थान अंग्रेजी भाषा ने ले लिया।

7. हिन्दू धर्म का प्रभावः-

अंग्रेजी शिक्षा का हिन्दू धर्म पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। अंग्रेजों ने अंग्रेजी शिक्षा की आड़ में ईसाई धर्म का भारत में जोरों पर प्रचार किया। ईसाई मिशनरियों ने सेरामपुर सहित अनेक स्थानों पर स्कूल एवं कॉलेजों की स्थापना की। इन शिक्षा संस्थाओं में केवल

अन्य विषयों की ही शिक्षा प्रदान नहीं की जाती थी बल्कि ईसाई धर्म की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। इतना ही नहीं भारत के गरीबों, दलितों, बेरोजगारों को आर्थिक सहायता देने तथा नौकरियां देने का लालच दिया जाता था और उन्हें ईसाई धर्म अपनाने को कहा जाता था। यद्यपि भारतीयों द्वारा ईसाई धर्म ग्रहण करने वालो की बहुत कम थी परंतु इससे हिन्दू धर्म को बहुत धक्का लगा था। यहां तक कि अंग्रेजी भाषा के प्रभाव स्वरूप मूर्ति पूजा सहित अनेक परम्पराएं तथा बाह्याडम्बर कम होने लगे थे।

8. भारतीय शिक्षा पर प्रभावः-

अंग्रेजी शिक्षा का भारतीय शिक्षा पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। 1835 ई. में ब्रिटिश शिक्षा एक माध्यम के रूप में अनिवार्य कर दी गई। मैकाले ने अपने विवरण पत्र में प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति तथा साहित्य का बहुत मजाक उड़ाया। मैकाले ने अपने विवरण पत्र में लिखा, ''जबकि हम इस भाषा (अंग्रेजी) में शिक्षा प्रदान कर सकते हैं तब क्या ऐसी भाषाओं को सिखलाएंगे जिनमें किसी भी विषय पर एक भी पुस्तक ऐसी नहीं है जिसकी तुलना हम अपने साहित्य से कर सकें। क्या हम ऐसे साहित्य एवं विज्ञान पढ़ाएंगे जो अत्यंत निम्नकोटि का है, क्या हम ऐसे चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन कराएंगे जिससे अंग्रेज पशु चिकित्सकों तक को लज्जा आएगी। ज्योजिष तो ऐसी है जिस पर स्कूलों को अंग्रेजी बालाएं हँस पड़ेगी और इतिहास ऐसा है, जिसमें 30 फीट लम्बे राजाओं का वर्णन है तथा भूगोल ऐसा है जिसमें क्षीर मक्खन के समुद्रों का वर्णन है।''

इसके अतिरिक्त जो नवयुवक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके आते थे वे अषिक्षित लोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते थे उनसे दूरियां बनाकर रखते थे। डॉ. ताराचंद ने भी लिखा है, ''अंग्रेजी शिक्षा से एक दुरंगापन पैदा हुआ। बुद्धिजीवी षिक्षित वर्ग अनपढ ़ जनता से लगाव तो चाहता था परंतु मानसिक दृष्टि से उनसे अलगाव पैदा हुआ। इस दुरंगेपन का प्रभाव हम घरेलू और बाहरी दोनों प्रकार के जीवन में देखते हैं। हमारी राष्ट्रीय एकता में जो कमियां रहीं, उनकी जिम्मेदारी बहुत कुछ इसी कारण है। बौद्धिक ईमानदारी में अनिवार्य रूप से कुछ कमी आ जाती है। जब सार्वजनिक कार्य में एक भाषा नहीं होती, जब राष्ट्रीय एकता की भी हानि होती है। क्योंकि उस हालत में जनता के साथ एकता या आत्मीयता की भावना मद्धिम पड़ जाती है।''

9. भारतीयों के साथ अन्यायः-

ब्रिटिश शिक्षा का एक ओर भयानक प्रभाव यह पड़ा कि इसके द्वारा भारतीय पढ़े-लिखे नवयुवकों के साथ अन्याय हुआ। अंग्रेजी शिक्षा लागू हो जाने से भारतीय नवयुवकों ने भी उसमें रूचि दिखलाई। अब भारतीय भी अंग्रेजी डिग्रियां लेकर शिक्षा समस्याओं से बाहर आने लगे थे, परंतु ब्रिटिश सरकार उन्हें योग्यता के आधार पर नौकरियां प्रदान नहीं करती थी। भारतीयों में इसके प्रति असंतोष था। इसके अलावा अंग्रेज भारतीय को अपने से तुच्छ समझकर उनके साथ दुर्व्यवहार करते थे। उन्हें काले एवं हब्शी कहकर पुकारते थे।

निष्कर्षः-

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय समाज को बहुत प्रभावित किया। इसके प्रभाव स्वरूप भारतीयों के आचार व्यवहार, रहन-सहन, पहनावे, खानपान आदि में बहुत परिवर्तन किया। इससे भारतीयों में राष्ट्र प्रेम की भावना भी जागृत हुई। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, ''पश्चिम में राजनीति शास्त्र विशेष लॉक, स्पेंसर और मैकाले, जेम्स मिल और वर्क के लेखों ने केवल भारतीयों के राजनीतिक विचारों को ही प्रभावित नहीं किया अपितु राष्ट्रीय आंदोलन की रूपरेखा और संचालन पर भी गहरा प्रभाव डाला।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. Dharam Kumar (Ed.), The Cambridge Economic History of India, Vol. II
2. Dodwell, H.H. (Ed.), The Economic History of India, Vol. VI.
3. Dutt, R.C., The Economic History of India, 2 Vots.
4. Grover, B.L., CurzonAnd Congress (I.C.H.R.).

5. Iibert, C.P., The Government of India.
6. Spear, Percival., The Oxford History of India.
7. Strachey, John, India ItsAdministrationAnd Progress.
8. Dayal B., The Development of Modern Indian Education (1953).
9. Mukerjee, S.N., History of Education in India (1957).
10. NurullahAnd Naik, History of Education in India during the British Period (1956).
11. Report of the Radhakrishanan Commission on University Education (1949).
12. Report of the Kothari Education Commission (1966) 13. Basu,Aparna, Growth of EducationAnd Political Development in India. 1895-1920. 14. Challenge of EducationA Policy Perspective, 1985.

राजनीति में महिलाओं की सक्रियताः एक समीक्षात्मक अध्ययन

राजेश कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुवंर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

शोध सारः-

गृहिणी, गृहस्वामिनी, सहधिर्मणी, भार्या आदि विशेषणों से विभूषित भारतीय महिला का अतीत उन्नत रहा है तथा भविष्य भी महान् है। वर्तमान में समाज स्वीकार करने लगा है कि राष्ट्र के पूर्ण विकास में महिलाओं की भूमिका का अपना एक अलग स्थान है। भारतीय परिदृश्य में ही नहीं वरन् समस्त विश्व में आज महिलाओं के समग्र विकास की बात की जा रही है और उम्मीद है कि 21वीं शताब्दी में महिलायें सशक्त होकर पुरूष प्रधन देशों में अपनी उपस्थिति दर्ज करायी हैं। मातृदेवोभव के अनुपम उद्घोष से अनुप्रमाणित हमारी भारतीय संस्कृति में महिलाओं का सदा से ही गौरवपूर्ण इतिहास रहा है और 'यत्रा नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्रा देवता' कहकर मनु ने उसके गौरव को और बढ़ा दिया है। नारी विधता की अनुपम और सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। उसमें करूणा, ममता, स्नेह सहिष्णुता आदि गुण स्वभाविक रूप से विद्यमान रहते हैं। परन्तु समय के अनुसार उनकी स्थिति में सुधर के बजाय गिरावट ही देखी जा रही है। आज वर्तमान समाज में दुर्व्यवहार, आतंक और शोषण आदि बुराइयों का उन्हें शिकार होना पड़ रहा है। महिलायें, जो कि संसार की जनसंख्या का आध भाग हैं, उन्हें अपने विकास के बहुत कम अवसर ही मिल रहे हैं। भारत में आजादी के समय से ही महिलाओं को समान रूप से शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अवसर उपलब्ध् कराने के लिए आवाजें उठती रही है पर आवश्यकतानुसार आज भी उनकी स्थिति में बदलाव नहीं हो पा रहा है। हालांकि प्रयास अनवरत रूप से जारी है। वर्तमान परिस्थितियों में तो महिला सशक्तिकरण की दिशा में पूरे भारतवर्ष में एक आन्दोलन छिड़ गया है। केन्द्र सरकार से लेकर लगभग सभी राज्य सरकारों ने कमो-वेश इस दिशा में अथक प्रयास शुरू किया है। निश्चय ही परिणाम देर-सबेर सामने आयेगा।

मूल शब्दः- लैंगिक न्याय, महिला, राष्ट्र, विश्व, राजनीति, आन्दोंलन

प्रस्तावनाः-

विश्व के समूचे इतिहास में महिलाओं की परिस्थिति एवं भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। हमने 21वीं सदी में प्रवेश किए हैं विश्व राजनीति में महिलाओं की सहभागिता वास्तव में विभिन्न आन्दोलनों और सिद्धांतों का ही परिणाम है। वास्तव में यह विकासात्मक प्रक्रिया है जो उद्विकास की परिणति है।

व्यवहारिक रूप से महिला सहभागिता यह स्पष्ट करता है कि नारी को पूर्ण रूप से सता सौंपें। सहभागिता का मतलब ही यही होता है कि शक्ति का पूर्णरूपेण निवेश किया जाए। महिला सहभागिता के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यह पद पूरी तरह से नारियों के प्रति समर्पित है कि वो अपने इर्द-गिर्द माहौल संगठनों और जीवनों पर पूर्णरूपेण नियंत्रण करें। महिला सहभागिता का विचार पूर्णरूपेण एसी शक्ति से संबंधित है कि जो हमारे जीवन को एक आकार देती है। महिला सहभागिता का मतलब महिलाओं को समान परिस्थिति से है। यदि नारियाँ सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त हो गई तो वाकई में यह एक निर्णायक कदम होगा जिससे हमारी सामाजिक सुरक्षा निश्चित होगी और उसका सहभागिता सुनिश्चित होता जाएगा।

महिला सहभागिता के पक्ष में महिलाओं के लिए उच्चस्तरीय शिक्षा का स्तर बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ, उत्पादन, संसाधनों के लिए समान स्वामित्व, आर्थिक एवं व्यवसायिक क्षेत्रों में बढ़ती हुई भागीदारी, अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूकता, जीवन स्तर में सुधार-आत्म निर्भरता की प्राप्ति तथा आत्म-सम्मान एवं आत्म विश्वास की प्राप्ति शामिल है। ये सारी चीजें समाज की भलाई के लिए शामिल है।

हमें हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि सहभागिता एक प्रक्रिया है, यह कोई घटना नहीं है, जो हमेशा से परम्परागत रूप से चले आ रहे शक्ति समीकरणों को चुनौती देता है। लैंगिक भेद-भाव की समाप्ति तथा निर्णय प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी आदि कुछ ऐसे पक्ष है जो प्रत्यक्ष नारी सहभागिता से संबंधित है। वास्तव में महिला सहभागिता केवल एक पक्ष नहीं वरन् बहुपक्षीय अवधारणा है। इसका महिलाओं के जीवन पर गहरा प्रभाव है और यह उन्हें एक अवसर देता है कि वे अपने जीवन का भरपूर आनन्द लें।

आज के समाज में हम सभी महिला सहभागिता की बात करते हैं। लेकिन हम सभी को याद रखना चाहिए कि सहभागिता वास्तव में एक प्रक्रिया है क्योंकि यह हमें एक भाव देता है और हमें इस योग्य बनाता है ताकि हम लैंगिक समानता न होने के कमी से उबर पायें और राज्य स्तर पर लैंगिक भेदभाव से मुक्त हो पाएँ।

व्यावहारिक अर्थों में, सहभागिता का तात्पर्य यह है कि महिलाएँ स्वायत्ता प्राप्त कर सकें और अपने कार्यक्रम तय कर पायें। और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक निर्णय की प्रक्रिया में भागीदारी तय कर पायें। आज महिला सहभागिता शब्द सारे समाज तथा विकसित एवं विकासशील देशों के लिए पहेली बन चुका है। वास्तव में आज के समय में महिला सहभागिता एक प्रमुख विषय बन चुका है। जिसे अनदेखा करके परिवार, समाज, देश के संपूर्ण विकास की कल्पना नहीं किया जा सकता है। महिला सहभागिता 21वीं शताब्दी का बहुचर्चित विषय है। अभी तक इस विषय पर ढेर सारे सम्मेलन हो चुके हैं। लैंगिक अन्याय एक गंभीर समस्या है जिसके लिए सरकार समाज को उदार होना होगा जिससे समाज में लैंगिक सन्तुलन को स्थापित किया जा सके। लैंगिक न्याय का संबंध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय, सांस्कृतिक और शैक्षणिक विषयों से जुड़ा है। और इनमें सुधार करके हम लैंगिक न्याय को स्थापित कर सकते हैं। आधुनिक विकास परिवर्तन व सन्तुलन विकास के रास्ते भी अपेक्षा रखता है। वर्तमान विकास की प्रक्रिया समाज में आय के अवसर को बढ़ाने के लिए माँग की गतिशीलता पर जोर देती है। ऐसी स्थिति में रोजगार व आय के अवसरों को बढ़ाना आवश्यक हो जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने लैंगिक न्याय के लिए बहुत बड़ा जनमत तैयार किए हैं। 1946 में महिलाओं की भलाई के लिए एक स्वायत संस्था स्थापित की गई थी। यह आयोग विश्वभर की महिलाओं का आंकड़ा तैयार करके उनके भलाई व मानवाधिकारों की देखरेख करता है। लैंगिक-समानता को लेकर मानवाधिकार संधि महिलाओं से किसी प्रकार के भेदभाव का अन्त करता है। संयुक्त राष्ट्र विकास योजना (UNDP) का भी विकास लैंगिक विकास सूचकांक को दिखाने हेतु पुरूष व स्त्री के बीच असमानता को दर्शाने के लिए किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का यह समसत प्रयार लैंगिक न्याय को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने हेतु किया गया है। लैंगिक पदसोपान व महिला सशक्तिकरण के लिए भारत, अमेरिका व यूरोप के अन्दर कुछ कानून व अध्यादेश को तैयार किया गया है। भारतीय संविधान के कुछ अनुच्छेदों में लैंगिक समानता का उपबंध दिखता है अनु0 19 अभिव्यक्ति व बोलने की स्वतंत्रता अनु0 21 जीवन का अधिकार अनु023 शोषण के विरूद्ध अधिकार, अनु0 42 काम के स्थल पर मानवीय वातावरण तैयार करने का राज्य को निर्देश देता है। और अनु0 51 (।) (C) महिलाओं की गरिमा का ध्यान रखता है। लैंगिक असमानता अमेरिका व यूरोप से जयादा भारत में देखने को मिलता है। यह UNDp~ के लैंगिक विकास सूचकांक में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। यूरोपीय संघ का यह आधारभूत सिद्धांत है कि पुरूष-स्त्री के बीच भेदभाव ना हो। यूरोपीय संघ के समझौते के अनु0 2 और अनु0 3 (2) में लैंगिक समानता की बात की गयी है। अमेरिका के 19वें संविधान संशाधन स्त्री व पुरूष दोनों को मतदान का समान अधिकार देता है और एक तरह से अमेरिका के अन्दर लैंगिक समानता के लिए यह पहला संविधान संशोधन है। ये सारे कानून व अध्यादेश विश्वभर की महिलाओं की स्थिति पुरूष के समान बनाने के लिए है लेकिन भारत जैसी विविधता पूर्ण देश में लैंगिक न्याय को स्थापित करना एक कठिन कार्य है।

शोध उद्देश्यः-

लैंगिक न्याय का सम्बंध सामाजिक गतिशीलता से जुड़ा है और परम्परागत समाजों में इसका अत्यंत महत्व है। इस शोध पत्र का उद्देश्य महिलाओं का विभिन्न आयामों में यश-ज्ञान करना न होकर वर्तमान समय में विश्व-राजनैतिक पटल पर महिलाओं की

स्थिति का विश्लेषण करना व अलैंगिक न्याय की कमियों को उजागर करना तथा सुझाव प्रस्तुत करना है। अत: हम विषय-वस्तु की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए मुख्य विषय को रेखांकित करेंगे।

(1) सर्वप्रथम हम पुरे विश्व में महिलाओं की राजनैतिक स्थिति पर नजर डाले तो पायेंगे कि अधिकतर देश राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को उनका उपयुक्त स्थान व प्रतिनिधित्व देने में नाकाम रहे हैं। यदि विश्व के विभिनन देशों की राजनीति में महिला प्रतिनिधित्व की बात की जाये तो रवाँडा में 56 प्रतिशत, स्वीडर में 46 प्रतिशत, क्युबा में 43 प्रतिशत, फिनलैंड में 42 प्रतिशत, अर्जेटीना में 40 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त अनेक यूरोपिय देशों में महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी 30 प्रतिशत से अधिक है। यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि समानता की बात करने वाले साम्यवादी देशों में भी महिलाओं का राजनीति में स्थान विशेष नहीं है। क्युबा में यह सबसे अधिक 26 प्रतिशत, चीन में 21 प्रतिशत, कोरिया में 15.6 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व है। दूसरी ओर ऐसी ही समान स्थिति विकसित देशों की है। कनाडा में 22 प्रतिशत, यू0के0 में 20 प्रतिशत और यू0एस0ए0 में 17 प्रतिशत महिलाओं इन देशों में राजनैतिक प्रतिनिधित्व करती है। अभिप्राय यह है कि जब तक किसी स्थान में न्याय का वितरण समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक समुचित और समान रूप से नहीं होगा तब-तक एक न्यायपूर्ण व्यवस्था का खण्डन किया जाना अब असंभव है और न्यायपूर्ण विधान-व्यवस्था को अपनाना पड़ेगा।

(2) महिला साक्षरता दर को बढ़ाने के लिए उनमें जागरूकता व संगठित होने की आवश्यकता है। वर्तमान समय के पुरूष प्रधान समाज में भारतीय महिलाओं की स्थिति काफी दहलाने वाली बनी हुई है। 21वीं सदी के दशक में प्रवेश करने के बाद भी लोग 15-16वीं सदी में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आज आर्थिक सशक्तिकरण के इतने प्रयासों के बाद भी सच यह है कि कुछ शिक्षित व जागरूक महिलाएँ ही सरकारी योजनाएँ का लाभ उठा रही है।

(3) राजनीति में महिलाओं के पीछे होने में उसकी अरूचि का विशेष योगदान है तथा उनकी सामाजिक और निजी जिम्मेदारियों का दोहरा बोझ उनकी अरूचि का कारण बनता है। इसके अलावा भारत में रूढ़िवादिता भी महिलाओं के राजनैतिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। उनकी यह रूढ़िवादिता व दमित स्थिति मतदाताओं को लुभाने में अक्षम रहती है। दाँव-पेंच की राजनीति में महिलाओं की सादी समझ व सोच कछ काम नहीं आती है और वह राजनीति से अपना पल्ला झाड़ लेती है।

(4) महिलाओं के लिए क्या किया जा रहा है। कौन कर रहा है। यह सब न तो ज्यादातर महिलाओं को पता है, न ही उनके परिवार वालों को। तो इससे यही स्पष्ट होता है कि महिलाओं में अभी तक वो जागरूकता नहीं आ सकी है।

निष्कर्ष:-

लैंगिक न्याय की अवधारणा के द्वारा 21वीं सदी की वैश्विक राजनीति में महिलाओं की भागीदारी स्थापित करवाने हेतु सैद्धांतिक सहमति तो प्राप्त हो गई है। परन्तु व्यवहारिक रूप से महिलाओं की भागीदारी अत्यंत ही चिंताजनक स्थिति में है। क्योंकि वैश्विक सत्ता एवं सत्ता के केन्द्रों पर पुरूषवादी मानसिकता बुरी तरह हावी है। यहाँ तक कि जहाँ महिलाओं को वैधानिक सत्ता हासिल हुई है वहाँ उनके निर्णयों पर पितृसत्तात्मक सोच का प्रभाव पड़ा है। हाँलाकि कई राष्ट्रों के राष्ट्रप्रमुखों के रूप में महिलाओं का अभ्युद्य हुआ है, परन्तु विश्व की महाशक्तियों अमेरिका, रूस, जापान, फ्रांस, इंग्लैण्ड, आदि के राष्ट्र प्रमुख पुरूष ही है। जैसा कि हम जानते हैं कि युद्ध रक्तपात सहित राजनीति होता है। युद्ध में हारे हुए राष्ट्रों के प्रदेशों में जिते हुए राष्ट्रों की सेनाएँ घुसती है तो विजित प्रदेशों के महिलाओं के साथ जबरदस्त लैंगिक हिंसा होती है। इसलिए वैश्विक राजनीति में महिलाओं का सशक्तिकरण मानवता के लिए अत्यंत आवश्यक है। लैंगिक न्याय का सम्बंध सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय, सांस्कृतिक और शैक्षणिक विषयों से जुड़ा है और इनमें सुधार करके हम लैंगिक न्याय स्थापित कर सकते हैं। 21वीं शताब्दी में विश्व राजनीति में महिलाओं के समक्ष लैंगिक न्याय की समस्या का सामाधान विश्व के प्रत्येक देश अपने-अपने स्तर पर कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र ने लैंगिक न्याय के लिए बहुत बड़ा जनमत तैयार किया है। 1946 में महिलाओं की भलाई के लिए एक स्वायत संस्था स्थापित की गई। संयुक्त राष्ट्र महिला विकास फण्ड (UNIFEM) एक संयुक्त राष्ट्र की अतिरिक्त संस्था है जो महिलाओं के राजनीतिक, सामाजिक विकास पर काम करती है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र विकास योजना (UNDP) की स्थापना वैश्विक स्तर पर लैंगिक न्याय को स्थापित करने के लिए किया गया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो आज भी विश्व स्तर पर राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बहुत कम है। राजनीति में महिलाओं की वैश्विक रैंकिंग में 191 देशों में भारत 149वें स्थान पर है जो कि विश्व की सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। हाँलांकि

कुछ देश अच्छा प्रदर्शित कर रहे हैं। रवांडा, क्यूबा और बोलिबिया के निचले सदन में क्रमशः 61.3%, 53.2% और 53.1% सीटों पर महिला सांसद है वहीं भारत में 16वीं लोकसभा में सिर्फ 11.3% सांसद महिलाएं थी, 17वीं लोकसभा में 14% यह संख्या विश्व औसत से काफी कम है। 1 जनवरी 2019 तक सिर्फ 50 देशों में ही या उससे अधिक महिला सांसद है। 21वीं शताब्दी में विश्व राजनीति में महिलाओं के समक्ष लैंगिक भेदभाव की समस्या को देखते हुए विश्व राजनीति के परिदृश्य में व्यापक बदलाव आया है जिसमें बड़ी संख्या में महिलाएं नेतृत्वकारी भूमिका में है। फिनलैंड में दुनिया की सबसे कम उम्र की महिला प्रधानमंत्री बनी है। फिर भी इनकी स्थिति में सुधार की और आवश्यकता है। जो विश्व के समक्ष एक बड़ी चुनौती के रूप में है। उपर्युक्त विश्लेषण के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि न सिर्फ भारत में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं की राजनैतिक स्थिति सुधरने के लिये कुछ अच्छे प्रयास किये गये हैं, परन्तु फिर भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूचीः

1. चतुर्वेदी, सतीशः ''मानवाधिकार और संयुक्त राष्ट्र संघ'' पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2002, पृ0 सं0- 65
2. जोशी(सं), आर0पी0: ''मानव अधिकार एवं कर्त्तव्य'' अभिनव प्रकाशन, अजमेर, 2005, पृ0सं0- 104
3. उपरोक्त, पृ0 सं0- 115
4. उपरोक्त, पृ0 सं0- 135
5. जाखड़, दिलीपः ''मानवाधिकार और पुलिस संगठन'' यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, 2001 पृ0सं0- 37 6. मानव अधिकार संचयिका-2014: ''राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग'' नई दिल्ली, 2014, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली, 2014
7. मानव अधिकारः ''नई दिशा'' वार्षिक अंक-11, 2014
8. डॉ0 एच0ओ0 अग्रवालः ''अन्तराष्ट्रीय विधि एवं मानव अधिकार'' सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2013
9. मौर्य, डॉ0 शैलेन्द्रः ''भारत में महिला मानवाधिकार प्रगुख चुनौतियाँ'' पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2013
10. शर्मा, डॉ0 कृष्ण कुमारः ''मिडिया और मानवाधिकार'' अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 2012

भारतीय सभ्यता पर इस्लाम का प्रभावः एक ऐतिहासिक अवलोकन

प्रेमजीत कुमार सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग, रामचंद्र चंद्रवंशी विश्वविद्यालय, पलामू, झारखण्ड

शोध-सार

भारत विश्व का ऐसा विशिष्ट और विस्तृत देश है जिसमें भिन्न-भिन्न धर्मो एवं जातियों के लोग निवास करते हैं। यहाँ भाषा की विविधता के साथ-साथ भौगोलिक परिस्थितियों एवं रहन-सहन में भी स्पष्ट अनेकता दृष्टिगोचर होती है। राष्ट्रवादी भावना से ओत-प्रोत देशवासियों के सतत प्रयत्नों एवं महान व्यक्तियों के नेतृत्व के परिणामस्वरूप भारत को स्वतंत्र पताका फहराने का अवसर मिला। जिसे देखकर विश्व दंग रह गया। किन्तु आज देश के सामने महत्वपूर्ण समस्या है- आतंकवाद के दावानल के समाधान की। आतंकवाद राजनीति के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक स्वरूप को निगलने के लिए विकराल रूप धारण किये हुए है। आतंकवाद शब्द की व्याख्या करना कठि है किन्तु संक्षेप में आतंकवाद उस दशा को कहते हैं- कुछ लोग अपनी उचित अथवा अनुचित माँग मनवाने के लिए घोर हिंसात्मतक साधनों का प्रयोग करने लगते हैं।

मूल-शब्दः- विश्व, आतंकवाद, राजनीति, राष्ट, धर्म, सम्प्रभुता

प्रस्तावना

आजादी के बाद जब भारत एक सम्प्रभुता राष्ट्र बना तो उसकी सम्प्रभुता को चुनौती देने वाली आतंकवादी गतिविधियों का प्रारम्भ पाँचवें दशक में नागालैण्ड में, छठवें दशक में, सातवें दशक में मणिपुर और आठवें दशक में असम और त्रिपुरा में उल्फा आतंकवादियों का आतंक देखने को मिलता है। अस्सी के बाद पंजाब व कश्मीर में तो आतंकवाद अपने विकरालरूप में दृष्टिगत होने लगा। पंजाब में आतंकवाद खालिस्तान माँग कर रहा था, तो कश्मीर में स्वतंत्र कश्मीर की। पंजाब में खालिस्तान की माँग दिन-प्रतिदिन होती जा रही है। इसी संदर्भ में कशमीरी आतंकवाद पाकिस्तान के सहयोग से कारगिल की पहाड़ियों पर कब्जा कर लिया था। जिसके लिए भारतीय सेना को पाकिस्तान से सीधे-सीधे युद्ध करना पड़ा और तब जाकर हमारी पहाड़ियाँ मुक्त हो पायीं। पाकिस्तान गुप्चर एजेंसी आई० एस० आई० के द्वारा भारतीय तथा विदेशी युवकों को गुमराह करके आतंकवादी गतिविधयों के माध्यम से राष्ट्र के सभी बड़े शहरों को आतंकित करने का षडयंत्र चलाया जा रहा है। इन आतंकवादियों द्वारा अपहरण, विमान अपहरण, निरीह लोगों को बन्धक बनाना, अकारण लोगों की हत्या करना, धार्मिक व सामाजिक आयोजनों को विध्वंश करना, धार्मिक स्थलों को अपवित्र करना ताकि सामुदायिक वैमनस्य बढ़ सके। जिससे कानून और व्यवस्था की समस्या उत्पन्न हो जाए, इन समस्त आतंकवादी गतिविधियों के पीछे पाकिस्तानी सरकार की तीन युद्धों में पराजय की खिसियाहट और पाकिस्तान समाज की अपनी कमजोरियों से पाकिस्तानी जनता का ध्यान हटाने की साजिश है। आज भारत में आतंकवाद का सबसे बड़ा प्रायोजक पाकिस्तान है। कश्मीर मुद्दे को सर्वोपरि कर पाकिस्तान लगातार आतंकवाद को पोषित कर रहा है। जम्मू कश्मीर में आतंकवाद की जड़ें काफी गहरी हो चुकी है। 13 दिसम्बर 2001 को नई दिल्ली में संसद पर आतंकवादियों द्वारा किये गये हमले ने स्पष्टतया पुष्टि ही कर दी है कि भारत में फैलाया जा रहा आतंकवाद पाकिस्तानी इशारे पर हो रहा है क्योंकि इस हमले की छानबीन करने पर अनेक ऐसे प्रमाण मिले हैं जिससे पाकिस्तान के शामिल होने की पुष्टि होती है और इस बात को अमेरिका सहित अन्य देश भी मानने को तैयार हो गये हैं। आतंकवाद के मुद्दे पर अमेरिका का पाकिस्तान से तेजी से मोहभंग होता जा रहा है।

अमेरिकी अधिकारियों का मानना है कि पाकिस्तान आतंकवाद का खात्मा करने के वादे से पीछे हट रहा है और महत्वपूर्ण रिश्तों को दाँव पर लगा रहा है। मुर्शरफ ने कहा था कि इस्लामी आतंकियों को कश्मीर में जाने से रोका जाएगा, लेकिन ऐसा कुछ नहीं किया गया। इन आतंकियों का घुसपैठ बदस्तूर जारी है। पाकिस्तान पूर्व में आतंकियों को मदद देने की बात मान चुका है। यह आतंकी कश्मीर में आतंकी गतिविधियों को अंजाम देते हैं। अमेरिकी अधिकारी पाकिस्तान से कह चुके हैं कि भारत की सैन्य प्रतिक्रिया के बारे में वह किसी भुलावे में नहीं रहे। अगर इन जाड़ों में और आतंकी वारदातें हुई तो बात बढ़ सकती है? 'रूस ने भी इस मामले में हर तरह से भारत का पक्ष लिया है उसने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद से निबटने के लिए नई दिल्ली द्वारा उठाये गये कदमों को पूरी तरह समर्थन देने की घोषणा तो की ही है साथ में इस्लामाबाद से भी कहा है कि वह सीमापार से आतंकवादियों की घुसपैठ को रोके और अपने यहाँ उनके ताने-बाने नष्ट करे।'

आतंकवाद भारत के लिए कैसी घनघोर बना हुआ है, इसका खुलासा अब अलकायदा के दूसरे नम्बर के सरगना ऐमन अल जवाहिरी के उस ताजा टेप से होता है, जिसमें उसने इसरायली प्रधानमंत्री एरियल शेरोन को नई दिल्ली यात्रा पर भारत को निशाने पर लिया है। उसने पाकिस्तान जनता को आह्वान किया है कि वह उन जनरल मुशर्रफ का तख्ता को पलट दे, जो पाकिस्तान को भारत के हवाले कर भाग जाने की फिराक में है। चूंकि अलकायदा जेहाद का नारा बुलन्दकर अपनी विध्वंसक गतिविधियाँ जारी रखे हुए है और चूँकि अमेरिका और भारत खासतौर पर उसके निशाने पर है, लिहाजा भारत से सम्बंधित जवाहिरी की टिप्पणी को नजरन्दाज करने का सवाल ही नहीं है तब तो और भी नहीं जब सीमा पर आतंकवादी गतिविधियों में अफगानिस्तान और सूडान जैसे देशों के आतंकवादियों की संलिप्तता है।

सीमा पर सजकता पाकिस्तान के उस इरादे को ध्वस्त करने के लिए भी जरूरी है, जिसमें सदियों से पहले वह आतंकवादियों की व्यापक घुसपैठ कराने की मंसा पाले हुए हैं। जम्मू के गुरेज सेक्टर में कई दिनों तक चली मुठभेड़ के पीछे भी पाकिस्तान का यही इरादा था, जिसे विफल कर दिया गया है। इस मुठभेड़ में बड़ी संख्या में घुसपैठिए मारे तो गये ही पाकिस्तान सेना के कई जवानों को भी मार गिराया गया है। अगर, यह सत्य है कि सीमा पर आतंकवादियों का साथ देते तो पाकिस्तानी जवान पहली बार मारे गये हैं, तो इसी से पता चलता है कि हमारा पड़ोसी देशी सीमापार आतंकवाद जारी रखने के लिए अब किस हद तक चला गया है।

हिजबुल मुजाहिदीन की गतिविधियों पर रोक लगाने की घोषणा सिर्फ दिखावटी ही नहीं है, बल्कि इससे सीमापार आतंकवाद को रोकने के बारे में उसकी अनिच्छा फिर सामने आयी है। लेकिन भारत के लिए पाकिस्तान की इस घोषणा का अर्थ बहुत नहीं है। आतंकवादी संगठन नाम और ठिकाने बदलकर भारत विरोधी गतिविधियाँ बदस्तूर जारी रखे हुए है।

'जम्मू कश्मीर में 1999 से लेकर 2002 तक उग्रवादियों ने अब तक कुल 42 आत्मघाती हमले किए हैं, जिनमें सुरक्षा बलों के 143 जवान एवं 53 आम नागरिक शहीद हुए हैं इनमें से 99: हमलों को सुरक्षा बलों द्वारा विफल कर दिया गया। इस अवधि में हमलों को अंजाम देने में 44 आत्मघाती भी मारे गये। आत्मघाती हमलों में लश्कर तोइबा की भूमिका प्रमुख रही है जिसके द्वारा 35 हमले किये गये, जबकि अलबद्र द्वारा 3 एवं जैश-ए-मोहम्मद तथा जमायते मुजाहिदीन द्वारा 2-2 आत्मघाती बारदातें करवाई गयीं। सबसे अधिक आत्मघाती हमले श्रीनगर जनपद में हुए। इस जनपद में कुल 10 हत्यायें हुई, जबकि कुपवाड़ा, पुंछ, डोडा एवं बारमूला, बड़गाम, अनन्तनाग तथा पुलवामा तथा जम्मू जनपदों में क्रमशः 8, 6, 4, 3, 2, एवं 1 आत्मघाती हमले हुए।

इसके अतिरिक्त पंजाब में आतंकवादियों द्वारा सन् 1981-2001 के मध्य कुल 21612 लोग मारे गये, जिनमें से 11770 आतंकवादी, 8094 नागरिक एवं 1748 सुरक्षा बल के जवान थे। असम में 1992-2000 के बीच 4120 लोग मारे गये, जिनमें से 2348 आतंकवादी, 58 नागरिक एवं 1188 सुरक्षा बल के जवान थे। सन् 1992-2000 के मध्य नागालैण्ड में कुल 1659 लोग मारे गये, जिनमें 591 आतंकवादी, 235 नागरिक एवं 633 सुरक्षा बल के जवान थे। इसी तरह त्रिपुरा में भी 1992-2000 के मध्य कुल 2328 लोग मारे गये, जिनमें से 1839 आतंकवादी, 265 नागरिक एवं 224 सुरक्षा बल के जवान शामिल थे।

इतने आतंकवादी हमलों के बावजूद भी भारत सुरक्षात्मक रवैया अपनाते हुए सब्र किए रहा और कोई जवाबी हमला नहीं किया, किन्तु 13 दिसम्बर, 2001 को संसद पर आतंकवादियों द्वारा किये गये हमले ने तो सब्र का बाँध तोड़ दिया और भारत आतंकवादियों पर हमला करने की बात सोचने लगा है। इस हमले में पाकिस्तान के खिलाफ पूरे देश में आक्रोश है और भारत की जनता चाहती है कि तत्काल ही सभ आतंकी ठिकानों को नष्ट कर आतंकवादियों को तहस-नहस कर दिया जाए। यही नहीं बल्कि आजाद कश्मीर

को भी लगे हाथ पाकिस्तान से छुड़ा लिया जाए, किन्तु आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई कई मोर्चों पर भारत को एक साथ लड़नी पड़ेगी। आतंकवादियों से सीधे कार्यवाही करने के साथ ही साथ आतंकवाद को प्रायोजित करने वाले एवं उसे संरक्षण देने वालों के खिलाफ कठोर कदम उठाने होंगे। इसलिए आवश्यक है कि राजनयिक एवं सैनिक दोनों स्तर पर आतंकवाद से लड़ना होगा।

देश में आतंकवादी हिंसा की बढ़ती घटनाओं के दृष्टिगत भारत में उभरती हुई एक सर्वसम्मति है कि आतंकवाद से निपटने के लिये एक सुदृढ़ विधायी ढाँचा सृजित किया जाना चाहिये। यहाँ तक कि मानवाधिकारों और संवैधानिक मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए भी आतंकवाद के विरूद्ध लड़ाई में सुरक्षा बलों को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। आज आतंकवाद सार्वजनिक व्यवस्था के मुद्दों से बढ़कर हो गया है क्योंकि यह संगठित अपराध गैर-कानूनी वित्तीय अंतरणों और शस्त्र तथा मादक द्रव्यों के अवैध व्यापार के जैसे कृत्यों के साथ समायोजित हो गया है, जो राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये गंभीर खतरा है। भारत जैसा बहु-सांस्कृतिक, उदार और प्रजातांत्रिक देश अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण आतंकवादी कृत्यों के प्रति अत्यंत सुभेद्य है।

आतंकवादः प्रकार, उत्पत्ति और परिभाषा- 'आतंकवाद' शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी क्रांति के दौरान वर्ष 1793-94 के आतंक के शासन से हुई।

- यूरोप और अन्यत्र भी विशेषकर 1950 के दशक के उत्तरार्द्ध में वामपंथी उग्रवाद उभर कर सामने आया। भारत में नक्सली और माओवादी सहित पश्चिम जर्मनी में रेड आर्मी गुट, जापान का रेड आर्मी गुट, संयुक्त राज्य अमेरिका में विदरमेन और ब्लैक पैन्थर्स, उरुग्वे के तूपामारोस और अन्य कई वामपंथी उग्रवादी दल विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में 1960 के दशक के दौरान उत्पन्न हुए।
- आज अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद अधिकांशतः इस्लामी रूढ़िवाद की विचारधारा से प्रेरित है तथा इसकी अग्र पंक्ति में ओसामा बिन लादेन का अल-कायदा और इसके घनिष्ठ सहयोगी अफगानिस्तान में तालिबान हैं। सोवियत विरोधी नीतियों के कारण तालिवानों की तेज वृद्धि संयुक्त राज्य अमेरिका की CIA और पाकिस्तान की ष्ै। द्वारा दिये गये व्यापक संरक्षण के कारण संभव हुई थी। इससे न केवल अफगानिस्तान बल्कि पाकिस्तान और भारत में भी सुरक्षा संबंधी गंभीर चिंताएँ उत्पन्न हो चुकी हैं।
- आतंकियों ने कहा मजहब बताओ, आतंकिओं ने कहा कुरान की आयतें सुनाओ, आतंकियों ने कहा क्या तुम मुस्लिम हो, तो ठीक है यहां से जाओ। लेकिन जो मुस्लिम नहीं थे उनका क्या? आतंकियों न ऐसे लोगों की गला रेत कर हत्या कर दी। ये घटना बांग्लादेश की राजधानी ढाका में आज से चार साल पहले अंजाम दिया। आतंकियों ने ये जानने के लिए कि कत्ल उन्हें किसका करना है इसके लिए बंधकों से पूछा कि तुम्हारा धर्म क्या है? हम एक बार फिर से कह दें कि हमारा ये मानना है कि आतंक का कोई धर्म नहीं होता और आतंक का कोई धर्म हो भी नहीं सकता। लेकिन जब धर्म पूछकर मौत या जिन्दगी दी जाए तो कैसे कहें कि आतंक का धर्म नहीं होता। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने कट्टर इस्लामिक आतंकवाद से निपटने की तैयारी के संकेत दे दिये हैं। प्रधानमंत्री मोदी ने भी कहा कि आतंकवाद पर भारत और अमेरिका साथ-साथ हैं। राष्ट्रपति ट्रंप ने मोटेरा स्टेडियम से दो टूक शब्दों में ये कहा- भारत और अमेरिका दोनों इस्लामिक आतंकवाद के खतरे से अपने लोगों" दिया कि को बचाने के लिए एकजुट हैं। दोनों देशों ने आतंकवाद के दर्द को झेला है और आतंकवाद से प्रभावित हुए हैं। ऐसे में आज हम बात इस्लामिक आतंकवाद की करेंगे ये तो साफ है कि आतंकवाद अब किसी एक देश या प्रांत की बात नहीं रह गया है। यह अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गठजोड़ कर चुका है और इसके समर्थन में कई मुस्लिम राष्ट्र और वामपंथी ताकते हैं। सऊदी, सीरिया, इराक, अफगानिस्तान, कुर्दिस्तान, सूडान, यमन, लेबनान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, मलेशिया, इंडोनेशिया और तुर्की जैसे इस्लामिक मुल्क इतनी पहानगाह रहे हैं। आपने अक्सर लोगों को ये कहते सुना होगा कि आतंकवाद का कोई धर्म नहीं होता। आतंकवादी की कोई राष्ट्रीयता नहीं होती और उसका कोई देश नहीं होता। आतंकवादी सिर्फ आतंकवादी होता है। ये बात हम भी मानते हैं और इस देश में ज्यादातर लोग इस बात का समर्थन करते होंगे। लेकिन आज की तारीख में ये एक शाश्वत सत्य है कि कुछ लोग इस्लाम का दुरूपयोग करके पूरी दुनिया मे ये साबित करने पर तुले हैं कि आतंकवाद का धर्म होता है। इन लोगों को आप आतंकवादी कह सकते हैं कट्टरपंथी भी कह सकते हैं। धर्म के नाम पर जहर फैलाने वाला सामाजिक वायरस कह सकते हैं। नाम कुछ भी हो काम और मकसद सिर्फ एक ही है वो है इस्लाम के नाम पर मासूमों की बलि लना और इन्हीं लोगों की वजह से फ्रांस के तत्कालीन राष्ट्रपति फ्रांसवा ओलांद ने साल 2016 में इस्लामिक आतंकवाद जैसे शब्दों का प्रयोग भी किया। पूरी दुनिया में आतंकवाद नामक संक्रामक बीमारी के प्रसार के बाद से ही बार-बार आतंकवाद को इस्लाम से जोड़ा जाता रहा है। लेकिन हमेश से इस राय की तीखी आलोचन होती रही है।

इसराइल और फिलिस्तीन के बीच सदियें से गाजा और यरूशलम पर कब्जे को लेकर लड़ाई हो या रूस के दक्षिणी हिस्से में स्थित मुस्लिम बहुल क्षेत्र चेचन्या गणराज्य हो जहां स्थानीय अलगाववादियों और रूसी सैनिकों के बीच बरसों से जारी संघर्ष ने चेचन्या को बर्बाद कर दिया। चीन का प्रांत शिनजियांग एक मुस्लिम बहुल प्रांत है। जबसे यह मुस्लिम बहुत इस्लाम हुआ है तभी से वहां के बौद्धों, तिब्बतियों आदि अल्पसंख्यकों का जीना मुश्किल हो गया है। अब बात करते हैं भारत के कश्मीर की जहां हालात पहले ऐसे नहीं थे। 1990 के पहले तक आत कश्मीरी खुद को भारतीय मानता था। हालांकि कश्मीर विभान की टीस तो सभी में थी लेकिन कट्टरता और अलगाववाद इस कदर नहीं था, जैसा कि आज देखने को मिलता है। इसके पीछे कारण है पाकिस्तान और भारतीय अलगाववादी द्वारा कश्मीरियों को भड़काकर आजादी की मांग करवाना। श्रीलंका, म्यांमार, कंबोडिया और थाईलैंड वैसे तो बौद्ध राष्ट्र है लेकिन यहां के मुस्लिम बहुल क्षेत्र में भी तनाव बढ़ने लगा है। श्रीलंका में कटनकुड़ी नगर मुस्लिम बहुत बन चुका है तो म्यांमार का अराकान प्रांत बांग्लादेश के रोहिंग्या मुस्लिमों से आबाद है। नाइजीरिया में ईसाइयें की जनसंख्या 49.3 प्रतिशत और मुस्लिमों की जनसंख्या 48.8 प्रतिशत है। अन्य धर्म के लोगों की संख्या 1.9 प्रतिशत है। इसी पृष्ठभूमि में कट्टरपंथी मुस्लिम धर्मगुरू मोहम्मद यूसुफ ने 2002 में बोको हराम का गठन किया।

- इस देश में आतंक का धर्म नहीं कहने वाले लोगों ने आतंक को हिंदुओं से जोड़ने की पुरजोर कोशिश की। कुछ बुद्धिजीवियो ने किसी धर्म विशेष को थप्पड़ मारना, उससे 'जय श्री राम' कहलवाने को भी आतंक की परिभाषा में शामिल करने की कोशिश की। लेकिन शायद इन कथित बुद्धिजीवियों और पत्रकारों को आतंक का ए, बी, सी भी ज्ञात नहीं है। आतंक क्या है ये भी उनके लिए हम बता देते हैं। आतंक है एक धर्म विशेष द्वारा कश्मीर में ली गई 42,000 जाने और निर्वासित हुए लाखों कश्मीरी पंडित, आतंक है संकटमोचन मंदिर में फटा बम, आतंक है सरोजिनी नगर मार्केट का ब्लास्ट, आतंक है मुंबई लोकल ट्रेनों में हुए कई धमाके, आतंक मुंबई शहर में 2008 में विकराल रूप लेकर आया था, आतंक था संसद भवन में आरडीएक्स से भरी कार लेकर घुसना और बहादुर जवानों को मार देना, आतंक था उरी, पठानकोट, पुलवामा, आतंक है कोयम्बटूर की बॉम्बिंग, आतंक हैं रघुनाथ मंदिर पर हमला, मुंबई के बसों पर किए गए धमाके, आतंक है अक्षरधाम मंदिर को निशाना बनाना, आतंक है दिल्ली के सीरियल ब्लास्ट्स, आतंक है 2008 में हुए इस्लामी कट्टरपंथी आतंकियों द्वारा किए गए हमले, आतंक है जयपुर के धमाके, गिनते-गिनते थक जाओगे।

साहित्य समीक्षा

भारतीय सभ्यता पर इस्लाम का प्रभाव का पृस्थभूमि का परिवर्तन अपने-अपने काल-क्रम के परिस्थितियों के अनुकूल अलग-अलग कारणों से होता रहा है अत: इस दृष्टि से प्रस्तुत विषय पर अबतक हुए अध्ययनों एवं उपलब्ध पुस्तक पत्र-पात्रिकाओं एवं आलेखो को संकलित कर अवलोकन, विश्लेषण व मूल्यांकन किया गया है, जो कि किसी भी शोध लेख के अनिवार्य अवश्यकता होती है।

- राम पुनियानी ने अपनी पुस्तक साम्प्रदायिक राजनीति: तथ्य एवं मिथक (अनुवाद रामकिशन गुप्ता), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (2005) में साम्प्रदायिक रूप में भाजपा को हिंदुत्व फासीवाद के रूप विश्लेषित करते हुए भारत के बाकी सारी राजनीतिक पार्टिया को एक साथ होकर मुकाबला करने के लिए कहते है।
- देवेद्रं स्वरूप ने अपनी पुस्तक ''अखंड भारत संस्कृति मे जोड़ा, राजनीति ने तोड़ा'' प्रभात प्रकाशन दिल्ली, (2016) में भारत की सांस्कृतिक चेतना में एक्य को लाते हुए, विविधता में एकता का प्रयास दृश्य खड़ा करने के कोशीश करते हुए भारतीय राजनीति में अवसरवाद और भष्ट्राचार की दुर्गध से बचने के लिए राजनेताओं को शुद्धीकरण की राह दिखलाते है।
- प्रदीप पंडित ने अपनी पुस्तक ''एक भारत श्रेष्ठ भारत'' डायमंड बुक्स (2014) में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के महीमा मंडन करते हुए उनकी विशेषता को विश्लेषण करते हुए राष्ट्रवाद का सकरात्मक प्रतिरूप बताते हुए लोकतंत्र के आपादीप मानते है।
- पुस्पेश पंत ने अपनी पुस्तक ''21वीं शताब्दी में अंतराष्ट्रीय संबंध'' MC Graw Hill Education (2019) में वैश्वीक परिदृष्य के बारे में राष्ट्रीय हीत को प्राथामीक मानते हुए विदेश निति का संचालन में सहायक मानते है।

अध्ययन विधि:-

शोध नियमों के अनुसार प्रस्तुत शोध सैद्धांतिक विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं नवीन व्यवहारिक पद्धतियों को अपनाते हुए मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस शोध कार्य हेतु प्राथमिक तथा द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया। द्वितीयक स्त्रोतों के तहत आवष्यक साम्रगी विभिन्न रास्ट्रीय पुस्तकालयों इंटरनेट एवं शोध संस्थानों आदि में उपलस्ध साधनों के आलावा प्राचीन संदर्भ ग्रंथों से एकत्र किया जाना अनुमान्य है। इन संदर्भ आधरित पुस्तकों के आलावा विभिन्न आयोगो के प्रकाषनों, आत्मलेखों, समाचार पत्र- पत्रिकाओं एवं राजनैतिक दलों के घोषणा पत्रों इत्यादि के लेखन साम्रगी संग्रहित कर विष्लेषणात्मक अध्ययन है।

अध्ययन का महत्व

भारत में 1970 से अब तक लगभग 20,000 मौत और 30,000 घायलों में से सबसे बड़ा प्रतिशत इस्लामी आतंक के नाम दर्ज है। आतंकवाद के पीछे, लगभग हर बार, एक ही मजहबी परचम हो, एक ही नारा हो, और एक ही तरह के लोग हों, जो एक ही मजहब के नाम पर ऐसा करते हों तो फिर ऐसे में उसे सिर्फ आतंकवाद कहना समस्या को और भयावह ही बनाता है। किसी भी रोग को दूर करने के लिए पहले उसके कारणों का पहचान किया जाना जरूरी है। जैसे कि डायबटीज है और आप मीठा ज्यादा खाते हैं, लेकिन आपका डॉक्टर यह कहे कि इन्हें एक रोग है, हम इलाज करेंगे। रोग का कारण मीठा है, और आप उसे पूरी तरह से छोड़ते हुए निकल लेंगे, तो उसका इलाज नहीं हो पाएगा। रोगी को भी नहीं पता कि मीठा खाने से हो रहा है, घरवालों को भी नहीं पता, तो फिर उसके भोजन में रसगुल्ले देते रहिए और सोचते रहिए कि डॉक्टर की दवाई काम करती रहेगी। इस्लामी आतंकवाद के साथ यही हो रहा है। जब तक कट्टरपंथी शिक्षा, बच्चों और किशोरों के जेहन में एक मजहबी सर्वश्रेष्ठता का झूठा दम्भ, हर गैरमजहबी व्यक्ति को दुश्मन मानने की जिद-, मजहब के नाम पर कत्लेआम को जन्नत जाने का मार्ग बताना और इस तरह की कट्टरता बंद नहीं की जाएगी तो दुनिया इसी प्रकार जलती रहेगी।

- 20 नवंबर 2015 को माली की राजधानी धमाकों में रेडिसन ब्लू होटल पर हमला हुआ, जिसमें 20 से अधिक लोग मारे गए। यह महला अफ्रीकी महाद्वीप में नवीनतम आतंकवादी हमलों में से एक है, जो इस्लामी चरमपंथ में वृद्धि का गवाह बना। अल-मौरीबातून (एएडी), पश्चिम अफ्रीका में एकता और जिहाद का आंदोलन, अल-शबाब, बोको हरम जैसे इस्लामी समूह समेत हाल के दिनों में इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक एंड सीरिया (आईएसआईएस) लगातार अपनी ताकत को बढ़ाने की उम्मीद में आतंकवादी गतिविधियों के घातक और हिंसक रूप में लगे हुए हैं। इन समूहों द्वारा अतिवाद के मद्देनजर माली, विशेष रूप से, बेहद असुरक्षित हो गया है। इस पृष्ठभूमि के मद्देनजर यह शोध पत्र माली में आतंकवादी चुनौतियों की पड़ताल करता है। यह शोध पत्र 20 नवंबर को होटल में हुए हमले से माली में आतंकवाद के पनपने के पीछे के कारक, इसे संचालित करने वाले आतंकवादी समूहों, उनके मकसद, लक्ष्य, रणनीति और वित्तपोषण के तरीके पर केंद्रित है। इसमें राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियाओं और निहितार्थ का भी आकलन करता है।

माली में आतंक की समस्या

2015 में माली ने सैन्य हमलों पर ही नहीं; बल्कि टारगेट पर भी आतंकी हमलों में भी वृद्धि का गवाह रहा है। माली पर आईआरआईएन (इंट्रीगेटेड रिजीनल इंफॉर्मेशन नेटवर्क) की रिपोर्ट के अनुसार, विशाल उत्तरी क्षेत्र कुछ हिस्सों से हिंसक चरमपंथियों को खदेड़ने के मद्देनजर किए गए सुरक्षा प्रयासों और उसमें निजी सफलता के बावजूद उत्तरी माली में नागरिकों और सुरक्षा बलों के खिलाफ विभिन्न इस्लामी समूहों द्वारा असंतुलित हमलों की गति और तीव्रता बढ़ गई है। जून 2015 के बाद से माली और पश्चिमी दोनों लक्ष्यों पर हमले आइवरी कोस्ट और बुर्किना फासो के साथ सीमाओं के पास और पारंपरिक उग्रवादी गढ़ों से परे दक्षिण तक फैल गए। 7 अगस्त 2015 को माली सशस्त्र बल पोस्ट के पास स्थित बामाको से लगभग 600 किलोमीटर उत्तर पूर्व में मध्य माली के सेवारे में एक होटल की घेराबंदी के दौरान चार एम आई एनयूएसएमए या मिनुस्मा शांति सैनिकों सहित लगभग 17 लोग मारे गए थे। 2015 में आतंकवादी हमले कम से कम 342 लोग मारे गए हैं जिसमें संयुक्त राष्ट्र के शांति सैनिक, विदेशी कर्मचारी शामिल हैं।

निष्कर्ष

भारत में इस्लामिक आतंकवाद की प्रवृति को रोकने के लिये आतंकवाद विरोधी कानून पोटा से भी अधिक कठोर कानून लाने की आवश्यकता है। अधिक मर्यादित केन्द्रीत जाँच एजेंसी की आवश्यकता है। जिसके द्वारा अन्तर्राज्जीय एवं अंतरिक सुरक्षा वाले मामले देखे जाये। उपर्युक्त बिन्दुओं का विश्लेषण करने के पश्चात आतंकवाद के निदान हेतु जो निष्कर्ष सामने आते है। उनका विवरण निम्नलिखित है।

1. हर किस्म के आतंकवाद के खिलाफ व्यापक जागरूकता एकजुटता और निर्णायक व विवेकपूर्ण कार्यवाई की आवश्यकता है, जिससे भारत पूरी दुनिया को जगा सके और इस्लामिक आतंकवाद जैसी वीभत्य बुराई का समूल नाश हो सकें।
2. भारत को ऐसे निर्णायक वैश्विक प्रयास की आवश्यकता है जिससे कोई भी देश किसी भी किस्म की आतंकवादियों को प्रश्रय और शरण न दे सके।
3. इस्लामिक आतंकवाद के उन्मूलन के लिए एक राष्ट्रीय नीति की घोषणा की जाय जो सभी राजनीतिक दलों एवं राज्यों द्वारा समर्थित हो।
4. देश के महत्व स्थानों को सीसीटीवी से लैस किया जाय, ताकि आतंकी गतिविधियों एवं इस्लामिक आतंकवादियों पर नजर रखी जा सकें।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. बुद्ध प्रकाशः मानववाद और आतंकवाद, राज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2008, पृ०-110
2. बुद्ध प्रकाशः मानववाद और आतंकवाद, राज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2008, पृ०-115
3. मनोहरलाल बाथमः आतंकवाद चुनौती और संघर्ष, दिल्ली, 2004, पृ०-38
4. बिपिन चंद्रः समकालीन भारत, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा०) लि० नई दिल्ली, 2001, पृ०-60-64
5. शरद जैनः पोलिटिक्स ऑफ टेरिजिज्म इन इंडियाः द केस ऑफ पंजाब, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1995, पृ-34-35
6. रबीन्द्र जुगरानः रक्तरंजित जम्मू कश्मीर, ज्ञान-गंगा, दिल्ली, 2009, पृ०-25
7. रवीन्द्र जुगरानः रक्तरंजित जम्मू कश्मीर, ज्ञान-गंगा, दिल्ली, 2009, पृ०-27
8. कैसे सुलझेगी कश्मीर की गुत्थी डॉ० महीप सिंह, दैनिक जागरण, 8 अप्रैल 2004
9. राम नरेश सिंहः आई० एस० आई० का आतंक, शिवा प्रकाशन, पटना, 2001, पृ०- 70-72

विशिष्टाद्वैतवाद में मोक्ष की अवधारणा

अतुल खजूरिया

शोधच्छात्र, पी.एच.डी., संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

सारांश

मोक्ष-प्राप्ति मावन जीवन का चरम लक्ष्य है। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा अधिभौतिक दुखों से पीड़ित होते हुए संसार के प्राणी इन दुखों से ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक निवृत्ति की कामना करते है। बार बार जीवन धारण कर त्रिविध तापों के बंधन में रहना विवेकसम्पन्न जीवनधारियों का अभीप्सित नहीं होता है। विविध धर्मो में जगत् की नश्वरता एवं निस्सारता तथा चेतनशक्ति की शाश्वतता एवं शक्तिमत्ता को स्वीकार किया गया है। भारतीय परम्परा में भी अज्ञानता को ही सांसारिक बन्धन का कारण स्वीकार किया गया है ज्ञानवान् तथा विवेकसम्पन्न पुरूष अज्ञान के नष्ट होते ही परमतत्व का सम्यक् ज्ञान हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति के सफल सिद्ध होते है।

मुख्य बिन्दु- सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि, सायुज्य, मुमुक्ष, योग।

मोक्ष का स्वरूप

मोक्ष एक ऐसी सत्ता के साक्षात्कार का विषय है, जो अनन्त काल से विद्यमान है। यद्यपि वह हमारे दृष्टि के क्षेत्र से परे है। जब प्रतिबन्ध दूर हो जाते हैं, तो आत्मा मुक्त हो जाती है। यह जहाँ थी और जो कुछ है और अनन्त काल से है तथा वस्तु मात्र के मूल तत्व के रूप में वैसे ही वर्तमान रहती है। यह वह शक्ति है, जो संसार नहीं दे सकता, न उसे हर सकता है। यह सर्वश्रेष्ठ तथा अद्वितीय स्वर्गीय सुख है।[1] शंकर का कथन है कि, "आत्मा की अपने स्वरूप में अवस्थिति ही मोक्ष है।"[2] दूसरी परिभाषा यह है कि, "अविद्या की निवृत्ति ही मोक्ष है, वही ब्रह्म प्राप्ति है। मोक्ष और अविद्या निवृत्ति एक ही है।''

"अविद्यापगमयात्र त्वात ब्रह्म प्राप्तिफलस्य।"[3]

''फलं च मोक्षो विद्ययानिवृत्तिना।"[4]

जीवन और ब्रह्म की एकता का ज्ञान होने पर अविद्या और तज्जनित दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा वह अपने कार्यो सहित परमात्मा में लीन हो जाती है।[5] अविद्या की इस लयावस्था को ही मोक्ष कहते है। यह मुक्ति चार प्रकार की होती है[6]-

1. सालोक्य (भगवान् के लोकों को प्राप्त करना)। 2. सामीप्य (भगवान् के ही निकट रहना)। 3. सार्ष्टि (भगवान् के समान ऐश्वर्य लाभ करना)। 4. सायुज्य (भगवान् में लीन हो जाना)।

आचार्य शंकर मोक्ष के स्वरूप का वर्णन करते हुये लिखते हैं कि, "वह जो परम् अर्थो में यथार्थ है, निर्विकार है, नित्य है, आकाश के समान सर्वान्तर्यामी या सर्वव्यापी है, हर प्रकार के परिवर्तन से मुक्त या सभी विकारों से शून्य, सर्वसन्तोषप्रद (नित्य तृप्त), अविभक्त, जिसका स्वरूप ही उसका अपना प्रकाश है (स्वभाव से स्वयं प्रकाश है) और जिसके अन्दर न तो भला है, न बुरा (जहाँ तक पाप-पुण्य अपने फल सहित त्रिकाल में नहीं पहुँच सकते), न कोई प्रभाव है, न भूत, न वर्तमान और न भविष्यत् को कोई स्थान है-इस अलौकिक (अशरीरी) का मोक्ष कहा गया है।[7]

चार्वाक दर्शन को छोड़ कर अन्य सभी भारतीय दर्शन किसी-न-किसी रूप में समस्त साँसारिक बन्धनों तथा दुःखों से पूर्ण मुक्ति या मोक्ष को ही मानव-जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं। सभी भारतीय दर्शनों ने अपनी-अपनी दार्शनिक विचारधारा के अनुरूप

मोक्ष-प्राप्ति के साधनों या उपायों का विस्तार से विवेचन किया है। मोक्ष के स्वरूप की भाँति उसकी प्राप्ति के साधनों के विषय में भी इन दर्शनों में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ दर्शन आत्म-ज्ञान या तत्व-ज्ञान को मोक्ष-प्राप्ति का प्रमुख साधन मानते हैं, जबकि कुछ अन्य दर्शनों के अनुसार निष्काम-कर्म दर्शन द्वारा भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। इन दो साधनों के अतिरिक्त कुछ भक्ति को ही मोक्ष-प्राप्ति के मुख्य साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार, मोक्ष-प्राप्ति करने के लिये भारतीय दर्शन में मुख्यत: तीन साधनों का विवेचन किया गया है, जिन्हें 'ज्ञान-मार्ग', 'कर्म-मार्ग' एवं 'भक्ति-मार्ग' अथवा ज्ञान-योग, कर्म-योग तथा भक्ति-योग कहा जाता है।

श्रीमद्भगवद् गीता में ज्ञान तथा भक्ति के साथ-साथ निष्काम-कर्म को भी मोक्ष का मार्ग माना गया है। गीता कहती है कि, जो व्यक्ति फलासक्ति का परित्याग करके केवल लोक-संग्रह के लिये स्वधर्म के अनुरूप निष्काम भाव से समस्त कर्म करता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है। ऐसा मुक्त पुरुष सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय, राग-द्वेष आदि समस्त द्वन्द्वों से ऊपर उठकर अपने लिये फल की कामना किये बिना केवल स्वधर्म अथवा अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिये ही कर्म करता है। वह इस संसार में रहते हुये भी इसके बन्धनों तथा दु:खों से मुक्त हो जाता है। वह स्वार्थ तथा अहंकार से मुक्त होकर अपना सम्पूर्ण जीवन लोक-कल्याण के लिये समर्पित कर देता है। ऐसे मुक्त पुरुष को गीता में 'कर्म-योगी' तथा 'स्थित-प्रज्ञ' की संज्ञा दी गयी है।

मोक्ष की अवधारणा

मोक्ष-प्राप्ति के साधन वेदान्त के व्यावहारिक आचार-दर्शन के भाग हैं। वेदान्त के अनुसार, मोक्ष जीवन का परमार्थ है। आत्मानुभव ही मोक्ष है। आत्मा समस्त अनुभव और कर्म का आधारभूत अध्यात्म-तत्व है, अत: अन्य ज्ञान-साधनों द्वारा वह ज्ञेय नहीं है और न किसी कर्म द्वारा साध्य है। हमारा अन्तर्तम तत्व होने के कारण न यह हेय है और न उपादेय।[8] मोक्ष के साधन के रूप में रामानुज परम्परागत रूप से मान्य कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीनों के महत्व को स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त मोक्ष के साध न के रूप में वे प्रपत्ति अर्थात् ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण को भी स्वीकार करते हैं। मोक्ष प्राप्त करने का यह सबसे सरल और प्रभावशाली साधन है। रामानुज के अनुसार, मोक्ष प्राप्ति के लिये सर्वोच्च साधन ईश्वर स्वयं है। इस संसार रोग की दवा ईश्वर की कृपा ही है। कर्म, ज्ञान, भक्ति इत्यादि सब साधन ईश्वर की कृपा प्राप्ति के लिये ही किये जाते हैं। ईश्वर कृपा प्राप्त करने के लिये ईश्वर भक्ति अन्यतम साधन है।[9] कर्म और ज्ञान भक्ति के सहकारी हैं। उनका कथन है कि कर्म-योग (स्वयं की शुद्धि), ज्ञान -योग (स्वयं को जानना या आत्म-साक्षात्कार) तथा भक्ति - योग (सर्वत्र ईश्वर को ही देखना) साधक के क्रमिक आध्यात्मिक विकास के अलग-अलग सोपान हैं। कर्म से अभिप्राय वर्णाश्रम कर्मो से है। वर्णाश्रम कर्मो का आचरण मृत्यु - पर्यन्त बिना किसी फल की कामना के करना ही निष्काम कर्म कहलाता है। निष्काम कर्म नैतिक दृष्टि से करना कर्मयोगी का धर्म है। भगवद् गीता भी कहती है कि, ''कोई भी पुरुष किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता है, नि:सन्देह सभी पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुये गुणों द्वारा परवश हुये कर्म करते हैं।'' अत: प्रत्येक साधक को स्वधर्मो का पालन निष्काम भाव से करना चाहिये। कर्मों को यदि सम्यक् भाव से अर्थात् निष्काम भाव से नहीं किया गया तो वे हमारे बन्धन के कारण बनेंगे। निष्काम भाव से कर्म करने के लिये यह आवश्यक है कि साधक स्वयं ईश्वर का निमित्त समझे और अपने कर्मों के सब फल ईश्वर को समर्पित कर दे। कर्म करते समय साधक को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह ईश्वर का ही कार्य कर रहा है। ईश्वर ने कृपापूर्वक उसे उक्त कार्य को करने के लिये चुना है, उस कार्य को ईश्वर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी करवा सकता था। इस प्रकार जब साधक अपने द्वारा किये गये प्रत्येक कर्म में ईश्वर का कर्तृत्व देखेगा तो वे कर्म उसके बन्धन का कारण नहीं कर सकेंगे। यद्यपि कर्म मोक्ष प्राप्ति के लिये पर्याप्त नहीं है, तथापि यदि उन्हें निष्काम भाव से किया गया तो वे चित्त की शुद्धि करके ज्ञान के उदय के लिये आधार तैयार करते हैं। ज्ञान का उदय केवल शद्ध चित्त में ही सम्भव है।

कर्म - योग ज्ञान - योग की ओर ले जाता है। ज्ञान - योग आत्म-साक्षात्कार अर्थात् स्वयं के सच्चे स्वरूप को जानने का मार्ग है। वह मन और ज्ञानेन्द्रियों को वाह्य पदार्थो से हटाकर आत्मा पर केन्द्रित करने का मार्ग है। रामानुज का कथन है कि ज्ञान निष्ठा समस्त इन्द्रियों और मन के शब्दादि विषय सेवन रूप व्यापार को छोड़ने से ही सिद्ध होती है। ज्ञान-मार्ग पर चलने से मुमुक्षु को तत्वत्रय और उनके आपसी सम्बन्ध का सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेती है। उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि वह ब्रह्म का अंश है, इस कारण उसका अस्तित्व पूर्णरूपेण ब्रह्म पर निर्भर करता है। इस प्रकार के

ज्ञान से उसका अहंकार समाप्त हो जाता है। अपने कर्मों को करने में उसे नहीं आनन्द आता है, जो ईश्वर की भक्ति में आता है।

रामानुज के अनुसार, ज्ञान-र न- योग साधना मार्ग की सर्वोच्च स्थिति नहीं है। उनका कथन है कि, ''ज्ञान - योग एक शान्त अवस्था है। अत: यह सम्भावना बनी रहती है कि मुमुक्षु आत्मपरक बन जाये और उसका एकान्त के गड्ढे में पतन हो जाये। सर्वोच्च अवस्था भक्ति योग की है, जो कि अभी आने वाली है।'' ज्ञान - योग की अवस्था में साधक को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है कि वह विभु ईश्वर की तुलना में अणु है और उसका अस्तित्व ईश्वर पर निर्भर है। ईश्वर की अनन्तता को देखकर उसका हृदय ईश्वर के प्रति एक सम्मानयुक्त भय और प्रेम से भर जाता है। चित्त की यह अवस्था ही भक्ति योग की प्रारम्भिक बिन्दु है। '' भक्ति ज्ञान की पराकाष्ठा है। जब मनुष्य को ईश्वर के श्रेष्ठ स्वरूप और कल्याणमय गुणों का बोध हो जाता है, तो वह स्वाभाविक रूप से उस परम सत्ता के के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा अथवा प्रेम व्यक्त करने लगता है। इस ज्ञानाश्रित अथवा ज्ञानोत्पन्न प्रेम को ही भक्ति कहते हैं।'' ईश्वर के प्रति प्रेम और प्रीति से युक्त ध्यान ही भक्ति है। सच्चा भक्त सच्चा ज्ञानी भी है, क्योंकि वह जानता है कि केवल भगवान ही जीवन का आधार और सन्तोष है। अत: वह जीवित रहता है और ईश्वरीय भक्ति में स्वयं को लिप्त रखता है। भक्ति के लिये उपनिषदों द्वारा प्राप्त ब्रह्म-ज्ञान अपेक्षित है। तत्व-बोध प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति भक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता, परन्तु मात्र तत्व - बोध से, जो प्रेमरहित है, भक्ति की उत्पत्ति नहीं होती। इस प्रकार भक्ति भावपूर्ण ज्ञान है, जिससे ईश्वर का ध्यान होता है। ईश्वर के स्वभाव का प्रेमपूर्वक ध्यान करना ही भक्ति है। भगवान के स्वरूप का ध्यान जब तेल की धारा की तरह निरन्तर बंध जाता है, तो उसे भक्ति कहते हैं। इसके लिये दो बातें आवश्यक हैं। प्रथम तो यह कि, मन ईश्वर में पूर्णरूपेण केन्द्रित हो। मन का ईश्वर में एकाग्र होना उपासना कहलाता है। दूसरी बात भगवत् स्वरूप का ज्ञान है। जब तक हमें ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा, तब हम उसका स्मरण नहीं कर सकते। इसलिये ज्ञान को तेलधारावद - विच्छिन्न बनाने के लिये ज्ञान आवश्यक है। ज्ञान उपासना और ध्यान के बीच इस घनिष्ट सम्बन्ध के कारण इन तीनों को पर्यायवाची माना गया है। कर्म-योग, ज्ञान- योग और भक्ति योग में समन्वय करते हुये रामानुज का कथन है कि, भक्ति रूप ज्ञान विशेष की उत्पत्ति पर, ईश्वराधना से प्राप्त ज्ञान से मुक्त होकर कर्म या निष्काम कर्म करने से भक्ति योग की सिद्धि हो जाती है। अत: ज्ञान-कर्म समुच्चय रामानुज को अभीष्ट प्रतीत होता है।

रामानुज अपने दर्शन में दो प्रकार की भक्ति का वर्णन करते हैं, जिन्हें हम क्रमश: निम्न और उच्च भक्ति अथवा साधन एवं साध्य भक्ति कह सकते हैं। रामानुज कहते हैं कि निम्न भक्ति उपासना या ध्यान स्वरूप है तथा उच्च भक्ति ईश्वर के अपरोक्ष ज्ञान स्वरूप है। अपने निम्न अर्थ में भक्ति ईश्वर का निरन्तर प्रेम पूर्वक स्मरण करना है। यह तेल की धारा के समान ईश्वर का अटूट स्मरण है। एक अन्य स्थान पर रामानुज कहते हैं कि, "स्नेहपूर्वक बार-बार ध्यान करने को ही ज्ञानी जन भक्ति कहते हैं।'' इस प्रकार की भक्ति को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित साधन हैं - विवेक, विमोक (चित्त की स्वतन्त्रता), अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनावसाद तथा अनुद्धर्श (अत्यधिक आनन्द उठाने का अभाव)। इस प्रकार की भक्ति उच्च भक्ति प्राप्त करने के मार्ग में एक सोपान है। उच्च भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये प्रो. दास गुप्ता कहते हैं कि, ''वह एक विशेष प्रकार का ज्ञान है, जिसमें साधक ऐसी वस्तुओं को भूल जाना चाहता है, जो हम सबके प्रियतम ईश्वर के लिये न हो।'' यह वह ज्ञान है, जिसमें साधक को स्वयं के ईश्वर से सच्चे सम्बन्ध का ज्ञान अर्थात् ईश्वर के विशाल शरीर में स्वयं की स्थिति का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। निमन प्रकार की भक्ति साधक का ईश्वर को पूर्ण आत्म-समर्पण तथा ईश्वरीय कृपा - ये तीनों ही अपरोय ज्ञान, जो कि उच्च प्रकार की भक्ति ही है, को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है। इस प्रकार रामानुज के अनुसार, एक सच्चा भक्त उच्च कोटि का ज्ञानी भी है।

यहाँ एक बात यह स्मरण रखने की है कि, "रामानुज भक्ति के मूल अर्थ - जो कि विशुद्ध रूप से एक भाव है, पर स्थिर नहीं रहते। वे भक्ति को ध्यान और ज्ञान का रंग प्रदान करते हैं। अपने मूल अर्थ में भक्ति ईश्वर के प्रति असीम प्रेम है, परन्तु रामानुज उस ईश्वर की उपासना और ईश्वर के अपरोक्ष ज्ञान में रूपान्तरित कर देते हैं।''

कर्म, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणी के अतिरिक्त रामानुज मोक्ष-प्राप्ति के अन्य मार्ग का उल्लेख करते हैं, जो अत्यन्त ही सरल और सहज है। यह मार्ग स्वयं को ईश्वर के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित कर देने का मार्ग है, जिसे प्रपत्ति या शरणागति मार्ग कहा जाता है। प्रपत्ति का शाब्दिक अभिप्राय ईश्वर की शरण में जाना है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब उपासक यह अनुभव करता है कि इस दु:खपूर्ण संसार से उसकी रक्षा करने वाला केवल एक ईश्वर ही है, तो वह ईश्वर की शरण ग्रहण करता है। उसका ईश्वर की शरण में जाना ही प्रपतित या शरणागति कहलाता है। यह सभी वर्ण के लोगों के लिये सुलभ है। रामानुज का कीन है कि ईश्वर

के प्रति भक्ति एवं प्रेम का सभी को समान अधिकार है। ज्ञान ईश्वर की कृपा से मिल जाता है। जिन्हें ईश्वर का प्रेम प्राप्त हो, उनके लिये कुछ भी अप्राप्त नहीं रह जाता। इसलिये रामानुज मत में ईश्वर की कृपा प्राप्त करना ही मोक्ष का उत्कृष्टतम साधन है। वैसे तो भगवत्कृपा अहेतुकी है, परन्तु उसको प्रकट करने के लिय साधक का ईश्वरार्पित होना आवश्यक है। शरणागति या प्रपत्ति ईश्वर की अहेतुकी कृपा के प्राकट्य के लिये आवश्यक परिस्थिति का ही दूसरा नाम है।

रामानुज का कथन है कि शरणागति मार्ग पर चलने वालों के लिये यह आवश्यक है कि उसे इस बात का दृढ़ विश्वास हो कि ईश्वर उसके सभी पापों को क्षमा कर उसे मोक्ष प्रदान करेगा। साधक को प्रपन्न बनने के लिये स्वयं में कुछ गुणों का विकास करना नितान्त आवश्यक है। ये गुण निम्नवत् हैं -- (1) ऐसे गुणों को प्राप्त करना, जो व्यक्ति को इस योग्य बनास सकें कि वह ईश्वर के प्रति उपयुक्त उपहार बन सके। (2) ऐसे आचरण का त्याग करना, जो इश्वर को स्वीकृत नहीं है। (3) इस प्रकार का दृढ़ विश्वास कि ईश्वर ही रक्षा करेगा। (4) रक्षा के लिये आवेदन। (5) अपनी तुच्छता का अनुभव और (6) ईश्वर को पूर्ण आत्म-समर्पण। "यतीन्द्रमतदीपिका" में प्रपन्न के गुणों का सार बतलाते हुये कहा गया है कि ''प्रपन्न वह है जो असहाय और निराश्रय है तथा जिसका एकमात्र आश्रय ईश्वर और केवल ईश्वर ही है। ''

विशिष्टाद्वैत मत के अनुयायियों का कथन है कि मोक्ष केवल प्राप्ति ही नहीं है। वह जितनी प्राप्ति है, उतना ही प्रसाद भी है। अतः मोक्ष केवल मानव के प्रयत्नों से ही नहीं प्राप्त हो सकता, वरन् उसके लिये ईश्वर की कृपा भी आवश्यक है।[10] ईश्वर ही कृपा करके मानव को मोक्ष प्रदान करता है। कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि, ''यह आत्मा वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है और वह न धारण शक्ति और न अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकती है। यह (साधक) जिस (आत्मा) का वरण करती है, उस (आत्मा) से ही यह प्राप्त की जा सकती है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को 'अभिव्यक्त' कर देती है। ''

यहाँ एक प्रश्न है कि यदि मोक्ष प्राप्ति और प्रसाद दोनों है, तो साधक के मोक्ष में मानवीय प्रयत्न और ईश्वरीय कृपा इन दोनों का अलग-अलग क्या योगदान है ? मोक्ष की प्राप्ति कितनी साधक के प्रयत्न (कर्म) पर और कितनी ईश्वर की कृपा पर निर्भर है ? मानव - बुद्धि इस समस्या का हल ढूँढ़ने में असमर्थ है। वैष्णव दर्शन यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि, ''कर्म और कृपा के बीच का सम्बन्ध ..... एक पवित्र पहेली है, जिसे तर्क से नहीं सुलझाया जा सकता, बल्कि अपरोक्ष अनुभूति द्वारा ही जाना जा सकता है।'' जीव के मोक्ष में उसके स्वयं के प्रयत्न और ईश्वरीय कृपा का कितना योगदान है, इस विषय में रामानुज के शिष्य एकमत नहीं हैं। वेदान्तदेशिक के द्वारा प्रतिपादित '' वादग्ले" सम्प्रदाय मोक्ष प्राप्ति के लिये जीव के पुरुषार्थ और ईश्वर की कृपा दोनों को आवश्यक मानता है। उनका कथन है कि ईश्वर केवल उसी मुमुक्ष को मोक्ष प्रदान करता है, जिससे कर्म-योग, ज्ञान-योग और भक्ति योग के अभ्यास से स्वयं को इस योगय बना लिया है और स्वयं को ईश्वर की इच्छा के आगे पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया है। ये मोक्ष प्राप्ति के लिये बन्दरिया और उसके बच्चे का।

उदाहरण देकर समझाते हैं (मर्कट- किशोर न्याय) बन्दरिया के बच्चे को सुरक्षित स्थान पर रखे जाने के लिये उसे अपनी माता को अच्छी तरह से पकड़ने के रूप में प्रयत्न करना पड़ता है। इसी प्रकार मुमुक्षु को भी मोक्ष प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ करना पड़ता है। जब अपने प्रयत्न के साथ उसे ईश्वर की कृपा प्राप्त हो जाती है, तो उसका मोक्ष हो जाता हैय परन्तु इसके विपरीत ''तोड़कले" (दक्षिणी सम्प्रदाय) जिसके प्रवर्तक पिल्लई लोकाचार्य हैं, के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के लिये मुमुक्षु का ईश्वर को पूर्ण आत्म-समर्पण कर देना ही पर्याप्त है। उसे अन्य कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वरीय कृपा ही मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन है। वे मोक्ष की प्राप्ति को बिल्ली और उसके बच्चे का उदाहरण देकर समझाते हैं। (मर्कट- किशोर न्याय) अपने बच्चे को सुरक्षित स्थान पर रखने के लिये बिल्ली उसे मजबूती से पकड़ती है, बच्चे को इसमें कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार मुमुक्षु को मोक्ष प्राप्त करने के लिये केवल अपने को ईश्वर के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित कर देना चाहिये। ईश्वर ऐसे भक्तों को, जो उसे पूर्ण रूप से समर्पित कर देते हैं, निर्हेतु कृपा प्रदान करता है।

रामानुज भी मोक्ष प्राप्ति के लिये गुरू की महत्ता स्वीकार करते हैं। गुरु ही जीव को ब्रह्म की ओर ले जाता है।[11] रामानुज ने शरणागति को भक्त के लिये आवश्यक प्रथम चरण और भक्ति की चरम परिणिति दोनों ही रूपों में स्वीकार किया है। वे ईश्वर कृपा प्राप्त करने के लिये शरणागति को आवश्यक शर्त मानते हैं। उनका कथन है, "यद्यपि समस्त जीवमात्र ही ईश्वर को समान रूप से प्रिय हैं, तथापि सर्वतोभावेन ईश्वर में शरणागत जीव केवल उसी पर आश्रित होने के कारण उसे अत्यधिक प्रिय होते हैं।''

निष्कर्ष

विभिन्न व्यक्ति अपने-अपने स्वभाव के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति के इन साधनों का प्रयोग करते हैं। जैसे--जो व्यक्ति विचार-प्रध ान है और जिनमें बौद्धिक तथा तार्किक क्षमता है, वे ज्ञान-मार्ग का अनुसरण करते हैं, जबकि संकल्प-प्रधान एवं कर्मनिष्ठ व्यक्तियों को मोक्ष प्राप्ति के लिये कर्म-मार्ग ही उपयुक्त प्रतीत होता हैय परन्तु साधारण तथा भावुक व्यक्ति भक्ति-मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्त करने के लिये प्रयास करते हैं। मोक्ष प्राप्त करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव तथा अपनी क्षमता के अनुसार ही इन तीनों मार्गों में से किसी एक मार्ग को स्वीकार करता है। इस दृष्टि से मोक्ष-प्राप्ति के लिये ये तीनों मार्ग ही महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भग्रन्थ सूची

1. डॉ. राधाकृष्ण, भारतीय दर्शन, अंक-2, हिन्दी अनुवाद-नन्द किशोर गोभिल, पृ. 557
2. शांकर भाष्य, तैत्तरीय उपनिषद्, 1/11, "स्वात्मन्यवस्थानं मोक्षः"।
3. शांकर भाष्य, वृहदारण्यक उपनिषद्, 1-4-10
4. शांकर भाष्य, वृहदारण्यक उपनिषद्, 1-4-7
5. आचार्यशास्त्रोपदेशाद्यैक्यज्ञानं यदा भवेत्।
   आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाविद्या तदैव हि।
   लीयते कार्यकरणैः सहैव परमात्मानि, आध्यात्म, 3-4-42, 43
6. सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा, अ, 7-7-66।
7. "इदं तु पारमार्थिकम्, कूटस्थम्, नित्यम्, व्योमवत्, सर्वव्यापि स्वभावम्, यत्र धर्माधर्मों सह कार्येण कालत्रयं च नोपवर्तन्ते तद् अशरीरं मोक्षख्यम्।।" शांकर भाष्य, 1:1, 4
8. "आत्मत्वादेव सवेषां न हेयो न उपादेयः", शांकर भाष्य, ब्रह्म-सूत्र, 1/1/4
9. डॉ. अशोक कुमार लार्ड, भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तनः एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 178-179
10. वेदान्त, सिद्धान्त मुक्तावली।
11. भारतीय दर्शन, भाग-1, पृ. 209

भू-अर्थशास्त्र, प्रवासन तथा पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (WANA) में प्रवासी भारतीयों की भागीदारी

अखिलेश कुमार सिंह

राजनीतिक अध्ययन विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया

रत्नेश कुमार यादव

राजनीतिक अध्ययन विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया

धर्मेंद्र कुमार

राजनीतिक अध्ययन विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया

सारांश

यह शोध पत्र पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (WANA) के क्षेत्रों में भू-अर्थशास्त्र, प्रवासन और प्रवासी भारतीयों की भागीदारी के जटिल संबंधों पर प्रकाश डालता है। विशेष रूप से, यह विश्लेषण सऊदी अरब और जिबूती पर केंद्रित है, जो उनके सक्रिय विकास प्रयासों (Development Initiatives) और प्रवासी स्थलों के रूप में आकर्षण का केंद्र रहा है। फिर भी, भू-आर्थिक दृष्टिकोण से, WANA भारत के रणनीतिक हितों के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भू-अर्थशास्त्र, जिसे भू-राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आर्थिक साधनों के सामरिक उपयोग के रूप में परिभाषित किया गया है, पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका क्षेत्र में आर्थिक प्रगति से उत्पन्न श्रम संसाधनों की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इस क्षेत्र में, एशिया और विशेष रूप से भारत, विकास के लिए आवश्यक श्रम शक्ति को प्रस्तुत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका देशों में भारतीय प्रवासी मेजबान देशों के सामाजिक-आर्थिक ढांचे में एक महत्त्वपूर्ण तत्व के रूप में कार्य करता है, जो भारत और पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका के बीच आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ बनाता है। आर्थिक प्रोत्साहन और भू-राजनीतिक विचारों से प्रेरित प्रवासन, श्रम बाजारों और द्विपक्षीय संबंधों पर प्रभाव डालता है। यह अध्ययन लागत प्रभावी कार्यबल (Cost-effective), उद्यमी प्रयासों और विशिष्ट ज्ञान के माध्यम से पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका की आर्थिक उन्नति में भारतीय प्रवासियों के योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है।

बीज शब्द: भू-अर्थशास्त्र, प्रवासन, प्रवासी, भारत, पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका

प्रस्तावना

मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका (MENA), जिसे आमतौर पर पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (WANA) कहा जाता है, महत्त्वपूर्ण भौगोलिक और रणनीतिक महत्त्व का एक क्षेत्र है, जिसमें कुल उन्नीस देश शामिल हैं। ये राष्ट्र पश्चिमी भाग में मोरक्को से लेकर पूर्वी भाग में ईरान तक फैले हुए हैं, जिनमें लीबिया, मिस्र, सीरिया, इराक और तुर्की जैसे देश शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक में सामाजिक-आर्थिक उन्नति के विविध स्तर हैं। पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका एक महत्त्वपूर्ण त्रि-महाद्वीपीय जोड़ के रूप में कार्य करता है, जो एशिया, अफ्रीका और यूरोप के संपर्क (Connectivity) को सुगम बनाता है (Anderson, 1987)। यह क्षेत्र सहभागिता और अंतर्संबंधों के लिए एक महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में कार्य करता है, जो भू-राजनीतिक और आर्थिक दोनों दृष्टिकोणों से चर्चा और सहयोग के लिए कई संभावनाएं प्रदान करता है (Talebi Arani - Ahmadi Lafurak, 2019)। इस क्षेत्र का विकास मुख्य रूप से प्रवासी श्रमिक बलों पर निर्भर करता है, जो ज्यादातर अफ्रीका, एशिया और मध्य एशिया से आ रहे हैं (Serageldin, 1983)। सऊदी अरब और जिबूती की उन्नति में प्रवासी मजदूरों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उपर्युक्त राष्ट्र पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (WANA) के आसपास के क्षेत्र में बुनियादी ढांचे (infrastructure) को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। पूरे क्षेत्र में विकास की कई पहलों के बावजूद, सऊदी अरब और जिबूती अपने पर्याप्त संसाधनों और रणनीतिक महत्त्व के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं (Dini, 2018)। सऊदी अरब में राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों ने राष्ट्र की विकासात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आर्थिक विविधीकरण और सामाजिक उदारीकरण को शामिल करते हुए, किए गए प्रगतिशील उपायों ने व्यावसायिक गतिविधियों के लिए अनुकूल माहौल को बढ़ावा दिया है। नतीजतन, कई प्रसिद्ध उद्यम और बहुराष्ट्रीय निगम (MNC) सऊदी अरब के भीतर अपने केंद्रीय कार्यालय स्थापित करने का विकल्प चुन रहे हैं। देश की अनुकूल व्यावसायिक नीतियां, लाभप्रद भौगोलिक स्थिति, और विजन 2030 जैसी महत्वाकांक्षी पहलों ने इसे मध्य पूर्वी क्षेत्र में अपनी उपस्थिति बढ़ाने के इच्छुक वैश्विक व्यवसायों के लिए एक बेहद आकर्षक संभावना प्रदान की है (Yusuf - Atassi, 2016)। वहीं, जिबूती का महत्त्वपूर्ण भू-राजनीतिक, भू-आर्थिक और भू-रणनीतिक महत्त्व है। अफ्रीका और मध्य पूर्व के मध्य पर रणनीतिक रूप से स्थित, प्रमुख समुद्री रास्तों और स्वेज नहर के नजदीक स्थित, जिबूती वैश्विक वाणिज्य और सैन्य अभियानों के लिए एक महत्त्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरा है। जिबूती के भू-राजनीतिक मूल्य ने इसके बुनियादी ढांचे के विकास और इसकी आर्थिक क्षमताओं की उन्नति के लिए पर्याप्त अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रतिबद्धताएं पैदा की हैं। ये वित्तीय निवेश क्षेत्रीय संपर्क को बेहतर बनाने और आर्थिक विस्तार को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (Bereketeab, 2016)।

एशिया, विशेष रूप से भारत से आने वाले प्रवासी, पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (WANA) क्षेत्र में रोजगार की संभावनाओं की ओर आकर्षित होते हैं। जिबूती के भीतर, इन समुदायों ने खुद को स्थापित किया है, जो स्थानीय आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए अपने मूल देश के साथ मजबूत संबंध बनाए हुए हैं। एक प्रवासी समूह होने के नाते, उनका प्रभाव जिबूती की सीमाओं से बाहर भी रहा है, जो विभिन्न तरीकों से भारत के हितों को सकारात्मक रूप में प्रभावित करता है। इसके साथ ही, सऊदी अरब में भारतीय प्रवासी राष्ट्र के रणनीतिक उद्देश्यों के अनुरूप महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाता रहा है। सऊदी अरब की आर्थिक उन्नति के लिए भी उनका अस्तित्व आवश्यक है, क्योंकि निर्माण, स्वास्थ्य देखभाल और प्रौद्योगिकी सहित, राष्ट्र-राज्य की प्रगति के लिए महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में यह कार्यबल शामिल हैं (Kohli, 2014)। इसके अलावा, सऊदी अरब में रहने वाले प्रवासी भारतीय, भारतीय उद्यमों में निवेश करके भारत के आर्थिक ढांचे को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय फर्मों के प्रति उनकी वित्तीय सहायता न केवल राष्ट्र के आर्थिक भविष्य में विश्वास को प्रदर्शित करती है, बल्कि भारतीय मुद्रा को स्थिर करने में भी सहायता करती है। सऊदी अरब में प्रवासी भारतीय समुदाय द्वारा भेजे जाने वाले प्रेषण (remittance) का प्रवाह, मौद्रिक आपूर्ति को बनाए रखने और भारतीय मुद्रा के मूल्य को बढ़ाने में मदद करता है, जो आर्थिक स्थिरता को बढ़ावा देने और व्यापार को सुविधाजनक बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसके अलावा, भारतीय प्रवासी समुदाय द्वारा प्रदान की जाने वाली मौद्रिक सहायता उनकी मातृभूमि के लिए एक वसीयतनामा के रूप में कार्य करती है, जो राष्ट्रीय गौरव और एकजुटता की गहरी भावना को प्रदर्शित करती है। उनके निवेश न केवल भारतीय व्यवसायों को बढ़ावा देते हैं, बल्कि नवाचार और विकास (Innovation and development) को भी बढ़ावा देते हैं, जो भारत के आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने में योगदान करते हैं (Jain, 2008; Anjum, 2017)।

भू-अर्थशास्त्र और प्रवासन का परस्पर संबंध

भू-अर्थशास्त्र और प्रवासन एक जटिल अंतर्संबंध को प्रदर्शित करते हैं, जो पारस्परिक और महत्त्वपूर्ण रूप से एक-दूसरे प्रभावित करते हैं। भू-अर्थशास्त्र की अवधारणा, जिसे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारक (Economic factor) के विश्लेषण के रूप में परिभाषित किया गया है, भू-राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आर्थिक साधनों के सामरिक उपयोग के रूप में कार्य करती है (Shikara, 2011)। प्रवासन, चाहे स्वैच्छिक हो या अनैच्छिक, इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो भू-आर्थिक गतिशीलता को प्रभावित करता है। प्रवासी मजदूर अपनी उद्यमी गतिविधियों और सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा देने के माध्यम से मेजबान देशों की आर्थिक उन्नति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सऊदी अरब जैसे गल्फ कोऑपरेशन काउंसिल (GCC) देशों के भीतर, प्रवासी श्रम बल का एक बड़ा हिस्सा हैं, खासकर निर्माण, स्वास्थ्य देखभाल और घरेलू सेवाओं जैसे क्षेत्रों में। उनका श्रम व्यापक बुनियादी ढांचा परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए अपरिहार्य है, जो इन देशों की भू-आर्थिक महत्वाकांक्षाओं के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, सऊदी अरब के विजन 2030 को साकार करना, इसके आर्थिक दायरे को व्यापक बनाने और तेल के मुनाफे पर निर्भरता को कम करने के लिए प्रवासी श्रमिकों के कार्यबल पर बहुत हद तक निर्भर करता है (Sayfayn, 2018)। इसके विपरीत, आर्थिक नीतियों और भू-आर्थिक रणनीतियों से प्रवासन पैटर्न बहुत प्रभावित हो सकते हैं। हालाँकि, जिबूती जैसे क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे में वृद्धि और आर्थिक उन्नति से रोजगार के अवसर पैदा होने की संभावना है, जो बेहतर जीवन स्थितियों की तलाश में प्रवासियों को लुभाते हैं। जिबूती की रणनीतिक स्थिति और विकास पहलों ने इसे वैश्विक वाणिज्य और परिवहन के केंद्र में बदल दिया है, जिससे विदेशी मजदूर और निवेशक (Financer) आकर्षित होते हैं। इन निवेशों से प्रेरित आर्थिक प्रगति में प्रवासन को बढ़ाने की क्षमता है, जिसके फलस्वरूप क्षेत्र की आर्थिक गतिशीलता में वृद्धि होती है (Baldwin&Edwards, 2005)। इसके अलावा, भू-राजनीतिक तनाव और आर्थिक प्रतिबंधों में अनैच्छिक विस्थापन को सुविधाजनक बनाने की क्षमता है, जैसा कि संघर्ष या आर्थिक अनिश्चितता से जूझ रहे क्षेत्रों में देखा गया है। इन परिस्थितियों से बचने वाले व्यक्ति अक्सर उन देशों में स्थान खोजने का प्रयास करते हैं जो अधिक सुरक्षित और आर्थिक रूप से संपन्न हैं, जिससे संसाधनों पर दबाव पड़ता है, लेकिन कार्यबल में वृद्धि में भी योगदान होता है (Gatti et al-, 2014)। भू-अर्थशास्त्र और प्रवासन के बीच संबंध एक तरल प्रक्रिया का निर्माण करता है, जिसके तहत प्रवासन प्रवाह को आर्थिक रणनीतियों और नीतियों द्वारा आकार दिया जाता है, जबकि प्रवासी, पारस्परिक रूप से, प्राप्त करने वाले राष्ट्रों के आर्थिक और भू-राजनीतिक उद्देश्यों को आगे बढ़ाने में भूमिका निभाते हैं। इस अंतर्संबंध की गहन समझ उन समग्र नीतियों को तैयार करने के लिए अनिवार्य है, जो इससे जुड़ी बाधाओं से निपटने के लिए प्रवासन के लाभों का उपयोग करती हैं।

पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका का भू-अर्थशास्त्र

पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (WANA) के भू-आर्थिक गतिशीलता प्राकृतिक संसाधनों, रणनीतिक एवं भौगोलिक स्थितियों, राजनीतिक गठबंधनों और आर्थिक नीतियों के परस्पर जटिल क्रियाओं द्वारा आकार दी जाती है। इस क्षेत्र, जिसमें मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका शामिल हैं, जिनके पास प्रचुर ऊर्जा संसाधन, महत्त्वपूर्ण व्यापार मार्ग और उभरते हुए बाजार होने के कारण वैश्विक आर्थिक स्थिरता और भू-राजनीतिक रणनीति के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं (Aly, Behrendt- Hanelt, 2000)।

- ऊर्जा संसाधन और आर्थिक प्रभाव: पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में ऊर्जा संसाधन हैं, जिनमें व्यापक तेल और प्राकृतिक गैस भंडार शामिल हैं, जो प्रमुख रूप से सऊदी अरब, ईरान, इराक और संयुक्त अरब अमीरात जैसे देशों में पाए जाते हैं। ये संसाधन दुनिया भर के ऊर्जा बाजारों में इन देशों को काफी लाभ देते हैं। तेल उत्पादन और कीमतों में उतार-चढ़ाव, जो वैश्विक आर्थिक संतुलन के लिए महत्त्वपूर्ण है, मुख्य रूप से पेट्रोलियम निर्यातक देशों के संगठन (OPEC) द्वारा किया जाता है, जिसका संचालन मुख्य रूप से मध्य-पूर्वी देशों द्वारा किया जाता है (Barbier, 2005)।
- रणनीतिक व्यापार मार्ग: क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति में मिस्र में स्वेज नहर, ओमान और ईरान के बीच स्थित होर्मुज जलडमरूमध्य और जिबूती के निकट बाब-अल-मंडब (Bal-al-Mandeb) जलडमरूमध्य सहित महत्त्वपूर्ण समुद्री मार्ग शामिल हैं। ये रास्ते वैश्विक व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, खासकर तेल और प्राकृतिक गैस को समुद्री मार्ग से आवागमन में। इन मार्गों का पर्यवेक्षण और निरंतरता विश्वव्यापी व्यापार पैटर्न के लिए मूलभूत है, जो इस क्षेत्र को आर्थिक और सैन्य रणनीति का केंद्र बिंदु बनाते हैं।

- अवसंरचना विकास: पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका क्षेत्र के राष्ट्र अपनी आर्थिक गतिविधियों को व्यापक बनाने और तेल से होने वाले राजस्व पर अपनी निर्भरता को कम करने के लक्ष्य के साथ बुनियादी ढांचे में पर्याप्त निवेश कर रहे हैं। इसका एक प्रमुख उदाहरण सऊदी अरब का विजन 2030 है, जो पर्यटन, मनोरंजन और प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों को आगे बढ़ाने के लिए समर्पित है। इसी तरह, संयुक्त अरब अमीरात ने दुबई और अबू धाबी में महत्वाकांक्षी पहल करके वित्तीय गतिविधियों, व्यापार और पर्यटन के लिए एक अंतरराष्ट्रीय केंद्र बनाया है (Rouis-Tabor, 2012)।
- राजनीतिक गठबंधन और आर्थिक नीतियां: आर्थिक वातावरण पर राजनीतिक स्थिरता और गठबंधनों के प्रभाव पर विचार करना एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। स्थानीय संघर्षों के उदाहरण, जैसा कि सीरिया, यमन और लीबिया जैसे क्षेत्रों में देखा गया है, आर्थिक संचालन को बाधित करने और निवेश के अवसरों को बाधित करने के लिए जाने जाते हैं। इसके विपरीत, शांति समझौतों की स्थापना और वाणिज्यिक संबंधों को बढ़ावा देना, जैसे कि इजराइल और विभिन्न अरब देशों से जुड़े उल्लेखनीय अब्राहम समझौते, आर्थिक विकास और व्यापार विस्तार के नए रास्ते पेश करते हैं।
- प्रवासन और श्रम गतिविधियाँ: विचाराधीन भौगोलिक क्षेत्र, विशेष रूप से दक्षिण एशिया और अफ्रीका से आने वाले प्रवासी श्रमिकों के लिए एक केंद्र के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रवासी निर्माण, सेवा प्रावधान और घरेलू सेवाओं जैसे विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन प्रवासी श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले वित्तीय प्रेषण उनके मूल देशों की अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिससे अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक अंतर्संबंधों को बढ़ावा मिलता है और भेजने और प्राप्त करने वाले दोनों राष्ट्र प्रभावित होते हैं (Kapiszewski, 2017)।
- विदेशी निवेश और आर्थिक विविधीकरण: प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) क्षेत्रीय आर्थिक विविधीकरण को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिसमें देश तेल उत्खनन के अलावा अन्य क्षेत्रों में निवेश आकर्षित करने के लिए ठोस प्रयास करते हैं। इस रणनीति का उद्देश्य वैश्विक अर्थव्यवस्था में उनकी भागीदारी को बढ़ाना है। उदाहरण के लिए, जिबूती बंदरगाहों और लॉजिस्टिक बुनियादी ढांचे के विकास में निवेश आकर्षित करने के लिए अपनी रणनीतिक भौगोलिक स्थिति का लाभ उठा रहा है, जिसका लक्ष्य राष्ट्र को व्यापार और परिवहन के लिए एक प्रमुख क्षेत्रीय केंद्र के रूप में स्थापित करना है (Anyanwu -Yameogo, 2015)।

पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका में आर्थिक गतिविधियाँ प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता, रणनीतिक व्यापार मार्गों और क्षेत्र में गतिशील आर्थिक नीतियों से प्रभावित होती हैं। ये तत्व, राजनीतिक घटनाओं और प्रवासन के क्रम (Migration pattern) के साथ मिलकर, दुनिया भर के आर्थिक क्षेत्र पर इस क्षेत्र के प्रभाव में योगदान करते हैं।

पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों का भू-आर्थिक महत्त्व

पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (WANA) में भारतीय प्रवासी व्यापारिक महत्त्व रखते हैं, विशेष रूप से सऊदी अरबिया और जिबूती जैसे देशों में, जहां उनका योगदान स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं और भारत के आर्थिक हितों के लिए महत्त्वपूर्ण है। सऊदी अरब में में, भारतीय प्रवासीयों का एक बड़ा हिस्सा हैं, जो निर्माण, स्वास्थ्य सेवा, वित्त, और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनके कौशल और श्रम से सऊदी राज्य की 'विजन 2030' में निर्धारित उत्कृष्ट विकास परियोजनाओं को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान निभाएगा (Habibi, 2019)। सऊदी अरब में भारतीय वाणिज्यिक गतिविधियाँ दोनों देशों के बीच अर्थव्यवस्था और आपसी व्यापार संबंधों को व्यापक बनाने में मदद करती है। रणनीतिक रूप से अफ्रीका और मध्य पूर्व में यातायात प्रवाह के लिए जिबूती एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो कि भारत के लिए एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक सहयोगी के रूप में उभरा है। जिबूती में भारतीय प्रवासी समुदाय देश की आर्थिक प्रगति में योगदान करने के लिए अपने कौशल का लाभ उठाते हुए सक्रिय रूप से वाणिज्य, परिवहन और बुनियादी ढांचे की उन्नति में संलग्न है। भारतीय उद्यमों ने जिबूती के बंदरगाहों और परिवहन के बुनियादी ढांचे में निवेश किया है, जिससे अफ्रीका, एशिया और उसके बाहर के क्षेत्रों के बीच व्यापार संबंधों को प्रभावी ढंग से स्थापित हो रहा है। सऊदी अरब और जिबूती में भारतीय प्रवासी आबादी का आर्थिक महत्त्व इन अर्थव्यवस्थाओं में उनके प्रत्यक्ष निवेश से कहीं अधिक है। भारतीय प्रवासियों द्वारा भारत भेजे जाने वाले उत्प्रवाहों (Remittance) को विदेशी मुद्रा के एक महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में पहचाना जाता है, जो भारत की अर्थव्यवस्था को मजबूत करता है और घरेलू खर्च और निवेश को संतुलित रखने में मददगार साबित हो रहा है (Dubey, 2008)। इसके अलावा, प्रवासी आबादी की उद्यमी पहल और वाणिज्यिक कनेक्शन भारत और पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका क्षेत्र को जोड़ने वाले वाणिज्यिक लेनदेन और निवेश के लिए माध्यम के रूप में कार्य करते हैं, जिससे आर्थिक संबंधों में वृद्धि होती है और आपसी आर्थिक उन्नति को बढ़ावा मिलता है। सऊदी अरब और जिबूती में

रहने वाले भारतीय प्रवासी द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने और दुनिया भर के आर्थिक परिदृश्य में भारत के एकीकरण को सुविधाजनक बनाने में विविध भूमिकाएं निभाकर आर्थिक प्रगति में महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहें हैं।

निष्कर्ष

भू-आर्थिक कारकों, प्रवासन क्रम और पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका (WANA) के क्षेत्रों में भारतीय प्रवासी की भागीदारी के बीच जटिल अंतर्संबंध इस क्षेत्र के महत्त्व और वैश्विक स्तर पर इसकी जटिल प्रकृति को रेखांकित करते हैं। पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका में राष्ट्रों के आर्थिक उद्देश्य, उनकी रणनीतिक भौगोलिक स्थितियों, प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों और चल रहे बुनियादी ढाँचे के उपक्रमों द्वारा निर्देशित, नौकरी की संभावनाओं और निवेश की संभावनाओं की तलाश करने वाले व्यक्तियों को लुभाते हैं। सऊदी अरब और जिबूती जैसे देश इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह अपने परिश्रम, उद्यमी प्रयासों और वित्तीय सहायता के माध्यम से, वे आर्थिक विकास को बढ़ावा देने, सांस्कृतिक संबंधों को सुगम बनाने और राजनीतिक संबंधों को प्रभावित करने में भूमिका निभाते हैं। यह परस्पर जुड़ी गतिशीलता इस क्षेत्र के देशों के बीच जटिल संबंधों पर पश्चिम एशिया और उत्तरी अफ्रीका के बढ़ते जोर को उजागर करती है, जो भू-आर्थिक प्रयासों पर प्रवासन और प्रवासी समुदायों के परिणामी प्रभावों को रेखांकित करती है।

ग्रंथसूची-संदर्भिका

Aly, A. M. S., Behrendt, S.,& Hanelt, C. P. (2000). *From geopolitics to geo-economics: collective security in the Middle East and North Africa* (pp. 35-54). Gütersloh, Germany: Bertelsmann Foundation Publishers.

Anderson, L. (1987). The state in the Middle East and North Africa. *Comparative Politics*, 20(1), 1-18.

Anjum, F. (2017). Indian Diaspora in GCC Countries. *International Journal of Reserach Culture Society*, 1(10), 82-88.

Anyanwu, J. C.,& Yameogo, N. D. (2015). What drives foreign direct investments into West Africa? An empirical investigation. *African Development Review*, 27(3), 199-215.

Baldwin-Edwards, M. (2005). Migration in the Middle East and Mediterranean: A regional study prepared for the Global Commission on International Migration.

Barbier, E. B. (2005). *Natural resources and economic development.* Cambridge University Press.

Bereketeab, R. (2016). Djibouti: strategic location, an asset or a curse?. *Journal of African Foreign Affairs*, 3(1), 5-18.

Dini, S. (2018). Migration management, capacity building and the sovereignty of an African State: International Organization for Migration in Djibouti. *Journal of Ethnic and Migration Studies*, 44(10), 1691-1705.

Dubey, M. (2008). Changing salience of the relationship between the Indian diaspora and India. *Diaspora Studies*, 1(2), 73-84.

Gatti, R., Angel-Urdinola, D. F., Silva, J.,& Bodor, A. (2014). *Striving for better jobs: the challenge of informality in the Middle East and North Africa*. World Bank Publications.

Habibi, N. (2019). Implementing Saudi Arabia's vision 2030: An interim balance sheet. *Middle East Brief*, 127, 1-9.

Jain, P. C. (2008). Globalisation and Indian Diaspora in West Asia and North Africa: Some Policy Implications. *India and West Asia in the era of globalization*, 161-187.

Kapiszewski, A. (2017). *Arab versus Asian migrant workers in the GCC countries. In South Asian migration to gulf countries (pp. 66-90).* Routledge India.

Kohli, N. (2014). Indian migrants in the Gulf countries. *Developments in the Gulf region: Prospects and challenges for India in the next two decades*, 115-147.

Rouis, M.,& Tabor, S. R. (2012). Regional economic integration in the Middle East and North Africa: Beyond trade reform. *World Bank Publications.*

Sayfayn, N. (2018). *Sustainable development in Saudi Arabia, past, present and future* (Doctoral dissertation, Massachusetts Institute of Technology).

Serageldin, I., Socknat, J. A., Birks, S., Li, B.,& Sinclair, C. A. (1983). *Manpower and international labour migration in the Middle East and North Africa.* New York: Oxford University Press.

Shikara, A. (2011). The Salient Implications of Geo-Strategic Policies on Stablizing the Oil Market in the MENA (Middle East and North Africa) Region.

Talebi Arani, R.,& Ahmadi Lafurak, B. (2019). Return to Geopolitics: The Evolution of EU Policies towards the Middle East and North Africa and Its Implications for the Islamic Republic of Iran. *Geopolitics Quarterly*, *14*(52), 104-129.

Yusuf, N.,& Atassi, H. (2016). Beyond oil–the transformation to a market-based approach: Envision Saudi Arabia 2030. *Journal of Economics and Sustainable Development*, *7*(14), 20-24.

मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलताः छात्र विशेषताओं, डिजाइन विशेषताओं और परिणामों के बीच संबंध

नीरज कुमार

सहायक आचार्य, बी०एड०/एम०एड०विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली

सारांश

यह शोधपत्र छात्र विशेषताओं/पृष्ठभूमि, डिजाइन विशेषताओं और सीखने के परिणामों के बीच संबंधों का विश्लेषण करके मिश्रित शिक्षण वातावरण की प्रभावशीलता की जांच करता हैं। इसका उद्देश्य छात्र विशेषताओं/पृष्ठभूमि और डिजाइन विशेषताओं को स्वतंत्र चर और सीखने के परिणामों को आश्रित चर के रूप में लेते हुए मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के महत्वपूर्ण भविष्यवाणियों को निर्धारित करना हैं। बहु प्रतिगमन विश्लेषण परिणामों से पता चला कि मिश्रित शिक्षण डिजाइन सुविधाएँ (प्रौद्योगिकी गुणवत्ता, ऑनलाइन उपकरण और आमने-सामने समर्थन) और छात्र विशेषताएँ (रवैया और स्व-नियमन) ने परिणाम के रूप में छात्र संतुष्टि की भविष्यवाणी की। परिणाम दर्शाते हैं कि छात्रों की कुछ विशेषताएँ/पृष्ठभूमि और डिजाइन विशेषताएँ मिश्रित शिक्षण में छात्रों के सीखने के परिणामों के लिए महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता हैं।

मूल शब्दः मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता, शिक्षार्थी विशेषताएँ, डिजाइन विशेषताएँ, सीखने के परिणाम और महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता

परिचय

शिक्षण और सीखने का माहौल कोई नवाचारों को अपना रहा हैं और इनमें से कुछ में मिश्रित शिक्षण के माध्यम से प्रौद्योगिकी का उपयोग शामिल हैं। इस अभिनव शैक्षणिक दृष्टिकोण को तेजी से अपनाया गया हैं, हालाँकि यह एक प्रक्रिया से गुजरता हैं। मिश्रित शिक्षण (आमने-सामने और ऑनलाइन शिक्षण और सीखने का संयोजन) की पहल इन नवाचारों का हिस्सा हैं, लेकिन विशेष रूप से विकासशील देशों में इसे अपनाना शिक्षण और सीखने में एक प्रभावी नवाचार बनने के लिए चुनौतियों का सामना करता हैं। मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता में कोई अंतर्निहित कारक हैं जो चुनौतियाँ पेश करते हैं। एक बड़ी चुनौती यह हैं कि उपयोगकर्ता प्रौद्योगिकी का सफलतापूर्वक उपयोग कैसे कर सकते हैं और प्रतिभागियों की प्रतिबद्धता को सुनिश्चित कर सकते हैं, जो व्यक्तिगत शिक्षार्थी विशेषताओं और प्रौद्योगिकी के साथ मुठभेड़ों को देखोते हुए हैं।

हॉफमैन कहते हैं कि प्रौद्योगिकी के साथ कठिनाईयों में पड़ने वाले उपयोगकर्ता सीखने को छोड़ सकते हैं और अंततः तकनीकि अनुप्रयोगों की विफलता हो सकती हैं। ऑक्सफोर्ड ग्रुप (2013) की एक रिपोर्ट में, कुछ शिक्षार्थियों (16%) का मिश्रित शिक्षा के प्रति नकारात्मक रवैया था, जबकि 26% को चिंता थी कि शिक्षार्थी मिश्रित शिक्षा में अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाएंगे। शिक्षार्थी किसी भी सीखने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भागीदार होते हैं और इसलिए, उनकी पृष्ठभूमि और विशेषताएं सीखने को प्रभावी ढंग से जारी रखने की उनकी क्षमता को प्रभावित करती हैं और मिश्रित शिक्षा में होने के कारण, उपयोग किए जाने वाले डिजाइन टूल उनके सीखने में प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकते हैं। यह अध्ययन मिश्रित सीखने की प्रभावशीलता से निपटता हैं, जिसकी जांच

पिछले अध्ययनों में ग्रेड, पाठ्यक्रम पूरा होने, प्रतिधारण और स्नातक दरों पर विचार करते हुए की गई हैं, लेकिन शिक्षार्थी की विशेषताओं/पृष्ठभूमि, डिजाइन सुविधाओं और परिणामों के मद्देनजर प्रभावशीलता के बारे में कोई अध्ययन युगांडा विश्वविद्यालय के संदर्भ में नहीं किया गया हैं।

गुस्की (2000) ने उल्लेख किया कि नियोजन मूल्यांकन अच्छी तरह से फिट बैठता हैं क्योंकि यह किसी भी नवाचार के कार्यान्वयन से पहले होता हैं और साथ ही योजनाकारों को जरूरतों को निर्धारित करने, प्रतिभागियों की विशेषताओं पर विचार करने, प्रासंगिक मामलों का विश्लेषण करने और आधारभूत जानकारी एकत्र करने की अनुमति देता हैं।

मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के लिए जांच की जा रही शिक्षार्थी विशेषताओं/पृष्ठभूमि में आत्म-नियमन, कंप्यूटर क्षमता, कार्यभार प्रबंधन, सामाजिक और पारिवारिक समर्थन, मिश्रित शिक्षण के प्रति दृष्टिकोण, लिंग और आयु शामिल हैं। हम शिक्षार्थी अंत:क्रियाओं, आमने-सामने समर्थन, शिक्षण प्रबंधन प्रणाली उपकरण और प्रौद्योगिकी गुणवत्ता की मिश्रित शिक्षण डिजाइन विशेषताओं की जांच करते हैं जबकि विचार किए गए परिणामों में संतुष्टि, प्रदर्शन, आतंरिक प्रेरणा और ज्ञान निर्माण शामिल हैं। मिश्रित शिक्षण में परिणामों के महत्वपूर्ण भविष्यवाणियों को स्थापित करने से ऐसे शिक्षण वातावरण के योजनाकारों को सूचित करने में मदद मिलेगी ताकि मिश्रित शिक्षण को एक अभिनव शैक्षणिक दृष्टिकोण के रूप में डिजाइन करने के लिए आवश्यक आधारभूत तैयारी की जा सके।

केनी और न्यूकॉम्ब (2011) ने ग्रेड के मद्देनजर प्रभावशीलता स्थापित करने के लिए अपनी तुलना की और पाया कि मिश्रित शिक्षा में गैर-मिश्रित शिक्षण वातावरण की तुलना में औसत स्कोर अधिक था। गैरिसन और कोनुका (2004) ने मिश्रित शिक्षा की परिवर्तनकारी क्षमता की जांच की और पाठ्यक्रम पूरा करने की दरों में वृद्धि, बेहतर प्रतिधारण और छात्र संतुष्टि में वृद्धि की सूचना दी। मिश्रित शिक्षण वातावरण के बीच तुलना शैक्षणिक उपलब्धि, ग्रेड फैलाव और लिंग प्रदर्शन अंतर के बीच असमानता स्थापित करने के लिए की गई हैं और समूहों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया (डेमिरकल और काजू, 2014)। हालांकि, मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता कोई अन्य कारकों पर निर्भर हो सकती हैं और उनमें से छात्र विशेषताएं, डिजाइन विशेषताएं और सीखने के परिणाम शामिल हैं। शोध से पता चलता हैं कि कुछ मामलों में शिक्षार्थियों की अपनी ऑनलाइन शिक्षा जारी रखने में विफलता पारिवारिक समर्थन या कार्यभार में वृद्धि के कारण हुई हैं।

पार्क और चोई (2009) में उद्धृत ग्रीर, हडसन और पॉघ के अध्ययन में, ऑनलाइन और आमने-सामने सीखने में सफलता के लिए शिक्षार्थियों के लिए परिवार और साथियों का समर्थन महत्वपूर्ण हैं। वेब-आधारित पाठ्यक्रमों में सभी क्षेत्रों के शिक्षार्थियों के लिए समर्थन की आवश्यकता होती हैं और यह परिवार, दोस्तों, सहकोर्मियों के साथ-साथ कक्षा में साथियों से भी हो सकता हैं। ग्रीर, हडसन और पॉघ ने आगे उल्लेख किया कि साथियों के प्रोत्साहन ने नए शिक्षार्थियों को कंप्यूटर के उपयोग और अनुप्रयोगों में सहायता की।

लेखक यह भी दिखाते हैं कि वेब-आधारित पाठ्यक्रमों में शिक्षार्थियों को समय के बजट, उपयुक्त प्रौद्योगिकी उपकरणों और दोस्तों और परिवार से समर्थन की आवश्यकता होती हैं। उन शिक्षार्थियों को साथियों के समर्थन की आवश्यकता होती हैं, जिन्हें प्रौद्योगिकी, विशेष रूप से कंप्यूटर का कोई या बहुत कम ज्ञान नहीं हैं, ताकि वे अपने डर पर काबू पा सकें। पार्क और चोई, (2009) ने दिखाया कि संगठनात्मको समर्थन ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में शिक्षार्थियों के ठहराव और सफलता की महत्वपूर्ण रूप से भविष्यवाणी करता हैं क्योंकि नियोक्ता कभी-कभी अध्ययन के दौरान शिक्षार्थियों के कार्यभार को कम करने के लिए तैयार होते हैं और साथ ही पर्यवेक्षक यह दिखाते हैं कि वे कर्मचारियों को आगे बढ़ाने और उनके कौशल में सुधार करने के लिए नौकरी से संबंधित सीखने में रुचि रखते हैं।

किंटू और झू (2016) द्वारा किए गए अध्ययन ने युगांडा विश्वविद्यालय में मिश्रित शिक्षा की संभावना की जांच की और जांच की कि क्या छात्र की विशेषताएं (जैसे कि आत्म-नियमन, मिश्रित शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण, कंप्यूटर दक्षता) और छात्र की पृष्ठभूमि (जैसे कि पारिवारिक समर्थन, सामाजिक समर्थन और कार्यभार का प्रबंधन) शिक्षार्थी के परिणामों (जैसे कि प्रेरणा, संतुष्टि, ज्ञान निर्माण और प्रदर्शन) में महत्वपूर्ण कारक थे। विशेषताओं और पृष्ठभूमि कारकों का अध्ययन मिश्रित शिक्षण डिजाइन विशेषताओं जैसे कि प्रौद्योगिकी की गुणवत्ता, शिक्षार्थी की अंत:क्रिया और मूडल के साथ इसके उपकरणों और संसाधनों के साथ किया गया। उस अध्ययन के निष्कर्षों ने संकेत दिया कि मिश्रित शिक्षण के प्रति शिक्षार्थी का दृष्टिकोण शिक्षार्थी की संतुष्टि और प्रेरणा के लिए

महत्वपूर्ण कारक था जबकि कार्यभार प्रबंधन शिक्षार्थी की संतुष्टि और ज्ञान निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण कारक था। मिश्रित शिक्षण डिजाइन विशेषताओं में से, केवल शिक्षार्थी की अंत:क्रिया ही शिक्षार्थी की संतुष्टि और ज्ञान निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण कारक थी।

वर्तमान अध्ययन का ध्यान शिक्षार्थी की विशेषताओं/पृष्ठभूमि, मिश्रित शिक्षण डिजाइन तत्वों और सीखने के परिणामों को ध्यान में रखते हुए मिश्रित शिक्षण की प्रभावशीलता और कैसे पूर्व मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता की जांच करने पर है। मॉरिस और लिम (2009) जैसे अध्ययनों ने मिश्रित शिक्षण में सीखने के परिणामों को प्रभावित करने वाले शिक्षार्थी और अनुदेशात्मको कारकों की जांच की हैं। हालांकि वे शिक्षा में प्रौद्योगिकी के उपयोग को शामिल करने वाले अभिनव शिक्षण के पहलू के रूप में मिश्रित शिक्षण डिजाइन के संदर्भ में ऐसे चरों से नहीं निपटते हैं। लिंग, आयु, अनुभव, अध्ययन समय जैसे शिक्षार्थी चरों के अलावा, जैसा कि पहले बताया गया हैं, यह अध्ययन शिक्षार्थियों के सामाजिक और पृष्ठभूमि पहलुओं जैसे परिवार और सामाजिक समर्थन, आत्म-नियमन, मिश्रित शिक्षण के प्रति दृष्टिकोण और कार्यभार के प्रबंधन पर विचार करता हैं ताकि मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के साथ उनके संबंधों का पता लगाया जा सके। मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के साथ उनके संबंधों के संबंध में विभिन्न प्रकार के शिक्षार्थी चरों की पहचान करना इस अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं क्योंकि हम शिक्षण और सीखने में प्रौद्योगिकी के साथ अभिनव शिक्षण शुरू कर रहे हैं।

साहित्य समीक्षा

यह समीक्षा शिक्षार्थी की विशेषताओं/पृष्ठभूमि, डिजाइन सुविधाओं और सीखने के परिणामों के परिप्रेक्ष्य से मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के बारे में शोध प्रस्तुत करती हैं। यह उन कारकों को भी बताता हैं जिन्हें मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के लिए महत्वपूर्ण माना जाता हैं। हमने विशेष रूप से प्रभावशीलता मूल्यांकन परत पर विचार करते हुए ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण सेवा के मूल्यांकन के लिए लौकीस, जॉर्जियो और पजालो (2007) मूल्य प्रवाह मॉडल का उपयोग किया हैं। यह ई-लर्निंग सिस्टम के उपयोग और शैक्षिक प्रभावशीलता की सीमा का मूल्यांकन करता हैं। इसके अलावा, सेलिम (2007) में उद्धृत लीडनर, जार्वेनपा, डिलन और गुनावर्धने द्वारा किए गए अध्ययनों ने तीन मुख्य कारकों को नोट किया हैं जो प्रतिक्षको विशेषताओं, प्रौद्योगिकी और छात्र विशेषताओं के रूप में ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं।

हेनिच, मोलेंडा, रसेल और स्मालडिनो (2001) ने प्रभावी अनुदेशात्मको प्रौद्योगिकी उपयोग के लिए शिक्षार्थी विशेषताओं की जांच करने की आवश्यकता को दर्शाया और दिखाया कि उपयोगकर्ता की विशेषताएं प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के व्यावहारिक इरादे पर प्रभाव डालती हैं।

अनुसंधान ने शिक्षार्थी विशेषताओं से निपटा हैं जो शिक्षार्थी के प्रदर्शन परिणामों में योगदान करती हैं। उन्होंने एक ऑनलाइन सीखने के संदर्भ में भावनात्मको बुद्धिमत्ता, लचीलापन, व्यक्तित्व प्रकार और सफलता से निपटा हैं।

इस अध्ययन में पहचानी गई विशेषताओं से निपटने से एक और आयाम मिलेगा, विशेष रूप से सीखने के माहौल के डिजाइन में मिश्रित सीखने के लिए और प्रौद्योगिकी का उपयोग करके सीखने पर विशिष्ट बहस में इजाफा होगा। लिन और वासर, (2009) ने संकेत दिया कि शिक्षार्थी की सफलता तकनीकि कठिनाई से निपटने की क्षमता के साथ-साथ कंप्यूटर संचालन और इंटरनेट नेविगेशन में तकनीकि कौशल पर निर्भर हैं। यह इस अध्ययन में मिश्रित सीखने की डिजाइन विशेषताओं से निपटने में हमारे दृष्टिकोण को सही ठहराता हैं।

शिक्षार्थी की विशेषताएँ/पृष्ठभूमि और मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता

अध्ययनों से संकेत मिलता हैं कि लिंग जैसी छात्र विशेषताएँ शैक्षणिक उपलब्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं (ऑक्सफोर्ड समूह, 2013), लेकिन कोई भी अध्ययन मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में पुरुष और महिला के प्रदर्शन की जाँच नहीं करता हैं। यह फिर से देखा गया हैं कि ई- और मिश्रित शिक्षण की सफलता इंटरनेट और कंप्यूटर अनुप्रयोगों में अनुभव पर अत्यधिको निर्भर हैं (पिकानो और सीमैन, 2007)। ऐसी क्षमताओं की गहन खोज अंतत: मिश्रित शिक्षण की स्थापना

की उच्च संभावनाओं की पुष्टि कर सकती हैं। शोध इस बात से सहमत हैं कि ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण की सफलता काफी हद तक छात्रों के साथ-साथ शिक्षकों द्वारा मिश्रित शिक्षण में भाग लेने के लिए आत्मविश्वास और क्षमता हासिल करने पर निर्भर कर सकती हैं (हदाद, 2007)।

श्राइम और खोलीफ (2010) ने अपने शोध में उल्लेख किया हैं कि 75% छात्रों और 72% शिक्षकों में कंप्यूटर और इंटरनेट अनुप्रयोगों में अपर्याप्त कौशल और अनुभव के कारण आईसीटी आधारित शिक्षण घटकों का उपयोग करने के कौशल की कमी थी और इससे ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण में विफलता हो सकती हैं। इसलिए यह उचित हैं कि चूंकि मिश्रित शिक्षण में कंप्यूटर का अधिक उपयोग होता हैं, इसलिए शिक्षण प्रभावशीलता के लिए शिक्षा में प्रौद्योगिकी को लागू करने में विफलता से बचने के लिए कंप्यूटर दक्षता आवश्यक हैं (अबूबकर और एडेटिमिरिन, 2015)।

रोवाई (2003) ने नोट किया कि दूरस्थ शिक्षा के संदर्भ में शिक्षार्थियों की कंप्यूटर साक्षरता और समय प्रबंधन महत्वपूर्ण हैं और निष्कर्ष निकाला कि ऐसे कारक ऑनलाइन कक्षाओं में सार्थको हैं। सेलिम (2007) द्वारा इसका समर्थन किया गया हैं कि शिक्षार्थियों के पास ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण में प्रभावशीलता के लिए आवश्यक समय प्रबंधन कौशल और कंप्यूटर कौशल होना चाहिए। समय प्रबंधन के स्व-नियामको कौशल बेहतर प्रदर्शन की और ले जाते हैं और शिक्षार्थियों की भौतिको शिक्षण वातावरण की संरचना करने की क्षमता ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण वातावरण में दक्षता की और ले जाती हैं शिक्षार्थियों के रोजगार के घंटे और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ जैसे कारक शिक्षार्थियों की सीखने की प्रक्रिया को बाधित करने के लिए जाने जाते हैं, मिश्रित शिक्षण समावेशी (कोहेन, स्टेजो, हैंमैको, और मार्कस, 2012)। यह भी देखा गया कि असफलता और शिक्षार्थियों के बीच पढ़ाई छोड़ने का एक सामान्य कारण समय का टकराव हैं जो परिवार, रोजगार की स्थिति और साथ ही प्रबंधन सहायता (पैकोहम, जोन्स, मिलर, और थॉमस, 2004) के मुद्दों से और भी जटिल हो जाता हैं। थॉम्पसन (2004) द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चलता हैं कि काम, परिवार, अपर्याप्त समय और अध्ययन के बोझ ने शिक्षार्थियों को ऑनलाइन पाठ्यक्रमों से दूर कर दिया।

मिश्रित शिक्षण के प्रति शिक्षार्थियों के दृष्टिकोण से इसकी प्रभावशीलता में वृद्धि हो सकती हैं और ये व्यावहारिक इरादों को आकार देते हैं जो आम तौर पर मिश्रित समावेशी शिक्षण वातावरण में दृढ़ता की और ले जाते हैं। सेलिम, (2007) ने उल्लेख किया कि ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण के प्रति शिक्षार्थियों का दृष्टिकोण इन शिक्षण वातावरणों के लिए सफलता कारक हैं। ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण में आयु और लिंग के अनुसार शिक्षार्थियों के प्रदर्शन में पुरुष और महिला शिक्षार्थियों और विभिन्न आयु समूहों (यानी युवा, मध्यम आयु वर्ग और 45 वर्ष से अधिक उम्र के) के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया हैं (कोल्डवेल, क्रेग, पैटरसन, और मस्टर्ड, 2008)। इसका अर्थ हैं कि मिश्रित शिक्षण के प्रभावी होने की संभावना मौजूद हैं और लिंग या आयु के अंतर से अप्रभावित हैं।

मिश्रित शिक्षण डिजाइन विशेषताएँ

यहाँ अध्ययन के तहत डिजाइन विशेषताओं में इंटरैक्शन, इसकी गुणवत्ता के साथ प्रौद्योगिकी, आमने-सामने समर्थन और शिक्षण प्रबंधन प्रणाली उपकरण और संसाधन शामिल हैं। शोध से पता चलता हैं कि ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में शिक्षार्थियों के बीच बातचीत का अभाव विफलता और अंततः पढ़ाई छोड़ने का कारण बनता हैं (विलिंग और जॉनसन, 2009) और शिक्षार्थियों के बीच जुड़ाव की कमी को ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में शिक्षार्थियों के पढ़ाई छोड़ने के लिए एक आतंरिक कारक के रूप में देखा गया (जीलिंस्की, 2000)। यह भी देखा गया कि यदि शिक्षार्थी मित्र बनाने में असमर्थ हैं, तो वे ई- और मिश्रित शिक्षा में आगे नहीं बढ़ सकते हैं, जिससे वे अपने मिश्रित शिक्षण अनुभवों के दौरान अलग-थलग पड़ सकते हैं और उनमें अलगाव की भावना विकसित हो सकती हैं (विलिंग और जॉनसन, 2009)। शिक्षकों और साथियों के साथ शिक्षार्थियों की बातचीत मिश्रित शिक्षण को प्रभावी बना सकती हैं, क्योंकि इसकी अनुपस्थिति शिक्षार्थियों को पीछे हटने पर मजबूर कर देती हैं (एस्टलीटनर, 2000)।

लौकीस, जॉर्जियस और पजालो (2007) ने देखा कि शिक्षार्थियों द्वारा किसी सिस्टम की गुणवत्ता, विश्वसनीयता और उपयोग में आसानी को मापने से सीखने की दक्षता बढ़ती हैं और मिश्रित शिक्षण में भी ऐसा हो सकता हैं। मिश्रित शिक्षण में शिक्षार्थियों की सफलता सिस्टम की कार्यक्षमता से काफी हद तक प्रभावित हो सकती हैं (पिटच और ली, 2006) और इस तरह की शिक्षण पहलों की विफलता का कारण बन सकती हैं (श्रेन, 2012)। इसलिए मिश्रित शिक्षण में सीखने की प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए प्रौद्योगिकी की गुणवत्ता की जांच करना महत्वपूर्ण हैं।

त्सेलियोस, डस्कलाकिस और पापाडोपोलू (2011) ने शिक्षण प्रबंधन प्रणाली के उपयोग के बाद शिक्षार्थियों की धारणाओं की जांच की और पाया कि वास्तविक प्रणाली का उपयोग उपयोगकर्ताओं के बीच उपयोगिता निर्धारित करता हैं। यह फिर से ध्यान दिया जाता हैं कि खराब प्रतिक्रिया समय वाली प्रणाली को ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण के लिए विशेष रूप से सीमित बैंडविड्थ के मामलों में उपयोगी नहीं माना जा सकता हैं (एंडरसन, 2004)।

इस अध्ययन में, हम मिश्रित शिक्षण की संभावित प्रभावशीलता के एक कार्य के रूप में मूडल और उसके उपकरणों के उपयोग की जांच करते हैं। शिक्षार्थियों के लिए शिक्षण प्रबंधन प्रणाली सामग्री की गुणवत्ता ई-और मिश्रित शिक्षण वातावरण में अच्छे प्रदर्शन का पूर्वानुमान हो सकती हैं और इससे शिक्षार्थी संतुष्ट हो सकते हैं। कुल मिलाकर, खराब गुणवत्ता वाली तकनीको उपयोगकर्ताओं को कोई संतुष्टि नहीं देती हैं लर्निंग मैनेजोमेंट सिस्टम और इसके टूल्स का कुशल उपयोग ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण वातावरण में सीखने के परिणामों में सुधार करता हैं। यह ध्यान दिया जाता हैं कि लर्निंग मैनेजोमेंट सिस्टम के साथ शिक्षार्थी की संतुष्टि मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के लिए एक पूर्ववर्ती कारक हो सकती हैं।

गोयल और तांबे (2015) ने नोट किया कि शिक्षार्थियों ने उनके सीखने में मूडल के योगदान के लिए सराहना दिखाई। उन्होंने इसके साथ सकारात्मकता दिखाई क्योंकि इसने पाठ्यक्रम सामग्री की उनकी समझ में सुधार किया (अहमद और अल-खंजोरी, 2011)। गोयल और तांबे (2015) द्वारा किए गए अध्ययन में मूडल पर अपलोड किए गए पाठ्यक्रम और सत्र योजनाओं के उपयोग से बेहतर सीखने को इंगित करने के लिए वर्णनात्मको सांख्यिकी का उपयोग किया गया था। अध्ययन सामग्री साझा करने, असाइनमेंट जमा करने और कैलेंडर का उपयोग करने के माध्यम से भी बेहतर सीखने को नोट किया जाता हैं। मैरियट, मैरियट और सेल्विन (2004) द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चला कि शिक्षार्थी कक्षा के माहौल से प्राप्त सामाजिक संपर्क और संचार कौशल की सुविधा के कारण आमने-सामने की शिक्षा को प्राथमिकता दे रहे हैं। ऑनलाइन सत्र के लिए उनकी प्राथमिकता केवल इस हद तक थी कि यह पारंपरिक आमने-सामने की शिक्षा का पूरको था। ओसगेरबी (2013) द्वारा किए गए एक अध्ययन में शिक्षार्थियों की मिश्रित शिक्षा के बारे में सकारात्मको धारणा थी लेकिन उन्होंने चरण-दर-चरण निर्देश के साथ आमने-सामने की शिक्षा को प्राथमिकता दी। बियर्ड, हार्पर और रिले (2004) से पता चलता हैं कि कुछ शिक्षार्थी शिक्षकों और साथियों के साथ व्यक्तिगत बातचीत में सफल होते हैं, इसलिए वे मिश्रण में आमने-सामने की शिक्षा को पसंद करते हैं। हालांकि बियर्ड ने ऑनलाइन और कैंपस में सीखने के बीच तुलना की, जबकि हमारा अध्ययन दोनों को मिलाता हैं, और मिश्रण के आमने-सामने वाले हिस्से को अलग करता हैं।

बियर्ड द्वारा पाया गया लाभ यहां भी उतना ही प्रासंगिक हैं क्योंकि मिश्रित शिक्षण में शिक्षार्थी प्रभावी मिश्रण के लिए ऑनलाइन और आमने-सामने दोनों के प्रति दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं। शोधकर्ता संकेत देते हैं कि आमने-सामने के सत्रों में शिक्षको की उपस्थिति उनके और शिक्षार्थियों के बीच मनोवैज्ञानिक दूरी को कम करती हैं और अधिक सीखने की और ले जाती हैं। ऐसा इसलिए हैं क्योंकि प्रशंसा करना, दृष्टिकोण के लिए आग्रह करना, हास्य, आदि जैसे मौखिक पहलू और आँखो से संपर्क, चेहरे के भाव, हाव-भाव आदि जैसे गैर-मौखिक भाव शिक्षकों को मनोवैज्ञानिक रूप से शिक्षार्थियों के करीब लाते हैं (केली और गोरहम, 2009)।

शिक्षार्थी परिणाम

इस अध्ययन में जांच के तहत परिणामों में प्रदर्शन, प्रेरणा, संतुष्टि और ज्ञान निर्माण शामिल हैं। प्रेरणा को यहां एक परिणाम के रूप में देखा जाता हैं क्योंकि, सीखने के परिणामों को मापने में पाठ्यक्रम ग्रेड जैसे संज्ञानात्मक कारकों का उपयोग किया जाता हैं, आतंरिक प्रेरणा जैसे भावात्मक कारकों का उपयोग सीखने के परिणामों को इंगित करने के लिए भी किया जा सकता हैं (कुओ, वॉकर, बेलैंड, और श्रोडर, 2013)। शोध से पता चलता हैं कि ऑनलाइन शिक्षार्थियों के बीच उच्च प्रेरणा उनके पाठ्यक्रमों में दृढ़ता की ओर ले जाती हैं (मेनागर-बीली, 2004)।

शंकरन एंड बुई (2001) ने संकेत दिया कि कम प्रेरित शिक्षार्थियों ने ज्ञान परीक्षाणों में खराब प्रदर्शन किया, जबकि उच्च सीखने की प्रेरणा वाले लोग शिक्षाविदों में उच्च प्रदर्शन प्रदर्शित करते हैं। लिम एंड किम, (2003) ने संकेत दिया कि प्रेरणा कारक के रूप में शिक्षार्थी की रुचि सीखने में शिक्षार्थी की भागीदारी को बढ़ावा देती हैं और इससे मिश्रित शिक्षा में सीखने की प्रभावशीलता हो सकती हैं। मिश्रित और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों की प्रभावशीलता के लिए शिक्षार्थी की संतुष्टि को एक मजबूत कारक के रूप में देखा गया (विलिंग एंड जॉनसन, 2009) और असंतोष का परिणाम शिक्षार्थियों की एक प्रभावी शिक्षण उपकरण के रूप में

शिक्षण प्रबंधन प्रणाली के उपयोग में अक्षमता से हो सकता हैं इसके अलावा, तकनीकि कठिनाईयों के साथ-साथ अस्पष्ट पाठ्यक्रम निर्देशन से भी असंतोष की स्थिति पैदा हुई (हारा एंड क्लिंग (2001)।

इन कारकों पर ध्यान दिए जाने पर, ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण में शिक्षार्थी की संतुष्टि और अंतत: प्रभावशीलता बढ़ सकती हैं। ब्लॉकर एंड टकर (2001) के एक अध्ययन से यह भी पता चला हैं कि शिक्षार्थियों को तकनीको से परेशानी होती हैं और साथियों की समूह में अपर्याप्त भागीदारी से इन डिजाइन सुविधाओं के भीतर असंतोष पैदा होता हैं। विद्यार्थी-शिक्षको अंत:क्रियाएं ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में संतुष्टि लाने के लिए जानी जाती हैं। स्वान (2001) के अध्ययन के परिणामों से संकेत मिलता हैं कि विद्यार्थी-शिक्षको अंत:क्रिया का विद्यार्थी संतुष्टि से गहरा संबंध हैं और उच्च शिक्षार्थी-शिक्षार्थी अंत:क्रिया के परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम संतुष्टि का स्तर अधिक होता हैं।

असकर और अल्टुन (2008) ने पाया कि शिक्षार्थी मिश्रित शिक्षा के आमने-सामने के माहौल से संतुष्ट थे, जिसमें टी-टेस्ट और एनोवा के परिणाम दर्शाते हैं कि मिश्रित शिक्षा के आमने-सामने के माहौल से संतुष्टि में महिलाओं के स्कोर पुरुषों की तुलना में अधिक थे। मिश्रित शिक्षा की तुलना पारंपरिक आमने-सामने की शिक्षा से करने वाले अध्ययनों ने संकेत दिया हैं कि शिक्षार्थी मिश्रित शिक्षा में समान रूप से अच्छा प्रदर्शन करते हैं और उनका प्रदर्शन वितरण पद्धति से अप्रभावित रहता हैं (क्वाको, मेनेजेस और शेरवुड, 2013)। एक अन्य अध्ययन में, पारंपरिक पाठ्यक्रम वितरण को ऑनलाइन शिक्षा के साथ एकीकृत करने पर सीखने के अनुभव और प्रदर्शन में सुधार होता हैं (स्टेसी और गेर्बिको, 2007)।

जैसा कि उल्लेख किया गया हैं, ऐसा सुधार मिश्रित शिक्षा प्रभावशीलता का संकेतक हो सकता हैं। हालाँकि, हमारा अध्ययन बेहतर प्रदर्शन पर गहराई से विचार करता हैं, लेकिन मिश्रित शिक्षा प्रयोग में प्राप्त ग्रेड पर विचार करके मिश्रित शिक्षा प्रभावशीलता की क्षमता को स्थापित करने का प्रयास करता हैं। इस अध्ययन की सेटिंग में 50 और उससे अधिक स्कोर को पास माना जाता हैं और इससे अधिक स्कोर करने वाले शिक्षार्थियों को पास माना जाएगा। इससे मिश्रित शिक्षा प्रभावशीलता की क्षमता के बारे में हमारे निष्कर्ष निकोलेंगे। ज्ञान निर्माण के संबंध में, यह देखा गया हैं कि प्रभावी शिक्षण तब होता हैं जब शिक्षार्थी सक्रिय रूप से शामिल होते हैं और यह सीखने के माहौल की प्रभावशीलता का एक संकेतक हो सकता हैं। प्रभावी मिश्रित शिक्षण के लिए यह आवश्यक होगा कि शिक्षार्थी मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के पूर्ववर्ती के रूप में ज्ञान निर्माण की प्रक्रियाओं को आरंभ करने, खोजने और पूरा करने में सक्षम हों।

रहमान, यासीन और जुसॉफ (2011) द्वारा किए गए एक अध्ययन ने संकेत दिया कि शिक्षार्थी दिए गए असाइनमेंट के माध्यम से ऑनलाइन चर्चा प्रक्रिया के माध्यम से अर्थ निर्माण करने के लिए कुछ चरणों का उपयोग करने में सक्षम थे। आपस में देने और प्राप्त करने की प्रक्रिया में, लेखकों ने नोट किया कि शिक्षार्थियों ने जो समझा उसे लिखकर सीखा। हमारे दृष्टिकोण से, इसे ज्ञान निर्माण प्रक्रिया में उपलब्धि माना जा सकता हैं। उनका अध्ययन आगे दिखाता हैं कि शिक्षार्थी असाइनमेंट से व्यक्तिगत रूप से अर्थ का निर्माण करते हैं और इस चरण को पूर्व-निर्माण के रूप में संदर्भित किया जाता हैं जो हमारे अध्ययन के लिए, ज्ञान निर्माण प्रक्रिया में खोज का एक पहलू हैं। मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के भविष्यवक्ता शोधकर्ताओं ने ऑनलाइन सीखने या पारंपरिक आमने-सामने सीखने के लिए सफलता कारकों से निपटा हैं, लेकिन उन कारकों के बारे में बहुत कम जानकारी हैं जो शिक्षार्थी की विशेषताओं और मिश्रित शिक्षण डिजाइन सुविधाओं के मद्देनजर मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता की भविष्यवाणी करते हैं। हमारे अध्ययन का यह भाग शिक्षार्थी की विशेषताओं/पृष्ठभूमि और डिजाइन सुविधाओं को स्थापित करने का प्रयास करता हैं जो संतुष्टि, परिणामों, प्रेरणा और ज्ञान निर्माण के संबंध में मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता की भविष्यवाणी करते हैं।

सॉन्ग, सिंगलटन, हिल और कोह (2004) ने ऑनलाइन शिक्षण प्रभावशीलता कारकों की जांच की और पाया कि समय प्रबंधन (एक स्व-नियामको कारक) सफल ऑनलाइन शिक्षण के लिए महत्वपूर्ण था। ईओम, वेन और एशिल (2006) ने एक सर्वेक्षण का उपयोग करके पाया कि अन्य कारकों के साथ-साथ बातचीत, शिक्षार्थी की संतुष्टि के लिए महत्वपूर्ण थी। निर्देशात्मको डिजाइन के संबंध में तकनीकि समस्याएं ऑनलाइन शिक्षार्थियों के लिए एक चुनौती थीं, इसलिए प्रभावशीलता का संकेत नहीं देती थीं (सोंग एट अल., 2004), हालांकि लेखकों ने यह भी संकेत दिया कि वर्णनात्मको सांख्यिकी 75% और समय प्रबंधन (62%) ऑनलाइन शिक्षण की सफलता पर प्रभाव डालती हैं। आर्बौ (2000) और स्वान (2001) ने संकेत दिया कि शिक्षार्थी-प्रशिक्षक बातचीत के उच्च स्तर उपयोगकर्ता संतुष्टि और सीखने के परिणामों के उच्च स्तर से जुड़े हैं। नाजो एट अल. (2012) द्वारा किए गए एक

अध्ययन ने संकेत दिया कि अन्य कारकों के साथ-साथ प्रौद्योगिकी और शिक्षार्थी बातचीत ने मिश्रित शिक्षण में शिक्षार्थी की संतुष्टि को प्रभावित किया।

छात्र विशेषताएँ/पृष्ठभूमि, मिश्रित शिक्षण डिजाइन विशेषताएँ और सीखने के परिणाम

जाँच की गई शिक्षार्थी विशेषताएँ, डिजाइन विशेषताएँ एक प्रभावी मिश्रित शिक्षण वातावरण के लिए संभावित रूप से महत्वपूर्ण हैं। लिंग के आधार पर प्रदर्शन पुरुष और महिला के बीच कोई सांख्यिकीय अंतर नहीं होने के साथ संतुलन दिखाता हैं। आयु समूहों के बीच प्रदर्शन में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर (चढ़.005) हैं, जिसका मतलब 20-30 आयु वर्ग के लिए 62% और 31-39 आयु वर्ग के लिए 67% हैं। स्व-नियमन के संकेतक मौजूद हैं और साथ ही मिश्रित शिक्षण के प्रति सकारात्मको दृष्टिकोण भी मौजूद हैं। शिक्षार्थी वर्ड प्रोसेसिंग, ई-मेल, स्प्रेडशीट और वेब ब्राउजर के साथ अच्छा प्रदर्शन करते हैं, लेकिन भ्ग्डस टूल में अभी भी औसत से पीछे हैं। वे 75.3% पर कंप्यूटर आत्मविश्वास दिखाते हैं; जो उनकी कंप्यूटर क्षमता और आत्मविश्वास के संबंध में एक प्रभावी मिश्रित शिक्षण वातावरण की संभावना देता हैं। शिक्षार्थियों के लिए पारिवारिक और सामाजिक समर्थन का स्तर क्रमश: 61 और 75% हैं, जो मिश्रित शिक्षण के प्रभावी होने की संभावना को दर्शाता हैं।

अध्ययन और काम के बीच शिक्षार्थियों का संतुलन मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता की दिशा में एक प्रेरक कारक हैं क्योंकि उनके कार्यभार का प्रबंधन अध्ययन समय के साथ 60 पर हैं और 61% शिक्षार्थियों को उनके बॉस द्वारा अध्ययन के लिए जाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता हैं। ऑनलाइन सिस्टम और उसके उपकरणों के साथ शिक्षार्थियों की संतुष्टि मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता की संभावना को दर्शाती हैं, लेकिन पाठ्यक्रम सामग्री और असाइनमेंट का पता लगाने, अपना काम जमा करने और ऑनलाइन अध्ययन के दौरान किसी कार्य पर बने रहने के संबंध में चुनौतियाँ हैं। औसत सहयोगी, संज्ञानात्मक शिक्षण और साथ ही शिक्षार्थी-शिक्षको बातचीत महत्वपूर्ण कारक के रूप में मौजूद हैं। प्रभावी मिश्रित शिक्षण के लिए प्रौद्योगिकी की गुणवत्ता प्रभावशीलता की एक क्षमता हैं, हालांकि ब्लॉग और विकी जैसी सुविधाओं का उपयोग शिक्षार्थियों द्वारा शायद ही कभी किया जाता हैं। आमने-सामने का समर्थन संतोषजोनको हैं और इसे हर महीने आयोजित किया जाना चाहिए। उच्च आतंरिक प्रेरणा, संतुष्टि और ज्ञान निर्माण के साथ-साथ परीक्षाओं में अच्छा प्रदर्शन (एम = 62%, एसडी = 7.5); जो मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता की संभावना को इंगित करता हैं।

मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता

डिजाइन विशेषताओं में, प्रौद्योगिकी गुणवत्ता, ऑनलाइन उपकरण और आमने-सामने का समर्थन शिक्षार्थी की संतुष्टि के भविष्यवक्ता हैं, जबकि आत्म-नियमन की शिक्षार्थी विशेषताएँ और मिश्रित शिक्षण के प्रति दृष्टिकोण संतुष्टि के भविष्यवक्ता हैं। प्रौद्योगिकी गुणवत्ता और अंत:क्रियाएँ शिक्षार्थी के ज्ञान निर्माण की भविष्यवाणी करने वाली एकमात्र डिजाइन विशेषताएँ हैं, जबकि शिक्षार्थी पृष्ठभूमि के बीच सामाजिक समर्थन ज्ञान निर्माण का भविष्यवक्ता हैं। शिक्षार्थी की विशेषता के रूप में आत्म-नियमन ज्ञान निर्माण का भविष्यवक्ता हैं। आत्म-नियमन शिक्षार्थी की एकमात्र विशेषता हैं जो मिश्रित शिक्षण में आतंरिक प्रेरणा की भविष्यवाणी करती हैं, जबकि प्रौद्योगिकी गुणवत्ता, ऑनलाइन उपकरण और अंत:क्रियाएँ आतंरिक प्रेरणा की भविष्यवाणी करने वाली डिजाइन विशेषताएँ हैं। हालाँकि, सभी स्वतंत्र चर मिश्रित शिक्षण में सीखने के प्रदर्शन के महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता नहीं हैं।

हदाद (2007) द्वारा उल्लेखित उच्च कंप्यूटर दक्षता और आत्मविश्वास मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के लिए एक पूर्ववर्ती कारक हैं और इस अध्ययन में शिक्षार्थियों को मिश्रित शिक्षण की प्रभावशीलता के लिए पर्याप्त रूप से आश्वस्त और सक्षम पाया गया हैं। श्राइम और खोलीफ (2010) द्वारा उल्लेखित अनुसार कंप्यूटर कौशल की कमी ई-लर्निंग और मिश्रित शिक्षण में विफलता का कारण बनती हैं। हमारे अध्ययन निष्कर्षों से, हमारे मामले में मिश्रित शिक्षण के लिए यह कोई खोतरा नहीं हैं, जैसा कि हमारे परिणामों द्वारा उल्लेखित हैं। कोहेन एट अल. (2012) के निष्कर्षों के विपरीत कि शिक्षार्थियों की पारिवारिक जिम्मेदारियाँ और रोजगार के घंटे उनकी सीखने की प्रक्रिया को बाधित कर सकते हैं, यहाँ ऐसा नहीं हैं क्योंकि वे मिश्रित शिक्षण प्रक्रिया के चालको हैं। समय संघर्ष, जिसे परिवार, रोजगार की स्थिति और प्रबंधन समर्थन (पैकोहम एट अल., 2004) द्वारा जटिल बनाया गया, शिक्षार्थियों की विफलता और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों से बाहर निकालने के कारणों के रूप में देखा गया। इसके विपरीत, हमारे परिणाम दिखाते हैं कि ये कारक मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के लिए चालको हैं क्योंकि शिक्षार्थियों के पास काम और अध्ययन के बीच एक अच्छा संतुलन होता हैं और उन्हें अध्ययन करने के लिए बॉस द्वारा समर्थन दिया जाता हैं। सेलिम (2007) के साथ सहमति में, ई-और

मिश्रित शिक्षण वातावरण के प्रति शिक्षार्थियों का सकारात्मको दृष्टिकोण सफलता कारक हैं। लौकीस (2007) के अनुसार एलएमएस की गुणवत्ता, विश्वसनीयता और उपयोग में आसानी से सीखने की दक्षता बढ़ती हैं क्योंकि प्रौद्योगिकी की गुणवत्ता, ऑनलाइन उपकरण शिक्षार्थी की संतुष्टि और आतंरिक प्रेरणा के भविष्यवक्ता हैं। आमने-सामने के सत्र मासिको आधार पर जारी रहने चाहिए जैसा कि यहाँ उल्लेख किया गया हैं और यह मैरिएट एट अल. (2004) से सहमत हैं। जिन्होंने सामाजिक संपर्क और संचार कौशल को सुविधाजनक बनाने के लिए इसके लिए शिक्षार्थियों की प्राथमिकता को नोट किया।

निष्कर्ष और सिफारिशें

शिक्षण और सीखने में प्रौद्योगिकी के उपयोग के माध्यम से नवीन शैक्षणिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए एक प्रभावी मिश्रित शिक्षण वातावरण आवश्यक हैं। प्रभावशीलता के कारकों के रूप में शिक्षार्थी की विशेषताओं/पृष्ठभूमि, डिजाइन विशेषताओं और सीखने के परिणामों की जांच प्रभावी शिक्षण वातावरण के डिजाइन को सूचित करने में मदद कर सकती हैं जिसमें आमने-सामने के सत्र और ऑनलाइन पहलू शामिल हैं। इस अध्ययन में शामिल अधिकांश छात्र विशेषताएँ और मिश्रित शिक्षण डिजाइन विशेषताएँ मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के लिए महत्वपूर्ण कारक हैं। किसी भी स्वतंत्र चर को छात्र प्रदर्शन के महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता के रूप में नहीं पहचाना गया। ये अंतर आगे की जांच के लिए खुले हैं ताकि यह समझा जा सके कि क्या वे समान या अलग शिक्षण सेटिंग में मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता हो सकते हैं।

मिश्रित शिक्षण को डिजाइन करने और लागू करने की योजना बनाते समय, हम इस अध्ययन द्वारा उठाए गए निहितार्थों के प्रति सचेत हैं, जो मिश्रित शिक्षण के डिजाइन और अंतिम कार्यान्वयन के लिए एक योजना मूल्यांकन अनुसंधान हैं। विश्वविद्यालयों को शिक्षार्थी की विशेषताओं, डिजाइन सुविधाओं और सीखने के परिणामों के बीच परस्पर क्रिया के प्रति सचेत रहना चाहिए जो मिश्रित शिक्षण प्रभावशीलता के संकेतक हैं। इस शोध से, शिक्षार्थियों में मिश्रित शिक्षण को अपनाने की उच्च क्षमता प्रकट होती हैं, विशेष रूप से शिक्षार्थी के आत्म-नियमन के संबंध में। मिश्रित शिक्षण का उद्देश्य शिक्षार्थियों के ज्ञान निर्माण के स्तर को बढ़ाना हैं ताकि उनमें विश्लेषणात्मको कौशल पैदा हो सके। हमारे निष्कर्षों में ज्ञान स्रोतों का आकलन करने और उनका आलोचनात्मक मूल्यांकन करने की शिक्षार्थी की क्षमता स्थापित की गई हैं। यह कुशल शिक्षार्थियों को तैयार करने में एक लंबा रास्ता तय कर सकता हैं जो रचनात्मकता और नवीनता के माध्यम से रोजगार की मांगों को पूरा करने के लिए पर्याप्त रूप से अभिनव स्नातक हो सकते हैं। छात्रों के लिए प्रौद्योगिकी का कम झटका होना मिश्रित शिक्षण डिजाइन की क्षमता देता हैं। विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थानों को विकासशील देशों में विशेष रूप से प्रौद्योगिकी के माध्यम से प्रभावी शिक्षण को सक्षम करने के लिए मजबूत इंटरनेट के साथ-साथ शिक्षण प्रबंधन प्रणालियों की स्थापना के माध्यम से मिश्रित शिक्षण दृष्टिकोणों पर जोर देना जारी रखना चाहिए।

सन्दर्भ

1. Ahmad, N., &Al-Khanjari, Z. (2011). Effect of Moodle on learning:An Oman perception. *International Journal of Digital InformationAnd Wireless Communications (IJDIWC), 1*(4), 746–752.
2. Anderson, T. (2004). *TheoryAnd Practice of Online Learning*. Canada:AU Press,Athabasca University.
3. Arbaugh, J. B. (2000). How classroom environmentAnd student engagementAffect learning in internet-basedMBAcourses. *Business Communication Quarterly, 63*(4), 9–18.
4. Askar, P. &Altun,A. (2008). Learner satisfaction on blended learning. *E-Leader Krakow*, 2008.
5. Astleitner, H. (2000) DropoutAnd distance education.A review of motivationalAnd emotional strategies to reduce dropout in web-based distance education. In Neuwe Medien in Unterricht,Aus-und Weiterbildung Waxmann Munster, New York.
6. Barnard, L., Lan, W. Y., To, Y. M., Paton, V. O., & Lai, S. (2009). Measuring self regulation in onlineAnd blended learning environments'. *InternetAnd Higher Education, 12*(1), 1–6.
7. Beard, L.A., Harper, C., & Riley, G. (2004). Online versus on-campus instruction: studentAttitudes & perceptions. *TechTrends, 48*(6), 29–31.
8. Berenson, R., Boyles, G., & Weaver,A. (2008). Emotional intelligenceAsA predictor for success in online learning. *International Review of Research in open & Distance Learning, 9*(2), 1–16.
9. Blocker, J. M., & Tucker, G. (2001). Using constructivist principles in designingAnd integrating online collaborative

interactions. In F. Fuller & R. McBride (Eds.), *Distance education. Proceedings of the Society for Information Technology & Teacher Education International Conference* (pp. 32–36). ERIC Document Reproduction Service No. ED 457 822.

10. Cohen, K. E., Stage, F. K., Hammack, F. M., & Marcus,A. (2012). *Persistence of master's students in the United States: DevelopingAnd testing ofA conceptual model*. USA: PhD Dissertation, New York University.
11. Coldwell, J., Craig,A., Paterson, T., & Mustard, J. (2008). Online students: Relationships between participation, demographicsAndAcademic performance. *The Electronic Journal of e-learning, 6*(1), 19–30.
12. Demirkol, M., & Kazu, I. Y. (2014). Effect of blended environment model on high school students'AcademicAchievement. *The Turkish Online Journal of Educational Technology, 13*(1), 78–87.
13. Eom, S., Wen, H., &Ashill, N. (2006). The determinants of students' perceived learning outcomesAnd satisfaction in university online education:An empirical investigation'. *Decision Sciences Journal of Innovative Education, 4*(2), 215–235.
14. Garrison, D. R., & Kanuka, H. (2004). Blended learning: Uncovering its transformative potential in higher education. *InternetAnd Higher Education, 7*(2), 95–105.
15. Goyal, E., & Tambe, S. (2015). Effectiveness of Moodle-enabled blended learning in private Indian Business School teaching NICHE programs. *The Online Journal of New Horizons in Education, 5*(2), 14–22.
16. Hadad, W. (2007). ICT-in-education toolkit reference handbook. InfoDev. from http://www.infodev.org/en/Publication.301.html. Retrieved 04 Aug 2015.
17. Hara, N. & Kling, R. (2001). Student distress in web-based distance education. *Educause Quarterly. 3*(2001).
18. Heinich, R., Molenda, M., Russell, J. D., & Smaldino, S. E. (2001). *Instructional MediaAnd Technologies for Learning* (7th ed.). Englewood Cliffs: Prentice-Hall.
19. Hofmann, J. (2014). Solutions to the top 10 challenges of blended learning. Top 10 challenges of blended learning.Available on cedma-europe.org.
20. Islam,A. K. M. N. (2014). Sources of satisfactionAnd dissatisfaction withA learning management system in post-adoption stage:A critical incident techniqueApproach. *Computers in Human Behaviour, 30,* 249–261.
21. Kelley, D. H. & Gorham, J. (2009) Effects of immediacy on recall of information. *Communication Education, 37*(3), 198–207.
22. Kenney, J., & Newcombe, E. (2011).AdoptingA blended learningApproach: Challenges, encounteredAnd lessons learned inAnAction research study. *Journal ofAsynchronous Learning Networks, 15*(1), 45–57.
23. Kintu, M. J., & Zhu, C. (2016). Student characteristicsAnd learning outcomes inA blended learning environment intervention inA Ugandan University. *Electronic Journal of e-Learning, 14*(3), 181–195.
24. Kuo, Y., Walker,A. E., Belland, B. R., & Schroder, L. E. E. (2013).A predictive study of student satisfaction in online education programs. *International Review of Research in OpenAnd Distributed Learning, 14*(1), 16–39.

भारत में न्यायिक सक्रियता: एक विवेचन

रेणु बाला गुप्ता

व्याख्याता, दुर्गा देवी उच्च माध्यमिक विद्यालय, मालाखेड़ा, अलवर

लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में सरकार के तीनों अंगों की भूमिका निर्धारित होती है। सरकार के तीनों अंगों अर्थात विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र में सीमित रहे, किसी दूसरे अंग के कार्यों का अधिग्रहण न करे। लोकतंत्र का यह सर्वमान्य सिद्धान्त 'शक्तियों के पृथक्करण' सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। परन्तु जब सरकार का एक अंग दूसरे अंगों के कार्यकलापों में हस्तक्षेप करता है तो इसे सक्रियता कहते हैं। वैसे सक्रियता सरकार के किसी भी अंग की हो सकती है। यदि हम भारत तथा अन्य लोकतांत्रिक देशों के इतिहास पर नजर डालें तो लम्बे समय तक विधायिका तथा कार्यपालिका सक्रिय स्थिति में रहे। परन्तु भारत में विगत दो-तीन दशकों में न्यायपालिका सक्रिय स्थिति में रही है। न्यायिक सक्रियता का तात्पर्य है न्यायपालिका द्वारा अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार करना, इसके द्वारा विधायिका तथा कार्यपालिका के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण करना। परम्परागत रूप से यह माना जाता है कि न्यायपालिका का कार्य संविधान और कानून की व्याख्या करना तथा पीड़ित पक्ष को न्याय प्रदान करना है। जब न्यायपालिका अपने इस दायित्व से आगे बढ़कर कानून अथवा नीति निर्माण और क्रियान्वयन करने का प्रयास करती है तो इसे न्यायिक सक्रियता की संज्ञा दी जाती है। न्यायिक सक्रियता इस बात का संकेत है कि अन्य दो संस्थाएँ अर्थात विधायिका तथा कार्यपालिका कमजोर हुई है। भारत में न्यायिक सक्रियता विरोध रूप से 1980 के दशक से आरम्भ होता जब जनहित याचिका की संकल्पना (एस. वी. गुप्ता वाद) को औपचारिक रूप से मान्यता दी गयी। 1990 के दशक से न्यायिक सक्रियता में वृद्धि हुई है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि न्यायिक सक्रियता शब्दावली का प्रयोग आलोचकों द्वारा किया जाता है। न्यायपालिका स्वयं को सक्रिय नहीं मानती है। जब भी न्यायपालिका पर सक्रिय होने का आरोप लगाया जाता है न्यायपालिका तर्क देती है कि वह तो केवल अपने संवैधानिक दायित्वों का निर्वहन कर रही है। न्यायपालिका यह तर्क देती है कि संविधान द्वारा उस संविधान की रक्षा, नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा, कानून के शासन को लागू करने की जिम्मेदारी दी गयी है। इन्हीं तर्कों के आधार पर वह न्यायिक सक्रियता के आरोंपों को खारिज कर देती है। भारत में न्यायिक सक्रियता के लिए अनेक कारक उत्तरदायी है। 1970 के दशक के मध्य से ऐसी परिस्थितियाँ बननी आरम्भ हुई जिसके कारण न्यायपालिका को सक्रिय होने के लिए विवश होना पड़ा। संसद का ह्रास, राजनीतिक तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक व्यवस्था में धन और बल के बढ़ते प्रभाव कानून को लागू करने में प्रशासन की अकर्मण्यता, सामाजिक न्याय सुलभ कराने में सरकार की असफलता, कमजोर वर्गो का सशक्तिकरण नहीं होना, अधिकारों का हनन आदि कुछ ऐसे कारण थे जिनके चलते विधयिका तथा कार्यपालिका की विश्वसनीयता कम हो रही थी और ये संस्थाएँ 'वैधता के संकट' से गुजर रही थी इसी दौरान भारत में जन आंदोलन तेज हो रहे थे। अनेक नागरिक अधिकार संगठनों (जैसे-पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिवर्टीज (पी. यू. सी. एल.), पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पी. यू. डी. आर.) तथा पर्यावरण संरक्षण से जुड़े संगठनों का उदय हो रहा था। इन सब परिस्थितियों के फलस्वरूप न्यायपालिका की भूमिका बढ़ने लगी। न्यायपालिका लोगों की आशा का केन्द्र बनी।

न्यायिक सक्रियता के दृष्टिकोण से केशवानंद भारती वाद (1973) काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। इस वाद में सर्वोच्च न्यायलय ने आधारिक संरचना का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार संविधान के कुछ ऐसे आधारभूत तत्व है जिनमे संविधान संशोधन द्वारा परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इस निर्णय से संसद की संविधान संशोधन करने की शक्ति हो गयी। संविधान

के कौन-कौन से तत्व आधारिक संरचना के अन्तर्गत आते हैं यह परिभाषित करने का अधिकार न्यायालय ने अपने पास रखा। इससे न्यायपालिका की शक्ति में काफी वृद्धि हुई। न्यायिक सक्रियता की दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण वाद मेनका गाँधी वाद (1978) था। इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने 'विधि की स्थापित प्रक्रिया' से हटकर 'विधि की यथोचित प्रक्रिया' के सिद्धान्त को अपना लिया। परिणामस्वरूप न्यायपालिका ने 'प्राकृतिक न्याय' के सिद्धान्त के आधार पर विधायिका तथा कार्यपालिका के कार्यकलापों का मूल्यांकन आरंभ कर दिया।

जनहित याचिका तथा न्यायिक सक्रियता

1980 के दशक में जनहित की संकल्पना के फलस्वरूप न्यायपालिका की शक्ति में काफी वृद्धि हुई। इस संकल्पना के फलस्वरूप समाज के कमजोर तथा वंचित वर्गों को, जो गरीबी, अज्ञानता आदि के कारण न्याय पाने में असमर्थ थे, न्याय सुलभ होने का मार्ग प्रशस्त हुआ। न्यायपालिका ने यह मत प्रकट किया कि पीड़ित पक्ष न्यायालय के सामने रख सकती है। यदि कोई ऐसा मुद्दा हो जिससे व्यापक जनहित जुड़ा हुआ हो तो उसे भी न्यायपालिका के सामने रखा जा सकता है। जनहित याचिका में न्यायालय वाद दायर करने की सामान्य प्रक्रिया में छूट देती है। जनहित वादों के अग्रणी न्यायधीशों में न्यायाधीश वी. आर. कृष्ण अय्यर तथा न्यायाधीश पी. एन. भगवती प्रमुख है। जनहित वादों के कारण न्यायिक सक्रियता में वृद्धि हुई तथा न्यायपालिका सामाजिक न्याय के माध्यम के रूप में स्थापित हुई।

न्यायिक समीक्षा तथा न्यायिक सक्रियता

न्यायिक समीक्षा न्यायिक सक्रियता के लिए आधार का काम करती है। न्यायिक समीक्षा के अन्तर्गत न्यायपालिका, विधायिका तथा कार्यपालिका के कार्यों के वैधता की जाँच करती है, संविधान की व्याख्या करती है। इसी क्रम में जब न्यायपालिका संवैधानिक प्रावधानों की विस्तृत तथा लचीली व्याख्या करती है तो यह न्यायिक सक्रियता कहलाता है। अत: न्यायिक सक्रियता न्यायिक समीक्षा से आगे जाता है। उदाहरण के लिए संविधान का अनुच्छेद-21 नागरिकों को जीवन का अधिकार प्रदान करता है। न्यायपालिका ने इस अधिकार की विस्तृत व्याख्या की है तथा इसमें जीवन को स्वस्थ तथा गरिमायुक्त बनाने वाले सभी तत्वों को शामिल किया है जैसे-स्वच्छ जल का अधिकार, स्वच्छ र्प्यावरण का अधिकार, न्यूनतम मजदूरी पाने का अधिकार, चिकित्सकीय सहायता पाने का अधिकार आदि। यह न्यायिक सक्रियता का उदाहरण है। न्यायालय ने अनु. 14, 19, 21, 32 तथा 39 (ए) की विस्तृत व्याख्या कर न्यायपालिका की शक्ति में अभिवृद्धि की है।

न्यायिक सक्रियता का सकारात्मक पक्ष

जनसामान्य में न्यायपालिका की सक्रियता के प्रति प्रशंसा का भाव रहा है। राजनीतिक तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचार, प्रशासनिक उदासीनता तथा निष्क्रियता के कारण राहत मिली है। न्यायिक सक्रियता के कारण प्रशासन में सजगता आयी है। राजनीतिक तथा प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर अंकुश लगा है। उदाहरण के लिए अब चुनाववों में उम्मीदवारों को नामांकन के समय अपनी सम्पत्ति, शिक्षा तथा अपने ऊपर चल रहे आपराधिक मामलों की जानकारी शपथपत्र के माध्यम से देना होता है। इसी प्रकार विनीत नारायण मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सी. बी. आई. को सरकार के बजाय सीधे सर्वोच्च न्यायालय को रिपोर्ट भेजने के लिए कहा। जनहित याचिका के फलस्वरूप खर्चीली तथा जटिल न्यायिक प्रणाली से छुटकारा मिला है। अब समाज के कमजोर तथा वंचित वर्गों को न्याय सुलभ होने का मार्ग प्रशस्त हो गया है जो न्याय की सामान्य व्यवस्था के अन्तर्गत न्याय पाने में असमर्थ थे जैसे-जेलों में बंद कैदी या बंधुआ मजदूर आदि।

न्यायिक सक्रियता के कारण भारत की न्यायपालिका एक प्रगतिशील तथा उदारवादी न्यायपालिका के रूप में सामने आयी है। व्यक्तिगत न्याय के साथ ही न्यायपालिका ने एक मानवी दृष्टिकोण अपनाते हुए समाज के विभिन्न वर्गों के सामूहिक हितों की चिन्ता करते हुए सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए पहल किया है।

न्यायिक सक्रियता के कारण नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा मानव अधिकारों की रक्षा हुई है। न्यायपालिका ने मौलिक अधिकारों का क्षेत्र विस्तृत किया है। बंधुआ मजदूरी, बाल श्रम, पर्यावरण सुरक्षा, हिरासत में मृत्यु के विरूद्ध कार्यवाही, मनमानी गिरफ्तारीयाँ, दमनकारी कानूनों के इस्तेमाल आदि मामलों में उच्चतम तथा उच्च न्यायलयों की सक्रिय भूमिका काफी चर्चित रही है।

आरम्भ में न्यायपालिका को नीति निदेशक तत्वों को लागू करने में बंधक के रूप में देखा जाता था क्योंकि उसने मौलिक अधिकारों को अधिक महत्ता प्रदान की। परन्तु 1980 के दशक से मौलिक अधिकारों तथा नीति निदेशक तत्वों के मध्य को समाप्त करते हुए न्यायपालिका ने अनेक नीति निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए सरकार को निर्देश देना आरम्भ किया इस प्रकार

न्यायिक सक्रियता के कारण सरकार नीति निदेशक तत्वों को लागू करने के प्रति गम्भीर हुई है। वर्तमान समय में प्रदत्त विधायन के कारण कार्यपालिका की शक्ति काफी विस्तृत हो गयी है। इससे कार्यपालिका को नियम, उपनियम आदि बनाने की व्यापक शक्ति प्राप्त हुई है। ऐसी स्थिति मं कार्यपालिका द्वारा कानून के दुरूपयोग की आशंका भी बढ़ गयी है। न्यायिक सक्रियता से ऐसे दूरूपयोग पर अंकुश लगाया जा सकता है।

न्यायिक सक्रियता का नकारात्मक पक्ष

आलोचकों के अनुसार न्यायिक सक्रियता एक स्वरूप परम्परा नहीं है। इससे शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को आघात लगता है। संवैधानिक संतुलन भंग होता है। सरकार के तीनों अंगों के मध्य तनाव एवं टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए पैसा लेकर संसद में प्रश्न पूछने के कारण लोकसभा ने अपने कुछ सांसदों को सदन से निष्कासित कर दिया था। इसके विरूद्ध निष्कासित सदस्यों ने सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर किया। इस याचिका का संज्ञान लेते हुए सर्वोच्च न्यायालय तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष को नोटिस भेजा परन्तु लोकसभा अध्यक्ष ने नोटिस का उत्तर देने से इनकार कर दिया। इससे विधायिका तथा न्यायपालिका के मध्य तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। जहाँ तक जनहित का प्रश्न है न्यायपालिका यह दावा नहीं कर सकती कि उसे जनहित की सबसे अधिक समझ है। जनहित के मामले में न्यायपालिका की तुलना में विधयिका तथा कार्यपालिका की समझ तथा अनुभव अधिक है। पुन: न्यायाधीशों कें निर्णयों में आत्मनिष्ठता होती है जबकि विधायिका तथा कार्यपालिका के निर्णयों में स्वाभाकि रूप से वस्तुनिष्ठता अधिक होती है।

यह भी आवश्यक नहीं है कि न्यायपालिका जनहित के प्रत्येक मामले पर व्यवहारिक समझ रखे। कई बार यह देखा गया है कि न्यायपालिका व्यवहारीक तथा तकनीकी पक्षों को नजरअंदाज कर देती है। न्यायपालिका द्वारा दिये गये निर्देशों को पूरा करने में सरकार को जो प्रशासनिक कठिनाईयाँ हो सकती है इसे न्यायपालिका अनदेखा कर देती है। यदि न्यायपालिका सरकार के कामकाज में अत्यधिक हस्तक्षेप करेगी तो वह अप्रभावी हो जायेगी क्योंकि अधिक आदेश जारी करने पर उसका कार्यान्वयन सुनिश्चित करना कठिन हो जायेगा। न्यायिक सक्रियता की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि न्यायपालिका एक प्रतिनिधिक इकाई नहीं है। न्यायपालिका जनता के प्रति उस रूप में उत्तरदायी नहीं है जिस रूप में विधायिका तथा कार्यपालिका है।

न्यायिक सक्रियता लोकप्रिय सम्प्रभुता के सिद्धान्त का उल्लंघन है। लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित व्यवस्था में सामाजिक आर्थिक नीति निर्धारित करने का दायित्व विधायिका का है। यदि न्यायपालिका विधायिका द्वारा निर्मित कानून पर आक्षेप लगाती है तो इसका सीधा अर्थ यही है कि वह जनता की राजनीतिक क्षमता को कम करके आँकती है। जनहित याचिका के कारण न्यायपालिका पर मुकदमों का बोझ बढ़ गया है। परिणामस्वरूप न्यायपालिका अपने परम्परागत दायित्वों को पूरा करने में नाकाम हो गयी है। हाल ही में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने न्यायपालिका का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया कि उच्च न्यायालयों में 30 लाख से भी अधिक मामले लंबित है। भारतीय न्यायपालिका इस मामले में अनूठी है कि वह अपनी नियुक्ति स्वयं करती है। उच्च न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति में कार्यपालिका की भूमिका अत्यन्त सीमित हो गयी है। इसके अतिरिक्त उच्च स्तर पर न्यायपालिका में भ्रष्टाचार तथा न्यायाधीशों द्वारा अपनी सम्पत्ति को सार्वजनिक करने में अनिच्छा आदि कुछ ऐसे तत्व हैं जिनके कारण न्यायिक सक्रियता के प्रति न्यायपालिका के आग्रह को स्वीकार करने में कठिनाई है।

निष्कर्ष:-

न्यायिक सक्रियता को आलोचनात्मक आधार पर समझने की आवश्यकता है। यह सच है कि विधायिका तथा कार्यपालिका की अपनी कुछ कमियाँ रही है परन्तु न्यायपालिका भी आरोंपों से पूरी तरह मुक्त नहीं है। हाल में न्यायपालिका के उच्च स्तर पर भ्रष्टाचार के मामलों में वृद्धि हुई है। कोलकाता उच्च न्यायलय के एक न्यायधीश के विरूद्ध संसद मे महाभियोग की सिफारिश की गयी है। कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश दिनकरन के उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नति के विरूद्ध वकीलों के एक समुह ने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को पत्र लिखा है। न्यायधीशें द्वारा अपनी सम्पत्ति को सार्वजनिक किये जाने के पगति अनिच्छा से भी न्यायपालिका की साख को धक्का लगा है। कई बार न्यायधीशों के निर्णय व्यक्तिगत लाभ या लोकप्रियता के दृष्टिकोण से भी प्रेरित रहे है। इन सारे तथ्यों को देखते हुए न्यायपालिका के लिए आत्मावलोकन आवश्यक हो गया है। हाल में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी न्यायिक प्रतिबन्ध (जुडिसियल रेसटेरेन्ट) की माँग की है। उन्होंने न्यायपालिका का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाया कि उच्च न्यायालयों में 30 लाख से अधिक तथा अधीनस्थ न्यायालयों में 2.5 करोड़ से अधिक मामले लंबित है।

इस सारे पहलुओं को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि न्यायपालिका आत्मारोपित प्रतिबंध लगाये। इस दिशा में हाल में कुछ प्रयत्न भी हुए है। स्वयं सर्वोच्च न्यायालय के ही दो न्यायाधीशों ए. के. माथूर तथा मार्कंडेय काटजू ने जनहित याचिका की प्रासंगिकता पर सवाल उठाते हुए न्यायिक सक्रियता पर कठोर टिप्पणी की। यह अभूतपूर्व है क्योंकि पहली बार न्यायपालिका ने अपने

सक्रिय होने की बात को स्वीकार किया है। तात्कालीन लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी तथा भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश जे. एस. वर्मा पहले ही न्यायिक विचलन की प्रवृति पर चिन्ता व्यक्त कर चुके है। अब सर्वोच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों ने भी न्यायपालिका को अपने अधिकार क्षेत्र की सीमा-रेखा का अतिक्रमण न करने की सलाह दी है। इसके पश्चात सर्वोच्च न्यायालय ने जनहित का दायरा छोटा कर दिया गया है ताकि मौलिक अधिकारों के हनन के नाम पर अनावश्यक रूप से याचिका दायर करने की प्रवृति पर अंकुश लग सके। एक अन्य महत्वपूर्ण कदम के तहत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश स्वैच्छिक आधार पर अपनी सम्पत्ति सार्वजनिक करने पर सहमत हुए है।

अंततः न्यायिक सक्रियता के तमाम आलोचनाओं के बावजूद इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि इससे लोकतंत्र में लोगों की आस्था मजबूत हुई है। वस्तुतः न्यायिक सक्रियता ने लोकतंत्र में सेफ्टी वाल्व का काम किया है। इसके कारण विधायिका तथा कार्यपालिका से निराश लोगों में यह उम्मीद जगी कि न्याय उनकी पहुँच के दायरे में है। न्यायिक सक्रियता ने बदलती हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में संविधान की व्याख्या कर उसकी गतिशीलता तथा जीवंतता को बनाये रखने में योगदान दिया है। न्यायपालिका ने यह मत व्यक्त लिया है कि उसका कार्य केवल शब्दकोश की सहायता से संविधान को पढ़ना मात्र नहीं है अपितु उसे स्वर तथा व्यवहारिकता प्रदान करना है। इस उद्देश्य में न्यायपालिका सफल हुई है। यह सच है कि न्यायिक सक्रियता के कारण शक्तियों के पृथक्करण सिद्धान्त को धक्का लगा है परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि शक्तियों का पृथक्करण अपने आप में हमारा लक्ष्य नहीं है। हामारा लक्ष्य तो है लोक कल्याण, संविधान का संरक्षण मौलिक अधिकारों का सरंक्षण। इन उद्देश्यों में न्यायपालिका सफल रही है। न्यायिक सक्रियता ने सरकार को सुशासन की ओर प्रवृत किया है। अतः भारतीय सन्दर्भ में न्यायिक सक्रियता का प्रभाव सकारात्मक रहा है। परन्तु न्यायिक सक्रियता को 'न्यायपालिका द्वारा शासन' के स्तर तक नहीं खींचा जाना चाहिए। नीति निर्माण तथा क्रियान्वयन मूलतः विधायिका तथा कार्यपालिका का ही दायित्व है। इसमें जहाँ कमी रह जाये वहाँ न्यायपालिका को सामने आना चाहिए। अतः न्यायिक सक्रियता को अल्पकालिक उपाय के रूप में ही देखा जाना चाहिए। हम इसे दवा के रूप में तो स्वीकार कर सकते है परन्तु दैनिक आहार के रूप में नहीं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Judicial Activism in India – Transgressing Borders and Enforcing Limits – S.P.Sathe.
2. Judicial Activism in India – B.S. Tyagi.
3. New Dimensions of Justic, 2000 – Justic J.S. Verma.
4. Judicial Activism – A National Necessity – Justic Gulab Gupta.
5. Judicial Review and Judicial Activism, 1997 – K.L. Bhatia.
6. Public Interest Litigation - P.M. Bakhsi.
7. Taking Justic outside the courts – Judicial Activism in India – Arvind verma.
8. Judicial Activism and Administrative autonomy – V.R. Krishana Iyer.
9. Bar Association of India Lecture, 1997.
10. The Hindu : opinion/op Ed – 18 July 2009.
11. The Hindu : opinion/leader page Articles – 2 April 2007.
12. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था-एस. एम. सईद।
13. भारतीय शासन और राजनीति-ए. एस. नारंग।

पर्यावरण प्रदूषण एवं नैतिकता का भौगोलिक अध्ययन

डॉ० आदित्य कुमार

पी-एच०डी०, भूगोल विभाग, बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

पर्यावरण प्रदूषण मानव की असीमित आवश्यकताओं आर्थिक व तकनीकी विकास तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण बढ़ गई है। मानव अपने जीवन को अधिक सुविधा जनक बनाने के लिए पर्यावरण को दुषित कर रहा है। प्रदूषण के कारण पृथ्वी के समस्त जीव धारियों का जीवन संकट में पड़ गया है। अत: तात्कालिक आवश्यकताओं के साथ भावी पीढ़ी के जरूरतों का आकलन करते हुए संसाधनो के दोहन की व्यूह रचना बनाना, पर्यावरण की गुणवता का पुर्न स्थापन, आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिक संतुलन आदि लक्ष्य दीर्घ कालीन योजना व कुशल प्रबंधन से ही पर्यावरण संतुलित रहेगा, नीति निर्माण, कियान्वयण, विभिन्न स्तरों का समन्वय, प्रशासनिक व्यवस्था एवं आर्थिक प्रबंधन जैसे पक्षों की पर्यावरण संरक्षण में महती भूमिका होती है।

कुंजी शब्द- तकनीकी, प्रबंधन क्रियान्वयन, नीति निर्माण

प्रस्तावना-

पर्यावरण से अभिप्राय हमारे चारो ओर फैले हुए उस वातावरण एवं परिवेश से है जिससे हम घिरे रहते है। प्रकृति में विद्यमान समस्त जैविक एवं अजैविक घटक मिलकर पर्यावरण की रचना करते है, इसमें जल, वायु, भूमि, सूर्य प्रकाश, वनस्पति जंतु एवं मानव प्रमुख है। इन आधार तत्वों का एक निश्चित अनुपात तथा संतुलन बने रहना आवश्यक है। आज पर्यावरणीय समस्याओं के कारण जीवो के अस्तित्व खतरे में है अत: पर्यावरण संरक्षण आवष्यक हो गया है।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. प्रदूषण के तत्वों की पहचान कर उसका विश्लेषण करना।
2. ठोस द्रव एवं गैसीय प्रदूषको की मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव का आकलन करना।
3. मनुष्य को जागरूक कर संपोषित संसाधनों का विवेक पूर्ण उपयोग करते हुए पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका का अध्ययन करना।

आज वर्तमान परिस्थिति में पर्यावरण का संतुलन बनाये रखना आवश्यक हो गया है मानव की भौतिकवाद प्रवृतियों ने पर्यावरण को बिगाड़ दिया है जैसे जैसे शिकच का विकास हुआ वैसे वैसे पर्यावरण. मे नैतिकता की आवश्यकता महसूस हुई। भारत भूमि की संस्कृति में प्राचीन युग से आधुनिक युग तक किसी न किसी रूप में हम प्रकृति पर निर्भर है। पर्यावरण पृथ्वी परीस्थीति प्राकृतिक संसाधनों वन एवं वन्य जीव ऊर्जा पर्यावरण प्रदूषण पर्यावरण प्रबधक पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण शिखच सभी में नैतिकता को ध्यान में रखना है। पर्यावरण से मानव जीवन एवं अन्य प्राणी विभिन्न प्रकार के वृक्ष वन्य जीव आदि का भरन पोषण निर्भर है जिनके कारण प्रतिपालन तंत्र बन जाता है। अत: वर्तमान में पर्यावरण को समझने तथा उसकी बाधाओं को दूर कर उसे संतुलित एवं जन उपयोगी बनाने हेतु मनुष्य को अपने दृष्टिकोण को लक्ष्य केन्द्रित तथा परिणाम केन्द्रित करना होगा और अंतिम उपलब्धि पर्यावरण की गुणवत्ता रखना होगा इसी से जीवन की गुणवत्ता हो सकती हैं।

पर्यावरण में नैतिकता को बनाये रखने के लिए निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन आवश्यक है। पर्यावरण के प्रति जागरुकता विकसित करना, पर्यावरण आचार संहिता का विकास करना, पर्यावरण सुधार, बढ़ती आबादी पर नियंत्रण स्वचख पर्यावरण की सुखद कल्पना को साकार करना। पर्यावरण समस्याओं को प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि और उचित उपयोग वायु जल भूमि और उनकी प्रदूषण निवारण करके, पर्यावरण कानूनी पर्यावरण साहित्य का निर्माण और उनका वितरण, पर्यावरण के छहतारा में शोध के माध्यम से कम व्यय वाली टखलीफ का विकास करके नैतिकता को बढाया जा सकता है। जब से मानव पर विकास हुआ है तब से उसकी रहने की स्थिति उपलब्धि आवश्यक वस्तुए वांछित सुविधाएं और उसके जीवन की इच्छा तथा आकाँक्षाओ में बहुत असमानता है। पिछले कुछ दशकों से जीवन की गुणवत्ता की चर्चा हो रही है और इसी चर्चा से पर्यावरण गुणवत्ता की चर्चा हो रही है वह वातावरण निर्मित हो पर्यावरण गुणवत्ता कहलाता है। पर्यावरण अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बच्चो को अधिक प्राकृतिक सूचना प्रदान करना जिससे पर्यावरणीय अवधारणा कौशल और मूल्यों के संतुलन को समझे मानव जीवन भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति जिससे होती है व संसाधन कहलाती है। प्राकृतिक संसाधनों प्रकृति से मिली वह संपदा हैं जिसे मनुष्य और जीव जंतुओं के कल्याण और सुखमय जीवन के लिए बनाया है। प्रकृति में कमी की आवश्यकता की पूर्ति करने की कच तक है लेकिन किसी एक के भी लालच की नहीं जल का अत्यधिक उपयोग वन का उपयोग जमीन का उपयोग जैविक विविधता से आशय उस परिवर्तन से है जो आबादी प्रजातियां समुदाय और परिस्थिति तंत्र से मिलता है। भोजन पानी औषधि तथा उद्योग के लिए कचा माल जलीय छात्र की सुविधा पानी की सवछटा मिट्टी की पुन: संरचना तथा उसके उपजाऊ पाने का नियंत्रण और रखाव अधिक ताप का नियंत्रण वायुमंडल का रखरखाव आदि हमारे जीवन के लिए उपयोगी है लेकिन जैविक विविधता के कम होने नष्ट होने विलुप्त होने में मनुष्य की बड़ी भूमिका है। तीरव अवनिकरन प्रजाति संकेतग्रत छहत्रो की अवहेलना जैविक आक्रमण जलवायु परिवर्तन तथा बढ़ती आबादी का प्राकृतिक संसाधनों का अधिक उपयोग तथा सामान्य जन को सूचना और गायन का आभाव से नैतिकता प्रभवित हैं। वास्तविक परिस्थिति में न केवल समझदारी वाले रवैया को अपनाने की उपयुक्त योग्यता का विकास कर भाषा है इसमें व्यक्तिगत अपेक्षा आत्म विधिताओ अभिरुचियों आदि की पहचान हो सके। वायु प्राकृतिक उचित एवं बूढीमत पूर्ण उपयोग कर जल को कल के लिए बचाये पानी का उचित संरचना करे। पानी के दुरुपयोग को रोके नैतिकता किसी व्यक्ति या व्यक्तियों से संबंधित वह सीधा और मूल्य है जिन्हे सामान्यत किसी समाज द्वारा स्वीकार किया जाता है। नैतिकता तत्काल यह निर्णय करने अथवा देने में सक्षम होतीं हैं कि व्यक्ति अथवा समान द्वारा किये जा रहे हैं कार्य अच्छे हैं या बुरे हैं यही नहीं बल्कि उचित अनुचित कार्य भी नैतिकता के दायरे में आ जाते हैं। आज देश के सभी वर्ग और विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत लोग यह महसूस करते है जिससे कार्य पूरा हो सके।

पर्यावरण के क्षेत्र में मनुष्य की नैतिक भूमिका

मनुष्य के अनैतिक आचरण से जहाँ र्प्यावरण सहित सभी क्षेत्र में ह्रास हुआ है वही अच्छे आचरण और सामाजिक स्वीकृति से किये जाने वाले व्यावहारिक क्रियाकलापों के उत्थान से प्रभावित होने वालो कार्यकलपों में मनुष्य की भूमिका की समेकित प्रयास किये जाने की आवश्यकता हैं।

1. मनुष्य को वैकल्पिक ईधन के उपयोग के लिए तैयार करना।
2. मनुष्य के शौंक को रोक लगाना।
3. प्रकृति में संतुलन के लिए वन सुरक्षा एवं वृक्षारोपण पर बल देना।
4. पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने के लिए मनुष्य को उन्नत तकनीकों का उपयोग करना चाहिए जो विनाष रहित विकास पर आधारित हो।
5. अधिक आबादी को रोकना आवष्यक है। वन्य जीवो का संख्या में कमी, जलवायु परिवर्तन, वर्षा की मात्रा में कमी आदि हुआ है। अत: मनुष्य को अपने मानस मे परिवर्तन करना होगा।
6. मनुष्य को निर्धूम चूल्हे उपलब्ध कराने चाहिए तथा रसोई घर में खिड़की और रोषनदान की व्यवस्था होनी चाहिए।
7. मनुष्य मे सोचने विचारने और कार्य करने की योग्यता और क्षमता है। अत: पर्यावरण को अनेक प्रकार से परिवर्तन कर सकता है। उपर्युकत प्रयास किया गया है जिसमे वह नैतिक रूप से सम्बध है। यह मनुष्य के पर्यावरण में नैतिकता के प्रकार करता है।

नैतिकता ह्रास के संभावित कारणः-

1. व्यक्तिगत स्वार्थपरता
2. लालच
3. आलस्य अजगर करे न चाकरीए पंछी करे न काम। दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।
4. कठोर परिश्रम के प्रति उदासीनता।
5. राष्ट्रीय भावना में कमीं।
6. दूसरो से तुलना करने की होड।
7. बुरी संगत।
8. भविष्य की अनदेखी।
9. आत्मविश्वास और इच्छा शक्ति में कमी।

नैतिकता और पर्यावरणः-

पर्यावरण के क्षेत्र में आज चिंतन करने की दिशा को 4 भागों में विभाजित की गई है। इन 4 विभाजनो के आधार पर अंताराष्ट्रीय संस्थाएं, राष्ट्रीय संस्थाएं और केंद्र सरकार, राज्य स्तरीय संस्थाएं और सामाजिक नेता सभी उचित सुरक्षा, सुधार और प्रबंध के लिए कार्य कर रहे है। इन सभी में व्यावहारिक क्रियान्वयन केवल मनुष्य द्वारा किया जाता है।

नैतिकता के विकास के लिए उपायः-

नैतिकता एक कठिन कार्य है यह सरकार प्रेरित है। अच्छी संगति से अच्छा नागरिक बन सकता है। इससे जीवन मूल्यो के प्रति आस्था होगी अच्छी आदतो का निर्माण होगा। आदर्ष पुरूषों की जीवनियां पठनीय साहित्य से आदर्श व्यक्तित्व का चित्रण प्रस्तुत होगा।

निष्कर्षः-

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का लाभ समाज को मिल रहा है। इसमें हो रही शोध व सूचनाओं का एकत्रीकरण सूचनाओं का आदान-प्रदान पर्यावरण में हो रहे परिवर्तन, वन विनाश, ओजोन क्षरण, प्राकृतिक प्रकोप आदि से संबंधित सूचना दूर संवेदी उपग्रहो द्वारा, इंटरनेट द्वारा घर बैठे मिल रहा है जिसके कारण टेली मेडिसिन का प्राकृतिक विपदाओं के दौरान महत्वपूर्ण उपयोग होता है। सी.टी. स्केन, एम.आर.आई. सोनोग्राफी आदि नवीनतम तकनीकी से चिकित्सा जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये है। इस प्रकार राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रदूषण से मुक्त होने के लिए मानवीय जीवन को बचाने के लिए विभिन्न प्रयास किये जा रहे है। यदि मानव स्वयं को प्रकृति का या पृथ्वी का पुत्र समझे तो उसके किसी भी घटक को प्रदूषित करने, वृक्ष काटने या जीव हिंसा करने की कल्पना भी नहीं करेगा तथा व सुधैव कुटुम्बकम का भाव बना रहेगा। यही पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं का सहज समाधान हो सकता है।

संदर्भ सूची

1. पर्यावरण अध्ययन- डॉ दयाशंकर त्रिपाठी।
2. पर्यावरण अध्ययन- डॉ० रतन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. पर्यावरण प्रदूषण और हम एक संक्षिप्त परिचय- प्रतिभा सिंह।
4. पर्यावरण प्रदूषण एक अध्ययन- डॉ रविंद्र कुमार।
5. पर्यावरण भूगोल- डॉ एच एम सक्सेना पूजा सक्सेना रावत पब्लिकेशन्स जयपुर।
6. पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रबंधन- श्री प्रधान।
7. पर्यावरण एवं मानव जीवन- डॉ सुमन गुप्ता लोकप्रिय विज्ञान सीरीज।
8. पर्यावरण भूगोल- प्रो सविन्द्र सिंह वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर उत्तरप्रदेश
9. पर्यावरण शिक्षा- एम के गोयल अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।

कालिदास की रचना मेघदूतम् में प्रेम-वर्णन एक अध्ययन

डॉ० उपेन्द्र पंडित

प्रभारी प्रचार्य, एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत विभाग) एम०एच०एम० कॉलेज, सोनवर्षा, सहरसा, बिहार

मेघदूत वह अनुपम प्रेम-रचना है जिसमें प्रबन्ध-काव्य की बहिर्मुखता तथा गीति-काव्य की अन्तर्मुखता का मणिकाञ्चन संयोग घटित हुआ है। पूर्वमेध में पर्वत, कानन नगर सरिता इत्यादि के वर्णन में दृश्य-वैविध्य का संमोहन उपलब्ध है जो प्रबन्ध का एक आवश्यक अंग है। यक्ष को धीरललित नायक कहा जा सकता है जो देवयोनि में उत्पन्न है। यक्षिणी विरहविदग्धा नायिका है जिसे नायक अपने कोमल-कातर प्रणय का संदेश भेज रहा है। रस विप्रलंभ श्रृंगार है जिसमें शापजन्य प्रवास हेतु बना है। दूसरा प्रमुख पात्र मेघ है जो भुवनविदित पुष्करावर्त कुल में आविर्भूत हुआ है। काव्य पूर्व तथा उत्तर दो खण्डों में विभक्त है। उषा, निशा, संध्या इत्यादि का सूक्ष्म वर्णन यहाँ उपलब्ध है। यक्षप्रिया का शीलनिरूपण भी कवि ने परोक्ष भाव से किया है जैसा अभी ऊपर दिखाया गया है। यक्ष तथा मेघ के चरित्रांकन के लिए भी पुष्ट संकेत विकीर्ण हुए है। कवि की कल्पना एवं अनुभूति की मोहक छवियों के प्रदर्शन-हेतु, कहने के लिए, एक कथा का आधार भी स्थापित हो गया है। तब, प्रस्तुत रचना को खंडकाव्य की शास्त्रीय परिधि में रखा जाय तो 'टेकनिकल' दृष्टि से कोई आपत्ति नहीं होगी।

लेकिन, बात यही समाप्त नहीं होती। इसमें प्रबन्ध के कथा-तत्त्व का स्फीत रूप वर्तमान नहीं है। कविता के आरम्भिक श्लोकों से प्रतीत होता है. कवि किसी आख्यायिका का वर्णन करने जा रहा है। लेकिन, ज्यांही आषाढ़ मास के प्रथम दिवस में यक्ष पर्वत की चोटी पर लिपटे मेघ को देखता है, त्योंही कहानी टूट जाती है और विरही यक्ष अपनी वेदना का व्याख्यान करने लग जाता है। मेघ कामव्यथा को समझता है और गिरि-शिखर पर बैठे-बैठे यक्ष का सम्पूर्ण आत्मनिवेदन सुनता है। सन्देश समाप्त करने के क्षण-भर पूर्व यख मेघ से पूछता है- ''हे प्रिय मित्र! क्या तुमने मेरा काम करने का निश्चय कर लिया। मैं जानता हूँ कि जब पपीहे तुमसे जल मौगते हैं तब तुम बिना उत्तर दिये उन्हें जल देते हा। सज्जनों की रीति है कि वे बिना कुछ कहे याचक की प्रार्थना पूरी करते हैं। चाहे मित्रता के नाते, चाह मुझे विरही पर करुणा कर, तुम पहले मेरा काम कर देना और बाद को अभीष्ट देशों में विचरण करना। में यही मानता हूँ कि तुम्हारी प्रियतमा बिजली से तुम्हारा कभी वियोग न हो।"

बाद वाले दो-तीन श्लोकों में, मेघ निर्दिष्ट मार्ग से अलका पहुँच गया है और यक्ष का संदेश यक्षिणी को सुना दिया है। अन्त में, कुबेर ने सदयहृदय होकर अपना शाप लौटा लिया है और यक्ष-दम्पत्ति को सम्भोग सुख लूटने के लिए पुनः संयुक्त कर दिया है-

''भोगानिषनविरतमुखं भोजयामास शाश्वत्।"

इस प्रकार, कविता के आदि तथा अन्त में प्रबन्धत्मकता का सन्निवेश हुआ है, किन्तु उसका मूल विवक्ष्यार्थ विरह-विदग्ध प्रणय की कातरता का निवेदन है। गीति-काव्य में भावों का जो कोमल, उच्छल, मर्मस्पर्शी प्रवाह दीखता है. वही आलोच्च कृति का प्राण है। राम्पूर्ण काव्य में वक्ता केवल यक्ष है, मेघ श्रोता अथवा बोद्धव्य ही अन्त तक बना रह गया है।

पाठक केवल यक्ष का आत्मनिवेदन सुनता है, किन्तु मेघ की उपस्थिति का बोध उसे निरन्तर बना रहता है। यह इस रचना का विलक्षण कलात्मक आकर्षण है। यक्ष ने कामना की है-

''मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग।"

और उस श्रेष्ठ जलधर ने दिव्यवाणी से वह संदेश सुनाकर यक्षवधू के प्राण भी बचा लिये है-

''त संदेश जलधरवरो दिव्यवाचाचचक्षे

प्राणर्णास्तस्या जनहितरतो रक्षितु यक्षवध्या:।"(उत्तर (61) अतएव आलोच्य कृति का चौखटा खण्डकाव्य का ही है जिसमें गीति-तत्व के मधुर मोहक उपादान अनुस्यूत हो गये हैं।

मैकडोनेल ने इसे गीति-रत्न' और हिरिया ने सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्यों में से एक बताया है। लेकिन, इसकी गीत्यात्मक आत्मा तथा खण्डकाव्ययात्मक शरीर को ध्यान में रखते हुए, 'मेघदूत' को ''प्रगीतात्मक विप्रलंभ-मूलक खण्डकाव्य" कहा जा सकता है।

मेघदूत में मेघ को दूत बनाने की प्रेरणा कालिदास को कहाँ से मिली, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना संभव नहीं है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में इन्द्र ने सरमा (कुत्ती) को दूती बनाकर असुरों के पास भेजा सरमा को एक शरीर से दूसरे शरीर में सरण करनेवाली जीव-चेतना बताया गया है लेकिन, भारतीय बाघ्मय में यही कदाचित पहली दूती है। तत्पश्चात् वाल्मीकीय रामायण में राम ने हनुमान के द्वारा सीता को संदेश भेजा है। महाभारत में दमयन्ती ने हंस के द्वारा राजा नल के पास अपना प्रेम-संदेश प्रेषित किया है। ध्यातव्य यह है कि सरमा हनुमान तथा हंस, ये तीनों सजीव संदेश वाहक है और मानवी भाषा में बाते करते हैं। कालिदास का मेघ निर्जीव वस्तु है और जड प्रकृति का एक रूप है जो मानवी वाणी समझाता है. किन्तु बोलता कुछ नहीं। कालिदास के सामने ये तीनों उदाहरण रहे होंगे। पुन, 'कामविलापजातक' में एक दु:खी व्यक्ति ने कौए को दूत बनाकर अपनी पत्नी के पास संदेश भेजा है। श्रीहरिहरनाथ डे महोदय ने राजेन्द्रनाथ विद्याभूषण द्वारा रचित बँगला पुस्तक कालिदास के प्राक्कथन में लिखा है कि मेघदूत के प्रणयन के पूर्व, चीन का कवि स्यूकाध (Hsiukan) अपनी एक प्रेम कविता (200 ई०) में मेघ को दूत बनाकर भेजने की कल्पना कर चुका था जिसमें विरहिणी नायिका ने अपने पति को संदेश दिया है। घटकर्पर कवि के 'यमककाव्य' में एक वियोगिनी प्रेयसी ने मेघ को दूत बनाकर अपने प्रियतम के पास संदेश भेजा है, लेकिन यह काव्य निश्चय ही कालिदास के बाद की रचना है और 'मेघदूत' से पूर्णत प्रभावित है। ऐसी अवस्था में, कालिदास ने आलोच्य रचना में कहाँ से प्रेरणा ग्रहण की होगी, निश्वितरूपेण नहीं कहा जा सकता। मल्लिनाथ ने 'मेघदूत' के प्रथम श्लोक की टीका करते हुए लिख है-

सीता प्रति रामस्य हनुमत्संदेशं मनसि निधय मेघसंदेश कवि: कृतवानित्याहू:।

अत: मल्लिनाथ का मत है कि मेघ को दिया गया संदेश हनुमान को दिये गये संदेश से

अनुप्रेरित है। उत्तरमेध में सीता और हनुमान का स्पष्ट उल्लेख भी उपलब्ध है-

''इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा

त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चौवम्" (उत्तर, 42)

रामायण के सुन्दरकाण्ड की कतिपय पक्तियों तथा मेघदूत की कतिपय पक्तियों में भाव-साम्य भी दृष्टिगोचर होता है। दो-तीन दृष्टान्त नीचे दिये जा रहे है।

(1) रामायण में हनुमान ने राम से मार्ग में कहीं विश्राम न करने की प्रतिज्ञा की है-

"प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा"। 'मेघदूत' में यक्ष ने मेघ से कहा है कि मित्र का अभीष्ट करनेवाले काहीं विश्राम नहीं करते- मन्दायन्ते न खलु सृद्धदामभ्युपेतार्थकृत्या:"।

(2) सीता पाले की भारी कमलिनी की भीति चकवे से बिछुड़ी चकवी की तरह उदास है- हिमहतनलिनीव न "शोभा व्यसनपरम्परयातिपीडयमाना। सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृषणां दशां प्रपत्र।

यक्षिणी का भी परिचय यक्ष ने मेघ को वह कहकर दिया है कि प्रियवियुका चकवी की तरह एकाकी रहनेवाली उस विरह-व्यधित सुन्दरी को देखकर तुम्हें यह भ्रम उत्पन हो सकता है कि यह कोई बाला है या पाले से मारी कोई कमलिनी-

दूरीभूते मयि सहचने चक्रवाकीमिवैकाम्।

जातां मन्ये शिशिरमधितां पप्रिनी वान्यरूपाम्।।

(3) रामायण में राम ने सीता से उनका कुशल क्षेम पूछा हैं-

तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागत:। त्वद्वियोगेन दु:खर्त: स त्यां कौशलमब्रतीत्:।। 'मेघदूत' में यक्ष ने भी पहले यक्षिणी का कुशल पूछा है- अव्यापत्र: कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्त, पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव।

(4) हनुमान के कुछ पहचान माँगने पर, गीता ने इन्द्र के पुत्र उस कौए की कहानी कही है जिसने चित्रकूट में उसके स्तन में चोंच मारी थी (दे० सुन्दरकाण्ड, 28वाँ सर्ग)। यक्ष ने मेघ से. यक्षिणी को विश्वास दिलाने के लिए, उस स्वप्न की कहानी कही है जिसमें यक्षिणी अचानक रोते हुए नींद से जाग पड़ी थी, यह स्वप्न देख कर कि यक्ष किसी अन्य स्त्री के साथ रमण कर रहा है– ''भूयश्चाहं त्वमपि शायने कण्ठलग्ना पुरा में निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा। सान्तहर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन्कामपि त्वं मयेति।। उपर्युद्धृत अवतरणों के अवलोकन से ऐसा आभासित होता है कि कालिदास के सम्मुख, मेघदूत का प्रणयन करते समय, वाल्मीकीय रामायण के सुन्दरकाण्ड का यह संदर्भ अवश्य वर्तमान रहा होगा। अतएव, निष्कर्ष-रूप में मल्लिनाथ का उपर्युक्त अनुमान स्वीकार्य हो सकता है– यद्यपि मेघ को दूत बनाने में, यदि हमारे कवि को स्यूकांछ्वाली कविता की जानकारी न रही हो, कालिदास की निराली मौलिकता सर्वथा श्लाध्य मानी जायगी।

कालिदास ने मेध के लिए रामगिरि से अलका तक के मार्ग का निर्देश तो कर दिया है लेकिन मेध किस मार्ग से वापस आएगा, इसके विषय में उन्होंने कोई स्पष्ट कल्पना नहीं की। सम्पूर्ण कविता में मेघ के मानसून द्वारा उत्तर की ओर ले जाये जाने का भाव व्याप्त है क्योंकि जून से सितम्बर तक भारतवर्ष में मानसून के बहने की यही दशा है। जनवरी और फरवरी में पश्चिमोत्तर भारत से गंगा की घाटी होते हुए जाड़े का मानसून पूर्व-दक्षिण पूर्व दिशा में बहता है। लेकिन, उस समय आकाश प्राय निरव रहता है। नहीं तो यह सोचा जा सकता है कि जून में प्रस्थान करने के सात-आठ महीने बाद जनवरी में मेध अलका से रामगिरि वापस पहुंचता। लम्बी दूरी और प्राचीन भारत में पर्यटन की मन्दगति का ध्यान रखते हुए, ऐसी दीर्घकालीन यात्रा असंभव नहीं कही जाएगी।

कालिदास ने किन यात्राओं को ध्यान में रखा होगा? यह निश्चित नहीं है कि उस समय भी आज की ही तरह तीर्थयात्री गर्मी के मौसम में ही कैलास की यात्रा करते रहे होंगे। लेकिन, इतना निस्संदेह है कि ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन-धर्मावलम्बी साधु सतत पर्यटन करते रहते थे और वर्षाऋतु में केवल किसी गाँव या मठ में ही विश्राम कर सकते थे। किन्तु साधारण लोग लम्बी तीर्थ-यात्राओं को मन्दिरों में ठहरकर सम्पन्न किया करते थे। महाभारत में ऐसी तीर्थ-यात्राओं का वर्णन मिलता है, और पुराणों में तीर्थयात्रियों के मार्गों तथा उनकी स्थानीय दन्तकथाओं का उल्लेख हुआ है। महाभारत में अर्जुन इत्यादि विजयी वीरों के पर्यटन का भी वर्णन प्राप्त है। रामायण में सुग्रीव ने वानरों को चार भागों बाँटकर, उन्हें सीता की खोज के लिए चारों दिशाओं में भेज दिया है। कालिदास का पर्यटन-विषयक ज्ञान सभी सूत्रों से गृहीत रहा होगा और मेघ की कैलास यात्रा में उन्हें इनसे प्रेरणा मिली होगी।

नेघदूत पर लगभग 50 टीकाएँ उपलब्ध हैं। विदेशी विद्वानों ने इसकी भूयसी प्रशंसा की है। सी०ए० किंसेड (C.A.Kincaid) का कथन है कि यह ''किसी भी भाषा में सर्वाधिक विस्मयजनक प्रेम-कविता है। प्रो० विल्सन ने इसकी 'सरल किन्तु साथ ही, अत्यन्त सुष्ठु एवं परिमार्जित' शैली की परिशसना की है और मैकडोनेल इसमें उपलब्ध भावों की गहराई तथा प्रकृति के रमणीय चित्रों का प्रशंसक है। किन्तु, सुप्रसिद्ध विद्वान् कीथ ने माना है कि प्रस्तुत कविता संस्कृत साहित्य से यूनानियों की शोकरचना (म्समहल) के सर्वाधिक निकट पहुँचती है और देवकोटि के पात्रों से संबंध होने के कारण, किश्चित् अवास्तविक बन गई है। कीथ आगे यह कहते हैं ''यक्ष-दम्पति का विप्रयोग अल्पकालिक है और उसका पुन-मिलन निश्चित है। इस प्रकार नायक की विहवल वेदना आधुनिक मनुष्य की कम मनुष्योचित प्रतीत होती है क्योंकि हमें और बड़े-से-बढ़े ग्रीक इतिहासकार के लिए ईश्वर-प्रदत्त विपदा के सहन का साहस मानव का कर्तव्य जान पड़ता है। शिलर की रचना मैरिया स्टुअर्ट में वन्दिनी रानी ने बादलों को यह आदेश दिया है कि दक्षिण की ओर जाते समय उन्हें उस देश को नमस्कार करना चाहिए जहाँ उसने अपने यौवन के आनन्दमय दिन व्यतीत किये हैं। यहाँ शिलर द्वारा मेघों को सन्देशवाहक बनाने की रूढ़ि का अधिक प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया गया है। दुर्भाग्य-ताड़ित महिषी यह भलीभांति जानती है कि अब उसके लिए अपनी सुन्दर मातृभूमि फ्रांस का दर्शन असम्भव है. और इस प्रकार उसकी परिस्थिति सचमुच करुणोत्पादक बन गई है। कीथ की यह टिप्पणी अनुचित है. क्योंकि कालिदास का उद्देश्य यहाँ शोक कविता (Elegy) रचने का नहीं था। रघुवंश में वर्णित अज-विलाप तथा कुमारसम्भव में वर्णित रति-विलाप शोक कविता की सीमा में समाहृत हो सकते हैं। किन्तु मेघदूत की कविता प्रणय कातर हृदय की अभिव्यक्ति है जिसकी विवशता एवं विह्वलता इसीलिए अधिक बढ़ गई है कि उसका प्रिय पात्र से विशेष केवल शापजन्य, और इसी कारण अस्थायी है। 'शोक कविता' में प्रिय वस्तु का विछोह स्थायी होता है और इसीलिये उसकी पुनः प्राप्ति की सम्भावना का सर्वथा निषेध होने के कारण मनुष्य उस विपत्ति को सहन करने के लिए धीरे-धीरे तैयार हो जाता है। मेघदूत की कविता इस कोटि की नहीं है. और इसीलिए इसे एलिजी की कसौटी पर कसना अनुचित एवं असडतः है। पुनः भारतीय जीवन एवं काव्य में जब प्रवास की यात्रा के समय भी प्रेमी-जीव शोकविह्वलता के आँसू बजाते

हैं. तब, यदि यक्ष-जैसा सान्द्र प्रणयी प्रिया की याद से विचलित होकर, अपने मर्म-द्रव की धारा बहाने लग गया तो इसमें सहृदय भावुक को क्या आपत्ति हो सकती है?

मेघदूत कालिदास की रसोद्गारि-गिरा का सर्वोत्कृष्ट प्रसाद है। मनुष्य एवं प्रकृति का जो अद्वैत इसमें स्थापित हुआ है, वह साहित्य में एकदम निराला है। उस अद्वैत की प्रतिष्ठा का सूत्र काम निरूपित हुआ है जो सृष्टि के यावत् संबंधों को गीला एवं लचीला बना देता है। कामरूप मेघ और कामुक यक्ष-ये दोनों मिलकर मानो सम्पूर्ण जगती को काम के पावन पीयूष- प्रवाह में निमज्जित कर गए है। 'काम' चौतन्य की वृत्ति है, और प्रेम उसका प्रकाश है। इस प्रकाश का स्वभाव ही है राशीभूत होना, तथा चित्त को द्रवित कर वह अमोघ रसायन प्रस्तुत करना जो चेतन एवं अचेतन की द्वैत-भावना को नष्ट कर, समस्त विश्व की धमनियों में सरसता का द्रव प्रवाहित कर देता है। मेघदूत' के अ माधुर्य का रहस्य यही रसायन है।

संदर्भ-

1. मेघदूत एक अध्ययन, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय।
4. संस्कृत साहित्य की रूप-रेखा, चन्द्रशेखर पाण्डेय।
5. कालिदास, प्रो० मिराशी।

राहुल सांस्कृत्यायन की भाषा शैली: एक विवेचन

डॉ० आरती प्रसाद

सह-प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, रास नारायण महाविद्यालय, पण्डौल, मधुबनी

महापंडित राहुल सांकृत्यान के साहित्य की गंभीरता और उसकी वैज्ञानिकता आश्चर्य में डाल देती है। यह इस बात का प्रमाण है कि उनकी रचना में कथ्य और शिल्प का अभूतपूर्व मिलन है, भाषा के साथ उनका संबंध काफी नैसर्गिक था, मार्क्सवाद में सभी भ्रांतियों का निराकरण करते हुए सर्वसाधारण की भाषा में रचना करने का अप्रतिम उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया। ''उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि हम इस शताब्दी के अंत तक भी अपने यहां की निरक्षरता को दूर नहीं कर सकते यदि प्रारंभिक और प्रौढ़ शिक्षा का माध्यम गढ़वाली, कौरवी, हरियानी, मारवाड़ी, मालवी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही आदि मातृभाषाओं को नहीं बनाया जाता है।''[1] उन्होंने विदेशी शब्दों पर तीव्र प्रहार करते हुए उनका परिवर्तन तो किया लेकिन साथ ही उन शब्दों के अर्थगाम्भीर्य का विकास करते हुए उन्हें भारतीय भाषागत शैलियों में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया। वह परंपरागत रूप के सख्त खिलाफ थे और इसलिए उन्होंने तत्सम शब्दों की व्युत्पतिगत परंपराओं की अवहेलना एवं प्रवृति निमितात्मक तथ्यों को ही विशेष रूप से स्वीकार किया है।

वस्तुत : भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जब हम मूल्यांकन करते हैं तो इनके साहित्य में मिश्रण और देशज शैली से दो कोटियां दृष्टिगोचर होती हैं। मिश्रण शैली का तात्पर्य यह है कि जहां कहीं इनके भाषागत प्रवाह अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित हुए हैं; उनके साहित्य में देशज, विदेशी आदि शैलियां प्रस्तुत हुई हैं। वैसे आज के हिन्दी में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी आदि शब्द पाये जाते हैं। राहुल जी के साहित्य में इन चारों प्रकार के शब्दों का बाहुल्य प्राप्त होता है। उन्होंने अपने कथ्य को सजीव बनाने के लिए ही ऐसा किया जो कि रचना का उपजीव्य भी शैली के साथ-साथ गुम्फित होता रहे।

उदाहरण स्वरूप : ''उन्हें सिर्फ एक महीने किसी भूले-भटके मुंशी से क, ख, सीखने का मौका मिला था, किंतु न जाने कैसे उन्होंने रामायण ही नहीं भिन्न, गुणा-भाग सूद और पैमाईश के हिसाब को भी सीख डाला था। ब्राह्मणों के नियम के विरुद्ध वे अपने हरवाहे, निस्संतान चिनगी चमार के मरने पर गंगातीर जलाने के लिए ले गये। पुरानी प्रथा के विरुद्ध नये कुंए को बनवाने के लिए विचित्र लंबाई-चौड़ाई की ईंट उन्होंने खासतौर से तैयार करवायी और प्रचलित प्रथा के विरुद्ध कुंए को नीचे चौड़ा ऊपर संकीर्ण करते हुए बनवाया। साधु-संतों में श्रद्धा रखते हुए भी भंगेड़ियों में भी वे चीटश्रद्ध थे''।

इस उद्धरण में उर्दू, फारसी, संस्कृत तथा अन्य मुहावरेदार शब्दों से सम्पन्न चित्र हमें एक नयी शैली में दिखता है। उन्होंने संस्कृत के शुद्ध एवं साहित्यिक रूप को स्वीकार किया है। वह ''पक्के आस्तिक होते हुए 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' की अवहेलना करने में भी समर्थ थे।''[2] राहुल जी ने खड़ी बोली के शब्दों से भी मुहावरों का प्रयोग कर एक नया दृष्टांत सामने रखा और रचना-प्रवाह को बनाये रखा। भाषा-विज्ञान की ध्वनि प्रक्रिया एवं अर्थविज्ञान की प्रक्रियाओं पर जब हम दृष्टि रखते हैं, तो इस दृष्टि से भी राहुल सांकृत्यायन की परिवर्तित शैलियों में एक नूतन प्रयोग प्राप्त होता है। उन्होंने शब्द और अर्थ को पर्याप्त महत्व देते हुए अभिव्यंजना शिल्प का एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया। साहित्यिक जगत में अनुभूतियों का संबंध व्यक्तियों से होता है जिसकी आत्मा-प्रतिभा शैलियों में ही अभिव्यक्ति होती है।

राहुल जी की शैली उनकी अभिव्यक्ति के साथ यथार्थ पूर्ण प्रक्रियाओं के आधार पर प्रस्तुत हुई है। उनका जीवन साहित्यिक क्रांति के मध्य प्रखर गति से अग्रसर हुआ और देश देशांतरों की अनुभूतियां भावाभिव्यजनाओं के आधार पर मुखर हो उठी। अभिव्यक्ति के जिस माध्यम को इन्होंने ग्रहण किया, वह देशकाल की विभिन्न परिस्थितियों एवं परंपराओं का परिणाम है। इस कटु सत्य से उनकी शैली एक विशिष्ट शैली बन गई। उस युग में उनका जीवन भौतिकता विहीन जीवन था।

राहुल जी की विश्व भ्रमण की प्रवृत्ति थी। अत: भौतिकवादी परंपराओं से परिष्कृत होकर भी भौतिकवाद के पक्ष में नहीं था। प्रत्युत इनके विरोध में इनके साहित्य का सृजन हुआ। फलत: इनकी साहित्यिक अभिव्यक्तियां शुरू की दौड़ में भौतिक विरोधी तत्वों में अग्रसर हुई। इस विरोधी तत्व में राहुल जी की लेखनी में अभिव्यक्ति की जो शैलियां प्रस्फुटित कीं, वह एक क्रांतिकारी शैली थी जिसमें भाषा तत्व ने जिन साहित्यिक परंपराओं एवं मर्यादाओं का पालन करते हुए साहित्य का सृजन किया, वह दासता की जंजीरों में जकड़ा हुआ भाव था। भौतिकवाद का वैभव उनके सम्मुख नृत्य कर रहा था। फलस्वरूप राजाश्रित कवियों के काव्यकारों की तरह इनकी रचनाएं बंधी हुई रचनाएं थीं।

राहुल जी की शैली का अध्ययन करते समय हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वह एक कवि नहीं बल्कि गद्यलेखक थे, परंतु उनकी लेखनी में कविता की लयात्मकता रोचकता और गद्य का गाम्भीर्य बना रहता है। शब्दों का चयन भाषा को सुसज्जित एवं सुगठित करता है। यदि हम तटस्थ दृष्टि से विचार करें तो भाषा-सौंदर्य में शब्द की जिस दीप्ति तथा अर्थ गाम्भीर्य की आवश्यकता हम महसूस करते हैं वह राहुल जी में उपलब्ध है। राहुल जी ने कथा और कहानी में शब्दों एवं अर्थालंकार की जो पद्धति अपनायी है, वह शास्त्रीय पद्धति है, क्योंकि अलंकार, छंद, रस इत्यादि काव्य के लिए साहित्यिक तत्व माने जाते हैं। इनके समावेश के बिना स्वच्छन्द वृत्तियों का समावेश होना कठिन है। जहां कहीं अलंकृत वाक्य एवं अलंकार योजना इन्होंने प्रस्तुत की है, वहां शास्त्रीय पद्धति का अतिक्रमण नहीं किया है।

राहुल जी की शैली देशज और मिश्रण है, वह इन्हीं शैलियों में लिखना पसंद किया करते थे। उनमें विविध प्रकार की प्रादेशिक और विदेशी भाषाओं की वह नैसर्गिक छवि नहीं प्रत्युत भाव है, स्वाभाविक रूपों में साथ-साथ गढ़े हुए शब्द रूपों का समावेश भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। फलत: आज भी शब्द-विषयक समस्याओं के समाधान में उनका दृष्टिकोण उपयोगी है। अन्य क्षेत्र की भांति भाषा के क्षेत्र में राहुल जी मर्यादा और समन्वय के सिद्धांत को सुरक्षित रखने के पक्ष में रहे हैं और यही कारण है कि उन्होंने प्राचीन संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं के परंपरागत रूपों से लेकर ग्रामीण तथा विजातीय समुदाय में प्रचलित शब्द रूपों तक का प्रयोग किया है। गंभीर विषयों की चर्चा में प्रयुक्त होने वाली पारिभाषिक, शब्दावली के निर्णय में संस्कृत का तथा सामान्य लोक व्यवहार की बातों को प्रकट करने के लिए प्रचलित बोली का आधार ग्रहण करना राहुल जी की दृष्टि से सुविधाजनक एवं युक्ति संगत है।

भाषा के संदर्भ के साथ उनका अत्यंत नैसर्गिक संबंध था। मार्क्सवाद पर आस्था और द्वंद्ववाद पर विश्वास होने के कारण भाषा के बारे में मौजूद तमाम भ्रांतियों का उन्होंने निराकरण किया। उन्होंने अपने गद्य-साहित्य में गुणवाचक विशेषण का प्रयोग अधिक किया है। क्रिया-विशेषण में काल वाचक और नीति वाचक का एवं समुच्चय बोधक अव्यव में संयोजक और वियोजक का प्रयोग अधिक हुआ है। शब्द-शैली विज्ञान में राहुल जी ने ग्रामीण शब्दों का प्रयोग अधिक किया है, जिसे मातृभाषा का प्रभाव माना जाता है। समास में कर्मधारय संबंध तत्पुरूष द्वंद्व, अव्ययीभाव और बहुव्रीही का प्रयोग अधिक है। अलंकार प्रधान वाक्यों में उपमा की बहुलता मिलती है। यदा-कदा मानवीकरण एवं विशेषण विपर्य अलंकार प्रधान वाक्य भी मिलते हैं। मुहावरे में विशेषकर देशज और मनुष्य की ज्ञान-वृत्तियों एवं स्वभाव तथा समास से संबंधित मुहावरों का प्रयोग अधिक मिलता है।

भाषा के रूप में उन्होंने जनप्रचलित शब्दों को ही रखने का सुझाव दिया क्योंकि ये शब्द जनसाधारण के प्रयोग के लिए ही होते हैं। उन्होंने कहा कि संस्कृत से ही अप्रचलित शब्द लिए जायें क्योंकि संस्कृत वृहत्तर भारतीय भाषाओं की मूल भाषा है परंतु उच्चतर सौकार्य का ध्यान रखा जाये।

राहुल जी ने भारतीय आचार्यों की विभिन्न शैलियों के संबंध में न तो कोई अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की और न ही इस संबंध में कोई आलोचनापूर्ण मंतव्य ही प्रकट किया। भारतीय विद्वानों ने आलोचना के क्षेत्र में पाश्चात्य विद्वानों की शैलियों के तर्क को

उपयुक्त माना। राहुल जी ने पाश्चात्य विद्वानों की आलोचना शैली से भिन्न शैली को अपनाकर अपनी अभिव्यक्तियां प्रस्तुत की। हिन्दी साहित्य के आचार्यों ने शैली के संबंध में जो दृष्टिकोण अपनाया उसका प्रभावोत्पादक एवं आकर्षक रूप पाश्चात्य साहित्य शैलियों में स्पष्टतया अभिव्यंजित हुआ है। किंतु राहुल जी की शैली पाश्चात्य एवं भारतीय अभिव्यक्तियों से बिल्कुल पृथक रही है। उनका दृष्टिकोण साहित्य में नूतन रहा है यह उनके साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है।

संस्कृत की शास्त्रीय शैलियां और पाश्चात्य विद्वानों की ''इस्टाईल रूपी कपोल-कल्पित शैलियां राहुल जी की दृष्टि में खोखली शैलियां थी। उनका विचार था कि वहां बुद्धि का चमत्कार एवं शब्दों की भरमार और अभिव्यक्तियों की चटनी जैसी चुटीली अभिव्यजनाएं थी जिनमें भाषागत सौंदर्य के अतिरिक्त कुछ भी प्रतीत नहीं होता, न उसमें साहित्यिक मर्यादा है और न ही कोई नूतन कल्पना है, न ही कोई तर्क का साम्राज्य। वहां व्यक्तित्व का साम्राज्य है, अपना-अपना दृष्टिकोण है, इसलिए वहां शैली एवं व्यक्तित्व के आधार पर भावों एवं अभिव्यंजनाओं की भरमार है।

इन सभी तथ्यों का अवलोकन करने पर हम यह पाते हैं कि महापंडित राहुल जी ने इस शैलीगत विचारधारा को जड़ समेत उखाड़कर कोसों दूर फेंकने का प्रयास किया। पंडित राहुल सांकृत्यायन की भाषा-शैली सर्वथा नूतन है, जिसमें जनता की अभिव्यक्ति की सुवास है और महान पंडित जी की मौज भरी गंभीरता की मर्यादा।

संदर्भ

1. राहुल सांकृत्यायन मातृ भाषाओं का महत्व, आलोचना, जनवरी 1953 पूर्णांक - 6 पृष्ठ 116
2. राहुल सां. मेरी जीवन यात्रा, भाग-1 पृष्ठ - 31
3. राहुल सांकृत्यायन राहुल निबंधावली (हिंदी में पारिभाषिक शब्दों का निर्माण) पृ. - 131

ब्रिटिश भारत में रियासतें: एक अध्ययन

प्रो० (डॉ०) मीरा कुमारी

प्रधानाचार्य, इतिहास विभाग, श्री अरविन्द महिला कॉलेज, पटना

सारांश

ब्रिटिश भारत में रियासतें (Princely states) ब्रिटिश राज के दौरान अविभाजित भारत में स्वायत्त राज्य थे। इन्हें आम बोलचाल की भाषा में "रियासत", "रजवाड़े" या व्यापक अर्थ में देशी रियासत कहते थे। ये ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा सीधे शासित नहीं थे बल्कि भारतीय शासकों द्वारा शासित थे। परन्तु उन भारतीय शासकों पर परोक्ष रूप से ब्रिटिश शासन का ही नियन्त्रण रहता था।

सन् 1947 में जब भारत आजाद हुआ तब यहाँ 562 रियासतें थीं। इनमें से अधिकांश रियासतों ने ब्रिटिश सरकार से लोकसेवा प्रदान करने एवं कर (टैक्स) वसूलने का 'ठेका' ले लिया था। कुल 565 में से केवल 21 रियासतों में ही सरकार थी और मैसूर, हैदराबाद तथा कश्मीर नाम की सिर्फ 3 रियासतें ही क्षेत्रफल में बड़ी थीं। 15 अगस्त, 1947 को ब्रितानियों से मुक्ति मिलने पर इन सभी रियासतों को विभाजित भारत (भारत अधिराज्य) और विभाजन के बाद बने मुल्क पाकिस्तान में मिला लिया गया।

15 अगस्त 1947 को ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता का अन्त हो जाने पर केन्द्रीय गृह मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल के नीति कौशल के कारण हैदराबाद, कश्मीर तथा जूनागढ़ के अतिरिक्त सभी रियासतें शान्तिपूर्वक भारतीय संघ में मिल गयीं। 26 अक्टूबर को कश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण हो जाने पर वहाँ के महाराजा हरी सिंह ने उसे भारतीय संघ में मिला दिया। पाकिस्तान में सम्मिलित होने की घोषणा से जूनागढ़ में विद्रोह हो गया जिसके कारण प्रजा के आवेदन पर राष्ट्रहित में उसे भारत में मिला लिया गया। वहाँ का नवाब पाकिस्तान भाग गया। 1948 में सैनिक कार्रवाई द्वारा हैदराबाद को भी भारत में मिला लिया गया।

मूल शब्द: ब्रिटिश भारत, रियासतें, ब्रिटिश राज, अविभाजित भारत, स्वायत्त राज्य, देशी रियासत, ब्रिटिश साम्राज्य, ब्रिटिश शासन

परिचय

मुगल तथा मराठा साम्राज्यों के पतन के परिणामस्वरूप भारतवर्ष बहुत से छोटे बड़े राज्यों में विभक्त हो गया। इनमें से सिन्ध, भावलपुर, दिल्ली, अवध, रुहेलखण्ड, बंगाल, कर्नाटक मैसूर, हैदराबाद, भोपाल, जूनागढ़ और सूरत में मुस्लिम शासक थे। पंजाब तथा सरहिन्द में अधिकांश सिक्खों के राज्य थे।

आसाम, मनीपुर, कछार, त्रिपुरा, जयंतिया, तंजोर, कुर्ग, ट्रावनकोर, सतारा, कोल्हापुर, नागपुर,

ग्वालियर, इंदौर, बड़ौदा तथा राजपूताना, बुंदेलखण्ड, बघेलखण्ड, छत्तीसगढ़, ओड़िसा, काठियावाड़, मध्य भारत और हिमांचल प्रदेश के राज्यों में हिन्दू शासक थे।

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सम्बन्ध सर्वप्रथम व्यापार के उद्देश्य से सूरत, कर्नाटक, हैदराबाद, बंगाल आदि समुद्रतट पर स्थित राज्यों से हुए। तदन्तर फ्रांसीसियों के साथ संघर्ष के समय राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा को प्रेरणा मिली। इसके फलस्वरूप साम्राज्य निर्माण का कार्य 1757 ईसवी से प्रारम्भ होकर 1856 तक चलता रहा। इस एक शताब्दी में देशी राज्यों के आपसी झगड़ों से लाभ उठाकर कम्पनी ने अपनी कूटनीतिक सैनिक शक्ति द्वारा सारे भारत पर सार्वभौम सत्ता स्थापित कर ली। अनेक राज्य उसके साम्राज्य

में विलीन हो गये। अन्य सभी उसका संरक्षण प्राप्त करके कम्पनी के अधीन बन गये। यह अधीन राज्य 'रियासत' कहे जाने लगे। इनकी स्थिति उत्तरोत्तर असन्तोषजनक तथा डाँवाडोल होती गयी। रियासतों की शक्ति क्षीण होती गयी, उनकी सीमाएँ घटती गयीं और स्वतन्त्रता कम होती चली गयी।

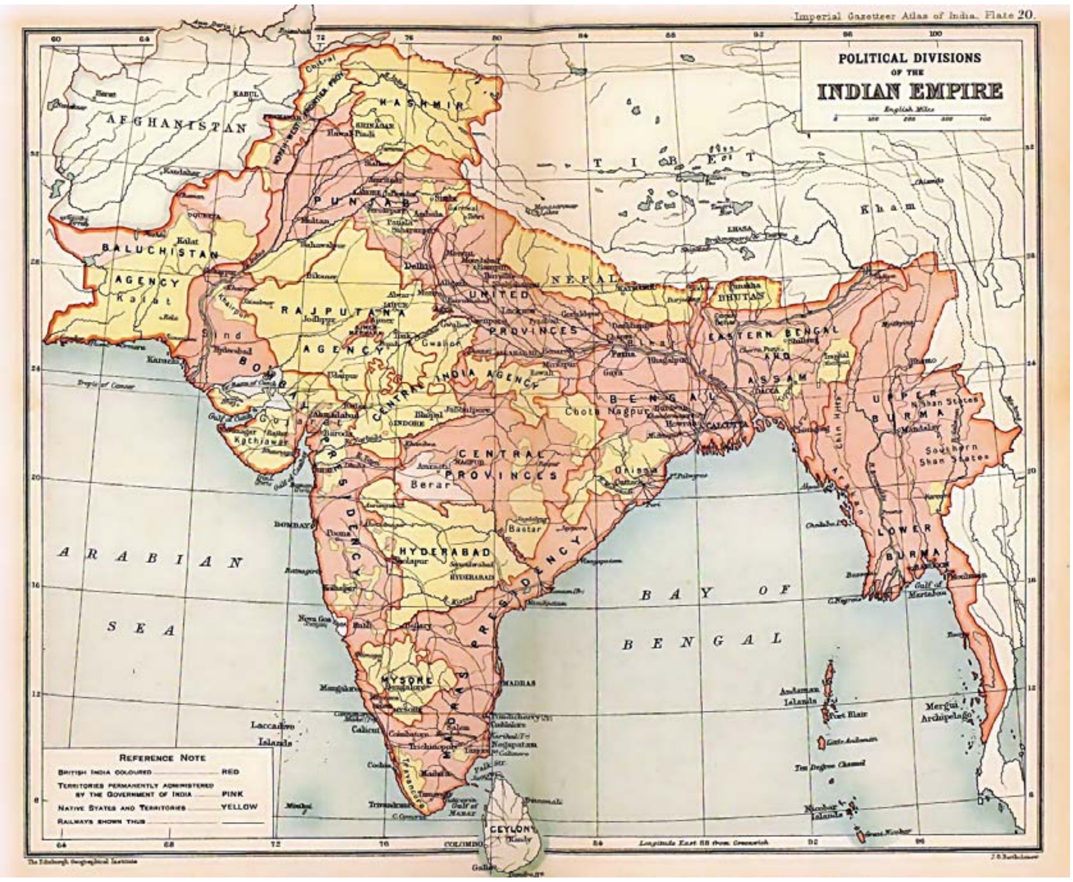

15 अगस्त 1947 से पूर्व संयुक्त भारत का मानचित्र जिसमें देशी रियासतों के तत्कालीन नाम साफ दिख रहे हैं।

1757 से 1856 तक की स्थिति

1756 तक कर्नाटक और तंजावुर क्षेत्र ब्रिटिश कम्पनी के अधीन हो गय। 1757 में बंगाल भी उसके प्रभाव क्षेत्र में आ गया। 1761 तक हैदराबाद के निजाम उसका मित्र बन गया। 1765 में बंगाल की स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी। इसी वर्ष इलाहाबाद की सन्धि द्वारा दिल्ली के सम्राट् शाह आलम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला के साथ कम्पनी की मैत्री हो गयी तथा भारतय रियासतों के साथ उसके सम्बन्धों का वास्तविक सूत्रपात हुआ।

1765 से 1798 तक मराठा, अफगानों तथा मैसूर के सुल्तानों के भय के कारण आत्मरक्षा की भावना से प्रेरित होकर कम्पनी ने आरक्षण नीति द्वारा पड़ोसी राज्यों को अन्तरिम राज्य बनाया जिससे नव निर्मित ब्रिटिश राज्य शक्तिशाली मित्र राज्यों से घिर कर सुरक्षित बन गया। इस अवसरवादी नीति को अवध और हैदराबाद रियासत के साथ कार्यान्वित किया गया। इसके अनुसार दिखावे के लिये उनके साथ समानता का व्यवहार किया गया। परन्तु वास्तविकता यह थी कि इस प्रक्रिया में उन्हें अधीन बनाने, उनकी सैनिक शक्ति क्षीण करने तथा उसके सम्पन्न भागों पर अधिकार करने के किसी अवसर को कम्पनी ने अपने हाथ से बाहर न जाने दिया। रियासतों के प्रति जितनी नीतियाँ कम्पनी ने भविष्य में अपनायीं उनमें से अधिकांश अवध में पोषित हुईं। इस काल में कम्पनी

ने मैसूर तथा मराठा राज्य में फूट डालकर हैदराबाद के सहयोग से उनके विरुद्ध युद्ध किये। अवध को रुहेलखण्ड हड़पने में सहायता देकर रामपुर का छोटा राज्य बना दिया। ट्रावनकोर और कुर्ग कम्पनी के संरक्षण में आ गये।

1799 से 1805 तक लॉर्ड वेलेजली की अग्रगामी नीति के फलस्वरूप सूरत, कर्नाटक तथा तंजोर के राज्यों का अन्त हो गया। अवध, हैदराबाद, बड़ौदा, पूना और मैसूर सहायक सन्धियों द्वारा कम्पनी के शिकंजे में बुरी तरह जकड़ लिये गये। अब वे केवल अर्ध स्वतन्त्र राज्य भर रह गये थे इसके अतिरिक्त उनकी और कुछ भी हैसियत न थी। उनकी बाह्य नीति पर भी ब्रिटिश शासन का नियन्त्रण हो गया। सैनिक शक्ति घटा दी गयी। राज्यों में उन्हीं के खर्च पर सहायक सेना रखी गयी जिसके बल पर आन्तरिक आक्रमणों तथा विद्रोहों से उनकी रक्षा की गयी। राजाओं की गतिविधियों पर दृष्टि रखने तथा ब्रिटिश हितों की सुरक्षा एवं वृद्धि के लिये उनकी राजधानियों में ब्रिटिश प्रतिनिधि रहने लगे। राज्यों से ब्रिटिश विरोधी सभी विदेशी हटा दिये गये। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का फैसला ब्रिटिश कम्पनी करने लगी। ये अपमानजनक सन्धियाँ देशी राज्यों के लिये आत्मविनाश तथा ब्रिटिश साम्राज्य के लिये विकास श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ियों के समान थीं। युद्ध में परास्त होकर नागपुर और ग्वालियर भी उसी जाल में फँस गये। भरतपुर ने ब्रिटिश आक्रमणों को विफल बनाने के पश्चात् सन्धि कर ली। इसी समय से रियासतों के शासक अनुत्तरदायी होने लगे तथा उनके आन्तरिक शासन में अनेक बहानों से ब्रिटिश रेजीडेण्ट हस्तक्षेप करने लगे।

1805 से 1813 तक ब्रिटिश कम्पनी ने देशी राज्यों के प्रति हस्तक्षेप न करने की नीति अपनायी। इस कारण ट्रावनकोर तथा सरहिन्द के राज्य उसके अधीन हो गये। सतलज पंजाब की सीमा बना दी गयी। सिन्ध और पंजाब कम्पनी के मित्र बन गये।

1817-1818 में कई राज्य लार्ड हेस्टिंग्ज की आक्रामक नीति के शिकार बने। मराठा संघ को नष्ट करके सतारा का छोटा सा राज्य बना दिया गया। राजपूताना, मध्य भारत तथा बुन्देलखण्ड के सभी राज्य सतत मित्रता तथा सुरक्षा की सन्धियों द्वारा कम्पनी के करदाता राज्य बन गये। ग्वालियर, नागपुर तथा इन्दौर पर पहले से अधिक अपमानजनक सन्धियाँ लाद दी गयीं। भोपाल ने प्रतिरक्षात्मक सन्धि द्वारा अंग्रेजों की अधीनता मान ली। अमीर खाँ, गफूर खाँ तथा करीम खाँ को क्रमशः टोंक, जावरा तथा गणेशपुर की रियासतें दी गयीं। नतीजा यह हुआ कि ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता सारे हिन्दुस्तान में फैल गयी।

1857 की सशस्त्र क्रान्ति

लार्ड एमहर्स्ट के शासनकाल में कछार, जयंतिया और त्रिपुरा ब्रिटिश संरक्षण में आ गये। मनीपुर स्वतन्त्र मित्र राज्य बन गया। भरतपुर की शक्ति नष्ट कर दी गयी। लॉर्ड विलियम बेंटिंक ने कुर्ग, मैसूर तथा जयंतिया को कुशासन के बहाने तथा कछार को उत्तराधिकारी न होने के कारण हड़प लिया। लॉर्ड ऑकलैंड ने मांडवी, कोलावा, जालौन तथा कर्नूल रियासतों पर अधिकार कर लिया। लॉर्ड एलनबरा ने सिन्ध जीत लिया तथा ग्वालियर की सैनिक शक्ति नष्ट कर दी। लॉर्ड हार्डिंग्ज ने पंजाब की शक्ति संकुचित कर दी तथा जम्मू और कश्मीर के राज्य का निर्माण किया। लॉर्ड डलहौजी के समय रियासतों पर विशेष प्रकोप आया। उसने नागपुर, सतारा, झाँसी, सम्भलपुर, उदयपुर, जैतपुर, वघात तथा करौली के शासकों को पुत्र गोद लेने के अधिकार से वंचित करके उनके राज्यों को हड़प लिया; हैदराबाद से बरार ले लिया; तथा कुशासन का आरोप लगाकर, अवध को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। इन आपत्तिजनक नीतियों के कारण रियासतों में असन्तोष फैल गया जो 1857 की सशस्त्र क्रान्ति का कारण बना। क्रान्ति के समय स्वार्थ से प्रेरित होकर अधिकांश देशी शासक कम्पनी के प्रति स्वामिभक्त बने रहे।

क्रान्ति के पश्चात् भारत में 562 रियासतें थीं जिनके अन्तर्गत 46 प्रतिशत भूमि थी। इनके प्रति अधीनस्थ सहयोग की नीति अपनायी गयी तथा ये साम्राज्य के मजबूत स्तम्भ समझे जाने लगे। इनके शासकों को पुत्र गोद लेने का अधिकार दिया गया। राज्य-संयोजन नीति को त्यागकर रियासतों को चिरस्थायित्व प्रदान किया गया तथा साम्राज्य की सुरक्षा एवं गठन हेतु उनका सहयोग प्राप्त किया गया। 1859 में गढ़वाल के राजा के मृत्योपरान्त उसके औरस पुत्र को उत्तराधिकारी मानकर तथा 1881 में मैसूर रियासत के पुन:स्थापन द्वारा नई नीति का पुष्टीकरण हुआ। क्रमशः विभिन्न सन्धियों का महत्व जाता रहा और उनके आधार पर सभी रियासतों के साथ एक सी नीति अपनाने की प्रथा चल पड़ी। उनमें छोटे बड़े का भेदभाव सलामियों की संख्या के आधार पर किया गया।

महारानी विक्टोरिया की अधीनता में

1876 में देशी शासकों ने महारानी विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी मानकर उसकी आधीनता स्वीकार कर ली। तदन्तर ब्रिटिश शासन की ओर से उन्हें उपाधियाँ दी जाने लगीं। प्रेस, रेल, तार तथा डाक द्वारा वे ब्रिटिश सरकार के निकट आते गये। चुंगी, व्यापार,

आवपाशी, मुद्रा, दुर्भिक्ष तथा यातायात सम्बन्धी उनकी नीतियाँ ब्रिटिश भारत की नीतियों से प्रभावित होने लगी। उनकी कोई अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति ही न रही। कुशासन, अत्याचार, राजद्रोह तथा उत्तराधिकार सम्बन्धी झगड़ों को लेकर रियासतों में ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप बढ़ गया। इस नीति के निम्नलिखित कुछ उदाहरण ही पर्याप्त हैं-

(1) 1865 में झाबुआ के राजा पर 10000 दण्ड लगाना;

(2) 1867 में ग्वालियर की सैनिक शक्ति में कमी;

(3) उसी वर्ष टोंक के नवाब का पदच्युत होना तथा उसके उत्तराधिकारी की सलामी की संख्या घटाना;

(4) 1870 में अलवर के राजा को शासन से वंचित करना;

(5) मल्हारराव गायकवाड़ को बन्दी बनाना और 1875 में उसे पदच्युत करना;

(6) 1889 में कश्मीर के महाराजा प्रताप सिंह को गद्दी से हटाना;

(7) 1890 में मनीपुर के राजा को अपदस्थ करना तथा युवराज और सेनापति को फाँसी देना; और

(8) 1892 में कलात के शासक को पदच्युत करना।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ से स्वाधीनता प्राप्ति तक

नरेन्द्रमण्डल (चेम्बर ऑफ प्रिंसेज; १९४१)

1899 में लॉर्ड कर्जन ने रियासतों को साम्राज्य का अविभाज्य अंग घोषित किया तथा कड़े शब्दों में शासकों को उनके कर्तव्यों की ओर ध्यान दिलाया। इससे कुछ शासक शंकित भी हुए। उनकी स्थिति समृद्ध सामन्तों के तुल्य हो गयी। 1906 में तीव्र राष्ट्रवाद के वेग की रोकने में रियासतों के सहयोग के लिये लॉर्ड मिण्टो ने उनके प्रति मित्रतापूर्ण सहयोग की नीति अपनायी तथा साम्राज्य सेवार्थ सेना की संख्या में वृद्धि करने के लिये आदेश दिया। इसके एवज में प्रथम विश्वयुद्ध में रियासतों ने ब्रिटिश सरकार को महत्वपूर्ण सहायता दीया। बीकानेर, जोधपुर, किशनगढ़, पटियाला आदि के शासकों ने रणक्षेत्र में अपना युद्धकौशल दिखाया।

1919 के अधिनियमानुसार 1921 में नरेशमण्डल (या नरेन्द्रमण्डल) बना जिसमें रियासतों के शासकों को अपने सामान्य हितों पर वार्तालाप करने तथा ब्रिटिश सरकार को परामर्श देने का अधिकार मिला। 1926 में लार्ड रीडिंग ने ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता पर बल देते हुए देशी शासकों को ब्रिटिश सरकार के प्रति उत्तरदायी घोषित किया जिससे वे अप्रसन्न भी हुए। इसलिए 1929 में बटलर कमेटी रिपोर्ट में सार्वभौम सत्ता की सीमाएँ निश्चित कर दी गयीं। 1930 में नरेशमण्डल के प्रतिनिधि गोलमेज सम्मलेन में सम्मिलित हुए। 1935 के संवैधानिक अधिनियम में रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित करने की अनुचित व्यवस्था रखी गयी परन्तु वह कार्यान्वित न हो सकी। रियासतों में अनवरत रूप से निरंकुश शासन चलता रहा। केवल मैसूर, ट्रावणकोर, बडोदा, जयपुर आदि कुछ रियासतों में ही प्रजा परिषद के आन्दोलन से कुछ प्रतिनिधि शासन संस्थाएँ बनीं। मगर अधिकांश रियासतें प्रगतिहीन एवं अविकसित स्थिति में ही रहीं। द्वितीय विश्वयुद्ध में भी इन रियासतों ने इंग्लैण्ड को यथाशक्ति सहायता दी।

15 अगस्त 1947 को ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता का अन्त हो जाने पर केन्द्रीय गृह मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल के नीति कौशल के कारण हैदराबाद, कश्मीर तथा जूनागढ़ के अतिरिक्त सभी रियासतें शान्तिपूर्वक भारतीय संघ में मिल गयीं। 26 अक्टूबर को

कश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण हो जाने पर वहाँ के महाराजा हरी सिंह ने उसे भारतीय संघ में मिला दिया। पाकिस्तान में सम्मिलित होने की घोषणा से जूनागढ़ में विद्रोह हो गया जिसके कारण प्रजा के आवेदन पर राष्ट्रहित में उसे भारत में मिला लिया गया। वहाँ का नवाब पाकिस्तान भाग गया। 1948 में पुलिस कार्रवाई द्वारा हैदराबाद भी भारत में मिल गया। इस प्रकार रियासतों का अन्त हुआ और पूरे देश में लोकतन्त्रात्मक शासन चालू हुआ। इसके एवज में रियासतों के शासकों व नवाबों को भारत सरकार की ओर से उनकी क्षतिपूर्ति हेतु निजी कोष (प्रिवी पर्स) दिया गया।

निष्कर्ष

सन १९४७ में स्वतंत्रता और विभाजन से पहले भारतवर्ष में ब्रिटिश शासित क्षेत्र के अलावा भी छोटे-बड़े कुल 565 स्वतन्त्र रियासत हुआ करते थे, जो ब्रिटिश भारत का हिस्सा नहीं थे। ये रियासतें भारतीय उपमहाद्वीप के वो क्षेत्र थे, जहाँ पर अंग्रेजों का प्रत्यक्ष रूप से शासन नहीं था, बल्कि ये रियासत सन्धि द्वारा ब्रिटिश राज के प्रभुत्व के अधीन थे। इन संधियों के शर्त, हर रियासत के लिये भिन्न थे, परन्तु मूल रूप से हर संधि के तहत रियासतों को विदेश मामले, अन्य रियासतों से रिश्ते व समझौते और सेना व सुरक्षा से संबंधित विषयों पर ब्रिटिशों की अनुमति लेनी होती थी, इन विषयों का प्रभार प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी शासन पर था और बदले में ब्रिटिश सरकार, शासकों को स्वतन्त्र रूप से शासन करने की अनुमती देती थी।

सन १९४७ में भारत की स्वतंत्रता व विभाजन के पश्चात सिक्किम के अलावा अन्य सभी रियासत या तो भारत या पाकिस्तान अधिराज्यों में से किसी एक में शामिल हो गए, या उन पर कब्जा कर लिया गया। नव स्वतंत्र भारत में ब्रिटिश भारत की एजेंसियों को "दूसरी श्रेणी" के राज्यों का दर्जा दिया गया (उदाहरणस्वरूप: "सेंट्रल इण्डिया एजेंसी", "मध्य भारत राज्य" बन गया)। इन राज्यों के मुखिया को राज्यपाल नहीं राजप्रमुख कहा जाता था। १९५६ तक "राज्य पुनर्गठन अयोग" के सुझाव पर अमल करते हुए भारत सरकार ने राज्यों को पुनर्गठित कर वर्तमान स्थिती में लाया। परिणामस्वरूप सभी रियासतों को स्वतंत्र भारत के राज्यों में विलीन कर लिया गया। इस तरह रियासतों का अंत हो गया।

सन १९६२ में प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के शासनकाल के दौरान इन रियासतों के शासकों के निजी कोशों को एवं अन्य सभी गैर-लोकतान्त्रिक रियायतों को भी रद्ध कर दिया गया।

सन्दर्भ

1. Bangash, Yaqoob Khan (2016). "A Princely Affair: The Accession and Integration of the Princely States of Pakistan, 1947–1955". Oxford University Press Pakistan. ISBN 9780199407361
2. Bhagavan, Manu. "Princely States and the Hindu Imaginary: Exploring the Cartography of Hindu Nationalism in Colonial India" Journal of Asian Studies, (Aug 2008) 67#3 pp 881–915 in JSTOR
3. Bhagavan, Manu. Sovereign Spheres: Princes, Education and Empire in Colonial India (2003)
4. Copland, Ian (2002), Princes of India in the Endgame of Empire, 1917–1947, (Cambridge Studies in Indian History & Society). Cambridge and London: Cambridge University Press. Pp. 316, ISBN 978-0-521-89436-4.
5. Ernst, W. and B. Pati, eds. India's Princely States: People, Princes, and Colonialism (2007)
6. Harrington, Jack (2010), Sir John Malcolm and the Creation of British India, Chs. 4 & 5., New York: Palgrave Macmillan., ISBN 978-0-230-10885-1
7. Jeffrey, Robin. People, Princes and Paramount Power: Society and Politics in the Indian Princely States (1979) 396pp
8. Kooiman, Dick. Communalism and Indian Princely States: Travancore, Baroda & Hyderabad in the 1930s (2002), 249pp
9. Markovits, Claude (2004). "ch 21: "Princely India (1858–1950)". A history of modern India, 1480–1950. Anthem Press. pp. 386–409. ISBN 978-1-84331-152-2.
10. Ramusack, Barbara (2004), The Indian Princes and their States, The New Cambridge History of India, Cambridge and London: Cambridge University Press. Pp. 324, ISBN 978-0-521-03989-5
11. Sir Roper Lethbridge (1893). The Golden Book of India: A Genealogical and Biographical Dictionary of the Ruling Princes, Chiefs, Nobles, and Other Personages, Titled or Decorated, of the Indian Empire (Full text). Macmillan And Co., New York.

मानवाधिकार एवं वृद्ध जनों का भरण पोषण

कमल किशोर

(एलएल0एम0, यू0जी0सी नेट), असिस्टेन्ट प्रोफेसर, क्लासिक कालेज ऑफ लॉ बरेली (उत्तर प्रदेश)

शोध सारांश

इस शोध पत्र में मानवाधिकार एवं वृद्ध जनों का भरण पोषण के बारे में सांविधिक प्रावधानों को समझने का प्रयास किया है। जिसके अंतर्गत वरिष्ठ नागरिकों की संरक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्राचीन भारत में वृद्ध नागरिकों की सामाजिक व विधिक प्रास्थिति, स्वतंत्रता के पश्चात लोक कल्याणकारी राज्य की संकल्पना में वरिष्ठ नागरिकों के संरक्षण की पृष्ठभूमि वृद्ध नागरिकों की संकल्पना एवं अवधारणा एवं इसकी समस्याओं का वर्णन किया गया है। वृद्ध नागरिकों की संरक्षण हेतु माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिकों का भरण पोषण एवं कल्याण अधिनियम, 2007 के प्रवधानों का अध्ययन किया गया है।

Keyword:- मानवाधिकार, वृद्ध जनों, भरण पोषण, संरक्षण

प्रस्तावना

जन्म और मृत्यु जीवन के दो किनारे हैं मनुष्य की संपूर्ण गति विधि इन्हीं दो किनारो के बीच होती है। जितने भी प्राणी इस संसार में पैदा होते हैं उन सभी प्राणियों में मानव ही श्रेष्ठ है। मानव का संपूर्ण जीवन बाल्यावस्था युवावस्था प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था में विभाजित किया गया है। वरिष्ठ नागरिक किसे कहा जाए यह एक विचारणीय प्रश्न था? क्या जिसकी बुद्धि परिपक्व है। यह वरिष्ठ नागरिक है या जिसकी अवस्था अधिक है वह वरिष्ठ नागरिक है बुद्धि की प्रवक्ता ज्ञानाधिक को सूचित करती है। किंतु आयु की अधिकता वरिष्ठता को सूचित करती है। इसलिए जिसकी अवस्था अधिक है उसी को वरिष्ठ माना जाना चाहिए। प्राचीन काल में माता-पिता बुजुर्ग व्यक्तियों को एक आदर्श मानकर उनका हमेशा सम्मान किया जाता था पूरे विश्व के अंतर्गत भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जहां व्यक्ति अपनी तीन पीढियां तक अत्यधिक प्रेम के साथ सदैव एक ही परिवार में एक साथ रहते हैं थे इतिहास के अंतर्गत इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इसीलिए आवश्यक है यह है कि इन उनकी भावनाओं का आदर और सम्मान किया जाए मखौल ना उड़ाया जाए और उन्हें आर्थिक रूप से कमजोर कर उनके जीवन की मेहनत को व्यर्थ सिद्ध न किया जाए। वृद्ध व्यक्तियों के मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर समय-समय पर अनेक प्रयास किए गए हैं सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा 1982 में वृद्ध व्यक्तियों के मानवाधिकारों से संबंधित दर्द व्यक्ति किया और अंतरर्राष्ट्रीय कार्य योजना लागू की गई इस कार्य योजना का मुख्य उद्देश्य विश्व व्यापी मानव अधिकार घोषणा में उल्लेखित बुनियादी और आदरणीय अधिकार को पूरी तरह से लागू करना था।

मानवाधिकारों का प्रारंभिक चरण नैसर्गिक अधिकारों का था। नैसर्गिक अधिकार के उद्‌भव का स्रोत प्राकृतिक विधि ही थी। इसीलिए यह कहना उचित है कि मानवाधिकारों पर प्राकृतिक विधि का स्रोत के रूप में पूर्ण प्रभाव पड़ा है। मानवाधिकार के आधार स्तंभ है वृद्ध व्यक्तियों के अधिकार वर्षो से अंतरर्राष्ट्रीय संगठनों और संयुक्त राष्ट्र संघ की चिंता का विषय रहा है। सन 1215 में मैग्नाकार्टा द्वारा एक घोषणा की गई कि किसी भी व्यक्ति को हम अधिकारों एवं न्याय से वंचित नहीं रखेंगे। मानवाधिकार की घोषणा सर्वप्रथम 1948 में मानवाधिकारों की घोषणा के अंतर्गत 10 दिसंबर को पेरिस में हस्ताक्षर हुए। संयुक्त राष्ट्र संघ की समान महासभा के द्वारा अर्जेटीना के द्वारा दिए गए प्रस्ताव ड्राफ्ट रेजोल्यूशन आन ए डिक्लेरेशन ऑफ ओल्ड एज राइट्स स्वीकार किया गया। क्योंकि बुजुर्गों के अधिकार आमतौर पर आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार की सुरक्षा की के संदेश में स्पष्ट रूप से पहचाने

जाते हैं। इसलिए कई मानो में इन्हें प्रगतिशील कार्यमन के अधिकार के रूप में देखते हैं सेन सालवा डोर के प्रोटोकॉल के अनुच्छेद 17 के साथ यह मामला हैजो बुजुर्गों के संरक्षण के लिए संदर्भित करता हैबाजार को के अधिकार के बारे में संशोधित यूरोपीय सामाजिक चार्ट के अनुच्छेद 23 और अफ्रीकी चार्ट के अनुच्छेद 18 खंड चार को संदर्भ करता है। संक्षेप में बुजुर्गों के अधिकार आमतौर पर मानवाधिकार की संधियों में रखें जाते हैं जो आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार की रक्षा करते हैं।

प्राचीन भारत में वृद्ध नागरिकों की सामाजिक स्थिति

प्राचीन साहित्य में वेदों में कनिष्ठ और वरिष्ठ सभी लोगों के जीवन दर्शन से संबंधित तथ्य प्राप्त होते हैं परिवार के जेस्ट और श्रेष्ठ तथा वृद्ध जनों पर संपूर्ण परिवार की देखरेख करने का उत्तरदायित्व रहता था। यह सामुदायिक भावना ही परिवार समाज और राष्ट्र को एक सूत्र में बांधे रखती थी। वेदों में वृद्धो की सेवा का भरपूर उल्लेख स्थान-स्थान पर धर्म शास्त्रों में मिलता है।

पुराणों में वर्णित वरिष्ठ नागरिकों का संरक्षण

पुराणों में वर्णित वरिष्ठ नागरिकों का संरक्षण पुराणों में भी वरिष्ठ नागरिकों के चरित्र और उनके क्रियाकलापों का वर्णन प्राप्त होता है पुराण का तात्पर्य ही है की पुरानी चीजों का वर्णन पुराणों में अनेक वशिष्ठ वरिष्ठ ऋषियों महर्षियों राजाओं और महाराजाओं के दृष्टांत दिए गए हैं साथ ही वर्णन श्रम धर्म-कर्म के दृष्टांतों वर्णन है वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम वरिष्ठ नगरों के लिए बनाए गए थे। वानप्रस्थ आश्रम में ऋषियों के लोक महलोक की प्राप्ति हो जाती है। जब रोग अथवा बुढ़ापे के कारण शरीर शिथिल हो जाए तो अनशन आदि विधि करनी चाहिए और आत्मा का चिंतन करना चाहिए। हिंदू व्यवहार में भरण पोषण का विषय अत्यंत ही महत्वपूर्ण रहा है मनु ने घोषित किया है कि यदि सैकड़ों बुरे कर्मो का संपादन करना पड़े तब भी अपने वृद्ध माता-पिता साध्वी पत्नी एवं शिशु का भरण पोषण अवश्य करना चाहिए।

बौद्ध धर्म में वरिष्ठ नागरिक का संरक्षण

बौद्ध में भिक्षु के रूप में वरिष्ठ नागरिकों का वर्णन मिलता है। बौद्ध भिक्षुओं के स्थान पर मठ होते थे जहां पर सभी बौद्ध भिक्षु रहा करते थे। भिक्षुओं के स्वास्थ्य खान-पान की व्यवस्था समाज द्वारा की जाती थी। वरिष्ठ नागरिको के रूप में भिक्षु-भिक्षुणियाँ दिन में भिक्षाचारण तथा धर्म प्रवचन करते थे। वरिष्ठ नागरिकों ने समाज को एक सांस्कृतिक पहचान दी है उसी का परिणाम है कि बौद्ध धर्म विश्व धर्म बन गया।

जैन धर्म में वरिष्ठ नागरिक का संरक्षण

जैन मतालंबी का एक महत्वपूर्ण सूत्र है वर्तमान में जिओयो सूत्र को समझे तो मनुष्य को वृद्धावस्था का भय नहीं सताएगा बुढ़ापे को मनुष्य बार-बार भाय का दौर समझता है। परंतु बुढ़ापे की मानसिकता ही मनुष्य को समय से पहले बुढा कर देती है। इसी मानसिकता को परिवर्तन करने की जरूरत है स्वस्थ रहें। स्वस्थ सोच यही अगमों का सार है। कुछ बातों पर यदि चिंतन किया जाए तो 60 वर्ष की अवस्था के बाद ही अच्छा जीवन जिया जा सकता है।

वृद्धौ च माता-पितरौ, साध्वी भार्या सुत: शिशु:।
अपकार्य शतं कृत्वा, भर्तव्यामनुर ब्रवीत्।।

अर्थात सौ अपकार्य करते हुए भी अपने वृद्ध माता-पिता साध्वी पत्नी तथा संतान का वर्णन पोषण किया जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि अपने वृद्ध माता-पिता का भरण पोषण करना प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक दायित्व है धीरे-धीरे यह नैतिक दायित्व विधिक दायित्व में परिवर्तित हो गया है। अब अपने वृद्ध माता-पिता का भरण पोषण करना प्रत्येक व्यक्ति का न केवल नैतिक दायित्व अपितु विधिक भी है।

मानवाधिकार का यही तकाजा है कि प्रत्येक वृद्ध माता-पिता का भरण पोषण हो।

उद्देश्य

इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य एक सामाजिक दायित्व को पूरा करना रहा है। इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को दंडित करना नहीं है।

शर्तरहित दायित्व

भारत पोषण का यह दायित्व एक शर्त रहित दायित्व है मोहिद्दीन बनाम नवीशा के मामले में केरल उच्च न्यायालय द्वारा यह दिन निर्धारित किया गया की भरण पोषण का दायित्व कभी सशक्त नहीं हो सकता यह एक शर्त रहित दायित्व है । रूपनारायण वर्मा बनाम यूनियन ऑफ इंडिया के मामले में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा एक कहा गया कि कोई भी व्यक्ति बहाना बनाकर अपने इस दायित्व से बच नहीं सकता।

सांविधिक प्रावधान

वैसे प्रत्येक स्वीय विधि पर्सनल लॉ मैं भरण पोषण का प्रावधान है, लेकिन निम्नांकित प्रावधान सार्वभौमिक है अर्थात सभी वर्गो पर लागू होते हैं -

1. दंड प्रक्रिया संहिता 1973की धारा 125 तथा
2. माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण पोषण कल्याण अधिनियम 2007

दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत भरण घोषणा

पत्नी, वृद्ध माता-पिता, एवं संतान का भरण पोषण करने का कर्तव्य माना गया है पास आते की ऐसी पत्नी वृद्ध माता-पिता या संतान अपना भरण पोषण करने में असमर्थ हो इस प्रकार वृद्ध माता पिता अपनी संतान से भरण पोषण के हकदार माने गए हैं। पुरुषोत्तम बत्रा बनाम फैमिली कोर्ट संख्या 1 जयपुर के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है की माता-पिता ऐसे पुत्रों से भरण पोषण की मांग कर सकते हैं जिनके पास आय के पर्याप्त साधन नही हैं। चाहे माता-पिता अपने पुत्रों से अलग ही क्यों ना रहा हो अपने माता-पिता का भरण पोषण करना पुत्रों का पवित्र कर्तव्य है।

इस प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 वृद्ध माता-पिता के भरण पोषण का प्रावधान करती है। यह व्यवस्था न केवल विधिक दायित्व को पूरा करती है अपितु नैतिक दायित्व की पूर्ति करती है। मानव अधिकार भी इसी बात की पुष्टि करता है की वृद्ध जनों का भरण पोषण किया जाना चाहिए।

हिंदू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण 1956 के अंतर्गत भरण पोषण

हिंदू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम 1956 की धारा 20 के अंतर्गत वृद्ध माता-पिता के बारे में पोषण के बारे में प्रावधान किया गया है इसमें यह कहा गया है कि कोई हिंदू अपने जीवन काल में अपने अधर्म जो अपत्यो और वृद्ध या शीथिलांग है उनका का भरण पोषण करने के लिए आबद्ध है। इस प्रकार धारा 20 वृद्ध एवं शीतलांग है जिनके लिये भरण पोषण का प्रावधान करती है। पन्नालाल हजार बनाम फुल मणि हाजारा के मामले में कलकता उच्च न्यायालय द्वारा विनिनिर्धारित किया गया कि नि:संतान सौतेली माता अपने सौतेले पुत्रों से भरण पोषण पोषण पाने की हकदार है।

वृद्ध माता-पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण पोषण और कल्याण अधिनियम 2007 के अंतर्गत भरम पोषण

वृद्ध माता पिता एवं वरिष्ठ नागरिकों के भरम पोषण के लिए पारित यह अधिनियम मानव अधिकार के पोषण की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है। इस अधिनियम के अंतर्गत वृद्ध माता-पिता के बारे में पोषण को सुनिश्चित किया गया है अधिनियम की धारा 4 (1) में निम्नांकित व्यक्तियों को अपनी व्यस्त संतान से भरण पोषण पाने हकदार माना गया है -

1. माता-पिता
2. पितामहा एवं
3. पितामही

वरिष्ठ नागरिक अपने ऐसे संबंधियों से भरण पोषण के हकदार माने जायो गए हैं जो उनकी संपत्ति को उत्तराधिकर में प्राप्त करेंगे।

वृद्ध माता-पिता के भरण पोषण का विस्तार -

1. माता-पिता एवं वरिष्ठ नागरिकों की आवश्यकता तथा
2. समान जीवन यापन करने योग्य राशि तक होगा

भरण पोषण की राशि का निर्धारण करते समय निम्नांकित बातों को ध्यान में रखा जाना अपेक्षित है -

1. पक्षकारों का जीवन स्तर
2. आर्थिक स्थिति एवं
3. पूर्ववर्ती परिस्थितियां आदि

भरण पोषण के लिए आवेदन

1. स्वयं माता-पिता,
2. स्वयं वर्ष नागरिक,
3. उनके द्वारा प्रारंभ कोई व्यक्ति या संगठन या
4. न्यायलय द्वारा स्वप्रेरणा से

आवेदन निम्नलिखित के विरूद्ध किया जा सकेगा-

1. संतान
2. संबंधी या
3. पोषण के लिए दायी अन्य व्यक्ति

आवेदन ऐसे भरण पोषण न्यायालय के समक्ष किया जाएगा जिसकी अधिकारिता में -

1. आवेदक निवास करता है या
2. उसने अंतिम रूप से निवास किया है
3. संतान निवास करती है अथवा
4. संबंधी निवास करता है धारा 6

आदेश

भारत पोषण का आदेश -

1. आवेदन की तिथि से या
2. आदेश की तिथि से दिया जा सकेगा,

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति में वृद्ध जनों की देखभाल एवं सम्मान पहले से ही उपस्थित रहा है जो कि हमारे धर्मशास्त्र निषाद और परंपरा में पहले से ही चला आ रहा है प्राचीन समय से ही वृद्ध व्यक्तियों के महत्वपूर्ण ज्ञान एवं उनके उच्च जीवन आदर्श तथा अनुभवों को हमेशा से ही समाज में सम्मान दिया जाता रहा है भारतीय परिवारों के अंतर्गत पारिवारिक ढांचा इस प्रकार का है कि लोग संयुक्त परिवार के रूप में रहते हैं। इसमें संतान अपने जीवन के प्रत्येक पहलू पर अपने वृद्धो से सलाह लेते हैं। वरिष्ठ नागरिक द्वारा अपने अंदर संचित और अर्जित ज्ञान भिन्न-भिन्न प्रकार के आयाम और विभिन्न अनुभवों से बहुत गहराई के साथ अपने जीवन में आत्मसात किया होते हैं। वह समाज के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं अगर इन वृद्ध व्यक्तियों को उनकी स्थिति के अनुसार उचित अवसर प्रदान किया जाए तो वह समाज की प्रगति के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है। वृद्ध व्यक्ति समाज की अमूल विरासत होते हैं उन्होंने देश की और समाज के लिए बहुत कुछ दिया होता है उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का व्यापक अनुभव होता है। आज का युवा वर्ग राष्ट्र को ऊंचाइयों पर ले जाने के लिए वृद्धि नागरिकों के अनुभव से लाभ उठा सकता है। हमारे संविधान

की प्रस्तावना में समस्त नागरिकों की प्रतिष्ठा और अवसर की क्षमता सुरक्षित करने का संकल्प किया है। यह संकल्प सांप्रदायिक समाज के अंदर एक क्रांतिकारी कदम है। इसका उद्देश्य के संपूर्ण सामाजिक ढांचे में विशाल परिवर्तन करना है। वृद्ध नागरिकों के हितों में मानव अधिकार आयोग गैर सरकारी संस्थाएं तथा न्यायपालिकाओं इनका संरक्षण के संबंध में कार्य किए जाने की आवश्यकता है। जिससे राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने बुजुर्गों के कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा के लिए कार्य योजना तैयार किया जाना चाहिए। मृत लोगों के स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं के अंतर्गत बीमारी की रोकथाम एवं उनका निवारण स्वास्थ्य लाभ तथा पुनर्वास का आधार दृढ़ एवं विस्तृत बनाया जाना चाहिए। निर्धन वृद्ध नागरिकों के लिए अस्पतालों में निशुल्क दवाइयां एवं उपचार की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा वृद्ध लोगों को सरकार द्वारा पेंशन स्कीम लागू की जानी चाहिए वृद्ध नागरिकों के पारिवारिक हिंसा से बचने के लिए भारतीय दंड संहिता में विशेष प्रावधान बनाने पर विचार करना चाहिए। वृद्ध नागरिकों की शिकायतों के निवारण एवं निस्तारण के लिए सरकारी कर्मचारियों को संवेदनशील होना चाहिए।

संदर्भः-

देवपुरा बुजुर्गों के लिए कल्याण योजनाएं ,योजना अक्टूबर 2008 पृ संख्या 51

ड्राफ्ट रेजोल्यूशन आन ए डिक्लेरेशन ऑफ ओल्ड एज राइट्स रेजोल्यूशन 213 (213) ऑफ दिसम्बर, 4 1949

श्री मदभागवत 7/13

श्रामायण अयो. 57, 23-33

मनु स्मृति

भगवान दत्त बनाम कमला देवी ए0 आई0 आर0 एस0 सी0 83

ए0 आई0 आर0 2007 डी0 ओ0 सी0 197 केरल

ए0 आई0 आर0 2007 एन0 ओ0 सी0 898 राजस्थान

ए0 आई0 आर0 1987 कलकत्ता 368

रामकृष्ण मिशन की सेवाएंः एक विश्लेषण

गीता कुमारी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

सारांश

रामकृष्ण मिशन विभिन्न प्रकार के सामाजिक सेवा कार्य करता है, जिसमें बाढ़, अकाल, भूकंप, महामारी और अन्य ऐसी सामयिक आपदाओं के दौरान अस्थायी राहत उपाय शामिल हैं, साथ ही अस्पतालों, औषधालयों, प्रसूति और बाल कल्याण केंद्रों, उपदेश केंद्रों, अनाथालयों, कॉलेजों, औद्योगिक स्कूलों, आवासीय हाई स्कूलों और लड़कों और लड़कियों दोनों के लिए प्राथमिक स्कूलों, स्कूल और कॉलेज के छात्रों के लिए छात्रावासों के रूप में स्थायी संस्थानों के माध्यम से नियमित और निरंतर धर्मार्थ, मिशनरी और शैक्षिक उपाय भी शामिल हैं, साथ ही साथ जनता के लिए अंशकालिक सांस्कृतिक प्रशिक्षण और परिभ्रमण शिक्षण की व्यवस्था भी करते हैं।

प्राचीन काल से बिहार, रामकृष्ण मिशन के लिए एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है और कई तरीकों से मानव सुधार के लिए उल्लेखनीय कार्यों का एक लंबा इतिहास रहा है। आधुनिक युग में रामकृष्ण मिशन के महत्व को कम करके आंकना मुश्किल है। उनके प्रयासों से मानव जाति का आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास बहुत समृद्ध हुआ है। परिणामस्वरूप, इसने सांस्कृतिक उन्नति के एक नए युग की शुरुआत करने में मदद की है, साथ ही दुनिया भर में हमारी प्राचीन विरासत के वास्तविक अर्थ की घोषणा भी की है। इसने दुनिया भर में प्रेम, उदारता और सद्भाव का संदेश फैलाया है और विभिन्न देशों में स्थापित संगठनों में काम करने वाले इसके विद्वान मिशनरियों ने कई तरह से आम जन को बहुपयोगी सेवाएं प्रदान की हैं।

मूल शब्दः रामकृष्ण मिशन, परोपकारी कार्य, शिक्षा, विवेकानंद, कोलकाता, बिहार, स्वास्थ्य केंद्र, चिकित्सकीय सेवाएँ

परिचय

धार्मिक पटल पर श्री रामकृष्ण मिशन का 18 फरवरी 1836 ई. को उदय हुआ। जिन्होंने बहुत साधना की। साधना के फल से भारत की आध्यात्मिक चेतना प्रबुद्ध हुई। जो रामकृष्ण संघ के रूप में मूर्त हुई। वे अपना उत्तरदायित्व कलकत्ता के नरेंद्र नाथ दत्त को 12 जनवरी 1863 ई. को सौंपा। भारत के वे दों उज्जवल प्रतिभाएं श्री रामकृष्ण व नरेंद्र नाथ दक्षिणेश्वर के पूर्ण पीठ में आमने-सामने उपस्थित हुए। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन की सेवा करुणा, त्याग व आध्यात्मिक दृष्टि का प्रतीक है। उनके सेवा जीवन के पथ का एक अंश है। लेकिन यहां प्रश्न उठता है कि सेवा किसकी शक्तिशाली की या जरूरतमंद की। शक्तिशाली की सेवा में भय का समावेश रहता है। जो आत्मा व इच्छा से नहीं प्रताड़ना एवं दंड के भय से किया जाता है।

इनके मोटो में कहा गया है कि

"The two fold aim of service activities indeed the whole ideology of Ramkrishna Math and Ramkrishna mission has been put in a nut shell in the MOTTO of the Ramkrishna Math and Ramkrishna mission Atmano Mokshorthan Jagad Hitaya Cha, For one's own salvation and for the welfare of the world' formulated by Swami Vivekanand,"

उपयुक्त भावनाओं से प्रेरित होकर मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए यह संघ सेवा कार्य करता है। जिनमें शिक्षा , स्वास्थ्य, ग्रामीण विकास, स्वरोजगार, महिला कल्याण, सर्व धर्म में विश्वास, नैतिक जीवन, आध्यात्मिक जागरण एवं पीड़ितों की सहायता प्रमुख है। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन द्वारा किए गए सेवा कार्य में अग्रलिखित कुछ प्रमुख है।

1. निस्वार्थ त्याग एवं प्यार- ये तीनों उद्देश्य है रामकृष्ण आंदोलन के। इनके द्वारा कर्म भक्ति एवं ज्ञान का प्रचार किया जाता है। रामकृष्ण संघ के सन्यासी अपने व्यक्तित्व को संघ में विलीन कर देते हैं। उनका संपूर्ण कार्य भगवान को समर्पित है। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन का व्यक्ति किसी कार्य का श्रेय अपने उपर नहीं लेता। संपूर्ण श्रेय रामकृष्ण मिशन का ही होता है। जो भी कार्य होते हैं वे सिर्फ संघ के लिए ही होते हैं। उनका व्यक्तिगत कोई कार्य या त्याग नहीं है। वे लोग बीमार एवं गरीब की सेवा को भक्ति समझते हैं। उनकी सेवा का कोई न वापसी है और न नाम। उनका संपूर्ण कार्य त्याग है। गरीबों की सेवा को भगवान की सेवा समझते हैं। नि:स्वार्थ त्याग एवं प्यार ही उसके सन्यासियों का उद्देश्य है।
2. स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व-रामकृष्ण मिशन समुदाय में प्रजातंत्र के तीनों सिद्धांत अपनाया गया है। स्वामी विवेकानंद ने कहा है- Liberty is the first condition of growth- स्वतंत्रता धार्मिक बंधन से होनी चाहिए। सोचने और विश्वास की स्वतंत्रता होनी चाहिए। रामकृष्ण मिशन के सदस्य जाति धर्म एवं संप्रदाय में बिना भेद किए हुए सब का कल्याण चाहते हैं। वे सबके लिए कल्याण का कार्य करते हैं। उनकी मान्यता है, गरीब या धनी, ब्राह्मण या अछूत, हिंदू -मुस्लिम और इसाई सभी प्रभु के संतान हैं।

विवेकानंद जी की मान्यता थी कि:

"Social equality is to be brought about not by a process of levelling down"but by"levelling up"that is not by pulling down those who are already output by raising of those who are down.

3. श्रेष्ठता, क्षमता एवं सामूहिक कार्य-रामेकृष्ण मिशन के सन्यासियों का सभी कार्य सामूहिक ढंग से किया जाता है। और जो कार्य उत्तम होता है वह प्रभु को समर्पित है। सन्यासियों को जो कार्य सौंपा जाता है। उसे अपनी क्षमता अनुसार तत्परता से करते हैं। या हमेशा ध्यान में रखते हैं कि कोई नुकसान या किसी को क्षति न हो। शास्त्र के लिए कम से कम साधन का उपयोग कर सभी शक्ति या साधन सामन्य में जन कल्याण में लगाना उनका उद्देश्य होता है। सभी सन्यासी संघ के प्रति समर्पित होते हैं। सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। इस कारण रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन को काफी सफलता मिलती है।
4. विश्वसनीयता, ईमानदारी एवं पारदर्शिता-रामकृष्ण मिशन को जो राशि जन सहयोग से चंदा एवं सरकार से अनुदान मिलता है। उस राशि को मिशन निर्धारित नियमों के अनुसार खर्च करती है। किसी तरह का राशि में, विचलन नहीं होता है। इसके खर्च के ब्यौरा का प्रति वर्ष अंकेक्षण होता है। जिसे आम जनता देख एवं समझ सकती हैं। आर्थिक मामले में इसकी पारदर्शिता इसकी एक विशेषता है।
5. राजनीति के अतिरिक्त, सामाजिक प्रतिबद्धता-एक प्रजातंत्रीय के राज्य में जो जनकल्याण पर आधारित है। उसमें किसी प्रकार की समाज सेवी संस्था सरकार से संपर्क में रहती है क्योंकि सरकार समय-समय पर उसको अनुदान देती है। रामकृष्ण मिशन एक आध्यात्मिक संस्था है। इस कारण यह किसी भी राजनीतिक पार्टी से संबंध नहीं रखती है। यश आस्था मात्र मानव जाति को आध्यात्मिक जागरण एवं उत्थान के लिए प्रतिबद्ध है।

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन द्वारा किए गए महत्वपूर्ण कार्य का कुछ अंश

सहायता एवं पुर्नवास सेवा-जबसे रामकृष्ण मिशन, 1897 से स्थापित हुआ। तब से प्राकृतिक आपदाओं जैसे तूफान, वाद भूकंप एवं आग लगी से प्रभावित व्यक्तियों की सेवा करता आ रहा है। मात्र दैविक आपदा में ही नहीं बल्कि मानव कृत संकट जैसे दंगा आदि में भी या प्रभावित व्यक्तियों की सेवा प्राय: प्रत्येक वर्ष करते आ रहा है। महाराष्ट्र में 1993 से 1997 के मध्य भूकंप में संस्था ने काफी सहयोग किया। तथा 52. 5 मिलियन रुपया खर्च किया। आंध्र प्रदेश में जब तूफान आया तो 1997 से 2000 के मध्य 35 मिलियन रुपया सहायता में खर्च किया। जब गुजरात में तूफान आया तो 1998 से 2000 के मध्य सहायता कार्य में मिलियन रुपया जनकल्याण में खर्च किया। पश्चिम बंगाल में जो बाढ़ आई तो रामकृष्ण मिशन ने 19.1 मिलियन रुपया खर्च किया। उड़ीसा में 1999 से 2001 के बीच जब तूफान आया तो 40 मिलियन रुपया खर्च किया गया। गुजरात में जो भूकंप आया था 2001 से 2003 के बीच मध्य मिशन ने 165 मिलियन रुपया खर्च किया। 23 इस प्रकार समय-समय पर आपदा आने पर मिशन सहायता कार्यकर्ता आ रहा है।

चिकित्सा संबंधी सेवाएं

2003 से 2004 के बीच में रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन द्वारा 15 अस्पताल 20 से 32 बेड के साथ, 120 बाह्या दवाखाना तथा 16 चलंत दवाखाना कार्य करता था। अस्पताल एवं दवाखाना नगर, शहर तथा यहां तक कि छोटे गांवों में फैला हुआ। प्रत्येक वर्ष लगभग 8 मिलियन रोगियों का इलाज होता है। ओम स्वास्थ्य सेवाओं में गरीबों का मुफ्त इलाज किया जाता है। उनको दवाई भी दी जाती है। प्रत्येक वर्ष देहाती क्षेत्रों में कैंप लगाया जाता है। मोतियाबिंद का ऑपरेशन लगभग 3000 व्यक्तियों को मुफ्त में किया जाता है। यह संस्था 5 नर्स प्रशिक्षण केंद्र चलाता है। जहां लगभग 1000 प्रतिवर्ष विद्यार्थी प्रशिक्षित किए जाते हैं। पुरुषों के लिए दो जो महिलाओं के लिए एक वृद्धावस्था केंद्र संचालित किया गया है। जिसमें 67 पुरुष एवं 32 महिलाएं हैं। प्रतिवर्ष 320 मिलियन रुपया इस काम में खर्च किया जाता है।

शैक्षणिक कार्य

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन 12 कॉलेज, हर स्तर पर 428 विद्यालय, 2 भाषा का स्कूल, चार पॉलिटेक्निक, 6 कनीय तकनीकी एवं व्यापारिक स्कूल, 119 छात्रावास, 6 अनाथालय, 2 विकलांग स्कूल, एक बैदिक स्कूल तथा 270 अनौपचारिक शिक्षा केंद्र संचालित किया जाता है। जिस पर लगभग 910 मिलियन रुपया लागत खर्च पड़ता है।

ग्रामीण एवं अनुसूचित जनजाति क्षेत्र में कार्य-ग्रामीण एवं अनुसूचित जनजाति क्षेत्र में रामकृष्ण मिशन एवं रामकृष्ण मठ 3 कृषि संस्थान एवं चार विकास प्रशिक्षण संस्थान संचालित करता है। कृषकों को उन्नत खेती का प्रशिक्षण दिया जाता है। उनको कृषि संबंधित सामग्री एवं आर्थिक सहायता भी दी जाती है। प्रशिक्षण के दरमियान उनको बंजर भूमि का व्यवहार, फल सब्जी का उत्पादन, उसर जमीन पर जंगल लगाने का तरीका बताया जाता है। पीने के लिए शुद्ध जल की व्यवस्था के लिए कुंए खोदे जाते हैं। मठ एवं मिशन इस कार्य पर लगभग 120 मिलियन रुपया खर्च करता है।

जनकल्याण कार्य

रामकृष्ण मिशन मठ एवं रामकृष्ण मिशन का मुख्यालय तथा शाखाएं गरीब छात्रों को आर्थिक सहायता देते हैं। मुफ्त इलाज करते हैं। तथा गरीब महिला पुरुषों को खाना तथा आर्थिक सहायता देते हैं। विकलांगों को साइकिल देते हैं और गरीबों का उपचार करते हैं। इस माध्यमिक 2003-2004 में मठ एवं मिशन 19.8 मिलियन रुपया खर्च किया है।

युवाओं के लिए कार्यक्रम-रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन द्वारा जो शैक्षणिक संस्थाएं संचालित होते हैं। उनमें चरित्र निर्माण एवं आध्यात्म संबंधी शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त बहुत सी शाखाएं, सांस्कृतिक मनोरंजन एवं आध्यात्मिक संबंधी घंटी अपने स्कूलों एवं कालेजों में संचालित करते हैं। जिनके अंतर्गत साहित्यिक कार्यों में भाग लेना, खेलकूद तथा महान पुरुषों की जीवनी के संबंध में ज्ञान वर्धन करना मुख्य उद्देश्य है।

शिक्षा के क्षेत्र में 1995 से 2000 तक की उपलब्धियां

1. त्रिपुरा के विवेक नगर में एक नया शैक्षणिक संस्थान की स्थापना।
2. कक्षाओं एवं परीक्षाओं के लिए हायर सेकेंडरी विद्यालय चेनगालपातू तमिलनाडु में एक नए भवन का निर्माण
3. बच्चों के विद्यालय, कटिहार बिहार में एक नए भवन का निर्माण।
4. बेलगरिया पश्चिम बंगाल में इलेक्ट्रॉनिक तथा कम्युनिटी पॉलिटेक्निक के लिए भवन निर्माण
5. देवघर में बाल केंद्र भवन का विस्तार।
6. शिलांग मेघालय में विवेकानंद कल्चर केंद्र के लिए पुस्तकालय की स्थापना।
7. आंध्र प्रदेश हैदराबाद में भाषा विज्ञान के लिए द्वितीय तल का निर्माण।
8. सिंगापुर केंद्र में बच्चों के स्कूल के लिए भवन का निर्माण।
9. तमिलनाडु चेन्नई मिशन आश्रम में हायर सेकेंडरी स्कूल के भवन का विस्तार।

10. देवघर में स्कूल भवन का विस्तार।
11. पश्चिम बंगाल राम हरिपुर में एक विद्यालय भवन का निर्माण समेत कई जगहों पर कार्य किए गए हैं।

निष्कर्ष

रामकृष्ण मिशन की स्थापना १ मई सन् १८९७ को रामकृष्ण परमहंस के परम् शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने की। इसका मुख्यालय कोलकाता के निकट बेलुड़ में है। इस मिशन की स्थापना के केंद्र में वेदान्त दर्शन का प्रचार-प्रसार है। रामकृष्ण मिशन दूसरों की सेवा और परोपकार को कर्म योग मानता है।

मिशन जाति, पंथ और रंग के बावजूद किसी भी जरूरतमंद व्यक्ति की सेवा करता है। कोलकाता के उपनगरीय इलाके में एक बहुत छोटी इकाई से शुरू होकर यह 200 से अधिक शाखाओं के साथ एक विशाल संगठन में विकसित हो गया है, जिनमें से लगभग 160 भारत में स्थित हैं। मिशन कई स्कूल, कॉलेज, पुस्तकालय, छात्र गृह, इनडोर सुविधाओं वाले सेवाश्रम (अस्पताल), क्लीनिक, डिस्पेंसरी, ग्रामीण और आदिवासी विकास केंद्र, विकलांगों के लिए घर आदि चलाता है।इसके अलावा, भारत के कई राज्यों में श्री रामकृष्ण, श्री शारदा देवी और स्वामी विवेकानंद से जुड़े विभिन्न नामों से आम भक्तों द्वारा कई केंद्र चलाए जा रहे हैं, खासकर उन इलाकों में जहां रामकृष्ण मठ या मिशन का कोई आधिकारिक केंद्र नहीं है। इसके शिक्षण संस्थानों में प्राथमिक स्कूल से लेकर डीम्ड यूनिवर्सिटी तक लाखों छात्र पढ़ते हैं। इसके अस्पतालों, डिस्पेंसरियों और चिकित्सा इकाइयों में हर साल लगभग 10 मिलियन गरीब मरीज इलाज कराते हैं। रामकृष्ण आंदोलन ने दलितों के उत्थान के लिए बड़े पैमाने पर योगदान दिया है

इसकी सेवाएं, विशेषकर शिक्षा, स्वास्थ्य और संकट के समय राहत कार्य के क्षेत्र में सुप्रसिद्ध हैं।

सन्दर्भ

सचिव रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन बेलूर मठ हावड़ा पश्चिम बंगाल द्वारा प्रकाशित पुस्तक से लिए गए हैं।

1. Leo S 1969 Ramakrishna: Personality and Social Factors in the Growth of a Religious Movement. Journal for the Scientific Study of Religion, Springer.
2. Vrajaprana P 1994 Living wisdom: Vedanta in the West Vedanta Press. pp. 34–36
3. Sharma A 1988 Neo-Hindu views of ChristianityvBrill Publishers. p. 69.
4. Excerpted from http://www.philtar.ac.uk/encyclopedia/hindu/ascetic/ramak.html Ramakrishna MissionOverview of World Religions.
5. Mukherjee J 1997, The Ramakrishna Vivekananda Movement: Impact on Indian Society and Politics (1893-1922) Firma KLM Pvt. Limited
6. Indian Mirror, 28 March 1875 Reprinted in Nanda Mookerjee, Sri Ramakrishna in the Eyes of Brahmo and Christian Admirers Calcutta: Firma KLM, 1976
7. Watt, C A 2005 Serving the Nation: Cultures of Service, Association and Citizenship. New Delhi: Oxford University Press.
8. Jodhka S S. & Pradumna B 2012 In the Name of Development: Mapping Faith Based Organizations in Maharashtra Economic and Political Weekly Vol XLVII No 1 January 7, 77-85.
9. Gupta K P 1974. Religious evolution and social change in India: a study of the Ramakrishna Mission movement. Contributions to Indian sociology 8 (1) 25-50.
10. Locklin R B 2017. A Century of Advaita Mission: Tracing a Lineage and Opening a Conversation. Journal of Ecumenical Studies, 52 (4), 488-526.
11. Maharaj A 2018. Infinite paths to infinite reality: Sri Ramakrishna and cross-cultural philosophy of religion. Oxford University Press.
12. Sherma R D 2019. Sri Ramakrishna Paramahansa and the Flavors of Bhakti Beacons of Dharma: Spiritual Exemplars for the Modern Age, 41-60.

बिहार की राजनीति संस्कृति पर धर्म एवं जाति की भूमिका

बिजेन्द्र कुमार

यु.जी.सी नेट/जे.आर.एफ. स्कोलर, राजनीति विज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

सारांशः-

भारतीय संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था प्रारंभ से ही वर्गों में विभाजित रही है। कर्म प्रधान 'वर्ण व्यवस्था' पर आधारित समतामूलक समाज समय के साथ जन्म आधारित जातिवाद का रूप ग्रहण करने के साथ-साथ जातीय श्रेष्ठता, सामाजिक असमानता एवं छुआछुत जैसे बुराईयों को आत्मसात करता गया, जिसके उन्मूलन हेतु भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन चलाये गये। किन्तु भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परावादी भारतीय समाज में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना के प्रयत्न के फलस्वरूप जातियों के राजनीतिकरण को अधिक बल मिला। इसी कड़ी में स्वतंत्रता पूर्व ही जाति आधारित विभिन्न संगठनों यथा- ब्राह्मण सभा, यादव महासभा, कुर्मी संगठन, बहिस्कृत हितकारणी सभा आदि स्थापित की गयी। स्वतंत्रता उपरान्त भारतीय राजनीति में राष्ट्रवाद एवं लोक कल्याण के प्रभाव में जातिवादी भावना कुछ समय के लिए शिथिल तो हो गयी किन्तु आगे चलकर छोटी जातियों की उम्मीदें क्षीण होने के साथ-साथ पिछड़े, दलित एवं उपेक्षित वर्गों में राजनीतिक चेतना, नेतृत्व क्षमता एवं सत्ता की आकांक्षा भी विकसित हुई। ऐसी स्थिति में राजनीतिक दलों द्वारा प्रमुख जातियों को वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल एवं तुष्टीकरण की राजनीति प्रारम्भ हुई। राजनीति संक्रमण के दौर में जाति आधारित विभिन्न राजनीतिक दलों- राष्ट्रीय जनता दल (राजद), जनता दल यूनाइटेड (जदयू), लोक जनशक्ति पार्टी (लोजपा), समता पाटी आदि दल का उदय हुआ।

कुंजी शब्दः- लोकतंत्र, जातियाँ, धर्म, दल, राजनीतिकरण, परम्परा आदि।

परिचयः-

सामान्यतः भारतीय लोकतंत्र में जातियाँ चुनाव प्रचार के साधन के रूप में समाज में श्रेष्ठता सिद्ध करने के रूप में तथा दबाव समूह की भूमिका में देखी जाती है। जहाँ विविधता में एकता को भारतीय संघ की खुबसुरती के रूप में देखा जाता है तो वहीं जातिवाद भारतीय समाज में एक विकलांगता की तरह है जो भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे कमजोर कड़ी में से है।

भारत ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व जिन प्रवृतियों से संघर्षरत है, उसे केवल बिहार की विशेषताओं के रूप में तो रेखांकित किया ही जाता रहा है, साथ ही साथ इसे एक ऐसे जर्जर होते हुए राज्य के रूप में रेखांकित करने के प्रयास होते हैं, जो अपनी चुनौतियों से जूझते हुए थक-सा गया है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस राज्य को केवल आर्थिक पिछड़ेपन, सामाजिक असमानता, चुनावी अराजकता और सांस्कृतिक अधोपतन से संबद्ध भयावह कहानियों के स्रोत के रूप में परिकल्पित किया जाता रहा है और इसलिए, इस बात से सहमति जताने में किसी प्रकार की कोई शंका नहीं होती है कि इसे एक 'अंधेर नगरी' के रूप में पेश करने के प्रयास होते रहे हैं। संभवतः बिहार के बारे में भ्रामक जानकारियों को प्रचारित करने और इस अति-पूर्वाग्रही मानसिकता के साथ, निहायत ही गलत ही व्यवस्था बिहार में भी लागू है और निश्चित रूप से बिहार इस संदर्भ में अब अपवाद नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त, इसकी संभावनाएँ भी बन रही हैं या यों कहें कि दिन-प्रतिदिन बलवती होती जा रही है कि राज्य की राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता में जातिगत संघर्षों को भी अपेक्षाकृत अधिक सुव्यवस्थित तथा सशक्त विधि संस्थागत किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के

लिए निरंतर प्रयास हो रहे हैं। वस्तुतः इस तथ्य से पूर्ण सहमति व्यक्त करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि राजनीतिक सत्तालोलुपता और राजनीति करने की अदम्य लालसा ही उपर्युक्त तत्वों को बनाये रखने के लिए जिम्मेदार हैं और संभवतः राजनीति में ऐसे व्यवहार के लिए प्रेरित भी करती है।

बिहार का सामाजिक और आर्थिक इतिहास सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों के प्रति मतदाता की राजनीतिक प्राथमिकताओं, दृष्टिकोण और राजनीतिक अभिमुखता या झुकाव का निर्धारण उसका सामाजिक परिवेश कैसा है- इस आलोक में तय होता है जिसमें वह निवास करता है। इस संदर्भ में विद्वानों के अध्ययन ने भी ऐसे 'सामाजिक परिप्रेक्ष्य' के नियामक होने की पुष्टि की है, जिसके माध्यम से मतदाता अपने-अपने 'चुनावी व्यवहार' और राजनीतिक प्राथमिकताओं के स्वरूप का निर्धारण करते हैं। इस प्रकार के ग्रहण किये गये सामाजिक लक्षण एवं प्राथमिकताएँ, मतदाताओं के मतदान करने की अवधि के दौरान उनके व्यवहार में भी दृष्टिगत होते हैं। मसलन, उनकी किसी राजनीतिक-विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता या किसी राजनीतिक दल के समर्थन का आधार अथवा किसी उम्मीदवार के समर्थन में उनके तर्क। फिर, राजनीतिक वरीयताएँ प्राथमिक समाजीकरण के द्वारा भी प्रभावित होती है, वस्तुतः प्राथमिक समाजीकरण व्यक्तिगत अनुभव ही होता है, जो एक व्यक्ति प्रथमतः अपने घर पर और तत्पश्चात अपने साथियों/सहकर्मियों के बीच प्राप्त करता है।

चुनाव में मतदान करते समय मतदाताओं के व्यवहार को ही 'चुनावी व्यवहार' कहा जाता है। किन्तु, वास्तविक अर्थो में इसमें मतदाताओं से संबंधित अनेक पक्षों का समाहार होता है। वस्तुतः 'चुनावी व्यवहार' के अंतर्गत मतदाताओं की राजनीतिक उन्मुखता या झुकाव एवं किसी राजनीतिक विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता और मतदाता के रूप में व्यवहार जैसे तत्व समाहित होते हैं। यह कथित व्यवहार वस्तुतः अनेक कारकों द्वारा प्रभावित होता है, जैसे- सामाजिक वर्ग, लिंग, नस्ल, धार्मिक उन्मुखता या झुकाव और सामाजिक अस्मिता। इस संदर्भ में, सामाजिक-वैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के मतदाताओं के रूप में उनके व्यवहार तथा उनकी सामाजिक-स्थितियों के बीच व्यापक संबंधों की पड़ताल की है और यह निष्कर्ष स्थापित किया है कि व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूहों की सामाजिक स्थितियों में अंतर के कारण उनकी समस्याएँ भिन्न-भिन्न मुद्दों से संबंधित होती हैं, जो उनके द्वारा राजनीतिक दलों को दिये गये समर्थन में प्रतिबिंबित होता है, जो स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। दरअसल, विभिन्न परिवेश में रहने के कारण उनकी समस्याएँ, निर्णय करने की प्रतिभा तथा दृष्टिकोणों में अंतर होता है। यही अंतर उनके किसी राजनीतिक दल तथा विचार के प्रति प्रतिबद्ध होने में प्रदर्शित होता है। समस्याओं तथा मुद्दों की यही विविधता, राजनीतिक दलों की उपस्थिति के आधार हैं, जो मतदाताओं की चिंताओं, समस्याओं तथा मुद्दों को सुलझाने के हिमायती होते हैं या कम-से-कम ऐसा करने का दावा करते हैं। इस प्रकार, यह कमोवेश स्पष्ट ही है कि किसी विशेष निर्धारित अविध में होने वाले चुनावों से तत्कालीन सामाजिक विशेषताओं का तो पता चलता ही है, किन्तु इसके साथ ही इसके स्याह पक्षों की भी जानकारी होती है। बहरहाल, भारत 29 प्रांतों को समाहित किये हुए एक ऐसा विविध राष्ट्र हैं, जिसमें राज्यों का कोई पृथक अस्तित्व नहीं है, अर्थात् भारत एक अखंड राष्ट्र है और वह राज्यों का कोई पृथक अस्तित्व नहीं है। भारत में राज्यों की संप्रभुता और अस्तित्व की कोई गारंटी नहीं है।

बिहार को भारत के अनेक राज्यों में एक ऐसे राज्य के रूप में संबोधित किया जा सकता है, जो राजनीतिक रूप से सर्वाधिक गतिशील है या यों कहें कि जिसके जन-मानस के अंग-प्रत्यंग में राजनीति मानो रची-बसी हुई हो। यह राज्य राजनीतिकरण के उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठित है। दरअसल, राजनीति के उच्चतम शिखर के उल्लेख से अभिप्राय है- राजनीति के विविध पहलुओं के ज्ञान का उच्च-स्तर और इसकी गहरी समझ तथा स्वतंत्र राजनीतिक विचारों को अभिव्यक्त करने की सामान्य और स्वाभाविक प्रवृत्ति। इस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए यह गाथा-योग्य होगा कि बिहार की राजनीतिक-जनसांख्यिकी का एक बार अवलोकन कर लिया जाए।

बिहार की राजनीति संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँः-

धर्म एवं जाति का नकारात्म एवं सकारात्मक पक्ष-

प्रत्येक राज्य की एक बनावट होती है, जैसे- राजनीतिक बनावट, सामाजिक बनावट, भौगोलिक बनावट इत्यादि। बिहार की आबादी की बनावट पर गौर करें, तो इसमें भिन्न-भिन्न जातियां एवं धर्म हैं। बिहार की राजनीति में जाति एवं धर्म हमेशा से ही अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण रही है। राजनीतिक दल इसका अपने सामाजिक और राजनीतिक आधार के रूप में व्यवहार करते रहे हैं और

यह अब भी बदस्तूर जारी है। दूसरे शब्दों में कहे, तो राजनीतिक दल अपनी सामाजिक और सियासी जमीन बचाने के लिए इसका उपयोग करते हैं। यह उनका मूलभूत आधार है, जिस पर वे अपने राजनीतिक मंसूबों की इमारत खड़ी करते हैं। बिहार की राजनीति में जाति की इतनी सघन केंद्रीयता है कि इसके आधार पर यह भी तय होता है कि टिकट कैसे वितरित किये जाएँ और चुनाव के पश्चात मंत्रालयों का आवंटन भी ध्यान में रखकर ही किया जाता है।

बहरहाल, बिहार में चुनावी-राजनीति दो व्यापक संदर्भों में देखी जा सकती है- स्वतंत्रता के बाद जाति के आधार पर राजनीति और वर्ष 1990 के बाद की अवधि के दौरान 'मंडलीकरण' और उसके पश्चात् जाति की राजनीति। वर्ष 1990 के पहले बिहार के सामाजिक एवं राजनीतिक क्षितिज में उच्च-जातियों का सितारा चमक रहा था। सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इन जातियों का वर्चस्व था। हिंदुओं में ब्राह्मणों, राजपूतों, भूमिहारों और कायस्थों तथा मुस्लिमों में सैयदों, शेखों और पठानों ने संपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश पर अपनी प्रभुता स्थापित कर ली थी। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन परिवेश में बिहार का समाज स्तरीकरण के दृष्टिकोण के पांच वर्गों में विभाजित था। हिंदू जहां तीन स्तरों पर विभाजित थे, वहाँ मुस्लिम भी दो स्तरों पर वर्गीकृत किये जा सकते थे।

हिंदुओं को उंची जातियों, पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों में विभाजित किया जाता है, जबकि मुस्लिम उपरी जातियों और पिछड़ी जातियों में वर्गीकृत है। हिंदुओं में ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार जैसे जातियां उच्च-वर्ग की जातियों के रूप में संबोधित की जाती हैं। जबकि चमार, दुसाध और मुसहर अनुसूचित जातियां हैं, जिन्हें अछूत भी माना जाता है। अछूत या अस्पृश्यता जैसी आदिमकालीन वृत्ति बिहार के कुछ हिस्सों में अभी भी मौजूद हैं। यह वहाँ के लोगों के लिए एक प्रथा-सी बन गयी है। हालांकि, मुसहर समुदाय से ही संबंध रखने वाले जीतन राम मांझी बिहार के मुख्यमंत्री रह चुके हैं। लेकिन, इससे समाज में इस जाति की वस्तुस्थिति में कोई अंतर नहीं आया।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि न तो उच्च जातियां और न ही अन्य पिछड़ी जातियाँ एक अखंड समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि वे विभिन्न 'जातियों' के सपुंजन या मिलने से बने होते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि एक जाति वर्ग में कई जातियाँ होती हैं और उनके मिलने से एक जाति के वर्ग का निर्माण होता है। यहां तक कि ये समूह राजनीतिक रूप में भी विभाजित होते हैं और कभी-कभी एक ऐसे राजनीतिक दल के लिए मतदान करते हैं, जिनके साथ वे राजनीतिक रूप से जुड़े हुए नहीं माने जाते। उदाहरण के लिए, ऊपरी जाति के मतदान बार-बार राजद (राजद) उम्मीदवार के लिए मतदान (वोट) कर सकते हैं और भाजपा के उम्मीदवार को नजरअंदाज कर सकते हैं, यदि वह अपनी जाति का नहीं हुआ। इसलिए यह स्पष्ट है कि कभी-कभी मतदान करने के दौरान मतदाताओं के व्यवहार या रूझान में परिवर्तन या रूपांतर हो सकता है और ऐसी भी संभावना बन सकती है और निश्चित रूप से इससे इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस प्रकार के परिवर्तन या रूपांतर पूर्व में स्थापित परंपराओं या मानकों के प्रतिकूल हों।

बहरहाल, राजपूत, भूमिहार, ब्राह्मण और कायस्थ जहां उच्च जातियों का प्रतिनिधित्व करते हैं अर्थात इन चार जातियों के समूह से ही उच्च-जातियों का वर्ग निर्मित होता है, वहां जातियों की एक बड़ी संख्या अन्य पिछड़े वर्ग (ओबीसी) के रूप में वर्गीकृत की गयी है। यादव, कुर्मी और कोइरी जैसी जातियाँ अन्य पिछड़े वर्ग (ओबीसी) के उच्च पायदान पर है; जबकि कहार, कुम्हार, लोहार, तांती, तेली और धानुक इसी ओबीसी वर्ग के निम्नतम पायदान पर रहनेवाली जातियाँ हैं। यहाँ तक कि मुसलमानों में भी ऊपरी और निचली जातियाँ हैं। प्रश्न यह है कि क्या इन तीन जाति-समूहों (उंची जातियाँ, अन्य पिछड़े वर्ग और मुस्लिम) के भीतर विभिन्न 'जातियों' के मतदान करने के तरीकों में किसी प्रकार की कोई पूर्व-निश्चित समानता दिखती है, जबकि उनके बीच में व्यापक सामाजिक और आर्थिक असमानता है? प्रश्न यह है कि क्या इन जाति-समूहों ने अपने बीच सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों में व्यापक अंतर होते हुए भी मतदान करते समय रूझानों और प्रतिरूपों तथा अपने 'व्यवहार' के चयन में समान प्रवृतियों का प्रदर्शन किया है? यह प्रश्न इसलिए भी अधिक विचारणीय है, क्योंकि हमेशा से ही समाज के तथाकथित संभ्रांत और समृद्ध वर्ग के मतदाता अलग-अलग लीक पर मतदान करते रहे हैं। इस प्रकार की प्रवृति कुछ समय से इस वर्ग के मतदान करने संबंधी 'व्यवहार' में भी लक्षित होती रही है। जैसे कि पिछड़ी जाति के वे मतदाता, जो अमीर और समृद्ध है, कभी-कभी चुनावों के दौरान भाजपा को पसंद करते हैं।

पिछड़ी जातियों में यादव और कोइरी एवं कुर्मी जैसी जातियां सामाजिक और आर्थिक प्रगतिशीलता, दोनों दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण है। बिहार की कुल जनसंख्या में 11 फीसदी की भागीदारी के साथ यादव बिहार में सबसे बड़ी पिछड़ी जाति थी और

जनसांख्यिकीय दृष्टिकोण से वर्तमान में भी इस जाति-समूह की यही स्थिति है। वर्ष 1990 के पश्चात यह समुदाय राज्य के सियासी और सामाजिक परिवेश में सर्वाधिक सशक्त तथा प्रभावशाली जाति रही है। वस्तुत: सही अर्थों में, इस जाति ने अपने सामाजिक एकजुटता और राजनीतिक सूझबूझ के कारण सामाजिक-पायदान में स्वयं को उपर उठाया है और अभी भी सामाजिक और राजनीतिक क्षितिज में अपने वर्चस्व की स्थिति कायम रखने में कमोबेश सफल ही प्रतीत हो रही है।

कुर्मी और कोइरी जैसी जातियों को सम्मिलित रूप से 'लव-कुश समाज' के रूप में संबोधित किया जाता रहा है। यह समुदाय बिहार की कुल आबादी की 7.7 प्रतिशत हैं। किन्तु, यह वैसी सामाजिक-कुरूपता या अशिष्टिता अथवा अपात्रता का सामना नहीं करती, जैसी दलितों को करनी पड़ती है, तथापि वे उच्च जातियों की तुलना में निम्न दर्जे की जाति के रूप में ही वर्गीकृत किये गये हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे इससे संतुष्ट भी हैं। 1990 के पहले यादव और कोइरी-कुर्मी, दोनों मूलत: कृषक- समुदाय के रूप में चिह्नित किये गये थे; किन्तु 1990 के पश्चात स्थिति धीरे-धीरे परिवर्तित हुई। उनके बीच चल रही सामाजिक लामबंदी और उसकी तीव्रता में निरंतर उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ उनकी सामाजिक-राजनीतिक सोपान की स्थिति में आमूल-चूल परिवर्तन हुए और परिवर्तित परिस्थितियों में वे नवीन राजनीतिक अभिजात वर्ग के रूप में रूपांतरित हो गये। यहां तक कि वे सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक संकेतकों के आधार पर सामाजिक-सोपान में उच्च-जातियों की स्थिति और उनकी प्रगतिशीलता तथा स्वयं की उन्नतिशीलता के मानकों के बीच उपस्थित अंतराल को निरंतर कम करने में उद्यत रहे और इसमें सफल भी होते हुए दिख रहे थे और संभवत: अभी भी निरंतर ऐसा ही करते हुए दिख रहे हैं।

परंपरागत रूप से अधिकतर अन्य पिछड़ी जातियाँ कृषि करनेवाली या श्रमिकों के रूप में लगी हुई हैं और शहरी क्षेत्रों में अधिकांशत: असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं, किन्तु अभी भी शिक्षा के क्षेत्र में वे उंची जातियों से काफी पीछे हैं। यद्यपि हाल के वर्षों में सरकार के सकारात्मक प्रयासों के कारण इन जातियों की सामाजिक और आर्थिक संसाधनों में हिस्सेदारी बढ़ी है।

इन जकड़ी हुई स्थितियों तथा कभी न परिवर्तित माने जाने वाले सामाजिक-सोपानों तथा कुलीनवादी तंत्र से मुक्ति पाने के लिए अन्य पिछड़ी जातियों ने सामूहिक रूप से 'लोक दल' नामक राजनीतिक दल को समर्थन देने का निर्णय किया। इससे एक प्रकार ने उनको पहले से चली आ रही राजनीतिक पराधीनता से भी मुक्ति मिली। वस्तुत: उच्च-वर्गीय पिछड़ी जातियों, जैसे- यादव, कोइरी, और कुर्मी कभी भी कांग्रेस के चुनावी वोट-बैंक का हिस्सा नहीं रहे, क्योंकि कांग्रेस के नेतृत्वकर्ताओं की पंक्तियों में उच्च-वर्गीय जातियों, जैसे- ब्राह्मणों, राजपूतों और भूमिहारों का बोलबाला था। इन परिस्थितियों में दलित, मुस्लिम एवं निम्न-वर्गीय पिछड़ी जातियां ऊहापोह की स्थिति में थीं कि वे किस राजनीतिक दल का समर्थन करें या अपनी पुरानी प्रतिबद्धता दोहराते हुए कांग्रेस से ही चिपकी रहें? इन जाति-समूहों की इसी असमंजसता के आधार पर इन्हें 'अडिग मतदाता' कहा गया।

किन्तु, जब वीपी सिंह के नेतृत्व वाली जनता दल की सरकार ने 'मंडल आयोग' की सिफारिशों को लागू करने का निश्चय किया, तो बिहार में एक प्रकार की एक नयी राजनीतिक संभावनाओं का तो विकास हुआ ही, साथ-ही-साथ सूबे की सियासत में नये समीकरण भी बने। ये इसलिए हुआ, क्योंकि इसमें यह प्रावधान था और इसे व्यवहार में लाने का निर्णय लिया जा चुका था कि अन्य पिछड़ी जातियों को 27 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। लालू प्रसाद यादव और नीतीश कुमार, दोनों मंडल की राजनीति के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने इन नीतियों की पुरजोर वकालत की। इस प्रकार की राजनीति ने उत्तर भारत में मुख्य रूप से बिहार में, भाजपा द्वारा नियोजित मंदिर-मस्जिद की राजनीति को किसी सीमा तक निष्प्रभावी कर दिया।

बहरहाल, स्वतंत्रता के पहले की अवधि के दौरान अछूत मानी जाने वाली अनुसूचित जातियों की आबादी, बिहार की कुल जनसंख्या की 16 फीसदी थी। 2011 की जनगणना के अनुसार, इस समुदाय की 93.3 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। राज्य में इनकी आबादी का वितरण एक समान नहीं है। हालांकि, राज्य के कुछ जिलों में जैसे- गया, कैमूर, वैशाली, औरंगाबाद और नालंदा में इनकी आबादी का सघन संकेद्रण है। जनगणना में सूचीबद्ध 23 अनसूचित जातियों में से 'चमार' जाति राज्य में कुल अनुसूचित जाति की जनसंख्या का लगभग 31.3 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती है। अनुसूचित जातियों के बीच दूसरा सबसे बड़ा समूह दुसाध का है, जो कुल आबादी का लगभग 30 प्रतिशत है। जनसांख्यिकीय दृष्टिकोण से अनुसूचित जातियों के अन्य समूह मुसहर, पासी, धोबी और भूइयाँ हैं। कुल मिलाकर, अनुसूचित जातियां या दलित सामाजिक-आर्थिक पदानुक्रम में नीचे खडेघ् हैं और इस प्रकार समाज के हाशिये पर धकेले गये समूह होते हैं। इसलिए, ये समूह समाज के सबसे वंचित भाग है। साक्षरता दर उनके बीच कम है। उनमें से अधिकतर भूमिहीन और गरीब हैं। उनकी रहने की स्थिति दयनीय है। हालांकि, हाल के दशकों में उनमें अपने अधिकारों के प्रति सजगता और उसे रेखांकित और निर्धारित करने की चेतना बढ़ी है।

निष्कर्ष

बिहार की राजनीति में जाति की भूमिका को कम करके नही आंका जा सकता है। जाति चुनावी गतिशीलता, राजनीतिक गठबंधनों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। जाति आधारित राजनीति, समाजिक और आर्थिक विषमताओं की प्रति क्रिया के रूप में उभरी है। राजनीति उन्हें अपनी राजनीतिक पहचान मुखर करने और प्रतिनिधित्व की मांग करने के लिए मंच प्रदान करती है। राजनीतिक दलों ने जाति आधारित लामबंदी के महत्व को पहचाना है। ये दल चुनावी समर्थन हासिल करते हैं, विशिष्ट जातियों की चिंताओं को दूर करते हैं।

हाल में सम्पन्न 2024 के लोकसभा चुनाव में भी इसका प्रभाव दिखा। इस चुनाव में जीत की रणनीतियों को बनाने, गठबंधन करने, टिकटों का वितरण, उम्मीदवारों का चयन, चुनाव-प्रचार हेतु नेताओं और क्षेत्र के चयन आदि में जातियों की भूमिका काफी प्रभावी रहा।

2024 के लोकसभा चुनाव में लगभग सभी गठबंधन एवं चुनावी राजनीति जातियों के समीकरण को ध्यान में रखकर बनी। 2024 के लोकसभा चुनाव में सबसे बड़े गठबंधन एनडीए में जदयू और बीजेपी शामिल थी ही लेकिन जीत के लिए जातीय समीकरण को मजबूत करने हेतु लोजपा (आर) के चिराग पासवान और हम के जीतन राम माँझी एवं राष्ट्रीय लोक मोर्चा के उपेन्द्र कुषवाहा के पार्टी को साथ लिया गया।

इसी क्रम में इंडिया गठबंधन को देखा जाए तो उसमें राजद, काँग्रेस, सभी वामदल शामिल थे लेकिन जातीय समीकरण के लिए विकासशील इंसान पार्टी (वीआईपी) के मुकेश सहनी को साथ लिया। लेकिन एनडीए की अपेक्षा तुलनात्मक रूप से इंडिया गठबंधन जातिगत आधार पर पिछड़ गया जिसका खामियाजा उसे चुनाव में उठाना पड़ा।

परिणाम आने के पूर्व तक यह लगा था कि इंडिया गठबंधन अपने रोजगार एवं पलायन के मुद्दे के साथ जीत हासिल करेगा और यह लगा कि यह चुनाव मुद्दा आधारित हो गया है जिसमें लोग जाति से ऊपर उठकर मतदान करेंगे लेकिन चुनाव परिणाम में रोजगार का मुद्दा पढ़े-लिखे युवाओं तक सीमित रहा और अधिकांश लोगों ने जाति और धर्म पर ही अपना मतदान किया।

इस प्रकार हालिया सम्पन्न लोकसभा चुनाव सहित पूरे बिहार में लगभग सभी गठबंधनों का सृजन एवं प्रत्याशी का चयन राज्य के चुनावी माहौल को देखते हुए जातीय समीकरण के आधार पर हुआ था और बेरोजगारी, मँहगाई, पलायन आदि जैसे चुनावी मुद्दों के बावजूद अधिकांश वोट जात-पात के आधार पर डाले गए। स्पष्ट है कि 2024 के लोकसभा चुनाव में जाति भी एक प्रमुख मुद्दा था और इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि जाति बिहार की चुनावी राजनीति का एक मुख्य पक्ष है।

संदर्भ-सूची

1. योजना, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2023
2. India, gov.in.ministry of social justice and empowerment, Govt. of India -2023, New Delhi.
3. state.bihar.gov.in प्रकाशन विभाग, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, बिहार सरकार- 2023
4. लक्ष्मीकांत एम, भारत की राजव्यवस्था, चेन्नई मैक्ग्रा हिल एजुकेशन (इण्डिया) प्रा०लि०- 2022
5. पाण्डेय, तेजस्कर, भारत में सामाजिक समस्याएँ, नयी दिल्ली, टाटा मैक्ग्रा हिल एजुकेशन प्रा०लि०-2018
6. ECI.gov.in. Report, Election- भारत निर्वाचन आयोग, नयी दिल्ली- 2019, 2024
7. प्रतिवेदन, जाति आधारित गंजना, सामान्य प्रशासन विभाग, बिहार सरकार-2023
8. मतदाताओं का विचार, सर्वे वर्ष-2024 संबंधित लोकसभा क्षेत्र में चुनावी जनसभा एवं राजनीतिक दलों का चुनावी घोषणा-पत्र 2024
9. समाचार पत्र दैनिक-जनसत्ता, नवभारत टाइम्स, दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान

‘विदित’क उपन्यास-‘विधिकरी’

गुड़िया कुमारी

अतिथि शिक्षिका, मैथिली विभाग, कालिदास विद्यापति साइंस महाविद्यालय, उच्चैठ, बेनीपट्टी, मधुबनी

साहित्यकार लोकनि सामान्य व्यक्ति सदृश एहि भूतल पर जन्म लैत छथि आ अपन सत कृतिक कारणेँ सदैव पूजित होइत रहैत छथि। मैथिली साहित्यमे सेहो एहन साहित्यकार लोकनिक अभाव नहि अछि जे अपन ग्रन्थक प्रणयन द्वारा अपन कीर्तिमान स्थापित करैत रहलाह अछि। आओर एहन साहित्यकार लोकनिमे डॉ0 विद्यानाथ झा ‘विदित’ सेहो एक छथि।

डॉ0 विद्यानाथ झा ‘विदित’क प्रकाशित आ अप्रकाशित रचनाकेँ देखला पर हिनक विपुल विशाल साहित्यक परिचय भेटैत अछि। ‘विदित’जी कलमक जादूगर छथि। सरल, कोमल स्वाभावक व्यक्ति छथि। विद्यानाथ झा ‘विदित’ वर्ष 2008 ई0 सँ 2012 ई0 धरि साहित्य अकादेमी नई दिल्लीक मैथिली परामर्श मंडलक संयोजक सेहो रहलाह। एहि अवधिमे ‘विदित’ जी मैथिली ओ मिथिलाक्षरक विकासक लेल तत्पर रहलनि। हिनक मंतव्य छनि- ‘‘कतबो नमहर काज वा अनुष्ठान किएक ने हो, प्रारम्भ करितहि बुझू जे ओ आधा सम्पन्न भऽ जाइत अछि। कोनो एहन प्रयत्न जे विचार पूर्वक कयल जाइत अछि ओ निश्चिते सफल होइत अछि।’’[1]

आई कँ हमर ई आलेख विद्यानाथ झा ‘विदित’ रचित ‘विधिकरी’ उपन्यास अछि। एहि उपन्यास मे जे ननदि भाउजक असीम प्रेमक दृश्य अछि ओ एहि तरह अछि-उपन्यासक कथानक, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, भाषा-शैली, उद्देश्य सब तत्व के’ उपन्यासकार नीक जका उजागर केने छथि।

उपन्यासक कथानक-उपन्यासक विभिन्न तत्व मे कथानकक स्थान सर्वोपरि अछि। एकरा उपन्यासक रीढ़ कहि सकैत छी। एडविनम्मूरक अनुसार-‘‘कथाक अन्तर्गत घटनाक श्रंखला एवं नियोजन सिद्धांत कँ कथावस्तुक नाम देल जा सकैछ।’’[2]

विधिकरी उपन्यासक कथानक-

विधिकरी उपन्यासक कथानक सुगठित एवं विकसित अछि। जीवनक विभिन्न पक्षक चित्रण कए उपन्यासकार सफल भेलाह। कथानकक विकास जीवनक स्वाभाविक गतिक संग भेल अछि। सामाजिक घटनासँ समताक कारणेँ कथानकमे विश्वसनीयता अछि। सामान्य जीवनमे जेना हर्ष-विषाद, प्रेम आदिक अनुभव होइत अछि। तहिना अनन्त, सुमेद्या, सुभद्राक जीवनमे आशा-अकांक्षा, हर्ष-विषाद आदि विभिन्न अनुभूतिक चित्रणक कारणेँ सजीव भेल अछि।

अनन्तक पत्नी सुमेधा अपन इज्जत बचेबाक लेल छतसँ नीचा कुदि जाइत छथि। एहि घटनासँ सुमेधाकँ मस्तिष्कमे चोट लागि जाइत छनि, तँ हिनका आवाज चल जाइत छनि।

किछु दिन बाद हिनका ननदकँ प्रसूती हेवाक छलनि। एहि लेल हिनक ननदि अस्पतालमे भर्ति छलीह, प्रसव पीड़ाक व्यथासँ ओ कहलनि भौजी हमरा बचा लिअ। ‘‘हदासक शिखर पर दौड़ैत सुमेधा एकटा काटल गाछे जकाँ डाक्टरनीक पएर पर खसैत खूब जोरसँ चीत्कार क’ उठलि मैडम हमरा ननदिकँ बचा दीअ।’’[3]

एहि तरहँ सुमेधाकँ आवाज फेरसँ लौट जाइत अछि।

एकर कथानक मे चरित्रक’ निर्माण समुचित वातावरणक पृष्ठभूमिमे भेल अछि।

उपन्यासक चरित्र-चित्रण-

उपन्यासक मूलाधार चरित्र-चित्रण अछि। चरित्र-चित्रणमे पात्रक बाह्य क्रिया-कलापक अध्ययन नहि क’ क’ पात्रक रागात्मक मनोवेगक अध्ययन कयल जाइत अछि। एहि लेल पात्रमे गति रहबाक जरूरी अछि। संकल्प शक्ति रहबाक चाही।

''फार्स्टरक कथन छनि-उपन्यासक चरित्र तखनहि स्वाभाविक भए सकैत अछि जँ उपन्यासकार ओकरा सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान राखथि। ई आवश्यक नहि जे ओ जे जानैत छथि से सब कहि देथि। किन्तु ओ ई विश्वास देआए देथि जे यद्यपि पात्रक व्याख्या नहि कएल गेल अछि। ओ व्याख्या करए योग्य अछि।''[4]

विधकरी उपन्यासक चरित्र-चित्रण

विधिकरी उपन्यासक नायिका जिनक आवाज बैठ गेल छनि। दोसर हिनक ननदि 'सुभद्रा' दुनू पात्रक चरित्रक उद्‌घाटनक हेतु उपन्यासकारकँ पात्रक विभिन्न मनोदशाक वर्णन कए एक सूत्रमे आबद्ध केने छथि।

'सुभद्रा अपन मायकँ ओ रूपैया सभ सौंपि सोझे महासुन्नरिक घर दिस दौड़ गेलि, भौजी भरि पांजाकँ सुभद्राकँ पकड़ि बेर-बेर ओकर गाल मुंह आ केश चुमैत रहतीह। सुभद्रा कहबो कयलक पहिने गोर तँ लागय दिअ, मुदा महासुन्नरि अपन तरहथ हिलबैत आ हँसैत ईशारे सँ जेना ई कहि देलनि जे-से नहि भ' सकैय पुनः अपन छाती थपथपाकँ ई संकेत देलनि जे जकरा हम अपना हृदयमे रखने छी तकरा अपना पएर पर कोना झुकय देव।''[5]

पात्रक चरित्र-चित्रण विशेषक' सुमेधाक जे स्नेह छनि अपन ननदिक प्रति तकर जे वर्णन करै छथि ईशारासँ ओ उपन्यासकारक विशिष्टताक परिचय सेहो द' रहल अछि।

उपन्यासक कथोपकथन

कथोपकथनक कथाक एक आवश्यक अंग अछि। कथोपकथन कथानककँ गतिशील बनबैत अछि। कथोपकथन कथानकक विकास संग चरित्र-चित्रणक हेतु आवश्यक साधन एकत्र सेहो करैत अछि।

''उपन्यासमे कथोपकथनक अत्यधिक महत्व अछि। उपन्यासक पाठक उपन्यासकारसँ एहन कथोपकथनक अपेक्षा रखैत छथि जकरा सुनि हुनका ई आभास होइन्हि जे ओ मात्र कथा नहि सुनि रहल छथि अपितु उपन्यासक पात्रक अभिन्य देखि रहल छथि।''[6]

विधिकरी उपन्यासक कथोपकथन

सुभद्रा कहलक-''कनियाँक सोंथमे तो सिनूर देलही आ आब ओकरा नै अनबिही तँ ओ कानत नहि तँ की हँसत?

अनन्त कहलक-हमर माथ घूमि रहल अछि की करी की नहि' एक दिस सौंसे परिवार अछि आ दोसर दिश तौँ छँ। हम की करी किछु नहि फुरैयै?

सुभद्रा कहलक-''तँ की तौँ दोसर बियाह करबेँ?

अनन्त कहलक-राम-राम! एहन बात तँ हमरा लए तो सपनोमे नहि सोचिहँ।''[7]

प्रस्तुत कथोपकथन कथानकमे गति अनैत अछि। स्वाभाविक उपयुक्त एवं नाटकीय कथोपकथन पात्रक सूक्ष्म मनोभावकँ व्यक्त कए चरित्र पर प्रकाश दैत अछि।

उपन्यासक प्रमुख तत्व वातावरण

''उपन्यासमे वातावरणक ओएह स्थान अछि जे कोनो चित्रमे सहायक पृष्ठभूमि पाबि कोनो चित्र अधिक सजीव भए उठैत अछि। समुचित वातावरणक पृष्ठभूमिमे उपन्यासक कथानक पुष्ट होइत अछि।''[8]

उपन्यासक व्यापक परिवेशमे कतहु हमरा लोकनिक चित्र करूणासँ द्रवित भए जाइत अछि, कतहु आश्चर्य एवं कौतूहल होइत अछि,'

विधिकरी उपन्यासक वातावरण-

विधिकरी उपन्यासक वातावरण निर्माण हेतु प्रकृति चित्रण पात्रक व्यवहार ओकर वेश-भूषा, आदिक पूर्ण सामंजस्य भेल अछि।

उपन्यासक भाषा शैली-

''शैली अंग्रेजीक स्टाइल (ैजलसम) शब्दक पर्यायवाची थीक जकर उत्पळि 'स्टाइलस' (कलम) शब्दसँ भेल अछि। प्रारम्भमे स्टाइलसक प्रयोग एक विशेष प्रकारक पट्टपर लिखबाक हेतु कएल जाइत छल। किन्तु क्रमशः ई शब्द कलमक अतिरिक्त सुन्दर लिखएवालाक लेल प्रयुक्त होबए लागल। एकर अर्थ आओर विस्तृत होइत गेल तथा आइ काल्हि समीक्षकक द्वारा लेखकक कोनों स्वीकृत अथवा अस्वीकृत गुणक हेतु एक प्रयोग होइत अछि।''[9]

विधिकरी उपन्यासक भाषा-शैली-

मनोविश्लेषणात्मक शैलीक अनुशरण यत्र-तत्र भेल अछि। पात्रक मानसिक स्थिति विश्लेषण करैत काल उपन्यासकार विभिन्न स्थितिक उल्लेख करैत छथि।

एहि उपन्यासक जे भाषा-शैली अछि अत्यन्त हृदयग्राही अछि। सुभद्राक विवाह में विधिकरी सुमेधा बनल रहय ओ सब विद्ध इसारासँ सम्पन्न केलीह। ताही पर किछु लोक बाजल जे ई त पुरना जमानामे जेना ग्रामोफोनक रेकर्ड पर जेना अभिनय होइत छल तहिना खाली अभिनयटा करैत छथि। ताहि पर सुभद्राक पति माघवेन्द्रजी कहलनि-''हमरा सभ ओहि ठाम चारि दिन धरि कनिया पतिसँ नहि बजैत अछि। ई जे विधिकरी बनल छथि से हमरा पत्नीक भौजी छथि। हिनका अपन ननदिसँ ततेक ने प्रेम छनि जे ओहो चारि दिनक हेतु ननदिए जका मौन व्रत धारण करने छथि।''[10]

उपन्यासक उद्देश्य-

''शुरू में उपन्यास मात्र लोकक मनोरंजन मात्रकँ उद्देश्य मानल जाइत छल। उपन्यासमे लोकरंजनक अतिरिक्त लोकरक्षणक प्रकृति जाग्रत भेल। उपन्यासकार अपन कृति द्वारा पाठक धरि निश्चित संदेश पठएबाक चेष्टा करए लगलाह। क्रमशः उपन्यासक मूल प्रतिपाद्य रचयिताक कृतिगत जीवन्तक चित्रण भए गेल।''[11]

उपन्यासकार जीवन जगतक अपन अनुभवजन्य घटनाकँ अंकित करैत छथि। सब कृतिक किछु ने किछु उद्देश्य रहैत छैंक।

विधिकरी उपन्यासक उद्देश्य-

विधिकरी उपन्यास भाऊज सुमेधा आ ननदि सुभद्राक बीच जे आत्मीयता अछि ओकर अद्भूत प्रतिफल भेल अछि। जखन विधिकरी भौजीक कंठक आवाज चल जाइत छनि मुदा अपन ननदिक प्रेमक कारणेँ हिनक अवाज फेरसँ वापस आबि जाइत छथि ई अद्भूत चमत्कार भेल अछि।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. कुमार डॉ0 पंकज, प्र0 वर्ष-2016, सम्पादक, मिथिलाकमोद वार्षिक मैथिली पत्रिका, प्रकाशन मैथिल समाजक बनारस, पृ0-5
2. पाठक डॉ0 अमरेश मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध्ययन (संस्करण-2007) प्रकाशन-आलोक प्रकाशन विद्यापुरी, पटना-20, पृ0-27
3. झा डॉ0 विद्यनाथ 'विदित' विधिकरी (उ0) प्र0 प्र0 डंगाल पाड़ा, हिजल रोड, दुमका, झारखंड, प्र0 वर्ष-2010, पृ0-21
4. पाठक डॉ0 अमरेश, मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध्ययन, प्र0 आलोक प्रकाशन, विद्यापुरी, पटना-20, पृ0-67
5. झा डॉ0 विद्यानाथ 'विदित' विधिकरी (उ0) प्र0 प्र0 प्र0 डंगाल पाड़ा, हिजला रोड, दुमका, झारखंड, पृ0-48
6. पाठक डॉ0 अमरेश मैथिली उपन्यास आलोचनात्मक अध्ययन, प्र0 आलोक प्रकाश विद्यापुरी, पटना, पृ0-106
7. झा डॉ0 विद्यानाथ 'विदित' विधिकरी (उ0) प्र0 प्र0 प्र0 डंगाल पाड़ा, हिजला रोड, दुमका, झारखंड, पृ0-61
8. 'पाठक' डॉ0 अमरेश मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध्ययन, प्र0 आलोक प्रकाशन, विद्यापुरी, पटना-20, पृ0-95
9. तत्रैव, पृ0-198
10. झा डॉ0 विद्यानाथ 'विदित' विधिकरी (उ0) प्र0 प्र0 प्र0 डंगाल पाड़ा, हिजला रोड, दुमका, झारखंड, पृ0-60
11. 'पाठक' डॉ0 अमरेश, मैथिली उपन्यासक आलोचनात्मक अध्ययन, प्र0-आलोक प्रकाशन, विद्यापुरी, पटना-20, पृ0-132

समाज परिवर्तन में ग्रंथालयों की भूमिका का एक समीक्षापूर्ण अध्ययन

ओमप्रकाश राठौर

ग्रंथपाल, ज्ञानरोशनी लोक कल्याण संस्था, खोखरा, जिला जांजगीर-चांपा (छ.ग.)

डॉ० आर० जी० यादव

शोध निर्देशक, ग्रंथपाल, डी.पी. विप्र महाविद्यालय बिलासपुर जिला बिलासपुर (छ.ग.)

सारः-

ग्रंथालय का अर्थ है एक सामाजिक संस्था जो समाज की सामान्य परिस्थितियों से परे गंभीर सामाजिक समस्याओं का दस्तावेजीकरण करती है जिसमें ज्ञान, सूचना और सीखने की प्रेरणा प्रदान करती है। स्वाध्याय में ग्रंथालय एक ऐसा माध्यम है जो समाज को सकारात्मक रूप से बदलने की क्षमता रखता है। समाज के सदस्यों द्वारा ज्ञान, सूचना या विचारों का आदान-प्रदान अधिकतर मौखिक रूप से होता है। लेकिन जब कोई लिखित दस्तावेज किसी लेखक या विशेषज्ञ द्वारा तैयार किया जाता है तो ग्रंथालय उसे व्यवस्थित तरीके से संग्रहीत कर जन-सामान्य को उपलब्ध कराने का कार्य करता है। यह समाज के विभिन्न क्षेत्रों जैसे परिवार या विवाह, धर्म या आर्थिक व्यवस्था, स्वास्थ्य जागरूकता या शिक्षा, शोध, व्यवसाय या उद्योग, संगठन आदि के बारे में जानकारी प्रदान कर समाज को ज्ञान की नई दिशा में ले जाता है। वर्तमान युग में पारंपरिक ग्रंथालय अब आधुनिक डिजिटल ग्रंथालय बन गए हैं। कम्प्यूटर और नेटवर्क की प्रगति के कारण पारंपरिक समाज भी आधुनिक रूप से डिजिटल हो गया है जिसमें विभिन्न ज्ञान सामग्री मोबाईल तक पहुंच गई है। ग्रंथालय प्रिंट और मास मीडिया में पुस्तकों, पत्रिकाओं, शोध लेखों, थीसिस आदि के रूप में सूचना और ज्ञान एकत्र करते हैं, संग्रहीत करते हैं, संसाधित करते हैं, व्यवस्थित करते हैं, प्रसारित करते हैं और वितरित करते हैं। जैसे-जैसे आधुनिक भारत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक विकास की ओर बढ़ रहा है, ग्रंथालय भी विकसित और आधुनिक रूप से बदलाव आई है। बदलते ग्रंथालय और इसकी सामग्री समाज की दिशा बदल रही है। ग्रंथालय के होने से समाज में बदलाव सकारात्मक है या नकारात्मक इसकी समीक्षा इस शोध लेख में की गई है। इसके अतिरिक्त ग्रंथालय से समाज में सकारात्मक रूप से बदलाव लाने में कैसे भूमिका निभाते हैं। इस लेख में इसका सामीक्षात्मक वर्णन किया गया है।

मुख्य सूचकः- ग्रंथालय, ग्रंथालय सेवा, आधुनिकता, समाज की भूमिका, सामाजिक परिवर्तन।

परिचयः-

ग्रंथालय का निर्माण समाज के सदस्यों द्वारा किया जाता है। ग्रंथालय समाज को नई दिशा, नई गति और नई ताकत प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस संदर्भ में देखा जाए तो समाज और ग्रंथालय दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, ग्रंथालय समाज की जरूरतों के लिए मौजूद है। इसी तरह, समाज के सदस्यों को ग्रंथालय को बढ़ावा देने, नई जानकारी प्रदान करने की आवश्यकता है। ग्रंथालय को एक सामाजिक संस्था के रूप में माना जा सकता है जो व्यक्ति को सामाजिक बनाने, मानदंडों, मूल्यों, सहयोग को

विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ग्रंथालय की पुस्तकें और अन्य सामग्री संचित ज्ञान का संचार और प्रसार करती हैं, जो समाज को आकार देने में मदद करती हैं।

ग्रंथालय और समाज:-

(i) समाज में सूचनाओं के निरंतर आदान-प्रदान से समुदाय, शहर और विश्व के लोगों के बीच निरन्तरता बनी रहती है। समाज में पिछड़ेपन समुदाय जिन्हें नई-नई ज्ञानपरक शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है उसके लिए ग्रंथालय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ग्रंथालयों की स्थापना उस समुदाय या शहर के निवासियों को व्यापक सेवा प्रदान करने के लिए की जा रही है जिसमें वे निवासित है। सार्वजनिक ग्रंथालयों में अन्य ग्रंथालयों की तुलना में आगंतुकों की संख्या सबसे अधिक होती है, क्योंकि इनका उपयोग कौन कर सकता है? इस पर कोई प्रतिबंध नहीं रहती है। एक समाज विभिन्न मानदंडों, मूल्यों, रीति-रिवाजों, विश्वासों, सामाजिकता, भोजन, पोशाक, जीवन शैली, भाषा आदि के संयोजन से बनता है। जिसमें तथ्य, तर्क, अंधविश्वास के साथ-साथ मर्यादा का उल्लंघन और अलगाव भी देखने को मिलता है। इसीलिए ग्रंथालय जैसी संस्था मनुष्यों को सामाजिक बनाने, सामाजिक अनुरूपता और अनुकूलनशीलता बनाए रखने और बौद्धिक ज्ञान प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस संदर्भ में, रॉबर्सन के कथन अनुसार, ग्रंथालय एक ऐसा संगठन है जो बौद्धिक उत्पादों का प्रबंधन करता है जिससे लोग जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

(ii) कई ग्रंथालय विज्ञान विषय विशेषज्ञों ने ग्रंथालय को एक मंदिर, पूजा का घर, ज्ञान की देवी का निवास के रूप में परिभाषित किया है। यही कारण है कि ग्रंथालय का समाज में एक विशिष्ट स्थान है। पब्लिक ग्रंथालय मेनिफेस्टो के अनुसार, एक सार्वजनिक ग्रंथालय ज्ञान, आजीवन सीखने, स्वतंत्र निर्णय लेने का एक स्थानीय प्रवेश द्वार है। स्वतंत्र भारत के राष्ट्रीय ग्रंथालय के पहले लाइब्रेरियन बीएस केशवन के अनुसार, समाज में सामाजिक विरासत लोगों के विचारों, रीति-रिवाजों, विश्वासों आदि के माध्यम से प्रकट होती है। यह सामाजिक विरासत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंपी जाती है। हस्तांतरण के इस कार्य में शिक्षा और सूचना अपरिहार्य रहते हैं। इस संदर्भ में, ग्रंथालय शास्त्री हट्र्जलर भी ग्रंथालय को एक ऐसी संस्था के रूप में वर्णित करते हैं जो समाज में सामाजिक विरासत को आगे बढ़ाती है।

ग्रंथालय विज्ञान के विभिन्न नियम

ग्रंथालय विज्ञानियों ने ग्रंथालय को एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था बताया है। उन्होंने समाज में साहित्य के महत्व को दर्शाने के लिए ग्रंथालय विज्ञान के पाँच नियम दिए हैं:-

डॉ. एस.आर. रंगनाथन (1931) ग्रंथालय विज्ञान के पाँच नियमे:-

(i) पुस्तकें उपयोग के लिए होती हैं।
(ii) प्रत्येक पाठक की अपनी पुस्तक होती है।
(iii) प्रत्येक पुस्तक का अपना पाठक होता है।
(iv) पाठक का समय बचाना।
(v) ग्रंथालय एक बढ़ता हुआ जीव है।

रंगनाथन की पुस्तक 'वर्ल्ड बुक विद डॉक्यूमेंट' के अनुसार ग्रंथालय साइंस के पाँच नियम (1957 का दूसरा संस्करण)

(i) दस्तावेज उपयोग के लिए हैं।
(ii) प्रत्येक पाठक का अपना दस्तावेज होता है।
(iii) प्रत्येक दस्तावेज का अपना पाठक होता है।
(iv) पाठक का समय बचता है।
(v) ग्रंथालय एक बढ़ता हुआ जीव है।

गणेश भट्टाचार्य द्वारा सूचना विज्ञान के पाँच नियम (1983):-

(i) सूचना उपयोग के लिए हैं।

(ii) प्रत्येक सूचना का अपना उपयोगकर्ता होता है।
(iii) प्रत्येक सूचना का अपना उपयोगकर्ता होता है।
(iv) सूचना उपयोगकर्ताओं का समय बचता है।
(v) सूचना का व्यापकता बढ़ता जा रहा है।

जिम थामसन द्वारा ग्रंथालय विज्ञान के पाँच नियम (1992):-

(i) पुस्तकें लाभ के लिए हैं।
(ii) प्रत्येक पाठक का अपना बिल होता है।
(iii) प्रत्येक पुस्तकों का अपना बिल होता है।
(iv) पाठक से नगदी लो।
(v) ग्रंथालय एक बढ़ता हुआ जीव है।

ग्रंथालय विज्ञान के पाँच नियम, ऐरेजा नोरुजी (2004) द्वारा:-

(i) वेब उपयोग के लिए है।
(ii) प्रत्येक उपयोगकर्ता के पास उसके वेब संसाधन हैं।
(iii) प्रत्येक वेब संसाधन के पास उसके उपयोगकर्ता हैं।
(iv) उपयोगकर्ताओं का समय बचाएँ।
(v) वेब एक बढ़ता हुआ जीव है।

डिजिटल ग्रंथालय के पाँच नियम:-

(i) डिजिटल संसाधन उपयोग के लिए हैं।
(ii) प्रत्येक उपयोगकर्ता के पास उसके डिजिटल संसाधन हैं।
(iii) प्रत्येक डिजिटल संसाधन उसके उपयोगकर्ताओं के लिए है।
(iv) डिजिटल संसाधन उपयोगकर्ता का समय बचाएँ।
(v) डिजिटल ग्रंथालय एक बढ़ता हुआ जीव है।

माइकल गोर्मन (2006) द्वारा लाइब्रेरियनशिप के पाँच नए नियम:-

(i) ग्रंथालय मानवता की सेवा करते हैं।
(ii) ज्ञान संचारित करने के सभी रूपों का सम्मान करें।
(iii) सेवा को बढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकी का बुद्धिमानी से उपयोग करें।
(iv) ज्ञान तक मुफ्त पहुंच की रक्षा करें
(v) अतीत का सम्मान करें और भविष्य का निर्माण करें।

उपरोक्त ग्रंथालय विज्ञानियों के सूत्र से यह ज्ञात होता है कि सामाजिक सिद्धांतों के आधार पर ग्रंथालय का मुख्य उद्देश्य ऐतिहासिक या सामसामयिक विचारों, विश्वासों और सकारात्मक प्रयासों से ज्ञान का संग्रह से ज्ञानपरक सामग्री सभी वर्गों को समान रूप से उपलब्ध कराना लक्ष्य है।

ग्रंथालय की आवश्यकता और सामाजिक परिवर्तन का दृष्टिकोण:- ग्रंथालयों को समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई और आवश्यकता के साधन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इतिहास गवाह है कि समाज के युवाओं द्वारा पुस्तकों, पढ़ने और लिखने से समाज में क्रांति आई है। इससे सामाजिक परिवर्तन हुए हैं। यही कारण है कि किसी भी राष्ट्र की संस्कृति, जातीयता,

भाषा आदि के बावजूद, उसके आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास के लिए ग्रंथालयों का महत्व माना जाता है।

समाज में ग्रंथालय की आवश्यकता और इसके परिवर्तन को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:-

(i) लिखित दस्तावेजों के माध्यम से व्यक्ति के विचारों, विश्वासों को बदला जा सकता है। यही कारण है कि समाज में विभिन्न सामाजिक संघर्षो, समस्याओं और उन्हें नियंत्रित करने के विभिन्न उपायों को समझने के लिए ग्रंथालयों में ग्रंथपाल आवश्यक है।

(ii) ग्रंथालय हर समाज की सांस्कृतिक विरासत को एकत्रित और संरक्षित कर सकते हैं। इससे लोग अपनी सांस्कृतिक जागरूकता को समृद्ध कर सकेंगे। बदलते समाज में ऐतिहासिक संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए ग्रंथालय अपरिहार्य है।

(iii) समाज के सदस्यों को शिक्षित करने के अलावा, नागरिकों को उनके कर्तव्यों, अधिकारों और उनकी जिम्मेदारियों के बारे में जागरूक करने के लिए ग्रंथालयों की आवश्यकता है। इसके अलावा, ग्रंथालय विभिन्न विद्यालयों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों या किसी अन्य स्थान पर औपचारिक शिक्षा प्रदान करते हैं जो समाज में बदलाव के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। गैर-औपचारिक शिक्षा और निरंतर स्व-शिक्षा का समर्थन करने के साथ-साथ, संगठन निरक्षरता जैसी गंभीर सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन में योगदान दे रहा है।

(iv) समाज में अधिकांश लोग अवकाश गतिविधियों में भी सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। लोगों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करने तथा परिवर्तन और अवकाश गतिविधियों के लिए सूचना प्रदान करने के लिए ग्रंथालयों की आवश्यकता है।

(v) सूचना ग्रंथालय आम जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सूचना उपलब्ध कराने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय ऐतिहासिक, समसामयिक सूचनाओं को एकत्रित करना तथा उन्हें आसानी से उपलब्ध कराना ग्रंथालय की विशिष्ट जिम्मेदारी है।

सूचना की आवश्यकता तथा उचित सूचना का प्रसार सामाजिक जागरूकता, सशक्तिकरण, सामुदायिक संबंधों को मजबूत करने के लिए आवश्यक है, और इसलिए, दुनिया भर के कई समुदायों में, विकसित और विकासशील देशों में, ग्रंथालयों का उद्देश्य ज्ञान, व्यक्तिगत कौशल, नागरिक कौशल और आजीवन सीखने के निरंतर विकास के लिए है। ग्रंथालय समुदायों को उनके अतीत, वर्तमान और भविष्य से जोड़ने का एक साधन हैं ताकि वे आवश्यक ज्ञान और सूचना तक पहुँच प्राप्त कर सकें। सामाजिक समुदाय के सशक्तिकरण में योगदान देने के लिए ग्रंथालय अनिवार्य हैं।

ग्रंथालयों की भूमिका और बदलता समाज:-

समाज के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक, तकनीकी विकास और परिवर्तन के साथ-साथ ज्ञान, सूचना में निरंतर वृद्धि और सुधार हो रहा है। सूचना में दिन-प्रतिदिन हो रहे नवाचार के साथ ग्रंथालय की भूमिका भी बदल रही है। पारंपरिक ग्रंथालय अब डिजिटल और हाइब्रिड ग्रंथालय बन गया है क्योंकि इंटरनेट ग्रंथालय की तरह ही सूचना तक पहुंच का एक माध्यम बन गया है, जिसने समाज में सूचना की कमी को पूरा किया है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के साथ, विकसित और विकासशील देशों के बीच सूचना की उपलब्धता और उपयोग में व्यापक अंतर या असमानता है। इसका मुख्य कारण तकनीकी सुविधाओं की कमी को माना जा सकता है। ग्रंथालय उपयोगकर्ताओं को इंटरनेट पर सही जानकारी, सही रूप में और सही समय पर उपलब्ध कराने में सक्षम हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उद्भव के साथ, सूचना तक पहुँचने के साधन भी बदल गए हैं क्योंकि कई उपयोगकर्ता इंटरनेट के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने के लिए ऑनलाइन ग्रंथालयों में जाने लगे हैं। अब आमने-सामने जाने की आवश्यकता नहीं है। पुस्तकें, पत्रिकाएँ, जर्नल, थीसिस या अन्य लिखित जानकारी ग्रंथालयों द्वारा ऑनलाइन माध्यम से पीडीएफ प्रारूप में आसानी से उपलब्ध कराई जा रही है। जो समाज के कई क्षेत्रों में खासकर छात्रों, शिक्षकों, शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी है। यह आम नागरिकों के लिए उपयोगी है। स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय के ग्रंथालयों की तरह, सार्वजनिक ग्रंथालय भी प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक दोनों रूपों में जानकारी उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिससे वर्तमान के समय में हर छोटे छोटे नगरों में शासन के द्वारा ग्रंथालय संचालित हो रही है।

ग्रंथालय और समाज में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणः-

सामाजिकता को गहराई से अध्ययन करने वाले अरस्तू और प्लेटो सहित महान समाजशास्त्रियों ने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रूप में परिभाषित किया है। समाजशास्त्र के जनक ऑगस्ट कॉम्टे ने विवाह, परिवार और समुदाय के साथ-साथ कई सामाजिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं सहित समाज के हर क्षेत्र के मानदंडों, मूल्यों और मूल्यों के अध्ययन पर जोर दिया। एक जटिल समाज का अध्ययन करना बहुत कठिन काम है। इसे आसान बनाने के लिए, ग्रंथालय में समाज के बारे में जानकारी उपयोगी हो जाती है। ग्रंथालय से प्राप्त जानकारी का उपयोग समाज के व्यक्तियों द्वारा नैतिकता जैसे कुछ बौद्धिक विषयों में किया जा सकता है। ग्रंथालय समाज की संस्कृति को दर्शाते हैं। कई समाजशास्त्रियों और ग्रंथपालों ने सार्वजनिक ग्रंथालयों को इसकी सामान्य संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रतिबिंब बताया है। संस्कृति से तात्पर्य समाज के सदस्यों या समाज के भीतर समूहों की जीवन शैली से है।

निष्कर्षः-

ग्रंथालय समाज के प्रत्येक सदस्य में आत्म-सशक्तिकरण का विकास करके आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक और राष्ट्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समुदाय को पाठ्य सेवा प्रदान करना ग्रंथालय का सामाजिक कार्य है। ग्रंथालय एकमात्र संगठित सामाजिक संस्था है जो पुस्तकें पढ़ने की आदत को बढ़ावा देती है। किसी भी सच्ची और सामाजिक रूप से उपयोगी जानकारी का प्रसार करना ग्रंथालयों का नैतिक अधिकार है। ग्रंथालयों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक विकास पर सूचना संसाधनों को प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक दोनों को लोगों के लिए आसानी से उपलब्ध कराने और समुदायों को साक्षर बनाने का प्रयास करना चाहिए। आज के आधुनिक युग में, ग्रंथालयों को हाशिए पर पड़े, वंचित, गरीब, पिछड़े समुदायों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने और वंचित समुदायों को शिक्षित करने के लिए सक्रिय कदम उठाने की महती आवश्यकता है। सूचना युग में, सूचना की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। चूंकि दुनिया के अधिकांश ग्रंथालय इंटरनेट से जुड़े हुए हैं, इसलिए सूचना विस्फोट सतत रूप से जारी है। यह आवश्यक है कि वास्तविक जानकारी समुदायों तक पहुंचे। यही कारण है कि ग्रंथालयों को प्रभावी ढंग से और कुशलता से जानकारी एकत्र करने, व्यवस्थित करने और प्रसारित करने के लिए पेशेवर रूप से योग्य और प्रशिक्षित लाइब्रेरियन, कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। उनमें अच्छी संचार कौशल, कुशलता, ज्ञान होना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता की अध्ययन सामग्री मिल सके, तभी ग्रंथालय एक सामाजिक संस्था के रूप में अपनी उचित भूमिका निभा सकते हैं।

संदर्भ पुस्तकेंः-

1./ रंगनाथन एस.आर. (1931): ग्रंथालय साइंस के पाँच नियम, मद्रास ग्रंथालय कमेटी, मद्रास।

2./ मार्टिन विलियम जे. (1995)। ग्लोबल इंफॉर्मेशन सोसाइटी, दूसरा संस्करण, असलीब ग्रोवर, इंग्लैंड,

3./ ओरकपोर, ए.एम. (2007): 21वीं सदी में राज्य और सार्वजनिक ग्रंथालय विकास के लिए इंटरनेट और सूचना संसाधन। अनम्ब्रा स्टेट ग्रंथालय और सूचना विज्ञान डाइजेस्ट।

4./ रोजिया, अबू; मार्टी, ग्रेस और मैरी, कैरोल। (2011)। सामुदायिक विकास और सशक्तिकरण में ग्रामीण सार्वजनिक ग्रंथालय की भूमिका। पुस्तक का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल।

5./ ओयेरोनके, एडेबायो। (2012)। आर्थिक संसाधन के रूप में सूचना: नाइजीरिया में सार्वजनिक ग्रंथालयों की भूमिका। चीनी लाइब्रेरियनशिप: एक अंतर्राष्ट्रीय इलेक्ट्रॉनिक जर्नल।

6./ लौरा जुचनेविक (2014), बदलते समाज में ग्रंथालयों की भूमिका और समकालीन समाज में सामाजिक परिवर्तन।

7./ आधुनिक समाज में ग्रंथालयों और सूचना केंद्रों की भूमिका। (2017)।

8./. मुरुगन और कृष्णा (2018): बदलते समाज में ग्रंथालय की भूमिका।

भारतीय इतिहास पर ब्रिटिश प्रभाव (1700-1900): एक विश्लेषण

डॉ० मनोज कुमार शुक्ला

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, शासकीय संस्कृत महाविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़

सारांश

1700 से 1900 की अवधि में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की शुरुआत और विकास हुआ। साम्राज्य की योजना नहीं बनाई गई थी, कम से कम शुरुआती चरणों में तो नहीं। एक तरह से, यह बस हो गया। भारत में पहले अंग्रेज व्यापार के लिए आए थे, क्षेत्र के लिए नहीं; वे व्यवसायी थे, विजेता नहीं। यह तर्क दिया जा सकता है कि वे एक ऐसी संस्कृति से आए थे जो हीन थी, और एक राजनीतिक इकाई जो उस संस्कृति से कमजोर थी जिसमें उन्होंने कदम रखा था, और वे हाथ में हाथ डालकर आए थे। उन्हें भारतीयों द्वारा खघ्तरा नहीं माना जाता था- जो निश्चित रूप से खुद को "भारतीय" नहीं मानते थे, कम से कम किसी भी राजनीतिक अर्थ में। राष्ट्रीय पहचान बहुत बाद में स्वतंत्रता आंदोलन (जिसे वास्तव में राष्ट्रवादी आंदोलन के रूप में भी जाना जाता था) के दौरान स्थापित की जानी थी। पहचान क्षेत्र और जाति के संदर्भ में थी, जो कि काफी हद तक आज भी है। अंग्रेज और भारतीय एक-दूसरे को गहन तरीकों से प्रभावित करते रहे जो आज भी महत्वपूर्ण हैं।

मूल शब्द: भारत, इतिहास, ब्रिटिश साम्राज्य, राष्ट्रीय जागरूकता, प्रभाव, व्यापार, विकास

प्रस्तावना

ब्रिटिश शासन का भारतीय समाज, अर्थ व्यवस्था तथा सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश सरकार भारत में दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा रेलवे नेटवर्क बना रही थी। इससे देश को बाहरी दुनिया से जुड़ने में मदद मिली। आधुनिक सड़क, तार, टेलीफोन भी उसी समय शु: हुए थे। स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार हुआ। इससे राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता की भावना का भी उदय हुआ जिससे राष्ट्रीय जागरूकता तथा ब्रिटिश लोगों के विरूद्ध विद्रोह की भावना पैदा हुई।

भारत में एक सैन्य जुलूस। छवि स्रोतः ब्रिटिश बैटल्स वेबसाइट http://www.britishbattles.com/first-sikh-war/ferozeshah.htm.

जबकि साम्राज्य की शुरुआत के लिए 1492 जैसी कोई तिथि नहीं है, 1757, प्लासी की लड़ाई की तिथि, अक्सर इस्तेमाल की जाती है। दिल्ली पर अंग्रेजों के कब्जे की तिथि, 1803, प्रतीकात्मक है: अंग्रेजों ने मुगल राजधानी पर कब्जा कर लिया और

उन्हें वहां से नहीं जाना था। साम्राज्य न तो एक समान था- भारत के विभिन्न हिस्सों में अलग-अलग घटनाओं के लिए अलग-अलग नीतियां थीं- और न ही स्थिर। यह अंग्रेजों और भारतीयों पर लगभग तब तक था जब तक उन्हें इसका एहसास नहीं हुआ। इसके प्रभाव अस्पष्ट और द्वैध थे। हाल ही में एक कैटलॉग विज्ञापन डीवीडी ने "रंगीन ब्रिटिश साम्राज्य" नामक एक प्रस्तुति के बारे में कहा, ब्रिटिश साम्राज्य ने दुनिया के चारों कोनों में शिक्षा, तकनीक, कानून और लोकतंत्र को पहुंचाया। साथ ही, इसने पूर्वाग्रह, भेदभाव, सांस्कृतिक कट्टरता और नस्लवाद को भी जन्म दिया।

इस विज्ञापन में आगे कहा गया है कि वीडियो "साम्राज्य की जटिलताओं, विरोधाभासों और विरासतों की जांच करता है, चाहे वे सकारात्मक हों या नकारात्मक।"

व्यापार और शक्ति

1600 में, अंग्रेजी व्यापारियों के एक समूह ने ईस्ट इंडीज में व्यापार के उद्देश्य से एक शाही चार्टर हासिल किया। हालाँकि, डच ने अब इंडोनेशिया में व्यापार को काफी हद तक बंद कर दिया था, और व्यापारियों की कंपनी, जिसे ईस्ट इंडिया कंपनी (कंपनी) के रूप में जाना जाता था, ने अपना ध्यान भारत के विशाल विस्तार पर केंद्रित किया, जिसमें कपास और मसाले (जैसे, "काली मिर्च" और "अदरक" दक्षिण भारतीय शब्दों से हैं), साथ ही अन्य वस्तुएँ भी शामिल थीं। अन्य शक्तियाँ, विशेष रूप से फ्रांसीसी और पुर्तगाली, प्रतिस्पर्धी बन गए। पुर्तगालियों ने पश्चिमी तट पर एन्क्लेव सुरक्षित किए, जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण गोवा था, जिस पर उन्होंने 1961 तक नियंत्रण किया, और जो आज भी पुर्तगाली स्वाद को बरकरार रखता है। फ्रांसीसियों ने दक्षिण-पूर्व में प्रभाव सुरक्षित किया, जहाँ पुडुचेरी, जिसे पहले पांडिचेरी कहा जाता था, को कभी-कभी "पूर्व का फ्रेंच रिवेरा" कहा जाता है, और 1954 में इसे भारतीय अधिकार क्षेत्र में स्थानांतरित कर दिया गया था।

भारत में प्रमुख शक्ति मुगल साम्राज्य था। कंपनी से पहले ब्रिटिश साहसी लोग भारत में आ चुके थे, जिनमें मुगल दरबार भी शामिल था। इस बात पर जोर देना जरूरी है कि कंपनी का उद्देश्य व्यापार था। लेकिन कई कारकों और घटनाओं के संयोजन ने कंपनी को भारतीय राजनीति में खींच लिया, खासकर मुगल साम्राज्य के पतन और साथ ही क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के साथ, जिसमें अंग्रेज भी शामिल थे, जो अब चेन्नई (मद्रास), मुंबई (बॉम्बे) और कोलकाता (कलकत्ता) में बस गए थे। यह उल्लेखनीय है कि इन तीनों शहरों की स्थापना (या कम से कम विकास) अंग्रेजों ने की थी, और हाल के वर्षों में प्रत्येक के नाम का अंग्रेजीकरण कर दिया गया है।

मुगल पतन

पचास साल के अंतराल पर हुई दो घटनाओं के महत्वपूर्ण परिणाम थे। पहली घटना 1707 में "महान मुगलों" में से अंतिम औरंगजेब की मृत्यु थी, जिसके बाद "छोटे मुगल" आए। विभिन्न तरीकों से, औरंगजेब की अपनी नीतियों ने मुगलों के पतन में महत्वपूर्ण योगदान दिया हो सकता है, लेकिन उसके पतन का महत्व यह है कि उसके बाद अयोग्य उत्तराधिकारी आए और काफी अस्थिरता आई।

औरंगजेब (भारत का मुगल सम्राट 1658-1707) कुरान पढ़ते हुए। छवि स्रोतः ीजजचरूधध

en.wikipedia.org/wiki/Image:Aurangzeb_reading_the_Quran.jpg.

अंग्रेजों ने अस्थिरता और उसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय तनाव का फायदा उठाया, खास तौर पर 1757 में बंगाल में प्लासी की लड़ाई में। चालों और षडयंत्रों के माध्यम से, रॉबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में आठ सौ यूरोपीय और 2,200 भारतीय सैनिकों की एक सेना ने बंगाल के शासक की 50,000 की सेना को हरा दिया। क्लाइव मुगलों से रियायतें छीनने में सफल रहा, सबसे महत्वपूर्ण रूप से भूमि राजस्व का अधिकार, और, पीछे मुड़कर देखने पर, ऐसा लगता है कि एक साम्राज्य चल रहा था।

मुगलों के लिए अन्य चुनौतियाँ भी सामने आई, जिनमें मराठा, सिख और राजपूत जैसी क्षेत्रीय और जातीय शक्तियों का उदय और 1739 में फारसी आक्रमणकारी नादिर शाह द्वारा दिल्ली पर कब्जा करना शामिल था। इस बीच, अंग्रेजों को दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों पर जीत हासिल करनी थी, जिसका मुख्य कारण 1740 के दशक में यूरोप और उत्तरी अमेरिका में एंग्लो-फ्रांसीसी युद्ध था।

कंपनी

कंपनी की शक्ति और क्षेत्र में वृद्धि लंदन में किसी की नजर से नहीं बची। 1792 में, कंपनी ने सरकार से ऋण के लिए आवेदन किया, जिसे संसद ने प्रदान किया, लेकिन कुछ शर्तो के साथ: 1793 का विनियमन अधिनियम, संसदीय पर्यवेक्षण के माध्यम से कंपनी पर लगाम लगाने वाले अधिनियमों की श्रृंखला में से पहला। फिर भी, गवर्नर-जनरल (1797-1805) के रूप में आर्थर वेलेस्ली ने कंपनी को भारत में सर्वोच्च शक्ति बनाने के अपने इरादे का प्रयोग किया। वह बचे हुए फ्रांसीसी प्रभाव (पॉन्डिचेरी जैसे कुछ छोटे परिक्षेत्रों को छोड़कर) को दबाने में सक्षम था, और उत्तर और दक्षिण दोनों में शक्तिशाली भारतीय सेनाओं को हटाने में सक्षम था। ब्रिटिश (यानी कंपनी; भारत में दोनों अब 1858 तक लगभग समानार्थी थे) सर्वोपरि थे, और उन्होंने एक नौकरशाही बुनियादी ढाँचा विकसित किया, जिसमें सहयोगी भारतीयों को नियुक्त किया गया, जो एक नए, शहरी वर्ग का गठन करने लगे।

बंगाल प्रेसीडेंसी (कलकत्ता) के गवर्नर को गवर्नर-जनरल की उपाधि दी गई थी, जिसे बॉम्बे और मद्रास प्रेसीडेंसी के गवर्नरों पर अधिकार और पद दिया गया था। रेग्युलेटिंग एक्ट में प्रदान की गई यह व्यवस्था लंदन और भारत के बीच लंबी दूरी (स्वेज नहर तब तक अस्तित्व में नहीं थी) और तीन के बजाय एक गवर्नर से निपटने की सुविधा के कारण आवश्यक महसूस की गई थी: एकता की ओर एक प्रशासनिक कदम जिसने निश्चित रूप से साम्राज्य की व्यवस्था में मदद की।

संसद द्वारा पारित अधिनियमों की श्रृंखला ने कंपनी के कर्मचारियों द्वारा निजी व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिया और कंपनी के न्यायिक और प्रशासनिक कार्यो को वाणिज्यिक कार्यों से अलग कर दिया। इसका उद्देश्य कराधान, न्याय, शासन और रिश्वतखोरी (आखिरी चीज जिसे कंपनी के कर्मचारी भारत में व्यापार करने के लिए एक अनिवार्य विशेषता मानते थे) को विनियमित करना था। कंपनी ने काफी राजनीतिक शक्ति हासिल कर ली थी (हालाँकि यह उपमहाद्वीप की आबादी का केवल एक प्रतिशत हिस्सा थी), इंग्लैंड की तुलना में अधिक लोगों पर। संसद चिंतित थी, और उसे चिंतित रहना था। साम्राज्य इस प्रारंभिक चरण में एक सरकारी घोषणा नहीं हो सकता था, लेकिन पहिए गति में थे और संसद इस सब का एक मुख्य हिस्सा बन गई। 1784 के भारत अधिनियम ने छह आयुक्तों की एक परिषद बनाई, जिसमें राजकोष के चांसलर और भारत के लिए एक नव-निर्मित सचिव शामिल थे। यह समूह लंदन में कंपनी के निदेशकों के ऊपर गठित किया गया था।

जॉर्ज कर्जन (1859-1925) 1899 से 1905 तक भारत के वायसराय। छवि स्रोत: http://en.wikipedia.org/wiki/Image:George_Curzon2.jpg

कंपनी के शासक की भूमिका में आने के साथ ही भारतीयों के प्रति अंग्रेजों का रवैया खराब हो गया। पहले, अंग्रेजों और भारतीयों के बीच सीमित सामाजिक मेलजोल था, जिसमें श्रेष्ठता या हीनता की कोई भावना नहीं थी। यह बदल गया। पहले अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति में जो दिलचस्पी दिखाई थी, वह घृणा बन गई; इस प्रकार, दास व्यापार के खिलाफ संसदीय नेता, विलियम विल्बरफोर्स (1759-1833) ने हिंदू धर्म को गुलामी से भी बड़ी बुराई माना। स्वेज नहर (1869) के खुलने से अंग्रेज महिलाओं को भारत में आने-जाने का रास्ता आसान हो गया- जिन्हें, निश्चित रूप से, शत्रुतापूर्ण संस्कृति और बर्बर भारतीय पुरुषों से "संरक्षित" किया जाना था। तथाकथित सामाजिक डार्विनवाद और इंजीलवाद से उत्पन्न गैर-पश्चिमी संस्कृतियों और गैर-श्वेत लोगों के बारे में पक्षपाती अवधारणाएँ, साम्राज्यवादी शासन के लिए तर्क प्रदान करती थीं। यह संयोग नहीं है कि साम्राज्यवाद का उत्कर्ष विक्टोरियन युग था।

हालाँकि प्लासी की लड़ाई (1757) ने इसकी नींव रखी थी, लेकिन साम्राज्य की शुरुआत के लिए 1803 एक अच्छी प्रतीकात्मक तिथि है। जनरल गेरार्ड लेक ने मराठों को हराया, जो शायद सबसे महत्वपूर्ण भारतीय शक्ति थी, और मुगल राजधानी दिल्ली में प्रवेश किया। इस समय तक सम्राट ज्यादातर नाममात्र का रह गया था, लेकिन प्रतीकात्मक रूप से महत्वपूर्ण था। अब वह अंग्रेजों का पेंशनभोगी बन गया, उसका क्षेत्र लाल किले तक सिमट गया। एक ब्रिटिश अधिकारी, जिसे रेजिडेंट कहा जाता था, दिल्ली का वास्तविक शासक बन गया। कंपनी के सैनिकों ने शहर और वाणिज्यिक हितों की रक्षा की। चीजें कभी भी वैसी नहीं रहीं। एक अर्थ में, दिल्ली पर कब्जा करना एक प्रक्रिया का हिस्सा था, क्योंकि दिलीप हिरो ने अपने भारतीय इतिहास के कालक्रम में दावा किया है, "18वीं शताब्दी के अंत तक, वर्ग की परवाह किए बिना, अंग्रेजों के बीच भारतीयों को तुच्छ समझना आम बात हो गई थी।" इस विशेषता की पुष्टि अन्य पर्यवेक्षकों ने भी की है।

नस्लवाद और विद्रोह

नस्लवाद भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की एक मुख्य विशेषता है, या जैसा कि इसे जाना जाता है, राज (संस्कृत शब्द से, जो स्थानीय भाषाओं में भी अपना स्थान बना चुका है, जिसका अर्थ है शासन करना, या ऐसा करने वाला संप्रभु)। ऐतिहासिक रूप से, इस शब्द का प्रयोग हिंदू राजाओं (राजा, या महाराजा, महान राजा) के लिए किया जाता था। राजनीतिक श्रेष्ठता का संकेत देते हुए, इसका नस्लीय निहितार्थ नहीं था। सांस्कृतिक और राजनीतिक कारक ब्रिटिशों के अधीन अवधारणा में नस्लीय भेद को जोड़ने वाले थे: ईसाई धर्मांतरण और 1857 का महान विद्रोह, या बगावत, या विद्रोह। यह ऐतिहासिक विद्रोह एक विद्रोह नहीं था, क्योंकि यह संगठित नहीं था, और शायद यहीं इसकी विफलता थी।

"जनरल हैवलॉक का फुट्टीपोरर में नाना साहिब पर हमला, 1857," लंदन प्रिंटिंग एंड पब्लिशिंग कंपनी द्वारा 1850 के दशक के अंत में स्टील उत्कीर्णन छवि स्रोत: http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00routesdata/1800_1899/1857revolt/

नस्लवाद और विद्रोह

विद्रोह एक खूनी संघर्ष था, जिसमें भारतीय सैनिक (सिपाही), "सहायक" या "रियासत" राज्यों के मूल शासक शामिल थे जो अर्ध-स्वतंत्र थे लेकिन कंपनी के गुलाम थे (और अपनी रियासतों के खोने के डर से), और कंपनी की सेनाएँ, क्रूर प्रतिशोध में। संक्षेप में, यह गहरी हताशा और भय का विस्फोट था जो दशकों से बन रहा था। यह महत्वपूर्ण है कि यह मुख्य रूप से उत्तर मध्य भारत तक ही सीमित था, जहाँ कंपनी का शासन और ब्रिटिश उत्पीड़न सबसे मजबूत और सबसे स्पष्ट था।

इसके कई कारण थे, जिनमें पश्चिमी तकनीक- रेलमार्ग और टेलीग्राफ- का अत्यधिक पारंपरिक समाज पर जबरन इस्तेमाल, न्यायालयों और सरकारी स्कूलों में अंग्रेजी भाषा को थोपना, देश को मिशनरियों के लिए खोलना (जिसके परिणामस्वरूप जबरन धर्म परिवर्तन का डर), राजकुमार की मृत्यु होने पर सहायक राज्यों पर कंपनी का कब्जा, शासकों की ओर से अहंकार और दूरी में वृद्धि, और कंपनी के मुनाफे के लिए फायदेमंद, लेकिन लोगों के लिए भी प्रतिकूल नीतियाँ, इत्यादि शामिल थे। इसकी चिंगारी सिपाहियों के रैंकों में एनफील्ड राइफल की शुरूआत थी, जिसके लिए जानवरों की चर्बी में पैक कारतूसों को संभालना जरूरी था, जो हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के लिए अभिशाप था, और सिपाहियों को ईसाई बनाने का प्रयास माना जाता था। दोनों तरफ से अत्याचार आम बात हो गई, और 1919 के अमृतसर नरसंहार में अंग्रेजों द्वारा इसे दोहराया जाना था।

विद्रोह और उस पर हुई भीषण प्रतिक्रिया काफी क्रूर थी, लेकिन, जैसा कि मारिया मिसरा ने कहा है, "विद्रोह के बाद का झटका घटना से कहीं ज्यादा प्रभावशाली था।" एक पर्दा गिर चुका था, और दोनों पक्ष फिर कभी एक-दूसरे पर भरोसा नहीं कर सकते थे। अंग्रेजों का तिरस्कार बढ़ गया, और भारतीयों के लिए नाराजगी बढ़ती गई। फिर भी, विचित्र रूप से, पश्चिमी प्रभाव को कई उच्च वर्ग के शहरी भारतीयों द्वारा उदारतापूर्वक स्वीकार किया गया (काफी हद तक नकल के रूप में, लेकिन ऊपर की ओर बढ़ने के साधन और परिणाम के रूप में भी)। पश्चिमी चीजों में रुचि की स्पष्ट विसंगति को कलकत्ता द्वारा सबसे अच्छी तरह से चित्रित किया गया है, जो कंपनी की उपस्थिति के तीन शुरुआती केंद्रों में से एक था। अन्य मद्रास और बॉम्बे थे- शहर जो कंपनी के वाणिज्यिक प्रतिष्ठान के आसपास बने थे।

भारतीय संस्कृति

बंगाल ऐतिहासिक रूप से सांस्कृतिक गौरव के लिए जाना जाता है, जो कि उचित भी है। भारतीय संस्कृति में इसके स्थान की तुलना यूरोपीय संस्कृति में इटली के स्थान से की जाती है। विभिन्न ऐतिहासिक स्थितियों को देखते हुए, तुलना दूसरी दिशा में भी हो सकती है। ब्रिटिश भारत की राजधानी कलकत्ता (विशेष रूप से इसकी वास्तुकला में ध्यान देने योग्य) में पश्चिमी प्रभाव केंद्रीय था, और इसने बंगाल पुनर्जागरण के रूप में जाने जाने वाले आंदोलन को गति प्रदान की। फ्लोरेंस की तरह, यह व्यवसाय ही था जिसने कलाओं के पुनरुद्धार को संभव बनाया। बंगाल के मामले में, पुनरुद्धार में धर्म भी शामिल था। टैगोर परिवार का लगभग सही प्रतिमान है। आधुनिक संस्थापक द्वारकानाथ टैगोर (1794-1846) थे, जो ब्रिटिश साझेदारों और ब्रिटिश मित्रों, जिनमें महिलाएँ भी शामिल थीं, के साथ एक उद्यमी थे। अपने घर की महिलाओं के कठोर रूढ़िवादी दृष्टिकोण के विपरीत, अंग्रेजी महिलाओं की सापेक्ष स्वतंत्रता के साथ उनका जुड़ाव, आंशिक रूप से उन्हें "महिला शिक्षा का एक मजबूत समर्थक" बना दिया। 7 उन्होंने जो संपत्ति अर्जित की, उससे उनके उत्तराधिकारियों को अन्य रुचियों को आगे बढ़ाने में मदद मिली।

द्वारकानाथ के बेटे देबेंद्रनाथ (1817-1905) सामाजिक और धार्मिक सुधार में सक्रिय थे, खास तौर पर हिंदू धर्म के पुनरुद्धार में, जो मुख्य रूप से मिशनरी गतिविधियों के परिणामस्वरूप हिंदुओं के ईसाई धर्म में धर्मांतरण के जवाब में था। वह 1850 के दशक में ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन के गठन में भी सक्रिय थे, जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अग्रदूत था।

देबेन्द्रनाथ प्रसिद्ध रवींद्रनाथ (1861-1941) के पिता थे, जो एक कलात्मक प्रतिभा थे और 1913 में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार के विजेता थे। कई अन्य टैगोर कला में सक्रिय थे और बंगाली संस्कृति के पुनरोद्धार में प्रभावशाली थे।

इस पुनरुद्धार का एक आकर्षक उदाहरण लगभग 1800 से चली आ रही एक पेंटिंग शैली है। कालीघाट पेंटिंग हुगली नदी के पास एक पड़ोस में देवी काली को समर्पित एक मंदिर के आसपास शुः हुई थी। विषयवस्तु आंशिक रूप से धार्मिक थी, लेकिन कामुक तरीके से, और यह दैनिक जीवन पर भी केंद्रित थी। एक पसंदीदा विषय बाबू था, जो इस संदर्भ में एक अर्ध-पश्चिमी रंग का व्यक्ति था जो छायादार महिलाओं से ग्रस्त था। (बाबू शब्द के कई अर्थ हैं।) एक रूप के रूप में, कला ने कुछ पश्चिमी विकासों की आशा की, लेकिन पश्चिमी लोगों से बहुत कम मान्यता प्राप्त हुई, सामान्य दृष्टिकोण जॉन रस्किन द्वारा सभी भारतीय कला को

ष्बुतपरस्त लोगोंष् के रूप में खारिज करने से परिलक्षित होता है। मिशनरियों ने नकारात्मक रुचि दिखाई, चित्रों को एक ही समय में बचकाना और बुरा माना। कला लोक परंपरा पर एक शहरी मोड़ थी, फिर भी इसकी अपनी ताजगी और विशिष्टता थी।

1857 के बाद

1857 के परिणामस्वरूप निर्णायक परिवर्तन हुए। मुगल वंश समाप्त हो गया, साथ ही कंपनी भी समाप्त हो गई। ब्रिटिश सरकार ने सीधे शासन अपने हाथ में ले लिया, कंपनी के प्रशासनिक तंत्र की जगह भारतीय सिविल सेवा (जो स्वतंत्रता के बाद भारतीय प्रशासनिक सेवा बन गई) को स्थापित कर दिया। 1877 में, महारानी विक्टोरिया को भारत की महारानी घोषित किया गया, जो एक प्रतीकात्मक विस्मयादिबोधक बिंदु था।

गवर्नर-जनरल, जिन्हें लोकप्रिय रूप से वायसराय (1858 के बाद) कहा जाता था, आए और गए, लेकिन दिशा स्पष्ट रही: ब्रिटेन के लाभ के लिए शाही शासन, भारत के लोगों के कल्याण के लिए नहीं- यह अकालों के लिए सरकारी प्रतिक्रिया में भी दिखा, और भारत को मुकुट के रत्न के रूप में दर्शाया गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (या, बस, कांग्रेस) के गठन के साथ, परिवर्तन और समावेशन के लिए कुछ आधे-अधूरे रियायतें हुईं, हालांकि हमेशा बहुत कम और बहुत देर से प्रतीत होती हैं। यह संगठन (आश्चर्यजनक रूप से, एक सेवानिवृत्त ब्रिटिश अधिकारी द्वारा शु: किया गया) पहले तो नपुंसक लग सकता था, लेकिन इसने मांग की कि "सरकार को व्यापक बनाया जाना चाहिए और लोगों को इसमें उनका उचित और वैध हिस्सा मिलना चाहिए।" शायद सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि 1885 में बॉम्बे में आयोजित प्रारंभिक बैठक में विभिन्न क्षेत्रों से लगभग बहत्तर प्रतिनिधि शामिल हुए, और इसमें ज्यादातर उच्च वर्ग के हिंदू और पारसी (उनमें से कई वकील) शामिल थे, जबकि केवल दो मुस्लिम उपस्थित थे। इस संगठन के माध्यम से, मोतीलाल नेह: और उनके पुत्र जवाहरलाल (भारत के प्रथम प्रधानमंत्री) तथा एम.के. गांधी जैसे वकीलों के नेतृत्व में, भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

इस तरह की बैठक, संगठन की बात तो दूर की बात है (या, उस मामले में, राष्ट्रवादी/स्वतंत्रता आंदोलन), संभव नहीं होता अगर अंग्रेजी भाषा को एक आम भाषा के रूप में मान्यता न दी जाती, जो 1835 में गवर्नर-जनरल द्वारा अंग्रेजी को शिक्षा की आधिकारिक भाषा बनाने के निर्णय से उपजी थी। उस निर्णय ने कई तरह की परेशानियाँ खड़ी कर दीं: अंग्रेजी कानून में शिक्षित लोगों ने संवैधानिक लोकतंत्र की संभावनाओं को देखा। कोई भी भारतीय भाषा बोलने वालों के बहुमत का दावा नहीं कर सकती थी, और अंग्रेजी ने वह पुल प्रदान किया जिसने भारत के विभिन्न हिस्सों से शिक्षित लोगों के बीच संचार को संभव बनाया। इस विकास के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। संबंधित विकासों में बॉम्बे, मद्रास और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों की स्थापना (अजीब तरह से, 1857 में) शामिल थी; एक जीवंत (हालांकि अक्सर सेंसर की गई) प्रेस, और अंग्रेजी में भारतीय साहित्य। ये सभी आज भी स्पष्ट और फलते-फूलते हैं, और मजबूती से। सबसे महत्वपूर्ण विकास शायद राष्ट्रवाद का था, जो फूट डालो और राज करो की ब्रिटिश नीति (जो हिंदू-मुस्लिम दुश्मनी पर आधारित थी) को खत्म करने का एक प्रयास था। बेशक, पाकिस्तान के निर्माण ने दिखा दिया कि सपना पूरी तरह सफल नहीं हुआ- फिर भी भारत आज एक सफल लोकतंत्र है। और राष्ट्रवादी आंदोलन ने विविध संस्कृतियों और भाषाओं, धार्मिक संप्रदायों और जातियों को एक नई पहचान दी: भारतीय।

निष्कर्ष

1900 की तारीख एक अच्छा समापन बिंदु है। 1899 में, सबसे शाही वायसराय लॉर्ड कर्जन गवर्नर जनरल बने और 1901 में रानी-महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हो गई। 1857 के बाद के घटनाक्रम, बेशक, साम्राज्य को सर्वोच्च बनाए रखने के लिए डिजाइन किए गए थे, लेकिन ब्रिटिश परंपरा ने साम्राज्य के भीतर दरवाजे खोल दिए, और ऐसा साम्राज्य के बावजूद किया (उदाहरण के लिए, कक्षा में एक भारतीय शिक्षक द्वारा मैग्ना कार्टा का उपयोग)। इसके अलावा, उन्होंने वास्तव में शासन के प्रति एक सुसंगत दृष्टिकोण विकसित नहीं किया। स्वर्गीय राघवन अय्यर ने इसे ट्रस्टीशिप, उपयोगितावाद, प्लेटोनिक संरक्षकता और इंजीलवाद का मिश्रण पाया। ध्यान प्रशासन पर था, विकास पर नहीं, और वह भी यथासंभव छोटे कैडर द्वारा। कहा जाता है कि स्टालिन ने कहा था कि यह हास्यास्पद था वास्तव में, "कुछ सौ" की संख्या एक हजार से थोड़ी ज्यादा थी, जिनमें से पाँचवाँ हिस्सा किसी न किसी समय बीमार या छुट्टी पर रहता था। यह, वर्तमान भारत, पाकिस्तान, म्यांमार और बांग्लादेश की लगभग 300 मिलियन की आबादी पर लागू होता है। हालाँकि वे निश्चित रूप से कांगो में बेल्जियम के लोगों की तरह क्रूर नहीं थे, लेकिन राज के सेवक और उनके हमवतन

(परिवार, व्यवसायी, मिशनरी, आदि)- जिनकी संख्या 1900 में लगभग 100,000 थी- "उदात्त और तिरस्कारपूर्ण" माने जाते थे। और उनके पास क्रूरता के क्षण भी थे।

साम्राज्य व्हाइट मैन्स बर्डन और मा-बाप ("हम तुम्हारे माता-पिता हैं") का मिश्रण था। राज का वर्णन करने के लिए मिश्रण एक अच्छा शब्द है। अंग्रेज नस्लवाद और शोषण में लिप्त थे, और उन्होंने भारतीय लोकतंत्र और राष्ट्रवाद की ओर ले जाने वाले दरवाजे भी प्रदान किए।

सन्दर्भ

वीडियो कलेक्टेबल्स: द वेरी बेस्ट ऑफ ब्रिटिश एंटरटेनमेंट, ग्रीष्म 2008, 30. वेबसाइट: www.collectablesdirect.com.

आर्ची बैरन, एन इंडियन अफेयर (लंदन: चौनल 4 बुक्स, 2001),

दिलीप हिरो का द रफ गाइड क्रॉनिकल: इंडिया (लंदन: रफ गाइड्स लिमिटेड, 2002) है।

जरीर मसानी, टेल्स ऑफ द राज

ब्लेयर बी किंग, पार्टनर इन एम्पायर: द्वारकानाथ टैगोर और पूर्वी भारत में उद्यम का युग (बर्कले: कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, 1976), 183।

जरीर मसानी, इंडियन टेल्स ऑफ द राज (लंदन: बीबीसी बुक्स, 1987)

राघवन अय्यर, उपयोगितावाद और सब कुछ: ब्रिटिश साम्राज्यवाद का राजनीतिक सिद्धांत (सांता बारबरा: कॉनकॉर्ड प्रेस, 1983)।

डेविड गिल्मर, द रूलिंग कास्ट: इंपीरियल लाइव्स इन द विक्टोरियन राज (न्यूयॉर्क: फर्रार, स्ट्रॉस और गिरौक्स, 2005), xiii.

मारिया मिसरा, "द न्यू स्टेट्समैन एसेख़बिफोर द पिथ हेल्मेट्स," 8 अक्टूबर 2001 को प्रकाशित, www.newstatemen.comèk200110080018 पर उपलब्ध है।

Bandyopadhyay, Sekhar (2004), From Plassey to Partition: A History of Modern India, New Delhi And London: Orient Longmans. Pp. xx, 548., , आई०एँस०बी०एँन० 81-250-2596-0

Bose, Sugata; Jalal, Ayesha (2003), Modern South Asia: History, Culture, Political Economy, London And New York: Routledge, 2nd edition. Pp. xiii, 304, आई०एँस०बी०एँन० 0-415-30787-2 .

Brown, Judith M. (1994), Modern India: The Origins of An Asian Democracy, Oxford And New York: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. Pp- xiii, 474, आई०एँस०बी०एँन० 0-19-873113-2.

Copland, Ian (2001), India 1885-1947: The Unmaking of An Empire (Seminar Studies in History Series), Harlow And London: Pearson Longmans. Pp. 160,

आई०एँस०बी०एँन० 0-582-38173-8 .

Judd, Dennis (2004), The Lion And the Tiger: The Rise And Fall of the British Raj, 1600-1947, Oxford And New York: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. Pp- xiii, 280, आई०एँस०बी०एँन० 0-19-280358-1

Wainwright, A. Martin (1993), Inheritance of Empire: Britain, India, And the Balance of Power in Asia, 1938-55, Praeger Publishers. Pp. xvi, 256, आई०एँस०बी०एँन० 0-275-94733-5,

संस्कृत के छात्रों के बीच ई-संसाधनों का उपयोग और जागरूकताः एक अध्ययन

डॉ० कादम्बरी शर्मा

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, शासकीय संस्कृत महाविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़

सारांश

संस्कृत को हिंदू धर्म में सबसे प्राचीन भाषा माना जाता है, जिसका उपयोग हिंदू दिव्य देवताओं और बाद में इंडो-आर्यों द्वारा संचार और प्रवचन के माध्यम के रूप में किया गया है। जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिख धर्म में भी संस्कृत का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। इलेक्ट्रॉनिक संसाधन अकादमिक समुदाय के लिए तेजी से महत्वपूर्ण, आवश्यक और बेहद मूल्यवान होते जा रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक संसाधन (ई-संसाधन) भारी तकनीकी सुधार के परिणामस्वरूप तेजी से उभरे हैं, खासकर इक्कीसवीं सदी में, और पारंपरिक प्रिंट संसाधनों को तेजी से ई-संसाधनों द्वारा विस्थापित किया जा रहा है। पुस्तकालय में इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के उपयोग ने इसकी पेशकश को बदल दिया है। इलेक्ट्रॉनिक दुनिया की समस्याओं का सामना करने के लिए, लाइब्रेरियन को सबसे हालिया क्षमताएं हासिल करनी चाहिए और सबसे मौजूदा सेवाएं प्रदान करनी चाहिए। एक शैक्षणिक संस्थान में लाइब्रेरियन को पुस्तकालय में सूचना संसाधनों का संतुलित और प्रभावी संग्रह प्रदान करना चाहिए।

पूर्वी और धार्मिक पृष्ठभूमि वाले लोगों को आमतौर पर नवीनतम तकनीक से अनजान माना जाता है। हालाँकि, तथ्य पूरी तरह से अलग हैं, जो सभी व्यक्तियों के बीच सूचना प्रौद्योगिकी की अपील को प्रदर्शित करते हैं। ज्ञान के वैकल्पिक स्रोतों की उपलब्धता के बावजूद, पुस्तकालयों ने अपना मुख्य स्थान बनाए रखा है। इंटरनेट पुस्तकालय संरक्षकों के लिए एक वैकल्पिक स्रोत बन गया। ई-जर्नल और विषय वेबसाइटों ने संस्कृत छात्रों के बीच लोकप्रियता हासिल की है। यह अध्ययन एमजीकेवीपी विश्वविद्यालय में संस्कृत छात्रों द्वारा ई-संसाधनों की स्थिति, उपयोगकर्ता ज्ञान और प्रभावी उपयोग पर केंद्रित है। यह अध्ययन संस्कृत छात्रों के ई-संसाधनों के ज्ञान के साथ-साथ उनका उपयोग करते समय उनके द्वारा अनुभव की जाने वाली समस्याओं को दर्शाता है।

मूल शब्दः ई-संसाधन, इंटरनेट, ई-जर्नल, एमजीकेवीपी, संस्कृत

परिचय

एक इलेक्ट्रॉनिक संसाधन को "सूचना (आमतौर पर एक फाइल) के रूप में वर्णित किया जाता है जिसे विद्युत संकेत के रूप में संग्रहीत किया जा सकता है, लेकिन कंप्यूटर पर इसकी आवश्यकता नहीं होती है।" वैकल्पिक रूप से, हम ऐसे संसाधन का उल्लेख कर सकते हैं जिसके लिए कंप्यूटर एक्सेस की आवश्यकता होती है या कोई भी इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद जो डेटा का संग्रह प्रदान करता है, चाहे वह पाठ हो (पूर्ण पाठ डेटाबेस, इलेक्ट्रॉनिक जर्नल, छवि संग्रह, अन्य मल्टीमीडिया उत्पादों का जिक्र करते हुए), संख्यात्मक, ग्राफिकल या समय-आधारित, एक व्यावसायिक रूप से उपलब्ध शीर्षक के रूप में जिसे विपणन के इरादे से प्रकाशित किया गया है। ई-संसाधनों को दो प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता हैः ऑनलाइन ई-संसाधन, जिसमें ई-जर्नल (पूर्ण पाठ और ग्रंथ सूची), ई-पुस्तकें, ऑनलाइन डेटाबेस और वेब साइट, और अन्य इलेक्ट्रॉनिक संसाधन शामिल हैं, जिसमें सीडी रोम, डिस्केट और अन्य पोर्टेबल कंप्यूटर डेटाबेस शामिल हैं। ई-संसाधन सूचना समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संस्कृत और अन्य प्राचीन भाषा विभाग विश्वविद्यालय के भीतर एक बहुत पुराना विभाग है विभाग संस्कृत साहित्य, दर्शन, भाषा विज्ञान और साहित्यिक आलोचना के क्षेत्रों में भारतीय विचार परंपराओं के अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संस्कृत विभाग स्नातक, स्नातकोत्तर और डॉक्टरेट पाठ्यक्रम प्रदान करता है। विभाग कर्मकांड में स्नातकोत्तर डिप्लोमा भी प्रदान करता है। स्नातक, स्नातकोत्तर और डॉक्टरेट स्तर पर लगभग 300 छात्र नामांकित हैं। छात्रों और शोधकर्ताओं को शिक्षण, सीखने और मूल्यांकन के लिए सर्वोत्तम प्रथाओं के साथ-साथ सप्ताहांत सेमिनार, समूह चर्चा और कक्षा में आईसीटी के उपयोग के माध्यम से प्रशिक्षण देकर उद्देश्यों को पूरा किया जाना है।

ई-संसाधनों के लाभ या फायदे इंटरनेट दुनिया के प्रमुख ऑनलाइन सूचना भंडारों में से एक है। आज की दुनिया में, इंटरनेट सूचना समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रिंट मीडिया की तुलना में ई-संसाधनों के निम्नलिखित लाभ हैं:

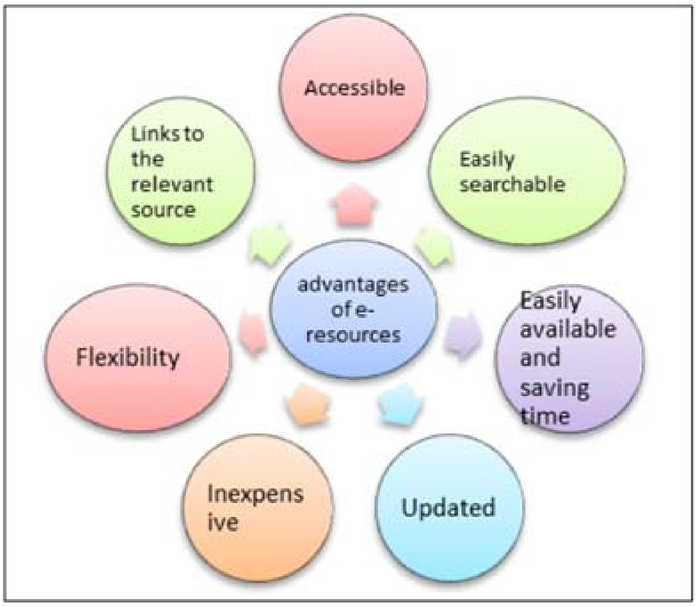

ई-संसाधनों के नुकसान

- कंप्यूटर / एलईडी स्क्रीन पढ़ने में कठिनाई:
- ई-संसाधनों का उपयोग करने में तकनीकी बाधाएँ।
- कंप्यूटर, नेटवर्क कनेक्शन, सॉफ्टवेयर आदि की आवश्यकता।
- कौशल और प्रशिक्षण आवश्यकताएँ।

उद्देश्य

- संस्कृत छात्रों के बीच ई-संसाधनों के बारे में जागरूकता का पता लगाना।
- ई-संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति का पता लगाना।
- ई-संसाधनों के उपयोग के उद्देश्य का अध्ययन करना।
- ई-संसाधनों के बारे में उपयोगकर्ता की संतुष्टि के स्तर का पता लगाना।
- ई-संसाधनों का उपयोग करते समय आने वाली बाधाओं या चुनौतियों का पता लगाना।
- विभिन्न संस्कृत वेबसाइटों और ई-पत्रिकाओं के उपयोग का पता लगाना

क्षेत्र और सीमाएँ

यह अध्ययन केवल महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी के संस्कृत छात्रों पर आधारित है। अध्ययन केवल संस्कृत छात्रों तक सीमित है, गैर संस्कृत छात्रों को इस अध्ययन से बाहर रखा गया है।

अध्ययन की कार्यप्रणाली और विश्लेषण

उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, अध्ययन के प्रासंगिक पहलुओं को शामिल करते हुए एक संरचित प्रश्नावली तैयार की गई और महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी के संस्कृत छात्रों को प्रतियाँ वितरित की गई। कुल मिलाकर 250 प्रश्नावली वितरित की गई और 225 भरी हुई प्रश्नावली उत्तरदाताओं द्वारा वापस कर दी गई। एकत्रित आंकड़ों का विश्लेषण, वर्गीकरण, सारणीबद्ध किया गया और निष्कर्ष निकालने वाले निष्कर्ष निकाले गए।

लिंग के अनुसार वितरण

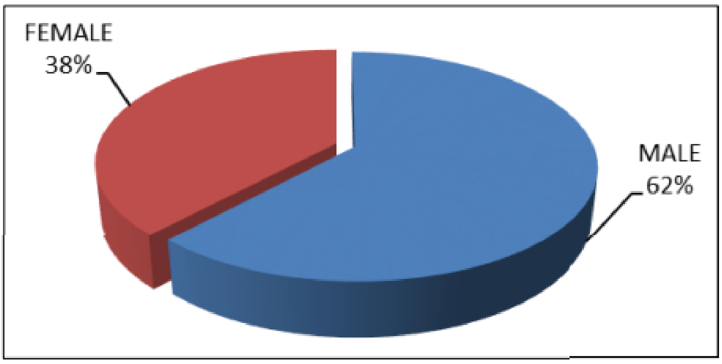

चित्र 1: लिंग के अनुसार वितरण

चित्र 1 प्रश्नावली के लिंग के अनुसार वितरण को दर्शाता है। उपरोक्त चार्ट से स्पष्ट है कि 250 प्रश्नावली छात्रों को वितरित की गई और 225 को विधिवत भरकर वापस प्राप्त किया गया। 225 उत्तरदाताओं में से 95 (38%) महिला छात्र और 155 (62%) पुरुष छात्र थे।

इंटरनेट के बारे में जागरूकता

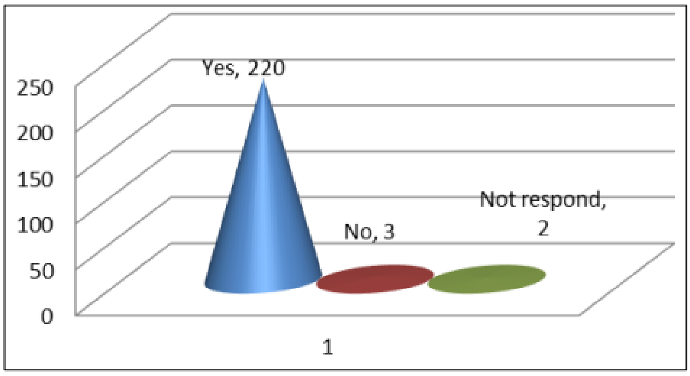

चित्र 2: इंटरनेट के प्रति जागरूकता

चित्र 2 संस्कृत के छात्रों में इंटरनेट के प्रति जागरूकता को दर्शाता है। यह देखा गया कि 225 उत्तरदाताओं में से 220 इंटरनेट के प्रति जागरूक थे, जबकि 3 छात्रों ने इंटरनेट जागरूकता से इनकार किया और 2 ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

इंटरनेट के उपयोग की आवृत्ति

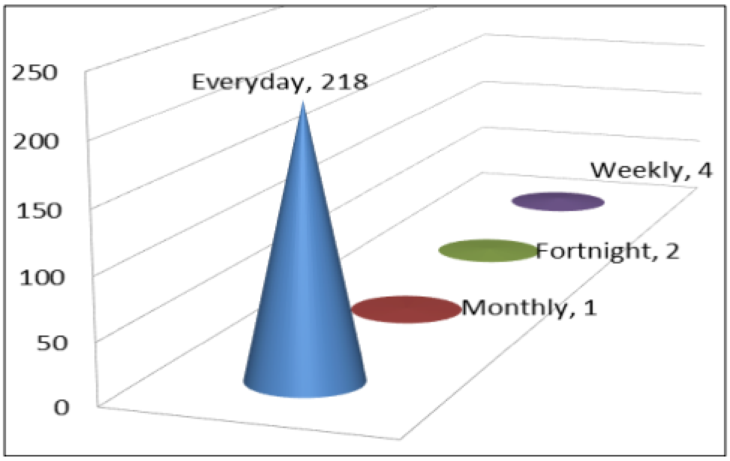

चित्र 3: इंटरनेट के उपयोग की आवृत्ति

चित्र 3 संस्कृत छात्रों में इंटरनेट के उपयोग की आवृत्ति को दर्शाता है। यह देखा गया कि 225 उत्तरदाताओं में से 218 अक्सर इंटरनेट का उपयोग करते थे, जबकि 4 साप्ताहिक, 2 पाक्षिक और 1 मासिक उपयोग करते थे।

इंटरनेट के उपयोग का उद्देश्य

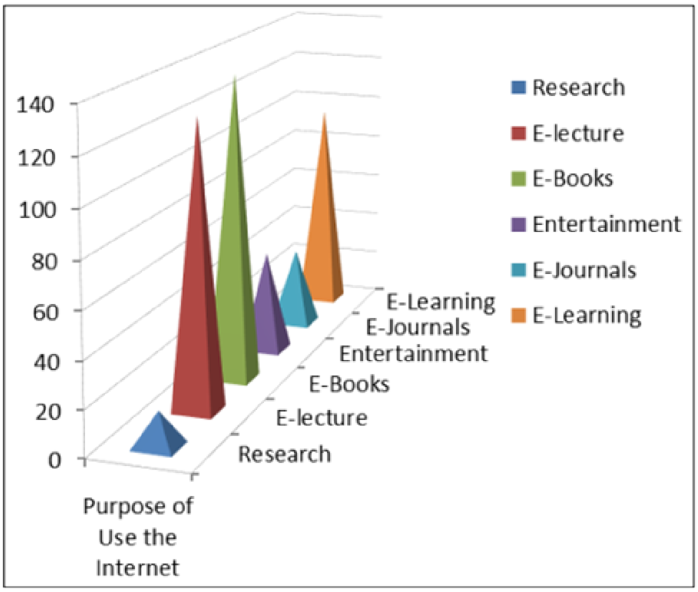

चित्र 4: इंटरनेट के उपयोग का उद्देश्य

चित्र 4 संस्कृत छात्रों द्वारा इंटरनेट के उपयोग के उद्देश्य को दर्शाता है। जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, 125 छात्र ई-व्याख्यान के उद्देश्य से इंटरनेट का उपयोग कर रहे हैं, इसके बाद 135 ई-पुस्तकों के लिए और 95 ई-लर्निंग के लिए हैं। इसके अलावा यह देखा गया है कि केवल 15 छात्र केवल शोध उद्देश्य से इंटरनेट का उपयोग कर रहे हैं। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 97% छात्र अकादमिक और सीखने के उद्देश्य से इंटरनेट का उपयोग कर रहे हैं।

ई-संसाधनों के बारे में जागरूकता

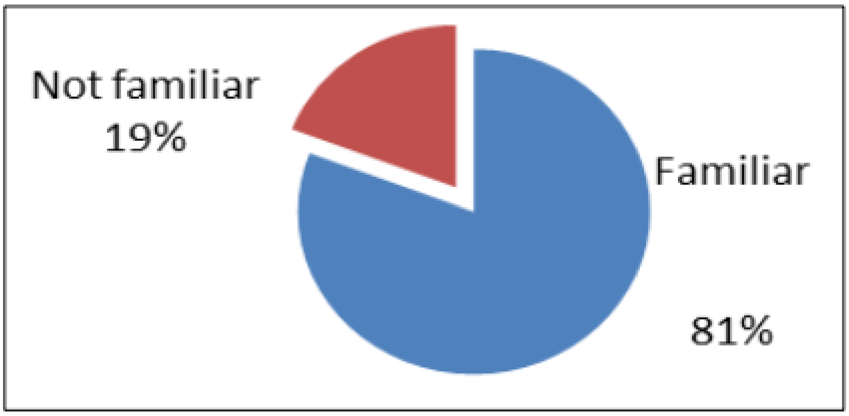

चित्र 5: ई-संसाधनों के बारे में जागरूकता

चित्र 5 संस्कृत छात्रों के बीच ई-संसाधनों के बारे में जागरूकता दर्शाता है। उपरोक्त आंकड़ों से यह देखा गया है कि संस्कृत के 81% छात्र ई-संसाधनों से परिचित थे, जबकि संस्कृत के 19% छात्र ई-संसाधनों से परिचित थे।

ई-संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति

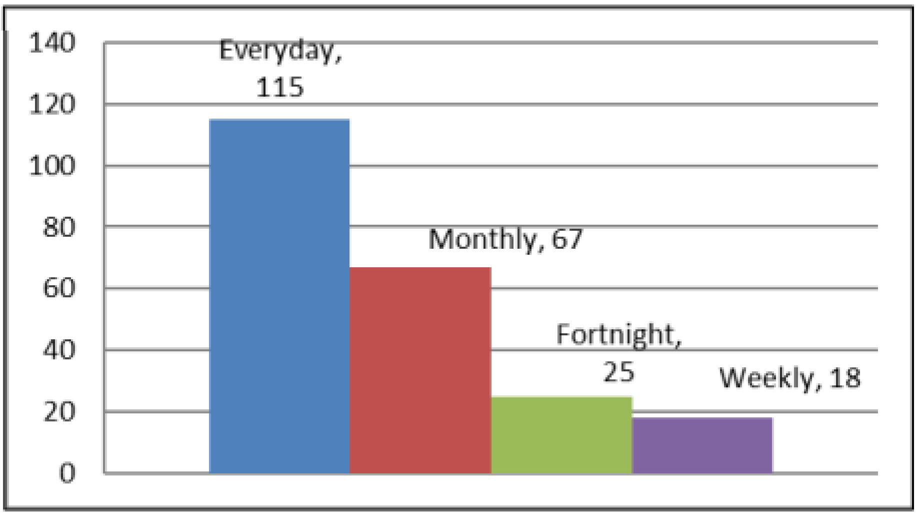

चित्र 6: ई-संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति

चित्र 6 संस्कृत छात्रों के बीच ई-संसाधनों के उपयोग की आवृत्ति को दर्शाता है। यह देखा गया कि 225 उत्तरदाताओं में से 115 अक्सर ई-संसाधनों का उपयोग करते थे, जबकि 67 मासिक, 25 पाक्षिक और 18 साप्ताहिक उपयोग करते थे।

ई-संसाधनों तक पहुँचने के लिए उपयोग किए जाने वाले उपकरण

ऐसे कई उपकरण हैं जिनके द्वारा उत्तरदाता ई-संसाधनों तक पहुँच सकते हैं। उत्तरदाता पीसी, लैपटॉप, टैबलेट या मोबाइल द्वारा ई-संसाधन का उपयोग करते हैं। कई उत्तरदाताओं के पास एक ही उपकरण है, जबकि कई उत्तरदाता उन्हें एक्सेस करने के लिए एक से अधिक उपकरणों का उपयोग करते हैं।

Types of e-resources frequently used

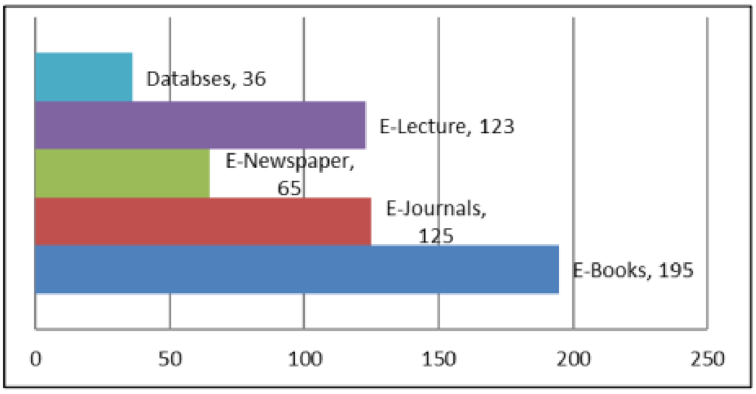

चित्र 7: अक्सर इस्तेमाल किए जाने वाले ई-संसाधनों के प्रकार

चित्र 7 अक्सर इस्तेमाल किए जाने वाले ई-संसाधनों के प्रकारों को दर्शाता है। अध्ययन में यह बात उजागर हुई है कि 195 उत्तरदाताओं ने अक्सर ई-पुस्तकों का इस्तेमाल किया और 125 ने ई-पत्रिकाओं का इस्तेमाल किया, इसके बाद 123 उत्तरदाताओं ने ई-व्याख्यान का इस्तेमाल किया, 65 उत्तरदाताओं ने ई-समाचार पत्रों का इस्तेमाल किया और 36 छात्रों ने ऑनलाइन डेटाबेस का इस्तेमाल किया।

संस्कृत में ई-पत्रिकाओं तक पहुंच

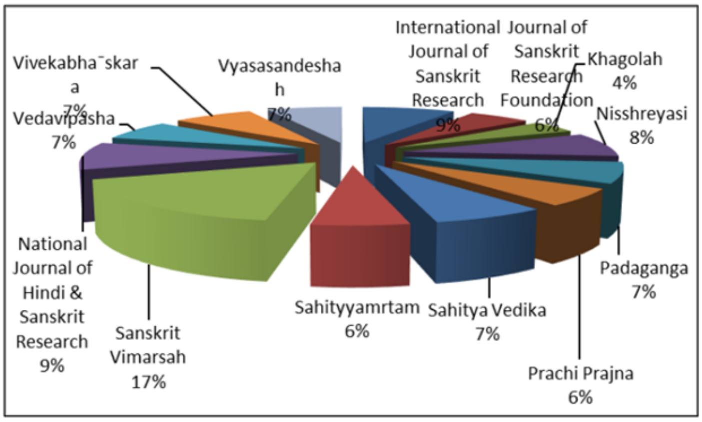

चित्र 8: संस्कृत में ई-पत्रिकाओं तक पहुँच

चित्र 8 संस्कृत से संबंधित ई-पत्रिकाओं तक पहुँच को दर्शाता है। 225 संस्कृत छात्रों में से, यह पाया गया है कि 17% संस्कृत विमर्श ई-पत्रिकाओं तक पहुँच रखते हैं, उसके बाद 9% राष्ट्रीय हिंदी एवं संस्कृत शोध पत्रिका और संस्कृत विषयों में अंतर्राष्ट्रीय संस्कृत शोध पत्रिका तथा 8% नि:श्रेयस हैं।

संस्कृत ब्लॉग और वेबसाइटों तक पहुंच की आवृत्ति

Websites	Frequency			
	Daily	Weekly	Fortnightly	Monthly
Samskritam	25%	22%	12%	18%
Sanskrit Studies Blog	20%	18%	15%	15%
Rashtriya Sanskrit Sansthan	45%	32%	22%	20%
Sanskritbhashi	18%	16%	14%	15%
Sanskrit Reading Room	14%	20%	12%	16%
ESanskrit	20%	15%	14%	13%
APURVARACANA Sanskrit poetry: translations, compositions, juxtaposition	22%	13%	10%	14%
संस्कृत-हिताय	19%	17%	13%	12%
Learn Sanskrit while blogging	15%	19%	15%	13%
Sanskrit Digital School	16%	14%	14%	14%
Sanskrit Subhashitas	14%	17%	13%	11%
Living Sanskrit	17%	16%	17%	10%
Sanskrit Mantras	18%	15%	16%	9%
Vedanta	12%	10%	15%	9%
Sanskrit Bharati	14%	18%	15%	11%
Sanskrit Digital School	15%	19%	12%	10%

तालिका 1: संस्कृत ब्लॉग और वेबसाइट तक पहुँच की आवृत्ति

तालिका 1 संस्कृत ब्लॉग और वेबसाइट तक पहुँच की आवृत्ति प्रस्तुत करती है। यह देखा गया है कि 225 संस्कृत छात्रों में से 45% छात्र प्रतिदिन राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की वेबसाइट तक पहुँचते हैं, उसके बाद 25% छात्र संस्कृतम और 12% छात्र प्रतिदिन केवल वेदांत तक पहुँचते हैं। संस्कृत ब्लॉग और वेबसाइट तक पहुँच की आवृत्ति का विवरण ऊपर दी गई तालिका में दिखाया गया है।

ई-संसाधनों का उपयोग करते समय आने वाली समस्याएँ

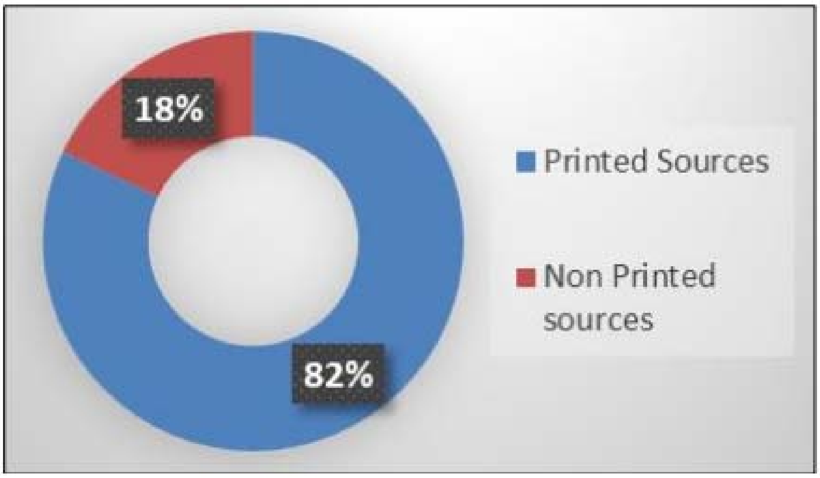

चित्र 9: ई-संसाधन बनाम मुद्रित संसाधन

चित्र 9 में संस्कृत छात्रों के बीच ई-संसाधन बनाम मुद्रित सामग्री की मांग को दर्शाया गया है। उपरोक्त चार्ट के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि 82% संस्कृत छात्रों ने महसूस किया कि ई-संसाधन मुद्रित संसाधनों की जगह नहीं ले सकते। केवल 18% शोध विद्वानों ने महसूस किया कि ई-संसाधन मुद्रित संसाधनों की जगह ले सकते हैं।

निष्कर्ष

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी में संस्कृत छात्रों के ई-संसाधन खोज व्यवहार के अध्ययन में पाया गया कि अधिकांश छात्र (81%) ई-संसाधनों के उपयोग से परिचित थे। यह देखा गया है कि 20% की ई-व्याख्यान तक पहुँच है, इसके बाद 17% की ई-लर्निंग, 13% की अनुवाद और 12% की ई-ऑडियो-वीडियो तक पहुँच है। 17% छात्रों की संस्कृत विमर्श ई-पत्रिकाओं तक पहुँच है, उसके बाद 9% छात्रों की राष्ट्रीय हिंदी एवं संस्कृत शोध पत्रिका और संस्कृत विषयों में संस्कृत शोध की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका तथा 8% छात्रों की निश्श्रेयस तक पहुँच है। अधिकांश छात्र राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान और संस्कृतम वेबसाइट पर जाते हैं। यह भी देखा गया है कि 45% छात्र प्रतिदिन राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान की वेबसाइट पर जाते हैं, उसके बाद 25% छात्र संस्कृतम और 12% छात्र केवल वेदांत पर जाते हैं। अधिकांश संस्कृत छात्रों ने कहा कि इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों में उपलब्ध ज्ञान स्वीकार्य है, लेकिन मुद्रित स्रोत संस्कृत सीखने के लिए कहीं अधिक सहायक हैं।

संदर्भ

1. भारती वी.के. महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी के शोध विद्वानों का ई-संसाधन खोज व्यवहार: एक केस स्टडी। एशियन जे इन्फ साइंस टेक्नोलॉजी। 2018;8(2):9-13। DOI:10.51983/ajist-2018.8.2.188.
2. भारती वीके, सिंह एमपी. एमजीकेवीपी वाराणसी के छात्रों के बीच सोशल नेटवर्किंग साइट्स का उपयोग: एक अध्ययन. जे इन्फ मैनेजमेंट. 2018;5(2):82-8. DOI:10.5958/2348-1773.2018.00012.7.
3. रे के, डे जे. इलेक्ट्रॉनिक सूचना संसाधनों के प्रति छात्रों का नजरिया. इन्फ रिसर्च. 1998;4(2):1-32.
4. 4. Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.About University [Internet].Available from: http://www.mgkvp.ac.in/info/univ_ university. html.AccessedApril 2024.
5. Central Library, MGKVP, Varanasi. Dr. Bhagwandas Central Library [Internet].Available from: http:èkèkwww.mgkvp.ac.inèklibraryèklib_library profile.html.AccessedApril 2024.
6. Shukla P, Mishra R. Use of e-resources by research scholars of Institute of Technology, Banaras Hindu University, India. Researchers World JArts Sci Commer. 2011;2(2):184-94.
7. Chopkar, Khaparde. Information seeking behaviour of research scholars of biological science department of Dr. BabasahebAmbedkar Marathwada University:A study. Int J Inf Dissemin Technol. 2011;1(4):241-3.
8. Sivakumaren KS, Swaminathan S, Jeyaprakash B, Geetha V. Usage of library resourcesAnd servicesAmong LIS research scholars in Tamil Nadu, India. Chinese Librarianship:An Int Electron J. 2011;33:1-10.
9. Madhusudhan M. Use of electronic resources by research scholars of Kurukshetra University. Electron Libr. 2010;28(4):492-506.

आधुनिक शिक्षा के विकास में गाँधीजी के विचारों की प्रासंगिकता

रमेश कुमार गुप्ता

शोध-छात्र, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, ल0 ना0 मिथिला, विश्वविद्यालय, दरभंगा

परिवार, विवाह, धर्म, कानून और राजनीति की तरह शिक्षा भी समाज की महत्वपूर्ण संस्थाओं में से एक है, जो सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने और विकसित करने में निर्णायक भूमिका निभाती है। शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी का योगदान इस मायने में अद्वितीय है कि उन्होंने ब्रिटिश भारत में शिक्षा की स्वदेशी योजना विकसित करने का पहला प्रयास किया था। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आगमन के साथ, साम्राज्यवादी शिक्षा की एक विदेशी प्रणाली शुरू की गई, जो भारत की सदियों पुरानी, अनूठी और सर्वसमावेशी समग्र शिक्षा प्रणाली के विरोधाभास में थी। इसने न केवल लंबे समय में भारतीय शिक्षा प्रणाली को अपूरणीय क्षति पहुंचाई, बल्कि सभी प्रकार के मतभेद, वर्ग-चेतना, पश्चिमी भौतिकवादी जीवन शैली के लिए बढ़ती लालसा आदि भी पैदा की। शिक्षा पर गांधीजी के अधिकांश महत्वपूर्ण लेखन को भारतन कुमारप्पा ने दो पुस्तकों, बेसिक एजुकेशन (1951) और टुवर्ड्स न्यू एजुकेशन (1953) में संकलित और संपादित किया है। ये लेख अधिकतर पत्र, भाषण, पुस्तकों के उद्धरण आदि से युक्त हैं, लेकिन इन्हें मिलाकर गांधीजी के अनुसार शिक्षा का एक सुसंगत दर्शन माना जा सकता है।

गाँधीजी का शिक्षा दर्शन आदर्शवाद, प्रकृतिवाद और व्यावहारिकता का सामंजस्यपूर्ण मिश्रण है। आदर्शवाद गांधीजी के दर्शन का आधार है जबकि प्रकृतिवाद और व्यावहारिकता उस दर्शन को व्यवहार में लाने में सहायक है। इसलिए उन्हें व्यावहारिक-आदर्शवादी के रूप में जाना जाता है। उनका राष्ट्र जीवन के लिए शिक्षा, जीवन भर शिक्षा और जीवन भर शिक्षा था। महात्मा गांधी की इस परिभाषा में वह सब कुछ शामिल होगा जिसकी शिक्षा के अंतर्गत कल्पना की जा सकती है। प्रस्तुत लेख में गांधीजी के शैक्षिक विचारों के बारे में चर्चा करने का प्रयास किया गया है जो उनके जीवन दर्शन से प्रभावित थे।

महात्मा गांधी गहन ज्ञान और आकर्षक विनम्रता की आत्मा हैं, जो केवल एक लौह इच्छाशक्ति और अडिग संकल्प से लैस हैं और एक कमजोर व्यक्ति हैं जिन्होंने एक साधारण इंसान की गरिमा के साथ सैन्य शक्ति की क्रूरता का सामना किया। वह ईश्वर में पूरी तरह से विश्वास करते थे। उनके अनुसार, यद्यपि व्यक्तियों के शरीर अलग-अलग होते हैं, फिर भी हम सभी में एक ही आत्मा व्याप्त होती है। संक्षेप में, गांधीजी ने विविधता में एकता का अनुभव किया और उसे महसूस किया। उनके जीवन दर्शन के चार तत्व हैं- (1) सत्य, (2) अहिंसा (3) निर्भयता और (4) सत्याग्रह। गांधीजी का जीवन दर्शन आदर्शवाद के दर्शन पर आधारित है। उन्होंने आत्म-साक्षात्कार के अंतिम सत्य को प्राप्त करने के लिए सत्य, अहिंसा और नैतिक मूल्यों के आदर्शों की वकालत की। वह अपने स्वभाव के अनुसार बालक हैं और जब वे करके सीखने और अनुभव से सीखने की वकालत करते हैं तो वे व्यवहारवादी बन जाते हैं। ये सभी एक एकीकरण की ओर ले जाते हैं, जो प्रभावी शिक्षा और संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए बहुत आवश्यक है। गांधीजी एक अकादमिक दार्शनिक नहीं थे, लेकिन अपने स्वयं के अनुभवों के आधार पर वे उन दार्शनिकों में से एक हैं उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था, देश की समस्याओं के प्रति उनकी स्पष्ट दृष्टि और निश्चित दृष्टिकोण था। गांधीजी का अहिंसा दर्शन आज के समय में बहुत प्रासंगिक है। उनके अनुसार अहिंसा का अर्थ दुष्टों की इच्छा के आगे झुकना नहीं है। यह आत्मबल या सत्यबल है। उनके सत्याग्रह का उद्देश्य अन्याय के विरुद्ध लड़ना था। सत्याग्रह में नैतिक पक्ष होना चाहिए, ताकि सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलकर हृदय परिवर्तन किया जा सके। जीवन के ऐसे दर्शन ने उन्हें शिक्षा के अपने दर्शन को विकसित करने में मदद की, जो वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिए प्रेरणा का सच्चा स्रोत हो सकता है।

गाँधीजी मानते थे कि शिक्षा हमें आत्मनिर्भर बनाने वाली होनी चाहिए। जिससे यह बेरोजगारी का सामना करने में सक्षम बनाए। शिक्षा को इस तरीके का प्रशिक्षण प्रदान करने का माध्यम होना चाहिए ताकि भावी जीवन में यह बच्चों को अपनी आजीविका कमाने में सक्षम बनाती हो। उनके मुताबिक 14 साल की उम्र में बच्चे को कमाने वाली इकाई में के रूप में सात सालों का कोर्स पूरा होने के बाद मुक्त कर देना चाहिए। उनका विचार था कि शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य बच्चे का सर्वांगीण विकास करना है। उनके अनुसार, "मनुष्य न तो बुद्धि है, न तो पूरी तरह शरीर से पशु, न तो हृदय और न केवल आत्मा। वह मानते थे कि शरीर, बुद्धि और हृदय तीनों का उचित और संतुलित योगदान संपूर्ण और वास्तविक शिक्षा के अर्थशास्त्र का निर्माण करता है। इससे आगे बढ़कर गाँधी महसूस करते थे कि शिक्षा में नैतिक आग्रहों का समावेश अवश्य होना चाहिए, इसके तहत उसे सभी बच्चों के चरित्र निर्माण का साधन बनना चाहिए। इससे अतिरिक्त उन्होंने खासतौर पर बच्चों में शांति और नेतृत्व के लिए शिक्षा देने की बात कही। उन्होंने यह भी महसूस किया कि शिक्षा हमें स्वतंत्रता का अहसास कराने वाली होनी चाहिए।

गाँधीजी का तात्कालिक शिक्षा व्यवस्था से मोहभंग हो चुका था जिसके बारे में उनका विचार था कि वह प्रकृति में बहुत ज्यादा साहित्यिक और किताबी थी। इसके विकल्प के बतौर उन्होंने शिल्प-केंद्रित शिक्षा का प्रस्ताव किया। इसे औपचारिक तौर पर बर्धा की बुनियादी शिक्षा के रूप में पेश किया गया था। कई आधुनिक शिक्षाविदों ने गाँधी की तरफ से प्रस्तावित बुनियादी शिक्षा की योजना को अप्रासंगिक बताया और राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्यता के सवाल पर यह आलोचना के केंद्र में आ गई। हालांकि गाँधीजी के शैक्षणिक विचारों का शिक्षा के आधुनिक संदर्भों में भी काफी महत्व है। उनके सिद्धांतों के मूल में बच्चों की प्रतिभा का विकास और वृद्धि थी। उन्होंने उद्देश्यपूर्ण और उत्पादक शारीरिक गतिविधि के बच्चों पर होने वाले असर को देखा था, उनकी सृजनात्मक और आत्म-अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं को वह समझते थे। गाँधीजी अनुभवों की समग्रता और सीखने-सिखाने की सामाजिक और भावनात्मक महत्व से अवगत थे। आज के शिक्षाविदों के लिए भी यह सारे विचार महत्व के हैं।

गाँधीजी ने शिक्षा के व्यावसायिक पक्ष पर काफी जोर दिया, जिसे लागू करने का प्रयास आज के पाठ्यक्रम निर्माता भी कर रहे हैं। 'बचपन' के बारे में उनके सरोकार का केंद्र बच्चों का मूल स्वभाव था कि वह कैसे सीखता है और उसकी बुनियादी आवश्यकताएं क्या हैं, यह सभी मिलकर आज की समसामयिक बाल-केंद्रित शिक्षा का निर्माण करते हैं। सृजनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में शिल्प को दिया गया महत्व और श्रम को महत्व देने वाले नजरिए के निर्माण को प्रशिक्षकों द्वारा आज भी महत्व दिया जाता है। वास्तव में सामाजिक रूप से उपयोगी और उत्पादक कार्य जो स्कूल पाठ्यक्रम का एक हिस्सा है उसमें इन उद्देश्यों को संक्षेप में शामिल किया गया है। शिक्षा की वैश्विकता में खासतौर पर बच्चों का सम्मान करने के संदर्भ में उनका विश्वास था। आज भी शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य छात्रों का चहुँमुखी विकास करना है। गाँधीजी बच्चे की नैसर्गिक अच्छाई में यकीन रखते थे, चीजों को करके सीखने पर जोर देते थे, साथ ही बनावटीपन और आडंबर के विरोधी थे। उन्होंने शिक्षा को चारदीवारी से मुक्त कराने का प्रयास किया और चाहते थे कि बच्चे के प्राकृतिक परिवेश में शिक्षा दी जानी चाहिए। वह मानते थे कि बच्चों को शिक्षा स्वतंत्रता के माहौल में दी जानी चाहिए। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आज की आधुनिक, बाल-केंद्रित और मानवतावादी शिक्षण के सरोकार भी यही हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व और कृतित्व आदर्शवादी रहा है। उनका आचरण प्रयोजनवादी विचारधारा से ओतप्रोत था। संसार के अधिकांश लोग उन्हें महान राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक के रूप में जानते हैं। पर उनका यह मानना था कि सामाजिक उन्नति हेतु शिक्षा का एक मत्वपूर्ण योगदान होता है। अत: गाँधीजी का शिक्षा के क्षेत्र में भी विशेष योगदान रहा है। उनका मूलमंत्र था- 'शोषण-विहीन समाज की स्थापना करना'। उसके लिए सभी को शिक्षित होना चाहिए। क्योंकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण असंभव है। अत: गाँधीजी ने जो शिक्षा के उद्देश्यों एवं सिद्धांतों की व्याख्या की तथा प्रारंभिक शिक्षा योजना उनके शिक्षादर्शन का मूर्त रूप है। अतएव उनका शिक्षादर्शन उनको एक शिक्षाशास्त्री के रूप में भी समाज के सामने प्रस्तुत करता है। उनका शिक्षा के प्रति जो योगदान था वह अद्वितीय था। उनका मानना था कि मेरे प्रिय भारत में बच्चों को 3HK की शिक्षा अर्थात् Head Hand Heart की शिक्षा दी जावे। शिक्षा उन्हें स्वावलंबी बनाये और वे देश को मतबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकें।

शिक्षा का केन्द्र तक्षशिला का बौद्ध मठ भारतीय शिक्षा के साथ-साथ भारतीय सभ्यता का भी इतिहास है। भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रूपरेखा में शिक्षा की जगह और उसकी भूमिका को भी निरंतर विकासशील पाते हैं। सूत्रकाल तथा लोकायत के बीच शिक्षा की सार्वजनिक प्रणाली के पश्चात हम बौद्धकालीन शिक्षा को निरंतर भौतिक तथा सामाजिक प्रतिबद्धता से परिपूर्ण होते देखते हैं। बौद्धकाल में स्त्रियों और शूद्रों को भी शिक्षा की मुख्य धारा में सम्मिलित किया गया। प्राचीन

भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था वह समकालीन विश्व की शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत एवं उत्कृष्ट थी लेकिन कालान्तर में भारतीय शिक्षा का व्यवस्था ह्रास हुआ। विदेशियों ने यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को उस अनुपात में विकसित नहीं किया, जिस अनुपात में होना चाहिये था। अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों एवं समस्याओं का सामना करना पड़ा। आज भी ये चुनौतियाँ एवं समस्याएँ हमारे सामने हैं जिनसे दो-दो हाथ करना है। 1850 तक भारत में गुरुकुल की प्रथा चलती आ रही थी परन्तु मकोले द्वारा अंग्रेजी शिक्षा के संक्रमण के कारण भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था का अंत हुआ और भारत में कई गुरुकुल तोड़े गए और उनके स्थान पर कान्वेंट और पब्लिक स्कूल खोले गए।

गाँधीजी भारत एवं भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रमुख राजनैतिक एवं आध्यात्मिक नेता थे। वे सत्याग्रह के माध्यम से अत्याचार के प्रतिकार के अग्रणी नेता थे, उनकी इस अवधारणा की नींव सम्पूर्ण अहिंसा के सिद्धान्त पर रखी गयी थी जिसने भारत को आजादी दिलाकर पूरी दुनिया में जनता के नागरिक अधिकारों एवं स्वतन्त्रता के प्रति आन्दोलन के लिये प्रेरित किया। उन्हें दुनिया में आम जनता महात्मा गाँधी के नाम से जानती है। संस्कृत भाषा में महात्मा अथवा महान आत्मा एक सम्मान सूचक शब्द है। गाँधी को महात्मा के नाम से सबसे पहले 1915 में राजवैद्य जीवराम कालिदास ने संबोधित किया था। उन्हें बापू के नाम से भी याद किया जाता है। सुभाष चन्द्र बोस ने 6 जुलाई 1944 को रंगून रेडियो से गाँधीजी के नाम जारी प्रसारण में उन्हें राष्ट्रपिता कहकर सम्बोधित करते हुए आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के लिये उनका आशीर्वाद और शुभकामनाएँ माँगीं थीं। प्रति वर्ष 2 अक्टूबर को उनका जन्म दिन भारत में गाँधी जयंती के रूप में और पूरे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस के नाम से मनाया जाता है। सबसे पहले गान्धी ने प्रवासी वकील के रूप में दक्षिण अफ्रीका में भारतीय समुदाय के लोगों के नागरिक अधिकारों के लिये संघर्ष हेतु सत्याग्रह करना शुरू किया। 1915 में उनकी भारत वापसी हुई। उसके बाद उन्होंने यहाँ के किसानों, मजदूरों और शहरी श्रमिकों को अत्यधिक भूमि कर और भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाने के लिये एकजुट किया।

1921 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर संभालने के बाद उन्होंने देशभर में गरीबी से राहत दिलाने, महिलाओं के अधिकारों का विस्तार, धार्मिक एवं जातीय एकता का निर्माण एवं आत्मनिर्भरता के लिये अस्पृश्यता के विरोध में अनेकों कार्यक्रम चलाये। इन सबमें विदेशी राज से मुक्ति दिलाने वाला स्वराज की प्राप्ति वाला कार्यक्रम ही प्रमुख था। गाँधीजी ने ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों पर लगाये गये नमक कर के विरोध में 1930 में नमक सत्याग्रह और इसके बाद 1942 में अंग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन से खासी प्रसिद्धि प्राप्त की। दक्षिण अफ्रीका और भारत में विभिन्न अवसरों पर कई वर्षों तक उन्हें जेल में भी रहना पड़ा। गाँधीजी ने सभी परिस्थितियों में अहिंसा और सत्य का पालन किया और सभी को इनका पालन करने के लिये वकालत भी की। उन्होंने साबरमती आश्रम में अपना जीवन गुजारा और परम्परागत भारतीय पोशाक धोती एवं सूत से बनी शाल पहनी जिसे वे स्वयं चरखे पर सूत कातकर हाथ से बनाते थे। उन्होंने सादा शाकाहारी भोजन खाया और आत्मशुद्धि के लिये लम्बे-लम्बे उपवास रखे।

गाँधीजी महान शिक्षा-दार्शनिक भी थे। शिक्षा और दर्शन में गहरा सम्बन्ध है। अनेकों महान शिक्षाशास्त्री स्वयं महान दार्शनिक भी रहे हैं। इस सह-सम्बन्ध से दर्शन और शिक्षा दोनों का हित सम्पादित हुआ है। शैक्षिक समस्या के प्रत्येक क्षेत्र में उस विषय के दार्शनिक आधार की आवश्यकता अनुभव की जाती है। फिहते अपनी पुस्तक 'एड्रेसेज टु दि जर्मन नेशन' में शिक्षा तथा दर्शन के अन्योन्याश्रय का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि दर्शन के अभाव में 'शिक्षण-कला' कभी भी पूर्ण स्पष्टता नहीं प्राप्त कर सकती। दोनों के बीच एक अन्योन्य क्रिया चलती रहती है और एक के बिना दूसरा अपूर्ण तथा अनुपयोगी है। डिवी ने शिक्षा तथा दर्शन के संबंध को स्पष्ट करते हुए कहा है कि दर्शन की जो सबसे गहन परिभाषा हो सकती है वह यह है कि दर्शन शिक्षा-विषयक सिद्धान्त का अत्यधिक सामान्यीकृत रूप है। दर्शन जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है, इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षा उपाय प्रस्तुत करती है। दर्शन पर शिक्षा की निर्भरता इतनी स्पष्ट और कहीं नहीं दिखाई देती जितनी कि पाठ्यक्रम संबंधी समस्याओं के संबंध में। विशिष्ट पाठ्यक्रमीय समस्याओं के समाधान के लिए दर्शन की आवश्यकता होती है। पाठ्यक्रम से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ प्रश्न उपयुक्त पाठ्यपुस्तकों के चुनाव का है और इसमें भी दर्शन सन्निहित है। जो बात पाठ्यक्रम के संबंध में है, वही बात शिक्षण-विधि के संबंध में कही जा सकती है। लक्ष्य विधि का निर्धारण करते हैं, जबकि मानवीय लक्ष्य दर्शन का विषय है।

शिक्षा के अन्य अंगों की तरह अनुशासन के विषय में भी दर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका है। विद्यालय के अनुशासन निर्धारण में राजनीतिक कारणों से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कारण मनुष्य की प्रकृति के संबंध में हमारी अवधारणा होती है। प्रकृतिवादी दार्शनिक नैतिक सहज प्रवृत्तियों की वैधता को अस्वीकार करता है। अत: बालक की जन्मजात सहज प्रवृत्तियों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्ति के लिए छोड़ देता है। प्रयोजनवादी भी इस प्रकार के मापदण्ड को अस्वीकार करके बालक व्यवहार को सामाजिक

मान्यता के आधार पर नियंत्रित करने में विश्वास करता है। दूसरी ओर आदर्शवादी नैतिक आदर्शों के सर्वोपरि प्रभाव को स्वीकार किए बिना मानव व्यवहार की व्याख्या अपूर्ण मानता है, इसलिए वह इसे अपना कर्त्तव्य मानता है कि बालक द्वारा इन नैतिक आधारों को मान्यता दिलवाई जाये तथा इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाए कि वह शनैःशनैः इन्हें अपने आचरण में उतार सके। शिक्षा का क्या प्रयोजन है और मानव जीवन के मूल उद्देश्य से इसका क्या संबंध है, यही शिक्षा दर्शन का विजिज्ञास्य प्रश्न है। चीन के दार्शनिक मानव को नीतिशास्त्र में दीक्षित कर उसे राज्य का विश्वासपात्र सेवक बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य मानते थे।

प्राचीन भारत में सांसारिक अभ्युदय और पारलौकिक कर्मकांड तथा लौकिक विषयों का बोध होता था और परा विद्या से निरूश्रेय की प्राप्ति ही विद्या के उद्देश्य थे। अपरा विद्या से अध्यात्म तथा रात्पर तत्व का ज्ञान होता था। परा विद्या मानव की विमुक्ति का साधन मान जाती थी। गुरुकुलों और आचार्यकुलों में अंतेवासियों के लिये ब्रह्मचर्य, तप, सत्य, व्रत आदि श्रेयों की प्राप्ति परमाभीष्ट थी और तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालय प्राकृतिक विषयों के सम्यक् ज्ञान के अतिरिक्त नैष्ठिक शीलपूर्ण जीवन के महान उपस्तंभक थे। भारतीय शिक्षा दर्शन का आध्यात्मिक धरातल विनय, नियम, आश्रममर्यादा आदि पर सदियों तक अवलंबित रहा।

महात्मा गाँधी की भारत को जो देन है उसमें बुनियादी शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण एवं बहुमूल्य है। इसे वर्धा योजना, नयी तालीम, बुनियादी तालीम तथा बेसिक शिक्षा के नामों से भी जाना जाता है। गाँधीजी ने 23 अक्टूबर 1937 को 'नयी तालीम' की योजना बनायी जिसे राष्ट्रव्यापी व्यावहारिक रूप दिया जाना था। उनके शैक्षिक विचार शिक्षाशास्त्रियों के तत्कालीन विचारों से मेल नहीं खाते, इसलिये प्रारम्भ में उनके विचारों का विरोध हुआ। गाँधीजी ने कहा था कि नयी तालीम का विचार भारत के लिए उनका अन्तिम एवं सर्वश्रेष्ठ योगदान है। गाँधीजी के जीवन-पर्यन्त चले सत्य के अन्वेषण एवं राष्ट्र के निर्माण हेतु सक्रिय प्रयोगों के माध्यम से लम्बे समय तक विचारों के गहन मंथन के परिणामस्वरूप नयी तालीम का दर्शन एवं प्रक्रिया का प्रादुर्भाव हुआ जो केवल भारतवर्ष ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानव समाज को एक नयी दिशा देने में सक्षम था।

परन्तु दुर्भाग्यवश इस सर्वोत्तम कल्याणकारी शिक्षा-प्रणाली का राष्ट्रीय स्तर पर भी समुचित प्रयोग नहीं हो पाया जिसके फलस्वरूप आजतक यह देश गाँधीजी के सपनों के अनुरूप सार्थक और सही स्वराज प्राप्त करने में असमर्थ रहा। बल्कि इसके विपरीत आज तो आलम यह है कि शैक्षणिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से भारत पुनः पाश्चात्य साम्राज्यवाद के अधीन निरन्तर सरकता चला जा रहा है। आज भारत की अधिकांश शिक्षा-व्यवस्था राज्याश्रित अथवा पूंजीपतियों पर आश्रित है। अधिकांश राज्याश्रित शिक्षण-संस्थाएँ, संसाधन एवं अनुशासन के अभाव में निष्क्रिय हैं। इसलिए गुणवत्ता से युक्त शिक्षा देने में असमर्थ हैं। इसी प्रकार पूजीपतियों पर आश्रित सभी शिक्षण-संस्थाएं व्यावसायिक रूप में सक्रिय हैं, जो गरीबों की पहुंच से बाहर हैं। उनमें सिर्फ सम्पन्न लोगों के बच्चे ही पढ़ सकते हैं। भारत की स्वाधीनता के 60 से अधिक वर्ष बीतने के पश्चात् भी ऐसे बच्चों की संख्या काफी अधिक है, जिन्होंने विद्यालय के द्वार तक नहीं देखे हैं। जो विद्यालय जाने का सामर्थ्य रखते हैं, उन्हें लॉर्ड मैकाले की परम्परा से चली आ रही अंग्रेजी शिक्षा के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होता। कुल मिलाकर उनमें भारतीय मौलिक शिक्षा को ग्रहण करनेवाले शायद ही कोई मिले। यह बात नहीं कि भारतीय शिक्षा देनेवालों का अभाव है। परन्तु इसलिए कि सभी अभिभावकों में यह इच्छाशक्ति एवं साहस नहीं है कि अपने बच्चों को सरकारों अथवा पूंजीपतियों द्वारा निर्धारित अंग्रेजी शिक्षा को त्यागकर भारतीय शिक्षा दिलावें। जब तक जनसाधारण की इस कायरतापूर्ण मानसिकता में परिवर्तन न किया जायेगा, तबतक नयी तालीम सहित कोई भी भारतीय शिक्षण-प्रणाली इस देश में पनप नहीं सकती।

संदर्भ सूची

1. यादव, प्रतिभा, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, साहित्य प्रकाशन, आगरा, 2005
2. त्रिवेदी, राकेश, भारतीय शिक्षा का इतिहास, ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2016
3. सक्सेना, स्वरूप, एन. आर., शिक्षा सिद्धान्त, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2005
4. जौली सुरजीत कौर - ''गाँधी एक अध्ययन'', कन्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2017
5. कौशिक आशा (सं.) - ''गाँधी नयी सदी के लिये'', रावत पब्लिकेशन, 2010

छत्तीसगढ़ से श्रमिकों का पलायनः समस्यायें एवं निदान

डॉ० आभा तिवारी

सहायक प्रध्यापक, राजनीतिक विज्ञान, डी.पी.विप्र महाविद्यालय बिलासपुर (छ.ग.)

अंर्तराष्ट्रीय श्रम संगठन के सीनियर स्पेशलिष्ट पग सू ल यान ने कहा था कि I.L.O के आंकलन अनुसार विश्व के 17 करोड़ 50 लाख लोग प्रवासी मजदूर के रूप में हर वर्ष इधर उधर भटकते रहते हैं आने वाले वर्षो में यह संख्या और बढ़ने वाली हैं क्योंकि बेरोजगारी की समस्या आगे चलकर और बढ़ेगी।

पलायन प्रवासन अथवा माइग्रेशन अस्थायी या स्थाई रूप से अर्धस्थायी रूप से बसने के इरादे से एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे भौगोलिक क्षत्र के लिए लोगो का स्थानिक गतिशीलता है। यह पलायन आर्थिक (आजीविका, आर्थिक असंतुलन रोजगार के अवसर आदि या पर्यावरणीय कारकों जैसे - सूखा) के कारण होता है।

यद्यपि सरकार द्वारा अनेक योजनाएं इन श्रमिकों के लिए बनायी गई है जैसे बी.पी.एल परिवार के लिए 1रू और 2रू किलो में चावल तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना का लाभ भी पलायन का विकल्प नहीं बन पाया। हर साल छत्तीसगढ़ से लगभग 3 लाख मजदूर पलायन कर रहे है। केन्द्रीय योजना आयोग ने भले ही गरीबी रेखा में भारी संख्या में ग्रामीण ए.पी.एल में आय गये किन्तु हकीकत उसे झूठा साबित करता है पहले राज्य सरकार के सांख्यिकी विभाग द्वारा पलायन का आंकड़ा बताया जाता था अब पंचायत विभाग को इसकी जिम्मेदारी सौप कर सरकार ने हिसाब देने की अपनी जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया है। इसलिए शायद ही किसी के पास सही आंकड़े हो।

छत्तीसगढ़ राज्य में श्रमिकों के पलायन के महत्वपूर्ण कारण

1. भूमि का अधिग्रहण -

छत्तीसगढ़ राज्य अकूत खनिज सम्पदा से परिपूर्ण है नया राज्य बनने के बाद यहॉ के खनिज वन भूमि एवंज ल संसाधनों का समूचित दोहन होने लगा है जिससे विकास का अभिनव मार्ग प्रशस्त हुआ है। जैसे छत्तीसगढ़ में स्पंज आयरन सीमेंट तथा स्टील के संयंत्रो अलावा बड़े पैमाने पर थर्मल पॉवर प्लांटो की स्थापना की जा रही है सन् 2000 से 2013 तक 78 हजार मेगावाट बिजली उत्पादन के लिए एम.ओ.यू किये गये प्रस्तावित अद्योग जांजगीर जिला जो प्रदेश का सबसे 78 प्रतिशत सिंचित जिला है वहॉ 30 हजार मेगावाट बिजली उत्पादन के लिए दो दर्जन से ज्यादा पॉवर प्लांट लगाये जा रहे हैं। थर्मल पॉवर प्लांटो के लिए द्विफसलीय सिंचित कृषि भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा साथ ही महानदी, शिवनाथ, हसदेव, केलो आदि प्रमुख नदियों के भी जल को पॉवर प्लांटो के लिए दिया जा रहा हैं।

विद्यानसभा में उठाये गये सवाल के जवाब में मंत्री द्वारा बताया गया कि प्रदेश में 2004 से 2014 तक 1 लाख 29 हजार एकड़ कृषि भूमि का अधिग्रहरण किया गया है हकीकत में यह आंकड़ा इससे भी कई गुना अधिक है।

आंकड़ो के मुताबिक इसी दरमियान 3 लाख किसानों की भूमि छिनी गई है जो अब भूमिहीन है। इनके सामने जीवन जीने के लिए पलायन के सिवाय कोई भी विकल्प नहीं है। बेरोकटोक औद्योगिकीकरण से कृषि भूमि की उपलब्धता में लगातार कमी आ रही है साथ ही पर्यावरण को भी नुकसान पहुंच रहा है। प्रदेश में लगभग 100 स्पंज आयरन प्लांट है जो कि ग्रमीण क्षेत्रों में है पर रोजगार नाममात्र का ही है।

2. कृषि भूमि का बंजर होना

यह भी पलायन का एक महत्वपूर्ण कारण है रायपुर स्थित इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय में 2002-03 में ही यह संकेत दे दिया गया था कि यदि वायु व जल प्रदूषण रोका नहीं गया तो अगले 10 वर्षो में रायपुर के आसपास लगभग एक लाख एकड़ कृषि भूमि बंजर भूमि में बदल जायेगी समाचार पत्रों के अनसुसार औद्योगिक प्रदूषण से रायपुर जिल के सिमगा, सिलतरा और हसौद में भूमि बंजर बन चुकी है। इससे लगभग 1 लाख 25 हजार किसान प्रभावित हुए है।

3. क्षेत्र में सिंचाई सुविधा का अभाव

कृषकों को वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता है यही वजह है कि क्षेत्र में कृषि मजदूरों को वर्ष मात्र चार, छ: माह ही रोजगार उपलब्ध हो पाता है इस वजह से वो पलायन की ओर अग्रसर होते है।

4. मजदूरी की दर का कम होना

यदि हम कृषि कार्यों में प्रचलित मजदूरी की दर देखें तो वह शासन द्वारा निर्धारित दर से 50 प्रतिशत से भी कम है यही वजह है क्षेत्र के भूमिहीन मजदूर अपने मूल निवास में कार्य न करके अच्छी मजदूरी के लिए राज्य के बाहर देश के विभिन्न महानगरों एवं शहरों की ओर पलायन करते है।

5. नक्सलवाद

प्रवासी मजदूर बनने का एक कारण और भी है बस्तर, राजनांदगांव व सरगुजा जैसे जिलों के नक्सल प्रभावी क्षेत्रों में ब्ल्थ्थ् व अन्य पॅरामिलीटरी फोर्स, राज्य पुलिस और एसपीओ के आतंक के साथ दक्षिण बस्तर के सलवाजुड्म एक तरफ दूसरी तरफ नक्सलवादी हिंसा के बीच पीसे जा रहे 1 लाख से भी ज्यादा आदिवासी परिवार भी अपने गांव घर आंगन पशुधन छोड़कर राज्य के सीमावर्ती अन्य राज्यों में चले गये है व बाहर प्रवासी मजदूर के रूप में अमानुषिक जिंदगी जी रहे है। इसके अतिरिक्त साक्षरता की स्थिति अत्यंत निम्न होगा भी व क्षेत्र में चलने वाली राहत एवं रोजगार योजनाओं में अनियमित रूप से मजदूरी का भुगतान किया जाना भी है।

इस प्रकार हम देखते है कि छत्तीसगढ़ में पलायन का मुख्य कारण गरीबी बेरोजारी सूखा के साथ-साथ कृषि भूमि का बंजर होना मजदूरी की दर का कम होना कृषि भूमि का अधिग्रहण कर लिया जाना आदि है।

पलायन का प्रभावः-

छत्तीसगढ़ राज्य में पलायन के प्रभाव संबंधी विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ है कि पलायन का प्रवासी, श्रमिकों के सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है जिसमें पारिवारिक संबंधो का प्रभावित होना, बच्चों की शिक्षा अधूरी रह जाना तथा अस्वास्थ्यकर दशाओं में कार्य करने के कारण स्वास्थ्य पर पड़ने वाला प्रभाव प्रमुख है। श्रमिकों में आपराधिक प्रवृत्तियां, अपर्याप्त जल आपूर्ति एवं गंदी बस्तियों में रहने को बाध्य हो जाते है, वे श्रमिको फैक्ट्रियो में कार्य करने की असंतोषजनक दशाओं में कार्य करने के बाध्य होते है उनको परिवहन एवं मनोरंजन एवं स्वास्थ्य सुविधाओं में कमी व भोजन संबंधी वस्तुएं भी शुद्धनहीं मिलती है,

देश का एक बड़ा उपखंड प्रवासी आबादी है सबूत यह बताते है कि प्रवासियों को एच.आई.वी और एड्स की संभावनाएं अधिक है एच.आई.वी और प्रवासन के बीच संबंध समय के साथ उभर रहे है प्रवासियों में मानव तस्करी की भी ज्यादा संभावनाएँ होती है।

छत्तीसगढ़ में श्रमिक पलायन का स्वरूप

यद्यपि छत्तीसगढ़ में श्रमिक पलायन के विष में व्यवस्थि सर्वे नहीं कराया गया है किन्तु विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी सर्वेक्षणों से महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

राजस्व मंत्री द्वारा विद्यानसभा में दिये गए वक्तव्य में 2012 से 2015 तक 95924 लोगों द्वारा राज्य से पलायन बताया गया है साथ ही बताया गया है कि इसमें ज्यादातर मजदूर है जो अधिक वेतन के लिए दूसरे राज्यों में पलायन करते है।

वर्तमान में एक गैर-सरकारी अनुमान के अनुसार छ.ग. से हर साथ लगभग 3 लाख मजदूर पलायन करते है।

छ.ग. से अधिकरत पलायन करने वाले मजदूर निर्माण कार्य सेवा, परिवहन, सिर पर बोझा ढोनें वाले, रिक्शा चालनक और फेरी वाले आदि के रूप में कार्यरत् है। छ.ग. में श्रमिक पलायन में क्षेत्रीय और आर्थिक आधार पर अत्यधिक विभिन्नता देखने को मिलते है। रायपुर, दुर्ग, भिलाई, बिलासपुर जैसे अधिक विकसित क्षेत्रों में भी बड़े पैमाने पर श्रमिक पलायन होता है।

छ.ग. में श्रमिक पलायन के परिणाम:-

छ.ग. में श्रमिकों के पलायन से अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है यथा सांस्कृतिक संघर्ष, पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक विद्यटन आदि। इससे राज्य को सर्वाधिक हानि होती है क्योंकि राज्य का उत्कृष्ट मानव संसाधन राज्य के बाहर चला जाता है। यहाँ पलायन से तात्पर्य केवल कारखाने में काम करने वाले या भूमिहीन श्रमिकों से नहीं है बल्कि यह पलायन उन इंजीनियरों, डॉक्टरों, प्रबंधको और अफसरो के रूप में होता है जिनकी शिक्षा और प्रशिक्षण के लिये सरकार ने लाखों रूपये खर्च किये होते हैं। इस प्रकार के प्रतिभा पलायन से राज्य की स्थिति विपरीत रूप से प्रभावित होती हैं।

पलायन करने पर श्रमिकों को अस्थिर जीवन प्राप्त होता है जो उन्हें कल्याणकारी योजनाओं व सामाजिक सुरक्षा जैसी सुविधाओं से वंचित करता है निम्न जीवन स्तर और अस्वास्थ्यकर दशाओं में काम करने से कार्यक्षमता का ह्यस होता है। श्रमिक यदि अपने परिवार को ही बाहर ले जाता है विशेषकर महिला श्रमिकों के पलायन से अनेक गंभीर समस्याएँ उत्पन्न होती है। दूसरे राज्यों पर जब आर्थिक बोझ बढ़ता है तो वहाँ भी श्रमिको को भेदभाव जैसी समस्याओं को सामना करना पड़ता है। जिस मूलभूत सुविधा के लिये श्रमिक ने पलायन किया है वो ही उन्हें हासिल नहीं होती। कभी-कभी वह अपनी पैतृक सम्पत्ति से भी हाथ धो बैठता है। उसे अपने परिवार, समाज और राज्य से भी दूर होना पड़ता है। इस प्रकार श्रमिक पलायन आर्थिक, सामाजिक विघटन जैसी गंभीर समस्याओं को उत्पन्न करता है।

श्रमिक पलायन रोकने के लिये सरकारी प्रयासः

श्रमिको का पलायन रोकने के लिये सरकार को प्रासंगिकता ग्रामीण विकास है। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के अनुसार शहरों को गॉवों मे ले जाकर ही ग्रामीट पलायन पर रोक लागायी जा सकती है इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए गॉवों में भी शहरों जैसा विकास किया जा रहा है।

छ.ग. सरकार द्वारा पलायन रोकने के लिये विभिन्न योजनाओं को लागू किया गया है जिनमें प्रमुख है:-

- महात्मा गॉधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना
- खाद्य सुरक्षा अधिनियम
- कुशाभाऊ ठाकरे युवा जन विकास योजना
- ग्रामीण एवं शहरी महिला स्व सहायता कार्यक्रम
- ग्रामीण एवं शहरी सामुदायिक विकास नेटवर्क
- दक्षता विकास योजना
- कौशल विकास कार्यक्रम 2015
- शिक्षा का अधिकार एवं सर्वशिक्षा अभियान
- भारत निर्माया योना
- प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना
- श्रम अधिनियम 1979
- एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम 1982
- राष्ट्रीय परिवास सहायता कार्यक्रम
- सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना
- मुख्यमंत्री स्वावलंबन योजना

- "PURA- Providing Urban Amenities in Rural Area"
- दीनदयाल उपाध्याय स्वावलंबन योजना

इनमें से बहुत सी योजनाएँ लागू की जा चुकी है, कुछ लागू की जा रही है, कुछ को किया जाना है। यद्यपि सरकार ने इन कार्यक्रमों की कुशलतापूर्वक लागू किया है किन्तु फिर भी श्रमिक पलायन की समस्य अधिक नियंत्रित नहीं हुई है।

इन योजनाओं को कुशलतापूर्वक लागू करने और श्रमिक पलायन को रोकने के लिये कुछ सुझाव दिये जा सकते है। सर्वप्रथम कृषि में सुधार किया जाना चाहिये। व्यवसायिक और वाणिज्यिक खेती को बढ़ावा दिया जाना चाहिये, भूमि सुधार का प्रयास किया जाना चाहिये। सिंचाई परियोजनाओं का विस्तार एवं कृषि एक लाभदायक व्यवसाय बन जाए।

- काम नहीं मिलना या बेरोजगारी जैसी स्थिति को दूर करना सबसे अधिक जरूरी है। लघु एवं कुटीर उद्योगो की स्थापना, स्वरोजगार, वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण कौशल विकास, बैंकिग एवं बीमा सुविद्याओं का विस्तार निर्वाह मजदूरी बढ़ाना आदि के द्वारा इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है।
- पिछड़े हुए क्षेत्रों विशेषकर गाँवों में मूलभूत सुविधाओं शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, पेयजल, परिवहन, संचार आदि की सुविधाएँ उपलब्ध करानी चाहिए।
- समाजवाद की स्थापना कर, असमानता को दूर कर सामाजिक न्याय की स्थापना करना चाहिये।
- सरकारी योजनाओं के निरीक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये।
- श्रम अधिकारियों, श्रम निरीक्षकों द्वारा पलायन पर नियंत्रण।
- सरकारी योजनाओं की सोशल ऑडिट ग्राम सभा द्वारा किया जाना चाहिये।
- रोजगार देने वाली कम्पनियाँ, स्वरोजगार के लिये प्रोत्साहन देने वाली गैर-सरकारी संस्था को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।
- महिलाओं को रोजगार और स्वरोजगार की दिशा में बढ़ाना चाहिये। इससे भी पलायन में कमी आएगी।
- सबसे जरूरी लोगों में जागरूकता लाना है। उन्हें यह बताना है कि पलायन के बिना भी वे राज्य की योजनाओं का फायदा उठा सकते हैं।
- नक्सलवाद की समस्या को हल करना क्योंकि नक्सल समस्या से ही बड़े पैमाने पर पलायन होता है।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली को संगठित और पारदर्शी बनाया जाए ताकि उचित दामों पर खाद्य सुरक्षा और अनाज उपलब्ध हो सके।
- छ.ग. की गणना देश की प्रचुर भूमि, खनिज, वन जैसे प्राकृतिक संसाधनों वाले राज्य के रूप में होती है। आवश्यकता इस बात की है कि अपने मानवीय और प्राकृतिक संसाधनों का सही उपयोग कर रोजगार सृजन किया जाए। श्रमिकों को अपने राज्य में ही वे सुविधाएँ उपलब्ध करा दी जाए, जिनके लिये वे पलायन करने को विवश होते है। योजनाओं को इस प्रकार से लागू किया जाए कि राज्य का अंतिम से अंतिम व्यक्ति भी विकास में भागीदार बन सकें इससे न केवल पलायन की समस्या को दूर किया जा सकता है बल्कि लोककल्याणकारी राज्य के उद्देश्य को पूरा किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. अनिता मोदी, गाँवों से पलायन की बढ़ी प्रवृत्तिः चुनौतियाँ एवं समाधान, कुरूक्षेत्र सितंबर 2014 प्रकाशन विभाग सूचना भवन नयी दिल्ली, पृ.7
2. प्रतियोगिता सारांश, शासन के महत्वपूर्ण आंकड़े पृ. 63
3. डॉ. अर्जुन सोलंकी, ग्रामीण क्षेत्रों से पलायनः कारण एवं परिणाम, कुरूक्षेत्र सितंबर 2014 प्रकाश विभाग, सूचना भवन नयी दिल्ली, पृ.19
4. सुनील कुमार ठाकुर, पलायनः गरीबी और बेरोजगारी, कुरूक्षेत्र सितंबर 2014, प्रकाश विभाग, सूचना भवन नयी दिल्ली, पृ.29-30
5. विभाष कुमार झा एवं डॉ. सौम्या नैय्यर, छत्तीसग समग्र, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी रायपुर, पृ. 537-567

सनातन संस्कृति और धर्म के संरक्षक: वाल्मीकि के राम

डॉ० आशा सिंह रावत

असिस्टेण्ट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग एवं शोध केन्द्र,
शासकीय के0 आर0 जी0 पी0 जी0 ऑटोनोमस महाविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0)

जगत् के आदिकाव्य 'रामायण' के रचयिता 'आदिकवि' महर्षि वाल्मीकि ने रामायणकथा में राम के जीवनचरित को आदर्शों से सरोबार, धर्मपालक, सदाचारी व सनातन संस्कृति के रक्षक एवं पोषक के रूप में चित्रित किया है। जहाँ वे अपने प्रत्येक कार्य-व्यवहार, आचार-विचार और सदाचार से भारतदेश की गौरवमयी, तपोमयी संस्कृति तथा मानवोद्धारक धर्म का सदैव पूर्ण पालन करते हैं। वास्तव में इस जगत् में एकमात्र धर्म ही सारपूर्ण है, बाकी सब नि:सार है; इसीलिए धर्म का पालन एवं उसकी रक्षा अवश्यमेव करणीय है- 'धर्मो रक्षति रक्षित:'[1] एवं 'सर्व धर्मसारमिदं जगत्'[2] जैसे शास्त्र उद्घोष धर्म की आवश्यकता व महत्ता प्रतिपादित करते हैं। धर्म भारतीय संस्कृति का प्राणभूत तत्व है; इसीलिए सनातन संस्कृति में सर्वत्र धर्म की व्यापकता और अपरिहार्यता निहित है- "भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा" जैसे वाक्य सनातन संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं तथा इसे भारत की प्रतिष्ठा का सुदृढ़ आधार सिद्ध करते हैं। भारतीय संस्कृति दिव्यसंस्कारों से सम्पन्न, सदाचारपूत, नानाश्रेष्ठगुणों और तप:पूत ऋर्षि-मुनियों के दिव्यचरितों से विभाषित है। यहाँ के धर्म और संस्कृति में समग्र चराचर जगत् के लिए हितकारी व कल्याणकारी बातों और कार्यकलापों का समावेश देखा जा सकता है। इसीलिए अतिश्रेष्ठ व लोककल्याणविधायिनी होने के कारण सनातन धर्म-संस्कृति जगद् वन्दनीय है, प्रशस्त है; जिसका पालनानुसरण जन-जन के लिए करणीय है।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के आलोक में सनातन धर्म-संस्कृति और श्रीरामचरित को देखें, तो प्रस्तुत काव्य में महर्षि वाल्मीकि ने भारतीय धरा पर सनातन काल से प्रचलित धर्म व यहाँ की संस्कृति के प्रति पूर्ण आस्था, श्रद्धा और निष्ठा रखते हुए काव्य के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को सर्वदा और सर्वथा धर्म-संस्कृति के पालक व संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है। श्रीराम सत्य, अहिंसा, धैर्य, क्षमा रूप दशलक्षणात्मक धर्म का हर स्थिति में मन-वचन-कर्म से पालन करते हैं। जीवन और जगत् के किसी भी क्षेत्र या पक्ष में वे सनातन धर्म-संस्कृति की अवहेलना नहीं करते, वरन् उसका पालन करते-करवाते हैं। चाहे क्षात्रधर्म हो अथवा कुलधर्म, पुत्रधर्म, भ्रातृधर्म, मित्रधर्म, राजधर्म, राष्ट्रधर्म, देशधर्म अथवा अन्यान्य प्रकार के समस्त धर्मों एवं तदनुसार कर्मों की पूर्ण परिपालना राम को धर्मपालनकर्ता व आदर्श पुरुष बनाते हैं। चाहे वे घर में रहे या वन में अथवा साधन सम्पन्न हैं या साधनहीन, हर परिस्थिति और अवस्था में वे सनातन धर्म-संस्कृति की परम्परा का निर्वहन करते हुए यज्ञ, तप, होम, संध्या-वन्दनादि धर्म-कर्म करते हैं तथा गौ, ब्राह्मण, स्त्री, माता-पिता, गुरुजन, ऋषि-महर्षि, तपस्वी इत्यादि सभी का पूर्ण सम्मान, पूजन व रक्षा करते हैं। रामायण के प्रारम्भ में ही महर्षि विश्वामित्र वनप्रदेशों में तपोनिरत ऋषि-मुनियों के यज्ञानुष्ठान, तप: साधना एवं विभिन्न नियमित धार्मिक-आध्यात्मिक क्रियानुष्ठानों में दुष्ट असुरों द्वारा बाधा[3] पहुँचाए जाने पर राजा दशरथ से बड़े आग्रह पूर्वक श्रीराम को वन ले जाने के लिए आते हैं, ताकि श्रीराम दुष्ट असुरों द्वारा की जाने वाली धर्म की हानि को रोक सकें तथा ऋषि-मुनियों के यज्ञानुष्ठान व धार्मिक क्रियाकलापों को निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न होने में उनकी मदद कर सकें। तदनुसार श्रीराम विश्वामित्र के साथ वनगमन करते हैं तथा वहाँ असुरों द्वारा तपस्वी, धर्मपालक ऋषि-महर्षियों के नियमानुष्ठान में अधर्मपूर्वक कृत्यों से पहुँचाए जा रहे विघ्नों का निराकरण करते हैं और सनातन धर्म-संस्कृति के विनाशक दुष्ट असुरों का संहार कर धर्म-संस्कृति की रक्षा करते हैं। इस महान् कार्य हेतु उनके द्वारा किये जाने वाला असुरवध, चाहे वह आसुरी शक्ति स्त्री हो या पुरुष, उसके वध करने से पाप या अधर्म का संचय

नहीं होता, वरन् वह श्रीराम का धर्म है- ऐसा स्वयं महर्षि विश्वामित्र का कथन है। जब वे ताटकावन में राक्षसी ताटका के भयंकर दुराचारयुक्त कर्मों से श्रीराम को अवगत कराते हैं और उस प्रदेश के निवासियों, आर्यजनों की पीड़ा बतलाते हैं, उस समय स्पष्टत: श्रीराम से कहते हैं कि- "नरश्रेष्ठ! तुम स्त्री-हत्या का विचार करके इसके प्रति दया न दिखाना। एक राजपुत्र को चारों वर्णों के हित के लिए स्त्री हत्या भी करनी पड़े तो उससे मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। प्रजापालक नरेश को प्रजाजनों की रक्षा के लिए क्रूरतापूर्ण या क्रूरतारहित, पातकयुक्त अथवा सदोष कर्म भी करना पड़े तो कर लेना चाहिए।"[4] जिनके ऊपर राज्य के पालन का भार है, उनका तो यह सनातन धर्म है- "राज्यभारनियुक्तानामेष धर्म: सनातन:।"[5] इस प्रकार यहाँ श्रीराम महर्षि की आज्ञानुसार अपने सनातन धर्म का निर्वहन करते हैं। वे महर्षि द्वारा कही गई इस बात- "गो ब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम्।।"[6] अर्थात् गौ और ब्राह्मणों का हित करने के लिए इस दुष्ट पराक्रम वाली राक्षसी का वध कर डालो एवं चारों वर्णों तथा समग्र राष्ट्र की रक्षार्थ स्वधर्म का पालन करो- इसके प्रत्युत्तर स्वरूप कहते हैं- "गौ, ब्राह्मण तथा समूचे देश का हित करने के लिए मैं आप जैसे अनुपम प्रभावशाली महात्मा (विश्वामित्र) के आदेश का पालन करने को सब प्रकार से तैयार हूँ।"[7] किशोरवय में ही वे वनप्रदेशों में अपने दुराचार व अधर्मपूर्ण कृत्यों से तपस्वियों के धर्मानुष्ठानों में बाधा पहुँचाने वाले राक्षस-राक्षसियों का वध कर धर्मात्मा जनों के धर्मकार्यों को निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न कराते हैं।

सनातन संस्कृति में विहित संध्योपासना रूप नित्यकर्मों को वे सदैव नियमपूर्वक पूर्ण श्रद्धा से करते हैं, चाहे घर में रहें या वन-काननों में- "स हि रामं प्रशस्यैवं ताभ्यां संध्यामुपागमत्।।"[8] अपने से बड़ों, गुरुजनों, ऋषि-महर्षि-तपस्वियों, माता-पिता आदि सभी को सदैव बड़ी विनम्रतापूर्वक प्रणाम-अभिवादन करते हैं और उनकी सेवा-शुश्रूषा व आदेश पालनार्थ प्रतिपल उद्यत रहते हैं- "अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं. . . . आज्ञापय मुनिश्रेष्ठ शासनं करवाव किम्।।"[9] एवं - "रामोऽपि.... तानभिपूज्य च।।"[10] इत्यादि स्थल किशोरवय राम के वनप्रदेशों में गुरुवरों के प्रति आज्ञापालन व सम्मान और पूजनीयता के भाव-व्यवहार के सूचक हैं, जो कि श्रीराम द्वारा भारतीय सनातन परम्परा के शिष्टाचार निर्वहन को व्यक्त करते हैं। अयोध्या में रहकर श्रीराम अपने पिता की देवताओं के समान सेवा-पूजा में संलग्न रहते हैं- "रामो. . . . . पितरं देवसंकाशं पूज्यामासतुस्तदा।।"[11] एवं पिता की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य कर वे उनके समस्त प्रिय और हितकर कार्यों में संलग्न रहते हैं- "पितुराज्ञां पुरस्कृत्य . . . . राम: सर्वाणि प्रियाणि च हितानि च।।"[12] वे भारतीय संस्कृति के 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', 'आचार्य देवो भव' और 'अतिथि देवो भव'- जैसी प्रशस्त अवधारणा और उपदेशों का हृदयश: पालन करते हैं। सनातन धर्म-संस्कृति की समस्त विशेषताओं, श्रेष्ठताओं और प्रशस्तताओं के पालनकर्ता श्रीराम के सद्गुणों का वर्णन अयोध्याकाण्ड में उनकी राज्याभिषेक विषयक चर्चा के अवसर पर हुआ है; जिससे उनका सनातन धर्म-संस्कृति के पूर्णपालनकर्ता और संरक्षक का रूप व श्रेष्ठ चरित्र प्रत्यक्षत: अभिव्यक्त होता है- "बहवो नृप कल्याणगुणा: सन्ति. . . . राम: सत्पुरुषो लोके सत्य: सत्यपरायण: .... धर्मश्चापि श्रिया सह।।. . . . धर्मज्ञ:. . . . . क्षान्त:. .. . प्रियवादी च. .. . . . ब्राह्मणानामुपासिता. . . . . साधुरदीनात्मा महामति:. . . . . धर्मं सर्वात्मनाश्रित:. . . .।।"[13]

माता के प्रति पूजनीयता का भाव उनमें सदैव कूट-कूटकर भरा हुआ है। विमाता कैकेयी के साथ वे सदैव अपनी सगी माता के समान अच्छा बर्ताव करते हैं- "सदा ते जननी तुल्यां वृत्तिं वहति राघव:।।"[14] विमाता कैकेयी की हठधर्मिता से वनवास प्राप्त होने पर भी श्रीराम के मन में उनके प्रति तनिक भी कोई दुर्भाव अथवा आक्षेप का भाव-व्यवहार नहीं है। वे माता को हर हाल में पूजनीय-सम्माननीय एवं वंदनीय मानते हैं। वनगमन का अवसर उपस्थित होने पर वे दु:खी हुई माता कौशल्या द्वारा रोके जाने पर स्पष्टत: कहते हैं कि "पिता की आज्ञापालन करने वाला कोई भी पुरुष धर्म से भ्रष्ट नहीं होता।"[15] वे हर हाल में पिता की आज्ञा का पालन कर पुत्रधर्म का सम्यक् निर्वाह करते हैं, चाहे उसके लिए उन्हें कितने ही कष्ट सहने पड़ें।

वनवासावधि में श्रीराम तपोवन में तपस्वियों की भाँति पर्णशाला/कुटिया बनाकर, जटामण्डल एवं वल्कल वस्त्र धारण करके रहते हैं एवं समस्त धार्मिक नियमानुष्ठानों को सम्पादित करते हैं-

"उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम्।।
कृष्णाजिनधरं तं तु चीरवल्कलवाससम्।"[16]

उनका तप व धर्म शरीर को कष्ट देकर सम्पन्न किया जाने वाला धर्माचरण है; जहाँ वे शम-दम पूर्वक आश्रम अथवा तपोवनीय संस्कृति की पूर्णानुपालना करते हैं।[17] वन में अपने पास आए हुए भरत से पिता दशरथ की मृत्यु का समाचार सुन वे अत्यन्त दु:खित हो विलाप करते हैं एवं मृत पिता को जलाञ्जलि दान की परम्परा का निर्वहन करते हैं; जैसा कि सनातन संस्कृति में पितृतर्पण का

विधान है। मन्दाकिनी नदी के तीर्थभूत जल से वे पितृलोक में गए हुए पिता को विधिवत् जलाञ्जलि दान1[8] के बाद अपने भाईयों के साथ मिलकर पिता के लिए पिण्डदान करते हैं।[19] इस प्रकार माता-पिता व ज्येष्ठ जनों की प्रसन्नतार्थ भी वे सदैव समर्पित रहते हैं, तो वहीं मृतपितरों की तृप्ति कर वे उनके उद्धार व कल्याणार्थ तदनुकूल समस्त धर्म-कर्म करते हैं। इस प्रकार उनके द्वारा सदैव धर्म-संस्कृति के पालन व उसके संरक्षण का महान् कार्य किया जाता है।

चौदह वर्षीय वनवासावधि के दौरान वनप्रदेश में रहते हुए वे अधर्म व पापपूर्ण कृत्य एवं भाँति-भाँति के दुराचारों से तपस्वीजनों, ऋषि-मुनियों को पीड़ित करने वाले और उनके धार्मिक अनुष्ठानों को बाधित करने वाले एवं बहुत से तपस्वी ऋषि-मुनियों का भक्षण कर उनका संहार करने वाले असुरों का संहार कर सनातन धर्म-संस्कृति के रक्षक व पोषक बने रहते हैं। जैसा कि दण्डकारण्य में राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित वानप्रस्थी मुनियों का समुदाय श्रीराम से अपनी रक्षा की प्रार्थना करता है कि- "इस वन में रहने वाला वानप्रस्थ महात्माओं का यह महान् समुदाय, जिसमें ब्राह्मणों की ही संख्या अधिक है तथा जिसके रक्षक आप ही हैं, राक्षसों के द्वारा अनाथ की तरह मारा जा रहा है।"[20] क्योंकि अनेक भंयकर दुष्ट राक्षस बहुसंख्यक पवित्रात्मा मुनियों का भक्षण करते रहते हैं।[21] इसीलिए उन राक्षसों से बचने के लिए शरण लेने के उद्देश्य से वे सभी ऋषि-मुनि श्रीराम के पास आते हैं और कहते हैं कि श्रीराम! आप शरणागतवत्सल हैं; अतः इन निशाचरों से मारे जाते हुए हम मुनियों की रक्षा कीजिए-

ततस्त्वां शरणार्थं. . . . . राम वध्यमानान् निशाचरैः।।[22]

इस पर श्रीराम उन महात्मा मुनियों को रक्षा का पूर्ण आश्वासन देते हैं एवं तदनुसार बहुत से राक्षसों का संहार कर उन्हें भयमुक्त करते हैं। वनप्रदेशों में रहने वाले श्रीराम एक ओर प्रजा के सुख व रक्षार्थ, धर्म की स्थिति को बनाए रखने हेतु क्षत्रिय के हिंसामय कठोर कर्म द्वारा स्वधर्म का पालन करते हैं, तो वहीं वे दूसरी ओर उस तपोवनरूप देशधर्म का, अहिंसामय धर्म का भी पालन करते हैं, जहाँ उन्हें किसी भी निरपराध प्राणी को नहीं मारना है तथा सभी प्राणियों पर दया बनाए रखनी है। पत्नी सीता श्रीराम से इस हेतु स्पष्टतः निवेदन करती हैं कि उन्हें बिना अपराध के किसी को भी नहीं मारना है। वन में धनुष धारण करने का इतना ही प्रयोजन है कि वे संकट में पड़े हुए प्राणियों की रक्षा करें- "क्षत्रियाणां तु वीराणां. . . . . आर्तानामभिरक्षणम्।।"[23] हालांकि धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ व लोकरक्षक श्रीराम स्वयं तपोवनरूप देश धर्म को भलीभाँति जानते हैं एवं उसकी मर्यादा का पालन भी करते हैं, परन्तु यहाँ सीता के मुख से धर्म की महिमा व्यक्त करना और श्रीराम द्वारा तपोवन में अहिंसादि रूप धर्मपालन करना- इस सब को व्यक्त करने का अच्छा अवसर महर्षि वाल्मीकि को यहाँ प्राप्त हुआ है;[24] जिससे कि वे संसार में सनातन धर्म की महत्ता और प्रभाव को बतलाकर जन-जन को संदेश व प्रेरणा देने में सफल रहे हैं। यथोक्तम्-

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्।।"[25]

इस प्रकार समस्त प्रकार के सुख, कल्याण और सार धर्म से ही संभव हैं; अतैव वह अवश्यमेव पालनीय व धारणीय है। रामायण में श्रीराम ने वाली तथा रावण के अधर्म व अन्याय पूर्ण कृत्यों के लिए उनका संहार किया, इससे वे उनके अधर्म व अन्याय के साम्राज्य को समाप्त कर धर्म व न्याय की स्थापना कर सके। इस प्रकार समग्र रामायण में श्रीराम धर्म-संस्कृति के संरक्षणकर्ता रूप में देखे गए हैं, जो जन-जन के लिए आदर्श है।

निष्कर्षः-

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत श्रीरामचरित निःसन्देह सनातन धर्म-संस्कृति के पूर्ण पालनकर्ता व पोषक एवं संरक्षक के रूप में देखा गया है; जहाँ वे स्वार्थों एवं स्व-सुख, प्रसन्नता का त्याग करके सदैव परोपकार में प्रवृत्त रहते हैं। सनातन परम्परानुसार माता-पिता, गुरुजनों तथा समस्त ज्येष्ठ जनों की आज्ञा शिरोधार्य कर उनके प्रति पूर्ण सम्मान व पूजनीयता का भाव रखते हैं। क्षत्रिय होने के नाते दुःखार्त व किसी भी प्रकार से त्रस्त जनों की रक्षा व सहायता करते हैं, तो वहीं अधर्म व अन्याय का साम्राज्य संचालित करने वालों का संहार करते हैं। इस प्रकार रामायण असुर संस्कृति पर सनातन संस्कृति की विजय का काव्य है। समग्र काव्य में श्रीराम अपने धर्म व संस्कृति की समस्त परम्पराओं और क्रियानुष्ठानों का पूर्ण श्रद्धा व निष्ठा से पालन करते हैं। इस प्रकार श्रीराम की धर्म-संस्कृति के प्रति तत्परता और समर्पण सार्वभौमिक मानव के लिए उच्चादर्श प्रस्तुत करता है कि हर हाल में अहिंसा, सत्य, क्षमा, परोपकारादि रूप धर्म का एवं धर्माधारित संस्कृति का पालन अवश्यमेव करणीय है। क्योंकि यही व्यष्टि-समष्टि हित में है तथा यही जनमंगलकारी व लोककल्याणविधायक है।

संदर्भ स्थल एवं संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. मनुस्मृति: टीकाकार-पण्डित श्री हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा प्रकाशन, सन्-2011, 8/15- "धर्म एवं हतो हन्ति. . .।।"
2. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर प्रकाशन, संवत् 2056, अरण्यकाण्ड/सर्ग 9/30
3. वही, बालकाण्ड/सर्ग 9 एवं 30
4. वही, बालकाण्ड/सर्ग 25/17-18
5. वही, बालकाण्ड/सर्ग 25/19
6. वही, बालकाण्ड/सर्ग 25/15
7. वही, बालकाण्ड/सर्ग 26/5- "गो ब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय।।"
8. वही, बालकाण्ड/सर्ग 30/26
9. वही, बालकाण्ड/सर्ग 31/3-4
10. वही, बालकाण्ड/सर्ग 31/21
11. वही, बालकाण्ड/सर्ग 77/21 पूर्वार्द्ध
12. वही, बालकाण्ड/सर्ग-77/21-22
13. वही, अयोध्याकाण्ड/सर्ग 2/26-42
14. वही, अयोध्याकाण्ड/सर्ग 12/8
15. वही, अयोध्याकाण्ड/सर्ग 21/37 उत्तरार्द्ध- "पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चिन्नाम हीयते।।"
16. वही, अयोध्याकाण्ड/सर्ग 99/25-26
17. वही, अयोध्याकाण्ड/सर्ग 99/32, 34
18. वही, अयोध्याकाण्ड/सर्ग 103/20-21, 24-27
19. वही, अयोध्याकाण्ड/सर्ग 103/28-30
20. वही, अरण्यकाण्ड/सर्ग 6/15 - "सोऽयं ब्राह्मण भूयिष्ठो. .. . राक्षसैर्हन्यते भृशम्।।"
21. वही, अरण्यकाण्ड/सर्ग 6/16 - "एहि पश्य शरीराणि मुनीनां. . .।।"
22. वही, अरण्यकाण्ड/सर्ग 6/19
23. वही, अरण्यकाण्ड/सर्ग 9/26
24. वही, अरण्यकाण्ड/सर्ग 9 सम्पूर्ण देखें।
25. वही, अरण्यकाण्ड/सर्ग 9/30

‘श्रीविवेकानन्दविजयम्’ में देशप्रेम और राष्ट्रभक्ति की भावना

डॉ० बाबूलाल मीना

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महारानी श्री जया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर (राजस्थान)

‘श्रीविवेकानन्दविजयम्’ नाटक दस अंकों का एक महानाटक है, जो संस्कृत भाषा में रचित है। इसके रचयिता श्रीधर भास्कर वर्णेकर हैं, जो कि संस्कृत की अनेक कृतियों के रचनाकार के रूप में संस्कृत काव्यजगत् में अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण सम्मानीय स्थान और ख्यात नाम रखते हैं। प्रस्तुत नाटक स्व-अभिधानानुसार स्वामी विवेकानन्द के आदर्शमय और महान् चरित्र को तथा उनके विश्वविख्यात चरित्र को प्रस्तुत करता है। इस विषय में पद्मभूषण डॉ. वी. राघवन ने कहा है- “इदं विवेकानन्दविजयं नाम महानाटकं ‘नाटकं ख्यातवृत्तं स्याद्’ इति न्यायेन श्रीविवेकानन्दस्य विश्वविख्यातं चरित्रम् अधिकृत्य वर्तते।”[1]

इस प्रकार इस नाटक के महानाटक होने तथा श्री विवेकानन्द के विश्वविख्यात चरित्र को लेकर लिखे जाने की पुष्टि राघवन के उपर्युक्त वक्तव्य से भी होती है तथा महानाटक के अध्ययन-अनुशीलन से भी होती है। इतिहास पुरुष श्री विवेकानन्द के जीवनचरित पर आधारित होने के कारण नाटक का कथानक ऐतिहासिक है; जिसमें इस इतिहास पुरुष तथा युवा लोकनायक के व्यक्तित्व व चरित्र की उज्ज्वलता, श्रेष्ठता तथा यशोगाथा स्पष्टत: अभिव्यक्त हुई है। अपने श्रेष्ठ और महान् चरित्र के तथा विवेक के अनुरूप ही उनका नाम भी ‘विवेकानन्द’ सर्वथा सार्थक तथा औचित्यपूर्ण है; जैसा कि कवि ने नाटक में कहा है- “सानन्दोऽभूत् प्रथितयशसा तस्य नाम्ना विवेक:।”[2] अर्थात् उसके प्रसिद्ध यश वाले नाम से ‘विवेक’ आनन्द से युक्त हुआ, अर्थात् विवेकानन्द नाम हुआ। वास्तव में विवेकानन्द (नरेन्द्र) के भारतीय धर्म, संस्कृति, मातृभूमि तथा राष्ट्र के प्रति किए गए श्रेष्ठ कार्य-व्यवहार और श्रेष्ठ चरित्र के कारण ही विवेक परम आनन्द को प्राप्त हुआ तथा उनका यह नाम सार्थक सिद्ध हुआ- यह भावाभिप्राय है। वस्तुत: इस संसार में वही प्राणी सर्वाधिक प्रशंसनीय है, जिसमें श्रेष्ठ विवेक (विवेकानन्द) निवास करता है, ऐसा भी कवि ने कहा है, जो कि जगत् में इस महानायक के प्रशंसनीय चरित्र को बतलाता है- “जीव: श्लाघ्यतम: स एव भुवने यस्मिन् विवेक पर:।।”[3] इस प्रकार यह बात लेखक ने नाटक के प्रारम्भ में ही कहकर विवेकानन्द चरित्र की श्रेष्ठता व जगत् प्रशंसनीयता व्यक्त कर दी है। वास्तव में विवेकानन्द स्व-अभिधानुसार सदैव विवेकी रहे और अपने विवेक के चलते ही वे करणीय-अकरणीय, उचित-अनुचित के विवेकपूर्वक सद् में प्रवृत्त तथा असद् से निवृत्त रहते थे। स्वामी जी के इस नाम की सार्थकता तथा विवेक के महत्व को लेखक ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही बहुत अच्छे से व्याख्यायित किया है।

अस्तु! प्रस्तुत महानाटक के आलोक में नायक विवेकानन्द के देशप्रेम और राष्ट्रभक्ति को देखें अथवा नाटक में देशप्रेम व राष्ट्रभक्ति की भावना की प्रबलता को देखें, तो यह नायक विवेकानन्द में कूट-कूटकर भरी हुई है तथा वे हर हाल में, देश-विदेश में सदैव अपने देश या राष्ट्र की यशोगाथा व गौरव गाथाओं के गुणगान, बखान द्वारा स्वराष्ट्र की विजय पताका सर्वत्र लहलहाती देखना चाहते हैं। समग्र विश्व के समक्ष अपने राष्ट्र की तथा यहाँ के धर्म, अध्यात्म, संस्कृति-समाज की अच्छाइयों को अभिव्यक्त कर जन-जन में भारत राष्ट्र के प्रति प्रेम, भक्ति, श्रद्धा और निष्ठा के भाव जाग्रत तथा पुष्ट करना चाहते हैं। नाटक की प्रस्तावना में प्रस्तुत पद्य में नट स्वामी विवेकानन्द की महिमा तथा भारतभूमि के प्रति उनकी श्रेष्ठ भावनाओं को नटी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए उनके श्रेष्ठ कार्यों व अवदान का बखान कुछ इस प्रकार करता है-

तेनोध्वस्तं जडमतवतां राज्यमेकातपत्रं
सच्चौतन्यं जनगणमन: सर्वथाऽकारि तूर्णम्।

धर्मग्लानिः प्रवचनमहामन्त्रशक्त्या निरस्ता
ह्युच्चैर्नीता भुवि भरतभूवैजयन्ती जयन्ती।[14]

यहाँ कहा गया है कि विवेकानन्द ने जड़मतवादियों का एकछत्र शासन विध्वस्त कर दिया। शीघ्र ही जन समुदाय का मन सब प्रकार से सत्यरूप चौतन्य बना दिया। प्रवचन रूप महामंत्र की शक्ति से धर्म की ग्लानि (हानि) निरस्त कर दी और निश्चय ही पृथ्वी पर विजयशील होती हुई भारत की ध्वजा ऊँची उठा दी। इस प्रकार यहाँ नाटककार ने स्वामी विवेकानन्द के भारतीय धर्म-संस्कृति तथा यहाँ के गौरवास्पद स्वरूप के संरक्षक चरित्र व महत्वपूर्ण कार्यो को अभिव्यक्त किया है; जिसमें शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन में उनके द्वारा भारत देश तथा यहाँ के धर्म-संस्कृति की श्रेष्ठता रूपी पताका को सर्वोच्च रूप में फहराए जाने का सांकेतिक वर्णन है। यहाँ स्पष्टतः स्वामी विवेकानन्द का स्वमातृभूमि व देश के प्रति प्रेम और उसे सदैव विश्व में श्रेष्ठतम बनाए रखने का भाव देखा जा सकता है। आगे के पद्यों में कवि के स्पष्टतः विवेकानन्द की राष्ट्र के गौरव को अक्षुण्ण रखने तथा राष्ट्र व मातृभूमि के प्रति पालित प्रेम व भक्ति को स्वयं के साथ-साथ जन-जन के हृदय में सुदृढ़रूपेण पालित करने के भाव व्यक्त हुए हैं; जहाँ उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के अनेक सद्कार्यों व देश-विदेश में उनके भारतभूमि व राष्ट्र के प्रति अभिव्यक्त किए गए श्रेष्ठ भावों को अभिव्यक्त कर स्वामी जी को अनन्य राष्ट्रभक्त के रूप में चित्रित किया है-

शब्दे शब्दे भुवनजयिनी तस्य सन्मन्त्रशक्तिः

पादे पादे सुदृढनिहिते कास्विदुत्साहशक्तिः।
तद् दृक्पातैर्जनगणमनः स्वाहिता राष्ट्र शक्तिः

तत्संचारैः प्रथममुदिता भारती धर्मशक्तिः।।[5]

इस प्रकार यहाँ स्वामी जी के प्रत्येक शब्द में लोकविजयिनी श्रेष्ठ मंत्र शक्ति, प्रत्येक कदम में उत्साह शक्ति, उनके दृष्टिपातों में जनसमुदाय के मनों में भर दी जाने वाली राष्ट्रशक्ति थी- ऐसा कहा गया है तथा उनके देश-विदेशों में दिए गए संचारों से सर्वप्रथम भारतीय धर्मशक्ति का उदित होना बतलाया गया है। इस प्रकार यहाँ स्वामी जी की राष्ट्रभक्ति तथा धर्म-संस्कृति के संरक्षण व पोषण के भावों से युक्त सद्प्रवृत्ति सूचित होती है।

अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के प्रति भी स्वामी विवेकानन्द की निष्ठा व भक्ति अद्वितीय है। भारतीय परम्परा में गुरु को सम्मान देने और गुरुभक्ति का सुदृढ़ भाव स्वामी विवेकानन्द में खूब भरा हुआ है। इसके मूल में भी उनका राष्ट्र प्रेम निहित है; क्योंकि उनके गुरु परमहंस भी परम राष्ट्ररक्षक व राष्ट्रभक्त हैं। यथोक्तम्- "धर्मः क्षात्रो भृशमनुसृतो..... रामकृष्णावतारम्।।"[6] यहाँ रामकृष्ण परमहंस को क्षात्रधर्म का अनुसरणकर्ता व राष्ट्र की गौओं का रक्षक बतलाते हुए रामकृष्ण का नवीन अवतार बतलाया गया है, जिसमें उनके शिष्य विवेकानन्द की पूर्ण भक्ति व निष्ठा है। उन्हें हरेक उस वस्तु तथा व्यक्ति से प्रेम है, जो भारतभूमि से जुड़ा हुआ है तथा यहाँ के धर्म, संस्कृति व मर्यादाओं का पालन करता है एवं देश के लिए किसी भी प्रकार का अवदान देता है और उसके प्रति समर्पित रहता है।

सप्तमोऽङ्क में वे भारतवर्ष को प्रकाशमान होने वाला भूतल का रत्न बतलाते हैं, जो कि उनके देश के प्रति प्रेम व अन्यान्य बहुत से श्रेष्ठ भावों का सूचक है- "किरीटः सद्रत्नप्रभव...... अहो राजत्येषा भुवनतलरत्नं भरतभूः।।"[7] इस प्रकार यहाँ वे अपने देश को, भारत-धरा को सब लोकों की रत्नभूता स्वरूप सुशोभित बतला रहे हैं। यहाँ उनकी मातृभूमि व राष्ट्र के प्रति श्रद्धा तथा गौरव का भाव देखा जा सकता है। यही नहीं, वे अपनी मातृभूमि के जिस सौन्दर्य को अभिव्यक्त कर रहे हैं, वह ऐसा अद्वितीय एवं विलक्षण है, जो कि देवताओं को भी प्रिय एवं हृदयंगम बतलाया गया है- "अवाच्यां भूरेषा मलयजरजः... प्राच्यामुच्चैर्विपुल कलम क्षेत्रसुभगा।।"[8] इस प्रकार यहाँ चारों दिशाओं में भारतभूमि की श्रेष्ठता व विशेषता का कथन करते हुए वे इसे सम्पूर्ण रूप से सुन्दर और धनधान्य से समृद्ध बता रहे हैं, जो उनके मातृभूमि व देशप्रेम को दर्शाता है। क्योंकि किसी से भी सच्चा और अनन्य प्रेम करने वाला तथा उसके प्रति भक्ति व निष्ठा रखने वाला व्यक्ति सदैव उसके यथार्थ व प्रशस्त स्वरूप को, गुण व विशेषताओं को व्यक्त करता और आह्लादित होता है; जैसा कि स्वामी विवेकानन्द अपने राष्ट्र व मातृभूमि के श्रेष्ठ स्वरूप तथा गुण व विशेषताओं को व्यक्त करते हुए प्रसन्न हो रहे हैं।

भारत भूमि को पावन तपोस्थली, देवों की अवतार भूमि और अन्न-राशि से वैभवशाली, सबकी शरणस्थली, सागर, नदियों व पर्वतों के देश को भगवती जगदम्बा का मांगलिक घर बतलाते हुए वे भारत वर्ष को विजयशील बतला रहे हैं तथा सदैव इसकी विजय और मंगल की शुभकामना व्यक्त कर रहे हैं- "शुभावम्भ: कुम्भावुभयजलधी...... तवागारं पुण्यं भगवति शरण्यं विजयते।।"[9] विभिन्न पद्यों में भारतभूमि व मातृभूमि के सौन्दर्य, गौरव गरिमा व श्रेष्ठताओं का वर्णन विवेकानन्द के मुख से कराकर कवि ने उनके देशप्रेम व राष्ट्रभक्ति को मुखरित किया है। वे अपनी इस मातृभूमि को सरस्वती, लक्ष्मी तथा दुर्गा के समान मानते हुए इसकी त्रिशक्तियों व श्रेष्ठताओं को सूचित करते हुए कहते हैं- "वसन्ते त्वं वाणी. . . . शरत्काले लक्ष्मी. .. . अपर्णा हेमन्ते. . ..।।"[10]

इस प्रकार यहाँ तीनों देवियाँ क्रमश: विद्या, धन व शक्ति की प्रतीक हैं। भारत देश विद्या के गौरव से विश्वगुरु, धन की बहुलता से सोने की चिड़िया और देशरक्षारूपी महान् कार्यों से महाशक्ति के रूप में जाना जाता है- इस तथ्य को ही यहाँ कवि ने विवेकानन्द की राष्ट्रभक्ति व मातृभूमि प्रेम के रूप में अभिव्यक्त किया है। यही नहीं, परम वात्सल्यमयी मातृभूमि उन्हें धर्म-अर्थ-कामरूपी त्रिवर्ग की कल्पलता के समान प्रतीत होती है- "हे परम-वत्सले मातृभूमे! त्वं खलु त्रिवर्गस्य कल्पलतिका इव मे भासि!"[11] इस त्रिवर्ग की प्रदाता वह कैसे है? इस तथ्य को भी वे प्रस्तुत पद्य में व्यक्त करते हैं- "विधात्री धर्माणां.. . . . सावित्री चार्थानां. . . . . प्रदात्री कामानां. .. . . मातस्त्वमसि भुवने कल्पलतिका।।"[12] सप्तमोऽङ्क के अनेक पद्यों में विवेकानन्द ने भारतभूमि व भारतवर्ष की महिमा का गुणगान-बखान किया है; जिनमें उनका देशप्रेम व राष्ट्रभक्ति स्पष्टत: मुखरित हुई है। इस देश के प्रत्येक पेड़-पौधे की जड़ें औषधि तथा संस्कृत भाषा का एक-एक वर्ण मन्त्र है; हर छोटी-बड़ी नदी गंगा की तरह पवित्र है तथा देश का प्रत्येक जीव शिव (कल्याणकारी) है[13]- विवेकानन्द के ऐसे सुन्दर भाव नि:संदेह उनके देशप्रेम व देश के प्रति सच्ची भक्ति व श्रद्धा को सूचित करते हैं। भारतदेश की श्रेष्ठता व महानता के कारण आकाश देवता नक्षत्ररूपी पुष्पों से भारतधरा को मानो पूजते हैं- "अगूढान्तर्भावा तन नियतपूजां वितनुते।"[14] तो वहीं, उषा लाल रंग के कमलों से तथा सन्ध्या श्वेत कमलों से इस भारतभूमि की मानो प्रतिदिन पूजा करती हैं।[15] इसी प्रकार भाँति-भाँति के उनके उद्‌गारों में देश की महानता तथा पूजनीयता के सुंदर भाव अभिव्यक्त हुए हैं। विभिन्न दृष्टान्तों एवं प्रतीकों के माध्यम से किया गया उनका भारतदेश की महिमा का बखान[16] नि:सन्देह उनकी राष्ट्रभक्ति व देशप्रेम का सूचक है तथा समस्त विश्व में भारत देश की अद्वितीय, पृथक् व निराली पहचान और शीर्ष स्थान को दर्शाता है। शिकागो, सर्वधर्म सम्मेलन में उन्होंने हिन्दुस्तान की विजय पताका फहराई, जब यहाँ के सनातन धर्म, ज्ञान, संस्कृति आदि की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। इसका विस्तृत उल्लेख नाटक के नवम अंक में हुआ है। नाटक के अंतिम अंक- दसवें अंक में स्वदेश लौटे हुए वे देश की दुर्दशा- गरीबी, रोगग्रस्तता, आतंकवाद व प्राकृतिक प्रकोपों से क्षुब्ध होकर करुण विलाप करते हैं[17] एवं अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हैं कि मेरा यह शरीर दरिद्रनारायण पीड़ित नारायण की सेवा में ही गिरे अर्थात् दीन-दु:खियों की सेवा व हित में काम आए- "अत: परं दरिद्रनारायणस्य पीड़ित नारायणस्य सेवायाम् एव एष काय: पततु, इति मे मनीषा।"[18] इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में स्वामी विवेकानन्द की राष्ट्रभक्ति व स्वदेश प्रेम और उनका राष्ट्र हेतु समर्पण सभी के लिए राष्ट्रप्रेम व मातृभूमि के प्रति निष्ठा, भक्ति और श्रद्धा का आदर्श प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष:-

प्रस्तुत महानाटक में कवि श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने विवेकानन्द चरित्र के माध्यम से उनके भारतभूमि व राष्ट्र के प्रति जिस अनन्य भक्ति, प्रेम व सेवा-समर्पण को व्यक्त किया है, वह वास्तव में कवि के स्वयं के राष्ट्रप्रेम का भी सूचक है। वर्तमान में पाश्चात्य संस्कृति और धन-ऐश्वर्य की चकाचौंध में अन्धी हुई पीढ़ियों को उन्होंने इस नाटक के माध्यम से जाग्रत करने एवं सही दिशा व मार्ग दिखाने का सराहनीय कर्म किया है। जहाँ वे भारतवर्ष के गौरवशाली इतिहास, यहाँ की महिमा व धर्म-अध्यात्म, ज्ञान-विद्या, संस्कृति आदि सभी का बखान करते हुए मानो जन-जन को इससे अवगत कराते हैं और अपने देश व संस्कृति के प्रति उनमें चेतना और निष्ठा का संचार करने का सफल कार्य करते हैं। इस हेतु उन्होंने आदर्श चरित्र, लोकनायक, इतिहास पुरुष स्वामी विवेकानन्द को नायक स्वरूप प्रस्तुत कर उनकी राष्ट्रभक्ति व देशप्रेम को अभिव्यक्त किया है, वह नि:संदेह आदर्श प्रेरणा और सुन्दर संदेश है।

संदर्भ स्थल एवं संदर्भ ग्रन्थ:-

1. श्रीविवेकानन्दविजयम्: श्रीश्रीधरभास्करवर्णेकरविरचितम्, हंसा प्रकाशन, जयपुर, संस्करण, 2017, भूमिका, पृष्ठ-6
2. वही, प्रस्तावना, 1/11 की चतुर्थ पंक्ति, पृष्ठ-21

3. वही, प्रस्तावना, 1/1 की चतुर्थ पंक्ति, पृष्ठ-2
4. वही, प्रस्तावना, 1/3 की चतुर्थ पंक्ति, पृष्ठ-12
5. वही, प्रस्तावना, 1/10 की चतुर्थ पंक्ति, पृष्ठ-20
6. वही, अंक 5/4, पृष्ठ-138
7. वही, "7/6, पृष्ठ-190
8. वही, "7/7, पृष्ठ-191
9. वही, "7/10, पृष्ठ-194
10. वही, "7/13, पृष्ठ-196
11. वही, सप्तमोऽङ्क, पृष्ठ-198 पर गद्य पंक्ति
12. वही, 7/17, पृष्ठ-199
13. वही, 7/36, पृष्ठ-218
14. वही, 7/42 की चतुर्थ पंक्ति, पृष्ठ-226
15. वही, 7/43, पृष्ठ-227- "नवीनार्कोद्गच्छ. . . . . महापूजारम्भं मुदितमनसा ते प्रकुरुत:।।"
16. वही, 7/44-87
17. वही, दशमोऽङ्क, पृष्ठ-315 पर गद्य
18. वही, दशमोऽङ्क, पृष्ठ-316 पर गद्य पंक्तियाँ।

भाषायी साहित्य बाजार में राहुल सांस्कृत्यायन की भाषा शैली: एक विमर्श

डॉ० देवेंद्र शुक्ल

स्नातकोत्तर विभागध्यक्ष, हिंदी विभाग, जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय शक्ति जिला जांजगीर चांपा, छत्तीसगढ़

सारांश

20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में हिंदी साहित्य के क्षितिज पर जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल और निराला जैसे कई प्रतिभावन साहित्यकारों का उद्भव हुआ. जिन्होंने हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं को अभूतपूर्व ऊंचाई दी, लेकिन महापंडिल राहुल सांकृत्यायन एकमात्र ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने महात्मा बुद्ध की प्रज्ञा ज्योति और मार्क्सवादी विचारधारा के मशाल से आलोकित पथ पर अनवरत यात्रा कर हिंदी साहित्य को तेजोमय वैश्विक फलक प्रदान किया. हिंदी को पुष्पित-पल्लिवत करने में तो आजीवन सक्रिय रहे ही, भोजपुरी भाषा के प्रति उनका प्रेम जीवनपर्यंत बना रहा. भाषाई अस्मिता के सवाल उन्होंने लगातार लोगों को सचेत किया।

36 भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन ने उपन्यास, निबंध, कहानी, यात्रा संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी व नाटक सहित साहित्य की लगभग सभी विधाओं में हाथ आजमाए और सफल रहे. भारतीय सभ्यता-संस्कृति, वेद-पुराण, दर्शन, इतिहास आदि कई विषयों के विद्वान राहुल जी बौद्ध धर्म के संपर्क में आने पर पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, सिंहली, तिब्बती, चीनी, जापानी और कई अन्य भाषाओं को आत्मसात किया।

घुमक्कड़ी स्वभाव वाले राहुल सांकृत्यायन विश्व के जिस कोने में गए, वहां की भाषा में महारत हासिल किए. अंगरेजी राज में अंगरेजी में उनका दबदबा रहा, सोवियत संघ में गए तो रूसी में विद्वता हासिल की. चीन-तिब्बत गए तो चीनी और तिब्बती भाषा पर अधिकार जमा लिए।

मूल शब्द: राहुल सांस्कृत्यायन, हिंदी साहित्य, भोजपुरी भाषा, भाषाई अस्मिता

महापंडित राहुल सांकृत्यायन के साहित्य की गंभीरता और उसकी वैज्ञानिकता आश्चर्य में डाल देती है। यह इस बात का प्रमाण है कि उनकी रचना में कथ्य और शिल्प का अभूतपूर्व मिलन है, भाषा के साथ उनका संबंध काफी नैसर्गिक था, मार्क्सवाद में सभी भ्रांतियों का निराकरण करते हुए सर्वसाधारण की भाषा में रचना करने का अप्रतिम उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया। "उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि हम इस शताब्दी के अंत तक भी अपने यहां की निरक्षरता को दूर नहीं कर सकते यदि प्रारंभिक और प्रौढ़ शिक्षा का माध्यम गढ़वाली, कौरवी, हरियानी, मारवाड़ी, मालवी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही आदि मातृभाषाओं को नहीं बनाया जाता है।"[1] उन्होंने विदेशी शब्दों पर तीव्र प्रहार करते हुए उनका परिवर्तन तो किया लेकिन साथ ही उन शब्दों के अर्थगाम्भीर्य का विकास करते हुए उन्हें भारतीय भाषागत शैलियों में समाविष्ट करने का प्रयत्न किया। वह परंपरागत रूप के सख्त खिलाफ थे और इसलिए उन्होंने तत्सम शब्दों की व्युत्पतिगत परंपराओं की अवहेलना एवं प्रवृत्ति निमित्तात्मक तथ्यों को ही विशेष रूप से स्वीकार किया है।

वस्तुत: भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जब हम मूल्यांकन करते हैं तो इनके साहित्य में मिश्रण और देशज शैली से दो कोटियां दृष्टिगोचर होती हैं। मिश्रण शैली का तात्पर्य यह है कि जहां कहीं इनके भाषागत प्रवाह अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित हुए हैं; उनके

साहित्य में देशज, विदेशी आदि शैलियां प्रस्तुत हुई हैं। वैसे आज के हिन्दी में तत्सम, तद्‌भव, देशज और विदेशी आदि शब्द पाये जाते हैं। राहुल जी के साहित्य में इन चारों प्रकार के शब्दों का बाहुल्य प्राप्त होता है। उन्होंने अपने कथ्य को सजीव बनाने के लिए ही ऐसा किया जो कि रचना का उपजीव्य भी शैली के साथ-साथ गुम्फित होता रहे।

उदाहरण स्वरूप, ''उन्हें सिर्फ एक महीने किसी भूले-भटके मुंशी से क, ख, सीखने का मौका मिला था, किंतु न जाने कैसे उन्होंने रामायण ही नहीं भिन्न, गुणा-भाग सूद और पैमाईश के हिसाब को भी सीख डाला था। ब्राह्मणों के नियम के विरुद्ध वे अपने हरवाहे, निस्संतान चिनगी चमार के मरने पर गंगातीर जलाने के लिए ले गये। पुरानी प्रथा के विरुद्ध नये कुंए को बनवाने के लिए विचित्र लंबाई-चौड़ाई की ईंट उन्होंने खासतौर से तैयार करवायी और प्रचलित प्रथा के विरुद्ध कुंए को नीचे चौड़ा ऊपर संकीर्ण करते हुए बनवाया। साधु-संतों में श्रद्धा रखते हुए भी भंगेड़ियों में भी वे चीटश्रद्ध थे''।

इस उद्धरण में उर्दू, फारसी, संस्कृत तथा अन्य मुहावरेदार शब्दों से सम्पन्न चित्र हमें एक नयी शैली में दिखता है। उन्होंने संस्कृत के शुद्ध एवं साहित्यिक रूप को स्वीकार किया है। वह "पक्के आस्तिक होते हुए 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' की अवहेलना करने में भी समर्थ थे।"[2] राहुल जी ने खड़ी बोली के शब्दों से भी मुहावरों का प्रयोग कर एक नया दृष्टांत सामने रखा और रचना-प्रवाह को बनाये रखा। भाषा-विज्ञान की ध्वनि प्रक्रिया एवं अर्थविज्ञान की प्रक्रियाओं पर जब हम दृष्टि रखते हैं, तो इस दृष्टि से भी राहुल सांकृत्यायन की परिवर्तित शैलियों में एक नूतन प्रयोग प्राप्त होता है। उन्होंने शब्द और अर्थ को पर्याप्त महत्व देते हुए अभिव्यंजना शिल्प का एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया। साहित्यिक जगत में अनुभूतियों का संबंध व्यक्तियों से होता है जिसकी आत्मा-प्रतिभा शैलियों में ही अभिव्यक्ति होती है।

राहुल जी की शैली उनकी अभिव्यक्ति के साथ यथार्थ पूर्ण प्रक्रियाओं के आधार पर प्रस्तुत हुई है। उनका जीवन साहित्यिक क्रांति के मध्य प्रखर गति से अग्रसर हुआ और देश देशांतरों की अनुभूतियां भावाभिव्यजनाओं के आधार पर मुखर हो उठी। अभिव्यक्ति के जिस माध्यम को इन्होंने ग्रहण किया, वह देशकाल की विभिन्न परिस्थितियों एवं परंपराओं का परिणाम है। इस कटु सत्य से उनकी शैली एक विशिष्ट शैली बन गई। उस युग में उनका जीवन भौतिकता विहीन जीवन था।

राहुल जी की विश्व भ्रमण की प्रवृत्ति थी। अत: भौतिकवादी परंपराओं से परिष्कृत होकर भी भौतिकवाद के पक्ष में नहीं था। प्रत्युत इनके विरोध में इनके साहित्य का सृजन हुआ। फलत: इनकी साहित्यिक अभिव्यक्तियां शुरू की दौड़ में भौतिक विरोधी तत्वों में अग्रसर हुई। इस विरोधी तत्व में राहुल जी की लेखनी में अभिव्यक्ति की जो शैलियां प्रस्फुटित कीं, वह एक क्रांतिकारी शैली थी जिसमें भाषा तत्व ने जिन साहित्यिक परंपराओं एवं मर्यादाओं का पालन करते हुए साहित्य का सृजन किया, वह दासता की जंजीरों में जकड़ा हुआ भाव था। भौतिकवाद का वैभव उनके सम्मुख नृत्य कर रहा था। फलस्वरूप राजाश्रित कवियों के काव्यकारों की तरह इनकी रचनाएं बंधी हुई रचनाएं थीं।

राहुल जी की शैली का अध्ययन करते समय हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वह एक कवि नहीं बल्कि गद्यलेखक थे, परंतु उनकी लेखनी में कविता की लयात्मकता रोचकता और गद्य का गाम्भीय बना रहता है। शब्दों का चयन भाषा को सुसज्जित एवं सुगठित करता है। यदि हम तटस्थ दृष्टि से विचार करें तो भाषा-सौंदर्य में शब्द की जिस दीप्ति तथा अर्थ गाम्भीर्य की आवश्यकता हम महसूस करते हैं वह राहुल जी में उपलब्ध है। राहुल जी ने कथा और कहानी में शब्दों एवं अर्थालंकार की जो पद्धति अपनायी है, वह शास्त्रीय पद्धति है, क्योंकि अलंकार, छंद, रस इत्यादि काव्य के लिए साहित्यिक तत्व माने जाते हैं। इनके समावेश के बिना स्वच्छन्द वृत्तियों का समावेश होना कठिन है। जहां कहीं अलंकृत वाक्य एवं अलंकार योजना इन्होंने प्रस्तुत की है, वहां शास्त्रीय पद्धति का अतिक्रमण नहीं किया है।

राहुल जी की शैली देशज और मिश्रण है, वह इन्हीं शैलियों में लिखना पसंद किया करते थे। उनमें विविध प्रकार की प्रादेशिक और विदेशी भाषाओं की वह नैसर्गिक छवि नहीं प्रत्युत भाव है, स्वाभाविक रूपों में साथ-साथ गढ़े हुए शब्द रूपों का समावेश भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। फलत: आज भी शब्द-विषयक समस्याओं के समाधान में उनका दृष्टिकोण उपयोगी है। अन्य क्षेत्र की भांति भाषा के क्षेत्र में राहुल जी मर्यादा और समन्वय के सिद्धांत को सुरक्षित रखने के पक्ष में रहे हैं और यही कारण है कि उन्होंने प्राचीन संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं के परंपरागत रूपों से लेकर ग्रामीण तथा विजातीय समुदाय में प्रचलित शब्द रूपों तक का प्रयोग

किया है। गंभीर विषयों की चर्चा में प्रयुक्त होने वाली पारिभाषिक, शब्दावली के निर्णय में संस्कृत का तथा सामान्य लोक व्यवहार की बातों को प्रकट करने के लिए प्रचलित बोली का आधार ग्रहण करना राहुल जी की दृष्टि से सुविधाजनक एवं युक्ति संगत है।

भाषा के संदर्भ के साथ उनका अत्यंत नैसर्गिक संबंध था। मार्क्सवाद पर आस्था और द्वंद्ववाद पर विश्वास होने के कारण भाषा के बारे में मौजूद तमाम भ्रांतियों का उन्होंने निराकरण किया। उन्होंने अपने गद्य-साहित्य में गुणवाचक विशेषण का प्रयोग अधिक किया है। क्रिया-विशेषण में काल वाचक और नीति वाचक का एवं समुच्चय बोधक अव्यव में संयोजक और वियोजक का प्रयोग अधिक हुआ है। शब्द-शैली विज्ञान में राहुल जी ने ग्रामीण शब्दों का प्रयोग अधिक किया है, जिसे मातृभाषा का प्रभाव माना जाता है। समास में कर्मधारय, संबंध तत्पुरूष द्वंद्व, अव्ययीभाव और बहुव्रीहि का प्रयोग अधिक है। अलंकार प्रधान वाक्यों में उपमा की बहुलता मिलती है। यदा-कदा मानवीकरण एवं विशेषण विपर्य अलंकार प्रधान वाक्य भी मिलते हैं। मुहावरे में विशेषकर देशज और मनुष्य की ज्ञान-वृत्तियों एवं स्वभाव तथा समास से संबंधित मुहावरों का प्रयोग अधिक मिलता है।

भाषा के रूप में उन्होंने जनप्रचलित शब्दों को ही रखने का सुझाव दिया क्योंकि ये शब्द जनसाधारण के प्रयोग के लिए ही होते हैं। उन्होंने कहा कि संस्कृत से ही अप्रचलित शब्द लिए जायें क्योंकि संस्कृत वृहत्तर भारतीय भाषाओं की मूल भाषा है परंतु उच्चतर सौकार्य का ध्यान रखा जाये।

राहुल जी ने भारतीय आचार्यों की विभिन्न शैलियों के संबंध में न तो कोई अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत की और न ही इस संबंध में कोई आलोचनापूर्ण मंतव्य ही प्रकट किया। भारतीय विद्वानों ने आलोचना के क्षेत्र में पाश्चात्य विद्वानों की शैलियों के तर्क को उपयुक्त माना। राहुल जी ने पाश्चात्य विद्वानों की आलोचना शैली से भिन्न शैली को अपनाकर अपनी अभिव्यक्तियां प्रस्तुत की। हिन्दी साहित्य के आचार्यो ने शैली के संबंध में जो दृष्टिकोण अपनाया उसका प्रभावोत्पादक एवं आकर्षक रूप पाश्चात्य साहित्य शैलियों में स्पष्टतया अभिव्यंजित हुआ है। किंतु राहुल जी की शैली पाश्चात्य एवं भारतीय अभिव्यक्तियों से बिल्कुल पृथक रही है। उनका दृष्टिकोण साहित्य में नूतन रहा है यह उनके साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है।

संस्कृत की शास्त्रीय शैलियां और पाश्चात्य विद्वानों की इस्टाईल रूपी कपोल-कल्पित शैलियां राहुल जी की दृष्टि में खोखली शैलियां थी। उनका विचार था कि वहां बुद्धि का चमत्कार एवं शब्दों की भरमार और अभिव्यक्तियों की चटनी जैसी चुटीली अभिव्यजनाएं थी जिनमें भाषागत सौंदर्य के अतिरिक्त कुछ भी प्रतीत नहीं होता, न उसमें साहित्यिक मर्यादा है और न ही कोई नूतन कल्पना है, न ही कोई तर्क का साम्राज्य। वहां व्यक्तित्व का साम्राज्य है, अपना-अपना दृष्टिकोण है, इसलिए वहां शैली एवं व्यक्तित्व के आधार पर भावों एवं अभिव्यंजनाओं की भरमार है।

इन सभी तथ्यों का अवलोकन करने पर हम यह पाते हैं कि महापंडित राहुल जी ने इस शैलीगत विचारधारा को जड़ समेत उखाड़कर कोसों दूर फेंकने का प्रयास किया। पंडित राहुल सांकृत्यायन की भाषा-शैली सर्वथा नूतन है, जिसमें जनता की अभिव्यक्ति की सुवास है और महान पंडित जी की मौज भरी गंभीरता की मर्यादा।

निष्कर्ष

अंग्रेजी, हिंदी, भोजपुरी, तिब्बती, संस्कृत, पाली, रूसी, अरबी आदि लगभग 30 भाषाओं के जानकार, सांकृत्यायन लगभग हमेशा हिंदी में लिखते थे। उनके पहले सम्मानसूचक शब्द महापंडित (हिंदी में "महान विद्वान") का प्रयोग किया गया है। अपने जीवनकाल से ही वह इस नाम से जाने जाते थे। उनकी लेखनी से विभिन्न विषयों पर प्राय: 150 से अधिक ग्रन्थ प्रणीत हुए हैं। प्रकाशित ग्रन्थों की संख्या सम्भवत: 129 है। लेखों, निबन्धों एवं वक्तृतताओं की संख्या हजारों में हैं।

राहुल जी ने हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, लोक साहित्य, यात्रा साहित्य, जीवनी, राजनीति, इतिहास, संस्कृत के ग्रन्थों की टीका और अनुवाद, कोश, तिब्बती भाषा एवं बालपोथी सम्पादन आदि विषयों पर पूरे अधिकार के साथ लिखा है। हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में राहुल जी ने 'अपभ्रंश काव्य साहित्य' 'दक्खिनी हिन्दी साहित्य' 'आदि हिन्दी की कहानियाँ' प्रस्तुत कर लुप्तप्राय निधि का उद्धार किया है। राहुल जी की मौलिक कहानियाँ एवं उपन्यास एक नये दृष्टिकोण को सामने रखती है। साहित्यिक

भाषा, काव्यात्मकता अथवा व्यंजनाओं का सहारा न लेते हुए राहुल जी ने सीधी, सरल शैली का सहारा लिया। इसीलिए राहुल जी की रचनाएँ पाठकों के लिए भी मनोरंजक एवं बोधगम्य हैं।

संदर्भ

1. राहुल सांकृत्यायन मातृ भाषाओं का महत्व, आलोचना, जनवरी 1953 पूर्णांक - 6 पृष्ठ-116
2. राहुल सांकृ., मेरी जीवन यात्रा, भाग-1 पृष्ठ-31
3. राहुल सांकृत्यायन राहुल निबंधावली (हिंदी में पारिभाषिक शब्दों का निर्माण) पृ.-131

गांधीजी का 'ग्राम स्वराज' और उसकी वर्तमान प्रासंगिकताः एक विमर्श

ईश्वरी बृजवासी सूर्यवंशी

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय टीसीएल पीजी कॉलेज, जांजगीर चांपा, छत्तीसगढ़

सारांश

ग्राम स्वराज- आत्मनिर्भर गांव का विचार महात्मा गांधी द्वारा भारत की आजादी से बहुत पहले प्रस्तावित ग्रामीण पुनर्निर्माण की एक अनूठी अवधारणा है जिसे उन्होंने समय के साथ विकसित किया। ग्राम स्वराज की उनकी अवधारणा को ग्रामीण पुनर्निर्माण के वैकल्पिक मॉडलों में से एक माना जाता है, जिसका प्राथमिक ध्यान ऐसे समाज के समग्र विकास पर है जहां व्यक्तियों को आर्थिक प्रणाली के केंद्र में रखा जाता है। हालाँकि, ग्राम स्वराज को एक आदर्श विकास दृष्टिकोण माना जाता है, फिर भी भारतीय योजनाकारों और नीति निर्माताओं ने स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति के नैतिक और नैतिक मूल्यों पर आर्थिक विकास पर जोर दिया। दूसरी ओर, सतत विकास को अधिक महत्व मिलने के साथ, ग्राम स्वराज की गांधीवादी अवधारणा को महत्व मिलना शुरू हो गया क्योंकि उनके दृष्टिकोण ने मानव के समग्र विकास को महत्व दिया। तदनुसार, इस पत्र में, ग्राम स्वराज की गांधीवादी अवधारणा और वर्तमान संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता पर पुनर्विचार करने का प्रयास किया गया है।

मूल शब्दः ग्राम स्वराज, आत्मनिर्भर गांव, महात्मा गांधी, भारत, ग्रामीण पुनर्निर्माण, प्रासंगिकता

आज हमारा देश एक अत्यंत दिलचस्प मोड़ पर है। 21वीं सदी की शुरुआत हो गयी है और विचारों की एक गहरी उथल-पुथल हमारे सामने है। स्वतंत्र भारत वैसे तो एक नया राष्ट्र है, लेकिन यह एक बेहद प्राचीन राष्ट्र है। विचारों की संस्कृति की हमारी वेद पुरातन परम्परा है। हमारी इस परम्परा में महात्मा गाँधी एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाम हैं जिन्होंने भारतीय विचार को बिल्कुल नये अंदाज में देखा, परखा और बरता। आज हमारा देश दुनियां के बदलाव में पूरी तरह से अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है और तीव्रता से उभरती आर्थिक महाशक्ति बनने के कगार पर है। ऐसे में उन बातों पर ध्यान देना जरूरी है जो हमारी महत्वपूर्ण रवायत है। गाँधी जी के 'ग्राम-स्वराज्य' विचार जो भारतीय परम्परा के गहरे मंथन से निकले है। वे आज हमारे लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

गाँधी जी ने जिस 'ग्राम-स्वराज्य' की कल्पना की उसमें आधुनिक जगत को ध्यान में रखते हुए स्वराज्य के स्वतंत्र घटकों की नई रचना करने की बात की गई है। गाँधी का ग्राम-स्वराज्य राजनीतिक, आर्थिक, समाजिक क्षेत्रों में अहिंसा को मूर्त रूप प्रदान करता है। गाँधी जी का मानना था कि गांवों की सेवा करने से ही सच्चे स्वराज्य की स्थापना होगी[(1)] अगर गाँव नष्ट जाएँ तो हिन्दुस्तान भी नष्ट हो जाएगा। महात्मा गाँधी एक व्यवहारवादी आदर्शवादी थे, इसलिये उन्होंने जो ग्राम-स्वराज्य का विचार दिया, उसमें राज्य के विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। गाँधी जी चाहते थे कि भारत में सच्चे लोकतंत्र की स्थापना हो और ऐसा केन्द्र में सिर्फ कुछ चुने हुए लोगों के शासन के द्वारा नहीं हो सकता, बल्कि इसके लिये हमें 'शहर वाला भारत' छोड़ कर गाँवों वाले भारत को चुनना होगा।[(1)] गाँधी जी का विचार था कि भारत गाँवों का देश है, गाँव उतने ही पुराने हैं जितना भारत पुराना है। शहरों को तो विदेशी अधिपत्य ने बसाया है। आज शहरों का बोलबाला है जो गाँवों का शोषण करता है, जिसका परिणाम लोगों के सामने है। उनका मानना था कि भारत अगर सच्चे स्वतंत्रता की बात करता है तो प्रत्येक गाँवों को उचित सम्मान देना होगा, ग्रामीणों को नीचे से लेकर चलना होगा।[(2)]

ग्राम-स्वराज्य :- गाँधीजी के ग्राम-स्वराज्य में गाँव संपूर्ण सत्ता में भोगने वाला विकेन्द्रीकृत घटक होगा, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति का शासन में सीधा हाथ होगा। गाँधी जी की कल्पना का ग्राम-स्वराज्य एक ऐसा-सपूंर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी महत्त्व के जरूरतों के लिये अपने पड़ोसी पर निर्भर नहीं रहेगा। किन्तु यह तो तय है कि जैसे कोई भी मनुष्य बिल्कुल परिपूर्ण नहीं होता वैसे ही कोई भी ग्राम बिल्कुल परिपूर्ण नहीं हो सकता, अत: इसमें जरूरतों के लिये, जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, ग्राम परस्पर सहयोग से आपसी संबंधों का निर्धारण करेगा। प्रत्येक गाँव का पहला कार्य होगा कि वह अपने जरूरतों के तमाम अनाज और कपड़ों के लिये कपास खुद उपजाएगा। उसके पास इतनी अतिरिक्त जमीन होगी कि मनोरंजन के साधन तथा जानवरों को चरने की सुविधा हो सके। इसके बाद यदि गाँव के पास उपयोगी जमीन बचेगी तो, तो ग्रामवासी साग-सब्जी और अन्य मौसमी अन्न उपजा कर आर्थिक लाभ कमा सकेंगे। प्रत्येक ग्राम में एक पाठशाला, नाटकशाला तथा सभा भवन होगा, पानी की समुचित व्यवस्था होगी। गाँवों के समस्त कार्य सहयोग और सहकारिता के आधार पर चलाये जाएंगे। ऐसा स्वराज्य जात पात और छुआ-छुत से मुक्त ग्राम स्वराज्य होगा। सत्याग्रह तथा असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा ऐसे ग्राम-स्वराज्य की शक्ति होगी। गाँवों का शासन चलाने के लिये प्रतिवर्ष गाँव के पाँच व्यक्तियों की पंचायत चुनी जाएगी। इसके लिये प्रत्येक व्यस्क निजी-पुरुष को अपना पंच चुनने का अधिकार होगा। इस पंचायत के काफी अधिकार होंगे। इस ग्राम-पंचायत में दंड की कोई व्यवस्था नहीं होगी, इसलिये यह पंचायत धारा सभा, न्याय सभा और व्यवस्थापिका तीनों का कार्य संयुक्त रूप से करेगी। ऐसी शासन-पद्धति में नागरिक सत्ता नियंत्रित न होकर स्वयं नियंत्रित होगी। वे अपना प्रत्येक कार्य अपनी सूझ-बूझ से करेंगे और जीवन की सारी बातों के लिये सरकार की ओर ताकने वाले नहीं होकर उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण होंगे। गाँव की रक्षा के लिये ग्राम सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजमी तौर पर बारी-बारी से चौकीदारी का कार्य करना होगा। इसके लिये गाँव में ऐसे लोगों का रजिस्टर रखा जाएगा। गाँव का शासन चलाने के लिये सभी लोग मिलकर-जुलकर सहयोग करेंगे और बाहरी दुनियाँ से अपने गाँव की रक्षा करेंगे।[3] गाँधी जी का ग्राम-स्वराज्य देहाती जड़ नहीं है, बल्कि शुद्ध और जागरूक समाज होगा। जहाँ की जनता गंदगियों और अंधकार में निवास नहीं करेगी बल्कि गंदगी रहित, बीमारी रहित, आजादी तथा शारीरिक परिश्रम से परिपूर्ण ग्राम-समाज होगा।[4]

गाँधी जी ग्राम-स्वराज्य के कई बुनियादी सिद्धांत हैं:-

मानव का सर्वोच्च स्थान

गाँधी जी ने अपने ग्राम-स्वराज्य में मानव कल्याण उसकी अस्मिता पर सबसे अधिक जोर दिया है। गाँधी जी मानव की गरिमा पर विश्वास करते थे और प्रत्येक व्यक्ति को दिव्य मानते है। उनका कहना था कि हम जो भी काम करें उसमें मुख्य विचार मानव के कल्याण का ही होना चाहिए।[6]

गाँधी जी का मुख्य विचार था कि न केवल भारत बल्कि सारी दुनियाँ की अर्थ-रचना ऐसी होनी चाहिए, जिनमें किसी को भी अन्न और वस्त्र के अभाव की तकलीफ नहीं हो। प्रत्येक को इतना काम अवश्य मिलना चाहिए कि वह अपने बुनियादी जरूरतों को पूरा कर सके। यह आदर्श तभी क्रियान्वित किया जा सकता है जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में रहें और प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी बाधा के मिलें। इसके लिये आवश्यक है कि जिस प्रकार हवा और पानी हमें प्रकृति की तरफ से उपलब्ध है, उसी प्रकार उत्पादन के साधन भी बिना किसी बाधा के हमें प्राप्त हो। कोई भी देश संसाधनों पर जबरदस्ती अपना नियंत्रण न करें। आज पूरे विश्व में जो असमानता, अन्याय, गरीबी, वर्ग-विभेद हैं। इस सरल सिद्धांत की उपेक्षा का परिणाम है।[5]

शरीर श्रम

गाँधीजी ने अपने आदर्श समाज में शारीरिक श्रम को अनिवार्य माना है। उनका मानना था कि दुनियाँ तभी विकसित हो सकेगी, जब प्रत्येक स्त्री-पुरुष अनिवार्य श्रम करें। मनुष्य को अपनी बुद्धि, शक्ति का प्रयोग आजीविका या उससे भी ज्यादा प्राप्त करने के लिये नहीं, बल्कि समाज सेवा परोपकार के लिये करना चाहिए। यदि इस नियम का पालन सारी दुनियाँ करने लगे तो सहज ही

सब लोग बराबर हो जाएंगे, कोई भूखा नहीं मरेगा, संसार से हिंसा, अत्याचार, आतंक जैसे पापों का नाश हो जाएगा। गाँधीजी ने शारीरिक श्रम को आध्यात्मिक भावों से जोड़कर देखा और कहा कि निरंतर श्रम करने वाले लोग परम शांति प्राप्त करते हैं। गाँधीजी का कहना था कि जो बिना श्रम के खाते हैं वे चोर है।(6)

समानता :

गाँधीजी ने 'समानता' को अपने 'ग्राम-स्वराज्य' का प्रमुख बुनियादी सिद्धांत माना। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास और अपने जीवन को सफल बनाने के लिये समान अवसर मिलने चाहिए। यदि अवसर दिया जाए तो हर व्यक्ति समान रूप से अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। गाँधी का मानना था कि जिस तरह सच्चे नीति धर्म में और कल्याणकारी अर्थशास्त्र में कोई विरोध नहीं होता, उसी तरह सच्चा अर्थशास्त्र कभी भी नीतिधर्म के ऊंचे से ऊंचे आदर्श का विरोधी नहीं हो सकता। जो अर्थशास्त्र धन की पूजा करना सिखाता है और बलवानों को निर्बलों का शोषण कर धन संग्रह करना सिखाता है। उसे शास्त्र कभी भी नहीं कहा जा सकता। वह तो एक झूठी चीज है। जिससे कभी सच्चा लाभ नहीं हो सकता। उसे अपना कर हम अंततः विनाश को ही न्योता देंगे। सच्चा अर्थशास्त्र तो सामाजिक न्याय की हिमाकत करता है।(7)

संरक्षकता

गाँधीजी के ग्राम-स्वराज्य में संरक्षकता एक प्रमुख बुनियादी सिद्धांत है। गाँधीजी धन के विकेन्द्रीकरण की बात करते हैं। उनका मानना था कि समाज की न्यायापूर्ण स्थापना इस विचार में नीहीत है। जब तक समाज में मुट्ठी भर लोगों के हाथों में राष्ट्र की सम्पति का बड़ा भाग रहेगा और करोड़ों लोग भूखे, नंगे रहेंगे। जमीन, आसमान का अंतर रहेंगा, तब तक अहिंसात्मक समाज कायम नहीं हो सकता। अतः समाज में सम्पति का ट्रस्टीशिप करना चाहिए। गाँधीजी के अनुसार संरक्षकता आवश्यक है। साथ ही इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि धनियों से हिंसा के आधार पर धन को छीना नहीं जाए बल्कि वे अपने आवश्यकताएँ पूरी करने के बाद जो पैसा बचे, उसका प्रजा की ओर से ट्रस्टी बने। अगर वे प्रमाणिकता से ट्रस्टी बनेंगे, तो जो पैसा पैदा करेंगे, उसका सद्व्यय करेंगे। जब मनुष्य अपने-आप को समाज का सेवक मानेगा, समाज के लिये धन अर्जित करेगा, कल्याण के लिये खर्च करेगा, तब उसकी कमाई में शुद्धता आएगी और अहिंसात्मक समाज की स्थापना होगी।(8)

विकेन्द्रीकरण

गाँधीजी के ग्राम-स्वराज्य का उद्देश्य बहुद्देशीय विकेन्द्रीकरण है। गाँधीजी का लक्ष्य समाज में सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक संतुलन स्थापित करना है। गाँधी की धारणा थी कि भारत का पुनर्निमाण गाँव को केन्द्र में रखकर किया जाए। उसे शहर प्रधान भारत की जगह ग्राम प्रधान भारत बनाया जाए। सत्ता एक जगह एकत्रित न हो कर जनप्रधान में वितरित हो ताकि निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी यह समझ सके कि यह देश उसका है और उसके निर्माण में उसकी स्वयं की भूमिका है। गाँधीजी का ग्राम-स्वराज्य सर्वोदय, स्वदेशी तथा सर्वधर्म-सद्भाव पर आधारित है, जिसमें साध्य के साथ-साथ साधन की पवित्रता का महत्वपूर्ण स्थान हो।(9)

स्वदेशी

स्वदेशी गाँधी जी के ग्राम-स्वराज्य में महत्वपूर्ण कड़ी है। गाँधीजी के स्वदेशी का अर्थ था विकेन्द्रीकरण अर्थ-व्यवस्था, ग्राम और स्थानीय सामुदायिक विकास, सबको रोजगार तथा स्वावलम्बन। गाँधीजी ने माना है कि ग्रामों को आदर्श बनाने के लिये आवश्यक है कि उनमें स्थानीय आत्मनिर्भरता और सहभागिता की भावना पैदा की जाए। उनके अनुसार यदि शोषणमुक्त वैश्वीकरण का यदि आरंभ करना है तो आरंभबिन्दु स्वदेशी से हो सकता है।(10)

स्वावलम्बन

गाँधीजी के ग्राम-स्वराज्य में गाँव के लोगों का छोटा समूह होगा, जो आदर्श दृष्टि से स्वयंपूर्ण और आत्म-निर्भर होगा। हर गाँव एक आत्मनिर्भर गणराज्य होगा, जो अपनी जरूरतों का सारा अनाज तथा कपास स्वयं पैदा करेगा। ग्रामवासियों को अपनी बुनियादी

सुविधाएँ जुटाने के लिये परालम्बी नहीं होना पड़ेगा तथा हरेक ग्राम अपने पैदा कर स्वयं खड़ा होकर अपनी जरूरतें पूरी करेगा तथा समस्त विश्व से अपनी रक्षा स्वयं करेगा। गाँधी जी ने अपने ग्राम-स्वराज्य की आधार शिला ग्रामोद्योग को माना। उनके अनुसार यदि ग्रामोद्योग का लोप हो जाएगा तो भारत के गाँवों का सर्वनाश हो जाएगा। गाँधीजी ने अपने ग्राम-स्वराज्य में माना कि ग्राम-पंचायतों में एवं ग्राम-सेवकों का यह कर्त्तव्य होगा कि वे जनता की जड़ता तथा आलस्य को दूर करने के लिये रचनात्मक कार्यो की ओर गाँववासियों को प्रेरित करें।[11]

सहयोग

गाँधीवादी ग्राम-स्वराज्य का महत्त्वपूर्ण बुनियादी सिद्धांत सहयोग है। गाँधीजी का मानन था कि मनुष्यों को आपसी सहयोग से, सामुदायिक भावना से मिलकर कार्य करना चाहिए। जहाँ तक संभव हो, गाँव के सारे कार्य सहयोग के आधार पर किये जाने चाहिए। आर्थिक क्षेत्र में गाँधीजी वर्ग-सहयोग पर विश्वास करते थे और कहते थे कि सहकारिता की पद्धति किसानों के लिये अत्यंत जरूरी है और यदि जमीन को सहकारिता के आधार पर जोता जाएगा तो इसका सबसे अधिक लाभ कृषक वर्ग को ही होगा।[12]

सत्याग्रह तथा सर्वधर्म समानता

गाँधी जी ने माना है कि सत्याग्रह और असहयोग, अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन बल होगी। गाँधी के ग्रम-स्वराज्य में हर धर्म की अपनी पूर्ण और बराबरी की जगह होगी। गाँधीजी ने सदैव यह माना है कि धर्म ग्राम-स्वराज्य में सभी जाति-धर्म के लोग एक विशाल वृक्ष के पत्ते के समान होगे। जिसे कोई भी आँधी हिला नहीं सकेगी।[13]

पंचायती राज्य

ग्राम-स्वराज्य संबंधी गाँधीवादी दर्शन की प्रमुख आधारशिला पंचायती राज्य 'व्यवस्था' है। गाँधी के अनुसार आजाद भारत में ग्रामों में शासन चलाने के लिये प्रत्येक वर्ष पाँच व्यक्तियों को एक पंचायत चुनी जाएगी और प्रत्येक व्यस्क स्त्री-पुरुष को मताधिकार होगा कि वे अपने पंचों का चुनाव करें। इस ग्राम-स्वराजय में दंड की कोई व्यवस्था नहीं होगी, इसलिये संयुक्त रूप से अपना कार्य करेगी। गाँव के व्यस्क लोग मिलकर पंचों को प्रतिवर्ष चुनेंगे। आस-पास की ऐसी हर दो पंचायतों का उन्हीं से चुने एक नेता के मार्गदर्शन में एक कार्यकारी मंडल बनेगा। जब ऐसी सौ पंचायतें बनेगी, तब पहले दर्जे के 50 नेता अपने से एक दूसरे दर्जे का एक नेता चुनेंगे। पहले दर्जे के नेता दूसरे दर्जे के नेता के अधीन कार्य करेंगे। दो सौ पंचायतों के ऐसे समांतर मंडल बनाना। तब तक जारी रहेगा, जब तक वे पूरे हिन्दुस्तान को न ढक लें। इन पंचायतों के द्वारा ग्राम का प्रशासन ग्रामीणें द्वारा सुचारू रूप से चलाया जा सकेगा।[14]

गाँधीजी के ग्राम-स्वराज्य में आज के दलगत राजनीति के स्थान पर स्वस्थ राजनीतिक वातावरण की बात की गयी है। ग्राम-पंचायत के चुनाव संपूर्ण गाँव द्वारा प्रतिवर्ष होंगे। यह पंचायत स्थानीय समस्याओं के प्रति जागरूक होंगी तथा समाधान में रुचि लेगी, जिसके स्थानीय नियोजन संभव हो सकेगा। इस प्रकार केन्द्रीकृत नियोजन, नौकरशाही, लाल फीताशाही एवं भ्रष्टाचार इत्यादि से ग्रामवासियों की रक्षा हो सकेगी। ऐसा शासन यथार्थ में गरीबों का शासन होगा और सच्चे अर्थ में स्वराज्य होगा।[14]

नयी तालिम

गाँधीजी के ग्राम-स्वराज्य नयी तालिम पर आधारित ग्राम-व्यवस्था है। गाँधी जी में गाँवों को स्वावलंबी बनाने हेतु साधन हुनरयुक्त शिक्षा की बात की। गाँधीजी के नयी तालिम की कुछ बातें निम्नलिखित है :-

1. गाँधीजी ने माना कि पूरी शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिए। अंततः पूंजी छोड़कर अपना सारा खर्च विद्यार्थियों को स्वयं निकालना चाहिए।
2. इसमें आखिरी दर्जे तक हाथ का पूरा-पूरा उपयोग किया जाना चाहिए। विद्यार्थियों को अंतिम कक्षा तक अपने हाथों से कोई न कोई उद्योग-धंधा करना चाहिए।

3. सारी तालीम प्रांतीय भाषाओं में देनी चाहिए।

4. सांप्रदायिक शिक्षा का ग्राम-स्वराज्य में कोई स्थान नहीं होगा।

गाँधीजी के नयी तालीम की मुख्य मंशा ग्राम को सरल-आदर्श ग्राम-स्वराज्य बनाना था जो मन के साथ तन का विकास भी करती है।[15]

निष्कर्ष :-

भारत प्राचीन काल से ग्राम-समुदाय तथा ग्राम पंचायतों की भूमि रही है। इतिहास साक्षी है कि समय-समय पर केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर प्रशासनिक परिवर्त्तन होते रहे हैं, पर ग्राम व्यवस्था इससे बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुई ब्रिटिश शासन व्यवस्था एक युगांतकारी घटना मानी जा सकती है जिसने शताब्दियों से चली आ रही ग्रामीण-व्यवस्था की चूलें हिला दी। स्वतंत्रा प्राप्ति के पश्चात् यद्यपि ग्राम-विकास हेतु कई नीतियाँ अपनाई गईं, किन्तु आजादी के कई वर्षो बाद हम देखते हैं कि उन योजनाओं, नीतियों से हमारा ग्रामीण विकास समुचित दिशा में आगे नहीं बढ़ सका है जबकि वास्तव में भारत प्राकृतिक रूप से अतिसमृद्ध है, तथापि हम अभी भी गरीब देशों की ही श्रेणी में ही आते हैं। दुतग्रामी विकास की मरीचिका में फंस कर हमने विकास का जो तरीका अपनाया है उसमें हम बहुत ज्यादा आगे नहीं बढ़ पाये। विकास के क्षेत्र में गाँधीजी के ग्राम-स्वराज्य की धारणा की हमने यूरोपीय कह कर उपेक्षा की है, दूसरी तरफ, चीन, वियतनाम, तंजानिया जैसे देशों ने अपना संपूर्ण विकास कर दुनियाँ को दिखला दिया कि कृषि-प्रधान देशों के लिये विकास के प्रारंभिक चरण में गाँधीजी के बहुत से विचार उपयुक्त हैं।[16]

गाँधीजी के ग्राम-स्वराज्य पर विचार करना आज भारतवासियों के लिये अनिवार्य हो गया है। हमें चाहिये कि हम अपने विकास के लिये एक ऐसे मॉडल को तलाशे जो वास्तव में हमारे देश, काल, परिस्थितियों, संस्कृति, जनता साथ ही 21वीं सदी के आवश्यकताओं के अनुकूल हो, जो हमारे ऊपर जबरदस्ती आरोपित न हो, जिसमें जन सहभाजिता हो, जो हमारे जीवन, हमारे विकास का याथोचित, समायानुकूल अंग बन जाए।[17]

आज अपने देश को विकसित देशों की श्रेणी में लाने के लिये आवश्यक है कि ग्रामीण स्तर से सुधारों को शुरू किया जाए। हमारे देश में यदि विकास की योजनाएँ लागू की जाएंगी और उनमें ग्रामीण जनता की उपेक्षा की जाएगी तो आवयंभावी है कि उसमें यथोचित सफलता नहीं मिलेगी। अत: आवश्यक है कि अब हमें डूत गति से सफल बनने के लिये कृषि और कृषकों को केन्द्र मानकर नियोजन करना होगा। इसमें प्रत्येक ग्रामवासी ग्राम की इकाई तथा शक्ति दोनों रूपों में विकास के संपूर्ण अवसर प्राप्त कर सकेगा। यह कार्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीजी के 'ग्राम-स्वराज्य' संबंधी विचार को अपनाकर किया जा सकता है।[18]

आज भारत सहित समस्त विश्व वैश्वीकरण की अंधी दौड़ में व्यस्त है। वस्तुत: आज की समस्त अर्थ व्यवस्थाओं का मूल आधार भोग-विलास, आवश्यकताओं की वृद्धि तथा नीति-विहीन अर्थशास्त्र में है। इसलिए आज समस्त विश्व समाज यंत्रप्रधान, केन्द्रित हो गया है। तमाम वैश्विक विकास के दावों के बावजूद आज का विश्व समाज बेकारी, गरीबी, वर्ग-विभेद तथा बाजार हथियाने की लालसा तथा कच्चे माल के लिये बाजार हथियाने की उन्नत दौड़ इत्यादि के कारणों से दूषित हो चुका है।[19]

ऐसी अर्थव्यवस्था में सच पूछे तो जिन भयंकर प्रति स्पद्धाओं, संघर्षो तथा शस्त्रीकरण की होड़ में संघर्षरत है, काफी चिंतनीय है। विश्व ने नीजीकरण तथा वैश्वीकरण की लालसा लोगों में पैदा की, मानवश्रम का वैश्वीकरण, बाजारों का वैश्वीकरण, मालों का वैश्वीकरण, तमाम बातों का परिणाम क्या हुआ, समाज एक बड़े आर्थिक जाल में फंस गया। यद्यपि लोग कहते हैं, विश्व का आर्थिक विकास हो रहा है, परन्तु सच्चाई तो यह है कि आज का समाज एक अभूतपूर्व असमानता के दलदल में फंसा है, जहाँ एक ओर तो लखपति, करोड़पति वैभव-विलासता की जिंदगी बिताते हैं तो दूसरी ओर कड़ी मेहनत करने वालों को दो जून की रोटी भी नसीब नहीं। सच्चाई तो यही है कि गरीब और अविकसित देश तो छोड़िए, अमेरीका जैसा विकसित देश भी आज आर्थिक मंदी के दौर से गुजर रहा है। आज न केवल भारत बल्कि अन्य देशों को भी गाँधी के ग्राम-स्वराज संबंधी धारणा पर विचार करना चाहिए, ताकि विकास को गाँवों से शुरू कर केन्द्र तक पहुँचा कर देश और समाज को सम्पन्न और भयमुक्त बनाया जा सके।[20]

दृष्टिकोण

भारत जो तीव्रता से उभरती अर्थव्यवस्था है, वहाँ 1951 से लगातार पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कई योजनाएँ विकास के लिये क्रियान्वित की जा रही हैं, किन्तु आजादी के 60 वर्षो बाद भी भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ज्यादा परिवर्त्तन नहीं दिखता है। सच पूछे तो विकास की बात तब तक सच्ची नहीं लगेगी जब तक कि भारत के गाँवों का विकास न हो। भारत मूलत: गाँवों का देश है, गाँव हमारी अर्थव्यवस्था का केन्द्रबिन्दु हैं। अत: उसका विकास सबसे आवश्यक है, जबकि गाँव आज तक उपेक्षित रहे हैं। गाँधी के ग्राम-स्वराज्य संबंधी विचार को अपना कर काफी हद तक भारतीय गाँवों का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। गाँधीजी मानते थे जब तक गाँव उपेक्षित रहेंगे, देश सम्पन्न नहीं हो सकता, क्योंकि शहरी जनसंख्या ग्रामीण गरीबों का शोषण, अत्याचार करती रहेंगी, आज सच्चाई सामने आ गयी है पूरा समाज गरीबी, बेकारी, आंतकवाद, हिंसा, साम्प्रादियकता जैसे गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है। निजीकरण तथा वैश्वीकरण से प्रभावित होकर भारत अपनी अर्थव्यवस्था के दरवाजे को बड़े-बड़े मल्टीनेशनल कंपनियों के लिये खोल रहा है और ग्रामीण-कुटीर उद्योगों पर आधारित अर्थव्यवस्था को तिलांजली दी जा रही है। किंतु मुक्त बाजार का सकारात्मक परिणाम भी नहीं आ पा रहा है और बेकारी एक विकराल समस्या बन गयी है। ऐसे में गाँधीजी के ग्राम-स्वराज्य के सिद्धांतों को अपना कर काफी हद तक आत्मनिर्भर समाज की स्थापना संभव है।

संदर्भ सूची :-

1. गाँधी, मोहन दास करमचंद, ''यंग इंड़िया'', 19.03.1931, पृष्ठ संख्या - 38
2. गाँधी, मोहन दास करमचंद, ''यंग इंड़िया'', 19.03.1931, पृष्ठ संख्या - 305
3. गाँधी, मोहन दास करमचंद, ''हिन्दी नव जीवन'', 29.01.1925, पृष्ठ संख्या - 198
4. गाँधी, मोहन दास करमचंद, ''हरिजन'', 02.01.1937, पृष्ठ संख्या - 374
5. गाँधी, मोहन दास करमचंद, ''यंग इंड़िया'', 26.03.1931, पृष्ठ संख्या- 51
6. गाँधी, मोहन दास करमचंद, ''अमृत बाजार पत्रिका'', 30.06.1944, पृष्ठ संख्या - 38
7. गाँधी, मोहन दास करमचंद, ''खादी'', 1959, पृष्ठ संख्या - 216-17
8. कुमार योगेन्द्र, ''गाँधी जी और उनका समग्र राजनीतिक चिंतन, प्रतियोगिता दर्पण, पृष्ठ संख्या-1447, मार्च 2001
9. नटेसन, स्पीचेज एंड राइटिंग्स ऑफ महात्मा गाँधी
10. अग्रवाल पवन कुमार, ''गाँधी के आर्थिक विचारों की प्रासांगिकता, दिसम्बर, 1998- योजना, पृष्ठ संख्या-38
11. पडगाँवकर, अनिल - टाइम्स ऑफ इंडिया, 11.10.2006, पृष्ठ संख्या-74
12. डा. अग्रवाल, अलका - ग्राम पुनर्निर्माण गाँधीवादी मॉडल, अक्टूबर, 1998 - योजना, पृष्ठ संख्या-47
13. गाँधी, मोहन दास करम चंद, ''हिन्द स्वराज्य सर्वसेना संघ प्रकाशन, राजघाट, जनवरी, 1926, पृष्ठ संख्या-48
14. गाँधी, मोहन दास करम चंद, ''अमृत बाजार पत्रिका, 30.06.1944, पृष्ठ संख्या-38
15. गिरी, अमरनाथ दत्त, ''गाँधी का आर्थिक चिंतन-प्रासांगिकता एवं संभावनाएँ।, अक्टूबर, 1999 - योजना, पृष्ठ संख्या-58
16. अग्रवाल, डा. अलका, ''ग्राम पुनर्निर्माण का गाँधीवादी मॉडेल।, अक्टूबर, 1998 - योजना, पृष्ठ संख्या-78

उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले के रेनुकूट वन प्रभाग में पाए जाने वाले पेड़ों का जातीय औषधीय अध्ययन

डॉ० सर्वजीत सिंह

वनस्पति विज्ञान विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, शाहगंज, जौनपुर

सार

वर्तमान अध्ययन के तहत एक जातीय-औषधीय सर्वेक्षण आयोजित किया गया था जिसमें रेनुकूट वन प्रभाग में पाए जाने वाले पेड़ के जातीय-औषधीय उपयोग का दस्तावेजीकरण किया गया था। 2018-2020 के दौरान व्यक्तिगत संपर्कों, प्रश्नावली के साथ सूचना साक्षात्कार, समूह चर्चा, क्षेत्र के दौरे, वनस्पति संग्रह और हमारे स्वयं के अवलोकन के एकीकृत दृष्टिकोण का उपयोग करके आदिवासी, स्थानीय लोगों, चिकित्सा पुरुषों से जानकारी एकत्र की गई थी। गांवों के पास और जंगल में पाए जाने वाले कुल 30 पेड़ चिकित्सीय उपयोग के लिए दस्तावेजी हैं। प्रलेखित नृवंशविज्ञान में पौधों का उपयोग ज्यादातर दस्त, पेचिश, मधुमेह, बुखार, खांसी, पीलिया, जहर के काटने, गैस्ट्रिक समस्याओं, त्वचा रोगों और महिलाओं से संबंधित समस्याओं को ठीक करने के लिए किया जाता है। दस्तावेजी पेड़ों की तालिका के विश्लेषण के बाद, यह देखा गया कि अधिकांश औषधीय पेड़ फैबेसी परिवार के थे।

कीवर्ड- एथेनोबोटनी, औषधीय वृक्ष, सोनभद्र

परिचय

विभिन्न बीमारियों से लड़कर मनुष्य के जीवन को लम्बा करने के लिए सभ्यता के आरंभ से ही पौधों और पौधों पर आधारित उत्पादों का उपयोग किया जाता रहा है। पेड़ों को उगाने का इतिहास और बीमारियों की रोकथाम और इलाज में इसके उपयोग का पता सुदूर भाग में भी लगाया जा सकता है।

डब्ल्यूएचओ के अनुसार दुनिया के लगभग 80% लोग अपनी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की जरूरतों के लिए पारंपरिक चिकित्सा पर निर्भर हैं क्योंकि विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिए स्वदेशी दवाओं के विकास और औषधीय पौधों के उपयोग में काफी आर्थिक लाभ हैं। औषधीय प्रयोजनों के लिए पौधों का उपयोग करने का पारंपरिक ज्ञान आदिवासियों और गांवों में बहुत समृद्ध है। यह ज्ञान मौखिक संचार के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक लिपि रहित भाषा का उपयोग करके विशेष रूप से प्रसारित होता है। बहुमूल्य ज्ञान अलिखित है और इसके संरक्षण और दस्तावेजीकरण के तत्काल उपायों की आवश्यकता है। इस संबंध में रेनुकूट वन प्रभाग अपने नृवंशविज्ञान संबंधी मूल्यों के लिए भारत के कम अध्ययन वाले क्षेत्रों में से एक है।

रेनुकूट वन प्रभाग उत्तर प्रदेश के विंध्य क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण वन क्षेत्र है। जो इन संसाधनों के कारण भूविज्ञान, भूमि के आकार और जलवायु की विविधता के कारण पौधों की जैव विविधता में बहुत समृद्ध है। भौगोलिक क्षेत्र का 50% हिस्सा शुष्क-पर्णपाती प्रकार के जंगल से ढका हुआ है जिसमें कई मूल्यवान वृक्ष प्रजातियाँ और 100 से अधिक औषधीय पौधे हैं। पारंपरिक कृषि वन प्रणाली के तहत आम तौर पर कई पेड़ों की प्रजातियाँ किसान के खेत में बिखरी हुई पाई जाती हैं। क्षेत्र के ग्रामीण और आदिवासी लोग आम बीमारियों के इलाज के लिए बड़े पैमाने पर इन वृक्ष प्रजातियों पर निर्भर हैं।

वर्तमान अध्ययन क्षेत्र में उगने वाली जातीय-औषधीय रूप से महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजातियों की सूची बनाने और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध वृक्ष प्रजातियों के संबंध में स्थानीय समुदाय द्वारा अपनाई जाने वाली स्वदेशी स्वास्थ्य प्रथाओं का दस्तावेजीकरण करने के उद्देश्य से आयोजित किया गया था।

सामग्री एवं विधि

यह अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2018 से 2020 तक किया गया। सुझाई गई पद्धति के अनुसार रेनुकूट वन प्रभाग के अनपरा रेनुकूट, बभनी, दुद्धी, विंढमगंज क्षेत्र में क्षेत्र सर्वेक्षण किया गया, इस अध्ययन के तहत आदिवासियों से जानकारी एकत्र की गई, स्थानीय लोगों, चिकित्सा आदमी (वैद्य) ने व्यक्तिगत संपर्क, परिचय, प्रश्नावली के साथ साक्षात्कार, समूह चर्चा, क्षेत्र का दौरा, वनस्पति अवलोकन आदि के एकीकृत दृष्टिकोण का उपयोग करते हुए क्षेत्र के कई अन्य व्यक्तियों से संपर्क करके जानकारी का खंडन किया और क्रॉस गाल किया। उसके बाद एकत्रित जानकारी की तुलना प्रकाशित नाइट्रेशन से की गई।

परिणाम और चर्चा

वर्तमान जातीय औषधीय सर्वेक्षण में 15 परिवारों से संबंधित 30 वृक्ष प्रजातियों की पहचान की गई है, जिनका उपयोग मानव बीमारियों को ठीक करने के लिए किया जाता है (तालिका 1)। आदिवासी लोग और स्थानीय चिकित्सक विभिन्न बीमारियों के इलाज में विभिन्न पौधों के हिस्सों का उपयोग करते हैं। पौधों के इन भागों में पत्तियों और छाल का सबसे अधिक उपयोग होता है। तालिका 1 से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि दस्त, पेचिश, मधुमेह, बुखार, खांसी, पीलिया, जहरीला दंश, दांत दर्द, गैस्ट्रिक परेशानी, त्वचा रोग और महिला संबंधी समस्याएं मुख्य मानव रोग हैं, जिनके लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध जातीय-औषधीय रूप से महत्वपूर्ण पेड़ हैं उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार के निष्कर्ष कई श्रमिकों द्वारा भी बताए गए थे। जातीय-औषधीय मूल्य के लिए प्रलेखित 30 वृक्ष प्रजातियों में से। अधिकतम (8) फैबेसी (लेगुमिनसी) परिवार से संबंधित है, उसके बाद कोम्ब्रिटेसी (4) और एनाकार्डियासी (2) परिवार से संबंधित है। क्षेत्र सर्वेक्षण के दौरान यह भी देखा गया कि लगभग 9 वृक्ष प्रजातियाँ हैं। आजादिरेक्टा इंडिका. एगल मार्मेलोस, अल्बिजिया लेबेक, एन्थोसेपालस कैडाम्बा, बुटिया मोनोपर्मा, मधुका लैटिफोलिया, एम्ब्लिका ऑफिसिनालिस, होलोप्टेलिया इंटिग्रिफोलिया और कैसिया फिस्टुला गांव में घरेलू और कृषि क्षेत्रों के पास पाए गए। जिस पर ग्रामीण बीमारियों का इलाज निर्भर करते हैं। पेड़ों की बाकी प्रजातियाँ पास के वन क्षेत्र में पाई गई। स्थानीय लोग आम तौर पर स्थानीय रूप से पसंद करते हैं लोग आम तौर पर बीमारियों के इलाज के लिए उपयोगी पौधों के हिस्से के संग्रह के लिए जंगल में जाने के बजाय स्थानीय रूप से उपलब्ध औषधीय पेड़ों को पसंद करते हैं। जंगल में गहरे पाए जाने वाले पेड़ों का उपयोग शायद ही कभी बीमारियों को ठीक करने के लिए किया जाता था। इसलिए ये वृक्ष प्रजातियाँ अवश्य होनी चाहिए।

सोनभद्र जिले में पाए जाने वाले पेड़ों का नृवंशविज्ञान संबंधी उपयोग क्रम संख्या वानस्पतिक नाम स्थानीय नाम परिवार पौधा भाग प्रयुक्त नृवंशविज्ञान संबंधी उपयोग निम्लिखित हैं-

1 बबूल कत्था लिन खैर/कत्था फैबेसी छाल जड़ दस्त, गले में खराश, पिंडली के रोग गठिया।

2 एगल मार्मेलोस लिन बेल रुटेसी लीफ फल पत्तियां मधुमेह में उपयोग की जाती हैं, फल कसैले के रूप में कार्य करते हैं, दस्त, पेचिश और बवासीर में उपयोग किया जाता है।

3 अल्बिजिया लेबेबेक लिन सिरिस फैबेसी छाल का पत्ता छाल का पेस्ट मुंह के छालों में लगाया जाता है, खांसी में और सांप के काटने पर मारक के रूप में उपयोग किया जाता है। पत्तियों के रस का उपयोग रतौंधी को ठीक करने के लिए किया जाता है और इसका उपयोग रक्त शोधक और सूजनरोधी एजेंट के रूप में भी किया जाता है।

4 एनोगेरिसस लार्टिफोलिया रॉक्सब। धौरा कॉम्ब्रेटेसी छाल की पत्तियों की छाल का उपयोग यकृत की शिकायत में किया जाता है और घाव भरने में बाहरी रूप से लगाया जाता है। कान से पीब निकलने पर पत्तियों का रस पिलाया जाता है।

5 एन्थोसेफालस कैडम्बा मिक। कदम रूबियासी पत्ती की पत्ती का रस पेट दर्द में प्रयोग किया जाता है। घाव, बुखार।

6 आजादिरेक्टा कैडम्बा माउंटक।

नीम मिलियासी छाल फल की टहनी, बीज का तेल छाल का उपयोग गठिया, कब्ज, बुखार और खांसी में किया जाता है, पत्तियों का उपयोग त्वचा रोगों, मधुमेह, तपेदिक, चेचक और दांत दर्द में किया जाता है, टहनियों का उपयोग पायरिया के इलाज के लिए टूथब्रश के रूप में किया जाता है। तेल का उपयोग त्वचा रोग, कुष्ठ रोग और अल्सर में किया जाता है।

7 एजाडिरेक्टा इंडिका जूस गुलाबी कचनार फैबेसी पत्ती, छाल पत्ती का उपयोग पीलिया में किया जाता है। तने की छाल का उपयोग घावों को ठीक करने के लिए किया जाता है।

8 बौहिनिया पुरप्यूरिया लिन कचनार फैबेसी फूल, छाल फूल रेचक हैं, सूखी कलियों का उपयोग दस्त को ठीक करने के लिए किया जाता है। ल्यूकोरिया, छाल का काढ़ा दस्त, मुंह के अल्सर में भी प्रयोग किया जाता है।

9 बाउहिनिया वेरिगेट लिन सेमल, सेमर बॉम्बेकेसी लेटेक्स छाल, पत्तियां लेटेक्स का उपयोग पेचिश में किया जाता है। इसकी छाल का उपयोग श्वेत प्रदर और पेचिश में किया जाता है। पत्तियों का उपयोग एनीमिया और आमवाती दर्द में किया जाता है।

10 बाउहिनिया वेरिगेट लिन सलाई बर्सेरेसी राल, पत्तियां राल का उपयोग गठिया और जोड़ों के दर्द और बालों के टॉनिक में किया जाता है, पत्तियों का उपयोग घाव भरने में किया जाता है।

11 बॉम्बेक्स सीबा लिन चेरोनजी, चार/प्यार एनाकार्डियाई छाल, पत्तियां बीज बीज का तेल गर्दन की ग्रंथियों की सूजन पर लगाया जाता है। दस्त पेट दर्द में छाल का प्रयोग किया जाता है। पत्तियां अपने टॉनिक और कार्डियोटोनिक गुणों के लिए मूल्यवान हैं और उनका पाउडर घावों के लिए एक आम दवा है।

12 बोसवेलिया सेराटा रोक्सब। पूर्व कोलेब्र ढाक/चेउल फैबेसी पत्ती, फूल, बीज पत्ती का रस कृमि संक्रमण में प्रयोग किया जाता है। फूल का उपयोग एक्जिमा के लिए और पत्तियों का उपयोग ल्यूकोडर्मा के इलाज के लिए किया जाता है।

13 बुकानिया लानजान स्प्रेंग अमलतास फैबेसी फूल फूलों का पेस्ट जलने पर प्रयोग किया जाता है।

14 ब्यूटिया मोनोस्पर्मा (लैमक.) तौब सेशम फैबेसी लीफ, छाल की पत्तियों का उपयोग यकृत विकार, पीलिया और सूजाक में किया जाता है। छाल के चूर्ण का उपयोग खूनी बवासीर और अतिसार में किया जाता है।

15 कैसिया फिस्टुला लिन तेंदू एबिनेसी जड़ फूल जड़ का लेप बिच्छू के डंक में प्रयोग किया जाता है। इसके फूलों का उपयोग प्रदर, खूनी बवासीर और दस्त को ठीक करने के लिए किया जाता है।

16 डालबर्गिया सिस्सो लिनन आँवला यूफोरबियासिया फल, छाल फल का उपयोग पेट की परेशानी और बालों के तेल, एनीमिया, नेत्र रोगों, टॉनिक में किया जाता है।

17 होलोप्टेलिया इंटीग्रिफोलिया (रॉक्सब.) प्लांच चिबिल उलमेसी लीफ पत्तियों का उपयोग शरीर की सूजन और फोड़े के दमन में किया जाता है।

18 लेगरस्ट्रोइमिया पार्विफ्लोरा रॉक्सब। सिद्ध लिथेरेसी बार्क की छाल का उपयोग स्तनपान संबंधी समस्याओं में किया जाता है।

19 लैनिया कोरोमेनिलिका झिंगन/गुर्जा एनाकार्डियासी छाल तने की छाल का रस गठिया और चोट पर लगाया जाता है।

20 मधुका लतीफोलिया रॉक्सब महुआ सपोटेसी फूल, टहनियाँ, पत्तियाँ फूल का उपयोग गठिया में किया जाता है। फूल से प्राप्त एलोकोहल को शरीर के दर्द में अत्यधिक मात्रा में लगाया जाता है। टहनियों का उपयोग पायरिया में किया जाता है। जलने और जलने पर पत्तियों की राख को मक्खन/घी के साथ मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

21 मैलोटस फिलीपिनेंसिस लार्न। रोहिणी यूफोरबियासी फल के फलों का चूर्ण त्वचा रोगों और कान में छाले में प्रयोग किया जाता है।

22 मेटायगिन अपार्विफ्लोरा (रॉक्सब.) कार्थ काइमा/गुराही रूबियासी लीफ लीफ पेस्ट घावों पर बाहरी रूप से लगाया जाता है।

23 टेरोकार्पस मार्सुपियम रॉक्सब। बीजा साल/बिया फैबेसी तना, पत्तियां तने का काढ़ा देने से मधुमेह होता है। त्वचा रोगों में पत्तियों का लेप लगाया जाता है।

24 श्लीचेरा ओलियोसा (लूर.) ओकेन कुसुम सैपिन्डेसी फूल का उपयोग बाल टॉनिक के रूप में किया जाता है।

25 सेमीकार्पस एनाकार्डियम लिनन भेला एनाकार्डियासी बीज बीज का तेल गठिया में बाह्य रूप से उपयोग किया जाता है।

26 टर्मिनलिया अर्जुन (रोक्सब.)ईसी डीसी अर्जुन कॉम्ब्रेटेसी बार्क पेचिश उच्च रक्तचाप।

27 टर्मिनलिया बेलिरिका (गार्टन) रॉक्सब। बहेरा कॉम्ब्रेटेसी फल पेट की परेशानी रेचक मासिक धर्म विकार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

28 टर्मिनलिया चेबुला (गार्टन) रेट्ज। हर्रा कॉम्ब्रेटेसी फल पेट की परेशानी, रेचक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

29 जाइजिफस न्यूमेलेरिया (बर्म.एफ) वजन। और अर्न झरबेरी रम्नेसी छाल, फल छाल का काढ़ा पेचिश में प्रयोग किया जाता है। फलों का उपयोग पाचन संबंधी समस्याओं में किया जाता है। इसे अत्यधिक दोहन से बचाने के लिए इसके वृक्षारोपण को बढ़ावा देकर संरक्षित किया गया। स्थानीय जातीय-औषधीय ज्ञान को उचित दस्तावेजीकरण द्वारा संरक्षित किया जाना चाहिए, ताकि हमारी आने वाली पीढ़ियों को लाभ मिल सके। इसके अलावा इन पेड़ों से तैयार हर्बल तैयारी को मान्य करने के लिए नैदानिक अध्ययन की भी आवश्यकता है, जो सुरक्षित उपयोग के लिए इन तैयारियों के चिकित्सीय गुणों को स्थापित कर सकता है।

सन्दर्भ-

1. आनंद, आर.के., विद्या सागर, सिंह, एस.एन. और आनंद, पूनम, (2010)। विंध्य चेत्र की संकट संकट जारी बुतियां एवं उनका संग्रह विंध्य कृषि 3 और 4 (3-1): 86-90.
2. अजाइजेह एच, फुलडर एस, खलील के, सईद ओ. (2003)। मध्य पूर्व क्षेत्र में स्थानीय जड़ी-बूटी चिकित्सकों का जातीय-औषधीय ज्ञान। फिटोटेरेपिया, 74:98-108।
3. चौधरी, आर.एस. (2010)। फैबेसी परिवार का टैक्सा: उत्तर प्रदेश के विंध्य क्षेत्र में स्थानीय औषधीय मूल्यों की संभावना। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फार्मा एंड बायोसाइंसेज। 1(4): 46-53.
4. जगताप, एस.डी. देवकुले, एस.एस.पवार, पी.के. और हरसुलकर, ए.एम. (2009)। पारंपरिक जातीय-औषधीय ज्ञान सतपुड़ा पहाड़ी की पावरा जनजाति तक ही सीमित है। महाराष्ट्र, भारत. नृवंशविज्ञान संबंधी पत्रक। 13:98-115.
5. जियान, डी. एल. बाहेती, ए.एम. जैन, एस.आर. और खंडेलवाल, के.आर. (2010)। महाराष्ट्र के धुले और जलगांव जिले के सतपुड़ा क्षेत्र में जनजातियों के बीच औषधीय पौधों का उपयोग, एक नृवंशविज्ञान सर्वेक्षण। पारंपरिक ज्ञान का भारतीय जर्नल। 9(1): 152-157.
6. नाथ, वी. और खत्री, पी.के. (2010)। जबलपुर और सिवनी जिले, मध्य प्रदेश में पारंपरिक हर्बल चिकित्सकों से नृवंशविज्ञान संबंधी जानकारी पर पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण, जर्नल ऑफ ट्रॉपिकल फॉरेस्ट्री। 26(3): 2642.
7. पांडे, आर.एस. और कुमार, अरविंद. (2006)। विंध्य क्षेत्र में एक नृवंशविज्ञान अध्ययन। उतार प्रदेश। इंडियन जर्नल ऑफ फॉरेस्ट्री. 26(4): 389-394.
8. शुक्ला, ए.एन. श्रीवास्तव, शरद और ए.के.एस. रावत. (2010)। मध्य प्रदेश के रीवा जिले के औषधीय पौधों का एक नृवंशविज्ञान अध्ययन। इंडियन जर्नल ऑफ ट्रेडिशनल नॉलेज। 9(1):191-202.
9. सिंह, अर्चना और दुबे, एन.के. (2012) उत्तर प्रदेश भारत के सोनभद्र जिले में औषधीय पौधों का एक नृवंशविज्ञान अध्ययन, पत्तेदार कवक द्वारा उनके संक्रमण के संदर्भ में। जर्नल ऑफ मेडिसिनल प्लांट्स रिसर्च. 6(14),: 2727-2746.
10. सिंह, उषा और सत्य नारायण। (2009)। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले की जातीय-वानस्पतिक संपदा। भारतीय वनपाल. 135(1)185-197.

अमीर खुसरो के साहित्य में लोकगीतों की बानगी और खड़ी बोली के विविध प्रयोग

डॉ० बिभा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, वी० एस० जे० महाविद्यालय, राजनगर, मधुबनी, बिहार

भारत के इतिहास में अमीर खुसरो का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी तथा बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे एक सच्चे देशभक्त, महान सूफी संत, बहुभाषाविद, उच्च कोटि के संगीतज्ञ तथा अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त कवि थे। भारत में सामासिक संस्कृति (हिन्दू और मुसलमानों की मिली-जुली संस्कृति)के निर्माण में अमीर खुसरो का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होने सौहार्द्र, सहिष्णुता और परस्पर सामंजस्य के माध्यम से मानवतावाद का समर्थन किया। वे भारतीय संस्कृति का हृदय से आदर करते थे, तथा भारतीय होने पर गर्व करते थे। "उनका कहना था कि 'किश्वरे हिन्द अस्त बहिश्ते बर जमीन' अर्थात भारत देश पृथ्वी पर स्वर्ग है। उनके इस राष्ट्र प्रेम और महान व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ही प्रसिद्ध विद्वान सैयद सुलेमान नदवी ने 1944 में अखिल भारतीय इतिहास परिषद के मद्रास अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था, 'अमीर खुसरो ने हिंदुस्तान की खाक को अपनी आँखों का सुरमा बनाया था। गो, वे नस्ल से तुर्क थे, मगर उनका दिल हिंदुस्तान की मिट्टी से बना था"[1]

अमीर खुसरो के जन्म-स्थान तथा जन्म तिथि के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ लोगों का मत है कि इनका जन्म तुर्किस्तान में हुआ था, तो कुछ लोग मानते हैं कि इनका जन्म दिल्ली में हुआ था। किन्तु सर्वसम्मति से इनके जन्म के विषय में विद्वानों का निष्कर्ष है कि लगभग 1253-1254 ई० में उत्तर प्रदेश के एटा जिले के पटियाली गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम अमीर सैफुद्दीन मोहम्मद था। ये तुर्किस्तान के 'लाचीनी' कबीले के सरदार थे। अमीर सैफुद्दीन युद्ध में कुशल थे। अपने युद्ध कौशल के बल पर उन्हे सुल्तान शमसुद्दीन अल्तमश के दरबार में पहचान मिली, और उन्हे सेना का सरदार बना दिया गया। इन्हे पटियाली की एक छोटी सी जागीर भी दी गयी। अमीर खुसरो की माँ नव-मुस्लिम भारतीय थीं। ये भारतीय रस्मों-रिवाज में पली-बढ़ी थीं। अत: भारतीय संस्कृति और हिन्दी भाषा अमीर खुसरो को विरासत में मिली थी। इन्हें अपने भारतीय होने पर गर्व था। "मसनवी 'नुह सिपहर' में हिंदुस्तान का संकेत करते हुए कहते हैं:

हस्त मेरा मौलिद-ओ-मावा-ओ वतन

[यही मेरा जन्मस्थान और यही मेरी मातृभूमि है।]

वह हिंदुस्तान के सच्चे प्रेमी और पक्के देशभक्त थे। अपने काव्य में जहाँ-जहाँ वह हिंदुस्तान की प्रशंसा करते हैं, उनकी आत्मा झूम उठती है और जैसे उनके मुँह से फूल झड़ने लगते हैं। मसनवी 'नुह सिपहर' का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण तीसरा परिच्छेद पूरा हिंदुस्तान की स्तुति में है"।[2]

अमीर खुसरो अपनी भाषा को हिंदवी कहते हैं। उन्हे 'तूती-ए-हिन्द' अर्थात हिन्द की तूती कहा जाता था। यद्यपि मूलत: वे फारसी के महान कवि थे,फिर भी उन्होने अपनी मातृभाषा हिंदवी में भी कविताएँ लिखी थीं। हिन्दी में लिखने पर वह गर्व का अनुभव करते थे।

"चु मन तूती-ए-हिंदम अर रास्त पुर्सी
जि मन हिंदवी पुर्स ता नग्ज़्गोयम

[चूँकि मैं तूती-ए-हिन्द हूँ, इसलिए मुझसे हिंदवी के संबंध में पूछिए ताकि उसमें मैं अपनी काव्यकला प्रदर्शित कर सकूँ।][3]

खुसरो ने स्पष्ट शब्दों में अपना हिन्दी प्रेम प्रकट किया है और कहा है कि मैं अपने भावों को अपनी मातृभाषा हिन्दी में अधिक सरलता और सफाई से प्रकट कर सकता हूँ। वे लोकभाषा को अपने हृदय के अत्यंत निकट महसूस करते थे। वास्तव में वह एक महान व्यक्ति थे, और इसलिए जाति, देश और वर्ग के आधार पर किए जानेवाले भेद-भाव से बहुत ऊपर थे। भाषा-समस्या को दूर करने के संबंध में भी वे उदार थे। उनकी दृष्टि में हिन्दी को ही भारत की राष्ट्रभाषा होना उचित है। अमीर खुसरो की कविताओं में सांस्कृतिक-समन्वय का संदेश है। खुसरो, मानवता को सर्वाधिक महत्व देते थे, वे विशाल हृदय के स्वामी थे तथा भारत-भूमि के प्रति सच्चा प्रेम रखते थे।

अमीर खुसरो का असली नाम अबुल हसन यमीनूद्दीन 'खुसरो' था। "'खुसरो' इनका तखल्लुस(उपनाम) था। 'अमीर' की उपाधि इन्हे जलालुद्दीन खिल्जी द्वारा इनकी कविता से प्रसन्न होकर प्रदान की गयी थी। आगे चलकर ये 'अमीर खुसरो' के नाम से ही साहित्य संसार में प्रसिद्ध हुए"।[4] ये अरबी, तुर्की और फारसी के विद्वान थे। खड़ीबोली इन्हे अपनी माँ से विरासत में मिली थी। संस्कृत पर भी इनका अधिकार था। अमीर खुसरो बाल्य-कल से ही अत्यंत मेधावी थे। खुसरो जब मात्र सात वर्ष के थे, तभी उनके पिता मंगोलों के साथ युद्ध करते हुए शहीद हो गए थे। पिता का साया सिर से उठ जाने पर ये अपने नाना के पास दिल्ली आ गए थे। इनके नाना का नाम इमादुल्मूलक था, तथा ये प्रभावशाली व्यक्तित्व रखते थे। उन्होने अमीर खुसरो के लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा की बहुत अच्छी व्यवस्था की, जिसके फलस्वरूप इनकी प्रतिभा का समुचित विकास हुआ। खुसरो हजरत निजामुद्दीन औलिया के प्रिय शिष्य थे। खुसरो के हिन्दी गीतों का जन-सामान्य पर चमत्कारी प्रभाव पड़ता था, उनकी इस काव्य प्रतिभा के कारण, उनके गुरु उनसे विशेष प्रसन्न रहते थे। खुसरो दिन में सुल्तानों के दरबार में रहते थे और शाम होने पर अपने गुरु के पास आ जाते थे।

बाल्यावस्था से ही उनमें काव्य-रचना की प्रवृत्ति थी। यद्यपि उन्होने फारसी कवियों के अनुकरण की कोशिश की, फिर भी इनकी कविताओं में भारतीय साहित्य और संस्कृति के प्रभाव तथा इनकी काव्य-प्रतिभा के कारण विशेष प्रकार की ताजगी और नवीनता थी। खुसरो की लोकप्रियता हिन्दी से थी, क्योंकि जन-भाषा में कविता करने के कारण ही वे जन-जन के हृदय में स्थान बना चुके थे। हिन्दी रचनाओं के कारण उनकी लोकप्रियता आज तक बनी हुई है, आज भी उनकी हिन्दी रचनाएँ जन-जन की जुबान पर है। हिन्दी के विकास में खुसरो का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे पहले ऐसे कवि हैं जिन्होने दिल्ली तथा उसके आस-पास की जन-भाषा खड़ीबोली में कविताएँ लिखीं। उन्हे खड़ीबोली का आदि-कवि माना जाता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में लिखा है कि अमीर खुसरो जन साधारण की भाषा खड़ीबोली को साहित्यिक रूप देने में सबसे पहले सफल हुए। उन्होने आगे लिखा है कि खुसरो ने जो सबसे बड़ा काम किया वो यह है कि उन्होने तत्कालीन काव्य आदर्शों में बंधकर जन-साधारण की बोली हिन्दी में रचना की। साथ ही, डॉ० रामकुमार वर्मा ने यह भी स्वीकार किया है कि खुसरो हिन्दी साहित्य के एक युग-परिवर्तनकारी कवि हैं, जिन्होने हिन्दी साहित्य का बड़ा उपकार किया है। वे जन साधारण की खड़ी बोली भाषा को साहित्यिक रूप देने में सबसे पहले सफल हुए। रामधारी सिंह दिनकर ने भी स्वीकार किया है कि हमें मानना पड़ता है कि इस भाषा (खड़ी बोली)का प्राचीनतम लिखित साहित्य खुसरो का ही है।

"अमीर खुसरो ने अपनी तुकबंदियों द्वारा जनसाधारण में न केवल काव्य के प्रति सुरुचि तथा लय और छंद के प्रति आकर्षण की प्रवृत्ति जागृत की, बल्कि हिन्दी भाषा के शब्दों के नए प्रयोगों के द्वारा और फारसी के कतिपय सरल शब्दों और मुहावरों के हिंदीकरण के द्वारा भाषा की श्रीवृद्धि भी की। खड़ीबोली की इन प्रारम्भिक रचनाओं को अमीर खुसरो की विशिष्ट देन समझना ही न्यायसंगत होगा और उन्हे इस श्रेय से वंचित करना अनुदारता ही नहीं, कृतघ्नता का कार्य होगा"।[5]

अमीर खुसरो की साहित्यिक रचनाओं में,उनके कुछ दोहे, उनकी कुछ गजलें और उनकी स्फुट रचनाएँ उपलब्ध हैं। खुसरो का वह दोहा सबसे प्रमाणिक माना जाता है, जो उन्होने अपने गुरु निजामुद्दीन औलिया की कब्र पर पढ़ा था। उनके गुरु का निधन उनकी अनुपस्थिति में हुआ, उन दिनों वे गयासुद्दीन तुगलक के साथ सोनार गाँव (बंगाल) के अभियान पर गए थे। दिल्ली पहुँचते ही जब उन्हे गुरु की मृत्यु का दुखद समाचार मिला तो उन्होने अपने वस्त्र फाड़ लिए, मुख पर कालिख मल ली और गुरु की कब्र पर रोते-रोते यह दोहा पढ़ा। यह दोहा प्रत्येक वर्ष ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया के उर्स के अवसर पर गाया जाता है-

"गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस,
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुं देस"।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित दोहों को भी अमीर खुसरो का ही माना गाया है-

1. "खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग,
तन मेरा मन पीव का दोऊ भए इक रंग"।
2. पंखा होकर मैं डुली साती तेरा चाव,
मुझ जलती को जनम गयो तेरे लेखन बाव"।

डॉ० भोलानाथ तिवारी ने भी अपने ग्रंथ 'अमीर खुसरो' में खुसरो के नाम से प्रचलित बारह दोहों का उल्लेख किया है। अमीर खुसरो ने अपनी अनेक फारसी रचनाओं में हिन्दी के शब्दों और वाक्यों का प्रयोग किया है। उनकी मसनवी 'गुरर्तुल कमाल' का निम्नलिखित शेर फारसी का भी हो सकता है, और हिन्दी का भी-

"आरी-आरी हमा बियारी, आरी,
मारी-मारी, बिरह की मारी, आरी"।

इस प्रकार, अनेक स्थानों पर उन्होने फारसी रचनाओं में हिन्दी शब्दों, पदों और वाक्यों का प्रयोग किया है। अमीर खुसरो की एक फारसी और हिन्दी की मिश्रित गजल अत्यंत प्रसिद्ध है, जिसका एक मिसरा फारसी में और दूसरा हिन्दी में है-

जे हाले मिसकीन मुकुन तगाफुल, दुराएं नैना बनाए बतियाँ,
किताबें-हिजरा न दारम ऐ जां, न लेहु काहे लगाए छतियाँ।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ, तो कैसे काटूँ अंधेरी रतियां।

"यह पहला अवसर है जबकि हिन्दी में भी किसी कवि ने गजल लिखने का प्रयास किया था। यह समय का तकाजा भी था, क्योंकि जन सामान्य फारसी की गजलों का रसास्वादन नहीं कर सकता था। इसलिए धीरे-धीरे हिन्दी का प्रयोग आरंभ किया गया। इस गजल से यह भी सहज ही प्रकट हो जाता है कि हिन्दी में गजल एक प्रकार से उर्दू की अपेक्षा पहले लिखी गई क्योंकि उस समय तक उर्दू शब्द की उत्पत्ति नहीं हुई थी। यदि मान भी लिया जाए कि 'हिंदवी' शब्द ही दोनों के लिए प्रयुक्त होता था, फिर भी इसमें शब्दों का जो चयन है और भाषा की जो ब्रज मिश्रित शैली है, वह निस्संदेह हिन्दी की ही है, और आज 'उर्दू' कहे जाने वाली भाषा से मेल नहीं खाती"।[6]

अमीर खुसरो अनेक प्रकार की देशी-विदेशी भाषाओं के जानकार थे। तुर्की उनकी पितृभाषा थी, तो हिन्दी मातृभाष। लोक-जीवन में उनकी विशेष रुचि थी, और यही वजह है कि वे अनेक प्रकार की स्थानीय भाषा सीख सके। उनके इस विलक्षण गुण का वर्णन करते हुए डॉ० मुहम्मद वाहिद मिर्जा ने लिखा है- "जबानदानी में तो शायद ही कोई उस जमाने में उनका मुकाबला कर सकता हो, इसलिए कि वो फारसी के अलावा तुर्की, हिन्दी, संस्कृत और हिंदुस्तान की और कई जबानों से वाकिफ थे"।[7]

अमीर खुसरो के भीतर अथाह ऊर्जा थी, उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था, तथा वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे अत्यंत उच्च कोटि के साहित्यकार, दार्शनिक, कुशल राजनीतिज्ञ, संगीतज्ञ, भारतीय संस्कृति के प्रेमी, जनरुचि के समर्थक तथा जन-रुचिपरक साहित्य के प्रणेता थे। कवि किसी जाति विशेष का नहीं होता, बल्कि वह संपूर्ण मानव जाति का होता है। उन्होने हिंदुओं और मुस्लिमों के बिगड़े संबंधों को एकता के सूत्र में बांधने का सफल प्रयास किया। उनके हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा लगाव था। यहाँ के लोग, यहाँ की जलवायु और यहाँ की प्रकृति से उन्हे अत्यधिक प्रेम था। अपनी फारसी और हिन्दी कविताओं में खुसरो ने पूरी श्रद्धा से भारत का गुणगान किया है। उनकी कृतियों में उस समय का राजनीतिक-सामाजिक जीवन पूरी सजीवता से चित्रित हुआ है। अभी तक अमीर खुसरो का संपूर्ण साहित्य प्रकाश में नहीं आया है। इस दिशा में अभी और अनुसंधान की आवश्यकता है।

फारसी के अतिरिक्त अपनी हिन्दी रचनाओं के कारण अमीर खुसरो ने ईरान और भारत में लगभग एक बराबर यश प्राप्त किया। "अमीर खुसरो खड़ी बोली के आदिकवि ही नहीं हैं, वरन उन्होने हिन्दी तथा फारसी-अरबी में परस्पर आदान-प्रदान में भी सहायता पहुँचाई है"।[8] स इनहोने खड़ी बोली में, लोकरुचि की अनेक रचनाएँ की हैं। जिनमें निम्नलिखित रचनाएँ प्रमुख हैं-पहेलियाँ, कहमुकरियाँ, निस्बतें, सूखने, दो-सूखने, ढकोसले, गीत, कव्वाली आदि। भारतीय लोक परंपरा का निर्वाह करते हुए खुसरो ने जनभाषा में दो प्रकार की पहेलियाँ लिखी-पहली है बूझ-पहेलियाँ, जिसमें उत्तर पहेली में ही छुपा रहता है। -

बीसों का सिर काट लिया।

ना मारा ना खून किया।।

उत्तर-नाखून

दूसरी बिन बूझ पहेलियाँ हैं, जिनमें उत्तर ढूँढना पड़ता है।-

खेत में उपजे सब कोई खाय।

घर में उपजे घर खा जाय।।

उत्तर-फूट

किसी उक्ति को कह कर मुकर जाना कह-मुकरियाँ की विशेषता है। यह भी पहेलियों का ही एक प्रकार है, जो सहेलियों के मध्य हंसी-मजाक के लिए सदियों से प्रचलित है।-

वह आये तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।

मीठे लागे वाके बोल, ऐ सखी साजन ना सखी ढ़ोल।

हिन्दी में सर्वप्रथम कहमुकरियाँ लिखने का श्रेय खुसरो को ही प्राप्त है। इनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर आधुनिक युग में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी मुकरियाँ लिखी।

निस्बत में दो चीजों में समान तत्व ढूँढना होता है। यह भी पहेली का ही एक प्रकार है-

'आदमी और गेहूँ' में क्या निस्बत है?

उत्तर 'बाल'

दो सुखने में दो कथनों में एक ही बात होती है। अमीर खुसरो ने इसे एक विधा के रूप में प्रचलित किया। -

पंडित क्यों प्यासा?

गधा क्यों उदासा?

उत्तर लोटा न था।

लोक-साहित्य में बिना सिर-पैर वाली उक्ति को ढकोसला कहते हैं। खुसरो ने कुछ ढकोसले लिखकर उसे साहित्य की एक विधा का रूप दे दिया।

भादों पकी पीपली,झड़-झड़ पड़े कपास

बी महतरानी दाल पकाओगी या नंगा ही सो रहूँ।

खुसरो बहुत बड़े संगीतज्ञ भी थे। उन्होने सूफी भाव के गीत के अतिरिक्त लोक गीतों की भी रचना की।

कहे को ब्याही विदेश रे,

लखी बाबुल मोरे।

अमीर खुसरो अपनी कव्वाली के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी एक प्रमुख कव्वाली है-

'छापा तिलक ताज दीन्ही रे, तोसे नैना मिलाके,
प्रेमवटी का मदवा पिलाके,
मतवारी कर दीन्ही रे, मो से नैना मिलाके,
'खुसरो' निजाम पर बलि-बलि जाइए,
मोहे सुहागन कीन्ही रे, मो से नैना मिला के।

खुसरो की 'खालिक बारी' उनकी सबसे महत्वपूर्ण रचना है। यह एक प्रकार का कोष है, जिसमें 215 शेर हैं। इसमें मुख्य रूप से फारसी और हिन्दी के पर्यायवाची शब्द दिये गए हैं।

अमीर खुसरो अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के माध्यम से हिंदु-मुस्लिम एकता के प्रथम उन्नायक के रूप में सामने आये। पं० सुधाकर पांडे के मतानुसार, "अमीर खुसरो भारत-वर्ष के अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के कवि हैं, अरबी, फारसी, तुर्की तथा हिन्दी साहित्य उनके कृतित्व से श्री सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित हैं। उनका कृतित्व हिंदु-मुस्लिम सभ्यता के संगम की अनुभूत अभिव्यक्ति का दृष्टान्त है। भाषा एवं भाव सभी क्षेत्रों में यह शिव-सत्य उनके कृतित्व को गौरवपूर्ण ऐतिहासिक महत्व प्रदन्न करता है"।[9]

भाषा के मामले में खुसरो की महानता का परिचय इस तथ्य से सहज ही प्राप्त हो जाता है कि जिस भाषा का प्रयोग, अपनी कविता के लिए उन्होने आज से 700 वर्ष पूर्व किया था,उसी खड़ीबोली का परिनिष्ठित रूप आज देश की राष्ट्रभाषा है।अमीर खुसरो को खड़ीबोली हिन्दी का प्रथम कवि होने का गौरव प्राप्त है। रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में-

"जब हम खड़ीबोली के इतिहास को उठाते हैं तब निश्चित रूप से हमें मानना पड़ता है कि इस भाषा का प्राचीनतम लिखित साहित्य खुसरो का ही है"।[10]

खुसरो ने फारसी और हिन्दी दोनों में भरपूर रचनाएँ कि, इसके अतिरिक्त दोनों को मिलकर भी रचनाएँ की। इस प्रकार की उनकी गजलों को बहुत प्रसिद्धि मिली। इन रचनाओं को हम हिन्दी की पूर्व-अवस्था का सही स्वरूप प्रस्तुत करनेवाली रचना मन सकते हैं। इन रचनाओं में वास्तव में ऐसे तत्व उपलब्ध हैं जो खुसरो को खड़ी बोली हिन्दी का प्रथम कवि सिद्ध करने में सहायक है।

संदर्भ-सूची

1. भारत की महान विभूति अमीर खुसरो व्यक्तित्व और कृतित्व-डॉ० परमानंद पंचाल,पृ ० 2
2. अमीर खुसरो का हिंदवी काव्य- गोपीचन्द नारंग पृ ० 24-25
3. वही पृ० 25
4. भारत की महान विभूति अमीर खुसरो व्यक्तित्व और कृतित्व-डॉ० परमानंद पंचाल, पृ० 2
5. अमीर खुसरो भावात्मक एकता के मसीहा सं ० डॉ ० मालिक मोहम्मद,पृ ० 31
6. भारत की महान विभूति अमीर खुसरो व्यक्तित्व और कृतित्व-डॉ ० परमानंद पांचाल, पृ ० 47
7. डॉ० मुहम्मद वाहिद मिर्जा-अमीर खुसरो (भूमिका), उर्दू संस्करण पृ ० 7
8. बाबू श्याम सुंदर दास- हिन्दी भाषा और साहित्य पृ० 87
9. खालिक बारी: सम्पा० डॉ० श्री राम शर्मा,पृ ० 2
10. संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर, पृ ० 370
11.

मिथिलांचल में गाँधी का स्वदेशी आंदोलन

प्रतिभा झा

पीजीटी (इतिहास) +2 अमरनाथ हाई स्कूल शंकरपुर मधुबनी बिहार

सारांश

भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई में गहराई से निहित स्वदेशी आंदोलन ने भारतीय राष्ट्रवाद और ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रतिरोध को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। शुरुआत में 1905 में ब्रिटिश सरकार के बंगाल विभाजन के फैसले से शुरू हुआ यह आंदोलन तेजी से आत्मनिर्भरता और स्वदेशी वस्तुओं को बढ़ावा देने के लिए एक राष्ट्रव्यापी आह्वान के रूप में विकसित हुआ। विशेषकर बंगाल को धार्मिक आधार पर विभाजित करने के कथित अन्याय के कारण दिसंबर 1903 में विभाजन के सार्वजनिक होने से पहले, भारतीयों में अशांति बढ़ रही थी। इस निर्णय को अंग्रेजों द्वारा धर्म के आधार पर जनसंख्या को विभाजित करके बढ़ती राष्ट्रवादी भावनाओं को कमजोर करने के लिए एक रणनीतिक कदम के रूप में देखा गया। इसके लिए आधिकारिक तर्क यह दिया गया कि अपने 78 मिलियन लोगों के साथ बंगाल, प्रबंधन करने के लिए बहुत बड़ा था, लेकिन वास्तविक अंतर्निहित उद्देश्य उस क्षेत्र में विरोध के बढ़ते ज्वार को रोकना था, जो उपनिवेशवाद विरोधी गतिविधियों का केंद्र था। औपचारिक रूप से स्वदेशी आंदोलन 7 अगस्त 1905 को कलकत्ता के टाउन हॉल में एक सामूहिक बैठक में शुरू हुआ। आंदोलन का लक्ष्य घरेलू स्तर पर उत्पादित उत्पादों, विशेष रूप से हाथ से बुने गए कपड़े खादी के उपयोग को बढ़ावा देकर ब्रिटिश वस्तुओं पर निर्भरता को कम करना था। बाद में महात्मा गाँधी ने स्वदेशी आंदोलन को स्वराज, या स्व-शासन का सार बताया। इसका उद्देश्य न केवल आर्थिक स्वतंत्रता था, बल्कि ग्रामीण उद्योगों को पुनर्जीवित करना और प्रत्येक भारतीय गाँव को आत्मनिर्भर बनाना भी था। धनी भारतीयों ने खादी और ग्रामोद्योग समितियों को धन और भूमि दान करके महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे हर घर में कपड़ा उत्पादन को बढ़ावा मिला। इस जमीनी स्तर के प्रयास ने स्वदेशी आंदोलन को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए एक शक्तिशाली उपकरण में बदल दिया, जिसने इसे स्वतंत्रता के लिए व्यापक संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण रणनीति के रूप में इस्तेमाल किया। आंदोलन की विरासत इतनी गहरी थी कि जब 15 अगस्त 1947 को भारत को अंततः स्वतंत्रता मिली, तो नई दिल्ली में इंडिया गेट के पास प्रिंसेस पार्क में फहराया गया भारतीय ध्वज अशोक चक्र के साथ खादी का तिरंगा था, जो आंदोलन के स्थायी प्रभाव का प्रतीक था। इसके संदर्भ में उत्तरी बिहार का एक सांस्कृतिक रूप से समृद्ध क्षेत्र मिथिलांचल, जहाँ स्वदेशी आंदोलन को अनूठी अभिव्यक्ति मिली और यह स्थानीय आबादी के साथ गहराई से जुड़ा। मिथिलांचल, जो अपनी मजबूत सांस्कृतिक पहचान के लिए जाना जाता है, ने गाँधी के स्वदेशी के आह्वान को उत्साह के साथ अपनाया। इस क्षेत्र में आंदोलन ने न केवल व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन को प्रतिबिंबित किया, बल्कि यह भी दिखाया कि कैसे स्थानीय समुदायों ने स्वतंत्रता की लड़ाई में अपना योगदान दिया। मिथिलांचल में पारंपरिक उद्योगों के पुनरुद्धार और स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रतिरोध और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों के प्रति क्षेत्र की प्रतिबद्धता को रेखांकित किया, जिससे राष्ट्रवादी उत्साह और मजबूत हुआ जिसने अंततः भारत की स्वतंत्रता का नेतृत्व किया।

स्वदेशी आंदोलन की उत्पत्तिः मिथिलांचल का संदर्भ

स्वदेशी आंदोलन में स्वतंत्रता के लिए भारत के संघर्ष की आधारशिला, 20वीं सदी के शुरुआती भारत के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में गहराई से निहित है। 1905 में बंगाल के विभाजन के ब्रिटिश सरकार के फैसले की सीधी प्रतिक्रिया के रूप में इस आंदोलन ने गति पकड़ी, एक ऐसा कदम जिसने पूरे देश में व्यापक असंतोष पैदा कर दिया। स्वदेशी आंदोलन की उत्पत्ति को समझने

के लिए, इसे भारतीय राष्ट्रवाद के व्यापक ढांचे के भीतर प्रासंगिक बनाना महत्त्वपूर्ण है, जो 19वीं शताब्दी के मध्य से लगातार बढ़ रहा था। भारतीय राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक पुनर्जागरण आंदोलन, और भारतीय अभिजात वर्ग के बीच राजनीतिक चेतना का उदय आदि कई कारकों द्वारा आकार दिया गया था, जिसमें ब्रिटिश द्वारा आर्थिक शोषण भी शामिल था। अंग्रेजों द्वारा थोपी गई आर्थिक नीतियों, जैसे कि भारतीय हथकरघा उद्योगों का औद्योगीकरण और ब्रिटिश वस्तुओं के जबरन आयात ने स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को तबाह कर दिया था। इस शोषण के कारण बड़े पैमाने पर गरीबी और बेरोजगारी पैदा हुई, जिससे ब्रिटिश शासन के खिलाफ आक्रोश फैल गया। बंगाल पुनर्जागरण जैसे सांस्कृतिक पुनर्जागरण आंदोलनों ने भारत की विरासत और परंपराओं में गर्व की भावना को फिर से जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानन्द और बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे बुद्धिजीवियों ने भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने और पश्चिमी प्रभुत्व का विरोध करने की आवश्यकता पर बल दिया। इस सांस्कृतिक जागृति ने इस विचार को बढ़ावा देकर स्वदेशी आंदोलन की नींव रखी कि भारत की स्वतंत्रता का मार्ग स्वदेशी प्रथाओं और आत्मनिर्भरता की वापसी में निहित है। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आईएनसी) के गठन ने संगठित राजनीतिक गतिविधि की शुरुआत को चिह्नित किया।

स्व-शासन प्राप्त करने का लक्ष्ये

शुरुआत में अपनी माँग ों में नरमपंथी रही, कांग्रेस ने धीरे-धीरे अधिक कट्टरपंथी रुख अपनाया क्योंकि ब्रिटिश नीतियाँ तेजी से दमनकारी हो गई। बंगाल का विभाजन निर्णायक बिंदु था। आधिकारिक तौर पर, अंग्रेजों ने विभाजन के कारण के रूप में प्रशासनिक दक्षता का हवाला दिया और दावा किया कि 78 मिलियन की आबादी वाला बंगाल प्रभावी ढंग से शासन करने के लिए बहुत बड़ा था। हालाँकि, अंतर्निहित उद्देश्य हिंदू और मुस्लिम आबादी को विभाजित करना था, जिससे बढ़ते राष्ट्रवादी आंदोलन को कमजोर किया जा सके। विभाजन ने पूरे भारत में, विशेष रूप से बंगाल में, व्यापक विरोध प्रदर्शनों को प्रज्वलित किया, जहाँ इसे भारतीय लोगों की एकता को खंडित करने के एक जबरदस्त प्रयास के रूप में देखा गया। कांग्रेस ने विभाजन का विरोध करने और ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देने के लिए स्वदेशी आंदोलन को एक प्रमुख रणनीति के रूप में तुरंत अपनाया। स्वदेशी, जिसका अर्थ है "अपने देश का", ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी उत्पादों, विशेष रूप से खादी, हाथ से काता गया कपड़ा, जो आत्मनिर्भरता और प्रतिरोध का प्रतीक बन गया, को बढ़ावा देने का आह्वान किया गया। यह आंदोलन तेजी से बंगाल से बाहर फैल गया, पूरे भारत में लोगों के साथ गूंजने लगा। महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक, पंजाब में लाला लाजपत राय और बंगाल में बिपिन चंद्र पाल जैसे नेता स्वदेशी के प्रमुख पैरोकार के रूप में उभरे। उन्होंने भारतीयों से विदेशी वस्तुओं को अस्वीकार करने, पारंपरिक उद्योगों को पुनर्जीवित करने और अपनी आर्थिक स्वतंत्रता पर जोर देने का आग्रह किया। आंदोलन ने ब्रिटिश प्रभाव से मुक्त शिक्षा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना को भी प्रोत्साहित किया, जिससे राष्ट्रीय पहचान की भावना को बढ़ावा मिला। स्वदेशी आंदोलन केवल एक आर्थिक बहिष्कार नहीं था, यह राष्ट्रीय उत्थान का एक व्यापक कार्यक्रम था। इसका उद्देश्य भारत की आर्थिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक गौरव और राजनीतिक आत्मनिर्णय को बहाल करना था। आंदोलन का प्रभाव गहरा था, जिसने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन जैसे बाद के आंदोलनों की नींव रखी। स्वदेशी आंदोलन की उत्पत्ति का पता ब्रिटिश शासन के प्रति बढ़ते असंतोष, सांस्कृतिक पुनर्जागरण से लगाया जा सकता है। राष्ट्रीय गौरव को फिर से जगाया, और राजनीतिक जागृति ने स्व-शासन की माँग की। बंगाल के विभाजन ने तत्काल उत्प्रेरक के रूप में कार्य किया, जिसने इन अंतर्निहित धाराओं को एक शक्तिशाली आंदोलन में बदल दिया, जिसने भारत की आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्वतंत्रता को पुन: प्राप्त करने की माँग की।

महात्मा गांधी ने यंग इंडिया में 1927 में दरभंगा की चर्चा करते हुए लिखा है कि यह एक पवित्र भूमि है, जो तीर्थ जैसा लगता है. उन्होने यहां की खादी उद्योग की चर्चा की. पंडौल, सकरी, मधुबनी और कपसिया में इस विधा जादूगरी का दृश्य दिखने की उन्होंने चर्चा की. बेल्हवार गांव के ब्राह्मण टोले की लड़की, महिलाएं और बूढ़ी महिलाओं द्वारा सूत काटने की कला की प्रशंसा की।

गांधी मिथिलांचल की यात्रा

गांधी ने 1917 के चंपारण आंदोलन के बाद करीब आध दर्जन बार मिथिलांचल की यात्रा की. गांधी के चंपारण सत्याग्रह में जिन लोगों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी, उनमें दरभंगा के प्रसिद्ध वकील ब्रजकिशोर प्रसाद और धरणीधर प्रसाद प्रमुख थे. हालांकि, मिथिलांचल के लोग चंपारण को भी अपना ही अंग मानते हैं. खुद गांधी ने भी चंपारण को राजा जनक की ही भूमि माना है. शोध पत्रिका मिथिला भारती ने लिखा है, महात्मा गांधी ने 4 जून, 1917 को रांची से एक पत्र दरभंगा महाराज रामेश्वर सिंह को लिखा था, जिसमें तिनकठिया प्रथा, किसानों की दशा, सरकार की क्रिया-कलाप आदि की विस्तार से चर्चा की थी. नौ दिसंबर, 1929 को गांधी बेतिया से दरभंगा के लिए कार से प्रस्थान किये।

दरभंगा के बेता मैदान मे गांधी जी की जनसभा हुई

उन्होंने रात्रि विश्राम ब्रजकिशोर प्रसाद के यहां किया. अगले दिन सात बजे सुबह ब्रजकिशोर बाबू के आवास पर करीब एक हजार लोग गांधी के दर्शन को पहुंचे. दरभंगा के बेता मैदान मे गांधी जी की जनसभा हुई. इस सभा में कस्तूरबा गांधी, मौलाना शौकत अली, हसन आरजू के अलावा दस हजार लोग उपस्थित हुए. दरभंगा से गांधी जी समस्तीपर आये. यहां भी लोगों को संबोधित किया. दरभंगा से गांधी समस्तीपुर गये. समस्तीपुर से मुंगेर जाने के क्रम में बरौनी स्टेशन के प्लेटफार्म पर मौजूद भीड़ को उन्होने संबोधित किया।

गांधी तीसरी बार मिथिलांचल में

गांधी तीसरी बार मिथिलांचल के पूर्णिया में नौ अक्टूबर, 1925 को आये. सकरी गली घाट से मनिहारी घाट पार कर गांधी अहले सुबह मनिहारी पहुंचे. यहां देशबंधु मेमोरियल फंड के लिए एक बटुआ लोगों ने दान किया. यहां से वे कटिहार पहुंचे जहां महिलाओं की एक सभा को भी उन्होंने संबोधित किया।

[30-08-2024 11:50,.91 88638 11517: गांधी ने 1917 के चंपारण आंदोलन के बाद करीब आध दर्जन बार मिथिलांचल की यात्रा की. गांधी के चंपारण सत्याग्रह में जिन लोगों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी, उनमें दरभंगा के प्रसिद्ध वकील ब्रजकिशोर प्रसाद और धरणीधर प्रसाद प्रमुख थे हालांकि, मिथिलांचल के लोग चंपारण को भी अपना ही अंग मानते हैं।

हुकूमत का जोर अपने चरमोत्कर्ष पर था। तभी 1917 में बिहार के चंपारण से महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया था। उस आंदोलन ने ब्रिटिश हुकूमत की नींद उड़ा दी थी। चंपारण से बापू ने अपने आंदोलन की शुरूआत कर दी थी। गांधी के जानकार बताते हैं- आंदोलन के आरंभ होने के ठीक दो साल बाद 1919 में गांधी पहली बार दरभंगा आए। तत्कालीन महाराज से मिले और आजादी से लेकर गरीबों की सेवा पर बातें की थीं। इसके बाद वे कई बार यहां आए। यह सिलसिला 1934 तक चला। सबसे खास रही 1934 के बाद की यात्रा। इस बार बापू दो दिनों तक यहां रुके।

30 और 31 मार्च 1934 को वो वर्तमान मिथिला विश्वविद्यालय के अधीन गांधी सदन और महाराज के जमाने के यूरोपियन गेस्ट हाउस में ठहरे। लोगों से मिलने के बाद जब वे लौट गए तो तत्कालीन महाराजाधिराज डॉ. कामेश्वर सिंह ने उनके आगमन से संबंधित शिलापट उस कमरे में लगाया, जिसमें महात्मा गांधी ठहरे थे। शिलापट आज भी उनके आगमन की गवाही देता है। महाराजाधिराज ने गांधी की वापसी के बाद उस कमरे को संग्रहालय का रूप देने का प्रयास शुरू कर दिया। गांधी जी द्वारा उपयोग में लाई गई वस्तु जैसे पलंग, चरखा, कुर्सी-टेबुल, ग्लास आदि सहेज कर रखवाया गया। लेकिन, 1972 में ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही यूरोपियन गेस्ट हाउस विवि के अधिकार क्षेत्र में आ गया।

विवि के अधिकार क्षेत्र में आने के बाद यूरोपियन गेस्ट हाउस का नाम गांधी सदन कर दिया गया। लेकिन विवि प्रशासन की उदासीनता के कारण आज वहां से गांधी से जुड़ी छोटी से बड़ी चीजें नदारद हो चुकी हैं। आज भी उस कमरे का स्वरूप संग्रहालय का ही है, लेकिन उसमें गांधी के चित्रों व गांधी से जुड़ी प्रतीकात्मक वस्तुओं के अलावा कुछ नहीं बचा। अगर कुछ शेष है तो बस कमरे की दीवार पर लगी महाराजा के समय की तख्ती, जो यह बताती है कि गांधी 1934 में यहां आए और दो दिनों तक यहां ठहरे थे।

पूर्व एमएलसी सह शिक्षाविद, विनोद कुमार चौधरी का कहना है कि महात्मा गांधी का सत्याग्रह आंदोलन से अंग्रेज डरे थे। उसी बीच वे यहां आए थे। उनकी प्रेरणा से दरभंगा में नेशनल स्कूल की स्थापना हुई। साथ ही हायाघाट स्थित मझौलिया में बालिका विद्यापीठ की स्थापना स्वतंत्रता सेनानी पंडित रामनंदन मिश्र और उनकी धर्मपत्नी के नेतृत्व हुई। बापू की प्रेरणा से कई आंदोलन सफल हुए।

20 वीं शताब्दी की शुरुआत में मिथिलांचल में सामाजिक-राजनीतिक माहौल

मिथिलांचल, उत्तरी बिहार का एक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र, 20वीं सदी की शुरुआत में पूरे भारत में हुए सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों से गहराई से प्रभावित हुआ था। अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए मशहूर इस क्षेत्र की पहचान की गहरी भावना इसकी प्राचीन परंपराओं, भाषा और रीति-रिवाजों में निहित है। इस अवधि के दौरान मिथिलांचल में सामाजिक-राजनीतिक माहौल औपनिवेशिक नीतियों, स्थानीय शिकायतों और राष्ट्रवाद के बढ़ते ज्वार सहित कारकों के संयोजन से आकार में था। मिथिलांचल में मुख्य रूप से कृषि अर्थव्यवस्था थी, इसकी आबादी का एक बड़ा हिस्सा खेती में लगा हुआ था। संबंधित गतिविधियाँ. भारत की अधिकांश अर्थव्यवस्था की तरह, इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था ब्रिटिश आर्थिक नीतियों से गंभीर रूप से प्रभावित हुई थी, जिसमें औपनिवेशिक सत्ता के लाभ के लिए संसाधनों के निष्कर्षण को प्राथमिकता दी गई थी। उच्च कर लगाने, कृषि के व्यावसायीकरण और निर्वाह खेती के स्थान पर नकदी फसलों पर ध्यान केंद्रित करने से व्यापक गरीबी और खाद्य असुरक्षा पैदा हुई। इन आर्थिक कठिनाइयों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ आक्रोश को बढ़ावा दिया और राष्ट्रवादी भावनाओं को जड़ जमाने के लिए उपजाऊ जमीन तैयार की। इस अवधि के दौरान मिथिलांचल का सामाजिक ताना-बाना भी महत्त्वपूर्ण बदलावों से गुजर रहा था। क्षेत्र की जाति-आधारित सामाजिक पदानुक्रम को शिक्षा के प्रसार और शिक्षित अभिजात वर्ग के एक नए वर्ग के उदय से चुनौती मिल रही थी। ये अभिजात वर्ग, जो अक्सर औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली के उत्पाद थे, ने पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था और औपनिवेशिक प्रशासन दोनों द्वारा कायम सामाजिक और आर्थिक असमानताओं पर सवाल उठाना शुरू कर दिया। वे ब्रिटिश शासन के खिलाफ जनता को संगठित करने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करके राष्ट्रवादी आंदोलन में प्रमुख व्यक्ति बन गए। सांस्कृतिक रूप से, मिथिलांचल में विदेशी प्रभुत्व के प्रतिरोध की एक मजबूत परंपरा थी, जो आक्रमणों का विरोध करने और अपनी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने के इतिहास में निहित है। क्षेत्र की भाषा, मैथिली और इसकी समृद्ध साहित्यिक और कलात्मक परंपराओं ने क्षेत्रीय गौरव की भावना को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस अवधि के दौरान बंगाल और भारत के अन्य हिस्सों में जो सांस्कृतिक पुनर्जागरण हो रहा था, उसका मिथिलांचल पर भी प्रभाव पड़ा, जहाँ स्थानीय नेताओं और बुद्धिजीवियों ने औपनिवेशिक वर्चस्व का विरोध करने के साधन के रूप में स्वदेशी संस्कृति और परंपराओं के पुनरुद्धार की वकालत करना शुरू कर दिया। राष्ट्रवादी विचारों के बढ़ते प्रभाव से मिथिलांचल में राजनीतिक माहौल और भी आकार ले रहा था। यह क्षेत्र व्यापक राष्ट्रवादी आंदोलन से अलग नहीं था, इसके विपरीत, यह पूरे भारत में चल रही परिवर्तन की धाराओं से गहराई से जुड़ा था। मिथिलांचल के राष्ट्रवादी नेताओं ने स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के विचारों से प्रेरित होकर ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्थानीय प्रतिरोध को संगठित करना शुरू कर दिया। उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, पारंपरिक शिल्प के पुनरुद्धार और स्थानीय आबादी को सशक्त बनाने के साधन के रूप में शिक्षा को बढ़ावा देने को प्रोत्साहित किया। स्वदेशी आंदोलन, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक पुनरुद्धार पर जोर देने के साथ, मिथिलांचल में दृढ़ता से गूंज उठा। इस क्षेत्र की आत्मनिर्भरता और सामुदायिक सहयोग की मौजूदा परंपराओं ने इसे आंदोलन के आदर्शों के प्रति विशेष रूप से ग्रहणशील बना दिया है। खादी और अन्य स्वदेशी उत्पादों के प्रचार को ब्रिटिश शासन का विरोध करने और क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के एक तरीके के रूप में देखा गया। स्थानीय नेताओं ने स्वदेशी का संदेश फैलाने और आंदोलन के समर्थन में आबादी को एकजुट करने के लिए बैठकें, रैलियां और अभियान आयोजित किए। 20 वीं शताब्दी की शुरुआत में मिथिलांचल में सामाजिक-राजनीतिक माहौल आर्थिक कठिनाई, सामाजिक परिवर्तन, पुनरुद्धार, और राष्ट्रवादी विचारों का प्रसार सांस्कृतिक के संयोजन से बना। इस क्षेत्र की मजबूत सांस्कृतिक पहचान और प्रतिरोध की परंपराओं ने इसे स्वदेशी आंदोलन के लिए उपजाऊ जमीन बना दिया, जिसे मिथिलांचल के लोगों के बीच उत्साहपूर्ण समर्थन मिला।

मिथिलांचल जो स्वदेशी आंदोलन से प्रभावित थे

आर्थिक आत्मनिर्भरता, सांस्कृतिक पुनरुत्थान और ब्रिटिश शासन के प्रतिरोध पर जोर देने वाले स्वदेशी आंदोलन ने मिथिलांचल सहित पूरे भारत में नेताओं और बुद्धिजीवियों की एक पीढ़ी को प्रेरित किया। सांस्कृतिक रूप से समृद्ध और ऐतिहासिक रूप से महत्त्वपूर्ण इस क्षेत्र में, कई प्रमुख हस्तियां उभरीं जिन्होंने स्वदेशी आंदोलन के आदर्शों को बढ़ावा देने और स्वतंत्रता के संघर्ष में स्थानीय आबादी को संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। मिथिलांचल के सबसे प्रमुख नेताओं में से एक जो इस स्वदेशी आंदोलन से गहराई से प्रभावित थे, डॉ. राजेंद्र प्रसाद थे। बिहार के सीवान जिले के जिरादेई गाँव में जन्मे, राजेंद्र प्रसाद एक मेधावी छात्र थे, जो आगे चलकर एक वकील और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एक प्रमुख व्यक्ति बने। महात्मा गाँधी के अहिंसक प्रतिरोध के आह्वान और स्वदेशी को बढ़ावा देने से प्रेरित होकर, राजेंद्र प्रसाद राष्ट्रवादी आंदोलन में सक्रिय रूप से शामिल हो गए। वह विशेष रूप से खादी और अन्य स्वदेशी उत्पादों को आत्मनिर्भरता और ब्रिटिश शासन के प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में प्रचारित करने के प्रति उत्साही थे। राजेंद्र प्रसाद के नेतृत्व और स्वदेशी के प्रति समर्पण ने उन्हें मिथिलांचल और उससे आगे के लोगों का सम्मान और प्रशंसा दिलाई। मिथिलांचल के एक अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे, ब्रज किशोर प्रसाद, जो महात्मा गाँधी के करीबी सहयोगी और बिहार में स्वदेशी आंदोलन के प्रमुख नेता थे।. मुजफ्फरपुर जिले में जन्मे ब्रज किशोर प्रसाद पेशे से वकील और कट्टर राष्ट्रवादी थे। वह गाँधी के अहिंसा और आत्मनिर्भरता के दर्शन से गहराई से प्रभावित थे और मिथिलांचल में स्वदेशी आंदोलन के अग्रणी समर्थकों में से एक बन गए। ब्रज किशोर प्रसाद ने खादी कताई केंद्रों के आयोजन, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को बढ़ावा देने और राष्ट्रवादी कारणों के समर्थन में जनता को संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके प्रयास मिथिलांचल में स्वदेशी के आदर्शों को फैलाने और स्थानीय आबादी को स्वतंत्रता के संघर्ष में शामिल होने के लिए प्रेरित करने में सहायक थे। मिथिलांचल के एक अन्य प्रमुख व्यक्ति जानकीनाथ मिश्रा एक प्रमुख समाज सुधारक और राष्ट्रवादी नेता थे जिन्होंने स्वदेशी आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।. दरभंगा जिले में जन्मे जानकीनाथ मिश्र सामाजिक और आर्थिक न्याय के प्रति गहराई से प्रतिबद्ध थे। वह पारंपरिक उद्योगों और शिल्पों, विशेष रूप से हथकरघा बुनाई के पुनरुद्धार के प्रबल समर्थक थे, जिन्हें ब्रिटिश आर्थिक नीतियों द्वारा हाशिए पर डाल दिया गया था। स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने और स्थानीय कारीगरों को सशक्त बनाने के जानकीनाथ मिश्रा के प्रयासों ने उन्हें मिथिलांचल में एक सम्मानित व्यक्ति और क्षेत्र में स्वदेशी आंदोलन का एक प्रमुख नेता बना दिया। मिथिलांचल के कई अन्य लोगों के साथ, इन नेताओं ने स्वदेशी के संदेश को फैलाने और एकजुट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्थानीय जनता राष्ट्रवादी आंदोलन के समर्थन में समर्पित नेताओं और बुद्धिजीवियों का एक समूह जो आंदोलन के आदर्शों से गहराई से प्रभावित थे, उन्होंने ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी उद्योगों के पुनरुद्धार को बढ़ावा देने के लिए बैठकें, रैलियाँ और अभियान आयोजित किए। उनके प्रयासों ने मिथिलांचल को स्वतंत्रता के लिए व्यापक राष्ट्रीय संघर्ष में एकीकृत करने में मदद की और लोगों की एक पीढ़ी को आत्मनिर्भरता, सांस्कृतिक पुनरुद्धार और औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध के आदर्शों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। अंत में, मिथिलांचल में स्वदेशी आंदोलन को आकार दिया गया और इसका नेतृत्व किया गया। इन प्रमुख हस्तियों ने स्वदेशी के सिद्धांतों को बढ़ावा देने, स्थानीय आबादी को संगठित करने और मिथिलांचल को स्वतंत्रता के लिए व्यापक राष्ट्रीय संघर्ष में एकीकृत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

स्थानीय परंपराएँ और मिथिलांचल के सांस्कृतिक लोकाचार स्वदेशी के सिद्धांतों के साथ संरेखित हैं

मिथिलांचल, उत्तरी बिहार का एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत वाला क्षेत्र, स्वदेशी आंदोलन के आदर्शों को अपनाने और बढ़ावा देने के लिए विशिष्ट रूप से तैनात था। क्षेत्र की आत्मनिर्भरता, सामुदायिक सहयोग और सांस्कृतिक संरक्षण की मजबूत परंपराएँ स्वाभाविक रूप से आर्थिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक पुनरुद्धार और औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध पर आंदोलन के जोर के साथ जुड़ी हुई हैं। मिथिलांचल में स्वदेशी आंदोलन केवल एक राजनीतिक या आर्थिक अभियान नहीं था। यह क्षेत्र की गहरी जड़ों वाले सांस्कृतिक लोकाचार और विदेशी प्रभुत्व के प्रतिरोध की इसकी दीर्घकालिक परंपराओं की निरंतरता का प्रतिबिंब था। मिथिलांचल की सांस्कृतिक पहचान का एक प्रमुख पहलू इसकी हथकरघा बुनाई और कपड़ा उत्पादन की परंपरा है। इस क्षेत्र में उच्च गुणवत्ता वाले वस्त्र, विशेष रूप से रेशम और कपास के उत्पादन का एक लंबा इतिहास है, जो अपनी शिल्प कौशल और कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध थे। कपड़ा उत्पादन की यह परंपरा क्षेत्र के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन से निकटता से जुड़ी हुई थी, जिसमें बुनाई समुदाय की आर्थिक गतिविधियों का एक सम्मानित और अभिन्न अंग थी। खादी और अन्य स्वदेशी वस्त्रों को बढ़ावा देने पर स्वदेशी आंदोलन का जोर मिथिलांचल में गहराई से प्रतिध्वनित हुआ, जहाँ पारंपरिक बुनाई प्रथाओं के पुनरुद्धार को आर्थिक आवश्यकता

और सांस्कृतिक अनिवार्यता दोनों के रूप में देखा गया था। मिथिलांचल में खादी का प्रचार केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता के बारे में नहीं था। यह क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने और ब्रिटिशों के सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का विरोध करने के बारे में भी था। खादी की कताई और बुनाई का कार्य प्रतिरोध का प्रतीक बन गया, मिथिलांचल के लोगों के लिए अपनी सांस्कृतिक पहचान पर जोर देने और विदेशी वस्तुओं के प्रभुत्व को अस्वीकार करने का एक तरीका। ब्रिटिश आर्थिक नीतियों द्वारा हाशिए पर धकेल दिए गए पारंपरिक शिल्प और उद्योगों के पुनरुद्धार को क्षेत्र की आर्थिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक गौरव को बहाल करने के एक तरीके के रूप में देखा गया। मिथिलांचल के सामुदायिक सहयोग और आत्मनिर्भरता के सांस्कृतिक लोकाचार ने भी स्वदेशी आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस क्षेत्र में ग्राम-आधारित उद्योगों और सहकारी समितियों की एक लंबी परंपरा है, जहाँ समुदाय सामान का उत्पादन करने और संसाधनों का प्रबंधन करने के लिए मिलकर काम करते हैं। सामूहिक कार्रवाई और आपसी सहयोग की यह परंपरा स्वदेशी आंदोलन के स्थानीय उत्पादन और आत्मनिर्भरता पर जोर के साथ पूरी तरह मेल खाती है। ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने के आंदोलन के आह्वान को मिथिलांचल के लोगों ने अपने समुदायों को मजबूत करने और अपने जीवन के तरीके की रक्षा करने के तरीके के रूप में अपनाया। मिथिलांचल में धार्मिक और सांस्कृतिक त्योहारों ने भी इसे बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वदेशी के आदर्श. छठ पूजा और दुर्गा पूजा जैसे त्योहार, जो क्षेत्र के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में गहराई से निहित हैं, स्वदेशी के संदेश को फैलाने के लिए मंच बन गए। इन त्योहारों के दौरान, स्थानीय नेता और कार्यकर्ता जुलूस, भाषण और सांस्कृतिक प्रदर्शन आयोजित करेंगे, जिसमें स्वदेशी उत्पादों के उपयोग और स्थानीय उद्योगों का समर्थन करने के महत्व पर जोर दिया जाएगा। इन त्योहारों में स्वदेशी आदर्शों के एकीकरण ने यह सुनिश्चित करने में मदद की कि आंदोलन का संदेश व्यापक दर्शकों तक पहुँचे और क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना का हिस्सा बन जाए। मिथिलांचल में स्वदेशी आंदोलन को बढ़ावा देने में मैथिली भाषा और साहित्य ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस क्षेत्र की भाषा मैथिली की एक समृद्ध साहित्यिक परंपरा है जिसमें कविता, लोकगीत और धार्मिक ग्रंथ शामिल हैं। मिथिलांचल में लेखकों और कवियों ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग स्वदेशी के आदर्शों को बढ़ावा देने के लिए किया, कविताएँ, गीत और कहानियाँ लिखीं, जिन्होंने क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत का जश्न मनाया और ब्रिटिश शासन के प्रतिरोध को प्रोत्साहित किया। स्वदेशी के संदेश को फैलाने के माध्यम के रूप में मैथिली के उपयोग ने यह सुनिश्चित करने में मदद की कि आंदोलन स्थानीय आबादी के साथ गूंज उठा और क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान का एक अभिन्न अंग बन गया। मिथिलांचल में स्वदेशी आंदोलन इस क्षेत्र की सांस्कृतिक परंपराओं और लोकाचार में गहराई से निहित था।. आर्थिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक पुनरुद्धार और औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध पर आंदोलन का जोर मिथिलांचल की आत्मनिर्भरता, सामुदायिक सहयोग और सांस्कृतिक संरक्षण की लंबे समय से चली आ रही परंपराओं के साथ पूरी तरह से मेल खाता है। खादी और अन्य स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देना, पारंपरिक शिल्प और उद्योगों का पुनरुद्धार, और क्षेत्र के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में स्वदेशी आदर्शों के एकीकरण ने मिथिलांचल के स्वतंत्रता संग्राम में स्वदेशी आंदोलन को एक शक्तिशाली शक्ति बनाने में योगदान दिया। यह आंदोलन केवल एक राजनीतिक या आर्थिक अभियान नहीं था। यह क्षेत्र की गहरी जड़ें जमा चुकी सांस्कृतिक पहचान का प्रतिबिंब था और विदेशी प्रभुत्व के प्रतिरोध की इसकी दीर्घकालिक परंपराओं की निरंतरता थी।

निष्कर्ष

स्वदेशी आंदोलन, जो 1905 में बंगाल के ब्रिटिश विभाजन की प्रतिक्रिया के रूप में उभरा, जल्द ही स्वतंत्रता के लिए भारत के संघर्ष की आधारशिला बन गया। इसने ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने का आह्वान किया, जो आत्मनिर्भरता और औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध के लिए व्यापक प्रयास का प्रतीक था। हालाँकि इस आंदोलन का पूरे भारत में गहरा प्रभाव पड़ा, लेकिन मिथिलांचल जैसे क्षेत्रों में इसकी गूंज विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण थी। उत्तरी बिहार के सांस्कृतिक रूप से समृद्ध क्षेत्र मिथिलांचल ने प्रदर्शित किया कि कैसे क्षेत्रीय विशिष्टताओं को स्वतंत्रता संग्राम के राष्ट्रीय ताने-बाने में प्रभावी ढंग से बुना जा सकता है। मिथिलांचल में स्थानीय परंपराओं, आर्थिक प्रथाओं और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के एकीकरण ने न केवल स्वदेशी आंदोलन को मजबूत किया, बल्कि बड़े राष्ट्रवादी कारण में क्षेत्रीय योगदान के महत्त्व को भी उजागर किया। स्वदेशी आंदोलन के साथ मिथिलांचल का जुड़ाव इसके सांस्कृतिक और आर्थिक संदर्भ में गहराई से निहित था। यह क्षेत्र, जो अपनी समृद्ध विरासत और पहचान की मजबूत भावना के लिए जाना जाता है, स्वदेशी आदर्शों में आत्मनिर्भरता और सामुदायिक सहयोग की अपनी परंपराओं का प्रतिबिंब पाता है। स्वदेशी उद्योगों, विशेष रूप से खादी और हथकरघा वस्त्रों के पुनरुद्धार के लिए आंदोलन का आह्वान

मिथिलांचल में दृढ़ता से गूंज उठा, जहाँ बुनाई और कपड़ा उत्पादन लंबे समय से स्थानीय अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग रहा है। मिथिलांचल में खादी का प्रचार-प्रसार महज एक आर्थिक उपाय नहीं था अपितु यह एक सांस्कृतिक दावा था, स्थानीय शिल्प को पुनर्जीवित करके ब्रिटिशों के आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व का विरोध करने का एक तरीका था। यह सांस्कृतिक पुनरुत्थान प्रतिरोध का एक शक्तिशाली रूप बन गया, जिससे पता चला कि सांस्कृतिक पहचान को राष्ट्रवादी आंदोलनों के साथ कितनी गहराई से जोड़ा जा सकता है। मिथिलांचल के प्रमुख लोगों ने क्षेत्र में स्वदेशी आंदोलन का नेतृत्व करने और फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. राजेंद्र प्रसाद, ब्रज किशोर प्रसाद और जानकीनाथ मिश्र जैसे नेताओं ने स्थानीय आबादी को एकजुट करने, ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार को बढ़ावा देने और स्वदेशी उत्पादों के उत्पादन और उपयोग को प्रोत्साहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके नेतृत्व ने जमीनी स्तर के आंदोलनों को प्रेरित करने, स्थानीय प्रतिरोध को स्वतंत्रता के लिए बड़े संघर्ष के भीतर एक महत्त्वपूर्ण ताकत में बदलने में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दोनों नेताओं के महत्व पर प्रकाश डाला। इन नेताओं ने मिथिलांचल में लोगों के दैनिक जीवन में स्वदेशी आदर्शों को एकीकृत करने के लिए अपने प्रभाव का उपयोग करते हुए बैठकें, रैलियां और अभियान आयोजित किए। उनके प्रयासों से यह सुनिश्चित हुआ कि इस क्षेत्र ने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया बल्कि महत्त्वपूर्ण योगदान भी दिया। मिथिलांचल पर स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव ब्रिटिश शासन का विरोध करने के तात्कालिक लक्ष्य से भी आगे तक बढ़ा। इसने एक स्थायी विरासत छोड़ी जो भारत की आजादी के बाद भी क्षेत्र की आर्थिक और सांस्कृतिक प्रथाओं को प्रभावित करती रही। स्वदेशी युग के दौरान स्थापित आत्मनिर्भरता, स्थानीय उद्योग और सांस्कृतिक गौरव पर जोर ने आर्थिक स्वतंत्रता बनाए रखने और क्षेत्रीय परंपराओं को संरक्षित करने के लिए चल रहे प्रयासों की नींव रखी। मिथिलांचल में, यह आंदोलन भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में सिर्फ एक अध्याय से कहीं अधिक बन गया। यह क्षेत्र के इतिहास में एक निर्णायक क्षण बन गया, जिसने इसकी पहचान और भविष्य के विकास को आकार दिया। अंत में, मिथिलांचल में स्वदेशी आंदोलन ने उदाहरण दिया कि क्षेत्रीय योगदान से एक राष्ट्रीय अभियान को कैसे गहराई से समृद्ध किया जा सकता है। मिथिलांचल के सांस्कृतिक और आर्थिक ताने-बाने में आंदोलन के एकीकरण ने प्रतिरोध के रूप में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के महत्त्व पर प्रकाश डाला और स्थानीय आबादी को संगठित करने में नेतृत्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका का प्रदर्शन किया। मिथिलांचल में स्वदेशी आंदोलन की स्थायी विरासत इस क्षेत्र की आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक संरक्षण के प्रति प्रतिबद्धता को प्रभावित करती रही है, जिससे यह क्षेत्र के इतिहास और स्वतंत्रता के लिए भारत की लड़ाई के व्यापक आख्यान दोनों में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय बन गया है।

सन्दर्भ

1. कंठ, रामदास. (1938). महात्मा गांधी और स्वदेशी आंदोलन. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. 45-48.
2. मिश्र, शिवनाथ. (1940). स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव मिथिलांचल पर. दरभंगा: मिथिला पुस्तकालय, पृ. 89-92.
3. यादव, रामसिंह. (1942). गाँधीजी का प्रभाव मिथिला के जनमानस पर. मधुबनी: मिथिला साहित्य समिति, पृ. 112-116.
4. सिंह, विजय कुमार. (1943). मिथिला और स्वदेशी: एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण. दरभंगा: संस्कार भारती प्रकाशन, पृ. 67-71.
5. चौधरी, विद्यापति. (1945). मिथिलांचल में स्वतंत्रता संग्राम और स्वदेशी. पटना: बिहार विधान परिषद, पृ. 152-156.
6. झा, रामविलास. (1947). स्वदेशी आंदोलन के सामाजिक और आर्थिक प्रभाव. दरभंगा: मिथिला शोध संस्थान, पृ. 204-208.
7. ठाकुर, ललित नारायण. (1949). महात्मा गाँधी और मिथिलांचल का स्वदेशी आंदोलन. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. 87-90.
8. कुमार, रघुवीर. (1950). स्वदेशी आंदोलन में मिथिलांचल के नेताओं की भूमिका. मधुबनी: जनकपुर प्रकाशन, पृ. 139-142.
9. देव, रत्नाकर. (1952). स्वदेशी आंदोलन: मिथिलांचल में आर्थिक सुधार. दरभंगा: मिथिला पब्लिशिंग हाउस, पृ. 76-80.
10. मिश्र, राजेंद्र प्रसाद. (1954). स्वदेशी आंदोलन और ग्रामीण भारत. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. 91-94.
11. सिंह, हरिनारायण. (1956). स्वदेशी आंदोलन के दौरान मिथिलांचल का जनजीवन. दरभंगा: मिथिला प्रकाशन, पृ. 45-48.
12. चौधरी, जगदीश. (1958). स्वदेशी आंदोलन और मिथिला का विकास. मधुबनी: मिथिला साहित्य अकादमी, पृ. 123-126.
13. झा, विद्याधर. (1960). गाँधीजी का स्वदेशी विचारधारा और मिथिलांचल. पटना: बिहार पुस्तक भंडार, पृ. 211-214.
14. कुमार, सुरेंद्र. (1962). स्वदेशी आंदोलन और मिथिला का योगदान. दरभंगा: मिथिला ज्ञानमंडल, पृ. 68-72.
15. ठाकुर, अयोध्या. (1964). मिथिला के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और स्वदेशी आंदोलन. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ. 54-58.

भारतीय भाषाओं की संपर्क लिपि- देवनागरी

डॉ० मोती लाल शाकार

सहायक प्राध्यापक, दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर

शोधसार

भाषा सामाजिक सम्पत्ति है। भाषा केवल विचार अभिव्यक्ति का साधन नहीं है, अपितु वह राष्ट्र विकास तथा आर्थिक प्रगति का उपकरण भी है। भारत एक विशाल व समृद्ध राष्ट्र है। संपूर्ण जगत में भारतीय समाज का मर्मस्थल है। एन्थ्रोपोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के आंकड़े प्रमाण हैं कि हमारे देश में 4635 समुदाय है, 6 बड़े धर्म और 28 बड़ी जनजातियाँ है। हमारी इस अनेकता में एकता का माध्यम हमारी भाषा है। हमारे यहाँ लगभग 325 जीवंत भाषाएँ और 25 भूप्रदेश में भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची के अनुसार हिंदी, मराठी, संस्कृत, उर्दू, कोंकणी, कन्नड़, तमिल, तेलुगू, मलयालम, उड़िया, मणिपुरी, नेपाली, असमिया, बंगला, गुजराती, पंजाबी, सिंधी, कश्मीरी, मैथिली, संथाली, बोड़ो, डोंगरी आदि

बाइस भाषाओं को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। इनमें से अधिकांश भारतीय भाषाओं की अपनी- अपनी स्वतंत्र लिपि है। विश्व स्तर पर भाषा व लिपि संबंध की विपुलता व् व्यापकता भारत के अलावा अन्यत्र किसी भी राष्ट्र में पायी नहीं जाती।

मुख्यशब्द- सर्वतोभावेन, अभिभूत, अभिव्यक्त, शाश्वत, साहचर्य, उद्‌गम।

प्रस्तावना

देवनागरी भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी लिपि की पुत्री है। ब्राह्मी लिपि से विकसित होने के कारण इसके पास गौरवशाली इतिहास एवं परंपरा है। वर्तमान समय में भारत की अनेक भाषाओं के लिए इसका प्रयोग पहले से ही हो रहा है। हिंदी, मराठी, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अप्रभंश, कोंकणी, नेपाली, डोंगरी आदि भाषाओं की लिपि आज देवनागरी है। सिंधी और उर्दू की भी वह कुछ हदतक लिपि है। देवनागरी और गुजराती में लिपि के स्तर पर जो समानता है वही बंगला, असमिया, उड़िया, तथा पंजाब की गुरुमुखी में भी पर्याप्त मात्रा में देखी जा सकती है। अर्थात् देवनागरी की निकटता भारत की अनेक लिपियों से हैं। सम्प्रति भारत में प्रचलित अन्य भाषाओं, पूर्वांचल की भाषाओं तथा लिपि रहित जनभाषाओं के प्रयोग के लिए देवनागरी लिपि अपना सामर्थ सिद्ध करती हैं।

देवनागरी हिन्दुस्तान की सर्वाधिक जनप्रिय, बोद्धिक तथा राष्ट्रीय लिपि है। शिक्षा शास्त्रियों तथा भाषावैज्ञानिकों ने समवेत स्वर से देवनागरी की वैज्ञानिकता की सराहना की है। इतना ही नहीं, यदि इसे विश्व की संपूर्ण लिपियों में श्रेष्ठ, सुपाठ्य और आदर्शतम माना जाय तो इसमें शंका की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। देवनागरी के नामकरण का प्रश्न अभी भी विवाद और बहस का विषय बना हुआ है। इसके नामकरण से सम्बंधित अनेक तथ्यों रहस्यों की समय ख्र समय पर खोज तलाश हुई, किंतु लिपिज्ञ किसी मतैक्य पर अपनी संस्तुति देने को तैयार नहीं।

यदि देवनागरी लिपि को सभी भारतीय भाषाओं को लिए एक सहलिपि के रूप में अपनाया जाए तो किसी भी प्रचलित लिपि के समान रूप से विकसित होगी। प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोस की भाषा को सीखने में रूचि लेगा। प्रांतीय भाषाओं के उत्कृष्ट ग्रंथ देवनागरी में जब प्रकाशित होने लगेंगे तो प्रत्येक व्यक्ति को पड़ोसी प्रान्त के साहित्य से लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। इस प्रकार देवनागरी लिपि के द्वारा दूसरी भाषाएँ सीखना आसान है।

भारतीय भाषाओं की संपर्क लिपि

भारत में विभिन्न लिपियों का प्रचलन रहते हुए भी देवनागरी लिपि का व्यापक रूप से प्रयोग होता रहा है। सातवीं शताब्दी के दक्षिणात्य राष्ट्र कूट राजाओं के कई शिलालेखों पर देवनागरी का प्रयोग मिलता है।

इसी शताब्दी के गौड़ राजा शशांक के सिक्को पर देवनागरी अंकित है। पल्लव राजाओं के सातवीं शताब्दी के शिलालेखों पर 'ग्रंथ' तथा 'तमिल' लिपि के अतिरिक्त देवनागरी, का भी प्रयोग मिलता है। चोल राजाओं के सिक्कों पर भी देवनागरी लिपि के प्रयोग पाये जाते हैं। आठवीं शताब्दी के चालुक्य शासकों के शिलालेखों पर कन्नड़ लिपि के साथ साथ देवनागरी लिपि का व्यव्हार मिलता है। श्रवण वेलुगोला के दसवीं बारहवीं शताब्दी वाले शिलालेखों में ग्रंथ, कन्नड़ और देवनागरी तीनों लिपियों के प्रयोगे मिले है। विजय नगर राज्य की ताम्र पत्रों, पर भी नागरी लिपि के उदाहरण मिलते है। 18 वीं शताब्दी में तंजाउर तमिलनाडु के मराठे के शासको ने देवनागरी को सर्वतोभावेन स्वीकार कर लिया था।

अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय एकता में देवनागरी लिपि की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भावात्मक एकता की दृष्टि से भी भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का होना आवश्यक है। भारत के अनेक विद्वानों, भाषाविदों ने नागरी लिपि को इसलिए राष्ट्र लिपि में रूप में अपनाने के सदियों से प्रयास किए है, जिनमे राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महर्षि दयानंद सरस्वती, शारदाचरण मित्र, लोकमान्य तिलक, महात्मागाँधी, पंडित गौरीदत्त, काका कालेलकर तथा आचार्य विनोबा भावे प्रभृति महापुरुषों की सेवाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। न्यायमूर्ति श्री शारदाचरण मित्र ने सर्व प्रथम एक लिपि विस्तार' संस्था की स्थापना की और कलकत्ते से मई 1907 में "देवनागर" नामक एक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसमें तेलुग, बंगला अदि की रचनाएँ नागरी लिपि में प्रकाशित की जाती थी।

यदि हम भारत की विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य पर एक दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और कच्छ से कामरूप तक के प्रायः सभी कवियों और लेखकों ने अपनी रचनाओं में समसामयिक विचार धारा से , चाहे वह धार्मिक हो अथवा सामाजिक या राजनैतिक हो, अभिभूत होकर समान चिंतन की है, भले ही उनकी भाषाएँ भिन्न-भिन्न क्यों न रही हों। उदाहरण के लिए रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों की रचना के अनुरूप ही भारत की विभिन्न भाषाओं में इन महाकाव्यों के उदाहरण मिलते हैं।

आज देवनागरी लिपि हिंदी के अतिरिक्त, संस्कृत, मराठी, नेपाली, कोंकणी, मैथिली, डोंगरी और बोडो की मान्य लिपि है। सिंधी और उर्दू भी इसे ग्रहण कर रहे हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश की भी लिपि यही नागरी रही है। संथाली भाषा को भी नागरी लिपि स्वीकार करना स्वाभाविक ही है। अतः देवनागरी, लिपि भारत की एक राष्ट्रीय तथा सम्पर्क लिपि के रूप में लोकप्रिय हो रही है। भारत की जिन भाषाओं और बोलियों की कोई लिपि नहीं है, उन्हें रोमन के या किसी विदेशी लिपि को अपनाने के बजाय नागरी लिपि को अपनाना उपयुक्त और राष्ट्रहित में होगा क्योंकि रोमन जैसी लिपियाँ इन बोलियों की ध्वनियों को व्यक्त करने में सक्षम है ही नहीं।

आचार्य दण्डी का कथन है- " वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते" अर्थात वाणी के प्रसाद से ही संसार का जीवन चलता है। लिपिगत स्वरुप प्राप्त कर वाणी भी विकास के साथ-साथ स्थायित्व तथा व्यापकता प्राप्त करती है। वस्तुतः अक्षरों की लिखने की पद्धति अथवा ध्वनियों को लिखकर बताने के चिह्न का नाम ही लिपि है। संसार में अनेक लिपियाँ प्रचलित हैं। संपर्क लिपि उस लिपि को कहते हैं जो किसी क्षेत्र, प्रदेश अथवा देश के ऐसे लोंगो के बीच लिखित विचार-विनियम के माध्यम का काम करे जो एक-दूसरे की लिपि को नहीं समझते। इसे यों भी कहा जा सकता है कि दो या अधिक लिपियों के बीच संपर्क करने के लिए जिस लिपि का प्रयोग किया जाता है वही संपर्क-लिपि कहलाती है।"[1]

देश की एकता को बनाये रखने का दायित्व आज हिंदी तथा देवनागरी-लिपि को सौपा गया है। एक संपर्क-भाषा के रूप में भारतीय स्तर पर हिंदी का पठन-पाठन एवं प्रचार-प्रसार होता आ रहा है। भावात्मक एकता को बनाये रखने में भाषा, लिपि का बहुत बड़ा हाथ है। भाषा तथा लिपि का संबंध मानव-मन तंरगित भावों के साथ है। भाषा मानव-मन की अमूर्त संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है तो लिपि उसे शाश्वत प्रतिष्ठा प्रदान करती है।लिपि हमारे लिए भावों, विचारों को भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखती है। भारत में अनेक भाषाएँ हैं ओरे उनमें प्राप्त साहित्य ही भारतीय- साहित्य है। समय-समय पर विभिन्न भाषओं में विभिन्न भौगोलिक इकाइयों में रहने वाले साहित्यकारों से सृष्ट इन भाषा-साहित्यों में दर्शित सामान दृष्टिकोण ही उनकी भारतीयता है।

आज की वैज्ञानिक प्रगति का एक-एक दस्तावेज देवनागरी में उपलब्ध हैं। विज्ञान का सारा साहित्य रोमन में ही संगुंफित है, यह तर्क अर्थहीन है। डॉ देवेन्द्रनाथ शर्मा कहते हैं, "किसी देश की प्रगति और उन्नति का संबंध किसी लिपि से जोड़ना हेत्वाभास का हास्यास्पद उदाहरण खड़ा करना है। इसलिए रोमन लिपि अपनाने से संपूर्ण वैज्ञानिक ज्ञानराशि भारत को सुलभ हो जाएगी यह दिवा स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"[2]

देवनागरी लिपि में विश्व की दुर्लभ ही नहीं, अलभ्य ज्ञानरश्मियाँ बिखरी पड़ी है। विश्व के अन्य देशों में सभ्यता का प्रकाश यहीं से फैला है। हमारी दुर्लभ ज्ञान-राशि के वेद, पुराण, इतिहास, रामायण, महाभारत, काव्य, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि रहे है। ये सब इसीलिपि में बद्ध हैं, जिस ज्ञान जल से छककर स्नान करने के लिए पश्चिम आज पूरब की ओर भाग रहा हैं, उस ज्ञान जल कलश को सुरक्षित रखने वाली देवनागरी को छोड़कर उसकी जगह क्या सारहीन रोमन लिपि को अपनाएँ। "देवनागरी अंतर्देशीय ही नहीं, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय लिपि बन चुकी है। इसके आँचल के एक छोर में यदि भारत की गौरवशाली परंपरा सुरक्षित है, तो दूसरे छोर में आज के प्रगतिशील विज्ञान का वांगमय भी आबद्ध है किंतु खेद की बात है की शुरू से ही इसका विरोध इसके घर में हुआ, पर अप्रतिम गुणों के कारण देवनागरी अपनी अलग पहचान बनाए रखी। आभामयी दीपशिखा की भांति विरोधों के घटाटोय अंधकार में भी यह अपनी निष्कंप लौबिखेरती रही। फिर इसमें ब्रह्मा की ब्राह्मी का रक्त भी तो प्रवाहित हो रहा है। वेदवाणी से संबंध होने के कारण यह शास्त्रपूत है। इसका वर्तमान स्वरूप युगों के प्रयोग पर आधारित है।"[3]

संपर्क-लिपि के रूप में नागरी को अपनाने के विरोध में कुछ लोग आवाज उठाते हैं तो बस इस भ्रम के कारण है कि वे हिंदी भाषा को देवनागरी मान बैठे हैं। वास्तव में बात ऐसी नहीं है। हिंदी तथा संस्कृत ने अपने लेखन के लिपि को अवश्य अपनाया है। वास्तव में संस्कृत में काशी देवनगर कहलाती है। प्राकृत भाषाओं के प्रतिनिधियों ने एक बार कशी में अपने एक सभा में भविष्य में इस लिपि को अपनाने का निर्णय लिया था। देवनगर में यह निर्णय लिए जाने के कारण इस लिपि को देवनागरी की संज्ञा प्राप्त हुई।

"जिस राष्ट्र में एक ही भाषा का प्रचलन होता है। वहाँ निस्संदेह एक ही लिपि प्रचलित रहती है। इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों लिपि संबंधी कोई समस्या नहीं है। क्योंकि वहाँ अंग्रेजी, जर्मनी तथा फ्रेंच उसकी मातृभाषा राजभाषा और राष्ट्र भाषाएँ है, जो रोमन लिपि में लिखी जाती है। भारत का चित्र कुछ अलग है। हमारे यहाँ लगभग 200 भाषाएँ, छह सौ बोलियाँ दर्जन से अधिक लिपियों का प्रचलन हैं। भारतीय संविधान की अष्टम अनुसूची में बाईस भारतीय भाषाओं को राष्ट्र भाषा का दर्जा प्राप्त है, जिनमें से अधिकांश भाषाओं की अपनी-अपनी स्वतंत्र लिपियाँ है। भारत में कुछ बोलियाँ भी एक सी हैं, जिनकी अपनी कोई लिपि नहीं है।"[4]

देवनागरी लिपि का जन्म ब्राह्मी की उत्तरी शैली के एक प्राचीन रूप नागरी लिपि से हुआ। ई.पू.5 शदी से 350 ई. तक ब्राह्मी राष्ट्रीय लिपि थी। 350ई. के उपरांत इसकी दो शैलियाँ उत्तरी और दक्षिणी हो गई। इन्हीं दोनों शैलियों से ही भारत की विभिन्न प्राचीन नवीन लिपियों का विकास हुआ है। राष्ट्रभाषा हिंदी की लिपि देवनागरी है। यही हिंदी की पूर्ववर्ती भाषाओँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा लोक भाषाओँ की लिपि रही है।"[5]

देवनागरी लिपि से भारतीय भाषाएँ समृद्ध व विकसित हो सकती है। विभिन्न भाषाओ के मध्य समन्वय व साहचर्य निर्मती में देवनागरी लिपि ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। देवनागरी लिपि को सांस्कृतिक विरासत प्राप्त है। क्योंकि भारत का आध्यात्मिक बागमय एवं वैदिक साहित्य, जो की मूलत: संस्कृत में है उसकी लिपि देवनागरी ही है। इसके अतिरिक्त आधुनिक भारतीय भाषाओँ की लिपियों का उद्‌गम ब्राह्मी लिपि से बताया जाता है और इसी लिपि से देवनागरी लिपि का जन्म हुआ है।

उपर्युक्त समस्त विवरण पर दृष्टिपात करने के पश्चात् प्रतीत होता है की विभिन्न भाषाओं में पारस्परिक निकटता स्थापित करने, विभिन्न-विभिन्न भारतीय भाषाओँ के समृद्ध साहित्य को आदान-प्रदान के लिए, सभी भारतीय भाषाओ के सामान विकास के लिए तथा देश में राष्ट्रीय एकता व अखंडता की भावना को सुदृढ़ करने के लिए देवनागरी का अपना महनीय योगदान सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार देवनागरी लिपि सभी भारतीय भाषाओं के लिए वरदान ही सिद्ध होगी।

संदर्भ सूची:-

1. नागरी संगम, कोंकणी विशेषांक, नागरीलिपि परिषद्, नई दिल्ली पृ. 28
2. राष्ट्रभाषा हिंदी :समस्याएँ और समाधान, पृ.125
3. पांडेय, डॉ. कैलाशनाथ : भाषाविज्ञान का अनुशीलन,गाजीपुर, पृ. 226
4. नागरी संगम, कोंकणी विशेषांक, नागरीलिपि परिषद् नई दिल्ली, पृ. 38
5. शास्त्री, डॉ. रामचंद्र वर्मा, भाषाविज्ञान, अनिता प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 307

1857 के विद्रोह में बेगम हजरत महल की भूमिका

अर्चना यादव

परास्नातक (इतिहास)

बेगम हजरत महल भारत के स्वतंत्रता संग्राम की एक प्रमुख नायिका थीं, जिनका योगदान 1857 के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण रहा। उनका जन्म अवध के एक शिया मुस्लिम परिवार में हुआ था, और उनका असली नाम मुहम्मदी खानम था। वे अपनी सुंदरता और बहादुरी के लिए प्रसिद्ध थीं। अपनी युवा अवस्था में ही वे अवध के नवाब वाजिद अली शाह के हरम में शामिल हुईं और बाद में उनकी बेगम बनीं।वाजिद अली शाह को ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा निर्वासित कर दिए जाने के बाद, बेगम हजरत महल ने राज्य की बागडोर संभाली और ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व किया। 1856 में जब ब्रिटिशों ने अवध का राज्य अपने कब्जे में लिया और वाजिद अली शाह को कलकत्ता निर्वासित कर दिया गया, तब बेगम हजरत महल ने अपने नाबालिग बेटे बिरजिसकद्र को राजा घोषित कर अवध के लोगों के समर्थन से शासन की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले ली।बेगम हजरत महल नवाब वाजिद अली शाह की बेगमों में से एक बेगम थी कुछ लोग उनके बेगमों की संख्या पांच सौ से काम नहीं बतलाते। बादशाहने किसी भी स्त्री कोबिना विवाह के बेगम नहीं बनाया था धार्मिक सहिष्णुता इतनी थी कि किसी हिंदू स्त्री को आंख उठाकर देखा तक नहीं ईसाई आदि अन्य धर्म की स्त्रियों को उनकी इच्छा पर पहले मुसलमान बनाया फिर उसे ग्रहण किया।

बेगम हजरत महल का नाम क्रांति के पूर्व बहुत कम लोग जानते थे पर बादशाह के पास आने के पहले इनका जीवन कैसा था इस विषय में बहुत सी बातें कही जाती है इनकी गणना उन बेगमें में थी जिनके पास वे बहुत कम जाते थे। बादशाह ने अपनी प्रिय बेगमों के नाम में बेगम हजरत बेगम महल का नाम नहीं दिया है। पहली बीवी नवाब खास महल को छोड़कर वे अपने लिए सबसे ज्यादा वफादार बीवी नवाब माशूकमहल को समझते थे वे जब पदच्युत होकर कलकत्ते के लिए रवाना हुए तो उनकी गाड़ी के पीछे नवाब माशूक महल की गाड़ी थी जाने के पूर्व उन्होंने बेगमों को इजाजत दे दी कि जो चाहे वापस जा सकती है। थोड़ी सी तलाक पाकर अलग हो गई शेष लखनऊ में रह गई इनमें से अधिकांश को बादशाह से प्रेम भी था इन्हीं में से बेगम हजरत महल थी रमजान शरीफ के चंद रोज बाद भोर में जब महक परी ने अर्थात अवध सल्तनत के आखिरी चिराग को जन्म दिया तो महल में उसका रुतखा बढ़ गया और उसे शाह अमजद अली ने बेगम हजरत महल का खिताब उसके लड़के का नाम रमजान अली रखा क्योंकि उसका जन्म रमजान के महीने में हुआ था बाद में दादा हजरत ने रमजान अली से मिर्जा बिरजिसक़द्र बहादुर नाम दिया। विद्रोही सैनिकों की पंचायत एवं संभांत राजाओं ताल्लुकेदारो ने बिरजिसक़द्र को वली घोषित किया तत्कालीन परिस्थितियों में अपने 11 वर्षी पुत्र को वली बनाए जाने के लिए सहमत होना तथा विद्रोहियों से पांच सूत्रीय संधि करना बेगम आलिया हजरत महल का कार्य अत्यंत साहसपूर्ण था। हजरत महल ने शासन व्यवस्था हेतु राजा बालकृष्ण को वजीर बनाया दीवान, दरोगा दीवानी महमूद खां, मम्मू खां को तथा नायब दीवान शरफुददौला को बनाया इसके अतिरिक्त राजा जयलाल, नुसरत जंग तथा हिंसामुछौला को तेरह नयी पलटने भर्ती करने के लिए अधिकृत किया।

अवध की विद्रोही सरकार और अंग्रेज दोनों ने अवध के ताल्लुकेदारों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास शुरू कर दिया। बेगम आलिया ने बिरजिसक़द्र के हस्ताक्षर से अवध के प्रमुख ताल्लुकेदारों, जमीदारों को आदेश प्रसारित किया कि वे अपनी सेनाएं लेकर राजधानी में अंग्रेजों के विरुद्ध उपस्थित हो जाए। राजा मानसिंह जनता के शिविर में था लेकिन उसकी सहानुभूति बहुत कुछ अंग्रेजों

के साथ थी परंतु रामनगर के गुल्बख्श सिंह और महमूदाबाद के राजा नवाबअली ने अपनी सेनाओ को रेजिडेंसी के युद्ध में भाग लेने भेज दिया इन सेनाओ ने इस लड़ाई में भाग भी लिया। प्रजा के लिए अन्य घोषणा पत्र में नवाबी शासन के प्रति वफादार बने रहने के लिए कहा गया कि सभी हिंदू और मुसलमान पूरी तरह अवगत है कि उन्हें चार बातें सर्वाधिक प्रिय एवं आवश्यक है पहले धर्म, दूसरी इज्जत, तीसरी जिंदगी तथा चौथी जायदाद संपत्ति ये चारों बातें नवाबी शासन में सुरक्षित है। मुसलमानो को धर्म के नाम पर हिदायत दी गई कि अंग्रेजो ईसाइयों से मित्रता रखना तथा उनकी सहायता करना, उनके मजहब के खिलाफ है।

अवध के अंग्रेज और वहां का अंग्रेजी राज इस समय रेजीडेंसी में कैद था रेजिडेंसी के बाहर शेष लखनऊ एवं सारे अवध में अंग्रेजी सत्ता का कोई चिह्न नहीं था। अवध की गद्दी पर 11 वर्षीय बिरजिसक़द्र के बैठते ही शासन की केंद्र बिंदु बेगम आलिया हो गई थी उन्होंने अंग्रेजों के विद्रोही सैनिक, धार्मिक नेता मौलवी अहमुदौला तथा सूबेदार दिलीप सिंह चौहान, राजा सूबेदार उमराव सिंह, सूबेदार घमंडीसिंह तथा सेनापति बरकत अहमद आदि का सक्रिय सहयोग प्राप्त कर लिया था विद्रोह केवल अंग्रेजी सेना के असंतुष्ट सैनिक तथा नवाबी खानदान तक ही सीमित न रहा अपितु जनविद्रोह का रूप धारण कर गया जिसमें जनता के विभिन्न स्तरों को राजनीतिक कार्यवाही में खींच लिया तथा सशस्त्र संघर्ष में शामिल कर लिया यह भारत के इतिहास में पहला ही उदाहरण था तथा विश्व के इतिहास में उस समय तक उसकी समता के उदाहरण कम ही मिलेंगे। चिनहट की विजय के बाद यद्यपि विद्रोही सैनिक रेजिडेंसी पर घेरा डाले हुए थे परंतु उस पर अधिकार करने के लिए आक्रमण नहीं कर पा रहे थे। दोनों ओर से सुरंगे खोदी जानी थी घेरा डालने वाले सुरंगे खुदकर रेजिडेंसी के निकट की इमारत पर धीरे-धीरे कब्जा करते जाते थे शास्त्रों एवं बारूद की कमी की पूर्ति के लिए बड़ी तोपों में लकड़ी की गोलियां लोहे के टुकड़े तांबे के सिक्के तथा बैलों के सींग तक भरकर उनका उपयोग करते थे। इस संघर्ष में अवध का कमिश्नर हेनरी लॉरेंस मर गया उसकी जगह मेजर बैक्स ने ली पर वह भी जिंदा न बचा। कुछ दिन बाद कैंपबेल के नेतृत्व में अंग्रेजों की एक विशाल सेना कानपुर से लखनऊ पहुंच गयी गुप्तचारो से रेजिडेंसी की खबर पाकर 14 नवंबर, 1857 ई को उसने रेजिडेंसी की ओर बढ़ना प्रारंभ किया सिकंदर बाग में भयंकर युद्ध हुआ इस बाग पर कब्जा करने के लिए काफी खून बहा, क्रांतिकारियों ने अपनी जान हथेली पर रखकर बड़ी वीरता से युद्ध किया। हजरत महल के सैनिकों ने अंग्रेजों पर गोलियों की बौछार कर मेजर बान्स्टन के दस्ते तोपों के संरक्षण में आगे बढे अपनी ही तोप का गोला लगने से मेजर गंभीर रूप से घायल हो गया और कुछ समय बाद मर गया अंग्रेजी टुकड़ियों पीछे हटने लगे।अंग्रेज इस समय विद्रोह का दामन नहीं कर रहे थे वास्तविकता तो यह थी कि वह नए सिरे से स्वाधीन उत्तर भारत का केंद्र बिंदु लखनऊ और अवध राज्य पर अधिकार कर रहे थे। कौलिन कैंपवेल ने लखनऊ पर आक्रमण करने के लिए साढे तीस हजार सेना एकत्रित की थी जिससे सिद्ध होता है की बेगम हजरत महल की शक्ति को उन्होंने साधारण नहीं लिया, क्योंकि अंग्रेजी आंकड़ों के अनुसार दिल्ली की अपेक्षा लखनऊ में अंग्रेजी सेना तिगुनी से भी ज्यादा थी इससे बेगम हजरत महल की ताकत तथा लखनऊ के युद्ध का महत्व स्पष्ट हो जाता है।25 फरवरी 1858 को अवध की बेगम हजरत महल बेगम आलिया ने हाथी पर सवार अंग्रेजों पर आक्रमण किया लखनऊ का युद्ध अंग्रेजों के विशाल तोपखाने के होते हुए भी सरल सिद्ध नहीं हुआ। कुल मिलाकर परीस्थिति बेगम आलिया और उसके सैनिकों के प्रतिकूल थी। कैसरबाग में सिपाही भरे हुए थे उन्होंने छतो से और पास की कोठियों के ऊपर से अंग्रेजो और उनके सैनिको पर मस्कटो से तीव्र अग्नि वर्षा की नेपाल का वास्तविक शासक जंग बहादुर ने आवश्यकता के समय अंग्रेजों की सहायता करके उनके साथ अपनी दोस्ती को मजबूत करना चाहता था।

गोमती के दक्षिण की ओर मुख सेना ने दिलखुशा पर अधिकार कर लिया इसके बाद मार्टिनियर को ले लिया गया फिर एक के बाद एक किले बंद महिलो, दीवालो से घिरे बागो, मस्जिदो, मकबरों से अंग्रेजों का प्रतिरोध हुआ अंत में बेगम आलिया ने जब यह अनुभव किया कि वह अपनी स्थिति पर नहीं टिक सकती तो शहर खाली करने का निर्णय लिया गया यद्यपि हजरत महल ने अभी भी हिम्मत नहीं हारी थी वह स्वयं अपने सिपाहियों में उत्साह के साथ घूमती थी। बेगम हजरत महल ने कष्ट सहकर भी हिम्मत नहीं हारी। यद्यपि अवध के राजा, महाराजा, जिन्हें कभी अंग्रेजों से लाभ भी मिला था, वे सब एकजुट होकर बेगम हजरत महल और बिरजिसक़द्र क े लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने को तत्पर थे। अवध की अन्य जनता भी अंग्रेजों का प्रतिरोध करने में पीछे नहीं थी। फैजाबाद के मौलवी अहमद शाह अपने जोश- खरगोश और योग्यता से अवध आंदोलन में गति प्रदान कर रहे थे। परंतु आपसी प्रतिस्पर्धा और अहमद शाह के प्रति ईर्ष्या, परस्पर शंका तथा भय का वातावरण से अतिरिक्त महल की अन्य बेगमो की नबाव के प्रति ईर्ष्या, अपने गुल खिला रही थी। सैनिकों को समय पर वेतन भी नहीं मिल पा रहा था। युद्धरत होने के कारण शहरी शासन में भी ढिलाई दी जा रही थी। अंग्रेजों द्वारा शिया- सुन्नी के बीच भी मतभेद पनप रहा था। उपरोक्त कारणों से सैनिक

तितर-वितर होने लगे थे। 6 मार्च से 15 मार्च 1858 ई. तक दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध का नेतृत्व बेगम आलिया कर रही थी। अंत में अंग्रेजी सेनाओं के आगे बेगम को असफलता मिली। दिलकुशा, कदम-रसूलशाहनजफ एवं बेगम कोठी अंग्रेजों के कब्जे में हो गई। आलमबाग की इस पराजय के बाद नवाबी सैनिकों तथा क्रांतिकारियों का हौसला टूट गया। उनमें पुन: संघर्ष के लिए एकजुट होने की आशा बहुत धीमी हो गई थी। 16 मार्च 1858 ई. को बेगम हजरत महल चौलक्खी कोठी छोड़कर धतियारी मंडी वाले फाटक से बाहर निकली उसे समय शहर में तेजी से वर्षा हो रही थी। चौलक्खी कोठी से वे सीधे शाह पीर जमात के टीले पर गयी। पश्चात मौलवीगंज में जवाहर अली के घर गई। फिर तुरंत इमामबाड़ा हुसैनाबाद आयी, रात मिर्जा मंडी में शाह जी के घर पर व्यतीत की। हजरत महल बिरजिसक़द्र के साथ बची हुई सेना के साथ निकल गयी। उसके साथ घोड़े पर मम्मूखा, मीरमेहंदी, अहमदहुसैन, हकीम, हसन, रजाखा भी थे।बेगम के पलायन के बाद अंग्रेजी सेना ने लखनऊ पर पुन: कब्जा कर लिया। कंपनी की सेनाओं ने महलों एवं शहरों में लूटपाट शुरू कर दी। सदियों से जिस नगर में संस्कृत निधियां एकत्रित की गई थी, स्थापत्य, साहित्य और शिल्प कला की अनुपम निधियां अंग्रेजों की बर्बरता की भेंट चढ़ गयी। लखनऊ से भागने के बाद बेगम हजरत महल जमीदार राजा मर्दनसिंह के यहां पहुंची। उन्होंने बेगम को शरण न देकर एक चुभती हुई बात कह दी कि वह मेंढक की तरह इधर से उधर उछलती फिरेगी। अत: बेगम वहां से विटावली चली गयी। होप ग्रांट को जैसे ही यह पता चला की बेगम विटावली में है वह 3000 सेना और तोपखाने के साथ विटावली की ओर बढा किंतु अहमदशाह ने उसे रोक कर पुन: बेगम हजरत महल को निकल भागने का एक अवसर प्रदान किया। विटावली से शाहजहांपुर, बरेली जाते हुए बेगम हजरत महल तथा नवाब बिरजिस कद्र एवं उनके सहयोगी घाघरा नदी के किनारे चौकाघाट पर एकत्रित हुए। इस बीच नाना साहब, रुइया के राजा नरपत सिंह, राजाराम बख्श, मधुनाथ सिंह, चंदन सिंह, गुलाब सिंह, गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह, हनुमत सिंह इत्यादि बड़े-बड़े जमींदार अपनी सेनाओं के साथ अवध को फिर से अंग्रेजों से छीनने में लग गए। कंपनी सरकार की राज्य व्यवस्था दोषपूर्ण हो गई थी, जिसके परिणाम स्वरुप विद्रोह होने लगे। कई स्थलों पर अंग्रेजों का कत्ल हुआ। इन घटनाओं का इंग्लैंड पर भी प्रभाव पड़ा जिसके फल स्वरुप1 नवंबर 1858 ई को ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून पास करके भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से छीन कर अपने हाथ में ले लिया और भारत पर महारानी विक्टोरिया का साम्राज्य स्थापित कर दिया गया। महारानी विक्टोरिया ने कंपनी के शासन को समाप्त घोषित करते हुए सभी लोगों से शांतिपूर्वक ब्रिटेन के अधीन रहने का अनुरोध किया। उपरोक्त घोषणा का कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। इस घोषणा के विरुद्ध बेगम हजरत महल ने बिरजिस कद्र के नाम से एक घोषणा प्रसारित कर दी जिसमें महारानी विक्टोरिया की घोषणा का खोखलापन उजागर किया तथा प्रजा को घोषणा के धोखे से बचने का आग्रह किया गया।

लखनऊ में हुई असफलता से बेगम हजरत महल ने युद्ध नीति में परिवर्तन छापामार युद्ध कर इस हद तक परेशान करने की योजना पर क्रियान्वयन करना शुरू की वे तंग आकर पलायन की दिशा में अग्रसर हो सके। बेगम ने अच्छी तरह से समझ लिया था कि युद्ध सामग्री में अंग्रेज बढ़-चढ़कर हैं। अत: बेगम के सलाहकारों वफादारो ने विद्रोह करने वालों को निर्देशित किया कि काफिरों की नियमित सेना की टुकड़ियों का मुकाबला करने की कोशिश मत करो, क्योंकि वे कबायत और व्यवस्था में बढ़- चढ़कर हैं और उनके पास जंगी तोपें है। अंग्रेजों की गतिविधियां देखते रहो, नदियों के चौकसी करते रहो, उनकी यातायात की कार्यवाही को छिन्न-भिन्न कर दो, उन्हें समान मिलाना बंद कर दो, उनकी चिट्ठी- पत्री और डाक बंद कर दो और उनके खेमों के आसपास मडराया करो, उन्हें चौन लेने दो। बेगम के इस आदेश पर बहुत जगह के सैनिकों ने अमल किया। बेगम हजरत महल की प्रेरणा एवं नेतृत्व का इस कदर प्रभाव था कि अवध गजेटियर के अनुसार मिटौली विद्रोह का गढ़ था। रुहया के नरपतसिंह, मिटौली के गुरबक्ससिह और बौडी के हरदत्त सिंह 25000 आदमियों के साथ अंग्रेजों से युद्धकिया। बैतवाडे के किसान अंग्रेजों को लगन नहीं देते थे। नवंबर 1858 में अंग्रेज पुलिस थाने कायम करते हुए मालगुजारी वसूल करने का प्रबंध कर रहे थे। बेगम हजरत महल का कहीं पता न था या फिर उनके इतने ठिकाने थे कि अंग्रेज यह निश्चित ही नहीं कर पा रहे थे कि बेगम को कहां पकड़ा जाए। यद्यपि अंग्रेजों को कुछ गद्दार सहायक मिल भी गए थे परंतु वे भी अंग्रेजों की छत्र-छाया में अपने को सुरक्षित नहीं समझते थे। 1858 के अंत तक अंग्रेजों को ज्ञात हुआ कि बेगम हजरत महल और राजा बेनीमाधव की सेनाएँ मिल गई है। कुछ लेखकों ने इनकी सेनाओं की संख्या 2 लाख बताई है। बेगम के सैनिक ने घने पेड़ों पर बैठकर अंग्रेजों पर गोलियां बरसाई परिणाम स्वरुप अंग्रेजी सेना को पीछे हटना पड़ा। धीरे-धीरे बेगम और उनके साथी एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते जाते थे जहां से वह अपनी रक्षा और अंग्रेजों का प्रतिरोध करते रहते थे। राप्ती नदी के तट पर बेगम और अंग्रेजों के बीच फिर मुकाबला हुआ। बेगम हजरत महल की तोपों और मेहंदी हुसैन की सहायता से बेगम की सेना नदी पार कर गयी। अंग्रेज घुड़सवार उनका पीछा करते हुए राप्ती नदी

में कूद पड़े। नदी के तीव्र भाव में ब्रिटिश और भारतीय सैनिक गुथ गए। भारत देश की नदी तक अंग्रेजों की शत्रु थी। मेजर हार्न नदी के तेज बहाव में बह गया और बेगम हजरत महल तथा उनके सहयोगी नेपाल की सीमा पर नदी के उस पर पहुंच गए।

बेगम हजरत महल और उनके सैनिक नेपाल क्यों गए यह एक प्रश्न बनता है। जबकि नेपाल के राजा जंग बहादुर स्वयं अपनी गोरखा सेना के साथ लखनऊ के पतन में अंग्रेजों का साथ दिया था। बेगम के साथ इस परिस्थिति में जंगबहादुर ने विश्वासघात किया। उसने सहायता करने से इनकार कर दिया जब तक कि वह हथियार न डाल दें, अंग्रेजों के विचार में जंगबहादुर दुरंगी नीति अपना रहा था। अंग्रेज समझ नहीं पा रहे थे कि बेगम और सैनिकों के हथियार न डालने पर जंगबहादुर उनसे युद्ध क्यों नहीं करता है। जंगबहादुर ने तो अंग्रेजों से प्रार्थना की कि अंग्रेजी सेना बेगम हजरत महल और उनकी फौज का पीछा करती हुई नेपाल में प्रवेश न करें। जंगबहादुर ने अंग्रेजों को आश्वासन दिया कि एक निश्चित अवधि में बेगम और उनके अनुयायियों से नेपाल खाली कर लिया जायेगा तथा गंडक नदी के ऊपर एक घाट निश्चित कर दिया जहां अंग्रेजी सेना बेगम को पकड़ने के लिए तैयार रहे। जंग बहादुर की बातें सुनने को विद्रोही राजी नहीं थे। वे मानते थे कि जंग बहादुर स्वयं अपनी प्रजा से भयभीत था। न तो वह अंग्रेजों का स्वागत करने की नीति में था ना ही विद्रोही बेगम और उनकी सेना से युद्ध कर सकता था। नेपाली जनता की सहानुभूति बेगम हजरत महल के साथ थी क्योंकि वह विदेशी अंग्रेजों से युद्ध कर रही थी।बेगम हजरत महल के नेपाल निर्वासन के समय 1879 में उनकी मृत्यु हो गई और उन्हें काठमांडू के जामा मस्जिद के मैदान में दफनाया गया। उनकी मृत्यु के बाद, महारानी विक्टोरिया के जयंती उपलक्ष में ब्रिटिश सरकार ने बिरजिसक़द्र को माफ कर दिया और उन्हें घर लौटने की इजाजत दे दी।

इस प्रकार निष्कर्षत: कहा जा सकता है किबेगम हजरत महल, 1857 के भारतीय विद्रोह की एक प्रमुख नेता थीं, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ साहसपूर्वक संघर्ष किया। वे अवध के नवाब वाजिद अली शाह की पत्नी थीं। जब अंग्रेजों ने उनके पति को सत्ता से बेदखल कर दिया और अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने की योजना बनाई, तो बेगम हजरत महल ने विरोध का नेतृत्व किया। उन्होंने अवध की राजधानी लखनऊ से ब्रिटिश सेना के खिलाफ मोर्चा संभाला और अपने पुत्र बिरजिसक़द्र को राजा घोषित कर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी। बेगम हजरत महल की भूमिका विशेष रूप से इसलिए महत्वपूर्ण थी क्योंकि उस समय महिलाओं का सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेना बहुत दुर्लभ था। उन्होंने न केवल महिलाओं को नेतृत्व प्रदान किया, बल्कि सभी वर्गों और धर्मों के लोगों को अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट किया। उनके नेतृत्व में लखनऊ एक महत्वपूर्ण विद्रोही केंद्र बन गया। उन्होंने ब्रिटिश सेनाओं का साहसपूर्वक सामना किया और लखनऊ के किले में कई महीनों तक अंग्रेजों को घुसने नहीं दिया। हालांकि, जब ब्रिटिश सेना ने अंतत: लखनऊ पर दोबारा कब्जा कर लिया, तो बेगम हजरत महल को मजबूरी में नेपाल की तरफ भागना पड़ा, लेकिन उन्होंने कभी हार नहीं मानी और अंत तक अंग्रेजों से समझौता नहीं किया।बे गम हजरत महल की संघर्षशील भावना और अदम्य साहस ने उन्हें 1857 के विद्रोह की सबसे प्रभावशाली महिला सेनानियों में से एक बना दिया। उनका संघर्ष न केवल ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ था, बल्कि यह भारतीय स्वाधीनता और अपने अधिकारों के लिए एक प्रेरणादायक प्रतीक भी बना। उनकी विरासत भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक अमूल्य अध्याय के रूप में दर्ज है।

संदर्भ-

1. सिंह, आर. (2015).1857 का विद्रोह और बेगम हजरत महल.नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.
2. मिश्रा, पी. (2016). भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की वीरांगनाएँ. पटना: लोकभारती प्रकाशन.
3. सुकुल, के. (2012). अवध का विद्रोह और बेगम हजरत महल. वाराणसी: भारत प्रकाशन.
4. चौधरी, जे. (2018). 1857 का संग्राम: एक नारीवादी दृष्टिकोण. मुंबई: सृजन पब्लिकेशन.
5. वर्मा, ए. (2019). बेगम हजरत महल और अवध का विद्रोह. इलाहाबाद: गंगा जमुना बुक्स.
6. जैन, डी. (2014). बेगम हजरत महल की वीरता और बलिदान. आगरा: प्रगति प्रकाशन.
7. अरोड़ा, बी. (2021). 1857 की क्रांति और नारी शक्ति. लखनऊ: उत्तर प्रदेश प्रेस.
8. गुप्ता, के. (2016). महिलाओं का योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में. पटना: सविता प्रकाशन.
9. चौहान, पी. (2017). अवध की रानी: बेगम हजरत महल. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी.
10. वर्मा, डी. (2019). बेगम हजरत महल और अवध का स्वतंत्रता आंदोलन. नई दिल्ली: रचना प्रकाशन.
11. दुबे, आर. (2014). भारत का स्वतंत्रता संग्राम और महिलाएँ. जयपुर: नेशनल बुक एजेंसी.

12. जोशी, एम. (2013). बेगम हजरत महल: एक वीरांगना की कहानी. वाराणसी: हिंदी ग्रंथ अकादमी.
13. सक्सेना, एन. (2018). भारतीय महिलाएँ और स्वतंत्रता संग्राम. लखनऊ: अवध साहित्य मंडल.
14. भार्गव, डी. (2016). बेगम हजरत महल और 1857 का संग्राम. पटना: प्रकाशन संस्थान.
15. मिश्रा, ए. (2017). बेगम हजरत महल और भारतीय क्रांति. लखनऊ: संस्कृति प्रकाशन.
16. मिश्रा, वी. (2016). भारतीय महिलाओं की स्वतंत्रता संग्राम में भूमिका. वाराणसी: गंगोत्री पब्लिकेशन.
17. ठाकुर, ए. (2017). बेगम हजरत महल और उनकी क्रांतिकारी भूमिका. दिल्ली: साहित्यिक प्रकाशन.
18. गुप्ता, ए. (2014). भारत की वीर नारियाँ: 1857 की क्रांति. मुंबई: जनशक्ति पब्लिकेशन.
19. शर्मा, पी. (2012). बेगम हजरत महल और अवध का स्वतंत्रता संग्राम. इलाहाबाद: साहित्य भवन.
20. जैन, पी. (2016). 1857 की क्रांति और नारी संघर्ष की कहानियाँ. दिल्ली: इंडिया बुक्स.
21. यादव, डी. (2014). अवध का विद्रोह और बेगम हजरत महल की वीरता. लखनऊ: साहित्य सदन.
22. भारद्वाज, ए. (2018). 1857 की क्रांति और बेगम हजरत महल का संघर्ष. आगरा: सहकारी प्रकाशन.
23. वर्मा, एस. (2017). बेगम हजरत महल और लखनऊ का विद्रोह. जयपुर: एशिया पब्लिकेशन.

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की समस्या एवं भूमिका

डॉ० राम नरेश ठण्डन

सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शास.नागरिक कल्याण महाविद्यालय, नंदिनी नगर (अहिवारा), दुर्ग (छ.ग.)

प्रस्तावनाः

आधुनिक समाज व्यवस्था में सामान्यतः लोगों को एक से अधिक भूमिकाओं को निभाना पड़ता है। लोग प्रायः वही कार्य करना चाहतें है जो उनसे अपेक्षा की जाती है। कभी-कभी लोगों को भूमिकाओं के निर्वहन में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ भी आती है कि, जब दो या दो से अधिक भूमिकाओं को एक साथ निभाना इतना कठिन हो जाता है कि हम किसी भूमिका को ठीक से निभाने में असमर्थ हो जाते है, तब भूमिका संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। भूमिका संघर्ष आधुनिक युग में एक समस्या है क्योकि ओद्यौगिक समाज के अंतर्गत लोगों को प्रायः एक से अधिक भूमिकाओं का निर्वहन करना पड़ता है।[1]

18वीं एवं 19वीं सदी के सामाजिक परिवेश में औद्योगिकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया ने भी महिलाओं की प्रस्थिति को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं में आर्थिक आत्मनिर्भरता पनपी है। वे पुरूषों की आर्थिक दासता से मुक्त होकर घर की चहारदीवारी से निकलकर बाह्य जगत से परिचित हुई है। महिलाएं स्वंय विभिन्न उद्योगों एवं अन्य व्यवसाओं में कार्य करने लगी है। वर्तमान समय में महिलाएं सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में पुरूषों के समान कार्य करने लगी है।

औद्योगिकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप समाज में श्रमिक वर्ग का जन्म हुआ। जिसमें संगठित एवं असंगठित श्रमिक वर्ग थे। संगठित श्रमिक वे श्रमिक हैं, जो अपने रहन-सहन का स्तर सुधारने हेतु राष्ट्रीय स्तर पर संगठित होकर प्रयास करते रहते हैं जबकि असंगठित श्रमिक, वे है जो अपनी आर्थिक दशा सुधारने हेतु संगठित होकर अपने न्योक्ताओं से अपने अधिकारो की बात नहीं कर पाते है। जिससे वह अपने अधिकारों से वंचित रह जाते है।[2]

इस संदर्भ में कारखाना अधिनियम 1948 के अंर्तगत असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिक वे श्रमिक है जो के प्रमुख प्रावधानों जैसे स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं कल्याण सम्बन्धी उपबन्ध आदि की परिधि से बाहर है। जबकि सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 के अनुसार, असंगठित क्षेत्र के श्रमिक वे श्रमिक है जो घरेलू कार्य, स्वरोजगार एंव वेतन पर कार्य कर रहे तथा जिनको अधिनियम की अनुसूची-2 में शामिल न किया गया हो। जबकि "व्यक्तिगत या स्वरोजगार के स्वामित्व वाले व्यवसाय जो उत्पादन,वस्तुओं की बिक्री या सेवाएं उपलब्ध कराने के कामों में संलग्न हैं और जहाँ श्रमिकों की संखया दस से कम हो, असंगठित क्षेत्र कहलाता है"। इसके अतिरिक्त असंठित क्षेत्रों में "वह श्रमिक है जो गाँव अथवा शहरो में मजदूरी पर अस्थायी रुप से काम करते है चूँकि यह श्रमिक वर्ग मुख्यतः बिखरा हुआ होता है अतः इनका परस्पर संगठन नही हो पाता है"।

असंगठित क्षेत्र एक व्यापक क्षेत्र है जिसमें महिलाओं का बड़ा भाग एक उद्यमी के रूप में कार्यरत् है। परन्तु रोजगार के स्तर एंव गुणवत्ता की दृष्टि से वह संगठित क्षेत्रों में कार्यरत् महिलाओं से पीछे रह जाती है। भारत की कुल श्रम शक्ति में काम करने वाले लोगों का 85 प्रतिशत से ज्यादा असंगठित क्षेत्र में कार्यरत् हैं। भारत के महापंजीयक एवं 2011 की जनगणना से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार, भारत में महिला कार्मिको की कुल संख्या 14.98 करोड़ हैं और ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की संख्या

क्रमशः 12.18 करोड तथा 2.8 करोड़ हैं। कुल 14.98 करोड़ महिला श्रमिकों में से 3.59 करोड़ महिलाएं खेतीहर मजदूर, जबकि 6.15 करोड़ कृषक तथा शेष महिला श्रमिकों में से 85 लाख महिलाएं घरेलू उद्योगो और 4.37 करोड़ अन्य श्रमिक के रूप में वर्गीकित है।[3]

2. अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत शोध पत्र की अध्ययन की ईकाई दुर्ग के असंगठित क्षेत्र के कुटीर एवं सेवा क्षेत्रों में कार्यरत महिलायें हैं। रायपुर की 41.1 प्रतिशत महिलाएं मुख्य कर्मकार, सीमान्त एंव खेतिहर कर्मकार है, 24.0 प्रतिशत महिलाएं कृषक कर्मकार के रूप मे जबकि 5.7 प्रतिशत घरेलू उद्योगो एंव 29.2 प्रतिशत अन्य कार्यो में संलग्न हैं।[4]

प्रस्तुत शोध पत्र में दुर्ग के असंगठित क्षेत्र के कुटीर एवं सेवा क्षेत्रों में कार्यरत् 248 महिला कार्मिका को संगणना पदृति के आधार पर चयनित किया गया है। जिसमें कुटीर उद्योग क्षेत्र के मोमबत्ती निर्माण, सिलाई-बुनाई तथा साफ्ट टॉय (80-100) निर्माण उद्योगों में कार्यरत् 168 तथा सेवा क्षेत्र के ब्यूटी पार्लर, होटल व्यवसाय तथा विभिन्न दुकानों में संलग्न 80 महिलाओं को सम्मिलित किया गया हैं। जिनका विवरण निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। वह पारिवारिक एवं कार्य निष्पादन-व्यवस्था का अभिन्न अंग है। महिलाएं पारिवारिक गृह सीमाओं से बाहर निकलकर व्यवसायिक क्षेत्रों में भी अपनी पहचान बना रही है। व्यवसाय सम्बन्धी कार्यो तथा परिवार के दायित्वों का निर्वहन करने में प्रायः उन्हें आन्तरिक संवेगात्मक अथवा भावात्मक द्वन्द्र का सामना करना पड़ता है।

महिलाओं की प्रमुख समस्याएँः-

कार्यरत् महिलाएं अधिकांशतः परिवार तथा बच्चों की जिम्मेदारियों से उत्पन्न समस्याओं से सर्वाधिक प्रभावित होती है, विशेष रूप से उस अवस्था में जब बच्चें शैशवास्था में होते है। इन भूमिका संघर्षो के अतिक्ति महिलाओं को कार्यक्षेत्रों में भी अनेको समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कार्य स्थल व घर के कार्यो में समायोजन करना, यह उनके लिए बड़ी समस्या होती है। जिसे वह किस तरह अपनी सुझ-बुझ से सुलझा पाती है। इस आधार पर अध्ययनकर्ता ने प्रस्तुत शोध पत्र में कार्यरत महिलाओं की प्रमुख आधारभूत समस्याओं का अध्ययन किया है।[5]

काम की समस्याः- असंगठित क्षेत्र में कार्यरत् कामकाजी महिलाओं को अपनी नौकरी से संबंधित कार्यो के अतिरिक्त भी परिवार के अधिकांश कार्यों को पूर्ण करना पड़ता है। इस प्रकार इन महिलाओं पर सदैव कार्य का दबाव बना रहता है। इसका उनके स्वास्थ्य और मानसिक सनन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मजदूरी की समस्याः- असंगठित क्षेत्र में महिलाओं को केवल कुछ चुने हुए कार्यो में ही रोजगार के अवसर मिलते है। जैसेः- खेती, बागवानी, हस्तशिल्प, लघु उद्योग, चीनी मिट्टी तथा कार्यालयों से संबंधित कार्य। इन सीमित व्यवसायों में रोजगार की इच्छुक महिलाओं की संख्या अधिक होती है। असंगठित क्षेत्र में व्यवसायों की कमी व काम करने वालों की संख्या अधिकांश होने के कारण, महिलाओं को कम मजदूरी की समस्या का भी सामना करना पड़ता है।

दोहरे स्थिति की समस्याः- असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को दोहरे माप दण्ड की समस्या से भी रूबरू होना पड़ता है। कई नियोजक प्रसृति की स्थिति में छुट्टी तथा प्रसूति-हितलाभ, शिशु गृह की स्थापना की अनिवार्यता तथा महिलाओं को रात्रिकार्य और खतरनाक कामों पर कानूनी प्रतिबन्धों के कारण महिलाओं को नियोजित नहीं करना चाहते। इन कारणों के अतिरिक्त भारत पुरूष प्रधान समाज है। जिसकी झलक इस समस्या पर भी दिखाई देती है। असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलायें भी इस दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति का शिकार है। उन्हें समान कार्य व समान घण्टे कार्य करने के बाद भी महिलाओं को पुरूषों की तुलना में कम वेतन दिया जाता है।

कार्य की कठिन परिस्थिति की समस्याः- असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को अपनी कार्य क्षमता के अनुपात से अधिक कठिन कार्यो का भी निर्वाह करना पड़ता है। विशेषकर शारीरिक कार्य वाले नियोजनों में लगातार कई घण्टों तक काम करना पड़ता है। कई कारखानों में उन्हें खतरनाक मशीनों या प्रक्रियाओं में भी नियोजित किया जाता है। कार्य स्थल पर उन्हें विश्राम के अभाव, अपर्याप्त प्रकाश और असुरक्षा, व्यावसयिक रोग, दुर्घटना आदि समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

कार्यक्षेत्र में महिलाओं को मिलने वाली सुविधाओं की कमी की समस्यायः- असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाओं के सामने वित्त की समस्या की समस्या तो है, नैनीताल में बहुत सी गैर सरकारी संगठन है। जिनके माध्यम से महिलाएँ काम कर

रही हैं जिनमें कार्यरत महिलाओं को देने के लिए पर्याप्त धन नहीं होता है। जिससे उन्हें कम वेतन पर ही कार्य करना पड़ता है। जिससे इन असंगठित क्षेत्र में कार्यशील महिलाओं को सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है।[6]

बच्चों के लालन-पालन की समस्या:- असंगठित क्षेत्र में कार्यशील महिलाओं के सामने बच्चों के पालन-पोषण की समस्या बहुत ही महत्वपूर्ण समस्या होती है। व्यावसायिक जीवन में आगे बढ़ने में महिलाओं के सामने तब बड़ी समस्या आती है। जब उन्हें अपनी कामकाजी भूमिका के साथ-साथ मातृत्व का दायित्व भी निभाना पड़ता है। महिलाएं अपने कार्य के साथ, पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह भी करती है। जिससे उन्हें भूमिका संघर्ष एवं तनाव जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

शिक्षा की समस्या:- असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं में शिक्षा का अभाव पाया जाता है। रायपुर के संदर्भ में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों के बीच शिक्षा का प्रसार अधिक है। परन्तु आज भी अधिकांश ग्रामीण महिलायें अशिक्षित है। जिस कारण आज भी महिलाएं अपने अधिकारों से वंचित है। जागरूकता का अभाव कई समस्याओं को जन्म देता है उनमें से एक अशिक्षा भी है।

पारिवारिक समस्या:- इस क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाओं के पास समय का अभाव बहुत अधिक होता है। इस कारण वह पारिवारिक दायित्वों का निर्वाहन नहीं कर पाती है। कार्य से वापिसी के बाद, घर के सदस्य उन से यही अपेक्षा करते है कि चाय-नाश्ता व खाना उनके द्वारा ही मिले और वे परिवार के सदस्यों की इस अपेक्षा को वे खुशी-खुशी पूरा भी करना चाहती है और पति भी यह अपेक्षा रखते है कि उनके बच्चों की देखभाल स्वयं माँ के द्वारा ही हो। काफी प्रयास के बाद भी असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलाओं में श्समय का अभावश् एक प्रमुख समस्या है। जिन पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन वे अपनी नैतिक जिम्मेदारी मानकर करना चाहती हैं किन्तु व्यावहारिक रूप से समय का अभाव इसमें बाधक है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ:- असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाली महिलायें आर्थिक रूप से संपन्न न होने के कारण कुपोषण की शिकार होती हैं साथ ही वे स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न समस्याओं से घिरे रहती है। समुचित भोजन का अभाव, कुपोषण की दयनीय दशा, समुचित चिकित्सा के साधनों की कमी आदि के कारण निर्धन व्यक्तियों में अशाक्तता बीमारी, अकाल मृत्यु, विकलांगता आदि संबंधी समस्याएँ और भी जटिल और गम्भीर होती है।

सुरक्षा की समस्या:- आज के आधुनिक युग में महिलाएँ अधिकतर स्वयं की रक्षा करने में स्वयं को असमर्थ पाती है क्योंकि वे कामकाजी होने के कारण महिलाओं को अपने कार्य स्थल पर अकेले ही जाना पड़ता है, यदि अधिक दूरी पर कार्य के लिए जाना पड़े तो, रास्ते पर कभी उनसे अपराध होने का भय लगा रहता है, क्योंकि वर्तमान स्थिति में महिलाओं पर अधिक घटनाएँ हो रही है। कुछ कुलीन परिवार में महिलाओं को नौकरी या घर से बाहर जाने की आज्ञा नहीं मिलती है, जिसके कारण शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक, स्तर पर भी महिलाओं को आगे आने से काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता है और उनके परिवारों में महिलाओं को अपमान की दृष्टि से देखा जाता है। इन समस्याओं के अतिरिक्त महिलाओं को घर एवं कार्यस्थल पर भूमिका संघर्ष एवं तनाव जैसी समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है।

भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के चलतें महिलाओं में भूमिका संघर्ष एवं तनाव की समस्या एक महत्वपूर्ण पहलू हो गया है। पारंपरिक रूप से भारतीय महिलाएं पारिवारिक व्यवस्था के अंदर रहकर ही कार्य करती थी। वर्तमान में वे पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर कई संगठनों में कार्यरत् हैं। परिणामस्वरूप आधुनिक महिलाएं दो प्रकार की व्यवस्थाओं में जीवनयापन करती हैं, तथा उन्हें परिवार के साथ-साथ रोजगार से सम्बंद्ध भूमिकाएं भी निभानी पड़ती हैं। जिस कारण कामकाजी महिलाओं को भूमिका जनित तनाव का सामना करना पड़ता है। साथ ही साथ आर्थिक अनिवार्यताओं के चलते समाज में अधिकांश महिलाएं कई उद्योगों एवं प्रतिष्ठानों में कार्यरत् हैं। जिन महिलाओं को स्वयं के कार्य से संतोष मिलता है उन्हें अपनी उपलब्धि की कीमत भी मिलती हैं, परन्तु व्यावसाय के साथ-साथ उन्हें गृहस्थी पर भी विशेष ध्यान देना जरूरी होता हैं। अभी भी महिलाओं को अपनी पारंपरिक भूमिका में अलग से कोई सहायता नहीं मिलती है। यद्यपि महिलाओं के दायित्व बढ़ गये है, क्योकि सभी के लिए यह सम्भव नही होता कि वे जितना समय कार्यस्थल पर देती है, उतना उन्हें घरेलू कार्यों में भी दें। जिसके कारण ऐसी परिस्थितियों में महिलाओं को स्वयं के व्यवहार के साथ सामंजस्य बिठाना पड़ता है।

जो महिलाओं के कार्मिक जीवन में तनाव उत्पन्न करती है। इन परिस्थितिओं से सामंजस्य न कर पाने के कारण कार्मिक महिलाओं में तनाव एवं भूमिका संघर्ष दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसी संदर्भ में नैनीताल नगर के असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत् महिलाओं को घर एवं कार्यस्थल पर न्योक्ता एवं साथियों के व्यवहार आदि सम्बंधित समस्याओं का अध्ययन किया गया हैं।

समाज में व्यक्ति को दो भिन्न परिस्थितियों की भूमिका एक साथ निभानी पड़ती है यदि उनमें विरोधाभास हो तो उसे हम भूमिका संघर्ष कहते हैं। भूमिका संघर्ष के लिये समाज के सांस्कृतिक मूल्य भी उत्तरदायी हैं। आधुनिक एंव परिवर्तनशील समाजों में भूमिका संघर्ष अधिक पाया जाता है क्योंकि यहां नवीन एवं पुराने मूल्य साथ-साथ पाये जाते हैं। समाज में मनुष्य विभिन्न भूमिकाओं का निर्वाह करता है। एक व्यक्ति जिस प्रकार से एक परिस्थिति से सम्बंधित विशेषाधिकारों एवं सुविधाओं का उपभोग करता है, उसे ही भूमिका संघर्ष कहते हैं।

विभिन्न भूमिकाओं का एक साथ निभाना आसान नहीं होता है। अत: भूमिका संघर्ष की स्थिति में प्रभावी भूमिका का चयन कर एक या दो भूमिका छोड़ देते हैं। कामकाजी महिलाओं को अपनी नौकरी से सम्बद्ध कार्यो के अतिरिक्त घर के भी कामकाज देखने पड़ते हैं। इस प्रकार उन पर काम का बोझ भी अधिक होता हैं। साथ ही उन्हे कार्यस्थल पर भी दोहरी भूमिका एंव संघर्ष का भी सामना करना पड़ता है, जिसका उनके स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन पर प्रतिक्ल प्रभाव पडता हैं। महिलाओं को कार्यस्थल पर एक कार्मिक की भूमिका के साथ अन्य भूमिका भी निभानी पड़ती है जिससे महिलाओं में मानसिक तनाव एवं चिड़चिड़ापन देखने को मिलता है।

असंगठित क्षेत्र में कामकाजी महिलाओं को अधिक समय तक कार्य करना पड़ता है। प्राय: महिलाएँ लगभग 8-9 घण्टे घरों से बाहर कार्य करती है। जिससे महिलाओं को घर और बाहर दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। इस कारण कामकाजी महिलाएऐं घर के सदस्यों की देख-रेख अच्छी तरह से नहीं कर पाती है। एक ओर जहाँ उन्हें घर के दैनिक कार्यो को तो सम्पन्न करना ही है। साथ में उन्हें कार्यस्थल पर लगभग 8-9 घण्टे कार्य करना पड़ता है। जिसकी वजह से वे अपने परिवार को अच्छे से समय नहीं दे पाती है। क्योंकि महिलाओं के कार्यकारी होने से उनके पास हमेशा समय की कमी रहती है। जिससे पति और अन्य सदस्यों को लगता है कि वह उनका पूर्ण ध्यान नहीं रख रही है।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि कार्यरत् महिलाओं को दोहरी भूमिका का निर्वाहन करना पड़ता है। इसीलिए उन्हे संयुक्त परिवार की व्यवस्था को अपनाना चाहिए, जिससे उनके बच्चो की सही देखभाल हो सके। साथ ही सरकार एवं संगठनों द्वारा कार्यरत महिलाओं के लिए कार्यस्थल पर ही शैक्षिक, कार्य के अनुरूप आय, मनोरंजन तथा अन्य सम्बंधित योजनाओं एवं प्रावधानों को नियोजित किया जाना चाहिए ताकि महिलाओं में पायी जाने वाली भूमिका संघर्ष सम्बंधित जैसी समस्याओं को कम से कम किया जा सके।[7]

निष्कर्ष

सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। वह पारिवारिक एवं कार्य निष्पादन-व्यवस्था का अभिन्न अंग है। महिलाएं पारिवारिक गृह सीमाओं से बाहर निकलकर व्यवसायिक क्षेत्रों में भी अपनी पहचान बना रही है। व्यवसाय सम्बन्धी कार्यो तथा परिवार के दायित्वों का निर्वहन करने में प्राय: उन्हें आन्तरिक संवेगात्मक अथवा भावात्मक द्वन्द् का सामना करना पड़ता है। यद्यपि असंगठित क्षेत्र एक व्यापक क्षेत्र हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. अग्रवाल अमित, भारत में ग्रामीण समाज विवेक प्रकाशन दिल्ली 2013, पृ.क्र. 28
2. आहूजा राम भारतीय समाज रावत पब्लिकेशन दिल्ली, 2000 पृ.क्र. 286-326
3. आहूजा राम, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं दिल्ली 1994.
4. आहूजा राम, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं दिल्ली 1994.
5. Bhagwati J. & Srinivas.T.N, "Indians Economic Reforms", Ministry of Finance,Government of India Press, New Delhi. (1993).,
6. भारत 2016., "सन्दर्भ ग्रन्थ", सूचना और प्रसारण मंत्रालय, पृ.- 630-631
7. सिन्हा.पी.आर., इन्दुबाला, "श्रम एंव समाज कल्याण", भारती भवन (पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स), 2011, पृ.-470-475.

दुर्ग जिले के विकास में जन कल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन और जिला प्रशासन

डॉ० अरुणा ठाकुर

सहायक प्राध्यापक, लोक प्रशासन, शासकीय जे. योगानंदम छत्तीसगढ़ महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

सारांशः- विकास एक निरंतर परिवर्तन व गतिशिल प्रकिया है, सभ्यता के विकास के साथ इसके विभिन्न रूप रही है। प्रायः जब जनता को आधूनिकता की ओर बढने की इच्छा होती है तभी विकास की ओर अग्रसर होते है। इसी क्रम में जिले के विकास के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों के द्वारा विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं को सूचारू रूप से संचालित कर विकास को दिशा प्रदान करने का प्रयास किया जाता है, जिसको सफल करने के उद्देश्य से जिले में केन्द्र और राज्य की सभी योजनाओं को क्रियान्वित करने का दायित्व जिला प्रशासन का होता है जिसके पश्चात् ही विकास संभव हो सकता।

प्रस्तावनाः-

भारत की आत्मा गॉव में बसती है क्योकि भारत एक ग्रामीण कृषि प्रधान देश है, इसके लिए महात्मा गॉधी ने पंचायती राज व्यवस्था के द्वारा राम राज्य कि कल्पना की थी भारतीय संसदीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था में अधिकारो का विकेन्द्रीकरण और स्थानीय नागरिको का विकास स्थानी नागरिको के द्वारा करना सबसे बेहतर व्यवस्था मानी गई है। जिसमें नौकरशाही की भूमिका रीढ की हड्डी के समान होती है।

नौकरशाह जिला प्रशासन की महत्वपूर्ण कडी है, जिले का विकास दो पहियों पर आधारित है, एक जनप्रतिनिधि दूसरा नौकरशाह। जिससे निर्वाचित जनप्रतिनिधि एवं अधिकारी राज मिलकर जिले के विकास की गति को आगे बढाते हैं। छ.ग. राज्य के निर्माण की बुनियाद ही विकास को आधार मानकर की गई हैं।

अतः प्रजातांत्रिक ढांचे में ग्राम पंचायतों से लेकर संसद तक यही प्रक्रिया दिखाई देती हैं। छत्तीसगढ़ राज्य बननेके पूर्व जो विकास के सपने लोगों ने देखे थे, इस दृष्टिकोण से छ.ग.ने केवल 17 वर्ष की उम्र में विकास के मार्ग की ऊँचाईयों को छुआ है, जिसमें। बहुत कुछ राजनैतिक विकास प्रशासनिक विकास काफी हद तक पुरा किया है और शेष चुनौतियो का सामना करने के लिए तत्पर हैं।

यह प्रयास किया गया कि राज्य निर्माण के बाद छत्तीसगढ़ में राजनैतिक और प्रशासनिक विकास जो आज भी पिछड़ा हैं, उसे दूर करने के लिए उस मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को हल करने के लिए अनेक सराहनीय प्रयास किए हैं।

विकासः- विकास न तो नवीन हैं और न ही प्राचीन। विकास एक निरंतर परिवर्तनशील और गतिशील प्रकिया है, सभ्यता के विकास के साथ इसके विभिन्न रूप रही है। 20वीं सदी कि तुलना में आज विकास की प्रकृति अलग प्रकार की है। विकास बहुआयामी अवधारणा है, विकास शब्द का कोई विशिष्ट अर्थ नही है विकास गतिशील है सदैव चलता रहता है विकास मन की स्थिति प्रकृति और दशा है जो एक निश्चित लक्ष्य के बजाय एक विशिष्ट दिशा में परिवर्तन की गति है।

अध्ययन का राजनीतिक महत्वः-

राज्य निर्माण के बाद अध्ययन क्षेत्र में सम्रग विकास हेतु जिसमें समाजिक अर्थिक राजनीतिक, सांस्कृतिक शैक्षणिक विकास को ध्यान में रखकर जिला प्रशासन द्वारा नई योजनाओं का प्रारंभ किया गया हैं। जिसमें केन्द्र व राज्य दोनों की योजनाएं जो पंचायत

के माध्यम से क्रिंयांवित हो रही है शामिल है जिसका पूरा नियंत्रण जिला प्रशासन का होता है जिसमें अधिकारी वर्ग के रूप में जिलाधीश से लेकर पटवारी तक सम्मिलित है और जनप्रतिनाधि के रूप में सांसद, विधायक, मंत्री, एवं सरपंच सभी सम्मिलित है। दुर्ग जिले में प्रशासन के माध्यम से राज्य व केन्द्र सरकार की अनेक जन कल्याणकारी योजनाएं संचालित की जा रही है। जिसमें सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना, गृह लक्ष्मी योजना, ग्राम उत्कर्ष योजना आदि प्रमुख है। राज्य सरकार द्वारा राज्य के समस्त गरीब परिवारों के लिए मुख्यमंत्री खाद्यन्न सहायक योजना के अन्तगर्त चावल उपलब्ध करा रही हैं। इससे जिले के गरीब परिवारों को लाभ मिला रहा हैं। जिले में जहां शासन द्वारा हितग्राहीयों के लाभार्थ के लिए अनेक योजना संचालित की जा रही हैं। वहीं दूसरी ओर जनप्रतिनिधि निचले स्तर के शासकीय कर्मचारियों द्वारा योजनाओं के संचालन में गड़बड़ी की जा रही हैं परन्तु शीर्ष स्तर के अधिकारीयों को द्वारा समय पर निरक्षण कर इसमें अंकुश लगाने का प्रयास किया जा रहा हैं। ग्रामीण ढ़ाचें को विकसित करने हेतु पूर्व में संचालित योजनाओं का किया जा रहा हैं। महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों और योजनाओ को जन कल्याणकारी बनाने के लिए इस बात पर ध्यान देने की जरूरत हैं। कि इन योजनाओं में ग्रामीण ढ़ाचा गत सुविधाओं के लिए सामान गुणावत्ता वाले मानकों का निर्धारण करता हैं या नहीं। जिले में केंन्द्र और राज्य सरकार की लागू सभी योजनाएं जिला प्रशासन के माध्यम से क्रियान्वित की रही हैं। परन्तु इन योजनाएं जिला प्रशासन के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही हैं। परन्तु इन योजनाओं की सार्थकता तब तक सिद्ध नही हो सकती जब तक उसके वास्ताविक हितग्राहियों को शत-प्रतिशत लाभ नहीं मिल जाता हैं। जिले में सम्रग विकास के लिए यह आवश्यक है कि बिना किसी भेद भाव के विकास को परिलक्षित करना हैं। तो शासन के विभिन्न योजनाओं को जिले के प्रत्येक विकासखण्ड में सामन रूप से संचालित करना होगा तभी जिले का संपूर्ण विकास संभव हैं।

अध्ययन क्षेत्र दुर्ग जिले

अध्ययन क्षेत्र दुर्ग जिले की विकास भी इसी कड़ी का एक भाग है। अविभाजित मध्यप्रदेश के समय में यह दुर्ग जिले की स्थापना जनवरी 1906 में किया गया था।

1 नवम्बर 2000 को छत्तीसगढ 16 जिलों के साथ मध्यप्रदेश राज्य से अलग हुआ और देश के 26 वें राज्य के रूप में उभर कर सामनें आया वर्तमान छत्तीसगढ के जिलों की संख्या 16 से बढकर 27 हो गयी है। दुर्ग जिला ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व सामाजिक आधार पर समृद्ध हैं राज्य शासन द्वारा विकास के लिए अविभाजित दुर्ग जिले के दो तहसील को विभाजित नये जिले का गठन किया गया। सरकार ने जिला प्रशासन की सुविधा को देखकर दुर्ग जिले को विभाजित कर नये जिले का गठन किया है। दुर्ग जिला का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, एवं राजनीतिक विकास करनें में सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, परिवहन, विद्युत, पेयजल, व्यवस्था और विज्ञान और टेक्नोलॉजी की और विस्तार आवश्यक तत्व है।

जब जनता को आधुनिकता की और बढनें की इच्छा होती है, तभी विकास की ओर अग्रसर होतें हैं। क्योंकि गरीबी अशिक्षा अंधविश्वास जैसे दोषों को दूर करनें के लिए शहरों और दूसरे विकसित क्षेत्रों की तरह विज्ञान और टेक्नोलॉजी का उपयोग कर विकास के लिए लोगों में नैतिक बल उत्पन्न करनें की आवश्यकता है तभी वे आत्मनिर्भर हो सकतें हैं। इसमें सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण होनी चाहिए। इसके लिए संपूर्ण साक्षारता का कार्यक्रम जो दुर्ग जिलें में चलाया गया, जिसमें नागरिकों में जन जागृति आयी और शिक्षित बनें और अपनें बच्चों को भी शिक्षित बनाया। जिलें की कार्य प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि विकास एवं सामुदायिक विकास के दौरान क्षेत्र का विकास निम्न से उच्च स्तर की और होनी चाहिए।

पुनरावलोकनः-

अध्ययन सें संदर्भित विभिन्न अध्ययन की समीक्षा की गई हैं।

1. लीलाराम सिन्हा (2012) ने जनजातीय क्षेत्र के आर्थिक विकास में ग्राम पंचायतों की भूमिका एक अनुशीलन (पी. आर. एस. यू. रायपुर) में जनजातीय क्षेत्रों का अध्ययन किया तथा यह पाया कि इनके आर्थिक विकास में ग्राम पंचायतों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उन्होंने ग्राम पंचायतों की भूमिका का विस्तृत वर्णन किया है।
2. मधु सिंग (2013) ने अपने शोध ग्रामीण विकास के संदर्भ में सुशासन की अवधारणा का अनुशीलन (चौधरी चरण सिंग विश्वविद्यालय) में सुशासन की अवधारणा का अध्ययन किया है जिसमें ग्रामीण विकास से सुशासन किस प्रकार स्थापित होता है का वर्णन है। ग्रामीण विकास और सुशासन के बीच संबंध का भी उल्लेख है।

3. अनिता कुशवाहा (2014) का शोध ग्रंथ लिटिसियंस ब्यूरोक्रेट्स एंड अम्बेडकर ग्राम विकासयोजना इन नौरेला: ए सोशियोलजिकल स्टडी (चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय) में राजनीतिक नौकरशाह की भूमिका का वर्णन अम्बेडकर के ग्राम विकास योजना के संदर्भ में किया है जिसमें उन्होंने अम्बेडकर के ग्राम विकास योजना में राजनीतिक नौकरशाही की भूमिका का विश्लेषण सामाजिक दृष्टिकोण से किया है।

शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन में जिला प्रशासन की भूमिका

भारत में क्षेतीर्य प्रशासन की मूल इकाई जिला होती है। जिला अपने आप में सम्पूर्ण प्रशासनिक संस्था है। ऐतिहासिक विरासत एवं बड़े-बड़े राज्यों से उत्पन्न प्रशासनिक अनिवार्यताओं के कारण सारे देश के भूखण्ड को प्रशासनिक रूप से सक्षम इन छोटी-छोटी इकाईयों में बांटा गया है। इस समय भारत में 500 के लगभग जिले है जो जनता के प्रशासनिक मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

खेड़ा द्वारा उद्घृत जिले का शाब्दिक अर्थ है विशेष प्रशासनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निश्चित किया गया एक भूखण्ड। इस तरह से जिला प्रशासन का अर्थ हुआ एक विशेष क्षेत्र में सार्वजनिक कार्यो का प्रबन्ध करना। दूसरे शब्दों में जिला प्रशासन राज्य प्रशासन का वह भाग है जो एक जिले की क्षेतीर्य सीमा के भीतर कार्य करता है। चूंकि जिला एक ऐसी अत्यधिक सक्षम भौगोलिक इकाई है जहां सार्वजनिक प्रशासन के समस्त उपकरण केन्द्रित किए जा सकते हैं इसलिए जिला प्रशासन सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध में सर्वत्तोमुखी कार्य करता है। भारत में राज्य सरकारें ही प्रशासनिक सुविधा को सम्मुख रखते हुए जिलों का निर्माण करती है।

अत: जिला प्रशासन सरकार की वह सम्पूर्ण कार्यवाही कही जा सकती है जो निश्चित क्षेत्र में की जाती है। जिसे राज्य सरकार द्वारा जिला माना जाता है।

जिला प्रशासन का कार्य:-

जिला प्रशासन जिसका मुखिया जिलाधीश होता है निम्नलिखित कार्य करती है-

1. कानून एवं व्यवस्था का अनुरक्षण।
2. भू-राजस्व की उगाही।
3. कार्यपालिका संबंधी कार्य।
4. विकास कार्य।
5. स्थानीय निकायों से सम्बद्ध कार्य।
6. विविध कार्य।

इसके साथ ही जिला प्रशासन राज्य एवं केन्द्र सरकार के जनकल्याणकारी योजनों को क्रियान्वित करता हैं जिसके अन्तर्गत दुर्ग में जिला प्रशासन में शासकीय योजनाओं को लागू करनें में अग्रणी भूमिका अदा की है और ऐसा करते हुए उन्होंने लालफीताशाही और भ्रष्टाचार को दूर कर शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में शासकीय योजनाओं को लागू कर जिले को विकास की ओर अग्रसर किया है।

जिले में केन्द्र व राज्य की विभिन्न जन कल्याणकारी योजनाओं को सूचारू रूप से संचालित कर प्रत्येक नागरिक तक इन जन कल्याणकारी योजनाओं को पहूँचानें कें लिए प्रयास जिला प्रशासन द्वारा किया जा रहा है,

1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना: ग्राम पंचायतों में इस योजना के संचालन में पंचायत सचिवों का महत्वपूर्ण योगदान है। हितग्राहियों का जॉब कार्ड पंजीयन बैंक में खाता खोलवाना, कार्ययोजना बनाना तथा कार्यो का फाईल जनपद पंचायत में हितग्राहियों से मांग पत्र भरवाना फिर कार्य प्रारंभ करवाना व मजदूरों का राशि भुगतान तथा ग्राम पंचायत के सचिवों द्वारा इस योजना में पूरा सहयोग हितग्राहियों को दिया जाता है। हर परिवार को 150 दिन का कार्य उपलब्ध करवाना, काम नहीं मिलने पर बेरोजगारी भत्ता का प्रावधान है। कार्यस्थल पर पीने का पानी, दवाई पेटी, बच्चों के लिए

झूला व मजदूरों के लिए छाया का व्यवस्था करवाना यह सब कार्य ग्राम पंचायत सचिवों व रोजगार सहायक द्वारा किया जाता है। ग्राम पंचायत का सचिव सभी कार्यो का अभिलेख, फाईल, कैश बुक रिकार्डो का संधारण ग्राम पंचायत के सचिवों द्वारा किया जाता है।

2. पेंशन योजना छत्तीसगढ़ के मूल निवासी 60 वर्ष या उससे अधिक आयु के निराश्रित वृद्ध। 35 वर्ष एवं उससे अधिक आयु की निराश्रित विधवा एवं परित्यक्त महिलाएँ 6 से 14 वर्ष की आयु के निराश्रित/गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवार के निःशक्त शालेय छात्र तथा 14 वर्ष से अधिक आयु के निराश्रित निःशक्त को प्रतिमाह 200 रूपये आर्थिक सहायता सम्मानपूर्वक जीवनयापन करने के लिए प्रदान किया जाता है।

उज्जवला योजना– इस योजना के अन्तर्गत बीपीएल परिवार की महिलाओं को निःशुल्क एल.पी.जी. प्रदान किया जाता हैं।

अन्तयोदय योजना– पी.डी.एस.यह शासन की जनकल्याणकारी योजना है जिसके अन्तर्गत बीपीएल,एपीएल हितग्राहियों को न्यूनतम मूल्य पर चावल व अन्य खाद्यायान वितरित किया जाता हैं

प्रधानमंत्री सड़क योजना– प्रधानमंत्री सड़क योजना के माध्यम से प्रत्येक ग्रामां को मुख्य सड़को से जोड़ा जा रहा हैं।

अटल आवास योजना– इस योजना के अन्तर्गत गरीब वर्ग के परिवारो को अवास प्रदान किया जा रहा हैं।

ऐसी प्रमुख राज्य व केन्द्र सरकार की योजना है जिससे जिले का समाग्री विकास करने कि जिला प्रशासन का प्रयास सफल होते नजर आ रहा है। दुर्ग जिला वर्तमान में बहुत से परिवर्तन हुआ हैं आज जिला विकास की और अग्रसर हैं।

निष्कर्षः– छत्तीसगढ राज्य निर्माण के बाद प्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री अजीत जोगी के द्वारा विकास के लिए सकरात्मक प्रयास किया गया तत्पश्चात 2003 के सत्ता परिवर्तन के बाद प्रदेश के नये मुखिया डॉ. रमन सिंह ने प्रदेश की कामान संभाली और प्रदेश को विकास की दिशा में अग्रसर किया और अपने 15 वर्षो के कार्यकाल में भाजपा सरकार द्वारा विभिन्न जनकल्याणकारी योजनाओं को लागू कर विकास को बढ़ावा दिया। सन् 2019 के विधान सभा चुनाव में पुनः सत्ता परिवर्तन हुआ और प्रदेश के कांग्रेस की सरकार बनी और मुख्यमंत्री भूपेश बघेल ने प्रदेश में एक अभिनव योजना की शुरूवात की जिसके माध्यम से छत्तीसगढ़ की प्राचीन धरोहर को पुनः सृज्जित करने की शुरूवात कर नरवा, गरवा, घुरवा, बाड़ी को एक सुत्र में बांधने का प्रयास शुरू किया साथ ही विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं को लागू कर जिलो विकास के लिए प्रयास तेज गति से कर रहे है। जिसके लिए जिले में केन्द्र व राज्य सरकार की सभी योजनाओं को जिला प्रशासक के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही हैं। जिले में समग्र विकास के लिए यह आवश्यक है कि बिना किसी भेद भाव के विकास को परिलक्षित करना है और शासन के विभिन्न योजनाओं को जिले के प्रत्येक विकास खंड में समान रूप से संचालित करना होगा तभी जिले का संपूर्ण विकास संभव है।

सुझावः–

- वर्तमान समय में केन्द्र सरकार के द्वारा क्रियान्वित डिजिटल इंडिया योजना का विस्तार करने के लिए प्रदेश में भी ई–प्रशासन को बढ़ावा दिया जाए।
- राज्य सरकार की विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं में शिक्षित बेरोजगारों को व्यवसाय स्थापित करने के लिए बिना ब्याज के ऋण की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- जिले में विकास के लिए विकासखंड से लेकर जिले तक निरंतर विकास कार्यो का निरक्षण करने की आवश्यकता है।
- जिले में शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के लिए शिक्षा के प्रतिजनजागरूकता बढ़ाना।
- केन्द्र व राज्य सरकार की जन कल्याणकारी योजनाओं को प्रत्येक स्तर पर हर एक हितग्राही तक पहुॅचाने का प्रयास प्रशासन द्वारा किया जाना चाहिए।
- छ.ग. राज्य निर्माण के बाद मुख्यतः रोजगारोन्मुखी शिक्षा के विस्तार के लिए आई.टी.आई. पॉलीटेक्नीक, इंजीनियरिंग व मेडिकल तथा आई.आई.टी. जैसे तकनीकी शिक्षा संबंधी महाविद्यालयों की स्थापना पूरे प्रदेश भर में की जानी चाहिए।

संदर्भ सूची

- शर्मा अवतार भारतीय राजनीति ज्वलन्त प्रश्न हिन्दी माध्यम कार्यालय निर्देशालय दिल्ली 1994 पृ02,
- अवस्थी डॉ0ए0 पी0 विकास प्रशासन लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा 2000 पृ0 2, 4,
- सिंह सबिंदर सिंह भारत में विकास प्रशासन न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग कंपनी जालधर 1996 पृ023
- फड़िया बी0एल0 भारत में लोकप्रशासन साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा 2018 पृ0138
- www. gov.in India .
- www.c.g.gov.in
- www.gov.balod.in
- कुरूक्षेत्र, अंक-09, जुलाई 2015
- कुरूक्षेत्र अंक-10, अगस्त 2014
- डे.एस. के.- पंचायती राज इन इंडिया, बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 19

स्थानीय शासन का विकास

डॉ० आयशा अहमद

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, सेठ आर. सी. एस. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

प्रस्तावना

प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में व्यापत राजनीतिक सहभागिता एवं विकास के लिए स्थानीय शासन व्यवस्था का स्थापित किया गया है। भारत में शासन के केंद्रिय स्तर, राज्य स्तर व स्थानीय स्तर के रूप में तीन स्तर बताए गए हैं, जिसमें तीसरे स्तर के शासन को स्थानीय स्तर कहा गया है। इसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र के लिए पंचायती राज व्यवस्था तथा शहरी क्षेत्र के लिए नगरपालिका जैसी व्यवस्था है। इसका मुख्य उद्देश्य स्थानीय समस्याओं का समाधान करना तथा राजनीतिक सहभागिता में व्यापक भागीदारी सुनिश्चित करना है। स्थानीय स्वशासन के ऐतिहासिक विकास को तीन युगों में देखा जा सकता है-

स्थानीय शासन का विकास

प्राचीन युग- भारत में स्थानीय शासन का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है और संभवतरू यही कारण है कि भारत को न सिर्फ ग्राम पंचायतों के देश के रूप में जाना जाता है, बल्कि पंचायतें भारत की प्राचीनतम राजनीतिक संस्थाओं में गिनी जाती हैं। पंचायती राज के उद्‌भव के संदर्भ में जानकारी सहज ही सुलभ नहीं है। प्राचीन शिलालेखों एवं साहित्यों के सघन अध्ययनोपरांत इस संबंध में इतिहासकारों को सफलता मिली है। भारत की स्थानीय स्वशासन सरकारों के संदर्भ मेँ एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि श्प्राचीन काल में यहाँ स्थानीय सरकारों के स्वतंत्र अस्तित्व का उदय और विकास, विद्यमान सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप हुआ है जबकि आधुनिक काल में स्थानीय शासन स्वयं राज्यों के सचेतन प्रयास का प्रतिफल है।" यह एक प्रमाणिक सत्य है कि भारत में स्थानीय स्वायत्तता की जड़ें अत्यंत गहरी रही हैं। भारतीय इतिहास का प्राचीनतम युग सिंधु घाटी सभ्यता का था। एक मान्यता के अनुसार सिंधु घाटी सभ्यता के दौरान भी ग्रामीण और शहरी स्थानीय स्वायत्तता विद्यमान थी जिसके प्रमाण पुरातात्विक खुदाइयों में दृष्टिगोचर होते हैं। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा की खुदाई इस बात की साक्षी है कि प्राचीनकाल में संगठित शहरी जीवन विद्यमान था यानि नगरीय सभ्यता थी द्य यह गौरव सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों को जाता है कि उन्होंने संसार को प्राचीनतम नगर दिए, प्रथम नगरीय सभ्यता दी, पहला नियोजित नगर दिया और नगर के स्थानीय प्रशासन का प्राचीनतम उदाहरण पेश किया।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सभी प्राचीन सभ्यताओं की तरह भारतीय सभ्यता भी कृषि आधारित थी। यही कारण है कि भारत में प्राचीनकाल से "ग्राम" ही आर्थिक एवं राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र रहा है। प्राचीन भारत में नगर की भूमिका अपेक्षाकृत कम होती थी। वेदमंत्रों में ग्रामों की खुशहाली के लिए बार-बार प्रार्थना की गई है। प्राय: ग्राम का शासन ग्राम के मुखिया की देख-रेख और निर्देशन में चलाया जाता था। वैदिक साहित्य में उसे "ग्रामिनी" कहा जाता था, परंतु देश के अन्य भाग में उसे कई नामों से संबोधित किया जाता था। वैदिक युग में शासकजन इकाइयों, समिति और सभा की सहायता से कार्य करते थे।

प्राचीन भारत में राज्य के संचालन के लिए राजतंत्र के साथ-साथ प्रजातंत्र के भी प्रमाण देखने को मिलते हैं। शुरुआती राजनीतिक संस्थाओं में जनपद के स्तर पर राजनैतिक शक्ति का संचालन दिखता है। ये प्रजातंत्र में प्रत्यक्ष भागीदारी के आधार पर राज्य संचालन में दक्ष नजर आते हैं। समाज की आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियों के संचालन मेँ जनमानस की भागीदारी के ये महत्वपूर्ण उदाहरण 16 महाजन पदों, जिनमें काशी, वैशाली आदि प्रमुख हैं, के रूप में नजर ऊते हैं। ईसापूर्व चौथी और तीसरी शताब्दियों में पाटलिपुत्र नगर में एक सुसंगठित तथा कुशल नगर प्रशासन था इसमें 30 सदस्यों वाली एक सभा थी। जिसकी पाँच उप समितियां

थी। जो पाँच भिन्न विषयों का प्रबंध करती थी। ई. पूर्व से 600 ई. तक का कालजैन धर्म, बौद्ध धर्म, मौर्य साम्राज्य और गुप्त साम्राज्य आदि के उत्थान और पतन का साक्षी रहा है। जैन तथा बौद्ध साहित्य में ग्राम्य जीवन के विविध आयामों पर प्रकाश डाला गया है। ग्रामीण अपनी सार्वजनिक आवश्यकताओं के लिए श्रमदान करते थे। जातक कथाओं में कई ग्रामों द्वारा एकजुट होकर सार्वजनिक उद्यमों, सड़कों आदि का निर्माण करने के उदाहरण विद्यमान हैं।' बुद्ध तथा महावीर द्वारा स्थापित धर्म संघों के अंतर्गत महत्वपूर्ण निर्णय अत्यंत प्रजातांश्रिक पद्धति पर आधारित थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में "आदर्श ग्राम" की सुस्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। ग्राम में कई अधिकारी होते थे, जिनमें प्रमुख थे गोप, अध्यक्ष (मुखिया) और लेखाकार। मौर्यकाल में ग्राम सार्वजनिक उपयोगिता तथा मनोरंजन के कार्य भी संयोजित करते थे। ग्राम के आपसी झगड़ों को सुलझाते थे और अवयस्कों की संपत्ति की न्यासधारी के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करते थे, परंतु वे औपचारिक परिषद् में विकसित नहीं हुए थे।

वास्तव में परिषदों के रूप में इनका विकास गुप्तकाल में दिखाई पड़ता है। जब इन परिषदों को केंद्रीय भारत में पंचमंडली और बिहार में ग्राम-जनपद कहा जाता था।

इसी क्रम में तमिल देश में चोलकाल का विषद् वर्णन रोमिला था पर' की पुस्तक भारत का इतिहास में देखने को मिलता है। इसके अंतर्गत उन्होंने वर्णन किया है कि चोल अधिकारी गाँवों में परामर्शदाताओं और प्रेक्षकों के रूप में भाग लेते थे। इससे ऊपरी स्तर पर होने वाले राजनीतिक परिवर्तनों के बहुत अधिक हस्तक्षेप के बिना स्थानीय उन्नति और विकास निरंतर होते रहे। इस काल में विकसित होने वाली ग्राम स्वायत्तता के पीछे आधारभूत मान्यता यह थी कि प्रत्येक गाँव का शासन स्वयं ग्रामीणों द्वारा ही होना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए एक ग्रामसभा का संगठन होता था और इसी सभा में सत्तानिहित होती थी। गाँव हलकों में बांटा जा सकता था और प्रत्येक हल का अपने सदस्यों की एक सभा बुला सकता था, इन विविध समूहों के परस्पर संबंध गाँव के सामाजिक जीवन का आधार होते थे। इस महासभा में अधिकांश स्थानीय निवासी होते थे और इसकी तीन श्रेणियां होती थी। उर में एक साधारण ग्राम के करदाता सदस्य रहते थे। सभा में केवल ग्राम के ब्राह्मण निवासी होते थे तथा अंत में 'नगरम' सामान्यत: व्यापारिक होते थे जो व्यापारिक हितों की रक्षा के लिए होते थे। कुछ गाँवों में उर और सभा साथ-साथ होती थी उत्तर मरूर (ब्राह्मणों का एक ग्राम) के मंदिर की दीवार पर खुदा लेख विस्तार पूर्वक बताता है कि स्थानीय सभा किस प्रकार कार्य करती थी। यह लेख दसवीं शताब्दी का है, जबकि दूसरे शिला लेख में यह वर्णन है कि इन ग्रामसभाओं में परस्पर सहकार सहयोग एक आम बात थी। सरकार के लिए कर निर्धारण करने का दायित्व ग्राम सभा का था। कभी-कभी पूरे गाँव से संयुक्त कर भी वसूला जाता था। सभा के कार्यों में विशेषतया दान तथा करों से संबंधित हिसाब आदि रखना और कृषि संबंधी झगड़ों जैसे पट्टे एवं सिंचाई के अधिकारों पर होने वाले संघर्षो को सुलझाना था। जिन शक्तियों का प्रयोग ये करती थी वे शक्तियाँ आज कई देशों के स्थानीय प्रशासन को प्राप्त नहीं हैं वे ग्रामीणों के हितों की रक्षा करने और उनके मौलिक, नैतिक तथा बौद्धिक विकास के लिए महत्वपूर्ण एवं सराहनीय कार्य करती थी।

मध्यकालीन युग-बारहवीं शताब्दी तथा उसके पश्चात् ग्राम प्रशासन, उसकी कार्य प्रणाली, उसकी स्वायत्तत आदि पतन के युग में प्रविष्ट कर गई थी। दूसरे शब्दों में अगर यह कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि यह व्यवस्था अधिकतर ग्रामों में तो लुप्त प्राय: सी हो गई थी। समस्त मध्यकाल मुगलों से पूर्व तथा मुगलों के काल दोनों में लोकतांत्रिक स्वशासित स्थानीय प्रशासन के संस्थाओं का हास हुआ।

भारत में मध्यकालीन प्रशासन सामंतीय तथा केंद्रीकृत सैन्य व्यवस्था थी। नगर प्रशासन का राज्ययाल गवर्नर था। जिसके हाथ में नगर पुलिस के अध्यक्ष की शक्तियों और कर्त्तव्यों के साथ-साथ नगरीय प्रशासन मजिस्ट्रेट और प्रीफेक्ट के अधिकार भी थे। मुगल प्रशासन का ढांचा इस प्रकार था कि वहाँ स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र किसी लोकतांत्रिक प्रशासन की संभावना नहीं थी। अत: प्राचीन भारत के नगरीय प्रशासन में स्वशासन की परंपरा सल्तनत तथा मुगल साम्राज्य की सैनिक तानाशाही के अधीन पूर्णतया लुप्त हो गई थी।

ब्रिटिश युग- भारत में ब्रिटिश शासन के मुख्यत: दो आधारभूत उद्देश्य थे। पहला भूमि राजस्व" की अत्यधिक वसूली छूटना तथा दूसरा भारत में. अपने प्रशासनिक व्यवस्था के माध्यम से अधिकाधिक समय तक ब्रिटिश हुकूमत को कायम रखना। अपने पहले उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने एक तरफ भूमि-सुधार, जमींदारी व्यवस्था, रैय्यतवाड़ी व्यवस्था त्था महलवाड़ी व्यवस्था को लागू किया, वहीं दूसरी ओर अपने दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रशासन की इकाईयों के रूप् में प्रांत जिले, उप जिले व तहसील

स्थापित किए। इस नए राज व्यवस्था ने अपनी क्रूर कुशलता द्वारा ग्रामों में भारतीय स्वशासन के संस्थानों का स्थान ले लिया। अंग्रेजों ने भारत में विदेशी होने के कारण कतिपय ऐसी प्रशासनिक नीतियाँ अयनाई, जिनसे ग्रामीण समुदायों का विघटन करने वाली शक्तियों को बल मिला। न्यायिक व्यवस्था, शिक्षा पद्धति और अन्य ऐसी तमाम कोशिशों ने सामुदायिक वृत्ति में दरारों को उभारने का काम किया।

ईस्ट इंडिया कंपनी के लोकसेवक सर चार्ल्स मेटकॉफ ने 1830 में उन समुदायों के संबंध में कहा था, इन छोटे गणतंत्रों में सभी इच्छित आवश्यकताएं उपलब्ध थी। विदेशी संबंधों में ये लगभग स्वतंत्र थे। ये ग्राम समुदाय अपने आप मेँ स्वतंत्र छोटे राज्य थे, जिन्होंने भारत के लोगों को होने वाली क्रांतियों और परिवर्तनों में सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण मूमिका निभाई। प्राचीनकाल में आपसी झगड़ों के फैसले पंचायतों द्वारा होते थे जबकि ब्रिटिश राज में पंचायतें धीरे-धीरे शक्तिहीन एवं महत्वहीन होती गई क्योंकि, स्थानीय प्रशासन को ब्रिटिश सरकार ने अपने तरीके से क्रियान्वित करने की कोशिश की।

नगरीय संस्थाओं की स्थापना सर्व प्रथम ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा की गई थी। ब्रिटिश सरकार ने पहली बार 1687 ई. में (जिसे ब्रिटिश सम्राट जेम्स द्वितीय ने एक राजपत्र द्वारा जारी किया गया था) मद्रास के लिए नगर निगम नामक स्थानीय संस्था की स्थापना की। कलकत्ता और बंबई ने क्रमश: 1772 और 1793 में स्वयं के नगर निगम स्थापित किए। ऐसी अन्य स्थानीय नगर संस्थाएं 1842 के बाद स्थापित हुई, 1864 में लार्ड लारेंस ने इस सत्य को स्वीकार किया कि भारत के लोगों में अपने स्थानीय मामलों को चलाने की क्षमता है। “वैसे भारत में 1860 के दशक में विकेंद्रीकरण की रति की शुरूआत की गई लार्डमेयो द्वारा 1870 में प्रस्तावित प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया गया था कि प्रशासन वे मारतीयों को अधिकाधिक भाग दिया जाए, जिसकी पूर्ति नगरों में स्वशासन स्थापित करके की जा सकती है।”

स्थानीय स्वशासन की नीति पर 1881 में पुनर्विचार किया गया। 10 मई 1882 को लार्डरिपन जिसे भारत में “स्थानीय स्वशासन का जनक” कहा जाता है, ने एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव जारी किया जिसे स्थानीय सरकार के इतिहास अभूतपूर्व घटना कहा जा सकता है, इस प्रस्ताव का उद्देश्य स्थानीय कार्यों के प्रबंध में जनता को अधिक वास्तविक व अ्ंपर्ण भागीदारी देने की बात की गई थी। यद्यपि रिपन के सुधार को प्रशासकीय दक्षता के प्रतिकटिबद्ध पुरातन वादी कुझणसन से धक्का लगा तथापि इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि लार्डरिपन ने स्थानीय एवं नगरीय प्रशासन ही आधारशिला रखी। जिसने भारत में शीघ्र बल ही पकड़ा और कालांतर में इसकी अभिव्यक्ति प्रजातंत्र की एक मजबूत इकाई के रूप में उमरकर सामने आई। लार्डरिपन के पश्चात् स्थानीय सरकार के इतिहास में दूसरा महत्वपूर्ण कदम 1909 में रॉयल आयोग” की रिपोर्ट के विकेंद्रीकरण पर उठाया गया। इसने स्वायत्त प्रशासन के विकास की सिफारिश प्रशासनिक हस्तांतरण के साधन के रूप में की।

1909 के मार्ले मिंटो सुधार अधिनियम ने स्थानीय प्रशासन की प्रगति में अवरोधक का कार्य किया, जिसमें सांप्रदायिक मतदान प्रणाली की वकालत की गई थी, जिसे बाद में मोंटेग्यू चौम्स फोर्ड रिपोर्ट में तथा साइमन आयोग ने भी स्वीकार किया। 1918 के मोंटेग्यू चौम्स फोर्ड रिपोर्ट में सिफारिश की गई कि जहाँ तक संभव हो सके स्थानीय सरकारों पर जनता का संपूर्ण नियंत्रण होना चाहिए और बाहरी नियंत्रण से उन्हें जितना अधिक संभव हो सके स्वतंत्रत होनी चाहिए। 1919 के भारत सरकार अधिनियम में एक भाग स्थानीय स्वायत्त सरकार के प्रसार से संबंधित था। द्वैध शासन के तहत प्रांतीय सरकारों ने स्थानीय स्वशासन के विकास की दिशा में काफी रूचि दिखाई। 1935 के भारत सरकार अधिनियम में प्रांतों में क्षुब्ध शासन का स्थान स्वायत्त शासन ने ले लिया, इसके तहत प्रांतीय स्वायत्तता के काल में स्थानीय संस्थाओं को लोकतांत्रिक और शक्तिशाली बनाने की दिशा में प्रयास किए गए।

इसी क्रम में ग्रामीण संस्थाओं की स्वायत्तता और शक्ति के विकेंद्रीकरण के विचार को राष्ट्रीय परिदृश्य पर महात्मा गाँधी के आगमन से वैचारिक बल प्राप्त हुआ। उन्होंने स्वायत्त ग्रामीण संगठनों द्वारा राष्ट्रीय विकास के सिद्धांत का आरंभ किया। इसमें ग्राम की पूर्ण आत्म निर्भरता पर जोर दिया गया। उनकी मान्यता थी कि गाँवों को आर्थिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक मामलों में आत्मनिर्भर होना चाहिए। आज यदि प्रजातंत्रात्मक विकेंद्रीकरण सरकार का सिद्धांत वाक्य बना है तो नि:संदेह इसका श्रेय गाँधी जी के सिद्धांतों के प्रभाव को दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि लोकतंत्र की कामयाब के लिए प्रत्येक पुरूष या महिला द्वारा अपनी जिम्मेदारी समझना अत्यंत आवश्यक है और यही पंचायती राज का अवधारणा है।

निष्कर्ष-

भारत में स्थानीय स्वशासन कोई नयी विषय वस्तु नहीं है, क्योंकि भारत में स्थानीय स्वशासन की जड़े प्राचीन काल से ही गहरी रहीं हैं। प्राचीनकाल से ही भारत में किसी न किसी रूप में स्थानीय स्वशासन अपने अस्तित्व में रहा है। आज वर्तमान भारत में स्थानीय स्वशासन का जो स्वरूप हमारे सामने विद्यमान है इसे मुख्यत: ब्रिटिश शासन की देन ही कहा जा सकता है। ब्रिटिश शासनकाल में ही पंचायती राज व्यवस्था से संबंधित स्थानीय मामलों में अधिकाधिक जब सहभागिता प्राप्त करने के उद्देश्य से नगरीय क्षेत्र के लोगों को कुछ ऐसे कार्यो को सौंपा गया जिसका संबंध उनके सामान्य जीवन स्तर से था। अत: स्थानीय शासन का सही स्वरूप स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात् प्राप्त हुआ।

संदर्भ:-

1. फाड़िया बी. एल., लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार, 2020पृ. 721
2. कौर, इन्द्रजीत, लोक प्रशासन, 2000 पृ. 808
3. गोयल, श्रीराम, चंद्रगुप्त मौर्य, 1999पृ. 107
4. फाड़िया बी. एल., लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार, पृ. 721
5. सिंह उपिंदर, एहिस्टी ऑफ एंशिएंट एण्ड अर्ली मेडिएवल इंडिया, पृ. 593--94
6. सचदेवा, प्रदीप, अर्बन लोकल गवर्नमेंट एण्ड एड मिनिशट्रेशन इन इण्डिया, पृ. 61
7. Governer B.L. and Govt S Modem Indian History pp.205-06
8. शर्मा एम. पी., डॉ. सडाना, बी. एल., लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार, पृ. 721

महिलाओं के बारे में महात्मा गांधी के विचार

आशीष नाथ सिंह

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, श्री शंकराचार्य महाविद्यालय जुनवानी भिलाई (छ.ग.)

प्रस्तावना:-

गांधी जी महिलाओं को शिक्षा के माध्यम से उनकी मुक्ति में विश्वास रखते थे और उन्होंने भारतीय समाज के कायाकल्प की दिशा में चलायी गयी राजनीतिक सामाजिक अथवा विकास सम्बन्धी गतिविधियों में महिलाओं के प्रति कोई भेदभाव नहीं रखा। सामाजिक निरंकुशता और पुरुष प्रधानता की वजह से महिलाओं की जो दुर्दशा हुई, उसका गांधीजी को भलीभाँति ज्ञान था।

भारतीय समाज में महिलाओं स्थिति

भारत में महिलाओं की स्थिति अत्यंत कमजोर थी जिस पर गांधीजी विचार व्यक्त करते हुये कहा था कि महिलाओं की शिक्षा को पर्याप्त महत्त्व दिया जाना आवश्यक हैं, किन्तु वे जानते थे कि अकेले शिक्षा से ही राष्ट्र निर्धारित लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सकते। वे सिर्फ महिलाओं की ही नहीं, पुरुषों की भी मुक्ति के लिए समुचित कार्यवाही के पक्षधर थे। शिक्षा के बारे में उनके विचार अनेक समकालीनों से भिन्न थे और शिक्षा उनके ग्राम पुर्ननिर्माण तथा उसके माध्यम से राष्ट्र पुर्ननिर्माण का मात्र एक हिस्सा, एक प्रमुख घटना थी। उन्होंने एक बार कहा था कि महिलाओं की शिक्षा मात्र ही दोषी नहीं है, हमारी समूची शिक्षा-प्रणाली विगलित है। वे शहरों और कस्बों में रहने वालों की आलोचना करते थे जो जनसंख्या का कुल 10-15 प्रतिशत हैं, और प्रत्येक चीज में लिंग सम्बन्धी भेदभाव को बढ़ावा देते हैं।

गांधीजी उन्हें निरक्षरता, स्कूल सुविधाओं का अभाव, भू-स्वामियों के शोषण का शिकार होने और ऐसी ही अन्य सामाजिक आर्थिक अक्षमताओं की कितनी जानकारी थी, जिनका सामना ग्रामीण महिलाओं को करना पड़ता है। उन्होंने लिखा था 'जरूरी यह है कि शिक्षा प्रणाली को दुरुस्त किया जाये और उसे व्यापक जनसमुदाय को ध्यान में रखकर तय किया जाये। उनके अनुसार शिक्षा प्रणाली में बच्चों के साथ प्रौढ़ शिक्षा पर ही बल नहीं दिया जा सके।"

बच्चों के साथ प्रौढ़ शिक्षा पर उनके अनुसार जिस शिक्षा प्रणाली में बल नहीं दिया जायेगा, वह उपयुक्त नहीं हो सकती। भारत में जो गिनी-चुनी शिक्षित महिलाएँ हैं, उन्हें पश्चिमी ऊँचाइयों से नीचे उतरकर देश के मैदानों में आना होगा। उनकी उपेक्षा के लिए निश्चय ही पुरुष जिम्मेदार है, उन्होंने महिलाओं का अनुचित इस्तेमाल किया है किन्तु जो महिलाएँ अन्धविश्वासों से उपर उठ चुकी हैं, उन्हें सुधार के लिए रचनात्मक कार्य करने होंगे।

गांधीजी के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो लड़के-लड़कियों को स्वयं के प्रति अधिक उत्तरदायी बना सके और एक-दूसरे के प्रति अधिक सम्मान की भावना पैदा कर सके। महिलाओं के लिए ऐसा कोई कारण नहीं है कि वे अपने को पुरुषों का गुलाम अथवा पुरुषों से घटिया समझें, उनकी अलग पहचान नहीं है बल्कि एक ही सत्ता है। अत: महिलाओं को सलाह है कि वे सभी अवांछित और अनुचित दबावों के खिलाफ विद्रोह करें। इस तरह के विद्रोह से कोई क्षति होने की आशा नहीं है। इससे तर्कसंगत प्रतिरोध होगा और पवित्रता आयेगी।

भारतीय परम्परा में आमतौर पर महिलाओं को सम्मान मिला है और शायद भारत एक मात्र ऐसा देश है जहाँ करोड़ों लोग अर्धनारीश्वर की पूजा करते हैं और जहाँ मनु ने यह घोहणा की कि जहाँ नारी का सम्मान होता है वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं। यह सत्य है कि भारतीय महिलाएँ आज भी कुल मिलाकर निरक्षर और अशिक्षित हैं तथा वांछित रूप में अपनी आवाज संसद या विधान मण्डलों में उठाने में असमर्थ हैं।

हमारी शिक्षा प्रणाली अत्यन्त विशाल है। जहाॅ शहरी लड़कियाँ देश में उच्च शिक्षा का अधिकतम लाभ उठा रही हैं, क्योंकि वे उच्च और मध्यमवर्ग से सम्बन्ध' हैं। उनकी उपस्थिति उन क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में बढ़ी है, जो लड़कों का गढ़ समझे जाते थे, जैसे- रसायन, इंजीनियरिंग, ऐयरोनाटिकल इंजीनियरिंग, इलेक्ट्रॉनिक्स, संचार और पत्रकारिता शिक्षा उत्पादन इंजीनियरिंग, चिकित्सा, व्यापार प्रबन्ध और कम्प्यूटर विज्ञान अनेक युवतियों के प्रवेश के बाद अथवा परीक्षा का परिणाम आने तक अन्त में घरेलू महिला बनना पड़ता है। वे जान-बूझकर अपनी शिक्षा और व्यावसायिक लक्ष्यों को परिवार के जीवन के लिए त्याग देती हैं। यह बड़ी ही दुर्भाग्यपूर्ण समाज वैज्ञानिक अवधारणा है, क्योंकि एक डॉक्टर इंजीनियर और व्यापार प्रबन्ध बनाने में कई लाख रुपये की लागत आती है अगर उसकी शिक्षा का इस्तेमाल समाज की बेहतरी के लिए नहीं होता, तो उस पर खर्च समूची धनराशि व्यर्थ जाती है। हालाँकि अनेक शादीशुदा प्रशिक्षित महिलाएँ जो घरों में रहती हैं वे बच्चों का पालन पोषण बड़ी दक्षता से करती हैं और घरेलू गतिविधियों का प्रबन्ध करती हैं, यह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है।

सरकारी और प्राइवेट संस्थानों की घरों मे रहने वाली व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित महिलाओं को सेवाओं का लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिए। रोजगार, काम के घण्टे आदि परम्परागत नियमों को बदलना होगा ताकि काम की इच्छुक महिलाओं की विशेष आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। कार्यस्थलों पर शिशुओं को रखने के प्रबन्ध भी किये जा सकते हैं। ऐसी कामकाजी महिलाओं को लाने, ले जाने की सुविधाएँ भी प्रदान की जा सकती हैं।

गांधीजी के विचारों को ध्यान में रखते हुए पहला उपाय यह करना होगा कि निचले स्तर पर शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जाये। स्कूल स्तर पर महिलाओं को विशेष कौशल का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। हमें कई लाख स्वास्थ्य कायकर्ताओं की आवश्यकता है। ऊपरी मिडिल स्कूल से लेकर वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षण का एक खास पाठ्यक्रम तैयार किया जा सकता है। कम्प्यूटर शिक्षा भी निचले स्तर से ही शुरू की जा सकती है। किसी लड़के या लड़की के हायर सेकेण्ड्री परीक्षा पास करने तक उन्हें रोजगार के लिए दक्ष बना दिया जाना चाहिए। माध्यमिक स्तर पर किताबी शिक्षा की मात्रा कम की जा सकती है, व्यासायोन्मुखी जानकारी और स्कूल के पुस्तकालय, प्रयोगशाला प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जा सकता है। अगर अधिक प्रशिक्षण सुविधाओं की आवश्यकता हो तो भावी कर्मचारियों को प्रशिक्षण सहायता देने के लिए स्थानीय निगम आगे आ सकते हैं।

उन स्कूलों और कॉलेजों में जहाँ लड़कियों और महिलाओं की संख्या अधिक हों, वहाँ डिजाइनिंग, ड्राइंग, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, मिडवाइफरी, घरेलू अर्थ प्रबन्ध, पुस्तकालय, विज्ञान आँकड़ा, प्रोसेसिंग, बुजुर्गों की देखभाल, विज्ञापन कापीराइटिंग, सांख्यिकी, सेनेमाटोग्रैफी, बागवानी और असंख्य ऐसे ही अन्य पाठ्यक्रम अवश्य शुरू किये जाने चाहिए, जो खासतौर से महिलाओं और लड़कियों के लिए तैयार किये गये हों, इससे देश अगली शताब्दी की चुनौतियों का सामना कर सकेगा। इन नये प्रशिक्षणों को युक्तिसंगत ढंग से मानविकी, विज्ञान और सामाजिक विज्ञानों के परम्परागत पाठ्यक्रमों के साथ जोड़ा जाना चाहिए।

भारतीय नारी की क्षमता और किसी भी उन्नतिशील देश की नारी से कम नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ उन्नतिशील देशों में नारियों की पुरुषों के समान लगभग प्रत्येक क्षेत्र में समान अवसर प्राप्त हैं, वहीं भारतीय नारियों के सामने व्यावहारिक रूप में अवसरों की कमी है। संविधान में यद्यपि सिद्धान्त रूप में और स्त्री और पुरुष को समान अधिकार दिये गये हैं, पर व्यवहार में वह बात नहीं है और अनेक सामाजिक बाधाएँ उनके विकास में बाधक हैं। अतः नारियों को व्यावहारिक रूप से समान अधिकार मिलना चाहिये। परन्तु साथ ही साथ हमें अपनी संस्कृति और सभ्यता की उपेक्षा नहीं करनी होगी। महिलाओं की शिक्षा में भी हमें उनकी उन व्यावहारिक कठिनाइयों पर ध्यान देना होगा जो शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर आती हैं। इनकी शिक्षा, पाठ्यक्रम आदि के निर्धारण में नारी जाति की स्वाभाविक आवश्यकताओं का ध्यान रखना होगा। पुरुष और स्त्री के लिए एक ही प्रकार के पाठ्यक्रम के निर्धारण से उनका उचित विकास नहीं होगा। शिक्षा के क्षेत्र में यदि प्राथमिक शिक्षा स्तर तक सह-शिक्षा भी दी जा सकती है। परन्तु अधिक उत्तम हो कि देशभर में अधिक-से-अधिक बालिका विद्यालय खोले जायँ।

स्वतंत्रत प्राप्ति के पश्चात महिलाओं स्थिति

अगस्त 1947 में स्वतंत्रत प्राप्ति के पश्चात् यह परिवर्तन और भी तीव्रगति से हो रहे हैं तथा भारतीय नारी अपने परम्पराबद्ध स्वाभाविक विशेषता से मुक्त होने लगी। स्वतंत्र भारत में महिलाएँ आज अधिकाधिक संख्या में वैतनिक एवं लाभपूर्ण व्यवसायों और काम-धन्धों में आने लगी हैं। इस देश में समाज के निम्न वर्ग की औरतें तो हमेशा से ही मजदूरी करती रही हैं, किन्तु उच्च वर्ग की महिलाएँ अधिकतर अपने घरों तक ही सीमित रही हैं। स्वतंत्र भारत में अब महिलाएँ घर की चहारदीवारी से निकलकर इन धन्धों में जा रही हैं जिन पर अब तक पुरुषों का अधिपत्य था। यह एक अपूर्व घटना है और एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत की विशेषता भी है।

इससे स्पष्ट होता है कि समाज के इतने विकास के बाद भी आज महिलाएँ कार्योजन के क्षेत्र में प्रगति बहुत कम कर पायी हैं। क्योंकि अभी भी उच्च शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त युवतियों की तीन-चौथाई संख्या रोजगार क्षेत्र में नहीं उतर पाती। विशेष रूप से तकनीकी व्यावसायिक क्षेत्रों के लिए किये गये प्रशिक्षण का लाभ राष्ट्र को नहीं मिल पाता क्योंकि कुछ रुढ़ियाँ उनमें बाधक हैं और प्रशिक्षण और रोजगार क्षेत्रों में ठीक सामंजस्य नहीं बैठाया जा सका है। एक ओर तो बेरोजगारी है, दूसरी ओर रोजगार क्षेत्रों को योग्य व्यक्ति नहीं मिलते हैं। लड़कियों, महिलाओं के मामले में तो उनका प्रशिक्षण भी समाज के काम नहीं आता।

भारत में महिलाओं की शिक्षा चूँकि ज्यादा नहीं हो पाती है इसलिए महिलाओं की ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए कि बालिकाओं को हाईस्कूल और इन्टरमीडिएट करने के साथ-साथ कोई ऐसी शिक्षा हो जो उनकी सभ्यता और संस्कृती से जुड़ी हुई हो और उस शिक्षा के द्वारा वह अपनी जीविका चला सके। जिससे उन्हें अपनी जरूरत की सभी चीजों के लिए किसी और के ऊपर निर्भर न होना पड़े। इसलिए प्रत्येक बालिका को शिक्षा के साथ ऐसी कला सिखायी जाय जो उसको अपने घर में रहकर ही स्वरोजगार करके अपनी तथा अपने परिवार की जीविका चला सके।

हमारे आज के समाज की सबसे बड़ी माँग यही है कि हम दूसरे के ऊपर निर्भर न होकर स्वयं अपने देश के ऊपर निर्भर रहें। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा के अनुसार रोजगार करने की जरूरत है, जिससे कि हमारा देश आगे बढ़ सके और अन्य देशों की तरह कन्धा से कन्धा मिलाकर हम भी विकसित देशों में अपना नाम कर सकेंगे। आज लड़कियों कि शिक्षा के नाम पर बस उसे साक्षर बनाया जाता है, लोगों का नजरिया अभी भी स्त्री शिक्षा के प्रति बहुत ही पिछड़ा हुआ है। लड़कियों को स्नातक या स्नातकोत्तर कराने के बाद उसकी शादी कर देते हैं, ये नहीं सोचते कि आगे चलकर क्या करेंगी। बचपन से ही उसकी शिक्षा का कोई उद्देश्य नहीं होता है, इसलिए आवश्यकता है समाज को स्त्री शिक्षा के बारे में सोचने के लिए कि स्त्रियों की शिक्षा रचनात्मक ढंग से होनी चाहिए, जिसके कारण वे परम्परागत शिक्षा की आवश्यकता को महसूस करें। जिससे वे आत्मनिर्भर बन जायेंगी और समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और समाज की भी प्रगति होगी।

लोक विद्या की आवधारण स्त्रियों को इन्हीं समस्याओं को देखते हुए अत्यन्त समीचीन प्रतीत होती है। जिनके द्वारा वह अपनी हुनर व कलाओं, उद्योग आदि के द्वारा आर्थिक सम्पन्नता एवं शिक्षा भी प्राप्त कर सकती हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में लोक विद्याओं की भूमिका और अधिक शसक्त प्रतीत होती है। जिसमें हमें अपनी ही प्रौद्योगिकी के द्वारा आत्म निर्भरता, स्वावलम्बन आर्थिक और विकास का अवसर प्राप्त हो सकेगा। जब देश में राष्ट्रीय पूँजी का अभाव हो और सभी को सरकारी नौकरी मुहैया नहीं की जा सकती, ऐसी स्थिती में भारतीय अतीत की खोज करने की आवश्यकता जान पड़ती है। आज हमने आटा-पिसाई, तेल-पेराई, चावल-कुटाई और फलों तथा सब्जियों को सुखाने की व्यवस्था को भी बड़ी-बड़ी मिलों और विदेशी कम्पनियों के जिम्मे सौंप दिया है, यह पराश्रिता हमें गरीबी, बेरोजगारी और गुलामी की ओर ले जा रही है।

भारतीय नारी परिवार, समुदाय और समाज में तभी उत्साहपूर्वक अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकती है, जबकि सामाजिक जीवन में उसके काम और जीवन की दशाओं में सुधार होगा, और वह स्वयं को सामाजिक, आर्थिक व मानसिक रूप से बन्धनमुक्त कर पायेगी। स्त्रियों को ऊँचा उठाने का दायित्व सम्पूर्ण व्यवस्था का है। इसके लिए सम्पूर्ण समाज को जागृत करने की आवश्यकता है, क्योंकि उनकी समस्याएँ एकांगी न होकर समस्त समाज से जुड़ी हुई हैं। तभी हमारा देश आगे बढ़ सकेगा।

निष्कर्ष

गांधीजी ने महिलाओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने सार्वजनिक गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता के औचित्य को सिद्ध करते हुए उसे विस्तार दिया ताकि वे सांस्कृतिक बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ सकें। इसी समय महिलाओं के स्वभाव और भूमिका के बारे में गांधीजी की परिभाषा हिन्दू पितृसत्ता से गहराई से जुड़ी हुई नजर आयी और अक्सर उनका झुकाव महिला आन्दोलन के आगे बढ़ाने के बजाय उन्हें सीमित करने की ओर रहा।'

संदर्भ

1. स्त्री संघर्ष का इतिहास-राधा कुमार-वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
2. द टाइम्स ऑफ इंडिया-29 जुलाई, 1995
3. द टाइम्स ऑफ इंडिया-29 जुलाई, 1995
4. गांधी ऑन वीमेन-विषय पर मधु किश्वर का आलेख-रीडिंग इन दि वीमेंस मूवमेन्ट-1
5. स्त्री संघर्ष के मुद्दे-प्रो.आशा शुक्ला एवं कुसुम त्रिपाठी महिला अध्ययन विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल 2014
6. प्रो.आशा शुक्ला एवं कुसुम त्रिपाठी उपनिवेशवाद, राष्ट्रवाद और जेण्डर- महिला अध्ययन विभाग, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल 2010

महाभारते क्रियाकर्मयोगयोः वैशिष्ठ्यम्: गीतायाः सन्दर्भे

नूपुर

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, गुरूकुल कांगडी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

क्रियायोगशब्दस्य तात्पर्यम् :-

महर्षिपतञ्जलिः समाहितचित्तस्य युक्तानां श्रेष्ठानां अधिकारिणां कृते अभ्यासरूपेण, त्यागरूपेण च राजयोगस्य प्रचारं कृतवान् आसीत्। ये पूर्वजन्मेषु जप-तप-समाधि-आदि-सर्वभारं अतिक्रान्ताः, येषां योगसाधना सिद्धिं न प्राप्ता, साधनायां मृताः, येषां प्रतिबिम्बं मातृदेवे समाहितं भवति, ते एव उत्तमाः अधिकारिणः सन्ति। एतादृशानां उत्कृष्टानां योगाधिकारिणां आरम्भदेवः योगस्य अभ्यासस्य आवश्यकता नास्ति। अभ्यास-अनुरागेण पूर्वाभ्यासं सम्पन्नं कृत्वा ते सम्प्रज्ञातअसम्प्रज्ञायोगं प्राप्नुवन्ति। योगभ्यासस्य वैशिष्ट्यम् अस्ति यत् एकसाधकः यावत्पर्यतं योगः कृतः। तस्य अभ्यासः बहुजन्मविच्छेदानन्तरम् अपि न नश्यति। यावत् सः अभ्यासं कृतवान् त्यक्तवान् च, तस्य साधना ततः परेषु जन्मेषु आरभ्यते। भगवान् अर्जुनः अपि तथैव वदति -

नेहाभिक्रमनाशोस्ती प्रत्यावायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

अर्थात् अस्मिन् योगमार्गे अभिक्रमः अर्थात् आरम्भस्य नाशः न भवति। अस्माभिः यः अभ्यासः आरब्धः सः अस्माकं मनसि निहितः अभवत्। चिकित्सादिव कृतोऽभ्यासः तस्मिन् विघ्नः सन् अपि अपव्ययः न गच्छति। अर्थात् यदि औषधं चिकित्सायै निरन्तरं सेव्यते तर्हि चिकित्सा सफला भवति, यदि औषधं मध्यमार्गे निरुद्धं भवति तर्हि पूर्वचिकित्सा निष्प्रयोजनं भवति।

साधकाः वैराग्यं भोक्तुं न शक्नुवन्ति येषां मनः अनिष्टम्। येषां योगाभ्यासस्य महती इच्छा अस्ति, परन्तु येषां मनः चञ्चलम् अस्ति, तेषां कस्यचित् कठोरसाधनस्य आवश्यकता वर्तते। एतादृशाः अधिकारिणः मध्यमाधिकारिणः इति उच्यन्ते।

ईश्वरः-

जीवशक्तिः, प्रभुः, शक्तिः, अस्मिन् शब्दे त्रयस्वराः सन्तिए ई-स्व-र। ई वा ईकारः इति श्वासशब्दः। शास्त्रेषु 'ईकारे' प्रविसन्ति। इति शब्दस्य अर्थः 'ईकार' इति शब्देन प्राणः प्रविशति। 'श्व' वा श्वकारशब्दस्य अर्थः 'अहम्' इति अर्थात् यः नित्यः निःश्वासनिष्कासनयोः जन्ममरणयोः वा मध्ये विद्यमानः आत्मा। अस्य 'अहम्' शब्दस्य जन्ममृत्युः नास्ति। अहं जन्ममरणयोः उपरि अस्मि। 'अहं' 'प्रभु, 'आत्मा', अमृतस्य पुत्रः अथवा अमरस्य पुत्रः, ईश्वरस्य पुत्रः, आत्मा वा भगवान् श्रीकृष्णः इति अपि निर्दिष्टुं शक्यते। 'र' वा रकार इति श्वासत्यागशब्दः। अर्थात् मृतात्मा अथवा क्षीणमायुः।

प्रणिधानः-

प्रणिधानं वा आत्मधारणम्। यत् सर्वदा आत्मानं धारयति, पोषयति च, तथैव निःश्वासनिःश्वासयोः युक्तिं अभ्यासं करोति, तस्य आत्मावायुआत्मयोः निरन्तरं अध्ययनं करोति।

क्रियायोगस्य मूलभूताः-

'क्रियायोगः' श्वासधारणा, श्वासनिरोधः, निःश्वासः च इति सिद्धान्तेषु आधारितः अस्ति तथा च तस्य अभ्यासः "समीर विजय श्वरद्वयरू" अर्थात् जागृतः निरन्तरनियन्त्रणं च वायुः (श्वास) विजयः अर्थात् निःश्वासस्य प्रश्वासस्य च समये उत्पन्नः इति कथ्यते। प्रतिश्वासे अध्ययनं क्रियमाणे अक्षरद्वये आश्रितं भवति। अन्येषु शब्देषु योगः आत्माकार्यस्य अभ्यासः अस्ति तथा च प्रत्येकं प्राणः एकमपि निःश्वासं न स्थगयित्वा धारयितव्यम्।

पतञ्जलियोगसूत्रस्य प्रथमः अध्यायः 'समाधिः' इति। समाधि किम्, कथं एतां स्थितिं तत्सम्बद्धानि घटनानि च व्याख्यायते। अवश्यं समाधुस्य वर्णनं कथा-अनुमान-आधारितम् अस्ति। समाधिअवस्था प्राप्तुं तस्य कौशलानां नियमितरूपेण अभ्यासः करणीयः। अस्मिन् अध्याये पतञ्जलिः प्रथमविधिरूपेण 'प्रत्याहारः' इति विषये उपदिशति, अनेन सर्व क्षयं भविष्यति। निवृत्तेः अनन्तरं पतञ्जलिः धारणां, ध्यानं च विषये उक्तवान्। केवलं धारणा अवस्थायां समाधं चिन्तयितुं शक्यते, विभूतिपादैः समाधिम् अवस्थां प्राप्नोति।

सम्पूर्णेषु योगसूत्रेषु तपः, स्वाध्यायः, ईश्वरः प्राणिधानस्य च कला कार्ययोगः अस्ति। अनेके जनाः मन्यन्ते यत् 'तपः' अतीव कठिनम् अस्ति, तस्य अभ्यासार्थं गृहं त्यक्त्वा वनं प्रति विविधस्थानं प्रति च तपस्वी गन्तुं प्रभवन्ति। तपस्य गहनः अर्थः अस्ति यत् श्वासनद्वारा ईश्वरपूजनाय ऊर्जा, आन्तरिकतापः च प्राप्यते। शिवः प्रायः नग्नः, व्याघ्रचर्मधारी, नागमालायुक्तः, छिन्नशिरसि चन्द्रं धारयन्, गङ्गमाता च सहचरः भवति। शिरसा अवतरन् शूलहस्तेन अनन्तदम्बहस्तेन च हिमालये तपः अकरोत् इति चित्रे उल्लिखितम् अस्ति। पूर्वोक्तानि शिववर्णनानि सर्वाणि प्रतीकात्मकानि सन्ति। नग्नत्वस्य अर्थः अस्ति यत् ऊर्जा सर्वदा नग्ना वा अनावृता सून्य भवति। व्याघ्रचर्मधारणेन शिवः सर्वदा स्वतन्त्रः, न किमपि प्रभावितः इति अर्थः। नागः शरीरात् पृथक् वसति इत्यर्थः। नागस्य आत्मा स्पर्शदृष्टिघ्राणयोः सीमितः भवति। दीर्घकेशस्य इडा, पिङ्गला, सुसुन्मा च प्रतीकं धारयन् पुरातनकृतीनां युग्मस्थापनं भवति। 'कलौ सर्पं जालम्' इति। शिवप्रसङ्गे चन्द्रः विजमन्त्रः मूलशब्दः वा, यस्मात् अन्ये शब्दाः निष्पन्नाः। चन्द्रः सृष्टेः गर्भः हिरण्यगर्भस्य चन्द्रबिन्दुः ब्रह्माण्डस्य उद्घाटने इडा (यमुना), पिङ्गला (गंगा) सुसुन्मा (सरस्वती) च अपि उद्घाट्यन्ते। ब्रह्मरन्ध्रः गङ्गायाः शिरः भवति तथा च यमुना सरस्वती च तस्मिन् विलयभूत्वा अस्तित्वं नष्टं कुर्वन्ति। वस्तुतः एतदेव साधनायाः परमलक्ष्यम्। त्रयी अर्थस्थानं सूक्ष्मं कारणं च प्रतिपादयति। ये मेरुदण्डस्य शिखरे समागच्छन्ति। सारांशेन भगवान् शिवः सृष्टेः विनाशस्य च सार्वत्रिककारणः अर्थात् शून्यतायाः अनादित्वस्य च प्रतीकं प्रवहति। तस्मात् दृष्ट्या शिवः कस्यापि धर्मेण बद्धः न भूत्वा समग्रं सृष्टिं घटनां च प्रतिनिधियति। सः मानवजीवनस्य मूर्तरूपः अस्ति, अनादितायाः, सर्वथा शून्यतायाः, च प्रतीकः अस्ति। 'ईश्वरः' इत्यस्य वास्तविकः अर्थः निःश्वासः (इ-कारः), श्वासं धारयितुं (श्व.कारः) श्वासं विमोचयितुं (र-कारः) इति। अस्माभिः प्रथमे अध्याये (सूत्रं १.२३) विस्तरेण चर्चा कृता। शास्त्रेषु 'पुरुषविशेषः ईश्वरः' इति। प्रत्येकं श्वासे 'विशेषः पुरुषः' विशेषः आत्मा भवति, सः एव ईश्वरः इति। यदि केवलं ईकारं, रकारं श्वकारं च आचरति तर्हि 'तपः' उष्णतां च सृजति। एतां गुह्यप्रक्रियां यः सर्वदा अभ्यासं करोति सः वास्तविकः क्रियायोगि भवति।

केचन शास्त्राणि भिन्न-भिन्न-श्वास-विषये, तेषां भिन्न-भिन्न-स्वभाव-ध्वनि-विषये च कथयन्ति। यथा क्रोधनिःश्वासः, निद्राश्वासः, ध्यानस्य निःश्वासः, अभिमानस्य निःश्वासः, शान्तस्य च निःश्वासः, क्रोधस्य निःश्वासः स्वस्य मृत्युं जनयितुं शक्नोति। भ्रामरी इव क्रोध.श्वासः शरीरस्य अन्तः गभीरं परिभ्रमति, मनः-शरीर-स्थितिं, आन्तरिक-शक्तिं च नाशयति। ध्यानश्वासस्य शब्दः अद्वितीयः अस्तिए तेन मनःएकर्मस्य उपरि प्रभावितः भवति। 'ईकार शक्तिदायकम्', अर्थात् श्वासः आन्तरिक ऊर्जालाभस्य साधनं तेन च सृष्टेः सर्वरूपं भवति। यथा ईकारः श्वासः युक्तः, तस्य सम्यक् प्रयोगाय सर्वदा जाग्रतभुत्वा सम्यक् प्रकारेण अभ्यासः करणीयः।

नातपस्विनो योगः सिध्यति। अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थित- विषयजाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः सम्भेदमापद्यत इति तपस उपादानम्, तञ्चः चित्तप्रसादनमवाधमानमनेनासेव्यमिति मन्यते। स्वाध्यायः प्रणवादि- पवित्राणां जपः, मोक्षशास्त्राध्ययनं वा। ईश्वरप्रणिध नं सर्वक्रियाणां परंगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा॥

तपसा, स्वाध्यायेन ईश्वरप्रणिधानेन (शरणागत्या) च योगस्य क्रियारम्भो भवति। गताध्याये महर्षिणैकमात्रेश्वरस्वरूपम्, एकेश्वरस्य शरणं तस्य नाम जपनमुदीरितम्, अधुना प्रस्तुताध्याये स ब्रुते यत् मनसा सहितमिन्द्रियदलमिष्टानुरूपं करणमस्ति तपः। स्वमनसः स्वयमध्ययनविधानमस्ति स्वाध्यायो यन्मनसा कियतानुरक्तेण भवितव्यं कियन्यनुरक्तिश्चाभूत् सफला, आप्तपुरुषाणां वचसोऽनुरूपं कियान्सफलोऽस्मि, सम्प्रति कियत्यस्त्रुटयः सन्तिघ् अनेन प्रकारेण स्वस्याध्ययनं कुर्वन् साधनायामग्रे सरणमस्ति स्वाध्यायः।

ईश्वरप्रणिधानमर्थादेकमीश्वरं प्रति मनसा, कर्मणा, वचसा समर्पणम् कृते सत्येव अलमेतद् योगक्रियाया भवत्यारम्भः। अस्य क्रियायोगस्यास्ति कावश्यकताघ् अत उपरि प्राह-

व्याख्याः-

योगदर्शनस्य अन्तर्गतं महर्षिपतञ्जलिना मनसः क्रियाशीलतायाः चर्चा कृता अस्ति। एतस्य त्यागः 'योग' इति कथ्यते। या चात्मनः अन्तिमावस्थायां साधित्वा सः लोकं न प्रत्यागच्छति। एतां स्थितिं प्राप्तुम् अभ्यासः, त्यागः, ईश्वरभक्तिः च आवश्यकी इति उच्यते स्म,। परन्तु एते सर्वे उपायाः यस्य अन्तःकरणं शुद्धं, यस्य योग-अभ्यास-प्रवृत्तस्य, यस्य पूर्वानुभवः अस्ति, तस्य कृते एव सन्ति। साधारणाः जनाः ये आध्यात्मिकम् अभ्यासम् आरभतुम् इच्छन्ति। एषा साधनास्थितिः तस्य कृते महत्त्वपूर्णा अस्ति, येन सः बीजहीनसमाधिं प्राप्तुं शक्नोति। योगसिद्धये द्वौ मार्गौ स्तः। प्रथमं कर्मणो द्वितीयं च अकर्मणः। सांख्ये अकर्मणः मार्गः इति प्रोक्तः।

उक्तं कर्म बन्धमात्रमिति। प्रत्येकं कर्म निश्चितरूपेण स्वकीयं परिणामं ददाति यस्मात् मोक्षस्य सम्भावना नास्ति। परन्तु योगः 'कर्म' विषये वदति यतोहि मनः स्वाभाविकतया केवलं कर्मणि एव रुचिं लभते। अतः योगाभ्यासः कर्मणा एव आरभ्यते, परन्तु कर्मगतिः स्वर्गात् अग्रे नास्ति, अतः मुक्तिसाधकस्य तत्र गत्वा अकर्मप्रवेशः कर्तव्यः भवति यदि साधकः आदौ एव साक्षात् अकर्ममार्गं गृहणाति तदा सः आलस्यं निष्प्रयोजनं च भूत्वा भ्रष्टमपि भवेत्। अतः योगमार्गः सुरक्षितः अस्ति।

महर्षिपतञ्जलिः सर्वप्रथमम् अस्मिन् साधनपादे 'क्रियायोगम्' व्याख्यायते। यत् मोक्षप्राप्त्यर्थ सहायकं भवति। एतानि तपः, स्वाध्यायः, ईश्वरसमर्पणं च। अस्मिन् 'ईश्वरसमर्पणम्' इति एकमात्रं साधनं यत् साधकः स्वस्य शरीरं, मनः, बुद्धिः, अहङ्कारं च सम्पूर्णतया ईश्वरं समर्पयति। सः स्वस्य व्यक्तिगततां त्यक्त्वा ईश्वरस्य इच्छानुसारं कार्यं करोति। सः स्वं वेणुपोङ्ग्री इति मन्यते यस्मिन् सर्वे स्वराः एकस्यैव ईश्वरस्य भवन्ति। सः स्वं रिक्तं करोति येन ईश्वरः तस्य हस्तं गृहणाति। सः स्वस्य सर्वाणि कर्माणि ईश्वरस्य इति मन्यते, स्वस्य अनुमतिं च करोति, तेषां परिणामान् अपि तस्मै अर्पयति। तादृशः साधकः कर्म न सञ्चयति। तस्य मानसिकप्रवृत्तयः स्वयमेव समाप्ताः भवन्ति। यस्मात् कारणात् सः मोक्षस्य अधिकारिणः भवति। यदि सः सम्पूर्णतया समर्पणं कर्तुं न शक्नोति तर्हि श्रवणं, जपं, तस्य ईश्वरस्य गुणानां ध्यानं, तस्य प्रेम्णः इत्यादिभिः कार्यैः भक्तिभावं जागृतुं शक्नोति। अयमत्र ईश्वरसमर्पणार्थः। अस्मिन् प्रारम्भिकपादे पूर्णसमर्पणं सम्भवं नास्ति। तपस्विनः (पुरुषस्य) योगः सिद्धः न भवति। शाश्वतकर्मदुःखाभिलाषैः वर्णिता लौकिकजाले वर्तमाना अशुद्धिः प्रायश्चित्तं विना न क्षीयते। अत एव मया तपः स्वीकृतः। योगिनो च मनःप्रियं न बाधकं साधकेन तपः कर्तव्यः इति मन्यन्ते।

१ -: योगदर्शनगत क्रियायोग -: 1.1

भारतीयः आस्तिकदर्शनेषु योगदर्शनम् अन्यतमम्। योगदर्शनं सुप्राचीनम्। उपनिषत्सु अपि योगस्य उल्लेखो दरीदृश्यते। हिरण्यगर्भो हि योगस्य प्रथमो वक्ता। योगसूत्ररचनामाध्यमेन पतञ्जलिः दर्शनरूपेण अस्योपस्थापनम् अकरोत्। योगशास्त्रस्य अपरं नाम सांख्यप्रवचनम् इति। भगवान् पतञ्जलिः योगसूत्रस्य प्रणेता। वाचस्पतिमिश्रप्रणीतः तत्त्ववैशारद्याख्यव्याख्याग्रन्थः समग्रस्यापि योगदर्शनस्य स्वरूपं महिमानं च प्रकाशयति। योगपदस्य अर्थो हि समाधिः। पतञ्जलिना सूत्रितं 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' इति। चित्तवृत्तयश्च पञ्च प्रमाणं विपर्ययः विकल्पः निद्रा स्मृतिश्चेति। एतासां चित्तवृत्तीनां निरोधः चित्तस्य सर्वासु भूमिषु भवतिए परन्तु न हि ते सर्वे निरोधाः समाधिपदवाच्या भवन्ति। क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तम् एकाग्रं निरुद्धं चेति पञ्च चित्तभूमयः। एकाग्रभूमौ हि सम्प्रज्ञातसमाधिः भवति, निरुद्धभूमौ च असम्प्रज्ञातसमाधिः भवति। चित्तवृत्तिनिरोधेन हि चेतः समाहितं भवति। मन एव मनुष्याणां बन्धमोक्षयोः कारणम्। यद्यपि मनः विषयेषु दुःखनिदानेषु प्रवहति तथाऽपि अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः भवति।

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि"।

चतुर्विंशतितत्त्वानि तु अङ्गीकृतानि। कर्ता भोक्ता च चेतनः विकारशून्यः ईश्वरश्चात्र अङ्गीकृतः। अत एव मुक्त्यर्थम् अष्टाङ्गयोगनिरूपणमिह उपपद्यते। सांख्यदर्शनवद् योगदर्शनेऽपि प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानादेव दुःखध्वंसरूपा मुक्तिः स्वीक्रियते। तां च सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिं प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानं वा लब्धुम् अष्टाङ्गानाम् आचरणम् अपेक्षितम् अस्ति।

कर्ता कर्ममयः भवत्विति कर्मयोगः वर्तते। यथा हयग्नौ तत्तमयस्कमग्निरूपं भवति तथैव कर्मणि तत्परःकर्त्ता कर्मरूपः भवति। कर्ममयः कर्त्ता न त्वन्तः विकारैः प्रभावित भवति न च बाह्यविकारैरिति। सः सांसारिकान् द्वन्द्वानतिक्रामत्। वायव्यादिषु प्रकोपेषु

स्थाणुरिवाचल: स्थित्वा स: निजकर्माणि निश्चलभावेन सम्पादयति। कृषिकर्मणि संलग्न: कृषक आतपादीनामनुभूतिं न कुरुते। शरीरं कम्पायमाना शीतकालीना दीर्धरात्रि कुल्याया: जलेन कृषिसिञ्चनं कुर्वन्तं तं लघु प्रतीयते। अनावृष्टि - उपलवृष्टिश्च शस्यविनाशाय तं न सन्तापयति। अनेकश: तस्य पक्वं धान्यमतिवृष्ट्या-उत्पलवृष्ट्या च पूर्णत: नश्यति किन्तु स: श्रमसाध्यकर्मण: न पलायते न च विरतो भवति। कर्मयोगी श्रमसाहाय्येन सकलं जीवनं गमयति। काममसौ न्यूनतमं भोजनं वस्त्रमावासञ्चापि न प्राप्नुयात् तदपि चिन्तारहित: कर्मणि रतो।भवति। अयमेव कर्मयोग: वर्तते। अस्मिन् शस्यरूपस्य फलस्य नूनं सत्ता विद्यते किन्तु सा गौणा वर्तते कर्म च प्रधानं विद्यते। तस्मिन्नेव कृषिकर्मिण यदा शस्यं प्रधानं भवति कर्म च गौणं भूयते तदा केवलमात्रं कर्म भवति नतु कर्मयोग:। अस्मिन् जायमाना लाभ-हानि: कृषकस्य जीवन-मरणचिन्ता दृश्यते। आन्ध्रप्रदेशे कृषकै: क्रियमाणा आत्महनन घटना अस्यैव परिणाम: वर्तते।

भारतीया: कृषका: मूलत: कर्मयोगिन: विद्यन्ते परन्तु ते कृषका: साम्प्रतिके काले उपभोक्तावादी-संस्कृते: प्रभावात् विचलिता: सन्ति। यान्त्रिकोऽयं युगोऽत: कृषक: कर्मभाररहित: सञ्जात: किन्तु भौतिकताया: सम्मदैऽधिकादधिकं प्राप्तुमिच्छा वर्धत एव। अस्माकं युवावर्गस्तु किमपि कार्यमकृत्वैव सर्वविधं फलमिच्छति।

महाभारतकाले इन्द्रप्रस्थस्य विकास: पाण्डवानां परिश्रमस्य (कर्मण:) एव परिणाम: आसीत्। दुर्योधन इन्द्रप्रस्थं कपटेन हस्तगतं कृतवान किन्तु तस्य फलस्वरूपं यौद्धिक-विभीषिकया कौरववंश: समूलं नष्ट: सकलं च विश्व दुष्प्रभावितं सञ्जातम्। कर्मण ऋते दुर्योधनस्य महत्वाकांक्षाणा पूर्तमेऽर्जुनस्य कर्मपलायनमवरोधयितुं च गीताया: चतुर्थाऽध्यायस्यादित: य: योगस्य संक्षिप्त एतिहासिक: परिचय: प्राप्यते स: कर्मयोग एव वर्तते। प्रथमे श्लोके विद्यमानं योगम् इति पदं गोयन्दकामहोदय: कर्मयोगस्यैव वाचकममन्यत।[1] महर्षि: मनु: "वेदसन्यासिकानां कर्मयोग:[2] इत्येतेन नाम्ना चतुर्णामाश्रमाणां वर्णनं कृत्वा गृहस्थाश्रमं सर्वतो श्रेष्ठं कथयति।[3] गृहस्थे कर्मण: भार: सर्वतोऽधिक: भवति। गृहस्थस्य कायिकीं विपुलतां (कर्म-विपुलतां) सर्वे परिचिन्वन्ति। अस्य अभिप्रायोऽयं वर्तते यत् कर्मयोगे वाचिक-मानसिक-आध्यात्मिककर्मणामपेक्षया शारीरिकाणि कर्माणि विपुलतया विशिष्यन्ते। गीताया: कर्मयोगोऽस्माकं प्राचीन: न्यास: विद्यते यं गीताकार: सर्वहितकारी- सिद्धे: साधनरूपे नावीन्येन सार्धं प्रतिपादितवान्।

गीता हि कर्मयोगे नैसर्गिकतामत्यन्तं महत्वशालिनीं स्वीकरोति। मनुष्य: यं योगं स्वकीये स्वाभाविके कर्मणि लब्धुं शक्नोति तत्तथैव अस्वाभाविके न प्राप्तुं शक्नोति। एकस्य वैज्ञानिकस्य कृते कृषिकर्म दुस्साध्यं वर्तते। गीताया: कर्मयोग: स्वधर्मरूपं सामाजिकं कर्त्तव्य-कर्म निष्ठापूर्वकं सम्पादयितुं शिक्षयति। अस्मिन् प्रत्येकं मनुष्यादपेक्षा विद्यते यदसौ स्ववर्णधर्मानुसारं सामाजिकं राष्ट्रियहितकरं प्रत्येकं कार्यञ्च पूर्णसमर्पणभावेन तत्परो भूत्वा सम्पादयेत्। मनुष्यस्य कर्मणि प्रवृत्ति: स्वाभाविकी विद्यते किन्तु सामान्यत: स: स्वस्य कृतकर्मण: फलमिच्छति। अस्या: वाञ्छाया: दुष्परिणामोऽयं भवति यत् फलप्राप्त्या: बाधाचिन्तया आशङ्कितो भूत्वा स: कर्मण: परित्यागं करोति। अर्जुनस्य युद्धविमुखभावे पराजयस्य सम्भावना तिरस्करणीया नास्ति। अनया दृष्ट्या गीताया: कर्मयोगे सकामकर्मणा सह निष्कामकर्म विशेषेण प्रसार्यते। अत: गीताया: कर्मयोगस्य उभेऽपि धारे विवेचनीये स्त: तयोरेका सकामकर्मधारा द्वितीया च निष्कामकर्मयोगधारा इति प्रसिद्धा।

कर्मण: तस्य फलं पृथक्कर्तुं न शक्यते कार्यमेतदसंभवं वर्तते। मनुष्य: फलेच्छया कर्मणि प्रवर्तते। मनुष्यलोके जीव: कर्मणा शीघ्रम् सिद्धो भवति, सर्व कार्यं साधयति च।[5] अकर्मापेक्षया कर्म एव गीता श्रेष्ठं मन्यते।[6] कर्मयोगस्य परम्परां संरक्षणाय संवर्धनाय च ईश्वरोऽपि कर्म करोति एतद् विषये गीतायां भगवत: कृष्ण: स्वयमेवोक्तं-

हे पार्थ यद्याहं कर्म न कुर्यां, तर्हि मे भक्ता: अपि मां अनुसृत्य कर्म न करिष्यन्ति,[7] लोका: कर्म हीना: भूत्वा नष्टा: भवितु शक्नुवन्ति।[8] कर्मणोऽभाव: मनुष्यमशान्तमस्थिरं 'च' 'करोति। कर्म कृत्वा मनुष्य: शान्तिं सन्तोषञ्च लभते। कर्मव्यासक्तोऽज्ञानी पूर्णतत्परतया कर्माणि करोति।[9] एतादृशेषु कर्मासक्तेष्वज्ञानिपु गीता बुद्धिभेदजननमस्वीकार्य मन्यते[10] बुद्धिभेदात् मनुष्य: कर्मविरतो भवितुं शक्नोति। आशङ्कामिमामेव विचार्य गीताकार: बुद्धिभेदं निषेधयति। एतदतिरिच्य निषेधस्य नान्यत् किमपि कारणं प्रतीयते। कर्मासक्ता अज्ञानिन: कर्माणि तु कुर्वन्ति किन्तु कर्माणि कृत्वा धनादीनि भोग्यदार्थाणि कामयन्ति। धनादय: भोगा: तात्कालिका: वर्तन्ते। भोगार्थं कर्म क्रियते चेत् तत्कर्म 'संस्कार: निर्मीयते- अतैव भगवान् श्रीकृष्ण: नेदं स्वीकरोति यत् सर्वज्ञा: जना: प्रकृतिगुणसम्मूढान् सकामकर्मासक्तानल्पज्ञान् मन्दपुरुषान् विचलितान् कुयु:।[11] तात्पर्यार्थोऽयं वर्तते यत् अल्पज्ञानां सन्दर्भे श्रीकृष्ण: सकामकर्माण्यपि समर्थयति।

सकामकर्मयोगेऽपि कर्मतत्परता तिष्ठति किन्तु तस्य पृष्ठभूमौ काचित् कामना भवति। लौकिकया पारलौकिकया वा कयाऽपीच्छया कर्मणि तन्मयतया सह युञ्जनें सकामकर्मयोग: वर्तते। शिक्षार्थी शिक्षाप्राप्त्यर्थमध्ययने तन्मय: भवति तस्य ध्यानमनवरतमध्ययनकर्मण्येव

भवति। तस्य सर्वाणि कर्माणि अध्ययनं प्रति समर्पितानि भवन्ति। मनुष्यः स्वजीवने एवादृशाणि बहूनि कर्माणि कुर्यादित्यावश्यकं वर्तते। अतः गीताकारः सकामकर्मयोगमपि स्वीकरोति। इमं हि निष्कामकर्मयोगस्य प्रथमं सोपानं वक्तुं शक्नुमः।

गीता प्रमुखतः निष्कामकर्मयोगं प्रतिपादयति। विना कामपि भावनां कर्मणि संलग्नभाव एव निष्कामकर्मयोगः विद्यते। कर्म कुर्वतः मनुष्यस्य दृष्टिः प्रायः कर्मफले तिष्ठति येन कर्मतत्परता शिथिलायते। इयं कर्मयोगस्यैका वृहती बाधा विद्यते। अतैव आसक्तिं विहाय कर्म कर्त्तुमर्जुनायोपदेशः आदेशश्च प्रदीयते।[12] कर्मफलदृष्टिरपसरति चेत् कर्मणि तन्मयता स्वाभाविकरीत्या विवर्धते। फलदृष्टिः कर्मतत्परतां विभनक्ति येन कर्मतत्परता समाधिस्तरं प्राप्तुमसमर्था भवति। फलासक्तेरभावात् कर्ममात्रस्य प्रकाशनं भवति येन मनुष्यः स्वरूपशून्यवत् भूत्वा समाधेरवस्थां[13] प्राप्नोति। 'अस्यैवाभिधानं कर्मयोगः वर्तते यश्च गीतानुसारं निष्कामकर्मयोग इति कथ्यते।

त्यागः खलु भारतीयजीवनस्यादर्शः विद्यते। सन्यासे सर्वविधकर्मणां त्यागः विहितः।[14] अनयैव दृष्ट्या अर्जुनः घोरकर्मपातकात् स्वस्य रक्षामिच्छति।[15] गीता कर्मसन्यासात् कर्मयोगं वरं स्वीकरोति।[16] अत्र हि काम्यकर्मणां न्यासः सन्यासः सर्वेषां कार्याणां फलत्यागश्च त्यागः कथ्यते।[17] इत्थं हि गीता सन्यासे सर्वेषां कर्मणां त्यागं न स्वीकुरुते। कयाऽपि कामनया कृतकर्मणां त्यागः कर्मफलस्य च त्यागः परस्पर संस्थितोऽस्ति। कर्म त्यागश्च उभयनिष्ठौ विद्येते। कामनाया. सिद्धेर्नाम फलमस्ति। कामना फलेच्छा वा कर्त्तव्यकर्मणः निर्णये बाधां जनयितुं शक्नोति। कर्त्तव्यकर्मणः चयने सफलताया अनन्तरमपि कामनाभिभूतः मनुष्यः कामनाऽभिभूतः मनुष्यः स्वमार्गात् विचलितः भवितुं शक्नोति। अर्जुनस्य पुरस्तात् ईदृश्येव स्थितिरस्ति। सः स्वसाम्राज्यं प्राप्तुं युद्धेऽवतरति किन्तु स्वजन-जीवनस्य विजयस्य चेच्छाया अभिभूतोऽसौ स्वकर्तव्य कर्मणः विचलति। एवंप्रकारेण कर्मचयने निर्वहणे च कामना एका बृहती बाधा सिध्यति। कर्तव्यकर्मणः मार्गात् काचिदपि बाधा् नोपस्थिता भवेदिति अनया दृष्ट्या गीताकारः निष्कामकर्मयोगं प्रति सर्वाधिकः संवेदनशीलः संदृश्यते।

गीतायाः निष्कामकर्मयोगः प्रवृत्तेः निवृत्तेश्च समन्वितं रूपं विद्यते। गीतायां प्रवृत्तिविषयकं कर्म निवृत्तिविषयकश्च त्यागः समानरूपेण महत्वं भजते। प्रवृत्तिः मनुष्यं सांसारिकैः संबन्धैः योजयति। अतः तत्कृते कर्मसम्पादनमावश्यकं भवति। निवृत्तिः मनुष्यं सांसारिकेभ्यः संबन्धेभ्यः विमुखं करोति। परिणामतः मनुष्यस्य कामनानां श्रृंखला समाप्तप्रायाः भूयते। इच्छानां त्यागार्थके निष्कामकर्मणि निवृत्तेः त्यागस्यादर्शः सुरक्षितः तिष्ठति। इत्थं प्रकारेण गीतायाः निष्कामकर्मयोगः त्यागपूर्वकं कर्म कर्त्तुमस्मानुपदिशति। अस्य महत्ता प्रवृत्तेः फलाकांक्षायाः निवृत्तेश्च अकर्मण्यतायाः परित्यागेन इतोऽपि प्रचुरतया वर्धते। अतोऽनासकतो भूत्वा कमेन्द्रियाणां माध्यमेन कर्मयोगस्य आचरणकर्ता विशिष्टः कच्यते।[18] गीतायां निष्कामकर्म 'यज्ञ' इत्यनया संज्ञया प्रयुक्तः। यज्ञार्थात् भिन्नं कर्म यः करोति सस्तु कर्मबन्धनं लभते।[19] अस्य विपरीतं अनासक्तो भूत्वा यः कर्माचरणं करोति सः परमगतिं प्राप्नोति।[20] परमगतेः प्रापयितुः निष्कामकर्मयोगात् आत्मकल्याणं सिध्यति। स्वार्थेच्छारहितादस्मात् लोककल्याणं स्वतः सिध्यतिं। एवं हि निष्कामकर्मयोग आत्मकल्याणदृष्ट्या लोककल्याणदृष्ट्या चात्यन्तमुषयोगं वर्तते यश्च मनुष्यस्य श्रेष्ठतमः साध्यः वर्तते। अतैव गीतायां निष्कामकर्मयोगः सर्वातिशयेन विशिष्यते।

कर्मयोगस्य सन्दर्भे निष्कामशब्दात् फलस्य कामनायाः निरासः भवति न तु प्रयोजनस्य। मनुष्यः किमपि प्रयोजनमुद्दिश्य एव कर्मणि प्रवृत्तो भवति। युद्धं सप्रयोजनं वर्तते यस्मिन्नर्जुनस्य प्रवृत्तिः श्रीकृष्णाय अपेक्षिता। अत्र लक्ष्यमस्ति येन सह कर्मण अनन्यता कर्मयोगः वर्तते' यं च फलेच्छा बाधितुं शक्नोति। इत्थं वक्तुं शक्यते यत् निष्कामकर्मयोगः सः विद्यते यस्मिन् कर्मयोगी फलप्राप्तेः चिन्तारहितः भवति। फलस्य वाञ्छा एक आन्तरिकः विकारः विघते। यथा हि आन्तरिकः विकारः समाधिं त्रोटयति तथैव फलेच्छायाः चिन्तनधारा कर्मयोगं खण्डशः विभनक्ति नाशयति च। अतः निष्कामकर्मण उद्देश्यं वर्तते यत् कर्मयोगस्य बाधा अपगच्छेयुः।

एवं प्रकारेण कर्मयोगः एका ईदृशी सर्वकल्याणकारिणी व्यावहारिकी च साधनास्ति यया मनुष्यः स्वपरम्परागतानि कर्माणि सम्पादयन् जीवनस्य पूर्णतां प्राप्तुं शक्नोति

आत्मकेन्द्रितायै स्वकर्त्तव्यं प्रति चोदासीनायै अद्यतनीयायै मानवतायै अयं कर्मयोगः न केवलं प्रासडिकोऽपितु वरदानभूतोऽपि विद्यते।

सन्दर्भः

(1) श्रीमद्भगवद्गीता तत्वविवेचनी टीका पृ0 164

(2) वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत। मनुस्मृति 6/86

(3) ग्रहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्विभर्न्तिहि। मनुस्मृति 6/89

(4) यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयः।। गीता 2/6

(5) क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा। श्रीमद्भगवद्गीता 4/12

(6) कर्म ज्यायो हयकर्मण:। गीता 3/8
(7) श्रीमद्भगवद्गीता 3/23
(8) उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्। श्रीमद्भगवद्गीता 3/24
(9) सक्ता: कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।- गीता 3/25
(10) न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसगिंनाम्। गीता 3/26
(11) प्रकृतेर्गुणसंगूढा सञ्जते गुणकर्मसु तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नवित्र विचालयेत्। गीता 3/29
(12) योगस्थ: कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।- गीता 2/48
(13) तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि:। पातञ्जलयोगसूघ्त्रम् 3/3
(14) संन्यस्य सर्वकर्माणि।- मनुस्मृति 6/95
(15) तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव। - श्रीमद्भगवद्गीता 3/1
(16) कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते - श्रीमदभगवद्गीता 6/2
(17) काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदु:। सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं- विचक्षण: श्रीमदभगवद्गीता -18/2
(18) कर्मेन्द्रियै: कर्मयोगमसक्त: स विशिष्यते। श्रीमद्भगवदगीता 3/7
(19) यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन:। श्रीमद्भगवदगीता 3/9
(20) असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुष:। श्रीमद्भगवदगीता 3/19

प्राचीन भारतीय सामाजिक स्तरीकरण और वर्ण व्यवस्था: एक विश्लेषण

प्रो० (डॉ०) अरविन्द कुमार सिंह

प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डी.के. कॉलेज, डुमरांव (बक्सर)

भारतीय समाज व्यवस्था की उत्पत्ति एवं विकास की कहानी को लेकर विद्वानों ने समाज का जो स्वरूप जनमानस के सामने रखा वह बड़ा ही विलक्षण है। यह कहने में कोई संकोच नहीं कि अभी तक जो लिखा गया है वह सामाजिक जीवन का सैद्धान्तिक रूप हो सकता है, व्यावहारिक जीवन के करीब तो नहीं ही हैं। इतना ही नहीं निश्चित रूप से वह किसी न किसी रूप में समर्थवादी या सामंतवादी व्यवस्था से अलग भी नहीं है। कारण का सच जानते हुए भी ऐसे विद्वानों ने समाज व्यवस्था का व्यवहारीकरण स्वरूप प्रस्तुत करने का साहस नहीं किया। यद्यपि कि डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी रचना 'संस्कृति के चार अध्याय' में समाज व्यवस्था के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों को उजागर करते हुए सच को सामने लाने का भरसक प्रयास किया।[1] डॉ. अम्बेडकर जैसे विद्वान एवं चिंतक की बात को विद्वानों के एक वर्ग ने केवल यही सोचकर पढ़ा कि उनकी पुस्तक में आयी समाज व्यवस्था को केवल किसी खास वर्ग की उच्चता सिद्ध करने के लिए लिखा गया है।[2]

परिवार की विकसित इकाई के रूप में समाज बना जहां परिवार के सदस्यों की कार्यक्षमतानुसार उन्हें अलग-अलग कार्य सौंपे गये। एक ही परिवार में पिता वैद्य, माता धान्य मर्दन करने वाली एवं पुत्र मंत्रकाल के रूप में ऋग्वेद में उल्लिखित हैं।[3] ऋग्वेद में ही ब्राह्मण ऋषि भृगु के वंशजों के सदस्यों की चर्चा रथ बनाने में दक्ष रूप में की गयी है।[4] यहां तक तो ठीक-ठाक था कारण कि अन्य संदर्भों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि समाज के विभिन्न वर्गों में परस्पर ऊंच-नीच की भावना का सर्वथा अभाव था। खान-पान, गोत्र प्रथा का भी कोई बंधन नहीं था। स्पष्ट है कि यद्यपि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का अभी तक प्रतिष्ठापन नहीं हो पाया था फिर भी इतना अवश्य था कि आवश्यकता की परिधि में कार्यों के महत्व को सामाजिक स्वीकृति का श्री गणेश हो चुका था।

आगे चलकर काल क्रमानुसार मानव, मानव के बीच सुविधा आकार रूप लिया और पिता के कार्यों के अनुसार ही व्यक्ति की पहचान संभव हुई। बस यहीं से जन्म से जुड़ी जाति व्यवस्था ने जन्म लिया। यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि अगर ब्राह्मण यहीं पर बने तो शूद्र भी बाहर से नहीं आये। डॉ. अम्बेडकर के सुझाव का उल्लेख यहां प्रासंगिक लगता है कि शूद्र भी उसी भण्डार के हैं जिसकी मुख्य शाखा क्षत्रिय जाति के रूप में विकसित हुई। परिवार में चार व्यक्तियों को सौंपे गये अलग-अलग कार्यों के पीछे उनकी योग्यता का आधार रहा है जो अभी भी परिवार एवं समाज में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में उल्लिखित वर्णक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कालांतर में भी समाज व्यवस्था का आधार बना रहा। ऐसा कहा जा सकता है कि वर्ण व्यवस्था को सामाजिक स्वीकृति तो अवश्य मिली लेकिन वर्णो के आपसी संबंध ऊंच-नीच की भावना पर आश्रित नहीं रहे। उपलब्ध संदर्भों से ऐसा इंगित होता है कि सामाजिक स्तरीकरण का क्रमिक विकास अभी तक पूर्णत: स्थापित नहीं हो सका था। अथर्ववेद में क्रमश: राजन्य, वैश्य, शूद्र एवं आर्यों का उल्लेख इसी का उदाहरण कहा जा सकता है।[6] मैत्रायणी संहिता में वैश्य का उल्लेख राजन्य से पूर्व हुआ है। कहा जा सकता है कि कार्य की सामाजिक महत्ता और आवश्यकता ही वर्गीय प्रधानता का निर्णायक पक्ष था। प्रारंभ में वर्ण व्यवस्था के संदर्भ में गुष्ट, कर्म, रंग एवं संस्कार को प्रबल पक्ष मिला। ब्राह्मण का श्वेत रंग पवित्रता, क्षत्रिय का लाल रंग शौर्य, वैश्य का पीत रंग सम्पन्नता एवं शूद्र का काला रंग दासत्व का प्रतीक कहा गया। ऐसा आभास होता है

कि पुरुष सूक्त में मुख से ब्राह्मण, बाजु से क्षत्रिय, उदर से वैश्य एवं पैर से शूद्र के क्रम के पीछे भी योग्यता एवं कर्म ही आधार रहा होगा। कालांतर में उल्लिखित 'जन्मना जायते शूद्र संस्कारैः द्विज उच्यते एवं चातुर्वर्ण्य मया सृष्टः गुण कर्म विभागशः' जैसे संदर्भों से भी वर्ण व्यवस्था में कर्म एवं संस्कार के महत्व की पुष्टि होती है। यहां उल्लेखनीय है कि ब्राह्मण वर्ण का प्रत्येक सदस्य न तो राजपुरोहित एवं न विद्वानः, न ही क्षत्रिण वर्ण का प्रत्येक सदस्य राजा हो सकता था। सामान्य ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को कुलीन कुल की गरिमा मात्र से ही संतुष्ट होना पड़ता रहा होगा। यही कारण है कि इन वर्णों के सामान्य सदस्य वर्णेत्तर कर्मों का सहारा लेकर अपना जीवनयापन करते रहे होंगे। इतना ही नहीं सूत्र ग्रंथों में आपद्धर्म शब्द का उल्लेख निश्चित रूप से इन्हीं कारणों से हुआ होगा।[7] ऐसी परिस्थिति में वर्णेत्तर कर्म करने वाले ऐसे लोगों को विशेषाधिकार का कोई औचित्य नहीं था। हां, इतना अवश्य था कि प्रभुत्व के इस खेल में उक्त दोनों वर्णों की संतानों का सामाजिक सामंजस्य हो चुका था जिसकी पुष्टि धर्मसूत्रों में आये विविध संदर्भों से होती है। गौतम के इस कथन से कि ब्राह्मण के साथ सहयोग से ही क्षत्रिय का उत्कर्ष संभव है, प्रचलित सैद्धान्तिक मूल्यों की व्यावहारिक परिणति दिखाई देती है।

यद्यपि वैश्य एवं शूद्र के कर्म करीब-करीब समान थे लेकिन सामाजिक जीवन में वैश्य के कृषि, पशुपालन, वाणिज्य एवं अन्य आर्थिक कारणों से जुड़ा होने के कारण निश्चित रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं राज्य प्रशासन की निर्भरता उसी के उपर रही होगी, इस कारण वैश्य वर्ण को द्विज की परिधि में रखा गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जिस प्रकार मानव में मुख, बाहु, उरु एवं पैर अंगों का महत्व है उसी प्रकार समाज रूपी शरीर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की भी आवश्यकता समाज महत्व रखती है। चूंकि पैरों पर ही जीवनगति की व्यवस्था एवं बोझ निर्भर है। इसलिए आर्थिक साधन के महत्वपूर्ण अंग के रूप में शूद्र भी समाज का आवश्यक वर्ग था, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। कहा जा सकता है कि वर्ण व्यवस्था का आधार तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता थी न कि वर्णगत स्वार्थ। यह भी कहा जा सकता है कि वर्ण प्रधानता का जो आभास हमें समय-समय पर ग्रंथों में उल्लिखित मिलता है उसके लिए उत्तरदायी उस युग की परिस्थितियां रही होंगी, इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। भद्रशूद्र-अभद्रशूद्र, निरवसित- अनिरवसित शूद्र, एवं भाजान्न एवं अभाजान्न शूद्र जैसे शब्दों के उल्लेख से ऐसे ही कथनों की पुष्टि होती है। गोपालक, आर्थिक नापित्त, कुलाल एवं कुलमित्र जैसे शूद्र प्रतिनिधियों के प्रति समाज का सम्मानभाव निश्चित रूप से इस बात को सिद्ध करता है कि इनको स्वीकार करना समाज की तात्कालिक आवश्यकता रही होगी।[9]

समाज में वर्ण व्यवस्था के स्थापित होने के साथ मानव स्वभाव के अनुरूप सत्ता संघर्ष की शुरूआत हुई जिसके संदर्भ समय-समय पर क्रमानुसार स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। यथा 1. राजर्षि विश्वामित्र एवं ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का चर्चित संघर्ष। 2. तीर्थंकर महावीर के जन्म की जैन कल्पसूत्र में चर्चित कथा व्यावहारिक न होते हुए भी मात्र ब्राह्मण वर्ण को क्षत्रियहीन बनाने का प्रयास कहा जा सकता है। 3. मौर्य संस्थापक चन्द्रगुप्त द्वारा विदेशी सिकंदर को मगध सम्राट धनानन्द के खिलाफ उकसाना राजलिप्सा की आड़ में किये गये कुत्सित प्रयास का ही उदाहरण है। जस्टिन द्वारा चन्द्रगुप्त के लिए प्रयुक्त साधारणकुल का उल्लेख महापद्मनन्द के लिए भी होना सामयिक एवं प्रासंगिक होता। वर्ण के स्तरीकरण में शूद्र का स्थान अवश्य निचले सोपान पर था लेकिन उसके प्रशासनिक क्षमता के व्यक्तित्व का निम्नस्तरीय होना कहीं से भी प्रमाणित नहीं होता। शूद्र वर्ण के सदस्य का सैद्धान्तिक रूप से शासक होना वर्जित रहा हो व्यावहारिक दृष्टि से यह संभव कभी नहीं था और न आज भी है। नन्द नरेशों द्वारा समय-समय पर गरीब एवं साधनहीन लोगों के लिए दान की व्यवस्था एवं उसे विद्वान ब्राह्मणों के हाथों सौंपना निश्चित रूप से उनकी योग्यता एवं प्रशासनिक क्षमता का बोध कराता है। हाथी गुम्फां अभिलेख नहर का निर्माण, वर्ण, उपवर्ण, पाणिनि, कात्यायन, वारुचि जैसे वैदिक एवं व्याकरण मर्मज्ञ विद्वानों का उनके साम्राज्य में होना उनके महान व्यक्तित्व का बोध कराता है।[10] 4. पुष्यमित्र शुंग एवं गौतमीपुत्र शातकर्णी के राज्यारोहण को ब्राह्मण-क्षत्रिय के आपसी सत्ता संघर्ष का भी उदाहरण कहा जा सकता है। उपलब्ध संदर्भ के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि प्रारंभ में समाज व्यवस्था को चलाने के लिए वर्णक्रम के निर्धारण के पीछे किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं था। सभी समान रूप से अपने-अपने कर्मों में अपने व्यक्तित्व के अनुसार कार्यरत थे। बुद्ध एवं महावीर ने भी कालांतर में समर्थ लोगों द्वारा अपनी सुविधानुसार व्यवस्थित वर्णक्रम को चुनौती दी। ब्राह्मणत्व से युक्त ब्राह्मण बौद्धों के लिए

भी श्रद्धेय थे।[11] कभी भी संघ की सदस्यता का आधार वर्ण एवं जाति नहीं रहा। बौद्ध पालिग्रंथों के वर्ण क्रम में क्षत्रियों की प्रधानता के उल्लेख अवश्य मिलते हैं जो एक वर्ण से दूसरे वर्ण की उच्चता निम्नता सिद्ध करने का मात्र प्रयास कहा जा सकता है। यह भी हो सकता है कि क्षत्रिय वर्ण के कुछ सदस्यों को ब्राह्मणवर्ण के योग्य सदस्यों का समाज में सम्मान एवं आदर अच्छा न लगता रहा हो। चूंकि वैदिक धर्म ब्राह्मण वर्ण के सदस्यों का एकाधिकार सा था अत: जैन-बौद्ध धर्म को क्षत्रिय वर्ण के सदस्यों द्वारा अपनाना एवं राजवंशों द्वारा भी उनके प्रति सम्मान एवं आदर प्रदर्शित करना निश्चित रूप से वर्णक्रम के प्रथम एवं द्वितीय के बीच द्वन्द्व का कारण हो सकता है। यही कारण है कि कहीं भी वैश्य एवं शूद्र की उच्चता एवं निम्नता की बात नहीं कही गयी है।

संदर्भ

1. दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 74
2. रामशरण शर्मा, शूद्रों का इतिहास पृष्ठ 4
3. ऋग्वेद 9.112.3
4. ऋग्वेद 10.39.14
5. Who were the Shudras?
6. अर्थववेद 19.32.8
7. राय शशिकांत प्राचीन भारत में व्यावसायिक समुदाय पृष्ठ
8. धुर्ये पृष्ठ 50
9. शशिकांत राय, प्राचीन भारत में व्यावसायिक समुदाय
10. श्री रामगोयल पृष्ठ 233
11. मदन मोहन सिंह पृष्ठ 15

अधिवास पुरातत्व/पुराबस्ती प्रारूप की संकल्पना एवं भारतीय उपमहाद्वीप में पुराबस्ती प्रारूप अध्ययन का विकास

डॉ० ईश्वर दान

असिस्टेण्ट प्रोफेसर इतिहास विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रस्तुत अध्याय में हाड़ौती क्षेत्र में पुराबस्तियों की बसावट व अधिवास की प्रवृत्ति को दर्शाने का प्रयास किया गया है। बस्ती प्रारूप की संकल्पना मानव भूगोल की देन है। अध्ययन के नये क्षेत्र में अधिवास प्रक्रिया का पुरातात्विक अध्ययन किया जाने लगा, जिसे बस्ती पुरातत्व के रूप में जाना जाता है। मौसम की विषमताओं से मानव अपनी सुरक्षा, जीवन-निर्वाह और सामाजिक जीवन के लिए आवासों का निर्माण या विकास करता है। दरअसल, मानव आवास और अधिवास भौतिक पर्यावरण में मानव समायोजन का विशिष्ट उदाहरण है। भूगोलशास्त्रियों, पुरातत्वविदों और मानवशास्त्रियों ने आवास एवं पुराबस्ती की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत व स्पष्टीकरण दिये हैं। इन आवासों के निर्माण में सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एव राजनैतिक कारण मुख्य रूप से उत्तरदायी रहे हैं।

पुराबस्ती पुरातत्व

यह पुरातात्विक अध्ययनों की वह शाखा है, जिसमें प्रागैतिहासिक बस्तियों के अवशेषों का उनके पर्यावरण या संसाधन क्षेत्रें के सन्दर्भ में अध्ययन किया जाता है। इससे किसी क्षेत्र विशेष की बस्ती की जीविका पद्धति को समझने में पर्याप्त मदद मिलती है। बी.जी. ट्रिगर[1] पुराबस्ती प्रारूप के अध्ययन हेतु दो आयामों पर बल देते हैं। पहला बस्ती प्रारूप है, जो आवासों के ज्यामितीय रूप को दर्शाता है। दूसरा अधिवास व्यवस्था है, जो समय के अनुसार पुरास्थलों के सोपानबद्ध विकास को स्पष्ट करता है।

पुराबस्ती पुरातत्व एक विस्तृत व जटिल परिघटना है जैसा कि यह क्षेत्रीय अन्वेषणों से सम्बन्धित है, जो मानव व पर्यावरण के समय-समय पर बदलते सम्बन्धों से अवगत कराता है। इसमें क्षेत्रीय सर्वेक्षण के तहत अतीत के पुनर्निर्माण के लिए किसी एक पुरास्थल का अन्वेषण भी किया जाता है। साथ ही तत्कालीन निकटवर्ती अन्य पुरास्थलों के साथ सम्बन्ध को ऐतिहासिक अध्ययन में शामिल किया जाता है।

इस अध्याय में विभिन्न सांस्कृतिक कालों के प्राचीन पुरास्थलों के स्थानिक मानदंडों, घनत्व व प्रतिरूपों को विवेचित करने का प्रयास किया है। साथ ही इस बात पर भी बल दिया है कि पुरास्थलों के निर्माण व विकास की प्रकृति को समझने के लिए संस्कृति के इन पहलूओं को आकार देने वाले पारिस्थितिक कारक कितने महत्वपूर्ण हैं?

बस्ती प्रारूप पर भूविज्ञान और पुरातत्वविदों के दृष्टिकोण और बस्ती प्रारूप अध्ययन में मानव जीवन की विभिन्न गतिविधियों जैसे खाद्य उत्पादन, कला व धर्म आदि को शामिल किया जाता है। पुरातात्विक अवशेषों पर बस्ती प्रारूप की अवधारणा लागू करना, भूगोलवेत्ता और पुरातत्वविद् के मध्य निकट सम्बन्धों का परिणाम है। इस नये विषय को पुराबस्ती प्रारूप नाम से जाना जाता है। जैसा कि पुरातत्वविद् सम्पूर्ण बस्ती प्रारूप का अध्ययन नहीं कर सकते, वे केवल पुरातात्विक अवशेषों के माध्यम से पुरास्थलों की बसावट प्रक्रिया का पता लगाते हैं। जहाँ भूगोलवेत्ता सम्पूर्ण बस्ती प्रारूप का अध्ययन करता है वहीं पुरातत्वविद् शेष मार्ग का अध्ययन पुरातात्विक अवशेषों के द्वारा करता है। इस उद्देश्य में पुरातत्वविद् को पुरास्थलों से सर्वेक्षण व उत्खनन द्वारा पुरावशेषों का संग्रहण

करना होता है। जिनके द्वारा एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र में लोगों की आवाजाही व पुरास्थलों की पृवृति को समझा जा सके।

बस्ती प्रारूप में पुराबस्तियों का वितरण, आर्थिक व्यवस्था तकनीकी परिवर्तन और पुराबस्ती व्यवस्था में सामाजिक धार्मिक पहलूओं के पुनर्निर्माण को शामिल किया जाता है।[2]

पुराबस्ती प्रारूप अध्ययन सम्बन्धित विभिन्न मत

बस्ती पुरातत्व में विचारधाराओं के दो मत प्रचलित है- पहला प्राचीन मत है, जिसमें स्थानीय अधिवास का वितरण व पुरासामग्रियों के वितरण से दैनिक क्रियाकलापों की स्थिति का पता चलता है। दूसरा इस नये मत में अधिवास पुरातात्विक आँकड़ों का प्रयोग करते हुए सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। यह पुरातात्विक प्रक्रिया के स्थलों के विश्लेषण से सम्बन्धित नहीं है।

पुराबस्ती प्रारूप के अध्ययन की शुरुआत सामान्यत: 19वीं सदी में एल.एच.मॉर्गन के कार्य के साथ हुई। मार्गन ने 1881 में उत्तरी अमेरिका में आदिकालीन मानव की बस्तियों का अध्ययन करते हुए स्पष्ट किया कि किस प्रकार आदिकालीन मानव की प्रागैतिहासिक बस्तियाँ उनके सामाजिक संगठन को प्रतिबिंबित करती है।[3]

बस्ती पुरातत्व को सर्वप्रथम जी.आर. विली ने प्रस्तुत किया। जी.आर. विली ने वीरू घाटी में प्रागैतिहासिक बस्तियों का अध्ययन करते हुए बस्तियों के क्षेत्रीय प्रारूप को सांस्कृतिक प्रक्रिया के साथ सम्बन्धित किया।[4] विली के अनुसार बस्ती वह स्थान है, जहाँ मानव स्वयं रहने के लिए भू-दृश्य का इस्तेमाल करता है। बस्ती प्रारूप स्थायी आवास या रहने का स्थान, तथा उनकी प्रकति और अन्य इमारतों के प्रबंध व सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित है। विली ने कई क्षेत्रें के हजारों वर्ग किलोमीटर के भीतर प्रवास एवं प्रसार, जनसांख्यिकी तथा राजनीतिक परिकल्पना स्थलों से सम्बन्धित समस्याओं को परिभाषित किया।[5]

विली ने बस्ती पुरातत्व और पुराबस्तियों की बसावट अधिवास प्रक्रिया के विचारों को पुरातात्विक आँकड़ों के विश्लेषण के लिए प्रयुक्त किया। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि पुरातत्व के लिए पुराबस्तियों की बसावट प्रक्रिया कोई पहुँच मार्ग नही है। अधिवासीय आँकड़े पुरातात्विक अध्ययन के आयाम को विस्तृत करते हैं। इस प्रकार मकानों के समूहों का विश्लेषण उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना इन मकानों से मिलने वाले मिट्टी के बर्तनों का अध्ययन।[6]

प्रक्रिया के अध्ययन के क्षेत्र का निर्धारण निम्नांकित महत्वपूर्ण पहलुओं का विवेचन इ.जेड. वोगट ने पुराबस्ती प्रारूप के विवरण इस तरह स्पष्ट किया है:.

1. व्यक्तिगत/रिहायशी घर के प्रकार का स्वरूप।
2. इन रिहायशी मकानों के उस गाँव अथवा समुदाय के दूसरे घरों के सम्बन्ध में स्थानिक व्यवस्था।
3. रिहायशी गृह प्रकारों के अन्य स्थानिक संरचनात्मक लक्षणों से सम्बन्ध।
4. सम्पूर्ण गृह अथवा गाँव/समुदाय की योजना।
5. गाँव अथवा समुदाय के एक बड़े क्षेत्र में दूसरे गाँव अथवा समुदायों के स्थानिक सम्बन्ध।[7]

वोगट ने तीन परस्पर अन्तर्सम्बन्धों के विवरण को उपयुक्त पाया-

अ) जो जीवित व्यवस्था भौगोलिक लक्षणों जैसे टोपोग्राफी, मिट्टी, वनस्पति प्रकार, जल और वर्षा आदि क्षेत्रें के सम्बन्धों की खोज करता है।

ब) जो ऐसे सामाजिक संरचनात्मक निष्कर्षों पर प्रकाश डालता है जो सामाजिक, राजनैतिक और अनुष्ठानिक संगठनों के बारे में लगाये जा सकते हैं।

स) जो सांस्कृतिक प्रक्रिया के सामान्यीकरण के लिए उपलब्ध सामग्रियों के विभिन्न कालों में परिवर्तन के अध्ययन पर अधिक जोर देता है।[8]

पुराबस्ती प्रक्रिया उन नियमों का समूह है जिसने, सर्वप्रथम क्षेत्र पर पैटर्न को निर्मित किया। दूसरे शब्दों में पुराबस्ती व्यवस्था नियमों की ऐसी व्यवस्था है जिसने पुराबस्ती प्रक्रिया को जन्म दिया। के.सी. चांग के अनुसार पुराबस्ती प्रारूप एक ऐसा तरीका है जिसमें किसी भू-परिदृश्य पर मानव बस्तियों का स्थापन भौतिक व भौगोलिक पर्यावरण के साथ व्यवस्थित किया जाता है।[9]

पुरातात्विक अध्ययन के विभिन्न पक्षों के अन्तर्सम्बन्धों पर यहाँ विशेष ध्यान देना होगा। उदाहरणार्थ. एक तरह के व्यक्तिगत भवनों का सामुदायिक भवनों के सम्बन्ध का अध्ययन हमें ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि हम शिविर, पुरवा (छोटा गाँव), गाँव, नगर इत्यादि का अलगाव कर सकते हैं और दूसरी तरफ उपकरण, मिट्टी के बर्तन, शवाधान प्रक्रियाएँ आदि के अध्ययन से किसी आबादी में और विभिन्न आबादियों के मध्य जो एक ही समय सीमा विभिन्न समयों में स्थित है उनके सामाजिक सांस्कृतिक सम्बन्धों का निर्धारित करती है।

पुराबस्ती प्रक्रिया की परिभाषा

विली ने पुराबस्ती प्रक्रिया को एक भू.भाग के ऊपर जिस पर मानव रह रहा है, उस पर वह अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत कर रहा है, उसके विधा विन्यास को उन्होंने पुराबस्ती प्रक्रिया के अन्तर्गत रखा। बस्ती प्रक्रिया के अन्तर्गत घरों के प्रकार, अधिवास जीवन से सम्बन्धित भवनों के स्वरूप और विन्यास इत्यादि सम्मिलित है। ये प्रक्रियाएँ प्राकृतिक परिवेश, लोगों के तकनीक के स्तर और सामाजिक तथा सास्कृतिक संस्थाओं के पारस्परिक क्रिया से प्रभावित होते हैं क्योंकि पुराबस्ती प्रक्रिया सांस्कृतिक प्रक्रियाओं और सांस्कृतिक आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होती है। इसलिए ये पुराबस्तियाँ सस्कृति की क्रियाशील अन्तर्क्रिया के लिए एक महत्वपूर्ण बिन्दु प्रस्तुत करती हैं।[10]

पुराबस्ती प्रक्रिया का दूसरा तात्पर्य उस सामुदायिकता से है जो अधिवासियों द्वारा निर्मित विभिन्न संरचनाओं की व्यवस्था प्रक्रिया से सम्बन्धित है और जिसका अर्थ है सामाजिक, राजनैतिक, सैनिक व्यवसायिक अथवा धार्मिक दृष्टि से बंधे हुए किसी समुदाय की समग्र व्यवस्था का अध्ययन।[11]

पुराबस्ती प्रक्रिया के पुरातात्विक निष्कर्षो से मनुष्य और प्रकृति तथा मनुष्य और मनुष्य के सम्बन्ध से प्राचीन समाज की वर्ग संरचना और सामाजिक आर्थिक अवयवों का विश्लेषण किया जा सकता है।

पुराबस्ती/अधिवास पुरातत्व के अध्ययन की पद्धतियाँ

1967-68 में ट्रिगर के दो लेखों के प्रकाशन से बस्ती पुरातत्व के अध्ययन पद्धति में नया मोड़ आया। पहली बार पुरातत्व, नृतत्वविज्ञान और भूगोल आदि विज्ञानों में पुराबस्ती प्रक्रिया से सम्बन्धित साहित्य का विस्तृत सर्वेक्षण किया गया, जिससे बस्ती पुरातत्व के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के अध्ययन किये गये। ट्रिगर ने दो प्रकार की पद्धतियाँ निर्धारित की।[12]

1. पारिस्थितिकी- जो इस मान्यता पर आधारित है कि अधिवास प्रक्रिया परिवेश और तकनीक इन दो तत्वों के सम्मिश्रण का प्रतिफल है। यह पद्धति मूलत: यह खोज करती है कि पुराबस्ती प्रक्रिया किस तरह से एक समाज के परिवर्तन और उसके तकनीक एवं समाज के परिवेश के लगाव को प्रतिबिम्बित करती है।
2. समाजशास्त्रीय- इस पद्धति में बस्ती आँकड़े संस्कृतियों के सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक संस्कारों से सम्बन्धित निष्कर्ष के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

पहले का सम्बन्ध सम्पूर्ण स्थलों के विस्तार और वितरण से सम्बन्धित है, जबकि दूसरे का सम्बन्ध एकांकी अधिवास प्रक्रिया से। ट्रिगर ने पुरातत्वविदों, नृतत्वशास्त्रियों, भूगोल.वेत्ताओं और इतिहासकारों के निष्कर्षो से यह सुझाव दिया था कि सम्यक् बस्ती अध्ययन के लिए तीन प्रकार विधियाँ से इसका अध्ययन किया जाना चाहिए[13]-

पुराबस्ती प्रक्रिया के प्रत्येक चरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का एक विस्तृत विवरण ट्रिगर ने प्रस्तुत किया, जिन्हें निम्नांकित संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है। ट्रिगर का कहना है कि अध्ययन के ये तीनों धरातल अलग-अलग अवयवों पर निर्भर है।[14]

(1) एकांकी भवन अथवा व्यक्तिगत संरचना

भवनों के अध्ययन से वहाँ के परिवेश से भवन निर्माताओं की निपुणता घर में रहने वाले परिवार उपलब्ध भवन सामग्री और उनकी तकनीक का भी ज्ञान होता है। कोडरिंगटन[15] के अनुसार घरों की आर्थिक स्थिति और अन्य सामाजिक संस्थाओं का अनुमान लगाया जा सकता है।[16] उत्पादन की विशेषज्ञता के बारे में भी एकांकी भवन से पता चलता है।[17] जैसी किसी घर में कोई उद्योग

था या नहीं। पुरातत्वकीय आँकड़ों से ऐसा लगता है कि मनुष्य के प्रारम्भ में गोलाकार घरों का निर्माण किया और बाद में जब पूर्णतया कृषि पर आधारित हो गया तो आयताकार घरों का निर्माण किया।[18]

(2) समुदाय प्रक्रिया

किसी समुदाय में भवन अथवा संरचनाएं किस प्रकार से बनायी जाती हैं अर्थात् पुराबस्ती अभिन्यास, का अध्ययन किया जाता है। किसी समुदाय के आकार और स्थायित्व, वहाँ के परिवेश और आर्थिक जीवन के लिए उपयुक्तता एवं तकनीक की गुणवत्ता के अन्तर्गत खाद्य-सामग्री का उत्पादन करना और उसे प्राप्त करने के साधन तथा खाद्य-सामग्री के संग्रह और उसके एक स्थान से दूरे स्थान पर ले जाना और उसको खाने के लिए तैयार करना आदि इस तकनीक के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। सामुदायिक प्रक्रिया के मुख्य तरीकों का निर्धारण वहाँ की जलवायु सम्बन्धी अवयवों पर निर्भर करता है। प्राचीन काल में ताम्रकारों के आवास लाल सागर के तट पर अकूबा में बनाये गये थे, जहाँ ताँबें के लिए अधिकतर लेकिन कृषि के लिए यह क्षेत्र उपयुक्त नहीं था।

(3) क्षेत्रीय प्रक्रिया

किसी आबादी अथवा क्षेत्र के पूरे घनत्व अथवा वितरण का निर्धारण अधिकांशतः उस क्षेत्र में मिलने वाले प्राकृति संसाधनों के स्वरूप और उनकी उपयोगिता पर निर्भर होता है। किसी क्षेत्र में नदियों के निकट अच्छी उपजाऊ भूमि, दूसरे आर्थिक संसाधन और उपयुक्त जलवायु, मछली पकड़ने शिकार की उपलब्धता जैसे तत्व शिकार किये जाने वाले क्षेत्र के आकार का निर्धारण करते हैं और उसी क्षेत्र के अन्तर्गत उनके स्थायी अड्डे बनाए जाते हैं। कृषि करने वाले समुदाय उपजाऊ भूमि के पास बसना पसन्द करते हैं। आवास का सम्पूर्ण वितरण राजनैतिक संगठनों से भी अधिक प्रभावित होता है। एक केन्द्रशासित राज्य में शासक के प्रतिनिधियों और प्रशासनिक अधिकारियों के नगर प्रान्तीय अधिकारियों के केन्द्र के रूप में विकसित हो सकते हैं। आवास के सम्पूर्ण वितरण को प्रभावित करने वाला एक अन्य तत्व युद्ध भी है। बड़े राज्यों में सुरक्षा व्यवस्था आवास प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग हो सकता है।[19]

पुरातत्व में बस्ती प्रारूप का अध्ययन पुरातत्वविद् नृविज्ञानी और मानवविज्ञानी आदि ने किया है। बस्तियों के अध्ययन के लिए अपनाये गये भूगोलवेत्ता अथवा नृ.वैज्ञानिक और पुरातत्वविद् के तरीकों में एक अन्तर किया जा सकता है। भूगोलवेत्ता और नृतत्वेत्ता पूरे या सम्पूर्ण बस्ती का अध्ययन करता है और पुरातत्वविद् आंशिक बस्ती का।

तुलनात्मक विधि

प्रागैतिहासिक अधिवास प्रक्रिया के लिए एक कारगर विधि तुलनात्मक विधि सर्वाधिक उपयुक्त है। शिविर और गांवों से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों का ऐतिहासिक अथवा समकालीन आवासों से प्राप्त उसी के अनुरूप प्रमाणों से तुलनात्मक अध्ययन पर पुरातत्वविद् प्रागैतिहासिक लोगों के पुराबस्ती प्रक्रिया का पुनर्निर्माण कर सकता है। इस उद्देश्य के लिए उसी क्षेत्र में वर्तमान राज्य काल में रह रहे विभिन्न आदिम जातियों की जीवन शैली को प्रस्तुत करने वाले प्रमाणों का प्रागैतिहासिक बस्तियों के प्राप्त प्रमाणो से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

2. भू.आकृतीय विज्ञान सम्बन्धी विधि

बस्ती प्रक्रिया के अध्ययन के लिए भू.आकृति विज्ञान सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों ने पारिस्थितिकीय संयोजन के अन्तर्गत टेरेन (मैदान) प्रकारों का अध्ययन किया है, जो प्रागैतिहासिक समुदायों के लिये विशेष महत्वपूर्ण है। टेरेन में भौतिक परिवेशगत व्यवस्था जीव-जन्तु, वनस्पतियाँ और जलवायु सम्मिलित है। एक पारिस्थितिकी तंत्र में ये तत्व एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।

अध्ययन की इस विधि का प्रयोग करके भारत में प्रारम्भिक नव.पाषाणिक संस्कृति को विवेचित किया जा सकता है। मैदानी भूमि और पूर्ववर्ती अधिवासों के पुनउर्पनिवेशन से लाभान्वित स्थापित कृषि से एक स्थायी कृषि का विकास हुआ, जिससे लोग नदियों के तटों पर अपने अधिवास बनाने लगे।

3. भू-तत्व विश्लेषण

कार्ल बटज[20] ने भू-तत्वीय विश्लेषण से पुरातात्विक स्थलों का अध्ययन किया है। इसमें उन्होंने पुरातात्विक साक्ष्यों को निम्न भागों में विभाजित किया है।

1. मैदानी स्थल- उपकरण, जीवावशेषण, आवासीय फर्श इत्यादि जो नदी जमावों से मिलते हैं।
2. झील के स्थल- प्राचीन झील के तलहटी से प्राप्त पुरातात्त्विक सामग्री।
3. वायु जनित स्थल- हवा द्वारा जमा किए बालू अथवा महीन कण वाले मिट्टी के जमाव से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री।
4. ढाल वाले स्थल- ढाल के गुरुत्वाकर्षण से जमा हुए जमाव से मिलने वाले पुरातात्विक स्थल।
5. गुफास्थल- गुफाओं से प्राप्त पुरातात्विक सामग्रियाँ।
6. समुद्रतटीय स्थल- समुद्र के प्राचीन तटों से सम्बद्ध अपरदन और निक्षेपण से बने जमावों में मिलने वाली पुरातात्विक सामग्रियाँ।
7. ऊपरी सतह के स्थल- बिना किसी भू.आकृति घटना से सम्बद्ध पृथ्वी के ऊपरी सतह पर बिखरी हुई पुरातात्विक सामग्रियाँ।

बटजर के अनुसार उपरिवर्ती भू-तत्वीय विधि के अनुसार विभाजित पुरातात्विक निम्न कार्यों को कर सकता है।

(अ) किसी स्थल की स्थानीय स्थिति का पुनर्निर्माण कर सकता है, जिसके अन्तर्गत टेरेन प्रकार की भैगोलिक स्थिति, टेरेन की विशेषताएं, जल का स्रोत, पृथ्वी के अन्दर जल की स्थिति और बाढ़ की सम्भावनाएँ सम्मिलित हो सकती है।

(ब) जीवशास्त्रीय विज्ञानों की सहायता से क्षेत्रीय पुरातत्व का पुनर्निर्माण कर सकता है।

(स) एक ऐसे स्थानीय स्तरीकरण का निर्धारण कर सकता है, जो एक बड़े क्षेत्र की तिथि निर्धारण में सहायक हो सकती है।

भारतीय सन्दर्भ में इनमें से सबसे महत्वपूर्ण स्रोत पृथ्वी के ऊपरी सतह के स्थलों का है, लेकिन फिर भी भारत में प्रागैतिहासिक बस्तियों के सन्दर्भ में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व सभी भू.तत्वीय स्रोतों की खोज करना आवश्यक है।

भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ में पुराबस्ती प्रारूप अध्ययन

भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ में पुराबस्ती प्रारूप के अध्ययन में एम.के. धवलिकर[21], जी.एल. पॉशेल[22], वसन्त शिन्दे[23], जार्ज एरडोसी[24], माखन लाल[25] और आर.सी. ठाकरान[26] आदि विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

रैबा रे[27] ने अपने शोध-प्रबंध फ्एंशियंट सेटलमेंट पैटर्न इन ईस्टर्न इण्डियाय् में पूर्वोत्तर भारत में प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के अधिवास प्रक्रिया पर उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर प्रकाश डाला है। जार्ज एरडोसी[28] ने अपने महत्वपूर्ण लेख सेटलमेंट आफ द कौशाम्बी रीजन में उल्लेखनों और सर्वेक्षण से प्राप्त विभिन्न प्रमाणों को अधिवास प्रक्रिया के आलोक में नए तरीके से प्रस्तुत किया है।

ब्रह्मदत्त[29] ने चित्रित धूसर पात्र परम्परा संस्कृति की अधिवास प्रक्रिया पर हरियाणा से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर एक शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है, जिसमें उन्होंने भू-आकृति विज्ञान सम्बन्धी और भू-तत्वीय विधि का प्रयोग किया है। मिट्टी के प्रकार, वर्षा, नदी आदि के आधार पर चित्रित धूसर पात्र परम्परा के लोगों के अधिवास प्रक्रिया पर उन्होंने प्रमाण दिया है। गंगा के दोआब में स्थित कानपुर जनपद के आद्यैतिहासिक और प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग की अधिवास प्रक्रिया पर माक्खन लाल[30] का कार्य विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने ट्रिगर द्वारा प्रतिपादित क्षेत्रीय प्रक्रिया का अनुपालन किया है। माखन लाल[31] के अनुसार विली के कार्य ने पहली बार पुरातत्व के क्षेत्र में एक व्यवस्थित अनुसंधान पेश किया और नये अध्ययन को प्रोत्साहित किया।

एम.के. धावलिकर ने इनामगांव के ताम्रपाषाण कालीन बस्ती प्रारूपों, जीविका व स्थानीय दशाओं का अध्ययन किया। पत्र शरत व दक्कन (महाराष्ट्र) के इनामगांव, प्रकाश व नवदातोली में प्राप्त आवासीय झोंपड़ियों के प्रमाणों से स्तरीय बस्ती प्रणाली का बोध होता है। इनामगांव में झोंपड़ियों व पांच कमरों वाले मकान और अनाज के गोदाम के प्रमाणों से प्रतीत होता है कि यह मुखिया शासित स्थल है, जहाँ वह इन बस्तियों पर नियंत्रण करते हुए अनाज के रूप में कर वूसली करता होगा।[32]

वसन्त शिन्दे ने भी पश्चिमी भारत दक्कन की ताम्रपाषाणिक संस्कृति का बस्ती प्रारूप अध्ययन करते हुए बताया कि इन संस्कृतियों में मुखिया द्वारा शासित समाज के लक्षण दिखाई देते हैं। जैसे छोटी बस्तियाँ, विशिष्ट शिल्प व मुखिया के लिए अलग कब्रगाह का होना। बस्ती प्रारूप के तहत इन पुरास्थलों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया। जैसे. शिकार, बस्तियाँ, शिल्प स्थल, कृषि बस्तियाँ (स्थानीय संसाधनों की दृष्टि से क्षेत्रीय केन्द्र आदि।)[33]

पुरातत्वविद् आर.सी. ठाकरान ने निरन्तरता व परिवर्तन के साथ मानव द्वारा आवासित बस्तियों को किसी एक उपागम की बजाय, कई उपागमों के तहत स्पष्ट किया है।[34]

मानव द्वारा बस्ती स्थापना को प्रभावित करने वाले उत्तरदायी विभिन्न आयाम

पृथ्वी का प्रत्येक प्राणी जीवित रहना चाहता है और उसके लिए भोजन एवं सुरक्षा दोनों महत्वपूर्ण होते हैं। इसी संदर्भ में मानव अधिवास को समझा जा सकता है। मानव अपने आवास के लिए ऐसे सुरक्षित स्थान की चयन करता है, जहाँ वह निर्भिक होकर रह सके, जीवन-निर्वाह संबधित संसाधनों की उपलब्धता हो, अनुकूल पर्यावरणीय तंत्र हो और जल स्रोत के साथ कृषि-योग्य भूमि और सुगम आवागमन मार्ग हो। इस प्रकार के मानव के निवास स्थान या आश्रय स्थल मानव अधिवास या पुराबस्ती के रूप में पहचाने जा सकते हैं।

विली का कथन है- सेटलमेंट पैटर्न शब्द यहाँ उस भू-भाग पर मानव द्वारा व्यतीत जीवन शैली का द्योतक है जिस पर वह रह रहा था। इसका सम्बन्ध आवासों से, उनकी व्यवस्था से और सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित अन्य संरचनाओं के प्रयोग से है। ये सेटलमेंट प्राकृतिक परिवेश, उस तकनीकी का स्तर जिसका ये निर्माणकर्ता प्रयोग कर रहे थे और संस्कृति द्वारा विभिन्न सामाजिक अन्तर्क्रिया की विभिन्न संस्थाओं से है।[35]

पुरातत्वविद् ई.जेड. वोगट[36] ने बस्ती प्रारूप का सम्बन्ध प्राकृतिक भूगोल स्थलाकृति, मिट्टी, वनस्पति, क्षेत्र, वर्षा क्षेत्र और सामाजिक सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के आधार पर अभिव्यक्त किया है।

सैन्डर्स के अनुसार क्षेत्रीय पुराबस्ती प्रक्रिया के अन्तर्गत समुदाय के आकार का वितरण, समुदायों के अन्दर की दूरी आबादी का घनत्व और आबादी के (पारस्परिक) सहजीवी अन्त:सम्बन्धों का अध्ययन होता है।[37]

ट्रिंघम[38] ने पुराबस्ती प्रक्रिया के विश्लेषण के अध्ययन में विभिन्न तत्वों को निम्न रूप से संक्षेप में प्रस्तुत किया है. (1) पुराबस्ती की स्थिति और उनका पारिस्थितिकी प्राकृतिक संसाधनों और संचार व्यवस्था से सम्बन्ध, (2) पुराबस्तियों का घनत्व और वितरण, (3) पुराबस्तियों के दोहन का क्षेत्र और जीवन निर्वाह की अर्थव्यवस्था, (4) विशिष्ट क्रिया कलापों के स्थलों का वितरण, समाधि स्थल, बूचड़खाना, (5) विभिन्न स्थानों में आबादी की संचरण ऋतुनिष्ठ और गैर ऋतुनिष्ठ प्रवजन की मात्र, (6) पुराबस्तियों और बाजारों के वितरण के मध्य व्यापार व्यवस्था, (7) पुराबस्तियों में सामाजिक सम्बन्ध, पारिवारिक सम्बन्ध इत्यादि (8) राजनैतिक प्रमुख और धर्मतन्त्र प्रदर्शित करने वाली पुराबस्तियों के बीच राजनैतिक सम्बन्ध, राजनैतिक, धार्मिक और सैनिक क्रिया-कलाप, युद्ध तथा प्रतिरक्षा आदि का केन्द्रीयकरण और (9) उसी ठोस पारिस्थितिकी क्षेत्र पशुपालक और कृषक सहजीवन ग्राम्य और नगरीय विभाजन का अन्तरीय दोहन।

किसी भी क्षेत्र में लोग वहीं बसना पसन्द करते हैं जहाँ पीने का पानी उपलब्ध हो, खाद्य सामग्री की प्रचुरता हो और यथासम्भव वह स्थान सुरक्षित और सुन्दर हो। समुदाय का आकार व उसकी स्थिति मुख्यत: परिवार और पारिवारिक सम्बन्धों से प्रभावित होती है। विशेष करके आदिम समाजों में विकसित समाज में पारिवारिक सम्बन्धों के अतिरिक्त सामाजिक वर्ग, धर्म और जातीय समूह सभी समुदाय के पुराबस्ती प्रारूप का निर्धारण करते रहते हैं और अधिक विकसित समाज में आजीविका के तत्व सीमित अर्थों में आवास के आकार और स्थिति के निर्धारण में उतने महत्वपूर्ण नहीं होते। आवासों का विकास ऐसे बंजर भूमि में भी हो सकता है जहाँ दुर्लभ और कीमती खजिन उपलब्ध हो। युद्ध और सुरक्षा स्थलों की स्थिति और सुरक्षा समुदायों के अधिवास विन्यास स्थल के निर्धारण में योगदान करते हैं।[39]

आर.सी. ठाकरान[40] ने पुराबस्तियों के विकास व वितरण के लिए उत्तरदायी विभिन्न आयामों का गहन विश्लेषण किया है। पुराबस्ती प्रारूप के ये विभिन्न आयाम निम्न हैं। पास्थितिकी, स्थलाकृति, मृदा के प्रकार, खादर, बांगर, भू-उपयोग, जलसंसाधन, भू. गर्भ जल, अपवाह तन्त्र, जलविज्ञान, भूमि में बस्ती स्थापन, तकनीकी क्रियाकलाप।

प्रवर्जन और आबादी में परिवर्तन जैसे कुछ ऐसे तत्व हैं जो पुराबस्ती प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारण माने जा सकते हैं। लेकिन कभी-कभी आर्थिक कारणों अथवा बीमारियों से आबादी में वृद्धि अथवा कमी के कारण पुराबस्ती प्रक्रिया कई रूपों में प्रभावित होती हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पुराबस्ती अधिवास प्रक्रिया विभिन्न धरातल पर बहुत से कारणों द्वारा विभिन्न रूपों में प्रभावित होती है। पुरातत्वविद् के.एन. दीक्षित[41] ने बस्ती की स्थापना के लिए पर्यावरणीय अनुकूलता, सुरक्षा, संसाधनों की निकटता, ओर आवागमन आदि कारकों को महत्वपूर्ण बताया है। अधिवास और अधिवास प्रक्रिया कभी भी स्थायी नहीं रही। परिवेशगत स्थिति, तकनीक, भौतिक, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, सामाजिक संगठन और राजनैतिक सम्बन्धों से यह प्रभावित होती है।

बस्ती के विकास के लिए उत्तरदायी अन्य कारक

1. भौतिक संस्कृति का योगदान- पुरास्थलों से प्राप्त भौतिक संस्कृति अवशेषों से अवलोकन करते हैं कि प्रकृति पर्यावरण व मानव संसाधन प्रक्रिया और किस प्रकार से प्रकृति व मानव अन्र्तसम्बन्धित है। प्रकृति, समाज का निर्धारण करती है और समाज किस प्रकार के प्रकृति को प्रभावित करता है।
2. कृषि की भूमिका- नदियों की प्रकृति ने इस क्षेत्र में कृषि के विकास में योगदान दिया। उपजाऊ भूमि ने भी सतही जीवन के निर्धारण में योगदान दिया। मृदा का फसल विशेष से अनुकूलन से भी मानव बसावट व स्थिरता को बढ़ावा मिला।
3. पर्यावरण की भूमिका- किसी भौगोलिक क्षेत्र की जलवायु, जंगल और पर्यावरणीय परिस्थितियां मानव बसावट को प्रभावित करती हैं।
4. आन्तरिक व बाहरी सम्बन्ध- वाणिज्य व उद्योग की स्थिति और आंतरिक व बाह्य सम्बन्धा बस्ती की अवस्थिति में महत्वपूर्ण निर्धारक है।
5. नदियां, मृदा और भोजन व चारा आदि तत्व भी पुरास्थलों के निर्माण को प्रभावित करते हैं।

पुराबस्ती प्रारूप अध्ययन का महत्व

मानव द्वारा पृथ्वी पर की गई किसी भी प्रकार की गतिविधि का मुख्य आधार अपना कल्याण करना होता है। मानव पुराबस्तियों के अध्ययन का महत्व इस प्रकार हैं।

1) यह जानकारी प्रदान कराता है कि मानव ने कब, कहां, क्यों और कैसे स्थायी/अस्थायी ढांचे को विकसित किया।
2) उत्पादन गतिविधि में श्रम विभाजन को स्पष्ट करता है।
3) यह क्षेत्रीय अवस्थिति और विभिन्न सुविधाओं के फैलाव, जैसे पेयजल, सिंचाई चारागाह आदि को स्पष्ट करता है।
4) कृषि और आरम्भिक बसावट के अन्र्तसम्बन्धों का बोध कराता है।
5) नियोजित विकास व तकनीक के प्रभावों का बोध कराता है।
6) स्थानिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्क्षेत्रीय व अन्तर.व्यवस्थात्मक सम्बन्धों को पुराबस्ती संरचना के साथ एकीकृत करता है।
7) यह लोगों के सामाजिक, आर्थिक मूल्यों व मानदण्डों को समझने में मदद करता है।
8) मानव जीवन की अच्छी दशाओं व आवास, सफाई व पर्यावरण आदि गुणवत्ताओं का व्यापकता से मूल्यांकन करना।
9) यह स्थापत्य की विभिन्न शैलियों व उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ज्ञान कराता है।
10) विश्व स्तर पर मानव बसावट अभिगम को स्पष्ट करता है।

References-

1. बी.जी. ट्रिगर, 'सेटेलमेंट आर्कियोलॉजी- इट्स गोल्स एण्ड प्रामिज', अमेरिकन एन्टिक्विटी, वो- 32, 1967, पृ- 149-160
2. रूथ ट्रिंघम, पीटर जे- उको व अन्य (संपा), इन्ट्रोडक्शन, मेन्स सेटलमेंट एण्ड अरबनाइजेशन, डकवर्थ, लन्दन, 1972, पृ 22-23
3. एल.एच. मार्गन, 'हाउसेज एण्ड हाउस लाइफ ऑफ द अमेरिकन एबोरिजिन्स, कन्ट्रीब्यूशन' नार्थ अमेरिकन एथनोलॉजी, वो. 4, यू.एस. वाशिगंटन, गवर्नमेंट प्रेस, 1881, पृ. 31
4. जी.आर. विली, 'प्रिहिस्टोरिक सेटलमेंट पैटर्न्स, इन द वीरूवैली', ब्यूरो ऑफ अमेरिका एथनोलॉथी बुलेटिन, वो. 155, 1953, पृ. 1, 453
5. जी.आर. विली, (सम्पा.) 'प्रिहिस्टोरिक सेटलमेंट पैटर्न्स, इन द न्यू वर्ल्ड', वीकिंग एण्ड पब्लिकेशन इन एन्थ्रोपोलाजी', वो. 23, 1956, पृ.1
6. जी.आर. विली, 1956, पूर्वोक्त, पृ. 1-2, 202
7. इ.जेड. वोगट, एन एप्राइजल ऑफ प्रिहिस्टोरिक सेटलमेंट पैटर्न्स, ऐशेज इन द न्यू वर्ल्ड, 1956, पृ. 173-183,
8. इ.जेड़. वोगट, पूर्वोक्त, पृ. 173-184
9. के.सी. चांग, सेटलमेंट आर्कियोलॉजी, पॉलो अल्टो, नेशनल प्रैस, 1968, पृ. 69
10. जी.आर. विली, 1956, पूर्वोक्त, पृ. 174-176

11. जी.आर. विली, 1956, पूर्वोक्त, पृ. 174-176
12. बी.जी. ट्रिगर, 1967, पूर्वोक्त, पृ. 149-160
13. बी.जी. ट्रिगर, 1967, पूर्वोक्त, पृ. 149-160
14. बी.जी. ट्रिगर, 'डिटर्मिन्स ऑफ सेटलमेंट पैटर्न', के-सी- चांग (संपा) सेटलमेंट आर्कियोलॉजी, पोलो एल्टो, नेशनल प्रेस, 1968, पृ. 53-78
15. आर. एच. कोडरिंगटन, द मेलेनिसियन्स, न्यू हैवेन, एच.आर.एफ. प्रेस, 1957, पृ. 49
16. बी.जी. ट्रिगर, 'आर्डर एण्ड फ्रीडम इन हुरान सोसाइटी', एन्थ्रोपोलोजिका ,वो. 5, 1963 पृ. 151-69.
17. एम.के. धावलीकर, 'सबसिस्टेन्स पैटर्न्स आफ एन अर्ली फार्मिंग कम्यूनिटी ऑफ वेस्टर्न इण्डिया', पुरातत्व वो. 7, 1974, पृ- 43-50
18. एम.सी. रॉबिन्स, 'हाउस टाइप्स एण्ड सेटेलमेंट पैटर्न्स: एन अप्लीकेशन ऑफ एथनोलाजी टू आर्कियोलॉजिकल इन्टरप्रटेसन्स', आर्कियोलॉजी, वो. 28, 1966, पृ. 3-35
19. ट्रिगर, 1967, पूर्वोक्त, पृ. 152-165
20. कार्ल बटजर, इनवायरमेंट एण्ड आर्कियोलॉजी एन इन्ट्रोडक्शन टू प्लीस्टोसीन जियोग्राफी, लन्दन 1964, पृ. 233 (ग्राहम क्लार्क, इनवायरमेंट एण्ड आर्कियोलॉजी एन इन्ट्रोडक्शन टू प्लीस्टोसीन जियोग्राफी, कार्ल बटजर, अमेरिका एन्थ्रोपोलॉजिस्ट वो. 67, इश्यु 5, अक्टू, 1965, पृ. 1331-33)
21. एम.के. धावलिकर, इण्डियन प्रोटो हिस्ट्री, नई दिल्ली, बुक्स एण्ड बुक्स, 1997, पृ. 273
22. एम.के. धावलिकर एण्ड जी.एल. पोशेल, सबसिस्टेन्स पैटर्न ऑफ अर्ली फार्मिंग कम्यूनिटी ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, पुरातत्व, वो. 7, नई दिल्ली, 1974, पृ. 39.41
23. वी.एस. शिन्दे, 'चेल्कोलिथिक फेज इन वेस्टर्न इण्डिया, इन्कलूडिंग सेन्ट्रल एंड डेक्कन रीजन', के पद्दैया (संपा) रिसेंट स्टडीज इन इंडियन आर्कियोलॉजी, नई दिल्ली, 2002, पृ. 171
24. जार्ज इरडोसी, 'सेटलमेन्ट ऑफ पी.जी. आफ द कौशाम्बी रीजन', मैन एण्ड इनवायरमेन्ट, वो. 9, 1986, पृ. 66.76
25. माखन लाल, सेटलमेंट पैटर्न एण्ड राइज आफ सिविलाइजेशन इन मिडिल गंगा.यमुना दोआब, बी.आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन नई दिल्ली, 1989, पृ. 160.165
26. आर.सी. ठाकरान, डायनेमिक्स ऑफ सेटलमेंट आर्कियोलॉजी (हरियाणा), नई दिल्ली, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, 2000, पृ. 295
27. रेबा रे, एंशियंट सेटलमेंट पैटर्न्स ऑफ इस्टर्न इण्डिया, (प्रिहिस्टोरिक पीरयिड) कलकत्ता, पर्ल पब्लिकेशन, 1987, पृ. 139
28. जार्ज इरडोसी, पूर्वोक्त, पृ. 66-76
29. ब्रह्मदत्त, सेटेलमेन्ट ऑफ पी.जी. डब्ल्यू. कल्चर, हरियाणा, पीएच.डी. शोध प्रबंध, (अप्रकाशित) कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, 1970, पृ. 58.73
30. माखन लाल, 1989, पूर्वोक्त, पृ. 165
31. माखन लाल, 1989, पूर्वोक्त, पृ. 16
32. एम.के. धावलिकर, 1997, पूर्वोक्त, पृ. 273
33. एम.के. धावलिकर एण्ड जी.एल. पोशेल, '1974, पूर्वोक्त, पृ. 39-41
34. आर.सी. ठाकरान, पूर्वोक्त, पृ. 295
35. जी.आर. विली, 1953 पूर्वोक्त, पृ. 1
36. इ.जेड. वोगट, 1956, पूर्वोक्त, पृ. 183-193
37. डब्ल्यू.टी. सैन्डर्स, द सेन्ट्रल मैक्सिन सिम्बायटिक रीजन: ए स्टडी इन प्रीहिस्टोरिक सेटेलमेंट पैटर्न्स, पृ. 115-27, और जी-आर. विली, 1956, पूर्वोक्त
38. रूथ ट्रिंघम, पीटर जे. उको, 1972, पूर्वोक्त, पृ. 22-23
39. के.सी चांग, 'टाइपोलाजी ऑफ सेटेलमेन्ट एण्ड कम्यूनिटी पैटर्न इन सम सर्कमपोलर सोसायटीज', आर्कटिक एन्थ्रोपोलाजी, नं. 1, 1962, पृ. 28-41
40. आर.सी. ठाकरान, 2000, पूर्वोक्त, पृ. 295
41. के.एन. दीक्षित, द डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ द हडप्पन वेयर्स इन द गेंजेटिक दोआब, इण्डिन आर्कियोलॉजी न्यू पर्सपेक्टिव, न्यू दिल्ली, 1982

प्रवासी साहित्य में भारतीय संस्कृति का चित्रण

डॉ० सविता वर्मा

सह प्राध्यापक हिन्दी, श्री रावतपुरा सरकार यूनिवर्सिटी, रायपुर (छ.ग.)

भारतीय संस्कृति विरासत की परंपरा सुदीर्घ और पुरातन है। यह परंपरा किसी भी समाज की ऐसी जीवन पद्धति है जो पूर्वजों के अनुभवों से संयुक्त होकर पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत के रूप में चलती रहती है। इसे मानव जाति की परंपरागत देन, सामाजिक उपार्जन उपलब्धि और समुदाय विशेष का ऐसा प्रवाह कहा जा सकता है जो अतीत को वर्तमान से और वर्तमान को भविष्य से जोड़ता है। भारतीय संस्कृति में सद्भावना, मानवता, नैतिकता, त्याग, दयालुता आदि मलू यों की प्रतिष्ठा है। यह समदर्शी, क्षमाशील आरै उदार है। ''वसुधैव कुटुम्बकम'' इसका आदर्श रहा है। श्रीमती मंजु कपूर का मत है, ''मौरिशस में भारत के उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों भागों के निवासी गए हुए हैं। उनमें बिहारी भी है तो गुजराती और तमिल भी है तो ईसाई एवं सनातन धर्मी भी वैविध्य के होते हुए अप्रवासी भारतीयों में भारतीय संस्कृति अंत: सलिला की भांति प्रवाहित हो रही है। आज किसी भी क्षेत्र में देख लीजिए विदेशी के प्रति रूझान स्पष्ट परिलक्षित होगी।

आज खान-पान की स्थिति यह है कि आज की पीढ़ी को हमारे परंपरागत व्यंजनों के नाम तक नहीं मालूम, पहनावे, का पूर्णत: पाश्चात्यीकरण हो गया है। भारतीय वेश-भूषा तो लगभग गायब ही दिखाई देती है आज के बच्चों को यदि कहेंगे कि तिरसट बोलिये तो वह पूछेंगे इसका अर्थ क्या होता है यानी गणित से हिंदी के अंक गायब ही हो चुके हैं यहीं स्थिति भाषा और साहित्य की है। अंग्रेजी भाषा की लोकप्रियता प्रत्येक शहर यहां तक कि गावं की गलियों में भी अंग्रेजी मीडियम के कान्वेंट स्कूल की भरमार दिखाई देगी। देश और प्रदेश में होने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं, शासकीय-अशासकीय नौकरियों, न्यायालय, अस्पताल, सरकारी दफ्तरों, प्रत्येक स्थान पर अंग्रेजी का ही वर्चस्व दृष्टिगोचर होता है। यही दशा संस्कृति के क्षेत्र में है आज प्रत्येक ललित कलाओं, नृत्यों, गायन, संगीत इत्यादि में विदेशी कलाओं का ही वर्चस्व है। चल चित्रों में नृत्य गायन और अन्य क्षेत्रों में विदेशी संगीत और तकनीक की भरमार है फिल्मों में कालिदास के साहित्य से संबंधित फिल्मों की संख्या नगण्य है किंतु शेक्सपीयर और अन्य विदेशी कथाकारों की कहानियों पर आधारित फिल्मों की भरमार है। परिणाम यह है कि आज विश्व के संपन्न देश भारत को एक बड़े बाजार के रूप में देख रहे हैं। प्रवासी शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो अपना देश छोड़कर अनिश्चित समय के लिए दूसरे देश में बस जाते हैं। और अपना लक्ष्य या कार्य पूर्ण होने पर पुन: अपने देश लौट आते हैं। प्रवास शब्द 'वस' धातु में 'प्र' उपसर्ग लगने से बना है। 'वस्' धातु का अर्थ 'रहने' के है। 'प्र' उपसर्ग जुड़ने से इसका अर्थ बदल जाता है। घर पर न रहना या यात्रा पर रहना, विदेशों में रहना आदि। भाषा के संबंध में स्थिति और भी लज्जा जनक है, आज तक भारत की अपनी कोई भाषा राष्ट्रभाषा नहीं बन सकी है। अंग्रेजी का वर्चस्व इतना है कि हिंदी उसकी दासी सी प्रतीत होती है। हमारे हिंदी के विद्वान और समीक्षक प्राय: प्रवासी साहित्य और साहित्यकारों के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण रखते हैं। प्राथमिक कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक किसी भी प्रवासी साहित्यकार का साहित्य पाठय् में स्थान नहीं पा सका है पत्र-पत्रिकाओं में स्थानीय कवियों, लेखकों, साहित्यकारों की साहित्य की समीक्षा प्रकाशित हो जाती है। किंतु प्रवासी साहित्य का पूर्णत: अभाव दिखता है। आज हिंदी विश्व में तीसरे क्रम की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में स्थापित है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन हो रहा है इसका श्रेय प्रवासी साहित्यकारों को है तथापि भारतीय साहित्य में उनकी उपेक्षा विचारणीय है।

भाषा व्यक्ति और समाज की पहचान होती है। यह समाज, राष्ट्र की अस्मिता की अभिव्यक्ति होती है और यह मानव समाज की ताकत होती है। क्योंकि भाषा व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, संवेदनाओं और क्रिया-कलाप की अभिव्यंजना का सशक्त माध्यम है। प्रवास काल में जब व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन करता है तब उसे वहां की आब-हवा में रहना पड़ता है साथ

ही उन्हें उन चुनौतियों को स्वीकार करना पड़ता है जिसकी भाषिक सरं चना आरै सस्ं कृति बिल्कुल भिन्न होती है, ऐसी स्थिति में प्रवासी बहूभाषावाद के प्रति जागरूकता और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनानें में कई दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।

प्रवासी साहित्यकारों को हम तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी में वे लोग आते हैं जिन्हें अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक हितों के कारण जबरदस्ती बंधुआ मजदूर बनाकर विदेशों में भेज दिया इन्हें गिरामिटिया मजदूर कहा जाता था। ये प्राय: अशिक्षित या अल्पशिक्षित होते थे। ये लोग अपने धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं के कारण अपने सभ्य धार्मिक पुस्तकें, सांस्कृतिक कथाएं एवं प्रचुर मात्रा में मौखिक लोक साहित्य को लके र गए। यथापि विदेशों में उन्हें सामाजिक उपेक्षा और घोर अपमान की त्रासादी झेलनी पड़ी किंतु वर्षो से गुलाम और सामंतवादी भारत में उपेक्षित रहने के कारण इसे सहजता से स्वीकार कर लिया। रामलीला और लोक साहित्य का विदेशों में व्यापक प्रभाव पड़ा और आज अनेक देशों में रामलीला पर आधारित नाट्यशैली प्रचलित है, इनमें मॉरिशस में बसे द्वितीय श्रेणी में वे भारतीय आते हैं जो मध्यम वर्ग के हैं आरै रोजगार हेतु विदेश गए और वहां निम्न या मध्यम श्रेणी कार्य करते हैं। इन मध्यम श्रेणी के प्रवासियों के संबंध में अरुण ने लिखा है कि ''वे सुख की आस लेकर आए थे क्योंकि उन्हें कहा गया था कि मॉरिशस में माटी खोदने पर सोना मिलेगा लेकिन यहां आकर उन्होंने देखा कि उनके भाग्य में केवल पत्थर ही पत्थर है। अपने साथ हुए इस छल से वे आहत थे। उनके जीवन में इससे बड़ा धोखा पहले शायद कभी नहीं हुआ था।'' इन लोगों ने आर्थिक संकट के साथ ही पराए देश का बेगानापन, शारीरिक आरै मानसिक गुलामी, रंगभेद संबंधी नस्ली भेदभाव का अपमान भी सहना पड़ा। इन लोगों में से कुछ प्रवासियों ने हिंदी में लिखा भी इनकी रचनाओं में अतीत में भोगे यथार्थ का चित्रण है। उन लेखकों ने वहां की तात्कालिक परिस्थितियों, सामाजिक व्यवस्था और रीति-रिवाज को अपने लेखन का आधार बनाया। मध्यम वर्ग प्रवासी साहित्यकारों का एक श्रेणी वह भी है जो स्वतंत्रता पूर्व एवं बाद में रोजी-रोटी और सुविधापूर्ण जीवन की तलाश में विदेश गए और वहां निम्न, मध्यम श्रेणी की नौकरियों या व्यापार करने लगे। पहले गए प्रवासियों से इनकी सोच कार्य और व्यवहार निम्न थे। नस्ली भेदभाव, घृणा, गरीबी, गुलामी आदि परिस्थितियों को झेलते हुए इन लोगों की मानसिकता ने इन्हें भीतर तक झझकोर दिया। इस श्रेणी के प्रवासी साहित्यकारों ने उक्त भावनाओं को अपनी रचनाओं द्वारा स्वयं को अभिव्यक्त किया। ऐसे प्रवासी साहित्यकार अपनी रचनाओं द्वारा प्रवासी हिंदी साहित्य का केंद्रीय बिंदु बन गए।

मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम आदि देशों के हिंदी साहित्य में उनका देश अभिव्यक्ति और स्वयं मुक्ति का माध्यम बना। जिन भारतीय प्रवासी साहित्यकारों ने अभिव्यक्ति द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया वे अधिकतर मॉरिशस, फिजी सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि टापूओं के और अमेरिका, इंग्लैंड और कनाडा के प्रवासी थे। इनके अतिरिक्त नीदरलैंड, डेनमार्क केन्या, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, स्वीडन, जिम्बाम्बे, दुबई, मस्काट, थाइलैंड आदि देशों में रह रहे भारतीयों ने भी प्रवासी चेतना के स्वर को अभिव्यक्त करते हुए भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अंतर्गत प्रवास का संताप भोग रहे लोगों को मानसिक और भावात्मक सुरक्षा प्रदान करने का प्रयत्न किया।

आज साहित्य सृजन प्रवासियों के जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। भिन्न-भिन्न देशों में रचा जा रहा प्रवासी साहित्य भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अंतर्गत अपने तौर पर विलक्षण है, परंतु इनमें कुछ विशेषताएं एक जैसी है, जैसे नस्लवाद, सांस्कृतिक तनाव, रिश्तों की सार्थकता और बेगानापन आदि।

आर्थिक और सामाजिक सुख स्रोतों से भरपूर मानसिक संताप झेल रहे ये प्रवासी लेखक अपने मूल से जुड़ने का सफल प्रयत्न कर रहे हैं। प्रवासी जिंदगी के भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक ढांचे में उसको भोगते हुए न तो उसे छोड़ने की जुर्रत करते हैं ना ही अनुभूति के स्तर पर अपनी मातृभूमि को भूलाकर नए देश, नई धरती और नए लोगों को अपना समझते हैं।

विदेश में वास कर रहे प्रवासियों को आधुनिक समय में परिवर्तित परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है, जिसके अंतर्गत प्रवासी परिवारों की नवीन पीढ़ी अपने नवीन विचार लके र सामने आ रही है। इस पीढीध् की पहली भाषा अंग्रेजी है। निसंदेह विदेशों में रह रहे भारतीयों को भाषा के संकट का सामना करना पड़ रहा है। क्रियात्मक रूप से नई पीढ़ी से एकजुटता का प्रयत्न मानवीय रिश्तो में दरार उत्पन्न करता है। पारिवारिक, सामाजिक और बोलता है जिस पर हिंदू धर्म, संस्कृति, दर्शन एवं जीवनमूल्यों का गहरा प्रभाव है। अमेरिका, इंग्लैंड आदि देशों के हिंदी लेखकों की रचनाओं में भी अमेरिका, इंग्लैंड आदि देश है, किंतु उनमें स्वदेश का वायुमंडल एवं मिट्टी की सौंधी गंध भी विद्यमान है। इस प्रकार प्रवासी हिंदी साहित्य में किसी-न-किसी रूप में भारत विद्यमान है।

उपरोक्त वर्णित सभी विरुद्ध एवं विषम परिस्थितियों में रहते हुए भी प्रवासियों द्वारा अपनी मातृभाषा हिंदी में लिखना एक दुष्कर कार्य है। श्रेष्ठ साहित्य अपनी मातृभाषा में ही लिखा जाता है। बंगाल के सुप्रसिद्ध लेखक माइकल मधुसूदन को एक अंग्रेजी विद्वान ने कहा था कि आप कितना भी अच्छा लिख ले एक अंग्रेज से ज्यादा अच्छा नहीं लिख सकते।

अर्थात अच्छा साहित्य उसी भाषा में लिखा जा सकता हैं जिनके संस्कार हमें बचपन में प्राप्त होते हैं। दूसरी भाषा में लिखे साहित्य में वह संवेदनशीलता और हृदयगत भावनाओं का सहज प्रस्तुतीकरण नहीं हो सकता। प्रवासी साहित्यकार जिन विषम और

संघर्षशील परिस्थितियों में सारी विपदाओं को सहकर अपने मातृभाषा हिंदी में साहित्य सृजन कर रहे हैं। हमें उनका सम्मान करना चाहिए। विदेशों में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार और प्रतिष्ठा में इन प्रवासी साहित्यकारों का अप्रतिम योगदान है।

किसी सीमा तक सहनशीलता का होना भारतीय संस्कृति में बहुत बड़ी विशेषता मानी गई है। अभिमन्यु अनंत के कथा-साहित्य में यह विशेषता यत्र-तत्र घटनाओं और प्रसंगों में बिखरी मिलती है। ''गांधी जी बोले थे' उपन्यास में जब गोरे मालिकों के जुल्म और अत्याचार भारतीय कुली मजदूरों पर बहुत बढ़ जाते हैं तो मदन और प्रकाश मजदूरों को संगठित करने का प्रयास करते हैं। वह दोनों एक बार जब मजदूरों को जागृत करने के लिए अन्य बस्ती मं` जा रहे होते हैं तो रास्ते में उन्हें रोककर धमकाया भी जाता है। मदन के सिर पर रुमाल उतारकर और उसमें एक छोटा सा पत्थर बांधने के बाद उसे

देवदार के पेड़ पर उछाल दिया गया। रास्ते में जमा बरसात के पानी के बीच से कीचड़ उठाकर दोनों के चेहरों पर पोत दिया गया पर दोनों रुके नहीं, चलते रहे। प्रकाश को बार-बार गांधी जी की बात याद आ रही थी हद तक सह जाने की शक्ति बहुत बड़ी शक्ति होती है।''

भारतीय संस्कृति के प्रचार प्रसार में प्रवासी हिंदी साहित्य की मुख्य भूमिका रही है। भारतीय हिंदी साहित्य की मुख्य विधा के रूप में प्रवासी हिंदी साहित्य विकसित हो रहा है। प्रवासी हिंदी साहित्य विदेशों में भारतीय संस्कृति एवं भाषाओं के वर्चस्व को समृद्ध कर रहा है। उपर्युक्त वर्णित साहित्य में प्रवासी साहित्यकारों ने अपने मनोभावों एवं भावनाओं को व्यक्त किया है। डॉ. हंसा दीप कनाडा में प्रवासी हिंदी साहित्यकार ने लिखा है। वे टोरंटो में रहती हैं और यूनिवर्सिटी आफ टोरंटो में लेक्चरार के पद पर कार्यरत है। उन्होंने कैनेडियन विश्वविद्यालयों में हिंदी छात्रों के लिए अंग्रेजी-हिंदी में पाठ्य-पुस्तकों के कई

संस्करण प्रकाशित किए। प्रसिद्ध अंग्रेजी फिल्मों - हैनीबल, द ममी रिटर्न्स, अमेरिकन पाई, पैनीज फ्रॉम हैवन व अन्य कई फिल्मों के लिए हिंदी में सब टाइटल्स भी अनूदित किए हैं। इस प्रकार प्रवासी हिंदी साहित्यकारों विदेशों में भी अपनी भाषा हिंदी एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में अपने मुख्य भूमिका अदा कर रहे हैं। डॉ. हंसा दीप के प्रकाशित उपन्यासों में कुबेर, बंद मुट्ठी, मुख्य है तथा प्रवास में आसपास, चश्मे अपने-अपने, मुख्य कहानी संग्रह है।

संदर्भ ग्रंथ

1. बाला श्री विनोद अरुण - मॉरिशस की हिंदी कथा, यात्रा पृष्ठ 32।
2. किशोर कमल गोयनका - हिंदी प्रवासी साहित्य, पृष्ठ 16-17।
3. कुमार नारायण - प्रवासी भारतीयों का योगदान गगवांकर, जुलाई-दिसंबर, पृष्ठ 35, 2007।
4. पैन्यूली अर्चना - प्रवासी हिंदी साहित्य: अपेक्षाएं।
5. शब्दयोग (अंक-1) प्रवासी साहित्य विशेषांक पृष्ठ 6-7

आधुनिक हिंदी उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्य

डॉ० राजकुमार एस. नाईक

सह-प्राध्यापक, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड

यह सिद्ध सत्य है कि आज भारतीय जीवन में सबसे अधिक परिवर्तन सांकृतिक स्तर पर आया है।आर्थिक उदारीकरण, बाजारीकरण, उपभोक्ता सांस्कृतिक, विश्वग्राम जिज्ञासा, उत्तरसंस्कृति आदि घटकों के प्रभावी परिणामों ने आज के मनुष्य की मानसिकता को इस तक परिवर्तित कर दिया है कि उसके मन में नैतिकता, आध्यात्मिकता, स्थापित परंपराओं एवं मूल्यों के लिए कोई जगह नहीं है।लेकिन विडंबना यह है कि वह नए मूल्यों की खोज में तो है, फिर भी तलाशे गए नए मूल्यों को आत्मसात एवं हीन मनोग्रंथि का शिकार है। अनियंत्रित एवं अव्यवस्थित स्थिति के कारण वह वर्जित पदार्थों के सेवन के कारण अपराध बोध की गिरफ्त में जा रहा है। यह सामाजिक मानचित्र आज हिंदी उपन्यासकारों के सामने खुला पड़ा है।यही वजह है कि वे दूषित परिवेश, सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन की विसंगतियों तथा सांकृतियों-विकृतियों तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों को सशक्तता से उजागर करने में संलग्न हैं।

इस प्रकार संदर्भ में चित्रा मुदगल, मधु कांकरिया, कृष्णा सोबती, सिम्मी हर्षिता, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, कुसुम अंसल, सूरज प्रकाश, कृष्ण बलदेव वैद, सुदर्शन नारंग, जगदीश चन्द्र, द्रोणवीर कोहली, मनु शर्मा आदि घ्से उपन्यासकार हैं जिन्होंने इस नई सास्कृतिक परिवर्तनों के विविध रूपों को अपने उपन्यासों में ईमानदारी एवं जिम्मेदारी के साथ उद्घाटित किया है। इन्होंने आज के भारतीय समाज को खुली आँखों से देखा, परखा और जाँचा है।इन्होंने अपने आस-पास जो कुछ देखा है, उसे बिना किसी पक्षपात और भय के पूरी निष्ठा से उसे चित्रित किया है।सामजिक बदलावों, विषमताओं, भ्रष्टाचारों वैयक्तिक स्वार्थों से आक्रान्त-पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों एवं सांकृतिक परिवर्तनों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

आधुनिक कथा साहित्य में चित्रा मुद् गल एक समर्थ कथाकार हैं। उनके चर्चित उपन्यास 'एक जमीन अपनी' (2002) उपन्यास में अंकिता के माध्यम से विज्ञापन जगत में भारतीय नारी की अस्मिता का संघर्ष दिखाया गया है।लेखिका ने उपन्यास में यह मूल प्रश्न उठाया है कि आखिर महिला अपनी संस्कृति से जुड़ी रहकर किस प्रकार की जमीन चाहती है? यह उपन्यास विज्ञापन की उस दुनिया की कहानी भी है, जहाँ समाज में इच्छाएँ-जिज्ञासाएँ पैदा करने के नव्य संस्कृति के औजार तैयार किए जाते हैं। यह एक घ्सी मायावी दुनिया है, जिसमें स्त्री अपनी रचनात्मक क्षमता की पहचान अर्जित करने के लिए और सिर्फ देह भर बनी रहने के लिए करती है। एक ओर पारिवारिक संस्कारों से ऊर्जस्वित उपन्यास की नायिका अंकिता है और दूसरी ओर विज्ञापनों की चकाचौंध भरी दुनिया में आशा-निराशा झेलती और अपनी मादक देह के तिलस्म में फिसलती, उठती और उलझती नीता। वह सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ने के लिए सनातन नारी धर्म, संस्कृति एवं सभी परंपराएँ निर्ममता से तोड़ देती है। अंकिता पारिवारिक संस्कारों को लेकर चलती है और समाज में अपना शिष्ट स्थान बनाने के लिए जीवन भर संघर्ष करती है।यहाँ सांस्कृतिक मूल्यों में पारस्परिक संघर्ष तो है ही, साथ ही अस्तित्व एवं अस्मिता के मूल प्रश्नों की टकरावट भी है।

चित्र मुद्गल का 'गिलिगडु' (2007) उपन्यास परिवारिक विघटन की आज की सबसे बड़ी सामाजिक त्रासदी को रेखांकित करता है। इस नूतन के बदलते सांस्कृतिक परिवेश में संयुक्त परिवार टूटकर बिखर रहे हैं। युवा पीढ़ी अपने बुजुर्गों को अपने साथ न रखकर वृद्धाश्रमों में रखना चाहती है, जबकि बुजुर्ग अपने बच्चों के साथ रहना चाहते हैं, चाहे छोटा-सा ही मकान हो। उपन्यास में एक वृद्ध मिस्टर सिंह अपने बेटे और पुत्रवधू के पास आकर कुछ समय के लिए रहता है।उसकी पत्नी नहीं है, वह अकेला है। एक दूसरा बुजुर्ग कर्नल स्वामी यह जाहिर करता है कि वह अपने भरे-पूरे परिवार के साथ रहता है।लेकिन बाद में पता चलता है कि वह अकेला ही रहता है।उसकी भी पत्नी नहीं है और बेटे अपनी पत्नियों के साथ रहते हैं। हर रोज एक साथ सैर करने से दोनों

बुजुर्ग दोस्त बन जाते हैं। जब कई दिन सैर पर कर्नल स्वामी नहीं आए तो मिस्टर सिंह पता लगाने के लिए उनके घर पहुँच जाते हैं। लेकिन वहाँ पर उन्हें ताला लगा मिलता है। पूछने पर पड़ोसिन बताती है कि कर्नल स्वामी की मौत हो चुकी है। वे यहाँ अकेले रहते थे। सांस्कृतिक मूल्यों के प्रहरियों के साथ युवा पीढ़ी का दुर्व्यवहार एवं उपेक्षित भाव परिवर्तित मानसिकता को दर्शाता है।कितनी आसानी से युवा पीढ़ी इस शाश्वत सत्य को भूल जाती है कि आज जो युवा है, कल वह वृद्ध भी होगा।

बच्चों के कुपोषण एवं कुसमायोजन से जुड़ा बाल अपराध का विषय भी इस नई सदी में माता-पिता की व्यस्तता के कारण बदली मानसिकता को उजागर करता है। माता-पिता उपभोग्ता संस्कृति के आकर्षण जाल में फँसकर अपने पारिवारिक एवं सांस्कृतिक दायित्वों को नेपथ्य में धकेल देते हैं।

'समय सरगम' (2000) कृष्णा सोबती का एक बहुचर्चित उपन्यास है, जिसमें लेखिका ने आरण्या और ईशान वृद्ध पात्रों के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है कि उम्र से व्यक्ति जरूर बूढ़ा लग सकता है, पर अगर वह चाहे तो अपने अनुभव और जीवन पर हावी होने नहीं दे सकता। वह तन से वृद्ध जरूर हो जायेगा, पर मन से हमेशा जवान रह सकता है। यहाँ भारतीय संस्कृति का आशावादी एवं सकारात्मक दृष्टिकोण ध्वनित हैं आरण्या उम्र से बूढ़ी जरूर है, लेकिन अपने पहनावे और मन से उसमें युवाओं जैसा जोश है और प्रगतिशील विचार मानवी चेतना को स्पंदन देने वाले हैं। यह चेतना भारतीय मनुष्य की है, जो बूढ़ा होने पर मृत्यु के बारे में सोचता जरूर है, पर उसे लेकर भयभीत नहीं होता। आरण्या आने वाली मृत्यु को लेकर दु:खी और निराश नहीं है। वह जीवन के हर मोर्चे पर उसी तरह लड़ना और जूझना चाहती है, जैसे कोई युवा लड़ता है।

ईशान भी वृद्धजन है, जो नियतिवादी एवं सेवानिवृत आधिकारी है। उसकी पत्नी का देहान्त हो चुका है। एक बेटा था जो दुर्घटना का शिकार हो गया। दो लड़कियाँ हैं। आरण्या जीवन भर अकेली रही है, इसलिए उसकी जीवन की व्याख्याएँ अस्तित्ववादी हैं। लेकिन अंत में वह अकेले जीने-मरने से ड़रने लगती है और कहीं न कहीं ईशान का सहारा ढूढ़ती है। ईशान अरण्या से कहता है, "जीना बैंक एकाउँट नबंर नहीं है, जिसका कुछ जोड़ कुछ आँकड़ों में हो। अब किसी असमंजस में नहीं हुँ। क्यों न अपने जाने को सहज-सरल कर लें। हम दोनों में से किसी को दिक्कत न होगी।" लेखिका साफ संकेत देती है कि अपनी प्रेम दुनिया के कपाट बंद नहीं रखने चाहिए। वे भी उम्र की सरहद के बाहर जाकर मनुष्य के मन की सीमाहीन सरहदों को स्पर्श करें। वे अपनी मूक वेदना को हर्षोल्लास की अनुभूति में रूपान्तरित करें।

पाश्चात्य परिवेश के प्रभावाधीन भारतीय परिवेश में जन्मी एवं पली नारी को किन-किन मानसिक अर्तदंव्द और आत्म संघर्षो का सामना करना पड़ता है, इस उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यास' अन्तर्वशी (2000) में 'वान' पात्र के माध्यम से सशक्तता से उजागर किया है। वाना के पिता ने उसका विवाह शिवेश से किया, जो विंडसर विर्श्वविध्यालय में जूनियर साइंटिस्ट है। दूसरी तरफ राहुल ने कम उम्र में नाम, इज्जत, पैसा सब कुछ कमाया था, जबकि दोनों मित्रों ने कॉलेज और डॉक्टरेट की पढ़ाई साथ-साथ की थी। लेकिन शिवेश का आर्थिक स्तर अच्छा न होने के कारण वाना कुंठाग्रस्त होती चली जाती है। सीधी-सादी तथा सरल स्वभाव के कारण वह अपने अधिकारों कें लिए शिवेश के आगे बोलती नहीं है।

सारिका उनके घर पेईंग गेस्ट बनकर आती है। वह अमेरिका में डॉक्टरी का अनुभव प्राप्त करने के लिए आई है। वह हमेशा वाना में आत्मविश्वास जगाने की कोशिश करती है, उसे अंग्रेजी बोलने, आगे पढ़ाई करने तथा नौकरी करने के लिए प्रेरित करती है। सारिका को पता चलता है कि उसके मंगेतर ने कहीं और शादी कर ली है। वह उसी समय अपने मंगेतर से रिश्ता तोड़ देती है। वह भारत वापस आने का फैसला करती है, लेकिन अचानक सारिका की हत्या हो जाती है। सारिका की मृत्यु से वाना को काफी झटका लगता है। वह मन ही मन कहती है, "शिवेश तुम रौंदते रहे मुझे अपनी भूख, अपनी लालसा के वश और मैं एक बार भी न कह पाई, मुझे यहाँ छुओ शिवेश मुझे अच्छा लगता और तुम्हारे दिमाग में आया तक नहीं कि वाना की अपनी सोच, अपना सुख हो सकता है।" शिवेश से असंतुष्ट वाना क्रिस्टीन से समलैंगिक संबंध स्थापित करती है। उससे मिलने के बाद वाना में नया निखार आता है। वह शिक्षा प्राप्त करती है और नौकरी करने लगती है। वह कहीं अपने दिल की गहराई में राहुल को पाती है। उधर शिवेश पैसों के लालच में मादक पदार्थो के उत्पादन और साझेदारी के काम में पड़ जाता है। वाना के यह कहने पर कि शिवेश आत्मसमर्पण कर दे, वह आत्महत्या कर लेता है। वाना की ग्लानि से मुक्ति के लिए राहुल उसे अपने साथ ले जाता है।

सांस्कृतिक मूल्यों में आए बदलाव एवं इससे उपजे पारिवारिक विखंडन को ममता कालिया के उपन्यास 'दौड़ ' (2002) में भी देखा जा सकता है। उपन्यास में रेखा और राकेश ने प्रेम विवाह किया है। पवन और सघन इनके माता-पिता भारतीय संस्कृति

एवं मानव मूल्यो की कद्र करते हैं, अर्थपूर्ण जीवन और पारिवारिक शिष्टाचार को महत्व देते हैं। लेकिन उनकी संताने आतमीयता और प्रेम भावना से रहित जीवन की अंधी दौड़ में सुख-शांति सब कुछ भूल चुके हैं। उपन्यास का पात्र पवन अपना कैरियर बनाने के लिए अपनी पत्नी को छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है। उपन्यास में सोनी साहब की मौत हो जाती है। उनकी लड़की देहारादून में है और लड़का विनेश में। लड़के को फोन पर सूचना दी जाती जै कि वह पिता के दाह-संस्कार के लिए शीघ्र घर पर पहुँचे। लेकिन वह उत्तर में कहता है कि उसका वहाँ तेरह दिन रूकना मुश्किल होगा। फिर भूषण नाम का व्यक्ति सोनी साहब को मुखाग्नि देता है। लेखिका ने दर्शाया है कि नई अर्थव्यवस्था ने बेगानापन और सामाजिक और असुरक्षा जैसे नए मूल्य पैदा कर दिए हैं। धन की अन्धी दौड़ ने पारिवारिक संबंधों में भावनात्मकता और आत्मीयता को नष्ट कर दिया है। जहाँ लोगों ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी पाकर कामयाबी हासिल की है, वहीं उनके दिलों में प्रेम भावना समाप्त हो गयी है। भूमंडलीकरण और उदारीकरण के दुष्प्रभावों को भी उपन्यास में दर्शाया गया है।

'नर-नारी' (2000) कृष्ण बलदेव वैद का एक मनोवैज्ञानिक है, जिसमें स्त्री और पुरूष दोनों के मन में उठने वाले हर प्रकार के विचारों का विश्लेषण किया गया है। लेखक ने पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव, लड़की-लड़के में अंतर, अन्तर्जातीय विवाह की समस्या, भ्रणहत्या, दहेज, कामकाजी महिलाओं की समस्याएँ आदि संवेदनशील प्रश्नों को उठाया है। उपन्यास की माँ जी उर्फ रानी को आस-पड़ोस और सभी रिश्तेदार बाँझ कहा करते थे। वह मस्त स्वभाव की स्त्री थी। वह कभी-कभी सोचती कि सभी लोग उसी को बाँझ क्यों कहते, वह ही नामर्द। तब नहीं बताया, अब क्या फायदा, जानने वाले जानते थे।" रानी शादी से पहले एक मुसलमान लड़के माजू से प्यार करती लेकिन वह हिन्दू थी। इसलिए उसकी माँ कभी उसके विवाह के लिए मानने वाली नहीं थी। सीमा का पति राजू उसकी नौकरी के कारण उस पर शक करता है। वह समझता है कि शायद उसका अपने बाँस के साथ चक्कर हो। डाली अमेरिका में रहने वाली एन.आर.आई. है, लेकिन उस पर भारतीय संस्कृति की अपेक्षा पार्श्र्चात्य संस्कृति का प्रभाव नजर अधिक नजर आता है। सीमा सागर से प्रेम करती है और वे मीनू के घर ही आपस में मिलते हैं। सागर अपनी पत्नी होने के बावजूद सीमा को मुर्ख बना रहा है। सीमा भी अपने पति राजू और सागर के व्यवहार से दु:खी हो जाती है।

इस उपन्यास में लेखक ने बताना चाहा है कि किस प्रकार एक पति अपनी पत्नी से अपेक्षाएँ रखता है और पत्नी अपने अस्तित्व के मोहजाल में पारिवारिक मर्यादा को भूलाकर अपनी अस्मिता ही खो बैठती है। उपन्यास में पति-पत्नी एवं पारिवारिक संबंधों की आपसी टकराहट विभिन्न संदर्भो में उजागर होती है। उन्मुक्त काम संबंधों के प्रसंग परिवर्तित सांस्कृतिक मूल्यों एवं मर्यादाओं की ओर इशारा करते हैं।

नई सदी में नई दुनिया की सुख-समृद्धि एवं परिवर्तित संस्कृति की पृष्ठभूमि में लिखा गया द्रोण्वीर कोहली का उपन्यास 'नानी' (2002) दुनियावी जजाल में उलझे मानव जीवन की तलाश की जीवंत कृति है। लेखक ने उपन्यास में विदेशों में जाकर बसने वाले भारतीय दंपत्तियों को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, को बड़े ही मार्मीक ढ़ग से प्रस्तुत किया है। विदेशी संस्कृति के प्रभावाधीन वहाँ पर जाकर पैसा कमाने की अंधी दौड़ में उन्हें संतान की चिंताएँ सताती है। स्वदेश से आए स्वजनों को वहाँ पर अकेलापन, अपमान और संताप का शिकार होना पड़ता है। उपन्यासकार ने अमरीकी समाज की विकृतियों को भी बिखेरा है। वहाँ की संस्कृति में रंगे श्याम रतन और चेतना नई समस्याओं से ग्रस्त हैं। उनकी दो साल की बेटी तुला माँ की ममता से उपेक्षित है। कारण यह कि दोनों ही बच्ची को बेबी सिटर के पास छोड़कर काम पर चले जाते हैं।

उपन्यासकार ने इस बात पर बल देकर कहा है कि प्रवासी भारतीय की मानसिकता पार्श्र्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण अपने देश के प्रति बदल गई है। उन्हें विदेश ज्यादा पसंद आने लगा है। श्याम रतन हर बात पर इंडिया को गलत साबित करने पर तुला रहता है। वह नानी सरस्वती को कहती है, "हिन्दुस्तान जैसे मुल्क से अंधविश्र्वास कभी जा नहीं सकता। जब पढ़े-लिखे लोग भी इस तरह की बातें करते हैं तो आम आदमी का क्या होगा।" लेखक इस सच्चाई को भी रेखांकित करता है कि भारतीय प्रवासियों की संतान होने के बाद जब उन्हें संभालने की समस्या का सामना करना पड़ता है, तब उन्हें अपने माँ-बाप, दादा-दादी और नाना-नानी याद आते हैं। यहाँ से गए उनके परिचित जनों को वहाँ अकेलेपन, अलगाव तथा उनके अपनों व्दारा किए गए अपमान का सामना भी करना पड़ता है। चेतना अपनी माँ से कहती है, "आप अपनी इंडियन फिलॉसफी वहीं छोड़कर आतीं तो बेहतर था। यहाँ ये सब चोंचले नहीं चलते। एक दिन भी काम किए बगैर नहीं।" स्पष्ट है कि विदेशी समाज की विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ एवं सांस्कृतिक तड़क-भड़क प्रवासी भारतीयों को जन्म देती हैं।

दृष्टिकोण

अब यह मानने में असहमति की कोई गुंजाइश नहीं है कि नये सदी के प्रथम दशक में लिखे गए चर्चित उपन्यासों में सांस्कृतिक परिवर्तन के जिन आयामों को रेखांकित किया गया है, वे बिना शक आर्थिक उदारीकरण, बाजारीकरण एवं उपभष्क्ता संस्कृति के कुप्रभावों का ही दुष्परिणाम है। आश्चर्य है कि जापान जैसे अतिविकसित देश संयुक्त परिवार प्रणाली की ओर मुड़े हैं और हम प्राचीन समय से स्थापित संयुक्त परिवार व्यवस्था का विखंडन करके एकल परिवार को तरजीह दे रहे हैं। अमरीका एवं यूरोप के देश अध्यात्म, योग, शाकाहरी भोजन एवं सात्विक सोच को समझकर इन्हें आत्मसात कर रहे हैं। उनके व्दारा खोजे गए मूल्य उन्हीं के लिए आज भारी पड़ रहे हैं। याद रखने वाली एक बात यह भी है कि भारत की खोज आत्मगत है, पश्र्चिम दर्शन में प्रकृति के प्रति आखेट भाव है, जबकि भारतीय दर्शन में स्वीकार भाव है। भारतीय संस्कृति की जड़ें भारतीय मिट्टी में हैं, पर्श्चमी संस्कृति मानवीय त्वचा पर फैली जड़हीन बेल है। हम जिस आयातिय संस्कृति की नकल कर रहे हैं, उसका कोई स्पष्ट वैज्ञानिक आधार भी नहीं है। यदि हम अंतर्मन को संचालित करने वाली सूक्ष्म धारणाओं को भारतीयता की ओर उन्मुख करे लें, तो भौतिक आकर्षणों को विआकर्षणों में बदलने में देर नहीं लगेगी।

संदर्भः

1. चित्रा मुद्‌गल,: 'एक जमीन अपनी', नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन।
2. चित्रा मुद्‌गल,: 'गिलिगडु', नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन।
3. कृष्णा सोबती: 'समय सरगम', नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि.
4. कृष्णा सोबती: पृ.147।
5. कृष्ण वैद: 'नर-नारी', दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स।
6. कृष्ण वैद: पृ.13।
7. द्रोणवीर कोहली: 2002, 'नानी', नई दिल्ली, किताब घर प्रकाशन।
8. द्रोणवीर कोहली: पृ.12।
9. द्रोणवीर कोहली: पृ.23।

आजादी के बाद की हिन्दी कविता

डॉ० पूर्णिमा रजक

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, सावित्री गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता

स्वतंत्रता प्राप्ति हमारे भारतीय समाज की महत्त्वपूर्ण घटना है। आजादी के बाद भारतीय समाज में तेजी से परिवर्तन हुए और साहित्य भी इस परिवर्तनों से प्रभावित हुआ। इन प्रभावों के फलस्वरूप अनेक काव्यात्मक प्रयास किये गये, लेकिन साहित्यिक क्षेत्र में परिवर्तन आकस्मिक घटना की तरह नहीं आते हैं। ये आकस्मिक प्रतीत होते हुए भी युगीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक ढाँचे में आये बदलावों के परिणाम होते है। पृष्ठभूमि के बदलाव के साथ ही साहित्यिक मूल्य और प्रतिमान बदले। तात्पर्य यह है कि नए साहित्यिक आंदोलनों के पीछे सामाजिक विकास की प्रक्रिया की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आजादी के पहले जो प्रवृतियाँ थीं, उसी का विकसित रूप हमें बाद के आंदोलनों में दिखाई पड़ता है।

आजादी की लड़ाई के दौरान जब एक ओर कवियों का एक बड़ा वर्ग छायावाद के रहस्य-लोक में विचरण कर रहा था तब कवियों का एक तबका ऐसा भी था जो अपनी कविता से देशवासियों के भीतर क्रांति की आग और देश पर मर-मिटने का जज्बा भर रहा था। आजादी के लिए हमारे संघर्ष का काल हमारे सांस्कृतिक उन्मेष और पुनर्जागरण का काल भी रहा है। उससे उस काल की कविता में आत्म- उत्कर्ष, आत्मबोधन एवं सांस्कृतिक आत्मोत्थान का स्वर मुखर हुआ। भारत के अतीत एवं उसके माध्यम से अपनी सांस्कृतिक परंपरा और उसकी गरिमा की पहचान उस समय की कविता में स्पष्ट रूप से व्यक्त होती दिखाई देती है। एक ओर भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और इतिहास का कीर्तिगायन उस काल कविता में हुआ, तो दूसरी ओर एक आदर्शोन्मुख भविष्य-दृष्टि भी उसमें व्याख्यायित- ध्वनित हुई। छायावादी कविता की रहस्यानुभूतिपरक दार्शनिक निष्ठा एवं भावभूमि भी अतीत के प्रति सम्मोह एवं जिज्ञासा के संयुक्त भाव से ही निर्मित हुई है, इसमें कोई दो राय नहीं है। छायावाद काल के हिंदी कविता ने भाषा के स्तर पर चमत्कारपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की। एक गरिमामय सौन्दर्यबोध भी उसने उपजाया।

हिंदी साहित्य के लिए 1935 से 1940 तक का काल संक्रमण का काल रहा है। छायावाद की अंतिम उपलब्धि कामायनी का प्रकाशन 1935में हुआ। निराला जी की वह तोड़ती पत्थर कविता भी सन 1935 में प्रकाशित हुए। इसके साथ पन्त जी ने 'युगांत' की घोषणा कर दी। सन 1936 में प्रगतिवाद का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है। खासतौर पे सन '1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्षीय भाषण में जन-प्रिय लेखक प्रेमचंद साम्यवाद का समर्थन करते हुए दिखाई देते है। यथार्थोन्मुखी प्रगतिवादी स्वर की कविता आजादी के पूर्व मुख्यधारा बन पाई। प्रगतिगामी स्वरों की सुगबुगाहट आजादी के तुरंत पहले के काल में शुरू हो गई थी और प्रगतिशील चेतना मुखर होने को समुत्सुक होने लगी थी। प्रगतिवादी विचारधारा जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखती है तथा व्यक्ति को सामाजिक चेतना से प्रतिबद्ध करती है। उन्होंने साहित्य में यूटोपिया की कल्पना नही की, वे भौतिकवादी दृष्टि में विश्वास रखते थे। उनका समस्त चिंतन एक ही लक्ष्य से प्रतिबद्ध था ख्र मानव द्वारा मानव के शोषण से मुक्ति। प्रगतिवाद ने साहित्य में मजदूरों और किसानों का पक्ष लिया और भारतीय साहित्य की उस प्रगतिशील या जनवादी परंपरा की प्रशंसा की जो संत काव्यों, लोक-गीतों और लोक- वार्ताओं में विकसित हुई है। निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल आदि प्रमुख प्रगतिवादी कवि हैं। केदार किसान के श्रम का सम्मान लोकजीवन के मनोरम भाषा में करते हैं-

"आसमान की ओधनी ओढ़े
धनि पहने, फसल घंघरियां
राधा बनकर धरती नाची
नाचा हंसमुख कृषक सवरिया।"[1]

अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक'(1943) के प्रकाशन से हिंदी काव्य में एक नए युग का प्रारम्भ होता है। इसमें गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय संकलित थे। ये कवि भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को स्वीकारते थे। इन कवियों ने व्यक्ति के आन्तरिक संघर्षों की अभिव्यक्ति के साथ उसके वाह्य संघर्ष को भी पहचाना जो व्यक्ति, समुदाय और समाज के स्तर पर चल रहा था और जो हर स्तर पर मनुष्य को दबाने की कोशिश कर रहा था। तारसप्तक की कविताओं की पड़ताल करते हुए डॉ राजेंद्र प्रासाद लिखते हैं- "तारसप्तक की कविता के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से धयान देने योग्य है कि उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है- व्यक्ति और समाज से जुड़े युग- यथार्थ की अभिव्यक्ति।"[2] इनका काव्य के प्रति अन्वेषी दृष्टिकोण था और इसी दृष्टिकोण ने इन्हें एक साथ संकलित किया। अज्ञेय तारसप्तक की भूमिका में स्पष्ट करते हैं "उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर अभी पहुचे हुए नहीं हैं, अभी रही हैं- राही नहीं, राहों के अन्वेषी।"[3] तारसप्तक के सभी कवि भिन्न- भिन्न विचारधाराओं के कवि थे, लेकिन सब स्वयं को वादों से मुक्त मानते थे। तारसप्तक की कविता, प्रयोगों की कविता है, वादों की नहीं, क्योंकि प्रयोगों का कोई वाद नहीं होता। नया कवि प्रयोगशील है और प्रयोगशीलता एक निरंतर विकासमान प्रवृति है। प्रयोग साधन है, साध्य नहीं और काव्य के प्रति एक अन्वेषी दृष्टि ही तारसप्तक के कवियों को एक सूत्र में बांधता है। लेकिन आलोचकों ने इसे प्रयोगवादी काव्य कहा, जिसका तारसप्तक के कवियों ने निषेध किया। अज्ञेय जी स्पष्ट करते हुए कहते हैं "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है। कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है। अत: हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना।"[4] प्रयोगशील कवियों के तमाम विरोध के बावजूद प्रयोगवाद की अवधारणा अब एक स्थापित सत्य है और तारसप्तक इसी अर्थ में प्रयोगवाद का निरुक्त है। कुल मिलाकर तारसप्तक, प्रयोगवादी काव्य का सौन्दर्यशास्त्र है, जिसमें नये काव्य के नये सिद्धांतों के आयामों का उद्घाटन हुआ है।

आजादी के बाद प्रयोगवादी कविता की अगली कड़ी नई कविता के रूप में स्थापित होती है। साधारण तौर पर नयी कविता, हिंदी कविता में प्रयोगवाद के बाद विकसित नए मूल्यों एवं नए शिल्प की पैरवी करने वाली नवीन धारा को कहा जाता है। अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा सप्तक'(1951), 'तीसरा सप्तक'(1959) ने नयी कविता आन्दोलन को आगे बढ़ाया। तारसप्तक के परम्परा में ही सन 1951 में 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन से पता चलता है कि प्रयोगवादी साहित्यिक मूल्यों और विचारों का रूपांतरण नयी कविता के रूप में हुआ। प्रयोगवादी कविता में विलक्षणता के नाम पर जो अजीबोगरीब शिल्पगत प्रयोग हुए थे, नयी कविता में ऐसे प्रयोगों में थोड़ी कमी आई है लेकिन यहाँ भी शिल्प और बुद्धि पक्ष प्रधान और भावना पक्ष गौण रहा है। दुसरा सप्तक में शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, नरेश मेहता एवं रघुवीर सहाय आते हैं।

स्वातंत्र्योतर भारत में अस्तित्ववाद और अतियथार्थवाद का प्रभाव भी हिंदी काव्यधारा पर पड़ा। यहाँ से मार्क्सवाद के विरोध की प्रक्रिया भी शुरू हुई जो आज तक समाप्त नहीं हुई है। 'दूसरा सप्तक' इसी प्रकिया की एक पहल है। प्रगतिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप नई कविता सामने आयी। तारसप्तक के कवि- आलोचक गजानन माधव मुक्तिबोध का आरोप है कि 'दूसरा सप्तक' में पहले सप्तक की तरह "सामाजिक क्रान्ति के प्रति निष्ठा, मनुष्य की उन्नायनशीलता के प्रति विश्वास और आस्था दृष्टिगोचर"[5] नहीं होता है। 'दूसरा सप्तक' के कविताओं में आधुनिक भावबोध के नाम पर लघुमानववाद, कुंठावाद, क्षणवाद, दुखवाद, व्यक्ति स्वातंत्र्य, समाज निरपेक्ष वैयक्तिकता, अलगाव, पराजय, पलायन, उदासीनता, अकेलेपन की पीड़ा, मृत्यु, वेदना, घुटन, निराशा, भय, शंका, भोगा हुआ यथार्थ, इतिहास मुक्तता आदि अनेक प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं। साथ ही पश्चिमी आधुनिकतावादी, प्रतीकवादी, बिम्बवादी, प्रभाववादी और रूपवादी आंदोलनों और सिद्धांतों के तर्ज पर रचनाएँ होती रही। इसके साथ इलियट, लारेंस, स्पेंडर, पास्तरनाक, काफ्का, कामू, दोस्तोवस्की, सात्र, फ्रायड, एडलर और युंग की भी चर्चा होती रही।

समग्र रूप में, आजादी एक महत्त्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु है हिंदी कविता के आधुनिक स्वरूप के आकलन के लिए। यही वह बिंदु है, जहाँ से कविता की रागात्मक अवचेतना में बदलाव आया है। वह सात्विक आग्रह और आत्मविश्वास, जिससे आजादी के पहले की कविता ने सांस्कृतिक मनोबल को एक मूल्य के रूप में सजाया था, वह आजादी के बाद की आपाधापी भरी जीवन- शैली एवं पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से उपजे आर्थिक- सामाजिक-राजनैतिक पतन के माहौल में बिला गया। उसका स्थान लिया एक अंधी- चूहा दौड़ और पतानोन्मुख- अवसरवादी जीवन- मीमांसा ने।

आजादी के बाद प्रगतिशील विचारधारा का वेग क्षीण दिखाई देता है, किन्तु समाप्त नहीं होता। मुक्तिबोध के अनुसार "नयी कविता में कई भावधाराएँ हैं, एक भावधारा में प्रगतिशील तत्त्व प्रयाप्त है।"[6] नयी कविता की यह धारा निराला से लेकर नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह और केदारनाथ सिंह तक आती है। मुक्तिबोध 'तारसप्तक' और 'दूसरा सप्तक' में अंतर स्पष्ट करते हुए कहते हैं "तारसप्तक वालों ने जितने मनोभावों को और मनुष्य दशाओं को मथा है, उतना दूसरा सप्तक वालों ने नहीं।"[7] जिन प्रश्नों को तारसप्तक में उठाया गया था, उनका विकास 'दूसरा सप्तक' में नहीं हो पाया। यही कारण है कि 'तारसप्तक' से शुरू होने वाली कविता जहाँ प्रगतिशील थी, वही 'दूसरा सप्तक' से शुरू होने वाली कविता 'व्यक्ति-स्वतंत्रतावादी' थी। हांलाकि तारसप्तक से सभी कवियों को अनायास प्रयोगवादी घोषित कर दिया जाता है, लेकिन प्रत्येक रचनाकार का अपना प्रस्थान बिंदु होता है। अत: प्रगतिशील विचारधारा भी क्षीण रूप में ही सही, नयी कविता के सामानांतर चलती रही।

नयी कविता की भावभूमि पर विचार करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक 'नयी कविता और अस्तित्वाद' की भूमिका में लिखते हैं- "नई कविता से अनेक प्रकार की कविता का बोध होता है। किसी समय मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिशील कविता को नई कविता कहा जाता था। प्रगतिशील कविता- धारा के बाद प्रयोगवादी कविता का बोलबाला रहा। इसे अधिकतर प्रयोगवादी ही कहा जाता था। नई कविता, प्रयोगवाद से भिन्न होकर, एक रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त होने लगी जब 1954 में इलाहाबाद से 'नई कविता' नामक संकलन प्रकाशित होने लगा। प्रारम्भ में ये नयी कविता वाले प्रयोगवाद से अपना सम्बन्ध जोड़ते थे किन्तु प्रयोगवाद पर अज्ञेय का एकाधिकार था, अज्ञेय से प्रयोगवाद की आचार्यो की खटक गयी, तब नयी कविता की धारा बहुत- कुछ अस्तित्ववाद से प्रभावित थी। इसी से आगे चलकर वह धारा भी फूटी जो किसी भी जीवनमूल्य को स्वीकार न करती थी।"[8]

निश्चित रूप से नयी कविता में दो अलग- अलग खेमे साफ दिखाई पड़ते हैं। पहले व्यक्ति स्वतंत्रतावादी खेमे में अज्ञेय, धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि आते हैं तो दुसरे प्रगतिशील खेमे में मुक्तिबोध, शमशेर आदि हैं। पहले खेमे के सृजन में नयी कविता छायावाद से अपने परिवेश- बोध की तीक्ष्णता में अलग दिखाई देती है, तो दूसरे में उस परिवेश- बोध को अपनी आस्था के बल पर मानवीय बनाने के संघर्ष में। मुतिबोध का मानना है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद साहित्य में आधुनिक भावबोध के नाम पर लघुमानववाद, कुंठावाद, क्षणवाद, दु:खवाद, व्यक्ति स्वातंत्र्य आदि अनेक प्रवृतियाँ प्रचलित हैं। यह दूसरी भवधारा की विशेषता है। मुक्तिबोध ने बलपूर्वक समझाया है कि इस कला सिद्दांत के पीछे लगी हुई जो जीवनदृष्टि और राजनीतिक दृष्टि थी इसके पीछे शीतयुद्ध के उद्धेश्य छपे हुए थे। उनके शब्दों में- "नई कविता के बुर्ज से शीतयुद्ध की गोलंदाजी की गयी।"[9] ये साम्यवाद के खिलाफ विचाराधारात्मक संघर्ष की तैयारी कर रहे थे। इसको लेकर एक सम्मलेन सन 1950 में बर्लिन में हुआ था- 'कांग्रेस फार कल्चरल फ्रीडम' इस सम्मलेन में अमेरिका के पूंजीवाद को 'शांति का रक्षक' एवं रूस के समाजवाद को 'खतरनाक' कहा गया। डॉ रामविलास शर्मा मानते है कि मुंबई में 'अज्ञेय' के नेतृत्व में जो 'कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम' बैठक हुई थी वह इसी अन्तरराष्ट्रीय अभियान का अंग थी।[10] कहना न होगा की नयी कविता के बुर्ज से शीतयुद्ध कि गोलंदाजी करने का बीड़ा अज्ञेय ने उठाया था। लक्ष्मीकांत वर्मा इस भावधारा के प्रमुख वक्ता रहे। उनके गिरोह में विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त आदि शामिल था। कला और सौन्दर्य के नाम पर प्रगतिशील विरोधी साहित्य सिद्धांत के निर्माण और प्रचार का काम ये कर रहे थे। अज्ञेय इस गिरोह के आध्यात्मिक गुरु थे, जो कभी-कभी सूत्र और मन्त्र दिया करते थे। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'शब्द और कर्म' यह बतलाया है कि लक्ष्मीकांत वर्मा ने 'कल्पना' के चार अंको में 'हिंदी साहित्य के पिछले बीस वर्ष' शीर्षक लेखमाला की पहली किश्त में अपने गिरोह के लिए निम्न पांच मांगों का उल्ल्लेख किया है- व्यक्ति स्वतंत्रता, लघु मानव का सिद्धांत, कम्युनिस्ट विचारधारा का विरोध सौंदर्यवादी कला दृष्टि का आग्रह, इतिहास और परंपरा से मुक्ति औत अद्वितीय क्षणों की अनुभूति से मुक्त आधुनिकता। इन शब्दावलियों एवं अवधारणाओं का प्रयोग नए आधुनिक भावबोध के आग्रह के लिए किया गया।[11]

दूसरा सप्तक के साथ सन 1953 में प्रकाशित 'नए पत्ते' पत्रिका में भी नयी कविता का विकास दिखाई देता है। सन 1954 में जगदीश गुप्ता तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा प्रकाशित 'नयी कविता' पत्रिका में नयी काविता अपने पूरे संभावित प्रतिमानों के साथ प्रकाश में आयी। इसी क्रम में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तीसरा सप्तक' (1959) की महती भूमिका है। तीसरा सप्तक ने नई कविता के प्रवृत्तियों को और बुलंद किया। इस सप्तक के कवि हैं- प्रयागनारायण त्रिपाठी, कृति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना।

सन्दर्भ- सूची

1. अग्रवाल, केदारनाथ, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं', साहित्य भण्डार, इलाहबाद, 2009, पृष्ठ- 31
2. प्रसाद, डॉ राजेंद्र, 'तारसप्तक की कवियों की सामाजिक चेतना', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1987, पृष्ठ-77
3. अज्ञेय, 'तारसप्तक', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1943, पृष्ठ-11
4. अज्ञेय, 'दूसरा सप्तक', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1951, पृष्ठ- 6-7
5. मुक्तिबोध, गाजनन माधव, 'छायावाद और नई कविता', नेमिचंद्र जैन (सं), 'मुक्तिबोध रचनावली-5', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1985, पृष्ठ- 312
6. मुक्तिबोध, गाजनन माधव, 'छायावाद और नई कविता', नेमिचंद्र जैन (सं), 'मुक्तिबोध रचनावली-5', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1985, पृष्ठ- 324
7. मुक्तिबोध, गाजनन माधव, 'छायावाद और नई कविता', नेमिचंद्र जैन (सं), 'मुक्तिबोध रचनावली-5', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 1985, पृष्ठ- 313
8. शर्मा, डॉ रामविलास, 'नई कविता और अस्तित्वाद', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ- 5
9. मुक्तिबोध, गाजनन माधव, 'नए साहित्य का सौन्दर्य- शास्त्र', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1971, पृष्ठ- 57
10. शर्मा, डॉ रामविलास, 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य', हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, प्रथम संस्करण, 1956, पृष्ठ- 4
11. पाण्डेय, डॉ मैनेजर, 'शब्द और कर्म', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९७, पृष्ठ-237

आशीष कंधवे का काव्य संग्रह 'जन गण मन': एक-दृष्टि

डॉ० शकुन्तला गिरि

हिन्दी विभाग, महाराजा बिजली पासी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय आशियाना, लखनऊ।

यह आशीष कंधवे जी का प्रथम काव्य संग्रह 'समय की समाधि' एवं द्वितीय काव्य संग्रह 'जन गण मन' है जो सन् 2011 ई0 में ज्ञानोदय प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह में कुल 58 कवितायें संकलित हैं। जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं-वो वसंत, जीवन धूप, आओ फिर आजादी का जश्न मनायें, किराये का मकान, इंटरनेट का गुलाम यौवन, बढ़े चलो-बढे घ्चलो, मौत से क्या डरना, भ्रम, पेट-पाताल, काला शहर, कहर और कराह, जापान में, वक्त का जिल्द, बदलती तारीख और कालिख, जिंदगी फूल है, साँसें, महक, शिक्षा प्रणाली, मैं यम को कन्धों पर ढो रहा हूँ, मैं जीवन को छलता रहा, बोल व्यापारी क्या बेचेगा, दीवार बनती जिन्दगी, अपना-अपना समय, बिन तेरे, दोस्त मेरा बंटी, कलम मेरी आत्मा है, कविता शरीर, नया इतिहास, दीवारों के अरमान, तलाश में भाग्य विधाता, निवास,दोस्त बना सपना, मीरा, सत्य क्या है, मलहम, तिरंगा, कुछ कहना है, राहत, इस जन्म में भी प्यासा हूँ, समय को क्यूँ मैं छल रहा हूँ, ढूँढ रहा किनारा, पत्थर, रंग वक्त के मिजाज का, जलता भारत, जगता-जगाता भारत, खुदा के दर पर, ठोकरें, आदमी, बड़ा बेदर्द है जमाना, शहीद, उलझन आँखों से जानिये, अभागा, 30 अप्रैल, नींद, भूख की परछाई, मार्ग विचार का, क्यों करता है मानव अभिमान, मैं हूँ, बेटियाँ, वक्त में दफन हो, महँगाई की सगाई।

आशीष कंधवे जी का यह संग्रह कई-ष्टियों से उनके पहले काव्य संग्रह से अलग है। सर्वप्रथम तो यह कि इस संग्रह की कविताएँ पहले संग्रह की कविताओं से अधिक प्रौढ़ हैं और इनमें विषय-वस्तु अपेक्षाकृत अधिक गम्भीरता के साथ प्रस्तुत की गई है। दूसरी बात यह कि प्रथम काव्य संग्रह में वर्ण्य-विषयों का विस्तार अधिक था, प्रस्तुतीकरण में गहराई कम थी। इस दूसरे काव्य संग्रह में कविताओं की संख्या तो 38 ही है, लेकिन उनमें से बहुत-सी कविताएँ ऐसी हैं जो किसी एक विषय पर केन्द्रित हैं। उदाहरण के लिए 'मौत से क्या डरना', 'वक्त का जिल्द', 'जिंदगी फूल है' 'साँसें' 'महक', 'मैं यम कंधों पर ढो रहा', 'दीवार बनती जिन्दगी', 'अपना अपना समय', 'इस जन्म में भी प्यासा हूँ' आदि कविताएँ वर्तमान समय में मानवीय संवेदनाओं और मानवीय संबन्धों में होते जा रहे ह्रास पर केन्द्रित हैं। इसी प्रकार 'काला शहर', 'बदलती तारीख और कालिख', 'बोल व्यापारी और क्या बेचेगा', 'नया इतिहास', 'रंग वक्त के मिजाज का', 'भूख की परछाई' आदि सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त हो चुकी विकृतियों और विडम्बनाओं से सम्बन्धित हैं। 'आओ फिर आजादी का जश्न मनायें', 'जगता-जगाता, भारत', 'तिरंगा' आदि राजनीतिक व्यवस्था पर केन्द्रित कविताएँ हैं। इस-ष्टि से इस संग्रह की कविताओं को वर्ण्य-विषयों के आधार पर वर्गीकृत भी किया जा सकता है, जैसे प्रकृति विषयक कविताएँ, मानव-मूल्य विषय कविताएँ, मानव जीवन पर केन्द्रित कविताएँ, अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित कविताएँ, आध्यात्मिक भाव की कविताएँ, प्रबोधन परक कविताएँ आदि।

'जन गण मन' काव्य संग्रह में संकलित कविताओं के विषय में रचनाकार का आत्मकथ्य द्रष्टय है जो कविताओं में विवेचित विषय पर भी प्रकाश डालता है- ''मेरा यह काव्यसंग्रह 'जन-गण-मन' मेरी संवेदनाओं का कविता के रूप में रिसाव है या यूँ कहें कि कविता किसी विषय-वस्तु, भाव, मानव-मन के प्रति चिंता देश और समाजगत अव्यवस्था के प्रति आक्रोश है। मिलन-विरह, प्रकृति, विचारों एवं-श्यों को शब्दरूपी रंगों से भर देना ही काव्य-संसार है। शब्दों को सीढ़ी बनाकर भावनाओं की छत पर एक-कदम चढ़ना ही मेरी-ष्टि में कविता है। मेरा ख्याल है कि कविताओं में सामाजिक वेदनाओं की झलक हो एवं युगीन समस्याओं का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन इस कालखण्ड के अनुरुप हो तो रचनात्मकता ज्यादा वस्तुपरक एवं जनमानस को प्रभावित एवं आन्दोलित

करने में सक्षम होती है। फिर भी कविताओं को किसी कालखण्ड में नहीं बाँटा जा सकता। अपनी सुविधा के अनुसार साहित्य की किसी भी विधा को काल की परिधि में बाँधकर उसका अवलोकन साहित्य की-ष्टि में सर्वथा उचित नहीं माना जा सकता है।''[1]

'जन गण मन' का आरम्भ प्रकृति विषयक कविता 'वो वसंत' से हुआ है। कवि आज के औद्योगिक परिवेश में बसंत की प्रतीक्षा करता है लेकिन उसे निराशा मिलती है क्योंकि अब बसंत अपने पारम्परिक रूप में नहीं दिखाई पड़ता है।

गाँवों से शहरों की ओर होते पलायन के कारण शहरों के क्षेत्र बढ़ते जा रहें हैं। खेती योग्य जमीन बड़े-बड़े मकान बनाने में खत्म होती जा रही हैं। शहरों की भागम-भागपूर्ण जीवनशैली में वसंत केवल प्रतीकात्मक रह गया है। जहाँ पीले-पीले फूलों से सजी हुई सरसों के खेत हुआ करते थे वहाँ अब पत्थर और कंकरीट के बड़े-बड़े भवन खड़े हो गये हैं। बगीचे अब घरों की बालकनी तक सिमट कर रह गये हैं। भँवरे और तितलियाँ तो जैसे गायब ही हो गये हैं। कवि की चिन्ता यह है कि दिनों और महीनों के अनुसार तो वसंत ऋतु आती है परन्तु शहरी जिन्दगी में वसंत दूर कहीं खो गया है। कवि की यह चिंता प्रकृति के पक्ष में बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रकृति से सम्बन्धित एक अन्य कविता 'जीवन धूप' में कवि ने प्राकृतिक-श्यों को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। सवेरा होते ही जैसे-जैसे धूप चढ़ने लगती है तो लगता है जैसे एक जीवन यात्रा शुरू हो गई है। हल्की-हल्की धूप के रूप में बचपन शुरू होता है जो शाम ढलते-ढलते अपनी जीवन यात्रा पूरी कर लेता है। कविता में व्यक्त सुकोमल भाव निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं-,

''दरख्तों से छन-छन कर धूप
धीरे-धीरे बढ़ती जमीं की ओर
जैसे बचपन
अपने पाँवों पर होने को खड़ा
लगा रहा हो जोर
सफर धूप का कुछ यूँ शुरू हुआ
पहले छोटी
फिर कुछ बड़ी
देखते ही देखते इन
जवान परछाइयों का
सफर जीवन से बड़ा हो गया
कभी-आड़ी
कभी-तिरछी
जीवन-धूप का कारवाँ
शाम ढलते ही
राह जीवन का
रोक कर खड़ा हो गया
नव अंकुर
नव भोर में
नव ओस में
हरा हो गया।
हरा हो गया।''[2]

इस काव्य संग्रह में कवि ने आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों को भी अपनी कविताओं के केन्द्र में रखा है। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि तकनीकी विकास ने पूरे संसार की जीवनशैली बदल दी है, अतीत में वृक्षों और गुफाओं को आश्रय बनाने वाला मानव

वातानुकूलित इमारतों में रह रहा है और एक से सुन्दर एक वस्त्र, स्वादिष्ट भोजन और यातायात के संसाधनों का प्रयोग कर रहा है परन्तु यह भी सही है कि आधुनिक युग में इण्टरनेट, मोबाइल लैपटाप, वीडियोगेम्स आदि के विकास ने मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी बढ़ा दी है। एक घर में एक साथ रहते हुए लोगों में भी पारस्परिक संवाद बन्द-सा हो गया है। अब न तो बचपन के खेल रह गये हैं और न तरुणाई की कुश्तियाँ और कसरतें। जीवन इण्टरनेट का गुलाम बनकर रह गया है। यह विषय कवि की 'इण्टरनेट का गुलाम यौवन' कविता में बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है-

''एक अजनबी शहर का
अजनबी अहसास
अजनबी आँखें
अजनबी प्यास
यहाँ के रंग-बिरंगे मंजर
नजरें कंटीली खंजर
दिलों से लोग बेजार
चाहत रेगिस्तानी बंजर
कुम्हलाया-मुरझाया
शहर का बचपन
किसी अनजानी गिरफ्त में कैद ये बालमन
की-बोर्ड पर थिरकती उंगलियाँ
इंटरनेट का गुलाम यौवन
न सावन के झूले
न तितलियों के रंग
न इंद्रधनुषी छटायें
बचपन-यौवन के संग
सिर्फ अकेलापन और अकेलापन
शोर करती ये सड़कें
वैभवशाली बिल्डिंगों की उदास खिड़कियाँ
शीशे में एक-दूसरे की शक्ल देखते दरवाजे
गवाह बन रहे हैं,
मूक बन कर
बनते-बिगड़ते रिश्तों का
इंतजार कर रहे हैं
उस बुढ़ापे का
जो खुद-ब-खुद
टूट, कोई शाख से गिर जाये
हाय, कोई शहर क्यूँ जाये
हाय, कोई शहर क्यूँ जाये।।''[5]

'जन गण मन' संग्रह में जो विषय कई बार कई कविताओं में प्रस्तुत किया गया है वह है-देश के राजनैतिक परिदृश्य की असंतोषजनक स्थिति। ऐसी कई कविताएँ हैं जिनमें कवि ने भारत देश की असंतोषजनक व्यवस्था पर खेद व्यक्त किया है। देश आजाद हो गया है और प्रजातंत्र की व्यवस्था से शासन चल रहा है परन्तु दु:ख का विषय है कि आजादी का अर्थ बदल गया है। भूख, गरीबी, कुपोषण, अशिक्षा, व्यक्तिवाद, भाषावाद, संप्रदायवाद, अलगावाद, आतंकवाद आदि की ज्वलन्त समस्याओं में उलझा हुआ भारत आज भी जल रहा है। सत्ता में बैठा हुआ शासकवर्ग सत्तासीन रहने के लिए जनभावनाओं से खिलवाड़ करता रहता है। किसान आत्महत्या कर रहा है। नवयुवकों को पथ-भ्रष्ट करने के प्रयास चल रहे हैं। योग और ध्यान की इस पावन धरती पर भोग और भ्रष्टाचार का बोलबाला होता जा रहा है। कवि प्रश्न करता है कि आखिर लोकतंत्र में इस प्रकार की अराजकता फैलने देने के उत्तरदायी लोग कौन हैं, जनता उन्हें क्यों नहीं पहचान पा रहीं है।

इस काव्य-संग्रह में कुछ ऐसे विषयों को भी उठाया गया है जिन पर इसके पहले के संग्रह में बात नहीं हो पायी थी। छोटी-छोटी कविताओं में प्राय: गजल शैली में बड़ी महत्वपूर्ण बातें कहीं गई हैं। ठोकरें, आदमी, शहीद, उलझन, बेटियाँ, अभागा आदि इसी प्रकार की कविताएँ हैं जिनमें सामाजिक जीवन के इन महत्वपूर्ण पक्षों को उपदेशात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। कवि का मानना है कि ठोकरें ही मनुष्य को जीवन जीना सिखाती हैं, ठोकरें खाने पर ही मनुष्य अपने और पराये का अनुभव कर पाता है। इसी प्रकार समाज में बेटियों का महत्व स्पष्ट करते हुए कवि ने उन्हें 'मनुष्य के प्रश्न का जवाब', 'सृजन और सृष्टि का शृंगार', 'देश और दुनिया की शान' आदि कह कर उन्हें गौरवयुक्त किया है। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं-

''कली हैं फूल हैं गुलाब हैं बेटियाँ
मानव के हर प्रश्न का जवाब हैं बेटियाँ
माँ हैं बहन हैं प्यार हैं बेटियाँ
सृजन और सृष्टि का शृंगार हैं बेटियाँ।
जननी हैं जीवन हैं आधार हैं बेटियाँ
ममता हैं मुस्कान हैं संसार हैं बेटियाँ।
कुल हैं कुलीन हैं खानदान हैं बेटियाँ
आपकी और मेरी पहचान हैं बेटियाँ।
मान हैं सम्मान हैं अभिमान है बेटियाँ
सत्य है जीवन का प्रमाण हैं बेटियाँ।
अर्पण हैं समर्पण हैं दान हैं बेटियाँ
देश और दुनिया की शान हैं बेटियाँ।''[५]

इस संग्रह में 'महँगाई की सगाई' शीर्षक से एक लम्बी कविता संकलित है। यह कविता कथात्मक शैली में है जिसमें महँगाई को मुख्य मुद्दा बनाते हुए प्रासंगिक रूप से राजनीति, पत्रकारिता, व्यापार, कृषि व्यवस्था, कार्यालय, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को विषय बनाया गया है। महँगाई की शादी का रूपक प्रस्तुत करके बहुत से पारिभाषिक शब्दों और उनके पास्परिक सम्बन्धों को भी इसमें उजागर किया गया है। कवि ने महँगाई, जमाखोरी, कालाबाजारी, बजट, सट्टेबाजी, कालाधन, अनैतिकता, सोसायटी, लूट-खसोट, भ्रष्टाचार, ब्रेकिंग न्यूज आदि जैसे शब्द विशेष अर्थवत्ता के साथ इस कविता में प्रयुक्त किए हैं। ये सभी किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और जनता को पीड़ित करने में इनका किस प्रकार सहयोग है-इसे कवि ने महँगाई और भ्रष्टाचार के विवाह के रूपक में प्रस्तुत किया है। यह कविता पर्याप्त लम्बी है परन्तु इसकी समीचीनता को देखते हुए इसकी आरिम्भक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''महँगाई की माँ जमाखोरी ने
अपने पति कालाबाजारी से कहा
अरे सुनो! बेटी बड़ी हो गई है,
जमाना खराब है।

इसे यूँ ही कब तक घर में बिठाये रखोगे
इसकी शादी-ब्याह की सोचोगे
या मुझे यूँ ही सताये रखोगे
पिता कालाबाजारी ने कहा
जरा धैर्य रखो भाग्यवान
लड़के की खोज जारी है
बेटी खाली तुम्हारी नहीं
ये मुझे भी बहुत प्यारी है
मैंने सभी बड़े घरानों में
शादी की बात चला दी है
एक सुयोग्य वर चाहिये
महँगाई के लिए
ये बात अखबारों में छपवा दी है।''[5]

'जन गण मन' संग्रह में आध्यात्मिक भाव से परिपूर्ण कविताएँ भी कई हैं। इन कविताओं में कवि ने जीवन की असारता, सांसारिक मोहमाया के पीछे के भटकने की थकान, ईश्वर की शरण में मिलने वाली शांति आदि को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है। कवि मानता है कि आगे बढ़ते रहना ही जीवन का लक्ष्य है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा और मृत्यु-यही जीवन का क्रम है और ये सभी जीवन के ही क्रमिक चरण हैं। मृत्यु जीवन यात्रा का अंतिम चरण है जहाँ तक हर प्राणी को पहुंचना ही पहुँचना है। जीवन पथ पर यात्रा के लिए निकल चुके मुसाफिर को मृत्यु से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिन्दगी को हँसते हुए जीना ही स्वर्ग है। इस सत्य को जानते हुए भी मानव मन बेचौन रहता है और लगातार पीड़ा का अनुभव करता रहता है। आशीष कंधवे अपनी एक कविता 'मैं यम कंधों पर ढो रहा' में कुछ ऐसी ही बात कहते दिखाई पड़ते हैं-

''गा रहा है साज अकेला
आवाज क्यूँ है रो रहा
किस अनजाने-अनाथ पथ पर
मैं नित-प्रति-दिन खो रहा
ठहरे जल की जलकुंभी सा
मैं नींद कुम्भकरण क्यूँ सो रहा
मन-मलिन हो काजल जैसा
फिर पुष्प कमल क्यूँ बो रहा
जीवन-मृत्यु का विचार करके
मैं यम कंधों पर ढो रहा
किंचित कभी न मन होता तृप्त
किस राह मैं भटका जीवन भर
हृदय में कितने जलते दीपक से
क्यूँ प्रज्ज्वलित नहीं है मेरा मन
अविरल-अनंत राहों पर
क्यूँ जल रहा है मेरा तन।''[6]

दृष्टिकोण

पर्यावरण प्रदूषण आज के संसार की बहुत बड़ी समस्या बना हुआ है। वैज्ञानिक विकास मनुष्य से बहुत भारी मोल चुकवा रहा है। रहने के लिए बड़े-बड़े घर बनाने के चक्कर में जंगल कट रहे हैं; कृषि योग्य भूमि कम हो रही हैं, खनिज सम्पत्तियों के अतिशय दोहन के कारण पहाड़ों में स्खलन हो रहा है, नदियाँ सूख रहीं हैं, मोटरगाड़ियों कल-कारखानों आदि से निकलने वाला अवशिष्ट मिट्टी, जल और वायु तीनों को प्रदूषित कर रहा है और इन सबका प्रभाव मानव जीवन के साथ-साथ प्राणि-मात्र के जीवन पर पड़ रहा है। आये दिन भूकम्प, सुनामी, ज्वालामुखी, हिमस्खलन आदि जैसी आपदायें आ रही हैं जिनसे अपार जन-धन की हानि हो रही है। आशीष कंधवे ने अपने इस संग्रह में मानव जीवन पर पड़ने वाले इसके प्रभावों पर केन्द्रित कई कविताएँ रखी हैं। एक कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

''बदल रहा है मौसम
बदल रहा है पर्यावरण
विकास के विषैले
धुंएँ का चढ़ा आवरण
हवायें हो गई सर्पीली
जहरीला हुआ तन-मन
नहीं बचेगा कुछ
इस धरती पर
वन-धन-जन
खेत चमन-चमन
गगनचुंबी इमारतें
सचमुच गगन को चूमेंगी
पेड़ों की सूखी शाखें
बिना शरीर की नंगी आँखें
हर तरफ यही मंजर देखेंगी
प्रकृति की पीठ पर
धँसा एक खंजर होगा
न बरमिंघम रहेगा
न पोरबंदर बचेगा
हड्डियों का पंजर रहेगा हैरान
न अमेरिका अमेरिका कहलायेगा
न बचेगा जापान।
जुर्म और सियासत का
सैलाब मिल कर
धरती पर बह रहा
एक खूनी समुंदर होगा
धरती के सीने पर
खड़े सूने पहाड़
गवाही दे रहे होंगे

आदमी की करतूतों के
भूतों के भविष्यों के
अपने हाथों के बलबूतों से
कैसे हुआ विषाक्त
घर-घर का वातावरण
बदल रहा है मौसम
बदल रहा है पर्यावरण।'[7]

साहित्यकार आशीष कंधवे की कविता आज के भौतिकवादी परिवेश में गुम हो चुके जीवन को असलियत की कसौटी के आधार पर खोजने का प्रयास करती है। वे 'रस्मअदायगी' से परहेज करती हैं और मात्र कुछ भी कह देने की औपचारिकता पर तीखा व्यंग्य करती हैं। वास्तव में कविता वही अच्छी मानी जायेगी जो जीवन को बचाने और बनाने के भाव से भरी हुई हो। केवल शासन व्यवस्था की कमियाँ गिनाने और हँसी-मजाक के द्वारा व्यवस्था का उपहास करने के उद्देश्य से रचा गया साहित्य तात्कालिक रूप में तो चर्चा का विषय हो सकता है लेकिन समाज में स्थायी रूप से प्रासंगिक बने रहने के लिए साहित्य में जीवन के तत्वों का समावेश होना आवश्यक है। आशीष कंधवे का साहित्य-सृजन 'जन गण मन' इस विषय पर बहुत गम्भीर दिखाई पड़ता है। उनकी कविताओं में समाज पर केवल टिप्पणी नहीं की गई है बल्कि समाज को सही राह पर लाने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ सूची-

1. आशीष कंधवे, जन गण मन, ज्ञानोदय प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-2011 मन की बात, पृ0 19
2. आशीष कंधवे, जन गण मन, ज्ञानोदय प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-2011, पृ0 24
3. आशीष कंधवे, जन गण मन, पृ0 113.
4. आशीष कंधवे, जन गण मन, पृ0 115
5. आशीष कंधवे, जन गण मन, पृ0 47
6. आशीष कंधवे, जन गण मन, पृ0 33, 35

प्रभुसत्ता का तात्पर्य विश्लेषण

डॉ० पंकज कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार

आधुनिक राज्य प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य हैं। राज्य की कानूनी धारणा के अनुसार प्रभुसत्ता राज्य का आवश्यक तत्व है जिसके अभाव में किसी मानवीय समुदाय को राज्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इस तरह राज्य के चार तत्त्वों में प्रभुसत्ता एक ऐसा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिसके बल पर राज्य ऐसे कानून और आदेश जारी करता है जिनका पालन राज्य सीमा के अंदर प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है, अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले संसाधनों का वितरण या आवंटन कर सकता है, दंड की व्यवस्था कर सकता है, विदेशी राज्यों के साथ संधियाँ और समझौते कर सकता है। प्रभुसत्ता ही राज्य को ऐसी शक्ति प्रदान करती है जिसका उपयोग वह शत्रु राज्य से युद्ध करने में कर सकता है। प्रभुसत्ताधारी, किसी अन्य व्यक्ति या समुदाय की सलाह मानने को बाध्य नहीं हो सकता, वह रीति-रिवाजों, परंपराओं आदि का पालन करता है किंतु इन्हें परिभाषित करने का अधिकार भी संप्रभु के पास ही होता है। प्रभुसत्ता मूलत: एक कानूनी संकल्पना है। इसे सामाजिक या दूसरे संदर्भों में लागू करने पर अनेक समस्याएँ पैदा होती हैं। जैसा कि बहुलवाद से जुड़ी हुई तर्क क्षृंखला से प्रकट होती है।

प्रभुसत्ता के अर्थ को लेकर पश्चिम के राजनीतिक विचारकों में कोई मौलिक मतभेद नहीं हैं। उल्लेखनीय है कि यूनानी विचारक 'प्रभुसत्ता' शब्द से परिचित नहीं थे, यह अरस्तू द्वारा संप्रभुता के स्थान पर 'राज्य की सर्वोच्च शक्ति पदबंद्ध' के उपयोग से स्पष्ट हो जाता है। मध्य युग में भी 'राज्य की सर्वोच्च शक्ति और राज्य की परम सत्ता जैसे पदबंधों का प्रयोग किया गया है। जीन बोंदा ने 1576 में अपनी पुस्तक 'सिक्स बुक्स फॉर द रिपब्लिक' में सर्वप्रथम 'सोवरनिटे' शब्द का प्रयोग करते हुए निम्न परिभाषा दी, "प्रभुसत्ता नागरिकों एवं प्रजाजनों पर राज्य की सर्वोच्च शक्ति है जो कानून के नियंत्रण से परे है।"

प्रभुसत्ता से आशय उस न्यायोचित सत्ता से है जिसके माध्यम से राज्य राजनीतिक प्रक्रिया संपन्न करने में सफल होता है। सरल शब्दों में प्रभुसत्ता का अर्थ है सर्वोच्च सत्ता अर्थात् एक ऐसी सत्ता जिसके ऊपर कोई और सत्ता न हो। प्रभुसत्ता ही राज्य का एक मात्र ऐसा तत्त्व है जो राज्य को समाज की अन्य संस्थाओं जैसे परिवार, शिक्षा संस्थान आदि से अलग करता है। सी.एच. मैकलवेन का कहना है कि "प्रभुसत्ता वह केंद्रीय सूत्र है जिसके अंतर्गत हम अपनी आधुनिक राजनीति के उलझे हुए तथ्यों को विवेक संगत बनाने का प्रयास कर सकते हैं। "गारनर ने अपनी पुस्तक 'इंट्रोडक्शन टू पॉलिटिकल साइंस' में लिखा है कि "प्रभुसत्ता राज्य की ऐसी विशेषता है जिसके कारण वह कानून की दृष्टि से केवल अपनी इच्छा से बंधा होता है अन्य किसी की इच्छा से नहीं, कोई अन्य शक्ति उसकी अपनी शक्ति को सीमित नहीं कर सकती।" इसी प्रकार लास्की का मत है, "संप्रभुता के कारण ही राज्य अन्य सभी प्रकार के मानव समुदायों से भिन्न है।" व्युत्पत्ति की दृष्टि से संप्रभुता का तात्पर्य राज्य की सर्वोच्च सत्ता है, इस आधार पर जेलीनिक ने कहा है कि "संप्रभुता राज्य की वह विशेषता है जिसके आधार पर उसकी अपनी इच्छा के अतिरिक्त कोई कानून द्वारा बाध्य नहीं कर सकता अथवा उसको अपनी शक्ति के अतिरिक्त कोई दूसरी शक्ति सीमित नहीं कर सकती।" इस प्रकार राज्य की शक्ति असीमित हो जाती है। कुछ विचारक प्रभुसत्ता शब्द का आशय निकालने में बड़ी भ्रमित अवस्था में पहुँच जाते हैं जैसे गिडिंग्स ने प्रभुसत्ता के संबंध में कहा है कि "सारे शब्द कोष में कोई ऐसा अन्य शब्द नहीं है जिसके साथ तत्वमीमांसक मदारी ने ऐसा खिलवाड़ किया हो।...न्यायविदों व राजनीतिक सिद्धांत शास्त्रियों ने लक्ष्यों से अपनी दृष्टि हटाकर अमूर्तताओं में अपना दिमाग उलझा दिया है और राजनीति विज्ञान के लिए प्रभुसत्ता ऐसी वस्तु बन गई है जो कभी न थल पर थी और न कभी जल पर।"

प्रभुसत्ता का विकास

एक निश्चित भू-भाग पर सर्वोच्च सत्ता के रूप में प्रभुसत्ता की धारणा एक आधुनिक धारणा है और इसकी उत्पत्ति वास्तव में आधुनिक राष्ट्रराज्य के उदय के साथ जुड़ी हुई है। आधुनिक रूप में प्रभुसत्ता सिद्धांत की उत्पत्ति सोलहवीं सदी में तब हुई जब मध्यकालीन मान्यताएँ और संस्थाएँ लुप्त होती जा रही थीं तथा राष्ट्र-राज्यों का उदय हो रहा था। इन्हीं राष्ट्र-राज्यों का औचित्य स्थापित करने के लिए प्रभुसत्ता सिद्धांत को स्थापित किया गया।

किंतु आधुनिक युग में प्रभुसत्ता की धारणा का आशय यह नहीं है कि प्राचीन और मध्य युग के लोग इस धारणा से पूर्णत: अनभिज्ञ थे। अभिप्राय केवल इतना है जिस संदर्भ में वर्तमान युग में संप्रभुता का प्रयोग किया जा रहा है, पहले इस संदर्भ में विशेष बल नहीं दिया जाता था तथा सर्वोच्च सत्ता के लिए इस शब्द 'संप्रभुता' का प्रयोग भी नहीं किया जाता था। प्रभुसत्ता की धारणा का वर्तमान रूप में विकास तीन चरणों में हुआ है :

प्राचीन काल के यूनानी नगर राज्य आत्मनिर्भर, स्वतंत्र और स्वाधीन थे। यहाँ राजा की सत्ता के अलावा संपूर्ण समुदाय की सर्वोच्च सत्ता भी होती थीं। तथा यूनानी कानून को अपना स्वामी मानते थे। अरस्तू ने भी राज्यों का वर्गीकरण सर्वोच्च सत्ता की स्थिति के आधार पर किया था। अर्थात् सर्वोच्च सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में है या कुछ व्यक्तियों के हाथों में सरकार का स्वरूप इसी से निर्धारित होता है। रोमन राज्यों में भी जनता ही सर्वोच्च सत्ता का स्रोत होती थी और शासक अपनी शक्ति और औचित्य सिद्ध करने के लिए जनता की इच्छा का ऋणी होता था।

प्रभुसत्ता की आधुनिक धारणा की उत्पत्ति मध्यकाल में होती है। सामंतवादी व्यवस्था स्तरित श्रेणीक्रम में होती थी जहाँ प्रत्येक सत्ताधारी अपने-अपने क्षेत्र का अधिपति होता है। प्रभुसत्ता से अभिप्राय था इन अधिपतियों या अधिराजों पर आधिपत्य। यहाँ 'अधिपति' का आशय उन छोटे-छोटे अर्धस्वतंत्र राज्यों पर शासन करने वाला से है जो अपने ऊपर एक अन्य सत्ता को स्वीकार करता है। और आधिपत्य का आशय है सर्वोच्च शासक (Supreme lord) जो स्वयं को किसी अन्य सत्ता के अधीन नहीं रखता। इस प्रकार सत्ता के अंतिम स्तर को प्रभुसत्ता की संज्ञा दी जाने लगी। मध्यकालीन युग में सत्ता के तीन केंद्र रहे हैं—चर्च, राजा तथा सामन्त। इस युग में प्रभुसत्ता को लेकर झगड़ा रहा राजा और चर्च में, और अन्तत: राजा की विजय के साथ धर्मनिरपेक्षता के आधार पर प्रभुसत्ता राष्ट्रीय राज्य 16वीं सदी में विकसित हुई।

सामंतवादी ढाँचे के पतन के परिणामस्वरूप आधुनिक राष्ट्र राज्य का उदय हुआ, परिणामस्वरूप मध्ययुगीन मान्यताएँ और संस्थाएँ समाप्त होने लगी। आधुनिक राष्ट्र राज्य में एक निश्चित भूमि पर बसे हुए लोगों को मिल-जुलकर रहने के लिए कानून और व्यवस्था का औचित्य स्थापित किया जाने लगा और लोगों को विभिन्न भेदभावों से ऊपर उठाकर इकट्ठा रहने के लिए सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और भावात्मक आधार प्रदान किए जाने लगे। राष्ट्र राज्य में सर्वोच्च सत्ता (जो प्राचीन काल से ही प्रचलित थी) को राज्य के एकीकरण के लिए आवश्यक समझा जाने लगा और क्षेत्रीय अधिपत्तीय व्यवस्था (जो मध्यकालीन सामंतवादी धारणा थी) को राज्य के विकास के लिए आवश्यक समझा जाने लगा। अत: कहा जा सकता है कि प्राचीन काल की सर्वोच्च सत्ता की धारणा का मध्यकालीन अधिपतीय धारणा के मिलन के परिणामस्वरूप आधुनिक राष्ट्र राज्य में संप्रभुता की धारणा का विकास हुआ।

संप्रभुता की परिभाषाएँ

बोंदा : "संप्रभुता नागरिकों तथा प्रजाजनों पर वह सर्वोपरि शक्ति है जिस पर कानून का कोई बंधन नहीं है।" ग्रोशियस : "संप्रभुता उस व्यक्ति की सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति है जिसके कार्य अन्य किसी के अधीन नहीं होते और जिसकी इच्छा को कोई टाल नहीं सकता। वह शासन करने की नैतिक शक्ति हो।" ब्लैकस्टोन : "प्रभुसत्ता वह सर्वोच्च अनिवार्य और अनियंत्रित सत्ता है जिसके आश्रित बड़े-बड़े कानून रहते हैं। '' जेलीनिक : "संप्रभुता राज्य का वह गुण है जिसके कारण वह अपनी इच्छा के अतिरिक्त किसी दूसरे की इच्छा या किसी बाहरी शक्ति के आदेशों से बाध्य नहीं है।" रूसो : "सार्वजनिक संकल्प ही संप्रभु है।" केलसन : "अपने

मौलिक तथा एकमात्र स्पष्ट भाव में प्रभुसत्ता का आशय सर्वोच्च भाव से है।" गारनर : "प्रभुसत्ता राज्य की ऐसी विशेषता है जिसके कारण वह कानून की दृष्टि से केवल अपनी इच्छा से बँधा होता है अन्य किसी की इच्छा से नहीं, कोई अन्य शक्ति उसकी अपनी शक्ति को सीमित नहीं कर सकती।" विल्सन : "प्रभुसत्ता कानूनों का निर्माण करने तथा उन्हें लागू करने वाली प्रतिदिन क्रियाशील शक्ति है।" बर्गेस :'' संप्रभुता राज्य के व्यक्तियों और समुदायों पर भौतिक निरंकुश और असीमित शक्ति है।" पोलक : "प्रभुसत्ता वह शक्ति है जो न तो स्थाई है, न ही हस्तांतरणीय, न यह ऐसे विशेष नियमों के अधीन है जिन्हें यह बदल नहीं सकती, और न यह धरती पर किसी अन्य शक्ति के प्रति उत्तरदायी है। "डुग्वी : "संप्रभुता राज्य की आदेशकारी शक्ति है। राज्य के रूप में संगणित यह राष्ट्र की इच्छा होती है। यह अधिकार है जिसके द्वारा राज्य के क्षेत्र से सब व्यक्तियों को विधिक रूप से आदेश दिए जाते हैं।" रसेल : "प्रभुसत्ता राज्य के भीतर दृढ़तम तथा सर्वोच्च सत्ता है जो कानून या किसी वस्तु द्वारा सीमित नहीं क्योंकि तब यह न तो दृढ़तम होगी न सर्वोच्च।" विलोबी : "संप्रभुता राज्य की सर्वोच्च इच्छा है।" लास्की : "राज्य की प्रभुसत्ता अपने क्षेत्र के भीतर सभी व्यक्तियों एवं संघों को आदेश देती है, यह उनमें से किसी से आदेश नहीं लेती। इसकी इच्छा किसी प्रकार के वैधानिक सीमाओं के अधीन नहीं है।" ओपनहाइम : "प्रभुसत्ता सर्वोच्च प्राधिकार है जो हर मौलिक प्राधिकार से स्वतंत्र या उसके ऊपर है।" जेंक्स : "प्रभुसत्ता वह सत्ता है जो अंतिम अर्थ में राज्य के प्रत्येक सदस्यों के कृत्यों को पूर्ण तौर से नियंत्रित करती है और जिसके विरुद्ध समाज का कोई सदस्य याचना नहीं कर सकता।" आस्टिन : "यदि किसी समाज का अधिकांश भाग किसी निश्चित प्रधान व्यक्ति की आज्ञाओं का पालन करता हो और वह निश्चित व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की आज्ञा पालने का आदी न हो तो उस समाज में वह व्यक्ति संप्रभु है और उस निश्चित प्रधान व्यक्ति सहित वो समाज राजा है।"

प्रभुसत्ता की विशेषताएँ

राजनीति विज्ञान के तकरीबन सभी प्रमुख विद्वानों ने प्रभुसत्ता पर अपने विचार प्रकट किए हैं तथा उसकी विशेषताएँ बतलाए हैं। विद्वानों ने प्रभुसत्ता के निम्न लक्षण गिनाए हैं :

1. पूर्ण

सर्वोच्चता, निरंकुशता आदि भी इसे कहा जाता है। इसका आशय परमपूर्णता या असीमितता (Ilimitability) से भी लिया जाता है। प्रभुसत्ता ऐसी शक्ति है जो किसी अन्य शक्ति पर आश्रित नहीं होती चाहे वह राज्य के भीतर हो या राज्य के बाहर। यदि इसे कानून के रूप में प्रस्तुत किया जाए, तो यह कहा जा सकता है कि राज्य किसी कानून का निर्माण तथा उसे लागू कर सकता है जो सभी संबद्ध व्यक्तियों पर लागू होता है। कोई अन्य सत्ता नहीं हो सकती जो राज्य के कानून को स्थगित या निरस्त कर सके। लास्की के शब्दों में, "विशुद्ध वैधानिक शब्दावली में इसका यह निहितार्थ है कि व्यवहार में वैधानिक दृष्टि से असीमित शक्ति ऐसी बन जाती है जिसका प्रयोग उस दशा में किया जाता है जिससे प्रत्येक पीढ़ी सुपरिचित होती है।" संप्रभुता के असीमित होने का आशय है कि यह किसी भी अन्य इच्छा से बँधी नहीं होती, यह अपनी इच्छा से भी सीमित नहीं होती। अतएव यह विधि द्वारा भी नियंत्रित नहीं होती। यदि संप्रभु किसी विधान द्वारा सीमित हो जाए तो उस विधि का निर्माता ही असली संप्रभु हो जाएगा। अत: यह कहा जा सकता है कि संप्रभुता मौलिक गुण है। मौलिकता से तात्पर्य है कि यह शक्ति किसी अन्य द्वारा प्रदान नहीं की गई। उल्लेखनीय है कि कोई भी अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ, समझौते प्रभुसत्ता को नष्ट नहीं करते क्योंकि कोई भी प्रभुसत्ता संपन्न राज्य इन्हें अपनाने को बाध्य नहीं होता। ये तभी तक मान्य होते हैं जब प्रभुसत्ता राज्य इन्हें मानने को तैयार होता है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय जो अंतर्राष्ट्रीय कानून की व्याख्या तो कर सकता है परंतु उन्हें स्वीकार करने के लिए किसी राज्य को बाध्य नहीं कर सकता। प्रभुसत्ता का परंपरागत सिद्धांत तो अंतर्राष्ट्रीय कानून को कानून के रूप में स्वीकार करने को ही तैयार नहीं है क्योंकि वह किसी प्रभुसत्ताधारी की इच्छा को व्यक्त नहीं करता।

प्रभुसत्ता के इस गुण का कुछ विद्वानों ने विरोध किया है। उनका मत है कि सैद्धांतिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से राज्य की प्रभुसत्ता असीमित नहीं है, यह प्रकृति के नियमों, धार्मिक सिद्धांतों, नैतिकता के नियमों, न्याय के शाश्वत सिद्धांतों, रीति-रिवाजों, परंपराओं, अंतर्राष्ट्रीय विधियों आदि से मर्यादित है।

2. सार्वजनीन या सार्वभौमिकता

प्रभुत्व की व्यापकता से संप्रभुता की सार्वजनीनता का भी प्रयोजन राज्य की सीमाओं के अंतर्गत है। राज्य द्वारा बनाए गए कानून से परे कोई व्यक्ति या समूह अपना अधिकार बताकर प्रभुसत्ता से छुटकारा पाने का दावा नहीं कर सकता। गारनर का मत है कि "राज्य में केवल एक ऐसी सर्वोच्च शक्ति हो सकती है जिसे वैधानिक रूप में अपने निवासियों द्वारा अपनी आज्ञा के पालन कराने का अधिकार है। इसके विपरीत कुछ भी मानना राज्य की एकता के सिद्धांत को अस्वीकार करना तथा 'राज्य के भीतर राज्य' की संभावना को स्वीकार करना होगा।" राज्य के अंतर्गत जितने व्यक्ति तथा संघ हैं सब इसके आज्ञापालन के लिए बाध्य हैं। राज्य उनको अपने नियमों का पालन करने के लिए विवश कर सकता है तथा विधि उल्लंघन करने वालों को दंड दे सकता है। प्रत्येक संघ चाहे वह धार्मिक हो या सांस्कृतिक, आर्थिक हो अथवा अन्य किसी प्रकार का हो राज्य संप्रभुता के अधीन होता है। इसी प्रकार किसी राज्य के अंदर यदि कोई अंतर्राष्ट्रीय संघ हो तो वह भी राज्य की सत्ता के ऊपर नहीं है। फ्री मेसंस जैसी विश्वव्यापी सुसंगठित संस्था भी राज्य से परे होने या राज्य से श्रेष्ठ होने का दावा नहीं कर सकती। यह संस्था भी विभिन्न राज्यों के कानूनों के अधीन है।

किंतु राज्य स्वेच्छापूर्वक विशेष अवसरों पर कुछ व्यक्तियों अथवा पदार्थों को अपने अधिकार क्षेत्र से स्वतंत्र मान लेता है। जैसा कि गिलक्राइस्ट ने उल्लेख किया है कि कुछ देशों में कूटनीतिज्ञ प्रतिनिधियों को राज्योत्तर संप्रभुता मिली होती है। गिलक्राइस्ट के शब्दों में, "किसी भी देश में राजदूतावास होता है। राजदूतावास के सदस्य अपने देश के कानूनों के अधीन होते हैं। पर सच्चाई यह है कि यह मात्र अंतर्राष्ट्रीय शिष्टता की बात है और इसे संप्रभुता से वास्तविक मुक्ति नहीं कह सकते। यदि कोई राज्य चाहे तो अपनी संप्रभुता का उपयोग करते हुए इस प्रकार दिए गए विशेषाधिकारों और सुविधाओं को वापस ले सकता है।"

3. स्थायित्व या सर्वकालीनता

स्थायित्व या सर्वकालीनता से आशय है कि संप्रभुता राज्य का स्थाई गुण है। जब तक राज्य का अस्तित्व रहेगा तब तक संप्रभुता विद्यमान रहेगी। राज्य का विनाश ही संप्रभुता की समाप्ति का कारण हो सकता है। गारनर का कहना है, "स्थायित्व से आशय यह है कि जब तक राज्य कायम रहता है तब तक संप्रभुता कायम रहती है। प्रभुत्वधारी की मृत्यु अथवा अल्पकालीन पदच्युति तथा राज्य के पुन: संगठन के कारण संप्रभुता का नाश नहीं होता, वह उसी क्षण नए प्रभुत्वधारी के हाथों में पहुँच जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी भौतिक पदार्थ में बाह्य परिवर्तन होने पर गुरुत्वाकर्षण का केंद्र एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान को चला जाता है।

4. अदेयता

प्रभुसत्ता या संप्रभुता एक संपूर्ण इकाई है इसके किसी भी गुण का त्याज्य नहीं किया जा सकता। गारनर ने कहा है कि "अपरित्याज्यता से तात्पर्य राज्य के उस गुण से है जिसके कारण वह अपने किसी भी सारभूत तत्त्व को स्वयं नष्ट हुए बिना विलय नहीं कर सकता।" संप्रभुता राज्य का व्यक्तित्व प्रदर्शित करता है। यदि वह व्यक्तित्व न रहे तो राज्य सामाप्त हो जाएगा। पुन: गारनर के शब्दों में, "प्रभुत्व का विच्छेदन अथवा हस्तांतरण संभव नहीं क्योंकि वह राज्य के व्यक्तित्व का सार है और उसके हस्तांतरण के साथ उसके व्यक्तित्व का विनाश हो जाएगा। प्रभुत्व राज्य की सर्वोच्च सत्ता है, उसके जीवन का अमरतत्त्व है और राज्य से उसका अलग होना उसकी आत्महत्या के समान है।" लायबर के शब्दों में, "प्रभुसत्ता को उसी तरह हस्तांतरित नहीं किया जा सकता जिस तरह वृक्ष को उसके अंकुरित होने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता अथवा जैसे मनुष्य आत्मविनाश के बिना अपना जीवन या व्यक्तित्व किसी अन्य को हस्तांतरित नहीं कर सकता।" जिस प्रकार किसी चुंबक को विभाजित कर देने पर भी उसके चुंबकत्व के गुण को समाप्त नहीं किया जा सकता उसी प्रकार किसी राज्य के टुकड़े कर देने पर भी संप्रभुता का विभाजन नहीं होता। जब एक राज्य ऐसा करता है तो वह अपने उतने क्षेत्र पर अपनी संप्रभुता को दूसरे राज्य को सौंप देता है। पर इससे उसकी संप्रभुता शक्ति समाप्त नहीं हो जाती। अपितु दो संप्रभुओं का अस्तित्व हो जाता है जिनका दो विभिन्न प्रदेशों पर अधिकार होता है।

अठारहवीं शताब्दी में रूसो (1712-78) भी संप्रभुता की अदेयता के समर्थक थे। उनका कहना था कि "शक्ति को प्रत्यायोजित किया जा सकता है पर इच्छा को नहीं। संप्रभुता राज्य के व्यक्तित्व का मूल तत्त्व है और उसको अलग करना आत्महत्या के समान है।" कुछ लेखकों ने संप्रभुता के इस गुण का विरोध किया है। उदाहरण के लिए अंग्रेज विद्वान रिची का कहना है कि संप्रभुता की अपरित्याज्यता इतिहास द्वारा अनुमोदित नहीं होती। किंतु अदेयता से तात्पर्य यह नहीं है कि एक राज्य अपनी भूमि को भी दूसरे को नहीं दे सकता। भारत ने अपनी भूमि के कुछ भाग का त्याग किया जिससे पाकिस्तान नामक संप्रभु राज्य का निर्माण हुआ किंतु उससे भारत की संप्रभुता पर कोई असर नहीं पड़ा। संप्रभुता के अदेयता नामक गुण के प्रति एक भ्रांति यह भी है कि जब किसी देश का शासक अर्थात् संप्रभुताधारी मृत्यु को प्राप्त होता है तो उससे राज्य की संप्रभुता अलग नहीं होती है। यह केवल सरकार या शासन के रूप में परिवर्तन मात्र है : उससे राज्य की संप्रभुता का त्याग नहीं होता।

5. अविभाज्यता या एकता

यह प्रभुसत्ता या संप्रभुता की अंतिम विशेषता है। अविभाज्यता से आशय है कि संप्रभुता का विभाजन नहीं हो सकता। एक लेखक का कहना है कि "जिस प्रकार शरीर से आत्मा को, अग्नि से तपन को, जल से तरलता को अलग नहीं किया जा सकता।, उसी प्रकार राज्य के प्रमुख गुण संप्रभुता को विभाजित नहीं किया जा सकता।" गैटेल ने लिखा है कि "यदि संप्रभुता परमपूर्ण नहीं है, तो किसी राज्य का कोई अस्तित्व ही नहीं है, यदि संप्रभुता विभाजित है तो एक से अधिक राज्यों का अस्तित्व हो जाता है।" इसी प्रकार गारनर का कहना है कि "प्रभुत्व की एक विशेषता है उसकी एकता। वह राज्य में सर्वोच्च इच्छा (अथवा सत्ता) है, उसका विभाजन अनेक इच्छाओं को जन्म दिए बिना नहीं किया जा सकता और वह प्रभुत्व की भावना के विपरीत होगा।" हॉब्स ने तो यहाँ तक कहा था कि 'एक विभाजित राज्य जीवित नहीं रह सकता।, इसी प्रकार अमेरिकन राजनीतिज्ञ कैलहॉउन का कहना है कि "प्रभुसत्ता एक समय वस्तु है, इस विभाजित करना इसे नष्ट करना है। राज्य में यह सर्वोच्च शक्ति है और शायद हम अर्ध-वृत्त या अर्ध त्रिकोण की तरह अर्ध प्रभुसत्ता की बात नहीं कर सकते।"

व्लंश्ली का भी यही मत है कि संप्रभुता को विभाजित नहीं किया जा सकता क्योंकि इसको विभाजित करना राज्य के अस्तित्व को विनाश करना है। एकता प्रत्येक अंग की आवश्यक दशा है। विलोबी भी इसी मत का समर्थन करते हुए कहता है कि संप्रभुता राज्य की सर्वोच्च इच्छा है। यह स्पष्ट है कि राज्य में एक से अधिक सर्वोच्च इच्छाएँ नहीं हो सकतीं। इन विद्वानों के अलावा कई अन्य विद्वानों ने संप्रभुता के एकता संबंधी विचार का समर्थन किया है। परंतु कई अन्य विद्वानों का मत है कि संप्रभुता की अविभाज्यता केवल कल्पना मात्र है, यथार्थ में संप्रभुता विभाज्य है। बहुलवादियों का यही विचार है। वे लोग संप्रभुता को राज्य और राज्य के अंदर उन अन्य संघों तथा व्यक्ति समूहों में विभाजित करते हैं जो मनुष्य के विभिन्न हितों का पोषण करते है। लावेल का कहना हैं कि "एक ही भू-प्रदेश में ऐसे दो संप्रभुओं का अस्तित्व संभव है जो एक ही प्रजावर्ग को विभिन्न मामलों में अपने-अपने आदेश देते हैं।" लावेल ने अपना विचार प्रति पादित करते हुए कहा कि 'इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि जिन राजनीतिज्ञों ने संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन-विधान की रचना की, वे इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि राजनीतिक प्रभुत्व अपने विषय तथा सत्ता की दृष्टि से विभाजन के योग्य हैं।" फ्रीमैन ने तो यहाँ तक कह डाला कि "संघीय आदर्श की पूर्णता के लिए प्रभुत्व का पूर्ण विभाजन परम आवश्यक है।" लार्ड ब्राइस का कहना है कि वैधानिक संप्रभुता 'दो संबद्ध सम शक्तियों में अर्थात् एक दूसरे से संबंधित दो बराबर की शक्तियों में विभाजित की जा सकती है।

इस प्रकार बहुलवाद से संबंधिक अनेक विद्वानों के अनुसार व्यवहार में अविभाज्यता, परिलक्षित नहीं होती है। मैकाइवर, डुग्वी, ब्राइस, डायसी, सिजविक तथा कई अन्य विद्वान इसी मत के हैं। किंतु बहुलवाद के ये विचारक संघीय व्यवस्था का गलत अर्थ लगाकर उसे प्रभुसत्ता के विभाजन पर आधारित मान लेते हैं। परंतु सच्चाई यह है कि संघीय व्यवस्था शासन संबंधी शक्तियों, न कि राज्य के प्रभुसत्ता के विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है। जैसा कि गैटेल ने उल्लेख किया है, "संघीय व्यवस्था में जो वस्तु विभाजित की जाती है वह प्रभुसत्ता नहीं है जो एक इकाई के रूप में संपूर्ण राज्य में निवास करती है, बल्कि इसकी विभिन्न शक्तियों का प्रयोग है जो एक संवैधानिक प्रणाली के अनुरूप विभिन्न प्रशासनिक अंगों में बाँट दी जाती है।"

6. मौलिकता

मौलिकता के अलावा संप्रभुता की उपरोक्त पाँचों विशेषताओं यथा पूर्णता, सार्वजनीनता, स्थायित्व, अदेयता और अविभाज्यता का उल्लेख गारनर ने अपनी पुस्तक पॉलिटिकल साइंस एंड गवर्नमेंट में किया है। किंतु मौलिकता इन पाँचों विशेषताओं के अलावा संप्रभुता की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है जिसका अर्थ है प्रभुसत्ताधारी के पास शक्ति अपने अधिकार से है, उसको शक्ति किसी ने प्रत्यायोजित नहीं की है।

संदर्भ

1. राजनीतिक सिद्धांत – संधू
2. राजनीति विज्ञान के सिद्धांत – जौहरी

उच्च शिक्षा का आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका

श्रीमती मेघा डड़सेना

सहायक अध्यापक (अर्थशास्त्र) रामचण्डी महाविद्यालय, बगाईजोर, सरायपाली जिला- महासमुन्द (छ.ग.)

सारांश-

शिक्षा संस्थान व्यक्ति एवं समाज को बेहतर बनाने का सर्वाधिक सार्थक मंच शिक्षा संस्थान है। शिक्षा का उद्देश्य ही श्रेष्ठ एवं गुणवान मनुष्य बनाना है। लेकीन उदारीकरण तथा भूमंडलीकरण के युग में रोजगार मूलक शिक्षा व्यवस्था के साथ नई शिक्षा प्रणाली को विकसीत करना होगा जिससे विचारों का विकास हो सके। इसके लिए हमारी उच्च शिक्षा में गुणवत्तावाली शिक्षा तथा व्यवसायिक पाठ्यक्रमों का विस्तार होना चाहिए। 5 अक्टूबर 1988 में पेरिस में उच्च शिक्षा पर विश्व अधिवेशन का आयोजन हुआ जिसका मुख्य उद्देश्य उच्च शिक्षा के विषय पर भविष्य के लिए विश्वस्तरीय रूपरेखा तैयार करना हैं। भारत की भागीदारी इस अधिवेशन काफी महत्वपूर्ण थी क्योकि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भारत का बहुत ही अच्छा अनुभव है।

प्रमुख शब्द- विकासयशील, उच्च शिक्षा, उत्पादकता, निर्धनता आर्थिक विकास, आय वितरण।

प्रस्तावना-

शिक्षा समाज में सामाजिक न्याय, समानता एकता और शान्ति को बढ़ावा देती है। शिक्षा समाज में गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता, अन्धविश्वास और अन्य सामाजिक बुराइयों को दूर करने में मदद करती है। शिक्षा के बिना हम ज्ञान, समक्ष और सोचने की क्षमता से वंचित रह जाते है। शिक्षा मानवीय सम्पदा को वृद्धि देती है और सभी क्षेत्रों में समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है। मानव विकास: शिक्षा मानव विकास की मूलभूत आवश्यकता है। 80 से 90 के दशक के आरंभ में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशनों के निष्कर्षो में से एक तथ्य अधिक ध्यान देने योग्य है कि अच्छी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध कराने का दायित्व विकासशील देशों में शासन का है क्योकि श्रेष्ठ उच्च शिक्षा इन्हीं के सुदृढ़ आधार पर प्रदान की जा सकती है। आक्सफोर्ड एडवांस लर्नर डिक्शनरी आफ करेंट इग्लिश के अनुसार ''शिक्षा विशेष रूप से विद्यालयों में पढ़ाने, प्रशिक्षण एवं सीखने की क्रिया है। जिससे ज्ञान में सुधार किया जाता है और कौशल का विकास किया जाता है। इसमें सीखना विकास की ओर अग्रसर करता है एवं विकास सक्षमता की ओर 'क्षमता' ऐसी जो कि निष्पादन एवं परिणाम तक पहुंचने के लिए तथा किसी करियर में सफलता को रूप देने एवं स्थायी बनाने रखने के लिए आवश्यक होती है।

अध्ययन के उद्देश्य-

(1) भारत में उच्च षिक्षा के व्यापक विस्तार द्वारा आर्थिक विकास का अध्ययन करना।

(2) उच्च शिक्षा का आर्थिक विकास पर प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध पद्धति-

प्रस्तुत शोध अध्ययन मुख्य रूप से द्वितीयक आँकड़ो पर आधारित है उच्च शिक्षा तथा आर्थिक विकास पर उसके प्रभाव का अध्ययन करने के लिए संबंधित आँकड़ो का संग्रहण सरकार के द्वारा प्रकाशित आँकड़ो तथा वार्षिक प्रतिवेदनों तथा पत्र-पत्रिकाओं, शोध पत्रो से इसका संग्रहण किया गया है।

विश्लेषणात्मक अध्ययन

उच्च शिक्षा का आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, उच्च शिक्षा का आर्थिक विकास पर सकरात्मक जिनसे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है-

- उच्च शिक्षा से स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा मिलता है।
- उच्च शिक्षा से अनुसंधान और विकास गतिविधियाँ बढ़ती हैं।
- उच्च शिक्षा से समाजिक चुनौतियों का समाधान होता है।
- उच्च शिक्षा से स्थानीय सूमदायों का जीवंतता बढ़ती है।
- उच्च शिक्षा से स्थिर, सूचित और सक्रिय नागरिक बनते है।
- श्रमिको की कार्य कुशलता बढ़ती है।
- उच्च शिक्षा और प्रषिक्षण की जरूरत वाले उद्योगों में श्रमिकों को ज्यादा वेतन मिलता है।
- शिक्षा में निवेश से आर्थिक विकास बढ़ता है शिक्षा में निवेश से जुड़े कुछ अध्ययन निम्न है।
- अल्जीरिया, सऊदी अरब और जॉर्डन में उच्च शिक्षा में निवेश और जीडीपी के बीच सकारात्मक संबंध पाया जाता है।
- सीरिया में 1970-1980 के दौरान आर्थिक विकास में शिक्षा का योगदान 6-9 प्रतिशत के बीच था।

उच्च शिक्षा का आर्थिक विकास पर प्रभाव

कुछ समय पहले तक अर्थशास्त्री भौतिक पूँजी को आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाले सबसे पहले महत्वपूर्ण कारक के रूप में मानते रहे है और यह सिफारिश करते रहे है कि विकासशील देशों में भौतिक पुँजी निर्माण की दर को आर्थिक विकास की प्रक्रिया में तेजी लाने और लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए बढ़ाया जाना चाहिए। लेकिन पिछले तीन दशकों में आर्थिक अनुसंधान ने आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में षिक्षा के महत्व को प्रगट किया है। शिक्षा कौशल और लोगो या श्रम बल के ज्ञान के विकास को संदर्भित करता है।

यह न केवल शैक्षिक अवसरों का मात्रात्मक विस्तार है बल्कि शिक्षा के प्रकार का गुणात्मक सुधार की है जो आर्थिक विकास की कुजी रखने वाले श्रम बल को प्रदान किया जाता है। आर्थिक विकास में इसके महत्वपूर्ण योगदान के कारण शिक्षा को मानवपूँजी कहा जाता है और लोगों पर शिक्षा का व्यय मानव या मानव पूँजी में निवेश के रूप में किया गया है। शैक्षिक पूँजी या मानव पूँजी के महत्व के बारे में बोलते हुए प्रो. हरबिसन लिखते है मानव संसाधन उत्पादन का अंतिम आधार है। मानव सक्रिया कारक है जो पूँजी जमा करते है। प्राकृतिक संसाधनो का दोहन करते है। समाजिक आर्थिक राजनीतिक संगठनों का निर्माण करते है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में प्रभावी ढ़ग से उपयोग करने में असमर्थ है, कुछ और विकसित करने में असमर्थ होगा। शिक्षा का आर्थिक विकास पर महत्व निम्नलिखित है-

1) समाज के विकास में योगदान-शिक्षा समाज के विकास में अहम भूमिका निभाती है। एक समाज जहां लोग शिक्षित होते है। वहां देश का विकास तेजी से होता है।
2) नए रोजगार के अवसर- शिक्षित लोगो को नए और बेहतर रोजगार के अवसर मिलते है। वे अपनी विद्या और कौशल के आधार पर उच्चतर वेतन, उच्चतर स्तर की जिम्मेदारी और स्थयित्व प्राप्त कर सकते है।
3) समाज में स्थान बनाना- शिक्षा द्वारा लोग अपनी पहचान बनाते है। वे आजिविका के साथ-साथ समाज में भी उच्च स्थान प्राप्त कर सकते है।
4) नैतिकता व समाज सेवा- शिक्षित लोग नैतिक तत्व को समझते है और उन्हें अपनी दैनिक जीवन में लागू करते है। वे समाज के लिए समर्पित भी होते है और अपने ज्ञान का उपयोग करके समाज सेवा में योगदान देते है।
5) व्यक्तिगत विकास- शिक्षा हमारे व्यक्तिगत विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह हमें संतुलित व्यक्तित्व आत्मविश्वास और स्वतन्त्रता की भावना प्रदान करती है।

6) राष्ट्रीय विकास- शिक्षा देश के राष्ट्रीय विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक शिक्षित देश समृद्ध देश होता है जहां लोगो को जीवन के लिए ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होती है।

इसलिए शिक्षा मानव जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है यह हमारे दैनिक जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जो हमें अपने लक्ष्यों तक पहुँचने में मदद करती है।

7) समान शिक्षा के अवसर- एक अर्थव्यवस्था तब अधिक मूल्यवान होती है जब लिंग, जाति, आयु और जातीयता के आधार पर समान शिक्षा और श्रम के अवसर अपलब्ध हों।

8) श्रम की कुशलता में वृद्धि- किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादकता तब बढ़ती है जब शिक्षित श्रमिकों की संख्या बढ़ती है, क्योकि कुशल श्रमिक कार्य को अधिक कुशलता से कर सकते है।

9) अधिक मजदूरी की प्राप्ती- उच्च शिक्षा व प्रशिक्षण आवश्यकताओं वाले उद्योग श्रमिकों को अधिक मजदूरी देते हैं।

10) महत्वपूर्ण कारक के रूप में- प्रशिक्षण स्तरों में अन्तर एक महत्वपूर्ण कारक है जो विकसित और विकासशील देशों के बीच अन्तर करता है।

11) कौशल तथा ज्ञान का महत्व- श्रम आपूर्ति में उपलब्ध श्रमिकों का ज्ञान और कौशल व्यवसाय और आर्थिक विकास दोनो के लिए प्रमुख निर्धारक है।

निष्कर्ष

शिक्षा को मानव पूँजी की गुणवत्ता में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में जाना जाता हैं। इस कारण से शिक्षा किसी देश के सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कोई भी राष्ट्र अपनी मानव पूँजी को बेहतर शिक्षा प्रदान किए बिना एक स्थायी आर्थिक विकास हासिल करने में सफल नहीं हो सकता हैं। पूँजीगत वस्तुओं, श्रम शक्ति प्रौद्योगिकी और मानव पूँजी में वृद्धि सभी आर्थिक विकास में योगदान दे सकती है। उच्च शिक्षा सभी मानव अधिकारों, सामाजिक अधिकारों, देश के प्रति कर्तव्यों और दायित्वों को समझने में भी हमारी सहायता करता है। शिक्षा हम सभी के उज्जवल भविष्य के लिए आवश्यक उपकरण हैं। उच्च शिक्षा एक समृद्ध सांस्कृतिक और वैज्ञानिक संपत्ति है जो व्यक्तिगत विकास को सक्षम बनाती है और आर्थिक तकनीकी और सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देती है। और छात्रों को लगातार बदलते श्रम बजारों को पूरा करने के लिए आवष्यक कौशल से लैस करती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. Barro, R. (1997), Determinants of economics Growth: a Cross-Sountry Study, MIT Press, Cambrige, U.S.A.
2. Benhabib, J. & Spiegel, M. (1991), The Role of Human Capital in Economics Development: Evidence from Aggregate Cross-country Data'm Journal of Monetary Economise 43,143-174.
3. Government of India (1992) National policy on Education 1986 (Revised). New Delhi: Government of India, Ministry of Human Resource Development.
4. Government of India (1994) Annual Report. New Delhi: Government of India, Department of Education. Ministry of Human Resource Development.
5. Krueger, A & Lindahl, M. (2001), 'Education for Growth: Why and for Whom?', Journal of Economic Literature 39,1101-1136.
6. OECD (1999), OECD science, Technology and industry scoreboard-benchmarking knowledge-based economise, Paris
7. Romer, P. (1990), 'Endogenous Technical Change', Journal of Political Economy, Vol. 89, S71-S102.
8. World Bank (1994b) Higher Education: The Lessons of Experience. Washington DC.
9. तथ्य भारती, आर्थिक मासिकी, अंक-19, फरवरी 2012
10. Journal for Social Development Vol. 3, Oct.-Dec. 2011.
11. कौटिल्य वार्ता, आर्थिक वार्षिक, अंक-29ए वर्ष 2008

संस्कृत काव्यशास्त्र में भाव का स्वरूपः अकबरशाहि श्रृङ्गारदर्पण के विशेष परिप्रेक्ष्य में

डॉ० कृपा भाष्कर सचदेव

सहायक अध्यापक, संस्कृत विभाग, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ० घनश्याम यादव

सहायक अध्यापक, संस्कृत विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय

भाव

भाव शब्द का अर्थ विविध आचार्यो के द्वारा उल्लेखित हैं। किन्तु आधुनिक आचार्यो ने भाव शब्द का अर्थ अंग्रेजी के 'इमोशन' (Emotion) शब्द करते हैं। इमोशन शब्द लैटिन भाषा के एमोवअर (Emovere) से निष्पन्न हुआ है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है, हिला देना या उत्तेजित कर देना। सामान्यतः भाव शब्द मनोविकार मात्र से अधिक क्रियाशील और संवेष्टित होता है। मनोवैज्ञानिक इसे अब भाव शब्द से नहीं बल्कि संवेग शब्द कहते हैं। पाश्चात्य मनोविज्ञानी संवेग (इमोशन) की फीलिङ्ग (Feeling) जिसका हिन्दी पर्याय अनुभूति है। वुडवर्थ प्रत्येक संवेग को अनुभूति कहते हैं।[1]

व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ

भाव शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से प्राप्त होती है-

1. भाव शब्द भू धातु अच् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। भवति इति भावः अर्थात् जो होता है, उसे भाव कहते हैं।
2. भाव शब्द भू धातु णिच्+अच् प्रत्यय के योग से भाव शब्द की उत्पत्ति होती है। भावयति इति भावः अर्थात् जो भावना कराता है उसे भाव कहते हैं।[2]

भाव का कोशगत अर्थ

इस सिद्धान्त का मूलाधार तत्त्व भाव है। जिसका संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में अनेक अर्थ प्रतिपादित है। यथा-भाव- अस्तित्व, विद्यमानता, घटना होना, अवस्था, दशा, हालत, ढंङ्ग, रीति, पद, ओहदा, वास्तविकता, स्वभाव, निजता, झुकाव, विचार, चित्तवृत्ति, प्रेम, प्यार, अनुराग, अभिप्राय, अर्थ, सङ्कल्प, दृढ़ विचार हृदय, आत्मा, मन, पदार्थ, वस्तु, जीव, जीवधारी, भावना, हाव-भाव आचरण, प्रेमोद्योतक हाव-भाव, उत्पत्ति, संसार, दुनिया, गर्भाशय, अलौकिक शक्ति, परामर्श, आदेश, नाटक में किसी पूज्य के लिए सम्बोधन करना, सत्ता, पदार्थ व वस्तु, जीवधारी तरु व्याप्त।[3]

रस, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी और स्थायीभाव का विस्तृत विवेचन कर चुकने के बाद पुनः भावों का वर्णन प्रस्तुत है। वैसे तो स्थायिभावी, अनुभाव और व्यभिचारिभावों के साथ भी भाव का उपयोग हुआ है। भरतमुनि ने 'भाव' शब्द की व्युत्पत्ति भवन्तीति भावाः और भावयन्तीति भावाः दो प्रकार से उल्लेखित किये हैं। जो भविता, वसिता और प्रक्रिता आदि जैसे शब्दों से निर्मित है। अर्थात्

भाव शब्द का अर्थ है 'होना'। भाव दर्शक अथवा श्रोता को अर्थ देता है। इसलिए उसे भाव कहते हैं, क्योंकि यह काव्य या नाटक का विषय, शारीरिक क्रिया और मानसिक भावना दर्शकों और श्रोताओं तक पहुंचाता है। भरतमुनि ने भाव शब्द का लक्षण इस प्रकार किये हैं-

विभावैराहतो योऽर्थो ह्यनुभावैस्तु गम्यते।
वागङ्गसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः।।
वागङ्गमुखरागेण सत्त्वेनाभिनयेन च।
कवेश्चान्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते।।
नानाभिनयसम्बद्धान् भावयन्ति रसानिमान्।
यस्मात्तस्मादमी भाव विज्ञेया नाटययोक्तृभिः।।[1]

अर्थात् जो अर्थ विभावों के द्वारा उद्धृत होकर अनुभावों, वाचिक, आङ्गिक और सात्त्विक अभिनयों के द्वारा प्रस्तुत होता है। उस प्रतीति को भाव कहते हैं। अभिनयादि द्वारा कवि के अन्तर्गत भाव को अभिव्यक्त (भावित) वासनाजन्य रागदेशकाल परिस्थिति के अभाव में, भावन अथवा आस्वादन, मुखराग, अङ्ग, सत्त्व, चित्त की एकाग्र करने वाले हेतु को भाव कहते हैं। विविध प्रकार के वाचिक, आङ्गिक, सात्त्विक अभिनयों से सम्बन्धित रसों का भाव कराये अर्थात् दर्शक, श्रोता और सहृदयों को बोध कराये। उसे नाट्यज्ञाता भाव कहते हैं।

भावित, वासित, कृत शब्द का कोशगत अर्थ आचार्य भरतमुनि ने भू इति करणे धातु से भाव शब्द निष्पन्न होता है। जिसका समानार्थक अर्थ भावित, वासित कृत माना है।[2] 'भावित' शब्द के कोशगत अर्थ- रचा हुआ, प्रकट किया गया, पोसा हुआ, विचारना, सोचना, कल्पना करना, शुद्ध करना, सिद्ध होना, स्थापित करना, व्याप्त होना, परिपूर्ण होना, उत्साहित, भीगना, सुगन्धित, मिलाना, मिश्रित करना आदि। वासित शब्द के कोशगत अर्थ- सुवासित, भिगोना, भिगोया हुआ, तर, सुस्वादु बनाना आदि। कृत शब्द के कोशगत अर्थ- कार्य, कर्म, क्रिया, उद्देश्य, प्रयोजन, फल, परिणाम, किया हुआ, पूर्ण करना आदि।[3]

काव्यप्रकाशाकार ने भावों का जो निरूपण किया है वो उन प्रकृत भाव पदार्थों से भिन्न है। आचार्य मम्मट ने उसका लक्षण निम्नलिखित प्रकार से करते हैं-

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाऽञ्जितः।[1]

अर्थात् देवादि विषयक रति (समस्त स्थायिभाव) तथा व्यञ्जित (व्यङ्ग्य) व्यभिचारी भाव को भाव कहते हैं। इस कारिका में आदि शब्द का भावार्थ मुनि, गुरु, राजा एवं पुत्र आदि हैं। विभावादि के द्वारा मुख्य रूप से व्यञ्जित अथवा व्यक्त कान्ता विषयक रति होने पर शृङ्गार होता है। कारिका में रति को उपलक्षण वर्णित करके समस्त स्थायीभावों के विषय में संकेत किया गया है। अर्थात् रसावस्था को अप्राप्त होने वाला रति आदि स्थायीभाव ही जहाँ सामाजिकों सहृदयों के आस्वादन, आनन्दानुभूति का विषय होता है वहाँ रति आदि को भाव कहते हैं।

व्यभिचारी तथाऽरञ्जितः का तात्पर्य किसी काव्य में व्यभिचारी ही मुख्यतया व्यङ्ग्य हो तो विभावादि के द्वारा पुष्टि करके व्यभिचारी भाव को भाव माना जाता अर्थात् काव्य को भावध्वनि इन व्यभिचारी भाव को इस प्रकार समझ सकते हैं। किसी राजभृत्य के विवाह में सम्राट के अपेक्षा भृत्य की प्रधानता मानी जाती है। अतः भाव शब्द के दो अवस्थायें हैं- 1. रसावस्था को अप्राप्त होने वाला स्थायीभाव अर्थात् देवविषयक रति अथवा कान्ताविषयक रति आदि। 2. विभावादि से पुष्ट व्यञ्जित व्यभिचारीभाव।

भरतमुनि का मानना है कि विभाव के द्वारा अभिनय का विज्ञान अथवा विशिष्ट ज्ञान का बोध हो या विभावित हो अर्थात् विविध भावों का ज्ञान हो उसे विभाव कहा जाता है।[2] वाचिकादि अभिनयों से साङ्गोपाङ्ग से प्रयुक्त अर्थों का अनुभूति या अनुभावित कराये वहाँ अनुभाव होता है।[1] भाव के मुख्यतः तीन भेद प्राप्त होते है। स्थायीभाव, व्यभिचारीभाव अर्थात् आठ स्थायीभाव, तैंतीस व्यभिचारीभाव, आठ सात्त्विक भाव ये 49 भाव काव्यरसशास्त्र के हेतुभूत है। अतः व्यभिचारीभाव वि और अभि उपसर्ग से गत्यर्थक 'चर' धातु से उत्पन्न होता है। जिसका अर्थ होता है चलना अथवा गतिशील होना अर्थात् अनेक प्रकार के रसों में उन्मुख होकर सञ्चरण या विचरण करना। यही भावों से रस की उत्पत्ति होती है अर्थात् भाव रसों का बोध कराता है।

भावप्रकाशनकार शारदातनय के अनुसार भाव अनुकार्य रामादि के सुख-दुःख भावों से सहृदय के हृदयस्थ भावों के भावन को भाव कहा जाता है।[2] पुनश्च भाव शब्द की व्युत्पत्ति दो तरह से की गयी है- भूतिः भावयतीति वा, भवनमिति भूतिः भू+क्तिन् धातु क्तिन् प्रत्यय अर्थात् जो होता है वह भाव या जो भावित करता है वह भाव है।

तात्पर्य यह है कि भू धातु से होने के अर्थ में अर्थात् जो होता है या भावित करता है वह भाव है। भवनमिति भूतिः (भू+क्तिन्) इसका आशय है कि भू धातु से ही करने के अर्थ में अर्थात् व्याप्त करने वाला होता है। शारदातनय का मानना है कि भाव शब्द के पाँच भेद हैं। पदार्थ, क्रिया, सत्ता, विकार व मानस यथासंख्यानुसार विभाव, अनुभाव, स्थायीभाव, व्यभिचारीभाव सात्त्विक भाव ये पाँच प्रकार के भाव है। यथा-

पदार्थो वा क्रिया सत्ता विकारो मानसोऽथवा।
विभावश्चानुभावाश्च स्थायिनो व्यभिचारिणः।
सात्त्विकाश्चेति कथ्यन्ते भावभेदाश्च पञ्चधा।।[3]

दशरूपककार भाव शब्द निरूपण करते हुये माना है कि 'सुखदुःखादि कैर्भावैर्भास्तृद्भावनम्'[1] अर्थात् नाट्य आदि रामादि का आश्रय मानकर विवेचित सुख-दुःख आदि भावों के द्वारा भावक (रसिक) के अन्तःमन को भावित (वासित) करे उसे भाव कहते हैं।

इसी प्रकार विश्वनाथ ने भाव का स्वरूप विवेचन करते हुए कहा है कि- 'निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया'[2] अर्थात् निर्विकार चित्त में प्रथम बार प्रतीति होने वाली विक्रिया को भाव कहते हैं। इन्होंने भाव को तीन भागों में विभाजित किये- 1. स्थायीभाव, 2. व्यभिचारीभाव, 3. सात्त्विकभाव।

इसी तरह पद्मसुन्दरगणि ने अकबरसाहिशृङ्गार दर्पण में भाव शब्द का विस्तृत वर्णन किया गया है।

पूर्वं रसेषु ये भावाः संक्षिप्योक्ता विभागशः।
स्वतन्त्रतोऽपि ते चात्र वर्ण्यन्ते संमताः सताम्।।[3]

अर्थात् रसों में रहने वाले, सज्जनों को सम्मत भाव पहले संक्षिप्त रूप में कहे गये थे उन्हीं भावों को अब एक एक करके वर्णन किया जा रहा है।

भावों के भेद

एते रत्यादयो भावा रसाभिप्रायसूचकाः।
स्थायिसात्त्विकसञ्चारिभेदैः पञ्चाशदेव ते।।[4]

अर्थात् यह रति आदि भाव, रस के अभिप्राय को सूचित करते हैं। यह स्थायिभाव, सात्त्विकभाव, संचारिभाव के भेदों से ५० प्रकार के हैं।

चित्ते न संस्थिते भावाः सङ्कीर्णाः सम्भवन्त्यपि।
प्रायो रत्यादयो यद्वत्तथाप्येते निरूपिताः।।[1]

शृङ्गार रस के संचारी/व्यभिचारी भाव

स्मृतिर्धृतिर्भयं चिन्तासूयाशङ्कारुजामुदः।
ग्लानिश्च विस्मयौत्सुक्ये लज्जोन्मादौ रतिस्तथा।।[2]

अर्थात् स्मृति, धैर्य, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, शंका, रोग, खुशी, ग्लानी, विस्मय, उत्सुकता, शर्म, उन्माद, एवं रति इत्यादि।

जाड्यं विषादश्चापल्यमवहित्था मतिस्तथा।
निद्रेति भावाःशृङ्गारे बोद्धव्या व्यभिचारिणः।।[3]

अर्थात् आलस, शोक, चपलता, पाखण्ड, मति, निद्रा आदि भावों कोशृङ्गार रस के व्यभिचारी भाव माने गये हैं।

हास्य रस के संचारी/व्यभिचारी भाव

चापल्यं च श्रमो निद्रा ग्लानिः स्वप्नोऽप्यसूयया।

युक्ता शङ्कावहित्थेति भावा हास्ये भवन्त्यमी।।[4]

अर्थात् चपलता, श्रम, निद्रा, ग्लानि, स्वप्न, ईर्ष्या, युक्ति, शंका, पाखण्ड, आदि भाव हास्य रस में होते हैं।

करुण रस के संचारि/व्यभिचारी भाव

निर्वेदो जडता चिन्ता ग्लानिर्दैन्यं रुजा धृतिः।

एते भावाः प्रयोक्तव्याः करुणे भावकोविदैः।।[5]

अर्थात् भावों को जानने में निपुण कवि जनों ने निर्वेद, जड़ता, चिन्ता, ग्लानि, दीनता, रोग, धैर्य आदि भावों को करुण रस में माने हैं।

रौद्र रस के संचारी/व्यभिचारी भाव

प्रमोदो गर्व उत्साहोऽसूया चापल्यमुग्रता।

मदो वेग इमे भावा रौद्रे ज्ञेया विचक्षणैः।।[1]

अर्थात् विचक्षण लोगों को प्रमोद, गर्व, उत्साह, ईर्ष्या, चञ्चलता, उग्रता, मद, वेग आदि भाव रौद्र रसमें होने . वाले जानने चाहिए।

भयानक एवं वीर रस के संचारि/व्यभिचारी भावः

प्रतिबोधस्तथामर्षोऽसूया क्रोधो धृतिर्मतिः।

वितर्कश्चाश्रुसंमोहो हर्षशोकौ मदस्मयौ।।[2]

अर्थात् प्रतिबोध (शोध), रोष, ईर्ष्या, क्रोध, धैर्य, बुद्धि, वितर्कता, अश्रु, सम्मोहन, हर्ष, शोक, मद, आश्चर्य इत्यादि।

आवेगश्च तथोग्रत्वं वीरे भावा इमे स्मृताः।

वचनीयं च संत्रासो मरणं स्युर्भयानके।।[3]

अर्थात् आवेग, उग्रता, आदि. भाव वीर रस में होते हैं। तथा निन्दा, सन्त्रास, मृत्यु आदि भाव भयानक रस में होते हैं।

बीभत्स रस के सञ्चारि/व्यभिचारी भाव

भयं विषादोऽपस्मारो रोगोन्मादौ मतिर्मदः।

बीभत्ससंभवा विखिर्भावास्त्वेते प्रकीर्तिताः।।[4]

अर्थात् भय, खेद, मूर्छा, रोग, उन्माद, मति, मद आदि भाव बीभत्स रस में होते हैं ऐसा विद्वान् कहते हैं।

अद्भुत रस के सञ्चारि/व्यभिचारी भाव

जाड्यं मोहस्तथावेगो मतिर्हर्षश्च विस्मयः।

इति भावा निगद्यन्ते रसे कविभिरद्भुते।।[1]

अर्थात् प्रमाद, मोह, आवेग, मति, हर्ष, विस्मय, आदि भाव कविजनों ने अद्भुत रस में उत्पन्न कहे हैं।

सञ्चारिण इमे ज्ञेया भावाः प्रतिरसं श्रिताः।

सात्त्विका एत एव स्युः सर्वेऽखिलरसाश्रयाः।।[2]

अर्थात् प्रत्येक रस के ये सञ्चारी/व्यभिचारी भाव जानना चाहिए। यही सारे भाव जब सब मिलकर (अखण्ड रूप में) रस का आश्रय करते हैं तब सात्त्विक कहलाते हैं।

संदर्भ

1. सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, राजनाथ शर्मा, पृष्ठ 352-353
2. संचारी भावों का शास्त्रीय अध्ययन, रघुवीर शरण, पृ.सं. 02
3. वही, पृ.सं. 02
4. वही, पृ.सं. 02
5. नाट्यशास्त्र 7/1-3
6. नाट्यशास्त्र, भाग-2, पारसनाथ द्विवेदी, पृ.सं. 243
7. संचारी भावों का शास्त्रीय अध्ययन, रघुवीर शरण, पृ.सं. 03
8. काव्यप्रकाश 4/35
9. नाट्यशास्त्र 7/1-3
10. वहवोऽर्था विभाव्यन्ते .... इति संज्ञितः।
11. वही 7/5
12. वागङ्गाभिनयेनेह .... ततः स्मृतः।
13. भावप्रकाशन 1/12
14. भावः स्याद्भावनं भूतिरथ भावयतीति वा।
15. वही 1/13
16. दशरूपक 4/4
17. साहित्यदर्पण 3/93
18. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/59
19. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/60
20. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/61
21. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/62
22. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/63
23. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/64
24. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/65
25. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/66
26. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/67
27. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/68
28. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/69
29. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/70
30. अकबरशाहिशृङ्गारदर्पण, 4/71

भारतीय अध्यात्मवाद और बाबा फरीद: एक समीक्षा

अनीता कुमारी

श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश:

भारत आरम्भ से ही विश्व गुरु रहा है। जिसमें मुनियों पीरों ने अपने अनुभवों से मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। पंजाब की धरती पर गुरु ग्रन्थ साहिब जैसे विश्व विख्यात पावन ग्रन्थों का सम्पादन इसी धरती पर हुआ। शेख़ मसूद फरीदुद्दीन गंज-ए-शक्कर को बाबा फरीद, शेख़ फरीद इत्यादि नामों से जाना जाता है। उन्होंने मध्यकालीन पंजाब तथा हरियाणा क्षेत्र में चिश्ती सिलसिले के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। सूफी साहित्य, 'मल्फूजात' में शेख के विषय में विस्तार से वर्णन मिलता है। उनकी गणना सबसे प्रमुख और महत्वपूर्ण सूफियों में की जाती है। सूफियो के व्यक्तिगत चरित्र, जिसमें अल्लाह की भक्ति में विश्वास, एकान्तवास भाईचारे की भावना को फैलाना, अन्य धर्मों के प्रति सहनशीलता रखना, लंगर की प्रथा, हिन्दवी भाषा को प्रोत्साहित करना, तत्कालीन राजनीति में हस्तक्षेप न करना, भविष्यवाणी करना इत्यादि गुणों के कारण समाज में उनकी छवि एक पवित्र आत्मा के रुप में जानी जाती है। हिन्दुस्तान में चिश्ती सिलसिले को स्थायित्व बाबा फरीद के बाद ही प्राप्त हुआ।

कुंजी शब्द- 'खिरका' (वस्त्र), 'सज्जदाह' (इबादत करने की चटाई), 'ताल्लीन-ए-चुबीन' (पैरों में पहनने वाली चप्पल), 'तसबिह' (माला, सुमरिनी), 'असा' (छड़ी), 'जिनबिल' (भीख मांगने का कटोरा)

प्रस्तावना- चिश्ती सिलसिले में कोई भी सन्त अध्यात्मिकता और तपस्या में बाबा फरीद से श्रेष्ठ नहीं था। उनका जीवन तपस्या, इबादत और जागरण से परिपूर्ण था। शेख फरीदुद्दीन, जमालुद्दीन सुलेमान के पुत्र थे, जो फारूखशाह काबुली के वंशज थे। इनका जन्म रमजान के महीने में दीपालपुर के पास कोठीवाल नामक स्थान पर हुआ जिसका प्राचीन नाम अजोधन था 1163-1164 ई. में मुल्तान के समीप कोठेवाल नामक गांव में हुआ था। इनके दादा का नाम 'काजी' शुहेब था। जो फरगना के दक्षिण में औश नामक कस्बे से थे और उन्होनें गजनवी सुल्तान के अधीन लाहौर में शरण ली थी।

इनकी माता का नाम करसूम बीबी था, जो बहुत उच्च विचारों की महिला थीं। करसूम बीबी के पिता यानि बाबा फरीद के नाना का नाम शेख वजीहूद्दीन खोजेन्दी था, जो अपने समय के बहुत बड़े सूफी थे। चूंकि वह स्वयं भी एक सूफी परिवार से सम्बंध रखती थी, अत: यह उनके लालन-पालन का ही परिणाम था, कि फरीद का रुझान सूफीवाद की ओर हुआ। वह बाबा फरीद की पहली अध्यात्मिक गुरु थी। जहां तक शिक्षा का सम्बंध है बाबा फरीद की आरम्भिक शिक्षा उनके जन्म स्थान कोठेवाल में हुई। उन्होंने अपनी उच्च शिक्षा मुल्तान में मौलाना मिन्हाजुद्दीन त्रिमिजी के मदरसे से प्राप्त की, क्योंकि उस समय मुल्तान, इस्लामी ज्ञान का एक बड़ा केन्द्र था। तीक्ष्ण बुद्धि का होनें के कारण उन्होनें 'मदरसें' में पढ़ाई जाने वाली 'कुरान' को शीघ्र ही याद कर लिया। यह स्थान इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि दिल्ली के प्रसिद्ध चिश्ती सूफी शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से उनकी मुलाकात इसी मदरसे में हुई। वे बाबा फरीद की अध्यात्मिकता और भक्तिभाव से इतने प्रभावित हुए कि उन्हे अपनी अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् दिल्ली आने को कहा बाबा फरीद ने लगभग 18 वर्षो तक गजनी, बगदाद शरीफ, यरूशलम, अफगानिस्तान, सीरिया ईरान मक्का मदीना इत्यादि धार्मिक स्थानों की यात्राएँ की। इस यात्रा के दौरान उन्होंने विभिन्न सूफियों से मुलाकात की। जिसके कारण उसके अध्यात्मवाद को बढावा मिला।

दिल्ली आकर बाबा फरीद ने ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, को अपनी अध्यात्मिकता और गुरू भक्तिभाव से प्रभावित किया। बाबा फरीद की आध्यात्मिकता से प्रभावित होकर उन्हें चिश्ती सिलसिले में दीक्षित किया। कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, बाबा फरीद को अपना मुर्शीद बनाकर बहुत गौरवान्वित महसूस करते थे। बाबा फरीद ने अपने पीर के संवादों को 'फवाईद-उस सलातिन' में संकलित किया है।

एक बार ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती जब दिल्ली आए तो, उनकी अध्यात्मिकता को देखते हुए उन्होंने शेख़ कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, से बाबा फरीद को कुछ अध्यात्मिक वस्तुएँ प्रदान करने को कहा। यह वस्तुएँ केवल अपने प्रिय मुरीद को दी जाती थी। इस पर शेख़ कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने अपने पीर ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती से कहा कि "आपके होते हुए मैं ऐसा करने की हिम्मत नहीं कर सकता।'' यह एक असाधारण सम्मान था। न तो इससे पूर्व और न ही इसके बाद किसी सूफी ने प्राप्त किया था।'' ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ने बाबा फरीद की एक दिए के रूप प्रंशसा करते हुए कहा कि कि शेख़ फरीद दरवेश होकर लोगों को प्रकाशित करेंगे। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती का मानना था कि शेख़ फरीद दरवेश होकर लोगों को प्रकाशित करेंगे।

जब बाबा फरीद एक पवित्र 'दरवेश' के रूप में प्रसिद्ध होनें लगे तो लोगों की भीड़ उन्हें देखकर उनके आस पास इकट्ठा हो जाती थी, जिसे शेख ने अपनी भक्ति-भावना व योग-साधना में रुकावट माना अत: उन्होंने दिल्ली छोड़कर हांसी में रहने का निश्चय किया। चूंकि हांसी उस समय एक सैनिक छावनी था, अत: शेख फरीद को लगा कि वह यहाँ लोगों द्वारा अपना ध्यान भंग न किए जाने के कारण अपनी आध्यात्मिक क्रियाओं को पूर्ण कर सकते है, शेख़ कुतुबुद्दीन बख्तियार की इच्छा थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी व्यक्तिगत वस्तुएं जैसे 'खिरका' (वस्त्र), 'सज्जदाह' (इबादत करने की चटाई), 'ताल्लीन-ए-चुबीन' (पैरों में पहनने वाली चप्पल), 'तसबिह' (माला, सुमरिनी), 'असा' (छड़ी) आदि शेख फरीद ही ग्रहण करें। ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने 'शेख' फरीद से अपनी अंतिम मुलाकात के दौरान अपनी प्रार्थना चटाई देते हुए कहा था कि 'मैं तुम्हारी अमानत जैसे सिजदा, खिरका, पगड़ी और खड़ाऊ शेख हमीदुद्दीन नागौरी के पास छोड़ दूंगा, जो मेरी मृत्यु के पांच दिन बाद तुम्हें प्रदान करेगा। इन्हें संभाल कर रखना। मेरा 'मुकाम'(मंजिल) वास्तव मे तुम्हारा 'मुकाम' (मंजिल) है।

शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के निधन के अवसर पर जब शेख फरीद दोबारा दिल्ली आये थे, परन्तु जब लोगो की भीड़ जमातखाना मे इकठ्ठी होने लगी जिसे देखकर उन्हे अच्छा नही लगता था कि लोग उनकी दशा देख परेशान हो. अत: वो वापिस हांसी लौट आये। ऐसा इसलिए भी माना जाता है कि दिल्ली की बजाय हांसी में लोग आसानी से शेख से मिल सकतें थे।

हांसी मे रहकर शेख फरीद ने अध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा की शुरुआत की। इसी दौरान शेख जमालुद्दीन ने बाबा फरीद का शिष्यत्व ग्रहण किया। वह शेख़ फरीद के सबसे प्रिय शिष्यों में से एक थे। जिसके कारण शेख़ 19 या 20 वर्ष हांसी में रुके। हांसी में मौलाना नूर तुर्क के कारण शेख फरीद के पास लोंगों की भीड़ जमा होने लगी। अत: हांसी में जमालुद्दीन को अपना प्रतिनिधि बनाकर वे पहले कोठेवाल व फिर अजोधन में स्थाई रूप से रहने लगे।

शेख़ जमालुद्दीन के अलावा शेख़ फरीद के मुरीदों में शेख़ निजामुद्दीन औलिया, शेख़ बदरुद्दीन इशाक, शेख़ अलाउद्दीन कल्यार प्रमुख मुरीद थे, जिन्होंने चिश्ती सिलसिले को भारत के कोने-कोने में फैलाया। न केवल चिश्ती बल्कि अन्य सिलसिलों के सूफी जैसे, शेख जलालुद्दीन तबरीजी (सुहरावर्दी सिलसिले के सूफी) भी शेख फरीद को एक महान दरवेश के रूप में देखते थे। 1265 ई. में शेख फरीद का देहान्त हो गया।

जहां तक बाबा फरीद बहुत ही साधारण जीवन व्यतीत करते थें। वे घास-फूस के बने घर में रहते थे तथा उन्होनें अपने परिवार के लिए भी कच्चे घर का निर्माण करवाया था। उनका मानना था कि, उनका खुद का घर ही उन्हे अध्यात्मवाद की ऊँचाईयों की ओर ले जाता है। वह स्वयं के प्रयोग हेतु वस्त्र भी नाममात्र के ही रखते थे। वह एक कम्बल का ही प्रयोग करते थे, जिसे दिन में नीचे बिछा लेते थे तथा रात में ओढ़ लेते थे।

बाबा फरीद की विभिन्न पत्नियाँ थीं और बड़ा परिवार था। उनके पास पर्याप्त साधन नहीं थे लेकिन उन्होंनें विवाह को आध्यात्मवाद में कभी बाधा नहीं माना। उनके पास इतना पर्याप्त धन नही था कि, वह अपने परिवार का गुजारा कर सके। गरीबी के कारण उनके बहुत बच्चों की मृत्यु तो अल्पायु में हो गई। उनके एक पुत्र की मृत्यु तो भुखमरी के कारण हो गई थी। उनके पास उनका अन्तिम संस्कार करने के भी उपर्युक्त साधन नही थे। इसलिए उन्होनें अपनी पत्नी को अपने मृत पुत्र को चील-कौओं के लिए छोड़ने के लिए कहा। बाबा फरीद धन एकत्रित करने के बजाए मांग कर खाने में विश्वास करते थे इसके लिए उन्होनें

अपने मुरीदों के लिए 'जिनबिल' (भीख मांगने का कटोरा) रखने की परम्परा की शुरुआत की। यह खजूर के पत्तों से बनी हुई एक टोकरी होती थी, जिसे गलें के चारों तरफ लटकाया जाता था। 'जमातखाना' के अनुयायी दिन में दो बार यह लेकर 'फुतूह' मांगने जाते थे और सभी मिलकर इसका उपभोग करते थे। वे राजनीति से दूर रहते थे, तथा अपन मुरीदों को भी दूर रहने की सलाह देते थे क्योंकि उनका मानना था कि राजनीति अध्यात्मवाद में बाधा डालती है। शेख फरीद ने अपने शिष्य सिद्दी मौला से कहा था कि, ''मेरे एक सुझाव पर ध्यान रखना। बादशाहों, अमीरों को मित्र बनाने से परहेज करना तथा इस स्थान पर इनका आगमन घातक समझना। उन दरवेशों का अन्त दु:खद हुआ था, जिन्होंने शासकों व अमीरों को अपना मित्र बनाया।

'खानकाह,' जिसे चिश्ती सिलसिले में 'जमातखाना' के नाम से जाना जाता था, सूफी रहस्यवाद के एक मजबूत संस्थान के रुप में जानी जाती थी 'खानकाह' में मुरीद मुख्यत: दो प्रकार के कर्तव्यों का निर्वाहन करते थे; पहला व्यक्तिगत और दूसरा सार्वजनिक। कुछ अनुभवी मुरीदों को 'जमातखाना' की दैनिक गतिविधियों का रखवाल नियुक्त किया जाता था। बाबा फरीद ने शेख़ बदरुद्दीन इशाक को अपना संरक्षक नियुक्त किया हुआ था, वह 'जमातखाना' में दिन-रात आने वाले आगन्तुकों के रहने की व्यवस्था करते थे। वह बहुत ही भावुक व्यक्ति थे। जब वह आगन्तुक का स्वागत करते थे तो अक्सर उनके 'आंसुओं से प्रार्थना की चटाई गीली हो जाती थी'। उनके पुत्र शेख़ मूसा और उनके भाई सैयद मुहम्मद ईमाम अक्सर निजामुद्दीन औलिया की 'खानकाह' में होने वाली धार्मिक गतिविधियों में हिस्सा लेते थे। सूफी सन्त लोगों की भौतिक व आध्यात्मिक जरूरतों को पूरा करने की कोशिश करते थे। यद्यपि सभी समस्याओं का हल उनके बस में नहीं होता था, पर फिर भी लोग 'खानकाह' से खाली वापिस नहीं जाने की उम्मीद रखते थे। चिश्ती सूफियों के विपरित सुहरावर्दी सूफियों की 'खानकाह' में प्रत्येक व्यक्ति नहीं जा सकता था। वहाँ केवल चयनित व्यक्ति ही आध्यात्मिक उपकार पा सकते थे। सुहरावर्दी शेख़ बहाउद्दीन जकारिया के मुरीद उन्हे 'अस सलाम अलोकुम' से सम्बोधित करते थे। वह चिश्ती सूफियों की शेख़ के सामने सिजदा प्रथा (झुककर नमस्कार करना) का खंडन करते थे। जिससे 'खघनकाह' में रहकर पीर और मुरीद का आपसी संबंध मजबूत होता था। शेख़ फरीद अपने मुरीद को 'खिलाफतनामा' प्रदान करते थे। अपने प्रिय खघ्लीफा को अपनी व्यक्गित वस्तुएं तथा शेख़ शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी द्वारा लिखित 'अवारिफ उल मवारिफ' की प्रति देते थे। क्योंकि इस पुस्तक में मुरीद बनाने के सारे निय कानून दिए हुए थे। बाबा फरीद ने अपने अध्यात्मवाद में योगियों के हठ-योग को भी अपनाया था।

सूफी सन्त फकीरी का घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करते थे, तो उनका मानना था कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमना, सूफी रहस्यवादी अनुशासन का एक अर्न्तसम्बन्धित सिद्धान्त था। सूफियों का मानना था कि इससे एक तो रहस्यवादी भिन्न-भिन्न स्थितियों व परिवेश में रहने वाले भिन्न-भिन्न स्वभावों के व्यक्तियों के सम्पर्क में आता था, जिससे मानवीय प्रवृत्ति से सम्बन्धित उसके ज्ञान में वृद्धि होती थी। दूसरे, जब एक सूफी अपनी यात्रा करने के अलावा ये संत 'खानकाह' व सामुदायिक जीवन पर भी बड़ा प्रभाव पडता है। सूफियों के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर शासकों व अमीरों ने 'मकतबों,' 'मदरसों', 'मस्जिदों' और 'खानकाहों का निर्माण करवाया जो फारसी व अन्य भाषाओं के ज्ञान व प्रसार के केन्द बने।

इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि सूफियों ने हिन्दू पद्यतियों को भी अपनाया जिसके कारण भी दोनों सांस्कृतियों में समन्वय हुआ। चिश्ती और कलंदरिया सिलसिलों के सूफी कुछ गैर-इस्लामिक प्रथाओं और आध्यात्मिक अभ्यासों को अपनाने के अपने दृष्टिकोण में सुहरावदिर्यों से भिन्न थे। मध्यकालीन भारत में एक बहुलवादी समाज के निर्माण में धर्म और संस्कृति के समन्वय और संश्लेषण में सूफियों के योगदान ने एक लम्बा सफर तय किया। उन्होंने उन अभ्यासों को अपनाया जिनका कुरान की शिक्षाओं के साथ विरोधाभाष नहीं था, भले ही उनका मूल ब्राह्मणवाद, बौद्ध धर्म में था। सूफियों की तरह हिन्दूवाद में भी ईश्वर की प्राप्ति के लिये एक शिष्य को गुरु का सहारा लेना पडता है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भारत में सूफियों का सर्वप्रथम सम्पर्क नाथपंथियो से हुआ। तुर्की, सीरिया, मिस्त्र आदि जगह से आए हुए सूफी यहाँ के योगियों से प्रभाावित हुए। बाबा फरीद के 'जमातखाने' की सभाओं में चर्चा होने वाले विषय सिद्ध-योगियों, जिनके विचार हठ-योग से प्रेरित थे, उनके लिए दिलचस्प होते थे। वे खानकाह में योगियों से वाद-विवाद भी करते थे। उन्होंने पतंजली के हठ-योग को अपने अध्यात्मवाद में शामिल किया था।

बाबा फरीद की मजार पाकिस्तान के पाकपतनम् में स्थित होने के बावजूद भी हरियाणा के वर्तमान परिपेक्ष्य में सूफी परम्पराओं में उनका बहुत योगदान है। आज भी हांसी के 'चहार-कुतुब' कें प्रांगण में वह स्थान उपलब्ध है जहाँ वे 'चिल्ला-ए-मश्क' निभाते थे। जिस पेड़ के नीचे बाबा फरीद अराधना करते थे, वह पेड़ 1947 के पश्चात् नष्ट हो गया। उनके द्वारा रचित दोहे आज भी भारत के हर गुरुद्वारे में दोहराऐ जाते हैं। जो भाईचारा, एकता, मिश्रित संस्कृति का संदेश देते हैं। बाबा फरीद की वाणी बहुत सरल और

जनसाधारण की भाषा थी और लोकप्रिय थी। उनकी भाषा उनके विचारों की अनुभूति को व्यक्त करनें में सक्षम हैं। जिसके कारण आज भी हर जाति, वर्ग, समुदाय लोग उन्हे बहुत मानते है। बाबा फरीद की वाणी पंजाबी के साथ-साथ खड़ी बोली में भी है, इसलिए हिन्दी साहित्य के इतिहासकार उन्हें पंजाब का प्रथम हिन्दी कवि मानते हैं और हिन्दी और पंजाबी के आरम्भिक कवि-सन्तों में स्थान देते हैं। बाबा फरीद की समां में आम बोलचाल की भाषा हिन्दवी थी। यह कहना उचित होगा कि शेख फरीद की वाणी, जो हमें 'गुरु ग्रंथ साहिब में श्लोक शेख फरीद जी' शीर्षक से मिलती है। उनकी वाणी को जिनकों गूर नानक देव जी ने उनकी गद्दी पर पर विद्यमान 72 वें उतराधिकारी शेख इब्राहिम से ग्रहण की। जिसको गुर अर्जुन देव जी ने ग्रन्थ साहिब ने 72 श्लोक, 4 शब्द, 2 राग सूही तथा 2 राग ललित में सम्मिलित किया।

वह हिन्दी तथा पंजाबी की सर्वप्रथम रचना है। बाबा फरीद की विचारधारा और भक्ति विचारधारा में बहुत समानता दिखाई देती है। उसके मुख्य उपदान है- गुरु, महात्मा, नाम-स्मरण, प्रार्थना (नमाज), परमसत्य के प्रति व्याकुल प्रेमातुर, संसार की क्षण भंगुरता और जीवन के प्रति सहजता और सरलता के प्रति आग्रह। बाबा फरीद के अनुसार संसार के दुख:मय जीवन का अनुभव करना भारतीय बौद्धमत के अनुरुप प्रतीत होता है। वास्तविकता तो यह है कि सूफियों का रहस्वाद ग्रन्थोक्त न होकर साधन मूलक है-अनुभूतिमूलक है। जिसके कारण वह धर्म और जाति से परे हो जाते हैं। उनके द्वारा रचित दोहे आज भी गाए जाते हैं। जो निम्नलिखित हैं-

1. बुढा होआ शेख फरीद कांबण लागी देह।
जे सउ बरिया जीवण भी तनु होसी खेह।।

(भावार्थ यह है शेख फरीद धीरे-धीरे अब बूढ़ा होने लगा है और उसकी आत्मा भी कांपने लगी है। जो हर बार तुझे जीने के लिए इच्छा करता है उसे तो इक दिन राख हे जाना है। उनका मानना था कि शरीर नश्वर है। सूफी शरीर की नश्वरता में विश्वास रखते हैं।)

2. सैख हैयाति जगि न कोई थिरु रहिआ।
जिसु आसणि हम बैठे केते बैसी गइआ।।

(भावार्थ यह है कि यदि कोई सौ वर्ष भी जी ले तब भी अन्त में उसे मरना ही है। उसे मिट्टी में मिल जाना है। यह संसार भी क्षणभंगुर है। यहाँ किसका अस्तित्व स्थिर रहा है। जिस आसन पर हम बैठे हैं उस पर न जाने कितने बैठ चुके हैं।)

3. फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख।
जिन खादी चुपडी रोटी घणे सहनिगे दुख।।

(भावार्थ: बाबा फरीद कहते है कि मेरी रोटी काठ की है जो मेरी भुख को कम कर देती है। जब मैने दूसरों की चुपडी रोटी खाई तो मुझे बहुत दु:खों का सामना करना पड़ा। बाबा फरीद कहते है कि एक सूफी को सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए किसी कि समृद्धि को देखकर उससे ईर्ष्या नही करनी चाहिए जो उसके पास है उससे ही संतुष्ट होना चाहिए)

4. उठु फरीदा उज्र साजि सुबह निवाज गुजारि।
जो सिरु साई ना निवै सो सिरु कपि उतारि।।

(भावार्थ यह है कि बाबा फरीद का मानना है कि मनुष्य को नमाज करना चाहिए जो सर परमात्मा के सामने नहीं झुकता उसे काट देना चाहिए।)

5. पहिले पहिरे फुलडा फलु भी पछा राति
जे जगन्हि लहनि से साई कंनो दाति।।

(भावार्थ यह है कि बाबा फरीद का मानना है, कि साधना के प्रथम प्रहर में फूल ही दिखाई दे सकते हैं। फल तो उसके अंतिम प्रहर में प्राप्त होता है। अत: साधना की रात में जागते ही रहना होता है। तभी परमात्मा का सानिध्य प्राप्त होता है।

6. फरीदा खाक न निंदीए खाकू जेडु न कोई।
जीवंदिआ पैरा तले मुइआ उपरि होई।।

(भावार्थ यह है कि बाबा फरीद संसार में सबसे तुच्छ पदार्थ समझने वाले वाले भी तुच्छ नहीं हैं। धूल के कण को हम अति तुच्छ समझते हैं। परन्तु इससे महान कुछ नहीं है। जो धूल जीते जी पैरो तले रौदी जाती है। वही धूल मृत्यु के पश्चात् हमारे ऊपर डाली जाती है। अर्थात् कब्र में दफनाते समय यही धूल हमें ढ़क लेती है। इसलिए हमे किसी भी इंसान और वस्तु को तुच्छ नहीं समझना चाहिए।)

7. जौं तैं मारण मुक्कियाँ, उनां न मारों धुम्म।
अपनडे घर जाईए, पैर तिना दे चूम।।

यदि आपको कोई घूँसा भी मार दू तो भी उसे पलट कर मत मारो। उसके पैरों को चूमों तथा अपने घर की राह लों।। इस दोहे में मनुष्य को सहनशील होने का पाठ पढाया है। दोहो के माध्यम में शेख ने ईश्वर की सार्वभौमिकता के विषय में बताया है ओर कहा है कि जीवन के सारे दु:खों से केवल ईश्वर ही बाहर निकाल सकता है, इसलिए ज्यादा से हमे ईश्वर का सुमिरन करना चाहिए।

सभी सिलसिलों के सूफी, महिलाओं का बहुत सम्मान करते थे। ज्यादातर समाज के लोग उनके अधिकारों के विषय में नहीं सोचते थे, और मानते थे कि औरतों को किसी भी मसले पर बोलने का अधिकार नहीं है, वहीं दूसरी ओर सूफियों का महिलाओं के प्रति नजरिया अलग था। बाबा फरीद को एक दरवेश बनाने में उनकी मां का बहुत योगदान था। बाबा फरीद 'गंज-ए-शक्कर' अपनी मां के प्रयासों से बने। अपनी पुत्री की योग्यता को जानते हुए बाबा फरीद अपनी पुत्री बीबी शरीफा को अपना 'खलीफा' बनना चाहते थे। लेकिन धार्मिक नियमों के अनुसार महिलाओं को 'खिलाफत' नहीं दिया जा सकता था। बाबा फरीद ने कहा भी था कि अगर उन्हें 'खिलाफतनामा' महिलाओं को देने की अनुमति होती तो अपनी पुत्री बीबी शरीफा को अपना खलीफा जरुर बनाते। बीबी शरीफा युवावस्था में ही विधवा हो गई थी और उन्होंने दोबारा विवाह नहीं किया और शेष जीवन आध्यात्मवाद में व्यतीत किया था।

जहाँ एक ओर अध्यात्मवाद में शेख फरीद से कोई बेहतर नही था, वही दूसरी ओर एक विवाद का प्रश्न भी जुड़ा है कि, क्या इन्होंने धर्म-प्रचारक के रूप में भी कार्य किया? लोगों को बहलाकर, लालच देकर धर्म-परिवर्तन को बढ़ावा दिया? जिस पर इतिहासकार एक मत नही है। अर्नाल्ड के अनुसार ''भारतीयों के मुस्लिम धर्म में परिवर्तन के पीछे बल की बजाय शान्तिपूर्ण मुस्लिम धर्म-प्रचारकों के धार्मिक विश्वास, निवृत्ति और उनकी शिक्षाओं का प्रभाव था।'' परन्तु आई. एच. सिद्दकी इससे भिन्न रवैया अपनाते हुए कहते हैं कि ''अर्नाल्ड का मत 19वीं सदी के 'गजेटियर', व्यवस्थापक वृतान्तों तथा लोक मान्यताओं पर आधारित है। के. ए. निजामी मुस्लिम सूफियों द्वारा प्रचलित किए गए नैतिक और धार्मिक शक्तियों के प्रभाव को नहीं नकारते हैं। वे अनेक कबीलों पर प्रकाश डालते हैं, जिनके पूर्वज मुस्लिम रहस्यवादियों द्वारा धर्मान्तरित किए गए थे, क्योंकि समाज में जाति प्रथा के कारण निम्न वर्ग के लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। इसके पीछे यह भी कारण था, कि सूफियों के रीति-रिवाज हिन्दूओं से मिलते-जुलते थे। जिससे उन्होंने इस्लाम धर्म को आसानी से अपना लिया। निसन्देह, आरम्भिक सूफियों जैसे पीर तुर्कमान नारनौली, शाह नियामतुल्ला हांसवी, आदि आरम्भिक सूफियों द्वारा स्थानीय जनता के विरुद्ध विभिन्न सैनिक अभियानों में भाग लिया था। परन्तु उसके पश्चात् सूफियों ने अहिंसा और सहनशीलता की भावना का पालन किया। एक बार बाबा फरीद ने अपने मुरीद से कहा कि मुझे चाकू की अपेक्षा सुई देना, ताकि मैं अपने संबंधो को सुधार सकूं, क्योंकि चाकू काटने के काम आता है, जबकि एक सुई जोड़ने का काम करती हैं। शेख फरीद ने इस सिलसिले को एक संगठित आध्यात्मिक आन्दोलन में बदल दिया। शेख फरीद उच्च चरित्र व अद्भुत ज्ञान के स्वामी थे। वे अपने मुरीदों के मध्य बहुत लोकप्रिय थे। वे खुदा की इबादत में इतने लीन रहते थे कि वे अपने परिवार की ओर भी ध्यान नहीं देते थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. एस. मोईनुल. हक, राईज एंड एक्सपैन ऑफ द् चिश्तीज इन द् सबकॉन्टिनेंट: जनरल ऑफ पाकिस्तान हिस्टोरिकल सोसाईटी जिल्द 22, भाग चतुर्थ. कराची, 1974
2. अबुल फजल, आईने अकबरी, जिल्द तृतीय, अंग्रेजी अनुवाद, एच. ब्लाकमैन, कलकत्ता, 1948
3. शम्स-ए-सिराज. अफीफ, तारीख-ए-फिरोजशाही (अनु. आर. सी. जौहरी) मिडिवल इंडिया इन ट्रांजिशन: तारीख-ए-फिरोजशाही. दिल्ली, 2001

4. शम्स-ए-सिराज अफीफ, तारीख़-ए-फिरोजशाही (हिन्दी अनुवाद, रिजवी, एस. ए. ए. तुगलक कालीन भारत). दिल्ली, 2008
5. अमीर खुर्द, सियारुल औलिया, अग्रेजी अनुवाद इसरत हुसैन अन्सारी और हमीद असफाक कुरैसी अल तैयमी अल सिद्दीकी, (प्रथम संस्करण, 2013), दिल्ली, 2019
6. के.ए. निजामी, द् लाईफ एण्ड टाईम्स् ऑफ शेख फरीदुद्दीन गंज-ए शक्कर, अलीगढ, 1987 (प्रथम संस्करण 1955)
7. साधू राम. शारदा, संत व सूफी साधक. चंडीगढ़, 1978
8. सिद्दीकी, आई. एच. इस्लाम एण्ड मुस्लिम्स इन साउथ एशिया: हिस्टोरिकल पर्सपैक्टिव, देहली 1987
9. अर्नस्ट, कार्ल डब्ल्यू व लॉरेन्स, ब्रूस बी. सूफी मार्टर्स ऑफ लव: द् चिश्ती आर्डर इन साउथ एशिया एण्ड बियॉन्ड. न्यूयार्क, 2002
10. रशीदुद्दीन. खान, कम्पोजिट कल्चर ऑफ इण्डिया एण्ड नेशनल इण्टिग्रेशन, शिमला, 1987
11. माधुरी. गुप्ता, स्टीडी ऑफ इमेजिज ऑफ शेख मूसा ऑफ मेवात' द रोल ऑफ ऑसिमिले एण्ड एप्रोप्रिये इन आईडेन्टिटी फोरमे सयैद जहीर हुसैन द्वारा संकलित, सूफ़िज्म पॉलिटिक्स एण्ड सोसाईटी इन इंडिया, दिल्ली 2006
12. नरेश, सूफी परम्परा और हरियाणा की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकुला, 2002
13. रोज, एच. ए. ए ग्लोसरी ऑफ द् ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ द् पंजाब एण्ड नार्थ-वैस्ट फ्रन्टियर प्रोविन्सिस, जिल्द र्प्रथम, लाहौर, 1919
14. एस. मोईनुल हक, 'राईज एण्ड एक्सपै़न ऑफ द् चिश्तीज इन द् सबकॉन्टिनेंट; 'जनरल ऑफ पाकिस्तान हिस्टोरिकल सोसाईटी जिल्द 22, भाग चतुर्थ, कराची, 1974
15. फातिमा हुसैन, द् वार दैट वाजन्ट: द् सूफी एण्ड द् सुल्तान, नई दिल्ली, 2009
16. गुरुबचन सिंह तालिब, बाबा शेख फरीद: लाईफ अण्ड टिचिंग, दिल्ली, 1973
17. तनवीर. अंजुम, चिश्ती सूफिज इन द् सल्तनत ऑफ दिल्ली 1190-1400. कराची, 2011

‘मृच्छकटिकम्’ एक आदर्श प्रधान प्रकरण

किरण चौधरी

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर, राजस्थान

सारांश- ‘मृच्छकटिकम्’ महाकवि शूद्रक की रचना है। यह रूपक का ‘प्रकरण’ नामक भेद है। इसका कथानक लोकाश्रित है; जिसमें दो कथाएँ- आधिकारिक एवं प्रासंगिक हैं। आधिकारिक कथा वसन्तसेना एवं चारुदत्त की प्रेमकथा तथा प्रासंगिक राजा पालक एवं आर्यक की कथा है। प्रस्तुत प्रकरण में नायक चारुदत्त अतिदरिद्र है तथा नायिका वसन्तसेना गणिका है, तथापि प्रकरण में आदर्शों की प्रधानता है। अर्थात् दरिद्रता के कारण न तो नायक अपने ईमान, आचरण तथा उच्च मानवीय गुणों से पतित होता है और न ही गणिका होने के बावजूद नायिका वसन्तसेना किसी प्रकार का हीन अथवा निकृष्ट आचरण-व्यवहार करती है, वरन् ये अपने सदाचार-व्यवहार तथा अनेकानेक अच्छी बातों से आदर्शस्वरूप देखे गए हैं। द्यूतक्रीडा के व्यसन को अनर्थकारी व सर्वस्व नष्ट करने वाला बतलाया है। प्रस्तुत प्रकरण में धर्म, अर्थ, काम, समाज, संस्कृति, नीति इत्यादि सभी विषयक्षेत्रों के संदर्भ में आदर्श अर्थात् वे अच्छी बातें, श्रेष्ठ अवस्था तथा उत्कृष्टता और प्रशस्तता देखी गई है, जो कि सभी के लिए हितकारी होने से अनुकरणीय है। जीवन में दरिद्रता, संघर्ष और विषमताएँ होते हुए भी सत्य, परोपकार, धैर्य, दान, दया, सदाचारादि रूप धर्म की अनुपालना की जाती है तथा अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किए गए हैं। यही कारण है कि प्रस्तुत ‘प्रकरण’ आदर्शों की व्यापकता एवं प्रधानता रखता है तथा हर युग में सार्वभौमिक मानव के लिए शिक्षा व संदेश प्रसारित करता है कि परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हों, मनुष्य को अपने मानवता धर्म, श्रेष्ठ मानवीय गुणों और उच्च जीवनमूल्यों का कदापि त्याग नहीं करना चाहिए; क्योंकि यही हमारे समाज व संस्कृति की उत्कृष्टता एवं प्रशस्तता बनाए रखने वाला है। इसी में व्यष्टि-समष्टि का हित व कल्याण है।

प्रमुख शब्दावली- मृच्छकटिकम्, आदर्श, चारुदत्त, वसन्तसेना, प्रेम, दरिद्रता, गणिका, सदाचार, श्रेष्ठ एवं प्रशस्त व्यवहार, धर्मपालन, समाज-संस्कृति, हीन-पतित, उत्कृष्टता, संघर्ष।

शोधपत्र- संस्कृत साहित्य-जगत् में महाकवि शूद्रक तथा उनकी रचना ‘मृच्छकटिकम्’ का अपनी कुछ विशिष्टताओं तथा आदर्शों की प्रधानता के कारण विशेष ख्याति एवं स्थान है। दस अंकों के इस रूपकविशेष ‘प्रकरण’ का कथानक ऐतिहासिक न होकर लोकाश्रित है; जिसमें कवि की कल्पना अधिक होती है। जैसा कि साहित्य दर्पण में प्रकरण का लक्षण दिया गया है-

“भवेत् प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्।”[1]

मुख्य रस शृंगार तथा नायक धीरप्रशान्त होता है। प्रस्तुत प्रकरण में ये लक्षण घटित होते हैं; क्योंकि इसका अंगीरस शृंगार तथा अन्य रस-हास्य, करुणादि अंग रूप में हैं तथा नायक चारुदत्त धीरप्रशान्त है। इस प्रकरण में दो कथाएँ- आधिकारिक कथा- चारुदत्त एवं वसन्तसेना की प्रेमकथा तथा प्रासंगिक कथा- राजा पालक तथा आर्यक की है। यह रूपकभेद आदर्शों की प्रधानता रखता है। विभिन्न पात्र विषम परिस्थितियों से जूझते, संघर्ष करते रहते हैं, तथापि वे श्रेष्ठ मानवीय गुणों,सत्य, दया, परोपकार, सदाचारादि रूप धर्म का त्याग नहीं करते, उससे पतित व भ्रष्ट नहीं होते। ऐसे में उनकी श्रेष्ठता, उत्कृष्टता, उनका त्याग, समर्पण एवं धर्मपालन समाज के लिए अनुकरणीय है। क्योंकि वह सभी के हितार्थ सिद्ध होता है तथा हमारे समाज-संस्कृति की मर्यादा, उज्ज्वलता और श्रेष्ठता को बनाए रखने वाला है। इसीलिए विभिन्न पात्रों के उत्तमाचरण, मर्यादित, श्रेष्ठ बातों व कार्यों के कारण यह काव्य आदर्शस्वरूप बन गया है, उच्च आदर्शों की प्रधानता रखता है। यथा- नायक चारुदत्त अत्यधिक दरिद्र है, तथापि वह इस दरिद्रता को अपने किसी भी सद्कार्य या सद्गुण में बाधक नहीं बनने देता, वरन् प्रेम, दान, परोपकार, सदाचार आदि सभी का सम्यक् निर्वाह करता है तथा

धन के लोभ-लालच में अपने आचरण-व्यवहार को पतित नहीं बनाता। इसी प्रकार नायिका वसन्तसेना एक गणिका है, तथापि वह धन की लोभी नहीं है। उसकी दृष्टि में धन का नहीं, वरन् प्रेम, संवेदनाओं तथा मनुष्य के उत्तमगुणों का महत्व है। वह धन की नहीं, वरन् लोक में सम्मान व यश की चाहना रखती है और तदनुसार ही उत्तम आचरण-व्यवहार करती देखी जा सकती है। इस प्रकरण में धर्म, अर्थ, काम, समाज-संस्कृति, राजनीति इत्यादि सभी विषयक्षेत्रों के संदर्भ में आदर्श स्थापित होते देखे गए हैं। इस दृष्टि से यह रूपककाव्य हर युग में समाज के लिए अनुकरणीय होने से अपनी महत्ता व प्रासंगिकता रखता है।

यहाँ प्रस्तुत 'प्रकरण' के कतिपय प्रमुख स्थलों एवं बातों को देखें, जो आदर्शों का प्रकटीकरण करते हैं, वे विवेचनीय हैं। नायक चारुदत्त का व्यक्तित्व व चरित्र आदर्शों का प्रतिनिधित्व करता है। वह ब्राह्मण कुलोत्पन्न दरिद्र व्यक्ति है, तथापि दानशील, उदारवृत्ति और निर्लोभ प्रवृत्ति का है। अतिशय गुणी, भावुक और ईमानदार है। सदाचारी व प्रेम का उपासक है। सनातन संस्कृति व धर्म का पूर्ण अनुपालक है। वह सत्यवक्ता, शरणागतवत्सल और परम क्षमाशील भी है। इन विभिन्न मानवीय उत्कृष्ट गुणों तथा धर्म के विभिन्न रूपों से समन्वित व्यक्तित्व वाले चारुदत्त[2] के कार्य-व्यवहार, धर्म-कर्म एवं संबंधित बातों के स्थल आदर्शोपेत बन गए हैं। काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि चारुदत्त अतिसम्पन्न परिवार से है; परन्तु निरन्तर पूर्वजों की सम्पत्ति को जरूरतमदों को एवं प्रियजनों को देते रहने के कारण वह अब दरिद्र हो चुका है। जैसो कि प्रथमांक में ही विदूषक एवं चारुदत्त के संवाद से इस बात की पुष्टि होती है-

"भो वयस्य! अलं सन्तापेन। प्रणयिजनसंक्रामितविभवस्य सुरलोक-
पीतशेषस्य प्रतिपच्चन्द्रस्य इव परिक्षयोऽपि ते अधिकतरं रमणीयः।"[3]

यहाँ दरिद्रता के कारण उपेक्षित हुए तथा निराश व उदास बैठे हुए चारुदत्त के प्रति विदूषक का कथन है कि मित्र! संताप करना व्यर्थ है। प्रियजनों को सम्पत्ति दे डालने वाले आपकी निर्धनता भी, देवताओं द्वारा पीने से शेष बचे हुए प्रतिपदा के चन्द्रमा की (क्षीणता की) भाँति अत्यधिक अच्छी लग रही है। चारुदत्त को अपने दरिद्र होने का दुःख नहीं है- "वयस्य! न ममार्थान् प्रति दैन्यम्", वरन् उसे जो सबसे अधिक पीड़ा हो रही है, वह तो इस बात की है कि वे ही 'अतिथिजन', जो पहले उसके घर को नहीं छोड़ते थे, अब उसके धनहीन हो जाने से वे अन्यत्र चले जाते हैं। यह अतिथियों द्वारा छोड़ा जाना ही अब उसे जलने के समान कष्ट दे रहा है- "एतत्तु मां दहति यद् गृहमस्मदीयं क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।"[4] इस प्रकार यहाँ कितनी सुन्दर भावनाएँ और आदर्श चारुदत्त में देखे गए हैं; जहाँ वह दरिद्र होकर भी 'अतिथि देवो भव' की परम्परा का हृदय से निर्वहन करना चाहता है। वह दरिद्र होकर भी सद्गृहस्थ होने का तथा शरणागतवत्सलता व आदर्श मित्र होने का निदर्शन प्रस्तुत करता है और ऐसा अवसर न मिलने से व्यथित है, तभी तो कहता है- "सत्यं न मे विभवनाशकृताऽस्ति चिन्ता...... एतत्तु मां दहति, नष्ट धनाश्रयस्य, यत् सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।।"[5] इस प्रकार धनरूपी आश्रय से हीन अर्थात् निर्धन हो चुके चारुदत्त को मित्रों का मुख मोड़ लेना संताप दे रहा है। उसे धन की चाहना नहीं है और अपने लिए तो कदापि, जरा भी नहीं, वरन् परहितार्थ व धर्म-पालनार्थ है। धन का आना-जाना तो वह भाग्यक्रम से मानता है- "भाग्यक्रमेण हि धनानि यान्ति।"[6] धनहीन हुआ भी नायक चारुदत्त प्रतिदिन सद्गृहस्थ द्वारा करणीय अन्नादि दान रूप बलिकर्मों को अवश्यमेव नियमपूर्वक सम्पादित करता है तथा मित्र विदूषक को भी ऐसा करने के लिए कहता है- "तद्वयस्य कृतो मया गृहदेवताभ्यो बलिः। गच्छ, त्वमपि चतुष्पथे मातृभ्यो बलिमुपहर।"[7] इस प्रकार यहाँ चारुदत्त द्वारा गृहदेवताओं के लिए बलि (पूजनादि में अन्नादि दान) देने तथा मित्र विदूषक को चौराहे पर मातृदेवियों के लिए बलि अर्पित करने जाने की बात कही गई है। विदूषक द्वारा यह कहने पर कि नित्य पूजित होते हुए भी देवता आप पर प्रसन्न नहीं होते, तो इस पूजन से क्या लाभ? इस पर चारुदत्त जो उत्तर देता है, वह वास्तव में समाज के समक्ष एक सद्गृहस्थ का आदर्श ही तो प्रस्तुत करता है। जहाँ चारुदत्त कहता है कि- "वयस्य! मा मैवम्। गृहस्थस्य नित्योऽयं विधिः।"[8] इस प्रकार महाकवि शूद्रक ने नायक के मुख से यह कहलवाकर कि गृहस्थ के लिए देवपूजन नित्य विधि- कर्तव्य है तथा तपस्या, मन और स्तुतिवचनों एवं बलिकर्मों (पूजन में उपहार स्वरूप भेंट किए जाने वाले अन्न आदि) से नित्य समर्चित देवता शान्तचित्त वाले भक्तों पर अवश्य प्रसन्न रहते हैं[9]- इस प्रकार बलिकर्म में आस्था दिखलाकर एवं इस कार्य को गृहस्थ में रहने वाले नायक से विषम परिस्थिति में भी नित्यप्रति करणीय धर्म-कर्म मानकर सम्पादित करवाकर समाज के समक्ष आदर्श ही तो प्रस्तुत किया है एवं सनातन संस्कृति को अक्षुण्ण रखा है।

प्रथम अंक में ही विट नायक चारुदत्त के गुणों की प्रशंसा करता है, उससे भी नायक के श्रेष्ठ व प्रशस्त व्यक्तित्व व चरित्र का प्रकटीकरण होता है- "दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी..... अधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये।।"[10] यहाँ

चारुदत्त को दीनों के कल्पवृक्ष अर्थात् गरीबों, असहायों को कल्पवृक्ष के साथ मनोवांछित देकर उनके मनोरथ पूर्ण करने वाला, गुणों की अधिकता वाला, सज्जनों के बन्धु, शिक्षितों के आदर्श, सदाचार की कसौटी, सदाचाररूपी अथवा सत्स्वभावरूपी मर्यादा के समुद्र, सत्कार कर्ता, अपमान न करने वाला, गुणों का निधि, सरल एवं उदार स्वभाव वाला और प्रशंसनीय बतलाया गया है तथा इस प्रकार की विशिष्टताओं से युक्त उसका जीवन सार्थक कहा है, अन्यथा तो इन गुण-विशेषताओं से हीन जो जन हैं, वे केवल सांस ले रहे हैं अर्थात् उनका जीवन व्यर्थ ही है। इस प्रकार इस प्रकरण में यह आदर्शों का प्रस्तुतीकरण ही तो है।

महिलाओं का सम्मान तथा उनके साथ मर्यादित व्यवहार का आदर्श भी मृच्छकटिकम् में देखा गया है। परिस्थितिवश अनजाने में चारुदत्त के द्वार पर आई हुई वसन्तसेना को वह अपने मन में देवता के समान पूजन योग्य कहता है- "(स्वगतम्) अये! कथं देवतोपस्थानयोग्या युवतिरियम्।"[11] अज्ञानवश वह वसन्तसेना को अपनी सेविका समझकर अपने पुत्र बालक रोहसेन को अंदर ले जाने का आदेश देता है और जब उसे अपनी इस गलती का अनुभव होता है, तब वह वसन्तसेना से अपने इस अपराध के लिए क्षमा याचना भी करता है-

वसन्तसेने! अनेनाविज्ञानादपरिज्ञातपरिजनोपचारेण अपराद्धोऽस्मि। शिरसा भवतीमनुनयामि।[12] वसन्तसेना जब चारुदत्त के पास अपने स्वर्णाभूषण धरोहरस्वरूप रखती है, तब चारुदत्त अपनी दरिद्रता का हवाला देता हुआ कहता है कि मेरा घर धरोहर रखने योग्य नहीं है।[13] इस पर वसन्तसेना का यह कहना कि यह असत्य है। अधिकारी पुरुषों के पास धरोहर रखी जाती हैं, न कि घरों में।[14] दोनों के इन संवादों से यहाँ इन पात्रों के आदर्शचरित्र सूचित हो रहे हैं। जहाँ स्वर्णधन के विषय में परस्पर विश्वास द्योतित हो रहा है। अन्यथा धनहीन व्यक्ति के पास स्वर्णाभूषण धरोहर स्वरूप रखना तथा उसे पुनः सुरक्षित प्राप्त करना लोक में असम्भव-सा प्रतीत होता है।

नायिका वसन्तसेना यद्यपि गणिका है, परन्तु वह धन की लोभी या लालची नही है तथा वह भी धर्म-कर्म का नित्य पालन करती है। उसके चरित्र-व्यक्तित्व की अनेक श्रेष्ठ बातें उसे आदर्श स्त्री के रूप में प्रस्तुत करती हैं। वह नित्यप्रति देवपूजन करती है[15] तथा ब्राह्मणों से भी पूजा सम्पन्न करवाती है- "तद् ब्राह्मण एव पूजां निर्वर्तयतु।"[16] ब्राह्मणजन उसके लिए सदैव पूजनीय हैं- "पूजनीयो मे ब्राह्मण जनः।"[17] हृदय में पवित्र प्रेम के भाव रखने वाली वसन्तसेना किसी भी धनी पुरुष की सेवा की इच्छुक नहीं है, वरन् वह तो सत्पुरुष के प्रगाढ़ प्रेम की इच्छा रखती है और उसके साथ रमण क्रीडा करना चाहती है। इस बात को वह अपनी सखी मदनिका के समक्ष स्पष्टतः कहती है- (हञ्जे! रन्तुमिच्छामि, न सेवितुम्।)[18] इस प्रकार लोकविरुद्ध रीति वसन्तसेना में देखी गई है; क्योंकि गणिकाएँ प्रायः धन की चाहना रखती हैं और धनिक व्यक्तियों के प्रति लालायित रहती हैं; परन्तु यहाँ नायिका का स्वभाव ऐसा नहीं है। चारुदत्त की दानशीलता ही उसकी दरिद्रता का कारण है- इस बात को भी वह भलीभाँति जानती है, तभी तो संवाहक से कहती है ("कुतः स धनिकः?) अर्थात् दानी चारुदत्त का धनी रहना सम्भव नहीं है।[19] उसकी सखी मदनिका जब चारुदत्त की दरिद्रता के विषय में वसन्तसेना को बतलाती है कि "दरिद्रः खलु स श्रूयते।"[20] तब वसंतसेना स्पष्टतः कहती है- "अतएव काम्यते! दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोकेऽवर्चनीया भवति।"[21] निर्धन पुरुष से प्रेम करने वाली गणिका की लोक में निन्दा नहीं होती; इसीलिए वह उससे प्रेम करती है। इस प्रकार यहाँ उसे धन-सम्पदा की परवाह नहीं है, वरन् लोकनिन्दा की चिंता है। वह लोक में अपनी निन्दा नहीं चाहती है। इस प्रकार यहाँ भी आदर्श की सृष्टि देखी जा सकती है। "गुणः खलु अनुरागस्य कारणम्"[22]- इस प्रकार वह प्रेम का कारण गुणों को मानती है। वह गणिका होकर भी अपने घर आए हुए अतिथियों का पूर्ण सम्मान करती है। चारुदत्त अपने सद्गुणों के कारण उज्जयिनी नगरी को सुशोभित करता है, तो वहीं वसन्तसेना चारुदत्त का भी तथा उसके परिचितों का भी चारुदत्त के संबंध मात्र से ही पूर्ण सम्मान करती है; जैसा कि संवाहक स्वगत कथनस्वरूप कहता है कि चारुदत्त का नाम लेने से ही मेरा इतना आदर क्यों?[23] यहाँ महाकवि शूद्रक ने इस आदर-सत्कार को सज्जनों की स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा धन बतलाया हैं- "सत्कारधनः खलु सज्जनः कस्य न भवति चलाचलं धनम्।"[24] अर्थात् धन तो सभी का अस्थिर होता है। परन्तु सज्जनों का धन लक्ष्मी नहीं होती, वरन् दूसरों का सत्कार करना होता है, जो कि वसन्तसेना के पास है। इस प्रकार यहाँ सज्जनों की इस सज्जनता का आदर्श वसन्तसेना के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

द्यूतक्रीडा एक व्यसन है तथा व्यक्ति का सर्वस्व विनष्ट कर देता है- इस बात को भी अनेक प्रसंगों में बतलाया गया है। संवाहक, माथुर, दर्दुरक इसी प्रकार के जुआरी पात्र हैं, जो कि द्यूतक्रीडासक्त रहने के कारण धन लुटा बैठते हैं[25] और परस्पर लड़ते-झगड़ते हैं तथा अपने चरित्र को भ्रष्ट व पतित बना चुके हैं। एक ओर दानशीलता के कारण चारुदत्त दरिद्रता है, जो कि प्रशस्त है, तो दूसरी

ओर इन जुआरियों की दरिद्रता है, जो कि निन्दनीय है। यही है काव्य में आदर्शों की प्रस्तुति, जिससे समाज को विवेक प्राप्त होता है और श्रेष्ठ का वरण तथा हेय का त्याग करना होता है।

वसन्तसेना द्वारा दरिद्र चारुदत्त के पुत्र रोहसेन के पड़ोसी बालक की सोने की गाड़ी को देखकर स्वयं भी वैसी ही गाड़ी लेने की जिद के चलते रुदन करने पर[26] वह वात्सल्य भावयुक्त एवं प्रेमार्द्र होकर अपने आभूषण उतार कर देती है और कहती है कि इनसे गाड़ी बनवा लो- "तद् गृहाणैतमलङ्कारकम्, सौवर्णशकटिकां घटय।"[27] इस प्रकार यहाँ वात्सल्य में त्याग-समर्पण प्रशंसनीय है।

काव्य की दूसरी नायिका चारुदत्त की पत्नी धूता का चरित्र भी आदर्शोपेत है। वह अपने पति की दरिद्रता में भी पूरा साथ देती है तथा पत्नी धर्म का सम्यक् निर्वहन करती है। पति के सम्मान, सुख-दु:ख तथा कुशलता की, उसके मान-सम्मान की उसे सदैव चिंता तथा परवाह रहती है। पति के शरीर की चोट उसे भले ही सहन है, परन्तु चरित्र के घात से वह बहुत व्यथित है। वसन्तसेना के स्वर्णाभूषण चोरी होने पर और चेटी से यह बात पता लगने पर वह घबराकर सर्वप्रथम पति चारुदत्त का कुशलक्षेम पूछती है- "अपरिक्षत शरीर आर्यपुत्र।"[28] चेटी द्वारा चारुदत्त के शरीर की कुशलता बतलाने पर वह कहती है- "वरमिदानीं स शरीरेण परिक्षत: न पुनश्चारित्रेण।"[29] अर्थात् शरीर क्षत होना ठीक था, न कि चरित्र का घात। क्योंकि उज्जयिनी नगरी के लोग तो यही करेंगे कि दरिद्रता के कारण चारुदत्त ने ही यह अनुचित कार्य किया है अर्थात् वह धरोहरस्वरूप आभूषणपात्र चारुदत्त ने हड़प लिया है। इसी प्रकार चारुदत्त भी चोरी की इस घटना से इसलिए व्यथित है कि वे स्वर्णाभूषण उसके पास धरोहर थे और अब चोरी होने से लोग यही कहेंगे कि दरिद्र चारुदत्त ने उसे नहीं लौटाया। अत: वह भी कहता है कि दुर्भाग्य ने मेरा धन ले लिया, वह तो कोई बात नहीं, परन्तु इस समय चरित्र भी दूषित कर डाला- "यदि तावत्..... चारित्रमपि दूषितम्।।"[30] ऐसे विषम समय में पत्नी धूता उसका पूर्ण साथ देती है तथा पति के अपयश की चिंता उसे व्यथित कर रही है। वह अपने पति की प्रतिष्ठा को, उसके यश को मलिन व नष्ट नहीं होने देना चाहती; अतैव अपने पितृगृह से मिली हुई रत्नावली को ब्राह्मण विदूषक को दानस्वरूप देती है, ताकि वसन्तसेना का ऋण उतर सके।[31] इतना सुन्दर त्याग-समर्पण व परस्पर पति-पत्नी का विश्वास एवं समझदारी आदर्श ही तो है। पति की प्रेमिका होने के बावजूद वह वसन्तसेना का कभी अपमान नहीं करती, वरन् उसे पूर्ण आदर-सम्मान देती है।

इसी प्रकार समस्त मृच्छकटिकम् में आद्योपान्त आदर्शों की प्रधानता तथा पराकाष्ठा देखी गई है तथा निदर्शनस्वरूप कुछ को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। विस्तार के भय से सभी का वर्णन-विवेचन सम्भव नहीं।

निष्कर्ष:- महाकवि शूद्रक के मृच्छकटिकम् के अनुशीलन से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि कवि ने आदर्श व यथार्थ का सुन्दर समन्वय इस रूपक 'प्रकरण' में किया है। वास्तव में कवि भारतीय संस्कृति व समाज में आदर्शों के पक्षधर हैं, तभी तो उसने विभिन्न पात्रों को आदर्शों से सराबोर चित्रित कर एवं हेय, निकृष्ट को निन्दनीय होने से त्याज्य बतलाकर काव्य को आदर्श प्रधान बना दिया है। धर्म, अर्थ, काम, समाज-संस्कृति, नीति-राजनीति, लोकव्यवहार आदि सभी से संबंधित बातों व कार्यों में आदर्शों का सन्निवेश मिलता है। मानवीय उत्कृष्ट गुणों की प्रधानता वाला, आदर्शोपेत यह काव्य सदैव मनुष्य के लिए सद् में प्रवृत्ति तथा असद् से निवृत्ति कराने वाला होने से अनुकरणीय है, प्रासंगिक है।

संदर्भ स्थल:-

1. साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद/224, पृ. 569
2. मृच्छकटिकम्, 1/48- दीनानां कल्पवृक्ष: स्वगुणफलनत:...।।"
3. वही, प्रथम अंक, पद्य 11 के बाद, पृष्ठ 44 पर गद्य पंक्ति
4. वही, 1/12
5. वही, 1/13
6. वही, 1/13 का द्वितीय चरण
7. वही, 1/15 के बाद गद्य, पृ. 52
8. वही, 1/15 के बाद गद्य, पृ. 52
9. वही, 1/16- "तपसा मनसा वाग्भि: पूजिता बलिकर्मभि:। तुष्यन्ति शमिनां नित्यं देवता: किं विचारितै:।।

10. वही, 1/48
11. वही, 1/56 से पूर्व गद्य पंक्ति, पृ. 120
12. वही, 1/56 के बाद गद्य पंक्ति, पृ. 120
13. वही, 1/56 के बाद गद्य पंक्ति, पृ. 122 "अयोग्यमिदं न्यासस्य गृहम्।"
14. वही, 1/56 के बाद गद्य पंक्ति, पृ. 122
15. वही, द्वितीय अंक के प्रारम्भ में गद्य पंक्ति, पृ. 129
16. वही, द्वितीय अंक के प्रारम्भ में गद्य पंक्ति, पृ. 129
17. वही, द्वितीय अंक के प्रारम्भ में गद्य पंक्ति, पृ. 131
18. द्वितीय अंक के प्रारम्भ में गद्य पंक्ति, पृ. 130
19. वही, 2/15 से पूर्व गद्य पंक्ति, पृ. 165
20. वही, 2/1 से पूर्व गद्य पंक्ति, पृ. 133
21. वही, 2/1 से पूर्व गद्य पंक्ति, पृ. 133
22. वही, 1/32 के बाद गद्य पंक्ति, पृ. 80
23. वही, 2/15 से पूर्व गद्य पंक्ति, पृ. 165- "कथम् आर्यचारुदत्तस्य नामसङ्कीर्त्तनेन ईदृशो मे आदरः।"
24. वही, 2/15
25. वही, 2/8-10, 12
26. वही, षष्ठ अंक के प्रारम्भ में गद्य पंक्तियाँ, पृ. 371
27. वही, षष्ठ अंक के प्रारम्भ में गद्य पंक्तियाँ, पृ. 373
28. वही, 3/26 के बाद गद्य पंक्ति, पृ. 224
29. वही, 3/26 के बाद गद्य पंक्ति, पृ. 224
30. वही, 3/25
31. वही, 3/26 के बाद गद्य, पृ. 224, 226

संदर्भ ग्रन्थः-

1. मृच्छकटिकम्: महाकवि शूद्रक विरचितम्, व्याख्याकार एवं सम्पादक- डॉ. जयशङ्कर लाल त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत् 2043
2. साहित्य दर्पण, श्रीमद्विश्वनाथ कविराज प्रणीत, सम्पादक- डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण, 1994

मानसून का भारतीय शेयर बाजार पर प्रभाव

डॉ० वसीमुद्दीन

दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है, और इसकी उत्पादकता का बड़ा हिस्सा मानसून पर निर्भर है। हर साल भारत में जून से सितंबर तक दक्षिण-पश्चिम मानसून सक्रिय रहता है, जो कुल वार्षिक वर्षा का लगभग 75% प्रदान करता है। इस अवधि में पर्याप्त और समय पर बारिश केवल कृषि क्षेत्र के लिए ही नहीं, बल्कि भारतीय शेयर बाजार के लिए भी महत्वपूर्ण होती है।

मानसून और कृषि का संबंध

भारतीय खेती का लगभग 50४ क्षेत्र सिंचाई की व्यवस्था पर निर्भर नहीं है, और मानसून की बारिश पर निर्भर रहता है।

- "अच्छा मानसून:" फसल उत्पादन में वृद्धि करता है, ग्रामीण आय बढ़ाता है, और कृषि आधारित उद्योगों (जैसे उर्वरक, ट्रैक्टर और बीज) को लाभ पहुंचाता है।
- "खराब मानसून:" फसल उत्पादन प्रभावित होता है, खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ती हैं, और ग्रामीण अर्थव्यवस्था कमजोर होती है।

भारतीय शेयर बाजार पर मानसून का प्रभाव

भारतीय शेयर बाजार कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थिति से गहराई से जुड़ा हुआ है। इसका सीधा प्रभाव कुछ प्रमुख क्षेत्रों और इंडेक्स पर पड़ता है:

1. "**कृषि आधारित कंपनियां**": उर्वरक, बीज, कीटनाशक और ट्रैक्टर जैसे कृषि से संबंधित उत्पादों की कंपनियों के शेयर मानसून पर अत्यधिक निर्भर होते हैं।

- "सकारात्मक मानसून:" इन कंपनियों के शेयरों में तेजी।
- "खराब मानसून:" बिक्री और लाभ पर नकारात्मक असर।

2. "**एफएमसीजी (FMCG) सेक्टर**": ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आय बढ़ने पर उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है, जिससे एफएमसीजी कंपनियों को लाभ होता है।

- उदाहरण: हिंदुस्तान यूनिलीवर और डाबर जैसी कंपनियों के शेयर।

3. "**बैंकिंग और एनबीएफसी**": ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण की मांग और ऋण चुकौती मानसून की स्थिति पर निर्भर करती है।

- अच्छे मानसून में ऋणों की मांग बढ़ती है।
- कमजोर मानसून में गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (NPAs) का खतरा बढ़ता है।

4. "**ऊर्जा और जल संसाधन क्षेत्र**": मानसून जलविद्युत उत्पादन को सीधे प्रभावित करता है। ऊर्जा क्षेत्र की कंपनियां, जो कोयले और पानी पर निर्भर हैं, मानसून की स्थिति के प्रति संवेदनशील होती हैं।

5. "**मुद्रास्फीति और घरेलू मांग**": खराब मानसून के कारण खाद्य मुद्रास्फीति बढ़ सकती है, जिससे उपभोक्ता खर्च घटता है। यह उपभोक्ता-उन्मुख उद्योगों को प्रभावित करता है, जिससे शेयर बाजार में गिरावट आती है।

ऐतिहासिक विश्लेषण

1. "सकारात्मक प्रभाव:''

- "2013 और 2016:'' इन वर्षों में अच्छे मानसून के कारण ग्रामीण मांग और कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, जिससे सेंसेक्स और निफ्टी में उछाल देखा गया।
- "2010:'' सामान्य मानसून के कारण कृषि आधारित कंपनियों और एफएमसीजी सेक्टर में मुनाफा बढ़ा।

2. "नकारात्मक प्रभाव:''

- "2009:'' कमजोर मानसून ने फसल उत्पादन को प्रभावित किया, जिससे खाद्य मुद्रास्फीति बढ़ी और बाजार में गिरावट आई।
- "2012:'' अल नीनो प्रभाव के कारण मानसून कमजोर रहा, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था और संबंधित सेक्टर्स में नुकसान हुआ।

अन्य अप्रत्यक्ष प्रभाव

1. "वैश्विक निवेशकों की धारणा:'' भारतीय बाजार में विदेशी निवेशक मानसून पर कड़ी नजर रखते हैं। कमजोर मानसून उनकी निवेश रणनीति को बदल सकता है।
2. "सरकारी नीतियां:'' खराब मानसून की स्थिति में सरकार को न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) और अन्य सब्सिडी बढ़ाने की आवश्यकता पड़ती है, जो सरकारी वित्तीय घाटे को प्रभावित कर सकता है।

निष्कर्ष

भारतीय शेयर बाजार और मानसून के बीच सीधा और अप्रत्यक्ष संबंध है। मानसून की स्थिति न केवल कृषि आधारित उद्योगों को बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है। निवेशकों को कृषि और ग्रामीण मांग पर निर्भर उद्योगों में निवेश से पहले मानसून की भविष्यवाणी, सरकारी नीतियां, और वैश्विक आर्थिक परिस्थितियों का गहन अध्ययन करना चाहिए।

बिबलियोग्राफी

1. शर्मा, पी., ["Impact of Monsoon on Indian Economy"] Economic Journal of India] 2018.
2. अग्रवाल, आर., ["Agriculture and Monsoon% An Indian Perspective"] Journal of Rural Development*] 2020-
3. भारतीय मौसम विभाग (IMD): मानसून रिपोर्ट, विभिन्न वर्ष।
4. ["The Relationship Between Monsoon and Stock Market"] Economic Times 2019.
5. "Monsoon Forecast and Market Impact", 'Mint' 2021.
6. "Monsoon and Its Impact on Agriculture and Economy", 'India Today' 2022.
7. Subramanian] R-] "Rain and Return% A Study on Monsoon and Market Performance"] Asian Journal of Economics] 2021.

पातंजल योग दर्शन एवं अष्टांग योग का स्वरूप तथा उनके परंपरागत ज्ञान की वर्तमान जीवन-शैली में महत्ता

ईश्वर सिंह शेखावत

शोधार्थी, संस्कृत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, राजस्थान

प्रस्तावना-

पातञ्जल योग दर्शन- अनादि काल से प्रवृत्त योगदर्शन भारतीय दार्शनिक परम्परा में विविध रूपों में प्रवर्तित है। महाभारत में सांख्य एवं योग के प्रवक्ता का स्पष्ट वर्णन है-

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।

हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।।[1]

सांख्य के वक्ता परम ऋषि कपिल कहे गए हैं और योग के वक्ता हिरण्यगर्भ कहे गए हैं। इससे पुरातन अन्य कोई नहीं है। हिरण्यगर्भ ही इस महान योगदर्शन के उपदेष्टा हैं। हिरण्यगर्भ जगत् के कर्ता हैं विश्व को उत्पन्न कर उन्होंने ही योग परम्परा का प्रवर्तन किया। वस्तुतः परमात्मा ही योग विज्ञान के प्रकाशक हैं। जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने स्वयं कहा है-

इदं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

विवस्वानमनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।

स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।।

य एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।

भक्तोऽसि मे सखा प्रति चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।[2]

गीता शास्त्र योग शास्त्र के रूप में ही प्रसिद्ध है। इस शास्त्र के अठारह अध्यायों का नामकरण किसी न किसी योग के नाम से ही किया गया है। इसके अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत काव्य एवं विविधग्रन्थों में विविधरूपों में योग की चर्चा है। योग दर्शन आस्तिक दर्शनों में सुप्रसिद्ध है। इसके प्रवर्तक महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र के चार पादों-समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद में योग के स्वरूप, प्रयोग और उसके माध्यम से आत्म साक्षात्कार का, कैवल्य प्राप्ति का वर्णन किया है।

योग का लक्षण करते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।[3]

चित्तवृत्ति के निरोध का नाम योग है। चित्तवृत्ति का निरोध होने पर चित्त की एकाग्र दशा में स्वस्वरूप का बोध होने से जीव दुखःरहित होकर शान्त अवस्था को प्राप्त करता है। एकाग्र चित्त में ही कर्म की कुशलता उदित होती है और समत्व भाव आता है। इस प्रकार चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर ही स्वस्वरूप स्थिति रूप योग प्रकाशित होता है-

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।[4]

जब चित्त वृत्ति का निरोध होता है, तभी द्रष्टा स्वस्वरूप में अवस्थित होता है। स्वस्वरूप में अवस्थिति ही योग है। चित्त की व्युत्थान अवस्था में वृत्तियों के साथ पुरूष का सारूप्य प्रतीत होता है-

वृत्तिसारूप्यमितरत्र।[5]

इस प्रकार चित्तवृत्ति का निरोध होने पर चित्त का सम्यक् आधान ही योग है। वह सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात के भेद से दो प्रकार का है। उसी के प्रसाधन के लिए अष्टांग योग का निरूपण महर्षि पतंजलि ने साधन पाद में किया है। भाष्यकार के अनुसार समाहितचित्त और व्युत्थानचित्त- दोनों के लिए योग कहा गया है।[6] साधन के बिना सिद्धि नहीं मिलती है, अतः योग के अंग कहे गए हैं। योगांगों के अनुष्ठान का निम्न सूत्र में कहा है-

योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिविवेकख्यातेः।[7]

योग अंगों के अनुष्ठान द्वारा अशुद्धि क्षय होने पर ज्ञानदीप्ति विवेकख्याति पर्यन्त होती रहती है। इस सूत्र को भाष्यकार स्पष्ट करते हैं कि योगांगो के अनुष्ठान से पञ्चपर्वा विपर्ययरूप अशुद्धि का क्षय होता है। उसके क्षय से सम्यक् ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। जैसे-जैसे साधनों का अनुष्ठान किया जाता है, वैसे-वैसे अशुद्धि क्षीणता को प्राप्त करती जाती है। अशुद्धि क्षय के साथ ही साथ क्षयक्रमानुसारिणी ज्ञानदीप्ति बढ़ती रहती है। यह ज्ञान तब तक बढ़ता रहता है, जब तक विवेकख्याति गुण-पुरूष का स्वरूपविज्ञान न हो। योगांग का अनुष्ठान अशुद्धि का वियोग-कारण है, जैसे परशु छेद्य का वियोग-कारण है और विवेकख्याति का प्राप्ति कारण है, जैसे धर्म सुख का कारण है। यह योगांगानुष्ठान दूसरे प्रकार से कारण अनुष्ठान नहीं होता है।[8] जैसे द्वेष एक अज्ञानमूलक वृत्ति है। हिंसा ही प्रधान द्वेष है। अंहिसा करने पर उस द्वेषरूप अज्ञान का कार्य रूक जाता है और विवेकज्ञान की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार सत्य द्वारा लोभ आदि अज्ञान नष्ट होते हैं। आसन-प्राणायाम द्वारा शरीर स्थिर, निश्चल, वेदनाशून्यवत् होने पर ''मैं शरीरी हूँ'' इस अविद्या-ख्याति का क्षय होकर ''मैं अशरीरी हूँ'' इस विद्या-भावना की प्राप्ति होती है। इस प्रकार योगांगानुष्ठान द्वारा शुद्धीकरण और ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। इसके द्वारा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में समरसता, समन्वय और समग्रता आती है।

अतः सम्पूर्ण विश्व के लिए योग की परम उपयोगिता है। आधुनिक काल में सूचना विस्फोट और तकनीकी विस्तार के फलस्वरुप व्यक्ति के आचार-विचार के स्वरूप में परिवर्तन हो गया है। यंत्रवत् जीवनपद्धति और संकीर्ण विचारधारा से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की हानि हो रही है। स्वस्थ शरीर आदि से सर्वार्थसिद्धि योग के द्वारा होती हैं। अतः योग का प्रचार-प्रसार दृष्टिगोचर होता है।

अष्टांग योग एवं उनके परंपरागत ज्ञान की वर्तमान जीवनशैली में महत्ता-

योग के आठ अंग हैं। ये बहिरंग और अंतरंग- साधन रूप में है। ये आठ अंग है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।[9] इनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार- बहिरंग योग हैं और धारणा, ध्यान, समाधि- अंतरंग योग हैं।

1. यम- अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।[10] अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह- ये पाँच यम है। वस्तुतः यम से तात्पर्य संयम से है। इनमें अहिंसा सर्वथा, सर्वदा सर्व भूतों के प्रति अनभिद्रोह है। यथाभूत अर्थयुक्त वाक्य और मन ही सत्य है। जिस प्रकार विषय का दृष्ट, अनुमित अथवा श्रुत हुआ है, उसी प्रकार का वाक्य और मन अर्थात् कथन और चिन्तन सत्य है। स्तेय अशास्त्रपूर्वक दूसरे की वस्तु लेना है। ब्रह्मचर्य मन, वचन और कर्म से इन्द्रियसंयम हैं। विषयों को ग्रहण न करना अपरिग्रह है। विषय के अर्जन से दुःख, रक्षण से दुःख, क्षय होने से दुःख, संग रहने से संस्कार जनित दुःख तथा विषय-ग्रहण से अवश्यंभावी हिंसा और उससे दुख होता है। इन सब दुःखों को समझकर दुःख से मुक्ति चाहने वाले विषयों को ग्रहण नहीं करते हैं। इन पांच यमों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है कि सामाजिक जीवन में कैसे व्यवहार करना चाहिए? इनसे निर्दिष्ट सामाजिक व्यवहार व्यक्ति को स्वसंवेगो के ऊपर नियंत्रण, सामाजिक संबंधों में सौहार्द और सामाजिक समस्याओं का निदान करने के साथ-साथ आध्यात्मिक मार्ग की ओर अग्रसर करने में सहायता करता है।
2. नियम- शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।[11] शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान- ये नियम हैं। शौच ब्रह्य और आभ्यन्तर रूप से है। उनमें मृत-जलादिजनित और मेध्य आहार प्रभृत्ति जो शौच है, वे बाह्य हैं। आभ्यन्तर शौच चित्त-मल का क्षालन है। इनसे दोनों प्रकार की स्वच्छता और शुचिता होती हैं। संतोष सन्निहित साधन से अधिक

साधन के ग्रहण करने में इच्छाशून्यता है। तप द्वंदसहन है। द्वंद के उदाहरण है- क्षुधा और पिपासा, शीत और उष्ण, स्थिर रहना और आसन, काष्ठमौन और आकारमौन। कृच्छ, चांद्रायण, सान्तपन आदि व्रतसमूह भी तपः हैं। स्वाध्याय मोक्षशास्त्रों का अध्ययन अथवा प्रणवजय है। ईश्वरप्रणिधान परम गुरु ईश्वर को सर्व-कर्म का अर्पण है।[12] इन शौचादि नियमों के अभ्यास से सत्वशुद्धि, सौमनस्य, एकाग्र्य, इन्द्रियजय तथा आत्म दर्शन की योग्यता आती है।[13] क्योंकि जो शुचि है उसकी सत्वशुद्धि अर्थात् उसके अंतःकरण की निर्मलता होती है। उस सत्वशुद्धि से सौमनस्य अर्थात् मानसिक प्रीति या स्वतः आनन्द का लाभ होता है। सौमनस्य से एकाग्र्य होता है एकाग्र्य से इन्द्रियजय होती है। इन्द्रियजय से बुद्धिसत्त्व की आत्मदर्शन में योग्यता होती है।[14]

3. आसन- स्थिरसुखमासनम्।1[5] निश्चल और सुखपूर्वक उपवेशन आसन है। जैसे- पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, सोपाश्रय, पर्यंक, क्रौञ्चनिषदन, हस्तिनिषदन, उष्ट्रनिषदन, समसंस्थानम्- ये सभी यथासुख होने से आसन कहे जाते हैं।

आसनों के अभ्यास से शरीर की सुखपूर्वक सम्यक् स्थिरता होती है। स्थैर्य आने से और पीड़ा-बोध कम होकर आसनजय होती है। आसनजय के कारण शीतोष्ण आदि द्वन्दों द्वारा साधक अभिभूत नहीं होता है।[16] शरीर के विभिन्न अंगों का, तन्त्रों का नियंत्रण होता है, जिससे सम्यक् रूप से कार्य संभव होता है। इसके अतिरिक्त स्थूल और सूक्ष्म शरीर में परस्पर समन्वय में होने से स्थूल शरीर के पंच तत्व- पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इनमें संतुलन उत्पन्न होता है।

4. प्राणायाम- तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।[17] आसनसिद्ध होने पर प्राणायाम होता है। प्राणायाम श्वासप्रश्वास का गतिविच्छेद है। वायु की श्वासरूप आभ्यन्तर गति एवं प्रश्वास रूप बहिर्गति- इनका विच्छेद प्राणायाम है। वस्तुतः श्वासगति तथा प्रश्वासगति का रोध करना ही प्राणायाम है। इस गतिरोध के भेद हैं- बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति और स्तंभवृत्ति। ये तीन फिर देश, काल तथा संख्या परिदृष्ट होकर दीर्घ और सूक्ष्म होते हैं।[18] इनमें बाह्यवृत्ति प्राणायाम वह है, जिसमें प्रश्वासपूर्वक गत्यभाव है, आभ्यन्तरवृत्ति वह है, जिसमें श्वासपूर्वक गत्यभाव है। तृतीय स्तम्भवृत्ति में बाह्य और अभ्यंतर दोनों वृत्तियों का अभाव होता है।

सूत्रकार द्वारा प्राणायाम के उक्त तीन रूपों के वर्णन से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में रेचक, पूरक और कुंभक- ये तीन शब्द अपने वर्तमान पारिभाषिक अर्थों में व्यवहृत नहीं होते थे। यदि ऐसा होता तो सूत्रकार द्वारा अवश्य ही उन शब्दों का उल्लेख किया जाता। ये तीन शब्द बाद में प्रचलित हुए हैं।

प्राणायाम का फल बताते हुए सूत्रकार कहते हैं कि प्राणायाम अभ्यासकारी योगी के विवेक ज्ञान का आवरणभूत कर्म क्षीण होता है- ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।[19] यहाँ ध्यातव्य है कि प्राणायाम के द्वारा जो प्रकाशावरण क्षीण होता है, वह अज्ञान शुरू आवरण नहीं है, अपितु अज्ञानमूलक कर्मरूप आवरण है। कर्म ही अज्ञान की जीवनवृत्ति है। अतः कर्म क्षीण होने से अज्ञान भी क्षीण होता है। प्राणायाम शरीर की निष्कर्मता है। उसके संस्कार द्वारा साधारण क्लिष्टकर्म का संस्कार क्षीण होता है, जैसे क्रोध का संसार अक्रोध के संस्कार द्वारा क्षीण होता है। "मैं शरीर हूँ", "मैं इंद्रियवान् हूँ" इत्यादि अविद्यारूप अज्ञान और तत्प्रेरित कर्म और कर्म का संस्कार प्राणायाम द्वारा दुर्बल होकर क्षीण होता है। प्राणायाम के द्वारा सब धारणाओं में मन की योग्यता होती है- धारणासु च योग्यता मनसः।[20]

5. प्रत्याहार- स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।[21] प्रत्याहार स्वविषय के साथ असंयुक्त होने पर इन्द्रियों का चित्तस्वरूपानुकार होना है। इसका तात्पर्य है स्वविषय के साथ संयोग का अभाव होने पर, चित्त निरोध होने पर निरुद्ध चित्त के समान उसके साथ इन्द्रियगण का भी निरूद्धध होना। जिस प्रकार उड़ती हुई रानी मक्षिका के पीछे अन्य माक्षिकाएँ भी उड़ती है और उसके बैठने पर बैठ जाती है, उसी प्रकार इन्द्रि रयगण भी चित्तनिरोध होने पर निरुद्ध होते हैं।[22] प्रत्याहार से इन्द्रियों की परमवश्यता होती है- ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्।[23]

6. धारणा- देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।[24] देश में चित्त का बन्ध होना धारणा है। नाभिचक्र, हृदयपुण्डरीक, मूर्धज्योति, नासिकाग, जिह्वाग्र इत्यादि देश हैं। इनमें चित्त का बन्ध होना धारणा है अथवा बाह्य विषय में वृत्तिमात्र के द्वारा चित्त का बन्ध होना धारणा है।[25] इसके द्वारा चित्त संतुलित, एकाग्र और परिष्कृत होता है।

7. ध्यान- तत्रप्रत्यैकतानता ध्यानम्।[26] उसमें प्रत्यय की एकतानता ध्यान है। इस सूत्र को स्पष्ट करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि उस देश में देश, ध्येय विषयक प्रत्यय की एकतानता ध्यान है। एकतानता से तात्पर्य है- अन्य प्रत्यय के द्वारा अपरामृष्ट एकरूप प्रवाह। धारणा में ध्येय विषय प्रत्यय या ज्ञान-खण्डरूप से धारावाहिक क्रम से चलता रहता है। किन्तु ध्यान में

वह अभ्यास बल से अखण्ड धारा की भांति हो जाता है। यह चित्तस्थैर्य की अवस्था विशेष है। धारणा में प्रत्यय जलबिन्दु की धारा के समान है और ध्यान में प्रत्यय तैल या शहद की धारा के समान एकतान है।[27]

8. समाधि- तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।[28] ध्येयाकारनिर्भास, स्वरूपशून्य के समान ध्यान ही समाधि है। इसमें ध्यान इतना प्रगाढ होता है कि उसमें केवल ध्येय विषयमात्र की ही ख्याति होती रहती है। चित्त ध्येय विषय के स्वभाव में ही आविष्ट होता है। अपने ज्ञानात्मक स्वभाव से शून्य के समान होता है। पूर्णतया स्वस्वरूप शून्य नहीं होता है। स्वरूप शून्य के समान होता है। ''मैं ध्यान कर रहा हूँ'' इस प्रकार ध्यान-क्रिया का स्वरूप ध्येय के स्वरूप से अभिभूत हो जाता है। ध्येय से अपना पृथक्त्व ज्ञानगोचर नहीं होता है। अहंकार या अस्मि- ''मैं जान रहा हूँ'' कि वृत्ति एकतानता होने से ''जान रहा हूँ'' इस प्रकार जानने की धारा-मात्र रहती है। उसमें केवल जानने का निर्भास होता है परन्तु भाषा में ''मैं अपने को जान रहा था'' ऐसा वाक्य कहना पड़ता है। इस प्रकार समाधि ध्यान का चरम उत्कर्ष है, चित्तस्थैर्य की सर्वोत्तम अवस्था है।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि अष्टांगयोग में प्रत्येक अंग विशिष्ट है। यम-नियम व्यक्ति में सौहार्दभाव के साथ ही बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास करते हैं। आसनों का अभ्यास शारीरिक स्वास्थ्य में प्रमुख भूमिका का निर्वहन करता हैं। प्राणायाम ऊर्जा के नियमन में और प्रत्याहार इन्द्रियजय में सहायक है। धारणा मन को स्थिरता प्रदान करती है, ध्यान एकाग्रशक्ति का वर्धन करता है। समाधि चित्त स्थैर्य की परम अवस्था में परमानन्द प्रदान करती है। निष्कर्षतः शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य लाभ के लिए अष्टांग योग संपूर्ण विश्व के लिए वरदान स्वरूप है। इसके द्वारा वर्तमान भौतिक युग में बहिर्मुखजन आत्म दर्शन करने में समर्थ हो सकते हैं, जिसकी परम आवश्यकता है। जैसा कि याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है- यह परम धर्म है कि योग से आत्म दर्शन हो- अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. शर्मा, डॉ. ईश्वर चन्द, विमली, डॉ. ओमनाथ, महाभारत (दत्त), Parimal Publications, December 2008
2. महाभारत, गीताप्रेस गोरखपुर, 2008
3. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, 2021
4. स्वामी निखिलानन्द, श्रीमद्भगवद्गीता, फिंगरप्रिंट पब्लिशिंग, 2023
5. धीमान डॉ. कुलदीप, The Yogasutram of Patanjali, Saptrishi Publication, 2022
6. श्रीवास्तव, डॉ. सुरेश चन्द, पातञ्जल योगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2012
7. श्रीमत् स्वामी हरिहरान्द अरण्य, पातञ्जल योगदर्शन, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 2017

सन्दर्भ-

1. महाभारत 12/349/64
2. श्रीमद्भगवद्गीता 4/1-3
3. योगसूत्रम् 1/2
4. योगसूत्रम् 1/3
5. योगसूत्रम् 1/5
6. योगसूत्रम् 2/2 भाष्य
7. योगसूत्रम् 2/28
8. योगसूत्रम् 2/28, भाष्य
9. योगसूत्रम् 2/29
10. योगसूत्रम् 2/30
11. योगसूत्रम् 2/32

12. योगसूत्रम् 2/32, भाष्य
13. योगसूत्रम् 2/41
14. योगसूत्रम् 2/41 भाष्य
15. योगसूत्रम् 2/46
16. योगसूत्रम् 2/48
17. योगसूत्रम् 2/49
18. योगसूत्रम् 2/50
19. योगसूत्रम् 2/52
20. योगसूत्रम् 2/53
21. योगसूत्रम् 2/54
22. योगसूत्रम् 2/54, भाष्य
23. योगसूत्रम् 2/55
24. योगसूत्रम् 3/1
25. योगसूत्रम् 3/1, भाष्य
26. योगसूत्रम् 3/2
27. योगसूत्रम् 3/2, टीका
28. योगसूत्रम् 3/3

ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर वाले बच्चों के लिए योग के लाभ

डॉ० नीलिमा सिंह

असि० प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिलासपुर (रामपुर), उ०प्र०

डॉ० पूनम सिंह

स्पोर्ट्स ऑफिसर, गवर्नमेंट कॉलेज, अमानगंज पन्ना, म०प्र०

परिचय

योग एकमात्र आत्म-विकास प्रणाली है जो व्यक्ति को स्वयं आकार देने का कार्य करती है।ष् योग आत्म-जागरूकता बढ़ाने और खुद को समझने में सहायता करता है। पश्चिम में योग की लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है और यह ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर (एएसडी) से पीड़ित बच्चों की सहायता के लिए एक प्रभावी साधन के रूप में उभर रहा है। यह एक ऐसा अनुकूल और प्रभावी अभ्यास है जो उनके भावनात्मक और शारीरिक लक्षणों को सीधे संबोधित करता है। ऑटिज्म से प्रभावित बच्चे अक्सर स्वाभाविक रूप से यह नहीं समझ पाते कि उन्हें अपने आस-पास की दुनिया में कैसे व्यवहार करना चाहिए, जिससे वे अक्सर यह महसूस करते हैं या उन्हें ऐसा महसूस कराया जाता है कि वे कुछ गलत कर रहे हैं। योग एक संरचित और केंद्रित गतिविधि प्रदान करता है जिसमें सही या गलत का कोई स्थान नहीं होता। योग के प्रभाव को देखते हुए, यह पाया गया है कि यह ऑटिज्म के लक्षणों को सीधे तौर पर कैसे प्रभावित करता है।

सामाजिक संचार और संपर्क - योग में सीखी गई शिथिलता और शांत करने की तकनीकें बच्चों को सामाजिक परिस्थितियों में आत्म-नियमन में मदद कर सकती हैं। यह उनके आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास को बढ़ाने में सहायता करता है, जिससे वे अन्य बच्चों और वयस्कों के साथ बेहतर तरीके से संपर्क स्थापित कर पाते हैं। बच्चा शिक्षक के साथ विश्वास और मित्रता का रिश्ता बना सकता है, जो अन्य वयस्कों या बच्चों के साथ संबंध बनाने में सहायक हो सकता है।

मोटर कौशल में देरी - आसनों का अभ्यास मांसपेशियों की टोन को बढ़ाता है, संतुलन और स्थिरता विकसित करता है, और समग्र शरीर जागरूकता और आत्म-नियमन में सुधार करता है। आसनों के अनुक्रम और उनके बीच परिवर्तन समन्वय और मोटर कौशल के विकास में मदद कर सकते हैं।

अत्यधिक सक्रियता - योग में सीखी गई श्वास तकनीकें और गहन विश्राम बच्चों को शांत करने और आत्म-नियमन में मदद कर सकती हैं। बच्चे इन तकनीकों का उपयोग योग कक्षा के बाहर भी कर सकते हैं ताकि वे शांत रह सकें।

गहरी सांस लेने और विश्राम की तकनीकें चिंता को सीधे कम करने में मदद करती हैं, जो नींद में सुधार कर सकती हैं। विश्राम के लिए मंत्र सीडी का उपयोग किया जा सकता है, जो शांत और सुखद विश्राम से जुड़ी ध्वनियों के रूप में काम करती हैं।

मंत्र जाप - मंत्र जाप बच्चों को अपनी आवाज खोजने और भाषा संबंधी देरी को कम करने में मदद कर सकता है। बच्चे संगीत

और गायन के प्रति स्वाभाविक रूप से प्रतिक्रिया करते हैं। मंत्र जाप गले को खोलता है और गहरी, नियंत्रित सांस लेने को प्रोत्साहित करता है। एक बार जब बच्चा किसी मंत्र को सीख लेता है, तो उसका आत्म-विश्वास बढ़ता है। जो बच्चे नियमितता पर प्रतिक्रिया देते हैं, उनके लिए योग एक व्यवस्थित और सुसंगत गतिविधि प्रदान करता है जो उनके साप्ताहिक कार्यक्रम का हिस्सा बन सकती है। हर सप्ताह एक ही क्रम में आसनों को दोहराना उनके आत्म-विश्वास को बढ़ाता है क्योंकि वे अनुक्रम को जानने और समझने लगते हैं।

ऑटिज्म- ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर (एएसडी) एक जटिल और आजीवन विकासात्मक विकार है, जो इस बात को प्रभावित करता है कि कोई बच्चा (या वयस्क) अन्य लोगों से कैसे जुड़ता है और संवाद करता है, साथ ही वह अपने चारों ओर की दुनिया को कैसे देखता और समझता है। यह एक स्पेक्ट्रम स्थिति है, जिसका अर्थ है कि दो ऑटिज्म से प्रभावित बच्चों में कुछ समान कठिनाइयाँ हो सकती हैं, लेकिन उनकी गंभीरता अलग-अलग हो सकती है और वे इन्हें अलग-अलग व्यवहारों के माध्यम से प्रकट कर सकते हैं। ऑटिज्म एक तंत्रिका विकास संबंधी विकार है, जो सामाजिक संपर्क में बाधा, मौखिक और गैर-मौखिक संचार में कमी, और सीमित, दोहराव वाले या रूढ़िवादी व्यवहार से पहचाना जाता है। इसके लक्षण छह महीने की उम्र के बाद धीरे-धीरे दिखाई देने लगते हैं, दो या तीन साल की उम्र तक स्पष्ट हो जाते हैं, और आमतौर पर वयस्कता तक जारी रहते हैं। यदि प्रारंभिक अवस्था में इसका पता लग जाए, तो ऐसे तरीके हो सकते हैं जो ऑटिज्म से प्रभावित व्यक्तियों को वयस्कता में जीवन की चुनौतियों का सामना करने में मदद कर सकें। उचित हस्तक्षेप, सहायक तकनीकों, और समर्पित शिक्षण विधियों से इन व्यक्तियों की क्षमताओं को विकसित किया जा सकता है और उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है।

ऑटिज्म से जुड़े तथ्य- ग्रीक शब्द ऑटोस से लिया गया, जिसका अर्थ है स्वयं, ऑटिज्म का तात्पर्य ष्अकेलेपनष् से है।

हालांकि ऑटिज्म का सटीक कारण अभी भी अज्ञात है, परंतु पर्याप्त प्रमाण यह संकेत देते हैं कि मस्तिष्क के विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न शारीरिक कारक इसके लिए जिम्मेदार हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ प्रकार के ऑटिज्म के लिए आनुवंशिक कारकों की भूमिका मानी जाती है।

हर 88 में से 1 बच्चे में ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर (एएसडी) का निदान किया जाता है, जिसमें लड़कों में यह संभावना लड़कियों की तुलना में लगभग पांच गुना अधिक होती है (लड़कों में 1/54 और लड़कियों में 1/252)।

कुछ एएसडी वाले बच्चे संगीत, कला या गणित जैसे क्षेत्रों में असाधारण प्रतिभा प्रदर्शित करते हैं, जिन्हें ष्ऑटिस्टिक सवांट्सष् कहा जाता है।

योग चिकित्सा- ऑटिज्म के साथ, मन और शरीर के कार्य अक्सर विघटित होते हैं। ऑटिज्म के लिए योग चिकित्सा बच्चों के समग्र व्यक्तिगत विकास पर ध्यान केंद्रित करती है, ताकि शक्ति, लचीलापन और श्वसन में सुधार किया जा सके। आसन और प्राणायाम शरीर और मन को जोड़ते हैं, कनेक्शनों को बढ़ाते हैं। यह अभ्यास बच्चे को शांत करने और शरीर के साथ अधिक सहज महसूस करने में मदद करता है, जिससे दर्द और चिंता में कमी आती है। यह व्यवहार पर बेहतर नियंत्रण, नए कौशल सीखने और सामाजिक संवाद का आनंद लेने में सहायक होता है। बच्चों को गति और गतिविधियाँ पसंद होती हैं। सूर्य नमस्कार गतिशील होता है और इसके लाभ उत्पन्न होते हैं। उल्टे आसन शरीर को विश्राम और पुनर्नवीनीकरण करने का अवसर देते हैं। आगे झुकना पूरे तंत्रिका तंत्र को शांत करता है और मन को शांति प्रदान करता है। मुड़ने और पीछे झुकने के आसन लचीलापन और जीवनशक्ति में सुधार करते हैं। प्राणायाम श्वास को नियंत्रित करता है, श्वास में सुधार करता है, जिससे भावनाओं और मानसिक स्थिति को नियंत्रित किया जा सकता है। ऑटिज्म को रोका नहीं जा सकता, लेकिन इससे निपटने और आगे बढ़ने के उपाय हैं। यदि बच्चे में ऑटिज्म के लक्षण हैं, तो उपचार के लिए पेशेवर मदद प्राप्त करें। कई लोगों ने सही उपचार के साथ ऑटिज्म को पार किया है। योग चिकित्सा एक प्राकृतिक उपचार है जो चिंता और भावनाओं को नियंत्रित करता है। योग कक्षाएँ लेकर, अभ्यास करने वाले अनुभव साझा करते हैं और समुदाय का हिस्सा बनते हैं, नए दोस्त बनाते हैं। जैसा कि संकेत दिया गया है, योग एक आत्मविकास प्रणाली है। यह एक जीवनभर की यात्रा है, जो अनुभव की भावना को क्रिया की भावना के साथ जोड़ता है।.

योग के लिए तैयारी- चूंकि प्रत्येक बच्चा अलग होता है और उसकी जरूरतें भी अलग होती हैं, इसलिए धीरे-धीरे शुरुआत करना और शिक्षक का बच्चे से जुड़ना और उसकी जरूरतों को समझना महत्वपूर्ण होता है। उन्हें आसन सिखाने से पहले बच्चे के साथ एक संबंध और विश्वास बनाना आवश्यक है, यह एक सत्र में हो सकता है या हफ्तों लग सकते हैं। एक बच्चा एक या दो

सत्रों में पूरे आसन का अनुक्रम पूरा कर सकता है, जबकि दूसरे बच्चे को तैयार महसूस करने से पहले हफ्तों तक मालिश, मंत्र जप, और कहानियों की आवश्यकता हो सकती है। यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षक धैर्य रखें और बच्चे की जरूरतों के अनुसार आगे बढ़ें, और जब बच्चा तैयार हो, वह भाग लेगा। जो बच्चे अधिक सक्रिय होते हैं, उन्हें शुरुआत में केवल बैठने वाले और जमीन पर टिकने वाले आसनों का अभ्यास करना पड़ सकता है ताकि तंत्रिका तंत्र को शांति मिल सके। आदर्श रूप से, योग के लिए एक नियमित स्थान और समय निर्धारित किया जाना चाहिए, जिसमें चटाइयाँ उसी स्थान पर लगाई जाएं। ऐसा स्थान जहां हल्की रोशनी, सादा दीवारें और कोई भी विकर्षक न हो, सबसे अच्छा होगा। समूह कक्षा में, मदद की आवश्यकता होती है और आदर्श रूप से एक शिक्षक या सहायक प्रति बच्चा होना चाहिए। सामान्यत:, ऑटिज्म स्पेक्ट्रम विकार वाले बच्चों को दृश्य तरीके से सीखने की प्रवृत्ति होती है, इसलिए शिक्षक को छात्रों के साथ प्रदर्शित करने और चलने के अलावा, योग कार्ड्स या अन्य दृश्य उपकरणों का उपयोग करना पसंद हो सकता है। सहायक तैयारी उपकरणों में मालिश और संगीत शामिल हैं - अधिकांश बच्चे संगीत और कहानियों पर अच्छी प्रतिक्रिया करते हैं, और मालिश शांति प्रदान करती है।

यहां बच्चों के लिए योग के कुछ लाभ दिए गए हैं:-

- तनाव कम करता है- योग एक शांति भरा वातावरण प्रदान करता है, जिससे बच्चों को धीमा होने का अवसर मिलता है। श्वास संबंधी रणनीतियाँ चिड़चिड़ापन को कम करने, हृदय गति को नियंत्रित करने और कठिन भावनाओं को बाहर निकालने में मदद करती हैं। सचेत श्वास कार्य भी आत्म-संवेदनशीलता का एक उपकरण होता है और अन्य जुनूनी, आक्रामक या आत्म-उत्तेजक व्यवहारों का संभावित प्रतिस्थापन बन सकता है।
- एकाग्रता और संतुलन में सुधार करता है- श्वास कार्य के साथ-साथ योग आसन का अभ्यास बच्चों को काम पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित करता है। मार्गदर्शित चित्रकला भी कक्षा के भीतर मदद कर सकती है, क्योंकि दृश्य को सुनना और मानसिक रूप से क्रियाओं का अनुकरण करना संज्ञानात्मक कौशल और एकाग्रता को विकसित करने में मदद कर सकता है।
- शक्ति और लचीलापन बढ़ाता है- यह कोई रहस्य नहीं है कि ये योग आसन और खिंचाव के शारीरिक लाभों में शामिल होते हैं, लेकिन इसके साथ अक्सर समन्वय, संवेदी सहनशीलता और दर्द में कमी भी होती है।
- मोटर कौशल में सुधार करता है- योग शरीर की जागरूकता बनाता है, जिससे विभिन्न प्रकार की गति पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इसमें आसन कौशल शामिल हैं, जो बच्चों को कुर्सियों में सीधा बैठने में भी मदद कर सकते हैं।
- सहकर्मी और सामाजिक इंटरएक्शन को बढ़ावा देता है- योग शिक्षक के नेतृत्व में, दोहराव और अपने शरीर और मस्तिष्क को सुनना भावनात्मक, भाषा और संचार कौशल विकसित करने में मदद कर सकता है, जिसे अन्य सामाजिक इंटरएक्शन में भी अनुवादित किया जा सकता है।
- बेहतर नींद की ओर अग्रसर करता है- कम तनाव अक्सर बेहतर नींद का मार्ग प्रशस्त करता है, क्योंकि आराम से भरे मन और मांसपेशियां आराम के लिए अधिक खुली होती हैं।
- आत्मविश्वास का निर्माण करता है- शायद सबसे अच्छा, योग एक सकारात्मक आत्म-बोध उत्पन्न कर सकता है। ऑटिज्म वाले बच्चों के लिए, मजेदार और प्रभावशाली आसन उन्हें सफल महसूस करा सकते हैं। यह सभी क्षमताओं वाले व्यक्तियों के लिए सत्य है क्योंकि समय के साथ इन्हें संशोधित किया जा सकता है।

एएसडी से पीड़ित बच्चों के लिए डिजाइन की गई कक्षा

साधारण वार्म-अप - अंगुलियाँ गिनना, साइड स्ट्रेचिंग, बैठकर मोड़, शरीर के विभिन्न हिस्सों को थपथपाकर शरीर की जागरूकता को बढ़ाना।

प्राणायाम - श्वास संबंधी तकनीकें धीरे-धीरे तंत्रिका तंत्र को मजबूत करेंगी और एकाग्रता में सुधार करेंगी, श्वास और फेफड़ों की क्षमता को बढ़ाएंगी, और योग कक्षा से बाहर भी तंत्रिका तंत्र को शांत करने के लिए एक उपयोगी उपकरण साबित होंगी।

- शेर की श्वास (शेर की तरह दहाड़ना।)
- कपालभाति श्वास

- साधारण अनुलोम विलोम
- ब्रह्मारी (मधुमक्खी की तरह गुंजन करना)

सूर्य नमस्कार – ये केवल तब प्रस्तुत किए जाएं जब बच्चा तैयार हो और उन्होंने खड़े होकर आसन करना सीख लिया हो।

खड़े हुए आसन – योद्धा 2 और उत्तित त्रिकोणासन पैर और टखनों को मजबूत करने के लिए उत्कृष्ट हैं और बच्चों को मजबूत और स्थिर महसूस कराते हैं।

आगे झुकने वाले आसन – बैठकर आगे झुकना (पश्चिमोत्तानासन), खड़े होकर आगे झुकना (उत्तानासन) या बालासन यह आसन तंत्रिका तंत्र को शांत करने में मदद करते हैं और शांति प्रदान करते हैं। विशेष रूप से अति सक्रिय बच्चों के तंत्रिका तंत्र को शांत करने और चिंता के लिए लाभकारी।

पीछे झुकने वाले आसन – भुजंगासन (सर्प आसन) और धनुरासन (धनुष आसन) बहुत ही सुलभ और मजेदार हो सकते हैं। यह आसन हृदय केंद्र को खोलते हैं, सकारात्मक मूड को बढ़ाते हैं और फेफड़ों की क्षमता को बढ़ाने में मदद करते हैं। शिक्षक इन आसनों में बच्चों का समर्थन कर सकते हैं क्योंकि शुरुआत में उनके पास खुद से उठने की शक्ति नहीं हो सकती है, और इससे उन्हें सुरक्षित महसूस होता है और विश्वास का निर्माण होता है।

संतुलन – वृक्ष आसन, यह बच्चे को संतुलन ढूंढने में मदद करता है और एकाग्रता बढ़ाता है। यदि यह समूह कक्षा में हो, तो छात्रों को एक वृत्त में खड़ा होने और हाथ पकड़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है, जिससे एकजुट होकर काम करने का तत्व जुड़ता है।

स्पाइनल ट्विस्ट – बैठकर मोड़ और सुपाइन स्पाइनल ट्विस्ट से रीढ़ की हड्डी को टोन करना, अंगों को शुद्ध करना और रीढ़ की हड्डी की गतिशीलता बढ़ाना।

शवासन – गहरी विश्राम, इसमें मसाज और शांत संगीत भी शामिल किया जा सकता है।

ऑटिज्म पर शोध– ळमज त्मंकल ज्व स्मंतदष् एक शोध–समर्थित कक्षा योग पाठ्यक्रम है जिसे एनी बकलि–रीन ने विकसित किया है, जो सभी क्षमताओं के छात्रों को सीखने के लिए तैयार करने के लिए डिजाइन किया गया है। यह कार्यक्रम योग आसनों, श्वास व्यायामों और विश्राम तकनीकों को एक 20 मिनट की अनुक्रम में एकीकृत करता है, जो प्रत्येक सुबह स्कूल गतिविधियों के शुरू होने से पहले किया जाता है। 2008 में न्यू यॉर्क सिटी के विशेष आवश्यकताओं वाले कक्षाओं में शुरू हुआ, यह कार्यक्रम 20 अमेरिकी राज्यों में फैल चुका है, न्यू यॉर्क में 500 से अधिक कक्षाओं में लागू हो चुका है, और यहां तक कि इसे यूके में भी लागू किया गया है। 2012 में अमेरिकन जर्नल ऑफ ऑक्यूपेशनल थेरेपी में प्रकाशित एक अध्ययन में दिखाया गया कि योग ने ऑटिज्म वाले बच्चों के स्कूल प्रदर्शन और ध्यान की स्थिति में सुधार किया। न्यू यॉर्क स्कूल में एक 16–सप्ताह के कार्यक्रम में, योग सत्रों के पहले और बाद में छात्रों के व्यवहार का मूल्यांकन किया गया, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि कक्षा के महत्वपूर्ण व्यवहारों में महत्वपूर्ण सुधार हुआ है। लंदन के स्पेशल योगा सेंटर ने ळमज त्मंकल ज्व स्मंतदष् कार्यक्रम का मूल्यांकन किया, जिसमें यह पाया गया कि भाग लेने वाले 68ः से अधिक बच्चों ने ध्यान, प्रदर्शन, संक्रमण क्षमता, आत्म–नियमन और संचार में सुधार दिखाया। स्पेशल योगा सेंटर के अनुसार, ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर (ASD) या विकासात्मक चुनौतियों वाले बच्चे जो नियमित रूप से योग का अभ्यास करते हैं, उनमें महत्वपूर्ण सुधार होते हैं, जिसमें बेहतर नींद, आत्म–नियमन, एकाग्रता, गतिविधियों के बीच संक्रमण की क्षमता, व्यवहार, संचार, जागरूकता, कल्याण, मोटर कौशल, संतुलन, समन्वय और मूड में सुधार शामिल है। जबकि ऑटिज्म वाले बच्चों के लिए योग अभी भी एक अपेक्षाकृत नया विचार है और इसमें सीमित शोध है, योग को एक चिकित्सीय उपकरण के रूप में अपनाने वाली बढ़ती हुई संख्या यह सुझाव देती है कि इसके सकारात्मक परिणाम हैं। बच्चों के लिए योग अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है, और अब इसे ऑटिज्म वाले बच्चों पर भी बढ़ते हुए लागू किया जा रहा है। विभिन्न विशेषज्ञ प्रशिक्षण कार्यक्रम अधिक व्यापक रूप से उपलब्ध हो रहे हैं, जैसे कि न्यू जर्सी में समाधि सन योगा फॉर ऑटिज्म शिक्षक प्रशिक्षण, जो स्तर 1 और 2 पाठ्यक्रमों के साथ–साथ परिवारों और शिक्षकों के लिए कार्यशालाएँ प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, ब्राजील में सोनिया सुमार द्वारा स्थापित योग फॉर द स्पेशल चाइल्ड कार्यक्रम अब दुनिया भर में स्थानों पर पढ़ाया जा रहा है, जिनमें न्यू यॉर्क, लंदन, भारत, दुबई, कैलिफोर्निया, ताइवान, हांगकांग, स्विट्जरलैंड, अलास्का, डेनमार्क, बहामास, स्पेन और ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं। डियोन और स्टेसी बेट्स, जिन्होंने अपनी व्यस्त जीवनशैली को प्रबंधित करने के लिए योग का सफलतापूर्वक उपयोग किया, ने अपने

बेटे के लिए इसके संभावित लाभ की खोज की, जो एएसपीरगर्स सिंड्रोम से ग्रस्त थे। उन्होंने 'Yoga for Children with Autism Spectrum Disorders" नामक किताब लिखी, जो पूरी तरह से चित्रित गाइड है, जो माता-पिता और देखभाल करने वालों को ASD के लक्षणों को शांत करने के लिए योग का उपयोग करने के लिए चरण-दर-चरण तकनीक प्रदान करती है।

ऑटिज्म से पीड़ित बच्चों के लिए योग के लाभ- योग ऑटिज्म से ग्रस्त बच्चों के लिए कई प्रकार के लाभ प्रदान करता है, जो उनके शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। यह शक्ति, संतुलन और समन्वय को बढ़ाने से लेकर आत्म-नियमन का समर्थन करने तक, समग्र स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए एक मूल्यवान उपकरण के रूप में कार्य करता है। इस लेख में, हम छह तरीकों का पता लगाएंगे, जिनसे योग ऑटिज्म स्पेक्ट्रम पर बच्चों के जीवन में महत्वपूर्ण सुधार ला सकता है, और उनके भावनात्मक स्थिरता और शारीरिक विकास को बढ़ावा दे सकता है।

1. सामाजिक इंटरैक्शन और संचार दक्षता में वृद्धि- ऑटिज्म योग एक प्रभावी तरीका है जो अनुकरण कौशल, संज्ञानात्मक क्षमताओं और सामाजिक-संचार व्यवहारों में सुधार करता है। इस अभ्यास के माध्यम से, बच्चों में आंखों से संपर्क, बैठने की सहनशीलता, अप्रकट संचार और ग्रहणशील संचार कौशल जैसे क्षेत्रों में प्रगति देखी जाती है। क्रियाओं को समझने और नकल करने की क्षमता सामाजिक संचार के विकास के लिए आवश्यक है। योग में, बच्चे मुद्रा और श्वास अभ्यास के दौरान वयस्क की क्रियाओं की नकल करके अपनी ध्यान केंद्रित करने और दूसरों के साथ जुड़ने की क्षमता को बढ़ाते हैं, जिससे उनका संयुक्त ध्यान (जॉइंट अटेंशन) बेहतर होता है। दृश्यात्मकता, मार्गदर्शित चित्रण और शब्दावली पुनरावृत्ति के लिए दृश्य सहायता का उपयोग जैसे तकनीकें भाषा और शब्दावली के विकास में और मदद कर सकती हैं, जिससे ऑटिज्म योग बच्चों में कौशल निर्माण के लिए एक समग्र उपकरण बन जाता है।

बच्चों में निम्नलिखित क्षेत्रों में सुधार हो सकता है-

- नेत्र संपर्क
- बैठने की सहनशीलता
- गैर-मौखिक संचार
- ग्रहणशील संचार कौशल

क्रियाओं को समझना और उनकी नकल करना सामाजिक संचार क्षमताओं के विकास से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। योग में, बच्चे वयस्कों की क्रियाओं की नकल करके आसन और श्वास तकनीकें सीखते हैं, जो उनके साझा ध्यान बनाए रखने की क्षमता को बढ़ाता है। विजुअलाइजेशन, मार्गदर्शित चित्रण, और दृश्य सहायता के साथ शब्दावली का पुनरावृत्ति जैसी तकनीकें भाषा और शब्दावली विकास में और सहायता कर सकती हैं, जिससे ऑटिज्म पर केंद्रित योग बच्चों के कौशल विकास के लिए एक बहुआयामी उपकरण बनता है।

2. भावनाओं की जागरूकता और अभिव्यक्ति- योग और ऑटिज्म एक-दूसरे के पूरक होते हैं, जो भावनात्मक जागरूकता को बढ़ावा देते हैं। यह अभ्यास न केवल सामाजिक संकेतों जैसे चेहरे के भाव, क्रियाओं और व्यवहारों को पहचानने में मदद करता है, बल्कि यह बच्चों को अपनी भावनाओं के प्रति अधिक जागरूक भी बनाता है। ऑटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर (ASD) वाले बच्चों को प्रकट और ग्रहणशील संचार में अक्सर कठिनाई होती है, जिससे वे अपनी भावनाओं को अप्रत्याशित या अनुपयुक्त तरीकों से व्यक्त करते हैं। श्वास की तकनीकों को सिखाकर, ऑटिज्म वाले बच्चों को गुस्से, निराशा या चिंता जैसी कठिन भावनाओं को अधिक स्वस्थ और रचनात्मक तरीके से छोड़ने की क्षमता मिल सकती है। ऑटिज्म वाले बच्चों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का एक आउटलेट प्रदान करना उन्हें यह संदेश देता है कि इन भावनाओं को महसूस करना ठीक है और यह दिखाता है कि रचनात्मक रूप से व्यक्त करना उनके भावनात्मक कल्याण में सुधार कर सकता है।

3. चिंता में कमी- कई ऑटिज्म से पीड़ित बच्चों को उच्च स्तर की चिंता का सामना करना पड़ता है, जो उनके नींद, मूड, व्यवहार और समग्र स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डाल सकता है। संचार में कठिनाइयाँ, संवेदी एकीकरण की समस्याएँ और अन्य कारकों के कारण, ASD वाले बच्चे अक्सर चिंता की स्थिति में रहते हैं, जिसे आमतौर पर फाइट/फ्लाइट प्रतिक्रिया कहा जाता है। जब बच्चे इस उच्च स्तर की चिंता में होते हैं, तो उनकी संज्ञानात्मक क्षमताएँ और संचार कौशल कम हो जाते हैं, और वे गहरी श्वास के बजाय ऊपरी छाती की श्वास या अधिक श्वास लेने की स्थिति में पहुंच सकते हैं, जिससे उनकी चिंता बढ़ सकती है। विशिष्ट

श्वास तकनीकों को सिखाकर उनकी चिंता कम करने और तंत्रिका तंत्र को शांत करने में मदद की जा सकती है। ध्यानपूर्ण श्वास, मार्गदर्शित चित्रण और शांत करने वाली मुद्राएँ बच्चों को आत्म-नियमन और मुकाबला करने की रणनीतियाँ सिखा सकती हैं। ये अभ्यास तनाव पर बेहतर शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करने में मदद करते हैं, जो उनके मन और शरीर में तनाव को कम करते हैं, और इसके परिणामस्वरूप उनकी नींद, पाचन, मूड, व्यवहार और समग्र कल्याण में सुधार होता है।

4. कम हुई चुनौतीपूर्ण व्यवहार- एएसडी वाले बच्चों को अक्सर संचार, भाषा, भावनात्मक अभिव्यक्ति, ध्यान और संवेदी एकीकरण जैसे क्षेत्रों में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिससे चुनौतीपूर्ण व्यवहार उत्पन्न हो सकते हैं। योग इन समस्याओं को संबोधित करने में एक सहायक उपकरण हो सकता है। निरंतर योग अभ्यास धीरे-धीरे व्यवहार में सुधार को बढ़ावा दे सकता है, जिससे आत्म-नियमन, ध्यान और संवेदी संवेदनाओं को प्रबंधित करने जैसे कौशल का विकास होता है। श्वास अभ्यास और योग आसनों को जोड़कर, ऑटिज्म वाले बच्चे चिंता में कमी का अनुभव कर सकते हैं, जिससे मूड और व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन होते हैं। यह तरीका आत्म-नियमन और मुकाबला करने की आवश्यक क्षमताओं के विकास में भी योगदान करता है। कई एएसडी वाले बच्चों को संवेदी एकीकरण में कठिनाई होती है, जो पर्यावरण और उनके शरीर से संवेदी उत्तेजनाओं को संसाधित करने और प्रतिक्रिया देने से संबंधित है। यह उनके गतिविधि स्तर, सतर्कता और विभिन्न संवेदनाओं के प्रति भावनात्मक या शारीरिक प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित करने पर असर डालता है। इन प्रतिक्रियाओं को प्रबंधित करने की क्षमता को बढ़ाना, जिसे अक्सर आत्म-नियमन कहा जाता है, बच्चों को संवेदी अनुभवों के प्रति अपनी ध्यान, ऊर्जा और भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को बेहतर तरीके से समायोजित करने में सक्षम बनाता है।

5. बढ़ी हुई शारीरिक जागरूकता- कई ऑटिस्टिक बच्चों को शारीरिक जागरूकता में कमी हो सकती है। योग और शारीरिक गति के माध्यम से शरीर के हिस्सों को पहचानने और सिखाने से बच्चों को अपनी शारीरिक जागरूकता में सुधार करने में मदद मिल सकती है। ऐसे आसन जो वेस्टिबुलर और प्रोप्रियोसेप्टिव इनपुट प्रदान करते हैं, वे भी शारीरिक जागरूकता में योगदान करते हैं। योग में सिखाए गए दिशात्मक अवधारणाएँ, जैसे ऊपर और नीचे, बाएं और दाएं, शारीरिक जागरूकता को विकसित करने में सहायक होती हैं।

6. सकारात्मक आत्म-संवेदन- ऊपर बताए गए कई लाभों के अतिरिक्त, योग बच्चों को आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान विकसित करने में भी मदद कर सकता है। संतुलन और खड़े होने वाले आसन विशेष रूप से ऑटिस्टिक बच्चों के लिए उत्साहजनक और सशक्त बनाने वाले होते हैं। चाहे खड़ा हो, संतुलन बनाए हो, या बैठा हो, हर आसन को बच्चे की क्षमताओं के अनुसार अनुकूलित किया जा सकता है, जो आत्म-सम्मान को बढ़ाता है और सफलता की भावना को उत्पन्न करता है।

ऑटिज्म के लिए अपने बच्चे को योग सिखाने के टिप्स- योग को बच्चे की दिनचर्या में घर, स्कूल या किसी कार्यक्रम के भीतर आसानी से शामिल किया जा सकता है। यह आत्म-नियमन में मदद करता है, संचार को बेहतर बनाता है, चुनौतीपूर्ण भावनाओं को व्यक्त करने में मदद करता है और चिंता और निराशा को कम करता है। योग एक साथ अभ्यास करने से बच्चे और वयस्क दोनों के लिए एक शांत और आरामदायक वातावरण बनता है, जो सकारात्मक और सुकून देने वाला अनुभव प्रदान करता है।

बच्चों को ऑटिज्म के लिए योग सिखाने के लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं- चित्र, खेल, पुनरावृत्ति और रोचक गतिविधियों का उपयोग करके सरल योग आसन और श्वास तकनीकों को परिचित कराएं। आसान आसन और श्वास तकनीकों से शुरू करें जो बच्चे को सफलता का अनुभव कराते हैं। इनका नियमित अभ्यास करें, फिर अधिक जटिल आसन और श्वास तकनीकों पर जाएं।

एक योग अनुसूची बनाएं जिसमें आसनों के चित्र हों, ताकि नियमितता बनी रहे और बच्चा जान सके कि उसे क्या उम्मीद करनी है।

- बच्चे को उनके पसंदीदा आसन चुनने की अनुमति दें, जिससे उन्हें भागीदारी और नियंत्रण का अहसास होगा।
- दिनभर में 'योग ब्रेक' शामिल करें, ताकि आंदोलन, खिंचाव और श्वास को बढ़ावा मिले, और यह पुनः से शुरुआत करने का अवसर प्रदान करता है।
- एक विशिष्ट ष्योग स्थानष् समर्पित करें जिसमें आसनों और श्वास अभ्यासों के चित्र हों, जिन्हें बच्चा जब चाहे उपयोग कर सके। यदि पसंद हो, तो बैठकर साधारण चेयर योग खिंचाव किए जा सकते हैं।

- बच्चों को जब वे परेशान, चिंतित या उत्तेजित महसूस करें तो श्वास अभ्यास या योग खिंचाव का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करें, ताकि नकारात्मक व्यवहार की जगह यह एक शांति देने वाला तरीका बन सके।

ऑटिज्म और योग के लाभों को अपनाना- ऑटिज्म वाले बच्चों के लिए योग के लाभों को अपनाने से कई फायदे होते हैं, जिनमें आत्म-नियमन, संचार को बेहतर बनाना, और चिंता और निराशा को कम करना शामिल है। योग एक शांतिपूर्ण वातावरण बनाता है जो बच्चों को भावनात्मक जागरूकता और सामना करने की रणनीतियाँ विकसित करने में मदद करता है, साथ ही साथ उनकी उपलब्धि और आत्मविश्वास को बढ़ाता है। बच्चों और वयस्कों दोनों के लिए, योग रोजमर्रा की चुनौतियों को जुड़ाव और व्यक्तिगत विकास के अवसरों में बदल सकता है। ऑटिज्म के लिए योग को एक उपचारात्मक उपकरण के रूप में अपनाने से सभी प्रतिभागियों के लिए अधिक संतुलित, सकारात्मक और शांति अनुभव प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ-

- Semple, R. J. (2019). Yoga and mindfulness for youth with autism spectrum disorder: review of the current evidence. Child and adolescent mental health, 24(1), 12-18. https://acamh.onlinelibrary.wiley.com/doi/abs/10.1111/camh.12295
- Artchoudane, S., Bhavanani, A. B., Ramanathan, M., & Mariangela, A. (2019). Yoga as a therapeutic tool in autism: A detailed review. Yoga Mimamsa, 51(1), 3-16. https://journals.lww.com/yomi/fulltext/2019/51010/Yoga_as_a_therapeutic_tool_in_autism__A_detailed.2.aspx
- Kaur, M., & Bhat, A. (2019). Creative yoga intervention improves motor and imitation skills of children with autism spectrum disorder. Physical therapy, 99(11), 1520-1534. https://academic.oup.com/ptj/article-abstract/99/11/1520/5637981
- Kaur, M., Eigsti, I. M., & Bhat, A. (2021). Effects of a creative yoga intervention on the joint attention and social communication skills, as well as affective states of children with autism spectrum disorder. Research in autism spectrum disorders, 88, 101860. https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S1750946721001355
- Radhakrishna, S., 2010 http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC2952122/
- Koenig, Buckley-Reen & Garg., 2012 http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pubmed/22917120
- Smith, K.A. and Gouze, K.R. (2004) The Sensory Sensitive Child: Practical Solutions for Out-of-Bounds Behavior. New York, NY: HarperCollins.
- https://www.autismparentingmagazine.com/creating-inner-peace-the-benefits-of-yoga-for-children-with-autism-spectrum-disorder/
- https://www.andiappanyoga.com/yoga-therapy-autism
- https://www.hopebridge.com/blog/benefits-yoga-children-autism/
- https://yogagoaindia.com/yoga-for-children-with-autism/
- https://www.hopebridge.com/blog/benefits-yoga-children-autism/

छत्तीसगढ़ राज्य के प्रमुख पर्यटन स्थलः एक अध्ययन

डॉ० दिव्या शुक्ला

दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

शोध संपेक्षिकाः-

छत्तीसगढ़ राज्य मध्य भारत का एक विशाल वनों से घिरा हुआ राज्य है जो अपने प्राचीन मंदिरों, झरनों एवं अनेक रमणीय एवं दर्शनीय स्थलों के लिए जाना जाता है। छत्तीसगढ़ को मुख्य रूप से दक्षिण कोसल के रूप में जाना जाता है जिसका विस्तृत उल्लेख रामायण और महाभारत में भी मिलता है। भारत देश का हृदय स्थल छत्तीसगढ़ होने के कारण यह अनेक धार्मिक, ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक दर्शनीय स्थलों से परिपूर्ण है। छत्तीसगढ़ प्रकृति की गोद में बसा हुआ है। इस कारण छत्तीसगढ़ प्राकृतिक सुंदरता से पूर्ण रूप से संपूर्ण है। यह राज्य देश का हृदय स्थल होने के कारण यह अनेक ऐतिहासिक, धार्मिक एवं प्राकृतिक दर्शनीय स्थलों से परिपूर्ण है। यहाँ अनेक धर्म संप्रदायों की उत्पत्ति हुई है एवं उनकी प्रचार स्थली है। पर्यटन की दृष्टिकोण से छत्तीसगढ़ राज्य के छोटे बड़े लगभग 100 से ज्यादा स्थान पर्यटन स्थल के रूप में चिन्हांकित किए गए हैं। सामान्यतः जो स्थल पर्यटकों के लिए रोचक होते हैं, उन्हें पर्यटन-स्थल कहते हैं। यह स्थल धर्म, मनोरंजन, शिक्षा, प्राकृतिक सुषमा या महत्वपूर्ण इमारतों या अन्य संस्थानों के कारण महत्वपूर्ण हो सकते हैं। विश्व पर्यटन संगठन श्वॅतसक ज्वनतपेउ व्तहंदप्रंजपवदश् के अनुसार पर्यटक वे लोग हैं जो यात्रा करके अपने सामान्य वातावरण से बाहर के स्थानों में रहने जाते हैं, यह दौरा ज्यादा से ज्यादा एक साल के लिए मनोरंजन, व्यापार, अन्य उद्देश्यों से किया जाता है, यह उस स्थान पर किसी खास क्रिया से संबंधित नहीं होता है। पर्यटन दुनिया भर में एक आरामपूर्ण गतिविधि के रूप में लोकप्रिय हो गया है। पारिस्थितिकी पर्यटन में चिकित्सा पर्यटन (चिकित्सा के लिए यात्रा), शैक्षिक पर्यटन (ज्ञान के विकास के लिए), निर्माणात्मक पर्यटन (सांस्कृतिक पर्यटन के लिए), साहसिक पर्यटन (साहसिक यात्रा के लिए) काला पर्यटन (भूमि, युद्ध, भयानक दृश्य के लिए) इत्यादि मुख्य रूप से सम्मिलित है। छत्तीसगढ़ में अनेक ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक स्थल है, जो पर्यटन की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है ये छत्तीसगढ़ के गौरवशाली इतिहास को बयां करने के साथ ही साथ राज्य के पर्यटन को विकसित करने में अत्यंत ही महत्वपूर्ण स्थान निभाते हैं। छत्तीसगढ़ प्रकृति की अनुपम देन है। यहां शस्य-श्यामला भूमि में अनेक संस्कृतियों का प्रादुर्भाव हुआ है। संस्कृतियों के विकास एवं विनाश की गाथा लिए छत्तीसगढ़ की धरा इनकी साक्षी बनी है। इन्हीं संस्कृतियों के अवशेष जिन्हें हम पुरातत्व या मंदिर के धरोहर कह सकते हैं। छत्तीसगढ़ के मध्य क्षेत्र में पर्यटन की अपार संभावनाएँ हैं छत्तीसगढ़ के दक्षिण क्षेत्र के रूप बस्तर को माना गया है। इस प्रकार पर्यटन को आर्थिक विकास और रोजगार सृजन का एक सशक्त माध्यम माना जाता है अतः पर्यटन क्षेत्र के महत्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि दुनिया के करीब 150 देशों में विदेशी मुद्रा की कमाई करने वाले प्रमुख क्षेत्रों में पर्यटन भी एक है।

मूल शब्दः- स्मारक, टाईगर रिजर्व, रोजगार, पर्यटन स्थल, गुफा, अवशेष, दर्शनीय, अभ्यारण्य, राष्ट्रीय उद्यान, पर्यटन, छत्तीसगढ़, प्रकृति, राज्य, वन, आदिवासी, प्रकृति, आर्थिक-विकास, नदी, यात्रा, मनोरंजन, धर्म, मंदिर, मेला।

प्रस्तावनाः-

छत्तीसगढ़ राज्य पर्यटन विकास की दृष्टि से जितने भी दर्शनीय एवं पर्यटन स्थल है उनके अधोसंरचना से राज्य कुशल एवं समृद्ध है। इस राज्य की सुंदर एवं मनोरम भूमि पर एक ओर जहां मैकल, सिहावा और रामगिरी जैसी पर्वत मालाएँ हैं वहीं दूसरी ओर

महानदी, शिवनाथ नदी, इंद्रावती नदी, सोनपैरी, हसदेव, सबरी और खारून जैसे नदियों का पानी बहता है। छत्तीसगढ़ प्राकृतिक संपदा से भरपूर है, यहां घने पेड़ों से आच्छादित वन संपदा और उपजाऊ भूमि की बहुतायत है। आदिवासी बहुल राज्य होने से छत्तीसगढ़ की अपनी अलग ही रंगीन सांस्कृतिक धरोहर है। इन जातियों के थिरकते लोक-नृत्य, मदमाता संगीत और आकर्षक लोकनाटक पर्यटकों को अत्यंत ही आकर्षित करता है। चरवाहों का लोक नृत्य, राउत नाचा, पंथी, सुआ, छेरछेरा आदि दर्शनीय लोक नृत्य है। आदिवासियों के मंत्र मुग्ध कर देने वाले लोकनृत्यों गहरी गुफाओं, विशाल किलों और अत्यंत ही आश्चर्यचकित कर देने वाले प्राकृतिक सौंदर्य पर्यटकों के मन पर गहरी छाप डालता है।

छत्तीसगढ़ राज्य में अनेक धर्म संप्रदायों की उत्पत्ति हुई है एवं उनके प्रचार स्थली भी यह राज्य रहा है। पर्यटन की दृष्टिकोण से छत्तीसगढ़ राज्य के छोटे-बड़े लगभग 100 से ज्यादा स्थान, पर्यटन स्थल के रूप मैं चिन्हांकित किए गए हैं, जिसमें से प्रमुख पर्यटन स्थल निम्न है:-

- भोरमदेव मंदिर - प्रदेश का एक ऐतिहासिक मंदिर भोरमदेव मंदिर है, जो कि ''छत्तीसगढ़ के खजुराहो'' के नाम से प्रसिद्ध है। यह मंदिर कबीरधाम से लगभग 16 किलोमीटर की दूरी पर चौरा ग्राम में मैकल श्रेणी पर स्थित है।
- राजिम - ''छत्तीसगढ़ की प्रयाग'' नगरी के नाम से प्रसिद्ध राजिम नगरी महानदी, पैरी और सोढूंर नदी के त्रिवेणी संगम पर गरियाबंद जिले में स्थित है। यह छत्तीसगढ़ में राजीव लोचन मंदिर एवं संगम स्थल पर कुलेश्वर महादेव मंदिर के लिए प्रसिद्ध है।
- डोंगरगढ़ - छत्तीसगढ़ का तीर्थ-स्थल डोंगरगढ़ को माना जाता है। मां बमलेश्वरी माता जी के नाम से 1600 फीट की ऊंचाई पर प्रसिद्ध प्राचीन मंदिर स्थित है। यहां नवरात्रों में वृहद् मेले का आयोजन किया जाता है।
- मैनपाट - ''छत्तीसगढ़ के शिमला'' के नाम से प्रसिद्ध है मैनपाट जोकि सरगुजा जिले में स्थित है यह एक अंडरग्राउंड हिल स्टेशन है। इसे ''मिनी-तिब्बत'' के रूप में भी जाना जाता है। यहां पर हिल प्वाइंट, टाइगर प्वाइंट, इको प्वाइंट, उल्टा पानी, बौद्ध मंदिर आदि घूमने योग्य स्थान है।
- तीरथगढ़ वॉटरफॉल - तीरथगढ़ वाटर फाल बस्तर जिले से जगदलपुर से लगभग 38 किलोमीटर दूर कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान में कांगेर नदी की सहायक नदी मूनगा एवं बहार नदी में यह झरना स्थित है। यह लगभग 300 फीट की ऊंचाई से गिरते हुए इनकी सुंदरता उस तरह से दिखती है जैसे कि यहां कई झरनों में विभाजित हो रहा है। इस वॉटरफॉल को छत्तीसगढ़ का सबसे ऊंचा झरना माना जाता है, इसके निकट ही शिवजी और पार्वती माता को समर्पित प्रसिद्ध मंदिर है।
- गिरौधपुरी - बलौदा बाजार जिले में स्थित गिरौदपुरी सतनाम पंथ के प्रवर्तक गुरु घासीदास जी की जन्म स्थली है। सतनाम पंथियों के लिए यह एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है जहां पर कुतुबमीनार से भी ऊंचे जैतखाम का निर्माण किया गया है। फाल्गुनी पंचमी के दिन विशाल मेले का आयोजन किया जाता है जिसमें देश-विदेश के लोग भी बड़ी संख्या में सम्मिलित होते है।
- लक्ष्मण मंदिर - लक्ष्मण मंदिर प्राचीन स्मारक है जो गहरे प्रेम का एक अनूठा उदाहरण है। नागर शैली का यह मंदिर रानी वासाटा देवी, राजा हर्षगुप्त की स्मृति में महाशिवगुप्त बालार्जुन के शासनकाल के दौरान 735-40 ईसवीं में बन गया था। प्यार का यह अनोखा स्मारक ताजमहल से भी पुराना है। भगवान विष्णु को समर्पित यह मंदिर जिसके गर्भगृह में शेषनाग में लक्ष्मण जी की मूर्ति है, इसलिए इसे लक्ष्मण मंदिर कहा जाता है।
- काँगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान - भारत के सबसे घने राष्ट्रीय उद्यानों में से एक के रूप में जाना जाने वाला कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान एक समृद्ध जैव विविधता, लुभावनी परिदृश्य, प्राकृतिक झरने के लिए मशहूर है। यह छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले के जगदलपुर में स्थित है। यह उद्यान 200 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में फैला हुआ एक विशाल राष्ट्रीय उद्यान है, साथ ही साथ इस उद्यान को एशिया का प्रथम बायोस्फीयर रिजर्व (जीवमडंल) घोषित किया था।
- इंद्रावती राष्ट्रीय उद्यान - छत्तीसगढ़ का इंद्रावती राष्ट्रीय उद्यान एक टाइगर रिजर्व है, छत्तीसगढ़ के हरित राज्य में एकमात्र बाघ अभ्यारण्य इंद्रावती नेशनल पार्क है। इंद्रावती नदी के पास ही अवस्थित होने के कारण इसका नाम इंद्रावती पड़ा। यहां शेर, नील गाय, काले हिरण, सांभर, गौर, बाघ, तेंदुआ, चीतल, सुस्त-भालू, अन्य प्रजातियां एवं दुर्लभ लुप्तप्राय, जंगली एशियाई भैंस भी देखने योग्य है। यहां बीजापुर जिले में स्थित है।

- कुनकुरी जशपुर – ईसाइयों का सबसे बड़ा धार्मिक स्थल कुनकुरी जशपुर जिले में स्थित है। यह चर्च एशिया का दूसरा सबसे बड़ा चर्च है। प्रतिवर्ष क्रिसमस के समय यहां पर भव्य मेले का आयोजन किया जाता है। चर्च में 7 छतें हैं, यह सब एक ही बिम पर टिकी हुई है। इसका आकार अर्धवृत्ताकार है। यह ईश्वर की फैली हुई भुजाओं के समान है, जो सभी मनुष्यों को अपने पास बुलाती है। इस चर्च में करीब 10000 लोग एक साथ प्रार्थना कर सकते हैं। इस चर्च में हर साल लगभग 5 लाख लोग आते हैं।

इन महत्वपूर्ण पर्यटन स्थलों के अतिरिक्त अन्य दर्शनीय स्थल छत्तीसगढ़ राज्य में पूरखौती मुक्तांगन, विवेकानंद सरोवर, दूधाधारी मंदिर, महामाया देवी मंदिर, महंत घसीदास स्मारक संग्रहालय, नंदनवन जंगल सफारी, कोटमसर गुफा, ढोलकल गणेश, अमृतधारा जलप्रपात, देवरानी जेठानी मंदिर, सिकासार जलाशय, उदन्ती, सतरंगा, केशकाल, कानन पेंडारी, भूतेश्वरनाथ मंदिर, घटारानी मंदिर, सीतानदी, टाइगर रिजर्व, सिरपुर डीपाडीह, मल्हार, बारसूर ऐसे ही अनेक दर्शनीय एवं पर्यटन स्थलों से छत्तीसगढ़ राज्य विभूषित है।

निष्कर्षः-

निष्कर्षतः छत्तीसगढ़ अपने आप में पर्यटन के क्षेत्र में समृद्धि की ओर बढ़ता हुआ राज्य है, यहाँ न केवल ऐतिहासिक, पुरातात्विक, धार्मिक, प्राकृतिक एवं औद्योगिक केंद्र, राष्ट्रीय उद्यानों एवं वन्य प्राणी अभ्यारण्य के साथ ही साथ गौरवशाली आदिम संस्कृति का अद्वितीय उदाहरण देखने को मिलता है। छत्तीसगढ़ एक विकासोन्मुख राज्य है, जहां की अर्थव्यवस्था में पर्यटन उद्योग की विशेष भूमिका है। राज्य में समस्त प्रकार के पर्यटन स्थल प्रचुर मात्रा में स्थित है तथा इनके विकास एवं विस्तार की आवश्यकता है। पर्यटन देश के आर्थिक विकास और रोजगार सृजन का एक महत्वपूर्ण कारक है। पर्यटन क्षेत्र के महत्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि दुनिया के करीब 150 देशों में विदेशी मुद्रा की कमाई करने वाले पांच प्रमुख क्षेत्रों में पर्यटन भी एक है। पर्यटन को आर्थिक विकास और रोजगार सृजन का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। भारत में पर्यटन सबसे बड़ा सेवा उद्योग है, जहां इसका राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में 6.23% और भारत के कुल रोजगार में 8.78% योगदान है। भारत में पर्यटन के विकास और उसे बढ़ावा देने के लिए पर्यटन मंत्रालय नोडल एजेंसी है और ''अतुल्य-भारत'' अभियान की देखरेख करता है। अतुल्य-भारत अभियान में छत्तीसगढ़ राज्य के पर्यटन-स्थलों की भी अत्यंत ही महत्वपूर्ण भूमिका परिलक्षित होती है और भविष्य में राज्य के पर्यटन स्थलों को और ही अधिक मनोरम एवं विकसित किए जाने का संकल्प छत्तीसगढ़ राज्य के पर्यटन विभाग द्वारा किया गया है जोकि विकसित भारत की एक ओर एक कदम को प्रदर्शित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. पुस्तकें:-

- मामोरिया चतुर्भुज डॉक्टर, छत्तीसगढ़ का भूगोल, साहित्य भवन पब्लिकेशनस।
- कुमार राजेश, भारत में पर्यटन।
- नारायण भक्त, भारत के पवित्र तीर्थ स्थल।

2. इंटरनेट वेबसाईट्सः-

- www.cg.tripadvisor.com
- www.cg.tourism.cgstate.gov.in
- www.india.gov.in
- www.bastar.gov.in

3. पत्र-पत्रिकाएँ:-

- छत्तीसगढ़ शासन का प्रतिवेदन (मासिक)।
- नव-भारत।
- देश-बंधु।
- दैनिक-भास्कर।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक चिंतन का अध्ययन

डॉ० प्रेम सिंह

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, विजय सिंह पथिक स्नातकोत्तर महाविद्याल; श्री महावीर जी, जिला करौली, राजस्थान

शोध सार संक्षेप

पं. दीनदयाल जी एक कुशल सामाजिक वेत्ता, राजनीतिक पारखी थे। पं. दीनदयाल जी ने समाज को उल्लेखित करते हुए कहते हैं कि समाज की संगठित व्यवस्था अवस्था ही समाज की स्वाभाविक अवस्था है। अर्थात् जिस समाज में संगठनात्मक अवस्था का लोप हो वह समाज पूर्ण नहीं है। जिस समाज में सामुदायिकता छिन्न-भिन्न की स्थिति में हो वह समाज के निर्माण में एकात्म की भावना को सृजित करने में असफल होते हैं। जिस प्रकार से समाज के निर्माण के लिए छोटे-छोटे संस्थाओं (जैसे- व्यक्ति, मूल्य, संस्कृति, धर्म आदि) को संगठित होने की आवश्यकता होती है। तब समाज का निर्माण होता है। जिस प्रकार से छिन्न-भिन्न छोटे-छोटे कण, पत्थर, ईंटे, मकान आदि को पूर्ण नहीं माना जा सकता है उसी प्रकार से समाज है। अतः सामूहिकता ही एक भावी समाज की स्वाभाविक अवस्था होती है। इसके साथ ही साथ यह भी ज्ञात होना कि "हम सब के सब एक है।" इस एकता को पिरोने वाला वह कौन सा वस्तु है। उस वस्तु का भी ज्ञान होना अति आवश्यक है।' पं. दीनदयाल जी समाज के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि आज के वर्तमान परिवेश में एक ऐसी विचारधाराएँ जन्म ले चुकी हैं कि आप किस 'वाद' में विश्वास करते हैं। हम केवल भारतीय संस्कृति तथा भारतीय विचारधारा में विश्वास करते हैं। पं. दीनदयाल जी ने आधुनिक वादों जैसे समाजवाद, पूँजीवाद, अराजकतावाद, अधिनायकवाद को पश्चिमी विचारधाराओं से जोड़ते हैं और उल्लेखित करते हैं कि समाज के लिए ये विचार विखण्डित हैं। अतः पश्चिमी समाज के जितने भी दर्शन हैं वे अधूरे है। वे सम्पूर्ण जीवन का विचार नहीं करते केवल दर्शन के किसी एक भाग का विचार करते हैं। इसलिए हम उनको स्वीकार नहीं करते हैं। अतः हमारी भारतीय संस्कृति कि सबसे सर्वप्रमुख विशेषता है कि हम सम्पूर्णता को मानते है। भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में चारो पुरुषार्थ अपने आप में एक मानव के जीवन का बुनियादी आधार के रुप में विद्यमान हैं। व्यवहार करता है तो उसका समन्वित विकास करके वह सुखी व समाज को भी सुखी रखता है। पं. दीनदयाल जी का सामाजिक रूप में योगदान मुख्यतः राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के एक कुशल कार्यकर्ता के रुप में रहा है अतः प्रस्तुत शोध आलेख में पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक चिंतन का अध्ययन किया गया है।

मुख्य बिन्दुः- सामाजिक दर्शन, समाज और व्यक्ति, समाजवाद पर विचार, वर्णव्यवस्था पर विचार, धर्म एवं समाज, स्वयंसेवक की धारणा व समाज, धर्म का समाज प्रति दृष्टिकोण एवं निष्कर्ष।

जीवन परिचयः-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितंबर, 1916 को उत्तर प्रदेश की पवित्र ब्रजभूमि मथुरा में नगला चंद्रभान नामक गांव में हुआ था। बचपन में एक ज्योतिषी ने इनकी जन्मकुंडली देख कर भविष्यवाणी की थी कि आगे चलकर यह बालक एक महान विद्वान एवं विचारक बनेगा, एक अग्रणी राजनेता और निःस्वार्थ सेवाव्रती होगा मगर ये विवाह नहीं करेगा। बचपन में ही दीनदयाल जी को एक गहरा आघात सहना पड़ा जब सन 1934 में बीमारी के कारण उनके भाई की असामयिक मृत्यु हो गयी। उन्होंने अपनी

हाई स्कूल की शिक्षा वर्त्तमान राजस्थान के सीकर में प्राप्त की। विद्याध्ययन में उत्कृष्ट होने के कारण सीकर के तत्कालीन नरेश ने बालक दीनदयाल को एक स्वर्ण पदक, किताबों के लिए 250 रुपये और दस रुपये की मासिक छात्रवृत्ति से पुरस्कृत किया।

दीनदयाल जी ने अपनी इंटरमीडिएट की परीक्षा पिलानी में विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण की। तत्पश्चात वो बीए. की शिक्षा ग्रहण करने के लिए कानपूर आ गए जहां उन्होंने सनातन धर्म कॉलेज में दाखिला लिया। अपने एक मित्र श्री बलवंत महाशब्दे की प्रेरणा से सन 1937 में वो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में सम्मिलित हो गए। उसी वर्ष उन्होंने बीए. की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके बाद एमए. की पढ़ाई के लिए वो आगरा आ गए।

आगरा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सेवा के दौरान उनका परिचय श्री नानाजी देशमुख और श्री भाउ जुगडे से हुआ। इसी समय दीनदयाल जी की बहन सुश्री रमादेवी बीमार पड़ गयीं और इलाज के लिए आगरा आ गयीं। मगर दुर्भाग्यवश उनकी मृत्यु हो गयी। दीनदयाल जी के लिए जीवन का यह दूसरा बड़ा आघात था। इसके कारण वह अपनी एमए. की परीक्षा नहीं दे सके और उनकी छात्रवृत्ति भी समाप्त हो गयी।

पंडित दीनदयाल जी इसके बाद बीटी. का कोर्स करने के लिए प्रयागराज (इलाहाबाद) आ गए और यहां पर भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सेवा जारी रखी। बीटी. का कोर्स पूरा करने के बाद वो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में पूर्णकालिक रूप से समर्पित हो गए और संगठक के रूप में उत्तर प्रदेश के लखीमपुर जिले में आ गए। सन 1955 में वो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तर प्रदेश के प्रांतीय संगठक (प्रान्त प्रचारक) बन गए।

सन 1950 में डॉक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया और देश में एक वैकल्पिक राजनीतिक मंच के सृजन के लिए श्री गोलवलकर जी से आदर्शवादी और देशभक्त नौजवानों को उपलब्ध कराने के लिए सहायता मांगी। इस राजनीतिक घटनाक्रम में दीनदयाल जी ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। दिनांक 21 सितंबर, 1951 के ऐतिहासिक दिन उन्होंने उत्तर प्रदेश में एक राजनीतिक सम्मेलन का सफल आयोजन किया। इसी सम्मेलन में देश में एक नए राजनीतिक दल भारतीय जनसंघ की राज्य इकाई की स्थापना हुई। इसके एक माह के बाद 21 अक्टूबर,1951 को डॉक्टर श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने भारतीय जनसंघ के प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन की अध्यक्षता की।

दीनदयाल जी में संगठन का अद्वितीय और अद्भुत कौशल था। समय बीतने के साथ भारतीय जनसंघ की विकास यात्रा में वह ऐतिहासिक दिन भी आया जब सन 1968 में विनम्रता की मूर्ति इस महान नेता को दल के अध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित किया गया। अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन और जनसंघ के देशभक्ति का सन्देश लेकर दीनदयाल जी ने दक्षिण भारत का भ्रमण किया।

11 फरवरी, 1968 का दिन देश के राजनीतिक इतिहास में एक बेहद दु:खद और काला दिन है। इसी दिन अचानक पंडित दीनदयाल जी की आकस्मिक मृत्यु हुई। वे मुगलसराय रेलवे स्टेशन (वर्तमान में पंडित दीनदयाल उपाध्याय रेलवे स्टेशन) के निकट चलती रेलगाड़ी में संदिग्ध परिस्थितियों में उनकी मौत हो गयी। पंडित दीनदयाल जी के चाहने वाले और अनुयायी आज भी उस दुर्घटना से आहत हैं।

उद्देश्य:-

1 पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक विचारों का अध्ययन करना।

2 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक उत्थान के कार्यों का विश्लेषण करना।

परिकल्पनाः-

1 पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के समाजवाद के विचार व कार्यो का समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

आंकड़ो के स्त्रोतः-

प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक सूचनाओं का उपयोग किया गया है। सूचनाओं का संकलन पत्र पत्रिकाओं, सेमिनार, शोध ग्रंथों व पुस्तकों के किया गया है। शोध पत्र में वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक विधि तंत्र को अपनाया गया है।

सामाजिक दर्शन

यह कहना पूर्णतया सत्य है कि कहीं भी औपचारिक अथवा अनौपचारिक रूप से जीवन है, वहाँ पर समाज है। व्यक्ति और समाज में एक-दूसरे (समाज और व्यक्ति) पर निर्भरता प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। जहाँ व्यक्ति ने एक-दूसरे के साथ पारस्परिक रूप से सामाजिक सम्बन्धों को प्रतिस्थापित करके समाज के निर्माण और विकास को अग्रेतर करने में महती भूमिका निभाई है। समाज ने व्यक्ति का समाजीकरण करने के पश्चात् मानवीय संवेदना को प्रभावित कर एक परिपूर्ण गौड़ रुप से मौलिकता के रुप में स्थापित करके मानवीय व्यक्तित्व की आधारशीला को स्थापित किया है, जो कि व्यक्ति को संस्कृति से परिचित कराने में समाज ने सदैव रूप से सम्बन्ध को बुनियादी ढांचा में पिरोने का महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। वस्तुतः व्यक्ति, समाज, संस्कृति, मूल्यांकनात्मक संस्थाएँ, समाज को अग्रसरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है। ये एक-दूसरे के पर्याय हैं और आत्मनिर्भरता को बनाने में योग किया है। जो कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक-दूसरे के अभाव में विखण्डित हो जायेंगे। जहाँ मानव अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए सहयोग की आवश्यकता है। वहाँ समाज को व्यक्ति व्यक्ति के बीच पनपने वाले सामाजिक सम्बन्धों की एक के अभाव में दूसरे की कल्पना तक नहीं की जा सकती है।

अस्तु इसी समाज, व्यक्तित्व, संस्कृति, मूल्य का विवेचन पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने मानव समाज के उद्धार हेतु अपने अभेद्य विश्वास को एक रचनाकार के रुप में 'एकात्म मानववाद' जैसे अवधारणा को सृजित किया है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का युग निर्णायक कि भाँति समाज और व्यक्ति के बीच सम्बन्धात्मक रूप से एकात्म चिन्तन को सृजित किया है। पं. जी ने समाज निर्माण के भारतीय चित्त के विचार 'एकात्म मानववाद' से प्रारम्भ की। फलतः भारतीय स्वतंत्रता 1947 ई. के बाद जब भारतीयता के वैचारिकी में बदलाव देखा गया तो भारत के बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक विचारों में भी परिवर्तन दिखाई देना शुरु हुआ। चूँकि एक लम्बा समय भारत के ऊपर अंग्रेजी शासन का आच्छादित होने पर भारत के सम्पूर्ण वैचारिकी यथा, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक मूल्यादि संस्थात्मक विचारधाराओं पर भी प्रभाव पड़ा था। चूँकि भारत के समाज का स्वरूप कुछ भिन्न था। पं. दीनदयाल जी ने समाज को परिभाषित करते है कि समाज में दो प्रकार के विचार होते हैं-

1. सकारात्मक (भावात्मक विचार)
2. नकारात्मक।

अर्थात् जो भाव बोध विचार होते हैं। हम भावात्मक आधार पर खड़े हैं। जीवन की एक दृष्टि हम सब के सामने प्रत्यक्ष रुप से विद्यान है। हम इस मानव योनि में जन्म लेने के कारण विरोधात्मक भाव को जन्म देना नहीं अपितु जोड़ने का भाव होना चाहिए।

पं. दीनदयाल जी को राजनीतिक क्षेत्र में भेजा गया था लेकिन वे अपने आप पर राजनीति को हावी नहीं होने दिये। इसके अलावा वे लेखन के माध्यम से अपनी सामाजिक भूमिका अदा करते थे। फलत: वे एक कुशल पत्रकार भी थे। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के एक प्रशिक्षण शिविर में भाषण करते हुए उन्होंने वक्तव्य दिया कि "संघ के स्वयं सेवकों को राजनीति से दूर रहना चाहिए जैसे की मैं हूँ।" "संघ का स्वयं सेवक समाज के प्रत्येक क्षेत्र में सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकर्ता के नाते ही जाता है। विभिन्न आर्थिक, राजनीतिक संस्थाओं में काम करते हुए भी वह उन संस्थाओं व क्षेत्र की एकांगिता को अपने ऊपर हावी नहीं होने देता। राजनीति में जाते ही आज जो सत्तावाद एवं दलवाद व्यक्ति पर हावी होता है। इसको राजनीतिक क्षेत्र की मजबूरी माना जाता है। स्वयं संघ को इससे दूर रहना चाहिए।"

अखिल भारतीय दल के महामंत्री होते हुए भी आध्यात्म संघ कार्य के समक्ष राजनीति को गौड समझते थे। वे प्रत्येक वर्ष देश भर में लगभग 30-40 दिन संघ शिक्षा वर्गो के लिए प्रवास करते थे। संघ के प्रत्येक बैठक में उपस्थिति अनिवार्य करते थे। इसी संदर्भ में दादवराव जोशी एक सारगर्भित घटना का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "गतवर्ष (1967) विभिन्न राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेने वाले कुछ स्वयं सेवक नागपुर में एकत्र हो ठीक उसी समय अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'एजुकेशनल चेन्ज' में शिक्षा सम्बन्धी दीनदयाल के विचारों की भी संदर्भित किया गया है।

भारतीय परम्परा तथा संस्कृति की पृष्ठभूमि में चिन्तन करने वाले सामाजिक विचारों में पं. दीनदयाल उपाध्याय का नाम सर्वप्रमुख है। उनके चिन्तन में भारत की उदीयमान आत्मा का घनीभूत सार तथा मानव जाति के हित के लिए आध्यात्मिक संदेह निश्चित है। वे नये समाज का निर्माण करना चाहते थे। इसलिए वे कहा करते थे कि जब सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन नहीं होगा, तब तक सामाजिक व आर्थिक न्याय अमानवीय ही रहेंगे। पश्चिम के जितने सामाजिक चिन्तक हैं उनकी दृष्टि एकांगी हैं। एकांगी दृष्टि मानव तथा समाज का सर्वांगीण विकास नहीं कर सकती है।

उन्होंने मनुष्य एवं समाज के विभिन्न पक्षों यथा बौद्धिक, मानसिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक के पूर्ण समन्वय पर आधारित संतुलित जीवन को ही श्रेयस्कर मानते हैं। वे समाज की समस्त समस्याओं तथा सभी मनुष्यों के कल्याण की विवेचना करते हैं किन्तु आध्यात्मिक दृष्टिकोण को वे गांधी की तरह कभी आँख से ओझल होने नहीं देते हैं। इस दृष्टिकोण के कारण ही उन्होंने इस देश के इतिहास में चिरस्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है। पं. दीनदयाल जी के दर्शन को समझने के लिए हमें समाज के विभिन्न पक्षों को सारगर्भित सार रुप में गहनता से समझना होगा।

पूँजीवाद और समाजवाद दोनों भारत के लिए अनुपयुक्त है। पाश्चात्य विचारक प्राय: अतिवादी रहे हैं क्योंकि उन्होंने जीवन की किसी एक ही आवश्यकता पर अधिक बल दिया। फ्रायड ने केवल 'काम' तथा मार्क्स ने 'अर्थ' को ही समस्त मानवीय व्यवहार एवं सामाजिक सम्बन्धों का नियामक घोषित व्यवस्था ही समाज को और मानव को प्रगति पथ पर अग्रसर कर सकता है। इस अर्थ में समाज व्यवस्था मानव की अपूर्ण कृति है, जिसका निर्माण मानव के सामाजिक सम्बन्धों एवं अन्त:क्रियाओं के द्वारा होता है। इस अमूर्त व्यवस्था के अन्तर्गत ही समाज की विभिन्न इकाईयाँ परस्पर एक क्रमबद्ध रुप से सम्बद्ध होकर उच्चतम् सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना करती हैं।"

पं. दीनदयाल उपाध्याय का चिन्तन भी कुछ इसी दिशा में झलकता है। पं. दीनदयाल जी के विचारानुसार "व्यक्ति जीवन का सर्वांगीण तथा चारों पुरुषार्थो के अनुसार विचार करने वाला इनके लिए प्रयत्नशील रहने वाला साथ ही व्यक्ति से लेकर विश्व मानव तक परिवार, राष्ट्र आदि विविध एकात्म समूहों और उनसे भी परे जाकर परमेष्ठी से तादात्मय स्थापित करने की क्षमता रखने वाला एकात्म मानव ही इस दर्शन के लक्ष्य रुप में अभिप्रेत है।"

वस्तुत: समाज को एक पूर्ण मानकर व्यक्ति को भी विभिन्न अन्त:क्रियाओं के द्वारा अर्थात् चेतन या अचेतन रुप से वस्तुएं जैसे वृक्ष, लता, पुष्प, ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि का समुच्चय है। इन सभी का एक संकलित रुप से विचार करना होगा। तब जाकर एक एकात्म रूपी समाज का निर्माण होगा। इन एक के भी अभाव में सामाजिक व्यवस्था का अनुनयन हो पाना असम्भव सा प्रतीत होगा।

मरण प्रकृति: शरीरिणाम् विकृतिर्जीवनं मुच्यतेबुधै।"

जीवित को क्षणभंगुर, असार, दु:खयुक्त जानकर भी उसकी दीर्घकाल तक जीवित रहने की इच्छा समाप्त नहीं होती है। मानव के समस्त कार्य-व्यापार इसी अधिकाधिक सुख प्राप्ति की भावना से उत्पन्न होते है।

समाज और व्यक्ति:-

कुछ लोगों का कहना है कि व्यक्तियों ने एकत्रित होकर समाज का निर्माण किया। अत: स्वाभाविक रुप से निर्माता होने के नाते व्यक्ति समाज से श्रेष्ठ है। समाज का अस्तित्व भी व्यक्ति की सुविधा और उसके सुखी जीवन के लिए होता है। इसके विपरीत

पक्षधर लोगों का कहना है कि व्यक्ति के लिए समाज का निर्माण करना अपरिहार्य हो गया इससे तो यही सिद्ध होता है कि समाज व्यक्ति से हर स्थिति में श्रेष्ठ है। अत: व्यक्ति समाज में स्पर्धा है। एक को दूसरे से श्रेष्ठ यह बड़ा मानना होगा। इसी बात पर दोनों पक्षों में मतैक्य दिखाई देता है।"

आज के वैश्विक दौर में विचारधारायें इतना प्रबल रुप से विद्यमान होती जा रही है कि सांस्कृतिक राष्ट्र की पहचान का सभ्यता मूलक आधार और नागरिक जीवन का चरम उत्कर्ष है। पं. दीनदयाल जी ने समाज के उत्थान हेतु जो आन्दोलन गठित किये थे उनमें से समाज गर्भगृह में उन्होने एकात्म मानववाद को महत्वपूर्ण माना। पं. दीनदयाल जी का कथन था कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट न करके उसे समाज के लिए समर्पित करना बहुत ही लाभकारी सिद्ध होता है। शरीर, मन व बुद्धि व आत्मा का निवास स्थान व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। अकेले व्यक्ति के सुख का विचार करते हुए विचार करना एक महत्वपूर्ण सुख है।

समाजवाद का विचार:-

वैश्विक इतिहास में अनेक देशों में निरंकुशता एवं अत्याचार के खिलाफ तथा शोषित वर्ग के हितों के लिए अनेक जनक्रान्तियाँ हुई तथा पूँजीवादी व्यवस्था के परिणामस्वरूप पाश्चात्य जगत में समाजवाद के विचार का प्रादुर्भाव हुआ। भारत भी इस राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तन से अछूता नहीं रहा।

भारत में समाजवादी पार्टी का गठन हुआ, तथा समकालीन भारतीय समाज के युवा वर्ग में इस विचारधारा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में तो लगभग सभी क्रान्तिकारियों में समाजवादी विचार का व्यापक असर देखने को मिलता है। तथा स्वतंत्रता के पश्चात भी "भारतवर्ष में अनेकों समाजवादी विचारक और राजनेता थे। भारतीय राजनीतिक दलों में अपने को समाजवादी प्रदर्शित करने की प्रतिस्पर्धा रही है। देश के मुख्य राजनीतिक दल कांग्रेस के भुवनेश्वर अधिवेशन में समाजवादी समाज की रचना को अपना लक्ष्य घोषित किया था। प्रधानमंत्री नेहरू ने तथा उनकी पुत्री इंदिरा गांधी अपने को समाजवादी दर्शाने में गौरव का अनुभव करती थीं। उनका समाज में बदलाव लाने के लिए कम, राजनीतिक लाभ के लिए अधिक था। वस्तुत: समाजवादी और पूंजीवादी दोनों ही विचार धाराएं पश्चिम की ही देन है। पूंजीवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप समाजवाद ने भी केवल स्वामित्व को राज्य के हाथ में देकर अपने कर्तव्य से इतिश्री कर लिया। पं० जी ने समाजवाद को एक सीमा तक स्वीकार किया। वस्तुत: वे समाजवाद के केन्द्रीकरण के विरुद्ध थे।

"दिसम्बर 1958 में हुए जनसंघ के सांतवे अधिवेशन के बाद अपनी दलीय नीतियों के संदर्भ में पं० जी ने एक विशेष लेख लिखा जिसमें समाजवाद के विरोध को एक साहसी व सुविचारित नीति के रूप में प्रस्तुत किया गया। वे कहते हैं कि समाजवादी विचार हमारे देश व प्रकृति के लिए विदेशी है। कभी-कभी इसे सामाजिक कल्याण व सामाजिक न्याय का नाम दिया जाता है। वास्तव में समाजवाद जिसका अर्थ है. राज्य के हाथ में समस्त शक्ति का केन्द्रीकरण। कांग्रेस अपने प्रस्ताव में 'जनतांत्रिक समाजवाद' तक पहुँची है। किन्तु समाजवाद और जनतंत्र आज तक कभी साथ-साथ नहीं चले हैं। ब्रिटेन के मजदूर दल ने दोनों को साथ-साथ चलाने का प्रयास किया, किन्तु उसे जनतान्त्रिक परंपराओं के पक्ष में समाजवादी सनकों को त्याग देना पड़ा। ऐसा नहीं है कि समाजवाद में केवल खराबियाँ ही हैं। भेदभाव पूर्ण समाज, दुखों, कष्टों तथा अनेक कठिनाइयों को देखकर कोई भी मानस मन द्रवित हो सकता है तथा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करना चाहेगा, और समाजवादी विचार के तरफ स्वभाविक रूप से आकर्षित होगा। मार्क्स ने इन्हीं उपरोक्त समस्याओं के निदान के लिए एक वैकल्पिक मार्ग का विचार दिया, जिसे समकालीन विचारकों ने हाथों-हाथ लिया। आजाद भारत में संवैधानिक शासन के अन्तर्गत कांग्रेस के सामने समाजवादी विचारकों ने एक सशक्त विपक्ष की भूमिका का निर्वहन किया था।

इनमें श्री जयप्रकाश नारायण, श्री राम मनोहर लोहिया, एवं एम०एन० राय जैसे सुप्रसिद्ध राजनेता रहे है, "और एक समय तो स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं को समाजवादी कहा था।" यद्यपि तात्विक रूप से मन्तव्य अलग था। पं० जी ने समाजवादी व्यवस्था को विरोध किया। इसका यह मतलब नहीं कि पूंजीवाद का समर्थन किया। पण्डित जी ने पूंजीवाद की भी आलोचना की, जहां एक तरफ समाजवाद राज्य की ही व्यक्ति का कर्ताधर्ता बना देता है वही पूंजीवाद भी कुछ व्यक्तियों के माध्यम से शोषण का कार्य करता है। ये दोनों ही विचारधाराएं एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पं० जी सामान्यत: समाजवाद को पूंजीवाद के विरोध से उत्पन्न विचार के ही रूप में विवचेना करते हैं तथा दोनों को मानव की भ्रमपूर्ण कल्पनाओं पर आधारित मानते हैं। दोनों उनकी दृष्टि में समान रूप से अमानवीय है। समाजवाद के इतने विरोधी इस लिए भी बन गए कि समाजवाद शब्द के सम्मोहन की आड़ में देश में साम्यवाद के प्रति लोगों का रुझान बढ़ रहा था। इसके लिए वे कांग्रेस व नेहरू को जिम्मेदार मानते थे। वे समाजवादी तानाशाही के खिलाफ थे। नेहरू का पाश्चात्यवादी मानस भी उनके विचारों के अनुकूल न था।

उपरोक्त विचारों से यह नहीं समाझा जाना चाहिए कि समाजवाद कोई निरर्थक या राष्ट्रद्रोही विचारधारा के समान है। महत्व इस बात है कि किसी भी विचारधारा की प्रासंगिकता तथा निरर्थकता इस बात पर निर्भर करता है कि शासकवर्ग की राय क्या है। पण्डित जी ने समाजवाद के विकल्प पर चर्चा की। उनका मत था कि "पुरूषार्थो पर आधारित यह सनातन धर्म ही हमें इस संकट से निकाल सकता है। वैश्विक समस्याओं का समाधान समाजवाद नहीं है, बल्कि हिन्दूत्त्ववाद है। यही एक ऐसा जीवनदर्शन है जो जीवन का विचार करते समय उसे टुकड़ों में नहीं बांटता, अपितु सम्पूर्ण जीवन को एक इकाई मानकर उस पर विचार करता है। यहाँ पर हमें हिन्दू जीवनदर्शन का विचार करते समय कुछ निष्प्राण कर्मकाण्ड के साथ अथवा हिन्दू समाज में व्याप्त अनेक अहिन्दू व्यवहारों के साथ उसका सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिए। साथ ही यह समझना भारी भूल होगी कि हिन्दुत्व वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति का विरोधी है। विज्ञान और यंत्र इन दोनों का उपयोग इस पद्धति से होना चाहिए जिसमें वे हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पद्धति के अनुरूप सिद्ध हो सकें।

वर्णव्यवस्था पर विचार-

लगभग सभी विचारकों ने वर्ण व्यवस्था को अपने-अपने तरह से परिभाषित किया है। वर्तमान जाति व्यवस्था का कारण वर्णव्यवस्था है। गांधी जी आदि विचारकों ने वर्णव्यवस्था को स्वीकार किया। इस विषय में पं० जी का दृष्टिकोण एकदम अलग था। पण्डित जी वर्ण-व्यवस्था की तुलना 'राष्ट्र-पुरुष से करते हैं। उनका मत है कि एक समय में वर्ण व्यवस्था समाज के लिए अच्छा था।

उससे आज दिखाई देने वाले विकृति के कारण उसके प्रति मन में हेयता का भाव नहीं लाना चाहिए।"

पण्डित जी वर्ण व्यवस्था के भीतर छिपे मनोविज्ञान को समझाने की चेष्टा करते है। फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान जातिवादी सामाजिक व्यवस्था तथा विद्वेशता कुछ हद तक वर्णव्यवस्था का आधुनिक रूप है। "इसलिए अनेक लोगों ने इस पर प्रश्न उठाया तथा लोग कहते हैं कि अगर वर्ण व्यवस्था इतनी अच्छी थी तो फिर इतना भेदभाव क्यों हुआ अगर वर्ण व्यवस्था से पूरा लाभ है तो इसमें खामियां क्यों उत्पन्न हुई। इसका उपाय न तो सम्पूर्ण व्यवस्था को खराब मानना हो सकता और न ही सम्पूर्ण व्यवस्था को नष्ट करना ही।

व्यवस्था के आन्तरिक भाव में आई क्षीणता ही इसका असली कारण गिना जायेगा। इस झीणता को हटाने के लिए आवश्यक है कि हम अधिक तन्मयता के साथ उस व्यवस्था के आन्तरिक चौतन्य को जाग्रत करने का यत्न करें। प्राण जगा पाओगे तो विकृतियां पलक मारते भाग खड़ी होगी शरीर स्वस्थ होगा और बाह्य ढांचा भी कार्यक्षम दिखाई पड़ने लगेगा। यद्यपि उपाध्याय वर्ण व्यवस्था के आन्तरिक पक्ष को जागृत करने के पक्ष में बल देते हैं। लेकिन यह इतना सरल नहीं है। वर्णव्यवस्था के मनोविज्ञान को समझने से कही अधिक वर्तमान राजनीति में वर्णव्यवस्था को जाति व्यवस्था से जोड़कर एक प्रकार से राजनीति की जाती है। अपने राजनीतिक फायदे के लिए तथ्यों को भी तोड़ मरोड़ कर पेश भी किया गया है। 'पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार समाज के विभिन्न समुदायों की परस्परानुकूलता व परस्परावलंबन वर्णव्यवस्था का आंतरिक भाव है। सर्वसमभाव ही वर्णव्यवस्था है।"

जब समाज में सर्वसमभाव में कोई खराबी आ जाती है तो दोष वर्णव्यवस्था को ही दिया जाता है। इतिहास में ऐसे कई सारे नेता मिलेगें जो भारत में जातीय विद्वेष को वर्ण व्यवस्था की देन समझते है। पण्डित जी कहते है कि, "यह अपने समाज जीवन की मुख्य आधारशिला है। इसी आधार पर हमारे यहां सम्पूर्ण

मानव जीवन रचना की व्यवस्था की गई। धर्म की स्थापना हुई। इस व्यवस्था में व्यक्तियों का, समूहों का, समाज का, राज्य का अथवा अन्य कई प्रकार की सत्ताओं का अलग-अलग और परस्पर विरोधी रूप लेकर विचार नहीं हुआ। पश्चिम ने जिस प्रकार इन सब सत्ताओं को परस्पर विरोधी और आपस में संघर्षयुक्त मानकर विचार किया वैसा भारत में नही हुआ। भारत ने माना कि भेद देखना या भेद निर्माण करना गलत है। भेद के आधार पर कोई व्यवस्था नहीं चल सकती। भेद-भावना सृष्टि के नियमों के विपरित है। यह विनाश का कारण बनेगी, रचना का नहीं। इसलिए जिस वर्ण व्यवस्था की हम चर्चा कर रहे है, उसमें समभाव है, भेदभाव नहीं। सर्व-सम भाव ही वर्ण व्यवस्था है। प्रत्येक व्यक्ति तथा व्यक्ति समूह को विकास की स्वतंत्रता और अनुकूल आचरण का दायित्व पर यह व्यवस्था खड़ी की गई है।"

धर्म एवं समाजः-

आधुनिक भारत में धर्म की अनेक व्याख्याएं विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई। इन परिभाषाओं से धर्म के शाश्वत रूप को ही धूमिल करने का कार्य किया गया है. इसी का परिणाम है कि आज भारत में छोटे-छोटे सम्प्रदाय भी धर्म माने जाते हैं जिसका लाभ उठाकर इन सम्प्रदायों ने अपने अलग, विश्वास, पूजापद्धति तथा अनेक कार्यों से अपने को हिन्दू धर्म से अलग दिखने के लिए किया जिससे कि उन्हें अल्पसंख्यक होने का लाभ प्राप्त हो। प्रायः इन सभी क्षेत्रीय धार्मिक विश्वासों सनातन या शाश्वत रूप की कमी पायी जाती है। जिसका एक मात्र कारण है कि इनका उदय दूसरे के विरोध में हुआ है। जबकि हिन्दुत्व मनुष्य के जीवन चक्र से जुड़ा है। यह मानव जीवन से प्राकृतिक रूप से जुड़ा हुआ है। जिसकी समानता किसी सम्प्रदाय विशेष से नहीं किया जा सकता है।

पं० जी भारत की दार्शनिक परम्परा को उसके सनातन रूप के कारण स्वीकारा। वे परिवर्तनों के निषेधी नहीं, पर परम्परा के अनुसमर्थक है। इसी कारण वे राष्ट्रवाद के समर्थक हैं इसलिए भारत में समाज, धर्म, संस्कृति व राष्ट्रीयता सभी एकात्म होकर उनके विचारों में परिलक्षित होते हैं। दीनदयाल जी का सारा जीवन सनातनी हिन्दू की भांति था। इन्होंने पश्चिमी सभ्यता के प्रहार से सनातन धर्म की सुरक्षा का प्रयास किया।"

"अपने राष्ट्र के साथ सम्पूर्ण मानवता ही समाज है। इस मानव समाज के साथ भी सामंजस्य होना चाहिए। परन्तु सारा समाज तो नष्ट हो जावे, सारे मानव समाज का नुकसान हो जावे और हमारा राष्ट्र बहुत ऊँचा हो जावे, यह भावना भी हमें अपेक्षित नहीं। जहां पर इस प्रकार का केवल अपना-अपना विचार किया गया, अपने राष्ट्रगत स्वार्थ का विचार हुआ मानव समाज का विचार नहीं हुआ तो (जैसा पश्चिम में आजकल चल रहा है) वहाँ पर राष्ट्र और मानव समाज के बीच में खाई बराबर बनी रही। हमें तो संसार के प्रत्येक प्राणी का विचार करना है। यहाँ तक कि मूक पशु-पक्षियों का भी हमें ध्यान रखना होगा।" वही शाश्वत धर्म का आधार है, मूल भावना है कि जीवन मात्र का कल्याण फिर चाहे वह मनुष्य हो, या पशु, या पेड़-पौधे सभी में ईश्वर मानकर व्यवहार करना ही सनातन धर्म है।

स्वयं सेवक की धारणा व समाजः-

पं० जी के वैचारिक पटल पर संघ का प्रभाव गहराई से पड़ा था। पण्डित जी के अन्दर असीम आध्यात्मिक शक्ति एवं अनुशासन था। संघ ने भी पं० जी जैसे विद्वान व्यक्ति के विचारों को आगे बढ़ाने में किंचित मात्र भी सन्देह नहीं किया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्पर्क पण्डित जी का विद्यार्थी काल से हो गया। "कानपुर के सनातन धर्म कॉलेज में अध्ययन करते समय उनका सम्पर्क बाबा साहब आप्टे एवं दादा राव परमार्थ से हुआ। उस समय सुन्दर सिंह भण्डारी भी इनके सहपाठी थे। परन्तु संघ में प्रवेश के लिए इन्हें प्रेरित करने का श्रेय इनके एक अन्य सहपाठी बलवन्त महा सिन्धे को है।

यद्यपि महामानव पण्डित दीनदयाल जी करिश्माई व्यक्तित्व के साथ ही जन्में थे, लेकिन राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति प्रेम तथा राष्ट्रीय चेतना को जगाने में संघ की महत्वपूर्ण भूमिका रही। छात्र जीवन से ही राष्ट्रीय चिन्तन का कार्य चलता रहा। एक स्वयंसेवक के भीतर की ध्येयनिष्ठा एवं लगन की ऐसी मिसाल अन्यत्र मिलना कठिन है। 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयंसेवक को ध्येयनिष्ठा, अनुशासनप्रिय कष्टसहिष्णुता तथा परिश्रमशीलता पर्याप्त प्रसिद्ध है। उनकी मनोवैज्ञानिक ढंग से की गई मानसिक संरचना को ही इसका श्रेय है। इस मानसिक संरचना के कार्य में पं० जी का संघ के आजीवन प्रचारक के नाते निर्णायक योगदान रहा है। उनके अनुसार स्वयं सेवक का मतलब वैल्युन्टर नहीं वरन् ध्येय समर्पित व्यक्ति स्वयंसेवक होता है। संघ में कार्यकर्ताओं की स्वयं सेवक व नेता, ऐसी दो श्रेणियाँ नहीं होती। स्वयंसेवक होते है। स्वयंसेवक सदैव अपने व्यवहार के प्रति चौकस रहे अतः उसे समझाया जाता

है। स्वयंसेवक और संघ अलग-अलग नहीं किये जा सकते है। 'स्वयंसेवक को देखकर लोग संघ समझते है। स्वयंसेवक अच्छा तो संघ अच्छा, स्वयंसेवक खराब तो संघ भी खराब। अतः यह कहा जाता है, मैं भी स्वयंसेवक था। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति कभी नहीं आनी चाहिए। स्वयंसेवक जमाने के साथ नहीं चलता। पण्डित जी कहते हैं अनुशासन और अंहकार दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। अनुशासन के लिए बुद्धि आवश्यक है। बुद्धि के लिए अनुशासन, लोकसंग्रह तथा ध्येय निष्ठा स्वयंसेवक तत्व के तीन आधार है। एक स्वयंसेवक के विषय में पण्डित जी की ऐसी विशद् व्याख्या कम शब्दों में महान अर्थ रखती है। पण्डित जी के जीवन में संघ का वही स्थान था जो जननी का था। संघ में उनके प्रवेश की एक घटना का उल्लेख आदरणीय भाऊ रावदेवरस जी कहते है और लिखते है कि "एक दिन छात्र जीवन समाप्त होने के बाद वे मेरे पास पहुँचे और कहा कि मैं संघ कार्य के लिए प्रस्तुत हूँ। आप जहाँ चाहे जाने के लिए तैयार हूँ और उत्तर प्रदेश में प्रथम बार बतौर प्रचारक जीवन की शुरूआत करने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। छात्र जीवन के उपरान्त अपने जीवन को सामाजिक कार्यों में लगाना चाहिए, इस प्रकार की कुछ न कुछ भावना उनके मन में थी। इसी भावना के कारण संघ के माध्यम से समाज सेवा करने का अवसर उनको प्राप्त हुआ।

पं० जी ने पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा अनवरत प्रवास एवं सेवा यही उनका राष्ट्र कर्म बन गया। "1942 के समय में पण्डित जी ने अपना समग्र जीवन संघ के प्रचारक के रूप में राष्ट्र के नाम कर दिया एवं लखीमपुर जिले के बतौर प्रचारक रहे। राष्ट्र के प्रति जो जिम्मेदारी पण्डित जी ने अपने सिर पर धारण कर रखा था "देश को स्वाधीनता दिलाने, सर्वसम्पन्न बनाने शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में खड़ा करने और सम्पूर्ण समाज में समरसता लाने के लिए जीवन पर्यन्त मनसा वाचा कर्मणा अविराम साधना किये।

"अनरवत यात्रा और संघ कार्य का मार्गदर्शन प्रदेश के प्रत्येक हिस्से में कार्यकर्ताओं से आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करना यही पंण्डित जी का एकमेव कार्य था। पं० जी का मुख्य उद्देश्य हिन्दू समाज में संगठन एवं चेतनापूर्ण व्यक्तित्व को तैयार करना रहा। पण्डित जी उत्तर प्रदेश में प्रचारक पद पर रहते तब अपनी भूमिका का श्रेष्ठ निर्वहन किया। संघ के स्वयंसेवक के मन में राष्ट्र के प्रति जो धारणा विद्यान रहनी चाहिए उस विषय पर परम पूज्य द्वितीय संघ चालक श्री गुरू गोलवरकर जी ने कहा है कि "हमारा कार्य अपनी उस प्राचीन संस्कृति का पुनरूजीवन करना है जिसे हमारे पूर्वजों ने प्रस्थापित किया और जो समय पाकर परिपक्व हो चुकी है। सांस्कृतिक पुनरूजीवन को अनेक बार लोग प्रतिक्रिया के गलत अर्थ में समझ लेते है। और इस विषय में सर्वाधिक प्रचलित शब्द को लेकर इस प्रकार के कार्य पर प्रतिक्रियावादी होने का आरोप मढ़ा जाता है। मैं समझता हूँ की अतीत का पुनरूजीवन तथा प्रतिक्रियावादी केवल उन्ही कार्यो को कहा जा सकता है, जिनसे समाज अद्योगति की ओर बढ़े और जिनका सूत्रपात कुछ समय पूर्व हुआ है। यह कार्य प्राचीन है और इसका पुर्नरूद्धार एवं पुनरूजीवन, अर्थात् हिन्दू संस्कृति का पुनरूजीवन स्थायी महत्व रखता है।

गुरू जी के उपर्युक्त कथनों से एक स्वयंसेवक की धारणा कैसी होनी चाहिए एवं अर्न्तमन की भावना का चित्रण समग्र रूप से मिलता है, पण्डित जी ने इन सूत्रों को अपनी आत्मा में उतार लिया था। "पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का प्रत्यक्ष राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्यकाल सन् 1937 से 1951 तक, सामान्यतः चौदह वर्ष रहा। सन् 1937 से 1947 यह दस वर्ष का काल आजादी के आन्दोलन का था। सन् 1948 से 1951 भारतीय जनसंघ की स्थापना के पूर्व की प्रमुख घटनाओं का काल था। आजादी एवं विभाजन का आगमन, महात्मा गांधी की हत्या संघ पर प्रतिबन्ध, संघ द्वारा सत्याग्रह और प्रतिबन्ध से मुक्ति, संविधान निर्माण व भारतीय गणतंत्र की स्थापना, देशी राज्यों का एकीकरण व नवीन राजनीतिक दलों का निर्माण इस दौरान दीनदयाल की भूमिका संघ के स्वयंसेवक एवं प्रचारक की रही। हालांकि जीवनपर्यत उनकी भूमिका बनी रही, परन्तु भारतीय जनसंघ की स्थापना के बाद उनका कार्यक्षेत्र बदल गया।"

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्कार पण्डित जी के जीवन में उनकी आत्मा से जुड़ा हुआ था। वह राजनीति में जाने के बाद भी एक स्वयंसेवक ही रहे। उनके कार्यक्षेत्र में बदलाव हुआ लेकिन राष्ट्र के प्रति जो विचार संघ ने उनके अर्न्तमन में दिया था वह बना रहा। वर्तमान समय में भी राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया में राष्ट्रीय स्वयंसेवक का कार्य प्रशंसनीय है। आदर्श स्वयं सेवक का निर्माण संघ की शाखाओं का मुख्य उद्देश्य है, संघ का मूलमंत्र ही है कि "जो जैसा है उसको वैसे लो, और जैसा चाहिए वैसा बनाओं।" पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जैसे कालजयी व्यक्तित्व का निर्माण ही संघ की प्रांसगिकता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

धर्म का समाज प्रति दृष्टिकोणः-

पं० जी के शब्दों में धर्म कोई विशेष उपासना पद्धति नहीं, कोई मत या प्रार्थना नहीं, किसी प्रकार का मन्दिर, मस्जिद, या मठ नहीं बल्कि पण्डित जी तो धर्म का विस्तृत अर्थ समझाते है, पण्डित जी का धर्म सार्वभौमिक है जो राष्ट्रीय चेतना के निर्माण करने

में सहायक हो, जो व्यक्ति व समाज का नैतिक मूल्यों की रक्षा कर सकें। वर्तमान में भले ही धर्म को संक्रीड़ता के दायरे में बांध दिया गया है, आज विशेष विशेष उपासना पद्धति को धर्म की संज्ञा दे दी गई है। जो सर्वथा अनुचित है, पण्डित जी के नजर में धर्म इन सब से कहीं उपर है, जो मानव कल्याण का एकमात्र श्रोत है।

"पं० जी का विचार है कि धर्म का विचार दो भागों में हो एक में सनातन, शाश्वत, कालजयी एवं अपरिवर्तनीय सिद्धान्त का एवं दूसरा भाग इस प्रकार के सिद्धान्तों के प्रकाश में बार-बार बदलने वाली परिस्थितियों के लिए अनुकूल सिद्ध होने वाली अखण्ड परिवर्तनशील समाज रचना का। टॉलस्टाय ने धर्म के तीन विभाग किये है- 1- एसेंशिअल्स ऑफ रिलीजन, 2- फिलॉसफी ऑफ रिलिजन व 3- रिचुअल्स और रिलीजन सिद्धान्त अपरिवर्तनीय है, उनके प्रकाश में की जाने वाली समाज-रचना परिस्थिति सापेक्ष और इसलिए परिवर्तनशील है। कुछ ऐसी ही बात महान विचारकों के प्रकट चिंतन के बारे में होती है। शाश्वत सिद्धान्त सदा परिस्थिति निरपेक्ष होते है। किन्तु उनका स्पष्टीकरण तथा उनपर किए गये भाष्य सदा परिस्थिति निरपेक्ष नहीं रह सकते। 31

उपर्युक्त वाक्यों में पण्डित जी ने यह स्पष्ट किये है कि साश्वत धर्म स्थायी होते हुए भी पालनकर्ता समयानुकूल परिवर्तन आवश्यक हो तो किया जाना चाहिए। विश्व में अनेक मत सम्प्रदाय ऐसे है जिन्हें धर्म का दर्जा तो दे दिया गया है लेकिन संक्रिणता से ओत-प्रोत ऐसे मत शब्द मात्र का परिवर्तन आवश्यक नहीं समझते और न ही उनके व्याख्याकार ही ऐसे परिवर्तन को स्वीकार नहीं करते चाहे वह परिवर्तन उनके हित में हो या न हो। पण्डित जी कहते है कि "धर्म शब्द का त्रुटिपूर्ण अर्थ लगाने के कारण एक और भ्रान्ति फैल गई है यथा यह भ्रान्ति अनेक विचारकों के लेखों में भी दिखाई देती है। वह धारणा यह है कि धर्म को समाज जीवन में प्रधानता प्राप्त हो जाये, अर्थात उसे ही जीवन का नियामक मान लिया जाये, तो समाज ऐहिक समृद्धि की आंकक्षा से विमुख हो जाएगा।

निष्कर्षः-

अनेक देश भारतीय साहित्य एवं तत्वदर्शन के बारे में रूस में हो रही उत्क्रान्ति सबके ध्यान में है। वेद, उपनिषद् रामायण महाभारत आदि ग्रन्थों का रूस में अध्ययन भी प्रारम्भ हो गया है। जर्मनी जापान आदि विकसित देशों में भारतीय दर्शन विशेषकर संस्कृत का अध्ययन दर्जनों विश्वविद्यालय में पाठयक्रम का हिस्सा है। हर वर्ष विदेशी विद्यार्थियों की बड़ी संख्या संस्कृत अध्ययन के लिए भारत का रूख कर रही है।

"आज का संकटकाल भोगवादी संस्कृति की ही एक परिणति है। व्यक्ति, समाज, सभ्यता, अथवा एक ग्रह की पर्यावरणात्मक व्यवस्था के नाते हम परिवर्तन का एक चरण पूरा कर रहे है। आज हमें किसी बात की आवश्यकता है तो जीवन के नये आशयपूर्ण नमूने अर्थात् सृष्टि की ओर देखने की नयी दृष्टि बने और हमारे विचारों, दृष्टियों तथा मूल्यों में मूलभूत परिवर्तन की। यह नवीन प्रतिमान देने के लिए पण्डित जी मानव जाति के सामने आज के मोड़ पर खड़े हैं।

संदर्भ सूचीः-

1 उपाध्याय, पं. दीनदयाल, विचार-दर्शन, खण्ड-1, ठेंगड़ी दन्तोपंत, सुरूचि प्रकाशन, केशन झण्डेवाला, नई दिल्ली, पृ. 109

2 उपाध्याय, पं. दीनदयाल, विचार-दर्शन, वी.वा.नेने, सुरूचि प्रकाशन, केशन झण्डेवाला, नई दिल्ली, पृ. 11.

3 शर्मा, डॉ. महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 293.

4 यादव, राव जोशी (दक्षिण भारत, क्षेत्रीय प्रचारक) मौन स्मृति, राष्ट्र धर्म, जून-जुलाई, 1968, पृ. 168.

5 पांञ्जन्य, श्रावण, कृष्णपक्ष, सं. 2006, सन् 1949, पृ. 16.

6 सागर, कृष्णानन्द, दीनदयाल उपाध्याय की वाणी, नई दिल्ली, 1992, पृ. 14.

7 भारत चिति, पृ. 145.

8 ऋग्वेद 10/191/24.

9 सरावगी, राजीव कुमार, एकात्म मानव दर्शन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. 102

10 वासुदेव, विनायक नेने, पं. दीनदयाल उपाध्याय विचार-दर्शन, भाग-2, सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ. 13.

आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना एवं भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रबंधन

डॉ० अल्का लल्हाल

सहायक आचार्य, प्रबंधन विज्ञान विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बिहार

आत्मनिर्भर की पहल भारत की नियोजन प्रक्रिया के 6 बड़े उद्‌देश्यों में से एक रहा है। कोविड-19 महामारी के संकट में भारत सरकार द्वारा मई 2020 में इस लक्ष्य को सार्थक बनाने के लिए सरकार द्वारा आत्मनिर्भरता भारत अभियान की शुरूआत की गयी है (20 लाख करोड़ रू के पैकेज के साथ) सरकार द्वारा इस अभियान के पाँच स्तम्भों को चिन्हित किया गया है, अर्थव्यवस्था अधिसंरचना व्यवस्था, जनाकिकी एवं मांग। यह पहली बार है जब सरकार द्वारा आत्मनिर्भरता की दिषा में इतनी स्पष्ट रणनीति घोषित की गयी है।

कुछ विशेषज्ञों द्वारा इस अभियान को पहले की एक योजना 'मेक इन इण्डिय' के सदृश भी बताया गया है और इसमें कुछ नया नहीं होने की बात भी कही गयी है। वहीं दूसरी तरफ कुछ विशेषज्ञों ने इस महामारी के कारण उत्पन्न आपूर्ति संकट के परिप्रेक्ष में देखते हुए इसे एक प्रशंसनीय पहल बताया है, जिसके माध्यम से भारत बदलते वैष्विक आर्थिक परिवेष में अपने लिए एक बेहतर स्थान की तलाष करना चाहता है।

राज्य को अर्थव्यवस्था में एक सक्रिय और प्रभावी भूमिका निभानी है, स्वतंत्रता प्राप्ति तक यह बिल्कुल निश्चित हो गया था। उस समय तक इस बारे में उन लोगों के मन में कोई संदेह नहीं था। जो तत्कालीन राजनीति के केन्द्र में थे। स्वाभाविक रूप से राज्य नियंत्रित एक वृहद ढाँचे का निर्माण किया जाना था, अर्थात सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों की स्थापना करनी थी। आलोचना तो दूर उस समय तो पीएसयू का महिमामंडन किया जा रहा था। कुछ अत्यंत प्रषंसनीय उद्‌देष्य पीएसयू के लिए निर्धारित किए गए, जबकि कुछ अन्य लक्ष्य ऐसे थे जो कि मिश्रित अर्थव्यवस्था के मूलतवृ के साथ रहे थे। हम इस विषय का निष्पक्ष एवं विवेक समस्त विश्लेषण करेंगे। आज जबकि पीएसयू की चतुर्दिक आलोचना हो रही है और उनके निजीकरण के प्रयास भी चल रहे है, इस भारतीय अर्थव्यवस्था में उनकी भूमिका को समझने का प्रयास करेंगे। हम निम्नलिखित बड़ी एवं महत्वपूर्ण जरूरतों के आलोक में पीएसयू के महत्वाकांक्षी विस्तार के कारणों को समझने की कोषिष करेंगे। प्रत्येक अर्थव्यवस्था चाहे वह ख्रषि, औद्योगिक अथवा उत्तर औद्योगिक हो, को उपयुक्त स्तर की आधारभूत संरचना की जरूरत होती है, जैसे - बिजली, परिवहन तथा संचार इनकी स्वस्थ उपस्थिति एवं विस्तार के बिना कोई भी अर्थव्यवस्था न वृद्धि कर सकती है न विकास। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में इन मूलभूत जरूरतों की उपस्थिति नगण्य थी। रेलवे तथा डाक एवं तार के क्षेत्र में अभी शुरूआत भर हुई थी। बिजली की उपलब्धता सरकारी एवं राजघरानो तक सिमटी थी। इन क्षेत्रकों के विकास में अत्यधिक पूंजी निवेष के साथ-साथ भारी इंजीनियरी तथा तकनीकी सहयोग की आवष्यकता होती है। आधारभूर संरचना क्षेत्र को विस्तार उस समय निजी क्षेत्र के माध्यम से संभव नहीं था क्योंकि उसमें निम्नलिखित का प्रबंध करने की क्षमता नहीं थी।

1. भारी निवेष (घरेलू के साथ ही विदेशी मुद्रा में)
2. प्रौद्योगिकी
3. कुशल मानव शक्ति एवं
4. उद्यमशीलता

यदि उपयुक्त की उपलब्धता निजी क्षेत्र के पास होती भी तो उसके लिए आगे बढना संभव नहीं होता क्योंकि ऐसी आधारभूत संरचना के लिए बाजार नहीं था। यह आधारभूत संरचना अर्थव्यवस्था के लिए बड़ी जरूरत थी लेकिन इनके लिए या तो रियायती या फिर मुफ्त एवं खुली आपूर्ति की व्यवस्था करनी पड़ती क्योंकि आम जनता में बाजार द्वारा निर्धारित क्रय-षक्ति का आभाव था। इन विशेष परिस्थितियों में आधारभूत संरचना विकास का दायित्व केवल सरकार ही संभाल सकती थी। सरकार के लिए यह संभव था कि वह इस क्षेत्र के विकास के लिए जरूरी उपादनों का प्रबंध करें साथ ही जरूरतमंद क्षेत्रों में तथा उपभोक्ताओं तक उनकी आपूर्ति और वितरण करें जिससे कि अर्थव्यवस्था की पर्याप्त वृद्धि सुनिश्चित की जा सकें। इसके अतिरिक्त अन्य किसी विकल्प का आभाव था, यही कारण है कि आधारभूत संरचना क्षेत्र में राज की इतनी प्रभावकारी उपस्थिति है कि अन्य संबंधित क्षेत्रों जैसे - बिजली, रेलवे, विमान तथा दूरसंचार आदि में राज्य का एकाधिकार है।

भारत ने उद्योग को अर्थव्यवस्था की प्रमुख चालक शक्ति के रूप में चुना। उद्योगों के कतिपय ऐसे क्षेत्र थे, जिनमें अपरिहार्य कारणों से सरकार को निवेश करना था। औद्योगीकरण के लिए कुछ विशेष उद्योगों की उपस्थिति आवश्यक है। इन्हें भारत मे कई नामों से जाना जाता है - आधारभूत उद्योग, आधारभूत संरचना उद्योग, कोर उद्योग। इन आठ उद्योगों जैसे- 1. तेल शोधक उत्पाद 11.29 प्रतिशत, 2. विद्युत 7.99 प्रतिशत, 3. इस्पात 7.22 प्रतिशत, 4. कोयला 4.16 प्रतिशत, 5. कच्चा तेल 3.62 प्रतिशत, 6. प्राकृतिक गैस 2.77 प्रतिशत, 7. सीमेन्ट 2.16 प्रतिशत, 8. अर्वरक 1.06 प्रतिशत है।[1] आधारभूत संरचना क्षेत्रक की तरह ही, आधारभूत संरचना उद्योगों के लिए भी भारी पूँजी के साथ ही प्रौद्योगिकी मानव शक्ति तथा उद्यमशीलता की भी बड़े पैमाने पर जरूरत होती है, जो कि पुन: निजी क्षेत्र द्वारा जुटाना संभव नहीं माना गया। यदि निजी क्षेत्र 'मूलभूत उद्योगों' वस्तुओं की आपूर्ति कर भी पाते है तब भी उपभोक्ताओं की कमजोर क्रयशक्ति के कारण वे अपना उत्पाद बाजार में विक्रय करने में स्फल नही हो पाते।

शायद यह एक और कारण या कि मूलभूत उद्योगों की स्थापना का दायित्व सरकार ने ही स्वयं वहन किया। इन उद्योगों में से सीमेंट क्षेत्रक निजी क्षेत्र में कुछ मजबूत था। लोहा एवं इस्पात क्षेत्रक में निजी क्षेत्र एक अकेली कम्पनी की उपस्थिति थी। कोयला क्षेत्रक निजी क्षेत्र द्वारा नियंत्रित था जबकि कच्चे तेल एवं तेलशोधन में निजी क्षेत्र ने अभी कदम ही रखे थे। उद्योगशील भारत द्वारा माँग का जो स्तर बनना था उसकी पूर्ति उस समय के मूलभूत उद्योगों में विद्यमान क्षमता से संभव नहीं थी। न ही उनमें अपेक्षित विस्तार तत्कालीन निजी क्षेत्र के संचालको द्वारा संभव था। अन्य किसी विकल्प के अभाव में सरकार ने तय किया कि वह स्वयं ही इसमें प्रमुख भूमिका निभाए। इसीलिए हम आज उनमें से अधिकांश के सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों का एकाधिकार देखते है।

रोजगार सृजन सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को रोजगार सृजन रणनीति के महत्वपूर्ण अंग के रूप में भी देखा गया। लोकतांत्रिक व्यवस्था वाली एक सरकार मात्र अर्थशास्त्र पर ही केन्द्रित नहीं रह सकती बल्कि उसे राष्ट्र के सामाजिक राजनीतिक आयामों पर भी विचार करना होता है, आर्थिक लक्ष्यों की भी पूर्ति करनी पड़ती है। सम्य देश निर्धनता की गंभीर समस्या से जूझ रहा था तथा श्रमशक्ति में तीव्र वृद्धि हो रही थी। निर्धन लोगों को रोजगार प्रदान करना गरीबी उन्मूलन का समयसिद्ध उपाय है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से यह अपेक्षा की गई कि वे रोजगार योग्य श्रमशक्ति अथवा कार्यशक्ति के लिए पर्याप्त रोजगार सृजित करेंगे।

सरकार द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों में किए जाने वाले निवेश की प्रकृति सम्पत्ति सृजन की थी तथा इन इकाइयों को उत्पादक गतिविधियों में लगना था। जो वस्तुएँ एवं सेवाएँ इन इकाइयों द्वारा उत्पादित एवं विक्रय की जानी थी उनसे सरकार को आय सुनिश्चित थी। सरकार की इस आय को खर्च करने की एक संचेत नीति थी। इस आय का उपयोग 'सामाजिक वस्तु' यानि 'सार्वजनिक वस्तु' की आपूर्ति में करना और इस प्रकार भारत में एक विकसित सामाजिक क्षेत्र को खड़ा करना था। सामाजिक वस्तु से सरकार का आशय भारतीय जनता को कतिपय वस्तुओं एवं सेवाओं की सार्वभौमिक आपूर्ति सुनिश्चित करना था। इसकें अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, पेयजल, सामाजिक सुरक्षा आदि शामिल थे। इसका अर्थ यह कि सार्वजनिक उपक्रमों की सामाजिक क्षेत्र के विकास लिए राजस्व उपार्जन के माध्यम के रूप में देखा गया। अनेक कारणों से सार्वजनिक उपक्रम उतना राजस्व नही अर्जित कर पाया जितना कि सामाजिक क्षेत्र के स्वस्थ विकास के लिए जरूरी था। इसके चलते देश में सार्वजनिक वस्तुओं की उपलब्धता पर बुरा असर पड़ा। जहाँ सरकार को मुनाफा कमाकर देना था वहाँ सार्वजनिक उपक्रम बड़ी संख्या में घाटे मे चलना शुरू हो गए। उनको सम्भालने के लिए बजटीय सरकार एक नियमित प्रक्रिया बन गई।

जैसे ही सार्वजनिक उपक्रम अर्थव्यवस्था की आधारभूत संरचना तथा मूलभूत उद्योगों की आपूर्ति का दायित्व ले लेंगे। वैसे ही निजी क्षेत्र के उद्योगों के लिए भी आधार तैयार होता जाएगा। देश में निजी क्षेत्र के उद्योगों के उदय के साथ औद्योगीकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाएगी। सार्वजनिक उपक्रमों के लिए जो भूमिकाएं निर्धारित की गई थी। उनमें यह सबसे अधिक दूरदृष्टि सम्पन्न भूमिका यही थी। अन्य भूमिकाओं का क्या हुआ, यह एक अलग मामला है जिस पर हम तब लौटेंगे जब देश के औद्योगिक परिदृश्य पर चर्चा करेंगे। यहाँ हमने विश्लेषण किया कि क्यों भारत सरकार ने स्वतंत्रता पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के लिए ऐसी महत्वाकांक्षी योजना तैयार की थी। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना करने के पीछे विकासात्मक चिंताओं से जुड़ी अन्य बातें भी थी, जैसे - उत्पादन में आत्मनिर्भरत, संतुलित प्रादेशिक विकास, लघु एवं आनुशंगिक उद्योगों का विस्तारण, निम्न एवं स्थिर मुद्रास्फीति दर तथा भुगतान संतुलन में दीर्घकालिक साम्य। समय बीतने के साथ सार्वजनिक उपक्रमों ने देश की उन्नति और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

वर्ष1985-86 आते-आते, सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों की निम्न दक्षता पर पूरे विश्व में CWB एवं IMF सहित एक आम सहमति सी उभरी। इसके प्रतिफल के रूप में 'वांशिगटन सहमति' का उदय हुआ, जिसके 'नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों की एक वैश्विक कोशिश के रूप में विश्व के अधिकांश देशों में सरकारी कंपनियों के निजीकरण एवं विनिवेश की प्रक्रिया शुरू हुई। 1990 के दशक के अंत तक शोधों एवं अध्ययनों से यह पता चलाकि अदक्षता सरकारी नहीं बल्कि निजी क्षेत्र की कंपनियों में भी हो सकती है। लेकिन तब तक विश्व के बहुत सारे देशों में निजी क्षेत्र को अत्याधिक उदारवादी तरीके से विनियमित किया जाने लगा था। सरकारों की ऐसी सोच इस बात पर टिकी थी कि बहुत सारी आर्धिक चुनौतियों का समाधान (बाजार) कर सकता है। अंतत: वर्ष 2007-08 के अमेरिकी 'सब-प्राइम' संकट के उपरांत इस सोच पर एक तरह से भारी प्रश्न चिन्ह लगा और विश्व में इस तरह की आर्थिक नीतियों पर एक तरह से विराम सा लग गया।[2]

कोविड-19 के प्रभाव से भारत में आर्थिक नियोजन में आत्मनिर्भर भारत के लिए सकरात्मक कदम उठाये जा रहें है। पूर्व के ब्रिटिश उपनिवेशों के समाजवादी रूझान वाले राष्ट्रीय नेता आर्थिक नियोजन के विचार से कही अधिक प्रभावित हुए। 1930 का लगभग पूरा दशक इस बात का साझी रहा जब राष्ट्रवादी, पूजीवादी, समाजवादी, लोकतंत्रवादी अकादमिक समुदाय के लोग भारत मे किसी न किसी समय आर्थिक नियोजन की जरूरत की वकालत करते नजर आयें।[3]

इस प्रकार स्वतंत्र भारत एक नियोजित अर्थव्यवस्था वाला देश बनेगा भारत का आर्थिक इतिहास वास्तव में एक नियोजन का इतिहास है।[4]

आर्थिक नियोजन पर बहस को सिर्फ अकादमिक अभ्यास तक न सिमटे रहने देने के क्रम में हमे विविध अर्थव्यवस्थाओं में मौजूद वास्तविक जिन्दगी के उदाहरणों पर चर्चा करने की जरूरत है। योजना की ऐतिहासिक पृश्ठभूमि के बगैर, हम भारत में योजना का मतलब और किरदार, दोनों नहीं समझ सकते। यह छोटा सा अध्याय पाठकों को आर्थिक नियोजन की अवधारणा से जुड़े क्या, क्यों और कैसे से अवगत कराता है, साथ ही समय-समय पर विभिन्न देशों के जिसमें भारत भी शामिल है, प्रयोगों की चर्चा भी करता है। इसे अगले अध्याय भारत में नियोजन से पहले का एक सहायक सैद्धांतिक अध्याय सी समझा जा सकता है।

साल 1938 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहली बार राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना की जिसमें देश में योजना निर्माण को परिभाषित करने की कोशिश की (सन् 1940 में यह समिति स्थापित हुई थी।, वैसे सन् 1949 में अंतिम रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। इसे योजना की सबसे व्यापक और संभव परिभाषा समझाा जा सकता है "एक लोकतांत्रिक व्यवस्था के तहत योजना को ऐसे परिभाषित किया जा सकता है कि वह औद्योगिक समन्वय, जिसमें खपत, उत्पादन, निवेश, कारोबार और आय वितरण के निष्पक्ष विशेषज्ञ हों और जो राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा तैयार सामाजिक उद्‍देश्य के अनुरूप काम करें। ऐसी योजना को न सिर्फ अर्थव्यवस्था और जीवन-स्तर के उत्थान के दृष्टिकोण से देखा जाए, बल्कि इसमें सांस्कृतिक और आध्यापिक मूल्यों व जीवन के मानवीय पक्ष भी शामिल हों"[5]

ऐसे में एक आर्थिक योजना सामान्यत: एक व्यक्त कार्य-नीति के साथ दिए गये समय में निश्चित आर्थिक लक्ष्यों को पाना है। आर्थिक योजनाएँ व्यापक या आंशिक हो सकती है। एक विस्तृत योजना अर्थव्यवस्था के सभी बड़े पहलुओं की सहमति करने के लिए लक्ष्य निर्धारित करती है। वहीं एक आंशिक योजना अर्थव्यवस्था के एक हिस्से (जैसे- कृषि, उद्योग, निजी क्षेत्र आदि) के

लिए लक्ष्य निर्धारित करती है। अगर व्यापक संदर्भ में लें तो योजना निर्माण की प्रक्रिया अपने आपमें एक अभ्यास है जिसमें सरकार सबसे पहले सामाजिक उद्देश्य चुनती है, उसके बाद कई लक्ष्य निर्धारित करती है (जैसे- आर्थिक लक्ष्य) और अंत में एक विकास योजना को लागू करवाने उसमें तालमेल बिठाने और उसकी निगरानी करने के लिए ढांचागत काम करती है।[6]

1950 के दशक तक दुनिया भर में योजना निर्माण संसाधनों के इस्तेमाल का एक तरीका बना ताकि नीति निर्माताओं द्वारा निर्धारित किसी भी लक्ष्य को हासिल किया जा सकें।

(1) कई देशों में एक विशेष आकार के परिवार को पाने के लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम शुरू हुआ।

(2) पहले से मौजूद और नए बनने वाले शहरी क्षेत्रों को सामाजिक और भौतिक बुनियादी सुविधाएँ देने के लिए नगर या शहरी योजना बनाई गई।

(3) देशों द्वारा अपने राजस्व को विभिन्न व्यय क्षेणियों में सबसे अच्छा उपयोग करने की प्रक्रिया में वित्तीय नियोजन की शुरूआत हुई। वित्तीय नियोजन बजटिंग के रूप में ज्यादा प्रसिद्ध है। हर बजट चाहे वह सरकार का हो या किसी निजी क्षेत्र का कुछ और नहीं, बल्कि वित्तीय नियोजन है।

(4) इसी तरह बडे और छोटे स्तरों पर कई योजनागत प्रक्रियाएं हो सकती हैं - कृषि योजना, औद्योगीकरण योजना, सिंचाई योजना, सड़क योजना, भवन योजना वगैरह।

भारत के आर्थिक विकास की योजना का ही लोकप्रिय नामकरण 'बाम्बे प्लान' हो गया। जिसे भारत के प्रमुख पूंजीपतियों के एक वर्ग ने तैयार किया था। इसमें आठ पूंजीपति शामिल थे - पुरूषोत्तम दास ठाकुरदास, जे0आर0डी0 टाटा, जी0डी0 बिडला, लाला श्री राम, कस्तूर भाई लालभाई, ए0डी0 क्षौफि, आर्देशिर दलाल तथा जॉन मथाई। यह योजना 1944-45 में प्रकाशित हुई। उपरोक्त आठ पूंजीपतियों में पुरूषोत्तम दास ठाकुरदास, राष्ट्रीय योजना समिति N.P.C. 1938 के 15 सदस्यों में एक थे। शेष तीन जे0आर0डी0 टाटा, जी0डी0 बिडला तथा लाल भी राम राष्ट्रीय योजना समिति की उप समितियों के सदस्य (कुल 29) थे।[7]

यह भारत में नियोजन के सर्वोच्य लक्ष्यों में शामिल रहा है। अर्थव्यवस्था में उत्पादन स्तर में स्थिर वृद्धि जो आज के लिए भी सच है और भविष्य के लिए भी बिना किसी संदेह के।

गरीबी उन्मूलन वह सर्वप्रमुख विषय था जिसने एनसीपी सदस्यों के साथ ही संविधान सभा में भी सदस्यों के साथ ही संविधान सभी सदस्यों का ध्रुवीकरण कर दिया, इस हद तक कि नियोजित अर्थव्यवस्था के पक्ष में आजादी के पहले ही निर्णय ले लिया गया। गरीबी उन्मूलन को लक्षित अनेक कार्यक्रम देश में सभी सरकारों द्वारा चलाए गए और यह आज भी जारी है कहीं अधिक गंभीरता के साथ (जैसे-एनआर जीईपी जिसे यूपीए सरकार ने 2006 में शुरू किया वह भी एक अधिनियम बनाकर इस विषय ने उच्च राजनीतिक स्तर पर ध्यान खींचा।

गरीबों को रोजगार प्रदान करना गरीबी उन्मूलन के लिए अर्थशास्त्र का सर्वोत्तम औजार है। इस प्रकार भारत में नियोजन का यह स्वाभाविक उद्देश्य बन जाता है जब इसे गरीबी उन्मूलन के लिए अपनाया जाता है। भारत में रोजगार सृजन इसीलिए गरीबी उन्मूलन के उद्देश्य का हिस्सा रहा है। कई सामान्य कार्यक्रम एवं योजनाएं इस दिशा में समय-समय पर सरकार द्वारा शुरू की जाती रहीं है। उनमें वेतन रोजगार पर आधरित कुछ कार्यक्रम अभी भी अस्तित्व में है अन्य रोजगार पर आधारित कार्यक्रम है।

भारत में अंतर वैयक्तिक तथा अत: वैयक्तिक स्तर पर आर्थिक गैर बराबरी स्पष्ट रूप से दृष्टव्य थी। सभी प्रकार की आर्थिक असमानताओं को रोकने के लिए आर्थिक नियोजन भारत में नियोजन की शुरूआत तक एक औजार के रूप में स्वीकार्य हो चुका था। नियोजन के इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न सरकारों ने तरह-तरह की नवाचारी नीतियों को लागू किया, यहां तक कि कभी-कभी संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों से भी इनके टकराव की स्थिति बनी।

हालांकि भारतीय नियोजन को कुछ सामाजिक आर्थिक उद्देश्य पूरे करने हैं, मात्र आर्थिक नियोजन को ही नियोजन प्रक्रिया का हिस्सा बनाया गया (तकनीकी रूप से) और सामाजिक नियोजन (जिसे सामाजिक अभियत्रंण कहना बेहतर होगा) राजनीतिक प्रक्रिया के ऊपर छोड़ दिया गया। यही कारण है कि सरकारी नौकरियों में आरक्षण प्रीमियर शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण, भूमि सुधार, अंतजातीय विवाहों को प्रोत्साहन आदि विषय योजना आयोग के दायरे में नहीं आते।

1930 तथा 1940 के दशकों के दौरान राष्ट्रवादियों पूंजीपतियों एवं एनसीपी की यह अभिलाशा था कि आर्थिक गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर बने। आत्मनिर्भरता को विश्व अर्थव्यवस्था में एक अधीनस्थ स्थिति को दूर करने के लिए भी इसकी जरूरत अनुभव की गई। जैसा कि जवाहर लाल नेहरू ने विचार व्यक्त किया था -आत्मनिर्भरता का अर्थ ''अंतराष्ट्रीय व्यापार को छोड़ देना नहीं है उसे बढ़ावा देना चाहिए लेकिन इस दृष्टिकोण से कि आर्थिक साम्राज्यवाद का निशेध किया जाए।[8] भारत अभी भी अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के लिए कोशिश कर रहा है, इससे और विश्व व्यापार संगठन के पश्चात् के भूमंडलीय दुनिया में उच्चतर परस्पर निर्भरता की वास्तविकताओं से भी जूझ रहा है।

कोविड-19 महामारी द्वारा लाए गए आर्थिक गतिरोध के मद्देनजर भारत सरकार द्वारा मई2020 में आत्मनिर्भरता की दिशा में एक सबल कदम उठाया गया। अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सरकार द्वारा आत्मनिर्भर भारत अभियान की घोषणा की गयी, जो इस उद्देश्य की प्राप्ति पांच स्तभों (अर्थव्यवस्था, अधिसंरचना, व्यवस्था, जनांकिकी एवं मांग) के माध्यम से करेगा। आत्मनिर्भरता की दिशामें यह भारत की पहली कोशिश है जिसमें इसके आयाम एवं रणनीति की सुस्पष्ट घोषणा मिलती है। वैसे विशेषज्ञों ने इसे विश्व में बढ़ते संरक्षणवादी रूख का भारतीय जबाब माना है। दूसरी तरफ भारत के इस अभियान को विश्व किस रूप में विश्लेषित करेगा या रि भारत जो कि वैश्वीकरण का एक मजबूत पक्षधर रहा है आत्मनिर्भरता एवं वैश्वीकरण के चरित्रों में ताल मेल कैसे बैठाता है इन प्रश्नों के उत्तर भविष्य में ही मिल पाएंगें।

भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार (23 मई 2020) कोविड-19 का भारत की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का अनुमान है। जो 40 वर्षों में पहली बार अर्थव्यवस्था को संकुचन की स्थिति में लाएगा। केन्द्रीय बैंक के अनुसार वर्ष 2020-21 में, देश की अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर ऋणात्मक होने का अनुमान है। जो वर्तमान समय में ऋणात्मक 9 तक पहुंच गई है। ऐसी परिस्थिति में आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना सकरात्मक सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ :-

1. Central Statistics office, 12, May 2017
2. Sumit Bose and Sharat Kumar, Public sector Enterprises the new Oxford Companion to Economics in India Vol II, New Delhi , 2012 P-578

3- J.K. Galbraith "A History of Economics London Pengein Books 1999 P-187"

4- Bipin Chandra, "The Colonial Legency, in Bimal Jalan, The Indian Economy: Problems and Prospects How death 2004".

5- S.R. Maheshwari - A Dictionary of public administration orient longman, New Delhi, 2002, P-371

6- United Nations Department of Economic affairs, measures for Economic development of underdeveloped countries, UNO, DEA, New York, 1951, P-63

7- Rakesh Mohan - 'Industrial policy and control' in Bimal Jalan (ed), The Indian Economy: Problems and prospects New Delhi Penguin 1984

8- National planing committee Report also Nehru in the discovery of India.

संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार दण्डी और उनकी रचना शैली

डॉ० सुषमा भारद्वाज

संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

दण्डी संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक सूचनाओं का अभाव है। कुछ विद्वान इन्हें सातवीं शती के उत्तरार्ध या आठवीं शती के प्रारम्भ का मानते हैं तो कुछ विद्वान इनका जन्म 550 और 650 ई० के मध्य मानते हैं।

संस्कृत काव्य-शास्त्र के इतिहास में वाल्मीकि एवं व्यास की तरह दण्डी का भी संस्कृत-साहित्य कवियों में अद्वितीय स्थान है। संस्कृत साहित्य में जहाँ कालिदास अपनी उपमा के लिए प्रसिद्ध है, तो भारवि अपने अर्थ-गौरव के लिए प्रसिद्ध हैं। वहीं दण्डी अपने पदलालित्य के लिए सर्वश्रेष्ठ माने गये है। काव्य शास्त्र में गुण और अंलकार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस प्रकार नाटक अपने वाचिक अभिनय से प्रशंसनीय होता है, उसी प्रकार गुणो की उपयोगिता काव्य की शैली को समृद्ध बनाता है। गुणों के उपयोग से काव्य का स्वरूप सुशोभित होता है। गुणों का अभाव काव्य को क्लिष्ट बना देता है।

मूल शब्द: आचार्य दण्डी स्थितिकाल जीवन-परिचय, शिक्षा एवं पाण्डित्य, विभिन्न अभिमत, गुणों का विवेचन

परिचय

दण्डी कब हुए और इनकी रचनाएँ कौन कौन सी हैं, यह प्रश्न अब भी विवादास्पद है। उनका जीवनवृत्त भी विशेष ज्ञात नहीं है। दक्षिण भारत में उपलब्ध 'अवन्तिसुन्दरी कथा' और 'अवन्तिसुन्दरी कथासार' -- इन दोनों के आधार पर उनके जीवन के विषय में इतना ही (नए और प्रामाणिक पाठ के अनुसार) ज्ञात हो सका है कि दण्डी के प्रपितामह दामोदर पंडित थे। भट्ट ब्राह्मण थे। वे कदाचित् भारवि के मित्र थे। उन्हीं की सहायता से चालुक्यवंशी राजा विष्णुवर्धन के निकट पहुँच सके। भारवि की चौथी पीढ़ी में दण्डी का जन्म हुआ था। कांचीनरेश के आश्रय में इनका जीवन व्यतीत हुआ। कन्नड भाषा के अलंकारग्रन्थ 'कवराजमार्ग' (815 ईव के आस पास) पर दण्डी के 'काव्यादर्श' का यथेष्ट प्रभाव देखकर तथा सिंहली के अलंकारग्रन्थ 'सीय-बस-लकर' (846-866 ई०) को काव्यादर्श के आधारपर निर्मित पाकर इतना निश्चित है कि नवीं शताब्दी से पूर्व दण्डी वर्तमान थे। इस प्रकार 'लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति' इस उद्धरण के कालिदास के एक प्रसिद्ध पद्यांश पर आश्रित होने से दण्डी का काल असंदिग्ध रूप से कालिदास के पश्चात् ठहरता है। प्रोव पाठक के मत से काव्यादर्श का हेतुविषयक विभाग -- भर्तृहरि (650 ईव) के आधार पर होने से काव्यादर्श की रचना 650 ईव के बाद हुई होगी। काव्यादर्शोक्त राजवर्मा (रन्तिवर्मा) को नरसिंहवर्मा द्वितीय का विरुद या उपनाम माननेवालों के अनुसर दण्डी का समय सातवीं शती का उत्तरार्ध और आठवीं का आरम्भ माना जा सकता है। यदि 'काव्यादर्श' के एक श्लोक पर कादम्बरी के शुकनासोपदेश का प्रभाव स्वीकार किया जाय तो उनका काल -- बाणभट्ट के भी अनन्तर होता है। अवन्तिसुन्दरी कथासार को दण्डी की कृति माननेवालों के मत से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। परन्तु कुछ विद्वान दण्डी को सुबन्धु से पूर्व और कुछ लोग उन्हें बाणभट्ट का भी पूर्ववर्ती मानते हैं। द्वितीय मत वालों के अनुसार सुबन्धु, दण्डी और बाण -- तीनों ही 550 ईव और 650 ईव के बीच उत्पन्न हुए थे। इन लोगों के मत से 'अवन्तिसुन्दरी कथा' या 'कथासार' को (दृढ़ प्रमाणाभाव के कारण) दण्डीकृत मानने में आपत्ति हैं

रचनाएँ

किंवदंती और सुभाषित के अनुसार दण्डी की तीन रचनाएँ विश्रुत बताई गई हैं। प्रथम रचना 'काव्यादर्श' और दूसरी है 'दशकुमारचरित'। अधिकतर विद्वानों ने यह मान लिया है, परन्तु कुछ अन्य विद्वान् -- इन दोनों को एक साहित्यकार की न मानकर दण्डी नाम के दो भिन्न व्यक्तियों की रचना होने का अनुमान करते हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि काव्यशास्त्र के जिन मान्य सिद्धान्तों का 'काव्यादर्श' में प्रतिपादन और निर्देश मिलता है, 'दशकुमारचरित' में उसकी असंगति और विरोध दिखाई देता है। अत: आचार्य और काव्यकार के सिद्धान्त और व्यवहार की असंगति एक नहीं दो भिन्न कृतिकारों का संकेत करती है। परन्तु अधिकतर विद्वानों के अनुसार उक्त असंगति का कारण यह मान लिया गया है कि अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भकाल में महाकवि ने 'दशकुमारचरित' की रचना की थी। 'काव्यादर्श' उस प्रौढ़ावस्था की रचना है जब दण्डी का शास्त्रीय वैदुष्य परिपक्व हो गया था। अत: इन दोनों कृतियों को दण्डी रचित मानने में अधिकतर विद्वानों को कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। परन्तु तीसरी कृति का निर्धारण अब तक विवादास्पद है। 'पिरोल' के मत से शूद्रकरचित कहा जानेवाला 'मृच्छकटिक' ही दंडी की तृतीय रचना है। इसका एक आधार 'काव्यादर्श' में बिना किसी नाम के 'मृच्छकटिक' की एक पंक्ति का उद्धरण है। दूसरा कारण है-- 'मृच्छकटिक' और 'दशकुमारचरित' दोनों में चित्रित समाज एवं उनके पात्रों के चरित्रचित्रण में अत्यधिक साम्य। प्रथम कारण कोई महत्वपूर्ण कारण नहीं है। दूसरा केवल इतना ही सूचित करता है कि दोनों ही कृतियाँ प्राय: समकालीन समाज के युगबोध का यथार्थोन्मुख और जीवन्त चित्रण करने में प्रयत्नशील हैं। 'मल्लिकामारुत' भी कभी कभी दण्डीकृत कहा जाता है। पर वह 15वीं सदी के 'उदण्ड रंगनाथ' की कृति है। 'अवंतिसुंदरीकथा' को (जो अपूर्ण गद्यकाव्य है) अब अनेक विद्वान् 'दशकुमारचरित' की कथाओं के साम्य पर दण्डी की तृतीय रचना मानने लगे हैं।

दोनों गद्यकाव्यों की शैलीगत भिन्नता को देखकर कुछ पण्डितों ने उसके दण्डीकृत होने में आपत्ति की है। पर अन्य विद्वान् युवावस्था की शैली में 'दशकुमारचरित' को विरचित और प्रौढ़ावस्था की परिपक्व शैली में 'अवन्तिसुन्दरीकथा' का निर्माण मानकर इसे भी (अवन्तिसुन्दरीकथासार के प्रमाण पर) असंदिग्ध रूप में दण्डी की तृतीय रचना स्वीकार करते हैं। कुछ लोग -- 'अवन्तिसुन्दरीकथा' को 'दशकुमार चरित्' की खोई हुई पूर्व पीठिका मानने लगे हैं। 'दशकुमारचरित' संस्कृत के तीन प्रसिद्ध (वासवदत्ता, कादम्बरी और दशकुमारचरित) गद्यकाव्यों में एक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध कृति है। वह काव्य की कथाशैली में लिखित है। 'महाभाष्य' और प्राचीन उपनिषदों की सहज गद्यशैली, पंचतन्त्र 'हितोपदेश' आदि की नीतिसाहित्य वाली सुबोध और व्यावहारिक गद्यशैली की तुलना में दशकुमारचरित की भाषाशैली अधिक साहित्यिक और काव्यात्मक है। परन्तु सुबन्धु और बाण की अलंकृत एवं कलात्मक गद्यशैली से यह भिन्न है। कथामूलक अलंकृत शैली के चमत्कार की परिपक्वता यद्यपि सुबन्धु में प्रौढ़ और बाण में प्रौढ़तर है, तथापि उन दोनों में वर्ण्य वस्तु और पात्रों का चरित्रांकन 'दशकुमारचरित' की अपेक्षा धूमिल है। कलामूलक आदर्शवादिता ने 'वासवदत्ता' और 'कादभ्बरी' की शैली को यथार्थोन्मुख परिवेश से दूर हटाकर कुछ कृत्रिम बना दिया है। पर दण्डी की गद्यकाव्यशैली में उस 'अति' और सायासता का प्रभाव सीमातिक्रामी नहीं है।

दशकुमारचरित

'दशकुमारचरित' पर सम्भवत: पैशाची भाषावाली गुणाढ्य की बृहत्कथा (बड्ढकहा) का प्रभाव पड़ा है। सम्भवत: इसी कारण 'दशकुमारचरित' पर लोककथाओं की कथारूढ़ियों का भी प्रभाव पड़ा है। कहानी में दूसरी, तीसरी आदि की शृंखला को जोड़ने का रचनाविधान भी यहाँ लक्षित होता है। इसमें सातवीं आठवीं शताब्दी के समाज की दुर्बलताओं और सबलताओं, उस काल के संकुचित और स्वार्थपरक राजनीतिक संघर्षों, नाना वर्ग के व्यक्तियों की कामार्थमूलक कमजोरियों एवं तद्युगीन समाज की अन्धरूढ़ियों, अन्धविश्वासों तथा सैद्धान्तिक और व्यावहारिक वैषम्यों का अत्यन्त जीवन्त चित्रण मिलता है।

विभिन्न श्रेणियों और वर्गों के व्यक्तिमाध्यम से किए गए वर्गपरक चरित्रचित्रण में तत्कालीन समाज की सजीव झाँकी दिखाई पड़ती है। कुल मिलाकर युगविशेष के यथार्थ जीवन का कवि ने पर्याप्त अंकन किया है। इस ग्रन्थ की पूर्वपीठिका के पाँच उच्छ्वास और उत्तर पीठिका के अंश को प्राय: सभी विद्वान दण्डी रचित नहीं मानते। उनहें अन्य लेखकों द्वारा लिखित स्वीकार करते हैं।

पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका की अभिव्यक्तिशैली मध्य के आठ उच्छ्‌वासों से भिन्न (अधिक अलंकृत और कलात्मक चमत्कार से अधिक गुंफित) है। दोनों में मान्यताविष्यक वर्ण्यमान्यता भी भिन्न भिन्न दृष्टियों का संकेत करती है। हो सकता है, इसके आरंभिक और अंतिम अंश नष्ट भ्रष्ट हो गए हों, परन्तु निश्चय ही दण्डीलिखित दोनों पीठिकाओं के मध्य का अंश उपक्रम और उपसंहार से रहित है। यह भी कहा जाता है कि इस ग्रन्थ रचना की योजना, जो दण्डी के मन में थी, पैशाची की 'बृहत्कथा' की अनुगामिनी थी। उसमें लोककथाओं का विशाल संग्रह करने का विचार भले ही रहा हो, पर वह (सम्भवत:) अपूर्ण रह गई। कुछ लोग इस ग्रन्थ को नीतिविषयक या उपदेशार्थ रचित मानते हैं। परन्तु इसकी रचना मुख्यत: काव्यात्मक है और सौन्दर्यबोध के आस्वादनार्थ ही हुई है। इसमें कहीं-कहीं जो अश्लीलता दोष बताया जाता है वह थोड़ा बहुत वैसा ही है जैसा 'कुमारसंभव', नैषधचरित', 'शिशुपाल वध' या 'किरातार्जुनीयम्' में। दंडी द्वारा 'दशकुमारचरित' में प्रयुक्त शब्द संख्या 'कादंबरी' या 'वासवदत्ता' में प्रयुक्त शब्दों की अपेक्षा अधिक बताई जाती है। इन तथा अन्य कारणों से संस्कृत के गद्यकाव्यकारों में दण्डी का स्थान विशिष्ट है।

काव्यादर्श

काव्यादर्श दण्डी की ऐसी रचना है जो काव्यशास्त्र के विचार से विशेष महत्व की है। दृश्यकाव्य सम्बन्धी 'नाट्यशास्त्र' के अनन्तर केवल 'भामह' ही दंडी से प्राचीनतर ऐसे आलंकारिक हैं जिनका ग्रंथ अद्यावधि उपलब्ध है। परन्तु उनकी कृति 'काव्यालंकार' की अपेक्षा दण्डी का 'काव्यादर्श' अधिक प्रौढ़, अधिक व्यापक और अधिक व्यवस्थित है। उसने परवर्ती अनेक आलंकारिकों के ग्रन्थों और उनकी रचनाशैली को प्रभावित किया है।

अवन्तिसुन्दरीकथा

'अवंतिसुंदरीकथा' भी एक प्रौढ़ गद्यकाव्य है। परन्तु उसके कृतित्व के विवादास्पद और ग्रन्थ के अपूर्ण होने में यहाँ विशेष कुछ न कहकर इतना ही कहना पर्यापत है कि वह एक प्रौढ़ गद्यकाव्य है। यह भी हो सकता है कि 'दशकुमारचरित' की वह पूर्वपीठिका रही हो। सब मिलाकर दण्डी को हम उत्कृष्ट काव्यकार और तद्युगीन शास्त्रबोध की दृष्टि से उच्च कोटि का आलंकारिक कह सकते हैं।

निष्कर्ष

महाकवि दण्डी का स्थिति काल सप्तम शताब्दी का अन्त और अष्टम शताब्दी का आरम्भ माना जाता है। क्योंकि नवम् शताब्दी के ग्रन्थों में दण्डी का नामोल्लेख पाया जाता है। 815 ई० के आस-पास हुए कन्नड़ कवि अमोघ वर्ष के अलंकारग्रन्थ "कविराजमार्ग" में काव्यादर्श के कई उदाहरण अक्षरश: उद्धृत हैं। अत: दण्डी का समय इससे पूर्व माना जाता है। दण्डी के काव्यादर्श का निम्न पद्य बाणभट्ट की कादम्बरी के शुकनासोपदेश से प्रभावित प्रतीत होता है।

अन्य कवियों द्वारा किया गया गुणों का विवेचन देखकर कहा जा सकता है कि गुण धारणा के इतिहास में दण्डी का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने काव्य में गुण को जितना गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया, उतना किसी अन्य आचार्य ने नहीं। अत: दण्डी ने अपनी विवेचनानुसार कुछ गुणों को शब्दाश्रित और कुछ को अर्थाश्रित एव कुछ को शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित कहा है। दण्डी ने गुण और अंलकार दोनो ही को काव्य का शोभाकारक लक्षण होते है। ऐसे ही लक्षण गुणों में होते है। सुन्दर काव्य शैली के लिए गुणों का महत्वपूर्ण स्थान है। अच्छे या बुरे दोनों ही प्रकार के अंलकार काव्य शैली के गौण अंश के समान माने जाते है। दण्डी के अनुसार गुण काव्य की शैली के गौण अंश की काव्यात्मक अंलकार के लिए प्रयुक्त किया है। शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनो ही दो भिन्न अलंकार है। किन्तु दण्डी ने अर्थालड्कार पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया गया है। उपमा अलंकार उनका मुख्य अलंकार है। अलंकारो एवं गुणों का विवेचन दण्डी ने एक समान किया है। अत: गुण और अलंकार दोनों ही काव्यात्मक श्रेष्ठता के लिए अनिवार्य है। गुण और अंलकार दोनो ही काव्य की शैली तथा स्वरुप दोनों को विभूषित करते है।

सन्दर्भ

1. भारतीय साहित्य के निर्माता (दण्डी) अध्याय-1
2. Tripathi, Jayashankar (1996). DANDIN. Makers of Indian Literature. New Delhi: Sahitya Akademi. ISBN 81-260-0129-1.

3. Gupta, D. K. (1970). A critical study of DaGin and his works. Delhi: Meharchand Lachhmandas. Gupta, D. K. (1972). Society and culture in the time of DaG in. Delhi: Meharchand Lachhmandas.
4. first translated into English by P.W. Jacob, Hindoo tales, or, The adventures of ten princes, freely translated from the Sanscrit of the Dasakumaracharitam (London: Strahan & Co., 1873).
5. Söhnen, Renate. 1995. “On the Concept and Presentation of ‘yamaka’ in Early Indian Poetic Theory”. In: Bulletin of the School of Oriental and African Studies Vol. 58. No. 3 p 495–520.
6. Yigal Bronner, ‘A Question of Priority: Revisiting the Bhamaha-DaG in Debate’, The Journal of Indian Philosophy, 40 (2012), 67–118. DOI 10.1007/s10781-011-9128-x
7. Bronner, Yigal (29 April 2011). ”A Question of Priority: Revisiting the Bhâmaha-DaG in Debate” (PDF). Journal of Indian Philosophy. 40 (1): 67–118. doi:10.1007/s10781-011-9128-x. S2CID 254569181. Retrieved 28 November 2015.

दलित महिला आत्मकथा में अंतर्व्यथा

कंचन आर्या

शोधार्थी, हिंदी, सोबन सिंह जीना परिसर अल्मोड़ा, (उत्तराखंड)

समाज में नारी को संवेदनाओं की मूर्ति कहा गया है और साथ ही नारी जीवन की पारखी भी होती है। अपने जीवन में अपनी भावनाओं को अनेक सुंदर रंगों से व्यक्त करती है। वह पुरूष से सर्वथा अलग एक समाज में जीती है। भारतीय समाज में नारी की महिमा का वर्णन अविस्मरणीय रहा है लेकिन फिर भी भारतीय समाज की वास्तविक परिस्थितियों में नारी को वह स्थान कभी प्राप्त नहीं हुआ, जिसका वर्णन वैदिक काल व अन्य कालों में परंपराओं व संस्कृति में परिलक्षित होता है। परिणामत: उसके बहिरंग व्यक्तित्व एवं परिवेश में एक समानांतर दूरी हमेशा बनी रही। स्त्री अगर अपने पारिवारिक रूप से हटकर अपना कोई अस्तित्व तलाशती है, तो उसे अलग-अलग प्रकार की प्रतिक्रिया मिलती है। भारतीय समाज नारी के परिवर्तन के प्रयासों को संस्कृति का अवमूल्यन मानकर बराबर खारिज करता आया है और आज भी कर रहा है। परिवेशगत असामंजस्य के कारण कई बार उसका व्यक्तित्व हाशिए पर चला जाता है।

21 वी सदी की सबसे महत्वपूर्ण विधा आत्मकथा है। इसमें बड़ी संख्या में स्त्रियों की आत्मकथाएं शामिल हैं। भारत में आजादी के बाद समाज में परिवर्तन की स्थितियाँ बनने लगी। शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने लगा इससे हर व्यक्ति की अभिव्यक्ति की अवधारणा सृजित होने लगी। नारी के द्वारा आजादी के युद्ध में भाग लेने से नारी शक्ति को एक नई पहचान प्राप्त हुई। समाज में नारी अपना सम्मान प्राप्त करने के लिए, अपने जीवन की व्यथा को एवं मन की उत्तेजनाओं को अपनी विभिन्न कलाओं के माध्यम से कागज पर उतारने लगी तथा अभिव्यक्त करने लगी बस यही से नारी लेखन की परंपरा का आरंभ हुआ। इसी समय से नारी ने समाज व देश के सभी क्षेत्रों में अपने कदम रखने आरंभ किए। अपनी जीवन की दु:खभरी शोषित भावनाओं, अपमान, दर्द, पीड़ा को अपनी सृजन क्षमता के द्वारा एक लेखक के रूप में चित्रण करना आरंभ किया।

नारी अपनी अस्मिता एवं आत्माभिव्यक्ति के लिए सतत् संघर्षरत् रही है। अस्मिता विमर्श उभरने के बाद आत्मकथाओं में गति आने लगी: ''आत्मकथा लेखन में एक नया मोड़ आता है अस्मिता विमर्श के उभार के बाद। लंबे समय तक आत्मकथा लेखन उपेक्षित समुदाय की यातना कथा सामने आने लगी तो आत्मकथा लेखन एक बार महत्वपूर्ण हो उठा। 'पर्सनल इज पॉलिटिकल' की तर्ज पर वंचित समुदायों की जीवन कथा महत्वपूर्ण हो गई। यही कारण है कि चाहे दलित विमर्श हो या स्त्री विमर्श में आत्मकथाएं बड़ी संख्या में सामने आई।"[1]

आत्मकथा हिंदी साहित्य की बहुत महत्वपूर्ण विधा है। 21 वीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण विधा आत्मकथा है। इसमें बड़ी संख्या में स्त्रियों की आत्मकथाएं शामिल हैं। हिंदी के प्रख्यात रचनाकारों ने अपनी आत्मकथा को समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर इस विधा को और भी चर्चित किया। विशेष तौर पर दलित आत्मकथाओं ने। दलित आत्मकथाकारों ने दलित समाज में व्याप्त दु:ख, संघर्ष, पीड़ा, अपमान, संत्रास, अवहेलना, व्यथा को अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के सम्मुख रखा। आत्मकथा में आत्मकथाकार अपने जीवन की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। दलित स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्ति, संदर्भ, परिवेश, समस्या एवं संघर्ष का स्वरूप मुख्य रूप से उजागर हुआ है। दलित स्त्री का जीवन सभी ओर से संघर्षशील ही रहा है। उसे जीवन में हर जगह पर आने वाली कठिनाईयों से जूझना पड़ा है। उसे शिक्षित होने के लिए संघर्ष, जातिगत पहचान की वजह से, आर्थिक सफलता के लिए कठिन प्रयास एक स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाली अवहेलना, अपमान और शोषण की तिहरी मार को झेलना पड़ता है। यदि वास्तविक रूप से यह देखा जाए तो समाज में दलित महिलाओं ने कई यातनाओं को झेला है जो एक दोहरा अभिशाप से कम नहीं है। दलित महिलाओं ने भारतीय वर्ण व्यवस्था के तले दबकर शारीरिक और मानसिक पीड़ा को झेला है: ''दलित पुरुष

मात्र जातिभेद का शिकार है, जबकि दलित स्त्रियाँ जातिभेद के साथ-साथ लिंग भेद की दोहरी चक्की में पिसती आई है।"[2] अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से इसी त्रासदी इसी दु:ख को लेखिकाओं द्वारा चित्रित किया गया है। जिसका जीता-जागता उदाहरण है कौशल्या बैसंत्री कृत दोहरा अभिशाप। जब कोई लेखक अपने विगत जीवन को समूचे परिवेश के साथ शब्दों में बांधता है तो उसे हम आत्मकथा कहते हैं। हिंदी में अन्य विधाओं की तुलना में आत्मकथा कम ही लिखी गई है परंतु पिछले तीन दशकों से पुरुष मानसिकता के दंश को झेलती कुछ स्त्री-लेखिकाओं एवं सवर्ण वर्चस्ववाद की यातना को झेलने वाले कुछ दलित लेखकों द्वारा हुआ है। आत्मकथा अधिकतर शोषण की पीड़ा से जन्मी है। इस दौर में लिखी गई आत्मकथाएं उनके दर्द या जीवन संघर्ष के दस्तावेज के समान है। मैनेजर पाण्डे के अनुसार: ''दुनियाभर में और हिंदी में भी आत्मकथा पीड़ितों का एक ऐसा पाठ साबित हो रही है जिसके माध्यम से पीड़ित वर्ग और समुदाय के व्यक्ति अपने जीवन की कथा कहते हुए अपने वर्ग और समुदाय की जिंदगी की वास्तविकताओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।"[3] कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा दोहरा अभिशाप भी इसी प्रक्रिया का परिणाम है। दोहरा अभिशाप मात्र एक स्त्री की आत्मकथा नहीं बल्कि एक दलित स्त्री की आत्मकथा है। लेखिका ने अपने पूरे जीवन में स्त्री और दलित होने का अभिशाप झेला है। घर के भीतर स्त्री और घर के बाहर निकलते ही दलित होने का। इन्हीं दो रूपों में झेले हुए दु:ख और संघर्ष की कथा को उन्होंने दोहरा अभिशाप आत्मकथा में निरूपित किया है।

भारतीय वर्ण व्यवस्था के तहत वर्षो से दलितों का शोषण किया जा रहा है उन्हें नारकीय एवं उपेक्षित जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता है इसी के फलस्वरूप लेखिका अपनी आत्मकथा के माध्यम से दलित समाज, दलित स्त्री की स्थिति, लाचारी एवं विवशता को स्पष्ट करती हुई कहती हैं। मनुवादी व्यवस्था ने दलितों को कभी कुछ समझा ही नहीं: ''मनुस्मृति में अछूतों को शिक्षा से दूर रहने के निर्देश दिए गए हैं। समाज में इन निर्देशों का पालन श्रद्धा और निष्ठा के साथ किया जाता था।"[4]

दलित परिवार में जन्म होने के कारण कौशल्या बैसंत्री को बचपन से ही जातिभेद का शिकार होना पड़ा। निम्न जाति की होने के कारण उन्हें अपनी स्कूल की शिक्षिका से भी प्रताड़ित होना पड़ा। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण कौशल्या जी के माता-पिता उनकी पांचवी कक्षा की फीस नहीं दे पाए कौशल्या जी लिखती हैं: ''बाबा ने हेट मिस्टेस से चरणों के पास अपना सिर झुकाया दूर से, क्योंकि वे अछूत थे, स्पर्श नही कर सकते थे। बाबा का चेहरा कितना मायूस लग रहा था। उस वक्त! मेरी आँखें भर आई थी। अब भी इस बात की याद आते ही बहुत व्यथित हो जाती हूँ। अपमान महसूस करती हूँ। जाति-पाँति बनाने वाले का मुँह नोचने का मन करता है। अपमान का बदला लेने का मन करता है।"[5]

दोहरा अभिशाप आत्मकथा दलित नारी जीवन की संघर्षरत करूण गाथा है। एक तरफ स्त्री होने का तो दूसरी तरफ दलित होने का अभिशाप भोगने वाले स्त्री जीवन की त्रासदी को आत्मकथा उजागर करती है। भारतीय संकुचित परंपरा और मानसिकता ने स्त्री जीवन को अभावपूर्ण, पीड़ाग्रस्त एवं दयनीय बनाया तो दूसरी ओर पुरूष मानसिकता के अधीन होकर उसकी गुलामी सत्ता को स्वीकार करने वाली स्त्री ने ही स्त्री जीवन को खोखला, एवं रूढ़िवादी बना दिया है। भारतीय संविधान ने अनेकों अधिकार स्त्रियों को दिए, परंतु अधिकार मिलने के बावजूद भी यह उतना ही सच है कि समाज, परिवार एवं घर में स्त्री आज भी शोषण, अन्याय, अत्याचार, हिंसा, अवमानना तथा गुलामी से आजाद नहीं हो पाई। पितृसत्तामक समाज व्यवस्था से पोषित मानसिकता ने स्त्री को कम आंका और उसके साथ सौतेला व्यवहार किया। समाज एवं परिवार द्वारा प्राप्त सौतेला व्यवहार, घृणित मानसिकता को आत्मकथा के माध्यम से कौशल्या बैसंत्री ने उघाड़ा है।[6]

महिलाओं का आर्थिक, शारीरिक वैचारिक एवं मानसिक शोषण, असमानता का अभाव स्त्रियों को विकास का पर्याप्त अवसर न देना, निर्णय प्रक्रिया में दोयम स्थान तथा घर परिवार तक स्त्रियों को सीमित रखने की दूषित मानसिकता आदि समस्याओं को आत्मकथा के माध्यम से उद्घाटित करने का साहसिक कार्य कौशल्या बैसंत्री ने किया है। दलित व स्त्री होने की पीड़ा और वेदना क्या होती है इसका चित्रण इस आत्मकथा में किया गया हैं। दलित समाज में अशिक्षा, बेरोजगारी, निम्न आर्थिक स्थिति एवं रीति-रिवाजों के कारण स्त्रियों का शोषण होता है और उन्हें अपना संपूर्ण जीवन अभावों में जीना पड़ता है तो दूसरी तरफ स्त्री होने का दर्द होना है। पुरूष की निमर्मता एवं असंवेदनशीलता और पुरुषी अहंकार के कारण उपजी दासतावृत्ति के कारण एक दलित स्त्री दोहरे अभिशाप में जीती है। इसी दोहरे शोषण एवं अभिशाप के आधार पर लेखिका ने दोहरा अभिशाप यह शीर्षक अपनी आत्मकथा को दिया है। कौशल्या बैसंत्री ने दलित समाज के रीति-रिवाज खान-पान, छूआ-छूत, सामाजिक मान्यता, आचार-विचार आदि को अभिव्यक्त किया है।[7] भारतीय वर्णव्यस्था में दलित स्त्रियों ने अत्यधिक शारीरिक और मानसिक पीड़ा को हमेशा ही झेला है और अपनी अंतरात्मा की इसी अंतर्व्यथा को आत्मकथा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

हिंदी साहित्य में दलित आत्मकथा का विशिष्ट स्थान है। सर्वप्रथम मराठी भाषा में दलित आत्मकथा का सृजन हुआ। डॉ. भीमराव अंबेडकर के 'मी कसा झालो' इस आत्मकथा से प्रेरित होकर महाराष्ट्र के दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन का भोगा हुआ यथार्थ दलित आत्मकथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया। मराठी दलित साहित्यकारों से प्रभावित होकर हिंदी के दलित साहित्यकारों ने भी दलित आत्मकथा लेखन का प्रारंभ किया। दलित आत्मकथा का प्रारंभ 1955 में प्रकाशित मोहनदास नैमिशराय के 'अपने-अपने पिंजरे' से माना जाता है तत्पश्चात् ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' और 'संतप्त', माताप्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन', कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', श्यौराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', रूपनारायण सोनकर की 'नागफनी', डॉ. धर्मवीर की 'मेरी पत्नी और भेड़िया', डॉ. डी. आर. जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल', प्रो. तुलसीदास की 'मुर्दहिया', डॉ. सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' तथा आशा आपराद की, 'दर्द जो सहा मैंने' से दलित आत्मकथाओं का सिलसिला शुरू होता है। 'शिकंजे का दर्द' सुशीला टाकभौरे की महत्वपूर्ण आत्मकथा है। सुशीला टाकभौरे को सामाजिक संरचना की बहुत अच्छी समझ है जिसे उन्होंने अपनी आत्मकथा में भली-भांति अभिव्यक्त किया है। सुशीला टाकभौरे अपनी आत्मकथा में लिखती हैं: ''जिस तरह किसी ताकतवर को शिकंजे में जकड़कर उसकी पूरी ताकत को नगण्य बना दिया जाता है, उसी तरह मुझे भी सामाजिक जीवन की विषमता ने वर्णवादी-जातिवादी समाज व्यवस्था ने शिकंजे में जकड़ कर रखा, जिसका परिणाम पीड़ा, दर्द, छटपटाहट के सिवा कुछ नहीं है।''[8] सुशीला जी ने अपने जीवन में प्रताड़ना व शोषण के कई स्तरों को सहा है। वह बचपन में शिक्षा के दौरान कई तरह की प्रताड़ना से गुजरी तथा बचपन से ही समाज में निहित कुव्यवस्था का शिकार होती आई हैं, चूंकि वह एक दलित स्त्री हैं इसलिए उन्हें दोहरे-तिहरे शोषण से गुजरना पड़ा है। स्कूल से ही उन्हें दलित होने का बोध करा दिया जाता है। शिकंजे के दर्द में वे लिखती है: '' कक्षा में ब्राह्मण, बनिए के बच्चे को आगे बैठाया जाता था। पिछड़ी जाति के बच्चे को पीछे बैठाया जाता। अछूत बच्चे सबसे अलग बैठते थे। कक्षा में यह श्रेणी वर्गीकरण जैसा था। इससे हमें अपने वर्ण और जाति का आभास हमेशा रहता था।''[9] शिकंजे का दर्द सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा नारी के शोषण के विरुद्ध संघर्ष की गाथा है। लेखिका ने इस आत्मकथा के माध्यम से यह महत्वपूर्ण संदेश दिया है कि समाज के शोषित शिकंजे से मुक्ति पानी है तो सबसे पहले शिक्षित होना पड़ेगा: ''सच यह था-कब आया यौवन, जान न पाया मन! शिकंजे में जकड़ा जीवन कभी मुक्त भाव का अनुभव ही नहीं कर पाया। जिंदगी एक निश्चित की गई लकीर पर चलती रही वह उमंग कभी मिली ही नहीं जो यौवन का एहसास कराती उम्र के साथ कटु अनुभूतियों के दंश महसूस होते रहे। पीड़ा से छटपटाता मन मुक्ति का ध्येय लेकर आगे बढ़ता रहा। तब मुक्ति का मार्ग मैंने शिक्षा प्राप्ति को ही माना था।''[10] सच्चाई तो यह है कि जातिवादी किसी दलित को प्रगति कि तरफ जाते हुए नहीं देख सकता और दलित स्त्री हो तो उनका शिकंजा और भी कस जाता है।

कौशल्या जी का जन्म एक दलित परिवार में होने से बाल्यावस्था से ही उन्हें अनेक आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। इसी आर्थिक बदहाली के चलते पाँचवी कक्षा में कौशल्या के माता-पिता उनकी फीस नहीं दे पाए। दलित लोगों का रोजाना काम पर जाने से ही रोजाना के खाने का इंतजाम हो पाता है। यही कारण है कि दलित परिवार के बच्चे आगे पढ़ नही पाते। या तो वे अन्य बच्चों की देखभाल करते हैं या फिर घर के कामों में लगकर घरवालों का हाथ बटाते हैं। इस कारण स्कूल नही जा पाते लेखिका की मां चाहती हैं कि उनके बच्चे पढ़े-लिखे और आगे बढ़े इसके लिए वे अपने जुझारूपन और आपसी तालमेल से अपने सभी बच्चों को शिक्षित करने में सफल हो पाती है, क्योंकि उन पर अंबेडकर जी के भाषण का बड़ा प्रभाव था। कौशल्या बैसंत्री जी कहती हैं 'पढ़ो-लिखो शिक्षित बनो और आगे बढ़ो।' का प्रभाव पड़ चुका था। दलित महिलाओं के पास इतना काम करने को रहता है कि वे अपने बच्चों को समय ही नही दे पाती इसलिए वे छोटे बच्चे को सुलाने के लिए अफीम खिला देती है ताकि वे लम्बे समय तक सोये रहे और वह सारा काम कर सके लेखिका लिखती है: ''अफीम खिलाने से अहिल्या बहुत चिड़चिड़ी हो गई थी और बहुत रोती थी। उसका जिगर बढ़ गया था। एक दिन उसको तेज बुखार हुआ। माँ ने उस दिन मिल से छुट्टी ली। मूर मेमोरियल अस्पताल हमारे स्कूल के रास्ते से हटकर था। माँ ने कहा, इसे अस्पताल ले जाकर लाइन में खड़े रहना, क्योंकि बाद में बहुत बड़ी लाइन लग जाएगी। मैंने अहिल्या को पीठ पर लिया और छोटी बहन मधु ने दोनों बस्ते पकड़े माँ ने कहा कि वह घर का काम खत्म करके अस्पताल पहुंच जाएगी।''[11] लेकिन उसके पहुचने से पहले ही अहिल्या की मृत्यु हो जाती है। जो एक महिला की लाचारी और विवशता को दिखाता है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री निरंतर शोषण का शिकार रही है। स्त्री अस्मिता और अस्तित्व को इस समाज द्वारा बार-बार कुचला जाता है। और इसके विरोध में स्त्री का संघर्ष निरंतर हर युग में जारी रहता है। दलित स्त्री चाहे मध्यमवर्गीय हो अथवा निम्नवर्गीय, सामाजिक कार्यकर्ता हो, मजदूर हो या उच्च संस्थानों में अध्यापिका उसे दलित स्त्री

होने की पीड़ा सदैव झेलनी पड़ती है। ऐसे संघर्ष दलित और सवर्ण, दोनों जातियों की महिलाओं को झेलने पड़ते हैं। कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों, परंपराओं का दलित समाज पर किए जा रहे अत्याचारों पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

दलित स्त्री के जीवन में शिक्षित होने के लिए संघर्ष, जातिगत पहचान की वजह से हर कदम पर आनेवाली कठिनाईयों से जूझना, आर्थिक सबलता के लिए कठिन प्रयास, स्त्री होने के कारण वह भी दलित स्त्री घर और बाहर होने वाले अपमान अवहेलना और शोषण की मार को झेलना पड़ना है, लेखिका ने अपनी आत्मकथा में इन प्रसंगों, संघर्षो और घटनाओं का प्रमुखता से चित्रण किया है। कौशल्या जी का वैवाहिक जीवन कभी सुखमय नही रहा। उनके पति लेखक और स्वतंत्रता सेनानी थे। लेकिन अपनी पत्नी को मुक्ति नही दे सके उसके लिए उसकी पत्नी मात्र भोग की वस्तु थी। अपने पति के बारे में वे लिखती हैं: ''देवेन्द्र कुमार को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी। दफ्तर के काम और लिखना यही उसकी चिंता थी। मुझे किस चीज की जरूरत है, उसका उसने कभी ध्यान नहीं दिया।''[12]

लेखिका के पति उच्च शिक्षित, लेखक और भारत सरकार में उच्च पद पर सेवारत् रहे उन्हें भारत सरकार से ताम्रपत्र और स्वतंत्रता सेनानी की पेंशन भी मिली लेकिन वे अपनी पत्नी को कभी सम्मान नही दे पाए। स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज ने कभी भी उसका अधिकार नहीं दिया। दोहरा अभिशाप की भूमिका में लेखिका लिखती हैं: ''पति ने कभी मेरी कदर नहीं कि बल्कि रोज-रोज के झगड़े, गालियों ने मुझे मजबूरन घर छोड़ना पड़ा और कोर्ट केस करना पड़ा।''[13] लेखिका शिक्षित होने के बावजूद भी जीवन भर संघर्ष करती रही। पुरुष समाज अपनी छोटी मानसिकता के कारण स्त्री को स्त्री का सम्मान न देकर एक दासी मानता है और उसके मान को मर्दित कर उसे अपने पैर की जूती समझता है। उच्च शिक्षित और सरकार में उच्च पद पर सेवारत स्वतंत्रता सेनानी देवेन्द्र कुमार, अपने ही घेरे में रहने वाले गर्म मिजाज, जिद्दी, औरत को अपने पैर की जूती मानने वाले पुरुष के इन व्यक्ति चित्रों ने स्त्री जीवन की इस शाश्वत पीड़ा को और भी गहरा बनाया है लेखिका कहती हैं: ''वह अपने मुँह से कहता कि मैं बहुत शैतान आदमी हूँ। उसने मेरी इच्छा, भावना, खुशी की कभी कद्र नहीं कि। बात-बात पर गाली, वह भी गंदी-गंदी और हाथ उठाना। मारता भी था बहुत क्रूर तरीके से। उसकी बहिनों ने मुझे बताया था कि वह माँ-बाप पहली पत्नी को भी पीटता था।''[14] एक दलित होने की और एक स्त्री होने की पीड़ा के ऐसे कई चित्र दोहरा अभिशाप आत्मकथा में मिल जाते हैं, लेखिका ने स्त्रियों को कुंठित जीवन जीने के बजाय अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा दी है। जो इस आत्मकथा को पठनीय बनाते हैं।

अपनी आत्मकथा में लेखिका ने तत्कालीन समाज में दलित स्त्रियों की दुर्दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। समाज में स्त्री का दर्जा मात्र एक दासी का है, चाहे वह दलित हो या फिर सवर्ण स्त्री लेकिन फिर भी समाज में दलित स्त्रियों का तिहरा शोषण होता है। एक तो दलित महिलाएं दिन-रात मजदूरी करती हैं। दलित होने के कारण तो उसका शोषण होता ही है, साथ ही स्त्री होने के कारण भी सवर्ण पुरुषों के साथ-साथ उसे अपने पति के शोषण का भी शिकार होना पड़ता है। दलित स्त्रियों पर किस प्रकार शारीरिक और मानसिक अत्याचार किया जाता है जिससे वे आत्महत्या करने तक को मजबूर हो जाती है: ''सखाराम की औरत दिहाड़ी पर मजदूरी कर रही थी। वह सीमेंट-ईटें ढोकर मिस्त्री को देती थी। वह देखने में सुंदर थी, मिस्त्री बदमाश था। वह आते-जाते उसे छेड़ता था। एक दिन उसने सीमेंट का गोला बनाकर उसकी छाती पर मारा। उस औरत ने उसे गालियां दी परंतु वह बेशर्म हँसता रहा। साथ में खड़े मजदूर भी देखकर हँस रहे थे। यह बात उस औरत ने अपने पति से कही पति का काम था। जाकर उस बदमाश को डांटे फटकारे। पर उसने अपनी औरत को ही डांटना शुरू किया और कहने लगा की तुम और औरतें भी तो वहां काम करती हैं, उन्हें वह कुछ नहीं कहता और तुम्हें ही क्यों छेड़ता है। तुम ही बदचलन हो, यह कहकर उसे रात भर घर से बाहर रखा वह बेचारी झाड़ी में छिपी रही, क्योंकि उसके बदन पर पूरे कपड़े नहीं थे। रात में वह बस्ती के कुएं में कूद गई। सवेरे उसका शरीर पानी के ऊपर तैर रहा था। उसके मां-बाप आए और कहने लगे कि इसने हमारी नाक कटवाई अच्छा ही हुआ कि यह कुलटा मर गई।''[15]

सदियों से दासता की बेड़ियों में जकड़ी, अनपढ़ रहने का अभिशाप झेलती, दलित जाति की स्त्री पढ़-लिखकर आगे बढ़ने वाली महिला को अपने ही समाज के लोगों से किस तरह प्रताड़ित होना पड़ता है इसका सजीव वर्णन इस आत्मकथा में देखने को मिलता है। लेखिका ने अपनी आत्मकथा में दलितों में भी ऊँच-नीच बरते जाने का संकेत किया है और अगर कोई दलित स्त्री पढ़-लिख कर आगे बढ़ना भी चाहती है तो अपने ही समाज के लोग उसे किस तरह नीचे गिराने का भरसक प्रयास करते हैं: ''इतनी बड़ी हो गई है,---- शादी नहीं हुई, बूँढी होंगी तब करेंगी क्या? कोई कहती अरे जाने दो। अभी तक क्या कोरी रह गई है? इतने यार दोस्त आते हैं घर में, तो क्या कुछ नहीं होता होगा?''[16]

दृष्टिकोण

कौशल्या बैसंत्री ने अपनी आत्मकथा में दोहरे अभिशाप में जीने वाली स्त्री का चित्रण मात्र नहीं किया अपितु शोषित समाज में अत्याचार के विरोध में आवाज उठाने के लिए प्रेरित भी किया है। दलित स्त्री को पुरुषों के बंधनों से मुक्त करने का प्रयास किया है। महिलाओं को स्वाभिमानी, साहसी एवं आत्मनिर्भर बनाने हेतु 'महिला समता समाज' बनाई दलित महिला समाज के साथ होने वाली असमानता, तिरस्कार आदि के कारण दलित महिलाएं सदैव दबाव एवं घुटन में जीवन जीने को मजबूर होती है। इन अनेक समस्याओं से कुंठित महिलाओं को सही रास्ता दिखाने का कार्य करने का प्रयास लेखिका ने किया है। लेखिका ने पुरुष एवं समाज के द्वारा होने वाले विकृतियों को समाज के सामने लाने का साहस किया है जो सराहनीय है। इस आत्मकथा के माध्यम से लेखिका समाज की दबी कुचली महिलाओं को जो सामाजिक बंधनों से बंधी हैं उन्हें उन बंधनों को तोड़कर अपने वर्चस्व की लड़ाई लड़ने का आह्वान का करती है। महिला आत्मकथाएं दलित, वंचित, शोषित एवं उपेक्षित स्त्रियों को संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। जिससे उपेक्षित महिलाओं को समाज की मुख्यधारा से जोड़कर समान अधिकार दिया जा सके, ताकि दलित महिलाओं को भी पुरूषों के समान बराबरी का दर्जा मिल सके।

संदर्भ:-

1. अनामिका कुमारी, 2018, स्त्री आत्मकथा लेखन के प्रेरक तत्व, रिसर्च रिविउ इंटरनेशनल जर्नल औफ मल्टीडिसिप्लिनरी, पृ. 576
2. डॉ. राजेश्वरी 2016, प्रतिरोध के स्वर बुलंद करतीक दलित लेखिकाओं की आत्मकथाएं, शब्द ब्रहम वालव्यूम 4, पृ.61
3. हंस पत्रिका-मार्च 2010
4. सुशीला टाकभौरे, 2014 शिकंजे का दर्द, वाणी प्रकाशन पृ.16
5. कौशल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, पृ.47
6. अभिशाप्त स्त्री जीवन की करूण गाथा: दोहरा अभिशाप, डॉ. संतोष विजय येरावार रिव्यू ऑफ रिसर्च, पृ.1
7. वही, पृ. वही
8. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, मनोगत।
9. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, पृ.18
10. सुशीला टाकभौरे, शिकंजे का दर्द, पृ.114
11. कौशल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप, पृ.56
12. वही, पृ. वही
13. वही, पृ.07
14. वही, पृ.104
15. वही, पृ.56
16. वही, पृ.75

भारतीय राजनीति में जवाहरलाल नेहरू का योगदान

रमेश राम

शोधार्थी राजनीति विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रानीखेत अल्मोड़ा, (उत्तराखंड)

जवाहरलाल नेहरू आधुनिक भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्तियों में से एक थे। उन्होंने भारत के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक चिंतन प्रक्रिया एवं कार्यक्रमों को गहराई तक प्रभावित किया। वे अपने स्वभाव, अध्ययन एवं अभिधारणाओं के कारण रूढ़िवाद, कट्टरवाद और संप्रदायवाद के विरोधी थे। संप्रदायवाद के संदर्भ में उनके विचार अभिनव एवं शिक्षाप्रद थे। वे भारत के प्रथम नेता थे। जिन्होंने संप्रदायवाद के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आयामों, प्रकृति, लक्षणों एवं कारणों को गहराई से समझा।

हम इस बात से इनकार नहीं कर सकते हैं कि स्वतंत्रता के दौरान भारत सांप्रदायिकता के चंगुल में फसा हुआ था। नेहरू ने महसूस किया कि केवल धर्मनिरपेक्षता के द्वारा ही सांप्रदायिकता की आग से बचा जा सकता है। इसकी गंभीरता को समझते हुए नेहरू ने तर्क दिया कि देश के नेताओं को धर्मनिरपेक्षता के वास्तविक अर्थ को ग्रहण करते हुए लोगों के बीच में जाना होगा ताकि वे सांप्रदायिक जीवन छोड़कर राष्ट्र के विकास के लिए एकजुट हो सकें।

धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को संविधान में शामिल करने तथा प्रधानमंत्री के रूप में उसको विकसित करने में नेहरू का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रधानमंत्री के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान उन्होंने धर्मनिरपेक्षता, स्वतंत्रता, समानता, बंधुता और लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

नेहरू जी ने भारतीय इतिहास का अतिसूक्ष्मता के साथ गहन अध्ययन किया था। उनके अनुसार भारतीय इतिहास में आपसी फूट और सांप्रदायिकता के विष के कारण ही भारत अपने प्राचीन गौरव को खो बैठा है। इस संबंध में वे कहते है कि ''राष्ट्रवाद स्वत: अतीत की उपलब्धियों परंपराओं और अनुभवों की स्मृति है और राष्ट्रवाद जितना शक्तिशाली आज है, उतना कभी नहीं था। जब कभी संकट आया है तभी राष्ट्रवादी भावना का उत्थान भी हुआ है और लोगों ने अपनी परंपराओं से शक्ति तथा सांत्वना प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।''[1]

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह मानना उचित है कि बहुत थोड़े से ही मुसलमान भारत में आए थे। भारत के अधिकांश मुसलमान तो हिंदुओं की ही संतान है जो इस्लाम धर्म स्वीकार करके मुसलमान बन गए। सैकड़ों सालों से साथ-साथ रहने के कारण दोनों ने ही एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता की स्वस्थ भावना को अपना लिया था। लेकिन अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिए हिंदू और मुसलमानों के मध्य एक ऐसे सांप्रदायिक त्रिभुज की रचना की, जिसका आधार उन्होंने अपने पास रखा।[2] इस तरह स्वतंत्रता पूर्व ही भारत में सांप्रदायिकता का जहर फैल चुका था।

नेहरू ने स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में कभी सांप्रदायिकता के तत्व को स्वीकार नहीं किया।[3] उन्होंने अपना सारा जीवन हिंदू-मुस्लिम एकता में लगाया। उनका तो केवल एक ही लक्ष्य था-सहिष्णुता, समानता और स्वतंत्रता, जो सच्ची मानवता के प्रतीक हैं। उनका कहना था कि इसी सांप्रदायिकता के कारण भारत अपने अतीत के गौरव को खो बैठा है और अपने महापुरूषों की महान बौद्धिक प्रतिभा का लाभ उठाने में असमर्थ रहा है। नेहरू जी ने धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता के प्रति गहन अभिरूचि एवं निष्ठा रखी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि ''हम देश में किसी भी प्रकार सांप्रदायिकता सहन नहीं करेंगे। हम एक ऐसे स्वतंत्र धर्मनिरपेक्ष राज्य का निर्माण कर रहे हैं जिसमें धर्म तथा मत को पूरी स्वतंत्रता तथा समान अधिकार की सुविधा प्राप्त होगी।''[4]

जवाहरलाल नेहरू ने सांप्रदायिकता को केवल भावनात्मक और धार्मिक आधार पर ही नहीं माना अपितु उसका कुछ आर्थिक कारण भी बताया। यह ठीक है कि भारतीय सांप्रदायिकता अंग्रेजों की देन ही हो सकती है लेकिन भारतीय आर्थिक परिस्थिति को देखा जाए तो स्पष्ट होता है कि हिंदू धनवान है और मुसलमान गरीब, जहां तक शिक्षा का प्रश्न है इसमें भी मुसलमान पिछड़ा हुआ है यही कारण है कि सरकारी नौकरियों में भी हिंदू काफी आगे हैं। बंगाल तथा भारत के अन्य प्रांतों में मुसलमान या तो श्रमिक है या छोटा ग्रामीण किसान। इसका कारण है अंग्रेजों द्वारा भारतीय उद्योगों का विनाश करना। भूमि के स्वामी अधिकतर हिंदू ही हैं। धन पर भी अधिकतर ग्रामीण बनिया वर्ग का ही आधिपत्य है। अत: यह दोनों वर्ग अपनी स्थिति का भरपूर लाभ उठाते हैं। वास्तव में यही व्यवस्था हिंदू और मुसलमानों के बीच तनाव का कारण है। नेहरू पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव था।[5] उन्होंने आर्थिक व्यवस्था को मार्क्स की तरह भारतीय सांप्रदायिकता के जन्म तथा विकास का कारण माना। नेहरू के इन विचारों को भारतीय अल्पसंख्यक वर्ग ने काफी महत्व दिया।[6] इसी आधार पर नेहरू ने धर्म निरपेक्षता के प्रति पूरी आस्था प्रकट की।

हिंदू और मुसलमानों की एकता ही देश को न केवल स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ने को प्रोत्साहित करती थी अपितु देश की एकता और अखंडता के लिए भी आवश्यक थी। यही कारण था नेहरू और उनकी ही तरह से सोचने वाले लोगों ने भारत को एक धर्म निरपेक्ष संविधान दिया। नेहरू ने धर्मनिरपेक्षता का अर्थ बताते हुए कहा है:-''धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्महीनता नहीं है इसका अर्थ सभी धर्मों के प्रति समान आदरभाव तथा सभी व्यक्तियों के लिए समान अवसर है, चाहे कोई व्यक्ति किसी भी धर्म का अनुयायी क्यों न हो अत: हमें अपने दिमाग में अपनी संस्कृति के उस आवश्यक पहलू को सदैव ध्यान में रखना चाहिए जिसका आज के भारत में सबसे अधिक महत्व है।''[7]

उनका विचार था कि राष्ट्रवाद एक भावात्मक संबंध होता है जो विभिन्न वर्गों, जातियों, नस्लों के लोगों को आपस में जोड़े रखता है। नेहरू जी उन समस्त जातिगत, संप्रदायगत और धर्म पर आधारित संकीर्णताओं के ऊपर उठकर एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे जो अपनी अंतर्राष्ट्रीयता की भूमिका समुचित रूप से निभा सके, उनकी समस्त राजनैतिक परिकल्पनाएं इसी भावना पर निर्भर है, उनका समाजवादी दृष्टिकोण, उनका गुटनिरपेक्षता का सिद्धांत उनके द्वारा निरूपित आर्थिक व्यवस्था की संरचना ये सभी राजनीतिक सिद्धांत समानता और अंतर्राष्ट्रीयता के आधार पर निर्भर है। नेहरू ने भारत की एकता और अखंडता को बनाएं रखने के लिए 'राष्ट्रीय आत्म निर्णय के सिद्धांत' पर अधिक बल दिया। उनका विचार था कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति में संघर्षशील देश में एक स्वस्थ शक्ति होती है लेकिन देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद यही स्वस्थ शक्ति की भावना प्रतिक्रियावादी रूप ले सकती है। अत: देश में स्वस्थ वातावरण बनाने के लिए संकीर्ण राष्ट्रीयता से बचना होगा। वह राष्ट्रवाद के नाम पर धर्म, जाति तथा संस्कृति को आधार नहीं बनाना चाहते थे। उनके विचार में हिंदू राष्ट्रवाद या मुस्लिम राष्ट्रवाद जैसी कोई भी व्यवस्था नहीं थी। केवल भारतीय राष्ट्रवाद का ही अस्तित्व था जिसमें धर्म का कोई भी स्थान नहीं हैं। इसी आधार पर नेहरू ने एक बार यहां तक कह दिया कि यदि धर्म को ही राष्ट्रीयता का आधार मान लिया जाए तो भारत में दो नहीं अपितु अनेकों राष्ट्र हैं।[8]

नेहरू, गांधी के धर्म संबंधी विचारों से बहुत अधिक प्रभावित थे। गांधी धार्मिक व्यक्ति होते हुए भी धर्म की रूढ़िवादिता, अंधविश्वास और कट्टरपंथ से बंधे हुए नहीं थे। उन्होंने उसी धर्म को मान्यता दी, जो व्यक्ति का सर्वांगीण विकास कर सके। नेहरू भी गांधी की तरह मानव धर्म को सभी धर्मों से बड़ा मानते थे। उन्होंने कहा भी था: ''मैं किसी भी मत-मतान्तर अथवा धर्म से जकड़ा हुआ नहीं हूं किंतु मैं मानव की नैसर्गिक आध्यात्मिकता में अवश्य ही विश्वास रखता हूं। इसको कोई धर्म की संज्ञा दे या न दे मैं तो केवल व्यक्ति की सहज गरिमा में विश्वास रखता हूं। मेरा यह भी विश्वास है कि प्रत्येक मानव को समान अवसर दिया जाना चाहिए।''[9] नेहरू जाति, धर्म, रूढ़िवादिता, सांप्रदायिकता या अन्य किसी भी ऐसी व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे, जो मानव-मानव के बीच किसी भी प्रकार का भेद स्थापित करती हो। वह देश में किसी भी प्रकार की सांप्रदायिकता को सहन नहीं करना चाहते थे। वह भारत में एक ऐसे धर्मनिरपेक्ष राज्य का निर्माण करना चाहते थे जिसमें प्रत्येक धर्म तथा मत को पूर्ण स्वतंत्रता तथा समान अवसर प्राप्त हो। प्रत्येक व्यक्ति को समान स्वतंत्रता तथा समान अवसर की सुविधा प्राप्त हो।

नेहरू सांप्रदायिकता को पिछड़ेपन की निशानी मानते थे। उन्होंने 19 जुलाई 1961 को श्रीनगर में दिए गए अपने भाषण में कश्मीरवासियों से कहा था:-''राजनीति में धर्म या मजहब को लाना और देश को तोड़ने जैसा ही है, जैसा कि तीन सौ या चार सौ वर्ष पहले यूरोप में हुआ था। भारत में हमें इस चीज से अपने आप को दूर रखना होगा।''[10] सांप्रदायिकता के खिलाफ अपने भाषण में वे उन लोगों को आगाह करते हैं, जो राष्ट्रवाद की सतही परिभाषा करते हैं: ''सांप्रदायिकता के साथ राष्ट्रवाद जीवित नहीं रह सकता। राष्ट्रवाद का मतलब है हिंदू राष्ट्रवाद, मुस्लिम राष्ट्रवाद या सिक्ख राष्ट्रवाद कभी नहीं होता। ज्यों ही आप हिंदू, सिक्ख, मुसलमान की बात करते हैं त्यों ही आप हिंदुस्तान के बारे में बात नहीं कर सकते।''[11]

नेहरू की धर्मनिरपेक्षता के बारे में यह कहना भ्रामक होगा कि उनमें सात्विकता नहीं थी, वह धर्म विरोधी थे, अधार्मिक थे या पूर्ण नास्तिक थे। वास्तविकता तो यह थी कि नेहरू के हृदय में ईश्वर तथा धर्म के प्रति पूर्ण आस्था थी। सत्य तथा करूणा के आध्यात्मिक मूल्यों में उनका गहरा विश्वास था। धर्म के प्रति उन्होंने एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जैसा कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में कहा है:-''भारत में या अन्यत्र में भी धर्म या कम से कम संगठित धर्म को देखकर मुझे अत्यंत घृणा होती है। मैंने प्राय: इसकी भर्त्सना भी की है। मैंने इसको पूर्णतया नष्ट करने की इच्छा भी की है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें प्राय: सदैव अंधविश्वास, प्रतिक्रिया, शोषण और विशेष हितों का ध्यान दिया जाता है।[12] यह नेहरू ही थे जिन्होंने धर्म से परे मौलिक अधिकारों एवं सामाजिक-आर्थिक समानता का विचार प्रस्तुत किया। उन्होंने हमेशा ही अस्पृश्यता के उन्मूलन, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धार्मिक सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता की वकालत की। स्वतंत्र भारत में संविधान में यद्यपि भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया, लेकिन इसके बावजूद अभी तक धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना नहीं की जा सकी।

नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि धर्म का कार्य पूर्णनिष्ठा के साथ-साथ सत्य की खोज करना तथा सत्य के लिए सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर रहने से है। उन्होंने धर्म के बारे में कभी भी ऐसे किसी भी दृष्टिकोण को मान्यता नहीं दी जो व्यक्ति को अधार्मिक बनाए या धर्म मानव धर्म मानव जाति के लिए मूल्यहीन हो। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा धर्म मानव जीवन की एक आधारभूत आवश्यकता की पूर्ति करता है। धर्म तो वह तत्व है जो मानव हृदय की आंतरिक अभिलाषा को तृप्त करने की शक्ति रखता है। यदि धर्म में यह शक्ति नहीं होती तो आज भी असंख्य व्याकुल आत्माओं को शांति और सात्वना नहीं दे पाता। अत: नेहरू का धर्म के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण था। वह धर्म को एक जीवन शक्ति के रूप में मान्यता देते थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा भी था:-''मैं कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं हूं। परंतु मैं किसी वस्तु में विश्वास अवश्य करता हूं। आप उसे धर्म कह सकते हैं जो चाहे वह कह सकते हैं। जो मानव को उनके सामान्य स्तर से ऊँचा उठा सकती है, जो मानव के व्यक्तित्व को आध्यात्मिक गुण या नैतिक गहराई का एक नवीन प्रमाण प्रदान करती है। अब जो भी वस्तु मानव की मुद्रकाओं से ऊपर उठाने में सहायता देती है, चाहे कोई देवता हो या पाषाण प्रतिमा, वह शुभ है और उसे ठुकराया जाना नहीं चाहिए।''[13]

नेहरू ने धर्मनिरपेक्ष राज्य और धर्मनिरपेक्षता की बहुत विशाल और उदार परिभाषा देश को दी है। वह धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी ले गए। उनका विचार था कि मानव अपने व्यक्तिगत जीवन के हर पहलू में तथा धार्मिक विश्वासों में स्वतंत्र रहे। वह भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए एक ही कानून बनाने के पक्षपाती थे। हिंदू कानून का सहिंताकरण इसी दिन का महत्वपूर्ण कदम था। यदि वह अपने जीवन काल में देश को धर्मनिरपेक्षता का वास्तविक स्वरूप प्रदान करने में सफल हो जाते तो अत्यंत प्रसन्न होते। पंडित नेहरू ने धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में कहा निश्चित रूप से वह समय आ गया है जब प्रत्येक भारतीय को अपने हृदय को टटोलना चाहिए तथा स्वयं में यह प्रश्न करना चाहिए कि वह राष्ट्र के साथ है या किसी विशेष दल के साथ। यह हमारे समय की एक चुनौती है जिससे हम पुरूष, महिला तथा बच्चों को निपटना है।

संदर्भ:-

1. जवाहरलाल नेहरू दी डिस्कवरी ऑफ इंडिया, दी सिगनैट प्रैस, कलकत्ता, 1946, पृ.455
2. आर देसाई द्वारा उद्धृत भारतीय राष्ट्रवाद का सामाजिक आधार, पृ.354
3. नेहरू के महत्वपूर्ण भाषण, पृ.50
4. प्रकाशन विभाग भारत सरकार, जवाहरलाल नेहरू श्रद्धांजलि, पृ.111
5. जवाहरलाल नेहरू, सोवियत रूस ट्र स्ट, पृ.57-58
6. बी. पी. वर्मा मॉडर्न पॉलिटिकल थॉट, पृ.476
7. नेहरू के महत्वपूर्ण भाषण, पृ.76
8. वही, पृ.86
9. वही, पृ.79
10. सत्य हिंदी डॉट कॉम
11. वही
12. नेहरू की आत्मकथा, पृ.296
13. वही, पृ.30

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा: 'जूठन' दलित जीवन का दस्तावेज

डॉ० रूपा आर्या

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रानीखेंत, अल्मोड़ा (उत्तराखंड)

प्राचीन काल से हिंदुओं में जटिल वर्ण व्यवस्था प्रचलित है। यह वर्ण व्यवस्था वैदिक काल में शुरू हुई थी। उत्तर वैदिक काल आते-आते इस व्यवस्था ने काफी जटिल रूप धारण कर लिया। प्राचीन वैदिक कालीन वर्णव्यस्था ने हिंदू समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन वर्णो में विभाजित किया था। इस वर्णव्यवस्था के अनुसार समाज में ब्राह्मण को श्रेष्ठ स्थान प्रदान करने के साथ के साथ सामाजिक स्तर पर उन्हें प्रभावशाली बनाया गया परिणामस्वरूप समय के अनुसार ब्राह्मण वर्ग का वर्चस्व बढ़ता गया और शूद्रों को इन तीनो जातियों के सेवा करने वाला सेवक माना गया।

दलित साहित्यकार दलित चेतना और दलितों की अभिव्यंजना में बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर को मुख्य प्रेरणा स्रोत मानते है। महाराष्ट्र में कठोर ब्राह्मणवाद से सदियों से पीड़ित, शोषित, घृणित दलितों के अंधकार पूर्ण जीवन को अंबेडकर ने ही रोशन किया। उनमें सामाजिक अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत जगाई। स्वातंत्र्योत्तर भारत में दलितों की स्थिति, दलितों के साहित्य में जो व्यापकता आई है। इसमें सबसे अधिक योगदान अंबेडकर का ही है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस संदर्भ में अपनी पुस्तक दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र में कहा है: ''दलितों की संस्कृति में गुण-दोष हो सकते हैं, लेकिन इतना तो निश्चित है, कल का दलित और आज का दलित भिन्न है। यही अंतर सांस्कृतिक निष्ठा का निर्माण कर रहा है। देवी-देवताओं में श्रद्धा-भाव, मंदिर पुर्नजन्म, मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा भाव उत्पन्न करने वाले धर्मशास्त्र, ग्रंथ, महाकाव्य, नर्क-स्वर्ग, मनुष्य को गुलाम बनाने वाले प्रपंच, कर्मकांड को नकारते हुए आज का दलित अपनी-अपनी अलग पहचान और संस्कृति के मूल आधार हैं। इन सवालों से ही दलित चेतना का उद्‌गम है और डॉ. अंबेडकर के जीवन-दर्शन, सामाजिक संदर्भ से ऊर्जा पाकर साहित्यिक अभिव्यक्ति में परिवर्तन हुआ है।''[1]

दलितों पर अंबेडकर के जीवन दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा। 'आयी कसा झाली' मराठी भाषा में लिखी डॉ. अंबेडकर की आत्मकथा ने दलित लेखकों को आत्मकथा लेखन की प्रेरणा प्रदान की। 1950 में अंबेडकर की दलित सामाजिक क्रांति की प्रेरणा से प्रभावित होकर महाराष्ट्र में दलित साहित्य संघ की स्थापना हुई। इसके पश्चात् 1970 के दशक में 'दलित पंथर' नामक राजनीतिक दल ने 'दलित' शब्द का सबसे अधिक प्रचार-प्रसार किया। जिसके परिणामस्वरूप मराठी भाषा में सबसे पहले दलित साहित्य लेखन का श्रीगणेश हुआ।

दलित साहित्य दलितों में जीवन और उनकी समस्याओं को केंद्र में रखकर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य है। दलित साहित्य सामाजिक अन्याय के विरूद्ध विद्रोह और आक्रोश है। दलित साहित्य के स्वरूप का रेखांकन करते हुए कंवलभारती ने लिखा है- ''दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वंय पीड़ा को स्थापित किया है, अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उसी की अभिव्यक्ति करता है......यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का ओर जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।''[2]

दलित साहित्य की अवधारणा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. दयानंद बटोही कहते हैं: ''दलित साहित्य दलितों की चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। एक नकार है। एक विद्रोह है। यह विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति

है जो सदियों से दलितों का शोषण कर लाभ की स्थिति में है।"[3] दलित साहित्यकारों का मानना है कि एक दलित साहित्यकार ही अपने जीवन के अनुभव को लेकर दलित साहित्य लिख सकता है। दलित साहित्य दलितों को ब्राह्मणवादी वर्णव्यवस्था के भेदभाव से मुक्ति दिलाने के लिए लिखा जाता है। दलितों का आज भी गैर दलित की सहानुभूति एवं करूणा पर बहुत कम विश्वास है। दलित साहित्यकार दलित साहित्य को गांधीवाद और मार्क्सवाद से प्रभावित नही मानते इस संदर्भ में डॉ. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी का कहना है: ''यह बात भी सत्य है कि अस्पृश्यता निवारण गांधी का दूसरा महान उद्देश्य था। इस उद्देश्य में उन्हें अनके साथियों और अनुयायियों ने ही धोखा दिया था, क्योंकि उनके साथ हरिजन बस्तियों में जाने वालों में से कई खद्दरधारी ऐसे थे, जो अपने घर में प्रवेश करने से पूर्व संपूर्ण स्नान करते थे और तुलसी के पत्ते जल में डाल छिड़काव करते थे।"[4]

इस प्रकार दलितों में सवर्ण जातियों के लोगों की भावना समाज में भेदभाव उत्पन्न कर दलितों में विद्वेष की भावना उत्पन्न करती है। दलित समाज इस सामाजिक असमानता के खिलाफ है। इस संबंध में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है: ''दलित साहित्य समाज में समानता, भाईचारा और मानवीय स्वतंत्रता की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। उनका मानना है कि मनुष्य ही सर्वोपरि है। इस प्रकृति में जो कुछ हमारे सामने है, वह मनुष्य की देन है। इसलिए मनुष्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए दलित साहित्य मनुष्य का साहित्य है।"[5]

भारत में स्वतंत्रता पूर्व दलितों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। स्वतंत्र्योत्तर काल में इनकी स्थिति में थोड़ा बहुत सुधार आया। दलितों की स्थिति में सुधार लाने के लिए अंग्रेजों के शासनकाल में जहां एक ओर बुद्धिजीवी समाज सुधारक राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, राममनोहर लोहिया, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जैसे महापुरूषों का भरसक प्रयास देखने को मिलता है, वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता पूर्व और बाद में फकीर मोहन, सेनापति, गोपीनाथ मंहाति, प्रेमचंद, रेणु, अमृतलाल नागर, जगदीशचंद्र, गिरिराज किशोर, निराला, धूमिल, नागार्जुन जैसे कवि एवं साहित्यकारों ने दलितों की व्यथा-कथा को बड़ी संवेदना के साथ समाज के सामने लाने का प्रयास किया। इससे पूर्व यहां के संत साहित्य में भी दलितों के प्रति संवेदना को उजागर करने का प्रयास किया गया था। कबीर और रैदास ने समाज पर ब्राह्मणों के दलितों पर किए जाने वाले अत्याचार-अन्याय को बखूबी चित्रित कर ब्राह्मण समाज की वास्तविकता को समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर इन्हे अनावृत करने का प्रयास किया। इसलिए इन संतों को हिंदी साहित्य में दलितों का अग्रदूत माना जाता है। इस संदर्भ में आरती झा ने लेख में लिखा है: ''दलित साहित्य के मूल मे बौद्ध चिंतन, ज्योतिबाफूले और अंबेडकर के विचार, नीग्रो साहित्य लेखन और अश्वेतमहिला लेखन में दिखाई देता है। कबीर, रैदास जैसे दलित संत इनकी प्रेरणा हैं। रैदास दलित चेतना के प्रमुख कवि हुए, जो कहते हैं-

''रैदास एक ही बूंद सों, सब ही भयो वित्थार
मूरिख हैं जो करत है, बरन अबरन विचार।"[6]

हिंदी दलित साहित्य के उद्‌भव के पीछे नाथ और सिद्ध कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका देखने को मिलती है। सिद्ध कवियों में बहुत सारे कवि शूद्र थे। जिन्होंने उस समय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था, वर्ग व्यवस्था से उपजी दलितों की पीड़ा को समाज के सम्मुख लाने का प्रयास किया। मध्यकाल के हिंदी दलित कविता के निर्गुण संत रैदास जो दलित चेतना संपन्न प्रथम कवि माने जाते हैं उन्होंने खुद वर्ण व्यवस्था के शिकार होकर इसके खिलाफ आवाज उठायी थी।

दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून 1950 को उत्तर प्रदेश के बरला जिले के अंतर्गत मुजफ्फरनगर में हुआ था। तत्कालीन समाज में अस्पृश्यता का ऐसा माहौल था कि कुत्ते, बिल्ली, गाय, भैंस का छूना इतना बुरा नहीं था लेकिन दलित व्यक्ति का स्पर्श होते ही पाप लग जाता था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। समाज में दलित जाति के लिए शिक्षा का कोई अधिकार नहीं था। जानबूझ कर उन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाता था। प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते हुए निरंतर संघर्ष के परिणामस्वरूप उन्होंने स्नातकोत्तर (हिंदी) की परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्कालीन समाज चाहता था कि उनके हाथ पर झाड़ू रहे पर कठोर तपस्या ने उन्हें कलम पकड़ा दी। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कई महत्वपूर्ण रचनाएं इस प्रकार हैं-सदियों का सलाम, घुसपैठिए, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, मुख्य धारा और दलित साहित्य, सफाई देवता, दलित साहित्य:अनुभव, संघर्ष और यथार्थ आदि। इसके अतिरिक्त इनकी कविताएं- दर्द के दस्तावेज, उत्तर हिमानी, दलित चेतना कविता और कहानियां-कथा परिदृश्य और काले हासिएं पर आदि संग्रहों में संकलित की गई है।

साहित्य सृजन और समाज सेवा के लिए ओमप्रकाश वाल्मीकि को कई पुरस्कारों और सम्मानों से नवाजा गया। डॉ. अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार 1993, परिदेश सम्मान 1995, जयश्री सम्मान 1996, कथाकम सम्मान 2001, न्यू इंडिया बुक पुरस्कार 2004, साहित्य भूषण सम्मान, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ प्रदत्त कई सम्मानों से विभूषित किया गया।

मराठी में लिखी डॉ. अम्बेडकर की आत्मकथा 'मी कसा झाले' से सबसे पहले दलित साहित्यकारों को आत्मकथा लिखने की प्रेरणा मिली थी। इस संदर्भ में श्यौराज सिंह बेचौन ने लिखा है: ''वस्तत: यह डॉ. अम्बेडकर थे, जिनकी प्रेरणा और प्रभाव से ही आत्मकथा लेखन प्रारंभ हुआ, उन्होनें स्वयं अंतरंग बातें प्रो. सत्यबोध हुदलीकर की डायरी में दर्ज कराई थी। तत्कालीन मराठी साहित्य की स्थापित पत्रिका नवयुग के अंबेडकर विशेषांक 15 अप्रैल 1947 में इसे प्रकाशित किया गया था। पत्रिका में उनकी आत्मकथा का एक अंश प्रकाशित हुआ था। उसके बाद डॉ. अंबेडकर ने ''मैं कैसे बना'' शीर्षक से आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया था।''[7] परिणामस्वरूप इनसे प्रेरित होकर हिंदी दलित साहित्यकारों ने अपनी-अपनी आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया। तत्पश्चात मोहनदास नैमिशराय का अपने-अपने पिंजरे, ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन, और सूरजपाल चौहान की तिरस्कृत आत्मकथाएं प्रकाशित हुई। इन आत्मकथाओं में दलित जीवन तथा समाज के कटु सत्यों को प्रस्तुत किया गया है। इन आत्मकथाओं में ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' सबसे अधिक लोकप्रिय और बहुचर्चित आत्मकथा है।

'जूठन' सामाजिक यथार्थ को उजागर करने वाले दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा है। ओमप्रकाश ने जन्म से लेकर अंत तक दलित जीवन की त्रासदी के साथ लगातार संघर्ष करते रहे। वे पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और वैयक्तिक समस्याओं से आजीवन जूझते हुए अंत तक जाति के बंधन से मुक्त नहीं हो सके।

अपनी प्रारंभिक शिक्षा से लेकर, तत्कालीन भारतीय समाज, सामाजिक व्यवस्था, सवर्णो की मानसिकता, दलितों पर अन्याय शोषण तथा लोगों की संकीर्ण मनोवृति, रूढ़ियां, अंधविश्वास, मानसिक यत्रंणा ने ओमप्रकाश वाल्मीकि को आत्मकथा लिखने के लिए प्रेरित किया। जूठन में 'लेखक की ओर' से शीर्षक में इस संबंध में अपने विचारों का स्पष्ट करते हुए लिखते है कि इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे। लंबी जद्दोजहद के बाद, मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएं मैंने भोगी। स्वयं को परत-दर-परत उधेड़ते हुए कई बार लगा-कितना दुखदाई है यह सब।

आजादी के बाद भी समाज की मानसिकता में कोई विशेष बदलाव नहीं आया था। सवर्णो के साथ दलितों को पढ़ने का अधिकार नहीं था। सवर्णो के बच्चे जाति सूचक शब्दों का प्रयोग कर दलित बच्चों को चिढ़ाते और बिना कारण मारते-पीटते थे। सवर्ण बच्चों की तरह उन्हें हैंडपंप छूने अधिकार नहीं था। हैंडपंप छूने पर सजा मिलती। स्कूल के शिक्षक भी खूब पीटते और भद्दी गालियां देते। इन्ही परेशानियों को उजागर करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि स्कूल में दाखिला लेने के बाद एक बार मास्टर कालीराम उनसे पूछता है-''क्या नाम है बे तेरा?'' ओमप्रकाश ने धीमी आवाज में अपना नाम बताया। हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उन्हीं की दहशत थी। 'चूहड़ों का है?' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला। 'जी', ठीक है,. ......। वह जो शीशम का पेड़ है, उस पर चढ़ जा और टहनियां तोड़कर झाड़ू बना ले। पत्तों वाली झाड़ू बनाना और पूरे स्कूल को ऐसा चमका दे जैसे शीशा। तेरा तो यह खानदानी काम है। जा...फटाफट लग जा काम पर।'' लेखक को पूरा दिन झाड़ू लगाने का आदेश मिला। दो दिन झाड़ू लगाने के बाद जब तीसरे दिन जब ओमप्रकाश चुपचाप बैठ गए तब हेडमास्टर की दहाड़ सुनाई पड़ी- ''अबे, ओ चूहड़े के.......कहां घुस गया......अपनी मां।' उनकी दहाड़ सुन लेखक थर-थर कांपने लगे। उस समय एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा-''मास्साब वो बैठा है कोने में।'' हेडमास्टर ने लेखक की गर्दन दबोच ली। कक्षा से बाहर खींचकर लेखक को बरामदे में ला पटका। फिर चीखकर बोले, जा लगा पूरे मैंदान में झाड़ू ....नहीं तो गांड में मिर्ची डाल के स्कूल से बाहर काढ़ दूंगा।''[8] जाति-पांति, छूआ-छूत के भेद-भाव से स्कूल का वातावरण इतना कलुषित हो गया था कि दलित बच्चे शिक्षा ग्रहण करना तो दूर की बात उनके लिए चौन की सांस लेना भी मुश्किल था। दलितों के रीति-रिवाज, खान-पान का मजाक उड़ाकर उन पर कीचड़ फेंकी जाती थी। स्कूल में ही नहीं बल्कि गांव के रहने वाले विविध वर्गो और जातियों के लोग भी इन्हें घृणा की दृष्टि से देखते थे। जूठन में वाल्मीकि समाज की जीवन शैली का बड़ा ही मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। लेखक ने अपने परिवार वालों एवं इस समाज के अन्य लोगों के दर्दनाक जीवन के विविध पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है। इन लोगों को कड़ी मेहनत के बाद भी दो जून की रोटी नसीब नहीं हो पाती। सवर्ण जाति के लोग फसल कटाई के समय गाली-गलौच के साथ बलपूर्वक दलित जातियों को काम के लिए ले जाते हैं काम पूरा होने पर इन्हें इनके काम का उचित पारिश्रमिक नहीं दिया जाता। परिवार के पुरूष बाहर काम करते जबकि महिलाएं सवर्ण परिवार के घरों के काम करती। दो पहर को प्रत्येक घर से एक बची खुची रोटी जो खासतौर पर आटे की भूसी मिलाकर दलितों को देने के लिए बनाई जाती थी इसे पाकर ही इन्हें संतोष की सांस लेनी पड़ती। शादी-ब्याह के मौकों पर जब सभी मेहमान या बाराती खाना खा रहे होते ये लोग दरवाजे के बाहर बड़े-बड़े टोकरे

लेकर जूठन की आशा में बैठे रहते। सब लोगों के खाना खा चुकने के बाद जूठी पत्तलें उन टोकरों में डाल दी जाती थी और घर ले जाकर जूठन इकट्ठी कर ली जाती। पूरी के बचे-खुचे टुकड़े, एक मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल में पाकर बांछे खिल जाती थी। जूठन चटकारे लेकर खाई जाती थी। अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े-बूढे ऐसी बरातों का जिक्र बहुत ही रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बरात से इतनी जूठन आई थी कि महीनों तक खाते रहे थे। जूठन को धूप में सुखाकर आगे के लिए सुरक्षित रखा जाता था। लेखक ने जूठन समेटने की तत्कालीन परंपरा के आधार पर अपनी आत्मकथा का जूठन रखा। इस संबंध में लेखक एक घटना का उल्लेख करते हुए कहते हैं: ''सुखदेव सिंह के घर में बरात खाना खा रही थी। मां टोकरा लिए दरवाजे के बाहर खड़ी थी। मैं और मेरी छोटी बहन माया मां से सिमटे बैठे थे। इस उम्मीद में कि भीतर से मिठाई और पकवानों की महक आ रही है, वह हमें भी खाने को मिलेगी। जब सब खाना खाकर चले गए, तो मेरी मां ने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते देखकर कहा- ''चौधरीजी इब तो खाना खाकर चले गए...म्हारे जाकतों कूं भी एक पत्तल पर घर के कुछ दे दो। वो बी तो इस दिन का इन्तजार करते है।''[9] जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करते हुए सुखदेव सिंह ने कहा: ''टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है......ऊपर से जाकतों के लिए खाणा मांग री है? अपणी औकात में रह चूहड़ी! उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।''[10]

सुखदेव सिंह की ऐसी बातों को सुनकर मां ने जूठन की टोकरा वही बिखेर दिया और उससे कहा ''इसे ठाके अपने घर पर रख ले। कल तड़के बारातियों को खिला देना। इस घटना के बाद जूठन की यह परंपरा बंद हो गई। उस समय वाल्मीकि समाज में अनेक कुप्रथाएं प्रचलित थी जिनमें से एक थी सलाम करने की परंपरा। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं: ''सुनने में यह साधारण सी बात लग सकती है, लेकिन दूल्हा हो या दुल्हन शादी के पहले ही दिन उसमें हीनता बोध भर दिया जाता है. ...सदियों से चली आ रही इस प्रथा के पार्श्व में जातीय अहं की पराकाष्ठा है। समाज में जो गहरी खाई है, उस प्रथा को और गहरा बनाती है। एक साजिश है, हीनता के भंवर में फंसा देने की। कितनी ही बार दूल्हों को ही नहीं, दुल्हनों को भी बेइंतहा अपमान सहना पड़ता है।''[11] दूल्हा-दूल्हन को शादी के पहले ही दिन घर-घर घूमकर सलाम करना वास्तव में घृणित प्रथा थी। सवर्णो की दृष्टि में दलितों को नीचा दिखाना इनका उद्देश्य था। इस प्रथा को लेकर लेखक के मन में तीव्र प्रतिक्रिया दिखाई देती है। इस संदर्भ में लेखक अपने पिता से जानना चाहते हैं वे कहते हैं: ''ये सलाम के लिए जाना क्या ठीक है?" फिर अपने पिताजी से यह कहते हैं- ''अपनी ही शादी में दूल्हा घर-घर घूमे ....बुरी बात है......बड़ी जात वालों के दूल्हे तो ऐसे कहीं नहीं जाते.....ये दुल्हन बरला जाकर ऐसे ही घर-घर जाएगी सलाम करने...।''[12] ओमप्रकाश की इस बात ने उनके पिताजी को बहुत प्रभावित किया। उन्होनें पहली बार इस परंपरा को अपने ही घर से तोड़ा। लेखक के भाई-बहन के विवाह उत्सव पर इस प्रथा का अंत कर दिया गया।

ओम प्रकाश को हिंदुओं के आचार-विचार और सवर्णो के प्रति उनके मनोभाव तथा आक्रोश तभी अच्छी तरह ज्ञात हुआ जब उन्होंने अंबेडकर को पढ़ा था। इतना ही नहीं अंबेडकर को पढ़कर गांधी के विषय में भी उनकी राय बदली। उन्होने जूठन में लिखा है: ''अंबेडकर को लेने के बाद यह बात समझ में आ गयी कि गांधी ने हरिजन नाम देकर अछूतों का राष्ट्रीय मुख्यधारा में नहीं जोड़ा,बल्कि हिंदुओं को अल्पसंख्यक होने से बचाया, उनके हितों की रक्षा की ....यह धारणा भी उन दिनों पुख्ता हो रही थी कि जो शिक्षा स्कूल-कालेजों में दी जा रही है, वह किसी भी रूप में हमें राष्ट्रीय नहीं बनाती है, बल्कि संकीर्ण हिंदू बनाती है।''[13] इतना ही नही पढ़े लिखे सवर्ण जातियों के लोगों में भी जाति-पाति छूत-अछूत की भावना है। इस संबंध में लेखक ने अपना एक कटु अनुभव का रेखांकन किया है। सन् 1980 के आस-पास की घटना है लेखक अपनी पत्नी चंदा के साथ राजस्थान भ्रमण से बाया दिल्ली होकर चंद्रपुर लौट रहे थे। गाड़ी के उसी डिब्बे में बैठे एक पढ़े-लिखे परिवारवालों के साथ उनका संपर्क हुआ। पढ़े-लिखे संभ्रात युवक किसी एक मंत्रालय के अधिकारी थे। लेखक की पत्नी के साथ उस अधिकारी की पत्नी बड़ी खुशी से बात कर रही थी। माहौल बड़ा सुखद था। पर बातों-बातों में जब उन्हें पता चला कि वे लोग भंगी जाति के हैं तो अचानक सन्नाटा छा गया। तब से यात्रा की परिसमाप्ति तक वातावरण बड़ा दु:खद रहा। लेखक अने अपनी इस गहरी पीड़ा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''वक्त बदला है। लेकिन कहीं कुछ है जो सहज होने नहीं देता है। कई विद्वानों से जानना चाहा कि सवर्णो में मन में दलितों, शूद्रों के लिए घृणा क्यों है? आज जाति एक महत्वपूर्ण घटक है। जब तक यह पता नहीं होता कि आप दलित हैं तो सबकुछ ठीक रहता है, जाति मालूम होते ही सब कुछ बदल जाता है। फुसफुसाहटें, दलित होने की पीड़ा, चाकू की तरह नस-नस में उतर आती है। गरीबी, अशिक्षा, छिन्न-भिन्न दारूण जिंदगी, दरवाजे के बाहर खड़े रहने की पीड़ा भला अभिजात्मक गुणों से संपन्न सवर्ण हिंदू कैसे जान पाएंगे?''[14]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'जूठन' आत्मकथा में अपने जीवन के मार्मिक घटनाओं के जरिए दलितों की अनकही व्यथा-कथा का व्यापक चित्रण किया है। वास्तव में जूठन दिल दहला देने वाली एक दलित लेखक की जीवन कथा है। जूठन आत्मकथा हिंदी दलित साहित्य में मील का पत्थर मानी जाती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने समाज मे फैले अंधविश्वास, अन्याय-अत्याचार, शोषण आदि का विरोध किया। विविध पत्र-पत्रिकाओं के कई लेखों के माध्यम से समाज में संचेतनता लाने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी आत्मकथा के माध्यम से समाज को सोचने के लिए विवश किया। परिणामस्वरूप दलित समाज को एक नई दिशा मिली। दलित समुदायों में सुधार लाने का उनका यह प्रयास हमेशा सराहनीय रहेगा।

संदर्भ:-

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, 2014 पृ.32
2. कंवल भारती-दलित साहित्य की अवधारणा
3. डॉ.दयानंद बटोही, साहित्य में दलित चेतना, लेख, पश्चन्ती त्रैमासिक अ.-जून 1998 पृ. 129
4. डॉ. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी, गांधी दर्शन की प्रासंगिकता, पृ.23
5. ओम प्रकाश वाल्मीकि-दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ पृ.8
6. डॉ.आरती झा का लेख 'भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना 'निकष', शोध विशेषांक दि. 2012 पृ.61
7. वंचितों के वृतांत, लेख, जनसत्ता दैनिक, दिल्ली, 25 नवम्बर 2001
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, पृ.15
9. वही, पृ.21
10. वही, पृ.वही
11. वही, पृ.45
12. वही, पृ.44
13. वही, पृ.89
14. वही, पृ.160

भारत-चीन संबंधः डोकलाम विवाद के विशेष संदर्भ मे

डॉ० रंजीत कुमार

सहायक प्रोफेसर, शहीद भगत सिंह सांध्य महाविध्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भारत और चीन भौगोलिक दृष्टि से एशिया महाद्वीप में स्थित हैं और इसके दक्षिणी भाग में हैं। दोनों देशों की दक्षिण एशियाई राजनीति के साथ-साथ विश्व राजनीति में भी प्रमुख भूमिका है। भारत वह पहला देश था जिसने 1950 को चीन के साथ अपने राजनघ्यक संबधं स्थापित किए थ`और इसी के साथ भारत चीन के साथ राजनयिक संबधं स्थापित करनेवाला पहला गरै-समाजवादी देश बन गया था। हालांकि 1962 मे भारत और चीन के बीच सीमा संघष. की शुरुआत ने भारत को एक गहरा झटका दिया था। लेकिन धीरे धीरे समय के साथ साथ समवंदहों मे बदलाव देखने को मिला। वर्ष 2008 तक आते आते चीन भारत का सबसे बड़ा बिजनेस पार्टनर बन गया था। 2014 में चीन ने भारत में 116 बिलियन डॉलर का निवेश किया जो 2017 में 160 बिलियन डॉलर हो गया।[1] भारत और चीन के बीच सहयोग और प्रतिस्पर्धा दोनों से चिह्नित एक जटिल संबंध है विशेष रूप से डोकलाम विवाद। पूर्व भारतीय विदेश सचिव सुब्रह्मण्यम जयशंकर ने 2016 में कहा था कि "रणनीतिक हितों और कनेक्टिविटी पहलों के बीच परस्पर क्रियाशील गतिशीलता - एक सार्वभौमिक प्रस्ताव - हमारे महाद्वीप में विशेष रूप से प्रदर्शित है।[2] भारत और चीन के बीच संबंध सुधारों के बाद भी की महत्वपूर्ण विषयों पर वाद-विवाद जारी है। इनमे से सबसे महत्वपूर्ण विवाद का दोनों के बीच सीमा रेखा का प्रश्न है। डॉकलाम पर चीन का अधिकार है जबकि भूटान इसे अपना भू-भाग मानता है। यह भारत, तिब्बत और भूटान के त्रिकोणीय जंक्शन पर स्थित है और नाथु ला पास के करीब है। नाथूला हिमालय का एक पहाड़ी दर्रा है, जो भारत के सिक्किम राज्य और दक्षिण तिब्बत में चुम्बी घाटी को जोड़ता है। नाथूला दर्रा, चीन और भारत के बीच आपसी समझौतों द्वारा स्थापित तीन खुले व्यापार की चौकियों में से एक है। भारत और चीन के बीच 1962 में हुए युद्ध के बाद इसे बंद कर दिया गया था। डॉकलाम एक विवादित क्षेत्र बन गया है जबकि भूटान का चीन के साथ एक लिखित समझौता है, जिसके अनुसार इस क्षेत्र में शांति बनाए रखने की बात की गई है। भारत के लिये वह सामरिक महत्त्व का स्थान है। यह स्थल सिलीगुड़ी से महज 30 किलोमीटर की दूरी पर है। अब तक भूटान डोकलाम को अपने और भारत के बीच का अभिन्न स्थान मानता आया है. जहां भूटान की रक्षा में भारतीय सेनाएं हमेशा तैनात रहती हैं. चीन की नजर हमेशा से इस जगह को हड़पने की रही है. ये इलाका सामरिक तौर पर भी भारत के खासा अहम है.[3]

जून 2017 में भारत और चीन के सैनिकों के बीच भूटान की सीमा पर धक्का-मुक्की हुई जो कि भूटान की भारत में लगती सीमा पर नाथूला और अन्य स्थानों पर देखी गई द्य चीन के सैनिक भूटान की जमीन से सड़क बनाने की कोशिश कर रहे हैं जबकि भारतीय सैनिकों ने ऐसा करने से रोक रहे हैं द्य विदित हो कि चीन ने भूटान के पूर्व में चुंबी घाटी तक सड़क बना लिया है और यहां एक नदी भी है जिसे ऐमेचो नदी कहा जाता है द्य इस इलाकों को चुंबी घाटी के नाम से जाना जाता है।

भूटान की तुलना में चीन की आबादी 1500 गुना ज्यादा है और यह 250 गुना बड़े भूभाग वाला देश है। लेकिन चीनी सैनिक डोकलाम पठार पर कब्जा करना चाहते हैं, जोकि चीन और भारत को पूर्व में भूटान तथा पश्चिम में सिक्कम से अलग करता है। यहां का नाथूला क्षेत्र भारत की जमीन पर है लेकिन चूंकि भूटान की सामरिक रक्षा के लिए भारत जिम्मेदार है द्य इस इलाके की भौगोलिक स्थिति जो झड़पों के मूल में है, चीन इस क्षेत्र में भूटान से होकर सड़कों का ऐसा जाल बिछाना चाहता है ताकि यह भूटान के उस इलाके पर कब्जा कर सके जिसे डोकलाम का पठार कहा जाता है। यह पहाड़ी क्षेत्र में ऐसा इलाका है जो कि 18

किमी चौड़ा और 20 किमी लम्बा चौरस और पहाड़ पर समतल इलाका है द्य पांच कोणों से बना यह आयताकार इलाका सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इस समय भारत का कब्जा है। उंचाई पर होने के कारण यह भारतीय फौजों के लिए अहम है। अगर चीन भूटान के बीच से सड़कें बना लेता है तो दूसरी ओर भारत का समूचा पूर्वोत्तर क्षेत्र हथिया सकता है। यहां से यह समूचे पूर्वोत्तर क्षेत्र और बंगाल के सिलिगुड़ी के उस 'चिकन नेक' क्षेत्र पर कब्जा कर सकता है, जहां से दक्षिण में भारत का समूचा पूर्वोत्तर क्षेत्र उसके कब्जे में आ सकता है। इसलिए भारत नहीं चाहता है कि चीन, भूटान जैसे छोटे और कमजोर देश को डरा धमका कर इस समूचे भौगोलिक क्षेत्र पर कब्जा कर ले। यह पठार सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ऐसी स्थिति में है जहां से चीन न केवल भूटान वरन भारत के पूर्वोत्तर राज्यों के समूचे क्षेत्र को हथिया सकता है, इसलिए भारतीय सैनिक इसे चीन के रहमो करम पर नहीं छोड़ सकते हैं। अगर चीन इस क्षेत्र पर कब्जा कर लेता है जोकि सीमा पर एस टू थ्री जीरो फोर नामक प्रमुख सड़क है। अगर चीन, डोकलाम पठार पर कब्जा कर लेता है तो भारत का समूचा पूर्वोतर क्षेत्र और भूटान ड्रैगन की पहुंच के भीतर होगा।

अंततः यथास्थिति बनाये रखने पर सहमति क्यों बनी? विशेषज्ञों की माने तो इसके बहुत से कारण हो सकते हैं। पहला यह कि उसी समय चीन में ब्रिक्स सम्मलेन होने जा रहा था। इसमें भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को भी शिरकत करना था। चीन को इस बात का डर था कि डोकलाम विवाद को लेकर नरेंद्र मोदी इस सम्मलेन में आने से मना ना कर दें। अगर मोदी चीन नहीं जाते, तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चीन की काफी बदनामी होती। ब्रिक्स में भारत की हिस्सेदारी बहुत महत्वपूर्ण है।

चीन का पीछे हटने का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि पिछले कुछ दिनों में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी किरकिरी हुई है। एक ओर चीन कई एशियाई देशों से सम्बन्ध बिगड़ रहे है, तो वहीँ दूसरी ओर चीन के व्यापार का स्तर भी लगातार गिर रहा है। भारत में चीनी कंपनियों के अधिकारी ने खुलासा किया था कि पिछले सिर्फ दो महीनों में भारत में चीनी कंपनियों की कमाई में लगभग 30 फीसदी की कमी आ गयी है। अगर भारत में चीनी कंपनियों का स्तर गिरता रहा, तो चीन को आर्थिक तौर पर बहुत बड़ा घाटा होगा, क्योंकि भारत चीन का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है।

इसके अलावा भारत से विवाद चीन को आर्थिक गलियारे में भी परेशानी दे सकता है। चीन के रवैये को देखते हुए भारत ने हिन्द महासागर में अपना दबदबा बनाना शुरू कर दिया है। चीन को पता है कि अगर भारत चाहे तो हिन्द महासागर में चीन की उपस्थिति को पूरी तरह से खतम कर सकता है। चीन जाने वाला कच्चा तेल मुख्य रूप से हिन्द महासागर से चीन जाता है। अगर भारत चाहे तो हिन्द महासागर से चीन की सप्लाई पूरी तरह से बंद कर सकता है। सरल शब्दों में बोले तो चीन को पता है कि अगर एशिया में उसे आर्थिक तौर पर मजबूत होना है, तो उसे भारत से अच्छे सम्बन्ध रखने होंगे। भारत-चीन संबंधों का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि दोनों देश आर्थिक और सांस्कृतिक जुड़ाव के साथ रणनीतिक प्रतिस्पर्धा को कैसे संतुलित करते हैं

संदर्भ

1 https://hi.wikipedia.org/wiki

3 भारतीय विदेश मंत्रालय, "रायसीना वार्ता ब में विदेश सचिव का भाषण," 2 मार्च, 2016

2 https://hindi.news18.com/news/knowledge/what-is-doklam-controversy-why-bhutan-new-stand-on-it-is-a-worry-for-india

संस्कृत वाङ्मयः भारतीय अध्यात्म का मूल

डॉ० सोनिया चौहान

असिस्टेंट प्रोफेसर, बाबा हरदेव डिग्री कॉलेज, मंडी, धनौरा, जिला अमरोहा, उत्तर प्रदेश,
संबद्ध महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

शोधसारांश

"संस्कृत वाङ्मय : भारतीय अध्यात्म का मूल" पर प्रस्तुत यह शोधपत्र भारतीय ज्ञान परंपरा के उस केंद्रीय तत्व – अध्यात्म – को केंद्र में रखता है, जिसकी अभिव्यक्ति सर्वाधिक पूर्ण रूप से संस्कृत वाङ्मय में हुई है। भारतीय वाङ्मय, विशेषकर संस्कृत भाषा में रचित ग्रंथ – जैसे वेद, उपनिषद, दर्शनशास्त्र, गीता, रामायण, महाभारत, योगसूत्र, तंत्र ग्रंथ, पुराण एवं भक्ति साहित्य – सभी किसी न किसी रूप में आत्मा, ब्रह्म, मोक्ष, योग, भक्ति और ज्ञान की चेतना से ओतप्रोत हैं। इस शोध में संस्कृत वाङ्मय की उस बहुआयामी संपदा का विश्लेषण किया गया है जिसमें अध्यात्म, केवल एक विचार नहीं, बल्कि जीवन का सार्वभौमिक मार्ग है।

शोध का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि संस्कृत न केवल भाषा है, बल्कि अध्यात्म की ध्वनि है, ब्रह्मज्ञान का माध्यम है, और जीवन के परम लक्ष्य – आत्मसाक्षात्कार – की साधना है। उपनिषदों के "अहं ब्रह्मास्मि", गीता के "न हन्यते हन्यमाने शरीरे", और योगसूत्र के "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" जैसे सूत्र इस बात को प्रमाणित करते हैं कि संस्कृत वाङ्मय आत्मा और परमात्मा के मध्य सेतु का कार्य करता है।

इस शोधपत्र में संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न अंगों की अध्यात्मिक भूमिका को पृष्ठ दर पृष्ठ विवेचित किया गया है, और यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि संस्कृत वाङ्मय भारतीय अध्यात्म का मूल स्रोत ही नहीं, उसका जीवंत संवाहक भी है। आज के भौतिक और तनावपूर्ण समय में भी, संस्कृत वाङ्मय की अध्यात्मिक धारा मानव जीवन को शांति, स्थिरता और उद्देश्य प्रदान कर सकती है।

मुख्य शब्दः भारतीय दर्शन, अध्यात्म, आत्मा, वेद, उपनिषद, योग, समग्र चेतना, मोक्ष

भारतीय संस्कृत वाङ्मय , ज्ञान परंपराएं न केवल बौद्धिक चेतना की संवाहिका हैं, बल्कि वे आत्मिक और आध्यात्मिक जागरण की भी आधारशिला हैं। यह शोधपत्र भारतीय ज्ञान परंपराओं के अध्यात्मिक मूल को उद्घाटित करता है, जिसमें वेदों, उपनिषदों, दर्शन शास्त्र, योगदर्शन और स्मृति साहित्य के माध्यम से व्यक्ति और ब्रह्मांड के मध्य संबंध, आत्मा की खोज, और मोक्ष की संकल्पना को विश्लेषित किया गया है। यह अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि संस्कृत वाङ्मय की आत्मा में अध्यात्म ही निहित है।

भारतीय संस्कृति की आत्मा यदि किसी एक तत्व में निहित है, तो वह है अध्यात्म। यह मात्र धर्म या पूजा–पद्धति का पर्याय नहीं, बल्कि जीवन और ब्रह्मांड के रहस्यों को समझने की एक दृष्टि, अनुभूति और चेतना है। भारतीय ज्ञान परंपराएं – वेद, उपनिषद, दर्शन, योग, तंत्र, स्मृति, पुराण, महाकाव्य, काव्य और लोक ज्ञान – सभी की अंतर्धारा में अध्यात्म की निर्झरिणी अविरल प्रवाहित होती रही है।

अध्यात्म का आधारभूत सिद्धांत यह है कि आत्मा ही सत्य है और ब्रह्म के साथ उसका संबंध अविच्छिन्न है। इस सिद्धांत को भारतीय वाङ्मय में बार–बार गहराई से प्रस्तुत किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है – "आत्मा वा अरे दृष्टव्यः", अर्थात आत्मा को देखना, जानना और अनुभव करना ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। अध्यात्म हमें केवल आत्मा का बोध नहीं कराता, वह मनुष्य, समाज और प्रकृति के बीच एक समग्र चेतना (holistic consciousness) की स्थापना करता है।

संस्कृत वाङ्मय में विद्यमान वेदों का ऋत, उपनिषदों का ब्रह्मवाद, भगवद्गीता का निष्काम कर्मयोग, योगदर्शन की समाधि, और भक्ति साहित्य का भावातीत समर्पण – ये सभी अध्यात्म के विविध रूप हैं। इन परंपराओं में ज्ञान केवल बौद्धिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि

आत्मबोध की साधना है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपराएं आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, जितनी ऋषियों के समय में थीं – क्योंकि अध्यात्म न समय से बंधा है, न स्थान से।

भारतीय संस्कृति का आधारभूत स्तंभ 'अध्यात्म' है। 'आत्मा वा अरे दृष्टव्य:' उपनिषदों में इस उद्घोष के साथ आत्मा की खोज को सर्वोच्च जीवन लक्ष्य माना गया है। यह अध्यात्म ही भारतीय ज्ञान परंपराओं को विशुद्ध भौतिकता से ऊपर उठाकर आत्मिक उत्कर्ष की ओर ले जाता है।

भारतीय ज्ञान प्रणाली केवल सूचनाओं का संकलन नहीं, बल्कि चेतना का विस्तार है। इसमें वेद, उपवेद, दर्शन, स्मृति, पुराण जैसे शास्त्र ज्ञान के विविध पक्षों को उजागर करते हैं। किंतु इन सभी का मूल आधार ष्अध्यात्मष ही है, जो जीवन, ब्रह्मांड, प्रकृति और ईश्वर के बीच संवाद का माध्यम बनता है।

उदाहरण: वेदों में ब्रह्म (सत्य), आत्मा (स्व), और ऋत (नियम) को ज्ञान का केंद्र माना गया है।

संस्कृत वाङ्मय का स्वरूप एवं ऐतिहासिक विकास

संस्कृत वाङ्मय का स्वरूप बहुआयामी है। इसमें श्रुति, स्मृति, उपनिषद, वेदांत, काव्य, नाटक, अलंकार, वैद्यक, ज्योतिष, वास्तु आदि समस्त विधाएँ आती हैं। संस्कृत न केवल देववाणी है, बल्कि मानवता के गहन चिंतन और अध्यात्म की भाषा है। यह भाषा वैदिक काल से ही अस्तित्व में रही है और ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पवित्र परंपरा के रूप में संप्रेषित करती रही है।

पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी केवल व्याकरण का ग्रंथ नहीं बल्कि वैचारिक अनुशासन का दर्पण है। महाभाष्य जैसे ग्रंथ संस्कृत भाषा की वैज्ञानिकता को प्रमाणित करते हैं। सर विलियम जोन्स ने कहा था – "संस्कृत भाषा चाहे जितनी प्राचीन हो, उसकी संरचना निश्चित ही आश्चर्यजनक है...."। कपिल मुनि ने संस्कृत को "ज्ञान-विज्ञान-वारिधि:" कहकर इसकी बौद्धिक एवं आध्यात्मिक व्यापकता को रेखांकित किया।

अध्यात्म का स्वरूप और अर्थ

"अध्यात्म" शब्द 'अधि + आत्म' से बना है, जिसका तात्पर्य है – आत्मा के ऊपर चिंतन। यह वह बोध है जो आत्मा, परमात्मा और जगत के संबंधों को समझने में सक्षम बनाता है। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया – "अयं आत्मा ब्रह्म" – यह आत्मा ही ब्रह्म है। इस प्रकार अध्यात्म केवल ईश्वर भक्ति या पूजा पद्धति नहीं, बल्कि अस्तित्व के रहस्यों की खोज है। वेद भारतीय ज्ञान परंपराओं का मूल स्रोत हैं। इनमें अग्नि, वायु, सूर्य, पृथ्वी आदि प्रकृति तत्त्वों के रूप में दैवी चेतना की आराधना की गई है। ऋग्वेद में आत्मा की संज्ञा सविता देव से दी गई है – ***"? भूर्भुवः स्वः... धियो यो*** नः प्रचोदयात्।" यह मंत्र ज्ञान, बुद्धि और चेतना को जागृत करने की प्रार्थना है 'संगच्छध्वं संवदध्वं' – यह ऋग्वेद का सूत्र एकता, सामूहिक चेतना और आत्मानुभूति का स्पष्ट संकेत है।उपनिषद भारतीय अध्यात्म का सबसे परिष्कृत स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। यहाँ आत्मा, ब्रह्म, कर्म और मोक्ष जैसे तत्वों की गूढ़ विवेचना मिलती है। मुण्डक उपनिषद में कहा गया है – "द्वे विद्ये वेदितव्ये – परा च अपरा।" परा विद्या वह है जिससे ब्रह्म की प्राप्ति हो। इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान का शिखर अध्यात्म में है, जो व्यक्ति को आत्मज्ञान से जोड़ता है। भारत में षड्दर्शन – न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त – सभी का अंतिम लक्ष्य मोक्ष है, जो आध्यात्मिक उन्नति के बिना संभव नहीं।

- सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति का वैचारिक विश्लेषण है।
- योग दर्शन चित्तवृत्तियों के नियंत्रण द्वारा आत्मा से मिलन का मार्ग देता है।
- वेदान्त कहता है – "अहं ब्रह्मास्मि" – मैं ब्रह्म हूँ।

इन सभी दर्शनों में अध्यात्म का स्वरूप स्पष्ट है।

वेदों में अध्यात्म की अभिव्यक्ति

वेद भारतीय अध्यात्म की मूल संवाहक हैं। वेदों में ब्रह्मांड, आत्मा, परम तत्व, यज्ञ, ऋत, धर्म आदि के माध्यम से आध्यात्मिक अनुभवों का दार्शनिक निरूपण किया गया है। ऋग्वेद के श्नासदीय सूक्तश में सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व के शून्य की कल्पना की गई है:

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्।" (ऋग्वेद 10.129.1)

वेदों में यज्ञ केवल कर्मकांड नहीं, बल्कि चेतना का जागरण है। यजुर्वेद में कहा गया है: "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।" (यजुर्वेद) अतः वेद अध्यात्म के आंतरिक साक्षात्कार का एक गूढ़ मार्ग प्रस्तुत करते हैं।

उपनिषदों और भारतीय दर्शन में अध्यात्म की परंपरा

उपनिषद भारतीय दर्शन और अध्यात्म का सार हैं। यहाँ आत्मा और ब्रह्म के अद्वैत संबंध को अनेक महावाक्यों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है: "तत्त्वमसि" (तुम वही हो), "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ) - (छांदोग्य उपनिषद) उपनिषदों की भाषा केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि अनुभूतिपरक है। "नेति-नेति" द्वारा वे आत्मा को सीमाओं से मुक्त करते हैं। "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" - (तैत्तिरीय उपनिषद) यह शुद्ध ज्ञान, अनुभव और चेतना की स्थिति है। भारतीय दर्शन की छह प्रणालियाँ - षड्दर्शन - सभी अध्यात्म से जुड़ी हैं। सांख्य आत्मा और प्रकृति को पृथक मानकर मोक्ष का मार्ग दिखाता है। योग चित्तवृत्तियों के निरोध के द्वारा आत्मा को स्वयं में स्थित करता है: "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" - पतंजलि योगसूत्र (1.2) वेदांत में आत्मा और ब्रह्म की एकता को सत्य कहा गया है। यह अद्वैत दृष्टि - ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या - अध्यात्म का दार्शनिक शिखर है।

अध्यात्म और भारतीय साहित्य

संस्कृत साहित्य केवल सौंदर्य और रस की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि आत्मा की गहराइयों तक ले जाने वाली अनुभूति है। कालिदास के नाटकों में प्रकृति, मानव और दिव्यता के त्रैतिक संबंध की झलक मिलती है। मेघदूत की यक्ष कथा आत्म-वियोग की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने 'शांत रस' को ब्रह्मानुभूति से जोड़ा - "रसानां शांतः श्रेष्ठतमः" काव्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि आत्मा के आंतरिक सौंदर्य का अनुभव है। भारतीय महाकाव्य - रामायण, महाभारत, गीता - सभी अध्यात्म से ओतप्रोत हैं। अध्यात्म रामायण श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं, ब्रह्मस्वरूप मानती है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने 'निष्काम कर्म', 'स्थितप्रज्ञता' और 'ब्रह्म स्थिति' की संकल्पना दी, जो गहरे आध्यात्मिक अनुभव हैं। श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय अध्यात्म का सर्वोच्च ग्रंथ है। इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्ति योग के माध्यम से आत्मा को ब्रह्म से जोड़ने का मार्ग बताया गया है। "न हन्यते हन्यमाने शरीरे" - आत्मा अमर है। (गीता 2.20) रामायण में श्रीराम को "मर्यादा पुरुषोत्तम" कहा गया, जो आत्मा की शुद्धता का प्रतीक हैं। महाभारत में संपूर्ण कथा धर्म और आत्मा की लड़ाई के रूप में है।

पतंजलि के योगसूत्र, हठयोग ग्रंथ, गोरक्षशतक, और तंत्र साहित्य आत्मा की साधना पर केंद्रित हैं। योग के आठ अंग आत्मशुद्धि का क्रम हैं। "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" - (योगसूत्र 1.3) हठयोग शरीर को माध्यम बनाकर आत्मा तक पहुँचने का मार्ग देता है। तंत्र में शक्ति और शिव का योग चौतन्य और चेतना के मिलन का रूप है।

संस्कृत भक्ति साहित्य - भागवत पुराण, नारद भक्ति सूत्र, शांडिल्य सूत्र - सभी आत्मा और ईश्वर के प्रेममय संबंध को स्थापित करते हैं।

"स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे" (भागवत 1.2.6)

"सा परानुरक्तिरीश्वरे" (नारद भक्ति सूत्र) भक्ति केवल भावना नहीं, वह आत्मा की पूर्ण समर्पण की अवस्था है। भक्ति में ज्ञान और प्रेम का समन्वय भारतीय अध्यात्म का भावनात्मक उत्कर्ष है।

समग्र चेतना और अध्यात्म

भारतीय ज्ञान परंपराएं समग्र चेतना की बात करती हैं - जिसमें मन, बुद्धि, आत्मा, शरीर और समाज का संतुलन है। यह संतुलन तभी संभव है जब व्यक्ति अपने भीतर की आत्मचेतना से परिचित हो। संस्कृत वाङ्मय में केवल एक पक्ष नहीं, संपूर्ण जीवन का आध्यात्मिक अनुशीलन है - ब्रह्म, आत्मा, समाज, प्रकृति, मन, शरीर - सबका संतुलन। यह दृष्टिकोण "वसुधैव कुटुंबकम" और "सर्वे भवन्तु सुखिनः" की भावना में दिखाई देता है। "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे" (ऋग्वेद) यह समग्रता आज भी एक वैश्विक अध्यात्म दृष्टि प्रस्तुत करती है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

आधुनिक समय में, जब मानवता बाह्य प्रगति के बावजूद मानसिक, सामाजिक और पर्यावरणीय संकटों से ग्रस्त है, तब भारतीय अध्यात्म उसे आंतरिक शांति, संतुलन और समरसता प्रदान कर सकता है।

उदाहरण: आज के चिकित्सा विज्ञान में माइंडफुलनेस, ध्यान, और योग जैसे अभ्यास लोकप्रिय हो रहे हैं, जो भारतीय अध्यात्म का ही आधुनिक रूप हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)

अंततः यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत वाङ्मय भारतीय अध्यात्म का मूल स्रोत है। यह वाङ्मय वेदों में उच्चता, उपनिषदों में गहराई, गीता में नीति, योग में अनुशासन और भक्ति में सौंदर्य के रूप में प्रकट होता है। यह आत्मा के जागरण का साधन है, जो मनुष्य को स्वयं से, समाज से और ब्रह्म से जोड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि हम संस्कृत वाङ्मय के आध्यात्मिक आयाम को पुनः समझें, पढ़ें और जीवन में उतारें।

यह अध्यात्म व्यक्ति को आत्मसाक्षात्कार, समाज को समरसता, और विश्व को सहअस्तित्व की भावना देता है। यह शोधपत्र स्पष्ट करता है कि भारतीय ज्ञान की जड़ें केवल भौतिक या वैचारिक नहीं, बल्कि आत्मिक गहराई में हैं। अतः भारतीय ज्ञान परंपराओं का पुनरुद्धार, उनके आध्यात्मिक मूल के पुनराविष्कार के बिना अधूरा है। अंततः यह स्पष्ट है कि संस्कृत वाङ्मय भारतीय अध्यात्म का मूल स्रोत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- ऋग्वेद संहिता – मण्डल 10, सूक्त 129 (नासदीय सूक्त)
- यजुर्वेद संहिता – अध्याय 3, मंत्र 1 ("यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म")
- बृहदारण्यक उपनिषद् – अध्याय 2, ब्राह्मण 4, मंत्र 5
- छांदोग्य उपनिषद् – "तत्त्वमसि" (6.8.7)
- तैत्तिरीय उपनिषद् – "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म"
- श्रीमद्भगवद्गीता – अध्याय 2, श्लोक 20 ("न हन्यते हन्यमाने शरीरे")
- पतंजलि योगसूत्र – अध्याय 1, सूत्र 2–3 ("योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः")
- नाट्यशास्त्र – भरतमुनि – अध्याय 6 (रस और शांत रस की अवधारणा)
- भागवत पुराण – स्कंध 1, अध्याय 2, श्लोक 6
- नारद भक्ति सूत्र – सूत्र 2, 4, 5
- विज्ञान भैरव तंत्र – ध्यान और चेतना विषयक सूत्र
- सांख्यकारिका – ईश्वरकृष्ण

शिक्षा और मूल्यों की तैयारी

विक्रांत भास्कर

भास्कर भवन, शिवपुरी, बेगूसराय, बिहार

सारांश

मूल्य समाज सापेक्ष होता है। जो मनुष्य को समाजिक रीतियों से बांधता है। समाजिक सांस्कृतिक विकास का प्रभाव व्यक्ति के मूल्य निर्माण पर पड़ता है। संविधान द्वारा तय मूल्य लोगों के बीच समानता, भ्रातृत्व, न्याय स्थापना से सम्बंधित होता है। शिक्षा इन सभी मूल्यों के निर्माण में सहायक होता है। मूल्य शाश्वत एवं परिवर्तनशील दोनों होता है। यह व्यक्ति के जीवनशैली का भी निर्माण करती है। व्यक्ति का विचार, विश्वास, निष्ठा या आस्था आदि मूल्य से जुड़ा होता होता हैं। ये मानव-मूल्य एक व्यक्ति के अंत:करण द्वारा नियंत्रित होता। 'बहुजन हित' इन जीवन मूल्यों की कसौटी कही जा सकती है।

परिचय

'मूल्य' एक अमूर्त गुण है जो किसी वस्तु में निहित होता है तथा उसके महत्त्व की ओर इंगित करता है। प्रत्येक समाज तथा परिवर्तन की दिशा निर्भर करती है। समाज समूह में जो भी घटनाएँ घटित होती हैं, समाज उनका उचित अथवा अनुचित के रूप में मूल्यांकन करता है। इसी के आधार पर समाज में कुछ प्रमाप स्थापित हो जाते हैं। इन्हीं प्रमापों के आधार पर समाज में घटित घटना को सही या गलत, उचित अथवा अनुचित ठहराया जाता है और ये ही 'मूल्य' (टंसनम) कहलाते हैं। बार्डी के अनुसार - ''उपयुक्तता या चुने जाने की योग्यता ही मूल्य है।''

मूल्य निर्धारण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर का भी महत्त्वपूर्ण योग होता है। सामाजिक प्रगति के मूल्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। संक्षेप में सामाजिक परिस्थितियों तथा विषयों के मूल्यांकन की प्रक्रिया को मूल्य कहते हैं। मूल्य पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होते हैं। देशकाल और परिस्थिति के अनुसार प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र के मूल्यों में अन्तर होता है। एक समाज में जिन मूल्यों का महत्त्व सर्वोपरि होता है, दूसरे समाज में वे महत्त्वहीन हो जाते हैं। पश्चिमी देश और भारतीय मूल्यों में आकाश-पाताल का अन्तर है। किन्तु यह सत्य है कि व्यक्ति अपने सामाजिक मूल्यों के अनुरूप आने अथवा इन्हें प्राप्त करने हेतु अग्रसर एवं प्रयत्नशील रहता है और उनके माध्यम से समाज में अपना स्थान बनाने का प्रयत्न करते है। क्लाइड क्लुखहन के अनुसार - ''मूल्य किसी व्यक्ति विषेष अथवा समूह का व्यक्त अथवा अव्यक्त विचार है जो क्रिया के प्राप्त साधनों एवं लक्ष्यों के चयन को प्रभावित करता है।'' जाति समाज राष्ट्र के मूल्यों में विभिन्नताएँ होते हुए भी मानव-मूल्य समान होते हैं। उदाहरण स्वरूप अहिंसा, सत्य, अपरिगृह, ब्रह्मचर्य, प्रेम, सहानुभूति, परोपकार, दया आदि मानवतावादी मूल्य देशकाल, समाज की सीमाओं को लांघ कर समस्त दिशा में समान है और इन्हें विश्व में पूर्णतया सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।... 'मूल्य' को इच्छित प्रतिमान के रूप में परिभाषित किया जाता है। वास्तव में मूल्य सामाजिक रूप से स्वीकृत इच्छाएँ और लक्ष्य होते हैं जो सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा आत्मसात कर लिए जाते हैं। (बिजेंद्र सिंह त्यागी, उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा)

अल्बर्ट आइंस्टीन का कहना था कि- व्यक्ति का मूल्य इसमें देखना चाहिए कि वह क्या देता है? इसमें नहीं की वह क्या प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है। मनोवैज्ञानिक आलपोर्ट के अनुसार - ''व्यक्ति की रुचि एवं उसके व्यक्तित्व की प्रबल इच्छा 'मूल्य' कहलाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है, कि मूल्य समाज के द्वारा स्वीकृत होते हैं, वास्तव में मूल्य समाज के आदर्श होते हैं जो मानव के दैनिक जीवन के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। यह मूल्य आध्यात्मिक व लौकिक दोनों प्रकार के हैं। जिन्हें शिक्षा द्वारा छात्रों के जीवन में समाविष्ट किया जा सकता है।

मूल्य का विकास समाज में होता है। सामाजिक सम्पर्क के परिणामस्वरूप नैतिक विकास होता है। हम कुछ मूल्यों को प्राथमिकता देते है व कुछ अन्य मूल्यों को त्यागते है। मानव आचरण केवल विचारों द्वारा ही नहीं होता अपितु भावों द्वारा भी होता है। सिद्धान्तों को भावों द्वारा शक्ति मिलती है। स्थायी भावों के आधार पर ही मूल्यों का चयन करते है और उच्च मूल्यों के निरन्तर चुनाव करने से यह हमारा स्वभाव बन जाता है। हमारे व्यक्तित्व का अंग बन जाता है, हमारे चरित्र का निर्माण होता है। शिक्षा का उद्देश्य उच्च मूल्यों के विकास के द्वारा चरित्र का निर्माण करना है। मूल्य समाज को व्यवस्था देते है तथा व्यक्ति के व्यवहार की दिशा को आधार देते है। अच्छे चरित्र का आधार मूल्य है और आधुनिक युग मूल्यों के संकट का युग है। व्यक्ति के जीवन में ईमानदारी और सहनशीलता का क्षरण हुआ है। चारों ओर अपराध,हिंसा क्रुरता, लोभ, स्वार्थ और परसेवा का लोप दिखाई देता है।

भारतीय संविधान में निहित मूल्य

भारतीय संविधान में भारत को एक सम्प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष लोकतंत्रीय गणराज्य घोषित किया गया है। 42 वें संविधान संशोधन द्वारा प्रस्तावना में 'समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष' और राष्ट की एकता और अखंडता शब्द जोड़े गये। इनके आधार पर सत्य प्रकाश पाण्डेय (1990) ने जिन सामाजिक मूल्यों को संकलित किया वे है - समानता, भ्रातृत्व, न्याय, धर्म-निरपेक्षता, स्वतंत्रता व सहनशीलता।

अनुच्छेद 51(ए) में भारत संविधान में मूलभूत कर्तव्यों का उल्लेख है। यह कहा गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

1. संविधान का दृढ़ता व निष्ठा से पालन करेगा और उसके आदर्शों व संस्थाओं, राष्ट्रध्वज व राष्ट्रगान का सम्मान करेगा।
2. उन श्रेष्ठ आदर्शों को अपने दिल में संजोएगा व उनका अनुसरण करेगें जिन्होनें स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरणा दी थी।
3. भारत की संप्रभुता, एकता को अक्षुण्य व संरक्षित रखेगा।
4. देश की रक्षा करेगा व आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्र सेवा करेगा।
5. धार्मिक भाषायी तथा क्षेत्रीय/उपखण्डीय विविधताओं तथा महिलाओं के सम्मान के प्रति अपमानजनक बातों से निरपेक्ष रहते हुए भाईचारे के भाव व सामंजस्य को प्रोत्साहित करेगा।
6. मिश्रित संस्कृति की समृद्ध धरोहर को महत्त्व देगें व संरक्षित रखेगा।
7. प्राकृतिक वातावरण जिनमें वन, झीले, नदियाँ, वन्य जन्तु शामिल है को सुधारेगा व सुरक्षित रखेगा तथा जीवित प्राणियों के प्रति दयाभाव रखेगा।
8. वैज्ञानिक अभिवृत्ति, मानववाद तथा पृच्छा एवं सुधार भाव विकसित करेगा।
9. जन सम्पत्ति की रक्षा करेगा व हिंसा से बचेगा ।
10. व्यक्तिगत एवं सामूहित क्रिया-कलाप के सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठत्व प्राप्त करने का प्रयास करेगा ताकि देश निरंतर उपलब्धि व प्रयत्न के उच्चतर स्तर तक पहुँच सकें।

शिक्षा

'शिक्षा' एक अत्यंत व्यापक सम्प्रत्यय है जिसे विभिन्न दार्शनिकों और विचारकों ने युग समय और परिस्थिति के सापेक्ष समझने और समझाने का प्रयास किया है शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है यह व्यक्ति की क्षमताओं को प्रकाशित करने का कार्य करती है उसे अपने वातावरणीय परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करती है। शिक्षा की महत्ता पर विचार करते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटों ने कहा:- ''संसारमें सबसे श्रेष्ठ और सुन्दर कोइ वस्तु यदि है तो वह है शिक्षा।''

प्रश्न है- मूल्यों की प्रयोगशाला या व्यवहार भूमि क्या है? उत्तर है- समाज। मूल्य किसके लिए? उत्तर है व्यक्ति के लिए, और चूँकि समाज व्यक्तियों का समुच्च है अतः मूल्य- समाज के लिए। (साहित्य और मूल्य, अखिल कुमार, डॉ मधु कुशवाहा मूल्य विमर्श)

मानव मूल्य वह सद्‌गुण समूह है या ऐसी आचार संहिता है, जिसे अपने संस्कारों तथा पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर मनुष्य अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनी जीवन-शैली का निर्माण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इनमें मनुष्य का विचार, विश्वास, निष्ठा या आस्था आदि समाहित होते हैं। ये मानव-मूल्य एक ओर व्यक्ति के अंतःकरण द्वारा नियंत्रित होते हैं तो दूसरी ओर उसकी संस्कृति एवं परंपरा द्वारा क्रमशः निस्सृत एवं परिपोषित होते हैं। सत्य, अहिंसा, त्याग, परोपकार आदि जीवन मूल्यों का उपयोग यदि मानव केवल अपने लिए करता है तो ये सद्‌गुण जीवन मूल्यों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं। क्योंकि 'बहुजन हित' इन जीवन मूल्यों की कसौटी मानी जाती है।

जीवन मूल्यों को स्थूल रूप से दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है- परिवर्तनशील मूल्य एवं शाश्वत मूल्य। इन्हें दूसरे शब्दों में क्रमशः युग धर्म तथा सनातन धर्म कह सकते हैं। युग धर्म के अंतर्गत कुल धर्म, देश धर्म, जाति धर्म, वर्ण धर्म, लिंग धर्म, पुत्र धर्म, पत्नी धर्म, गुरु धर्म आदि जीवन मूल्यों की कसौटी मानी जाती है। (जनवरी 2010, मानव मूल्य एवं शिक्षा, डॉ गोपाल प्रसाद नायक)

आधुनिक राष्ट्र के उदय में, देशभक्ति राष्ट्रीय आदर्श के प्रति निष्ठा का जन्म है। वहाँ के रोमन साम्राज्य में यह सच था, जहाँ ऐसी धारणा थी की राजा के बजाय राज्य वफादारी का केंद्र था। रोमन नागरिक होना, रोमन सम्राट होने से कहीं ज्यादा था। इसमें रोमन का राष्ट्रीय गौरव ग्रीक से अलग था। ग्रीस ने अरस्तू जैसे महान दार्शनिक को जन्म दिया। मेस- डोनियन अलेक्जेंडर पहला व्यक्ति जिसने सेना से अधिक साम्राज्य का सपना देखा था। यूनानियों की सामूहिक स्मृति या आशा संयुक्त ग्रीस में निहित नहीं था।

जैसा कि पूर्वी दुनिया में व्यक्ति अपने देश की तुलना में अपने शहरों के लिए ज्यादा प्रबल थे। एथेनियन और स्पार्टन, थेबन और कोरिंथियन, टार्सस के आदमी के साथ कहने के लिए तैयार थे "मैं कोई मतलबी शहर का नागरिक नहीं हूं।" लेकिन जो एक से अधिक नहीं था, वह उस साम्राज्यवादी एकजुटता को याद कर सकता है, जैसे कि रोम की प्रतिभा भूमध्यसागरीय बेसिन के लिए थी। कोई इटली, या जर्मनी या फ्रांस नहीं था, न ही, पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य तक, एक स्पेन। ऐसे राज्य थे, जिनके अलग-अलग तरीके से चलते थे, राष्ट्रों में विकसित हो सकता है, लेकिन राज्यों और सन्दर्भ में देशभक्ति, शब्द के आधुनिक अर्थों में शुमार है। केवल एक राज्य में ही काफी अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि एक स्थिर विकास था- एक राष्ट्रीय देशभक्ति का जज्बा, और वह राज्य था इंग्लैंड।

नागरिकता और मूल्य

नागरिकता और नागरिकता शिक्षा की अवधारणाएं अब सिद्धांत, अनुसंधान, नीति और शिक्षा के अभ्यास में केंद्रीय अवधारणाएं हैं। शिक्षा से तात्पर्य है कि शिक्षा विद्यार्थियों के पहचान के विकास में किस प्रकार सहायता कर सकती है पिछले कुछ दशकों में नागरिकता की अवधारणा व्यापक रूप से समृद्ध और गहरी हुई है। 'ब्रॉडडेड' का अर्थ है कि नागरिकता अब न केवल राष्ट्रीय राज्य के साथ जुड़ा हुआ है, बल्कि क्षेत्रीय व्यवस्थाओं (जैसे यूरोपीय नागरिकता) के साथ और यहां तक कि पूरी दुनिया के साथ भी जुड़ा हुआ है। वैश्विक नागरिकता की अवधारणा को राजनीतिक स्तर से सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर तक बढ़ाया गया है। यह एक विशेष समाज में एक साथ रहने के बारे में है। जिसके परिणामस्वरूप, नागरिकता ने नैतिक विकास के साथ अपने संबंध को मजबूत किया है।

छात्रों की पहचान को विकसित करने में शिक्षा की भूमिका

नैतिक शिक्षा पर शोध, ओसर और वीगलर्स (2008) ने नैतिकता को समाज और राजनीतिक क्षेत्र से जोड़ा है। नैतिक मूल्य का सार धारणाओं के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संदर्भों में सन्निहित है। राजनीतिक शक्ति संबंध से संबंधित है। नैतिक और राजनीतिक को अधिक निकटता से एक साथ जोड़ा जाना चाहिए। साथ ही राजनीतिक को और अधिक नैतिक बनना चाहिए। चूंकि नागरिकता शिक्षा अनुसंधान एक ठोस अकादमिक उप-अनुशासन बन रहा है, इसलिए पिछले पांच दशकों में नागरिकता शिक्षा के शैक्षणिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण बदलावों की जांच करना दिलचस्प है। परंपरागत रूप से, नागरिकता और नागरिकता शिक्षा का शैक्षणिक

क्षेत्र राजनीतिक विज्ञान के अनुशासन का हिस्सा था। युद्ध के बाद की अवधि में, मार्शल (1964) ने विशेष रूप से राजनीतिक प्रणालियों, संस्थानों और अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में आधुनिक सोच को आकार दिया। सत्तर के दशक में, आइसिन और टर्नर (2002) और बॉर्डियू (1984) जैसे समाजशास्त्रियों ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया, जिससे राजनीतिक क्षेत्र और समाज के बीच संबंध मजबूत हुए।

आलोचनात्मक शिक्षा शास्त्र शोध ने एक बहुत ही आदर्श एवं विस्तृत स्वरूप को फ्रेरे (1985) और जीरोक्स (1989) के कामो द्वारा प्राप्त किया। शिक्षा के माध्यम से लोकतंत्र को सृजित करना नागरिकता का सिद्धांत निर्मित करना एक अधिक गतिशील और परिवर्तनकारी शोध होगा (वेगलर)।

समाज में युवाओं की भागीदारी के लिए तैयार करना शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य है। नागरिकता अब उन विद्वानों और प्रयोक्ताओं के लिए केंद्रीय अवधारणा है जो इस शैक्षिक कार्य में संलग्न हैं। यह कानूनी अधिकारों और दायित्वों दोनों की चिंता करता है, और इसकी भी कि लोग समुदायों, राष्ट्रों और वैश्विक दुनिया में एक साथ कैसे रहते हैं। लोगों का अलग-अलग विचार हैं कि एक अच्छा नागरिक क्या है और साथ रहने के अच्छे तरीके क्या हैं। इस सन्दर्भ में शिक्षा नागरिकता के विकास में बेहतर योगदान दे सकती है। किसी देश का शिक्षाई उद्देश्य उस देश के नागरिको के समाजिक मूल्यों को तय करने में मदद करती है।

निष्कर्ष

इस आलेख में मनुष्य में मूल्य निर्माण में शिक्षा की भूमिका पर चिंतन किया गया है। मूल्य व्यक्ति और समाज के मध्य परस्पर क्रिया से विकसित होता है। मनुष्य एक ओर मूल्यों के माध्यम से समाज का स्वरुप गढ़ता है तो दूसरी तरफ मनुष्य भी समाजिक रीतियों से बंधता है। समाजिक सांस्कृतिक विकास व्यक्ति के मूल्य निर्माण पर निर्देशित करता है। संविधान द्वारा भी मूल्य तय होता है। शिक्षा इन सभी मूल्यों के निर्माण में सहायता करती है। मूल्य में स्थाइत्व एवं परिवर्तनीयता दोनों होता है। यह व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करती है। व्यापक जनता का हित इन जीवन मूल्यों की कसौटी कही जा सकती है।

सन्दर्भ :

1. त्यागी, बिजेंद्र सिंह. 2010. उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा. अरिहंत, शिक्षा प्रकाशन, नई दिल्ली.
2. कुमार, अखिल एवं डॉ मधु कुशवाहा. जनवरी 2009. मूल्य विमर्श, वर्ष 4 अंक 7 साहित्य और मूल्य, सं. प्रोफेसर सिद्धनाथ उपाध्याय, मालवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005)
3. नायक, डॉ गोपाल प्रसाद. जनवरी 2010. मानव मूल्य एवं शिक्षा
4. Veugelers, W., & Groot, I. (2019). Theory and Practice of Citizenship Education. In Veugelers W. (Ed.), *Education for Democratic Intercultural Citizenship* LEIDEN; BOSTON

वर्तमान समय में कार्ल मार्क्स के विचारों की प्रांसगिकताः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

छाया

सहायक आचार्या, समाजशास्त्र विभाग जैन कन्या पाठशाला (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर

सारांश

कार्ल मार्क्स एक क्रांतिकारी, समाजशास्त्री, इतिहासकार और अर्थशास्त्री थे। उन्होंने फ्रेडरिक एंगेल्स के साथ मिलकर कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो लिखा और वे दास कैपिटल के लेखक थे, जिसने मिलकर मार्क्सवाद का आधार बनाया।

मार्क्स के सिद्धांत पूंजीवाद के आंतरिक विरोधाभासों, वर्ग संघर्ष, और सामाजिक परिवर्तन के एक क्रांतिकारी मॉडल पर आधारित हैं।

पूंजीवाद की आलोचना, सामाजिक असमानता और वर्ग संघर्ष के उनके विश्लेषण के कारण कार्ल मार्क्स के विचार आज भी दुनिया भर में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों के विश्लेषण के लिए प्रासंगिक हैं।

उनके विचारों को समझने से हमें पूंजीवाद के भीतर के विरोधाभासों, सामाजिक असमानता और सामाजिक परिवर्तन के संभावित रास्ते के बारे में अधिक जानकारी मिलती है।

यह अध्ययन कार्ल मार्क्स के विचारों की प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है। राजनीति, देश के विकास के लिए बनाई गई हित की नीयतों के इर्द-गिर्द घूमती है और नीतियाँ बिना मुद्रा के संचालित नही हो सकती। अर्थात मुद्रा नीतियों का ईंधन है। राजकोषीय नीति और मुद्रा नीति को संचालित करके ही देश की अर्थव्यवस्था को संतुलित किया जा सकता है। कार्ल मार्क्स के कई कथन के असत्य होने के बावजूद भी देश देश की अर्थव्यवस्था का विकास उनके विचारों के बिना संभव नहीं। उन्होंने अर्थव्यवस्था को गलत दिशा मे जाने से बचाया है तथा आज भी विश्व अर्थव्यवस्था को संतुलित बनाए रखने मे उनके विचारों की प्रासंगिकता झलकती है।

मूल शब्दः कार्ल मार्क्स के विचारों की प्रासंगिकता, वर्तमान अर्थव्यवस्था, समाजवाद, पूंजीवाद, एकाधिकार, राजकोषीय नीति

प्रस्तावना

कार्ल मार्क्स (जन्म 5 मई 1818 - मृत्यु 14 मार्च 1883) जर्मन दार्शनिक, अर्थशास्त्री, इतिहासकार, समाजशास्त्री, राजनीतिक सिद्धांतकार, पत्रकार, राजनीतिक अर्थव्यवस्था के आलोचक और समाजवादी तथा क्रांतिकारी थे। कार्ल मार्क्स ने जिस तरह से दुनिया को हिलाकर रख दिया, वैसा शायद ही किसी और ने किया हो। मार्क्स के विचार आज से पहले कभी इतने प्रासंगिक नहीं रहे। यह वर्तमान समय में मार्क्सवादी सिद्धांत की प्यास में परिलक्षित होता है।

मार्क्सवाद एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दर्शन है जो शासक वर्ग के मजदूरों पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करता है, जिसके कारण समाज में धन और विशेषाधिकारों का असमान वितरण होता है। वास्तव में, समाजवाद अमेरिका जैसे सबसे अधिक पूंजीवादी देशों में भी वर्जित नहीं है। तो, क्या मार्क्सवाद आज भी, यहाँ तक कि 21वीं सदी में भी प्रासंगिक है?

अमेरिका, यूरोप और बाकी दुनिया में 2008 के आर्थिक संकट के बाद, मार्क्स को ताबूत से बाहर निकाला गया है। पश्चिम में, मार्क्सवाद में रुचि तेजी से बढ़ रही है।

मार्क्सवाद क्या है?

मार्क्सवाद एक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दर्शन है जिसका नाम 19वीं सदी के जर्मन दार्शनिक और अर्थशास्त्री कार्ल मार्क्स के नाम पर रखा गया है। यह श्रमिकों को अन्याय का विरोध करने के लिए प्रेरित करता है। उनका काम श्रम, उत्पादकता और आर्थिक विकास पर पूंजीवाद के ऐतिहासिक प्रभावों की जांच करता है, और तर्क देता है कि पूंजीवाद को साम्यवादी प्रणाली से बदलने के लिए श्रमिक क्रांति की आवश्यकता है।

मार्क्सवाद का मानना है कि सामाजिक वर्गों के बीच संघर्ष - खास तौर पर पूंजीपति वर्ग या पूंजीपतियों और सर्वहारा वर्ग या श्रमिकों के बीच - पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक संबंधों को परिभाषित करता है और अनिवार्य रूप से साम्यवादी क्रांति की ओर ले जाएगा। मार्क्सवाद एक आर्थिक और राजनीतिक सिद्धांत है जो पूंजीवाद में निहित दोषों की जांच करता है और एक विकल्प की पहचान करने का प्रयास करता है, जिसे उन्होंने 'यूटोपियन समाजवाद' कहा है।

मार्क्सवादी सिद्धांत समाजवाद के विकास में प्रभावशाली थे, जिसके अनुसार उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का साझा स्वामित्व होना चाहिए। साम्यवाद निजी स्वामित्व की अवधारणा को पूरी तरह से खारिज करता है, और यह अनिवार्य करता है कि 'लोग', वास्तव में सरकार, सामूहिक रूप से सभी वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और वितरण का स्वामित्व और नियंत्रण रखते हैं।

कार्ल मार्क्स ने अपनी लोकप्रिय पुस्तिका कम्युनिस्ट घोषणापत्र में साबित किया कि समाजवादी व्यवस्था का उदय अपरिहार्य है। अपनी प्रसिद्ध रचना दास कैपिटल में उन्होंने विश्लेषण किया और साबित किया कि वर्ग संघर्ष पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म कर देगा और एक नई समाजवादी व्यवस्था स्थापित करेगा। 1875 में लिखी अपनी रचना क्रिटिक ऑफ द गोथा प्रोग्राम में मार्क्स ने कम्युनिस्ट दर्शन का सारांश इस तरह दिया: "हर किसी से उसकी क्षमता के अनुसार, हर किसी को उसकी जरूरतों के अनुसार।"

इसके विपरीत, समाजवाद इस विचार पर आधारित है कि लोगों को अर्थव्यवस्था में उनके व्यक्तिगत योगदान के स्तर के आधार पर मुआवजा दिया जाएगा। समाजवाद साम्यवाद से कई दशक पहले का है। इसके शुरुआती अनुयायियों ने धन के अधिक समतावादी वितरण, श्रमिकों के बीच एकजुटता, बेहतर कामकाजी परिस्थितियों और भूमि और विनिर्माण उपकरणों के सामान्य स्वामित्व का आह्वान किया।

मार्क्स का योगदान वास्तव में क्या है?

तो, मार्क्सवाद नामक 200 साल पुरानी इस घटना को इतना खास क्या बनाता है कि आज भी इस पर जमकर बहस हो रही है? खैर, सीधे शब्दों में कहें तो इसका जवाब शायद मार्क्स के पूंजीवाद के आलोचनात्मक विश्लेषण में निहित है जो आज पूंजीवाद में निरंतर संकट की व्याख्या करता है। अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञान में, मार्क्स ने वही हासिल किया जो डार्विन ने जीव विज्ञान में हासिल किया था। उन्होंने द्वंद्वात्मकता और विकास के माध्यम से घटनाओं के ऐतिहासिक प्रवाह का एक व्यवस्थित और वैश्विक आर्थिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

मार्क्स ने बताया कि पहले हमारे पास एक गुलाम समाज था जो राजाओं, राजकुमारों और ड्यूकों की सामंती व्यवस्था में बदल गया। औद्योगिक क्रांति और वैज्ञानिक खोजों में तेजी से वृद्धि के बाद, यह व्यवस्था पूंजीवाद में विकसित हुई, जिसने पुरानी सामंती व्यवस्था को नष्ट कर दिया और दो नए वर्ग बनाए - शासक वर्ग, जो उत्पादन के साधनों के मालिक थे, और श्रमिक वर्ग जो वेतन के लिए अपना श्रम बेचते थे।

मार्क्स के जीवनी लेखक जोनाथन स्परबर के अनुसार, 19वीं सदी के विचारक ने शोषण की पहचान की और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के स्वतः स्व-नियमन पर सवाल उठाया। मार्क्सवाद वर्गहीन समाज की स्थापना का प्रचार करता है। उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों पर निजी स्वामित्व के बजाय पूरे समुदाय का स्वामित्व होना चाहिए। मार्क्सवाद पूंजीपतियों और मजदूर वर्ग के बीच संघर्ष की जांच करता है।

पूंजीवाद को उत्पादन के एक ऐसे तरीके के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें व्यवसाय के मालिक (पूंजीपति) उत्पादन के सभी साधनों (कारखाना, उपकरण और मशीनरी, कच्चा माल, अंतिम उत्पाद और उनकी बिक्री से अर्जित लाभ) के मालिक होते हैं। श्रमिकों (श्रमिकों) को मजदूरी के लिए काम पर रखा जाता है और उनके पास स्वामित्व हिस्सेदारी और लाभ में कोई हिस्सा नहीं होता है।

मार्क्स ने दावा किया कि पूंजीवाद में दो प्रमुख दोष हैं जो नियोक्ताओं द्वारा श्रमिकों के शोषण को जन्म देते हैं: मुक्त बाजार प्रतिस्पर्धा की अराजक प्रकृति और अधिशेष श्रम का निष्कर्षण।

साधारण मजदूर, जिनके पास उत्पादन के साधन जैसे कि कारखाने, इमारतें और सामग्री नहीं होती, पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था में बहुत कम शक्ति रखते हैं। उच्च बेरोजगारी की अवधि में श्रमिकों को आसानी से बदला जा सकता है, जिससे उनके कथित मूल्य का और अधिक अवमूल्यन होता है। मुनाफे को अधिकतम करने के लिए, व्यवसाय मालिकों को अपने मजदूरों से अधिकतम संभव काम करवाना पड़ता है जबकि उन्हें न्यूनतम संभव मजदूरी देनी पड़ती है।

इससे मालिकों और मजदूरों के बीच असंतुलन पैदा होता है, जिनके काम का मालिक अपने फायदे के लिए शोषण करते हैं। चूँकि उत्पादन की प्रक्रिया में श्रमिकों की निजी हिस्सेदारी बहुत कम होती है, इसलिए मार्क्स का मानना था कि वे अपने काम से और यहाँ तक कि अपनी मानवता से भी अलग हो जाएँगे और व्यवसाय मालिकों के प्रति नाराज हो जाएँगे।

अन्य शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों की तरह, कार्ल मार्क्स भी बाजार मूल्यों में सापेक्ष अंतर को समझाने के लिए श्रम मूल्य सिद्धांत (LTV) में विश्वास करते थे। इस सिद्धांत ने कहा कि किसी उत्पाद का मूल्य उसे बनाने में लगने वाले औसत श्रम घंटों की संख्या से वस्तुनिष्ठ रूप से मापा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी मेज को बनाने में कुर्सी से दोगुना समय लगता है, तो उस मेज को दोगुना मूल्यवान माना जाना चाहिए। मार्क्स ने इस सिद्धांत में जो जोड़ा वह यह निष्कर्ष था कि यह श्रम मूल्य श्रमिकों के शोषण का प्रतिनिधित्व करता है।

मार्क्सवादी आर्थिक अवधारणा अधिशेष-मूल्य पूंजीवादी व्यवस्था की अस्थिरता को स्पष्ट करने के लिए पेश की गई। डेविड रिकार्डो के श्रम मूल्य सिद्धांत का पालन करते हुए, कार्ल मार्क्स ने माना कि मानव श्रम आर्थिक मूल्य का स्रोत था। पूंजीपति अपने श्रमिकों को उनके श्रम द्वारा वस्तुओं में जोड़े गए मूल्य से कम भुगतान करता है, आमतौर पर केवल इतना ही कि श्रमिक निर्वाह स्तर पर बने रहें।

हालांकि, मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, मजदूर के श्रम के कुल मूल्य में से यह मुआवजा मजदूर के जीवन-यापन के साधनों के बराबर मात्र एक छोटा हिस्सा होता है। शेष 'अतिरिक्त श्रम' होता है, और इससे जो मूल्य पैदा होता है वह 'अतिरिक्त मूल्य' होता है। मार्क्स ने तर्क दिया कि मुनाफा कमाने के लिए पूंजीपति इस अधिशेष मूल्य को अपने अधिकार में ले लेता है, जिससे मजदूर का शोषण होता है।

इसलिए, मार्क्स का सिद्धांत यह निष्कर्ष निकालता है कि, पूंजीपतियों का लाभ श्रमिकों के शोषण का परिणाम है। क्योंकि श्रमिकों द्वारा उत्पादित मूल्य उनके द्वारा भुगतान की जाने वाली मजदूरी से अधिक है। इस सिद्धांत से यह निष्कर्ष निकलता है कि पूंजीवाद स्वाभाविक रूप से और अपरिहार्य रूप से एक अन्यायपूर्ण और शोषणकारी आर्थिक प्रणाली है।

इस प्रकार, मार्क्स ने सोचा कि पूंजीवादी व्यवस्था में अपने विनाश के बीज निहित हैं। मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि पूंजीवाद अंततः खुद को नष्ट कर देगा क्योंकि अधिक लोग श्रमिक वर्ग की स्थिति में आ जाएंगे, असमानता बढ़ेगी, और प्रतिस्पर्धा कॉर्पोरेट मुनाफे को शून्य कर देगी। सर्वहारा वर्ग का अलगाव और शोषण जो पूंजीवादी संबंधों के लिए मौलिक है, अनिवार्य रूप से श्रमिक वर्ग को पूंजीपति वर्ग के खिलाफ विद्रोह करने और उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण करने के लिए प्रेरित करेगा।

दूसरे शब्दों में, अंततः, इन दोनों वर्गों के बीच अंतर्निहित असमानताएं और शोषणकारी आर्थिक संबंध एक क्रांति का कारण बनेंगे जिसमें मजदूर वर्ग पूंजीपति वर्ग के खिलाफ विद्रोह करेगा, उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण करेगा और पूंजीवाद को खत्म कर देगा।

मार्क्स के अनुसार, यह अंततः समाजवाद में विकसित होगा, जहाँ श्रमिक उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण कर लेंगे। अंततः, यह साम्यवाद की ओर ले जाएगा, जहाँ एक वर्गहीन समाज का निर्माण होगा। इसलिए, मार्क्स ने इतिहास का अध्ययन करने और भविष्य की भविष्यवाणी करने के लिए आर्थिक संबंधों पर आधारित एक वैज्ञानिक रूपरेखा प्रस्तुत की।

मार्क्सवाद की प्रासंगिकता

मार्क्स और एंगेल्स के विचारों ने साम्यवाद के सिद्धांत और व्यवहार के लिए आधार तैयार किया, जो एक वर्गहीन प्रणाली की वकालत करता है जिसमें सभी संपत्ति और धन सामुदायिक रूप से (निजी तौर पर नहीं) स्वामित्व में होते हैं। साम्यवाद ऐतिहासिक रूप से समाजवाद से एक तरह से अलग है, क्योंकि साम्यवाद क्रमिक साधनों के बजाय क्रांतिकारी तरीकों से मजदूर वर्ग को सत्ता

हस्तांतरित करने की बात करता है। साम्यवाद और समाजवाद दोनों ही उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक नियंत्रण की वकालत करते हैं, हालांकि समाजवाद अर्थव्यवस्था के कुछ हिस्सों में पूंजीवाद की स्थायी मौजूदगी को अनुमति देता है।

मार्क्स ने राजनीतिक कार्यकर्ता का जीवन जीकर दुनिया को नहीं बदला, बल्कि एक क्रांतिकारी दार्शनिक और विद्वान का जीवन जीकर दुनिया को बदला। मार्क्सवाद को आमतौर पर कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स के सिद्धांतों पर आधारित एक आर्थिक और सामाजिक प्रणाली के रूप में समझा जाता है। मार्क्स के विचार, वास्तव में, आज भी प्रासंगिक हैं, खासकर न्याय और समानता के बारे में मार्क्स के प्रस्तावों को मौजूदा समाज को बेहतर बनाने में लागू किया जाना चाहिए।

कार्ल मार्क्स के बारे में सोचते समय ज्यादातर लोगों के दिमाग में राजनीति और साम्यवाद पर उनके प्रभाव की बात आती है, और फिर सामाजिक लोकतंत्र पर भी। हालाँकि, असल में, उनका प्रभाव बहुत व्यापक रहा है। मार्क्सवादी विचारों ने नारीवाद, आर्थिक सिद्धांत, समाजशास्त्र और दर्शन को प्रभावित किया है, अध्ययन के कुछ क्षेत्रों के नाम हैं। समाज का अध्ययन करने का उनका दृष्टिकोण और तरीका कई क्षेत्रों में लागू किया जा सकता है और किया गया है।

जॉर्ज मुलर के अनुसार समाज के भीतर विभिन्न वर्गो पर मार्क्स का सिद्धांत इस बारे में मूल्यवान सुझाव दे सकता है कि कैसे ये वर्ग आपस में जुड़कर एक पूरे का निर्माण कर सकते हैं और इस प्रकार समाज की एक एकल इकाई के रूप में कार्यक्षमता को प्रदर्शित कर सकते हैं। यह सिद्धांत हमें मार्क्स के ऐतिहासिक अर्थ के माध्यम से दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान पर विचार करने में मदद कर सकता है, साथ ही समाज की अंतर्निहित गतिशीलता को समग्र रूप से समझने में मदद कर सकता है, न कि केवल अलग-अलग इकाइयों के रूप में उनकी कार्यक्षमता को। मार्क्सवाद बहुत हद तक उच्चतम मानवीय आदर्शों के अनुरूप समाज का सिद्धांत प्रदान कर सकता है।

कार्ल मार्क्स के विचार आज भी जीवित और प्रासंगिक हैं और 21वीं सदी में पूंजीवाद के सामने आने वाले जटिल और कठिन सवालों का जवाब दे सकते हैं। उनके विचारों और विश्लेषण के तरीकों का इस्तेमाल आज भी दुनिया को बेहतर बनाने के लिए किया जा सकता है।

हाल ही में अरबपतियों के बीच बढ़ती असमानता, कॉर्पोरेट दिग्गजों द्वारा धन संचय, कॉर्पोरेट कर की दरों में गिरावट, कॉर्पोरेट मुनाफे में वृद्धि, वास्तविक मजदूरी में गिरावट, भारत में कार्य के घंटे 8 घंटे से बढ़ाकर 12 घंटे प्रतिदिन करने का प्रस्ताव, श्रमिक वर्ग के लिए अहितकर और बड़े-बड़े व्यापारिक घरानों के लिए लाभप्रद श्रम कानूनों में बदलाव, यह सब बताते हैं कि मार्क्सवाद आज अधिक प्रासंगिक क्यों है।

अंत में, यह समझ कि पूंजीवादी बाजार अर्थव्यवस्था स्वचालित रूप से स्व-विनियमित प्रणाली नहीं थी; बल्कि, यह समय-समय पर स्व-निर्मित टूटने की अवधि में प्रवेश करती थी। मार्क्स ने इन अवधियों को 'संकट' कहा; आज, हम एक हल्के शब्द, 'मंदी' का उपयोग करते हैं। इनमें से सबसे हालिया, 2007-08 में शुरू हुआ, और अमेरिका का हालिया बैंकिंग संकट, इसकी गंभीरता, दृढ़ता और वैश्विक प्रभाव को देखते हुए पुराने उपनाम को सही ठहराता है।

मार्क्स कहाँ असफल हुए?

हालाँकि, मार्क्स मानवीय व्यवहार और भावनाओं की पेचीदगियों का अध्ययन करने में विफल रहे। मार्क्स अमानवीकरण के अंधेरे मनोविज्ञान का अध्ययन करने में भी विफल रहे- दूसरों को समान से कम समझना। अमानवीकरण एक मानसिक खामी है जो हमें किसी व्यक्ति या समूह को सकारात्मक मानवीय गुणों से वंचित करने की प्रक्रिया में अन्य लोगों को नुकसान पहुँचाने की अनुमति देती है।

अमानवीकरण का अर्थ है दूसरों में पूर्ण मानवीयता का अभाव, साथ ही इसके साथ होने वाली क्रूरता और पीड़ा। ऐसा नहीं है कि केवल पूंजीपति ही मजदूरों का अमानवीकरण करते हैं, बल्कि जाति, रंग, लिंग, शक्ति, पद, धर्म, आय और धन के आधार पर भेदभाव के आधार पर भी अमानवीकरण होता है। धन, शक्ति और मान्यता प्राप्त होने पर मानव व्यवहार बदल जाता है। बहुत से लोग धन या शक्ति प्राप्त करने के बाद अपने लोगों को भूल जाते हैं।

समाज के निचले तबके का व्यक्ति जब उच्च पद पर आसीन होता है या धन-संपत्ति अर्जित करता है, तो वह अपने ही समुदाय से घृणा करने लगता है। मानव व्यवहार लालच, भावना और श्रेष्ठता या आधिपत्य का आनंद लेने की इच्छा से भी प्रभावित होता है। आज हम देखते हैं कि कई शीर्ष लोग, मंत्री, नौकरशाह और कॉरपोरेट गरीब पृष्ठभूमि से आने के बावजूद समाज के गरीब वर्ग से घृणा करते हैं। इसके अलावा, कोई भी विचारधारा राजनीतिक रुख लेने पर हिंसा का रूप ले सकती है।

चाहे कोई गरीब/मजदूर वर्ग का समर्थक हो या अमीरों का, वह बुनियादी दर्शन को नजरअंदाज करके किसी भी कीमत पर सत्ता बनाए रखना चाहेगा। जब आत्म-प्रशंसा का जुनून दर्शन से ज्यादा हो जाता है, तो व्यक्ति अहंकारी व्यवहार कर सकता है। इसका मतलब है कि समाज में संतुलन बनाए रखने के लिए हमेशा एक मजबूत ब्रेक या जाँच और संतुलन, अमीर/शक्तिशाली/शासक वर्ग/कॉर्पोरेट के शोषण का विरोध जरूरी है।

निष्कर्ष

साम्यवाद और समाजवाद दोनों ही पूंजीवाद का विरोध करते हैं, जो निजी स्वामित्व वाली एक आर्थिक प्रणाली है और निजी संपत्ति के स्वामित्व या हस्तांतरण के अधिकार की रक्षा करने वाले कानूनों की एक प्रणाली है। जब मार्क्स परिदृश्य में उभरे, तो पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों का बहुत शोषण किया जा रहा था। इसलिए, उन्होंने शोषण के खिलाफ लड़ने पर जोर दिया। मूल रूप से, उनका दर्शन सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत अधिकारों और सम्मान के लिए लड़ना है। समय बीतने के साथ व्याख्या भी बदलनी चाहिए। उदाहरण के लिए, एक समय था जब बहुविवाह को प्रोत्साहित किया जाता था; अब यह कानून द्वारा दंडनीय है।

पूंजीवाद हमेशा संकटों का सामना करता है, लेकिन लोगों को अधिक लालची, भ्रष्ट और बेईमान बनाकर जीवित रहता है। जब अधिक लोग लालची हो जाते हैं, तो वे किसी भी तरह से अधिक धन इकट्ठा करने की कोशिश करते हैं; अधिक उत्पादन और उपभोग करते हैं। इससे आर्थिक गतिविधियों और जीडीपी वृद्धि में वृद्धि हो सकती है, लेकिन परिणामस्वरूप भारी असमानता और प्राकृतिक संसाधनों की कमी के साथ-साथ पर्यावरणीय गिरावट और प्रदूषण होता है।

इसके विपरीत, समाजवाद सार्वजनिक स्वामित्व और उत्पादन के साधनों के विनियमन की अवधारणा पर आधारित है, लेकिन व्यक्ति अभी भी संपत्ति के मालिक हो सकते हैं। वर्ग क्रांति से उभरने के बजाय, समाजवादी सुधार मौजूदा सामाजिक और राजनीतिक संरचनाओं के भीतर हुआ है, चाहे वे लोकतांत्रिक, तकनीकी, कुलीनतंत्र या अधिनायकवादी हों।

समाजवाद के लिए त्याग की भावना की आवश्यकता होती है जो कई लोगों को पसंद नहीं है। इसलिए, जब उपभोक्तावाद चरम पर हो और लोग सुखवाद को अपना रहे हों, तो समाजवाद को बनाए रखना मुश्किल हो जाता है। धन और ईमानदारी तथा त्याग के समान वितरण पर जोर देने वाला समाजवाद बहुत अधिक विकास नहीं कर सकता है, लेकिन जीवन स्तर में सुधार, गुणवत्तापूर्ण जीवन की ओर ले जा सकता है।

समाजवादी सरकार में 2 प्रतिशत की वृद्धि दर पूंजीवादी समाज में 8 प्रतिशत की वृद्धि दर से अधिक सकारात्मक प्रभाव डालती है। समाजवाद सतत विकास सुनिश्चित कर सकता है और जलवायु परिवर्तन के हानिकारक प्रभाव को कम कर सकता है। लेकिन पूंजीवाद इसे और भी अधिक बढ़ा देगा और इसे और भी अधिक गंभीर बना देगा। इसलिए मार्क्स के विचार आज अधिक प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ

1. बेनीपुरी रामवृक्ष, कार्ल मार्क्स, गार्गी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1951
2. सांस्कृत्यायन राहुल, कार्ल मार्क्स, किताब महल, इलाहबाद, 1988
3. शर्मा श्रीराम आचार्य, मानवीय समता के प्रतिष्ठता महर्षि कार्ल मार्क्स, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, साम्यवाद प्रोपगंडा विभाग द्वारा मुद्रित, नई दिल्ली
4. ए मैनुकयान, न्यू टाइम्स, 1 जनवरी 1940 के अंक से
5. सांस्कृत्यायन राहुल, साम्यवाद ही क्यों? किताब महल, इलाहबाद, 1943
6. https://www.investopedia.com/terms/k/keynesianeconomics.asp
7. Karl Marx: His Books, Theories, and Impact (investopedia.com)
8. https://www.deccanherald.com/opinion/panorama/burdened-telecom-sector-awaitsgovernment-intervention-1029655.html
9. Saad-Filho, Alfredo. The Value of Marx: Political Economy for Contemporary Capitalism. London: Routledge, 2002.
10. Saito, Kohei. Karl Marx's Ecosocialism: Capital, Nature, and the Unfinished Critique of Political Economy, Monthly Review Press 2017.

बौद्धदर्शन में चित्त परिशोधन की अवधारणा (ब्रह्मविहार के परिप्रेक्ष्य में)

दीपिका कुमारी

शोधार्थी, विश्वविद्यालय दर्शनशात्र विभाग, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

बौद्ध दर्शन में चार 'ब्रह्मविहार' चार नैतिक सदगुण हैं। इन्हें चार अपरिमित भी कहते हैं। बौद्ध नीतिशास्त्र में चित्त परिशोधन के उपकरण के रूप में चार ब्रह्मविहारों–मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा, को केन्द्रिय स्थान प्राप्त है। ये सिद्धांत मनुष्य को आनन्द और शांति की प्राप्ति के लिए नैतिक आधार प्रस्तुत करते हैं।

ब्रह्मविहार का विस्तृत विवरण हमें दीघनिकाय में मिलता है। यह दो शब्दों 'बह्म' और 'विहार' से मिलकर बना है। ब्रह्म' का अर्थ है 'परमतत्व' या 'ईश्वर' और 'विहार' का अर्थ है 'निवास'। अत: 'ब्रह्मविहार' का शाब्दिक अर्थ हुआ 'ब्रह्म की तरह रहना'। मेत्तासुत्त में शाक्यमुनि ने कहा है कि उपरोक्त चार ब्रह्मविहारों अथवा अपरिमितों का पालन करने से साधक का पुनर्जन्म ब्रह्मलोक में होता है। ब्रह्म सर्वोच्च, शुद्ध एवं सर्वोत्तम तत्व है। चार ब्रह्मविहारों का उल्लेख पतंजलिकृत योगसूत्र में भी मिलता है। चार ब्रह्मविहारों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है–

मैत्री

प्रथम ब्रह्मविहार 'मैत्री' है। 'मैत्री' की प्रवृत्ति को परहिताय माना गया है। जीवों के सुखी होने पर अपने को प्रफुल्लित पाना एवं उनके हित को बढ़ाना मैत्री है। जीवों से द्वेष न करना तथा उनके प्रति राग का न होना मैत्री के अंतर्गत माना जाता है। विसुद्धिमग्ग के अनुसार मैत्री की भावना करने के अभिलाषी, पलिबोधों को नष्ट कर चुके एवं कर्मस्थान को ग्रहण कर चुके आदिकर्मिक योगी को भोजन समाप्त कर तथा भोजनजनित आलस्य को दूर कर, एकान्त स्थान में अच्छी तरह बिछाये आसन पर सुखपूर्वक बैठकर, सर्वप्रथम द्वेष या वैर के दोष एवं क्षान्ति अर्थात् क्षमा और सहनशीलता के गुण पर विचार करना चाहिए।[1] मैत्री की भावना के लिए द्वेष का नाश एवं शांति की प्राप्ति आवश्यक है नहीं तो किसी अदृष्टय दोष का प्रहाण तथा अविदित गुण की प्राप्ति संभव नहीं है। अंगुत्तरनिकाय में भी कहा गया है–"द्वेष के वशीभूत, उपहत चित्त वाला द्वेषी जीवहिंसा भी करता है।"[2] अत: द्वेष में दोष देखना चाहिए। "बुद्धगण क्षान्ति अर्थात् तितिक्षा को परम तप, एवं निर्वाण को परमपद बतलाते हैं"।[3] धम्मपद में यह भी कहा गया है–क्षांतिबल जिसका सैन्यबल है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।[4] संयुक्तनिकाय में कहा गया है–क्षांति से बढ़कर कुछ नहीं है।[5]

जिसका दोष देख लिया गया, उस द्वेष से चित्त को पृथक करने के लिए एवं जिसका गुण ज्ञात हो गया हो ऐसी क्षांति से चित्त को जोड़ने के लिए मैत्री भावना का आरंभ करना चाहिए। प्रारंभ में मैत्री की भावना का प्रयोग इन व्यक्तियों के प्रति नहीं करना चाहिए–अप्रिय व्यक्ति, घनिष्ठ मित्र, मध्यस्थ अर्थात् न प्रिय, न अप्रिय और वैरी पुरुष। असमान लिंग के किसी व्यक्तिविशेष के प्रति भी मैत्री की भावना नहीं करनी चाहिए।[6] ऐसा इसलिए कि विचार के स्तर पर अप्रिय को प्रिय अर्थात् मैत्री के आलंबन के स्थान पर रखने से साधक मानसिक तनाव के कारण क्लांत हो जाता है। घनिष्ठ मित्र को मध्यस्थ के स्थान पर रखने से भी वह क्लांत हो जाता है अर्थात् मानसिक थकान का अनुभव करता है। उसे थोड़ा भी दु:ख होने पर योगी क्लांत–सा हो उठता है। वैसे ही मध्यस्थ को सम्मानित एवं प्रिय स्थान पर रखने से वह क्लांत हो जाता है। वैरी का अनुस्मरण करने से क्रोध उत्पन्न होता है। इसलिए प्रारंभ में इनके प्रति मैत्री की भावना नहीं करनी चाहिए।[7] असमान लिंग के व्यक्तिविशेष से मैत्री भावना करने से राग उत्पन्न होता है। जब

किसी अमात्यपुत्र ने कुलपूग स्थविर से पूछा कि ''मैत्री की भावना किसमें करनी चाहिए?'' तो स्थविर का जवाब था ''प्रिय व्यक्ति में।'' उसे अपनी पत्नी प्रिय थी, इसलिए उसमें मैत्री की भावना करते हुए सारी रात भित्तियुद्ध करता रहा। इसलिए असमान लिंग के व्यक्ति के प्रति यह भावना नहीं करनी चाहिए।[8]

मृतक के प्रति भी मैत्री की भावना नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे न तो अर्पणा और न उपचार ही प्राप्त होता है।[9]

सर्वप्रथम ''मैं सुखी होऊँ, दु:खरहित होऊँ'' या ''मैं विरहित, हानिरहित, अशांतिरहित, सुखी होकर जीऊँ'' ऐसी ही बार-बार स्वयं के प्रति भावना करनी चाहिए।[10] अभिधम्मपिटक में कहा गया है-जिस प्रकार कोई व्यक्ति प्रिय, मनोहारी विषय देखकर मैत्री करता है, वैसे ही सभी व्यक्तियों के प्रति मैत्री का विस्तार होता है।[11] पटिसंभिदामग्ग में कहा गया है-सभी सत्त्व अर्थात् सभी प्राणी, सभी भूत, सभी पुद्गल, सभी व्यक्ति वैररहित, अशांतिरहित, हानिरहित हों, सुखपूर्वक जियें।[12]

बुद्ध ने भी सभी दिशाओं में चित्त से विचार कर, स्वयं से बढ़कर प्रिय किसी को नहीं पाया। इसी प्रकार पृथक्-पृथक् दूसरों को भी अपनी-अपनी आत्मा प्रिय है। अत: स्वार्थ के लिए दूसरे की हिंसा न करें।[13] इस प्रकार यह बतलाया गया है-कि पहले स्वयं को उदाहरण बनाकर मैत्री का विस्तार करे, उसके बाद भावना में सुविधा की दृष्टि से, जो उसके प्रिय, अभीष्ट, गौरव के पात्र, भावना करने योग्य आचार्य या आचार्य के समान, उपाध्याय या उपाध्याय के समान हों, उनके द्वारा दिए गए दान, प्रियवचन आदि का जो कि प्रिय एवं अभीष्ट हैं (तथा शील, श्रुत आदि का, जो कि गौरव के पात्र बनाने वाले हैं, अनुस्मरण करते हुए-''ये सत्पुरुष सुखी हों, दु:खरहित हों''-आदि प्रकार से मैत्री भावना करनी चाहिए।[14]

बौद्धदर्शन में मैत्री का बहुत महत्व है। बिना भेदभाव और बिना स्वार्थ के परहित की भावना ही मैत्री है। मैत्री के अभ्यास से बौद्धभिक्षु क्रोध, घृणा, द्वेष आदि पर विजय पाता है। मेत्तासुत्त के अनुसार बौद्ध साधक को अपने चित्त में सभी प्राणियों के प्रति वैसा ही प्रेम विकसित करना चाहिए जैसा एक माँ अपने बच्चे के प्रति करती है।[15] यह एक ऐसा प्रेम है जिसमें 'मैं' और 'आप' का भेद समाप्त हो जाता है।

मैत्री के विकास की दो विधियाँ हैं:

1. कुशल कर्म का एक अंग के रूप में या मन, वचन एवं शरीर से बिना फल की इच्छा के इसकी पूर्णता या संपादन। यदि फल की इच्छा करते हुए हम कोई कर्म करते हैं तो हमें दु:ख मिलता है और मैत्री की भावना नष्ट हो जाती है।
2. दूसरी विधि है-मैत्री पर चित्त को लगाना अर्थात् यह ध्यान की विधि है।[16]

करुणा

'करुणा' का अर्थ है 'दया' अर्थात् 'दूसरों के दु:ख दूर करने की हृदय में भावना।' दूसरे व्यक्तियों के दु:ख को दूर कर उन्हें आनन्द या सुख उपलब्ध कराने हेतु स्वयं दु:ख भी सहना पड़े तो पीछे नहीं हटना चाहिए।[17] करुणा एक माँ का ऐसा गुण है कि उसका हर विचार, वचन और कर्म अपने बच्चे को हर तरह के दु:ख से मुक्ति के लिए ही होता है। इसका उद्देश्य जनता के दु:ख, उसके प्रति निर्दयता और हिंसा की समाप्ति है। महात्मा बुद्ध को 'महाकारुणिक' कहा गया है क्योंकि उन्होंने सभी प्राणियों के प्रति महाकरुणा प्रकट की और कभी भी शत्रुता, हिंसा, विवाद को प्रोत्साहन नहीं दिया। अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा है-'मैं जगत् से झगड़ा नहीं करता, बल्कि जगत् ही मुझसे झगड़ा करता है। धम्म का गुरु संसार में किसी से झगड़ा नहीं करता।'

बोधि की प्राप्ति के बाद बोधिसत्त्व जितनी भी पारमिताओं को विकसित करता है, उनका आरंभ करुणा से होता है। यह बौद्ध नीतिशास्त्र की रीढ़ है। करुणा की अवधारणा का बौद्धधर्म में अपरिमित महत्त्व है। इसका संबंध तुच्छ प्राणी से लेकर बौद्धिक मानव से है। यह मनुष्य, कीट, पशु या मनुष्य और मनुष्य, ऊँच और नीच, अमीर और गरीब, सबल और निर्बल, बुद्धिमान और मूर्ख, गोरा और काला, ईसाई, हिंदु, मुस्लिम के बीच कोई भेद नहीं करता। करुणा इन विशिष्टताओं से परे सभी पर अपरिमित रूप से लागू होती है।

महात्मा बुद्ध द्वारा दी गई करुणा और प्रेम की शिक्षा की वजह से ही सम्राट अशोक ने शस्त्रयुद्ध को त्याग दिया और युद्धविजय के स्थान पर धम्मविजय का उद्घोष किया। कलिंगयुद्ध में हुई हिंसा के परिणाम से वह भावविह्वल हो उठा और उसके हृदय में

महान करुणा उमड़ पड़ी। फिर उसने कभी भी साम्राज्य विजय हेतु युद्ध न करने की शपथ ली और धम्मविजय की घोषणा की। इसका उल्लेख 13वें शिलालेख में है। उसने प्रेम और अहिंसा के संदेश का प्रसार किया।[18] इसीलिए करुणा के विषय में कहा गया है–'करुणा सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति की भावना है। आदर्शतम रूप में यह प्रज्ञा से संबद्ध है'। महायान बौद्धमत के अनुसार करुणा की मूल भावना 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना है।[19]

करुणा की भावना के अभिलाषी को करुणारहित होने के दोष एवं करुणा के गुण का प्रत्यवेक्षण करते हुए करुणाभावना का आरंभ करना चाहिए, किंतु उसे भी इसका अभ्यास प्रिय व्यक्तियों आदि से प्रारंभ नहीं करना चाहिए (क्योंकि प्रिय तो प्रिय ही होता है, अतिप्रिय मित्र अतिप्रिय मित्र ही, मध्यस्थ मध्यस्थ ही और वैरी वैरी ही होता है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मविहार में परिवर्तन से उस प्रिय आदि के प्रियत्व आदि में परिवर्तन नहीं होता। साथ ही लिंग का विपरीत होना, मृत होना तो आलंबन बनाये जाने के अयोग्य ही है।[20] जिस प्रकार एक दुर्गतिग्रस्त, दुरावस्था प्राप्त व्यक्ति को देखकर भिक्षु करुणा करता है, उसी प्रकार वह सब सत्त्वों को करुणा का आलंबन बनाता है।[21]

पहले वैरी व्यक्ति पर करुणा करनी चाहिए। उसके प्रति चित्त को मृदु बनाकर, फिर दुर्गतिग्रस्त, फिर प्रिय व्यक्ति, फिर स्वयं के प्रति करुणा भावना करनी चाहिए।[22]

मुदिता

मुदिता वह भावना है जिसमें दूसरों को संपन्न और सुखी देखकर हर्ष होता है। इसमें अन्य व्यक्तियों की संपत्ति, पुण्य तथा गुणों की वृद्धि देखकर ईर्ष्या, द्वेष या जलन न होकर हर्षभाव होता है।[23] जब हम दूसरे के सुख से हर्षित होते हैं तो हमारा चित्त शुद्ध होता है। भूखे व्यक्ति को देखकर करुणावश उसे हम भोजन देते हैं। जब उसकी भूख मिटती है तो वह प्रसन्न होता है और उसे प्रसन्न देखकर हमें भी प्रसन्नता होती है। इस प्रकार का निःस्वार्थ कर्म करने से शुद्ध आनन्द या मुदिता की प्राप्ति होती है।

पहले प्रिय व्यक्ति के प्रति मुदिता उत्पन्न करने के बाद, मध्यस्थ के प्रति, फिर वैरी के प्रति मुदिता भावना उत्पन्न करनी चाहिए।[24] बौद्ध साहित्य में मुदिता की चर्चा उतनी नहीं मिलती है जितनी मैत्री और करुणा की। किंतु कुछ भिक्षु मुदिता को मैत्री और करुणा के विकास के लिए पूर्व शर्त्त मानते हैं।

उपेक्षा

उपेक्षा चित्त की वह अवस्था है जिसमें सभी जीवों के प्रति समभाव उत्पन्न हो जाता है। प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, अनुकूल-प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में वासनाहीन होकर भिक्षु उदासीन एवं तटस्थ रहता है। सूक्ष्मतम उपेक्षाभाव अंतिम समाधि का परिपाक कहा जा सकता है।[25] 'उपेक्षा' का अर्थ है 'चित्त की संतुलित दशा' जो दो अन्तों 'आसक्ति' और 'उदासीनता' के मध्य की स्थिति है। चारों ब्रह्मविहार एक-दूसरे से परस्पर-संबद्ध और परस्पराश्रित हैं। परंतु उपेक्षा अन्य तीन को नियंत्रित करती है। उपेक्षा सबसे अनिवार्य गुण है, इसका पालन सबसे कठिन है। इन गुणों के विकास के लिए मनुष्य में बहुत धैर्य, शक्ति और दृढ़संकल्प की आवश्यकता होती है। उपेक्षा ध्यान को सुरक्षा प्रदान करती है। इससे आत्मसाक्षात्कार होता है।[26]

'उपेक्षा' अनुरोध और विरोध का निषेध कर मध्यमार्ग को अपनाती है। साधक न तो सुख में अति उत्तेजित होता है और न दुःख से विचलित ही होता है। गीता में इसी को 'समत्वयोग' या 'समबुद्धियोग' कहा गया है। गीता के छठे अध्याय के 32वें श्लोक में कहा गया है- "हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब में सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।"[27]

उपेक्षाभावना के अभिलाषी को, जो मैत्री आदि का भली भाँति अभ्यास करने के बाद उससे उठकर "सुखी हों" आदि के रूप में सत्त्वों के भोग विलास के प्रति मनस्कारयुक्त होने से, प्रतिघ एवं अनुनय के समीपवर्ती होने से, सौमनस्य के योग के कारण स्थूल होने से, पूर्व की भावना में दोष देखते हुए जो व्यक्ति इस भिक्षु के लिए प्रकृति से ही मध्यस्थ हो; उसके लिए उपेक्षा करते हुए उपेक्षा करनी चाहिए तत्पश्चात् प्रिय व्यक्ति आदि के प्रति। जैसे भिक्षु उपेक्षायुक्त चित्त से एक दिशा को आलंबन बनाकर विहार करता है तथा किसी ऐसे व्यक्ति को जो न तो प्रिय है और न अप्रिय, को देखकर उपेक्षा होती है, वैसे ही वह सभी सत्त्वों के प्रति उपेक्षा के साथ साधना करता है।[28]

मैत्री सभी प्राणियों के प्रति प्रेम है, करुणा दु:खी प्राणियों के प्रति प्रेम, मुदिता संपन्न लोगों के प्रति प्रेम तथा उपेक्षा अच्छा और बुरा, प्रिय और अप्रिय, सुन्दर और कुरूप, सुखी और दु:खी सभी प्राणियों के प्रति भेदभावरहित प्रेम भावना है। इन गुणों के द्वारा वर्तमान समाज को विनाश से बचाया जा सकता है। अत: चार ब्रह्मविहारों के पालन से विश्व में शांति की स्थापना की जा सकती है और यही तो चिन्तनशील मनुष्य के जीवन एवं सभ्य समाज का चरम लक्ष्य है।

संदर्भ एवं टिप्पणी

1. विसुद्धिमग्गो, दुतियोभागो, हिन्दी अनुवादसहितो, प्रधानसंपादक, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी, 2002, पृ.147.
2. अंगुतरनिकाय, भाग 1, पृ. 284.
3. धम्मपद, पृ. 184.
4. विसुद्धिमग्गो, दुतियोभागो, हिन्दी अनुवादसहितो, प्रधानसंपादक, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी, 2002, पृ. 147.
5. संयुक्तनिकाय, भाग 1, पृ. 356.
6. विसुद्धिमग्गो, दुतियोभागो, हिन्दी अनुवादसहितो, प्रधानसंपादक, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी, 2002, पृ. 148.
7. वहीं.
8. विसुद्धिमग्गो, दुतियोभागो, हिन्दी अनुवादसहितो, प्रधानसंपादक, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी, 2002, पृ. 148-149.
9. वही, पृ. 149.
10. वहीं.
11. अभिधम्मपिटक, भाग 2, पृ. 327.
12. खुद्दकनिकाय, भाग 5, पृ. 379.
13. संयुक्तनिकाय, भाग 1, पृ. 126.
14. विसुद्धिमग्गो, दुतियोभागो, हिन्दी अनुवादसहितो, प्रधानसंपादक, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी, 2002, पृ. 150-151.
15. Dhammapada, K. Sir, What Buddhists Believe, Taiwan, 1993, pg. 168.
16. Pandita Sayadaw. U., On The Path of Freedom, Malayasia, 1995, pg. 261-262.
17. Ibid, pg. 281- 282.
18. Piyadasi Thera, The Spectrum of Buddhism, Taiwan, 1991, pg. 243-245.
19. "Karuna is active sympathy extended to all sentient beings. Ideally, it is combined with Prajna (Wisdon), which in Mahayana Buddhism means the realisation that all sentient beings exists in each other and take identity from each other."....Brahmavihara Wikipedia, Brahmavihara Practice in The Vishuddhimagga, About.com Guide, Barbara O'Brien.
20. विसुद्धिमग्गो, दुतियोभागो, हिन्दी अनुवादसहितो, प्रधानसंपादक, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी, 2002, पृ. 175-176.
21. अभिधम्मपिटक, भाग 2, पृ. 328.
22. विसुद्धिमग्गो, दुतियोभागो, हिन्दी अनुवादसहितो, प्रधानसंपादक, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी, 2002, पृ. 177-178.
23. या मसीह, तुलनात्मक धर्मदर्शन, 1997, पृ. 108.
24. विसुद्धिमग्गो, दुतियोभागो, हिन्दी अनुवादसहितो, प्रधानसंपादक, स्वामी द्वारिकादासशास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी, 2002, पृ. 179.
25. या मसीह, तुलनात्मक धर्मदर्शन, 1997, पृ. 108.
26. Adhikari, A (ed.), Sambhasha, Sri Lanka, 1991, pg. 112.
27. ''आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दु:खं स योगी परमो मत: ।।32।।''—— श्रीमद्भगवद्गीता, तत्त्वविवेचनी हिन्दी-टीका, टीकाकार, जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं॰ 2067, पृ. 329.
28. अभिधम्मपिटक, 2-231.

ग्रीन कमेस्ट्री उत्पत्ति वर्तमान स्थिति और भविष्य की चुनौतियाँ

डॉ० नरेन्द्र कुमार

प्राचार्य, महाराजा कालेज, आरा

प्रस्तावना

पिछले दशक के दौरान, ग्रीन केमिस्ट्री ने यह प्रदर्शित किया है कि कैसे मौलिक वैज्ञानिक पद्धतियाँ आर्थिक रूप से लाभकारी तरीके से मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा कर सकती हैं। कई प्रमुख क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति हो रही है, जैसे कि उत्प्रेरण, सुरक्षित रसायनों और पर्यावरण के अनुकूल विलायकों का डिजाइन, और नवीकरणीय फीडस्टॉक्स का विकास। वर्तमान और भविष्य के रसायनज्ञों को पर्यावरणीय प्रभाव के लिए बढ़ी हुई जागरूकता के साथ उत्पादों और प्रक्रियाओं को डिजाइन करने के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है। ग्रीन केमिस्ट्री समुदाय के भीतर आउटरीच गतिविधियाँ रसायन विज्ञान की उन कई वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों को हल करने की क्षमता को उजागर करती हैं जिनका हम अभी सामना कर रहे हैं। ग्रीन केमिस्ट्री की उत्पत्ति और आधार एक संधारणीय दुनिया में निहित पर्यावरणीय और आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने के लिए एक मार्ग तैयार करते हैं।

ग्रीन कमेस्ट्री उत्पत्ति

ग्रीन केमिस्ट्री का उदय 20वीं सदी के अंत में पर्यावरण प्रदूषण और स्वास्थ्य जोखिमों के बारे में बढ़ती चिंताओं से हुआ। पारंपरिक रासायनिक प्रक्रियाओं में अक्सर खतरनाक विलायक, जहरीले अभिकर्मक और ऊर्जा-गहन स्थितियां शामिल होती थीं, जिससे महत्वपूर्ण अपशिष्ट और प्रदूषण होता था। 1962 में राहेल कार्सन की प्रभावशाली पुस्तक "साइलेंट सिंप्रग" ने कृषि रसायनों के अंधाधुंध उपयोग के पर्यावरणीय परिणामों पर प्रकाश डाला और टिकाऊ रासायनिक प्रथाओं की आवश्यकता के बारे में जागरूकता बढ़ाई।

ग्रीन केमिस्ट्री की अवधारणा 1990 के दशक की शुरुआत में संयुक्त राज्य अमेरिका में उभरी। 1990 में, अमेरिकी कांग्रेस ने प्रदूषण रोकथाम अधिनियम पारित किया, जिसमें प्रदूषण को रोकने पर जोर दिया गया, न कि केवल उपचार पर। इस अधिनियम ने पर्यावरण संरक्षण एजेंसी (ईपीए) को प्रदूषण रोकथाम को बढ़ावा देने और स्वच्छ उत्पादन प्रौद्योगिकियों के विकास को प्रोत्साहित करने का अधिकार दिया। ईपीए ने ग्रीन केमिस्ट्री को एक महत्वपूर्ण रणनीति के रूप में पहचाना जिससे प्रदूषण को कम किया जा सके और मानव स्वास्थ्य की रक्षा की जा सके।

ग्रीन केमिस्ट्री को औपचारिक रूप देने में पॉल अनास्तास और जॉन वार्नर अग्रणी थे। 1998 में, उन्होंने "ग्रीन केमिस्ट्री: थ्योरी एंड प्रैक्टिस" नामक एक प्रभावशाली पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने ग्रीन केमिस्ट्री के बारह सिद्धांतों को रेखांकित किया। ये सिद्धांत रासायनिक उत्पादों और प्रक्रियाओं के डिजाइन के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं जो सुरक्षित, अधिक कुशल और पर्यावरण के अनुकूल हैं। बारह सिद्धांतों में शामिल हैं।

2000 के दशक में ग्रीन कमेस्ट्री संगठन, जैसे ग्रीन कैमिस्ट्री रिसर्च का अधिभूतकरण हुआ, जिसने ग्रीन कमेस्ट्री के सिद्धांतों को बढ़ावा देने और अनुसंधान में सहयोग बढ़ाने के लिए वैश्विक स्तर पर कार्य किया। इस समय के दौरान, कई देशों ने ग्रीन कमेस्ट्री को अपने औद्योगिक विकास कार्यक्रमों में शामिल किया, जिससे ग्रीन उत्पादों और प्रक्रियाओं की मांग में वृद्धि हुई।[1]

ग्रीन कमेस्ट्री की वर्तमान स्थिति

ग्रीन केमिस्ट्री को अपनाने से कई क्षेत्रों में नवाचार और विकास हुआ है। उदाहरण के लिए, फार्मास्युटिकल उद्योग ने फार्मास्युटिकल उत्पादों के संश्लेषण के लिए अधिक टिकाऊ प्रक्रियाओं को विकसित करने के लिए ग्रीन केमिस्ट्री सिद्धांतों को अपनाया है। इसमें सुरक्षित अभिकर्मकों और विलायक का उपयोग करना, अपशिष्ट को कम करना और परमाणु अर्थव्यवस्था में सुधार करना शामिल है। हाल के वर्षों में, नैनो प्रौद्योगिकी और सामग्री विज्ञान के क्षेत्र में ग्रीन केमिस्ट्री में रुचि बढ़ रही है।[2]

दवा उद्योग में, ग्रीन कमेस्ट्री पद्धतियों ने अधिक कुशल और पर्यावरण के अनुकूल दवा संश्लेषण मार्गों के विकास को बढ़ावा दिया है। नवीन पद्धतियों का उपयोग करके, शोधकर्ता संश्लेषण मार्गों को सुव्यवस्थित कर रहे हैं, अपशिष्ट को कम कर रहे हैं, और बायोडिग्रेडेबल दवा फॉर्मूलेशन बना रहे हैं। ये प्रगति न केवल पर्यावरण को लाभ पहुंचाती है बल्कि लागत प्रभावी दवा विकास को भी बढ़ावा देती है।

कृषि उद्योग में ग्रीन कमेस्ट्री पद्धतियों के साथ परिवर्तन हुआ है। ग्रीन कमेस्ट्री पर्यावरण के अनुकूल कीटनाशकों, शाकनाशियों और उर्वरकों के उत्पादन को सक्षम बनाता है। उच्च फसल पैदावार सुनिश्चित करते हुए मिट्टी और पानी के प्रदूषण को कम करने के लिए टिकाऊ कीटनाशकों, उर्वरकों और फसल सुरक्षा विधियों का विकास किया जा रहा है। ये विकास पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने और खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

स्वच्छ ऊर्जा प्रौद्योगिकियों को आगे बढ़ाने में ग्रीन कमेस्ट्री ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हरित ऊर्जा क्षेत्र सौर सेल, बैटरी और अन्य नवीकरणीय ऊर्जा प्रौद्योगिकियों के निर्माण के लिए ग्रीन केमिस्ट्री सिद्धांतों पर बहुत अधिक निर्भर करता है। पृथ्वी पर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध सामग्रियों और पर्यावरण के अनुकूल प्रक्रियाओं का उपयोग करके, नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन के पर्यावरणीय प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

ग्रीन कमेस्ट्री में नवाचारों ने संधारणीय सामग्रियों के उत्पादन का मार्ग प्रशस्त किया है। बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक से लेकर पर्यावरण के अनुकूल वस्त्रों तक, ग्रीन केमिस्ट्री विज्ञान ने सामग्री विज्ञान उद्योग में क्रांति ला दी है। शोधकर्ता कम ऊर्जा खपत और कम उत्सर्जन वाली सामग्रियों का उत्पादन करने के नए तरीके खोज रहे हैं, जिससे अधिक संधारणीय भविष्य का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। यह लैंडफिल और महासागरों पर बोझ को कम कर रहा है। बायोडिग्रेडेबल पॉलिमर, पौधे-आधारित प्लास्टिक और अभिनव रीसाइक्लिंग प्रक्रियाएँ कुछ उदाहरण हैं कि कैसे ग्रीन कमेस्ट्री सामग्री उद्योग को नया रूप दे रहा है।

कपड़ा उद्योग अपने भारी जल उपभोग, रासायनिक उपयोग और प्रदूषण के लिए कुख्यात है। इस क्षेत्र में ग्रीन कमेस्ट्री हस्तक्षेप पर्यावरण के अनुकूल रंगों को विकसित करने, पानी के उपयोग को कम करने और टिकाऊ कपड़ा परिष्करण प्रक्रियाओं को नियोजित करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। ग्रीन केमिस्ट्री सिद्धांतों को अपनाकर, कपड़ा उद्योग पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य दोनों पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

औद्योगिक अपशिष्ट लंबे समय से पर्यावरण के लिए चिंता का विषय रहा है। हालांकि, ग्रीन कमेस्ट्री अपशिष्ट न्यूनीकरण और पुनर्चक्रण की अभिनव रणनीतियों को प्रस्तुत करता है। अपशिष्ट पदार्थों को मूल्यवान उत्पादों या फीडस्टॉक्स में परिवर्तित करके, उद्योग अपने पर्यावरणीय पदचिह्न को महत्वपूर्ण रूप से कम कर सकते हैं और एक परिपत्र अर्थव्यवस्था मॉडल की ओर बढ़ सकते हैं, जहां संसाधनों का लगातार पुनः उपयोग और पुनः उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार गौरवपूर्ण अनुसंधान और प्रौद्योगिकी के विकास ने ग्रीन कमेस्ट्री के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की है। हाल के वर्षों में बायोफीडस्टॉक, जैसे कि बायोमास और बायोडीजल, का उपयोग बढ़ा है। इसके अतिरिक्त, कई कंपनियाँ ग्रीन कैटेलिस्ट और जल-आधारित रसायनों का उपयोग कर रही हैं।

ग्रीन कमेस्ट्री अपनाने में चुनौतियाँ

ग्रीन कमेस्ट्री ने महत्वपूर्ण प्रगति की है, लेकिन कई चुनौतियां हैं जिन्हें भविष्य में व्यापक रूप से अपनाने के लिए संबोधित करने की आवश्यकता है। यें चुनौतियाँ इस प्रकार है -

1. प्रारंभिक लागत और निवेश - ग्रीन कमेस्ट्री पद्धतियों को लागू करने में प्राथमिक चुनौतियों में से एक है पारंपरिक रासायनिक प्रक्रियाओं से अधिक टिकाऊ विकल्पों में संक्रमण के लिए आवश्यक प्रारंभिक लागत और निवेश। नई

तकनीकें, उपकरण और अनुसंधान और विकास प्रयास महंगे हो सकते हैं, जिससे उद्योगों, विशेष रूप से छोटे व्यवसायों के लिए वित्तीय बाधाएँ पैदा हो सकती हैं।

2. शिक्षा और जागरूकता – एक और बाधा ग्रीन कमेस्ट्री सिद्धांतों के बारे में व्यापक शिक्षा और जागरूकता की कमी है। कई उद्योग और पेशेवर हरित प्रथाओं को अपनाने के संभावित लाभों से अनजान हो सकते हैं, जिससे टिकाऊ विकल्पों के बारे में ज्ञान को बढ़ावा देना और प्रसारित करना महत्वपूर्ण हो जाता है।
3. विनियामक और नीतिगत बाधाएं – अपने संचालन में ग्रीन केमिस्ट्री को शामिल करने की चाह रखने वाले व्यवसायों के लिए विनियामक और नीतिगत बाधाओं को पार करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। मौजूदा नियम संधारणीय प्रथाओं को अपनाने के लिए पूरी तरह से समायोजित या प्रोत्साहित नहीं कर सकते हैं, जिससे अनिश्चितता और बदलाव के प्रति अनिच्छा पैदा होती है।
4. मौजूदा बुनियादी ढांचे के साथ अनुकूलता – अच्छी तरह से स्थापित उद्योगों के लिए, ग्रीन केमिस्ट्री प्रथाओं को एकीकृत करने के लिए मौजूदा बुनियादी ढांचे और प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण संशोधनों की आवश्यकता हो सकती है। यह चुनौतीपूर्ण हो सकता है, खासकर उन उद्योगों के लिए जो लंबे समय से पारंपरिक तरीकों पर निर्भर हैं।
5. टिकाऊ प्रौद्योगिकियों का विस्तार – हालांकि कुछ ग्रीन कमेस्ट्री विज्ञान नवाचार प्रयोगशाला स्तर पर आशाजनक साबित हो सकते हैं, लेकिन उन्हें औद्योगिक स्तर तक बढ़ाना तकनीकी चुनौतियों को जन्म दे सकता है। यह सुनिश्चित करना कि संधारणीय प्रौद्योगिकियां बड़े पैमाने पर उत्पादन की मांगों को पूरा कर सकें, एक महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।
6. मानसिकता में बदलाव – ग्रीन केमिस्ट्री को अपनाने के लिए मानसिकता और कॉर्पोरेट संस्कृति में मौलिक बदलाव की आवश्यकता है, क्योंकि कंपनियों को अल्पकालिक लाभ की तुलना में स्थिरता को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।[3]

भविष्य की संभावनाएँ

ग्रीन कमेस्ट्री के भविष्य में कई संभावनाएँ हैं। नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग बढ़ सकता है, जिससे पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों पर निर्भरता कम हो सकती है। सौर और पवन ऊर्जा जैसी नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों का उपयोग विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं में किया जा सकता है, जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना ऊर्जा उत्पन्न कर सकते हैं। अंतरराष्ट्रीय सहयोग भी ग्रीन कमेस्ट्री की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। विभिन्न देशों का मिलकर कार्य करना और साझा नीतियाँ बनाना ग्रीन कमेस्ट्री के लाभों को विस्तारित कर सकता है। इसके अतिरिक्त, अनुसंधान और विकास में निवेश बढ़ाना भी आवश्यक है, जिससे नए वैकल्पिक रसायनों और प्रक्रियाओं का विकास किया जा सके।

ग्रीन कमेस्ट्री का भविष्य उज्जवल दिखाई देता है। जैसे-जैसे वैश्विक जलवायु परिवर्तन की चुनौतियाँ बढ़ती हैं, रसायन विज्ञान में ग्रीन दृष्टिकोण की आवश्यकता और अधिक महसूस होती है। ऊर्जा की नई नवीकरणीय स्रोतों की खोज, जैसे सौर और पवन ऊर्जा, ग्रीन कमेस्ट्री के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

इसके अलावा, प्लास्टिक प्रदूषण को कम करने के लिए जैव-आधारित और बायोडिग्रेडेबल सामग्रियों के प्रयोग में वृद्धि हो रही है। अगले दशक में ग्रीन कमेस्ट्री के क्षेत्र में और अनुसंधान को बढ़ावा देने की आवश्यकता होगी। वैज्ञानिकों को न केवल नई प्रक्रियाएँ विकसित करनी होंगी, बल्कि मौजूदा रसायनिक उद्योगों में ग्रीन सिद्धांतों को लागू करने के लिए भी उपाय खोजने होंगे। इससे न केवल पर्यावरण की सुरक्षा होगी, बल्कि यह आर्थिक विकास के लिए भी फायदेमंद साबित होगा।

निष्कर्ष

ग्रीन कमेस्ट्री का इतिहास गहरी वैज्ञानिक जड़ों से निकला है जो औद्योगिक गतिविधियों और पर्यावरणीय मुद्दों के बीच संतुलन स्थापित करने के प्रयासों का परिणाम है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जो न केवल वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान निकाल रहा है, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी स्थायी समाधान प्रदान करने की दिशा में अग्रसर है। इसके सिद्धांत और अनुप्रयोग विभिन्न उद्योगों में फैले हुए हैं, जो पर्यावरण, मानव स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। ग्रीन केमिस्ट्री विज्ञान को अपनाना सिर्फ एक विकल्प नहीं है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए हमारे ग्रह को संरक्षित करने की आवश्यकता है। ग्रीन

केमिस्ट्री विज्ञान की शक्ति का उपयोग करके, उद्योग एक उज्जवल, स्वच्छ और अधिक संधारणीय भविष्य बना सकते हैं। जो कम जहरीले, कम ऊर्जा गहन और कम कचरा पैदा करते हैं।

हालांकि ग्रीन केमिस्ट्री विज्ञान ने महत्वपूर्ण प्रगति की है, लेकिन कई चुनौतियों हैं जिन्हें भविष्य में व्यापक रूप से अपनाने के लिए संबोधित करने की आवश्यकता है। इन चुनौतियों में ग्रीन केमिस्ट्री विज्ञान के सिद्धांतों के बारे में जागरूकता की कमी, ग्रीन केमिस्ट्री के उत्पादों और प्रक्रियाओं की लागत, ग्रीन केमिस्ट्री विज्ञान के प्रदर्शन को मापने की कठिनाई और ग्रीन केमिस्ट्री के उत्पादों के लिए उपभोक्ता की मांग की कमी शामिल है। इन चुनौतियों को दूर करके, ग्रीन केमिस्ट्री विज्ञान सतत विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

संदर्भ

1. Anastas, P. T., & Warner, J. C. (1998). Green Chemistry: Theory and Practice. Oxford University Press.
2. Kolisnyk, M., & Borrell, P. (2018). The Role of Green Chemistry in Sustainable Development. Journal of Cleaner Production, 164, 1422-1430.
3. Lancaster, M. (2016). Green Chemistry: An Introductory Text. Royal Society of Chemistry.

छायावाद के बाद की कविता का परिवेश

डॉ० शुभा तिवारी

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय आर०एन०एम० महाविद्यालय, भटगाँव, जिला-सारंगढ़, बिलाईगढ़ (छ०ग०)

'छायावादोत्तर हिन्दी कविता' को लेकर विद्वानों में गहरा मतभेद है, इसे 'जवानी का काव्य' अगंभीर काव्य, मस्ती का काव्य कहकर सतही व्याख्या की गई है। मुझे इस प्रसंग में नामवर सिंह का वह कथन याद आता है। उस काल के संश्लिष्ट एवं जटिल रूप को न देखकर अपनी सुविधा के लिए हम उस पर एक इकहरा ढांचा आरोपित करते हैं।

उन्होंने यह भी कहा है कि उत्तर छायावादी या छायावादोत्तर काल को केवल पांच-छः गीतकारों के नाम के साथ जोड़कर देखना ठीक नहीं है, क्योंकि यह वही काल है, जिसमें निराला का एक महत्वपूर्ण परिवर्तित रूप दिखलाई पड़ता है, जिसमें प्रगतिवादी का उदय हुआ, प्रयोगवाद का उदय हुआ, 'तार-सप्तक' रचा गया।'[1] उत्तर छायावाद युग की कविता की यह महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है कि हिन्दी कविता का विकास ''काव्य शैली'' की ही दिशा में न होकर काव्य की अर्थ भूमियों के प्रसार की दिशा में भी हुआ। निराला 'कुकुरमुत्ता', महँगू महँगा रहा, जैसी कविता लिखकर समाज के निम्नवर्ग की दारूण स्थिति का वर्णन कर रहे थे, पंत ने तो युगांत की घोषणा ही कर दी थी।

मेरी कोशिश छायावादोत्तर कविता का मूल्यांकन करना या उपलब्धियां गिनाना नहीं है। मेरी कोशिश है उस काल की सृर्जनात्मकता को समझना और युग के मिजाज की पड़ताल करना है। कवि मानस और काव्य संवेदना की पड़ताल के लिए 1936 से 1946 तक के संपूर्ण साहित्यिक परिदृश्य को रेखांकित करने की आवश्यकता है। क्योंकि यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं हुआ सिर्फ कवियों के भावबोध ही नहीं बदले, विषयवस्तु के साथ-साथ रूप-तत्त्व में भी परिवर्तन हुआ। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि ''वर्तमान हिंदी कविता का प्रवाह अनेक धाराओं में होकर चल रहा है।''[2]

हम गिरजा कुमार माथुर के इस कथन से सहमत हैं कि ''छायावादोत्तर काल में हिन्दी कविता में जितनी 'उथल-पुथल' हुई और जिन विविध रितियों से वह झकझोरी गयी उतना आलोड़न पहले किसी काल में नहीं हुआ।''[3]

डॉ० नन्दकिशोर नवल ने इसी संदर्भ में लिखा है ''उत्तर छायावादी कवि विगत शताब्दी के चौथे दशक में उभरकर सामने आए थे। यह दशक बहुत ही उथल-पुथल से भरा हुआ था। प्रथम स्वतंत्रता दिवस, द्वितीय सविनय अवज्ञा आंदोलन, गांधी-इरविन समझौता, आंदोलन की वापसी, कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों का निर्माण और पतन, साम्प्रदायिकता की वृद्धि तथा समाजवादी विचारों का प्रसार ये घटनाएं देश में घट रही थीं। इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति यह थी कि एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमेरिका के देशों में साम्राज्य-विरोध जोर पकड़ रहा था और यूरोप में न केवल फासिज्म का उदय हो चुका था, बल्कि द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत भी हो चुकी थी। उत्तर-छायावादी कवियों ने पूर्ण गंभीरता से आशा-निराशा से भरी इन्हीं परिस्थितियों को वाणी दी और हिन्दी कविता को देश और विश्व के व्यापक यथार्थ से जोड़कर उसे जनता तक पहुंचा दिया, क्योंकि इसी में उसकी सार्थकता थी।''[4]

उत्तर-छायावादी परिदृश्य की प्रतिनिधि मानसिकता की सहज अभिव्यक्ति है:-

हम दीवानों की क्या हस्ती, है आज यहां कल वहां चले।
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहां चलें।।

बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन', दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', गोपाल सिंह नेपाली, राम गोपाल शर्मा 'रुद्र' में भी यह मस्ती पाई जाती है। इन्हीं कवियों में 'कलक्टर सिंह केसरी', आरसी प्रसाद सिंह, जानकी वल्लभ शास्त्री और हंस कुमार तिवारी

को शुमार करना संगत प्रतीत होता है क्योंकि बिहार की रचनात्मकता को विकसित और प्रतिष्ठित करने में इनकी अहम् भूमिका है।

आरसी प्रसाद सिंह की प्रसिद्ध कविता 'जीवन का झरना' की पंक्तियां देखें–

यह जीवन क्या है? निर्झर है,
मस्ती ही इसका पानी है।
सुख दुख के दोनों तीरों से
चल रहा राह मनमानी है।

'वैरागी का गीत' कविता में रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' लिखते हैं 'मैं तोड़ चला सारे बंधन, सब छोड़ चला जो प्यारा है। 'लो आज सभी कुछ लो साथी। यह सब कुछ आज तुम्हारा है।' उल्लासमय फक्कड़पन यानी मस्ती के आलम के गीतों की प्रवृत्ति को समाज विरोधी नहीं कह सकते क्योंकि ये कवि व्यक्तिगत अनुभूतियों के स्तर पर सही व्यवस्था की जकड़न का विरोध करते हैं। इनमें से अधिकांश कवि कवि सम्मेलनों में बहुत लोकप्रिय हुए। नामवर सिंह ने तथ्यात्मक टिप्पणी की है ''बच्चन को जो लोकप्रियता मिली, वह पंत के लिए केवल सपना थी।''[5] विजयदेव नारायण साही ने ऐतिहासिक तथ्य का बोध कराया है ''बच्चन और भगवती चरण वर्मा दोनों ही 'लोकप्रियता' में बेजोड़ हैं। कहते हैं कि किसी समय देवकी नन्दन खत्री ने 'चन्द्रकान्ता सन्तति' लिखकर हजारों (या लाखों?) लोगों को उर्दू छोड़कर हिन्दी पढ़ने को विवश कर दिया था। कविता में यदि उस क्रांति का कोई जोड़ है तो वह बच्चन की 'मधुशाला' है। अधिक से अधिक पाठकों को सामयिक कविता का चस्का लगाने का श्रेय जितना अकेले बच्चन को है, उतना किसी अन्य कवि को नहीं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। उसी अनुपात में पिछले अस्सी वर्षों में कविता का जितना व्यापक शौक तीसरे दशक ने पैदा किया, उतना शायद किसी अन्य युग में संभव नहीं हुआ।''[6]

हरिवंश राय बच्चन की कविताओं को 'हालावाद' की संज्ञा दी गई है। उमर खैय्याम के जीवन-दर्शन नियतिवाद और भोगवाद का प्रभाव बच्चन एवं अन्य छायावादोत्तर कवियों पर परिलक्षित होता है।

विजयदेव नारायण साही ने गंभीर प्रश्न उठाया है ''न जाने क्यों बच्चन के मधुकलश की चर्चा उतनी नहीं हुई, जितनी उनकी मधुशाला, निशा निमंत्रण और एकान्त संगीत की। न सिर्फ उस पुस्तक मे उस युग की काव्यात्मक अनुभूति की काफी बड़ा खजाना है, बल्कि उस काल की प्रधान कालात्मक-समस्याओं की कुंजी भी है, जिसके बगैर उस युग को नहीं समझा जा सकता। यों भी, मेरी समझ में हिन्दी की लंबी कविताओं में-मधुकलश की कविताएं बेजोड़ हैं।[7]

विजयदेव नारायण साही ने जिन तथ्यों के आधार पर उत्तरछायावादी कवियों को अगंभीर और जवानी का कवि बताया है उसे ठीक से विश्लेषित भी किया है एक शोधार्थी के रूप में महसूस करता हूं कि यह एक तर्कसंगत साक्ष्य बनता है जिसकी व्याख्या भी उसी रूप में की गई है। विजयदेव नारायण साही ने कहा है ''बेशक बच्चन, दिनकर आदि में रोमांटिक कवियों जैसा भावना का तनाव और निपट गंभीरता नहीं मिलती। वस्तुत: गंभीरता का ह्रास इस नयी 'सहज' मनोभूमि की विशेषता है। इतना ही नहीं, मनुष्य का मन भी खण्डित हो गया है। मन के विभाजन का आविष्कार इस युग की विशेषता है।''[8]

विजयदेव साही ने इस प्रसंग में यह भी लिखा है ''बच्चन की रूपकोत्तियां, दिनकर का रिटॉरिक, भगवतीचरण वर्मा की लापरवाही दीवानगी, नवीन का वलबला, अंचल का उबाल, नरेन्द्र शर्मा का नफीस ऐश्वर्य-इन सब में गंभीरता के अभाव की छाया है। कुल मिलाकर लगता है, जैसे अंग्रेजी कवि लार्ड बायरन के पचासों टुकड़े कर दिये गये हों और उनमें से कुछ-कुछ टुकड़े इन तमाम कवियों की 'जवानी' में अलग-अलग जज्ब कर दिये गये हों।''[9] उस युग की मनोभूमि को जानने के लिए पंडित नेहरू की विराट रिक्तता के एहसास को समझना, छानबीन करना आवश्यक है।

विजयदेव नारायण साही ने लिखा है ''यह विराट् रिक्तता सिर्फ नेहरू की नहीं, उस युग में पूरे देश की केंद्रीय समस्या है, जिसका उत्तर देने की, या जिस पर भावनात्मक विजय प्राप्त करने की कोशिश उस युग की हिन्दी कविता करती है: और जिस

प्रयास में 'साधारण मानव' का रूप निर्मित होता है। बच्चन के मधुपायी में वह रिक्तता है, भगवतीचरण के बीजगुप्त में भी यह रिक्तता है, प्रगतिवादी चीख में भी वह रिक्तता है, इतना ही नहीं, उसी युग में लिखी गयी प्रसाद की 'कामायनी' के मनु में भी वही रिक्तता है, जो कहीं गहरे गुजलक मार कर बैठी है।''[10] नामवर सिंह ने इसी प्रसंग में लिखा है कि जिस अशांति, घुटन, कुंठा, कशमकश, निरुपायता आदि का अनुभव नेहरू कर रहे थे, वही गूंज इस दौर के नए बुद्धिवादी कवियों में भी सुनी जा सकती है। इसके आगे महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया है कि ''वस्तुत: छायावादी नैतिक विजन'' का जादू टूटने पर हृदय और बुद्धि के अलगाव के रूप में मन का जो विभाजन हुआ उससे उत्पन्न 'रिक्तता' और 'संकट' की चुनौती 1938 के आसपास के सभी कवियों के सामने थीं।''[11] रामस्वरूप चतुर्वेदी ने गंभीर तात्विक दृष्टि का परिचय देते हुए लिखा है ''इन कवियों की मन: स्थिति कई प्रकार के तत्वों से बनी थी। एक ओर लंबी पराधीनता की निराशा, दूसरी ओर जवानी का अधीरज, बीच में प्रणय, स्वाधीनता और मानव मुक्ति के सपने। इन सबने मिलकर उत्तर-छायावादी कवियों में एक खास तरह का नियतिवाद विकसित कर दिया था। भाग्य की व्यक्तिगत अवधारणा में इतिहास की व्यापक शक्ति को जोड़ने पर नियति का रूप बनता है।''[12]

नामवर जी कहते हैं कि अज्ञेय ने युग के औसत मिजाज के बारे में उल्लेखनीय बातें कहीं है और 1937-38 के समय को संशय का युग, अस्वीकार का युग तथा आत्म-अन्वेषण का युग कहकर युग के मिजाज को काफी हद तक परिभाषित किया।''[13]

यह विचार नकारात्मक नहीं बल्कि विचारणीय है। नामवर सिंह ने लिखा है कि अज्ञेय से महत्वपूर्ण यक्ष यथार्थवादी रुझान एकदम अनदेखा चला गया है इसके आगे इन्होंने लिखा है ''प्रगतिशील साहित्य की इस यथार्थवादी भूमिका की उपेक्षा करके 1938 के संक्रमण-युग को समझना असंभव है। तथ्य है कि हिन्दी कविता को उस समय जो कवि नया मोड़ देने का प्रयास कर रहे थे, वे चाहे तार-सप्तक में संकलित हुए हों या उससे बाहर रहे हों, सभी किसी-न-किसी रूप में प्रगतिशील चेतना से अपने-आपको संबद्ध अनुभव करते थे।''[14]

शिवदान सिंह चौहान का कथन भी कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है ''उत्तर छायावादी युग के अनेक तरुण कवि प्रगतिवादी प्रेरित नये जीवनादर्श और जनमंगल के उत्साह भरे गीत गाते हुए सामने आये। इनमें नरेन्द्र शर्मा तो थे ही शिवमंगल सिंह 'सुमन' केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, नागार्जुन, रांगेय राघव, रामदयाल पाण्डेय प्रमुख थे। अनेक छायावादी ढर्रे के तरुण कवियों शंभूनाथ सिंह 'रसिक', विद्यावती 'कोकिल', आदि में प्रगतिशील विचारों की अनुगूंज सुनायी दी।

गांधीवादी कवियों-सोहनलाल द्विवेदी, सुधीन्द्र आदि ने भी नये विषयों पर कविताएं लिखी, यहां तक कि चेतना से आक्रांत अनेक प्रयोगवादी कवि गिरजा कुमार माथुर, गजाननमाधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, प्रभाकर माचेव, रामविलास शर्मा आदि भी प्रगतिशील धारा से अप्रभावित न रह सके। दूसरे महायुद्ध के पांच-छ: वर्षों के बीच हिन्दी में प्रगतिशील कविता का ही सर्वाधिक जोर रहा।

.........लेकिन तरुण प्रगतिशील कवि स्वतंत्र रूप से किसी नये काव्यादर्श का अभी सम्यक् विकास भी न कर पाये थे कि उन्होंने राजनैतिक दलबंदी की मतवादों और संप्रदायिक संकीर्णताओं में पड़कर अपनी काव्य प्रतिभा को स्वयं ही कुंठित कर डाला।''[15]

कहना न होगा कि उत्तर छायावाद युग की कविता का विकास छायावाद के ''काल्पनिक रोमान, व्यक्तिवादी निराशा और आध्यात्मिक पलायन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ।'' सन् 30 से 35 तक का समय एक प्रकार से संक्रांति का समय था जिसकी परिणति निराशा में हो रही थी। सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर इस समय की भावभूमि का विश्लेषण किया जाए तो तत्कालीन समूचा युग एक निराशात्मक परिणति में विलीन होता हुआ लक्षित होता है और बच्चन, अंचल तथा नरेन्द्र शर्मा की कविताओं में व्यक्त रुग्णाक्षयी निराशा, पस्ती, मृत्यु-पूजा आदि प्रवृत्तियां इसी स्थिति का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रतीत होती है।

अपने युग के निराशावाद की व्याख्या करते हुए 'प्रवासी के गीत' के वक्तव्य में नरेन्द्र शर्मा का कहना है–''ब्रिटिश सत्ता के कारण हमारे समाज के वर्गीकरण कुछ ऐसे ढंग से हुआ कि हमारे कवियों तथा अन्य साहित्यिकों को किसी भी वर्ग में स्थान न मिल सका.........ऐसी अवस्था में कवियों का निराशावादी हो जाना स्वाभाविक था। निराशावादियों और नियतिवादियों के आगमन से हिन्दी गीतिकाव्य का उत्तरार्ध शुरु होता है।''[16]

छायावादी काव्यधारा के समानांतर राष्ट्रीय भावनाओं की एक काव्यधारा चल रही थी जिसे डॉ॰ नागेन्द्र ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता कहकर छायावादोत्तर युग की स्थायी उपलब्धि माना है। डॉ॰ नामवर सिंह ने लिखा है कि ''जिस प्रकार आजादी की लड़ाई के दिनों में प्रसाद, निराला आदि छायावादी कवियों ने मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी आदि राष्ट्रवादी कवियों से बेहतर राष्ट्रीय कविताएं लिखीं, उसी तरह नए कवियों ने भी इस विषय पर अंग्रेजों से बेहतर रचना की।''[17]

माखनलाल चतुर्वेदी की ''पुष्प की अभिलाषा'', श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता ''झांसी की रानी'', मैथिलीशरण गुप्त की ''साकेत'', दिनकर की ''कुरुक्षेत्र'', परशुराम की प्रतीक्षा ''हुंकार'', संग्रह की कविताओं का एक अपना वैशिष्ट्य है जिसे युग के परिप्रेक्ष्य में बेहतर समझा जा सकता है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने स्वाधीनता आंदोलन की विविध मनः स्थितियों पर उद्‌बोधपरक और मार्मिक कविताएं लिखी हैं। ''आज खड्‌ग की धार कुंठिता''और ''कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ'' आदि प्रसिद्ध कविताएं हैं।

नरेन्द्र शर्मा के ''मिट्‌टी और फूल'' रक्त चन्दन और अग्निशय की अनेक कविताएं यह बतलाती हैं कि उत्तर छायावादी कवियों में तीव्र प्रेम और श्रृंगार भावना के साथ-साथ बहुत तीक्ष्ण सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना भी था। नरेन्द्र शर्मा स्वाधीनता आंदोलन के सिलसिले में जेल गए और पंत के साथ रुपाभ पत्रिका का संपादन भी किया।

विश्वयुद्ध के दिनों में बच्चन ने ''आकुल अंतर'' और विकल विश्व'' नाम से गीत मालाएं लिखी हैं जिसमें शायद ''विकल विश्व'' अप्रकाशित है। बंगाल के अकाल पर ''बंगाल का काल'' और ''बापू'' की हत्या पर 204 गीत बच्चन ने लिखें हैं, जिसमें ''सूत की माला'' और ''खादी के फूल'' बहुत प्रसिद्ध हैं।

'बच्चन' ने बापू के मृत्यु पर लिखा है देखें

यह गांधी मरकर पड़ा नहीं धरती पर,

यह उसकी काया, काया होती है नश्वर

गांधी संज्ञा वह है जो जग में अजर अमर दी उसने केवल जीवन की चादर उतार।

सोहन लाल द्विवेदी ने भारतीय जनता पर गांधी के प्रभाव का वर्णन इस प्रकार किया है:-

चल पड़े जिधर दो पग मग में चल पड़े कोटि पग उसी ओर।

नरेन्द्र शर्मा का काव्य संग्रह 'रक्त चंदन' दिनकर की बापू सभी में गांधी जी की हत्या से उपजे शोक को बड़ी मार्मिकता से अंकित किया है।

आजादी बाद भारत की सबसे बड़ी घटना राष्ट्रपिता की हत्या है और सबसे बड़ी समस्या है राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का आबाध प्रवेश। 1934 में कांग्रेस से इस्तीफा देते हुए अपने ऐतिहासिक वक्तव्य में गांधी जी ने संस्था में बढ़ते हुए दूषण की चर्चा की थी।''[18]

इस दौर के बौद्धिक नए कवियों पर जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण का प्रभाव लक्षित होता है। सन्‌ 1927 में जब करीब डेढ़ वर्ष के उपरांत यूरोप से नेहरू भारत लौटे तो वह समाजवादी विचारों से काफी प्रेरित थे। आते ही उन्होंने कांग्रेस में युवक दल की स्थापना की भी और समाजवादी विचारों के प्रचार में भी योगदान दिया। 1951-59 के बीच नेहरू युग के अंत विरोध असली रूप में सामने आने लगे और कुछ ही दिनो बाद यह स्पष्ट हो गया कि जिसे स्वाधीनता प्राप्ति के आरंभिक दौर में 'सत्य' समझा जा रहा था, वह वस्तुतः 'भ्रम' था।

नामवर जी ने लिखा है कि ''कहना होगा कि ऐतिहासिक 'भ्रम' के बावजूद नई कविता ने उनके महत्वपूर्ण रचनात्मक कृतियों की सृष्टि की। किंतु इस युग का श्रेष्ठ एवं सार्थक कृतित्व वह है जो इस 'भ्रम' से कम से कम ग्रस्त थे या एकदम मुक्त था।''[19]

इस तरह विचारपूर्वक छायावादोत्तर हिन्दी कविता का अनुशीलन करने से जो तथ्य सामने आता है कि सन्‌ 37 में 'रुपाभ' का प्रकाशन छायावाद की परिसमाप्ति की सूचना देता है तथा नयी प्रतिभाओं के लिए नयी दिशाएं प्रशस्त करता हुआ प्रतीत होता है। 'हंस', 'विशाल-भारत' जैसी पत्रिकाएं इस परिवर्तन का उद्‌घोष करती हैं।

अज्ञेय द्वारा सम्पादित सप्तकों का ऐतिहासिक महत्व है, जिसने काव्य धारा को मोड़ने का प्रयास ही नहीं किया बल्कि काव्य को गरिमा भी प्रदान की।

अपनी बात मैं नामवर सिंह के कथन से समाप्त करना चाहूंगा क्योंकि यह मुझे संगत प्रतीत होता है। छायावादोत्तर काल की यह सार्थक काव्य-सर्जना उस नई कविता के गिर्द हुई है जो उस काल की मुख्य काव्यधारा रही है—स्पष्ट ही यहां नई कविता से आशय प्रगति और प्रयोग दोनों के कल्पित कगारों को तोड़ती हुई समग्र नई काव्य धारा से है।''[20]

सहायक ग्रंथ-सूची

1. उत्तर छायावाद और रामगोपाल शर्मा 'रूद्ध'—नंद किशोर नवल प्रकाशन संस्थान पृष्ठ 20 प्रथम संस्करण 2008
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 502 प्रकाशन स॰ सन् 2002
3. नयी कविता का भविष्य—गिरजा कुमार माथुर आलोचना (प्रै॰) 12 पृष्ठ 42
4. उत्तर छायावाद और रामगोपाल शर्मा 'रूद्ध'—नंद किशोर नवल पृष्ठ 19
5. कविता के नये प्रतिमान—नामवर सिंह राज कमल प्र॰ पृष्ठ 87
6. नयी कविता खण्ड (1) लघु मानव के बहाने हिन्दी कविता पर बहस पृष्ठ 199
7. वही, लघु मानव के बहाने हिन्दी कविता पर बहस पृष्ठ 203 लोक भारती प्रकाशन प्र॰ सं॰ 2000
8. वही, लेखक विजयदेव नारायण साही पृष्ठ 203 प्रथम संख्या 2000
9. वही, पृष्ठ संख्या 219
10. वही, पृष्ठ संख्या 200
11. कविता के नये प्रतिमान—नामवर सिंह पृष्ठ 87 राजकमल प्रकाशन
12. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-पृष्ठ 189 रामस्वरूप चतुर्वेदी लोक भारती प्रकाशन
13. कविता के नये प्रतिमान—डॉ॰ नामवर सिंह पृष्ठ 84 राजकमल प्रकाशन
14. वही, पृष्ठ 85
15. काव्यधारा पृष्ठ 44 सन् 1954 शिवदान सिंह चौहान
16. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास पृष्ठ 189 लोक भारती प्रकाशन
17. कविता के नये प्रतिमान पृष्ठ 63 नामवर सिंह राजकमल प्रकाशन
18. डॉ॰ पट्टाभि सीतारामय्या, कांग्रेस का इतिहास, खण्ड 1, पृष्ठ 464 पर उद्धत
19. कविता के नये प्रतिमान पृष्ठ 91 नामवर सिंह
20. वही, पृष्ठ 64

आधुनिक भारतीय वास्तुकला पर औपनिवेशिक यूरोपियन प्रभाव

डॉ० दिवाकर त्रिपाठी

सहायक आचार्य- इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डॉ राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

सारांश

मुगल साम्राज्य के कमजोर होने पर यूरोपीय उपनिवेशवादी भारत आए, जिससे पुर्तगाली, फ्रॉंसीसी, डच, डेनिश और ब्रिटिश के बीच सत्ता के लिये संघर्ष शुरू हो गया। यह प्रतियोगिता वर्ष 1947 तक ब्रिटिश शासन के साथ समाप्त हो गई। अपने प्रभुत्व के साथ-साथ, यूरोपीय लोगों ने अपनी निर्मित इमारतों में प्रतिबिंबित होने वाली विविध स्थापत्य शैली प्रस्तुत की।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व, वास्तुकला पारंपरिक रूप से सामाजिक ख्रष्टिकोण से पत्थरों से निर्मित उत्कृष्ट स्थापत्य रचनाएं थीं।[1] अंग्रेजों का आगमन हुआ और उन्होंने पहली प्राथमिक आधुनिक निर्माण और योजना भारत में प्रस्तुत की। लेकिन उनका उद्देश्य था अपने संगठन और जनता और भारत जैसे विशाल साम्राज्य को नियंत्रित करने के लिए जो भी आवश्यक हो करना। अंग्रेजों का इरादा भारतीयों को वास्तुकला और विज्ञान में शिक्षित करना नहीं था। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत में जो सबसे महत्वपूर्ण वास्तुकला संबंधी विकास हुआ वह था शाही दिल्ली का निर्माण जहां एक ओर समसामयिक यूरोप के लोग वास्तुकला में अत्यंत प्रगतिवादी सोच रखने लगे थे, वहीं दूसरी ओर सर एडवर्ड लुटियंसयन का निर्माण पुनर्जागरण का उदाहरण है, जो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में यूरोप में प्रचलित सोच का नतीजा है।

मूल शब्दः आधुनिक भारतीय वास्तुकला, यूरोपियन प्रभाव, ब्रिटिश औपनिवेशिक काल

प्रस्तावना

मुगल साम्राज्य के कमजोर होने पर यूरोपीय उपनिवेशवादी भारत आए, जिससे पुर्तगाली, फ्रॉंसीसी, डच, डेनिश और ब्रिटिश के बीच सत्ता के लिये संघर्ष शुरू हो गया। यह प्रतियोगिता वर्ष 1947 तक ब्रिटिश शासन के साथ समाप्त हो गई। अपने प्रभुत्व के साथ-साथ, यूरोपीय लोगों ने अपनी निर्मित इमारतों में प्रतिबिंबित होने वाली विविध स्थापत्य शैली प्रस्तुत की।[2]

औपनिवेशिक उपस्थिति ने भारत में प्रारंभिक आधुनिकतावादी कला को भी आकार दिया, जिसका प्रभाव स्वतंत्रता के बाद भी जारी रहा। जिन लेंसों के माध्यम से पूर्व-आधुनिक भारतीय कला को देखा गया है, वे कंपनी द्वारा समर्थित और प्रसारित छात्रवृत्ति का प्रत्यक्ष परिणाम थे, और बाद में, ब्रिटिश क्राउन द्वारा। उपनिवेशवाद और यूरोकेंद्रित वैश्वीकरण द्वारा शुरू की गई आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक संरचनाएं समकालीन भारतीय कला की नींव बनाती हैं। औपनिवेशिक शासन और भारतीय कलात्मक परंपराओं में पश्चिमी मूल्य प्रणालियों के अनुप्रयोग के जवाब में कई आंदोलन विकसित हुए, जिनमें उल्लेखनीय उदाहरणों में पुनरुत्थानवादी बंगाल स्कूल और कला भवन, शांतिनिकेतन में प्रासंगिक आधुनिकतावाद आंदोलन शामिल हैं। भारतीय आधुनिकतावाद में उपनिवेशवाद का उन्मूलन एक प्रमुख विचार क्षेत्र बना रहेगा।[3]

भारतीय वास्तुकला पर यूरोपीय प्रभाव विशेष रूप से ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान महत्वपूर्ण रहा है, जिसमें विभिन्न यूरोपीय शैलियों जैसे गोथिक पुनरुद्धार, इंडो-सारासेनिक, नवशास्त्रीय और बारोक का स्थानीय सौंदर्यशास्त्र और निर्माण तकनीकों के साथ एकीकरण देखा गया है, जिसके परिणामस्वरुप विक्टोरिया मेमोरियल, गेटवे ऑफ इंडिया और पुडुचेरी के सफेद शहर जैसी संरचनाएं बनी हैं।[4]

यूरोपीय प्रभाव ने भारतीय वास्तुकला को एक नई दिशा दी, जिसमें पारंपरिक भारतीय शैलियों के साथ यूरोपीय तत्वों का जटिल मिश्रण हुआ। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप भारत को एक अद्वितीय स्थापत्य पहचान मिली है।[5]

यूरोपीय प्रभावों के प्रमुख पहलू

ब्रिटिश प्रभाव: अंग्रेजों ने वास्तुकला की गॉथिक शैली की शुरुआत की। इसका भारतीय वास्तुकला के साथ विलय हो गया और परिणामस्वरूप वास्तुकला की इंडो-गॉथिक शैली सामने आई।

वर्ष 1911 के बाद, वास्तुकला की एक नई शैली उभरी जिसे नव-रोमन वास्तुकला के नाम से जाना जाता है।

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में गोथिक और इंडो-गॉथिक शैलियों का गहरा प्रभाव देखा गया है, जिन्हें विक्टोरियन शैली के रूप में भी जाना जाता है। कोलकाता का विक्टोरिया मेमोरियल और मुंबई का गेटवे ऑफ इंडिया इसके प्रमुख उदाहरण हैं, जिनमें भारतीय और यूरोपीय स्थापत्य तत्वों का मिश्रण है।[6]

पुर्तगाली प्रभाव: पुर्तगाली अपने साथ वास्तुकला की श्आईबेरियाई शैलीश साथ लाये। उन्होंने शुरुआत में व्यापारिक चौकियाँ और गोदाम बनाए, बाद में उन्हें समुद्र तट के किनारे किलेबंद शहरों में बदल दिया गया।[7]

उन्होंने चर्च की ताकत को व्यक्त करने के लिये यूरोप में 16वीं शताब्दी के अंत में विकसित 'घरों के आँगन (Patio Houses)', यह प्रायः निम्नवर्गीय हिंदुओं के घरों के आँगन में स्थित मिट्टी की दीवार वाली फूस की झोपड़ी होती है, और 'बरॉक शैली' की अवधारणा भी प्रस्तुत की।

नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने के लिये इसमें व्यापक, विस्तृत और नाटकीय डिजाइन था। इसमें विपरीत रंगों का उपयोग शामिल था।

पुर्तगालियों ने अपनी इबेरियन स्थापत्य शैली को भारत में पेश किया, खासकर गोवा, दमन और दीव में, जहाँ उन्होंने चर्च, कैथेड्रल और कोंवेंट का निर्माण किया जो पुनर्जागरण, बारोक और रोकोको शैलियों से प्रभावित थे। सेंट कैथेड्रल चर्च, गोवा इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

फ्रांसीसी प्रभाव

फ्राँसीसी अपने साथ शहरी नगर नियोजन की अवधारणा लेकर आए। पुदुचेरी और चंद्रनगर (अब चंदननगर, पश्चिम बंगाल) के फ्राँसीसी शहर कार्टेशियन ग्रिड योजनाओं और वैज्ञानिक वास्तुशिल्प डिजाइनों का उपयोग करके बनाए गए थे।[8]

उन्होंने शक्ति प्रदर्शन के तौर पर भव्य इमारतें बनाईं। उन्होंने गुमनाम वास्तुकला की अवधारणा भी पेश की जिसमें आधुनिक इमारतों की तरह, बिना अधिक अलंकरण या डिजाइन के एक साधारण मुखौटा शामिल है।

फ्राँसीसियों ने माहे (केरल), कराईकल (तमिलनाडु) और यानम (आंध्र प्रदेश) के तटीय शहरों का भी विकास किया।

अन्य यूरोपीय प्रभाव

डच और अन्य यूरोपीय शक्तियों ने भी भारत में अपनी वास्तुकला का प्रभाव छोड़ा, हालांकि यह ब्रिटिश और पुर्तगाली प्रभाव जितना व्यापक नहीं था।

औपनिवेशिक और आधुनिक वास्तुकला

- नव-रोमन शैली:
  - वर्ष 1911 के बाद ब्रिटिश राज द्वारा किये गए निर्माण नव-रोमन शैली या नियोक्लासिकल शैली के अनुसार किये गए थे।[9]
  - एडविन लुटियंस और हर्बर्ट बेकर द्वारा बनाई गई नई दिल्ली की वास्तुकला इस शैली का सबसे अच्छा उदाहरण थी। इसे अक्सर 'हिंदुस्तान के रोम' के रूप में वर्णित किया गया है। इस चरण की विशेषताएँ हैं:
  - निर्माण गुमनाम थे और बिना किसी दिलचस्प विशेषता के थे।
  - यह वास्तुकला की सभी शैलियों का संगम था जिसने इस शैली को भीड़भाड़ वाला बना दिया और कलात्मक अभिव्यक्ति की जगह को सीमित कर दिया।
  - निर्माण की मिश्रित प्रकृति के कारण सादगी, आधुनिकता और उपयोगिता अत्यधिक प्रतिबद्ध थी।
  - गोलाकार इमारतों पर ध्यान था।
  - पश्चिमी वास्तुशिल्प डिजाइनों को साकार करने के लिये प्राच्य रूपांकनों का अत्यधिक उपयोग किया गया।
  - उलटे गुंबद की अवधारणा, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय और राष्ट्रपति भवन (पुरानी संसद भवन) के शीर्ष पर देखा जा सकता है, इस चरण के दौरान प्रस्तुत की गई थी।

आधुनिक/स्वतंत्रता के बाद की वास्तुकला: वर्ष 1947 के बाद वास्तुकला के दो स्कूल उभरे - रिवाइवलिस्ट और मॉडर्निस्ट। हालाँकि दोनों स्कूल औपनिवेशिक प्रभाव से अलग नहीं हो सके। इससे भारत की स्थापत्य परंपराओं के स्तर में गिरावट आई है।

निष्कर्ष

स्थापत्यकला के शक्ति का प्रतीक बन जाने के कारण यूरोपीय देशों द्वारा भारत का औपनिवेशीकरण किए जाने का स्थापत्य कला पर भी व्यापक प्रभाव परिलक्षित हुआ। उन्होंने भारत को पाश्चात्य स्थापत्य शैली से परिचित कराया तथा भारतीय स्थापत्य कला को समृद्ध किया। पुर्तगालियों और फ्रांसीसियों ने इमारतों एवं उपासना स्थलों का निर्माण अधिकांशत: औपनिवेशिक स्थापत्य शैली में किया। ब्रिटिशों द्वारा भी भारत पर शासन के आरम्भिक काल में इसी नीति का अनुसरण किया गया, हालाँकि बाद में उनके द्वारा औपनिवेशिक शैली का भारतीय शैलियों के साथ संश्लेषण किया गया।

एडविन लुटियंस और हर्बर्ट बेकर जैसे लोगों ने नई दिल्ली एवं आस-पास के स्मारकों, यथा इंडिया गेट और संसद भवन इत्यादि के निर्माण में मुख्य भूमिका निभाई थी। इस प्रकार भारतीय स्थापत्य कला में यूरोप वासियों के योगदान की चिरकालिक स्मृति बनी हुई है।[10]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रागैतिहासिक काल से, कला एवं वास्तुकला ने भारत के लोगों के जीवन और अवकाश के समय को बेहतर बनाने में एक अनूठी अभिव्यक्ति पाई है। यूनानी, अरब, फारसी व यूरोपीय सभी ने इन परंपराओं पर अपनी छाप छोड़ी है, जो आज भारतीय कला और वास्तुकला की समृद्ध टेपेस्ट्री में योगदान दे रहे हैं।

सन्दर्भ

1. आनंद, मुल्क राज। "गोवा में ईसाई कला की प्रशंसा में"। मार्ग , खंड 32, अंक 4 (1979): 2-24।
2. आनंद, मुल्क राज। "भारत में ईसाई कला का स्थान"। मार्ग, खंड 8, अंक 1 (1954): 2-12।
3. "उन्नीसवीं सदी के भारत में कंपनी चित्रकला"। मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट। 24 नवंबर, 2022 को एक्सेस किया गया। https://www.metmuseum.org/toah/hd/cpin/hd_cpin.htm
4. देसाई, माधवी, मिकी देसाई और जॉन लैंग। बीसवीं सदी के भारत में बंगला। न्यूयॉर्क: रूटलेज, 2017।
5. घोष, परमिता। "फ्रांसीसी लेफ्टिनेंटों की पेंटिंग।" हिंदुस्तान टाइम्स। 29 नवंबर, 2019। https://www.hindustantimes.com/art-and-culture/the-french-lieutenants-paintings/story-4LxwCPLsLpaNYSnPaWJJnM.html?
6. गॉर्डन, सोफी. "औपनिवेशिक परियोजना और बदलती नजर।" मार्ग, खंड 59, अंक 4 (2008): 40-53
7. गुहा-ठाकुरता, तापती, स्मारक, वस्तुएँ, इतिहास: औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक भारत में कला संस्थान , कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004.
8. मित्तर, पार्थ। "बंगाली कलाकार जिन्होंने 'गीली साड़ी प्रभाव' को लोकप्रिय बनाया और चित्रांकन की एक नई शैली का आविष्कार किया।" स्क्रॉल सस , 2019. अभिगमन तिथि: 24 नवंबर, 2022. https://scroll.in/magazine/912080/the-bengali-artist-who-popularised-the-wet-sari-effect-and-invented-a-new-genre-of-figure-painting
9. नोल्टी, एचजे 'मूचीज, गुडीगर्स और अन्य चित्रकार: 19वीं सदी की वनस्पति कला और विज्ञान में उनका योगदान (। मार्ग खंड 70, सं. 2 (2018): 34-43
10. सेन, सिद्धार्थ। "प्रभुत्व, निर्भरता, बातचीत और समझौते के बीच: औपनिवेशिक भारत में यूरोपीय वास्तुकला और शहरी नियोजन प्रथाएँ।" जर्नल ऑफ प्लानिंग हिस्ट्री, खंड 9, अंक 4 (2010): 203-231।

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण

रेखा मीना

वरिष्ठ अध्यापक, UGC NET 2018

सारांश

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण एक महत्वपूर्ण विषय है। वेदों में, प्रकृति को बहुत सम्मान दिया गया है और इसे जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण के महत्व को समझा और इसे संरक्षित करने के लिए कई उपाय किए, जैसे कि वृक्षों की पूजा करना, यज्ञों में वनस्पतियों का उपयोग करना, और प्रकृति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना। वैदिक साहित्य में, प्रकृति को देवी के रूप में देखा जाता है और उसकी पूजा की जाती है। पृथ्वी, जल, वायु, और आकाश को जीवन के स्रोत माना जाता है। वैदिक ग्रंथों में, वृक्षों और वनों को पवित्र माना जाता है और उन्हें काटना मना है। अरण्यनी सूक्त में, वनों की सुंदरता, शांति, और औषधीय महत्व का वर्णन किया गया है, जो प्रकृति के संरक्षण के प्रति वैदिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है। यज्ञों में, विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों, अनाजों, और औषधीय पौधों का उपयोग किया जाता था, जो प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और उसके संसाधनों के उचित उपयोग का प्रतीक था।

वैदिक साहित्य में, जल, वायु, और अग्नि को पवित्र माना जाता है और उनका सम्मान किया जाता है। वैदिक मंत्रों में, पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति के प्रति कृतज्ञता के भाव व्यक्त किए गए हैं। उदाहरण के लिए, "द्यौः शान्तिः, अंतरिक्षं शान्तिः, पृथ्वी शान्तिः" (द्यौ, अंतरिक्ष, और पृथ्वी शांत हों)। आज, जब हम पर्यावरण प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, तो वैदिक साहित्य में पर्यावरण संरक्षण के संदेशों का अध्ययन करना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। वैदिक दृष्टिकोण हमें प्रकृति के प्रति सम्मान और जिम्मेदारी की भावना सिखाता है, जो हमें एक स्वस्थ और टिकाऊ भविष्य बनाने में मदद कर सकता है। वैदिक वाङ्मय पर्यावरण संरक्षण के लिए एक समृद्ध स्रोत है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के महत्व को समझा और इसे संरक्षित करने के लिए कई उपाय किए। आज, हम उनके ज्ञान और मार्गदर्शन से प्रेरणा लेकर एक स्वस्थ और टिकाऊ भविष्य बना सकते हैं।

मूल शब्दः वैदिक वाङ्मय, पर्यावरण संरक्षण, यज्ञ, वृक्षों की पूजा, प्रकृति, कृतज्ञता

वेद शब्द विद्-ज्ञाने धातु से 'घञ' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न है। अतः इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- विदन्ति येन स वेदः अर्थात् जिससे वास्तविक बात जानी जाय। यह वास्तविकता धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सम्बन्धित है। इस पुरूषार्थ चतुष्टय का सम्यक् ज्ञान हमें वैदिकमन्त्रों द्वारा ही सम्भव हैं जैसा कि- ''विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एमिधर्मादि पुरूषार्थाः 'इति अनिष्ट के परिहार के उपायों के ज्ञापक हैं। समस्त भारतीय ज्ञान, विज्ञान, धर्म-दर्शन, कला और संस्कृति आदि का मूल रूप वेदों में हीं विद्यमान है। मन्त्र द्रष्टा वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के महत्व का प्रतिपादन एवं रहस्य का उद्घाटन तत्सम्बद्ध सूक्तों में किया है ं प्रत्येक सूक्त किसी देवता विशेष से सम्बद्ध है। अग्नि, वायु, आकाश, इन्द्र विष्णु मरूद्गण, स्तुतिपरक मन्त्रों में उनकी प्रसन्नता ओर अनुकूलता के लिए हार्दिक भाव हमारी रक्षा ओर अभिवृद्धि होती है। वेदों का महत्व उनमें ज्योतिष विषयों के निरूपम से विदित है।

आज कल पर्यावरण का अध्ययन हमारे लिए महत्पवूर्ण विषय है क्योंकि वैज्ञानिकों अविष्कार के दुरूपयोग औद्योगिक विकास एवं वन्य-वृक्षों-बगीचों के उन्नूलन से पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। ध्यातव्य है कि पर्यावरण तथा उनके संरक्षण के विषय में हमारे ऋषियों ने वेदों में क्या विचार व्यक्त किया है।

ज्ञात है कि ज्ञान-राशि वेद को महर्षि व्यास ने विषयानुसार चार रूपों में विभक्त किया-

ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता ओर अथर्ववेद संहिता निष्पन्न होता है। जिस आवरण से लोक या जीव सब ओर से आवृत रहते हैं। उसे पर्यावरण कहते हैं। यह आवरण पंच-महाभूतों और तन्मात्राओं का है। यह पंच महाभूतों (पर्यावरणीय घटकों) की शुद्धता एवं सम्पन्नता पर हमारे जीवन की स्वस्थता सुदृढ़ता एवं सुसम्पन्नता निर्भर है।[2] ऋषियों का कथन है -

'चक्षुपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।

सत्यपूतं पदेत् वाचं, मन: पूतं समाचरेत्।। (प्रसिद्ध उक्ति)[1]

वैदिक देवताओं को तीन कोटियों में रखा गया है पृथ्वी स्थानीय, अन्तरक्षि- स्थानीय और द्यूस्थानीय। ये देवता मानवजीवन और पर्यावरण में संतुलन बनाये रखते हैं। पर्यावरण की शुद्धता के लिए ही वैदिक यज्ञों की व्यवस्था की गयी थी। वैदिक जीव यज्ञप्रधान जीवन था। इसका स्पष्टत: उल्लेख गीता में श्रीकृष्ण ने किया है-

''सहयज्ञा: प्रजा: सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति:।

*अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो*सित्तवष्टकामधुक्''।।*[2] *गीता 3/10*

''देवान्भावथतानेन ते देवा भावयन्तु व:।

परस्परं भावयन्त: श्रेय: परमावप्यवस्था।।[3] *गीता-3/11*

इष्टान्भोगान्हि वा देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता।।[4] *3/12*

द्यावापृथ्वी के स्तवन में दीर्घतमा ऋषि कहते हैं -

''तेहि द्यावा पृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।

सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवी धर्मणा सूर्य मूचि:''।।[5] *(ऋग्वेद 8/1/60)*

अर्थात् ये द्यावापृथिवी सभी को समृद्धि देते है, वे लोकों को सहारा देने वाले हैं, वे पवित्र और बुद्धिमान् है। वे सुजन्मा और अपने अपने कार्य में प्रगल्भ हैं।

देदीप्यमन सूर्य देवता धर्मानुसार इन दो देवियों के मध्य में विचरण करता है।।

पर्यावरण की रक्षा पूजा का एक अविभाज्य अंग था, जैसी कि कहा भी गया है। -

*''यस्य: भूमि: प्रमा*न्तरिक्षमुतोदरम्।*

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम:।।[6] *(अथर्ववेद 10/7/32)*

अर्थात् भूमि जिसकी पादस्थानी और अन्तरिक्ष उदर के समान है तथा द्यलोक तथा द्यूलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े ब्रह्मण को नमस्कार है।

ऋग्वेद में वर्षा-ऋतु को उत्सव मानकर शस्य-श्यामला प्रकृति के साथ अपनी हार्दिक प्रसन्नता अभिव्यक्ति की गई है-

''ब्राह्मणासौ अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्त:।[7]

संवत्सरस्य तदह परिष्ठ यन्मण्डूका: प्रावृषीणं वभूव''।। (ऋ. 7/130/7)

वेदों में पर्यावरण को अनेक वर्गों में बाँटा जा सकता हैं - (1) वायु, (2) जल (3) ध्वनि (4) खाद्य और मिटी वनस्पति, वनसम्पदा पशु पक्षी संरक्षण आदि। सजीव जगत् स्थान है। बिना प्राणवायु (ऑक्सीजन) के क्षणभर भी जीवित रहना सम्भव नहीं है। हमारे शरीर के अन्दर रक्त वाधिनियों में बहता हुआ रकत बाहर की तरफ दबाव डालता रहता है, यदि इस संतुलित नहीं किया जाए तो शरीर की सभी धमनियाँ फट जाएगी तथा जीवन नष्ट हो जाएगा। वायु का सागर इससे हमारी रक्षा करता है। पेड़-पौधे ऑक्सीजन देकर क्लोरोफिल की उपस्थिति में, इसमें से कार्बनडाइऑक्साइड अपने लिए रख लेते हैं और ऑक्सीजन हमें देते है। इस प्रकार पेड़-पौधे वायु की शुद्धता द्वारा हमारी प्राण रक्षा करते है।

वायु की शुद्धि पर बल

वायु की शुद्धि जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस तत्व को यजुर्वेद में कहा गया है -

''तूनन्पादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।

पथो अनुक्त मध्वा घृतेन''।।[8] *(यजुर्वेद 27/12)*

अर्थात् उत्तम गुणवाले पदार्थों में उत्तमगुणवाता प्रकाश रहित तथा सबको प्राप्त होनेवाले। (तनूनपात) जो वायु शरीर में नहीं गिराता, वह कामना करने योग्य मधुज जल के साथ श्रोज आदि मार्ग को प्रकार करें, उसको तुम जानो।

वायु को शुद्ध तथा अशुद्ध दो भागों में बाँटा गया है - 1, श्वास लेने योग्य शुद्ध वायु तथा (2) जीवमात्र के लिए हानिकारक दूषित वायु -

''द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।

दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः''।।[9] *(ऋ. 10/137/2)*

अर्थात् प्रत्यक्षभूत दोनों प्रकार की हवाएँ सागर पर्यन्त और समूद्र से दूर प्रदेशपर्यन्त बहती रहती है। हे साधक। एक तो तेरे लिए बल को प्राप्त करती है और एक जो दूषित है, उसे दूर फेंक देती है।

जल-प्रदूषण उसका निदान

जल मानव-जीवन में पेय के रूप में एवं धोने में वस्तुओं को ठंठा रखने तथा गर्मी से राहत पाने, में विद्युत उत्पादन में, नदियों-झीलों और समूद्र में सवारियों और सामानों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने के लिए भाप-इंजनों को चलाने में, अग्नि बुझाने में कृषि, सिंचाई तथा उद्योगों और भोजन बनाने में अति आवश्यक है। सभी जीवधारी जल का उपयोग निरन्तर करते रहते है, जल के बिना सम्भव नहीं है। औद्योगिककरण के परिणामस्वरूप कल कारखानों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि कारखानों से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ-कूड़ा करकट, रासायनिक अपशिष्ट आदि नदियों में मिलते रहते हैं। समूद्र में परमाणु विस्फोअ से भी जल प्रदूषित हो जाता है। वेदों में जल-प्रदूषण का वर्णन मिलता है।

मकान के पास ही शुद्ध जल से भरा हुआर जलागय होना चाहिए।

''इमा आपः भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।

गुहनुप प्रसीदाम्यभूतेत सहागिन्ना''।।[10] *(अथर्ववेद 3/12/9)*

अर्थात् अच्छे प्रकार से रहित तथा रोगनाशक इस जल को मैं लाता हूँ। शुद्ध जलपान करने से मैं मृत्यु से बचा रहूँगा। अन्न, घृत, दुग्ध, आदि सामग्री तथा अग्नि के सहित घंटों में आकर अच्छी बैठता हूँ।

शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घ, आयु प्रदान करने वाला, प्राणों का रक्षक तथा कल्याणकारी हैं यह भाव ऋग्वेद के ऋचाओं में मिलता है-

''शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।

शं योरभि स्त्रवन्तु नः''।।[11] *(ऋक. 9/9/4)*

अर्थात् सुरतमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथा रक्षा के लिए कल्याणकारी हो। जल हम सुख-समृद्धि की वर्षा करें।

जल चेहरे का सौन्दर्य तथा कोमलता ओर कान्ति बढ़ाने में औषधिरूप है ं भोजन के पाचन में अधिक जल पीना आवश्यक है, इस का वर्णन अथर्ववेद के निम्न ऋचा में मिलता है -

''आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्रीषों विभ्रत्याप इताः।

तीव्रो रसो मधु पृचामरंग्म आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्''।।[12] *(अथर्ववेद 3/13/5)*

अर्थात् जल मंगलमय और घी के समान पुष्टि दाता है वही मधुरता जलधाराओं का स्रोत भी है। भोजन को पचाने में ही उपयोगी तीव्र इस है, प्राण और कान्ति, बल और पौरुष देनेवाला अमरता की ओर ले जानेवाले मूल तत्व है।

खाद्य पदार्थ-प्रदूषण से बचाव

वेदों ने खाद्य के सम्बन्ध में वैज्ञानिक आधार पर निष्कर्ष बताया है। मनुष्य पाचनशक्ति से भोजन को भलीभाँति खुद पचाये, जिससे वह शारीरिक और आत्मिक बल बढ़कर उसे सुखदायक बना सकें। इसी प्रकार पेय, पदार्थो, जैसे जल-दूध इत्यादि के विषय भी उल्लेख है।-

''यत् पिवामि सं पिबामि समद्र इव संपविः।

प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अभुं वयम्''।।[13]

अर्थात् मैं जो कुछ पीता हूँ, यथा विधि पीता हूँ जैसे यथाविधि पीनेवाला समूद्र पचा लेता है। दूध जल जैसे पेय पदार्थ पेय पदार्थो को हम उचित रीति से हीपिया करें। जो कुछ खायें, अच्छी तरह चबाकर खायें।

''यद् गिरामि सं गिरामि सं गिरामि समूद्रइव संगिरः

प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम्''।।[14] *(अथर्ववेद 135/3)*

मिट्टी पृथ्वी एवं वनस्पतियों में प्रदूषण की रोकथाम

अथर्ववेद के 12वें काण्ड के प्रथम भारत में पृथ्वी का महत्व प्रदर्शित किया है । सभी पृथ्वी के पुत्र है। कहा गया है-

माता भूमि पुत्रों अहं पृथिव्याः''

पृथ्वी के अन्दर नाना प्रकार के फल, औषधियाँ फसले, अनाज, पेड़-पौधे इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं। उनपर ही हमारा भोजन निर्भर है। अतः पृथ्वी को हम माता के समान आदर दें -

''यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमापंच कृष्ट्यः।

*भूम्यै पर्जन्यपत्नयै नमो*स्तु वर्षमेदसे''।।*[15] *(अथर्ववेद 12/1/42)*

ध्वनि प्रदूषण और उसका निदान्त

भजन, कीर्तन, धार्मिक, गीत-गान, धर्मग्रन्थों का पाठ, रामायण, मीरा कबीर के भक्ति प्रधान भजन उपयोगी है। संगीत भक्ति-पूजा का एक महत्वपूर्ण अंग है। खेद है कि आज कल ध्वनि के साधन का दुरपयोग हो रहा है। रेडियों, टी. बी. ट्रांजिस्टर प्रसारक ध्वनि यन्ज जोर-जोर से सारे दिन कान फाड़ते रहते हैं। इससे सिरदर्द, तनाव अनिद्रा आदि फैल रहे हैं । वेदों में कहा गया है कि हम स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक तीखी ध्वनि से बचें, आपस में वार्ता करते समय धीमा एवं मधुर बोलें -

''मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमृत स्वसा।

समयंचः सव्रता भूतवा वाचं वदत भद्रया''।।[16] *(अथर्ववेद 3/30/3)*

अर्थात् भाई-भाई से बहन से अथवा परिवार में कोई भी एक दूसरे से द्वेष न करें । सब सदस्य एकमत और एकव्रती होकर आपस में शान्ति से भद्र पुरूषों के समान मधुरता से बातचीत करें -

''जिहवा अग्रे मधु में जिह्वामूले मधूलकम्।

ममेदह क्रतावसो मम चितमुपायसि''।।[17] *(अथर्ववेद 1/34/2)*

उपर्युक्त विवेचन से यह भली-भाँति ज्ञात होता है कि वैदिक वाङमय में पर्यावरण और उसके संरक्षण के सम्बन्ध में ऋषियों ने न केवल सिद्धान्तों का कहीं निरूपण किया था अपितु उनका व्यवहारिक रूप भी प्रदान किया था। प्राकृतिक उपादानों में उन्होनें जिन दैनी शक्तियों की सत्ता कल्याण होता था। अग्नि, जल, वायु, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, पेड़-पौधे नदियाँ, एवं औषधियाँ मानव जीवन को शक्ति प्रदान करती है। उनसे लाभान्वित होने वाले मुनिषियों ने उनके संरक्षण को भी आवश्यक बताया है।

लाल शकरकंदः अन्न का विकल्प 'एक विश्लेषण'

डॉ० नीलम कुमारी

अतिथि शिक्षिका, गृह विज्ञान विभाग, सिंहभूम कॉलेज, चाण्डिल, कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा

पोषणयुक्त आहार मानव के संपूर्ण शारीरिक विकास के लिए आवश्यक होता है। यदि समुचित मात्रा में पौष्टिक तत्वों से युक्त आहार का उपयोग न किया जाय तो शरीर उत्तरोतर कमजोर हो जाता है और जिसका सीधा असर मानव के स्वास्थय पर पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि पौष्टिक तत्वों से युक्त आहार प्रतिदिन लिया जाय। मानव शरीर ऊर्जा के लिए भोजन पर निर्भर है और जरूरी शारीरिक गतिविधि के लिए तमाम तत्वों की आवश्यकता भोजन द्वारा ही संभव है। भारत में पौष्टिक तत्वों से युक्त अनेक प्रकार के स्टार्चयुक्त, मीठी जड़ वाली फसले आहार का हिस्सा है। इनमें शकरकंद एक जड़ कंद है जो विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट से समृद्ध है। इसकी खेती भारत के कई हिस्सों में की जाती है। यह श्वेत और लाल रूप में प्रमुखतया पाये जाते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में लाल शकरकंद में मौजूद पौष्टिक तत्वों को रेखांकित किया गया है एवं कंद, मूल वाले महत्वपूर्ण फसलों में पाये जाने वाले पौष्टिक तत्वों से लाल शकरकंद की तुलना कर अंत में निष्कर्ष के सामान्यीकरण में लाल शकरकंद को अनाज का एक महत्वपूर्ण विकल्प दर्शाया गया है।

समस्त अध्ययन तथ्यात्मक हैं। समंकों के संकलन में अनेक प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओं, पुस्तकों का अवलोकन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय शोध संस्थानों से प्राप्त सूचनाओं और अध्ययन से संबंधित महत्वपूर्ण पहलू को भी संकलित किया गया है।

परिचय

शकरकंद उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय देशों में स्टार्चयुक्त भोजन के लिए उगाया जानेवाला एक महत्वपूर्ण कंद की फसल है। भारत में इसे शकरकंद कहा जाता है। यह स्टार्च, ग्लूकोज, शर्करा और कैलोरी का भी महत्वपूर्ण स्त्रोत है। यह कंद और मूल फसलों में उच्चतम खाद्य कैलोरी का उत्पादन करता है।

जलवायु : शकरकंद को कम से कम चार से पाँच महीने गर्म मौसम की आवश्यकता होती है। इसे 21 से 27 डिग्री के बीच तापमान की अवश्यकता होती है। 75 से 150 सेमी. की अच्छी तरह से वर्षा वांछनीय है। यह भारी वर्षा को सहन नहीं कर सकता है। यह अत्यधिक वनस्पति कंद के विकास को प्रेरित करता है। यह ठंडा नही होता है।

मिट्टी : चूंकि कंद की वृद्धि मिट्टी के अंदर होती है इसलिए इसे बेहतर जड़ के लिए ढ़ीली जमी हुई मिट्टी की आवश्यकता होती है। यह रेतीले दोमट मिट्टी में विकसित होती है। अत्यधिक रेतीली मिट्टी कंद द्वारा बेलनाकार पेंसिल के विकास का कारण बनती है। इसके उत्पादन के लिए 5.8 से 6.7 मिट्टी पीएच उपयुक्त है। इसके सफल खेती के लिए मिट्टी को अच्छी तरह से सूखा होना चाहिए। इसकी परिपक्वता की अवधि 90-140 दिनों के बीच होती है। सामान्य तौर पर यह 120 दिनों में कटाई के लिए तैयार हो जाता है।

वैश्विक अनाज उत्पादन में शकरकंद का 7वॉ स्थान है और यह तीसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण कंद फसल है। यह विटामिन A का सर्वाधिक उत्तम स्त्रोत है। इसमें विटामिन B5, राइबोफ्लोविन, थायमिन भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। विभिन्न शोध से यह

ज्ञात हुआ है कि इसमें सूजनरोधी, मधुमेहरोधी और कैंसररोधी तत्वों की भी प्रचुरता होती है। अधिकतर शकरकंद का रंग पीला, श्वेत, गुलाबी और लाल होता है। विकासशील देशों में विटामिन A की कमी से अनेक रोग होते हैं। यह संक्रमणजनित रोगों से लड़ने की क्षमता को बढ़ता है और संक्रामक रूग्णता को कम करता है साथ ही गर्भवती, स्तनपान कराने वाली महिला के लिए हितकारी होता है और उनमें बच्चों की नश्वरता (मृत्यु-दर में वृद्धि) को कम करता है। यह न केवल मधुमेह के रोग से रक्षा करता है अपितु मानसिक तनाव के स्तर को भी कम करता है।

विभिन्न अध्ययन इस तथ्य की भी पुष्टि करते हैं कि इसमें प्रचुर मात्रा में विटामिन A, C और E पाये जाते हैं। ये सभी त्वचा के लिए लाभकारी हैं। यह त्वचा संबंधी रोग में उपयोगी होता है और अल्ट्रावायरस किरणों के अत्यधिक अनावरण के कारण त्वचा पर पड़नेवाले हानिकारक प्रभावों से रक्षा करता है। यह विटामिन उम्र बढ़ने के कारण शुष्क हो रहे त्वचा को लम्बे समय तक शुष्करहित बनाये रखने में उपयोगी है। इसके अतिरिक्त इसमें पाये जानेवाले विटामिन E गंजापन (Alopeciaद्ध के रोकथाम में और उसके समुचित इलाज में सहायक होता है। प्रतिदिन आहार द्वारा लाल शकरकंद के सेवन से सिर के बाल स्वस्थ्य रहते हैं।

महिलाओं में जनन क्षमता की वृद्धि के लिए आयरन की पर्याप्त मात्रा का शरीर में होना आवश्यक होता है। लाल शकरकंद आहार में आयरन का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। अध्ययन ये यह भी स्पष्ट हुआ है कि आहार में लाल शकरकंद के उपयोग करने से महिलाओं में गर्भपात को रोकता है और बॉझपन जैसी समस्याओं को भी कम करता है। लाल शकरकंद में उपलब्ध रेशा मधुमेह रोग में लाभदायक है। यह उच्च रेशावाला अनाज होता है। इसमें 77 प्रतिशत रेशा अघुलनशील होता है और यह मधुमेह रोग से रक्षा करता है। क्योंकि अघुलनशील रेशा शरीर में इंसुलिन की मात्रा को संतुलित रखता है। प्रचुर मात्रा में पाये जानेवाले अघुलनशील रेशा संपूर्ण पाचन शक्ति को भी संतुलित और नियंत्रित रखता है और बच्चों, वयस्कों में कोष्ठबद्धता (कब्ज) की संभावना को लगभग समाप्त करता है।

स्त्री में यौवनारंभ और रजोनिवृत्ति के बीच का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। इसे तरूणावस्था भी कहते हैं और इस अवधि में विटामिन A का आहार द्वारा सेवन अतिआवश्यक होता है क्योंकि विटामिन A जनन-क्षमता वृद्धि में अति फायदेमंद होता है। इस अवस्था में विटामिन ए की अपर्याप्तता स्त्री में संतानोत्पत्ति की क्षमता को सीधे प्रभावित करता है। तरूणावस्था में पोषणयुक्त आहार के द्वारा विटामिन ए का सेवन न किया जाय तो स्त्रियों में दोबारा गर्भधारण करने में बहुत कठिनाई होती है और गर्भधारण के बाद गर्भपात का अत्यधिक खतरा रहता है। लाल शकरकंद में आयरन की पर्याप्त मात्रा होती है और यह एक ऐसा महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ है जो स्त्री में तरूणावस्था में जनन-क्षमता के वृद्धि में अन्य कारकों के साथ फायदेमंद होता है। इसके अतिरिक्त कई शोध निष्कर्ष यह भी इंगित करते हैं कि स्त्रियों में जनन-क्षमता की कमी के लिए आयरन की कमी अथवा रक्तहीनता भी प्रमुख उत्तरदायी कारक होता है। लाल शकरकंद आयरन के स्त्रोत होते हैं। यदि पौष्टिक आहारों में नियमित रूप से इसका सेवन किया जाय तो रजोनिवृत्ति, जनन-क्षमता, गर्भपात और बॉझपन इत्यादिक शारीरिक समस्याओं से निदान पाया जा सकता है।

लाल शकरकंद में पाये जानेवाले पोषक तत्व

पोषक तत्व	मात्रा
कैलोरी	513 kj
कुल वसा	0-2 g
(saturated fat)	< 0-1 g
Polyunsaturated fat	< 0-1 g
cholestrol	0 mg
sodium	11 mg
Total carbohydrates	27 g
Dietary fiber	2-5 g

sugar	2 g
Protein	3-2 g
calcium	12 mg
potasium	752 mg
alcohal	0 g
vitamin 'A'	14 mg
vitamin 'c'	17 mg

लाल शकरकंद संपूर्ण स्वास्थय के लिए निम्न कारणों से लाभदायक होता है।

शारीरिक तनाव को न्यून करने में : लाल शकरकंद में विटामिन बी 6 का प्रतिशत कम से कम 10 प्रतिशत होता है। शारीरिक तनाव को न्यून करने में विटामिन बी 6 की मात्रा आहार के द्वारा कम से कम 10 प्रतिशत होना चाहिए। यह विटामिन कोशिकाओं के पुनर्निर्माण के लिए, स्वस्थय तंत्रिका-तंत्र के लिए और संतुलित भोजन के लिए आवश्यक है। जिसकी पूर्ति आहार द्वारा लाल शकरकंद के सेवन से हो जाती है इसके अतिरिक्त लाल शकरकंद शरीक में कोलेस्ट्रोल को संतुलित रखकर हृदय रोग अथवा हृदयाघात से भी रक्षा करता है। कच्चा, उबला हुआ या मसला हुआ लाल शकरकंद शरीर में ऊर्जा संवृद्धि में सहायक होता है इसमें कार्बोहाइड्रेट्स और विटामिन के संपूर्ण स्त्रोत पाये जाते हैं जिस कारण यह मानव शरीर और उसके संपूर्ण स्वास्थय के लिए एक ऊर्जा का महत्वपूर्ण माध्यम है।

ग्लूटेन मुक्त (Gluten freeद्ध अनाज के रूप में : लाल शकरकंद प्राकृतिक रूप से ग्लूटेन मुक्त होता है। ग्लूटेन मुक्त आहार के लिए लाल शकरकंद का सेवन उपयोगी है। सामान्य धारणाएँ यह है कि ग्लूटेन और कार्बोहाइड्रेट्स दोनो एक समान होते हैं किन्तु दोनो में समानता नहीं है। जहाँ कार्बोहाइड्रेट्स शर्करा से मिलकर बनता है वहीं ग्लूटेन प्रोटीन का समूह है। लाल शकरकंद में विटामिन सी की प्रचुरता होती है और इसके छिलके में रेशा भी पाया जाता है। यह एक ऐसा महत्वपूर्ण पोषक तत्व है जो मानव शरीर में ऊतकों के निर्माण में सहायक होता है। लाल शकरकंद में पोटाशियम की मात्रा अन्य अनाज की अपेक्षा में पर्याप्त पाए जाते हैं यदि इसे आहार में प्रतिदिन स लिया जाय तो यह तंत्रिकाओं, शरीर के तरल पदार्थ और कोशिकाओं को सुरक्षित रखने में सहायक होता है।

यदि चावल में पायेजानेवाले पोषण तत्वों का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि प्रति 100ग्रा. चावल में कैलोरी 130ग्रा., कुल वसा0.19 ग्रा., कोलेस्ट्रोल 0 मिली.ग्रां., सोडियम 1 मिलीग्रा. चीनी 0.1 ग्रा., कार्बोहाइड्रेट 28ग्रा. और प्रोटीन 2.7ग्रा. होते हैं। जबकि विटामिन बी 6 की मात्रा 5प्रतिशत, आयरन 1प्रतिशत और 1.6ग्रा. फाइबरयुक्त रेशा पाये जाते हैं। एशिया में इसका उत्पादन सर्वाधिक यानि 90प्रतिशत होता है। चावल रक्तचाप को नियंत्रित करता है, कैंसर जैसे असाध्य रोग को होने से रोकता है। अल्जाइमर रोग को रोकने के साथ यह मेटाबॉलिज्म को विकसित करता है और इसके नित्यदिन उपभोग करने से हृदय तथा रक्तवाहिकाओं संबंधी बिमारी होने का खतरा कम होता है। चावल में सभी पोषक तत्व पाऐ जाते हैं और इसका उपभोग करना सुरक्षित तो हो सकता है किन्तु यदि प्रतिदिन अधिक मात्रा में इसका उपभोग किया जाय तो रक्त चाप बढ़ने और मोटापा होने की संभावना सदैव बनी रहती है। अत: चावल में सभी पोषणीय तत्व की विद्यमानता तो है किन्तु इसका उपभोग सावधानीपूर्वक और न्यून मात्रा में प्रतिदिन किया जाय तो यह शरीर के के लिए हितकारी है। लाल शकरकंद से इसकी तुलना करने से यह ज्ञात होता है कि चावल और लाल शकरकंद में पोषक तत्वों समान हैं किन्तु उनका उपभोग करने में अंतर है। लाल शकरकंद का उपभोग हर दृष्टिकोण से लाभकारी और सुलभ भी है। इसलिए अनाज के विकल्प के तौर पर लाल शकरकंद एक अच्छा विकल्प हो सकता है।

कंद वाले अनाज जैसे रतालू, कसावा से लाल शकरकंद की तुलना करने के बात निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

एक कच्चे रतालू में 70 प्रतिशत जल, 24 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन 15 प्रतिशत और रेशा 4 प्रतिशत पाये जाते हैं। वहीं एक कच्चे लाल शकरकंद में जल की मात्रा 77 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 20 प्रतिशत, प्रोटीन 3 प्रतिशत और वसा की मात्रा शून्य होता है। पके हुए 100 ग्रा. रतालू में कैलोरी 116, कार्बोहाइड्रेट्स 27.5 ग्रा0, आहारयुक्त रेशा 3.9 ग्रा0, वसा 0.1 ग्रा., प्रोटीन 1.5 ग्रा. और विटामिन 'ए' एवं 'सी' की मात्रा क्रमश: 2 प्रतिशत और 20 प्रतिशत जबकि आयरन और मैगनिशियम की मात्रा क्रमश: 3

प्रतिशत और 5 प्रतिशत पाये जाते हैं। जबकि प्रति 100ग्रा. लाल शकरकंद में पाये जाने वाले पोषक तत्वों में कैलोरी 90 कि.जू. , कार्बोहाइड्रेट20.7ग्रा0, आहारयुक्त रेशा 3.3ग्रा., आयरन की मात्रा 4 प्रतिशत, मैगनेशियम 7 प्रतिशत पाये जाते हैं। तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि रेतालू की तुलना में लाल शकरकंद में विटामिन के स्त्रोत अधिक पाये जाते हैं। यदि प्रतिदिन के आहार में इसका उपयोग किया जाय तो इसमें उपलब्ध विटामिन शरीर को बिटा-केरोटीन की आपूर्ति करती है जो मानव के प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है। अत: विकासशील देश में जहाॅ विटामिन की कमी से अनेक बिमारियाॅ होती है, लाल शकरकंद अन्य अनाज की तुलना में एक अच्छा विकल्प है।

रतालू की तरह कंद वाला फसल कसावा का आज विश्व के लगभग अस्सी से अधिक देशों में उत्पादन होता है और लगभग आठसौ करोड़ लोग इसे आहार के पूरक के रूप में उपयोग करते हैं। कसावा का जड़ लाल शकरकंद के समान होता है। यह लाल शकरकंद की तरह कार्बोहाइड्रेट, कैलोरी आदि का उत्तम स्त्रोत है किन्तु इसे कच्चा नहीं खाया जा सकता है क्योंकि इसमें सायनाइड बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह विटामिन 'सी', थायमिन,राइबोफ्लॉबिन का अच्छा श्रोत है और इसके पत्तियों में भी प्रोटीन पाये जाते हैं। किन्तु इसके संपूर्ण हिस्से को लाल शकरकंद की भाँति आहार में उपयोग नहीं किया जा सकता है। इसके कंद में कोई पोषक तत्व विद्यमान नहीं होते हैं और इसका आहार में उपयोग करने से अनेक बिमारियाॅ जैसे, बच्चों में विकलांगता (पैर से), आयोडिन स्तर का न्यून होना, दृष्टिबाधिता और यहाॅ तक कि आसमयिक मृत्यु के भी परिणाम हुए हैं।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि लाल शकरकंद में सभी ऐसे पौष्टिक तत्व मौजूद होते हैं जो शरीर के लिए आवश्यक है। इसका अनाज के एक अच्छे विकल्प रूप में उपयोग किया जा सकता है। यह मानव के पोषण प्रास्थिति को मजबूत करता है और उसे क्षरण होने से बचाता है। कंद फसल में लाल शकरकंद में पाये जानेवाले सभी पोषक तत्व अत्यंत लाभकारी है। अनाज का एक सर्वोत्तम विकल्प होने के कारण वर्तमान में इसके उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता है।

प्रमुख संदर्भ

1. Development of traditional food crops in developing countries; Report of a joint consultation, Geneva.
2. Association of official Analytical chemist 2005, official methods of analysis association of official analytical chemist,Washington,DC.
3. Fisher, F, and A. Bender, 1972, The value of food, Oxford university Press, Oxford.
4. Krishna, G, and S.K. Ranjhan, 1980, Laboratary manual for nuitrition research, Vikas Publicity House, PVT Ltd., Ghaziabad, U.P., India.
5. Agriculture journal IJoEAR, Bikaner,Rajasthan,India.
6. ICAR-Central coastal Agriculture Research Institute Agri E-Portal.
7. ICAR- Central Tuber Crops Research Institute, Thiruvananthapuram, Kerala, India.
8. *National centre for Biotechnology information, Annual report.*

‘छिन्नमूल’ उपन्यास सूरीनाम के जन - जीवन की गाथा

गायत्री

शोधार्थी, पीएच.डी हिन्दी, दिल्ली विश्वविद्यालय

जब भारत से भारतीय मूल के लोग शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत दूसरें देशों में भेजे गए तो इन्हें प्रवासी भारतीय या गिरमिटिया मजदूर कहा गया तथा जिन देशों में यह लोग भेजे गए उन्हें गिरमिटिया देश कहा गया। जिसमें फीजी, गयाना, मॉरीशस, त्रिनिदाद इन्हीं देशों में से एक देश सूरीनाम भी हैं।

सूरीनाम भारत से लगभग दो हजार किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण अमेरिका के उत्तरी छोर पर भूमध्य रेखा के समीप वर्ष भर प्रकाश का आनंद उठाता हुआ देश है। यह देश सूर्य अथवा स्वर्ण का देश कहलाता है। सूरीनाम का नाम वहां की एक जनजाति ‘सूरीनन्’ के नाम पर पड़ा हैं। बोलचाल की भाषा में सूरीनाम के अनेक नाम पड़ गए थे। सरनाम, श्री नाम या श्री राम के नाम से भी इसे संबोधित किया गया।

सूरीनाम देश के बसने का भी अपना अलग इतिहास है क्रिस्टोफर कोलंबस ने भौगोलिक दृष्टि से इस देश को अन्वेषित किया। तो हॉलैंड, इंग्लैंड और फ्रांस जैसे यूरोपीय देशों ने एक और सत्ता और धन की दृष्टि से तो दूसरी और व्यवसाय और शासन की दृष्टि से इसे अपने तरीके से विकसित किया। ऐसा माना जाता है कि लगभग सन् 1873 से सन् 1916 के बीच सूरीनाम पहुँचे हुए आप्रवासी भारतीयों के द्वारा अन्वेषित और सृजित सौंदर्य शक्तिशाली देश बना गया है। सूरीनाम में प्रवासी भारतीय ‘शर्तबंद प्रथा’ के अंतर्गत पहुंचे जिन्हे सूरीनाम में प्रवासी भारतीयों को हिंदुस्तानी भी कहते हैं। आज प्रवासी भारतीय या कहें हिन्दुस्तानी सूरीनाम देश के एक विशेष अंग बन चुके हैं। इन भारतीय प्रवासियों ने वहां अपनी संस्कृति को जीवित रखा हैं और अपने कठिन परिश्रम से सूरीनाम को स्वर्ण भूमि बनाने में प्रवासी भारतीयों ने विशेष योगदान दिया है।

सूरीनाम में ऐसे ही लोगों के जन - जीवन को तथा उनके संघर्ष को दर्शाता एक ऐसा ही उपन्यास ‘छिन्नमूल’ जिसकी लेखिका प्रो. पुष्पिता अवस्थी जी हैं। प्रवासी भारतीय लेखकों में पुष्पिता अवस्थी का नाम प्रतिष्ठा से लिया जाता हैं। पहली बार किसी प्रवासी भारतीय लेखिका ने सूरीनाम देश को उपन्यास का विषय बनाया और गिरमिटिया परंपरा में सूरीनाम की धरती पर आए श्रमशील पूर्वी उत्तर प्रदेश के मजदूरों अर्थात् भारतवंशियों के संघर्षगाथा को शब्द दिए हैं।

भारत सरकार के उच्च पदस्थ अधिकारी के रूप में कार्यरत पुष्पिता जी जहां भी रही वहां के प्रवासी भारतीयों के जीवन को आप ने अपनी कृतियों में लिपिबद्ध करने का प्रयास करती हैं वहां के प्रवासी भारतीयों की जीवन-चर्या से लेकर विदेशी भूमि पर कठोर संघर्ष को आत्मसात करते हुए रचनाओं में लेखबद्ध कर रही हैं। ‘छिन्नमूल’ उपन्यास के द्वारा लेखिका अवस्थी जी के उस देश से जुड़ें जमीनी अनुभवों के यथार्थ का पता चलता हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने सूरीनाम के प्रवासी भारतीय के जीवन, उसकी अर्थव्यवस्था, राजनीतिक परिवेश, रोजगार, जीवनचर्या प्राकृतिक संपदा, धर्म तथा विश्वास आदि पर गहन चिंतन की छाप छोड़ते नजर आती हैं।

लेखिका सूरीनाम में बसे भारतीय एवं अन्य जातियों के इतिहास को व्यक्त करती है जिन्होंने सूरीनाम की धरती पर कई प्रजातियों की गुलामी का दर्द और उनकी आजादी का रंग देखा है। यह उन लोगों की कहानी है जो अपनी जड़ों छोड़ कर पराए देश में अपनी धर्म, संस्कृति और विश्वास के साथ पराई धरती को खून पसीने से सीच कर पल्लवित किया। सूरीनाम के साहित्य इतिहास के पूर्व

में देखें तो डच भाषा में उपन्यास लिखे गए परंतु वे प्रायः नीग्रो समाज के संघर्ष उजागर करते है। कुछ सरनामी भाषा में भी उपन्यास लिखे गए। परंतु' यह उपन्यास एक तरफा हिंदुस्तानी संस्कृति के दोगले शहरों की असलियत व्यक्त करता हैं। दूसरी तरफ एक सौ आठ बरस के अंतराल में यहां पनपी सूरीनाम हिंदुस्तानी संस्कृति को भी उद्घाटित करता है। अतीत में जब पाल वाले जहाजों से हिंदुस्तानी लाए गए तो उन पर गोरे डच कोड़े बरसाते थे। आज जहां उन्ही हिंदुस्तानियों की आबादी 42 प्रतिशत है। सब कुछ छोड़कर भारतवंशियों का अब हिंदुस्तान से संपर्क लगभग कट गया है। वे लौटना भी चाहे तो असंभव है सूरीनाम की भारतवंशी संस्कृति और सरनामी हिन्दी से सुपरिचित, भारतवंशियों के रहन-सहन जीविका परिवारिक संबंधों का जीने को महसूस करने वाली पुष्पिता अवस्थी जी न केवल सूरीनाम के भौगोलिक परिवेश जनजीवन और पर्यावरण की पूरी समझ के साथ उकेरा है। बल्कि भारतवंशियों के हालात और नीग्रो की लुटेरी प्रवृत्तियों तक को भी बहुत गहराई से विश्लेषण किया हैं।

उपन्यास में मुख्य किरदार ललिता सूरीनाम में पार्टी में देर रात अकेले होने और बारिश के जबरदस्त आसार को देखते हुए घर पहुंचने की विफलता औकर सूरीनाम के लुटेरे परिवेश को देखते हुए भय से ग्रस्त है। ललिता का घर दूर है लेकिन उसे वही रहने वाला रोहित जो उपन्यास का मुख्य पुरुष पात्र है। वह एक व्यवसायी है। चुटकीयों में भय मुक्त कर देता है। उसे कार में लिफ्ट देने के साथ ही वह अपनी सज्जनता का परिचय देने वाले रोहित के प्रति धीरे-धीरे ललिता में लगाव पैदा होता है। इस बीच में एक ऑपरेशन के लिए ललिता अस्पताल में दाखिल होती है। इस दौरान रोहित न सिर्फ उसकी देखभाल करता है बल्कि उसे अस्पताल से अपने घर ले जाता है। रोहित मूलतः भारतवंशियों की संतान है जो कभी दो - तीन पीढ़ियों पहले सूरीनाम आए थे और अब उनका हॉलैंड में कारोबार है दो दिल कैसे उत्तरोत्तर एक होते जाते हैं। परिस्थितिया कैसे खूबसूरती से इसे संभव करती हैं।

दोनों ही भारतीय संस्कृति और संस्कारों से प्रभावित हैं। चाहे यह संस्कार अंशिक रुप में उन्हे पूर्वजों से मिले हो । उपन्यास में बाद में दोनों के प्रेम बंधन के बाद दाम्पत्य जीवन के बंधन में बधते हुए देखने को मिलता हैं।

लेखिका सूरीनाम में बसे भारतीयों व अन्य जातियों के इतिहास को उपन्यास में व्यक्त इस प्रकार किया है। ष्सूरीनाम की धरती ने कई प्रजातियों की गुलामी का दर्द और इसकी आजादी का उल्लास देखा हैं। ललिता को बहुत गहराई से उस समय अनुभव हुआ था कि मानव मुक्ति के हर्ष के आनंद उत्सव के पसीने से यह धरती कितनी बार भी चुकी हैं।

इस धरती का सौभाग्य है कि विश्व के सुदूर देशों से मेहनतकश पुरखे यहां आए और यहां मजदूरी किए फिर इस देश को ही अपना घर बना लिया। आज यह विश्व की अनेक संस्कृति वाले देशों के नागरिकों की नई पीढ़ी की मातृभूमि बनी हुई है।" (छिन्नमूल उपन्यास, लेखिका पुष्पिताअवस्थी, पृष्ठ सं. 39) उपन्यास में लेखिका ने सूरीनाम के जनजीवन के रहन-सहन की छोटी-छोटी सी बारीकियों को दिखाने का प्रयास किया तथा उनके धार्मिक विश्वास एवं संस्कृति को अपने उपन्यास में दर्शाया हैं। प्रवासी भारतीयों के इस परिवेश में घुल मिलकर एक नए रूप में जीवन को परिभाषित करने की चेष्टा लेखिका ने की है।

उपन्यास में जिन भारतवंशियों के कठिन परिश्रम से सूरीनाम का विकसित हुआ आज उनकी पहचान वहा सिमट सी गई और वो नए बसे नागरिकों की मातृभूमि के रुप में अपनी अस्मिता धारण किए हुए हैं। यह उपन्यास सूरीनामी भारतवंशियो की स्थिति और उसकी खोई अस्मिता को दर्शाता हैं।

सूरीनाम वासियों पर डच जीवन और मान्यताओं का प्रभाव देखने को उपन्यास मिलता हैं। अस्पताल में अपने ऑपरेशन के सिलसिले में पहुंची उपन्यास की पात्र ललिता देखती हैं कि चाइनीज, जैपनीज और भारतीय मरीज एक दूसरे से डच भाषा में ही बंधे हुए हैं। उपन्यास में देखा गया हैं कि सूरीनाम बहुभाषिक देश होते हुए भी उसकी संपर्क भाषा डच बनी हुई हैं।

ष्एक स्कूल की बुजुर्ग अनुभवी अधिक अध्यापिका ने भी बातचीत में एक दिन ललिता को बताया था कि यहां मेंनसेंस होने से पहले ही प्रायः लड़कियों की वर्जिनिटी टूट जाती हैं। सुनकर वे चौकी थी लेकिन बाद में उसे लगा था कि ऐसा होना स्वाभाविक हैं। यहां की युवतियां प्राय न के बराबर कपड़े पहनती हैं इस पर भी जो और जितना पहनती हैं देखने - दिखाने की जिज्ञासा से भरपूर दुकानों मंदिरों में खुले हुए कंधे और चमकती हुई जांघे जिसकी नाभि का नथ और देह के अनेक हिस्सों में कमर.... कंधा. .. बाँह.... जाँघ और स्तनों पर आधुनिक डिजाइनों की काली और रंगीन गोदाई ...जिन्हे अगर खुलेआम होठ नहीं चुम पाते तो आँखे ही रसपान कर लेती हैं। (छिन्नमूल उपन्यास पुष्पिता अवस्थी पृष्ठ सं. 24) उपन्यास में सूरीनाम के युवाओं के जीवन को दर्शाया

गया हैं।की आधुनिकता और पाश्चात्य संस्कृति के मोहपाश में मस्त होकर युवा पीढ़ी भविष्य तथा जीवन से बेखबर है। उनकी मानसिकता पर जिस पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव दिखता है वह युवाओं को स्वयं के उद्देश्य से अपरिचित भटकाव की ओर ले जाती नजर आती है।

उपन्यास में सरकारी नीतियों की लेखिका ने करारी आलोचना करते हुए उपन्यास में दिखाया कि कैसे सूरीनाम में जनता की परिस्थितियों से अवगत होने के बाद भी सरकारी नीतियाँ उनकी जीविका को अपने स्वार्थ नीतियाँ से प्रभावित करती हैं। ललिता, रोहित और रिचर्ड की बातचीत के एक और प्रसंग में लिखती हैं कि "सूरीनाम की उपज जमीन पर झाड़ - झंखाड़ और जंगल उगे हुए हैं जबकि देश की अधिकांश जनता भूखमरी और बदहाली की चपेट में जकड़ी हुई है सरकार को चाहिए कि वह अपनी जमीन गरीबों को कॉन्ट्रैक्ट पर दे दे जिस पर वह केले, काकउ और कहवे की प्लांटेशन कर अपने आर्थिक स्तर को उन्नत बना सकें" (छिन्नमूल उपन्यास पृष्ठ सं.93)।

सूरीनाम में विदेशी नीति सूरीनाम की प्रगति के लिए बाधा हैं। जिससे सूरीनाम स्वयं का विकास करने में असमर्थ हैं। उपन्यास में देखने को मिलता है कि सूरीनाम के राष्ट्रपति जिस देश नीदरलैंड, अमेरिका आदि जहाँ भी जाते वहां उधार की झोली फैलाते हैं और परिणाम यह है कि देश की मिट्टी से सोना निकालने का कॉन्ट्रैक्ट अमेरिका को दे रखा हैं। देश भर में सड़क बनाने का ठेका चीन को मिला हुआ हैं। बदले में चीनियों को रेजिडेंट और राष्ट्रीयता मिल जाती हैं। जिससे चीनी इस देश में आकर अपना व्यवसाय जमा कर बैठ जाते हैं। सूरीनाम का प्राकृतिक संपदा से उन्नत और समृद्ध होने पर भी उसकी मर्यादा एक प्रकार से जबरन गिरवी रखी हुई हैं।

सूरीनाम के हवाई अड्डे का वर्णन उपन्यास में आता हैं कि भारत की विभिन्न राज्यों की राजधानियों जैसे पटना ,भुवनेश्वर, कोलकाता आदि की भाँति सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो का हवाई अड्डा भी छोटा हैं, जहां दिन भर दो-चार हवाई जहाज आते हैं।

सूरीनाम के प्रवासी भारतीय किसानों की बात करे तो सूरीनाम में वे करेले के बागान तथा मिर्च, केला, पपीता उगाते और उस छोटे- मोटे व्यवसाय की जीविका से जीवन व्यापन करते हैं। यह उनके आम लोगों का जनजीवन हैं।

'छिन्नमूल' उपन्यास में रोहित और ललिता मुख्य पात्र हैं जो भारतवंशी होने के कारण अपने संस्कारों में बंधे होते हैं जहां रोहित अपने पुरखों की याद को संरक्षित करने के लिए सूरीनाम में पुरखों की जमीन पर स्कूल और मंदिर आदि के निर्माण में लगना उसका और ललिता का सांझा स्वप्न बन जाता है। इसी बहाने ललिता सूरीनामी जीवन भारतवंशियों की सांस्कृतिक परंपरा ,पारस्परिक संबंधों में आते हुए पश्चिमी आधुनिकता में स्वयं न बदलने का निरंतर प्रयास करती है और सूरीनाम भारतवंशियों को अपने विवेक से उनको मार्ग दिखाती हैं। उपन्यास में सूरीनाम की नवीन भारतवंशी युवा पीढ़ी पर भारतीय संस्कृति और संस्कारों का प्रभाव स्वत ही विधमान दिखाई पड़ता हैं।

उपन्यास में सूरीनाम की यौनिकता का बेबाकी से चित्रण हुआ है जहां बिना विवाह के ही रहने की छूट है तथा समाज में मर्दवादी दृष्टि का बोलबाला और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव सूरीनाम की नवीन पीढ़ी पर दिखता हैं।

निष्कर्ष

इस तरह उपन्यास में मुख्य पात्र ललिता और रोहित के दाम्पत्य जीवन भारतवंशी संस्कृति से बंधा हुआ उपन्यास में नजर आता हैं। दूसरी और युवा पीढ़ी पर पाश्चात्य संस्कृति के नशे के प्रभावित भविष्य बिमुख दर्शाया गया है। लेखिका प्रो. पुष्पिता अवस्थी जी ने सूरीनाम के जन-जीवन की बारीकियों से उपन्यास में को दर्शाते हुए सूरीनाम के प्रवासी भारतीयों के जीवन और सूरीनाम की अर्थव्यवस्था, राजनीतिक परिवेश, रोजगार जीवनचर्या ,प्राकृतिक संपदा ,धर्म आदि का यथार्थ चित्रण करने का प्रयास किया हैं। साथ ही सूरीनाम समाज और भारतवंशियों के प्रति सूरीनाम न प्रशासन का व्यवहार भी उपन्यास में दिखाया हैं। कहा जा सकता हैं कि 'छिन्नमूल' उपन्यास के द्वारा लेखिका ने सूरीनाम के जन - जीवन के सभी पहलुओं को सजगता के साथ अवगत कराने का सफल प्रयास किया हैं।

आधार ग्रंथ

1. छिन्नमूल उपन्यास, अवस्थी, पुष्पिता, पृष्ठ सं. -24, 29,93 अंतिका प्रकाशन गाजियाबाद।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रवासी स्त्री लेखन :विमर्श के विविध आयाम, संपादक बलबीर सिंह, लेख सूरीनाम के जीवन में झांकता उपन्यास छिन्नमूल, लेखिका मुखर्जी, डॉ रेशमी पांडा, माया प्रकाशन कानपुर।
2. सूरीनाम, अवस्थी , प्रो.पुष्पिता, नेशनल बुक ट्रस्ट दिल्ली।
3. भारतीय प्रवासियों की सेवाएं, मोहन ,अरविंद प्रकाशन दिल्ली।
4. प्रवासी जगत पत्रिका, संपादक पाण्डेय, प्रो. नंदकिशोर, नवंबर - सितंबर, 2017 ,केंद्रीय संस्थान आगरा।

सामाजिक समरसता (Social Harmony) की अवधारणा और हम भारतवासी

डॉ० गिरीश चंद्र जोशी

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री अरविंद महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अपने इस शोध-आलेख के शीर्षक में मैंने दो विशेष शब्दों का प्रयोग किया है जोकि अत्यंत महत्वपूर्ण, बहुविश्रुत व सर्वव्यापक हैं। इनमें सर्वप्रमुख शब्द सद्भाव-समरसता या कि सामंजस्य है जिसे समाज से जोड़ा गया है। यहां प्रश्न उठता है कि यह सद्भाव-समरसता है क्या? और दूसरी बात कि वह समाज से किस तरह संबंधित है--- यानी सामाजिक सद्भाव?

सामाजिक यानी समाज से संबंधित फैलोशिप, भाईचारा, एक संघ, एक समुदाय। इसका मतलब समाज के लोगों के बीच उनकी आमदनी-भाषा- जाति-धर्म-वर्ग-सेक्सादि की भावना से कोई विभेद या अंतर न पैदा अथवा प्रदर्शित करने से है। और जब भी किसी को कोई चीजादि की जरूरत पड़े तो उसकी मदद करने से है। सुविख्यात विचारक व दार्शनिक कन्फ्यूशियस ने सामाजिक संगठन को किसी भी राष्ट्र की आधारशिला बताते हुए कहा है कि ---"सामाजिक संगठन किसी राष्ट्र की आधारशिला है। जब तक समाज के व्यक्ति संगठित नहीं होंगे, तब तक राष्ट्र का आधार ठीक नहीं होगा।"[1]

इस प्रकार सामाजिक सद्भाव की अवधारणा का संबंध किसी भी बहुलवादी संघ, समूह या समाज में किसी एक का अन्य के साथ भाईचारे का व्यवहार- बर्ताव अथवा कल्याणकारी सोच-एप्रोच व मानसिकता की मधुर-धुन में रमा होने से होगा। देखा जाए तो किसी भी समाज या एक राष्ट्र-समाज के भीतर प्रतिस्पर्धा कर रहे विभिन्न समूह या तत्वों के बीच आपसी जुड़ाव-सौहार्द के संदर्भ में कोई एक उल्लेखनीय तंत्र जरूर काम करता है। इस तंत्र का सबको पता लगना ही चाहिए कि विभिन्न समूहों की जरूरतों, मांगो और आकांक्षाओं के बीच किस प्रकार से एक आपसी संश्लेषण/जुड़ाव विद्यमान है। यह एक सबका देखा-जाना-समझा तथा सर्वव्यापी सच है कि सामाजिक सद्भाव किसी भी समाज के चहुंमुखी -बहुमुखी विकास, प्रगति, बढती और खुशहाली के लिए एक अनिवार्य शर्त है---हमें ऊष्मायन और अपने जीवन के विकास के लिए, आपसी शांति सुनिश्चित करने की नितांन जरूरत है। कोई भी जीवन निरंतर लड़ाई, युद्ध और संघर्ष में विकसित नहीं हो सकता। जीवन में कोई समझौता, समायोजन और सद्भाव करने का एक बुनियादी तरीका है। यहां मैं इस बात का उल्लेख जरूर करना चाहूंगा कि मानवीय जीवन एवं उसके अस्तित्व से जुड़ी सभी प्रकार की समस्याओं के मूल में, अनिवार्य रूप से सद्भाव/ समरसता की कमी से जुड़ी चीजें,बातें अथवा समस्याएं ही हैं। "मनुष्य मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर इन चारों का समुच्चय है। हम उसको टुकड़ों में बांटकर विचार नहीं करते।"[2] इस जीवन के दुखमय होने का मुख्य कारण ही सद्भाव अथवा समरसता का अभाव है। प्राणी मात्र के सुख हेतु कार्य करना ही श्रेयस्कर है, व्यक्तिगत सुख हेतु ही कार्य श्रेयस्कर नहीं। नितांत अपने सुख के लिए दूसरे को दुःख, कष्ट देना कदापि उचित नहीं। हमारे यहां तो शुरू से ही कहा गया है कि:---

"त्वसुधैव कुटुम्बकम",

या

"सर्वे भवन्तु सुखिन:
सर्वे सन्तु निरामया:

अथवा

"बहुजन हिताय
बहुजन सुखाय।"

या फिर

जियो और जीने दो.....।

ये सारे सिद्धांत ही विवेचित विषय के संदर्भ में उपयुक्त एवं हितकारी हैं। इस संदर्भ में आधुनिक हिंदी के यशस्वी रचनाकार जयशंकर प्रसाद ने अपने महान ग्रंथ 'कामायनी' के लिखा भी है, कि:--

"यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म-रंगस्थल है, है परंपरा लग रही यहां, ठहरा जिसमें जितना बल है..............
"औरों को हंसते देखो मनु, हंसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्मृत कर लो,
सबको सुखी बनाओ।[3]

दुनियाभर में जहां भी मनुष्य नाम के जीव का अस्तित्व दिखलाई देता है, उसकी बुनियादी, जैविक जरूरतें एक-सी ही हैं जैसे- प्रेम-भूख-प्यास-नींद-सेक्सादि। इसी प्रकार से उसकी कुछ सर्वव्यापी, सार्वकालिक मनोवैज्ञानिक अनिवार्यताएं भी हैं जोकि उसके जीवन- यापन, उसकी अस्मिता, पहचान, सुरक्षा, प्रतिष्ठा और सहभागितादि से जुड़ी हुई हैं और जिनकी निर्बाध आपूर्ति किसी भी मनुष्य- मात्र की मानसिक शांति, शक्ति या स्वास्थ्य के लिए अत्यंत अनिवार्य है। मनुष्य-मात्र की यह ऐसी अनिवार्यताएं हैं जोकि उसके नितांत व्यक्तिगत प्रयासों से ही पूर्ण नहीं हो सकतीं, उसके लिए उसे समाज के अन्य सदस्यों, समुदायों या संप्रदायों के सम्मिलित सहयोग की बहुत-बहुत आवश्यकता पड़ती है। और देखा जाए तो इसी कारण से मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रूप में समाज में मान्यता या प्रतिष्ठा प्राप्त है। हमारे यहां कहा भी गया है कि मनुष्य को जीवन के हर पड़ाव पर कभी भी प्यार-सौहार्द की सरसता-सद्भावना को नहीं खोना चाहिए। प्रेम से नर क्या नारायण भी वश में हो जाते हैं और जीवन व जिंदगी की सफलता- सार्थकता इसी से है, कि---

"रीति-प्रीति सबसों भली,
बैर न हित मित गोत,
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगत होत।"[4]

वस्तुत: एक आपसी सहभागिता, सामंजस्य व सद्भाव के भाव को लेकर चलने वाला समाज ही पारस्परिक स्वस्थ सामाजिक जीवन की ओर अग्रसर हो पाता है--- पारस्परिक जिम्मेदारी- समझदारी और जवाबदेही के बिना मनुष्य नाम की कोई महत्ता, उपयोगिता और सार्थकता नहीं?---

"नाहमस्मि न चान्योअस्ति ध्येयं चात्र न विद्यते,
आनन्दपदसंलीनं मन: समरीगतम्।"

भारतवर्ष का समूचा समाज दुनिया का एकमात्र ऐसा समाज है जहां विभिन्न विजातीय समूह कई जातीयों-समूहों में बंटे होने के बावजूद एक सामाजिक-राष्ट्रीय सांस्कृतिक परंपरा में जीते हैं। यहां सदियों से विभिन्न धार्मिक रीति-रिवाजों को मानने वाले समुदाय- संप्रदाय और भाषा-भाषी 'शांतिपूर्ण सह अस्तित्व' के सामाजिक सामंजस्य की मनोभावना के साथ रहते आ रहे हैं। आठ प्रमुख धर्मों के साथ-साथ 22 सूचित भाषाओं व हजारों अन्य बोलियों-उपबोलियों और 600 से ज्यादा राजनीतिक पार्टियों संग, 140 करोड लोगों के वजूद के बावजूद कुछ ऐसी खूबियां हमारी नस-नस में समाहित-प्रभावित हैं, हमारी सभ्यता-संस्कृति में कुछ ऐसे आधारभूत मूल्य व परंपराएं नियोजित हैं जो आपसी सामंजस्य-सौहार्द और सद्भाव को सदैव बढ़ावा देती हैं। और यही वो चीज अथवा बात है कि कोई कुछ भी कर ले, पर हस्ती मिटती नहीं हमारी और इसी से पूरी दुनिया हमें सलाम करते हुए आज भी पूरी सृष्टि में भारतीय- उपमहाद्वीप में हमको महान सभ्यता-संस्कृति वाले विशाल राष्ट्र के रूप में देखती है। लोगों के बीच परस्पर दोस्ती-सम्मान और सामुदायिक विकास बढ़ाने के लिए हम 140 करोड़ के पार की जनसंख्या वाली भारतमाता की सभी संतानें

क्षेत्र-उम्र-लिंग-जाति-धर्म- भाषा- विचारधारा-खान-पान- वेशभूषा और आमदनी तमाम बेड़ियां तोड़ते हुए कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से पश्चिम बंगाल तक विभिन्नता में एकता/यूनिटी ऑफ डाइवर्सिटी की एक जीती जागती मिशाल हैं। अस्तु, "विविधता में एकता अथवा एकता का विविध रूपों में व्यक्तीकरण ही भारतीय संस्कृति का केंद्रस्थ विचार है। यदि इस तथ्य को हमने हृदयंगम कर लिया तो फिर विभिन्न सत्ताओं के बीच संघर्ष नहीं रहेगा। यदि संघर्ष है तो वह प्रकृति का अथवा संस्कृति का द्योतक नहीं, विकृति का द्योतक है।"[5]

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हमने अपनी एकता-सुदृढ़ता और अखंडता की बेमिसाल पेश कश सम्पूर्ण दुनिया-जहां के आगे रखी थी और श्री अरविन्द-चन्द्रशेखर आजाद-सुभाष चंद्र बोस-शहीद भगत सिंह-गांधी-अंबेडकर जैसी अनेकानेक यशस्वी हस्तियों के अनूठे, क्रांतिकारी विचारों से प्रेरित-प्रभावित होकर विदेशी-दासता की जंजीरों से खुद को बखूबी मुक्त करके दिखलाया था। और आज भी एक भारतीय नागरिक के रूप में हम सबका यह दायित्व व प्रयास होता है कि अपने भारतदेश की इस अनमोल समृद्ध सामाजिक परंपरा, विरासत को विभिन्न धार्मिक-जातिगत समुदायों के मध्य यूं ही बनाते हुए आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाने का अनथक प्रयास करें। हां, यह भी सच है कि इतिहास में जब तक देशवासियों के बीच कुछ असामाजिक-अराजक तत्व तनाव-अलगावाद और वैमनस्य की कटु-भावनाओं को पैदा करने की कुचेष्टा भी करते रहे हैं। आजादी से पूर्व व बाद के लगभग 75 वर्षों के कई सांप्रदायिक दंगे-फसाद उत्पात-आतंकवाद की घटनाएं इसकी गवाह हैं। किंतु यह भी सौ फीसदी सच है कि ऐसे अराजक, असामाजिक तत्वों की बुरी-नपुंसक सोच-एप्रोच और मलंग मानसिकता को हम सबने मिलकर सदैव पराजित ही किया है। देश के वर्तमान परिदृश्य पर यदि नजरें दौड़ाई जाएं तो कुछ देश- विरोधी/ राष्ट्रद्रोही लोग लगातार लोगों के बीच तनाव-हताशा-निराशा का माहौल बनाने की कोशिश करते रहते हैं जोकि हमारे विकासवादी- प्रगतिगामी मार्ग में जब-तब एक बाधा-सी बनकर मुंहबाए खड़े हो जाते हैं। आतंकवाद, अशिक्षा, बेकारी, गरीबी, प्रादेशिक- असंतुलन, जातीय भाषायी भेद, आर्थिक-धार्मिक- राजनैतिक और लैंगिक असमानता जैसी सामाजिक सद्भाव-समरसता को नुकसान पहुंचाने वाली बातों से हम सबको बचाना होगा। यदि हम सब मिलकर सामाजिक- आर्थिक-राजनीतिक और वैज्ञानिकादि धरातल पर सतत प्रगति व विकास चाहते हुए स्वयं का चहुंमुखी भला करना चाहते हैं तो हमें पारस्परिक सद्भाव-समरसता की भावना को बढ़ाना ही होगा तथा उसे अपना एक स्थायी मनोभाव बनाते हुए चलना होगा और देश को कमजोर करने या देखने वाली बुरी ताकतों व उनकी लंगड़ी-नपुंसक सोच को पराजित होना ही होगा, जब 140 करोड़ भारतवासी इस संकल्प के साथ खड़े होंगे।

भारतीय संविधान में सद्भाव-सामंजस्य के लिए हमने एक मजबूत शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व वाली 'भारतीयता' को स्थान दिया है। समाज में सद्भाव-समरसता बनाए रखने के लिए ऐसा करना बहुत जरूरी था और लोकतांत्रिक-प्रणाली पर इसका खूब असर भी पड़ता है, क्योंकि सरकार का प्राथमिक प्रयोजन एक शांतिपूर्ण सामंजस्यपूर्ण समाज या लोगों के बीच सामाजिक सद्भाव-समरसता की भावना को बनाए रखना है। इसी से किसी नामी साहित्यकार ने बहुत खूब लिखा भी है--

"शापित न यहां है कोई, तापित पापी न यहां है,
जीवन वसुधा समतल है समरस है जो कि जहां है।"[6]

संपूर्ण दुनिया में सद्भाव- समरसता के अभाव में ही अनेक संघर्षों,उपद्रवों, युद्धों अथवा क्रांतियों की उत्पत्ति अथवा शुरुआत हुई है और आज भी इसी वजह से यत्र-तत्र हो रही है। किसी भी समाज में असंतोष-अशांति-कलह के मूल में अशिक्षा, स्थानिक गरीबी, टुच्ची राजनीति व सत्ता के दुरुपयोग और जातीय-वर्गीय भेदभाव की पहचान मुख्य रूप से की जाती है और सामाजिक सद्भाव के लिए मुख्य बाधा क्रोध,आक्रोश या असंतोष को माना गया है। मानव- जाति का संपूर्ण इतिहास इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि कोरे बुद्धिवाद का वर्चस्व, एकांतिक भौतिकता की व्याप्ति, केवल आत्मतुष्टि की उपासना से एकांगी मानवीय जीवन हमेशा ही विनाशमूलक परिस्थितियों के गर्त में डूबा है। "हालतें ऐसी हैं कि गलत सिद्धांतों को अगर हजार वर्षों तक दोहराया जाए तो फिर हम यह भूल ही जाते हैं कि सिद्धांत गलत है। और दिखाई पड़ने लगता है कि आदमी गलत है। क्योंकि वह उन सिद्धांतों को पूरा नहीं कर पा रहा है।"[6]

पर अच्छी दोस्ती,आपसी सम्मान-विश्वास-प्यार की भावना, सहानुभूति, दया, करुणा, ममता, परोपकारी आनंद और धैर्य सभी प्राणियों की खुशी के लिए तथा एक सामंजस्य- पूर्ण समाज की नींव का बखूबी प्रतिनिधित्व करते हैं। नि:संदेह, सतत विकास और सामाजिक जिम्मेदारियां के विचारों से प्रेरित सोच ही किसी समाज को एकजुट करती है। और यह पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्य, पेड़-पौधों और जानवरों सहित सभी जीवित जराचर संस्थाओं-प्राणियों के मामले में एक सर्वाधिक सशक्त, जागरूक, प्रज्ञावान

और सामाजिक प्राणी है। श्री अरविंद के अनुसार 'मनुष्य में अन्य प्राणियों से एक ऐसी विभिन्नता है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। उसके अंदर केवल एक मन नहीं बल्कि द्विविध और त्रिविध मन है, भौतिक और स्नायविक मन, विशुद्ध बौद्धिक मन जो शरीर और इंद्रियों की भ्रांतियां से अपने आप को मुक्त कर लेता है और तीसरा, बुद्धि से ऊपर दिव्य मन जो तार्किक रूप से विवेक और कल्पनापूर्ण बुद्धि की अपूर्ण अपूर्ण विधियों से अपने आपको मुक्त कर लेता है। मनुष्य में मन सर्वप्रथम शारीरिक जीवन में आवृत्त रहता है, वनस्पति में वह पूर्ण रूप से छिपा रहता है और पशु में वह सदा बंदी बना रहता है। वह इस जीवन को अपनी क्रियाओं की पहली शर्त के रूप में ही नहीं, वरन् समस्त शर्त के रूप में भी स्वीकार करता है तथा अपनी आवश्यकताओं को इस प्रकार पूर्ण करने का प्रयत्न करता है मानो वही जीवन का संपूर्ण उद्देश्य हो। किंतु मनुष्य का शारीरिक जीवन एक आधार है, उद्देश्य नहीं। उसकी पहली अवस्था है अंतिम और निर्धारक अवस्था नहीं। प्राचीन लोगों के यथार्थ विचार में मनुष्य मूल रूप से विचारक है, विचारशील प्राणी है, 'मनु' है, एक मानसिक सत्ता है जो प्राण और शरीर को गति देती है, वह पशु नहीं है जो उनके द्वारा चालित होता है। इसलिये, सच्चा मानवीय जीवन केवल तभी शुरू होता है जबकि बौद्धिक मन जड़ पदार्थ में से प्रकट होता है, जब हम स्नायविक और भौतिक आक्रमण से मुक्त होकर मन में अधिकाधिक निवास करने लगते हैं और जिस हद तक वह मुक्ति हमें प्राप्त होती है उस हद तक हम शारीरिक जीवन को यथार्थ रूप में स्वीकार कर सकते हैं तथा उसका यथार्थ प्रयोग करने में समर्थ होते हैं।[7]

लेकिन हर सामाजिक समूह के भीतर कुछ विजातीय लक्षण और सुविधाओं में अंतर देखने को मिलता है। इसलिए प्रत्येक समाज के बहुलवादी रूप के बारे में जब भी सोचा-समझा जाता है तो सह-अस्तित्व के लिए 'शांतिपूर्ण सह- अस्तित्व' वाले सद्भाव की सबको जरूरत पड़ती है-'त्येन् त्येक्तन् भुंजिथा:' के संदेश को इस संदर्भ में एक चिरंतन सत्य माना जा सकता है।

एक ऐसे समाज में प्रत्येक समूह के भीतर सामाजिक सद्भाव का उद्देश्य उस शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व वाली भावना/सद्भावना से ही हो पाता है जहां सब एक-दूसरे से प्यार करते हैं और समूह में जरूरतमंद लोगों को मदद प्रतिपादन- समूह के भीतर सामाजिक सद्भाव को प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयासरत रहते हैं। पर इतना ही पर्याप्त नहीं है, सामाजिक सद्भाव- समरसता का यह भाव सजातीय मानव तक ही सीमित नहीं, अपितु पशु-पक्षियों और वनस्पति-जगत, प्रकृति तक फैला हुआ है--पारि स्थितिकी जागरूकता आज की एक बहुत बड़ी जरूरत बन चली है क्योंकि पशुओं-जानवरों-पक्षियों-वनस्पति जगत के अन्य पर्यावरणीय-सामाजिक समूहों के साथ, हमसब इस पृथ्वी नामक ग्रह में जीवनयापन कर रहे हैं। इसलिए हमें इस मानव-ग्रह पर स्वस्थ जीवन-शैली की अवधारणा के कार्यान्वयन हेतु इन अन्य सामाजिक समूहों के साथ भी प्यार-ममत्व-तालमेल के विचार-तंत्र को विकसित करते हुए उसका सतत अभ्यास करना होगा। और यदि वास्तव में हम पूरे ब्रह्मांड के इस सबसे खूबसूरत ग्रह पृथ्वी में पूर्ण सद्भाव या समरसता पैदा करना चाहते हैं तो हमें सभी के साथ यूनिवर्सल ब्रदरहुड/वसुधैव-कुटुंबकम/विश्व बंधुत्व का सतत अभ्यास करना होगा। दुनियाभर की सभी महान आत्माओं- व्यक्तित्वों-धर्मों-शिक्षाओं ने इसी बात की खुलकर वकालत की है, उन सबका निचोड़, सार या लब्बोलुआब यही है और इसके अलावा यदि कुछ है तो वो सिर्फ और सिर्फ खोखली लफ्फाजी, किताबी बातें या फिर कुछ भी बक-बक करने के लिए मात्र बक-बक-बक करते रहना :---

"समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था, चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था।"[8]

संदर्भ सूची

1 विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, डॉ.वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा,--कन्फ्यूशियस से, पृ.17

2 एकात्म मानववाद: तत्व मीमांसा, प्रभात प्रकाशन,पृ.77

3 कामायनी, जयशंकर प्रसाद,पृ.132

4 रहीम ग्रंथावली, संपादक विद्यानिवास मिश्र,पृ.21

5 भारतीयता का संचालक:पं.दीनदयाल उपाध्याय , संपादक संजय द्विवेदी,पृ.272

6 संभोग से समाधि की ओर,ओशो,पृ.2

7 योग समन्वय, श्री अरविन्द,पृ.11

8 कामायनी, जयशंकर प्रसाद,पृ.91

‘आपका बंटी’: पारिवारिक विघटन का दस्तावेज

डॉ० ज्योतीश्री बालकृष्णन

असोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस. डी कॉलेज, अलप्पुषा, केरल

सारांश

आज हम एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं, जहां हर जगह संवेदनाशून्यता का बोलबाला है। जहां हर एक इंसान उपभोक्ता वादी एवं बाजार वादी संस्कृति के चलते अपने आप को भूलता जा रहा है। जो इन्हीं संस्कृतियों का एक पुलिंदा बनता जा रहा है। जिसके चलते इंसान के अंदर सहानुभूति जैसे सकारात्मक भावों का स्थान स्वार्थपरकता जैसे भावों ने ले रखा है। इसी के चलते वह स्वार्थपरक विचारधाराओं से पूरित होकर, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए, अपनी खुशी के लिए दूसरों का इस्तेमाल करने लगता है। बाद में वह एक-दूसरे को छोड़-भूलकर आगे बढ़ जाते हैं। आज के दौर में हम इसी स्वार्थपरकता के चलते उपभोक्तावादी एवं बाजारवादी संस्कृति की आड़ में अपने जिंदगी को एक नए और बेहतरीन जगह पर पहुंचाने की कोशिश में लगे हुए हैं। इसी स्वार्थपरक सफर के दौरान वह कइयों को अपनी जिंदगियों से दूर कर देती है। पहले हम संयुक्त परिवार में रहते थे, लेकिन आज हम अणु परिवारों में जी रहे हैं। यह भी इसका एक उत्तम उदाहरण है। समाज में जो बदलावें हो रहा है उसका प्रभाव पारिवारिक तौर पर भी पड़ता है, यह माता-पिता से होकर पारिवारिक माहौल से पूरी हो बच्चों पर भी इसका परिणाम छोड़ जाता है। इस दृष्टि से बच्चे भी इसका एक हिस्सा है। आजकल अणु परिवार होने की समस्याएं भी कई है, समय के अभाव के चलते कइयों की जिंदगियां तबाह होता जा रहा है। इस बीच नष्ट हो रहे बच्चों की जिंदगी की ओर कम ध्यान दिया जा रहा है। इसी ओर हिंदी साहित्य की प्रमुख लेखिका मन्नु भंडारी का प्रमुख उपन्यास आपका बंटी इशारा करता है। जिसमें आज की स्वार्थपरकता के सारे बिंदुओं को सही मायने में चित्रित किया हुआ है। जिसके जरिए स्वार्थ के आधुनिक ढाँचे में दफन होती मासूमियत का यथार्थ चित्रण हर एक के दिलो-दिमाग में अंकित हो जाता है।

बीजशब्दः आपका बंटी, उपभोक्तावादी एवं बाजार वादी संस्कृति का प्रभाव, सहानुभूति का अभाव, अकेलापन, अहंकार, स्वार्थपरकता, रिश्तों का विघटन तथा तलाक, पारिवारिक विघटन, बच्चों पर प्रभाव, बंटी की पीड़ा, समस्याएं।

मूल आलेख

आज हम उपभोक्तावादी एवं बाजारवादी संस्कृति का पूर्ण रूप से अधीन बनता जा रहा है। इसी के परिणाम स्वरूप हर एक इंसान संवेदना शून्य व्यवहारों की ओर अधीन बनता-कदम बढ़ाता जा रहा है। हर एक इंसान अपने स्वार्थ, अपने आप की खुशी एंव सुख की तलाश में इधर-उधर भागता जा रहा है, उन्हें यहां तक की अपने परिवार या खुद के अपने बच्चों तक का ख्याल नहीं रहता।

आजकल परिवारों के विघटन व तलाक एक आम घटना बनता जा रहा है। इस विघटन के पीछे कई कारण रहते हैं, चाहे वह जटिल रिश्तों की वजह से हो या स्वार्थ व अहं के चलते। इन सबके बीच पिसते हैं तो बस बच्चे ही हैं। उनके ख्याल अगर उनके माता-पिता नहीं करेंगे, तो कौन करेंगे। इसी समस्या की ओर इशारा करती है हिंदी साहित्य के प्रमुख लेखिका मन्नू भंडारी, जो अपने प्रमुख उपन्यास ‘आपका बंटी’ को माध्यम बनाकर बंटी जैसे मासूम बच्चों की जिंदगी में घटित होने वाले विभिन्न घटनाओं एवं उसके

चलते-मिटते उनके बचपन व जिंदगी के विभिन्न दायरों को उसके अंदरूनी एवं बाहरी घटनाओं सहित पेश करके, उसके हर एक मोड़ व लमहे से पाठक वर्ग को अवगत कराने की कोशिश में लगी हुई है। जिसके चलते वह समाज के सामने सारे समस्याओं का आईना ही पेश करता है। यहां बात सिर्फ बच्चों की समस्या पर ही केंद्रित ना होकर पारिवारिक विघटन के अलग-अलग दायरों, पड़ावों सहित पेश किया गया है, साथ ही इसका प्रभाव व परिणाम बच्चों पर व बच्चों के मानस पटल पर कैसे पड़ता है एवं उससे क्या-क्या अंजाम होता है इन सब की और यहां इशारा किया गया है। जब दो वयस्क अपने रास्ते अलग-अलग करने का फैसला ले लेता है तो कानून उन्हें तलाक की डिग्री थमा देती है। जायदाद वगैरह सब बंट जाता है, यहां तक की अब तो रिश्तों का भी बंटवारा हो जाता है। लेकिन इन रिश्तों के चलते बने उसे घर का क्या, उस घर के बीचों बीच खड़े उसे मासूम बच्चों का क्या। कोई इस ओर सोचता ही नहीं, सोचना क्या देखता तक नहीं। अपने स्वार्थ के पीछे भागते वक्त इस सबके लिए उन लोगों के पास वक्त की पाबंदी लगना स्वाभाविक है। उन बच्चों के सामने ना ही आतीत रहता है ना ही कोई अलग भविष्य। इस उपन्यास के केंद्र में बंटी तथा उनके माता-पिता खड़े है साथ ही उनसे संबंध रखने वाले अन्य संबंधी पात्र भी मौजूद है। यहां बंटी की माता का नाम है शकुन तथा पिता का नाम है अजय।

उपन्यास की शुरुआत ही बंटी के उस द्वंद्व से होती है। जहां उसका बचपन दो हिस्सों में बंटा हुआ है। वह अपनी मां शकुन के साथ रहती है, जो एक कॉलेज की प्रिंसिपल है, वह बंटी से बहुत प्यार भी करता है, लेकिन अनुशासन की आड़ में बंटी का बचपन कहीं न कहीं दबा ही रह जाता है। बंटी के लिए उसके पिता अजय सिर्फ का सिर्फ एक संडे वाला पापा है। यहां संडे वाला पापा और दो हिस्सों में बंटा घर-परिवार के द्वारा समाज के उस अनसुने-अनजाने हिस्सों की ओर इशारा किया गया है। जहां कई सारे वर्तमान परिवारों का खुलासा दृष्टव्य है। बंटी की कहानी की ओर देखा जाए तो उसमें बदलाव तभी आता है, जब अजय तथा शकुन दोनों ही अपने जिंदगी के अकेलेपन से बचने के लिए अलग-अलग शादी कर लेती है। यहां बंटी बस एक उपकरण मात्र ही रह जाता है। जिसके द्वारा शकुन और अजय एक दूसरे पर अपने अहं की वार करती है, "वह जानती है, अजय बंटी को बहुत प्यार करता है, पर अब से वह बंटी को मिलने भी नहीं देगी। बंटी से न मिल पाने की वजह से अजय को जो यातना होगी उसकी कल्पना मात्र से उसे एक क्रूर-सा संतोष मिलने लगा"[1]

शकुन बाद में डॉक्टर जोशी से शादी कर लेती है, तथा अजय मीरा से। दोनों अब दो अलग-अलग परिवार व घर बन चुका है, लेकिन वही बंटी जो एक दूसरे के जिन्दगी के मजबूत हिस्सा था लेकिन वही अब दोनों की जिंदगी के बीच कबाब में हड्डी बन चुका है। जिसे दोनों ही अपने जिंदगी से दूर ही रखना चाहता है। जब शकुन के घर में स्थिति न संभलती तो बंटी को एक पार्सल की तरह उसके पिता अजय के पास कोलकत्ता भेज दिया जाता है। बंटी का जो संडे वाला पापा था वह अब किसी के पक्का पापा बन चुका थे। यह सब बातें उसके नन्हे से दिल को गहरे आघात पहुंचाती है। जिससे उत्पन्न असुरक्षा बोध के चलते वह अपने आपा खो बैठती है। उपन्यास का अंत तो पारिवारिक विघटन के सबसे भयावह तस्वीर पेश करती है कि ना ही उसे शकुन अपनाता है ना ही पिता- अजय, दोनों ही अपने नए गृहस्थी को बनाने-बढ़ाने में लगा हुआ है।

इस सबके चलते वह लोग व्यावहारिक तौर पर वही फैसला लेता है जो हर आधुनिक परिवार कर रहा है, कि बंटी को बोर्डिंग स्कूल ही भेज दिया जाए, "मुझे किसी और स्कूल में कोशिश नहीं करनी, उसे हॉस्टल ही भेजना है। यहाँ घर में रखने के लिए मैं उसे नहीं लाया हूँ। मैं क्या जानता नहीं कि इस घर में..."[2] ।

यहां यह फैसला बंटी के लिए किसी सजा से कम नहीं है, यहां यह सब उसे पढ़ाने-लिखाने के लिए नहीं बल्कि उसे अपने रास्ते से हटाने के लिए, उससे पीछा छुड़ाने के लिए किया गया है। यह फैसला उनके चुने हुए व्यावहारिक रास्ता है। उपन्यास के आखिरी पन्नों में बंटी का रोना, चिल्लाना या जिद करना सब बंद हो जाता है। वह एकदम शांत हो जाता है, यह शांति किसी समझदारी की नहीं बल्कि अपने अंदर के भावनाओं के मरने-मारने की शांति है।

आपका बंटी हमें दिखता है कि जब परिवार रूपी आइना टूटता है तो सबसे ज्यादा कांच बच्चों के पैरों पर ही चुभता है। शकुन और अजय तो अपने-अपने जीवन में सेट हो गई है लेकिन बंटी तो हमेशा-हमेशा के लिए अपसेट हो गई है।

बंटी के अंदर की तड़प को, दर्द को दर्शाने के कारण, उस संवेदनशीलता की वजह के बारे में लेखिका मन्नु भंडारी खुद बताती है कि, "इस पूरी स्थिति की सबसे बड़ी विडंबना ही यह है कि इन संबंधों के लिए सबसे कम जिम्मेदार और सब ओर से बेगुनाह बंटी ही इस ट्रेजडी के त्रास को सबसे अधिक भोगता है। शकुन-अजय के संबंधों का तनाव और चटक बंटी की नस-नस में ही

प्रतिध्वनित होती है। स्थिति की इस विडंबना ने ही मेरे मन में एक आतंक जगाया था। शकुन-अजय के आपसी संबंधों में बंटी चाहे कितना ही फालतू और अवांछनीय हो गया हो, परन्तु मेरी दृष्टि को सबसे अधिक उसी ने आकर्षित किया। वस्तुत: उपन्यासकार के लिए अप्रतिरोध्य चुनौती, सहानुभूति और मानवीय करुणा के केंद्र सिर्फ वे ही लोग हो पाते हैं। जो कहीं न कहीं फालतू हो गए है।"[3]

यहां बंटी में एक ऐसा चित्र देखने के लिए मिलता है, जो अंदर से बाहरी प्रभावों के चलते टूट-बिखरे जाने वाले अंजान मासूम बच्चे। यहां बंटी तो अपने माता-पिता के द्वारा छोड़ दिए जाने पर अंदर से टूट जाता है। आपका बंटी मानवीय संबंधों का एक जाल है जहां प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से एक निश्चित दूरी पर खड़ा होकर उस दूरी को पाटने वाले पुल की रचनात्मक भूमिका का ताना-बाना बुनता है। विडंबना यह है कि बंटी, बंटी ना होकर पुल बन जाता है। खोखले संबंधों को बचाने की चाह में एक दिन स्वयं ही खोखला होकर ढह जाता है या फिर पुल होने का उत्तरदायित्व न निभा सकने के अपराध में गिरा दिया जाता है। कुछ भी हो। गिरता बंटी ही है।"[4]

आजकल दुनिया पैसे के पीछे दुम पकड़कर, दम फुलाये भाग रहा है। इसके बीच वह अपने आप तक का ख्याल नहीं रख पाता है, ना ही कोई चिंता ही करता है। बच्चे माता-पिता को भूल जाते हैं या रास्ते में छोड़ देती है, नहीं तो उन्हें वृद्धाश्रमों के हवाले कर देती है। वहीं दूसरी तरफ माता-पिता अपने संतानों को छोड़कर अपने खुशी के, फायदों के पीछे चली जा रही है। कुछ तो विदेशों में चल बसता है तो कुछ आंखों के सामने होकर भी विदूर है। सब अपने आप को व्यस्त दिखाना चाहता है, "घर में प्रत्येक व्यक्ति या तो व्यस्त होता है या प्रकट करता है कि वह बहुत अधिक व्यस्त है। किसी के पास दूसरे के दु:ख-सुख को सुनने का समय नहीं होता। हर आदमी एक होटल की तरह आता है और खाना खाकर अपने कोने में जा बैठता है। प्रत्येक की नजर अपनी प्रतिष्ठा बनाने में लगी रहती है।"[5]

पहले माता-पिता यह चाहता था कि उसके बच्चे पढ़े-लिखे, फले-फूले, "प्रत्येक परिवार यह चाहता है कि उनके बालक-बालिकाएं सुव्यवस्थित व्यक्तित्व के स्वामी हों । स्वयं सुखी रहें और दूसरों को सुखी बनाने में, जो उनसे हो सकता हो, करें। एक ओर तो वे चाहते हैं कि बालक जहां समाज में अपना स्थान बनाये, वहां परिवार के साथ भी उसके संबंध मधुर हों। उसका स्वास्थ्य अच्छा हो । अपने व्यवसाय में योग्य बने और नैतिक मूल्य भी इतने आवश्यक हों कि उनकी दृढ़ता पर विश्वास किया जा सके।"[6]

आज उपभोक्ता वादी एवं बाजार वादी विचारधारा के प्रादृभाव के चलते सारे सोच विचार की गति में बदलाव आ गयी है। जिसके चलते वैश्वीकरण का प्रभाव सारे लोगों के दिलो-दिमाग में परिलक्षित हो गया है, इसी का सबूत है इस तरह के बच्चे, जो माता-पिता के होकर भी अनाथ है, अंदर से टूटा-बिखरा-नादान है।

आज हम एक ऐसे वैश्विक दुनिया में जी रहा है, जो खुद एक डिजिटल दौर में खड़ा है। जहां शकुन तथा अजय जैसे माता-पिता समाज के हर कोने में मौजूद होकर गिल्ट पैरेंटिंग कर रहा है। जिसके परिणाम बनता है बंटी जैसे बच्चे। इस समस्याओं को उजागर करके उसके मजबूत जड़ को कमजोर करने की कोशिश है यह रचना, जो हमारे चारों ओर बिखरे पड़े कई बंटियों से पाठक व समाज वर्ग को अभिहित कराकर, अवगत कराने की कोशिश करती है। उन बंटियों को सुधारने तथा नए बंटियों का परवरिश को सुधार कर भविष्य सुधार की बीड़ा उठाती है यह रचना। जो भविष्य में रिश्तों व संवेदनाओं के सही अर्थ से समाज व परिवारों को अवगत कराकर भविष्य निर्माण का बीड़ा उठाता है, 'आपका बंटी'। यही नहीं माता-पिता के अहं के चलते, अपने स्वार्थ के चलते अपने आप हो रहे तलाक व पुनर्विवाह के विषम परिस्थितियों का भी चित्रण कर बाल मन पर पड़ने वाले भीषण यथार्थ का चित्रण व्यापक दायरे सहित प्रस्तुत करके हर परिवार को सोचने व पुनर्विचार के लिए उकसाती है यह रचना।

यहां यह विषय बहुत ही गंभीर और विचारोत्तेजक समस्या की ओर इशारा करती है। 'आपका बंटी' के अंत को आज के दौर के 'स्वार्थ' और 'टूटते ढाँचे' से जोड़कर देखा जाए तो हमें आज के वर्तमान परिस्थिति का यथार्थ एवं शक्तिशाली ढांचा देखने के लिए मिलता है। सिर्फ दिखाने तक नहीं बलिक यह पाठकों को सोचने पर भी मजबूर कर देता है। स्वार्थ के आधुनिक ढाँचे में दफन होती मासूमियत का चित्रण हमें 'आपका बंटी' में देखने व समझने और महसूस करने के लिए मिलता है।

यहां बात सिर्फ पारिवारिक विघटन का ही न हो कर, यहां परिवार से शुरू हो कर समाज में प्रतिस्थापित होनेवाले नवयुव वर्तमान की ओर इशारा किया गया है। झगड़े, अलगाव व तलाक जैसे भीषण यंत्रणाओं के चलते बच्चों के मानस पटल पर पड़ने वाले भीषण

यंत्रणाओं की ओर यहां इशारा किया गया है, "जिन परिवारों में माता-पिता बच्चे के सम्मुख झगड़ते हैं या एक दूसरे को नीचा दिखाते हैं, उनमें बच्चे भटक जाते हैं। कई लड़कियां ऐसी देखी गयी हैं, जो माता-पिता को झगड़ता देखकर विवाह के प्रति घृणा की धारणा अपना लेती हैं। लड़के कुछ अधिक चालाक होते हैं, इसलिए पहले तो वह माता-पिता दोनों से अलग-अलग लाभ उठाते हैं और बाद में जीवन-भर के लिए भी यही ढंग अपना लेते हैं।"[7]

यह उपन्यास जिस मोड़ पर खत्म होता है, आज के समाज की सच्चाई वहीं से शुरू होती है। 'आपका बंटी' केवल एक बच्चे के बोर्डिंग स्कूल भेजे जाने की कहानी नहीं है, बल्कि यह उस आधुनिक पारिवारिक ढाँचे का 'एक्स-रे' है, जो अब पूरी तरह से 'आत्म-केंद्रित' हो चुका है। जो पारिवारिक विघटन का प्रमुख कारण बनता है।

आज के दौर में 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' और 'करियर' की अंधी दौड़ में, परिवार नामक संस्था का अर्थ बदल गया है। पहले परिवार का मतलब 'हम' होता था, लेकिन आज की आधुनिकता में यह 'मैं बनाम तुम' रह गया है। शकुन और अजय का द्वंद्व आज हर दूसरे घर की कहानी है, जहाँ माता-पिता अपने 'अहं' और 'सुख' की तलाश में यह भूल जाते हैं कि उनकी महत्वाकांक्षाओं के मलबे के नीचे उनका अपना ही बच्चा दब रहा है।

आज पारिवारिक विघटन का स्वरूप और भी भयावह है। अब बंटी को सिर्फ दो घरों में नहीं बंटना पड़ता, बल्कि उसे 'डे-केयर', और 'डिजिटल स्क्रीन्स' के ठंडे सन्नाटे के बीच अपना अस्तित्व तलाशना पड़ता है। आधुनिक माता-पिता के पास बच्चे के लिए संसाधन तो हैं, लेकिन संवेदना नहीं। ऐसे में, बच्चा एक 'जिंदा इंसान' न रहकर, घर के फर्नीचर की तरह एक 'बाधा' या 'जिम्मेदारी' भर रह जाता है जिसे सुविधानुसार इधर-उधर शिफ्ट किया जा सके।

अंततः, बंटी का जड़ व पथरिला हो जाना सिर्फ एक बाल-मन की मृत्यु नहीं है, बल्कि यह हमारे उस सामाजिक खोखलेपन का दस्तावेज है, जहाँ रिश्तों को अब 'निभाया' नहीं जाता, बल्कि 'ढोया' या 'तोड़ा' जाता है। जब तक समाज 'मेरी खुशी' से ऊपर उठकर 'हमारी जिम्मेदारी' को नहीं समझेगा, तब तक हर घर में एक 'बंटी' अपने ही माता-पिता की भीड़ में अनाथ होता रहेगा। यह विघटन बंटी का ही नहीं, हमारी मनुष्यता का भी है। यह भावुक भी है और आज के समाज पर एक तीखा कटाक्ष भी, यह एक बहुत ही गंभीर और विचारोत्तेजक मांग है।

संदर्भ

1. मन्नू भण्डारी, संपूर्ण उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2016, पृ. सं.292
2. पूर्वोक्त, पृ. 432
3. डॉ. पंडित बन्ने, आधुनिक हिंदी साहित्य विविध परिदृश्य, निशा पब्लिकेशन, पृ. सं. 168
4. मालविका, मन्नू भण्डारी और आपका बंटी, लोक भारती प्रकाशन, 2013, पृ. सं. 32
5. जगत सिंह, बालक और अभिभावक, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1985, पृ. सं. 113
6. पूर्वोक्त, पृ. 32
7. पूर्वोक्त, पृ. 81

वैश्वीकरण एवं भारतीय राजनीति

डॉ० श्याम लाल निराला

शासकीय बिलासा गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट ऑटोनॉमस कॉलेज, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश

वैश्विकरण आधुनिक विश्व की एक प्रमुख प्रक्रिया है, जिसने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संरचनाओं को गहराई से प्रभावित किया है। भारतीय राजनीति भी इससे अछूती नहीं रही है। 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद भारत ने वैश्विकरण को औपचारिक रूप से अपनाया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, नीति-निर्माण और शासन प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले। वैश्विकरण ने राज्य की भूमिका को पुनर्परिभाषित किया है, जहाँ कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के साथ-साथ बाजार आधारित नीतियों को बढ़ावा मिला। भारतीय राजनीति में वैश्विकरण का प्रभाव उदारीकरण, निजीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बढ़ती उपस्थिति के रूप में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसके कारण राजनीतिक निर्णयों पर अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं, जैसे विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, का प्रभाव बढ़ा है। साथ ही, वैश्विकरण ने क्षेत्रीय दलों, पहचान की राजनीति और संघीय ढांचे को भी प्रभावित किया है। आर्थिक असमानता, रोजगार की अनिश्चितता और सामाजिक विषमता जैसे मुद्दे राजनीतिक विमर्श के केंद्र में आ गए हैं। दूसरी ओर, वैश्विकरण ने भारतीय लोकतंत्र को नई चुनौतियाँ भी दी हैं। नीति-निर्माण में पारदर्शिता, जनभागीदारी और राष्ट्रीय संप्रभुता जैसे प्रश्न अधिक प्रासंगिक हो गए हैं। इसके साथ ही, वैश्विक संचार माध्यमों और सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार ने राजनीतिक जागरूकता और जन आंदोलन को नई दिशा प्रदान की है। इस प्रकार, वैश्विकरण भारतीय राजनीति को अवसरों और चुनौतियों दोनों के माध्यम से निरंतर रूपांतरित कर रहा है।

(***मुख्य शब्द:*** वैश्विकरण, भारतीय राजनीति, उदारीकरण, निजीकरण, लोकतंत्र, संप्रभुता, नीति-निर्माण)

प्रस्तावना

वैश्विकरण समकालीन विश्व की सबसे प्रभावशाली प्रक्रियाओं में से एक है, जिसने राज्यों की सीमाओं को केवल भौगोलिक नहीं बल्कि आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से भी सापेक्ष बना दिया है। सामान्य रूप से वैश्विकरण का अर्थ विश्व के विभिन्न देशों के बीच बढ़ते पारस्परिक संबंध, परस्पर निर्भरता और एकीकरण की प्रक्रिया से है। इस प्रक्रिया ने न केवल वैश्विक अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है, बल्कि राष्ट्रीय राजनीति और शासन प्रणालियों को भी गहराई से रूपांतरित किया है (मैकग्रीव, 2000)।

भारतीय राजनीति के संदर्भ में वैश्विकरण का महत्व इसलिए और बढ़ जाता है क्योंकि भारत एक विकासशील लोकतांत्रिक देश है, जहाँ राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था के बीच गहरा अंतर्संबंध रहा है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था और राज्य-नियंत्रित विकास मॉडल को अपनाया, जिसमें राजनीति की भूमिका केंद्रीय थी। किंतु 1991 के आर्थिक संकट के बाद अपनाई गई नई आर्थिक नीतियों ने भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था से सीधे जोड़ दिया। इसके साथ ही भारतीय राजनीति की प्रकृति, प्राथमिकताएँ और निर्णय-प्रक्रिया में भी परिवर्तन शुरू हुआ (जेटली, 2003)।

इस विषय के चयन का औचित्य इस तथ्य में निहित है कि वैश्विकरण को अक्सर केवल आर्थिक परिघटना के रूप में देखा जाता है, जबकि इसके राजनीतिक प्रभाव अधिक व्यापक और दीर्घकालिक हैं। नीति-निर्माण में अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका,

बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रभाव, राज्य की संप्रभुता पर उठते प्रश्न तथा लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व की नई चुनौतियाँ भारतीय राजनीति के महत्वपूर्ण मुद्दे बन चुके हैं (हेवुड, 2011)। अत: वैश्विकरण और भारतीय राजनीति के अंतर्संबंध का अध्ययन वर्तमान राजनीतिक यथार्थ को समझने के लिए आवश्यक है।

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य वैश्विकरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भारतीय राजनीति पर उसके प्रभावों का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत यह समझने का प्रयास किया गया है कि वैश्विकरण ने भारतीय राज्य की भूमिका को किस प्रकार बदला, राजनीतिक दलों और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं पर इसका क्या प्रभाव पड़ा, तथा यह प्रक्रिया अवसरों और चुनौतियों के रूप में किस प्रकार सामने आई। साथ ही, इस अध्ययन के माध्यम से यह प्रश्न भी उठाया गया है कि क्या वैश्विकरण भारतीय लोकतंत्र को सशक्त बना रहा है या उसे कमजोर कर रहा है। इस प्रकार, प्रस्तावना के रूप में यह अध्याय पूरे शोध-पत्र की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करता है।

वैश्विकरण: अर्थ एवं स्वरूप

वैश्विकरण एक बहुआयामी और जटिल अवधारणा है, जिसे केवल आर्थिक प्रक्रिया के रूप में समझना अधूरा होगा। सामान्य अर्थों में वैश्विकरण वह प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत विश्व के विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी, तकनीक, सूचना और विचारों का तीव्र प्रवाह होता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप विश्व एक परस्पर निर्भर व्यवस्था के रूप में उभरता है, जहाँ राष्ट्रीय सीमाओं का महत्व अपेक्षाकृत कम हो जाता है (मैकग्रीव, 2000)।

वैश्विकरण की अवधारणा को विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। एंथनी गिडेन्स के अनुसार, वैश्विकरण विश्व-व्यापी सामाजिक संबंधों की तीव्रता है, जिसके कारण दूर-दराज की घटनाएँ भी स्थानीय जीवन को प्रभावित करने लगती हैं (गिडेन्स, 1999)। वहीं, डेविड हेल्ड इसे आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के वैश्विक विस्तार के रूप में देखते हैं। इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि वैश्विकरण केवल बाजार तक सीमित न होकर समाज और राजनीति के हर क्षेत्र में प्रभाव डालता है।

वैश्विकरण के स्वरूप को मुख्यत: तीन प्रमुख आयामों में समझा जा सकता है। पहला, आर्थिक आयाम, जिसमें अंतरराष्ट्रीय व्यापार, विदेशी निवेश, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की भूमिका तथा मुक्त बाजार की नीतियाँ शामिल हैं। इस आयाम में राज्य की भूमिका नियामक से सहयोगी की ओर बढ़ती दिखाई देती है। दूसरा, राजनीतिक आयाम, जहाँ अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ, वैश्विक शासन, और अंतर-राज्यीय समझौते राष्ट्रीय नीति-निर्माण को प्रभावित करते हैं। इससे राज्य की संप्रभुता और निर्णय-स्वायत्तता पर नए प्रश्न खड़े होते हैं (हेवुड, 2011)।

तीसरा, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम, जिसमें जीवन-शैली, उपभोक्तावाद, संचार माध्यमों और सूचना प्रौद्योगिकी का वैश्विक प्रसार शामिल है। इस आयाम ने एक ओर सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक एकरूपता और स्थानीय पहचान के क्षरण की आशंकाएँ भी उत्पन्न की हैं।

इस प्रकार, वैश्विकरण का स्वरूप बहुआयामी है और इसके प्रभाव सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों रूपों में सामने आते हैं। भारतीय राजनीति के संदर्भ में इन आयामों की समझ आवश्यक है, क्योंकि यही आयाम आगे चलकर नीति-निर्माण, लोकतंत्र और राज्य की भूमिका को प्रभावित करते हैं। अत: वैश्विकरण के अर्थ और स्वरूप का अध्ययन इस शोध-पत्र की वैचारिक आधारशिला प्रदान करता है।

भारत में वैश्विकरण का उद्भव

भारत में वैश्विकरण का उद्भव एक क्रमिक प्रक्रिया का परिणाम है, किंतु इसका औपचारिक और निर्णायक आरंभ 1991 के आर्थिक सुधारों से माना जाता है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने समाजवादी प्रेरणाओं से युक्त मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया था, जिसमें राज्य की भूमिका उत्पादन, वितरण और नियोजन में प्रमुख थी। लाइसेंस-परमिट प्रणाली, आयात प्रतिस्थापन नीति और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रभुत्व ने भारतीय आर्थिक और राजनीतिक संरचना को लंबे समय तक नियंत्रित किया। इस व्यवस्था में राजनीति का मुख्य उद्देश्य आर्थिक आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय था (कोठारी, 1989)।

1980 के दशक के उत्तरार्ध तक यह मॉडल अनेक संरचनात्मक समस्याओं से ग्रस्त हो गया। बढ़ता राजकोषीय घाटा, विदेशी मुद्रा भंडार में गिरावट, भुगतान संतुलन का संकट और धीमी आर्थिक वृद्धि ने भारत को गंभीर आर्थिक संकट की ओर धकेल दिया। 1991 में भारत केवल कुछ सप्ताह के आयात के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडार के साथ खड़ा था। इस संकट की पृष्ठभूमि में भारत को अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से सहायता लेनी पड़ी, जिसके साथ ही संरचनात्मक सुधारों की शर्तें भी जुड़ी थीं (जेटली, 2003)।

इसी संदर्भ में भारत सरकार ने नई आर्थिक नीति की घोषणा की, जिसे उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की त्रयी के रूप में जाना जाता है। उदारीकरण के अंतर्गत औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली को शिथिल किया गया, व्यापारिक प्रतिबंधों में कमी लाई गई और बाजार को अधिक स्वतंत्रता दी गई। निजीकरण के माध्यम से सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को सीमित किया गया और निजी पूँजी को प्रोत्साहित किया गया। वहीं, वैश्वीकरण के अंतर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था को अंतरराष्ट्रीय बाजार, विदेशी निवेश और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए खोला गया (आहूजा, 2010)।

इन आर्थिक सुधारों का प्रभाव केवल अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं रहा, बल्कि भारतीय राजनीति पर भी गहरा असर पड़ा। राज्य की भूमिका कल्याणकारी से नियामक और सहायक की ओर बढ़ने लगी। नीति-निर्माण की प्रक्रिया में तकनीकी विशेषज्ञों, अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं और कॉर्पोरेट हितों की भागीदारी बढ़ी। साथ ही, विकास, प्रतिस्पर्धा और निवेश जैसे मुद्दे राजनीतिक विमर्श के केंद्र में आ गए।

इस प्रकार, भारत में वैश्विकरण का उद्भव एक आर्थिक संकट की उपज होने के साथ-साथ भारतीय राजनीति की दिशा में एक महत्वपूर्ण मोड़ भी था। इसने न केवल विकास की रणनीति बदली, बल्कि राज्य, बाजार और समाज के पारस्परिक संबंधों को भी नए सिरे से परिभाषित किया।

वैश्विकरण का भारतीय राजनीति पर प्रभाव

वैश्विकरण ने भारतीय राजनीति की संरचना, कार्यप्रणाली और प्राथमिकताओं पर गहरा और बहुआयामी प्रभाव डाला है। 1991 के बाद अपनाई गई नई आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप राजनीति और अर्थव्यवस्था के पारंपरिक संबंधों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले। जहाँ पहले राज्य विकास का प्रमुख साधन माना जाता था, वहीं वैश्विकरण के दौर में बाजार और निजी क्षेत्र की भूमिका राजनीति के केंद्र में आ गई। इससे राजनीतिक निर्णयों की प्रकृति अधिक आर्थिक तर्कों और वैश्विक प्रतिस्पर्धा से जुड़ती चली गई (हेवुड, 2011)।

नीति-निर्माण की प्रक्रिया पर वैश्विकरण का प्रभाव विशेष रूप से स्पष्ट है। आर्थिक नीतियाँ अब केवल घरेलू आवश्यकताओं के आधार पर नहीं बनतीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजार, विदेशी निवेशकों और वैश्विक वित्तीय संस्थाओं की अपेक्षाओं को भी ध्यान में रखा जाता है। विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं का अप्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय नीतियों पर बढ़ा है। इससे एक ओर नीतियों में दक्षता और तकनीकी विशेषज्ञता आई, वहीं दूसरी ओर लोकतांत्रिक नियंत्रण और जनहित की उपेक्षा की आलोचना भी सामने आई (जेटली, 2003)।

वैश्विकरण ने राजनीतिक दलों और चुनावी राजनीति को भी प्रभावित किया है। विकास, निवेश, आधारभूत ढाँचा और आर्थिक वृद्धि जैसे मुद्दे चुनावी घोषणापत्रों के प्रमुख विषय बन गए हैं। राजनीतिक दल अब स्वयं को "विकास समर्थक" और "निवेश अनुकूल" दिखाने का प्रयास करते हैं। इसके साथ ही, कॉर्पोरेट जगत और राजनीति के बीच बढ़ते संबंधों ने चुनावी वित्तपोषण, नीति पक्षपात और पारदर्शिता को लेकर नई बहस को जन्म दिया है (कोहली, 2006)।

भारतीय संघीय ढाँचे पर भी वैश्विकरण का प्रभाव पड़ा है। राज्यों के बीच विदेशी निवेश आकर्षित करने की प्रतिस्पर्धा बढ़ी है, जिससे केंद्र-राज्य संबंधों में नए समीकरण उभरे हैं। कई राज्यों ने अपनी नीतियों को वैश्विक बाजार के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है, जिससे क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि भी देखी गई है।

इसके अतिरिक्त, वैश्विकरण ने राजनीति में नए सामाजिक तनावों को जन्म दिया है। आर्थिक असमानता, रोजगार की असुरक्षा और कृषि संकट जैसे मुद्दों ने जन आंदोलनों और विरोध राजनीति को बल दिया है। इस प्रकार, वैश्विकरण भारतीय राजनीति के

लिए केवल अवसर नहीं बल्कि गंभीर चुनौतियाँ भी लेकर आया है। कुल मिलाकर, वैश्विकरण ने भारतीय राजनीति को अधिक जटिल, प्रतिस्पर्धी और वैश्विक संदर्भों से जुड़ा हुआ बना दिया है।

वैश्विकरण और लोकतंत्र

वैश्विकरण और लोकतंत्र के बीच संबंध जटिल तथा बहसपूर्ण रहा है। एक ओर यह तर्क दिया जाता है कि वैश्विकरण ने लोकतांत्रिक मूल्यों, जैसे पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और जनभागीदारी को सुदृढ़ किया है, वहीं दूसरी ओर यह भी कहा जाता है कि इस प्रक्रिया ने लोकतंत्र की स्वायत्तता और जन-नियंत्रण को कमजोर किया है। भारतीय लोकतंत्र के संदर्भ में यह द्वंद्व विशेष रूप से स्पष्ट दिखाई देता है।

वैश्विकरण के प्रभाव से भारतीय लोकतंत्र में सूचना और संचार के साधनों का तीव्र विस्तार हुआ है। मीडिया, इंटरनेट और सोशल मीडिया के प्रसार ने राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाया है तथा नागरिकों को सरकार की नीतियों और निर्णयों पर प्रश्न उठाने का मंच प्रदान किया है। इससे जनभागीदारी के नए रूप उभरे हैं और नागरिक समाज की भूमिका अधिक सक्रिय हुई है (गिडेन्स, 1999)। विभिन्न सामाजिक आंदोलन, जैसे पर्यावरण संरक्षण, भूमि अधिग्रहण और श्रम अधिकारों से जुड़े आंदोलन, वैश्विक और स्थानीय मुद्दों को जोड़ते हुए लोकतांत्रिक दबाव समूह के रूप में सामने आए हैं।

हालाँकि, वैश्विकरण ने लोकतांत्रिक निर्णय-प्रक्रिया के समक्ष कई चुनौतियाँ भी प्रस्तुत की हैं। आर्थिक नीतियों का तकनीकी और विशेषज्ञ-आधारित होना आम नागरिक की भागीदारी को सीमित करता है। कई बार महत्वपूर्ण नीतिगत निर्णय संसद और जन विमर्श से बाहर, अंतरराष्ट्रीय समझौतों और संस्थागत दबावों के तहत लिए जाते हैं। इससे लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व और पारदर्शिता पर प्रश्नचिह्न लगते हैं (हेवुड, 2011)।

इसके अतिरिक्त, वैश्विकरण के कारण बढ़ती आर्थिक असमानता ने लोकतांत्रिक समानता की अवधारणा को कमजोर किया है। जब संसाधनों और अवसरों का वितरण असमान होता है, तब राजनीतिक प्रभाव भी कुछ सीमित वर्गों तक सिमटने लगता है। कॉर्पोरेट हितों का राजनीति में बढ़ता प्रभाव चुनावी प्रक्रिया और नीति-निर्माण को प्रभावित करता है, जिससे "लोकतंत्र बनाम बाजार" की बहस और गहरी हो जाती है (कोहली, 2006)।

इस प्रकार, वैश्विकरण भारतीय लोकतंत्र के लिए न तो पूर्णतः वरदान है और न ही केवल अभिशाप। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसने लोकतांत्रिक संस्थाओं को नई संभावनाएँ दी हैं, पर साथ ही उनकी सीमाओं और कमजोरियों को भी उजागर किया है। भारतीय लोकतंत्र की मजबूती इस बात पर निर्भर करती है कि वह वैश्विक दबावों के बीच जनहित, सामाजिक न्याय और राजनीतिक उत्तरदायित्व को किस प्रकार संतुलित करता है।

वैश्विकरण की चुनौतियाँ

वैश्विकरण ने भारतीय अर्थव्यवस्था और राजनीति को कई अवसर प्रदान किए हैं, किंतु इसके साथ ही अनेक गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। इन चुनौतियों का प्रभाव केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित न होकर सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तरों पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भारतीय राजनीति के लिए इन चुनौतियों को समझना और उनका समाधान खोजना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

वैश्विकरण की सबसे प्रमुख चुनौती आर्थिक असमानता है। उदारीकरण के बाद आर्थिक विकास की गति तो बढ़ी, परंतु इसके लाभ समाज के सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँच पाए। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों, संगठित और असंगठित क्षेत्रों तथा पूँजीपति और श्रमिक वर्ग के बीच असमानता बढ़ी है। इस असमान विकास ने गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक असंतोष को जन्म दिया, जो राजनीतिक अस्थिरता और विरोध आंदोलनों के रूप में सामने आया है (सेन, 2000)।

दूसरी महत्वपूर्ण चुनौती राष्ट्रीय संप्रभुता से जुड़ी है। वैश्विक आर्थिक व्यवस्था में सम्मिलित होने के कारण भारत को कई अंतरराष्ट्रीय नियमों, समझौतों और संस्थाओं के अनुरूप अपनी नीतियाँ बनानी पड़ती हैं। इससे कई बार राष्ट्रीय हितों और घरेलू प्राथमिकताओं पर समझौता करना पड़ता है। विशेष रूप से कृषि, उद्योग और श्रम नीतियों में यह दबाव अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है (जेटली, 2003)।

वैश्विकरण ने रोजगार की अनिश्चितता को भी बढ़ाया है। निजीकरण, ठेका प्रणाली और तकनीकी परिवर्तन के कारण स्थायी रोजगार के अवसर घटे हैं। असंगठित क्षेत्र का विस्तार हुआ है, जहाँ श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा और राजनीतिक संरक्षण कम मिलता है। इससे श्रमिक वर्ग में असुरक्षा की भावना बढ़ी है, जिसका प्रभाव राजनीतिक व्यवहार और मतदान प्रवृत्तियों पर भी पड़ा है (आहूजा, 2010)।

इसके अतिरिक्त, वैश्विकरण ने सांस्कृतिक और सामाजिक तनावों को भी जन्म दिया है। उपभोक्तावाद, सांस्कृतिक एकरूपता और पश्चिमी जीवन-शैली के प्रभाव ने स्थानीय परंपराओं और पहचान को चुनौती दी है। इससे पहचान की राजनीति, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और सामाजिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा मिला है।

इस प्रकार, वैश्विकरण की चुनौतियाँ भारतीय राजनीति के सामने बहुआयामी रूप में उपस्थित हैं। यदि इन चुनौतियों का संतुलित और जनोन्मुखी समाधान नहीं किया गया, तो वैश्विकरण के लाभ सीमित वर्गों तक सिमट सकते हैं और लोकतांत्रिक व्यवस्था कमजोर हो सकती है।

वैश्विकरण के अवसर

वैश्विकरण ने भारतीय राजनीति और अर्थव्यवस्था के समक्ष अनेक नए अवसर प्रस्तुत किए हैं, जिनका प्रभाव दीर्घकालिक और संरचनात्मक रहा है। यद्यपि वैश्विकरण की आलोचना इसके दुष्परिणामों के कारण की जाती रही है, फिर भी यह स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया ने भारत को विकास, अंतरराष्ट्रीय सहभागिता और वैश्विक पहचान के नए मंच प्रदान किए हैं।

वैश्विकरण का एक प्रमुख अवसर आर्थिक विकास और निवेश के रूप में सामने आया है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की उपस्थिति और अंतरराष्ट्रीय व्यापार के विस्तार ने भारतीय अर्थव्यवस्था को गति दी है। इससे न केवल औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि हुई, बल्कि सेवाक्षेत्र, सूचना प्रौद्योगिकी और स्टार्टअप संस्कृति को भी बढ़ावा मिला। आर्थिक वृद्धि ने राजनीतिक एजेंडे में विकास को केंद्रीय स्थान दिया, जिससे शासन और नीति-निर्माण में दक्षता और परिणामोन्मुखता पर बल बढ़ा (आहूजा, 2010)।

राजनीतिक दृष्टि से वैश्विकरण ने भारत को अंतरराष्ट्रीय मंच पर सशक्त भूमिका निभाने का अवसर दिया है। विश्व व्यापार संगठन, जी-20 और विभिन्न बहुपक्षीय मंचों पर भारत की सक्रिय भागीदारी ने उसकी कूटनीतिक और रणनीतिक क्षमता को बढ़ाया है। इससे भारतीय राजनीति में विदेश नीति और वैश्विक सहयोग को अधिक महत्व मिला है, जो राष्ट्रीय हितों की रक्षा और विस्तार में सहायक रहा है (हेवुड, 2011)।

वैश्विकरण ने प्रौद्योगिकी और सूचना क्रांति को भी गति दी है। डिजिटल संचार, ई-गवर्नेंस और ऑनलाइन सेवाओं ने प्रशासन को अधिक पारदर्शी और नागरिकोन्मुख बनाने में सहायता की है। इससे शासन में उत्तरदायित्व बढ़ा है और नागरिकों की राजनीतिक भागीदारी के नए रूप उभरे हैं।

इसके अतिरिक्त, वैश्विकरण ने ज्ञान, शिक्षा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अवसर भी प्रदान किए हैं। अंतरराष्ट्रीय सहयोग, उच्च शिक्षा के नए अवसर और वैश्विक अनुभवों ने भारतीय समाज और राजनीति को अधिक बहुआयामी बनाया है।

इस प्रकार, वैश्विकरण भारतीय राजनीति के लिए केवल आर्थिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक ऐसा अवसर है जिसने विकास, लोकतांत्रिक सशक्तिकरण और वैश्विक सहभागिता की संभावनाओं को विस्तृत किया है। इन अवसरों का सार्थक उपयोग ही भारत की राजनीतिक और सामाजिक प्रगति की दिशा निर्धारित करेगा।

निष्कर्ष

वैश्विकरण और भारतीय राजनीति के अंतर्संबंधों का समग्र अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि वैश्विकरण कोई एकरेखीय या एकमात्र आर्थिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह राजनीति, समाज और शासन व्यवस्था को प्रभावित करने वाली एक व्यापक और गतिशील प्रक्रिया है। भारत के संदर्भ में वैश्विकरण ने विकास की नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं, वहीं अनेक संरचनात्मक और लोकतांत्रिक चुनौतियाँ भी सामने रखी हैं।

1991 के बाद भारतीय राजनीति में जो परिवर्तन देखने को मिले, वे इस बात का संकेत हैं कि राज्य, बाजार और समाज के पारंपरिक संबंधों में मूलभूत बदलाव आया है। राज्य की भूमिका प्रत्यक्ष उत्पादक और नियंत्रक से बदलकर नियामक और सहायक

की ओर बढ़ी है। नीति-निर्माण में आर्थिक तर्क, वैश्विक प्रतिस्पर्धा और अंतरराष्ट्रीय दबाव अधिक प्रभावशाली हुए हैं। इससे प्रशासनिक दक्षता तो बढ़ी है, किंतु साथ ही लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व और जनभागीदारी को लेकर गंभीर प्रश्न भी खड़े हुए हैं (हेवुड, 2011)।

भारतीय लोकतंत्र पर वैश्विकरण का प्रभाव दोहरा रहा है। एक ओर सूचना प्रौद्योगिकी, मीडिया और वैश्विक संपर्कों ने नागरिक चेतना, पारदर्शिता और सामाजिक आंदोलनों को सशक्त किया है। दूसरी ओर, बढ़ती आर्थिक असमानता, कॉर्पोरेट प्रभाव और नीति-निर्माण की जटिलता ने आम नागरिक की राजनीतिक सहभागिता को सीमित किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लोकतंत्र की मजबूती केवल आर्थिक विकास से नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और समावेशी राजनीति से सुनिश्चित होती है (सेन, 2000)।

वैश्विकरण के संदर्भ में भारतीय राजनीति के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती संतुलन की है। यह संतुलन वैश्विक दबावों और राष्ट्रीय हितों, बाजार की आवश्यकताओं और सामाजिक कल्याण, तथा आर्थिक वृद्धि और लोकतांत्रिक मूल्यों के बीच स्थापित करना होगा। यदि वैश्विकरण की नीतियाँ केवल विकास के आँकड़ों तक सीमित रहीं, तो वे सामाजिक असंतोष और राजनीतिक अस्थिरता को जन्म दे सकती हैं।

अतः भविष्य की राजनीति के लिए यह आवश्यक है कि वैश्विकरण को एक साधन के रूप में देखा जाए, न कि लक्ष्य के रूप में। जनोन्मुखी नीतियाँ, मजबूत लोकतांत्रिक संस्थाएँ और सामाजिक समावेशन ही वैश्विकरण को भारतीय संदर्भ में सार्थक और टिकाऊ बना सकते हैं। इस प्रकार, वैश्विकरण भारतीय राजनीति के लिए न तो पूर्ण समाधान है और न ही पूर्ण संकट, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसकी दिशा और प्रभाव राजनीतिक विकल्पों पर निर्भर करते हैं।

संदर्भ सूची

1. आहूजा, एच.एल. (2010). भारतीय अर्थव्यवस्था. नई दिल्ली: एस. चंद एंड कंपनी। पृष्ठ: 312-345
2. गिडेन्स, एंथनी (1999). Runaway World: How Globalization is Reshaping Our Lives, लंदन: प्रोफाइल बुक्स। पृष्ठ: 10-28
3. जेटली, आर. (2003). Globalization and Indian Democracy. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पृष्ठ: 45-78, 112-140
4. कोठारी, रजनी (1989). Politics in India. नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन। पृष्ठ: 201-225
5. कोहली, अतुल (2006). The Politics of Economic Growth in India: 1980-2005. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पृष्ठ: 87-119
6. मैकग्रीव, ए. (2000). Globalization and Politics. कैम्ब्रिज: पोलिटी प्रेस। पृष्ठ: 1-22, 65-90
7. सेन, अमर्त्य (2000). Development as Freedom. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पृष्ठ: 87-110, 145-172
8. हेवुड, एंड्रयू (2011). Politics. लंदन: पालग्रेव मैकमिलन। पृष्ठ: 95-120, 310-335

भारतीय राजनीति की उभरती प्रवृत्तियाँ और सोशल मीडिया के दौर में लोकतंत्र: एक अध्ययन

डॉ० संजय कुमार झा

राजनीति विज्ञान विभाग, एम.एल.एस.एम. कॉलेज, दरभंगा, ल0 ना0 मि0 विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रस्तावना:

भारतीय राजनीति का आधार भारतीय संविधान है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप संविधान निर्माण कर भारत के विकास को सही दिशा देने का कार्य किया है। इसके बावजूद राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों, स्वरूप एवं विकास कार्य में बाधाएँ आती रही है। राष्ट्रीय बाधाओं में भ्रष्टाचार, राजनीतिक हिंसा, नौकरशाही में लापरवाही, चुनावी भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, गुटबाजी, नक्सलवाद, सत्ता संघर्ष आदि महत्वपूर्ण हैं। इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में पड़ोसी देशों से युद्ध, गुट-निरपेक्षता, विदेश-नीति, आर्थिक-नीति, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद, नस्लवाद का विरोध आदि के चलते भारतीय राजनीति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नियमित रूप से कार्यरत रही है।

आज हम ऐसे दौर में हैं जब राजनीति को परिवर्तन का सबसे प्रभावी माध्यम मान लिया गया है। लोकतांत्रिक निजाम में सब अपने लिए सुरक्षित स्थान चाहते हैं। इसके लिए वे राजनीति को परिवर्तनकारी 'टूल' की तरह प्रयोग कर रहे हैं लेकिन उसका उपयोग कैसे किए जाए? जिन सपनों को राजनीति के माध्यम से साकार करना है उन्हें लोक-स्वीकृति कैसे दिलाई जाय? इस बारे में किसी के पास कोई स्पष्ट दिशा नहीं है। जहाँ दृष्टि है, वहाँ प्रतिबद्धता का अभाव है। नतीजा नए वर्गों के प्रवेश तथा आशाओं, अपेक्षाओं के बावजूद राजनीति का चेहरा ज्यों का त्यों है। पिछले कुछ दशकों से देश की राजनीति आरक्षण, भ्रष्टाचार, जातिवाद, क्षेत्रीयता जैसे मुद्दे केन्द्र में हैं। देश की राजनीति इन्हीं के इर्द-गिर्द दशकों से घूमती रहती है। ये इतने लोकलुभावन और सदाबहार है कि कोई दल इन्हें छोड़ना नहीं चाहता। वैचारिक राजनीति के दिन लद चुके हैं। तात्कालिकता में विश्वास ऐसा बढ़ा है कि दीर्घकालिक हित के प्रिय मुद्दे को छूना तक नहीं चाहता। लोकप्रियता की राजनीति अपनी पूरी चमक-दमक के साथ लगातार हमें भरमाए रखती है। संविधान पर दिए गए अपने भाषण में डॉ0 अम्बेडकर ने जिस सामाजिक लोकतंत्र की कामना की थी, उसे पूरी तरह भुला दिया गया है। धर्मसत्ता, अर्थसत्ता और राजसत्ता की तिकड़ी के समथर्न से वे प्राय: कामयाब भी हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ0 बिरकेश्वर प्रसाद सिंह ने सच ही कहा है, ''वर्तमान भारतीय राजनीति केवल संवैधानिक दृष्टिकोण से प्रभावित नहीं होती, बल्कि यह विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं का भी सम्मिश्रण करती है। यह किसी विशेष राजनीतिक सिद्धान्त अथवा आर्थिक व्यवस्था से संबद्ध नहीं है, यह 16वीं सदी के निरंकुशवाद, 19वीं सदी के उदारवाद तथा आधुनिक समाजवाद का विचित्र सम्मिश्रण है।''

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था प्रजातंत्र का एक महान प्रयोग है। भारत को प्रजातंत्र की प्रयोगशाला भी कहा जाता है। संसार के सबसे अधिक व्यस्क मतदाता भारतीय चुनाव में भाग लेते हैं। स्वतंत्रता के बाद जब भारत में प्रजातंत्र को अपनाया गया तो विशेषज्ञों का मानना था कि भारत में प्रजातंत्रीय शासन पद्धति अधिक दिनों तक नहीं चलेगी, लेकिन आज तक हुए चुनावों से यह सिद्ध होता है कि दुनिया के सभी प्रजातांत्रिक राष्ट्रों में भारत सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक राष्ट्र है। आधुनिक भारत में संसदीय और राष्ट्रपति आधारित लोकतंत्र राजनीतिक पार्टियों की उपस्थिति में ही काम कर सकते हैं। संविधान के अनुसार भारत का ढाँचा अर्द्धसंघीय है और सरकार

का प्रारूप संसदीय है। भारतीय समाज की विविधता भरी प्रकृति और इसके सामने आने वाली समस्याओं की पेंचीदगी ने राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर कई पार्टियों को जन्म दिया। आजादी के बाद पाँच से अधिक दशकों तक मामूली वैचारिक अन्तर वाली कई राजनीतिक पार्टियाँ आई। कांग्रेस पार्टी के विघटन से एक पार्टी की प्रधानता वाली प्रणाली खत्म हो गई और कुकुरमुत्तों की तरह राजनीतिक पार्टियों के उगने का दौर शुरु हो गया। भारतीय राजनीति में सरकारों के ढाँचे तथा कामकाज को नए आयाम देने वाली बहुदलीय व्यवस्था का उद्‌भव शुरु हो गया। संसदीय लोकतंत्र में गठबधंन आमतौर पर राजनीतिक बाध्यता का ही नतीजा होते हैं। ये नस्लीय, साम्प्रदायिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक टकरावों का परिणाम हो सकते हैं। गठबधंन की राजनीति ने राजनीतिक व्यवस्था की साख को दांव पर लगाकर उन्हें (क्षेत्रीय पार्टियाँ) राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दी है। क्षेत्र और राज्य आधारित पार्टियों के बढ़ते प्रभाव के साथ यह बदलाव राजनीति में हो रहे परिवर्तन को प्रतिबिंबित करता है। बदलती राजनीतिक तस्वीर के बीच प्रभुत्व वाली बहुदलीय व्यवस्था के बजाय राजनीतिक बहुलवाद कायम हो गया। विविधता भरी भारतीय जनता को देखते हुए यह स्वाभाविक भी था। क्षेत्रीय भाषाई और सांस्कृतिक स्तर पर आकांक्षायें जगी। कई प्रकार की राजनीतिक और सामाजिक विविधताएं सामने आई जिसने नस्लीय, जातीय, धार्मिक और ऐसे ही अन्य पहलुओं को स्वर दिया है। भारतीय राजनीति में प्रवृत्तियों का पता लगाना कठिन कार्य है क्योंकि मनुष्यों के राजनीतिक व्यवहार में नियमितता नहीं पायी जाती। इसके साथ ही परिस्थितियाँ भी तेजी के साथ बदलती रहती है। आजादी के बाद की भारतीय राजनीति को सामने रखते हुए इसकी कुछ प्रवृत्तियों का उल्लखे किया जा सकता है।

1990 के बाद भारतीय राजनीति को प्रभावित करने वाली प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं:-

- दल प्रणाली में बदलाव- 'कांग्रेस सिस्टम' का अन्त, कांग्रेस का पतन, बीजेपी का उदय, क्षेत्रीय दलों का बढ़ता महत्व तथा गठबंधन की राजनीति का प्रारम्भ।
- पिछड़ी जाति का बढ़ता राजनीतिक प्रभाव-मण्डल की राजनीति।
- दलित सशक्तीकरण- बहुजन समाज की राजनीति और सोशल इंजीनियरिंग।
- साम्प्रदायिक राजनीति का उबाल- लोकतंत्र तथा पंथनिरपेक्षता की नयी चुनौती।
- सत्ता का विकेन्द्रीकरण-नयी पंचायती राज व्यवस्था जिसके अन्तर्गत 1992 में 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों को अधिक शक्तियाँ तथा अधिकार प्रदान किये गये हैं। ये संस्थाएं ग्रामीण जनता के सशक्तीकरण तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के मुख्य साधन हैं।
- नयी आर्थिक उदारवादी नीतियाँ, 1991- निजीकरण, विदेशी पूँजी तथा बाजारू शक्तियों को बढ़घवा और अर्थव्यवस्था पर राज्य के नियंत्रण में कमी।
- नयी राजनीति का उदय- आम आदमी पार्टी की नयी राजनीतिक संस्कृति। साथ ही कांग्रेस का पतन और भारतीय जनता पार्टी का उदय।
- नब्बे के दशक में भूमण्डलीकरण के आगमन के साथ राष्ट्र-निर्माण और जन राजनीति की शक्ल-सूरत और रुझानों में भारी तब्दीलियाँ आयी। राजनीति में तकनीकी, प्रबंधन और नये मीडिया का अभूतपूर्व प्रयोग किया जाने लगा है। नयी मीडिया प्रौद्योगिकि का इस्तेमाल करने वाले लोगों की संख्या में जबरदस्त बढ़ोत्तरी हुई है। महज दस साल में भारत में 'मीडियास्फेयर' वाली स्थिति बन गयी है।

हिन्दुस्तान की आजादी और लोकतांत्रिक राजनीति ने अपने 70 साल पूरे कर लिए हैं। ऐसे में यह उचित ही है कि हम पीछे मुड़कर देखें और इस अवधि पर सोच विचार करें। इन सात दशकों में हमारी राजनीति में कई प्रवृत्तियाँ उभरी, हमारी राजनीति का रूप विन्यास कई दफे बदला। इस क्रम में हमारी लोकतांत्रिक राजनीति की खूबियाँ और खामियाँ उजागर हुई। मीडिया की खबरों से हम समकालीन राजनीति के बारे में जागरूक हुए हैं।

राजनीतिक सत्ता केन्द्रों ने सामाजिक शक्ति केन्द्रों को पीछे ढकेलकर धीरे-धीरे आर्थिक केन्द्रों को या कॉरपोरेट्स को सब कुछ सौंप दिया। इसलिए राजनीति और मीडिया दोनों में नए मूल्य विकसित हुए। एक ऐसा वर्ग अचानक प्रभावशाली बनकर आ गया, जिनमें सामाजिक सरोकारों का बेहद अभाव था। धीरे-धीरे भारतीय मीडिया भी स्वाधीनता आन्दोलन के अपने इतिहास, परम्परा और मूल्यों से हट गई। इसलिए राजनीति में ईमानदार, पारदर्शी नेतृत्व और मीडिया की विश्वसनीयता पर बड़ा प्रश्नचिन्ह लग गया और

यही आज के दौर की सबसे बड़ी चुनौती है। प्रिंट मीडिया के बाद जब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में विदेशी पूंजी के प्रवेश का दौर आया था, तब उसे एक बड़े परिवर्तन के रूप में देखा गया था। अब धीरे-धीरे भारत के लगभग सभी बड़े उद्योग समूहों और अनेक राजनीतिक प्रतिष्ठानों ने अपने-अपने चौनल स्थापित कर लिए हैं।

हर राजनीतिक दल यही चाहता है कि मीडिया से उसके रिश्ते खराब न हों। आजादी से पहले भारत में स्वतंत्र प्रेस की मांग ज्यादा थी जिसके लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। ब्रिटिश सरकार की प्रेस की स्वतंत्रता विरोधी नीतियों के चलते भारतीय पत्रकारों, सम्पादकों तथा समाचार पत्रों का संघर्ष काफी सराहनीय और प्रेरक रहा। किसी भी द्वंद्वात्मक प्रजातंत्र में मुद्दे पहचाना, उन पर जनमानस को शिक्षित करना और इस प्रक्रिया से उभरे जनभावना के द्वारा सिस्टम पर दबाव डालना प्रजातंत्र की गुणवत्ता के लिए बेहद जरूरी होता है। सोशल मीडिया नागरिक पत्रकार के साथ-साथ जन आवाज का सशक्त माध्यम बनता जा रहा है। सोशल मीडिया के दौर में सत्यता को छिपा पाना मुमकिन नहीं है। इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू इसकी पहुँच है, जो बहुत व्यापक है। सोशल मीडिया प्लेटफार्म के जरिए हजारों-लाखों लोगों से जुड़ सकते हैं, प्रश्न पूछ सकते हैं, बातचीत कर सकते हैं। सोशल मीडिया ने आम से लेकर खास सबकी जिन्दगी पर गम्भीर प्रभाव डाला है। सोशल मीडिया के इन्हीं गुणों के कारण वर्तमान में जननेता इसका भरपूर इस्तेमाल कर रहे हैं। सोशल मीडिया ने भारतीय राजनीति पर व्यापक प्रभाव डाला। चाहे भ्रष्टाचार के खिलाफ छेड़ा गया लोकपाल का आन्दोलन हो अथवा निर्भया के बलात्कार के पश्चात् राष्ट्रीय स्तर पर किया गया आन्दोलन, जहाँ पारम्परिक मीडिया संस्थानों की जगह सोशल मीडिया ने महत्वपर्णू भूमिका निभाई।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत करने में आम जनता की राय को समझने में सोशल मीडिया महत्वपूर्ण साधन बन गया है, क्योंकि इसकी पहुँच किसी भी मीडिया संस्थान अथवा कम्पनी द्वारा किये जाने वाले सर्वे से बहुत व्यापक है। सोशल मीडिया की व्यापक पहुँच के कारण नेताओं, राजनीतिक पार्टियों ने अपने हितों को साधने हेतु चुनावों में सोशल मीडिया का भरपूर प्रयोग किया। 2014 के चुनाव परिणामों को देखकर अब तो लगभग सभी राजनीतिक पार्टियों ने सोशल मीडिया को अपनी राजनीतिक गतिविधियों में महत्वपर्णू जगह दी और लगभग सभी पार्टियों ने अपनी आईटी सेल की स्थापना की है। लगभग सभी नेताओं ने चुनाव प्रचार के लिए ट्विटर, फेसबुक पर अपने अकॉउण्ट खोलकर अपनी बात ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने, संवाद कायम करने के प्रयत्न में लगे हैं। शुरुआती दौर में भारत के राजनेताओं ने इसकी कल्पना भी नहीं की होगी। सोशल मीडिया के प्रयोग के इस छोटे से दौर में ही उसमें 360 डिग्री का बदलाव आ गया। 21वीं सदी अब कम्प्यूटर के माउस को दरकिनार करके स्मार्टफोन और टैबलेट के जरिए देखी जा रही है। इण्टरनेट से युक्त स्मार्टफोन और टैबलेट राजनीति बदलने का साधन बनते जा रहे हैं। पुरानी राजनीति की बहुत सी बातें यहाँ नए रंग में देखने को मिल रही है।

मीडिया और राजनीति के अन्तर्सम्बन्ध-

मीडिया के विषय में जनमानस के बीच अनेक प्रकार के विचार सुनने को मिलते हैं, कोई इसे वर्तमान और भविष्य की दिशा तय करने वाला सशक्त माध्यम तो कुछ इसके बारे में ऐसी भी धारणा रखते हैं कि आजादी के बाद इसने अपना नैतिक स्तर खो दिया है। यह सिद्धान्तों के लिए समर्पित नहीं, व्यक्ति सापेक्ष हो गई है। पत्रकारिता समाज एवं राष्ट्र की प्रबोधिनी न होकर बाहुबलियों और शक्तिशालियों की दासी बन उनकी चाटुकारिता में ही अपना हित देखती है। इन भाव-विचारों के बीच आज के दौर में इस बात को नहीं नकारा जा सकता है कि युग के अनुकूल परिस्थितियाँ बनती और बिगड़ती है। पहले धर्मदण्ड राज्य व्यवस्था से परे माना जाता था और राजा के कर्त्तव्यों के निर्धारण के साथ आवश्यकता पड़ने पर उसके अनैतिक आचरण के विरूद्ध दण्ड भी देने की शक्ति रखता था, जबकि वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य की अवधारणा ने धर्मदण्ड की शक्ति का ह्रास किया है। अब राज्य की लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि ही सर्वशक्तिमान है और राजनीतिक सत्ता सर्वोपरि है। भारतीय संविधान के तीन स्तम्भ एक्जिक्युटिव (सत्ता चलाने वाला), लेजिस्लेटिव (कानून बनाने वाले) तथा ज्यूडिशिअरी (न्याय देने वाले) हैं। इन तीन स्तम्भों के सहारे ही भारतीय राज्य व्यवस्था का सम्पूर्ण तानाबाना बुना हुआ है। मंत्री परिषद् कोई योजना या नियम बनाती है, तो जनता के सामने इसको रखने की जिम्मेदारी मीडिया की होती है। इसके बारे में भारतीय संविधान की 19वीं धारा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में अधिकार के अन्तर्गत विस्तार से दिया गया है। इस अनुच्छेद ने मीडिया को सार्वभौमिक शक्ति

प्रदान की है जिससे वह अपनी पैनी नजर रखते हुए स्व-विवेक के आधार पर घटना से संबंधित सही-गलत का निर्णय कर सके। 15 अगस्त 1947 से आजाद गणतंत्र के रूप में भारत ने जिस शासन प्रणाली को स्वीकारा है, वह जनता का जनता द्वारा जनता के लिए संचालित लोकतंत्रात्मक शासन है, जिसमें प्रगति के पथ पर पीछे छूट चुके व्यक्ति की चिंता रखना और उसके हित में कार्य करने को सबसे अधिक वरीयता दी गई है। इस व्यवस्था में जनता से चुने गए प्रतिनिधि शासन का संचालन करते हैं, यह प्रणाली जन प्रतिनिधियों को अपार अधिकार प्रदान करती है। चूँकि मीडिया जनता के प्रति जवाबदेह है इसलिए वह महीषियों और नेताओं का तथ्यपरख और तटस्थ लेखा-जोखा जनता तक पहुँचा देती है। इस प्रकार मीडिया और राजनीति एक-दूसरे की सहयोगी बनकर कार्य करती दिखाई देती है। आजादी के पूर्व के सभी समाचार पत्र-पत्रिकायें राजनीतिक, प्रशासनिक व्यवस्था और राजनेताओं पर अपनी नजर गढ़ाए रखते थे तथा व्यवस्था परिवर्तन के बारे में लिखते थे। स्वततंत्रा के पश्चात् बीते 70 सालों के बाद भी मीडिया अपने कर्त्तव्य का बखूबी निर्वहन कर रहा है। व्यवस्था में खामियाँ इतनी अधिक है कि उन पर मीडिया लगातार प्रहार कर रही है। मीडिया सरकार द्वारा बनाई गई विकास के मॉडल तथा योजनाओं को जनता तक पहुँचाती है। मीडिया न केवल सूचना पहुँचाती है बल्कि जन के मानस को इस बात के लिए तैयार करती है कि सुदृढ़ भविष्य के भारत निर्माण तथा अपने राज्य, नगर, ग्राम के हित में किस पार्टी को अपना बहुमूल्य वोट दें।

आज मीडिया के उद्देश्यों को लेकर दो तरह की विचारधाराएं प्रचलित हैं। एक मीडिया को शुद्ध व्यवसाय मानते हैं तो दूसरा वर्ग इसे जनसंचार का शक्तिशाली माध्यम होने के कारण जनकल्याण कारक, नैतिक मूल्यों में अभिवर्धक, विश्व बन्धुत्व और विश्व शान्ति के लिए महत्वपूर्ण मानता है। इन तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान पत्रकारिता जहाँ व्यवसाय है वहीं सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का माध्यम भी है।

राजनीति और मीडिया के इन अन्तर्सम्बन्धों को चाहें तो स्वार्थ के सम्बन्ध कहा जा सकता है बावजूद इसके यह नकारा नहीं जा सकता कि पत्रकारिता सदैव आमजन के हित में रहा है। जब एक नेता, दूसरे नेता की तथा प्रशासक-कर्मचारी दूसरे अधिकारी-कर्मचारी की खामियों, नीतियों, उनके काले कारनामों को उजागर करते हैं तब प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष वह जनहित से जुड़े विषयों को मीडिया में रखने का कार्य करते हैं। स्वाधीनता आंदोलन के समय और उसके बाद भारत में मूल्यों के संरक्षण, संवर्धन तथा उनकी स्थापना का कार्य मीडिया निरंतर कर रही है। यही उसे लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का संरक्षक बनाता है। सच तो यह है कि जब तक भारत में लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था रहेगी तब तक मीडिया और राजनीति में अन्तर्सम्बन्ध बने रहेंगे।

भारतीय राजनीति की बदलती गतिशीलता ने परिवर्तन के इस चरण के रूप में मीडिया से लोगों की उम्मीदें बढ़ा दी है, एक व्यक्तिगत धारणा के साथ इस पर विश्वास करना काफी आसान हो गया है। देश की पुरानी पीढ़ी अभी भी परम्परा और संस्कृति के आधार पर चीजों को तय करती है, जबकि वर्तमान युवाओं को विश्व में तेजी से बढ़ रहे प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया में अधिक रुचि प्रभावित करती हैं। इस प्रकार समाज में मीडिया की जिम्मेदारी बढ़ जाती है।

सोशल मीडिया के दौर में भारतीय राजनीति-

भारतीय राजनीति बदल रही है और परिवर्तनों के इस दौर में लोगों के साथ जुड़ने के लिए सोशल मीडिया सबसे बेहतर साधन है। तकनीकी सक्रियता के बाद, जब 'सोशल मीडिया सक्रियता' आज की पीढ़ी के लिए एक पर्याय बन गई है। आज लगभग तीन में से दो भारतीय अलग-अलग सोशल नेटवर्किंग साइटों जैसे कि फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब, इंस्टाग्राम आदि पर आनॅलाइन रहकर अपना समय बिताते हैं। यहाँ तक कि अब सोशल मीडिया की तुलना व्यक्तिगत ईमेल भेजने की प्रवृत्ति समाज में बहुत पुरानी हो गई है। इण्टरेक्शन, लाइव चौट, स्टेटस अपडेट्स, इमेज तथा वीडियो शेयरिंग जैसे कुछ महत्वपर्णू पहलू हैं, जो सोशल मीडिया की लोकप्रियता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूसरी ओर ग्राहकों की प्रतिक्रियाएं, उनके सम्पर्क और ब्रांड के प्रति जागरूकता, एक ऐसी वजह बन गई है जिससे कई कम्पनियाँ भारत और दुनिया भर में सोशल मीडिया का भरपूर इस्तेमाल कर रही है। इस प्रकार सोशल मीडिया द्वारा निभाई जा रही विभिन्न भूमिकाएं, दुनिया भर में अपनी लोकप्रियता के लिए विख्यात है जो कवेल सूचना संचार की मुख्य भूमिका तक सीमित नहीं है।

भारत में इण्टरनेट का प्रयोग करने वालों की कुल संख्या वर्तमान में करीब 56 करोड़ है। स्मार्टफोन और मोबाइल इंटरनेट की आकस्मिक उपलब्धता से सोशल मीडिया के उपयोग में तेजी आई है। भारतीय इंटरनेट यूजर वास्तविक समूह बनाने और पारस्परिक प्रभाव डालने तथा बातचीत करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि असाधारण रूप से और तेजी से आगे बढ़ता हुआ सोशल मीडिया जो सूचना और प्रौद्योगिकी से संबंधित कुछ उत्पादों और ब्राण्डों के प्रति ग्राहकों की मानसिक गतिविधियों को उचित रूप से गठित करने में, अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सोशल मीडिया अन्य पारम्परिक तथा सामाजिक तरीकों से कई प्रकार से एकदम अलग है। इसमें पहुँच, आवृत्ति, प्रयोज्य, ताजगी और स्थायित्व आदि तत्व शामिल है। निएलसन के अनुसार 'इन्टरनेट प्रयोक्ता अन्य साइट्स की अपेक्षा सामाजिक मीडिया साइट्स पर ज्यादा समय व्यतीत करते हैं।'

दुनिया में दो तरह के सिविलाइजेशन का दौर शुरु हो चुका है, वर्चुअल और फिजीकल सिविलाइजेशन। आने वाले समय में जल्द ही दुनिया की आबादी से दो-तीन गुना अधिक आबादी इंटरनेट पर होगी। इंटरनेट एक ऐसी टेक्नोलॉजी के रूप में हमारे सामने आया है, जो उपयोग के लिए सबको उपलब्ध है और सर्वहिताय है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स संचार एवं सूचना का सशक्त जरिया है जिनके माध्यम से लोग अपनी बात बिना किसी रोक-टोक के रख पाते हैं। यहीं से सामाजिक मीडिया का स्वरूप विकसित हुआ है।

राजनीतिक हथियार के रूप में सोशल नेटवर्क का महत्व दो मुख्य बिन्दुओं पर निर्भर करता है। पहला देश का मध्यम वर्ग, जिसने महसूस किया कि वह चुनाव नतीजों को नहीं बदला और उसने इंटरनेट को जंग के वैकल्पिक मैदान के रूप में अपना लिया। फेसबुक और ट्विटर अब उसके लिए नए मंच बन गए हैं और समाचार टीवी स्टुडियो उसके लिए संसद का रूप ले चुके हैं। द न्यूयॉर्क टाइम्स के स्तंभकार थॉमस फ्रेडमैन ने लिखा कि उन्होंने भारत के अपने ताजा दौरे पर जो देखा, वह उनके लिए एक अनोखा अनुभव था-एक बिल्कुल नई राजनीतिक बिरादरी, भारत का वर्चुअल मिड्ल क्लास आदि फ्रेडमैन ने पाया कि यह वर्ग हालांकि अब भी कमजोर है, लेकिन वह मध्य वर्ग से जुड़े अधिकारों की मांग कर रहा है। दूसरा है वह वर्ग जो सोशल मीडिया के जरिए अपनी बात दूसरों तक पहुँचा सकता है, किसी संपादक या गेटकीपर के रोकटोक के बिना। इस तरह लोग सीधा संवाद करते हैं, इसके अपने फायदे हैं। लेकिन तीसरी एक और बड़ी बात निकलकर आ रही है वह यह है कि राजनीतिक पार्टियाँ द्वारा भी मुख्यधारा के मीडिया में अपना एजेंडा बनाने के लिए इसका इस्तेमाल करना एक कला मानती है। सोशल मीडिया की खुबसूरती यही है कि इसकी क्षमता असीमित है। आपको सीढ़ी दर सीढ़ी नहीं चढ़ना पड़ता, आप सीधे 2000 तक पहुँच सकते हैं। लैपटॉप-टेबलेट की बाढ़ आ रही है और स्मार्ट फोन अपने पांव तेजी से पसार रहा है, ऐसे में सोशल मीडिया जल्दी ही अपना जादू का असर दिखाने जा रहा है। 2019 के आम चुनावों में इसका असर देखने को निश्चय ही मिलेगा।

यह देखना महत्वपूर्ण है कि कैसे एक आम आदमी राजनीतिक रूप से अभिजात्य तबके के साथ संवाद स्थापित कर रहा है। सोशल मीडिया साझेदारी के लोकतंत्र की सच्ची भावना को अभिव्यक्त करता है। जहाँ एक साथ करोड़ों लोग आपस में संवाद और विचारों का आदान-प्रदान कर रहे होते हैं, आज हम एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं जहाँ विकीलिक्स इंटेलीजेंस एजेंसियों को चुनौती दे रहा है, जबकि फेसबुक के यूजर्स आबादी के मामले में सिर्फ एक या दो देशों से पीछे हैं। यह एक ऐसी दुनिया है, जहाँ ट्यूनीशिया का एक फल विक्रेता मोहम्मद बोजीजी अकेले दम पर जनता में आक्रोश फैला सकता है और अरब क्रान्ति को जन्म दे सकता है। इसमें कोई शक नहीं है कि सोशल मीडिया सत्ताओं को गिराने की कुव्वत रखता है, लेकिन क्या यह नई और ज्यादा जनतांत्रिक सत्ताओं को निर्मित भी कर सकता है? इस पर अन्तिम निष्कर्ष तक अभी नहीं पहुँचा जा सकता है। लेकिन जिस तरह इसका प्रभाव बढ़ा है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि कोई भी टिप्पणी करने से पहले सतर्कता बरतना बहुत जरूरी है।

सोशल मीडिया और हमारी गोपनीयता-

गोपनीयता मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है और इसलिए बहुसंख्य लोकतांत्रिक देशों में, एक व्यक्ति की गोपनीयता को सुरक्षित रखने में केन्द्रीय संस्थान महत्वपर्णू भूमिका निभाते हैं। संस्थाओं को कुछ सेवाओं तक पहुँच प्राप्त करने के लिए हमारी व्यक्तिगत जानकारी की आवश्यकता होती है और किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत जानकारी को कोई तीसरा व्यक्ति आसानी से प्राप्त न कर सकें,

वह इस आधार को सुरक्षित रखने की भरसक कोशिश करते हैं। सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के साथ गोपनीयता का प्रबंधन एक सामूहिक मुद्दा बन चुका है। सोशल मीडिया उपभोक्ता, गोपनीयता के कुछ मामलों में स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं, लेकिन जब जानकारी कई उपभोक्ताओं के बीच साझा की जाती है, तब वे इसकी गोपनीयता के लिए एक-दसूरे पर निर्भर होते हैं।

निष्कर्ष-

वस्तुत: यह सूचना का युग है। सूचना ही ज्ञान है। ज्ञान ही ताकत है। उत्तर- आधुनिक युग में इंटरनेट की दुनिया में भारत अभी नाबालिग है। जो देश आगे है वहां लोग इंटरनेट पर उपलब्ध डाटा के इस्तेमाल के तरीके जानते हैं और अपनी निजता के संविधान-सम्मत बुनियादी अधिकारों को लेकर संवेदनशील हैं। भारत की स्थिति अलग है। मानव सभ्यता ने प्राइवेसी की अवधारणा की खोज की है। व्यक्ति की निजता, परिवार की निजता, समुदाय की निजता, विकास के हर चरण में निजता की इस अवधारणा को सुरक्षित बनाए रखने की जरूरत महसूस की गई। संयुक्त राष्ट्र ने 1948 में जो मानवाधिकार घोषणा पत्र जारी किया उसमें निजता को मानवाधिकार के रूप में कानूनी स्तर पर मान्यता मिली। संयुक्त राष्ट्र के इस दस्तावेज पर भारत समेत सभी देश अपने नागरिकों के साथ करार है कि नागरिकों की निजता की न कवेल सुरक्षा करेंगे बल्कि उसमें दखलअंदाजी को मानवाधिकार का उल्लंघन मानेंगे। हर व्यक्ति सोशल मीडिया पर मौजूदगी चाहता है। वतर्मान में सोशल मीडिया इतना मजबूत हो गया है कि राजनीतिक दल उसका भरपूर इस्तेमाल करना चाहते हैं। उनका मकसद सोशल मीडिया के माध्यम से इन ओपिनियन लीडर्स तक पहुँचना होता है ताकि अधिक से अधिक लोगों तक अपनी विचारधारा को आसानी से फैला सकें। कैम्ब्रिज एनालिटिका जैसी डाटा माइनिंग कम्पनी परामर्श देती है कि लोगों का ध्यान कौन तरीके से कब, किस दिशा में मोड़ना ज्यादा कारगर होता है। तकनीक इतनी सक्षम है कि वह किसी भी नागरिक की हर गतिविधि पर निगरानी रख सकता है। आधुनिकतम तकनीक की बनावट ही आंकड़ों वाली है, जिसे आमतौर से डिजिटल कहा जाता है। राज्य के हर नागरिक को तकनीक के लिहाज से केवल एक डेटा माना जाता है। नागरिक को डेटा में तब्दील करने का आशय इसके सिवाय दूसरा नहीं हो सकता है कि उसकी निजता उसके नियंत्रण में नहीं है। उसकी निजता निगरानी में है। भले ही हमारे आसपास की दुनिया बढ़ती प्रौद्योगिकी की सहायता से तेजी से बदल रही है, फिर भी एक सवाल मौजूद है कि क्या प्रौद्योगिकी डाटा की गोपनीयता को बरकरार रखने में सक्षम है। फेसबुक-कैंब्रिज एनालिटिका डाटा की चोरी और आधार की जानकारी के घोटाले, निश्चित रूप से प्रौद्योगिकी की कमजोरी को उजागर करते हैं। ऐसी कुछ कमियाँ है, जो अभी भी कई बड़े डाटा विश्लेषकों के लिए एक चिंता का विषय बनी हुई है, क्योंकि अब भी यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि किसी उपयोगकर्ता की सहमति के बिना उसकी जानकारी डाटाबेस और गोपनीयता का दुरुपयोग न हो। व्यक्ति को यह सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी कदम उठाने की जरूरत है कि वे सोशल मीडिया साइटों और वेबसाइटों पर बहुत अधिक व्यक्तिगत जानकारी न दें। यह भी सुनिश्चित करें कि उनकी सभी सूचनाओं का किसी तीसरे पक्ष द्वारा उपयोग तो नहीं किया जा रहा है और सभी मोबाइल ऐप्स की गोपनीयता शर्तें को अच्छी तरह से समझें।

डिजिटल जगत भौतिक, सामाजिक और राजनीतिक जगत से अलग नहीं है। इसलिए इसे अलग करके देखना ठीक नहीं है। हम मुश्किल में इसलिए हैं क्योंकि हमने इस पर सवाल नहीं उठाया कि कैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म और तकनीक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को प्रभावित कर रहे हैं। इससे चुनावों पर भी असर पड़ रहा है। भारतीय राजनीति की प्रकृति एवं प्रवृत्तियों को देखने से स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था अनेक संकटों को झेलते हुए अपनी जड़ें मजबूत कर चुकी है। इसकी वर्तमान स्थिति को देखते हुए उज्ज्वल भविष्य की आशा की जा सकती है। इसके साथ ही भारतीय राजनीति में कमजोरियों को भी देखा जा सकता है, जिसमें कूट और पृथकता, व्यावसायिक दृष्टिकोण की कमी, समझौते के माध्यम से समस्या को टालना, जनता की मांगों का राजनीति पर दबाव का अभाव आदि बातों पर विजय प्राप्त करने पर ही भारतीय राजनीति में स्थिरता तथा प्रजातंत्र को सफल बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची:

1 कश्यप, ओमप्रकाश का लेख, ''विचारहीन राजनीति और परिवर्तन का स्वप्न: आखरयाल, www.omprakashkashyap.wordpress.com.

2 सिंह, आर.एन.पी. का लेख, ''भारतीय राजनीति में गठबधंन काल का आरम्भ', 21 फरवरी 2018, www.vifindia.org (Vivekanand International Foundation).Rise and fall of political parties in India. www.hindi.libraryindia.com/political science.

3 प्रसाद डॉ0 शीतल महेन्द्रा और प्रियंका बसवाल, भारतीय राजनीति में मीडिया की भूमिका, समीक्षा, www.rgbooks.net/product/ bhartiya.rajniti.mein.media.ki-bhumika.

4 सोशल मीडिया और भारतीय राजनीति, जनसंवार, 17 जुलाई, 2018, www.mettium.com/zansanwad.

5 चतुर्वेदी, मयंक का लेख, मीडिया और राजनीति–अन्तर्सम्बन्ध, www.provakta.com/ media.and.politicsantrsmbndh.

6 भारत में सोशल मीडिया का प्रभाव, www.hindi.mapsofindia.comèmy-india/society/ role.of.socialmedia-in-india, 21 फरवरी, 2018.

7 मीना, प्रो0 रामलखन का लेख, ''स्त्री विमर्श और सामाजिक मीडिया, 21 मार्च 2016, www.adivasiman.blogspot.com.

8 उत्पल, विनीत का लेख, ''सोशल मीडिया क्या है'', www.newswriters.in.

9 महेन्द्रा, डॉ0 नीलम, लोकप्रियता का नया पैमाना सोशल मीडिया, प्रवक्ता.कॉम, www.pravakta.com/new-scalemedia-popularity.

10 श्रीवास्तव, मुकुल का लेख, ''सोशल मीडिया और हमारी अभिव्यक्ति'', 17/07/15, प्रभात खबर.कॉम.

जयशंकर प्रसाद का नारी चिंतन

डॉ० जगमोहन शर्मा

सहायक प्राध्यापक, डोडा, जम्मू कश्मीर

शोध सार: जयशंकर प्रसाद छायावाद के स्तंभ माने जाते हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री केवल एक पात्र नहीं, बल्कि दया,करुणा श्रद्धा, और शक्ति का प्रतीक है। प्रसाद जी ने नारी को 'भोग्या' के रूप में नहीं, बल्कि 'प्रेरणा' और 'सृजन की शक्ति' के रूप में प्रतिष्ठित किया है। प्रसाद का समय भारत की जन-जागृति एवं सामाजिक चेतना का काल था। राष्ट्रीय जागृति के इस प्रहर में उन्होंने सदियों से उपेक्षित नारी के सम्मान तथा उसकी आवश्यकता को समझा। इसी समय देश में गांधी जी के नेतृत्व में कई आन्दोलन चल रहे थे जिसमें नारी सम्मान सत्य निष्ठा एवं अहिंसा विश्वबन्धुत्व पर बल दिया जा रहा था। तत्कालीन साहित्यकारों और समाजसेवकों ने यह अनुभव किया कि बिना नारी के सक्रिय सहयोग के स्वाधीनता आन्दोलन प्रभावी नहीं हो सकता। देश की व्यवस्था में नारी की रचनात्मक भागीदारी को महत्वपूर्ण समझा जाने लगा।

मुख्य शब्द : छायावाद, जन-जागृति, विषमता, नारी सम्मान, स्नेह-शीतलता, सहयोगिनी।

प्रसाद भारतीय समाज की इस बदलती हुई तस्वीर के गम्भीर दर्शक थे। उन्होंने अपने साहित्य में नारी की परम्परागत सीमित सीमाओं की लक्ष्मण रेखा मिटा कर अधिकारों से वंचित नारी के कल्याण के लिए समाज को प्रेरित किया। उन्होंने नारी को पुरुष के समान देख कर उस की स्वतन्त्रता का समर्थन किया। उन्होंने नारी की दयनीय स्थिति को बहुत नजदीक से देखा था और तब सामाजिक मान्यताओं की प्रतिक्रिया स्वरूप वे उसके लिए अपने साहित्य में स्वतन्त्रता और सम्मान की उद्घोषणा लेकर प्रकट हुए। पालन के शास्त्रों को लेकर गाँधी जी

प्रसाद का जीवन निजी अनुभवों की कसौटी पर कसा जाता रहा है और ऐसी दशा में उन्हें मीठे कड़वे सभी प्रकार के अनुभव रहे हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों एवं जीवन की अन्य अनेक दुर्घटनाओं में कभी-कभी उनके दुखवाद का स्वर बहुत ऊँचा सा उठता दिखाई पड़ता है। जैसे

"ले चल मुझे भुलावा दे कर
मेरे नाविक धीरे धीरे
जहां निर्जन में सागर लहरी
अंबर के कानों में गहरी
निश्चल प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी।"[1]

यहां कवि सांसारिक कोलाहल, छल-कपट और संघर्ष से दूर एक शांत, निर्जन स्थान पर जाने की इच्छा प्रकट करते हैं, ऐसा लगता है मानो कवि जीवन की इस विषमता से ऊब गया है, लेखक इस विषमता और असमानता से दूर जाकर जहाँ हिंसा न हो, वहां अपना शेष जीवन व्यतीत करना चाहता है। उन्हें कहीं भी अपनत्व एवं मैत्री पूर्ण व्यवहार नहीं मिल सका और प्रत्येक शब्द को व्यथा भार सा उठता हुआ कह लेता है

"कहाँ मित्रता, कैसी बातें? अरे कल्पना है सब ये
सच्चा मित्र कहाँ मिलता है? दुखी हृदय की छाया सा।'[2]

विषमताओं के बावजूद भी प्रसाद का आशावाद अपनी सम्पूर्ण शक्ति लेकर अभिव्यक्त हुआ है। उनके मन के कोमल अंश को भी किसी की स्नेह धारा ने टकराया हे। जिस समय कवि (जयशंकर प्रसाद) अपनी घोर निराशा के प्रहर में चिंतित हो चला था, तब कोई सौन्दर्य कौतुहल बनकर उनके जीवन में आता है

"शशि मुख पर घुंघट डाले
अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गौधूलि में
कौतुहल से तुम आये।"[3]

प्रसाद का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण माता, पत्नी, भाभी तथा प्रेमिका के चार रूपों में देखा जा सकता है। वह अभिजात्य कुल में उत्पन्न हुए थे।

उन का पारिवारिक वातावरण सुसंस्कृत तथा धार्मिक था अत: सामान्य अथवा मध्य वर्गीय नारी की वैषम्य पूर्ण परिस्थितियों में उत्पन्न कुण्ठा और कलह न तो वे देख ही पाए और न उन्हें उसका शिकार ही होना पड़ा, दूसरे परिवार में सबसे छोटे होने के कारण बहिन और माता का उन्हें पूर्ण दुलार मिला। बाद में नियति की क्रूरता के सम्मुख उन्हें माता के स्नेह से वंचित होना पड़ा।

इस प्रकार प्रसाद का नारी से माता के रूप में पहला अनुभव स्नेह, दुलार और ममता से पूर्ण रहा। माता के स्नेह ने उनके मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ी है और नारी के मातृत्व को ही सर्वश्रेष्ठ माना। पत्नी के रूप में नारी उनकी करुणा की अधिकारिणी ही बन सकी है। उनके तीन विवाह हुए। यौवनकाल में ही उनका स्नेह सूत्र कई बार टूटा और उसमें बार-बार गाँठे डाली गई। उन गाँठों में केवल करुणा का रस ही बन पाया और उनके समस्त साहित्य क्षेत्र में विर्कीण हो गया। नारी के प्रति उनकी असीम श्रद्धा भावना का मूल भाभी के स्नेह से पोषित हुआ। उन्होंने अपनी भाभी का सम्मान करके नारी का सम्मान किया।

प्रसाद की नारी विषयक अवधारणा को उनके साहित्य में व्याप्त अनेक बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है।

प्रसाद की नारी भावना का मूल्य और महत्व नारी को दार्शनिक स्वरूप प्रदान करने में सफल है उनकी आँखों में नारी को सर्वमंगला, सर्वोच्च-आनन्दवाद की अधिष्ठात्री के रूप में देखने का जो स्वप्न पला था उसे उन्होंने नारी के दार्शनिक स्वरूप में प्रकट किया है वह नारी को व्यापक विशुद्ध और विश्वासमयी स्वरूप में संसृति का रहस्य मानते हैं। उसका मूल स्वरूप श्रद्धामय है जिसके द्वारा जीवन के सुन्दर समतल में पीयूष वर्णन होता है -

"नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।"[4]

वह विश्व मंगल की कामना करती हुई मानव मात्र के प्रति शान्ति और समृद्धि का संदेश देती है। मानव मात्र के प्रति ही नहीं, प्राणी मात्र के प्रति नारी के मन में सहृदयता का भाव निहित है। श्रद्धा पशु हिंसा का विरोध करती हुई मनु से कहती है-

"वे द्रोह न करने के स्थल हैं
जो पाले जा सकते हैं सहेतु
पशु से यदि हम कुछ ऊंचे हैं
तो भव जलनिधि में बने सेतु।'[5]

नारी जीवन के सुखों को सभी में विकसित देखना चाहती है -

"औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पावो
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।"[6]

इसी मंगल कामना में नारी स्वयं दुख सहने में तत्पर है। परन्तु अन्य प्राणियों को सुखी करना उसके जीवन का लक्ष्य है । उसकी इस उदात्त प्रवृति के कारण ही मनु उससे कहते हैं

"हे सर्व मंगले ! तुम कहती
सब का दुख अपने पर सहती।"[7]

'एक घूँट' में भी प्रसाद ने प्रेमलता को इसी प्रकार की समन्वयिका के रूप में उपस्थित किया है। उसके द्वारा ही आनन्द कुमार की बुद्धि का हृदय से सम्मिलन होता है। प्रेमलता को पाकर बुद्धिवादी आनन्द कहता है 'मेरे कल्पित संदेश में सत्य का कितना अंश था, उसे अलग झलका दिया। मैं प्रेम का अर्थ समझ सका हूँ। आज मेरे मस्तिष्क के हृदय का जैसा मेल हो गया है।"[8] प्रसाद जी समन्वय दर्शन को अधिक महत्ता प्रधान करते हैं। उनकी दृष्टि में नारी के सहयोग से पुरुष जीवन की सारी समस्याओं का अन्त हो जाता है। कामायनी में समरसता का प्रतीक श्रद्धा है जैसे

"शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है।'[9]

'तितली' की नन्द रानी का यह कथन है "मैं कहती हूँ कि पुरुष और स्त्री को ब्याह करना ही चाहिए एक दूसरे के सुख-दुख और अभाव, आपदाओं को प्रसन्नता में बदलने के लिए सदैव प्रयत्न करता रहे। एक की कमी दूसरे को पूरी करनी चाहिए।"[10]

प्रसाद ने नारी को शक्ति के रूप में देखा जो उनके उपन्यासों में चित्रित है। जेल जीवन में शतितलीश की याद मधुबन में आशा का संचार करती है। 'इरावती' में भी यही भावना व्यक्त हुई है "नारी शक्ति स्वरूपा है अन्तर्निहित आनन्द की अग्नि प्रज्ज्वलित करने पर सब मलिन कर्म उसमें भस्म हो जाते हैं। उस आनन्द के समीप पाप आने से डरेगा।"[11] वह प्रेम के आदर्श रूप को लेकर चलते हैं। इनके नाटकों के स्त्री पात्र सौन्दर्य और विश्वासमय के आदर्श रूप हैं। उनका प्रेम वासना और मोह की संकीर्ण सीमाओं से मुक्त है। 'लहर' में उन्होंने कहा है -

"पागल रे ! वह मिलता है कब
उस को तो देते ही हैं सब
आँसू के कन से गिन कर।"[12]

नारी के प्रेम की छाया में पुरुष अपनी क्रूरतायें भूल जाता है। 'अजातशत्रु' नाटक में वाजिरा का प्रेम अजात क नृशंसता को शान्त कर देता है। मालविका चन्द्रगुप्त से प्रेम करती रहकर भी अन्त तक उसे अपने तक ही सीमित रखती है और मौन होकर ही अपने प्रणय की प्रतिष्ठा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देती है।

चन्द्रगुप्त नाटक की सुवासिनी में भी यही एकनिष्ठा विद्यमान है। 'ध्रुवस्वामिनी' में कोमा शकराज से बार-बार लांछित होकर भी उसके निधन पर उसका शव माँगने जाती है। प्रेम सम्बन्धी इस आदर्श के संदर्भ में देवसेना का चरित्र बहुत ऊँचा ठहरता है। उसने स्कन्दगुप्त पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया है। परन्तु अपने को पराजित पाकर भी वह क्षुब्ध नहीं होती उसे अपनी प्रतिद्वंद्विनी विजया से न तो ईर्ष्या ही होती है; न उस पर गुस्सा ही आता है, वरन उसे क्षोभ होता है कि विजया अपने भावावेश की शीघ्रता में भटार्क का वरण कर लेती है। दूसरे स्कन्दगुप्त से प्रेम करते हुए भी वह अपनी प्रेमाकांक्षा को प्रकट नहीं करती। उसकी दृष्टि में स्कन्दगुप्त से प्रणय चर्चा करना उसका अपमान करना है- ''युवावस्था के उन्माद काल में संगीत की एकांत साधना में लीन, भाव-विभोर दूर की रागिनी सुनती हुई वह कुरंगी सी कुमारी चरित्र को यही विशेषता लेकर हमारे सम्मुख आती है"[13]

प्रसाद की नारी में प्रेम की एकनिष्ठा के साथ-साथ मानवता के कल्याण की कामना भी निहित है। प्रेम का व्यापार उनको कभी भी अच्छा नहीं लगा। इसलिए विजया, दामिनी... आदि पात्रियों को जीवन का वैषमय भोगना पड़ा। प्रेम की सफलता उस के विश्व व्यापी हाने में है -

"किन्तु न परिमित करो प्रेम
सौहार्द विश्वव्यापी कर दो।"[14]

प्रसाद की कहानियों में भी इसी प्रेम दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है। वास्तव में प्रसाद की नारी का प्रेम सम्बन्धी आदर्श अपने मूल रूप में परम्परामुक्त होकर हृदय की स्वच्छन्दता, स्वच्छता, निश्छल, आदान-प्रदान और सौन्दर्यपूर्ण भावना की पीठिका में विकसित हुआ है।

प्रसाद कर्त्तव्य को उपभोग की वस्तु न मानकर त्याग और सेवा की वस्तु मानकर चलते हैं। कामायनी में श्रद्धा द्वारा मनु को इस तथ्य से परिचित करवाया है। कर्म से भ्रान्त, इन्द्रिय सुख से आकर्षित मनु को श्रद्धा कर्त्तव्य का सन्देश देती है –

''रचना मूलक सृष्टि यज्ञ यह
यज्ञ पुरुष का जो है
संसृति सेवा भाव हमारा
उस विकसन को है।''[15]

यही कर्त्तव्य भावना मल्लिका के चरित्र में अभिव्यक्त है वह अपने कर्तव्य मार्ग में अवरोध उत्पन्न नहीं करना चाहती। अपने प्रेम पाश से उन्मुक्त होकर वह उन्हें कर्त्तव्य निर्वाह के लिए स्वतन्त्र कर देती है। यही मल्लिका के कर्त्तव्य का आदर्श है, जहाँ वह राष्ट्र के लिए अपने व्यक्तिगत सुख की बलि दे देती है। महामाया से कहती है- "मुझे कुछ नहीं, केवल स्त्री सुलभ संवेदना तथा कर्त्तव्य और धैर्य की शिक्षा मिली है।"[16]

'स्कन्दगुप्त' नाटक की रमा इसी कर्त्तव्य का लक्ष्य लेते हुए अपनी स्वामिनी की रक्षा के लिए, पति का विरोध करते हुए मरने से भी नहीं डरती। वह यह मान कर चलती है कि नारी के कर्त्तव्य की सीमा विस्तृत है। इसलिए पुरुषों को सही मार्ग पर लाना भी वह अपना कर्त्तव्य समझती है। 'अजातशत्रु' नाटक में नारी कर्त्तव्य का आदर्श व्यक्त किया गया है "स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि पाशविक वृति वाले क्रूरकर्मा परुषों को कोमल और करुणालिप्त करें। कठोर पौरुष के अनन्तर उन्हें जिस शिक्षा की आवश्यकता है, उस स्नेह-शीतलता, सहनशीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से ही सीखना होगा! हमारा यह कर्त्तव्य है। व्यर्थ स्वतन्त्रता और समानता का अलंकार कर के उस अपने अधिकार से हमको वंचित न होना चाहिए।''[17]

कर्तव्य की उत्कृष्ट भावना का विकास तितली के चरित्र में देखने को मिलता है। मधुबन में न रहते हुए भी वह अपने कर्तव्य का पालन संकोच, सहनशीलता और धैर्य के साथ किए जाती है। अपने प्रिया के अभाव में वह निराश होकर भाग्य के सहारे नहीं बैठ जाती, वरन उसके लोटने की आशा लेकर संसार से लड़ते हुए अस्तित्व बनाए रखने में विश्वास करती है।

सेवा और समर्पण नारी की जन्मजात प्रवृतियों में से मुख्य है 'चन्द्रगुप्त' नाटक की मालविका इस सेवा की मूर्ति बनकर प्रकट हुई है। मालव के युद्ध में घायल वीरों की सेवा उसका मुख्य लक्ष्य बन जाता है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की मन्दाकिनी सेवा का अनुपम आदर्श प्रस्तुत करती है। 'ध्रुवस्वामिनी को भाभी कहने के नाते उसका सारा जीवन उसकी सेवा और संकट निवारण में ही बीतता है। कामायनी में श्रद्धा सेवा के आदर्श की महानता प्रकट करती है। मनु के पास आकर वह उनका हाल-चाल पूछती है। मनु के घायल हो जाने पर वह उनकी सेवा में तत्पर होकर उन के व्यथा भार को अपने मधुर स्पर्श से हर लेती है –

"इड़ा चकित श्रद्धा आ बैठी
वह थी मनु को सहलाती
अनुलेपन सा मधुर स्पर्श था
व्यथा भला क्यों रह जाती।''[18]

स्कन्दगुप्त की देवसना के शब्दों में समर्पण भावना का ही आदर्श प्रस्तुत हुआ है "आह! कहना ही पड़ा स्कन्दगुप्त को छोड़कर न कोई दूसरा आया और न वह जायेगा... नाथ, मैं आप की ही हूँ। मैंने अपने को दे दिया है, अब उसके बदले लिया नहीं चाहती।"[19]

कामायनी की श्रद्धा समर्पण के साथ-साथ अपना कितना और कुछ भी समर्पण कर देती है –

"दया माया ममता लो आज
मधुरिमा लो अगाध विश्वास
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिये खुला है पास।"[20]

समर्पण की इस भावना के साथ-साथ प्रसाद ने नारी के पत्नीत्व रूप का भी आदर्श प्रतिष्ठा की है। अजातशत्रु नाटक की वासवी के चरित्र में पत्नीत्व की मर्यादा का पालन हुआ है। वह जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में पति सेवा के व्रत का पूर्ण निर्वाह किए

चलती है। उसका जीवन पति सेवा का ही लक्ष्य लेकर आगे बढ़ता है। राज्य का परित्याग करने पर बिम्बसार वानप्रस्थ धारण करते हैं तो वह उनके उस त्याग का अनुसरण करती है। इसी प्रकार पद्ममावती भी पतिव्रत की कसौटी पर खरी उतरती है। एक स्थान पर वह कहती है- 'मेरे नाथ! इस जीवन के सर्वस्व! और पर जन्म के स्वर्ग तुम्हीं मेरी गति हो और तुम्हीं मेरे ध्येय हो।"[21]

प्रसाद की नारी सम्बन्धी सौन्दर्य दृष्टि बाहरी और आन्तरिक दोनों दिशाओं में गहरी उतरती है। उन्होंने नारी के बाहरी सौन्दर्य में पवित्रता के दर्शन किये हैं-

"नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।"[22]

प्रसाद जी मानते हैं कि जीवन में दिव्यता का संचार भी सौन्दर्य के माध्यम से होता है। प्रसाद की नारी का सौन्दर्य व्यक्ति को आकर्षित ही नहीं करता वरन उस में चेतना का विस्तार कर उसका पथ निर्देश भी करता है - "प्रसाद जी ने अपने नेत्र, अपना हृदय, अपनी कल्पना, अपनी प्रतिभा, ज्ञान इन सब का सहारा लिया है सौन्दर्य की अनुभूति में। उनका सौन्दर्य बाह्य अवयवों की सीमा लांघ कर हृदय लोक में आलोकित होता है और अन्त में आत्मा की दीपती बन जाता है। जिस के बाहर प्रकाश और भीतर रस है।"[23]

प्रसाद ने समय की आवश्यकता को समझकर नारी में भारतीय संस्कृति के उदात्त गुणों का समावेश किया है ।उनके सभी नाटक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में लिखे गए हैं क्योंकि आर्य संस्कृति में उन्हें गहन आस्था थी। उन की संस्कृतिक निष्ठा और उदात्त भावना, देवसेना, मालविका, मल्लिका, कार्नेलिया, श्रद्धा, तितली, ममता, वासवी, सरमा, पदमावती, देवकी, कोमा और चन्द्रलेखा आदि नारियों में अभिव्यक्त हुई है। देवसेना के चरित्र में उदारता का रंग उभरा हुआ है। देशकल्याण के लिए मालव के राज्य को देने में वह जयमाला के सम्मुख कितनी उदार भावना प्रकट "क्षुद्र स्वार्थ। भाभी जाने दो, भैया को देखो, कैसा उदार, कैसा महान और कितना पवित्र।"[24] जयमाला भी उदारता का परिचय देती हई अपने पति बन्धु वर्मा के साथ युद्ध भूमि में जाकर आहत वीरों की सेवा का कार्य करती है। उन्होंने अपने विदेशी पात्रों को भारतीय संस्कृति के औदात्य से प्रभावित किया है। कंकाल की मारगेरेट और चन्द्रगुप्त की कार्नेलिया दोनों ही भारतीय नारी के स्वरूप से प्रभावित हैं। भारतीय संस्कृति में नारी के पत्नी और गृहिणी रूप का विशेष स्थान है। यह दोनों रूप ध्रुवस्वामिनी, तितली और श्रद्धा के चरित्रों में व्यक्त हुए हैं। रामगुप्त के साथ राक्षस विदाह कर दिये जाने पर भी पीड़ा और उपेक्षा से क्षुब्ध ध्रुवस्वामिनी उस समय तक कोई विरोध नहीं करती जब तक रामगुप्त की नृशंसता तथा उसका दुर्व्यवहार उसकी मान हानि तथा पत्नीत्व की मर्यादा का प्रश्न नहीं बन जाता। स्वयं को उपहार में दिये जाने की बात सुन कर वह रामगुप्त से कहती है- "मैं स्वीकार करती हूँ कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई, किन्तु मेरा वह अहंकार चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूँगी।"[25] श्रद्धा के चरित्र में भी यही पत्नीत्व की आदर्श मर्यादा व्यक्त हुई है। मनु के चले जाने पर वह भटकती हुई उसे खोज रही है।

प्रसाद युग राष्ट्रीय चेतना के विकास का समय था। इनके सभी नाटकों में नारी के गौरवमय राष्ट्रीय स्वरूप के भव्य दर्शन होते हैं। जहाँ वह देश सेवा के व्रत में पुरुष की सहचरी और सहयोगिनी के रूप में राष्ट्रीय योजनाओं में भाग लेती है। स्कन्दगुप्त नाटक की जयमाला ऐसी नारी है जिसमें राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी है। उसमें बल, साहस और देश के प्रति असीम निष्ठा की भावना विकसित हुई है। वह अपने इस गौरव को अभिव्यक्ति प्रदान करती हुई विजया से कहती है - ''श्रेष्ठि कन्ये! हम क्षत्राणी हैं, चिर संगिनी खड्ग लता से हम लोगों का चिर स्नेह है।"[26] अपने इस वीरोचित साहस के साथ-साथ वह पुरुष की प्रेरणा और साहस बनती है।

प्रसाद ने सामाजिक विषमता के बीच नारी के अधिकार शून्य व्यक्तित्व को देखा है जहाँ उसका स्त्रित्व केवल पुरुषों की पूंछ होने तक ही सीमित है। यह दुर्बल और अबला है, उसका समाज ही ऐसा है जहां अधिकार आदि के विषय में सोचने विचारने के लिए कुछ है ही नहीं। धर्म, समाज स्त्रियों का नहीं है, सब पुरुषों के लिए है। स्त्रियों का केवल एक धर्म है, वह है आघात सहने की क्षमता रखना। सामाजिक जीवन में ही नहीं पारिवारिक क्षेत्र में भी प्रसाद नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करते हैं। उनका कहना है कि पत्नी पति की दासी नहीं, सहचरी और सहयोगिनी है। 'जनमेजय का नाग यज्ञ' में वासुकी सरमा से पूछता है 'क्या

पति होने के कारण तुम पर मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है?' तब सरमा उत्तर देती है "आप को सब अधिकार है पर मेरी सहज स्वतन्त्रता के अपहरण करने का नहीं - मैं आपके साथ चलूँगी पर अपमानित होने के लिए नहीं।"[27] प्रसाद नारी को सामाजिक स्वतन्त्रता देने की जोरदार वकालत करते हैं। वह नारी को जीवन के समस्त कार्य व्यापार में पुरुष की सहयोगिनी और सहचरी मानते हैं। वह ध्रुवस्वामिनी के समान नारी को पुरुष के अत्याचारों और अन्यायों का विरोध करने का अधिकार भी देते हैं

आधुनिक युग में स्त्री की स्वाधीनता और शोषण मुक्ति का स्वर गूँज रहा है। प्रसाद के समय में भी यही भाव मुख्य रूप से समाज में स्त्री चेतना को लेकर था। इन्होंने अपने साहित्य में स्त्री की जिन समस्याओं को छुआ और अन्त तक निभाया वह उस युग का असाधारण जोखिम था। हिन्दु कोड बिल तो बड़ी कठिनाई से छठे दशक में हिन्दु स्त्री को तलाक और पुनर्विवाह का संवैधानिक अधिकार देता है, परन्तु प्रसाद जी इस कार्य को तीसरे दशक में कर देते हैं। इस बात को वह शताब्दियों पूर्व के धर्म शास्त्रीय प्रमाण देकर सिद्ध करते हैं। यही कारण है कि उनके नाटक समय सीमाओं को तोड़ते हुए वर्तमान बन गये हैं। वर्तमान का प्रत्येक ज्वलन्त प्रश्न उनके नाटकों के केन्द्र में हैं। जिसे लेकर बहुत वर्ष पहले प्रसाद चिन्तित रहे आज भी वे प्रश्न ज्वलंत है और विचार-विमर्श का मुद्दा बन रहे हैं।

संदर्भ :

1. जयशंकर प्रसाद, लहर, पृ. स -5
2. वही, प्रेमपथिक , पृ. स -15
3. वही, आंसू, पृ. स-3
4. वही, कामायनी, पृ. स -133
5. वही, वही, पृ. स -147
6. वही ,वही पृ. स -132
7. वही, कामायनी, पृ. स -249
8. वही, एक घूंट, पृ. स-43
9. वही, कामायनी, पृ. स -131
10. वही, तितली , पृ. स -211
11. वही, इरावती , पृ. स -59
12. वही, लहर , पृ. स-35,36
13. परमेश्वरी लाल, प्रसाद के नाटक, पृ. स-215
14. जयशंकर प्रसाद, प्रेमपथिक पृ. स-30
15. वही, कामायनी, पृ. स -132
16. वही, अजातशत्रु , पृ. स -76
17. वही, वही, पृ. स-127
18. वही, कामायनी, पृ. स -215
19. वही, स्कंदगुप्त पृ. स -140
20. वही, कामायनी, पृ. स -57
21. वही, अजातशत्रु , पृ. स -60
22. वही, कामायनी, पृ. स -46
23. रामसुरेश त्रिपाठी, प्रसाद की सौन्दर्य अनुभूति, पृ. स -458
24. जयशंकर प्रसाद, स्कंदगुप्त पृ. स -71
25. वही,ध्रुवस्वामिनी , पृ. स -26
26. वही, स्कंदगुप्त पृ. स -43
27. वही, जनमेजय का नाग यज्ञ पृ. स -39

ब्रिटिशकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था का अध्ययन

डॉ० आशुतोष कुमार उपाध्याय

प्रवक्ता, अर्थशास्त्र, श्री जमुना राम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चितबड़ागॉव, बलिया

सारांश

ब्रिटिश शासन ने भारतीय अर्थव्यवस्था को गहराई से परिवर्तित किया, जिससे पारंपरिक ढांचे में बदलाव हुआ। भारत, जो पहले समृद्ध औद्योगिक और कृषि प्रधान था, अब औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गया। लगभग दो शताब्दियों तक भारत कच्चे माल का स्रोत और तैयार माल का बाजार बना। ठतपजपेी नीतियों ने पारंपरिक उद्योगों का विनाश और कृषि व्यवसायीकरण किया, जिससे धन का निकास हुआ। रेलवे और बैंकों की स्थापना औपनिवेशिक शोषण को बढ़ावा देने के लिए थी, जिससे अकाल, ऋणग्रस्तता और असमानता बढ़ी।

मुख्य शब्दः ब्रिटिश शासन, औपनिवेशिक, अर्थव्यवस्था, उत्पादन, अकाल, व्यवसायीकरण, औद्योगीकरण, शोषण।

प्रस्तावना

ब्रिटिश शासन ने भारतीय अर्थव्यवस्था पर गहरा और स्थायी प्रभाव डाला, जिससे पारंपरिक आर्थिक संरचनाओं में बड़ा परिवर्तन आया। भारत, जो पहले एक समृद्ध औद्योगिक और कृषि प्रधान देश था, धीरे-धीरे एक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदला जिसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के हितों को पूरा करना था। यह परिवर्तन एक सुविचारित प्रक्रिया का परिणाम था, जिसमें ब्रिटिश प्रशासकों ने अपने राजनीतिक प्रभाव का उपयोग आर्थिक शोषण के लिए किया। लगभग दो शताब्दियों तक चला ब्रिटिश शासन भारत को एक कच्चे माल के स्रोत और तैयार माल के बाजार में बदलने का कार्य किया। प्रारंभ में, भारत अपनी विविध अर्थव्यवस्था के लिए जाना जाता था, लेकिन ब्रिटिश नीतियों ने इस संरचना को मौलिक रूप से बदल दिया। इस अध्ययन में ब्रिटिशकालिन भारतीय अर्थव्यवस्था के पहलुओं जैसे कृषि, उद्योग, व्यापार, वित्तीय नीतियों और उनके दीर्घकालिक परिणामों का विस्तृत विश्लेषण किया जाएगा ताकि आधुनिक भारत की आर्थिक नींव के जटिल प्रभाव को समझा जा सके।

ब्रिटिश शासन के आर्थिक उद्देश्य और नीतियां

ब्रिटिश शासन के प्रारंभिक दशकों में, ईस्ट इंडिया कंपनी का उद्देश्य भारत से अधिकतम लाभ कमाना था। उन्होंने भारत की प्राकृतिक संपदा और श्रम का शोषण कर इंग्लैंड में औद्योगिकीकरण के लिए कच्चे माल की आपूर्ति और तैयार माल का बाजार तैयार किया। कृषि का व्यवसायीकरण एक प्रमुख नीति थी, जिसके अंतर्गत पारंपरिक अव्यवसायिक कृषि को नकदी फसलों की खेती की ओर मोड़ा गया। इससे कुछ किसानों को फायदा हुआ, लेकिन खाद्य फसलों की कमी के कारण अकाल का खतरा बढ़ा। भूमि राजस्व प्रणालियाँ, जैसे स्थायी बंदोबस्त और रैयतवारी, ने भूमि को वस्तु बना दिया, जिससे धनवानों और भूमिहीनों के बीच विभाजन बढ़ा। ब्रिटिश सरकार ने भू-राजस्व की ऊंची दरें रखीं, जिससे किसानों पर आर्थिक दबाव बना रहा।दूसरी महत्वपूर्ण नीति पारंपरिक भारतीय उद्योगों का विनाश था। भारत के प्रसिद्ध कपड़ा उद्योग को ब्रिटेन में मशीनों के माध्यम से बड़े पैमाने पर उत्पादन और भारतीय वस्त्रों पर उच्च आयात शुल्क के कारण नुकसान हुआ। इसने भारतीय कपड़ा उद्योग को समाप्त कर दिया और धातु,

चमड़ा तथा अन्य हस्तशिल्प उद्योग भी प्रभावित हुए। यह उद्योगीकरण की प्रक्रिया ने भारत को कच्चे माल का निर्यातक और तैयार माल का आयातक बना दिया।

कृषि का अवसान और उसका प्रभाव

ब्रिटिश काल में कृषि क्षेत्र में बड़े परिवर्तनों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को मौलिक रूप से बदल दिया। ब्रिटिश सरकार ने कृषि का व्यवसायीकरण किया, जिससे नकदी फसलों का उत्पादन बढ़ा, लेकिन खाद्यान्नों के उत्पादन में कमी आई। भारत, जो कभी अनाज का निर्यातक था, अब खाद्यान्नों का आयातक बनने लगा। इसका परिणाम बार-बार के अकालों के रूप में सामने आया। 19वीं शताब्दी के अंत में भारत ने 1876-78 का महान अकाल और 1896-97 व 1899-1900 के अकाल जैसे भयानक संकट का सामना किया, जिसमें लाखों लोग मारे गए।

अकालों के लिए कई कारक जिम्मेदार थे, जिसमें वर्षा की अनिश्चितता और ब्रिटिश नीतियों का योगदान शामिल था। खाद्यान्न की कमी और नकदी फसलों पर जोर ने अकालों की स्थिति को विकराल बना दिया। इसके साथ ही, भूमि के मुद्रीकरण और नकदी फसलों पर जोर ने ग्रामीण समाज की संरचना को बदल दिया। किसानों को अपनी जमीन गिरवी रखनी पड़ती थी या कर्ज लेना पड़ता था, जिससे ग्रामीण ऋणग्रस्तता बढ़ी। इससे धनी जमींदारों और कुलीन वर्गों के हाथों में भूमि का स्वामित्व केन्द्रित हो गया, और छोटे किसानों की स्थिति दयनीय हो गई।

कृषि का व्यवसायीकरण ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति की जरूरतों को पूरा करने के लिए किया गया। कपास और नील जैसे नकदी फसलों का उत्पादन इसलिए बढ़ाया गया ताकि ब्रिटिश उद्योगों को कच्चा माल मिल सके। ऐसे में भारतीय कृषि ब्रिटिश साम्राज्य की आर्थिक मांगों के अधीन हो गई, न कि स्थानीय जरूरतों के अनुसार। यह नीति भारत की खाद्य सुरक्षा को खतरे में डालने वाली साबित हुई, जिससे पारंपरिक खाद्यान्न उत्पादन में गिरावट आई।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना भी बदल गई, पारंपरिक गांवों की आत्मनिर्भरता कमजोर पड़ गई। किसानों को नकदी फसलों का उत्पादन करने के लिए साहूकारों से ऋण लेना पड़ता था, और विफलता के कारण वे कर्ज में डूब जाते थे। जमींदारी प्रणाली को मजबूत करने के चलते जमींदार किसानों का शोषण करने लगे, जिससे सामाजिक और आर्थिक खाई और भी गहरी हो गई।

औद्योगीकरण का धीमा और असमान विकास

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में औद्योगीकरण का स्तर धीमा और क्षेत्रीय असमानता लिए हुए रहा। ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति तेजी से चल रही थी, जबकि भारत का औद्योगिक विकास सीमित था। पारंपरिक उद्योगों को जानबूझकर नुकसान पहुंचाया गया, जिससे भारत कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता में परिवर्तित हो गया। ब्रिटिश सरकार ने भारी उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए कोई नीति नहीं बनाई। कुछ उद्योग जैसे कपड़ा, जूट और रेलवे उभरे, लेकिन ये ब्रिटिश नीतियों के प्रभाव में ही सीमित रहे। रेलवे का निर्माण मुख्यत: सैन्य नियंत्रण और कच्चे माल के परिवहन के लिए किया गया, न कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए। भारतीय उद्योगों को संरक्षण का कोई प्रयास नहीं किया गया, जिससे वे ब्रिटिश प्रतिस्पर्धा के सामने असमर्थ हो गए। इसने पारंपरिक हस्तशिल्प का पतन किया। अंतत:, ब्रिटिश शासन के अंत में, भारत में औद्योगीकरण सीमित और अनुपस्थित रहा, जो मुख्य रूप से ब्रिटिश आर्थिक हितों द्वारा संचालित था। कुछ भारतीय उद्योगपतियों ने प्रयास किए, लेकिन उनकी प्रतिस्पर्धा सीमित रही।

व्यापार और वित्तीय नीतियां

ब्रिटिशकाल में भारत के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बड़ा बदलाव देखा गया। भारत का व्यापार ब्रिटेन पर निर्भर हो गया, जहाँ से मुख्यत: कच्चे माल जैसे कपास, जूट, रेशम, चमड़ा, नील और अफीम का निर्यात किया गया। ब्रिटेन से तैयार माल, खासकर सूती कपड़े और मशीनरी, आयात होते थे। इस व्यापार का संतुलन भारत के पक्ष में नहीं था, क्योंकि कच्चे माल के निर्यात से मिली आय ब्रिटिश प्रशासन के खर्चों में चली जाती थी, जिसे दादाभाई नौरोजी ने श्धन के निकासश् का नाम दिया। वित्तीय क्षेत्र में भी ब्रिटिश नीतियों का प्रभुत्व था; आधुनिक बैंकिंग प्रणाली ब्रिटिश नियंत्रण में विकसित हुई। बड़े बैंक विदेशी पूंजी से संचालित होते थे और ब्रिटिश व्यापार को बढ़ावा देने के लिए काम करते थे। भारतीय मुद्रा प्रणाली पाउंड स्टर्लिंग से जुड़ी थी, जिससे स्वायत्तता सीमित हुई। ब्रिटिशों ने पूंजी निवेश को प्रोत्साहित किया, लेकिन यह केवल उनके आर्थिक हितों से संबंधित क्षेत्रों में हुआ, जबकि कृषि, सिंचाई और शिक्षा में निवेश कम था।

व्यापार और वाणिज्य पर ब्रिटिश नियंत्रण

ब्रिटिशों ने भारत के व्यापार और वाणिज्य पर भी अपना नियंत्रण स्थापित किया। उन्होंने ऐसी व्यापारिक नीतियां लागू कीं जो ब्रिटेन के लाभ के लिए थीं। भारत को ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं के लिए एक बाजार और ब्रिटेन के उद्योगों के लिए कच्चे माल का आपूर्तिकर्ता बना दिया गया।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के दौरान, कंपनी ने एक एकाधिकार स्थापित किया और भारतीय व्यापारियों को हाशिए पर धकेल दिया। कंपनी ने भारतीय सामानों को बहुत सस्ते दामों पर खरीदा और उन्हें ब्रिटेन में बेचकर भारी मुनाफा कमाया। इस नीति ने भारतीय व्यापारियों की प्रतिस्पर्धात्मकता को गंभीर रूप से नुकसान पहुँचाया।

बाद में, ब्रिटिश ताज के तहत, भारत को ब्रिटिश साम्राज्य की अर्थव्यवस्था में एकीकृत किया गया। भारत से कपास, जूट, चाय, नील और अफीम जैसे उत्पादों का बड़े पैमाने पर निर्यात किया जाता था, जबकि ब्रिटेन से कपड़े, मशीनरी और अन्य औद्योगिक उत्पाद आयात किए जाते थे। इस व्यापार संतुलन ने भारत को एक कच्चा माल आपूर्तिकर्ता और एक तैयार माल उपभोक्ता के रूप में स्थापित किया, जो औपनिवेशिक शक्तियों के लिए फायदेमंद था।

इस व्यापार नीति ने भारत के अपने औद्योगीकरण को भी बाधित किया। जब भारत ब्रिटेन से सस्ते औद्योगिक सामान आयात कर सकता था, तो स्वदेशी उद्योगों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहन कम हो गया।

वित्तीय नीतियां और राष्ट्रीय धन का बहिर्गमन

ब्रिटिश शासन की वित्तीय नीतियों ने भारत के राष्ट्रीय धन के बहिर्गमन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्ड्रेन ऑफ वेल्थश् सिद्धांत, जिसे दादाभाई नौरोजी जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने लोकप्रिय बनाया, बताता है कि कैसे ब्रिटिश नीतियों ने भारत से धन और संसाधनों को ब्रिटेन में प्रवाहित किया।

इस बहिर्गमन के कई रूप थे। पहला, भारत से निर्यात किए गए उत्पादों का मूल्य आयातित वस्तुओं के मूल्य से काफी अधिक था, लेकिन इस व्यापार अधिशेष का लाभ ब्रिटिश सरकार या ब्रिटेन में बैठे ब्रिटिश व्यापारियों को मिलता था, न कि भारत को। दूसरा, भारत सरकार द्वारा प्राप्त राजस्व का एक बड़ा हिस्सा ब्रिटेन में ब्रिटिश अधिकारियों के वेतन, ब्रिटिश सेना के खर्चों और ब्रिटेन के सार्वजनिक ऋणों के भुगतान पर खर्च किया जाता था। तीसरा, ब्रिटिश अधिकारियों और व्यापारियों द्वारा भारत से ब्रिटेन में भेजा गया निजी धन भी इस बहिर्गमन का हिस्सा था।

इस राष्ट्रीय धन के बहिर्गमन ने भारत के पूंजी संचय को गंभीर रूप से बाधित किया, जो औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक था। इसके परिणामस्वरूप, भारत में निवेश के लिए उपलब्ध पूंजी की कमी बनी रही।

रेलवे, संचार और आधारभूत संरचना

ब्रिटिशों ने भारत में कुछ आधारभूत संरचनाएं भी विकसित कीं, जिनमें रेलवे, डाक और तार सेवाएं प्रमुख थीं। रेलवे का निर्माण ब्रिटिश शासन के दौरान एक महत्वपूर्ण विकास था। यह न केवल सैन्य और प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए महत्वपूर्ण था, बल्कि इसने देश के विभिन्न हिस्सों को जोड़ा और वाणिज्य को बढ़ावा दिया। हालाँकि, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, रेलवे का प्राथमिक उद्देश्य ब्रिटिश आर्थिक हितों की सेवा करना था।

डाक और तार सेवाओं ने संचार में सुधार किया, जिससे व्यापार और प्रशासन को लाभ हुआ। इन आधारभूत संरचनाओं के विकास ने निश्चित रूप से आधुनिक भारत की नींव रखी। हालांकि, यह महत्वपूर्ण है कि इन विकासों को औपनिवेशिक संदर्भ में देखा जाए। इनका उद्देश्य भारत का समग्र या समतावादी विकास करना नहीं था, बल्कि औपनिवेशिक प्रशासन को कुशल बनाना और आर्थिक शोषण को सुगम बनाना था।

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

ब्रिटिश शासन ने भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था में कई महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाए। एक प्रमुख परिवर्तन शहरीकरण की प्रक्रिया का आरंभ था। पारंपरिक व्यापारिक और प्रशासनिक केंद्र, जैसे कोलकाता, मुंबई और मद्रास, ब्रिटिश काल

में प्रमुख औद्योगिक और वाणिज्यिक केंद्र के रूप में उभरे। इन शहरों में रोजगार के अवसरों की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का प्रवास हुआ, जिससे शहरी आबादी बढ़ी।

दूसरा, जाति व्यवस्था और पारंपरिक सामाजिक संरचनाएं भी प्रभावित हुई। भूमि के मुद्रीकरण और नए आर्थिक अवसरों के उदय ने कुछ पुरानी सामाजिक बाधाओं को कमजोर किया, लेकिन इसने नई सामाजिक असमानताओं को भी जन्म दिया। ग्रामीण क्षेत्रों में धनवानों और गरीबों के बीच की खाई और गहरी हो गई।

तीसरा, शिक्षा प्रणाली में हुए परिवर्तन ने भी अर्थव्यवस्था को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। मैकाले की शिक्षा नीति ने पश्चिमी शिक्षा को बढ़ावा दिया, जिसका उद्देश्य ऐसे भारतीयों को तैयार करना था जो ब्रिटिश प्रशासन में क्लर्क और निम्न स्तर के अधि कारी के रूप में काम कर सकें। इस शिक्षा प्रणाली ने तकनीकी और औद्योगिक प्रशिक्षण पर कम ध्यान दिया, जिससे भारत में कुशल श्रमिकों और इंजीनियरों की कमी बनी रही।

इसके अतिरिक्त, भारत को एक एकल राष्ट्रीय बाजार के रूप में एकीकृत करने में ब्रिटिशों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, विशेष रूप से रेलवे और संचार नेटवर्क के विकास के माध्यम से। हालांकि, इस एकीकरण का उद्देश्य ब्रिटिश वस्तुओं के वितरण और कच्चे माल के संग्रह को सुगम बनाना था।

निष्कर्ष

ब्रिटिशकालिन भारतीय अर्थव्यवस्था उपनिवेशीय संरचना में बदल गई, जहां पारंपरिक उद्योगों का विनाश, कृषि का व्यवसायीकरण और धन का निकास हुआ। आधुनिक संस्थानों जैसे रेलवे और बैंकिंग प्रणाली की स्थापना ने औपनिवेशिक शोषण को बढ़ावा दिया। ब्रिटिश नीतियों ने औद्योगीकरण को रोका और अकालों ने ऋणग्रस्तता तथा सामाजिक असमानताएं बढ़ाई। ब्रिटिश शासन ने आधुनिक संरचनाएँ स्थापित कीं, लेकिन पारंपरिक आर्थिक शक्ति को नष्ट किया, जिससे भारत गरीबी और अविकसितता में पहुँचा। औपनिवेशिक नियंत्रण ने व्यापार, कृषि और उद्योगों में बाधाएं उत्पन्न कीं। स्वतंत्रता के बाद, भारत ने आत्मनिर्भरता की दिशा में कठिनाइयों का सामना किया, जो आज भी विकास तथा संप्रभुता के अध्ययन में महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. Guha, R. (1996). Economic History of India: 1857–1947. Oxford University Press, p. 37.
2. Datta, R. (2000). The Colonial Economy: Indian Subcontinent, 1800-1947. In C. Dewey & G. Hopkins (Eds.), The Cambridge Economic History of India (Vol. 1). Cambridge University Press, p. 630-700.
3. Das, D. K. (2000). The Economic History of India, 1857-1947. Oxford University Press, p. 99.
4. Nair, P. K. (2005). A Study of the Indian Economy during the British Raj. S. Chand Publishing, p. 69.
5. Pati, B. (2001). The Economic History of India Under the British. S. Chand Publishing, p. 94.